Fatawa Rizvia

With research/references and translation of Arabic phrases

Imam Ahmad Raza Barelvi (May Allah sanctify his secret)

9

Raza Foundation Jamia Nizamia Razvia Inside Lohari Gate, Lahore-8 Pakistan (54000)

फ़तावा रिज़विया

अरबी इबारतों के तख़रीज और अनुवाद के साथ

इमाम अहमद रज़ा बरेलवी (अल्लाह उनके रहस्य को पवित्र करे)

९

रज़ा फ़ाउंडेशन जामिया निज़ामिया रिज़विया लोहारी गेट के अंदर, लाहौर-८ पाकिस्तान (५४०००)

فتاوٰی رضویہ

مع تخریج و ترجمہ عربی عبارات

امام احمد رضا بریلوی قدس سرہ

۹

رضا فاؤنڈیشن جامعہ نظامیہ رضویہ اندرون لوہاری دروازہ لاہور، ۸ پاکستان (۵۴۰۰۰)

Fatawa Razawiyya Volume Nine

Contents 4 ..... Summary List
6 ..... Preface
6 ..... Volume Nine
9 ..... Symbols/Abbreviations
10..... List of Topics
56..... List of Subsidiary Issues
82..... Chapter on Funerals
108..... Treatise
108..... Al-Harf al-Hasan fi al-Kitabah 'ala al-Kafan 1308 AH 108..... (An excellent discussion regarding writing on the shroud) 210..... Al-Minnat al-Mumtazah fi Da'awat al-Janazah 1318 AH (Explanation of the supplications mentioned in the Hadith regarding funeral prayers and the method of instructing the deceased) 222..... Method of Instructing at the Grave: 240..... Bazl al-Jawa'iz 'ala al-Du'a ba'da Salat al-Jana'iz 1311 AH 240..... (Distribution of rewards for supplicating after the funeral prayer) 270..... An-Nahy al-Hajiz 'an Tikrar Salat al-Jana'iz 1315 AH 270..... (The prohibition preventing the repetition of funeral prayers) 318..... Al-Hadi al-Hajib 'an Janazat al-Gha'ib 1326 AH 318..... (The guide preventing funeral prayers for the absent) 430..... Treatise 430..... Ihlak al-Wahhabiyyin 'ala Tawhin Qubur al-Muslimin 1322 AH 430..... (Suppression of Wahhabis due to the desecration of Muslim graves) 486..... Treatise

फ़तावा रज़विया जिल्द नहम (खंड नौ)

विषय-सूची (Contents) 4 ..... संक्षिप्त सूची
6 ..... प्रस्तावना (पेश लफ्ज़)
6 ..... जिल्द नहम (खंड नौ)
9 ..... संकेत (रमूज़)
10..... विषयों की सूची (फ़ेहरिस्त मज़ामीन)
56..... गौण मुद्दों की सूची (फ़ेहरिस्त ज़िमनी मसाइल)
82..... अंत्येष्टि का अध्याय (बाब-अल-जनाइज़)
108..... शोधपत्र (रिसाला)
108..... अल-हर्फ़ अल-हसन फ़िल-किताबत अलल-कफ़न १३०८ हिजरी 108..... (कफ़न पर लिखने के विषय में उत्तम चर्चा) 210..... अल-मिन्नतुल मुमताज़ह फ़ी द'वातुल जनाज़ह १३१८ हिजरी (जनाज़े की नमाज़ से संबंधित हदीस में वर्णित दुआओं का वर्णन और मृतक को तलक़ीन करने की विधि) 222..... कब्र पर तलक़ीन की विधि: 240..... बज़लुल जवाईज़ अलल दुआ' बा'दा सलातिल जनाइज़ १३११ हिजरी 240.....
(जनाज़े की नमाज़ के बाद दुआ करने पर प्रतिफलों का विवरण)
270..... अन-नह्युल हाज़िज़ अन तकरारि सलातिल जनाइज़ १३१५ हिजरी 270..... (जनाज़े की नमाज़ को दोहराने से रोकने वाली पाबंदी) 318..... अल-हादी अल-हाजिब अन जनाज़तिल ग़ाइब १३२६ हिजरी 318.....
(अनुपस्थित व्यक्ति की जनाज़े की नमाज़ से रोकने वाला रहनुमा)
430..... शोधपत्र (रिसाला)
430..... इहलाक अल-वहाबियीन अला तौहीन क़ुबूर अल-मुस्लिमीन १३२२ हिजरी 430..... (मुसलमानों की कब्रों के अपमान के कारण वहाबियों का दमन) 486.....
शोधपत्र (रिसाला)

فتاویٰ رضویہ جلد نہم

Contents 4 ..... اجمالی فہرست

6 ..... پیش لفظ

6 ..... جلد نہم

9 ..... رموز

10..... فہرست مضامین

56..... فہرست ضمنی مسائل

82..... باب الجنائز

108..... رسالہ

108..... الحرف الحسن فی الکتابۃ علی الکفن

۱۳۰۸ھ 108..... (کفن پر لکھنے کے بارے میں

عمدہ گفتگو) 210..... الْمِنَّۃُ الْمُمْتَازَۃُ فی دَعَوَاتِ

الْجَنَازَۃ ۱۳۱۸ھ (نمازِ جنازہ سے متعلق حدیث میں وارد شدہ دعاؤں کا بیان اور تلقینِ میت کا طریقہ)

222..... طریقہ تلقینِ قبر:

240..... بذل الجوائز علی الدعاء بعد صلاۃ الجنائز

۱۳۱۱ھ 240..... (نمازِ جنازہ کے بعد دعا کرنے پر

انعامات کی تقسیم) 270..... النھی الحاجز عن تکرار

صلاۃ الجنائز ۱۳۱۵ھ 270..... (نمازِ جنازہ کی

تکرار روکنے والی ممانعت) 318..... الھادی

الحاجب عن جنازة الغائب ۱۳۲۶ھ 318..... (غائب کی نمازِ جنازہ سے روکنے والا ہادی) 430.....
رسالہ 430..... اہلاک الوھابیین علی توھین قبور المسلمین ۱۳۲۲ھ 430..... (قبور مسلمین کی توہین کی بنا پر وہابیوں کی سرکوبی) 486..... رسالہ

Fatawa Razawiyya Volume 9

486 ..... **Bariq-ul-Manar bi Shumu'-il-Mazar** (1331 AH) 486 ..... (The brilliance of the minaret from the candles of the shrine) 542 ..... **Treatise** 542 ..... **Jumal-un-Nur fi Nahy-in-Nisa' 'an Ziyarat-il-Qubur** (1339 AH) 542 ..... (Sentences of light, regarding prohibiting women from visiting graves) 570 ..... **Treatise** 570 ..... **Al-Hujjat-ul-Fa'ihah li-Tib-it-Ta'yin wal-Fatihah** (1307 AH) 570 ..... (A fragrant proof for the merit of specifying days and performing Fatiha) 651 ..... **Treatise** 651 ..... **Ityan-ul-Arwah li-Diyarihim ba'd-ar-Rawah** (1321 AH) 651 ..... (Souls coming to their homes after death) 663 ..... **Treatise** 663 ..... **Jali-yus-Sawt li-Nahy-id-Da'wati amama mawt** (1309 AH) 663 ..... (Clear announcement of the prohibition of feasts upon someone's death) 677 ..... **Treatise** 677 ..... **Hayat-ul-Mawat fi Bayani Sama'-il-Amwat** (1305 AH) 677 ..... (The life of the lifeless, regarding the hearing of the dead) 681 ..... **The First Objective regarding objections and the removal of doubts** 681 ..... (The first objective regarding objections and removal of doubts) 705 ..... **The Second Objective regarding Ahadith** 705 ..... (The second objective regarding Ahadith) 738 ..... **The Third Objective regarding the sayings of the scholars** 738 ..... (The third objective regarding the sayings of the scholars) 826 ..... **Conclusion of the treatise: Fatwa of the Arab scholars regarding the hearing of the dead**

फ़तावा रज़विया खंड 9

486 ..... **बरीक़-उल-मनार बि शुमू'-इल-मज़ार** (1331 हिजरी) 486 ..... (मज़ार की शमओं से मीनार की चमक) 542 ..... **रिसाला** 542 ..... **जुमल-उन-नूर फ़ी नही-इन-निसा' अन ज़ियारत-इल-क़ुबूर** (1339 हिजरी) 542 ..... (नूर के जुमले, औरतों को क़ब्रों की ज़ियारत से रोकने के बारे में) 570 ..... **रिसाला** 570 ..... **अल-हुज्जत-उल-फ़ाइहा लि-तीब-इत-त'यीन वल-फ़ातिहा** (1307 हिजरी) 570 ..... (दिन मुतअय्यन करने और फ़ातिहा के उम्दा होने पर अतर बेज़ हुज्जत) 651 ..... **रिसाला** 651 ..... **इत्यान-उल-अरवाह लि-दियारिहिम ब'द-अर-रवाह** (1321 हिजरी) 651 ..... (रूहों का मौत के बाद अपने घर आना) 663 ..... **रिसाला** 663 ..... **जली-युस-सौत लि-नहयि-अद-द'वती अमामा मौत** (1309 हिजरी) 663 ..... (किसी मौत पर दावत की मुमान'आत का वाज़ेह एलान) 677 ..... **रिसाला** 677 ..... **हयात-उल-मवात फ़ी बयान-इ समा'-इल-अमवात** (1305 हिजरी) 677 ..... (बे जान की ज़िंदगी, मुर्दों की समाअत के बयान में) 681 ..... **मक़सद-ए-अव्वल: एतराज़ात और इज़ाल-ए-शुबुहात में** 681 ..... (पहला मक़सद एतराज़ात और इज़ाल-ए-शुबुहात में) 705 ..... **मक़सद-ए-दोम: अहादीस में** 705 ..... (मक़सद-ए-दोम अहादीस में) 738 ..... **मक़सद-ए-सोम: उलमा के अक़वाल में** 738 ..... (मक़सद-ए-सोम उलमा के अक़वाल में) 826 ..... **खात्मा रिसाला में: मुर्दों के सुनने के बारे में अरब उलमा का फतवा**

पृष्ठ 951 का 2

فتاویٰ رضویہ جلد نہم

486 ..... **بَرِیْقُ الْمَنَارِ بِشُمُوْعِ الْمَزَارِ ۱۳۳۱ھ** 486 ..... (منارے کی چمک مزار کی شمعوں سے) 542 ..... **رسالہ** 542 ..... **جُمَلُ النُّورِ فِی نَھی النِّسَاءِ عَنْ زِیَارَۃِ الْقُبُوْرِ ۱۳۳۹ھ** 542 ..... (نور کے جملے، عورتوں کو زیارت قبور سے روکنے کے بارے میں) 570 ..... **رسالہ** 570 ..... **اَلْحُجَّۃُ الْفَائِحَۃُ لِطِیْبِ التَّعِیْنِ وَالْفَاتِحَۃِ ۱۳۰۷ھ** 570 ..... (دن متعین کرنے اور فاتحہ کے عمدہ ہونے پر عطر بیز حجت) 651 ..... **رسالہ** 651 ..... **اِتْیَانُ الْاَرْوَاحِ لِدِیَارِھِمْ بَعْدَ الرَّوَاحِ ۱۳۲۱ھ** 651 ..... (روحوں کا بعد وفات اپنے گھر آنا) 663 ..... **رسالہ** 663 ..... **جَلِیُّ الصَّوْتِ لِنَھْیِ الدَّعْوَۃِ اَمَامَ مَوْت ۱۳۰۹ھ** 663 ..... (کسی موت پر دعوت کی ممانعت کا واضح اعلان) 677 ..... **رسالہ** 677 ..... **حَیَاۃُ الْمَوَاتِ فِي بَیَانِ سَمَاعِ الْاَمْوَاتِ ۱۳۰۵ھ** 677 ..... (بے جان کی زندگی، مُردوں کی سماعت کے بیان میں) 681 ..... **اَلْمَقْصَدُ الْاَوَّلُ فِي الْاِعْتِرَاضَاتِ وَازَاحَۃِ الشُّبُھَاتِ** 681 ..... (پہلا مقصد اعتراضات اور ازالہ شبہات میں) 705 ..... **اَلْمَقْصَدُ الثَّانِي فِي الْاَحَادِیْثِ** 705 ..... (مقصد دوم احادیث میں) 738 ..... **اَلْمَقْصَدُ الثَّالِثُ فِي اَقْوَالِ الْعُلَمَاءِ** 738 ..... (مقصد سوم علماء کے اقوال میں) 826 ..... **خاتمہ رسالہ میں درباره سماع موتی علمائے عرب کا فتویٰ**

Volume Nine Fatawa Ridawiyya

Appendix of the Most Important, Exalted, and Magnificent [matters] 839
Treatise ..... 839 Al-Wifaq al-Matin Bayn Sama' al-Dafin wa Jawab al-Yamin (1316 AH) ..... 839 (A firm reconciliation between the hearing of the buried and the issue of oaths) 839

Page 3 of 951

खंड नौ फ़तावा रज़विया

सर्वाधिक महत्वपूर्ण, महान और भव्य का परिशिष्ट ..... 839 रिसाला (लघु शोधप्रबंध) ..... 839 अल-विफ़ाक़ अल-मतीन बैन समाअ अल-दफ़ीन व जवाब अल-यमीन (1316 हिजरी) ..... 839 (दफ़न किए गए के सुनने और शपथ के मसले के बीच दृढ़ सामंजस्य) 839

पृष्ठ 3 का 951

جلد نہم فتاویٰ رضویہ

تذییل اہم اجل واعظم 839

رسالہ ..... 839 الوفاق المتین بین

سماع الدفین وجواب الیمین ۱۳۱۶ھ ..... 839 (مدفون کے سننے

اور مسئلہ قسم کے درمیان محکم مطابقت) 839

Fatawa Razawiyya Volume Nine

Fatawa Razawiyya With citations and translation of Arabic passages

Imam Ahmad Raza Barelvi (May his secret be sanctified) Raza Foundation Jamia Nizamia Razawiyya

www.dawateislami.net Inside Lohari Gate Lahore No. 8 Pakistan (54000) I.T. Majlis of Dawateislami

Page 1 of 948

फ़तावा रज़विया जिल्द नहम (नौवीं)

फ़तावा रज़विया म'अ तख़रीज व तर्जुमा अरबी इबारात

इमाम अहमद रज़ा बरेलवी.क़ुद्दिसा सिर्रहु रज़ा फाउंडेशन जामिया निज़ामिया रज़विया

www.dawateislami.net अंदरून लोहारी दरवाज़ा लाहौर नंबर 8 पाकिस्तान (54000) आई.टी. मज्लिस-ए-दावते इस्लामी

पेज 1 / 948

فتاویٰ رضویہ جلد نہم

فتاویٰ رضویہ مع تخریج و ترجمہ عربی عبارات

امام احمد رضا بریلوی قدس سرہ رضا فاؤنڈیشن جامعہ نظامیہ رضویہ

www.dawateislami.net اندرون لوہاری دروازہ لاہور نمبر ۸ پاکستان (۵۴۰۰۰) آئی ٹی مجلسِ دعوتِ اسلامی

صفحہ 1 از 948

Fatawa Rizvia Volume Nine

"Whomever Allah intends good for, He gives him understanding of the religion" (Hadith) Al-Ataya al-Nabawiyyah fi al-Fatawa al-Rizwiyyah With citations and translation of Arabic phrases

Volume Nine A grand 14th-century jurisprudential encyclopedia containing rare research Imam Ahmad Raza Barelvi (May his secret be sanctified) 1272 AH _ *1340 AH 1856 AD* _ 1921 AD

Raza Foundation, Jamia Nizamia Rizvia Inside Lohari Gate, Lahore No. (8) Pakistan (54000) Phone: 67752

I.T. Majlis of Dawat-e-Islami Page 2 of 948

फ़तावा रिज़विया जिल्द नौ

"जिसके साथ अल्लाह भलाई का इरादा करता है, उसे दीन की समझ अता फ़रमाता है" (हदीस) अल-अताया अल-नबवियाह फ़िल फ़तावा अर-रिज़वियाह अरबी वाक्यांशों के संदर्भ और अनुवाद के साथ

जिल्द नौ चौदहवीं शताब्दी का एक भव्य न्यायशास्त्रीय विश्वकोश जिसमें दुर्लभ शोध शामिल हैं इमाम अहमद रज़ा बरेलवी (अल्लाह उन पर अपनी रहमत फ़रमाए) १२७२ हिजरी _ १३४० हिजरी १८५६ ईस्वी _ १९२१ ईस्वी

रज़ा फाउंडेशन, जामिया निज़ामिया रिज़विया अंदरून लोहारी दरवाज़ा, लाहौर नंबर (८) पाकिस्तान (५४०००) फ़ोन: ६७७५२

I.T. मजलिस-ए-दावत-ए-इस्लामी पृष्ठ 948 में से 2

فتاویٰ رضویہ جلد نہم

مَنْ یُرِدِ اللّٰہُ بِہٖ خَیْرًا یُفَقِّھْہُ فِي الدِّینِ (الحدیث) الْعَطَایَا النَّبَوِیَّۃُ فِي الْفَتَاوَی الرَّضَوِیَّۃِ مع تخریج و ترجمہ عربی عبارات

جلد نہم تحقیقاتِ نادرہ پر مشتمل چودہویں صدی کا عظیم الشان فقہی انسائیکلوپیڈیا امام احمد رضا بریلوی قدس سرہ العزیز ۱۲۷۲ھ _ ۱۳۴۰ھ ۱۸۵۶ء _ ۱۹۲۱ء

رضا فاؤنڈیشن، جامعہ نظامیہ رضویہ اندرون لوہاری دروازہ، لاہور نمبر (۸) پاکستان (۵۴۰۰۰) فون ۶۷۷۵۲

آئی ٹی مجلسِ دعوتِ اسلامی صفحہ ۹۴۸ میں سے ۲

Fatawa Rizvia Volume 9

All rights are reserved for the publisher.

Book: ____ ***Fatawa Rizvia Volume 9 Author:*** ___ Sheikh-ul-Islam Imam Ahmad Raza Qadri Barelvi (may Allah's mercy be upon him) Translation of Arabic phrases: _ *Hazrat Allama Maulana Muhammad Ahmad Misbahi (India) Foreword:* ___ Hafiz Muhammad Abdul Sattar Saeedi, Director of Education, Jamia Nizamia Razvia, Lahore Sourcing and Correction: _ ***(1) Maulana Nazir Ahmad Saeedi (2) Maulana Muhammad Rab Nawaz Supervision and Patronage:*** __ **Maulana Mufti Muhammad Abdul Qayyum Hazarvi, Secretary General, Tanzeem-ul-Madaris Ahl-e-Sunnat, Pakistan Index Preparation:** __ Hafiz Muhammad Abdul Sattar Saeedi Calligraphy: ___ Muhammad Sharif Gul, Karial Kalan (Gujranwala) Proofreading: ____ **(1) Maulana Nazir Ahmad Saeedi (2) Maulana Muhammad Arif Saeed Hamdami Pasting:** ___ *Pages:* ____ ***948 Publication:*** ___ ***April 1996 AD Press:*** ___ Publisher: ____ Raza Foundation, Jamia Nizamia Razvia, Inside Lohari Gate, Lahore Price: ____ ____ Rupees

Addresses to Obtain the Book: * Maktaba Qadria, Jamia Nizamia Razvia, Inside Lohari Gate, Lahore * Maktaba Tanzeem-ul-Madaris, Jamia Nizamia Razvia, Inside Lohari Gate, Lahore * Maktaba Zia-e-ia, Bohar Bazar, Rawalpindi

फ़तावा रिज़विया जिल्द नहम (खंड 9)

सभी अधिकार प्रकाशक के पास सुरक्षित हैं।

किताब: ___ **फ़तावा रिज़विया जिल्द नहम *(खंड 9)* लेखक*:*** ___ शेख-उल-इस्लाम इमाम अहमद रज़ा क़ादरी बरेलवी (रहमतुल्लाह अलैहि) अरबी उद्धरणों का अनुवाद: _ हज़रत अल्लामा मौलाना मुहम्मद अहमद मिस्बाही *(*भारत*)* प्रस्तावना*:* ___ हाफ़िज़ मुहम्मद अब्दुल सत्तार सईदी, शिक्षा निदेशक, जामिया निज़ामिया रिज़विया, लाहौर प्रमाणन और संशोधन (तख़रीज): _ (१) मौलाना नज़ीर अहमद सईदी (२) मौलाना मुहम्मद रब नवाज़ पर्यवेक्षण और संरक्षण: _ **मौलाना मुफ़्ती मुहम्मद अब्दुल क़य्यूम हज़ारवी, महासचिव तंज़ीम-उल-मदारिस अहले सुन्नत, पाकिस्तान सूची निर्माण:** _ हाफ़िज़ मुहम्मद अब्दुल सत्तार सईदी सुलेख (किताबत): ___ मुहम्मद शरीफ़ गुल, करियाल कलां (गुजरानवाला) प्रूफ़रीडिंग: ___ **(१) मौलाना नज़ीर अहमद सईदी (२) मौलाना मुहम्मद आरिफ़ सईद हमदमी पेस्टिंग:** ___ पृष्ठ*:* ___ **९४८ प्रकाशन*:*** ___ **अप्रैल १९९६ ईस्वी प्रेस*:*** ___ प्रकाशक: ___ रज़ा फ़ाउंडेशन, जामिया निज़ामिया रिज़विया, लोहारी गेट के अंदर, लाहौर मूल्य: ___ ____ रुपये

प्राप्ति के पते: * मकतबा क़ादरिया, जामिया निज़ामिया रिज़विया, लोहारी गेट के अंदर, लाहौर * मकतबा तंज़ीम-उल-मदारिस, जामिया निज़ामिया रिज़विया, लोहारी गेट के अंदर, लाहौर * मकतबा ज़ियाइया, बोहर बाज़ार, रावलपिंडी

पृष्ठ ३ का ९४८

فتاویٰ رضویہ جلد نہم

جملہ حقوق بحق ناشر محفوظ ہیں

کتاب: ____ **فتاویٰ رضویہ جلد نہم تصنیف:** ___ شیخ الاسلام امام احمد رضا قادری بریلوی رحمۃ اللہ تعالٰی علیہ ترجمہ عربی عبارات: _ حضرت علامہ مولانا محمد احمد مصباحی (بھارت) پیش لفظ: ___ حافظ محمد عبدالستار سعیدی ناظم تعلیمات جامعہ نظامیہ رضویہ، لاہور تخریج و تصحیح: _ **(۱) مولانا نذیر احمد سعیدی (۲) مولانا محمد رب نواز باہتمام و سرپرستی:** __ **مولانا مفتی محمد عبدالقیوم ہزاروی ناظم اعلیٰ تنظیم المدارس اہلسنت، پاکستان ترتیب فہرست:** __ حافظ محمد عبدالستار سعیدی کتابت: ___ محمد شریف گل، کڑیال کلاں (گوجرانوالا) پروف ریڈنگ: ____ **(۱) مولانا نذیر احمد سعیدی (۲) مولانا محمد عارف سعید ہمدمی پیسٹنگ:** ___ صفحات: ____ **۹۴۸ اشاعت:** ___ **اپریل ۱۹۹۶ء مطبع:** ___ ناشر: ____ رضا فاؤنڈیشن جامعہ نظامیہ رضویہ، اندرون لوہاری دروازہ، لاہور قیمت: ____ ____ روپے

ملنے کے پتے * مکتبہ قادریہ جامعہ نظامیہ رضویہ، اندرون لوہاری دروازہ، لاہور * مکتبہ تنظیم المدارس جامعہ نظامیہ رضویہ، اندرون لوہاری دروازہ، لاہور * مکتبہ ضیائیہ، بوہڑ بازار، راولپنڈی

Volume 9 Fatawa Razawiyya

Summary List

Foreword _____ ***5 Chapter of Funerals*** _____ ***81 Rulings and states near death*** _____ **81 Rulings and states after death** _____ **90 Bathing the deceased** _____ **91 Shrouding the deceased** _____ **99 Carrying the funeral bier** _____ 102 Funeral prayer _____ **158 Leading the funeral prayer** _____ **174 Performing the funeral prayer** _____ ***183 Place of funeral prayer*** _____ **259 Repeating the funeral prayer** _____ 269 Burial of the deceased _____ *370 Place of burial* _____ 379 Condolences, etc. _____ **382 Rulings on graves and cemeteries** _____ **403 Visiting graves** _____ ***522 Fatiha and conveying rewards*** _____ ***621 Funeral feast*** _____ 661

Page 4 of 948

खंड 9 फ़तावा रज़विया

संक्षिप्त सूची

प्रस्तावना _____ ***5*** **जनाजे का अध्याय** _____ ***81*** **मृत्यु के निकट के नियम और स्थितियां** _____ **81 मृत्यु के बाद के नियम और स्थितियां** _____ **90 मृतक का स्नान (ग़ुस्ल)** _____ **91 मृतक का कफ़न** _____ **99 जनाज़ा ले जाना** _____ 102 जनाजे की नमाज़ _____ **158 जनाजे की नमाज़ का नेतृत्व (इमामत)** _____ **174 जनाजे की नमाज़ की अदायगी** _____ ***183*** **जनाजे की नमाज़ का स्थान** _____ **259 जनाजे की नमाज़ का दोहराव** _____ 269 मृतक को दफ़नाना _____ *370* दफ़नाने का स्थान _____ 379 शोक संवेदना आदि (ताज़ियत) _____ **382 कब्रों और कब्रिस्तानों के नियम** _____ **403 कब्रों की ज़ियारत (यात्रा)** _____ ***522*** **फ़ातिहा और सवाब पहुँचाना (ईसाले-सवाब)** _____ ***621*** **मृतक की दावत** _____ 661

पृष्ठ 4 / 948

جلد نہم فتاویٰ رضویہ

اجمالی فہرست

پیش لفظ _____ **۵ باب الجنائز** _____ **۸۱ احکام و احوالِ قربِ موت** _____ **۸۱**

احکام و احوالِ بعدِ موت _____ **۹۰ غسلِ میت** _____ **۹۱ کفنِ میت** _____ **۹۹**

جنازہ لے کر جانا _____ ۱۰۲ نمازِ جنازہ _____ **۱۵۸ امامتِ نمازِ جنازہ** _____

۱۷۴ نمازِ جنازہ کی ادائیگی _____ **۱۸۳ موضعِ نمازِ جنازہ** _____ **۲۵۹ تکرارِ نمازِ**

جنازہ _____ ۲۶۹ دفنِ میت _____ ۳۷۰ جائے دفن _____ ۳۷۹ تعزیت وغیرہ

_____ **۳۸۲ احکام قبور و مقابر** _____ **۴۰۳ زیارتِ قبور** _____ **۵۲۲ فاتحہ و**

ایصالِ ثواب _____ **۶۲۱ دعوتِ میت** _____ ۶۶۱

Page 4 of 948

Volume Nine Fatawa Rizvia

Index of Treatises * Al-Harf al-Hasan ..... 107 * Al-Minnat al-Mumtaza ..... 209 * Bazl al-Jawaiz ..... 239 * An-Nahy al-Hajiz ..... 269 * Al-Hadi al-Hajib ..... 317 * Ihlak al-Wahhabiyyin ..... 429 * Bareeq al-Manar ..... 485 * Jumal an-Nur ..... 541 * Al-Hujjat al-Faiha ..... 569 * Ityan al-Arwah ..... 639 * Jali as-Sawt ..... 661 * Hayat al-Mawat ..... 675 * Al-Wifaq al-Matin 837

[Watermark: www.dawateislami.net, I.T. Majlis of Dawat-e-Islami]

खंड नौ फ़तावा रिज़विया

पुस्तिकाओं की सूची * अल-हर्फ़ अल-हसन ..... १०७ * अल-
मिन्नत अल-मुमताज़ा ..... २०९ * बज़्ल अल-
जवाइज़ ..... २३९ * अन-नही अल-
हाजिज़ ..... २६९ * अल-हादी अल-
हाजिब ..... ३१७ * इहलाक अल-
वहाबियीन ..... ४२९ * बरीक़ अल-
मनार ..... ४८५ * जुमल अन-
नूर ..... ५४१ * अल-हुज्जत अल-
फ़ाइहा ..... ५६९ * इतियान अल-
अर्वाह ..... ६३१ * जली अस-
सौत ..... ६६१ * हयात अल-
मवात ..... ६७५ * अल-विफ़ाक़ अल-
मतीन ८३७

[वॉटरमार्क: www.dawateislami.net, आई.टी. मज्लिस ऑफ़ दावत-ए-इस्लामी] पृष्ठ ५ / ९४८

جلد نہم فتاویٰ رضویہ

فہرست رسائل ہ الحرف الحسن ..... ۱۰۷ ہ المنۃ

الممتازۃ ..... ۲۰۹ ہ بذل

الجوائز ..... ۲۳۹ ہ النھی

الحاجز ..... ۲۶۹ ہ الہادی

الحاجب ..... ۳۱۷ ہ اھلاك

الوھابیین ..... ۴۲۹ ہ بریق

المنار ..... ۴۸۵ ہ جمل

النور ..... ۵۴۱ ہ الحجۃ

الفائحہ ..... ۵۶۹ ہ اتیان

الارواح ..... ۶۳۹ ہ جلی

الصوت ..... ۶۶۱ ہ حیاۃ

الموات ..... ۶۷۵ ہ الوفاق

المتین ۸۳۷

[واٹر مارک: www.dawateislami.net، آئی ٹی مجلسِ دعوتِ اسلامی] صفحہ 5 از 948

Fatawa Razawiyya Volume 9

Foreword

Praise be to Allah, the institution established a few years ago under the name "Raza Foundation" by Dar-ul-Uloom Jamia Nizamia Razawiyya Lahore, to bring the scientific treasures and jurisprudential stores of Ala Hazrat Imam al-Muslimeen Maulana Shah Ahmad Raza Khan Fazil Barelvi (may Allah have mercy on him) to light in a modern style according to the requirements of the present age, is moving towards its goal by completing the evolutionary stages of the proposed plan with extreme lightning speed. The Book of Purification (Kitab al-Taharah) and the Book of Prayer (Kitab al-Salah) have reached you in four beautiful volumes each. Now, by the grace of Allah Almighty and the care of His Noble Messenger (peace and blessings of Allah be upon him), the ninth volume is being presented.

Volume Nine

This volume consists of answers to 273 questions starting from the Chapter of Funerals (Bab al-Janaiz) of Volume 4 of Fatawa Razawiyya (Old Edition) up to the Book of Zakat (Kitab al-Zakat). The translation of the Arabic and Persian passages of this volume was done by the illustrious scholar, famous researcher, author of many books, expert in ancient and modern sciences, Hazrat Allama Maulana Muhammad Ahmad Misbahi (may his blessings be perpetual), Sheikh-ul-Adab of Jamia Ashrafia Mubarakpur (India). The translation of the Chapter of Dry Ablution (Bab al-Tayammum), which has already been published in volumes three and four, is also the result of his pen. In the old fourth volume, the order of the Chapter of Funerals was not natural, therefore, the writing of this volume has been done according to the natural order, deviating from the previous order. Moving the issues of the Chapter of Funerals from the previous unnatural order to the current natural order is also the fruit of the hard work of Allama Misbahi. In addition, a detailed list of the epistles included in this volume has also been provided for the benefit of the readers.

फ़तावा रज़विया जिल्द 9

प्राक्कथन

अल्हम्दुलिल्लाह, आला हजरत इमाम अल-मुस्लिमीन मौलाना शाह अहमद रज़ा खान फाज़िल बरेलवी (रहमतुल्लाह अलैह) के वैज्ञानिक खजानों और न्यायशास्त्रीय भंडारों को आधुनिक शैली में वर्तमान युग की आवश्यकताओं के अनुसार प्रकाश में लाने के लिए दारुल-उलूम जामिया निज़ामिया रज़विया लाहौर द्वारा "रज़ा फाउंडेशन" के नाम से जो संस्था कुछ वर्ष पूर्व स्थापित की गई थी, वह प्रस्तावित योजना के विकासवादी चरणों को अत्यंत तीव्र गति से पूरा करते हुए अपने लक्ष्य की ओर बढ़ रही है। किताब अत-तहारत और किताब अस-सलात चार-चार सुंदर खंडों में आप तक पहुँच चुकी हैं। अब अल्लाह तआला के अनुग्रह और उसके महान रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) की देखभाल से नौवाँ खंड प्रस्तुत किया जा रहा है।

नौवाँ खंड

यह खंड फ़तावा रज़विया (प्राचीन) के चौथे खंड के'जनाज़े के अध्याय' (बाब अल-जनाइज़) से शुरू होकर 'ज़कात की किताब' (किताब अल-ज़कात) तक 273 प्रश्नों के उत्तरों पर आधारित है। इस खंड के अरबी और फारसी गद्यांशों का अनुवाद प्रतिष्ठित विद्वान, प्रसिद्ध शोधकर्ता, कई पुस्तकों के लेखक, प्राचीन और आधुनिक विज्ञान के विशेषज्ञ, हज़रत अल्लामा मौलाना मुहम्मद अहमद मिस्बाही (दामत बरकातुहुमुल आलिया), शेख-उल-अदब जामिया अशरफ़िया मुबारकपुर (भारत) ने किया है। 'तयम्मुम का अध्याय' (बाब अत-तयम्मुम) (जो तीसरे और चौथे खंड में प्रकाशित हो चुका है) का अनुवाद भी उन्हीं की कलम का परिणाम है। पुराने चौथे खंड में जनाज़े के अध्याय का क्रम स्वाभाविक नहीं था, इसलिए इस खंड का लेखन पिछले क्रम से हटकर स्वाभाविक क्रम के अनुसार किया गया है। जनाज़े के अध्याय के मुद्दों को पिछले अस्वाभाविक क्रम से वर्तमान स्वाभाविक क्रम में स्थानांतरित करना भी अल्लामा मिस्बाही साहब की कड़ी मेहनत का फल है। इसके अलावा, इस खंड में शामिल शोध प्रबंधों की एक विस्तृत सूची भी पाठकों के लाभ के लिए दी गई है।

فتاویٰ رضویہ جلد نہم

پیش لفظ

الحمد للہ اعلیٰ حضرت امام المسلمین مولانا شاہ احمد رضا خان فاضل بریلوی رحمتہ اللہ علیہ کے خزائن علمیہ و ذخائر فقہیہ کو جدید انداز میں عصرِ حاضر کے تقاضوں کے مطابق منظر عام پر لانے کے لئے دارالعلوم جامعہ نظامیہ رضویہ لاہور "رضا فاؤنڈیشن" کے نام سے جو ادارہ چند سال قبل قائم ہوا تھا وہ انتہائی برق رفتاری کے ساتھ مجوزہ منصوبہ کے ارتقائی مراحل کو طے کرتے ہوئے اپنے ہدف کی طرف بڑھ رہا ہے۔ کتاب الطہارۃ اور کتاب الصلوٰۃ چار چار خوبصورت مجلدات میں آپ تک پہنچ چکی ہیں اب بفضلہ تعالی جل مجدہ وبعنایہ رسولہ الکریم صلی اللہ علیہ وسلم نویں جلد پیش کی جا رہی ہے۔

جلد نہم

یہ جلد فتاویٰ رضویہ (قدیم) کی جلد چہارم کے شروع باب الجنائز سے کتاب الزکوٰۃ تک ۲۷۳ سوالوں کے جوابات پر مشتمل ہے۔ اس جلد کی عربی و فارسی عبارات کا ترجمہ فاضل جلیل، محقق شہیر، صاحب تصانیف کثیرہ، ماہر علوم قدیمہ و جدیدہ حضرت علامہ مولانا محمد احمد مصباحی دامت برکاتہم العالیہ شیخ الادب جامعہ اشرفیہ مبارکپور (بھارت) نے فرمایا۔ باب التیمم (جو جلد سوم و چہارم میں شائع ہو چکا ہے) کا ترجمہ بھی انہی کے رشحاتِ قلم کا نتیجہ ہے۔ جلد چہارم قدیم میں باب الجنائز کی ترتیب طبعی نہ تھی لہذا اس جلد کی کتابت سابق ترتیب سے ہٹ کر طبعی ترتیب کے مطابق کرائی گئی ہے۔ باب الجنائز کے مسائل کو سابقہ ترتیب غیر طبعی سے

موجودہ ترتیب طبعی کی طرف منتقل کرنا بھی علامہ مصباحی صاحب کی محنتِ شاقہ کا ثمر ہے۔

علاوہ ازیں اس جلد میں شامل رسائل کی مفصل فہرست بھی افادۂ قارئین کے لئے دے دی گئی ہے

Fatawa Razawiyya Volume Nine

From Volume One to the end of Volume Eight, the numbering of the issues was continuous, but for the convenience of reference, this series has been started anew in this volume, and in the future, the issue number will also start anew in each volume. The grand treatise regarding the rulings on Muslim graves, "Ihlak-ul-Wahhabiyyin," has also been included in the current volume, which was left out of Fatawa Razawiyya (old). In addition to numerous secondary issues and benefits, the following seventeen independent topics are under discussion in this volume:

(1) Rulings and conditions near death (2) Rulings and conditions after death (3) Bathing the deceased (Ghusl) (4) Shrouding the deceased (Kafan) (5) Carrying the funeral procession (6) Funeral prayer (7) Leading the funeral prayer (8) Performance of funeral prayer (9) Place of funeral prayer (10) Repetition of funeral prayer (11) Burial of the deceased (12) Place of burial (13) Condolence, etc. (14) Rulings on graves and cemeteries (15) Visiting graves (16) Fatiha and Isaal-e-Thawab (17) Funeral invitation

In addition to the above topics, the following thirteen (13) treatises containing extremely profound and valuable research and investigations are also included in this volume:

(1) Al-Harf-ul-Hasan fi al-Kitaba 'ala al-Kafan (1308 AH) Statement on placing the lineage tree in graves and writing the Kalima Tayyiba, the Covenant (Ahd-nama), etc., on the shroud. (2) Al-Minna-tul-Mumtaza fi Da'wat-il-Janaza (1318 AH) Method of funeral supplications and instruction (talqin) at the grave. (3) Badhl-ul-Jawaiz 'ala al-Du'a ba'da Salat-il-Jana'iz (1311 AH) Proof of praying after the funeral prayer and refuting the deniers. (4) Al-Nahy-ul-Hajiz 'an Takrar Salat-il-Jana'iz (1315 AH) Repetition of funeral prayer is impermissible.

फ़तावा रज़विया जिल्द नहुम

जिल्द अव्वल से लेकर जिल्द हशतुम के आखिर तक मसलों के नंबर मुसलसल चले आ रहे थे मगर हवाला की सहूलियत के लिए इस जिल्द में यह सिलसिला फिर नए सिरे से शुरू किया गया है और आइंदा भी हर जिल्द में मसला नंबर नए सिरे से शुरू हुआ करेगा। अहकाम-ए-कुबूर-ए-मुस्लिमीन से मुताल्लिक रिसाला-ए-जलीला "इहलाक अल-वहाबिय्यीन" भी पेश-ए-नज़र जिल्द में शामिल कर दिया गया है जो कि फ़तावा रज़विया (कदीम) में शामिल होने से रह गया था। मुतअद्दिद ज़िम्मी मसाइल व फ़वाइद के इलावा इस जिल्द में मंदर्जा ज़ैल सतरह मुस्तकिल उनवानात ज़ेर-ए-बहस हैं:

(१) अहकाम व अहवाल-ए-कुर्ब-ए-मौत (२) अहकाम व अहवाल-ए-बाद-ए-मौत (३) गुस्ल-ए-मय्यत (४) कफ़न-ए-मय्यत (५) जनाज़ा ले कर जाना (६) नमाज़-ए-जनाज़ा (७) इमामत-ए-नमाज़-ए-जनाज़ा (८) नमाज़-ए-जनाज़ा की अदायगी (९) मौज़-ए-नमाज़-ए-जनाज़ा (१०) तकरार-ए-नमाज़-ए-जनाज़ा (११) दफ़न-ए-मय्यत (१२) जाए दफ़न (१३) ताज़ियत वग़ैरा (१४) अहकाम-ए-कुबूर व मक़ाबिर (१५) ज़ियारत-ए-कुबूर (१६) फ़ातिहा व ईसाल-ए-सवाब (१७) दावत-ए-मय्यत

मंदर्जा बाला उनवानात के इलावा इंतिहाई वक़ीअ और गिराँक़द्र तहक़ीक़ात व तदक़ीक़ात पर मुश्तमिल मंदर्जा ज़ैल तेरह १३ रसाएल भी इस जिल्द में शामिल हैं:

(१) अल-हर्फ अल-हसन फ़िल किताबती अलल कफ़न (१३०८ हि.) क़ब्रों में शजरा रखने और कफ़न पर कलमा तैय्यबा और अहद नामा वग़ैरा लिखने का बयान (२) अल-मिन्नतुल मुमताज़ा फ़ी दावतिल जनाज़ा (१३१८ हि.) जनाज़ा की दुआओं और क़ब्र पर तलक़ीन का तरीक़ा (३) बज़लुल जवाइज़ अलद दुआ बाद सलातिल जनाइज़ (१३११ हि.) नमाज़-ए-जनाज़ा के बाद दुआ करने का सुबूत और मुनकरीन का रद्द (४) अन-नहयुल हाजिज़ अन तकरार सलातिल जनाइज़ (१३१५ हि.) नमाज़-ए-जनाज़ा की तकरार नाजायज़ है

पेज 7 ऑफ 948

فتاوٰی رضویہ جلد نہم

جلد اول سے لے کر جلد ہشتم کے آخر تک مسئلوں کے نمبر مسلسل چلے آرہے تھے مگر حوالہ کی سہولت کیلئے اس جلد میں یہ سلسلہ پھر نئے سرے سے شروع کیا گیا ہے اور آئندہ بھی ہر جلد میں مسئلہ نمبر نئے سرے سے شروع ہوا کرے گا۔ احکام قبور مسلمین سے متعلق رسالہ جلیلہ "اھلاك الوھابیین" بھی پیش نظر جلد میں شامل کردیا گیا ہے جو کہ فتاوٰی رضویہ (قدیم) میں شامل ہونے سے رہ گیا تھا۔ متعدد ضمنی مسائل و فوائد کے علاوہ اس جلد میں مندرجہ ذیل سترہ مستقل عنوانات زیر بحث ہیں:

(۱) احکام و احوالِ قربِ موت (۲) احکام و احوالِ بعدِ موت (۳) غسلِ میت (۴) کفنِ میت (۵) جنازہ لے کر جانا (۶) نمازِ جنازہ (۷) امامتِ نمازِ جنازہ (۸) نمازِ جنازہ کی ادائیگی (۹) موضعِ نمازِ جنازہ (۱۰) تکرارِ نمازِ جنازہ (۱۱) دفنِ میت (۱۲) جائے دفن (۱۳) تعزیت وغیرہ (۱۴) احکام قبور و مقابر (۱۵) زیارتِ قبور (۱۶) فاتحہ و ایصالِ ثواب (۱۷) دعوتِ میت

مندرجہ بالا عنوانات کے علاوہ انتہائی وقیع اور گرانقدر تحقیقات و تدقیقات پر مشتمل مندرجہ ذیل تیرہ ۱۳ رسائل بھی اس جلد میں شامل ہیں:

(۱) الحرف الحسن في الكتابة على الكفن (۱۳۰۸ھ) قبروں میں شجرہ رکھنے اور کفن پر کلمہ طیبہ اور عہد نامہ وغیرہ لکھنے کا بیان (۲) المنّۃ الممتازۃ فی دعوات الجنازۃ (۱۳۱۸ھ) جنازہ کی دعائیں اور قبر پر تلقین کا طریقہ (۳) بذل الجوائز علی الدعاء بعد صلوۃ الجنائز (۱۳۱۱ھ) نماز جنازہ کے بعد دعا کرنے کا ثبوت اور منکرین کا رد (۴) النھی الحاجز عن تکرار صلوۃ الجنائز (۱۳۱۵ھ) نماز جنازہ کی تکرار ناجائز ہے

Fatawa Rizwia Volume 9

(5) Al-Hadi al-Hajib 'an Janaza al-Gha'ib (1326 AH) It is not permissible to offer funeral prayers in absentia.

(6) Ihlak al-Wahhabiyyin 'ala Tawhin Qubur al-Muslimin (1322 AH) Orders regarding the graves of believers.

(7) Bariq al-Manar bi-Shumu' al-Mazar (1331 AH) Evidence for lighting candles at shrines.

(8) Jumal al-Nur fi Nahy al-Nisa' 'an Ziyarat al-Qubur (1339 AH) It is not permissible for women to visit graves.

(9) Al-Hujjah al-Faiha li-Tayyib al-Ta'yin wal-Fatihah (1307 AH) Evidence for the customary Fatihah, the third day (Soyem), fortieth day (Chehlum), death anniversary (Barsi), and Urs etc.

(10) Ityan al-Arwah li-Diyarihim ba'd al-Rawah (1321 AH) The souls coming back to their homes.

(11) Jali al-Sawt li-Nahy al-Da'wah Imam Mawt (1309 AH) Description regarding eating food at the house of the deceased.

(12) Hayat al-Mawat fi Bayan Sama' al-Amwat (1305 AH) A reasoned description of the dead seeing their visitors and hearing their speech.

(13) Al-Wifaq al-Matin bayna Sama' al-Dafin wa-Jawab al-Yamin (1312 AH) Refutation of the argument against 'Sama-e-Mawti' (hearing of the dead) based on the issue of an oath.

19 Shawwal al-Mukarram 1416 AH 10 March 1996 AD

Hafiz Muhammad Abdul Sattar Saeedi Director of Education, Jamia Nizamia Razvia, Lahore

Page 8 of 948

फ़तावा रज़विया खंड नौ

(५) अल-हादी अल-हाजिब अन जनाज़ा अल-ग़ाइब (१३२६ हिजरी) ग़ायबाना नमाज़-ए-जनाज़ा पढ़ना जायज़ नहीं है।

(६) इहलाक अल-वहाबिय्यीन अला तौहीन कुबूर अल-मुस्लिमीन (१३२२ हिजरी) मोमिनों की क़ब्रों के अहकाम (नियम)।

(७) बरीक़ अल-मनार बि-शुमू अल-मज़ार (१३३१ हिजरी) मज़ारों पर रौशनी करने का सुबूत (प्रमाण)।

(८) जुमल अन-नूर फ़ी नह्य अन-निसा अन ज़ियारत अल-कुबूर (१३३९ हिजरी) औरतों को क़ब्र पर जाना जायज़ नहीं है।

(९) अल-हुज्जह अल-फ़ैहा लि-तय्यिब अत-तईन वल-फ़ातिहा (१३०७ हिजरी) मुरव्वजा (प्रचलित) फ़ातिहा, सोम (तीजा), चेहलुम, बरसी और उर्स वग़ैरा का सुबूत।

(१०) इत्यान अल-अरवाह लि-दियारिहिम बाद अर-रवाह (१३२१ हिजरी) रूहों का अपने घरों पर आना।

(११) जली अस-सौत लि-नह्य अद-दावत इमाम मौत (१३०९ हिजरी) मय्यित के घर के खाने का बयान।

(१२) हयात अल-मवात फ़ी बयान समा अल-अमवात (१३०५ हिजरी) मुर्दों के ज़ायरीन (दर्शनार्थियों) को देखने और उनके कलाम (भाषण) को सुनने का मुदल्लल (तर्कसंगत) बयान।

(१३) अल-विफ़ाक़ अल-मतीन बैन समा अद-दफ़ीन व-जवाब अल-यमीन (१३१२ हिजरी) मसला-ए-यमीन से 'समा-ए-मौता' के ख़िलाफ़ इस्तदलाल (तर्क) का रद्द।

१९ शव्वाल अल-मुकर्रम १४१६ हिजरी १० मार्च १९९६ ईस्वी

हाफ़िज़ मुहम्मद अब्दुल सत्तार सईदी नाज़िम-ए-तालीमात (शिक्षा निदेशक), जामिया निज़ामिया रज़विया, लाहौर

पृष्ठ ८/९४८

فتاویٰ رضویہ جلد نہم

(۵) الهادی الحاجب عن جنازة الغائب (۱۳۲۶ھ) غائبانہ نماز جنازہ پڑھنا جائز نہیں

(۶) اهلاك الوهابيين على توهين قبور المسلمين (۱۳۲۲ھ) احکام قبور مومنین

(۷) بريق المنار بشموع المزار (۱۳۳۱ھ) مزارات پر روشنی کرنے کا ثبوت

(۸) جمل النور فی نهی النساء عن زيارة القبور (۱۳۳۹ھ) عورتوں کو قبر پر جانا جائز نہیں

(۹) الحجة الفائحة لطيب التعيين والفاتحة (۱۳۰۷ھ) مروجہ فاتحہ، سوم، چہلم، برسی اور عرس وغیرہ کا ثبوت

(۱۰) اتيان الارواح لديارهم بعد الرواح (۱۳۲۱ھ) روحوں کا اپنے گھروں پر آنا

(۱۱) جلی الصوت لنهی الدعوة امام موت (۱۳۰۹ھ) میّت کے گھر کے کھانے کا بیان

(۱۲) حياة الموات فی بيان سماع الاموات (۱۳۰۵ھ) مُردوں کے زائروں کو دیکھنے اور ان کے کلام کو سننے کا مدلل بیان

(۱۳) الوفاق المتين بين سماع الدفين وجواب اليمين (۱۳۱۲ھ) مسئلہ یمین سے سماعِ موتی کے خلاف پر استدلال کارد

۱۹/ شوال المکرم ۱۴۱۶ھ ۱۰/ مارچ ۱۹۹۶ء

حافظ محمد عبد الستار سعیدی ناظم تعلیمات جامعہ نظامیہ رضویہ لاہور

Volume 9 Fatawa Razawiya

Symbols

Muhaqqiq: Allama Kamaluddin ibn al-Humam, author of Fath al-Qadir Ha: Allama Muhammad Ibrahim bin Muhammad al-Halabi, author of Ghunyat al-Mustamli Sheen: Allama Muhammad Amin ibn Abidin al-Shami, author of Radd al-Muhtar Ta: Allama Sayyid Ahmad al-Tahtawi, author of Hashiya al-Durr al-Mukhtar and Hashiya Maraqi al-Falah Al-Durr: Al-Durr al-Mukhtar, Allama Muhammad Alauddin al-Haskafi Al-Durar: Al-Durar Sharh al-Ghurar, Mulla Khusraw and Allama Muhammad bin Faramuz Bahr: Al-Bahr al-Ra'iq, Allama Zayn al-Din ibn Nujaym Hindiyya: Fatawa Alamgiri, a group of Hanafi scholars Nahr: Al-Nahr al-Fa'iq, Sirajuddin Umar bin Tamim Fath: Fath al-Qadir, Allama Kamaluddin ibn al-Humam Ghunya: Ghunyat al-Mustamli, Allama Muhammad Ibrahim bin Muhammad al-Halabi Hulya: Hulyat al-Mahalli, Ibn Amir al-Hajj

Page 9 of 948

जिल्द नहम (नौवीं) फ़तावा रज़विया

रमूज़ (चिह्न/संकेत)

मुहाक़्क़िक़: अल्लामा कमालुद्दीन इब्ने हुमाम साहिब फ़तहुल क़दीर ह: अल्लामा मुहम्मद इब्राहीम बिन मुहम्मद अल-हलबी साहिब ग़ुनियतुल मुस्तमली शीन: अल्लामा मुहम्मद अमीन इब्ने आबिदीन अल-शामी साहिब रद्दुल मुहतार ता: अल्लामा सय्यद अहमद अल-तहतावी साहिब हाशिया अद-दुर्रुल मुख्तार व हाशिया मराक़िल फ़लाह अद-दुर्र: अद-दुर्रुल मुख्तार, अल्लामा मुहम्मद अलाउद्दीन अल-हसकफ़ी अद-दुरर: अद-दुरर शरह अल-ग़ुरर, मुल्ला ख़ुसरू व अल्लामा मुहम्मद बिन फ़रामुज़ बहर: अल-बहरुर रैक़, अल्लामा ज़ैनुद्दीन इब्ने नुजैम हिन्दिया: फ़तावा आलमगीरी, जमाअत उलमा-ए-अहनाफ़ नहर: अन्नहरुल फ़ैक़, सिराजुद्दीन उमर बिन तमीम फ़तह: फ़तहुल क़दीर, अल्लामा कमालुद्दीन इब्ने हुमाम ग़ुन्या: ग़ुनियतुल मुस्तमली, अल्लामा मुहम्मद इब्राहीम बिन मुहम्मद अल-हलबी हुल्या: हुलियतुल महल्ली, इब्ने अमीरुल हज

पेज 9 / 948

جلد نہم فتاویٰ رضویہ

رموز

محقق: علامہ کمال الدین ابن ہمام صاحب فتح القدیر ح: علامہ محمد ابراہیم بن محمد الحلبی صاحب غنیہ المستملی ش: علامہ محمد امین ابن عابدین الشامی صاحب رد المحتار ط: علامہ سید احمد الطحطاوی صاحب حاشیہ الدر المختار و حاشیہ مراقی الفلاح الدر: الدر المختار، علامہ محمد علاء الدین الحصکفی الدرر: الدرر شرح الغرر، ملا خسرو و علامہ محمد بن فراموز بحر: البحر الرائق، علامہ زین الدین ابن نجیم ہندیہ: فتاویٰ عالمگیری، جماعت علمائے احناف نہر: النہر الفائق، سراج الدین عمر بن تمیم فتح: فتح القدیر، علامہ کمال الدین ابن ہمام غنیہ: غنیہ المستملی، علامہ محمد ابراہیم بن محمد الحلبی حلیہ: حلیۃ المحلی، ابن امیر الحاج

Fatawa Razawiyya Volume 9 Table of Contents

Chapter on Funerals 81 | The relationship with the Holy Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) is eternal and will never be severed. | 93

Proximity of Death Husband cannot give ghusl (ritual bath) to his wife. | 95 81 | What a person near death and their relatives and kin should do at the time of approaching death. | Husband is not the guardian (wali) of the woman. | 95 Instruct (the dying person) with both parts of the Kalimah Tayyibah. | 83 | A woman can give ghusl to her husband. | 95

After Death While giving ghusl, water should not be put into the nose and mouth, even if death occurred in a state of major ritual impurity (janabat). | 98 90 | The ruling on sitting on a bedstead etc. near the deceased while the dead person is in the house. | If someone dies in a state of major ritual impurity (janabat), only one ghusl is sufficient for them. | 98 90 | It is permissible to send food for the family of the deceased; this food should only be for the family and not for others. | If impurity comes out from the body of the deceased, it should be washed off; there is no need to give ghusl again. | 98

Ghusl of the Deceased Which way should the head of the deceased face during ghusl. | 98 91 | No specific direction is fixed for giving ghusl; give ghusl in whichever way is easy for the deceased. | There is no gargling etc. in the ghusl of the deceased. | 98 91 | It is not permissible to cut hair etc. from the dead body. | It is forbidden to break pitchers etc. after the ghusl of the deceased. | 98 92 | It is not permissible for a husband to give ghusl to his wife; multiple answers to the mention in one narration about Hazrat Ali (may Allah honor him) giving ghusl to Hazrat Fatima (may Allah be pleased with her).

फ़तावा रज़विया खंड 9 विषय सूची

जनाज़े का अध्याय (बाब अल-जनाइज़) 81 | हुज़ूर अकरम (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) का रिश्ता स्थायी है जो कभी नहीं टूटेगा। | 93

मृत्यु की निकटता (क़ुर्ब-ए-मौत) पति पत्नी को ग़ुस्ल (स्नान) नहीं दे सकता। | 95 81 | मरणासन्न व्यक्ति और उसके रिश्तेदारों को मृत्यु के समय क्या करना चाहिए। | पति औरत का वली (अभिभावक) नहीं है। | 95 कलमा तैयबा के दोनों हिस्सों की तलक़ीन (निर्देश) की जाए। | 83 | औरत पति को ग़ुस्ल दे सकती है। | 95

मृत्यु के बाद (बाद-ए-मौत) ग़ुस्ल देते समय नाक और मुँह में पानी न डाला जाए, भले ही मृत्यु जनाबत (अशुद्धि) की स्थिति में हुई हो। | 98 90 | जब मृत घर में हो, तो उसके पास चारपाई आदि पर बैठने का हुक्म। | अगर कोई जनाबत की स्थिति में मर जाए, तो उसके लिए एक ही ग़ुस्ल काफ़ी है। | 98 90 | मय्यित (मृतक) के परिवार के लिए खाना भेजना जायज़ है, यह खाना सिर्फ घर वालों के लिए हो, दूसरों के लिए नहीं। | अगर मय्यित के शरीर से नजासत (अशुद्धि) निकले तो उसे धो दिया जाए, दोबारा ग़ुस्ल देने की ज़रूरत नहीं है। | 98

मृतक का स्नान (ग़ुस्ल-ए-मय्यित) ग़ुस्ल के समय मय्यित का सिर किस ओर हो। | 98 91 | ग़ुस्ल देने के लिए कोई दिशा निश्चित नहीं है, जैसे आसान हो वैसे मय्यित को ग़ुस्ल दें। | मय्यित के ग़ुस्ल में कुल्ला (ग़रारा) आदि नहीं है। | 98 91 | मुर्दे के बाल आदि काटना जायज़ नहीं है। | मय्यित के ग़ुस्ल के बाद घड़े आदि तोड़ देना मना है। | 98 92 | पति के लिए पत्नी को ग़ुस्ल देना जायज़ नहीं है, हज़रत फ़ातिमा (रज़ियल्लाहु अन्हा) को हज़रत अली (करमल्लाहु वज्हहुल करीम) द्वारा ग़ुस्ल देने का ज़िक्र एक रिवायत में आया है, उसके कई उत्तर हैं।

فتاوی رضویہ جلد نہم فہرست مضامین

باب الجنائز ۸۱ | حضور اکرم صلی اللہ علیہ وسلم کا رشتہ دائمی ہے جو کبھی منقطع نہیں ہوگا۔ | ۹۳

قرب موت شوہر بیوی کو غسل نہیں دے سکتا۔ | ۹۵ ۸۱ | قریب الموت شخص اور اس کے عزیز واقارب کو قرب موت کے وقت کیا کرنا چاہئے۔ | شوہر عورت کا ولی نہیں۔ | ۹۵ کلمہ طیبہ کے دونوں جز سے تلقین کی جائے۔ | ۸۳ | عورت شوہر کو غسل دے سکتی ہے۔ | ۹۵

بعد موت غسل دینے میں ناک اور منہ میں پانی نہ ڈالا جائے اگرچہ حالت جنابت میں انتقال ہوا ہو۔ | ۹۸ ۹۰ | میت کے پاس چارپائی وغیرہ پر بیٹھنے کا حکم جبکہ مردہ گھر میں ہو۔ | حالت جنابت میں کوئی مرے اس کے لیے ایک ہی غسل ہے۔ | ۹۸ ۹۰ | اہل میت کے لیے کھانا بھیجنا جائز ہے، یہ کھانا صرف اہل میت کے لئے ہو دوسروں کے لیے نہ ہو۔ | میت کے بدن سے نجاست نکلے تو اسے دھو دیا جائے دوبارہ غسل دینے کی ضرورت نہیں۔ | ۹۸

غسل میت میت کا سر بوقت غسل کس طرف ہو۔ | ۹۸ ۹۱ | غسل دینے کے لیے کوئی جہت متعین نہیں، جیسے آسان ہو میت کو غسل دیں۔ | غسل میت میں غررہ وغیرہ نہیں۔ | ۹۸ ۹۱ | مردے سے بال وغیرہ کاٹنا جائز نہیں۔ | غسل میت کے بعد گھڑے وغیرہ توڑ دینا منع ہے۔ | ۹۸ ۹۲ | بیوی کو غسل دینا شوہر کے لیے جائز نہیں، حضرت فاطمہ رضی اللہ تعالیٰ عنہا کو حضرت علی کرم اللہ وجہہ الکریم کے غسل دینے کا ذکر ایک روایت میں آیا اس کے متعدد جوابات۔

Fatawa Rizvia Volume 9

Page	Topic
99	How is it to keep pitchers etc. in the grave or mosque after washing the deceased?
	Shroud of the Deceased
99	Details of the shroud and the method of shrouding for men, women, adults, minors, adolescents, stillborns, or miscarried children.
100	Details of the Sunnah, sufficient, and necessary shrouds.
105	It is permissible to place the cover of the Holy Kaaba and a sheet of flowers on the shroud.
108	Keeping kohl, a comb, and a handkerchief in the shroud.
107	
109	The prayer that keeps the deceased safe from punishment until the Day of Judgment.
110	The rosary/tasbeeh that if written and placed in the deceased's shroud, there would be no punishment in the grave nor would the Munkar & Nakir reach them.
110	Details of the blessed passing of the Lady of Paradise (Hazrat Fatima) may Allah be pleased with her.
111	The will of Hazrat Batool Zahra (Hazrat Fatima) may Allah be pleased with her.
111	Writing the Covenant (Ahdnama) on the forehead of the deceased, the turban, or the shroud can be a cause of forgiveness.
111	In the Farooqi stable, it was written on the thighs of some horses: "Endowed in the path of Allah"
111	

Page	Topic
	Treatise 'Al-Harf al-Hasan fi al-Kitaba 'ala al-Kafan' (Mention of placing genealogies in graves and writing the Kalima Tayyiba and Covenant etc. on shrouds).
108	This treatise consists of four discourses: first, specifics from Hanafi jurisprudence on writing on the shroud and supporting hadiths; second, that placing sacred religious items in the shroud or on the deceased is not a place of disrespect; third, refuting some Shafi'is who consider writing on the shroud as disrespect; and fourth, the mention of placing a genealogy inside the grave.
108	First Discourse
108	There is hope for forgiveness by writing the Covenant on the forehead of the deceased or the shroud.
108	Fourteen hadith reports supporting the mentioned issue.
109	The prayer that if written and placed on the chest of the deceased, they will remain safe from the punishment of the grave and Munkar & Nakir will not appear.
109	
	The deceased received protection from punishment because 'Bismillah ar-Rahman ar-Rahim' was written on their forehead and chest.
112	Second Discourse
112	Fourteen supporting hadiths that shrouding the deceased in sacred religious items or placing them on the deceased's body is not a place of disrespect.
113	A companion asked the Holy Prophet ﷺ for his loincloth (tahband) as a blessing for his shroud.
114	The Luminous Prophet ﷺ bestowed his blessed loincloth for the shroud of his daughter.
114	Evidence from Hadith for shrouding disciples in the clothes of their spiritual guides.
114	

Page Topic

From the will of Imam Tawus, the Covenant was placed in his shroud.

Page Topic

The Holy Prophet ﷺ shrouded the mother of Hazrat Ali Murtaza (Hazrat Fatima bint Asad) may Allah be pleased with her, in his pure shirt.

फ़तावा रज़विया जिल्द नहुम (9)

पृष्ठ	विषय
99	ग़ुस्ल के बाद घड़े वग़ैरह क़ब्र या मस्जिद में रखना कैसा है।
	कफ़न मय्यित
99	मर्द, औरत, बालिग़, नाबालिग़, मुराहिक़, मुर्दा बच्चा या सक़्त (गर्भपात) के कफ़न की तफ़सील और कफ़न पहनाने का तरीक़ा।
100	कफ़न मसनून, किफ़ाया और ज़रूरत की तफ़सील।
105	काबा मुअज़्ज़मा का ग़िलाफ़ और फूलों की चादर कफ़न पर रखना जाएज़ है।
108	कफ़न में सुरमा, कंधी और रुमाल रखना।
107	
109	मय्यित को क़यामत तक अज़ाब से महफ़ूज़ रखने वाली दुआ।
110	वह तस्बीह जिसको लिखकर मय्यित के कफ़न में रखा जाए तो उसे अज़ाब-ए-क़ब्र न हो वरना मुनकिर नकीर उस तक पहुँचें।
110	हज़रत ख़ातून-ए-जन्नत रज़ियल्लाहु तआला अन्हा के विसाल-ए-मुबारक की तफ़सील।
111	हज़रत बतुल ज़हरा रज़ियल्लाहु तआला अन्हा की वसीयत।
111	मय्यित की पेशानी, इमामा या कफ़न पर अहदनामा लिखना बाइस-ए-मग़फ़िरत हो सकता है।
111	अस्तबल-ए-फ़ारूक़ी में कुछ घोड़ों की रानों पर लिखा था: "वक़्फ़ फी सबीलिल्लाह"
111	पेशानी और सीने पर बिस्मिल्लाह हिर्रहमान निर्रहीम

पृष्ठ	विषय
	रिसाला 'अल-हर्फ़ अल-हसन फ़िल किताबति अलल कफ़न' (क़ब्रों में शजरा रखने और कफ़नों पर कलिमा तैयबा और अहदनामा वग़ैरह लिखने का बयान)।
108	यह रिसाला चार मक़ालों पर मुश्तमिल है, अव्वल में फ़िक़्ह हनफ़ी से कफ़न पर लिखने के जुज़िया और इसकी मोअैय्यद अहादीस, दोयम में मुअज़्ज़मात-ए-दीनिया में कफ़न देने या उन्हें मय्यित पर रखने के महल-ए-ताज़ीम न होने, सोयम में बाज़ शाफ़ई की तरफ़ से किताबत अलल कफ़न को बे-ताज़ीमी समझने की तरदीद, और चहारुम में क़ब्र के अंदर शजरा रखने का बयान है।
108	मक़ाम-ए-अव्वल
108	मय्यित की पेशानी या कफ़न पर अहदनामा लिखने से उसकी मग़फ़िरत की उम्मीद है।
108	चौदह अहादीस रिवायात से मसला मज़कूरा की ताईद।
109	

पृष्ठ	विषय
	लिखने की वजह से मय्यित को अज़ाब से अमान मिल गई।
112	मक़ाम-ए-दोयम
112	चौदह अहादीस मोअैय्यदा कि मय्यित को मुअज़्ज़मात-ए-दीनिया में कफ़न देना या उन्हें बदन-ए-मय्यित पर रखना महल-ए-ताज़ीम नहीं।
113	सहाबी ने अपने कफ़न के लिए बतौरे तबर्रुक हुज़ूर अक़दस सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम से आपका तहबन्द माँगा।
114	हुज़ूर-ए-पुर नूर सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम ने अपनी साहिबज़ादी के कफ़न में अपना तहबन्द मुबारक अता फ़रमाया।
114	

पृष्ठ	विषय
	वह दुआ जिसको लिखकर मय्यित के सीने पर रखें तो अज़ाब-ए-क़ब्र से महफ़ूज़ रहे और न मुनकिर नकीर नज़र आएँ।
109	इमाम ताऊस की वसीयत से अहदनामा उनके कफ़न में रखा गया।

पृष्ठ	विषय
	मुरीदों को पीरों के लिबास में कफ़न देने का सुबूत हदीस से।
114	हुज़ूर अक़दस सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम ने हज़रत अली मुर्तज़ा रज़ियल्लाहु तआला अन्हु की वालिदा को अपनी क़मीस-ए-अतहर में कफ़न दिया।

صفحہ	مضمون
۹۹	غسل کے بعد گھڑے وغیرہ قبر یا مسجد میں رکھنا کیسا ہے۔
	کفن میت
۹۹	مرد، عورت، بالغ، نابالغ، مراہق، مردہ بچہ یا سقط کے کفن کی تفصیل اور کفن پہنانے کا طریقہ
۱۰۰	کفن مسنون، کفایہ اور ضرورت کی تفصیل
۱۰۵	کعبہ معظمہ کا غلاف اور پھولوں کی چادر کفن پر رکھنا جائز ہے۔
۱۰۹	میت کو قیامت تک عذاب سے محفوظ رکھنے والی دعا۔
۱۱۰	وہ تسبیح جس کو لکھ کر میت کے کفن میں رکھا جائے تو اسے عذابِ قبر نہ ہو ورنہ نکیرین اس تک پہنچیں۔
۱۱۰	حضرت خاتونِ جنت رضی اللہ تعالیٰ عنہا کے وصالِ مبارک کی تفصیل۔
۱۱۱	حضرت بتول زہرا رضی اللہ تعالیٰ عنہا کی وصیت۔
۱۱۱	میت کی پیشانی، عمامہ یا کفن پر عہد نامہ لکھنا باعث مغفرت ہو سکتا ہے۔

صفحہ	مضمون
۱۰۸	کفن میں سرمہ، کنگھی اور رومال رکھنا۔
۱۰۷	رسالہ الحرف الحسن فی الکتابۃ علی الکفن (قبروں میں شجرہ رکھنے اور کفنوں پر کلمہ طیبہ اور عہد نامہ وغیرہ لکھنے کا بیان)
	یہ رسالہ چار مقالوں پر مشتمل ہے، اول میں فقہ حنفی سے کفن پر لکھنے کے جزئیہ اور اس کی مؤید احادیث، دوم میں معظمات دینیہ میں کفن دینے یا انہیں میت پر
۱۰۸	رکھنے کے محل تعظیم نہ ہونے، سوم میں بعض شوافع کی طرف سے کتابت علی الکفن کو بے تعظیمی سمجھنے کی تردید، اور چہارم میں قبر کے اندر شجرہ رکھنے کا بیان ہے۔
۱۰۸	مقام اول
۱۰۸	

صفحہ	مضمون
	اصطبل فاروقی میں کچھ
۱۱۱	گھوڑوں کی رانوں پر لکھا تھا: "وقف فی سبیل اللہ"
	پیشانی اور سینہ پر بسم اللہ الرحمن الرحیم لکھنے کی
۱۱۱	وجہ سے میت کو عذاب سے امان مل گئی۔
۱۱۲	مقام دوم
	چودہ احادیث مؤیدہ کہ میت کو معظمات دینیہ میں کفن
۱۱۲	دینا یا انہیں بدنِ میت پر رکھنا محل تعظیم نہیں۔
۱۱۳	

صفحہ	مضمون
	میت کی پیشانی یا کفن پر عہد نامہ لکھنے سے اس کی مغفرت کی امید ہے۔
۱۰۸	چودہ احادیث روایات سے مسئلہ مذکورہ کی تائید۔
۱۰۹	وہ دعا جس کو لکھ کر میت کے سینے پر رکھیں تو عذابِ قبر سے محفوظ رہے اور نہ نکیرین نظر آئیں۔
۱۰۹	امام طاؤس کی وصیت سے عہد نامہ ان کے کفن میں رکھا گیا۔

صفحہ	مضمون
	صحابی نے اپنے کفن کے لیے بطورِ تبرک حضور اقدس صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم سے آپ کا تہبند مانگا۔
	حضورِ پر نور صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم نے اپنی
۱۱۴	صاحبزادی کے کفن میں اپنا تہبند مبارک عطا فرمایا۔
	مریدوں کو پیروں کے
۱۱۴	لباس میں کفن دینے کا ثبوت حدیث سے۔
	حضور اقدس صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم نے
۱۱۴	حضرت علی مرتضیٰ رضی اللہ تعالیٰ عنہ کی والدہ کو اپنی قمیص اطہر میں کفن دیا۔

Fatawa Razawiyya, Volume 9

115: Why did the Master of two worlds (peace and blessings of Allah be upon him) bestow his blessed shirt for the shroud of the leader of hypocrites, Abdullah bin Ubayy? 120: Writing something from the Holy Quran and giving it to a woman to drink for labor pains.

116: It is the way of the Holy Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) that he never rejects anyone's request. 121: It is forbidden to perform Istinja (cleansing after using the toilet) with Zamzam water.

116: Seeing the merciful nature of the Holy Prophet (peace and blessings of Allah be upon him), a thousand people were honored with Islam. 121: Drinking Zamzam water to one's fill is a sign of pure faith.

117: The will of Hazrat Ameer Muawiyah (may Allah be pleased with him) that the blessed shirt of the Holy Prophet (peace and blessings be upon him) be placed in my shroud, and his sacred and blessed hair and nails be placed in my mouth and eyes. 121: A hypocrite does not drink Zamzam water to his fill.

118: The will of Hazrat Ali Murtaza (may Allah be pleased with him) that the remaining musk of the Holy Prophet (peace and blessings be upon him) be used in my embalming. 122: In short, writing on the shroud is permissible; if someone avoids it out of excessive caution, it is acceptable.

118: Hazrat Anas (may Allah be pleased with him) was buried with the blessed hair of the Holy Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) under his tongue. 122: Imam Ibn Hajar Makki stated that the analogy of writing is forbidden on the thighs of four-legged animals for zakat because it is for identification, while on the shroud it is for blessing. A strong discussion by the author (may Allah have mercy on him) on this statement of Imam Makki.

118: The blessed stick of the Holy Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) was placed on the chest of Hazrat Anas (may Allah be pleased with him) and he was buried. 132: Fourth Position.

118: Honoring the cloak, shirt, nails, and blessed hair of the Holy Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) is mandatory like the inscriptions of written verses. 132: Seeking blessings and mediation through the names of the beloved of God (peace and praise be upon them) is undoubtedly beloved and recommended.

119: Third Position. 132: Blessings of the names of the People of the Cave (Ashab-e-Kahf).

119: Removing the doubt that the deceased's body bursts and pus etc. comes out, which would be disrespectful to the verses and supplications written on the shroud. 133: The arrival of Imam Ali Raza (may Allah be pleased with him) in Nishapur and the scene of showing himself to the people.

119: The possibility of some non-existent matter does not prevent a currently existing good intention and correct purpose. 134: There were more than twenty thousand people writing down the Hadith lesson of Imam Ali Raza (may Allah be pleased with him).

120: Writing Surah Fatiha and healing verses etc. for the purpose of healing, washing them, and drinking the water has been prevalent among predecessors and successors without objection.

फतावा रज़विया, खंड 9

115: दो जहानों के आका (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) ने मुनाफ़िक़ों के सरदार अब्दुल्ला बिन उबई के कफ़न के लिए अपनी मुबारक़ क़मीज़ क्यों अता फरमाई। 120: प्रसव पीड़ा के लिए महिला को कुरान मजीद में से कुछ लिखकर पिलाना।

116: नबी करीम (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) का तरीका है कि वे किसी का सवाल (निवेदन) रद्द नहीं फरमाते। 121: आब-ए-ज़मज़म से इस्तिंजा करना मना है।

116: हुज़ूर अक़दस (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) की शान-ए-रहम देख कर हज़ार आदमी इस्लाम से मुशर्रफ़ हुए। 121: आब-ए-ज़मज़म पेट भर कर पीना कामिल ईमान की निशानी है।

117: हज़रत अमीर मुआविया (रज़ियल्लाहु अन्हु) की वसीयत कि हुज़ूर (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) की मुबारक़ क़मीज़ मेरे कफ़न में और आपके मुक़द्दस व मुबारक़ बाल और नाखून मेरे मुँह और आँखों में रखना। 121: मुनाफ़िक़ पेट भर कर आब-ए-ज़मज़म नहीं पीता।

118: हज़रत अली मुर्तज़ा (रज़ियल्लाहु अन्हु) की वसीयत कि हुज़ूर (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) का बचा हुआ मुश्क (कस्तूरी) मेरे हनूत (मुरदे की खुशबू) में इस्तेमाल करना। 122: संक्षेप में, कफ़न पर लिखना जायज़ है, अगर कोई अत्यधिक सावधानी के कारण इससे बचे तो भी ठीक है।

118: हज़रत अनस (रज़ियल्लाहु अन्हु) हुज़ूर अक़दस (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) का मुबारक़ बाल अपनी ज़बान के नीचे रखे हुए दफ़्न हुए। 122: इमाम इब्न हजर मक्की ने फ़रमाया कि लिखावट का क़यास ज़कात के चौपायों की रानों पर मना है क्योंकि चौपायों की रानों पर लिखावट पहचान के लिए है जबकि कफ़न पर बरकत के लिए है, इमाम मक्की के इस कलाम पर मुसन्निफ़ (रहमतुल्लाहि अलैहि) की ज़ोरदार बहस।

118: हुज़ूर पुरनूर (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) की मुबारक़ छड़ी हज़रत अनस (रज़ियल्लाहु अन्हु) के सीने पर रख कर उन्हें दफ़्न किया गया। 132: चौथा मकाम (स्थान)।

118: हुज़ूर पुरनूर (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) की रदा (चादर), क़मीज़, नाखून और मुबारक़ बाल की ताज़ीम आयात की लिखावट के नक़्श की तरह फ़र्ज़ है। 132: अल्लाह के महबूबों (अलैहिमुत्तहिय्या वस्सना) के नामों से तबर्रुक और तवस्सुल निस्संदेह पसंदीदा और मुस्तहब है।

119: तीसरा मकाम। 132: अस्हाब-ए-कहफ़ के नामों की बरकतें।

119: इस संदेह का निवारण कि मय्यत का बदन फट जाता है और उससे पीप आदि निकलते हैं जिससे कफ़न पर लिखी हुई आयतों और दुआओं की बेअदबी होती है। 133: इमाम अली रज़ा (रज़ियल्लाहु अन्हु) का निशापुर में आगमन और लोगों को ज़ियारत कराने का मंज़र।

119: किसी ग़ैर-मौजूद चीज़ की संभावना, वर्तमान में मौजूद अच्छी नियत और सही उद्देश्य के लिए बाधा नहीं होती। 134: इमाम अली रज़ा (रज़ियल्लाहु अन्हु) के हदीस के पाठ को लिखने वाले बीस हज़ार से ज़्यादा लोग थे।

120: सूरह फातिहा और शिफ़ा की आयतें आदि शिफ़ा के उद्देश्य से लिखकर, धोकर पीना पूर्वजों और बाद वालों के बीच बिना किसी आपत्ति के प्रचलित है।

पृष्ठ 12/948

فتاویٰ رضویہ، جلد نہم

۱۱۵: سرکار دو عالم صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم نے رئیس المنافقین عبداللہ بن ابی کے کفن کے لیے اپنی قمیص مبارک کیوں عنایت فرمائی۔ ۱۲۰: درد زہ کے لیے عورت کو قرآن مجید میں سے کچھ لکھ کر پلایا جائے۔

۱۱۶: نبی کریم صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کا طریقہ ہے کہ کسی کا سوال رد نہیں فرماتے ۱۲۱: آب زمزم سے استنجاء کرنا ممنوع ہے۔

۱۱۶: حضور اقدس صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کی شان رحمت کو دیکھ کر ہزار آدمی مشرف بہ اسلام ہوئے۔ ۱۲۱: آب زمزم کو کھ بھر کر پینا ایمان خالص کی علامت ہے۔

۱۱۷: حضرت امیر معاویہ رضی اللہ تعالیٰ عنہ کی وصیت کہ حضور علیہ الصلوۃ والسلام کی قمیص مبارک کو میرے کفن میں اور آپ کے مقدس و مبارک بالوں اور ناخنوں کو میرے منہ اور آنکھوں میں رکھنا۔ ۱۲۱: منافق کو کھ بھر کر آب زمزم نہیں پیتا۔

۱۱۸: حضرت علی مرتضیٰ رضی اللہ تعالیٰ عنہ کی وصیت کہ حضور علیہ الصلوۃ والسلام کا بچا ہوا مشک میرے حنوط میں استعمال کرنا۔ ۱۲۲: بالجملہ کفن پر لکھنا جائز ہے، اگر کوئی زیادت احتیاط کی وجہ سے اجتناب کرے تو جا دارد۔

۱۱۸: حضرت انس رضی اللہ تعالیٰ عنہ حضور اقدس صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کا موئے مبارک اپنی زبان کے نیچے رکھے ہوئے دفن ہوئے۔ ۱۲۲: امام ابن حجر مکی نے فرمایا کہ کتابت کا قیاس زکوٰۃ کے چارپایوں کی رانوں پر ممنوع ہے کیونکہ چارپایوں کی رانوں پر کتابت تمیز کے لیے

جبکہ کفن پر تبرک کیلئے ہے، امام مکی کے اس کلام پر مصنف رحمۃ اللہ تعالیٰ علیہ کی زور دار بحث۔

۱۱۸: حضور پر نور صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کی مبارک چھڑی حضرت انس رضی اللہ تعالیٰ عنہ کے سینے پر رکھ کر انہیں دفن کیا گیا۔ ۱۳۲: مقام چہارم

۱۱۸: حضور پر نور صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کی رداء قمیص، ناخن اور موئے مبارک کی تعظیم نقوش کتابت آیات کی طرح فرض ہے۔ ۱۳۲: اسماء محبوبان خدا علیہم التحیۃ والثناء سے تبرک وتوسل بلا شبہ محبوب ومندوب ہے۔

۱۱۹: مقام سوم ۱۳۲: اصحاب کہف کے ناموں کی برکات۔

۱۱۹: اس شبہ کا ازالہ کہ بدن میت شق ہوتا ہے اور اس سے ریم وغیرہ نکلتے ہیں جس سے کفن پر لکھی ہوئی آیات وادعیہ کی بے ادبی ہوتی ہے۔ ۱۳۳: امام علی رضا رضی اللہ تعالیٰ عنہ کی نیشاپور میں آمد اور لوگوں کو زیارت کرانے کا منظر

۱۱۹: کسی امر غیر موجود کا احتمال نیت صالحہ و غرض صحیح موجود فی الحال کے لیے منع نہیں ہوتا۔ ۱۳۴: امام علی رضا رضی اللہ تعالیٰ عنہ کے درس حدیث کو لکھنے والے بیس ہزار سے زائد تھے۔

۱۲۰: سورہ فاتحہ وآیات شفاء غیر ہا بغرض شفا لکھ کر دھو کر پینا سلفاً و خلفاً بلا نکیر رائج ہے۔

Fatawa Razvia | Volume 9

That blessed chain which, if read over a madman, he will be cured. | 134 Even in the state of agony of death, a woman remains her husband's wife and the husband can see the deceased woman but cannot touch her. | 139 The name is one of the modes of existence of the named. | 134 Sharia ruling on loud dhikr with a funeral and the reason for calling it 'disliked' (makruh) in some books. | 140 There are four forms of existence of a thing: (1) in physical essence, (2) in knowledge, (3) in pronunciation, (4) in writing. | 134 Reciting Na'at or performing loud dhikr with a funeral. | 158 In the form of pronunciation and writing, the existence of the name itself is declared as the existence of the named. | 134 It is permissible to recite Na'at ghazals with a funeral. | 158 Shah Abdul Aziz (may Allah have mercy on him) stated that keeping the Shajra (spiritual lineage) in the grave is a practice of the elders and preferred keeping it in an alcove at the head side. | 134

Funeral Prayer Carrying the Funeral The funeral prayer of a person who did not pray (Salah) will be performed. | 158 From which side should one start when lifting the funeral? | 81 The reason for performing the funeral prayer of a non-prayer. | 159 The method of carrying the funeral. | 82 Whose prayer will not be performed? | 159 & 161 While carrying the funeral, the head of the deceased should be in front. | 135 There is no harm if scholars do not perform the funeral prayer of a non-prayer as a deterrent (zajran). | 162 If the funeral is to be taken towards the West, should the head be towards the West or the East? | 475 The funeral prayer of a non-prayer and their minor children will be performed. | 163 Putting a shawl or a sheet of flowers on the funeral. | 135 The funeral prayer of a non-prayer will be performed. | 163 What is the ruling on putting colorful sheets on the funeral? | 138 It is permissible to give Adhan at the grave. | 164 Sharia ruling on the sale of sheets offered at shrines. | 192 The funeral prayer of a non-prayer is also mandatory, and causing distress to the dead is forbidden. | 164 If a woman dies, a man can touch her funeral/casket and carry it on his shoulder. | 138 It is a severe crime not to perform the funeral prayer of a non-prayer's widow. | 167 [Ruling on] giving each other ghusl, shrouding, and lowering into the grave if a woman or husband dies. | 138 The funeral prayer of a servant of a Christian or someone who eats their leftovers will be performed, even though eating their leftovers is a heinous evil. | 169

फतावा रज़विया | खंड 9

वह मुबारक सनद जिसे यदि किसी पागल पर पढ़ा जाए तो उसे शिफा (आरोग्य) मिल जाए। | १३४ नज़अ (मृत्यु पूर्व की स्थिति) की हालत में भी स्त्री अपने पति की पत्नी बनी रहती है और पति मृत स्त्री को देख सकता है लेकिन हाथ नहीं लगा सकता। | १३९ नाम मूसम्मा (जिसका नाम रखा गया हो) के अस्तित्व के रूपों में से एक स्वरूप है। | १३४ जनाजे के साथ ज़ोर से ज़िक्र (स्मरण) करने का शरीयत का आदेश और कुछ किताबों में इसे मकरूह (नापसंद) लिखने का कारण। | १४० किसी वस्तु के अस्तित्व के चार रूप हैं: (१) वास्तविक रूप में (२) ज्ञान में (३) उच्चारण में (४) लेखन में। | १३४ जनाजे के साथ नात (प्रशंसा काव्य) पढ़ना या ज़ोर से ज़िक्र करना। | १५८ उच्चारण और लेखन की स्थिति में नाम के अस्तित्व को ही मूसम्मा (नामित वस्तु) का अस्तित्व माना गया है। | १३४ जनाजे के साथ नात वाली गजलें पढ़ना जायज़ है। | १५८ शाह अब्दुल अज़ीज़ रहमतुल्लाहि अलैहि ने शजरा (वंशवृक्ष/आध्यात्मिक वंशावली) को कब्र में रखने को बुज़ुर्गों का तरीका बताया और इसे सिरहाने के ताखे में रखना पसंद किया। | १३४

नमाज़-ए-जनाज़ा (जनाजे की नमाज़) जनाज़ा ले जाना बे-नमाज़ी (नमाज़ न पढ़ने वाले) की नमाज़-ए-जनाज़ा पढ़ी जाएगी। | १५८ जनाज़ा उठाने में किस दिशा से पहल की जाए। | ८१ बे-नमाज़ी की नमाज़-ए-जनाज़ा पढ़ने का कारण। | १५९ जनाज़ा ले जाने का तरीका। | ८२ किसकी नमाज़ नहीं पढ़ी जाएगी। | १५९ और १६१ जनाज़ा ले जाते समय मृत व्यक्ति का सिर आगे होना चाहिए। | १३५ यदि विद्वान (उलेमा) बे-नमाज़ी की नमाज़-ए-जनाज़ा उसे डांटने या रोकने (ज़जरान) के उद्देश्य से न पढ़ें तो कोई हर्ज नहीं। | १६२ यदि जनाज़ा पश्चिम की ओर ले जाना हो, तो सिर पश्चिम की ओर किया जाए या पूर्व की ओर। | ४७५ बे-नमाज़ी और उसकी नाबालिग संतानों की नमाज़-ए-जनाज़ा पढ़ी जाएगी। | १६३ जनाज़े पर शॉल या फूलों की चादर डालना। | १३५ बे-नमाज़ी की नमाज़-ए-जनाज़ा पढ़ी जाएगी। | १६३ जनाज़े पर रंग-बिरंगी चादरें डालना कैसा है। | १३८ कब्र पर अज़ान देना जायज़ है। | १६४ मज़ार पर चढ़ाई गई चादरों की बिक्री का शरीयत का हुक्म। | १९२ बे-नमाज़ी की नमाज़-ए-जनाज़ा भी अनिवार्य है और मुर्दे को कष्ट देना वर्जित है। | १६४ यदि स्त्री की मृत्यु हो जाए तो पुरुष उसके जनाज़े को हाथ लगा सकता है और कंधा दे सकता है। | १३८ बे-नमाज़ी की विधवा का जनाज़ा न पढ़ना गंभीर अपराध है। | १६७ स्त्री या पति की मृत्यु होने पर एक-दूसरे को गुस्ल (स्नान) व कफन देना और कब्र में उतारना। | १३८ ईसाई के नौकर और उसका जूठा खाने वाले की नमाज़-ए-जनाज़ा पढ़ी जाएगी, हालांकि उसका जूठा खाना बहुत बुरा और घृणित है। | १६९

وہ سند مبارک جس کو مجنون پر پڑھو تو شفا ہو جائے۔ | ۱۳۴ حالت نزع میں بھی عورت بدستور شوہر کی زوجہ ہے اور مردہ عورت کو شوہر دیکھ سکتا ہے لیکن ہاتھ نہیں لگا سکتا۔ | ۱۳۹ نام مسمّٰی کے انحائے وجود میں سے ایک نحو ہے۔ | ۱۳۴ جنازہ کے ساتھ ذکر جہر کا حکم شرعی اور بعض کتابوں میں اس کو مکروہ لکھنے کی وجہ۔ | ۱۴۰ وجود شئی کی چار صورتیں ہیں (۱) اعیان میں (۲) علم میں (۳) تلفظ میں (۴) کتابت میں۔ | ۱۳۴ جنازہ کے ساتھ نعت یا جہر سے ذکر کرنا۔ | ۱۵۸ وجود تلفظ وکتابت کی صورت میں وجود اسم کو ہی وجود مسمّٰی قرار دیا گیا ہے۔ | ۱۳۴ جنازہ کے ساتھ نعتیہ غزلیں پڑھنا جائز ہے۔ | ۱۵۸ شاہ عبدالعزیز رحمۃ اللہ تعالیٰ علیہ نے شجرہ کو قبر میں رکھنے کو معمول بزرگاں بتا کر سرہانے طاق میں رکھنا پسند فرمایا۔ | ۱۳۴

نماز جنازہ جنازہ لے جانا بے نمازی کی نماز جنازہ پڑھی جائے گی۔ | ۱۵۸ جنازہ اٹھانے میں کس طرف سے سبقت کی جائے۔ | ۸۱ بے نمازی کی نماز جنازہ پڑھنے کی وجہ۔ | ۱۵۹ جنازہ کولے کر جانے کا طریقہ۔ | ۸۲ کس کی نماز نہیں پڑھی جائے گی۔ | ۱۵۹ و ۱۶۱ جنازہ لے جاتے ہوئے میت کا سر آگے ہونا چاہئے۔ | ۱۳۵ بے نمازی کی نماز جنازہ علماء، زجرانہ پڑھیں تو کوئی حرج نہیں۔ | ۱۶۲ جنازہ مغرب کی جانب لے جانا ہو تو سر مغرب کی طرف کیا جائے یا مشرق کی طرف۔ | ۴۷۵ بے نمازی اور اس کی نابالغ اولاد کی نماز جنازہ پڑھی جائے گی۔ | ۱۶۳ جنازہ پر شال یا پھولوں کی چادر ڈالنا۔ | ۱۳۵ بے نمازی کی نماز جنازہ پڑھی جائے گی۔ | ۱۶۳ جنازہ پر رنگ برنگ کی چادریں ڈالنا کیسا ہے۔ | ۱۳۸ قبر پر اذان دینا جائز ہے۔ | ۱۶۴ مزار پر چڑھائی ہوئی چادروں کی بیع کا حکم شرعی۔ | ۱۹۲ بے نمازی کی نماز جنازہ بھی لازمی ہے اور مردے کو اذیت دینا ممنوع ہے۔ | ۱۶۴ عورت مرجائے تو مرد اس کے جنازے کو

ہاتھ لگا سکتا ہے اور کندھا دے سکتا ہے۔ | ۱۳۸ بے نمازی کی بیوہ کا جنازہ نہ پڑھنا سخت جرم ہے۔ | ۱۶۷ عورت یا شوہر مرجائے تو ایک دوسرے کو غسل وکفن اور قبر میں اتارنا۔ | ۱۳۸ نصرانی کے ملازم اور اس کا جوٹھا کھانے والے کی نماز جنازہ پڑھی جائے گی اگرچہ اس کا جوٹھا کھانا شنیع بد ہے۔ | ۱۶۹

Fatawa Razawiyya Volume 9

Staying with Christians does not make one an infidel; upon their death, shrouding, burial, and funeral prayers are mandatory. [Page 170] | If the funeral is ready during disliked times (Makruh times), the funeral prayer is not disliked in those times, and it is also permissible before the Asr prayer. [Page 185]

Performing the funeral prayer for a Christian and their shrouding and burial like Muslims is strictly forbidden (Haram Qat'i). Repentance is mandatory for those who do so, and if they did it considering them worthy of respect due to Christianity, they became apostates. [Page 170] | If the funeral is ready and there is a need to eat, what should be done first? [Page 186]

It is forbidden to perform the funeral prayer for a Rafidi (a sect), and seeking forgiveness for them is infidelity (Kufr). [Page 172] | Purity is a condition for the funeral prayer. [Page 187]

One who leads the funeral prayer of a Rafidi is not fit for leadership (Imamat). [Page 173] | Praying the funeral prayer while wearing shoes. [Page 188]

In the funeral of a hermaphrodite, should the intention be for a man or a woman? [Page 174] | It is permissible to perform the funeral prayer by placing the body on a cot. [Page 189]

Leadership of the Funeral Prayer (Imamat Janaza)

Who should be the Imam of the funeral? | There is no limit to the height of the cot on which the deceased is placed. [Page 190]

- [Page 176] | There is no harm if there is no prayer mat (Musalla) for the followers (Muqtadis) and the Imam leads the prayer on a prayer mat. [Page 191]

When is the need for the guardian's permission (Idhn-e-Wali) and preference given to the Imam-ul-Hayy (the regular Imam of the locality)? [Page 176] | The wisdom behind performing the funeral prayer on a prayer mat and the ruling on using it. [Page 192]

A marriage officiant (Nikah-khwan) or Qadi is not a Sharia-compliant judge. [Page 176] | It is permissible to spread a prayer mat in front of the Imam at the time of the funeral prayer. [Page 192]

What is the ruling if someone superior to the guardian (Wali) is present? [Page 176] | The sale of sheets (Chadar) offered at shrines (Mazars). [Page 192]

A husband does not have the right to lead his wife's funeral prayer when a guardian is present. Does the Imam-ul-Hayy have this right or not? [Page 177] | Ruling on performing prayer while wrapped in the aforementioned sheet. [Page 192]

If the guardian does not participate in the funeral prayer, the prayer will still be valid. [Page 182] | Both the Imam and the followers should recite the funeral prayers; it is not permissible for the follower to remain silent. [Page 193]

Performance of the Funeral Prayer (Namaz-e-Janaza ki Adaigi)

If a funeral arrives at the time of Maghrib, the Maghrib prayer should be performed first. [Page 183] | After the fourth Takbeer, both hands should be released and the Salam should be performed. [Page 194]

If a funeral arrives at the time of Zuhr, should the Zuhr prayer be performed first or the funeral prayer? [Page 184] | Should the Salam be with hands released? A question regarding 'Bahar-e-Shariat'. [Page 194]

- | What is the ruling if the Imam performs the Salam after the third Takbeer? [Page 194]

फ़तावा रज़विया जिल्द 9

ईसाइयों के साथ रहने से कोई काफ़िर नहीं होता, उसकी मृत्यु पर कफ़न-दफ़न और जनाज़े की नमाज़ ज़रूरी है। [पृष्ठ १७०] | यदि जनाज़ा मकरूह समय में तैयार हो, तो उन समयों में जनाज़े की नमाज़ मकरूह नहीं है, और असर की नमाज़ से पहले भी जायज़ है। [पृष्ठ १८५]

ईसाई की जनाज़े की नमाज़ और मुसलमानों की तरह उसका कफ़न-दफ़न करना कतई हराम है। ऐसा करने वालों पर तौबा लाज़िम है और अगर किसी ने ईसाइयत की वजह से उसे सम्मान का पात्र समझकर ऐसा किया, तो वह मुर्तद (धर्मत्यागी) हो गया। [पृष्ठ १७०] | यदि जनाज़ा तैयार हो और खाने की ज़रूरत हो, तो पहले क्या करना चाहिए? [पृष्ठ १८६]

राफ़ज़ी की जनाज़े की नमाज़ पढ़ना हराम है और उसके लिए मग़फ़िरत (क्षमा) की दुआ करना कुफ़्र है। [पृष्ठ १७२] | जनाज़े की नमाज़ के लिए पाकी (तहारत) शर्त है। [पृष्ठ १८७]

राफ़ज़ी की जनाज़े की नमाज़ पढ़ाने वाला इमामत के काबिल नहीं है। [पृष्ठ १७३] | जूते पहनकर जनाज़े की नमाज़ पढ़ना। [पृष्ठ १८८]

हिजड़े के जनाज़े में पुरुष की नियत की जाए या महिला की? [पृष्ठ १७४] | चारपाई पर शव रखकर जनाज़े की नमाज़ पढ़ना जायज़ है। [पृष्ठ १८९]

जनाज़े की इमामत

जनाज़े का इमाम कौन हो? | जिस चारपाई पर मय्यत (शव) हो, उसकी ऊँचाई की कोई सीमा नहीं है। [पृष्ठ १९०]

- [पृष्ठ १७६] | यदि मुक़्तदियों के लिए मुसल्ला (जायनमाज़) न हो और इमाम मुसल्ले पर नमाज़ पढ़ाए, तो कोई हर्ज नहीं। [पृष्ठ १९१]

वली (अभिभावक) की अनुमति की आवश्यकता और इमाम-उल-हय्य को प्राथमिकता कब दी जाती है? [पृष्ठ १७६] | मुसल्ले पर जनाज़े की नमाज़ पढ़ने का हिकमत (तर्क) और उसके उपयोग का हुक्म। [पृष्ठ १९२]

निकाह पढ़ाने वाला काज़ी शरई काज़ी नहीं है। [पृष्ठ १७६] | जनाज़े की नमाज़ के समय इमाम के सामने जायनमाज़ बिछाना जायज़ है। [पृष्ठ १९२]

यदि वली से अफ़ज़ल (श्रेष्ठ) व्यक्ति मौजूद हो, तो क्या हुक्म है? [पृष्ठ १७६] | मज़ारों पर चढ़ाई गई चादरों की बिक्री। [पृष्ठ १९२]

वली की मौजूदगी में पति को अपनी पत्नी की जनाज़े की नमाज़ पढ़ाने का हक़ नहीं है। क्या इमाम-उल-हय्य को यह हक़ है या नहीं? [पृष्ठ १७७] | उक्त चादर ओढ़कर नमाज़ पढ़ने का हुक्म। [पृष्ठ १९२]

यदि जनाज़े की नमाज़ में वली शरीक न हो, तो नमाज़ हो जाएगी। [पृष्ठ १८४] | जनाज़े की दुआएँ इमाम और मुक़्तदी दोनों पढ़ें; मुक़्तदी का खामोश रहना जायज़ नहीं। [पृष्ठ १९३]

जनाज़े की नमाज़ की अदायगी

यदि मग़रिब के समय जनाज़ा आए, तो पहले मग़रिब की नमाज़ पढ़ी जाए। [पृष्ठ १८३] | चौथी तकबीर के बाद दोनों हाथ छोड़कर सलाम फेरा जाए। [पृष्ठ १९४]

यदि ज़ुहर के समय जनाज़ा आए, तो पहले ज़ुहर की नमाज़ पढ़ी जाए या जनाज़े की नमाज़। [पृष्ठ १८४] | सलाम हाथ छोड़कर हो, 'बहार-ए-शरीअत' के बारे में सवाल। [पृष्ठ १९४]

- | यदि इमाम तीसरी तकबीर के बाद सलाम फेर दे, तो क्या हुक्म है? [पृष्ठ १९४]

فتاویٰ رضویہ جلد نہم

نصاریٰ کے ساتھ رہنے سے کوئی کافر نہیں ہوتا اس کے مرنے پر کفن دفن اور نمازِ جنازہ لازم ہے۔ | ۱۷۰ | اوقاتِ مکروہہ میں جنازہ تیار ہو تو ان اوقات میں نمازِ جنازہ مکروہ نہیں، اور نمازِ عصر سے پہلے بھی جائز ہے۔ | ۱۸۵

عیسائی کی نمازِ جنازہ اور مسلمانوں کی طرح اس کی تجہیز و تکفین حرام قطعی ہے، ایسا کرنے والوں پر توبہ لازم ہے اور اگر اس کو بوجہ نصرانیت مستحق تعظیم سمجھ کر ایسا کیا تو مرتد ہوئے۔ | ۱۷۰ | جنازہ تیار ہو اور کھانا کھانے کی حاجت ہو تو پہلے کیا کرے۔ | ۱۸۶

رافضی کی نمازِ جنازہ پڑھنی حرام ہے اور اس کے لیے استغفار کرنا کفر ہے۔ | ۱۷۲ | نمازِ جنازہ کے لیے طہارت شرط ہے۔ | ۱۸۷

رافضی کی نمازِ جنازہ پڑھانے والا قابلِ امامت نہیں۔ | ۱۷۳ | جوتا پہن کر نمازِ جنازہ پڑھنا۔ | ۱۸۸

ہیجڑے کے جنازے میں مرد کی نیت ہو یا عورت کی۔ | ۱۷۴ | چارپائی پر نعش رکھ کر نمازِ جنازہ پڑھنا جائز ہے۔ | ۱۸۹

امامت جنازہ

جنازے کا امام کون ہو۔ | - | میت جس چارپائی پر ہو اس کی بلندی کی کوئی حد نہیں۔ | ۱۹۰

- | ۱۷۶ | مقتدیوں کے لیے مصلی نہ ہو اور امام مصلی پر نماز پڑھائے تو کوئی حرج نہیں۔ | ۱۹۱

اذن ولی کی حاجت اور امام الحی کو ترجیح کب ہے۔ | ۱۷۶ | مصلی پر نماز جنازہ پڑھنے کی حکمت اور اس کے استعمال کرنے کا حکم۔ | ۱۹۲

نکاح خواں قاضی شرعی قاضی نہیں۔ | ۱۷۶ | نماز جنازہ کے وقت امام کے سامنے جانماز بچھانا جائز ہے۔ | ۱۹۲

ولی سے افضل موجود ہو تو کیا حکم ہے۔ | ۱۷۶ | مزاروں پر چڑھائی گئی چادروں کی بیع۔ | ۱۹۲

شوہر کو اپنی بیوی کی نماز جنازہ پڑھانے کا حق نہیں جبکہ ولی موجود ہو، امام الحی کو اس کا حق ہے یا نہیں۔ | ۱۷۷ | مذکورہ چادر اوڑھ کر نماز پڑھنے کا حکم۔ | ۱۹۲

نماز جنازہ میں ولی شریک نہ ہو تو نماز ہو جائے گی۔ | ۱۸۲ | جنازہ کی دعائیں امام اور مقتدی دونوں پڑھیں مقتدی کو خاموش رہنا جائز نہیں۔ | ۱۹۳

نمازِ جنازہ کی ادائیگی

مغرب کے وقت جنازہ آئے تو پہلے مغرب کی نماز پڑھی جائے۔ | ۱۸۳ | چوتھی تکبیر کے بعد دونوں ہاتھ چھوڑ کر سلام پھیرا جائے۔ | ۱۹۴

ظہر کے وقت جنازہ آئے تو پہلے ظہر کی نماز پڑھی جائے یا نمازِ جنازہ۔ | ۱۸۴ | سلام ہاتھ چھوڑ کر ہو، بہارِ شریعت کے بارے میں سوال۔ | ۱۹۴

- | - | تیسری تکبیر کے بعد امام سلام پھیر دے تو کیا حکم ہے۔ | ۱۹۴

Fatawa Razawiyya Volume 9

- What is the ruling if Takbirs (invocations) are missed in the funeral prayer? 194
- Reasoning from seven Hadiths on prayer being absolutely beloved and desired. 240
- How should the rows be arranged if there are few people in a funeral prayer? 196
- Hadith 1: Pray abundantly. 240
- A row of even one person is also a row. 196
- Hadith 2: When one of you asks (makes a supplication), let him do so abundantly, for he is asking his Lord. 241
- The back row is superior in a funeral prayer. 207
- The author's reasoning that the mentioned Hadith points towards abundance in both the asking and the asked. 241
- Treatise 'Al-Minna al-Mumtaza fi Da'wat al-Janaza' (Supplications mentioned in noble Hadiths are collected in this treatise with translations, and the method of Talqin at the grave is explained). 209
- Hadith 3: Pray abundantly, for prayer wards off the irrevocable decree. 241
- Thirteen supplications are mentioned in Hadiths related to the funeral prayer. 209
- Hadith 4: Indeed, Allah Almighty has placed blessing in a person's need for which he prays abundantly. 241
- Details of supplications after the third Takbir. 209
- Hadith 5: The prayer of one who gets tired of abundant praying and gives up prayer is not accepted. 242
- Method of Talqin (instruction) at the grave. 221
- Hadith 6 & 7: Keep asking for goodness at all times, every hour throughout life, and keep seeking the manifestations of Divine Mercy. 242
- It is permissible to pray after the funeral prayer, Hadiths regarding prayer, and refutation of deniers. 222
- Here, by the praise of Allah, there is not only absolute application but also explicit generalization of time. 243
- Treatise 'Bazl al-Jawa'iz ala ad-Du'a ba'd Salat al-Jana'iz' (Proof for praying after the funeral prayer and refutation of deniers). 239
- Whenever you pray, it is undoubtedly exactly what is commanded and good in its essence. 243

- Many commoners are negligent regarding... therefore it is always appropriate for a Mufti to explain fully in such matters. 240
- Unless the prohibition of a specific time is proven from the pure Sharia, forbidding and denying it is a rejection and nullification of the Sharia's command. 243
- Consensus of the Imams of Ahlus Sunnah wal Jama'ah that praying for deceased Muslims is beloved and shari'ah-wise desired. 240
- When a command of Sharia is issued with explicit generalization, all times are included under that command. 243
- Sharia texts (verses and Hadiths) regarding prayer are absolute and unrestricted, without any limitation or restriction of time. 240
- Something inherently good may sometimes be affected by an external factor that makes its goodness conditional. 243
- The burden of proof lies with the claimant. 243

फतावा रज़विया जिल्द 9

- जनाज़े में तकबीरें छूट जाएँ तो क्या हुक्म है। 194
- दुआ के मुतलक़न (पूर्ण रूप से) महबूब व मतलूब (वांछित) होने पर सात अहादीस से इस्तदलाल (तर्क)। 240
- जनाज़ा में कम आदमी हों तो सफ़ों की तरतीब कैसे हो। 196
- हदीस 1: दुआ कसरत से करो। 240
- एक आदमी की सफ़ भी सफ़ है। 196
- हदीस 2: जब तुम में से कोई शख़्स दुआ मांगे तो कसरत करे कि अपने रब से ही सवाल कर रहा है। 241
- जनाज़ा में पिछली सफ़ अफ़ज़ल (बेहतर) है। 207
- मुसन्निफ़ (लेखक) का इस्तदलाल कि मज़कूरा हदीस सवाल और मसऊल (जिससे मांगा जाए) दोनों में कसरत की तरफ़ इशारा फ़रमाती है। 241
- रिसाला 'अल-मिन्नतुल मुमताज़ा फ़ी दा'वातिल जनाज़ा' (जो दुआएं अहादीस-ए-करीमा में वारिद हुई हैं वे तर्जुमे के साथ इस रिसाले में जमा कर दी गई हैं और क़ब्र पर तल्कीन करने का तरीक़ा बताया गया है)। 209
- हदीस 3: दुआ कसरत से मांगो कि दुआ क़ज़ा-ए-मुब्रम (अटल तकदीर) को टाल देती है। 241
- नमाज़-ए-जनाज़ा से मुताल्लिक़ अहादीस में तेरह दुआएं वारिद हुई हैं। 209
- हदीस 4: बेशक अल्लाह तआला ने आदमी की उस हाजत में बरकत रखी है जिसमें वह दुआ की कसरत करे। 241
- तीसरी तकबीर के बाद दुआओं का विवरण। 209
- हदीस 5: कसरत-ए-दुआ से घबरा कर दुआ छोड़ देने वाले की दुआ क़ुबूल नहीं होती। 242
- तरीक़ा-ए-तल्कीन क़ब्र। 221
- हदीस 6 व 7: हर वक़्त हर घड़ी उम्र भर खैर मांगते जाओ और तजल्लियात-ए-रहमते इलाही की तलाश रखो। 242
- नमाज़-ए-जनाज़ा के बाद दुआ करना जायज़ है, दुआ से मुताल्लिक़ अहादीस और मुनकरीन (इनकार करने वालों) का रद (खंडन)। 222

- यहाँ तो अल्हम्दुलिल्लाह न सिर्फ़ इतलाक़ (सामान्य नियम) बल्कि सराहतन (स्पष्ट रूप से) ज़माने की तामीम (व्यापकता) है। 243
- रिसाला 'बज़्लुल जवाईज़ अलल दुआ बाद सलातिल जनाइज़' (नमाज़-ए-जनाज़ा के बाद दुआ करने का सुबूत और मुनकरीन का रद)। 239
- जिस वक़्त दुआ कीजिए बिला शुबहा ऐन मामूर बिह (आदिष्ट) और हुस्न फ़ी हद्दे ज़ातिह (अपने आप में अच्छी) है। 243
- बहुत से अवाम लापरवाही करते हैं इसलिए ऐसी जगह पूरी बात करना हमेशा मुफ़्ती के लिए मुनासिब है। 240
- जब तक किसी ख़ास वक़्त की ममानअत (मनाही) शरअ-ए-मुतहर से साबित न हो, मना करना और इनकार करना हुक्म-ए-शरअ का रद व इब्ताल (खंडन और अमान्य करना) है। 243
- आइम्मा-ए-अहले सुन्नत व जमाअत का इज्मा (सहमति) है कि मुर्दा मुसलमानों के लिए दुआ करना महबूब और शरअन मतलूब है। 240
- जब सराहत के साथ शरई हुक्म में तामीम (व्यापकता) वारिद हो तो तमाम ज़माने उस हुक्म के तहत दाख़िल होते हैं। 243
- नसूस-ए-शरिया (आयतों और हदीसों) में दुआ के बारे में मुतलक़ और आम हुक्म आया है जिसमें किसी ज़माने की क़ैद या पाबंदी नहीं है। 240
- हुस्न फ़ी ज़ातिह को कभी बाहर से कोई मामला मुज़ाहिम (बाधक) हुस्न-ए-आरिज़ बना देता है। 243
- सुबूत का बोझ मुद्दई (दावा करने वाले) के ज़िम्मे होता है। 243

فتاویٰ رضویہ جلد نہم

- جنازے میں تکبیریں چھوٹ جائیں تو کیا حکم ہے۔ ۱۹۴
- دعا کے مطلقاً محبوب و مطلوب ہونے پر سات احادیث سے استدلال۔ ۲۴۰
- جنازہ میں کم آدمی ہوں تو صفوں کی ترتیب کیسے ہو۔ ۱۹۶
- حدیث ۱: دعا بکثرت کر۔ ۲۴۰
- ایک آدمی کی صف بھی صف ہے۔ ۱۹۶
- حدیث ۲: جب تم میں سے کوئی شخص دعا مانگے تو کثرت کرے کہ اپنے رب سے ہی سوال کر رہا ہے۔ ۲۴۱
- جنازہ میں پچھلی صف افضل ہے۔ ۲۰۷
- مصنف کا استدلال کہ حدیث مذکور سوال و مسؤول دونوں میں تکثیر کی طرف اشارہ فرماتی ہے۔ ۲۴۱
- رسالہ المنۃ الممتازۃ فی دعوات الجنازۃ (جو دعائیں احادیث کریمہ میں وارد ہیں وہ مع ترجمہ اس رسالے میں جمع کردی گئی ہیں اور قبر پر تلقین کرنے کا طریقہ بتایا گیا ہے) ۲۰۹
- حدیث ۳: دعا بکثرت مانگ کہ دعا قضا مبرم کو ٹال دیتی ہے۔ ۲۴۱
- نماز جنازہ سے متعلق احادیث میں تیرہ دعائیں وارد ہوئی ہیں۔ ۲۰۹
- حدیث ۴: بیشک اللہ تعالی نے برکت رکھی ہے آدمی کی اس حاجت میں جس میں وہ دعا کی کثرت کرے۔ ۲۴۱
- تفصیل ادعیہ بعد تکبیر سوم ۲۰۹
- حدیث ۵: کثرت دعا سے گھبرا کر دعا چھوڑ دینے والے کی دعا قبول نہیں ہوتی۔ ۲۴۲

- طریقہ تلقین قبر۔ ۲۲۱
- حدیث ۶ و ۷: ہر وقت ہر گھڑی عمر بھر خیر مانگے جاؤ اور تجلیات رحمت الہی کی تلاش رکھو۔ ۲۴۲
- نماز جنازہ کے بعد دعا کرنا جائز ہے، دعا سے متعلق احادیث اور منکرین کا رد ۲۲۲
- یہاں تو بحمد اللہ نہ صرف اطلاق بلکہ صراحت تعمیم زمانہ ہے۔ ۲۴۳
- رسالہ بذل الجوائز علی الدعاء بعد صلاۃ الجنائز (نماز جنازہ کے بعد دعا کرنے کا ثبوت اور منکرین کا رد) ۲۳۹
- جس وقت دعا کیجئے بلا شبہ عین مامور بہ اور حسن فی حد ذاتہ ہے۔ ۲۴۳
- بہت عوام تملہ ز صور سے غفلت کرتے ہیں لہذا ایسی جگہ پوری بات کرنا ہمیشہ مفتی کے لیے مناسب ہے۔ ۲۴۰
- جب تک کسی خاص وقت کی ممانعت شرع مطہر سے ثابت نہ ہو منع وانکار حکم شرع کا رد و ابطال ہے۔ ۲۴۳
- ائمہ اہلسنت و جماعت کا اجماع ہے کہ اموات مسلمین کے لیے دعا محبوب اور شرعاً مطلوب ہے۔ ۲۴۰
- جب بتصریح تعمیم امر شرع وارد ہو تو جمیع ازمنہ تحت امر داخل ہوتا ہے۔ ۲۴۳
- نصوص شرعیہ آیتاً و حدیثاً درباره دعا ارسال مطلق واطلاق مرسل پر وارد جن میں کسی زمانہ کی تقیید و تحدید نہیں۔ ۲۴۰
- حسن فی ذاتہ کو کبھی خارج سے کوئی امر مزاحم حسن عارض ہوتا ہے۔ ۲۴۳
- بار ثبوت مدعی کے ذمہ ہوتا ہے۔ ۲۴۳

Fatawa Razawiyya Volume 9

[Table of Contents Index]

1. An accidental quality persists only as long as its cause remains; once removed, the original rule of beauty returns. (243) | Scholars state that the prohibition of joining is so that one prayer is not perceived as a continuation of another. (249)
2. These general statements in common books are not absolute, suggesting that they record supplication after the funeral prayer as disliked in all cases. (243) | Discussion on the narration from Imam Ibn Hamid that he said: Supplication after the funeral prayer is disliked. (251)
3. The mentioned statements regarding the dislike of supplication are conditioned by the word 'standing' (qiyam), meaning not to stand (for a long time) for supplication after the funeral prayer, not that one should not supplicate at all after the funeral. (244) | Rebuttal in a scholarly manner based on six reasons against those obstinate people who use Imam Ibn Hamid's narration as evidence. (252)
4. The author's investigation into what kind of 'standing' it is, upon which the jurists are basing this ruling (of dislike). (244) | Zahidi, the narrator of this report, is not reliable. (253)
5. The act of supplication itself is not a valid reason for prohibition, nor is supplicating while standing forbidden. (244) | Zahidi is a Mu'tazilite in belief. (254)
6. Standing by the grave and supplicating is a Sunnah. (245) | The difference between Zamakhshari and Zahidi. (254)
7. The noble companions (may Allah be pleased with them) used to stand around the blessed remains of Hazrat Farooq-e-Azam (may Allah be pleased with him) and offer supplications. (245) | The word 'an' (from) indicates strangeness and weakness in narration. (255)
8. 'Qiyam' (standing) has two meanings. (245) | Reciting Fatiha and supplicating for the deceased before burial is permissible. (255)
9. Supplication before the prayer itself is proven from the authentic Hadiths of the Holy Prophet (peace and blessings of Allah be upon him). (246) | "This is the acted-upon narration" - these words are equal in strength to 'Alaihi al-Fatwa' and 'Bihi Yufta'. (255)

10. Delaying or putting off funeral arrangements for the sake of a long supplication other than the prayer is not religiously preferred. (247) | The word 'Fatwa', 'Sahih', 'Wadih', and 'Ashbah' etc., are more emphatic. (255)
11. Increasing the congregation for a funeral is definitely desired, but delaying for it is not liked. (247) | The phrase 'Alaihi al-'Amal' is equivalent to the word 'Fatwa'. (255)
12. In the pure Sharia, hastening the funeral arrangements is sought with complete emphasis. (247) | The dislike mentioned by jurists pertains only to two situations: one, to remain in the same formation with rows and supplicate there, and two, to delay funeral matters for the specific purpose of a long supplication before or after the prayer. (256)
13. Do not join one prayer with another until you have some conversation or move from that place. (249) | The illusion of an addition causes 'Karahat-e-Tanzihiyah' (slight dislike), which essentially makes it 'Khilaf-e-Aula' (less preferable). (256)

फ़तावा रज़विया जिल्द नहुम (9)

[विषय सूची सारणी]

1. आकस्मिक स्थिति केवल तब तक बाधक रहती है जब तक वह मौजूद हो; उसके समाप्त होते ही मूल सुंदरता का नियम पुनः लागू हो जाएगा। (243) | विद्वान फरमाते हैं कि दो नमाज़ों को जोड़ने से मनाही इसलिए है ताकि एक नमाज़ दूसरी का पूरक न लगने लगे। (249)
2. आम किताबों में ये सामान्य कथन हरगिज़ इस बात पर नहीं हैं कि वे जनाज़े की नमाज़ के बाद दुआ को पूर्णतः मकरूह (नापसंद) लिखते हों। (243) | इमाम इब्न हामिद से संबंधित इस वर्णन पर चर्चा कि उन्होंने फ़रमाया: जनाज़े की नमाज़ के बाद दुआ मकरूह है। (251)
3. दुआ की मकरूहियत के बारे में उल्लेखित कथन 'क़ियाम' (खड़े होने) के शब्द से सीमित हैं, यानी जनाज़े की नमाज़ के बाद दुआ के लिए (लम्बे समय तक) न खड़ा होना, न कि यह कि जनाज़े के बाद दुआ ही न की जाए। (244) | इमाम इब्न हामिद के कथन को प्रमाण बनाने वाले हठधर्मियों का तर्कपूर्ण ढंग से छह कारणों से खंडन। (252)
4. लेखक का शोध कि वह कौन सा 'क़ियाम' है जिसकी शर्त के साथ फ़कीह (धर्मशास्त्री) यह नियम (मकरूहियत का) दे रहे हैं। (244) | इस रिवायत का वर्णन करने वाला ज़ाहिدی विश्वसनीय नहीं है। (253)
5. स्वयं दुआ करना मनाही का कारण नहीं है और न ही खड़े होकर दुआ करना मना है। (244) | ज़ाहिदी अक़ीदे में मोतज़ली है। (254)
6. क़ब्र के पास खड़े होकर दुआ करना सुन्नत है। (245) | ज़मख़शरी और ज़ाहिदी में अंतर। (254)
7. सहाबा किराम (रज़ियल्लाहु अन्हुम) हज़रत फ़ारूक़-ए-आज़म (रज़ियल्लाहु अन्हु) के पार्थिव शरीर के चारों ओर खड़े होकर दुआएं करते रहे। (245) | 'अन' शब्द रिवायत की विचित्रता और कमज़ोरी का सूचक है। (255)
8. 'क़ियाम' (खड़े होने) के दो अर्थ हैं। (245) | मृतक के दफ़न से पहले फ़ातिहा और दुआ करना जायज़ है। (255)
9. नमाज़ से पहले दुआ स्वयं सहीह हदीसों में हुज़ूर अक़दस (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) से साबित है। (246) | "हमें अस्त रिवायत मअमूला" - ये शब्द मज़बूती में 'अलैहि अल-फ़तवा' और 'बिही युफ़्ता' के बराबर हैं। (255)

10. नमाज़ के अलावा किसी लम्बी दुआ के उद्देश्य से जनाज़े की तैयारी में विलंब करना या उसे लटकाना शरीयत में पसंद नहीं है। (247) | फ़तवा, सहीह, वाज़ेह और अशबह आदि शब्द अधिक ताकीद वाले हैं। (255)
11. जनाज़े पर बड़ी जमात निश्चित रूप से वांछित है, लेकिन इसके लिए देरी करना पसंद नहीं है। (247) | 'अलैहि अल-अमल' शब्द 'फ़तवा' के शब्द के समान है। (255)
12. पावन शरीयत में जनाज़े की तैयारी में जल्दी करने पर पूर्ण ज़ोर दिया गया है। (247) | फ़कीहों (धर्मशास्त्रियों) के कथनों में नापसंदगी केवल दो स्थितियों से संबंधित है: एक, उसी स्थिति में सफ़ें(कतारें) बांधे खड़े रहकर दुआ करना, और दूसरा, नमाज़ से पहले या बाद में लम्बी दुआ के विशेष उद्देश्य से जनाज़े के कार्यों में देरी करना। (256)
13. एक नमाज़ को दूसरी नमाज़ से न जोड़ें जब तक कि कुछ बातचीत न कर लें या उस जगह से हट न जाएं। (249) | बढ़ोत्तरी का भ्रम 'कराहते तंज़ीहिया' (हल्की नापसंदगी) का कारण बनता है जिसका परिणाम 'ख़िलाफ़े औला' (कम प्राथमिकता) है। (256)

पृष्ठ १६/९४८

فتاویٰ رضویہ جلد نہم

[جدول اشاریہ]

1. عارض اپنے عروض ہی تک مزاحم رہے گا زائل ہوتے ہی اصل حسن کا حکم عود کرے گا۔ (۲۴۳) | علماء فرماتے ہیں وصل سے نہی اس لیے ہے کہ ایک نماز دوسری کا تتمہ نہ معلوم ہو۔ (۲۴۹)
2. عامہ کتب میں یہ عامہ اقوال ہر گز اطلاق وارسال پر نہیں کہ بعد نماز جنازہ مطلقاً دعا کو مکروہ لکھتے ہوں۔ (۲۴۳) | امام ابن حامد سے منقول حکایت پر بحث کہ انہوں نے فرمایا: دعا بعد نماز جنازہ مکروہ ہے۔ (۲۵۱)
3. اقوال مذکورہ کراہت دعا مقید بہ لفظ قیام ہے یعنی نماز جنازہ کے بعد دعا کے لیے قیام (طویل) نہ کرنے نہ یہ کہ بعد جنازہ دعا ہی نہ کرے۔ (۲۴۴) | امام ابن حامد کی حکایت سے استدلال کرنے والے متعسفین کا مناظرانہ انداز میں چھ وجوہ سے رد۔ (۲۵۲)
4. مصنف کی تحقیق کہ وہ کیا قیام ہے جس کی قید سے فقہاء یہ حکم (کراہت) دے رہے ہیں۔ (۲۴۴) | اس روایت کا حاکی زاہدی معتمد نہیں۔ (۲۵۳)
5. نفس دعا اصلاً صالح ممانعت نہیں اور نہ کھڑے ہو کر دعا ممنوع ہے۔ (۲۴۴) | زاہدی مذہب کا معتزلی ہے۔ (۲۵۴)
6. قبر کے پاس کھڑے ہو کر دعا سنت ہے۔ (۲۴۵) | زمخشری اور زاہدی میں فرق۔ (۲۵۴)
7. صحابہ کرام رضی اللہ تعالی عنہم حضرت فاروق اعظم رضی اللہ تعالی عنہ کی نعش مبارک کے گرد کھڑے ہو کر دعائیں کرتے رہے۔ (۲۴۵) | لفظ عن مشیر غرابت و تمریض ہے۔ (۲۵۵)

8. قیام کے دو معنی ہیں۔ (۲۴۵) | فاتحہ و دعا برائے میت دفن سے پہلے جائز ہے۔ (۲۵۵)

9. پیش از نماز دعا خود احادیث صحیحہ میں حضور اقدس صلی اللہ تعالی علیہ وسلم سے ثابت ہے۔ (۲۴۶) | "ہمیں است روایت معمولہ" یہ الفاظ قوت میں علیہ الفتوی اور بہ یفتی کے برابر ہیں۔ (۲۵۵)

10. نماز کے علاوہ کسی دعائے طویل کی غرض سے تجہیز جنازہ کو رنگ و تعویق میں ڈالنا شرعاً پسندیدہ نہیں۔ (۲۴۷) | لفظ فتویٰ، لفظ صحیح واضح اور اشبہ وغیرہ سے اکد ہے۔ (۲۵۵)

11. جنازہ پر تکثیر جماعت قطعاً مطلوب ہے مگر اس کے لیے تاخیر محبوب نہیں۔ (۲۴۷) | لفظ علیہ العمل لفظ فتویٰ کے مساوی ہے۔ (۲۵۵)

12. شرع مطہر میں تعجیل تجہیز بتاکید تمام مطلوب ہے۔ (۲۴۷) | عبارت فقہاء میں کراہت صرف دو صورتوں سے متعلق ہے، ایک اسی ہیئت پر بدستور صفیں باندھے وہیں کھڑے دعا کرنا، دوسرے قبل نماز خواہ بعد نماز دعائے طویل کی خاص غرض سے امر تجہیز کو تعویق میں ڈالنا۔ (۲۵۶)

13. ایک نماز دوسری نماز سے نہ ملاؤ یہاں تک کہ کچھ گفتگو کر لو یا اس جگہ سے ہٹ جاؤ۔ (۲۴۹) | ایہام زیادت مورث کراہت تنزیہیہ ہے جس کا حاصل خلاف اولیٰ ہے۔ (۲۵۶)

Fatawa Rizvia, Volume 9

256 | Calling something makruh tanzihi (disliked but not sinful) a sin is not correct. | It is not permissible to offer funeral prayers on land that has become part of a mosque. | 266 Topic: Place of Funeral Prayer | The reason for holding funeral prayers in Masjid al-Nabawi and Masjid al-Haram. | 266 259 | Funeral prayer is not permissible in a mosque; proof of this matter from books of jurisprudence. | Ruling on placing the bier on the mosque's pond and praying. | 266 262 | Funeral prayer is prohibited in the mosque even if there is little space outside, or if there is intense sunlight, or during the month of Ramadan. | Offering funeral prayers in an old graveyard when the graves have been demolished. | 267 263 | And if the funeral prayer is offered in the mosque, the obligation (fard) will be discharged. | Repetition of funeral prayer | 263 | One who wants to join the prayer but could not for some reason will get the reward. | O Treatise: Al-Nahi al-Hajiz 'an Takrar Salat al-Jana'iz (Repetition of funeral prayer is impermissible). | 269 263 | Funeral prayer should be offered after Friday prayer. | Repetition of funeral prayer is absolutely impermissible according to our leading Imams. | 270 264 | The correct view is that it is makruh (disliked) if the bier, the Imam, or the row is inside the mosque. | If a stranger (non-relative) prays without permission and without following the guardian (wali), the guardian can repeat it. | 270 265 | Funeral prayer inside the mosque is not permissible. | If the guardian has already prayed, then it is not permissible for anyone else now. | 270 265 | The roofed part of the mosque is called shitwi (winter) and the courtyard is called saifi (summer). | It is not legislated to offer funeral prayer as a voluntary (nafl) act. | 270 265 | Burying the deceased in a coffin is makruh (disliked), but if the ground there is soft, there is no harm for protection. | The Noble Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) is today as he was the day he was placed in the blessed grave. | 270 265 | There is no harm in preparing the shroud (kafan) beforehand, and the grave should be prepared beforehand. | If the repetition of funeral prayer were legislated, the whole world would not have refrained from praying at the holy shrine. | 270 265 | If the deceased is in a coffin, the funeral prayer is valid as it is; there is no need to open it. | If a person was buried without a funeral prayer, then it is obligatory to pray at their grave as long as the predominant thought is that the body has not decomposed. | 271 265 | Funeral prayer is permissible in the precincts (fana) of the mosque. | Funeral prayer is a right of every Muslim upon others. | 270 265 | It is not prohibited to place a genealogical tree (shajrah) or sacred relics (tabarrukat) in the grave. | |

फतावा रज़विया, जिल्द 9

256 | मकरूह तंज़ीही को गुनाह कहना सही नहीं है। | जो ज़मीन मस्जिद में शामिल हो चुकी हो, उस पर नमाज़-ए-जनाज़ा पढ़ना जायज़ नहीं है। | 266 विषय: नमाज़-ए-जनाज़ा का स्थान | मस्जिद-ए-नबवी और मस्जिद-ए-हराम में नमाज़-ए-जनाज़ा होने का कारण। | 266 259 | मस्जिद में नमाज़-ए-जनाज़ा जायज़ नहीं है, फ़िक़्ह की किताबों से इसका प्रमाण। | मस्जिद के हौज़ पर जनाज़ा रखकर नमाज़ पढ़ने का हुक्म। | 266 262 | मस्जिद में नमाज़-ए-जनाज़ा मना है, चाहे मस्जिद के बाहर जगह कम हो या तेज़ धूप हो और रमज़ान का महीना हो। | पुराने कब्रिस्तान में नमाज़-ए-जनाज़ा पढ़ना जबकि क़ब्रें नष्ट हो चुकी हों। | 267 263 | और अगर मस्जिद में नमाज़-ए-जनाज़ा पढ़ी गई तो फ़र्ज़ अदा हो जाएगा। | नमाज़-ए-जनाज़ा का दोहराव (तकरार) | 263 | जो नमाज़ में शामिल होना चाहता हो और किसी कारण से न मिल सका तो उसे सवाब मिलेगा। | O रिसाला अन-नही अल-हाजिज़ 'अन तकरार सलात अल-जनाइज़ (नमाज़-ए-जनाज़ा का दोहराव नाजायज़ है)। | 269 263 | जुमा की नमाज़ के बाद नमाज़-ए-जनाज़ा पढ़ी जाए। | हमारे इमामों के नज़दीक नमाज़-ए-जनाज़ा का दोहराव पूर्णतः नाजायज़ है। | 270 264 | सही यह है कि मस्जिद में जनाज़ा या इमाम या सफ़ हो तो मकरूह है। | अगर कोई अजनबी (ग़ैर-हक़) बिना अनुमति और बिना वली (अभिभावक) के अनुसरण के पढ़ ले, तो वली दोबारा पढ़ सकता है। | 270 265 | मस्जिद के अंदर नमाज़-ए-जनाज़ा जायज़ नहीं है। | अगर वली पढ़ चुका हो तो अब किसी के लिए जायज़ नहीं है। | 270 265 | मस्जिद के छत वाले हिस्से को 'शितवी' (सर्दियों वाला) और आँगन को 'सैफ़ी' (गर्मियों वाला) कहते हैं। | नफ़्ल के तौर पर नमाज़-ए-जनाज़ा पढ़ना शरीयत में नहीं है। | 270 265 | मैय्यत को ताबूत में दफ़्न करना मकरूह है, लेकिन अगर वहां की ज़मीन नरम हो तो हिफ़ाज़त के लिए कोई हर्ज़ नहीं। | हुज़ूर अकदस (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) आज भी वैसे ही हैं जैसे जिस दिन क़ब्र मुबारक में रखे गए थे। | 270 265 | कफ़न पहले से तैयार रखने में कोई हर्ज़ नहीं, और क़ब्र पहले से बनानी चाहिए। | अगर नमाज़-ए-जनाज़ा का दोहराव शरीयत में होता तो पूरी दुनिया मज़ार-ए-अकदस पर नमाज़ पढ़ने से परहेज़ न करती। | 270 265 | मैय्यत ताबूत में हो तो नमाज़-ए-जनाज़ा उस पर इसी तरह जायज़ है, खोलने की ज़रूरत नहीं। | अगर कोई व्यक्ति बिना जनाज़ा के दफ़ना दिया गया हो तो उसकी क़ब्र पर नमाज़ पढ़ना फ़र्ज़ है जब तक बदन न बिगड़ने का प्रबल अनुमान हो। | 271 265 | मस्जिद के बाहरी अहाते (फ़ना-ए-मस्जिद) में नमाज़-ए-जनाज़ा जायज़ है। |

नमाज़-ए-जनाज़ा हर मुसलमान का दूसरों पर हक़ है। | 270 265 | क़ब्र में शजरा और तबर्रुकात रखना मना नहीं है। | |

فتاویٰ رضویہ، جلد نہم

۲۵۶ | مکروہ تنزیہی کو گناہ کہنا درست نہیں۔ | جو اراضی شامل مسجد ہوچکی ہواس پر نماز جنازہ پڑھنا جائز نہیں۔ | ۲۶۶ موضع نماز جنازہ | مسجد نبوی اور مسجد حرام میں نماز جنازہ ہونے کی وجہ۔ | ۲۶۶ ۲۵۹ | مسجد میں نماز جنازہ جائز نہیں، کتب فقہ سے اس امر کا ثبوت۔ | مسجد کے حوض پر جنازہ رکھ کر نماز پڑھنے کا حکم۔ | ۲۶۶ ۲۶۲ | مسجد میں نماز جنازہ ممنوع ہے اگرچہ بیرون مسجد جگہ کم ہو یا سخت دھوپ ہو اور ماہ رمضان ہو۔ | قدیم قبرستان میں نماز جنازہ پڑھنا جبکہ قبریں منہدم ہوچکی ہوں۔ | ۲۶۷ ۲۶۳ | اور اگر مسجد میں نماز جنازہ پڑھی گئی تو فرض ساقط ہو جائے گا۔ | تکرار نماز جنازہ | ۲۶۳ | جو نماز میں ملنا چاہتا ہو اور کسی وجہ سے نہ مل سکا تو ثواب پائے گا۔ | O رسالہ النھی الحاجز عن تکرار صلاۃ الجنائز (نماز جنازہ کی تکرار ناجائز ہے) | ۲۶۹ ۲۶۳ | نماز جمعہ کے بعد نماز جنازہ پڑھی جائے۔ | نماز جنازہ کی تکرار ہمارے ائمہ کرام کے نزدیک مطلقاً ناجائز ہے۔ | ۲۷۰ ۲۶۴ | صحیح یہ ہے کہ مسجد میں جنازہ یا امام یا صف ہو تو مکروہ ہے۔ | اگر اجنبی غیر حق بلا اذن و بلا متابعت ولی پڑھ لے تو ولی اعادہ کرسکتا ہے۔ | ۲۷۰ ۲۶۵ | مسجد کے اندر نماز جنازہ جائز نہیں۔ | ولی پڑھ چکا ہو تو اب کسی کو جائز نہیں۔ | ۲۷۰ ۲۶۵ | مسجد کے مسقف حصہ کو شتوی اور صحن کو صیفی کہتے ہیں۔ | نماز جنازہ بطور نفل پڑھنی مشروع نہیں۔ | ۲۷۰ ۲۶۵ | میت کو تابوت میں دفن کرنا مکروہ ہے مگر اس حالت میں کہ وہاں زمین نرم ہو تو حفاظت کے لیے حرج نہیں۔ | حضور اقدس صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم آج بھی ایسے ہی ہیں جیسے جس دن قبر مبارک میں رکھے گئے تھے۔ | ۲۷۰ ۲۶۵ | کفن پہلے سے تیار رکھنے میں کوئی حرج نہیں، اور قبر پہلے سے بنانا چاہئے۔ | اگر نماز جنازہ کی تکرار مشروع ہوتی تو مزار اقدس پر نماز پڑھنے سے تمام جہان

اعراض نہ کرتا۔ | ۲۶۵ ۲۷۰ | میت تابوت میں ہو تو نماز جنازہ اس پر اسی طرح جائز ہے کھولنے کی حاجت نہیں۔ | اگر کوئی شخص بلا جنازہ دفن کردیا گیا ہو تو اس کی قبر پر نماز پڑھنا فرض جبکہ بدن نہ بگڑنے کا ظن غالب ہو۔ | ۲۶۵ ۲۷۱ | نماز جنازہ فناء مسجد میں جائز ہے۔ | نماز جنازہ ہر مسلمان کا دوسروں پر حق ہے۔ | ۲۶۵ ۲۷۰ | قبر میں شجرہ اور تبرکات رکھنا ممنوع نہیں۔ | |

Fatawa Razawiyya Volume 9

Row	Text (Right Column)	Page	Text (Left Column)	Page
1	Those who offer the funeral prayer for accepted servants are granted forgiveness.	271	Whoever among you is the boldest in giving a fatwa is the most daring regarding the fire of Hell.	280
2	Allah Almighty feels shy to punish those who offer the funeral prayer of a righteous believer.	271	The performance of prayer occurred before it became obligatory; the obligation came down later.	280
3	When the safety or decomposition of the deceased is doubtful, offering the funeral prayer at the grave will be impermissible.	271	The people of Madinah offered Friday prayers before they were made obligatory.	280
4	Indeed, Allah Almighty has forbidden the earth from consuming the bodies of the Prophets (peace be upon them).	271	The Holy Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) discontinued the congregational Tarawih prayer out of concern that it might become obligatory through persistence.	281
5	Fifty-one excerpts from forty authentic books on the non-permissibility of repeating the funeral prayer.	272	The funeral prayer is a communal obligation (Fard al-Kifayah) by consensus.	281
6	If the King of Islam, the Commander of the Faithful, the Sharia Judge, the Islamic Governor of Egypt, or the chief Imam has performed the funeral prayer, then even the guardian has no authority to repeat it.	273	'Salat upon so-and-so' in the sense of supplication (dua) is widely prevalent in Sharia texts.	281
7	Ignorance is no barrier to sin, as remaining unaware of religious issues is itself a sin.	277	The Holy Prophet (peace and blessings of Allah be upon him)	284

Row	Text (Right Column)	Page	Text (Left Column)	Page
			is your leader, in this worldly life and after his passing.	
8	A scholar's sin is one sin, and an ignorant person's sin is two sins.	277	Hazrat Ali (may Allah ennoble his face) used to say, "O Prophet! Peace be upon you, and the mercies and blessings of Allah."	284
9	The sect of Ghair-Muqallidin (non-conformists) is misguided and follows a bad religion.	277	Maula Ali (may Allah be pleased with him) would supplicate, and those present would say 'Amin'.	285
10	Whoever calls towards misguidance, the burden of sin equal to all its followers is upon them.	277	After the shrouding, Siddiq and Farooq (may Allah be pleased with them) presented their greetings in the presence of the Noble Prophet (peace and blessings of Allah be upon him).	285
11	Whether the funeral prayer is offered in congregation or alone, repeating it—whether in congregation or alone—is disliked (Makruh).	278	Siddiq and Farooq (may Allah be pleased with them) used to stand before the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) and supplicate, and people would say 'Amin'.	285
12	A challenge from the author (may Allah have mercy on him) to those who advocate for repeating the funeral prayer to present any 'Taqriri', 'Qawli', or 'Fi'li' Hadith.	279	Men, then women, and then children offered the funeral prayer (Salat) over the Holy Prophet (peace and blessings of Allah be upon him).	286

फतवा रज़विया जिल्द नौ (खण्ड 9)

पंक्ति	पाठ (दायां स्तंभ)	पृष्ठ	पाठ (बायां स्तंभ)	पृष्ठ
1	स्वीकृत बंदों की नमाज़-ए-जनाज़ा पढ़ने वालों की मगफ़िरत (क्षमा) हो जाती है।	२७१	तुममें से जो फतवा देने में सबसे अधिक साहसी है, वह नर्क की आग पर सबसे अधिक साहस रखता है।	२८०
2	अल्लाह तआला एक नेक आस्तिक की नमाज़-ए-जनाज़ा पढ़ने वालों को दंड देने से लज्जा महसूस करता है।	२७१	नमाज़ का होना इसकी अनिवार्यता से पहले हुआ, अनिवार्यता बाद में आई।	२८०
3	जब शव की सुरक्षा या असुरक्षा संदिग्ध हो, तो कब्र पर नमाज़-ए-जनाज़ा नाजायज़ होगी।	२७१	मदीना के लोगों ने अनिवार्यता से पहले जुमे की नमाज़ पढ़ी।	२८०
4	बेशक, अल्लाह तआला ने धरती के लिए नबियों (पैग़ंबरों) के शरीरों को खाना हराम (वर्जित) कर दिया है।	२७१	हुज़ूर पाक (उन पर अल्लाह की शांति और कृपा हो) ने तरावीह की जमात इस डर से छोड़ दी कि कहीं निरंतरता के कारण यह अनिवार्य न हो जाए।	२८१
5	नमाज़-ए-जनाज़ा को दोहराने की अनुमति न होने पर चालीस विश्वसनीय पुस्तकों के इक्यावन उद्धरण।	२७२	नमाज़-ए-जनाज़ा आम सहमति (इज्मा) से फ़र्ज़-ए-किफ़ाया (सामुदायिक कर्तव्य) है।	२८१
6	यदि इस्लाम के राजा, अमीरुल मोमिनीन, शरीयत के न्यायाधीश, मिस्र के इस्लामी शासक या प्रमुख इमाम ने नमाज़-ए-जनाज़ा पढ़ ली है, तो अब संरक्षक (वली) को भी दोहराने का अधिकार नहीं है।	२७३	'फलां पर सलात' का अर्थ 'दुआ' शरीयत के ग्रंथों में व्यापक रूप से प्रचलित है।	२८१
7	अज्ञानता पाप से बचाव नहीं है, क्योंकि धार्मिक मसलों से अनभिज्ञ रहना स्वयं एक पाप है।	२७७	हुज़ूर पाक (उन पर अल्लाह की शांति और कृपा हो) आपके इमाम हैं,	२८४

पंक्ति	पाठ (दायां स्तंभ)	पृष्ठ	पाठ (बायां स्तंभ)	पृष्ठ
			सांसारिक जीवन में भी और परलोक सिधारने के बाद भी।	
8	एक विद्वान का पाप एक पाप है और एक अज्ञानी का पाप दो पाप हैं।	२७७	हज़रत अली (अल्लाह उनके मुख को प्रतिष्ठित करे) अर्ज करते थे: 'ऐ नबी! आप पर सलाम हो और अल्लाह की रहमतें और बरकतें हों।'	२८४
9	गैर-मुक़ल्लिदीन (अंधानुकरण न करने वाले) का फिरक़ा (पंथ) गुमराह और कुधर्मी है।	२७७	मौला अली (अल्लाह उन पर प्रसन्न हो) दुआ करते और उपस्थित लोग 'आमीन' कहते।	२८५
10	जो किसी गुमराही की ओर बुलाता है, उसका अनुसरण करने वाले सभी लोगों के बराबर पाप उस पर होता है।	२७७	कफ़न पहनाने के बाद, हुज़ूर अकरम (उन पर अल्लाह की शांति और कृपा हो) की दरगाह में सिद्दीक और फ़ारूक़ (अल्लाह उन दोनों पर प्रसन्न हो) ने सलाम पेश किया।	२८५
11	नमाज़-ए-जनाज़ा चाहे जमात के साथ पढ़ी गई हो या अकेले, उसे दोबारा जमात या अकेले पढ़ना मकरूह (नापसंद) है।	२७८	सिद्दीक और फ़ारूक़ (अल्लाह उन दोनों पर प्रसन्न हो) हुज़ूर (उन पर सलात और सलाम हो) के सामने खड़े होकर दुआ करते और लोग 'आमीन' कहते रहते।	२८५
12	नमाज़-ए-जनाज़ा को दोहराने के समर्थकों को लेखक (अल्लाह की उन पर कृपा हो) की ओर से चुनौती कि कोई तक़रीरी, क़ौली या फ़ेली हदीस पेश करें।	२७९	हुज़ूर पाक (उन पर अल्लाह की शांति और कृपा हो) पर पहले पुरुषों ने, फिर महिलाओं ने, फिर बच्चों ने सलात (जनाज़ा) पढ़ी।	२८६

فتاوی رضویہ جلد نہم

| ۲۸۰ | جو تم میں فتوی دینے پر زیادہ جری ہے آتش دوزخ پر زیادہ جرات رکھتا ہے۔ | ۲۷۱ | مقبول بندوں کی نماز جنازہ پڑھنے والوں کی مغفرت ہو جاتی ہے۔ | | ۲۸۰ | نماز کا قبل فرضیت وقوع ہوا بعد کو فرضیت اتری۔ | ۲۷۱ | مومن صالح کی نماز جنازہ پڑھنے والوں کو عذاب دینے سے اللہ تعالیٰ حیا فرماتا ہے۔ | | ۲۸۰ | اہل مدینہ نے قبل فرضیت جمعہ جمعہ پڑھا۔ | ۲۷۱ | جب سلامت و عدم سلامت میت مشکوک ہو تو قبر پر نماز جنازہ ناجائز ہوگی۔ | | ۲۸۱ | حضور اقدس صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم نے جماعت تراویح اس خیال سے ترک فرمادی کہ مداومت سے فرض نہ ہوجائے۔ | ۲۷۱ | بیشک اللہ تعالیٰ نے انبیاء علیہم السلام کے بدن کو کھانا زمین پر حرام فرما دیا۔ | | ۲۸۱ | نماز جنازہ بالا جماع فرض کفایہ ہے۔ | ۲۷۲ | تکرار نماز جنازہ کے عدم جواز پر چالیس کتب معتبرہ کی اکاون عبارات۔ | | ۲۸۱ | صلوۃ علی فلاں بمعنی دعا نصوص شرعیہ میں شائع وذائع ہے۔ | ۲۷۳ | اگر بادشاہ اسلام یا امیر المومنین یا قاضی شرع یا اسلامی حاکم مصر یا امام الحہ نماز جنازہ پڑھ چکا ہو تو اب ولی کو بھی اعادہ کا اختیار نہیں۔ | ۲۸۴ | حضور اقدس صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم تمہارے امام ہیں دنیاوی زندگی میں بھی اور بعد از وصال بھی۔ | ۲۷۷ | ناواقفی مانع گناہ نہیں کہ مسائل سے ناواقف رہنا خود گناہ ہے۔ | | ۲۸۴ | حضرت علی کرم اللہ تعالیٰ وجہہ عرض کرتے تھے اے نبی! آپ پر سلام ہو اور اللہ کی رحمتیں اور برکتیں ہوں۔ | ۲۷۷ | عالم کا گناہ ایک گناہ اور جاہل کا گناہ دو گناہ۔ | | ۲۸۵ | مولا علی رضی اللہ تعالیٰ عنہ دعا کرتے اور حاضرین آمین کہتے۔ | ۲۷۷ | فرقہ غیر مقلدین گمراہ وبد مذہب ہے۔ | | ۲۸۵ | تکفین کے بعد حضور اکرم صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کی بارگاہ میں صدیق وفاروق رضی اللہ تعالیٰ عنہما نے سلام عرض کیا۔ | ۲۷۷ | جو کسی ضلالت کی طرف بلائے

سب ماننے والوں کے برابر گناہ اس پر ہے۔ | | ۲۸۵ | صدیق و فاروق رضی اللہ تعالیٰ عنہما حضور علیہ الصلوۃ والسلام کے سامنے کھڑے ہو کر دعا کرتے اور لوگ آمین کہتے رہے۔ | ۲۷۸ | نماز جنازہ جماعت سے خواہ تنہا پڑھ لی تو دوبارہ جماعت سے خواہ تنہا پڑھنی مکروہ ہے۔ | | ۲۸۶ | حضور اقدس صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم پر مردوں نے پھر عورتوں نے پھر بچوں نے صلوۃ کی۔ | ۲۷۹ | قائلین تکرار نماز جنازہ کو مصنف رحمۃ اللہ تعالیٰ علیہ کی طرف سے چیلنج کہ کوئی حدیث تقریری یا قولی یا فعلی پیش کرو۔ |

Fatawa-e-Razvia, Volume 9

[Left Column Content] 286 - The Master of the World (peace and blessings be upon him) said: After my washing and shrouding, first Jibrail (Gabriel) will offer prayers over me, then Mikail (Michael), then Israfil (Israfel), and then the Angel of Death with all his hosts. 291 - If the first prayer was neither performed by the rightful guardian (wali) himself nor with his permission, then in our view, he has the right to repeat it. 291 - During the era of the Master of the World (peace and blessings be upon him), the most rightful and foremost guardian (wali) of all Muslims was the Holy Prophet (peace and blessings be upon him) himself. 293 - The Master of both worlds (peace and blessings be upon him) said: Whenever any Muslim among you dies, inform me; my praying over him is a mercy. 294 - The funeral prayer is an intercession (shafa'at). 294 - If forty Muslims stand in prayer at the funeral of a Muslim, Allah Almighty accepts their intercession in his favor. 294 - The Master of intercession is only the Holy Prophet (peace and blessings be upon him). 294 - And whoever intercedes will do so as a representative of the Prophet (peace and blessings be upon him). 295 - On the Day of Resurrection, the Holy Prophet (peace and blessings be upon him) is the spokesperson for all prophets, their Imam, and the Master of intercession. 295 - The act of an unauthorized person (fuduli) depends on the owner's permission.

[Right Column Content] 295 - If 'Amr sells Zaid's property without Zaid's permission, and Zaid approves upon hearing it, it is valid. But if Zaid himself enters into a new contract, it will show that he was not satisfied with the unauthorized (fuduli) contract; now the contract will be that of the owner, not the unauthorized one. 295 - The prayer offered by the Holy Prophet (peace and blessings be upon him) himself over a deceased person will not be considered a repetition of the prayer, but rather will be established as the first prayer. 297 - When the residents of a neighborhood mosque have performed a valid, non-disliked (ghair makruh) congregational prayer with a public call to prayer (Adhan), others are not allowed to form another congregation there by repeating the Adhan. 297 - If the first congregation occurred without the Adhan or with a hidden Adhan, then it is permissible for others to give the Sunnah call to prayer (Adhan) loudly and hold a congregation in the prayer niche (mihrab). 297 - When the first congregation is contrary to the command of the Sunnah, then a second congregation is not a repetition but is actually the [proper] first congregation. 299 - Mere traditional (hadith) authenticity is not enough for the affirmation of a ruling; rather, juristic (fiqhi) authenticity is required. 299 - A scholarly discussion on the Hadith regarding the multiple prayers over Sayyiduna Hamzah (may Allah be

pleased with him). 301 - Dark graves are illuminated by the prayer of the Prophet (peace and blessings be upon him). 301 - To pray over someone's grave after the funeral prayer for the purpose of illuminating the grave is exclusive to the Master of both worlds (peace and blessings be upon him). 302 - Not taking the sacred remains to the cemeteries, being buried at the exact place of passing, the sacred shirt not being separated from the body during washing, the sacred funeral remains staying for one and three-quarter days for all companions to be honored, and no one leading the funeral prayer as an imam are among the special characteristics (Khasais) of the Messenger of Allah (peace and blessings be upon him).

फ़तावा-ए-रज़विया, जिल्द 9 (भाग 9)

[बायाँ स्तंभ सामग्री] 286 - सरवर-ए-आलम (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) का इरशाद-ए-गिरामी है कि मेरे ग़ुस्ल और कफ़न के बाद सबसे पहले जिब्रील मुझ पर सलवात (नमाज़) पढ़ेंगे, फिर मीकाईल, फिर इस्राफील, फिर मलकुल मौत अपने तमाम लश्करों के साथ। 291 - पहली नमाज़ न तो वली-ए-हक़ (हक़दार अभिभावक) ने खुद पढ़ी और न ही उनकी इजाज़त से हुई, तो हमारे नज़दीक उन्हें इसे दोहराने (आदा) का अधिकार है। 291 - हुज़ूर सैय्यद-ए-आलम (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) के पाक ज़माने में तमाम मुसलमानों के हक़ीक़ी और सबसे पहले वली खुद हुज़ूर पुरनूर (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) हैं। 293 - सरकार-ए-दो आलम (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने फ़रमाया: जब तुम में से कोई मुसलमान मरे तो मुझे ख़बर कर दिया करो, उस पर मेरा नमाज़ पढ़ना रहमत है। 294 - नमाज़-ए-जनाज़ा शफ़ाअत (सिफ़ारिश) है। 294 - जिस मुसलमान के जनाज़े पर चालीस मुसलमान नमाज़ में खड़े हों, अल्लाह तआला उसके हक़ में उनकी शफ़ाअत क़बूल फ़रमाता है। 294 - शफ़ाअत के मालिक सिर्फ़ हुज़ूर अक़दस (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) हैं। 294 - और जो कोई शफ़ाअत करेगा, वह हुज़ूर (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) के प्रतिनिधि (नियाबत) के तौर पर करेगा। 295 - क़यामत के दिन हुज़ूर पुरनूर (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) तमाम नबियों के ख़तीब (वक्ता), उनके इमाम और शफ़ाअत के मालिक हैं। 295 - फ़ुज़ूली (अनधिकृत व्यक्ति) का हस्तक्षेप मालिक की अनुमति पर निर्भर करता है।

[दायाँ स्तंभ सामग्री] 295 - अम्र, ज़ैद की मिलकियत में ज़ैद की इजाज़त के बिना बिक्री (बैअ) करे, ज़ैद को ख़बर मिलने पर वह उसे जायज़ मान ले तो जायज़ है, और अगर ज़ैद खुद नए सिरे से अनुबंध (अक़्द) करे तो ज़ाहिर होगा कि उसने अक़्द-ए-फ़ुज़ूली पर संतोष नहीं किया; अब वही अक़्द मालिक का अक़्द होगा, न कि अक़्द-ए-फ़ुज़ूली। 295 - खुद हुज़ूर अक़दस (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) जिस मय्यत पर नमाज़ पढ़ें, वह नमाज़ का दोहराव नहीं होगा बल्कि वही पहली नमाज़ मानी जाएगी। 297 - मोहल्ले की मस्जिद में जब मोहल्ले वाले सार्वजनिक अज़ान के साथ सही और ग़ैर-मक़रूह जमाअत कर चुके हों, तो दूसरों को वहां दोबारा अज़ान देकर जमाअत करने की इजाज़त नहीं। 297 - अगर पहली जमाअत बिना अज़ान के या चुपके से दी गई अज़ान के साथ हुई हो, तो दूसरों के लिए जायज़ है कि सुन्नत के मुताबिक़ अज़ान देकर मेहराब में जमाअत कराएं। 297 - जब पहली जमाअत सुन्नत के हुक्म के ख़िलाफ़ हो, तो दूसरी जमाअत नमाज़ का दोहराव नहीं बल्कि यही असली पहली जमाअत है। 299 - किसी हुक्म को साबित करने के लिए सिर्फ़ हदीसी

प्रामाणिकता (सिहत) काफ़ी नहीं है, बल्कि फ़िक़्ही (नियमों के अनुसार) प्रामाणिकता चाहिए। 299 - सैय्यदना हमज़ा (रज़ियल्लाहु अन्हु) पर बार-बार नमाज़ पढ़ने की हदीस पर मुहद्दिसाना (विद्वत्तापूर्ण) चर्चा। 301 - हुज़ूर अलैहिस्सलाम की नमाज़ से अंधेरी क़ब्रें रौशन हो जाती हैं। 301 - क़ब्र को रौशन करने के लिए नमाज़-ए-जनाज़ा के बाद किसी की क़ब्र पर नमाज़ पढ़ना सरकार-ए-दो आलम (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) के साथ विशिष्ट है। 302 - पवित्र शव को क़ब्रिस्तानों की ओर न ले जाना, विशेष रूप से वफ़ात के स्थान पर दफ़्न होना, ग़ुस्ल के समय पवित्र कमीज़ को बदन से अलग न करना, सभी सहाबा के सम्मान के लिए पवित्र जनाज़े का पौने दो दिन रखा रहना और पवित्र जनाज़े पर किसी की इमामत न होना, रसूलुल्लाह (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) के विशेष गुणों (ख़साइस) में से हैं।

पृष्ठ 19 / 948

فتاویٰ رضویہ، جلد نہم

[بایاں کالم] ۲۸۶ - سرورِ عالم صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کا ارشادِ گرامی ہے کہ میرے غسل و کفن کے بعد سب سے پہلے جبرائیل مجھ پر صلوٰۃ کریں گے پھر میکائیل پھر اسرافیل پھر ملک الموت اپنے سارے لشکروں کے ساتھ۔ ۲۹۱ - نمازِ اول نہ ولیِ حق نے خود پڑھی نہ اس کے اذن سے ہوئی تو ہمارے نزدیک اسے اعادہ کا اختیار ہے۔ ۲۹۱ - زمانہ اقدس حضور سیدِ عالم صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم میں تمام مسلمین کے ولیِ احق واقدم خود حضور پر نور صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم ہیں۔ ۲۹۳ - سرکارِ دو عالم صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم نے فرمایا: جب تم میں سے کوئی مسلمان مرے مجھے خبر کر دیا کرو اس پر میرا نماز پڑھنا رحمت ہے۔ ۲۹۴ - نمازِ جنازہ شفاعت ہے۔ ۲۹۴ - جس مسلمان کے جنازے پر چالیس مسلمان نماز میں کھڑے ہوں اللہ تعالیٰ اس کے حق میں ان کی شفاعت قبول فرماتا ہے۔ ۲۹۴ - مالکِ شفاعت صرف حضور اقدس صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم ہیں۔ ۲۹۴ - اور جو کوئی شفاعت کرے گا حضور صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کی نیابت سے کرے گا۔ ۲۹۵ - حضور پر نور صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم روزِ قیامت تمام انبیاء کے خطیب، ان کے امام اور مالکِ شفاعت ہیں۔ ۲۹۵ - تصرفِ فضولی اذنِ مالک پر موقوف ہوتا ہے۔

[دایاں کالم] ۲۹۵ - عمرو ملک زید میں بے اذن زید بیع کرے زید خبر پا کر روا رکھے تو روا ہے اور اگر خود از سرِ نو عقد کرے تو ظاہر ہوگا کہ عقدِ فضولی پر قناعت نہ کی اب عقدِ وہی عقدِ مالک ہو گانہ عقدِ فضولی۔ ۲۹۵ - خود حضور اقدس صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم جس میت پر نماز پڑھیں یہ اعادہِ نماز نہیں بلکہ نمازِ اول ہی قرار پائے گی۔ ۲۹۷ - مسجد محلہ میں جب اہل محلہ جماعت صحیحہ غیر مکروہہ باعلان اذان ادا کر چکیں تو دوسروں کو بااعادہ اذان وہاں جماعت کی اجازت نہیں۔ ۲۹۷ - اگر پہلی جماعت بے اذان یا باخفاء اذان واقع ہو تو دوسروں کو روا ہے کہ اذانِ

برو جہ مسنون دے کر محراب میں جماعت کرائیں۔ ۲۹۷ - جماعتِ اولیٰ جب برخلاف حکمِ سنت ہو تو دوسری جماعت اعادہِ جماعت نہیں بلکہ یہی جماعتِ اولیٰ ہے۔ ۲۹۹ - اثباتِ حکم کے لیے محض صحتِ حدیثی کافی نہیں بلکہ صحتِ فقہی چاہیے۔ ۲۹۹ - حدیثِ تعددِ صلوٰۃ علیٰ سیدنا حمزہ رضی اللہ تعالیٰ عنہ پر محدثانہ گفتگو۔ ۳۰۱ - حضور علیہ الصلوٰۃ والسلام کی نماز سے اندھیری قبریں روشن ہو جاتی ہیں۔ ۳۰۱ - تنویرِ قبر کے لیے بعد از نمازِ جنازہ کسی کی قبر پر نماز پڑھنا سرکارِ دو عالم صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کے ساتھ خاص ہے۔ ۳۰۲ - نعشِ مبارک کا مقابر کی طرف نہ لے جانا، خاص وصال کی جگہ پر دفن ہونا، نہلانے میں قمیصِ اقدس کا بدن سے جدا نہ کیا جانا، سب صحابہ کے مشرف ہونے کے لیے جنازہ مبارک کا پونے دو دن رکھا رہنا اور جنازہِ اقدس پر کسی کی امامت نہ ہونا خصائصِ رسول اللہ صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم ہیں۔

Fatawa Razawiya, Volume 9

- There is great hope for forgiveness of sins and elevation of ranks for the deceased by having a large congregation at the funeral. (310)
- Whoever has three rows of people praying over them, Paradise becomes mandatory for them. (311)
- Whoever has a hundred Muslims praying over them, they are forgiven. (311)
- One who stays at the funeral until the prayer is offered gets one Qirat of reward, and one who stays until burial gets two Qirats. (311)
- One who stays with a funeral until it is buried will have three Qirats of reward written for them. (312)
- One Qirat is larger than Mount Uhud. (312)
- One who bathes the deceased, shrouds them, applies perfume, carries the funeral, prays, and hides any defect seen, becomes as pure from sins as the day they were born from their mother's womb. (312)
- Tribute of praise to the court of Imam-e-Azam (Radi Allahu Anhu). (313)
- Who led the funeral prayer of the Holy Prophet (Sallallahu Alaihi Wasallam)? (313)
- Risalah al-Hadi al-Hajib 'an Janazat al-Gha'ib (Offering funeral prayer in absentia is not permissible). (317)
- Three questions regarding funeral prayer. (317)
- Answer to the first question. (318)
- In the Hanafi school, once the guardian has prayed or the prayer has been performed with their permission once, it is absolutely not permissible for others to pray again. (318)
- There is a consensus (ijma) of Hanafi Imams on the impermissibility of repeating the funeral prayer; whoever goes against this opposes the Hanafi school. (318)
- The discussion on the mentioned issue consists of eleven types, in which 270 passages from fifty books are cited. (318)
- First Type: Funeral prayer is not allowed again; this type is supported by ten passages from jurists. (318)
- Second Type: If funeral prayer is repeated, it would be a voluntary (nafl) prayer, and this prayer is not permissible as nafl. (319)
- In this type, fourteen passages from reliable books are mentioned. (319)

- Third Type: If for some reason the prayer of the entire congregation is void and only the Imam's is valid, even then it cannot be repeated because the obligation was fulfilled by the solo prayer of the Imam. (321)
- Seventeen passages from jurists are mentioned in this type. (321)
- Fourth Type: If the guardian himself or someone else with his permission leads the prayer, or if the guardian prays alone, no one else is allowed to offer the funeral prayer now. (321)
- In this type, twenty-two (22) passages are presented as references. (321)

फ़तावा रज़विया, खंड 9

- जनाज़े पर बड़ी जमात होने से मृतक के लिए गुनाहों की माफी और दरजात (रैंक) की बुलंदी की बड़ी उम्मीद होती है। (310)
- जिस पर तीन सफ़ें(पंक्तियाँ) नमाज़ पढ़ें उसके लिए जन्नत वाजिब हो गई। (311)
- जिस पर सौ मुसलमान नमाज़ पढ़ें वह बख्श दिया गया। (311)
- जो नमाज़ होने तक जनाज़े में मौजूद रहे उसके लिए एक क़ीरात और जो दफ़्न होने तक मौजूद रहे उसके लिए दो क़ीरात सवाब है। (311)
- जो किसी जनाज़े के साथ रहे यहाँ तक कि वह दफ़्न हो जाए, उसके लिए तीन क़ीरात सवाब लिखा जाएगा। (312)
- एक क़ीरात उहुद पहाड़ से बड़ा है। (312)
- जो किसी मय्यत (मृतक) को नहलाए, कफ़न पहनाए, खुशबू लगाए, जनाज़ा उठाए, नमाज़ पढ़े और जो कोई कमी देखे उसे छुपाए, तो वह गुनाहों से ऐसा पाक हो गया जैसे उस दिन था जब माँ के पेट से पैदा हुआ था। (312)
- हज़रत इमाम-ए-आज़म (रज़ियल्लाहु अन्हु) की बारगाह में खिराज-ए-तहसीन। (313)
- हुज़ूर अकरम (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) की नमाज़-ए-जनाज़ा किसने पढ़ाई? (313)
- रिसालह अल-हादी अल-हाजिब अन जनाज़त अल-ग़ाइब (ग़ायबाना नमाज़-ए-जनाज़ा पढ़ना जायज़ नहीं)। (317)
- नमाज़-ए-जनाज़ा के बारे में तीन सवाल। (317)
- पहले सवाल का जवाब। (318)
- हनफ़ी मज़हब में जब वली (अभिभावक) नमाज़ पढ़ चुका हो या उसकी अनुमति से एक बार नमाज़ हो चुकी हो, तो अब दूसरों को बिल्कुल नमाज़ जायज़ नहीं। (318)
- नमाज़-ए-जनाज़ा के दोहराने के ना-जायज़ होने पर हनफ़ी इमामों का इज्मा (सहमति) है, जो इसके खिलाफ करे वह हनफ़ी मज़हब का विरोधी है। (318)
- उक्त मसले पर चर्चा ग्यारह प्रकारों (अन्वा) पर आधारित है, जिनमें लगभग पचास किताबों से दो सौ सत्तर (270) इबारतें (उद्धरण) ज़िक्र की गई हैं। (318)

- पहली प्रकार: नमाज़-ए-जनाज़ा दोबारा जायज़ नहीं, यह प्रकार फ़ुक़हा (न्यायविदों) की दस इबारतों से समर्थित है। (318)
- दूसरी प्रकार: अगर दोबारा नमाज़-ए-जनाज़ा पढ़ें तो वह नफ़्ल होगी और यह नमाज़ नफ़्ल के तौर पर जायज़ नहीं। (319)
- इस प्रकार में विश्वसनीय किताबों से चौदह इबारतें ज़िक्र की गई हैं। (319)
- तीसरी प्रकार: अगर किसी वजह से पूरी जमात की नमाज़-ए-जनाज़ा बातिल (अमान्य) हो जाए और केवल इमाम की सही हुई हो, तब भी दोहरा नहीं सकते क्योंकि अकेले इमाम की नमाज़ से फ़र्ज़ साक़ित (पूरा) हो गया। (321)
- इस प्रकार में फ़ुक़हा की सत्रह इबारतें वर्णित हैं। (321)
- चौथी प्रकार: अगर वली खुद या उसकी अनुमति से दूसरा नमाज़ पढ़ा दे या वली अकेले पढ़ ले, तो अब किसी को नमाज़-ए-जनाज़ा की अनुमति नहीं। (321)
- इस प्रकार में बाइस (22) इबारतें संदर्भ के रूप में पेश की गई हैं। (321)

पृष्ठ 21 का 948

فتاوی رضویہ جلد نہم

- جنازے پر تکثیر جماعت سے میت کے لیے عفو و سیئات و رفع درجات کی امید عظیم ہے۔ ۳۱۰
- جس پر تین صفیں نماز پڑھیں اس کے لیے جنت واجب ہو گئی۔ ۳۱۱
- جس پر سو مسلمان نماز پڑھیں وہ بخشا گیا۔ ۳۱۱
- جو نماز ہونے تک جنازہ میں حاضر رہے اس کے لیے ایک قیراط اور جو دفن تک حاضر رہے اس کے لیے دو قیراط ثواب ہے۔ ۳۱۱
- جو کسی جنازہ کے ساتھ رہے یہاں تک کہ دفن ہو جائے اس کے لیے تین قیراط ثواب لکھا جائے گا۔ ۳۱۲
- ایک قیراط احد سے بڑا ہے۔ ۳۱۲
- جو کسی میت کو نہلائے، کفن پہنائے، خوشبو لگائے، جنازہ اٹھائے، نماز پڑھے اور جو ناقص بات نظر آئے اسے چھپائے تو وہ گناہوں سے ایسا پاک ہو گیا جیسا جس دن ماں کے پیٹ سے پیدا ہوا تھا۔ ۳۱۲
- حضرت امام اعظم رضی اللہ تعالیٰ عنہ کی بارگاہ میں خراج تحسین۔ ۳۱۳
- حضور اکرم صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کی نماز جنازہ کس نے پڑھائی ۳۱۳
- رسالۃ الہادی الحاجب عن جنازۃ الغائب (غائبانہ نماز جنازہ پڑھنا جائز نہیں) ۳۱۷
- نماز جنازہ کے بارے میں تین سوال ۳۱۷
- جواب سوال اول ۳۱۸

- مذہب حنفی میں جب ولی نماز پڑھ چکا ہو یا اس کے اذن سے ایک بار نماز ہو چکی ہو تو اب دوسروں کو مطلقاً نماز جائز نہیں۔ ۳۱۸
- تکرار نماز جنازہ کے عدم جواز پر ائمہ حنفیہ کا اجماع ہے، جو اس کے خلاف کرے وہ مذہب حنفی کا مخالف ہے۔ ۳۱۸
- مسئلہ مذکورہ پر کلام گیارہ انواع پر مشتمل ہے جن میں بطور پچاس کتب سے دو سو ستر ۷۰ عبارتیں ذکر کی گئی ہیں۔ ۳۱۸
- نوع اول: نماز جنازہ دوبارہ روا نہیں، یہ نوع دس عبارات فقہاء سے مؤید ہے۔ ۳۱۸
- نوع دوم: دوبارہ نماز جنازہ پڑھیں تو نفل ہوگی اور یہ نماز بطور نفل جائز نہیں۔ ۳۱۹
- اس نوع میں کتب معتبرہ سے چودہ عبارتیں ذکر کی گئیں۔ ۳۱۹
- نوع سوم: اگر کسی وجہ سے جماعت بھر کی نماز جنازہ باطل اور فقط امام کی صحیح ہوئی تو اب بھی اعادہ نہیں کر سکتے کہ اکیلے امام کی نماز سے فرض ساقط ہو گیا۔ ۳۲۱
- اس نوع میں سترہ عبارات فقہاء مذکور ہیں۔ ۳۲۱
- نوع چہارم: ولی خود یا اس کے اذن سے دوسرا نماز پڑھا دے یا ولی تنہا پڑھ لے تو اب کسی کو نماز جنازہ کی اجازت نہیں۔ ۳۲۱
- اس نوع میں بائیس ۲۲ عبارتیں بطور حوالہ پیش کی گئیں۔ ۳۲۱

Fatawa Razawiyyah Volume 9

333 | Type Five: Even after the ruler of Islam or the Imam of the Grand Mosque or the Imam of the neighborhood mosque, others are not allowed because they also possess rights. | 323 | In this type, references are presented from fifty-three texts. | 333 333 | Seven references are mentioned in this type. | 324 | If a person without wudu (ablution) fears missing the Eid prayer while performing wudu, or a person in a state of major ritual impurity (junub) fears missing it while performing ghusl (bath), they should perform tayammum (dry ablution) and join the prayer. | 333 333 | Type Six: In cases where the guardian (wali) or rightful person can repeat the prayer for their right, a person who has already prayed cannot join them in that case. | 324 | If a sultan or someone superior to the guardian is present, tayammum is permissible for the guardian for the funeral prayer. | 333 333 | In this type, support is presented from eleven texts of the jurists (fuqaha). | 324 | If the guardian has given permission to someone else to lead the prayer, the guardian can still perform tayammum. | 333 333 | Type Seven: When the guardian gives permission to another, if they did not join the prayer themselves, or if a stranger prayed without the guardian's permission but the guardian joined the prayer, in both cases, the guardian cannot repeat it. | 325 | If one funeral prayer was performed with tayammum (replacing wudu or ghusl) and another one arrives, and there is no time for wudu or ghusl, the second funeral prayer can be performed with the same tayammum. | 334 333 | In this type, twenty texts of the jurists are mentioned as references. | 325 | The potential loss of an obligatory act (wajib) that has no substitute is among the valid excuses for performing tayammum. | 334 334 | Type Eight: If a sultan or someone superior to the guardian performs the prayer, or someone else performs it with their permission, the guardian does not have the option to repeat it. | 326 | For one who is being waited for, like a guardian or superior person, tayammum is not permissible. | 334 334 | In this type, thirty-four (34) references are mentioned. | 326 | Permission for tayammum is granted even in the presence of water due to the fear of missing the funeral or Eid prayer. | 334 335 | Type Nine: If the guardian has performed the funeral prayer and a sultan or someone superior arrives later, by consensus, they cannot repeat it. If they were present and the guardian performed it without their permission and they did not participate, then according to some scholars, they can repeat it. | 327 | Every obligatory act (wajib) that does not have a substitute upon being missed can be performed with tayammum even in the presence of water. | 335 336 | This type consists of ten references. | 327 | Tayammum is not permitted solely

due to a disliked action (karahat). | 336 336 | Type Ten: If a person without wudu or a person in a state of ritual impurity fears that if they perform wudu or ghusl, the funeral prayer will be missed, they should perform tayammum and join. | 333 | Tayammum is not permitted due to the fear of missing the Friday prayer or the five daily prayers. | 336

फ़तावा रज़विया खंड 9

333 | पांचवां प्रकार: इस्लाम के शासक या जामा मस्जिद के इमाम या मोहल्ले की मस्जिद के इमाम के बाद भी दूसरों को अनुमति नहीं है क्योंकि वे भी अधिकार रखते हैं। | 323 | इस प्रकार में तिरपन इबारतों से हवाले पेश किए गए। | 333 333 | इस प्रकार में सात हवाले वर्णित हैं। | 324 | यदि बिना वज़ू वाले को वज़ू करने में या जुनुब (नापाक व्यक्ति) को ग़ुस्ल (स्नान) करने में ईद की नमाज़ छूटने का डर हो, तो तयम्मुम करके शामिल हो जाएं। | 333 333 | छठा प्रकार: वली (अभिभावक) आदि हक़दार जिस स्थिति में अपने हक़ के लिए दोहरा सकते हैं, उस स्थिति में भी जो पहले पढ़ चुका है वह उनके साथ शरीक (शामिल) नहीं हो सकता। | 324 | सुल्तान आदि जो वली से श्रेष्ठ हैं, यदि उपस्थित हों तो वली के लिए जनाज़े की नमाज़ के लिए तयम्मुम जायज़ है। | 333 333 | इस प्रकार में फ़ुक़हा (विधिवेत्ताओं) की ग्यारह इबारतों से समर्थन पेश किया गया। | 324 | वली ने दूसरे को इमामत की अनुमति दे दी, तो अब भी वली तयम्मुम कर सकेगा। | 333 333 | सातवां प्रकार: जब वली ने दूसरे को अनुमति दे दी, यदि आप नमाज़ में शामिल नहीं हुए या कोई अजनबी वली की अनुमति के बिना खुद ही पढ़ गया मगर वली नमाज़ में शामिल हो गया, तो इन दोनों स्थितियों में वली भी दोहरा नहीं सकता। | 325 | यदि वज़ू या ग़ुस्ल के तयम्मुम से एक जनाज़ा पढ़ा, अब दूसरा आ गया और वज़ू व ग़ुस्ल की मोहलत न मिली, तो उसी तयम्मुम से दूसरा जनाज़ा पढ़ सकता है। | 334 333 | इस प्रकार में फ़ुक़हा की बीस इबारतें हवाले के तौर पर वर्णित हुईं। | 325 | ऐसे वाजिब (अनिवार्य कार्य) का छूटना जिसका कोई विकल्प न हो, तयम्मुम के जायज़ होने के उज़्रों (बहाने/कारणों) में से है। | 334 334 | आठवां प्रकार: यदि सुल्तान आदि हक़दार जो वली से श्रेष्ठ हैं, पढ़ लें या उनकी अनुमति से कोई और पढ़ दे, तब भी वली को दोहराने का अधिकार नहीं। | 326 | जिसका इंतज़ार किया जाएगा जैसे वली और औला (श्रेष्ठ), उसे तयम्मुम जायज़ नहीं। | 334 334 | इस प्रकार में चौंतीस (34) हवाले ज़िक्र किए गए। | 326 | जनाज़े की नमाज़ या ईद छूटने के डर से, पानी होते हुए भी तयम्मुम की अनुमति है। | 334 335 | नौवां प्रकार: वली ने जनाज़े की नमाज़ पढ़ ली और सुल्तान आदि जो उससे श्रेष्ठ हैं, बाद में आए तो सर्वसम्मति से दोहरा नहीं सकते। यदि वे उपस्थित थे और वली ने उनकी अनुमति के बिना पढ़ा दी और वे शरीक नहीं हुए, तो कुछ विद्वानों के अनुसार वे दोहरा सकते हैं। | 327 | हर वह वाजिब जिसका छूटने पर कोई विकल्प न हो, पानी होते हुए भी तयम्मुम से अदा कर सकते हैं। | 335 336 | यह प्रकार दस हवालों पर आधारित है। | 327 | केवल कराहत (नापसंदगी) के कारण तयम्मुम की अनुमति नहीं है। | 336

336 | दसवां प्रकार: बिना वज़ू या जुनुब को डर हो कि वज़ू व ग़ुस्ल किया तो जनाज़े की नमाज़ छूट जाएगी, तो तयम्मुम करके शरीक हो जाएं। | 333 | जुमा की नमाज़ या पांचों वक़्त की नमाज़ छूटने के डर से तयम्मुम की अनुमति नहीं है। | 336

पृष्ठ 22 of 948

فتاویٰ رضویہ جلد نہم

۳۳۳ | نوع پنجم: حاکم اسلام یا امام مسجد جامع یا امام مسجد محلہ کے بعد بھی دوسروں کو اجازت نہیں کہ یہ بھی صاحبِ حق ہیں۔ | ۳۲۳ | اس نوع میں تریپن عبارات سے حوالے پیش کیے گئے۔ | ۳۳۳ ۳۳۳ | اس نوع میں سات حوالہ جات مذکور ہیں۔ | ۳۲۴ | بے وضو کو وضو کرنے یا جنب کو غسل کرنے میں نمازِ عید کے فوت ہونے کا اندیشہ ہو تو تیمم کر کے شریک ہو جائیں۔ | ۳۳۳ ۳۳۳ | نوع ششم: ولی وغیرہ ذی حق جس صورت میں اپنے حق کے لیے اعادہ کر سکتے ہیں اس صورت میں بھی جو پہلے پڑھ چکا ان کے ساتھ شریک نہیں ہو سکتا۔ | ۳۲۴ | سلطان وغیرہ جو ولی سے مقدم ہیں حاضر ہوں تو ولی کو نمازِ جنازہ کے لیے تیمم جائز ہے۔ | ۳۳۳ ۳۳۳ | اس نوع میں گیارہ عبارات فقہاء سے تائید پیش کی گئی۔ | ۳۲۴ | ولی نے دوسرے کو اجازت امامت دے دی تو اب بھی ولی تیمم کر سکے گا۔ | ۳۳۳ ۳۳۳ | نوع ہفتم: جب ولی نے دوسرے کو اذن دے دیا اگر آپ شریکِ نماز نہ ہوا یا کوئی اجنبی بے اذنِ ولی خود ہی پڑھ گیا مگر ولی شریکِ نماز ہو گیا تو ان دونوں صورتوں میں ولی بھی اعادہ نہیں کر سکتا۔ | ۳۲۵ | اگر وضو یا غسل کے تیمم سے ایک جنازہ پڑھا اب دوسرا آگیا اور وضو و غسل کی مہلت نہ پائی تو اسی تیمم سے دوسرا جنازہ پڑھ سکتا ہے۔ | ۳۳۴ ۳۳۳ | اس نوع میں بیس عبارات فقہاء بطورِ حوالہ مذکور ہوئیں۔ | ۳۲۵ | ایسے واجب کا فوت ہونا جس کا بدل نہ ہو جوازِ تیمم کے عذروں میں سے ہے۔ | ۳۳۴ ۳۳۴ | نوع ہشتم: اگر سلطان وغیرہ ذی حق کہ ولی سے مقدم ہیں پڑھ لیں یا ان کے اذن سے کوئی اور پڑھ دے جب بھی ولی کو اختیارِ اعادہ نہیں۔ | ۳۲۶ | جس کا انتظار ہو گا جیسے ولی و اولیٰ اسے تیمم جائز نہیں۔ | ۳۳۴ ۳۳۴ | اس نوع میں چونتیس ۳۴ حوالہ جات ذکر کیے گئے۔ | ۳۲۶ | نمازِ جنازہ یا عید فوت ہونے کے خوف سے پانی ہوتے ہوئے تیمم کی

اجازت ہے۔ | ۳۳۴ ۳۳۵ | نوع نہم: ولی نے نمازِ جنازہ پڑھ لی اور سلطان وغیرہ کہ اس سے اولیٰ ہیں بعد کو آئے تو بالاتفاق اعادہ نہیں کر سکتے، اگر موجود تھے ولی نے ان کے اذن کے بغیر پڑھا دی اور یہ شریک نہ ہوئے تو بعض علماء کے نزدیک اعادہ کر سکتے ہیں۔ | ۳۲۷ | ہر واجب کہ فوت پر بدل نہ رکھتا ہو پانی ہوتے ہوئے تیمم سے ادا کر سکتے ہیں۔ | ۳۳۵ ۳۳۶ | یہ نوع دس حوالہ جات پر مشتمل ہے۔ | ۳۲۷ | صرف کراہت کے سبب سے تیمم کی اجازت نہیں۔ | ۳۳۶ ۳۳۶ | نوع دہم: بے وضو یا جنب کو اندیشہ ہو کہ وضو و غسل کیا تو نمازِ جنازہ فوت ہو جائے گی تو تیمم کر کے شریک ہو جائیں۔ | ۳۳۳ | نمازِ جمعہ یا نمازِ پنجگانہ فوت ہونے کے خوف سے تیمم کی اجازت نہیں۔ | ۳۳۶

Fatawa Razawiyya, Volume 9

[Index Page 23 of 948]

- That matter which Mustafa (peace and blessings of Allah be upon him) intentionally avoids without any excuse or hindrance cannot be considered legislated (Mashroo). (Page 339)
- Eleventh Type: People of the whole world left offering prayer at the illuminated tomb of the Holy Prophet (peace and blessings of Allah be upon him). If this prayer were permissible as Nafl, all Muslims would not have avoided it. (Page 346)
- The mention of prayer for a deceased person in another city is reported in only three incidents. (Page 339)
- This type consists of nine references. (Page 346)
- Justification for funeral prayers in absentia (Ghaibana) for Najashi, Mu'awiyah al-Laythi, and the martyrs of Mu'tah (may Allah be pleased with them). (Page 340)
- Justification for the funeral prayer of Imam Azam (may Allah be pleased with him) being performed multiple times. (Page 346)
- The incident of Bi'r Ma'unah. (Page 340)
- Hazrat Imam Shafi'i offered Fajr prayer near the tomb of Imam Azam; out of respect, he did not recite 'Bismillah' aloud, nor did he perform 'Rafa-e-Yadain' (raising hands) or 'Qunoot'. (Page 346)
- The incident of the passing of Hazrat Najashi. (Page 341)
- Such a large number of people gathered for the funeral of Imam Azam (may Allah be pleased with him) that only God knows their count. (Page 347)
- The noble Sahabah (may Allah be pleased with them) also thought that the funeral of Najashi was present before the Holy Prophet (peace and blessings of Allah be upon him). (Page 341)
- The funeral prayer of Imam Azam (may Allah be pleased with him) was held six times; the last time it was led by his son, Hazrat Hammad. (Page 347)
- The funeral of Najashi was made manifest for the Holy Prophet (peace and blessings of Allah be upon him); he saw it and offered prayer over it. (Page 341)
- Answer to the second question. (Page 348)
- The incident of the passing and funeral of Hazrat Mu'awiyah bin Mu'awiyah al-Muzani (may Allah be pleased with him). (Page 341)

- In the Hanafi school of thought, funeral prayer in absentia is strictly impermissible, and there is a consensus (Ijma) among Hanafi Imams on its impermissibility. (Page 353)
- The Hadith regarding the funeral prayer in absentia for Hazrat Mu'awiyah (may Allah be pleased with him) is considered weak (Daeef) by the Imams of Hadith. (Page 341)
- Support for the aforementioned issue from twenty-three (23) references. (Page 354)
- Baqiyyah bin Walid is a Mudallis (one who conceals defects in a chain of narration). (Page 342)
- The condition for the validity of funeral prayer is that the deceased must be a Muslim, pure (Tahir), and the funeral must be placed on the ground in front of the one praying. (Page 354)
- Ibn Hibban described Nuh bin Amr as a thief of Hadith. (Page 344)
- According to us, prayer for someone absent or on a limb is not correct, and the funeral prayer for a martyr shall be performed. (Page 354)
- Mahbub bin Hilal is unknown (Majhool). (Page 346)
- It is not proven by any Sahih Sarih (authentic and explicit) Hadith that the Holy Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) offered funeral prayer in absentia. (Page 357)
- Imam Nawawi called Ala bin Yazid Thaqafi weak, Imam Bukhari called him Munkar al-Hadith, Abu Hatim and Dar-Qutni called him Matruk al-Hadith, and Imam Ali bin Madini said he forged Hadiths from his heart. (Page 357)

फतावा रज़विया, जिल्द 9

[अनुक्रमणिका पृष्ठ 948 में से 23]

- जिस कार्य से मुस्तफ़ा (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) बिना किसी मज़बूरी या रुकावट के जानबूझकर बचते हों, वह शरीअत में शामिल (मशरूअ) नहीं हो सकता। (पृष्ठ 339)
- ग्यारहवीं क़िस्म: पूरी दुनिया के लोगों ने हुज़ूर अकरम (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) के मज़ार-ए-अनवार पर नमाज़ छोड़ दी, यदि यह नमाज़ नफ़्ल के तौर पर जायज़ होती तो तमाम मुसलमान इससे परहेज न करते। (पृष्ठ 346)
- दूसरे शहर के मृत व्यक्ति पर नमाज़ का उल्लेख केवल तीन घटनाओं में मिलता है। (पृष्ठ 339)
- यह क़िस्म नौ हवालों (संदर्भों) पर आधारित है। (पृष्ठ 346)
- नजाशी, मुआविया लैसी और शोहदा-ए-मौता (रज़ियल्लाहु अन्हुम) पर ग़ायबाना (अनुपस्थिति में) नमाज़ की व्याख्या। (पृष्ठ 340)
- इमाम आज़म (रज़ियल्लाहु अन्हु) की नमाज़-ए-ज़नाज़ा कई बार होने की व्याख्या। (पृष्ठ 346)
- बिअर-ए-मऊना की घटना। (पृष्ठ 340)
- हज़रत इमाम शाफ़ई ने इमाम आज़म के मज़ार के पास फ़ज्र की नमाज़ पढ़ी तो सम्मान में बिस्मिल्लाह ज़ोर से नहीं पढ़ी, न रफ़ा-ए-यदैन किया और न ही.क़ुनूत पढ़ी। (पृष्ठ 346)
- हज़रत नजाशी के देहांत की घटना। (पृष्ठ 341)
- इमाम आज़म (रज़ियल्लाहु अन्हु) के ज़नाज़े के लिए इतनी भीड़ जमा हुई जिसकी गिनती खुदा ही जानता है। (पृष्ठ 347)
- सहाबा-ए-किराम (रज़ियल्लाहु अन्हुम) को भी यह गुमान था कि नजाशी का ज़नाज़ा हुज़ूर (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) के सामने मौजूद है। (पृष्ठ 341)
- इमाम आज़म (रज़ियल्लाहु अन्हु) की नमाज़-ए-ज़नाज़ा छह बार हुई, आख़िरी बार आपके साहिबज़ादे हज़रत हम्माद ने पढ़ी। (पृष्ठ 347)
- नजाशी का ज़नाज़ा हुज़ूर (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) के लिए ज़ाहिर कर दिया गया, हुज़ूर ने उसे देखा और उस पर नमाज़ पढ़ी। (पृष्ठ 341)
- दूसरे सवाल का जवाब। (पृष्ठ 348)
- हज़रत मुआविया बिन मुआविया मुज़नी (रज़ियल्लाहु अन्हु) के इंतक़ाल और ज़नाज़े की घटना। (पृष्ठ 341)

- हनफी मज़हब में ग़ायबाना ज़नाज़ा पढ़ना नाजायज़ है और इस पर हनफी इमामों का इज्मा (सहमति) है। (पृष्ठ 353)
- हज़रत मुआविया (रज़ियल्लाहु अन्हु) की ग़ायबाना नमाज़-ए-ज़नाज़ा वाली हदीस आइम्मा-ए-हदीस के नज़दीक ज़ईफ़ (कमज़ोर) है। (पृष्ठ 341)
- तेईस (23) हवालों से उपरोक्त मसले की पुष्टि। (पृष्ठ 354)
- बक़िया बिन वलीद मुदल्लिस (तथ्य छिपाने वाला) है। (पृष्ठ 342)
- नमाज़-ए-ज़नाज़ा के सही होने की शर्त यह है कि मरने वाला मुसलमान हो, पाक़ (ताहिर) हो और ज़नाज़ा नमाज़ पढ़ने वाले के सामने ज़मीन पर रखा हो। (पृष्ठ 354)
- इब्न हिब्बान ने नूह बिन अम्र को हदीस का चोर बताया। (पृष्ठ 344)
- हमारे नज़दीक ग़ायब और अंग पर नमाज़ सही नहीं है और शहीद की नमाज़-ए-ज़नाज़ा पढ़ी जाएगी। (पृष्ठ 354)
- महबूब बिन हिलाल मजहूल (अज्ञात) है। (पृष्ठ 346)
- किसी सही और स्पष्ट हदीस से यह साबित नहीं है कि हुज़ूर (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने ग़ायबाना नमाज़-ए-ज़नाज़ा पढ़ी। (पृष्ठ 357)
- इमाम नववी ने अला बिन यजीद सक़फ़ी को ज़ईफ़, इमाम बुखारी ने मुनकर-अल-हदीस, अबू हातिम और दार-क़ुतनी ने मतरूक-अल-हदीस कहा और इमाम अली बिन मदनी ने कहा कि उसने दिल से हदीसें गढ़ीं। (पृष्ठ 357)

فتاویٰ رضویہ (جلد نہم)

[فہرست صفحہ ۲۳ از ۹۴۸]

- جس امر سے مصطفیٰ صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم بے عذر مانع بالقصد احتراز فرمائیں وہ مشروع نہیں ہو سکتا۔ (صفحہ ۳۳۹)
- نوع یازدہم: تمام جہان کے لوگوں نے حضور اکرم صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کے مزار انوار پر نماز چھوڑ دی، اگر یہ نماز بطور نفل جائز ہوتی تو تمام مسلمان اس سے اعراض نہ کرتے۔ (صفحہ ۳۴۶)
- دوسرے شہر کی میت پر صلوٰۃ کا ذکر صرف تین واقعوں میں روایت کیا جاتا ہے۔ (صفحہ ۳۳۹)
- یہ نوع نو حوالہ جات پر مشتمل ہے۔ (صفحہ ۳۴۶)
- نجاشی، معاویہ لیثی اور شہدائے موتہ رضی اللہ تعالیٰ عنہم پر غائبانہ نماز کی توجیہ۔ (صفحہ ۳۴۰)
- امام اعظم رضی اللہ تعالیٰ عنہ کی نمازِ جنازہ متعدد بار ہونے کی توجیہ۔ (صفحہ ۳۴۶)
- واقعہ بئر معونہ (صفحہ ۳۴۰)
- حضرت امام شافعی نے امام اعظم کے مزار کے قریب نمازِ فجر پڑھائی تو احتراماً بسم اللہ آواز سے نہ پڑھی، نہ رفع یدین کیا اور نہ قنوت پڑھی۔ (صفحہ ۳۴۶)
- حضرت نجاشی کے وصال کا واقعہ۔ (صفحہ ۳۴۱)
- امام اعظم رضی اللہ تعالیٰ عنہ کے جنازے کے لیے اتنی خلقت جمع ہو گئی جس کا شمار خدا ہی جانتا ہے۔ (صفحہ ۳۴۷)

- صحابہ کرام رضی اللہ تعالیٰ عنہم کو بھی ظن تھا کہ نجاشی کا جنازہ حضور علیہ الصلوٰۃ والسلام کے سامنے حاضر ہے۔ (صفحہ ۳۴۱)
- امام اعظم رضی اللہ تعالیٰ عنہ کی نماز جنازہ چھ بار ہوئی آخری بار آپ کے صاحبزادے حضرت حماد نے پڑھی۔ (صفحہ ۳۴۷)
- نجاشی کا جنازہ حضور اقدس صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کے لیے ظاہر کر دیا گیا، حضور صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم نے اسے دیکھا اور اس پر نماز پڑھی۔ (صفحہ ۳۴۱)
- جواب سوال دوم (صفحہ ۳۴۸)
- حضرت معاویہ بن معاویہ مزنی رضی اللہ تعالیٰ عنہ کے انتقال اور جنازہ کا واقعہ۔ (صفحہ ۳۴۱)
- مذہب حنفی میں جنازہ غائب پر محض ناجائز ہے اور ائمہ حنفیہ کا اس کے عدم جواز پر اجماع ہے۔ (صفحہ ۳۵۳)
- حضرت معاویہ رضی اللہ تعالیٰ عنہ کے غائبانہ نماز جنازہ والی حدیث ائمہ حدیث کے نزدیک ضعیف ہے۔ (صفحہ ۳۴۱)
- تیئیس ۲۳ حوالہ جات سے مسئلہ مذکورہ کی تائید۔ (صفحہ ۳۵۴)
- بقیہ بن ولید مدلس ہے۔ (صفحہ ۳۴۲)
- صحت نماز جنازہ کی شرط یہ ہے کہ میت مسلمان ہو، طاہر ہو اور جنازہ نمازی کے آگے زمین پر رکھا ہو۔ (صفحہ ۳۵۴)
- ابن حبان نے نوح بن عمرو کو حدیث کا چور بتایا۔ (صفحہ ۳۴۴)
- ہمارے نزدیک غائب اور عضو پر نماز صحیح نہیں اور شہید کی نماز جنازہ پڑھی جائے گی۔ (صفحہ ۳۵۴)

- محبوب بن حلال مجمول ہے۔ (صفحہ ۳۴۶)
- کسی حدیث صحیح صریح سے ثابت نہیں کہ حضور پر نور صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم نے غائبانہ نماز جنازہ پڑھی۔ (صفحہ ۳۵۷)
- امام نووی نے علاء بن یزید ثقفی کو ضعیف، امام بخاری نے منکر الحدیث، ابو حاتم و دار قطنی نے متروک الحدیث اور امام علی بن مدینی نے دل سے حدیثیں گھڑنے والا کہا۔ (صفحہ ۳۵۷)

Fatawa Razawiyya Volume 9

- Abu'l-Walid al-Tayalisi said Ala' bin Yazid al-Thaqafi was a liar. (357)
- All chains of the mentioned Hadith are weak. (357)
- A weak Hadith is not evidence at all regarding legal rulings. (357)
- No person by the name Muawiyah bin Muawiyah is known among the Companions. (357)
- The earth was rolled up and the funeral [procession] was placed before the Prophet, peace and blessings be upon him. (358)
- There were two rows of angels behind the Prophet, peace and blessings of Allah be upon him, and in each row there were seventy thousand angels. (358)
- The incident of the martyrs of Mu'tah and their funeral prayer in absentia. (360)
- This Hadith regarding the martyrs of Mu'tah is *Mursal* (disconnected) through both routes. (360)
- Asim bin Umar is among the middle successors (Tabi'un) and he is the grandson of Qatada bin Nu'man, may Allah be pleased with him, the Companion. (360)
- Abdullah bin Abi Bakr bin Muhammad bin Amr bin Hazm is among the junior successors and he is the great-grandson of Amr bin Hazm, may Allah be pleased with him, the Companion. (360)
- Shaykh Waqidi Abdul Jabbar bin Amarah is unknown (Majhul). (361)
- The battle of Mu'tah was before the eyes of the Noble Prophet, peace and blessings of Allah be upon him. (361)
- Funeral prayer is not prayer in an absolute sense, but rather an absolute prayer/supplication, and there is a barrier in absolute prayer. (362)
- The application of the word 'Salat' to funeral prayer is metaphorical. (363)
- When 'Salat' is mentioned along with 'upon so-and-so', its legal reality is never intended. (363)
- Refutation of the opponents' reasoning from a narration mentioned in Madarij al-Nubuwwah. (364)
- Following what is transmitted is necessary; debate will not be considered when a matter is already transmitted. (365)
- Contrary to the madhhab, the saying of some elders of the madhhab will not be acted upon. (365)
- Commentaries (Shuruh) will not be acted upon against original texts (Mutun), and Fatwas will not be acted upon against commentaries. (365)
- Funeral prayer is by no means like a mere supplication. (365)

- Purity of body, purity of clothing, purity of place, and facing the Qiblah are not necessary for supplication. (365)
- Beware of the slip of a scholar and wait for his return (retraction). (366)
- Our master Ghaus al-Azam, may Allah be pleased with him, is Hanbali. (367)
- Answer to the third question. (367)
- There is no obedience to anyone in what is impermissible and sinful. (367)
- If a Shafi'i Imam recites Qunut in the Fajr prayer, a Hanafi follower should not recite it. (368)
- The funeral prayer for Sayyidah Khadijah al-Kubra, may Allah be pleased with her, was not performed. (369)

फ़तावा रज़विया जिल्द नहम (9)

- अबुल वलीद तयालिसी ने कहा अला बिन यज़ीद सक़फ़ी कज़्ज़ाब (झूठा) था। (357)
- उल्लेखित हदीस की सभी सनदें ज़ईफ़ (कमज़ोर) हैं। (357)
- अहकाम (आदेशों) के मामले में ज़ईफ़ हदीस कतई दलील नहीं है। (357)
- सहाबा में मुआविया बिन मुआविया नाम का कोई व्यक्ति ज्ञात नहीं है। (357)
- ज़मीन समेट दी गई और जनाज़ा हुज़ूर अलैहिस्सलाम के सामने आ गया। (358)
- हुज़ूर सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम के पीछे फरिश्तों की दो सफें(पंक्तियाँ) थीं और हर सफ में सत्तर हज़ार फरिश्ते थे। (358)
- शोहदा-ए-मोता और उनकी नमाज़-ए-जनाज़ा-ए-ग़ायबाना की घटना। (360)
- शोहदा-ए-मोता से संबंधित यह हदीस दोनों तरीकों से 'मुर्सल' है। (360)
- आसिम बिन उमर औसत ताबेईन में से हैं और वह सहाबी हज़रत क़तादा बिन नोमान रज़ियल्लाहु अन्हु के पोते हैं। (360)
- अब्दुल्लाह बिन अबी बक्र बिन मोहम्मद बिन अम्र बिन हज़्म छोटे ताबेईन में से हैं और वह सहाबी अम्र बिन हज़्म रज़ियल्लाहु अन्हु के परपोते हैं। (360)
- शेख़ वाक़िदी अब्दुल जब्बार बिन अ़मारा मजहूल (अज्ञात) है। (361)
- मोता की लड़ाई हुज़ूर अक़दस सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम की नज़रों के सामने थी। (361)
- नमाज़-ए-जनाज़ा मुतलक़न (पूर्ण रूप से) नमाज़ नहीं बल्कि मुतलक़ दुआ है, और मुतलक़ नमाज़ में बरज़ख़ (अवरोध) है। (362)
- नमाज़-ए-जनाज़ा पर 'सलात' शब्द का प्रयोग मज़ाज़ी (उपचारात्मक/रूपक) है। (363)
- जब 'सलात' के साथ 'अला फ़लाँ' (फलाँ पर) उल्लेख हो, तो उससे कभी भी शरीअत की हकीक़त मुराद नहीं होती। (363)
- मदारिजुन्नुबुव्वह में उल्लेखित एक हिकायत से विरोधियों के तर्क का खंडन। (364)
- जो रिवायत की गई है उसी का पालन करना है; मसला मन्कूल (उद्धृत) होते हुए बहस का कोई महत्व नहीं होगा। (365)
- मज़हब के खिलाफ मज़हब के कुछ बुज़ुर्गों के कथन पर अमल नहीं किया जाएगा। (365)
- मतून (मूल ग्रंथों) के मुकाबले शुरूह (टीकाओं) पर और शुरूह के मुकाबले फ़तावा पर अमल नहीं होगा। (365)

- नमाज़-ए-जनाज़ा केवल दुआ की तरह कतई नहीं है। (365)
- दुआ के लिए शरीर की पाकी, कपड़ों की पाकी, स्थान की पाकी और क़िबला की ओर मुँह करना अनिवार्य नहीं है। (365)
- आलिम (विद्वान) की चूक से बचो और उसके पलटने (सुधारने) की प्रतीक्षा करो। (366)
- सैय्यदना ग़ौस-ए-आज़म रज़ियल्लाहु अन्हु हम्बली हैं। (367)
- तीसरे प्रश्न का उत्तर। (367)
- नाजायज़ और गुनाह के काम में किसी की आज्ञा का पालन नहीं है। (367)
- शाफई मज़हब के इमाम फज्र की नमाज़ में कुनूत पढ़ें तो हनफी मुक्तदी न पढ़े। (368)
- हज़रत खदीजतुल कुबरा रज़ियल्लाहु अन्हा की नमाज़-ए-जनाज़ा नहीं हुई। (369)

فتاوٰی رضویہ جلد نہم

ابوالولید طیالسی نے کہا علاء بن یزید ثقفی کذاب تھا۔ (۳۵۷) حدیث مذکور کی سب سندیں ضعیف ہیں۔ (۳۵۷) حدیث ضعیف دربارہ احکام اصلاً حجت نہیں۔ (۳۵۷) صحابہ میں کوئی شخص معاویہ بن معاویہ نام کا معلوم نہیں۔ (۳۵۷) زمین لپیٹ دی گئی اور جنازہ حضور علیہ الصلوٰۃ والسلام کے سامنے ہوگیا۔ (۳۵۸) فرشتوں کی دو صفیں حضور صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم کے پیچھے تھیں اور ہر صف میں ستر ہزار فرشتے تھے۔ (۳۵۸) شہداء موتہ اور ان کی نماز جنازہ غائبانہ کا واقعہ۔ (۳۶۰) شہداء موتہ سے متعلق یہ حدیث دونوں طریق سے مرسل ہے۔ (۳۶۰) عاصم بن عمر اوسط تابعین سے ہیں اور یہ قتادہ بن نعمان رضی اللہ تعالٰی عنہ صحابی کے پوتے ہیں۔ (۳۶۰) عبداللہ بن ابی بکر بن محمد بن عمرو بن حزم صغار تابعین سے ہیں اور یہ عمرو بن حزم رضی اللہ تعالٰی عنہ صحابی کے پر پوتے ہیں۔ (۳۶۰) شیخ واقدی عبدالجبار بن عمارہ مجہول ہے۔ (۳۶۱) معرکہ موتہ حضور اقدس صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم کے پیش نظر تھا۔ (۳۶۱) نماز جنازہ صلوٰۃ مطلقاً نہیں بلکہ دعاء مطلق و صلوٰۃ مطلقہ میں برزخ ہے۔ (۳۶۲) نماز جنازہ پر اطلاق صلوٰۃ مجاز ہے۔ (۳۶۳) صلوٰۃ کے ساتھ جب علی فلان مذکور ہو تو ہر گز اس سے حقیقت شرعیہ مراد نہیں ہوتی۔ (۳۶۳) مدارج النبوۃ میں مذکور ایک حکایت سے مخالفین کے استدلال کا رد۔ (۳۶۴) نقل ہی کا اتباع ہے مسئلہ منقول ہوتے ہوئے بحث کا اعتبار نہ ہوگا۔ (۳۶۵) خلاف مذہب بعض مشائخ مذہب کے قول پر عمل نہیں ہوگا۔ (۳۶۵) متون کے مقابل شروح اور شروح کے مقابل فتاوٰی پر عمل نہیں۔ (۳۶۵) نماز جنازہ مجرد دعا کی مثل ہر گز نہیں۔ (۳۶۵) دعا کے لیے طہارت بدن، طہارت جامعہ، طہارت مکان اور استقبال قبلہ ضروری نہیں۔ (۳۶۵) عالم کی لغزش سے بچو اور اس کے رجوع کا انتظار رکھو۔ (۳۶۶) سید نا غوث اعظم رضی اللہ تعالٰی عنہ حنبلی ہیں۔ (۳۶۷) جواب سوال سوم۔ (۳۶۷)

ناجائز و گناہ میں کسی کی اطاعت نہیں۔ (۳۶۷) شافعی المذہب امام فجر کی نماز میں قنوت پڑھے تو حنفی مقتدی نہ پڑھے۔ (۳۶۸) حضرت خدیجۃ الکبریٰ رضی اللہ تعالیٰ عنہا کی نماز جنازہ نہیں ہوئی۔ (۳۶۹)

Fatawa Rizvia, Volume 9

Topic	Page	Topic	Page
Burial		What kind of place should be for burial	382
Meaning of 'Shaq' and its preparation method	370	It is forbidden to bury another in an old grave while space is available	385
Mortal remains should be entered into the grave from the direction of the Qibla	371	It is forbidden to leave an empty graveyard and bury in a full one	385
The manner of laying the deceased in the grave	371	If a child is born dead, it should be buried in the graveyard	390
The grave should be one span high	372	How Muslim relatives should bury a deceased infidel or apostate	390
Sprinkling water on graves after burial	373	**Condolences etc.**	
Rain during burial is a good omen	373	It is not necessary to visit the deceased's family after burial	392
The questioning by Nakirayn happens after burial	373	Inquiry into gathering after burial for Isaal-e-Sawab, reciting Fatiha and praying with raised hands	392
Question regarding grave-digging tools	373	When should condolences be offered?	400
How long should one stay at the grave after burial? Is it correct to sit there until Friday?	377	Feeding the deceased's family before burial	401
Place of Burial		Whether there will be intercession (fart) for an illegitimate child, an adulterer, or an adulteress	401
It is forbidden to bury in another's land without the owner's permission	379	It is prohibited to stop anyone from attending a funeral	403
Building a grave or mosque on perpetually leased land	380	**Rulings regarding Graves and Cemeteries**	

Topic	Page	Topic	Page
Burial in municipality land	381	If a grave opens up, it is necessary to close it by adding soil	403
Burial in usurped land	382	Transferring to another place after burial is prohibited even if there is a will for it	405
Measure of grave depth	382	If one dreams of a child being born in a grave, it is not permissible to open the grave	405
Scenarios for changing cemeteries	382	Burying as a trust and then transferring to another place	406
Filthiness near a cemetery or burying in such a place	382		

फतावा रज़विया, जिल्द 9

विषय	पृष्ठ
दफ़्न	
'शक' का अर्थ और उसे बनाने की विधि	३७०
मय्यित को क़िब्ला की ओर से क़ब्र में दाखिल करें	३७१
क़ब्र में मय्यित को लिटाने का तरीका	३७१
क़ब्र एक बालिश्त ऊँची होनी चाहिए	३७२
दफ़्न के बाद क़ब्रों पर पानी छिड़कना	३७३
दफ़्न के समय बारिश होना नेक शगुन है	३७३
नकीरैन का सवाल दफ़्न के बाद होता है	३७३
क़ब्र खोदने के औज़ारों के बारे में सवाल	३७३
दफ़्न के बाद क़ब्र पर कितनी देर रुकना चाहिए। क्या जुमा तक क़ब्र पर बैठना दुरुस्त है?	३७७
जाए दफ़्न (दफ़्न की जगह)	
बिना इजाज़त मालिक दूसरे की ज़मीन में दफ़्न करना हराम है	३७९
दफ़्न के लिए कैसी जगह हो	३८२
पुरानी क़ब्र में दूसरे को दफ़्न करना हराम है जबकि जगह मौजूद हो	३८५
खाली कब्रिस्तान छोड़कर भरे हुए में दफ़्न करना हराम है	३८५
मुर्दा बच्चा पैदा हो तो उसे कब्रिस्तान में दफ़्न करना चाहिए	३९०
काफिर या मुर्तद मरे तो उसके मुसलमान रिश्तेदार कैसे दफ़्न करें	३९०
ताज़ियत वगैरह	
दफ़्न के बाद मय्यित वालों के यहाँ जाना ज़रूरी नहीं	३९२
दफ़्न के बाद जमा होकर ईसाल-ए-सवाब करने, फातिहा पढ़ने और हाथ उठाकर दुआ माँगने की तहक़ीक़	३९२
ताज़ियत कब की जाए	४००
मय्यित वालों को दफ़्न से पहले खाना खिलाना	४०१
वलद-उज़-ज़िना, ज़ानी और ज़ानिया का 'फर्त' होगा या नहीं	४०१
किसी को जनाज़े में शामिल होने से रोकना मना है	४०३

विषय	पृष्ठ
स्थायी पट्टे वाली ज़मीन पर क़ब्र और मस्जिद बनाना	३८०
म्युनिसिपैलिटी की ज़मीन में दफ़्न करना	३८१
मग़्सूब (हड़पी हुई) ज़मीन में दफ़्न करना	३८२
क़ब्र की गहराई की मात्रा	३८२
कब्रिस्तानों को बदलने की सूरतें	३८२
कब्रिस्तान के पास गंदगी होना या ऐसी जगह दफ़्न करना	३८२

विषय	पृष्ठ
क़ब्र और मक़ाबिर से संबंधित अहकाम	
क़ब्र खुल जाए तो मिट्टी डालकर बंद कर देना ज़रूरी है	४०३
दफ़्न के बाद दूसरी जगह मुंतकिल करना मना है चाहे इसके लिए वसीयत ही क्यों न हो	४०५
क़ब्र में बच्चा पैदा होने का ख्वाब नज़र आए तो क़ब्र खोलना जायज़ नहीं	४०५
अमानत के तौर पर दफ़्न करना और फिर दूसरी जगह मुंतकिल करना	४०६

موضوع	صفحہ
دفن	
شق کا معنی اور بنانے کا طریقہ۔	۳۷۰
قبلہ کی جانب سے قبر میں میت داخل کریں۔	۳۷۱
قبر میں میت کو لٹانے کی صورت۔	۳۷۱
قبر بالشت بھر اونچی ہونی چاہئے۔	۳۷۲
بعد دفن قبروں پر پانی چھڑکنا۔	۳۷۳
دفن کرنے میں بارش ہونا نیک فال ہے۔	۳۷۳
سوال نکیرین بعد دفن ہوتا ہے۔	۳۷۳
	۳۷۳
دفن کے لیے کیسی جگہ ہو۔	۳۸۲
پرانی قبر میں دوسرے کو دفن کرنا حرام ہے جبکہ جگہ موجود ہو۔	۳۸۵
خالی گورستان چھوڑ کر بھرے ہوئے میں دفن کرنا حرام ہے۔	۳۸۵
مردہ بچہ پیدا ہو تو اسے قبرستان میں دفن کرنا چاہئے۔	۳۹۰
کافر یا مرتد مرے تو اس کے مسلمان رشتے دار کیسے دفن کریں۔	۳۹۰
تعزیت وغیرہ	
دفن کے بعد اہل میت کے ہاں جانا ضروری نہیں۔	۳۹۲
دفن کے بعد جمع ہو کر ایصالِ ثواب کرنے اور فاتحہ پڑھنے اور ہاتھ اٹھا کر دعا مانگنے کی تحقیق۔	۳۹۲
تعزیت کب کی جائے۔	۴۰۰

موضوع	صفحہ
قبر کھودنے کے آلات کے بارے میں سوال۔	
دفن کے بعد قبر پر کتنی دیر تک رکنا چاہئے۔ کیا جمعہ تک قبر پر بیٹھنا درست ہے۔	۳۷۷
جائے دفن	
بلا اجازت مالک دوسرے کی اراضی میں دفن کرنا حرام ہے۔	۳۷۹
دوائی پٹہ والی زمین پر قبر و مسجد بنانا۔	۳۸۰
میونسپلٹی کی زمین میں دفن کرنا۔	۳۸۱
مغصوب زمین میں دفن کرنا۔	۳۸۲
قبر کی گہرائی کی مقدار۔	۳۸۲
قبرستانوں کو تبدیل کرنے کی صورتیں۔	۳۸۲
اہل میت کو قبل دفن کھانا کھلانا۔	۴۰۱
ولدالزناء، زانی اور زانیہ کا فرط ہوگا یا نہیں۔	۴۰۱
کسی کو جنازہ کی شرکت سے روکنا منع ہے۔	۴۰۳
قبر اور مقابر سے متعلق احکام	
قبر کھل جائے تو مٹی ڈال کر بند کر دینا ضروری ہے۔	۴۰۳
دفن کے بعد دوسری جگہ منتقل کرنا منع ہے اگرچہ اس کے لیے وصیت ہو۔	۴۰۵
قبر میں بچہ پیدا ہونے کا خواب نظر آئے تو قبر کھولنا جائز نہیں۔	۴۰۵
امانت کے طور پر دفن کرنا اور پھر دوسری جگہ منتقل کرنا۔	۴۰۶

موضوع	صفحہ	موضوع	صفحہ
قبرستان کے قریب غلیظ ہونا یا ایسی جگہ دفن کرنا۔	۳۸۲		

Fatawa Razawiyya Volume 9

- Walking in a cemetery with shoes on, sleeping on a bedstead, and tethering horses. (Page 425)
- 406: If someone says in a dream that their grave is at a certain place, it is not reliable.
- Burying in the courtyard of a mosque is forbidden; if burials have occurred, they should be removed. (Page 427)
- 407: Making a fake shrine and venerating it is not permissible.
- Including a portion of a cemetery into a mosque is forbidden. (Page 427)
- Making a fictional shrine and treating it as a real one is impermissible and an innovation (Bid'ah).
- Building houses etc., in endowed (Waqf) and non-endowed cemeteries. (Page 427)
- 408: Building a shrine for an unqualified person and declaring it the shrine of a saint is a loathsome lie.
- Burying in someone's land without the owner's permission. (Page 427)
- 408: Erasing graves to build warehouses, houses, and mosques, etc.
- Pouring dirty water in a cemetery. (Page 429)
- 409: Treatise "Ihlaak al-Wahhabiyyatayn ala Toheen Qubur al-Muslimin" (Rulings on the graves of believers).
- Building a boundary wall for a cemetery and planting trees. (Page 429)
- 412: Whether it is permissible according to the Hanafi school to intentionally dig up ancient graves in a (Sunni) cemetery to build a house for oneself.
- Using wood from cemetery trees or bricks from graves in a mosque. (Page 429)
- 412: Whether digging up graves to build houses etc., constitutes disrespect and insult to the deceased.
- Building structures for visitors near shrines. (Page 429)
- 413: Answer from Hazrat Maulana Muhammad Umar-ud-din Hazarwi (may Allah have mercy on him).
- Building a structure to recite Fatiha and Quran at the shrines of saints and organizing Urs is permissible. (Page 429)
- 419: The Najdi Wahhabi sect has deep-seated enmity towards the Prophets (peace be upon them) and the general Sunni believers.
- Making roofs etc., for visitors. (Page 429)

- 420: The writings of Wahhabi leaders are full of insults towards the beloved ones of Allah.
- Making solid (pucca) graves. (Page 429)
- 420: Demolishing and destroying the graves of Prophets, martyrs, and saints is the hallmark of the Wahhabi sect.
- A grave can be solid on the outside, but not on the inside. (Page 429)
- 425: Sheikh Najdi intended to demolish the Holy Shrine (of the Prophet).
- Making fictional graves and organizing Urs on them. (Page 430)
- 425: Sheikh Najdi destroyed the shrines of martyrs and companions.

फ़तावा रज़विया खण्ड ९

- कब्रिस्तान में जूते पहनकर चलना, चारपाई पर सोना और घोड़े बांधना। (पृष्ठ ४२५)
- ४०६: यदि कोई सपने में कहे कि उसकी कब्र अमुक स्थान पर है, तो यह विश्वसनीय नहीं है।
- मस्जिद के आँगन में दफन करना हराम है, यदि दफन हो गए हों तो उन्हें हटा देना चाहिए। (पृष्ठ ४२७)
- ४०७: नकली मज़ार बनाना और उसकी ताज़ीम (सम्मान) करना जायज़ नहीं है।
- कब्रिस्तान के हिस्से को मस्जिद में शामिल करना हराम है। (पृष्ठ ४२७)
- काल्पनिक मज़ार बनाना और उसके साथ असली जैसा व्यवहार करना ना-जायज़ और बिदअत है।
- वक्फ़ और गैर-वक्फ़ कब्रिस्तान में घर आदि का निर्माण करना। (पृष्ठ ४२७)
- ४०८: किसी अयोग्य व्यक्ति का मज़ार बनाकर उसे वली का मज़ार ठहराना घृणित झूठ है।
- मालिक की अनुमति के बिना किसी की ज़मीन में दफन करना। (पृष्ठ ४२७)
- ४०८: कब्रों को मिटाकर गोदाम, घर और मस्जिद आदि बनाना।
- मक़बरे (कब्रिस्तान) में गंदा पानी बहाना। (पृष्ठ ४२९)
- ४०९: रिसाला "इहलाकुल वहाबिय्यतैन अला तौहीन कुबूरिल मुस्लिमीन" (मोमिनों की कब्रों के नियम)।
- कब्रिस्तान के लिए चहारदीवारी बनाना और पेड़ लगाना। (पृष्ठ ४२९)
- ४१२: क्या एक (अहले सुन्नत) कब्रिस्तान की पुरानी कब्रों को जानबूझकर खोदकर अपने रहने के लिए घर बनाना हनफ़ी मज़हब के अनुसार जायज़ है या नहीं।
- कब्रिस्तान के पेड़ों की लकड़ियाँ या कब्रों की ईंटें मस्जिद में लगाना। (पृष्ठ ४२९)
- ४१२: कब्रों को खोदकर मकान आदि बनाने से कब्र वालों का अपमान और अनादर होगा या नहीं।
- मज़ारों के पास ज़ायरीन (दर्शनार्थियों) के लिए इमारतें बनाना। (पृष्ठ ४२९)
- ४१३: हज़रत मौलाना मुहम्मद उमरउद्दीन हज़रवी (रहमतुल्लाह अलैहि) का उत्तर।
- बुज़ुर्गों के मज़ारों पर फ़ातिहा और क़ुरआन पढ़ने के लिए इमारत बनाना और उर्स कराना जायज़ है। (पृष्ठ ४२९)

- ४१९: नज्दी वहाबी संप्रदाय को नबियों (अलैहिमुस्सलाम) और आम अहले सुन्नत मोमिनों से दिली दुश्मनी है।
- ज़ायरीन के लिए छत आदि बनाना। (पृष्ठ ४२९)
- ४२०: वहाबी नेताओं के लेख अल्लाह के प्रियजनों के प्रति अपमान से भरे पड़े हैं।
- पक्की कब्रें बनाना। (पृष्ठ ४२९)
- ४२०: नबियों, शहीदों और औलिया की कब्रों को ढहाना और नष्ट करना वहाबी संप्रदाय की पहचान है।
- कब्र ऊपर से पक्की हो सकती है, अंदर से नहीं। (पृष्ठ ४२९)
- ४२५: शेख नज्दी ने रौज़ा-ए-अकदस (नबी की मज़ार) को गिराने का इरादा किया था।
- काल्पनिक कब्रें बनाना और उन पर उर्स करना। (पृष्ठ ४३०)
- ४२५: शेख नज्दी ने शहीदों और सहाबा के मज़ारों को तोड़ा।

पृष्ठ २६ / ९४८

فتاویٰ رضویہ جلد نہم

- قبرستان میں جوتے پہنے چلنا، چارپائی پر سونا اور گھوڑے باندھنا۔ (صفحہ ۴۲۵)
- ۴۰۶: خواب میں کوئی اپنی قبر ہونا کہیں بتائے تو معتبر نہیں۔
- صحن مسجد میں دفن کرنا حرام ہے، اگر دفن ہو گئے ہوں اسے ختم کرنا چاہئے۔ (صفحہ ۴۲۷)
- ۴۰۷: جھوٹا مزار بنانا اور اس کی تعظیم جائز نہیں۔
- قبرستان کا حصہ مسجد میں شامل کرنا حرام ہے۔ (صفحہ ۴۲۷)
- فرضی مزار بنانا اور اس کے ساتھ اصل کا سا معاملہ کرنا نا جائز و بدعت ہے۔
- وقفی اور غیر وقفی قبرستان میں مکان وغیرہ تعمیر کرنا۔ (صفحہ ۴۲۷)
- ۴۰۸: نااہل کا مزار بنا کر اسے مزار ولی ٹھہرانا مکروہ زور ہے۔
- بلا اجازت مالک کسی کی زمین میں دفن کرنا۔ (صفحہ ۴۲۷)
- ۴۰۸: قبروں کو مٹا کر گودام، مکان اور مسجد وغیرہ بنانا۔
- مقبرہ میں غلیظ پانی بہانا۔ (صفحہ ۴۲۹)
- ۴۰۹: رسالہ اھلاک الوہابیتین علی توہین قبور المسلمین (احکام قبور مومنین)
- قبرستان کے لیے چار دیواری بنانا اور درخت لگانا۔ (صفحہ ۴۲۹)
- ۴۱۲: ایک گورستان (اہلسنت) کی قدیم قبروں کو عمداً کھود کر اپنے رہنے کے لیے مکان بنانا موافق مذہب حنفی کے جائز ہے یا نہیں۔
- قبرستانوں کے درختوں کی لکڑیاں یا قبروں کی اینٹیں مسجد میں لگانا۔ (صفحہ ۴۲۹)
- ۴۱۲: قبریں کھود کر مکان وغیرہ بنانے سے اہل قبور کی توہین واہانت ہوگی یا نہیں۔
- مزاروں کے قریب زائروں کے لیے عمارتیں بنانا۔ (صفحہ ۴۲۹)

- ۴۱۳: جواب از حضرت مولانا محمد عمر الدین ہزاروی رحمۃ اللہ تعالیٰ علیہ۔
- بزرگوں کے مزارات پر فاتحہ و قرآن پڑھنے کے لئے عمارت بنانا اور عرس کرانا جائز ہے۔ (صفحہ ۴۲۹)
- ۴۱۹: فرقہ نجدیہ وہابیہ کو انبیاء علیہم الصلوٰۃ والسلام اور عامہ مومنین اہلسنت سے قلبی عداوت ہے۔
- زائروں کے لیے چھت وغیرہ بنانا۔ (صفحہ ۴۲۹)
- ۴۲۰: اکابر وہابیہ کی تصانیف اہانتِ محبوبانِ خدا سے بھری پڑی ہیں۔
- پختہ قبریں بنانا۔ (صفحہ ۴۲۹)
- ۴۲۰: انبیاء، شہداء اور اولیاء کی قبور کو منہدم اور نابود کرنا فرقہ وہابیہ کا شعار ہے۔
- قبر اوپر سے پختہ ہو سکتی ہے اندر سے نہیں۔ (صفحہ ۴۲۹)
- ۴۲۵: شیخ نجدی نے روضہ اقدس کو گرانے کا ارادہ کیا تھا۔
- فرضی قبریں بنانا اور ان پر عرس کرنا۔ (صفحہ ۴۳۰)
- ۴۲۵: شیخ نجدی نے شہداء و صحابہ کے مزارات توڑے۔

Fatawa Razawiyya Volume 9

- 430: Only a person who is an innovator (Bid'ati) and misguided can do the work of demolishing holy shrines. | 433: The friends of Allah (Auliya Allah) do not die, but rather move from one house to another.
- 430: Wahhabis dug up the graves of martyrs, which revealed the bodies and shrouds of some. | 433: Authentic narrations regarding life after death.
- 431: According to Wahhabis, the beloveds of God turn to dust after death and become completely senseless and unconscious. | 434: A strange incident involving Hazrat Abu Sa'eed Kharraz (Mercy of Allah be upon him).
- 431: Despite approximately 1200 years having passed, the shrouds and noble bodies of the Companions (Sahaba) were intact. (Footnote) | 434: An amazing incident involving Hazrat Abu Ali (May Allah be pleased with him).
- 431: It is not permissible to destroy the graves of believers to build a house for one's residence and comfort. | 434: An incident involving a disciple of Hazrat Ibrahim bin Shaiban (Mercy of Allah be upon him).
- 431: Destroying the graves of believers to build houses is a source of pain and insult to the deceased. | 434: A unique incident of Hazrat Abu Ya'qub Susi (Mercy of Allah be upon him) washing his deceased disciple.
- 431: According to the Ahl-us-Sunnah, Prophets, martyrs, and saints are alive with their bodies and shrouds. | 434: The story of a saint of Allah who opened his eyes after death and said, "I am alive, and every friend of Allah is alive."
- 432: The beloveds of God are provided with sustenance and provisions in their graves. | 434: Performing inappropriate acts causes pain to the deceased Muslims.
- 432: The saying of the saints is that our souls are our bodies. | 436: Building a house on graves, or sitting, sleeping, or urinating/defecating near them is highly disliked (Makruh) and close to forbidden (Haram).
- 432: The Messenger of Allah (Peace and blessings of Allah be upon him) did not have a shadow. | 437: Three responses to the statement of Allama Zayla'i, the commentator of Kanz.
- 432: The souls of the beloveds of God travel wherever they wish in the earth, heavens, and paradise. | 437: Even if the deceased has turned to dust in the grave, it is disliked to bury another person in that grave.

- 432: The earth of the graves does not consume the bodies of the beloveds of God; even their shrouds remain intact. | 437: The soul becomes unhappy when someone leans on the grave.
- 432: The beloveds of God pray, perform Dhikr, and recite the Holy Quran in their graves. | 438: Digging up old graves to bury other deceased is permissible only in cases of extreme necessity.
- 433: There is no difference between the life and death of the saints (Auliya Allah). |

फ़तावा रज़विया जिल्द नहम (खंड 9)

- 430: पवित्र मजारों को गिराने का काम वही व्यक्ति कर सकता है जो बिदअती (नवाचारी) और पथभ्रष्ट हो। | 433: अल्लाह के वली (संत) मरते नहीं हैं, बल्कि एक घर से दूसरे घर की ओर प्रस्थान करते हैं।
- 430: वहाबियों ने शहीदों की कब्रें खोद डालीं, जिससे कुछ के शरीर और कफ़न भी प्रकट हो गए। | 433: मृत्यु के बाद के जीवन के बारे में कुछ प्रामाणिक वृत्तांत।
- 431: वहाबियों के अनुसार, अल्लाह के प्रिय मरकर मिट्टी में मिल जाते हैं और पूरी तरह से बेसुध और अचेत हो जाते हैं। | 434: हज़रत अबू सईद खर्राज़ (रहमतुल्लाहि अलैहि) के साथ हुई एक अजीब घटना।
- 431: लगभग 1200 साल बीत जाने के बावजूद सहाबा किराम के कफ़न और पवित्र शरीर सुरक्षित थे। (पाद टिप्पणी) | 434: हज़रत अबू अली (रज़ियल्लाहु अन्हु) के साथ हुई एक आश्चर्यजनक घटना।
- 431: मोमिनों (विश्वासियों) की कब्रों को तोड़कर अपने रहने और आराम के लिए मकान बनाना जायज़ नहीं है। | 434: हज़रत इब्राहिम बिन शैबान (रहमतुल्लाहि अलैहि) के एक मुरीद (शिष्य) की घटना।
- 431: मोमिनों की कब्रों को तोड़कर निवास के लिए मकान बनाना कब्र वालों के लिए कष्ट और अपमान का कारण है। | 434: हज़रत अबू याकूब सूसी (रहमतुल्लाहि अलैहि) द्वारा अपने एक मृत मुरीद को नहलाने की एक अनोखी घटना।
- 431: अहले सुन्नत के अनुसार, नबी, शहीद और वली अपने शरीरों और कफ़नों के साथ जीवित हैं। | 434: अल्लाह के एक वली की कहानी जिन्होंने मृत्यु के बाद आँखें खोलीं और कहा, "मैं जीवित हूँ और अल्लाह का हर दोस्त जीवित है।"
- 432: अल्लाह के प्रियों को उनकी कब्रों में रोज़ी और रिज़्क (आजीविका) दी जाती है। | 434: अनुचित कार्य करने से मृत मुसलमानों को कष्ट होता है।
- 432: अल्लाह के वलियों का कथन है कि हमारी आत्माएँ हमारे शरीर हैं। | 436: कब्रों पर रिहायशी मकान बनाना, कब्र पर बैठना, सोना या उसके पास मल-मूत्र त्यागना अत्यंत मकरूह (नापसंद) और हराम के करीब है।

- 432: अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) की कोई परछाईं नहीं थी। | 437: कंज़ के व्याख्याकार अल्लामा ज़ैलाई के कथन के तीन उत्तर।
- 432: अल्लाह के प्रियों की आत्माएँ ज़मीन, आसमान और जन्नत में जहाँ चाहें आती-जाती हैं। | 437: यदि कब्र में मृत व्यक्ति गलकर मिट्टी भी हो जाए, तब भी उसकी कब्र में किसी अन्य को दफ़नाना मकरूह है।
- 432: कब्रों की मिट्टी अल्लाह के प्रियों के शरीरों को नहीं खाती, बल्कि उनके कफ़न भी सुरक्षित रहते हैं। | 437: कब्र पर तकिया लगाने से आत्मा नाखुश होती है।
- 432: अल्लाह के प्रिय कब्रों में नमाज़ पढ़ते हैं, ज़िक्र करते हैं और कुरान मजीद की तिलावत करते हैं। | 438: पुरानी कब्रों को खोदकर उनमें दूसरे मृतकों को दफ़नाना अत्यंत आवश्यकता के कारण जायज़ है।
- 433: अल्लाह के वलियों के जीवन और मृत्यु में कोई अंतर नहीं है। |

- ۴۳۰: مزارات مقدسہ کو منہدم کرنے کا کام وہی شخص کرسکتا ہے جو بدعتی اور گمراہ ہو۔ | ۴۳۳: اولیاء اللہ مرتے نہیں بلکہ ایک گھر سے دوسرے گھر کی طرف تشریف لے جاتے ہیں۔
- ۴۳۰: وہابیہ نے شہداء کی قبور کھود ڈالیں جس سے بعض کے جسم اور کفن بھی ظاہر ہوگئے۔ | ۴۳۳: حیات بعد ممات کے بارے میں چند روایات مستندہ۔
- ۴۳۱: وہابیہ کے نزدیک محبوبان خدا مر کر مٹی میں مل جاتے ہیں اور بالکل بے حس و بے شعور ہوجاتے ہیں۔ | ۴۳۴: حضرت ابوسعید خراز رحمۃ اللہ علیہ کے ساتھ پیش آنے والا عجیب واقعہ۔
- ۴۳۱: تخمیناً بارہ سو "1200" سال گزرجانے کے باوجود صحابہ کرام کے کفن اور بدن شریف سلامت تھے۔ (حاشیہ) | ۴۳۴: حضرت ابوعلی رضی اللہ تعالیٰ عنہ کے ساتھ پیش آنے والا حیران کن واقعہ۔
- ۴۳۱: قبور مومنین کو توڑ کر اپنی رہائش و آسائش کے لیے مکان بنانا جائز نہیں۔ | ۴۳۴: حضرت ابراہیم بن شیبان رحمۃ اللہ علیہ کے ایک مرید کا واقعہ۔
- ۴۳۱: مومنوں کی قبروں کو توڑ کر رہائش کے لیے مکان بنانا اہل قبور کے لیے ایذا واہانت ہے۔ | ۴۳۴: حضرت ابویعقوب سوسی رحمۃ اللہ علیہ کا اپنے ایک مردہ مرید کو نہلانے کا انوکھا واقعہ۔
- ۴۳۱: اہلسنت کے نزدیک انبیاء ، شہداء اور اولیاء مع اپنے ابدان واکفان کے زندہ ہیں۔ | ۴۳۴: ایک ولی اللہ کا قصہ جس نے بعد از موت آنکھیں کھول کر کہا میں زندہ ہوں اور اللہ تعالیٰ کا ہر دوست زندہ ہے۔

- ۴۳۲: محبوبانِ خدا کو قبور میں روزی و رزق دیا جاتا ہے۔ | ۴۳۴: نامناسب افعال کرنے سے اموات مسلمین کو ایذا ہوتی ہے۔
- ۴۳۲: اولیاء اللہ کا فرمان ہے کہ ہماری روحیں ہمارے جسم ہیں۔ | ۴۳۶: قبور پر رہائشی مکان بنانا یا قبر پر بیٹھنا یا سونا یا اس کے قریب بول و براز کرنا اشد مکروہ و قریب بہ حرام ہیں۔
- ۴۳۲: رسول اللہ صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کا سایہ نہ تھا۔ | ۴۳۷: علامہ زیلعی شارح کنز کی عبارت کے تین جواب۔
- ۴۳۲: محبوبانِ خدا کی روحیں زمین و آسمان اور جنت میں جہاں چاہیں آتی جاتی ہیں۔ | ۴۳۷: قبر میں میت گل کر مٹی بھی ہو جائے تب بھی اس کی قبر میں غیر کو دفن کرنا مکروہ ہے۔
- ۴۳۲: قبروں کی مٹی محبوبانِ خدا کے جسموں کو نہیں کھاتی بلکہ ان کے کفن بھی سلامت رہتے ہیں۔ | ۴۳۷: روح قبر پر تکیہ لگانے سے ناخوش ہوتی ہے۔
- ۴۳۲: محبوبانِ خدا قبروں میں نماز پڑھتے، ذکر کرتے اور قرآن مجید کی تلاوت کرتے ہیں۔ | ۴۳۸: پرانی قبروں کو کھود کر ان میں دوسرے اموات دفن کرنا ضرورت شدیدہ کے باعث جائز ہے۔
- ۴۳۳: اولیاء اللہ کی حیات و ممات میں کوئی فرق نہیں۔ |

Fatawa-e-Razvia Volume 9

Confirmations and Endorsements of Noble Scholars and Grand Muftis.

Page	Subject (Left Column)	No.	Subject (Right Column)	Page
		438	Rejection of Maulvi Abdul Hai Lakhnawi's fatwa that Makruh Tanzihi is from minor sins.	250
250	Confirmation from Aala Hazrat Imam Ahmed Raza Fazil Barelvi (may Allah have mercy on him) consisting of two sections.	440	Visiting graves is commendable (Mustahabb).	250
250	First section: In confirmation and approval of the respondent's statement that respect for Muslim graves is necessary and disrespect is prohibited.	441	Complaint of a grave dweller from Hazrat Abu Qulaba.	252
252	The honor of a Muslim is equal in state of death and life.	441	An amazing incident narrated by Hazrat Abul Hasan Marahrawi (may Allah have mercy on him).	253
253	Cutting green grass from a graveyard is impermissible and cutting dry grass is permissible.	443	Wherever forty Muslims gather, there is certainly a Wali (saint) among them.	253
253	Leaving animals to graze in a graveyard is prohibited.	443	Great Benefit: In the terminology of Quran and Hadith, 'Believer' and 'Muslim' refer specifically to the Ahl-e-Sunnah. (Footnote)	253
254	Sitting on a spark of fire is better than sitting on a grave.	444	Describe the evils of a profligate so that people avoid him, but after death, describing his evils is forbidden.	254
255		446	Remember the dead with goodness.	255

Page	Subject (Left Column)	No.	Subject (Right Column)	Page
	Walking on a spark or sword is better than walking on a grave.			
256	Walking or sitting on a grave is against the sanctity of a believer, a lack of manners and insolence.	447	As you sow, so shall you reap.	256
256	Trampling on a grave, sitting on it, sleeping and relieving oneself on it is Makruh Tahrimi.	448	Second section: A detailed statement that building an endowed house in common Muslim graveyards is also forbidden, let alone a place for one's own residence and rest; this section consists of two fatwas by the author.	256
256	Intercourse on the roof of a mosque is Makruh Tahrimi.	449	First Fatwa: Shari'a ruling on building a madrasa and library with the ruler's permission on a part of an old graveyard with no visible graves.	256
257	There is no sin in Makruh Tanzihi; it is merely contrary to what is better.	449	Changing an endowment is not permissible.	257
257	Makruh Tanzihi can coexist with permissibility (Ibahat).	450	It is not allowed to change the purpose for which something was endowed.	257
257	Disobedience (Ma'siyat) cannot coexist with permissibility.	450	A mosque or madrasa cannot be turned into a graveyard, nor can a graveyard be turned into a madrasa or mosque.	257
257	Something whose abandonment is obligatory (Wajib), its performance is close to forbidden (Haram).	450	It is not permissible to turn an endowed house into a garden, an inn into a bathhouse, and a traveler's lodge into a shop, unless the endower left the matter to the guardian.	257

फ़तावा-ए-रज़विया खंड 9

प्रतिष्ठित विद्वानों और भव्य मुफ़्तियों की पुष्टि और समर्थन।

पृष्ठ	विषय (बायां कॉलम)	संख्या	विषय (दायां कॉलम)	पृष्ठ
		438	मौलवी अब्दुल हई लखनवी के इस फ़तवे का खंडन कि मकरूह तंज़ीही छोटे पापों में से है।	250
250	आला हज़रत इमाम अहमद रज़ा फ़ाज़िल बरेलवी (रहमतुल्लाह अलैह) की ओर से पुष्टि, जिसमें दो खंड शामिल हैं।	440	कब्रों की ज़ियारत करना मुस्तहब (सराहनीय) है।	250
250	प्रथम खंड: प्रत्युत्तरदाता के इस कथन की पुष्टि और अनुमोदन कि मुस्लिम कब्रों का सम्मान आवश्यक है और अपमान वर्जित है।	441	हज़रत अबू क़ुलाबा से कब्र के निवासी की शिकायत।	252
252	मुसलमान का सम्मान मृत्यु और जीवन की स्थिति में समान है।	441	हज़रत अबुल हसन मारहरवी (रहमतुल्लाह अलैह) द्वारा वर्णित एक अद्भुत घटना।	253
253	कब्रिस्तान से हरी घास काटना नाजायज़ है और सूखी घास काटना जायज़ है।	443	जहाँ चालीस मुसलमान इकट्ठा होते हैं, उनमें एक वली (संत) ज़रूर होता है।	253
253	कब्रिस्तान में जानवरों को चरने के लिए छोड़ना वर्जित है।	443	फ़ायदा जलीला: कुरान और हदीस के मुहावरे में 'मोमिन' और 'मुस्लिम' विशेष रूप से अहले सुन्नत को कहते हैं। (फ़ुटनोट)	253
254	कब्र पर बैठने से बेहतर है कि आग की चिंगारी पर बैठा जाए।	444	दुराचारी की बुराइयों का वर्णन करो ताकि लोग उससे बचें, लेकिन मृत्यु के बाद दुराचारी की बुराइयों का वर्णन करना मना है।	254
255		446	मृतकों को भलाई के साथ याद करो।	255

पृष्ठ	विषय (बायां कॉलम)	संख्या	विषय (दायां कॉलम)	पृष्ठ
	चिंगारी या तलवार पर चलना कब्र पर चलने से बेहतर है।			
256	कब्र पर चलना या बैठना मोमिन की गरिमा के विरुद्ध, शिष्टाचार की कमी और अशिष्टता है।	447	जैसा करोगे वैसा भरोगे।	256
256	कब्र को रौंदना, उस पर बैठना, सोना और उस पर शौच करना मकरूह तहरीमी है।	448	द्वितीय खंड: इस बात का पूर्ण वर्णन कि आम मुसलमानों के कब्रिस्तान में वक्फ़ी घर बनाना भी हराम है, अपने रहने और आराम की जगह तो दूर की बात है; यह खंड लेखक के दो फ़तवों पर आधारित है।	256
256	मस्जिद की छत पर संभोग करना मकरूह तहरीमी है।	449	प्रथम फ़तवा: एक पुराने कब्रिस्तान के उस हिस्से पर जिस पर स्पष्ट रूप से कोई कब्र नहीं है, शासक की अनुमति से मदरसा और पुस्तकालय बनाने का शरीयत का आदेश।	256
257	मकरूह तंज़ीही में कोई पाप नहीं होता, वह केवल 'खिलाफ़-ए-औला' (बेहतर के विपरीत) होता है।	449	वक़्फ़ में बदलाव जायज़ नहीं है।	257
257	मकरूह तंज़ीही अनुमेयता (इबाहत) के साथ मिल सकता है।	450	जो चीज़ जिस उद्देश्य के लिए वक़्फ़ की गई है, उसे बदलकर दूसरे उद्देश्य के लिए देना जायज़ नहीं है।	257
257	अवज्ञा (मासियत) अनुमेयता के साथ नहीं मिल सकती।	450	मस्जिद और मदरसे को कब्रिस्तान नहीं बनाया जा सकता, और न ही कब्रिस्तान को मदरसा और मस्जिद बनाया जा सकता है।	257
257	जिस चीज़ का त्याग वाजिब हो, उसका करना हराम के करीब होता है।	450	वक्फ़ी घर को बाग, सराय को हमाम और मुसाफ़िरखाने को दुकान बनाना जायज़ नहीं है,	257

जब तक कि वक़्फ़ करने वाले ने मामला संरक्षक पर न छोड़ दिया हो।

पृष्ठ 28/948

فتاویٰ رضویہ جلد نہم

تصدیقات و تائیدات علماء کرام و مفتیانِ عظام۔

صفحہ	موضوع (بایاں کالم)	نمبر	موضوع (دایاں کالم)	صفحہ
			مولوی عبدالحئی لکھنوی صاحب کے اس	
		۴۳۸	فتویٰ کا رد کہ مکروہ تنزیہی صغائر میں سے ہے۔	۲۵۰
	تصدیق از اعلیٰحضرت امام احمد			
۲۵۰	رضا فاضل بریلوی رحمۃ اللہ تعالیٰ علیہ مشتمل بر دو وصل۔	۴۴۰	زیارت قبور مستحب ہے۔	۲۵۰
	وصلِ اول بیانِ مجیب کی تصدیق و تصویب میں کہ قبورِ مسلمین کی تعظیم ضروری اور اہانت ممنوع ہے۔	۴۴۱	حضرت ابو قلابہ سے صاحبِ قبر کی شکایت۔	۲۵۲
۲۵۲	مسلمان کی عزت مردہ و زندہ حالت میں برابر ہے۔	۴۴۱	حضرت ابو الحسین مارہروی رحمۃ اللہ علیہ کا بیان کردہ عجیب واقعہ۔	۲۵۳
۲۵۳	قبرستان سے سبز گھاس کاٹنا ناجائز اور خشک گھاس کاٹنا جائز ہے۔	۴۴۳	جہاں چالیس مسلمان جمع ہوتے ہیں ان میں ایک ولی ضرور ہوتا ہے۔	۲۵۳

صفحہ	موضوع (بایاں کالم)	نمبر	موضوع (دایاں کالم)	صفحہ
۲۵۳	قبرستان میں جانوروں کو چرنے کے لیے چھوڑنا ممنوع ہے۔	۴۴۳	فائدہ جلیلہ : محاورہ قرآن و حدیث میں مومن و مسلم خاص اہلسنت کو کہتے ہیں۔ (حاشیہ)	۲۵۳
۲۵۴	قبر پر بیٹھنے سے آگ کی چنگاری پر بیٹھنا بہتر ہے۔	۴۴۴	فاجر کی برائیاں بیان کرو تاکہ لوگ اس سے بچیں، مگر بعد موت فاجر کی برائیاں بیان کرنا منع ہے۔	۲۵۴
۲۵۵	چنگاری یا تلوار پر چلنا قبر پر چلنے سے بہتر ہے	۴۴۶	مردوں کو بھلائی سے یاد کرو۔	۲۵۵
۲۵۶	قبر پر چلنا یا بیٹھنا حرمت مومن کے خلاف ترک ادب و گستاخی ہے۔	۴۴۷	جیسا کرو گے ویسا بھرو گے۔	۲۵۶
۲۵۶	قبر کو روندنا، اس پر بیٹھنا، سونا اور اس پر قضائے حاجت کرنا مکروہ تحریمی ہے۔	۴۴۸	وصل دوم : اس امر کا بیان تام کہ مقابر عام مسلمین میں وقفی مکان بنانا بھی حرام نہ کہ اپنی سکونت و آرام کا مقام ، اور یہ وصل مصنف رحمۃ اللہ علیہ کے دو فتووں پر مشتمل ہے۔	۲۵۶
۲۵۶	مسجد کی چھت پر وطی کرنا مکروہ تحریمی ہے۔	۴۴۹	فتویٰ اولیٰ : ایک پرانے قبرستان کے کچھ حصے پر جس میں بظاہر کوئی قبر نہیں حاکم	۲۵۶

صفحہ موضوع (بایاں کالم)		نمبر موضوع (دایاں کالم)	صفحہ
		کی اجازت سے مدرسہ و کتب خانہ بنانے کا شرعی حکم۔	
	مکروہ تنزیہی میں کوئی گناہ		
۲۵۷	نہیں ہوتا وہ صرف خلاف اولیٰ ہوتا ہے	۴۴۹ وقف کی تبدیلی جائز نہیں۔	۲۵۷
	مکروہ تنزیہی اباحت کے ساتھ	جو چیز جس مقصد کے لیے وقف کی گئی	
۲۵۷	مجتمع ہو جاتا ہے۔	۴۵۰ اسے بدل کر دوسرے مقصد کے لیے دینا روا نہیں۔	۲۵۷
	معصیت اباحت کے ساتھ مجتمع	مسجد و مدرسہ کو قبرستان نہیں بنا سکتے نہ	
۲۵۷	نہیں ہوتی۔	۴۵۰ ہی قبرستان کو مدرسہ و مسجد بنایا جا سکتا ہے۔	۲۵۷
	جس چیز کا ترک واجب ہو اس	وقف گھر کو باغ، سرائے کو حمام اور رباط	
۲۵۷	کا فعل حرام کے قریب ہوتا ہے۔	۴۵۰ کو دکان بنانا جائز نہیں مگر جب واقف نے نگہبان پر معاملہ چھوڑ دیا ہو تو جائز ہے۔	۲۵۷

Fatawa-e-Razvia - Volume 9

Page 457: The fact that no grave has been present in a part of a cemetery for a hundred years does not exclude it from being a cemetery. Page 465: Once a thing has been endowed (waqf), it cannot be endowed again. Page 457: According to Abu Yusuf, if the endower simply says, "I have made this land a Muslim cemetery," all that land becomes a cemetery. According to Imam Muhammad, at least one person must be buried in it. Page 467: No building for any other purpose can be endowed on waqf land. Page 458: The muftis of Madrasa Jame-ul-Uloom issued an incorrect fatwa regarding an endowed cemetery. That same fatwa was brought to Maulana Ahmad Hassan Kanpuri (Allah have mercy on him). He wrote against it. Then the same fatwa was sent to Deoband, and they confirmed the answer of their co-religionists. Maulana Ahmad Hassan Kanpuri sent it to Ala Hazrat, who wrote a reasoned response. Page 468: Gangohi Sahab's severe misunderstanding in declaring relevant narrations as unrelated. Page 459: Transcription of the request for fatwa (istifta). Page 469: Critique of Gangohi Sahab. Page 459: Reply from the residents of Madrasa Jame-ul-Uloom. Page 474: Elegant research on the narration of Allama Zayla'i. Page 460: Summary of the reply by جناب Maulana Ahmad Hassan Sahab. Page 476: Attestations and endorsements of esteemed scholars. Page 462: Reply from Maulana Molvi Rashid Ahmad Gangohi and others. Page 479: Whether it is permissible to rent out the land of a 'Takia' (shrine/hospice) and for a faqir to take its rent. Page 463: Reply by the learned author (Allah Almighty have mercy on him). Page 479: Whether sale and mortgage etc., of a cemetery are permissible. Page 463: The first reply (from Jame-ul-Uloom) is an explicit error, the second ruling (from Maulana Ahmad Hassan) is true and correct, and the third piece of writing (from Molvi Rashid Ahmad Gangohi etc.) is an ugly ignorance. Page 479: Whether cemetery land can be someone's private property, and how it is to make a specific cemetery. Page 463: Refutation of Gangohi Sahab's fatwa by the author (Allah Almighty have mercy on him) on ten counts. Page 479: How it is to level graves for farming etc., and whether it should be stopped. Page 463: Gangohi Sahab's misplaced eloquence. Page 479: How it is to make a cemetery a dumping ground for filth. Page 463: Notoriety (public knowledge) is sufficient in waqf. Page 480: To what extent is the sanctity of the cemetery obligatory for Muslims. Page 465: Change in waqf is forbidden. Page 481: Cemetery is excluded from waqf, gift (hiba), and sale. Page 465: Being the owner is a condition for making an endowment (waqf). Page 481: Ruling on trees in a cemetery.

फ़तावा-ए-रज़विया - जिल्द 9

पृष्ठ 457: कब्रिस्तान के किसी हिस्से में सौ साल से कोई कब्र न होना उसे कब्रिस्तान होने से बाहर नहीं कर सकता। पृष्ठ 465: जब कोई चीज़ एक बार वक्फ़ हो जाए तो उसे दोबारा वक्फ़ नहीं किया जा सकता। पृष्ठ 457: अबू यूसुफ के अनुसार, यदि वक्फ़ करने वाला केवल यह कह दे कि "मैंने यह ज़मीन मुसलमानों के कब्रिस्तान के लिए दे दी," तो वह पूरी ज़मीन कब्रिस्तान हो जाती है। इमाम मुहम्मद के अनुसार, उसमें एक व्यक्ति का दफ़नाया जाना ज़रूरी है। पृष्ठ 467: वक्फ़ की ज़मीन पर किसी अन्य उद्देश्य के लिए कोई इमारत वक्फ़ नहीं की जा सकती। पृष्ठ 458: मदरसा जामे-उल-उलूम के मुफ़्तियों ने वक्फ़ कब्रिस्तान के बारे में एक गलत फ़तवा जारी किया। वही फ़तवा मौलाना अहमद हसन कानपुरी (रहमतुल्लाह अलैह) के पास लाया गया, उन्होंने इसके खिलाफ लिखा। फिर वही फ़तवा देवबंद भेजा गया, जहाँ उन्होंने अपने सह-धर्मियों के जवाब की पुष्टि की। मौलाना अहमद हसन (रहमतुल्लाह अलैह) ने इसे आला हज़रत की सेवा में भेजा, जिसका आपने दलीलों के साथ जवाब लिखा। पृष्ठ 468: गंगोही साहब की भारी नासमझी कि संबंधित हदीसों को असंबद्ध बताया। पृष्ठ 459: इस्तफ़्ता (फ़तवे के लिए सवाल) की नकल। पृष्ठ 469: गंगोही साहब पर पकड़ (आलोचना)। पृष्ठ 459: मदरसा जामे-उल-उलूम के निवासियों का जवाब। पृष्ठ 474: अल्लामा ज़ैला'ई की रिवायत पर बेहतरीन शोध। पृष्ठ 460: जनाब मौलाना अहमद हसन साहब के जवाब का सार। पृष्ठ 476: विद्वानों के सत्यापन और समर्थन। पृष्ठ 462: मौलाना मौलवी रशीद अहमद गंगोही और अन्य का जवाब। पृष्ठ 479: तकिया (आश्रम) की ज़मीन किराए पर देना और किसी फ़क़ीर का उसका किराया लेना जायज़ है या नहीं। पृष्ठ 463: मुसन्निफ़ अल्लाम (रहमतुल्लाह तआला अलैह) का जवाब। पृष्ठ 479: कब्रिस्तान की बिक्री और गिरवी आदि जायज़ है या नहीं। पृष्ठ 463: पहला जवाब (जामे-उल-उलूम से) स्पष्ट रूप से गलत है, दूसरा आदेश (मौलाना अहमद हसन से) सही और सटीक है, और तीसरा लेखन (मौलवी रशीद अहमद गंगोही आदि से) घोर अज्ञानता है। पृष्ठ 479: क्या कब्रिस्तान की ज़मीन किसी की निजी संपत्ति हो सकती है, और विशेष कब्रिस्तान बनाना कैसा है। पृष्ठ 463: लेखक (रहमतुल्लाह तआला अलैह) द्वारा दस कारणों से गंगोही साहब के फ़तवे का खंडन। पृष्ठ 479: कब्रों को ढहाकर खेती आदि करना कैसा है, इसे रोका जाना चाहिए या नहीं। पृष्ठ 463: गंगोही साहब की बेजा वाक्पटुता। पृष्ठ 479: कब्रिस्तान को कूड़ाघर बनाना कैसा है। पृष्ठ 463: वक्फ़ में प्रसिद्धि (लोकप्रिय ज्ञान) पर्याप्त है। पृष्ठ 480: मुसलमानों पर कब्रिस्तान का सम्मान किस सीमा तक अनिवार्य है। पृष्ठ 465: वक्फ़ में परिवर्तन हराम (वर्जित) है। पृष्ठ 481: कब्रिस्तान वक्फ़, हिबा

(उपहार) और बिक्री से अपवाद है। पृष्ठ 465: वक्फ़ करने के लिए मालिक होना शर्त है। पृष्ठ 481: कब्रिस्तान के पेड़ों का हुक्म (आदेश)।

पृष्ठ 29 का 948

۴۵۷: قبرستان کے کسی حصے میں سو برس سے کوئی قبر نہ ہو نا اسے قبرستان ہونے سے خارج نہیں کر سکتا۔ ۴۶۵: شے جب ایک بار وقف ہو جائے تو دوبارہ وقف نہیں ہو سکتی۔ ۴۵۷: ابویوسف کے نزدیک واقف کے صرف یہ کہہ دینے سے کہ میں نے یہ زمین مقبرہ مسلمین کر دی وہ تمام زمین قبرستان ہو جاتی ہے اور امام محمد کے نزدیک ایک شخص کا اس میں دفن ہونا ضروری ہے۔ ۴۶۷: زمین وقف میں کوئی عمارت دوسری غرض کے لیے وقف نہیں ہو سکتی۔ ۴۵۸: فتوٰی ثانیہ مدرسہ جامع العلوم کے مفتیوں نے وقف قبرستان کے بارے میں ایک غلط فتویٰ جاری کیا، مولانا احمد حسن کانپوری رحمۃ اللہ علیہ کے پاس وہی فتویٰ لایا گیا آپ نے اس کے خلاف لکھا پھر وہی فتویٰ دیوبند بھیجا گیا تو انہوں نے اپنے ہم مذہبوں کے جواب کی تصدیق کی، مولانا احمد حسن رحمۃ اللہ علیہ نے اسے اعلیٰ حضرت کی خدمت میں بھیجا جس کا آپ نے مدلل جواب تحریر فرمایا۔ ۴۶۸: گنگوہی صاحب کی سخت نافہمی کہ متعلقہ روایتوں کے بے علاقہ بتایا۔ ۴۵۹: نقل استفتاء ۴۶۹: گنگوہی صاحب پر گرفت۔ ۴۵۹: جواب اہالی مدرسہ جامع العلوم ۴۷۴: روایت علامہ زیلعی کی تحقیق انیق۔ ۴۶۰: خلاصہ جواب جناب مولانا احمد حسن صاحب ۴۷۶: تصدیقات و تائیدات علماء کرام۔ ۴۶۲: جواب مولانا مولوی رشید احمد گنگوہی وغیرہ۔ ۴۷۹: تکیہ کی زمین کرایہ پر دینا اور فقیر کو اس کا کرایہ لینا جائز ہے یا نہیں۔ ۴۶۳: جواب مصنف علام رحمۃ اللہ تعالیٰ علیہ۔ ۴۷۹: قبرستان کی بیع و رہن وغیرہ جائز ہے یا نہیں۔ ۴۶۳: جواب اول (از جامع العلوم) غلط صریح، حکم ثانی (از مولانا احمد حسن) حق و صحیح اور تحریر ثالث (از مولوی رشید احمد گنگوہی وغیرہ) جہل قبیح ہے۔ ۴۷۹: قبرستان کی زمین کسی کی ذاتی ملکیت ہو سکتی ہے یا نہیں، اور مخصوص قبرستان بنانا کیسا ہے۔ ۴۶۳: مصنف رحمۃ اللہ تعالیٰ علیہ کی

طرف سے گنگوہی صاحب کے فتویٰ کا دس وجہوں سے رد۔ ۴۷۹: قبروں کو مسمار کر کے کھیتی وغیرہ کرنا کیسا ہے، اس کو روکنا چاہئے یا نہیں۔ ۴۶۳: گنگوہی صاحب کا بے محل شقشقہ ۴۷۹: قبرستان کو گندگی کا مخزن بنانا کیسا ہے۔ ۴۶۳: وقف میں شہرت کافی ہے۔ ۴۸۰: مسلمانوں پر قبرستان کی حرمت کس حد تک واجب ہے۔ ۴۶۵: وقف میں تبدیلی حرام ہے۔ ۴۸۱: قبرستان وقف ہبہ اور بیع سے مستثنیٰ ہے۔ ۴۶۵: وقف کرنے کے لیے مالک ہونا شرط ہے۔ ۴۸۱: قبرستان کے درختوں کا حکم۔

صفحہ ۹۴۸ کا ۲۹

Fatawa Rizvia (Volume 9)

Content (Left Column)	No.	Content (Right Column)	No.	Page
Many rulings change with changes in time or place.	481	Who is the owner of the houses etc. built for visitors?	481	494
The Imams of religion forbade women from visiting mosques, though the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) had granted permission.	482	Burning frankincense (loban) etc. at shrines.	482	495
One who calls the rulings made by Imams according to circumstances of time as "contrary to Hadith" is a fool and of poor understanding.	485	Treatise "Bariq al-Manar bi-Shumoo' al-Mazar" (Evidence for lighting at shrines).	485	495
New forms of veneration that were disliked at the time of the Pious Predecessors are now permitted by scholars in view of present-day circumstances.	490	Taking a lamp to graves, if entirely without benefit, is an innovation (bid'ah) and a waste of wealth.	490	495
Lighting candles at the shrines of Allah's saints is for their veneration, so that people may know it is the shrine of a beloved of Allah and seek blessings and intercession through them.	490	If there is a mosque at the burial site, or the grave is by the roadside, or someone is sitting there, or it is the shrine of a saint or profound scholar, then lighting candles for their veneration is not prohibited.	490	496
Not every act of veneration is worship.	491	Lighting is a sign of attention, attention is a sign of veneration, and veneration of the People of Allah is a sign of faith.	491	496
Veneration of the Prophets (peace and blessings be upon them) is obligatory according to definitive texts of the Great Quran.	491	Veneration of the signs of Allah Almighty is piety of the heart.	491	496

Content (Left Column)	No.	Content (Right Column)	No. Page
Proof of the veneration of the Prophets from multiple Quranic verses.	492	Gilding and decorating the Holy Quran is permissible and a sign of veneration.	492 496
The Great Quran has made veneration of parents obligatory.	492	Decoration of a mosque and engraving its walls with gold and silver is permissible if it is for the sake of veneration.	492 497
To regard seeking proximity (taqarrub) and worship (ta'abbud) as the same thing is purely false.	493	It is permissible to build pinnacles/ battlements on mosques to distinguish them.	493 498
Proximity is more general than worship, because veneration is more general than worship and proximity is more general than veneration.	493	If someone leaves a will that from his wealth plastering and red and yellow painting should be done in a mosque, then the will shall be implemented.	493 498
Describing the lighting of candles at shrines as "proximity by way of worship" is harborng suspicion against Muslims.	494	Building structures over the shrines of saints and scholars is permissible (mubah).	494 498
It is impossible for any righteous servant of Allah to be a worshiper of anyone other than God.	494	Many newly-emerged things are "good innovations" (bid'at hasanah).	494 498

फ़तावा रिज़विया (खंड 9)

विषय (बायां कॉलम)	संख्या	विषय (दायां कॉलम)	संख्या	पृष्ठ
समय या स्थान के परिवर्तन के साथ कई नियम बदल जाते हैं।	४८१	ज़ायरीन (दर्शनार्थियों) के लिए जो मकान आदि होते हैं, उनका मालिक कौन होता है?	४८१	४९४
धर्म के इमामों ने महिलाओं को मस्जिदों में जाने से मना कर दिया, जबकि अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने अनुमति दी थी।	४८२	मज़ार शरीफ़ पर लोबान आदि जलाना।	४८२	४९५
धर्म के इमामों द्वारा समय की परिस्थितियों के अनुसार दिए गए आदेश को "हदीस के विरुद्ध" कहने वाला मूर्ख और कम समझ है।	४८५	रिसाला "बरीक़ अल-मनार बि-शुमू अल-मज़ार" (मज़ारों पर रौशनी करने का प्रमाण)।	४८५	४९५
आदर-सम्मान के नए तरीके, जो नेक पूर्वजों के समय में नापसंद थे, अब समय की परिस्थितियों को देखते हुए विद्वानों ने उनकी अनुमति दी है।	४९०	कब्रों पर चिराग ले जाना, यदि वह पूरी तरह से लाभहीन हो, तो यह बिदअत (नवाचार) और धन की बर्बादी है।	४९०	४९५
अल्लाह के वलियों की मज़ारों पर मोमबत्तियाँ जलाना उनके सम्मान के लिए है, ताकि लोगों को पता चले कि यह अल्लाह के प्रिय का मज़ार है और वे उनसे बरकत और वसीला प्राप्त करें।	४९०	यदि कब्रों के स्थान पर मस्जिद हो, या कब्र सड़क के किनारे हो, या वहाँ कोई व्यक्ति बैठा हो, या वह किसी वली या गंभीर विद्वान की मज़ार हो, तो उनके सम्मान के लिए मोमबत्तियाँ जलाना मना नहीं है।	४९०	४९६
हर सम्मान पूजा (इबादत) नहीं है।	४९१	रौशनी ध्यान देने का प्रमाण है, ध्यान देना सम्मान का प्रमाण है, और	४९१	४९६

विषय (बायां कॉलम)	संख्या	विषय (दायां कॉलम)	संख्या	पृष्ठ
		अल्लाह वालों का सम्मान ईमान का प्रमाण है।		
नबियों (अलैहिमुस्सलाम) का सम्मान क़ुरान के स्पष्ट प्रमाणों के आधार पर फ़र्ज़ है।	४९१	अल्लाह तआला की निशानियों का सम्मान दिल का तक़वा (परहेज़गारी) है।	४९१	४९६
विभिन्न क़ुरानी आयतों से नबियों के सम्मान का प्रमाण।	४९२	मुसहफ़ शरीफ़ (क़ुरान) को सुनहरी और सजावटी बनाना जायज़ है और सम्मान का प्रमाण है।	४९२	४९६
महान क़ुरान ने माता-पिता के सम्मान को फ़र्ज़ घोषित किया है।	४९२	मस्जिद की सजावट और उसकी दीवारों पर सोने-चांदी की नक्काशी जायज़ है, यदि वह सम्मान के उद्देश्य से हो।	४९२	४९७
अल्लाह की निकटता (तक़र्रुब) और पूजा (तअ़ब्बुद) को एक ही चीज़ मानना बिल्कुल ग़लत है।	४९३	मस्जिदों की विशिष्ट पहचान के लिए उनमें कंगूरे (गुंबद जैसी सजावट) बनाना जायज़ है।	४९३	४९८
निकटता तो पूजा से कहीं अधिक व्यापक है, क्योंकि पूजा से सम्मान अधिक व्यापक है और सम्मान से निकटता अधिक व्यापक है।	४९३	यदि कोई वसीयत करे कि उसके धन से मस्जिद में पलस्तर और उसमें लाल और पीला रंग किया जाए, तो वसीयत लागू होगी।	४९३	४९८
मज़ारों पर मोमबत्तियाँ जलाने को "इबादत के रूप में निकटता" कहना मुसलमानों पर बुरा संदेह करना है।	४९४	वलियों और विद्वानों की मज़ारों पर इमारतें बनाना जायज़ (मुबाह) है।	४९४	४९८
किसी भी नेक और अल्लाह वाले का अल्लाह के सिवा किसी और का पूजक होना असंभव है।	४९४	कई नई उभरी चीजें "अच्छी बिदअत" (नवाचार) हैं।	४९४	४९८

(بایاں کالم)	نمبر
بہت سے احکام زمانے یا مقام کی تبدیلی سے بدل جاتے ہیں۔	۴۸۱
ائمہ دین نے عورتوں کو مساجد میں جانے سے منع فرما دیا حالانکہ رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم نے اجازت دی تھی۔	۴۸۲
ائمہ دین نے نظر بہ حال زمانہ جو حکم فرمایا اسے مخالف حدیث کہنے والا احمق و کج فہم ہے۔	۴۸۵
تازہ تعظیمیں جو سلف صالحین کے وقت میں مکروہ تھیں اب حالات زمانہ کے پیش نظر علماء نے ان کی اجازت دی ہے۔	۴۹۰
مزارات اولیاء اللہ پر شمعیں روشن کرنا ان کی تعظیم کے لیے ہے کہ لوگ جان لیں یہ اللہ تعالیٰ کے محبوب	۴۹۰

(دایاں کالم)	نمبر صفحہ
زائروں کے لیے جو مکان وغیرہ ہوتے ہیں ان کا مالک کون ہوتا ہے۔	۴۸۱ ۴۹۴
مزارات پر لوبان وغیرہ سلگانا۔	۴۸۲ ۴۹۵
رسالہ بریق المنار بشموع المزار (مزارات پر روشنی کرنے کا ثبوت)	۴۸۵ ۴۹۵
قبروں پر چراغ لے جانا اگر بالکل فائدہ سے خالی ہو تو بدعت اور مال کا ضائع کرنا ہے۔	۴۹۰ ۴۹۵
موضع قبور میں مسجد ہے یا قبر سرِراہ ہے یا وہاں کوئی شخص بیٹھا ہے یا کسی ولی و محقق عالم کا مزار ہے تو ان کی	۴۹۰ ۴۹۶

(بایاں کالم)	نمبر	(دایاں کالم)	نمبر صفحہ
کا مزار ہے اور وہ اس سے تبرک و توسل کریں۔		تعظیم کے لیے شمعیں روشن کرنا ممنوع نہیں۔	
ہر تعظیم عبادت نہیں۔	۴۹۱	روشنی دلیل اعتناء ہے اور اعتناء دلیل تعظیم اور تعظیم اہل اللہ دلیل ایمان ہے۔	۴۹۱ ۴۹۶
تعظیم انبیاء علیہم الصلوٰۃ والسلام نصوص قطعیہ قرآن عظیم سے فرض ہے۔	۴۹۱	اللہ تعالیٰ کی نشانیوں کی تعظیم دلی تقویٰ ہے۔	۴۹۱ ۴۹۶
متعدد آیات قرآنیہ سے تعظیم انبیاء کا ثبوت۔	۴۹۲	مصحف شریف کو مطلا و مذہب کرنا جائز و دلیل تعظیم ہے۔	۴۹۲ ۴۹۶
قرآن عظیم نے ماں باپ کی تعظیم کو فرض قرار دیا۔	۴۹۲	مسجد کی آرائش اور اس کی دیواروں پر سونے چاندی سے نقش و نگار جائز ہے جبکہ تعظیم کے لیے ہو۔	۴۹۲ ۴۹۷
تقرب و تعبد کو ایک ہی چیز قرار دینا محض باطل ہے۔	۴۹۳	مساجد کے امتیاز کے لیے ان میں کنگرے بنانا جائز ہے۔	۴۹۳ ۴۹۸
تقرب تو تعبد کے اعم سے اعم ہے کیونکہ تعبد سے تعظیم اعم ہے اور تعظیم سے تقرب اعم ہے۔	۴۹۳	اگر کوئی شخص وصیت کر جائے کہ اس کے مال سے مسجد میں گچ کاری اور اس میں سرخ و زرد رنگ کریں تو وصیت نافذ ہوگی۔	۴۹۳ ۴۹۸

(بایاں کالم)	نمبر	(دایاں کالم)	نمبر صفحہ
مزارات پر شمعیں روشن کرنے کو تقرب برو جہِ تعبد بتانا مسلمانوں پر بد گمانی ہے۔	۴۹۴	اولیاء و علماء کے مزارات پر عمارتیں بنانا مباح ہے۔	۴۹۴ ۴۹۸
کسی صالح واہل اللہ کا غیرِ خدا کا عابد ہونا محال ہے۔	۴۹۴	بہت سی نو پید چیزیں اچھی بدعت ہیں۔	۴۹۴ ۴۹۸

Fatawa Razawiyya Volume 9

- Shirk (associating partners with Allah) will never be forgiven. | 498 | The Sultan of Islam is the shadow of Allah Almighty on earth. | 507
- At one time, up to five hundred fatwas from various cities and regions would collect with the author (mercy of Allah be upon him). | 499 | Attributing a major sin (Kabira) to a Muslim is forbidden (Haram) as long as it is not proven with certain continuity (Tawatur). | 507
- Clearly turning away from the truth for the sake of their self-made leader is the way of the Deobandis. | 499 | It is permissible to give interest at the time of Shari'a need. | 499
- Deoband scholars' fatwa of disbelief (Kufr) on Ismail Dehlvi's writing and their silence upon learning the author's name. | 499 | Hajjaj bin Yusuf had the diacritics (Eraab) placed on the Holy Quran. | 508
- Despite labeling Ismail Dehlvi as a heretic and atheist (Mulhid and Zindiq) in their fatwas, Deobandi scholars consider him their Imam. | 500 | If the majority of scholars do not forbid seeing the actions of commoners, then the authority will be from the scholars' discourse, not from the commoners' action. | 508
- Tahzeer-un-Nas established the coin of new prophethood and repealed the Shari'ah of Mustafa. | 501 | Indeed, faith retreats to Medina Munawwarah like a snake to its hole. | 508
- The references regarding the prohibition of lighting candles at shrines are incorrect. | 501 | The lighting at the blessed shrine (Rawdah Athar) is specifically for the shrine itself, not for the mosque structure. | 509
- If someone bequeaths one-third of their wealth for the sake of Allah, the mosque's lamp can also be lit from it. | 502 | The incident of Sultan Murad bin Sultan Salim Khan sending lamps for the Kaaba Moazzama and the Blessed Shrine. | 511
- From the glory and splendor of the luminous shrine, the attribute of being beloved is revealed. | 502 | The day of hanging lamps in the Kaaba Moazzama was a great day; all the notables of Makkah gathered on that day. | 511
- Essentially, the construction of a mosque is for obligatory (Faraid) duties. | 502 | When hanging the jewel-encrusted lamp at the Blessed Shrine, all the elders, dignitaries, scholars, and righteous people of Medina Tayyiba were gathered. | 511

- In which mosques is lighting allowed all night, and in which is the command to extinguish lights after one-third of the night? | 502 | Before the Ottoman Sultans, other Sultans also used to present lamps in the Haramin Sharifain. | 512
- | | Among the Ottoman Sultans, Sultan Muhammad Murad Khan was the first to achieve this honor. | 512
- Amir al-Mu'minin Faruq-e-Azam would visit the Prophet's Mosque after Isha prayer for inspection. | 506 | Regarding the lamps of Medina, Imam Subki wrote a book named "Tanzil al-Sakina 'ala Qanadil Madina". | 512
- | | The endowment (Waqf) of lamps is correct. | 512

फ़तावा रज़विया खंड 9

- शिर्क(अल्लाह के साथ किसी को शरीक करना) कभी माफ़ नहीं होगा। | 498 | इस्लाम का सुल्तान ज़मीन पर अल्लाह तआला का साया होता है। | 507
- लेखक (रहमतुल्लाह अलैह) के पास विभिन्न शहरों और क्षेत्रों से एक ही समय में पाँच-पाँच सौ तक फ़तवे जमा हो जाते थे। | 499 | किसी मुसलमान की ओर बड़े पाप (कबीरा) का श्रेय देना हराम है जब तक कि वह निश्चित निरंतरता (तवातुर) के साथ सिद्ध न हो। | 507
- अपने स्व-निर्मित नेता के लिए सत्य से स्पष्ट विमुखता देवबंदियों का तरीका है। | 499 | शरीयत की ज़रूरत के समय ब्याज देने की अनुमति है। | 499
- इस्माइल देहलवी के लेखन पर देवबंद के विद्वानों का कुफ़्र का फ़तवा और लेखक का नाम जानने पर उनकी चुप्पी। | 499 | हज्जाज बिन युसूफ ने पवित्र कुरान पर एराब (मात्राएँ) लगवाए। | 508
- अपने फ़तवों में इस्माइल देहलवी को मुलहिद और ज़िंदीक़ लिखने के बावजूद, देवबंदी विद्वान उन्हें अपना इमाम मानते हैं। | 500 | यदि विद्वानों का बहुमत आम लोगों के कार्यों को देखकर मना न करे, तो अधिकार विद्वानों के प्रवचन से होगा, न कि आम लोगों के कार्य से। | 508
- तहज़ीर-उन-नास ने नए नबूबत (पैगंबरी) का सिक्का जमाया और शरीयत-ए-मुस्तफ़विया को रद्द कर दिया। | 501 | निस्संदेह, ईमान मदीना मुनव्वरा की ओर सिमटता है जैसे सांप अपने बिल की ओर। | 508
- मज़ारों पर मोमबत्ती/दीपक जलाने के निषेध से संबंधित संदर्भ गलत हैं। | 501 | रौज़ा-ए-अतहर पर रोशनी विशेष रूप से रौज़ा-ए-अतहर के लिए है न कि मस्जिद की इमारत के लिए। | 509
- यदि कोई अपने एक-तिहाई माल की वसीयत अल्लाह की राह के लिए करे, तो उससे मस्जिद का चिराग भी जला सकते हैं। | 502 | सुल्तान मुराद बिन सुल्तान सलीम खान द्वारा काबा मोअज़मा और रौज़ा-ए-अतहर के लिए लालटेन (कंदील) भेजने की घटना। | 511
- रौज़ा-ए-अनवर की शान और वैभव से महबूबियत (प्रिय होने) की शान प्रकट होती है। | 502 | काबा मोअज़मा में कंदीलें लटकाने का दिन एक महान दिन था, उस दिन मक्का के सभी गणमान्य लोग एकत्र हुए थे। | 511

- मूल रूप से मस्जिद का निर्माण फ़राएज़ (अनिवार्य कर्तव्यों) के लिए है। | 502 | रौज़ा-ए-अतहर पर जवाहरात जड़ित कंदील लटकाते समय मदीना तैयबा के बड़े, गणमान्य, विद्वान और नेक लोग सभी जमा थे। | 511
- किन मस्जिदों में रात भर रोशनी की अनुमति है और किनमें एक तिहाई रात के बाद रोशनी बुझाने का आदेश है। | 502 | उस्मानी सुल्तानों से पहले भी अन्य सुल्तान हरमैन शरीफ़ैन में कंदीलें भेंट करते थे। | 512
- | | उस्मानी सुल्तानों में सबसे पहले यह सौभाग्य सुल्तान मुहम्मद मुराद खान को प्राप्त हुआ। | 512
- अमीरुल मोमिनीन फ़ारूक़-ए-आज़म ईशा की नमाज़ के बाद देखरेख के लिए मस्जिद-ए-नबवी शरीफ़ का दौरा करते थे। | 506 | मदीना की कंदीलों के बारे में इमाम सुबकी ने "तन्ज़ील-उस-सकीना अला क़नादील-ए-मदीना" नाम से किताब लिखी। | 512
- | | कंदीलों का वक़्फ़ सही है। | 512

فتاویٰ رضویہ جلد نہم

- شرک ہرگز معاف نہ ہوگا۔ | ۴۹۸ | سلطان اسلام زمین میں اللہ تعالیٰ کا سایہ ہوتا ہے۔ | ۵۰۷
- مصنف رحمۃ اللہ علیہ کے پاس متعدد بلاد و امصار سے ایک ایک وقت میں پانچ پانچ سو تک فتوے جمع ہو جاتے تھے۔ | ۴۹۹ | مسلمان کی طرف نسبت کبیرہ حرام ہے جب تک تواتر سے یقینی الثبوت نہ ہو۔ | ۵۰۷
- اپنے خود ساختہ متبوع کی خاطر حق سے صریح اعراض دیوبندیوں کا طریقہ ہے۔ | ۴۹۹ | حاجت شرعیہ کے وقت سود دینے کی اجازت ہے۔ | ۴۹۹
- اسمعیل دہلوی کی عبارت پر علماء دیوبند کا فتوائے کفر اور عبارت کے مصنف کا نام معلوم ہونے پر خاموشی۔ | ۴۹۹ | قرآن کریم پر اعراب حجاج بن یوسف نے لگوائے۔ | ۵۰۸
- علماء دیوبند اپنے فتووں میں اسمعیل دہلوی کو ملحد وزندیق لکھنے کے باوجود اپنا امام مانتے ہیں۔ | ۵۰۰ | فعل عوام کو دیکھ کر جماہیر علماء منع نہ فرمائیں تو استناد تقریر علماء سے ہو گانہ کہ فعل عوام سے۔ | ۵۰۸
- تحذیر الناس نے نئی نبوت کا سکہ جمایا اور شریعت مصطفویہ کو منسوخ کر دیا۔ | ۵۰۱ | بیشک ایمان مدینہ منورہ کی طرف سمٹتا ہے جیسے سانپ اپنے بل کی طرف۔ | ۵۰۸
- مزارات پر شمع جلانے کی ممانعت سے متعلق حوالہ جات غلط ہیں۔ | ۵۰۱ | روضہ اطہر پر روشنی خاص روضہ اطہر کے واسطے ہے نہ کہ بیت مسجد۔ | ۵۰۹
- اگر کوئی اپنے تہائی مال کی وصیت راہ خدا کے لیے کرے تو اس سے مسجد کا چراغ بھی جلا سکتے ہیں۔ | ۵۰۲ | سلطان مراد بن سلطان سلیم خاں کا کعبہ معظمہ اور روضہ اطہر کے لیے قندیلیں بھیجنے کا واقعہ۔ | ۵۱۱

- شان و تجمل روضہ انور سے شان محبوبیت کھلتی ہے۔ | ۵۰۲ | کعبہ معظمہ میں قندیلیں آویزاں کرنے کا دن بزرگ دن تھا اس دن تمام اعیان مکہ جمع ہوئے۔ | ۵۱۱
- اصالتاً بنائے مسجد فرائض کے لیے ہے۔ | ۵۰۲ | روضہ اطہر پر قندیل مرصع آویزاں کرتے وقت مدینہ طیبہ کے اکابر و عمائد اور علماء و صلحاء سب جمع تھے۔ | ۵۱۱
- کن مساجد میں رات بھر روشنی کی اجازت ہے اور کن میں تہائی رات کے بعد روشنی گل کرنے کا حکم ہے۔ | ۵۰۲ | سلاطین عثمانیہ سے پہلے بھی سلاطین حرمین شریفین میں قندیلیں حاضر کرتے تھے۔ | ۵۱۲
- | | سلاطین عثمانیہ میں سے سب سے پہلے یہ سعادت سلطان محمد مراد خاں نے پائی۔ | ۵۱۲
- امیر المومنین فاروق اعظم بعد از نماز عشاء دیکھ بھال کے لیے مسجد نبوی شریف میں دورہ فرماتے۔ | ۵۰۶ | قنادیل مدینہ کے بارے میں امام سبکی نے "تنزل السکینہ علی قنادیل مدینہ" کے نام کتاب لکھی۔ | ۵۱۲
- | | قنادیل کا وقف صحیح ہے۔ | ۵۱۲

Fatawa Razawiyya Volume 9

- 512 | It is not permissible to spend lamps on the mosque building.
- 512 | Virtues of Imam Taqi al-Din Subki (may Allah have mercy on him).
- 513 | The hadith in which those who light lamps on graves are cursed is not authentic.
- 513 | Abu Salih Badham is weak and a mudallis (concealer of flaws in narration).
- 513 | A weak hadith is not a proof regarding rulings.
- 514 | Three responses to the hadith of those who prohibit.
- 514 | Deviating from the literal meaning without necessity is unacceptable.
- 514 | In the hadith "Those who take mosques and lamps over them," the word 'ala' (on/over) is used in its literal sense.
- 514 | In the noble verse "Let us build a mosque over them," the pronoun refers to the People of the Cave, and building a mosque on top of a human body makes no sense; therefore, metaphor is determined for the word 'ala'.
- 514 | In the example of "placing an offering on the grave," the metaphor is not in the word 'on' (par) but in the word 'offering' (charhwa) itself.
- 515 | Difference between the meanings of 'offering' (charhwa) and its removal.
- 515 | If a word is used in a metaphorical sense in one place, it is not necessary that it must be used in a metaphorical sense in another place as well.
- 515 | The literal meaning does not depend on external causes.
- 515 | Discussion on the text of Mulla Ali Qari.
- 515 | Combining literal and metaphorical meanings is invalid.
- 516 | The three reasons for prohibition cited by Mulla Ali Qari regarding lamps on graves apply to common graves, not to noble shrines.
- 516 | At shrines, the veneration is not for the bricks and mud, but for the noble soul.
- 516 | Manners of visiting the illuminated resting place of the Holy Prophet (peace and blessings of Allah be upon him).
- 516 | Looking at the sacred chamber and blessed dome of the pure shrine is an act of worship, just like looking at the Kaaba.
- 517 | During prayer, one should not turn their back towards the pure chamber of the noble shrine.
- 517 | Respect for the Holy Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) after his passing is the same as it was during his apparent life.
- 517 | Virtues of the noble Salawat (sending blessings).

- 518 | Salawat is a veneration that is not permissible independently for anyone except the Prophets and Angels (peace be upon them).
- 518 | The deceased should be bathed with water boiled with berry leaves.
- 518 | It is better to bathe the deceased with warm water.
- 518 | It is forbidden to use baked bricks inside the grave niche itself, but there is no harm in using them above the grave.
- 518 | Lighting a lamp on top of a tomb dome is forbidden, not around it.
- 519 | Introduction of Imam Ali Rauzbari (may Allah be pleased with him).

फ़तावा रज़विया जिल्द नहम

- 512 | मस्जिद की इमारत पर चिरागों का खर्च करना जायज़ नहीं।
- 512 | इमाम तक़ी उद्दीन सुब्की (रहमतुल्लाहि अलैहि) के फ़ज़ाइल।
- 513 | वह हदीस जिसमें कब्रों पर चिराग रोशन करने वालों पर लानत आई है, सही नहीं है।
- 513 | अबू सालेह बाज़ाम ज़ईफ़ और मुदल्लिस है।
- 513 | अहकाम के बारे में ज़ईफ़ हदीस हुज्जत नहीं होती।
- 514 | मना करने वालों की हदीस के तीन जवाब।
- 514 | बिना ज़रूरत हक़ीक़त से फेरना नाक़ाबिले क़बूल है।
- 514 | हदीस "अल-मुत्तख़िज़ीन अलैहा अल-मसाजिदा वास-सुरुज" में कलमा 'अला' हक़ीक़ी मानी में इस्तेमाल हुआ है।
- 514 | आयते करीमा "ल-नत्तख़िज़न्ना अलैहिम मस्जिदा" में ज़मीर असहाबे कहफ़ की तरफ़ है और आदमी के जिस्म के ऊपर मस्जिद बनाने के कोई मानी नहीं, लिहाज़ा कलमा 'अला' में मजाज़ मुतअय्यन है।
- 514 | "क़ब्र पर चढ़ावा चढ़ाने की मिसाल" में मजाज़ लफ़्ज़ "पर" में नहीं बल्कि खुद लफ़्ज़ "चढ़ावा" में है।
- 515 | उतार और चढ़ावा के मानी में फ़र्क़।
- 515 | और किसी एक जगह कोई लफ़्ज़ मजाज़ी मानी में इस्तेमाल हो तो ज़रूरी नहीं कि दूसरी जगह भी मानी मजाज़ी ही में इस्तेमाल किया जाए।
- 515 | हक़ीक़ी मानी ख़ारजी वजह का मोहताज नहीं होता।
- 515 | मुल्ला अली क़ारी की इबारत पर बहस।
- 515 | हक़ीक़त और मजाज़ को जमा करना बातिल है।
- 516 | मुल्ला अली क़ारी ने चिराग़े कुबूर के बारे में जो तीन वजूहे मुमानअत नक़्ल कीं, वह अवाम की क़ब्रों में मुतहक़्क़िक़ हैं न कि मज़ारते करीमा में।
- 516 | मज़ारात पर ताज़ीम ईंट और मिट्टी की नहीं बल्कि रूहे करीम की होती है।
- 516 | हुज़ूर अक़दस सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम के रौज़-ए-अनवर पर हाज़िरी के आदाब।
- 516 | मज़ार-ए-अतहर के हुजरा-ए-मुक़द्दसा और गुम्बद-ए-मुबारक को देखते रहना इबादत है जैसे काबा-ए-मुअज़्ज़मा पर नज़र करना।

- 517 | नमाज़ में हुजरा-ए-मुतहरा मज़ार-ए-अतहर को पीठ न की जाए।
- 517 | हुज़ूर अक़दस सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम का अदब वफ़ात के बाद भी वैसा ही है जैसा हयाते ज़ाहिरी में था।
- 517 | फ़ज़ाइले दरूद शरीफ़।
- 518 | दरूद वह ताज़ीम है जो बिल-इस्तक़लाल सिवाए अंबिया व मलाइका अलैहिमुस्सलाम के किसी के लिए जायज़ नहीं।
- 518 | मय्यत को बेरी के पत्तों में उबले हुए पानी से ग़ुस्ल देना चाहिए।
- 518 | मय्यत को गर्म पानी से ग़ुस्ल देना अफ़ज़ल है।
- 518 | ख़ास लहद में पक्की ईंटें लगाना ममनूअ है वरना बा़ला-ए-क़ब्र इसमें हरज नहीं।
- 518 | क़ुब्बे के ऊपर चिराग जलाना ममनूअ है न कि उसके इर्द-गिर्द।
- 519 | इमाम अली रोज़बारी रज़ियल्लाहु तआला अन्हु का तआरुफ़।

فتاویٰ رضویہ جلد نہم

- ۵۱۲ | قنادیل کو مسجد کی عمارت میں صرف کرنا جائز نہیں۔
- ۵۱۲ | امام تقی الدین سبکی رحمۃ اللہ علیہ کے فضائل۔
- ۵۱۳ | وہ حدیث جس میں قبور پر چراغ روشن کرنے والوں پر لعنت آئی ہے صحیح نہیں ہے۔
- ۵۱۳ | ابوصالح باذام ضعیف ومدلس ہے۔
- ۵۱۳ | حدیث ضعیف درباره احکام حجت نہیں ہوتی۔
- ۵۱۴ | حدیث مانعین سے تین جواب۔
- ۵۱۴ | حقیقت سے بلا ضرورت عدول نا مقبول ہے۔
- ۵۱۴ | حدیث "المتخذین علیہا المساجد والسرج" میں کلمہ 'علی' حقیقی معنی میں مستعمل ہے۔
- ۵۱۴ | آیہ کریمہ "لنتخذن علیہم مسجدا" میں ضمیر جانب اصحاب کہف ہے اور آدمی کے جسم کے اوپر مسجد بنانے کے کوئی معنی نہیں لہٰذا کلمہ 'علی' میں مجاز متعین ہے۔
- ۵۱۴ | "قبر پر چڑھوا چڑھانے کی مثال" میں مجاز لفظ "پر" میں نہیں بلکہ خود لفظ "چڑھوا" میں ہے۔
- ۵۱۵ | اتار اور چڑھوا کے معنی میں فرق۔
- ۵۱۵ | اور کسی ایک جگہ کوئی لفظ مجازی معنی میں مستعمل ہو تو ضروری نہیں کہ دوسری جگہ بھی معنی مجازی ہی میں استعمال کیا جائے۔
- ۵۱۵ | معنی حقیقی وجہ خارجی کا محتاج نہیں ہوتا۔
- ۵۱۵ | ملا علی قاری کی عبارت پر بحث۔
- ۵۱۵ | جمع بین الحقیقتہ والمجاز باطل ہے۔

- ۵۱۶ | ملا علی قاری نے سراج قبور کے بارے میں جو تین وجوہ ممانعت نقل کیں وہ قبورِ عوام میں متحقق ہیں نہ کہ مزاراتِ کریمہ میں۔
- ۵۱۶ | مزارات پر تعظیم خشت و گل کی نہیں بلکہ روحِ کریم کی ہوتی ہے۔
- ۵۱۶ | حضور اقدس صلی اللہ تعالی علیہ وسلم کے روضہ انور پر حاضری کے آداب۔
- ۵۱۶ | مزارِ اطہر کے حجرۂ مقدسہ اور گنبدِ مبارک کو دیکھتے رہنا عبادت ہے جیسے کعبہ معظمہ پر نظر کرنا۔
- ۵۱۷ | نماز میں حجرۂ مطہرہ مزارِ اطہر کو پیٹھ نہ کی جائے۔
- ۵۱۷ | حضور اقدس صلی اللہ تعالی علیہ وسلم کا ادب بعد وفات بھی ویسا ہی ہے جیسا حیاتِ ظاہری میں تھا۔
- ۵۱۷ | فضائل درود شریف۔
- ۵۱۸ | درود وہ تعظیم ہے جو بالاستقلال سوائے انبیاء و ملائکہ علیہم الصلوٰۃ والسلام کے کسی کے لیے جائز نہیں۔
- ۵۱۸ | میت کو بیری کے پتوں میں اُبلے ہوئے پانی سے غسل دینا چاہئے۔
- ۵۱۸ | میت کو گرم پانی سے غسل دینا افضل ہے۔
- ۵۱۸ | خاص لحد میں پکی اینٹیں لگانا ممنوع ہے ورنہ بالائے قبر اس میں حرج نہیں۔
- ۵۱۸ | قبہ کے اوپر چراغ جلانا ممنوع ہے نہ کہ اس کے ارد گرد۔
- ۵۱۹ | امام علی روز باری رضی اللہ تعالیٰ عنہ کا تعارف۔

Fatawa-e-Razvia Volume 9

- Story of a pious man who lit a thousand lamps for a feast of friends. 520 | Sharia ruling on height of grave, kissing the grave, and circumambulation. 526
- Lighting at the shrines of Allah's beloveds is prohibited if intended for the decoration or self of the grave. 520 | Description of circumambulating a shrine, kissing the threshold, touching eyes with it, and returning walking backwards. 528
- It is ignorance not to differentiate between honoring the soul and honoring the grave. 521 | Description of the method for kissing shrines and visiting them. 528
- Presence of Hadrat Abu Ayyub Ansari (RA) at the Prophetic grave (PBUH) and dialogue with Marwan. 521 | It is forbidden to recite Fatiha if it's unknown whether the deceased was a Muslim. 532
- Seeking blessings from the noble soul separately from honoring the grave is the Sunnah of the Companions. 521 | Offering Malida, sweets, etc. at shrines. 532
- Rebuke and instructions for repentance based on the analogy of "Moses with his religion and Jesus with his religion". 522 | Ruling on placing sheets (chaddars) and flowers on graves. 533
- Visiting Graves | Who owns the sheets placed on shrines. 534
- Method of reciting Fatiha at shrines and its supplications. 522 | Women visiting shrines, lighting at some shrines, planting trees for visitors, building structures, conversation with living and dead saints, and getting killed during lifetime. 535
- The deceased is aware of those visiting the grave or sending rewards (Isal-e-Thawab). 523 | It is prohibited for women to go to shrines. 536
- Friday is the best day for visitation; one should not go to the cemetery alone at night. 523 | It is prohibited for women to become shrine custodians. 537
- It is permissible to recite separate Fatihas for the deceased to send reward; the reciter also gets reward. 524 | Except for the sacred mausoleum of the Prophet (PBUH), women should not go to any other shrine. 538
- Ruling on reciting the Holy Quran or Panjsurah near the grave, and putting greenery, flowers, incense sticks, etc. on the grave. 524 | Gathering at shrines every year for recitation and remembrance, holding fairs, and women attending such gatherings. 538
- Reciting Quran at the grave and feeding the reciters. 524 |

फतावा-ए-रज़विया जिल्द नहुम (9)

- एक नेक बंदे की कहानी जिसने दोस्तों की दावत में हज़ार चिराग रौशन किए। ५२० | कब्र की बुलंदी, कब्र को बोसा (चूमना) देना, और तवाफ करने का शरीअत का हुक्म। ५२६
- अल्लाह के महबूबों के मज़ारों पर रौशनी करना अगर कब्र की सजावट या ज़ात की नीयत से हो तो मना है। ५२० | मज़ार का तवाफ करने, चौखट चूमने, आँखों से लगाने और उलटे पाँव वापस लौटने का ज़िक्र। ५२८
- रूह की ताज़ीम और कब्र की ताज़ीम में फ़र्क न करना जहालत है। ५२१ | मज़ारात को बोसा देने और ज़ियारत के तरीक़े का बयान। ५२८
- हज़रत अबू अय्यूब अंसारी (रज़ियल्लाहु अन्हु) का रसूले पाक (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) की कब्र पर हाज़िर होना और मरवान से गुफ्तगू। ५२१ | अगर मुर्दे का मुसलमान होना मालूम न हो तो फ़ातिहा पढ़ना मना है। ५३२
- कब्र की ताज़ीम से हटकर रूह की बरकत लेना सहाबा की सुन्नत है। ५२१ | मज़ारों पर मलीदा, मिठाई वग़ैरह नियाज़ करना। ५३२
- "मूसा अपने दीन पर और ईसा अपने दीन पर" की मिसाल पर डांट-फटकार और तौबा की ताकीद। ५२२ | मज़ारों पर चादर और फूल डालने का हुक्म। ५३३
- ज़ियारत-ए-कुबूर (कब्रों की ज़ियारत) | मज़ारों पर डाली गई चादरों का मालिक कौन है। ५३४
- मज़ारों पर फ़ातिहा पढ़ने का तरीक़ा और उसकी दुआएँ। ५२२ | मज़ारों पर औरतों का जाना, कुछ मज़ारों पर रौशनी होना, ज़ायरीन के लिए पेड़ लगाना, इमारत बनाना, ज़िंदा और मुर्दा वलियों से बात करना और ज़िंदगी में क़त्ल कराना। ५३५
- कब्र पर जाने वालों या सवाब पहुँचाने वालों की खबर मुर्दे को होती है। ५२३ | औरतों का मज़ार पर जाना मना है। ५३६
- ज़ियारत के लिए सबसे अच्छा दिन जुमा है, रात में अकेले कब्रिस्तान नहीं जाना चाहिए। ५२३ | औरतों का मुजाविर (सेवादार) बनना मना है। ५३७
- मुर्दों के लिए अलग-अलग फ़ातिहा पढ़कर सवाब पहुँचाना जाइज़ है, पढ़ने वाले को भी सवाब मिलता है। ५२४ | हुज़ूर पाक (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) के रौज़ा-ए-अकदस के अलावा किसी और मज़ार पर औरतों को नहीं जाना चाहिए। ५३८

- कब्र के पास क़ुरान शरीफ़ या पंजसूरह पढ़ना, और कब्र पर हरियाली, फूल, अगरबत्ती वग़ैरह का हुक्म। ५२४ | मज़ारों पर हर साल जमा होकर तिलावत और ज़िक्र करना, मेला लगाना और ऐसे मजमे में औरतों का जाना। ५३८
- कब्र पर क़ुरान ख्वानी करना और पढ़ने वालों को खाना खिलाना। ५२४ |

فتاویٰ رضویہ جلد نہم

ایک بندہ صالح کی حکایت جس نے دعوتِ احباب میں ہزار چراغ روشن کیے۔ ۵۲۰ | قبر کی بلندی، قبر کو بوسہ دینا، قبر کو بوسہ دینے اور طواف کرنے کا حکم شرعی۔ ۵۲۶ مزاراتِ محبوبانِ الٰہ پر روشنی اگر زینتِ قبر یا نفسِ قبر کی نیت سے ہو تو ممنوع ہے۔ ۵۲۰ | مزار کے طواف کرنے، چوکھٹ کو بوسہ دینے، آنکھوں سے لگانے اور اُلٹے پاؤں واپس ہونے کا بیان۔ ۵۲۸ تعظیم روح اور تعظیم قبر میں فرق نہ کرنا جہالت ہے۔ ۵۲۱ | مزارات کو بوسہ دینے اور زیارت کے طریقے کا بیان۔ ۵۲۸ حضرت ابو ایوب انصاری رضی اللہ تعالیٰ عنہ کا قبر رسول صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم پر حاضر ہونا اور مروان سے مکالمہ۔ ۵۲۱ | صاحبِ قبر کا مسلمان ہونا معلوم نہ ہو تو فاتحہ پڑھنا منع ہے۔ ۵۳۲ تعظیم قبر سے جدا ہو کر تعظیم روحِ کریم کی برکت لینا سنتِ صحابہ ہے۔ ۵۲۱ | مزارات پر مالیدہ، شیرینی وغیرہ نیاز کرنا۔ ۵۳۲ "موسیٰ بدین خود و عیسیٰ بدین خود" کی تمثیل پر زجر و توبیخ اور توبہ کی تلقین۔ ۵۲۲ | مزاروں پر چادر اور پھول ڈالنے کا حکم۔ ۵۳۳ زیارتِ قبور | مزاروں پر ڈالی گئی چادروں کا مالک کون ہے۔ ۵۳۴ مزاروں پر فاتحہ پڑھنے کا طریقہ اور اس کی دعائیں۔ ۵۲۲ | مزارات پر عورتوں کا جانا، بعض مزاروں پر روشنیاں ہونا، زائروں کے لیے درخت لگانا، عمارت بنانا، زندہ اور مردہ ولیوں کا ہمکلام ہونا اور زندگی میں قتل کرانا۔ ۵۳۵ قبر پر جانے والوں یا ایصالِ ثواب کا علم میت کو ہوتا ہے۔ ۵۲۳ | عورتوں کو مزار پر جانا منع ہے۔ ۵۳۶ زیارت کے لیے افضل دن جمعہ ہے، شب میں اکیلے قبرستان نہیں جانا چاہئے۔ ۵۲۳ | عورتوں کو مجاور بننا ممنوع ہے۔ ۵۳۷ اہل قبور کے لیے الگ الگ فاتحہ پڑھ کر ایصالِ ثواب کرنا جائز ہے، فاتحہ پڑھنے والے کو بھی ثواب ملتا ہے۔ ۵۲۴ | حضورِ اکرم صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کے روضہ اقدس کے علاوہ کسی اور مزار پر عورتوں کو

نہیں جانا چاہئے۔ ۵۳۸ قبر کے پاس قرآنِ شریف یا پنجسورہ پڑھنا، نیز قبر پر سبزی، پھول، اگر بتی وغیرہ کا حکم۔ ۵۲۴ | مزارات پر ہر سال جمع ہو کر تلاوت و ذکرِ خیر کرنا، میلہ لگانا اور ایسے مجمع میں عورتوں کا جانا۔ ۵۳۸ قبر پر قرآن خوانی کرنا اور پڑھنے والوں کو کھانا کھلانا | ۵۲۴

Fatawa Razawiya Volume 9

Ref	Topic Description (Part 1)	Topic Description (Part 2)	Page
541	Treatise: Jumal-un-Noor fi Nahy an-Nisa an Ziyarat al-Qubur (Prohibiting women from visiting graves)	If ten thousand pots of biryani made from carrion rams and ten thousand pots of slaughtered animals are mixed, then all twenty thousand become haram (forbidden).	554
541	Maulvi Hakim Abdul Rahim, head teacher at Madrasa Qadriya in Ahmedabad, Gujarat, sent a registered letter to the author (R.A.) emphasizing the permission for women to visit graves, citing Bahr-ur-Raiq and Tas'hih al-Masail. You gave a brief reply disagreeing with this permission. The said Maulana sent another letter strongly insisting on his stance, in response to which the author (R.A.) wrote this treatise containing profound discussions.	The prohibition for women to visit graves is general and not limited to sinful women only.	556
549	Since the time of the Tabi'in, imams began prohibiting women from going to the mosque —first young women, then elderly ones too, first during the day, then at night as well, until the prohibition became general.	The incident of Hazrat Zubair (R.A.) stopping his pure wife from going to the mosque.	558
549	Every subsequent year is worse than the previous one.	There are two reasons for the prohibition of women visiting graves: fear of temptation (fitna) and fear of transgressors (fusaq).	559
549	Umm-ul-Momineen Sayyidah Ayesha Siddiqa (R.A.) stated that if the Holy Prophet (PBUH) had seen the current state of women, he would not have allowed them to come to the mosque.	There are seven situations where a woman may leave the house; other than these, her leaving is unlawful. If the husband	561

Ref	Topic Description (Part 1)	Topic Description (Part 2)	Page
		permits it, both are sinners.	
549	Hazrat Umar Farooq (R.A.) stopped women from coming to the mosque.	If it is possible for a woman to visit a grave without leaving home, it is permissible under several conditions.	563
550	Hazrat Abdullah bin Umar (R.A.) used to drive women out of the mosque on Fridays by throwing pebbles.	There is no ruling on the rare/exceptional.	563
550	Hazrat Ibrahim Nakha'i (R.A.) would not allow his womenfolk to go for Friday prayers and congregations.	There is a consensus among the inner Imams that a woman cannot be a caller to Allah; however, there is no harm if she is merely an envoy in conveying instructions prescribed by a mentor.	564
551	Removing a source of evil takes precedence over achieving a benefit.	Hazrat Maryam bint Imran and Hazrat Asiya (A.S.) possessed perfection in piety (taqwa).	564

फ़तावा रज़विया खंड 9

संदर्भ	विषय विवरण (भाग 1)	विषय विवरण (भाग 2)	पृष्ठ
541	शोध प्रबंध: जुमल-उन-नूर फ़ी नही अन-निसा अन ज़ियारत अल-क़ुबूर (महिलाओं को कब्रों पर जाने से रोकना)	यदि दस हज़ार बिरयानी के देग मृत मेढ़ों के हों और दस हज़ार ज़बहा किए हुए जानवरों के हों और उन्हें मिला दिया जाए, तो सभी बीस हज़ार हराम हैं।	554
541	मदरसा क़ादरिया, अहमदाबाद, गुजरात के मुख्य शिक्षक मौलवी हकीम अब्दुल रहीम ने लेखक (रहमतुल्लाह अलैह) को एक पंजीकृत पत्र भेजा, जिसमें बहर-उर-रैक और तसहीह अल-मसाइल के हवाले से महिलाओं के लिए कब्रों की ज़ियारत की अनुमति पर ज़ोर दिया गया था। आपने इस अनुमति से असहमति जताते हुए संक्षिप्त उत्तर दिया। उक्त मौलवी ने दोबारा पत्र भेजकर अपने रुख पर कड़ा ज़ोर दिया, जिसके जवाब में लेखक (रहमतुल्लाह अलैह) ने गंभीर चर्चाओं पर आधारित यह शोध प्रबंध लिखा।	महिलाओं के लिए कब्रों की ज़ियारत पर पाबंदी आम है, यह केवल दुराचारी महिलाओं तक सीमित नहीं है।	556
549	ताबईन के समय से ही इमामों ने महिलाओं को मस्जिद जाने से रोकना शुरू कर दिया था—पहले युवा महिलाओं को, फिर बूढ़ी महिलाओं को भी, पहले दिन में, फिर रात में भी, यहाँ तक कि पाबंदी का नियम आम हो गया।	हज़रत ज़ुबैर (रज़ियल्लाहु अन्हु) द्वारा अपनी पवित्र पत्नी को मस्जिद जाने से रोकने की घटना।	558

संदर्भ	विषय विवरण (भाग 1)	विषय विवरण (भाग 2)	पृष्ठ
549	हर आने वाला वर्ष पिछले वर्ष से भी बदतर है।	महिलाओं के लिए कब्रों की ज़ियारत पर पाबंदी के दो कारण हैं: फ़ितना (बुराई) का डर और फ़ुस्साक़ (दुराचारियों) का डर।	559
549	उम्म-उल-मोमिनीन सैयदा आयशा सिद्दीका (रज़ियल्लाहु अन्हा) ने फ़रमाया कि यदि पवित्र पैगंबर (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) महिलाओं की वर्तमान स्थिति देखते, तो उन्हें मस्जिद में आने की अनुमति नहीं देते।	महिलाओं के घर से बाहर निकलने की सात स्थितियाँ हैं, इनके अलावा बाहर निकलना नाजायज़ है। यदि पति अनुमति देता है, तो दोनों गुनहगार हैं।	561
549	हज़रत उमर फ़ारूक़ (रज़ियल्लाहु अन्हु) ने महिलाओं को मस्जिद में आने से रोक दिया।	यदि घर से बाहर निकले बिना महिला के लिए कब्र की ज़ियारत संभव हो, तो कुछ शर्तों के साथ यह जायज़ है।	563
550	हज़रत अब्दुल्ला बिन उमर (रज़ियल्लाहु अन्हुमा) जुमे के दिन कंकड़ मारकर महिलाओं को मस्जिद से बाहर निकालते थे।	विरल/अपवाद पर कोई निर्णय नहीं होता।	563
550	हज़रत इब्राहिम नखई (रज़ियल्लाहु अन्हु) अपनी घर की महिलाओं को जुमे और जमात में नहीं जाने देते थे।	आंतरिक इमामों की सहमति है कि महिला अल्लाह की ओर बुलाने वाली (दाई) नहीं हो सकती; हालाँकि, यदि वह केवल किसी गुरु द्वारा बताए गए निर्देशों को पहुँचाने में एक दूत मात्र है, तो इसमें कोई हर्ज नहीं है।	564
551	बुराई को दूर करना लाभ प्राप्त करने पर प्राथमिकता रखता है।	हज़रत मरयम बिंत इमरान और हज़रत आसिया (अलैहिस्सलाम)	564

संदर्भ विषय विवरण (भाग 1)	विषय विवरण (भाग 2)	पृष्ठ
	तक़वा (परहेजगारी) में पूर्णता रखती थीं।	

पृष्ठ 34 का 948

دس ہزار بریانی کی

دیگیں مردار مینڈھے

ہ رسالہ جمل النور فی نہی النساء عن زیارۃ القبور (عورتوں کو **کی اور دس ہزار**
۵۴۱ **قبروں پر جانا جائز نہیں)** **مذبوح جانوروں کی** **۵۵۴**

مختلط ہوں تو تمام

بیس ہزار حرام ہیں۔

مولوی حکیم عبدالرحیم صاحب مدرس اول مدرسہ قادریہ احمد
آباد گجرات نے ایک رجسٹری مصنف رحمۃ اللہ تعالیٰ علیہ کی
خدمت میں بھیجی جس میں بحر الرائق اور تصحیح المسائل کے عورتوں کے لیے
حوالے سے عورتوں کے لیے زیارت قبور کو جانے کی اجازت زیارت قبور کو جانے
۵۴۱ پر زور دیا گیا۔ آپ نے رجسٹری کا مختصر جواب دیا جس میں کی ممانعت عام ہے ۵۵۶
اس اجازت سے اختلاف فرمایا۔ مولانا موصوف نے دوبارہ صرف فاسقات کے
رجسٹری بھیجی جس میں اپنے موقف پر شدید اصرار کیا، جس ساتھ خاص نہیں۔
کے جواب میں مصنف رحمۃ اللہ تعالیٰ علیہ نے مباحث جلیلہ پر
مشتمل یہ رسالہ تحریر فرمایا۔

تابعین کے زمانے ہی سے ائمہ نے عورتوں کو مسجد جانے کی حضرت زبیر رضی
۵۴۹ ممانعت شروع فرمادی، پہلے جوان عورتوں کو، پھر بوڑھیوں اللہ تعالیٰ عنہ کے ۵۵۸
اپنی زوجہ مطہرہ کو

دس ہزار بریانی کی

دیگیں مردار مینڈھے

ہ رسالہ جمل النور فی نھی النساء عن زیارۃ القبور (عورتوں کو **کی اور دس ہزار**
۵۵۴ **۵۴۱**
قبروں پر جانا جائز نہیں) **مذبوح جانوروں کی**

مختلط ہوں تو تمام

بیس ہزار حرام ہیں۔

کو بھی، پہلے دن میں، پھر رات میں بھی، یہاں تک کہ حکم مسجد سے روکنے کا

ممانعت عام ہوگیا۔ واقعہ۔

عورت کے لیے

زیارت قبور کی

۵۴۹ ہر بعد والا سال پہلے سے بدتر ہے۔ ممانعت کی دو علتیں ۵۵۹

ہیں: خوف فتنہ اور

خوف فساق۔

خروج زن کے سات

ام المومنین سیدہ عائشہ صدیقہ رضی اللہ تعالیٰ عنہا کا ارشاد ہے مواضع ہیں، ان کے

کہ اگر حضور اقدس صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم عورتوں کی علاوہ اس کے لیے
۵۴۹ موجودہ حالت دیکھتے تو انہیں مسجد میں آنے کی اجازت نہ خروج ناجائز ، اگر ۵۶۱

دیتے۔ شوہر اجازت دے تو

دونوں گنہگار ہیں۔

۵۴۹ ۵۶۳

دس ہزار بریانی کی

دیگیں مردار مینڈھے

کی اور دس ہزار

مذبوح جانوروں کی

مختلط ہوں تو تمام

بیس ہزار حرام ہیں۔

خروج کے بغیر

عورت کے لیے اگر

زیارت قبر ممکن ہو

تو چند شرائط کے

ساتھ جائز ہے۔

ناد پر حکم نہیں ہوتا۔

ائمہ باطن کا اجماع

ہے کہ عورت داعی

الی اللہ نہیں ہو

سکتی ، ہاں تدابیر

ارشاد کردہ مرشد

بتانے میں سفیر

ہ رسالہ جمل النور فی نہی النساء عن زیارۃ القبور (عورتوں کو قبروں پر جانا جائز نہیں) ۵۴۱

حضرت عمر فاروق رضی اللہ تعالیٰ عنہ نے عورتوں کو مسجد میں آنے سے روک دیا۔ ۵۵۰

حضرت عبداللہ بن عمر رضی اللہ تعالیٰ عنہما جمعہ کے دن کنکریاں مار کر عورتوں کو مسجد سے نکالتے۔ ۵۵۰

حضرت ابراہیم نخعی رضی اللہ تعالیٰ عنہ اپنی مستورات کو جمعہ و جماعت میں نہ جانے دیتے۔ ۵۵۰

۵۵۴ ۵۶۳ ۵۶۴

دس ہزار بریانی کی

دیگیں مردار مینڈھے

ہ رسالہ جمل النور فی نہی النساء عن زیارۃ القبور (عورتوں کو **کی اور دس ہزار**
۵۴۱ **۵۵۴**
قبروں پر جانا جائز نہیں) **مذبوح جانوروں کی**

مختلط ہوں تو تمام

بیس ہزار حرام ہیں۔

محض ہو تو حرج

نہیں۔

حضرت مریم بنت

عمران اور حضرت

۵۵۱ سلب مفسدہ جلب مصلحت پر مقدم واہم ہے۔ ۵۶۴

آسیہ تقوی میں کمال

رکھتی تھیں۔

Fatawa Razawiyya, Volume 9

Page 564: Hazrat Rabia Basria (Allah be pleased with her) was a worshiper and ascetic. Topic: Fatiha and Esal-e-Sawab (Conveying Rewards) Page 421: Esal-e-Sawab is permissible on any date, whether fixed or unfixed. Page 563: Fatiha in the current customary manner is undoubtedly permissible and commendable. Page 569: Treatise "Al-Hujjah al-Fatihah li Tayyib al-Ta'yeen wal-Fatihah" (Proof of customary Fatiha, Soyam, Chehlum, death anniversary, and Urs etc.) Page 570: Esal-e-Sawab and presenting the gift of reward to the deceased is unanimously preferred among the Ahl al-Sunnah. Page 570: Deniers of Esal-e-Sawab are actually advocating for the Mu'tazilah. Page 570: According to the majority of Imams, the reaching of reward includes both financial and physical acts of worship. Page 571: It is prohibited to read from the Holy Quran during prayer while looking at it, and to recite Quran in Ruku and Sujud. Page 571: If individual units are not forbidden, their collection is also not forbidden. Page 571: A collection of permissible (Mubah) acts is also permissible. Page 571: Maulvi Ismail Dehlavi has accepted Esal-e-Sawab as permissible. Page 572: Raising both hands is part of the etiquette of supplication. Page 573: It is a mistake to consider the mere absence of a specific instruction for something as a reason for its absolute prohibition.

Page 563: The inconsistency of the leader of the deniers, Maulvi Muhammad Ishaq, and testimony against the deniers themselves. Page 573: Proof of the objective through the testimony of the leading deniers, and evidence of the 11th (Giyarwee Sharif) and Fatiha from eleven sayings. Page 574: Testimony of Shah Waliullah Muhaddith Dehlavi that Fatiha and Esal-e-Sawab are permissible. Page 575: It is not permissible for the wealthy to eat from food dedicated as a vow (Nazr) to Allah. Page 575: If Fatiha is performed in the name of some saint, the wealthy can also eat from it. Page 576: Are the entire Ummah and Shah Abdul Aziz Sahab polytheists? Page 577: According to the leader of the Wahhabi sect, Maulvi Khurram Ali, the 11th is not prohibited if it is for Esal-e-Sawab. Page 577: The leader of the sect himself says that if one rears a goat, slaughters it, recites Fatiha for Ghaus-e-Azam (Allah be pleased with him), and feeds people, there is no harm. Page 578: According to the leader of the sect, the meat and food of a cow vowed to saints is lawful. Page 580: Setting a time is of two types: (1) Sharia-based (2) Customary. Page 580: The occurrence of an action in an unspecified time is intellectually impossible. Page 580: The existence of an action and its determination are inseparable. Page 581: The ruling that applies to the absolute also applies to all its individuals.

फतावा रज़विया, खंड 9

पृष्ठ 564: हज़रत राबिया बसरी (रज़ियल्लाहु अन्हा) एक उपासक और तपस्वी थीं। विषय: फातिहा और ईसाल-ए-सवाब पृष्ठ 421: किसी भी तारीख में ईसाल-ए-सवाब जायज़ है, चाहे तारीखें निश्चित हों या अनिश्चित। पृष्ठ 563: प्रचलित तरीके से फातिहा निस्संदेह जायज़ और सराहनीय है। पृष्ठ 569: रिसाला "अल-हुज्जतुल फातिहा ली तैय्यिबुत तईन वल फातिहा" (प्रचलित फातिहा, सोयम, चेहलुम, बरसी और उर्स आदि का प्रमाण)। पृष्ठ 570: ईसाल-ए-सवाब और मृतकों को सवाब का उपहार पहुँचाना अहले सुन्नत के नज़दीक सर्वसम्मति से पसंद किया जाता है। पृष्ठ 570: ईसाल-ए-सवाब के संशयवादी वास्तव में मुतज़िला की वकालत करते हैं। पृष्ठ 570: अधिकांश इमामों के अनुसार, सवाब का पहुँचना वित्तीय और शारीरिक दोनों प्रकार के इबादतों को शामिल करता है। पृष्ठ 571: नमाज़ के दौरान कुरान मजीद से देखकर पढ़ना और रुकू व सुजूद में कुरान की तिलावत करना मना है। पृष्ठ 571: यदि व्यक्तिगत इकाइयाँ हराम न हों, तो उनका समूह भी हराम नहीं होता। पृष्ठ 571: अनुमेय (मुबाह) कार्यों का समूह भी अनुमेय होता है। पृष्ठ 571: मौलवी इस्माइल देहलवी ने ईसाल-ए-सवाब को जायज़ माना है। पृष्ठ 572: दुआ के शिष्टाचार में दोनों हाथों को उठाना शामिल है। पृष्ठ 573: केवल किसी विषय पर विशेष निर्देश न होने को उसकी पूर्ण मनाही का प्रमाण मानना एक गलती है।

पृष्ठ 563: संशयवादियों के नेता मौलवी मुहम्मद इशाक की अस्थिर मानसिकता और स्वयं संशयवादियों के विरुद्ध गवाही। पृष्ठ 573: प्रमुख संशयवादियों की गवाही से उद्देश्य की पुष्टि, और ग्यारह कथनों से ग्यारहवीं और फातिहा का प्रमाण। पृष्ठ 574: शाह वलीउल्लाह मुहद्दिस देहलवी की गवाही कि फातिहा और ईसाल-ए-सवाब जायज़ है। पृष्ठ 575: अल्लाह तआला की मन्नत (नज़्र) के भोजन को अमीरों के लिए खाना जायज़ नहीं है। पृष्ठ 575: यदि किसी बुजुर्ग के नाम की फातिहा दी गई हो, तो अमीर भी खा सकते हैं। पृष्ठ 576: क्या पूरी उम्मत और शाह अब्दुल अज़ीज़ साहब मुशरिक (बहुदेववादी) हैं? पृष्ठ 577: वहाबी संप्रदाय के नेता मौलवी खुर्रम अली के अनुसार, यदि ग्यारहवीं ईसाल-ए-सवाब के लिए हो तो वर्जित नहीं है। पृष्ठ 577: संप्रदाय के नेता स्वयं कहते हैं कि यदि कोई बकरी पालकर उसे ज़बह करे और गौस-ए-आज़म (रज़ियल्लाहु अन्हु) की फातिहा पढ़कर खिला दे, तो कोई हर्ज नहीं है। पृष्ठ 578: संप्रदाय के नेता के अनुसार, औलिया की मन्नत की गाय का मांस और खाना हलाल है। पृष्ठ 580: समय निर्धारित करना दो प्रकार का है: (1) शरीयत के अनुसार (2) प्रथा के अनुसार। पृष्ठ 580: अनिश्चित समय में किसी कार्य का होना बौद्धिक रूप से असंभव है।

पृष्ठ 580: कार्य का अस्तित्व और उसका निर्धारण एक-दूसरे के पूरक हैं। पृष्ठ 581: जो नियम सामान्य (मुतलक) के लिए है, वही उसके सभी व्यक्तियों के लिए भी होता है।

فتاویٰ رضویہ، جلد نہم

۵۶۴ حضرت رابعہ بصریہ رضی اللہ تعالٰی عنہا عابدہ و زاہدہ تھیں۔ فاتحہ وایصال ثواب ۴۲۱ ہر تاریخ میں ایصال ثواب جائز ہے، معین تاریخیں ہوں یا غیر معین۔ ۵۶۳ فاتحہ بہیئت مروجہ بلاریب جائز و مستحسن ہے۔ ۵۶۹ رسالہ الحجۃ الفاتحہ لطیب التعیین والفاتحہ (مروجہ فاتحہ، سوم، چہلم، برسی اور عرس وغیرہ کا ثبوت) ۵۷۰ ایصال ثواب اور اموات کو ہدیہ اجر پہنچانا اہلسنت کے نزدیک بالاتفاق پسندیدہ ہے۔ ۵۷۰ منکرین ایصال ثواب در اصل معتزلہ کی وکالت کرتے ہیں۔ ۵۷۰ جمہور ائمہ کے نزدیک ثواب کا پہنچنا عبادات مالیہ و بدنیہ دونوں کو شامل ہے۔ ۵۷۱ دورانِ نماز قرآن مجید سے دیکھ کر پڑھنا اور رکوع و سجود میں قرأۃ قرآن ممنوع ہے۔ ۵۷۱ آحادِ حرام نہ ہوں تو ان کا مجموعہ بھی حرام نہیں ہوتا۔ ۵۷۱ مباحات کا مجموعہ بھی مباح ہوتا ہے۔ ۵۷۱ مولوی اسمعیل دہلوی نے ایصال ثواب کو جائز مانا ہے۔ ۵۷۲ دونوں ہاتھوں کا اٹھانا آداب دعا سے ہے۔ ۵۷۳ محض کسی امر کے خصوصی طور پر وارد نہ ہونے کو مطلقاً ممنوع ہونے کی دلیل جاننا غلطی ہے۔

۵۶۳ امام منکرین مولوی محمد اسحاق کی تلون مزاجی اور خود منکرین کے خلاف گواہی۔ ۵۷۳ اکابر منکرین کی شہادت سے اثبات مطلب، اور گیارہ اقوال سے گیارہویں اور فاتحہ کا ثبوت۔ ۵۷۴ شاہ ولی اللہ محدث دہلوی کی شہادت کہ فاتحہ وایصال ثواب جائز ہے۔ ۵۷۵ اللہ تعالیٰ کی نذر سے اغنیاء کے لیے کھانا جائز نہیں۔ ۵۷۵ اگر کسی بزرگ کے نام کی فاتحہ دی گئی ہو تو اغنیاء بھی کھا سکتے ہیں۔ ۵۷۶ کیا تمام اُمت اور شاہ عبدالعزیز صاحب مشرک ہیں۔ ۵۷۷ امام طائفہ وہابیہ مولوی خرم علی کے نزدیک گیارہویں اگر ایصال ثواب کے لیے ہو تو منع نہیں۔ ۵۷۷ خود امام الطائفہ کہتے ہیں کہ بکری پال کر ذبح کر کے غوث اعظم رضی اللہ تعالیٰ عنہ کی فاتحہ پڑھ کر

کھلا دے تو کچھ حرج نہیں۔ ۵۷۸ امام الطائفہ کے نزدیک اولیاء کی نذر کی گائے کا گوشت اور کھانا حلال ہے۔ ۵۸۰ وقت مقرر کرنا دو قسم پر ہے: (۱) شرعی (۲) عادی ۵۸۰ غیر معین زمانے میں وقوع فعل عقلاً محال ہے۔ ۵۸۰ وجود فعل اور تعین لازم و ملزوم ہیں۔ ۵۸۱ جو حکم مطلق کے لیے ہو وہی اس کے تمام افراد کے لیے ہوتا ہے۔

- Once a general [validity] is established, asking for a specific proof from the proponent of permissibility is incorrect. | 581
- The burden of proof for the prohibition of a specific act lies with the preventer. | 581
- The intention of a free agent is also a preponderating factor. | 582
- The wisdom behind setting specific times for acts of worship, occupations, and remembrances (adhkar). | 582
- A few examples of customary designations from the Hadiths of the Holy Prophet (peace and blessings of Allah be upon him). | 585
- The Holy Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) designated the end of the year for visiting the martyrs of Uhud, Saturday for visiting Masjid Quba, and Monday for fasting as a sign of gratitude for the messengership. | 585
- Hazrat Siddiq Akbar (may Allah be pleased with him) designated morning and evening for consultation, Thursday for starting a journey for Jihad, and Monday for seeking knowledge. | 585
- Hazrat Abdullah bin Masood (may Allah be pleased with him) designated Thursday for preaching and advice. | 586
- Scholars designate Wednesday for starting new lessons. | 586
- A deceased person is like one who is drowning, waiting for a rescuer. Prayers, charity, and Fateha are very beneficial for them. | 587
- Objection by deniers regarding the 'Urs of elders and the reply of Shah Abdul Aziz. | 588
- Visiting the graves of the righteous and seeking blessings (tabarruk) from them is commendable. | 588
- The Holy Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) used to grace the shrines of martyrs at the end of every year, and the four Caliphs (may Allah be pleased with them) used to do the same. | 589
- The truth is that the aforementioned specifications like the third day (teeja), fortieth day (chaliswan), etc., are customary designations that are in no way a matter of reproach or blame. | 590
- An excellent reply from Shah Abdul Aziz regarding a question about specifying food in the Fateha of elders. | 590

- If a specification without a specificator is not beneficial, it is not harmful either. | 591
- The notion that sending reward (isal-e-sawab) is not permissible on days other than these specified ones, or that the reward decreases, is false. | 591
- The undesirable things that ignorant commoners have introduced regarding isal-e-sawab, such as showing off, publicity, boasting, gathering the wealthy and excluding the poor, etc., are all forbidden and disliked. | 592
- If someone creates a flaw in a commendable act, scholars should have that flaw removed rather than using smooth talk to stop the original act itself. | 592
- If someone performs prayer without proper execution of its pillars (ta'deel-e-arkan), they should be stopped from that shortcoming, not forbidden from the prayer itself. | 592

- जब सामान्य रूप से [वैधता] सिद्ध हो जाए, तो अनुमति देने वाले से विशिष्ट प्रमाण मांगना गलत है। | ५८१
- किसी विशिष्ट कार्य के निषेध का प्रमाण निषेध करने वाले के जिम्मे है। | ५८१
- स्वतंत्र कर्ता का इरादा भी एक अधिमान्य कारक है। | ५८२
- इबादतों, कार्यों और ज़िक्र (अज़कार) के लिए समय निर्धारित करने की हिकमत। | ५८२
- पवित्र नबी (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) की हदीसों से प्रथागत निर्धारण के कुछ उदाहरण। | ५८५
- पवित्र नबी (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने उहुद के शहीदों की ज़ियारत के लिए साल का अंत, मस्जिद-ए-कुबा आने के लिए शनिवार और रिसालत के शुक्र के तौर पर रोज़ा रखने के लिए सोमवार का दिन निर्धारित फरमाया। | ५८५
- हज़रत सिद्दीक़ अकबर (रज़ियल्लाहु अन्हु) ने मशवरे के लिए सुबह और शाम का समय, जिहाद के सफर के लिए गुरुवार, और ज्ञान प्राप्ति के लिए सोमवार का दिन निर्धारित फरमाया। | ५८५
- हज़रत अब्दुल्ला बिन मसूद (रज़ियल्लाहु अन्हु) ने उपदेश और नसीहत के लिए गुरुवार का दिन निर्धारित फरमाया। | ५८६
- उलेमा सबक (पाठ) शुरू करने के लिए बुधवार का दिन निर्धारित करते हैं। | ५८६
- मृतक एक डूबते हुए व्यक्ति की तरह होता है जो मदद का इंतज़ार करता है। दुआएं दान और फातिहा उसके लिए बहुत लाभदायक हैं। | ५८७
- बुजुर्गों के उर्स के बारे में इनकार करने वालों का एतराज़ और शाह अब्दुल अज़ीज़ साहब का जवाब। | ५८८
- नेक लोगों की कब्रों की ज़ियारत करना और उनसे तबर्रुक हासिल करना पसंद किया गया (मुस्तहसन) है। | ५८८
- पवित्र नबी (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) हर साल के अंत में शहीदों के मज़ार पर तशरीफ़ ले जाते थे और खुलफा-ए-अर्बा (रज़ियल्लाहु अन्हुम) भी ऐसा ही करते थे। | ५८९
- सत्य यह है कि उपर्युक्त विनिर्देश जैसे तीजा और चालीसवां आदि प्रथागत निर्धारण हैं जो हरगिज़ दोष या निंदा की बात नहीं हैं। | ५९०

- बुजुर्गों की फातिहा में भोजन की विशिष्टता के संबंध में एक सवाल का शाह अब्दुल अज़ीज़ की ओर से बेहतरीन जवाब। | ५९०
- यदि किसी विशिष्ट करने वाले के बिना विशिष्टता लाभदायक नहीं है, तो वह हानिकारक भी नहीं है। | ५९१
- यह सोचना गलत है कि इन निर्धारित दिनों के अलावा ईसाल-ए-सवाब जायज़ नहीं है या सवाब में कमी आती है। | ५९१
- आम जाहिलों ने ईसाल-ए-सवाब के बारे में जो अवांछनीय बातें पैदा कर रखी हैं जैसे दिखावा, चर्चा, घमंड, अमीरों को इकट्ठा करना और गरीबों को रोकना आदि, वे सब वर्जित और मकरूह (नापसंद) हैं। | ५९२
- यदि कोई किसी सराहनीय कार्य में दोष उत्पन्न करे, तो उलेमा को उस दोष को दूर करना चाहिए, न कि चिकनी-चुपड़ी बातों से काम लेकर मूल कार्य ही बंद करा दें। | ५९२
- यदि कोई अरकान (स्तंभों) के सही क्रियान्वयन (तअदील) के बिना नमाज़ पढ़ता है, तो उसे उस कमी से रोका जाए न कि नमाज़ से ही मना कर दिया जाए। | ५९२

- مطلق ثابت ہو جائے تو قائل جواز سے دلیل خصوصیت مانگنا غلط ہے۔ | ۵۸۱
- ممانعت فعل خاص کی دلیل مانع کے ذمہ ہے۔ | ۵۸۱
- ارادہ فاعل مختار بھی مرجح ہے۔ | ۵۸۲
- عبادات اور اشغال واذکار کے لیے وقت مقرر کرنے کی حکمت۔ | ۵۸۲
- احادیث رسول صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم سے تعینات عادیہ کی چند مثالیں۔ | ۵۸۵
- حضور اقدس صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم نے شہداءِ اُحد کی زیارت کے لیے سال کا آخر، مسجد قباء میں تشریف آوری کے لیے ہفتہ کا دن اور شکرِ رسالت کے طور پر روزہ رکھنے کے لیے پیر کا دن مقرر فرمایا۔ | ۵۸۵
- حضرت صدیق اکبر رضی اللہ تعالیٰ عنہ نے مشورہ کیلئے صبح وشام کا وقت، سفر جہاد کے لیے جمعرات کا دن، اور طلب علم کے لیے دوشنبہ کا دن مقرر فرمایا۔ | ۵۸۵
- حضرت عبداللہ بن مسعود رضی اللہ تعالیٰ عنہ نے وعظ ونصیحت کے لیے جمعرات کا دن مقرر فرمایا۔ | ۵۸۶
- علماء سبق شروع کرنے کے لیے بدھ کا دن مقرر فرماتے ہیں۔ | ۵۸۶
- مردہ ڈوبنے والے کی طرح فریاد رس کا منتظر ہوتا ہے۔ دعائیں، صدقے اور فاتحہ اس کے لیے بہت مفید ہیں۔ | ۵۸۷
- منکرین کا عرس بزرگان کے بارے میں اعتراض اور شاہ عبدالعزیز صاحب کا جواب۔ | ۵۸۸
- صالحین کی قبروں کی زیارت اور ان سے تبرک حاصل کرنا مستحسن ہے۔ | ۵۸۸

- حضور اقدس صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم ہر سال کے آخر میں مزارات شہداء پر جلوہ افروز ہوتے اور خلفاء اربعہ رضی اللہ تعالیٰ عنہم بھی ایسا ہی کرتے تھے۔ | ۵۸۹
- حق یہ ہے کہ تخصیصات مذکورہ یعنی تیجا اور چالیسواں وغیرہ تعینات عادیہ ہیں کہ ہر گز جائے طعن و ملامت نہیں ہیں۔ | ۵۹۰
- بزرگوں کی فاتحہ میں کھانے کی تخصیص کے متعلق ایک سوال کا شاہ عبدالعزیز کی طرف سے بہترین جواب۔ | ۵۹۰
- اگر مخصص کے بغیر تخصیص مفید نہیں تو نقصان دہ بھی نہیں۔ | ۵۹۱
- یہ گمان غلط ہے کہ ان معین دنوں کے علاوہ ایصال ثواب جائز نہیں یا ثواب میں کمی آتی ہے۔ | ۵۹۱
- عوام جہلاء نے ایصال ثواب کے بارے میں جو ناپسندیدہ امور پیدا کر رکھے ہیں مثلاً دکھاوا، چرچا، تفاخر، مالداروں کو جمع کرنا اور فقراء کو منع کرنا وغیرہ سب ممنوع و مکروہ ہیں۔ | ۵۹۲
- کسی مستحسن عمل میں اگر کوئی خرابی پیدا کرے تو علماء کو وہ خرابی ختم کرانی چاہئے نہ کہ چرب زبانی سے کام لے کر اصل عمل بند کرا دیں۔ | ۵۹۲
- اگر کوئی نماز بلا تعدیل ارکان ادا کرے تو اس کو اس کو تاہی سے روکا جائے نہ کہ نماز ہی سے منع کر دیا جائے۔ | ۵۹۲

Fatawa-e-Rizvia Volume 9

Topic	Page	Topic	Page
Proof of Fatiha.	593	Making and drinking sherbet in the name of Imam Hussain (RA).	601
Som and Teeja are permissible; avoid nonsensical things.	594	With what words should the transfer of reward (Isal-e-Thawab) be performed?	602
Fatiha is permissible and its denier is mistaken.	594	Performing Isal-e-Thawab by mentioning the name of the deceased.	602
It is undoubtedly permissible and commendable to cook food in the name of deceased Muslims and give it in charity for Isal-e-Thawab.	595	Mentioning the name of the deceased is sufficient in Isal-e-Thawab. No need to mention parentage.	603
Feeding a poor person twice daily in the name of the deceased, watering animals, gifting the Holy Quran, performing Milad Sharif, and burning incense sticks on the grave.	596	Giyarween Sharif is recommended in the state of individuality and Sunnah in the state of absolute application.	605
Putting up canopies on shrines, lighting lamps, offering Fatiha on sweets etc., and serving sherbet during the ten days of Muharram.	598	Those who forbid Giyarween Sharif are Wahhabis or Rafidis; praying behind them is absolutely void.	605
Offering Fatiha on Teeja, Daswan, and Chahlum etc.	599	Performing Giyarween Sharif with flour taken out as a pinch.	606
Saying 'Nazr-Allah' and 'Nazr-Rasool' in Fatiha.	599	Performing Isal-e-Thawab through recitation etc. before burial.	606
Ruling for one who calls 'Nazr' and 'Niaz' impermissible.	599	Answer to a doubt regarding performing Isal-e-Thawab in the names of the righteous.	607
It is permissible to perform Isal-e-Thawab by reciting the Quran, Durood Sharif, and Surah Ikhlas,	600	Detailed statement about daily Fatiha, feeding the poor every Thursday or for forty days, offering	608

Topic	Page	Topic	Page
and by giving food and clothes to the poor.		Fatiha on the day of Arafah, and whether the rich can eat food offered in Fatiha.	
The deceased becomes aware that so-and-so has performed Isal-e-Thawab for them. Benefit is received by performing Isal-e-Thawab.	600	There is more reward in reciting Fatiha by going to the graveyard.	609
	600	Fatiha with food and water placed in front is permissible; can the wealthy also eat such food or not?	610
Forgiveness through Isal-e-Thawab is subject to Divine Will.	600	It is not necessary for food to be in view for Fatiha and Isal-e-Thawab.	611
For Isal-e-Thawab, Surah Ikhlas should be recited eleven times and Surah Mulk once.	600	Keeping the food of Hazrat Khatoon-e-Jannat's (Fatima RA) Niaz in purdah and not letting men eat it is ignorance.	611
Method of Giyarween Sharif and Isal-e-Thawab.	601		

फ़तावा रज़विया जिल्द 9

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
फ़ातिहा का प्रमाण।	593	इमाम हुसैन (रज़िअल्लाहु अन्हु) के नाम का शरबत बनाना और पीना।	601
सोम और तीजा जायज़ है, बेहूदा बातों से बचना चाहिए।	594	ईसाल-ए-सवाब किन शब्दों के साथ हो।	602
फ़ातिहा जायज़ है और इसका इनकार करने वाला ग़लती पर है।	594	मृतक का नाम लेकर ईसाल-ए-सवाब करना।	602
मुस्लिम मृतकों के नाम पर खाना पकाकर ईसाल-ए-सवाब के लिए दान करना निस्संदेह जायज़ और सराहनीय है।	595	ईसाल-ए-सवाब में मृतक का नाम काफी है। पिता का नाम बताने की आवश्यकता नहीं है।	603
मृतक के नाम पर ग़रीब को दोनों समय खाना खिलाना, जानवरों को पानी पिलाना, क़ुरआन पाक उपहार देना, मीलाद शरीफ करना और कब्र पर अगरबत्ती जलाना।	596	ग्यारहवीं शरीफ मर्तबा-ए-फरदियत में मुस्तहब और मर्तबा-ए-इतलाक में सुन्नत है।	605
मज़ार शरीफ पर शामियाने लगाना, चिराग जलाना, मिठाई आदि पर फ़ातिहा देना और मुहर्रम के दस दिनों में शरबत पिलाना।	598	ग्यारहवीं शरीफ से रोकने वाले वहाबी या राफ़्ज़ी हैं, उनके पीछे नमाज़ बिल्कुल बातिल (अमान्य) है।	605
तीजा, दसवां और चेहलुम आदि में फ़ातिहा देना।	599	चुटकी भर निकाले हुए आटे से ग्यारहवीं शरीफ करना।	606
फ़ातिहा में नज़्र-अल्लाह और नज़्र-रसूल कहना।	599	दफ़नाने से पहले तिलावत आदि का ईसाल-ए-सवाब करना।	606
नज़्र-ओ-नियाज़ को नाजायज़ कहने वाले का हुक्म।	599	नेक लोगों के नाम ईसाल-ए-सवाब करने पर एक संदेह का जवाब।	607

विषय	पृष्ठ
तिलावत, दुरूद शरीफ, सूरह इखलास पढ़कर, गरीब को खाना और कपड़े देकर ईसाल-ए-सवाब करना जायज़ है।	600
मृतक को पता चल जाता है कि फलां ने ईसाल-ए-सवाब किया है। ईसाल-ए-सवाब करने से सवाब पहुँचता है।	600
	600
ईसाल-ए-सवाब के माध्यम से मग़फिरत (क्षमा) अल्लाह की इच्छा पर है।	600
ईसाल-ए-सवाब के लिए ग्यारह बार सूरह इखलास और एक बार सूरह मुल्क पढ़नी चाहिए।	600
ग्यारहवीं शरीफ और ईसाल-ए-सवाब का तरीका।	601
रोज़ाना फ़ातिहा देना, हर गुरुवार या चालीस दिनों तक गरीब को खाना खिलाना, अरफा को फ़ातिहा देना और फ़ातिहा का खाना अमीरों को खिलाने के बारे में विस्तृत विवरण।	608
कब्रिस्तान जाकर फ़ातिहा पढ़ने में अधिक सवाब है।	609
खाना-पानी सामने रखकर फ़ातिहा जायज़ है, ऐसा खाना अमीर लोग भी खा सकते हैं या नहीं।	610
फ़ातिहा और ईसाल के लिए खाने का सामने होना ज़रूरी नहीं है।	611
हज़रत खातून-ए-जन्नत की नियाज़ का खाना पर्दे में रखना और मर्दों को न खाने देना अज्ञानता है।	611

موضوع	صفحہ
فاتحہ کا ثبوت۔	۵۹۳
سوم و تیجہ جائز ہے، بیہودہ باتوں سے اجتناب چاہئے۔	۵۹۴
فاتحہ جائز اور منکر خاطی ہے۔	۵۹۴
امواتِ مسلمین کے نام پر کھانا پکا کر ایصالِ ثواب کے لیے تصدق کرنا بلا شبہ جائز و مستحسن ہے۔	۵۹۵
مردے کے نام پر فقیر کو دونوں وقت کھانا کھلانا، جانوروں کو پانی پلانا، قرآنِ پاک ہدیہ کرنا، میلاد شریف کرنا اور قبر پر اگربتی جلانا۔	۵۹۶
مزارات پر شامیانے لگانا، چراغ جلانا، شیرینی وغیرہ پر فاتحہ دینا اور عشرہ محرم میں شربت پلانا۔	۵۹۸
	۵۹۹

موضوع	صفحہ
امام حسین رضی اللہ تعالیٰ عنہ کے نام کا شربت کرنا اور پینا۔	۶۰۱
ایصالِ ثواب کن الفاظ کے ساتھ ہو۔	۶۰۲
مردے کا نام لے کر ایصالِ ثواب کرنا۔	۶۰۲
ایصالِ ثواب میں مردے کا نام کافی ہے۔ ولدیت کے اظہار کی حاجت نہیں۔	۶۰۳
گیارہویں شریف مرتبہ فردیت میں مستحب اور مرتبہ اطلاق میں سنت ہے۔	۶۰۵
گیارہویں شریف کو منع کرنے والے وہابی یا رافضی ہیں ان کے پیچھے نماز باطل محض ہے۔	۶۰۵
	۶۰۶

موضوع	صفحہ
تیجہ، دسواں اور چہلم وغیرہ میں فاتحہ دینا	۵۹۹
فاتحہ میں نذر اللہ اور نذر رسول کہنا۔	۵۹۹
نذر و نیاز کو نا جائز کہنے والے کا حکم۔	۵۹۹
تلاوت، درود شریف، سورۃ اخلاص پڑھ کر، فقیر کو کھانا اور کپڑے دے کر ایصالِ ثواب کرنا جائز ہے۔	۶۰۰
مردے کو معلوم ہو جاتا ہے کہ فلاں نے ایصالِ ثواب کیا ہے۔ ایصالِ ثواب کرنے سے ثواب پہنچتا ہے۔	۶۰۰
ایصالِ ثواب کے ذریعے مغفرت مشیتِ الہی میں ہے۔	۶۰۰
	۶۰۰
	۶۰۰

موضوع	صفحہ
چٹکی کے طور پر نکالے ہوئے آٹے سے گیارہویں شریف کرنا۔	۶۰۶
قبلِ دفن تلاوت وغیرہ کا ایصالِ ثواب کرنا۔	۶۰۷
صالحین کے نام ایصالِ ثواب کرنے پر ایک شبے کا جواب۔	۶۰۸
روزانہ فاتحہ دینا، ہر جمعرات یا چالیس یوم تک فقیر کو کھانا دینا، عرفہ کو فاتحہ دینا اور فاتحہ کے کھانے اغنیاء کو کھلانے کے بارے میں مفصل بیان۔	۶۰۹
قبرستان میں جا کر فاتحہ پڑھنے میں زیادہ ثواب ہے۔	۶۱۰
کھانا پانی سامنے رکھ کر فاتحہ جائز ہے، ایسا کھانا اغنیاء بھی کھا سکتے ہیں یا نہیں۔	۶۱۱
فاتحہ و ایصال کے لیے کھانے کا پیشِ نظر ہونا ضروری نہیں۔	۶۱۱

موضوع	صفحہ
ایصالِ ثواب کے لیے گیارہ مرتبہ سورۃ اخلاص اور ایک بار سورہ ملک پڑھنی چاہئے۔	۶۰۱
گیارہویں شریف اور ایصالِ ثواب کا طریقہ۔	
حضرت خاتونِ جنت کی نیاز کا کھانا پردے میں رکھنا اور مردوں کو نہ کھانے دینا جہالت ہے۔	

Fatawa Razawiyya Volume 9

(Right Column Index) 611: There is no command anywhere to put a curtain over any Niyaz (offering). 611: Offering Fateha for several people together or separately; both ways are permissible. 611: Performing Isal-e-Sawab (conveying reward) to the Holy Prophet (peace and blessings of Allah be upon him). 612: On which thing is Fateha superior, and to whom should it be given? 613: What is the origin of Tabarak (offering), what happens in it, and who should eat it? 614: Taking food with the deceased, sprinkling roses on the grave, and praying after moving forty steps away from the grave. 614: Food of Fateha is of three types: one type of food is prohibited for the wealthy, one is not recommended, and one is permissible without hesitation. 615: Chickpeas of 'Seem' (third-day ritual) etc. should be distributed among the poor; do not give them to the wealthy or non-believers. 615: Chickpeas of 'Seem' should not be fed to children of wealthy families either. 615: If a man asks for something, it is permissible to offer Fateha on that thing and to keep water during Fateha. 616: Offering Fateha by putting ghee in a flour lamp. 616: It is permissible to keep clothes, shoes, etc., in Fateha with the intention of giving them to the needy, but lighting a ghee lamp is useless. 616: Whether everyone will get the full reward or not if Isal-e-Sawab is performed for several names.

(Left Column Index) 621: Including others while performing Isal-e-Sawab to the Holy Prophet (peace and blessings of Allah be upon him). 621: If Fateha is performed for several names, everyone will get the full reward. 621: The method of Isal-e-Sawab and the benefit of performing Fateha. 622: Response to the deduction of the division of reward from a passage by Imam Ibn Hajar Makki (may Allah have mercy on him). 629: Whether a minor child can perform Isal-e-Sawab or not. 632: Organizing bi-annual, annual gatherings, or Urs, and saying that for the one who eats the sweets of Urs, etc., Heaven is the destination and Hell is forbidden. 633: Giving the Holy Quran in Isal-e-Sawab or expiation, and blowing over pebbles to keep in the grave. 644: It is permissible to take and give wages for recitation. 644: Feeding food as wages to those who perform Quran recitation is forbidden (Haram). 646: Wages for Quran recitation are forbidden (Haram), and one way for its permissibility. 646: Taking wages for recitation and glorification (Tahleel) is forbidden (Haram). 646: Meaning of "Al-Ma'roof kal-Mashroot" (What is known is like what is stipulated). 646: There is no difference between absolute and non-absolute in sin. 646: Taking ten steps on each side while carrying a coffin, and what to do if the graveyard is less than forty steps away.

फ़तावा रज़विया जिल्द नहुम (9)

(दायां कॉलम अनुक्रमणिका) 611: किसी नियाज़ पर पर्दा डालने का कहीं हुक्म नहीं। 611: कई व्यक्तियों की फ़ातिहा एक साथ दिलाना या अलग-अलग दिलाना; दोनों सूरतें जायज़ हैं। 611: हुज़ूर अकरम सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम को ईसाले सवाब करना। 612: फ़ातिहा किस चीज़ पर अफ़ज़ल है और किसे दें? 613: तबारक की असल क्या है, इसमें क्या होता है और इसे कौन खाए? 614: मय्यत के साथ खाना ले जाना, क़ब्र पर गुलाब छिड़कना और क़ब्र से चालीस क़दम हट कर दुआ करना। 614: फ़ातिहा का खाना तीन प्रकार का है: जिनमें से एक प्रकार का खाना अमीरों के लिए वर्जित है, एक का खाना नापसंदीदा है और एक का खाना बिना झिझक जायज़ है। 615: 'सोयम' आदि के चने ग़रीबों में बाँट दिए जाएं, अमीरों और काफ़िरों को न दें। 615: 'सोयम' के चने अमीर बच्चों को भी न खिलाए जाएं। 615: यदि कोई पुरुष किसी चीज़ की मांग करे, तो उस चीज़ पर फ़ातिहा दिलाना और फ़ातिहा में पानी रखना जायज़ है। 616: आटे के चिराग में घी डालकर फ़ातिहा दिलाना। 616: फ़ातिहा में कपड़े, जूते आदि मिस्कीन को देने की नीयत से रखना जायज़ है, लेकिन घी का चिराग जलाना फ़ुज़ूल है। 616: ईसाले सवाब कई नामों से किया जाए तो क्या हर एक को पूरा सवाब मिलेगा या नहीं?

(बायां कॉलम अनुक्रमणिका) 621: हुज़ूर अकरम सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम को ईसाले सवाब करने में दूसरों को शामिल करना। 621: कई नामों से फ़ातिहा की जाए तो हर एक को पूरा सवाब मिलेगा। 621: ईसाले सवाब का तरीक़ा और फ़ातिहा करने का फ़ायदा। 622: इमाम इब्ने हजर मक्की रहमतुल्लाहि अलैहि की एक इबारत से सवाब के बँटवारे पर दलील का जवाब। 629: ना-बालिग बच्चा ईसाले सवाब कर सकता है या नहीं? 632: छमाही, सालाना, उर्स करना और उर्स आदि की शीरीनी खाने वाले के लिए जन्नत मक़ाम और दोज़ख़ हराम कहना। 633: ईसाले सवाब या कफ़्फ़ारे में क़ुरान शरीफ़ देना और ढेलों पर दम करके क़ब्र में रखना। 644: तिलावत पर उजरत (मज़दूरी) लेना और देना जायज़ है। 644: क़ुरान ख्वानी करने वालों को बतौर उजरत खाना खिलाना हराम। 646: क़ुरान ख्वानी की उजरत हराम है और इसके जवाज़ की एक सूरत। 646: तिलावत और तहलील में उजरत लेना हराम। 646: अल-मआरूफ़ कल-मशरुत का मतलब। 646: गुनाह में क़तई और ग़ैर-क़तई का फ़र्क़ नहीं होता। 646: ताबूत ले जाने में हर तरफ़ दस-दस क़दम चलना और अगर क़ब्रिस्तान चालीस क़दम से कम दूर हो तो क्या करे?

पृष्ठ ३८/९४८

فتاویٰ رضویہ جلد نہم

(دائیں کالم کا انڈیکس) ۶۱۱: کسی نیاز پر پردہ ڈالنے کا کہیں حکم نہیں۔ ۶۱۱: چند افراد کی فاتحہ اکٹھی دلانا یا جدا جدا دلانا دونوں صورتیں جائز۔ ۶۱۱: آنحضرت صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کو ایصال ثواب کرنا۔ ۶۱۲: فاتحہ کس چیز پر افضل ہے اور کسے دیں۔ ۶۱۳: تبارک کی اصل کیا ہے، اس میں کیا ہوتا ہے اور اسے کون کھائے۔ ۶۱۴: میت کے ساتھ کھانا لے جانا، قبر پر گلاب چھڑکنا اور قبر سے چالیس قدم ہٹ کر دعا کرنا۔ ۶۱۴: طعام فاتحہ تین قسم پر ہے جن میں سے ایک قسم کا کھانا اغنیاء کو ممنوع اور ایک کا کھانا غیر مستحسن اور ایک کا کھانا بلا تکلف جائز۔ ۶۱۵: سوم وغیرہ کے چنے فقراء میں تقسیم کر دیئے جائیں اغنیاء اور کفار کو نہ دیں۔ ۶۱۵: سوم کے چنے غنی بچوں کو بھی نہ کھلائے جائیں۔ ۶۱۵: میں مرد کوئی چیز طلب کرے تو اس چیز پر فاتحہ دلانا اور فاتحہ میں پانی رکھنا جائز ہے۔ ۶۱۶: آٹے کے چراغ میں گھی ڈال کر فاتحہ دلانا۔ ۶۱۶: فاتحہ میں کپڑے، جوتے وغیرہ مسکین کو دینے کی نیت خواب سے رکھنا جائز ہے مگر گھی چراغ جلانا فضول ہے۔ ۶۱۶: ایصال چند ناموں سے کیا جائے تو ہر ایک کو پورا ثواب ملے گا یا نہیں۔

(بائیں کالم کا انڈیکس) ۶۲۱: حضور اکرم صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کو ایصال ثواب کرنے میں دوسروں کو شامل کرنا۔ ۶۲۱: چند ناموں سے فاتحہ کیا جائے تو ہر ایک کو پورا ثواب ملے گا۔ ۶۲۱: ایصال ثواب کا طریقہ اور فاتحہ کرنے کا فائدہ۔ ۶۲۲: امام ابن حجر مکی رحمۃ اللہ علیہ کی ایک عبارت سے انقسام ثواب پر استدلال کا جواب۔ ۶۲۹: نا بالغ بچہ ایصال ثواب کر سکتا ہے یا نہیں ۔ ۶۳۲: ششماہی، سالانہ، عرس کرنا اور عرس وغیرہ کی شیرینی کھانے والے کے لیے جنت مقام و دوزخ حرام کہنا۔ ۶۳۳: ایصال ثواب یا کفارہ میں قرآن شریف دینا اور ڈھیلوں پر دم کر کے

قبر میں رکھنا۔ ۶۴۴: تلاوت پر اجرت لینا اور دینا جائز ہے۔ ۶۴۴: قرآن خوانی کرنے والوں کو بطور اجرت کھانا کھلانا حرام۔ ۶۴۶: قرآن خوانی کی اجرت حرام ہے اور اس کے جواز کی ایک صورت۔ ۶۴۶: تلاوت و تہلیل میں اجرت لینا حرام۔ ۶۴۶: المعروف کالمشروط کا مطلب۔ ۶۴۶: معصیت میں قطعی اور غیر قطعی کا فرق نہیں ہوتا۔ ۶۴۶: تابوت لے جانے میں ہر جانب دس دس قدم لے کر چلنا اور اگر چالیس سے کم قبرستان ہو تو کیا کرے۔

Fatawa Razawiyya Volume Nine

Taking wages for leading funeral prayers or visiting graves. | 646 | According to the majority of Imams, a Mursal Hadith with a disconnected chain is a proof. | 651 Reciting the Holy Quran or Milad Sharif and then taking charity. | 646 | According to Imam-e-Azam (may Allah be pleased with him), a Mauquf Hadith that is not Marfu' (the saying of a companion) is a proof. | 651 Can a Muslim heir feed Muslims on behalf of a deceased disbeliever (kafir)? | 646 | The world is a paradise for a disbeliever and a prison for a believer. | 651 Conveying reward (Isal-e-Sawab) for a disbeliever or from their wealth is not permissible. | 647 | When a Muslim dies, their path is opened to go wherever they wish. | 651 Conveying reward to disbelievers and apostates is forbidden (haram). | 648 | The souls of Muslims have the authority to go wherever they wish. | 652 If a Hindu gives money for Milad etc. to convey reward to their deceased, taking it is not permissible. | 648 | The soul of a disbeliever is imprisoned in Sijjin. | 652 Treatise 'Atiyan al-Arwah' (Souls visit homes). | 649 | The souls of martyrs are in Paradise and they visit the graves of Muslims wherever they wish. | 652 Doing charity for the deceased for seven days is commendable (Mustahab). | 649 | The souls of the Friends of Allah (may their secrets be sanctified) go wherever they wish in the earth, sky, and paradise. | 653 Giving charity on behalf of the deceased is beneficial for them, without disagreement among scholars. | 649 | Souls released on Friday night spread out; first they come to their graves then to their homes. | 653 The souls of believers come to the doors of their homes on Thursdays, Eid, Ashura, and Shab-e-Barat and say, "O people of our house! Be kind to us through charity." | 650 | For matters not related to fundamental beliefs (Aqa'id) or rulings of Halal and Haram, one or two chains of narration are sufficient. | 653 Restricting reliance only to authentic, elevated, and continuous narrations is extreme ignorance. | 651 | It is a misconception that the issue of souls returning to homes belongs to fundamental beliefs, therefore requiring famous and recurrent authentic narrations. | 654 Restricting authentic books (Sahah) only to the 'Six Books' (Kutub al-Sittah) is foolishness. | 651 | Every informative sentence affirming or denying something does not belong to the chapter of fundamental beliefs. | 654 A 'Hasan' Hadith is a proof by consensus. | 651 | In biographies (Siyar), battles (Maghazi), and virtues (Manaqib), both authentic and weak narrations are acceptable. | 654 In matters other than fundamental beliefs and rulings of Halal and Haram, a weak (Dha'if) Hadith is a proof by consensus. | 651 | |

फ़तावा रज़विया जिल्द नौ

नमाज़-ए-जनाज़ा पढ़ाने या कब्रों की ज़ियारत करने के लिए मज़दूरी लेना। | 646 | अधिकांश इमामों के अनुसार, कटी हुई सनद वाली 'मुरسل' हदीस प्रमाण (हुज्जत) है। | 651 कुरान शरीफ या मिलाद शरीफ पढ़कर खैरात (दान) लेना। | 646 | इमाम-ए-आज़म (रज़ियल्लाहु अन्हु) के अनुसार, 'मौक़ूफ़' हदीस जो 'मरफ़ू' नहीं है (अर्थात सहाबी का कथन), वह प्रमाण है। | 651 क्या एक मुस्लिम वारिस काफ़िर मृतक की ओर से मुसलमानों को खाना खिला सकता है? | 646 | दुनिया काफ़िर के लिए जन्नत और मोमिन के लिए कैदखाना है। | 651 काफ़िर के लिए या काफ़िर की संपत्ति से ईसाले-सवाब पहुँचाना जायज़ नहीं है। | 647 | जब एक मुसलमान मरता है, तो उसके लिए रास्ता खोल दिया जाता है कि वह जहाँ चाहे जाए। | 651 काफ़िरों और मुर्तद (धर्मत्यागी) को ईसाले-सवाब पहुँचाना हराम है। | 648 | मुसलमानों की रूहों (आत्माओं) को जहाँ वे चाहें जाने का अधिकार है। | 652 यदि कोई हिंदू अपने मृतक के ईसाले-सवाब के लिए मिलाद आदि के वास्ते पैसे दे, तो उसे लेना जायज़ नहीं है। | 648 | काफ़िर की रूह 'सज्जीन' में कैद होती है। | 652 रिसाला 'अतियानुल अरवाह' (रूहें घर आती हैं)। | 649 | शहीदों की रूहें जन्नत में हैं और वे मुसलमानों की कब्रों पर जहाँ चाहें आती-जाती हैं। | 652 मृतक के लिए सात दिनों तक सदक़ा (दान) करना मुस्तहब (पसंदीदा) है। | 649 | औलिया अल्लाह (अल्लाह के मित्र, अल्लाह उनके रहस्यों को पवित्र करे) की रूहें ज़मीन, आसमान और जन्नत में जहाँ चाहें जाती हैं। | 653 मृतक की ओर से सदक़ा करना, विद्वानों के बीच बिना किसी मतभेद के, मृतक के लिए लाभकारी है। | 649 | रूहें जुमे की रात (गुरुवार की रात) को छुट्टी पाकर फैलती हैं; पहले वे अपनी कब्रों पर आती हैं, फिर अपने घरों में। | 653 मोमिनों की रूहें गुरुवार, ईद, आशूरा और शबे-बारात को अपने घरों के दरवाज़ों पर आकर कहती हैं: "ऐ हमारे घर वालो! हम पर सदक़े के ज़रिए मेहरबानी करो।" | 650 | जो मसला अक़ाइद (धर्मसिद्धांतों) और हलाल व हराम के अहकाम से संबंधित न हो, उसके लिए एक-दो सनद (प्रमाण) काफी होते हैं। | 653 केवल सहीह, मरफ़ू और मुत्तसिल हदीसों पर ही भरोसा करना घोर अज्ञानता है। | 651 | यह गुमान (धारणा) गलत है कि रूहों का घरों में आना अक़ाइद का मसला है, इसलिए इसके लिए मशहूर और मुतवातिर सहीह हदीसों की ज़रूरत है। | 654 'सिहाह' (प्रामाणिक किताबों) को केवल 'कुतुब-ए-सित्ता' (छह किताबों) तक सीमित रखना मूर्खता है। | 651 | हर वह खबरिया वाक्य जिसमें किसी बात का इक़रार (पुष्टि) या इन्कार (निषेध) हो, अक़ाइद के अध्याय से संबंधित नहीं होता। | 654 'हदीस-ए-हसन' सर्वसम्मति से प्रमाण है। | 651 | जीवनी (सियर), युद्धों

(मग़ाज़ी) और गुणों (मनाक़िब) में सहीह और ज़ईफ़ (कमज़ोर) दोनों तरह की हदीसें स्वीकार्य हैं। | 654 अक़ाइद और हलाल व हराम के नियमों के अलावा अन्य मामलों में, ज़ईफ़ हदीस सर्वसम्मति से प्रमाण है। | 651 | |

نمازِ جنازہ پڑھانے یا زیارتِ قبور کی اجرت لینا۔ | ۶۴۶ | جمہور ائمہ کے نزدیک حدیثِ مرسلِ غیر متصل الاسناد حجت ہے۔ | ۶۵۱ قرآن شریف یا میلاد شریف پڑھ کر خیرات لینا۔ | ۶۴۶ | امام اعظم رضی اللہ تعالیٰ عنہ کے نزدیک حدیث موقوف غیر مرفوع قول صحابی حجت ہے۔ | ۶۵۱ کیا مسلمان وارث کافر مردہ کی طرف سے مسلمانوں کو کھانا کھلا سکتا ہے۔ | ۶۴۶ | دنیا کافر کی بہشت اور مومن کا قید خانہ ہے۔ | ۶۵۱ کافر کے لیے یا کافر کے مال سے ایصالِ ثواب کرنا جائز نہیں۔ | ۶۴۷ | جب مسلمان مرتا ہے تو اس کی راہ کھول دی جاتی ہے کہ جہاں چاہے۔ | ۶۵۱ کفار اور مرتد کو ایصالِ ثواب حرام ہے۔ | ۶۴۸ | مسلمانوں کی روحیں جہاں چاہیں جانے کا اختیار رکھتی ہیں۔ | ۶۵۲ ہندو اپنے مردہ کو ایصالِ ثواب کے لیے میلاد وغیرہ کے واسطے روپیہ دے، لینا جائز نہیں۔ | ۶۴۸ | کافر کی روح سجین میں مقید ہوتی ہے۔ | ۶۵۲ رسالہ اتیان الارواح (گھر پر روحیں آتی ہیں) | ۶۴۹ | شہیدوں کی روحیں جنت میں ہیں اور مسلمانوں کی فنائے قبور پر جہاں چاہیں آتی جاتی ہیں۔ | ۶۵۲ میت کے لیے سات دن صدقہ کرنا مستحب ہے۔ | ۶۴۹ | اولیاء اللہ قدست اسرارہم کی روحیں زمین، آسمان اور جنت میں جہاں چاہیں جاتی ہیں۔ | ۶۵۳ میت کی طرف سے صدقہ کرنا بلا اختلاف علماء میت کے لیے نافع ہے۔ | ۶۴۹ | روحیں شب جمعہ چھٹی پاکر پھیلتی ہیں پہلے اپنی قبور پر آتی ہیں پھر اپنے گھروں میں۔ | ۶۵۳ ارواحِ مومنین جمعرات، عید، عاشورہ اور شبِ برات کو اپنے گھروں کے دروازے پر آکر کہتی ہیں اے ہمارے گھر والو! ہم پر صدقہ کے ذریعے مہربانی کرو۔ | ۶۵۰ | جو مسئلہ عقائد اور احکام حلال و حرام کا نہ ہو اس کے لیے دو ایک سندیں کافی ہوتی ہیں۔ | ۶۵۳ استناد کا روایات صحیحہ مرفوعہ متصلۃ الاسناد میں حصر جہل شدید ہے۔ | ۶۵۱ | یہ گمان غلط ہے کہ ارواح کے گھروں

کو آنے کا مسئلہ عقائد کا ہے لہذا اس کے لیے مشہور و متواتر صحاح کی حاجت ہے۔ | ۶۵۴ صحاح کا صرف کتبِ ستہ پر قصر حماقت ہے۔ | ۶۵۱ | ہر جملہ خبریہ جس میں کسی بات کا ایجاب یا سلب ہو بابِ عقائد سے نہیں ہوتا۔ | ۶۵۴ حدیث حسن بالاجماع حجت ہے۔ | ۶۵۱ | سیر، مغازی اور مناقب میں صحاح و ضعاف مقبول ہیں۔ | ۶۵۴ غیر عقائد و احکامِ حلال و حرام میں حدیثِ ضعیف بالاجماع حجت ہے۔ | ۶۵۱ | |

Fatawa Razawiya, Volume 9

Page	Subject
655	Doubtful authentic narrations are rejected in matters of belief.
655	The author of Barahin-e-Qati'ah rejected authentic hadiths indicating the vastness of the Prophet's (PBUH) knowledge, yet in the same derogatory manner towards great knowledge, cited a baseless and unauthenticated anecdote as proof.
655	The narration "I do not know what is behind the wall" is baseless according to Sheikh Abdul Haq Muhaddith Dehlawi.
656	Anyone claiming to deny the return of souls to homes is a blatant liar.
656	Absence of proof is not proof of absence.
656	Denial without evidence is mere arbitrariness and oppression.
656	If the return of souls belongs to the realm of beliefs, then both its denial and affirmation must be treated as such, and a definitive proof would be required even for a claim of denial.
656	No Hadith mentions that the return of souls to homes is false or incorrect.
656	
658	Example in Hadith of punishment being for both the soul and the body.
658	The station of the soul after death varies according to individual ranks.
658	Seeing a deceased loved one in a dream sometimes also affects the deceased.
658	The soul is an entity by the command of the Lord, and its perceptions remain.
658	The deceased is aware of those who visit the grave.
659	A Muslim who dies on Friday night, Friday day, or during Ramadan will be safe from the questioning of Munkar-Nakir and the punishment of the grave.
659	The notion of one person's soul being taken instead of another's is purely incorrect; angels do not make mistakes.
656	Feast of the deceased.
661	

Page	Subject
	A claim without evidence is purely false and ignominious.
657	After death, the deceased maintains relationships with their loved ones just as in worldly life.
657	Where do the souls of believers reside?
658	The grief felt by relatives upon death affects the deceased.
658	Punishment and reward are for both the soul and the body.

Page	Subject
	Treatise: 'Jali al-Sawt li-Nahyi ad-Da'wati Amama Mawt' (Description regarding food at the house of the deceased).
662	Hosting a feast at the house of the deceased is unlawful and a detestable innovation.
662	Providing a feast on behalf of the deceased's family is prohibited because Sharia has established feasts for joy, not for mourning; this is supported by nearly sixteen statements from jurists.
663	There is no harm in sitting for three days for condolences, provided no prohibited act is committed.
663	Meals prepared on the first day, third day, or a week after the death are all disliked and prohibited.

फ़तावा रज़विया, जिल्द 9

पृष्ठ	विषय
655	अक़ाइद में संदिग्ध सही हदीसें खारिज हैं।
655	साहिब-ए-बराहिन-ए-क़ातेअ ने रसूलुल्लाह (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) के इल्म की वअसत पर दलालत करने वाली सही हदीसों को खारिज कर दिया, लेकिन वहीं इल्म-ए-अज़ीम की तनक़ीस (कमी) के लिए एक बे-असल और बे-सनद कहानी को दलील के तौर पर पेश किया।
655	यह रिवायत कि "मुझे दीवार के पीछे का इल्म नहीं" शैख़ अब्दुल हक़ मुहद्दिस देहलवी के नज़दीक बे-असल है।
656	रूहों के घरों में आने का इनकार करने वाला झूठा और कज़्ज़ाब है।
656	सबूत का न होना, न होने का सबूत नहीं है।
656	बिना दलील के इनकार करना महज़ ज़बरदस्ती और ज़ुल्म है।
656	रूहों का आना अगर अक़ाइद का हिस्सा है, तो इनकार और इकरार दोनों ही उसी नज़रिए से होंगे और इनकार के लिए भी क़तई दलील की ज़रूरत होगी।
658	हदीस में रूह और जिस्म दोनों को अज़ाब होने का उदाहरण।
658	मौत के बाद रूह का मकाम दर्जों के हिसाब से अलग-अलग होता है।
658	ख्वाब में किसी मरहूम अज़ीज़ को देखने का असर कभी मरहूम पर भी पड़ता है।
658	रूह रब्बे करीम के हुक्म से एक चीज़ है और इसके अहसासात बाक़ी रहते हैं।
658	क़ब्र पर आने वालों का इल्म मय्यित को होता है।
659	शबे जुमा, जुमा के दिन और रमज़ान में मरने वाला मुसलमान मुनकर-नकीर के सवाल और अज़ाब-ए-क़ब्र से महफ़ूज़ रहेगा।
659	एक की जगह दूसरे की रूह क़ब्ज़ होना सरासर गलत है, फ़रिश्ते गलती नहीं करते।

पृष्ठ	विषय
656	किसी हदीस में नहीं आया कि रूहों का घरों को आना बातिल और गलत है।
656	बिना दलील का दावा महज़ बातिल और ज़लील है।
657	मरने के बाद मय्यित के अपने अज़ीज़ों से वैसे ही ताल्लुकात रहते हैं जैसे दुनिया की ज़िंदगी में थे।
657	मोमिनों की रूहें कहाँ रहती हैं।
658	मौत पर अज़ीज़ों को जो सदमा होता है उसका असर मय्यित पर होता है।
658	अज़ाब और सवाब रूह और जिस्म दोनों के लिए है।
656	दावत-ए-मय्यित।
661	रिसाला: 'जली अल-सौत लि-नहयि अद-दा'वति अमामा मौत' (मय्यित के घर के खाने का बयान)।
662	अहल-ए-मय्यित के यहाँ दावत नाजायज़ और बुरी बिदअत है।
662	अहल-ए-मय्यित की तरफ़ से खाने की ज़ियाफ़त मना है क्योंकि शरीयत ने ज़ियाफ़त खुशी में रखी है, गम में नहीं। इस पर फ़ुक़्हा की लगभग सोलह इबारतों से ताईद।
663	मुसीबत के लिए तीन दिन बैठने में कोई हर्ज नहीं है, बशर्ते कि कोई मना किया हुआ काम न किया जाए।
663	मय्यित के पहले दिन या तीसरे दिन या हफ्ते बाद जो खाने तैयार कराए जाते हैं, वे सब मकरूह और मना हैं।

فتاوی رضویہ، جلد نہم

صفحہ	موضوع
۶۵۵	عقائد میں صحاح ظنیات مردود ہیں۔
۶۵۵	صاحب براہین قاطعہ نے وسعتِ علم رسول صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم پر دال صحیح احادیث کو مردود ٹھہرایا اور وہیں اسی منہ تنقیصِ علمِ عظیم پر ایک بے اصل اور بے سند حکایت کے سند لایا۔
۶۵۵	یہ روایت کہ "مجھ کو دیوار کے پیچھے کا علم نہیں" شیخ عبدالحق محدث دہلوی کے نزدیک بے اصل ہے۔
۶۵۶	ارواح گھروں کو آنے سے متعلق دعویٰ نفی کرنے والا جھوٹا کذاب ہے۔
۶۵۶	عدم ثبوت، ثبوت عدم نہیں ہوتا۔
۶۵۶	بے دلیل عدم، ادعائے عدم محض تحکم و ستم ہے۔
۶۵۸	روح و جسم دونوں کے معذب ہونے کی مثال حدیث میں۔
۶۵۸	روح کا مقام بعد موت حسب مراتب مختلف ہے۔
۶۵۸	خواب میں کسی مرحوم عزیز کو دیکھنے کا اثر کبھی مرحوم پر بھی پڑتا ہے۔
۶۵۸	روح حکم ربی سے ایک شئی ہے اور اس کے ادراکات باقی رہتے ہیں۔
۶۵۸	قبر پر آنے والوں کا علم میت کو ہوتا ہے۔
۶۵۹	

صفحہ	موضوع
	روحوں کا آنا اگر باب عقائد سے ہے تو نفیًا
۶۵۶	واثباتاً ہر طرح اسی باب سے ہو گا اور دعویٰ نفی کے لیے بھی دلیل قطعی درکار ہوگی۔
۶۵۶	کسی حدیث میں نہیں آیا کہ روحوں کا گھروں کو آنا باطل و غلط ہے۔
۶۵۶	ادعائے بے دلیل محض باطل وذلیل ہے۔
۶۵۷	مرنے کے بعد میت کے اپنے عزیزوں سے اس طرح تعلقات رہتے ہیں جیسے حیاتِ دنیا میں۔
۶۵۷	ارواح مومنین کس جگہ رہتی ہیں۔
۶۵۹	ایک کی جگہ دوسرے کی روح قبض ہونا محض غلط ہے، فرشتے غلطی نہیں کرتے۔
۶۵۶	دعوتِ میت
۶۶۱	رسالہ جلی الصوت لنہی الدعوۃ امام موت (میت کے گھر کے کھانے کا بیان)
۶۶۲	اہل میت کے ہاں دعوت ناجائز اور بدعتِ شنیعہ قبیحہ ہے۔
۶۶۲	اہل میت کی طرف سے کھانے کی ضیافت منع ہے کیونکہ شرع نے ضیافت خوشی میں رکھی ہے نہ کہ غمی میں، اس پر تقریباً سولہ عبارات فقہاء سے تائید۔
	شبِ جمعہ، روز جمعہ اور رمضان میں مرنے والا مسلمان سوال نکیرین اور عذاب قبر سے محفوظ رہے گا۔

صفحہ	موضوع
۶۵۸	موت سے عزیزوں پر جو صدمہ ہوتا ہے اس کا اثر میت پر ہوتا ہے۔
۶۵۸	عذاب و ثواب روح و جسم دونوں کے لیے ہے۔

صفحہ	موضوع
۶۶۳	مصیبت کے لیے تین دن بیٹھنے میں کوئی مضائقہ نہیں جبکہ کسی امر ممنوع کا ارتکاب نہ کیا جائے۔
۶۶۳	میت کے پہلے دن یا تیسرے دن یا ہفتہ بعد جو کھانے تیار کرائے جاتے ہیں سب مکروہ و ممنوع ہیں۔

Volume 9 Fatawa Rizvia

Page No.	Content	Page No.	Content
663	Acts of fame and showing off should be avoided.	673	Eating the food from a funeral feast is prohibited for the wealthy in every way; it makes no difference whether the person made provisions for their death during their life or not.
664	If any heir is a minor, or an adult who is absent, or present but their permission hasn't been obtained, it is strictly forbidden (haram) to host a feast from the deceased's inheritance.	675	Treatise: Hayat al-Mawat fi Bayan Sama' al-Amwat (A reasoned explanation of the dead seeing and hearing their visitors, etc.).
664	Severe warning against consuming an orphan's property.	676	This research treatise consists of an introduction, three objectives, and a conclusion.
665	It is good to have food cooked for giving to the needy, provided an adult of sound mind does so from their own personal wealth.	677	A mufti's fatwa in which addressing the people of the graves was declared shirk (polytheism) or at least having a semblance or suspicion of shirk.
665	If all heirs are present, adults, and consenting, the needy can be fed from the inheritance as well.	679	A rebuttal of the aforementioned mufti's fatwa and those of his same school of thought based on four hundred reasons.
665	Women gathering at the deceased's house and performing objectionable acts which fall under wailing (niyaha); and wailing is forbidden.	679	First objective: On objections and the removal of doubts.
666		679	

Page No.	Content
	Giving interest without Sharia necessity is also a cause of curse, just like taking interest.
666	On the first day of death, it is Sunnah for relatives and neighbors to cook and send enough food to the family of the deceased for two meals.
667	Food for the third day (Soyem), tenth day (Daham), fortieth day (Chehlum), etc., should be given to the poor. Distributing it to the brotherhood or gathering the brotherhood to eat it is meaningless.
668	It is a matter of experience that those who desire the food of the deceased, their hearts die. Thus, it is said: "The food of the dead kills the heart." Research and details on the permissibility of cooking food for Chehlum, etc., and the statement that only the poor should eat it, not the general brotherhood or the wealthy.
672	Regarding the food from the house of the deceased, the chickpeas and sweets (batashe) of the third day (Soyem), etc., for the wealthy.
	Thirty-five (35) objections to the opponent's writing in two types.
679	Type one: Regarding the intended objections.
680	It is not impossible for the people of the graves to hear someone's voice or see someone; it is neither intellectually (aqlan), nor legally (shar'an), nor customarily (aadi) impossible.
680	People of this world can only see angels as a miracle (kharq-e-aadat), whereas the people of Barzakh (intermediary state after death) generally see them.
680	Intellectual impossibility does not pertain to a valid connection of permission, and Sharia impossibility will never be related to permission.
680	Every customary impossibility is intellectually possible; therefore, belief in a customary impossibility is a belief in possibility.

जिल्द नहम (भाग 9) फतावा रज़विया

पृष्ठ संख्या	सामग्री	पृष्ठ संख्या	सामग्री
६६३	प्रसिद्धि और दिखावे के कामों से बचना चाहिए।	६७३	मृत व्यक्ति की दावत का खाना अमीरों के लिए हर तरह से मना है, इसमें अपने जीवन में ही अपनी मृत्यु का इंतज़ाम करने वाला या न करने वाला बराबर है।
६६४	यदि वारिसों में कोई नाबालिग हो या बालिग हो मगर अनुपस्थित हो, या उपस्थित हो मगर उससे अनुमति लिए बिना मृत व्यक्ति की विरासत से दावत करना सख्त हराम है।	६७५	रिसाला: हयातुल मवात फी बयान समाअल अवात (मृतकों के आगंतुकों को देखने और सुनने आदि का सप्रमाण वर्णन)।
६६४	यतीम का माल खाने पर सख्त चेतावनी।	६७६	यह शोध पुस्तिका एक प्रस्तावना, तीन उद्देश्यों और एक उपसंहार पर आधारित है।
६६५	ज़रूरतमंदों को देने के लिए खाना पकवाना अच्छा है, बशर्ते कि कोई समझदार और बालिग अपने निजी धन से करे।	६७७	एक मुफ्ती का फतवा जिसमें कब्र वालों को संबोधित करने को शिर्क या कम से कम शिर्क का आभास और संदेह घोषित किया गया।
६६५	यदि सभी वारिस मौजूद, बालिग और सहमत हों, तो विरासत से भी ज़रूरतमंदों को खाना खिलाया जा सकता है।	६७९	उक्त मुफ्ती के फतवे और उनके हम-मजहबों पर चार

पृष्ठ संख्या	सामग्री
६६५	औरतें मृत व्यक्ति के घर जमा होकर नापसंद कार्य करती हैं जो विलाप (नियाहत) में शामिल हैं और विलाप हराम है।
६६६	शरीयत की ज़रूरत के बिना ब्याज देना भी ब्याज लेने की तरह लानत का कारण है।
६६६	मृत्यु के पहले दिन रिश्तेदारों और पड़ोसियों के लिए सुन्नत है कि मृत व्यक्ति के परिवार के लिए इतना खाना पकाकर भेजें जिसे वे दो समय खा सकें।
६६७	तीजा (सोयम), दसवां, चालीसवां (चेहलम) आदि का खाना गरीबों को दिया जाना चाहिए, बिरादरी में बांटना या बिरादरी को इकट्ठा करके खिलाना अर्थहीन है।
६६८	यह अनुभव की बात है कि जो मृत व्यक्ति के भोजन की इच्छा रखते हैं, उनके दिल मर जाते हैं। जैसा कि कहा जाता है: "मृतक का भोजन दिल को मार देता है।" चेहलम आदि पर खाना पकाने की अनुमति पर शोध और विवरण, और इस बात का बयान कि इसे केवल गरीब खाएं न कि आम बिरादरी वाले और अमीर।
६७२	मृत व्यक्ति के घर का खाना, तीजा (सोयम) आदि के चने और बताशे आदि अमीरों के लिए कैसे हैं।
६७९	सौ कारणों से पकड़ (खण्डन)।
६७९	पहला उद्देश्य: आपत्तियों और शंकाओं के निवारण के बारे में।
६७९	विरोधी लेखन पर दो प्रकारों में पैंतीस (३५) आपत्तियाँ।
६७९	प्रकार एक: लक्षित आपत्तियों के बारे में।
६८०	कब्र वालों का किसी की आवाज़ सुनना या किसी को देखना असंभव नहीं है, न तो अक्ल से, न शरीयत से और न ही आदत से।
६८०	दुनिया वाले फरिश्तों को केवल चमत्कार (खर्क़ए-आदत) के रूप में ही देख सकते हैं, जबकि बर्ज़ख (मृत्यु के बाद की स्थिति) के लोग आम तौर पर देखते हैं।
६८०	अक्ल के अनुसार असंभव होने का सही संबंध अनुमति से नहीं है, और शरीयत के अनुसार असंभव होने का

पृष्ठ संख्या	सामग्री
	संबंध कभी भी अनुमति से नहीं होगा।
६८०	हर आदत के अनुसार असंभव कार्य अक्ल के अनुसार संभव होता है, इसलिए आदत के अनुसार असंभव का विश्वास, संभव का विश्वास है।

صفحہ نمبر	مضمون
۶۶۳	ناموری اور دکھاوے کے کاموں سے احتراز کیا جائے۔
۶۶۴	ورثا میں کوئی نابالغ ہو یا بالغ ہو مگر غیر موجود ہو یا موجود ہو مگر اس سے اذن لیے بغیر ترکہ میت سے ضیافت کرنا حرام شدید ہے۔
۶۶۴	یتیم کا مال کھانے پر سخت وعید۔
۶۷۳	دعوت میت کا کھانا اغنیاء کے لیے ہر طرح ممنوع ہے اس میں اپنی حیات میں ہی اپنی موت کرنے والا یا نہ کرنے والا برابر ہے۔
۶۷۵	رسالہ حیات الموات فی بیان سماع الاموات (اموات کے زائروں کو دیکھنے اور سننے وغیرہ کا مدلل بیان)
۶۷۶	یہ تحقیقی رسالہ ایک مقدمہ، تین مقاصد اور خاتمہ پر مشتمل ہے۔

صفحہ نمبر	مضمون
۶۶۵	محتاجوں کو دینے کے لیے کھانا پکوانا خوب ہے بشرطیکہ کوئی عاقل و بالغ اپنے مال خاص سے کرے۔
۶۶۵	سب وارث موجود و بالغ اور راضی ہوں تو ترکہ سے بھی محتاجوں کو کھانا کھلایا جا سکتا ہے۔
۶۶۵	عورتیں اہل میت کے ہاں جمع ہو کر افعال منکرہ کرتی ہیں جو نیاحت میں داخل ہیں اور نیاحت حرام ہے۔
۶۶۶	بلا ضرورت شرعیہ سود دینا بھی سود لینے کی طرح باعث لعنت ہے۔
۶۶۶	میت کے پہلے روز عزیزوں اور ہمسایوں کو مسنون ہے کہ اہل میت کے لیے اتنا کھانا پکو ا کر بھیجیں جسے وہ دو وقت کھا سکیں۔
۶۶۷	سوم، دہم، چہلم وغیرہ کا کھانا مساکین کو دیا جائے، برادری کو تقسیم یا برادری کو جمع کر کے کھلانا بے معنی ہے۔
۶۷۷	ایک مفتی کا فتویٰ جس میں اہل قبور کو خطاب شرک یا کم از کم شائبہ و شبہ شرک قرار دیا گیا۔
۶۷۹	اس مفتی کے فتویٰ مذکور اور اس کے ہم مذہبوں پر چار سو وجوہ سے گرفت۔
۶۷۹	مقصد اول اعتراضات وازالہ شبہات میں۔
۶۷۹	تحریر مخالف پر پینتیس ۳۵ اعتراض دو نوع میں۔
۶۷۹	نوع اول اعتراضات مقصودہ میں۔
۶۸۰	اہل قبور کا کسی کی آواز کو سننا یا کسی کو دیکھنا محال

صفحہ نمبر	مضمون	صفحہ نمبر	مضمون
			نہیں، نہ محال عقلی نہ شرعی نہ عادی۔
۶۶۸	تجربہ کی بات ہے کہ جو طعام میت کے متمنی رہتے ہیں ان کے دل مر جاتے ہیں۔ چنانچہ کہا جاتا ہے: طعام المیت یمیت القلب۔ چہلم وغیرہ پر کھانا پکانے کے جواز کی تحقیق و تفصیل، اور اس بات کا بیان کہ اسے صرف فقراء کھائیں نہ کہ عام برادری والے اور اغنیاء۔	۶۸۰	اہل دنیا ملائکہ کو بطور خرق عادت ہی دیکھ سکتے ہیں جبکہ اہل برزخ عموماً دیکھتے ہیں۔
۶۷۲	اہل میت کے گھر کے کھانے، سوم وغیرہ کے چنے اور بتاشے وغیرہ اغنیاء کے لیے کیسے ہیں۔	۶۸۰	محال عقلی صالح تعلق اذن نہیں اور محال شرعی سے ہرگز اذن متعلق نہ ہوگا۔
		۶۸۰	ہر محال عادی ممکن عقلی ہوتا ہے لہذا محال عادی کا اعتقاد، ممکن کا اعتقاد ہے۔

Fatawa-e-Razvia - Volume 9

[Index of Topics]

Right Column (Page Number): - Shirk-e-Azam is the belief in intellectual impossibilities. (680) - To believe that an intellectual possibility is shirk is an intellectual impossibility of manifest corruption. (680) - No one can say that their deeds are definitely accepted. (681) - It is narrated from many great saints and scholars that they asked people for help at times of Sharia necessity. (681) - An angel, granted by Allah the power to hear the voice of the entire world, is present at the Luminous Grave and conveys the blessings (salawat) of the reciters to the presence of the Holy Prophet (peace and blessings of Allah be upon him). (682) - The Najdi sellers of shirk-accusations have neither seen Allah Almighty's power nor understood His greatness. (683) - It is not necessary to see someone's face to hear their speech. (683) - Not every wrong statement is shirk. (684) - In no verse of the Holy Quran is visiting graves and addressing them called shirk. (684) - The reasoning of the aforementioned Mufti from the noble verse of Surah Yusuf is incorrect. (684) - People have become hopeless regarding the dwellers of the graves. (685) - Another Category: Refutation of contrary writing through the sayings of the elders of the Aziz family. (685) - Shah Waliullah Muhaddith Dehlawi says: Facing towards the saints while sitting at home, recite Fatiha. (685) - He himself says: Visit the shrines of the saints and beg, seek blessings from the souls, and call out 'O Spirit! O Spirit!'. (685) - Shah Abdul Aziz states that those in need ask for their needs from the souls of the saints and receive them. (687)

Left Column (Page Number): - The connection of Uwaisiyat is correct and strong. (687) - Gaining benefit and advantage from buried saints continues. (688) - Mirza Mazhar Jan-e-Janan used to turn towards Maula Ali (may Allah honor his face) during illnesses. (688) - The kindness of Hazrat Maula Ali (may Allah honor his face). (688) - Shah Abdul Rahim Sahib learned etiquette from the soul of his grandfather, Sheikh Rafiuddin. (689) - Another Category: Discussion on the belief in benefit and harm. (690) - Refutation of the incorrect reasoning from the noble Hadith "Whoever swears by other than Allah has committed shirk." (690) - Considering someone other than God as beneficial or harmful is not absolutely shirk as long as they are not considered independent in essence. (691) - Believing someone other than God to be beneficial or harmful, but not independent in essence, is not shirk. (691) - Proof from the Holy Quran that someone other than God can be a cause of benefit or harm. (691) - Proof from Hadiths that someone other than God can be a cause of benefit or

harm. (691) - Hazrat Ali Murtaza (may Allah be pleased with him) declared the Black Stone (Hajar-e-Aswad) as beneficial and harmful. (692) - Shah Abdul Aziz Sahib called Pharaoh the master of benefit and harm. (692)

फ़तावा-ए-रज़विया - जिल्द नहुम

[विषय अनुक्रमणिका]

दायां कॉलम (पृष्ठ संख्या): - शिर्कए-आज़म तर्कहीन असंभवताओं का विश्वास है। (६८०) - किसी बौद्धिक संभावना के विश्वास को शिर्क कहना स्वयं एक बौद्धिक असंभवता और स्पष्ट भ्रष्टाचार है। (६८०) - कोई यह नहीं कह सकता कि उसके कर्म निश्चित रूप से स्वीकृत हैं। (६८१) - कई महान संतों और विद्वानों से धार्मिक आवश्यकता के समय लोगों से मदद मांगना वर्णित है। (६८१) - एक फ़रिश्ता, जिसे अल्लाह तआला ने पूरी दुनिया की आवाज़ सुनने की शक्ति प्रदान की है, रौज़ा-ए-अनवर (पवित्र कब्र) पर हाज़िर रहता है और दरूद पढ़ने वालों का दरूद हुज़ूर अक़दस (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) की ख़िदमत में पहुँचाता है। (६८२) - नजद के शिर्क बेचने वालों ने न तो खुदा की कुदरत देखी और न ही उसकी अज़मत (महिमा) को समझा। (६८३) - किसी की बात सुनने के लिए उसका चेहरा देखना ज़रूरी नहीं है। (६८३) - हर गलत बात शिर्क नहीं होती। (६८४) - कुरान मजीद की किसी भी आयत में कब्रों पर जाकर बात करने या उन्हें संबोधित करने को शिर्क नहीं कहा गया है। (६८४) - उक्त मुफ़्ती का सूरह यूसुफ़ की आयत-ए-करीमा से दिया गया तर्क गलत है। (६८४) - लोग कब्र वालों से निराश हो बैठे हैं। (६८५) - एक और श्रेणी: अज़ीज़ी परिवार के बड़ों के कथनों के माध्यम से विरोधी लेखन का खंडन। (६८५) - शाह वलीउल्लाह मुहद्दिस देहलवी फरमाते हैं: घर बैठे ही औलिया (संतों) की ओर ध्यान लगाकर फातिहा पढ़ो। (६८५) - वही फरमाते हैं कि संतों की मज़ारों पर हाज़िर होकर भीख मांगो, उनकी आत्माओं से कृपा चाहो और 'या रूह, या रूह' (हे आत्मा!) पुकारो। (६८५) - शाह अब्दुल अज़ीज़ का इरशाद है कि ज़रूरतमंद संतों की आत्माओं से अपनी हाजतें (ज़रूरतें) मांगते हैं और उन्हें पाते हैं। (६८७)

बायां कॉलम (पृष्ठ संख्या): - उवैसियत का संबंध सही और मज़बूत है। (६८७) - दफ़न संतों से लाभ और फ़ायदा उठाना जारी है। (६८८) - मिर्ज़ा मज़हर जान-ए-जानाँ बीमारियों में मौला अली (करम अल्लाह वजहुल करीम) की ओर ध्यान लगाते थे। (६८८) - हज़रत मौला अली (करम अल्लाह वजहुह) की कृपा। (६८८) - शाह अब्दुल रहीम साहब ने अपने नाना शेख रफ़ीउद्दीन की रूह (आत्मा) से शिष्टाचार सीखा। (६८९) - एक और श्रेणी: लाभ और हानि के विश्वास पर चर्चा। (६९०) - हदीस शरीफ "जिसने अल्लाह के अलावा किसी और की कसम खाई, उसने शिर्क किया" से गलत तर्क का खंडन। (६९०) - अल्लाह के अलावा किसी और को लाभ या हानि पहुँचाने वाला समझना पूरी तरह से शिर्क नहीं है, जब तक कि उन्हें स्वतंत्र रूप से ऐसा करने वाला न माना जाए। (६९१) - अल्लाह के अलावा

किसी और को लाभ या हानि पहुँचाने वाला मानना, लेकिन स्वतंत्र रूप से नहीं, शिर्क नहीं है। (६९१) - कुरान मजीद से इसका प्रमाण कि अल्लाह के अलावा भी कोई लाभ या हानि का कारण हो सकता है। (६९१) - हदीसों से इसका प्रमाण कि अल्लाह के अलावा भी कोई लाभ या हानि का कारण हो सकता है। (६९१) - हज़रत अली मुर्तज़ा (रज़ियल्लाहु अन्हु) ने हजर-ए-अस्वद को लाभ और हानि पहुँचाने वाला बताया। (६९२) - शाह अब्दुल अज़ीज़ साहब ने फिरौन को लाभ और हानि का मालिक कहा। (६९२)

पृष्ठ ४२ / ९४८

فتاویٰ رضویہ - جلد نہم

[فہرست مضامین]

دایاں کالم (صفحہ نمبر): - شرکِ اعظم محالاتِ عقلیہ کا اعتقاد ہے۔ (۶۸۰) - اعتقادِ ممکنِ عقلی کا شرک ہونا محالِ عقلی بین الفساد ہے۔ (۶۸۰) - کوئی نہیں کہہ سکتا کہ اس کے اعمال قطعاً مقبول ہیں۔ (۶۸۱) - بہت سے اکابر اولیاء وعلماء کا بوقت ضرورت شرعیہ لوگوں سے سوال کرنا منقول ہے۔ (۶۸۱) - ایک فرشتہ جسے اللہ تعالیٰ نے تمام جہان کی آواز سننے کی طاقت عطا فرمائی قبر انور پر حاضر ہے اور درود پڑھنے والوں کا درود حضور اقدس صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کی خدمت میں پہنچاتا ہے۔ (۶۸۲) - نجدی شرک فروشوں نے نہ خدا تعالیٰ کی قدرت دیکھی نہ اس کی عظمت سمجھی۔ (۶۸۳) - کسی کی بات سننے کے لیے اس کی صورت دیکھنا ضروری نہیں۔ (۶۸۳) - ہر غلط بات شرک نہیں ہوتی۔ (۶۸۴) - قرآنِ مجید کی کسی آیت میں قبور پر جاکر کلام وخطاب کرنے کو شرک نہیں کہا گیا۔ (۶۸۴) - مفتی مذکور کا سورہ یوسف کی آیہ کریمہ سے استدلال غلط ہے۔ (۶۸۴) - لوگ اہلِ قبور سے ناامید ہو بیٹھے ہیں۔ (۶۸۵) - صنفِ دیگر: اکابر خاندانِ عزیزی کے اقوال سے تحریرِ خلاف کا رد۔ (۶۸۵) - شاہ ولی اللہ محدث دہلوی فرماتے ہیں: گھر بیٹھے ہی اولیاء کی طرف متوجہ ہو کر فاتحہ پڑھو۔ (۶۸۵) - وہی فرماتے ہیں مزاراتِ اولیاء پر حاضر ہو کر بھیک مانگو، ارواح سے فیض چاہو اور یا روح یا روح پکارو۔ (۶۸۵) - شاہ عبدالعزیز کا ارشاد ہے کہ اہلِ حاجت ارواحِ اولیاء سے حاجات مانگتے اور پاتے ہیں۔ (۶۸۷)

بایاں کالم (صفحہ نمبر): - اویسیت کی نسبت صحیح اور قوی ہے۔ (۶۸۷) - اولیاءِ مدفونین سے انتفاع واستفادہ جاری ہے۔ (۶۸۸) - مرزا مظہر جانِ جاناں امراض میں مولیٰ علی کرم اللہ تعالیٰ وجہہ الکریم کی طرف توجہ کرتے تھے۔ (۶۸۸) - حضرت مولیٰ علی کرم اللہ وجہہ کی نوازش۔

(۶۸۸) - شاہ عبدالرحیم صاحب اپنے نانا شیخ رفیع الدین کی روح سے ادب آموز ہوئے۔ (۶۸۹) - صنفِ دیگر: مبحث اعتقادِ نفع وضرر۔ (۶۹۰) - حدیث شریف "من حلف بغیر اللہ فقد اشرک" سے غلط استدلال کا رد۔ (۶۹۰) - غیر خدا کو نافع وضار سمجھنا مطلقاً شرک نہیں جب تک کہ مستقل بالذات نہ مانا جائے۔ (۶۹۱) - غیر خدا کو نافع وضار غیر مستقل بالذات ماننا شرک نہیں۔ (۶۹۱) - غیر خدا کے نافع وضار ہونے کا ثبوت قرآنِ مجید سے۔ (۶۹۱) - غیر خدا کے نافع وضار ہونے کا ثبوت احادیث سے۔ (۶۹۱) - حضرت علی مرتضیٰ رضی اللہ تعالیٰ عنہ نے حجرِ اسود کو نافع وضار قرار دیا۔ (۶۹۲) - شاہ عبدالعزیز صاحب نے فرعون کو مالکِ نفع وضرر کہا۔ (۶۹۲)

Fatawa Rizwia, Vol 9

- Hadiths on the permissibility of seeking prayers from saints and righteous people. | 693 | In this purpose, there are two types in which sixty noble hadiths are mentioned. | 703
- The Prophet (PBUH) asked for prayers from Hazrat Umar (RA). | 693 | Type one: After death, the persistence of the soul and its attributes and actions, i.e., the deceased seeing the people of the world, talking to them, and the soul of a believer going wherever it wants, etc. | 703
- After burial, the Prophet (PBUH) would stay at the grave and command the companions to pray for the forgiveness of the deceased. | 694 | The world's relation to Barzakh (limbo) is the same as the mother's womb to the world; then Barzakh's relation to the hereafter is the same as the world to Barzakh. | 707
- Requesting prayer for forgiveness from a Hajj pilgrim before they reach home. | 694 | The path of Ahl al-Sunnah is that texts should always be taken literally unless there is a restriction/impediment. | 707
- The command to seek forgiveness prayers from Hazrat Uwais Qarni (RA). | 694 | The deceased recognizes those who wash them, carry the funeral, clothe them in the shroud, and bury them. | 707
- The incident of a companion visiting the noble grave during a drought in the Faruqi era to request prayers from the Prophet (PBUH). | 695 | Hibban bin Abi Hablah is a reliable Tabi'i and is from the men of Bukhari. (Footnote) | 708
- A general rule: what is not Shirk (polytheism) with the living cannot be Shirk with the dead. | 696 | Hazrat Salman Farsi (RA) is a great and high-ranking companion, one of the four for whom paradise longs. (Footnote) | 709
- Type two: Oppositions of the Maulana and his fellow religionists. | 697 | Umm al-Darda is the kunya (nickname) of two women, both wives of Abu al-Darda (RA). The first, Kubra, is a companion named Khaira. The second, Sughra, is a reliable Tabi'i, jurist, and mujtahida (independent scholar) whose narrations are in the Sahih Sitta; her name is Hujaymah. (Footnote) | 710
- A refutation of the 'Hundred Issues' claim that visiting graves of saints and sinners is the same, or even better to visit graves of the wealthy. (Footnote) | 697 | The deceased knows what happens to their family members after them. | 710
- Discussion on how individual 'hasan' (good) narrations form a 'hasan' collective when there is no corrupting factor in the specific assembly. | 698 | Imam

Mujahid is a great Tabi'i, mujtahid, commentator (of Quran), and from the reliable scholars of Mecca. Narrations from him are in all Sahih books. (Footnote) | 710

- Discussion on the verse "Indeed, you cannot make the dead hear" in the second objective regarding hadiths. | 703 | |

फ़तावा रज़विया, खंड 9

- संतों और नेक लोगों से दुआ माँगने के औचित्य पर हदीसें। | 693 | इस उद्देश्य में दो प्रकार हैं जिनमें साठ हदीसों का उल्लेख है। | 703
- नबी (स.अ.व.) ने हज़रत उमर (रज़ि.) से दुआ माँगी। | 693 | प्रकार एक: मृत्यु के बाद रूह (आत्मा) की स्थिरता और उसके गुण और कार्य, यानी मृतकों का दुनिया वालों को देखना, उनसे बात करना और मोमिन (आस्तिक) की रूह का जहाँ चाहना वहाँ जाना आदि। | 703
- दफनाने के बाद, नबी (स.अ.व.) कब्र पर ठहरते और सहाबा को मृतक की मगफिरत (क्षमा) के लिए दुआ करने का हुक्म देते। | 694 | दुनिया का बरज़ख (लोक परलोक के बीच की स्थिति) से वही संबंध है जो माँ के गर्भ का दुनिया से है; फिर बरज़ख का आखिरत (परलोक) से वही संबंध है जो दुनिया का बरज़ख से है। | 707
- हाजी के घर पहुँचने से पहले उससे मगफिरत की दुआ कराना। | 694 | अहले सुन्नत का अकीदा (मार्ग) है कि धर्म ग्रंथों को हमेशा उनके स्पष्ट अर्थों पर लिया जाए जब तक कि उसमें कोई रुकावट न हो। | 707
- हज़रत ओवैस करनी (रज़ि.) से दुआ-ए-बख्शिश कराने का हुक्म। | 694 | मृतक अपने गुसल देने वाले, जनाज़ा उठाने वाले, कफ़न पहनाने वाले और दफनाने वाले को पहचानता है। | 707
- फ़ारुकी काल में अकाल के दौरान एक सहाबी का कब्र-ए-अनवर पर हाज़िर होकर नबी (स.अ.व.) से दुआ का अनुरोध करने की घटना। | 695 | हब्बान बिन अबी हबलह एक विश्वसनीय ताबई हैं और बुखारी के रावी (वर्णनकर्ता) हैं। (फुटनोट) | 708
- एक सामान्य नियम यह है कि जो बात जीवितों के साथ शिर्क नहीं है, वह मृतकों के साथ भी शिर्क नहीं हो सकती। | 696 | हज़रत सलमान फ़ारसी (रज़ि.) एक महान और उच्च पदस्थ सहाबी हैं, वे उन चार लोगों में से हैं जिनकी जन्नत (स्वर्ग) प्रतीक्षा करती है। (फुटनोट) | 709
- प्रकार दो: मौलवी साहब और उनके हम-मज़हबों के विरोध। | 697 | उम्म-उद-दरदा दो महिलाओं की कुनियत (उपनाम) है, दोनों ही सहाबी रसूल हज़रत अबू दरदा (रज़ि.) की पत्नियाँ हैं। पहली कुबरा कि सहाबिया हैं, नाम खैरा है। और दूसरी सुग़रा ताबईया, विश्वसनीय, फकीहा और मुजतहिदा हैं जिनकी रिवायतें सिहा-ए-सित्ता में हैं; नाम हुजैमा है। (फुटनोट) | 710

- 'सौ मसले' कार्ड के उस भ्रम का खंडन कि संतों और पापियों की कब्रों की ज़ियारत (दर्शन) एक समान है, बल्कि अमीरों की कब्रें और अधिक। (फुटनोट) | 697 | मृतक जानता है कि उसके बाद उसके घर वालों को क्या हो रहा है। | 710
- जब तक विशिष्ट सभा में कोई खराबी न हो, तब तक अलग-अलग हसन हदीसों के एक साथ आने पर चर्चा। | 698 | इमाम मुजाहिद एक महान ताबई, मुजतहिद, मुफस्सिर (कुरान के व्याख्याता) और मक्का के विश्वसनीय विद्वानों में से हैं। सभी सिहा (सहीह किताबों) में उनसे रिवायतें हैं। (फुटनोट) | 710
- आयत "निस्संदेह आप मृतकों को नहीं सुना सकते" की चर्चा हदीसों के दूसरे उद्देश्य में। | 703 | |

- اولیاء و صلحاء سے طلب دعا کے جواز پر حدیثیں (۶۹۳) | اس مقصد میں دونو عیں ہیں جن میں ساٹھ احادیث کریمہ مذکور ہیں۔ (۷۰۳)
- حضور اقدس صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم نے حضرت عمر رضی اللہ تعالیٰ عنہ سے دعا چاہی۔ (۶۹۳) | نوع اول بعد موت بقاء روح اور صفات و افعال روح میں، یعنی اموات کا اہل دنیا کو دیکھنا، ان سے کلام کرنا اور روح مومن کا جہاں چاہنا وہاں جانا وغیرہ۔ (۷۰۳)
- حضور اقدس صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم بعد از دفن قبر پر ٹھہر کر میت کے لیے دعاء مغفرت کرنے کا حکم صحابہ کو دیتے۔ (۶۹۴) | دنیا کو برزخ سے وہی نسبت ہے جو رحم مادر کو دنیا سے، پھر برزخ کو آخرت سے وہی نسبت ہے جو دنیا کو برزخ سے ہے۔ (۷۰۷)
- حاجی کے گھر پہنچنے سے پہلے اس سے دعا مغفرت کرانا۔ (۶۹۴) | اہلسنت کا مسلک ہے کہ نصوص کو ہمیشہ ظاہر پر محمول کیا جائے جب تک کہ اس میں محذور نہ ہو۔ (۷۰۷)
- حضرت اویس قرنی رضی اللہ تعالیٰ عنہ سے دعاء بخشش کرانے کا حکم۔ (۶۹۴) | میت اپنے غسل دینے والے، جنازہ اٹھانے والے، کفن پہنانے والے اور دفنانے والے کو پہچانتا ہے۔ (۷۰۷)
- دور فاروقی میں دوران قحط ایک صحابی کا قبر انور پر حاضر ہو کر حضور علیہ الصلوۃ والسلام سے دعا کی درخواست کرنے کا واقعہ۔ (۶۹۵) | حبان بن ابی حبلہ تابعی ثقہ ہیں اور رجال بخاری سے ہیں۔ (حاشیہ) (۷۰۸)

- قاعدہ کلیہ ہے کہ جو بات زندوں کے ساتھ شرک نہیں اموات کے ساتھ بھی شرک نہیں ہوسکتی۔ (۶۹۶) | حضرت سلمان فارسی رضی اللہ تعالیٰ عنہ عظیم الشان جلیل القدر صحابی ہیں، ان چاروں میں سے ہیں جن کی جنت مشتاق ہے۔ (حاشیہ) (۷۰۹)
- نوع دوم مخالفات مولوی صاحب و ہم مذہبان مولوی صاحب میں۔ (۶۹۷) | ام الدرداء دو خاتونوں کی کنیت ہے دونوں ہی صحابی رسول حضرت ابو الدرداء رضی اللہ تعالیٰ عنہ کی بیویاں ہیں پہلی کبریٰ کہ صحابیہ ہیں خیرہ نام ہے اور دوسری صغریٰ تابعیہ ثقہ فقیہہ مجتہدہ رواۃ صحاح ستہ سے ہیں ، ہجیمہ نام ہے۔ (حاشیہ) (۷۱۰)
- مائتہ مسائل کے اس خبط کارڈ کہ نفع زیارت میں اولیاء و فساق کی قبور یکساں بلکہ قبور اغنیاء زائد۔ (حاشیہ) (۶۹۷) | مردہ جانتا ہے کہ اس کے بعد اس کے گھر والوں کو کیا ہو رہا ہے۔ (۷۱۰)
- بعد حسن آحاد حسن مجموع میں کلام نہیں جب تک خصوص اجتماع میں کوئی مفسد نہ ہو۔ (۶۹۸) | امام مجاہد جلیل الشان تابعی، مجتہد، مفسر، ثقہ علماء مکہ سے ہیں، سب صحاح میں ان سے روایت ہے۔ (حاشیہ) (۷۱۰)
- آیہ کریمہ انک لاتسمع الموتیٰ کی بحث مقصد دوم احادیث میں۔ (۷۰۳) | |

Fatawa Rizvia (Volume 9)

Content	Page	Content	Page
Amr ibn Dinar, a great and reliable successor (Tabi'i), among the scholars of Makkah, and from the narrators of the Sihah Sitta. (Footnote)	711	Chapter Four: Explicit Hadiths stating that the deceased recognize visitors, hear their speech, and respond.	719
Bakr ibn Abdullah al-Muzani, a great Imam, reliable successor, and from the narrators of the Sihah Sitta. (Footnote)	711	Explicit errors and contradictions in 'Miat al-Masail'.	721
Imam Sufyan, reliable, an authority, Hadith scholar, independent jurist (Mujtahid), Gnostic, from the successors of the successors (Atba' al-Tabi'in), the Mujtahids of Kufa, and from the narrators of the Sihah Sitta. (Footnote)	712	Muhammad ibn Wasi', a reliable successor, worshipper, Gnostic, having many virtues, and from the narrators of the Sihah Sitta. (Footnote)	723
Abdul Rahman ibn Abi Layla, a successor of great stature and from the narrators of the Sihah Sitta. (Footnote)	712	Chapter Five: Illustrious Hadiths stating that the deceased hear not only greetings (Salam) but all speech and sounds.	724
Second Type: Hadiths regarding the hearing and perception of the people of the graves.	713	Six Hadiths mentioning that the deceased hears the sound of shoes/footsteps.	724
Chapter One: Regarding showing bashfulness (haya) before the inhabitants of the graves.	713	Rebuttal in five points of the deniers who restrict Hadiths about hearing sounds to the initial stage of burial.	725
The Mother of the Believers, Sayyidah Aisha Siddiqah (may Allah be pleased with her), showing bashfulness before Hazrat Umar (may Allah be pleased with him) after his burial.	713	Six Hadiths regarding the speech addressed to the slain disbelievers at Badr.	727
	714		730

Content	Page
Chapter Two: Regarding the deceased finding solace in the living visiting, sitting by them, and talking to them.	
Chapter Three: The deceased being distressed by the excesses/improprieties of the living.	715
Abu Qalaba al-Basri, a reliable and virtuous successor from the narrators of the Sihah Sitta. (Footnote)	715
Abu Usman al-Nahdi, among the great successors of the successors, lived during the prophetic era, a reliable and practicing narrator from the Sihah Sitta. (Footnote)	715
Imam Qasim ibn Mukhaimira, a reliable and virtuous successor from the narrators of the Sihah Sitta. (Footnote)	716
Alaa ibn al-Lajlaj, a reliable successor, and his son Abdul Rahman, from the successors of the successors whose narrations are accepted. Both are from the narrators of Jami' al-Tirmidhi.	718
Four Hadiths regarding the 'Talqin' (instruction) of the deceased. (Footnote)	
Rashid ibn Sa'ad, a reliable successor from the narrators of the Four Sunan. (Footnote)	730
Zamra ibn Habib, a reliable successor from the narrators of the Sihah Sitta. (Footnote)	730
Hakim ibn Umair, a truthful successor from the narrators of Abu Dawood and Ibn Majah. (Footnote)	730
Final Section: The Companions of the Prophet (Sahaba) talking to the people of the graves.	730

फ़तावा रज़विया (जिल्द नहुम)

विषय	पृष्ठ
अम्र बिन दीनार ताबई जलील षिका सब्त उलमा ए मक्का से हैं। और रिजाल ए सिहाह सित्ता से हैं। (हाशिया)	७११
बक्र बिन अब्दुल्लाह मज़नी इमाम ए अजल ताबई षिका सब्त और रिजाल ए सिहाह सित्ता से हैं। (हाशिया)	७११
इमाम सुफ़यान षिका, हुज्जत, मुहद्दिस, मुज्तहिद, आरिफ़ बिल्लाह, तबा ताबईनीन, मुज्तहिदान ए कूफ़ा और रिजाल ए सिहाह सित्ता से हैं। (हाशिया)	७१२
अब्दुल रहमान इब्न अबी लैला ताबई अज़ीम उल-क़द्र रिजाल ए सिहाह सित्ता से हैं। (हाशिया)	७१२
नऊअ दोवम, अहादीस ए समाअ ओ इदराक ए अहल ए क़बूर में।	७१३
फ़स्ल अव्वल: अस्हाब ए क़बूर से हया करने के बयान में।	७१३
उम्मुल मोमिनीन सय्यिदा आइशा सिद्दीक़ा रज़ी अल्लाह तआला अन्हा का हज़रत उमर रज़ी अल्लाह तआला अन्हु से बाद अज़ दफ़न हया फ़रमाना।	७१३
	७१४
फ़स्ल चहारुम: अहादीस ए सरीह कि मुर्दे ज़ाएरीन को पहचानते, उनका कलाम सुनते और जवाब देते हैं।	७१९
मिया मसाइल की सरीह ग़लती ओ तनाकुज़ परस्ती।	७२१
मोहम्मद बिन वासे ताबई षिका आबिद आरिफ़ बिल्लाह कसीर उल-मनाक़िब रिजाल ए सिहाह सित्ता से हैं। (हाशिया)	७२३
फ़स्ल पंजुम: अहादीस ए जलीला कि मुर्दे न फ़क़त सलाम बल्कि हर कलाम ओ असवात को सुनते हैं।	७२४
छः अहादीस कि मुर्दा जूतों की आवाज़ सुनता है।	७२४
मुनकिरीन की तरफ़ से अहादीस ए समाअ ए सोती को अव्वल ओ वज़अ फ़िल-क़ब्र के साथ मख़सूस क़रार देने पर पाँच वुजूह से रद्द।	७२५
छः अहादीस कुफ़्फ़ार ए मक़तलीने बद्र से कलाम के बारे में।	७२७
	७३०

विषय	पृष्ठ
फ़स्ल दोवम: अहया के आने, पास बैठने और बात करने से मुर्दों के जी बहलने के बयान में।	
फ़स्ल सोवम: अहया की बे-एतदाली से अम्वात को अज़ियत होती है।	७१५
अबू क़लाबा बसरी ताबई षिका, फ़ाज़िल रुवात ए सिहाह सित्ता से हैं। (हाशिया)	७१५
अबू उस्मान नहदी अकाبیر तबा ताबईनीन से हैं, ज़माना ए रिसालत पाए हुए थे, सब्त अमलदार रिजाल ए सिहाह सित्ता से हैं। (हाशिया)	७१५
इमाम क़ासिم बिन मुख़ैमरा ताबई षिका फ़ाज़िल रुवात ए सिहाह सित्ता से हैं। (हाशिया)	७१६
अला बिन लजलाज ताबई षिका और उनके बेटे अब्दुल रहमान तबा ताबईनीन मक़बूल उल-रिवायत से हैं। दोनों रिजाल ए जामे तिर्मिज़ी से हैं।	७१८
चार अहादीस तल्क़ीन ए मय्यत के बारे में। (हाशिया)	
राशिद बिन साद ताबई षिका रिजाल ए सुनन अरबाअ से हैं। (हाशिया)	७३०
ज़मरा बिन हबीब ताबई षिका रिजाल ए सिहाह सित्ता से हैं। (हाशिया)	७३०
हकीम बिन उमैर ताबई सदूक़ रिजाल ए अबू दाऊद वा इब्न माजा से हैं। (हाशिया)	७३·
वस्ल ए आख़िर: सहाबा ए कराम का अहल ए क़बूर से बातें करना।	७३०

عنوان	صفحہ
عمرو بن دینار تابعی جلیل ثقہ ثبت علماء مکہ سے ہیں۔ اور رجال صحاح ستہ سے ہیں۔ (حاشیہ)	۷۱۱
بکر بن عبداللہ مزنی امام اجل تابعی ثقہ ثبت اور رجال صحاح ستہ سے ہیں۔ (حاشیہ)	۷۱۱
امام سفیان ثقہ، حجت، محدث، مجتہد، عارف باللہ، تبع تابعین، مجتہدان کوفہ اور رجال صحاح ستہ سے ہیں۔ (حاشیہ)	۷۱۲
عبدالرحمٰن ابن ابی لیلیٰ تابعی عظیم القدر رجال صحاح ستہ سے ہیں۔ (حاشیہ)	۷۱۲
نوع دوم، احادیث سمع و ادراک اہل قبور میں۔	۷۱۳
فصل اول: اصحاب قبور سے حیا کرنے کے بیان میں۔	۷۱۳
فصل چہارم: احادیث صریحہ کہ مردے زائرین کو پہچانتے، ان کا کلام سنتے اور جواب دیتے ہیں۔	۷۱۹
مائۃ مسائل کی صریح غلطی و تناقض پرستی۔	۷۲۱
محمد بن واسع تابعی ثقہ عابد عارف باللہ کثیر المناقب رجال صحاح ستہ سے ہیں۔ (حاشیہ)	۷۲۳
فصل پنجم: احادیث جلیلہ کہ مردے نہ فقط سلام بلکہ ہر کلام و اصوات کو سنتے ہیں۔	۷۲۴
چھ حدیثیں کہ مردہ جوتوں کی آواز سنتا ہے۔	۷۲۴
منکرین کی طرف سے احادیث سماع صوتی کو اول وضع فی القبر کے ساتھ	۷۲۵

عنوان	صفحہ
ام المومنین سیدہ عائشہ صدیقہ رضی اللہ تعالیٰ عنہا کا حضرت عمر رضی اللہ تعالیٰ عنہ سے بعد از دفن حیاء فرمانا۔	۷۱۳
فصل دوم: احیاء کے آنے، پاس بیٹھنے اور بات کرنے سے مردوں کے جی بہلنے کے بیان میں۔	۷۱۴
فصل سوم: احیاء کی بے اعتدالی سے اموات کو اذیت ہوتی ہے۔	۷۱۵
ابو قلابہ بصری تابعی ثقہ، فاضل رواۃ صحاح ستہ سے ہیں۔ (حاشیہ)	۷۱۵
ابو عثمان نہدی اکابر تبا تابعین سے ہیں، زمانہ رسالت پائے ہوئے تھے،ثبت عملدار رجال صحاح ستہ سے ہیں۔ (حاشیہ)	۷۱۵
امام قاسم بن مخیمرہ تابعی ثقہ فاضل رواۃ صحاح ستہ سے ہیں۔ (حاشیہ)	۷۱۶
	۷۱۸

عنوان	صفحہ
مخصوص قرار دینے پر پانچ وجوہ سے رد۔	
چھ حدیثیں کفار مقتولین بدر سے کلام کے بارے میں۔	۷۲۷
چار حدیثیں تلقین میت کے بارے میں۔ (حاشیہ)	۷۳۰
راشد بن سعد تابعی ثقہ رجال سنن اربعہ سے ہیں۔ (حاشیہ)	۷۳۰
ضمرہ بن حبیب تابعی ثقہ رجال صحاح ستہ سے ہیں۔ (حاشیہ)	۷۳۰
حکیم بن عمیر تابعی صدوق رجال ابوداؤد و ابن ماجہ سے ہیں۔ (حاشیہ)	۷۳۰
وصل آخر: صحابہ کرام کا اہل قبور سے باتیں کرنا۔	۷۳۰

عنوان صفحہ

علاء بن لجلج تابعی ثقہ اور ان کے بیٹے

عبدالرحمٰن تبع تابعین مقبول الروایہ سے

ہیں۔ دونوں رجال جامع ترمذی سے ہیں۔

Fatawa Razawiyya Volume 9

[Right Column] 736 Third Objective: Regarding the sayings of the scholars 736 Names of the leaders of religion and perfect scholars who support the school of thought. 736 Names of eleven companions (Sahaba) of the Holy Prophet. 737 Names of twelve successors (Tabi'un). 737 Names of three successors of the successors (Tab' Tabi'un). 737 Names of seventy-four great predecessors and noble successors. 740 Footnote: Names of sixty-five more companions, successors, and successors of successors, etc. 742 Names of ten reliable scholars of the opponents. 742 In the terminology of Hadith scholars (Muhaddithin), 'Hadith' includes the sayings of companions and successors. 742 Hadith refers to the sayings, actions, and approvals of the Holy Prophet (peace and blessings of Allah be upon him), the sayings, actions, and approvals of the companions, and the sayings, actions, and approvals of the successors. (Footnote) 742 Human opinion has no role in the matters of graves and the states of souls. 742 Regarding matters beyond analogy, a 'Mauquf' Hadith is also considered as having the ruling of a 'Marfu' Hadith. 743 Type One: Sayings of two hundred scholars of the past and later times. 743 Preface: Souls do not die with death. 744 Chapter One: Death is only a change of place, not becoming inanimate (Jamad).

[Left Column] 744 Bilal bin Sa'd is a great successor (Tabi'i), worshiper, virtuous, and reliable according to the authorities of Nasa'i, etc. (Footnote) 746 Relevant narrations regarding the life of saints (Awliya) after death. 747 Chapter Two: After death, the knowledge and actions of the soul remain as they were; rather, they increase. 750 Chapter Three: The knowledge and perception of the deceased includes the world and the people of the world. 751 Chapter Four: Regarding being modest/shy before the deceased. 752 The practice of Imam Shafi'i at the shrine of Imam Azam (may Allah be pleased with both). 754 Chapter Five: Regarding the deceased being pained by the actions of the living. 757 Chapter Six: The hearts of the deceased are comforted by meeting the living and the remembrance of God. 759 According to the Ahl-us-Sunnah, every particle of the universe possesses hearing, sight, and knowledge appropriate to it, and glorifies Allah in its own tongue. 760 The hearing power of the deceased is so strong that they hear the glorification of plants without any effort. 760 Putting roses, etc., on graves is good. 760 Chapter Seven: The deceased see and recognize their visitors and are aware of their visit. 762 Chapter Eight: The deceased speak to their visitors and respond to their greetings and talk. 762 An incident of crying and laughing at a graveyard of Imam Ismail Hadrami. 766

Chapter Nine: The miracles (Karamat) and influences (Tasarrufat) of the saints continue even after their passing.

Page 45 of 948

फ़तावा रज़विया खंड 9

[दायां कॉलम] 736 तीसरा उद्देश्य: विद्वानों के कथनों के बारे में 736 धर्म के नेताओं और पूर्ण विद्वानों के नाम जो मज़हब के समर्थक हैं। 736 ग्यारह सहाबा इकराम के नाम 737 बारह ताबिईन के नाम। 737 तीन तब-ए-ताबिईन के नाम। 737 चौहत्तर महान पूर्वजों और श्रेष्ठ उत्तराधिकारियों के नाम। 740 फुटनोट में पैंसठ और सहाबा, ताबिईन और तब-ए-ताबिईन आदि के नाम। 742 विरोधियों के दस विश्वसनीय विद्वानों के नाम। 742 मुहद्दिसीन की शब्दावली में 'हदीस' में सहाबा और ताबिईन के कथन भी शामिल हैं। 742 नबी करीम (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) के कथन, कर्म और मौन स्वीकृति, और सहाबी के कथन, कर्म और मौन स्वीकृति, और ताबिई के कथन, कर्म और मौन स्वीकृति को हदीस कहते हैं। (फुटनोट) 742 कब्रों के मामलों और रूहों की स्थितियों में मानवीय राय (नज़रिया) का कोई दखल नहीं है। 742 गैर-क़ियासी (तर्क से परे) मामलों के बारे में 'मौक़ूफ़' हदीस भी 'मरफ़ूअ' के हुक्म में होती है। 743 पहली किस्म: पिछले और बाद के दो सौ विद्वानों के कथन। 743 प्रस्तावना: रूहें मौत से नहीं मरतीं। 744 पहला अध्याय: मौत केवल जगह बदलना है, न कि जड़ (बेजान) हो जाना।

[बायां कॉलम] 744 बिलाल बिन साद एक महान ताबिई, इबादत गुज़ार, नेक और विश्वसनीय हैं, जैसा कि नसाई आदि के अधिकारिक सूत्रों से पता चलता है। (फुटनोट) 746 मृत्यु के बाद औलिया (संतों) के जीवन से संबंधित उचित रिवायतें। 747 दूसरा अध्याय: मृत्यु के बाद रूह के ज्ञान और कर्म यथावत रहते हैं, बल्कि और बढ़ जाते हैं। 750 तीसरा अध्याय: मृतकों का ज्ञान और बोध दुनिया और दुनिया वालों को भी शामिल है। 751 चौथा अध्याय: मृतकों से शर्म करने के बारे में। 752 इमाम शाफ़ई का इमाम आज़म (रज़ियल्लाहु अन्हुमा) के मज़ार पर जाने का तरीका। 754 पांचवां अध्याय: जीवितों के कर्मों से मृतकों को कष्ट पहुँचने के बारे में। 757 छठा अध्याय: जीवितों से मिलने और खुदा के ज़िक्र से मृतकों का दिल बहलता है। 759 अहले सुन्नत के अनुसार ब्रह्मांड का हर कण अपने योग्य सुनने, देखने और ज्ञान की शक्ति रखता है और अपनी ज़ुबान से अल्लाह की तस्बीह (महिमा गान) करता है। 760 मृतकों की सुनने की शक्ति इतनी तीव्र होती है कि वे बिना किसी प्रयास के वनस्पतियों की तस्बीह सुनते हैं। 760 कब्रों पर गुलाब आदि के फूल डालना बहुत अच्छा है। 760 सातवां अध्याय: मृतक अपने ज़ियारत करने वालों को देखते, पहचानते हैं और उनकी ज़ियारत से अवगत होते हैं। 762 आठवां अध्याय: मृतक अपने ज़ियारत करने वालों से बात करते हैं और उनके सलाम और बातचीत का जवाब देते हैं। 762 इमाम इस्माइल हज़रमी के एक कब्रिस्तान पर रोने और

हंसने की घटना। 766 नौवां अध्याय: औलिया की करामातें और प्रभाव उनके दुनिया से कूच करने के बाद भी जारी रहते हैं।

पृष्ठ 45 का 948

فتاویٰ رضویہ جلد نہم

[دایاں کالم] ۷۳۶ مقصد سوم: اقوال علماء میں ۷۳۶ سوائمہ دین و علمائے کاملین کے اسمائے گرامی جو مذہب کے مؤید ہیں۔ ۷۳۶ گیارہ صحابہ کرام کے اسمائے گرامی ۷۳۷ بارہ تابعین کے اسمائے گرامی۔ ۷۳۷ تین تبع تابعین کے اسمائے گرامی۔ ۷۳۷ چوہتر اعاظم سلف و اکارم خلف کے اسمائے گرامی۔ ۷۴۰ حاشیہ میں پینسٹھ مزید صحابہ، تابعین اور تبع تابعین وغیرہ کے اسماء گرامی۔ ۷۴۲ مخالفین کے معتمد دس علماء کے اسماء۔ ۷۴۲ حدیث اصطلاح محدثین میں ارشادات صحابہ و تابعین کو شامل ہے۔ ۷۴۲ حدیث نبی کریم صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کے قول، فعل، تقریر اور صحابی کے قول، فعل، تقریر اور تابعی کے قول، فعل اور تقریر کو کہتے ہیں۔ (حاشیہ) ۷۴۲ امورِ قبور اور احوالِ ارواح میں رائے کو دخل نہیں۔ ۷۴۲ امورِ غیر قیاسیہ کے بارے میں موقوف حدیث بھی مرفوع کے حکم میں ہوتی ہے۔ ۷۴۳ نوع اول: دو سو علماء سلف و خلف کے اقوال۔ ۷۴۳ تمہید: روحیں موت سے نہیں مرتیں۔ ۷۴۴ فصل اول: موت صرف مکان بدلنا ہے نہ کہ جماد ہونا۔

[بایاں کالم] ۷۴۴ بلال بن سعد تابعی جلیل عابد فاضل ثقہ رجال نسائی وغیرہ سے ہیں۔ (حاشیہ) ۷۴۶ روایات مناسبہ حیات اولیاء بعد وفات کے بیان میں۔ ۷۴۷ فصل دوم: بعد موت علوم و افعالِ روح بدستور رہتے ہیں بلکہ زیادہ ہو جاتے ہیں۔ ۷۵۰ فصل سوم: اموات کا علم و ادراک دنیا و اہل دنیا کو بھی شامل ہے۔ ۷۵۱ فصل چہارم: اموات سے حیاء کرنے میں۔ ۷۵۲ حیلہ امام شافعی بحضور مزارِ امام اعظم رضی اللہ تعالیٰ عنہما ۷۵۴ فصل پنجم: افعالِ احیاء سے تاذی اموات میں۔ ۷۵۷ فصل ششم: ملاقاتِ احیاء اور ذکرِ خدا سے اموات کا دل بہلتا ہے۔ ۷۵۹ اہلسنت کے نزدیک ہر ذرہ عالم اپنے لائق سمع و بصر و علم رکھتا ہے اور زبانِ قال سے تسبیح الٰہی کرتا ہے۔ ۷۶۰

اموات کی قوت سامعہ اتنی قوی کہ نباتات کی تسبیح بلا تکلف سنتے ہیں۔ ۷۶۰ قبروں پر گلاب وغیرہ کے پھول ڈالنا خوب ہے۔ ۷۶۰ فصل ہفتم: اموات اپنے زائرین کو دیکھتے، پہچانتے اور ان کی زیارت پر مطلع ہوتے ہیں۔ ۷۶۲ فصل ہشتم: اموات اپنے زائرین سے کلام کرتے اور ان کے سلام و کلام کا جواب دیتے ہیں۔ ۷۶۲ امام اسمعیل حضرمی کے ایک مقبرہ پر رونے اور ہنسنے کا واقعہ۔ ۷۶۶ فصل نہم: اولیاء کی کرامتیں اور تصرفات بعد وصال بھی جاری رہتے ہیں۔

Fatawa Rizvia | Volume 9

- 769 | Chapter 10: The blessings of the Saints and the help for their servants continues in the Barzakh (intermediate realm) as well.
- 769 | The Imams of the schools of thought and the Saints of the Sufi orders watch over and intercede for their followers and disciples at all times, but the Wahhabis and non-followers (Ghair Muqallids) have no part in this.
- 769 | Hazrat Imam Malik came to the grave of his follower and stopped the angels Munkar and Nakir from questioning.
- 771 | The Hanbalis of Najd and the Hanafis of India are not Hanbali and Hanafi at all, but rather they are 'Hubli' and 'Hifni' (a polemical play on words).
- 773 | Whoever has a need to be fulfilled should visit the shrines of the Saints and seek intercession through them.
- 776 | Chapter 11: Scholarly statements that greeting the graves is conclusive evidence of the deceased's hearing, understanding, knowledge, and awareness.
- 777 | Chapter 12: Regarding addressing and speaking to the people of the graves in various ways, besides just greeting them.
- 777 | The method of visiting the presence of Siddiq and Umar (may Allah be pleased with them) after visiting the presence of the Master of Two Worlds (peace and blessings be upon him).
- 779 | Chapter 13: Regarding instructing the deceased (Talqeen) after burial and reminding them of the beliefs of Islam.
- 783 | A grand point in completing the discourse and removing doubts.
- 786 | A beautiful benefit in clarifying the issue of instruction (Talqeen).
- 786 | The terms 'not instructed' or 'not prescribed' are not definitive for prohibition or impermissibility.
- 787 | A student should not recite 'Audhu billahi min ash-shaytanir-rajim' (I seek refuge in Allah from Satan) while taking a lesson from a teacher.
- 787 | It is better by consensus to recite 'Bismillahir Rahmanir Rahim' between Surah al-Fatiha and another Surah.
- 788 | Instructing the deceased (Talqeen) is the way of the Ahl al-Sunnah, and prohibiting it is the way of the Mu'tazilites.
- 789 | The Greatest Imam Abu Hanifa abandons his own opinion in favor of the opinion of a Companion.

- 791 | Chapter 14: Calling upon the noble souls and seeking intercession and prayer from them.
- 795 | The one who denies seeking help (Istamdad) is prejudiced.
- 795 | The denier of seeking help belongs to a newly emerged, humiliated group.
- 796 | There is no need for evidence for the permissibility of seeking help.
- 796 | Denying the seeking of help leads to the denial of hundreds of religious matters.
- 796 | A visitor should travel from far-off places with the intention of visiting the shrines.
- 797 | One should show humility and submissiveness at the shrines and ask for one's needs with the conviction that they will be answered through their blessing.
- 797 | The practice of Allah continues, whereby needs are fulfilled through the hands of the Saints.
- 797 | Chapter 15: Remaining clarifications regarding the hearing of the deceased.
- 797 | Perceptions such as knowledge and hearing are certainly established for all the deceased.
- 798 | The life of martyrs is more perfect than that of other deceased, and the life of prophets is more perfect than the life of martyrs.

फ़तावा रज़विया | खंड 9

- 769 | अध्याय 10: बरज़ख (मृत्यु और पुनरुत्थान के बीच की अवस्था) में भी औलिया का फ़ैज़ और उनके गुलामों की मदद जारी रहती है।
- 769 | मज़हबों के इमाम और सूफी सिलसिलों के औलिया अपने मुक़ल्लिदों और मुरीदों की हर वक़्त निगरानी और शफ़ाअत (सिफारिश) करते हैं, लेकिन वहाबियों और ग़ैर-मुक़ल्लिदों का इसमें कोई हिस्सा नहीं।
- 769 | हज़रत इमाम मालिक अपने मुक़ल्लिद की क़ब्र में तशरीफ़ लाए और मुनकर-नकीर (फ़रिश्तों) को सवाल करने से रोक दिया।
- 771 | नजद के हंबली और हिंद के हनफ़ी हरगिज़ हंबली और हनफ़ी नहीं बल्कि 'हुब्ली' और 'हफ़्नी' हैं।
- 773 | जिसे कोई ज़रूरत पूरी करवानी हो, वह औलिया के मज़ारों पर हाज़िर होकर उनसे तवस्सुल (वसीला) करे।
- 776 | अध्याय 11: विद्वानों के स्पष्टीकरण कि क़ब्रों पर सलाम करना उनके सुनने, समझने, ज्ञान और चेतना का निश्चित प्रमाण है।
- 777 | अध्याय 12: क़ब्र वालों को सलाम के अलावा विभिन्न प्रकार से संबोधित करने और बात करने के बारे में।
- 777 | सरकार-ए-दो-आलम (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) की दरगाह में हाज़िरी के बाद सिद्दीक़ और उमर (रज़ियल्लाहु अन्हुमा) की दरगाह में हाज़िरी का तरीका।
- 779 | अध्याय 13: दफ़नाने के बाद मृतक को तलक़ीन (उपदेश) देने और उसे इस्लाम के अक़ीदे याद दिलाने के बारे में।
- 783 | कलाम को पूरा करने और भ्रमों को दूर करने में एक महान बिंदु।
- 786 | तलक़ीन के मसले को स्पष्ट करने में एक सुंदर लाभ।
- 786 | 'ला युलक़न' (उपदेश नहीं दिया जाता) या 'ग़ैर-मश्रू' (अवैध) शब्दों का प्रयोग निषेध या नाजायज़ होने के लिए निश्चित नहीं है।
- 787 | शागिर्द (छात्र) उस्ताद से सबक़ पढ़ते समय 'अऊज़ु बिल्लाहि मिनश-शैतानिर-रजीम' न पढ़े।

- 787 | फातिहा और सूरह के बीच 'बिस्मिल्लाह हिर्रहमान निर्रहीम' पढ़ना सर्वसम्मति से बेहतर है।
- 788 | मृतक को तलक़ीन करना अहले सुन्नत का मज़हब है और इसे रोकना मोतज़िला का तरीका है।
- 789 | इमाम-ए-आज़म अबू हनीफ़ा किसी सहाबी की राय के मुक़ाबले अपनी राय छोड़ देते हैं।
- 791 | अध्याय 14: नेक रूहों को पुकारना और उनसे तवस्सुल और दुआ करना।
- 795 | इस्तिम्दाद (मदद माँगने) का इनकार करने वाला कट्टर है।
- 795 | इस्तिम्दाद का इनकार करने वाला एक नीच और नया उभरा हुआ गुट है।
- 796 | इस्तिम्दाद के जायज़ होने पर किसी दलील की ज़रूरत नहीं है।
- 796 | इस्तिम्दाद के इनकार से सैकड़ों धार्मिक मामलों का इनकार लाज़िम आता है।
- 796 | ज़ायर (दर्शनार्थी) दूर-दराज के स्थानों से मज़ारों की यात्रा का इरादा करे।
- 797 | मज़ारों पर विनम्रता और श्रद्धा दिखाएं और इस विश्वास के साथ अपनी ज़रूरतें मांगें कि उनकी बरकत से दुआ कुबूल होगी।
- 797 | अल्लाह की सुन्नत जारी है कि औलिया के हाथों से ज़रूरतें पूरी होती हैं।
- 797 | अध्याय 15: मृतकों के सुनने के बारे में शेष स्पष्टीकरण।
- 797 | चेतना जैसे ज्ञान और सुनना निश्चित रूप से सभी मृतकों के लिए सिद्ध हैं।
- 798 | शहीदों का जीवन अन्य मृतकों की तुलना में अधिक पूर्ण है और नबियों का जीवन शहीदों के जीवन से भी अधिक पूर्ण है।

- 769 | فصل دہم: برزخ میں بھی اولیاء کا فیض اور غلاموں کی امداد جاری رہتی ہے۔
- 769 | ائمہ مذاہب و اولیاء سلاسل اپنے مقلدوں اور مریدوں کی ہر وقت نگہبانی و شفاعت فرماتے ہیں مگر وہابیہ غیر مقلدین کا اس میں حصہ نہیں۔
- 769 | حضرت امام مالک نے اپنے مقلد کی قبر میں تشریف لاکر نکیرین کو سوال سے روک دیا۔
- 771 | نجد کے حنبلی اور ہند کے حنفی ہر گز حنبلی و حنفی نہیں بلکہ حبلی اور حفنی ہیں۔
- 773 | جسے کوئی حاجت منظور ہو اولیاء کے مزارات پر حاضر ہو کر ان سے توسل کرے۔
- 776 | فصل یازدہم: تصریحات علماء میں کہ سلام قبور دلیل قطعی سماع و فہم و علم و شعور ہے۔
- 777 | فصل دوازدہم: اہل قبور سے سوائے سلام اور انواع خطاب و کلام میں۔
- 777 | سرکار دو عالم صلی اللہ تعالی علیہ وسلم کی بارگاہ میں حاضری کے بعد صدیق و عمر رضی اللہ تعالی عنہما کی بارگاہ میں حاضری کا طریقہ۔
- 779 | فصل سیزدہم: بعد دفن میت کو تلقین اور اسے عقائد اسلام یاد دلانے میں۔
- 783 | نکتہ جلیلہ تتمیم کلام و ازالہ اوہام میں۔
- 786 | فائدہ جمیلہ تنقیح مسئلہ تلقین میں۔
- 786 | لا یلقن یا غیر مشروع ممانعت و عدم جواز کے لیے متعین نہیں۔
- 787 | شاگرد استاد سے سبق پڑھتے وقت اعوذ باللہ من الشیطن الرجیم نہ پڑھے۔
- 787 | فاتحہ و سورۃ کے درمیان بسم اللہ الرحمن الرحیم پڑھنا بالاجماع بہتر ہے۔

- 788 | تلقین میت مذہب اہلسنت اور اس کا منع مشرب معتزلہ ہے۔
- 789 | امام اعظم ابو حنیفہ صحابی کی رائے کے مقابل اپنی رائے ترک کر دیتے ہیں۔
- 791 | فصل چہار دہم: ارواح کرام کو نداء اور ان سے توسل ودعا۔
- 795 | منکر استمداد متعصب ہے۔
- 795 | استمداد کا منکر ذلیل طائفہ نو پیدا ہے۔
- 796 | جواز استمداد پر دلیل کی حاجت نہیں۔
- 796 | انکار استمداد سے صدہا دینیات کا انکار لازم آتا ہے۔
- 796 | زائر دور دراز مقامات سے قصد مزارات کرے۔
- 797 | مزارات پر خشوع و خضوع کرے اور اس یقین کے ساتھ اپنی حاجتیں مانگے کہ ان کی برکت سے اجابت ہوگی۔
- 797 | سنت الہی جاری ہے کہ اولیاء کے ہاتھ پر حاجت روائی ہوتی ہے۔
- 797 | فصل پانزدہم: بقیہ تصریحات سماع اموات میں۔
- 797 | ادراکات جیسے علم و سمع یقینا تمام اموات کے لئے ثابت ہیں۔
- 798 | حیات شہداء باقی اموات سے کامل تر اور حیات انبیاء حیات شہداء سے کامل تر ہے۔

Fatawa-e-Razvia | Volume 9

812 | By reciting the Holy Quran near a grave, the reciter gets the reward of recitation and the deceased gets the reward of listening. | 799 | Caution: Calling the Saints 'Gharib Nawaz' (Caretaker of the Poor). | 816 817 | It is a fact that the speech of the deceased is heard by the creation. | 799 | Saints providing help by appearing in a wakeful state after their passing. | 817 819 | Affairs of the Barzakh (intermediary world) and the Afterlife are not on the same pattern as seen in this world. | 800 | Fourth Section: The original issue, the questioner's issue, i.e., seeking help and calling upon the Saints. | 819 821 | Knowledge and hearing remaining after death is not specific to humans but is also possessed by Jinns. | 800 | Nad-e-Ali: O Ali, O Ali, O Ali. | 821 822 | There are three reasons for not mentioning the Ahadith and narrations related specifically to the life, knowledge, hearing, and sight of the Holy Prophet (peace be upon him) in this treatise. | 801 | If considering Mawla Ali (may Allah honor his face) and the Saints as 'Mushkil Kusha' (Remover of Difficulties) is polytheism, then the entire family of Shah Abdul Aziz (Azizi family) is polytheistic. | 822 823 | Second category: A hundred statements of the Azizi family. | 802 | Shayan Lillah Ya Sheikh Abdul Qadir Jilani. | 823 824 | First Section: Regarding the knowledge, hearing, and sight of the deceased. | 802 | Conclusion: The Fatwa of the scholars of Arabia regarding the hearing of the dead. | 824 824 | Mawlavi Ishaq's unintentional acceptance of faith in the knowledge of the deceased. | 805 | Arbitration without the consent of both parties is not rational. | 824 828 | Success of Shah Abdul Qadir. | 806 | Takmeel-e-Jamil and Sajeel-e-Jaleel regarding the reminder of several sublime benefits. | 828 828 | Second Section: Persistence of disposal of affairs and miracles after death. | 806 | First Benefit: One who denies the hearing of the dead is an innovator and astray. | 828 828 | Ghaus-e-Azam (may Allah be pleased with him) disposes affairs from his holy shrine like the living. | 806 | Second Benefit: The knowledge, hearing, and sight of the people of the graves are permanent. | 828 828 | The new faith of Mawlavi Ismail Dehlvi. | 807 | However, it is more frequent on the day of Friday. | 828 829 | Third Section: Regarding the spiritual grace and help of the Saints after their death. | 808 | Third Benefit: Souls of the believers have the authority to go wherever they wish. | 829 829 | Entrusting wealth and belongings to the protection of Saints and receiving unseen help for it. | 809 | It is narrated that the living Saints can be present in seventy places at once. | 829 829 | All Saints are granted their positions by Ghaus-e-Azam. | 811 | Gabriel (peace be upon him) remains present at Sidrat al-Muntaha even while being present in the court of the

Prophet. | 829 829 | Saints are removers of difficulties. | 813 | Gabriel (peace be upon him) has six hundred wings. Footnote. | 829

फ़तावा-ए-रज़विया | खंड 9

८१२ | कब्र के पास क़ुरान मजीद पढ़ने से क़ारी को क़िरात और मैयत को सुनने का सवाब मिलता है। | ७९९ | चेतावनी: औलिया को ग़रीब नवाज़ कहना। | ८१६ ८१७ | मुर्दों का कलाम मखलूक का सुनना हक़ है। | ७९९ | इंतिक़ाल के बाद औलिया का बेदारी (जागृत अवस्था) में आकर मदद करना। | ८१७ ८१९ | बरज़ख़ और आख़िरत के काम उस तरीके पर नहीं हैं जो दुनिया में देखे जाते हैं। | ८०० | वस्ल चहारुम: असल मसला सायल का मसला यानी इस्तिम्दाद व निदा-ए-औलिया। | ८१९ ८२१ | मौत के बाद इल्म और समाअ (सुनना) का बाक़ी रहना इंसानों के साथ ख़ास नहीं है बल्कि जिन्नों को भी हासिल है। | ८०० | नादे अली: या अली, या अली, या अली। | ८२१ ८२२ | ख़ास हुज़ूर अनवर सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम की हयात, इल्म, समाअ और बसर के मुताल्लिक़ वारिद अहादीस व आसार को इस रिसाला में ज़िक्र न करने की तीन वजुहात हैं। | ८०१ | अगर मौला अली करमल्लाहु वज्हहुल करीम और औलिया को मुश्किल कुशा मानना शिर्क है तो तमाम खानदान-ए-अज़ीज़ी मुशरिक हुआ। | ८२२ ८२३ | नौअ दुवम: सौ मक़ाल खानदान-ए-अज़ीज़ी के। | ८०२ | शय्यन लिल्लाह या शैख़ अब्दुल क़ादिर जीलानी | ८२३ ८२४ | वस्ल अव्वल: मुर्दों में इल्म व समाअ व बसर। | ८०२ | ख़ातिमा: मुर्दों के सुनने के बारे में उलमा-ए-अरब का फ़तवा। | ८२४ ८२४ | मौलवी इसहाक़ का अनजाने में मुर्दों के इल्म पर ईमान ले आना। | ८०५ | दोनों पक्षों की स्वीकृति के बिना मध्यस्थता तर्कसंगत नहीं है। | ८२४ ८२८ | शाह अब्दुल क़ादिर साहब की तौफ़ीक़ | ८०६ | तकमील-ए-जमील व सजील-ए-जलील चन्द फ़वाइद-ए-आलिया की याददिहानी में। | ८२८ ८२८ | वस्ल दुवम: विसाल (मृत्यु) के बाद तसर्रुफ़ात और करामात का बाक़ी रहना। | ८०६ | फ़ायदा अव्वल: मुर्दों के सुनने का इंकार करने वाला बिदअती और गुमराह है। | ८२८ ८२८ | हुज़ूर ग़ौस-ए-आज़म रज़ियल्लाहु तआला अन्हु मज़ार-ए-अक़दस से ज़िन्दों की तरह तसर्रुफ़ फ़रमाते हैं। | ८०६ | फ़ायदा सानी: कब्र वालों का इल्म व समाअ व बसर हमेशा के लिए है। | ८२८ ८२८ | मौलवी इसमाईल देहलवी का नया ईमान | ८०७ | अलबत्ता जुमा के दिन ज़्यादा होता है। | ८२८ ८२९ | वस्ल सुवम: विसाल के बाद औलिया के फ़ैज़ और मदद में। | ८०८ | फ़ायदा सालिस: मोमिनों की रूहें जहाँ चाहें जाने का अधिकार रखती हैं। | ८२९ ८२९ | माल व अस्बाब औलिया की हिमायत में सौंपना और उस पर ग़ैबी मदद पाना। | ८०९ | रिवायत है कि ज़िन्दा औलिया एक वक़्त में सत्तर जगह तशरीफ़ फ़रमा हो सकते हैं। | ८२९ ८२९ | तमाम औलिया को ओहदे हुज़ूर ग़ौस-ए-आज़म अता फ़रमाते हैं। | ८११ | जिब्रील अलैहिस्सलाम दरबार-ए-नबवी में हाज़िरी के वक़्त सिदरतुल

मुन्तहा पर भी जलवागर रहते थे। | ८२९ ८२९ | औलिया मुश्किल कुशा होते हैं। | ८१३ | जिब्रील अलैहिस्सलाम के छह सौ पर (पंख) हैं। हाशिया | ८२९

۸۱۲ | قبر کے پاس قرآن مجید پڑھنے سے قاری کو قرآۃ اور میت کو استماع کا ثواب ملتا ہے۔ | ۷۹۹ | تنبیہ: اولیاء کو غریب نواز کہنا۔ | ۸۱۶ ۸۱۷ | اموات کا کلام مخلوق کو سننا حق ہے۔ | ۷۹۹ | اولیاء کا بعد انتقال بیداری میں آکر مدد کرنا۔ | ۸۱۷ ۸۱۹ | برزخ اور آخرت کے کام اس روش پر نہیں جو دنیا میں دیکھی بھالی ہے۔ | ۸۰۰ | وصل چہارم: اصل مسئلہ مسئلہ سائل یعنی استمداد و نداء اولیاء۔ | ۸۱۹ ۸۲۱ | بعد موت علم و سماع کا باقی رہنا بنی آدم سے خاص نہیں بلکہ جنوں کو بھی حاصل ہے۔ | ۸۰۰ | نادِ علی: یا علی، یا علی، یا علی۔ | ۸۲۱ ۸۲۲ | خاص حضور انور صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کی حیات، علم، سمع اور بصر سے متعلق وارد احادیث و آثار کو اس رسالہ میں ذکر نہ کرنے کی تین وجوہ ہیں۔ | ۸۰۱ | اگر مولا علی کرم اللہ وجہہ الکریم اور اولیاء کو مشکل کشا ماننا شرک ہے تو تمام خاندانِ عزیزی مشرک ہوا۔ | ۸۲۲ ۸۲۳ | نوع دوم: سو مقال خاندانِ عزیزی کے۔ | ۸۰۲ | شیا للہ یا شیخ عبدالقادر جیلانی | ۸۲۳ ۸۲۴ | وصل اول: علم و سمع و بصر اموات میں۔ | ۸۰۲ | خاتمہ: درباره سماع موتی علمائے عرب کا فتویٰ۔ | ۸۲۴ ۸۲۴ | مولوی اسحاق کا نادانستہ علم اموات پر ایمان لے آنا۔ | ۸۰۵ | تحکیم بے قبول طرفین معقول نہیں۔ | ۸۲۴ ۸۲۸ | شاہ عبدالقادر صاحب کی توفیق | ۸۰۶ | تکمیل جمیل و سجیل جلیل چند فوائدِ عالیہ کی یاددہانی میں۔ | ۸۲۸ ۸۲۸ | وصل دوم: بقاء تصرفات و کرامات بعد از وصال | ۸۰۶ | فائدہ اولیٰ: سماع موتی کا منکر بدعتی گمراہ ہے۔ | ۸۲۸ ۸۲۸ | حضور غوثِ اعظم رضی اللہ تعالیٰ عنہ مزار اقدس سے مثلِ احیاء تصرف فرماتے ہیں۔ | ۸۰۶ | فائدہ ثانیہ: اہل قبور کا علم و سمع و بصر ہمیشہ ہے | ۸۲۸ ۸۲۸ | مولوی اسمعیل دہلوی کا نیا ایمان | ۸۰۷ | البتہ جمعہ کے دن زیادہ ہوتا ہے۔ | ۸۲۸ ۸۲۹ | وصل سوم: بعد وصال اولیاء کے فیض و

امداد میں۔ | ۸۰۸ | فائدہ ثالثہ: ارواح مومنین جہاں چاہیں جانے کا اختیار رکھتی ہیں۔ | ۸۲۹ ۸۲۹ | مال و اسباب اولیاء کی حمایت میں سونپنا اور اس پر غیبی مدد پانا۔ | ۸۰۹ | اولیاء احیاء کا ایک وقت میں ستر جگہ تشریف فرما ہونا منقول ہے۔ | ۸۲۹ ۸۲۹ | سب اولیاء کو مناصب حضور غوثِ اعظم عطا فرماتے ہیں۔ | ۸۱۱ | جبریل علیہ السلام بارگاہِ نبوی میں حاضری کے وقت سدرۃ المنتہیٰ پر بھی جلوہ گر رہتے۔ | ۸۲۹ ۸۲۹ | اولیاء مشکل کشا ہوتے ہیں۔ | ۸۱۳ | جبریل علیہ السلام کے چھ سو پر ہیں۔ حاشیہ | ۸۲۹

Fatawa Rizvia, Volume 9

Page 48 of 948

830: The presence of the Holy Prophet (may Allah's peace and blessings be upon him) in virtuous gatherings is a truth. 831: Fourth Benefit: For pure souls, far and near are the same in terms of seeing and hearing. 831: Fifth Benefit: Calling upon the saints (Auliya) from anywhere is permissible, and their help reaches everywhere. 832: Call out "Ya Zarzuq" and I will come to your aid immediately. 832: A "Wahhabi-crushing" practice for lost items. (Footnote) 833: Warning: According to Wahhabis, the entire Dehlvi family became polytheists (Mushriks) by saying 'Ghaus-e-Azam' and 'Ghaus-uth-Thaqalayn', including Mian Ismail Dehlvi and Maulvi Ishaq himself. 834: Shah Abdul Aziz states that Ghaus-e-Azam and Mahbub-e-Ilahi (may Allah be pleased with them) are beloved of the creation. 834: Important Warning: Mandatory for every Muslim to observe. 836: If this is the creed of Wahhabism, then all saints and scholars from the third century until today are polytheists. 837: Treatise "Al-Wifaq al-Mateen": Between hearing of the buried and the response of the oath (Answer to the reasoning against the hearing of the dead from the issue of an oath). 837: An abundant benefit in the investigation of the issue of oaths. 838: If a person swears "I will not speak to Zaid", this oath is restricted to Zaid's lifetime. If he speaks to Zaid after his death, he will not be a breaker of the oath (hanith). 838: According to us, the basis of an oath is on common usage ('urf). 838: An oath applies to the common meaning of a word, not its linguistic or legal (shari') meaning.

838: If one swears not to sit on bedding, not to take light from a lamp, or not to come under a roof, then sitting on the ground, in the sunlight, or under the open sky will not break the oath. 838: If one swears not to enter any house, then entering mosques or other places of worship will not make him a breaker of the oath. 838: To understand that according to the Imams of our school, speaking to the deceased is not truly or legally "speaking" is pure falsehood. 838: If one swears not to speak to Zaid and then says "Assalamu Alaikum" to Zaid outside of prayer, he will be a breaker of the oath. 838: In the mentioned case, if the one who took the oath prayed behind Zaid, and Zaid made a mistake in prayer, and he corrected Zaid, he will not be a breaker of the oath. If he corrected him outside of prayer, he will be a breaker of the oath. 841: One who swears not to eat meat will not be a breaker of the oath by eating fish. 842: The proverb "a drowning man catches at a straw" applies perfectly to all opponents of the Ahl al-Sunnah. 842: For the denier Wahhabis, religion and Sharia are just names for their own desires and whims. 843: First Premise: The soul does not

perish; the idea that souls die with death is the saying of those with corrupt beliefs. 843: Death is actually an attribute of the body, not a quality of the soul. 845: Sleep is the younger sister of death. 847: Second Premise: The perceiver of reality is the soul, not the body. 849: Perception is metaphorically attributed to the body because it serves as an instrument.

फ़तावा रज़विया, खंड 9

पृष्ठ 948 का 48

830: पवित्र सभाओं में हुज़ूर अकदस (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) का आगमन सत्य है। 831: चौथा लाभ: पवित्र आत्माओं के लिए देखने और सुनने में दूर और नज़दीक सब बराबर है। 831: पांचवां लाभ: औलिया को कहीं से भी पुकारना जायज़ है और उनकी मदद हर जगह पहुँचती है। 832: 'या ज़रज़ुक' कहकर पुकारो, मैं तुरंत तुम्हारी मदद के लिए आऊंगा। 832: खोई हुई चीज़ के लिए 'वहाबी-नाशक' अमल। (फुटनोट) 833: चेतावनी: वहाबियों के अनुसार, 'ग़ौस-ए-आज़म' और 'ग़ौस-उल-सकलैन' कहने से पूरा देहलवी परिवार मुशरिक हो गया, यहाँ तक कि खुद मियां इस्माइल देहलवी और मौलवी इसहाक साहब भी। 834: शाह अब्दुल अज़ीज़ साहब फरमाते हैं कि ग़ौस-ए-आज़म और महबूब-ए-इलाही (रज़ियल्लाहु अन्हुमा) मख्लूक के महबूब हैं। 834: महत्वपूर्ण चेतावनी: हर मुस्लिम के लिए ध्यान देने योग्य। 836: अगर यह वहाबियत का मज़हब है, तो तीसरी सदी से आज तक के तमाम औलिया और उलेमा मुशरिक हैं। 837: रिसाला 'अल-विफाक अल-मतीन': दफन किए हुए लोगों के सुनने और शपथ के उत्तर के बीच (शपथ के मसले से मुर्दों के सुनने के खिलाफ दिए गए तर्क का जवाब)। 837: शपथ के मसले की तहकीक में एक बड़ा लाभ। 838: अगर कोई व्यक्ति कसम खाए कि "मैं ज़ैद से बात नहीं करूँगा", तो यह कसम ज़ैद के जीवित रहने तक सीमित है। अगर वह ज़ैद के इंतकाल के बाद उससे बात करता है, तो वह कसम तोड़ने वाला (हानिस) नहीं होगा। 838: हमारे नज़दीक शपथ का आधार लोक-प्रचलन ('उर्फ़') पर है। 838: शब्द के प्रचलित अर्थ पर कसम लागू होती है, न कि भाषाई या शरीयत के अर्थ पर।

838: कसम खाई कि बिछौने पर नहीं बैठेगा या चिराग से रोशनी नहीं लेगा या छत के नीचे नहीं आएगा, तो ज़मीन पर, धूप में या खुले आसमान के नीचे बैठने से कसम नहीं टूटेगी। 838: कसम खाई कि किसी घर में नहीं जाएगा, तो मस्जिद आदि इबादतगाहों में जाने से कसम नहीं टूटेगी। 838: यह समझना कि हमारे इमामों के नज़दीक मृतक से बात करना वास्तव में या शरीयत के लिहाज़ से 'बात करना' नहीं है, सरासर निराधार है। 838: कसम खाई कि ज़ैद से नहीं बोलेगा, फिर नमाज़ के बाहर ज़ैद को 'अस्सलाम अलैकुम' कहा, तो कसम टूट जाएगी। 838: उक्त स्थिति में अगर कसम खाने वाले ने ज़ैद के पीछे नमाज़ पढ़ी, ज़ैद भूल गया, उसने उसे बताया तो कसम नहीं टूटेगी। अगर नमाज़ के बाहर बताया तो कसम टूट जाएगी। 841: मांस न खाने की कसम खाने वाला मछली खाने से कसम तोड़ने वाला नहीं होगा। 842: अहले सुन्नत के सभी विरोधियों पर "डूबते को तिनके का

सहारा" की मिसाल पूरी तरह खरी उतरती है। 842: मुनकिर वहाबियों के यहाँ दीन और शरीयत अपनी इच्छाओं और वासनाओं का नाम है। 843: पहला मुकद्दरमा: रूह का नाश नहीं होता; मौत से रूहों का मर जाना बद-मज़हबों का कहना है। 843: मौत वास्तव में शरीर की एक अवस्था है, न कि रूह की विशेषता। 845: नींद मौत की छोटी बहन है। 847: दूसरा मुकद्दरमा: वास्तविकता को समझने वाली रूह है, न कि शरीर। 849: शरीर की ओर बोध (इद्राक) का श्रेय अलंकारिक रूप से उसके माध्यम (उपकरण) होने के कारण दिया जाता है।

فتاوی رضویہ جلد نہم

۸۳۰: مجالس خیر میں حضور اقدس صلی اللہ تعالی علیہ وسلم کی تشریف آوری حق ہے۔ ۸۳۱: فائدہ رابعہ: ارواح طیبہ کے لیے دیکھنے اور سننے میں دور و نزدیک سب یکساں ہے۔ ۸۳۱: فائدہ خامسہ: اولیاء کو ہر جگہ سے ندا جائز اور سب جگہ ان کی امداد واصل۔ ۸۳۲: یاز رزوق کہہ کر پکارو میں فوراً مدد کو آؤں گا۔ ۸۳۲: گم شدہ چیز کا وہابی کش عمل۔ (حاشیہ) ۸۳۳: تنبیہ : وہابیہ کے طور پر تمام خاندان دہلوی غوث اعظم و غوث الثقلین کہہ کر مشرک ہوا، حتی کہ خود میاں اسمعیل دہلوی و مولوی اسحاق صاحب۔ ۸۳۴: شاہ عبدالعزیز صاحب فرماتے ہیں کہ غوث اعظم اور محبوب الہی رضی اللہ تعالی عنہا محبوب خلائق ہیں۔ ۸۳۴: تنبیہ مہم واجب الملاحظہ ہر مسلم۔ ۸۳۶: اگر وہابیت کا مذہب ہے تو قرونِ ثالثہ سے لے کر آج تک کے تمام اولیاء و علماء مشرک ہیں۔ ۸۳۷: رسالہ الوفاق المتین بین سماع الدفین و جواب الیمین (مسئلہ یمین سے سماعِ موتی کے خلاف پر استدلال کا جواب) ۸۳۷: عائدہ جزیلہ تحقیق مسئلہ یمین میں۔ ۸۳۸: اگر کوئی شخص قسم کھائے کہ زید سے نہ بولوں گا تو یہ قسم زید کی حالتِ حیات پر مقصور رہتی ہے اگر بعد انتقال زید سے کلام کرے حانث نہ ہوگا۔ ۸۳۸: ہمارے نزدیک بنائے یمین عرف پر ہے۔ ۸۳۸: لفظ کے عرفی معنی پر قسم وارد ہوتی ہے نہ کہ لغوی و شرعی معنی پر۔

۸۳۸: قسم کھائی بچھونے پر نہ بیٹھے گا یا چراغ سے روشنی نہ لے گا یا چھت کے نیچے نہ آئے گا تو زمین میں پر یا دھوپ میں یا زیرِ آسمان بیٹھنے سے قسم نہ ٹوٹے گی۔ ۸۳۸: قسم کھائی کہ کسی گھر میں نہ جائے گا تو مسجد وغیرہ معابد میں جانے سے حانث نہ ہوگا۔ ۸۳۸: یہ سمجھنا کہ ہمارے ائمہ مذہب کے نزدیک میت سے کلام حقیقتاً یا شرعاً کلام نہیں محض باطل ہے۔ ۸۳۸: قسم کھائی کہ زید سے نہ بولے گا بیرونِ نماز زید کو کہا السلام علیکم، تو حانث ہو جائے گا۔ ۸۳۸:

صورتِ مذکورہ میں زید کی اقتداء میں قسم کھانے والے نے نماز پڑھی، زید بھولا، اس نے بتایا تو حانث نہ ہوگا، اگر بیرونِ نماز بتایا تو حانث ہو جائے گا۔ ۸۴۱: گوشت کھانے کی قسم کھانے والا مچھلی کھانے سے حانث نہ ہوگا۔ ۸۴۲: اہلسنت کے تمام مخالفین پر "ڈوبتے کو تنکے کا سہارا" کی مثال صادق آتی ہے۔ ۸۴۲: منکر وہابیوں کے یہاں دین و شریعت اپنی ہوا و ہوس کا نام ہے۔ ۸۴۳: مقدمہ اولی : روح کو فنا نہیں، موت سے روحوں کا مر جانا بد مذہبوں کا قول ہے۔ ۸۴۳: موت حقیقت صفتِ بدن ہے نہ کہ وصفِ روح۔ ۸۴۵: نیند موت کی چھوٹی بہن ہے۔ ۸۴۷: مقدمہ ثانیہ : مدرکِ حقیقتِ روح ہے نہ کہ بدن۔ ۸۴۹: بدن کی طرف مجازاً بوجہِ آلیت نسبت ادراک ہوتی ہے۔

Fatawa Rizvia Volume 9

- 850 | Third Preface: The life of the soul is continuous.
- 850 | According to the Ahl-ul-Sunnah, the body is not a condition for life.
- 850 | Comfort or punishment in the grave applies to both soul and body.
- 851 | It is impossible to question inanimate matter as it is, or to deliver pleasure and pain to it, without a divine sign.
- 853 | The soul's life is continuous and uninterrupted, but its persistence in the body after returning is not necessary.
- 854 | Fourth Preface: The literal and conventional meanings of hearing and sight.
- 854 | There are three meanings of hearing and sight.
- 855 | Visual perception depends on three things: direct visual contact, movement of the eyeballs, and the removal of any obstruction.
- 856 | On the Day of Judgment, the believers will see their Lord Almighty and hear His words.
- 857 | Fifth Preface: In Shariah texts and conventional idioms, attributes of both soul and body are attributed to man.
- 860 | Seeing and knowledge are attributes of the soul, while birth from a sperm-drop is of the body.
- 860 | There are four intellectual possibilities for the reality and referent of 'man': just the body, just the soul, each separately, or both together.
- 860 | The author's elegant research: "Man" is the name of the soul connected to the body.
- 864 | The soul's connection with the body is of four types: one in the worldly state of wakefulness, second in the state of sleep, third in the Barzakh state, and fourth in the Hereafter state.
- 866 | The most complete and highest connection is the one in the Hereafter, and the lowest and least is the Barzakh connection.
- 866 | The Barzakh connection is sufficient for the persistence of humanity.
- 868 | Instances of the rhetorical device 'Istikhdam' in the Holy Quran. (Footnote)
- 870 | Applying the term 'man' to the body is a conventional reality. (Footnote)
- 870 | The ignorance of philosophers in defining man and animals. (Footnote)
- 870 | The Great Quran was revealed in accordance with conventional usage.

• 871 | There are two realities for applying the term 'man': one is the primary, subtle reality, i.e., the soul connected to the body; the second is the famous conventional reality, i.e., the body.
• 871 | Sixth Preface: Attributes of the body are of two types: absolute primary attributes and secondary attributes conditional on life.
• 871 | After death, without the return of life, a vacant body is not called hearing, seeing, intending, or acting in any Shariah, conventional, or literal sense.
• 872 | Seventh Preface: Defining the point of contention.
• 872 | The discussion is about the hearing of souls; the bodies are not the objective.
• 874 | The meeting and conversation among the dead are proven by numerous Hadiths.
• 875 | First Answer: Consisting of twelve proofs and twenty-five evidences that the speech of scholars only refers to denying hearing to the dead body.
• 875 | A possibility (alternative explanation) invalidates a specific deduction.
• 876 | As much as possible, reconciling and harmonizing the words of the Imams is praiseworthy.
• 876 | The prejudice of the author of Tafhim-ul-Masail.
• 878 | The obstinacy of Futuji, author of Tafhim-ul-Masail.
• 878 | "You do not hear better than the corpses in the well of Badr."
• 879 | The shamelessness of the author of Tafhim-ul-Masail.

फतावा रज़विया जिल्द 9

- ८५० | तीसरा प्रस्तावना: आत्मा का जीवन निरंतर है।
- ८५० | अहले सुन्नत के अनुसार, शरीर जीवन के लिए शर्त नहीं है।
- ८५० | कब्र का सुख या दंड आत्मा और शरीर दोनों पर है।
- ८५१ | निर्जीव पदार्थ को, जैसा वह है, उससे प्रश्न करना या उसे सुख और दुःख पहुँचाना बिना किसी दैवीय संकेत के असंभव है।
- ८५३ | आत्मा का जीवन निरंतर और अटूट है, लेकिन शरीर में लौटने के बाद भी इसकी निरंतरता आवश्यक नहीं है।
- ८५४ | चौथी प्रस्तावना: सुनने और देखने का शाब्दिक और पारंपरिक अर्थ।
- ८५४ | सुनने और देखने के तीन अर्थ हैं।
- ८५५ | दृष्टि धारणा तीन बातों पर निर्भर करती है: दृष्टि का आमना-सामना, पुतलियों का घूमना और आवरण का हटना।
- ८५६ | कयामत के दिन, मोमिन अपने रब अज़ो-वजल को देखेंगे और उनके कलाम को सुनेंगे।
- ८५७ | पाँचवीं प्रस्तावना: शरीयत के ग्रंथों और पारंपरिक मुहावरों में, मनुष्य के प्रति आत्मा और शरीर दोनों के गुणों का श्रेय दिया जाता है।
- ८६० | देखना और ज्ञान आत्मा की विशेषता है, और वीर्य से जन्म शरीर का।
- ८६० | मनुष्य की वास्तविकता और अर्थ के बारे में चार बौद्धिक संभावनाएं हैं: केवल शरीर, या निराकार आत्मा, या प्रत्येक, या दोनों का योग।
- ८६० | लेखक का सूक्ष्म शोध: "मनुष्य" शरीर से जुड़ी आत्मा का नाम है।
- ८६४ | आत्मा का शरीर से संबंध चार प्रकार का है: एक जाग्रत अवस्था में दुनियावी, दूसरा नींद की अवस्था में, तीसरा बरज़खी और चौथा आख़िरवी (परलोक)।
- ८६६ | सबसे पूर्ण और उच्चतम संबंध आख़िरवी है, और सबसे कम और न्यूनतम बरज़खी संबंध है।
- ८६६ | मानवता की निरंतरता के लिए बरज़खी संबंध पर्याप्त है।
- ८९८ | पवित्र कुरान में 'इस्तख़दाम' अलंकार के अवसर। (पाद-टिप्पणी)
- ८७० | शरीर पर 'मनुष्य' शब्द का प्रयोग पारंपरिक वास्तविकता है। (पाद-टिप्पणी)

- ८७० | मनुष्य और पशु की परिभाषा में दार्शनिकों की अज्ञानता। (पाद-टिप्पणी)
- ८७० | कुरान-ए-अज़ीम पारंपरिक व्यवहार के अनुसार अवतरित हुआ।
- ८७१ | 'मनुष्य' शब्द के प्रयोग के लिए दो वास्तविकताएं हैं: एक सूक्ष्म प्राथमिक वास्तविकता अर्थात शरीर से जुड़ी आत्मा, दूसरी प्रसिद्ध पारंपरिक वास्तविकता अर्थात शरीर।
- ८७१ | छठी प्रस्तावना: शरीर के गुण दो प्रकार के होते हैं: निरपेक्ष प्राथमिक और जीवन पर आधारित गौण।
- ८७१ | मृत्यु के बाद, जीवन की वापसी के बिना, खाली शरीर को शरीयत, परंपरा या भाषा के अनुसार सुनने वाला, देखने वाला, इरादा रखने वाला या कार्य करने वाला नहीं कहा कहा जाता है।
- ८७२ | सातवीं प्रस्तावना: विवाद के बिंदु का निर्धारण।
- ८७२ | चर्चा आत्माओं के सुनने के बारे में है; शरीरों से कोई उद्देश्य नहीं है।
- ८७४ | मृतकों का आपस में मिलना और बातचीत करना कई हदीसों से सिद्ध है।
- ८७५ | पहला उत्तर: बारह प्रमाणों और पच्चीस साक्ष्यों पर आधारित कि विद्वानों के कलाम का अर्थ केवल मृत शरीर के सुनने का निषेध है।
- ८७५ | संभावना तर्क को काट देती है।
- ८७६ | जहाँ तक संभव हो, इमामों के वचनों में सामंजस्य और समन्वय प्रशंसनीय है।
- ८७६ | तफ़हीम-उल-मसाइल के लेखक का पक्षपात।
- ८७८ | तफ़हीम-उल-मसाइल के लेखक फतौजी साहब की हठधर्मिता।
- ८७८ | "तुम बद्र के कुएं में पड़ी लाशों से अधिक नहीं सुनते।"
- ८७९ | तफ़हीम-उल-मसाइल के लेखक की निर्लज्जता।

فتاویٰ رضویہ جلد نہم

- ۸۵۰ | مقدمہ ثالثہ : روح کی حیات مستمرہ ہے ۔
- ۸۵۰ | اہلسنت کے نزدیک جسم شرطِ حیات نہیں ۔
- ۸۵۰ | قبر کی تنعیم یا تعذیب روح و جسم دونوں پر۔
- ۸۵۱ | جماد من حیث ہو جماد سے سوال یا اسے لذت و الم کا ایصال بلا آیۃ محال ہے۔
- ۸۵۳ | روح کی حیات مستمرہ غیر منقطعہ ہے مگر بدن کے لئے بعد عود بھی استمرار ضروری نہیں ۔
- ۸۵۴ | مقدمہ رابعہ : سمع و بصر کا لغوی و عرفی معنی
- ۸۵۴ | سمع و بصر کے تین معنی ہیں۔
- ۸۵۵ | ادراک بالبصر تین امور پر موقوف ہے مواجہ بصر، تقلیب حدقہ اور ازالہ غشاوہ۔
- ۸۵۶ | روزِ قیامت مومنین اپنے رب عزوجل کو دیکھیں گے اور اس کا کلام سنیں گے۔
- ۸۵۷ | مقدمہ خامسہ : نصوص شرعیہ اور محاورات عرفیہ میں انسان کی طرف صفات روح و جسم دونوں کی نسبت کی جاتی ہے۔
- ۸۶۰ | رؤیت و علم شانِ روح ہے اور نطفے سے پیدائش بدن کی۔
- ۸۶۰ | حقیقت و مصداق انسان میں چار احتمال عقلی ہیں محض بدن یا مجرد روح یا ہر ایک یا مجموع۔
- ۸۶۰ | مصنف کی تحقیق انیق کہ انسان روح متعلق بالبدن کا نام ہے۔
- ۸۶۴ | روح کا بدن سے تعلق چار قسم پر ہے: ایک دنیوی بحال بیداری، دوسرا بحال خواب، تیسرابرزخی اور چوتھا اُخروی۔

- ۸۶۶ | اکمل و اعلیٰ تعلق اخروی ہے اور ادون و اقل تعلق برزخی ہے۔
- ۸۶۶ | بقاء انسانیت کے لئے تعلق برزخی کافی ہے۔
- ۸۶۸ | قرآن مجید میں صنعت استخدام کے مواقع۔ (حاشیہ)
- ۸۷۰ | بدن پر اطلاق انسان حقیقت عرفیہ ہے۔ (حاشیہ)
- ۸۷۰ | انسان و حیوان کی تعریف میں فلاسفہ کی جہالتیں۔ (حاشیہ)
- ۸۷۰ | قرآن عظیم مطابقت عرف پر اُترا۔
- ۸۷۱ | اطلاق انسان کے لیے دو حقیقتیں ہیں: ایک حقیقت اصلیہ دقیقہ یعنی روح متعلق بالبدن، دوسری حقیقت مشہورہ عرفیہ یعنی بدن۔
- ۸۷۱ | مقدمہ سادسہ : صفاتِ بدن دو قسم ہیں: اصلیہ مطلقہ اور تبعیہ مشروط بحیات۔
- ۸۷۱ | بعد موت بے عودِ حیات بدنِ خالی کو شرعاً عرفاً لغتاً کسی طرح سمیع و بصیر و مرید و فاعل نہیں کہتے۔
- ۸۷۲ | مقدمہ سابعہ : تحریر محل نزاع۔
- ۸۷۲ | کلام سماع ارواح میں ہے ابدان سے غرض نہیں۔
- ۸۷۴ | اموات کا باہم ملاقات کرنا اور آپس میں گفتگو کرنا متعدد احادیث سے ثابت۔
- ۸۷۵ | جواب اول : بارہ دلائل اور پچیس شواہد پر مشتمل کہ کلام مشائخ سے مراد صرف نفی سماعِ بدن مردہ ہے۔
- ۸۷۵ | احتمال قاطع استدلال ہے۔
- ۸۷۶ | حتی الامکان کلماتِ ائمہ میں توفیق و تطبیق محمود ہے۔
- ۸۷۶ | تعصب صاحب تفہیم المسائل۔
- ۸۷۸ | مکابرہ فتوحی صاحب تفہیم المسائل۔

- ۸۷۸ | تم قلیبِ بدر میں پڑی لاشوں سے زیادہ نہیں سنتے۔
- ۸۷۹ | بے شرمی صاحب تفہیم المسائل۔

Fatwa Razvia Volume 9

881 - The soul does not die; it is separated from the body's control, and Allah Almighty is capable of bringing it back into the body. 890 - Hearing people cry causes grief to the deceased. 882 - The one who is to be punished is given a form of life in the grave that makes them capable of feeling pain. 890 - Hearing the crying of the living, their deceased companions also start crying. 882 - Shortcoming in the narration of the author of 'Ma'at Masail'. (Footnote) 891 - Cutting trees and green grass from cemeteries is disliked (Makruh). 882 - In the noble verse "And you cannot make those hear who are in the graves," the phrase 'those in the graves' refers to the bodies. 891 - The confusion of the author of 'Tafheem al-Masail'. 882 - The misfortune of the author of 'Tafheem al-Masail'. 892 - Urinating on graves causes harm to the deceased. 882 - After the questioning by Munkar and Nakir, the soul of the blessed resides in Paradise and the soul of the wretched in Sijjin. 893 - If the statements of the masters (Mashaikh) are interpreted as a denial of the soul's hearing, then formidable objections would arise from which escape would be impossible. 882 - Mother of the Believers, Lady Aisha Siddiqah (may Allah be pleased with her), only denies physical hearing and affirms and acknowledges spiritual perception. 894 - Will an infidel migrant be questioned in the grave? 882 - Issues regarding types of oaths are of two kinds: one restricted to life and the other encompassing both life and death. 896 - The Hadith regarding the address to those killed at Badr is a clear text that those disbelievers heard with their physical ears. 882 - Which type is restricted to the life of the addressee and which type includes both life and death of the addressee. 896 - In the Hadiths that are clear texts regarding physical hearing, the specification of time or certain deceased is itself a clear path. 886 - Interpreting the words of the Imams and Masters as a denial of the souls' hearing is explicitly false, and it's an interpretation that the speaker would not agree with. 897 - The misunderstanding and ignorance of the author of 'Tafheem al-Masail' is evident. 887 - The statement of Imam Ibn al-Humam that cleaves the heart of innovation and heresy. 900 - If the mentioned meanings of the masters' words are taken, there are seven benefits; otherwise, there are as many harms and nothing is achieved. 887 - Which way to face when visiting the luminous shrine of the Holy Prophet (peace and blessings of Allah be upon him). 900 - Warning: In some matters, the people of innovation and some or all of the Sunnis agree, but the sources are different; the issue of 'Talqeen' (instruction to the deceased) is similar. 889 - Definition of the soul. 901 - Do not call the Holy Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) by

name, but say: O Messenger of Allah, O Beloved of Allah, O Vicegerent of Allah. 889 - The soul is not from the world of water and clay but from the angelic realm (Alam-e-Malakut).

फ़तवा-ए-रजविया जिल्द नहम (खंड 9)

881 - रूह मरती नहीं है, वह बदन के तसर्रुफ़ (नियंत्रण) से जुदा हुई है और अल्लाह तआला क़ादिर है कि उसे दोबारा बदन में ले आए। 890 - लोगों का रोना सुनकर मुर्दे को सदमा होता है। 882 - जिस पर अज़ाब करना होता है उसे क़ब्र में एक प्रकार का जीवन दिया जाता है जिससे वह दुख पहुँचने के क़ाबिल हो जाता है। 890 - ज़िंदों का रोना सुनकर उनके साथी मुर्दे भी रोने लगते हैं। 882 - साहिब-ए-मआत मसायल की नक़्ल में कोताही (हाशिया)। 891 - मक़बरों से दरख़्त और हरी घास काटना मकरूह है। 882 - आयते करीमा "और आप उन लोगों को नहीं सुना सकते जो क़ब्रों में हैं" में 'मन फिल क़ुबूर' से मुराद बदन है। 891 - साहिब-ए-तफ़हीमुल मसायल का मतिभ्रम। 882 - साहिब-ए-तफ़हीमुल मसायल की बदक़िस्मती। 892 - मक़ाबिर पर पेशाब करने से मुर्दों को ईज़ा (पीड़ा) होती है। 882 - मुनकिर-नकीर के सवाल के बाद नेक आदमी की रूह जन्नत में और पापी की सिज्जीन में रहती है। 893 - अगर मशायख़ के कलाम को रूह के सुनने की नफ़ी (इनकार) पर महमूल किया जाए तो वह सख़्त ऐतराज़ात होंगे जिनसे छुटकारा पाना नामुमकिन होगा। 882 - उम्मुल मोमिनीन सैयदा आयशा सिद्दीक़ा रज़ियल्लाहु तआला अन्हा सिर्फ़ जिस्मानी सुनने की मुनकिर हैं और रूहानी इदराक की मुसबित और मुक़िर हैं। 894 - क्या काफ़िर मुहाजिर से क़ब्र का सवाल होगा? 882 - क़सम के मसायल दो प्रकार के हैं: एक जीवन तक सीमित और दूसरे जीवन और मृत्यु दोनों को शामिल। 896 - मक़्तूलीन-ए-बदर से ख़िताब वाली हदीस स्पष्ट प्रमाण है कि उन काफ़िरों ने बदन के कानों से सुना। 882 - कौन सी क़िस्म मुख़ातब के जीवन तक सीमित है और कौन सी मुख़ातब की मौत और हयात दोनों को शामिल है। 896 - जो अहादीस जिस्मानी सुनने में स्पष्ट प्रमाण हैं, उनमें समय की विशेषता या कुछ मृतकों की विशेषता स्वयं एक स्पष्ट मार्ग है। 886 - अइम्मा और मशायख़ के कलाम को रूहों के सुनने की नफ़ी पर महमूल करना स्पष्ट रूप से बातिल है और ऐसी व्याख्या है जिससे कहने वाला भी सहमत न होगा। 897 - साहिब-ए-तफ़हीमुल मसायल की नाफ़हमी और जहल (अज्ञानता) स्पष्ट है। 887 - बिदअत और इल्हाद के सीने को चीर देने वाला इमाम इब्नुल हुमाम का इर्शाद। 900 - मशायख़ के कलाम के यदि उपर्युक्त अर्थ लिए जाएँ तो सात फ़ायदे हैं वरना उतने ही नुक़सान और हासिल कुछ नहीं। 887 - हुज़ूर अक़दस सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम के मज़ार-ए-अनवर पर हाज़िरी के समय मुँह किस ओर किया जाए। 900 - तन्बीह (सावधानी): कुछ मसायल में अहल-ए-बिदअत और कुछ या तमाम अहल-ए-सुन्नत मुत्तफ़िक़ (सहमत) होते हैं लेकिन माख़ज़ (स्रोत) अलग होते हैं, तलक़ीन का मसला भी ऐसा ही है। 889 - रूह की परिभाषा। 901 -

हुज़ूर अकरम सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम को नाम लेकर न पुकारो बल्कि यूँ कहो: या रसूलल्लाह, या हबीबल्लाह, या ख़लीफ़तुल्लाह। 889 - रूह पानी और मिट्टी की दुनिया से नहीं बल्कि आलमे मलकूत (देवदूतों की दुनिया) से है।

पृष्ठ 50 / 948

فتاوی رضویہ جلد نہم

۸۸۱ - روح میت نہیں وہ تصرف بدن سے جدا ہوئی ہے اور اللہ تعالیٰ قادر ہے کہ اسے دوبارہ بدن میں لے آئے۔ ۸۹۰ - لوگوں کا رونا سن کر مردے کو صدمہ ہوتا ہے۔ ۸۸۲ - جس پر عذاب کرنا ہوتا ہے اسے قبر میں ایک گونہ حیات دی جاتی ہے جس سے الم پہنچنے کے قابل ہو جاتا ہے۔ ۸۹۰ - زندوں کا رونا سن کر ان کے ساتھی مردے بھی رونے لگتے ہیں۔ ۸۸۲ - صاحب مائۃ مسائل کی نقل میں تقصیر۔ (حاشیہ) ۸۹۱ - مقبروں سے درخت اور گیاہ سبز کاٹنا مکروہ ہے۔ ۸۸۲ - آیہ کریمہ "وما أنت بمسمع من في القبور" میں من فی القبور سے مراد بدن ہے۔ ۸۹۱ - صاحب تفہیم المسائل کا خبط۔ ۸۸۲ - صاحب تفہیم المسائل کی بدقسمتی۔ ۸۹۲ - مقابر پر پیشاب کرنے سے مردوں کو ایذا ہوتی ہے۔ ۸۸۲ - بعد سوال نکیرین سعید کی روح جنت میں اور شقی کی سجین میں رہتی ہے۔ ۸۹۳ - اگر کلام مشائخ کو نفی سماع روح پر محمول کیا جائے تو وہ اعتراضات قاہرہ وارد ہوں جن سے رہائی ناممکن الحصول ہو۔ ۸۸۲ - ام المومنین سیدہ عائشہ صدیقہ رضی اللہ تعالیٰ عنہا صرف سماع جسمانی کی منکر ہیں اور ادراک روحانی کی مثبت و مقر ہیں۔ ۸۹۴ - کیا کافر مہاجر سے سوال قبر ہوگا۔ ۸۸۲ - مبحث قسم کے مسائل دو قسم پر ہیں: ایک مقید بحیات اور دوسرے شامل موت و حیات۔ ۸۹۶ - مقتولین بدر سے خطاب والی حدیث نص صریح ہے کہ ان کافروں نے گوش بدن سے سنا۔ ۸۸۲ - کون سی قسم مخاطب کی حیات پر مقصور اور کون سی مخاطب کی موت و حیات دونوں شامل ہے۔ ۸۹۶ - جو احادیث سماع جسمانی میں نص ہیں ان میں تخصیص وقت یا بعض اموات خود سبیل واضح ہے۔ ۸۸۶ - کلام ائمہ و مشائخ کو نفی سماع ارواح پر محمول کرنا صراحتہً باطل اور توجیہ القول مالا یرضی بہ القائل ہے۔ ۸۹۷ - صاحب تفہیم المسائل کی نافہمی و جہل واضح۔ ۸۸۷ - توہب والحاد کے جگر میں شگاف ڈالنے والا ارشاد امام

ابن الہمام۔ ۹۰۰ - کلام مشائخ کے مذکورہ معنی لیے جائیں سات فوائد ورنہ اتنے ہی ضرر اور حاصل کچھ نہیں۔ ۸۸۷ - مزار انور حضور اقدس صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم پر حاضری کے وقت منہ کدھر کیا جائے۔ ۹۰۰ - تنبیہ : بعض مسائل میں اہل بدعت اور بعض یا کل اہلسنت متفق ہوتے ہیں اور ماخذ مختلف، مسئلہ تلقین بھی ایسا ہی ہے۔ ۸۸۹ - روح کی تعریف۔ ۹۰۱ - حضور اکرم صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کو نام لے کر مت پکارو بلکہ یوں کہو یا رسول اللہ، یا حبیب اللہ، یا خلیفۃ اللہ۔ ۸۸۹ - روح عالم آب و گل سے نہیں بلکہ عالم ملکوت سے ہے۔

Fatawa Razawiyya Volume 9

[902] The author of Tafheem-ul-Masail is a complete expert in invention and slander. | [908] Ignorance of the author of Tafheem-ul-Masail. [903] External trauma also causes pain to the body of the deceased. | [909] To consider the soul dead when it leaves the body and to consider the body a necessary condition for the soul's perception are both views of the people of innovation, the misguided, and the Mu'tazilites, etc. [904] According to the narration of Hazrat Amr bin al-Aas (may Allah be pleased with him), breaking the bone of a dead person causes the same pain as breaking the bone of a living person. | [910] A Great Benefit: Discussion on the denial by Sayyidah Aisha Siddiqa (may Allah be pleased with her). [904] The testament of Hazrat Amr bin al-Aas (may Allah be pleased with him) that at the time of burial, pour soil on me gently. | [912] Ummul Mo'mineen Sayyidah Aisha Siddiqa (may Allah be pleased with her) visited her brother's grave, recited two couplets, and addressed him. [905] Things that are painful for the living are also painful for the dead. | [912] The Holy Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) used to go to the Baqi cemetery at the end of the night to offer Salam, talk, and address (the deceased). [905] The deceased person adjures the one washing them to be gentle with them. | [913] Ummul Mo'mineen Sayyidah Aisha Siddiqa (may Allah be pleased with her) only denies physical hearing. [905] Ummul Mo'mineen Sayyidah Aisha Siddiqa (may Allah be pleased with her) forbade combing the hair of a deceased woman. | [913] The majority of scholars did not accept Ummul Mo'mineen's denial regarding the issue of 'hearing of the dead'. [906] In any case, if pain is accepted for the body of the deceased, there is no contradiction in the issue of 'oath regarding hitting', and if it is not accepted, there is no contradiction in the issue of 'hearing'. | [915] Third Answer: Comprehensive of both answers. [906] Second answer: Denial is regarding hearing through physical organs. | [915] The statement of the scholars that the deceased or 'Zaid' does not hear after death is susceptible to four meanings. [907] The command of the Holy Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) to send more blessings upon me on Friday. | [916] Fourth Answer: Those who deny the hearing of the dead are actually Mu'tazilites who have infiltrated the Hanafi school of thought. [907] It is forbidden for the earth to consume the bodies of the Prophets (peace and blessings be upon them). | [916] Relying on the speech of the scholars was based on two opposing premises: the minor premise being that the prohibition of hearing of the dead is the opinion of the majority of Hanafi scholars, and the implied major premise being that whatever the majority of Hanafi scholars say is truth in itself or its

acceptance is obligatory upon us. The first three answers are in refutation of the minor premise, and the remaining three are in refutation of the major premise. [908] The Prophets of Allah the Almighty are alive and are provided with sustenance.

फ़तावा रज़विया जिल्द नहम (भाग 9)

[902] तफ़हीम-उल-मसाइल के लेखक आविष्कार और बदनामी के पूर्ण विशेषज्ञ हैं। | [908] तफ़हीम-उल-मसाइल के लेखक की अज्ञानता। [903] मृत शरीर को बाहरी आघात भी पीड़ा पहुँचाता है। | [909] शरीर से आत्मा के निकलने पर उसे मृत मानना और आत्मा की अनुभूति के लिए शरीर को शर्त मानना, ये दोनों बिदअतियों, पथभ्रष्टों और मोअतज़िला आदि के कथन हैं। [904] हज़रत अम्र बिन अल-आस (रज़ियल्लाहु अन्हु) के प्रभाव के अनुसार, मृत और जीवित की हड्डी तोड़ना दर्द में बराबर है। | [910] महान लाभ: सैयदा आयशा सिद्दीका (रज़ियल्लाहु अन्हा) के इनकार पर चर्चा। [904] हज़रत अम्र बिन अल-आस (रज़ियल्लाहु अन्हु) की वसीयत कि दफनाने के समय मुझ पर धीरे से मिट्टी डालें। | [912] उम्मुल मोमिनीन सैयदा आयशा सिद्दीका (रज़ियल्लाहु अन्हा) अपने भाई की कब्र पर हाज़िर हुईं, दो शेर पढ़े और उन्हें संबोधित किया। [905] जिन चीज़ों से जीवित को कष्ट होता है, उनसे मृत को भी कष्ट होता है। | [912] हुज़ूर अक़दस (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) रात के आख़िरी हिस्से में बक़ी कब्रिस्तान जाते और सलाम, कलाम व ख़िताब फ़रमाया करते। [905] मृत व्यक्ति नहलाने वाले को क़सम देता है कि मुझ पर आसानी करना। | [913] उम्मुल मोमिनीन सैयदा आयशा सिद्दीका (रज़ियल्लाहु अन्हा) केवल शारीरिक श्रवण (समाग़-ए-जिस्मानी) का इनकार करती हैं। [905] उम्मुल मोमिनीन सैयदा आयशा सिद्दीका (रज़ियल्लाहु अन्हा) ने मृत महिला को कंघी करने से मना किया। | [913] अधिकांश विद्वानों ने मृतकों के सुनने के मसले में उम्मुल मोमिनीन के इनकार को स्वीकार नहीं किया। [906] बहरहाल, यदि मृत शरीर के लिए पीड़ा मान ली जाए तो 'मारने की शपथ' के मसले पर कोई आपत्ति नहीं, और यदि न मानी जाए तो 'सुनने' के मसले पर कोई आपत्ति नहीं। | [915] तीसरा जवाब: दोनों जवाबों का संग्रह। [906] दूसरा जवाब: शारीरिक अंगों के माध्यम से सुनने का निषेध है। | [915] बुज़ुर्गों (मशायख़) का कथन कि मृत या ज़ैद मृत्यु के बाद नहीं सुनता, इसके चार अर्थ हो सकते हैं। [907] हुज़ूर अक़दस (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) का आदेश कि जुमे के दिन मुझ पर अधिक दरूद भेजा करो। | [916] चौथा जवाब: मृतकों के सुनने का इनकार करने वाले वास्तव में मोअतज़िला हैं जो हनफ़ी मज़हब में घुस गए हैं। [907] नबियों (अलैहिमुस्सलाम) के शरीर को खाना ज़मीन पर हराम है। | [916] बुज़ुर्गों के कलाम से तर्क देना दो विरोधी प्रस्तावों पर आधारित था, छोटी प्रस्तावना (सुग़रा) यह कि मृतकों के सुनने का निषेध अधिकांश हनफ़ी मशायख़ का कथन है, और छिपी हुई बड़ी प्रस्तावना (कुबरा) यह कि जो अधिकांश हनफ़ी मशायख़ का कथन है वह स्वयं में सत्य है या उसे स्वीकार करना हम पर

अनिवार्य है। पहले तीन जवाब सुग़रा के खंडन में हैं और बाकी तीन कुबरा के खंडन में हैं। [908] अल्लाह तआला के नबी जीवित हैं और उन्हें रोज़ी दी जाती है।

पृष्ठ 51 का 948

[۹۰۲] صاحب تفہیم المسائل اختراع و افتراء کا ماہر کامل ہے۔ | [۹۰۸] جہالت صاحب تفہیم المسائل [۹۰۳] بدن میت کو خارجی صدمہ بھی ایذا دیتا ہے۔ | [۹۰۹] موت جسد سے روح کو مردہ ماننا اور ادراک روح کے لیے بدن کو شرط جاننا دونوں قول اہل بدعت، ضالین اور معتزلہ وغیرہ ہم کے ہیں۔ [۹۰۴] مقتضائے اثر حضرت عمرو بن العاص رضی اللہ تعالیٰ عنہ مردہ اور زندہ کی ہڈی توڑنا درد میں برابر ہے۔ | [۹۱۰] فائدہ جلیلہ: بحث انکار سیدہ عائشہ صدیقہ رضی اللہ تعالیٰ عنہا۔ [۹۰۴] حضرت عمرو بن العاص رضی اللہ تعالیٰ عنہ کی وصیت کہ بوقت دفن مجھ پر مٹی آہستہ ڈالنا۔ | [۹۱۲] ام المومنین سیدہ عائشہ صدیقہ رضی اللہ تعالیٰ عنہا اپنے بھائی کی قبر پر حاضر ہوئیں اور دو شعر پڑھے اور انہیں خطاب فرمایا۔ [۹۰۵] جن چیزوں سے زندہ دردناک ہوتا ہے ان سے مردہ بھی دردناک ہوتا ہے۔ | [۹۱۲] حضور اقدس صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم آخر شب مقبرہ بقیع پر تشریف لے جا کر سلام و کلام و خطاب فرمایا کرتے۔ [۹۰۵] مردہ اپنے نہلانے والے کو قسم دیتا ہے کہ مجھ پر آسانی کرنا۔ | [۹۱۳] ام المومنین سیدہ عائشہ صدیقہ رضی اللہ تعالیٰ عنہا صرف سماع جسمانی کا انکار فرماتی ہیں۔ [۹۰۵] ام المومنین سیدہ عائشہ صدیقہ رضی اللہ تعالیٰ عنہا نے مردہ عورت کو کنگھی کرنے سے منع کیا۔ | [۹۱۳] جمہور علماء نے حضرت ام المومنین کا سماع موتی کے مسئلہ میں انکار قبول نہیں کیا۔ [۹۰۶] بہر حال اگر بدن میت کے لیے الم مانیے تو مسئلہ یمین فی الضرب پر کچھ نقض نہیں اور نہ مانیے تو مسئلہ سماع پر کچھ نقض نہیں۔ | [۹۱۵] جواب سوم: جامع الجوابین۔ [۹۰۶] جواب دوم: منفی سماع بآلات بدن ہے۔ | [۹۱۵] قول مشائخ کہ میت یا زید بعد موت نہیں سنتا چار معانی کا محتمل ہے۔ [۹۰۷] حضور اقدس صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کا فرمان کہ جمعہ کے دن مجھ پر درود زیادہ بھیجا کرو۔ | [۹۱۶] جواب

چہارم: منکرین سماع موتی دراصل معتزلہ ہیں جو مذہب حنفیہ میں گھسے ہوئے ہیں۔ [۹۰۷] انبیاء علیہم الصلوۃ والسلام کے بدن کو کھانا زمین پر حرام ہے۔ | [۹۱۶] کلام مشائخ سے استناد مخالف دو مقدموں پر مبنی تھا، صغریٰ یہ کہ امتناع سماع موتی قول اکثر مشائخ حنفیہ ہے، اور کبریٰ مطویہ مسطورہ یہ کہ جو قول اکثر مشائخ حنفیہ ہے فی نفسہ حق ہے یا ہم پر اس کی تسلیم واجب ہے، پہلے تینوں جواب صغریٰ کے رد میں اور باقی تینوں کبریٰ کے رد میں ہیں۔ [۹۰۸] اللہ تعالیٰ کے نبی زندہ ہیں روزی دیئے جاتے ہیں۔

Fatawa Razawiyya, Volume 9

Topic	Page	Topic	Page
One who does not accept Talqin is a Mu'tazili.	917	First Benefit: Here, the Wahhabi madhhab is certainly the Mu'tazili madhhab.	926
According to Ahlus Sunnah, Talqin is a Sharia matter.	917	Wahhabis invent fictitious books and imaginary scholars.	926
The audacity of the author of "Tafhim al-Masail".	917	My God! To what level has the modesty of the author of "Tafhim al-Masail" reached.	927
A prohibition supported by a clear proof is not dispelled merely by improbability or appearing contrary to the obvious.	917	Pious Wahhabis did not even know how to fabricate a passage.	927
An apparent goodness is a defense, not a proof of entitlement.	918	A sample of a fabricated passage by Wahhabis. (Footnote)	927
Seeking proof from the obvious for a prohibited premise is ignorance.	918	The treatise "Nishat al-Sikkeen 'ala Halq al-Baqr al-Sameen" was written in refutation of a plump and fleshy Wahhabi Head Molvi.	928
The blindness of the author of "Tafhim al-Masail".	918	As a joke, a mention of a Wahhabi's fabricated Hadith chain.	928
It is a consensus rule that the affirmative takes precedence over the negative.	919	The perfection of Wahhabism is "Nechariya" (Naturalism). (Footnote)	929
By becoming a Wahhabi, a man becomes like an inanimate object that neither hears nor understands.	919	Second Benefit: Refutation of restricting the denial of perception of the dead to worldly matters.	929
Dispelling the doubt that some from Ahlus Sunnah also leaned towards prohibiting Talqin.	919	The misunderstanding of the author of "Tafhim al-Masail" and the worst kind of ignorance.	930
	919		930

Topic	Page	Topic	Page
The poor understanding of the author of "Tafhim al-Masail".		Even if one instance of perception remains, life is proven and death is negated.	
The senselessness of the author of "Tafhim al-Masail" that he said things that weren't even said.	920	By the consensus of the wise, life is a condition for perception, and death is contradictory to perception.	930
The bewilderment of the author of "Tafhim al-Masail".	923	Condition and non-condition will neither agree nor be contradictory, nor be attached to the contradictory.	930
It often happens that those who forget follow others who forget.	923	The union of Wahhabis with the Salihiyya sect of the Mu'tazilah.	931
Reasons for the circulation and convergence of narrations.	924	Believing that perceptions of Barzakh matters like hearing, seeing, and knowledge remain despite death is the Salihiyya madhhab.	931
Great Subtle Point: The previous delicacy of the author of "Tafhim al-Masail".	925	Ahlus Sunnah do not consider the one described as dead to remain devoid of perception; rather, they consider the one for whom they affirm Barzakh perceptions to be alive.	931
Four great benefits for removing all kinds of illusions.	926	The author of "Tafhim al-Masail" struck his own foot with an axe.	932

फ़तावा रज़विया, जिल्द 9

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
जो तलक़ीन (शिक्षा) नहीं मानता वह मुअतज़िली है।	917	पहला लाभ: यहाँ वहाबी मज़हब निश्चित रूप से मुअतज़िली मज़हब है।	926
अहले सुन्नत के नज़दीक तलक़ीन एक शरीअत का मामला है।	917	वहाबी काल्पनिक किताबें और ख्याली विद्वान गढ़ लेते हैं।	926
"तफ़हीम अल-मसाइल" के लेखक की ढिठाई।	917	अल्लाह अल्लाह! "तफ़हीम अल-मसाइल" के लेखक की हया (लज्जा) का स्तर कहाँ तक पहुँच गया है।	927
स्पष्ट प्रमाण द्वारा समर्थित निषेध केवल असंभवता या प्रत्यक्ष के विपरीत प्रतीत होने से दूर नहीं होता।	917	धर्मनिष्ठ वहाबियों को इबारत (अनुच्छेद) गढ़ना भी नहीं आया।	927
प्रत्यक्ष भलाई एक बचाव है, अधिकार का प्रमाण नहीं।	918	वहाबियों द्वारा गढ़ी गई एक इबारत का नमूना। (हाशिया)	927
एक निषिद्ध आधार पर प्रत्यक्ष से प्रमाण मांगना अज्ञानता है।	918	रिसाला "निशात अल-सिक्कीन अला हलक़ अल-बक़र अल-समीन" एक मोटे-ताज़े वहाबी हेड मौलवी के खंडन में लिखा गया था।	928
"तफ़हीम अल-मसाइल" के लेखक का अंधापन।	918	एक चुटकुले के तौर पर वहाबी की एक मनगढ़ंत हदीस सनद का उल्लेख।	928
यह एक सर्वसम्मत नियम है कि सकारात्मक, नकारात्मक पर प्रधान होता है।	919	वहाबियत की पराकाष्ठा 'नेचरिया' (प्राकृतिकवाद) है। (हाशिया)	929
आदमी वहाबी होकर एक निर्जीव वस्तु बन जाता है जो न सुनता है और न समझता है।	919	दूसरा लाभ: मृतकों की धारणा के निषेध को केवल दुनियावी मामलों तक सीमित करने का खंडन।	929
	919		930

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
इस संदेह का निवारण कि अहले सुन्नत के कुछ लोग भी तलक़ीन के निषेध की ओर गए हैं।		"तफ़हीम अल-मसाइल" के लेखक की गलतफहमी और बदतर अज्ञानता।	
"तफ़हीम अल-मसाइल" के लेखक की कमज़ोर समझ।	919	यदि धारणा का एक अंश भी शेष है, तो जीवन सिद्ध है और मृत्यु नकारी गई है।	930
"तफ़हीम अल-मसाइल" के लेखक की बेहोशी कि उन्होंने अनकही बातें बोल दीं।	920	बुद्धिजीवियों की आम सहमति से जीवन धारणा के लिए एक शर्त है और मृत्यु धारणा के विपरीत है।	930
"तफ़हीम अल-मसाइल" के लेखक की घबराहट।	923	शर्त और बिना शर्त न तो सहमत होंगे और न ही विरोधाभासी, और न ही विरोधाभासी से जुड़े होंगे।	930
अक्सर ऐसा होता है कि भूलने वाले दूसरों की पैरवी करते हैं जो भूल जाते हैं।	923	मुअतज़िला के सालेहिया संप्रदाय के साथ वहाबियों का मिलन।	931
विवरणों के प्रसार और समागम के कारण।	924	मृत्यु के बावजूद बरज़ख़ के मामलों जैसे सुनने, देखने और ज्ञान आदि की धारणाओं को शेष मानना सालेहिया मज़हब है।	931
महान सूक्ष्मता: "तफ़हीम अल-मसाइल" के लेखक की पिछली बारीकी।	925	अहले सुन्नत मृत्यु से वर्णित व्यक्ति को धारणा से रहित नहीं मानते, बल्कि वे जिसके लिए बरज़ख़ की धारणाएँ मानते हैं उसे जीवित मानते हैं।	931
हर तरह के भ्रम को दूर करने के लिए चार महान लाभ।	926	"तफ़हीम अल-मसाइल" के लेखक ने अपने ही पैरों पर कुल्हाड़ी मार ली।	932

عنوان صفحہ		عنوان صفحہ	
جو تلقین نہیں مانتا معتزلی ہے۔	۹۱۷	عائدہ اولیٰ: یہاں مذہب وہابیہ ضرور مذہب معتزلہ ہے۔	۹۲۶
اہلسنت کے نزدیک تلقین امر شرعی ہے۔	۹۱۷	وہابیہ فرضی کتابیں اور خیالی علماء گھڑ لیتے ہیں۔	۹۲۶
صاحب تفہیم المسائل کی منہ زوری۔	۹۱۷	اللہ اللہ صاحب تفہیم المسائل کے حیاء کا پایہ کہاں تک پہنچا۔	۹۲۷
منع موید بسند واضح صرف استبعاد اور مخالف ظاہر سے مندفع نہیں ہوتا۔	۹۱۷	متدین وہابیوں کو عبارت گھڑنی بھی نہ آئی۔	۹۲۷
ظاہر صالح دفع ہے نہ حجت استحقاق۔	۹۱۸	وہابیہ کی من گھڑت عبارت کا ایک نمونہ۔ (حاشیہ)	۹۲۷
مقدمہ ممنوعہ پر ظاہر سے اقامت دلیل چاہنا جہالت ہے۔	۹۱۸	رسالہ "نشاط السکین علی حلق البقر السمین" ایک لکھیم و شحیم وہابی ہیڈ مولوی کے رد میں لکھا گیا۔	۹۲۸
صاحب تفہیم المسائل کی نابینائی۔	۹۱۸	بطور لطیفہ وہابیہ کی ایک محدثانہ سند موضوع کا ذکر۔	۹۲۸
	۹۱۹	وہابیت کا کمال نیچریت ہے۔ (حاشیہ)	۹۲۹

عنوان	صفحہ
قاعدہ اجماعیہ ہے کہ مثبت ، نافی پر مقدم ہوتا ہے۔	
آدمی وہابی ہو کر جمادلا یسمع ولا یفہم ہو جاتا ہے۔	۹۱۹
اس شبہ کا ازالہ کہ بعض اہلسنت بھی تو منع تلقین کی طرف گئے ہیں۔	۹۱۹
صاحب تفہیم المسائل کا فہم سقیم۔	۹۱۹
صاحب تفہیم المسائل کی بیہوشی کہ ان کہی بول گئے۔	۹۲۰
صاحب تفہیم المسائل کی بوکھلاہٹ۔	۹۲۳
اکثر ہوتا ہے کہ بھولنے والے بھولنے والوں کی پیروی کر لیتے ہیں۔	۹۲۳
وجہ تداول و توارد نقول۔	۹۲۴
عائدہ ثانیہ: نفی ادراک موتی میں تخصیص امور دنیویہ کارد۔	۹۲۹
صاحب تفہیم المسائل کی کج فہمی اور جہل اقبح۔	۹۳۰
ادراک کا ایک فرد بھی باقی ہے تو حیات ثابت اور موت منتفی ہے۔	۹۳۰
حیات باجماع عقلاء شرط ادراک ہے اور موت منافی ادراک۔	۹۳۰
شرط و نہ بے شرط متفق ہو گا نہ منافی ، منافی سے ملتصق۔	۹۳۰
وہابیہ کا معتزلہ کے فرقہ صالحیہ سے اتحاد۔	۹۳۱
باوصف موت ادراکات امور برزخیہ سمع وبصر و علم وغیرہ کو باقی مانا مذہب صالحیہ ہے۔	۹۳۱

عنوان	صفحہ
جلیلہ عظیمہ : صاحب تفہیم المسائل کی پچھلی نزاکت۔	۹۲۵
عوائد جلیلہ اربعہ برائے ازالہ ہر گونہ اوہام۔	۹۲۶
اہلسنت موصوف بالموت کو بحال موصوفی بالموت موصوف بالا ادراک نہیں مانتے بلکہ وہ جس کے لیے ادراکات برزخیہ مانتے ہیں اسے زندہ جانتے ہیں۔	۹۳۱
صاحب تفہیم المسائل نے اپنے پاؤں پر خود تیشہ زنی کی۔	۹۳۲

Fatawa Ridawiyya | Volume 9

932 | Third Benefit: Refutation of the excuse of a barrier and the pretext of immersion. | The terrifying forms of Munkar and Nakir. | 935 933 | The claim of the survival of the soul and the soul's perceptions is proven by such definitive texts that neither supporter nor opponent has any room for hesitation. (Footnote) | What is the weight of the iron maces of Munkar and Nakir? | 936 933 | Opponents also believe in the rewards, punishments, and perceptions of Barzakh (the intermediate realm). (Footnote) | The perception of the physical ear is very limited and deficient compared to the perception of the soul. | 937 933 | When the perceiver remains, the perception must also remain. | Analogy of the states of Barzakh based on worldly states and habits is false and discarded. | 937 933 | Denial by some is not an obstacle, and the claimant is making a specific assertion, so he must provide evidence. | Fourth Benefit: Variations in physical relations do not affect the soul's perceptions. | 937 933 | Prohibition cannot be applied to the claim, especially after evidence has been established. | According to the Ahl-us-Sunnah, the soul's perceptions do not depend on the body; it was perceiving, knowing, seeing, and hearing before these transient relations just as it is after them. | 937 934 | Passing judgment on the unseen based on conjecture is misguidance and a flaw. | Physical relations are not inherent to the body itself but are due to the soul's connection. | 938 934 | Prohibition without evidence on a possible matter is not a definitive judgment. | Praise be to Allah, guidance is the companion of the Ahl-us-Sunnah, while abandonment and deprivation are the lot of the people of innovation (bid'at). | 938 934 | The abandonment and loss of the author of 'Tafhim al-Masail'. | Fifth Answer: If this is not a jurisprudential issue, then going against the sources is clear ignorance. | 939 934 | The statement of philosophers that the self cannot attend to two things at the same instant is false. | Every word has a point, and every point has a place. | 940 934 | The falsehood of the consequent necessitates the falsehood of the antecedent. | Every issue will be taken from its original source. | 940 934 | It is incorrect to use 'immersion' as a distinguishing factor between the affairs of Barzakh and worldly affairs. | One who ignores the hierarchy of degrees and confuses the subjects is ignorant. | 940 934 | The slightest pang of death is equal to a hundred sword strikes. | Barzakh and the Resurrection are matters of the unseen in which analogy and independent reasoning have no place. | 940 935 | Seeing the Angel of Death is more painful than a thousand sword wounds. | There is no blind following (taqlid) in matters of belief (aqā'id). | 940 935 | The terrifying environment of the grave. | In

matters of belief, four things are to be followed: the Book (Quran), the Sunnah, Consensus (Ijma), and the Great Majority of the Ahl-us-Sunnah. | 940

Page 53 of 948

फ़तावा रज़विया | जिल्द नौ (9)

932 | तीसरा लाभ: बाधा के बहाने और तल्लीनता के हीले का खंडन। | मुनकिर और नकीर के भयानक रूप। | 935 933 | आत्मा के अस्तित्व और आत्मा की अनुभूतियों का दावा ऐसे निर्णयात्मक ग्रंथों से सिद्ध है जिसमें समर्थक या विरोधी किसी को भी झिझक की कोई गुंजाइश नहीं है। (पाद-टिप्पणी) | मुनकिर और नकीर के लोहे के गदा का वजन कितना है? | 936 933 | विरोधी भी बरज़ख (मध्यवर्ती क्षेत्र) के पुरस्कारों, दंडों और अनुभूतियों में विश्वास करते हैं। (पाद-टिप्पणी) | आत्मा की धारणा की तुलना में शारीरिक कान की धारणा बहुत ही सीमित और अपूर्ण है। | 937 933 | जब बोध करने वाला (आत्मा) शेष रहता है, तो बोध भी शेष रहना चाहिए। | सांसारिक अवस्थाओं और आदतों के आधार पर बरज़ख की अवस्थाओं की सादृश्यता असत्य और परित्यक्त है। | 937 933 | कुछ लोगों द्वारा किया गया खंडन बाधा नहीं है, और दावा करने वाला एक विशिष्ट दावा कर रहा है, इसलिए उसे प्रमाण देना होगा। | चौथा लाभ: शारीरिक संबंधों की कमी या अधिकता से आत्मा की अनुभूतियों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। | 937 933 | दावे पर निषेध लागू नहीं किया जा सकता, विशेष रूप से प्रमाण स्थापित होने के बाद। | अहले सुन्नत के अनुसार, आत्मा की अनुभूतियाँ शरीर पर निर्भर नहीं करतीं; वह इन क्षणिक संबंधों से पहले भी वैसी ही बोधगम्य, ज्ञानी, द्रष्टा और श्रोता थी जैसी उनके बाद। | 937 934 | अनुमान के आधार पर अनदेखी (ग़ैब) पर निर्णय देना गुमराह और एक दोष है। | शारीरिक संबंध स्वयं शरीर के कारण नहीं बल्कि आत्मा के जुड़ाव के कारण होते हैं। | 938 934 | किसी संभावित मामले पर बिना प्रमाण के निषेध एक निश्चित निर्णय नहीं है। | अल्लाह की स्तुति हो, मार्गदर्शन अहले सुन्नत का साथी है, जबकि परित्याग और अभाव नवाचारियों (बिदअत वालों) का भाग्य है। | 938 934 | 'तफ़हीम अल-मसायल' के लेखक का परित्याग और हानि। | पाँचवाँ उत्तर: यदि यह कोई फ़िक़ही (न्यायशास्त्रीय) मुद्दा नहीं है, तो स्रोतों के विरुद्ध जाना स्पष्ट अज्ञानता है। | 939 934 | दार्शनिकों का यह कथन कि आत्मा एक ही क्षण में दो चीज़ों पर ध्यान नहीं दे सकती, असत्य है। | हर बात का एक अर्थ होता है, और हर अर्थ का अपना स्थान होता है। | 940 934 | परिणाम की असत्यता पूर्ववर्ती की असत्यता को अनिवार्य करती है। | हर मुद्दा उसके मूल स्रोत से ही लिया जाएगा। | 940 934 | बरज़ख और सांसारिक मामलों के बीच अंतर करने वाले कारक के रूप में 'तल्लीनता' (इस्तिग़राक़) का उपयोग करना गलत है। | जो स्तरों के अंतर को नज़रअंदाज़ करता है और विषयों को मिला देता है, वह अज्ञानी है। | 940 934 | मौत का हल्का सा झटका सौ तलवारों के वार के बराबर है। | बरज़ख और कयामत अनदेखी (ग़ैब)

के मामले हैं जिनमें सादृश्यता और स्वतंत्र तर्क(इज्तिहाद) का कोई स्थान नहीं है। | 940 935 | मौत के फरिश्ते (मलकुल मौत) को देखना हजार तलवारों के ज़ख्मों से ज्यादा दर्दनाक है। | विश्वास (अक़ीदे) के मामलों में अंधी नकल (तक़लीद) नहीं होती। | 940 935 | कब्र का डरावना माहौल। | विश्वास के मामलों में चार चीजों का पालन किया जाना चाहिए: किताब (कुरान), सुन्नत, आम सहमति (इज्मा) और अहले सुन्नत का बड़ा समूह (सवादे आज़म)। | 940

۹۳۲ | عائدہ ثالثہ: عذرِ حائل و حیلہ استغراق کا رد۔ | نگیرین کی خوفناک شکلیں۔ | ۹۳۳ ۹۳۵ | بقائے روح و ادراکاتِ روح کا دعویٰ ایسی نصوصِ قاطعہ سے ثابت ہے جس میں موافق و مخالف کسی کو مجالِ تامل نہیں۔ (حاشیہ) | نگیرین کے لوہے کے گرز کا وزن کتنا ہے۔ | ۹۳۳ ۹۳۶ | مخالفین بھی تنعیم و تعذیب و ادراکاتِ برزخیہ کو مانتے ہیں۔ (حاشیہ) | گوشِ سر کا ادراک بنسبت ادراکِ روح کے بہت قاصر و مقصور ہے۔ | ۹۳۳ ۹۳۷ | جب مدرک باقی ہے تو ادراک بھی باقی ہوگا۔ | احوالِ برزخ کا قیاس احوال و عاداتِ دنیویہ پر باطل و مہجور ہے۔ | ۹۳۳ ۹۳۷ | نفی بعض مانع والامدعی تخصیص ہے لہٰذا وہ دلیل پیش کرے۔ | عائدہ رابعہ: تعلقاتِ بدن کی کمی و بیشی سے ادراکاتِ روح پر کچھ اثر نہیں پڑتا۔ | ۹۳۳ ۹۳۷ | دعویٰ پر منع وارد نہیں ہو سکتا خصوصاً اقامتِ دلیل کے بعد۔ | اہل سنت کے نزدیک ادراکاتِ روح بدن پر موقوف نہیں وہ ان تعلقاتِ حادثہ سے پہلے بھی ویسے ہی مدرکہ، عالمہ، مبصرہ اور سامعہ تھی جیسے ان کے بعد۔ | ۹۳۴ ۹۳۷ | غیب پر رجماً بالغیب حکم لگانا ضلالت و عیب ہے۔ | تعلقاتِ بدن بنفسہ نہیں بلکہ تعلق روح کے باعث ہیں۔ | ۹۳۴ ۹۳۸ | ممکن پر بے دلیل منع جزم نہیں۔ | بحمد اللہ توفیقِ رفیقِ اہلسنت اور خذلان و حرمانِ نصیب اہل بدعت ہے۔ | ۹۳۴ ۹۳۸ | صاحب تفہیم المسائل کا خذلان و خسران۔ | جواب پنجم: یہ مسئلہ فقہیہ نہیں تو ماخذ کے خلاف چلنا جہلِ مبین ہے۔ | ۹۳۴ ۹۳۹ | فلاسفہ کا یہ قول باطل ہے کہ نفس آنِ واحد میں دو چیزوں کی طرف توجہ نہیں کر سکتا۔ | ہر سخن نکتہ و ہر نکتہ مکانے دارد۔ | ۹۳۴ ۹۴۰ | بطلان تالی سے بطلان مقدم لازم ہے۔ | ہر مسئلہ اپنے ماخذ ہی سے لیا جائے گا۔ | ۹۳۴ ۹۴۰ | استغراق کو امور برزخیہ و دنیویہ میں فارق بنانا غلط ہے۔ | جو فرق مراتب گما کر خلط مبحث کرے وہ جاہل ہے۔ | ۹۳۴ ۹۴۰ | موت کا

ادنیٰ جھٹکا سو ضربِ شمشیر کے برابر ہے۔ | برزخ و معاد امور غیبیہ ہیں جن میں قیاس و اجتہاد کو دخل نہیں۔ | ۹۴۰ ۹۳۵ | ملک الموت کو دیکھنا ہزار تلوار کے صدمہ سے بڑھ کر ہے۔ | عقائد میں تقلید نہیں۔ | ۹۴۰ ۹۳۵ | قبر کا بھیانک ماحول۔ | عقائد میں چار چیزوں کا اتباع ہے: کتاب و سنت و اجماع اور سوادِ اعظم اہلسنت۔ | ۹۴۰

Volume 9 Fatawa Razawiyya

940 | Consensus of the Ummah on misguidance is impossible. | 942 940 | Opposing the Sawad-e-Azam (the great majority) is an innovation. | 942 | As long as there is no denial of the essentials of religion, it is not disbelief (Kufr). | 942 | Sixth Answer: Supposing these sayings of the Mashaikh were to be used as evidence, nevertheless, whether reconciliation (Tatbeeq) is applied or preference (Tarjeeh) is given, in every way the field is in the hands of the Ahl-e-Sunnat. | 942 941 | Cautious researchers, acting on the fatwas of the Mashaikh, will not call anyone a disbeliever (Kafir) as long as there is no consensus among the Mashaikh on the declaration of disbelief (Takfir). | 943 | Reconciliation is better than giving preference. | 943 942 | The scope of Fiqh (jurisprudence) concludes at the status of lawful (Halal) and prohibited (Haram). | 943 | Even if the door to giving preference is opened, for ten (10) reasons the field is in our hands. | 943 942 | Disbelief (Kufr) and Islam are not matters of Fiqh, but of beliefs (Aqaid) and theology (Kalam). |

जिल्द नहम (खंड 9) फ़तावा रिज़विया

940 | गुमराही पर उम्मत का इज्मा (आम सहमति) असंभव है। | 942 940 | सवाद-ए-आज़म (बहुसंख्यक समुदाय) के विरुद्ध जाना बिदअत (नवाचार) है। | 942 | जब तक दीन की अनिवार्यताओं (जरूरियात-ए-दीन) में से किसी चीज़ का इनकार न हो, वह कुफ़्र नहीं है। | 942 | छठा उत्तर: मान लिया जाए कि मशाइख के ये कथन प्रमाण योग्य हैं, फिर भी चाहे आप समन्वय (ततबीक़) करें या वरीयता (तरजीह) दें, हर तरह से मैदान अहले सुन्नत के हाथ में है। | 942 941 | सतर्क शोधकर्ता मशाइख के फ़तवे पर अमल करते हुए तब तक किसी को काफ़िर नहीं कहेंगे जब तक कि तक़्फ़िर (काफ़िर ठहराने) पर मशाइख की आम सहमति न हो। | 943 | समन्वय (ततबीक़) वरीयता (तरजीह) से बेहतर है। | 943 942 | फ़िक़्ह (इस्लामी न्यायशास्त्र) का क्षेत्र हलाल और हराम की स्थिति तक ही सीमित है। | 943 | यदि वरीयता का द्वार खुल जाए, तब भी दस (10) कारणों से मैदान हमारे हाथ में है। | 943 942 | कुफ़्र और इस्लाम फ़िक़्ह का नहीं बल्कि अकायद (विश्वासों) और कलाम (ईश्वर-शास्त्र) का मसला है। |

पेज 54/948

جلد نہم فتاویٰ رضویہ

۹۴۰ | ضلالت پر اجماعِ امت ناممکن ہے۔ | ۹۴۲ ۹۴۰ | سوادِ اعظم کا خلاف ابتداع ہے۔ | ۹۴۲ | جب تک ضروریاتِ دین سے کسی شئے کا انکار نہ ہو کفر نہیں۔ | ۹۴۲ | جوابِ ششم: بالفرض یہ اقوالِ مشائخ قابلِ احتجاج ہوں بھی تاہم تطبیق کیجئے یا ترجیح لیجئے ہر طرح میدانِ اہلِ سنّت کے ہاتھ میں ہے۔ | ۹۴۲ ۹۴۱ | محتاط محققین فتویٰ مشائخ پر عمل کر کے اس وقت تک کسی کو کافر نہ کہیں گے جب تک تکفیر پر اجماعِ مشائخ نہ ہو۔ | ۹۴۳ | تطبیق اولیٰ ہے ترجیح سے۔ | ۹۴۳ ۹۴۲ | فقہ کا دائرہ حیثیتِ حلال و حرام تک منتہی ہو جاتا ہے۔ | ۹۴۳ | اگر بابِ ترجیح کھلے تو بھی دس ۱۰ وجوہ سے میدان ہمارے ہاتھ میں ہے۔ | ۹۴۳ ۹۴۲ | کفر و اسلام فقہ کا نہیں بلکہ عقائد و کلام کا مسئلہ ہے۔ |

Fatawa Rizvia Volume 9 List of Subsidiary Issues

Page	Issue Description
336	Istinja (Purification after defecation/ urination)
	It is forbidden to perform Istinja with Zamzam water.
518	Tayammum
518	If a person unexpectedly encounters a funeral prayer and does not have Wudu, they should perform Tayammum and offer the funeral prayer.
	Hadhrat Abdullah bin Umar (may Allah be pleased with them) joined a funeral prayer by performing Tayammum when he did not have Wudu.
164	If a person without Wudu or in a state of ritual impurity (Junub) fears missing the Eid prayer while performing Wudu or Ghusl, they should perform Tayammum and join.
	If a guardian (Wali) allows another person to lead the prayer, the guardian can still perform Tayammum.
280	If one funeral prayer was offered with Tayammum and another arrives, and there is no time for Wudu or Ghusl, the second prayer can be offered with the same Tayammum.
305	
	It is not permissible to perform Tayammum (dry ablution) for fear of missing the Friday prayer or the five daily prayers.
121	Ghusl (Ritual Bath)
	The deceased should be bathed with water boiled with berry leaves.
307	It is better to bathe the deceased with warm water.
308	Azan (Call to Prayer)
333	It is permissible to give Azan at the grave.
333	Prayer (Salah)
333	The occurrence of prayer took place before it was made obligatory; the obligation was revealed later.
334	

Page	Issue Description
	For someone whose arrival is awaited, like a guardian (Wali), Tayammum is not permissible.
368	Tayammum is permitted even when water is available if there is a fear of missing the funeral or Eid prayer.
571	Any mandatory act (Wajib) that has no substitute can be performed with Tayammum even if water is available.
787	Tayammum is not allowed merely because of a minor dislike (Karahat).

Page	Issue Description
	Do not perform any prayer twice in one day.
334	If a Shafi'i Imam recites Qunoot in the Fajr prayer, a Hanafi follower should not recite it.
335	Reading from the Quran by looking at it during prayer, and reciting the Quran during bowing (Ruku) and prostration (Sujud) is forbidden.
336	Reciting Bismillahir Rahmanir Rahim between Surah Al-Fatiha and another Surah is better by consensus.

फ़तावा रज़विया खंड 9 गौण मुद्दों की सूची

पृष्ठ	विषय विवरण
336	इस्तिन्जा (शौच के बाद शुद्धि)
	आबे ज़मज़म से इस्तिन्जा करना मना है।
518	तयम्मुम
518	जिस व्यक्ति के पास अचानक जनाज़ा आ जाए और उसका वूज़ू न हो, तो वह तयम्मुम करके नमाज़े जनाज़ा पढ़ ले।
	हज़रत अब्दुल्ला बिन उमर (अल्लाह उन दोनों से राज़ी हो) वूज़ू न होने पर तयम्मुम करके नमाज़े जनाज़ा में शामिल हुए।
164	बिना वूज़ू वाले या जुनुब को अगर वूज़ू या ग़ुस्ल करने में ईद की नमाज़ छूटने का डर हो, तो वह तयम्मुम करके शामिल हो जाए।
	वली (अभिभावक) ने दूसरे को इमामत की इजाज़त दे दी, तो भी वली तयम्मुम कर सकेगा।
280	यदि वूज़ू या ग़ुस्ल के तयम्मुम से एक जनाज़ा पढ़ा और अब दूसरा आ गया और वूज़ू-ग़ुस्ल की मोहलत नहीं मिली, तो उसी तयम्मुम से दूसरा जनाज़ा पढ़ सकता है।
305	जिसका इंतज़ार किया जाएगा जैसे वली, उसके लिए तयम्मुम जायज़ नहीं है।
	जुमे की नमाज़ या पाँच दैनिक नमाज़ों के छूट जाने के डर से तयम्मुम की अनुमति नहीं है।
121	ग़ुस्ल (धार्मिक स्नान)
	मृत व्यक्ति को बेरी के पत्तों के उबले हुए पानी से ग़ुस्ल देना चाहिए।
307	मृत व्यक्ति को गर्म पानी से ग़ुस्ल देना बेहतर है।
308	अज़ान
333	क़ब्र पर अज़ान देना जायज़ है।
333	नमाज़
333	नमाज़ का घटित होना फ़र्ज़ियत से पहले हुआ, बाद में फ़र्ज़ियत उतरी।
334	कोई भी नमाज़ एक दिन में दो बार न पढ़ो।

पृष्ठ	विषय विवरण
368	जनाज़े या ईद छूटने के डर से पानी होते हुए तयम्मुम की अनुमति है।
571	हर वह वाजिब जिसके छूटने पर विकल्प न हो, पानी होते हुए तयम्मुम से अदा कर सकते हैं।
787	केवल कराहत के कारण तयम्मुम की अनुमति नहीं।

पृष्ठ	विषय विवरण
334	शाफ़ई मज़हब का इमाम फ़ज्र की नमाज़ में क़ुनूत पढ़े तो हनफ़ी मुक़्तदी न पढ़े।
335	दौरान-ए-नमाज़ क़ुरान मजीद से देख कर पढ़ना और रुकू व सुजूद में क़ुरान पढ़ना मना है।
336	फ़ातिहा और सूरत के बीच बिस्मिल्लाहिर रहमानिर रहीम पढ़ना सर्वसम्मति से बेहतर है।

فتاویٰ رضویہ جلد نہم فہرست ضمنی مسائل

صفحہ	مسئلہ کا عنوان
۳۳۶	استنجاء
	آب زمزم سے استنجاء کرنا ممنوع ہے۔
۵۱۸	تیمم
۵۱۸	جس شخص کے پاس ناگاہ جنازہ آ جائے اور اس کا وضو نہ ہو تو تیمم کر کے نماز جنازہ پڑھ لے۔
	حضرت عبداللہ بن عمر رضی اللہ تعالیٰ عنہما
	وضو نہ ہونے پر تیمم کر کے نماز جنازہ میں شریک ہوئے۔
	بے وضو کو وضو کرنے یا جنب کو غسل کرنے
۱۶۴	میں نماز عید کے فوت ہونے کا اندیشہ ہو تو تیمم کر کے شریک ہو جائے۔
	ولی نے دوسرے کو اجازت امامت دے دی تو اب بھی ولی تیمم کر سکے گا۔
	نماز جمعہ یا نماز پنجگانہ فوت ہونے کے خوف سے تیمم کی اجازت نہیں۔
۱۲۱	غسل
	میت کو بیری کے پتوں میں اُبلے ہوئے پانی سے غسل دینا چاہئے۔
۳۰۷	میت کو گرم پانی سے غسل دینا افضل ہے۔
۳۰۸	اذان
۳۳۳	قبر پر اذان دینا جائز ہے۔
۳۳۳	نماز

صفحہ مسئلہ کا عنوان		صفحہ مسئلہ کا عنوان	
۲۸۰	اگر وضو یا غسل کے تیمم سے ایک جنازہ پڑھا اب دوسرا آگیا اور وضو غسل کی مہلت نہ پائی تو اسی تیمم سے دوسرا جنازہ پڑھ سکتا ہے۔	۳۳۳	نماز کا قبل فرضیت وقوع ہوا بعد کو فرضیت اتری۔
۳۰۵	جس کا انتظار ہوگا جیسے ولی واولیٰ اسے تیمم جائز نہیں۔	۳۳۴	کوئی نماز ایک دن میں دو بار نہ پڑھو۔
۳۶۸	نماز جنازہ یا عید فوت ہونے کے خوف سے پانی ہوتے ہوئے تیمم کی اجازت ہے۔	۳۳۴	شافعی المذہب امام فجر کی نماز میں قنوت پڑھے تو حنفی مقتدی نہ پڑھے۔
۵۷۱	ہر واجب کہ فوت پر بدل نہ رکھتا ہو پانی ہوتے ہوئے تیمم سے ادا کر سکتے ہیں۔	۳۳۵	دوران نماز قرآن مجید سے دیکھ کر پڑھنا اور رکوع و سجود میں قرآن پڑھنا ممنوع ہے۔
۷۸۷	صرف کراہت کے سبب سے تیمم کی اجازت نہیں۔	۳۳۶	فاتحہ و سورۃ کے درمیان بسم اللہ الرحمن الرحیم پڑھنا بالاجماع بہتر ہے۔

Fatawa-e-Razvia Volume Nine

Page	Congregation
	Congregation
297	When the residents of a neighborhood mosque have performed a valid, non-disliked congregation with the call to prayer (Adhan), others are not allowed to call the Adhan or hold another congregation there.
297	If the first congregation took place without an Adhan or with a quiet Adhan, it is permissible for others to give the Adhan according to the Sunnah and hold a congregation in the prayer niche.
297	If the first congregation was against the Sunnah, the second congregation is not a repetition but is considered the primary congregation.
	Friday
280	The people of Medina prayed the Friday prayer before it became obligatory.
	Tarawih
281	

Page	Rulings on Supplication and Mosque
693	Hadiths on the permissibility of seeking supplication from saints and righteous people.
693	The Holy Prophet (PBUH) requested a prayer from Hazrat Umar (may Allah be pleased with him).
693	The Holy Prophet (PBUH) would command the companions to stay at the grave after burial and pray for the forgiveness of the deceased.
693	Seeking prayers for forgiveness from a Hajj pilgrim before they reach home.
694	The ruling on seeking prayers for forgiveness from Hazrat Uwais Qarni (may Allah be pleased with him).
	Rulings of the Mosque
259	Funeral prayer is not permissible in the mosque; evidence for this from books of jurisprudence.
262	Funeral prayer is prohibited in the mosque even if space

Page	Congregation
	The Holy Prophet (PBUH) left the Tarawih congregation fearing it might become obligatory through persistence.
	Leadership (Imamat)
173	One who leads the funeral prayer of a Rafidi (heretic) is not fit for leadership in prayer.
605	Those who forbid Giyarween Shareef are Wahhabis or Rafidis; prayer behind them is utterly invalid.
	Etiquettes of Supplication and Seeking Forgiveness
220	Reasoning from seven hadiths on supplication being absolutely beloved and desired.
365	Purity of body, clothes, place, and facing the Qibla are not necessary for supplication.
572	Raising both hands is among the etiquettes of supplication.

Page	Rulings on Supplication and Mosque
	outside is limited, or it's very hot, or it's the month of Ramadan.
263	And if the funeral prayer was performed in the mosque, the obligation will be fulfilled.
264	The correct view is that it is disliked (Makruh) if the funeral, the Imam, or the prayer row is inside the mosque.
265	Funeral prayer inside the mosque is not permissible.
265	The roofed part of the mosque is called 'Shatwi' (winter area) and the courtyard is called 'Saifi' (summer area).
265	Funeral prayer is permissible in the courtyard (annex) of the mosque.
266	It is not permissible to perform the funeral prayer on land that has become part of the mosque.
266	The reason for funeral prayers being held in Masjid an-Nabawi and Masjid al-Haram.
266	Ruling on performing the prayer by placing the funeral on the mosque's water basin.

फ़तावा-ए-रज़विया जिल्द नहुम (9)

पृष्ठ जमाअत (मण्डली)

जमाअत

297 जब मोहल्ले की मस्जिद में मोहल्ले वाले अज़ान की घोषणा के साथ सहीह गैर-मकरूह जमाअत अदा कर लें, तो दूसरों को वहां दोबारा अज़ान और जमाअत की अनुमति नहीं है।

297 अगर पहली जमाअत बिना अज़ान या दबी आवाज़ में अज़ान के साथ हुई हो, तो दूसरों के लिए जायज़ है कि वे सुन्नत के अनुसार अज़ान देकर मेहराब में जमाअत कराएं।

297 जब पहली जमाअत सुन्नत के खिलाफ हो, तो दूसरी जमाअत जमाअत का दोहराव नहीं बल्कि वही पहली जमाअत है।

जुमा

280 मदीना वालों ने जुमा फर्ज़ होने से पहले जुमा पढ़ा।

तराव़ीह

281 हुज़ूर सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने तराव़ीह की जमाअत इस ख्याल से छोड़ दी कि कहीं यह हमेशा करने से फर्ज़ न हो जाए।

पृष्ठ दुआ और मस्जिद के नियम

693 औलिया और नेक लोगों से दुआ माँगने की वैधता पर हदीसें।

693 हुज़ूर सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने हज़रत उमर रज़ियल्लाहु अन्हु से दुआ चाही।

693 हुज़ूर सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम दफनाने के बाद कब्र पर ठहरकर मय्यित (मृतक) के लिए मगफिरत (क्षमा) की दुआ करने का हुक्म सहाबा को देते थे।

693 हाजी के घर पहुँचने से पहले उससे मगफिरत की दुआ कराना।

694 हज़रत ओवैस करनी रज़ियल्लाहु अन्हु से मगफिरत की दुआ कराने का हुक्म।

अहकाम-ए-मस्जिद (मस्जिद के नियम)

259 मस्जिद में नमाज़-ए-जनाज़ा जायज़ नहीं, फिक़्ह (इस्लामी कानून) की किताबों से इसका सबूत।

262 मस्जिद में नमाज़-ए-जनाज़ा वर्जित है चाहे मस्जिद के बाहर जगह कम हो या तेज़ धूप हो और रमज़ान का महीना हो।

पृष्ठ **जमाअत (मण्डली)**

इमामत (नेतृत्व)

173 राफ़ज़ी की नमाज़-ए-जनाज़ा पढ़ाने वाला इमामत के लायक नहीं है।

605 ग्यारवीं शरीफ को रोकने वाले वहाबी या राफ़ज़ी हैं, उनके पीछे नमाज़ बिल्कुल बातिल (अमान्य) है।

दुआ और इस्तिगफार के शिष्टाचार

220 दुआ के पूर्णतः प्रिय और वांछित होने पर सात हदीसों से तर्क।

365 दुआ के लिए शरीर की पवित्रता, कपड़ों की पवित्रता, जगह की पवित्रता और क़िबला की ओर मुँह करना ज़रूरी नहीं है।

572 दोनों हाथों को उठाना दुआ के शिष्टाचारों में से है।

पृष्ठ **दुआ और मस्जिद के नियम**

263 और अगर मस्जिद में नमाज़-ए-जनाज़ा पढ़ी गई तो फर्ज़ अदा हो जाएगा।

264 सही यह है कि मस्जिद में जनाज़ा या इमाम या सफ़ (कतार) हो तो मकरूह (नापसंद) है।

265 मस्जिद के अंदर नमाज़-ए-जनाज़ा जायज़ नहीं।

265 मस्जिद के ढके हुए हिस्से को 'शतवी' (शीतकालीन) और आँगन को 'सैफी' (ग्रीष्मकालीन) कहते हैं।

265 नमाज़-ए-जनाज़ा मस्जिद के बाहरी हिस्से (फ़ना-ए-मस्जिद) में जायज़ है।

266 जो ज़मीन मस्जिद में शामिल हो चुकी हो, उस पर नमाज़-ए-जनाज़ा पढ़ना जायज़ नहीं है।

266 मस्जिद-ए-नबवी और मस्जिद-ए-हराम में नमाज़-ए-जनाज़ा होने का कारण।

266 मस्जिद के हौज (जल-कुंड) पर जनाज़ा रखकर नमाज़ पढ़ने का हुक्म।

صفحہ		جماعت صفحہ	دعاء و احکامِ مسجد
	جماعت	۶۹۳	اولیاء و صلحاء سے طلبِ دعا کے جواز پر حدیثیں
۲۹۷	مسجد محلہ میں جب اہل محلہ جماعت صحیحہ غیر مکروہ باعلانِ اذان ادا کر چکیں تو دوسروں کو دوبارہ اذان وہاں جماعت کی اجازت نہیں۔	۶۹۳	حضور اقدس صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم نے حضرت عمر رضی اللہ تعالیٰ عنہ سے دعا چاہی۔
۲۹۷	اگر پہلی جماعت بے اذان یا باخفائے اذان واقع ہو تو دوسروں کو روا ہے کہ اذان بروجہ مسنون دے کر محراب میں جماعت کرائیں۔	۶۹۳	حضور اقدس صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم بعد از دفن قبر پر ٹھہر کر میت کے لیے دعائے مغفرت کرنے کا حکم صحابہ کو دیتے۔
۲۹۷	جماعت اولیٰ جب برخلافِ حکم سنت ہو تو دوسری جماعت اعادہ جماعت نہیں بلکہ وہی جماعت اولیٰ ہے۔	۶۹۳	حاجی کے گھر پہنچنے سے پہلے اس سے دعا مغفرت کرانا۔
	جمعہ	۶۹۴	حضرت اویس قرنی رضی اللہ تعالیٰ عنہ سے دعائے بخشش کرانے کا حکم۔
۲۸۰	اہل مدینہ نے قبل فرضیت جمعہ جمعہ پڑھا۔		**احکامِ مسجد**

صفحہ		جماعت صفحہ		دعاء و احکامِ مسجد
			تراویح ۲۵۹	مسجد میں نماز جنازہ جائز نہیں، کتب فقہ سے اس امر کا ثبوت۔
۲۸۱	حضور اقدس صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم نے جماعت تراویح اس خیال سے ترک فرمادی کہ مداومت سے فرض نہ ہو جائے۔	۲۶۲		مسجد میں نماز جنازہ ممنوع ہے اگرچہ بیرونِ مسجد جگہ کم ہو یا سخت دھوپ ہو اور ماہ رمضان ہو۔
			امامت ۲۶۳	اور اگر مسجد میں نماز جنازہ پڑھی گئی تو فرض ساقط ہو جائے گا۔
۱۷۳	رافضی کی نماز جنازہ پڑھانے والا قابل امامت نہیں۔	۲۶۴		صحیح یہ ہے کہ مسجد میں جنازہ یا امام یا صف ہو تو مکروہ ہے۔
۶۰۵	گیارہویں شریف کو منع کرنے والے وہابی یا رافضی ہیں ان کے پیچھے نماز باطل محض ہے۔	۲۶۵		مسجد کے اندر نماز جنازہ جائز نہیں۔
			آدابِ دعاء واستغفار ۲۶۵	مسجد کے مسقف حصہ کو شتوی اور صحن کو صیفی کہتے ہیں۔
۲۲۰	دعا کے مطلقاً محبوب ومطلوب ہونے پر سات احادیث سے استدلال۔	۲۶۵		نماز جنازہ فناء مسجد میں جائز ہے۔
۳۶۵		۲۶۶		جو اراضی شامل مسجد ہو چکی ہو اس پر نماز جنازہ پڑھنا جائز نہیں۔

دعا کے لیے طہارت بدن، طہارت جامع،
طہارت مکان اور استقبالِ قبلہ ضروری
نہیں۔

۵۷۲ دونوں ہاتھوں کا اٹھانا آدابِ دعا سے ہے۔ ۲۶۶

مسجدِ نبوی اور مسجدِ حرام میں نماز
جنازہ ہونے کی وجہ۔ ۲۶۶

مسجد کے حوض پر جنازہ رکھ کر نماز
پڑھنے کا حکم۔ ۲۶۶

Fatawa Razawiyya | Volume 9

Topic	Page	Topic	Page
Building a grave and mosque on land leased forever.	380	The funeral prayer of a Christian and their burial and shrouding like Muslims is strictly forbidden; repentance is obligatory for those who do so, and if it was done considering them worthy of honor due to their Christianity, then they became apostates.	178
It is forbidden to bury in the mosque's courtyard; if buried, it should be removed.	407	It is forbidden to offer the funeral prayer for a Rafidi, and seeking forgiveness for them is disbelief.	178
Using wood from cemetery trees or bricks from graves in a mosque.	412	The Holy Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) is the same today as the day he was placed in his blessed grave.	270
It is prohibitively disliked to have intercourse on the mosque's roof.	449	The Ghair-Muqallid sect is misguided and of bad faith.	277
Decoration of a mosque and patterns with gold and silver on its walls is permissible when it is for respect.	492	Whoever calls towards misguidance, the sin of all those who follow it is upon them equally.	277
It is permissible to make battlements on mosques for their distinction.	493	Funeral prayer is intercession.	292
Essentially, building a mosque is for obligatory duties.	502	Only the Holy Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) is the Master of Intercession.	293
In which mosques lighting all night is permitted and in which it is commanded to extinguish lights after one-third of the night.	502	And whoever intercedes, will do so as a representative of the Holy Prophet (peace and blessings of Allah be upon him).	294

Topic	Page
Beliefs & Theology	
Respecting the cloak, shirt, nails, and blessed hair of the radiant Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) is obligatory like the respect for the written inscriptions of Quranic verses.	118
'Name' is one of the modes of existence of the 'Named'.	132
There are four forms of existence of a thing: (1) in physical essence, (2) in knowledge, (3) in pronunciation, (4) in writing.	132
In the form of pronunciation and writing, the existence of the name itself is designated as the existence of the named.	132
It is mentioned in books of creed that the name is identical to the named.	132
There is no obedience to anyone in illegal and sinful matters.	367
Whether the child of adultery will be a 'Farat' (precursor/intercessor in the afterlife) for the adulterer and adulteress or not.	401
Only an innovator and a misguided person can perform the act of demolishing holy shrines.	430
According to Ahl-us-Sunnah, prophets, martyrs, and saints are alive with their bodies and shrouds.	431
Beloveds of Allah are given sustenance and provision in their graves.	432
The souls of the beloveds of Allah go wherever they want in the earth, the heavens, and paradise.	432

फ़तावा रज़विया | जिल्द 9

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
स्थायी पट्टे वाली ज़मीन पर क़ब्र और मस्जिद बनाना।	380	ईसाई की नमाज़-ए-जनाज़ा और मुसलमानों की तरह उसकी तजहीज़-ओ-तक्फीन (कफ़न-दफ़न) क़तई हराम है; ऐसा करने वालों पर तौबा लाज़िम है और अगर इसे ईसाइयत की वजह से सम्मान के योग्य समझकर किया तो वे मुर्तद (धर्मत्यागी) हो गए।	178
मस्जिद के सहन में दफ़न करना हराम है, अगर दफ़न हो गए हों तो उसे हटाना चाहिए।	407	राफ़ज़ी की नमाज़-ए-जनाज़ा पढ़ना हराम है और उसके लिए इस्तग़फ़ार करना कुफ़्र है।	178
क़ब्रिस्तानों के पेड़ों की लकड़ियाँ या क़ब्रों की ईंटें मस्जिद में लगाना।	412	हुज़ूर अकदस (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) आज भी वैसे ही हैं जैसे जिस दिन क़ब्र मुबारक में रखे गए थे।	270
मस्जिद की छत पर संभोग करना मकरूह-ए-तहरीमी है।	449	ग़ैर-मुक़ल्लिद संप्रदाय गुमराह और बद-मज़हब है।	277
मस्जिद की सजावट और उसकी दीवारों पर सोने-चांदी से नक़्श-ओ-निगार जायज़ है जब वह सम्मान के लिए हो।	492	जो किसी गुमराह की ओर बुलाए, उस पर उन सभी मानने वालों के बराबर गुनाह है।	277
मस्जिदों के भेद के लिए उनमें कंगूरे बनाना जायज़ है।	493	नमाज़-ए-जनाज़ा शफ़ाअत (सिफारिश) है।	292
मूल रूप से मस्जिद का निर्माण फ़र्ज़ नमाज़ों के लिए है।	502	शफ़ाअत के मालिक सिर्फ हुज़ूर अकदस (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) हैं।	293
किन मस्जिदों में रात भर रोशनी की अनुमति है और किन में तिहाई रात के बाद रोशनी बुझाने का हुक्म है।	502	और जो कोई शफ़ाअत करेगा, वह हुज़ूर (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) की नियाबत (प्रतिनिधित्व) से करेगा।	294
अक़ायद और कलाम			367

विषय	पृष्ठ
हुज़ूर-ए-पुरनूर (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) की चादर, क़मीज़, नाखून और बाल-ए-मुबारक का सम्मान क़ुरान की आयतों के लिखे हुए शब्दों की तरह फ़र्ज़ है।	118
'नाम' मुसम्मा (जिसका नाम रखा गया है) के अस्तित्व के प्रकारों में से एक है।	132
किसी चीज़ के अस्तित्व के चार रूप हैं: (1) ठोस रूप में, (2) ज्ञान में, (3) उच्चारण में, (4) लेखन में।	132
उच्चारण और लेखन के रूप में, नाम के अस्तित्व को ही 'मुसम्मा' का अस्तित्व माना गया है।	132
अक़ीदे की किताबों में उल्लेख है कि नाम ही 'मुसम्मा' (साक्षात) है।	132

विषय	पृष्ठ
अवैध और पापपूर्ण कार्यों में किसी की आज्ञाकारिता नहीं है।	
क्या व्यभिचार की संतान व्यभिचारी और व्यभिचारिणी के लिए 'फ़रत' (परलोक में शफ़ी) होगी या नहीं।	401
पवित्र मज़ारों को ढहाने का काम वही व्यक्ति कर सकता है जो बिदअती और गुमराह हो।	430
अहले सुन्नत के नज़दीक नबी, शहीद और वली अपने शरीर और कफ़न सहित जीवित हैं।	431
अल्लाह के प्रियजनों को उनकी क़ब्रों में रिज़क़ और रोज़ी दी जाती है।	432
अल्लाह के प्रियजनों की रूहें ज़मीन, आसमान और जन्नत में जहाँ चाहें आती-जाती हैं।	432

موضوع	صفحہ
دوای پٹہ والی زمین پر قبر و مسجد بنانا۔	۳۸۰
صحن مسجد میں دفن کرنا حرام ہے، اگر دفن ہو گئے ہوں اسے ختم کرنا چاہئے۔	۴۰۷
قبرستانوں کے درختوں کی لکڑیاں یا قبروں کی اینٹیں مسجد میں لگانا۔	۴۱۲
مسجد کی چھت پر وطی کرنا مکروہ تحریمی ہے۔	۴۴۹
مسجد کی آرائش اور اس کی دیواروں پر سونے چاندی سے نقش	۴۹۲

موضوع	صفحہ
عیسائی کی نماز جنازہ اور مسلمانوں کی طرح اس کی تجہیز و تکفین حرام قطعی ہے، ایسا کرنے والوں پر توبہ لازم ہے اور اگر اس کو بوجہ نصرانیت مستحق تعظیم سمجھ کر ایسا کیا تو مرتد ہوئے۔	۱۷۸
رافضی کی نماز جنازہ پڑھنی حرام ہے اور اس کے لیے استغفار کرنا کفر ہے۔	۱۷۸
حضور اقدس صلی اللہ تعالی علیہ وسلم آج بھی ایسے ہی ہیں جیسے جس دن قبر مبارک میں رکھے گئے تھے۔	۲۷۰
فرقہ غیر مقلدین گمراہ و بد مذہب ہے۔	۲۷۷
جو کسی ضلالت کی طرف بلائے سب ماننے والوں کے برابر گناہ اس پر ہے۔	۲۷۷

موضوع	صفحہ
و نگار جائز ہے جبکہ تعظیم کے لیے ہو۔	۴۹۳
مساجد کے امتیاز کے لیے ان میں کنگرے بنانا جائز ہے۔	۵۰۲
اصالتاً بنائے مسجد فرائض کے لیے ہے۔	۵۰۲
کن مساجد میں رات بھر روشنی کی اجازت ہے اور کن میں تہائی رات کے بعد روشنی گل کرنے کا حکم ہے۔	
عقائد و کلام	
حضور پر نور صلی اللہ تعالی علیہ وسلم کی رداء، قمیص، ناخن اور موئے مبارک کی تعظیم نقوش کتابت آیات کی طرح فرض ہے۔	۱۱۸
نام مسمیٰ کے انحائے وجود میں سے ایک نحو ہے۔	۱۳۲
	۱۳۲

موضوع	صفحہ
نماز جنازہ شفاعت ہے۔	۲۹۲
مالک شفاعت صرف حضور اقدس صلی اللہ تعالی علیہ وسلم ہیں۔	۲۹۳
اور جو کوئی شفاعت کرے گا حضور صلی اللہ تعالی علیہ وسلم کی نیابت سے کرے گا۔	۲۹۴
ناجائز و گناہ میں کسی کی اطاعت نہیں۔	۳۶۷
ولد الزناء، زانی اور زانیہ کا فرط ہو گا یا نہیں۔	۴۰۱
مزارات مقدسہ کو منہدم کرنے کا کام وہی شخص کر سکتا ہے جو بدعتی اور گمراہ ہو۔	۴۳۰
	۴۳۱

موضوع	صفحہ
وجود شیئی کی چار صورتیں ہیں (۱) اعیان میں (۲) علم میں (۳) تلفظ میں (۴) کتابت میں۔	
وجود تلفظ و کتابت کی صورت میں وجود اسم کو ہی وجود مسمیٰ قرار دیا گیا ہے۔	۱۳۲
کتب عقائد میں مذکور ہے کہ اسم عین مسمیٰ ہے۔	۱۳۲
اہلسنت کے نزدیک انبیاء، شہداء اور اولیاء مع اپنے ابدان و اکفان کے زندہ ہیں۔	
محبوبانِ خدا کو قبروں میں روزی و رزق دیا جاتا ہے۔	۴۳۲
محبوبانِ خدا کی روحیں زمین و آسمان اور جنت میں جہاں چاہیں آتی جاتی ہیں۔	۴۳۲

- The earth of the graves does not consume the bodies of the beloved of Allah; rather, even their shrouds remain intact. | 432 | The existence of an action and its determination are inseparable. | 580
- The beloved of Allah pray, perform Dhikr, and recite the Holy Quran in their graves. | 432 | The will of a free agent is also a preponderant factor. | 582
- The friends of Allah (Awliya Allah) do not die; rather, they move from one house to another. | 433 | Can a Muslim heir feed Muslims on behalf of a deceased non-believer? | 636
- The honor of a Muslim is the same in state of death and life. | 441 | Is it not permissible to perform Isal-e-Thawab for a disbeliever or with a disbeliever's wealth. | 637
- Lighting (lamps) is a sign of care, care is a sign of veneration, and veneration of the people of Allah is a sign of faith. | 491 | Performing Isal-e-Thawab for disbelievers and apostates is forbidden (Haraam). | 638
- Venerating the signs of Allah Almighty is [from] the piety of hearts. | 491 | The soul of a disbeliever is confined in Sijjin. | 652
- Not every act of veneration is worship. | 496 | The souls of martyrs are in Paradise, and they visit the graves of Muslims as they wish upon their passing. | 652
- Declaring closeness (taqarrub) and worship (ta'abbud) to be the same thing is purely false. | 498 | The souls of the friends of Allah (may their secrets be sanctified) go wherever they wish between the earth, sky, and Paradise. | 653
- Calling the lighting of candles at shrines a form of worship is having a bad opinion of Muslims. | 498 | Every declarative sentence affirming or negating something does not necessarily belong to the category of 'beliefs'. | 654
- It is impossible for any righteous person or person of Allah to be a worshiper of other than Allah. | 498 | He who denies the souls returning to their homes is a liar and a fabricator. | 656
- Polytheism (Shirk) will never be forgiven. | 498 | If the returning of souls belongs to the category of 'beliefs', then both negation and affirmation would belong to that same category, and a definitive proof would be required for the claim of negation. | 656

- The respect for the Holy Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) after his passing is the same as it was during his apparent life. | 517 | Punishment and reward are for both the soul and the body. | 658
- Durood is a form of veneration that is not permissible independently for anyone except the Prophets and Angels (peace be upon them). | 518 | The deceased is aware of those who come to the grave. | 658
- Not distinguishing between veneration of the soul and veneration of the grave is ignorance. | 521 | It is not impossible for the people of the graves to hear someone's voice or see someone, neither rationally, legally, nor habitually. | 680
- The occurrence of an action in an unspecified time is rationally impossible. | 580 | The people of this world can only see angels as a miracle (breaking of habit), while the people of Barzakh generally see them. | 680

- कब्रों की मिट्टी अल्लाह के महबूबों के जिस्मों को नहीं खाती, बल्कि उनके कफ़न भी सलामत रहते हैं। | ४३२ | फ़ेल (काम) का वजूद और तईन (निर्धारण) लाज़िम व मल्ज़ूम हैं। | ५८०
- अल्लाह के महबूब कब्रों में नमाज़ पढ़ते, ज़िक्र करते और क़ुरआन मजीद की तिलावत करते हैं। | ४३२ | इरादा-ए-फ़ाएल-ए-मुख्तार भी मुरज्जह है। | ५८२
- औलिया अल्लाह मरते नहीं बल्कि एक घर से दूसरे घर की तरफ तशरीफ़ ले जाते हैं। | ४३३ | क्या मुसलमान वारिस काफ़िर मुर्दा की तरफ से मुसलमानों को खाना खिला सकता है? | ६३६
- मुसलमान की इज़्ज़त मुर्दा और ज़िंदा हालत में बराबर है। | ४४१ | काफ़िर के लिए या काफ़िर के माल से ईसाल-ए-सवाब करना जायज़ नहीं। | ६३७
- रोशनी दलील-ए-एत़ना (तवज्जो की दलील) है और एत़ना दलील-ए-ताज़ीम है और अहलुल्लाह की ताज़ीम दलील-ए-ईमान है। | ४९१ | कुफ़्फ़ार और मुर्तद को ईसाल-ए-सवाब हराम है। | ६३८
- अल्लाह तआला की निशानियों की ताज़ीम दिली तक़वा है। | ४९१ | काफ़िर की रूह सिज्जीन में.क़ैद होती है। | ६५२
- हर ताज़ीम इबादत नहीं। | ४९६ | शहीदों की रूहें जन्नत में हैं और मुसलमानों की फ़ना-ए-कुबूर पर जहाँ चाहें आती जाती हैं। | ६५२
- तक़र्रुब और तअ़ब्बुद को एक ही चीज़ करार देना महज़ बातिल है। | ४९८ | औलिया अल्लाह (क़ुदसत असरारुहुम) की रूहें ज़मीन, आसमान और जन्नत में जहाँ चाहें जाती हैं। | ६५३
- मज़ारात पर शमअें रोशन करने को तक़र्रुब बजुह-ए-तअ़ब्बुद बताना मुसलमानों पर बद-गुमानी है। | ४९८ | हर जुमला-ए-ख़बरिया जिसमें किसी बात का ईजाब (पुष्टि) या सलब (नकार) हो, बाब-ए-अक़ायद से नहीं होता। | ६५४
- किसी सालेह व अहलुल्लाह का ग़ैर-खुदा का आबिद (इबादत करने वाला) होना मुहाल (नामुमकिन) है। | ४९८ | अरवाह (रूहों) के घरों को आने के मुताल्लिक़ दावा-ए-नफ़ी करने वाला झूठा कज़्ज़ाब है। | ६५६
- शिर्क हरगिज़ माफ़ न होगा। | ४९८ | रूहों का आना अगर बाब-ए-अक़ायद से है तो नफ़ी व इसबात हर तरह इसी बाब से होगा और दावा-ए-नफ़ी के लिए भी दलील-ए-क़तई दरकार होगी। | ६५६

- हुज़ूर अकदस सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम का अदब वफ़ात के बाद भी वैसा ही है जैसा हयात-ए-ज़ाहिरी में था। | ५१७ | अज़ाब व सवाब रूह और जिस्म दोनों के लिए है। | ६५८
- दुरूद वह ताज़ीम है जो बिल-इस्तिक़लाल सिवाए अंबिया व मलायका अलैहिमुस्सलाम के किसी के लिए जायज़ नहीं। | ५१८ | कब्र पर आने वालों का इल्म मय्यत को होता है। | ६५८
- ताज़ीम-ए-रूह और ताज़ीम-ए-कब्र में फ़र्क़ न करना जहालत है। | ५२१ | अहल-ए-कुबूर का किसी की आवाज़ को सुनना या किसी को देखना मुहाल नहीं, न मुहाल-ए-अक़ली, न शरई, न आदी। | ६८०
- ग़ैर-मुअ़य्यन ज़माने में वुक़ूअ-ए-फ़ेल अक्लन मुहाल है। | ५८० | अहल-ए-दुनिया मलायका को बत़ौर-ए-ख़र्क़ए-आदत ही देख सकते हैं जबकि अहल-ए-बरज़ख़ उमूमन देखते हैं। | ६८०

- قبروں کی مٹی محبوبانِ خدا کے جسموں کو نہیں کھاتی بلکہ ان کے کفن بھی سلامت رہتے ہیں۔ | ۴۳۲ | وجودِ فعل اور تعینِ لازم و ملزوم ہیں۔ | ۵۸۰
- محبوبانِ خدا قبروں میں نماز پڑھتے، ذکر کرتے اور قرآن مجید کی تلاوت کرتے ہیں۔ | ۴۳۲ | ارادۂ فاعل مختار بھی مرجح ہے۔ | ۵۸۲
- اولیاء اللہ مرتے نہیں بلکہ ایک گھر سے دوسرے گھر کی طرف تشریف لے جاتے ہیں۔ | ۴۳۳ | کیا مسلمان وارث کافر مردہ کی طرف سے مسلمانوں کو کھانا کھلا سکتا ہے۔ | ۶۳۶
- مسلمان کی عزت مردہ و زندہ حالت میں برابر ہے۔ | ۴۴۱ | کافر کے لیے یا کافر کے مال سے ایصالِ ثواب کرنا جائز نہیں۔ | ۶۳۷
- روشنی دلیلِ اعتناء ہے اور اعتناء دلیلِ تعظیم اور تعظیم اہل اللہ دلیلِ ایمان ہے۔ | ۴۹۱ | کفار اور مرتد کو ایصالِ ثواب حرام ہے۔ | ۶۳۸
- اللہ تعالیٰ کی نشانیوں کی تعظیم دلی تقویٰ ہے۔ | ۴۹۱ | کافر کی روح سجیین میں مقید ہوتی ہے۔ | ۶۵۲
- ہر تعظیم عبادت نہیں۔ | ۴۹۶ | شہیدوں کی روحیں جنت میں ہیں اور مسلمانوں کی فنائے قبور پر جہاں چاہیں آتی جاتی ہیں۔ | ۶۵۲
- تقرب و تعبد کو ایک ہی چیز قرار دینا محض باطل ہے۔ | ۴۹۸ | اولیاء اللہ قدست اسرارہم کی روحیں زمین، آسمان اور جنت میں سے جہاں چاہیں جاتی ہیں۔ | ۶۵۳
- مزارات پر شمعیں روشن کرنے کو تقرب بوجہ تعبد بتانا مسلمانوں پر بد گمانی ہے۔ | ۴۹۸ | ہر جملہ خبریہ جس میں کسی بات کا ایجاب یا سلب ہو بابِ عقائد سے نہیں ہوتا۔ | ۶۵۴

- کسی صالح واہل اللہ کا غیر خدا کا عابد ہونا محال ہے۔ | ۴۹۸ | ارواح گھروں کو آنے سے متعلق دعویٰ نفی کرنے والا جھوٹا کذاب ہے۔ | ۶۵۶
- شرک ہرگز معاف نہ ہوگا۔ | ۴۹۸ | روحوں کا آنا اگر بابِ عقائد سے ہے تو نفی و اثبات ہر طرح اسی باب سے ہو گا اور دعویٰ نفی کے لیے بھی دلیل قطعی درکار ہوگی۔ | ۶۵۶
- حضور اقدس صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کا ادب بعد وفات بھی ایسا ہی ہے جیسا حیات ظاہری میں تھا۔ | ۵۱۷ | عذاب و ثواب روح و جسم دونوں کے لیے ہے۔ | ۶۵۸
- درود وہ تعظیم ہے جو بالا ستقلال سوائے انبیاء و ملائکہ علیہم الصلوٰۃ والسلام کے کسی کے لیے جائز نہیں۔ | ۵۱۸ | قبر پر آنے والوں کا علم میت کو ہوتا ہے۔ | ۶۵۸
- تعظیم روح اور تعظیم قبر میں فرق نہ کرنا جہالت ہے۔ | ۵۲۱ | اہلِ قبور کا کسی کی آواز کو سننا یا کسی کو دیکھنا محال نہیں، نہ محالِ عقلی نہ شرعی نہ عادی۔ | ۶۸۰
- غیر معین زمانے میں وقوعِ فعل عقلاً محال ہے۔ | ۵۸۰ | اہلِ دنیا ملائکہ کو بطورِ خرقِ عادت ہی دیکھ سکتے ہیں جبکہ اہل برزخ عموماً دیکھتے ہیں۔ | ۶۸۰

Fatawa Razawiya, Volume 9

Page Number	Subject Matter
680	A rational impossibility cannot have a valid connection with divine permission, and a legal (Shari'ah) impossibility can never be related to permission.
680	Every habitual impossibility is rationally possible; hence, belief in a habitual impossibility is belief in a possibility.
680	Shirk is belief in the greatest of rational impossibilities.
680	To consider a rationally possible matter as Shirk is a clear rational fallacy.
681	No one can claim that their deeds are definitely accepted.
683	It is not necessary to see someone's face to hear them speak.
684	Not every incorrect statement is Shirk.
684	No verse in the Holy Quran identifies visiting graves and addressing or speaking to the deceased as Shirk.
690	Refutation of incorrect reasoning from the Hadith: "Whoever swears by other than Allah has committed Shirk."
691	Regarding someone other than Allah as beneficial or harmful is not absolutely Shirk unless they are believed to be independent in essence.
691	Believing someone other than Allah to be beneficial or harmful while not independent in essence is not Shirk.
691	Proof from the Holy Quran regarding others besides Allah being beneficial and harmful.
691	Proof from Hadiths regarding others besides Allah being beneficial and harmful.
692	Hazrat Ali Murtaza (may Allah be pleased with him) declared the Black Stone (Hajar al-Aswad) as beneficial and harmful.
692	Shah Abdul Aziz Sahib referred to Pharaoh as a possessor of benefit and harm.
696	It is a universal rule that what is not Shirk with the living cannot be Shirk with the dead.
710	The deceased knows what is happening to their family members after them.

Page Number	Subject Matter
724	Six Hadiths stating that the dead hear the sound of shoes.
744	Personal opinion has no place in the matters of graves and the states of souls.
759	According to the Ahl-us-Sunnah, every particle in the universe possesses suitable hearing, sight, and knowledge, and glorifies Allah through speech.
760	The hearing power of the dead is so strong that they hear the glorification of plants without any difficulty.
769	Imams of schools of law and saints of lineages constantly protect and intercede for their followers and disciples, but the Wahhabi non-conformists have no share in this.
769	Hazrat Imam Malik visited the grave of his follower and stopped the questioning angels (Munkar and Nakir) from asking questions.
791	Saying "Ya Sheikh Abdul Qadir" is not impermissible.
798	The life of martyrs is more complete than that of other dead, and the life of Prophets is more complete than that of martyrs.
813	Saints (Awliya) are problem-solvers.
830	The presence of the Holy Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) in virtuous gatherings is true.
843	Actual death is a property of the body, not an attribute of the soul.
849	Perception is metaphorically attributed to the body due to its role as an instrument.

फ़तावा रज़विया, खंड 9

पृष्ठ संख्या	विषय सामग्री
680	बौद्धिक रूप से असंभव बात का अनुमति के साथ सही संबंध नहीं है और शरीयत में असंभव बात का संबंध कभी भी अनुमति से नहीं होगा।
680	हर सामान्यतः असंभव बात बौद्धिक रूप से संभव होती है, इसलिए सामान्यतः असंभव बात में विश्वास करना, संभव बात में विश्वास करना है।
680	शिर्क महानतम बौद्धिक असंभवों में विश्वास करना है।
680	बौद्धिक रूप से संभव बात को शिर्क मानना स्पष्टतः बौद्धिक रूप से त्रुटिपूर्ण है।
681	कोई यह नहीं कह सकता कि उसके कर्म निश्चित रूप से स्वीकार किए जाते हैं।
683	किसी की बात सुनने के लिए उसका चेहरा देखना आवश्यक नहीं है।
684	हर गलत बात शिर्क नहीं होती।
684	कुरान मजीद की किसी भी आयत में कब्रों पर जाकर बात करने या संबोधित करने को शिर्क नहीं कहा गया है।
690	हदीस शरीफ "जिसने अल्लाह के अलावा किसी और की कसम खाई उसने शिर्क किया" से गलत निष्कर्ष का खंडन।
691	अल्लाह के सिवा किसी और को लाभ पहुँचाने वाला या हानि पहुँचाने वाला समझना पूर्ण रूप से शिर्क नहीं है जब तक कि उसे स्वयं से स्वतंत्र न माना जाए।
691	अल्लाह के सिवा किसी और को लाभ या हानि पहुँचाने वाला मानना, जबकि उसे स्वयं से स्वतंत्र न माना जाए, शिर्क नहीं है।
691	अल्लाह के अलावा दूसरों के लाभ और हानि पहुँचाने के प्रमाण कुरान मजीद से।
691	अल्लाह के अलावा दूसरों के लाभ और हानि पहुँचाने के प्रमाण हदीसों से।
692	हज़रत अली मुर्तज़ा रज़ियल्लाहु अन्हु ने हजर-ए-अस्वद (काले पत्थर) को लाभ और हानि पहुँचाने वाला घोषित किया।
692	शाह अब्दुल अजीज साहब ने फिरौन को लाभ और हानि का मालिक कहा।

पृष्ठ संख्या	विषय सामग्री
696	यह एक सार्वभौमिक नियम है कि जो बात जीवित लोगों के साथ शिर्क नहीं है, वह मृतकों के साथ भी शिर्क नहीं हो सकती।
710	मृतक जानता है कि उसके बाद उसके परिवार के सदस्यों के साथ क्या हो रहा है।
724	छह हदीसें कि मृतक जूतों की आवाज़ सुनता है।
744	कब्रों के मामलों और आत्माओं की स्थितियों में व्यक्तिगत राय का कोई स्थान नहीं है।
759	अहले सुन्नत के अनुसार, विश्व का हर कण सुनने, देखने और ज्ञान की उपयुक्त शक्ति रखता है और अपनी ज़बान से अल्लाह की महिमा (तस्बीह) करता है।
760	मृतकों की सुनने की शक्ति इतनी प्रबल है कि वे बिना किसी कठिनाई के वनस्पतियों की महिमा (तस्बीह) सुनते हैं।
769	संप्रदायों के इमाम और सूफी सिलसिलों के वली हर समय अपने अनुयायियों और शिष्यों की रक्षा और शिफ़ाअत (सिफारिश) करते हैं, लेकिन वहाबी गैर-मुक़्कलिदीन का इसमें कोई हिस्सा नहीं है।
769	हज़रत इमाम मालिक ने अपने अनुयायी की कब्र में आकर नकीरैन (सवाल पूछने वाले फ़रिश्तों) को सवाल करने से रोक दिया।
791	'या शेख अब्दुल कादिर' कहना नाजायज नहीं है।
798	शहीदों का जीवन अन्य मृतकों की तुलना में अधिक पूर्ण है, और नबियों का जीवन शहीदों के जीवन से अधिक पूर्ण है।
813	औलिया (अल्लाह के मित्र) मुश्किल कुशा (कठिनाइयों को दूर करने वाले) होते हैं।
830	नेक सभाओं में हुज़ूर अकदस सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम का आगमन सत्य है।
843	वास्तविक मृत्यु शरीर का गुण है, आत्मा का गुण नहीं।
849	शरीर की ओर धारणा का श्रेय रूपक के तौर पर इसके माध्यम होने के कारण है।

صفحہ نمبر	عنوانات
۶۸۰	محال عقلی صالح تعلق اذن نہیں اور محال شرعی سے ہرگز اذن متعلق نہ ہوگا۔
۶۸۰	ہر محال عادی ممکن عقلی ہوتا ہے لہٰذا محال عادی کا اعتقاد، ممکن کا اعتقاد ہے۔
۶۸۰	شرک ، اعظم محالات عقلیہ کا اعتقاد ہے۔
۶۸۰	اعتقاد ممکن عقلی کا شرک ہونا محال عقلی بین الفساد ہے۔
۶۸۱	کوئی نہیں کہہ سکتا کہ اس کے اعمال قطعاً مقبول ہیں۔
۶۸۳	کسی کی بات سننے کے لیے اس کی صورت دیکھنا ضروری نہیں۔
۶۸۴	ہر غلط بات شرک نہیں ہوتی۔
۶۸۴	قرآن مجید کی کسی آیت میں قبور پر جاکر کلام و خطاب کرنے کو شرک نہیں کہا گیا۔
۶۹۰	حدیث شریف "من حلف بغیر اللہ فقد اشرک" سے غلط استدلال کا رد۔
۶۹۱	غیر خدا کو نافع و ضار سمجھنا مطلقاً شرک نہیں جب تک کہ مستقل بالذات نہ مانا جائے۔
۶۹۱	غیر خدا کو نافع و ضار غیر مستقل بالذات ماننا شرک نہیں۔
۶۹۱	غیر خدا کے نافع و ضار ہونے کا ثبوت قرآن مجید سے۔
۶۹۱	غیر خدا کے نافع و ضار ہونے کا ثبوت احادیث سے۔
۶۹۲	حضرت علی مرتضیٰ رضی اللہ تعالیٰ عنہ نے حجر اسود کو نافع و ضار قرار دیا۔

صفحہ نمبر	عنوانات
۶۹۲	شاہ عبدالعزیز صاحب نے فرعون کو مالک نفع و ضر کہا۔
۶۹۶	قاعدہ کلیہ ہے کہ جو بات زندوں کے ساتھ شرک نہیں اموات کے ساتھ بھی شرک نہیں ہو سکتی۔
۷۱۰	مردہ جانتا ہے کہ اس کے بعد اس کے گھر والوں کو کیا ہو رہا ہے۔
۷۲۴	چھ حدیثیں کہ مردہ جوتوں کی آواز سنتا ہے۔
۷۴۴	امور قبور اور احوالِ ارواح میں رائے کو دخل نہیں۔
۷۵۹	اہلسنت کے نزدیک ہر ذرہ عالم اپنے لائق سمع و بصر و علم رکھتا ہے اور زبان قال سے تسبیح الہی کرتا ہے۔
۷۶۰	اموات کی قوتِ سامعہ اتنی قوی کہ نباتات کی تسبیح بلا تکلف سنتے ہیں۔
۷۶۹	ائمہ مذاہب و اولیاء سلاسل اپنے مقلدوں اور مریدوں کی ہر وقت نگہبانی و شفاعت فرماتے ہیں مگر وہابیہ غیر مقلدین کا اس میں حصہ نہیں۔
۷۶۹	حضرت امام مالک نے اپنے مقلد کی قبر میں تشریف لاکر نکیرین کو سوال سے روک دیا۔
۷۹۱	یا شیخ عبدالقادر کہنا نا جائز نہیں۔
۷۹۸	حیاتِ شہداء باقی اموات سے کامل تر اور حیاتِ انبیاء حیاتِ شہداء سے کامل تر ہے۔
۸۱۳	اولیاء مشکل کشا ہوتے ہیں۔
۸۳۰	مجالسِ خیر میں حضور اقدس صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کی تشریف آوری حق ہے۔

صفحہ
عنوانات
نمبر

۸۴۳ موت حقیقیہ صفتِ بدن ہے نہ کہ وصفِ روح۔

۸۴۹ بدن کی طرف مجازاً بوجہِ آلیت نسبت ادراک ہوتی ہے۔

Fatawa Razawiya | Volume 9

850 | According to Ahl-us-Sunnah, the body is not a condition for life. | 850 | Hearing people's crying causes distress to the deceased. | 890 850 | The blessing or punishment of the grave is for both the soul and the body. | 850 | Hearing the living cry, their deceased companions also start crying. | 890 853 | The soul's life is continuous and uninterrupted, but for the body, continuity is not necessary even after the return. | 853 | Will a migrating disbeliever be questioned in the grave? | 892 856 | On the day of judgment, believers will see their Lord Almighty and hear His speech. | 856 | The hadith addressing the slain of Badr is an explicit text that those disbelievers heard with their physical ears. | 892 862 | The soul's connection with the body is of four types: one worldly while awake, second during sleep, third Barzakhi (in the grave), and fourth in the hereafter. | 862 | The hadiths that are explicit about physical hearing, in them, the specification of time or some dead individuals themselves is a clear way. | 892 871 | After death, without the return of life, a vacant body is not called hearing, seeing, intending, or acting in terms of Shariah, custom, or language. | 871 | External trauma also causes pain to the body of the deceased. | 903 872 | Meeting of the dead and their talking to each other is proven by numerous hadiths. | 872 | To consider the soul dead due to the death of the body and to consider the body a condition for the soul's perception are both views of innovators, misguided people, and the Mu'tazila etc. | 909 878 | You do not hear more than the corpses lying in the well of Badr. | 878 | The saying of the elders that the deceased or Zaid does not hear after death has four possible meanings. | 915 881 | The soul is not dead; it has only separated from the body, and Allah Almighty is capable of bringing it back into the body. | 881 | One who does not believe in Talqin is a Mu'tazili. | 917 882 | One who is to be punished is given a sort of life in the grave through which they become capable of feeling pain. | 882 | According to Ahl-us-Sunnah, Talqin is a Sharia-mandated act. | 917 882 | After the questioning by Munkar and Nakir, the soul of the blessed remains in Paradise and the wretched in Sijjin. | 882 | Ahl-us-Sunnah do not consider the one characterized by death as being characterized by perception in that state; rather, they consider the one for whom they accept Barzakhi perceptions to be alive. | 931 889 | Definition of the soul. | 889 | The claim of the soul's survival and its perceptions is proven by such categorical texts that neither supporter nor opponent has room for hesitation. | 933 889 | The soul is not from the world of water and clay but from the celestial world. | 889 |

Opponents also believe in the blessing, punishment, and perceptions of the Barzakh. | 933 | | | When the perceiver remains, perception will also remain. | 933

Page 61 of 948

फ़तावा रज़विया | जिल्द नहुम

850 | अहले सुन्नत के नज़दीक जिस्म हयात (जीवन) के लिए शर्त नहीं है। | 850 | लोगों का रोना सुनकर मुर्दे को सदमा होता है। | 890 850 | क़ब्र की तनीम (आराम) या ताज़ीब (अज़ाब) रूह और जिस्म दोनों पर है। | 850 | ज़िंदों का रोना सुनकर उनके साथी मुर्दे भी रोने लगते हैं। | 890 853 | रूह की हयात मुस्तमर्रा (निरंतर) और ग़ैर-मुनक़ते (अखंड) है लेकिन बदन के लिए रूह की वापसी के बाद भी निरंतरता ज़रूरी नहीं। | 853 | क्या काफ़िर मुहाजिर से क़ब्र का सवाल होगा? | 892 856 | क़ियामत के दिन मोमिनीन अपने रब्ब अज़्ज़वजल को देखेंगे और उसका कलाम सुनेंगे। | 856 | मक़तूलीन-ए-बद्र से खिताब वाली हदीस नस्स-ए-सरीह है कि उन काफ़िरों ने जिस्मानी कानों से सुना। | 892 862 | रूह का बदन से ताल्लुक़ चार क़िस्म पर है: एक दुनियावी बेदारी की हालत में, दूसरा ख़्वाब की हालत में, तीसरा बरज़ख़ी और चौथा उख़रवी। | 862 | जो अहादीस समा-ए-जिस्मानी (शारीरिक श्रवण) में नस्स हैं उनमें वक़्त की तख़्सीस (विशिष्टता) या कुछ मुर्दों के लिए रास्ता साफ़ है। | 892 871 | मौत के बाद हयात की वापसी के बिना ख़ाली बदन को शरीअत, उर्फ़ या लुग़त में किसी तरह समी (सुनने वाला), बसीर (देखने वाला), मुरीद या फ़ाइल (कर्ता) नहीं कहते। | 871 | मैयत के बदन को बाहरी सदमा भी तकलीफ़ देता है। | 903 872 | मुर्दों का आपस में मिलना और गुफ़्तुगू करना कई अहादीस से साबित है। | 872 | जिस्म की मौत से रूह को मुर्दा मानना और रूह के इद्राक (अनुभूति) के लिए बदन को शर्त जानना, दोनों कौल अहले बिदअत, ज़ालीन और मोतज़िला वगैरह के हैं। | 909 878 | तुम क़ल्ब-ए-बद्र में पड़ी लाशों से ज़्यादा नहीं सुनते। | 878 | मशाईख़ का यह कौल कि मैयत या ज़ैद मौत के बाद नहीं सुनता, चार मायनों का मुहतमल है। | 915 881 | रूह मरती नहीं, वह तो सिर्फ़ बदन से जुदा हुई है और अल्लाह तआला कादिर है कि उसे दोबारा बदन में ले आए। | 881 | जो तलक़ीन नहीं मानता वह मोतज़िली है। | 917 882 | जिस पर अज़ाब करना होता है उसे क़ब्र में एक तरह की हयात दी जाती है जिससे वह तकलीफ महसूस करने के क़ाबिल हो जाता है। | 882 | अहले सुन्नत के नज़दीक तलक़ीन अम्र-ए-शरई है। | 917 882 | नकीरैन के सवाल के बाद सईद (नेक) की रूह जन्नत में और शक़ी (बदबख़्त) की रूह सिज्जीन में रहती है। | 882 | अहले सुन्नत मौत से मुत्तसिफ़ (मृतक) को मौत की हालत में इद्राक (बोध) रखने वाला नहीं मानते, बल्कि वे जिसके लिए बरज़ख़ी इद्राक मानते हैं उसे ज़िंदा जानते हैं। | 931 889 | रूह की तारीफ़ (परिभाषा)। | 889 | रूह के बाक़ी रहने और उसके इद्राक का दावा ऐसी नस्स-ए-काते (ठोस दलीलों) से साबित है जिसमें पक्ष और विपक्ष किसी को

सोच-विचार की गुंजाइश नहीं। | 933 889 | रूह पानी और मिट्टी की दुनिया से नहीं बल्कि आलमे मलकूत से है। | 889 | विरोधी भी बरज़ख़ी आराम, अज़ाब और इद्राक को मानते हैं। | 933 | | | जब मुदरिक (बोध करने वाला) बाक़ी है तो इद्राक भी बाक़ी होगा। | 933

पेज 61 ऑफ़ 948

۸۵۰ | اہلسنت کے نزدیک جسم شرطِ حیات نہیں۔ | ۸۵۰ | لوگوں کا رونا سن کر مردے کو صدمہ ہوتا ہے۔ | ۸۹۰ ۸۵۰ | قبر کی تنعیم یا تعذیب روح و جسم دونوں پر ہے۔ | ۸۵۰ | زندوں کا رونا سن کر ان کے ساتھی مردے بھی رونے لگتے ہیں۔ | ۸۹۰ ۸۵۳ | روح کی حیات مستمرہ غیر منقطعہ ہے مگر بدن کے لئے بعدِ عود بھی استمرار ضروری نہیں۔ | ۸۵۳ | کیا کافرِ مہاجر سے سوالِ قبر ہوگا؟ | ۸۹۲ ۸۵۶ | روزِ قیامت مومنین اپنے رب عزوجل کو دیکھیں گے اور اس کا کلام سنیں گے۔ | ۸۵۶ | مقتولینِ بدر سے خطاب والی حدیث نصِ صریح ہے کہ ان کافروں نے گوشِ بدن سے سنا۔ | ۸۹۲ ۸۶۲ | روح کا بدن سے تعلق چار قسم پر ہے: ایک دنیوی بحالِ بیداری، دوسرا بحالِ خواب، تیسرا برزخی اور چوتھا اخروی۔ | ۸۶۲ | جو احادیث سماعِ جسمانی میں نص ہیں ان میں تخصیصِ وقت یا بعض اموات خود سبیل واضح ہے۔ | ۸۹۲ ۸۷۱ | بعدِ موت بے عودِ حیات بدنِ خالی کو شرعاً عرفاً لغتاً کسی طرح سمیع و بصیر و مرید و فاعل نہیں کہتے۔ | ۸۷۱ | بدنِ میت کو خارجی صدمہ بھی ایذا دیتا ہے۔ | ۹۰۳ ۸۷۲ | اموات کا باہم ملاقات کرنا اور آپس میں گفتگو کرنا متعدد احادیث سے ثابت ہے۔ | ۸۷۲ | موتِ جسد سے روح کو مردہ ماننا اور ادراکِ روح کے لئے بدن کو شرط جاننا دونوں قول اہل بدعت، ضالین اور معتزلہ وغیرہ ہم کے ہیں۔ | ۹۰۹ ۸۷۸ | تم قلبِ بدر میں پڑی لاشوں سے زیادہ نہیں سنتے۔ | ۸۷۸ | قولِ مشائخ کہ میت یا زید بعد موت نہیں سنتا چار معانی کا محتمل ہے۔ | ۹۱۵ ۸۸۱ | روح میت نہیں وہ تو صرف بدن سے juda ہوئی ہے اور اللہ تعالیٰ قادر ہے کہ اسے دوبارہ بدن میں لے آئے۔ | ۸۸۱ | جو تلقین نہیں مانتا معتزلی ہے۔ | ۹۱۷ ۸۸۲ | جس پر عذاب کرنا ہوتا ہے اسے قبر میں یک گونہ حیات دی جاتی ہے جس سے الم پہنچنے کے قابل ہو جاتا ہے۔ | ۸۸۲ | اہلسنت کے نزدیک تلقین امرِ شرعی

ہے۔ | ۹۱۷ ۸۸۲ | بعدِ سوالِ نکیرین سعید کی روح جنت میں اور شقی کی سجین میں رہتی ہے۔ | ۸۸۲ | اہلسنت موصوف بالموت کو بحال موصوفی بالموت موصوف بالادراک نہیں مانتے بلکہ وہ جس کے لیے ادراکات برزخیہ مانتے ہیں اسے زندہ جانتے ہیں۔ | ۹۳۱ ۸۸۹ | روح کی تعریف۔ | ۸۸۹ | بقائے روح و ادراکاتِ روح کا دعویٰ ایسی نصوصِ قاطعہ سے ثابت ہے جس میں موافق و مخالف کسی کو مجالِ تامل نہیں۔ | ۹۳۳ ۸۸۹ | روح عالمِ آب و گل سے نہیں بلکہ عالمِ ملکوت سے ہے۔ | ۸۸۹ | مخالفین بھی تنعیم و تعذیب و ادراکاتِ برزخیہ کو مانتے ہیں۔ | ۹۳۳ | | | جب مدرک باقی ہے تو ادراک بھی باقی ہوگا۔ | ۹۳۳

Fatawa Rizvia - Volume 9

Page	Subject
	To pass judgment on the unseen blindly is misguidance and a defect.
508	The perception of the physical ears is very deficient and limited compared to the perception of the soul.
512	Analogy of the states of Barzakh based on worldly states and habits is false and abandoned.
700	According to the Ahl-ul-Sunnah, the soul's perceptions do not depend on the body; it was perceiving, knowing, seeing, and hearing before these temporary connections just as it was after them.
882	Bodily connections are not by themselves but due to the soul's connection.
	Barzakh and the Hereafter are matters of the unseen in which analogy and independent reasoning (ijtihad) have no place.
299	There is no imitation (taqlid) in matters of belief (aqaa'id).

No.	Subject
932	Quranic Sciences and Interpretation
937	Hajjaj bin Yusuf had the diacritics (eraab) added to the Holy Quran.
937	In the blessed verse "We shall build a mosque over them," the pronoun refers to the People of the Cave, and building a mosque over a human body has no meaning; therefore, a metaphorical meaning is fixed for the word 'ala' (upon).
937	Discussion on the verse "Indeed, you cannot make the dead hear."
938	In the verse "And you cannot make hear those in the graves," 'those in the graves' refers to the bodies.
940	Hadith and Principles of Hadith
940	Scholarly discussion on the Hadith regarding multiple funeral prayers for our master Hamza (Allah be pleased with him).

Page	Subject
346	In beliefs, four things are to be followed: The Book, Sunnah, Consensus (Ijma), and the Great Majority (Sawad-ul-A'zam) of Ahl-ul-Sunnah.
352	Consensus of the Ummah on misguidance is impossible.
357	Opposing the Great Majority is an innovation (ibtida').
360	Cautious researchers, acting on the rulings of the elders (masha'ikh), will not declare anyone a disbeliever until there is a consensus among the elders on such declaration (takfir).
513	Disbelief and Islam are not matters of jurisprudence (fiqh) but of beliefs and theology (kalam).
	As long as something essential to religion is not denied, it is not disbelief (kufr).

No.	Subject
940	It is not proven by any authentic and explicit Hadith that the radiant Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) offered funeral prayer in absentia.
940	The Hadith regarding the funeral prayer in absentia for Hazrat Muawiya (Allah be pleased with him) is considered weak by the masters of Hadith.
940	All chains of the mentioned Hadith are weak.
941	This Hadith regarding the martyrs of Mu'tah is 'mursal' (broken-chained) from both routes.
942	The Hadith which mentions a curse upon those who light lamps on graves is not authentic.
942	

फ़तावा रिज़विया - जिल्द 9

पृष्ठ	विषय
	परोक्ष (ग़ैब) पर बिना देखे फ़ैसला सुनाना गुमराही और दोष है।
508	कान की धारणा (सुनने की शक्ति) आत्मा की धारणा की तुलना में बहुत कम और सीमित है।
512	बरज़ख़ की स्थितियों की तुलना दुनिया की आदतों और स्थितियों से करना गलत और त्यागने योग्य है।
700	अहले सुन्नत के अनुसार आत्मा की धारणा शरीर पर निर्भर नहीं करती, वह इन अस्थायी संबंधों से पहले भी वैसी ही समझदार, ज्ञानी, देखने वाली और सुनने वाली थी जैसी बाद में है।
882	शारीरिक संबंध स्वयं से नहीं बल्कि आत्मा के संबंध के कारण होते हैं।
	बरज़ख़ और कयामत परोक्ष (ग़ैब) के मामले हैं जिनमें तुलना और तर्क (इज्तिहाद) का कोई स्थान नहीं है।
299	अक़ीदे (विश्वास) के मामलों में तक़लीद (अंधानुकरण) नहीं है।

संख्या	विषय
932	क़ुरानी विज्ञान और व्याख्या (तफ़सीर)
937	हज्जाज बिन यूसुफ़ ने पवित्र क़ुरान पर एराब (ज़ेर-ज़बर) लगवाए।
937	पवित्र आयत "निश्चित रूप से हम उन पर एक मस्जिद बनाएंगे" में सर्वनाम असहाब-ए-कहफ़ (गुफा वालों) की ओर है, और मनुष्य के शरीर के ऊपर मस्जिद बनाने का कोई अर्थ नहीं है, इसलिए 'अला' (ऊपर) शब्द का अर्थ यहाँ लाक्षणिक (मज़ाज़) है।
937	आयत "बेशक तुम मुर्दों को नहीं सुना सकते" पर चर्चा।
938	आयत "और तुम उन्हें नहीं सुना सकते जो कब्रों में हैं" में 'कब्रों में रहने वाले' से तात्पर्य शरीर से है।
940	हदीस और हदीस के सिद्धांत
940	

पृष्ठ	विषय
346	विश्वासों में चार चीज़ों का पालन करना है: किताब, सुन्नत, इज्मा (सहमति) और अहले सुन्नत का बड़ा समूह (सवाद-ए-आज़म)।
352	गुमराही पर उम्मत की आम सहमति (इज्मा) असंभव है।
357	सवाद-ए-आज़म (बड़े समूह) का विरोध करना बिदअत (नवाचार) है।
360	सावधान शोधकर्ता बुजुर्गों (मशायख़) के फ़तवों पर अमल करते हुए तब तक किसी को काफ़िर नहीं कहेंगे जब तक कि उसे काफ़िर कहने पर बुजुर्गों की सहमति न हो जाए।
513	कुफ्र (अविश्वास) और इस्लाम फ़िक़्ह (न्यायशास्त्र) का नहीं बल्कि अक़ीदे और कलाम (धर्मशास्त्र) का विषय है।
	जब तक धर्म की अनिवार्यताओं में से किसी चीज़ का इनकार न किया जाए, वह कुफ्र नहीं है।

संख्या	विषय
	हमारे आका हमज़ा (रज़ियल्लाहु अन्हु) पर कई बार नमाज़-ए-जनाज़ा पढ़ने की हदीस पर विद्वत्तापूर्ण चर्चा।
940	किसी भी प्रामाणिक हदीस से यह सिद्ध नहीं है कि हुज़ूर (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने ग़ायबाना (अनुपस्थिति में) नमाज़-ए-जनाज़ा पढ़ी।
940	हज़रत मुआविया (रज़ियल्लाहु अन्हु) की ग़ायबाना नमाज़-ए-जनाज़ा वाली हदीस हदीस के इमामों के अनुसार कमज़ोर (ज़ईफ़) है।
940	उल्लेखित हदीस की सभी श्रृंखलाएँ कमज़ोर (ज़ईफ़) हैं।
941	मुता के शहीदों से संबंधित यह हदीस दोनों तरीकों से 'मुर्सल' (टूटी हुई कड़ी वाली) है।
942	वह हदीस जिसमें कब्रों पर चिराग जलाने वालों पर लानत आई है, सही (प्रामाणिक) नहीं है।
942	

فتاوی رضویہ - جلد نہم

صفحہ	مضمون	نمبر	مضمون
	غیب پر رجماً بالغیب حکم لگانا ضلالت و عیب ہے۔	۹۳۲	قرآنی علوم و تفسیر
۵۰۸	گوش سر کا ادراک بنسبت ادراک روح کے بہت قاصر و مقصور ہے۔	۹۳۷	قرآن کریم پر اعراب حجاج بن یوسف نے لگوائے۔
۵۱۲	احوال برزخ کا قیاس احوال و عادات دنیویہ پر باطل و مہجور ہے۔	۹۳۷	آیہ کریمہ "لنتخذن علیہم مسجدا" میں ضمیر جانب اصحاب کہف ہے اور آدمی کے جسم کے اوپر مسجد بنانے کے کوئی معنی نہیں لہٰذا کلمہ علی میں مجاز متعین ہے۔
۷۰۰	اہل سنت کے نزدیک ادراکات روح بدن پر موقوف نہیں وہ ان تعلقات حادثہ سے پہلے بھی ویسے ہی مدرکہ، عالمہ، مبصرہ اور سامعہ تھی جیسے ان کے بعد۔	۹۳۷	آیہ کریمہ انک لا تسمع الموتی کی بحث
۸۸۲	تعلقات بدن بنفسہ نہیں بلکہ تعلق روح کے باعث ہیں۔	۹۳۸	آیہ کریمہ "وما انت بمسمع من فی القبور" میں من فی القبور سے مراد بدن ہے۔
		۹۴۰	حدیث و اصول حدیث

صفحہ	مضمون	نمبر	مضمون
	برزخ و معاد امور غیبیہ ہیں جن میں قیاس و اجتہاد کو دخل نہیں۔		
۲۹۹	عقائد میں تقلید نہیں۔	۹۴۰	حدیث تعدد صلواۃ علی سیدنا حمزہ رضی اللہ تعالیٰ عنہ پر محدثانہ گفتگو۔
۳۴۶	عقائد میں چار چیزوں کا اتباع ہے: کتاب وسنت و اجماع اور سواد اعظم اہلسنت۔	۹۴۰	کسی حدیث صحیح صریح سے ثابت نہیں کہ حضور پر نور صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم نے غائبانہ نماز جنازہ پڑھی۔
۳۵۲	ضلالت پر اجماع امت ناممکن ہے۔	۹۴۰	حضرت معاویہ رضی اللہ تعالیٰ عنہ کے غائبانہ نماز جنازہ والی حدیث ائمہ حدیث کے نزدیک ضعیف ہے۔
۳۵۷	سواد اعظم کا خلاف ابتداع ہے۔	۹۴۰	حدیث مذکور کی سب سندیں ضعیف ہیں۔
۳۶۰	محتاط محققین فتوی مشائخ پر عمل کر کے اس وقت تک کسی کو کافر نہ کہیں گے جب تک تکفیر پر اجماع مشائخ نہ ہو۔	۹۴۱	شہدائے موتہ سے متعلق یہ حدیث دونوں طریق سے مرسل ہے۔
۵۱۳	کفر و اسلام فقہ کا نہیں بلکہ عقائد و کلام کا مسئلہ ہے۔	۹۴۲	وہ حدیث جس میں قبور پر چراغ روشن کرنے والوں پر لعنت آئی ہے صحیح نہیں۔
	جب تک ضروریات دین سے کسی شے کا انکار نہ ہو کفر نہیں۔	۹۴۲	

Volume 9

Fatawa Razawiyya

Page	Topic
513	A weak (Dha'if) Hadith is not a proof in matters of rulings (Ahkam).
514	Three responses to the Hadith of the abstainers.
514	In the Hadith "Those who take graves as mosques and lamps," the word 'Ala' is used in its real sense.
651	Restricting reliance only to Sahih Marfu' Mutasil-ul-Isnad narrations is an act of extreme ignorance.
651	Restricting the Sahih books to only the 'Kutub al-Sittah' (six books) is foolishness.
651	A Hasan Hadith by consensus is a proof.
651	According to the majority of Imams, a Mursal Hadith (with a missing link) is a proof.
747	Regarding matters beyond analogy (Qiyas), a Mauquf (stopped at a Companion) Hadith also has the ruling of a Marfu' (elevated to the Prophet) Hadith.
514	Biography of the Prophet (Seerat-un-Nabi)
115	Why did the Master of two worlds (peace and blessings of Allah be upon him) give his blessed shirt for the shroud of the leader of hypocrites, Abdullah bin Ubayy?
116	The practice of the Holy Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) is that he never rejects anyone's request.
432	The Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) did not have a shadow.
589	The Holy Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) would visit the shrines of martyrs at the end of every year, and the four Caliphs (may Allah be pleased with them) also did the same.
912	The Holy Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) would visit the Baqi cemetery at the end of the night and offer greetings, conversation, and address.

Page	Topic
651	According to Imam al-A'zam (may Allah be pleased with him), a Mauquf Hadith (statement of a Companion) is a proof.
654	In biographies, military expeditions, and merits, both Sahih and Dha'if narrations are acceptable.
655	In matters of creed (Aqaid), Sahih but speculative (Zanni) narrations are rejected.
655	The narration stating "I do not know what is behind the wall" is baseless according to Sheikh Abdul Haq Muhaddith Dehlvi.
747	In the terminology of Hadith scholars, Hadith includes the statements of Sahaba (Companions) and Tabi'un (Successors).
747	Hadith refers to the words, actions, and silent approvals of the Holy Prophet (peace and blessings of Allah be upon him), as well as the words, actions, and silent approvals of a Companion and a Successor.

Page	Topic
651	Asma-ur-Rijal (Biographies of Hadith narrators)
253	Zahidi, the reporter of this narration, is not reliable.
254	Zahidi's school of thought is Mu'tazilite.
254	Difference between Zamakhshari and Zahidi.
306	Abu Bakr bin Abi Shaybah is the teacher of Imam Bukhari and Imam Muslim.

खंड 9

फ़तावा रज़विया

पृष्ठ	विषय
513	अह्काम (नियमों) के मामले में कमज़ोर (ज़ईफ़) हदीस दलील नहीं होती।
514	मना करने वालों की हदीस के तीन जवाब।
514	हदीस "मस्जिदों और लैम्पों को बनाने वाले" में 'अला' शब्द वास्तविक अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।
651	केवल सहीह मरफू मुत्तसिलुल इस्नाद रिवायतों पर निर्भरता को सीमित करना घोर अज्ञानता है।
651	सहाह (सहीह पुस्तकों) को केवल 'कुतुब-ए-सित्ता' (छह पुस्तकों) तक सीमित करना मूर्खता है।
651	सर्वसम्मति (इजमा) से हसन हदीस दलील है।
651	अधिकांश इमामों के अनुसार मुरसल हदीस दलील है।
747	ग़ैर-क़ियासी (तर्क से परे) मामलों में मौक़ूफ़ हदीस भी मरफू के हुक्म में होती है।
514	सीरत-उन-नबी (पैगंबर की जीवनी)
115	दो जहाँ के मालिक (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने मुनाफ़िक़ों के सरदार अब्दुल्लाह बिन उबई के कफ़न के लिए अपनी मुबारक क़मीज़ क्यों दी?
116	नबी करीम (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) का तरीका है कि वे किसी का सवाल (निवेदन) रद्द नहीं करते।
432	अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) का साया (परछाईं) नहीं था।
589	हुज़ूर-ए-अक़दस (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) हर साल के अंत में शहीदों के मज़ार पर तशरीफ़ ले जाते थे और खुलफ़ा-ए-अरबा (चारों खलीफ़ा) भी ऐसा ही करते थे।
912	हुज़ूर-ए-अक़दस (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) रात के आखिरी हिस्से में बक़ी कब्रिस्तान जाते और सलाम, कलाम और ख़िताब फरमाते।

पृष्ठ	विषय
651	इमाम-ए-आज़म (रज़ियल्लाहु अन्हु) के अनुसार मौक़ूफ़ हदीस (सहाबी का क़ौल) दलील है।
654	सीरत, मगाज़ी और मनाक़िब में सहाह और ज़ईफ़ दोनों स्वीकार्य हैं।
655	अक़ायद (आस्था) में सहाह ज़न्नियात (अनुमानित सहीह) अस्वीकार्य हैं।
655	यह रिवायत कि "मुझे दीवार के पीछे का ज्ञान नहीं है", शेख अब्दुल हक़ मुहद्दिस देहलवी के अनुसार निराधार है।
747	मुहद्दिसों (हदीस विद्वानों) की शब्दावली में हदीस में सहाबा और ताबिईन के कथन शामिल हैं।
747	नबी करीम (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) के क़ौल (कथन), फ़ेल (कार्य), तक़रीर (मौन स्वीकृति) और सहाबी के क़ौल, फ़ेल, तक़रीर और ताबिई के क़ौल, फ़ेल और तक़रीर को हदीस कहते हैं।

पृष्ठ	विषय
651	अस्मा-उर-रिजाल (हदीस के वर्णनकर्ताओं की जीवनी)
253	इस रिवायत को बयान करने वाला ज़ाहिदी विश्वसनीय नहीं है।
254	ज़ाहिदी का मज़हब मोतज़िली है।
254	ज़मख़्शरी और ज़ाहिदी में अंतर।
306	अबू बक्र बिन अबी शैबा इमाम बुखारी और इमाम मुस्लिम के उस्ताद हैं।

جلد نہم

فتاویٰ رضویہ

صفحہ	مضمون
۵۱۳	حدیث ضعیف دربارہ احکام حجت نہیں ہوتی۔
۵۱۴	حدیث مانعین سے تین جواب۔
۵۱۴	حدیث "المتخذین علیھا المساجد والسرج" میں کلمہ علی حقیقی معنی میں مستعمل ہے۔
۶۵۱	استنادِ کارواياتِ صحیحہ مرفوعہ متصلۃ الاسناد میں حصرِ جہلِ شدید ہے۔
۶۵۱	صحاح کا صرف کتبِ ستہ پر قصر حماقت ہے۔
۶۵۱	حدیث حسن بالاجماع حجت ہے۔

صفحہ	مضمون
۷۴۷	امور غیر قیاسیہ کے بارے میں موقوف حدیث بھی مرفوع کے حکم میں ہوتی ہے۔
۵۱۴	سیرت النبی
۱۱۵	سرکار دو عالم صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم نے رئیس المنافقین عبد اللہ بن اُبی کے کفن کے لیے اپنی قمیص مبارک کیوں دی؟
۱۱۶	نبی کریم صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کا طریقہ ہے کہ کسی کا سوال رد نہیں فرماتے۔
۴۳۲	رسول اللہ صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کا سایہ نہ تھا۔
۵۸۹	حضورِ اقدس صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم ہر سال کے آخر میں مزارات شہداء پر جلوہ افروز ہوتے اور خلفاء اربعہ رضی اللہ تعالیٰ عنہم بھی ایسا ہی کرتے تھے۔

صفحہ	مضمون
۶۵۱	جمہور ائمہ کے نزدیک حدیث مرسل غیر متصل الاسناد حجت ہے۔
۶۵۱	امام اعظم رضی اللہ تعالیٰ عنہ کے نزدیک حدیث موقوف غیر مرفوع قولِ صحابی حجت ہے۔
۶۵۴	سیر، مغازی اور مناقب میں صحاح و ضحاف مقبول ہیں۔
۶۵۵	عقائد میں صحاح ظنیات مردود ہیں۔
۶۵۵	یہ روایت کہ "مجھ کو دیوار کے پیچھے کا علم نہیں" شیخ عبدالحق محدث دہلوی کے نزدیک بے اصل ہے۔
۷۴۷	حدیث اصطلاح محدثین میں ارشاداتِ صحابہ و تابعین کو شامل ہے۔
۷۴۷	حدیث نبی کریم صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کے قول، فعل، تقریر اور صحابی کے قول، فعل، تقریر اور تابعی کے قول، فعل اور تقریر کو کہتے ہیں۔
۹۱۲	حضورِ اقدس صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم آخر شب مقبرہ بقیع پر تشریف لے جا کر سلام و کلام و خطاب فرمایا کرتے۔
۶۵۱	اسماء الرجال
۲۵۳	اس روایت کا حاکی زاہدی معتمد نہیں۔
۲۵۴	زاہدی مذہب کا معتزلی ہے۔
۲۵۴	زمخشری اور زاہدی میں فرق۔
۳۰۶	ابو بکر بن ابی شیبہ امام بخاری و امام مسلم کے استاذ ہیں۔

Fatawa Razawiyya Volume 9

1. Umm al-Darda is the patronymic (Kuniyat) of two ladies; both are wives of the Prophet's ﷺ companion Hazrat Abu al-Darda (may Allah be pleased with him). The first is 'Kubra' who is a companion (Sahabiya) named Khayra, and the second is 'Sughra', a successor (Tabi'iya), trustworthy, jurist, and an interpreter among the narrators of the six authentic hadith books (Sahah Sitta), named Hujayma. (Page 354)
2. Imam Mujahid is an eminent successor (Tabi'i), jurist, commentator (mufassir), and among the trustworthy scholars of Mecca. Narrations from him are present in all the Sahah Sitta collections. (Page 354)
3. Amr bin Dinar is a magnificent, trustworthy, and firm successor among the scholars of Mecca and among the narrators (Rijal) of the Sahah Sitta. (Page 357)
4. Bakr bin Abdullah Mazni is a great Imam, successor, trustworthy, firm, and among the narrators of the Sahah Sitta. (Page 357)
5. Imam Sufyan is trustworthy, an authority (Hujjat), a scholar of Hadith (Muhaddith), a jurist, a Gnostic (Arif billah), from the successors of the successors (Taba' Tabi'in), among the jurists of Kufa and the narrators of Sahah Sitta. (Page 357)
6. Abdur Rahman ibn Abi Layla is an eminent successor and among the narrators of the Sahah Sitta. (Page 357)
7. Ibn Abi Sahu is among the successors of the successors, the scholars of Mecca, and the narrators of Sahah Sitta. (Page 357)
8. Abu Qilaba al-Basri is a trustworthy, excellent successor from the narrators of Sahah Sitta. (Page 360)
9. Abu Uthman al-Nahdi is among the senior successors; he lived during the era of the Prophet's ﷺ mission and is among the firm pillars of the Sahah Sitta narrators. (Page 360)
10. Imam Qasim bin Mukhaymirah is a trustworthy, excellent successor from the narrators of Sahah Sitta. (Page 361)
11. Ala bin Lajjaj is a trustworthy successor, and his son Abdur Rahman is among the accepted narrators of the successors of the successors. Both are narrators in Jami' al-Tirmidhi. (Page 708)
12. Muhammad bin Wasi' is a trustworthy successor, a devout worshiper, a Gnostic, possessing many virtues, and among the narrators of the Sahah Sitta. (Page 709)

13. Baqiyya bin Walid is a Mudallis (one who omits a narrator's name to conceal a defect). (Page 710)
14. Ibn Hibban labeled Nuh bin Amr as a "thief of Hadith". (Page 710)
15. Mahbub bin Hilal is unknown (Majhool). (Page 711)
16. Imam Nawawi called Ala bin Yazid Thaqafi "weak" (da'if), while Imam Bukhari described him as "rejected in Hadith" (munkar al-hadith). (Page 711)
17. Abu Hatim and Daraqutni termed him "abandoned in Hadith" (matruk al-hadith), and Imam Ali bin Madini said he used to fabricate Hadiths from his own heart. (Page 712)
18. No person named Muawiya bin Muawiya is known among the companions (Sahaba). (Page 712)
19. Abu al-Walid al-Tayalisi stated that Ala ibn Yazid Thaqafi was a liar (kadh-dhab). (Page 712)
20. Asim bin Umar is among the intermediate successors and is the grandson of the companion Qatadah bin Nu'man (may Allah be pleased with him). (Page 715)
21. Abdullah bin Abi Bakr bin Muhammad bin Hazm is among the junior successors and is the great-grandson of the companion Amr bin Hazm (may Allah be pleased with him). (Page 715)
22. Sheikh Waqidi [stated that] Abdul Jabbar bin Ammarah is unknown (Majhool). (Page 716)
23. Hibban bin Abi Habla is a trustworthy successor and is among the narrators mentioned by Bukhari. (Page 718)
24. Hazrat Salman al-Farsi (may Allah be pleased with him) is a magnificent and high-ranking companion; he is one of the four for whom Paradise yearns. (Page 723)

फ़तावा रज़विया जिल्द नौ

1. उम्म-अल-दरदा दो ख़ातूनों की कुनियत है; दोनों ही अल्लाह के रसूल ﷺ के सहाबी हज़रत अबुद-दरदा रज़ियल्लाहु अन्हु की बीवियां हैं। पहली 'कुबरा' हैं जो एक सहाबिया (महिला साथी) हैं जिनका नाम ख़ैरा है, और दूसरी 'सुग़रा' हैं जो एक ताबिइया (अनुवर्ती), विश्वसनीय, फकीहा, मुजतहिदा और सहाह सित्ता (छह प्रामाणिक हदीस संग्रह) के वर्णनकर्ताओं में से हैं, जिनका नाम हुजैमा है। (पृष्ठ ३५४)
2. इमाम मुजाहिद एक अज़ीमुश्शान ताबिई, मुजतहिद, मुफ़स्सिर और मक्का के विश्वसनीय विद्वानों (उलमा) में से हैं। सहाह सित्ता की सभी किताबों में उनसे रिवायत (वर्णन) मौजूद है। (पृष्ठ ३५४)
3. अम्र बिन दीनार मक्का के विद्वानों में से एक महान, विश्वसनीय और सुदृढ़ ताबिई हैं, और वे सहाह सित्ता के रिजा़ल (वर्णनकर्ताओं) में से हैं। (पृष्ठ ३५७)
4. बक्र बिन अब्दुल्लाह मज़नी एक महान इमाम, ताबिई, विश्वसनीय, सुदृढ़ और सहाह सित्ता के रिजा़ल में से हैं। (पृष्ठ ३५७)
5. इमाम सुफ़ियान विश्वसनीय, प्रमाण (हुज्जत), मुहद्दिस, मुजतहिद, आरिफ़ बिल्लाह (अल्लाह को जानने वाले), तब-ए-ताबिईन में से हैं, और कूफ़ा के मुजतहिदों तथा सहाह सित्ता के रिजा़ल में से हैं। (पृष्ठ ३५७)
6. अब्दुर रहमान इब्न अबी लैला एक अज़ीमुश्शान ताबिई और सहाह सित्ता के रिजा़ल में से हैं। (पृष्ठ ३५७)
7. इब्न अबी सहीह तब-ए-ताबिईन, मक्का के विद्वानों और सहाह सित्ता के वर्णनकर्ताओं में से हैं। (पृष्ठ ३५७)
8. अबू क़िलाबा बसरी सहाह सित्ता के वर्णनकर्ताओं में से एक विश्वसनीय और श्रेष्ठ ताबिई हैं। (पृष्ठ ३६०)
9. अबू उस्मान नहदी बड़े ताबिईन (अकाबिर) में से हैं; उन्होंने रिसालत (पैगम्बरी) का ज़माना पाया था, और वे सहाह सित्ता के वर्णनकर्ताओं के मुख्य स्तंभों में से हैं। (पृष्ठ ३६०)
10. इमाम कासिम बिन मुख़ैमिरा सहाह सित्ता के वर्णनकर्ताओं में से एक विश्वसनीय और श्रेष्ठ ताबिई हैं। (पृष्ठ ३६१)

11. अला बिन लज्जाज एक विश्वसनीय ताबिई हैं, और उनके बेटे अब्दुर रहमान तब-ए-ताबिईन के स्वीकार्य वर्णनकर्ताओं (मकबूल-अर-रिवायह) में से हैं। दोनों जामे तिर्मिज़ी के वर्णनकर्ताओं में से हैं। (पृष्ठ ७०८)
12. मुहम्मद बिन वासे एक विश्वसनीय ताबिई, इबादत करने वाले (आबिद), आरिफ़ बिल्लाह और कई गुणों वाले व्यक्ति हैं, और वे सहाह सित्ता के रिजा़ल में से हैं। (पृष्ठ ७०९)
13. बक़िया बिन वलीद एक 'मुदल्लिस' (हदीस के वर्णन में कमी छिपाने वाला) हैं। (पृष्ठ ७१०)
14. इब्ने हिब्बान ने नूह बिन अम्र को "हदीस का चोर" बताया। (पृष्ठ ७१०)
15. महबूब बिन हिलाल मजहूल (अज्ञात) है। (पृष्ठ ७११)
16. इमाम नववी ने अला बिन यजीद सक़फ़ी को "ज़ईफ़" (कमज़ोर) कहा, जबकि इमाम बुख़ारी ने उन्हें "मुनकरुल हदीस" (अस्वीकार्य हदीस वाला) बताया। (पृष्ठ ७११)
17. अबू हातिम और दारकुतनी ने उन्हें "मतरुकुल हदीस" (त्याग दिया गया) कहा, और इमाम अली बिन मदनी ने कहा कि वे अपने दिल से हदीसें गढ़ा करते थे। (पृष्ठ ७१२)
18. सहाबा (पैगम्बर के साथियों) में मुआविया बिन मुआविया नाम का कोई व्यक्ति ज्ञात नहीं है। (पृष्ठ ७१२)
19. अबुल वलीद तयालिसी ने कहा कि अला इब्न यजीद सक़फ़ी एक "कज़्ज़ाब" (झूठा) था। (पृष्ठ ७१२)
20. आसिम बिन उमर मध्यम स्तर के ताबिईन में से हैं और वे सहाबी हज़रत क़तादा बिन नोमान रज़ियल्लाहु अन्हु के पोते हैं। (पृष्ठ ७१५)
21. अब्दुल्लाह बिन अबी बक्र बिन मुहम्मद बिन हज़्म छोटे ताबिईन (सिग़ार) में से हैं और वे सहाबी हज़रत अम्र बिन हज़्म रज़ियल्लाहु अन्हु के परपोते हैं। (पृष्ठ ७१५)
22. शैख़ वाक़िदी [के अनुसार] अब्दुल जब्बार बिन अ़मारा मजहूल है। (पृष्ठ ७१६)
23. हब्बान बिन अबी हबला एक विश्वसनीय ताबिई हैं और वे बुख़ारी के वर्णनकर्ताओं (रिजा़ल) में से हैं। (पृष्ठ ७१८)
24. हज़रत सलमान फ़ारसी रज़ियल्लाहु अन्हु एक महान और उच्च पदस्थ सहाबी हैं; आप उन चार लोगों में से हैं जिनके लिए जन्नत लालायित (मुश्ताक़) रहती है। (पृष्ठ ७२३)

पृष्ठ ६४ / ९४८

فتاوی رضویہ جلد نہم

1. ام الدرداء دو خاتونوں کی کنیت ہے دونوں ہی صحابی رسول حضرت ابوالدرداء رضی اللہ تعالیٰ عنہ کی بیویاں ہیں پہلی کبری کہ صحابیہ ہیں خیرہ نام ہے اور دوسری صغری تابعیہ ثقہ فقیہہ مجتہدہ رواۃ صحاح ستہ سے ہیں، ہجیمہ نام ہے۔ (۳۵۴)
2. امام مجاہد جلیل الشان تابعی، مجتہد، مفسر، ثقہ علماء مکہ سے ہیں، سب صحاح میں ان سے روایت ہے۔ (۳۵۴)
3. عمرو بن دینار تابعی جلیل ثقہ ثبت علماء مکہ سے ہیں۔ اور رجال صحاح ستہ سے ہیں۔ (۳۵۷)
4. بکر بن عبداللہ مزنی امام اجل تابعی ثقہ ثبت اور رجال صحاح ستہ سے ہیں۔ (۳۵۷)
5. امام سفیان ثقہ ، حجت، محدث، مجتہد، عارف باللہ، تبع تابعین، مجتہدان کوفہ اور رجال صحاح ستہ سے ہیں۔ (۳۵۷)
6. عبدالرحمن ابن ابی لیلیٰ تابعی عظیم القدر رجال صحاح ستہ سے ہیں۔ (۳۵۷)
7. ابن ابی صحیح تبع تابعین و علماء مکہ اور رواۃ صحاح ستہ سے ہیں۔ (۳۵۷)
8. ابو قلابہ بصری تابعی ثقہ، فاضل رواۃ صحاح ستہ سے ہیں۔ (۳۶۰)
9. ابوعثمان نہدی اکابر تابعین سے ہیں، زمانہ رسالت پائے ہوئے تھے، ثبت عمائد رجال صحاح ستہ سے ہیں۔ (۳۶۰)
10. امام قاسم بن مخیمرہ تابعی ثقہ فاضل رواۃ صحاح ستہ سے ہیں۔ (۳۶۱)
11. علاء بن لجاج تابعی ثقہ اور ان کے بیٹے عبدالرحمن تبع تابعین مقبول الروایہ سے ہیں۔ دونوں رجال جامع ترمذی سے ہیں۔ (۷۰۸)
12. محمد بن واسع تابعی ثقہ عابد عارف باللہ کثیر المناقب رجال صحاح ستہ سے ہیں، (۷۰۹)

13. بقیه بن ولید مدلس ہے۔ (۷۱۰)

14. ابن حبان نے نوح بن عمرو کو حدیث کا چور بتایا۔ (۷۱۰)

15. محبوب بن ہلال مجہول ہے۔ (۷۱۱)

16. امام نووی نے علاء بن یزید ثقفی کو ضعیف، امام بخاری نے منکر الحدیث، (۷۱۱)

17. ابو حاتم و دار قطنی نے متروک الحدیث اور امام علی بن مدینی نے دل سے حدیثیں گھڑنے والا کہا۔ (۷۱۲)

18. صحابہ میں کوئی شخص معاویہ بن معاویہ نام کا معلوم نہیں۔ (۷۱۲)

19. ابوالولید طیا لسی نے کہا کہ علاء ابن یزید ثقفی کذاب تھا۔ (۷۱۲)

20. عاصم بن عمر اوسط تابعین سے ہیں اور یہ قتادہ بن نعمان رضی اللہ تعالیٰ عنہ صحابی کے پوتے ہیں۔ (۷۱۵)

21. عبداللہ بن ابی بکر بن محمد بن حزم صغار تابعین سے ہیں اور یہ عمرو بن حزم رضی اللہ تعالیٰ عنہ صحابی کے پر پوتے ہیں۔ (۷۱۵)

22. شیخ واقدی عبدالجبار بن عمارہ مجہول ہے۔ (۷۱۶)

23. حبان بن ابی حبلہ تابعی ثقہ ہیں اور رجال بخاری سے ہیں۔ (۷۱۸)

24. حضرت سلمان فارسی رضی اللہ تعالیٰ عنہ عظیم الشان جلیل القدر صحابی ہیں، ان چاروں میں سے ہیں جن کی طرف جنت مشتاق ہے۔ (۷۲۳)

Fatawa-e-Razvia Volume Nine

Topic / Person	Ref No.	Description	Page No.
Rashid bin Sa'd, a reliable follower (Tabi'i), is from among the men of Sunan Arba'ah.	730	Mawla Ali (RA) used to pray and the attendees used to say 'Amen'.	285
Dhamra bin Habib, a reliable follower, is from among the men of Sahah Sitta.	730	After shrouding (Takfin), Siddiq and Farooq (RA) presented greetings (Salam) in the presence of the Holy Prophet (PBUH).	285
Hakim bin Umair, a truthful follower, is from among the men of Abu Dawood and Ibn Majah.	732	Siddiq and Farooq (RA) would stand before the Prophet (PBUH) and pray, and the people would say 'Amen'.	285
Bilal bin Sa'd, a great worshiper and scholar follower, is from among the men of Nasai etc.	747	Prayers (Salat) were offered for the Holy Prophet (PBUH) first by men, then by women, then by children.	286
History and Biography	-	It was the noble habit of Siddiq and Farooq (RA) that if they did not find space for prayer in the funeral ground, they would return and not perform the funeral prayer in the mosque.	306
Details of the blessed demise of the Lady of Paradise (Hazrat Khatoon-e-Jannat) (RA).	110	After being unable to participate in the funeral prayer of Farooq-e-Azam (RA), Abdullah bin Salam (RA) said, "There are no restrictions on prayers, I will pray for him."	306
The will of Hazrat Batool Zahra (RA).	111	Siddiq, Farooq and other companions (RA) came to the house of Hazrat Ali Murtaza (RA) for condolence after the demise of Syeda-tun-Nisa (RA).	307
Written on the thighs of some horses in the Farooqi	111	The funeral prayer of Imam Azam (RA) was performed six times; the last time was led by his son, Hazrat Hammad.	321

Topic / Person	Ref No.	Description	Page No.
stable: "Endowed in the way of Allah".			
Seeing the merciful nature of the Holy Prophet (PBUH), a thousand people were blessed with Islam.	116	The mention of prayers (Salat) for a deceased person in another city is reported in only three incidents.	346
The scene of Imam Ali Raza's (RA) arrival in Nishapur and people visiting him.	133	The incident of Bi'r Ma'una.	346
There were more than twenty thousand writers of Imam Ali Raza's (RA) Hadith lessons.	134	The incident of the demise of Hazrat Najashi.	347
The companions (RA) stood around the blessed body of Hazrat Farooq-e-Azam (RA) and kept praying.	245	The incident of the demise and funeral of Hazrat Mu'awiyah bin Mu'awiyah Muzani (RA).	353
Hazrat Ali (KW) used to submit, "O Prophet! Peace be upon you and Allah's mercy and blessings."	284		

फ़तावा-ए-रज़विया जिल्द नहुम (खंड नौ)

विषय / व्यक्ति	संदर्भ क्र.	विवरण	पृष्ठ संख्या
राशिद बिन साद ताबिई, सुनन अरबाह के विश्वसनीय पुरुषों में से हैं।	७३०	मौला अली रज़ियल्लाहु अन्हु दुआ करते और उपस्थित लोग आमीन कहते।	२८५
ज़मरा बिन हबीब ताबिई, सिहाह सित्ता के विश्वसनीय पुरुषों में से हैं।	७३०	कफ़न पहनाने (तकफ़ीन) के बाद सिद्दीक़ और फ़ारूक रज़ियल्लाहु अन्हुमा ने हुज़ूर अकरम सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम की बारगाह में सलाम अर्ज़ किया।	२८५
हकीम बिन उमैर ताबिई, अबू दाऊद और इब्न माजाह के सच्चे पुरुषों में से हैं।	७३२	सिद्दीक़ और फ़ारूक रज़ियल्लाहु अन्हुमा हुज़ूर अलैहिस्सलातु वसल्लम के सामने खड़े होकर दुआ करते और लोग आमीन कहते।	२८५
बिलाल बिन साद ताबिई, एक महान इबादतगुज़ार और विद्वान, नसाई आदि के विश्वसनीय पुरुषों में से हैं।	७४७	हुज़ूर अक़दस सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम पर पहले पुरुषों ने, फिर महिलाओं ने, फिर बच्चों ने नमाज़ (सलात) पढ़ी।	२८६
इतिहास और जीवनियाँ	-	सिद्दीक़ और फ़ारूक रज़ियल्लाहु अन्हुमा की महान आदत थी कि अगर वे जनाज़ागाह में नमाज़ के लिए जगह नहीं पाते, तो वे वापस लौट जाते और मस्जिद में जनाज़े की नमाज़ नहीं पढ़ते थे।	३०६
जन्नत की शहज़ादी (हज़रत खातून-ए-जन्नत) रज़ियल्लाहु अन्हा के मुबारक वफ़ात का विवरण।	११०	अब्दुल्लाह बिन सलाम रज़ियल्लाहु अन्हु ने फ़ारूक़-ए-आज़म रज़ियल्लाहु अन्हु के जनाज़े की नमाज़ में शामिल न हो पाने के बाद कहा, "दुआओं पर कोई पाबंदी नहीं है, मैं उनके लिए दुआ करूँगा।"	३०६

विषय / व्यक्ति	संदर्भ क्र.	विवरण	पृष्ठ संख्या
हज़रत बतुल ज़हरा रज़ियल्लाहु अन्हा की वसीयत।	१११	सिद्दीक़, फ़ारूक और अन्य सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अन्हुम सैयदा-तुन-निसा रज़ियल्लाहु अन्हा के वफ़ात के बाद हज़रत अली मुर्तज़ा रज़ियल्लाहु अन्हु के घर शोक संवेदना के लिए आए।	३०७
फ़ारूक़ी अस्तबल के कुछ घोड़ों की जांघों पर लिखा था: "अल्लाह की राह में वक़्फ़"।	१११	इमाम आज़म रज़ियल्लाहु अन्हु की जनाज़े की नमाज़ छह बार हुई, आख़िरी बार उनके साहबज़ादे हज़रत हम्माद ने पढ़ाई।	३२१
हुज़ूर अक़दस सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम की रहमत को देखकर एक हज़ार लोग इस्लाम में दाख़िल हुए।	११६	दूसरे शहर के मृतक पर नमाज़ (सलात) का ज़िक्र केवल तीन घटनाओं में मिलता है।	३४६
इमाम अली रज़ा रज़ियल्लाहु अन्हु का निशापुर आगमन और लोगों के ज़ियारत करने का दृश्य।	१३३	बि'र माऊना की घटना।	३४६
इमाम अली रज़ा रज़ियल्लाहु अन्हु के हदीस के पाठ को लिखने वाले बीस हज़ार से अधिक थे।	१३४	हज़रत नजाशी के वफ़ात की घटना।	३४७
सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अन्हुम हज़रत फ़ारूक़-ए-आज़म रज़ियल्लाहु अन्हु के मुबारक शरीर के चारों ओर खड़े होकर दुआएँ करते रहे।	२४५	हज़रत मुआविया बिन मुआविया मुज़नी रज़ियल्लाहु अन्हु के निधन और जनाज़े की घटना।	३५३
हज़रत अली करमल्लाहु वजहुल करीम अर्ज़ करते थे, "ऐ नबी! आप	२८४		

विषय / व्यक्ति	संदर्भ क्र.	विवरण	पृष्ठ संख्या
पर सलाम हो और अल्लाह की रहमतें और बरकतें हों।"			
पृष्ठ ९४८ का ६५			

موضوع / شخصیت	نمبر شمار	تفصیل	صفحہ نمبر
راشد بن سعد تابعی ثقہ رجال سنن اربعہ سے ہیں۔	۷۳۰	مولا علی رضی اللہ تعالیٰ عنہ دعا کرتے اور حاضرین آمین کہتے۔	۲۸۵
ضمرہ بن حبیب تابعی ثقہ رجال صحاح ستہ سے ہیں۔	۷۳۰	تکفین کے بعد حضور اکرم صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کی بارگاہ میں صدیق وفاروق رضی اللہ تعالیٰ عنہما نے سلام عرض کیا۔	۲۸۵
حکیم بن عمیر تابعی صدوق رجال ابوداؤد وابن ماجہ سے ہیں۔	۷۳۲	صدیق وفاروق رضی اللہ تعالیٰ عنہما حضور علیہ الصلوۃ والسلام کے سامنے کھڑے ہو کر دعا کرتے اور لوگ آمین کہتے۔	۲۸۵
بلال بن سعد تابعی جلیل عابد فاضل ثقہ رجال نسائی وغیرہ سے ہیں۔	۷۴۷	حضور اقدس صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم پر مردوں نے پھر عورتوں نے پھر بچوں نے صلوۃ کی۔	۲۸۶
تاریخ و تذکرہ	-	صدیق و فاروق رضی اللہ تعالیٰ عنہما کی عادت کریمہ تھی کہ اگر جنازہ گاہ میں نماز کی گنجائش نہ پاتے تو واپس تشریف لے جاتے اور مسجد میں نماز جنازہ نہیں پڑھتے تھے۔	۳۰۶

موضوع / شخصیت	نمبر شمار	تفصیل	صفحہ نمبر
حضرت خاتون جنت رضی اللہ تعالیٰ عنہا کے وصال مبارک کی تفصیل۔	۱۱۰	عبداللہ بن سلام رضی اللہ تعالیٰ عنہ نے فاروق اعظم رضی اللہ تعالیٰ عنہ کی نماز جنازہ میں شریک نہ ہو سکنے کے بعد فرمایا دعائیں تو کوئی بندش نہیں میں ان کے لیے دعا کروں گا۔	۳۰۶
حضرت بتول زہرا رضی اللہ تعالیٰ عنہا کی وصیت۔	۱۱۱	صدیق و فاروق و دیگر صحابہ کرام رضی اللہ تعالیٰ عنہم سیدۃ النساء رضی اللہ تعالیٰ عنہا کے وصال کے بعد حضرت علی مرتضیٰ رضی اللہ تعالیٰ عنہ کے گھر تعزیت کے لیے آئے۔	۳۰۷
اصطبل فاروقی میں کچھ گھوڑوں کی رانوں پر لکھا تھا: "وقف فی سبیل اللہ"۔	۱۱۱	امام اعظم رضی اللہ تعالیٰ عنہ کی نماز جنازہ چھ بار ہوئی آخری بار آپ کے صاحبزادے حضرت حماد نے پڑھی۔	۳۲۱
حضور اقدس صلی اللہ تعالیٰ علیہ و سلم کی شان رحمت کو دیکھ کر ہزار آدمی مشرف بہ اسلام ہوئے۔	۱۱۶	دوسرے شہر کی میت پر صلوۃ کا ذکر صرف تین واقعوں میں روایت کیا جاتا ہے۔	۳۴۶
امام علی رضا رضی اللہ تعالیٰ عنہ کی نیشاپور میں آمد اور لوگوں کی زیارت کرانے کا منظر	۱۳۳	واقعہ بئر معونہ	۳۴۶
	۱۳۴	حضرت نجاشی کے وصال کا واقعہ۔	۳۴۷

موضوع / شخصیت	نمبر شمار	تفصیل	صفحہ نمبر
امام علی رضا رضی اللہ تعالیٰ عنہ کے درس حدیث کو لکھنے والے بیس ہزار سے زائد تھے۔			
صحابہ کرام رضی اللہ تعالیٰ عنہم			
حضرت فاروق اعظم رضی اللہ تعالیٰ عنہ کی نعش مبارک کے گرد کھڑے ہو کر دعائیں کرتے رہے۔	۲۴۵	حضرت معاویہ بن معاویہ مزنی رضی اللہ تعالیٰ عنہ کے انتقال اور جنازہ کا واقعہ۔	۳۵۳
حضرت علی کرم اللہ تعالیٰ وجہہ، عرض کرتے تھے اے نبی! آپ پر سلام ہو اور اللہ کی رحمتیں اور برکتیں ہوں۔	۲۸۴		

Fatawa Razawiyya, Volume 9

- Incident of the martyrs of Mu'tah and their funeral prayer in absentia. | 460 | A strange incident narrated by Hazrat Abul Hasan Marharvi (Mercy of Allah be upon him). | 453
- Sayyiduna Ghous-e-Azam (may Allah be pleased with him) is a Hanbali. | 467 | The author (Mercy of Allah be upon him) used to receive up to five hundred fatwas at a time from various cities and provinces. | 499
- The funeral prayer of Hazrat Khadija al-Kubra (may Allah be pleased with her) did not take place. | 469 | Ameer al-Momineen Farooq-e-Azam used to go for rounds in the Masjid al-Nabawi after Isha prayer for inspection. | 506
- The Najdi Sheikh intended to demolish the sacred shrine. | 429 | The incident of Sultan Murad bin Sultan Selim Khan sending lamps for the Kaaba and the sacred shrine. | 511
- The Najdi Sheikh destroyed the shrines of martyrs and companions. | 430 | The day of hanging lamps in the Kaaba was a great day, and all the notables of Makkah gathered on that day. | 511
- The Wahhabis dug up the graves of martyrs, due to which some bodies and shrouds also became visible. | 430 | At the time of hanging the jeweled lamp in the sacred shrine, all the elders, dignitaries, scholars, and righteous people of Madina Tayyiba were gathered. | 511
- Despite approximately twelve hundred years having passed, the shrouds and blessed bodies of the Companions were safe. | 431 | Even before the Ottoman Sultans, the Sultans used to present lamps in the Haramin Sharifain. | 512
- An astonishing incident that happened with Hazrat Abu Saeed Kharraz (Mercy of Allah be upon him). | 433 | Among the Ottoman Sultans, Sultan Muhammad Murad Khan was the first to receive this honor. | 512
- An astonishing incident that happened with Hazrat Abu Ali (may Allah be pleased with him). | 433 | Imam Subki wrote a book named "Tanzul Sakeena ala Qanadeel Madina" about the lamps of Madina. | 512
- An incident of a disciple of Hazrat Ibrahim bin Shaiban (Mercy of Allah be upon him). | 434 | Introduction of Imam Ali Rozbari (may Allah be pleased with him). | 519
- The unique incident of Hazrat Abu Yaqub Susi (Mercy of Allah be upon him) washing his deceased disciple. | 434 | The story of a righteous servant who lit a thousand lamps for a feast for friends. | 520

• The story of a saint who, after death, opened his eyes and said, "I am alive and every friend of Allah is alive." | 434 | Hazrat Abu Ayyub Ansari's (may Allah be pleased with him) presence at the grave of the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) and his dialogue with Marwan. | 521
• Complaint of the grave owner from Hazrat Abu Qulaba. | 452 |

फतावा रज़विया, खंड 9

- मुताह के शहीदों और उनकी ग़ायबाना नमाज़-ए-जनाज़ा की घटना। | 460 | हज़रत अबुल हसन मारहरवी (अल्लाह की उन पर रहमत हो) द्वारा वर्णित एक अजीब घटना। | 453
- सैयदुना ग़ौस-ए-आज़म (अल्लाह उन पर प्रसन्न हो) हनबली हैं। | 467 | लेखक (अल्लाह की उन पर रहमत हो) के पास एक ही समय में विभिन्न शहरों और प्रांतों से पांच सौ तक फतवे जमा हो जाते थे। | 499
- हज़रत खदीजा अल-कुबरा (अल्लाह उन पर प्रसन्न हो) की नमाज़-ए-जनाज़ा नहीं हुई। | 469 | अमीर-उल-मोमिनीन फ़ारूक़-ए-आज़म ईशा की नमाज़ के बाद देखभाल के लिए मस्जिद-ए-नबवी शरीफ में दौरा फरमाते थे। | 506
- नजदी शेख ने रौज़ा-ए-अक़दस को गिराने का इरादा किया था। | 429 | सुल्तान मुराद बिन सुल्तान सलीम खान द्वारा काबा-ए-मुअज़्ज़मा और रौज़ा-ए-अतहर के लिए लालटेन भेजने की घटना। | 511
- नजदी शेख ने शहीदों और सहाबा के मजारों को तोड़ा। | 430 | काबा-ए-मुअज़्ज़मा में लालटेन टांगने का दिन एक महान दिन था, उस दिन मक्का के सभी प्रतिष्ठित लोग एकत्र हुए थे। | 511
- वहाबियों ने शहीदों की कब्रें खोद डालीं जिससे कुछ के शरीर और कफन भी दिखाई देने लगे। | 430 | रौज़ा-ए-अतहर पर जड़ित लालटेन टांगते समय मदीना तैयबा के सभी बड़े, गणमान्य व्यक्ति, विद्वान और नेक लोग एकत्र थे। | 511
- लगभग बारह सौ साल बीत जाने के बावजूद सहाबा किराम के कफन और पवित्र शरीर सलामत थे। | 431 | उस्मानी सुल्तानों से पहले भी सुल्तान हरमैन शरीफैन में लालटेन पेश करते थे। | 512
- हज़रत अबू सईद खर्राज़ (अल्लाह की उन पर रहमत हो) के साथ घटित एक आश्चर्यजनक घटना। | 433 | उस्मानी सुल्तानों में से सबसे पहले यह सौभाग्य सुल्तान मुहम्मद मुराद खान को मिला। | 512
- हज़रत अबू अली (अल्लाह उन पर प्रसन्न हो) के साथ घटित एक आश्चर्यजनक घटना। | 433 | इमाम सुबकी ने मदीना की लालटेन के बारे में "तंज़ुल सकीना अला क़नादील मदीना" नाम से एक किताब लिखी। | 512

• हज़रत इब्राहिम बिन शैबान (अल्लाह की उन पर रहमत हो) के एक मुरीद की घटना। | 434
| इमाम अली रोज़बारी (अल्लाह उन पर प्रसन्न हो) का परिचय। | 519
• हज़रत अबू यक़ूब सूसी (अल्लाह की उन पर रहमत हो) द्वारा अपने एक मृत मुरीद को नहलाने की अनोखी घटना। | 434 | एक नेक बंदे की कहानी जिसने दोस्तों की दावत में हज़ार चिराग जलाए। | 520
• एक वली-उल्लाह की कहानी जिसने मृत्यु के बाद आँखें खोलकर कहा कि "मैं जीवित हूँ और अल्लाह का हर दोस्त जीवित है।" | 434 | हज़रत अबू अय्यूब अंसारी (अल्लाह उन पर प्रसन्न हो) का रसूल (अल्लाह की उन पर कृपा और शांति हो) की कब्र पर हाज़िर होना और मरवान के साथ बातचीत। | 521
• हज़रत अबू क़ुलाबा से कब्र वाले की शिकायत। | 452 |

- شہدائے موتہ اور ان کی نماز جنازہ غائبانہ کا واقعہ۔ | ۴۶۰ | حضرت ابوالحسن مارہروی رحمۃ اللہ علیہ کا بیان کردہ عجیب واقعہ۔ | ۴۵۳
- سیدنا غوث اعظم رضی اللہ تعالیٰ عنہ حنبلی ہیں۔ | ۴۶۷ | مصنف رحمۃ اللہ علیہ کے پاس متعدد بلاد وامصار سے ایک ایک وقت میں پانچ پانچ سو تک فتوے جمع ہو جاتے تھے۔ | ۴۹۹
- حضرت خدیجۃ الکبریٰ رضی اللہ تعالیٰ عنہا کی نماز جنازہ نہیں ہوئی۔ | ۴۶۹ | امیر المومنین فاروق اعظم بعد از نماز عشاء دیکھ بھال کے لیے مسجد نبوی شریف میں دورہ فرماتے۔ | ۵۰۶
- شیخ نجدی نے روضہ اقدس کو گرانے کا ارادہ کیا تھا۔ | ۴۲۹ | سلطان مراد بن سلطان سلیم خاں کا کعبہ معظمہ اور روضہ اطہر کے لیے قندیلیں بھیجنے کا واقعہ۔ | ۵۱۱
- شیخ نجدی نے شہداء و صحابہ کے مزارات توڑے۔ | ۴۳۰ | کعبہ معظمہ میں قندیلیں آویزاں کرنے کا دن بزرگ دن تھا اس دن تمام اعیان مکہ جمع ہوئے۔ | ۵۱۱
- وہابیہ نے شہداء کی قبور کھود ڈالیں جس سے بعض کے جسم اور کفن بھی ظاہر ہو گئے۔ | ۴۳۰ | روضہ اطہر پر قندیل مرصع آویزاں کرتے وقت مدینہ طیبہ کے اکابر و عمائد اور علماء و صلحاء سب جمع تھے۔ | ۵۱۱
- تخمیناً بارہ سو سال گزر جانے کے باوجود صحابہ کرام کے کفن اور بدن شریف سلامت تھے۔ | ۴۳۱ | سلاطین عثمانیہ سے پہلے بھی سلاطین حرمین شریفین میں قندیلیں حاضر کرتے تھے۔ | ۵۱۲

- حضرت ابو سعید خراز رحمۃ اللہ علیہ کے ساتھ پیش آنے والا حیران کن واقعہ۔ | ۴۳۳ | سلطان عثمانیہ میں سے سب سے پہلے یہ سعادت سلطان محمد مراد خاں نے پائی۔ | ۵۱۲
- حضرت ابو علی رضی اللہ تعالیٰ عنہ کے ساتھ پیش آنے والا حیران کن واقعہ۔ | ۴۳۳ | قنادیل مدینہ کے بارے میں امام سبکی نے "تنزل السکینہ علی قنادیل مدینہ" کے نام کتاب لکھی۔ | ۵۱۲
- حضرت ابراہیم بن شیبان رحمۃ اللہ علیہ کے ایک مرید کا واقعہ۔ | ۴۳۴ | امام علی روز باری رضی اللہ تعالیٰ عنہ کا تعارف۔ | ۵۱۹
- حضرت ابو یعقوب سوسی رحمۃ اللہ علیہ کا اپنے ایک مردہ مرید کو نہلانے کا انوکھا واقعہ۔ | ۴۳۴ | ایک بندہ صالح کی حکایت جس نے دعوت احباب میں ہزار چراغ روشن کیے۔ | ۵۲۰
- ایک ولی اللہ کا قصہ جس نے بعد از موت آنکھیں کھول کر کہا میں زندہ ہوں اور اللہ تعالیٰ کا ہر دوست زندہ ہے۔ | ۴۳۴ | حضرت ابو ایوب انصاری رضی اللہ تعالیٰ عنہ کا قبر رسول صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم پر حاضر ہونا اور مروان سے مکالمہ۔ | ۵۲۱
- حضرت ابو قلابہ سے صاحب قبر کی شکایت۔ | ۴۵۲ |

| Hazrat Zubair (may Allah be pleased with him) preventing his pure wife from the mosque. | 558 | Hazrat Siddiq-e-Akbar (may Allah be pleased with him) appointed morning and evening times for consultation, Thursday for the journey of Jihad, and Monday for seeking knowledge. | 585 | | It is narrated from many great saints and scholars that they asked people at the time of Shariah necessity. | 681 | Hazrat Abdullah bin Masood (may Allah be pleased with him) appointed Thursday for preaching and advice. | 586 | | During the Faruqi era, the incident of a companion visiting the sacred grave during a famine and requesting prayer from the Prophet (peace and blessings be upon him). | 695 | Scholars appoint Wednesday for starting lessons. | 586 | | Umm al-Mu'minin Sayyidah Aisha Siddiqa (may Allah be pleased with her) observing modesty (Haya) from Hazrat Umar (may Allah be pleased with him) after burial. | 713 | The truth is that the mentioned specifications, i.e., Teeja and Chaliswan (40th day) etc., are customary appointments that are by no means a place for taunting or blame. | 590 | | Modesty of Imam Shafi'i in the presence of the shrine of Imam Azam (may Allah be pleased with them). | 752 | The best answer from Shah Abdul Aziz regarding a question about the specification of food in the Fatiha of the elders. | 590 | | The incident of crying and laughing at a graveyard by Imam Ismail Hazrami. | 764 | **Tasawwuf (Sufism)** | | | Umm al-Mu'minin Sayyidah Aisha Siddiqa (may Allah be pleased with her) visited her brother's grave and recited two couplets and addressed him. | 912 | There is a consensus of the inner Imams (spiritual leaders) that a woman cannot be a caller towards Allah; however, if she is merely an intermediary in telling the instructions prescribed by the mentor, there is no harm. | 562 | | **Tauqeet-o-Tayean (Timing and Specification)** | | The relationship of Uwaisiyat is correct and strong. | 687 | | The wisdom of appointing times for acts of worship, occupations, and remembrances. | 582 | **Mirath (Inheritance)** | | | A few examples of customary specifications from the traditions of the Prophet (peace and blessings be upon him). | 585 | If any of the heirs is a minor, or an adult but absent, or present but providing a feast from the deceased's estate without obtaining permission from them is strictly forbidden. | 664 | | The Holy Prophet (peace and blessings be upon him) fixed the end of the year for visiting the martyrs of Uhud, Saturday for visiting Masjid Quba, and Monday for fasting as an expression of gratitude for the messengership. | 585 | | |

| हज़रत ज़ुबैर (रज़ियल्लाहु अन्हु) द्वारा अपनी पाक पत्नी को मस्जिद जाने से रोकने की घटना। | 558 | हज़रत सिद्दीक़-ए-अकबर (रज़ियल्लाहु अन्हु) ने परामर्श के लिए सुबह-शाम का समय, जिहाद की यात्रा के लिए गुरुवार का दिन और ज्ञान प्राप्त करने के लिए सोमवार का दिन निर्धारित किया। | 585 | | यह उल्लेखित है कि कई महान सूफियों और विद्वानों ने शरीयत की आवश्यकता के समय लोगों से प्रश्न (मदद मांगना) किया है। | 681 | हज़रत अब्दुल्ला बिन मसूद (रज़ियल्लाहु अन्हु) ने उपदेश और नसीहत के लिए गुरुवार का दिन तय किया था। | 586 | | फ़ारूक़ी युग में अकाल के दौरान एक सहाबी के पवित्र मज़ार पर हाज़िर होकर हुज़ूर (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) से दुआ की प्रार्थना करने की घटना। | 695 | विद्वान पाठ शुरू करने के लिए बुधवार का दिन निर्धारित करते हैं। | 586 | | उम्मुल मोमिनीन सैयदा आयशा सिद्दीक़ा (रज़ियल्लाहु अन्हा) का हज़रत उमर (रज़ियल्लाहु अन्हु) के दफ़्न होने के बाद उनसे हया (पर्दा) करना। | 713 | सच्चाई यह है कि उपर्युक्त विशिष्टताएं यानी तीजा और चालिसवां आदि, प्रथागत निर्धारण हैं जो किसी भी तरह से ताने या दोष का स्थान नहीं हैं। | 590 | | इमाम आज़म (रज़ियल्लाहु अन्हुमा) के मज़ार की उपस्थिति में इमाम शाफ़ई की हया। | 752 | बुज़ुर्गों के फ़ातिहा में भोजन के विशेष निर्धारण के संबंध में एक प्रश्न का शाह अब्दुल अज़ीज़ की ओर से बेहतरीन उत्तर। | 590 | | इमाम इस्माइल हज़रमी द्वारा एक कब्रस्तान में रोने और हंसने की घटना। | 764 | **तसव्वुफ़ (अध्यात्म)** | | | उम्मुल मोमिनीन सैयदा आयशा सिद्दीक़ा (रज़ियल्लाहु अन्हा) अपने भाई की क़ब्र पर हाज़िर हुईं और दो शेर पढ़े और उन्हें संबोधित किया। | 912 | आंतरिक इमामों (आध्यात्मिक गुरुओं) का इस पर आम सहमति है कि महिला अल्लाह की ओर बुलाने वाली नहीं हो सकती, हाँ यदि वह मुर्शिद द्वारा बताई गई युक्तियों को पहुंचाने में केवल एक दूत हो तो कोई हर्ज नहीं। | 562 | | **तौक़ीत व तईयुन (समय और निर्धारण)** | | ओवैसियत का संबंध सही और मज़बूत है। | 687 | | इबादत, मशगूलियत और अज़कार के लिए समय निर्धारित करने का हिकमत (दर्शन)। | 582 | **मीरास (विरासत)** | | | हुज़ूर (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) की हदीसों से प्रथागत निर्धारण के कुछ उदाहरण। | 585 | वारिसों में कोई नाबालिग हो या बालिग हो मगर अनुपस्थित हो, या उपस्थित हो लेकिन उससे अनुमति लिए बिना मृतक की विरासत से दावत करना सख़्त हराम है। | 664 | | हुज़ूर अकदस (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने शहीदाने उहुद की ज़ियारत के लिए साल का अंत,

मस्जिद क़ुबा में आगमन के लिए शनिवार का दिन और शुक्र-ए-रिसालत के तौर पर रोज़ा रखने के लिए सोमवार का दिन निर्धारित किया। | 585 | | |

पृष्ठ संख्या 67/948

| حضرت زبیر رضی اللہ تعالیٰ عنہ کے اپنی زوجہ مطہرہ کو مسجد سے روکنے کا واقعہ۔ | ۵۵۸ | حضرت صدیق اکبر رضی اللہ تعالیٰ عنہ نے مشورہ کیلئے صبح و شام کا وقت، سفر جہاد کے لیے جمعرات کا دن، اور طلب علم کے لیے دوشنبہ کا دن مقرر فرمایا۔ | ۵۸۵ | | بہت سے اکابر اولیاء و علماء کا بوقت ضرورت شرعیہ لوگوں سے سوال کرنا منقول ہے۔ | ۶۸۱ | حضرت عبد اللہ بن مسعود رضی اللہ تعالیٰ عنہ نے وعظ و نصیحت کے لیے جمعرات کا دن مقرر فرمایا۔ | ۵۸۶ | | دورِ فاروقی میں دوران قحط ایک صحابی کا قبرِ انور پر حاضر ہو کر حضور علیہ الصلوٰۃ والسلام سے دعا کی درخواست کرنے کا واقعہ۔ | ۶۹۵ | علماء سبق شروع کرنے کے لیے بدھ کا دن مقرر فرماتے ہیں۔ | ۵۸۶ | | ام المومنین سیدہ عائشہ صدیقہ رضی اللہ تعالیٰ عنہا کا حضرت عمر رضی اللہ تعالیٰ عنہ سے بعد از دفن حیاء فرمانا۔ | ۷۱۳ | حق یہ ہے کہ تخصیصاتِ مذکورہ یعنی تیجا اور چالیسواں وغیرہ تعیناتِ عادیہ ہیں کہ ہر گز جائے طعن و ملامت نہیں ہیں۔ | ۵۹۰ | | حیاءِ امام شافعی بحضور مزار امام اعظم رضی اللہ تعالیٰ عنہما | ۷۵۲ | بزرگوں کی فاتحہ میں کھانے کی تخصیص کے متعلق ایک سوال کا شاہ عبد العزیز کی طرف سے بہترین جواب۔ | ۵۹۰ | | امام اسمعیل حضرمی کے ایک مقبرہ پر رونے اور ہنسنے کا واقعہ۔ | ۷۶۴ | **تصوف** | | | ام المومنین سیدہ عائشہ صدیقہ رضی اللہ تعالیٰ عنہا اپنے بھائی کی قبر پر حاضر ہوئیں اور دو شعر پڑھے اور انہیں خطاب فرمایا۔ | ۹۱۲ | ائمہ باطن کا اجماع ہے کہ عورت داعی الی اللہ نہیں ہو سکتی، ہاں تدابیر ارشاد کردہ مرشد بتانے میں سفیر محض ہو تو حرج نہیں۔ | ۵۶۲ | | **توقیت و تعیین** | | اویسیت کی نسبت صحیح اور قوی ہے۔ | ۶۸۷ | | عبادات اور اشغال و اذکار کے لیے وقت مقرر کرنے کی حکمت۔ | ۵۸۲ | **میراث** | | | احادیثِ رسول صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم سے

تعیناتِ عادیہ کی چند مثالیں۔ | ۵۸۵ | ورثاء میں کوئی نا بالغ ہو یا بالغ ہو مگر غیر موجود یا موجود ہو مگر اس سے اذن لیے بغیر ترکہ میت سے ضیافت کرنا حرامِ شدید ہے۔ | ۶۶۴ | |

حضور اقدس صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم نے شہداءِ اُحد کی زیارت کے لیے سال کا آخر، مسجد قبا میں تشریف آوری کے لیے ہفتہ کا دن اور شکرِ رسالت کے طور پر روزہ رکھنے کے لیے پیر کا دن مقرر فرمایا۔ | ۵۸۵ | | |

Fatawa Razawiya, Volume 9

Content	Ref	Content	Ref
If all heirs are present, adult, and consenting, then the needy can be fed from the inheritance.	665	Being in the back row of a funeral prayer is better.	207
Wills		Forgiveness is granted to those who perform the funeral prayer of accepted servants [of Allah].	271
If a person makes a will that their wealth be used for plastering a mosque and coloring it red and yellow, the will shall be implemented.	493	Allah Almighty feels shy to punish those who perform the funeral prayer of a righteous believer.	271
If someone wills one-third of their wealth for the path of God, it can also be used to light the lamps of a mosque.	504	Indeed, Allah Almighty has forbidden the earth from consuming the bodies of the Prophets (peace and blessings be upon them).	271
Virtues		The Noble Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) is your leader in worldly life and after passing away as well.	284
The prayer that keeps the deceased safe from punishment until the Day of Judgment.	109	The Master of the Universe (peace and blessings of Allah be upon him) said: "After my ritual bath (ghusl) and shrouding, first Jibril will send blessings upon me, then Mika'il, then Israfil, then the Angel of Death with all his hosts."	286
That Tasbih (glorification) which, if written and placed in the shroud of the deceased, protects them from the punishment of the	110	The Luminous Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) is the orator of all prophets on the Day of Judgment, their leader, and the master of intercession.	295

Content	Ref	Content	Ref
grave and the questioning angels (Munkar and Nakir) will not reach them.			
Due to writing "Bismillah ar-Rahman ar-Rahim" on the forehead and chest, the deceased found safety from punishment.	111	Dark graves become illuminated by the prayer of the Prophet (peace and blessings be upon him).	301
Drinking Zamzam water to one's fill is a sign of pure faith.	121	Not carrying the blessed body to the cemeteries, being buried at the specific place of passing, not removing the sacred shirt from the body during the ritual bath (ghusl), the blessed funeral remaining for one and three-quarter days so that all companions could be honored, and no one leading the funeral prayer of the sacred one - these are the special characteristics of the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him).	302
That blessed certificate (Sanad) which, if read over a possessed person, brings healing.	134		

फ़तावा रज़विया, जिल्द 9

विवरण	संदर्भ	विवरण	संदर्भ
यदि सभी उत्तराधिकारी उपस्थित, वयस्क और सहमत हों, तो विरासत से ज़रूरतमंदों को खाना खिलाया जा सकता है।	665	जनाज़ा की प्रार्थना में पिछली पंक्ति में रहना बेहतर है।	207
वसीयत		मक़बूल (पसंदीदा) बंदों की नमाज़-ए-जनाज़ा पढ़ने वालों की मग़फ़िरत (क्षमा) हो जाती है।	271
यदि कोई व्यक्ति वसीयत करे कि उसके धन से मस्जिद में गचकारी (पलस्तर) की जाए और उसमें लाल और पीला रंग किया जाए, तो वसीयत लागू होगी।	493	अल्लाह तआला नेक मोमिन की नमाज़-ए-जनाज़ा पढ़ने वालों को अज़ाब (दंड) देने से हया (संकोच) फ़रमाता है।	271
यदि कोई अपने धन का एक तिहाई हिस्सा अल्लाह की राह में वसीयत करता है, तो उससे मस्जिद के चिराग भी जलाए जा सकते हैं।	504	निस्संदेह अल्लाह तआला ने ज़मीन पर अंबिया अलैहिमुस्सलाम के शरीरों को खाना हराम कर दिया है।	271
फ़ज़ाइल (विशेषताएँ)		हुज़ूर अक़दस सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम दुनियावी ज़िंदगी में भी और वफ़ात के बाद भी आपके इमाम (नेतृत्वकर्ता) हैं।	284
मृतक को क़यामत तक अज़ाब से सुरक्षित रखने वाली दुआ।	109	सरवर-ए-आलम सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम का इरशाद-ए-गिरामी है कि मेरे ग़ुस्ल (स्नान) और कफ़न के बाद सबसे पहले जिब्रील मुझ पर दुरूद (सलात) पढ़ेंगे,	286

विवरण	संदर्भ
वह तस्बीह जिसे लिखकर मृतक के कफ़न में रखा जाए, तो उसे क़ब्र का अज़ाब नहीं होगा और न ही नकीरैन उस तक पहुँचेंगे।	110
माथे और सीने पर 'बिस्मिल्लाह हिर्रहमान निर्रहीम' लिखने के कारण मृतक को अज़ाब से सुरक्षा मिल गई।	111
आबे ज़मज़म पेट भरकर पीना सच्चे ईमान की निशानी है।	121
वह पवित्र सनद (प्रमाण) जिसे किसी पागल या विक्षिप्त पर पढ़ने से उसे शिफ़ा (स्वास्थ्य लाभ) प्राप्त हो।	134

विवरण	संदर्भ
फिर मीकाईल, फिर इसराफ़ील, फिर मलक-उल-मौत अपने सभी लश्करों के साथ।	
हुज़ूर पुरनूर सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम क़यामत के दिन सभी अंबिया के ख़तीब (वक्ता), उनके इमाम और शफ़ाअत के मालिक हैं।	295
हुज़ूर अलैहिस्सलातु वस्सलाम की दुआ (नमाज़) से अंधेरी क़ब्रें रोशन हो जाती हैं।	301
पवित्र शव को क़ब्रिस्तानों की ओर न ले जाना, वफ़ात के विशेष स्थान पर दफ़न होना, ग़ुस्ल (नहलाने) में पवित्र क़मीज़ को बदन से अलग न करना, सभी सहाबा के सम्मान प्राप्त करने के लिए पवित्र जनाज़े का पौने दो दिन तक रखा रहना और पवित्र जनाज़े पर किसी का इमाम न होना - ये रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम की विशेषताएँ(ख़ासा) हैं।	302

متن حوالہ		متن حوالہ	
سب وارث موجود و بالغ اور راضی ہوں تو ترکہ سے بھی محتاجوں کو کھانا کھلایا جاسکتا ہے۔	۶۶۵	پچھلی صف جنازہ میں افضل ہے۔	۲۰۷
وصیت		مقبول بندوں کی نمازِ جنازہ پڑھنے والوں کی مغفرت ہو جاتی ہے۔	۲۷۱
اگر کوئی شخص وصیت کرجائے کہ اس کے مال سے مسجد میں گچ کاری اور اس میں سرخ و زرد رنگ کریں تو وصیت نافذ ہوگی۔	۴۹۳	مومن صالح کی نمازِ جنازہ پڑھنے والوں کو عذاب دینے سے اللہ تعالیٰ حیا فرماتا ہے۔	۲۷۱
اگر کوئی اپنے تہائی مال کی وصیت راہِ خدا کے لئے کرے تو اس سے مسجد کا چراغ بھی جلا سکتے ہیں۔	۵۰۴	بیشک اللہ تعالیٰ نے انبیاء علیہم الصلوٰۃ والسلام کے بدن کو کھانا زمین پر حرام فرما دیا۔	۲۷۱
فضائل			۲۸۴

	متن حوالہ		متن حوالہ	
			حضور اقدس صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم تمہارے امام ہیں دنیاوی زندگی میں بھی اور بعد از وصال بھی۔	
۱۰۹	میت کو قیامت تک عذاب سے محفوظ رکھنے والی دعا۔		سرورِ عالم صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کا ارشادِ گرامی ہے کہ میرے غسل و کفن کے بعد سب سے پہلے جبریل مجھ پر صلوٰۃ کریں گے، پھر میکائیل، پھر اسرافیل، پھر ملک الموت اپنے سارے لشکروں کے ساتھ	۲۸۶
۱۱۰	وہ تسبیح جس کو لکھ کر میت کے کفن میں رکھا جائے تو اسے عذابِ قبر نہ ہو اور نہ نکیرین اس تک پہنچیں۔		حضور پر نور صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم روزِ قیامت تمام انبیاء کے خطیب، ان کے امام اور مالکِ شفاعت ہیں۔	۲۹۵
۱۱۱	پیشانی اور سینہ پر بسم اللہ الرحمن الرحیم لکھنے کی وجہ سے میت کو عذاب سے امان مل گئی۔		حضور علیہ الصلوٰۃ والسلام کی نماز سے اندھیری قبریں روشن ہو جاتی ہیں۔	۳۰۱
۱۲۱	آبِ زمزم کو کھ بھر کر پینا ایمانِ خالص کی علامت ہے۔		نعشِ مبارک کا مقابر کی طرف نہ لے جانا، خاص وصال کی جگہ پر دفن ہونا، نہلانے میں قمیصِ اقدس کا بدن سے جدا نہ کیا جانا، سب صحابہ کے مشرف ہونے کے لیے جنازہ مبارک کا پونے دو دن رکھا رہنا اور	۳۰۲

متن حوالہ **متن حوالہ**

جنازہ اقدس پر کسی کی امامت نہ ہونا خاصۂ رسول اللہ

صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم ہیں۔

وہ سندِ مبارک جس کو

مجنون پر پڑھو تو شفا ہو ۱۳۴

جائے۔

صفحہ 68 از 948

Fatawa Razawiya | Volume 9

Page	Topic
496	The first gift a favored servant receives from the Presence of Might is that Allah Almighty forgives all those who offer his funeral prayer.
497	One for whom three rows of people offer funeral prayers, Paradise becomes mandatory for him.
502	One for whom a hundred Muslims offer funeral prayers is forgiven.
507	One who remains present in the funeral procession until the prayer is offered earns one Qirat (a mountain's worth of reward), and one who remains until burial earns two Qirats.
508	One who stays with a funeral until it is buried will have three Qirats of reward written for him.
509	One who bathes a deceased, shrouds them, applies perfume, carries the funeral, prays, and hides any flaw he sees, becomes as pure from sins as the day he was born from his mother's womb.
512	Tribute in the court of Hazrat Imam-e-Azam (Radi Allahu 'anhu).
516	Hazrat Imam Shafi'i offered Fajr prayer near the shrine of Imam-e-Azam, and out of respect, did not recite Bismillah aloud, nor did he perform Rafa-e-Yadain or Qunut.
516	

Page	Topic
303	Proof of honoring the Prophets from various Quranic verses.
311	The Great Quran has declared honoring parents as obligatory.
311	The glory and splendor of the Radiant Tomb reveal the status of being the Beloved.
311	The Sultan of Islam is the shadow of Allah Almighty on earth.
312	Verily, faith retreats towards Madinah Munawwarah like a snake retreats to its hole.
312	The light at the Pure Tomb is specifically for the tomb itself, not for the mosque building.
313	Virtues of Imam Taqi al-Din Subki (Rahmetullah alayh).
340	At shrines, the honor is not for the bricks and mud, but for the noble soul.
341	

Page	Topic
	Such a large crowd gathered for the funeral of Imam-e-Azam (Radi Allahu 'anhu) that only God knows their count.
516	The earth was folded up and the funeral appeared before the presence of the Prophet (Peace and blessings be upon him).
517	There were two rows of angels behind the Holy Prophet (Peace and blessings of Allah be upon him), and each row contained seventy thousand angels.
564	The Battle of Mu'tah was before the eyes of the Holy Prophet (Peace and blessings of Allah be upon him).

Page	Topic
	Etiquettes of visiting the Radiant Tomb of the Holy Prophet (Peace and blessings of Allah be upon him).
358	Continuously looking at the sacred chamber of the Pure Tomb and the Blessed Dome is an act of worship, similar to looking at the Exalted Kaaba.
358	Virtues of the Noble Durood (Salutations).
361	Hazrat Maryam bint Imran and Hazrat Asiya possessed perfection in piety.
496	Honoring the Prophets (Peace be upon them) is obligatory according to the definitive texts of the Great Quran.

फ़तावा रज़विया | खंड 9

पृष्ठ	विषय
496	एक मक़बूल बंदे को बारगाहे-इज़्ज़त से मिलने वाला पहला तोहफ़ा यह है कि जितने लोग उसके जनाज़े की नमाज़ पढ़ते हैं, अल्लाह तआला उन सबकी मग़फ़िरत (क्षमा) कर देता है।
497	जिस पर तीन सफ़ें(कतारें) नमाज़ पढ़ें, उसके लिए जन्नत वाजिब हो गई।
502	जिस पर सौ मुसलमान नमाज़ पढ़ें, उसे बख़्श दिया गया।
507	जो नमाज़ होने तक जनाज़े में हाज़िर रहे, उसके लिए एक क़ीरात और जो दफ़्न होने तक हाज़िर रहे, उसके लिए दो क़ीरात सवाब (पुण्य) है।
508	जो किसी जनाज़े के साथ रहे यहाँ तक कि उसे दफ़्न कर दिया जाए, उसके लिए तीन क़ीरात सवाब लिखा जाएगा।
509	जो किसी मय्यत को नहलाए, कफ़न पहनाए, ख़ुशबू लगाए, जनाज़ा उठाए, नमाज़ पढ़े और जो कोई दोष नज़र आए उसे छुपा ले, तो वह गुनाहों से ऐसा पाक हो गया जैसे वह उस दिन था जिस दिन अपनी माँ के पेट से पैदा हुआ था।
512	हज़रत इमाम-ए-आज़म (रज़ियल्लाहु अन्हु) की बारगाह में ख़राजे-तहसीन (श्रद्धांजलि)।
303	अनेक क़ुरआनी आयतों से नबियों के सम्मान का प्रमाण।
311	क़ुरआन अज़ीम ने माता-पिता के सम्मान को फ़र्ज़ (अनिवार्य) क़रार दिया है।
311	रौज़ा-ए-अनवर की शान और तजम्मुल से महबूबियत की शान ज़ाहिर होती है।
311	इस्लाम का सुल्तान ज़मीन पर अल्लाह तआला का साया होता है।
312	बेशक ईमान मदीना मुनव्वरा की तरफ़ इस तरह सिमटता है जैसे साँप अपने बिल की तरफ़।
312	रौज़ा-ए-अतहर पर रोशनी विशेष रूप से रौज़ा-ए-अतहर के लिए है, न कि मस्जिद के भवन के लिए।
313	इमाम तक़ीउद्दीन सुबकी (रहमतुल्लाह अलैह) के फ़ज़ाइल (गुण)।

पृष्ठ	विषय
516	हज़रत इमाम शाफ़ई ने इमाम-ए-आज़म के मज़ार के पास फ़ज्र की नमाज़ पढ़ाई, तो सम्मानवश बिस्मिल्लाह ज़ोर से नहीं पढ़ी, न रफ़-ए-यदैन किया और न ही क़ुनूत पढ़ी।
516	इमाम-ए-आज़म (रज़ियल्लाहु अन्हु) के जनाज़े के लिए इतनी बड़ी तादाद में लोग जमा हुए जिनका शुमार (गिनती) केवल ख़ुदा ही जानता है।
516	ज़मीन समेट दी गई और जनाज़ा हुज़ूर अलैहिस्सलातो वस्सलाम के सामने हाज़िर हो गया।
517	हुज़ूर (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) के पीछे फ़रिश्तों की दो सफ़ें थीं और हर सफ़ में सत्तर हज़ार फ़रिश्ते थे।
564	मौता का युद्ध हुज़ूर अक़दस (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) की नज़रों के सामने था।
340	मज़ारों पर सम्मान ईंट और गारे का नहीं, बल्कि रूह-ए-करीम (पवित्र आत्मा) का होता है।
341	हुज़ूर अक़दस (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) के रौज़ा-ए-अनवर पर हाज़िरी के आदाब (शिष्टाचार)।
358	मज़ार-ए-अतहर के हुजरा-ए-मुक़द्दसा और गुंबद-ए-मुबारक को देखते रहना इबादत है, जैसे काबा मुअज़्ज़मा पर नज़र करना।
358	दुरूद शरीफ़ के फ़ज़ाइल।
361	हज़रत मरियम बिन्ते इमरान और हज़रत आसिया तक़वा (परहेज़गारी) में कमाल रखती थीं।
496	नबियों (अलैहिमुस्सलाम) का सम्मान क़ुरआन अज़ीम की अटल दलीलों (नसूस-ए-क़तइया) से फ़र्ज़ है।

صفحہ	مضمون	صفحہ	مضمون
۴۹۶	بندہ مقبول کو پہلا تحفہ جو بارگاہ عزت سے ملتا ہے یہ ہے کہ جتنے لوگ اس کے جنازہ کی نماز پڑھتے ہیں اللہ تعالیٰ ان سب کی مغفرت فرما دیتا ہے۔	۳۰۳	متعدد آیات قرآنیہ سے تعظیم انبیاء کا ثبوت۔
۴۹۷	جس پر تین صفیں نماز پڑھیں اس کے لیے جنت واجب ہو گئی۔	۳۱۱	قرآن عظیم نے ماں باپ کی تعظیم کو فرض قرار دیا۔
۵۰۲	جس پر سو مسلمان نماز پڑھیں وہ بخشا گیا۔	۳۱۱	شان و تجملِ روضہ انور سے شان محبوبیت کھلتی ہے۔
۵۰۷	جو نماز ہونے تک جنازہ میں حاضر رہے اس کے لیے ایک قیراط اور جو دفن تک حاضر رہے اس کے لیے دو قیراط ثواب ہے۔	۳۱۱	سلطان اسلام زمین میں اللہ تعالیٰ کا سایہ ہوتا ہے۔
۵۰۸	جو کسی جنازہ کے ساتھ رہے یہاں تک کہ دفن ہو جائے اس کے لیے تین قیراط ثواب لکھا جائے گا۔	۳۱۲	بیشک ایمان مدینہ منورہ کی طرف سمٹتا ہے جیسے سانپ اپنے بل کی طرف۔
۵۰۹	جو کسی میت کو نہلائے، کفن پہنائے، خوشبو لگائے، جنازہ اٹھائے، نماز پڑھے اور جو ناقص بات	۳۱۲	روضہ اطہر پر روشنی خاص روضہ اطہر کے واسطے ہے نہ کہ بیت مسجد۔

صفحہ	مضمون	صفحہ	مضمون
	نظر آئے اسے چھپائے تو وہ گناہوں سے ایسا پاک ہو گیا جیسا جس دن ماں کے پیٹ سے پیدا ہوا تھا۔		
۵۱۲	حضرت امام اعظم رضی اللہ تعالیٰ عنہ کی بارگاہ میں خراج تحسین۔	۳۱۳	امام تقی الدین سبکی رحمۃ اللہ علیہ کے فضائل۔
۵۱۶	حضرت امام شافعی نے امام اعظم کے مزار کے قریب نماز فجر پڑھائی تو احتراماً بسم اللہ آواز سے نہ پڑھی، نہ رفع یدین کیا اور نہ قنوت پڑھی۔	۳۴۰	مزارات پر تعظیم خشت و گل کی نہیں بلکہ روحِ کریم کی ہوتی ہے۔
۵۱۶	امام اعظم رضی اللہ تعالیٰ عنہ کے جنازے کے لیے اتنی خلقت جمع ہو گئی جس کا شمار خدا ہی جانتا ہے۔	۳۴۱	حضور اقدس صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کے روضہ انور پر حاضری کے آداب۔
۵۱۶	زمین لپیٹ دی گئی اور جنازہ حضور علیہ الصلوۃ والسلام کے سامنے ہو گیا۔	۳۵۸	مزار اطہر کے حجرہ مقدسہ اور گنبد مبارک کو دیکھتے رہنا عبادت ہے جیسے کعبہ معظمہ پر نظر کرنا۔
۵۱۷	فرشتوں کی دو صفیں حضور صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کے پیچھے تھیں اور ہر صف میں ستر ہزار فرشتے تھے۔	۳۵۸	فضائل درود شریف۔
۵۶۴	معرکہ موتہ حضور اقدس صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کے پیشِ نظر تھا۔	۳۶۱	

مضمون	مضمون صفحہ	صفحہ
حضرت مریم بنت عمران اور حضرت آسیہ تقویٰ میں کمال رکھتی تھیں۔		
تعظیم انبیاء علیہم الصلوۃ والسلام نصوص قطعیہ قرآن عظیم سے فرض ہے۔	۴۹۶	

فتاویٰ رضویہ (Fatawa Rizvia) | جلد نہم (Volume 9)

Content	Page	Content	Page
Hazrat Rabia Basri (may Allah be pleased with her) was a worshiper and an ascetic.	562	The word 'Fatwa' is more emphatic than 'Sahih', 'Wazih', 'Ashbah', etc.	255
An angel, whom Allah the Almighty has granted the power to hear the voices of the entire world, is present at the holy grave and delivers the prayers (Durood) of those who recite them to the presence of the Holy Prophet (peace and blessings of Allah be upon him).	682	The phrase 'alaih-ul-amal' (to be acted upon) is equivalent to the word 'Fatwa'.	255
His Eminence Ghaus-e-Azam (may Allah be pleased with him) manifests influence from his holy shrine just like the living.	806	The one among you who is most daring in giving fatwas is most daring against the fire of Hell.	280
His Eminence Ghaus-e-Azam grants positions and ranks to all the saints (Awliya).	811	Only transmission is to be followed; when a matter is reported, individual debate will not be considered.	365
It is reported that living saints can be present in seventy places at once.	829	Action will not be taken on the saying of some elders of the school if it is against the madhhab.	365
Gabriel (peace be upon him) would remain manifest at Sidrat-ul-Muntaha while attending the Prophetic court.	829	Commentaries will not be acted upon against original texts, and fatwas will not be acted upon against commentaries.	365
Which way should one face when visiting the holy shrine of the Holy Prophet (peace and blessings of Allah be upon him)?	887	Judgment is not based on rare occurrences.	563
Do not call the Holy Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) by his	901	As far as possible, harmonizing and reconciling	876

Content	Page
name; instead, say: O Messenger of Allah, O Beloved of Allah, O Caliph of Allah.	
It is forbidden for the earth to consume the bodies of the Prophets (peace and blessings be upon them).	907
The Prophets of Allah are alive and are provided with sustenance.	908
Rasm al-Mufti (The Custom of the Mufti)	
Many common people are negligent in distinguishing between forms, therefore it is always appropriate for a Mufti to explain the whole matter in such places.	220
"This is the practiced narration" - these words are equal in strength to "alaih-ul-fatwa" and "bihi yufta".	255
the statements of the Imams is commendable.	
Fawaid-e-Usuliyah (Fundamental Benefits)	
The possibility of something currently non-existent does not prevent the current existence of a good intention and a correct purpose.	119
Unless a prohibition for a specific time is proven from the pure Sharia, to forbid or deny it is a rejection and annulment of the Sharia's ruling.	244
When a general command of the Sharia is issued, all times are included under that command.	244
Something inherently good is sometimes hindered by an external factor, resulting in an accidental goodness.	244

फतावा रज़विया (Fatawa Rizvia) | जिल्द 9 (Volume 9)

विषय	पृष्ठ
हज़रत राबिया बसरी (रज़ियल्लाहु अन्हा) एक आबिदा और ज़ाहिदा थीं।	562
एक फ़रिश्ता, जिसे अल्लाह तआला ने पूरी दुनिया की आवाज़ सुनने की शक्ति दी है, रौज़ा-ए-अनवर पर उपस्थित रहता है और दुरूद पढ़ने वालों का दुरूद हुज़ूर अकदस (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) की ख़िदमत में पहुँचाता है।	682
हुज़ूर ग़ौस-ए-आज़म (रज़ियल्लाहु अन्हु) मज़ार-ए-अकदस से जीवितों की तरह तसर्रुफ़ (प्रभाव) फ़रमाते हैं।	806
हुज़ूर ग़ौस-ए-आज़म तमाम औलिया को उनके ओहदे और मर्तबे अता फ़रमाते हैं।	811
जीवित औलिया का एक ही समय में सत्तर जगहों पर उपस्थित होना रिवायत में है।	829
जिब्रईल (अलैहिस्सलाम) हुज़ूर की बारगाह में हाज़िरी के समय सिदरतुल मुन्तहा पर भी जलवा-फ़रोश रहते थे।	829
	887
'फ़तवा' शब्द 'सहीह', 'वाज़ेह', 'अशबह' आदि शब्दों से ज़्यादा ताकीदी (मज़बूत) है।	255
'अलैहिल अमल' (जिस पर अमल हो) शब्द 'फ़तवा' शब्द के बराबर है।	255
तुममें से जो फ़तवा देने में जितना ज़्यादा दिलेर है, वह जहन्नम की आग पर उतना ही ज़्यादा दिलेर है।	280
नक़्ल (रिवायत) का ही अनुसरण है; जब कोई मसला रिवायत से साबित हो जाए, तो व्यक्तिगत बहस का कोई महत्व नहीं होगा।	365
मज़हब के ख़िलाफ़ कुछ बुज़ुर्गों की बातों पर अमल नहीं किया जाएगा।	365
मूल ग्रंथों (मतून) के मुक़ाबले में व्याख्याओं (शरुह) पर और व्याख्याओं के मुक़ाबले में फ़तवों पर अमल नहीं किया जाएगा।	365
	563

विषय	पृष्ठ
हुज़ूर अकदस (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) के मज़ार-ए-अनवर पर हाज़िरी के वक़्त चेहरा किस तरफ़ किया जाए?	
हुज़ूर अकरम (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) को नाम लेकर मत पुकारो, बल्कि यूँ कहो: या रसूलल्लाह, या हबीबल्लाह, या ख़लीफ़तुल्लाह।	901
अम्बिया (अलैहिमुस्सलाम) के जिस्म को खाना ज़मीन पर हराम है।	907
अल्लाह तआला के नबी ज़िंदा हैं और उन्हें रिज़्क़ दिया जाता है।	908
रस्मुल मुफ़्ती (मुफ्ती की रीति)	
आम लोग चीज़ों के फ़र्क़ को समझने में अक्सर ग़फ़लत करते हैं, इसलिए ऐसी जगहों पर पूरी बात साफ़-साफ़ कहना मुफ़्ती के लिए हमेशा मुनासिब है।	220
"हमें अस्त रिवायते मामूला" - ये शब्द ताक़त में "अलैहिल फ़तवा" और "बिही युफ़्ता" के बराबर हैं।	255

विषय	पृष्ठ
दुर्लभ (नादिर) चीज़ों पर हुक्म नहीं लगाया जाता।	
जहाँ तक मुमकिन हो, इमामों के कथनों में तालमेल और सामंजस्य बिठाना सराहनीय है।	876
फ़वाइद-ए-उसूलीया (मौलिक लाभ)	
किसी अभी न मौजूद चीज़ की संभावना, वर्तमान में नेक नीयत और सही उद्देश्य की मौजूदगी में रुकावट नहीं बनती।	119
जब तक शरीयत से किसी ख़ास समय की मनाही साबित न हो, उसे मना करना या उसका इंकार करना शरीयत के हुक्म को रद्द करना है।	244
जब शरीयत का कोई आम हुक्म जारी होता है, तो वह हर समय के लिए लागू होता है।	244
अपने आप में अच्छी चीज़ में कभी-कभी बाहरी कारणों से कोई रुकावट आ जाती है, जिससे आरज़ी (अस्थायी) अच्छाई पैदा होती है।	244

فہرست مضامین صفحہ

حضرت رابعہ بصریہ رضی اللہ تعالیٰ عنہا عابدہ وزاہدہ تھیں۔ ۵۶۲

ایک فرشتہ جسے اللہ تعالیٰ نے تمام جہان کی آواز سننے کی طاقت عطا فرمائی قبر انور پر حاضر ہے اور درود پڑھنے والوں کا درود حضور اقدس صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کی خدمت میں پہنچاتا ہے۔ ۶۸۲

حضور غوث اعظم رضی اللہ تعالیٰ عنہ مزار اقدس سے مثل احیاء تصرف فرماتے ہیں۔ ۸۰۶

سب اولیاء کو مناصب و مراتب حضور غوث اعظم عطا فرماتے ہیں۔ ۸۱۱

اولیاء احیاء کا ایک وقت میں ستر جگہ تشریف فرما ہونا منقول ہے۔ ۸۲۹

جبرئیل علیہ السلام بارگاہِ نبوی میں حاضری کے وقت سدرۃ المنتہیٰ پر بھی جلوہ گر رہتے۔ ۸۲۹

فہرست مضامین صفحہ

لفظ فتویٰ، لفظ صحیح واضح اور اشبہ وغیرہ سے اکد ہے۔ ۲۵۵

لفظ علیہ العمل لفظ فتویٰ کے مساوی ہے۔ ۲۵۵

جو تم میں فتویٰ دینے پر زیادہ جری ہے آتش دوزخ پر زیادہ جرات رکھتا ہے۔ ۲۸۰

نقل ہی کا اتباع ہے مسئلہ منقول ہوتے ہوئے بحث کا اعتبار نہ ہوگا۔ ۳۶۵

خلاف مذہب بعض مشائخ مذہب کے قول پر عمل نہیں ہوگا۔ ۳۶۵

۳۶۵

فہرست مضامین صفحہ

مزار انور حضور اقدس صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم پر حاضری کے وقت منہ کدھر کیا جائے۔ ۸۸۷

حضور اکرم صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کو نام لے کر مت پکارو بلکہ یوں کہو یا رسول اللہ، یا حبیب اللہ، یا خلیفۃ اللہ ۔ ۹۰۱

انبیاء علیہم الصلوۃ والسلام کے بدن کو کھانا زمین پر حرام ہے۔ ۹۰۷

اللہ تعالیٰ کے نبی زندہ ہیں روزی دیئے جاتے ہیں۔ ۹۰۸

رسم المفتی ۲۲۰

فہرست مضامین صفحہ

متون کے مقابل شروح اور شروح کے مقابل فتاویٰ پر عمل نہیں ہوگا۔

نادر پر حکم نہیں ہوتا۔ ۵۶۳

حتی الامکان کلماتِ ائمہ میں توفیق و تطبیق محمود ہے۔ ۸۷۶

فوائد اصولیہ

کسی امر غیر موجود کا احتمال نیتِ صالحہ و غرضِ صحیح موجودگی فی الحال کے لیے مانع نہیں ہوتا۔ ۱۱۹

جب تک کسی خاص وقت کی ممانعت شرع مطہر سے ثابت نہ ہو منع وانکار حکم شرع کا رد وابطال ہے۔ ۲۴۴

۲۴۴

بہت عوام تمیز صور سے غفلت کرتے ہیں لہٰذا ایسی جگہ پوری بات کرنا ہمیشہ مفتی کے لیے مناسب ہے۔

"ہمیں است روایت معمولہ" یہ الفاظ قوت میں علیہ ۲۵۵
الفتویٰ اور بہ یفتی کے برابر ہیں۔

جب بنحو تعمیم امر شرع وارد ہو تو جمیع ازمنہ تحت امر داخل ہوتے ہیں۔

حسن فی ذاتہ کو کبھی خارج سے کوئی امر مزاحم حسن ۲۴۴
عارض ہوتا ہے۔

Fatawa Razawiya, Volume 9.

[Table of Contents/Legal Rulings Summary]

- The burden of proof lies with the claimant. (223) | Many newly emerged things are good innovations. (492)
- An accidental attribute will remain as long as its cause exists; once removed, the original ruling of beauty will return. (243) | Many rulings change with changes in time or place. (492)
- Ambiguity regarding an increase leading to a mild dislike (karahat tanzihiyya) results in it being "contrary to what is better" (khilaf-e-awla). (256) | Attributing a major sin (kabirah) to a Muslim is prohibited (haram) unless it is proven with certainty through mass-narration (tawatur). (507)
- Ignorance is not an excuse for sin, as remaining ignorant of religious matters is a sin in itself. (277) | If the majority of scholars do not forbid an action after seeing the common people do it, then the scholars' tacit approval (taqreer) will be considered evidence, not the action of the common people itself. (508)
- The sin of a scholar is one, and the sin of an ignorant person is double. (277) | Deviating from reality without necessity is unacceptable. (512)
- Merely being authentic in terms of Hadith science is not enough to establish a ruling; it must also be authentic according to jurisprudence (fiqh). (299) | If a word is used in a metaphorical sense in one place, it is not necessary to use it metaphorically in another place as well. (515)
- For the illumination of the grave, praying over someone's grave after the funeral prayer is specific to the Master of both worlds, may Allah's peace and blessings be upon him. (301) | A literal meaning does not depend on an external cause. (515)
- The cause for prayers is time; when the time returns, the prayer returns. (306) | Discussion on the statement of Mulla Ali Qari. (515)
- The cause for a funeral prayer is a deceased Muslim; when there are multiple deceased, there will be multiple prayers, but multiple prayers cannot be performed for a single deceased. (306) | Combining literal and metaphorical meanings is invalid. (515)
- An action that Mustafa, may Allah's peace and blessings be upon him, avoided intentionally without excuse cannot be considered legislated (mashru'). (336) | Removing a harm is prioritized over gaining a benefit. (551)

- A weak (da'if) Hadith is not an absolute proof in matters of rulings. (357) | If individual components are not forbidden, their combination is also not forbidden. (571)
- When "peace be upon so-and-so" is mentioned along with a prayer, it never refers to the legal (shari'i) reality. (363) | A collection of permissible things is also permissible. (571)
- Mildly disliked (makruh tanzihi) acts do not constitute a sin; they are merely "contrary to what is better". (449) | Considering the mere absence of a specific instruction as evidence for an absolute prohibition is a mistake. (573)
- Mild dislike can coexist with permissibility (ibahat). (450) | Whatever ruling applies to an absolute category also applies to all its individual instances. (581)
- Sin cannot coexist with permissibility. (450) | Once something absolute is established, it is wrong for the one who denies its permissibility to demand evidence for its specificity. (581)
- The act of leaving something obligatory (wajib) is close to being prohibited (haram). (450) | The burden of proof for the prohibition of a specific act lies with the one who prohibits it. (581)

फ़तावा रज़विया, खंड 9.

[विषय-सूची / कानूनी फैसलों का सारांश]

- प्रमाण का भार वादी (दावा करने वाले) पर होता है। (२२३) | कई नई उभरती चीज़ें अच्छी बिदअत (नवाचार) हैं। (४९२)
- कोई आकस्मिक गुण तब तक बना रहेगा जब तक उसका कारण बना रहता है; उसके समाप्त होते ही मूल सुंदरता का नियम वापस आ जाएगा। (२४३) | समय या स्थान के परिवर्तन के साथ कई नियम बदल जाते हैं। (४९२)
- अधिकता का भ्रम जो कराहत तंज़ीहिया (हल्की नापसंदगी) की ओर ले जाता है, वह 'खिलाफ़-ए-औला' (जो बेहतर है उसके विपरीत) होता है। (२५६) | किसी मुसलमान पर कबीरा (बड़ा गुनाह) का आरोप लगाना तब तक हराम है जब तक कि वह तवातुर (निश्चित जन-प्रमाण) से सिद्ध न हो जाए। (५०७)
- अज्ञानता पाप के लिए बचाव नहीं है, क्योंकि धार्मिक मामलों से अनभिज्ञ रहना अपने आप में एक पाप है। (२७७) | यदि विद्वानों का बड़ा समूह आम लोगों के किसी कार्य को देखकर मना न करे, तो विद्वानों की मौन स्वीकृति (तकरीर) को प्रमाण माना जाएगा, न कि आम लोगों के कार्य को। (५०८)
- एक विद्वान का पाप एक है और एक अज्ञानी का पाप दो गुना है। (२७७) | बिना आवश्यकता के वास्तविकता से विचलित होना अस्वीकार्य है। (५१२)
- किसी नियम को स्थापित करने के लिए केवल हदीस की दृष्टि से सही होना पर्याप्त नहीं है, बल्कि उसका फ़िक़्ह (इस्लामी न्यायशास्त्र) की दृष्टि से भी सही होना आवश्यक है। (२९९) | यदि कोई शब्द एक स्थान पर लाक्षणिक (मजाज़ी) अर्थ में उपयोग किया जाता है, तो यह आवश्यक नहीं है कि उसे दूसरी जगह भी लाक्षणिक अर्थ में ही उपयोग किया जाए। (५१५)
- कब्र की रोशनी के लिए, जनाज़े की नमाज़ के बाद किसी की कब्र पर नमाज़ पढ़ना दोनों जहान के मालिक (पैगंबर मुहम्मद ﷺ) के साथ विशिष्ट है। (३०१) | वास्तविक (हकीकी) अर्थ किसी बाहरी कारण पर निर्भर नहीं करता। (५१५)
- नमाज़ों का कारण समय है; जब समय दोबारा आता है, तो नमाज़ भी दोबारा आती है। (३०६) | मुल्ला अली क़ारी के कथन पर चर्चा। (५१५)

- जनाज़े की नमाज़ का कारण एक मुस्लिम मृतक है; जब मृतक कई हों तो नमाज़ भी कई बार होगी, लेकिन एक ही मृतक पर बार-बार नमाज़ नहीं पढ़ी जा सकती। (३०६) | हकीकत और मजाज़ (वास्तविक और लाक्षणिक अर्थों) को एक साथ जोड़ना गलत है। (५१५)
- जिस कार्य से मुस्तफ़ा ﷺ बिना किसी कारण के जानबूझकर परहेज करते थे, वह शरीयत के अनुसार वैध (मशरू') नहीं हो सकता। (३३६) | किसी बुराई को दूर करना किसी लाभ को प्राप्त करने से अधिक महत्वपूर्ण है। (५५१)
- ज़ईफ़ (कमजोर) हदीस नियमों के मामले में कोई निर्णायक प्रमाण नहीं है। (३५७) | यदि व्यक्तिगत भाग हराम नहीं हैं, तो उनका समूह भी हराम नहीं होता। (५७१)
- जब नमाज़ के साथ "अमुक व्यक्ति पर शांति हो" का उल्लेख हो, तो इसका तात्पर्य कभी भी कानूनी (शरई) वास्तविकता से नहीं होता। (३६३) | जायज़ चीज़ों का समूह भी जायज़ ही होता है। (५७१)
- मकरूह तंज़ीही (हल्की नापसंदगी) भी कोई पाप नहीं है, यह केवल 'खिलाफ़-ए-औला' है। (४४९) | किसी विशेष निर्देश के न होने को पूर्ण निषेध का प्रमाण मान लेना एक गलती है। (५७३)
- मकरूह तंज़ीही और इबाहत (अनुमति) एक साथ हो सकते हैं। (४५०) | जो नियम किसी सामान्य वर्ग पर लागू होता है, वही उसके सभी व्यक्तिगत सदस्यों पर भी लागू होता है। (५८१)
- गुनाह और इबाहत (अनुमति) एक साथ नहीं हो सकते। (४५०) | यदि कोई सामान्य बात सिद्ध हो जाए, तो उसके जायज़ होने से इंकार करने वाले का उसकी विशिष्टता का प्रमाण माँगना गलत है। (५८१)
- जिस चीज़ का छोड़ना वाजिब (अनिवार्य) हो, उसका करना हराम (प्रतिबंधित) के निकट होता है। (४५०) | किसी विशिष्ट कार्य के निषेध का प्रमाण देने की ज़िम्मेदारी निषेध करने वाले की है। (५८१)

पृष्ठ ७१/९४८

بار ثبوت مدعی کے ذمہ ہوتا ہے۔ (۲۲۳) | بہت سی نوپید چیزیں اچھی بدعت ہیں۔ (۴۹۲) عارض اپنے عروض ہی تک مزاحم رہے گا زائل ہوتے ہی اصل حسن کا حکم عود کرے گا۔ (۲۴۳) | بہت سے احکام زمانے یا مقام کی تبدیلی سے بدل جاتے ہیں۔ (۴۹۲) ایہام زیادت مورث کراہت تنزیہیہ ہے جس کا حاصل خلاف اولیٰ ہے۔ (۲۵۶) | مسلمان کی طرف نسبت کبیرہ حرام ہے جب تک تواتر سے یقینی الثبوت نہ ہو۔ (۵۰۷) ناواقفی مانع گناہ نہیں کہ مسائل سے ناواقف رہنا خود گناہ ہے۔ (۲۷۷) | فعل عوام کو دیکھ کر جماہیر علماء منع نہ فرمائیں تو استناد تقریر علماء سے ہوگا نہ کہ فعل عوام سے۔ (۵۰۸) عالم کا گناہ ایک گناہ اور جاہل کا گناہ دو گناہ۔ (۲۷۷) | حقیقت سے بلا ضرورت عدول نامقبول ہے۔ (۵۱۲) اثبات حکم کے لیے محض صحت حدیثی کافی نہیں بلکہ صحت فقہی چاہیے۔ (۲۹۹) | اور کسی ایک جگہ کوئی لفظ معنی مجازی میں مستعمل ہو تو ضروری نہیں کہ دوسری جگہ بھی معنی مجازی ہی میں استعمال کیا جائے۔ (۵۱۵) تنویر قبر کے لیے بعد از نماز جنازہ کسی کی قبر پر نماز پڑھنا سرکار دو عالم صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کے ساتھ خاص ہے۔ (۳۰۱) | معنی حقیقی وجہ خارجی کا محتاج نہیں ہوتا۔ (۵۱۵) نمازوں کا سبب وقت ہے جب وقت دوبارہ آیا نماز دوبارہ آئے گی۔ (۳۰۶) | ملا علی قاری کی عبارت پر بحث۔ (۵۱۵) نماز جنازہ کا سبب مسلم میت ہے، جب میت مکرر ہو نماز مکرر ہوگی مگر ایک ہی میت پر مکرر نہیں ہو سکتی۔ (۳۰۶) | جمع بین الحقیقتہ والمجاز باطل ہے۔ (۵۱۵) جس امر سے مصطفیٰ صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم بے عذر مانع بالقصد احتراز فرمائیں وہ مشروع نہیں ہو سکتا۔ (۳۳۶) | سلب مفسدہ جلب مصلحت پر مقدم واہم ہے۔ (۵۵۱) حدیث ضعیف درباره احکام اصلاً حجت نہیں۔ (۳۵۷) | آحاد حرام نہ ہوں تو ان کا مجموعہ بھی حرام نہیں ہوتا۔ (۵۷۱) صلوۃ کے

ساتھ جب علی فلان مذکور ہو تو ہرگز اس سے حقیقت شرعیہ مراد نہیں ہوتی۔ (۳۶۳) | مباحات کا مجموعہ بھی مباح ہوتا ہے۔ (۵۷۱) مکروہ تنزیہی بھی کوئی گناہ نہیں ہوتا وہ صرف خلاف اولیٰ ہوتا ہے۔ (۴۴۹) | محض کسی امر کے خصوصی طور پر وارد نہ ہونے کو مطلقاً ممنوع ہونے کی دلیل جاننا غلطی ہے۔ (۵۷۳) مکروہ تنزیہی اباحت کے ساتھ مجتمع ہو جاتا ہے۔ (۴۵۰) | جو حکم مطلق کے لیے ہو وہی اس کے تمام افراد کے لیے ہوتا ہے۔ (۵۸۱) معصیت اباحت کے ساتھ مجتمع نہیں ہوتی۔ (۴۵۰) | مطلق ثابت ہو جائے تو قائل جواز سے دلیل خصوصیت مانگنا غلط ہے۔ (۵۸۱) جس چیز کا ترک واجب ہو اس کا فعل حرام کے قریب ہوتا ہے۔ (۴۵۰) | ممانعت فعل خاص کی دلیل مانع کے ذمہ ہے۔ (۵۸۱)

Fatawa-e-Razvia Volume 9

Index Heading / Subject	Page	Index Heading / Subject	Page
If specification without a specifier is not beneficial, it is not harmful either.	591	Every issue should be taken from its own sources.	930
Lack of proof is not proof of lack.	656	One who confuses subjects by ignoring the levels of difference is ignorant.	930
Denial without proof, and claiming non-existence is mere arbitrariness and oppression.	656	Reconciliation is better than preference.	933
A claim without proof is purely false and abject.	656	Jurisprudential Benefits	
After the goodness of individuals, there is no debate about the collective goodness as long as there is no corruption in the specific gathering.	698	At the time you supplicate, it is undoubtedly precisely what is commanded and is inherently good.	243
The creed of Ahl-e-Sunnat is that texts (nasoos) should always be taken literally unless there is an impediment.	707	In common books, these general sayings are by no means absolute such that they would write that supplication after funeral prayer is absolutely disliked.	243
Arbitration without the acceptance of both parties is not reasonable.	822	The mentioned sayings about the dislike of supplication are restricted to the term 'standing', meaning one should not stand for a long time for supplication after the funeral prayer, not that one should not supplicate at all.	244
Possibility cuts off reasoning.	875	It is not correct to call Makruh Tanzihi (mildly disliked) a sin.	256
A prohibition supported by clear evidence is not dispelled	917	Funeral prayer is Farz-e-Kifayah (communal obligation) by consensus.	281

Index Heading / Subject	Page	Index Heading / Subject	Page
simply by being far-fetched or seemingly contradictory.			
Apparent goodness is a defense, not a proof of entitlement.	918	Unauthorized disposal (Tasarruf Fuzuli) depends on the owner's permission.	295
Wanting to establish proof from appearances for a prohibited premise is ignorance.	918	The funeral prayer led by the Holy Prophet (peace and blessings be upon him) himself on a deceased is not a repetition, but rather that very first prayer will be established.	295
The consensus rule is that the affirming takes precedence over the negating.	919	The missing of such an obligatory act which has no substitute is among the valid excuses for performing Tayammum.	333
If even a single instance of perception remains, life is proven and death is negated.	930	Funeral prayer is not 'Salah' in the absolute sense, but rather an absolute supplication and an intermediate state (barzakh) in absolute prayer.	362
A conditioned thing will not be realized without its condition, nor will a contradictory thing be attached to its opposite.	930	The application of the term 'Salah' to the funeral prayer is metaphorical.	363
Denying some is an impediment, and the claimant is making a specification; therefore, they should present evidence.	933	Funeral prayer is by no means like a mere supplication.	365
A prohibition cannot be issued against a claim, especially after establishing proof.	933	If ten thousand pots of biryani made with dead rams and ten thousand with slaughtered animals are mixed, then all twenty thousand are forbidden (Haram).	552
There is no definitive hearing (sam' jazm) without evidence for what is possible.	934		

फ़तावा-ए-रज़विया जिल्द 9

अनुक्रमणिका शीर्षक / विषय	पृष्ठ
अगर किसी विशिष्ट करने वाले के बिना विशिष्टता लाभकारी नहीं है, तो वह हानिकारक भी नहीं है।	५९१
प्रमाण का अभाव, अभाव का प्रमाण नहीं होता।	६५६
बिना प्रमाण के इनकार और अभाव का दावा करना केवल हठधर्मिता और अन्याय है।	६५६
बिना प्रमाण के दावा पूर्णतः असत्य और अपमानजनक है।	६५६
व्यक्तियों की सुंदरता के बाद सामूहिक सुंदरता में कोई विवाद नहीं है जब तक कि विशिष्ट सभा में कोई बुराई न हो।	६९८
अहले सुन्नत का मत है कि ग्रंथों (नसूस) को हमेशा उनके स्पष्ट अर्थों में लिया जाना चाहिए जब तक कि उसमें कोई बाधा न हो।	७०७
दोनों पक्षों की स्वीकृति के बिना मध्यस्थता तर्कसंगत नहीं है।	८२२
संभावना तर्क को काट देती है।	८७५
	९१७
हर मसले को उसके अपने स्रोतों से ही लिया जाएगा।	९३०
जो श्रेणियों के अंतर को भुलाकर विषयों को मिला देता है, वह अज्ञानी है।	९३०
समन्वय प्राथमिकता से बेहतर है।	९३३
फिकही (न्यायशास्त्रीय) लाभ	
जिस समय आप दुआ करते हैं, वह निस्संदेह बिल्कुल वही है जिसका आदेश दिया गया है और वह अपने आप में उत्तम है।	२४३
सामान्य पुस्तकों में ये सामान्य बातें किसी भी तरह से निरपेक्ष नहीं हैं कि वे लिखें कि जनाजे की नमाज के बाद दुआ करना बिल्कुल मकरूह (नापसंद) है।	२४३
दुआ की अरुचि (कराहत) के बारे में उल्लेखित बातें 'क़ियाम' (खड़े होने) शब्द से जुड़ी हैं, अर्थात जनाजे की नमाज के बाद दुआ के लिए (देर तक) खड़े न हों, न कि यह कि जनाजे के बाद दुआ ही न करें।	२४४
'मकरूह तंज़ीही' को गुनाह कहना सही नहीं है।	२५६
	२८१

अनुक्रमणिका शीर्षक / विषय	पृष्ठ
स्पष्ट प्रमाणों से समर्थित निषेध केवल दूर की कौड़ी होने या स्पष्ट विरोधाभास से दूर नहीं होता।	९१८
स्पष्ट भलाई एक बचाव है, पात्रता का प्रमाण नहीं।	९१८
वर्जित आधार पर स्पष्ट रूप से प्रमाण स्थापित करना चाहना अज्ञानता है।	९१८
सर्वसम्मति का नियम है कि सिद्ध करने वाला (मुस्बित), इनकार करने वाले (नाफ़ी) पर प्रधान होता है।	९१९
यदि बोध का एक भी अंश शेष है, तो जीवन सिद्ध है और मृत्यु नकारी गई है।	९३०
बिना शर्त के कोई शर्त वाली चीज सिद्ध नहीं होगी, न ही कोई विरोधी चीज अपने विपरीत से जुड़ी होगी।	९३०
कुछ का इनकार एक बाधा है और दावेदार विशिष्टता चाह रहा है, इसलिए उसे प्रमाण प्रस्तुत करना चाहिए।	९३४
दावे के विरुद्ध निषेध लागू नहीं हो सकता, विशेष रूप से प्रमाण स्थापित करने के बाद।	९३४
जनाजे की नमाज सर्वसम्मति (इज्मा) से फर्ज़-ए-किफ़ाया है।	२९५
अनधिकृत कार्य (तसर्रुफ़ फ़ुज़ूली) मालिक की अनुमति पर निर्भर करता है।	२९५
स्वयं हुज़ूर (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने जिस मृतक पर नमाज पढ़ी, वह नमाज का दोहराव नहीं होगा बल्कि वही पहली नमाज मानी जाएगी।	२९५
ऐसे अनिवार्य कार्य का छूट जाना जिसका कोई विकल्प न हो, तयम्मुम की अनुमति के कारणों में से एक है।	३३३
जनाजे की नमाज पूर्ण अर्थ में 'सलाह' नहीं है, बल्कि एक पूर्ण दुआ और पूर्ण नमाज के बीच की एक स्थिति (बर्ज़ख़) है।	३६२
जनाजे की नमाज पर 'सलाह' शब्द का प्रयोग आलंकारिक (मजाज़) है।	३६३
जनाजे की नमाज केवल एक साधारण दुआ की तरह बिल्कुल नहीं है।	३६५
यदि मृत मेढ़ों से बनी दस हजार बिरयानी की देगें और दस हजार ज़बह किए हुए जानवरों की देगें आपस में मिल जाएं तो पूरी बीस हजार हराम (वर्जित) हैं।	५५२

अनुक्रमणिका शीर्षक / विषय	पृष्ठ	अनुक्रमणिका शीर्षक / विषय	पृष्ठ
जो संभव है उसके लिए प्रमाण के बिना निश्चित श्रवण (सम-ए-जज़्म) नहीं है।			
पृष्ठ 948 का 72			

عنوانات / موضوعات صفحہ

اگر مخصص کے بغیر تخصیص مفید نہیں تو نقصان دہ بھی نہیں۔ ۵۹۱

عدم ثبوت ، ثبوت عدم نہیں ہوتا۔ ۶۵۶

بے دلیل عدم ، ادعائے عدم محض تحکم و ستم ہے۔ ۶۵۶

ادعائے بے دلیل محض باطل و ذلیل ہے۔ ۶۵۶

بعد حسن آحاد حسن مجموع میں کلام نہیں جب تک مخصوص اجتماع میں کوئی مفسدہ نہ ہو۔ ۶۹۸

اہلسنت کا مسلک ہے کہ نصوص کو ہمیشہ ظاہر پر محمول کیا جائے جب تک کہ اس میں محذور نہ ہو۔ ۷۰۷

تحکیم بے قبول طرفین معقول نہیں۔ ۸۲۲

عنوانات / موضوعات صفحہ

ہر مسئلہ اپنے مآخذ ہی سے لیا جائے گا۔ ۹۳۰

جو فرق مراتب گما کر خلط مبحث کرے وہ جاہل ہے۔ ۹۳۰

تطبیق اولیٰ ہے ترجیح سے۔ ۹۳۳

فوائد فقہیہ

جس وقت دعا کیجئے بلا شبہ عین مامور بہ اور حسن فی حد ذاتہ ہے۔ ۲۴۳

عامہ کتب میں یہ عامہ اقوال ہر گز اطلاق وارسال پر نہیں کہ بعد نماز جنازہ مطلقاً دعا کو مکروہ لکھتے ہوں۔ ۲۴۳

اقوال مذکورہ کراہت دعا مقید بہ لفظ قیام ہے یعنی نماز جنازہ کے بعد دعا کے لیے قیام ۲۴۴

عنوانات / موضوعات	صفحہ
احتمال قاطع استدلال ہے۔	۸۷۵
منع موید بسند واضح صرف استبعاد اور مخالفت ظاہر سے مندفع نہیں ہوتا۔	۹۱۷
ظاہر صالح دفع ہے نہ حجت استحقاق۔	۹۱۸
مقدمہ ممنوعہ پر ظاہر سے اقامت دلیل چاہنا جہالت ہے۔	۹۱۸
قاعدہ اجماعیہ ہے کہ مثبت ، نافی پر مقدم ہوتا ہے۔	۹۱۹
ادراک کا ایک فرد بھی باقی ہے تو حیات ثابت اور موت منتفی ہے۔	۹۳۰
مشروط نہ بے شرط متحقق ہوگا نہ منافی ، منافی سے ملتصق۔	۹۳۰
	۹۳۳

عنوانات / موضوعات	صفحہ
(طویل) نہ کرے نہ یہ کہ بعد جنازہ دعا ہی نہ کرے۔	
مکروہ تنزیہی کو گناہ کہنا درست نہیں۔	۲۵۶
نماز جنازہ بالا جماع فرض کفایہ ہے۔	۲۸۱
تصرف فضولی اذن مالک پر موقوف ہوتا ہے۔	۲۹۵
خود حضور اقدس صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم جس میت پر نماز پڑھیں یہ اعادہ نماز نہیں بلکہ نماز اول یہی قرار پائے گی۔	۲۹۵
ایسے واجب کا فوت ہونا جس کا بدل نہ ہو جواز تیمم کے عذروں میں سے ہے۔	۳۳۳
نماز جنازہ صلوٰۃ مطلقاً نہیں بلکہ دعاء مطلق و صلوٰۃ مطلقہ میں برزخ ہے۔	۳۶۲
نماز جنازہ پر اطلاق صلوٰۃ مجاز ہے۔	۳۶۳
نماز جنازہ مجرد دعا کی مثل ہر گز نہیں۔	۳۶۵

عنوانات / موضوعات	صفحہ
نفی بعض مانع والامدعی تخصیص ہے لہذا وہ دلیل پیش کرے۔	
دعویٰ پر منع وارد نہیں ہو سکتا خصوصاً اقامت دلیل کے بعد۔	۹۳۳
ممکن پر بے دلیل سمع جزم نہیں۔	۹۳۴

عنوانات / موضوعات	صفحہ
دس ہزار بریانی کی دیگیں مردار مینڈھے کی اور دس ہزار مذبوح جانوروں کی مختلط ہوں تو تمام بیس ہزار حرام ہیں۔	۵۵۲

Fatawa Razawiyya Volume 9

- Non-defined prohibition or non-sharia status doesn't determine impermissibility; observing Giyarwee Sharif is recommended individually and a Sunnah in general terms. (Page 605) | Constructing houses, etc., in endowed (waqf) or non-endowed graveyards. (Page 408)
- It is entirely false to believe that according to our school's Imams, speech with the deceased is not speech in reality or Sharia. (Page 838) | Erasing graves to build warehouses, houses, or mosques, etc. (Page 427)
- The scope of Fiqh (jurisprudence) concludes at the status of Halal and Haram. (Page 942) | Changing a waqf (endowment) is not permissible. (Page 457)

Wilayat (Guardianship) - (Blank) | What is endowed for one purpose cannot be changed and used for another purpose. (Page 457) - A husband is not the guardian of his wife. (Page 95) | A mosque or madrasa cannot be converted into a graveyard, nor can a graveyard be converted into a madrasa or mosque. (Page 457)

Bay' (Sale) - (Blank) | It is not permissible to convert an endowed house into a garden, an inn into a bathhouse, or a hostel into a shop, unless the endower left the matter to the guardian's discretion. (Page 457) - Sharia ruling on the sale of cloths offered at shrines. (Page 192) | Reputation is sufficient in waqf. (Page 463) - If someone sells Zayd's property without his permission, and Zayd, upon finding out, approves it, it is valid; but if he makes a new contract himself, it shows he was not satisfied with the unauthorized contract, and now this contract will be of the owner, not the unauthorized one. (Page 295) | Changing a waqf is Haram (forbidden). (Page 465)

Ghasab (Usurpation) - (Blank) | Ownership is a condition for endowing (making waqf); once a thing is waqf, it cannot be endowed again. (Page 465) - Burying in someone else's land without the owner's permission is Haram. (Page 479) | No building for another purpose can be built on endowed land. (Page 467) - Burying in usurped land. (Page 382) | Whether graveyard land can be private property or not, and the ruling on making a specific graveyard. (Page 479)

Waqf (Endowment) - (Blank) | The endowment of lamps (Qanadeel) is valid. (Page 512) - Forms of changing graveyards. (Page 382) | It is not permissible to spend the endowment of lamps on the mosque building. (Page 512) - Including a portion of a graveyard in a mosque is Haram.

Ijarah (Lease) - (Blank) | Whether it is permissible to rent out the land of a Takiya (shrine/hospice) and for a Faqir to take that rent or not. (Page 479)

Page 73 of 948

फतावा रज़विया जिल्द 9

- निषेध या गैर-शरई ममानत की गैर-मौजूदगी जवाज़ (अनुमति) के लिए निश्चित नहीं है; ग्यारहवीं शरीफ का पालन व्यक्तिगत रूप से मुस्तहब (पसंदीदा) और सामान्य रूप से सुन्नत है। (पृष्ठ 605) | वक्फ और गैर-वक्फ कब्रिस्तान में मकान आदि का निर्माण करना। (पृष्ठ 408)
- यह समझना कि हमारे इमामों के अनुसार मृत व्यक्ति से बातचीत वास्तव में या शरीयत के अनुसार बातचीत नहीं है, बिल्कुल गलत है। (पृष्ठ 838) | कब्रों को मिटाकर गोदाम, मकान और मस्जिद आदि बनाना। (पृष्ठ 427)
- फ़िक़्ह (न्यायशास्त्र) का दायरा हलाल और हराम की स्थिति पर समाप्त होता है। (पृष्ठ 942) | वक्फ (बंदोबस्ती) में बदलाव जायज़ नहीं है। (पृष्ठ 457)

विलायत (अभिभावकत्व) - (खाली) | जो चीज़ जिस मक़सद के लिए वक्फ की गई हो, उसे बदलकर दूसरे मक़सद के लिए देना जायज़ नहीं। (पृष्ठ 457) - पति अपनी पत्नी का वली (अभिभावक) नहीं है। (पृष्ठ 95) | मस्जिद और मदरसे को कब्रिस्तान नहीं बनाया जा सकता, न ही कब्रिस्तान को मदरसा या मस्जिद बनाया जा सकता है। (पृष्ठ 457)

बै (बिक्री) - (खाली) | वक्फ घर को बाग़, सराय को हमाम और मुसाफ़िरखाने को दुकान बनाना जायज़ नहीं है, सिवाय इसके कि वक्फ करने वाले ने मामला निगहबान के विवेक पर छोड़ दिया हो। (पृष्ठ 457) - मज़ार पर चढ़ाई गई चादरों की बिक्री का शरई हुक्म। (पृष्ठ 192) | वक्फ के मामले में प्रसिद्धि (शोहरत) काफी है। (पृष्ठ 463) - अगर कोई ज़ैद की संपत्ति को उसकी अनुमति के बिना बेच दे, और ज़ैद को पता चलने पर वह उसे स्वीकार कर ले, तो यह जायज़ है; लेकिन अगर वह खुद नया अनुबंध करे, तो इससे ज़ाहिर होगा कि वह अनाधिकृत अनुबंध पर संतुष्ट नहीं था, और अब नया अनुबंध ही प्रभावी होगा। (पृष्ठ 295) | वक्फ में बदलाव करना हराम है। (पृष्ठ 465)

ग़सब (हड़पना) - (खाली) | वक्फ करने के लिए मालिक होना शर्त है, एक बार कोई चीज़ वक्फ हो जाए तो उसे दोबारा वक्फ नहीं किया जा सकता। (पृष्ठ 465) - मालिक की अनुमति के बिना दूसरे की ज़मीन में दफनाना हराम है। (पृष्ठ 479) | वक्फ ज़मीन पर किसी अन्य उद्देश्य के लिए कोई इमारत नहीं बनाई जा सकती। (पृष्ठ 467) - हड़पी गई ज़मीन में दफनाना। (पृष्ठ 382) | क्या कब्रिस्तान की ज़मीन किसी की निजी संपत्ति हो सकती है या नहीं, और विशेष कब्रिस्तान बनाने का हुक्म क्या है। (पृष्ठ 479)

वक्फ (बंदोबस्ती) - (खाली) | कनादील (चिरागों) का वक्फ सही है। (पृष्ठ 512) - कब्रिस्तानों को बदलने के तरीके। (पृष्ठ 382) | कनादील के वक्फ को मस्जिद की इमारत में खर्च करना जायज़ नहीं है। (पृष्ठ 512) - कब्रिस्तान के हिस्से को मस्जिद में शामिल करना हराम है।

इजारा (पट्टा/किराया) - (खाली) | तकिया की ज़मीन को किराए पर देना और फकीर के लिए वह किराया लेना जायज़ है या नहीं। (पृष्ठ 479)

पृष्ठ 948 का 73

فتاویٰ رضویہ جلد نہم

- لایقن یا غیر مشروع ممانعت عدم جواز کے لئے متعین نہیں گیارہویں شریف مرتبہ فردیت میں مستحب اور مرتبہ اطلاق میں سنت ہے۔ (صفحہ 605) | وقفی اور غیر وقفی قبرستان میں مکان وغیرہ تعمیر کرنا۔ (صفحہ 408)
- یہ سمجھنا کہ ہمارے ائمہ مذہب کے نزدیک میت سے کلام حقیقتاً یا شرعاً کلام نہیں محض باطل ہے۔ (صفحہ 838) | قبروں کو مٹا کر گودام، مکان اور مسجد وغیرہ بنانا۔ (صفحہ 427)
- فقہ کا دائرہ حیثیت حلال و حرام تک منتہی ہو جاتا ہے۔ (صفحہ 942) | وقف کی تبدیلی جائز نہیں۔ (صفحہ 457)

ولایت - (خالی) | جو چیز جس مقصد کے لیے وقف کی گئی اسے بدل کر دوسرے مقصد کے لیے دینا روا نہیں۔ (صفحہ 457) - شوہر عورت کا ولی نہیں۔ (صفحہ 95) | مسجد و مدرسہ کو قبرستان نہیں بنا سکتے نہ ہی قبرستان کو مدرسہ و مسجد بنایا جا سکتا ہے (صفحہ 457)

بیع - (خالی) | وقف گھر کو باغ، سرائے کو حمام اور رباط کو دکان بنانا جائز نہیں مگر جب واقف نے نگہبان پر معاملہ چھوڑ دیا ہو تو جائز ہے۔ (صفحہ 457) - مزار پر چڑھائی ہوئی چادروں کی بیع کا حکم شرعی۔ (صفحہ 192) | وقف میں شہرت کافی ہے۔ (صفحہ 463) - عمر و ملک زید میں بے اذن زید بیع کرے زید خبر پا کر روا رکھے تو روا ہے اور اگر خود از سر نو عقد کرے تو ظاہر ہوگا کہ عقد فضولی پر قناعت نہ کی اب عقد یہی عقد مالک ہوگا نہ عقد فضولی۔ (صفحہ 295) | وقف میں تبدیلی حرام ہے۔ (صفحہ 465)

غصب - (خالی) | وقف کرنے کے لیے مالک ہونا شرط ہے، شے جب ایک بار وقف ہو جائے تو دوبارہ وقف نہیں ہو سکتی۔ (صفحہ 465) - بلا اجازت مالک دوسرے کی اراضی میں دفن کرنا حرام ہے (صفحہ 479) | زمین وقف میں کوئی عمارت دوسری غرض کے لیے وقف نہیں ہو سکتی۔ (صفحہ 467) - مغصوب زمین میں دفن کرنا۔ (صفحہ 382) | قبرستان کی زمین کسی کی ذاتی ملکیت ہو سکتی ہے یا نہیں، اور مخصوص قبرستان بنانا کیسا ہے۔ (صفحہ 479)

وقف - (خالی) | قنادیل کا وقف صحیح ہے۔ (صفحہ 512) - قبرستانوں کو تبدیل کرنے کی صورتیں۔ (صفحہ 382) | قنادیل کو مسجد کی عمارت میں صرف کرنا جائز نہیں۔ (صفحہ 512) - قبرستان کا حصہ مسجد میں شامل کرنا حرام ہے۔

اجارہ - (خالی) | تکیہ کی زمین کرایہ پر دینا اور فقیر کو اس کا کرایہ لینا جائز ہے یا نہیں۔ (صفحہ 479)

Fatawa Razawiya Volume 9

- Taking and giving payment for recitation is impermissible. (643) | - Difference in the meanings of Avatar and Chadhawa. (515)
- Feeding those who recite the Quran as a wage is forbidden (Haram). (644) | - Debate (Munazara)
- The wage for Quran recitation is forbidden, and a way for its permissibility. (646) | - Refutation in a debating manner based on six reasons against opponents who argue using the narrative of Imam Ibn Hamid. (252)
- Taking wages for recitation and chanting (Tahlil) is forbidden. (646) | - A challenge from the author (Mercy of Allah be upon him) to those who advocate repeating the funeral prayer to present any hadith (verbal, action-based, or tacit approval). (279)
- Taking wages for leading funeral prayers or visiting graves. (646) | - Refutation of opponents' argument from a narrative mentioned in 'Madarij al-Nubuwwah'. (363)
- Taking charity after reciting the Quran or Milad Sharif. (646) | - Eloquence (Balaghat)
- Mortgage (Rahn) | - In the example of "offering an offering (chadhawa) on a grave", the metaphor is not in the word "on" (par) but in the word "offering" (chadhawa) itself. (513)
- Is the sale and mortgage of a graveyard permissible or not? (479) | - Occurrences of the literary device 'Istikhdam' in the Holy Quran. (868)
- Gift (Hiba) | - Logic (Mantiq)
- A graveyard is exempted from endowment (waqf), gift, and sale. (481) | - There are four intellectual possibilities regarding the reality and referent of 'human': only body, only soul, both, or the whole. (860)
- Biography/History (Siyar) | - The author's elegant research that 'human' is the name of the soul connected to the body. (863)
- How should Muslim relatives perform the shroud and burial if an infidel or apostate dies? (390) | - Applying the term 'human' to the body is a common/customary reality (Haqiqat-e-Urfiya). (870)
- Lexicon (Lughat) | - Ignorance of philosophers in the definition of human and animal. (870)
- 'Qiyam' (standing) has two meanings. (245) | - There are two realities for the application of 'human': one is the subtle original reality, i.e., soul connected to

the body, and the second is the well-known customary reality, i.e., the body. (871)

- The word 'an' (from) indicates strangeness and weakness (in a narration). (255) |

फतावा रज़विया खंड 9

- तिलावत पर उजरत (मजदूरी) लेना और देना नाजायज है। (643) | - अवतार और चढ़ावा के अर्थ में अंतर। (515)
- क़ुरआन ख्वानी करने वालों को उजरत के तौर पर खाना खिलाना हराम। (644) | - मुनाज़रा (बहस)
- क़ुरआन ख्वानी की उजरत हराम है और इसके जायज़ होने की एक सूरत। (646) | - इमाम इब्न हामिद की हिकायत से दलील देने वाले मुखालिफ मुतअसिफ़ीन का मुनाज़राना अंदाज़ में छह वजूह से रद (खंडन)। (252)
- तिलावत और तहलील में उजरत लेना हराम। (646) | - नमाज़-ए-जनाज़ा दोबारा पढ़ने के कायलीं को मुसन्निफ़ (रहमतुल्लाहि अलैहि) की तरफ़ से चैलेंज कि कोई हदीस-ए-तक़रीरी, क़ौली या फ़ेली पेश करो। (279)
- नमाज़-ए-जनाज़ा पढ़ाने या ज़ियारत-ए-क़ुबूर की उजरत लेना। (646) | - मदारिजुन नुबुव्वह में ज़िक्र की गई एक हिकायत से मुखालिफ़ीन के इस्तदलाल का रद। (363)
- क़ुरआन शरीफ़ या मिलाद शरीफ़ पढ़कर खैरात लेना। (646) | - बलाग़त (अलंकार शास्त्र)
- रहन (गिरवी) | - "क़ब्र पर चढ़ावा चढ़ाने की मिसाल" में मजाज़ लफ़्ज़ "पर" में नहीं बल्कि खुद लफ़्ज़ "चढ़ावा" में है। (513)
- क़ब्रिस्तान की खरीद-फरोख्त और रहन वगैरह जायज़ है या नहीं। (479) | - क़ुरआन मजीद में सनअत-ए-इस्तेखदाम के मौके। (868)
- हिबा (उपहार) | - मंतिक (तर्कशास्त्र)
- क़ब्रिस्तान वक्फ, हिबा और खरीद-फरोख्त से मुस्तस्ना (अपवाद) है। (481) | - हकीकत और मिस्दाक़-ए-इंसान में चार एहतेमाल-ए-अक़ली हैं: महज़ बदन, या मुजर्रद रूह, या हर एक, या मजमुआ। (860)
- सियर (जीवनी/इतिहास) | - मुसन्निफ़ की तहक़ीक़-ए-अनीक़ कि इंसान रूह मुतअल्लिक़ बिल-बदन का नाम है। (863)
- काफिर या मुर्तद मरे तो उसके मुसलमान रिश्तेदार कैसे कफन-दफन करें। (390) | - बदन पर 'इंसान' का इत्तलाक़ हक़ीक़त-ए-उर्फ़िया है। (870)
- लुग़त (शब्दकोश) | - इंसान और हैवान की तारीफ में फलासिफ़ा की जहालतें। (870)

- क़ियाम के दो मानी हैं। (245) | - इंसान के इत्तलाक़ के लिए दो हक़ीक़तें हैं: एक हक़ीक़त-ए-अस्लिया दक़ीक़ा यानी रूह मुतअल्लिक़ बिल-बदन, दूसरी हक़ीक़त-ए-मशहूर-ए-उर्फ़िया यानी बदन। (871)
- लफ़्ज़ 'अन' ग़राबत और तमरीज़ की ओर इशारा करता है। (255) |

पृष्ठ 74 of 948

فتاویٰ رضویہ جلد نہم

- تلاوت پر اجرت لینا اور دینا نا جائز ہے۔ ۶۴۳ | - اوتار اور چڑھوا کے معنی میں فرق۔ ۵۱۵
- قرآن خوانی کرنے والوں کو بطور اجرت کھانا کھلانا حرام۔ ۶۴۴ | - مناظرہ
- قرآن خوانی کی اُجرت حرام ہے اور اس کے جواز کی ایک صورت۔ ۶۴۶ | - امام ابن حامد کی حکایت سے استدلال کرنے والے مخالف متعسفین کا مناظرانہ انداز میں چھ وجوہ سے رد۔ ۲۵۲
- تلاوت و تہلیل میں اُجرت لینا حرام۔ ۶۴۶ | - قائلین تکرار نماز جنازہ کو مصنف رحمۃ اللہ تعالیٰ علیہ کی طرف سے چیلنج کہ کوئی حدیث تقریری یا قولی یا فعلی پیش کرو۔ ۲۷۹
- نماز جنازہ پڑھانے یا زیارت قبور کی اُجرت لینا۔ ۶۴۶ | - مدارج النبوۃ میں مذکور ایک حکایت سے مخالفین کے استدلال کا رد۔ ۳۶۳
- قرآن شریف یا میلاد شریف پڑھ کر خیرات لینا۔ ۶۴۶ | - بلاغت
- رہن | - "قبر پر چڑھاؤ چڑھانے کی مثال" میں مجاز لفظ "پر" میں نہیں بلکہ خود لفظ چڑھوا میں ہے۔ ۵۱۳
- قبرستان کی بیع و رہن وغیرہ جائز ہے یا نہیں۔ ۴۷۹ | - قرآن مجید میں صنعت استخدام کے مواقع۔ ۸۶۸
- ہبہ | - منطق
- قبرستان وقف ہبہ اور بیع سے مستثنیٰ ہے۔ ۴۸۱ | - حقیقت و مصداق انسان میں چار احتمال عقلی ہیں محض بدن یا مجرد روح یا ہر ایک یا مجموع۔ ۸۶۰
- سِیر | - مصنف کی تحقیق انیق کہ انسان روح متعلق بالبدن کا نام ہے۔ ۸۶۳

- کافر یا مرتد مرے تو اس کے مسلمان رشتے دار کیسے کفن دفن کریں۔ ۳۹۰ | - بدن پر اطلاق انسان حقیقت عرفیہ ہے۔ ۸۷۰
- لغت | - انسان و حیوان کی تعریف میں فلاسفہ کی جہالتیں۔ ۸۷۰
- قیام کے دو معنی ہیں۔ ۲۴۵ | - اطلاق انسان کے لیے دو حقیقتیں ہیں: ایک حقیقت اصلیہ دقیقہ یعنی روح متعلق بالبدن، دوسری حقیقت مشہورہ عرفیہ یعنی بدن۔ ۸۷۱
- لفظ عن مشیر غرابت و تمریض ہے۔ ۲۵۵ |

Volume 9 Fatawa Razawiyya

The reliance on the words of the Mashaikh was based on two opposing premises: the minor premise being that the prevention of the hearing of the dead is the opinion of the majority of Hanafi Mashaikh, and the written major premise being that whatever the majority of Hanafi Mashaikh say is inherently true or we are obliged to accept it. The first three answers are in rebuttal of the minor premise. (916)

The invalidity of the consequent necessitates the invalidity of the antecedent. (934)

Philosophy

Questioning an inanimate object as an inanimate object or delivering pleasure and pain to it is inherently impossible. (851)

Visual perception depends on three things: facing the object, movement of the eyeball, and removal of any veil/obstruction. (855)

Life, by the consensus of the wise, is a condition for perception, and death is contrary to perception. (930)

If a person takes an oath that they will not speak to Zaid, this oath is restricted to Zaid's lifetime. If they speak to Zaid after his death, they will not be a breaker of the oath. (838)

According to us, the basis of an oath is on common usage ('Urf). (838)

An oath applies to the common (customary) meaning of a word, not its literal or Shari'ah meaning. (838)

If one takes an oath not to sit on bedding, or not to take light from a lamp, or not to sit under a roof, then sitting on the bare ground, or in sunlight, or under the open sky will not break the oath. (838)

If one takes an oath not to enter any house, then entering mosques or other places of worship will not make them a breaker of the oath. (838)

If one takes an oath not to speak to Zaid and says "Assalamu Alaikum" to Zaid outside of prayer, they will become a breaker of the oath. (838)

The philosophers' claim that the soul cannot focus on two things simultaneously is false. (934)

Interest (Riba)

It is permitted to pay interest at the time of Shari'ah necessity. (507)

Paying interest without Shari'ah necessity is a cause for curse, just like taking interest. (666)

Oath (Yameen)

In the mentioned scenario, the one who took the oath performed prayer following Zaid; Zaid forgot something, and the person pointed it out to him, they will not be a breaker of the oath. If they pointed it out outside of prayer, they would become a breaker. (838)

A person who takes an oath not to eat meat will not break the oath by eating fish. (841)

Issues in the discussion of oaths are of two types: one restricted to life and the other encompassing both life and death. (884)

Which type of oath is restricted to the lifetime of the person addressed, and which encompasses both their life and death? (884)

मशायख़ (बुजुर्गों) के कलाम से दलील पकड़ना दो विरोधी प्रस्तावों पर आधारित था: लघु प्रस्ताव (minor premise) यह कि मृतकों के सुनने का निषेध अधिकांश हनफ़ी मशायख़ का कथन है, और दीर्घ प्रस्ताव (major premise) यह कि जो अधिकांश हनफ़ी मशायख़ का कथन है वह स्वतः ही सत्य है या हमारे लिए उसे स्वीकार करना अनिवार्य है। पहले तीन उत्तर लघु प्रस्ताव के खंडन में हैं। (916)

अनुगामी (consequent) की अमान्यता से पूर्वगामी (antecedent) की अमान्यता अनिवार्य हो जाती है। (934)

दर्शन (फिलॉसफी)

एक निर्जीव वस्तु से प्रश्न करना या उसे सुख और दुःख पहुँचाना स्वतः ही असंभव है। (851)

दृष्टि द्वारा बोध तीन बातों पर निर्भर है: वस्तु का सामने होना, पुतली का घूमना और आवरण का हटना। (855)

विद्वानों की सर्वसम्मति के अनुसार जीवन बोध की शर्त है, और मृत्यु बोध के प्रतिकूल है। (930)

यदि कोई व्यक्ति शपथ ले कि वह ज़ैद से बात नहीं करेगा, तो यह शपथ ज़ैद के जीवित रहने तक सीमित होती है। यदि वह ज़ैद की मृत्यु के बाद उससे बात करता है, तो शपथ नहीं टूटेगी। (838)

हमारे यहाँ शपथ का आधार लोक-प्रथा (उर्फ़) पर है। (838)

शपथ शब्द के प्रचलित अर्थ (उर्फ़ी मायने) पर आधारित होती है, न कि उसके शाब्दिक या शरिया अर्थ पर। (838)

यदि किसी ने शपथ ली कि वह बिछौने पर नहीं बैठेगा, या दीपक से प्रकाश नहीं लेगा, या छत के नीचे नहीं बैठेगा, तो ज़मीन पर, या धूप में, या खुले आसमान के नीचे बैठने से शपथ नहीं टूटेगी। (838)

यदि किसी ने शपथ ली कि वह किसी घर में नहीं जाएगा, तो मस्जिद या अन्य इबादतगाहों में जाने से शपथ नहीं टूटेगी। (838)

यदि किसी ने शपथ ली कि वह ज़ैद से बात नहीं करेगा और नमाज़ के

बाहर ज़ैद से 'अस्सलामू अलैकुम' कहा, तो शपथ टूट जाएगी। (838)

उपर्युक्त स्थिति में, शपथ लेने वाले ने ज़ैद की इक़्तेदा (पीछे) में नमाज़ पढ़ी, ज़ैद कुछ भूल गया और उसने उसे बताया, तो शपथ नहीं टूटेगी। यदि नमाज़ के बाहर बताया, तो शपथ टूट जाएगी। (838)

दार्शनिकों का यह कथन असत्य है कि आत्मा एक ही क्षण में दो चीज़ों पर ध्यान केंद्रित नहीं कर सकती। (934)

मांस न खाने की शपथ लेने वाला मछली खाने से शपथ का उल्लंघन करने वाला नहीं माना जाएगा। (841)

ब्याज (सूद)

शपथ की चर्चा के विषय दो प्रकार के हैं: एक जीवन तक सीमित और दूसरा जीवन और मृत्यु दोनों को सम्मिलित करने वाला। (884)

शरिया आवश्यकता के समय ब्याज देने की अनुमति है। (507)

कौन सी शपथ संबोधित व्यक्ति के जीवन तक सीमित है और कौन सी उसके जीवन और मृत्यु दोनों को सम्मिलित करती है? (884)

बिना शरिया आवश्यकता के ब्याज देना भी ब्याज लेने की तरह अभिशाप (ला’नत) का कारण है। (666)

शपथ (क़सम)

पेज 75/948

کلام مشائخ سے استناد مخالف دو مقدموں پر مبنی تھا، صغریٰ یہ کہ امتناع سماع موتیٰ قول اکثر مشائخ حنفیہ ہے، اور کبریٰ مطویہ مسطورہ یہ کہ جو قول اکثر مشائخ حنفیہ ہے فی نفسہ حق ہے یا ہم پر اس کی تسلیم واجب ہے، پہلے تینوں جواب صغریٰ کے رد میں۔ (۹۱۶)

بطلان تالی سے بطلان مقدم لازم ہے۔ (۹۳۴)

فلسفہ

جماد من حیث ھو جماد سے سوال یا اسے لذت والم کا ایصال بداہتہً محال ہے۔ (۸۵۱)

اگر کوئی شخص قسم کھائے کہ زید سے نہ بولوں گا تو یہ قسم زید کی حالت حیات پر مقصور ہوتی ہے اگر بعد انتقال زید سے کلام کرے حانث نہ ہوگا۔ (۸۳۸)

ہمارے نزدیک بنائے یمین عرف پر ہے۔ (۸۳۸)

لفظ کے عرفی معنی پر قسم وارد ہوتی ہے نہ کہ لغوی و شرعی معنی پر۔ (۸۳۸)

قسم کھائی بچھونے پر نہ بیٹھے گا یا چراغ سے روشنی نہ لے گا یا چھت کے نیچے نہ بیٹھے گا تو زمین پر یا دھوپ میں یا زیر آسمان بیٹھنے سے قسم نہ ٹوٹے گی۔ (۸۳۸)

ادراک بالبصر تین امور پر موقوف ہے: مواجہ بصر، تقلیب حدقہ اور ازالہ غشاوہ۔ (۸۵۵)

حیات باجماع عقلاء شرط ادراک ہے اور موت منافی ادراک ہے۔ (۹۳۰)

فلاسفہ کا یہ قول باطل ہے کہ نفس آنِ واحد میں دو چیزوں کی طرف توجہ نہیں کر سکتا۔ (۹۳۴)

سود

حاجت شرعیہ کے وقت سود دینے کی اجازت ہے۔ (۵۰۷)

بلا ضرورت شرعیہ سود دینا بھی سود لینے کی طرح باعث لعنت ہے۔ (۶۶۶)

قسم کھائی کہ کسی گھر میں نہ جائے گا تو مسجد وغیرہ معابد میں جانے سے حانث نہ ہوگا۔ (۸۳۸)

قسم کھائی کہ زید سے نہ بولے گا بیرون نماز زید کو کہا السلام علیکم تو حانث ہو جائے گا۔ (۸۳۸)

صورت مذکورہ میں زید کی اقتداء میں قسم کھانے والے نے نماز پڑھی، زید بھولا، اس نے بتایا تو حانث نہ ہوگا، اگر بیرونِ نماز بتایا تو حانث ہو جائے گا۔ (۸۳۸)

گوشت کھانے کی قسم کھانے والا مچھلی کھانے سے حانث نہ ہوگا۔ (۸۴۱)

مبحث قسم کے مسائل دو قسم پر ہیں: ایک متقید بحیات اور دوسرے شامل موت وحیات۔ (۸۸۴)

کون سی قسم مخاطب کی حیات پر مقصور اور کون سی مخاطب کی موت و حیات دونوں شامل ہے۔ (۸۸۴)

Vol. 9 Fatawa-e-Razvia

Sadqa (Charity) Hadrat Anas (Radi Allahu Anhu) was buried with the sacred hair of the Holy Prophet (Sallallahu Alayhi wa Sallam) placed under his tongue. 118 It is desirable (Mustahabb) to give charity for seven days for the deceased. 649 The blessed stick of the Radiant Prophet (Sallallahu Alayhi wa Sallam) was placed on the chest of Hadrat Anas (Radi Allahu Anhu) when he was buried. 118 Meditative charity on behalf of the deceased is beneficial for them according to all scholars without disagreement. 649 Writing Surah Al-Fatihah and verses of healing (Shifa) etc. for the purpose of cure, washing it and drinking the water has been practiced by predecessors and successors without objection. 120 Tawassul and Tabarruk (Intercession and Seeking Blessings) Seeking blessings and intercession through the names of the beloved of Allah (upon whom be greetings and praise) is undoubtedly beloved and recommended (Mandub). 132 A companion asked the Holy Prophet (Sallallahu Alayhi wa Sallam) for his lower garment (Tehband) as a source of blessing for his shroud. 113 The blessings of the names of the People of the Cave (Ashab-e-Kahf). 132 The Radiant Prophet (Sallallahu Alayhi wa Sallam) gave his blessed lower garment to be used for the shroud of his daughter. 114 Lighting lamps at the shrines of Allah's saints to honor their souls so that people know it is the shrine of a beloved of Allah and they seek blessings and intercession from it. 496 Proof from Hadith for shrouding disciples in the clothes of their spiritual guides (Peers). 114 Visiting the graves of the righteous and seeking blessings from them is commendable (Mustahsan). 588 The Holy Prophet (Sallallahu Alayhi wa Sallam) gave his pure shirt as a shroud to the mother of Hadrat Ali Al-Murtaza (Radi Allahu Anhu). 114 Shah Waliullah Muhaddith Dehlvi says: Turn towards the saints even while sitting at home and recite Fatihah. 685 Why did the Master of the Worlds (Sallallahu Alayhi wa Sallam) grant his blessed shirt for the shroud of Abdullah bin Ubayy, the leader of the hypocrites? 115 He also says: Go to the shrines of the saints and beg, seek grace from the souls, and call out 'O Soul, O Soul'. 685 The will of Hadrat Amir Muawiyah (Radi Allahu Anhu) that the blessed shirt of the Prophet (Peace and Blessings be upon Him) be placed in my shroud, and his sacred hair and nails be placed in my mouth and eyes. 117 Shah Abdul Aziz stated that people in need ask for their needs from the souls of saints and receive them. 687 Hadrat Ali Al-Murtaza (Radi Allahu Anhu) willed that the remaining musk of the Prophet (Peace and Blessings be upon Him) be used for my embalming (Hunut). 118

जिल्द नवीं फ़तावा-ए-रज़विया

सदक़ा (दान) हज़रत अनस (रज़ियल्लाहु अन्हु) को हुज़ूर अकदस (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) का मुक़द्दस बाल अपनी ज़बान के नीचे रखे हुए दफ़न किया गया। 118 मयत (मृतक) के लिए सात दिन तक सदक़ा करना मुस्तहब (पसंदीदा) है। 649 हुज़ूर पुर नूर (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) की मुबारक छड़ी हज़रत अनस (रज़ियल्लाहु अन्हु) के सीने पर रखकर उन्हें दफ़न किया गया। 118 मयत की तरफ से सदक़ा करना उलमा के बीच बिना किसी मतभेद के मयत के लिए लाभदायक है। 649 सूरह फ़ातिहा और शिफ़ा की आयतों आदि को शिफ़ा की नीयत से लिखकर, उसे धोकर पीना पूर्वजों और बाद वालों के बीच बिना किसी रोक-टोक के प्रचलित है। 120 तवस्सुल और तबर्रुक (मध्यस्थता और बरकत प्राप्त करना) अल्लाह के महबूबों (जिन पर सलाम और प्रशंसा हो) के नामों से तबर्रुक और तवस्सुल हासिल करना निस्संदेह पसंदीदा और वांछनीय (मन्दूब) है। 132 एक सहाबी ने अपने कफ़न के लिए हुज़ूर अकदस (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) से बरकत के तौर पर आपका तहबंद माँगा। 113 असहाब-ए-कहफ़ के नामों की बरकतें। 132 हुज़ूर पुर नूर (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने अपनी साहिबज़ादी के कफ़न के लिए अपना मुबारक तहबंद अता फ़रमाया। 114 औलिया अल्लाह के मज़ारात पर शमअ (मोमबत्ती) रौशन करना उनकी रूह की ताज़ीम (सम्मान) के लिए है ताकि लोग जान लें कि यह अल्लाह तआला के महबूब का मज़ार है और वे उससे तबर्रुक और तवस्सुल हासिल करें। 496 मुरीदों को पीरों के लिबास में कफ़न देने का सबूत हदीस से। 114 सालेहीन (पुण्य आत्माओं) की कब्रों की ज़ियारत और उनसे तबर्रुक हासिल करना मुस्तहसन (सराहनीय) है। 588 हुज़ूर अकदस (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने हज़रत अली मुर्तज़ा (रज़ियल्लाहु अन्हु) की वालिदा को अपनी कमीस-ए-अतहर (पवित्र कमीज़) में कफ़न दिया। 114 शाह वलीउल्लाह मुहद्दिस देहलवी फ़रमाते हैं: घर बैठे ही औलिया की तरफ मुतवज्जह होकर फ़ातिहा पढ़ो। 685 सरवर-ए-दो आलम (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने मुनाफ़िक़ों के सरदार अब्दुल्ला बिन उबई के कफ़न के लिए अपनी मुबारक कमीज़ क्यों अता फ़रमाई? 115 वही फ़रमाते हैं कि औलिया के मज़ारात पर हाज़िर होकर भीख मांगो, रूहों से फ़ैज़ चाहो और 'या रूह, या रूह' पुकारो। 685 हज़रत अमीर मुआविया (रज़ियल्लाहु अन्हु) की वसीयत कि हुज़ूर (अलैहिस्सलाम) की मुक़द्दस कमीज़ को मेरे कफ़न में और आपके मुक़द्दस बालों और नाखूनों को मेरे मुँह और आँखों में रखना। 117 शाह अब्दुल अज़ीज़ का इरशाद है कि ज़रूरतमंद लोग औलिया की रूहों से अपनी

हाजतें माँगते हैं और पाते हैं। 687 हज़रत अली मुर्तज़ा (रज़ियल्लाहु अन्हु) की वसीयत कि हुज़ूर (अलैहिस्सलाम) की बची हुई मुश्क (कस्तूरी) को मेरे हनूत (खुशबू लगाने) में इस्तेमाल करना। 118

पेज 76 ऑफ 948

صدقہ حضرت انس رضی اللہ تعالیٰ عنہ حضور اقدس صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کا موئے مبارک اپنی زبان کے نیچے رکھے ہوئے دفن ہوئے۔ ۱۱۸ میت کے لیے سات دن تک صدقہ کرنا مستحب ہے۔ ۶۴۹ حضور پر نور صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کی مبارک چھڑی حضرت انس رضی اللہ تعالیٰ عنہ کے سینے پر رکھ کر انہیں دفن کیا گیا۔ ۱۱۸ میت کی طرف سے صدقہ کرنا بلا اختلاف علماء میت کے لیے نافع ہے۔ ۶۴۹ سورہ فاتحہ و آیات شفاء غیر ہا بغرض شفا لکھ کر دھو کر پینا سالفاً و خلفاً بلانگیر رائج ہے۔ ۱۲۰ توسل و تبرک اسماء محبوبان خدا علیہم التحیۃ والثناء سے تبرک و توسل بلا شبہ محبوب و مندوب ہے۔ ۱۳۲ صحابی نے اپنے کفن کے لیے بطور تبرک حضور اقدس صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم سے آپ کا تہبند مانگا۔ ۱۱۳ اصحابِ کہف کے ناموں کی برکات۔ ۱۳۲ حضور پر نور صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم نے اپنی صاحبزادی کے کفن میں اپنا تہبند مبارک عطا فرمایا۔ ۱۱۴ مزارات اولیاء اللہ پر شمعیں روشن کرنا ان کی روح کی تعظیم کے لیے کہ لوگ جان لیں یہ اللہ تعالیٰ کے محبوب کا مزار ہے اور وہ اس سے تبرک و توسل کریں۔ ۴۹۶ مریدوں کو پیروں کے لباس میں کفن دینے کا ثبوت حدیث سے۔ ۱۱۴ صالحین کی قبروں کی زیارت اور ان سے تبرک حاصل کرنا مستحسن ہے۔ ۵۸۸ حضور اقدس صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم نے حضرت علی مرتضیٰ رضی اللہ تعالیٰ عنہ کی والدہ کو اپنی قمیص اطہر میں کفن دیا۔ ۱۱۴ شاہ ولی اللہ محدث دہلوی فرماتے ہیں: گھر بیٹھے ہی اولیاء کی طرف متوجہ ہو کر فاتحہ پڑھو۔ ۶۸۵ سرکار دو عالم صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم نے رئیس المنافقین عبداللہ بن ابی کے کفن کے لیے اپنی قمیص مبارک کیوں عنایت فرمائی۔ ۱۱۵ وہی فرماتے ہیں مزارات اولیاء پر حاضر ہو کر بھیک مانگو، ارواح سے فیض چاہو اور یاروح یاروح پکارو۔ ۶۸۵ حضرت امیر معاویہ رضی اللہ تعالیٰ عنہ کی وصیت کہ

حضور علیہ الصلوٰۃ والسلام کی قمیص مبارک کو میرے کفن میں اور آپ کے مقدس و مبارک بالوں اور ناخنوں کو میرے منہ اور آنکھوں میں رکھنا۔ ۱۱۷ شاہ عبد العزیز کا ارشاد ہے کہ اہل حاجت ارواح اولیاء سے حاجات مانگتے اور پاتے ہیں۔ ۶۸۷ حضرت علی مرتضیٰ رضی اللہ تعالیٰ عنہ کی وصیت کہ حضور علیہ الصلوٰۃ والسلام کا بچا ہوا مشک میرے حنوط میں استعمال کرنا۔ ۱۱۸

- (688) Benefit and gain from buried saints continues.
- (796) Whoever has a need should visit the shrines of the saints and seek their mediation through them.
- (796) Denying seeking assistance necessitates the denial of hundreds of religious matters.
- (796) A visitor should intend to visit shrines from distant places.
- (796) At shrines, one should show humility and submission and ask for their needs with the belief that they will be answered through their blessings.
- (796) It is a divine tradition that needs are fulfilled through the hands of the saints.
- (824) Saying "Shay'an Lillah" or "Ya Sheikh Abdul Qadir Jilani".

Rights of Servants: - (717) Funeral prayer is a right of every Muslim over others. - (717) A Muslim has five rights over another Muslim. - (664) Severe warning against consuming the wealth of an orphan.

Rebuttal of the Misguided: - (429) The Najdi Wahhabi sect has heartfelt enmity towards the Prophets (peace be upon them) and the general Sunni believers. - (429) The writings of the Wahhabi elders are full of insults towards the beloved of Allah. - (429) Demolishing and destroying the graves of Prophets, martyrs, and saints is the hallmark of the Wahhabi sect. - (431) According to the Wahhabis, the beloved of Allah turn into dust after death and become completely senseless and unconscious. - (463) Rebuttal of Mr. Gangohi's fatwa by the author (may Allah have mercy on him) on ten grounds. - (468) Mr. Gangohi's severe misunderstanding in calling the relevant narrations unrelated. - (469) Censure of Mr. Gangohi. - (499) Clearly turning away from the truth for the sake of their self-made leader is the way of the Deobandis. - (499) Deobandi scholars' fatwa of infidelity on Ismail Dehlvi's text and their silence upon learning the author's name. - (500) Despite labeling Ismail Dehlvi as an atheist and heretic in their fatwas, Deobandi scholars consider him their Imam. - (501) "Tahzeer-un-Nas" established a new prophethood and revoked the Shari'ah of Mustafa. - (501) References regarding the prohibition of lighting candles at shrines are incorrect. - (570) Deniers of "Isal-e-Sawab" (sending reward to the deceased) are actually advocating for the Mu'tazilites. - (573) The fickleness of the leader of deniers, Molvi Muhammad Ishaq, and testimony against the deniers themselves. - (573) Confirmation of the objective from the testimony of leading deniers and proof of

"Gyarahwin" and "Fatiha" from eleven statements. - (655) The author of "Barahin-e-Qatia" rejected authentic hadiths indicating the vastness of the Prophet's (PBUH) knowledge and, in the same derogatory vein, brought an original and baseless story as proof against that great knowledge.

फ़तावा रिज़विया | जिल्द नहम (खंड 9)

- (688) दफ़्न संतों से लाभ और फ़ायदा उठाना जारी है।
- (796) जिसे कोई ज़रूरत हो, उसे संतों की दरगाहों पर हाज़िर होकर उनसे तवस्सुल (मध्यस्थता) करना चाहिए।
- (796) मदद माँगने के इंकार से सैकड़ों धार्मिक मामलों का इंकार लाज़िम आता है।
- (796) ज़ायरीन (दर्शनार्थी) दूर-दराज़ के स्थानों से दरगाहों की यात्रा का इरादा करें।
- (796) दरगाहों पर विनीत और नम्र हों और इस विश्वास के साथ अपनी ज़रूरतें मांगें कि उनकी बरकत से दुआ क़ुबूल होगी।
- (796) अल्लाह की सुन्नत जारी है कि संतों के हाथों से ज़रूरतें पूरी होती हैं।
- (824) "शेअन लिल्लाह" या "या शेख़ अब्दुल क़ादिर जिलानी" कहना।

हुकूक़-उल-इबाद (मानव अधिकार): - (717) हर मुसलमान का जनाज़ा दूसरे मुसलमानों पर हक़ है। - (717) एक मुसलमान के दूसरे मुसलमान पर पाँच हक़ हैं। - (664) यतीम (अनाथ) का माल खाने पर सख़्त चेतावनी।

रद्द-ए-बदमज़हबां (भटके हुओं का खंडन): - (429) नजदिय्या वहाबिया संप्रदाय को नबियों (अलैहिमुस्सलाम) और आम सुन्नी मोमिनों से दिली दुश्मनी है। - (429) वहाबियों के बड़ों की रचनाएँ अल्लाह के महबूबों के अपमान से भरी पड़ी हैं। - (429) नबियों, शहीदों और संतों की क़ब्रों को तोड़ना और नष्ट करना वहाबी संप्रदाय की पहचान है। - (431) वहाबियों के अनुसार, अल्लाह के महबूब मरने के बाद मिट्टी में मिल जाते हैं और पूरी तरह से बेजान और बेसुध हो जाते हैं। - (463) लेखक (रहमतुल्लाहि अलैहि) द्वारा गंगोही साहब के फ़तवे का दस कारणों से खंडन। - (468) गंगोही साहब की भारी नासमझी कि संबंधित रिवायतों को असंबद्ध बताया। - (469) गंगोही साहब पर पकड़ (आलोचना)। - (499) अपने ख़ुद के बनाए नेता की ख़ातिर सत्य से स्पष्ट विमुख होना देवबंदियों का तरीक़ा है। - (499) इस्माइल देहलवी की इबारत पर देवबंदी उलेमा का कुफ़्र का फ़तवा और लेखक का नाम पता चलने पर चुप्पी। - (500) देवबंदी उलेमा अपने फ़तवों में इस्माइल देहलवी को मुलहिद और ज़ंदीक़ (नास्तिक) लिखने के बावजूद अपना इमाम मानते हैं। - (501) "तहरीर-उन-नास" ने नई नबुवत की नींव रखी और शरीअत-ए-मुस्तफ़विया को रद्द कर दिया। - (501) मज़ारों पर चराग़ जलाने की मनाही से संबंधित संदर्भ ग़लत हैं। - (570) "ईसाल-ए-सवाब" (पुण्य पहुँचाना) के मुनकिर

असल में मुअतज़िला की वकालत करते हैं। - (573) मुनकिरों (इंकार करने वालों) के इमाम मौलवी मोहम्मद इसहाक़ की अस्थिरता और ख़ुद मुनकिरों के ख़िलाफ़ गवाही। - (573) बड़े मुनकिरों की गवाही से बात की पुष्टि और ग्यारह कथनों से "ग्यारहवीं" और "फ़ातिहा" का प्रमाण। - (655) "बराहीन-ए-क़ातिआ" के लेखक ने रसूलुल्लाह (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) के ज्ञान की व्यापकता को सिद्ध करने वाली सही हदीसों को ठुकरा दिया और उसी अपमानजनक लहजे में एक निराधार कहानी को प्रमाण के रूप में पेश किया।

पृष्ठ 77 / 948

- اولیائے مدفونین سے انتفاع واستفادہ جاری ہے۔ (۶۸۸)
- جسے کوئی حاجت منظور ہو اولیاء کے مزارات پر حاضر ہو کر ان سے توسل کرے۔ (۷۹۶)
- انکارِ استمداد سے صدہا دینیات کا انکار لازم آتا ہے۔ (۷۹۶)
- زائر دور دراز مقاموں سے قصدِ مزارات کرے۔ (۷۹۶)
- مزارات پر خشوع و خضوع کرے اور اس یقین کے ساتھ اپنی حاجتیں مانگے کہ ان کی برکت سے اجابت ہوگی۔ (۷۹۶)
- سنتِ الٰہی جاری ہے کہ اولیاء کے ہاتھ پر حاجت روائی ہوتی ہے۔ (۷۹۶)
- شیئا اللہ یا شیخ عبدالقادر جیلانی کہنا۔ (۸۲۴)

حقوق العباد: - نمازِ جنازہ ہر مسلمان کا دوسروں پر حق ہے۔ (۷۱۷) - مسلمان کے دوسرے مسلمان پر پانچ حق ہیں۔ (۷۱۷) - یتیم کا مال کھانے پر سخت وعید۔ (۶۶۴)

ردِّ بدمذہباں: - فرقہ نجدیہ وہابیہ کو انبیاء علیہم الصلوٰۃ والسلام اور عامہ مومنین اہلسنت سے قلبی عداوت ہے۔ (۴۲۹) - اکابر وہابیہ کی تصانیف اہانتِ محبوبانِ خدا سے بھری پڑی ہیں۔ (۴۲۹) - انبیاء، شہداء اور اولیاء کی قبور کو منہدم اور نابود کرنا فرقہ وہابیہ کا شعار ہے۔ (۴۲۹) - وہابیہ کے نزدیک محبوبانِ خدا مر کر مٹی میں مل جاتے ہیں اور بالکل بے حس و بے شعور ہو جاتے ہیں۔ (۴۳۱) - مصنف رحمۃ اللہ تعالیٰ علیہ کی طرف سے گنگوہی صاحب کے فتویٰ کا دس وجوہ سے رد۔ (۴۶۳) - گنگوہی صاحب کی سخت نافہمی کہ متعلقہ روایتوں کو بے علاقہ بتایا۔ (۴۶۸) - گنگوہی صاحب پر گرفت۔ (۴۶۹) - اپنے خود ساختہ متبوع کی خاطر حق سے صریح اعراض

دیوبندیوں کا طریقہ ہے۔ (۴۹۹) - اسماعیل دہلوی کی عبارت پر علماءِ دیوبند کا فتوائے کفر اور عبارت کے مصنف کا نام معلوم ہونے پر خاموشی۔ (۴۹۹) - علماءِ دیوبند اپنے فتووں میں اسماعیل دہلوی کو ملحد و زندیق لکھنے کے باوجود اپنا امام مانتے ہیں۔ (۵۰۰) - تحذیر الناس نے نئی نبوت کا سکہ جمایا اور شریعتِ مصطفویہ کو منسوخ کر دیا۔ (۵۰۱) - مزارات پر شمع جلانے کی ممانعت سے متعلق حوالہ جات غلط ہیں۔ (۵۰۱) - منکرینِ ایصالِ ثواب دراصل معتزلہ کی وکالت کرتے ہیں۔ (۵۷۰) - امام منکرین مولوی محمد اسحاق کی تلون مزاجی اور خود منکرین کے خلاف گواہی۔ (۵۷۳) - اکابر منکرین کی شہادت سے اثباتِ مطلب اور گیارہ اقوال سے گیارہ ہویں اور فاتحہ کا ثبوت۔ (۵۷۳) - صاحبِ براہینِ قاطعہ نے وسعتِ علم رسول صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم پر دال صحیح احادیث کو مردود ٹھہرایا اور وہیں اسی منہ تنقیصِ علمِ عظیم پر ایک بے اصل اور بے سند حکایت کے سند لایا۔ (۶۵۵)

Fatwa Rizvia Volume 9

Page	Description
891	Letter of the author of 'Tafheem-ul-Masail'.
897	The misunderstanding and ignorance of the author of 'Tafheem-ul-Masail' is clear.
902	The author of 'Tafheem-ul-Masail' is an expert in invention and fabrication.
917	The insolence of the author of 'Tafheem-ul-Masail'.
919	A person, upon becoming a Wahhabi, becomes like a stone—neither hearing nor understanding.
919	Removal of the doubt that even some Ahl-us-Sunnah have leaned towards prohibiting 'Talqeen' (instruction for the deceased).
919	The flawed understanding of the author of 'Tafheem-ul-Masail'.
920	The unconsciousness of the author of 'Tafheem-ul-Masail'—he spoke things unspoken.
683	The Najdi sellers of Shirk (idolatry) neither saw the power of Allah the Almighty nor understood His greatness.
697	Regarding the foolish claim in 'Mi'at Masa'il' that in the benefit of visiting (graves), the graves of saints and sinners are equal, or rather the graves of the wealthy are superior.
721	On the explicit error and inconsistency of 'Mi'at Masa'il'.
725	Rebuttal of the deniers' attempt to restrict the Hadiths of hearing (sama' sauti) to only the initial placement in the grave, based on five grounds.
771	The Hanbalis of Najd and the Hanafis of India are not truly Hanbali and Hanafi at all, but rather pseudo-Hanbalis and pseudo-Hanafis.
788	'Talqeen' for the deceased is the way of the Ahl-us-Sunnah, and its prohibition is the path of the Mu'tazilites.
795	The denier of seeking assistance (istimdad) is biased.
795	The denier of seeking assistance (istimdad) belongs to a newly emerged, despicable group.

Page	Description
923	The bewilderment of the author of 'Tafheem-ul-Masail'.
925	'Jaleelah Azeemah': The previous subtlety of the author of 'Tafheem-ul-Masail'.
926	'Awa'id Jaleelah Arba'ah' for the removal of all kinds of delusions.
926	First point: Here, the Wahhabi creed is certainly the Mu'tazilite creed.
926	Wahhabis invent fictitious books and imaginary scholars.
927	Good Heavens! To what extent has the modesty of the author of 'Tafheem-ul-Masail' reached!
927	Even religious Wahhabis did not know how to fabricate a passage correctly.
927	An example of a fabricated passage by the Wahhabis.
928	The treatise 'Nishat-ul-Sikkein 'ala Halq-il-Baqar-is-Samin' (The Joy of the Knife on the Throat of the Fat Cow) was written in refutation of a bulky Wahhabi head cleric.
928	Mention of a fabricated Muhaddith chain as a joke by the Wahhabis.
929	The peak of Wahhabism is atheism (Nechariya).
797	There is no need for evidence regarding the permissibility of seeking assistance (istimdad).
832	A Wahhabi-slaying practice for lost items.
836	If Wahhabism is indeed a religion, then all saints and scholars from the first three centuries until today would be considered polytheists (Mushrikeen).
842	For Wahhabi deniers, religion and Sharia are just names for their own whims and desires.
846	The prejudice of the author of 'Tafheem-ul-Masail'.
878	The stubbornness of the author of 'Tafheem-ul-Masail' from Qannauj.
879	The shamelessness of the author of 'Tafheem-ul-Masail'.
882	Deficiency in the copying of 'Mi'at Masa'il'.
884	The misfortune of the author of 'Tafheem-ul-Masail'.
884	The statement of Imam Ibn al-Humam that cuts through the heart of Wahhabism and atheism.

फतावा रज़विया जिल्द नहुम (9)

पृष्ठ संख्या	विवरण	पृष्ठ संख्या	विवरण
८९१	साहिब-ए-तफहीमुल मसाइल का पत्र।	६८३	नज्दी शिर्क(बुतपरस्ती) बेचने वालों ने न तो अल्लाह ताला की कुदरत देखी न उसकी अज़मत समझी।
८९४	साहिब-ए-तफहीमुल मसाइल की नासमझी और जहल (अज्ञानता) स्पष्ट है।	६९४	माअता मसाइल (सौ मसाइल) के इस मूर्खतापूर्ण दावे पर कि ज़ियारत के लाभ में औलिया और फासिकों की कब्रें बराबर हैं, बल्कि अमीरों की कब्रें श्रेष्ठ हैं।
९०२	साहिब-ए-तफहीमुल मसाइल गढ़ने और आरोप लगाने में पूर्ण कुशल है।	७२१	माअता मसाइल की स्पष्ट गलती और विरोधाभास परस्ती।
९१४	साहिब-ए-तफहीमुल मसाइल की धृष्टता।	७२५	इनकार करने वालों की ओर से सुनने वाली हदीसों (समाए सौती) को केवल कब्र में पहली बार रखने के साथ विशेष करने का पांच कारणों से खंडन।
९१९	आदमी वहाबी होकर पत्थर के समान हो जाता है, न सुनता है न समझता है।	७७१	नज्द के हंबली और हिंद के हनफी हरगिज़ हंबली और हनफी नहीं हैं बल्कि वे नकली हंबली और हनफी हैं।
९१९	उस संदेह का निवारण कि कुछ सुन्नी भी तो तल्कीन (मृतक को उपदेश) की मनाही की ओर गए हैं।	७८८	मृतक को तल्कीन करना सुन्नी पंथ है और इसकी मनाही मोतज़िला (एक गुमराह फिरका) का तरीका है।
९१९	साहिब-ए-तफहीमुल मसाइल की दोषपूर्ण समझ।	७९५	मदद मांगने (इस्तिम्दाद) का इनकार करने वाला पक्षपाती है।
९२०	साहिब-ए-तफहीमुल मसाइल की बेहोशी कि वे अनकही बातें बोल गए।	७९५	इस्तिम्दाद का इनकार करने वाला एक नया नीच समूह पैदा हुआ है।

पृष्ठ संख्या	विवरण
१२३	साहिब-ए-तफहीमुल मसाइल की घबराहट।
१२५	जलीला अज़ीमा: साहिब-ए-तफहीमुल मसाइल की पिछली नज़ाकत।
१२६	अवाइदे जलीला अरबा : हर प्रकार के भ्रमों को दूर करने के लिए।
१२६	पहली बात: यहाँ वहाबी धर्म निश्चित रूप से मोतज़िला धर्म है।
१२६	वहाबी फर्जी किताबें और काल्पनिक विद्वान गढ़ लेते हैं।
१२७	अल्लाह अल्लाह! साहिब-ए-तफहीमुल मसाइल की हया (लज्जा) किस स्तर तक पहुँच गई है।
१२७	धार्मिक वहाबियों को इबारत (अनुच्छेद) गढ़ना भी नहीं आया।
१२७	वहाबियों की गढ़ी हुई एक इबारत का नमूना।
१२८	रिसाला "निशातुस सिक्कीन अला हलकुल बकरिस समीन" (मोटी गाय के गले पर चाकू की खुशी) एक हट्टे-कट्टे वहाबी हेड मौलवी के खंडन में लिखा गया।
७९७	इस्तिम्दाद के जायज़ होने पर किसी दलील (प्रमाण) की आवश्यकता नहीं।
८३२	खोई हुई चीज़ के लिए वहाबी-विरोधी नुस्खा।
८३६	अगर वहाबियत एक धर्म है तो पहली तीन शताब्दियों से लेकर आज तक के सभी औलिया और विद्वान मुशरिक (मूर्तिपूजक) हैं।
८४२	वहाबी इनकार करने वालों के पास दीन और शरीयत उनकी अपनी इच्छाओं और वासनाओं का नाम है।
८४६	साहिब-ए-तफहीमुल मसाइल का पक्षपात।
८७८	कन्नौजी साहिब-ए-तफहीमुल मसाइल की हठधर्मिता।
८७९	साहिब-ए-तफहीमुल मसाइल की बेशर्मी।
८८२	माअता मसाइल की नक़ल में कमी।
८८४	साहिब-ए-तफहीमुल मसाइल का दुर्भाग्य।

पृष्ठ संख्या	विवरण
१२८	वहाबियों की एक फर्जी हदीस की सनद का मज़ाक के रूप में वर्णन।
१२१	वहाबियत की पराकाष्ठा नास्तिकता (नेचरियत) है।
८८४	इमाम इब्न अल-हुमाम का बयान जो वहाबियत और नास्तिकता के दिल में छेद कर देता है।

فتاویٰ رضویہ جلد نہم

صفحہ	تفصیل
۸۹۱	صاحب تفہیم المسائل کا خط۔
۸۹۷	صاحب تفہیم المسائل کی نافہمی و جہل واضح۔
۹۰۲	صاحب تفہیم المسائل اختراع و افتراء کا ماہر کامل ہے۔
۹۱۷	صاحب تفہیم المسائل کی منہ زوری۔
۹۱۹	آدمی وہابی ہو کر جماد لایسمع ولا یفہم ہو جاتا ہے۔
۹۱۹	اس شبہ کا ازالہ کہ بعض اہلسنت بھی تو منع تلقین کی طرف گئے ہیں۔
۹۱۹	صاحب تفہیم المسائل کا فہم سقیم۔
۹۲۰	

صفحہ	تفصیل
۶۸۳	نجدی شرک فروشوں نے نہ خدا تعالی کی قدرت دیکھی نہ اس کی عظمت سمجھی۔
۶۹۷	مائۃ مسائل کے اس خبط کارڈ کہ نفع زیارت میں اولیاء و فساق کی قبور یکساں بلکہ قبور اغنیاء زائد۔
۷۲۱	مائۃ مسائل کی صریح غلطی و تناقض پرستی۔
۷۲۵	منکرین کی طرف سے احادیث سماع صوتی کو اول وضع فی القبر کے ساتھ مخصوص قرار دینے پر پانچ وجوہ سے رد۔
۷۷۱	نجد کے حنبلی اور ہند کے حنفی ہر گز حنبلی و حنفی نہیں بلکہ حنبلی اور حنفی ہیں۔
۷۸۸	تلقین میت مذہب اہلسنت اور اس کا منع مشرب معتزلہ ہے۔
۷۹۵	منکر استمداد متعصب ہے۔
۷۹۵	استمداد کا منکر ذلیل طائفہ نو پیدا ہے۔

صفحہ	تفصیل
	صاحب تفہیم المسائل کی بیہوشی کہ ان کہی بول گئے۔
۹۲۳	صاحب تفہیم المسائل کی بوکھلاہٹ۔
۹۲۵	جلیلہ عظیمہ : صاحب تفہیم المسائل کی پچھلی نزاکت۔
۹۲۶	عوائد جلیلہ اربعہ برائے ازالہ ہر گونہ اوہام۔
۹۲۶	عائدہ اولی : یہاں مذہب وہابیہ ضرور مذہب معتزلہ ہے۔
۹۲۶	وہابیہ فرضی کتابیں اور خیالی علماء گھڑ لیتے ہیں۔
۹۲۷	اللہ اللہ صاحب تفہیم المسائل کے حیاء کا پایہ کہاں تک پہنچا۔
۹۲۷	متدین وہابیوں کو عبارت گھڑنی بھی نہ آئی۔
۹۲۷	وہابیہ کی من گھرت عبارت کا ایک نمونہ۔

صفحہ	تفصیل
۷۹۷	جواز استمداد پر دلیل کی حاجت نہیں۔
۸۳۲	گم شدہ چیز کا وہابی کش عمل۔
۸۳۶	اگر وہابیت کا مذہب ہے تو قرون ثلثہ سے لے کر آج تک کے تمام اولیاء و علماء مشرک ہیں۔
۸۴۲	منکر وہابیوں کے یہاں دین و شریعت اپنی ہوا و ہوس کا نام ہے۔
۸۴۶	تعصب صاحب تفہیم المسائل۔
۸۷۸	مکابرہ قنوجی صاحب تفہیم المسائل۔
۸۷۹	بے شرمی صاحب تفہیم المسائل۔
۸۸۲	صاحب مائۃ مسائل کی نقل میں تقصیر۔

صفحہ	تفصیل
	رسالہ "نشاط السکین علی حلق البقر
۹۲۸	السمین" ایک لحیم و شحیم وہابی ہیڈ مولوی کے رد میں لکھا گیا۔
۹۲۸	بطور لطیفہ وہابیہ کی ایک محدثانہ سند موضوع کا ذکر۔
۹۲۹	وہابیت کا کمال نیچریت ہے۔

صفحہ	تفصیل
۸۸۴	صاحب تفہیم المسائل کی بد قسمتی۔
۸۸۴	توہب و الحاد کے جگر میں شگاف ڈالنے والا ارشاد امام ابن الہمام۔

Fatawa Razvia | Volume 9

Content	Ref	Content	Page
The misunderstanding and ugly ignorance of the author of 'Tafhim al-Masail'.	930	Fatiha and prayer for the deceased before burial is permissible.	255
The unity of Wahhabis with the Salihiya sect of the Mu'tazilites.	931	Repeating the funeral prayer is absolutely impermissible according to our respected Imams.	270
Believing that perceptions of Barzakh matters like hearing, seeing, knowledge, etc., remain despite death is the Salihiya doctrine.	931	Offering funeral prayer as a voluntary (Nafl) prayer is not prescribed.	270
The author of 'Tafhim al-Masail' harmed his own cause.	932	Once the funeral prayer has been performed, whether in congregation or individually, repeating it in congregation or individually is disliked (Makruh).	278
The failure and loss of the author of 'Tafhim al-Masail'.	932	Do not delay in three things: (1) Prayer when its time arrives. (2) Funeral when it is ready. (3) A woman without a husband when a suitable match is found.	309
Prohibition and Permissibility		Hurry, for the corpse of a Muslim should not be withheld.	309
The funeral prayer of a person employed by a Christian and who eats their leftovers will be performed, even though eating leftovers is detestable and bad.	169	When one of you dies, do not hold them back and take them quickly for burial.	310
Living with Christians does not make one an infidel; upon death, shroud, burial, and funeral prayer are mandatory.	170	Scholars say if on Friday the funeral is ready before the Friday prayer, do not delay waiting for a larger congregation; bury it beforehand.	310

Content	Ref	Content	Page
The consensus (Ijma) of the Imams of Ahl al-Sunnah wa al-Jama'ah is that praying for deceased Muslims is beloved and religiously required.	220	According to us, prayer is not valid for an absent person or a body part, and the funeral prayer for a martyr shall be performed.	344
Standing by the grave and praying is a Sunnah.	225	Beware of the scholar's slip and wait for their return (to the truth).	366
Delaying funeral arrangements for the purpose of any long prayer besides the funeral prayer itself is not religiously liked.	237	Constructing buildings near shrines for visitors.	413
Increasing the congregation for a funeral is definitely desired, but delay for this purpose is not beloved.	237	Making cemented (pukka) graves.	420
In the pure Shariah, hastening funeral arrangements is strongly desired with full emphasis.	237	A grave can be cemented from above but not from inside.	425
Do not join one prayer with another until you have spoken something or moved from that place.	239	Making symbolic (fictional) graves and holding Urs ceremonies on them.	425
		Constructing houses for one's own residence and comfort by breaking the graves of believers is not permissible.	431

फ़तावा-ए-रज़विया | जिल्द नहम (9)

विषय	संदर्भ	विषय	पृष्ठ
'तफ़हीम अल-मसाइल' के लेखक की गलतफहमी और घोर अज्ञानता।	930	दफ़नाने से पहले मृतक के लिए फ़ातिहा और दुआ करना जायज़ है।	255
वहाबियों का मोतज़िला के सालिहिया फ़िरक़े के साथ जुड़ाव।	931	हमारे आदरणीय इमामों के अनुसार जनाज़े की नमाज़ दोबारा पढ़ना बिल्कुल नाजायज़ है।	270
मृत्यु के बावजूद सुननें, देखनें और ज्ञान आदि जैसे बर्ज़ख़ी मामलों के बोध को शेष मानना सालिहिया मज़हब है।	931	जनाज़े की नमाज़ नफ़्ल के तौर पर पढ़ना शरीयत में नहीं है।	270
'तफ़हीम अल-मसाइल' के लेखक ने अपने पैरों पर खुद कुल्हाड़ी मारी।	932	जनाज़े की नमाज़ चाहे जमाअत से पढ़ी हो या अकेले, उसे दोबारा जमाअत से या अकेले पढ़ना मकरूह है।	278
'तफ़हीम अल-मसाइल' के लेखक की विफलता और घाटा।	932	तीन चीज़ों में देरी न करो: (1) नमाज़ जब उसका वक़्त आ जाए। (2) जनाज़ा जब तैयार हो। (3) बे-शौहर औरत जब उसके लिए बराबर का रिश्ता मिल जाए।	309
वर्जित और अनुमत (हज़र-ओ-इबाहत)		जल्दी करो क्योंकि मुसलमान के मुर्दे को रोकना नहीं चाहिए।	309
ईसाई के मुलाज़िम और उसका बचा हुआ खाना खाने वाले की जनाज़े की नमाज़ पढ़ी जाएगी, हालांकि बचा हुआ खाना बुरा और घिनौना है।	169	जब तुम में से कोई मरे तो उसे न रोको और जल्दी दफनाने के लिए ले जाओ।	310
ईसाइयों के साथ रहने से कोई काफ़िर नहीं होता; उसके मरने पर कफ़न-दफ़न और जनाज़े की नमाज़ लाज़िम है।	170	विद्वान फ़रमाते हैं कि अगर जुमा के दिन जुमा की नमाज़ से पहले जनाज़ा तैयार हो जाए, तो	310

विषय	संदर्भ	विषय	पृष्ठ
		बड़ी जमाअत के इंतज़ार में देरी न करें, पहले ही दफ़न कर दें।	
अहले सुन्नत व जमाअत के इमामों का इज्मा है कि मृत मुसलमानों के लिए दुआ करना पसंदीदा और शरई तौर पर वांछित है।	220	हमारे नज़दीक ग़ायब और शरीर के अंग पर नमाज़ सही नहीं है, और शहीद की जनाज़े की नमाज़ पढ़ी जाएगी।	344
क़ब्र के पास खड़े होकर दुआ करना सुन्नत है।	225	विद्वान की भूल से बचो और उसके सत्य की ओर वापस आने का इंतज़ार करो।	366
जनाज़े की नमाज़ के अलावा किसी लंबी दुआ के मक़सद से तजहीज़-ओ-तकफ़ीन में देरी करना शरीयत में पसंदीदा नहीं है।	237	मज़ारों के पास ज़ायरीन (तीर्थयात्रियों) के लिए इमारतें बनाना।	413
जनाज़े पर जमाअत को बढ़ाना यकीनन वांछित है, लेकिन इसके लिए देरी करना पसंदीदा नहीं है।	237	पक्की क़ब्रें बनाना।	420
शरीअत-ए-मुतह्हरा में जनाज़े की तैय्यारी में जल्दी करना पुरज़ोर ताकीद के साथ वांछित है।	237	क़ब्र ऊपर से पक्की हो सकती है अंदर से नहीं।	425
एक नमाज़ को दूसरी नमाज़ से न मिलाओ जब तक कि कुछ बात न कर लो या उस जगह से हट न जाओ।	239	फ़र्ज़ी (सांकेतिक) क़ब्रें बनाना और उन पर उर्स करना।	425
		मोमिनों की क़ब्रों को तोड़कर अपनी रिहायश और सुख-सुविधा के लिए मकान बनाना जायज़ नहीं है।	431

مضمون	نمبر
صاحب تفہیم المسائل کی کج فہمی اور جہلِ قبیح۔	۹۳۰
وہابیہ کا معتزلہ کے فرقہ صالحیہ سے اتحاد۔	۹۳۱
باوصفِ موت ادراکاتِ امورِ برزخیہ سمع و بصر و علم وغیرہ کو باقی ماننا مذہبِ صالحیہ ہے۔	۹۳۱
صاحب تفہیم المسائل نے اپنے پاؤں پر خود تیشہ زنی کی۔	۹۳۲
صاحب تفہیم المسائل کا خذلان و خسران۔	۹۳۲
حظر واباحت	

مضمون	صفحہ
فاتحہ و دعا برائے میت دفن سے پہلے جائز ہے۔	۲۵۵
نماز جنازہ کی تکرار ہمارے ائمہ کرام کے نزدیک مطلقاً ناجائز ہے۔	۲۷۰
نماز جنازہ بطورِ نفل پڑھنی مشروع نہیں۔	۲۷۰
نماز جنازہ جماعت سے خواہ تنہا پڑھ لی تو دوبارہ جماعت سے خواہ تنہا پڑھنی مکروہ ہے۔	۲۷۸
تین چیزوں میں دیر نہ کرو (۱) نماز جب اس کا وقت آجائے۔ (۲) جنازہ جس وقت حاضر ہو۔ (۳) زنِ بے شوہر جب اس کا کفو ملے۔	۳۰۹
جلدی کرو کہ مسلمان کے مردے کو روکنا نہ چاہئے۔	۳۰۹

مضمون	نمبر
نصرانی کے ملازم اور اس کا جوٹھا کھانے والے کی نمازِ جنازہ پڑھی جائے گی اگرچہ اس کا جوٹھا کھانا شنیع و بد ہے۔	۱۶۹
نصاریٰ کے ساتھ رہنے سے کوئی کافر نہیں ہوتا اس کے مرنے پر کفن دفن اور نمازِ جنازہ لازم ہے۔	۱۷۰
ائمہ اہل سنت و جماعت کا اجماع ہے کہ امواتِ مسلمین کے لیے دعا محبوب اور شرعاً مطلوب ہے۔	۲۲۰
قبر کے پاس کھڑے ہو کر دعا سنت ہے۔	۲۲۵
نماز کے علاوہ کسی دعائے طویل کی غرض سے تجہیزِ جنازہ کو دیرنگ و تعویق میں ڈالنا شرعاً پسندیدہ نہیں۔	۲۳۷
جنازہ پر تکثیرِ جماعت قطعاً مطلوب ہے مگر اس کے لیے تاخیر محبوب نہیں۔	۲۳۷

مضمون	صفحہ
جب تم میں سے کوئی مرے اسے نہ روکو اور جلدی دفن کو لے جاؤ۔	۳۱۰
علماء فرماتے ہیں اگر روزِ جمعہ پیش از جمعہ جنازہ تیار ہو جائے تو جماعتِ کثیرہ کے انتظار میں دیر نہ کریں پہلے ہی دفن کر دیں۔	۳۱۰
ہمارے نزدیک غائب اور عضو پر نماز صحیح نہیں اور شہید کی نماز جنازہ پڑھی جائے گی۔	۳۴۴
عالم کی لغزش سے بچو اور اس کے رجوع کا انتظار رکھو۔	۳۶۶
مزاروں کے قریب زائروں کے لیے عمارتیں بنانا۔	۴۱۳
پختہ قبریں بنانا۔	۴۲۰
	۴۲۵

مضمون	نمبر
شرعِ مطہر میں تعجیلِ تجہیز بتاکیدِ تمام مطلوب ہے۔	
ایک نماز دوسری نماز سے نہ ملاؤ یہاں تک کہ کچھ گفتگو کرلو یا اس جگہ سے ہٹ جاؤ۔	۲۳۹

مضمون	صفحہ
قبر اوپر سے پختہ ہو سکتی ہے اندر سے نہیں۔	
فرضی قبریں بنانا اور ان پر عرس کرنا	۴۲۵
قبورِ مومنین کو توڑ کر اپنی رہائش و آسائش کے لیے مکان بنانا جائز نہیں۔	۴۳۱

Fatawa Rizvia Volume 9

Rulings / Topics	Page	Rulings / Topics	Page
To demolish the graves of believers to build houses for residence is causing pain and insult to the people of the graves.	431	New forms of veneration which were disliked during the time of the righteous predecessors, are now permitted by scholars in view of the current circumstances of the times.	495
Building residential houses on graves or sitting, sleeping, or urinating/defecating on or near them is severely disliked, close to being forbidden.	436	In prayer, one's back should not be turned towards the blessed chamber (Hujra-e-Mutahhara) or the pure shrine.	517
Even if the deceased has decomposed into dust in the grave, it is still disliked to bury another person in that grave.	437	It is prohibited to use baked bricks specifically in the niche (lahad), otherwise there is no harm in using them above the grave.	518
Digging up old graves to bury other deceased persons is permissible only in case of extreme necessity.	438	To seek the blessings of the noble soul, separately from the veneration of the grave, is a Sunnah of the Companions.	521
Cutting green grass from a cemetery is impermissible, while cutting dry grass is permissible.	443	Eating from food vowed (Nazr) for Allah is not permissible for the wealthy.	575
Leaving animals to graze in a cemetery is prohibited.	443	If Fatiha has been recited in the name of some elder/saint, the wealthy can also eat it.	575
Visiting graves is recommended (Mustahabb).	450	The undesirable matters that the ignorant masses have introduced regarding the conveyance of reward (Isal-e-Sawab), such as showing off, publicizing, boasting, gathering the rich and excluding the poor, etc., are all prohibited and disliked.	592
	482		592

Rulings / Topics	Page	Rulings / Topics	Page
Burning incense (loban) etc. at shrines.		If someone introduces a flaw into an otherwise good deed, scholars should eliminate that flaw rather than using smooth talk to stop the original deed altogether.	
Elevating and gilding the Holy Quran is permissible and a proof of veneration.	492	If someone performs prayer without proper composure of pillars (tadeel-e-arkaan), they should be stopped from this negligence, not from performing the prayer itself.	592
Building structures over the shrines of saints and scholars is permissible.	494	Putting up canopies at shrines, lighting lamps, offering Fatiha over sweets etc., and serving sherbet during the ten days of Muharram.	598
The leaders of the faith (Imams) forbade women from going to mosques, even though the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) had given permission.	495	Preparing and drinking sherbet in the name of Imam Hussain (may Allah be pleased with him).	601
Anyone who calls the rulings issued by the leaders of the faith in view of the current times as contrary to Hadith is a fool and misguided.	495	Performing Giyarween Sharif with flour taken out as a pinch.	606
Page 80 of 948			

फतावा रज़विया जिल्द नहम (9)

नियम / विषय	पृष्ठ	नियम / विषय	पृष्ठ
मोमिनों की कब्रों को तोड़कर रहने के लिए घर बनाना कब्र वालों के लिए कष्ट और अपमान है।	431	सम्मान के नए तरीके जो नेक पूर्वजों के समय में नापसंद थे, अब समय की परिस्थितियों को देखते हुए विद्वानों ने उनकी अनुमति दी है।	495
कब्रों पर रहने के लिए घर बनाना या कब्र पर बैठना, सोना या उसके पास मलमूत्र त्याग करना अत्यंत नापसंद (मक़रूहे तहरीमी) है जो हराम के करीब है।	436	नमाज़ में पवित्र कक्ष (हजरा-ए-मुतहरा) या पवित्र मज़ार की ओर पीठ न की जाए।	517
कब्र में मृत शरीर गलकर मिट्टी भी हो जाए तब भी उस कब्र में किसी और को दफनाना नापसंद है।	437	विशेष रूप से लहद (कब्र का निचला हिस्सा) में पकी हुई ईंटें लगाना वर्जित है, अन्यथा कब्र के ऊपर लगाने में कोई हर्ज नहीं है।	518
पुरानी कब्रों को खोदकर उनमें अन्य मृतकों को दफनाना अत्यधिक आवश्यकता के कारण जायज़ है।	438	कब्र के सम्मान से अलग होकर महान आत्मा के सम्मान की बरकत लेना सहाबा की सुन्नत है।	521
कब्रिस्तान से हरी घास काटना नाजायज़ है और सूखी घास काटना जायज़ है।	443	अल्लाह के नाम की मन्नत (नज़्र) का खाना धनवानों के लिए जायज़ नहीं है।	575
कब्रिस्तान में जानवरों को चरने के लिए छोड़ना मना है।	443	अगर किसी बुज़ुर्ग के नाम की फ़ातिहा दी गई हो, तो धनवान भी खा सकते हैं।	575
कब्रों की ज़ियारत (दर्शन) करना मुस्तहब (पसंदीदा) है।	450	ईसाले-सवाब (पुण्य पहुँचाने) के बारे में आम अज्ञानी लोगों ने जो नापसंद बातें पैदा कर रखी हैं, जैसे दिखावा, चर्चा, अहंकार, अमीरों को इकट्ठा करना और गरीबों को रोकना आदि, वे सब वर्जित और नापसंद हैं।	592

नियम / विषय	पृष्ठ
मज़ारों पर लोबान आदि जलाना।	482
पवित्र कुरआन को ऊँचा और सुसज्जित (सुनहरा) करना जायज़ और सम्मान का प्रमाण है।	492
औलिया (अल्लाह के वली) और विद्वानों के मज़ारों पर इमारतें बनाना जायज़ है।	494
धर्म के इमामों ने औरतों को मस्जिदों में जाने से मना कर दिया, हालांकि अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने अनुमति दी थी।	495
धर्म के इमामों ने समय की स्थिति को देखते हुए जो हुक्म दिया, उसे हदीस के खिलाफ कहने वाला मूर्ख और कुबुद्धि है।	495
यदि कोई किसी अच्छे कार्य में कोई बुराई पैदा कर दे, तो विद्वानों को उस बुराई को खत्म करना चाहिए, न कि चिकनी-चुपड़ी बातों से मूल कार्य ही बंद करवा दें।	592
यदि कोई नमाज़ के अरकान (स्तंभों) को ठीक से अदा किए बिना नमाज़ पढ़ता है, तो उसे इस कोताही (कमी) से रोका जाए, न कि नमाज़ पढ़ने से ही मना कर दिया जाए।	592
मज़ारों पर शामियाने लगाना, चिराग जलाना, मिठाई आदि पर फ़ातिहा देना और मुहर्रम के दस दिनों में शरबत पिलाना।	598
इमाम हुसैन (रज़ियल्लाहु अन्हु) के नाम का शरबत बनाना और पीना।	601
चुटकी के रूप में निकाले गए आटे से ग्यारहवीं शरीफ़ करना।	606

عنوانات / مسائل	صفحہ
مومنوں کی قبروں کو توڑ کر رہائش کے لیے مکان بنانا اہل قبور کے لیے ایذا و اہانت ہے۔	۴۳۱
قبور پر رہائشی مکان بنانا یا قبر پر بیٹھنا یا سونا یا اس کے قریب بول و براز کرنا اشد مکروہ قریب بہ حرام ہیں۔	۴۳۶
قبر میں میت گل کر مٹی بھی ہو جائے تب بھی اس کی قبر میں غیر کو دفن کرنا مکروہ ہے۔	۴۳۷
پرانی قبروں کو کھود کر ان میں دوسرے اموات دفن کرنا ضرورت شدیدہ کے باعث جائز ہے۔	۴۳۸
قبرستان سے سبز گھاس کاٹنا ناجائز اور خشک گھاس کاٹنا جائز ہے۔	۴۴۳
تازہ تعظیمیں جو سلف صالحین کے وقت میں مکروہ تھیں اب حالات زمانہ کے پیش نظر علماء نے ان کی اجازت دی ہے۔	۴۹۵
نماز میں حجرہ مطہرہ مزار اطہر کو پیٹھ نہ کی جائے۔	۵۱۷
خاص لحد میں پکی اینٹیں لگانا ممنوع ہے ورنہ بالائے قبر اس میں حرج نہیں۔	۵۱۸
تعظیم قبر سے جدا ہو کر تعظیم روح کریم کی برکت لینا سنتِ صحابہ ہے۔	۵۲۱
اللہ تعالیٰ کی نذر سے اغنیاء کے لیے کھانا جائز نہیں۔	۵۷۵

عنوانات / مسائل	صفحہ
قبرستان میں جانوروں کو چرنے کے لیے چھوڑنا ممنوع ہے۔	۴۴۳
زیارت قبور مستحب ہے۔	۴۵۰
مزارات پر لوبان وغیرہ سلگانا۔	۴۸۲
مصحف شریف کو معلّا و مذہب کرنا جائز و دلیلِ تعظیم ہے۔	۴۹۲
اولیاء و علماء کے مزارات پر عمارتیں بنانا مباح ہے۔	۴۹۴
ائمہ دین نے عورتوں کو مساجد میں جانے سے منع فرما دیا	۴۹۵
اگر کسی بزرگ کے نام کی فاتحہ دی گئی ہو تو اغنیاء بھی کھا سکتے ہیں۔	۵۷۵
عوام جہلاء نے ایصال ثواب کے بارے میں جو ناپسندیدہ امور پیدا کر رکھے ہیں مثلاً دکھاوا، چرچا، تفاخر، مالداروں کو جمع کرنا اور فقراء کو منع کرنا وغیرہ سب ممنوع و مکروہ ہیں۔	۵۹۲
کسی مستحسن عمل میں اگر کوئی خرابی پیدا کرے تو علماء کو وہ خرابی ختم کرانی چاہئے نہ کہ چرب زبانی سے کام لے کر اصل عمل بند کرادیں۔	۵۹۲
اگر کوئی نماز بلا تعدیل ارکان ادا کرے تو اس کو اس کوتاہی سے روکا جائے نہ کہ نماز ہی سے منع کر دیا جائے گا۔	۵۹۲
مزارات پر شامیانے لگانا، چراغ جلانا، شیرینی وغیرہ پر فاتحہ دینا اور عشرہ محرم میں شربت پلانا۔	۵۹۸
امام حسین رضی اللہ تعالیٰ عنہ کے نام کا شربت کرنا اور پینا۔	۶۰۱

عنوانات / مسائل	صفحہ
حالانکہ رسول اللہ صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم نے اجازت دی تھی۔	
ائمہ دین نے نظر بہ حال زمانہ جو حکم فرمایا اسے مخالف حدیث کہنے والا احمق و کج فہم ہے۔	۴۹۵
چٹکی کے طور پر نکالے ہوئے آٹے سے گیارہویں شریف کرنا۔	۶۰۶

Fatawa Razawiyya Volume 9

Keeping the food for the Niyaaz of Hazrat Khatoon-e-Jannat (Lady of Paradise) behind a veil and not letting men eat it is ignorance. 611 | Justification for the funeral prayer of Imam Azam (may Allah be pleased with him) being performed multiple times. 340 Sending the reward (Isal-e-Thawab) to the Holy Prophet (peace and blessings of Allah be upon him). 611 | Admonition, reprimand, and exhortation to repent regarding the analogy of "Moses with his own religion and Jesus with his own." 522 Taking food with the deceased, sprinkling rose water on the grave, and praying after moving forty steps away from the grave. 613 | Every subsequent year is worse than the preceding one. 549 Including others while sending the reward (Isal-e-Thawab) to the Holy Prophet (peace and blessings of Allah be upon him). 621 | Fixing a time is of two types: (1) Sharia-based (2) Customary. 580 There is no harm in sitting for three days for condolences, provided no forbidden act is committed. 663 | Meaning of "Al-Ma'roof kal-Mashroot" (The known is like the stipulated). 646 Refraining from acts of fame and showing off. 663 | There is no difference between certain (qati) and non-certain (ghair-qati) in sin. 646 Women gathering at the house of the deceased and performing objectionable acts which fall under wailing (niyāhat), and wailing is forbidden. 665 | The world is a paradise for the disbeliever and a prison for the believer. 651 It is good to place roses etc. on graves. 760 | The relationship of this world to Barzakh is the same as the relationship of the mother's womb to this world, and then the relationship of Barzakh to the Hereafter is the same as this world to Barzakh. 707 A student should not recite "A'oodhu billahi minash-shaytanir-rajeem" while reading a lesson from a teacher. 787 | Gabriel (peace be upon him) has six hundred wings. 829 Cutting trees and green grass from cemeteries is disliked (Makruh). 891 | Sleep is the younger sister of death. 845 Urinating on graves causes pain to the dead. 892 | There are three meanings of hearing and seeing. 852 Miscellaneous | It often happens that those who forget follow those who have forgotten. 923 Discussion on the narration quoted from Imam Ibn Hamid that he said: Du'a after funeral prayer is disliked (Makruh). 251 | The slightest jolt of death is equal to a hundred sword strikes. 934 Salat upon so-and-so in the sense of prayer is widespread and common in Sharia texts. 281 | Seeing the Angel of Death is greater than the trauma of a thousand swords. 935 One Qirat is bigger than Mount Uhud. 312 |

फ़तावा रज़विया जिल्द नहम

हज़रत खातून-ए-जन्नत की नियाज़ का खाना पर्दे में रखना और मर्दों को न खाने देना अज्ञानता है। ६११ | इमाम-ए-आज़म (रज़ियल्लाहु अन्हु) की नमाज़-ए-जनाज़ा कई बार होने का स्पष्टीकरण। ३४० आँहज़रत (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) को ईसाल-ए-सवाब करना। ६११ | "मूसा अपने दीन पर और ईसा अपने दीन पर" की उपमा पर फटकार और तौबा की ताकीद। ५२२ मैयत के साथ खाना ले जाना, कब्र पर गुलाब छिड़कना और कब्र से चालीस कदम हटकर दुआ करना। ६१३ | हर आने वाला साल पिछले से बुरा है। ५४९ हुज़ूर अकरम (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) को ईसाल-ए-सवाब करने में दूसरों को शामिल करना। ६२१ | समय निर्धारित करना दो प्रकार का है: (१) शरई (२) प्रथागत (आदी)। ५८० शोक के लिए तीन दिन बैठने में कोई हर्ज नहीं है, बशर्ते कि कोई वर्जित कार्य न किया जाए। ६६३ | 'अल-मारूफ़ कल-मशरुत' का अर्थ। ६४६ प्रसिद्धि और दिखावे के कामों से परहेज किया जाए। ६६३ | पाप में निश्चित (क़तई) और अनिश्चित (ग़ैर-क़तई) का अंतर नहीं होता। ६४६ महिलाएं मृतक के घर पर जमा होकर आपत्तिजनक कार्य करती हैं जो विलाप (नियाहत) में शामिल हैं, और विलाप हराम है। ६६५ | दुनिया काफिर के लिए जन्नत और मोमिन के लिए कैदखाना है। ६५१ कब्रों पर गुलाब आदि के फूल डालना अच्छा है। ७६० | दुनिया का बरज़ख से वही संबंध है जो माँ के गर्भ का दुनिया से है, फिर बरज़ख का आखिरत से वही संबंध है जो दुनिया का बरज़ख से है। ७०७ छात्र उस्ताद से सबक पढ़ते समय "अऊज़ु बिल्लाहि..." न पढ़े। ७८७ | जिब्रील (अलैहिस्सलाम) के छह सौ पंख हैं। ८२९ कब्रिस्तानों से पेड़ और हरी घास काटना मकरूह है। ८९१ | नींद मौत की छोटी बहन है। ८४५ कब्रों पर पेशाब करने से मुर्दों को तकलीफ होती है। ८९२ | सुनने और देखने के तीन अर्थ हैं। ८५२ मुतफ़र्रकात (विविध) | अक्सर ऐसा होता है कि भूलने वाले भूलने वालों का अनुसरण करते हैं। ९२३ इमाम इब्न हामिद से उद्धृत कहानी पर चर्चा कि उन्होंने कहा: जनाज़ा की नमाज़ के बाद दुआ मकरूह है। २५१ | मौत का मामूली सा झटका सौ तलवारों के वार के बराबर है। ९३४ फलां पर 'सलात' (दुआ) का ज़िक्र शरीयत के ग्रंथों में व्यापक रूप से प्रचलित है। २८१ | मलकुल मौत (मौत के फरिश्ते) को देखना हजार तलवारों के सदमे से भी बढ़कर है। ९३५ एक क़ीरात उहुद पहाड़ से बड़ा है। ३१२ |

فتاویٰ رضویہ جلد نہم

حضرت خاتون جنت کی نیاز کا کھانا پردے میں رکھنا اور مردوں کو نہ کھانے دینا جہالت ہے۔ ۶۱۱ | امام اعظم رضی اللہ تعالیٰ عنہ کی نماز جنازہ متعدد بار ہونے کی توجیہ۔ ۳۴۰ آنحضرت صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کو ایصالِ ثواب کرنا۔ ۶۱۱ | "موسیٰ بدینِ خود و عیسیٰ بدینِ خود" کی تمثیل پر زجر و توبیخ اور توبہ کی تلقین۔ ۵۲۲ میت کے ساتھ کھانا لے جانا، قبر پر گلاب چھڑکنا اور قبر سے چالیس قدم ہٹ کر دعا کرنا۔ ۶۱۳ | ہر بعد والا سال پہلے سے بدتر ہے۔ ۵۴۹ حضور اکرم صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کو ایصالِ ثواب کرنے میں دوسروں کو شامل کرنا۔ ۶۲۱ | وقت مقرر کرنا دو قسم پر ہے: (۱) شرعی (۲) عادی ۵۸۰ مصیبت کے لیے تین دن بیٹھنے میں کوئی مضائقہ نہیں جبکہ کسی امرِ ممنوع کا ارتکاب نہ کیا جائے۔ ۶۶۳ | المعروف کالمشروط کا مطلب۔ ۶۴۶ ناموری اور دکھاوے کے کاموں سے احتراز کیا جائے۔ ۶۶۳ | معصیت میں قطعی اور غیر قطعی کا فرق نہیں ہوتا۔ ۶۴۶ عورتیں اہل میت کے ہاں جمع ہو کر افعالِ منکرہ کرتی ہیں جو نیاحت میں داخل ہیں اور نیاحت حرام ہے۔ ۶۶۵ | دنیا کافر کی بہشت اور مومن کا قید خانہ ہے۔ ۶۵۱ قبروں پر گلاب وغیرہ کے پھول ڈالنا خوب ہے۔ ۷۶۰ | دنیا کو برزخ سے وہی نسبت ہے جو رحمِ مادر کو دنیا سے، پھر برزخ کو آخرت سے وہی نسبت ہے جو دنیا کو برزخ سے ہے۔ ۷۰۷ شاگرد استاد سے سبق پڑھتے وقت اعوذباللہ من الشیطان الرجیم نہ پڑھے۔ ۷۸۷ | جبریل علیہ السلام کے چھ سو پر ہیں۔ ۸۲۹ مقبروں سے درخت اور گیاہِ سبز کاٹنا مکروہ ہے۔ ۸۹۱ | نیند موت کی چھوٹی بہن ہے۔ ۸۴۵ مقابر پر پیشاب کرنے سے مردوں کو ایذا ہوتی ہے۔ ۸۹۲ | سمع و بصر کے تین معنی ہیں۔ ۸۵۲ متفرقات | اکثر ہوتا ہے کہ بھولنے والے بھولنے والوں کی پیروی کر لیتے ہیں۔ ۹۲۳ امام ابنِ حامد سے منقول حکایت پر بحث کہ انہوں نے فرمایا: دعا بعدِ نمازِ جنازہ مکروہ

ہے۔ ۲۵۱ | موت کا ادنیٰ جھٹکا سو ضربِ شمشیر کے برابر ہے۔ ۹۳۴ صلوٰۃ علی فلاں بمعنیٰ دعا نصوص شرعیہ میں شائع وذائع ہے۔ ۲۸۱ | ملک الموت کو دیکھنا ہزار تلوار کے صدمہ سے بڑھ کر ہے۔ ۹۳۵ ایک قیراط کوہِ اُحد سے بڑا ہے۔ ۳۱۲ |

Fatawa Rizvia, Volume 9

In the name of Allah, the Most Gracious, the Most Merciful. Chapter of Funerals

Issue No. 1: From Jaspur, Mahalla Pahar Ganj Chaukri Top Khana, adjacent to Suraj Pole, sent by Hakim Allah Bakhsh, Ghaniya, 13 Ramadan 1338 AH. (1) When a person becomes so ill that recovery is impossible, for example, suffering from consumption (tuberculosis), and there is no hope of life, what should he do according to Sharia? And what should his relatives and close ones do? (2) From which side should one take the lead in lifting the funeral bier?

The Answer: (1) A person is in the grip of death at all times. A person suffering from consumption can recover, and the one who was running around caring for him might pass away before him. A will should be ready at all times, in which there should be guidance for one's survivors regarding the Oneness of Allah (Exalted is He), the protection of the Messenger (peace and blessings of Allah be upon him), steadfastness in the beliefs of the Ahl al-Sunnah, following Sharia, reconciliation between people, unity and closeness with the saints, and distance and aversion from disbelief, misguidance, and wickedness. And if leaving behind some inheritance, there should be sufficient legal arrangement for it so that there is no dispute. Also, instructions for one's funeral rites and burial according to the Sunnah, and it is mandatory for them to act upon it. And first of all, one should reform oneself, repent for sins, turn towards Allah and His Messenger, and wait for death with joy so that there is no displeasure when it arrives. Displeasure at that time, we seek refuge in Allah, is very severe; God forbid, there is a risk of a bad end in it...

Page 82 of 948

फ़तावा रज़विया, जिल्द 9

बिस्मिल्लाह हिर्रहमान निर्रहीम (अल्लाह के नाम से, जो अत्यंत दयालु और कृपाशील है) जनाज़े का अध्याय (बाब-अल-जनाइज़)

मसला नंबर 1: जसपुर से, मोहल्ला पहाड़ गंज चौकड़ी तोपखाना, सूरज पोल के पास, प्रेषक हकीम अल्लाह बख्श, गनिया, 13 रमज़ान 1338 हिजरी। (1) जब कोई व्यक्ति ऐसी बीमारी से ग्रस्त हो जाए जिससे स्वास्थ्य लाभ की आशा न रहे, जैसे कि तपेदिक (टीबी), और जीवन की कोई उम्मीद न बचे, तो शरीअत के अनुसार उसे क्या करना चाहिए? और उसके रिश्तेदारों और करीबियों को क्या करना चाहिए? (2) जनाज़ा उठाने में किस तरफ से पहल करनी चाहिए?

उत्तर: (1) मनुष्य हर समय मृत्यु के घेरे में है, तपेदिक का रोगी ठीक हो जाता है और वह व्यक्ति जो उसकी सेवा में दौड़-भाग कर रहा था, उससे पहले चला जाता है। हर समय वसीयत तैयार रहनी चाहिए जिसमें अपने पीछे रहने वालों को अल्लाह की तौहीद (एकेश्वरवाद), रिसालत (पैगंबरी), सुन्नी अकीदों पर दृढ़ता, शरीअत का पालन, आपसी सुलह-सफाई, औलिया-ए-किराम से निकटता और कुफ्र, गुमराही व बुराई से दूरी रखने की हिदायत हो। और यदि कुछ संपत्ति छोड़ रहे हों, तो उसका शरीयत के अनुसार पर्याप्त प्रबंधन हो ताकि कोई विवाद न हो, और अपने कफ़न-दफ़न में सुन्नत का पालन करने की हिदायत हो, और उनके लिए इस पर अमल करना अनिवार्य है। और सबसे पहले खुद अपना सुधार, गुनाहों से तौबा, अल्लाह और रसूल की तरफ मुड़ना, और खुशी के साथ मौत का इंतज़ार करना ताकि आते समय कोई नाखुशी न हो। उस समय की नाखुशी अल्लाह की पनाह, बहुत कठिन है, ईश्वर न करे इसमें अंत बुरा होने का [खतरा है]...

पेज 82 ऑफ़ 948

فتاویٰ رضویہ، جلد نہم

بسم اللہ الرحمن الرحیم باب الجنائز

مسئلہ نمبرا: از جس پور، محلہ پہاڑ گنج چوکڑی توپ خانہ، متصل سورج پول، مرسلہ حکیم اللہ بخش، غنیہ ۱۳ رمضان ۱۳۳۸ھ (۱) جس وقت آدمی علیل ناقابلِ صحت مثلاً مدقوق ہو جائے، اُمیدِ زیست نہ رہے تو اس کو شرعاً کیا کرنا چاہئے؟ اور عزیز و اقارب کو کیا کرنا چاہئے؟ (۲) جنازہ اٹھانے میں کس طرف سے سبقت کی جائے؟

الجواب: (۱) آدمی ہر وقت موت کے قبضہ میں ہے، مدقوق اچھا ہو جاتا ہے اور وہ جو اس کے تیمار میں دوڑتا تھا اس سے پہلے چل دیتا ہے، ہر وقت وصیت تیار رہنی چاہئے جس میں اپنے پسماندوں کو توحید الٰہی عزوجل رسالت پناہ صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم واستقامت عقائد اہلسنت واتباعِ شریعت و اصلاحِ ذات بین، وحدت و قربِ اولیاء، ودوری و تنفر از کفار و ضلال و فسق کی ہدایت ہو اور بعد کو کچھ ترکہ چھوڑے تو اس کا شرعی کافی انتظام جس میں نزاع نہ رہے اور اپنی تجہیز و تکفین میں اتباعِ سنت کی ہدایت، اور ان پر لازم ہے کہ اس پر عمل کریں۔ اور سب سے پہلے خود اپنی اصلاح، گناہوں سے توبہ، اللہ اور رسول کی طرف رجوع، موت کا خوشی کے ساتھ انتظار کرنا کہ آتے وقت ناگواری نہ ہو، اس وقت کی ناگواری معاذ اللہ بہت سخت ہے، عیاذًا باللہ اس میں سوء خاتمہ کا [خطرہ ہے]---

Fatawa Razawiyya Volume 9

There is fear, the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) says:

[Arabic Boxed Text]: He who loves to meet Allah, Allah loves to meet him; and he who hates to meet Allah, Allah hates to meet him. (1) [Urdu Translation in Box]: He who loves to meet Allah, Allah will love to meet him; and he who considers meeting Allah as something disliked, Allah will consider meeting him as something disliked.

The noble Companions (Sahaba) asked: "O Messenger of Allah! Who among us does not dislike death?" He said: "This is not what is meant; rather, the weight is given to the time when the soul reaches the chest. At that time, whoever loves to meet Allah, Allah the Almighty will love to meet him. And if he dislikes it, he dislikes it. If any prayer, fast, or zakat remains due, he should immediately engage in fulfilling them as much as possible. If he hasn't performed Hajj and it was obligatory, he should not delay. If due to illness he lacks the strength, he should arrange for Hajj-e-Badal (Hajj by proxy). If he doesn't gain strength until the last breath, it will be considered fulfilled; otherwise, when he gains strength, he should perform it himself. Fulfill the rights of people (Huquq-ul-Ibad) as much as possible. Seek forgiveness for those that require it, and do not delay this at all, as these are not forgiven even through martyrdom. No matter how much humility is required in seeking forgiveness, do not consider it a blow to your dignity. There is no humiliation in this; true humiliation is on the day you appear in the Court of Honor in such a state that you have suppressed someone's right, spoken ill of them, backbitten them, or hit them, and those rightful claimants cling to you, and your good deeds are given to them, and their sins are placed on you and you are thrown into Hell. We seek refuge in Allah the Almighty. As long as there is life, one should frequently hear and see translations of verses and hadiths regarding fear. And when the time comes, let him hear verses and hadiths of mercy with translations, so he knows whom he is going to, so that he may depart with good thoughts about his Lord. May Allah the Almighty grant us this for the sake of His most noble Beloved (peace and blessings of Allah be upon him). (May Allah the Almighty grant it through the blessing of His most noble Beloved, peace and blessings be upon him. - T) And Allah the Almighty knows best.

(2) The funeral (Janazah) should be carried in such a way that the head side is forward. First, take the front right leg of the bier on your right shoulder, then the back right leg, then the front left, then the back left, and walk at least ten steps each time; this constitutes one round. There is tidings of forgiveness for forty major sins

upon this. Perform as many rounds as possible according to strength and condition. And Allah the Almighty knows best.

Issue No. 2: From Patna, Gulzari Bagh Post Office, Tripoliya Mohalla adjacent to Women's Hospital, sent by Baqir Ali Hakkak. 9 Rajab 1329 AH. Along with the Fatwa of Abdul Hakim Patnavi that at the time of death only "La ilaha illallah" should be said, because the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) said: "Urge those dying to say 'La ilaha illallah'," he did not say to add "Muhammadur Rasulullah" and he said...

---

1 Sahih Bukhari, Chapter: Whoever loves meeting Allah etc., published by Qadeemi Kutub Khana, Karachi, 2/963. Sahih Muslim, Chapter: Whoever loves meeting Allah etc., published by Noor Muhammad, Asah al-Matabi, Karachi, 2/344.

फ़तावा रज़विया जिल्द 9

डर है, नबी सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम फरमाते हैं:

[अरबी बॉक्स]: जो अल्लाह से मिलना पसंद करेगा, अल्लाह उसका मिलना पसंद फरमाएगा और जो अल्लाह से मिलने को नापसंद करेगा, अल्लाह उसका मिलना नापसंद करेगा। (1) [बॉक्स में अनुवाद]: जो अल्लाह से मिलना पसंद करेगा, अल्लाह उसका मिलना पसंद फरमाएगा और जो अल्लाह से मिलने को नापसंद रखेगा, अल्लाह उसका मिलना नापसंद रखेगा।

सहाबा किराम ने अर्ज़ की: "या रसूल अल्लाह! हम में से कौन ऐसा है जो मौत को नापसंद न करे?" फ़रमाया: "यह मुराद नहीं है, बल्कि जिस समय प्राण गले तक आ जाएँ, उस समय का एतबार (भरोसा) है। उस समय जो अल्लाह से मिलने को पसंद रखेगा, अल्लाह तआला उससे मिलने को पसंद करेगा। और नापसंदगी तो नापसंदगी है। अपने ज़िम्मे नमाज़ या रोज़ा या ज़कात जो कुछ बाकी हो, फ़ौरन अपनी सामर्थ्य के अनुसार उसे पूरा करने में लग जाए। यदि हज न किया हो और फ़र्ज़ था, तो देरी न करे। बीमारी के कारण शक्ति न रही हो तो हज-ए-बदल करवा दे, यदि अंतिम समय तक शक्ति नहीं पाएगा तो अदा हो जाएगा, अन्यथा जब शक्ति पाए स्वयं अदा करे। लोगों के अधिकारों (हुक़ूकुल इबाद) में से जो अदा करने योग्य हैं, उन्हें अदा करे, जिनसे माफ़ी माँगनी है, उनसे माफ़ी माँगे और इसमें बिल्कुल भी देरी न करे, क्योंकि ये शहादत से भी माफ़ नहीं होते। माफ़ी माँगने में कितनी ही विनम्रता क्यों न करनी पड़े, इसे अपनी शान के खिलाफ न समझे। इसमें कोई अपमान नहीं है, अपमान तो उस दिन है जब आप सम्मान के दरबार में इस तरह उपस्थित हों कि आपने किसी का हक दबाया हो, उसे बुरा कहा हो, उसकी ग़ीबत (पीठ पीछे बुराई) की हो, उसे मारा हो, और वे हक़दार आपसे लिपट जाएँ, आपकी नेकियाँ उन्हें दे दी जाएँ, उनके गुनाह आप पर रख दिए जाएँ और आपको नरक (जहन्नुम) में फेंक दिया जाए। हम अल्लाह तआला की शरण चाहते हैं। जब तक जीवन है, भय (खौफ) से संबंधित आयतों और हदीसों के अनुवाद अक्सर सुनता और देखता रहे। और जब अंत समय निकट आए, तो उसे रहमत (दया) की आयतें और हदीसें अनुवाद के साथ सुनाएँ ताकि वह जान सके कि वह किसके पास जा रहा है, ताकि वह अपने रब के बारे में अच्छे विचार रखते हुए विदा हो। अल्लाह तआला अपने सबसे सम्मानित महबूब (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) के सदके हमें यह नसीब करे। (अल्लाह तआला अपने महबूब-ए-अकरम सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम के तुफैल इसे नसीब करे। - त) अल्लाह तआला ही बेहतर जानता है।

(2) जनाज़ा इस प्रकार लेकर चलें कि सिर की ओर वाला हिस्सा आगे हो। पहले सिर की तरफ वाला दायाँ पाया अपने दाएँ कंधे पर लें, फिर पैर की तरफ वाला दायाँ, फिर सिर की तरफ वाला बायाँ और फिर पैर की तरफ वाला बायाँ, और हर बार कम से कम दस कदम चलें; यह एक दौर (चक्कर) हुआ। इस पर चालीस बड़े गुनाहों (गुनाह-ए-कबीरा) की माफ़ी की खुशखबरी है। अपनी सामर्थ्य और स्थिति के अनुसार जितने संभव हो उतने चक्कर करें। अल्लाह तआला ही बेहतर जानता है।

मसला नंबर 2: पटना, डाकघर गुलज़ारी बाग, मोहल्ला त्रिपोलिया, महिला अस्पताल के पास से, प्रेषक बाकिर अली हक्काक। 9 रजब 1329 हिजरी। अब्दुल हकीम पटनावी के फतवे के साथ कि मृत्यु के समय केवल "ला इलाहा इल्लल्लाह" कहें, क्योंकि रसूल अल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने फरमाया: "मरने वालों को 'ला इलाहा इल्लल्लाह' की तलक़ीन (सीख) दो," 'मुहम्मदुर रसूलुल्लाह' मिलाने को नहीं फरमाया और फरमाया...

---

1 सहीह बुखारी, अध्याय: जो अल्लाह से मिलना पसंद करता है आदि, प्रकाशित कदीमी कुतुब खाना, कराची, 2/963। सहीह मुस्लिम, अध्याय: जो अल्लाह से मिलना पसंद करता है आदि, प्रकाशित नूर मुहम्मद, असहुल् मताबी, कराची, 2/344।

خوف ہے، نبی صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم فرماتے ہیں :

مَنْ اَحَبَّ لِقَاءَ اللہِ اَحَبَّ اللہُ لِقَاءَہٗ وَ مَنْ کَرِہَ لِقَاءَ اللہِ کَرِہَ اللہُ لِقَاءَہٗ ۱۔ جو اللہ سے ملنا پسند کرے گا اللہ اس کا ملنا پسند فرمائے گا اور جو اللہ سے ملنے کو مکروہ رکھے گا اللہ اس کا ملنا مکروہ رکھے گا۔

صحابہ کرام نے عرض کی : یارسول اللہ ! ہم میں کون ایسا ہے کہ موت کو مکروہ نہ رکھے۔ فرمایا : یہ مراد نہیں بلکہ جس وقت دَمِ سینہ پر آئے اُس وقت کا اعتبار ہے اُس وقت جو اللہ سے ملنے کو پسند رکھے گا اللہ تعالیٰ اس سے ملنے کو دوست رکھے گا۔ اور ناپسند تو ناپسند اپنے ذمہ نماز یا روزہ یا زکوۃ جو کچھ باقی ہو فوراً بقدرِ قدرت اس کی ادا میں مشغول ہو حج نہ کیا ہو اور فرض تھا تو دیر نہ لگائے۔ بوجہ مرض طاقت نہ رہی تو حج بدل کرادے اگر اخیر دم تک طاقت نہ پائے گا ادا ہو جائے گا، ورنہ جب قوت پائے خود ادا کرے، حقوق العباد جس قدر ہوں جو ادا کرنے کے ہیں ادا کرے، جو معافی چاہنے کے ہیں معافی چاہے اور اس میں اصلاً تاخیر کو کام میں نہ لائے کہ یہ شہادت سے بھی معاف نہیں ہوتے، معافی چاہنے میں کتنی ہی تواضع کرنی پڑے اس میں اپنی کسرِ شان نہ سمجھے اس میں ذلت نہیں ذلت اس میں ہے کہ جس روز بارگاہِ عزت میں حاضر ہو، اس طور پر کہ، اُس کا حق دبایا ہے، اُسے بُرا کہا ہے، اُس کی غیبت کی ہے، اسے مارا ہے، اور غنیہ وہ حقدار اس سے لپٹیں، اُس کی نیکیاں ان کو دی جائیں، ان کے گناہ اُس پر رکھے جائیں اور جہنم میں پھینک دیا جائے والعیاذ باللہ تعالیٰ، جب تک زیست ہے آیات واحادیث خوف کے ترجمے اکثر سُنا اور دیکھا کرے، اور جب وقتِ برابر آجائے، اُسے آیات واحادیثِ رحمت مع

ترجمہ سُنائیں کہ جانے کہ کس کے پاس جارہا ہوں تاکہ اپنے رب کے ساتھ نیک گمان کرتا اُٹھے رزقنا اللہ تعالیٰ بجاہ حبیبہ الاکرم صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم (اللہ تعالیٰ اپنے حبیب اکرم صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کے طفیل اسے نصیب کرے۔ت) واللہ تعالٰی اعلم۔

(۲) جنازہ کو یوں لے چلیں کہ سرہانہ آگے کی جانب ہو اور پہلے سرہانے کا داہنا پایہ اپنے داہنے شانے پر لے، پھر پائینتی کا دہنا، پھر سرہانے کا بایاں پھر پائینتی کا بایاں، اور ہر بار کم از کم دس قدم چلے، یہ ایک دور ہوا۔ اس پر چالیس گناہ کبیرہ معاف ہونے کی بشارت ہے، حسب طاقت وحالت جتنے دورے ممکن ہو کرے۔ واللہ تعالیٰ اعلم۔

مسئلہ نمبر ۲: از پٹنہ ڈاکخانہ گلزاری باغ محلہ ترپولیہ متصل ہسپتال زنانہ، مرسلہ باقر علی حکاک۔ ۹ رجب ۱۳۲۹ھ مع فتاوائے عبدالحکیم پٹنوی کہ وقتِ مرگ صرف لا الہ الا اللہ کہے کہ رسول اللہ صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم نے فرمایا ہے: مرنے والوں کو لا الہ الا اللہ کی تلقین کرو محمد رسول اللہ ملانے کو نہیں فرمایا اور فرمایا۔

---

1 صحیح بخاری باب من احب لقاء اللہ الخ مطبوعہ قدیمی کتب خانہ کراچی ۲/ ۹۶۳، صحیح مسلم باب من احب لقاء اللہ الخ مطبوعہ نور محمد اصح المطابع کراچی ۲/ ۳۴۴

Fatawa Razawiyya Volume 9

“...whose last words are ‘La ilaha illa Allah’ [There is no god but Allah] will enter Paradise; here too, ‘Muhammadur Rasulullah’ [Muhammad is the Messenger of Allah] was not mentioned. Therefore, if the words ‘Muhammadur Rasulullah’ are added after ‘La ilaha illa Allah’, it would be bad and prohibited because it goes against the command of the Messenger of Allah, peace and blessings of Allah be upon him. Answered by: Abdul Hakim Sadiq Puri.” In refutation of this, the treatise of Maulana Abdul Wahid Sahib Mujaddidi Rampuri titled “Wathiqa-e-Bahisht” [Document of Paradise] was accompanying it. This humble servant’s writing on “Wathiqa-e-Bahisht”:

The Answer: In the name of Allah, the Most Gracious, the Most Merciful. O Allah, all praise is for You. May Allah Almighty grant death upon the two testimonies of faith (Shahadatayn) with goodness. At the time of death also, the complete Kalima Tayyiba (the testimony of faith) should be recited. Muslims should not pay heed to the deception and misguidance of whoever forbids it, for they desire to assist Satan. Imam Ibn al-Hajj al-Makki (may Allah sanctify his secret) states in ‘Al-Madkhal’ that at the moment of death, two devils come and sit on both sides of a person. One takes the form of their father and the other their mother. One says, ‘That person died as a Jew, so become a Jew, for those who died as Jews are very peaceful there.’ The other says, ‘He went as a Christian, so become a Christian, for Christians are very comfortable there.’ [1] The scholars state that the command to prompt (talqin) the person in their final moments with the Kalima was given to save them from Satan's deception. It is evident that ‘La ilaha illa Allah’ alone is not a complete response to his deception, as Jews and Christians also believe in ‘La ilaha illa Allah’. Yes, it is the noble mention of Muhammad, the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him), that obliterates the mischief of that accursed one. It pierces the hearts of his descendants and inflicts wounds in their livers. Muslims should never, ever abandon it, and whoever forbids it, tell them, “If it is forbidden for you, then let it remain forbidden for you.” It is stated in Majma’ Bihar al-Anwar:

[Arabic quote] The reason for prompting (talqin) is that Satan is present then to corrupt the person's faith (aqd), and by “La ilaha illa Allah”, the two testimonies (shahadatayn) are meant. [2]

In Fath al-Qadir, it says: [Arabic quote] The purpose of it (the reminder) is to remind of faith at the time of Satan's interference. [3]

1. Al-Madkhal by Ibn al-Hajj, Fitnah al-Muhtadar, published by Dar al-Kutub al-Arabi, Beirut, 3/241.
2. Majma’ Bihar al-Anwar, under the word “Laqan”, published by Naval Kishore, Lucknow, 4/262.
3. Fath al-Qadir, Chapter on Funerals, published by Maktaba Nooriya Razawiyya, Sukkur, 2/68.

फ़तावा रज़विया जिल्द नौ (9)

"...जिसका अंतिम वचन 'ला इलाहा इल्लल्लाह' हो वह स्वर्ग (जन्नत) में गया, यहाँ भी 'मुहम्मदुर रसूलुल्लाह' नहीं फ़रमाया, तो अगर 'ला इलाहा इल्लल्लाह' के बाद 'मुहम्मदुर रसूलुल्लाह' शब्द जोड़ा जाए तो अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) के आदेश के विरुद्ध होने के कारण बुरा और मना होगा। उत्तरदाता: अब्दुल हकीम सादिक पुरी।" इसके खंडन में मौलाना अब्दुल वाहिद साहब मुजद्दिदी रामपुर का रिसाला "वसीका-ए-बहिश्त" इसके साथ था, फ़क़ीर (अहमद रज़ा) का लेखन "वसीका-ए-बहिश्त" पर:

जवाब: बिस्मिल्लाह हिर्रहमान निर्रहीम। ऐ अल्लाह! तेरे लिए ही सब प्रशंसा है। अल्लाह अज़्ज़वजल खैर के साथ शहादतैन (दो गवाहियों) पर मौत नसीब करे। मौत के समय भी पूरा कलमा तय्यिबा पढ़ना चाहिए। जो इसे मना करता है, मुसलमान उसके बहकावे और गुमराह करने की ओर ध्यान न दें क्योंकि वह शैतान की सहायता चाहता है। इमाम इब्न अल-हाज मक्की (रज़ियल्लाहु अन्हु) 'अल-मदखल' में फ़रमाते हैं कि दम टूटने के समय दो शैतान आदमी के दोनों तरफ आकर बैठते हैं। एक उसके पिता का रूप धारण करके और दूसरा माँ का। एक कहता है, 'वह व्यक्ति यहूदी होकर मरा तो यहूदी हो जा क्योंकि यहूदी वहां बड़े सुख से हैं।' दूसरा कहता है, 'वह व्यक्ति ईसाई बनकर गया तो ईसाई हो जा क्योंकि ईसाई वहां बड़े आराम से हैं।' [1] उलमा-ए-किराम फ़रमाते हैं कि शैतान के बहकावे से बचाने के लिए मृत्युशैया पर लेटे व्यक्ति को कलमा याद दिलाने (तलकीन) का हुक्म हुआ। स्पष्ट है कि केवल 'ला इलाहा इल्लल्लाह' उसके बहकावे का उत्तर नहीं है, 'ला इलाहा इल्लल्लाह' तो यहूदी और ईसाई भी मानते हैं, हाँ, वह जिससे उस शापित के फ़िल्ने मिटते हैं, वह मुहम्मद रसूलुल्लाह (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) का पावन ज़िक्र है। यही उसके वंशजों के दिल में चुभता है और जिगर में घाव कर देता है, मुसलमान इसे कभी भी न छोड़ें और जो मना करे उससे इतना कह दें कि "अगर यह तुझ पर हराम है तो हराम ही रहे"। मज्म' बिहार अल-अनवार में है:

[अरबी उद्धरण] तलकीन का कारण यह है कि उस समय शैतान आदमी का ईमान बिगाड़ने आता है, और 'ला इलाहा इल्लल्लाह' से पूरा कलमा तय्यिबा (दोनों शहादतैन) अभिप्रेत है। [2]

फ़तह अल-क़दीर में है: [अरबी उद्धरण] तलकीन से उद्देश्य शैतान के हस्तक्षेप के समय ईमान याद दिलाना है। [3]

1. अल-मदखल इब्न अल-हाज, फ़ितना अल-मुहतज़र, मुद्रित दार अल-कुतुब अल-अरबी बेरूत 3/241.
2. मज्म' बिहार अल-अनवार, शब्द “लक़न” के अंतर्गत, मुद्रित नवल किशोर लखनऊ 4/262.
3. फ़तह अल-क़दीर, जनाज़ों का अध्याय, मुद्रित मकतबा नूरिया रज़विया सुक्कुर 2/68.

पृष्ठ 84/948

جس کا پچھلا کلام لا الہ الا اللہ ہو تو وہ جنت میں گیا، یہاں بھی محمد رسول اللہ نہیں فرمایا، تو اگر لا الہ الا اللہ کے بعد غنیہ محمد رسول اللہ کا لفظ بڑھایا جائے تو رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم کے حکم کے خلاف ہونے کے سبب برا اور منع ہو۔ المجیب عبدالکیم صادق پوری۔ اس کے رد میں مولانا عبدالواحد صاحب مجددی رام پوری کا رسالہ "وثیقہ بہشت" اس کے ساتھ تھا، تحریر فقیر بر "وثیقہ بہشت"۔

الجواب: بسم اللہ الرحمن الرحیم ہ اللہم لک الحمد۔ اللہ عزوجل خیر کے ساتھ شہادتین پر موت نصیب کرے۔ وقتِ مرگ بھی پورا کلمہ طیبہ پڑھنا چاہئے۔ جو اسے منع کرتا ہے مسلمان اس کے اغوا واضلال پر کان نہ رکھیں کہ وہ شیطان کی اعانت چاہتا ہے۔ امام ابن الحاج مکی قدس سرہ الملکی مدخل میں فرماتے ہیں کہ دم نزع دو شیطان آدمی کے دونوں پہلو پر آ کر بیٹھتے ہیں ایک اُس کے باپ کی شکل بن کر دوسرا ماں کی۔ ایک کہتا ہے وہ شخص یہودی ہو کر مرا تو یہودی ہو جا کہ یہود وہاں بڑے چین سے ہیں۔ دوسرا کہتا ہے وہ شخص نصرانی گیا تو نصرانی ہو جا کہ نصارٰی وہاں بڑے آرام سے ہیں۔ ۱۔ علمائے کرام فرماتے ہیں شیطان کے اغوا سے بچانے کے لئے محتضر کو تلقین کلمہ کا حکم ہوا۔ ظاہر ہے کہ صرف لا الہ الا اللہ اس کے اغوا کا جواب نہیں، لا الہ الا اللہ تو یہود و نصارٰی بھی مانتے ہیں، ہاں وہ کہ جس سے اس ملعون کے فتنے مٹتے ہیں محمد رسول اللہ کا ذکرِ کریم ہے صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم۔ یہی اس کے ذریات کے بھی دل میں چھبتا جگر میں زخم ڈالتا ہے، مسلمان ہر گز ہرگز اسے نہ چھوڑیں اور جو منع کرے اُس سے اتنا کہہ دیں کہ "گر بتو حرام است حرامت بادا" (اگر یہ تجھ پر حرام ہے تو حرام رہے۔ ت) مجمع بحار الانوار میں ہے:

سبب التلقین انہ یحضرالشیطان لیفسد عقدہ، والمراد بلاالہ الا اللہ الشہادتان ۲۔ (تلقین کا سبب یہ ہے کہ اس وقت شیطان آدمی کا ایمان بگاڑنے آتا ہے، اور لا الہ الا اللہ سے پورا کلمہ طیبہ مراد ہے۔)

فتح القدیر میں ہے: المقصود منہ التذکیر فی وقت تعرض الشیطان ۳۔ (تلقین سے مقصود تعرض شیطان کے وقت ایمان یاد دلانا ہے۔)

---

1 المدخل لابن الحاج فتنہ المحتضر مطبوعہ دارالکتب العربی بیروت ۲۴۱/۳ 2 مجمع بحار الانوار تحت لفظ "لقن" مطبوعہ نولکشور لکھنو ۴ / ۲۶۲ 3 فتح القدیر باب الجنائز مطبوعہ مکتبہ نوریہ رضویہ سکھر ۶۸/۲

Fatawa Rizvia Volume 9

Similarly, it is mentioned in Tabyin al-Haqa'iq and Fath Allah al-Mubin, etc. In Mirqat Sharh al-Mishkat, it is quoted from Allama Mirak:

[Table] Left Column: Whoever's last words are 'La ilaha illa Allah', the meaning includes its companion (i.e., Muhammadur Rasulullah), for it stands as a title for the word of faith. 1 Right Column: What was said in the Hadith, that whoever's last words are 'La ilaha illa Allah', refers to the complete Kalima Tayyiba, as 'La ilaha illa Allah' is, so to speak, the name of this word of faith.

In Durr al-Ghurar it is stated:

[Table] Left Column: The two testimonies (Shahadatayn) should be prompted to him, because the first is not accepted without the second. 2 Right Column: Both parts of the Kalima Tayyiba should be prompted to the deceased because 'La ilaha illa Allah' is not accepted without 'Muhammadur Rasulullah'.

In Ghunyat Dhawi al-Ahkam, this is commented upon. In Tanwir al-Absar it is said: "Prompt with the two testimonies (Shahadatayn)." Both testimonies should be prompted. In Durr-e-Mukhtar it is said: "Because the first is not accepted without the second," meaning the first part is not accepted without the second part. In Al-Mukhtasar al-Quduri it is said: "Prompt the two testimonies," meaning the full Kalima should be taught. In Jawhara al-Nayyirah it is mentioned:

[Table] Left Column: Because the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) said: 'Prompt your dying ones with the testimony that there is no god but Allah.' The form of prompting is to say loudly near him during the death throes, such that he hears: 'I bear witness that there is no god but Allah, and I bear witness that Muhammad is the Messenger of Allah'. 6 Right Column: Because the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) said: "Remind your dying ones of the testimony 'La ilaha illa Allah'." And the way to remind is that in the state of death throes, one should recite near him in such a voice that he hears: "I bear witness that there is no god but Allah and I bear witness that Muhammad is the Messenger of Allah."

Footnotes: 1. Mirqat Sharh al-Mishkat, Book of what is said at the presence of death, second section, printed by Maktaba Imdadiya Multan, 15/4. 2. Durar Sharh Ghurar by Molla Khusrow, Book of Funerals, printed at Matba'a Ahmad Kamil al-Ka'ina in Dar al-Sa'ada Beirut, 160/1. 3. Tanwir al-Absar, text of Al-Durr al-Mukhtar, Book of Funeral

Prayer, printed at Matba' Mujtabai Delhi, 119/1. 4. Durr al-Mukhtar Sharh Tanwir al-Absar, Book of Funeral Prayer, printed at Matba' Mujtabai and Balkhyi, 119/1. 5. Al-Mukhtasar lil-Quduri, Book of Funerals, printed at Matba' Majeedi Kanpur India, p. 44. 6. Jawhara al-Nayyira, Book of Funerals, printed by Maktaba Imdadiya Multan, 123/1.

फतावा रज़विया जिल्द नवीं (खंड 9)

इसी तरह 'तबीन अल-हक़ाइक़' और 'फ़तह अल्लाह अल-मुबीन' आदि में है। 'मिरक़ात शरह मिश्कात' में अल्लामा मीरक से वर्णित है:

[तालिका] बायाँ कॉलम: "जिसके अंतिम शब्द 'ला इलाहा इल्लल्लाह' हों, इसका अर्थ इसके साथी (यानी मुहम्मदुर रसूलुल्लाह) के साथ है, क्योंकि यह ईमान के कलमे के नाम के स्थान पर है।" 1 दायाँ कॉलम: हदीस में जो कहा गया कि जिसके अंतिम शब्द 'ला इलाहा इल्लल्लाह' हों, उससे मुराद पूरा कलमा तैयबा है, क्योंकि 'ला इलाहा इल्लल्लाह' गोया इस कलमा-ए-ईमान का नाम है।

'दुर्रे ग़ुरर' में है:

[तालिका] बायाँ कॉलम: "उसके पास दोनों शहादतों (गवाहियों) की तलक़ीन (शिक्षा/याददिहानी) की जाए, क्योंकि पहली दूसरी के बिना स्वीकार्य नहीं है।" 2 दायाँ कॉलम: कलमा तैयबा के दोनों भाग मैय्यत (मरने वाले) को तलक़ीन किए जाएं इसलिए कि 'ला इलाहा इल्लल्लाह' बिना 'मुहम्मदुर रसूलुल्लाह' के मक़बूल (स्वीकार्य) नहीं।

'ग़ुनिया ज़वी अल-अहकाम' में इस पर तक़रीर फरमाई, 'तन्वीर अल-अबसार' में है: 'दोनों शहादतों की तलक़ीन की जाए।' 3 दोनों शहादतें तलक़ीन की जाएं। 'दुर्रे मुख़्तार' में है: "क्योंकि पहली दूसरी के बिना मक़बूल नहीं" 4 कि पहली बिना दूसरी के स्वीकार्य नहीं। 'मुख्तसर अल-क़ुदूरी' में है: "दोनों शहादतों की तलक़ीन करें" 5 यानी पूरा कलमा सिखाया जाए। 'जौहरा नय्यिरा' में है:

[तालिका] बायाँ कॉलम: "क्योंकि रसूलुल्लाह (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने फरमाया: 'अपने मरने वालों को ला इलाहा इल्लल्लाह की गवाही की तलक़ीन करो।' और तलक़ीन का तरीका यह है कि उसके पास नज़अ (प्राण निकलने की स्थिति) में ज़ोर से कहा जाए ताकि वह सुन सके 'अशहदु अन ला इलाहा इल्लल्लाह व अशहदु अन्ना मुहम्मदन रसूलुल्लाह'।" 6 दायाँ कॉलम: इसलिए कि रसूलुल्लाह (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने फरमाया कि अपने मरने वालों को 'ला इलाहा इल्लल्लाह' की शहादत याद दिलाओ और इस याद दिलाने की सूरत यह है कि इस नज़अ में उसके पास ऐसी आवाज़ से कि वह सुने 'अशहदु अन ला इलाहा इल्लल्लाह व अशहदु अन्ना मुहम्मदन रसूलुल्लाह' पढ़ें।

पाद टिप्पणियाँ: 1. मिरक़ात शरह मिश्कात, बा़ब मा युक़ालु इन्दा मन हज़रतुल मौत, फ़स्ल सानी, मतबुआ मक्तबा इमदादिया मुल्तान, 15/4 2. दुरर शरह ग़ुरर मुल्ला खुसरू, बा़ब अल-जनाइज़, मतबुआ मतबआ अहमद कामिल अल-काइना फ़ी दारुस सहादत बैरुत, 160/1 3. तन्वीर अल-अबसार मतन अद-दुर अल-मुख़्तार, बा़ब सलातुल जनाइज़, मतबुआ मतबा मुज्तबाई दिल्ली, 119/1 4. दुर्रे मुख़्तार शरह तन्वीर अल-अबसार, बा़ब सलातुल जनाइज़, मतबुआ मतबा मुज्तबाई व बल्ख़ीई, 119/1 5. अल-मुख़्तसर लिल-क़ुदूरी, बा़ब अल-जनाइज़, मतबुआ मतबा मजीदी कानपुर भारत, पृ. 44 6. जौहरा नय्यिरा, बा़ब अल-जनाइज़, मतबुआ मक्तबा इमदादिया मुल्तान, 123/1

فتاوٰی رضویہ جلد نہم

اسی طرح تبیین الحقائق اور فتح اللہ مبین وغیرہ میں ہے۔ مرقاۃ شرح مشکوٰۃ میں علامہ میرک سے ہے:

[جدول] بائیں کالم: من کان آخر کلامه لا اله الا الله المراد مع قرینته فانه بمنزلة علم لکلمة الایمان 1۔ دائیں کالم: حدیث میں جو فرمایا کہ جس کا پچھلا کلام لا الہ الا اللہ ہو اُس سے مراد پورا کلمہ طیبہ ہے کہ لا الہ الا اللہ گویا اس کلمہ ایمان کا نام ہے۔

دُرّ غرر میں ہے:

[جدول] بائیں کالم: یلقن بذکر شهادتین عنده لان الاولی لا تقبل بدون الثانیة 2۔ دائیں کالم: کلمہ طیبہ کے دونوں جز میت کو تلقین کئے جائیں اس لئے کہ لا الہ الا اللہ بے محمد رسول اللہ کے مقبول نہیں۔

غنیہ ذوی الاحکام میں اس پر تقریر فرمائی، تنویر الابصار میں ہے: یلقن بذکر الشهادتین 3 دونوں شہادتیں تلقین کی جائیں۔ دُرِ مختار میں ہے: لان الاولی لا تقبل بدون الثانیة 4 کہ پہلی بے دوسری کے مقبول نہیں۔ المختصر القدوری میں ہے: لقن الشهادتین 5 پورا کلمہ سکھایا جائے۔ جوہرہ نیرہ میں ہے:

[جدول] بائیں کالم: لقوله صلی الله تعالی علیه وسلم لقنوا موتاکم شهادة ان لا اله الا الله وهو صورة التلقین ان یقال عنده في حالة النزع جهراً وهو یسمع اشهد ان لا اله الا الله واشهد ان محمدا رسول الله 6۔ دائیں کالم: اس لئے کہ رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم نے فرمایا اپنے اموات کو لا الہ الا اللہ

کی شہادت یاد دلاؤ اور اس یاد دلانے کی صورت یہ ہے کہ اس نزع میں اس کے پاس ایسی آواز سے کہ وہ سنے اشهد ان لا اله الا الله واشهد ان محمدا رسول الله پڑھیں۔

حواشی: 1. مرقات شرح مشکوۃ باب ما یقال عند من حضرۃ الموت فصل ثانی مطبوعہ مکتبہ امدادیہ ملتان ۱۵/۴ 2. درر شرح غرر ملتا خسرو باب الجنائز غنیہ مطبوعہ مطبعہ احمد کامل الکائینہ فی دارالسعادت بیروت ۱۶۰/۱ 3. تنویر الابصار متن الدر المختار باب صلوۃ الجنائز غنیہ مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی ۱۱۹/۱ 4. در مختار شرح تنویر الابصار غنیہ باب صلوۃ الجنائز غنیہ مطبوعہ مطبع مجتبائی و بلخیئی ۱۱۹/۱ 5. المختصر للقدوری غنیہ باب الجنائز غنیہ مطبوعہ مطبع مجیدی کانپور بھارت ص ۴۴ 6. جوہرہ نیرہ باب الجنائز مطبوعہ مکتبہ امدادیہ ملتان ۱۲۳/۱

Fatawa Razawiya, Volume Nine

In Majma' al-Anhur: (Teaching the Testimony) Thus, it is obligatory upon his brothers and friends to recite the two statements of testimony near him. The Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) said: "Whoever's last words are 'There is no god but Allah' shall enter Paradise." 1. Urdu translation provided: Teach the deceased the testimony. By this command, it is obligatory (highly emphasized) for his relatives and friends to recite both testimonies near him. The Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) says: "He whose last words are 'There is no god but Allah' will enter Paradise."

In al-Bahr al-Ra'iq: (Instruct the testimony) By saying "There is no god but Allah, Muhammad is the Messenger of Allah" near him. 2. Urdu translation provided: Instruct the deceased with the testimony, such that "There is no god but Allah, Muhammad is the Messenger of Allah" is recited near him.

In Sharh al-Kanz for Mulla Miskeen: (Instruct) the person in the throes of death (the testimony), which is to say: "I bear witness that there is no god but Allah, and I bear witness that Muhammad is His servant and His Messenger." 3. Urdu translation provided: Instruct with the testimony at the time of death, and the testimony is to say: "I bear witness that there is no god but Allah, and I bear witness that Muhammad is His servant and His Messenger."

In Kafi Sharh al-Wafi: Instruct the testimony, i.e., saying "I bear witness that there is no god but Allah, and I bear witness that Muhammad is His servant and His Messenger," due to the saying of the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him): "Instruct your dying ones with the testimony that there is no god but Allah." 4. Urdu translation provided: Instruct with the testimony, and that testimony is "I bear witness that there is no god but Allah, and I bear witness that Muhammad is His servant and His Messenger," because the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) has commanded the instruction of the testimony to the deceased.

In Jami' al-Rumuz: It was indicated in al-Kafi and al-Mudmarat that what is meant... Urdu translation provided: In Ghuniya, Kafi, and Mudmarat it was indicated that by testimony it is meant...

Footnotes: 1. Majma' al-Anhur Sharh Multaqa al-Abhur, Chapter of Funeral Prayers, published by Dar Ihya al-Turath al-Arabi, Beirut, 1/179. 2. Al-Bahr al-Ra'iq, Book of Funerals, published by H.M. Saeed Company, Karachi, 2/170. 3. Sharh al-Kanz for

Mulla Miskeen on the margin of Fath al-Mu'in Ghuniya, Chapter of Funerals, published by H.M. Saeed Company, Karachi, 1/424. 4. Kafi Sharh al-Wafi.

फतावा रज़विया, खंड नौ

मजमा अल-अन्हूर में है: (शहादत सिखाना) अतः उनके भाइयों और मित्रों पर अनिवार्य है कि वे उनके पास शहादत के दो शब्द कहें। नबी (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने फ़रमाया: "जिसका अंतिम भाषण 'ला इलाहा इल्लल्लाह' होगा, वह स्वर्ग में प्रवेश करेगा।" १. उर्दू अनुवाद: मृतक को शहादत सिखाएं। इस आदेश से उनके रिश्तेदारों और दोस्तों पर यह अनिवार्य (अत्यधिक बल दिया गया) है कि वे उनके पास दोनों शहादतें पढ़ें। अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) फ़रमाते हैं कि जिसका अंतिम शब्द "ला इलाहा इल्लल्लाह" होगा, वह स्वर्ग में जाएगा।

बहर अल-रायिक में है: (शहादत की तलकीन करना) उनके पास 'ला इलाहा इल्लल्लाह मुहम्मदुर रसूलुल्लाह' कहने के द्वारा। २. उर्दू अनुवाद: मृतक को शहादत की तलकीन इस प्रकार करें कि उनके पास 'ला इलाहा इल्लल्लाह मुहम्मदुर रसूलुल्लाह' पढ़ा जाए।

शरह अल-कन्ज़ मुल्ला मिस्कीन में है: मरणासन्न व्यक्ति को (शहादत) की तलकीन करना, और वह यह कहना है: "अश्हदु अल्ला इलाहा इल्लल्लाह व अश्हदु अन्ना मुहम्मदन अब्दुहू व रसूलुहु"। ३. उर्दू अनुवाद: मृत्यु के समय शहादत की तलकीन करें और शहादत यह है कि "अश्हदु अल्ला इलाहा इल्लल्लाह व अश्हदु अन्ना मुहम्मदन अब्दुहू व रसूलुहु" कहें।

काफ़ी शरह वाफ़ी में है: शहादत की तलकीन करना अर्थात् "अश्हदु अल्ला इलाहा इल्लल्लाह व अश्हदु अन्ना मुहम्मदन अब्दुहू व रसूलुहु" कहना, नबी (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) के इस कथन के कारण: "अपने मरने वालों को शहादत की तलकीन करो कि अल्लाह के सिवा कोई पूज्य नहीं है"। ४. उर्दू अनुवाद: शहादत की तलकीन करें और वह शहादत यह है कि "अश्हदु अल्ला इलाहा इल्लल्लाह व अश्हदु अन्ना मुहम्मदन अब्दुहू व रसूलुहु", क्योंकि अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने मृतक को शहादत की तलकीन का आदेश दिया है।

जामि अल-रुमूज़ में है: काफ़ी और मुदमरात में इशारा किया गया है कि शहादत से तात्पर्य... उर्दू अनुवाद: गुनिया, काफ़ी और मुदमरात में इशारा किया गया है कि शहादत से तात्पर्य...

पाद टिप्पणियाँ: 1. मजमा अल-अन्हूर शरह मुल्तका अल-अबहुर, जनाजे की नमाज़ का अध्याय, दार इह्या अल-तुराथ अल-अरबी, बेरूत द्वारा प्रकाशित १/१७९। 2. बहर अल-रायिक, जनाज़े की किताब, एच.एम. सईद कंपनी, कराची द्वारा प्रकाशित २/१७०। 3. फ़तह अल-मुईन गुनिया के हाशिये पर

मुल्ला मिस्कीन द्वारा शरह अल-कन्ज़, जनाज़े का अध्याय, एच.एम. सईद कंपनी, कराची द्वारा प्रकाशित १/४२४। 4. काफ़ी शरह वाफ़ी।

पृष्ठ ८६ / ९४८

فتاوٰی رضویہ، جلد نہم

مجمع الانہر میں ہے : (ویلقن الشهادة) فیجب علی اخوانه واصدقائه ان یقولوا عنده کلمتی الشهادة قال النبی صلی اللہ تعالی علیه وسلم من کان اخر کلامه لا اله الا اللہ دخل الجنة ۱۔ میت کو شہادت سکھائیں اس حکم سے اس کے عزیزوں دوستوں پر واجب (نہایت مؤکد) ہے کہ دونوں شہادتیں اس کے پاس پڑھیں، رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم فرماتے ہیں جس کا اخیر کلام لا الہ الا اللہ ہو وہ جنت میں جائے۔

بحر الرائق میں ہے : (لقن شهادة) بان یقال عنده لا اله الا اللہ محمد رسول اللہ ۲۔ میت کو شہادت کی تلقین یوں کہ اس کے پاس لا الہ الا اللہ محمد رسول اللہ پڑھیں۔

شرح الکنز للملا مسکین میں ہے : (لقن) المحتضر (الشهادة) وهی ان یقول اشهد ان لا اله الا اللہ واشهد ان محمد عبده ورسوله ۳۔ دم نزع شہادت کی تلقین کریں اور شہادت یہ ہے کہ اشہد ان لا الہ الا اللہ واشہد ان محمد اعبدہ و رسولہ کہیں۔

کافی شرح وافی میں ہے : لقن الشهادة ای قول اشهد ان لا اله الا اللہ واشهد ان محمد اعبده ورسوله لقولہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم لقنوا موتاکم شهادة ان لا الہ الا اللہ ۴۔ شہادت کی تلقین کریں اور شہادت یہ کہ اشہد ان لا الہ الا اللہ واشہدان محمد اعبدہ ورسولہ، اس لئے کہ رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم نے میت کو تلقین شہادت کا حکم فرمایا ہے۔

جامع الرموز میں ہے : اشار في الکافی والمضمرات الی ان المراد غنیہ کافی و مضمرات میں اشارہ فرمایا کہ شہادت سے مراد

حواشی: 1 مجمع الانہر شرح ملتقی الابحر باب صلوۃ الجنائز مطبوعہ داراحیاء التراث العربی بیروت ۱/۱۷۹ 2 بحر الرائق کتاب الجنائز مطبوعہ ایچ ایم سعید کمپنی کراچی ۲/۱۷۰ 3 شرح الکنز للملا مسکین علی حاشیۃ فتح العین غنیہ باب الجنائز مطبوعہ ایچ ایم سعید کمپنی کراچی ۱/۴۲۴ 4 کافی شرح وافی

صفحہ 86 منجانب 948

Fatawa Razawiyya - Volume 9

From the Shahadah (testimony) "I bear witness that there is no god but Allah, and I bear witness that Muhammad is His servant and messenger"[1]. It is the full Kalimah-e-Shahadat.

In Hilya of Imam ibn Amir al-Haj: "Instruct (Talqeen) the testimony of 'La ilaha illAllah Muhammadur Rasulullah' by reciting it near him so he hears it, and do not say to him 'Say it'. When he has said both parts of the Kalimah, do not insist on repeating them to him as long as he does not engage in other conversation, for fear of annoying him"[2]. Instruct the deceased with 'La ilaha illAllah Muhammadur Rasulullah' by reciting it near them so they hear and recite it themselves. Do not say "Say it". Once they have uttered both parts of the Kalimah, do not persist in making them repeat it so they don't get irritated. However, if they speak other words after reciting the Kalimah, then instruct them again so that their final words are 'La ilaha illAllah Muhammadur Rasulullah'.

In Al-Mustasfa: "Instruct both testimonies 'La ilaha illAllah Muhammadur Rasulullah'"[3]. Both testimonies should be instructed: 'La ilaha illAllah Muhammadur Rasulullah', peace and blessings of Allah be upon him.

In Ash'at al-Lam'at Sharh Mishkat: "Instruct your dying ones with 'La ilaha illAllah'. Instruct your men, i.e., those who have reached near death, with the Kalimah Tayyibah"[4]. Remind your dying ones, who are near death, of the Kalimah Tayyibah. (T)

In short, there are abundant narrations, and the matter is clear. In the Islamic view, the satanic statement exposes its speaker. Yes, some later Shafi'i scholars said that the promised reward would be attained just by saying 'La ilaha illAllah'. God forbid, they also do not say that saying 'Muhammadur Rasulullah' at the time of death is forbidden. This prohibition is purely rejected, discarded, and against the consensus (Ijma').

Allama Shurunbulali, from among our later scholars, in his commentary on Al-Durar regarding what we have mentioned, maintained the mentioned ruling—the instruction of both testimonies—but the reason for the ruling mentioned therein...

---

1. Jami' al-Rumuz Ghunyah, Section on Funerals, Published by Maktaba Islamiya Gonbad-e-Qabus Iran, 1/8, 27
2. Hilya al-Mahalli Sharh Munyat al-Musalli

3. Radd al-Muhtar citing Al-Mustasfa, Chapter on Funeral Prayer, Published by Mustafa al-Babi Egypt, 1/62
4. Ash'at al-Lam'at Sharh Mishkat, Chapter on what is said in the presence of one who is dying, Published by Maktaba Nooriyah Razawiyya Sukkur, 1/260

फ़तावा रज़विया - जिल्द 9

शहादत (गवाही) "मैं गवाही देता हूँ कि अल्लाह के सिवा कोई पूज्य नहीं, और मैं गवाही देता हूँ कि मुहम्मद उसके बंदे और रसूल हैं"[1] से। यह पूरा कलमा-ए-शहादत है।

इमाम इब्न अमीर अल-हज की हिल्या में है: "उसे 'ला इलाहा इल्लल्लाह व अन्ना मुहम्मदुर रसूलुल्लाह' की गवाही की तलकीन (शिक्षा) करें, इस तरह कि उसके पास स्वयं पढ़ें ताकि वह सुनकर पढ़े, और उससे यह न कहें कि 'कहो'। और जब वह कलमा के दोनों हिस्से कह ले, तो उसे दोहराने पर ज़ोर न दें जब तक कि वह किसी अन्य बात में न लग जाए, ताकि वह परेशान न हो जाए"[2]। मयत को ला इलाहा इल्लल्लाह मुहम्मदुर रसूलुल्लाह की तलकीन करें, इस तरह कि खुद उसके पास पढ़ें कि वह सुनकर पढ़े, और यूँ न कहें कि कह, और जब दोनों जुज़ (हिस्से) कलमा के कह ले तो उससे दोबारा कहने का इसरार (हठ) न करें कि कहीं उकता न जाए, हाँ कलमा पढ़ने के बाद कोई और बात उसने की तो फिर तलकीन करें कि आख़िर कलाम ला इलाहा इल्लल्लाह मुहम्मदुर रसूलुल्लाह हो।

मुस्तसफ़ा में है: "दोनों शहादतों की तलकीन करें: ला इलाहा इल्लल्लाह मुहम्मदुर रसूलुल्लाह"[3]। दोनों शहादतों की तलकीन की जाए: ला इलाहा इल्लल्लाह मुहम्मदुर रसूलुल्लाह, सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम।

अशत-उल-लमात शरह मिश्कात में है: "अपने मरने वालों को 'ला इलाहा इल्लल्लाह' की तलकीन करो। अपने उन लोगों को जो मौत के करीब पहुँच चुके हैं कलमा तय्यिबा याद दिलाओ"[4]। अपने मुर्दों को जो मरने के करीब पहुँच गए हैं उन्हें कलमा तय्यिबा याद दिलाओ। (त)

संक्षेप में, यह बहुत सी रिवायतों से साबित है, और मसला स्पष्ट है। इस्लामी दृष्टि में शैतानी बात कहने वाले को बेनकाब करती है। हाँ, कुछ बाद के शाफ़ई विद्वानों ने कहा है कि केवल 'ला इलाहा इल्लल्लाह' कहने पर वादा किया गया सवाब मिल जाएगा। अल्लाह की पनाह, वे भी यह नहीं कहते कि मरते समय 'मुहम्मदुर रसूलुल्लाह' कहना मना है। यह मनाही पूरी तरह से अस्वीकार्य, ठुकराई हुई और इज्मा (सर्वसम्मति) के खिलाफ है।

हमारे बाद के विद्वानों में से अल्लामा शुरुनबुलाली ने 'दुरर' में उल्लिखित हुक्म—दोनों शहादतों की तलकीन—को बरकरार रखा, लेकिन उसमें जो हुक्म का कारण (इल्लत) बताया...

1. जामि-उल-रुमोज़ गुनिया, फ़स्लुल जनाइज़, मकतबा इस्लामिया गोंबाद-ए-क़ाबूज़ ईरान, 1/8, 27
2. हिल्या अल-महल्ली शरह मुन्यात अल-मुसल्ली
3. रद-उल-मुह्तार मुस्तसफ़ा के हवाले से, बाब सलातुल जनाइज़, मुस्तफ़ा अल-बाबी मिस्र, 1/62
4. अशत-उल-लमात शरह मिश्कात, बाब मा युकालु इन्दा मन हज़रहु अल-मौत, मकतबा नूरिया रज़विया सुक्कुर, 1/260

من الشهادة "اشهد ان لا اله الا الله واشهد ان محمد عبده ورسوله"[1]۔ پورا کلمہ شہادت ہے۔

حلیہ امام ابن امیر الحاج میں ہے: ولقن شهادة ان لا اله الا الله وان محمدا رسول الله بان يقال عنده وهو يسمع ولا يقال له قل واذا قالها لا يلح عليه بتكرير هما اذا لم يخض في كلام آخر لمخافة تبرمه[2]۔ میت کو لا الہ الا اللہ محمد رسول اللہ کی تلقین کریں یوں کہ خود اس کے پاس پڑھیں کہ وہ سُن کر پڑھے، اور یوں نہ کہیں کہ کہہ، اور جب دونوں بجز کلمہ کے کہہ لے تو اُس سے دوبارہ کہنے کا اصرار نہ کریں کہ کہیں اکتانہ جائے، ہاں کلمہ پڑھنے کے بعد کوئی اور بات اس نے کی تو پھر تلقین کریں کہ آخر کلام لا الہ الا اللہ محمد رسول اللہ ہو۔

مستصفیٰ میں ہے: لقن الشهادتين لا اله الا الله محمد رسول الله[3]۔ دونوں شہادتیں تلقین کی جائیں لا الہ الا اللہ محمد رسول اللہ، صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم۔

اشعة اللمعات شرح مشکوٰۃ میں ہے: لقنوا موتاكم لا اله الا الله تلقين كنيد مردہائے خود را يعنى آنہا كه نزديک بمردن رسيده اند كلمه طيبه را[4]۔ اپنے مُردوں کو جو مرنے کے قریب پہنچ گئے انہیں کلمہ طیبہ یاد دلاؤ۔(ت)

غرض نقل مستفیض سے ہے، اور مسئلہ واضح اور اسلامی نگاہ میں شیطانی قول اپنے قائل کا فاضح، ہاں بعض متاخرین شافعیہ نے یہ کہا کہ صرف لا الہ الا اللہ کہنے پر ثواب موعود مل جائے گا، معاذ اللہ وہ بھی یہ نہیں کہتے کہ مرتے وقت محمد رسول کہنا منع ہے یہ ممانعت محض مردود و مطرود و خلاف اجماع ہے۔

فالعلامة الشرنبلالی من متاخری علمائنا مع تقریرہ الدرر علی ما قدمناہ اجاب عن تعلیلھما ان الاولی لا تقبل علت ذکر... ہمارے علمائے متاخرین میں سے علامہ شرنبلالی نے دُرَر میں مذکورہ حکم ۔ دونوں شہادتوں کی تلقین۔ کو برقرار رکھا مگر اس میں حکم کی جو علت ذکر...

1۔ جامع الرموز غنیہ فصل الجنائز مطبوعہ مکتبہ اسلامیہ گنبد قاموس ایران ۸/۱، ۲۷ 2۔ حلیہ لمحلی شرح منیۃ المصلی 3۔ ردالمحتار بحوالہ المستصفی باب صلوٰۃ الجنائز مطبوعہ مصطفی البابی مصر ۱/ ۶۲ 4۔ اشعۃ اللمعات شرح مشکوٰۃ باب ما یقال عند من حضرہ الموت مطبوعہ مکتبہ نوریہ رضویہ سکھر ۲۶۰/۱

Fatawa Razawiyya, Volume 9

(Arabic Text - Left Column): [...it has been said] without the second [part of the testimony], following Ibn Hajar al-Makki among the later Shafi'is, that the discussion is regarding Muslims. I say: Indeed, he is a Muslim and it is not required of him to bring forth an iman (faith) that did not exist, but rather to remind him of what already exists and to protect it from the corruption of Satan. Those two testimonies must be preserved because the first is not accepted without the second. Ibn Hajar al-Shafi'i said: I say, the expressions in Al-Hidayah, Al-Wiqayah, Al-Niqayah, and Al-Kanz mention 'instruction of the testimony' (singular), which may point to it, meaning to the singular. (End of quote) - Ghunyah. I say: 'Al-Shahadah' is a generic noun, so it includes both testimonies. Do you not see that Imam al-Nasafi, the author of Al-Kanz, expressed in his original work 'Al-Wafi' as he expressed in Al-Kanz [in the singular], then explained it in his commentary 'Al-Kafi' with 'both testimonies' (dual)? Similarly, in Al-Bahr al-Ra'iq, Al-Mudmarat, Jami' al-Rumuz, Majma' al-Anhur, and for Mulla Miskeen, as you have heard. Among the evidences for this is that in Al-Hidayah, the wording of Al-Quduri is quoted, and it was in the dual form, so it is known that the singular used there carries the meaning of the dual.

(Urdu Text - Right Column): ...it has been stated that "La ilaha illallah" is not accepted without "Muhammadur Rasulullah". Following the later Shafi'i scholar Ibn Hajar al-Makki, the answer is given: "The discourse is about Muslims." I say: We accept that he is a Muslim, and he is not required to establish a faith he didn't have (i.e., to bring faith anew), but the purpose is merely to remind him of what he has and to protect him from the corruption of Satan. And it is necessary to preserve both testimonies (Shahadatayn) because the first is not accepted without the second. Ibn Hajar al-Shafi'i says: I say, in Hidaya, Wiqaya, Niqaya, and Kanz al-Daqaiq, the words used are "Talqin-e-Shahadah" (instruction of the testimony), not "Shahadatayn" (two testimonies). This suggests that one testimony might suffice. - Ghuniya. I say: The word "Shahadah" (testimony) is a generic noun (Ism al-Jins), so it includes both testimonies. See how Imam Nasafi, the author of Kanz al-Daqaiq, wrote the word "Shahadah" in singular in Kanz, and similarly in his original work "al-Wafi", but in his commentary "al-Kafi", he explained it as "Shahadatayn". Similarly, in Bahr al-Raiq, Mudammarat, Jami' al-Rumuz, Majma' al-Anhur, and Sharh Mulla Miskeen, as you have heard, the complete Kalima was mentioned in the explanation of Shahadah. As all their passages have passed. One evidence for this is also that in Hidaya, the passage from Quduri is quoted; in Quduri, it was "Shahadatayn". By using

"Shahadah" in Hidaya, it is understood that even in the singular, it holds the dual (two) meaning.

Footnote: 1 Radd al-Muhtar, referring to Ibn Hajar al-Shafi'i, Chapter of Funerals, Al-Idarah al-Tiba'iyyah al-Misriyyah, Egypt 1/705.

फ़तावा रज़विया, खंड 9

(अरबी पाठ - बायां स्तंभ): [...यह कहा गया है कि] दूसरी के बिना, बाद के शाफ़ई विद्वानों में से इब्न हजर अल-मक्की का अनुसरण करते हुए, कि यह चर्चा मुसलमानों के बारे में है। मैं कहता हूँ: वास्तव में वह मुसलमान है और उससे यह अपेक्षा नहीं है कि वह ऐसा ईमान लाए जो पहले मौजूद नहीं था, बल्कि यह केवल उसे याद दिलाने के लिए है जो मौजूद है और उसे शैतान के भ्रष्टाचार से बचाने के लिए है। उन दोनों शाहदतों (गवाहियों) का संरक्षण आवश्यक है क्योंकि पहली, दूसरी के बिना स्वीकार्य नहीं है। इब्न हजर अल-शाफ़ई ने कहा: मैं कहता हूँ, अल-हिदाया, अल-विक़ाया, अल-निफ़ाया और अल-कंज़ में 'तलक़ीन-ए-शहादत' (एकवचन) का उल्लेख है, जो एकवचन की ओर संकेत कर सकता है। (उद्धरण समाप्त) - गुनिया। मैं कहता हूँ: 'अल-शहादत' एक जातिवाचक संज्ञा है, इसलिए इसमें दोनों शहादतें शामिल हैं। क्या आप नहीं देखते कि अल-कंज़ के लेखक इमाम नसफ़ी ने अपनी मूल कृति 'अल-वाफ़ी' में उसी तरह व्यक्त किया जैसे उन्होंने अल-कंज़ में [एकवचन में] किया था, फिर अपनी व्याख्या 'अल-काफ़ी' में 'दोनों शाहदतों' (द्विवचन) के साथ इसकी व्याख्या की? इसी तरह अल-बहर अल-राइक़, अल-मुज़मरात, जामे अल-रुमूज़, मजमा अल-अन्हुर और मुल्ला मिस्कीन के लिए, जैसा कि आपने सुना है। इसका एक प्रमाण यह भी है कि अल-हिदाया में अल-कुदूरी के शब्दों को उद्धृत किया गया है, और वह द्विवचन रूप में था, इसलिए यह ज्ञात होता है कि वहां उपयोग किया गया एकवचन भी द्विवचन का अर्थ रखता है।

(उर्दू पाठ - दायां स्तंभ): ...कहा गया है कि "ला इलाहा इल्लल्लाह" बिना "मुहम्मदुर रसूलुल्लाह" के स्वीकार्य नहीं है। बाद के शाफ़ई विद्वान इब्न हजर अल-मक्की का अनुसरण करते हुए इसका उत्तर दिया गया कि "यह चर्चा मुसलमानों के बारे में है।" मैं कहता हूँ: हमें स्वीकार है कि वह मुसलमान है और उससे यह मांग नहीं है कि तेरे पास ईमान नहीं था, तो ईमान ला, बल्कि उद्देश्य केवल यह है कि उसके पास जो है उसे याद दिलाया जाए और उसे शैतान की बुराई से बचाया जाए। और दोनों शाहदतों (गवाहियों) का संरक्षण आवश्यक है क्योंकि पहली, दूसरी के बिना स्वीकार्य नहीं है। इब्न हजर अल-शाफ़ई कहते हैं: मैं कहता हूँ कि हिदाया, विक़ाया, निफ़ाया और कंज़ अल-दक़ाइक़ में "तलक़ीन-ए-शहादत" (शहादत सिखाना) शब्द हैं, "शाहदतन" (दो शहादत) नहीं। इससे संकेत मिलता है कि एक ही शहादत से काम चल जाएगा। - गुनिया। मैं कहता हूँ: "शहादत" शब्द एक जातिवाचक संज्ञा (इस्म-ए-जिन्स) है, इसलिए इसमें दोनों शहादतें शामिल हैं। देखिये, कंज़ अल-दक़ाइक़ के लेखक इमाम नसफ़ी ने जिस तरह कंज़ में शहादत शब्द एकवचन में लिखा, उसी तरह

अपनी मूल कृति "अल-वाफ़ी" में भी लिखा, लेकिन अपनी व्याख्या "अल-काफ़ी" में इसकी व्याख्या "शाहदतन" से की। इसी तरह बहर अल-राइक़, मुज़मरात, जामे अल-रुमूज़, मजमा अल-अन्हुर और शरह मुल्ला मिस्कीन में भी शहादत की व्याख्या में पूरा कलमा ज़िक्र हुआ जैसा कि उन सब के उद्धरण गुज़रे। इसका एक प्रमाण यह भी है कि हिदाया में कुदूरी ही का उद्धरण दिया गया है; कुदूरी में "शाहदतन" था। हिदाया में "शहादत" रखने से यह ज्ञात हुआ कि इसमें एकवचन भी द्विवचन (दो) का अर्थ रखता है।

पाद-टिप्पणी: 1 रद अल-मुहतार, इब्न हजर अल-शाफ़ई के हवाले से, जनाज़ा अध्याय, अल-इदारा अत-तिबाइय्या अल-मिसरिया, मिस्र 1/705।

पृष्ठ 88 / 948

فتاوی رضویہ جلد نہم

(بایاں کالم - عربی عبارت): بدون الثانیة تبعاًلابن الحجر المکی من متاخری الشافعیة ان الکلام فی المسلم اقول: انه مسلم ولا تطلب منه انشاء ایمان لم یکن، بل تذکیر ما کان وحفظه عن افساد الشیطان وتلك الشهادتان یجب ان تصان لان الاولی لا تقبل بدون الثانیة قال الشافعی قلت وقد یشیر الیه ای الی الافراد تعبیر الهدایة والوقایة والنقایة الکنز بتلقین الشهادة اه اقول: الشهادة اسم جنس فیشمل الشهادتین الاتری الی الامام النسفی صاحب الکنز عبر فی اصله الوافی بما عبر فیه ثم فسره فی شرحه الکافی بالشهادتین وکذلك فی البحر الرائق و المضمرات وجامع الرموز ومجمع الانهر و لملا مسکین کما سمعت و من الدلیل علیه ان نقل فی البدایة نظم القدوری وقد ثنی فعلم ان المفرد فیه کالمثنی۔

(دایاں کالم - اردو عبارت): کی گئی ہے کہ "لا الہ الا اللہ" بے "محمد رسول اللہ" کے مقبول نہیں" اس کا شافعی متاخر عالم ابن حجر مکی کی تبعیت میں جواب دیا کہ "کلام مسلمانوں کے بارے میں ہے۔ اقول: ہمیں تسلیم ہے کہ وہ مسلمان ہے اور اس سے مطالبہ نہیں کہ تیرے پاس ایمان نہ تھا، تو ایمان لا، بلکہ مقصود صرف یہ ہے کہ اس کے پاس جو ہے اس کی یاددہانی کی جائے اور شیطان کے فساد کاری سے بچایا جائے اور دونوں شہادتوں کا تحفظ ضروری ہے اس لئے کہ پہلی، دوسری کے بغیر مقبول نہیں۔ ابن حجر شافعی کہتے ہیں : میں کہتا ہوں ہدایہ، وقایہ، نقایہ اور کنز الدقائق میں "تلقین شہادت" کے الفاظ ہیں "شہادَتین" نہیں۔ اس سے اشارہ ملتا ہے کہ ایک ہی شہادت سے کام ہو جائے گا۔ غنیہ اقول : لفظ شہادت اسم جنس ہے اس لئے یہ شہادتین کو بھی شامل ہے۔ دیکھئے کنز الدقائق کے مصنف امام نسفی نے جس طرح کنز میں شہادت کا لفظ مفرد لکھا اسی طرح اس کی اصل "وافی" میں بھی لکھا مگر اس کی شرح "کافی" میں اس کی تفسیر "شہادتین" سے فرمائی۔ اسی طرح البحر الرائق، مضمرات، جامع الرموز، مجمع الانہر اور شرح ملا مسکین

میں بھی شہادت کی تفسیر میں پورا کلمہ ذکر ہوا جیسا کہ ان سب کی عبارتیں گزریں۔ اس کی ایک دلیل یہ بھی ہے کہ ہدایہ میں قدوری ہی کی عبارت نقل ہوئی ہے، قدوری میں "شہادتین" تھا۔ ہدایہ میں "شہادة" رکھنے سے یہ معلوم ہوا کہ اس میں مفرد بھی تثنیہ (دو) ہی کا معنی رکھتا ہے۔

حاشیہ: 1 رد المحتار بحوالہ ابن حجر الشافعی باب صلوۃ الجنائز ادارۃ الطباعۃ المصریۃ مصر ۱/ ۷۰۵

Fatawa Rizvia Volume 9

Here, the exquisite and sublime words of the researcher scholar Muhammad Sanusi and then scholar Ibrahim Bajuri (may Allah Almighty have mercy on them) are worth memorizing. Scholar Bajuri states in the commentary of 'Risala Fazalia':

[Arabic Text Column] Know that it is necessary after the reciter says 'La ilaha illallah' (There is no god but Allah) to say 'Muhammadun Rasulullah' (Muhammad is the Messenger of Allah) so that the light of monotheism (Tawhid) obtained by it may be preserved [1]. The words of Sanusi in the commentary of 'As-Sughra' are explicit in this regard, where he said: When his heart rejoiced with the light of truth, and benefiting from it was dependent on fulfilling the rites of the Sharia, and that cannot be except by persistence in mentioning its conveyer who delivered it from Allah Almighty, our master Muhammad (peace and blessings of Allah Almighty be upon him). Therefore, the reciter, after the word of monotheism indicating the truth, needs to affirm the messengership of our master Muhammad (peace and blessings of Allah Almighty be upon him) to preserve the light of his monotheism by entering it into the strong fortress of Sharia. Thus, the reciter says 'La ilaha illallah Muhammadun Rasulullah'. Similarly, in every remembrance (dhikr) among the remembrances of Allah Almighty, the believer should not neglect the mention of our master Muhammad (peace and blessings of Allah Almighty be upon him). Either he should send blessings upon him following it, or acknowledge his messengership along with sending blessings upon him (peace and blessings of Allah Almighty be upon him), honoring him and...

[Urdu Text Column] It should be kept in mind that when the reciter says 'La ilaha illallah', it is also necessary for him to say 'Muhammadun Rasulullah' so that the light of monotheism he has attained may be preserved. In the commentary of 'As-Sughra', the words of Scholar Sanusi are clear and explicit in this regard; his words are: By saying 'La ilaha illallah', the joy of the light of truth has entered the heart of the reciter, but benefiting from it depends on fulfilling the manners of the Sharia. And the way to fulfill this manner is for the master of this word, who brought it from the Most High God to preach it, our master Muhammad (peace and blessings of Allah Almighty be upon him), that his pure mention be continued. Therefore, after saying the word of monotheism that indicates truth, it is necessary for the reciter to also affirm the messengership of our master Muhammad (peace and blessings of Allah Almighty be upon him) so that by bringing it into the strong refuge of the Sharia, he can keep his light of monotheism protected. That is why the reciter says 'La ilaha

illallah Muhammadun Rasulullah'. Similarly, in any of the remembrances of Allah Almighty, a believer should not be negligent of the mention of our master Muhammad (peace and blessings of Allah Almighty be upon him). After the remembrance of God, he should send blessings upon the Master, or acknowledge his messengership, along with the performance of blessings upon the Master (peace and blessings of Allah Almighty be upon him), the fulfillment of veneration, and the Master...

[Footnote] 1. Sharh Risala Fazalia

फ़तावा रज़विया जिल्द 9

यहाँ शोधकर्ता विद्वान मुहम्मद सनूसी और फिर विद्वान इब्राहिम बजूरी (अल्लाह उन पर रहम करे) के उत्कृष्ट और शानदार शब्द याद रखने योग्य हैं। विद्वान बजूरी 'रिसाला फज़ालिया' की व्याख्या में कहते हैं:

[अरबी पाठ स्तंभ] यह जान लें कि ज़ाकिर (ज़िक्र करने वाले) के लिए 'ला इलाहा इल्लल्लाह' (अल्लाह के सिवा कोई माबूद नहीं) कहने के बाद 'मुहम्मदुर रसूलुल्लाह' (मुहम्मद अल्लाह के रसूल हैं) कहना भी ज़रूरी है ताकि इसके ज़रिए जो तौहीद का नूर हासिल हुआ है, वह सुरक्षित रहे [1]। 'अश-शुग़रा' की व्याख्या में इमाम सनूसी के शब्द इस बारे में स्पष्ट हैं, जहाँ उन्होंने कहा: जब उसका दिल हकीकत (सच्चाई) के नूर से खिल उठा, और उससे लाभ उठाना शरीयत के नियमों के पालन पर निर्भर था, और यह उस शख्स (हज़रत मुहम्मद) के ज़िक्र में निरंतरता के बिना संभव नहीं है जिन्होंने इसे अल्लाह तआला की ओर से पहुँचाया, यानी हमारे आका मुहम्मद (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम)। इसलिए, ज़िक्र करने वाले को हकीकत पर दलालत करने वाले कलमा-ए-तौहीद के बाद हमारे आका मुहम्मद (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) की रिसालत (पैग़ंबरी) को साबित करने की ज़रूरत है ताकि अपने तौहीद के नूर को शरीयत के मज़बूत किले में दाखिल करके उसे सुरक्षित रख सके। इसीलिए ज़िक्र करने वाला कहता है 'ला इलाहा इल्लल्लाह मुहम्मदुर रसूलुल्लाह'। इसी तरह, अल्लाह तआला के ज़िक्रों में से किसी भी ज़िक्र में मोमिन को हमारे आका मुहम्मद (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) के ज़िक्र से गाफिल नहीं होना चाहिए। या तो वह उसके बाद उन पर दरूद भेजे, या दरूद के साथ उनकी रिसालत का इकरार करे, साथ ही आका (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) पर दरूद भेजना, उनकी ताज़ीम (सम्मान) करना और...

[उर्दू पाठ स्तंभ] यह ज़हन नशीन रहे कि ज़ाकिर जब 'ला इलाहा इल्लल्लाह' कहे तो उसे 'मुहम्मदुर रसूलुल्लाह' कहना भी ज़रूरी है ताकि उसे जो नूर-ए-तौहीद हासिल हुआ वह महफ़ूज़ हो जाए। शरह-ए-सुग़रा में अल्लामा सनूसी की इबारत इस सिलसिले में साफ़ और सरीह (स्पष्ट) है, उनके अल्फाज़ ये हैं: 'ला इलाहा इल्लल्लाह' कहने से ज़ाकिर के दिल में नूर-ए-हक़ीक़त की बहजत (खुशी) तो आ गई मगर उससे नफ़ा याबी (लाभ उठाना) आदाब-ए-शरीयत की बजाआवरी (पालन) पर मौक़ूफ़ (निर्भर) है। और इस अदब की बजाआवरी की सूरत यही है कि इस कलिमा वाले आक़ा जो इसे ख़ुदा-ए-बर्तर के पास ले कर तब्लीग़ फ़रमाने वाले हैं, सैय्यदना मुहम्मद सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम, उनका ज़िक्र-ए-पाक जारी रखे। इसलिए हक़ीक़त पर दलालत करने वाले कलिमा-

ए-तौहीद को कह लेने के बाद ज़रूरत है कि ज़ाकिर हमारे आक़ा मुहम्मद सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम की रिसालत का भी इसबात (पुष्टि) करे ताकि शरीयत की मज़बूत पनाह में ला कर अपने नूर-ए-तौहीद को महफ़ूज़ रख सके। इसी लिए ज़ाकिर कहता है 'ला इलाहा इल्लल्लाह मुहम्मदुर रसूलुल्लाह'। इसी तरह अल्लाह तआला के अज़कार में से किसी भी ज़िक्र में मोमिन को सैय्यदना मुहम्मद सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम के ज़िक्र से ग़ाफ़िल नहीं होना चाहिए। ख़ुदा के ज़िक्र के बाद सरकार पर दरूद भेजे, या उन की रिसालत का इक़रार करे, साथ ही आक़ा सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम पर दरूद की अदायगी, ताज़ीम की बजाआवरी, और सरकार...

[पाद-टिप्पणी] 1. शरह रिसाला-ए-फ़ज़ालिया

فتاویٰ رضویہ جلد نہم

یہاں علامہ محقق محمد سنوسی پھر علامہ ابراہیم بجوری رحمہما اللہ تعالیٰ کا ایک نفیس و جلیل کلام قابلِ حفظ ہے۔ علامہ باجوری شرح رسالہ فضالیہ میں فرماتے ہیں :

[عربی عبارت] اعلم انه لابد بعد قول الذاكر لا اله الا الله ان يقول محمد رسول الله لاجل ان يحفظ بذلك ما يحصل له من نور التوحيد ١ وعبارة السنوسي من شرح الصغرى مصرحة بذلك حيث قال: ولما ابتهج قلبه بنور الحقيقة وكان الانتفاع بها موقوفاً على القيام برسوم الشريعة، وذلك لا يكون الابالادمان على ذكر صاحبها المبلغ لها عن الله تعالى سيدنا محمد صلى الله تعالى عليه وسلم احتاج الذاكر بعد كلمة التوحيد الدالة على الحقيقة باثبات رسالة سيدنا محمد صلى الله تعالى عليه وسلم ليحفظ نور توحيده بادخاله فى منيع حرز الشريعة فلهذا يقول الذاكر لا اله الا الله محمد رسول الله وهكذا ينبغى فى كل ذكر من اذكار الله تعالى ان لا يغفل المؤمن فيه عن ذكر سيدنا محمد صلى الله تعالى عليه وسلم فاما ان يصلى عليه اثره اويقر برسالة مع الصلوة عليه صلى الله تعالى عليه وسلم وتعظيمه و

[اردو ترجمہ و تشریح] یہ ذہن نشین رہے کہ ذاکر جب لا الہ الا اللہ کہے تو اسے محمد رسول اللہ کہنا بھی ضروری ہے تاکہ اسے جو نورِ توحید حاصل ہوا وہ محفوظ ہو جائے۔ شرح صغریٰ میں علامہ سنوسی کی عبارت اس سلسلے میں صاف اور صریح ہے، ان کے الفاظ یہ ہیں : لا الہ الا اللہ کہنے سے ذاکر کے دل میں نورِ حقیقت کی بہجت تو آگئی مگر اس سے نفع یابی آدابِ شریعت کی بجاآوری پر موقوف ہے۔ اور اس ادب کی بجاآوری کی صورت یہی ہے کہ اس کلمہ والے آقا جو اسے خدائے برتر کے پاس لے کر تبلیغ فرمانے والے ہیں، سیدنا محمد صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم ، ان کا ذکر پاک جاری رکھے۔ اس لئے حقیقت پر دلالت کرنے والے کلمہ توحید کو کہہ لینے کے بعد ضرورت ہے کہ ذاکر ہمارے آقا محمد صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کی رسالت کا بھی اثبات کرے تاکہ

شریعت کی مضبوط پناہ میں لاکر اپنے نورِ توحید کو محفوظ رکھ سکے۔ اسی لئے ذاکر کہتا ہے لا الٰہ الا اللہ محمد رسول اللہ ۔ اسی طرح اللہ تعالیٰ کے اذکار میں سے کسی بھی ذکر میں مومن کو سیدنا محمد صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کے ذکر سے غافل نہیں ہونا چاہئے۔ خدا کے ذکر کے بعد سرکار پر درود بھیجے، یا ان کی رسالت کا اقرار کرے ، ساتھ ہی آقا صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم پر درود کی ادائیگی، تعظیم کی بجاآوری، اور سرکار

[حاشیہ] ۱ شرح رسالہ فضالیہ

Fatawa Razawiya, Volume 9

[Arabic Text Section]: Holding fast to his (the Prophet's) hems, peace and blessings of Allah be upon him, for he, peace and blessings of Allah be upon him, is the greatest gateway to Allah, through whom alone every goodness of religion and the hereafter is attained by attachment to him, peace and blessings of Allah be upon him. So whoever is heedless of his remembrance, peace and blessings of Allah be upon him, and of holding fast to him, peace and blessings of Allah be upon him, will not achieve his objective and will be cast into the prison of separation, deprived of the goodness of this world and the hereafter. Our master Muhammad is indeed the guide of creation to Allah the Exalted. So how can one reach Allah the Exalted if he is heedless of his guide?

Indeed, some whose hearts Allah has sealed, from among those who dabble in Sufism though not being from its people, have made a statement close to disbelief, or rather it is disbelief itself: that the excessive remembrance of the Prophet, peace and blessings of Allah be upon him, is a veil from Allah the Exalted. Some misguided people have forged similar expressions, saying: 'If the declaration of faith (Tahleel) is separated from the affirmation of the Messengership (Risalah), it would be more profound and quicker in impacting the meaning of Monotheism (Tawhid).' He argued for his misguidance and the deception of his devil by saying that the Tahleel has one meaning and the affirmation of Messengership has another meaning, and when different meanings confront the inner self, the impact weakens and the fruit is distanced.

[Urdu Text Section]: ...maintain an attachment to the pure hem of the Holy Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) as well, because the Holy Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) is the greatest gate and means to Allah the Exalted, such that no goodness of this world or the hereafter will be available without being attached to him. Therefore, whoever was heedless of the pure remembrance of the Holy Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) and of holding his hem (peace and blessings of Allah be upon him) remained unsuccessful and, by being deprived of the goodness of this world and the hereafter, was cast into the prison of disconnection. Our Master (peace and blessings of Allah be upon him) is indeed the guide of the creation towards Allah the Exalted; how can one who is heedless of his guide attain access to Allah the Exalted!

A person whose heart has been sealed by God, who occupies himself with Sufism although he is not among the people of Sufism, said something close to disbelief or disbelief itself: that doing excessive remembrance of the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) becomes a veil from God Almighty. And a misguided person, forging a similar statement, said that only 'La ilaha illa Allah' should be said and 'Muhammadur Rasulullah' should not be said, then this meaning would be more eloquent and faster in its impact on monotheism. He argues for his misguidance and the devil's deception by saying that the meaning of 'La ilaha illa Allah' is one thing and the meaning of 'Muhammadur Rasulullah' is another. When different meanings enter the inner self, the impact becomes weak and the fruit [is lost]...

फ़तावा रज़विया, जिल्द 9

[अरबी पाठ अनुभाग]: हुज़ूर सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम के दामन-ए-पाक से वाबस्तगी भी रखे, क्योंकि हुज़ूर सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम अल्लाह तआला का वह महान द्वार हैं कि दीन और दुनिया की कोई भी भलाई उनसे वाबस्तगी के बिना प्राप्त नहीं होती। जो हुज़ूर सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम के ज़िक्र और उनसे वाबस्तगी से गाफ़िल हुआ, उसने अपना मक़सद नहीं पाया और वह जुदाई की जेल में डाल दिया गया, दुनिया और आख़िरत की भलाई से महरूम रहा। हमारे आक़ा मुहम्मद (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ही मख़लूक़ के अल्लाह की तरफ़ रहनुमा हैं। तो जो अपने रहनुमा से ही गाफ़िल हो, वह अल्लाह तक कैसे पहुँच सकता है?

कुछ ऐसे लोग जिनके दिलों पर अल्लाह ने मुहर लगा दी है, और जो तसव्वुफ़ का दावा करते हैं जबकि वे उसके अहल नहीं हैं, उन्होंने कुफ़्र के क़रीब या ऐन कुफ़्र वाली बात कही है कि नबी सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम का बहुत ज़्यादा ज़िक्र करना अल्लाह तआला से हिजाब (पर्दा) बन जाता है। और कुछ गुमराहों ने इसी तरह के जुमले गढ़े हैं, जैसे: 'अगर तहलील (ला इलाहा इल्लल्लाह) को रिसालत (मुहम्मदुर रसूलुल्लाह) की गवाही से अलग कर दिया जाए, तो यह तौहीद के मायने की तासीर में ज़्यादा गहरा और तेज़ होगा।' उसने अपनी गुमराही और शैतानी बहकावे के लिए यह तर्क दिया कि तहलील का अर्थ अलग है और रिसालत का अर्थ अलग है, और जब अंतर्मन पर अलग-अलग अर्थ आते हैं, तो तासीर कमज़ोर हो जाती है और फल दूर हो जाता है।

[उर्दू पाठ अनुभाग]: ...अक़दस सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम के दामन-ए-पाक से वाबस्तगी भी रखे, क्योंकि हुज़ूर अक़दस सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम खुदा-ए-बरतर के सबसे महान द्वार और माध्यम हैं कि दुनिया और आख़िरत की कोई भी भलाई उनसे वाबस्तगी के बिना प्राप्त नहीं होगी। इसलिए जो सरकार-ए-अक़दस सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम के ज़िक्र-ए-पाक और हुज़ूर सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम का दामन थामने से गाफ़िल हुआ, वह नाकाम रहा और उसे दुनिया व आख़िरत की भलाई से महरूम करके बे-तअल्लुकी के कैदखाने में डाल दिया गया। हमारे आक़ा सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ही तो खुदा-ए-बरतर की जानिब मख़लूक़ के रहबर हैं, जो अपने रहबर ही से गाफ़िल हो, उसे खुदा तआला तक रसाई कैसे हासिल होगी!

एक ऐसे व्यक्ति ने, जिसके दिल पर खुदा ने मुहर लगा दी है, जो तसव्वुफ़ का शौक़ रखता है हालाँकि वह अहल-ए-तसव्वुफ़ में से नहीं है, कुफ़्र के करीब या ऐन कुफ़्र की बात कही है कि नबी सल्लल्लाहु

अलैहि वसल्लम का ज़्यादा ज़िक्र करना खुदा तआला से हिजाब बन जाता है। और एक गुमराह ने इसी तरह की बात गढ़ते हुए कहा कि सिर्फ'ला इलाहा इल्लल्लाह' कहा जाए, 'मोहम्मदुर रसूलुल्लाह' न कहा जाए, तो यह तौहीद के मायने की तासीर में ज़्यादा बलीग़ और ज़्यादा तेज़ होता है। वह अपनी इसी गुमराही और शैतान की मुलम्मा-कारी पर यों तर्क देता है कि 'ला इलाहा इल्लल्लाह' का अर्थ और है और 'मोहम्मदुर रसूलुल्लाह' का अर्थ और। जब बातिन पर अलग-अलग अर्थों का आगमन होता है, तो तासीर कमज़ोर हो जाती है और फल...

पृष्ठ 90 ऑफ़ 948

التماسك باذياله صلى الله تعالىٰ عليہ وسلم اذهو صلى الله تعالىٰ عليہ وسلم باب الله الاعظم الذى لا ينال كل خير دينا واخرى الا بالتعلق به صلى الله تعالىٰ عليہ وسلم فمن غفل ذكره صلى الله تعالىٰ عليہ والتمسك به صلى الله تعالىٰ عليہ وسلم لم ينل مقصوده وكان مرميا به في سجن القطعيہ محروما به من خير الدنيا والأخرة وسيدنا محمد لهودليل الخلق الى الله تعالىٰ فكيف يصل الى الله تعالىٰ من غفل عن دليله - وقد قال بعض من طبع الله على قلبه ممن يعاطى التصوف وليس هو من اهله مقالة قريبة من الكفر اوهى الكفر بعينه ان الاكثار من ذكر النبى صلى الله تعالىٰ عليہ وسلم حجاب عن الله تعالى وسبك بعض الضالين مثل هذه العبارة فقال اذا افرد التهايل عن اثبات الرسالة كان ابلغ واسرع في تاثير معنى التوحيد واحتج لضلاله وتسويل شيطانه بان قال للتهليل معنى والاثبات الرسالة معنى واذا اختلف المعانى على الباطن ضعف التاثير وبعدت الثمرة

اقدس صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کے دامنِ پاک سے وابستگی بھی رکھے اس لئے کہ حضور اقدس صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم خدائے برتر عظیم ترین باب اور ذریعہ ہیں کہ دنیا و آخرت کی کوئی بھلائی ان سے وابستگی کے بغیر دستیاب نہ ہوگی۔ اس لئے جو سرکارِ اقدس صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کے ذکرِ پاک اور حضور صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کا دامن تھامنے سے غافل ہوا وہ نامراد رہا اور اسے دنیا و آخرت کی بھلائی سے محروم کر کے بے تعلقی کے قید خانے میں ڈال دیا گیا۔ ہمارے آقا صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم ہی تو خدائے برتر کی جانب مخلوق کے رہبر ہیں، جو اپنے رہبر ہی سے غافل ہو اسے خدا تعالیٰ تک رسائی کیسے حاصل ہو گی! ایک ایسے شخص نے۔ جس کے دل پر خدا نے مُہر کر دی ہے، جو تصوف کا شغل رکھتا ہے حالانکہ وہ اہلِ تصوف سے نہیں۔ کفر سے قریب یا بعینہ کفر کی بات کہی ہے کہ نبی صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کا زیادہ ذکر کرنا

خدائے تعالیٰ سے حجاب بن جاتا ہے۔ اور ایک گمراہ نے اسی طرح کی بات تراشتے ہوئے کہا کہ صرف لا الہ الا اللہ کہا جائے محمد رسول اللہ نہ کہا جائے تو یہ معنی توحید کی تاثیر میں زیادہ بلیغ اور زیادہ تیز ہوتا ہے۔ وہ اپنی اسی گمراہی اور شیطان کی ملمع کاری پر یوں استدلال کرتا ہے کہ لا الہ الا اللہ کا معنی اور ہے اور محمد رسول اللہ کا معنی اور۔ جب باطن پر مختلف معانی کا ورود ہوتا ہے تو تاثیر کمزور ہو جاتی ہے اور ثمرہ

Fatawa Razawiya, Volume 9

[Arabic Quote and Urdu Translation Side-by-Side]: Arabic Text: He said: In truth, joining the two mentions (of faith) is only required upon entering Islam. Some of the Imams firmly grounded in knowledge (may Allah Almighty be pleased with them) said: And this statement—we seek refuge in Allah—is among the trials which lead nowhere but to the Fire, and have no outcome except the abode of ruin. This is nothing but a deception and a lure towards the rejection of the Sharia, slipping away from its neck-collar, and nullifying its practices. If this misguided person knew what monotheistic secrets and divine wisdoms are contained under the phrase 'Muhammad is the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him)', he would have escaped that blindness and grasped the pearl of his desire. End. And Allah Almighty knows best.

Urdu Translation in Text: ...one has to go far. The need to join both Monotheism and the affirmation of Prophethood is only when one is entering Islam. The decree of some imams firmly rooted in knowledge (may Allah Almighty be pleased with them) is: God forbid! This speech is from those trials whose only abode is Hell and their end is only destruction and ruin. This is nothing but a satanic trick and enticement towards abandoning the Sharia, throwing its collar off the neck, and lawlessness from the etiquettes of the religious law. If this misguided person knew what secrets of Monotheism and symbols and wisdom of Divinity lie under the Kalima 'Muhammad is the Messenger of Allah (may Allah Almighty bless him and grant him peace)', he would have emerged from this blindness and taken the pearl of desire in his hand. End. And Allah Almighty knows best (T).

Issue Number 3: (1) Is it better to sit on the ground near the deceased? Is it forbidden on a bed (charpoy)? (2) Is it forbidden to cook bread at the house of the deceased?

The Answer: (1) There is no prohibition, and Allah Almighty knows best. (2) People do not cook due to the grief and distress of death; cooking is not forbidden by Sharia. It is Sunnah that on the first day food should be sent only for the family members and they should be urged to eat. Neither should it be sent on the second day, nor should it be sent for more people than are in the household. And Allah Almighty knows best.

^1 Sharh al-Sughra by al-Sanusi Page 91 of 948

फ़तावा-ए-रज़विया, जिल्द 9

[अरबी उद्धरण और उर्दू अनुवाद]: अरबी पाठ: कहा गया कि वास्तव में, दो साक्ष्यों (कलमों) को जोड़ने की आवश्यकता केवल इस्लाम में प्रवेश करते समय होती है। ज्ञान में गहराई रखने वाले कुछ इमामों (अल्लाह उन पर प्रसन्न हो) ने कहा: और यह कथन—अल्लाह की पनाह—उन फ़िरक़ों में से है जिनका ठिकाना केवल नर्क है, और जिनका अंत विनाश के सिवा कुछ नहीं। यह शरीअत को त्यागने, उसके जुए को गले से उतार फेंकने और उसकी रस्मों को समाप्त करने की ओर शैतानी मक्कारी और बहकावे के सिवा कुछ नहीं है। यदि इस गुमराह व्यक्ति को पता होता कि 'मुहम्मद अल्लाह के रसूल हैं (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम)' के कलिमे के नीचे एकेश्वरवाद के क्या रहस्य और दिव्यता की क्या हिकमतें छिपी हैं, तो वह इस अंधेपन से निकल आता और अपनी अभिलाषा का मोती पा लेता। और अल्लाह तआला ही बेहतर जानता है।

उर्दू अनुवाद: ...दूर जाना पड़ता है। एकेश्वरवाद और रिसालत की गवाही, दोनों को मिलाने की ज़रूरत केवल उस समय होती है जब कोई इस्लाम में प्रवेश कर रहा हो। ज्ञान में पुख्ता कुछ इमामों (अल्लाह उन पर प्रसन्न हो) का फ़रमान है कि खुदा की पनाह! यह कलाम उन फ़िरक़ों में से है जिनका ठिकाना केवल नर्क है और उनका अंत केवल तबाही और बर्बादी है। यह शरीअत को छोड़ने, उसके पट्टे को गर्दन से बाहर फेंकने और शरीअत के शिष्टाचार से स्वच्छंदता की ओर शैतान की मक्कारी और फुसलाहट के सिवा कुछ नहीं। अगर इस गुमराह को ख़बर होती कि 'मुहम्मद रसूलुल्लाह (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम)' के कलिमे के तहत तौहीद के क्या राज़ और उलूहियत के क्या संकेत और हिकमतें हैं, तो वह उस अंधेपन से निकलता और मुराद का मोती हाथ में लेता। और अल्लाह तआला ही बेहतर जानता है (त)।

मसला नंबर 3: (1) मय्यित (मृतक) के पास ज़मीन पर बैठना बेहतर है, क्या चारपाई पर बैठना मना है? (2) क्या मय्यित वाले के यहाँ रोटी पकाना मना है?

जवाब: (1) कोई पाबंदी नहीं है, और अल्लाह तआला बेहतर जानता है। (2) मौत की परेशानी के कारण वे लोग खाना नहीं पकाते; शरीअत में पकाना मना नहीं है। यह सुन्नत है कि पहले दिन केवल घर वालों के लिए खाना भेजा जाए और उन्हें खाने के लिए प्रेरित किया जाए। न तो दूसरे दिन भेजें, और न ही घर के लोगों से ज़्यादा व्यक्तियों के लिए भेजें। और अल्लाह तआला बेहतर जानता है।

^1 शरह अल-सुगरा लिस-सनूसी पृष्ठ 948 में से 91

قال وانما یحتاج الی وصل الذکرین عند الدخول فی الاسلام۔ قال بعض الائمۃ الراسخین فی العلم رضی اللہ تعالٰی عنھم وھذا المقالۃ والعیاذ باللہ من الفتن التی لامورد لہا الا النار ولا عقبی لہا سوی دار البوار وما ذلک الامکر واستدراج الی رفض الشریعۃ و الانحلال من رقبتہا وتعطیل رسومہا ولو علم ہذا الضال ماتحت قول محمد رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم من الاسرار التوحیدیۃ والحکم الالوھیۃ لانفشح عن ذلک العمی فاصاب المرمی اھ واللہ تعالٰی اعلم۔

دور جانا پڑتا ہے۔۔۔ توحید واثباتِ رسالت دونوں کو ملانے کی ضرورت صرف اس وقت ہے جب اسلام میں داخل ہو رہا ہو۔ علم میں راسخ بعض ائمہ رضی اللہ تعالٰی عنہم کا فرمان ہے کہ خدا کی پناہ! یہ کلام ان فتنوں سے ہے جن کا ٹھکانہ صرف دوزخ ہے اور ان کا انجام صرف تباہی و بربادی ہے۔ یہ شریعت کو چھوڑنے، اس کا قلادہ گردن سے باہر پھینکنے، اور آدابِ شرع سے بے قیدی کی جانب شیطان کی مکاری اور استدراج کے سوا کچھ بھی نہیں۔ اگر اس گمراہ کو خبر ہوتی کہ کلمہ محمد رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم کے تحت توحید کے اسرار اور الوہیت کے رموز و حکمت کیا کیا ہیں تو وہ اس اندھے پن سے نکلتا اور گوہر مراد کا ہاتھ میں لیتا اھ واللہ تعالٰی اعلم (ت)

مسئلہ نمبر ۳: (۱) میت کے پاس زمین پر بیٹھنا افضل ہے، چار پائی پر کیا منع ہے؟ (۲) میت والے کے یہاں کیا روٹی پکانا منع ہے؟

الجواب: (۱) کوئی ممانعت نہیں، واللہ تعالٰی اعلم (۲) موت کی پریشانی کے سبب وہ لوگ پکاتے نہیں ہیں، پکانا کوئی شرعاً منع نہیں، یہ سنت ہے کہ پہلے دن صرف گھر والوں کے لئے کھانا

بھیجا جائے اور انہیں باصرار کھلایا جائے، نہ دوسرے دن بھیجیں، نہ گھر سے زیادہ آدمیوں کے لئے بھیجیں، واللہ تعالیٰ اعلم

Volume 9 Fatawa Rizvia

Problem No. 4: 29 Jumada al-Akhira 1312 AH What do the scholars of religion say about this issue: when placing a deceased person on a board for bathing, should they be placed east-west so that their feet face the Qibla, or south-north so that their right side faces the Qibla? Please explain and be rewarded.

Answer 4: The Answer: All ways are correct; in the most correct (Asah) opinion, there is no specific determination or restriction in this matter. Act according to whichever way is feasible. In Al-Hindiya, quoting Al-Zahiriyya: The method of placing according to some of our companions is to place them lengthwise, as in the state of illness when one wants to pray by gesturing; this is the form. Some scholars chose placing them crosswise as they are placed in the grave, but the most correct view is that they should be placed however it is convenient. [1] In Hindiyyah, it is narrated from Zahiriyyah: According to some of our scholars, the way of laying down is that it should be laid lengthwise, just as in the state of illness when one wants to pray by gesturing, this is the same way. And some gentlemen preferred laying down widthwise as they are laid in the grave, and the most correct is that they should be laid however it is feasible. (T) It is similar in Bahr al-Ra’iq, Durr al-Mukhtar, and others. And Allah Almighty knows best.

Problem No. 5: 4 Safar 1320 AH Is it permissible to cut a dead man's hair after death or not?

Answer 5: The Answer: It is impermissible. In Ad-Durr: "His hair shall not be combed, meaning it is prohibitively disliked (Makruh Tahrimi), and his nails shall not be clipped unless they are broken, nor his hair cut, nor should he be circumcised." [2] And in Radd al-Muhtar from Al-Nahr. In Durr al-Mukhtar, it says: The hair of the deceased should not be combed, meaning this is prohibitively disliked, and their nails should not be clipped unless broken, nor should hair be trimmed.

Footnotes: [1] Fatawa Hindiyyah, Section 2 on Washing the Deceased, published by Noorani Kutub Khana Peshawar, 1/158. [2] Durr al-Mukhtar, Chapter on Funerals, Ghaniyah, published by Matba Mujtabai Delhi, 1/120. Page 92 of 948

खंड 9 फ़तावा रिज़विया

समस्या संख्या 4: मसाला नंबर 4: 29 जमादी-उल-आखिर 1312 हिजरी धर्म के विद्वान इस मामले में क्या कहते हैं कि मृतक को नहलाने के लिए जिस तख़्ते पर लिटाया जाता है, उसे शरई तौर पर पूरब-पश्चिम लिटाएं ताकि पैर किबले की ओर हों, या उत्तर-दक्षिण ताकि दाईं करवट किबले की ओर हो? स्पष्ट करें, आपको पुण्य मिलेगा।

उत्तर 4: उत्तर: सब तरह से सही है, सबसे सही (अस़ह) मत के अनुसार इस विषय में कोई निर्धारण या प्रतिबंध नहीं है, जो भी तरीका संभव हो उस पर अमल करें। अल-हिंदिया में ज़हीरिया से उद्धृत है: हमारे कुछ साथियों के अनुसार रखने का तरीका यह है कि उन्हें लंबाई में रखा जाए जैसा कि बीमारी की स्थिति में होता है जब कोई इशारे से नमाज़ पढ़ना चाहता है; यही रूप है। कुछ विद्वानों ने उन्हें चौड़ाई में रखना पसंद किया जैसे उन्हें कब्र में रखा जाता है, लेकिन सबसे सही मत यह है कि उन्हें वैसे ही रखा जाए जैसा सुविधाजनक हो। [1] हिन्दिया में ज़हीरिया से उद्धृत है: हमारे कुछ विद्वानों के अनुसार लिटाने का तरीका यह है कि लंबाई में लिटाया जाए जैसे बीमारी की स्थिति में जब इशारे से नमाज़ पढ़ना चाहें तो यही तरीका है, और कुछ सज्जनों ने चौड़ाई में लिटाना पसंद किया जैसे कब्र में लिटाया जाता है, और सबसे सही यह है कि जैसे उपलब्ध हो वैसे लिटाया जाए। (त) इसी तरह बहरुल राइक और दुर्रे मुख्तार आदि में है। और अल्लाह तआला बेहतर जानता है।

समस्या संख्या 5: मसाला नंबर 5: 4 सफर 1320 हिजरी क्या मरने के बाद पुरुष के बाल काटना जायज़ है या नहीं?

उत्तर 5: उत्तर: नाजायज़ है, दुर्रे मुख्तार में है: "उसके बाल नहीं संवारे जाएंगे यानी यह मकरूहे तहरीमी है, और उसके नाखून नहीं काटे जाएंगे सिवाय उनके जो टूटे हुए हों, और न ही उसके बाल और न ही उसका खतना किया जाए।" [2] और रद-उल-मुहतार में अन-नहर से। दुर्रे मुख्तार में है: मय्यत के बालों में कंघी न की जाए यानी यह मकरूहे तहरीमी है, और उसके नाखून न तराशे जाएं सिवाय उसके जो टूटा हुआ है, और न ही बाल तराशे जाएं।

पाद-टिप्पणियाँ: [1] फ़तावा हिन्दिया, दूसरा अध्याय, जनाज़ा के गुस्ल के बारे में, नूरानी कुतुब खाना पेशावर द्वारा प्रकाशित, 1/158 [2] दुर्रे मुख्तार, नमाज़-ए-जनाज़ा का अध्याय, गनिया, मतबा मुजतबाई दिल्ली द्वारा प्रकाशित, 1/120 पृष्ठ 92/948

جلد نہم فتاویٰ رضویہ

مسئلہ نمبر ۴: ۲۹ جمادی الآخرہ ۱۳۱۲ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ میت کو نہلانے کے لئے جو تختے پر لٹائیں تو شرعاً شرقا غرباً لٹائیں کہ پاؤں قبلے کو ہوں، یا جنوباً شمالاً کہ دہنی کروٹ قبلہ کو ہو۔ بینوا توجروا۔

الجواب: سب طرح درست ہے، مذہب اصح میں اس باب میں کوئی تعین وقید نہیں، جو صورت میسر ہو اس پر عمل کریں۔ في الهنديه عن الظهيرية كيفية الوضع عند بعض اصحابنا الوضع طولاً كما في حالة المرض اذا ارادالصلوة با يماء، ومنهم من اختار الوضع كما يوضع في القبر والاصح انما يوضع كما تيسر اھ[1] ہندیہ میں ظہیریہ سے منقول ہے: ہمارے بعض علماء کے نزدیک لٹانے کی صورت یہ ہے کہ طول میں لٹایا جائے جیسے بیماری کی حالت میں جب اشارے سے نماز پڑھنا چاہے تو یہی صورت ہے، اور بعض حضرات نے عرض میں لٹانا پسند کیا ہے جیسے قبر میں لٹایا جاتا ہے، اور اصح یہ ہے کہ جیسے میسر ہو لٹایا جائے اھ (ت) اس طرح بحر الرائق و در مختار و غیرہا میں ہے۔ واللہ تعالٰی اعلم

مسئلہ نمبر ۵: ۴ صفر ۱۳۲۰ھ کاٹا مرد کے بال مرنے کے بعد جائز ہے یا نہیں؟

الجواب: ناجائز ہے، في الدرلايسرح شعره اى يكره تحريماً ولايقص ظفره الاالمكسور ولاشعره ولايختن[2]، وفي رد المحتار عن النهر در مختار میں ہے: میت کے بالوں میں کنگھانہ کیا جائے یعنی یہ مکروہ تحریمی ہے، اور اس کے ناخن نہ تراشے جائیں مگر جو ٹوٹا ہوا ہے، نہ ہی بال تراشے جائیں

[1] فتاوىٰ ہندیہ الفصل الثانی فی الغسل من الجنائز مطبوعہ نورانی کتب خانہ پشاور ۱/ ۱۵۸ [2] در مختار باب صلوۃ الجنائز غنیہ مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی ۱/ ۱۲۰ Page 92 of 948

Fatawa Razawiyya Volume 9

[Arabic]: From Al-Qunyah: Beautification after her death, combing, and cutting of hair is not permissible - And Allah Almighty knows best. [Urdu]: Neither should circumcision be done. It is quoted from Al-Nahr in Radd al-Muhtar, which in turn quotes from Al-Qunyah: To beautify, comb, or cut hair after her death is impermissible. And Allah Almighty knows best. (T)

Problem No. 6: What do the scholars of religion say on this matter: if a woman dies, is it permissible for the husband to bathe (perform ghusl for) her or not? Explain and be rewarded.

Answer: It is impermissible.

[Arabic]: In Tanwir al-Absar: A husband is prohibited from bathing her. End. [Urdu]: In Tanwir al-Absar it is stated: The husband shall be prevented from bathing his wife. (T)

As for what is reported that Sayyiduna Ali (May Allah honor his face) bathed Hazrat Batul Zahra (May Allah be pleased with her), firstly, its authenticity and suitability as a legal proof are questionable. Secondly, another narration states that Hazrat Umm Ayman (May Allah be pleased with her), the midwife of the Prophet (Peace and blessings of Allah be upon him), bathed her. Thirdly, it can mean 'commanded', which is common.

[Arabic]: It is said 'The Amir killed so-and-so' and 'The King fought such-and-such a nation'. 'The Prophet (Peace and blessings of Allah be upon him) gave the Adhan,' i.e., he commanded the Adhan to be given. [Urdu]: It is said 'The Amir killed so-and-so...' 'The King fought such-and-such a nation'... In the Hadith it says: 'The Prophet (Peace and blessings of Allah be upon him) gave the Adhan,' meaning he gave the command for Adhan. (T)

Fourthly, attributing an action to its cause (musabbib) is not objectionable. By interpreting the Hadith of Ali in these ways, the contradiction is removed. That is, Umm Ayman bathed her with her own hands, and Sayyiduna Ali (May Allah honor his face) gave the command or provided the means for the bath.

---

1 Radd al-Muhtar Ghunyah Chapter on Funeral Prayer, printed by Idara al-Tab'a al-Misriyya, Egypt 1/575 2 Tanwir al-Absar Matn al-Durr al-Mukhtar Ghunyah Chapter on Funeral Prayer, printed by Matba' Mujtabai, Delhi 1/120

फ़तावा रज़विया जिल्द 9

[अरबी]: अल-क़ुनिया से: उसकी मृत्यु के बाद श्रृंगार करना, कंघी करना और बाल काटना जायज़ नहीं है - और अल्लाह तआला बेहतर जानता है। [उर्दू]: न खतना किया जाए। रद अल-मुह्तार में अन-नह्र से और उसमें अल-क़ुनिया से उद्धृत है: उसकी मृत्यु के बाद श्रृंगार करना, कंघी करना और बाल काटना नाजाएज़ है। और अल्लाह तआला बेहतर जानता है। (त)

मसला नंबर 6: दीन के उलेमा इस मसले में क्या फ़रमाते हैं कि अगर औरत मर जाए तो क्या शौहर का उसे ग़ुस्ल (स्नान) देना जायज़ है या नहीं? बयान फ़रमाएं, सवाब पाएं।

जवाब: नाजाएज़ है।

[अरबी]: तनवीर अल-अब्सार में है: शौहर को उसे ग़ुस्ल देने से मना किया जाएगा। अ.ह. [उर्दू]: तनवीर अल-अब्सार में है: शौहर को बीवी के ग़ुस्ल से रोका जाएगा। (त)

और वह जो रिवायत है कि सैयदुना अली (करम अल्लाह वजहु) ने हज़रत बतुल ज़हरा (रज़ियल्लाहु अन्हा) को ग़ुस्ल दिया, अव्वल तो इसकी सेहत और दलील के तौर पर काबिलियत गौर करने की ज़रूरत है। दूसरा यह कि दूसरी रिवायत के मुताबिक़ उन्हें हज़रत उम्मे अयमन (रज़ियल्लाहु अन्हा), जो नबी सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम की दाई थीं, ने ग़ुस्ल दिया। तीसरा यह कि 'ग़ुस्ल देने' का अर्थ 'हुक्म देना' भी हो सकता है, जैसा कि आम है।

[अरबी]: कहा जाता है 'अमीर ने फलां को कत्ल किया' और 'बादशाह ने फलां क़ौम से जंग की'। 'नबी सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने अज़ान दी' यानी अज़ान का हुक्म दिया। [उर्दू]: कहा जाता है 'अमीर ने फलां को कत्ल किया...' 'बादशाह ने फलां क़ौम से जंग की'... हदीस में आया है: 'नबी सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने अज़ान दी' यानी अज़ान का हुक्म दिया। (त)

चौथा यह कि किसी काम का श्रेय उसके कारण (सबब) को देना अनुचित नहीं है। हदीस-ए-अली को इन पहलुओं पर महमूल करने से विरोधाभास खत्म हो जाता है, यानी उम्मे अयमन ने अपने हाथों से नहलाया और सैयदुना अली (करम अल्लाह वजहु) ने हुक्म दिया या ग़ुस्ल का सामान मुहैया कराया।

---

1 रद अल-मुह्तार ग़ुनिया, जनाज़े की नमाज़ का बाब, इदारा अत-तबा'अत अल-मिसरिया, मिस्र 1/575 2 तनवीर अल-अब्सार मतन अद-दुर्र अल-मुख्तार ग़ुनिया, जनाज़े की नमाज़ का बाब, मतबा मुजतबाई, दिल्ली 1/120

فتاوٰی رضویہ جلد نہم

عن القنیة، التزیین بعد موتها والامتشاط وقطع الشعر لایجوز - واللہ تعالٰی اعلم نہ ختنہ کیا جائے۔ ردالمحتار میں نہر سے، اس میں قنیہ سے منقول ہے: اس کے مرنے کے بعد زینت کرنا، کنگھا کرنا بال کاٹنا ناجائز ہے۔ واللہ تعالٰی اعلم (ت)

مسئلہ نمبر ٦: کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ عورت مر جائے تو شوہر کو اسے غسل دینا جائز ہے یا نہیں؟ بینوا توجروا۔

الجواب: ناجائز ہے،

فی تنویر الابصار، یمنع زوجها من غسلها اھ تنویر الابصار میں ہے : خاوند کو بیوی کے غسل سے منع کیا جائے گا۔ (ت)

اور وہ جو منقول ہوا کہ سیدنا علی کرم اللہ وجہہ نے حضرت بتول زہرا رضی اللہ تعالٰی عنہا کو غسل دیا، اولاً اسکی ایسی صحت ولیاقت حجیت محل نظر ہے۔ ثانیاً دوسری روایت یوں ہے کہ اس جناب کو حضرت ام ایمن رضی اللہ تعالٰی عنہا نبی صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم کی دائی نے غسل دیا۔ ثالثاً بمعنی امر، شائع،

یقال قتل الامیر فلاناً وقاتل الملک القوم الفلانی "اذن النبی صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم" ای امر بالتاذین۔ کہا جاتا ہے "امیر نے فلاں کو قتل کیا۔" "بادشاہ نے فلاں قوم سے جنگ کی"۔ حدیث میں آیا : نبی صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم نے اذان دی" یعنی اذان کا حکم دیا۔ (ت)

رابعاً اضافت فعل بسوئے مسبب غیر مستنکر اور حدیث علی ان وجوہ پر محمول کرنے سے تعارض مرتفع یعنی ام ایمن نے اپنے ہاتھوں سے نہلایا اور سیدنا علی کرم اللہ وجہہ نے حکم دیا یا اسباب غسل کو مہیا فرمایا۔

---

1 ردالمحتار غنیہ باب صلوۃ الجنائز مطبوعہ ادارۃ الطباعۃ المصریۃ مصر ۱ / ۵۷۵ 2 تنویر الابصار متن الدر المختار غنیہ باب صلوۃ الجنائز مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی ۱ / ۱۲۰

Fifthly, this was a special distinction for Mawla Ali (may Allah honor his face); it is not permissible to apply analogy to others based on him. The reason why our scholars forbid washing the body of one's deceased wife is that upon death, due to the disappearance of the subject, the ownership of the marriage ends, so the husband becomes a stranger (non-mahram).

As Malik al-Ulama explained in al-Bada'i', and the absolute researcher (al-Muhaqqiq al-Mutlaq) explained in al-Fath (Fath al-Qadir), and other scholars in other books. (T)

However, the relationship of the Prophet (may Allah's peace and blessings be upon him) remains for all eternity and will never be severed.

Al-Hakim narrated and authenticated it, and Al-Bayhaqi narrated from Ibn Umar, and Al-Tabarani in Al-Mu'jam al-Kabir from him, from Ibn Abbas, and from Al-Miswar (may Allah be pleased with them) that the Prophet (peace be upon him) said: "Every means and lineage will be severed on the Day of Resurrection except my means and my lineage." Al-Bayhaqi and Al-Daraqutni also narrated it with a chain of transmission, about which Ibn Hajar al-Makki said its narrators are from the prominent members of the Ahl al-Bayt. This is part of a long hadith from Umar ibn al-Khattab (may Allah be pleased with him) who heard the Prophet (peace be upon him) say: "Every kinship by marriage, means, or lineage will be severed on the Day of Resurrection except my kinship by marriage, my means, and my lineage." A similar narration from Abdullah ibn al-Zubayr (may Allah be pleased with them both) was mentioned by Ibn Hajar, who said Al-Dhahabi said its chain is sound (salih).

Al-Hakim, with the benefit of authentication, and Al-Bayhaqi narrate from Ibn Umar. Al-Tabarani in Mu'jam al-Kabir narrate from Ibn Umar, Ibn Abbas, and Miswar (may Allah be pleased with them) from the Prophet (may Allah's peace and blessings be upon him). The Master (peace be upon him) said: "Every relationship and every lineage will break on the Day of Resurrection except my relationship and lineage, which will remain." Al-Bayhaqi and Al-Daraqutni narrated a long hadith - about the chain of which Imam Ibn Hajar al-Makki said its narrators are from the elders of the Ahl al-Bayt. Umar bin al-Khattab (may Allah be pleased with him) narrates that he heard the Holy Prophet (may Allah's peace and blessings be upon him) say: "Every marital relationship, or mean, or lineage will be severed on the Day of Resurrection

except my marital relationship, means, and lineage, which will remain." Similar meaning is reported from Hazrat Abdullah bin Zubair.

1. Al-Mustadrak 'ala al-Sahihayn, "Every lineage and means will be severed...", published by Dar al-Fikr, Beirut, 3/122.
2. Durr-e-Mansoor, under "There will be no lineage among them," Library of Ayatollah al-Uzma, Qom, Iran, 5/15.
3. Durr-e-Mansoor, under "There will be no lineage among them," Library of Ayatollah al-Uzma, Qom, Iran, 5/15.

पाँचवाँ, मौला अली (करामल्लाहु वज्हहुल करीम) के लिए यह एक विशेषता थी; दूसरों का उन पर कयास (तुलना) करना जायज़ नहीं है। हमारे उलेमा जो पत्नी के ग़ुस्ल (स्नान) से मना फरमाते हैं, उसकी वजह यही है कि मृत्यु के कारण निकाह का स्वामित्व समाप्त हो जाता है, अतः पति अब अजनबी हो गया है।

जैसा कि मलिक उल-उलेमा ने 'बदाइ' में, मुहाक़्क़िक़ अल-इतक़ाक़ ने 'फ़तहुल क़दीर' में और अन्य हज़रात ने दूसरी किताबों में इफादा फरमाया (स्पष्ट किया)। (त)

लेकिन नबी (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) का रिश्ता अनंत काल तक बाकी है और कभी समाप्त नहीं होगा।

हाकिम ने इसे प्रमाणित किया है और बैहक़ी ने इसे हज़रत इब्ने उमर से रिवायत किया है। तबरानी ने 'मोजम कबीर' में हज़रत इब्ने उमर, हज़रत इब्ने अब्बास और हज़रत मिसवर (रज़ियल्लाहु अन्हुम) से रिवायत किया है कि नबी करीम (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने फ़रमाया: "क़यामत के दिन हर रिश्ता और हर नसब (वंश) टूट जाएगा, सिवाय मेरे रिश्ते और मेरे नसब के।" बैहक़ी और दारकुत्नी ने एक लंबी हदीस रिवायत की है - जिसकी सनद (प्रमाण) के बारे में इमाम इब्ने हजर मक्की ने फरमाया कि इसके रावी (वर्णनकर्ता) अहल-ए-बैत के बड़े लोग हैं। हज़रत उमर बिन खत्ताब (रज़ियल्लाहु अन्हु) से रिवायत है कि उन्होंने नबी करीम (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) को यह फरमाते हुए सुना: "क़यामत के दिन हर निकाह का रिश्ता या ताल्लुक या नसब खत्म हो जाएगा, सिवाय मेरे निकाह के रिश्ते, ताल्लुक और नसब के।" इसी अर्थ में हज़रत अब्दुल्ला बिन ज़ुबैर से भी रिवायत है।

हाकिम बा-इफादा-ए-तसहीह और बैहक़ी हज़रत इब्ने उमर से रावी हैं। और तबरानी मोजम कबीर में हज़रत इब्ने उमर, हज़रत इब्ने अब्बास और हज़रत मिसवर (रज़ियल्लाहु अन्हुम) से वो नबी करीम (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) से रावी हैं। सरकार ने फ़रमाया: हर रिश्ता और हर नसब क़यामत के दिन टूट जाएगा मगर मेरा रिश्ता और नसब बाकी रहेगा। बैहक़ी और दारकुत्नी एक तवील हदीस - जिसकी सनद से मुताल्लिक़ इमाम इब्ने हजर मक्की ने फ़रमाया कि उसके रिजाल (रावी), अकाबिर अहल-ए-बैत से हैं। हज़रत उमर बिन खत्ताब (रज़ियल्लाहु अन्हु) से रावी हैं कि उन्होंने नबी करीम (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) को यह फरमाते हुए सुना हर रिश्ता निकाह या क़राबत या नसब

क़यामत के दिन मुन्क़ते (समाप्त) हो जाएगा मगर मेरा रिश्ता निकाह व क़राबत व नसब बाकी रहेगा। इसी के हम-मानी हज़रत अब्दुल्लाह बिन ज़ुबैर से मरवी है।

1. अल-मुस्तदरक अलस-सहीहैन, "हर नसब और सबब खत्म हो जाएगा...", दारुल फ़िक्र, बेरूत, 3/122।
2. दुर्र-ए-मंसूर, आयत "फ़ला अनसाबा बैनहुम" के तहत, मकतबा आयतुल्ला अल-उज़मा, क़ुम, ईरान, 5/15।
3. दुर्र-ए-मंसूर, आयत "फ़ला अनसाबा बैनहुम" के तहत, मकतबा आयतुल्ला अल-उज़मा, क़ुम, ईरान, 5/15।

خامساً مولٰی علی کرم اللہ وجہہ کے لئے خصوصیت تھی اوروں کا قیاس ان پر روانہیں۔ ہمارے علماء جو غسل زوجہ سے منع فرماتے ہیں اس کی وجہ یہی ہے کہ موت بسبب انعدام محل، ملک نکاح ختم ہو جاتی ہے، تو شوہر اجنبی ہو گیا،

کما افادہ ملك العلماء فی البدائع والمحقق حیث اطلق فی الفتح وغیرھما فی غیرھما۔ جیسا کہ ملک العلماء نے بدائع میں، محقق علی الاطلاق نے فتح القدیر میں اور دوسرے حضرات نے دوسری کتابوں میں افادہ فرمایا۔ (ت)

مگر نبی صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم کا رشتہ ابد الآباد تک باقی ہے کبھی منقطع نہ ہوگا۔

فقد خرج الحاکم وصححه والبیهقي عن ابن عمر والطبراني في الکبیر عنه وعن ابن عباس وعن المسور رضي اللہ تعالی عنهم عن النبي صلی اللہ تعالی علیه وسلم انه قال کل سبب ونسب ومنقطع یوم القیمة الا سببي ونسبي 1 واخرج البیهقي والدار قطنی بسند، قال ابن حجر المکی رجاله من اکابر اهل البیت في حدیث طویل فیه عن عمر بن الخطاب رضي اللہ تعالی عنه انه سمع النبي صلی اللہ تعالی علیه وسلم یقول کل صهرا وسبب اونسب ینقطع یوم القیمة الا صهری وسببی ونسبی 2 وقد روی نحوه من حدیث عبداللہ بن زبیر رضی اللہ تعالیٰ عنها قال ابن حجر قال الذهبی و اسناده صالح 3 اھ۔ ونقل حاکم بافادہ تصحیح اور بیہقی حضرت ابن عمر سے راوی ہیں۔ اور طبرانی معجم کبیر میں حضرت ابن عمر، حضرت ابن عباس اور حضرت مسور رضی اللہ تعالٰی عنہم سے وہ نبی کریم صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم سے راوی ہیں۔ سرکار نے فرمایا: ہر رشتہ اور ہر نسب قیامت کے دن ٹوٹ جائے گا مگر میرا رشتہ اور نسب باقی رہے گا۔ بیہقی اور دار قطنی ایک طویل حدیث -- جس کی سند سے

متعلق امام ابن حجر مکی نے فرمایا کہ اس کے رجال، اکابر اہل بیت سے ہیں۔ حضرت عمر بن خطاب رضی اللہ تعالٰی عنہ سے راوی ہیں کہ انہوں نے نبی کریم صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم کو یہ فرماتے ہوئے سنا ہر رشتہ نکاح یا قرابت یا نسب قیامت کے دن منقطع ہوجائے گا مگر میرا رشتہ نکاح و قرابت و نسب باقی رہے گا اسی کے ہم معنی حضرت عبد اللہ بن زبیر

1 المستدرک علی الصحیحین کل نسب و سبب ینقطع الخ مطبوعہ دارالفکر بیروت ۳/۱۲۲ 2 درمنثور تحت فلانساب بینہم مکتبۃ آیۃ اللہ العظمیٰ قم ایران ۵/۱۵ 3 درمنثور تحت فلانساب بینہم مکتبۃ آیۃ اللہ العظمیٰ قم ایران ۵/۱۵

Fatawa Razawiyya Volume 9

(Table Content) Arabic Text: Al-Munadi relates from Az-Zahabi that he said it is not broken. I say if its authenticity is established with us, and Ibn Hajar has said it is authentic from Umar, then how? Especially when its paths are multiple and it has come from a group of companions, may Allah be pleased with them. Urdu Translation: It is narrated from both of them (may Allah be pleased with them). Ibn Hajar writes that Az-Zahabi said: Its chain is righteous (Salih). And Munadi quotes that Az-Zahabi said: Its chain is not broken (non-disconnected). I say if authenticity is proven according to us. Ibn Hajar has termed the Hadith narrated from Hazrat Umar as Sahih (authentic). Why shouldn't it be at least 'Hasan' (fair) when its chains of narration are numerous and narrated by a group of companions (may Allah be pleased with them)? (T)

Therefore, it is narrated that Hazrat Abdullah bin Masood (may Allah be pleased with him) objected to Hazrat Ali (Karam Allahu Wajhahu) regarding this matter. Hazrat Murtaza (Ali) replied in response:

(Table Content) Arabic Text: Do you not know that the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) said, "Indeed, Fatima is your wife in this world and the hereafter"? 1. Urdu Translation: Don't you know that the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) said: Fatima is your wife in this world and the hereafter.

Observe, he pointed towards this specialty that this relationship is not broken. He did not reply that it is permissible for a husband to bathe his wife. This further proves that among the Sahaba (Companions), the stance in the mentioned case was one of non-permissibility. That is why when Hazrat Ibn Masood objected, Hazrat Murtaza accepted it and replied highlighting his specialty.

(Table Content) Arabic Text: This is a summary of what is in Durr al-Mukhtar and Radd al-Muhtar from the commentary of Al-Majma' along with precious additions. And Allah knows best. Urdu Translation: This is the summary of what is cited from Sharh Majma' al-Anhur in Durr al-Mukhtar and Radd al-Muhtar. Furthermore, there are some other valuable insights. (T) And Allah Almighty knows best.

Problem Number 7: From Old City Bareilly, 22 Safar 1317 AH. What do the scholars of religion say on this matter: during life, is a husband a guardian (Wali) of his wife like parents or not? If he is, does that guardianship remain after death or not? If it

remains, is it permissible to touch, look at the face, or give permission for the funeral prayer? And does the marriage remain or not? One gentleman says that after the death of Fatima Siddiqa (may Allah be pleased with her), Hazrat Ali (Karam Allahu Wajhahu) bathed her with his own hands. If this is true...

1 Radd al-Muhtar, Chapter on Funeral Prayers, printed by Al-Matba'at al-Misriyya, Egypt, 1/576. Page 95 of 948

फ़तावा रज़विया जिल्द 9

(तालिका सामग्री) अरबी पाठ: अल-मुनादी अज़-ज़हबी से उद्धृत करते हैं कि उन्होंने कहा कि यह विच्छिन्न नहीं है। मैं कहता हूँ कि यदि हमारे पास इसकी प्रामाणिकता सिद्ध हो जाए, और इब्न हजर ने कहा है कि यह उमर से प्रामाणिक है, तो कैसे? विशेष रूप से जब इसके मार्ग अनेक हैं और यह सहाबा के एक समूह से आया है, अल्लाह उन पर प्रसन्न हो। उर्दू अनुवाद: उन दोनों (अल्लाह उनसे प्रसन्न हो) से वर्णित है। इब्न हजर लिखते हैं कि ज़हबी ने कहा: इसकी सनद (श्रृंखला) सालेह है। और मुनादी उद्धृत करते हैं कि ज़हबी ने कहा: इसकी सनद गैर-मुनक़ते (विच्छिन्न नहीं) है। मैं कहता हूँ कि अगर हमारे नज़दीक सेहत (प्रामाणिकता) साबित हो। इब्न हजर ने हज़रत उमर से वर्णित हदीस को सही बताया है। कम से कम 'हसन' क्यों नहीं जबकि इसके तरीके कई हैं और सहाबा की एक जमात (अल्लाह उन पर प्रसन्न हो) से वर्णित है। (त)

इसीलिए उल्लेखित है कि हज़रत अब्दुल्ला बिन मसूद (रज़ियल्लाहु अन्हु) ने हज़रत अली (करमल्लाहु वजहुहू) पर इस मामले में आपत्ति की, हज़रत मुर्तज़ा (अली) ने उत्तर में फ़रमाया:

(तालिका सामग्री) अरबी पाठ: क्या तुम नहीं जानते कि अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने फ़रमाया, "निश्चित रूप से फातिमा दुनिया और आख़िरत में तुम्हारी पत्नी है"? 1. उर्दू अनुवाद: क्या तुम्हें खबर नहीं कि रसूलुल्लाह (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने फ़रमाया: फातिमा दुनिया और आख़िरत में तुम्हारी बीवी है।

तो देखो, उन्होंने इस विशेषता की ओर इशारा किया कि यह रिश्ता विच्छिन्न नहीं होता। उन्होंने यह जवाब नहीं दिया कि पति के लिए अपनी पत्नी को नहलाना जायज़ है। इससे और भी साबित हुआ कि सहाबा के नज़दीक उपर्युक्त सूरत में गैर-जवाज़ (अवैधता) का मज़हब था। तभी तो जब हज़रत इब्न मसूद ने इंकार फ़रमाया तो हज़रत मुर्तज़ा ने उसे स्वीकार कर अपनी विशेषताओं से उत्तर दिया।

(तालिका सामग्री) अरबी पाठ: यह दुर्र अल-मुख्तार और रद अल-मुह्तार में अल-मजमा की व्याख्या से जो कुछ है उसका सारांश है, साथ ही बहुमूल्य वृद्धियाँ भी हैं। और अल्लाह बेहतर जानता है। उर्दू अनुवाद: यह उसका सारांश है जो दुर्रे मुख़्तार और रद-उल-मुह्तार में शरह मजम'उल अनहुर से उद्धृत है। इसके अलावा कुछ और कीमती नफ़ास (अंतर्दृष्टि) भी हैं। (त) वल्लाहु तआला आलम (और अल्लाह तआला ही बेहतर जानने वाला है)।

मसला नंबर 7: शहर कोहना बरेली से, 22 सफ़र 1317 हिजरी। धर्म के विद्वान इस विषय में क्या कहते हैं कि जीवन काल में पति अपनी पत्नी का वली (अभिभावक) माता-पिता की तरह होता है या नहीं? यदि होता है, तो मृत्यु के बाद विलायत (अभिभावकत्व) बनी रहती है या नहीं? यदि बनी रहती है, तो हाथ लगाना, चेहरा देखना, नमाज़ की अनुमति देना जायज़ है या नहीं? और निकाह बना रहता है या नहीं? और एक साहब फ़रमाते हैं कि फ़ातिमा सिद्दीक़ा (रज़ियल्लाहु अन्हा) के निधन के बाद हज़रत अली (करमल्लाहु वजहुहू) ने अपने हाथों से ग़ुस्ल (स्नान) दिया, अगर यह बात सच है...

1 रद-उल-मुह्तार, किताबुल जनाइज़, मिस्र प्रिंटिंग प्रेस, मिस्र 1/576. पृष्ठ 95/948

فتاوٰی رضویہ جلد نہم

(جدول) عربی عبارت: المنادی من الذهبي انه قال غیر منقطع قلت ان ثبت عندنا الصحة وقد قال ابن حجر انه صح عن عمر کیف وقد تعدد طرقه وجاء عن جماعة من الاصحاب رضی اللہ تعالٰی عنهم۔

اردو ترجمہ: رضی اللہ تعالٰی عنہما سے مروی ہے۔ ابنِ حجر لکھتے ہیں کہ ذہبی نے کہا : اس کی سند صالح ہے اھ اور منادی ناقل ہے کہ ذہبی نے کہا : اس کی سند غیر منقطع ہے۔ میں کہتا ہوں اگر ہمارے نزدیک صحت ثابت ہو۔ ابنِ حجر نے حضرت عمر سے مروی حدیث کو صحیح بتایا ہے۔ اقل صحت کیوں نہیں جبکہ اس کے طریق متعدد ہیں اور ایک جماعتِ صحابہ رضی اللہ تعالٰی عنہم سے مروی ہے (ت)

اسی لئے منقول ہوا کہ سیدنا علی کرم اللہ تعالٰی وجہہ پر حضرت عبداللہ بن مسعود رضی اللہ تعالٰی عنہ نے اس امر پر اعتراض کیا ، حضرت مرتضٰی نے جواب میں ارشاد فرمایا :

(جدول) عربی عبارت: اما علمت ان رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم قال ان فاطمة زوجتك في الدنیا والآخرة ۱۔ اردو ترجمہ: کیا تمہیں خبر نہیں کہ رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم نے فرمایا : فاطمہ تیری بی بی ہے دنیا و آخرت میں۔

تو دیکھو اس خصوصیت کی طرف اشارہ فرمایا کہ یہ رشتہ منقطع نہیں۔ یہ جواب نہ فرمایا کہ شوہر کو اپنی عورت کو نہلانا روا ہے۔ اس سے اور بھی ثابت ہوا کہ صحابہ کرام کے نزدیک صورتِ مذکورہ میں مذہبِ عدم جواز تھا۔ جب تو حضرت ابن مسعود نے انکار فرمایا اور حضرت مرتضٰی نے اسے تسلیم فرما کر اپنی خصوصیات سے جواب دیا۔

(جدول) عربی عبارت: وھذا خلاصة ما في الدر المختار ورد المحتار عن شرح المجمع مع زیادات النفائس واللہ تعالیٰ اعلم۔ اردو ترجمہ: یہ اس کا خلاصہ ہے جو دُرّ مختار اور ردالمحتار میں شرح مجمع الانہر سے منقول ہے مزید برآں کچھ نفیس افادات بھی ہیں۔ (ت) واللہ تعالٰی اعلم

مسئلہ نمبر ۷: از شہر کہنہ بریلی ۲۲ صفر ۱۳۱۷ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ حالت زندگی میں خاوند اپنی بی بی کا ولی ہوتا ہے مانند ماں باپ کے یا نہیں؟ جو ہوتا ہے تو بعد موت کے ولایت قائم رہتی ہے یا نہیں؟ اگر رہتی ہے تو ہاتھ لگانا، منہ دیکھنا، اجازت نماز کی دینا جائز ہے یا نہیں؟ اور نکاح رہتا ہے یا نہیں؟ اور ایک صاحب فرماتے ہیں کہ بعد وفات فاطمہ صدیقہ رضی اللہ تعالیٰ عنہا کے حضرت علی کرم اللہ وجہہ نے اپنے ہاتھ سے غسل دیا ، اگر یہ بات حق

1 ردالمحتار باب صلوۃ الجنائز مطبوعہ الطباعۃ المصریۃ مصر ۱ / ۵۷۶ Page 95 of 948

Fatawa-e-Razviya Volume 9

...then is it permissible for us also to give a bath (ghusl) to our wives or not? Explain and you will be rewarded.

The Answer: The husband is not the guardian (wali), neither during life nor after death. Nor does the marriage remain established after the death of the wife. And it is not proven from any authentic (Sahih) Hadith that Mawla Ali (Karam Allah Wajhuhu al-Karim) gave the bath with his own hands, and even if it were so, for the Messenger of Allah (Sallallahu Ta'ala Alayhi Wasallam), the ties are not severed by death whereas for everyone else the ties are severed. This subject itself is mentioned in Hadith, so it is not permissible to analogize (qiyas) others upon them. A man cannot give a bath to his wife. As mentioned in 'Al-Durr' and general books. Allah Ta'ala knows best.

Problem No. 8: Sent by Muhammad Akram Hussain from Hardoi via Maulana Hamid Hussain Sahib, First Teacher of Madrasa Ahle Sunnat, 25 Jamadi al-Ula 1322 AH.

What do the scholars of religion say regarding this matter? A gentleman stated before me that if someone's wife or a woman's husband dies, then the husband cannot give ghusl to the wife and the wife to the husband. What to speak of ghusl, they cannot even touch, whether people to give ghusl are present or not. Because marriage is only for this world; when one of the two dies, the marriage is annulled. Once the marriage is annulled, the woman cannot touch the man and the man cannot touch the woman, touching becomes forbidden (haram) for them. Can this be so? I request to be honored with a quick answer. Explain and you will be rewarded.

The Answer: This issue is correct regarding the man, that after the death of the wife, he cannot give her ghusl, nor can he touch her body because through death the woman is no longer the place of marriage at all. The permissibility of touching was only based on marriage, otherwise, husband and wife are essentially complete strangers. Now that the marriage has ceased, the permissibility of touching has also gone. And regarding the woman, it is also correct in the state when at the time of ghusl, the woman is not in the husband's marriage. For example, the man had given a final divorce (Talaq-e-Ba'in), or after the husband's death, the waiting period (Iddat) has passed, for instance, the woman was pregnant and the child was born immediately upon the husband's death so that now no Iddat remains and she has completely left the state of marriage. Similarly, God forbid, after the husband's death, the woman became an apostate and then returned to Islam, or she touched the husband's son with lust; in all these cases, the marriage ceased. Contrary to this, if

the husband died and the woman is in the waiting period of death (Iddat-e-Wafat), or the husband had given a revocable divorce (Talaq-e-Raj'i) and the Iddat was still remaining when he died, in these cases, the woman can give ghusl to her husband because...

फतावी रज़विया जिल्द नहम (खंड 9)

...तो क्या हमारे लिए भी अपनी पत्नियों को ग़ुस्ल (स्नान) देना जायज़ है या नहीं? स्पष्ट करें, आपको पुण्य मिलेगा।

उत्तर: पति संरक्षक (वली) नहीं है, न जीवन में और न ही मृत्यु के बाद। न ही पत्नी की मृत्यु के बाद निकाह कायम रहता है। और यह किसी भी सही हदीस से साबित नहीं है कि मौला अली (करम अल्लाह वजहुहु अल-करीम) ने अपने हाथों से ग़ुस्ल दिया था, और अगर ऐसा मान भी लिया जाए, तो रसूल अल्लाह (सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम) के संबंध मृत्यु से नहीं टूटते जबकि अन्य सभी के संबंध टूट जाते हैं। यह विषय स्वयं हदीस में आया है, इसलिए दूसरों की तुलना उन पर करना जायज़ नहीं है। पुरुष अपनी पत्नी को ग़ुस्ल नहीं दे सकता। जैसा कि 'अल-दुर्र' और सामान्य पुस्तकों में है। अल्लाह तआला सबसे बेहतर जानता है।

मसाला नंबर 8: मुहम्मद अकरम हुसैन, हरदोई से, मौलाना हामिद हुसैन साहब, प्रथम शिक्षक मदरसा अहले सुन्नत के माध्यम से प्रेषित, 25 जमादी अल-उला 1322 हिजरी।

विद्वान इस मामले में क्या कहते हैं कि एक सज्जन ने मेरे सामने यह बयान किया कि यदि किसी व्यक्ति की पत्नी या महिला के पति का देहांत हो जाए, तो पति पत्नी को और पत्नी पति को ग़ुस्ल नहीं दे सकते। ग़ुस्ल तो क्या, वे एक-दूसरे को छू भी नहीं सकते, चाहे ग़ुस्ल देने वाले मौजूद हों या न हों। क्योंकि निकाह केवल दुनिया तक है; जब दोनों में से किसी एक की मृत्यु हो जाती है, तो निकाह समाप्त हो जाता है। जब निकाह समाप्त हो गया, तो महिला पुरुष को और पुरुष महिला को नहीं छू सकता, उन पर छूना हराम हो गया। क्या ऐसा हो सकता है? निवेदन है कि शीघ्र उत्तर से अनुग्रहित करें। स्पष्ट करें, आपको पुण्य मिलेगा।

उत्तर: यह मामला पुरुष के बारे में सही है कि वह पत्नी की मृत्यु के बाद उसे ग़ुस्ल नहीं दे सकता, न ही उसके शरीर को छू सकता है क्योंकि मृत्यु के बाद महिला निकाह का पात्र नहीं रह जाती। छूने की अनुमति केवल निकाह के आधार पर थी, अन्यथा पति-पत्नी वास्तव में अजनबी होते हैं। अब जब निकाह समाप्त हो गया, तो छूने की अनुमति भी चली गई। और महिला के बारे में भी यह उस स्थिति में सही है जब ग़ुस्ल के समय महिला पति के निकाह में न हो। उदाहरण के लिए, पुरुष ने तलाक-ए-बाइन (अंतिम तलाक) दे दिया था, या पति की मृत्यु के बाद इद्दत (प्रतीक्षा अवधि) बीत गई हो, जैसे महिला गर्भवती थी और पति की मृत्यु होते ही बच्चा पैदा हो गया ताकि अब कोई इद्दत बाकी न रहे

और वह निकाह से पूरी तरह बाहर हो गई। इसी प्रकार, खुदा न करे, पति की मृत्यु के बाद महिला धर्मत्यागी (मुरतद) हो गई, फिर इस्लाम में लौट आई, या उसने पति के बेटे को कामवासना के साथ छू लिया; इन सभी स्थितियों में निकाह समाप्त हो गया। इसके विपरीत, यदि पति मर गया और महिला इद्दत-ए-वफ़ात (शोक की अवधि) में है, या पति ने तलाक-ए-रजई (प्रतिसंहरणीय तलाक) दिया था और अभी इद्दत बाकी थी जब उसका देहांत हुआ, इन स्थितियों में महिला अपने पति को ग़ुस्ल दे सकती है क्योंकि...

पृष्ठ 948 का 96

ہے تو ہم لوگ بھی اپنی عورتوں کو غسل دیں تو جائز ہے یا نہیں؟ بینوا توجروا۔

الجواب: شوہر ولی نہیں، نہ حیات میں نہ بعد موت۔ نہ موت زوجہ سے نکاح قائم رہے۔ اور یہ کسی حدیث صحیح سے ثابت نہیں کہ مولٰی علی کرم اللہ وجہہ الکریم نے خود اپنے ہاتھ سے غسل دیا، اور بالفرض ہو بھی تو رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم کے علاقے موت سے قطع نہیں ہوتے اور سب کے علاقے قطع ہو جاتے ہیں، یہ مضمون خود حدیث میں وارد ہے تو اوروں کو اُن پر قیاس جائز نہیں، مرد اپنی عورت کو غسل نہیں دے سکتا۔ کما فی الدر وعامۃ الاسفار (جیسا کہ دُرِّمختار اور عام کتب میں ہے۔ت) واللہ تعالٰی اعلم

مسئلہ نمبر ۸: مرسلہ محمد اکرم حسین از ہر دوئی بوساطت مولنا حامد حسین صاحب مدرس اول مدرسہ اہلسنت ۲۵ جمادی الاولٰی ۱۳۲۲ھ

کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ ایک صاحب نے رو برو یہ مسئلہ بیان کیا کہ اگر کسی شخص کی عورت یا عورت کے شوہر کا انتقال ہو جائے تو شوہر عورت کو اور عورت شوہر کو غسل نہیں دے سکتی ہیں، غسل کیا معنی بلکہ چھو نہیں سکتے ہیں خواہ غسل دینے والے موجود ہوں یا نہ ہوں، کیونکہ نکاح دنیا تک ہے جب دو میں سے کسی کا انتقال ہو گیا نکاح فسخ ہو گیا۔ جب نکاح فسخ ہو گیا تو عورت مرد کو اور مرد عورت کو نہیں چھو سکتا ہے اُس پر چھونا حرام ہو گیا، آیا ایسا ہو سکتا ہے؟ مکلف ہوں کہ بہت جلد جواب سے سرفراز فرمایا جاؤں۔ بینوا توجروا

الجواب: یہ مسئلہ مرد کے بارے میں صحیح ہے کہ وہ بعد وفات زن اُسے غسل نہیں دے سکتا، نہ اُس کے بدن کو ہاتھ لگا سکتا ہے کہ موت سے عورت اصلاً محلِ نکاح نہ رہی۔ چھونے کا جواز صرف بر بنائے نکاح تھا ورنہ زن وشوہر اصل میں اجنبی محض ہوتے ہیں، اب کہ نکاح زائل ہو گیا، چھونے کا جواز بھی جاتا رہا۔ اور عورت کے بارے میں بھی صحیح ہے اُس حالت میں کہ وقتِ غسل عورت زوجیتِ زوج میں نہ ہو۔ مثلاً مرد نے طلاقِ بائن دے دی تھی یا بعد وفات شوہر عدت گزر گئی، مثلاً عورت حاملہ تھی شوہر کے انتقال ہوتے ہی بچہ پیدا ہو گیا کہ اب عدت نہ رہی اور زوجیت سے یکسر نکل گئی، اسی طرح عورت معاذ اللہ بعد وفات شوہر مرتدہ ہو گئی، پھر اسلام لے آئی یا پسرِ شوہر کو شہوت کے ساتھ چھو لیا کہ ان سب صورتوں میں نکاح زائل ہو گیا، بخلاف اس کے کہ شوہر مر گیا اور عورت عدتِ وفات میں ہے، یا شوہر نے طلاقِ رجعی دی تھی اور ہنوز عدت باقی تھی کہ اس کا انتقال ہوا، ان صورتوں میں عورت اپنے شوہر کو غسل دے سکتی ہے کہ

Volume Nine Fatawa Razawiyya

The ruling of marriage still remains.

In al-Durr al-Mukhtar: Her husband is forbidden from washing her and touching her, but not from looking at her according to the more correct opinion, and she is not forbidden from that even if she is a Dhimmi (non-Muslim citizen), provided the marriage remains. And what is considered in marriage is her capacity to wash him at the time of washing, not at the time of death. So she is forbidden from washing him if she was irrevocably divorced before his death, or if she apostatized after it and then accepted Islam, or if she touched his son with desire, because of the cessation of marriage. It is permissible for her to wash him if the husband of a Magian woman accepted Islam and died, then she accepted Islam after him; then touching him is permissible at that time, by consideration of the state of life. Summary ends.

[Corresponding Urdu Translation]: It is in Durr al-Mukhtar that it is forbidden for the husband to wash and touch the woman; looking is not forbidden. This is the most correct view, and for the woman, all this is not forbidden even if she is a Dhimmi, on the condition that the marital relationship still exists. And the consideration for this is that she is capable of washing at the time of washing, not at the time of death. So she will be forbidden from washing the husband if she became irrevocably separated before his death, or if she apostatized after his death and then accepted Islam, or if she touched his son with lust, because in these situations the marriage no longer remained. And if the husband of a Magian woman became a Muslim and died, then the woman became a Muslim after that; then giving the husband a ghusl (bath) is permissible; at that time, the permissibility of touching is based on the state of life. Summary ends (T).

In Radd al-Muhtar, it is stated: He gave her a revocable divorce (Talaq Raj'i) then died during her 'iddah (waiting period); then indeed she washes him because the ownership of marriage is not removed. Bada'i'. And Allah Almighty knows best.

[Corresponding Urdu Translation]: If a woman was given a revocable divorce and then the husband passed away during her waiting period, the woman can wash him because the ownership of marriage has not ended from this. Bada'i' (T). And Allah Almighty knows best.

Issue Number 9: From Sironj, asked by Abdul Rashid Khan Sahib, 19 Muharram al-Haram 1331 AH. A pamphlet has been publicized from Madrasa Deoband in which

this issue is written: if a man dies in a state of major impurity (Janabat) or a woman dies in a state of menstruation (Haiz), then a wet cloth should be used to clean the throat three times and the nose...

---

1. Al-Durr al-Mukhtar, Chapter of Funeral Prayer, published by Mujtabai Press Delhi, 1/120.
2. Radd al-Muhtar Ghunyah, Chapter of Funeral Prayer, Idarat al-Tiba'at al-Misriyah Egypt, 1/576.

खंड नौ फ़तावा रज़विया

अभी भी निकाह का हुक्म बाक़ी है।

दुर्रुल मुख्तार में: उसका शौहर उसे ग़ुस्ल देने और छूने से मना है, अधिक सही राय के अनुसार देखने से मना नहीं है, और वह इससे मना नहीं है भले ही वह धिम्मी (गैर-मुस्लिम नागरिक) हो, बशर्ते निकाह बाक़ी रहे। और निकाह में विचार उसका है जो ग़ुस्ल के समय उसे ग़ुस्ल देने के योग्य हो, न कि मौत के समय। अतः उसे उसे ग़ुस्ल देने से मना किया जाएगा यदि वह उसकी मृत्यु से पहले अलग हो गई हो या उसके बाद धर्मत्यागी हो गई और फिर इस्लाम ले आई, या उसने उसके बेटे को कामुकता के साथ छू लिया, क्योंकि निकाह समाप्त हो गया। और उसके लिए उसे ग़ुस्ल देना जायज़ है यदि एक पारसी औरत का शौहर मुसलमान हो गया और मर गया, फिर वह उसके बाद मुसलमान हो गई; तो उस समय छूना जायज़ है जीवन की स्थिति का विचार करते हुए। संक्षेप समाप्त।

[उर्दू अनुवाद का हिंदी रूपांतरण]: दुर्र-ए-मुख्तार में है कि शौहर के लिए औरत को ग़ुस्ल देना और छूना मना है, देखना मना नहीं। यही अधिक सही है, और औरत के लिए यह सब वर्जित नहीं है चाहे वह धिम्मी हो, बशर्ते कि वैवाहिक संबंध बाक़ी हो। और विचार इसका है कि वह ग़ुस्ल देने के समय इस योग्य हो, मरने के समय का विचार नहीं। तो उसे शौहर को ग़ुस्ल देना मना होगा यदि वह उसके मरने से पहले अलग (बाइन) हो गई हो या मरने के बाद धर्मत्यागी हो गई और फिर इस्लाम ले आई, या उसने उसके बेटे को वासना से छू लिया, क्योंकि इन स्थितियों में निकाह बाक़ी नहीं रहा। और अगर पारसी औरत का शौहर मुसलमान होकर मर गया, उसके बाद औरत मुसलमान हुई तो शौहर को ग़ुस्ल देना जायज़ है; उस समय उसे छूने का औचित्य जीवन की स्थिति का विचार करके है। संक्षेप समाप्त (त)।

रद्दुल मुहतार में है: उसने उसे रजई तलाक़ दिया, फिर उसकी इद्दत में उसकी मृत्यु हो गई, तो वह उसे ग़ुस्ल देगी क्योंकि निकाह का स्वामित्व समाप्त नहीं होता। बदाए। और अल्लाह तआला बेहतर जानता है।

[उर्दू अनुवाद का हिंदी रूपांतरण]: औरत को तलाक़-ए-रजई दी गई फिर इद्दत के दौरान उसका इंतकाल हो गया तो औरत उसे ग़ुस्ल दे सकती है क्योंकि इससे निकाह का स्वामित्व समाप्त नहीं होता। बदाए (त)। और अल्लाह तआला बेहतर जानता है।

मसला नंबर ९: सिरोंज से, अब्दुल रशीद खान साहब द्वारा पूछा गया, १९ मुहर्रम उल हराम १३३१ हिजरी। मदरसा देवबंद से एक रिसाला (पुस्तिका) प्रकाशित किया गया है जिसमें यह मसला लिखा है: यदि कोई पुरुष नापाकी (जनाबत) की स्थिति में या कोई महिला मासिक धर्म (हैज़) की स्थिति में मर जाए, तो उसके गले को गीले कपड़े से तीन बार साफ किया जाए और नाक...

---

1. दुर्रुल मुख्तार, जनाज़े की नमाज़ का अध्याय, मुजतबाई प्रेस दिल्ली, १/१२०।
2. रद्दुल मुहतार गुनिया, जनाज़े की नमाज़ का अध्याय, इदारतुल तिबा'अतुल मिस्रिया मिस्र, १/५७६।

جلد نہم فتاویٰ رضویہ

ہنوز حکم زوجیت باقی ہے۔

فی الدر المختار یمنع زوجھا من غسلھا و مسھا لا من النظر الیھا علی الاصح و ہی لا تمنع من ذلک ولو ذمیۃ بشرط بقاء الزوجیۃ والمعتبر فی الزوجیۃ صلاحیتھا لغسلہ حالۃ الغسل لاحالۃ الموت فتمنع من غسلہ لوبانت قبل موتہ او ارتدت بعدہ ثم اسلمت اومست ابنہ بشھوت لزوال النکاح وجاز لھا غسلہ لو اسلم زوج المجوسیۃ فمات فاسلمت بعدہ فحل مسھا حینئذٍ اعتبار ا بحالت الحیوۃ اہ مختصراً۔

[ترجمہ اردو]: در مختار میں ہے شوہر کے لئے عورت کو غسل دینا اور چھونا منع ہے، دیکھنا منع نہیں۔ یہی اصح ہے، اور عورت کے لئے یہ سب ممنوع نہیں اگرچہ ذمیہ ہو بشرطیکہ زوجیت باقی ہو۔ اور اعتبار اس کا ہے غسل دینے کے وقت اس قابل ہو، مرنے کے وقت کا اعتبار نہیں۔ تو اسے شوہر کو غسل دینا منع ہوگا اگر اس کے مرنے سے پہلے بائن ہوگئی یا مرنے کے بعد مرتد ہوگئی پھر اسلام لائی یا اس کے بیٹے کو شہوت سے چھو دیا کیونکہ ان صورتوں میں نکاح باقی نہ رہا۔ اور اگر مجوسیہ کا شوہر مسلمان ہو کر مر گیا اس کے بعد عورت مسلمان ہوئی تو شوہر کو غسل دینا جائز ہے اس وقت اس کو چھونے کا جواز حالتِ حیات کا اعتبار کر کے ہے اہ مختصراً (ت)

ردا لمحتار میں ہے: طلقھا رجعیا ثم مات فی عدتھا فانھا تغسلہ لانہ لا یزل ملك النکاح بدائع - واللہ تعالیٰ اعلم

[ترجمہ اردو]: عورت کو طلاق رجعی دی پھر عدت میں انتقال کر گیا تو عورت اسے غسل دے سکتی ہے اس لئے کہ اس سے ملکِ نکاح ختم نہیں ہوتی، بدائع (ت) واللہ تعالیٰ اعلم۔

مسئلہ نمبر ۹: از سرونج مسئولہ عبدالرشید خاں صاحب ۱۹ محرم الحرام ۱۳۳۱ھ مدرسہ دیوبند سے ایک رسالہ مشہور کیا گیا ہے جس میں یہ مسئلہ تحریر ہے مرد حالتِ جنابت میں یا عورت حیض کی حالت میں مر جائے تو اس کے حلق سے کوئی کپڑا تر کر کے تین مرتبہ حلق صاف کیا جائے اور ناک

---

1. در مختار باب صلوۃ الجنائز مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی ۱ / ۱۲۰

2. ردالمحتار غنیہ باب الصلوۃ الجنائز ادارۃ الطباعۃ المریۃ مصر ۱ / ۵۷۶

Fatawa Razawiyya Volume 9

Question: ...water be poured into it. Is this ruling correct or incorrect?

Answer: This ruling is incorrect and contrary to the core texts, commentaries, fatwas, and general books of the school of thought. Pouring water into the nose is a fabrication by the author of that pamphlet, and even cleaning it with a wet cloth is against the school of thought. It is stated in 'Kanz ad-Daqa'iq': "Perform ablution for him without rinsing the mouth (Madmadah) and sniffing water into the nose (Istinshaq)" (i.e., give the deceased ablution without rinsing the mouth or pouring water into the nose - T). It is stated in 'Tabyin al-Haqa'iq':

Arabic Text	Urdu Translation
Because water cannot be extracted from it, so both are left out. There is a concern for the Janub (one in a state of major impurity) in both of them and in washing the hands. For the Janub starts by washing his hands, while the deceased starts by washing his face.[2]-	Water cannot come out from them [mouth/ nose], therefore both will be omitted. There is one difference between the bathing of a deceased and the bathing of a Janub regarding Madmadah and Istinshaq, and another regarding washing the hands, because a Janub will wash his hands first, whereas for a deceased, the face will be washed first. (T)

It is stated in 'Sharh al-Kanz' by Allama Ahmad al-Shalabi, then 'Fath-ullah al-Mu'in' by Sayyid Abi al-Sa'ud and al-Azhari, then 'Tahtawi ala al-Durr al-Mukhtar':

Arabic Text	Urdu Translation
What al-Khalkhali mentioned, i.e., in the commentary of al-Quduri, that the Janub rinses the mouth and sniffs water into the nose, is 'Ghareeb' (isolated/strange) and contrary to the general books.[3]-	What Khalkhali mentioned in 'Sharh Quduri' that the deceased in the state of Janabat (major impurity) should be given Madmadah and Istinshaq, is 'Ghareeb' and contrary to the general books. (T)

There are many incorrect rulings in the Deobandi pamphlet. It is not permissible to act upon it; rather, Muslims should not even look at it or keep it in their homes. Instead, regarding the Deobandis, all the noble scholars of Makkah and Madinah have already issued a fatwa of Takfir (declaring them disbelievers), stating: "Whoever doubts their disbelief and their punishment, has indeed himself become a disbeliever," specifically for one who is aware of their beliefs and their [resulting] punishment...

[1] Kanz ad-Daqa’iq, Chapter on Funerals, published by H.M. Saeed Company, Karachi, 1/52 [2] Tabyin al-Haqa’iq, Chapter on Funerals, published by Matba' al-Kubra al-Misriyya, Egypt, 1/236 [3] Fath al-Mu'in with reference to al-Shalabi, Chapter on Funerals, published by H.M. Saeed Company, Karachi, 1/344; Hashiya al-Tahtawi 'ala al-Durr al-Mukhtar, Chapter on Funeral Prayers, published by Dar al-Ma'rifah, Beirut, 1/366 [4] Durr al-Mukhtar, Chapter on the Apostate, published by Matba' Mujtabai, Delhi, 1/355

फ़तावा रज़विया जिल्द नहम (नौ)

सवाल: ...उसमें पानी डाला जाए। क्या यह मसला सही है या ग़लत?

जवाब: यह मसला ग़लत और मतून, शूरूह, फ़तावा और मज़हब की आम किताबों के ख़िलाफ़ है। नाक में पानी डालना तो इस रिसाले वाले की अपनी गढ़त (बनावट) है, और गीले कपड़े से भी साफ़ करना मज़हब के ख़िलाफ़ है। 'कन्ज़ुद दक़ाइक़' में है: "वज़ु कराएं बिना कुल्ली (मज़मज़ा) और नाक में पानी डालने (इस्तिनशाक़) के।" (यानी मैयत को बिना कुल्ली कराए और नाक में पानी डाले वज़ू कराए। -त) 'तबीनुल हक़ाइक़' में है:

अरबी इबारत	उर्दू अनुवाद
क्योंकि उससे पानी बाहर नहीं निकाला जा सकता, इसलिए दोनों छोड़ दिए जाएंगे। और जुनुबी के बारे में इन दोनों में और हाथ धोने में अंदेशा रहता है। क्योंकि जुनुबी अपने हाथ धोने से शुरुआत करता है, और मैयत चेहरे धोने से शुरुआत करती है।[2]-	उससे पानी बाहर नहीं जा सकता इसलिए यह दोनों छोड़ दिए जाएंगे। ग़ुस्ल-ए-मैयत और ग़ुस्ल-ए-जुनुब में एक फ़र्क़ मज़मज़ा और इस्तिनशाक़ का है और दूसरा हाथ धोने में, क्योंकि जुनुब पहले अपने हाथ धोएगा और मैयत का पहले चेहरा धोया जाएगा। (त)

अल्लामा अहमद अल-शलबी की 'शरह अल-कन्ज़', फिर सैय्यद अबी अल-सऊद और अल-अज़हरी की 'फ़तहुल्लाह अल-मुईन', फिर 'तहतावी अली अद-दुर्र अल-मुख़्तार' में है:

अरबी इबारत	उर्दू अनुवाद
तो जो ख़लख़ाली ने ज़िक्र किया है यानी शरह अल-क़ुदूरी में कि जुनुबी मज़मज़ा और इस्तिनशाक़ करेगा, वह 'ग़रीब' है और आम किताबों के ख़िलाफ़ है।[3]-	ख़लख़ाली ने शरह क़ुदूरी में जो ज़िक्र किया है कि जनाबत वाले मुर्दे को कुल्ली कराई जाएगी और नाक में पानी डाला जाएगा, यह 'ग़रीब' और आम किताबों के ख़िलाफ़ है। (त)

देवबंद के रिसाले में बहुत ज़्यादा मसले ग़लत हैं, उस पर अमल जायज़ नहीं बल्कि उसे देखना और उसे घर में रखना मुसलमानों को नहीं चाहिए। बल्कि देवबंदियों की निस्बत तमाम उलमा-ए-किराम, मक्का मुअज़्ज़मा और मदीना मुनव्वरा ने कुफ़्र का फ़तवा दे दिया है और यह कि "जो उनके कुफ़्र और उनके अज़ाब में शक करे, वह ख़ुद काफ़िर हो गया" जो उनके अक़ायद पर मुत्तला (जागरूक) हो कर उनके अज़ाब और...

[1] कन्ज़ुद दक़ाइक़, बाबुल जनाइज़, मतबूआ एच.एम. सईद कंपनी कराची, 1/52 [2] तबीनुल हक़ाइक़, बाबुल जनाइज़, मतबूआ मतब' अल-कुबरा अल-मिसरिया, मिस्र, 1/236 [3] फ़तहुल्लाह अल-मुईन, अल-शलबी के हवाले से, बाबुल जनाइज़, मतबूआ एच.एम. सईद कंपनी कराची, 1/344; हाशिया अल-तहतावी अली अद-दुर्र अल-मुख़्तार, बाब सलातुल जनाइज़, मतबूआ दारुल मारिफ़ा, बेरूत, 1/366 [4] दुर्र-ए-मुख़्तार, बाबुल मुरतद, मतबूआ मतब' मुज्तबाई, दिल्ली, 1/355

فتاوٰی رضویہ جلد نہم

سوال: میں اُس کی پانی ڈالا جائے۔ آیا یہ مسئلہ درست ہے یا نادرست؟

الجواب: یہ مسئلہ غلط و خلافِ متون و شروح و فتاوٰی وعامہ کتب مذہب ہے۔ ناک میں پانی ڈالنا تو اس رسالہ والے کی اپنی گھڑت ہے، اور تر کپڑا سے بھی صاف کرنا مذہب کے خلاف ہے۔ کنز الدقائق میں ہے: وضئ بلا مضمضة واستنشاق (میت کو بے کلی کرائے اور ناک میں پانی ڈالے، وضو کرائے۔ت) تبیین الحقائق میں ہے:

عربی عبارت	اردو ترجمہ
لانه لایمکن اخراج الماء منه فیترکان ویخاف الجنب فیهما وفی غسل الید فان الجنب یبداء بغسل یدیه والمیت یبداء بغسل وجهه 2-	اس سے پانی باہر نہیں جاسکتا اس لئے یہ دونوں ترک کردئے جائیں گے۔ غسل میت اور غسل جنب میں ایک فرق مضمضہ واستنشاق کا ہے دوسرے ہاتھ دھونے میں، کیونکہ جنب پہلے اپنے ہاتھ دھوئے گا اور میت کا پہلے چہرہ دھویا جائے گا۔ (ت)

شرح الکنز للعلامة احمد الشلبی پھر فتح الله المعین للسید ابی السعود والازہری پھر طحطاوی علی الدر المختار میں ہے:

عربی عبارت	اردو ترجمہ
فما ذکره الخلخالی ای فی شرح القدوری من ان الجنب یمضمض ویستنشق غریب مخالف لعامة الکتب 3-	خلخالی نے شرح قدوری میں جو ذکر کیا ہے کہ جنابت والے مُردے کو کلی کرائی جائے گی اور ناک میں پانی ڈالا جائے گا، یہ غریب اور عامہ کتب کے برخلاف ہے۔ (ت)

دیوبند کے رسالہ میں بہت کثرت سے مسائل غلط ہیں، اُس پر عمل جائز نہیں بلکہ اُسے دیکھنا اُسے گھر میں رکھنا مسلمانوں کو نہ چاہئے، بلکہ دیوبندیوں کی نسبت تمام علمائے کرام کہ معظمہ ومدینہ منورہ فتویٰ تکفیر دے چکے ہیں اور یہ کہ من شاك فی کفرہ وعذابہ فقد کفر4 جو ان کے عقائد پر مطلع ہو کر اُن کے عذاب و

---

1 کنز الدقائق باب الجنائز مطبوعہ ایچ ایم سعید کمپنی کراچی ۱/ ۵۲ 2 تبیین الحقائق باب الجنائز مطبوعہ مطبعہ کبری مصریہ مصر غنیہ ۱/ ۲۳۶ 3 فتح المعین بحوالہ الشلبی باب الجنائز مطبوعہ ایچ ایم سعید کمپنی کراچی ۱/ ۳۴۴، حاشیة الطحطاوی علی الدر المختار باب صلوة الجنائز مطبوعہ دار المعرفة بیروت ۱/ ۳۶۶ 4 درمختار باب المرتد غنیہ مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی ۱/ ۳۵۵

Fatawa Ridawiyya Volume 9

One who doubts disbelief is a disbeliever himself. We seek refuge with Allah Almighty. And Allah Almighty knows best.

Problem No. 10: From Sarnia village, Bareilly district, sent by Sheikh Amir Ali Qadri, 29 Rabi-ul-Akhir 1336 AH. (1) If a Sunni passes away in a state of ritual impurity, will one bath (ghusl) be given or two? And how will water be put in the nose and gargling be done? (2) After bathing the deceased, if water, medicine, or excrement comes out of the mouth or the place of excretion, will the ghusl be given again or will only that area be purified? (3) At the time of bathing the deceased, what is the preferred orientation of the head and feet?

Answer: (1) One ghusl will be given, and water is not poured into the nose and mouth of the deceased. (2) There is absolutely no need to repeat the ghusl in any case. If impurity comes out, it should be washed. (3) Sharia has not specified any particular way for this; whichever way it is. And Allah Almighty knows best.

Problem No. 11: From Aligarh city, Madar Darwaza locality, asked by Umar Ahmed, cloth merchant of Banaras, 4 Rabi-ul-Awwal 1325 AH. What do the scholars of religion say regarding the issue of whether it is permissible or not to break the pitchers after bathing the deceased? Explain and you shall be rewarded.

Answer: It is a sin as it is wasting wealth without reason. Even if they become impure, it is possible to purify them. The Master of the World (peace and blessings of Allah be upon him) says: "Indeed, Allah dislikes three things for you: useless talk, excessive questioning, and wasting wealth." Narrated by Bukhari and Muslim, and others. And if it is thought that since the dead body was bathed with them, they have become ominous, then this thought closely resembles the superstitions of the infidels of India. And Allah Almighty knows best.

1 Sahih al-Bukhari, Book of Zakat, published by Qadimi Kutub Khana, Karachi, 1/200. Page 99 of 948

फतावा रज़विया जिल्द नवीं

कुफ्र में शक करने वाला खुद काफ़िर है। अल्लाह तआला की पनाह। और अल्लाह तआला बेहतर जानता है।

मसाला नंबर 10: मौज़ा सरनिया, ज़िला बरेली, प्रेषक शेख अमीर अली कादरी, 29 रबी-उल-आख़िर 1336 हिजरी। (1) यदि कोई सुन्नी नापाकी (अशुद्धि) की स्थिति में मर जाए, तो उसे एक ग़ुस्ल (स्नान) दिया जाएगा या दो? और पूरी नाक में पानी और ग़रारा कैसे किया जाएगा? (2) मैय्यत (मृतक) को नहलाने के बाद यदि मुँह या मलमूत्र के स्थान से पानी, दवा या गंदगी निकले, तो क्या ग़ुस्ल दोबारा दिया जाएगा या उस जगह को पाक (साफ) किया जाएगा? (3) मैय्यत को नहलाते समय सिर और पैर किस तरह होना बेहतर है?

जवाब: (1) ग़ुस्ल एक ही दिया जाएगा, और मैय्यत की नाक और मुँह में पानी नहीं डालते। (2) किसी भी हाल में ग़ुस्ल दोबारा देने की बिल्कुल ज़रूरत नहीं है। यदि गंदगी बाहर आए तो उसे धो दिया जाए। (3) इसके लिए शरीयत ने कोई विशेष दिशा निर्धारित नहीं की है; जिस तरफ भी हो। और अल्लाह तआला बेहतर जानता है।

मसाला नंबर 11: अलीगढ़ शहर, मुहल्ला मदार दरवाज़ा से, पुछा गया उमर अहमद द्वारा, कपड़ा व्यापारी बनारसी, 4 रबी-उल-अव्वल 1325 हिजरी। दीन के विद्वान इस मसले में क्या कहते हैं कि मैय्यत को ग़ुस्ल देने के बाद घड़ों को तोड़ना जायज़ है या नहीं? स्पष्ट करें, आपको पुण्य मिलेगा।

जवाब: यह गुनाह है क्योंकि यह बिना वजह धन की बर्बादी (तज़ीय्य-ए-माल) है। अगर वे नापाक भी हो जाएं तो भी उन्हें पाक करना मुमकिन है। हुज़ूर सैय्यद-ए-आलम (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) फ़रमाते हैं: "बेशक अल्लाह तआला तुम्हारे लिए तीन बातों को नापसंद करता है: फज़ूल बक-बक, अधिक सवाल करना और धन को बर्बाद करना।" (बुखारी और मुस्लिम आदि द्वारा वर्णित)। और अगर यह ख्याल किया जाए कि चूँकि उनसे मुर्दे को नहलाया गया है, तो उनमें मनहूसियत आ गई है, तो यह ख्याल भारत के काफ़िरों के वहम और अंधविश्वासों से बहुत मिलता-जुलता है। और अल्लाह तआला बेहतर जानता है।

1 सहीह अल-बुखारी, किताब-उज़-ज़कात, मदबूआ क़दीमी कुतुब ख़ाना, कराची 1/200 पेज 99 / 948

فتاوٰی رضویہ جلد نہم

کفر میں شک کرے خود کافر ہے۔ والعیاذ باللہ تعالٰی۔ واللہ تعالٰی اعلم

مسئلہ نمبر ۱۰: موضع سر نیا ضلع بریلی مرسلہ شیخ امیر علی قادری ۲۹ ربیع الآخر ۱۳۳۶ھ (۱) کوئی سنی اگر ناپاکی کی حالت میں فوت ہو جائے اُسے ایک غسل دیا جائے گا یا دو ۲؟ اور ساری ناک میں پانی اور غرارہ کیونکر کیا جائے گا (۲) بعد نہلانے کے میت کے پانی یادوا یا پاخانہ منہ یا پاخانہ کی جگہ سے نکلے تو غسل دوبارہ دیا جائے گا یا جگہ پاک کی جائے گی؟ (۳) میت نہلاتے وقت کس طرح سر پیر ہونا بہتر ہے؟

الجواب: (۱) غسل ایک دیا جائے گا، اور میت کے ناک اور منہ میں پانی نہیں ڈالتے۔ (۲) غسل دوبارہ دینے کی مطلقاً کسی حال میں حاجت نہیں۔ اگر نجاست برآمد ہو دھو دی جائے۔ (۳) جدھر ہو اس کے لئے شرع نے کوئی خاص صورت معین نہیں کی۔ واللہ تعالٰی اعلم

مسئلہ نمبر ۱۱: از شہر علی گڑھ ، محلہ مدار دروازہ ، مسئولہ عمر احمد سوداگر پارچہ بنارسی ۴ ربیع الاول ۱۳۲۵ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ گھڑے بڑھنے میت کو غسل دینے کے بعد پھوڑ ڈالنا جائز ہے یا نہیں؟ بینوا توجروا

الجواب: گناہ ہے کہ بلا وجہ تضییع مال ہے کہ اگر وہ ناپاک بھی ہوجائیں تاہم پاک کر لینا ممکن۔ حضور سید عالم صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم فرماتے ہیں : ان اللہ کرہ لکم ثلثا اللہ تعالٰی تین باتیں تمہارے لئے ناپسند رکھتا ہے قیل و قال و کثرۃ السوال واضاعۃ المال فضول بک بک اور سوال کی کثرت اور مال کی اضاعت۔ رواہ الشیخان وغیرہما۔ اور اگر یہ خیال کیا جائے کہ ان سے مردے کو نہلایا ہے تو ان میں نحوست آگئی تو یہ خیال اوہام کفار ہند سے بہت ملتا ہے۔ واللہ تعالٰی اعلم

Volume 9

Fatawa Razawiya

Question 12: From Village Sisuna, Post Office Shishgarh, District Bareilly, sent by Inayatullah Khan, 10 Muharram 1339 AH. In most villages, the pots used for bathing the deceased are placed on the grave at the head or foot side. And in some places, those bathing pots are kept in the mosque with the thought that it would be good if they are used for the ablution of worshippers. It is hoped that the answer which is better and according to the Sharia be provided.

Answer: Placing them at the head or foot of the grave has no meaning. Giving them to the mosque is meritorious provided no impure water has splashed on them; otherwise, they should be cleaned and then given. Using them for one's own use is also permissible. And Allah Almighty knows best.

Question 13: What do the scholars of religion say regarding how many pieces of shroud (kafan) should be given to a man and how many to a woman? And how much shroud is necessary for a minor deceased? Explain and be rewarded.

Answer: There are three clothes according to the Sunnah for a man: One is the 'Tehband' (loincloth) which should be from head to toe. Second is the 'Kafni' (shirt) from the base of the neck to the feet. And third is the 'Chadar' (sheet) which should be longer than the person's height at both head and foot ends so it can be wrapped and tied. First, spread the sheet, then the loincloth on it. Then, dry the body of the washed deceased with a cloth, place it on them, put on the shirt, then wrap the loincloth, first the left side then the right, so the right side remains over the left. Then wrap the sheet in the same way and tie it at both ends.

For a woman, five clothes are Sunnah; these same three, but with a difference in the shirt for men and women: a man's shirt should be torn at the shoulders in width, and a woman's shirt in length towards the chest. Fourth is the 'Odhni' (headscarf) whose length should be one and a half yards, i.e., three cubits. Fifth is the 'Seenaband' (chest-wrap) from the breasts to the navel, rather it is better up to the thighs. First, spread the sheet and the loincloth as usual, put on the shirt, lay her on the loincloth, divide her hair into two parts and place them over the shirt on her chest. Drape the headscarf over her head without covering her face. Then wrap the loincloth and the sheet as usual and tie the sheet at both ends. Above all these, the chest-wrap...

जिल्द 9

फ़तावा रज़विया

सवाल 12: मौज़ा सिसौना, डाकखाना शीशगढ़, ज़िला बरेली से मुरसला इनायत उल्लाह खान, 10 मुहर्रम 1339 हिजरी। अक्सर देहातों में मय्यत को नहलाने के वास्ते जो घड़ा इस्तेमाल में लाया जाता है, उसे क़ब्र के ऊपर सिरहाने या पायेंती रख आते हैं। और कुछ जगहों पर ग़ुस्ल-ए-मय्यत का वह घड़ा मस्जिद में रख आते हैं इस ख़्याल से कि नमाज़ियों के वुज़ू वगैरह के काम आए तो अच्छा है। उम्मीद है कि इसका जवाब जो बेहतर और शरीअत के मुताबिक़ हो, उससे मुत्तला किया जाए।

जवाब: क़ब्र के पायेंती या सिरहाने रखने का कोई मतलब नहीं है। और मस्जिद में देना सवाब है बशर्ते कि उन पर नापाक पानी की कोई छींट न पड़ी हो, वरना पाक करके दिए जाएं। और अपने इस्तेमाल में रखना भी जाइज़ है। वल्लाह तआला आलम।

सवाल 13: क्या फ़रमाते हैं उलेमा-ए-दीन इस मसले में कि मर्द को कफ़न के(कितने) कपड़े देने चाहिए और औरत को (कितने) कपड़े? और नाबालिग़ मय्यत को कितना कफ़न देना लाज़िम है? बयान फरमाएं और सवाब पायें।

जवाब: सुन्नत के मुताबिक़ मर्द के लिए तीन कपड़े हैं: एक तहबंद जो सिर से पाँव तक हो, दूसरा कफ़नी गर्दन की जड़ से पाँव तक, और तीसरा चादर जो लंबाई में सिर और पाँव दोनों तरफ़ इतनी ज़्यादा हो कि उसे लपेट कर बाँधा जा सके। पहले चादर बिछाएं उस पर तहबंद। फिर मय्यत के ग़ुस्ल शुदा बदन को एक कपड़े से साफ़ करें, फिर उस पर रखकर कफ़नी पहना कर तहबंद लपेटें। पहले बायीं तरफ़ फिर दाहिनी तरफ़ लपेटें ताकि दाहिना हिस्सा बायीं के ऊपर रहे। फिर इसी तरह चादर लपेट कर ऊपर-नीचे दोनों तरफ़ बाँध दें।

और औरत के लिए पाँच कपड़े सुन्नत हैं, यही तीन, लेकिन मर्द और औरत की कफ़नी में इतना फ़र्क़ है कि मर्द की कमीज़ चौड़ाई में कंधों की तरफ़ चीरनी चाहिए और औरत की लंबाई में सीने की जानिब। चौथा ओढ़नी जिसका तूल डेढ़ गज़ यानी तीन हाथ हो। पाँचवाँ सीनाबंद जो स्तनों से नाफ़ तक हो, बल्कि अफ़ज़ल यह है कि रानों (जाँघों) तक हो। पहले चादर और उस पर तहबंद हस्बे दस्तूर बिछाकर कफ़नी पहनाकर तहबंद पर लिटाएं और उसके बाल दो हिस्से करके सीने के ऊपर कफ़नी के ऊपर लाकर रखें। उसके ऊपर ओढ़नी सिर से ओढ़ाकर बग़ैर मुँह लपेटे डाल दें। फिर

तहबंद और उस पर चादर हस्बे दस्तूर लपेटें और चादर उसी तरह दोनों तरफ़ बाँध दें। इन सबके ऊपर सीनाबंद...

पेज 100/948

جلد نہم

فتاویٰ رضویہ

مسئلہ نمبر ۱۲: از موضع سیسونہ ڈاکخانہ شیش گڑھ ضلع بریلی مرسلہ عنایت اللہ خاں ۱۰ محرم ۱۳۳۹ھ اکثر دیہات میں میت نہلانے کے واسطے جو گھڑا باندھنا صرف میں لایا جاتا ہے اس کو قبر کے اوپر سرہانے یا پائینتی رکھ آتے ہیں، اور بعض جگہ غسلِ میت وہ گھڑا بندھنا مسجد میں رکھ آتے ہیں اس خیال سے کہ نمازیوں کے وضو وغیرہ کے صرف میں آئے تو اچھا ہے، امید ہے کہ اس کا جواب جو بہتر اور موافقِ شرع ہو اس سے مطلع کیا جائے۔ الجواب: قبر کی پائینتی سرہانے رکھ آنے کے کوئی معنی نہیں، اور مسجد میں دینا ثواب ہے جبکہ ان پر ناپاک پانی کی کوئی چھینٹ نہ پڑی ہو، ورنہ پاک کر کے دئے جائیں، اور اپنے استعمال میں رکھے جب بھی جائز ہے۔ واللہ تعالیٰ اعلم۔

مسئلہ نمبر ۱۳: کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ مرد کو کفن کے (کتنے) پارچے کا دینا چاہئے اور عورت کو کے (کتنے) پارچے کا چاہئے؟ اور میت نابالغ کو کتنا کفن دینا لازم ہے؟۔ بینوا توجروا الجواب: سنّت مرد کے لئے تین کپڑے ہیں ایک تہ بند کہ سر سے پاؤں تک ہو، اور کفن گردن کی جڑ سے پاؤں تک، اور چادر کہ اس کے قد سے سر اور پاؤں دونوں طرف اتنی زیادہ ہو جسے لپیٹ کر باندھ سکیں۔ پہلے چادر بچھائیں اُس پر تہبند، پھر میت مغسول کا بدن ایک کپڑے سے صاف کریں پھر اس پر رکھ کر کفنی پہنا کر تہبند لپیٹیں، پہلے بائیں پھر دہنی طرف لپیٹیں تاکہ دہنا حصہ بائیں کے اوپر رہے۔ پھر اسی طرح چادر لپیٹ کر اوپر نیچے دونوں جانب باندھ دیں۔

اور عورت کے لئے پانچ کپڑے سنّت ہیں، تین یہی، مگر مرد و عورت کے لئے کفنی اتنا فرق ہے کہ مرد کی قمیص عرض میں مونڈھوں کی طرف چیرنا چاہئے اور عورت کا طول میں سینے کی جانب۔ چوتھے اوڑھنی جس کا طول ڈیڑھ گز یعنی تین ہاتھ ہو۔ پانچواں سینہ بند کہ پستان سے ناف بلکہ افضل یہ ہے کہ رانوں تک ہو۔ پہلے چادر اور اس پر تہ بند بدستور بچھا کر کفنی پہنا کر تہ بند پر لٹائیں اور اس کے بال دو حصے کر کے بالائے سینہ کفنی کے اوپر لا کر رکھیں اُس کے اوپر اوڑھنی سر سے اڑھا کر بغیر منہ لپٹے ڈال دیں، پھر تہ بند اور اس پر چادر بدستور لپیٹیں اور چادر اُسی طرح دونوں سمت باندھ دیں، ان سب کے اوپر سینہ بند

Fatawa Razawiyya, Volume 9

Tie it from above the breasts to the navel; this shroud (kafan) is Sunnah. Sufficient is for a man to have two cloths: a lower garment (tahband) and a sheet (chadar). For a woman, three: a shirt (kafni), a sheet, and thirdly a head-covering (odhni); this is called the "sufficient shroud" (kafan-e-kifayat). If the deceased's wealth is more and heirs are fewer, the Sunnah shroud is better. In the opposite case, the sufficient shroud is preferable, and reducing it further while having the means is not permissible. Yes, in times of necessity, whatever is available, even if only one cloth covering from head to foot, is enough for both men and women. When an ignorant person's provider dies poor, they ask people for a complete shroud; this is folly. Asking for more than necessity is prohibited (haram), and in times of need, one cloth is sufficient for a shroud. Just ask for that much; asking for more is not permissible. Yes, if a Muslim gives a full shroud to a needy person without being asked, with the intention of gaining reward (thawab), they will receive a full reward from Allah Almighty. If a minor has reached the age of puberty (limit of desire), their shroud is like that of a young man or woman. This ruling, i.e., reaching the limit of desire, does not exceed twelve years for a boy and nine years for a girl; it is possible it may be reached earlier if the body is very strong, the temperament warm, and heat is at its peak. In boys, this means they start feeling attraction towards women, and in girls, it means men feel an inclination towards them upon seeing her. Children who haven't reached this age or condition can be buried in one cloth for a boy and two for a girl, no harm in that; and if two are given for a boy and three for a girl, it's good. Giving both a full man's and woman's shroud is best. A child born dead or miscarried should, in any case, be wrapped in a single cloth and buried; don't give a formal shroud. It is in Durr-e-Mukhtar:

Arabic Text	**Urdu Translation**
It is Sunnah for a man's shroud to have an izar (lower garment), a qamis (shirt), and a lifafah (sheet), and for her, a dar' (i.e., qamis), an izar, a khimar (head-covering), a lifafah, and a khirqah (cloth) tied around her breasts and abdomen.	For a man's shroud, izar (tahband), qamis, and lifafah (chadar) are Sunnah. For a woman, dar' i.e., qamis, tahband, khimar (odhni), chadar, and a cloth to be tied over the breasts and belly are Sunnah.
Sufficiency for him is an izar and a lifafah in the most correct view, and for her, two garments	And according to the most correct view, the sufficient shroud for a man is a tahband and a chadar. For a

Arabic Text

and a khimar. Anything less than that is disliked.

The shroud of necessity for both is what is available, and the minimum is what covers the entire body.

The lifafah is spread first, then the izar is spread on top of it, the qamis is put on, and then the body is placed on the izar. Then the left side is wrapped, then the right side, and then the lifafah is wrapped in the same way, so the right is over the left. She wears the dar' and her hair is placed...

Page 101 of 948

Urdu Translation

woman, it is two cloths and an odhni. It is disliked to give less than the sufficient shroud.

The shroud of necessity for both men and women is whatever is found. At minimum, it should be enough to cover the entire body.

First the chadar (lifafah) is spread, then on top of it the tahband is spread, and the qamis is put on. Then the body is placed on the tahband and...

फ़तावा रज़विया, जिल्द 9

स्तनों के ऊपर से नाभि तक बांधें; यह कफ़न सुन्नत है। और पर्याप्त यह है कि पुरुष के लिए दो कपड़े हों: तहबंद और चादर। और महिला के लिए तीन: कफ़नी, चादर और तीसरा ओढ़नी; इसे 'कफ़न-ए-किफ़ायत' (पर्याप्त कफ़न) कहते हैं। यदि मृतक की संपत्ति अधिक और वारिस कम हों, तो सुन्नत कफ़न बेहतर है। इसके विपरीत स्थिति में, पर्याप्त कफ़न ही उत्तम है, और सामर्थ्य होने पर इससे कम करना जायज़ नहीं है। हाँ, ज़रूरत के समय जो भी मिल जाए, भले ही वह केवल एक ही कपड़ा हो जो सिर से पैर तक हो, स्त्री-पुरुष दोनों के लिए काफ़ी है। जब किसी अज्ञानी मोहताज का पालनहार मरता है, तो वे लोगों से पूरे कफ़न के लिए मांगते हैं; यह मूर्खता है। ज़रूरत से ज़्यादा मांगना हराम है, और ज़रूरत के समय कफ़न में एक कपड़ा काफ़ी है, बस उतना ही मांगें; उससे ज़्यादा मांगना जायज़ नहीं है। हाँ, यदि कोई मुसलमान बिना मांगे किसी मोहताज को सवाब की नीयत से पूरा कफ़न देगा, तो उसे अल्लाह अज़्ज़वजल से पूरा सवाब मिलेगा। यदि कोई नाबालिग कामुकता की सीमा (हद-ए-शहवत) तक पहुँच गया है, तो उसका कफ़न युवा पुरुष और महिला के समान है। यह नियम यानी कामुकता की सीमा तक पहुँचना लड़के में बारह और लड़की में नौ साल की उम्र के बाद नहीं रुकता, और मुमकिन है कि कभी इससे पहले भी हासिल हो जाए जबकि शरीर बहुत मज़बूत, मिज़ाज गर्म और ताप जोरों पर हो। लड़कों में इसका अर्थ है कि वह औरतों की तरफ़ आकर्षित होने लगें और लड़कियों में यह कि उसे देख कर पुरुषों में उसकी तरफ़ झुकाव पैदा हो। जो बच्चे इस उम्र और स्थिति को न पहुँचें, उनमें लड़के को एक और लड़की को दो कपड़ों में कफ़न दें तो कोई हर्ज नहीं, और लड़के को दो, लड़की को तीन दें तो अच्छा है। और दोनों को स्त्री-पुरुष का पूरा कफ़न दें तो सबसे बेहतर है। जो बच्चा मृत पैदा हो या गर्भपात हो जाए, उसे किसी भी तरह एक ही कपड़े में लपेट कर दफ़न कर देना चाहिए, औपचारिक कफ़न न दें। दुर्र-ए-मुख़्तार में है:

अरबी पाठ

पुरुष के कफ़न के लिए इज़ार (तहबंद), क़मीस और लिफ़ाफ़ा (चादर) सुन्नत है। महिला के लिए दरअ यानी क़मीस, इज़ार, ख़िमार (ओढ़नी), लिफ़ाफ़ा और एक कपड़ा (ख़िरक़ह) जो उसके स्तनों और पेट पर बाँधा जाए।

उर्दू अनुवाद

कफ़न में पुरुष के लिए इज़ार (तहबंद), क़मीस और लिफ़ाफ़ा (चादर) मसनून (सुन्नत) है। और महिला के लिए दरअ यानी क़मीस, तहबंद, ख़िमार (ओढ़नी), चादर और एक कपड़ा जो स्तनों और पेट पर बाँधा जाए।

अरबी पाठ	उर्दू अनुवाद
पुरुष के लिए इज़ार और लिफ़ाफ़ा सबसे सही (अस़ह) कथन के अनुसार पर्याप्त है, और महिला के लिए दो कपड़े और एक ख़िमार। इससे कम देना मकरूह है।	और पुरुष के लिए कफ़न-ए-किफ़ायत सबसे सही कथन पर तहबंद और चादर है। महिला के लिए दो कपड़े और ओढ़नी। कफ़न-ए-किफ़ायत से कम देना मकरूह है।
दोनों के लिए ज़रूरत का कफ़न वह है जो मिल जाए, और उसका न्यूनतम वह है जो पूरे शरीर को ढँक ले।	और पुरुष और महिला दोनों के लिए ज़रूरत का कफ़न वह है जो मिल जाए। कम से कम इतना कि पूरे बदन को छुपा ले।
पहले लिफ़ाफ़ा बिछाया जाता है, फिर उस पर इज़ार बिछाया जाता है और क़मीस पहनाई जाती है, फिर इज़ार पर रखा जाता है। फिर उसका बायां हिस्सा लपेटा जाता है, फिर दायां, फिर लिफ़ाफ़ा भी इसी तरह ताकि दायां बाएं के ऊपर हो। वह दरअ पहनती है और उसके बाल रखे जाते हैं...	पहले चादर (लिफ़ाफ़ा) बिछाई जाए फिर उस पर तहबंद बिछाया जाए और क़मीस पहनाई जाए और तहबंद पर...

पृष्ठ 101/948

بالائے پستان سے ناف یاراں تک باندھیں، یہ کفن سنّت ہے، اور کافی اس قدر ہے کہ مرد کے لئے دو کپڑے ہوں تہبند اور چادر۔ اور عورت کے لئے تین، کفنی و چادر اور تیسرے اوڑھنی، اسے کفن کفایت کہتے ہیں۔ اگر میت کا مال زائد اور وارث کم ہوں تو کفن سنّت افضل ہے، اور عکس ہو تو کفن کفایت اولٰی اور اس سے کمی بحالت اختیار جائز نہیں۔ ہاں وقت ضرورت جو میسر آئے صرف ایک ہی کپڑا کہ سر سے پاؤں تک ہو، مرد و عورت دونوں کے لئے بس ہے۔ جاہل محتاج جب اُن کا مورث محتاج مرتا ہے لوگوں سے پورے کفن کا سوال کرتے ہیں، یہ حماقت ہے، ضرورت سے زیادہ سوال حرام اور ضرورت کے وقت کفن میں ایک کپڑا کافی، بس اسی قدر مانگیں اس سے زائد مانگنا جائز نہیں۔ ہاں ان کو بے مانگے جو مسلمان بہ نیت ثواب پورا کفن محتاج کے لئے دے گا اللہ عزوجل سے پورا ثواب پائے گا۔ نابالغ اگر حد شہوت کو پہنچ گیا ہے جب اس کا کفن جوان مرد و عورت کی مثل ہے، اور یہ حکم یعنی حد شہوت کو پہنچنا پسر میں بارہ اور دختر میں نو برس کی عمر کے بعد نہیں رکتا، اور ممکن کہ کبھی اس سے پہلے بھی حاصل ہو جائے جبکہ جسم نہایت قوی اور مزاج گرم اور حرارت جوش پر ہو۔ لڑکوں میں یہ اُس کا عورتوں کی طرف رغبت کرنے لگے اور لڑکیوں میں یہ کہ اسے دیکھ کر مردوں کو اس کی طرف میل پیدا ہو۔ جو بچے اس عمر و حالت کو نہ پہنچیں ان میں بستر مرگ ایک اور دختر کو دو کپڑوں میں کفن دیں تو کوئی حرج نہیں، اور پسر کو دو ، دختر کو تین دیں تو اچھا ہے۔ اور دونوں کو پورا کفن مرد و عورت کا دیں تو سب سے بہتر اور جو بچہ مردہ پیدا ہو یا کچا گر گیا اسے بہر طور ایک ہی کپڑے میں لپیٹ کر دفن کر دینا چاہئے کفن نہ دیں۔ در مختار میں ہے :

عربی عبارت	اردو ترجمہ
يسن فی الكفن له ازار و قميص و لفافة، ولها ورع ای قميص وازار و خمار و لفافة وخرقة تربط بها ثدياها وبطنها	كفن میں مرد کے لئے ازار (تہبند) قمیص اور لفافہ (چادر) مسنون ہے، اور عورت کے لئے درع یعنی قمیص، تہبند، خمار (اوڑھنی)، چادر اور ایک کپڑا جو پستان اور شکم پر باندھا جائے۔
وكفاية له ازار ولفافة فی الاصح ولها ثوبان وخمار ويكره اقل من ذلك	اور کفن کفایت مرد کے اصح قول پر تہبند اور چادر -- عورت کے لئے دو کپڑے اور اوڑھنی۔ کفن کفایت سے کم دینا مکروہ ہے۔
وكفن الضرورة لهما مايوجد واقله ما يعم البدن،	اور کفن ضرورت مرد و عورت دونوں کے لئے وہ ہے جو مل جائے۔ کم سے کم اتنا کہ پورے بدن کو چھپالے
تبسط اللفافة اولا ثم يبسط الازار عليها ويقمص ويوضع على الازار ويلف يساره ثم يمينه ثم اللفافة كذلك ليكون الايمن على الايسر وهی تلبس الدرع ويجعل شعرها	پہلے چادر بچھائی جائے پھر اس پر تہبند بچھایا جائے اور قمیص پہنائی جائے اور تہبند پر

Fatawa Razawiyya, Volume 9

[Box 1 Left - Arabic Text]: ...placed on their chests. Above that is the shirt (dir'), and the head-covering (khimar) is over the hair. Then proceed as mentioned previously. The shroud is tied if there is a fear of it spreading. A boy near puberty (murahiq) is treated like an adult. For one not near puberty, if they are shrouded in a single piece, it is permissible. A stillborn baby (as-siqt) is wrapped but not formally shrouded. (End of summary).

[Box 1 Right - Urdu Text]: ...should be placed, then the loincloth (izār) should be wrapped, first the left side then the right. Similarly, wrap the sheet (lifāfah) so the right is over the left. After dressing the woman in the shirt (qamīs), divide her hair into two parts and place them over the shirt on her chest. The head-covering (khimār) should be over the hair. Then proceed as mentioned for men. If there's a risk of the shroud spreading, tie it with a band. A boy near puberty (murāhiq) is treated like an adult. For one not near puberty, wrapping in a single shroud is permissible. A stillborn baby should be wrapped in a cloth, not given a formal shroud. (Extracted summary).

In Radd al-Muhtar it is stated:

[Box 2 Left - Arabic Text]: His statement 'izār' is from the head to the feet, and 'qamīs' is from the base of the neck to the feet. The 'lifafah' (wrapping sheet) is longer than the head and feet so that the deceased can be wrapped in it and tied at the top and bottom. (Amdad). His statement 'meaning qamis' indicates they are synonymous, as they say, or a distinction has been made between them by saying that the opening of the 'dir' is towards the chest and for the 'qamis' towards the shoulder. (Quhistani). His statement 'khimar' - with a kasra on the kha - is what a woman covers her head with. Sheikh Ismail said: For the deceased, its measure is three cubits according to the yardstick of coarse cotton cloth (karbas). It is placed over their face and not wrapped. This is also stated in Al-Idah and Al-Atabi. His statement 'and a piece of cloth' (kharqah), it is better that...

[Box 2 Right - Urdu Text]: His saying 'Izār'—this will be from head to toe. And the shirt (qamīs) from the base of the neck to the feet. And the sheet (lifāfah) should be longer than the head and feet so that after wrapping the deceased, it can be tied at the top and bottom. (Amdād). His saying 'Dir' (shield/garment) means 'qamīs' is one, as scholars have stated; some have distinguished between them by saying that the slit of the 'dir' is towards the chest and for the 'qamīs' towards the shoulder. (Quhistāni).

His saying 'Khimār'—with a kasra on the letter 'kha'—is what a woman covers her head with. Sheikh Ismail said: Its length for the deceased is three cubits (hands) according to the measure of coarse cloth (karbās). It will be cast over the face, not wrapped. This is also stated in Al-Idāh and Al-Atābi. His saying 'Kharqah' (and a piece of cloth), it is better that...

1. Durr al-Mukhtar, Chapter on Funeral Prayer, printed at Mujtaba'i Press, Delhi, 1/121. Page 102 of 948

फ़तावा रज़विया, खंड 9

[बॉक्स 1 बायाँ - अरबी पाठ]: ...उनके सीने पर रखा जाए। उसके ऊपर शर्ट (दिर') और बालों के ऊपर सिर ढँकने का कपड़ा (ख़िमार) हो। फिर वैसा ही करें जैसा पहले बताया गया है। यदि कफ़न के बिखरने का डर हो तो उसे बांध दिया जाता है। मुराहिक (किशोरावस्था के निकट का लड़का) के साथ बालिग की तरह व्यवहार किया जाता है। जो मुराहिक नहीं है, यदि उसे एक ही कफ़न में लपेटा जाए, तो यह जायज़ है। मृत पैदा हुए बच्चे (अस्-सिक़्त) को लपेटा जाता है लेकिन औपचारिक रूप से कफ़न नहीं दिया जाता। (सारांश समाप्त)।

[बॉक्स 1 दायाँ - उर्दू पाठ]: ...रखा जाए, फिर तहबंद (इज़ार) लपेटा जाए पहले बायाँ फिर दायाँ, फिर इसी तरह चादर लपेटी जाए ताकि दायां बाएं के ऊपर रहे। औरत को कमीज़ पहना कर उसके बाल दो हिस्से करके सीने पर कमीज़ के ऊपर डाल दिए जाएं और ओढ़नी (ख़िमार) बाल के ऊपर हो, फिर वैसे ही किया जाए जैसे मर्द के बारे में बयान हुआ। और अगर कफ़न बिखरने का अंदेशा हो तो उसे तहबंद से बांध दिया जाए। मुराहिक (जो बलोग़त के करीब हो) का हुक्म बालिग़ की तरह है, जो मुराहिक नहीं उसे अगर एक कफ़न दिया जाए तो जायज़ है। और नातमाम बच्चा (गर्भपात) किसी कपड़े में लपेट दिया जाए, कफ़न न दिया जाए। (संक्षेप)।

रद-उल-मुख्तार में है:

[बॉक्स 2 बायाँ - अरबी पाठ]: उनका कथन 'इज़ार' सिर से पैर तक है, और 'क़मीस' गर्दन के आधार से पैर तक है। 'लिफ़ाफ़ा' (लपेटने की चादर) सिर और पैरों से लंबी होती है ताकि मृतक को उसमें लपेटकर ऊपर और नीचे से बांधा जा सके। (अमदाद)। उनका कथन 'यानी क़मीस' इंगित करता है कि वे पर्यायवाची हैं, जैसा कि वे कहते हैं, या उनके बीच एक अंतर किया गया है कि 'दिर' का खुला हिस्सा सीने की ओर होता है और 'क़मीस' के लिए कंधे की ओर। (कुहिस्तानी)। उनका कथन 'ख़िमार' - 'ख़ा' पर जेर के साथ - वह है जिससे एक महिला अपना सिर ढँकती है। शेख इस्माइल ने कहा: मृतक के लिए, मोटे सूती कपड़े (करबास) के गज के अनुसार इसका माप तीन हाथ है। इसे उनके चेहरे पर रखा जाता है और लपेटा नहीं जाता है। ऐसा ही अल-ईदह और अल-अताबी में भी कहा गया है। उनका कथन 'और कपड़े का एक टुकड़ा' (खरक़ा), बेहतर है कि...

[बॉक्स 2 दायाँ - उर्दू पाठ]: 'इज़ार' कहना - यह सिर से पाँव तक होगा। और कमीज़ गर्दन की जड़ से कदम तक। और चादर (लिफ़ाफ़ा) सिर और कदम से इतनी ज़्यादा हो कि मय्यत को लपेट कर

ऊपर और नीचे से बांध दी जाए। (इमदाद)। 'दिर' कहना, यानी कमीज़ का अर्थ एक ही है जैसा कि विद्वानों ने फ़रमाया, कुछ ने दोनों में यह अंतर बताया है कि 'दिर' का चाक (खुला हिस्सा) सीने की तरफ होता है और 'कमीज़' का कंधे की तरफ। (क़ुहिस्तानी)। 'ख़िमार' कहना - 'ख़ा' पर ज़ेर के साथ - जिससे औरत अपना सिर ढँकती है। शेख इस्माइल ने फ़रमाया: मय्यत के लिए इसकी मात्रा मोटे सूती कपड़े (करबास) के गज़ से तीन हाथ है। इसे चेहरे पर डाला जाएगा, लपेटा नहीं जाएगा। ऐसा ही 'ईज़ाह' और 'अताबी' में है। 'ख़रक़ा' कहना (और एक कपड़ा), बेहतर है कि...

1. दुर्रे मुख्तार, जनाज़ा की नमाज़ का अध्याय, मुजतबाई प्रेस, दिल्ली, 1/121 द्वारा मुद्रित। पृष्ठ 948 का 102

صغیرتین علی صدرھما فوقه الدرع والخمار فوق الشعر ثم یفعل کما مر و یعقد الکفن ان خیف انتشاره والمراھق کالبالغ ومن لم یراھق ان کفن في واحد جاز، والسقط یلف ولا یکفن اھ ملخصا۔ رکھا جائے، پھر تہبند لپیٹا جائے پہلے بایاں پھر دایاں، پھر اسی طرح چادر لپیٹی جائے تاکہ دایاں بائیں کے اوپر رہے۔ عورت کو قمیص پہنا کر اس کے بال دو حصہ کرکے سینے پر قمیص کے اوپر ڈال دئے جائیں اور اوڑھنی بال کے اوپر ہو، پھر ویسے ہی کیا جائے جیسے مرد کے بارے میں بیان ہوا۔ اور اگر کفن منتشر ہونے کا اندیشہ ہو تو اسے تہبند باندھ دیا جائے۔ مراھق (جو بلوغ کے قریب ہو) کا حکم بالغ کی طرح ہے جو مراھق نہیں اسے اگر ایک کفن دیا جائے تو جائز ہے۔ اور ناتمام بچہ کسی کپڑے میں لپیٹ دیا جائے، کفن نہ دیا جائے اھ بہ تلخیص (ت)

ردالمختار میں ہے:

قوله ازار ھو من القرن الی القدم والقمیص من اصل العنق الی القدمین، واللفافة تزید علی ما فوق القرن والقدم لیلف فیه المیت وتربط من الاعلی الاسفل، امداد قوله ای قمیص، اشارا لی ترادفھما، کما قالوا اوقد فرق بینھما بان شق الدرع الی الصدر والقمیص الی المنکب قھستانی، قوله وخمار بکسر الخاء ماتغطی به المرأة رأسھا قال الشیخ اسمعیل مقدار حالة الموت ثلثة اذرع بذراع الکرباس یرسل علی وجھھما ولا یلف کذا في الایضاح والعتابي، قوله وخرقة، الاولی ان قولہ ازار ۔۔ یہ سر سے پاؤں تک ہوگا۔ اور قمیص گردن کی جڑ سے قدم تک۔۔ اور چادر سرو قدم سے اس قدر زائد ہو کہ میت کو پہنا کر اوپر اور نیچے سے باندھ دی جائے۔۔ امداد۔ قولہ درع یعنی قمیص کا معنی ایک ہے جیسا کہ علماء نے فرمایا، بعض نے دونوں میں یہ فرق بتایا ہے کہ درع کا چاک سینہ کی طرف ہوتا ہے اور

قمیص کا شانہ کی طرف، قہستانی۔ قولہ خمار۔۔ خا پر زیر۔۔ جس سے عورت کا سر چھپایا جائے۔ شیخ اسمعیل نے فرمایا: میت کے لئے اس کی مقدار کر باس کے گز سے تین ہاتھ ہے۔ اسے چہرے پر ڈالا جائے گا، لپیٹا نہ جائے گا۔ ایسا ہی ایضاح اور عتابی میں ہے۔ قولہ وخرقہ (اور ایک کپڑا) بہتری ہے کہ

1 درمختار باب صلوٰۃ الجنائز مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی ۱۲۱/۱ Page 102 of 948

Fatawa Razawiya, Volume 9

(Left Column - Arabic Original): It should be from the breasts to the thighs, mentioned in Nahr from Al-Khaniyah. His words 'and sufficiency' (kifayah) mean it is the minimum that suffices him without dislike (karahah), so it is less than the Sunnah shroud. It is said in Al-Bahr: they said if the wealth is little and heirs are many, then the shroud of sufficiency is better; and on the contrary, the Sunnah shroud is better. His words 'and for her [the woman] two garments' - he did not specify them, as in Al-Hidayah. In Al-Fath, they were explained as the shirt (qamis) and the wrapper (lifafah), and in Al-Kanz, they were specified as the waist-cloth (izar) and the wrapper (lifafah). It is stated in Al-Bahr that the apparent view is the lack of specification; rather it could be a shirt and a waist-cloth, or two waist-cloths. The second is better because it involves more covering of the head and neck. His words 'and it is disliked' meaning at the time of choice. His words 'and she is given a shirt' meaning the shirt is put on after drying with a cloth. His words 'then do as before' meaning it should be placed after putting on the shift (dir') and the headcover (khimar) upon the waist-cloth (izar), and the left side is wrapped, etc. It is said in Al-Fath: he did not mention the piece of cloth (khirqah). In Sharh al-Kanz: it is above the shrouds so that they do not scatter, and its width is between the woman's breasts to the navel, and it was said between the breasts to the knees so that the shroud does not scatter from the thighs during walking. In At-Tuhfah: the cloth is tied over the shrouds near the chest above the breasts. His words 'and the adolescent' (al-murahiq) is like the adult, male as male...

(Right Column - Urdu Translation/Explanation): The breast-band (sina band) should be from the breasts to the thighs, from Nahr quoting Khaniyah. The phrase 'Kafan-e-Kifayat' (sufficient shroud) means it is at least that much which is sufficient without any dislike, so its status is lower than 'Kafan-e-Sunnah'. In Al-Bahr, it is mentioned that scholars stated that when wealth is scarce and heirs are many, then 'Kafan-e-Kifayat' is better; and if it's the opposite, then 'Kafan-e-Sunnah' is better. His words 'for a woman two garments' - which ones? He did not specify them, just as in Hidayah there is no specification. In Fath al-Qadeer, its interpretation mentions a shirt (qamis) and a sheet (chadar). In Kanz al-Daqaiq, he specified it as a waist-cloth (tehband) and a sheet (chadar). In Al-Bahr, it says the apparent view is no specification; rather it could be a shirt and waist-cloth or two waist-cloths. The second is better because it provides more covering for the head and neck. His words 'less than Kafan-e-Kifayat is disliked' mean when there is no necessity. His words 'should be given a shirt' mean

after drying the deceased's body with some cloth, the shirt should be put on. His words 'then do as before' mean after putting on the shirt and headcover, it should be placed on the waist-cloth and first the left side should be wrapped, etc. In Fath al-Qadeer, he did not mention the place for the piece of cloth (khirqah). In Sharh-e-Kanz, it is written that the breast-band is over the shroud so that the shroud does not get scattered. Its width is from the breast to the navel, and it's also said up to the knees so that while walking the shroud does not get scattered from the thighs. In Tuhfah, it is mentioned: the breast-band should be tied over the shroud near the chest, above the breasts. His words 'the adolescent (murahiq) is like adults' - male like male and female [like female],

फतावा रज़विया, जिल्द नहम (खंड 9)

(बायां कॉलम - अरबी मूल): स्तनों से जांघों तक होना चाहिए, अल-खानिया से 'नहर' में। 'और किफायत' - यह वह न्यूनतम है जो बिना नापसंदगी के पर्याप्त हो, इसलिए यह सुन्नत कफन से कम है। अल-बहर में कहा गया है: विद्वानों ने कहा कि यदि धन कम और उत्तराधिकारी अधिक हों तो कफन-ए-किफायत बेहतर है, और इसके विपरीत सुन्नत कफन बेहतर है। उनका कथन 'उसके लिए दो कपड़े' - उन्होंने उन्हें निर्दिष्ट नहीं किया जैसा कि हिदाया में है, और अल-फ़तह में उनकी व्याख्या कमीज़ और लिफ़ाफ़ा के रूप में की गई है, और अल-कंज में उन्हें तहबंद और लिफ़ाफ़ा के रूप में निर्दिष्ट किया गया है। अल-बहर में कहा गया है कि स्पष्ट रूप से कोई निश्चितता नहीं है, बल्कि यह या तो कमीज़ और तहबंद है या दो तहबंद, और दूसरा बेहतर है क्योंकि सिर और गर्दन को ढंकने के लिए अधिक कपड़ा होता है। 'और यह मकरूह है' यानी पसंद के समय। 'और उसे कमीज़ पहनाई जाती है' यानी कपड़े से सुखाने के बाद कमीज़ पहनना। 'फिर वैसा ही करें जैसा गुज़रा' यानी तहबंद पर कमीज़ और ओढ़नी पहनने के बाद रखा जाए और उसके बाएँ हिस्से को लपेटा जाए आदि। अल-फ़तह में कहा गया है: उन्होंने कपड़े के टुकड़े (खिरक़ा) का उल्लेख नहीं किया। शरह अल-कंज में: यह कफन के ऊपर है ताकि वे बिखरे नहीं, और इसकी चौड़ाई महिला के स्तनों और नाभि के बीच है, और कहा गया कि स्तनों और घुटनों के बीच ताकि चलते समय जांघों से कफन न बिखरे। अल-तोहफ़ा में: कपड़ा कफन के ऊपर छाती के पास स्तनों के ऊपर बांधा जाता है। उनका कथन 'और मुराहिक़' वयस्क की तरह है, पुरुष पुरुष की तरह...

(दायां कॉलम - उर्दू अनुवाद/व्याख्या): सीनाबंद स्तनों से जांघों तक होना चाहिए, खानिया के हवाले से 'नहर' में। 'कफन-ए-किफायत' का अर्थ है कि यह कम से कम इतना हो जो बिना किसी नापसंदगी के पर्याप्त हो, तो इसका दर्जा 'कफन-ए-सुन्नत' से कम है। 'बह्र' में है कि विद्वानों ने कहा कि जब धन कम हो और वारिस अधिक हों, तो 'कफन-ए-किफायत' बेहतर है; और इसके विपरीत स्थिति में 'कफन-ए-सुन्नत' बेहतर है। 'स्त्री के लिए दो कपड़े' - वे कौन से हैं? इसकी व्याख्या नहीं की गई, जैसे 'हिदाया' में कोई स्पष्टीकरण नहीं है। 'फ़तह अल-क़दीर' में इसकी व्याख्या में कमीज़ और चादर का उल्लेख है। 'कंज अल-दक़ाएक' में तहबंद और चादर को निश्चित किया गया है। 'बह्र' में कहा गया है कि स्पष्ट रूप से कोई निश्चितता नहीं है, बल्कि कमीज़ और तहबंद हो या दो तहबंद। दूसरा विकल्प बेहतर है क्योंकि इसमें सिर और गर्दन को ढकने के लिए अधिक कपड़ा होता है। 'कफन-ए-किफायत से कम नापसंद है' का अर्थ है जब कोई मजबूरी न हो। 'कमीज़ पहनाई जाए' का अर्थ है

मृतक के शरीर को किसी कपड़े से सुखाने के बाद कमीज़ पहनाई जाए। 'फिर वैसा ही किया जाए' का अर्थ है कमीज़ और ओढ़नी पहनाने के बाद उसे तहबंद पर रखा जाए और पहले बायां हिस्सा लपेटा जाए आदि। 'फ़तह अल-क़दीर' में कपड़े के टुकड़े (खिरक़ा) का स्थान नहीं बताया गया। 'शरह-ए-कंज' में है कि सीनाबंद कफन के ऊपर होता है ताकि कफन बिखरे नहीं। इसकी चौड़ाई स्तन से नाभि तक है और कहा गया है कि घुटनों तक होगी ताकि चलते समय जांघों से कफन न बिखरे। 'तोहफ़ा' में है: सीनाबंद कफन के ऊपर छाती के पास स्तनों के ऊपर बांधा जाए। 'मुराहिक़' (किशोरावस्था का बालक) वयस्कों की तरह है - पुरुष पुरुष की तरह और स्त्री [स्त्री की तरह],

فتاوی رضویہ جلد نہم

تكون من الثديين الى الفخذين نهر عن الخانية قوله وكفاية هو ادنى ما يكفيه بلا كراهة فهو دون كفن السنة، قال في البحر قالوا اذكان بالمال قلة والورثة كثرة فكفن الكفاية اولى، وعلى القلب كفن السنة اولى، قوله ولها ثوبان لم يعينهما كالهداية وفسرهما في الفتح بالقميص واللفافة وعينهما في الكنز بالازار واللفافة قال في البحر الظاهر عدم التعين بل اما قميص وازار وازاران والثاني اولى لان فيه زيادة في ستر الراس والعنق، قوله ويكره اي عند الاختيار، قوله ويقمص اي يلبس القميص بعد تنشيفه بخرقة، قوله ثم يفعل كما مر اي بأن توضع بعد الباس الدرع والخمار على الازار ويلف يساره الخ قال في الفتح ولم يذكر الخرقة وفي شرح الكنز فوق الاكفان كيلا تنتشر وعرضها مابين شدي المرأة الى السرة وقيل مابين الثدى الى الركبة كيلا ينتشر الكفن عن الفخذين وقت المشى، وفى التحفة تربط الخرقة فوق الاكفان عند الصدر فوق الثديين اهـ قوله والمراهق كالبالغ الذكر كالذكر

سینہ بند پستانوں سے رانوں تک ہو نہر از خانیہ قولہ کفن کفایت ۔۔ یہ کم سے کم اس قدر ہے جو بلا کراہت کافی ہو تو اس کا درجہ کفنِ سنت سے کم ہے۔ اور بحر میں ہے کہ علماء نے فرمایا جب مال کم ہو اور ورثہ زیادہ ہوں تو کفنِ کفایت بہتر ہے اور برعکس ہو تو کفنِ سنت بہتر ہے۔ قولہ عورت کے لئے دو کپڑے ۔۔ وہ کون؟ اس کی تعیین نہ فرمائی جیسے ہدایہ میں تعیین نہیں۔ فتح القدیر کے اندر اس کی تفسیر میں قمیص اور چادر کو بیان کیا ۔۔ اور کنز الدقائق میں تہبند اور چادر معین کیا۔ بحر میں کہا ظاہر عدمِ تعیین ہے بلکہ قمیص اور تہبند ہو یا دو تہبند ۔۔ اور ثانی بہتر ہے اس لئے کہ اس میں سر اور گردن چھپانے کے بقدر زیادہ ہوتا ہے۔ قولہ کفنِ کفایت سے کم مکروہ ہے۔ یعنی جب مجبوری نہ ہو۔ قولہ قمیص پہنائی جائے یعنی میت کا بدن کسی کپڑے سے خشک کر لینے کے بعد قمیص پہنائی جائے۔ قولہ پھر ویسے ہی کیا جائے ۔۔ یعنی یہ کہ قمیص اور اوڑھنی پہنانے کے

بعد ازار پر رکھا جائے اور پہلے بایاں لپیٹا جائے الخ ۔ فتح القدیر میں ہے خرقہ کی جگہ نہ بتائی۔ شرح کنز میں ہے کہ سینہ بند کفن کے اوپر ہوتا کہ کفن منتشر نہ ہو۔ اس کی چوڑائی پستان سے ناف تک اور کہا گیا کہ گھنٹے تک ہوگی تاکہ چلتے وقت رانوں سے کفن منتشر نہ ہو۔ تحفہ میں ہے : سینہ بند کفن کے اوپر سینہ کے پاس پستان کے اوپر باندھا جائے ۔ قولہ مراہق بالغوں کی طرح ہے۔ مذکر، مذکر کی طرح اور مونث،

Fatawa Razawiya Volume 9

[Table Header (Arabic)]: And the female is like the female. His words 'and whoever has not reached puberty etc.' this is if mentioned as the rule for males. Az-Zayla'i said: A small male child should be given at least one cloth and a small female child two cloths. It is said in al-Bada'i: If there is a child who is not near puberty, if he is shrouded in two pieces—a waist-wrap (izar) and a cloak (rida)—it is good; if he is shrouded in one waist-wrap, it is permissible. As for a small girl, there is no harm if she is shrouded in two cloths. I say: His words 'it is good' indicate that if he were shrouded in the shroud of an adult, it would be 'better,' because it is reported in al-Hilyah from al-Khaniyah and al-Khulasah: For a child who has not reached the age of desire, it is better that he be shrouded in what an adult is shrouded in. In this statement is an indication that 'one who has not reached puberty' refers to one who has not reached the age of desire. His words 'and the miscarried child is wrapped, and likewise the one born dead'—from al-Bada'i, summarized.

[Table Header (Urdu Translation/Explanation)]: Like the female. His words 'one who is not adolescent or adult' - this is the ruling for males. Zayla'i said: A small male child should be given at least one cloth and a small female child two cloths. It is stated in Bada'i that if there is such a child who is not near puberty, it is good to shroud him in two cloths - an izar (waist-wrap) and a rida (cloak). And if he is shrouded in one izar, it is permissible, but there is no harm if a young girl is given two cloths. I say, by calling giving two cloths to a child "good," it indicates that if he were given the full shroud of an adult, it would be "better," because it is quoted in Hilyah from Khaniyah and Khulasah that it is better to shroud a child who has not reached the limit of desire in the shroud of adults. This passage indicates that by 'not adolescent' is meant one who has not reached the limit of desire. His words 'incomplete child' (miscarriage)..... the same ruling applies to one who was born dead. Bada'i, etc. (T)

[Section Heading (Urdu)]: In Alamgiri it is stated:

[Second Table Section (Arabic)]: As for a woman, the outer wrap (lifafah) and the waist-wrap (izar) are spread for her in the same manner as we explained for a man. Then she is placed on the izar and dressed in the shirt (dir'), and her hair is divided into two braids and placed on her chest over the shirt. Then the head-veil (khimar) is placed over that. Then the izar and the lifafah are wrapped as we explained for a man. Then after that, a piece of cloth (breast-band) is tied over the shrouds above the breasts.

[Second Table Section (Urdu Translation)]: For a woman, the sheet and the waist-wrap (izar) should be spread in the same way as you described for a man. Then she should be placed on the izar and a shirt (qameez) should be put on her, and her hair should be made into two braids, brought to the chest, and placed over the shirt. Then a head-veil (odhni) should be put on her. Then the izar and the sheet should be wrapped in the same way as we described for a man. Then after the shrouds, a breast-band (seena-band) should be tied over the breasts.

1. Radd al-Muhtar, Chapter on Funeral Prayers, printed by Idarat al-Taba'at al-Misriyyah, Egypt, Vol 8, pp. 578 to 580. Page 104 of 948

फ़तावा रज़विया जिल्द 9

[तालिका शीर्षक (अरबी)]: और स्त्री स्त्री के समान है। उनके शब्द 'और जो कोई किशोरावस्था तक नहीं पहुँचा आदि' यह नियम पुरुष के लिए है। ज़ैलई ने कहा: एक छोटे बालक को कम से कम एक कपड़ा और एक छोटी बालिका को दो कपड़े दिए जाने चाहिए। अल-बदई में है: यदि कोई ऐसा बालक है जो किशोरावस्था के निकट नहीं है, यदि उसे दो टुकड़ों—एक तहबंद (इज़ार) और एक चादर (रिदा)—में कफ़नाया जाए, तो यह अच्छा है; यदि उसे एक तहबंद में कफ़नाया जाए, तो यह जायज़ है। जहाँ तक एक छोटी लड़की की बात है, तो उसे दो कपड़ों में कफ़नाने में कोई हर्ज नहीं है। मैं कहता हूँ: उनके शब्द 'यह अच्छा है' इस ओर संकेत करते हैं कि यदि उसे वयस्क के कफ़न में कफ़नाया गया होता, तो वह 'अधिक अच्छा' होता, क्योंकि अल-हिलया में अल-खानिया और अल-खुलासा से उद्धृत है: वह बच्चा जो कामेच्छा की आयु तक नहीं पहुँचा है, उसे उन कपड़ों में कफ़नाना बेहतर है जिनमें एक वयस्क को कफ़नाया जाता है। इस कथन में यह संकेत है कि 'जो किशोरावस्था तक नहीं पहुँचा' से तात्पर्य वह है जो कामेच्छा की आयु तक नहीं पहुँचा है। उनके शब्द 'और गर्भपात वाले बच्चे को लपेटा जाता है, और वैसे ही मृत पैदा हुए बच्चे को'—अल-बदई से, संक्षेप में।

[तालिका शीर्षक (उर्दू अनुवाद/व्याख्या)]: स्त्री की तरह। उनके शब्द 'जो किशोर नहीं वयस्क' - यह हुक्म पुरुष का है। ज़ैलई ने फ़रमाया: छोटे बच्चे को कम से कम एक और बच्ची को दो कपड़े दिए जाएँगे। बदई में है कि अगर ऐसा बच्चा है जो किशोरावस्था के करीब नहीं है उसे अगर दो कपड़े—तहबंद और चादर—में कफ़न दिया तो अच्छा है और अगर एक तहबंद में कफ़न दें तो जायज़ है मगर कमसिन लड़की को दो कपड़े दिए जाएँ तो हर्ज नहीं। मैं कहता हूँ बच्चे को दो कपड़े देने को "अच्छा" कहने में इस तरफ इशारा है कि अगर उसे वयस्क का पूरा कफ़न दे दिया तो "ज़्यादा अच्छा" है क्योंकि हिलया में खानिया और खुलासा से नक़ल है जो बच्चा हद-ए-शहवत को न पहुँचा हो उसे वयस्कों का कफ़न देना बेहतर है। इस इबारत में यह इशारा है कि ग़ैर-मराहिक (जो किशोरावस्था को न पहुँचा हो) से मुराद वह है जो हद-ए-शहवत को न पहुँचा हो। उनके शब्द 'ना-तमाम बच्चा' (गर्भपात)..... यही हुक्म उसका भी है जो मुर्दा पैदा हुआ। बदई आदि (त)

[अनुभाग शीर्षक (उर्दू)]: आलमगीरी में है:

[दूसरी तालिका अनुभाग (अरबी)]: जहाँ तक स्त्री की बात है, उसके लिए बाहरी चादर (लिफ़ाफ़ा) और तहबंद (इज़ार) उसी तरह बिछाए जाते हैं जैसा हमने पुरुष के लिए बताया है। फिर उसे इज़ार पर रखा जाता है और कमीज़ (दिर्य) पहनाई जाती है, और उसके बालों की दो चोटियाँ बनाकर कमीज़ के ऊपर उसके सीने पर रख दी जाती हैं। फिर उसके ऊपर ओढ़नी (खिमार) रखी जाती है। फिर इज़ार और लिफ़ाफ़ा उसी तरह लपेटा जाता है जैसा हमने पुरुष के लिए बताया है। फिर उसके बाद, कफ़न के ऊपर स्तनों के ऊपर एक सीना-बंद (खिरक़ा) बाँधा जाता है।

[दूसरी तालिका अनुभाग (उर्दू अनुवाद)]: औरत के लिए चादर और तहबंद (इज़ार) को उसी तरह बिछाया जाए जैसे तुमने मर्द के लिए बताया। फिर इज़ार पर उसे रख कर क़मीज़ पहनाई जाए और बालों के दो जोड़े (चोटियाँ) करके सीने पर लाकर क़मीज़ के ऊपर डाल दिए जाएँ फिर उसके ऊपर ओढ़नी पहनाई जाए, फिर इज़ार और चादर को उसी तरह लपेटा जाए जैसे मर्द के बारे में हमने बताया। फिर उसके बाद कफ़नों के बाद स्तनों पर सीना-बंद बाँधा जाए।

1. रद-अल-मुहतार, अध्याय जनाज़ा की नमाज़, मुद्रित इदारा-ए-तबात-ए-मिसरिया, मिस्र, जिल्द 8, पृष्ठ 578 से 580। पृष्ठ 104 का 948

[جدول کا بایاں حصہ (عربی)]: والانثٰی کالانثٰی، قولہ ومن لم یراھق الخ ھذا لو ذکر اتقال الزیلعی وادنی مایکفن بہ الصبی الصغیر ثوب واحد والصبیۃ ثوبان اھ وقال فی البدائع وان کان صبیا لم یراھق فان کفن فی خرقتین ازار ورداء فحسن، وان کفن فی ازار واحد جاز، واما الصغیرۃ فلا باس ان تکفن فی ثوبین اھ اقول فی قولہ فحسن اشارۃ الی انہ لوکفن بکفن البالغ یکون احسن، لما فی الحلیۃ عن الخانیۃ والخلاصۃ، الطفل الذی لم یبلغ حد الشھواۃ، الاحسن ان یکفن فیما یکفن فیہ البالغ اھ وفیہ اشارۃ الی ان المراد بمن لم یراھق من لم یبلغ حد الشھوۃ، قولہ والسقط یلف و کذا من ولد میتا بدائع اھ ملتقطا۔

[جدول کا دایاں حصہ (اردو ترجمہ و تشریح)]: مونث کی طرح۔ قولہ جو مراہق نہیں بالغ۔ یہ حکم مذکر کا ہے۔ زیلعی نے فرمایا: چھوٹے بچے کو کم سے کم ایک اور بچی کو دو کپڑے دیئے جائیں گے۔ بدائع میں ہے اگر ایسا بچہ ہے جو قریب البلوغ نہیں اسے اگر دو کپڑے۔تہبند اور چادر۔ میں کفن دیا تو اچھا ہے اور اگر ایک تہبند میں کفن دیں تو جائز ہے مگر کمسن لڑکی کو دو کپڑے دیئے جائیں تو حرج نہیں اھ۔ میں کہتا ہوں بچے کو دو کپڑے دینے کو "اچھا" کہنے میں اس طرف اشارہ ہے کہ اگر اسے بالغ کا پورا کفن دے دیا تو "زیادہ اچھا" ہے کیونکہ حلیہ میں خانیہ اور خلاصہ سے نقل ہے جو بچہ حد شہوت کو نہ پہنچا ہو اسے بالغوں کا کفن دینا بہتر ہے اھ اس عبارت میں یہ اشارہ ہے کہ غیر مراہق سے مراد وہ ہے جو حد شہوت کو نہ پہنچا ہو۔ قولہ ناتمام بچہ----- یہی حکم اس کا بھی ہے جو مردہ پیدا ہوا۔ بدائع، اھ (ت)

عالمگیری میں ہے:

اما المراة فتسبط لها اللفافة والازار على نحو ما بينا للرجل ثم توضع على الازار وتلبس الدرع ويجعل شعرها ضفيرتين على صدرها فوق الدرع ثم يجعل الخمار فوق ذلك ثم يعطف الازار واللفافة كما بينا فی الرجل ثم الخرقة بعد ذلك تربط فوق الاكفان فوق الثديين۔

عورت کے لئے چادر اور تہبند کو اسی طرح بچھایا جائے جیسے تم نے مرد کے لئے بتایا پھر ازار پر اسے رکھ کر قمیص پہنائی جائے اور بالوں کے دو جوڑے کرکے سینے پر لاکر قمیص کے اوپر ڈال دئے جائیں، پھر اس کے اوپر اوڑھنی پہنائی جائے، پھر ازار اور چادر کو اسی طرح لپیٹا جائے جیسے مرد کے بارے میں ہم نے بتایا۔ پھر اس کے بعد کفنوں کے بعد پستانوں پر سینہ بند باندھا جائے۔

1 ردالمحتار باب صلاۃ الجنائز مطبوعہ ادارۃ الطباعۃ المصریہ مصر ۸/۵۷۸ تا ۵۸۰ Page 104 of 948

Fatawa Razawiyyah, Volume 9

[Left Column - Arabic Text]: Similarly in 'Al-Muhit' [1] - The weak servant, may Allah Almighty forgive him, says: This, as you see, is a clear text (nass) that accepts no interpretation that the chest-wrap (khirqah) is tied over all the shrouds, even the outer sheet (lafafah). This is what we previously quoted from ash-Shami, from al-Fath, from at-Tabyin and at-Tuhfah, so let reliance be upon it. Although it was expressed in 'al-Jawharah' that it [the chest-wrap] should be under the outer sheet, saying that their statement 'above the shrouds' carries that possibility. However, the author of 'al-Jawharah' is disputed regarding this possibility, as is evident, for 'shrouds' (akfan) certainly includes the outer sheet (lafafah), and where is the specifying evidence? And where is the reason for that being 'apparent'? As for the statement in 'al-Ikhtiyar': 'Then the chest-wrap is tied over the shirt' [2], I say it is not explicit in it being under the shrouds except for the shirt. For whatever is above all of them truly has it said about it that it is 'above the shirt'. Thus, it does not contradict the clear text we presented, especially since it is explicitly mentioned in most books; therefore, we have relied upon it. And success is through Allah. And Allah Almighty knows best.

[Right Column - Urdu Translation/Explanation]: Similarly, it is in 'al-Muhit'. The weak servant—may the Almighty God grant him forgiveness—says: This text is an explicit and uninterpretable text regarding this matter, that the chest-wrap will be over all the shrouds, even the sheet. We have previously quoted this same ruling from Shami through Fath, Tabyin, and Tuhfa, so reliance should be placed on this. Although it is stated in Jawharah, whereas it appears that the chest-wrap should be under the sheet, the reason given was that the scholars' statement 'over the shrouds' carries that possibility of meaning. However, the author of Jawharah will be disagreed with regarding this possibility, as is evident. This is because the word 'shrouds' (akfan) definitely includes the sheet (lafafah), there is no specifying proof present, and there is no reason for it to be 'apparent'. As for this text from Ikhtiyar: 'Then the chest-wrap will be tied over the shirt,' I say that this is not explicit in that the chest-wrap will be under all the shrouds except the shirt, because for that which is over all the shrouds, it is also true to say that it is over the shirt. Similarly, this text does not contradict the explicit text presented by us; furthermore, what we have quoted is explicitly mentioned in most books, which is why we relied upon it. And success is from God alone. (T) And Allah Almighty knows best.

[Footnotes]: 1. Fatawa Hindiyyah, The Third Chapter on Shrouding, printed by Noorani Kutub Khana Peshawar, 1/121. 2. Al-Ikhtiyar li Ta'lil al-Mukhtar, Chapter on Shrouding the Deceased, printed by Mustafa al-Babi Egypt, 1/93.

फतावा रज़विया, खंड 9

[बायां कॉलम - अरबी पाठ]: इसी तरह 'मुहीत' [1] में है - 'अल-अब्द अद-दईफ' (कमजोर बंदा), अल्लाह तआला उसे क्षमा करे, कहता है: यह इबारत, जैसा कि आप देख रहे हैं, एक स्पष्ट पाठ (नस्स) है जो इस बारे में किसी अन्य व्याख्या को स्वीकार नहीं करती कि खिरक़ा (सीना-बंद) सभी कफनों के ऊपर बांधा जाएगा, यहाँ तक कि लफ़ाफ़ा (बाहरी चादर) के भी ऊपर। यही वह हुक्म है जो हमने पहले शामी से, फ़तह से, तबयीन और तोहफ़ा के हवाले से उद्धृत किया था, अतः इसी पर भरोसा किया जाना चाहिए। हालांकि 'जौहरा' में यह ज़ाहिर किया गया है कि यह लफ़ाफ़ा के नीचे होना चाहिए, यह तर्क देते हुए कि उनका कथन 'कफनों के ऊपर' इस अर्थ की संभावना रखता है। लेकिन जौहरा के लेखक से इस संभावना के बारे में असहमति है, जैसा कि स्पष्ट है, क्योंकि 'कफन' (अकफ़ान) शब्द में निश्चित रूप से लफ़ाफ़ा भी शामिल है, और इसे अलग करने वाली दलील कहाँ है? और इसके'ज़ाहिर' होने का क्या कारण है? रही बात 'अल-इख्तियार' की इस इबारत की: 'फिर खिरक़ा को क़मीज़ के ऊपर बांधा जाएगा' [2], तो मैं कहता हूँ कि यह इस बारे में स्पष्ट नहीं है कि खिरक़ा क़मीज़ के अलावा सभी कफनों के नीचे होगा। क्योंकि जो सभी कफनों के ऊपर होगा, उसके बारे में भी यह कहना सही है कि वह 'क़मीज़ के ऊपर' है। अतः यह हमारे द्वारा प्रस्तुत स्पष्ट पाठ का विरोध नहीं करता, विशेषकर तब जब हमने जो उद्धृत किया है उसका स्पष्ट उल्लेख अधिकांश किताबों में मौजूद है; इसीलिए हमने उसी पर भरोसा किया। और अल्लाह ही की ओर से तौफीक है। और अल्लाह तआला सबसे बेहतर जानता है।

[दायां कॉलम - उर्दू अनुवाद/व्याख्या]: इसी तरह मुहीत में है। बंदा ज़ईफ़-- खुदा-ए-बरतर इसकी मग़फ़िरत फ़रमाए-- कहता है: यह इबारत इस बारे में सरीह (स्पष्ट) और ना-क़ाबिले-तावील (जिसकी व्याख्या न की जा सके) नस्स (पाठ) है कि सीना-बंद सारे कफ़न यहाँ तक कि चादर के भी ऊपर होगा। यही हुक्म हमने शामी अज़ फ़तह अज़ तबयीन ओ तोहफ़ा से पहले नक़्ल किया तो इसी पर एतमाद होना चाहिए। अगरचे जौहरा में कहा जबकि ज़ाहिर यह है कि सीना-बंद चादर के नीचे हो, इसकी वजह यह बताई कि उलमा का इसे कफ़नों के ऊपर कहना इसी मा'नी का एहतमाल (संभावना) रखता है। मगर साहिब-ए-जौहरा से इसके एहतमाल के बारे में इख़्तिलाफ़ किया जाएगा, जैसा कि ज़ाहिर है। इसलिए कि "कफ़नों" का लफ्ज़ चादर को भी क़तअन शामिल है कोई दलील-ए-तख़्सीस (विशिष्ट दलील) मौजूद नहीं, और इसके"ज़ाहिर" होने की भी कोई वजह नहीं। रही इख्तियार की यह इबारत, 'फिर सीना-बंद को क़मीज़ के ऊपर बांधा जाएगा', तो मैं कहता हूँ यह इस

बारे में सरीह नहीं कि सीना-बंद क़मीज़ के अलावा सारे कफ़नों के नीचे होगा, इसलिए कि जो सारे कफ़नों के ऊपर हो उसके हक़ में भी यह कहना सादिक़ है कि वह क़मीज़ के ऊपर है। इसी तरह यह इबारत हमारे पेश कर्दा नस्स-ए-सरीह के मुआरिज़ (विपरीत) नहीं मज़ीद यह कि जो हमने नक़्ल किया इसकी तसरीह (स्पष्टीकरण) अक्सर किताबों में मौजूद है इसीलिए हमने इस पर एतमाद किया। और ख़ुदा ही की जानिब से तौफ़ीक़ है। (त) वल्लाहु तआला आलम।

[पाद टिप्पणियाँ]: 1. फ़तावा हिन्दिया, फ़स्ल-ए-सालिस फ़ित-तक्फ़ीन, मतबुआ नूरानी कुतुब खाना पेशावर 1/121 2. अल-इख़्तियार ली ता'लील अल-मुख्तार, फ़स्ल फ़ी तक्फ़ीन अल-मय्यित, मतबुआ मुस्तफा अल-बाबी मिस्र 1/93

[بایاں کالم - عربی عبارت]: كذا في المحيط ^1 اه قال العبد الضعيف غفر الله تعالى له وهذا كماترى نص صريح لايقبل التأويل في ان الخرقة تربط فوق الاكفان جميعا حتى اللفافة وهو الذى قدمنا عن الشامي عن الفتح عن التبيين والتحفة فعليه فليكن التعويل وان استظهر فى الجوهرة كونها تحت اللفافة قائلا، ان قولهم فوق الاكفان يحتمل ذلك وهو منازع فى هذا الاحتمال كما لا يخفى فان الاكفان تشتمل اللفافة قطعا واين المخصص واين وجه لظهور ذلك اماما في الاختيار ثم تربط الخرقة فوق القميص ^2 اه فاقول ليس نصا في كونها تحت الاكفان ماخلا القميص فان ما فوقهن جميعا يصدق عليه انه فوق القميص فلا يعارض ان النص الصريح الذي قدمنا مع انه هو مصرح به فى اكثر الكتب فلذا عولنا عليه وبالله التوفيق۔ واللہ تعالٰی اعلم۔

[دایاں کالم - اردو ترجمہ و تشریح]: اسی طرح محیط میں ہے اھ بندہ ضعیف۔۔ خدائے برتر اس کی مغفرت فرمائے۔۔ کہتا ہے: یہ عبارت اس بارے میں صریح ناقابلِ تاویل نص ہے کہ سینہ بند سارے کفن یہاں تک کہ چادر کے بھی اوپر ہوگا۔ یہی حکم ہم نے شامی از فتح از تبیین و تحفہ سے پہلے نقل کیا تو اسی پر اعتماد ہونا چاہئے۔ اگرچہ جوہرہ میں کہا جبکہ ظاہر یہ ہے کہ سینہ بند چادر کے نیچے ہو، اس کی وجہ یہ بتائی کہ علماء کا اسے کفنوں کے اوپر کہنا اسی معنی کا احتمال رکھتا ہے۔ مگر صاحبِ جوہرہ سے اس کا احتمال کے بارے میں اختلاف کیا جائے گا، جیسا کہ ظاہر ہے۔ اس لئے کہ "کفنوں" کا لفظ چادر کو بھی قطعاً شامل ہے کوئی دلیلِ تخصیص موجود نہیں، اور اس کے "ظاہر" ہونے کی بھی کوئی وجہ نہیں۔ رہی اختیار کی یہ عبارت، پھر سینہ بند کو قمیص کے اوپر باندھا جائے گا اھ تو میں کہتا ہوں یہ اس بارے میں صریح نہیں کہ سینہ بند قمیص کے علاوہ سارے کفنوں کے نیچے ہوگا اس لئے کہ جو سارے کفنوں کے اوپر ہو اس کے حق بھی یہ کہنا

صادق ہے کہ وہ قمیص کے اوپر ہے۔ اسی طرح یہ عبارت ہمارے پیش کردہ نصِ صریح کے معارض نہیں مزید یہ کہ جو ہم نے نقل کیا اس کی تصریح اکثر کتابوں میں موجود ہے اسی لئے ہم نے اس پر اعتماد کیا۔ اور خدا ہی کی جانب سے توفیق ہے (ت) واللہ تعالٰی اعلم

[حواشی]: 1. فتاوٰی ہندیہ الفصل الثالث فی التکفین مطبوعہ نورانی کتب خانہ پشاور ۱/۱۲۱ 2. الاختیار لتعلیل المختار فصل فی تکفین المیت مطبوعہ مصطفی البابي مصر ۱/۹۳

Fatawa Rizvia - Volume 9

Issue Number 12: From the land of Malwa, Indore city, Chheenpa Bakhal, sent by Ismail Qadri of Ahmedabad. A death occurred here. After the shrouding, a sheet of flowers was placed over the body. An Afghan prayer leader (Pesh Imam) removed it, saying it is an innovation (bid'ah) and he would not allow it. Furthermore, a black piece of cloth from the cover (Ghilaf) of the Holy Kaaba had been placed; he removed that as well, claiming it is a custom of the Rawafid (Shia) and he would not permit it. After setting it aside, he led the funeral prayer.

The Answer: There is absolutely no harm according to Sharia in placing a sheet of flowers over the shroud; in fact, with a good intention, it is a commendable act, just like placing flowers on graves. As long as they are fresh, they glorify God (tasbih), which provides comfort to the heart of the deceased and mercy descends. It is stated in Fatawa Alamgiri:

"Placing roses and aromatic plants on graves is good."[1] — Placing roses and flowers on graves is good. (T)

It is stated in Fatawa Imam Qazi Khan, Imdad al-Fattah Sharh al-Munassif li-Maraqi al-Falah, and Radd al-Muhtar ala al-Dur al-Mukhtar:

Arabic	Urdu
"As long as it is fresh, it glorifies [God], thus comforting the deceased, and mercy descends through its remembrance."[2]	As long as the flower remains fresh, it continues to glorify God, through which the deceased gains comfort and mercy descends by its remembrance. (T)

Similarly, placing a small piece of the cover of the honored Kaaba on the chest or face for blessings (tabarruk) is undoubtedly permissible, and to label it a custom of the Rawafid is a pure lie. It is mentioned in Asad al-Ghabah and other books:

Arabic	Urdu
"When death approached him [Hazrat Ameer Muawiyah], he made a will to be shrouded in a shirt given to him by the most excellent of blessings and peace [the Prophet], and that it be placed next to his body. He also had some clippings of his [the Prophet's] sacred nails, so he	When the final moments of Hazrat Ameer Muawiyah arrived, he willed that he should be shrouded in the shirt that the Holy Prophet (may the best of blessings and peace be upon him) had given him, and that it should be placed in contact with his body. He also had some clippings

Arabic	Urdu
willed that they be ground and placed in his eyes and mouth, and said: 'Do that and leave me.'"	of the sacred nails of the Holy Prophet (may the best of blessings and peace be upon him), regarding which he willed that...

1. Fatawa Hindiyyah, Chapter 16, regarding visiting graves, published by Noorani Kutub Khana, Peshawar, 5/351.
2. Radd al-Muhtar, Discussion on placing fresh flowers and myrtle etc. on graves, published by Idarat al-Tiba'at al-Misriyyah, Egypt.

फ़तावा रिज़विया - जिल्द नौवीं

मसला नंबर 12: मुल्क मालवा, शहर इंदौर, छेंपा बाखल से इस्माइल क़ादरी अहमदाबाद वाले द्वारा भेजा गया। यहाँ एक मौत हो गई थी। कफ़न पहनाने के बाद फूलों की चादर डाली गई, जिसे एक अफ़ग़ानी पेश इमाम ने उतार दिया और कहा कि यह बिदअत है, हम इसे नहीं डालने देंगे। दूसरा, काबा शरीफ़ के ग़िलाफ़ का एक काला टुकड़ा डाला गया था, उसे भी हटा दिया और कहा कि यह रवाफ़िज़ (शिया) का रिवाज है, हम इसे नहीं डालने देंगे। उसने उसे अलग हटा कर जनाज़े की नमाज़ पढ़ाई।

अल-जवाब: कफ़न के ऊपर फूलों की चादर डालने में शरीयत के लिहाज़ से असल में कोई हर्ज नहीं है, बल्कि अच्छी नीयत से यह अच्छा ही है, जैसे कब्रों पर फूल डालना, जब तक वे ताज़ा हैं, वे तस्बीह (अल्लाह की महिमा) करते हैं, जिससे मैयत (मृतक) का दिल बहलता है और रहमत उतरती है। फ़तावा आलमगीरी में है:

"कब्रों पर गुलाब और सुगंधित पौधे रखना अच्छा है।"[1] — कब्रों पर गुलाब और फूलों को रखना अच्छा है। (त)

फ़तावा इमाम काज़ी ख़ान, इमदाद अल-फ़त्ताह शरह अल-मुनसिफ़ लि-मराक़ी अल-फ़लाह और रद्द अल-मुह्तार अला अद-दुर अल-मुख्तार में है:

अरबी	उर्दू
"जब तक वह ताज़ा रहता है, तस्बीह करता है, जिससे मृतक को सुकून मिलता है और उसके ज़िक्र से रहमत नाज़िल होती है।"[2]	फूल जब तक ताज़ा रहता है, तस्बीह करता रहता है, जिससे मृतक को सुकून मिलता है और उसके ज़िक्र से रहमत उतरती है। (त)

इसी तरह, बरकत के लिए काबा मुअज़्ज़मा के ग़िलाफ़ का एक छोटा टुकड़ा सीने या चेहरे पर रखना बेशक जायज़ है, और इसे रवाफ़िज़ का रिवाज कहना सरासर झूठ है। 'असद अल-ग़ाबा' और अन्य में है:

अरबी	उर्दू
"जब उन्हें (हज़रत अमीर मुआविया को) मौत का वक़्त आया, तो उन्होंने वसीयत की कि उन्हें उस कमीज़ में	जब हज़रत अमीर मुआविया का आख़िरी वक़्त आया, तो उन्होंने वसीयत फ़रमाई कि

अरबी

कफ़न दिया जाए जो नबी अकरम (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने उन्हें अता फ़रमाई थी, और उसे उनके बदन से सटाकर रखा जाए। उनके पास हुज़ूर (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) के मुबारक नाख़ूनों के कुछ टुकड़े भी थे, जिनके बारे में उन्होंने वसीयत की कि उन्हें पीसकर उनकी आँखों और मुँह में रख दिया जाए, और कहा कि 'ऐसा करो और मुझे छोड़ दो'।”

उर्दू

उन्हें उस कमीज़ में कफ़न दिया जाए जो नबी अकरम सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने उन्हें अता फ़रमाई थी, और यह उनके जिस्म से सटाकर रखी जाए। उनके पास हुज़ूर अक़दस सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम के नाख़ून-ए-पाक के कुछ तराशे भी थे, जिनके बारे में उन्होंने वसीयत फ़रमाई कि...

1. फ़तावा हिन्दिया, बाब 16, ज़ियारत-ए-कुबूर के बारे में, नूरानी कुतुब ख़ाना पेशावर, 5/351।
2. रद्द अल-मुह्तार, कब्रों पर ताज़ा फूल और मेंहदी आदि रखने के विषय में, इदारातुल तिबा'ह अल-मिसरिया, मिस्र।

पृष्ठ 106/948

فتاوٰی رضویہ - جلد نہم

مسئلہ نمبر ۱۲ : از ملک مالوا شہر اندور چھینپہ باکھل مرسلہ اسمٰعیل قادری احمدآباد والا یہاں میت ہو گئی تھی اس کے کفنانے کے بعد پھولوں کی چادر ڈالی گئی، اس کو ایک پیش امام افغانی نے اتار ڈالا اور کہا یہ بدعت ہے ہم نہ ڈالنے دیں گے۔ دوسرے جو غلاف کا پارچہ سیاہ کعبہ شریف سے لاتے ہیں وہ ٹکڑا ڈالا ہوا تھا اسے ہٹا دیا اور کہا یہ روافض کا رواج ہے ہم نہ ڈالیں گے اسے الگ ہٹا کے اس نے نماز جنازہ پڑھائی۔

الجواب: پھولوں کی چادر بالائے کفن ڈالنے میں شرعاً اصلاً کوئی حرج نہیں بلکہ نیتِ حسن سے حسن ہے جیسے قبور پر پھول ڈالنا کہ وہ جب تک تر ہیں تسبیح کرتے ہیں اس سے میت کا دل بہلتا ہے اور رحمت اترتی ہے۔ فتاوٰی عالمگیری میں ہے:

وضع الورد والریاحین علی القبور حسن ۱- قبروں پر گلاب اور پھولوں کا رکھنا اچھا ہے۔ (ت)

فتاوٰی امام قاضی خان وامدادالفتاح شرح المنصف لمراقی الفلاح و ردالمحتار علی الدرالمختار میں ہے :

عربی **اردو**

انہ مادام رطبا یسبح فیؤنس پھول جب تک تر رہے تسبیح کرتا رہتا ہے جس سے میت کو انس المیت وتنزل بذکرہ الرحمۃ ۲- حاصل ہوتا ہے اور اس کے ذکر سے رحمت نازل ہوتی ہے۔ (ت)

یو نہی تبرک کے لئے غلاف کعبہ معظمہ کا قلیل ٹکڑا سینے یا چہرے پر رکھنا بلاشبہ جائز ہے اور اسے رواجِ روافض بتانا محض جھوٹ ہے۔ اسدالغابہ وغیر ہا میں ہے :

عربی	اردو
لما حضره الموت اوصى ان يكفن في قميص كان عليه افضل الصلوة و السلام كساه اياه، وان جعل ممايلي جسده، وكان عنده قلامة اظفاره عليه افضل الصلوة والسلام فأوصى ان تسحق وتجعل في عينيه وفمه، وقال افعلوا ذلك وخلوبيني	جب حضرت امیر معاویہ کا آخری وقت آیا وصیت فرمائی کہ انہیں اس قمیص میں کفن دیا جائے جو نبی اکرم صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم نے انہیں عطا فرمائی تھی، اور یہ ان کے جسم سے متصل رکھی جائے، ان کے پاس حضور اقدس صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کے ناخن پاک کے کچھ تراشے بھی تھے ان کے متعلق وصیت فرمائی کہ

1 فتاویٰ ہندیہ الباب السادس عشر فی زیارۃ القبور مطبوعہ نورانی کتب خانہ پشاور ۵ / ۳۵۱ 2 ردالمحتار مطلب فی وضع الجدید و نحو لآس علی القبور مطبوعہ ادارۃ الطباعۃ المصریۃ مصر

Fatawa Razawiyya Volume 9

[Boxed Text] Between me and the Most Merciful of the merciful[1]. [They should be] finely ground and placed on his eyes and mouth. He said, perform this task and entrust me to the Most Merciful of the merciful (T).

To declare these matters as forbidden innovations (Bid'ah), if it is purely based on ignorance, is indeed ignorance itself. And if it is based on Wahhabism, i.e., non-conformity (Ghair Muqallidi) or Deobandism, then the prayer (Salah) he led was absolutely void; the Muslim was buried without a funeral prayer. And everyone who was aware of that Imam's state committed the sin of abandoning the obligatory funeral prayer and is deserving of punishment, provided they themselves are not Wahhabis or do not consider a Wahhabi as a righteous Imam. Otherwise, there is a consensus fatwa from the scholars of the Two Holy Sanctuaries (Haramayn Sharifayn) stating that "He who doubts his [the disbeliever's] disbelief and punishment, indeed becomes a disbeliever." He who doubts the disbelief of the Wahhabis is himself a disbeliever. We seek refuge in Allah Almighty. And Allah Almighty knows best.

---

1 Usd al-Ghabah fi Ma'rifat al-Sahabah, chapter 'Meem' and 'Ain', published by Al-Maktabah al-Islamiyyah, Riyadh al-Shaikh 4/387 Page 107 of 948

फ़तावा रज़विया जिल्द नहम (नौवीं)

[बॉक्स किया हुआ पाठ] मेरे और अरहमुर-राहमीन (सबसे बड़े रहम करने वाले) के दरमियान[1]। बारीक करके उनकी आँखों और मुँह पर रख दिए जाएँ। फ़रमाया यह काम अंजाम देना और मुझे अरहमुर-राहमीन के सुपुर्द कर देना (त)।

इन बातों को बिदअते ममनूआ (वर्जित नवाचार) ठहराना अगर महज़ बर-बिनाए जेहल (अज्ञानता के आधार पर) हो तो जहालत ही है। और अगर बर-बिनाए वहाबियत यानी ग़ैर-मुक़ल्लिदी या देवबंदियत हो तो वह नमाज़ जो उसने पढ़ाई बातिल-ए-महज़ (बिलकुल व्यर्थ) हुई, मुसलमान बग़ैर नमाज़ के दफ़्न किया गया। और जो-जो उस इमाम की हालत से आगाह थे सब तरके फ़र्ज़ नमाज़-ए-जनाज़ा के मुर्तकिब व मुस्तहिक़े अज़ाब रहे, जबकि ख़ुद वहाबी या वहाबिया को सालेह इमाम जानने वाले न हों, वरना बिल-इत्तिफ़ाक़ उलमा-ए-हरमैन शरीफ़ैन का फ़तवा हो चुका है कि "मन शक़्क़ा फ़ी कुफ़्रिही व अज़ाबिही फ़क़ ज कफ़रा" जो वहाबिया के कुफ़्र में शक करे ख़ुद काफ़िर है। वल-इयाज़ु बिल्लाहि तआला। वल्लाहु तआला आलम।

---

1 उसदुल ग़ाबा फ़ी मारिफ़तिस सहाबा, बाब अल-मीम वल-ऐन, मतबूआ अल-मक़्तबतुल इस्लामिया रियाज़ुश शेख़ 4/387 पृष्ठ 107/948

[خانہ میں عبارت] بینی وبین ارحم الراحمین[1]۔ باریک کرکے ان کی آنکھوں اور دہن پر رکھ دئے جائیں ۔ فرمایا یہ کام انجام دینا اور مجھے ارحم الراحمین کے سپرد کر دینا (ت)۔

ان باتوں کو بدعت ممنوعہ ٹھہرانا اگر محض بر بنائے جہل ہو تو جہالت ہی ہے اور اگر بر بنائے وہابیت یعنی غیر مقلدی یا دیوبندیت ہو تو وہ نماز کہ اس نے پڑھائی باطل محض ہوئی، مسلمان بغیر نماز کے دفن کیا گیا، اور جو جو اُس امام کی حالت سے آگاہ تھے سب ترک فرض نماز جنازہ کے مرتکب و مستحق عذاب رہے، جبکہ خود وہابی یا وہابیہ کو صالح امام جاننے والے نہ ہوں ، ورنہ بالاتفاق علمائے حرمین شریفین کا فتوٰی ہو چکا ہے کہ من شك فی کفرہ و عذابہ فقد کفر جو وہابیہ کے کفر میں شک کرے خود کافر ہے۔ والعیاذباللہ تعالٰی۔ واللہ تعالٰی اعلم

---

1 اسد الغابہ فی معرفۃ الصحابہ باب المیم والعین مطبوعہ المکتبۃ الاسلامیہ ریاض الشیخ ۴ / ۳۸۷

Fatawa Rizvia, Volume Nine

Treatise: Al-Harf al-Hasan fi al-Kitaba 'ala al-Kafan 1308 AH (An Excellent Discussion Regarding Writing on the Shroud)

Issue No. 15: From Marehra Mutahira, Bagh Pukhta, sent by Hazrat Sahibzada Syed Muhammad Ibrahim, 9 Rajab 1308 AH. What do the scholars of the religion say regarding the matter: if a piece of shroud cloth is brought from holy places and has verses of the Word of Allah, Hadiths, etc., written upon it, how is it to dress the deceased in it? And how is it to place a Shajarah (spiritual lineage document) in the grave? Give the ruling and be rewarded. The Answer: In the name of Allah, the Most Gracious, the Most Merciful.

[Arabic Column]: All praise is due to Allah, who has veiled us with the hem of His grace during our lives and after death, and who has opened for us the doors of blessings through seeking means (tawassul) by His verses and signs. And peace and blessings be upon the one through whose noble relics both the living and the dead have attained blessings, and who revives and gives life to every dead thing through the rains of his magnificent abundance, and upon his family, companions, people, and group.

[Urdu Column]: All praise is for Allah, who, with the hem of His grace, has concealed us in our lives and even after death, and has opened the doors of blessings upon us through the mediation of His verses and signs. And may blessings and peace be upon him through whose noble relics both the living and the dead have obtained blessings, and from the rains of whose great bounties every lifeless thing has received and continues to receive life, and (peace and blessings be) upon his family, companions, household, and community.

Page 108 of 948

फ़तावा रिज़विया, जिल्द नवीं

रिसाला: अल-हर्फ़ अल-हसन फ़ी अल-किताबा अला अल-कफ़न १३०८ हिजरी (कफ़न पर लिखने के बारे में उत्तम चर्चा)

मसला नंबर १५: मारहरा मुतहरा, बाग़ पुख्ता से, प्रेषक हज़रत साहबज़ादा सैयद मुहम्मद इब्राहिम, ९ रजब १३०८ हिजरी। धर्म के विद्वान इस मसले में क्या कहते हैं कि कफ़न का वह कपड़ा जो पवित्र स्थानों से आए और उस पर अल्लाह के कलाम की आयतें और हदीसें आदि लिखी हों, उसे मैयत (मृतक) को पहनाना कैसा है और कब्र में शजरा (आध्यात्मिक वंशावली) रखना कैसा है? जवाब दें और पुण्य प्राप्त करें। उत्तर: बिस्मिल्लाह हिर्रहमान निर्रहीम

[अरबी कॉलम]: तमाम तारीफें अल्लाह के लिए हैं जिसने हमें अपनी कृपा के पल्लू से हमारे जीवन में और मृत्यु के बाद भी ढका, और अपनी आयतों और प्रतीकों के माध्यम से वसीला ढूंढने में हमारे ऊपर बरकतों के दरवाज़े खोले। और दुरूद-ओ-सलाम हो उन पर जिनके महान अवशेषों से जीवित और मृत सभी ने बरकत हासिल की और जिनके महान अनुग्रह की बारिशों से हर निर्जीव को जीवन मिला और मिलता है, और उनके परिवार, साथियों, घरवालों और जमात पर।

[उर्दू कॉलम]: सब खूबियां अल्लाह के लिए हैं जिसने अपने दामन-ए-करम से हमें हमारी ज़िंदगी में और मरने के बाद भी छुपाया, और अपनी आयात और शआर से तवस्सुल में हमारे ऊपर बरकतों के दरवाज़े खोले। और दुरूद-ओ-सलाम हो उन पर जिनके आसार-ए-गरामी से ज़िंदा और मुर्दे सभी ने बरकत हासिल की और जिनके अज़ीम फ़्यूज़ की बारिशों से हर बे-जान को ज़िंदगी मिली और मिलती है और (दुरूद-ओ-सलाम हो) उनकी आल, असहाब, अहल और जमात पर।

पृष्ठ १०८ / ९४८

فتاویٰ رضویہ، جلد نہم

رسالہ: الحرف الحسن فی الکتابة علی الکفن ۱۳۰۸ھ (کفن پر لکھنے کے بارے میں عمدہ گفتگو)

مسئلہ نمبر ۱۵: از مارہرہ مطہرہ باغ پختہ مرسلہ حضرت صاحبزادہ سید محمد ابراہیم ۹ رجب ۱۳۰۸ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ پارچہ کفن جو اماکن متبرکہ سے آئے اور اس پر آیات کلام اللہ و احادیث وغیرہ لکھی ہوں وہ میت کو پہنانا کیسا ہے اور شجرہ قبر میں رکھنا کیسا ہے؟ بینوا توجروا الجواب: بسم اللہ الرحمن الرحیم

[عربی کالم]: الحمدلله الذی سترنابذیل کرمه في حیاتنا وبعد الممات وفتح علینا فی التوسل بآیاته وشعائره ابواب البرکات والسلام علی من تبرك بأثاره الکریمة الاحیاء والاموات وحي ویحیي بأمطار فیوضه العظیمة کل موات وعلی اله وصحبه واهله وحزبه

[اردو کالم]: سب خوبیاں اللہ کے لئے جس نے اپنے دامن کرم سے ہمیں ہماری زندگی میں اور مرنے کے بعد بھی چھپایا، اور اپنی آیات و شعائر سے توسل میں ہمارے اوپر برکتوں کے دروازے کھولے۔ اور درود و سلام ہو ان پر جن کے آثار گرامی سے زندہ اور مردے سبھی نے برکت حاصل کی اور جن کے عظیم فیوض کی بارشوں سے ہر بے جان کو زندگی ملی اور ملتی ہے اور (درود و سلام ہو) ان کی آل، اصحاب، اہل اور جماعت پر،

Fatawa Razawiya - Volume 9

Number of all past happenings. Equal to the number of every past [one]. (T)

There are four points here: First: A specific case (juz'iyyah) from Hanafi jurisprudence about writing on the shroud (kafan), which by extension applies even more strongly to placing a 'shajarah' (spiritual lineage tree) in the grave. And its supporting Hadiths and reports. Second: Evidence from Hadiths that religiously sanctified items were used as shrouds or placed on the deceased's body, and this was not considered disrespectful. Third: Response to the concern of some later Shafi'i scholars who considered writing on the shroud as disrespectful. Fourth: The discourse on placing a shajarah in the grave. And success is from Allah.

First point: Our noble scholars have stated that writing an 'ahd-namah' (covenant/ testament) on the forehead of the deceased or on the shroud brings hope of forgiveness for them. (1) Imam Abu al-Qasim Saffar, student of Imam Nasir bin Yahya, who was a pupil of the Master of the School (Sheikh al-Madhhab) Imam Abu Yusuf, and the codifier of the school (Muharrir al-Madhhab) Imam Muhammad (may Allah have mercy on them), clarified and narrated this. (2) Imam Nasir supported and strengthened this by the action of the Leader of the Believers, Faruq al-Azam (may Allah be pleased with him). (3) Imam Muhammad Bazzazi in 'Wajiz al-Kardari' and (4) the meticulous scholar Allama Ala'i in 'Durr al-Mukhtar' relied upon this. (5) This was also the practice of Imam Faqih Ibn 'Ujayl and others. (6) Furthermore, it is narrated from the eminent Imam Tawus al-Tabi'i, a student of Sayyiduna Abdullah ibn Abbas (may Allah be pleased with him), that he bequeathed that an 'ahd-namah' be written in his shroud, and according to his will, it was written in his shroud. (7) Moreover, Hazrat Kathir bin Abbas bin Abd al-Muttalib (may Allah be pleased with them), who is the cousin of the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) and a Companion, himself wrote the Declaration of Faith (Kalimah Shahadat) on his shroud. (8) Even more, Imam Tirmidhi Hakim Ilahi Sayyidi Muhammad bin Ali, a contemporary of Imam Bukhari, narrated in 'Nawadir al-Usul' that the radiant Master of the Worlds (peace and blessings of Allah be upon him) himself said:

[Boxed Text] Arabic: Whoever writes this supplication and places it between the chest of the deceased and their shroud on a slip of paper, the punishment of the grave shall not reach them, nor shall they see Munkar and Nakir. And the supplication is this: La ilaha illallah wallahu akbar la ilaha illallah... Urdu: Whoever writes this supplication on a piece of paper and places it on the chest of the deceased under the

shroud, they will not suffer the punishment of the grave, nor will Munkar and Nakir appear to them. And that prayer is: La ilaha illallah wallahu akbar la ilaha illallah wahdahu...

फ़तावा रज़विया - जिल्द नौ (9)

अतीत की सभी घटनाओं की संख्या। प्रत्येक बीते हुए की संख्या के बराबर। (टी)

यहाँ चार बिन्दु हैं: प्रथम: हनफ़ी फ़िक़्ह से कफ़न पर लिखने का एक उदाहरण, जो कि प्रथम श्रेणी में कब्र में शजरा रखने का उदाहरण होगा। और इसके समर्थक हदीसें और रिवायतें। द्वितीय: हदीसों से इसका प्रमाण कि धार्मिक पवित्र वस्तुओं को कफ़न के रूप में दिया गया या मृतक के शरीर पर रखा गया और इसे सम्मान में बाधा नहीं समझा गया। तृतीय: कुछ बाद के शाफ़ई विद्वानों द्वारा कफ़न पर लिखने को अनादर समझने के विचार का उत्तर। चतुर्थ: कब्र में शजरा रखने का बयान। और अल्लाह ही सफलता देने वाला है।

प्रथम बिन्दु: हमारे आदरणीय विद्वानों ने फ़रमाया है कि मृतक के माथे या कफ़न पर अहद-नामा (प्रतिज्ञा-पत्र) लिखने से उसके लिए क्षमा की आशा है। (1) इमाम अबू अल-क़ासिम सफ़ार, जो इमाम नसीर बिन यह्या के छात्र थे, जो स्वयं शेख अल-मज़हब सैय्यदना इमाम अबू यूसुफ़ और मुहर्रिर अल-मज़हब सैय्यद इमाम मुहम्मद (अल्लाह उन पर रहम करे) के शिष्य थे, ने इसे स्पष्ट किया और रिवायत की। (2) इमाम नसीर ने अमीरुल मोमिनीन फ़ारूक़-ए-आज़म (रज़ियल्लाहु अन्हु) के अमल से इसका समर्थन और पुष्टी की। (3) इमाम मुहम्मद बज़्ज़ाज़ी ने 'वजीज़ करदरी' में और (4) अल्लामा मोहक़्क़िक़ अलाही ने 'दुर्रे मुख़्तार' में इस पर भरोसा किया। (5) इमाम फ़क़ीह इब्न उजैल वग़ैरा का भी यही अमल रहा। (6) बल्कि बड़े इमाम ताऊस ताबई, जो सैय्यदना अब्दुल्लाह बिन अब्बास (रज़ियल्लाहु अन्हु) के छात्र थे, से रिवायत है कि उन्होंने अपने कफ़न में अहद-नामा लिखे जाने की वसीयत की और वसीयत के अनुसार उनके कफ़न में लिखा गया। (7) बल्कि हज़रत कसीर बिन अब्बास बिन अब्दुल मुत्तलिब (रज़ियल्लाहु अन्हुमा), जो रसूलुल्लाह (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) के चचेरे भाई और सहाबी हैं, ने स्वयं अपने कफ़न पर कलिमा-ए-शहादत लिखा। (8) बल्कि इमाम तिर्मिज़ी हकीम इलाही सैय्यदी मुहम्मद बिन अली, जो इमाम बुखारी के समकालीन थे, ने 'नवादिरुल उसूल' में रिवायत की कि स्वयं हुज़ूर पुर नूर सैय्यदे आलम (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने फ़रमाया:

[बॉक्स किया हुआ पाठ] अरबी: जिसने यह दुआ लिखी और उसे मृतक के सीने और उसके कफ़न के बीच एक पर्चे पर रखा, उसे कब्र का अज़ाब नहीं होगा और न ही वह मुनकर और नकीर को देखेगा। और वह दुआ यह है: ला इलाहा इल्लल्लाह वल्लाहु अकबर ला इलाहा इल्लल्लाह... उर्दू: जो यह दुआ किसी काग़ज़ पर लिखकर मैय्यत के सीने पर कफ़न के नीचे रख दे उसे कब्र का अज़ाब न

होगा न मुनकर नकीर नज़र आएँगे, और वह दुआ यह है: ला इलाहा इल्लल्लाह वल्लाहु अकबर ला इलाहा इल्लल्लाह वहदहु,

पृष्ठ 109 / 948

عدد کل ماضی وات۔ ہر گذشتہ کی تعداد کے برابر۔(ت)

یہاں چار مقام ہیں: اول: فقہ حنفی سے کفن پر لکھنے کا جزئیہ کہ بدرجہ اولٰی قبر میں شجرہ رکھنے کا جزئیہ ہوگا۔ اور اس کے مؤید احادیث و روایات۔ دوم: احادیث سے اس کا ثبوت کہ معظمات دینیہ میں کفن دیا گیا یا بدنِ میت پر رکھی گئیں اور اسے مخلِ تعظیم نہ جانا۔ سوم: بعض متاخرین شافعیہ نے جو کفن پر لکھنے میں بے تعظیمی خیال اس کا جواب۔ چہارم: قبر میں شجرہ رکھنے کا بیان۔ وباللہ التوفیق

مقامِ اول: ہمارے علماء کرام نے فرمایا کہ میت کی پیشانی یا کفن پر عہد نامہ لکھنے سے اس کے لئے امیدِ مغفرت ہے۔ (۱) امام ابو القاسم صفار شاگرد امام نصیر بن یحییٰ تلمیذ شیخ المذہب سیدنا امام ابویوسف و محرر المذہب سید امام محمد رحمہم اللہ تعالٰی نے اس کی تصریح و روایت کی۔ (۲) امام نصیر نے فعلِ امیر المومنین فاروق اعظم رضی اللہ تعالٰی عنہ سے اس کی تائید و تقویت کی۔ (۳) امام محمد بزازی نے وجیز کر دری (۴) علامہ مدقق علائی نے در مختار میں اس پر اعتماد فرمایا۔ (۵) امام فقیہ ابن عُجیل وغیرہ کا بھی یہی معمول رہا۔ (۶) بلکہ امام اجل طاؤس تابعی شاگرد سیدنا عبد اللہ بن عباس رضی اللہ تعالٰی عنہ سے مروی کہ انہوں نے اپنے کفن میں عہد نامہ لکھے جانے کی وصیت فرمائی اور حسب وصیت ان کے کفن میں لکھا گیا۔ (۷) بلکہ حضرت کثیر بن عباس بن عبد المطلب رضی اللہ تعالٰی عنہم نے کہ رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم کے چچا کے بیٹے اور صحابی ہیں خود اپنے کفن پر کلمہ شہادت لکھا۔ (۸) بلکہ امام ترمذی حکیم الٰہی سیدی محمد بن علی معاصر امام بخاری نے نوادر الاصول میں روایت کی کہ خود حضور پُر نور سیدِ عالم صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم نے فرمایا:

[باکس شده عبارت] عربی: من کتب هذا الدعاء وجعله بین صدر المیت وکفنه في رقعة لم ینله عذاب القبر ولا یری منکرا ونکیرا و هو هذا لا اله الا الله والله اکبر لا اله الا الله... اردو: جو یہ دُعا کسی پرچہ پر لکھ کر میت کے سینہ پر کفن کے نیچے رکھ دے اُسے عذابِ قبر نہ ہو نہ منکر نکیر نظر آئیں، اور وہ دعا یہ ہے: لا اله الا الله والله اکبر لا اله الا الله وحده،

صفحہ 109 از 948

Fatawa Rizvia, Volume 9

He is One, no partner for Him, there is no god but Allah, to Him belongs the dominion and to Him belongs the praise, there is no god but Allah, and there is no power nor strength except with Allah, the High, the Great.

He is One, no partner for Him, there is no god but Allah, to Him belongs the dominion and to Him belongs the praise, there is no god but Allah, and there is no power nor strength except with Allah, the High, the Great.

Also narrated in Tirmidhi from Sayyiduna Siddiq-e-Akbar (may Allah be pleased with him) that the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) said: Whoever recites this supplication after the salam in every prayer:

"O Allah, Creator of the heavens and the earth, Knower of the unseen and the witnessed, the Most Merciful, the Most Compassionate. I covenant with You in this worldly life that You are Allah, there is no god but You, alone without partner, and that Muhammad is Your servant and Messenger. Do not leave me to myself, for if You leave me to myself, You bring me closer to evil and distance me from good. I trust only in Your mercy, so make Your mercy a covenant for me with You, which You fulfill until the Day of Resurrection. Indeed, You do not fail in Your promise."

An angel will write it down, seal it, and keep it until the Day of Judgment. When Allah raises that servant from the grave, the angel will bring that script with him and a call will be made: "Where are those with the covenant? Let that covenant be given to them." The Imam narrated this and said:

And from Tawus, he commanded these words to be written in his shroud.

By the will of Imam Tawus, the covenant was written in his shroud.

Imam Faqih ibn 'Ujayl said regarding this supplication of the covenant:

When this supplication is written and placed with the deceased in his grave, Allah protects him from the trial and punishment of the grave.

When this is written and placed in the grave with the deceased, Allah gives him safety from the questioning of Munkar and Nakir and the punishment of the grave.

(9) The same Imam says:

Whoever writes this supplication in the shroud of the deceased, it will be raised...	**Whoever writes this supplication in the deceased's shroud, Allah [will protect him] until the Day of Resurrection.**

1. Fatawa Kubra, referenced by Tirmidhi, Chapter of Funerals, published by Dar al-Kutub al-Ilmiyyah Beirut, 2/6
2. Nawadir al-Usul, Principle 74 and 100, published by Dar Sadr Beirut, p. 217
3. Ad-Durr al-Manthur, Ghuniyah referenced by Hakim al-Tirmidhi under 'The One who takes a covenant with the Most Merciful', publications of Ayatollah Library, Qom, Iran, 4/286
4. Fatawa Kubra, referenced by Ibn 'Ujayl, Chapter of Funerals, published by Dar al-Kutub al-Ilmiyyah Beirut, and Ghuniyah 2/6

फतावा रज़विया, जिल्द 9

वह अकेला है, उसका कोई शरीक नहीं, अल्लाह के सिवा कोई माबूद नहीं, उसी की बादशाहत है और उसी की तमाम तारीफें हैं, अल्लाह के सिवा कोई माबूद नहीं, और न कोई ताकत है न कोई कुव्वत मगर अल्लाह बुलन्द और अज़ीम की मदद से।

वह अकेला है, उसका कोई शरीक नहीं, अल्लाह के सिवा कोई माबूद नहीं, उसी की बादशाहत है और उसी की तमाम तारीफें हैं, अल्लाह के सिवा कोई माबूद नहीं, और न कोई ताकत है न कोई कुव्वत मगर अल्लाह बुलन्द और अज़ीम की मदद से।

तिर्मिज़ी में सैयदुना सिद्दीक-ए-अकबर (रज़ियल्लाहु अन्हु) से रिवायत है कि रसूलुल्लाह (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने फ़रमाया: जो हर नमाज़ में सलाम के बाद यह दुआ पढ़े:

"ऐ अल्लाह, आसमानों और ज़मीन के पैदा करने वाले, गैब और हाज़िर को जानने वाले, रहमान और रहीम। मैं इस दुनियावी ज़िंदगी में तुझसे अहद करता हूँ कि तू ही अल्लाह है, तेरे सिवा कोई माबूद नहीं, तू अकेला है तेरा कोई शरीक नहीं, और बेशक मुहम्मद तेरे बंदे और रसूल हैं। पस मुझे मेरे नफ़्स के हवाले न कर, क्योंकि अगर तूने मुझे मेरे नफ़्स के हवाले कर दिया तो तू मुझे बुराई के करीब कर देगा और भलाई से दूर कर देगा। और मुझे तेरी रहमत के अलावा किसी चीज़ पर भरोसा नहीं, पस अपनी रहमत को मेरे लिए अपने पास एक अहद बना दे जिसे तू कयामत के दिन तक पूरा करे। बेशक तू वादे के खिलाफ नहीं करता।"

फ़रिश्ता उसे लिखकर मुहर लगा कर कयामत के लिए रख लेगा। जब अल्लाह तआला उस बंदे को कब्र से उठाएगा, तो फ़रिश्ता वह तहरीर साथ लाएगा और आवाज़ दी जाएगी कि अहद वाले कहाँ हैं, उन्हें वह अहदनामा दिया जाए। इमाम ने इसे रिवायत करके फ़रमाया:

और ताऊस से रिवायत है कि उन्होंने इन कलिमात का हुक्म दिया तो वे उनके कफ़न में लिखे गए।

इमाम ताऊस की वसीयत से अहदनामा उनके कफ़न में लिखा गया।

इमाम फ़क़ीह इब्न उजैल ने इसी दुआ-ए-अहदनामा की निस्बत फ़रमाया:

जब यह दुआ लिखी जाए और मैय्यत के साथ उसकी कब्र में रखी जाए तो अल्लाह उसे कब्र के फ़ित्ने और अज़ाब से बचा लेता है।

जब यह लिखकर मैय्यत के साथ कब्र में रख दें तो अल्लाह तआला उसे मुनकर-नकीर के सवाल और कब्र के अज़ाब से अमान दे।

(9) यही इमाम फ़रमाते हैं:

जो कोई यह दुआ मैय्यत के कफ़न में लिखेगा, वह उठाया जाएगा...

जो यह दुआ मैय्यत के कफ़न में लिखे अल्लाह तआला कयामत तक...

1. फ़तावा कुबरा, हवालह तिर्मिज़ी, बाबुल जनाइज़, मतबुआ दारुल कुतुबुल इल्मिय्याह, बैरूत, 6/2
2. नवादिरुल उसूल, उसूल 74 और 100, मतबुआ दार सादिर, बैरूत, पृ. 217
3. अद-दुर्रुल मन्सूर, गुनिया हवालह हकीम तिर्मिज़ी ज़ेरे 'अल-अमन इत्तख़ज़ा इंदुर रहमान अहदा', मन्शूरात मक्तबा आयतुल्लाह, कुम, ईरान, 4/286
4. फ़तावा कुबरा, हवालह इब्न उजैल, बाबुल जनाइज़, मतबुआ दारुल कुतुबुल इल्मिय्याह, बैरूत और गुनिया, 6/2

पृष्ठ 110/948

فتاویٰ رضویہ، جلد نہم

وحده، لا شريك له، لا اله الا الله، له الملك وله الحمد، لا اله الا الله، ولا حول ولا قوة الا بالله العلى العظيم۔

وحده، لا شريك له، لا اله الا الله، له الملك وله الحمد، لا اله الا الله، ولا حول ولا قوة الا بالله العلى العظيم۔

نیز ترمذی میں سیدنا صدیق اکبر رضی اللہ تعالیٰ عنہ سے روایت کی کہ رسول اللہ صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم نے فرمایا: جو ہر نماز میں سلام کے بعد یہ دُعا پڑھے:

اَللّٰھُمَّ فَاطِرَ السَّمٰوٰتِ وَالْاَرْضِ عَالِمَ الْغَیْبِ وَالشَّھَادَۃِ الرَّحْمٰنَ الرَّحِیْمَ اِنِّیْ اَعْھَدُ اِلَیْكَ فِیْ ھٰذِہِ الْحَیٰوۃِ الدُّنْیَا بِاَنَّكَ اَنْتَ اللّٰہُ الَّذِیْ لَا اِلٰہَ اِلَّا اَنْتَ وَحْدَكَ لَا شَرِیْكَ لَكَ وَاَنَّ مُحَمَّدًا عَبْدُكَ وَرَسُوْلُكَ فَلَا تَكِلْنِیْ اِلٰی نَفْسِیْ فَاِنَّكَ اِنْ تَكِلْنِیْ اِلٰی نَفْسِیْ تُقَرِّبْنِیْ مِنَ الشَّرِّ وَتُبَاعِدْنِیْ مِنَ الْخَیْرِ وَاِنِّیْ اَثِقُ اِلَّا بِرَحْمَتِكَ فَاجْعَلْ رَحْمَتَكَ لِیْ عَھْدًا عِنْدَكَ تُؤَدِّیْہِ اِلٰی یَوْمِ الْقِیٰمَۃِ اِنَّكَ لَا تُخْلِفُ الْمِیْعَادَ۔

فرشتہ اسے لکھ کر مہر لگا کر قیامت کے لئے اٹھا رکھے، جب اللہ تعالیٰ اُس بندے کو قبر سے اٹھائے، فرشتہ وہ نوشتہ ساتھ لائے اور ندا کی جائے عہد والے کہاں ہیں، انہیں وہ عہد نامہ دیا جائے۔ امام نے اسے روایت کرکے فرمایا:

وعن طاؤس انه امر بهذه الكلمات فكتبت فی كفنه۔

امام طاؤس کی وصیت سے عہد نامہ اُن کے کفن میں لکھا گیا۔

امام فقیہ ابن عُجیل نے اسی دعائے عہد نامہ کی نسبت فرمایا:

اذا کتب هذا الدعاء وجعل مع المیت فی قبره وقاه الله فتنة القبر وعذابه۔

جب یہ لکھ کر میت کے ساتھ قبر میں رکھ دیں تو اللہ تعالیٰ اُسے سوالِ نکیرین و عذابِ قبر سے امان دے۔

(۹) یہی امام فرماتے ہیں:

من کتب هذا الدعاء فی کفن المیت رفع جو یہ دُعا میت کے کفن میں لکھے اللہ تعالیٰ قیامت تک

1 فتاویٰ کبریٰ بحوالہ ترمذی باب الجنائز مطبوعہ دار الکتب العلمیہ بیروت ۶/۲ 2 نوادر الاصول اصول الرابع والسبعون والمائة مطبوعہ دار صادر بیروت ص ۲۱۷ 3 الدر المنثور غنیہ بحوالہ حکیم الترمذی تحت الامن اتخذ عند الرحمن عهداً منشورات مکتبہ آیۃ اللہ قم ایران غنیہ ۲۸۶/۴ 4 فتاویٰ کبریٰ بحوالہ ابن عُجیل باب الجنائز مطبوعہ دار الکتب العلمیہ بیروت وغنیہ ۶/۲

Fatawa Razawiya, Volume 9

...Allah [protect] from the punishment until the day the Trumpet is blown, and it is this: | Take away the punishment from him, and it is this: O Allah, I ask You, O Knower of secrets, O Great in status, O Creator of humans, O Granter of victory, O He whose traces are known, O Possessor of long-suffering and favor, O Remover of harm and trials, O God of the first and the last, relieve me of my worries and remove from me my griefs. And may Allah bless our master Muhammad and grant him peace. (1) (10) Ibn Hajar al-Makki, in his Fatawa, quoted from some religious scholars regarding a 'Tasbeeh' (glorification) whose excellence and blessings are well-known, that:

Whoever writes it and places it between the chest and the shroud of the deceased, the punishment of the grave shall not reach him, nor shall Munkar and Nakir reach him. It has a great explanation, and it is the 'Dua of Solace' (Dua-e-Uns). (And it is this:)

Glory be to Him Who is One in Majesty, known for Oneness, described by attainments, and described by the tongue of every speaker. Lord, through Lordship, Subduer of the world, and through subdual, the Compeller of the world, and through omnipotence, All-Knowing and Forbearing, and through forbearance and knowledge, the Kind and Merciful. Glory be to Him as they say, and glory be to Him as they speak, a glorification for which the heavens and the earth and whoever is in them humble themselves, and those around My Throne praise Me. My name is Allah, and I am the Swiftest of Reckoners. (2)

In the Musannaf of Abdur Razzaq, and through his chain in Mu'jam al-Tabarani and Hilyat al-Awliya of Abu Nu'aym:

Ma'mar bin Abdullah bin Muhammad bin Aqeel informed us that Hazrat Batul Zahra (may Allah be pleased with her), when her death approached, ordered Ali (may Allah honor his face) to prepare water for her bath. So she bathed and purified herself and called for her shroud cloths and put them on.

1. Fatawa Kubra, citing Ibn Ajeebal, Chapter of Funerals, published by Dar al-Kutub al-Ilmiyah, Beirut, 2/6.
2. Fatawa Kubra, citing Ibn Ajeebal, Chapter of Funerals, published by Dar al-Kutub al-Ilmiyah, Beirut, 2/6.

फतावा रज़विया, जिल्द नौ (9)

...अल्लाह अज़ाब से [बचाए] उस दिन तक जब तक सूर फूंका जाएगा, और वह यह है: | उससे अज़ाब हटा ले और वह यह है: ऐ अल्लाह, मैं तुझसे माँगता हूँ, ऐ राज़ों के जानने वाले, ऐ अज़ीम मरतबे वाले, ऐ इंसानों के पैदा करने वाले, ऐ फतह दिलाने वाले, ऐ जिसकी निशानियाँ मशहूर हैं, ऐ लंबी मोहलत और एहसान वाले, ऐ तकलीफ और आज़माइशों को दूर करने वाले, ऐ अगलों और पिछलों के माबूद, मेरी परेशानियों को दूर कर दे और मेरे गम मिटा दे। और अल्लाह हमारे सरदार मुहम्मद पर दरूद ओ सलाम भेजे। (१) (१०) इब्न हजर मक्की ने अपने फतावा में एक तस्बीह के बारे में, जिसकी फजीलत और बरकत मशहूर है, बाज़ उलेमा से नक़ल किया कि:

जो इसे लिखकर मैय्यत के सीने और कफ़न के बीच में रख दे, उसे कब्र का अज़ाब न होगा, और न मुनकर-नकीर उस तक पहुँचेंगे। इसकी शरह (व्याख्या) बहुत अज़ीम है और यह 'दुआ-ए-उन्स' (चैन ओ राहत की दुआ) है। (और वह दुआ यह है:)

पाक है वह जो जलाल के साथ अकेला है, तौहीद से मशहूर है, और खूबियों से मौसूफ है, और हर कहने वाले की ज़बान पर सिफ़त के साथ है। रब, अपनी रूबूबियत से आलम पर ग़ालिब है, और अपने कहर से आलम पर जबर करने वाला है, और अपनी कुदरत से इल्म ओ हिल्म वाला है, और हिल्म ओ इल्म के साथ शफक़त करने वाला निहायत मेहरबान है। पाक है वह जैसा वे कहते हैं और पाक है वह जैसा वे बोलते हैं, ऐसी तस्बीह जिसके लिए आसमान ओ ज़मीन और जो कुछ उनमें है झुक जाते हैं, और मेरे अर्श के गिर्द वाले मेरी हम्द करते हैं। मेरा नाम अल्लाह है और मैं सबसे तेज़ी से हिसाब लेने वाला हूँ। (२)

मुसन्निफ अब्दुल रज्ज़ाक़ और उनके ज़रिए मोजम तबरानी और हिलया अबू नुऐम में है:

मा'मर बिन अब्दुल्लाह बिन मुहम्मद बिन अकील ने हमें खबर दी कि हज़रत बतूल ज़हरा (रज़ियल्लाहु अन्हा) के विसाल का वक्त करीब आया, तो उन्होंने अली मुर्तज़ा (करमल्लाहु वज्हुल करीम) को गुस्ल के लिए पानी रखने का हुक्म दिया, फिर उन्होंने गुस्ल किया और पाकी हासिल की और कफ़न के कपड़े मँगवाकर पहन लिए।

1. फतावा कुब्रा, बहवाला इब्न अजीबुल, बाबुल जनाइज़, मतबुआ दारुल कुतुबुल इल्मिया बेरुत, ६/२।

2. फतावा कुब्रा, बहवाला इब्न अजीबुल, बाबुल जनाइज़, मतबुआ दारुल कुतुबुल इल्मिया बेरुत, ६/२।

पृष्ठ १११/९४८

فتاوئ رضویہ جلد نہم

... الله عند العذاب الی یوم ینفخ فی الصور وھو ھذا: | اس سے عذاب اٹھالے اور وہ یہ ہے : اللھم انی اسألك یا عالم السریا یا عظیم الخطر یا خالق البشر یا موقع الظفر یا معروف الاثر یا ذا الطول والمن یا کاشف الضر والمحن یا الہ الاولین والأخرین فرج عنی ھمومی واکشف عنی غمومی وصلی اللھم علی سیدنا محمد وسلم 1- (۱۰) ابن حجر مکی نے اپنے فتاوئ میں ایک تسبیح کی نسبت جسے کہا جاتا ہے کہ اُس کا فضل اُس کی برکت مشہور و معروف ہیں، بعض علمائے دین سے نقل کیا کہ :

من کتبہ وجعلہ بین صدر المیت وکفنہ لاینال | جواسے لکھ کر میت کے سینہ اور کفن کے بیچ میں رکھ دے اُسے عذاب القبر ولا یناله منکر ونکیر وله شرح | عذاب قبر نہ ہو ، نہ منکر نکیر اُس تک پہنچیں اور اس دعا کی عظیم وھو دعاء الانس، (وھو ھذا) | شرح بہت عظمت والی ہے اور وہ چین و راحت کی دعا ہے۔ (وہ دعا یہ ہے:)

سبحن من ھو بالجلال موحد بالتوحید معروف و بالمعارف موصوف و بالصفة علی لسان کل قائل رب بالربوبیة للعالم قاھر وبالقھر للعالم جبار وبالجبروت علیم حلیم وبالحلم والعلم رؤف رحیم، سبحنہ کما یقولون وسبحنہ کما ھم یقولون تسبیحاً تخشع لہ السموات والارض ومن علیھا ویحمد نی من حول عرشي اسمي الله وانا اسرع الحاسبین 2-

مصنف عبدالرزاق اور ان کے طریق سے معجم طبرانی اور ان کے طریق سے حلیہ ابونعیم میں ہے :

اخبرنا معمر بن عبد الله بن محمد بن عقيل ان | معمر بن عبدالله بن محمد بن عقیل نے ہمیں خبر دی کہ فاطمة رضی الله تعالی عنها لما حضرتها الوفاة | حضرت بتول زہر ارضی الله تعالیٰ عنہا نے انتقال کے قریب امرت علياً فوضع لها غسلا فاغتسلت و تطهرت | امیر المؤمنین علی مرتضیٰ کرم الله وجہہ سے اپنے غسل کے ودعت بثياب اكفانها | لئے پانی رکھوایا پھر نہائیں اور کفن منگا کر پہنا

1 فتاویٰ کبری بحوالہ ابن عجیبل باب الجنائز مطبوعہ دار الکتب العلمیہ بیروت ۶/۲ 2 فتاویٰ کبری بحوالہ ابن عجیبل باب الجنائز مطبوعہ دار الکتب العلمیہ بیروت ۶/۲

Volume 9 Fatawa Razawiyya

(Arabic) ...She wore it and applied scent (Hanut), then she instructed Maula Ali in her will that after my passing, no one should uncover me and I should be buried in this same shroud. I asked if anyone else had done the same, he said yes, Kathir bin Abbas (Allah be pleased with them both), and he wrote on the borders of his shroud: 'Kathir bin Abbas bears witness that there is no god but Allah.' - 1

It is in 'Wajiz Imam Kardari', Book of Istihsan: (Arabic) Imam Saffar mentioned that if an 'Ahd-Nama' (covenant) is written on the forehead of the deceased or on the turban or on the shroud, it is hoped that Allah Almighty will forgive the deceased and keep them safe from the punishment of the grave. - 2

Then he said: (Arabic) Nasir said, this is a narration regarding the permissibility of placing an 'Ahd-Nama' with the deceased. And indeed, it was narrated that it was written on the thighs of horses in the stable of Al-Farooq (Radiyallahu Anhu), 'Endowed for the cause of Allah'. - 3

(II) In 'Durr-e-Mukhtar' it is stated: (Arabic) Writing an 'Ahd-Nama' on the forehead, turban, or shroud of the deceased brings hope for their forgiveness. Some have bequeathed that 'Bismillah' be written on their forehead and chest.

---

1. Hilyat-ul-Awliya, biography 33, Aghniya Fatima Bint Rasul Allah (Peace and blessings be upon him), printed by Dar al-Kutub al-Arabiyya Beirut 2/44.
2. Fatawa Bazzaziyya, on the margin of Fatawa Hindiyya, Book of al-Ihsan, printed by Noorani Kutub Khana Peshawar 6/79.
3. Fatawa Bazzaziyya, on the margin of Fatawa Hindiyya, Book of al-Ihsan, printed by Noorani Kutub Khana Peshawar 6/79.

जिल्द नौवीं फ़तावा रज़विया

(अरबी) ...उसने उसे पहना और हनूत (खुशबू) लगाई, फिर मौला अली को वसीयत फरमाई कि मेरे इंतकाल के बाद कोई मुझे न खोले और इसी कफ़न में दफ़न कर दिया जाए। मैंने पूछा क्या किसी और ने भी ऐसा किया, तो उन्होंने कहा हाँ, कसीर बिन अब्बास रज़ियल्लाहु अन्हुमा ने, और उन्होंने अपने कफ़न के किनारों पर लिखा था: 'कसीर बिन अब्बास गवाही देता है कि अल्लाह के सिवा कोई माबूद नहीं'। - 1

वजीज़ इमाम करदरी की किताबुल इस्तेहसान में है: (अरबी) इमाम सफ़ार ने ज़िक्र फ़रमाया कि अगर मय्यत की पेशानी या अमामा या कफ़न पर 'अहद-नामा' लिख दिया जाए, तो उम्मीद है कि अल्लाह तआला उसे बख्श दे और उसे कब्र के अज़ाब से सुरक्षित रखे। - 2

फिर फ़रमाया: (अरबी) इमाम नसीर ने फ़रमाया: यह मय्यत के साथ अहद-नामा रखने की अनुमति की रिवायत है और वास्तव में यह वर्णित है कि फ़ारूक़-ए-आज़म रज़ियल्लाहु अन्हु के अस्तबल में घोड़ों की रानों पर लिखा था, 'अल्लाह की राह में वक़्फ़'। - 3

(II) 'दुर्रे मुख्तार' में है: (अरबी) मुर्दे की पेशानी, अमामे या कफ़न पर अहद-नामा लिखने से उसके लिए बख्शिश की उम्मीद है। किसी साहब ने वसीयत की थी कि उनकी पेशानी और सीने पर 'बिस्मिल्लाह' लिखा जाए।

---

1. हिल्यातुल औलिया, जीवनी 33, अग़्निया फ़ातिमा बिन्त रसूलुल्लाह (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम), मुद्रित दारुल कुतुब अल-अरबिया बेरूत, 2/44।
2. फ़तावा बज़ाज़िया, फ़तावा हिंदीया के हाशिए पर, किताबुल एहसान, मुद्रित नूरानी कुतुब खाना पेशावर, 6/79।
3. फ़तावा बज़ाज़िया, फ़तावा हिंदीया के हाशिए पर, किताबुल एहसान, मुद्रित नूरानी कुतुब खाना पेशावर, 6/79।

पृष्ठ 112 / 948

فلبستھا ومست من الحنوط ثم امرت علیاً ان لاتکشف اذاھی قبضت وان تدرج کما ھی فی اکفانھا فقلت لہ ھل علمت احدا فعل نحو ذلک قال نعم کثیر بن عباس، وکتب فی اطراف اکفانایشھد کثیر بن عباس ان لا الہ الا اللہ ۔ 1 اور حنوط کی خوشبو لگائی، پھر مولیٰ علی کو وصیت فرمائی کہ میرے انتقال کے بعد کوئی مجھے نہ کھولے اور اسی کفن میں دفن فرمادی جائیں۔ میں نے پوچھا کسی اور نے بھی ایسا کیا، کہا ہاں کثیر بن عباس رضی اللہ تعالیٰ عنہما نے اور انہوں نے اپنے کفن کے کناروں پر لکھا تھا: کثیر بن عباس گواہی دیتا ہے کہ لا الہ الا اللہ۔

وجیز امام کردری کتاب الاستحسان میں ہے : ذکر الامام الصفار لو کتب علی جبھۃ المیت او علی عمامۃ او کفنہ عھد نامہ، یرجی ان یغفر اللہ تعالی للمیت، ویجعلہ امناً من عذاب القبر 2 ۔ امام صفار نے ذکر فرمایا کہ اگر میت کی پیشانی یا عمامہ یا کفن پر عہد نامہ لکھ دیا جائے تو امید ہے کہ اللہ تعالیٰ اسے بخش دے اور عذاب قبر سے مامون کرے۔

پھر فرمایا: قال نصیر ھذہ روایۃ فی تجویز وضع عھدنامہ مع المیت وقدروی انہ کان مکتوباً علی افخاذ افراس فی اصطبل الفاروق رضی اللہ تعالی عنہ، حبس فی سبیل اللہ 3 ۔ امام نصیر نے فرمایا: یہ میت کے عہد نامہ رکھنے کے جواز کی روایت ہے اور بیشک مروی ہوا کہ فاروق اعظم رضی اللہ تعالیٰ عنہ کے اصطبل میں کچھ گھوڑوں کی رانوں پر لکھا تھا وقف فی سبیل اللہ۔

(۱۱) در مختار میں ہے: کتب علی جبھۃ المیت وعمامۃ او کفنہ عھد نامہ یرجی ان یغفر اللہ للمیت اوصی بعضھم ان یکتب فی جبھۃ وصدرہ بسم اللہ مُردے کی پیشانی یا عمامہ یا کفن پر عہد نامہ

لکھنے سے اُس کے لئے بخشش کی امید ہے۔ کسی صاحب نے وصیت کی تھی کہ ان کی پیشانی اور سینے پر بسم اللہ الرحمن الرحیم لکھنا۔

---

1 حلیۃ الاولیاء ترجمہ ۳۳ اغنیہ فاطمہ بنت رسول صلی اللہ تعالی علیہ وسلم غنیہ مطبوعہ دار الکتب العربیہ بیروت ۲/۴۴ 2 فتاویٰ بزازیہ علی ھامش فتاویٰ ہندیہ کتاب الاحسان مطبوعہ نورانی کتب خانہ پشاور ۶/۷۹ 3 فتاویٰ بزازیہ علی ھامش فتاویٰ ہندیہ کتاب الاحسان مطبوعہ نورانی کتب خانہ پشاور ۶/۷۹

Fatawa Razawiyya Volume 9

[Table Header] [Arabic Text]: ...Ar-Rahman Ar-Rahim. So he did it, then he was seen in a dream and asked. He said: "When I was placed in the grave, the angels of punishment came to me. When they saw 'Bismillahir Rahmanir Rahim' written on my forehead, they said: 'You are safe from the punishment of Allah.'" [Urdu Text]: ...Ar-Rahim write down. It was written, then he appeared in a dream. On being asked about his state, he said: "When I was placed in the grave, the angels of punishment came. They saw 'Bismillahir Rahmanir Rahim' written on my forehead and said: 'You have protection from the punishment of Allah.'"

(12) It is stated in Fatawa Kubra of Al-Haytami:

[Arabic Text]: Some narrated from 'Nawadir al-Usul' by Tirmidhi what implies that this supplication has an origin. Also, the jurist Ibn Ujayl used to command its writing, then he issued a fatwa on the permissibility of writing it by analogy with writing 'Lillah' (For Allah) on livestock for Zakat. [Urdu Text]: Some scholars narrated from 'Nawadir al-Usul' by Imam Tirmidhi that Hadith which implies that this supplication has a basis. Furthermore, some of them narrated that the jurist Imam Ibn Ujayl used to command its writing, then he himself issued a fatwa on the permissibility of its writing based on the analogy that 'Lillah' (these are for Allah) is written on livestock for Zakat.

(13) In the same book it is stated:

[Arabic Text]: Some of them upheld it, stating it was said that its action is sought for a correct intended purpose, so it is permitted even if it is known that impurity will reach it. This is what was narrated, then he considered it, and there is a discussion on it as will follow. And success is from Allah. [Urdu Text]: Some other scholars upheld this fatwa (14) and, in its support, narrated from some other scholars that doing so for a correct purpose would be required even if it is known that impurity will reach it. This they narrated, then he commented on it, and there is a discussion on it, as is coming ahead. And success is only from God. (T)

Second Station: Supporting Hadiths I say: (15) It is in an authentic Hadith that some prominent companions, that probably our master Abdur Rahman bin Awf or...

---

1. Durr-e-Mukhtar, Chapter on Funeral Prayer, printed at Mujtabai Press Delhi, 1/126

2. Fatawa Ibn Hajar Makki, Chapter on Funerals, Dar al-Kutub al-Ilmiyyah Beirut, 2/12
3. Fatawa Ibn Hajar Makki, Chapter on Funerals, Dar al-Kutub al-Ilmiyyah Beirut, 2/12

फ़तावा रज़विया खंड 9

[तालिका शीर्षक] [अरबी पाठ]: ...अर-रहमान अर-रहीम। उसने ऐसा किया, फिर उसे सपने में देखा गया और पूछा गया। उसने कहा: "जब मुझे कब्र में रखा गया, तो अज़ाब के फरिश्ते मेरे पास आए। जब उन्होंने मेरे माथे पर 'बिस्मिल्लाहिर रहमानिर रहीम' लिखा हुआ देखा, तो उन्होंने कहा: 'तू अल्लाह के अज़ाब से सुरक्षित है।'" [उर्दू पाठ]: ...अर-रहीम लिख दें। लिख दिया गया, फिर वह सपने में नज़र आए। हाल पूछने पर फ़रमाया: "जब मैं कब्र में रखा गया, अज़ाब के फरिश्ते आए। उन्होंने मेरी पेशानी पर 'बिस्मिल्लाहिर रहमानिर रहीम' लिखा देखा और कहा: 'तुझे अल्लाह के अज़ाब से अमान (सुरक्षा) है।'"

(12) हैतमी की 'फ़तावा कुबरा' में है:

[अरबी पाठ]: कुछ विद्वानों ने तिर्मिज़ी की 'नवाद़िर अल-उसूल' से वह रिवायत की जो यह दर्शाती है कि इस दुआ का एक मूल है। इसके अलावा, फक़ीह इब्न उजैल इसे लिखने का आदेश देते थे, फिर उन्होंने ज़कात के मवेशियों पर 'लिल्लाह' (अल्लाह के लिए) लिखने की समानता पर इसे लिखने की अनुमति का फतवा दिया। [उर्दू पाठ]: कुछ विद्वानों ने इमाम तिर्मिज़ी की 'नवाद़िर अल-उसूल' से वह हदीस नक़ल की जिसका तात्पर्य यह है कि इस दुआ का आधार है। इसके अलावा, उनमें से कुछ ने नक़ल किया कि इमाम फक़ीह इब्न उजैल इसे लिखने का हुक्म दिया करते थे, फिर खुद उन्होंने इसके लेखन की अनुमति पर फतवा दिया, इस कयास (तुलना) पर कि ज़कात के चौपायों पर 'अल्लाह' (यह अल्लाह के लिए हैं) लिखा जाता है।

(13) उसी में है:

[अरबी पाठ]: उनमें से कुछ ने इसे बरकरार रखा, यह कहते हुए कि यह एक सही उद्देश्य के लिए किया जाता है, इसलिए इसकी अनुमति है भले ही यह ज्ञात हो कि इस पर अशुद्धता पहुँचेगी। यह वह है जो नक़ल किया गया, फिर उन्होंने इस पर विचार किया और इस पर चर्चा है जैसा कि आगे आएगा। और सफलता अल्लाह की ओर से है। [उर्दू पाठ]: इस फतवे को कुछ अन्य विद्वानों ने बरकरार रखा (14) और इसके समर्थन में कुछ और विद्वानों से नक़ल किया कि सही उद्देश्य के लिए ऐसा करना अपेक्षित होगा भले ही मालूम हो कि इसे नजासत (अशुद्धता) पहुँचेगी। यह उन्होंने नक़ल किया फिर इस पर कलाम (चर्चा) की और इस पर कलाम है, जैसा कि आगे आ रहा है। और तौफीक खुदा ही से है। (त)

दूसरा स्थान: सहायक हदीसें मैं कहता हूँ: (15) सही हदीस में है कि कुछ महान सहाबा ने, कि शायद हमारे सरदार अब्दुर रहमान बिन औफ़ या...

---

1. दुर्रे मुख़्तार, जनाज़ा की नमाज़ का अध्याय, मुजतबाई प्रेस दिल्ली द्वारा प्रकाशित, 1/126
2. फतावा इब्न हजर मक्की, जनाज़ा का अध्याय, दार अल-कुतुब अल-इल्मिया बेरूत, 2/12
3. फतावा इब्न हजर मक्की, जनाज़ा का अध्याय, दार अल-कुतुब अल-इल्मिया बेरूत, 2/12

فتاوٰی رضویہ جلد نہم

[جدول کی سرخی] [عربی متن]: الرحمٰن الرحیم ففعل ثم رؤی فی المنام فسئل فقال لما وضعت فی القبر جاءتنی ملئکة العذاب فلما رأوا مکتوبا علی جبهتی بسم الله الرحمٰن الرحیم قالوا امنت من عذاب الله[1]۔ [اردو متن]: الرحیم لکھ دیں، لکھ دی گئی، پھر خواب میں نظر آئے حال پوچھنے پر فرمایا جب میں قبر میں رکھا گیا عذاب کے فرشتے آئے میری پیشانی پر بسم اللہ الرحمن الرحیم لکھی دیکھی کہا تجھے عذاب الہی سے امان ہے۔

(۱۲) فتاوٰی کبرٰی للہیتمی میں ہے:

[عربی متن]: نقل بعضهم عن نوادر الاصول للترمذی ما یقتضی ان هذا الدعاء له اصل وان الفقیه ابن عجیل کان یأمر به ثم افتی بجواز کتابته قیاسا علی کتابة لله فی نعم الزکوة [2]۔ [اردو متن]: بعض علماء نے نوادر الاصول امام ترمذی سے وہ حدیث نقل کی جس کا مقتضی یہ ہے کہ یہ دعا اصل رکھتی ہے، نیز ان بعض نے نقل کیا کہ امام فقیہ ابن عجیل اس کے لکھنے کا حکم فرمایا کرتے، پھر خود انہوں نے اس کے جواز کتابت پر فتوٰی دیا اس قیاس پر کہ زکوۃ کے چوپایوں پر لکھا جاتا ہے اللہ (یہ اللہ کے لئے ہیں)۔

(۱۳) اسی میں ہے:

[عربی متن]: واقره بعضهم بانه قیل یطلب فعله لغرض صحیح مقصود فابیح وان علم انه یصیبه نجاسة [3]۔ هذا ما اثر، ثم نظر و فیه نظر کما سیأتی وبالله توفیق۔ [اردو متن]: اس فتوے کو بعض دیگر علماء نے برقرار رکھا (۱۴) اور اس کی تائید میں بعض اور علماء سے نقل کیا کہ غرض صحیح کے

لئے ایسا کرنا مطلوب ہوگا اگرچہ معلوم ہو کہ اسے نجاست پہنچے گی۔ یہ انہوں نے نقل کیا پھر اس پر کلام کی اور اس پر کلام ہے، جیسا کہ آگے آرہا ہے۔ اور توفیق خدا ہی سے ہے۔ (ت)

مقام دوم: احادیث مؤیدہ اقول: (۱۵) حدیث صحیح میں ہے بعض اجلہ صحابہ نے کہ غالبا سید نا عبدالرحمن بن عوف یا

---

1 در مختار باب صلوۃ الجنائز مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی ۱/ ۱۲۶ 2 فتاوی ابن حجر مکی باب الجنائز دار الکتب العلمیہ بیروت ۲/ ۱۲ 3 فتاوی ابن حجر مکی باب الجنائز دار الکتب العلمیہ بیروت ۲/ ۱۲

Fatawa Rizvia, Volume 9

It was Sayyiduna Sa'd bin Abi Waqas (may Allah be pleased with him) who asked the Holy Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) for his sacred lower garment (which a lady had presented with great effort and beauty, and the Holy Prophet (PBUH) was in need of it). The most generous of the generous (PBUH) granted it to him. The noble companions (may Allah be pleased with them) rebuked him, saying that at that time, besides that noble lower garment, the Holy Prophet (PBUH) had no other, and you know that the most noble Prophet (PBUH) never turns away a seeker; why then did you ask for it? He said, 'By Allah! I did not take it for use, but rather so that I may be shrouded in it.' The Holy Prophet (PBUH) did not disapprove of his intention, and eventually, he was buried in it. It is stated in Sahih Bukhari:

Chapter: One who prepared a shroud during the time of the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) and he did not object.

Chapter regarding the one who prepared a shroud during the time of the Holy Prophet (PBUH) and he did not forbid it. Hadrat Abdullah bin Maslamah narrated through his chain from Hadrat Sahl (may Allah be pleased with him) that a woman came to the Holy Prophet (PBUH) with a woven garment having a border. Do you know what a 'Burdah' was? They replied it was a 'Shamlah' (wrap). He said yes. That woman submitted, 'I have woven this garment myself and present it to you to wear.' So the Holy Prophet (PBUH) accepted it with great joy. Then the Holy Prophet (PBUH) came out wearing it as his lower garment. A certain companion praised the lower garment and requested, 'How beautiful it is, please grant it to me.'

Hadrat Sahl (RA) narrated: A woman came to the Prophet (PBUH) with a woven garment having a border. He said, 'Do you know what a Burdah is?'

At this, the attendees said to him, 'You have not done well; the Holy Prophet (PBUH) had liked it for himself, and yet you asked for it despite knowing that he (PBUH) never

Chapter: One who prepared a shroud during the time of the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) and he did not object.

Chapter regarding the one who prepared a shroud during the time of the Holy Prophet (PBUH) and he did not forbid it. Hadrat Abdullah bin Maslamah narrated through his chain from Hadrat Sahl (may Allah be pleased with him) that a woman came to the Holy Prophet (PBUH) with a woven garment having a border. Do you know what a 'Burdah' was? They replied it was a 'Shamlah' (wrap). He said yes. That woman submitted, 'I have woven this garment myself and present it to you to wear.' So the Holy Prophet (PBUH) accepted it with great joy. Then the Holy Prophet (PBUH) came out wearing it as his lower garment. A certain companion praised the lower garment and requested, 'How beautiful it is, please grant it to me.'

They said, 'It is a Shamlah.' He said, 'Yes.' She said, 'I wove it with my own hands to clothe you with it.' The Prophet (PBUH) took it as he was in need of it. He came out to us wearing it as his lower garment. A man praised it and said, 'Clothe me with it; how beautiful it is!' The people said, 'You have not done well; the Prophet (PBUH) wore it because he needed it, and yet you asked for it, knowing that he never refuses anyone.' He said, 'By Allah, I did not ask for it to wear it, but rather for it to be my shroud.' Sahl said, 'And it became his shroud.'[1]

disappoints a seeker.' He replied, 'By Allah! I did not ask for it to wear, but for my shroud.' Hadrat Sahl (may Allah be pleased with him) said that the blessed garment became the shroud of that companion. (T)

[1] Sahih Bukhari, Book of Funerals, published by Qadimi Kutub Khana Karachi, 1/170.

वह सैयदुना साद बिन अबी वक़ास (रज़ियल्लाहु अन्हु) थे, जिन्होंने हुज़ूर अकदस (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) से उनके पवित्र तहबंद (जिसे एक महिला ने बड़े परिश्रम और सुंदरता से भेंट किया था और हुज़ूर अकदस (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) को इसकी आवश्यकता थी) की माँग की। हुज़ूर अज़ूदुल अज़ूदीन (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने उसे प्रदान कर दिया। सहाबा किराम (रज़ियल्लाहु अन्हुम) ने उन्हें फटकार लगाई कि उस समय उस इज़ार-ए-शरीफ़ (पवित्र वस्त्र) के अलावा हुज़ूर अकदस (सलवातहुल्लाहि सलामुहू अलैहि) के पास कोई और तहबंद नहीं था, और आप जानते हैं कि हुज़ूर अकरम अल-अकरमा (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) कभी किसी मांगने वाले को मना नहीं करते, फिर आपने क्यों माँगा? उन्होंने कहा, "अल्लाह की कसम! मैंने इसे पहनने के लिए नहीं बल्कि इसलिए लिया ताकि मुझे इसमें कफ़न दिया जाए।" हुज़ूर अकदस (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने उनकी इस नीयत पर आपत्ति नहीं की, और अंततः उन्हें उसी में कफ़न दिया गया। सहीह बुख़ारी में है:

अध्याय: हुज़ूर (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) के समय में जिसने कफ़न तैयार किया और आपने मना नहीं फरमाया।

अध्याय, हुज़ूर अलैहिस्सलाम के ज़माने में जिसने कफ़न तैयार किया और आपने मना न फरमाया। हज़रत अब्दुल्ला बिन सलमा ने अपनी सनद के साथ हज़रत सहल (रज़ियल्लाहु अन्हु) से हदीस बयान की कि एक महिला हुज़ूर अकदस (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) की सेवा में एक सुंदर बुनी हुई हाशिया (बॉर्डर) वाली चादर लेकर आई। क्या तुम्हें मालूम है कि वह कौन सी चादर थी? उन्होंने उत्तर दिया, वह तहबंद है। कहा हाँ, उस महिला ने निवेदन किया कि मैंने स्वयं यह चादर बुनी है, आपको पहनने के लिए भेंट करती हूँ। तो हुज़ूर अलैहिस्सलाम ने बड़ी प्रसन्नता के साथ स्वीकार किया। फिर हुज़ूर अलैहिस्सलाम उसे तहबंद के रूप में पहनकर बाहर तशरीफ लाए। तो एक सहाबी ने उस तहबंद की प्रशंसा की और निवेदन किया, 'यह कितनी अच्छी है, मुझे प्रदान कर दीजिए।'

हज़रत सहल (रज़ियल्लाहु अन्हु) से रिवायत है कि एक महिला नबी (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) के पास एक बुनी हुई चादर लेकर आई जिसके किनारे थे। उन्होंने कहा, 'क्या तुम जानते हो बुर्दा क्या है?' लोगों ने कहा, 'यह एक शामला है।' उन्होंने कहा, 'हाँ।' महिला ने कहा, 'मैंने इसे अपने हाथों से बुना है ताकि आपको पहना सकूँ।' नबी (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने इसे ले लिया क्योंकि उन्हें इसकी ज़रूरत थी। आप हमारे पास उसे तहबंद के तौर पर पहनकर आए। एक इस पर उपस्थित लोगों ने उनसे कहा, 'आपने अच्छा नहीं किया, हुज़ूर अलैहिस्सलाम ने स्वयं अपने लिए इसे पसंद किया था, फिर आपने यह जानते हुए भी कि आप अलैहिस्सलाम किसी मांगने वाले को निराश नहीं करते, सवाल कर लिया।' उन्होंने उत्तर में कहा, 'अल्लाह की कसम, मैंने इसे पहनने के लिए नहीं बल्कि अपने कफ़न के लिए माँगा है।' हज़रत सहल (रज़ियल्लाहु अन्हु) ने फरमाया कि वह मुबारक चादर उसी सहाबी का कफ़न बनी। (त)

अध्याय: हुज़ूर (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) के समय में जिसने कफ़न तैयार किया और आपने मना नहीं फरमाया।

अध्याय, हुज़ूर अलैहिस्सलाम के ज़माने में जिसने कफ़न तैयार किया और आपने मना न फरमाया। हज़रत अब्दुल्ला बिन सलमा ने अपनी सनद के साथ हज़रत सहल (रज़ियल्लाहु अन्हु) से हदीस बयान की कि एक महिला हुज़ूर अकदस (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) की सेवा में एक सुंदर बुनी हुई हाशिया (बॉर्डर) वाली चादर लेकर आई। क्या तुम्हें मालूम है कि वह कौन सी चादर थी? उन्होंने उत्तर दिया, वह तहबंद है। कहा हाँ, उस महिला ने निवेदन किया कि मैंने स्वयं यह चादर बुनी है, आपको पहनने के लिए भेंट करती हूँ। तो हुज़ूर अलैहिस्सलाम ने बड़ी प्रसन्नता के साथ स्वीकार किया। फिर हुज़ूर अलैहिस्सलाम उसे तहबंद के रूप में पहनकर बाहर तशरीफ लाए। तो एक सहाबी ने उस तहबंद की प्रशंसा की और निवेदन किया, 'यह कितनी अच्छी है, मुझे प्रदान कर दीजिए।'

व्यक्ति ने उसकी प्रशंसा की और कहा, 'इसे मुझे पहना दीजिए, यह कितनी सुंदर है!' लोगों ने कहा, 'तुमने अच्छा नहीं किया; नबी (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने इसे ज़रूरत के कारण पहना था, और फिर भी तुमने इसे माँग लिया, यह जानते हुए कि वे कभी किसी को मना नहीं करते।' उसने कहा, 'अल्लाह की कसम, मैंने इसे पहनने के लिए नहीं बल्कि अपने कफ़न के लिए माँगा है।' सहल ने कहा, 'और वही उसका कफ़न बनी।'[1]

[1] सहीह बुख़ारी, किताबुल जनाइज़, कदीमी कुतुब खाना कराची द्वारा प्रकाशित, 1/170।

سیدنا سعد بن ابی وقاص رضی اللہ تعالٰی عنہم ہیں، حضور اقدس صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم سے تہبند اقدس (جو کہ ایک بی بی نے بہت محنت سے خوبصورت بن کر نذر کیا اور حضور اقدس صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم کو اس کی ضرورت تھی) مانگا۔ حضور اجود الاجودین صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم نے عطا فرما دیا صحابہ کرام رضی اللہ تعالٰی عنہم نے انہیں ملامت کی کہ اُس وقت اس ازار شریف کے سوا حضور اقدس صلوات اللہ سلامہ علیہ کے پاس اور تہبند نہ تھا، اور آپ جانتے ہیں حضور اکرم الاکرما صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم کبھی کسی سائل کو رَد نہیں فرماتے، پھر آپ نے کیوں مانگ لیا؟ انہوں نے کہا واللہ ! میں نے استعمال کو نہ لیا بلکہ اس لئے کہ اس میں کفن دیا جاؤں۔ حضور اقدس صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم نے اُن کی اس نیت پر انکار نہ فرمایا، آخر اسی میں کفن دئے گئے۔ صحیح بخاری میں ہے:

بَاب مَنِ استعد الکفن فی زمن النبی صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم فلم ینکر علیہ

باب ، حضور علیہ الصلوۃ والسلام کے زمانہ میں جس نے کفن تیار کیا اور آپ نے منع نہ فرمایا ،

حدثنا عبداللہ بن مسلمۃ فذکر باسناده عن سھل رضی اللہ تعالٰی عنہ ان امراۃ جاءت النبی صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم ببردۃ منسوجۃ فیھا حاشیتھا اتدرون ما البردۃ قالوا الشملۃ قال نعم قالت نسجتھا بیدی

حضرت عبداللہ بن سلمہ نے اپنی سند کے ساتھ حضرت سہل رضی اللہ تعالٰی عنہ سے حدیث بیان کی ایک عورت حضور اقدس صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم کی خدمت میں خوبصورت بنی ہوئی حاشیہ والی چادر لائی ، تمہیں معلوم ہے کہ کون سی چادر تھی ، انہوں نے جواب دیا وہ تہبند ہے ، کہا ہاں ، اُس عورت نے عرض کیا کہ میں نے خود یہ چادر بنی ہے آپ کو پہننے

بَاب مَنِ استعد الكفن فی زمن النبی صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم فلم ینکر علیہ

باب ، حضور علیہ الصلوۃ والسلام کے زمانہ میں جس نے کفن تیار کیا اور آپ نے منع نہ فرمایا ،

فجئت لاکسوکھا فاخذھا النبی صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم محتاجا الیھا فخرج الینا وانھا ازارہ، فحسنھا فلان فقال اکسنیھا ما احسنھا، قال القوم ما احسنت لبسھا النبی صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم محتاجا الیھا ثم سألتہ وعلمت انہ لا یردقال انی واللہ ماسألتہ وعلمت انہ لا یرد قال انی واللہ ماسألتہ لالبسھا وانما سألتہ لتکون کفنی قال سھل فکانت کفنہ[1] ۔

کے لئے پیش کرتی ہوں تو حضور علیہ الصلوۃ والسلام نے بڑی خوشی سے قبول فرمائی تو حضور علیہ الصلوۃ والسلام اس کو تہبند کی صورت میں پہن کر باہر تشریف لائے تو فلاں صحابی نے اس تہبند کی تحسین کی اور عرض کیا یہ کتنی اچھی ہے مجھے عطا فرمادیجئے ۔ اس پر حاضرین نے اسے کہا تو نے اچھا نہیں کیا ، حضور علیہ الصلوۃ والسلام نے خود اپنے لئے پسند فرمائی تھی ، تو نے یہ معلوم ہونے کے باوجود کہ آپ علیہ الصلوۃ والسلام کسی سائل کو مایوس نہیں فرماتے سوال کرلیا۔ اس نے جواب میں کہا کہ خدا کی قسم میں نے اسے پہننے کے لئے نہیں اپنے کفن کے لئے طلب کیا ہے۔ حضرت سہل رضی اللہ تعالیٰ عنہ نے فرمایا کہ وہ چادر مبارک اس سائل صحابی کا کفن بنی ۔ (ت)

[1] صحیح بخاری کتاب الجنائز مطبوعہ قدیمی کتب خانہ کراچی ۱/ ۱۷۰

Fatawa-e-Razvia - Volume 9

(16) Rather, the resplendent Prophet himself (peace and blessings of Allah be upon him) gave his own sacred lower garment (tahband) for the shroud of his daughter, Lady Zainab or Lady Umm Kulthum (may Allah be pleased with them), and commanded the women performing the washing (ghusl) to place it directly against her body. It is narrated in Sahihayn from Umm Atiyyah (may Allah be pleased with her):

[Table Start] Arabic: She said, "The Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) came to us while we were washing his daughter. He said, 'Wash her three times, or five, or more than that if you see fit, with water and cedar leaves, and in the last wash, put camphor or some camphor. When you are finished, inform me.' When we finished, we informed him. So he threw his lower garment to us and said, 'Let it be the garment nearest her body.'" 1

Urdu: She states that the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) came to us when we were washing his daughter. He said, "Wash her with water and berry (sidr) leaves three times or five times, or if you deem it appropriate, more than that, and in the final time mix camphor. Inform me after finishing." When we finished the washing, we informed the Prophet. The Master gave his lower garment and said, "Keep this in contact with her body." (T) [Table End]

(17) Scholars state that this Hadith is the origin of shrouding disciples in the clothes of their spiritual guides (pirs). It is mentioned in 'Lama'at':

[Table Start] Arabic: This Hadith is an original basis for seeking blessings from the relics of the righteous and their clothing, as is done by some disciples of the Sheikhs by wearing their shirts in the grave 2.

Urdu: This Hadith is the basis for obtaining blessings from the relics and clothing of the righteous, just as some followers of the Sheikhs wear their shirts as a shroud. (T) [Table End]

(18) Similarly, [the Prophet] shrouded Lady Fatima bint Asad (may Allah be pleased with her), the noble mother of the Commander of the Faithful, Maula Ali (may Allah honor his face), in his own pure shirt. 3.

[Table Start] Arabic: Narrated by at-Tabarani in 'al-Kabir' and 'al-Awsat', and Ibn Hibban and al-Hakim who declared it authentic, and Abu Nu'aym in 'al-Hilya' from Anas.

Urdu: It was narrated by at-Tabarani in 'Mu'jam al-Kabir' and 'Mu'jam al-Awsat', and by Ibn Hibban and al-Hakim with an authentic chain, and Abu Nu'aym in 'al-Hilya' from Hazrat Anas (may Allah be pleased with him). (T)

Arabic: (19) And Abu Bakr bin Abi Shaybah in his 'Musannaf'.

Urdu: And Abu Bakr bin Abi Shaybah in his 'Musannaf' from Hazrat [Table End]

1 Sahih Bukhari, Ghunyah Kitab al-Jana'iz, published by Qadimi Kutub Khana, Karachi, 1/168 2 Lam'at al-Tanqih, Bab Ghusl al-Mayyit, Fasl Awwal, published by al-Ma'arif al-Ilmiyah, Lahore, 4/318 3 Majma' al-Zawa'id with reference to Mu'jam al-Awsat, Ghunyah Bab Manaqib Fatima bint Rasul Allah (peace and blessings of Allah be upon him) and Salfaniyah, published by Dar al-Kitab, Beirut, Ghunyah 9/257

फ़तावा-ए-रज़विया - जिल्द 9

(16) बल्कि खुद हुज़ूर पुर नूर सलवात उल्लाहि तआला वसल्लमुहू अलैहि ने अपनी साहबज़ादी हज़रत ज़ैनब या हज़रत उम्मे कुलसूम रज़ियल्लाहु तआला अन्हुमा के कफ़न में अपना तहबन्द अकदस अता किया और गुस्ल देने वाली बीबियों को हुक्म दिया कि इसे उनके बदन के मुत्तसिल (सटाकर) रखें। सहीहैन में उम्मे अतिया रज़ियल्लाहु तआला अन्हा से है:

[तालिका शुरू] अरबी: उन्होंने कहा, "रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम हमारे पास आए जब हम उनकी साहबज़ादी को गुस्ल दे रहे थे। उन्होंने फरमाया, 'उसे तीन बार, या पाँच बार, या उससे भी ज़्यादा अगर तुम मुनासिब समझो, पानी और बेरी के पत्तों से गुस्ल दो, और आखिरी बार कपूर या कुछ कपूर मिला लेना। जब तुम फारिग हो जाओ तो मुझे इत्तला देना।' जब हम फारिग हो गए तो हमने उन्हें खबर दी। तो उन्होंने अपनी चादर (तहबन्द) हमारी तरफ फेंक दी और फरमाया, 'इसे उसके बदन के सबसे करीब रखना।'" 1

उर्दू: वह फरमाती हैं हमारे पास रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम तशरीफ लाए जब हम उनकी साहबज़ादी को गुस्ल दे रही थीं, फरमाया इसे पानी और बेरी के पत्तों से गुस्ल देना तीन मर्तबा या पाँच मर्तबा, या अगर तुम मुनासिब समझो तो उससे ज़्यादा, और आखिरी बार कपूर मिला लेना, फारिग होने के बाद मुझे इत्तला देना। हमने जब गुस्ल दे लिया तो हुज़ूर को खबर दी। सरकार ने अपना तहबन्द दिया और फरमाया इसे इसके बदन से मुत्तसिल रखना। (त) [तालिका अंत]

(17) उलमा फरमाते हैं यह हदीस मुरीदों को पीरों के लिबास में कफ़न देने की असल है। लमआत में है:

[तालिका शुरू] अरबी: यह हदीस सालेहीन (पुण्य आत्माओं) के आसार (अवशेषों) और उनके लिबास से बरकत हासिल करने के सिलसिले में असल (आधार) है, जैसा कि मशाइख के कुछ मुरीद कब्र में उनकी कमीज़ पहनते हैं 2।

उर्दू: यह हदीस सालेहीन के आसार और उनके लिबास से बरकत हासिल करने के सिलसिले में असल है जैसा कि मशाइख के कुछ इरादतमंद उनकी कमीज़ों का कफ़न पहनते हैं। (त) [तालिका अंत]

(18) यूँ ही हज़रत फातिमा बिन्त असद वालिदा माजिदा अमीरुल मोमिनीन मौला अली करमल्लाहु वजहुहू, रज़ियल्लाहु तआला अन्हा को अपनी कमीज़े अतहर में कफ़न दिया। 3।

[तालिका शुरू] अरबी: इसे तबरानी ने 'अल-कबीर' और 'अल-औसत' में, और इब्ने हिब्बान और हाकिम ने सहीह करार देते हुए, और अबू नुऐम ने 'अल-हिल्या' में अनस से रिवायत किया।

उर्दू: इसे मुअजम कबीर व मुअजम औसत में तबरानी ने और इब्ने हिब्बान और हाकिम ने बा-अफ़ादह सहीह, और अबू नुऐम ने हिल्या में हज़रत अनस रज़ियल्लाहु तआला अन्हु से रिवायत किया। (त)

अरबी: (19) और अबू बक्र बिन अबी शैबा ने अपनी मुसन्निफ़ में।

उर्दू: और अबू बक्र बिन अबी शैबा ने अपनी मुसन्निफ़ में हज़रत [तालिका अंत]

1 सहीह बुखारी गनिया किताबुल जनाइज़ मत्तबूआ कदीमी कुतुब खाना कराची 1/168 2 लमआतुल तनकीह बाब गुस्ले मय्यित फ़स्ल अव्वल मत्तबूआ अल-मआरिफुल इल्मिया लाहौर 4/318 3 मज्मउज़ ज़वाइद बहवाला मुअजम औसत गनिया बाब मनाकिब फातिमा बिन्त रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम व सल्तफ़निया मत्तबूआ दारुल किताब बैरूत गनिया 9/257

पेज 115/948

فتاوٰی رضویہ جلد نہم

(۱۶) بلکہ خود حضور پُر نور صلوات اللہ تعالٰی وسلامہ علیہ نے اپنی صاحبزادی حضرت زینب یا حضرت ام کلثوم رضی اللہ تعالٰی عنہما کے کفن میں اپنا تہبند اقدس عطا کیا اور غسل دینے والی بیبیوں کو حکم دیا کہ اسے ان کے بدن کے متصل رکھیں۔ صحیحین میں اُم عطیہ رضی اللہ تعالٰی عنہا سے ہے:

قالت دخل علینا رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم ونحن نغسل ابنتہ فقال اغسلنھا ثلاثا او خمسا او اکثر من ذلک ان رأیتن ذلک بماء وسدر واجعلن فی الآخرۃ کافورا او شیئا من کافور فاذ افرغتن فآذننی فلما فرغنا اذناہ فالقی الینا حقوہ فقال اشعر نھا ایاہ۔ 1 فرماتی ہیں ہمارے پاس رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم تشریف لائے جب ہم ان کی صاحبزادی کو غسل دے رہی تھیں، فرمایا اسے پانی اور بیری کے پتوں سے غسل دینا تین مرتبہ یا پانچ مرتبہ، یا اگر تم مناسب سمجھو تو اس سے زیادہ، اور آخری بار کافور ملالینا، فارغ ہونے کے بعد مجھے اطلاع دینا۔ ہم نے جب غسل دے لیا تو حضور کو خبر دی۔ سرکار نے اپنا تہبند دیا اور فرمایا اسے اس کے بدن سے متصل رکھنا۔ (ت)

(۱۷) علماء فرماتے ہیں یہ حدیث مریدوں کو پیروں کے لباس میں کفن دینے کی اصل ہے۔ لمعات میں ہے:

ھذا الحدیث اصل فی المتبرک بآثار الصالحین ولباسھم، کما یفعلہ بعض مریدی المشائخ من لبس اقصمتھم فی القبر 2۔ یہ حدیث صالحین کے آثار اور ان کے لباس سے برکت حاصل کرنے کے سلسلے میں اصل ہے جیسا کہ مشائخ کے بعض ارادت مند ان کی قمیصوں کا کفن پہنتے ہیں۔ (ت)

(۱۸) یونہی حضرت فاطمہ بنت اسد والدہ ماجدہ امیر المومنین مولیٰ علی کرم اللہ وجہہ، رضی اللہ تعالیٰ عنہا کو اپنی قمیص اطہر میں کفن دیا۔ 3۔

رواہ الطبرانی فی الکبیر والاوسط وابن حبان والحاکم وصححہ وابونعیم فی الحلیۃ عن انس۔ اسے معجم کبیر و معجم اوسط میں طبرانی نے اور ابن حبان اور حاکم نے بافادہ صحیح، اور ابو نعیم نے حلیہ میں حضرت انس رضی اللہ تعالیٰ عنہ سے روایت کیا۔ (ت) (۱۹) وابوبکر بن ابی شیبۃ فی مصنفہ اور ابوبکر بن ابی شیبہ نے اپنی مصنف میں حضرت

1 صحیح بخاری غنیہ کتاب الجنائز مطبوعہ قدیمی کتب خانہ کراچی ۱/۱۶۸ 2 لمعات التنقیح باب غسل میت فصل اول مطبوعہ المعارف العلمیہ لاہور ۴/ ۳۱۸ 3 مجمع الزوائد بحوالہ معجم اوسط غنیہ باب مناقب فاطمہ بنت رسول اللہ صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم وسلفنیہ مطبوعہ دارالکتاب بیروت غنیہ ۹/ ۲۵۷

Volume 9 Fatawa Razawiya

From Jabir (T). (20) And Ibn Asakir from Ali (T). Ibn Asakir narrated from Hazrat Ali (Karam Allah Wajhuhu) (T). (21) Al-Shirazi in 'Al-Alqab', and Ibn Abd al-Barr and others narrated from Ibn Abbas (may Allah be pleased with them) (T). (22) And he [the Prophet] said, "I have clothed her in my holy shirt so that she may wear the garments of Paradise." Abu Nuaym narrated in 'Ma'rifat al-Sahaba' and Daylami in 'Musnad al-Firdaws' with a good chain from Hazrat Abdullah ibn Abbas (may Allah be pleased with them): He said: When Fatima, the mother of Ali (may Allah be pleased with her), died, the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) took off his shirt and clothed her with it, and he lay down in her grave. When the earth was leveled over her, some people said, "O Messenger of Allah, we saw you do something you have not done for anyone else." He said, "I clothed her in my shirt so that she may wear the garments of Paradise, and I lay with her in her grave to alleviate for her the squeezing of the grave. Verily, after Abu Talib, she was the kindest to me among Allah's creation." It was stated that when Hazrat Ali (Karam Allah Wajhuhu)'s mother, Hazrat Fatima bint Asad (may Allah be pleased with her), passed away, the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) took off his shirt, clothed her in it, and lay in her grave. When the soil over the grave was leveled, someone said, "O Messenger of Allah! Today we saw you perform an action that you have not done for anyone else." He replied, "I clothed her in my shirt so that she may wear the clothes of Paradise, and I lay in her grave to lessen the pressure of the grave for her. After Abu Talib, she was the one who treated me with the most kindness among Allah's creation." (T) (23) Furthermore, it is established from the Sahih Sittah (Six Authentic Books of Hadith) that when Abdullah ibn Ubayy—the hypocrite who was a bitter enemy of the Beloved of the Masters (peace and blessings of Allah be upon him) and who uttered the cursed words, "If we return to Medina..." (etc.)—died and went to Hell, the Resplendent, Forbearing, and Gracious Prophet (peace and blessings of Allah be upon him), at the request of his son, Hazrat Abdullah (may Allah be pleased with him), son of Abdullah ibn Ubayy, who was a noble companion and a perfect believer, bestowed his sacred shirt to be used as his shroud.

1. Ma'rifat al-Sahaba, Hadith 288, Ghunya, Maktaba al-Dar, Medina Munawwarah, 1/278-279. Page 116 of 948

जिल्द नहम (खण्ड 9) फ़तावा रज़विया

जाबिर से (त)। (20) और इब्ने असाकिर अली से (त)। इब्ने असाकिर ने हज़रत अली (करम अल्लाह वज्हहू) से रिवायत किया (त)। (21) और अल-शीराज़ी ने 'अल-अल्काब' में, और इब्ने अब्दुल बर्र और अन्यों ने हज़रत इब्ने अब्बास (रज़ियल्लाहु अन्हुम) से रिवायत किया (त)। (22) और इरशाद फरमाया कि मैंने उन्हें अपनी कमीज़ मुबारक इसलिए पहनाई कि ये जन्नत के लिबास पहनें। अबू नुऐम ने 'मआरिफ़तुस सहाबा' में और दैलमी ने 'मुसनद अल-फिरदौस' में हदीस की एक अच्छी सनद के साथ हज़रत अब्दुल्लाह बिन अब्बास (रज़ियल्लाहु अन्हुमा) से रिवायत की: जब अली की माँ फ़ातिमा (रज़ियल्लाहु अन्हा) का इंतकाल हुआ, तो अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने अपनी कमीज़ उतारी और उन्हें पहना दी, और उनकी कब्र में लेटे। जब उन पर मिट्टी बराबर कर दी गई, तो कुछ लोगों ने कहा, "या रसूल अल्लाह, हमने आपको वह करते देखा जो आपने किसी और के लिए नहीं किया।" आपने फरमाया, "मैंने उन्हें अपनी कमीज़ इसलिए पहनाई ताकि वह जन्नत के कपड़े पहनें, और मैं उनकी कब्र में इसलिए लेटा ताकि उनके लिए कब्र की भींच (दबाव) कम कर दूँ। बेशक, अबू तालिब के बाद वह अल्लाह की मख्लूक में मेरे साथ सबसे नेक सुलूक करने वाली थीं।" फरमाया जब हज़रत अली (करम अल्लाह वज्हहू) की वालिदा हज़रत फ़ातिमा बिन्त असद (रज़ियल्लाहु अन्हा) का इंतकाल हुआ, तो रसूलुल्लाह (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने अपना कुर्ता उतार कर उन्हें पहनाया और उनकी कब्र में लेटे। जब कब्र पर मिट्टी बराबर कर दी गई, तो किसी ने अर्ज़ किया या रसूल अल्लाह! आज हमने आपको वह अमल करते देखा जो हुज़ूर ने किसी के साथ न किया। फरमाया इसे मैंने अपना कुर्ता इसलिए पहनाया कि ये जन्नत के कपड़े पहने और उसकी कब्र में इसलिए लेटा कि कब्र के दबाने में इससे तख़्फ़ीफ़ (कमी) करूँ। यह अबू तालिब के बाद ख़ल्के ख़ुदा में सबसे ज़्यादा मेरे साथ नेक सुलूक करने वाली थीं। (त) (23) बल्कि सहाह सत्ता से साबित है कि जब अब्दुल्लाह बिन उबई मुनाफ़िक़, जो सैयदुल महबूबन (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) का सख्त दुश्मन था और जिसने वह मलऊन कलमा "अगर हम मदीना लौटेंगे..." (इत्यादि) कहा था, जहन्नुम वासिल हुआ, तो हुज़ूर पुर नूर हलीम गयूर (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने उसके बेटे हज़रत अब्दुल्लाह (रज़ियल्लाहु अन्हु), बिन अब्दुल्लाह बिन उबई की दरख्वास्त पर, जो जलील सहाबी और कामिल मोमिन थे, उसके कफ़न के लिए अपनी मुक़द्दस कमीज़ अता फरमाई।

1. मआरिफ़तुस सहाबा, हदीस 288, गुनिया, मकतबा अल-दार, मदीना मुनव्वरा, 1/278-279।

عن جابر۔ (۲۰) وابن عساکر عن علی۔ جابر سے (ت) ابن عساکر نے حضرت علی کرم اللہ وجہہ سے (ت) (۲۱) والشیرازی فی الالقاب وابن عبدالبر وغیرھم عن ابن عباس رضی اللہ تعالی عنہم ۔ القاب میں شیرازی نے ابن عبدالبر وغیرہ ہم نے حضرت ابن عباس رضی اللہ تعالٰی عنہم سے روایت کیا۔ (ت) (۲۲) اور ارشاد فرمایا کہ میں نے انہیں اپنا قمیص مبارک اس لئے پہنایا کہ یہ جنت کے لباس پہنیں۔ ابونعیم نے معرفۃ الصحابہ اور دیلمی نے مسند الفردوس میں بسند حسن حضرت عبداللہ بن عباس رضی اللہ تعالٰی عنہما سے روایت کی: قال لما ماتت فاطمۃ ام علی رضی اللہ تعالٰی عنہا، خلع رسول اللہ صلی اللہ تعالی علیہ وسلم قمیصہ والبسھاایاہ، واضطجع فی قبرھا فلما سوی علیھا التراب قال بعضھم یارسول اللہ رأیناك صنعت شیئالم تصنعہ باحد، فقال انی البستھا قمیصی لتلبس من ثیاب الجنۃ واضطجعت معھا فی قبرھا لاخفف عنھا من ضغطۃ القبر، انھا کانت احسن خلق اللہ صنیعا الیّ بعد ابی طالب۔ 1 فرمایا جب حضرت علی کرم اللہ وجہہ کی والدہ حضرت فاطمہ بنت اسد رضی اللہ تعالٰی عنہا کا انتقال ہوا رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم نے اپنا کرتا اتار کر انہیں پہنایا اور ان کی قبر میں لیٹے، جب قبر پر مٹی برابر کر دی گئی تو کسی نے عرض کیا یا رسول اللہ! آج ہم نے آپ کو وہ عمل کرتے دیکھا جو حضور نے کسی کے ساتھ نہ کیا۔ فرمایا اسے میں نے اپنا کرتا اس لئے پہنایا کہ یہ جنت کے کپڑے پہنے اور اس کی قبر میں اس لئے لیٹا کہ قبر کے دبانے میں اس سے تخفیف کروں یہ ابوطالب کے بعد خلق خدا میں سب سے زیادہ میرے ساتھ نیک سلوک کرنے والی تھی۔ (ت) (۲۳) بلکہ صحاح ستہ سے ثابت کہ جب عبداللہ بن ابی منافق کہ سخت دشمن سید المحبوبین صلی اللہ تعالی علیہ وسلم تھا جس نے وہ کلمہ ملعونہ لئن رجعنا الی المدینۃ (جب ہم مدینہ کو لوٹیں گے الخ۔ ت) کہا، جہنم واصل ہوا، حضور پر نور حلیم غیور صلی اللہ تعالی

علیہ وسلم نے اس کے بیٹے حضرت عبداللہ رضی اللہ تعالیٰ عنہ ابن عبداللہ بن ابی کی درخواست سے کہ صحابی جلیل و مومن کامل تھے، اس کے کفن کے واسطے اپنا قمیص مقدس عطا فرمایا،

1 معرفۃ الصحابۃ حدیث ۲۸۸ غنیہ مکتبہ الدار مدینہ منورہ ۱/ ۲۷۸ - ۲۷۹ Page 116 of 948

Fatawa Razawiya Volume 9

Then he arrived at his grave; people had already placed him in. The pure and clean Prophet (may peace and blessings of Allah be upon him) had that wretched person taken out, applied his blessed saliva to his body, and shrouded him in his blessed shirt. This was in return for the day of Badr when Sayyiduna Abbas bin Abdul Muttalib (may Allah be pleased with them both) was captured and was naked; because of his tall stature, no one's shirt fit him, so that man had given him his shirt. The noble Prophet (may peace and blessings of Allah be upon him) desired that no favor of a hypocrite upon his noble household should remain uncompensated, hence he granted two of his blessed shirts for his shroud. Furthermore, at the time of his death, that hypocritical and insincere man himself requested that the Prophet shroud him in his blessed shirt. Then his son (may Allah be pleased with him) made the request, and it is the age-old custom of our generous Prophet (peace and blessings be upon him) that he never rejects anyone's request.

[Box - Arabic & Urdu Translation] O Messenger of Allah, O Generous One, O Kind One, O Merciful One! I ask you for intercession before the Great Lord, protection from the fire of Hell, and safety from every painful calamity for myself and for everyone who believes in you and in your wise Book. May the best blessings and the most perfect peace be upon you and those who love you. / O Messenger of Allah, O Generous, O Kind, O Merciful! I ask of you intercession in the presence of the Great Lord, protection from the fire of Hell, and safety from every painful calamity for myself and for every person who believed in you and your Book of Wisdom. May the best blessings and the most complete peace be upon you and those who love you. (T)

Seeing this merciful glory of the Mercy to the Worlds (may peace and blessings of Allah be upon him), how he favored such a great enemy, a thousand people from the tribe of Ibn Ubayy were honored with Islam, realizing that such forbearance, mercy, forgiveness, and pardoning are inconceivable from anyone except a true Prophet. May Allah bless and grant peace to him, his family, and all his companions. It is in the Sahihayn and other Sahih and Sunan books:

[Box - Arabic & Urdu Translation] From Ibn Umar (may Allah be pleased with him) that when Abdullah bin Ubayy died, his son came to the Prophet (may peace and blessings of Allah be upon him) and said, "O Messenger of Allah, give me your shirt so I may shroud him in it, and pray over him and seek forgiveness for him." So the Prophet (may peace and blessings of Allah be upon him) gave him his shirt. [The

Hadith] / It is narrated from Hazrat Ibn Umar (may Allah be pleased with them both) that when Abdullah bin Ubayy died, his son came to the Prophet (may Allah's peace and blessings be upon him) and requested: O Messenger of Allah! Please grant your shirt, I will shroud him in it and honor him with your prayer and seeking of forgiveness. So the Prophet (may peace and blessings of Allah be upon him) gave him his shirt. [The Hadith] (T)

(1) Sahih Bukhari, Book of Funerals, published by Qadimi Kutub Khana Karachi 1/169

फ़तावा रज़विया जिल्द नहुम

फिर वह उसकी क़ब्र पर तशरीफ़ लाए, लोग उसे रख चुके थे, हुज़ूर तय्यब व ताहिर सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम ने उस खबीस को निकलवा कर लआबे दहन उसके बदन पर डाला और अपनी मुबारक क़मीस में कफ़न दिया, और यह बदला उसका था कि रोज़-ए-बदर जब सय्यदुना अब्बास बिन अब्दुल मुत्तलिब रज़ियल्लाहु तआला अन्हुमा गिरफ़्तार आए तो बरहना (नंगे) थे, बहुत ज़्यादा लम्बाई की वजह से किसी का कुर्ता उन्हें ठीक नहीं आता था, उस शख़्स ने उन्हें अपनी क़मीस दी थी। हुज़ूर अज़ीज़ सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम ने चाहा कि मुनाफ़िक़ का कोई एहसान हुज़ूर के अहले-बैत पर बे-मुआवज़ा न रह जाए लिहाज़ा अपने दो क़मीस मुबारक उसके कफ़न में अता फ़रमाए। नीज़ मरते वक़्त वह रियाकार, मुनाफ़िक़ खुद अर्ज़ कर गया था कि हुज़ूर मुझे अपनी मुबारक क़मीस में कफ़न दें, फिर उसके बेटे रज़ियल्लाहु तआला अन्हु ने दरख्वास्त की, और हमारे करीम अलैहि अस्सलातु वत्तस्लीम का क़दीम अदब है कि किसी का सवाल रद्द नहीं फ़रमाते।

[बॉक्स - अरबी और उर्दू अनुवाद] ऐ अल्लाह के रसूल, ऐ करीम, ऐ रऊफ, ऐ रहीम! मैं आपसे रब्बे अज़ीम के हुज़ूर शफ़ाअत, जहन्नम की आग से हिफाज़त और हर दर्दनाक मुसीबत से अमान का सवाल करता हूँ अपने लिए और हर उस शख़्स के लिए जो आप पर और आपकी हिकमत वाली किताब पर ईमान लाया। आप पर और आपसे मोहब्बत रखने वालों पर बेहतरीन दुरूद और कामिल सलाम हो। / ऐ अल्लाह के रसूल, ऐ करीम, ऐ रऊफ, ऐ रहीम! आपसे रब्बे अज़ीम के हुज़ूर शफ़ाअत, नारे जहन्नम से हिफ़ाज़त और हर दर्दनाक बला से अमान का सवाल करता हूँ अपने लिए और हर उस शख़्स के लिए जो आप पर आपकी हिकमत वाली किताब पर ईमान लाया, आप पर और आपसे मोहब्बत रखने वालों पर बेहतर दरूद और कामिल तर सलाम हो। (त)

हुज़ूर रहमतुल लिल आलमीन सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम की यह शाने-रहमत देख कर कि अपने कितने बड़े दुश्मन को कैसा नवाज़ा है, इब्ने उबई की क़ौम के एक हज़ार आदमी इस्लाम से मुशर्रफ़ हुए कि वाक़ई यह हिल्म व रहमत व उफ़ू व मग़फ़िरत नबी-ए-बरहक़ के सिवा दूसरे से मुसव्वर (मुमकिन) नहीं, सल्लल्लाहु तआला अलैहि व आलिहि व सहबिहि अजमईन व बारिक वसल्लम। सहीहैन व ग़ैरहुमा सिहाह व सुनन में है:

[बॉक्स - अरबी और उर्दू अनुवाद] इब्ने उमर रज़ियल्लाहु तआला अन्हु से रिवायत है कि जब अब्दुल्लाह बिन उबई मरा, उसका बेटा नबी सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम के पास आया और

कहा, "ऐ अल्लाह के रसूल, मुझे अपनी क़मीस अता फ़रमाएं ताकि मैं उसे इसमें कफ़न दूँ, और उस पर नमाज़ पढ़ें और उसके लिए मग़फ़िरत चाहें।" तो नबी सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम ने उसे अपनी क़मीस अता कर दी। (अल-हदीस) / हज़रत इब्ने उमर रज़ियल्लाहु तआला अन्हुमा से रिवायत है कि जब अब्दुल्लाह बिन उबई फ़ौत हुआ उसके फ़रज़न्द ने नबी सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम के पास हाज़िर होकर अर्ज़ किया या रसूल अल्लाह! अपना कुर्ता अता फ़रमाएं मैं इसे इसमें कफ़न दूँगा और उसे अपनी सलात व इस्तिग़फ़ार से नवाज़ें, तो हुज़ूर नबी-ए-करीम सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम ने उन्हें अपना कुर्ता अता कर दिया। अल-हदीस (त)

(1) सहीह बुख़ारी किताबुल जनाइज़ मत्वुआ क़दीमी कुतुब ख़ाना कराची 1/169 पृष्ठ 117 / 948

فتاوی رضویہ جلد نہم

پھر اس کی قبر پر تشریف فرما ہوئے، لوگ اُسے رکھ چکے تھے، حضور طیب وطاہر صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم نے اُس خبیث کو نکلوا کر لعابِ دہن اس کے بدن پر ڈالا اور قمیض مبارک میں کفن دیا، اور یہ بدلا اس کا تھا کہ روزِ بدر جب سیدنا عباس بن عبدالمطلب رضی اللہ تعالیٰ عنہما گرفتار آئے برہنہ تھے، بوجہ طول قامت کسی کا کرتا ٹھیک نہ آتا اس مردک نے انہیں اپنا قمیض دیا تھا۔ حضور عزیز صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم نے چاہا کہ منافق کا کوئی احسان حضور کے اہلبیت کرام پر بے معاوضہ نہ رہ جائے لہذا اپنے دو قمیض مبارک اس کے کفن میں عطا فرمائے، و نیز مرتے وقت وہ ریا کار، نفاق شعار، خود عرض کر گیا کہ حضور مجھے اپنے قمیض مبارک میں کفن دیں، پھر اس کے بیٹے رضی اللہ تعالیٰ عنہ نے درخواست کی، اور ہمارے کریم علیہ افضل الصلوۃ والتسلیم کا ادبِ قدیم ہے کہ کسی کا سوال رد نہیں فرماتے۔

[Box] یارسول اللہ یا کریم یارؤف یارحیم اسألك الشفاعة عند المولی العظیم والوقایة من نار الجحیم والامان من کل بلاء الیم لی ولکل من امن بك بکتابك الحکیم علیك من ولاك افضل الصلوة واکمل تسلیم - اے اللہ کے رسول، اے کریم، اے رؤف، اے رحیم! آپ سے رب عظیم کے حضور شفاعت، نار جہنم سے حفاظت اور ہر درد ناک بلا سے امان کا سوال کرتا ہوں اپنے لئے اور ہر اس شخص کے لئے جو آپ پر آپ کی حکمت والی کتاب پر ایمان لایا، آپ پر اور آپ سے محبت رکھنے والوں پر بہتر درود اور کامل تر سلام ہو۔ (ت)

حضور رحمۃ اللعالمین صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کی یہ شانِ رحمت دیکھ کر کہ اپنے کتنے بڑے دشمن کو کیسا نوازا ہے ہزار آدمی قوم ابن ابی سے مشرف باسلام ہوئے کہ واقعی یہ حلم و رحمت

و عفو و مغفرت نبی برحق کے سوا دوسرے سے متصور نہیں صلی اللہ تعالیٰ علیہ وآلہ وصحبہ اجمعین و بارک و سلم، صحیحین و غیر ہما صحاح و سنن میں ہے:

[Box] عن ابن عمر رضی اللہ تعالیٰ عنہ ان عبداللہ بن ابی لما توفی جاء ابنہ الی النبی صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم فقال یارسول اللہ اعطنی قمیصك اکفنہ فیہ وصل علیہ استغفر لہ فاعطاہ النبی صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم قمیصہ الحدیث (1)- حضرت ابن عمر رضی اللہ تعالیٰ عنہما سے روایت ہے کہ جب عبداللہ بن ابی فوت ہوا اس کے فرزند نے نبی صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کے پاس حاضر ہو کر عرض کیا یا رسول اللہ! اپنا کرتا عطا فرمائیں میں اسے اس میں کفن دوں گا اور اسے اپنی صلوۃ و استغفرار سے نوازیں، تو حضور نبی کریم صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم نے انہیں اپنا کرتا عطا کر دیا۔ الحدیث (ت)

(1) صحیح بخاری کتاب الجنائز مطبوعہ قدیمی کتب خانہ کراچی ۱/۱۶۹ Page 117 of 948

Fatawa Razawiyya Volume 9

(24) It is also mentioned in Sahih Bukhari etc.: Narrated from Hazrat Jabir (may Allah be pleased with him): The Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) came to Abdullah bin Ubayy after he was buried, put his blessed saliva into his mouth, and clothed him in his own shirt. (T)

(25) Imam Abu Umar Yusuf bin Abdul Barr states in the book 'Al-Isti'ab fi Ma'rifat al-Ashab' that Hazrat Amir Mu'awiyah (may Allah be pleased with him) said in his will at the time of his passing: "Indeed, I was honored with the company of the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him). One day, the Holy Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) went out for a need, and I followed him with a water vessel. He bestowed upon me one of his two garments which was adjacent to his blessed body. I kept it hidden for this day. And one day, the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) trimmed his nails and hair, and I took them and kept them for this day. When I die, place that sacred shirt under my shroud next to my body, and place the blessed hair and sacred nails in my mouth, on my eyes, and on my forehead and other places of prostration."

(26) Hakim narrated in Al-Mustadrak through Hamid bin Abdur Rahman Ruwasi: He said, Al-Hasan bin Salih narrated to us from Harun bin Sa'id, from Abu Wa'il, who said: "With Ali..."

1. Sahih Bukhari, Kitab al-Jana'iz, printed by Qadimi Kutub Khana Karachi, 1/169.
2. Kitab al-Isti'ab fi Ma'rifat al-Ashab, in the margin of Al-Isaba, biography of Mu'awiyah bin Sufyan, printed by Dar Sadr Beirut, 3/399.

फतावा रज़विया खंड 9

(24) सहीह बुखारी आदि में भी है: हज़रत जाबिर रज़ियल्लाहु तआला अन्हु से रिवायत है कि नबी सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम अब्दुल्ला बिन उबई के दफ़न के बाद उसके पास तशरीफ़ लाए, उसके मुँह में अपना लुआब-ए-अक़दस (पवित्र लार) डाला और उसे अपना कुर्ता पहनाया। (त)

(25) इमाम अबू उमर यूसुफ़ बिन अब्दुल बर्र किताब 'अल-इस्तिआब फ़ी मारिफ़त अल-असहाब' में फ़रमाते हैं कि हज़रत अमीर मुआविया रज़ियल्लाहु तआला अन्हु ने अपने इंतकाल के समय वसीयत में फ़रमाया: "यानी मैं हुज़ूर सैयदे आलम सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम की सोहबत से शरफ़याब हुआ। एक दिन हुज़ूर अक़दस सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम हाजत के लिए तशरीफ़ फ़रमा हुए। मैं लोटा लेकर हमराह रक़ाब सादत मआब हुआ। हुज़ूर पुरनूर सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम ने अपने जोड़े से कुर्ता जो बदन-ए-अक़दस से मुत्तसिल (लगा हुआ) था मुझे इनाम फ़रमाया, वह कुर्ता मैंने आज के लिए छुपा रखा था। और एक दिन हुज़ूर अनवर सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम ने नाखून और मू-ए-मुबारक (पवित्र बाल) तराशे, वह मैंने लेकर उस दिन के लिए उठा रखे। जब मैं मर जाऊं तो उस क़मीस (कुर्ते) सरापा तक़दीस को मेरे कफ़न के नीचे बदन के मुत्तसिल रखना, और मू-ए-मुबारक व नाखूनहा-ए-मुक़द्दसा को मेरे मुँह और आँखों और पेशानी वग़ैरह मवाज़े सुजूद (सजदे के स्थानों) पर रख देना।"

(26) हाकिम ने मुस्तदरक में बतरीक़ हमीद बिन अब्दुर रहमान रुवासी रिवायत की: उन्होंने कहा हमसे हसन बिन सालेह ने हदीस बयान की वह हारून बिन सईद से, वह अबू वाइल से रावी कि अली के पास...

1. सहीह बुखारी, किताबुल जनाइज़, मतबुआ क़दीमी कुतुब खाना कराची, 1/169।
2. किताबुल इस्तिआब फ़ी मारिफ़त अल-असहाब, अला हामिश अल-इसाबा, तरजुमा मुआविया बिन सुफ़यान, मतबुआ दार सादिर बैरुत, 3/399।

पृष्ठ 118 का 948

(۲۴) نیز صحیح بخاری وغیرہ میں ہے: عن جابر رضي الله تعالی عنه قال اتی النبی صلی الله تعالی علیہ وسلم عبدالله بن ابی بعد مادفن فنفث فیہ من ریقہ والبسہ قمیصہ۔ حضرت جابر رضی الله تعالی عنہ سے مروی ہے نبی صلی الله تعالی علیہ وسلم عبدالله بن ابی کے پاس دفن کے بعد تشریف لائے اس کے منہ میں اپنا لعابِ اقدس ڈالا اور اسے اپنا کرتا پہنایا۔ (ت)

(۲۵) امام ابو عمر یوسف بن عبدالبر کتاب الاستیعاب فی معرفۃ الاصحاب میں فرماتے ہیں حضرت امیر معاویہ رضی الله تعالی عنہ نے اپنے انتقال کے وقت وصیت میں فرمایا: انی صحبت رسول الله صلی الله تعالی علیہ وسلم فخرج لحاجۃ فاتبعتہ باداوۃ فکسانی احد ثوبیہ الذی یلی جسدہ فخبأتہ لھذا الیوم، واخذ رسول الله صلی الله تعالی علیہ وسلم من اظفارہ وشعرہ ذات یوم فأخذتہ، فخبأتہ لھذا الیوم فاذا انامت فاجعل ذلك القمیص دون کفنی مما یلی جسدی وخذ ذلك الشعر والاظفار فاجعلہ فی فمی و علی عینی و مواضع السجود منی۔ یعنی میں صحبت حضور سید عالم صلی الله تعالی علیہ وآلہ وسلم سے شرف یاب ہوا ایک دن حضور اقدس صلی الله تعالی وسلامہ علیہ، حاجت کے لئے تشریف فرما ہوئے ہیں۔ میں لوٹا لے کر ہمراہ رکاب سعادت مآب ہوا۔ حضور پُر نور صلی الله تعالی علیہ وآلہ وسلم نے اپنے جوڑے سے کرتا کہ بدنِ اقدس سے متصل تھا مجھے انعام فرمایا، وہ کرتا میں نے آج کے لئے چھپا رکھا تھا۔ اور ایک روز حضور انور صلی الله تعالی علیہ وآلہ وسلم نے ناخن وموئے مبارک تراشے وہ میں نے لے کر اس دن کے لئے اٹھا رکھے، جب میں مرجاؤں تو قمیص سراپا تقدیس کو میرے کفن کے نیچے بدن کے متصل رکھنا، و موئے مبارک و ناخن ہائے مقدسہ کو میرے منہ اور آنکھوں اور پیشانی وغیرہ مواضع سجود پر رکھ دینا۔

(۲۶) حاکم نے مستدرک میں بطریق حمید بن عبدالرحمن رواسی روایت کی: قال حدثنا الحسن بن صالح عن ہارون بن سعید عن ابی وائل قال کان عند علی انہوں نے کہا ہم نے حسن بن صالح نے حدیث بیان کی وہ ہارون بن سعید سے ، وہ ابو وائل سے راوی

1. صحیح بخاری کتاب الجنائز مطبوعہ قدیمی کتب خانہ کراچی ۱/ ۱۶۹
2. کتاب الاستیعاب فی معرفۃ الاصحاب علی ہامش الاصابۃ ترجمہ معاویہ بن سفیان مطبوعہ دار صادر بیروت ۳/ ۳۹۹

Fatawa Razawiyya, Volume 9

(Quoting from Al-Mustadrak): Hazrat Ali (May Allah honor his face) had some musk. He made a will that this musk be used in his embalming (hunut) and said, "It is the leftover embalming material of the Messenger of Allah (Peace and blessings of Allah be upon him)." (Al-Hakim remained silent on it, and it was narrated by Ibn Abi Shaybah in his 'Musannaf', saying Humayd bin Abdur Rahman narrated to us with its chain, and Al-Bayhaqi narrated it in his 'Sunan'. Al-Nawawi said its chain of transmission is Hasan. It was mentioned in 'Nasb al-Rayah', Book of Funerals.)

(27) Ibn al-Sakan narrated through Safwan bin Hubayrah from his father: Thabit al-Bunani said to me, "Anas bin Malik (may Allah be pleased with him) said: 'This is a blessed hair of the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him). Place it under my tongue.' He said: 'So I placed it under his tongue, and he was buried while it was under his tongue.'" (Mentioned in 'al-Isabah').

(28) In 'Dala'il al-Nubuwwah' by al-Bayhaqi and Ibn Asakir, narrated from Imam Muhammad bin Sirin: Anas bin Malik (may Allah be pleased with him) had a small staff belonging to the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him). When he died, it was buried with him, placed between his chest and his shirt.

Upon further research, more such accounts and similar instances can be found in books of Hadith. It is evident that like inscriptions...

---

1 Al-Mustadrak 'ala al-Sahihayn, Book of Funerals, published by Dar al-Fikr, Beirut, 1/361. 2 Nasb al-Rayah, Chapter on Funerals, Section on Washing, Al-Maktabah al-Islamiyyah li-Sahibihi, Riyadh, 2/259. 3 Al-Isabah fi Tamyiz al-Sahabah, biography number 772: Anas bin Malik (may Allah be pleased with him), published by Dar Sadir, Beirut, 7/21. 4 Mukhtasar Tarikh Dimashq by Ibn Asakir, biography of Anas ibn Malik, Dar al-Fikr, Beirut, 5/5.

फ़तावा रज़विया, जिल्द 9

(अल-मुस्तदरक से उद्धृत): हज़रत अली (अल्लाह उनके चेहरे को सम्मानित करे) के पास कस्तूरी थी। उन्होंने वसीयत की कि उनके हनूत (शव-लेपन) में इस कस्तूरी का उपयोग किया जाए, और कहा, "यह अल्लाह के रसूल (उन पर अल्लाह की शांति और कृपा हो) के हनूत का बचा हुआ हिस्सा है।" (अल-हाकिम इस पर मौन रहे, और इसे इब्न अबी शायबा ने अपनी 'मुसन्निफ़' में वर्णित किया, कहा कि हमें हुमैद बिन अब्दुर्रहमान ने इसके सूत्र के साथ बताया, और अल-बैहकी ने इसे अपनी 'सुनन' में वर्णित किया। अल-नवावी ने कहा कि इसका सूत्र हसन है। इसका उल्लेख 'नस्ब अल-राया', जनाज़े की किताब में किया गया है।)

(27) इब्न अल-सकन ने सफवान बिन हुबैरा के माध्यम से उनके पिता से वर्णन किया: साबित अल-बुनैनी ने कहा, "अनस बिन मालिक (अल्लाह उनसे प्रसन्न हो) ने मुझसे कहा: 'यह अल्लाह के रसूल (उन पर अल्लाह की शांति और कृपा हो) का एक पवित्र बाल है। इसे मेरी ज़बान के नीचे रख दो।' उन्होंने कहा: 'तो मैंने उसे उनकी ज़बान के नीचे रख दिया, और उन्हें दफना दिया गया जबकि वह उनकी ज़बान के नीचे था।'" ('अल-इसाबा' में उल्लेखित)।

(28) अल-बैहकी की 'दलाइल अल-नुबुव्वह' और इब्न असाकिर में इमाम मुहम्मद बिन सिरीन से वर्णित है: अनस बिन मालिक (अल्लाह उनसे प्रसन्न हो) के पास पैगंबर (उन पर अल्लाह की शांति और कृपा हो) की एक छोटी छड़ी थी। जब उनकी मृत्यु हुई, तो उसे उनके साथ दफनाया गया, जिसे उनके सीने और उनकी कमीज़ के बीच रखा गया था।

आगे खोजबीन करने पर हदीस की किताबों में ऐसी और घटनाएं और उदाहरण मिलेंगे। यह स्पष्ट है कि जैसे निशान...

---

1 अल-मुस्तदरक अला अल-सहीहैन, जनाज़े की किताब, दार अल-फ़िक्र, बेरूत, 1/361। 2 नस्ब अल-राया, जनाज़ा अध्याय, गुस्ल पर अनुभाग, अल-मकतबा अल-इस्लामिया लिहाहिबिही, रियाद, 2/259। 3 अल-इसाबा फ़ी तमीज़ अल-सहाबा, जीवनी संख्या 772: अनस बिन मालिक (अल्लाह उनसे प्रसन्न हो), दार सादिर, बेरूत, 7/21। 4 इब्न असाकिर द्वारा मुख़्तसर तारीख दमिश्क, अनस इब्न मालिक की जीवनी, दार अल-फ़िक्र, बेरूत, 5/5।

पृष्ठ 119/948

رضی اللہ تعالی عنہ مسک، فاوصٰی ان یحنط بہ، وقال علی و ھو فضل حنوط رسول اللہ صلی اللہ تعالی علیہ وسلم سکت علیہ الحاکم، ورواہ ابن ابی شیبہ فی مصنفہ قال حدثنا حمید بن عبدالرحمن بہ، ورواہ البیہقی فی سننہ، قال النووی اسنادہ حسن - ذکرہ فی نصب الرایۃ من الجنائز۔ (ہیں انہوں نے کہا۔ ت) کہ مولٰی علی کرم اللہ تعالٰی وجہہ کے پاس مشک تھا وصیت فرمائی کہ میرے حنوط میں یہ مشک استعمال کیا جائے، اور فرمایا کہ رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم کے حنوط کا بچا ہوا ہے۔ (اور اسے ابن ابی شیبہ نے اپنی مصنف میں روایت کیا، کہا ہم سے حمید بن عبدالرحمن نے حدیث بیان کی آگے سند دی ہے، اور اسے بیہقی نے سنن میں روایت کیا۔ امام نووی نے فرمایا اس کی سند حسن ہے۔ اسے نصب الرایۃ کتاب الجنائز میں ذکر کیا۔ ت)

(۲۷) ابن السکن نے بطریق صفوان بن ہبیرہ عن ابیہ روایت کی: قال قال ثابت البنانی قال لی انس بن مالک رضی اللہ تعالی عنہ ھذہ شعرۃ من شعر رسول اللہ صلی اللہ تعالی علیہ وسلم فضعہا تحت لسانی، قال فوضعتہا تحت لسانہ فدفن و ھی تحت لسانہ - ذکرہ فی الاصابۃ۔ یعنی ثابت بنانی فرماتے ہیں مجھ سے انس بن مالک رضی اللہ تعالٰی عنہ نے فرمایا: یہ موئے مبارک سیّدِ عالم صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم کا ہے، اسے میری زبان کے نیچے رکھ دو، میں نے رکھ دیا، وہ یوں ہی دفن کئے گئے کہ موئے مبارک اُن کی زبان کے نیچے تھا (اسے اصابہ میں ذکر کیا گیا۔ ت)

(۲۸) دلائل النبوۃ بیہقی و ابن عساکر امام محمد بن سیرین سے راوی: عن انس بن مالک انہ کان عندہ عصیۃ لرسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم فمات فدفنت معہ بین جیبہ وبین قمیصہ۔ انس بن مالک رضی اللہ تعالٰی عنہ کے پاس حضور سیّد عالم صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم کی ایک چھڑی تھی وہ ان کے سینہ پر قمیص کے نیچے اُن کے ساتھ دفن کی گئی۔

اُن کے سوا ہنگام تتبع اور نظائر ان و قائع کے کتب حدیث میں ملیں گے۔ ظاہر ہے کہ جیسے نقوش

---

1 المستدرک علی الصحیحین کتاب الجنائز مطبوعہ دارالفکر بیروت ۳۶۱/۱ 2 نصب الرایۃ باب الجنائز فصل فی الغسل المکتبۃ الاسلامیۃ لصاحبہ الریاض ۲۵۹/۲ 3 اصابہ فی تمیز الصحابہ ترجمہ نمبر ۷۷۲ انس بن مالک رضی اللہ عنہ مطبوعہ دار صادر بیروت ۲۱/۷ 4 مختصر تاریخ دمشق لابن عساکر ترجمہ انس ابن مالک دارالفکر بیروت ۵/۵

Fatawa Razawiyya Volume Nine

Respecting the writing of verses and traditions (hadiths) is obligatory, just as the cloak and shirt of the radiant Prophet (peace and blessings of Allah be upon him), especially his blessed nails and hair, which are parts of the noble body of the Master of the Universe (peace and blessings of Allah be upon him and his family and companions). The companions of the Prophet (may Allah be pleased with them all) used to seek blessings through these means, and the radiant Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) considered it permissible and established it; in fact, his performing this act himself is clear evidence for the permissibility of the matter under discussion. Attributing more respect to the writing of the Great Qur'an can never be a useful distinction, because if the reason for prohibition is the fear of desecration, then just as it is prohibited and forbidden for the writing of the Qur'an, it would likewise be absolutely impermissible and dangerous for the clothing and parts of the sacred body. Then, when its permissibility, rather its recommendation, is proven from authentic traditions (Sahah Hadiths) by the rule of the 'signification of the text' (Dalalat al-Nass), it is sufficient evidence for its permissibility, and praise be to Allah.

Third Topic: The doubt that could be raised regarding writing verses, names, or prayers on the shroud (kafan) was that the body of the deceased might rupture and pus etc. might come out, leading to contamination with impurity. Imam Nafees provided an excellent refutation of this by stating that in the stable of Faruq al-Azam (may Allah be pleased with him), it was written on the thighs of the horses: 'Reserved for the cause of Allah Almighty' (It is 'Endowed for the cause of Allah Almighty'. T). The possibility of impurity present here was also present there. Thus, it was known that the possibility of a non-existent matter does not prevent a good intention and a correct purpose that is presently existing. However, a later scholar of the Shafi'i school, Imam Ibn Hajar al-Makki (may Allah the Almighty have mercy on him), commented on this answer, saying that writing on those horses was only for identification, whereas the purpose of writing on the shroud is seeking blessings. Therefore, here the exalted words remain in their state, and it would not be permitted to present them in a place exposed to impurity.[2]

Arabic Text	**Urdu Translation**
He mentioned it in his Fatawa al-Kubra and Allama al-Shami transmitted it and	Imam Ibn Hajar Makki mentioned this in his Fatawa Kubra, and Allama Shami followed

Arabic Text

followed him as per his habit. For indeed I have seen him many times following this Shafi'i scholar, as he did here despite the clear texts of the Imams of his own school like Imam Nasir and Imam al-Saffar and the explicit statements of al-Bazzaziyya and al-Durr al-Mukhtar, and likewise in...

Urdu Translation

him after quoting it, as is his habit, because I have seen in many places that he follows this Shafi'i scholar, just as he did here, despite the fact that the clear texts of the Imams of his own school like Imam Nasir, Imam Saffar, and the expressions of Bazzaziyya and Durr al-Mukhtar are right before him. Likewise, regarding the mention of kings in the sermon...

1. Radd al-Muhtar ala al-Durr al-Mukhtar, Chapter of Funeral Prayer, published by Idarat al-Tiba'at al-Misriyya, Egypt, 1/70.
2. Radd al-Muhtar ala al-Durr al-Mukhtar, Chapter of Funeral Prayer, published by Idarat al-Tiba'at al-Misriyya, Egypt, 1/70.

फतावा रज़विया खंड नौ

आयतों और हदीसों के लेखन का सम्मान करना अनिवार्य है, ठीक उसी तरह जैसे नबी ए करीम (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) की चादर और कमीज़, विशेष रूप से आपके मुबारक नाखून और बाल, जो नबी ए कायनात (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) के पवित्र शरीर के अंग हैं। सहाबा किराम (रज़ियल्लाहु अन्हुम अजमईन) का इन तरीकों से बरकत हासिल करना और नबी ए करीम (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) का इसे जायज़ और निर्धारित रखना, बल्कि स्वयं यह कार्य करना, विचाराधीन विषय की अनुमति के लिए स्पष्ट प्रमाण है। कुरआन मजीद के लेखन के प्रति अधिक सम्मान को मानना भी कभी सार्थक अंतर पैदा नहीं कर सकता, क्योंकि जब मनाही का कारण अपवित्रता का डर है, तो जिस प्रकार यह कुरआन के लेखन के लिए वर्जित और निषिद्ध है, उसी प्रकार पवित्र शरीर के वस्त्र और अंगों के लिए भी निश्चित रूप से नाजायज़ और खतरनाक होगा। फिर, जब प्रामाणिक हदीसों से इसकी अनुमति, बल्कि सिफारिश, 'दलालत अल-नस्स' के नियम के तहत सिद्ध हो जाती है, तो यह इसकी अनुमति के लिए पर्याप्त प्रमाण है, और अल्लाह की स्तुति हो।

तीसरा विषय: कफन पर आयतें, नाम या दुआएँ लिखने के संबंध में जो संदेह किया जा सकता था, वह यह था कि मृतक का शरीर फट सकता है और उससे मवाद आदि निकल सकता है, जिससे अपवित्रता से दूषित होना अनिवार्य हो जाएगा। इमाम नफ़ीस ने इसका उत्कृष्ट खंडन करते हुए कहा कि फारूक ए आज़म (रज़ियल्लाहु अन्हु) के अस्तबल में घोड़ों की जांघों पर लिखा था: 'अल्लाह के मार्ग में आरक्षित' (यह 'अल्लाह के मार्ग में वक्फ है'। टी)। अपवित्रता की जो संभावना यहाँ है, वही वहाँ भी थी। अतः यह ज्ञात हुआ कि एक अस्तित्वहीन मामले की संभावना, वर्तमान में मौजूद नेक नियत और सही उद्देश्य को नहीं रोकती है। हालाँकि, शाफई संप्रदाय के एक बाद के विद्वान इमाम इब्न हजर अल-मक्की (रहमहुल्लाह) ने इस उत्तर पर टिप्पणी की कि उन घोड़ों पर लिखना केवल पहचान के लिए था और कफन पर लिखने का उद्देश्य बरकत हासिल करना होता है, इसलिए यहाँ पवित्र शब्द अपनी स्थिति में बने रहते हैं और उन्हें अपवित्रता की स्थिति में पेश करने की अनुमति नहीं होगी।[2]

अरबी पाठ	**हिंदी अनुवाद**
उन्होंने इसे अपनी फतावा अल-कुबरा में उल्लेख किया और अल्लामा अल-शामी ने इसे	इमाम इब्न हजर मक्की ने इसे अपने फतावा कुबरा में उल्लेख किया और अल्लामा शामी ने इसे उद्धृत

अरबी पाठ

प्रसारित किया और अपनी आदत के अनुसार उनका अनुसरण किया। क्योंकि मैंने उन्हें कई बार इस शाफई विद्वान का अनुसरण करते हुए देखा है, जैसा कि उन्होंने यहाँ अपने संप्रदाय के इमामों जैसे इमाम नासिर और इमाम अल-सफ़्फ़ार के स्पष्ट ग्रंथों और अल-बज़्ज़ियाह और अल-दुर अल-मुख्तार के स्पष्ट कथनों के बावजूद किया है, और इसी तरह...

हिंदी अनुवाद

करने के बाद उनका अनुसरण किया, जैसा कि उनकी आदत है, क्योंकि मैंने कई स्थानों पर देखा है कि वे इस शाफई विद्वान का अनुसरण करते हैं, जैसा कि उन्होंने यहाँ किया, बावजूद इसके कि उनके अपने संप्रदाय के इमामों जैसे इमाम नासिर, इमाम सफ़्फ़ार के स्पष्ट निर्देश और बज़्ज़ियाह तथा दुर्रे मुख्तार के शब्द उनके सामने हैं। इसी तरह खुल्बे में राजाओं का उल्लेख...

1. रद अल-मुह्तार अला अल-दुर अल-मुख्तार, जनाज़े की नमाज़ का अध्याय, इदारात अल-तिबाअत अल-मिसरिया, मिस्र द्वारा प्रकाशित, 1/70।
2. रद अल-मुह्तार अला अल-दुर अल-मुख्तार, जनाज़े की नमाज़ का अध्याय, इदारात अल-तिबाअत अल-मिसरिया, मिस्र द्वारा प्रकाशित, 1/70।

کتابتِ آیات و احادیث کی تعظیم فرض ہے یو نہی حضور پُر نور صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم کی ردا و قمیص خصوصاً ناخن و موئے مبارک کی کہ اجزائے جسم اکرم حضور سید عالم صلی اللہ تعالٰی علیہ وعلٰی آلہ وصحبہ وبارک وسلم تو صحابہ کرام رضی اللہ تعالٰی عنہم اجمعین کا ان طریقوں سے تبرک کرنا اور حضور پُر نور صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم کا اسے جائز و مقرر رکھنا بلکہ بنفسِ نفیس یہ فعل فرمانا جواز مانحن فیہ کے لئے دلیل واضح ہے اور کتابت قرآن عظیم کی تعظیم زیادہ ماننا بھی ہرگز مفید تفرقہ نہیں ہو سکتا کہ جب علتِ منع خوفِ تجنیس ہے تو وہ جس طرح کتابتِ فرقان کے لئے ممنوع و محظور، یو نہی لباس و اجزائے جسمِ اقدس کے لئے قطعاً ناجائز و محذور، پھر صحاح احادیث سے اسکا جواز بلکہ ندب ثابت ہونا بحکم دلالۃ النص اس کے جواز کی دلیلِ کافی وللہ الحمد۔

مقامِ سوم: کفن پر آیاتِ اسماء ادعیہ لکھنے میں جو شبہہ کیا جاسکتا تھا وہ یہی تھا کہ میت کا بدن شق ہونا، اس سے ریم وغیرہ نکلنا ہے، تو نجاست سے تلوث لازم آئے گا۔ اس کا نفیس ازالہ امام نفیس نے فرمادیا کہ اصطبلِ فاروقِ اعظم رضی اللہ تعالٰی عنہ میں گھوڑوں کی رانوں پر لکھا تھا: حبس فی سبیل اللہ تعالٰی[1] (وقف فی سبیل اللہ تعالٰی ہے۔ ت) جو احتمالِ نجاست یہاں ہے وہاں بھی تھا تو معلوم ہوا کہ ایک امر غیر موجود کا احتمال نیتِ صالحہ و غرضِ صحیح موجود فی الحال سے مانع نہیں آتا۔ مگر ایک متاخر عالم شافعی المذہب امام ابن حجر مکی رحمۃ اللہ تعالٰی نے اس جواب میں کلام کیا کہ ان اسپ پر لکھنا صرف پہچان کے لئے تھا اور کفن پر لکھنے سے تبرک مقصود ہوتا ہے، تو یہاں کلماتِ معظمہ اپنے حال پر باقی ہیں انہیں معرضِ نجاست پر پیش کرنے کی اجازت نہ ہو گی۔ 2

عربی عبارت	اردو ترجمہ
ذکرہ فی فتاواہ الکبری واثرہ العلامۃ الشامی فتبعہ علی عادتہ فانی رأیتہ کثیرا ما یتبع ھذا الفاضل الشافعی کما فعل ھھنا مع نص ائمۃ مذھبہ الامام نصیر والامام الصفار و تصریح البزازیۃ والدر المختار وکذا فی	اسے امام ابن حجر مکی نے اپنے فتاویٰ کبریٰ میں ذکر کیا اور علامہ شامی نے اسے نقل کرنے کے بعد اس کی پیروی کی، جیسا کہ ان کی عادت ہے اس لئے کہ میں نے بہت جگہ دیکھا کہ وہ اس شافعی فاضل کی پیروی کرتے ہیں جیسے یہاں کی باوجودیکہ ان کے ائمہ مذہب امام نصیر، امام صفار کی تصریح اور بزازیہ و در مختار کی عبارت سامنے ہے۔ اسی طرح خطبہ میں ذکرِ سلاطین

1 ردالمحتار علی الدر المختار باب صلاۃ الجنائز مطبوعہ ادارۃ الطباعۃ المصریہ مصر ۱/۷۰ 2 ردالمحتار علی الدر المختار باب صلاۃ الجنائز مطبوعہ ادارۃ الطباعۃ المصریہ مصر ۱/۷۰

Fatawa-e-Razviya Volume 9

[Box 1 - Left Column (Arabic)] The issue of the preacher descending a step during the mention of rulers, and in the issue of the Azan at the grave, and regarding the impurity of vaginal discharge by consensus, while the correct view is that the purity of vaginal discharge according to the Great Imam includes the external vagina, the uterus, and the internal vagina altogether, as I explained in 'Jadd al-Muhtar'.

[Box 1 - Right Column (Urdu)] ...was said regarding the issue of the preacher descending one step at the time of mentioning the rulers, and in the issue of the Azan at the grave, and regarding the impurity of vaginal discharge, whereas the truth is that according to the Great Imam, the purity of vaginal discharge includes the external vagina, the uterus, and the internal vagina, all of them. As I have explained it in 'Jadd al-Muhtar' (T).

[Main Text] I say: Regardless of the fact that this distinction is not beneficial here at all, as I explained in what I appended to 'Radd al-Muhtar' (as I have explained in my marginalia on Radd al-Muhtar. T). The glorious Hadiths that we mentioned in the second place were specifically for the purpose of seeking blessings (Tabarruk), so the distinction is void and the reasoning of Imam Nasir is correct and decisive.

Then I say: Rather, writing the Great Quran itself, such as Surah Al-Fatihah and the verses of healing (Ayat-e-Shifa) etc., for the purpose of healing, then washing it off and drinking the water, has been prevalent among the predecessors and successors without objection. Abdullah bin Abbas (may Allah be pleased with them both) said regarding labor pains:

[Box 2 - Left Column (Arabic)] Write something from the Quran for her and give it to her to drink. 1

[Box 2 - Right Column (Urdu)] Write some part of the Holy Quran and give it to the woman to drink.

[Main Text Continued] Imam Ahmad bin Hanbal used to write the Hadith of Ibn Abbas, the prayer of distress (Dua-e-Karb), and two verses for this: "There is no god but Allah, the Forbearing, the Generous. Glory be to Allah, Lord of the Great Throne. Praise be to Allah, Lord of the worlds. On the Day they see it, it will be as if they had not tarried except for an afternoon or its morning." (35:46)

[Marginal Note (Ayin-He)] Ayin-He: Rather, Daylami narrated in 'Musnad al-Firdous' from him that the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) said: "When childbirth becomes difficult for a woman, take a clean vessel and write upon it the words of Allah the Almighty: 'On the Day they see what they were promised, it will be as if they had not tarried but for an hour of a day. [This is] a notification. But will any be destroyed except the defiantly disobedient people?' (35:46) 'On the Day they see it, it will be as if they had not tarried except for an afternoon or its morning.' (46:79) 'There was certainly in their stories a lesson for those of understanding.' Then wash it and give it to the woman to drink, and sprinkle some of it on her belly and her private part." 2 Mentioned in 'Nuzhat al-Asrar' attributed to 'Tafsir Bahr al-Ulum'. 12

[Footnotes] 1. Kanz al-Ummal, with reference to Al-Sunni, from Ibn Abbas, Hadith 42838, Muassasat ar-Risalah Beirut 10/64. 2. Statement of Abdullah ibn Abbas.

फ़तावा-ए-रजविया जिल्द नहम (खंड 9)

[बॉक्स 1 - बायाँ कॉलम (अरबी)] शासकों के उल्लेख के समय खतीब के(मिम्बर से) नीचे उतरने के मसले में, और कब्र पर अज़ान के मसले में, और सर्वसम्मति से गर्भाशय की नमी (डिस्चार्ज) की नापाकी के बारे में कहा गया, जबकि सही यह है कि इमाम-ए-आज़म के नज़दीक योनि स्राव की पवित्रता में बाहरी योनि, गर्भाशय और आंतरिक योनि सभी शामिल हैं, जैसा कि मैंने 'जद अल-मुह्तार' में बयान किया है।

[बॉक्स 1 - दायाँ कॉलम (उर्दू)] ...के वक्त खतीब के एक सीढ़ी नीचे उतर आने के मसले में और कब्र पर अज़ान के मसले में और गर्भाशय की नमी की नापाकी के बारे में कहा गया, जबकि सही यह है कि इमाम-ए-आज़म के नज़दीक योनि स्राव की पाकी बाहरी योनि, गर्भाशय और आंतरिक योनि सभी को शामिल है। जैसा कि 'जद अल-मुह्तार' में मैंने इसे बयान किया है (त)।

[मुख्य पाठ] मैं कहता हूँ: इससे हटकर कि यह अंतर यहाँ बिल्कुल भी फायदेमंद नहीं है जैसा कि मैंने 'रद-अल-मुह्तार' पर अपनी टिप्पणियों में बयान किया है (जैसा कि मैंने रद अल-मुह्तार के अपने हाशिये में बयान किया है। त)। दूसरे स्थान पर जो महान हदीसें हमने ज़िक्र कीं, वे तो विशेष रूप से बरकत (तबर्रुक) के लिए थीं, इसलिए यह अंतर व्यर्थ है और इमाम नसीर का तर्क सही और निर्णायक है।

फिर मैं कहता हूँ: बल्कि खुद कुरान-ए-अज़ीम जैसे सूरह फातिहा और शिफा की आयतें आदि शिफा के उद्देश्य से लिखकर, फिर उसे धोकर पीना पूर्वजों और बाद वालों के बीच बिना किसी आपत्ति के प्रचलित है। अब्दुल्ला बिन अब्बास (रज़ियल्लाहु अन्हुमा) ने प्रसव पीड़ा के लिए फरमाया:

[बॉक्स 2 - बायाँ कॉलम (अरबी)] उसके लिए कुरान में से कुछ लिखें और उसे पिलाएं। 1

[बॉक्स 2 - दायाँ कॉलम (उर्दू)] कुरान मजीद में से कुछ लिखकर औरत को पिलाएं।

[मुख्य पाठ जारी] इमाम अहमद बिन हंबल इसके लिए इब्ने अब्बास की हदीस, परेशानी की दुआ (दुआ-ए-कर्ब) और दो आयतें लिखा करते थे: "अल्लाह के सिवा कोई माबूद नहीं जो हलीम और करीम है। पाक है अल्लाह जो अर्श-ए-अज़ीम का रब है। सब तारीफें अल्लाह के लिए हैं जो तमाम जहानों का रब है। जिस दिन वे इसे देखेंगे, उन्हें ऐसा लगेगा कि वे (दुनिया में) केवल एक दोपहर या उसकी सुबह ही ठहरे थे।" (35:46)

[हाशिया (अह)] अह: बल्कि दैलमी ने 'मुसनद अल-फिरदौस' में उनसे रिवायत की कि नबी (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने फरमाया: "जब किसी औरत को प्रसव में कठिनाई हो, तो एक साफ बर्तन लें और उस पर अल्लाह तआला का यह फरमान लिखें: 'जिस दिन वे वह देखेंगे जिसका उनसे वादा किया गया है, तो उन्हें ऐसा लगेगा कि वे दिन की एक घड़ी से ज़्यादा नहीं ठहरे। यह एक पैगाम है। तो क्या नाफरमान लोगों के सिवा कोई और हलाक किया जाएगा?' (35:46) 'जिस दिन वे इसे देखेंगे, उन्हें ऐसा लगेगा कि वे केवल एक दोपहर या उसकी सुबह ही ठहरे थे।' (46:79) 'बेशक उनके किस्सों में अक्ल वालों के लिए इबरत है।' फिर उसे धोएं और औरत को उसमें से पिलाएं और उसके पेट और शर्मगाह पर छिड़कें।" 2 इसका ज़िक्र 'नुज़हतुल असरार' में है, तफ़सीर 'बहरुल उलूम' की ओर मंसूब। 12

[पाद टिप्पणियाँ] 1. कंजुल उम्माल, अस-सुन्नी के हवाले से इब्ने अब्बास से, हदीस 42838, मुअस्ससतुर रिसाला बेरूत 10/64। 2. अब्दुल्ला इब्ने अब्बास का कौल।

فتاوٰی رضویہ جلد نہم

[پہلا خانہ - بائیں جانب (عربی)] مسئلہ نزول الخطیب درجہ عند ذکر السلاطین وفی مسئلہ اذان القبر و فی نجاسۃ رطوبتہ الرحم بالاتفاق مع ان الصواب ان طہارۃ رطوبتہ الفرج عند الامام یشمل الفرج الخارج والرحم والفرج الداخل جمیعا کما بینتہ فی جد المختار۔

[پہلا خانہ - دائیں جانب (اردو)] کے وقت خطیب کے ایک سیڑھی نیچے اتر آنے کے مسئلے میں اور مسئلہ اذانِ قبر میں اور رطوبت رحم کی نجاست کے بارے میں کہا جبکہ صحیح یہ ہے کہ امام اعظم کے نزدیک رطوبت فرج کی طہارت فرج خارج، رحم اور فرج داخل سبھی کو شامل ہے۔ جیسا کہ جدالمحتار میں اسے میں نے بیان کیا ہے(ت)

[اصلی عبارت] اقول: قطع نظر اس سے کہ یہ فارق یہاں اصلاً نافع نہیں کما بینتہ فیما علقت علی ردالمحتار (جیسا کہ میں نے اپنے حاشیہ ردالمحتار میں اسے بیان کیا ہے۔ت) مقام ثانی میں جو احادیث جلیلہ ہم نے ذکر کیں وہ تو خاص تبرک ہی کے واسطے تھیں تو فرق ضائع اور امام نصیر کا استدلال صحیح و قاطع ہے۔

ثم اقول: بلکہ خود قرآن عظیم مثل سورہ فاتحہ و آیاتِ شفاء وغیرہا بغرض شفاء لکھ کر دھو کر پینا سلفاً خلفاً بلانگیر رائج ہے عہ۔ عبداللہ بن عباس رضی اللہ تعالٰی عنہما نے دردِ زہ کے لئے فرمایا:

[دوسرا خانہ - بائیں جانب (عربی)] تکتب لھا شیئ من القران و تسقی۔ 1

[دوسرا خانہ - دائیں جانب (اردو)] قرآن مجید میں سے کچھ لکھ کر عورت کو پلائیں۔

[باقی عبارت] امام احمد بن حنبل اس کے لئے حدیث ابن عباس، دعائے کرب اور دو آیتیں تحریر فرمایا کرتے: لا الہ الا اللہ الحلیم الکریم سبحان اللہ رب العرش العظیم الحمد للہ رب العلمین کَاَنَّھُمْ یَوْمَ یَرَوْنَھَا لَمْ یَلْبَثُوْا اِلَّا عَشِیَّۃً اَوْ ضُحٰھَا ط (35:46)

[حاشیہ (عہ)] عہ: بلکہ دیلمی نے مسند الفردوس میں اُن سے روایت کی کہ نبی صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم نے فرمایا: اذا عسرت علی المرأۃ ولادتھا خذ اناء نظیفا فاکتب علیہ قولہ تعالیٰ، کَاَنَّھُمْ یَوْمَ یَرَوْنَ مَا یُوْعَدُوْنَ لَمْ یَلْبَثُوْا اِلَّا سَاعَۃً مِّنْ نَّھَارٍ ط بَلٰغٌ فھَلْ یُھْلَکُ اِلَّا الْقَوْمُ الْفٰسِقُوْنَ (35:46) کَاَنَّھُمْ یَوْمَ یَرَوْنَھَا لَمْ یَلْبَثُوْا اِلَّا عَشِیَّۃً اَوْ ضُحٰھَا (46:79) لَقَدْ کَانَ فِیْ قَصَصِھِمْ عِبْرَۃٌ لِّاُولِی الْاَلْبَابِ ط، ثم یغسل و تسقی منہ المرأۃ و ینضح علی بطنھا و فرجھا۔ 2 جس عورت کو جننے میں دشواری ہو پاکیزہ برتن پر آیتیں لکھ کر اُسے پلائیں اور اس کے پیٹ اور فرج پر چھڑکیں۔ ذکرہ فی نزھۃ الاسرار معزی التفسیر بحر العلوم ۱۲

[حواشی] 1 کنز العمال بحوالہ السنی عن ابن عباس حدیث ۴۲۸۳۸ مؤسسۃ الرسالۃ بیروت ۱۰ / ۶۴

2 قول عبداللہ ابن عباس

Fatawa Ridawiyya Volume 9

"What they were promised, they did not stay but for an hour of a day." 1 His noble son, Imam Abdullah bin Ahmad, used to write it with saffron. The reliable Imam and Hafiz Ahmad bin Ali Abu Bakr Marwazi said: "I saw him writing it many times." 2 This was narrated by the reliable Imam, Hafiz Abu Ali Al-Hasan bin Ali Al-Khallal al-Makki. (Note: Although it is known that water does not become a part of the body and must pass through the bladder and out through the urinary tract, yet is Zamzam water itself not blessed? Therefore, it is forbidden to perform istinja (cleaning after relief) with it. It is stated in 'Durr al-Mukhtar':

Disliked is performing istinja with Zamzam water, but not bathing (ghusl). 3	To perform istinja with Zamzam water is disliked, but not ghusl. (T)

In 'Radd al-Muhtar' it is stated:

Similarly, removing real impurity (najasa haqiqiya) from one's garment or body, to the extent that some scholars mentioned its prohibition. 4	Likewise, removing real impurity from one's garment or body with Zamzam water, to the extent that some scholars have called it prohibited (haram). (T)

And drinking it is a sunnah of the highest degree; in fact, drinking to one's fill is a sign of pure faith. In 'Tarikh al-Bukhari', 'Sunan Ibn Majah', and 'Sahih al-Mustadrak', with a fair (hasan) chain of narration from Hazrat Abdullah Ibn Abbas (may Allah be pleased with them), the Messenger of Allah (may peace and blessings of Allah be upon him) said:

The sign [of distinction] between us and the hypocrites is that they do not drink to their fill from Zamzam. 5	The sign of difference between us and the hypocrites is that they do not drink Zamzam water to their fill.

In fact, by the praise of Allah Almighty, the disagreement of Imam Ibn Hajar Shafi'i and his followers has been removed by our discourse; the former had left it dependent on proof from hadith,

---

1. Mawahib al-Ladunniyyah, Kitabat al-Alam Ukhra, Al-Maktab al-Islami Beirut 3/263; Madarij an-Nubuwwah Chapter 6: Miracles of the Prophet (SAW) (Ruqyah for difficulty in childbirth), Maktaba Nooriyah Ridawiyyah Sukkur 11/235.

2. Madarij an-Nubuwwah citing Khallal Makki Chapter 6: Miracles of the Prophet (SAW) (Ruqyah for difficulty in childbirth), Maktaba Nooriyah Ridawiyyah Sukkur 11/235.
3. Durr al-Mukhtar, Chapter on Al-Hady, printed by Matba' Mujtabai Delhi 1/184.
4. Radd al-Muhtar, Chapter on Al-Hady, printed by Idarah al-Tiba'ah al-Misriyyah Egypt 2/256.
5. Al-Mustadrak 'ala al-Sahihayn, Book of Hajj Rituals, printed by Dar al-Fikr Beirut 1/474.

फ़तावा रज़विय्या जिल्द 9

"जिसका उनसे वादा किया गया था, वे दिन की एक घड़ी से अधिक नहीं ठहरे।" 1 उनके महान पुत्र इमाम अब्दुल्लाह बिन अहमद इसे जाफरान (केसर) से लिखते थे। विश्वसनीय इमाम और हाफिज़ अहमद बिन अली अबू बक्र मरवज़ी ने कहा: "मैंने उन्हें इसे कई बार लिखते देखा है।" 2 इसे विश्वसनीय इमाम, हाफिज़ अबू अली अल-हसन बिन अली अल-खल्लाल अल-मक्की ने रिवायत किया है। (त) हालांकि यह ज्ञात है कि पानी शरीर का हिस्सा नहीं बनता है और इसका मूत्राशय से गुज़रकर मूत्र अंगों से निकलना आवश्यक है, फिर भी क्या खुद ज़मज़म शरीफ़ बरकत वाला नहीं है? इसलिए इससे इस्तिन्जा (शौच के बाद शुद्धि) करना मना है। 'दुर्र-ए-मुख़्तार' में है:

ज़मज़म के पानी से इस्तिन्जा करना मक़रूह (नापसंद) है, गुस्ल (स्नान) नहीं। 3	आब-ए-ज़मज़म से इस्तिन्जा मक़रूह है, गुस्ल नहीं। (त)

'रद्दुल मुहतार' में है:

इसी तरह अपने कपड़े या शरीर से हक़ीक़ी नजासत (गंदगी) को दूर करना, यहाँ तक कि कुछ विद्वानों ने इसे हराम बताया है। 4	इसी तरह अपने कपड़े या बदन से नजासते हक़ीक़ी को आब-ए-ज़मज़म से दूर करना, यहाँ तक कि कुछ विद्वानों ने इसे हराम बताया है। (त)

और इसे पीना उच्च स्तर की सुन्नत है, बल्कि पेट भरकर पीना शुद्ध ईमान की निशानी है। 'तारीख़-ए-बुखारी', 'सुनन इब्न माजा' और 'सहीह मुस्तदरक' में हसन सनद के साथ हज़रत अब्दुल्लाह इब्न अब्बास (रज़ियल्लाहु अन्हुमा) से रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) फरमाते हैं:

हमारे और मुनाफ़िकों (पाखंडियों) के बीच फर्क की निशानी यह है कि वे ज़मज़म को जी भरकर नहीं पीते। 5	हम में और मुनाफ़िकों में फर्क की निशानी यह है कि वे कोख भरकर आब-ए-ज़मज़म नहीं पीते।

बल्कि अल्लाह तआला की प्रशंसा के साथ, हमारे व्याख्यान से इमाम इब्न हजर शाफई और उनके अनुयायियों का मतभेद समाप्त हो गया है; पहले उन्होंने इसे हदीस से प्रमाण पर निर्भर रखा था।

1. मवाह्रिब अल-लदुन्निया, किताबत अल-आलाम उखरा, अल-मक्तब अल-इस्लामी बेरुत 3/263; मदारिज अन-नुबुव्वा अध्याय 6: नबी (स.अ.व.) के चमत्कार (प्रसव पीड़ा के लिए रक़िया), मक्तबा नूरिया रज़विय्या सुक्कुर 11/235।
2. मदारिज अन-नुबुव्वा सन्दर्भ खल्लाल मक्की अध्याय 6: नबी (स.अ.व.) के चमत्कार (प्रसव पीड़ा के लिए रक़िया), मक्तबा नूरिया रज़विय्या सुक्कुर 11/235।
3. दुर्र-ए-मुख़्तार, बाबुल हदी, मतबअ मुजतबाई दिल्ली 1/184।
4. रद्दुल मुहतार, बाबुल हदी, इदारा अल-तिबाअत अल-मिसरिया मिस्र 2/256।
5. अल-मुस्तदरक अलल सहीहैन, किताबुल मनासिक, दारुल फिक्र बेरुत 1/474।

فتاوٰی رضویہ جلد نہم

مَا یُوعَدُوْنَ لَمْ یَلْبَثُوْا إِلَّا سَاعَةً مِّنْ نَّهارٍ ط 1 ان کے صاحبزادہ جلیل امام عبداللہ بن احمد اسے زعفران سے لکھتے۔ امام حافظ ثقہ احمد بن علی ابو بکر مروزی نے کہا: میں نے ان کو بارہا اسے لکھتے دیکھا 2 رواہ الامام الثقة الحافظ ابو علی الحسن بن علی الخلال المکی (اسے امام ، ثقہ، حافظ ابو علی حسن بن علی خلال مکی نے روایت کیا ت) حالانکہ معلوم ہے کہ پانی جزو بدن نہیں ہوتا اور اس کا مثانہ سے گزر کر آلاتِ بول سے نکلنا ضرور ہے بلکہ خود زمزم شریف کیا متبرک نہیں، ولہذا اس سے استنجاء کرنا منع ہے ، در مختار میں ہے :

یکرہ الاستنجاء بماء زمزم لا الاغتسال 3 آب زم زم سے استنجاء مکروہ ہے غسل نہیں۔ (ت)

ردالمحتار میں ہے:

وکذا ازالة النجاسة الحقیقة من ثوبه او بدنه حتی ذکر بعض العلماء تحریم ذلک 4۔

اسی طرح اپنے کپڑے یا بدن سے نجاست حقیقیہ آب زم زم سے زائل کرنا یہاں تک کہ بعض علماء نے اسے حرام بتایا ہے۔ (ت)

اور اس کا پینا اعلیٰ درجہ کی سنت، بلکہ کوکھ بھر کر پینا ایمان خالص کی علامت۔ تاریخ بخاری و سنن ابن ماجہ و صحیح مستدرک میں بسندِ حسن حضرت عبداللہ ابن عباس رضی اللہ تعالیٰ عنہما سے ہے رسول اللہ صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم فرماتے ہیں:

أیة ما بیننا وبین المنافقین انهم لا یتضلعون من زمزم 5۔

ہم میں اور منافقوں میں فرق کی نشانی یہ ہے کہ وہ کوکھ بھر کر آب زم زم نہیں پیتے۔

بلکہ بحمد اللہ تعالیٰ ہماری تقریر سے امام ابن حجر شافعی اور ان کے متبع کا خلاف ہی اٹھ گیا، اول نے اسے حدیث سے ثبوت پر موقوف رکھا تھا،

---

1 مواہب اللدنیہ کتابات الآلام اخری المکتب الاسلامی بیروت ۳/ ۲۶۳، مدارج النبوۃ باب ششم معجزات آنحضرت صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم (رقیہ عسر ولادت) مکتبہ نوریہ رضویہ سکھر ۱۱/ ۲۳۵ 2 مدارج النبوۃ بحوالہ خلال مکی باب ششم معجزات آنحضرت صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم (رقیہ عسر ولادت) مکتبہ نوریہ رضویہ سکھر ۱۱/ ۲۳۵ 3 درمختار باب الہدی مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی ۱/ ۱۸۴ 4 ردالمحتار باب الہدی مطبوعہ ادارۃ الطباعۃ المصریہ مصر ۲/ ۲۵۶ 5 المستدرک علی الصحیحین کتاب المناسک مطبوعہ دارالفکر بیروت ۱/ ۴۷۴

Fatawa Ridawiyya, Volume 9

[Arabic Text]: He said, the saying that "it is requested to do so etc." is rejected because such a thing cannot be used as an argument. The argument would only be apparent if it was authentically narrated from the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) that he requested it, and it is not so. 1— [Urdu Translation]: Their statement is: "To say that 'it will be desirable to do so for a valid purpose even if it is known that impurity will reach it' is unacceptable because an argument is not established by such a statement. If it were proven with authenticity that the Holy Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) requested it, then the argument would be clear, and it is not so." (T)

Secondly, based on Hadith or the saying of a Mujtahid,

[Arabic Text]: He said: Therefore, the prohibition here is more appropriate as long as it is not proven from a Mujtahid or an authentic Hadith is narrated regarding it. 2— [Urdu Translation]: He said: So here, prohibition will be even more appropriate as long as there is no proof of it from a Mujtahid or any Hadith narrated in this regard. (T)

We have proven it with numerous authentic (Sahih) Hadiths, and Imam Nasir and Imam Qasim Saffar are from among the Mujtahid Imams of our school of thought. In short, the ruling is of permissibility, and if, for the sake of extra precaution, one avoids writing on the shroud or providing a written shroud, it is appropriate. The humble author [the Faqir] has mentioned the completion and details of this discussion in the annotations of 'Radd al-Muhtar'; its mention here is not without benefit. Imam Hajar Makki stated after the aforementioned text No. 12:

[Arabic Text]: Comparing it to what was said regarding charity animals is prohibited because there the intent was distinction, not seeking blessing (Tabarruk). Here the intent is seeking blessing, so the venerable names remain in their state, and it is not permissible to expose them to impurity. 3 End of quote, and Allama Shami endorsed it. [Urdu Translation]: Comparing it to what has come regarding the animals of Sadaqah is forbidden because there the purpose is distinction, not blessing, and here the purpose is to take blessing, so the names of greatness will remain in their state; it will not be permissible to bring them into the possibility of impurity. End of quote, Allama Shami maintained it. (T)

The humble author [the Faqir] commented on it:

1. Fatawa Ibn Hajar al-Haytami, Chapter of Funerals, Dar al-Kutub al-Ilmiyyah, Beirut, 13/2.
2. Radd al-Muhtar, Chapter of Funeral Prayer, Idara al-Tiba'ah al-Misriyya, Egypt, 1/707.
3. Fatawa Ibn Hajar al-Haytami, Chapter of Funerals, Dar al-Kutub al-Ilmiyyah, Beirut, 13/2.

फ़तावा रज़विया, जिल्द 9

[अरबी पाठ]: उन्होंने कहा, यह कहना कि "ऐसा करने के लिए कहा गया है इत्यादि" अस्वीकार्य है क्योंकि ऐसी चीज़ को दलील के रूप में पेश नहीं किया जा सकता। दलील तब स्पष्ट होती जब पैगंबर (उन पर अल्लाह की शांति और कृपा हो) से प्रामाणिक रूप से यह प्रमाणित होता कि उन्होंने इसका अनुरोध किया था, जबकि ऐसा नहीं है। 1— [उर्दू अनुवाद]: उनका कथन यह है: "यह कहना कि 'सही उद्देश्य के लिए ऐसा करना वांछित होगा भले ही यह ज्ञात हो कि इस पर गंदगी पहुँचेगी' अस्वीकार्य है क्योंकि इस तरह की बात से दलील स्थापित नहीं होती। यदि नबी-ए-अकरम (उन पर अल्लाह की शांति और कृपा हो) से प्रामाणिक रूप से इसका अनुरोध साबित होता, तो दलील स्पष्ट होती, और ऐसा नहीं है।" (त)

दूसरा, हदीस या मुजतहिद के कथन पर,

[अरबी पाठ]: उन्होंने कहा: इसलिए, यहाँ निषेध अधिक उपयुक्त है जब तक कि मुजतहिद से इसका प्रमाण न मिल जाए या इस बारे में कोई सही हदीस न मिल जाए। 2— [उर्दू अनुवाद]: उन्होंने कहा: तो यहाँ निषेध और भी उचित होगा जब तक कि मुजतहिद से इसका प्रमाण न हो या इस बारे में कोई हदीस वर्णित न हो। (त)

हमने कई सही हदीसों से इसे साबित किया है और इमाम नासिर और इमाम कासिम सफ़्फ़ार हमारे मज़हब के मुजतहिद इमामों में से हैं। संक्षेप में, हुक्म जायज़ है और यदि अतिरिक्त सावधानी के लिहाज़ से कफ़न पर लिखने या लिखे हुए कफ़न देने से परहेज़ किया जाए, तो यह उचित है। इस चर्चा की पूर्णता और विवरण फकीर (लेखक) ने 'रद्द अल-मुह्तार' की व्याख्याओं में किया है, यहाँ इसका उल्लेख लाभ से खाली नहीं है। इमाम हजर मक्की ने उपरोक्त इबारत नंबर 12 के बाद फरमाया था:

[अरबी पाठ]: सदके के जानवरों के बारे में जो कहा गया है, उससे इसकी तुलना करना वर्जित है क्योंकि वहाँ उद्देश्य भेद (इम्तियाज़) करना था, बरकत हासिल करना (तबर्रुक) नहीं। यहाँ उद्देश्य बरकत लेना है, इसलिए सम्मानित नाम अपनी स्थिति में रहेंगे, और उन्हें अपवित्रता की स्थिति में लाना जायज़ नहीं होगा। 3 समाप्त, और अल्लामा शामी ने इसकी पुष्टि की। [उर्दू अनुवाद]: सदका के जानवरों के बारे में जो आया है, उस पर इसकी तुलना वर्जित है क्योंकि वहाँ भेद करना उद्देश्य है, तबर्रुक नहीं, और यहाँ बरकत लेना उद्देश्य है, तो महानता वाले नाम अपनी स्थिति पर बने रहेंगे;

उन्हें गंदगी की संभावना में लाना जायज़ नहीं होगा। समाप्त, अल्लामा शामी ने इसे बरकरार रखा। (त)

फकीर ने इस पर टिप्पणी की:

1. फ़तावा इब्न हजर मक्की, जनाज़ा अध्याय, दारुल कुतुब अल-इल्मिया, बेरुत, 13/2।
2. रद्द अल-मुह्तार, जनाज़ा नमाज़ अध्याय, इदारा अल-तिबा'ह अल-मिसरिया, मिस्र, 1/707।
3. फ़तावा इब्न हजर मक्की, जनाज़ा अध्याय, दारुल कुतुब अल-इल्मिया, बेरुत, 13/2।

فتاوٰی رضویہ، جلد نہم

[عربی عبارت]: قال والقول بأنه قيل يطلب فعله الخ مردود لان مثل ذلك لا يحتج به وانما كانت تظهر الحجة لوصح عن النبي صلى الله تعالى عليه وسلم طلب ذلك وليس كذلك 1- [اردو ترجمہ]: ان کا کلام یہ ہے " یہ کہنا کہ "غرض صحیح کے لئے ایسا کرنا مطلوب ہوگا اگر چہ معلوم ہو کہ اسے نجاست پہنچے گی" ناقابلِ قبول ہے کیونکہ اس طرح کی بات سے حجت قائم نہیں ہوتی، اگر نبی اکرم صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم سے اس کی طلب صحت کے ساتھ ثابت ہوتی تو حجت ظاہر ہوتی اور ایسا نہیں"۔ (ت)

دوم نے حدیث یا قول مجتہد پر،

[عربی عبارت]: قال فالمنع هنا بالاولٰی مالم يثبت عن المجتهد او ينقل فيه حديث ثابت 2- [اردو ترجمہ]: انہوں نے کہا: تو یہاں ممانعت بدرجہ اولٰی ہوگی جب تک کہ مجتہد سے اس کا ثبوت نہ ہو یا اس بارے میں کوئی حدیث منقول نہ ہو (ت)

ہم نے متعدد احادیثِ صحیحہ سے اسے ثابت کر دیا اور امام نصیر وامام قاسم صفار نے خود ہمارے مذہب کے ائمہ مجتہدین سے ہیں، بالجملہ حکم جواز ہے اور اگر بلحاظِ زیادت احتیاط کفن پر لکھنے یا لکھا ہوا کفن دینے سے اجتناب کرے تو جادار ہے۔ اس بحث کی تکمیل و تفصیل فقیر نے تعلقاتِ ردالمحتار میں ذکر کی، اُس کا یہاں ذکر خالی از نفع نہیں، امام حجر مکی نے بعد عبارتِ مذکورہ نمبر ۱۲ فرمایا تھا :

[عربی عبارت]: قياسه على ما في نعم الصدقة ممنوع لان القصد ثم التمييز لا التبرك وهنا القصد التبرك فالاسماء المعظمة باقية على حالها فلا يجوز تعريضها للنجاسة 3 اھ واقرہ ش [اردو ترجمہ]:

صدقہ کے جانوروں کے بارے میں جو آیا ہے اس پر اس کا قیاس ممنوع ہے اس لئے کہ وہاں امتیاز مقصود ہے تبرک نہیں، اور یہاں برکت لینا مقصود ہے تو عظمت والے اسماء اپنے حال پر باقی رہیں گے انہیں معرضِ نجاست میں لانا جائز نہ ہوگاا ھ، علامہ شامی نے اسے برقرار رکھا۔ (ت)

فقیر نے اس پر تعلیق کی :

1 فتاوی ابن حجر مکی باب الجنائز دار الکتب العلمیہ بیروت ۱۳/۲ 2 ردالمحتار باب صلوۃ الجنائز ادارۃ الطباعۃ المصریۃ مصر ۱/ ۷۰۷ 3 فتاوی ابن حجر مکی باب الجنائز دار الکتب العلمیہ بیروت ۱۳/۲

Fatawa Razawiyya, Volume 9

I say: This distinction is of no use. How can it be accepted that the intention of distinguishing drops the veneration of something whose veneration is Sharia-obligated? If it is said that due to this intention, the reality of the exalted names itself changes, then its falsehood is evident. And if it is said that their meanings are not intended, but rather they become words used in other meanings or are devoid of meaning... then this is certainly false. Because the word "Allah" (for God) or "Habis fi sabilillah" (endowed in the way of Allah) provides the benefit of distinction and indication, and also indicates the state of being charity according to its original meaning; it gives no other meaning. And if it is said that when exalted words are used in their meanings and there is a purpose to explain something other than seeking blessings, they no longer remain exalted... then what Sharia evidence is there for this? Rather, evidences, and even self-evidence, speak to the contrary. If merely having a purpose other than something like seeking blessings were to drop the veneration, then it should be permissible to use the Great Qur'an as a pillow, or rather it should be even more so, because the purpose there is not fulfilled without the name of majesty in its capacity as the name of majesty. But here, the person using it as a pillow does not look at its Qur'anic nature as Qur'anic nature, but rather at its volume and the thickness of its cover. And when it becomes permissible on this basis...

Page 124 of 948

मैं कहता हूँ: यह अंतर निरर्थक है। यह कैसे स्वीकार किया जा सकता है कि भेद करने का इरादा उस चीज़ के सम्मान को समाप्त कर दे जिसका सम्मान शरीयत में अनिवार्य है? यदि यह कहा जाए कि इस इरादे के कारण महानता वाले नामों की वास्तविकता ही बदल जाती है, तो इसकी असत्यता स्पष्ट है। और यदि यह कहा जाए कि उनसे उनके अर्थों का इरादा नहीं होता, बल्कि वे दूसरे अर्थों में इस्तेमाल होने वाले शब्द बन जाते हैं या अर्थहीन हो जाते हैं... तो यह निश्चित रूप से असत्य है। क्योंकि शब्द "अल्लाह" (ईश्वर के लिए) या "हबीस फी सबीलिल्लाह" (अल्लाह की राह में वक्फ़) भेद और पहचान का लाभ भी देता है और अपने मूल अर्थ के अनुसार धन के सदका (दान) होने को भी बताता है; यह कोई और अर्थ नहीं देता। और अगर यह कहा जाए कि जब महानता वाले शब्द अपने अर्थों में उपयोग किए जाते हैं और वहां बरकत (आशीर्वाद) प्राप्त करने के अलावा कोई और बात समझाना भी उद्देश्य हो, तो वे गरिमामय नहीं रह जाते... तो इस पर शरीयत का कौन सा प्रमाण है? बल्कि प्रमाण, यहाँ तक कि प्रत्यक्ष ज्ञान भी इसके विरुद्ध बोलता है। यदि बरकत जैसे कार्य के अलावा किसी अन्य उद्देश्य का मात्र इरादा ही सम्मान को समाप्त कर देता है, तो कुरान-ए-अज़ीम का तकिया लगाना जायज़ होना चाहिए, बल्कि यह तो और भी अधिक होना चाहिए, क्योंकि वहां जो उद्देश्य है वह 'इस्म-ए-जलालत' (महिमापूर्ण नाम) के बिना 'इस्म-ए-जलालत' की हैसियत से पूरा नहीं होता। लेकिन यहाँ, तकिया लगाने वाले की नज़र उसकी कुरानियत (कुरान होने के गुण) की हैसियत से कुरानियत की ओर नहीं होती, बल्कि उसके आकार और जिल्द की मोटाई की ओर होती है। और जब वह इस आधार पर जायज़ हो जाएगा...

اقول: یہ تفریق بے سود ہے، یہ کیسے تسلیم کیا جا سکتا ہے کہ امتیاز کا قصد ایسی چیز کی تعظیم ساقط کردے جس کی تعظیم شرعاً واجب ہو۔ اگر یہ کہیں کہ اس قصد کی وجہ سے عظمت والے اسماء کی حقیقت ہی بدل جاتی ہے تو اس کا بطلان عیاں ہے اور یہ کہیں کہ ان سے ان کی معانی مراد نہیں ہوتے بلکہ یہ دوسرے معانی میں مستعمل الفاظ ہو جاتے ہیں یا معنی سے خالی ہو جاتے ہیں۔ تو یہ قطعاً باطل ہے کیونکہ کلمہ "اللہ" (خدا کے لئے) یا "حبیس فی سبیل اللہ" (اللہ کی راہ میں وقف) امتیاز ونشان کا فائدہ بھی دیتا ہے اور اپنے وضعی معنی کے لحاظ سے مال صدقہ ہونے کو بھی بتاتا ہے کوئی اور معنی نہیں دیتا۔ اور اگر یہ کہیں کہ عظمت والے کلمات جب اپنے معانی میں مستعمل ہوں اور وہاں تبرک کے سوا کوئی اور بات سمجھانی بھی مقصود ہو تو وہ با عظمت نہیں رہ جاتے۔ تو اس پر کون سی دلیل شرعی ہے؟ بلکہ دلائل بلکہ بداہت اس کے خلاف ناطق ہے کہ تبرک جیسے امر کے سوا کسی اور غرض کا محض قصد ہو جانا اگر تعظیم کو ساقط کردیتا ہے تو چاہیے کہ قرآن عظیم کا تکیہ لگانا جائز ہو بلکہ بدرجہ اولیٰ، اس لئے کہ وہاں جو غرض ہے وہ اسم جلالت بحیثیت اسم جلالت کے بغیر پوری نہیں ہوتی۔ اور یہاں تو تکیہ لگانے والے کی نظر اس کی قرآنیت بحیثیت قرآنیت کی جانب نہیں ہوتی بلکہ اس کے حجم اور جلد کی ضخامت کی جانب ہوتی ہے۔ اور اس بنیاد پر جب وہ جائز ہو جائے گا۔

(Left Column) Also, and Allah's refuge is sought, if one were to place the Holy Quran on the ground and sit on it to protect one's clothes from dust, for it is no greater than exposing it to urine and dung and the like, which no one permits. Perhaps a reasoner might reason the permissibility of reciting things like Al-Fatihah for a person in a state of major ritual impurity (junub) or a menstruating woman if they intend praise and supplication rather than recitation. I say: Al-Muhaqqiq al-Halabi contested this in 'al-Hilyah' and restricted the permissibility to what does not constitute a challenge (tahaddi), i.e., less than three verses. I also have something to say regarding this. The truth in my view is that the ruling of permissibility with the intention of supplication and praise is an exception to analogy, granted by Allah Almighty to His servants as a mercy and grace to provide ease. Thus, analogy is not applicable to it. Furthermore, the prohibition for the person in ritual impurity is not due to the words themselves, but because they are the Quran—meaning the speech of Allah Almighty revealed to His Prophet (peace and blessings of Allah be upon him), recorded between the two covers. In this respect, even if those words were assumed to be Hadith, their recitation would not be forbidden for them. So, when they are recited as a form of originating speech from one's own self...

(Right Column) Then, God forbid, it would also become permissible for someone to place the Holy Quran on the ground and sit on it so that their clothes are protected from dust. Because this is no worse than bringing it to a place where urine and dung etc. are present, which no one can call permissible. It is possible that someone might offer the reason that for a person in a state of ritual impurity, menstruation, or post-natal bleeding, it is permissible to read Surah al-Fatihah etc. with the intention of prayer and praise, but not with the intention of recitation. I say: Al-Muhaqqiq al-Halabi disagreed with this in 'al-Hilyah' and restricted the permissibility only to such an amount by which a challenge does not occur, i.e., it is permissible to read less than three verses. I have an issue with this too. According to me, the truth is that the command of permissibility with the intention of prayer or praise is granted from Allah Almighty as a mercy and favor for the expansion [of ease] for the servants, contrary to analogy. So, analogy is not valid upon it. Moreover, the prohibition for a person in ritual impurity is not because of the words themselves, but because they are the Quran, meaning the speech of Allah Almighty which was revealed to His Prophet (peace and blessings of Allah be upon him), preserved between two covers. From this perspective, they are the Quran, to the extent that if it is assumed those

words were a Hadith, their recitation would not be haraam for the person in ritual impurity. So when their recitation is in such a way that it is from one's own side...

(बायाँ कॉलम) इसी तरह, अल्लाह की पनाह, अगर कोई पाक क़ुरान को ज़मीन पर रख दे और उस पर बैठ जाए ताकि उसके कपड़े धूल से सुरक्षित रहें, तो यह पेशाब और गोबर आदि के संपर्क में लाने से बड़ा नहीं है, जिसकी कोई अनुमति नहीं देता। शायद कोई तर्क करने वाला इस बात का बहाना बनाए कि जुनुब (अपवित्र अवस्था) और माहवारी वाली महिलाओं के लिए दुआ और प्रशंसा के इरादे से सूरह अल-फातिहा जैसी चीज़ें पढ़ना जायज़ है, तिलावत के इरादे से नहीं। मैं कहता हूँ: अल-मुहक़्क़िक अल-हलबी ने "अल-हिलया" में इसका विरोध किया है और अनुमति को उस मात्रा तक सीमित कर दिया है जिससे चुनौती (तहदी) पैदा न हो, यानी तीन आयतों से कम पढ़ने की अनुमति है। मुझे इस पर भी कुछ कहना है। मेरे नज़दीक सच यह है कि दुआ या प्रशंसा की नीयत से अनुमति का हुक्म अल्लाह की तरफ़ से बंदों पर रहमत और फ़ज़ल के तौर पर आसानी देने के लिए क़यास (तर्क) के ख़िलाफ़ आया है। तो इस पर क़यास करना सही नहीं है। इसके अलावा, जुनुब के लिए मनाही शब्दों की वजह से नहीं है बल्कि इसलिए है कि वे क़ुरान हैं—यानी अल्लाह तआला का वह कलाम जो उसके नबी (सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम) पर नाज़िल हुआ, जो दो जिल्दों के बीच दर्ज है। इस लिहाज़ से कि वे क़ुरान हैं, यहाँ तक कि अगर मान लिया जाए कि वे शब्द हदीस होते, तो जुनुब के लिए उनकी तिलावत हराम न होती। तो जब उनकी तिलावत इस तरह हो कि वे खुद अपनी ओर से कलाम के तौर पर हों...

(दायाँ कॉलम) तो माज़अल्लाह यह भी जायज़ हो जाएगा कि मुसहफ़ शरीफ़ ज़मीन पर रखकर उस पर बैठ रहे इस ग़रज़ से कि उसके कपड़े मिट्टी से महफ़ूज़ रहें। क्योंकि यह लीद और पेशाब वग़ैरा पड़ने की जगह लाने से बढ़कर नहीं, जिसे कोई जायज़ नहीं कह सकता। हो सकता है कोई यूँ इल्लत (वजह) पेश करे कि जुनुब व हायज़ व नफ़सा के लिए दुआ व सना के इरादे से सूरह फ़ातिहा वग़ैरा पढ़ना जायज़ है और बक़स्दे (इरादे से) तिलावत जायज़ नहीं। मैं कहता हूँ: मुहक़्क़िक हलबी ने 'हिलया' में इससे इख़्तिलाफ़ (असहमति) किया है और जवाज़ (अनुमत) सिर्फ़ इतनी मिक़दार से ख़ास किया है जिससे तहदी (चुनौती) वाक़े नहीं होती, यानी तीन आयात से कम ही पढ़ने का जवाज़ है। मुझे इसमें भी कलाम (विवाद) है। मेरे नज़दीक हक़ यह है कि दुआ या सना की नियत से जवाज़ का हुक्म अल्लाह तआला की जानिब से बतौर रहमत व फ़ज़ल बंदों पर वुसअत (आसानी) देने के लिए ख़िलाफ़-ए-क़यास वारिद है तो इस पर क़यास रफ़ा (लागू) नहीं। इसके अलावा जुनुब के लिए मुमानअत (मनाही) नफ़्स-ए-अल्फ़ाज़ के बाइस (कारण) नहीं बल्कि इसलिए है कि वो क़ुरान हैं यानी

अल्लाह अज़्ज़वजल का वो कलाम जो उसके नबी सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम पर नाज़िल है दो दफ़्तियों (जिल्दों) के दरमियान सब्त (दर्ज) है इस लिहाज़ से कि वो क़ुरान हैं, यहाँ तक कि अगर फ़र्ज़ किया जाए कि वो अल्फ़ाज़ हदीस हैं तो जुनुब के लिए उनकी क़िरात हराम न होगी। तो जब उनकी क़िरात इस तौर पर हो कि खुद अपनी जानिब से...

पेज 125 ऑफ 948

(بائیں کالم) ایضاً والعیاذ باللہ تعالیٰ ان یضع المصحف الکریم علی الارض ویجلس علیه توقیال ثیابه من التراب فانه لیس باعظم من التعریض للابوال والارواث الی غیر ذلك مما لا یجیزه احد۔ ولعل متعللا یعتل بجواز قراءة امثال الفاتحة للجنب واختیه اذا قصدوا الثناء والدعاء دون التلاوة۔ اقول: نازعه المحقق الحلبي في الحلیة وخص الجواز بما لا یقع به التحدی ای مادون قدر ثلث آیات ولی في هذا ایضاً کلام والحق عندی ان الجواز بنیة الدعاء والثناء ورد علی خلاف القیاس توسعة من اللہ تعالیٰ بعبیده رحمة منه و فضلا فلا یجوز القیاس علیه علا ان منع الجنب لم یکن لنفس الالفاظ بل لکونها قرآنا ای کلام اللہ عز وجل النازل علی نبیه صلی اللہ تعالیٰ علیه وسلم المثبت بین الدفتین من حیث هو کذلك حتی لو فرض ان تلك الالفاظ کانت حدیثاً لم یحرم علیه قراءته فاذا قرأت علی جهة انشاء کلام من عند نفسه

(دائیں کالم) تو معاذاللہ یہ بھی جائز ہوجائے گا کہ مصحف شریف زمین پر رکھ کر اس پر بیٹھ رہے اس غرض سے کہ اس کے کپڑے مٹی سے محفوظ رہیں۔ کیونکہ یہ لید اور پیشاب وغیرہ پڑنے کی جگہ لانے سے بڑھ کر نہیں، جسے کوئی جائز نہیں کہہ سکتا۔ ہو سکتا ہے کوئی یوں علت پیش کرے کہ جنب وحائض و نفساء کے لئے دعا وثنا کے ارادے سے سورہ فاتحہ وغیرہ پڑھنا جائز ہے اور بقصد تلاوت جائز نہیں۔ اقول: محقق حلبی نے حلیہ میں اس سے اختلاف کیا ہے اور جواز صرف اتنی مقدار سے خاص کیا ہے جس سے تحدی واقع نہیں ہوتی، یعنی تین آیات سے کم ہی پڑھنے کا جواز ہے۔ مجھے اس میں بھی کلام ہے۔ میرے نزدیک حق یہ ہے کہ دعا یا ثنا کی نیت سے جواز کا حکم اللہ تعالیٰ کی جانب سے بطور رحمت و فضل بندوں پر وسعت دینے کے لئے خلافِ قیاس وارد ہے تو اس پر قیاس روا نہیں۔ علاوہ ازیں جنب کے لئے ممانعت نفس الفاظ کے باعث نہیں بلکہ اس لئے ہے کہ وہ قرآن ہیں یعنی اللہ عز وجل کا وہ کلام جو اس کے نبی صلی اللہ

تعالیٰ علیہ وسلم پر نازل ہے دو دفتیوں کے درمیان ثبت ہے اس لحاظ سے کہ وہ قرآن ہیں، یہاں تک کہ اگر فرض کیا جائے کہ وہ الفاظ حدیث ہیں تو جنب کے لئے ان کی قرات حرام نہ ہوگی۔ تو جب ان کی قرات اس طور پر ہو کہ خود اپنی جانب سے

Fatawa Razawiyya Volume 9

(Arabic Text Column): As for here, the prohibitive relationship is no longer under consideration. Respect is due to the very words themselves formulated for those magnificent meanings, and they remain in their state in writing. So understand this. Furthermore, Allama Sayyidi Abdul Ghani al-Nablusi (may his secret be sanctified) has explicitly stated that intention affects the spoken word (mantooq), not the written word (maktoob), as quoted and upheld by Allama Shami shortly before the 'Chapter of Waters'. Then I say: Even if accepted, there is no escape from the fact that what is written on the thighs of camels are letters, and the letters of the alphabet are inherently venerable. It is not permissible to expose them to impurity. Why should it not be so, when, according to what al-Zarqani mentioned in the commentary of 'Al-Mawahib', this is a Quran revealed to our master Hud, upon our Noble Prophet and upon him be peace and blessings. Similarly, 'Radd al-Muhtar' quoted this from some reciters, and prior to that, from Sayyidi Abdul Ghani through the book "Al-Isharat fi 'Ilm al-Qira'at" by Imam al-Qastalani. And he said, meaning al-Shami, therein that the letters themselves command respect. Ends. And...

(Urdu Text Column): ...is composing a statement, so the relationship that was the cause of prohibition is no longer under consideration. But here, the respect is due to the very words that were formulated for these meanings of greatness. And in writing, they remain in their original state. So understand it. Along with this, it is also the case that Allama Sayyidi Abdul Ghani Nablusi (may his secret be sanctified) has clearly stated that intention influences the spoken word, not the written word. Just as Allama Shami quoted it slightly before the 'Chapter of Waters' and upheld it. Then I say: Assuming this is the case, there is no escape from regarding what is written on the thighs of camels as letters. And the letters of the alphabet are themselves venerable; bringing them into the vicinity of impurity is not permissible. Why shouldn't it be so, when this is the Quran that was revealed to our master Hud (upon our noble Prophet and upon him be peace and blessings), as Allama Zarqani has mentioned in the commentary of 'Mawahib'. Similarly, 'Radd al-Muhtar' has quoted this from some reciters, and before that, from Sayyid Abdul Ghani Nablusi with reference to Imam Qastalani's book "Al-Isharat fi 'Ilm al-Qira'at". And in that same work, Allama Shami has also written that these letters themselves are respected. Ends. This also...

Footnotes: 1. Radd al-Muhtar, Kitab al-Taharah, printed at Al-Matba'at al-Misriyyah, Egypt, 1/119 2. Radd al-Muhtar, Chapter on Istinja, printed at Al-Matba'at al-

Misriyyah, Egypt, 1/227 3. Radd al-Muhtar, Chapter on Istinja, printed at Al-Matba'at al-Misriyyah, Egypt, 1/119

(अरबी पाठ स्तंभ): जहाँ तक यहाँ की बात है, निषेध करने वाला संबंध अब विचाराधीन नहीं रहा। यहाँ सम्मान स्वयं उन शब्दों के लिए है जो उन महान अर्थों के लिए निर्धारित किए गए हैं, और वे लेखन में अपनी उसी स्थिति में बने रहते हैं। अतः इसे समझो। इसके अतिरिक्त, अल्लामा सैय्यदी अब्दुल ग़नी अल-नाबलुसी (उनका रहस्य पवित्र हो) ने स्पष्ट रूप से कहा है कि नियत (इरादा) उच्चरित शब्द (मन्तूक) को प्रभावित करती है, न कि लिखित शब्द (मक्तूब) को, जैसा कि अल्लामा शामी ने 'जल के अध्याय' से ठीक पहले उद्धृत और समर्थन किया है। फिर मैं कहता हूँ: यदि स्वीकार भी कर लिया जाए, तो इस तथ्य से कोई बचाव नहीं है कि ऊँटों की जांघों पर जो लिखा गया है वे अक्षर हैं, और वर्णमाला के अक्षर स्वयं पूजनीय हैं। उन्हें अशुद्धि के संपर्क में लाना जायज़ नहीं है। ऐसा क्यों न हो, जब अल्लामा ज़रक़ानी ने 'अल-मवाहिब' की व्याख्या में उल्लेख किया है कि यह हमारे आका हूद (अलैहिस्सलाम) पर अवतरित एक कुरान है, हमारे महान नबी पर और उन पर शांति और आशीर्वाद हो। इसी प्रकार, 'रद अल-मुहतार' ने इसे कुछ पाठकों (क़ारियों) से उद्धृत किया है, और उससे पहले इमाम अल-क़स्तलानी की पुस्तक "अल-इशारात फ़ी इल्म अल-क़िराआत" के माध्यम से सैय्यदी अब्दुल ग़नी से। और उन्होंने (यानी शामी ने) उसमें कहा कि स्वयं अक्षर सम्मान के पात्र हैं। समाप्त। और...

(उर्दू पाठ स्तंभ): ...एक कलाम इंशा कर रहा है तो जो निस्बत बाइस-ए-ममानअत थी वह मल्हूज़ न रही। लेकिन यहाँ तो ताज़ीम खुद उन ही अल्फ़ाज़ के बाइस है जो इन मानी-ए-अज़मत के लिए वज़अ हुए हैं। और किताबत में यह अपने हाल पर बाक़ी हैं। तो इसे समझो। इसके साथ यह भी है कि अल्लामा सैय्यदी अब्दुल ग़नी नाबलुसी (क़ुद्दसा सिर्रुहु) ने सराहत फ़रमाई है कि नियत मन्तक को बदलने में असर अंदाज़ होती है मक्तूब में नहीं। जैसा कि अल्लामा शामी ने बाब-ए-मियाह से ज़रा पहले इसको नक़्ल किया और बरकरार रखा है। फिर मैं कहता हूँ: बर तक़दीर-ए-तस्लीम ऊँटों की रान पर जो लिखा जाता है उसको हुरूफ़ मानने से मफ़र नहीं। और हुरूफ़-ए-तहज्जी खुद बा-अज़मत हैं, उन्हें मअरज़-ए-नजासत में लाना जायज़ नहीं। ऐसा क्यों न हो जबकि यह वह क़ुरआन है जो सैय्यदना हूद अला नबिय्यिना अल-करीम व अलैहिस्सलातु वस्सलाम पर नाज़िल हुआ, जैसा कि अल्लामा ज़रक़ानी ने शरह-ए-मवाहिब में ज़िक्र किया है। इसी तरह रदुल-मुहतार में इसे बाज़ कुर्रा से नक़्ल किया है और इससे पहले इमाम क़स्तलानी की किताब "अल-इशारात फ़ी इल्म अल-

क़िराआत" के हवाले से सैय्यद अब्दुल ग़नी नाबुलसी से नक़्ल किया। और इसी में अल्लामा शामी ने भी यह लिखा है कि खुद यह हुरूफ़ मोहतरम हैं। इति। यह भी...

पाद-टिप्पणी: 1. रद अल-मुहतार, किताब अत-तहारत, मुद्रित अल-मत्बा अल-मिसरिया, मिस्र, 1/119 2. रद अल-मुहतार, फ़स्ल अल-इस्तिंजा, मुद्रित अल-मत्बा अल-मिसरिया, मिस्र, 1/227 3. रद अल-मुहतार, फ़स्ल अल-इस्तिंजा, मुद्रित अल-मत्बा अल-मिसरिया, मिस्र, 1/119

فتاوی رضویہ جلد نہم

(Arabic Text Column): لم تبق النسبة المانعة ملحوظة اما ھھنا فا لتعظیم لنفس تلك الالفاظ الموضوعة لتلك المعانی المعظمة وھی باقیة فی الکتابة علی حالھا فافھم، مع ان العلامة سیدی عبدالغنی النابلسی قدس سرہ القدسی نص علیه ان النیة تعمل فی تغییر المنطوق لا المکتوب کما نقله العلامة ش قبیل المیاہ واقرہ۔ ثم اقول: علی التسلیم لا محیص عن کونه اعنی ماکتب علی افخاذ الابل حروفاً وحروف الھجاء المعظمة بانفسھا لا یجوز تعریضھا للنجاسة کیف وانھا علی ما ذکر الزرقانی فی شرح المواھب قرآن انزل علی سیدنا ھود علی نبینا الکریم و علیه الصلوة والتسلیم و کذا نقله فی ردالمحتار عن بعض القراء وقدمه عن سیدی عبدالغنی عن کتاب الاشارات فی علم القراءات للامام القسطلانی وقال اعنی الشامی فیه ان الحروف فی ذاتھا لھا احترام اہ. و

(Urdu Text Column): ایک کلام انشا کر رہا ہے تو جو نسبت باعثِ ممانعت تھی وہ ملحوظ نہ رہ گئی۔ لیکن یہاں تو تعظیم خود ان ہی الفاظ کے باعث ہے جو ان معانیِ عظمت کے لئے وضع ہوئے ہیں۔ اور کتابت میں یہ اپنے حال پر باقی ہیں۔ تو اسے سمجھو۔۔ اس کے ساتھ یہ بھی ہے کہ علامہ سیدی عبدالغنی نابلسی قدس سرہ نے صراحت فرمائی ہے کہ نیت منطوق کو بدلنے میں اثر انداز ہوتی ہے مکتوب میں نہیں۔ جیسا کہ علامہ شامی نے باب المیاہ سے ذرا قبل اس کو نقل کیا اور برقرار رکھا ہے۔ ثم اقول: بر تقدیر تسلیم اونٹوں کی ران پر جو لکھا جاتا اس کو حروف ماننے سے مفر نہیں۔ اور حروفِ تہجی خود با عظمت ہیں، انہیں معرضِ نجاست میں لانا جائز نہیں۔ ایسا کیوں نہ ہو جب کہ یہ وہ قرآن ہے جو سیدنا ہود علی نبینا الکریم وعلیہ الصلوۃ والتسلیم پر نازل ہوا، جیسا کہ علامہ زرقانی نے شرح مواہب میں ذکر کیا ہے۔ اسی طرح ردالمحتار میں اسے بعض قراء سے نقل کیا ہے اور اس سے پہلے امام قسطلانی کی کتاب "الاشارات فی علم القراءات" کے حوالے

سے سید عبدالغنی نابلسی سے نقل کیا۔ اور اسی میں علامہ شامی نے بھی یہ لکھا ہے خود یہ حروف محترم ہیں اھ یہ بھی

Footnotes: 1 ردالمحتار کتاب الطھارۃ مطبوعہ المطبعتہ المصریہ مصر ۱/ ۱۱۹ 2 ردالمحتار فصل الاستنجاء مطبوعہ المطبعتہ المصریہ مصر ۱/ ۲۲۷ 3 ردالمحتار فصل الاستنجاء مطبوعہ المطبعتہ المصریہ مصر ۱/ ۱۱۹

Fatawa Razvia - Volume 9

It is also stated: It has been reported according to us that letters have sanctity even if they are disjointed (interrupted). - In Al-Hindia (Fatawa Hindiyya): If letters are cut off from one another, or if some letters on a carpet or prayer mat are stitched over such that the whole word is no longer visible, the dislike (karahah) is not removed. Similarly, if only "Al-Malik" is written, or even just a solitary "Alif" or "Lam" - as mentioned in Al-Kubra. If Pharaoh's name or Abu Jahl's name is written on a target, it is disliked to shoot at it because those letters themselves possess sanctity. This is also stated in Al-Sirajiyya. Furthermore, it is explicitly mentioned in Al-Durr al-Mukhtar and others that it is permissible to throw away shavings of a new pen, but it is not permissible to throw away shavings of a used pen due to its sanctity, just like grass or sweepings of a mosque should not be thrown in a place where they would be desecrated. In Radd al-Muhtar, it is stated: Writing paper is also respected because it is a tool for writing knowledge. Therefore, it is mentioned in Al-Tatarkhaniyya that its veneration is part of the etiquettes of religion. If this is the ruling for pen shavings and blank white paper, then for letters [the sanctity is even greater]...

1. Radd al-Muhtar, Chapter on Istinja, printed by Al-Matba'ah al-Misriyah, Egypt, 1/22.
2. Fatawa Hindiyya, Chapter 5 on Mosque Etiquettes, printed by Noorani Kutub Khana Peshawar, 5/323.
3. Durr-e-Mukhtar, Book of Purification, printed by Matba' Mujtabai Delhi, 1/34.
4. Radd al-Muhtar, Chapter on Istinja, printed by Idarah al-Tiba'ah al-Misriyah, Egypt, 1/22.

लिखा है कि हमारे उलेमा ने नक़ल फ़रमाया है कि हमारे नज़दीक हुरूफ़ (अक्षरों) की इज़्ज़त व हुरमत है चाहे वो अलग-अलग हों। 'अल-हिंदिया' में है कि अगर हर्फ़ को हर्फ़ से अलग कर दिया गया, या फ़र्श या नमाज़ की चटाई (जानमाज़) में कुछ हुरूफ़ पर इस तरह सिलाई कर दी गई कि पूरा लफ़्ज़ (शब्द) नज़र न आए, तो भी उसकी कराहत (नापसंदगी) ख़त्म नहीं होती। इसी तरह अगर उस पर सिर्फ़'अल-मलिक' हो, या सिर्फ़'अलिफ़' और 'लाम' हो, जैसा कि 'कुबरा' में है। अगर निशाना लगाने की जगह पर फ़िरऔन या अबू जहल का नाम लिख दिया जाए, तो उस पर तीर मारना मकरूह है क्योंकि उन हुरूफ़ की ही इज़्ज़त व हुरमत है। 'सिराजिया' में भी ऐसा ही है। बल्कि 'दुर्रे मुख़्तार' वगैरह में साफ़ लिखा है कि नई क़लम का तराशा (कतरन) फेंकना जायज़ है, लेकिन इस्तेमाल की हुई क़लम का तराशा फेंकना जायज़ नहीं क्योंकि वो मोहतरम (आदरणीय) है, जैसे मस्जिद की घास और कूड़ा ऐसी जगह न डाला जाए जहाँ बेअदबी हो। 'रद-उल-मुहतार' में है कि लिखने के काग़ज़ का एहतराम है क्योंकि वो इल्म (ज्ञान) को लिखने का सामान है। इसीलिए 'ततारख़ानिया' में इसकी वजह यह बताई गई है कि उसकी ताज़ीम (सम्मान) दीन के आदाब (शिष्टाचार) में से है। तो जब यह हुक्म क़लम के तराशे और बिना लिखे काग़ज़ के बारे में है, तो हुरूफ़ के बारे में [कितनी ज़यादा हुरमत होगी]...

1. रद-उल-मुहतार, इस्तिन्जा का अध्याय, अल-मत्बअ अल-मिसरिया, मिस्र 1/22
2. फ़तावा हिंदिया, मस्जिद के आदाब का पाँचवाँ अध्याय, नूरानी कुतुब ख़ाना पेशावर 5/323
3. दुर्रे मुख़्तार, तहारत (पवित्रता) की किताब, मत्बअ मुज्तबाई दिल्ली 1/34
4. रद-उल-मुहतार, इस्तिन्जा का अध्याय, इदारा अल-तिबा'ह अल-मिसरिया, मिस्र 1/22

पृष्ठ 127/948

فتاوٰی رضویہ جلد نہم

قال ایضا نقلوا عندنا ان للحروف حرمة ولو مقطعة اھـ - وفي الھندیة لو قطع الحروف في الحرف او خیط علی بعض الحروف في البساط او المصلی حتی لم تبق الکلمة متصلة لم تسقط الکراھة وکذلك لو کان علیه، الملك، لا غیر وکذلك الالف و حدھا واللام وحدھا کذا في الکبری، اذا کتب اسم فرعون او کتب ابو جھل علی غرض یکره ان یرموا الیه لان لتلك الحروف الحرمة کذا في السراجیة اھـ بل صرح في الدر المختار وغیره انه یجوز رمي براٰیة القلم الجدید ولا ترمی براٰیة القلم المستعمل لاحترامه کحشیش المسجد وکناسته لا یلقی في موضع یخل بالتعظیم اھـ وفي رد المحتار ورق الکتابة له احترام ایضا لکونه الة لکتابة العلم ولذا ع الله في التاتارخانیه بان تعظیمه من ادب الدین اھـ فاذا کان ھذا في براٰیة القلم وبیاض الورق الغیر المکتوب

لکھا ہے کہ علماء نے نقل فرمایا ہے کہ ہمارے نزدیک حروف کی عزت و حرمت ہے اگرچہ یہ الگ الگ ہوں اھ ہندیہ میں ہے اگر حرف کو حرف سے جدا کر دیا، یا فرش یا جانماز میں بعض حروف پر اس طرح سلائی کر دی گئی کہ پورا لفظ مستعمل نہ رہا تو بھی کراہت ختم نہ ہوئی۔ اسی طرح اگر اس پر صرف الملک ہو، اسی طرح اگر صرف الف اور صرف لام ہو، ایسا ہی کبرٰی میں ہے۔ اگر نشانہ لگانے کی جگہ فرعون کا نام لکھ دیا گیا یا ابو جہل لکھ دیا گیا تو اس پر تیر مارنا مکروہ ہے اس لئے کہ ان حروف ہی کی عزت و حرمت ہے، ایسا ہی سراجیہ میں ہے اھ بلکہ در مختار وغیرہ میں تصریح ہے کہ نئے قلم کا تراشہ پھینکنا جائز ہے اور مستعمل قلم کا تراشہ پھینکنا جائز نہیں کیونکہ وہ محترم ہے، جیسے مسجد کی گھاس اور کوڑا ایسی جگہ نہ ڈالا جائے جہاں بے حرمتی ہو اھ ردالمحتار میں ہے: کتابت کے کاغذ کا احترام ہے اس لئے کہ وہ کتابت علم کا سامان ہے۔ اسی لئے تاتار خانیہ میں اس کی یہ علت بیان کی ہے کہ اس کی تعظیم دین کے آداب

سے ہے اھ تو جب یہ حکم قلم کے تراشے اور بغیر لکھے کاغذ کی بیاض کے بارے میں ہے تو حروف کے...

1 رد المحتار فصل في الاستنجاء مطبوعہ الطباعة المصرية مصر ۱/ ۲۲ 2 فتاوی ہندیہ الباب الخامس فی آداب المسجد مطبوعہ نورانی کتب خانہ پشاور ۵ / ۳۲۳ 3 در مختار کتاب الطهارة مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی ۱/ ۳۴ 4 رد المحتار فصل فی الاستنجاء مطبوعہ ادارة الطباعة المصريه مصر ۱/ ۲۲

Volume Nine Fatawa Razawiyya

[Arabic Text]: So, what do you think about the letters? Therefore, there is no doubt about the validity of the evidence, and it is necessary to exclude writing on camels from being a violation of respect. [Urdu Translation]: ...what will happen about it? From this, it became clear that there is no doubt in the validity of the evidence... and it is necessary to consider the writings on camels as excluded from disrespect.

[Arabic Text]: And I say: It appears to me in the current view that humiliation is not a necessary consequence of that writing, nor is it present when it was done, nor is it intended by the one who did it; he only intended distinction. Indeed, actions are by intentions, and for every person is what he intended[1]. [Urdu Translation]: And I say: (and I say) in the current view, I have this thought that insult is not necessary for this writing, nor is there any existence of insult at the time of writing, nor is it the purpose of the writer... its purpose is only to create distinction and mark... and actions depend on intentions and for every person is that which he intended.

[Arabic Text]: It was said in Jawahir al-Akhlati then Al-Fatawa al-Hindiyya: There is no harm in writing the name of Allah Almighty on dirhams (coins) because the owner's intention is for marking, not for belittlement[2] [end quote]. This doubt (issue) is certainly applicable to our current topic; making it impure is not a necessary consequence of writing, nor is it present or intended. Rather, the goal is to seek blessings, until the end of what has passed. If he is satisfied with this, then that is it; otherwise, whatever reason you have presented in that regard, it applies here as well, and no difference will appear that would change the paths. [Urdu Translation]: It is in Jawahir Akhlati then Fatawa Hindia: There is no harm in writing the name of Allah on dirhams because the purpose of the writer is only a mark, not an insult. This matter undoubtedly also applies to writing on a shroud because making it soiled with filth is not necessary for this writing, nor is it present at the time, nor is it intended; the purpose is only to obtain blessings... all those things that have passed. If the opponent accepts it, then it's fine, otherwise, whatever reason you give in it, it will also be applicable here and no such difference will appear that would cause the paths to differ.

---

[1] Sahih al-Bukhari, Chapter on How the Revelation Began, printed by Qadimi Kutub Khana, Karachi, 1/2. [2] Al-Fatawa al-Hindiyya, Chapter Five on the Etiquettes of the Mosque, printed by Noorani Kutub Khana, Peshawar, 5/323.

जिल्द नौ (नवां खंड) फतावा रज़विया

[अरबी पाठ]: तो अक्षरों के बारे में आप क्या सोचते हैं? इसलिए प्रमाण की वैधता में कोई संदेह नहीं है और ऊंटों पर लिखे लेख को अनादर से बाहर मानना आवश्यक है। [उर्दू अनुवाद]: ...इसके बारे में क्या होगा? इससे यह स्पष्ट हो गया कि प्रमाण की सत्यता में कोई संदेह नहीं है... और ऊंटों वाले लेखों को बेअदबी (अपमान) से बाहर मानना आवश्यक है।

[अरबी पाठ]: और मैं कहता हूँ: मेरी वर्तमान दृष्टि में यह प्रकट होता है कि अपमान इस लेखन का अनिवार्य हिस्सा नहीं है, न ही यह उस समय मौजूद है जब इसे किया गया, और न ही यह करने वाले का उद्देश्य है; उसने केवल पहचान चाही है। निस्संदेह, कार्य इरादों पर आधारित हैं, और हर व्यक्ति के लिए वही है जिसका उसने इरादा किया१। [उर्दू अनुवाद]: और मैं कहता हूँ: (और मैं कहता हूँ) वर्तमान दृष्टि में मुझे यह विचार होता है कि अपमान इस लेखन के लिए अनिवार्य नहीं है, न ही लेखन के समय अपमान का कोई अस्तित्व है, न ही यह लिखने वाले का उद्देश्य है... इसका उद्देश्य केवल विशिष्टता पैदा करना और निशान लगाना है... और कार्यों का आधार इरादों पर है और हर इंसान के लिए वही है जिसकी उसने नीयत (इरादा) की।

[अरबी पाठ]: 'जवाहर अल-अखलाती' और फिर 'अल-फतावा अल-हिंदिया' में कहा गया है: दिरहम (सिक्कों) पर अल्लाह तआला का नाम लिखने में कोई बुराई नहीं है क्योंकि मालिक का उद्देश्य पहचान है, अपमान नहीं२ [उद्धरण समाप्त]। और यह शंका (मामला) हमारे वर्तमान विषय पर भी लागू होती है; इसे अपवित्र करना लेखन का अनिवार्य हिस्सा नहीं है, न ही यह उस समय मौजूद है और न ही उद्देश्य है। बल्कि उद्देश्य बरकत (आशीर्वाद) प्राप्त करना है, जैसा कि ऊपर बताया गया है। यदि वह इससे संतुष्ट हो जाए तो ठीक है; अन्यथा, उस संबंध में आपने जो भी कारण प्रस्तुत किए हैं, वे यहाँ भी लागू होंगे और कोई ऐसा अंतर दिखाई नहीं देगा जो रास्तों को बदल दे। [उर्दू अनुवाद]: जवाहर अखलाती और फिर फतावा हिंदिया में है: दिरहमों पर अल्लाह का नाम लिखने में कोई हर्ज नहीं है क्योंकि लिखने वाले का उद्देश्य केवल निशान है, अपमान नहीं। यह बात निस्संदेह कफ़न पर लिखने में भी लागू होती है क्योंकि इसे गंदगी से सना हुआ करना इस लेखन के लिए अनिवार्य नहीं है, न ही उस समय इसका अस्तित्व है और न ही उद्देश्य है, उद्देश्य केवल बरकत प्राप्त करना है... वे सभी बातें जो गुजर चुकी हैं। यदि विरोधी इसे मान ले तो ठीक है, अन्यथा उसमें आप जो भी कारण बताएं वह यहाँ भी लागू होगा और कोई ऐसा अंतर सामने नहीं आएगा जिससे रास्ते अलग हो जाएं।

१ सहीह बुखारी, अध्याय: वही कैसे शुरू हुई, कदीमी कुतुब खाना कराची द्वारा मुद्रित १/२ २ फतावा हिंदिया, मस्जिद के शिष्टाचार पर पांचवां अध्याय, नूरानी कुतुब खाना पेशावर द्वारा मुद्रित ५/३२३

९४८ का पृष्ठ १२८

فما ظنك بالحروف فاذن لاشك في صحة الاستنادولابد من اخراج كتابات الابل عن الاخلال بالتعظيم۔

بارے میں کیا ہوگا۔اس سے ظاہر ہوا کہ صحتِ استناد میں کوئی شک نہیں۔اور اونٹوں والی تحریروں کو بے حرمتی سے خارج ماننا ضروری ہے۔

واقول: يظهر لي في النظر الحاضر ان ليس الامتهان من لازم تلك الكتابة ولاهو موجود حين فعلت ولاهو مقصود لمن فعل وانما اراد التميز وانما الاعمال بالنيات وانمالكل امرء مانوى۱۔ واقول: (اور میں کہتا ہوں) بنظرِ حاضر مجھے یہ خیال ہوتا ہے کہ اہانت اس تحریر کو لازم نہیں، نہ ہی بوقتِ تحریر اہانت کا وجود ہے، نہ ہی یہ لکھنے والے کا مقصود ہے۔۔۔ اس کا مقصد صرف امتیاز پیدا کرنا اور نشان لگانا ہے۔۔۔ اور اعمال کا مدار نیتوں پر ہے اور ہر انسان کے لئے وہی ہے جس کی اس نے نیت کی۔۔

قال في جواهر الاخلاطی ثم الفتاوی الهندية لابأس بكتابة اسم الله تعالى على الدراهم لان قصد صاحبه العلامة لاالتهاون۲ اهـ وهذا الاشك انه جار فيما نحن فيه فليس التجنيس من لازم الكتابة ولاهو موجود لامقصود وانما المراد التبرك الى آخر مامر فان قنع بهذا فذاك والا فاياماً ابديتم من الوجه في ذالك فانه يجرى فيما هنالك ولايظهر فرق يغير المسالك۔ جواہر اخلاطی پھر فتاویٰ ہندیہ میں ہے: دراہم پر اللہ کا نام تحریر کرنے میں کوئی حرج نہیں اس لئے کہ تحریر کرنے والے کا مقصود صرف نشان ہوتا ہے، اہانت نہیں اھ۔ یہ بات بلا شبہ تحریر کفن میں بھی جاری ہے اس لئے کہ نجاست آلود کرنا اس تحریر کو لازم نہیں، نہ ہی بروقت اس کا وجود ہے نہ ہی مقصود ہے، مقصود صرف برکت حاصل کرنا ہے۔۔۔ وہ ساری باتیں جو گزر چکیں۔ اگر مخالف اسے مان لے تو ٹھیک ہے ورنہ اُس میں آپ

جو بھی وجہ بتائیں وہ یہاں بھی جاری ہو گی اور کوئی ایسا فرق رونما نہ ہو گا جس سے راہیں مختلف ہو جائیں۔

---

1 صحیح بخاری باب کیف بدا الوحی مطبوعہ قدیمی کتب خانہ کراچی ۱/۲ 2 فتاویٰ ہندیہ الباب الخامس فی آداب المسجد مطبوعہ نورانی کتب خانہ پشاور ۵/۳۲۳

Fatawa Razawiyya Volume 9

[Right Column - Urdu Translation of Arabic Text] If you say that the certainty of cleanliness from impurity in camels is not established, whether it is written on the side of a domestic camel's thigh because it spreads its legs while urinating, then how can one be certain about writing on wild animals living in open forests? -- I would say that such certainty is also not required for shrouding (kafan), for every body does not decay. The Friends of Allah (Awliya), practicing scholars, martyrs, reward-seeking Muadhin, practicing bearer of the Quran, guardian of the border, one who dies of plague with patience and seeking reward, and one who remembers Allah Almighty frequently—their bodies do not deteriorate. Allama Zarqani narrated this in 'Sharh al-Muwatta' from 'Jami' al-Janaiz' and completed their number to ten by mentioning the Prophets (peace be upon them), then the Truthful ones (Siddiqeen) and the lovers of God Almighty. And I have included these two categories in the term 'Awliya'. The restriction of the Muadhin being 'reward-seeking' (Muhtasib) is proven by the explicit text of a Hadith. At-Tabarani narrated from Abdullah bin Amr (may Allah be pleased with them both) that they narrated from the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) that the Master said: "The reward-seeking Muadhin is like a martyr drenched in his blood; when he dies, then the grave's..."

[Left Column - Original Arabic Text] If you say that the homogeneity in camels is not certain even on the outer sides of the domestic ones' thighs because they spread their legs while urinating, so how can one be certain about the wild ones that are written upon? I say: Certainty is not required for shrouding either, for not every body decays. Indeed, the Friends of Allah (Awliya), the scholars, the practitioners (of knowledge), the martyrs, the reward-seeking Muadhin, the bearer of the Quran who acts upon it, the frontier guard, and one who dies of plague while being patient and seeking reward, and one who remembers Allah Almighty frequently—their bodies do not change. 1 Allama Zarqani narrated this in 'Sharh al-Muwatta' from 'Jami' al-Janaiz' and made them ten in total by mentioning the Prophets (peace be upon them), then the Truthful ones (Siddiqeen) and those who love Allah Almighty. I have joined these two in the saying 'the Friends of Allah'. Then, the restriction of the Muadhin to being 'reward-seeking' is the text of a Hadith narrated by At-Tabarani from Abdullah bin Amr (may Allah be pleased with them both) from the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) who said: "The reward-seeking Muadhin is like the martyr (wallowing) in his blood, and when he dies, he does not get worm-eaten in his grave." 2

[Footnotes] 1 Sharh al-Zarqani 'ala al-Muwatta, Chapter: Jami' al-Janaiz, printed by Maktaba al-Tijariya al-Kubra, Egypt, 2/84 2 Majma' al-Zawa'id, with reference to Tabarani, Chapter: Al-Muadhin al-Muhtasib, printed by Dar al-Kitab, Beirut, 2/3

फ़तावा रज़विया जिल्द नवीं

[दायां कॉलम - अरबी पाठ का उर्दू अनुवाद] अगर आप यह कहें कि ऊंटों में नापाकी से स्वच्छता का यकीन नहीं है, चाहे वह पालतू ऊंट की जांघ के पहलू पर लिखा हो क्योंकि ऊंट पेशाब करते समय अपनी टांगें फैला लेता है, तो खुले जंगल में रहने वाले जंगली जानवरों पर लिखे हुए पर यकीन कैसे हो सकता है? -- मैं कहूँगा कि कफ़न देने में भी यह यकीनी होना ज़रूरी नहीं है, क्योंकि हर शरीर सड़ता-गलता नहीं है। औलिया (ईश्वर के मित्र), अमल करने वाले विद्वान (उलेमा), शहीद, पुण्य (सवाब) की इच्छा रखने वाले मुअज़्ज़िन, अमल करने वाले हाफ़िज़-ए-कुरान, सरहद के रक्षक, और जो सब्र और पुण्य की नियत के साथ प्लेग से मरता है, और अल्लाह तआला का अत्यधिक ज़िक्र करने वाला—इनके शरीर नहीं बदलते। अल्लामा ज़रक़ानी ने 'शरह अल-मुवट्टा' के'जामे अल-जनाइज़' से इसे उद्धृत किया है और पैगंबरों (अंबिया अलैहिमुस्सलाम), फिर सिद्दीक़ीन और ईश्वर के प्रेमियों का उल्लेख करके उनकी संख्या पूरी दस कर दी है। और मैंने इन दोनों वर्गों को 'औलिया' शब्द में शामिल कर दिया है। मुअज़्ज़िन के साथ 'मुहतसिब' (पुण्य चाहने वाला) की शर्त हदीस के स्पष्ट पाठ से सिद्ध है। तबरानी ने अब्दुल्ला बिन अम्र (रज़ियल्लाहु अन्हुमा) से रिवायत की है, उन्होंने नबी करीम (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) से रिवायत की है कि सरकार ने फ़रमाया: "पुण्य चाहने वाला मुअज़्ज़िन अपने खून में लथपथ शहीद की तरह है; जब वह मरता है, तो कब्र के.."

[बायां कॉलम - मूल अरबी पाठ] यदि आप कहें कि ऊंटों में शुद्धता निश्चित नहीं है, यहाँ तक कि पालतू ऊंटों की जांघों के बाहरी हिस्सों में भी, क्योंकि वे पेशाब करते समय टांगें फैला लेते हैं, तो उन जंगली जानवरों के बारे में क्या जिनके ऊपर लिखा गया है? मैंने कहा: कफ़न पहनाने में भी निश्चितता अनिवार्य नहीं है, क्योंकि हर शरीर नष्ट नहीं होता। निःसंदेह औलिया, विद्वान, कर्मठ लोग, शहीद, पुण्य की इच्छा रखने वाले मुअज़्ज़िन, कुरान के वाहक जो उस पर अमल करते हैं, सीमा रक्षक, प्लेग से सब्र और पुण्य की नियत के साथ मरने वाले, और अल्लाह तआला का अत्यधिक स्मरण करने वाले —उनके शरीर नहीं बदलते। ^1 अल्लामा ज़रक़ानी ने 'शरह अल-मुवट्टा' के'जामे अल-जनाइज़' में इसे उद्धृत किया है और पैगंबरों (अंबिया अलैहिमुस्सलाम), फिर सिद्दीक़ीन और अल्लाह तआला के प्रेमियों का उल्लेख करके उन्हें कुल दस बताया है। मैंने इन दोनों को 'औलिया' कहने में शामिल कर दिया है। फिर मुअज़्ज़िन को 'मुहतसिब' तक सीमित रखना एक हदीस का पाठ है जिसे तबरानी ने अब्दुल्ला बिन अम्र (रज़ियल्लाहु अन्हुमा) से, नबी (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) के हवाले से उद्धृत

किया है, जिन्होंने कहा: "पुण्य की इच्छा रखने वाला मुअज़्ज़िन अपने खून में (लथपथ) शहीद की तरह है, और जब वह मरता है, तो उसकी कब्र में कीड़े नहीं पड़ते।" ^2

[पाद लेख] 1 शरह ज़रक़ानी अल-मुवट्टा, अध्याय: जामे अल-जनाइज़, मुद्रित मक्तबा अल-तिजारिया अल-कुबरा, मिस्र, 84/2 2 मजमा-उज़-ज़वाइद, तबरानी के हवाले से, अध्याय: अल-मुअज़्ज़िन अल-मुहतसिब, मुद्रित दारुल किताब, बेरूत, 3/2

فتاویٰ رضویہ جلد نہم

فان قلت التجنيس في الابل غير مقطوع به حتى في اجانب الانسى من افخاذها لانها تتفاج حين تبول فكيف بالوحشي المكتوب عليه قلت لا قطع في التكفين ايضاً فليس كل جسد يبلى فان الاولياء والعلماء والعاملين والشهداء والمؤذن المحتسب وحامل القرآن العامل به والمرابط والميت بالطاعون صابراً محتسباً والمكثر من ذكر الله تعالیٰ لاتتغير ابدانهم ^1 نقله العلامة الزرقاني في شرح الموطأ من جامع الجنائز وجعلهم عشرة كاملة بذكر الانبياء عليهم الصلوة والسلام ثم الصديقين والمحبين الله تعالیٰ وجمعت هذين في قول الاولياء ثم تقييد المؤذن بالمحتسب هو نص حديث اخرجه الطبراني عن عبد الله بن عمرو رضی الله تعالیٰ عنہما عن النبی صلی الله تعالیٰ علیہ وسلم قال المؤذن المحتسب كالشهيد (المتشحط) في دمه و اذا مات لم يدود في قبره ^2

اگر یہ کہیے کہ اونٹوں میں آلودگی نجاست کا یقین نہیں خواہ پالتو اونٹ کی ران کے پہلو پر لکھائی ہو کیونکہ اونٹ پیشاب کرتے وقت اپنی ٹانگوں کو کھول لیتا ہے تو کھلے جنگل میں رہنے والے جانوروں پر لکھائی میں کیسے یقین ہوسکتا ہے -- میں کہوں گا کفن دینے میں بھی یہ یقینی نہیں، اس لئے کہ ہر جسم بوسیدہ نہیں ہوتا اولیاء، با عمل علماء، شہداء، طالب ثواب مؤذن، با عمل حافظِ قرآن، سرحد کا پاسبان، طاعون میں صبر کے ساتھ اور اجر چاہتے ہوئے مرنے والا، کثرت سے اللہ کا ذکر کرنے والا، ان کے بدن بگڑتے نہیں اسے علامہ زرقانی نے شرح مؤطا میں جامع الجنائز سے نقل کیا اور انبیاء علیہم الصلوٰۃ والسلام پھر صدیقین اور خدا کے محبین کو ذکر کرکے ان کی تعداد کامل دس کردی ہے۔ اور میں نے ان دونوں قسموں کو لفظ اولیاء میں شامل کردیا۔ مؤذن کے ساتھ محتسب (طالب ثواب) کی قید بتصریح حدیث ثابت ہے۔ طبرانی نے عبد اللہ بن عمرو رضی اللہ تعالیٰ عنہما سے، انہوں نے نبی کریم صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم سے روایت کی ہے کہ

سرکار نے فرمایا: موذن محتسب اپنے خون میں آلودہ شہید کی طرح ہے جب وہ مرتا ہے تو قبر کے

1 شرح زرقانی علی الموطأ باب جامع الجنائز مطبوعہ مکتبہ تجاریہ کبریٰ مصر ۸۴/۲ 2 مجمع الزوائد بحوالہ طبرانی باب الموذن المحتسب مطبوعہ دارالکتاب بیروت ۳/۲

Fatawa-e-Razvia, Volume 9

This is the interpretation of the narration from Mujahid: "The Muezzins (callers to prayer) will have the longest necks on the Day of Resurrection, and worms will not eat them in their graves." This was narrated by Abdur Razzaq. The evidence for this (including the condition of sincerity here as well) is the first part of the Hadith "atwal-un-nas" (longest of people), etc.

Regarding the carrier of the Quran (Hafiz), there is a Hadith of Ibn Mandah narrated from Jabir bin Abdullah (may Allah be pleased with them both). He said, the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) said: "When a carrier of the Quran dies, Allah commands the earth not to consume his flesh. The earth says: 'O Lord! How can I consume his flesh when Your Word is within him?'" Ibn Mandah said that narrations on this subject also exist from Abu Hurairah and Ibn Masood (may Allah be pleased with them both). A Sheikh added the condition of "acting upon it" (Al-Amil bihi) to this.

I (the author) say: However, there is hope for this even for someone who acts upon the Quran but is not a memorizer (Hafiz) of the Quran. Al-Marwazi narrated from Qatada, who said: "I have been informed that the earth is not given power over the body [of such a person]."

---

1 Al-Musannaf of Abdur Razzaq, Chapter: Excellence of Azan, printed at Al-Maktab al-Islami, Beirut, 1/283 2 Al-Firdaus bi-Mathur al-Khitab, Hadith 1112, printed at Dar al-Kutub al-Ilmiyyah, Beirut, 1/284

फ़तावा-ए-रज़विया, जिल्द नौ

यह हज़रत मुजाहिद के उस असर (कथन) का अर्थ है: "अज़ान देने वाले क़यामत के दिन सब लोगों से ज़्यादा लंबी गर्दन वाले होंगे और उनकी क़ब्रों में कीड़े नहीं पड़ेंगे।" इसे अब्दुर रज़्ज़ाक़ ने रिवायत किया। इसकी (यहाँ भी निष्ठा की शर्त का ध्यान रखने की) दलील हदीस का पहला हिस्सा "अतवल-उन-नास" (लोगों में सबसे लंबे) आदि है।

हाफ़िज़-ए-क़ुरआन के बारे में इब्ने मंदा की हदीस है जो हज़रत जाबिर बिन अब्दुल्लाह (रज़ियल्लाहु अन्हुमा) से रिवायत है। वह कहते हैं कि रसूलुल्लाह (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने फ़रमाया: "जब हाफ़िज़-ए-क़ुरआन मरता है, तो अल्लाह ज़मीन को हुक्म फ़रमाता है कि उसका मांस न खाना। ज़मीन अर्ज़ करती है: 'ऐ रब! मैं उसका मांस कैसे खाऊँगी जबकि तेरा कलाम उसके सीने में है?'" इब्ने मंदा ने कहा कि इस विषय में हज़रत अबू हुरैरा और इब्ने मसऊद (रज़ियल्लाहु अन्हुमा) से भी रिवायत है। एक शेख ने इस पर 'क़ुरआन पर अमल करने वाले' की शर्त का इज़ाफ़ा (योग) किया।

मैं (लेखक) कहता हूँ: लेकिन क़ुरआन पर अमल करने वाला अगर हाफ़िज़-ए-क़ुरआन न भी हो, तो भी उसके लिए यह उम्मीद है। मरवज़ी ने क़तादा से रिवायत की है, वे फ़रमाते हैं: "मुझे यह ख़बर पहुँची है कि ज़मीन उसके जिस्म पर मुसल्लत नहीं होती (हावी नहीं होती)।"

---

1 अल-मुसन्नफ़ अब्दुर रज़्ज़ाक़, अध्याय: अज़ान की फ़ज़ीलत, मुद्रित: अल-मकतब अल-इस्लामी, बेरूत, 1/283 2 अल-फ़िरदौस बि-मासूर अल-ख़िताब, हदीस 1112, मुद्रित: दार अल-कुतुब अल-इल्मिया, बेरूत, 1/284

पृष्ठ 130/948

فتاوی رضویہ، جلد نہم

وھو محمل اثر مجاھد، المؤذنون اطول الناس اعناقاً یوم القیمة ولا یدودون في قبورھم رواہ عبد الرزاق وذلك بدلیل الجزء الاول اطول الناس الخ۔ اندر اس کے بدن میں کیڑے نہیں پڑتے۔ اور یہی حضرت مجاہد کے اس اثر کی بھی مراد ہے کہ اذان دینے والے روز قیامت سب لوگوں سے زیادہ گردن دراز ہوں گے اور قبروں کے اندر ان کے جسم میں کیڑے نہ پڑیں گے۔ اسے عبدالرزاق نے روایت کیا۔ اس کی (یہاں بھی محتسب کی قید ملحوظ ہونے کی) دلیل جزء اول اطول الناس (سب لوگوں سے زیادہ گردن دراز) الخ ہے۔

اما حامل القرآن فحدیث ابن مندة عن جابر بن عبداللہ رضی اللہ تعالی عنھما انہ قال قال رسول اللہ صلی اللہ تعالی علیہ وسلم اذا مات حامل القرآن اوحی اللہ الی الارض ان لا تأکلی لحمہ، فتقول الارض ای رب کیف اکل لحمہ وکلامك في جوفہ قال ابن مندة وفی الباب عن ابی ھریرة وابن مسعود۔ و زاد فیہ الشیخ قید العامل بہ اقول: بہ ولکن العامل بہ مرجولہ ذلک وان لم یکن حاملہ فقد اخرج المروزی عن قتادة قال بلغنی ان الارض لاتسلط علی جسد حافظ قرآن سے متعلق ابن مندہ کی حدیث ہے جو حضرت جابر بن عبداللہ رضی اللہ تعالیٰ عنہما سے مروی ہے وہ فرماتے ہیں رسول اللہ صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کا ارشاد ہے "جب حافظ قرآن مرتا ہے خدا زمین کو حکم فرماتا ہے اس کا گوشت نہ کھانا، زمین عرض کرتی ہے: اے رب! میں اس کا گوشت کیسے کھاؤں گی جب تیرا کلام اس کے سینے میں ہے"۔ ابن مندہ نے کہا اس باب میں حضرت ابوہریرہ اور ابن مسعود رضی اللہ تعالیٰ عنہما سے بھی روایت ہے۔ شیخ نے اس پر "قرآن پر عامل" کی قید کا اضافہ کیا۔

اقول: مگر عامل قرآن اگر حافظ قرآن نہ ہو تو بھی اس کے لئے یہ امید ہے۔ مروزی نے قتادہ سے روایت کی ہے وہ فرماتے ہیں مجھے خبر پہنچی ہے کہ زمین اس کے جسم پر مسلط نہیں

1 المصنف لعبد الرزاق باب فصل فی الاذان مطبوعہ المکتب الاسلامی بیروت ۱/ ۲۸۳ 2 الفردوس بماثور الخطاب حدیث ۱۱۱۲ مطبوعہ دارالکتب العلمیہ بیروت ۱/ ۲۸۴

Fatawa Razawiyya Volume 9

[Left Column (Arabic)] ...one who has not committed a sin, except that it may be said that the description of the practitioner of it [the Quran] also applies to the sinner who is repentant. Then, the one who has not committed a sin is the righteous, protected one, and it does not include a child in my opinion^1, and Allah Almighty knows best. By adding this, the ten are completed, and praise be to Allah: (1) Prophet, (2) Saint, (3) Scholar, (4) Martyr, (5) Border-guard, (6) Deceased of plague, (7) Muezzin seeking reward, (8) One who remembers [Allah] much, (9) Carrier of Quran, (10) One who has not committed a sin. If the person we are shrouding is one of these, then that is it; otherwise, how do you know that this Muslim is not among the friends of Allah Almighty or has not attained the status of the martyrs? Rather, among the wicked are those whose bodies do not change so that their punishment may be more severe. Seek refuge with Allah, the Near, the Responsive. This, and as for what the commentator supported it with from what was presented from 'al-Fath,' that it is disliked to write the Quran and names of Allah Almighty on dirhams, prayer niches (mihrabs), walls, and things spread out^2. This ends the text from al-Fath. The commentator said: This is only due to respect and for fear of treading upon it and similar things which involve humiliation.

[Right Column (Urdu)] ...is done for someone who has not committed any sin, but it can be said that the description 'practitioner of the Quran' also applies to him who is a sinner and repentant. Then, one who has not committed any sin is the righteous protected one, and in my opinion, it does not include a child, and Allah Almighty knows best. Adding this, the list becomes ten, and praise be to Allah: (1) Prophet, (2) Saint, (3) Scholar, (4) Martyr, (5) Border-guard, (6) Deceased by plague, (7) Muezzin seeking reward, (8) One who remembers Allah much, (9) Memorizer of Quran, (10) One who has not committed a sin. So if the one we are shrouding is one of these, then the situation is clear. Otherwise, how do you know that this Muslim is not among the friends of Allah or has not attained the status of martyrs? Rather, among the wicked also are those whose bodies do not change so that their punishment may be more severe. Seek refuge with Allah, the Near One, the Answerer. Now remains the discourse which Allama Shami presented in its support with reference to Fath al-Qadir, that writing the Quran and the names of Allah Almighty on dirhams, prayer niches (mihrabs), walls, and things spread out is disliked (the text from Fath ends). On this, Allama Shami writes: The reason for this is nothing but respect and the fear of treading upon it and similar things which involve humiliation. So here...

[Footnotes] 1. Marwazi, Musanid fi al-Hadith. 2. Radd al-Muhtar, Chapter on what is written on the shroud of the deceased, published by Dar Ihya al-Turath al-Arabi, Beirut, 1/407.

फ़तावा रज़विया, खंड 9

[बायां कॉलम (अरबी)] ...जिसने कोई गुनाह न किया हो, सिवाय इसके कि यह कहा जा सकता है कि क़ुरान पर अमल करने वाले का गुण उस पर भी लागू होता है जो गुनाहगार और तौबा करने वाला हो। फिर, जिसने कोई गुनाह न किया वह ऐसा नेक होगा जो गुनाह से बिल्कुल सुरक्षित रहा हो... और यह गुण मेरे ख्याल में बच्चे को शामिल नहीं करता^1, और अधिक ज्ञान अल्लाह तआला को है। अब इसे मिलाकर पूरे दस हो गए: (१) नबी, (२) वली, (३) आलिम, (४) शहीद, (५) मुराबित (सीमा रक्षक), (६) ताऊन (प्लेग) से मरने वाला, (७) मुअज़्ज़िन (पुण्य की नीयत वाला), (८) बहुत ज़िक्र करने वाला, (९) क़ुरान का वाहक, (१०) वह जिसने कोई गुनाह न किया हो। तो जिसे हम कफ़न दे रहे हैं यदि वह इनमें से कोई एक है तो स्थिति स्पष्ट है... वरना क्या मालूम कि यह मुसलमान अल्लाह तआला के वलियों में से नहीं या उसे शहीदों का दर्जा प्राप्त नहीं... बल्कि दुष्टों में भी ऐसे होते हैं जिनका शरीर इसलिए नहीं बदलता ताकि सज़ा और सख़्त हो। पनाह अल्लाह की जो करीब है, जवाब देने वाला है। यह, और जहाँ तक उस बात का सवाल है जिसका समर्थन टिप्पणीकार ने 'अल-फ़त्ह' के हवाले से किया कि दिरहम, मेहराब, दीवार और बिछाई जाने वाली चीज़ों पर क़ुरान और अल्लाह के नाम लिखना मकरूह (नापसंद) है^2। यहाँ अल-फ़त्ह की इबारत समाप्त हुई। टिप्पणीकार ने कहा: यह केवल सम्मान के कारण और पैरों तले रौंदे जाने आदि के भय से है जिसमें अपमान का पहलू है।

[दायां कॉलम (उर्दू)] ...की जाती जिसने कोई गुनाह न किया हो मगर यह कहा जा सकता है कि क़ुरान पर अमल करने वाले का गुण उस पर भी लागू होता है जो गुनाहगार और तौबा करने वाला हो। फिर, जिसने कोई गुनाह न किया वह ऐसा नेक होगा जो गुनाह से बिल्कुल सुरक्षित रहा हो... और यह गुण मेरे ख्याल में बच्चे को शामिल नहीं करता, और अधिक ज्ञान अल्लाह तआला को है। अब इसे मिलाकर पूरे दस हो गए: (१) नबी, (२) वली, (३) आलिम, (४) शहीद, (५) मुराबित (सीमा का रक्षक), (६) ताऊन से मरने वाला, (७) मुअज़्ज़िन (सवाब की नीयत वाला), (८) बहुत ज़िक्र करने वाला, (९) हाफ़िज़-ए-क़ुरान, (१०) वह जिसने कोई गुनाह न किया हो। तो जिसे हम कफ़न दे रहे हैं यदि वह इनमें से कोई एक है तो स्थिति स्पष्ट है... वरना क्या मालूम कि यह मुसलमान अल्लाह तआला के वलियों में से नहीं या उसे शहीदों का दर्जा प्राप्त नहीं... बल्कि दुष्टों में भी ऐसे होते हैं जिनका शरीर इसलिए नहीं बदलता ताकि सज़ा और सख़्त हो। पनाह अल्लाह की जो करीब है, जवाब देने वाला है। अब रहा वह कलाम जिसे इसकी ताईद (समर्थन) में अल्लामा शामी ने 'फ़त्हुल क़दीर' के हवाले से पेश किया कि दिरहम, मेहराब, दीवार और बिछाई जाने वाली चीज़ों पर क़ुरान और अल्लाह के नाम

लिखना मकरूह है (फ़त्ह की इबारत समाप्त हुई)। इस पर अल्लामा शामी लिखते हैं: इसकी वजह यही सम्मान है और पैरों तले आने आदि से अपमान की आशंका है, तो यहाँ...

[पाद टिप्पणियाँ] 1. मरवज़ी, मुस़ानिद फ़िल हदीस। 2. रद्दुल मुहतार, मत्तलब फ़ीमा युक्ताबु अला कफ़निल मय्यित, दारुल अहिया अत-तुरास अल-अरबी, बेरूत, 1/407।

पृष्ठ 948 का 131

فتاویٰ رضویہ جلد نہم

[بائیں کالم کا متن (عربی)] الذی لم یعمل خطیئة الا ان یقال ان وصف العامل به حامل للخطاء التواب ایضا ثم الذي لم یعمل خطیئة هو الصالح المحفوظ ولا یشمل الصبی فیها اظن ۱۸ والله تعالی اعلم وبضم هذا تتم عشرة ولله الحمد نبي ۱، ولی ۲، عالم ۳، شهید ۴، مرابط ۵، میت طاعون ۶، مؤذن محتسبین ۷، ذاکر ۸، حامل القرآن ۹، من لم یعمل ۱۰ خطیئة فأن کان من نکفنه احد هؤلاء فذالك والا فما یدریك ان هذا المسلم لیس من اولیاء الله تعالی او لم ینل منازل الشهداء بل من الاشرار من لا یتغیر جسده تشدیدا للتعذیب والعیاذ بالله القریب المجیب ۔ هذا واما ما ایده به المحشی مما قدم عن الفتح انه تکره کتابة القرآن واسماء الله تعالی علی الدراهم والمحاریب والجدران وما یفرش ۲۸ اه ما فی الفتح قال المحشی ما ذلك الا لاحترامه و خشیة وطئه و نحوه مما فیه اهانة۔

[دائیں کالم کا متن (اردو)] کی جاتی جس نے کوئی گناہ نہ کیا ہو مگر یہ کہا جاسکتا ہے کہ عامل قرآن کا وصف اس پر بھی صادق ہے جو خطاکار اور تائب ہو پھر، وہ جس نے کوئی گناہ نہ کیا ایسا صالح ہو گا جو گناہ سے بالکل محفوظ رہا ہو۔ اور یہ وصف میرے خیال میں بچے کو شامل نہیں، اور زیادہ علم خدائے برتر کو ہے۔ اب اسے ملا کر پورے دس ہوگئے۔ (۱) نبی (۲) ولی (۳) عالم (۴) شہید (۵) مرابط (سرحد کا پاسبان) (۶) میت طاعون ، محتسب (۷) مؤذن محتسب (۸) بہت ذکر کرنے والا (۹) حافظِ قرآن (۱۰) وہ جس نے کوئی گناہ نہ کیا۔ تو جسے ہم کفن دے رہے ہیں مذکورین میں سے کوئی ایک ہے تو حال واضح ہے۔ ورنہ کیا معلوم کے یہ مسلمان اللہ تعالیٰ کے اولیاء سے نہیں یا اسے شہداء کا درجہ حاصل نہیں۔ بلکہ اشرار میں بھی ایسے ہیں جن کا جسم اس لئے متغیر نہیں ہوتا کہ عذاب زیادہ سخت ہو۔ پناہ خدائے قریب مجیب کی۔ اب رہا وہ کلام جو اس کی تائید میں علامہ شامی نے فتح القدیر کے حوالے سے پیش کیا کہ درہم، محراب اور دیوار اور

بچھائی جانے والی چیز پر قرآن اور اسماءِ الٰہی لکھنا مکروہ ہے (فتح کی عبارت ختم ہوئی) اس پر علامہ شامی لکھتے ہیں: اس کی وجہ یہی احترام اور پامالی وغیرہ سے اہانت کا اندیشہ ہے، تو یہاں

[حواشی] 1 مروزی مسانید فی الحدیث 2 ردالمحتار مطلب فیما یکتب علی کفن المیت مطبوعہ دار احیاء التراث العربي بیروت ۱ / ۴۰۷

Fatawa Razawiyya Volume 9

Prohibition here is more appropriate as long as it is not proven from a Mujtahid or a sahih Hadith is not narrated regarding it. This is what led him to deviate from the opinion of the Imam of his Madhab, Al-Saffar Al-Hanafi, to the opinion of Imam Ibn al-Salah, one of the later Shafi'i scholars.

I say: As for writing on bedding, it is a present insult or intending something that cannot be separated from neglect, so it is not what we are discussing, and there is no dispute in its being disliked (Makruh). As for other things, the issue is disputed. We have already heard from Jawahir al-Akhlati regarding dirhams (and regarding the wall and mihrab, note the following). The great Imam Qazi Khan said in his Fatawa: "If the Quran is written on walls, some said they hope it is permissible, while others disliked it for fear of falling under people's feet." He presented the hope of permissibility first, and as he stated in the preface of his Fatawa, he only presents what is most apparent and well-known (Al-Azhar Al-Ashhar). This is as specified by Allama Sayyid al-Tahtawi, and then Sayyid al-Muhashi, that it is the relied-upon (Mu'tamad) opinion. Thus, let the customary writing on the thighs of camels from the time of our master Al-Faruq al-A'zam (may Allah be pleased with him) be considered.

Footnotes: 1. Radd al-Muhtar, Chapter on what is written on the shroud of the deceased, published by Dar Ihya al-Turath al-Arabi, Beirut, 2/247. 2. Fatawa Qazi Khan, Book of Prohibition and Permissibility, Section on Tasbih from Al-Hazr, published by Naval Kishore, Lucknow, 4/497.

Page 132 of 948

फ़तावा रज़विया जिल्द 9

मनाही यहाँ सबसे उपयुक्त है जब तक कि किसी मुजतहिद से साबित न हो जाए या इस बारे में कोई विश्वसनीय हदीस न मिल जाए। यही वह कारण था जिसने उन्हें अपने संप्रदाय (मज़हब) के इमाम सफ्फ़ार हनफ़ी के मत से हटकर बाद के शाफ़ई इमाम इब्न-ए-सलाह के मत को अपनाने के लिए प्रेरित किया।

मैं कहता हूँ: जहाँ तक बिस्तर पर लिखने की बात है, तो यह स्पष्ट अपमान है या ऐसे कार्य का इरादा है जो अनादर से अलग नहीं है, इसलिए यह हमारे विषय से बाहर है और इसके मकरूह (नापसंद) होने में कोई संदेह नहीं है। जहाँ तक अन्य चीज़ों पर लिखने का सवाल है, तो यह मुद्दा विवादास्पद है। हमने पहले ही दिरहमों के बारे में 'जवाहिर अल-अखलाती' से सुना है (दीवार और मेहराब के संबंध में निम्न नोट करें)। महान इमाम क़ाज़ी खान ने अपने फ़तावा में कहा है: "यदि दीवारों पर कुरान लिखा जाए, तो कुछ ने कहा कि उम्मीद है कि यह जायज़ होगा, जबकि अन्य ने लोगों के पैरों के नीचे आने के डर से इसे मकरूह कहा।" उन्होंने जायज़ होने की उम्मीद को पहले रखा है, और जैसा कि उन्होंने अपने फ़तावा की प्रस्तावना में स्पष्ट किया है, वह केवल उसी मत को पहले रखते हैं जो सबसे अधिक स्पष्ट और प्रसिद्ध होता है। और जैसा कि अल्लामा सैय्यद अल-तहतावी और फिर अल्लामा शामी (सैय्यद अल-मुहाशी) ने स्पष्ट किया है कि वही मत विश्वसनीय (मोअतमद) होता है। अत; हमारे आका फ़ारूक़-ए-आज़म (रज़ियल्लाहु अन्हु) के समय से ऊंटों की जांघों पर जो विशेष लिखावट की प्रथा रही है, उसे इसी संदर्भ में देखा जाना चाहिए।

फुटनोट्स: 1. रद अल-मुह्तार, मृतक के कफ़न पर क्या लिखा जाए, दार इह्या अल-तुराथ अल-अरबी, बेरूत द्वारा प्रकाशित, 2/247। 2. फ़तावा क़ाज़ी खान, अल-हज़र वल-इबाहत की किताब, तस्बीह अनुभाग, नवल किशोर, लखनऊ द्वारा प्रकाशित, 4/497।

पृष्ठ 132/948

فتاوٰی رضویہ جلد نہم

فالمنع ھنا بالاولی مالم یثبت عن المجتہد او ینقل فیہ حدیث ثابت ۱ اہ وھذا الذی حملہ علی العدول عن قول امام مذھبہ الصفار الحنفی الی قول الامام ابن الصلاح من متأخری الشافعیۃ ممانعت بدرجہ اولٰی ہوگی جب تک کہ مجتہد سے ثبوت نہ ہو یا اس بارے میں کوئی حدیث ثابت منقول نہ ہو اھـ - یہی وہ بات ہے جو ان کے لئے اپنے مذہب کے امام صفار حنفی کے قول سے عدول کرکے ایک شافعی متاخر امام ابن الصلاح کا قول لینے پر باعث ہوئی۔

فاقول: امّا الکتابۃ علی الفراش فامتہان حاضر او قصد مالا ینفك عن التہاون فلیس ممانحن فیہ ولا کلام فی کراھتہ واما علی البواقی فالمسئلۃ مختلف فیھا وقد اسمعناك آنفاً فی جواہر الاخلاطی فی حق الدراھم وقال الامام الاجل قاضی خان فی فتاواہ لو کتب القرآن علی الحیطان والجدران بعضھم قالوا یرجی ان یجوز وبعضھم کرھوا ذلک مخافۃ السقوط تحت اقدام الناس ۲ اہ فقد قدم رجاء الجواز وھو کما صرح بہ فی دیباجۃ فتاواہ لایقدم الا الاظہر الاشہر ویکون کما نص علیہ العلامۃ السید الطحطاوی ثم السید المحشی ھو المعتمد فاذن فلتکن الکتابۃ المعہودۃ علی افخاذ الابل من لدن سیدنا الفاروق الاعظم رضی اللہ عنہ فاقول: (تو میں کہتا ہوں) بچھونے پر لکھنا تو بوقتِ اہانت ہے یا ایسے کام کا قصد ہے جو بے حرمتی سے جدا ہونے والا نہیں۔ یہ تمہارے مبحث سے خارج ہے اور اس کے مکروہ ہونے میں کوئی کلام نہیں۔ رہا باقی چیزوں پر لکھنا تو ان کے بارے میں مسئلہ اختلافی ہے --- دراہم سے متعلق تو جواہر الاخلاطی کی عبارت ابھی ہم پیش کر آئے (دیوار و محراب سے متعلق ملاحظہ ہو) امام اجل قاضی خاں اپنے فتاوٰی میں لکھتے ہیں : "اگر دیواروں پر قرآن لکھا تو بعض نے کہا امید ہے کہ جائز ہوگا" اور بعض نے اس کو مکروہ کہا اھـ - اس عبارت میں امیدِ جواز کو انہوں نے مقدم رکھا ہے۔ اور جیسا کہ اپنے فتاوٰی کے دیباچے میں وہ تصریح فرما چکے ہیں

جسے وہ مقدم رکھتے ہیں وہی "اظہر اشہر" ہوتا ہے۔ اور جیسا کہ علامہ سید طحطاوی پھر خود علامہ شامی نے تصریح فرمائی ہے وہی "معتمد" ہوتا ہے۔ ایسی صورت میں سیدنا فاروق اعظم رضی اللہ تعالی عنہ کے زمانے سے اونٹوں کی ران پر

۱ رد المحتار مطلب فیما یکتب علی کفن المیت مطبوعہ دار احیاء التراث العربی بیروت ۲/ ۲۴۷ ۲ فتاوٰی قاضی خان کتاب الحظر والاباحۃ فصل فی التسبیح من الحظر مطبوعہ نولکشور لکھنؤ ۴/ ۴۹۷

Fatawa-e-Razvia Volume 9

[Section 1 Table] Left (Arabic): ...from him, it gives weight to the opinion of permissibility if we assume equality, otherwise we do not accept it from the root. Writing on prayer niches and walls is mostly intended for decoration and is not of necessity in any way. Therefore, the prohibition there does not imply prohibition where there is a dire need, such as creating distinction, seeking blessing, and mediation for salvation by the permission of Allah Almighty. So understand, and Allah Glory be to Him and the Exalted knows best. Right (Urdu): Preference should be given to the opinion of permissibility based on the established and known writing. If we assume equality between the two writings. Otherwise, we do not accept it at all because writing on prayer niches and walls is generally intended for decoration. It is not something of necessity. So if there is a prohibition in it, it does not necessitate that there should also be a prohibition where there is a need, such as creating distinction, obtaining blessings, or making it a means of salvation by the permission of God. So understand it... and God the Holy, Great and Exalted is the All-Knowing. (T)

Fourth Point: When the permissibility of writing supplications etc. on the shroud itself for blessings is proven through jurisprudence and Hadith, then keeping the Shajara Sharif is also inherently from the same category, or rather even more appropriate. Firstly, seeking mediation and blessings through the names of the beloved of God, peace and praise be upon them, is undoubtedly commendable and recommended. In Tafsir al-Tabari and then in the commentary on Mawahib al-Ladunniyyah by Allama al-Zarqani, it is stated:

[Section 2 Table] Left (Arabic): If the names of the People of the Cave are written on something and thrown into the fire, it is extinguished. 1 Right (Urdu): When the names of the People of the Cave are written and thrown into the fire, the fire is extinguished.

In Tafsir al-Nishapuri by Allama Hasan Muhammad bin Husain Nizamuddin, it is stated:

[Section 3 Table] Left (Arabic): Narrated from Ibn Abbas that the names of the People of the Cave are beneficial for seeking [benefit], fleeing [from harm], and extinguishing fire. They are written on a piece of cloth and thrown into the middle of the fire. For the crying of a child, they are written and placed under his head in the cradle. For cultivation, they are written on paper and raised on a piece of wood planted in the middle of the crop. And for throbbing pain, intermittent fever, and

headache. Right (Urdu): That is, narrated from Abdullah bin Abbas (may Allah Almighty be pleased with him) that the names of the People of the Cave are for gaining benefit and warding off harm and for extinguishing fire, written on a slip of paper and thrown into the fire; and if a child is crying, written and placed under his head in the cradle; and for the protection of crops, written on paper and tied to a wooden stake planted in the middle of the field; and for throbbing veins, intermittent fever, and headache.

---

1 Sharh al-Zarqani 'ala al-Mawahib al-Ladunniyyah, The Eighth Objective, printed by Ma'rifat, Beirut 7/108. Page 133 of 948

फतवा-ए-रजविया जिल्द 9

[अनुभाग 1 तालिका] बायाँ (अरबी): ...उनसे, यह जायज़ होने के कौल (विचार) को वज़न देता है यदि हम समानता मान लें, अन्यथा हम इसे जड़ से स्वीकार नहीं करते। मेहराबों और दीवारों पर लिखना ज़्यादातर सजावट के लिए होता है और यह किसी भी तरह से ज़रूरत की चीज़ नहीं है। इसलिए, वहाँ की मनाही वहाँ मनाही का कारण नहीं बनती जहाँ सख्त ज़रूरत है, जैसे कि पहचान, बरकत मांगना और अल्लाह तआला की अनुमति से निजात के लिए वसीला बनाना। तो समझो, और अल्लाह सुब्हानहु व तआला सबसे बेहतर जानने वाला है। दायाँ (उर्दू): लिखी जाने वाली ज्ञात और स्थापित तहरीर से जायज़ होने के कौल को तरजीह (प्राथमिकता) होनी चाहिए। अगर हम दोनों तहरीरों में बराबरी मानें। वरना हम इसे सिरे से नहीं मानते क्योंकि मेहराबों और दीवारों पर लिखना आमतौर पर ज़ीनत (सजावट) के लिए होता है। यह कोई ज़रूरत की चीज़ ही नहीं। तो अगर इसमें ममानअत (मनाही) है तो यह इसे ज़रूरी नहीं करता कि वहाँ भी मनाही हो जहाँ ज़रूरत है जैसे इम्तियाज़ (पहचान) पैदा करना, बरकत हासिल करना, बाज़न-ए-इलाही (ईश्वर की अनुमति से) निजात का वसीला बनाना। तो इसे समझो... और खुदा-ए-पाक बुज़ुर्ग और बरतर खूब जानने वाला है। (त)

चौथा मकाम: जब खुद कफन पर दुआएं आदि बरकत के तौर पर लिखने का जायज़ होना फकीहों और हदीस से साबित है, तो शजरा शरीफ रखना भी बुनियादी तौर पर इसी बाब (अध्याय) से है बल्कि उससे भी बेहतर; अव्वल तो अल्लाह के महबूबों (उन पर सलाम और प्रशंसा हो) के नामों से तवस्सुल (मध्यस्थता) और बरकत निस्संदेह सराहनीय और पसंदीदा है। तफसीर तबरी और फिर अल्लामा ज़रकानी की शरह मवाहिब अल-लदुन्निया में है:

[अनुभाग 2 तालिका] बायाँ (अरबी): यदि असहाब-ए-कहफ़ के नाम किसी चीज़ पर लिखे जाएं और आग में डाले जाएं तो वह बुझ जाती है। 1 दायाँ (उर्दू): जब असहाब-ए-कहफ़ के नाम लिखकर आग में डाले जाएं तो आग बुझ जाती है।

तफसीर नैशापुरी अल्लामा हसन मुहम्मद बिन हुसैन निज़ामुद्दीन में है:

[अनुभाग 3 तालिका] बायाँ (अरबी): इब्न अब्बास से रिवायत है कि असहाब-ए-कहफ़ के नाम लाभ पाने, नुकसान से बचने और आग बुझाने के लिए काम आते हैं। वे कपड़े के एक टुकड़े पर लिखे जाते हैं और आग के बीच में फेंक दिए जाते हैं। बच्चे के रोने के लिए, वे लिखकर पालने में उसके सिर के नीचे रख दिए जाते हैं। खेती के लिए, वे कागज़ पर लिखे जाते हैं और फसल के बीच में गाड़ी गई

लकड़ी पर टांग दिए जाते हैं। और धड़कन (नस फड़कना), बारी वाले बुखार और सिर दर्द के लिए। दायाँ (उर्दू): यानी अब्दुल्ला बिन अब्बास रज़ियल्लाहु तआला अन्हु से रिवायत है कि असहाब-ए-कहफ़ के नाम नफ़ा (लाभ) हासिल करने और नुकसान दूर करने और आग बुझाने के लिए एक पर्ची पर लिखकर आग में डाल दें, और बच्चा रोता हो तो लिखकर गहवारे (पालने) में उसके सिर के नीचे रख दें, और खेती की हिफ़ाज़त के लिए कागज़ पर लिखकर खेत के बीच में एक लकड़ी गाड़ कर उस पर बाँध दें, और रगें तपकने और बारी वाले बुखार और दर्द-ए-सर के लिए।

---

1 शरह अल-ज़रकानी अलल मवाहिब अल-लदुन्निया, आठवां मक़सद, मारिफ़त बैरूत द्वारा मुद्रित 7/108। पेज 133 / 948

فتاوٰی رضویہ جلد نہم

[جدول 1] بائیں (عربی): تعالی عنه مرجحة لقول الجواز ان فرضنا المساواة والا فلانسلمها من الاصل فان الكتابة على المحاريب والجدران انما يكون المقصود بهاغالباً الزينة وليست من الحاجة في شيئ فالمنع ثمه لايستلزم المنع حيث الحاجة ماسة كالتمييز والتبرك والتوسل للنجاة باذن الله تعالى فافهم والله سبحانه وتعالى اعلم۔ دائیں (اردو): لکھی جانے والی تحریر معہود و معلوم سے قول جواز کو ترجیح ہونی چاہئے۔ اگر دونوں تحریروں میں ہم مساوات مانیں۔ ورنہ اسے ہم سرے سے نہیں مانتے اس لئے کہ محرابوں اور دیواروں پر لکھنے سے عموماً زینت مقصود ہوتی ہے۔ یہ کوئی حاجت کی چیز ہی نہیں۔ تو اگر اس میں ممانعت ہے تو یہ اس کو مستلزم نہیں کہ وہاں بھی ممانعت ہو جہاں حاجت ہے جیسے امتیاز پیدا کرنا، برکت حاصل کرنا، باذن الٰہی نجات کا وسیلہ بنانا۔ تو اسے سمجھو۔ اور خدائے پاک بزرگ وبرتر خوب جاننے والا ہے (ت)

مقام چہارم: جب خود کفن پر ادعیہ وغیرہ تبرکاً لکھنے کا جواز فقہا و حدیثاً ثابت ہے تو شجرہ شریف رکھنا بھی بدایۃً اسی باب سے بلکہ بالاولٰی، اول تو اسمائے محبوبان خدا علیہم التحیہ والثناء سے توسل و تبرک بلاشبہ محمود ومندوب ہے۔ تفسیر طبری پھر شرح مواہب لدنیہ للعلامۃ الزرقانی میں ہے:

[جدول 2] بائیں (عربی): اذا كتب اسماء اهل الكهف في شيئ والقى في النار اطفئت 1 ۔ دائیں (اردو): جب اصحابِ کہف کے نام لکھ کر آگ میں ڈالے جائیں تو آگ بجھ جاتی ہے۔

تفسیر نیشاپوری علامہ حسن محمد بن حسین نظام الدین میں ہے:

[جدول 3] بائیں (عربی): عن ابن عباس ان اسماء اصحاب الكهف يصلح للطلب والهرب واطفاء الحريق تكتب في خرقه ويرمى بهافى وسط النار، ولبكاء الطفل تكتب و توضع تحت راسه في المهد، وللحرث تكتب على القرطاس وترفع على خشب منصوب في وسط الزرع و للضربان وللحمى المثلثة والصداع دائیں (اردو): یعنی عبداللہ بن عباس رضی اللہ تعالیٰ عنہ سے روایت ہے کہ اصحابِ کہف کے نام تحصیلِ نفع و دفعِ ضرر اور آگ بجھانے کے واسطے ایک پرچی پر لکھ کر آگ میں ڈال دیں، اور بچہ روتا ہو لکھ کر گہوارے میں اس کے سر کے نیچے رکھ دیں، اور کھیتی کی حفاظت کے لئے کاغذ پر لکھ کر پہنچ کھیت میں ایک لکڑی گاڑ کر اُس پر باندھ دیں، اور رگیں تپکنے اور باری والے بخار اور دردِ سر

---

1 شرح الزرقانی علی المواہب اللدنیۃ المقصد الثامن مطبوعہ معرفتہ بیروت ۷/ ۱۰۸ Page 133 of 948

Fatawa Rizvia, Volume 9

[Top Table] (Arabic): And for wealth, status, and entering upon kings, it should be tied to the right thigh. For difficulty in childbirth, it should be tied to the woman's left thigh. Also, for the protection of wealth, traveling by sea, and safety from murder. (Urdu): And for attaining prosperity and prestige, and for going before rulers, tie it on the right thigh; and for difficulty in childbirth, tie it on the woman's left thigh, also for the protection of wealth, sea travel, and salvation from being killed.

[Narrative] Imam Ibn Hajar Makki narrates in 'Sawa'iq-e-Muhriqah': When Imam Ali Raza (may Allah be pleased with him) arrived in Nishapur, there was a veil before his blessed face. The preservers of Hadith, Imam Abu Zar'a Razi and Imam Muhammad bin Aslam Tusi, along with countless seekers of knowledge and Hadith, attended his presence and pleaded, "Show us your blessed beauty and narrate a Hadith to us from your noble ancestors." The Imam stopped his ride and commanded the servants to lift the veil. The eyes of God's creation were cooled by the sight of his blessed beauty. Two tresses were hanging over his blessed shoulders. As soon as the veil was lifted, the state of God's creation was such that some were shouting, some were crying, some were rolling on the dust, and some were kissing the hoof of the sacred ride. Meanwhile, the scholars called out: "Be quiet, everyone be quiet." Both aforementioned Imams requested the presence of the Imam to narrate a Hadith. The Master (Imam) said:

[Bottom Table] (Arabic): My father Musa al-Kazim narrated to me, from his father Ja'far al-Sadiq, from his father Muhammad al-Baqir, from his father Zayn al-Abidin, from his father al-Husayn, from his father Ali ibn Abi Talib (may Allah be pleased with them), who said: My beloved and the delight of my eyes, the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him), narrated to me: Gabriel narrated to me, saying: I heard the Lord of Honor say: "La ilaha illallah" (There is no god but Allah) is My fortress, so whoever enters My fortress is safe from My punishment. (Urdu): Meaning Imam Ali Raza narrates from Imam Musa al-Kazim, who from Imam Ja'far al-Sadiq, who from Imam Muhammad al-Baqir, who from Imam Zayn al-Abidin, who from Imam Husayn, who from Ali al-Murtaza (may Allah be pleased with them all), that my beloved, the coolness of my eyes, the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) narrated a Hadith to me that Gabriel said to him: I heard Allah Almighty saying: "La ilaha illallah" is my fort, so whoever said it, entered my fort and remained safe from my punishment.

[Footnotes] 1 Tafsir Ghara'ib al-Quran, mention of the names of the People of the Cave, printed by Mustafa al-Babi, Egypt 15/110. 2 As-Sawa'iq al-Muhriqah, Chapter 3, printed by Maktaba Majeediya Multan, p. 205.

फ़तावा रज़विया, खंड 9

[ऊपरी तालिका] (अरबी): धन, प्रतिष्ठा और सुल्तानों (राजाओं) के पास जाने के लिए इसे दाहिनी जांघ पर बांधें। प्रसव में कठिनाई के लिए इसे महिला की बाईं जांघ पर बांधें। इसके अलावा, धन की सुरक्षा, समुद्री यात्रा और हत्या से सुरक्षा के लिए। (उर्दू): और समृद्धि और प्रतिष्ठा प्राप्त करने के लिए और शासकों के पास जाने के लिए दाहिनी जांघ पर बांधें, और प्रसव की कठिनाई के लिए महिला की बाईं जांघ पर, साथ ही धन की सुरक्षा, समुद्री यात्रा और हत्या से मुक्ति के लिए।

[कथा] इमाम इब्न हजर मक्की 'सवाइक-ए-मुहर्रिका' में उल्लेख करते हैं: जब इमाम अली रज़ा (रज़ियल्लाहु अन्हु) निशापुर पहुंचे, तो उनके मुबारक चेहरे के सामने एक पर्दा था। हदीस के संरक्षक इमाम अबू ज़रआ रज़ी और इमाम मुहम्मद बिन असलम तूसी और उनके साथ अनगिनत ज्ञान और हदीस के चाहने वाले उनकी सेवा में उपस्थित हुए और गिड़गिड़ा कर विनती की: "हमें अपनी मुबारक सुंदरता दिखाएं और अपने पूर्वजों से हमारे सामने एक हदीस बयान करें।" इमाम ने अपनी सवारी रोकी और सेवकों को पर्दा हटाने का आदेश दिया। खुदा की रचना की आँखें उनके मुबारक दीदार से ठंडी हो गईं। उनके मुबारक कंधों पर दो जुल्फें लटक रही थीं। पर्दा हटते ही खुदा की रचना की वह हालत हुई कि कोई चिल्ला रहा है, कोई रो रहा है, कोई धूल में लोट रहा है, कोई पवित्र सवारी के खुर को चूम रहा है। इसी बीच उलेमा ने आवाज़ दी: "खामोश, सब लोग खामोश हो जाएँ।" दोनों उल्लेखित इमामों ने हुज़ूर से कोई हदीस सुनाने की विनती की। हुज़ूर ने फरमाया:

[नीचे की तालिका] (अरबी): मुझसे मेरे पिता मूसा अल-काज़िम ने, उन्होंने अपने पिता जाफ़र अल-सादिक़ से, उन्होंने अपने पिता मुहम्मद अल-बाकिर से, उन्होंने अपने पिता ज़ैनुल आबिदीन से, उन्होंने अपने पिता अल-हुसैन से, उन्होंने अपने पिता अली इब्न अबी तालिब (रज़ियल्लाहु अन्हु) से वर्णन किया, उन्होंने कहा: मुझसे मेरे प्रिय और मेरी आँखों की ठंडक अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने वर्णन किया, उन्होंने कहा: मुझसे जिब्रईल ने वर्णन किया, उन्होंने कहा: मैंने सम्मान के स्वामी (अल्लाह) को यह कहते हुए सुना: "ला इलाहा इल्लल्लाह" मेरा किला है, तो जो मेरे किले में दाखिल हुआ, वह मेरे अज़ाब (दंड) से सुरक्षित रहा। (उर्दू): यानी इमाम अली रज़ा, इमाम मूसा काज़िम से, वह इमाम जाफ़र सादिक़ से, वह इमाम मुहम्मद बाकिर से, वह इमाम ज़ैनुल आबिदीन से, वह इमाम हुसैन से, वह अली अल-मुर्तज़ा (रज़ियल्लाहु अन्हु) से वर्णन करते हैं कि मेरे प्यारे, मेरी आँखों की ठंडक अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने मुझसे हदीस बयान की कि उनसे जिब्रईल ने निवेदन किया कि मैंने अल्लाह अज़्ज़वजल को फरमाते सुना कि "ला इलाहा

इल्लल्लाह" मेरा किला है, तो जिसने इसे कहा वह मेरे किले में दाखिल हुआ, मेरे अज़ाब से सुरक्षित रहा।

[पादलेख] 1 तफ़सीर ग़राबुल क़ुरान, असहाब-ए-कहफ़ के नामों का उल्लेख, मुस्तफ़ा अल-बाबी, मिस्र 15/110 द्वारा मुद्रित। 2 अस-सवाइक अल-मुहर्रिका, अध्याय 3, मकतबा मजीदिया मुल्तान द्वारा मुद्रित, पृ. 205।

فتاوٰی رضویہ، جلد نہم

[Top Table] والغنی والجاہ والدخول علی السلاطین تشد علی الفخذ الیمنی والعسر الولادۃ تشد علی فخذھا الـ ایسر ، ولحفظ المال و الرکوب فی البحر والنجاۃ من القتل 1۔ اور حصول تونگری و وجاہت اور سلاطین کے پاس جانے کے لئے دہنی ران پر باندھیں، اور دشواری ولادت کے لئے عورت کی بائیں ران پر، نیز حفاظت مال اور دریا کی سواری اور قتل سے نجات کے لئے۔

[Urdu Narrative] امام ابنِ حجر مکی صواعقِ محرقہ میں نقل فرماتے ہیں : جب امام علی رضا رضی اللہ تعالٰی عنہ نیشاپور میں تشریف لائے، چہرہ مبارک کے سامنے ایک پردہ تھا، حافظانِ حدیث امام ابوزرعہ رازی و امام محمد بن اسلم طوسی اور ان کے ساتھ بیشمار طالبانِ علم و حدیث حاضر خدمت ہوئے اور گڑگڑا کر عرض کیا اپنا جمال مبارک ہمیں دکھایئے اور اپنے آبائے کرام سے ایک حدیث ہمارے سامنے روایت فرمائیے، امام نے سواری روکی اور غلاموں کو حکم فرمایا پردہ ہٹالیں خلقِ خدا کی آنکھیں جمال مبارک کے دیدار سے ٹھنڈی ہوئیں۔ دو گیسو شانہ مبارک پر لٹک رہے تھے۔ پردہ ہٹتے ہی خلقِ خدا کی وہ حالت ہوئی کہ کوئی چلاتا ہے، کوئی روتا ہے، کوئی خاک پر لوٹتا ہے، کوئی سواری مقدس کا سُم چومتا ہے۔ اتنے میں علماء نے آواز دی : خاموش سب لوگ خاموش ہور ہے۔ دونوں امام مذکور نے حضور سے کوئی حدیث روایت کرنے کو عرض کی حضور نے فرمایا:

[Bottom Table] حدثنی ابو موسی الکاظم عن ابیہ جعفر الصادق عن ابیہ محمدن الباقر عن ابیہ زین العابدین عن ابیہ الحسین عن ابیہ علی ابن ابی طالب رضی اللہ تعالٰی عنھم قال حدثنی حبیبی وقرۃ عینی رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم قال حدثنی جبریل قال سمعت رب العزۃ یقول لا الہ الا اللہ حصنی فمن دخل حصنی امن من عذابی 2۔ یعنی امام علی رضا امام موسیٰ کاظم وہ امام جعفر صادق

وہ امام محمد باقر وہ امام زین العابدین وہ امام حسین وہ علی المرتضیٰ رضی اللہ تعالیٰ عنہم سے روایت فرماتے ہیں کہ میرے پیارے میری آنکھوں کی ٹھنڈک رسول اللہ صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم نے مجھ سے حدیث بیان فرمائی کہ ان سے جبریل نے عرض کی کہ میں نے اللہ عزوجل کو فرماتے سنا کہ لا الہ الا اللہ میرا قلعہ ہے تو جس نے اسے کہا وہ میرے قلعہ میں داخل ہوا، میرے عذاب سے امان میں رہا۔

[Footnotes] 1 تفسیر غرائب القران ذکر اسماء اہل کہف مطبوعہ مصطفی البانی مصر ۱۱۰/۱۵

2 الصواعق المحرقہ الفصل الثالث مطبوعہ مکتبہ مجیدیہ ملتان ص ۲۰۵

Fatawa Razawiyya, Volume 9

After narrating this hadith, His Eminence departed and the curtain was drawn. Those with inkpots who were writing down the blessed words were counted, and they were more than twenty thousand. Imam Ahmad bin Hanbal (may Allah be pleased with him) said:

> **"If I were to read this blessed chain of narration over a madman, he would surely be cured of his madness."[1]**

I say, in reality, when there are such blessings in the names of the People of the Cave (*Ashab-e-Kahf*) — whose secrets be sanctified — even though they are from the Christian saints, then what can be said of the Muhammadan saints (peace and blessings of Allah be upon him and upon all of them)? How can the blessings of their noble names be enumerated? O person! You do not know what a name is. It is a mode of existence for the named (*musamma*). Imam Fakhr al-Din Razi and other scholars have stated that the existence of a thing has four forms: existence in external reality, in knowledge, in pronunciation, and in writing. Thus, they have declared the last two forms — the existence of the name itself — as the existence of the named. In fact, it is written in books of creed: '*Al-Ismu ayn al-Musamma*' (The name is identical to the named). Imam Razi said: 'What is well-known from our companions is that the name is the named.' The point is that the name's specificity to the named is greater than the specificity of clothes, and the indication of the name upon the named is more than the indication of a nail paring. Thus, names alone are a supreme means of seeking blessings (*tabarruk*) and intercession (*tawassul*), let alone the chains of noble lineages that connect back to the Beloved of the possessor of Majesty and Glory (Allah) and to the Presence of Might and Majesty, *Jalla Jalaluhu*, and peace and blessings of Allah be upon him. What better means of *tawassul* could there be than being connected to the noble and miraculous chain of Allah, His Beloved, and the saints via the *Shajarah Tayyibah* (spiritual lineage tree)? Then, writing it on the shroud (*kafan*) is something our Imams have permitted and made a source of hope for forgiveness. Although some Shafi'is had concerns about desecration/soiling (*tajnees*), this concern is not even applicable to the *Shajarah Tayyibah*. Is it necessary to keep it only in the shroud? Rather, a niche (*taaq*) can be made in the grave, either at the head — as the angels Munkar and Nakir come from the foot-side, it will be before them — or towards the Qibla, so it remains in front of the deceased and becomes a cause for their tranquility, peace, and assistance in

answering (the questioning), by the leave of Allah Almighty, and to Him belongs all praise. Shah Abdul Aziz Sahib also mentioned in the treatise "*Faiz-e-Aam*" that keeping the *Shajarah* in the grave was a practice of the elders of religion, preferring to keep it in a niche at the head-side. This matter is broad; rather, from our research, it has become clear that the discourse of jurists about keeping it in the shroud refers to later Shafi'is; according to our Imams, this is also permissible. However, to avoid disagreement, keeping it in a niche is more appropriate and correct. And Allah Almighty knows best, and His knowledge is most complete and most perfect.

---

[1] *Al-Sawa'iq al-Muhriqa*, Chapter Three, regarding traditions about some of the Ahl al-Bayt, published by Maktabah Mujaddidiyya Multan, p. 205.

फ़तावा रज़विया, जिल्द नवीं (Vol. 9)

इस हदीस को रिवायत फरमा कर हुज़ूर रवाना हुए और पर्दा छोड़ दिया गया, दवातों वाले जो इरशाद-ए-मुबारक लिख रहे थे शुमार किए गए, वे बीस हज़ार से ज़्यादा थे। इमाम अहमद बिन हंबल रज़ियल्लाहु अन्हु ने फ़रमाया:

> **"अगर मैं यह मुबारक सनद (नक़ल का सिलसिला) किसी पागल पर पढ़ूँ तो वह ज़रूर अपने पागलपन से शिफ़ा पा जाए।"[1]**

मैं कहता हूँ कि वास्तव में जब असहाब-ए-कहफ़ (क़ुद्दिस्त असरारुहुम) के नामों में इतनी बरकतें हैं, जबकि वे ईसा अलैहिस्सलाम के दौर के वली थे, तो मुहम्मदी औलिया (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम और उन सब पर सलात व सलाम हो) की शान क्या होगी, उनके नामों की बरकतों का क्या शुमार हो सकता है। ऐ व्यक्ति! तू नहीं जानता कि नाम क्या है। मुसम्मा (जिसका नाम हो) के अस्तित्व के तरीक़ों में से एक तरीक़ा है। इमाम फ़खरुद्दीन राजी वग़ैरा उलमा ने फ़रमाया कि किसी चीज़ के अस्तित्व के चार रूप हैं: बाहरी अस्तित्व (हक़ीक़त में), इल्म (ज्ञान) में, तलफ़्फ़ुज़ (बोलने) में, और किताबत (लिखने) में। तो इन आख़िरी दो रूपों यानी नाम के अस्तित्व को ही उन्होंने मुसम्मा का अस्तित्व माना है। यहाँ तक कि अक़ीदे की किताबों में लिखा है: 'नाम ही मुसम्मा है' (अल-इस्मु ऐनुल मुसम्मा)। इमाम राजी ने फ़रमाया: 'हमारे साथियों में मशहूर यही है कि नाम ही मुसम्मा है'। मक़सद इतना है कि नाम की मुसम्मा के साथ ख़ासियत कपड़ों की ख़ासियत से ज़्यादा है और नाम का मुसम्मा पर दलालत करना नाखून के तराशे की दलालत से ज़्यादा है। तो सिर्फ़ नाम ही तबर्रुक और तवस्सुल का एक बड़ा ज़रिया हैं, फिर उन महान सिलसिलों की सनदों का क्या कहना जो महबूब-ए-जुल-जलाल (अल्लाह) तक पहुँचती हैं और इज़्ज़त व जलाल वाली बारगाह (अल्लाह) तक जुड़ी हैं, जल्ल जलालाहु, सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम। और अल्लाह, उसके महबूब और औलिया के मुबारक और करामाती सिलसिले में शामिल होने की सनद के लिए 'शजरा तय्यिबा' से बढ़कर और क्या ज़रिया-ए-तवस्सुल चाहिए। फिर कफ़न पर लिखना, जिसे हमारे इमामों ने जायज़ फ़रमाया और मग़फ़िरत (बख्शिश) की उम्मीद का ज़रिया बनाया, और कुछ शाफ़ई उलमा को इसमें बेअदबी/गंदगी (तजनीस) का ख़याल आया, शजरा तय्यिबा में यह ख़याल भी ज़रूरी नहीं। क्या ज़रूरी है कि सिर्फ़ कफ़न ही में रखें? बल्कि क़ब्र में एक ताक़ (आला) बना कर चाहे सिरहाने की तरफ़ (क्योंकि मुनकर और नकीर पैरों की तरफ़ से आते हैं, तो यह उनके सामने होगा), या किबला की तरफ़ ताकि मय्यत के सामने रहे और

उसके सुकून, इत्मीनान और जवाब देने में मदद का कारण बने, अल्लाह तआला के हुक्म से और उसी के लिए सारी तारीफ़ें हैं। शाह अब्दुल अज़ीज़ साहब ने भी रिसाला "फ़ैज़-ए-आम" में शजरा क़ब्र में रखने को बुज़ुर्गों का मामूल बता कर सिरहाने ताक़ में रखना पसंद किया। यह मामला वसी (विस्तृत) है, बल्कि हमारी तहक़ीक़ से साफ़ हुआ कि कफ़न में रखने पर फ़ुक़हा का जो कलाम (बहस) बताया गया वह बाद के शाफ़ई उलमा हैं, हमारे इमामों के नज़दीक यह भी जायज़ है। हाँ, इख़्तिलाफ़ से बचने के लिए ताक़ में रखना ज़्यादा मुनासिब और सही है। और अल्लाह तआला बेहतर जानता है और उसका इल्म सबसे मुकम्मल और पुख्ता है।

---

1. अल-सवाइकुल मुहरिक़ा, तीसरा अध्याय, अहल-ए-बैत के बारे में हदीसों के बयान में, मकतबा मुजद्दिदिया मुल्तान, पृष्ठ २०५।

पृष्ठ १३५/९४८

یہ حدیث روایت فرما کر حضور رواں ہوئے اور پردہ چھوڑ دیا گیا، دواتوں والے جو ارشادِ مبارک لکھ رہے تھے شمار کئے گئے، بیس ہزار سے زائد تھے۔ امام احمد بن حنبل رضی اللہ تعالٰی عنہ نے فرمایا:

لو قرأت ھذا الاسناد علی مجنون لبری من جننہ ۱۔ یہ مبارک سند اگر مجنون پر پڑھوں تو ضرور اسے جنون سے شفا ہو۔

اقول فی الواقع جب اسمائے اصحابِ کہف قدست اسرارہم میں وہ برکات ہیں، حالانکہ وہ اولیائے عیسوییں میں سے ہیں تو اولیاءِ محمدیین صلوات اللہ تعالٰی وسلامہ علیہ وعلیہم اجمعین کا کیا کہنا، اُن کے اسمائے کرام کی برکت کیا شمار میں آسکے۔ اے شخص! تو نہیں جانتا کہ نام کیا ہے۔ مسمٰی کے انحائے وجود سے ایک نحو ہے۔ امام فخر الدین رازی وغیرہ علماء نے فرمایا کہ وجودِ شئی کی چار صورتیں ہیں: وجودِ اعیان میں، علم میں، تلفظ میں، کتابت میں، تو ان دوشقِ اخیر وجودِ اسم ہی کو وجودِ مسمٰی قرار دیا ہے بلکہ کتبِ عقائد میں لکھتے ہیں: الاسم عین المسمٰی نام عین مسمٰی ہے۔ امام رازی نے فرمایا: المشہور عن اصحابنا ان الاسم ھو المسمٰی مقصود اتنا ہے کہ نام کا مسمٰی سے اختصاص کپڑوں کے اختصاص سے زائد ہے اور نام مسمٰی پر دلالت تراشہ ناخن کی دلالت سے افزوں ہے تو خالی اسماء ہی ایک اعلٰی ذریعہ تبرک و توسل ہوتے نہ کہ اسامی سلاسلِ علیہ کی اسناد اتصال بمحبوب ذوالجلال و بحضرتِ عزت وجلال ہیں جل جلالہ، وصلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم، اور اللہ ومحبوب واولیاء کے سلسلہ کرام وکرامت میں انسلاک کی سند تو شجرہ طیبہ سے بڑھ کر اور کیا ذریعہ توسل چاہئے، پھر کفن پر لکھنا کہ ہمارے ائمہ نے جسے جائز فرمایا اور امید گاہِ مغفرت بنایا، اور بعض شافعیہ کو اس میں خیالِ تجنیس آیا، شجرہ طیبہ میں اس کا خیال بھی

لزوم نہیں۔ کیا ضرور کہ کفن ہی میں رکھیں بلکہ قبر میں طاق بنا کر خواہ سرہانے کہ نکیرین پائینتی کی طرف سے آتے ہیں اُن سے پیش نظر ہو، خواہ جانبِ قبلہ کہ میت کے پیش رو رہے اور اس کے سکون واطمینان واعانتِ جواب کا باعث ہو، باذنہ تعالیٰ ولہ الحمد۔ شاہ عبد العزیز صاحب نے بھی رسالہ "فیضِ عام" میں شجرہ قبر میں رکھنے کو معمولِ بزرگانِ دین بتا کر سرہانے طاق میں رکھنا پسند کیا۔ یہ امر واسع ہے بلکہ ہماری تحقیق سے واضح ہوا کہ کفن میں رکھنے میں جو کلام فقہاء بتایا گیا وہ متاخرین شافعیہ ہیں، ہمارے ائمہ کے طور پر یہ بھی روا ہے، ہاں خروج عن الخلاف کے لئے طاق میں رکھنا زیادہ مناسب و بجا ہے، واللہ تعالیٰ اعلم وعلمہ اتم واحکم

۱ الصواعق المحرقہ الفصل الثالث فی الاحادیث الواردۃ فی بعض اہل البیت مطبوعہ مکتبہ مجددیہ ملتان ص ۲۰۵

Vol. 9 Fatawa Razawiya

Question 16: From Cantonment Ashraf Khan, 30 Rajab 1320 AH. What do the scholars of religion say regarding this matter: when carrying a funeral (janaza), should the head end be forward or the foot end? A person says that it is commanded to keep the foot end forward, saying "I have asked the scholars of religion." And another person says that calling the Adhan at the grave is forbidden (haram) and impermissible. What is the ruling on this? Explain and be rewarded.

Answer: That person spoke purely in error; when carrying a funeral, the ruling is to keep the head end forward. It is stated in Fatawa Alamgiri: "In the state of walking with the funeral, the head is put forward; thus it is in Al-Mudmarat." In carrying the funeral, the head shall be at the front. It is similar in Mudmarat. (T)

The person who called giving the Adhan at the grave 'haram' spoke purely in error. If he is truthful, let him show in which verse or Hadith it has been declared haram. If he cannot show it—and he never will—then he must admit to fabricating lies against Allah and His Messenger. 'Haram' is that which Allah and His Messenger have declared haram, and 'Wajib' is that which Allah and His Messenger have commanded as obligatory. However, those things which Allah and His Messenger have neither commanded nor forbidden are all permissible. One who calls them haram is fabricating lies against Allah and His Messenger. This humble servant's specific treatise on this subject has been published; one should read it to know the benefits of this Adhan. In it, proof for the basis of its permissibility has been given through fifteen (15) arguments. The claimant of its prohibition should first provide proof of its being haram from verses and Hadiths. When he is unable to do so, he should confess his lie and acknowledge that the Adhan is permissible; then everything stated will become clear. And Allah Almighty knows best.

Question 17: From Malwa region, city of Indore, Chheepa Bakhal, sent by Ismail Qadri of Ahmedabad. A death occurred here. After shrouding the deceased, a sheet of flowers was placed over it. An Afghani prayer leader (Imam) removed it, saying "This is an innovation (bid'at), we will not allow it." Secondly, a black piece of cloth from the covering (Ghilaf) of the Ka'bah Sharif was placed; he removed that as well, saying "This is a custom of the Rawafid (Shia), we will not allow it." He moved it aside and then led the funeral prayer.

Answer: There is absolutely no legal (Shar'i) objection to placing a sheet of flowers over the shroud; rather, it is good with a good intention, just as [it is done] on graves...

---

1. Fatawa Hindiyya, Chapter 4 regarding carrying the funeral, Matba' Noorani Kutub Khana Peshawar, 1/162.

खंड 9 फ़तावा रज़विया

प्रश्न 16: छावनी अशरफ खान से, 30 रजब 1320 हिजरी। धर्म के विद्वान इस विषय में क्या कहते हैं कि जनाज़ा लेकर चलते समय सिरहाना (सिर वाला हिस्सा) आगे करना चाहिए या पाइंती (पैर वाला हिस्सा)? एक व्यक्ति कहता है कि पाइंती आगे करने का आदेश है, "मैंने धर्म के विद्वानों से पूछ लिया है।" और एक व्यक्ति कब्र पर अज़ान देने को हराम और नाजायज़ कहता है। इस बारे में क्या हुक्म है? स्पष्ट करें और पुण्य प्राप्त करें।

उत्तर: उस व्यक्ति ने बिलकुल गलत कहा, जनाज़ा लेकर चलने में सिरहाना आगे करने का आदेश है। फ़तावा आलमगीरी में है: "जनाज़ा लेकर चलने की स्थिति में सिर को आगे रखा जाएगा; ऐसा ही मुज़मरात में है।" जनाज़ा लेकर चलने में सिर आगे होगा। ऐसा ही मुज़मरात में है। (त)

कब्र पर अज़ान देने को जिसने हराम कहा उसने बिलकुल गलत कहा, अगर वह सच्चा है तो बताए कि किस आयत या हदीस में इसे हराम कहा गया है। अगर न बता सके—और वह कभी नहीं बता सकेगा—तो वह अल्लाह और उसके रसूल पर मिथ्यारोप (इफ़्तरा) करने का स्वीकार करे। हराम वह है जिसे अल्लाह और उसके रसूल ने हराम कहा और वाजिब वह है जिसे अल्लाह और उसके रसूल ने वाजिब कहा/हुक्म दिया, लेकिन वे चीजें जिनके बारे में अल्लाह और उसके रसूल ने न हुक्म दिया न मना किया, वे सब जायज़ हैं। उन्हें हराम कहने वाला अल्लाह और उसके रसूल पर मिथ्यारोप लगाता है। इस फ़कीर (विनम्र सेवक) का इस विषय पर विशेष शोध पत्र प्रकाशित हो चुका है, उसे देखकर इस अज़ान के लाभ ज्ञात करें। इसमें पंद्रह (15) प्रमाणों के साथ इसकी असल वैधता का प्रमाण दिया गया है। हराम होने का दावा करने वाला पहले आयत और हदीसों से इसके हराम होने का प्रमाण दे। जब न दे सके तो अपने झूठ को स्वीकार करे और अज़ान के जायज़ होने को स्वीकार करे, इसके बाद जो बयान हुआ सब स्पष्ट हो जाएगा। और अल्लाह तआला सबसे बेहतर जानता है।

प्रश्न 17: मालवा क्षेत्र, इंदौर शहर, छीपा बाखल से, प्रेषक इस्माइल कादरी अहमद बाद वाले। यहाँ एक मृत्यु हो गई थी, उसे कफ़नाने के बाद फूलों की चादर डाली गई, उसे एक अफ़गानी इमाम ने उतार दिया और कहा "यह बिदअत (नवाचार) है, हम इसे नहीं डालने देंगे।" दूसरा, जो ग़िलाफ़ (आवरण) का काला कपड़ा काबा शरीफ़ से लाते हैं, वह टुकड़ा डाला हुआ था, उसे हटा दिया और कहा "यह रफ़ाज़ियों (शियाओं) का रिवाज है, हम नहीं डालेंगे।" उसे अलग हटाकर उसने जनाज़े की नमाज़ पढ़ाई।

उत्तर: कफ़न के ऊपर फूलों की चादर डालने में शरीयत के अनुसार कोई हर्ज नहीं है, बल्कि अच्छी नीयत से यह अच्छा है, जैसे कब्रों पर...

---

1. फ़तावा हिंदिया, अध्याय 4 जनाज़ा ले जाने के संबंध में, मतबा नूरानी कुतुब खाना पेशावर, 1/162।

جلد نہم فتاوی رضویہ

مسئلہ نمبر ۱۶: از چھاؤنی اشرف خان ۳۰ رجب ۱۳۲۰ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ جنازہ لے کر چلیں تو سرہانہ آگے کریں یا پائینتی؟ ایک شخص کہتا ہے کہ پائینتی آگے کرنے کا حکم ہے میں نے علمائے دین سے پوچھ لیا ہے۔ اور قبر پر اذان کہنے کو ایک شخص حرام وناجائز کہتا ہے اس میں کیا حکم ہے؟ بینوا توجروا۔

الجواب: اُس شخص نے محض غلط کہا، جنازہ لے کر چلنے میں سرہانے آگے کرنے کا حکم ہے۔ فتاوی عالمگیری میں ہے: فی حالۃ المشی بالجنازۃ یقدم الراس کذا فی المضمرات ۱۔ جنازہ لے کر چلنے میں سر آگے ہو گا۔ ایسا ہی مضمرات میں ہے۔ (ت)

قبر پر اذان دینے کو جس نے حرام کہا محض غلط کہا، اگر سچا ہے تو بتائے کہ کس آیت یا حدیث میں اس کو حرام فرمایا ہے اگر نہ بتائے تو ہرگز نہ بتائے گا تو خدا اور رسول پر افتراء کرنے کا اقرار کرے۔ حرام وہ ہے جسے خدا اور رسول نے حرام فرمایا اور واجب وہ ہے جسے خدا اور رسول نے واجب کہا حکم دیا، لیکن وہ چیزیں جن کا خدا اور رسول نے حکم دیا نہ منع کیا وہ سب جائز ہیں انہیں حرام کہنے والا خدا اور رسول پر افتراء کرتا ہے، فقیر کا خاص اس باب میں رسالہ طبع ہو گیا ہے اُسے دیکھ کر اس اذان کے فوائد معلوم کریں اس میں پندرہ ۱۵ دلیلوں سے اس کی اصل جواز کا ثبوت دیا گیا ہے، جومدعی حرمت کا ہے پہلے اس کے حرام ہونے کا آیت وحدیثوں سے ثبوت دے جب نہ دے سکے تو اپنے کذب کا اقرار اور اذان کے جائز ہونے کا اعتراف کرے، اس کے بعد جو بیان ہوئے سب ہو جائے گا۔ واللہ تعالٰی اعلم

مسئلہ نمبر ۱۷: از ملک مالوا شہر اندور چھینپہ باکھل مرسلہ اسمعیل قادری احمد باد والا یہاں میت ہو گئی تھی، اس کے کفنانے کے بعد پھولوں کی چادر ڈالی گئی، اس کو ایک پیش امام افغانی نے اتار ڈالا اور کہا یہ بدعت ہے ہم نہ ڈالنے دیں گے، دوسرے جو غلاف کا پارچہ سیاہ کعبہ شریف سے لاتے ہیں وہ ٹکڑا ڈالا ہوا تھا اُس ہٹا دیا اور کہا یہ روافض کا رواج ہے ہم نہ ڈالیں گے، اُسے الگ ہٹا کے اس نے نماز جنازہ پڑھائی۔

الجواب: پھولوں کی چادر بالائے کفن ڈالنے میں شرعاً اصلاً حرج نہیں بلکہ نیتِ حسن سے حسن ہے جیسے قبور پر

---

1 فتاوی ہندیہ الفصل الرابع فی حمل الجنازۃ مطبع نورانی کتب خانہ پشاور ۱/ ۱۶۲

Fatawa Razawiya Volume 9

Placing flowers [on a grave] because as long as they are fresh, they glorify [Allah]. This comforts the heart of the deceased and brings down mercy. It is stated in Fatawa Alamgiri:

ضع الورد والرياحين على القبور حسن 1.	**Placing roses and fragrant plants on graves is good. (T)**

In Fatawa Imam Qazi Khan, Imdad al-Fattah Sharh al-Musannif li-Maraqi al-Falah, and Radd al-Muhtar 'ala al-Durr al-Mukhtar, it is stated:

انه مادام رطبا يسبح فيؤنس الميت وتنزل بذكره الرحمة 2.	**As long as the flower remains fresh, it continues to glorify [Allah], through which the deceased attains solace, and mercy descends because of its mention. (T)**

Similarly, placing a small piece of the cover of the honorable Kaaba on the chest or face for blessings is undoubtedly permissible, and labeling it as a custom of the Rafidah is a pure lie. It is mentioned in Usd al-Ghabah etc.:

لما حضره الموت اوصى ان يكفن في قميص كان عليه افضل الصلوٰة والسلام كساه اياه، وان جعل مما يلي جسده، وكان عنده قلامة اظفاره عليه افضل الصلوة والسلام فاوصى ان تسحق وتجعل في عينيه وفمه، وقال افعلوا ذلك وخلوبيني وبين ارحم الراحمين 3.	**When the final time of Hazrat Ameer Muawiyah came, he made a will that he should be shrouded in that shirt which the Prophet of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) had gifted to him, and it should be placed in contact with his body. He also had some cuttings of the pure nails of the Holy Prophet (peace and blessings of Allah be upon him). Regarding them, he willed that they be finely ground and placed on his eyes and mouth. He said, perform this task and entrust me to the Most Merciful of the merciful ones. (T).**

Case No. 18: From Surat Station Sign, Village Kathor, sent by Maulvi Abdul Haq Sahib, 21 Jumada al-Ula 1309 AH. What do the scholars of the religion say about this matter? There is a custom here that after washing and shrouding the deceased person, on the funeral...

---

1. Fatawa Hindiyyah, Chapter 16 on visiting graves, published by Noorani Kutub Khana, Peshawar, 5/351.

2. Radd al-Muhtar, topic on placing branches etc. on graves, published by Idarat al-Tiba'ah al-Misriyyah, Egypt, 1/606.
3. Usd al-Ghabah fi Ma'rifat al-Sahabah, chapter of Meem and Ain, published by al-Maktabah al-Islamiyyah, owned by al-Haj Riaz al-Shaikh, 4/387.

फ़तावा रज़विया खंड नौवां

फूल डालना कि जब तक वे ताज़ा हैं तस्बीह करते हैं, इससे मृतक का दिल बहलता है और रहमत उतरती है। फ़तावा आलमगीरी में है:

ضع الورد والرياحين على القبور حسن 1.

कब्रों पर गुलाब और फूलों का रखना अच्छा है। (त)

फ़तावा इमाम क़ाज़ी ख़ान, इमदाद अल-फ़त्ताह शरह अल-मुसन्निफ़ ली-मराक़ी अल-फ़लाह और रद अल-मुह्तार अला अल-दुर्र अल-मुख्तार में है:

انه مادام رطبا يسبح فيؤنس الميت وتنزل بذكره الرحمة 2.

फूल जब तक ताज़ा रहता है तस्बीह करता रहता है, जिससे मृतक को सुकून प्राप्त होता है और उसके ज़िक्र से रहमत नाज़िल होती है। (त)

इसी प्रकार, बरकत के लिए काबा-ए-मुअज़्ज़मा के ग़िलाफ़ का एक छोटा टुकड़ा सीने या चेहरे पर रखना निसंदेह जायज़ है और इसे राफ़िदा की रस्म बताना महज़ झूठ है। असद अल-ग़ाबा आदि में है:

لما حضره الموت اوصى ان يكفن في قميص كان عليه افضل الصلوٰة والسلام كساه اياه، وان جعل مما يلي جسده وكان عنده قلامة اظفاره عليه افضل الصلوة والسلام فاوصى ان تسحق وتجعل في عينيه وفمه، وقال افعلوا ذلك وخلوبيني وبين ارح الراحمين م 3.

जब हज़रत अमीर मुआविया का आखिरी वक़्त आया तो वसीयत फरमाई कि उन्हें उस कमीज़ में कफ़न दिया जाए जो नबी-ए-अकरम सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम ने उन्हें अता फरमाई थी, और यह उनके जिस्म से मुत्तसिल (सटाकर) रखी जाए, उनके पास हुज़ूर अक़दस सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम के नाख़ून पाक के कुछ तराशे भी थे उनके मुताल्लिक वसीयत फरमाई कि बारीक करके उनकी आँखों और दहन (मुँह) पर रख दिए जाएँ। फरमाया कि यह काम अंजाम देना और मुझे अर्हमुर राहिमीन के सुपुर्द कर देना (त)।

मसला नंबर 18: सूरत स्टेशन साइन से, मोज़ा कठोर, प्रेषक मौलवी अब्दुल हक़ साहब, 21 जमादी-उल-ऊला 1309 हिजरी। उलेमा-ए-दीन इस मसले में क्या फरमाते हैं? यहाँ यह रिवाज है कि मैय्यत (मृतक) को गुस्ल (स्नान) और कफ़न देने के बाद जनाज़े...

---

1. फ़तावा हिन्दिया, बाब अल-सादिसा अश्अरा फ़ी ज़ियारतुल क़ुबूर, नूरानी कुतुब ख़ाना पेशावर द्वारा प्रकाशित 5/351।
2. रद अल-मुह्तार, मतलब फ़ी वज़अल जरीद व नहव अल-आन अलल क़ुबूर, इदारतुल तिबाअतुल मिस्रिया मिस्र द्वारा प्रकाशित 1/606।
3. असद अल-ग़ाबा फ़ी मारिफ़त अल-सहाबा, बाब अल-मीम वल-ऐन, अल-मक्तब अल-इस्लामिया द्वारा प्रकाशित, मालिक अल-हाज रियाज़ अल-शेख़ 4/387।

पृष्ठ 137/948

فتاوٰی رضویہ جلد نہم

پھول ڈالنا کہ وہ جب تک تر ہیں تسبیح کرتے ہیں اس سے میت کا دل بہلتا ہے اور رحمت اترتی ہے۔ فتاوٰی عالمگیری میں ہے :

ضع الورد والریاحین علی القبور حسن 1۔ قبروں پر گلاب اور پھولوں کا رکھنا اچھا ہے۔ (ت)

فتاوٰی امام قاضی خان وامداد الفتاح شرح المصنف لمراقی الفلاح ورد المحتار علی الدر المختار میں ہے :

انہ مادام رطبا یسبح فیؤنس المیت وتنزل بذکرہ الرحمۃ 2۔ پھول جب تک تر رہے تسبیح کرتا رہتا ہے جس سے میت کو انس حاصل ہوتا ہے اور اس کے ذکر سے رحمت نازل ہوتی ہے۔ (ت)

یونہی تبرک کے لئے غلاف کعبہ معظمہ کا قلیل ٹکڑا سینے یا چہرے پر رکھنا بلاشبہ جائز ہے اور اسے رواج روافض بتانا محض جھوٹ ہے۔ اسد الغابہ وغیرہا میں ہے :

لما حضرہ الموت اوصی ان یکفن في قمیص کان علیہ افضل الصلوٰۃ والسلام کساہ ایاہ، وان جعل ممایلي جسدہ، وکان عندہ قلامۃ اظفارہ علیہ افضل الصلوۃ والسلام فاوصی ان تسحق وتجعل في عینیہ وفمہ، وقال افعلوا ذلك وخلوبیني وبین ارحم الراحمین 3۔

جب حضرت امیر معاویہ کا آخری وقت آیا وصیت فرمائی کہ انہیں اُس قمیص میں کفن دیا جائے جو نبی اکرم صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم نے انہیں عطا فرمائی تھی ، اور یہ ان کے جسم سے متصل رکھی جائے، ان کے پاس حضور اقدس صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم کے ناخن پاک کے کچھ تراشے بھی تھے ان کے متعلق وصیت فرمائی کہ باریک کر کے ان کی آنکھوں اور دہن پر رکھ دئے جائیں۔ فرمایا کہ یہ کام انجام دینا اور مجھے ارحم الراحمین کے سپرد کر دینا (ت)۔

مسئلہ نمبر ۱۸: از سورت اسٹیشن سائن، موضع کٹھور، مرسلہ مولوی عبد الحق صاحب ۲۱ جمادی الاولٰی ۱۳۰۹ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں یہاں رواج ہے کہ شخص میت کو بعد تغسیل و تکفین کے جنازے

---

1 فتاویٰ ہندیہ الباب السادس عشر فی زیارۃ القبور مطبوعہ نورانی کتب خانہ پشاور ۵ / ۳۵۱ 2 ردالمحتار مطلب فی وضع الجرید و نحو الآن علی القبور مطبوعہ ادارۃ الطباعۃ المصریہ مصر ۱ / ۶۰۶ 3 اسد الغابۃ فی معرفۃ الصحابۃ باب المیم والعین مطبوعہ المکتبۃ الاسلامیہ لصاحبھا الحاج ریاض الشیخ ۴ / ۳۸۷

Fatawa Razawiya, Volume 9

... they place [the body], and on the canopy of the funeral bier, they put a cover; for men, they use a shawl, and for women, a 'damni' (head-cloth). Then over that shawl or damni, they place a sheet made of flowers. Is this act shar'iah-permissible for men or not? Please explain and be rewarded.

Answer: Making a canopy or cradle over a woman's funeral bier and placing a cover and veil on it is desirable (mustahabb) and traditional (mathur); it should be so. In the funeral bier of men, there is neither a need for it nor was it the habit of the predecessors (Salaf). Yes, if it is made to protect against heavy rain or sun etc., then there is no harm. In Kashf al-Ghita (it is stated):

It is better that the funeral of women be concealed and scholars have considered making a coffin for them as desirable, but not for men. Except if there is a pressing need like fear of rain, snow, extreme heat, etc.	**It is better to cover the funeral bier of women, and scholars have deemed it commendable to make a coffin for them, but not for men. Unless there is a pressing need like the threat of rain or snow or intense heat, etc. (T)**

And placing expensive fabrics like 'Doshala' (double-shawl) etc., if done for show and pride, is haram (forbidden), especially in the matter of the deceased and the first stages of the hereafter. And if intended for adornment, then that too is disliked (makruh).

In Al-Shamiya, citing Al-Tahtawiya: "And everything in it that is for adornment is disliked."	**In Shami, referencing Tahtawi, it says: "Everything in it which is for adornment is disliked." (T)**

Yes, if the intention is charity (tasadduq), then certainly it is commendable (mahmud). But charity does not depend on placing it on the funeral bier. Similarly, a sheet of flowers with the intention of adornment is disliked. However, if the intention is that, according to Hadith, it is light-scented, of pleasant scent, glorifies God, and provides comfort to the deceased, then there is no harm.

As in the case of graves, in Al-Hindia and others: "Placing roses and fragrant plants on graves is good etc. And Allah Almighty knows best."	**Just as in graves, as stated in Hindia etc.: "Placing roses etc. flowers on graves is good etc. And Allah Almighty knows best." (T)**

1. Kashf al-Ghita, Fifth Section, Ahmadi Press, Delhi, p. 32
2. Radd al-Muhtar, Chapter on Funerals Prayer, Egyptian Printing Administration edition, Egypt, 1/578
3. Fatawa Hindia, Chapter Sixteen: Visiting Graves, Noorani Kutub Khana edition, Peshawar, 5/351

फ़तावा रज़विया, जिल्द 9

...रखते हैं, और जनाज़े की छतरी पर ग़िलाफ़ डाल के मर्द के लिए शाल और औरत के लिए दामनी डाला करते हैं और फिर उस शाल या दामनी को फूलों की एक चादर बना कर डालते हैं तो क्या यह काम मर्द के लिए शरई तौर पर जायज़ है या नहीं? बयान फ़रमाएं, सवाब पाएं।

जवाब: औरतों के जनाज़े पर छतरी या गहवारा बना कर ग़िलाफ़ और पर्दा डालना मुस्तहब (पसंदीदा) और रिवायत से साबित है, ऐसा ही होना चाहिए। मर्दों के जनाज़े में न इसकी ज़रूरत है और न ही बुज़ुर्गों (सलफ़) की आदत थी। हाँ, बारिश या धूप वग़ैरह की शिद्दत से बचाने के लिए बनाएं तो कोई हर्ज नहीं। कश्फ़ुल ग़िता में है:

औरतों के जनाज़े को छुपा देना बेहतर है और इसके लिए संदूक बनाना उलमा ने मुस्तहब (पसंदीदा) क़रार दिया है, मर्द के लिए नहीं। सिवाय इसके कि कोई ज़रूरत हो जैसे बारिश और बर्फ़ का डर हो या सख़्त गर्मी वग़ैरह।

औरतों के जनाज़े को छुपा देना बेहतर है और इसके लिए संदूक बनाना उलमा ने मुस्तहब क़रार दिया है, मर्द के लिए नहीं, मगर ये कि कोई ज़रूरत हो जैसे बारिश और बर्फ़ का अंदेशा हो या सख़्त गर्मी वग़ैरह। (त)

और दोशाला वग़ैरह क़ीमती कपड़े डालने से अगर दिखावा और फ़ख़्र (घमंड) मक़सूद हो तो वो हराम है, ख़ासकर मय्यत के मामले और आख़िरत की पहली मंज़िलों में। और अगर ज़ीनत (सजावट) मुराद हो तो वो भी मकरूह है।

शामी में ततावी के हवाले से है: और इसमें वो सब मकरूह है जो सजावट के लिए हो।

शामी में तहतावी के हवाले से है: इसमें वो सब मकरूह है जो ज़ीनत (सजावट) के लिए हो। (त)

हाँ, अगर सदक़ा करना मंज़ूर हो तो बेशक काबिले-तारीफ़ है। मगर सदक़ा कुछ इस तरह इस पर निर्भर नहीं कि जनाज़े पर डाल ही दें। इसी तरह फूलों की चादर ज़ीनत की नीयत से मकरूह है। और अगर इस इरादे से हो कि हदीसों के मुताबिक़ वो हल्की ख़ुशबू वाली और ख़ुशगवार महक वाली होती है और अल्लाह की तस्बीह करती है और मय्यत को सुकून पहुँचाती है, तो कोई हर्ज नहीं।

जैसा कि क़ब्रों के बारे में हिंदिया वग़ैरह में है: क़ब्रों पर गुलाब वग़ैरह के फूल रखना अच्छा है आदि और अल्लाह तआला बेहतर जानता है।

जैसा कि क़ब्रों में कि हिंदिया वग़ैरह में है: क़ब्रों पर गुलाब वग़ैरह के फूल रखना अच्छा है आदि और अल्लाह तआला बेहतर जानता है (त)

1. कश्फ़ुल ग़िता, फ़स्ल पंचम, मतबअ अहमदी, दिल्ली, पेज 32
2. रद-उल-मुहतार, बाब सलातुल जनाइज़, मिस्र, 1/578
3. फ़तावा हिंदिया, बाब सोलहवाँ: ज़ियारतुल क़ुबूर, पेशावर, 5/351

میں رکھتے ہیں، اور جنازہ کی چھتری پر غلاف ڈال کے مَرد کے واسطے شال اور عورت کے واسطے دامنی ڈالا کرتے ہیں اور پھر اس شال یا دامنی کو پھولوں کی ایک چادر بنا کر ڈالتے ہیں تو آیا یہ امر واسطے مرد کے کرنا شرعاً جائز ہے یا نہیں؟ بینوا توجروا

الجواب جنازہ زنان پر چھتری یا گہوارہ بنا کر غلاف و پردہ ڈالنا مستحب و ماثور ہے، ایسا ہی چاہئے، اور جنازہ مرداں میں نہ اس کی حاجت نہ سلف سے عادت۔ ہاں بارش یا دھوپ وغیرہ کی شدت سے بچانے کو بنائیں تو کچھ حرج نہیں، فی کشف الغطاء (کشف الغطاء میں ہے):

اولٰی آنست کہ پوشیدہ شود جنازہ زنان را و مستحسن داشتہ اند گرفتن صندوق را برائے وے نہ برائے مرد۔ مگر آں کہ ضرورتے داعی باشد چوں خوف باران و برف و شدت گرما و نحو آن

عورتوں کے جنازہ کو چھپا دینا بہتر ہے اور اس کے لئے صندوق بنانا علماء نے مستحسن قرار دیا ہے مرد کے لئے نہیں، مگر یہ کوئی ضرورت داعی ہو بارش اور برف کا اندیشہ ہو یا سخت گرمی وغیرہ ہو۔ (ت)

اور دوشالہ وغیرہ بیش بہا کپڑے ڈالنے سے اگر ریاء و تفاخر ہو تو وہ حرام ہے نہ کہ خاص معاملہ میت واولین منازل آخرت میں، اور اگر زینت مراد ہو تو وہ بھی مکروہ۔

فی الشامیہ عن الطحطاویہ ویکرہ فیہ کل ماکان للزینۃ۔

شامی میں طحطاوی کے حوالے سے ہے: اس میں وہ سب مکروہ ہے جو زینت کے لئے ہو۔ (ت)

ہاں تصدق منظور ہو تو بے شک محمود۔ مگر تصدق کچھ اس طرح اس پر موقوف نہیں کہ جنازہ پر ڈال ہی کر دیں۔ یونہی پھولوں کی چادر بہ نیت زینت مکروہ، اور اگر اس قصد سے ہو کہ وہ بحکم احادیث خفیف الحل و طیب الرائحۃ و مسبح خدا و مونس میت ہے تو حرج نہیں۔

کما فی القبور ففی الھندیۃ وغیرھا وضع الورد والریاحین علی القبور حسن الخ واللہ تعالٰی اعلم۔

جیسے قبروں میں کہ ہندی وغیرہ میں ہے: قبروں پر گلاب وغیرہ کے پھول رکھنا اچھا ہے الخ واللہ تعالٰی اعلم (ت)

1 کشف الغطاء فصل پنجم مطبع احمدی دہلی ص ۳۲ 2 ردالمحتار باب صلوۃ الجنائز مطبوعہ ادارۃ الطباعۃ المصریہ مصر ۱/ ۵۷۸ 3 فتاوٰی ہندیۃ الباب السادس عشر زیارۃ القبور مطبوعہ نورانی کتب خانہ پشاور ۵/ ۳۵۱

Fatawa Rizvia Volume Nine

Problem No. 19: From Manavadar, State of Kathiawar, sent by Master Ismail Sahib - 2 Shawwal 1339 AH Common people, due to custom, insist on putting silk cloths or colorful sheets on the deceased, even though the Mullah Sahibs say they will not come if this is done. When told not to, they say "you are jealous of us." To what extent is it permissible to force this?

The Answer: Coercion is forbidden (haram). And it is not good even if done willingly if the person is not a 'Mullah' or 'Faqir' (meaning they own wealth equivalent to 56 rupees, clear of debt, etc.). Furthermore, such strict adherence to a custom for which there is no proof is unnecessary; one who coerces is not a Mullah but is lowly. And Allah Almighty knows best.

Problem No. 20: From Aligarhganj, Pargana Jahanabad, District Pilibhit, sent by Khalifa Elahi Bakhsh - 18 Rajab 1317 AH If a woman dies, can the husband touch her funeral bier (Janaza) or not?

The Answer: When complete strangers touch the funeral bier, carry it on their shoulders, and take it to the grave, what fault has the husband committed? This issue is merely a false misconception popular among the ignorant. Yes, it is not permissible for the husband to touch the body of his deceased wife, but looking is permitted, as explicitly stated in 'At-Tanweer' and 'Al-Dur' etc. (as elaborated in 'Tanweer-ul-Absar' and 'Dur-re-Mukhtar' etc. - Translator). A stranger is not even permitted to look. A Mahram is permitted to touch except for the area from the stomach, back, and navel to the knees. And Allah Almighty knows best.

Problem No. 21: How is it for a husband to touch his wife's funeral bier? Should he touch it or not? How is it for the husband to see his wife's face after placing her in the grave? Should he or not?

The Answer: After the death of the wife, it is permissible for the husband to see her face or body whether inside or outside the grave. Lowering her into the grave is permissible. And the funeral bier is carried even by complete strangers. Yes, touching her body without a barrier is impermissible for the husband. For a wife, as long as she remains in 'Iddah' (waiting period), it remains permissible for her to touch the body of the deceased husband, and even to give him a ritual bath (ghusl). This issue is in 'Dur-re-Mukhtar' etc. And Allah Almighty knows best.

Problem No. 22: 6 Rabi-ul-Thani 1317 AH It is a custom among the people of Hindustan (India) that when a woman is in the state of 'Naz'a' (death throes), her husband is not allowed to go near her, and the husband does not go near her during the state of death throes, her shrouding, or burial...

फ़तावा रिज़विया जिल्द नहम (खंड 9)

मसला नम्बर 19: मानवादर, रियासत काठियावाड़, मुर्सला मास्टर इस्माइल साहब - 2 शव्वाल 1339 हिजरी तमाम लोग रस्म की वजह से इस मामले में ज़ोर देते हैं, जबकि मुल्ला साहब फरमाते हैं कि हम नहीं आएँगे, रेशमी कपड़ा या रंग-बिरंगी चादरें मय्यत (मृतक) पर डालते हैं और जब उनसे कहा जाता है तो कहते हैं कि तुम लोग हम पर हसद (ईर्ष्या) करते हो, मजबूरी में ऐसा करवाना कहाँ तक जायज़ है?

अल-जवाब (उत्तर): जबर (जबरदस्ती) हराम है। और ख़ुशी से भी न हो अगर व्यक्ति 'मुल्ला' या 'फ़क़ीर' नहीं है, यानी उसके पास छप्पन रुपये का माल है जो क़र्ज़ आदि में नहीं है। इसके अलावा, एक बिना प्रमाण वाली रस्म का ऐसा पाबन्दी करना ज़रूरी नहीं है; जबरदस्ती करने वाला मुल्ला नहीं बल्कि घटिया है। और अल्लाह तआला सबसे बेहतर जानता है।

मसला नम्बर 20: अलीगढ़गंज, परगना जहानाबाद, ज़िला पीलीभीत, मुर्सला ख़लीफ़ा इलाही बख़्श - 18 रजब 1317 हिजरी अगर औरत मर जाए तो शौहर (पति) उसके जनाज़े को हाथ लगाए या नहीं?

अल-जवाब (उत्तर): जनाज़े को जब महज़ अजनबी हाथ लगाते हैं, कन्धों पर उठाते हैं, क़ब्र तक ले जाते हैं, तो शौहर ने क्या क़सूर किया है? यह मसला जाहिलों (अज्ञानियों) में महज़ ग़लत मशहूर है। हाँ, शौहर को अपनी मुर्दह बीवी का बदन छूना जायज़ नहीं, देखने की इजाज़त है जैसा कि 'तन्वीर' और 'दुर्र' आदि में स्पष्ट रूप से उल्लेख है। (जैसा कि तन्वीरुल अबसार और दुर्रे मुख़्तार आदि में इसकी तशरीह है। - अनुवादक)। अजनबी को देखने की भी इजाज़त नहीं। महरम (निकट संबंधी) को पेट, पीठ और नाफ़ (नाभि) से घुटने तक के सिवा छूने की भी इजाज़त है। और अल्लाह तआला सबसे बेहतर जानता है।

मसला नम्बर 21: बीवी का जनाज़ा शौहर को छूना कैसा है? छूना चाहिए या नहीं? शौहर का अपनी बीवी का मुँह क़ब्र में रखने के बाद देखना कैसा है, देखना चाहिए या नहीं?

अल-जवाब (उत्तर): बीवी के इंतक़ाल के बाद शौहर को क़ब्र के अन्दर या बाहर उसका चेहरा या बदन देखना जायज़ है, क़ब्र में उतारना जायज़ है, और जनाज़ा तो महज़ अजनबियों तक द्वारा उठाया जाता है। हाँ, बिना किसी आड़ (कपड़े आदि) के उसके बदन को हाथ लगाना शौहर के लिए नाजायज़ है। बीवी के लिए, जब तक वह इद्दत (प्रतीक्षा अवधि) में रहे, मरे हुए शौहर का बदन छूना बल्कि उसे

ग़ुस्ल (स्नान) देना भी जायज़ रहता है। यह मसला 'दुर्रे मुख़्तार' आदि में है। और अल्लाह तआला सबसे बेहतर जानता है।

मसला नम्बर 22: 6 रबीउल थानी 1317 हिजरी हिन्दुस्तान के लोगों का दस्तूर (रिवाज़) है कि जब औरत 'नज़'अ' (मृत्यु के समय की छटपटाहट) की हालत में होती है, तब उसके शौहर को उसके पास नहीं जाने देते और उसका शौहर नज़'अ की हालत में उसके पास नहीं जाता, उसकी तक्फ़ीन (कफ़न पहनाना) और तदफ़ीन (दफ़नाना)...

पृष्ठ 139 का 948

فتاوٰی رضویہ جلد نہم

مسئلہ نمبر ۱۹: از مانادر ملک کاٹھیاواڑ مرسلہ ماسٹر اسمعیل صاحب ۲ شوال ۱۳۳۹ھ تمام لوگ بوجہ رسم کے بالوجہ اس امر کے ملا صاحب فرماتے ہیں ہم نہیں آئیں گے، ریشمی کپڑا یا رنگ برنگ کی چادریں میت پر ڈالتے ہیں اور جب اُن سے کہا جاتا ہے تو کہتے ہیں تم لوگ ہم پر حسد کرتے ہو، مجبوراً ڈلوانا کہاں تک جائز ہے؟

الجواب: جبر حرام ہے اور بخوشی بھی نہ ہو اگر ملا فقیر نہیں یعنی چھپن روپے کے مال کا مالک ہے جو قرض وغیرہ میں مشغول نہیں، نیز ایک رسم بے ثبوت کا ایسا التزام نہ چاہئے جبر کرنے والا ملّا نہیں گھٹیا ہے واللہ تعالٰی اعلم

مسئلہ نمبر ۲۰: از علیگڑھ گنج پرگنہ جہاں آباد ضلع پیلی بھیت مرسلہ خلیفہ الٰہی بخش ۱۸ رجب ۱۳۱۷ھ اگر عورت مرجائے تو شوہر اس کے جنازے کو ہاتھ لگائے یا نہیں؟

الجواب: جنازے کو محض اجنبی ہاتھ لگاتے، کندھوں پر اٹھاتے، قبر تک لے جاتے ہیں، شوہر نے کیا قصور کیا ہے۔ یہ مسئلہ جاہلوں میں محض غلط مشہور ہے۔ ہاں شوہر کو اپنی زن مردہ کا بدن چھونا جائز نہیں، دیکھنے کی اجازت ہے کما نص علیہ فی التنویر والدر وغیرہما (جیسا کہ تنویر الابصار اور در مختار وغیرہما میں اسکی تصریح ہے۔ ت) اجنبی کو دیکھنے کی بھی اجازت نہیں۔ محارم کو پیٹ، پیٹھ اور ناف سے زانو تک کے سوا چھونے کی بھی اجازت ہے۔ واللہ تعالٰی اعلم۔

مسئلہ نمبر ۲۱: زوجہ کا جنازہ شوہر کو چھونا کیسا ہے؟ چھونا چاہئے یا نہیں؟ شوہر کا اپنی زوجہ کا منہ قبر میں رکھنے کے بعد دیکھنا کیسا ہے ، چاہئے یا نہیں؟

الجواب: شوہر کو بعد انتقال زوجہ قبر میں خواہ بیرون قبر اس کا منہ یا بدن دیکھنا جائز ہے، قبر میں اتارنا جائز ہے، اور جنازہ تو محض اجنبی تک اٹھاتے ہیں، ہاں بغیر حائل کے اس کے بدن کو ہاتھ لگانا شوہر کو ناجائز ہوتا ہے۔ زوجہ کو جب تک عدت میں رہے شوہر مردہ کا بدن چھونا بلکہ اسے غسل دینا بھی جائز رہتا ہے۔ یہ مسئلہ در مختار وغیرہ میں ہے۔ واللہ تعالیٰ اعلم۔

مسئلہ نمبر ۲۲ : ۶ ربیع الثانی ۱۳۱۷ھ ہندوستان کے لوگوں کا دستور ہے کہ جب عورت کی حالت نزع ہوتی ہے تب اس کے شوہر کو اس کے پاس نہیں جانے دیتے اور اس کا شوہر حالت نزع میں اس کے پاس نہیں جاتا اُس کی تکفین و تدفین

Fatawa Rizvia, Volume 9

In this matter as well, they do not include the husband and say that the relationship is now broken. Is this act of theirs permissible or impermissible? Clarify and you shall be rewarded.

The Answer: As long as the soul remains in the woman's body, even if she is in the throes of death, she is undoubtedly his wife. Preventing the husband from coming near her at that time is an injustice, and considering the relationship severed from that moment is sheer ignorance. Even after the woman's death, the husband is permitted to see her, although touching her is prohibited, as explicitly mentioned in 'At-Tanweer', 'Ad-Durr', and others. (As is detailed in 'Tanweer al-Absar' and 'Dur-re-Mukhtar' etc. - Translator). And Allah Almighty knows best.

Problem No. 23: From Punjab, Jhelum district, Post Office and Railway Station Tarraqi, village Ghazi Nara, sent by Mr. Muhammad Majeed-ul-Hassan. 5th Dhu al-Qi'dah 1339 AH.

Famous service of His Eminence, the dominant proof, the reviver of the present century, Maulana Maulvi Ahmad Raza Khan Sahab (may his shadow be prolonged over the heads of the seekers of guidance). After the salutation of Islam, it is submitted that in this country, there is a dispute and disagreement regarding the recitation of Mawlid in front of the funeral procession. One group, based on texts from 'Bahr al-Ra'iq', 'Maraqi al-Falah', 'Qazi Khan', 'Alamgiri' etc., calls it 'Makruh Tahrimi' (prohibitively disliked), while another group calls it permissible and recommended. The decision of all Muslims rests on your writing; it will decide a dispute of several months. Texts of the party claiming dislike. Radd al-Muhtar:

Arabic Text	**Urdu Translation**
It is said to be 'Tahrimi' (prohibitively disliked) and it is said to be 'Tanzihi' (mildly disliked) as stated in 'Al-Bahr' from 'Al-Ghaya'. And in it from the same source: 'It is appropriate for those who follow a funeral procession to maintain silence for a long time'. And in it from 'Al-Zahiriya': 'If one wishes to remember Allah Almighty, let him do so within himself, because Allah	It is said that it is 'Makruh Tahrimi' and it is said to be 'Tanzihi' as is narrated in 'Bahr' from 'Ghaya'. And from the same source, it is also stated: one who follows the funeral should maintain constant silence. And from 'Zahiriya' it is stated: if one wants to do Dhikr of Allah Almighty, let him do it in his heart because the word of Allah Almighty is:

Arabic Text	Urdu Translation
Almighty says: "Indeed, He does not like the transgressors" (i.e., those who are loud in supplication)'. I say, if this is the ruling for supplication and remembrance, then what do you think of the singing that has emerged in this time?[1]	"He does not like those who exceed the limits" - meaning those who raise their voices in prayer. I say, if this is the ruling for prayer and Dhikr, then what would be the state of the melodies and songs that occur in this time?

[1] Radd al-Muhtar, Chapter of Funeral Prayers, printed by Idarah al-Tiba'ah al-Misriyah, Egypt, 1/598.

फ़तावा रिज़विया, जिल्द 9

इस मामले में भी वे पति को शामिल नहीं करते और कहते हैं कि अब रिश्ता टूट गया है, क्या उनका यह कार्य जायज़ है या नाज़ायज़? स्पष्ट करें, आपको पुण्य मिलेगा।

उत्तर: जब तक स्त्री के शरीर में प्राण शेष हैं, चाहे वह मृत्यु की स्थिति में ही क्यों न हो, वह निस्संदेह उसकी पत्नी है। उस समय पति को उसके पास न आने देना अन्याय है और उसी समय से रिश्ते को टूटा हुआ समझ लेना घोर अज्ञानता है। मृत्यु के बाद भी पति को पत्नी को देखने की अनुमति है, हालांकि उसे छूना मना है, जैसा कि 'अत-तनवीर', 'अद-दुर' आदि में स्पष्ट रूप से उल्लेखित है। (जैसा कि 'तनवीर अल-अबसार' और 'दुर-ए-मुख्तार' आदि में विवरण दिया गया है। - अनुवादक)। और अल्लाह सबसे बेहतर जानता है।

मसला नंबर 23: पंजाब, ज़िला झेलम, डाकखाना और रेलवे स्टेशन तरक्की, गाँव गाज़ी नारा से, प्रेषक मोहम्मद मजीद-उल-हसन साहब। 5 ज़ुल-क़ादा 1339 हिजरी।

माननीय सेवा में, वर्तमान शताब्दी के मुजद्दिद, मौलाना मौलवी अहमद रज़ा खान साहब (उनका साया मार्गदर्शन चाहने वालों के सिर पर बना रहे)। इस्लाम के सलाम के बाद निवेदन है कि इस देश में जनाज़े के आगे मौलूद ख्वानी (मिलाद पढ़ना) के बारे में मतभेद और झगड़ा है। एक समूह 'बहर अल-राइक़', 'मराक़ी अल-फ़लाह', 'क़ाज़ी ख़ान', 'आलमगीरी' आदि के उद्धरणों के आधार पर इसे 'मक़रूहे तहरीमी' (वर्जित के करीब नापसंद) कहता है, जबकि दूसरा समूह इसे जायज़ और मुस्तहब (सराहनीय) कहता है। सभी मुसलमानों का फैसला आपके लेखन पर निर्भर है; इससे कई महीनों के विवाद का फैसला होगा। अरुचि (कराहत) का दावा करने वाले पक्ष के उद्धरण। रद अल-मुह्तार:

अरबी पाठ	**उर्दू अनुवाद**
कहा गया है कि यह 'तहरीमी' है और कहा गया है कि 'तन्ज़ीही' है जैसा कि 'अल-बहर' में 'अल-ग़ाया' से है। और उसमें उसी से है: 'जनाज़े के पीछे चलने वालों के लिए उचित है कि वे देर तक मौन रहें'। और उसमें 'अल-ज़हीरिया' से है: 'यदि कोई अल्लाह तआला का ज़िक्र करना चाहे, तो उसे अपने मन में करना चाहिए, क्योंकि अल्लाह तआला कहता है:	कहा गया है कि मक़रूहे तहरीमी है और कहा गया है कि तन्ज़ीही है जैसा कि 'बहर' में 'ग़ाया' से उद्धृत है। और उसी में यह भी है: जनाज़े के पीछे चलने वाले को बराबर खामोश रहना चाहिए। और 'ज़हीरिया' से है: अगर अल्लाह तआला का ज़िक्र करना चाहे तो दिल में करे क्योंकि अल्लाह तआला का फ़रमान है: वह

अरबी पाठ	उर्दू अनुवाद
"बेशक, वह सीमा पार करने वालों को पसंद नहीं करता" (अर्थात वे जो दुआ में आवाज़ ऊँची करते हैं)'। मैं कहता हूँ, यदि दुआ और ज़िक्र के लिए यह हुक्म है, तो उस गायन के बारे में आपका क्या विचार है जो इस ज़माने में पैदा हुआ है?[1]	सीमा पार करने वालों को पसंद नहीं करता-- यानी दुआ में शोर करने वालों को-- मैं कहता हूँ जब दुआ और ज़िक्र का यह हुक्म है तो उस धुन और गाने का क्या हाल होगा जो इस ज़माने में (होता है)।

[1] रद अल-मुह्तार, जनाज़े की नमाज़ का अध्याय, इदारात अल-तिबाअत अल-मिसरिया, मिस्र द्वारा मुद्रित, 1/598।

میں بھی شوہر کو شریک نہیں کرتے اور کہتے ہیں اب اس کا رشتہ ٹوٹ گیا، آیا یہ فعل ان کا جائز ہے یا نا جائز؟ بینوا توجروا

الجواب: جب تک جسم زن میں روح باقی ہے اگرچہ حالتِ نزع ہو بلاشبہ اس کی زوجہ ہے، اور اس وقت شوہر کو پاس نہ آنے دینا ظلم ہے اور اسی وقت سے رشتہ منقطع سمجھ لینا سخت جہل، اور بعدِ موت زن بھی شوہر کو دیکھنے کی اجازت ہے البتہ ہاتھ لگانا منع ہے کما نص علیہ في التنویر والدر وغیرھا (جیسا کہ تنویر الابصار اور درِ مختار وغیرہما میں اس کی تصریح ہے۔ ت) واللہ تعالٰی اعلم

مسئلہ نمبر ۲۳: از پنجاب ضلع جہلم ڈاکخانہ و ریلوے اسٹیشن ترقی موضع غازی ناڑہ مرسلہ محمد مجید الحسن صاحب۔ ۵ ذی القعدہ ۱۳۳۹ھ

مشہور خدمت جناب صاحب حجت قاہرہ مجددِ مائہ حاضرہ مولنا مولوی احمد رضا خان صاحب دام ظلم علی راس المسترشدین بعد سلام سنتہ الاسلام عرض ہے کہ اس ملک میں جنازہ کے آگے مولود خوانی میں اختلاف اور جھگڑا ہے ایک طائفہ بحر الرائق و مراقی الفلاح و قاضی خان و عالمگیری وغیرہما کی عبارات سے مکروہِ تحریمی کہتے ہیں، اور دوسری جماعت جائز و مستحب کہتی ہے، آپ کی تحریر پر جملہ مسلمانوں کا فیصلہ ہے کئی ماہ کے تنازع کا فیصلہ ہو گا۔ عبارات فریق قائل کراہت۔ ردالمحتار:

عربی عبارت	اردو ترجمہ
قيل تحريماً وقيل تنزيها كما في البحر عن الغاية وفيه عنها وينبغى لمن تبع الجنازة ان يطيل الصمت وفيه عن الظهيرية فان اراد ان يذكر الله تعالى يذكر في نفسه لقوله تعالى انه لا يحب المعتدين اى الجاهرين بالدعاء قلت اذا كان هذا فى الدعاء والذكر فما ظنك بالغناء الحادث فى هذا الزمان۔[1]	کہا گیا کہ مکروہِ تحریمی ہے اور کہا گیا کہ تنزیہی جیسا کہ بحر میں غایہ سے منقول ہے، اور اس میں اسی سے یہ بھی ہے : جنازہ کے پیچھے چلنے والے کو برابر سکوت رکھنا چاہئے، اور اسی میں ظہیریہ سے ہے: اگر اللہ تعالیٰ کا ذکر کرنا چاہے تو دل میں کرے اس لئے کہ باری تعالیٰ کا ارشاد ہے: وہ حد سے بڑھنے والوں کو پسند نہیں فرماتا۔ یعنی دُعا میں جہر کرنے والوں کو۔ میں کہتا ہوں یہ جب دعا و ذکر کا حکم ہے تو اس نغمہ اور گانے کا کیا حال ہوگا جو اس زمانے میں (ہوتا ہے)۔

[1] ردالمحتار باب صلواۃ الجنائز مطبوعہ ادارۃ الطباعۃ المصریہ مصر ۵۹۸/۱

Arabic: In al-Bahr al-Ra'iq: It is proper for the one who follows a funeral procession to prolong silence, and raising the voice for Dhikr (remembrance of Allah) and recitation of the Quran is disliked (Makruh)... etc.

Statement of the party arguing for permissibility

Arabic: Narrated from Ibn Umar (may Allah be pleased with them both): Nothing was heard from the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) while he was walking behind a funeral except for the statement 'La ilaha illa Allah' (There is no god but Allah). Recorded by Ibn Adi in the biography of Ibrahim ibn Abi Hamid, and he weakened it. *Takhrij Ahadith al-Hidayah* by Ibn Hajar (2).

It is a product of... It is mentioned in al-Bahr al-Ra'iq that those walking behind a funeral should maintain long silence, and loud Dhikr and Quranic recitation are Makruh (disliked) etc. (T)

Narrated from Hazrat Ibn Umar (may Allah be pleased with him): When the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) walked behind a funeral, nothing but the Kalimah 'La ilaha illa Allah' was heard from him. Ibn Adi mentioned this in the account of Ibrahim ibn Abi Hamid and called it weak. *Takhrij Ahadith-e-Hidayah* by Allama Ibn Hajar (T).

Meaning, at least a low-voiced recitation is proven from this, etc. Explain and be rewarded.

The Answer: Walaikum Assalam wa Rahmatullah wa Barakatuhu. Yes, in the books of the Hanafi school, audible Dhikr (remembrance) along with the funeral procession is written as Makruh, just as the act of audible Dhikr itself is mentioned as Makruh in many Hanafi books, even though it is proven from the explicit verses of the Great

Quran and the Ahadith of the Leader of the Messengers (peace and blessings of Allah be upon him). Upon detailed investigation, the occurrence of dislike (karahat) is due to external, non-inherent factors, as researched by Allama Khairuddin Ramli, the teacher of the author of *Durr al-Mukhtar*, and other researchers, and we have clarified this in our Fatwa. Here too, the origin is external factors, such as the distraction of the companions' hearts or their attention turning away from death. Be fair, this ruling was for that era of goodness when those accompanying the funeral were so immersed in the contemplation of death that it was as if the deceased were a beloved piece of their own heart, or rather, as if they themselves were the deceased, being carried on the funeral bier. And now...

---

1. *Al-Bahr al-Ra'iq*, Kitab al-Jana'iz, Chapter: The Sultan is most deserving of the prayer, published by HM Saeed Company, Karachi, 2/192.
2. *Al-Kamil fi Du'afa al-Rijal*, under the biography of Ibrahim ibn Ahmad, published by Dar al-Fikr, Beirut, 1/269. *Sahih Bukhari*, Kitab al-Hayd, published by Qadeemi Kutub Khana, Karachi, 1/44. F: He is Ibrahim ibn Ahmad al-Harrani al-Darir. See *Hashiyah Nasab al-Rayah* 3/292. Ibrahim al-Harrani is the son of Abi Hamid, accused of fabricating Hadith. See *al-Lisan* 28/1, Nazir Ahmad Sa'eedi.

फ़तावा रिज़विया जिल्द नहुम (9)

अरबी: अल-बहर अल-रैक में है: जनाजे के पीछे चलने वाले के लिए उचित है कि वह लंबी खामोशी अख्तियार करे, और ज़िक्र व क़ुरआन की तिलावत के लिए आवाज़ बुलंद करना मकरूह (नापसंदीदा) है... इत्यादि।

यह अल-बहर अल-रैक की उपज है... अल-बहर अल-रैक में है कि जनाजे के पीछे चलने वालों को लंबी खामोशी इख्तियार करनी चाहिए और बुलंद आवाज़ से ज़िक्र व तिलावत-ए-क़ुरआन मकरूह है इत्यादि। (त)

अनुमति के पक्षधर गुट का कथन

हज़रत इब्न उमर (रज़ियल्लाहु अन्हु) से रिवायत है: जब रसूलुल्लाह (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) जनाजे के पीछे चलते थे, तो उनसे कलिमा 'ला इलाहा इल्लल्लाह' के अलावा कुछ नहीं सुना जाता था। इसे इब्न अदी ने इब्राहिम बिन अबी हमीद की जीवनी में उद्धृत किया है और इसे ज़ईफ़ (कमज़ोर) कहा है। तख़रीज अहादीसुल हिदाया अज़ इब्न हजर (2)।

अरबी: हज़रत इब्न उमर रज़ियल्लाहु तआला अन्हु से मरवी है: जब रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम जनाज़े के पीछे चलते तो हुज़ूर से कलिमा 'ला इलाहा इल्लल्लाह' के सिवा कुछ न सुना जाता। इब्न अदी ने इब्राहिम बिन अबी हमीद के हालात में इसकी तख़रीज की है और इसे ज़ईफ़ कहा है। तख़रीज अहादीस-ए-हिदाया अज़ अल्लामा इब्न-ए-हजर (त)।

यानी इससे कम से कम ज़ह्र (ऊँची आवाज़) साबित होता है वग़ैरह। बयान करें सवाब पाएँ।

अल-जवाब: वअलैकुम अस्सलाम व रहमतुल्लाहि व बरकातुहू। हाँ, हनफ़ी किताबों में जनाज़े के साथ ज़िक्र-ए-ज़ह्र (ऊँची आवाज़ में ज़िक्र) को मकरूह लिखा है, जिस तरह खुद ज़िक्र-ए-ज़ह्र को बहुत सी हनफ़ी किताबों में मकरूह बताया गया है, हालाँकि वह अज़ीम क़ुरआन और सैयदुल

मुरसलीन सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम की अहादीस से साबित है। और गहन शोध (तहक़ीक़) के अनुसार कराहत का कारण बाहरी कारक (अवारिज़-ए-ख़ारजा) हैं जो अनिवार्य नहीं हैं, जैसा कि दुर्र-ए-मुख्तार के लेखक के उस्ताद अल्लामा खैरूद्दीन रमली और अन्य शोधकर्ताओं ने शोध किया है और हमने अपने फ़तवे में इसे स्पष्ट किया है। यहाँ भी इसका कारण बाहरी कारक ही हैं, जैसे साथ चलने वालों के दिलों का विचलित होना या मौत से ध्यान हट जाना। इंसाफ़ कीजिए, यह हुक्म उस नेक ज़माने के लिए था जब जनाज़े के साथ चलने वाले मौत की सोच में इस तरह डूबे होते थे जैसे कि मरने वाला उनमें से हर एक का अपना कोई जिगर का टुकड़ा हो, बल्कि जैसे वे खुद ही मैय्यत हों और उन्हें जनाज़े पर ले जाया जा रहा हो। और अब...

---

1. अल-बहर अल-रैक, किताबुल जनाइज़, फ़स्ल: सुल्तान नमाज़ का ज़्यादा हक़दार है, एच.एम. सईद कंपनी, कराची द्वारा प्रकाशित, 2/192.
2. अल-कामिल फ़ी ज़ुअफ़ा अर-रिजाल, इब्राहिम बिन अहमद की जीवनी के अंतर्गत, दारुल फ़िक्र, बेरूत द्वारा प्रकाशित, 1/269. सही बुखारी, किताबुल हैज़, क़दीमी कुतुब ख़ाना, कराची द्वारा प्रकाशित, 1/44. फ़: वह इब्राहिम बिन अहमद अल-हरानी अल-ज़रीर है। नसब अर-राया का हाशिया देखें, 3/292. इब्राहिम अल-हरानी इब्न अबी हमीद का बेटा है जिस पर हदीस गढ़ने का आरोप है। अल-लिसान देखें 28/1, नज़ीर अहमद सईदी।

بحرالرائق ینبغی لمن تبع الجنازۃ ان یطیل الصمت ویکرہ رفع الصوت بالذکر وقراءۃ القرآن ۱ الخ

کی پیداوار ہے۔۔۔ بحرالرائق میں ہے جنازہ کے پیچھے چلنے والے کو طولِ سکوت اختیار کرنا چاہئے اور بلند آواز سے ذکر و تلاوت قرآن مکروہ ہے الخ (ت)

عبارت فریق قائل بحلت

حضرت ابن عمر رضی اللہ تعالٰی عنہ سے مروی ہے: جب رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم جنازہ کے پیچھے چلتے تو حضور سے کلمہ لا الہ الا اللہ کے سوا کچھ نہ سنا جاتا۔ ابن عدی نے ابراہیم بن ابی حمید کے حالات میں اس کی تخریج کی ہے اور اسے ضعیف کہا ہے۔ تخریج احادیثِ ہدایہ از علامہ ابنِ حجر (ت)

عن ابن عمر رضی اللہ تعالٰی عنہما لم یکن یسمع من رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم وھو یمشی خلف الجنازۃ الاقول لا الہ الا اللہ اخرجہ ابن عدی فی ترجمۃ ف براھیم بن ابی حمید وضعہ، تخریج احادیث الھدایۃ لابن حجر ۲۔

یعنی اس سے ادنیٰ جہر ثابت ہوتا ہے وغیرہ۔ بینوا توجروا

الجواب: وعلیکم السلام ورحمۃ اللہ وبرکاتہ، ہاں کتب حنفیہ میں جنازے کے ساتھ ذکر جہر کو مکروہ لکھا ہے جس طرح خود نفسِ ذکرِ جہر کو بکثرت کتب حنفیہ میں مکروہ بتایا حالانکہ وہ اطلاعات قرآن عظیم و احادیث حضور سید المرسلین صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم سے ثابت ہے اور عندالتحقیق کراہت کا عروض نظر بعوارضِ خارجہ غیر لازمہ ہے جیسا کہ علامہ خیرالدین رملی استاد صاحب درِمختار وغیرہ محققین نے تحقیق فرمایا اور ہم نے اپنے فتویٰ میں اسے منقح کیا، یہاں بھی اس کا منشاء عوارض ہی ہیں قلب ہمراہیان کا مشوش ہونا یا موت سے دوسری طرف توجہ کرنا انصاف کیجئے تو یہ حکم اس زمانِ خیر کے لئے تھا جبکہ ہمراہیان جنازہ تصورِ موت میں ایسے غرق ہوتے تھے کہ گویا میت ان میں ہر ایک کا خاص اپنا کوئی جگر پارہ ہے بلکہ گویا خود ہی میت ہیں ، ہمیں کو جنازہ پر لئے جاتے ہیں اور اب

---

1 بحر الرائق کتاب الجنائز فصل السلطان احق بصلوتہ مطبوعہ ایچ ایم سعید کمپنی کراچی ۲/۱۹۲

2 الکامل فی ضعفاء الرجال ترجمہ ابراہیم بن احمد کے تحت مطبوعہ دارالفکر بیروت ۲۶۹/۱، صحیح بخاری کتاب الحیض مطبوعہ قدیمی کتب خانہ کراچی ۴۴/۱ ف: ھو ابراہیم بن احمد الحرانی الضریر۔ انظر حاشیۃ نصب الرایۃ ۳ /۲۹۲۔ ابراہیم الحرانی ھوابن ابی حمید متھم بوضع الحدیث۔ انظر اللسان ۲۸/۱ نذیر احمد سعیدی

Fatawa Rizwia Volume 9

...they will place [him] in the grave, and therefore the scholars preferred absolute silence, that speech, even if it be remembrance (dhikr), even if it be silent, with the notion that (it is extremely beneficial and useful and something that washes away years of rust from the heart) will stop or at least the heart will be distracted, so at that time absolute silence is most appropriate, otherwise silent remembrance of Allah and His Messenger is not forbidden at any time. Ummul Mu'minin Siddiqa (may Allah be pleased with her) says:

The Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) used to remember Allah Almighty at all times.[1] — Narrated by Muslim and Abu Dawud and At-Tirmidhi and Ibn Majah and Al-Bukhari mentioned it as a mu'allaq report.	The Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) used to remember God at all times. Muslim, Ahmad, Abu Dawud, Tirmidhi, Ibn Majah narrated it and Bukhari narrated it as a mu'allaq report. (T)

Nothing is better than it, Allah Almighty said: "And the remembrance of Allah is greatest"[2] (Al-Quran 29:45). Now that times have changed, people, while accompanying a funeral, at the time of burial, and sitting on graves, engage in trivialities, useless talk, and worldly discussions, even laughter and play. In such a situation, engaging them in the remembrance of Allah Almighty and His Messenger (peace and blessings of Allah be upon him) is exactly right and a meritorious act. Furthermore, there is a difference of opinion regarding the dislike (karahat) of loud dhikr with a funeral, whether it is tahrimi (prohibitively disliked) or tanzihi (lightly disliked), and the preference also varies. In 'Al-Qunya,' preference is given to karahat tanzihi, and this was firmly stated in 'Fatawa Tatimmah,' and this is the implication of the word 'yanbaghi' (it is appropriate) in 'Tajreed,' 'Mujtaba,' 'Hawi,' 'Bahr al-Raiq,' etc. And leaving the lesser (adna) is not a sin at all, as they [scholars] have explicitly stated and we have researched in the treatise 'Jumal al-Majaliyyah' (As the scholars have made it clear and we have researched it in the treatise 'Jumal al-Majaliyyah: That the disliked action of tanzihi is not a sin' in 1304 AH). And to forbid the common people from such remembrance of Allah Almighty which is not a sin according to Sharia is merely ill-will towards Muslims in general. No one will commit such an act except a dry ascetic (muntaqashif) who is ignorant and unaware of the objectives of Sharia, or a pretender (mutasallif) who wants to elevate his own fame and status by creating discord among Muslims. Rather, the sincere Imams go so far as to say that it is necessary to forbid only those evil acts which are unanimously agreed upon as

haram. Instead, they have clearly stated that if common people are busy in the remembrance of God in any way, they should never be stopped even if that method is haram in one's own school of thought. For example, prayer is forbidden at sunrise, but if common people are praying, they should not be stopped so that they may take God's name in some way and prostrate to Him, even if its validity can be found in some other school of thought. Imam Allama...

---

[1] Sahih Muslim, Kitab al-Haydh, printed by Qadeemi Kutub Khana, Karachi, 1/162. [2] Al-Quran 29/45.

फ़तावा रजविया जिल्द 9

...क़ब्र में रखेंगे, और इसीलिए विद्वानों ने पूर्ण मौन को पसंद किया कि बातचीत, भले ही वह ज़िक्र (स्मरण) ही क्यों न हो, भले ही वह धीमे स्वर में हो, इस विचार से कि (यह अत्यंत लाभकारी और उपयोगी है और वर्षों के दिल के ज़ंग को धोने वाला है) रुकेगा या कम से कम दिल बंट तो जाएगा, तो उस समय केवल मौन ही सबसे उपयुक्त है, अन्यथा अल्लाह और उसके रसूल का मौन ज़िक्र किसी भी समय मना नहीं है। उम्मुल मुमिनीन सिद्दीका (रज़ियल्लाहु अन्हा) फरमाती हैं:

अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) हर समय अल्लाह का ज़िक्र किया करते थे।[1] — इसे मुस्लिम, अबू दाऊद, तिर्मिज़ी और इब्न माजाह ने रिवायत किया और बुखारी ने इसे तअलीक़न रिवायत किया।	अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) हर समय ख़ुदा का ज़िक्र किया करते थे। इसे मुस्लिम, अहमद, अबू दाऊद, तिर्मिज़ी, इब्न माजाह ने रिवायत किया और बुखारी ने तअलीक़न रिवायत किया। (त)

उससे बेहतर कोई चीज़ नहीं, अल्लाह अज़्ज़ व जल्ल ने फ़रमाया: "और अल्लाह का ज़िक्र सबसे बड़ा है"[2] (अल-क़ुरान 29:45)। अब जबकि ज़माना बदल गया है, लोग जनाज़े के साथ, दफ़्न के समय और क़ब्रों पर बैठकर व्यर्थ बातों, फ़ुज़ूलियात और दुनियावी चर्चाओं, बल्कि हंसी-मज़ाक में मसरूफ़ रहते हैं। तो उन्हें अल्लाह अज़्ज़ व जल्ल और उसके रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) के ज़िक्र की ओर मसरूफ़ करना पूरी तरह सही और सवाब का काम है। इसके साथ ही जनाज़े के साथ ऊंचे स्वर में ज़िक्र की कराहत (नापसंदगी) में मतभेद है कि वह तहरीमी (सख्त मना) है या तंज़ीही (हल्की मनाही), और प्राथमिकता भी अलग-अलग आई है। 'क़ुनिया' में कराहत-ए-तंज़ीही को प्राथमिकता दी गई और इसी पर 'फ़तावा तत्मिमा' में दृढ़ता से कहा गया, और यही 'तज़्रीद', 'मुज्तबा', 'हावी', 'बह्र-उर-राइक़' आदि के शब्द 'यन्बग़ी' (उचित है) का अर्थ है। और अदना (न्यूनतम) को छोड़ना मूल रूप से गुनाह नहीं है, जैसा कि विद्वानों ने स्पष्ट किया है और हमने रिसाला 'जुमलुल मजल्लिय्या' में इसकी तहक़ीक़ की है (जैसा कि विद्वानों ने इसे स्पष्ट किया है और हमने 1304 हिजरी में 'जुमलुल मजल्लिय्या: कि मकरूह-ए-तंज़ीही गुनाह नहीं है' रिसाले में शोध किया है)। और आम जनता को अल्लाह के ऐसे ज़िक्र से रोकना जो शरीअत के अनुसार गुनाह नहीं है, केवल आम मुसलमानों के प्रति दुर्भावना है। इसका अपराधी वही होगा जो या तो शुष्क तपस्वी (मुन्तशिफ़) हो जो शरीअत के उद्देश्यों से अनभिज्ञ और अनजान हो, या फिर वह जो मुसलमानों में फूट डालकर अपनी प्रसिद्धि और प्रतिष्ठा चाहता हो (मुतसल्लिफ़)। बल्कि हितैषी इमाम तो यहाँ तक फरमाते हैं कि केवल उन्हीं

बुराइयों से रोकना ज़रूरी है जो सर्वसम्मति से हराम हों। बल्कि उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा है कि अगर आम जनता किसी तरह से याद-ए-खुदा में मशगूल है, तो उन्हें हरगिज़ नहीं रोका जाना चाहिए, भले ही वह तरीका अपने मज़हब (विचारधारा) में हराम हो। उदाहरण के लिए, सूर्योदय के समय नमाज़ हराम है, लेकिन अगर आम जनता नमाज़ पढ़ रही हो, तो उन्हें न रोका जाए ताकि वे किसी तरह खुदा का नाम तो लें और उसे सजदा तो करें, भले ही इसकी वैधता किसी दूसरे मज़हब में संभव हो। इमाम अल्लामा...

---

[1] सही मुस्लिम, किताबुल हैज़, क़दीमी कुतुब खाना कराची द्वारा मुद्रित, 1/162। [2] अल-क़ुरान 29/45।

قبر میں رکھیں گے، ولہٰذا علماء نے سکوتِ محض کو پسند کیا تھا کہ کلام اگرچہ ذکر ہی ہو اگرچہ آہستہ ہو، اس تصور سے کہ (بغایت نافع اور مفید اور برسوں کے زنگ دل سے دھو دینے والا ہے) روکے گا یا کم از کم دل بٹ تو جائے گا تو اس وقت محض خاموشی ہی مناسب تر ہے، ورنہ خاموش اللہ کا ذکر خدا اور رسول نہ کسی وقت منع ہے۔ ام المومنین صدیقہ رضی اللہ تعالٰی عنہا فرماتی ہیں:

کان رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم یذکر اللہ تعالٰی علی کل احیانہ [1] ۔ رواہ مسلم وابو داؤد والترمذی و ابن ماجۃ وَعَلَّقَہُ البخاری۔	رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم ہر وقت خدا کا ذکر کیا کرتے۔ اسے مسلم، احمد، ابوداؤد، ترمذی ، ابن ماجہ نے روایت کیا اور بخاری نے تعلیقاً روایت کیا۔ (ت)

نہ کوئی چیز اس سے بہتر، قال اللہ عز وجل وَلَذِکْرُ اللہِ اَکْبَرُ [2] (اللہ عزوجل نے فرمایا اور اللہ کا ذکر سب سے بڑا ہے) اب کہ زمانہ منقلب ہوا، لوگ جنازہ کے ساتھ اور دفن کے وقت اور قبروں پر بیٹھ کر لغویات و فضولیات اور دنیوی تذکروں بلکہ خندہ و لہو میں مشغول ہوتے ہیں تو انہیں ذکر خدا اور رسول جل وعلا و صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم کی طرف مشغول کرنا عین صواب و کارِ ثواب ہے معہذا جنازہ کے ساتھ ذکر جہر کی کراہت میں اختلاف ہے کہ تحریمی ہے یا تنزیہی ہے، اور ترجیح بھی مختلف آئی۔ قنیہ میں کراہت تنزیہ کو ترجیح دی اور اسی پر فتاوٰی تمنہ میں جزم فرمایا اور یہی تجرید و مجتبٰی و حاوی و بحر الرائق و غیرہا کے لفظ ینبغی کا مفاد ہے اور ترک ادنٰی اصلاً گناہ نہیں کما نصوا علیہ وحققناہ فی جمل مجلیۃ (جیسا کہ علماء نے اس کی صراحت فرمائی اور ہم نے رسالے جمل مجلیۃ ان المکروہ تنزیھا لیس بمعصیۃ ۱۳۰۴ھ میں اس کی تحقیق کی ہے۔

ت) اور عوام کو اللہ عزوجل کے ایسے ذکر سے منع کرنا جو شرعاً گناہ نہ ہو محض بدخواہیِ عام مسلمین ہے اور اس کا مرتکب نہ ہو گا مگر منتقشف کہ مقاصدِ شرع سے جاہل و ناواقف ہو یا متصلف کہ مسلمانوں میں اختلاف ڈال کر اپنی رفعت و شہرت چاہتا ہو، بلکہ ائمہ ناصحین تو یہاں تک فرماتے ہیں کہ منع کرنا اس منکر سے ضرور ہے جو بالاجماع حرام ہو، بلکہ تصریحیں فرمائیں کہ عوام اگر کسی طرح یادِ خدا میں مشغول ہوں ہرگز منع نہ کئے جائیں اگرچہ وہ طریقہ اپنے مذہب میں حرام ہو، مثلاً سورج نکلتے وقت نماز حرام ہے اور عوام پڑھتے ہوں تو نہ روکے جائیں کہ کسی طرح وہ خدا کا نام تو لیں اسے سجدہ تو کریں اگرچہ کسی دوسرے مذہب پر اس کی صحت ہو سکے امام علامہ

---

1 صحیح مسلم کتاب الحیض مطبوعہ قدیمی کتب خانہ کراچی ۱/ ۱۶۲ 2 القرآن ۲۹/ ۴۵

Volume 9 | Fatawa Rizvia

Arif-billah, the counselor of the Ummah, Syed Abdul Ghani Nabulsi (may Allah sanctify his secret) states in the venerable book 'Al-Hadiqa an-Nadiya', a commentary on 'Al-Tariqa al-Muhammadiyya':

[Arabic Text Summary]: It is mentioned in the commentary of Al-Tahtawi that it is necessary for those accompanying a funeral to observe silence. In 'Al-Mujtaba', 'Al-Tajreed', and 'Al-Hawi', it is stated that one should maintain a lengthy silence, as it was the practice of the Messengers (peace be upon them) to remain silent during funerals. This is also stated in 'Munya al-Mufti'. Raising one's voice is prohibitively disliked (Makruh Tahrimi), and some say it is mildly disliked (Tanzihi). In 'Qunya', it is mentioned that raising the voice is disliked (Makruh), meaning it is better to avoid it. In 'Jami' al-Shuruh', it is advised to recite glorifications silently behind the funeral and avoid worldly talk. However, some scholars permitted loud remembrance for the benefit of the living and the dead. In 'Al-Uqud al-Muhammadiyya', it is noted that the local scholar should teach people to avoid idle talk during funerals.

[Urdu Translation Summary]: It is stated in Sharh al-Tahtawi: Silence is mandatory for those following a funeral. According to 'Al-Mujtaba', 'Tajreed', and 'Hawi', one should maintain long silence; it is the Sunnah of the Messengers to be quiet with the funeral. Munya al-Mufti states that raising the voice is prohibitively disliked. In 'Jami' al-Shuruh', it is said one should perform silent Tasbeeh and Tahleel behind the funeral and avoid worldly speech. Some scholars allow loud Dhikr to instruct the deceased and warn the living against worldly attachment. Allama Sha'rani mentions that scholars should teach people to avoid idle talk during funerals and not discuss political appointments.

Page 143 of 948

जिल्द नौ | फतावा रज़विया

आरिफ बिल्लाह नासेह अल-उम्माह सैयद अब्दुल गनी नाबुलसी (क़ुद्दसा सिर्रुहु अल-क़ुदसी) अपनी सम्मानित पुस्तक 'अल-हदीक़ा अन-नदिया फ़ी शरह अल-तरीक़ा अल-मुहम्मदिया' में फ़रमाते हैं:

[अरबी पाठ का सारांश]: शरह तहतावी में उल्लेख है कि जनाज़ा के साथ चलने वालों के लिए खामोशी आवश्यक है। 'अल-मुजतबा', 'तजरीद' और 'हावी' में कहा गया है कि लंबी खामोशी बनाए रखनी चाहिए, क्योंकि जनाज़े के दौरान खामोश रहना रसूलो (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) की सुन्नत थी। मुनियतुल मुफ़्ती के अनुसार आवाज़ बुलंद करना सख़्त नापसंद (मकरूह तहरीमी) है। 'कुन्या' में इसे मकरूह कहा गया है, जिसका अर्थ है इससे बचना बेहतर है। 'जामे-उश-शुरूह' में जनाज़े के पीछे चुपचाप तस्बीह पढ़ने और दुनियावी बातों से बचने की सलाह दी गई है। हालांकि, कुछ विद्वानों ने जीवित और मृतकों के लाभ के लिए ऊँची आवाज़ में ज़िक्र की अनुमति दी है। 'अल-उहूद अल-मुहम्मदिया' में कहा गया है कि स्थानीय आलिम को लोगों को जनाज़े के दौरान व्यर्थ की बातों से बचने की शिक्षा देनी चाहिए।

[उर्दू अनुवाद का सारांश]: शरह तहतावी में है: जनाज़ा के साथ चलने वालों पर खामोशी लाज़िम है। मुजतबा, तजरीद और हावी के अनुसार तूल-ए-सुकूत अख्तियार करना चाहिए। जामे-उश-शुरूह में कहा गया है कि जनाज़े के पीछे चुपचाप तस्बीह और तहलील करें। कुछ मशाइख ने मय्यित और ज़िन्दों को नसीहत के लिए ऊँची आवाज़ में ज़िक्र को जायज़ कहा है ताकि दुनियावी मोह दूर हो। अल्लामा शेरानी उल्लेख करते हैं कि विद्वानों को चाहिए कि वे लोगों को जनाज़े में फ़ुज़ूल बातों और राजनीति की चर्चा से बचने की तालीम दें।

पृष्ठ 143/948

عارف باللہ ناصح الامہ سید عبدالغنی نابلسی قدس سرہ القدسی کتاب مستطاب الحدیقۃ الندیہ فی شرح الطریقۃ المحمدیہ میں فرماتے ہیں:

قال فی شرح الطحطاوی علی مشیع الجنازۃ الصمت وعبر فی المجتبی والتجدید والحاوی ینبغی ان یطیل الصمت وسنن المرسلین الصمت معھا کذا فی منیۃ المفتی ویکرہ لھم رفع الصوت کراھۃ تحریم وقیل تنزیہ، قنیۃ. وھویکرہ علی معنی انہ تارک الاولی کما عزاہ فی التتمۃ الی والدہ وفي شرح شرعۃ الاسلام المسمی بجامع الشروح یستکثر من التسبیح والتھلیل علی سبیل الاخفاء خلف الجنازۃ ولا یتکلم بشیئ من امر الدنیا لکن بعض المشائخ جوزوا الذکر الجھری ورفع الصوت بالتعظیم بغیر التغییر بادخال حرف فی خلالہ قدام الجنازۃ وخلفھا لتلقین المیت والاموات والاحیاء وتنبیہ الغفلۃ والظلمۃ و ازالۃ صداء القلوب وقساوتھا یجب الدنیا ورياستھا وفي کتاب العھود المحمدیۃ للشیخ الشعرانی قدس اللہ تعالی سرہ ینبغی لعالم الحارہ ان یعلم من یرید المشی مع الجنازۃ عدم اللغو فیھا وذکر من تولی وعزل عن

شرح طحطاوی میں ہے: جنازہ کے ساتھ چلنے والے پر خاموشی لازم ہے۔ مجتبی، تجرید اور حاوی کے الفاظ یہ ہیں کہ : اسے طول سکوت اختیار کرنا چاہئے حضرت رسل علیہم السلام کی سنت یہی ہے کہ جنازہ کے ساتھ خاموش رہیں۔ اسی طرح منیہ المفتی میں ہے۔۔۔ لوگوں کا آواز بلند کرنا مکروہ تحریمی ہے اور کہا گیا کہ تنزیہی ہے، قنیہ۔۔ آواز بلند کرنا مکروہ ہے یعنی ترک اولیٰ ہے، جیسا کہ تتمہ میں اسے اپنے والد کے حوالے سے ذکر کیا۔ اور شرعۃ الاسلام کی جامع الشروح نامی شرح میں یہ ہے کہ: جنازہ کے پیچھے سرّی طور پر زیادہ سے زیادہ تسبیح و تہلیل کرے، کوئی دنیاوی بات نہ بولے، لیکن بعض مشائخ نے جہری ذکر کو بھی جائز کہا ہے اس طرح

کہ درمیان میں کوئی بات ڈالے بغیر جنازہ کے آگے اور پیچھے تعظیم کے ساتھ بآواز بلند ذکر کریں تاکہ میت اور دوسرے زندوں کو تلقین ہو، غافلوں ظالموں کو تنبیہ ہو، دنیا کی محبت و ریاست سے دلوں میں جو زنگ اور درشتی ہے وہ دور ہو۔ علامہ شعرانی قدس سرہ کی کتاب العھود المحمدیہ میں ہے کہ عالم محلہ کو چاہئے کہ جو لوگ جنازہ کے ساتھ چلنا چاہتے ہیں انہیں تعلیم دے کر لغو سے پرہیز کریں اس طرح کی باتوں میں نہ پڑیں کہ فلاں حکمران بنا، فلاں والی

Fatawa Razawiyya Volume 9

[Arabic Column Text] [Regarding the dismissal of] governors, or merchants who traveled and returned, and the like. The righteous predecessors (as-Salaf as-Salih) used to not speak during a funeral procession except what was narrated [in the traditions]. A stranger would not be able to recognize [the bereaved] due to the prevalence of grief over all those present. Sayyidi Ali al-Khawwas (may Allah be pleased with him) used to say: If it is known about those walking with the funeral procession that they do not refrain from idle talk during the funeral and occupy themselves with worldly matters, then they should be commanded to say "La ilaha illAllah Muhammadur Rasulullah" (peace and blessings of Allah be upon him). Verily, that is better than omitting it [remaining silent in such a state]. It is not appropriate for a jurist to forbid this except with a [specific] text (Nass) or consensus (Ijma'), for Muslims have general permission from the Lawgiver to say "La ilaha illAllah Muhammadur Rasulullah" at any time they wish. By Allah, how amazing is the blindness of heart in one who denies such a thing, and perhaps he seeks money from the rulers to invalidate the believers' saying "La ilaha illAllah Muhammadur Rasulullah" (peace and blessings of Allah be upon him) on the path of the funeral, while he sees someone selling hashish and doesn't bother to say to him "it is forbidden for you." Rather, I have seen a jurist among them receiving his fixed salary for leading prayers from the money of a hashish seller. So, we ask Allah for well-being.

[Urdu Column Text] ...was dismissed, such-and-such merchant went on a journey, such-and-such returned. The practice of the righteous predecessors was that they would not speak anything during a funeral except what is mentioned in the Hadith. A state of grief and sorrow would prevail over all those present such that a stranger or a traveler would not even know who the close relative of the deceased was until they were told. Sayyidi Ali al-Khawwas (may Allah be pleased with him) states that when it is known about those walking with the funeral procession that they will not refrain from idle talk and will remain busy in worldly conversations, then they should be commanded to recite "La ilaha illAllah Muhammadur Rasulullah" (peace and blessings of Allah be upon him) because in such a state, reciting it is better than not reciting it. And it is not appropriate for any jurist to forbid this without a text (Nass) or consensus (Ijma'). This is because Muslims have a general permission from the Lawgiver to recite "La ilaha illAllah Muhammadur Rasulullah" (peace and blessings of Allah be upon him) whenever they wish. [Yet there are those who] want to obtain

wealth from the authorities by calling this recitation invalid, while on the other hand, the situation is such that if they see hashish being sold, they do not even bother to say to the seller, "this is forbidden for you." Rather, I have seen a jurist of this class who receives his salary for leading prayers from the money of the hashish seller. So, from God alone [we seek] well-being...

फ़तावा रज़विया, खंड 9

[अरबी कॉलम का पाठ] शासकों की बर्खास्तगी, या व्यापारी जो यात्रा पर गए और लौटे, और इसी तरह के लोग। नेक पूर्वजों (सल्फ़ सालेहीन) की यह रीति थी कि वे जनाज़े में उस चीज़ के अलावा कुछ नहीं बोलते थे जो हदीस में आई है। अजनबी व्यक्ति उपस्थित लोगों पर दुःख की प्रबलता के कारण [शोकसंतप्त को] नहीं पहचान पाता था। सय्यिदी अली ख़वास (अल्लाह उन पर प्रसन्न हो) कहा करते थे: यदि जनाज़े के साथ चलने वालों के बारे में यह ज्ञात हो कि वे जनाज़े के दौरान व्यर्थ की बातों से परहेज़ नहीं करेंगे और सांसारिक मामलों में व्यस्त रहेंगे, तो उन्हें "ला इलाहा इल्लल्लाह मुहम्मदुर रसूलुल्लाह" (अल्लाह उन पर कृपा और शांति बनाए रखे) कहने का आदेश दिया जाना चाहिए। निश्चित रूप से, यह उसे छोड़ने [चुप रहने] से बेहतर है। किसी भी फ़क़ीह (धर्मशास्त्री) के लिए किसी स्पष्ट पाठ (नस्स) या आम सहमति (इज्मा) के बिना इसे मना करना उचित नहीं है, क्योंकि मुसलमानों को शरीअत की ओर से किसी भी समय "ला इलाहा इल्लल्लाह मुहम्मदुर रसूलुल्लाह" कहने की सामान्य अनुमति है। अल्लाह की क़सम, उस व्यक्ति के हृदय का अंधापन कितना आश्चर्यजनक है जो इस जैसी बात का खंडन करता है, और शायद वह जनाज़े के रास्ते में मोमिनों के"ला इलाहा इल्लल्लाह मुहम्मदुर रसूलुल्लाह" (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) कहने को अमान्य (बातिल) करने के लिए शासकों से धन प्राप्त करना चाहता है, जबकि वह किसी को भाँग बेचते हुए देखता है और उसे यह कहने का कष्ट नहीं करता कि "यह तुम पर हराम है।" बल्कि, मैंने उनमें से एक फ़क़ीह को देखा है जो भाँग बेचने वाले के पैसे से अपनी इमामत का वेतन प्राप्त करता है। तो, हम अल्लाह से सलामती माँगते हैं।

[उर्दू कॉलम का पाठ] ...बर्खास्त हुआ, अमुक व्यापारी यात्रा पर गया, अमुक वापस आया। नेक पूर्वजों का तरीका यह था कि वे जनाज़े में कुछ न बोलते थे सिवाय उस चीज़ के जो हदीस में वर्णित है। सभी उपस्थित लोगों पर दुःख और शोक का ऐसा प्रभाव रहता था कि एक अजनबी या परदेसी व्यक्ति को जब तक बताया न जाए, यह पता ही नहीं चलता था कि मृतक का क़रीबी कौन है। सय्यिदी अली ख़वास (रज़ी.) फ़रमाते हैं कि जब जनाज़े के साथ चलने वालों के बारे में यह ज्ञात हो कि वे व्यर्थ की बातों से बाज़ नहीं आएँगे और दुनियावी बातों में मशगूल रहेंगे, तो उन्हें "ला इलाहा इल्लल्लाह मुहम्मदुर रसूलुल्लाह" (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) पढ़ने का हुक्म देना चाहिए क्योंकि ऐसी स्थिति में इसे पढ़ना न पढ़ने से बेहतर है। और किसी फ़क़ीह के लिए बिना किसी स्पष्ट प्रमाण या आम सहमति के इसे मना करना उचित नहीं है। इसका कारण यह है कि मुसलमानों को शरीअत की ओर से यह

आम अनुमति है कि वे जब चाहें "ला इलाहा इल्लल्लाह मुहम्मदुर रसूलुल्लाह" (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) पढ़ें। [फिर भी कुछ लोग ऐसे हैं जो] इस पढ़ने को बातिल (ग़लत) बताकर हुक्काम (अधिकारियों) से धन प्राप्त करना चाहते हैं, जबकि दूसरी ओर यह हाल है कि यदि वे भाँग बिकती देखें तो भाँग बेचने वाले से यह कहने की ज़हमत गवारा न करें कि "यह तुझ पर हराम है।" बल्कि मैंने इस तबक़े के एक फ़क़ीह को देखा है जो भाँग बेचने वाले के माल से अपनी इमामत की तनख़्वाह वसूल करता है। तो ख़ुदा ही से आफ़ियत की...

فتاویٰ رضویہ جلد نہم

عزل الولاة اوسافر ورجع من التجار ونحوذلك كان السلف الصالح لايتكلمون في الجنازة الابماورد وكان الغريب لايعرف لغلبة الحزن على الحاضرين كلهم وكان سيدى على الخواص رضى الله تعالى عنه يقول اذاعلم من الماشيين مع الجنازة انهم لايتركون اللغوفى الجنازة و يشتغلون بأحوال الدنيا فينبغى ان يأمرهم بقول لا اله الاالله محمد رسول الله صلى الله تعالى عليه وسلم فأن ذلك افضل من تركة ولاينبغى لفقيه ان ينكر ذلك الابنص او اجماع فان مع المسلمين الاذن العام من الشارع بقول لا اله الاالله محمد رسول الله في كل وقت شاؤا ويالله العجب من عى قلب من ينكر مثل هذا و ربما عزم عند الحكام الفلوس حتى يبطل قول المؤمنين لا اله الا الله محمد رسول الله صلى الله تعالى عليه وسلم في طريق الجنازة وهويرى للحشاش حرم عليك بل رأيت فقيهاً منهم يأخذ معلوم امامة من فلوس بائع الحشيش فنسأل الله العافية۔

معزول ہوا، فلاں تاجر سفر میں گیا، فلاں واپس آیا۔ سلف صالحین کی روش یہ تھی کہ جنازہ میں کچھ نہ بولتے مگر وہ جو حدیث میں وارد ہے۔ سارے حاضرین پر حزن و غم کا ایک ایسا غلبہ رہتا کہ اجنبی اور پردیسی شخص کو جب تک بتایا نہ جائے یہ معلوم ہی نہ ہوتا کہ میت کا قریبی کون ہے۔ سیدی علی خواص رضی اللہ تعالیٰ عنہ فرماتے ہیں کہ جب جنازہ کے ساتھ چلنے والوں کے بارے میں یہ معلوم ہو کہ وہ لغو سے باز نہ آئیں گے اور دنیا کی باتوں میں مشغول رہیں گے تو انہیں لا الہ الااللہ محمد رسول اللہ صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم پڑھنے کا حکم دینا چاہئے کیونکہ ایسی حالت میں اسے پڑھنا نہ پڑھنے سے افضل ہے۔ اور کسی فقیہ کو بغیر نص اجماع کے اس سے انکار مناسب نہیں۔ اس لئے کہ مسلمانوں کے لئے شارع کی جانب سے وہ جب بھی چاہیں لا الہ الااللہ محمد رسول اللہ صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم پڑھنے کو باطل کہہ کے حکام کے یہاں مال حاصل

کرنا چاہتا ہو، دوسری طرف یہ حال ہو کہ بھنگ بکتی دیکھے تو بھنگ فروش سے یہ کہنے کی زحمت گوارا نہ ہو یہ تجھ پر حرام ہے۔ بلکہ اس طبقے کے فقیہ کو میں نے دیکھا کہ وہ بھنگ فروش کے مال سے اپنی امامت کی تنخواہ وصول کرتا۔ تو خدا ہی سے عافیت کا

And Imam Sha'rani (may Allah have mercy on him) also mentioned in his book 'Uhood al-Mashaikh': "None of our brothers should be allowed to object to anything that Muslims have innovated for the purpose of seeking nearness to Allah Almighty and have seen as good, especially matters related to Allah Almighty and His Messenger (peace and blessings of Allah be upon him), such as reciting the Quran before a funeral and the like. Whoever declares this forbidden is deficient in his understanding of the Shariah because not everything that did not exist during the time of the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) is blameworthy. If this door were opened, the statements of the Mujtahids regarding all the good things they recommended would be rejected, and no one says that. Indeed, the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) opened this door for the scholars of his Ummah and permitted them to institute anything they deem good and append it to the Shariah of the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him), as he (peace and blessings of Allah be upon him) said: 'Whoever initiates a good practice will have its reward and the reward of those who act upon it.' And the phrase 'La ilaha illallah Muhammadur Rasulullah' is among the greatest of good deeds, so how can it be prohibited? Reflect on the states of most of creation."

Question: Allama Sha'rani (may Allah have mercy on him) said in his religious book "Uhood al-Mashaikh" that we will not allow any of our friends to object to such an act which Muslims have innovated as a means of seeking nearness to the court of Allah Almighty and consider it good. Especially such a task that is related to God Almighty and His Messenger (peace and blessings of Allah be upon him), like reciting 'La ilaha illallah Muhammadur Rasulullah' in front of a funeral and reciting the Quran in front of it, or other such tasks. Whoever calls it Haram is deficient in his understanding of the Shariah, because not every task that was not present during the era of the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) is bad. If this door is opened, then all those statements of the venerable Mujtahids will be considered rejected which they have stated about the good things they liked... and no one is a proponent of this. The Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) himself has kept this door open for the scholars of his Ummah and gave them permission that whatever way they consider good, they should implement it and include it in the Shariah of the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him). This permission is proven from this noble saying of the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him): "The person who innovates a good

task will get the reward for that innovation and the reward of all those who act upon this method in the future."

और इमाम शरानी (अल्लाह उन पर रहमत फरमाए) ने अपनी किताब 'उहूद अल-मशायिख' में यह भी उल्लेख किया है: "हमारे किसी भी भाई को ऐसी किसी भी चीज़ पर आपत्ति करने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए जिसे मुसलमानों ने अल्लाह सर्वशक्तिमान की निकटता के उद्देश्य से शुरू किया है और उसे अच्छा माना है, विशेष रूप से अल्लाह सर्वशक्तिमान और उनके रसूल (अल्लाह उन पर कृपा और शांति बरसाए) से संबंधित मामले, जैसे कि जनाजे के सामने कुरान की तिलावत करना और इसी तरह के अन्य कार्य। जो कोई इसे वर्जित घोषित करता है, वह शरीयत की समझ में अधूरा है क्योंकि हर वह चीज़ जो रसूल अल्लाह (अल्लाह उन पर कृपा और शांति बरसाए) के समय में नहीं थी, निंदनीय नहीं है। यदि यह दरवाजा खोल दिया गया, तो मुजतहिदीन के उन सभी बयानों को खारिज कर दिया जाएगा जो उन्होंने अपनी पसंद की अच्छी चीजों के बारे में दिए हैं, और ऐसा कोई नहीं कहता। वास्तव में, रसूल अल्लाह (अल्लाह उन पर कृपा और शांति बरसाए) ने अपनी उम्मत के विद्वानों के लिए यह दरवाजा खोल दिया है और उन्हें किसी भी ऐसी चीज़ को शुरू करने की अनुमति दी है जिसे वे अच्छा समझते हैं और उसे रसूल अल्लाह (अल्लाह उन पर कृपा और शांति बरसाए) की शरीयत में शामिल करते हैं, जैसा कि उन्होंने (अल्लाह उन पर कृपा और शांति बरसाए) फरमाया: 'जो कोई एक अच्छा कार्य शुरू करता है उसे उसका फल मिलेगा और उनका भी फल मिलेगा जो उस पर अमल करेंगे।' और 'ला इलाहा इल्लल्लाह मुहम्मदुर रसूलुल्लाह' शब्द सबसे बड़ी नेकियों में से एक है, तो इसे कैसे रोका जा सकता है? अधिकांश सृष्टि की स्थितियों पर विचार करें।"

प्रश्न है: अल्लामा शरानी (रहमतुल्लाह अलैह) ने अपनी धार्मिक पुस्तक "उहूद अल-मशायिख" में फरमाया कि हम अपने मित्रों में से किसी को भी ऐसे कार्य पर आपत्ति करने की अनुमति नहीं देंगे जिसे मुसलमानों ने अल्लाह अज़्वजल की बारगाह में निकटता के रूप में शुरू किया हो और उसे अच्छा समझते हों। विशेष रूप से ऐसा कार्य जिसका संबंध खुदा तआला और उसके रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) से हो, जैसे जनाजे के आगे 'ला इलाहा इल्लल्लाह मुहम्मदुर रसूलुल्लाह' पढ़ना और उसके सामने कुरान की तिलावत करना, या ऐसे अन्य कार्य। जो इसे हराम कहे वह फहम-ए-शरीयत (शरीयत की समझ) से कासिर (अधूरा) है, क्योंकि हर वह कार्य जो अहद-ए-रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) में न रहा हो बुरा नहीं है, यदि यह दरवाजा खोला जाए तो मुजतहिदीन-ए-किराम के वे सारे कथन रद्द ठहरेंगे जो उन्होंने अपनी पसंद की अच्छी चीजों के बारे में फरमाए हैं। और इसका कोई समर्थक नहीं। स्वयं रसूल अल्लाह (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने अपनी उम्मत के

विद्वानों के लिए यह दरवाजा खोल रखा है और उन्हें अनुमति दी है कि जो तरीका भी अच्छा समझें उसे जारी करें और रसूल अल्लाह (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) की शरीयत में शामिल करें। यह अनुमति रसूल अल्लाह (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) के इस इरशाद-ए-गिरामी से प्रमाणित है: "जो व्यक्ति कोई अच्छा कार्य शुरू करे उसे उस कार्य का सवाब (पुण्य) मिलेगा और इस तरीके पर भविष्य में सभी अमल करने वालों का भी सवाब मिलेगा।"

पृष्ठ 145/948

وذكر الشعراني ايضاً رحمة الله تعالى في كتابه عهود المشائخ قال لا يمكن احدا من اخواننا ينكر شيئا ابتدعه المسلمون على جهة القربة الى الله تعالى ورآوه حسناً لا سيما ما كان متعلقاً بالله تعالى ورسوله صلى الله تعالى عليه وسلم قرائة القرآن امامها ونحو ذلك فمن حرم ذلك فهو قاصر عن فهم الشريعة لانه ما كل مالم يكن على عهد رسول الله صلى الله تعالى عليه وسلم يكون مذموماً و لو فتح هذا الباب لردت اقوال المجتهدين في جميع ما استحبوا من المحاسن ولا قائل به قد فتح رسول الله صلى الله تعالى عليه وسلم لعلماء امته هذا الباب واباح لهم ان يسنوا كل شئ استحسنوه ويلحقوه بشريعة رسول الله صلى الله تعالى عليه وسلم بقوله صلى الله تعالى عليه وسلم من سن سنة حسنة فله اجره من يعمل بها وكلمة لا اله الا الله محمد رسول الله صلى الله تعالى عليه وسلم اكبر الحسنات فكيف يمنع منها وتأمل احوال غالب الخلق

سوال ہے۔ علامہ شعرانی رحمۃ اللہ تعالیٰ علیہ نے اپنی دینی کتاب "عہود المشائخ" میں فرمایا کہ اپنے ہم دوستوں میں سے کسی کو ایسے امر پر نکیر کی اجازت نہ دیں گے جسے مسلمانوں نے اللہ عزوجل کی بارگاہ میں تقرب کے طور پر ایجاد کیا ہو اور اسے اچھا جانتے ہوں۔ خصوصاً ایسا کام جس کا تعلق خدا تعالیٰ اور اس کے رسول صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم سے جیسے جنازہ کے آگے لا الہ الا اللہ محمد رسول اللہ صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم پڑھنا اور اس کے سامنے قرآن کی تلاوت کرنا، یا ایسے دوسرے کام۔ جو اسے حرام کہے وہ فہم شریعت سے قاصر ہے، اس لئے کہ ہر وہ کام جو عہدِ رسول اللہ صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم میں نہ رہا ہو بُرا نہیں، اگر یہ دروازہ کھولا جائے تو مجتہدینِ کرام کے وہ سارے اقوال مردود ٹھہریں جو انہوں نے اپنی پسند کردہ اچھی چیزوں کے بارے میں فرمائے ہیں۔ اور اس کا کوئی قائل نہیں۔ خود رسول اللہ صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم نے

اپنی امت کے علماء کے لئے یہ دروازہ کھول رکھا ہے اور انہیں اجازت دی ہے کہ جو طریقہ بھی اچھا سمجھیں اسے جاری کریں اور رسول اللہ صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کی شریعت میں شامل کریں یہ اجازت رسول اللہ صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کے اس ارشادِ گرامی سے ثابت ہے : جو شخص کوئی اچھا کام ایجاد کرے اسے اس ایجاد کا ثواب ملے گا اور اس طریقے پر آئندہ سارے عمل کرنے والوں کا بھی ثواب ملے گا۔

Fatawa Ridawiyya, Volume 9

[Arabic Text]: Now in funeral processions, you find them busy with worldly talk, not taking a lesson from the deceased, and their hearts are heedless of all that has befallen him. In fact, I have seen some among them laughing. When such a situation confronts us, and since it was not so in the era of the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him), we give priority to the remembrance of Allah Almighty. If everyone in the funeral procession cried out 'La ilaha illallah' (There is no god but Allah), there is no objection. Nothing has reached us from the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) regarding that. If the remembrance of Allah Almighty in funeral processions was prohibited, it would have reached us, even if in a single Hadith, just as it reached us regarding the prohibition of reciting the Quran in bowing (Ruku'). Something about which the Lawgiver (peace and blessings be upon him) remained silent at the beginning of Islam cannot be prohibited in our later times. Summarized with minor edits.

[Urdu Translation]: The Kalima 'La ilaha illallah Muhammadur Rasulullah' (peace and blessings of Allah be upon him) is the greatest virtue; then how can one be stopped from it? In this era, if you look at the state of most people in funerals, they will be found busy in worldly talk, having no lesson from the condition of the deceased. Their hearts are heedless of this entire event; in fact, even laughing people will be seen among them. If they do not perform Dhikr (remembrance), this is the state, and if they engage in Dhikr, the objection is that this was not during the time of the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him). In our view, when such a conflict arises, we give precedence to the Dhikr of Allah. Now, if all participants of the funeral loudly say 'La ilaha illallah', there is no objection to it. No decree has been reported from the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) prohibiting it. If Dhikr of Allah was forbidden in funerals, then this command would have been mentioned in some Hadith, just as reciting the Holy Quran in bowing (Ruku') is forbidden and a Hadith has come regarding it. Thus, a thing regarding which the Lawgiver (peace and blessings be upon him) remained silent at the beginning of Islam cannot be forbidden in our later times. Summarized with minor edits (T).

The summary of these beautiful words of the great Imam (may Allah Almighty have mercy on him) provides several benefits: (1) The state of the righteous predecessors in the funeral prayer was such that an uninformed person would not know who among them was from the family of the deceased and who were the others

accompanying; they all appeared equally grieved and sorrowful. But now the situation is such that in funerals, worldly talk...

---

1 Al-Hadiqa Sharh al-Tariqa al-Muhammadiyya, Third Part, Book of Prayer, published by Maktaba Nooria Ridawiyya 9/2-408

फ़तावा रज़विया, जिल्द 9

[अरबी पाठ]: आजकल जनाज़ों में आप लोगों को दुनियावी बातों में मशगूल पाएंगे, वे मय्यत से कोई इबरत (सबक) हासिल नहीं करते और उनका दिल उस पर बीतने वाली तमाम बातों से ग़ाफ़िल होता है। बल्कि मैंने उनमें से कुछ को हंसते हुए भी देखा है। जब हमारे सामने ऐसी स्थिति आती है, और चूंकि यह अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) के ज़माने में नहीं था, तो हम अल्लाह अज़्ज़ व जल्ल के ज़िक्र को प्राथमिकता देते हैं। अगर जनाज़े में शामिल हर शख्स 'ला इलाहा इल्लल्लाह' पुकारे, तो इस पर कोई ऐतराज़ नहीं है। इस बारे में अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) से हमें कुछ नहीं पहुँचा है। अगर जनाज़े में अल्लाह का ज़िक्र मना होता, तो यह बात हम तक ज़रूर पहुँचती, चाहे किसी हदीस में ही सही, जैसे कि रुकू में कुरआन पढ़ने की मनाही के बारे में हदीस आई है। जिस चीज़ पर शरीयत बनाने वाले (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने इस्लाम की शुरुआत में ख़ामोशी इख़्तियार की, वह हमारे आख़िरी ज़माने में वर्जित नहीं हो सकती। (संक्षेप में)

[उर्दू अनुवाद]: कलमा 'ला इलाहा इल्लल्लाह मुहम्मदुर रसूलुल्लाह' (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) तो सबसे बड़ी नेकी है; फिर उससे कैसे रोका जाएगा? इस ज़माने में जनाज़े के अंदर अक्सर लोगों के हालात पर नज़र डालो, वे दुनिया की बातों में मशगूल मिलेंगे, जिन्हें मय्यत के हाल से कोई सबक नहीं है। उनका दिल इस सारे वाकये से ग़ाफ़िल है; बल्कि उनमें हंसने वाले भी नज़र आएंगे। अगर ज़िक्र न करें तो यह हालत है, और अगर ज़िक्र में मशगूल हों तो यह ऐतराज़ है कि यह अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) के ज़माने में नहीं था। हमारे नज़दीक जब ऐसा विरोध सामने आता है, तो हम अल्लाह के ज़िक्र को पहले रखते हैं। अब अगर जनाज़े के सभी साथी पुकार कर 'ला इलाहा इल्लल्लाह' कहें तो उस पर कोई ऐतराज़ नहीं है। इससे मनाही में अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) का कोई फ़रमान नहीं आया है। अगर जनाज़े में ज़िक्र-ए-इलाही मना होता तो किसी न किसी हदीस में तो यह हुक्म आता, जैसे रुकू में कुरआन शरीफ़ पढ़ना मना है तो इस बारे में हदीस आई है। तो जिस चीज़ पर इस्लाम की शुरुआत में शरीयत बनाने वाले (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने ख़ामोशी बरती, वह हमारे आख़िरी ज़माने में मना नहीं हो सकती। (संक्षेप में) (त)

इमाम जलील (रहमतुल्लाह अलैह) के इन ख़ूबसूरत शब्दों का सारांश कुछ फ़ायदेमंद बातें हैं: (1) नेक बुज़ुर्गों (सल्फ़-ए-सालेहीन) की जनाज़े की नमाज़ में यह हालत होती थी कि किसी अनजान शख्स को यह पता नहीं चलता था कि उनमें से मय्यत के घरवाले कौन हैं और बाकी साथ चलने वाले कौन

हैं, सब एक जैसे ही ग़मज़दा और दुखी नज़र आते थे। और अब हाल यह है कि जनाज़ों में दुनियावी बातों...

---

1 हदीक़ा शरह तरीक़ा मोहम्मदिया, तीसरा हिस्सा, किताब-उस-सलात, मकतबा नूरिया रज़विया द्वारा प्रकाशित, 9/2-408

الآن في الجنازة تجدهم مشغولين بحكايت الدنيا لم يعتبروا بالميت وقلبهم غافل عن جميع ما وقع له بل رأيت منهم من يضحك واذا تعارض عندنا مثل ذلك وكون ذلك لم يكن في عهد رسول الله صلى الله تعالٰی علیه وسلم قدمنا ذكر الله عزوجل لو صاح كل من في الجنازة لا اله الا الله فلا اعتراض ولم ياتنا في ذلك شي من رسول الله صلى الله تعالٰی علیه وسلم فلو كان ذكر الله تعالى في الجنازة منهياً عنه لبلغنا ولو في حديث كما بلغنا في قراءة القرآن في الركوع و شي سكت عنه الشارع صلى الله تعالٰی علیه وسلم اوائل الاسلام لا يمنع منه اواخر الزمان اه باختصار قلیل

کلمہ لا الہ الا اللہ محمد رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم تو سب سے بڑی نیکی ہے پھر اس سے کیوں کر روکا جائے گا؟-- اس زمانے میں جنازے کے اندر اکثر لوگوں کے احوال پر نظر کرو دنیا کی باتوں میں مشغول ملیں گے جنہیں میت کے حال سے کوئی عبرت نہیں، ان کا دل اس سارے واقعے سے غافل ہے، بلکہ ان میں ہنسنے والے بھی نظر آئیں گے۔ ذکر نہ کریں تو یہ حالت اور ذکر میں مشغول ہوں تو یہ اعتراض ہے کہ یہ رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم کے زمانہ میں نہ تھا۔ ہمارے نزدیک جب ایسا تعارض درپیش ہے تو ہم اللہ کے ذکر کو مقدم رکھیں گے۔ اب اگر سارے شرکاء جنازہ پکار کر لا الہ الا اللہ کہیں تو اس پر کوئی اعتراض نہیں۔ اس سے ممانعت میں رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم کا کوئی ارشاد وارد نہیں۔ اگر جنازے میں ذکر الٰہی ممنوع ہوتا تو کسی نہ کسی حدیث میں تو یہ حکم وارد ہوتا، جیسے رکوع میں قرآن شریف پڑھنا ممنوع ہے تو اس بارے میں حدیث آئی ہے۔ تو جس چیز سے ابتدائے اسلام میں شارع علیہ الصلوۃ والسلام نے سکونت فرمایا وہ ہمارے آخر زمانے میں ممنوع نہیں ہو سکتی اہ باختصار قلیل (ت)

اس کلام جمیل امام جلیل رحمہ اللہ تعالیٰ علیہ کا خلاصہ ارشادات چند افادات : (۱) سلف صالح کی حالت نماز جنازہ میں یہ ہوتی کہ ناواقف کو نہ معلوم ہوتا کہ ان میں اہل میت کون ہے۔ اور باقی ہمراہ کون، سب ایک سے مغموم و محزون نظر آتے ہیں، اور اب حال یہ ہے کہ جنازے میں دنیاوی باتوں

---

1 حدیقہ شرح طریقہ محمدیہ الصنف الثالث کتاب الصلوۃ مطبوعہ مکتبہ نوریہ رضویہ 2/9-408

...are busy, they do not take any lesson from death, their hearts are oblivious to what happened to the deceased. He says: "Rather, I saw people laughing in Mecca; in such a situation, to remember God and to glorify God and His Messenger (Peace and blessings of Allah be upon him) with a loud voice is an excellent advice so that the rust of their hearts may be removed and they may wake up from negligence."

(2) Moreover, there is a benefit of teaching (talqin) Dhikr (remembrance) to that deceased person so that by hearing it repeatedly, he may be prepared for the answers to the questions of Nakirayn (the two angels).

(3) Sidi Ali Khawas (may Allah be pleased with him) said: There is a general permission from the Lawgiver (Peace and blessings be upon him) for Muslims to remember God and the Messenger (Mighty and Majestic is He, and Peace and blessings of Allah be upon him). Therefore, unless there is a clear text (Nass) or consensus (Ijma) forbidding it in a particular form, is denial appropriate?

(4) Moreover, the same Imam Arif said: My God! How blind is the heart of the person who forbids this. They try so hard to stop the remembrance of God and His Messenger (Mighty and Majestic is He, and Peace and blessings of Allah be upon him) with the funeral, but when they see bhang (cannabis) being sold, they don't even say to him that this is forbidden for you. He says, rather I saw one among them who would forbid this (remembrance) but would take his salary for leading prayers from the forbidden money of a bhang seller.

(5) Imam Arif Billah Sidi Sha'rani (may his secret be sanctified) says: There is a commitment among the great elders that they will not forbid any good thing that Muslims have newly introduced, especially when it is related to Allah and His Messenger (Mighty and Majestic, and Peace and blessings of Allah be upon him), such as the Quran or Kalimah Sharif or other remembrance of God and the Messenger with the funeral.

(6) Moreover, the praised Imam says: Whoever calls it illegitimate does not have an understanding of Sharia.

(7) Moreover, he says: Every matter that did not exist in the blessed era of the Prophet (Peace and blessings of Allah be upon him) is not necessarily blameworthy, otherwise, if this door were opened, all those good things that the Mujtahid Imams introduced would be rejected.

(8) He says: In fact, the Messenger of Allah (Peace and blessings of Allah be upon him) has opened the door for the scholars of the Ummah with his saying (Whoever introduces a good practice in Islam will have its reward and the reward of everyone who practices it until the Day of Resurrection will be written in the record of deeds of its inventor) to invent good ways and attach them to the Muhammadi Sharia. That is, when the Holy Prophet (Peace and blessings of Allah be upon him) has given this general permission, then whatever good new thing is created, that new...

फ़तावा रज़विया, जिल्द नहूम (खंड 9)

...व्यस्त रहते हैं, उन्हें मौत से कोई सबक नहीं मिलता, उनके दिल इससे बेखबर हैं कि मृतक पर क्या गुज़री, फ़रमाते हैं: "बल्कि मैंने मक्का में लोगों को हँसते हुए देखा, ऐसी स्थिति में ज़िक्र-ए-खुदा करना और अल्लाह और उसके रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) की ताज़ीम (महिमा) बुलंद आवाज़ से पढ़ना एक बेहतरीन नसीहत है ताकि उनके दिलों का ज़ंग दूर हो और वे गफ़लत से जागें।"

(२) इसके अलावा, उस मृतक को ज़िक्र की तलक़ीन (शिक्षा) का फायदा है ताकि वह इसे बार-बार सुनकर नकीरैन (दो फ़रिश्तों) के सवालों के जवाब के लिए तैयार हो जाए।

(३) सीदी अली ख़्वास (रज़ियल्लाहु अन्हु) ने फ़रमाया: शरीयत निर्माता (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) की ओर से मुसलमानों को खुदा और रसूल (अल्लाह जल्ला जलालुहू व सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) के ज़िक्र की सामान्य अनुमति है, तो जब तक किसी विशेष रूप में मनाही के लिए कोई स्पष्ट प्रमाण (नस्स) या आम सहमति (इज्मा) न हो, इनकार करना कहाँ तक उचित है?

(४) इसके अलावा उन्हीं इमाम आरिफ ने फ़रमाया: ऐ खुदा! जो इसे रोकता है उसका दिल कितना कठोर और अंधा है, जनाज़े के साथ खुदा और रसूल के ज़िक्र को बंद करने की तो ये कोशिश है और अगर भांग बिकती देखें तो उससे इतना नहीं कहते कि यह तुझ पर हराम है। फ़रमाते हैं बल्कि मैंने उनमें से एक को देखा जो इससे तो मना करता था और खुद अपनी इमामत का वेतन भांग बेचने वाले के हराम माल से लेता था।

(५) इमाम आरिफ़ बिल्लाह सैयदी शेरानी (अल्लाह उनके रहस्य को पवित्र करे) फ़रमाते हैं: बड़े बुज़ुर्गों के यहाँ यह अहद (प्रतिज्ञा) है कि जो अच्छी बात मुसलमानों ने नई निकाली हो उसे मना नहीं करेंगे, विशेष रूप से जब वह अल्लाह और उसके रसूल (अज़्ज़वजल व सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) से संबंधित हो, जैसे जनाज़े के साथ कुरान मजीद या कलमा शरीफ या खुदा और रसूल का अन्य ज़िक्र।

(६) इसके अलावा प्रशंसित इमाम फ़रमाते हैं: जो इसे नाजायज़ कहे उसे शरीयत की समझ नहीं।

(७) इसके अलावा फ़रमाते हैं: हर वह बात जो हुज़ूर सरवरे आलम (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) के बरकत वाले ज़माने में नहीं थी, वह बुरी नहीं होती, वरना अगर इसका दरवाज़ा खुल जाए तो मुजतहिद इमामों ने जितनी नेक बातें निकालीं, उनके वे सब वचन खारिज हो जाएंगे।

(८) फ़रमाते हैं: बल्कि रसूलुल्लाह (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने अपने इस फरमान से कि (जो व्यक्ति दीन-ए-इस्लाम में कोई अच्छी बात निकाले उसे उसका पुण्य मिलेगा और कयामत तक जितने लोग उस नेक बात पर अमल करेंगे, उन सबका पुण्य उसके ईजाद करने वाले के कर्मपत्र में लिखा जाएगा) उम्मत के उलेमा के लिए इसका दरवाज़ा खोल दिया है कि वे नेक तरीके ईजाद करें और उन्हें शरीयत-ए-मोहम्मदिया (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) से जोड़ें, यानी जब हुज़ूर अनवर (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने यह सामान्य अनुमति दी है तो जो नेक नई बात पैदा हुई वह नई...

पृष्ठ १४७ / ९४८

میں مشغول ہوتے ہیں، موت سے انہیں کوئی عبرت نہیں ہوتی، ان کے دل اس سے غافل ہیں کہ میت پر کیا گزری، فرماتے ہیں: بلکہ میں نے لوگوں کو مکہ میں ہنستے دیکھا، تو ایسی حالت میں ذکرِ خدا کرنا اور تعظیمِ خدا اور رسول جل جلالہ و صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم بلند آواز سے پڑھنا عین نصیحت ہے کہ ان کے دلوں کے زنگ چھوٹیں اور غفلت سے بیدار ہوں۔

(۲) نیز اُس میّت کو تلقینِ ذکر کا فائدہ ہے کہ وہ سُن سن کر سوالاتِ نکیرین کے جواب کے لئے تیار ہو۔

(۳) سیدی علی خواص رضی اللہ تعالیٰ عنہ نے فرمایا شارع علیہ الصلوۃ والسلام کی طرف مسلمانوں کو ذکرِ خدا اور رسول جل جلالہ، و صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کا اذنِ عام ہے تو جب تک کسی خاص صورت کی ممانعت میں کوئی نص یا اجماع نہ ہو انکار کیا مناسب ہے؟

(۴) نیز انہی امام عارف نے فرمایا : الٰہی جو اس سے منع کرے اس کا دل کس قدر سخت اندھا ہے، جنازے کے ساتھ ذکرِ خدا و رسول جل جلالہ، و صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کے بند کرنے کی تو یہ کوشش اور بھنگ بکتی دیکھیں تو اُس سے اتنا نہ کہیں کہ یہ تجھ پر حرام ہے، فرماتے ہیں بلکہ میں نے انہی میں ایک کو دیکھا کہ اس سے تو منع کرتا اور خود اپنی پیش نمازی کی تنخواہ بھنگ فروش کے حرام مال سے لیتا۔

(۵) امام عارف باللہ سیدی شعرانی قدس سرہ الربانی فرماتے ہیں: اکابرِ کرام کے یہاں عہد ہے جو اچھی بات مسلمانوں نے نئی نکالی ہو اُسے منع نہ کریں گے خصوصاً جب وہ اللہ ورسول عزوجل و

صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم سے تعلق رکھتی ہو، جیسے جنازے کے ساتھ قرآن مجید یا کلمہ شریف یا اور ذکرِ خدا اور رسول جل وعلا و صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم۔

(۶) نیز امام ممدوح فرماتے ہیں: جو اُسے ناجائز کہے اسے شریعت کی سمجھ نہیں۔

(۷) نیز فرماتے ہیں: ہر وہ بات کہ زمانِ برکت تواماں حضور پر نور سیدِ عالم صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم میں نہ تھی مذموم نہیں ہوتی، ورنہ اس کا دروازہ گھلے تو ائمہ مجتہدین نے جتنی نیک باتیں نکالیں اُن کے وہ سب اقوال مردود ہو جائیں۔

(۸) فرماتے ہیں: بلکہ رسول اللہ صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم نے اپنے اس ارشاد سے کہ (جو شخص دین اسلام میں نیک بات نکالے اُسے اس کا اجر ملے اور قیامت تک جتنے لوگ اس نیک بات کو بجالائیں سب کا ثواب اُس کی ایجاد کنندہ کے نامہ اعمال میں لکھا جائے) علمائے امت کے لئے اس کا دروازہ کھول دیا ہے کہ نیک طریقے ایجاد کریں اور انہیں شریعتِ محمدیہ صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم سے ملحق کریں، یعنی جب حضورِ انور صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم نے یہ عام اجازت فرمائی ہے جو نیک نئی بات نئی پیدا ہو گئی وہ نئی

Volume Nine Fatawa Ridawiyya

...it is not new, rather it is from the general permission of the Prophet, peace and blessings of Allah be upon him, and hence part of his Sharia. (9) It is stated that the absence of a prohibition in the pure Sharia is itself proof of its permissibility. If mentioning Allah's name alongside a funeral were forbidden, at least one Hadith would have prohibited it, just as reciting the Quran in Ruku (bowing in prayer) is forbidden and a Hadith exists for its prohibition. Therefore, whatever the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) remained silent about can never be forbidden in our time. (10) The conclusion is that if all those accompanying a funeral recite the Kalima Tayyiba or engage in the remembrance of Allah and His Messenger (mighty and exalted is He, and peace and blessings of Allah be upon him) loudly, there is no objection. In fact, doing so is better than not doing it. Furthermore, the praised Imam Nabulsi states in the aforementioned book:

Arabic Text	English Translation
La yanbaghi an yanhal wa'iz 'amma qala bihi imam min aimmatil muslimeen bal yanbaghi ay yaqa'an nahyu 'amma ajma'al aimmatu kullahum 'ala tahrimihi.	A preacher should not stop people from something that any one of the Muslim Imams has declared permissible. Instead, prohibition should be for such acts upon whose forbidden status there is a consensus among all Imams. (T)

It is mentioned in Durr al-Mukhtar:

Arabic Text	English Translation
Tahriman salatun ma'a shuruqin illal 'awama fala yumna'una min fi'liha liannahum yatrukunaha wal ad'ul ja'izu 'indal ba'di awla minat tarki kama fil Qunyati wa ghairiha. Ah	Offering prayer while the sun is rising is Makruh Tahrimi (prohibitively disliked), but the common people should not be stopped from it because [if stopped] they might give up prayer entirely. While performing it is better than abandoning it, which is permissible according to some, as stated in Qunya etc.
Qultu wa naqalahu sayyidi Abdul Ghani fil Hadiqati 'an sharhid durari liabihi 'anil Musaffa sharhin Nasfiyati 'anish shaikhil imamal ustazi Hamiduddin 'an shaikhihil imamal ajalli Jamaluddin.	I say, Sidi Abdul Ghani Nabulsi has quoted this in Hadiqa Nadiyya from his father's commentary of Durar, quoting therein from Musaffa, the commentary of Nasfiyya. In that, it is quoted from Shaykh Imam Professor Hamid-ud-Din. He

Arabic Text	English Translation
	narrated from his teacher, the great Imam Jamal-ud-Din Mahbubi.

1. Hadiqa Nadiyya Sharh Tariqa Muhammadiyya, The Forty-Eighth Character, etc., published by Nooriya Rizwiya, Faisalabad, 2/151
2. Durr al-Mukhtar, Book of Prayer, published by Matba' Mujtabai, Delhi, 1/61

जिल्द नौ फ़तावा रिज़विया

...यह नई नहीं है बल्कि हुज़ूर के इस इज़्न-ए-आम (सामान्य अनुमति) से हुज़ूर ही की शरीयत है, सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम। (९) फ़रमाते हैं कि शरह-ए-मुतह्ह (पवित्र व्याख्या) में उस से मनाही न आना ही इसके जवाज़ (अनुमति) की दलील है। अगर जनाज़े के साथ ज़िक्र-ए-इलाही मना होता तो कम से कम एक हदीस तो इसकी मनाही में आती, जैसे रुकू में क़ुरान मजीद पढ़ना मना है, तो उसकी मनाही की हदीस मौजूद है, तो जिस चीज़ से नबी सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम ने सुकूत फ़रमाया (चुप्पी साधी) वह कभी हमारे ज़माने में मना नहीं हो सकती। (१०) नतीजा यह निकला कि अगर जनाज़े के तमाम हमराही बुलंद आवाज़ से कलमा तय्यिबा वग़ैरह या अल्लाह और रसूल (अज़्वजल व सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम) के ज़िक्र के साथ चलें तो कुछ एतराज़ नहीं बल्कि इसका करना न करने से अफ़ज़ल (बेहतर) है। नीज़ इमाम नाबुलसी ममदूह (प्रशंसित) किताब मज़कूर में फ़रमाते हैं:

अरबी पाठ	हिंदी अनुवाद
لاينبغي ان ينهى الواعظ عما قال به امام ائمة المسلمين بل ينبغى ان يقع النهى عما اجمع الائمة كلهم على تحريمه$1^$.	यह नहीं चाहिये कि वाइज़ (उपदेशक) ऐसी चीज़ से रोके जिसे आइम्मा-ए-मुस्लिमीन में से किसी इमाम ने जाइज़ कहा हो, बल्कि मनाही ऐसे काम से होनी चाहिये जिसकी हुरमत (निषिद्धता) पर सब आइम्मा का इज्मा (सहमति) हो। (त)

दुर्रे मुख़्तार में है:

अरबी पाठ	हिंदी अनुवाद
تحريماً صلوة مع شروق الالعوام فلا يمنعون من فعلها لانهم يتركونها والاداء الجائز عند البعض اولى من الترك كما فى القنية وغيرها$2^$. اھ	सूरज निकलते वक़्त नमाज़ मकरूह-ए-तहरीमी है मगर अवाम को इस से मना न किया जाएगा इस लिए कि वह नमाज़ ही तर्क कर देंगे। जबकि तर्क से वह अदायगी बेहतर है जो बाज़ के नज़दीक जाइज़ है जैसा कि क़ुनिया वग़ैरहा में है। अह
قلت ونقله سيدى عبدالغنى فى الحديقة عن شرح الدرر لابيه عن	मैं कहता हूँ इसे सैयदी अब्दुल ग़नी नाबुलसी ने 'हदीक़ा नदिय्या' में अपने वालिद की 'शरह-ए-दुरर' से नक़ल

अरबी पाठ	हिंदी अनुवाद
المصفى شرح النسفية عن الشيخ الامام الاستاذ حميد الدين عن شيخه الامام الاجل جمال الدين	किया है, उन्होंने उसमें 'नसफ़िय्या' की शरह 'मुसफ़्फ़ा' से नक़ल किया है। इसमें शैख़ इमाम उस्ताज़ हमीदुद्दीन से नक़ल है। उन्होंने अपने शैख़ इमाम अजल्ल जमालुद्दीन महबूबी से नक़ल किया।

1. हदीक़ा नदिय्या शरह तरीक़ा मोहम्मदिया, ४८वाँ अख़लाक़, नूरिया रिज़विया फ़ैसलाबाद १५१/२
2. दुर्रे मुख़्तार, किताबुस सलात, मतबा मुज्तबाई दिल्ली ६१/१

نئی نہیں بلکہ حضور کے اس اذنِ عام سے حضور ہی کی شریعت ہے صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم۔ (۹) فرماتے ہیں کہ شرحِ مطہر میں اُس سے ممانعت نہ آنا ہی اس کے جواز کی دلیل ہے۔ اگر جنازے کے ساتھ ذکر الٰہی منع ہوتا تو کم از کم ایک حدیث تو اس کی ممانعت میں آتی، جیسے رکوع میں قرآن مجید پڑھنا منع ہے، تو اسکی ممانعت کی حدیث موجود ہے، تو جس چیز سے نبی صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم نے سکوت فرمایا وہ کبھی ہمارے زمانے میں منع نہیں ہو سکتی۔ (۱۰) نتیجہ یہ نکلا کہ اگر جنازے کے تمام ہمراہی بلند آواز سے کلمہ طیبہ وغیرہ باذکر خدا و رسول عزوجل و صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کرتے چلیں تو کچھ اعتراض نہیں بلکہ اس کا کرنا نہ کرنے سے افضل ہے۔ نیز امام نابلسی ممدوح کتاب مذکور میں فرماتے ہیں :

Arabic Text	Urdu Translation
لاينبغي ان ينهى الواعظ عما قال به امام ائمة المسلمين بل ينبغى ان يقع النهى عما اجمع الائمة كلهم على تحريمه^1۔	یہ نہ چاہئے کہ واعظ ایسی چیز سے روکے جسے ائمہ مسلمین میں سے کسی امام نے جائز کہا ہو بلکہ ممانعت ایسے کام سے ہونی چاہئے جس کی حرمت پر سب ائمہ کا اجماع ہو۔ (ت)

در مختار میں ہے:

Arabic Text	Urdu Translation
تحريماً صلوة مع شروق الالعوام فلا يمنعون من فعلها لانهم يتركونها والاداء	سورج نکلتے وقت نماز مکروہ تحریمی ہے مگر عوام کو اس سے منع نہ کیا جائے گا اس لئے کہ وہ نماز ہی ترک

Arabic Text	Urdu Translation
الجائز عند البعض اولی من الترك كما فی القنية وغيرها^2۔ اھ	کر دیں گے۔ جبکہ ترک سے وہ ادائیگی بہتر ہے جو بعض کے نزدیک جائز ہے جیسا کہ قنیہ وغیرہا میں ہے اھ
قلت ونقله سيدی عبدالغنی فی الحديقة عن شرح الدرر لابيه عن المصفی شرح النسفية عن الشيخ الامام الاستاذ حميد الدين عن شيخه الامام الاجل جمال الدين	میں کہتا ہوں اسے سیدی عبدالغنی نابلسی نے حدیقہ ندیہ میں اپنے والد کی شرح درر سے نقل کیا ہے اس میں نسفیہ کی شرح مصفی سے۔ اس میں شیخ امام استاذ حمید الدین نقل ہے۔ انہوں نے اپنے شیخ امام اجل جمال الدین محبوبی سے

1. حدیقہ ندیہ شرح طریقہ محمدیہ الخلق الثامن والاربعون من الاخلاق الخ مطبوعہ نوریہ رضویہ فیصل آباد ۱۵۱/۲
2. دُر مختار کتاب الصلوۃ مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی ۶۱/۱

Fatawa Razawiyya, Volume 9

(Arabic Text/Translation): It has been narrated from *Al-Mahbubi* and also from Shams al-A'immah al-Halwani and from *Qunyah* on the authority of Nasafi and Halwani. In *Radd al-Muhtar*, quoting from *Al-Bahr*, quoting from *Al-Mujtaba*, quoting from Imam al-Faqih Abu Ja'far regarding the issue of saying *takbir* in markets during the first ten days (of Dhu al-Hijjah), it is stated: "In my view, the general public should not be prohibited from it, because their inclination towards good will decrease. And we take this (opinion)." In *Al-Hadiqa al-Nadiyya*: "Of this nature is the prohibition of people from *Salat al-Ragha'ib* in congregation and the prayer of *Laylat al-Qadr* and similar acts. Although scholars have explicitly stated that these prayers in congregation are disliked (*makruh*), a fatwa should not be given to the general public to that effect, so that their inclination towards good deeds does not diminish. And Allah the Almighty knows best."

Issue No. 22: From Ahmedabad, Gujarat, Jamalpur district, sent by Maulvi Hakim Abdul Rahim, 25 Ramadan al-Mubarak 1339 AH. In our city of Ahmedabad, companions from the Ahl al-Sunnah recite *Kalimah Tayyibah* in a medium voice along with the funeral procession. Some call it *makruh tahrimi* and *tanzihi*. In their refutation, the scholars of Ahl al-Sunnah have authored and published four booklets each, and they are present with the people of truth. *Alhamdulillah* for that. Now the Ahl al-Sunnah need (clarification on) this issue. Hazrat Khwaja Bahauddin Naqshband (may his secret be sanctified) left a will for his followers to recite Persian couplets at his funeral, and Hazrat Shah Ghulam Ali Sahab Dehlvi (may Allah have mercy on him) left a will for Arabic couplets to be recited at his funeral... It is stated in *Maqamat-e-Mazhariya*, page 157: He used to say that Hazrat Khwaja Bahauddin Naqshband (may Allah have mercy on him) says...

1. *Radd al-Muhtar*, Chapter on the Two Eids, published by Idarat al-Tiba'at al-Misriyya, Egypt, 1/562.
2. *Al-Hadiqa al-Nadiyya*, Commentary on *Al-Tariqa al-Muhammadiyya*, 48th Morality, published by Maktaba Nooria Razvia, Faisalabad, 2/150.

Page 149 of 948

फ़तावा रज़विया, जिल्द नहम (9)

(अरबी पाठ/अनुवाद): अल-महबूबी से और शम्स अल-अइम्मा अल-हलवानी से और कुन्या से नसफी और हलवानी के हवाले से उद्धृत किया गया है। रद्द अल-मुह्तार में अल-बह्र से, अल-मुज्तबा से, इमाम अल-फकीह अबू जाफर से ज़ुल-हिज्जा के पहले दस दिनों में बाज़ारों में तकबीर कहने के मसले के बारे में उद्धृत है कि: "मेरे विचार में आम लोगों को इससे नहीं रोका जाना चाहिए क्योंकि इससे भलाई की ओर उनका झुकाव कम हो जाएगा। और हम इसी मत को लेते हैं।" अल-हदीका अल-नदिय्या में है: "इसी तरह का मामला जमात के साथ सलात अल-रग़ाइब और शबे क़द्र की नमाज़ और इसी तरह के कार्यों से लोगों को रोकने का है। यद्यपि विद्वानों ने स्पष्ट रूप से कहा है कि जमात के साथ ये नमाज़ें मकरूह हैं, लेकिन आम जनता को इसका फतवा नहीं दिया जाना चाहिए ताकि नेक कार्यों में उनकी रुचि कम न हो। और अल्लाह सबसे बेहतर जानने वाला है।"

मसला नंबर 22: अहमदाबाद, गुजरात, मुहल्ला जमालपुर से, मौलवी हकीम अब्दुल रहीम द्वारा प्रेषित, 25 रमज़ानुल मुबारक 1339 हिजरी। हमारे शहर अहमदाबाद में, अहले सुन्नत के साथी जनाज़े के साथ मध्यम आवाज़ में कलमा तैयबा का ज़िक्र करते हैं। कुछ लोग इसे मकरूह तहरीमी और तंज़ीही कहते हैं। उनके खंडन में अहले सुन्नत के विद्वानों ने चार-चार शोधपत्र लिखे और प्रकाशित किए हैं और वे सत्य के लोगों के पास मौजूद हैं। अलहम्दुलिल्लाह। अब अहले सुन्नत को इस मसले की आवश्यकता है। हज़रत ख्वाजा बहाउद्दीन नक्शबंद (अल्लाह उनके रहस्य को पवित्र करे) ने अपने जनाज़े में फ़ारसी शेर और हज़रत शाह गुलाम अली साहब देहलवी (अल्लाह उन पर रहम करे) ने अपने जनाज़े में अरबी शेर पढ़ने की वसीयत अपने मुरीदों को की थी... मक़ामात-ए-मज़हरिया पृष्ठ 157 में है: वे फ़रमाते थे कि हज़रत ख्वाजा बहाउद्दीन नक्शबंद (रहमतुल्लाह अलैह) फ़रमाते हैं...

1. रद्द अल-मुह्तार, बाबुल ईदैन, इदारात अल-तिबाअत अल-मिसरिया, मिस्र 1/562.
2. हदीका नदिय्या, शरह तरीका मुहम्मदिया, 48वां अख़लाक़, मकतबा नूरिया रज़विया, फैसलाबाद 2/150।

पृष्ठ 149/948

المحبوبی وایضا عن شمس الائمۃ الحلوانی وعن القنیہ عن النسفی والحلوانی وایضا فی ردالمحتار البحر عن المجتبی عن الامام الفقیہ ابی جعفر فی مسئلہ التکبیر فی الاسواق فی الایام العشر الذی عندی انہ لا ینبغی ان تمنع العامۃ عنہ لقلۃ رغبتہم فی الخیر وبہ ناخذ اہ نقل کیا ہے۔ اور شمس الائمہ حلوانی سے اور قنیہ سے اس میں نسفی وحلوانی سے بھی نقل کیا ہے۔۔۔ اور ردالمختار میں بحر سے، اس میں مجتبیٰ سے، اس میں امام فقیہ ابو جعفر سے عشرہ ذی الحجہ میں بازاروں کے اندر تکبیر کہنے کے مسئلہ میں نقل ہے کہ میرے نزدیک یہ ہے کہ عوام کو اس سے نہ روکا جائے کہ اس کی وجہ سے نیکیوں میں ان کی رغبت کم ہو جائے گی، اور ہم اسی کو لیتے ہیں اہ۔ وفي الحديقة الندية، ومن هذا القبيل نهى الناس عن صلوة الرغائب بالجماعة وصلوة ليلة القدر و نحو ذلك وان صرح العلماء بالكراهة بالجماعة فيها فلا يفتى بذلك العوام لئلا تقل رغبتهم في الخيرات و الله تعالى اعلم - حدیقہ میں ہے : اسی قبیل سے جماعت کے ساتھ صلوۃ الرغائب اور نماز شب قدر اور اس جیسے افعال سے نہی کا معاملہ ہے کہ اگرچہ علماء نے جماعت کے ساتھ یہ نماز مکروہ ہونے کی صراحت فرمائی ہے مگر عوام کو اس کا فتوٰی نہ دیا جائے گا کہ نیکیوں میں ان کی رغبت کم نہ ہو جائے۔ -- اور خدائے برتر خوب جاننے والا ہے۔ (ت)

مسئلہ نمبر ۲۲: از احمد آباد گجرات محلہ جمال پور مرسلہ مولوی حکیم عبدالرحیم ۲۵ رمضان المبارک ۱۳۳۹ھ ہمارے یہاں شہر احمد آباد میں جنازہ کے ہمراہ کلمہ طیب کا ذکر احباب اہلسنت درمیانی آواز سے کرتے ہیں اسے بعض مکروہِ تحریمی و تنزیہی کہتے ہیں ان کی تردید میں علمائے اہلسنت نے چار چار رسالے تصنیف کرکے شائع کئے ہیں اور وہ اہل حق کے پاس موجود ہیں، الحمد للہ علی ذلک، اب ضرورت اس مسئلہ کی اہلسنت کو ہے، حضرت خواجہ بہاء الدین

نقشبند قدس سرہ العزیز نے اپنے جنازہ میں فارسی کے اشعار اور حضرت شاہ غلام علی صاحب دہلوی رحمۃ اللہ علیہ نے اپنے جنازہ میں عربی اشعار پڑھنے کی وصیت کی۔۔ مقامات مظہریہ ص ۱۵۷ میں ہے: می فرمودند کہ حضرت خواجہ بہاء الدین نقشبند رحمۃ اللہ علیہ فرماتے ہیں کہ حضرت خواجہ بہاء الدین نقشبند رحمۃ اللہ علیہ

1 ردالمحتار باب العیدین مطبوعہ ادارۃ الطباعۃ المصریہ مصر ۱/ ۵۶۲ 2 حدیقہ ندیہ شرح طریقہ محمدیہ الخلق الثامن والاربعون مطبوعہ مکتبہ نوریہ رضویہ فیصل آباد ۲/ ۱۵۰

Fatawa Razawiyya Volume 9

He said: Reciting Fatiha, Kalima Tayyiba, and the Noble Verse before the funeral is disrespectful; recite these two couplets instead: (1) مفلسانیم آمدہ در کوئے تو / شیئا للہ از جمال روئے تو (1) We are beggars who have come to your street, for God's sake, grant some charity from the beauty of your face. (2) دست بکشا جانبِ زنبیل ما / آفرین بر دست و بر پہلوئے تو (2) Stretch out your hand towards our begging bowl, blessings be upon your hand and your side.

I also say that these verses should be recited before my funeral: (1) وفدت علی الکریم بغیر زاد / من حسنات والقلب السلیم (1) I am going to the court of the Generous One without any provision of good deeds and a sound heart. (2) فحمل الزاد اقبح کل شیئ / اذا کان الوفود علی الکریم[1] (2) For it is most unseemly to carry provisions when visiting a Generous One. (T)

Hazrat Shah Ghulam Ali Dehlawi (may his secret be sanctified) was the true spiritual guide of Maulana Khalid Kurdi. In the supplement to 'Maqamat-e-Mazhariya', page 29, Maulana Khalid Kurdi says in his ode: (1) و انالنی اعلی المآرب و المعنی / اعنی لقاء المرشد المفضل (1) He granted me the highest goal and desire. That is, I was blessed with the company of the most virtuous and gracious spiritual guide. (2) من نور الآفاق بعد ظلامها / و ھدی جمیع الخلق بعد ضلال (2) The one who illuminated the dark horizons and guided all the lost creation. (3) اعنی غلام علی القرم الذی / من لحظہ یحیی الرمیم البالی[2] (3) I mean that great leader Ghulam Ali, by whose glance life enters into decayed bones.

And this Maulana Khalid Kurdi is the spiritual guide of Allama Shami, the proof of which is from this passage on page 452 of Radd al-Muhtar, Volume 2:

1. Maqamat-e-Mazhariya
2. Supplement to Maqamat-e-Mazhariya

फ़तावा रज़विया खंड 9

उन्होंने फ़रमाया कि जनाज़े के सामने फ़ातिहा, कलमा तय्यिबा और आयते शरीफ़ा पढ़ना बेअदबी है; ये दो शेर पढ़े जाएं (१) مفلسانیم آمدہ در کوئے تو / شیئا للہ از جمال روئے تو (१) हम मुफ़लिस आपकी गली में आए हैं, खुदा के लिए अपने जमाल-ए-रुख़ का कुछ सदक़ा अता हो। (२) دست بکشا جانبِ زنبیل ما / آفرین بر دست و بر پہلوئے تو (२) हमारी झोली की तरफ हाथ बढ़ाएं आपके हाथ और आपके पहलू पर आफ़रीन हो।

मैं भी कहता हूँ मेरे जनाज़े के सामने यही अश्आर (शेर) पढ़े जाएं (१) وفدت علی الکریم بغیر زاد / من حسنات والقلب السلیم (१) करीम के दरबार में क़ल्बे सलीम और नेकियों का कोई तोशा लिए बग़ैर जा रहा हूँ। (२) فحمل الزاد اقبح کل شیئ / اذا کان الوفود علی الکریم[1] (२) कि जब किसी करीम के दरबार में हाज़िरी हो तो तोशा लेकर जाना बहुत बुरी बात है। (त)

हज़रत शाह ग़ुलाम अली देहलवी (कुद्दिसा सिर्रहु) मौलाना खालिद कुर्दी के मुर्शिद-ए-बरहक़ हैं। ज़मीमा मक़ामात-ए-मज़हरिया के सफ़ा २९ में मौलाना खालिद कुर्दी अपने क़सीदे में फ़रमाते हैं: (१) و انالنی اعلی المآرب و المعنی / اعنی لقاء المرشد المفضل (१) मुझे सबसे बुलंद मक़सद और आरज़ू अता फ़रमाई। यानी बड़े फ़ज़ल-ओ-करम वाले मुर्शिद की सोहबत नसीब की। (२) من نور الآفاق بعد ظلامها / و ھدی جمیع الخلق بعد ضلال (२) वह जिसने तारीख़ (अंधेरे) आफ़ाक़ रोशन कर दिए और सारी गुमराह मखलूक़ को हिदायत फ़रमाई। (३) اعنی غلام علی القرم الذی / من لحظہ یحیی الرمیم البالی[2] (३) यानी वह सरदार-ए-अज़ीम ग़ुलाम अली जिसकी नज़र से बोसीदा (सड़ी-गली) हड्डियों में जान पड़ जाती है।

और ये मौलाना खालिद कुर्दी अल्लामा शामी के मुर्शिद हैं, इसका सबूत रद-उल-मुहतार जिल्द २ सफ़ा ४५२ की इस इबारत से है:

1. मक़ामात-ए-मज़हरिया
2. ज़मीमा मक़ामात-ए-मज़हरिया

पृष्ठ 150/948

فتاوٰی رضویہ جلد نہم

فرمودند کہ فاتحہ خواندن پیشِ جنازہ مع کلمہ طیب و آیت شریفہ بے ادبی است ایں دو بیت بخوانند: (۱) مفلسانیم آمدہ در کوئے تو / شیئا للہ از جمال روئے تو (۱) ہم مفلس آپ کی گلی میں آئے ہیں، خدا کے لئے اپنے جمالِ رُخ کا کچھ صدقہ عطا ہو۔ (۲) دست بکشا جانبِ زنبیل ما / آفرین بر دست و بر پہلوئے تو (۲) ہماری جھولی کی طرف ہاتھ بڑھائیں، آپ کے ہاتھ اور آپ کے پہلو پر آفرین ہو۔

من ہم میگویم پیشِ جنازہ من ہمیں اشعار بخوانند: (۱) وفدت علی الکریم بغیر زاد / من حسنات والقلب السلیم (۱) کریم کے دربار میں قلب سلیم اور نیکیوں کا کوئی توشہ لئے بغیر جارہا ہوں۔ (۲) فحمل الزاد اقبح کل شیئ / اذا کان الوفود علی الکریم[1] (۲) کہ جب کسی کریم کے دربار میں حاضری ہو تو توشہ لے کر جانا بہت بُری بات ہے۔ (ت)

حضرت شاہ غلام علی دہلوی قدس سرہ العزیز مولانا خالد کردی کے مرشدِ برحق ہیں ضمیمہ مقاماتِ مظہریہ کے ص ۲۹ میں مولانا خالد کردی اپنے قصیدہ میں فرماتے ہیں: (۱) و انالنی اعلی المآرب و المعنی / اعنی لقاء المرشد المفضل (۱) مجھے سب سے بلند مقصد و آرزو عطا فرمائی۔ یعنی بڑے فضل و کرم والے مرشد کی صحبت نصیب کی۔ (۲) من نور الآفاق بعد ظلامھا / و ھدی جمیع الخلق بعد ضلال (۲) وہ جس نے تاریک آفاق روشن کر دئیے اور ساری گمراہ مخلوق کو ہدایت فرمائی۔ (۳) اعنی غلام علی القرم الذی / من لحظہ یحیی الرمیم البالی[2] (۳) یعنی وہ سردار عظیم غلام علی جس کی نظر سے بوسیدہ ہڈیوں میں جان پڑ جاتی ہے۔

اور یہ مولانا خالد کردی علامہ شامی کے مرشد ہیں، اس کا ثبوت رد المحتار جلد ۲ صفحہ ۴۵۲ کی اس عبارت سے ہے:

1 مقاماتِ مظہریہ 2 ضمیمہ مقاماتِ مظہریہ

Fatawa Razawiya, Volume 9

“And we have discussed the matter in detail in our treatise 'Sall al-Husam al-Hindi li-Nusrah Sayyidina Khalid al-Naqshbandi'.” (1) And we have spoken in detail in our treatise "Sall al-Husam al-Hindi li-Nusrah Sayyidina Khalid al-Naqshbandi". (T)

At the funeral of the grandfather spiritual master (Murshid) of Allama Shami, Arabic verses were recited, and at the funeral of Hazrat Khwaja Bahauddin Naqshband (may Allah have mercy on him), Persian verses were recited. Is the recitation of these verses permissible or not? If it is permissible, what are the proofs? Those who say it is prohibitively disliked (Makruh Tahrimi) present this statement from Allama Shami's Rad al-Muhtar, Vol. 1, p. 932:

[Urdu translation of the quote]: (As it is disliked) It is said to be tahrimi, and it is said to be tanzihi, as is quoted from al-Ghayah in al-Bahr, and in the same source it is also mentioned with reference to al-Zahiriyyah: the one walking with a funeral should observe long silence. If he wishes to make remembrance of Allah, he should do so quietly because the Divine saying is: 'Indeed, He does not like those who exceed the limits.' Meaning those who pray in a loud voice. It is narrated from Hazrat Ibrahim Nakha'i that when he walked with a funeral and someone would say, "Seek forgiveness for him, may God forgive you," it would be unpleasant to him. I say, when this is the ruling for prayer and remembrance, then what is your opinion about this singing (naghm-zani) that has emerged in this age? (T)

From this text, is the dislikeability (karahat) of the Persian and Arabic verses recited at the funerals of Hazrat Shah Ghulam Ali and Khwaja Bahauddin (may their secrets be sanctified) established or not? What is the reason for the lack of dislikeability and the permissibility of these verses, and what is the reason for modern singing? Please explain the ruling for both. Also, here, people recite these verses in Urdu with a beautiful voice along with the funeral procession. Regarding these verses...

---

1 Rad al-Muhtar, Book of Marriage, before the section on Prohibited Acts, Egyptian Printing House, Egypt, 2/76. 2 Rad al-Muhtar, Chapter on Funeral Prayer, printed by Egyptian Printing House, Egypt, 1/598.

फ़तावा रज़विया, खंड 9

"और हमने अपने शोध-पत्र 'सल अल-हुसाम अल-हिन्दी ली-नुसरह सैय्यदिना खालिद अल-नक़्शबंदी' में इस विषय पर विस्तार से चर्चा की है।" (1) और हमने अपने शोध-पत्र "सल अल-हुसाम अल-हिन्दी ली-नुसरह सैय्यदिना खालिद अल-नक़्शबंदी" में विस्तार से बात की है। (त)

अल्लामा शामी के दादा मुर्शिद के जनाजे में अरबी शेर और हज़रत ख्वाजा बहाउद्दीन नक़्शबंद (रहमतुल्लाह अलैह) के जनाजे में फ़ारसी शेर पढ़े गए, क्या इन शेरों का पढ़ना जायज़ है या नहीं? अगर जायज़ है तो दलीलें क्या हैं? जो लोग इसे मकरूह तहरीमी (निषिद्ध के निकट नापसंद) कहते हैं, वे अल्लामा शामी की रद अल-मुह्तार, खंड 1, पृष्ठ 932 के इस कथन को प्रस्तुत करते हैं:

[उर्दू अनुवाद]: (जैसा कि नापसंद है) इसे तहरीमी कहा गया है, और तन्ज़ीही कहा गया है, जैसा कि अल-बहर में ग़याह के हवाले से है और उसी में इसके हवाले से यह भी है: जनाजे के साथ चलने वाले को लंबी खामोशी इख्तियार करनी चाहिए, और इसमें ज़हीरिया के हवाले से है। अगर अल्लाह का ज़िक्र करना चाहे तो धीरे से करे क्योंकि अल्लाह का फरमान है: 'बेशक वह हद से बढ़ने वालों को पसंद नहीं फरमाता।' यानी वे जो बुलंद आवाज़ से दुआ करते हैं। हज़रत इब्राहिम नखई से मरवी है कि जब वे जनाजे के साथ चलते और कोई बोलता 'इसके लिए इस्तिग़फ़ार करो खुदा तुम्हारी मग़फ़िरत फरमाए' तो उन्हें नागवार होता। मैं कहता हूँ जब दुआ व ज़िक्र का यह हुक्म है तो इस नग़मा ज़नी के बारे में तुम्हारा क्या ख्याल है जो इस ज़माने में पैदा हो गई है। (त)

इस इबारत (लेख) से क्या हज़रत शाह गुलाम अली और ख्वाजा बहाउद्दीन (क़ुदिस सिर्रुहुमा) के जनाजों में पढ़े गए फ़ारसी और अरबी शेरों की कराहत (नापसंदगी) साबित होती है या नहीं? और इन शेरों की अदम-कराहत (नापसंदगी न होना) और जवाज़ (अनुमति) की क्या वजह है, और नए गायन की क्या वजह है, दोनों का हुक्म बयान फरमाएँ। और यहाँ जनाजे के साथ ये शेर उर्दू के भी हज़रात खुश-अलहानी (मधुर स्वर) से पढ़ते हैं, इन शेरों को...

---

1 रद अल-मुह्तार, किताबुन निकाह, मुहर्रमात के अध्याय से पहले, इदारातुल तिबाअतुल मिस्रिया, मिस्र, 2/76। 2 रद अल-मुह्तार, जनाजे की नमाज़ का अध्याय, इदारातुल तिबाअतुल मिस्रिया, मिस्र द्वारा मुद्रित, 1/598।

पृष्ठ 151 / 948

وقد بسطنا الكلام في رسالتنا سل الحسام الهندي لنصرة سيدنا خالد النقشبندي 1۔ اور ہم نے اپنے رسالہ "سل الحسام الہندی لنصرۃ سیدنا خالد النقشبندی" میں تفصیل سے کلام کیا ہے۔ (ت)

علامہ شامی کے دادا مرشد کے جنازہ میں عربی اشعار اور حضرت خواجہ بہاء الدین نقشبند رحمہ اللہ تعالٰی کے جنازہ میں فارسی اشعار پڑھے گئے، ان اشعار کا پڑھنا جائز ہے یا نہیں؟ جائز ہے تو دلائل کیا ہیں؟ جو مکروہ تحریمی کہتے ہیں وہ علامہ شامی کی ردالمحتار ج ۱ ص ۹۳۲ کے اس قول کو پیش کرتے ہیں:

(قوله كما كره الخ) قيل تحريماً وقيل تنزيهاً كما في البحر عن الغاية وينبغي لمن تبع الجنازة ان يطيل الصمت وفيه عن الظهيرية فان ارادان يذكر الله تعالى يذكره في نفسه لقوله تعالى انه لا يحب المعتدين اى الجاهرين بالدعاء وعن ابراهيم انه كان يكره اذ يقول الرجل وهو يمشى معها استغفروا له غفر الله لكم اھ قلت واذا كان هذا فى الدعاء والذكر فما ظنک بالغناء المحدث فى هذا الزمان 2۔

(جیسا کہ مکروہ ہے) کہا گیا تحریمی، اور کہا گیا تنزیہی، جیسا کہ بحر میں غایۃ کے حوالے سے ہے اور اسی میں اس کے حوالے سے یہ بھی ہے: جنازہ کے ساتھ چلنے والے کو طول سکوت اختیار کرنا چاہئے، اور اس میں ظہیریہ کے حوالے سے ہے۔ اگر اللہ کا ذکر کرنا چاہے تو آہستہ کرے اس لئے کہ ارشاد باری ہے: بے شک وہ حد سے بڑھنے والوں کو پسند نہیں فرماتا۔ یعنی وہ جو بلند آواز سے دعا کرتے ہیں۔ حضرت ابراہیم نخعی سے مروی ہے کہ جب وہ جنازے کے ساتھ چلتے اور کوئی بولتا "اس کے لئے استغفار کرو خدا تمہاری مغفرت فرمائے" تو انہیں ناگوار ہوتا

اھ میں کہتا ہوں جب دعا و ذکر کا یہ حکم ہے تو اس نغمہ زنی کے بارے میں تمہارا کیا خیال ہے جو اس زمانے میں پیدا ہوگئی ہے۔ (ت)

اس عبارت سے حضرت شاہ غلام علی و خواجہ بہاء الدین قدس سرہما نے جو فارسی و عربی کے اشعار اپنے جنازوں میں پڑھوائے ان کی کراہت ثابت ہوتی ہے یا نہیں اور عدم کراہت و جواز ان اشعار کی کیا وجہ ہے اور غناء حادثات کی کیا وجہ ہے، دونوں کا حکم بیان فرمائیں، اور یہاں جنازہ کے ہمراہ یہ اشعار اردو کے بھی حضرات خوش الحانی سے پڑھتے ہیں اس اشعار کو

---

1 ردالمحتار کتاب النکاح قبیل فصل فی المحرمات ادارۃ الطباعۃ المصریۃ مصر ۲/۷۶ 2 ردالمحتار باب صلوٰۃ الجنائز مطبوعہ ادارۃ الطباعۃ المصریۃ مصر ۱/۵۹۸

Fatawa Rizvia Volume 9

Should they read or not. O Panjtan (The five holy ones), save me when the soul leaves the body; when it leaves, let it leave the body saying 'O Muhammad'. My beloved will come, the melody of the flute will play; when that beautiful one of mine comes out in full bloom. The hope of my sick heart is this: that my head be on his lap when the soul leaves the body. When my funeral procession passes through the street of that Beloved; then may the word of testimony (Kalima-e-Shahadat) come from everyone's mouth. What did Alexander bring from the world, and what did he take away? Both his hands were empty, coming out of the shroud.

The Answer: Remembrance of Allah Almighty is the actual goal, the most sublime objective, and the essence of all worship. "Establish prayer for My remembrance."[1] It is required in every state.

| "Those who remember Allah while standing, sitting, and lying on their sides."[2] It is stated that the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) used to remember Allah at all times.[3] | They remember Allah Almighty while standing, sitting, and lying on their sides. The Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) used to remember God at all times. (T) |

Command for abundance without restriction:

| "And remember Allah much that you may succeed."[4] - "Remember Allah so much that people say he is mad."[5] (Al-Hadith) | Remember Allah much so that you may attain success (T). Remember God with such abundance that people say he is mad. (T) |

There are many ways of remembrance: heart-based, verbal, hidden, manifest, recitation, praise, blessings (Salawat), supplication, and acts of worship and obedience. Despite its general application, some places have a specialty for certain types. The place of a funeral is a place for reflection, which is heart-based remembrance. "Reflection for a moment is better than the worship of humans and jinn." (A moment's reflection of humans and...

---

[1] Al-Quran 20/14 [2] Al-Quran 3/191 [3] Al-Mustadrak 'ala al-Sahihayn, Kitab al-Du'a, published by Dar al-Fikr, Beirut, 1/499 [4] Al-Quran 62/10 [5] Musnad Ahmad bin Hanbal, narrated by Abu Sa'id, Dar al-Fikr, Beirut, 3/68, etc., Tahdhib Tarikh Dimashq al-Kabir, translation of Daraj bin Sam'an al-Masri, Dar Ihya al-Turath al-Arabi, Beirut, 5/222

फ़तावा रज़विया जिल्द 9

पढ़ें या नहीं। या पंजतन बचाना जब जान तन से निकले, निकले तो या मुहम्मद कह कर बदन से निकले। आवेगा मेरा प्यारा बाजेगी धुन की मुरली, जब वो मेरा सांवरिया जो बन के बन से निकले। मेरे मरीज़ दिल की उम्मीद है तो ये है, ज़ानू पे उसके सर हो और जान तन से निकले। निकले जनाज़ा मेरा उस यार की गली से, तो कलमा-ए-शहादत सब के दहन से निकले। क्या लाया था सिकंदर दुनिया से ले गया क्या, थे दोनों हाथ खाली बाहर कफ़न से निकले।

अल-जवाब: अल्लाह अज़्ज़वजल का ज़िक्र असल मक़सूद और अजल मक़ासिद और मग़्ज़ जुमला इबादत है। "मेरे ज़िक्र के लिए नमाज़ क़ायम करो।"[1] वह हर हाल में मतलूब है।

| "जो खड़े, बैठे और अपनी करवटों पर लेटे अल्लाह का ज़िक्र करते हैं।"[2] यहाँ तक कि नबी (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) हर समय अल्लाह का ज़िक्र करते थे।[3] | वे खड़े, बैठे, करवटों पर लेटे अल्लाह तआला का ज़िक्र करते हैं। रसूल अल्लाह (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) सभी औक़ात में ख़ुदा का ज़िक्र किया करते। (त) |

बिला तक़यीद उसकी तकसीर का हुक्म:

| "और अल्लाह का ज़िक्र बहुत करो ताकि तुम फ़लाह पाओ।"[4] - "अल्लाह का ज़िक्र इतनी कसरत से करो कि लोग कहें कि ये मजनून है।"[5] (अल-हदीस) | अल्लाह का ज़िक्र ज़्यादा करो ताकि फ़लाह पाओ (त)। ख़ुदा का ज़िक्र इतनी कसरत से करो कि लोग कहें कि ये मजनून है। (त) |

ज़िक्र के लिए कई तरीक़े हैं: क़ल्बी (दिल से), लिसानी (ज़बान से), ख़फ़ी (छुपकर), जली (ज़ाहिर में), तिलावत, सना, दरूद, दुआ और इबादात व ताअत। हर जगह ज़िक्र की अपनी अहमियत है, लेकिन कुछ मक़ामात पर कुछ तरीक़े मख़सूस होते हैं। जनाज़े का मौक़ा फ़िक्र व सोच का है, ये क़ल्बी ज़िक्र है। "घड़ी भर का तफ़क्कुर इंसानो और जिन्नात की इबादत से बेहतर है।" (घड़ी भर का तफ़क्कुर इंसानों और...

---

[1] अल-कुरान 20/14 [2] अल-कुरान 3/191 [3] अल-मुस्तदरक अलस-सहीहैन, किताब अद-दुआ, मतबुआ दार अल-फ़िक्र, बेरुत, 1/499 [4] अल-कुरान 62/10 [5] मुसनद अहमद बिन हंबल, मरवी अज़ अबू सईद, दार अल-फ़िक्र, बेरुत, 3/68 वग़ैरह, तहज़ीब तारीख़ दमिश्क़ अल-कबीर, तर्जुमा दराज बिन समआन अल-मसरी, दार इह्या अत-तुराथ अल-अरबी, बेरुत, 5/222

فتاوی رضویہ جلد نہم

پڑھیں یا نہیں۔ یا پنجتن بچانا جب جان تن سے نکلے نکلے تو یا محمد کہہ کر بدن سے نکلے آوے گا میرا پیارا باجے گی دھن کی مُرلی جب وہ مرا سنوریا جو بن کے بن سے نکلے میرے مریض دل کی امید ہے تو یہ ہے زانو پہ اُس کے سر ہو اور جان تن سے نکلے نکلے جنازہ میرا اُس یار کی گلی سے تو کلمہ شہادت سب کے دہن سے نکلے کیا لایا تھا سکندر دنیا سے لے گیا کیا تھے دونوں ہاتھ خالی باہر کفن سے نکلے

الجواب: اللہ عزوجل کا ذکر اصل مقصود واجل مقاصد و مغز جملہ عبادت ہے اَقِمِ الصَّلٰوۃَ لِذِکْرِیْ 1 (میرے ذکر کے لئے نماز قائم کروت) وہ ہر حال میں مطلوب،

| یَذْکُرُوْنَ اللہَ قِیَامًا وَقُعُوْدًا وَّعَلٰی جُنُوْبِھِمْ 2 اھ کان النبی صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم یذکراللہ فی کل احیانہ 3۔ | وہ کھڑے بیٹھے، کروٹوں پر لیٹے اللہ تعالٰی کا ذکر کرتے ہیں۔ رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم سبھی اوقات میں خدا کا ذکر کیا کرتے۔ (ت) |

بلا تقیید اُس کی تکثیر کا حکم:

| وَاذْکُرُوا اللہَ کَثِیْرًا لَّعَلَّکُمْ تُفْلِحُوْنَ 4 ۔ ا کثر واذکر اللہ حتی یقولوانہ مجنون 5۔ (الحدیث) | اللہ کا ذکر زیادہ کرو تاکہ فلاح پاؤ (ت) خدا کا ذکر اتنی کثرت سے کرو کہ لوگ کہیں کہ یہ مجنون ہے۔ (ت) |

ذکر کے لئے انحاء کثیرہ ہیں، قلبی و لسانی و خفی و جلی و تلاوت و ثناء و درود و دعا و عبادات و طاعات۔ باوصف اطلاق بعض مقامات کو بعض انحاء سے خصوصیت ہوتی ہے۔ محل جنازہ مقام تفکر ہے ذکر قلبی ہے۔ تفکر ساعۃ خیر من عبادۃ الثقلین (گھڑی بھر کا تفکر انسانوں اور

1 القرآن ۲۰ / ۱۴ 2 القرآن ۳ / ۱۹۱ 3 المستدرک علی الصحیحین کتاب الدعاء مطبوعہ دارالفکر بیروت ۱ / ۴۹۹ 4 القرآن ۶۲ / ۱۰ 5 مسند احمد بن حنبل مروی از ابوسعید دارالفکر بیروت ۳ / ۶۸ واے ، تہذیب تاریخ دمشق الکبیر ترجمہ دراج بن سمعان المصری داراحیاء التراث العربی بیروت ۵ / ۲۲۲

Fatawa Razawiyya, Volume 9

...is better than the worship of Jinn. (Trans.) Therefore, the jurists gave preference to verbal remembrance (dhikr), otherwise a detailed discussion on dhikr would be difficult. "And the remembrance of Allah is greatest" (Trans.). For such remembrance, silence (samt) is better. Thus, the jurists said, "One should prolong the silence." (Trans.) Probably this was the practice in the first era (Sadr-e-Awwal), so much so that while walking with a funeral, it would not be known who is on our right and who is on our left. Every person would be occupied in their own concern: that this time will come for me, and what will happen then? How will it pass? What is the state of my deeds? Being immersed in this thought, it was as if every person considered that funeral as their own. Undoubtedly, that state is most appropriate for that time, and absolute silence is appropriate for that state, where no sound except breathing is heard. When times changed and the fear like that of the first era no longer remained among common Muslims, mere silence became a cause of mental distress for many. The healers of hearts (spiritual guides) added hidden verbal dhikr, saying, "If one intends to remember Allah, let him remember Him within himself." (Trans. If he wishes to do dhikr of Allah Almighty, let him do it quietly.)

I say: The wisdom in this was that [silence] itself is not a desired thing. Good speech is absolutely superior to absolute silence. Therefore, it was said: "May your tongue never cease to be moist with the remembrance of Allah." (1) | Always let your tongue remain moist with the remembrance of God. (Trans.)

If previous religions had kept it in fasting, our glorious Sharia abrogated it. Among those imprisoned, there is silence at the time of eating. In our Sharia, that is disliked and must be avoided. Here, a means became desired after being designated so that the action of the tongue does not cause division of focus. Now that we see times have changed, instead of being a helper, it began to interfere with the goal for many. To achieve the primary goal, verbal dhikr was advised and kept hidden so that all are not so distracted that the mind of thinking people is not diverted. When times changed further and common people mostly became of this type, and in jurisprudence, the majority is considered.

Indeed, the exception is rare and its ruling is not stated separately, as is in Fath al-Qadir and Radd al-Muhtar, etc. | The exception is rare and its separate ruling is not described, as is in Fath al-Qadir and Radd al-Muhtar etc. (Trans.)

Spiritual healers gave permission for loud dhikr because it is more impactful in souls, more effective in repelling whispers (waswasah), and more beneficial for people.

---

1 Jami' at-Tirmidhi, Chapters of Supplications, Amin Company Kutub Khana Rashidiyah, Delhi, 7/312; Musnad Ahmad bin Hanbal, Hadith of Abdullah bin Busr al-Mazini etc., Dar al-Fikr, Beirut, 188/4. 2 Radd al-Muhtar, Book of Marriage, Chapter of Maintenance, Mustafa al-Babi, Egypt, 30/2; Muntaqa Sharh Multaqa on the margins of Majma' al-Anhur, Book of Marriage, Dar Ihya al-Turath al-Arabi, Beirut, 500/1.

फ़तावा रज़विया, जिल्द नौवीं

...जिन्नों की इबादत से बेहतर है। (अनु.) इसीलिए फुक़हा (धर्मशास्त्रियों) ने ज़िक्रे लिसानी (ज़बानी ज़िक्र) को वरीयता दी, वरना ज़िक्र पर तफ़सील (विस्तार) असंभव होती। और अल्लाह का ज़िक्र सबसे बड़ा है। (अनु.) इस प्रकार के ज़िक्र के लिए सम्त यानी खामोशी बेहतर होती है, और इसीलिए फुक़हा ने फरमाया: "खामोशी को लम्बा करना चाहिए।" (अनु.) पहली सदी (सद्र-ए-अव्वल) में शायद यही तरीका था, यहाँ तक कि जनाज़े के साथ चलते हुए यह पता नहीं चलता था कि हमारे दाईं ओर कौन है और बाईं ओर कौन। हर व्यक्ति अपनी चिंता में लगा होता था कि मेरे लिए भी यह समय आएगा, और फिर उस समय क्या होगा? वह कैसे बीतेगा? मेरे कर्मों की क्या स्थिति है? इस सोच में डूबे रहना ऐसा था जैसे हर व्यक्ति उस जनाज़े को अपना ही जनाज़ा समझता हो। निःसंदेह उस समय के लिए यही स्थिति सबसे उपयुक्त है, और उस स्थिति के लिए वही पूर्ण मौन उपयुक्त है जहाँ सांस के अलावा कोई आवाज़ न हो। जब समय बदला और पहली सदी जैसा डर आम मुसलमानों में नहीं रहा, तो कोरा मौन कई लोगों के लिए मानसिक परेशानी का कारण बन गया। दिलों के हकीमों (आध्यात्मिक गुरुओं) ने छिपे हुए ज़बानी ज़िक्र का इज़ाफ़ा किया कि "अगर कोई अल्लाह का ज़िक्र करना चाहे तो अपने मन में करे।" (अनु. अगर अल्लाह तआला का ज़िक्र करना चाहे तो धीरे से करे।)

मैं कहता हूँ: इसमें हिकमत यह थी कि यह अपने आप में कोई वांछित चीज़ नहीं है। अच्छी बात कहना पूर्ण मौन से निश्चित रूप से श्रेष्ठ है। इसीलिए फरमाया गया: "तुम्हारी ज़बान हमेशा अल्लाह के ज़िक्र से तर रहे।" (1) | हमेशा तुम्हारी ज़बान खुदा के ज़िक्र से तर रहे। (अनु.)

अगर पिछले धर्मों ने इसे रोज़े में रखा था, तो हमारी शरीयत ने इसे मंसूख (रद्द) कर दिया। कैदियों के यहाँ खाने के समय खामोशी होती है। हमारी शरीयत में वह मकरूह (नापसंद) है और उससे बचना ज़रूरी है। यहाँ एक ज़रिया (साधन) एक निश्चित समय के बाद वांछित होकर चाहा गया था ताकि ज़बान का काम ध्यान बंटने का कारण न बने। अब जबकि देखते हैं कि समय बदल गया, तो वह मददगार होने के बजाय कई लोगों के लिए लक्ष्य में बाधक होने लगा। मूल लक्ष्य की प्राप्ति के लिए ज़बानी ज़िक्र बताया गया और उसे गुप्त रखा गया ताकि सभी इतने परेशान-ख्याल न हों जिससे चिंतनशील लोगों का ध्यान न हटे। जब समय और बदला और आम लोग ज़्यादातर इसी तरह के रह गए और फिक़्ह (न्यायशास्त्र) में बहुमत का ही एतबार (विचार) होता है।

वास्तव में अपवाद दुर्लभ है और उसका अलग नियम बयान नहीं किया जाता, जैसा कि फ़तह अल-क़दीर और रद अल-मुह्तार आदि में है। | अपवाद दुर्लभ है और इसका अलग हुक्म बयान नहीं होता, जैसा कि फ़तह अल-क़दीर और रद अल-मुह्तार आदि में है (अनु.)

रूहानी हकीमों ने ज़ोर से ज़िक्र (जह्र बिल-ज़िक्र) की इजाज़त दी क्योंकि वह दिलों में ज़्यादा असर करने वाला, वसवसों (कुविचारों) को दूर करने वाला और लोगों के लिए ज़्यादा फायदेमंद है।

---

1 जामी' अत-तिर्मिज़ी, अबवाब अद-दवात, अमीन कंपनी कुतुब खाना रशीदिया दिल्ली 7/312, मसनद अहमद बिन हंबल, हदीस अब्दुल्लाह बिन बुस्र अल-माज़िनी आदि, दार अल-फ़िक्र बेरुत 188/4 2 रद अल-मुह्तार, किताब अन-निकाह, बाब अन-नफ़क़ा, मुस्तफ़ा अल-बाबी मिस्र 30/2, मुंतक़ा शरह मुल्तक़ा अला हामिश मजम' अल-अनहुर, किताब अन-निकाह, दार इह्या अत-तुराथ अल-अरबी बेरुत 500/1

جنوں کی عبادت سے بہتر ہے۔ت) و لہٰذا فقہائے ذکرِ لسانی پر ترجیح دی گئی ورنہ ذکرِ پر تفصیل محال ہوتی و ذکر اللہ اکبر (اور اللہ تعالٰی کا ذکر سب سے بڑھا ہوا ہے۔ت) اس نحو ذکر کے لئے صمت یعنی خاموشی بہتر ہوتی ہے، و لہٰذا فقہاء نے ینبغي ان یطیل الصمت (طویل سکوت اختیار کرنا چاہئے۔ت) فرمایا، صدرِ اول میں غالباً یہی معمول تھا یہاں تک کہ جنازہ کے ساتھ چلنے میں یہ نہ معلوم ہوتا کہ ہمارے دہنے ہاتھ پر کون اور بائیں ہاتھ پر کون، ہر شخص اپنی فکر میں مشغول ہوتا اور اپنے لئے یہ وقت آنا، اور پھر اس وقت کیا ہوگا؟ کیسے گزرے گی؟ اپنے اعمال کی حالت کیا ہے؟ اس دھن میں مستغرق ہونا گویا ہر شخص اس جنازہ کو اپنا ہی جنازہ جانتا، بلاشبہ اُس وقت کیا مناسب یہی حالت ہے اور اس حالت کے مناسب وہی صمتِ مطلق کہ سانس کے سوا اصلاً آواز نہ ہو۔ جب زمانہ بدلا اور صدرِ اوّل کا سا خوف عام مسلمانوں میں نہ رہا، صمت محض بہتوں کو باعثِ پریشانی خیالی ہوا، اطبائے قلوب نے ذکرِ لسانی خفی کا اضافہ فرمایا کہ ان اراد ان یذکر اللہ یذکر في نفسہ (اگر اللہ تعالٰی کا ذکر کرنا چاہے تو آہستہ کرے۔ت)

اقول: اس میں حکمت یہ تھی فی نفسہ کوئی شہ مطلوب نہیں قول خیر عدم قول مطلق سے قطعاً افضل ہے ولہٰذا ارشاد ہوا: ان لا یزال لسانك رطباً من ذکر اللہ ۔1 | ہمیشہ تمہاری زبان خدا کے ذکر سے تر رہے۔ (ت)

اگر شرائع نے اُسے صوم میں رکھا تھا۔ ہماری شریعتِ عزاء نے اُسے منسوخ فرما دیا۔ محبوس کے یہاں وقت اکل صمت ہے۔ ہماری شریعت میں وہ مکروہ و لازم احتراز ہے۔ یہاں ایک ذریعہ بعدِ معین مقصود ہو کر مطلوب ہوا تھا کہ عمل لسان وجہ انقسام توجہ نہ ہو۔ اب کہ دیکھنا زمانہ بدلا، اب وہ معین ہونے کے عوض بہتوں کے لئے مخلِ مقصود ہونے لگا، تحصیلِ اصل مقصود کے لئے

ذکرِ لسانی بتایا اور خفی رکھا سب تو ایسے پریشان خیال نہیں جس سے اہل تفکر کا ذہن نہ ہٹے۔ جب زمانہ اور بدلا اور عامہ ناس غالباً اسی قسم کے رہ گئے اور فقہ میں اکثر ہی کا اعتبار ہے۔

ان در مستثنیٰ ولا یفرد بحکم کما فی فتح القدیر وردالمحتار وغیرھما۔ | نادر مستثنیٰ ہے اور اس کا الگ حکم بیان نہیں ہوتا، جیسا کہ فتح القدیر اور ردالمحتار وغیرہما میں ہے (ت)

اطبائے روحانی نے جہر بالذکر کی اجازت دی کہ وہ اوقع فی النفوس و ادفع للوسواس و انفع للناس ہے۔

---

1 جامع الترمذی ابواب الدعوات امین کمپنی کتب خانہ رشیدیہ دہلی ۷/۳۱۲، مسند احمد بن حنبل حدیث عبداللہ بن بسر المازنی الخ دارالفکر بیروت ۱۸۸/۴ 2 ردالمحتار کتاب النکاح باب النفقۃ مصطفیٰ البابی مصر ۳۰/۲، منتقیٰ شرح ملتقیٰ علی ھامش مجمع الانہر کتاب النکاح داراحیاء التراث العربی بیروت ۵۰۰/۱

Fatawa Razawiyya, Volume 9

It engages the tongues of those who remember God and the ears of the listeners, and by waking up the heedless and keeping them away from trivialities, it brings them towards dhikr (remembrance) and listening. To assume that Muslims have become such that they will not be affected despite repeated knocking and the force of repetition is ignorance and ill-suspicion. Therefore, audible dhikr is now among the acts of commanding right and forbidding wrong, and to prohibit it is contrary and opposite to the purpose of Sharia. Allama Arif Billah Sayyidi Abdul Ghani Nablusi (may his secret be sanctified) in 'Hadiqa Nadiyya' and Imam Arif Billah Sayyidi Abdul Wahhab Sha'rani (may his secret be sanctified) in 'Uhud Muhammadiya' state:

[Arabic Text Column] It is appropriate for the scholar of the neighborhood or the elder of the poor in the neighborhood to teach those who wish to walk with the funeral procession the manners of walking with it, such as avoiding idle talk therein, like mentioning who was appointed or dismissed from rule, or who traveled or returned from trade, and so on. For mentioning the world in that place has no place. And Sayyidi Ali al-Khawwas (may Allah Almighty be pleased with him) used to say that when it is known about those walking with the funeral procession that they will not leave idle talk in the funeral and remain busy with worldly affairs, then they should be commanded to say 'La ilaha illallah Muhammadur Rasulullah', for that is better than leaving it. And it is not appropriate for a jurist to deny that without a clear text or consensus, for the Muslims have general permission from the Lawgiver to say 'La ilaha illallah Muhammadur Rasulullah' whenever they wish. O Allah, wonder at the blindness of heart of one who denies the likes of this! Perhaps he intends before the rulers to take money so as to nullify the speech of the believers (Kalimah Tayyibah) on the funeral path. While he sees hashish being sold, he does not burden himself to tell the hashish-seller, 'It is forbidden for you.' Rather, I have seen a jurist among them taking money for leading prayer from the money of a hashish and opiate seller.

[Urdu Translation Column] The neighborhood scholar or the elder of the neighborhood's poor should teach those walking with a funeral procession the etiquette of walking with it: that there should be no idle talk, such as who became the ruler, who was dismissed, which merchant returned from travel or departed, and so forth. Such talk should not occur because there is no place for worldly conversation in that situation. Sayyidi Ali al-Khawwas (may Allah Almighty be pleased with him) used to say that when it is known about those walking with the funeral procession that they will not refrain from idle talk during the funeral and will remain occupied

with worldly affairs, they should be commanded to recite the Kalimah 'La ilaha illallahu Muhammadur Rasulullah' (peace and blessings of Allah be upon him), for reciting it is better than remaining silent. No jurist should prohibit this without clear text or consensus, for Muslims have general permission from the Lawgiver to recite 'La ilaha illallahu Muhammadur Rasulullah' whenever they wish. O Allah, I marvel at the blindness of heart of one who prevents such an act; perhaps he seeks to declare the recitation of the Kalimah Tayyibah on the funeral path as void to gain worldly wealth from the authorities, while he sees that path...

फ़तावा रज़विया, जिल्द नहम (खंड 9)

ज़ाकिरीन (ज़िक्र करने वालों) की ज़ुबानों और सामिईन (सुनने वालों) के कानों को मसरूफ़ करता है और ग़ाफ़िलों को जगा कर लग़वियात (फालतू बातों) से बाज़ रख कर ज़िक्र व समाअ की तरफ़ लाता है, और ये समझ लेना कि मुसलमान ऐसे हो गए कि बावजूद दस्तक और शिद्दत-ए-दस्तक और बार-बार कहने के भी मुतासिर न होंगे, जहल (अज्ञानता) और बद-गुमानी है। तो अब ज़िक्र-ए-जہر (ऊंची आवाज़ में ज़िक्र) 'अम्र बिल मअरूफ़ व नही अनिल मुनकर' के अफ़राद में से है जिससे मना करना शरीअत के मक़सूद के उलट और बरअक्स है। अल्लामा आरिफ़ बिल्लाह सय्यिदी अब्दुल ग़नी नाबलुसी (क़ुद्दिस सिर्रहु अल-क़ुदसी) 'हदिक़ा नदिय्या' में और इमाम आरिफ़ बिल्लाह सय्यिदी अब्दुल वहाब शेरानी (क़ुद्दिस सिर्रहु अल-रब्बानी) 'उहूद-ए-मुहम्मदिया' में फ़रमाते हैं:

[अरबी पाठ स्तंभ] मोहल्ले के आलिम या मोहल्ले के फ़ुक़रा के बुज़ुर्ग को चाहिए कि जनाज़े के साथ चलने वालों को उसके साथ चलने के आदाब सिखाए कि उसमें लग़व (फालतू) बातें न हों, कौन हाकिम हुआ, कौन माज़ूल (बर्खास्त) हुआ, कौन ताजिर सफ़र से आया कौन गया, इस तरह की बातें न हों क्योंकि उस जगह दुनिया की बातों का कोई मौका नहीं। सय्यिदी अली ख़व्वास रज़ियल्लाहु तआला अन्हु फ़रमाते थे कि जब जनाज़े के साथ चलने वालों के बारे में मालूम हो कि वे जनाज़े में लग़व से बाज़ न आएंगे और दुनिया की बातों में मसरूफ़ रहेंगे, तो उन्हें हुक्म देना चाहिए कि 'ला इलाह इल्लल्लाहु मुहम्मदुर रसूलुल्लाह' कहें, क्योंकि यह इसे छोड़ने से बेहतर है। और किसी फ़क़ीह को बिना किसी स्पष्ट दलील या आम सहमति के इसे मना नहीं करना चाहिए, क्योंकि मुसलमानों को शरीअत देने वाले की तरफ से जब चाहें तब 'ला इलाह इल्लल्लाहु मुहम्मदुर रसूलुल्लाह' पढ़ने की आम इजाज़त है। ऐ अल्लाह, ऐसे व्यक्ति के दिल के अंधेपन पर आश्चर्य है जो इस तरह के नेक काम को रोकता है! शायद वह शासकों के सामने धन की लालसा रखता है ताकि जनाज़े के रास्ते में मोमिनों की बात (कलमा तैयबा) को बातिल कर सके। वह रास्ते में हशीश (चरस) बिकती देखता है पर अपने दिल को यह ज़हमत नहीं देता कि हशीश बेचने वाले से कहे कि यह तुम पर हराम है। बल्कि मैंने उनमें से एक फ़क़ीह को देखा कि वह हशीश और नशा बेचने वाले के पैसों से इमामत का मुआवज़ा लेता है।

[उर्दू अनुवाद स्तंभ] मोहल्ले के आलिम या मोहल्ले के फ़ुक़रा के बुज़ुर्ग को चाहिए कि जनाज़े के साथ चलने वालों को उसके साथ चलने के आदाब सिखाए कि उसमें लग़व बातें न हों, कौन हाकिम हुआ, कौन माज़ूल हुआ, कौन ताजिर सफ़र से आया कौन गया, इस तरह की बातें न हों इसलिए कि इस

जगह दुनिया की बातों का कोई मौका नहीं। सय्यिदी अली ख़व्वास रज़ियल्लाहु तआला अन्हु फ़रमाते थे कि जब जनाज़े के साथ चलने वालों के बारे में मालूम हो कि वे जनाज़े में लग़व से बाज़ न आएंगे और दुनिया की बातों में मसरूफ़ रहेंगे तो उन्हें हुक्म देना चाहिए कि कलमा 'ला इलाह इल्लल्लाहु मुहम्मदुर रसूलुल्लाह' सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम पढ़ें कि इसे पढ़ना इसके छोड़ने से अफ़ज़ल है। और किसी फ़क़ीह को बिना नस (दलील) या इजमा के इससे मना नहीं करना चाहिए इसलिए कि मुसलमानों को शारिअ की जानिब से 'ला इलाह इल्लल्लाहु मुहम्मदुर रसूलुल्लाह' पढ़ने का इज़्न-ए-आम है वो जब चाहें पढ़ें, इलाही उस दिल के अंधेपन से ताज्जुब है जो इस तरीके के अमल से रोकता है, शायद जनाज़े के रास्ते में कलमा तैयबा पढ़ने को बातिल क़रार दे कर हुक्काम से माल-ए-दुनिया की तमअ रखता है जबकि वो रास्ते...

पृष्ठ १५४/९४८

ذاکرین کی زبانوں اور سامعین کے کانوں کو مشغول کرتا اور غافلین کو جگا کر لغویات سے باز رکھ کر ذکر و سماع کی طرف لاتا ہے، اور یہ سمجھ لینا کہ مسلمان ایسے ہو گئے کہ باوجود قرع و قوت قرع و تکرار بھی متاثر نہ ہوں گے، جہل و سوئے ظن ہے، تو اب ذکر جہر امر بالمعروف و نہی عن المنکر کے افراد سے ہے جس سے منع عکس و نقیض مقصود شرع ہے علامہ عارف باللہ سیدی عبدالغنی نابلسی قدس سرہ القدسی حدیقہ ندیہ اور امام عارف باللہ سیدی عبدالوہاب شعرانی قدس سرہ الربانی عہدِ محمدیہ میں فرماتے ہیں :

[عربی متن] ینبغی لعالم الحارۃ او شیخ للفقراء فی الحارۃ ان یعلم من یرید المشی مع الجنازۃ آداب المشی معھا من عدم اللغو فیھا وذکر من تولی وعزل من الولاۃ اوسافر اورجع من التجارۃ و نحو ذلک فان ذکر الدنیا فی ذلک المحل مالہ محل وکان سیدی علی الخواص رضی اللہ تعالی عنہ یقول اذاعلم من الماشین مع الجنازۃ انھم لا یترکون اللغو فی الجنازۃ ویشتغلون بأحوال الدنیا فینبغی ان یأمرھم بقول لا الہ الا اللہ محمد رسول اللہ فان ذلک افضل من ترکہ۔ ولا ینبغی لفقیہ ان ینکر ذلک لابنص اواجماع فان مع المسلمین الاذن العام من الشارع بقول لا الہ الا اللہ محمد رسول اللہ کل وقت شاءوا یا اللہ العجب من عمی قلب من ینکر مثل ھذا وربما عزم عند الحکام الفلوس حتی یبطل قول المؤمنین (کلمۃ طیبۃ) فی طریق الجنازۃ۔ وھو یری الحشیش یباع فلایکلف خاطرہ ان یقول للحشاش حرام علیک بل رأیت فقیھا منھم یأخذ امامۃ من فلوس بائع الحشیش والبرش

[اردو ترجمہ] عالمِ محلہ یا فقرائے محلہ کے بزرگ کو چاہئے کہ جنازہ کے ساتھ چلنے والوں کو اس کے ساتھ چلنے کے آداب سکھائے کہ اس میں لغو باتیں نہ ہوں، کون حاکم ہوا، کون معزول ہوا، کون تاجر سفر سے آیا کون گیا، اس طرح کی باتیں نہ ہوں اس لئے کہ اس جگہ دنیا کی باتوں کا

کوئی موقع نہیں۔ سیدی علی خواص رضی اللہ تعالیٰ عنہ فرماتے تھے کہ جب جنازہ کے ساتھ چلنے والوں کے بارے میں معلوم ہو کہ وہ جنازہ میں لغو سے باز نہ آئیں گے اور دنیا کی باتوں میں مشغول رہیں گے تو انہیں حکم دینا چاہئے کہ کلمہ لا الہ الا اللہ محمد رسول اللہ صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم پڑھیں کہ اسے پڑھنا اس کے ترک سے افضل ہے۔ اور کسی فقیہ کو بغیر نص یا اجماع کے اس سے منع نہ کرنا چاہئے اس لئے کہ مسلمانوں کو شارع کی جانب سے لا الہ الا اللہ محمد رسول اللہ پڑھنے کا اذنِ عام ہے وہ جب چاہیں پڑھیں، الٰہی اس دل کے اندھے پن سے تعجب ہے جو اس طریقے کے عمل سے روکتا، شاید جنازہ کے راستے میں کلمہ طیبہ پڑھنے کو باطل قرار دے کر حکام سے مالِ دنیا کی طمع رکھتا ہے جبکہ وہ راستے

Fatawa Razawiya, Volume 9

| (Arabic) So we ask Allah for well-being, and Allah guides whom He wills to a straight path. | (Urdu) If I see cannabis being sold, I don't even take the trouble to tell the seller that this is forbidden; rather, I have seen such a jurist among them who receives his salary as an Imam (leader of prayer) from the money of the cannabis seller. So, well-being is only sought from God... and Allah guides whom He wills to the straight path. (T) |

From the book *Uhood al-Mashaikh* by Imam Shara'ni, then quoted in *Hadiqa al-Mubarakah*:

| (Arabic) We shall not permit anyone from our brothers to deny anything that Muslims have introduced for the sake of attaining closeness to Allah Almighty and have seen it as good, as has been repeatedly discussed in these covenants, especially what is related to Allah Almighty and His Messenger (peace and blessings of Allah be upon him), such as people reciting 'La ilaha illallah Muhammadur Rasulullah' in front of a funeral procession, or someone reciting the Quran in front of it, and the like. Whoever declares such things forbidden is deficient in his understanding of Shariah. This is because not everything that did not exist in the era of the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) is blameworthy. Imam Nawawi (may Allah have mercy on him) has preferred the view that such speech is merely 'contrary to what is better' (khilaf-ul-awla). Know that if this door [of declaring everything new as forbidden] were opened, then all the statements of the Mujtahideen regarding the good deeds they deemed commendable would be rejected, and no one would say so. Indeed, the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) has left this door open for the scholars of his Ummah and allowed them to institute everything... | (Urdu) We shall not permit anyone from our friends to stop them from anything that Muslims have created as a means of seeking closeness in the court of God and consider it good, as its discussion has repeatedly passed in this same book *Uhood*, especially those things related to the Lord Almighty and His Messenger (peace and blessings of Allah be upon him), like people reciting 'La ilaha illallah Muhammadur Rasulullah' in front of a funeral, or reciting the Quran there and such things. He who calls it forbidden is incapable of understanding the Shariah. This is because everything that was not in the era of the Prophethood is not bad. Imam Nawawi (may Allah have mercy on him) has preferred that such speech is only contrary to what is better. Know this, that if this door is opened, then all those sayings of the esteemed Mujtahids would be rejected which they extracted regarding

their liked virtues, and why would anyone be a believer in this when the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) himself has kept this door open for the scholars of his Ummah and them... |

---

1. *Al-Hadiqat-un-Nadiyyah Sharh at-Tariqat-ul-Muhammadiyya*, Volume 3, published by Nooria Razawiya, Sukkur, 2/409.

फ़तावा रज़विया, खंड 9

| (अरबी) तो हम अल्लाह से भलाई की प्रार्थना करते हैं, और अल्लाह जिसे चाहता है सीधे रास्ते की ओर मार्गदर्शन करता है। | (उर्दू) अगर मैं भांग बिकते हुए देखूँ, तो मैं भांग बेचने वाले से यह कहने का कष्ट भी नहीं उठाता कि यह काम हराम है; बल्कि मैंने उनमें ऐसे फ़क़ीह (धर्मशास्त्री) को भी देखा है जो भांग बेचने वाले के पैसे से अपनी नमाज़ की इमामत का वेतन प्राप्त करता है। तो अल्लाह ही से कुशलता की कामना है... और अल्लाह जिसे चाहता है सीधे रास्ते की हिदायत देता है। (त) |

इमाम शरानी की किताब 'उहूद अल-मशाइख' से, फिर 'हदीका अल-मुबारका' में है:

| (अरबी) हम अपने भाइयों में से किसी को भी ऐसी चीज़ को रोकने की अनुमति नहीं देंगे जिसे मुसलमानों ने अल्लाह तआला की निकटता प्राप्त करने के लिए शुरू किया हो और उसे अच्छा समझा हो, जैसा कि इन वादों (उहूद) में बार-बार चर्चा की गई है, विशेष रूप से वह जो अल्लाह तआला और उसके रसूल (सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम) से संबंधित हो, जैसे लोगों का जनाज़े के सामने 'ला इलाहा इल्लल्लाह मुहम्मदुर रसूलुल्लाह' पढ़ना, या वहां कुरान की तिलावत करना और इसी तरह की बातें। जो कोई इसे हराम कहता है वह शरीयत की समझ से अक्षम है। क्योंकि हर वह चीज़ जो रसूल अल्लाह (सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम) के युग में नहीं थी, बुरी नहीं है। इमाम नववी (रहमतुल्लाह अलैहि) ने तो इसे प्राथमिकता दी है कि यह बोलना केवल 'खिलाफ़-ए-औला' (बेहतर के खिलाफ) है। यह जान लो कि अगर यह दरवाज़ा खोल दिया जाए, तो मुजतहिदीन के वे सभी कथन अस्वीकार कर दिए जाएंगे जो उन्होंने अपने द्वारा पसंद किए गए अच्छे कार्यों के बारे में निकाले हैं, और ऐसा कोई क्यों कहेगा जबकि स्वयं रसूल अल्लाह (सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम) ने अपनी उम्मत के विद्वानों के लिए यह दरवाज़ा खुला रखा है और उन्हें... | (उर्दू) हम अपने दोस्तों को किसी ऐसी चीज़ से रोकने की इजाज़त नहीं देंगे जो मुसलमानों ने ख़ुदा की बारगाह में तक़र्रुब (निकटता) के तौर पर ईजाद की हो और उसे अच्छा जानते हों, जैसा कि बार-हा इसकी तक़रीर इसी किताब 'उहूद' में गुज़र चुकी है, खुसूसन वो चीज़ जिसका ताल्लुक़ रब तआला और उसके रसूल सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम से हो, जैसे लोगों का जनाज़ा के सामने 'ला इलाहा इल्लल्लाह मुहम्मदुर रसूलुल्लाह' पढ़ना, या वहाँ पर क़ुरआन की तिलावत करना और इस तरह की बातें, इसे जो हराम कहे वो शरीयत के फ़हम (समझ) से क़ासिर (अक्षम) है। इसलिए कि हर वो चीज़ जो अहद-ए-रिसालत में न रही हो बुरी नहीं। इमाम नववी रहमतुल्लाहि तआला अलैहि ने तो इसे तरजीह दी है कि कलाम सिर्फ़ ख़िलाफ़-ए-औला है। ये जान लो अगर इसका दरवाज़ा खोला जाए तो

मुजतहिदीन-ए-किराम के वो तमाम अक़वाल मरदूद हो जाएँगे जो उन्होंने अपने पसंद कर्दा महासिन के बारे में इस्तिख़राज फ़रमाए हैं और कोई इसका क़ाइल क्यों होगा जबकि ख़ुद रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम ने अपनी उम्मत के उलमा के लिए ये दरवाज़ा खुला रखा है और उन्हें... |

---

1. अल-हदीक़त-उन-नदिय्या शरह अत-तरीक़त-उल-मुहम्मदिया, खंड 3, नूरिया रज़विया सुक्कुर द्वारा प्रकाशित, 2/409.

فتاوٰی رضویہ، جلد نہم

| فنسأل اللہ العافیۃ واللہ یھدی من یشاء الی صراط مستقیم[1] | میں بھنگ بکتے دیکھئے تو بھنگ فروش سے اتنا کہنے کی زحمت نہ اٹھائے کہ یہ کام حرام ہے، بلکہ میں نے ان میں ایسے فقیہ کو بھی دیکھا ہے جو بھنگ فروش کے مال سے اپنی پیش نماز کی تنخواہ وصول کرتا ہے۔ تو خدا ہی سے عافیت کا سوال ہے--- اور اللہ جسے چاہے سیدھے راستے کی ہدایت دیتا ہے (ت) |

کتاب عہود المشائخ امام شعرانی پھر حدیقہ مبارکہ میں ہے:

| ولا نمکن احدا من اخواننا ینکر شیئاً ابتدعہ المسلمون علی جھۃ القربۃ الی اللہ تعالٰی ورأوہ حسناً کما مر تقریرہ مراراً فی ھذہ العھود لاسیما ما کان متعلقاً باللہ تعالٰی ورسولہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم کقول الناس امام الجنازۃ لا الہ الا اللہ محمد رسول اللہ او قرائۃ احد القرآن امامھا و نحو ذلک فمن حرم ذلک فھو قاصر عن فھم الشریعۃ لانہ مأکل مالم یکن علی عھد رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم یکون مذموما وقدر جح النووی رحمہ اللہ تعالٰی ان الکلام خلاف اولی فقط واعلم انہ لو فتح ھذا الباب لردت اقوال المجتھدین فی جمیع ما استحبوا من المحاسن ولا قائل بہ وقد فتح رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم العلماء امتہ ھذا الباب واباح لھم ان یسنوا کل شی | ہم اپنے دوستوں کو کسی ایسی چیز سے روکنے کی اجازت نہ دیں گے جو مسلمانوں نے خدا کی بارگاہ میں تقرب کے طور پر ایجاد کی ہو اور اسے اچھا جانتے ہوں، جیسا کہ بار ہا اس کی تقریر اسی کتاب عہد میں گزر چکی ہے، خصوصاً وہ چیز جس کا تعلق رب تعالٰی اور اس کے رسول صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم سے ہو، جیسے لوگوں کا جنازہ کے سامنے لا الہ الا اللہ محمد رسول اللہ پڑھنا، یا وہاں پر قرآن کی تلاوت کرنا اور اس طرح کی باتیں، اسے جو حرام کہے وہ شریعت کے فہم سے قاصر ہے۔ اس لئے کہ ہر وہ چیز جو عہد رسالت میں نہ رہی ہو بری نہیں۔ امام نووی رحمۃ اللہ تعالٰی نے تو اسے ترجیح دی

ہے کہ کلام صرف خلاف اولیٰ ہے۔ یہ جان لو اگر اس کا دروازہ کھولا جائے تو مجتہدین کرام کے وہ تمام اقوال مردود ہو جائیں جو انہوں نے اپنے پسند کردہ محاسن کے بارے میں استخراج فرمائے ہیں اور کوئی اس کا قائل کیوں ہوگا جبکہ خود رسول اللہ صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم نے اپنی امت کے علماء کے لئے یہ دروازہ کھلا رکھا ہے اور انہیں |

---

[1] الحدیقۃ الندیۃ شرح الطریقۃ المحمدیۃ الصنف الثالث مطبوعہ نوریہ رضویہ سکھر ۲/ ۴۰۹

Fatawa Rizwia (Volume 9)

(Arabic Text: Left Column) They deemed it good and attached it to the Sharia of the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) because of his saying (peace and blessings of Allah be upon him): "Whoever initiates a good practice, for him is its reward and the reward of whoever acts upon it." And the statement 'La ilaha illallah Muhammadur Rasulullah' is the greatest of good deeds. How then can one be prevented from it? Consider the condition of most people nowadays at funerals; you find them preoccupied with stories of the world. They take no heed from the deceased, and their hearts are heedless of everything that has happened to him. Rather, I have seen some of them laughing. When such a situation confronts us, and that [practice] was not during the era of the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him), we give precedence to the remembrance of Allah Almighty. In fact, any idle talk is more worthy than talk of worldly news. So if everyone at the funeral shouted 'La ilaha illallah', there is no objection. Nothing has come to us regarding that from the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him). If the remembrance of Allah at a funeral were prohibited, it would have reached us even if in one Hadith, as it reached us regarding the prohibition of reciting the Quran during bowing (Ruku). So understand, and something the Lawgiver remained silent about...

(Urdu Translation: Right Column) [They] have given permission to invent such methods that they consider good and include them in the Sharia of the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him). This permission is from the saying of the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him): "Whoever initiates a good practice, for him is its reward and the reward of all those who act upon it in the future." The Kalima 'La ilaha illallah Muhammadur Rasulullah' is the greatest virtue; how then can one be stopped from it? At this time, observe the state of most people at funerals; you will find them busy in worldly talks. There is no lesson taken from the state of the deceased; the heart is heedless of the entire event facing him, rather, even laughing ones are seen among them. When on one hand this is the situation, and on the other hand, even if reading the Kalima at that time was not practiced during the era of the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him), at such a time we will prioritize the remembrance (dhikr) of Allah Almighty. In fact, every idle talk within the funeral is better compared to worldly matters. So, if someone recites 'La ilaha illallah' loudly during a funeral, there should be no objection to it. We have not found any Hadith from the Messenger of Allah

(peace and blessings of Allah be upon him) prohibiting it. If the remembrance (dhikr) of Allah were forbidden, some Hadith would have come regarding it, just as the recitation of the Quran during bowing (Ruku) is prohibited and mentioned in Hadith. So understand it... that thing regarding which the Lawgiver [remained silent].

फतावा रिज़विया (जिल्द 9)

(अरबी पाठ: बायाँ कॉलम) उन्होंने इसे अच्छा समझा और रसूल अल्लाह (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) की शरीअत से जोड़ा, उनके इस इरशाद की वजह से: "जिसने कोई अच्छा तरीक़ा ईजाद किया, उसके लिए उसका सवाब है और जो उस पर अमल करे उसका भी सवाब है।" और कलमा 'ला इलाहा इल्लल्लाह मुहम्मदुर रसूलुल्लाह' सबसे बड़ी नेकी है। फिर उससे कैसे रोका जा सकता है? आजकल जनाज़ों में अक्सर लोगों की हालत पर ग़ौर करें; आप उन्हें दुनियावी बातों में मशगूल पाएंगे। वे मय्यत से कोई नसीहत नहीं लेते, और उनके दिल उस सब से ग़ाफ़िल हैं जो उसके साथ पेश आया है। बल्कि मैंने उनमें से कुछ को हँसते हुए देखा है। जब ऐसी स्थिति हमारे सामने हो, और वह [अमल] रसूल अल्लाह (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) के ज़माने में नहीं था, तो हम अल्लाह अज़्ज़वजल के ज़िक्र को प्राथमिकता देंगे। वास्तव में, कोई भी बेकार की बात दुनिया की खबरों की तुलना में अधिक योग्य है। इसलिए अगर जनाज़े में हर कोई ज़ोर से 'ला इलाहा इल्लल्लाह' पुकारे, तो कोई आपत्ति नहीं है। हमें इस बारे में रसूल अल्लाह (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) से कुछ भी नहीं मिला। अगर जनाज़े में अल्लाह का ज़िक्र वर्जित होता, तो वह हम तक पहुँचता चाहे एक हदीस में ही सही, जैसा कि रुकूअ के दौरान क़ुरआन पढ़ने की मनाही के बारे में हम तक पहुँचा है। तो समझें, और वह चीज़ जिसके बारे में शरीअत खामोश रही...

(उर्दू अनुवाद: दायाँ कॉलम) इजाज़त दी है कि ऐसे तरीक़े ईजाद करें जिन्हें वो अच्छा जानें और उन्हें रसूल अल्लाह (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) की शरीअत में शामिल करें। यह इजाज़त रसूल अल्लाह (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) के इस इरशाद से है कि जिसने कोई अच्छा तरीक़ा ईजाद किया तो उसके लिए इस ईजाद का सवाब और आइंदा उस पर तमाम अमल करने वालों का सवाब है। कलमा 'ला इलाहा इल्लल्लाह मुहम्मदुर रसूलुल्लाह' तो सबसे बड़ी नेकी है, फिर उससे क्यूँकर रोका जाएगा? इस वक़्त जनाज़े में अक्सर लोगों के हालात का जायज़ा लो, उन्हें दुनियावी बातों में मशगूल पाओगे। मय्यत के हाल से कोई इबरत नहीं, दिल उस सारे वाक़ये से जो उसे दरपेश है ग़ाफ़िल है, बल्कि उनमें हँसी वाले भी नज़र आएंगे। जब एक तरफ़ ये हाल हो और दूसरी तरफ़ ये कि उस वक़्त कलमा पढ़ना रसूल अल्लाह (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) के ज़माने में न था तो अमल क्या हो, ऐसे वक़्त हम अल्लाह अज़्ज़वजल के ज़िक्र को मुक़द्दम रखेंगे, बल्कि हर लग़्व बात जनाज़े के अंदर दुनिया की बातों की ब-निस्बत अच्छी है। तो अगर जनाज़े में कोई बुलंद आवाज़ से 'ला इलाहा इल्लल्लाह' पढ़े तो उस पर कोई एतराज़ न होगा। हमें इससे मुमानअत में रसूल अल्लाह (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) की

कोई हदीस न मिली। अगर अल्लाह का ज़िक्र ममनूअ होता तो कोई न कोई हदीस इस बारे में आती, जैसे रुकूअ में तिलावत-ए-क़ुरआन ममनूअ है तो हदीस में वारिद भी है। तो इसे समझो... वो चीज़ जिससे शारेअ (चुप रहा)।

पेज 156 of 948

(عربی عبارت: بایاں کالم) استحسنو ویلحقوہ بشریعۃ رسول اللہ صلی اللہ علیہ وسلم بقولہ صلی اللہ تعالی علیہ وسلم من سن سنۃ حسنۃ فلہ اجرھا واجر من یعمل بھا وکلمۃ لا الہ الا اللہ محمد رسول اللہ اکبر حسنات فکیف یمنع منھا وتأمل احوال غالب الخلق الآن فی الجنازۃ تجدھم مشغولین بحکایات الدنیا لم یعتبر وا بالمیت وقلبھم غافل عن جمیع ما وقع لہ بل رأیت منھم من یضحك واذا تعارض عندنا مثل ذلك وکون ذلك لم یکن فی عھد رسول اللہ صلی اللہ تعالی علیہ وسلم قدمنا ذکر اللہ عز وجل بل کل حدیث لغو اولی من حدیث انباء الدنیا فلو صاح کل من فی الجنازۃ بلا الہ الا اللہ فلا اعتراض ولم یأتنا فی ذلك شی عن رسول اللہ صلی اللہ تعالی علیہ وسلم فلو کان ذکر اللہ فی الجنازۃ منھیا عنہ لبلغنا ولو في حدیث کما بلغنا فی قراءۃ القرآن فی الرکوع فافھم وشی سکت عنہ الشارع

(اردو ترجمہ: دایاں کالم) اجازت دی ہے کہ ایسے طریقے ایجاد کریں جن کو وہ اچھا جانیں اور ان کو رسول اللہ صلی اللہ تعالی علیہ وسلم کی شریعت میں شامل کریں۔ یہ اجازت اس ارشاد رسول اللہ صلی اللہ تعالی علیہ وسلم سے ہے جس نے کوئی اچھا طریقہ ایجاد کیا تو اس کے لئے اس ایجاد کا ثواب اور آئندہ اس پر تمام عمل کرنے والوں کا ثواب ہے۔ کلمہ لا الہ الا اللہ محمد رسول اللہ تو سب سے بڑی نیکی ہے پھر اس سے کیونکر روکا جائے گا؟ اس وقت نماز جنازہ میں اکثر لوگوں کے حالات کا جائزہ لو انہیں دنیاوی باتوں میں مشغول پاؤ گے میت کے حال سے کوئی عبرت نہیں ، دل اس سارے واقعے سے جو اسے درپیش ہے غافل ہے بلکہ ان میں ہنسی والے بھی نظر آئیں گے، جب ایک طرف یہ حال ہو اور دوسری طرف یہ کہ اس وقت کلمہ پڑھنا رسول اللہ صلی اللہ تعالی علیہ وسلم کے زمانے میں نہ تھا تو عمل کیا ہو، ایسے وقت ہم اللہ عزوجل کے ذکر کو مقدم رکھیں گے، بلکہ ہر لغو بات جنازے کے اندر دنیا کی باتوں کی بہ نسبت اچھی ہے، تو اگر جنازہ میں

کوئی بلند آواز سے لا الہ الا اللہ پڑھے اس پر کوئی اعتراض نہ ہو گا۔ ہمیں اس سے ممانعت میں رسول اللہ صلی اللہ تعالی علیہ وسلم کی کوئی حدیث نہ ملی۔ اگر اللہ کا ذکر ممنوع ہوتا تو کوئی نہ کوئی حدیث اس بارے میں آتی، جیسے رکوع میں تلاوت قرآن ممنوع ہے تو حدیث میں وارد بھی ہے ۔ تو اسے سمجھو۔۔ وہ چیز جس سے شارع

Fatawa Razawiyya Volume 9

Early Islam does not prevent from the end times -[1]	**[Prophet] Peace be upon him observed silence in the early era of Islam; that cannot be prohibited in later times. (T)**

In short, instead of silence, establishing loud Dhikr (remembrance of Allah) is a change of means for current benefit to achieve the objective, not a strengthening of the objective. Ignorant is he who considers silence as the objective; the requirement is Dhikr. When between silence and loud Dhikr, a student of jurisprudence knows that for the achievement of the objective, the dislike for certain disliked things is removed. For example, closing the eyes in prayer is disliked, but if focus (khushu) is only attained in that way, then closing the eyes is better (awla).

Arabic Text: As stated in Durr al-Mukhtar, closing the eyes is disliked because of the prohibition against completing focus[2]. In Radd al-Muhtar, if there is a fear of losing focus due to seeing things that distract the mind, then it is not disliked; rather, some scholars have said it is better (awla) and this is not far-fetched. Hilyah and Bahr[3]. I say: Perhaps the research is that due to the fear of losing focus, the dislike is removed, and with its achievement, desirability (istihbab) is attained. And Allah Almighty knows best.	**Urdu Text: As stated in Durr al-Mukhtar: closing the eyes in prayer is disliked because a prohibition has been mentioned regarding it, but if it is for perfect focus, then it is not disliked. In Radd al-Muhtar, it says: If there is an apprehension of losing focus due to seeing things that scatter the mind, it is not disliked; rather, some scholars said it is better, and this is not far-fetched. Hilyah and Bahr... I say: Perhaps the research is that due to the fear of losing focus, the dislike is removed, and with the realization of focus by closing the eyes, desirability is attained. And Allah the Supreme knows best. (T)**

So here, this great Dhikr was among the sought-after goals and the prohibition was for a remote reason—that the means should not interfere with the objective. Now that means is no longer present, rather it has reversed. Therefore, how far from jurisprudence, even from reason, is it to maintain that prohibition, even if it is Tanzili (lightly disliked)? Then Dhikr is a vast subject. Remembering death, the grave, the hereafter, the Prophets, and the Friends of Allah (awliya), upon them be the best of prayers and praise, are all Dhikr of Allah. We have established twelve proofs for this

in our annotations of the esteemed book 'Azaqat al-Atham'. In Sahih Bukhari Sharif, on behalf of Hazrat Sayyiduna Hassan ibn Thabit al-Ansari (may Allah be pleased with him)...

1. Al-Hadiqat al-Nadiyyah Sharh al-Tariqah al-Muhammadiyya, Al-Sanf al-Thalith, etc. Printed by Maktaba Nooria Razawiya, Sukkur, 2/209.
2. Durr al-Mukhtar, Chapter on what invalidates prayer, Printed by Mujtabai Delhi, 1/92.
3. Radd al-Muhtar, Chapter on what invalidates prayer, Idarat al-Tiba'at al-Misriyya, Egypt, 1/334.

फ़तावा रज़विया जिल्द 9

इस्लाम का प्रारंभिक काल अंतिम समय से नहीं रोकता -[1]

[पैगंबर] उन पर शांति हो, ने इस्लाम के प्रारंभिक काल में मौन धारण किया; बाद के समय में इसे प्रतिबंधित नहीं किया जा सकता। (त)

संक्षेप में, मौन के बजाय, वर्तमान लाभ के लिए ज़िक्र (अल्लाह का स्मरण) को ज़ोर से करने की स्थापना उद्देश्य प्राप्त करने के लिए साधनों का बदलाव है, न कि उद्देश्य का सुदृढ़ीकरण। अज्ञानी वह है जो मौन को उद्देश्य समझता है; वांछित चीज़ ज़िक्र है। जब मौन और ज़ोर से ज़िक्र के बीच चुनाव हो, तो न्यायशास्त्र का एक छात्र जानता है कि उद्देश्य की प्राप्ति के लिए, कुछ नापसंद चीजों की नापसंदगी दूर हो जाती है। उदाहरण के लिए, नमाज़ में आँखें बंद करना नापसंद है, लेकिन यदि एकाग्रता (खुशू) केवल उसी तरह प्राप्त होती है, तो आँखें बंद करना ही बेहतर (अव्ला) है।

अरबी पाठ: जैसा कि दुर-ए-मुख्तार में कहा गया है, आँखें बंद करना नापसंद है क्योंकि एकाग्रता को पूरा करने की मनाही है[2]। रद्द-उल-मुह्तार में, यदि मन को भटकाने वाली चीजों को देखने के कारण एकाग्रता खोने का डर हो, तो यह नापसंद नहीं है; बल्कि कुछ विद्वानों ने कहा है कि यह बेहतर (अव्ला) है और यह दूर की बात नहीं है। हिलिया और बहर[3]। मैं कहता हूँ: शायद शोध यह है कि एकाग्रता खोने के डर के कारण नापसंदगी दूर हो जाती है, और इसकी प्राप्ति के साथ, वांछनीयता (इस्तिहबाब) प्राप्त हो जाती है। और अल्लाह सर्वशक्तिमान बेहतर जानता है।

उर्दू पाठ: जैसा कि दुर-ए-मुख्तार में है: नमाज़ में आँखें बंद करना नापसंद है क्योंकि इस बारे में ममानत आई है लेकिन अगर कमाल-ए-खुशू के लिए हो तो मकरूह नहीं। रद्द-उल-मुह्तार में है: इस तरह तबियत को मुंतशिर करने वाली चीजें देखने के सबब खुशू फौत होने का अंदेशा हो तो मकरूह नहीं बल्कि बाज उलमा ने फरमाया कि अव्ला है, और यह कोई बईद नहीं। हिलिया व बहर... अक़ूल: शायद तहक़ीक़ यह है कि खुशू फौत होने के अंदेशा की वजह से कराहत ज़ाइल हो जाती है और आँख बंद कर लेने पर खुशू मुतहक़्क़क़ हो जाने से इस्तहबाब हासिल हो जाता है और खुदाए बरतर खूब जानने वाला है। (त)

तो यहाँ यह कि ज़िक्र-ए-आज़म मतालूबत में से था और मना एक वजह-ए-बईद के लिए था - कि ज़रिया मक्सूद में मुख़िल न हो। अब वह ज़रिया ही न रहा, बल्कि मुनअकिस हो गया। तो वह मना

अगरचे तंज़ीही (हल्का नापसंद) बाकी रहना किस कदर फ़क़ाहत से दूर, बल्कि अक्ल से महजूर है। फिर ज़िक्र कि अर्ज़-ए-अरीज़ है। मौत का ज़िक्र, कब्र का ज़िक्र, आखिरत का ज़िक्र, नबियों का ज़िक्र और अल्लाह के वलियों का ज़िक्र, उन पर सर्वोत्तम प्रार्थनाएं और प्रशंसा हो, सभी अल्लाह का ज़िक्र हैं। हमने अपनी सम्मानित पुस्तक 'अज़ाकत अल-आसाम' की व्याख्याओं में इसके लिए बारह प्रमाण स्थापित किए हैं। सही बुखारी शरीफ में हज़रत सैय्यदुना हस्सान इब्न साबित अल-अंसारी (रज़ियल्लाहु अन्हु) की तरफ से...

1. अल-हदीक़त अन-नादिय्या शरह अत-तरीक़त अल-मुहम्मदिया, अल-सन्फ अल-सालिस, आदि। मुद्रित मकतबा नूरिया रज़विया, सुक्कुर, 2/209।
2. दुर-ए-मुख्तार, नमाज़ को अमान्य करने वाले अध्याय, मुद्रित मुज्तबाई दिल्ली, 1/92।
3. रद्द-उल-मुह्तार, नमाज़ को अमान्य करने वाले अध्याय, इदारत अल-तिबाअत अल-मिसरिया, मिस्र, 1/334।

पृष्ठ 157 का 948

اوائل الاسلام لا یمنع منہ اواخر الزمان ۔[1]

علیہ السلام نے اسلام کے ابتدائی زمانے میں سکوت فرمایا ہے وہ آخر زمانے میں ممنوع نہیں ہو سکتی (ت)

بالجملہ بجائے صمت، اقامت جہر بالذکر، تحصیل مقصود کے لئے تبدیل ذریعہ بمصلحتِ حالیہ ہے نہ کہ تقویت مقصود، جاہل وہ جو خاموشی کو مقصود جانے، مطلوب ذکر ہے، جب خاموشی میں اور جہر بالذکر میں، خادمِ فقہ جانتا ہے تحصیل مقصود کے لئے بعض مکروہات سے کراہت زائل ہو جاتی ہے، جیسے نماز میں آنکھیں بند کرنا مکروہ ہے اور خشوع یو نہی ملتا ہے تو آنکھیں بند کرنا ہی اولٰی،

کما فی الدر المختار کرہ تغمیض عینیہ للنھی الاکمال الخشوع [2]، وفی ردالمختار بان خاف فوت الخشوع بسبب رؤیۃ مایفرق الخاطر فلایکرہ بل قال بعض العلماء انہ الاولی ولیس ببعید حلیۃ وبحر [3] اھ اقول: ولعل التحقیق ان بخشیۃ فوات خشوع تزول الکراھۃ وبتحققہ یحصل الاستحباب واللہ تعالٰی اعلم ۔

جیسا کہ درمختار میں ہے: نماز میں آنکھیں بند کرنا مکروہ ہے کیونکہ اس بارے میں ممانعت آئی ہے لیکن اگر کمالِ خشوع کے لئے ہو تو مکروہ نہیں۔ ردالمختار میں ہے: اس طرح طبیعت کو منتشر کرنے والی چیزیں دیکھنے کے سبب خشوع فوت ہونے کا اندیشہ ہو تو مکروہ نہیں بلکہ بعض علماء نے فرمایا کہ اولٰی ہے، اور یہ کوئی بعید نہیں۔ حلیہ وبحر۔۔ اھ اقول: شاید تحقیق یہ ہے کہ خشوع فوت ہونے کے اندیشہ کی وجہ سے کراہت زائل ہو جاتی ہے اور آنکھ بند کر لینے پر خشوع متحقق ہو جانے سے استحباب حاصل ہو جاتا ہے اور خدائے برتر خوب جاننے والا ہے۔ (ت)

تو یہاں یہ کہ ذکرِ اعظم مطلوبات سے تھا اور منع ایک وجہِ بعید کے لئے کہ ذریعہ مقصود میں مخل نہ ہو، اور اب وہ ذریعہ ہی نہ رہا، بلکہ منعکس ہو گیا۔ تو وہ منع اگر چہ تنزیہی باقی رہنا کس قدر فقاہت سے دور، بلکہ عقل سے مہجور ہے۔ پھر ذکر کہ عرضِ عریض ہے۔ ذکرِ موت و ذکرِ قبر و ذکرِ آخرت و ذکرِ انبیاء و ذکرِ اولیاء علیہم افضل الصلوۃ والثناء سب ذکر الہی ہیں۔ ہم نے اپنی تعلیقات کتاب مستطاب اذاقۃ الاثام میں اس پر بارہ "دلائل قائم کئے ہیں۔ صحیح بخاری شریف میں حضرت سید نا حسان ابن ثابت انصاری رضی اللہ تعالیٰ عنہ کی طرف سے

1 الحدیقۃ الندیۃ شرح الطریقۃ المحمدیہ الصنف الثالث الخ مطبوعہ مکتبہ نوریہ رضویہ سکھر ۲۰۹/۲ 2 درمختار باب مایفسد الصلوۃ مطبوعہ مجتبائی دہلی ۹۲/۱ 3 ردالمختار باب مایفسد الصلوۃ ادارۃ الطباعۃ المصریہ مصر ۳۳۴/۱

Vol. 9 Fatawa Razawiyya

Answering the verses of the polytheists with verses, reciting these verses, and the fact that the Holy Prophet (may Allah's peace and blessings be upon him) and the Noble Companions (may Allah be pleased with them) listened to them is proven. Even if these verses were not the remembrance (dhikr) of Allah, how could it be permitted to set up a pulpit for them in the mosque! "Indeed, mosques are built only for the remembrance of Allah and prayer." 1 (T) And if this was not remembrance, then organizing for it would, God forbid, be organizing for heedlessness. And this is impossible. Necessarily, verses of praise (Hamd), eulogy (Na'at), glorification (Thana), supplication (Du'a), sermon (Wa'z), and advice (Pand) are forms of Allah's remembrance. And singing/music is separate from them, as singing is included in the noble verse "And among people is he who purchases idle talk (lahw al-hadith)" 2 (T). It is self-evidently known that Hamd, Na'at, Du'a, and Wa'z are by no means 'idle talk'. Therefore, it is stated in Jawhara, Durr-e-Muntaqa, and Radd al-Muhtar: "What has been narrated that he (peace and blessings of Allah be upon him) listened to poetry, does not prove the permissibility of singing. It can be interpreted as referring to permissible poetry containing wisdom and advice." 3 (T)

Thus, it is proven that the statement of Allama Shami: "So what do you think of the singing that has emerged in this age?" 4 (T) is itself, by the testimony of Allama Shami, about those verses which do not contain wisdom and advice, such as a dirge for the deceased or excessive praise, detestable ribaldry, grief that removes patience, wailing, or tearing of clothes, which are undoubtedly devoid of wisdom and advice, rather they are contrary to it and are forbidden, disliked, and boastful regarding one's state. Contrary to this are the Persian and Arabic verses mentioned in the question, as they are not separate from the remembrance of Allah. However, Urdu verses need amendment and change; in the first verse, there is a call by taking the holy name, and correctly, it is not permissible.

1 Mirqat al-Mafatih, Chapter of Mosques, published by Maktaba Imdadiya Multan, 2/197 2 Al-Quran 31/6 3 Radd al-Muhtar, Book of Prohibition and Permission, Idara al-Tiba'at al-Misriyya, Egypt, 5/222 4 Radd al-Muhtar, Chapter of Funeral Prayer, Idara al-Tiba'at al-Misriyya, Egypt, 1/598

मुशरिकों के अशआर (काव्यों) का अशआर में उत्तर देना, उन शेरों को पढ़ना और हुज़ूर अनवर (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) और सहाबा किराम (रज़ियल्लाहु अन्हुम) का उन्हें सुनना साबित है। यदि ये अशआर अल्लाह का ज़िक्र न होते, तो मस्जिद में उनके लिए मिम्बर बिछाने की अनुमति कैसे दी जाती! "मस्जिदें तो केवल अल्लाह के ज़िक्र और नमाज़ के लिए बनाई गई हैं।" १ (त) और यदि यह ज़िक्र न होता, तो इसका प्रबंध करना, ईश्वर न करे, गाफ़िल होने (लापरवाही) का प्रबंध होता। और यह असंभव है। निश्चित रूप से हम्द, नात, सना, दुआ, वअज़ (उपदेश) और नसीहत के अशआर अल्लाह का ज़िक्र हैं। और गायन (ग़िना) इनसे अलग है, क्योंकि गायन को आयते करीमा "और लोगों में कोई ऐसा है जो बेकार बातों (लह्व-अल-हदीस) को खरीदता है" २ (त) में शामिल किया गया है। और यह स्वतः स्पष्ट है कि हम्द, नात, दुआ और वअज़ हरगिज़ 'लह्व-अल-हदीस' नहीं हैं। इसीलिए जौहरा, दुर्रे-मुंतका और रद्दुल मुहतार में है: "जो यह वर्णित है कि हुज़ूर (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने शेर सुने, उससे गायन की अनुमति सिद्ध नहीं होती। उसे ऐसे शेरों पर माना जा सकता है जो जायज़ हों और हिकमत व नसीहत पर आधारित हों।" ३ (त)

अतः यह सिद्ध हुआ कि अल्लामा शामी का कथन: "तो इस ज़माने में पैदा हुए गायन के बारे में तुम्हारा क्या विचार है?" ४ (त) स्वयं अल्लामा शामी की गवाही से उन अशआर के बारे में है जो हिकमत और वअज़ पर आधारित न हों, जैसे मृतक का मरसिया या उसकी प्रशंसा, अत्यधिक प्रशंसा या घृणित शेर, धैर्य को खत्म करने वाला शोक, विलाप करना, कपड़े फाड़ना कि ये निस्संदेह हिकमत और वअज़ से खाली हैं, बल्कि इसके विपरीत हैं और अपनी स्थिति के अनुसार हराम, मकरूह और शेखी बघारने वाले हैं। इसके विपरीत, प्रश्न में वर्णित फ़ारसी और अरबी अशआर अल्लाह के ज़िक्र से अलग नहीं हैं। अलबत्ता उर्दू अशआर में संशोधन और परिवर्तन की आवश्यकता है; पहले शेर में पवित्र नाम लेकर पुकारा गया है, और सही बात यह है कि यह जायज़ नहीं है।

१ मिरकातुल मफ़ातीह, बाबल मसाजिद, मक़तबा इमदादिया मुल्तान, २ / १९७ २ अल-क़ुरआन ३१/६ ३ रद्दुल मुहतार, किताबुल हज़र वल इबाहत, इदारातुल तिबातुल मिस्रिया, मिस्र, ५ / २२२ ४ रद्दुल मुहतार, बाबे सलातुल जनाइज़, इदारातुल तिबातुल मिस्रिया, मिस्र, १ / ५९८

مشرکین کے اشعار کا اشعار میں جواب دینا ان شعروں کو پڑھنا اور حضور انور صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم اور صحابہ کرام رضی اللہ تعالٰی عنہم کا سننا ثابت ہے اگر چہ یہ اشعار ذکر الٰہی نہ ہوتے، مسجد میں ان کے لئے منبر بچھانے کی اجازت کیونکر! فانما بنیت المساجد لذکر اللہ والصلوۃ ۱- کہ مسجدیں خدا کے ذکر اور نماز ہی کے لئے بنائی گئی ہیں۔ (ت) اور جب یہ ذکر نہ ہوتا تو اس کے لئے اہتمام فرمانا معاذ اللہ غفلت کے لئے اہتمام ہوتا۔ اور یہ محال ہے لاجرم اشعار حمد، نعت و ثناء و دعا، وعظ و پند ذکر الٰہی ہیں، اور غناو ہ کہ ان سے جدا ہو کہ غنا کو آیہ کریمہ وَمِنَ النَّاسِ مَنْ يَّشْتَرِي لَهْوَ الْحَدِيْثِ ۲ (لوگوں میں کوئی ایسا ہے جو لہو کی بات خریدتا ہے۔ت) میں داخل کرتے ہیں اور بداہۃً معلوم کہ حمد و نعت و دعا و وعظ ہر گز لہوالحدیث نہیں، ولہذا جوہرہ و درمنتقٰی و ردالمحتار میں ہے: ما نقل انہ صلی اللہ تعالی علیہ وسلم سمع الشعر کہ حضور اقدس صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم سے شعر سننا جو منقول لم یدل علی اباحۃ الغناء ویجوز حملہ علی ہے اس سے غنا کی اباحت ثابت نہیں ہوتی اسے ایسے شعر پر الشعر المباح المشتمل علی الحکمۃ والواعظ ۳- محمول کیا جاسکتا ہے جو جائز اور حکمت و نصیحت پر مشتمل ہو۔ (ت)

تو ثابت ہوا کہ قول علامہ شامی: فما ظنك بالغناء الحادث فی ھذا الزمان ۴ (اس زمانے میں پیدا شدہ نغمہ زنی کے بارے میں تمہارا کیا خیال ہے۔ت) خود بشادت علامہ شامی ان اشعار کے بارے میں ہے جو حکمت و وعظ پر مشتمل نہ ہوں، جیسے میت کا مرثیہ یا اس کی تعریف، مدح بافراط یا اشعار میجہ مکروہ، حزن مزیلہ صبر داعی نوحہ گریبان دری کہ یہ بلاشبہ حکمت و وعظ سے خالی، بلکہ اس کے خلاف اور اپنے احوال پر حرام، مکروہ و گزاف ہیں۔ بخلاف ان اشعار فارسی و

عربی مذکورہ سوال کا کہ ذکر الہٰی سے جدا نہیں، البتہ اشعار اردو میں حاجت ترمیم و تبدیل ہے، شعر اول میں نام پاک لے کر ندا ہے اور صحیح یہ کہ جائز نہیں۔

۱ مرقاۃ المفاتیح باب المساجد مطبوعہ مکتبہ امدادیہ ملتان ۲ / ۱۹۷ ۲ القرآن ۶ / ۳۱ ۳ ردالمحتار کتاب الحظر والاباحۃ ادارۃ الطباعۃ المصریۃ مصر ۵ / ۲۲۲ ۴ ردالمحتار باب صلوۃ الجنائز ادارۃ الطباعۃ المصریۃ مصر ۱ / ۵۹۸

Fatawa Ridawiyya, Volume 9

...rather it should be with noble attributes, for example, Ya Rasul Allah, Ya Habib Allah. The second couplet is nonsensical and meaningless, and its poetic structure is also flawed; and some ignorant people mean the Sacred Being by 'Sanoriya', at that time it would be close to a word of disbelief. The third couplet is also not beneficial, yes there is no harm in the fourth and fifth ones. And Allah Almighty knows best.

Issue 25: From Qadri Ganj, Birbhum district, Bengal, sent by Syed Zahoor-ul-Hasan Sahib Qadri Razzaqi Murshidi Kirmani, 22 Jamadi-ul-Awwal 1336 AH. Is it correct to recite Kalima Tayyiba or Wazifa Ghausia or 'Ya Sheikh Abdul Qadir Jilani Shai-an-lillah' loudly along with the funeral procession?

The Answer: There is no harm in loud dhikr with the funeral procession as researched by Al-Sayyid Abd al-Ghani al-Nabulsi (may his secret be sanctified) in 'Al-Hadiqa al-Nadiyya'. (As Syed Abdul Ghani al-Nabulsi has researched this in Al-Hadiqa al-Nadiyya - Translator). And Allah Almighty knows best.

Issue 26: In some places, it is seen that Na'at ghazals are recited with the funeral procession. What is the ruling regarding this?

The Answer: It is permissible. And Allah Almighty knows best.

Issue 27: From Mauza Shar Shadi, Junior Madrasa, Feni Post Office, Noakhali district, sent by Maulvi Abdul Karim, 26 Jamadi-ul-Thani 1338 AH. What do our scholars (may Allah have mercy on them) say: A Hanafi scholar says that one who does not offer prayers (benamazi) is a disbeliever (kafir) and apostate (murtad), it is not permissible to offer their funeral prayer and they should not be buried in a Muslim cemetery. Is this scholar's saying rejected or not? Three people's funerals who did not pray were performed; what legal warning (wa'eed) applies to this? In the world, there isn't a Muslim who doesn't occasionally pray the five daily and Eid prayers.

The Answer: After faith and correction of beliefs, prayer is the most important and greatest of all the rights of Allah. Performing Friday and Eid prayers, or performing five daily prayers without regularity, is by no means a guarantee of salvation. Whoever intentionally misses a single prayer deserves to stay in Hell for thousands of years, until they repent and make up for it. A Muslim, if during their life they suddenly...

फ़तावा रज़विया, जिल्द नहम (खंड 9)

...बल्कि ओसाफ़-ए-करीमा (नेक सिफ़तों) के साथ हो, जैसे या रसूल अल्लाह, या हबीब अल्लाह। दूसरा शेर मुहमिल (अर्थहीन) और बेमानी है, और काव्य की दृष्टि से भी दोषपूर्ण है; और कुछ जाहिल 'सनोरिया' से ज़ात-ए-अकदस (पवित्र अस्तित्व) मुराद लेते हैं, उस वक़्त वह कुफ़्र के कलमे के क़रीब हो जाएगा। तीसरा शेर भी कुछ मुफ़ीद (लाभदायक) नहीं, हाँ चौथे और पांचवें में हर्ज नहीं, वल्लाहु तआला आलम (और अल्लाह तआला बेहतर जानता है)।

मसला नंबर 25: क़ादरी गंज, ज़िला बीरभूम, मुल्क बंगाल से मुर्सला (भेजा गया) सैयद ज़हूर उल हसन साहब क़ादरी रज़ाक़ी मुर्शिदी किरमानी, 22 जमादी उल अव्वल 1336 हिजरी। सवाल: जनाज़ा के साथ बुलंद आवाज़ से कलमा तय्यबा या वज़ीफ़ा-ए-ग़ौसिया या 'या शैख़ अब्दुल क़ादिर जीलानी शैअन लिल्लाह' पढ़ते चलना दुरुस्त है या नहीं?

अल-जवाब: जनाज़ा के साथ ज़िक्र-बिल-जहर (ज़ोर से ज़िक्र) में हर्ज नहीं जैसा कि सय्यद अब्दुल ग़नी नाबुलसी (अल्लाह उनके रहस्य को पवित्र करे) ने 'अल-हदिक़ा अल-नदिय्या' में तहक़ीक़ (शोध) फ़रमाई है। (जैसा कि सय्यद अब्दुल ग़नी नाबुलसी.क़ुद्दसा सिर्रहु ने हदिक़ा नदिय्या में इसकी तहक़ीक़ फ़रमाई है - तर्जुमा)। वल्लाहु तआला आलम।

मसला नंबर 26: बाज़ (कुछ) जगह देखा गया है कि जनाज़ा के साथ ग़ज़लें नातिया (ना'त वाली ग़ज़लें) पढ़ते जाते हैं, इस की निस्बत क्या हुक्म है?

अल-जवाब: जाइज़ है। वल्लाहु तआला आलम।

मसला नंबर 27: मौज़ा शर शदी, जूनियर मदरसा, डाकख़ाना फेनी, ज़िला नोआख़ाली से मुर्सला मौलवी अब्दुल करीम, 26 जमादी उल आख़िरी 1338 हिजरी। माकूल उलेमा-ए-किराम (हमारे उलेमा क्या फ़रमाते हैं): एक हनफ़ी आलिम कहता है कि बे-नमाज़ी काफ़िर व मुर्तद है, उस पर नमाज़-ए-जनाज़ा पढ़ना जाइज़ नहीं और उसको मुसलमानों के क़ब्रिस्तान में दफ़्न न करना चाहिए। इस आलिम का क़ौल मरदूद (अस्वीकार्य) है या नहीं? तीन शख़्सों के बे-नमाज़ जनाज़ा दफ़्न करा दिया है, इस पर शरअन (शरिया के अनुसार) क्या वईद (चेतावनी) आयद हो सकती है? दुनिया में ऐसा मुसलमान नहीं जो गाह बगाह (कभी-कभी) पंजगाना (पांच वक़्त की नमाज़) व ईद न पढ़ता हो।

अल-जवाब: ईमान और तस्हीह-ए-अक़ायद (अक़ीदों की दुरुस्ती) के बाद जुमला (तमाम) हुक़ूक़ुल्लाह में सबसे अहम और आज़म नमाज़ है। जुमा व ईदैन या बिला पाबंदी पंजगाना पढ़ना हरगिज़ नजात का ज़िम्मेदार नहीं। जिसने क़स्दन (जानबूझकर) एक वक़्त की नमाज़ छोड़ी, हज़ारों बरस जहन्नम में रहने का मुस्तहिक़ (हक़दार) हुआ, जब तक तौबा न करे और उसकी क़ज़ा न कर ले, मुसलमान अगर उसकी ज़िंदगी में उसे यकलख़्त...

पृष्ठ 159/948

فتاوٰی رضویہ، جلد نہم

بلکہ اوصاف کریمہ کے ساتھ ہو، مثلاً یا رسول اللہ، یا حبیب اللہ۔ دوسرا شعر مہمل ہو بے معنی، اور حیثیت شعری سے بھی مختل ہے اور بعض جُہّال سنوریا سے ذات اقدس مراد رکھتے ہیں، اس وقت وہ قریب بہ کلمہ کفر ہو جائے گا۔ تیسرا شعر بھی کچھ مفید نہیں، ہاں چوتھے اور پانچویں میں حرج نہیں، واللہ تعالٰی اعلم۔

مسئلہ نمبر ۲۵: از قادری گنج ضلع بیر بھوم ملک بنگال مرسلہ سید ظہور الحسن صاحب قادری رزاقی مرشدی کرمانی ۲۲ جمادی الاولٰی ۱۳۳۶ھ جنازہ کے ہمراہ بلند آواز سے کلمہ طیبہ یا وظیفہ غوثیہ یا شیخ عبدالقادر جیلانی شیئاً للہ پڑھتے چلنا درست ہے یا نہیں؟

الجواب: جنازہ کے ساتھ ذکر بالجر میں حرج نہیں کما حققہ السید عبدالغنی النابلسی قدس سرہ القدسی فی الحدیقۃ الندیۃ (جیسا کہ سید عبدالغنی النابلسی قدس سرہ القدسی نے حدیقہ ندیہ میں اس کی تحقیق فرمائی ہے۔ت) واللہ تعالٰی اعلم

مسئلہ نمبر ۲۶: بعض جگہ دیکھا گیا ہے کہ جنازہ کے ساتھ غزلیں نعتیہ پڑھتے جاتی ہیں اس کی نسبت کیا حکم ہے؟

الجواب: جائز ہے۔ واللہ تعالٰی اعلم

مسئلہ نمبر ۲۷: از موضع شر شدی جونیر مدرسہ ڈاکخانہ فیسنی ضلع نواکھالی مرسلہ مولوی عبدالکریم ۲۶ جمادی الاخرٰی ۱۳۳۸ھ ماقول علماءنا رحمہم اللہ (ہمارے علمائے کرام رحمہم اللہ کیا فرماتے ہیں۔ت) ایک حنفی عالم کہتا ہے کہ بے نمازی کافر و مرتد ہے اس پر نماز جنازہ پڑھنا جائز نہیں اور اس کو مسلمانوں کے قبرستان میں دفن نہ کرنا چاہئے۔ اس عالم کا قول مردود ہے یا

نہیں؟ تین شخصوں کے بے نماز جنازہ دفن کرا دیا ہے اس پر شرعاً کیا وعید عاید ہو سکتی ہے؟ دنیا میں ایسا مسلمان نہیں جو گاہ بگاہ پنجگانہ و عید نہ پڑھتا ہو۔

الجواب: ایمان و تصحیح عقائد کے بعد جملہ حقوق اللہ میں سب سے اہم واعظم نماز ہے۔ جمعہ و عیدین یا بلا پابندی پنجگانہ پڑھنا ہرگز نجات کا ذمہ دار نہیں۔ جس نے قصداً ایک وقت کی نماز چھوڑی ہزاروں برس جہنم میں رہنے کا مستحق ہوا، جب تک توبہ نہ کرے اور اس کی قضا نہ کرلے، مسلمان اگر اس کی زندگی میں اُسے یکلخت

Fatawa Rizwia Volume 9

Leave him, do not talk to him, do not sit near him, then he is surely deserving of it. Allah Almighty says: "And if Satan causes you to forget, then after the remembrance, do not sit with the wrongdoing people."(1) - 1 If Satan makes you forget, then after remembering, do not sit with the unjust people. (T) However, after death, giving a bath (ghusl) and shroud (kafan) to every Sunni with correct beliefs, and praying his funeral prayer, except for those who are excluded and this person is not among them (T), is an absolute communal obligation (Fard-e-Qat'i 'ala al-Kifayah). If everyone who was informed leaves it, they will all be sinners, omitters of an obligatory duty, and deserving of punishment. He who buried three Muslims who were non-observers of prayer became a transgressor (fasiq), committer of a major sin (kabirah), and liable to severe punishment. If someone considers the prayer of the one who doesn't pray as obligatory and does not despise it, even if he does not pray due to falling into the traps of the soul and Satan, he is a committer of major sins and deserving of the fire's punishment, but he is not an infidel (kafir), not a rebel, not a bandit; he is a ruined Muslim. The Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) says: "Funeral prayer is obligatory upon you for every Muslim who dies, whether he was righteous or wicked, even if he committed major sins."(2). Funeral prayer is obligatory upon you for every Muslim except four: a rebel, a highway robber when they are killed in battle. Similarly, one who takes weapons inside the city at night for looting and plundering, an executioner who kills intentionally, the murderer of one of his parents; in the river, he has also been joined with the rebels. (T) And he (peace and blessings of Allah be upon him) says: "There are three registers: a register from which Allah will not forgive anything, a register for which Allah does not care about anything, and a register from which Allah will not leave anything. As for the register from which Allah will not forgive anything, it is associating partners (shirk) with Allah. As for the register for which Allah does not care about anything, it is the servant's injustice towards himself in his relationship with his Lord..." The registers are three: in one register Allah Almighty will not forgive anything, and for the second Allah does not care at all, and in the third Allah will not leave anything. The register in which Allah Almighty will not forgive anything is the register of disbelief (kufr). And the one for which Allah does not care is the servant's [sin] against his own soul in the matter of his Lord.

---

1 Al-Quran 6 / 68 2 Sunan Abi Dawood, Kitab al-Jihad, printed by Aftab Alam Press, Lahore 1 / 343 Page 160 of 948

फ़तावा रज़विया खंड 9

उसे छोड़ दें, उससे बात न करें, उसके पास न बैठें, तो वह निश्चित रूप से इसका पात्र है। अल्लाह तआला फ़रमाता है: "और अगर शैतान तुम्हें भुला दे, तो याद आने के बाद ज़ालिम लोगों के साथ न बैठना।" (1) - 1 अगर शैतान तुम्हें भुला दे, तो याद आने के बाद अन्यायियों के साथ न बैठना। (त) मगर मृत्यु के बाद हर सही अकीदा (सही विश्वास रखने वाले) सुन्नी को गुसल (स्नान) और कफ़न देना, उसके जनाज़े की नमाज़ पढ़ना सिवाय उनके जिनका अपवाद किया गया है और यह उनमें से नहीं है (त), फर्ज़-ए-क़तई अलल-किफ़ाया (सामूहिक अनिवार्य दायित्व) है। अगर उन सब ने जिन्हें सूचना थी छोड़ दिया, तो सब गुनहगार, फर्ज़ के त्याग करने वाले और अज़ाब (दंड) के हकदार होंगे। जिसने तीन मुसलमानों को जो बे-नमाज़ी (नमाज़ न पढ़ने वाले) थे, दफ़न करा दिया, वह फासिक (पापी), कबीरा गुनाह (बड़ा पाप) करने वाला और कठोर दंड का पात्र हुआ। जो बे-नमाज़ी की नमाज़ को फर्ज़ जानता हो और उसकी तौहीन (अपमान) न करता हो, चाहे नफ़्स और शैतान के चंगुल में फंसकर न पढ़ता हो, वह कबीरा गुनाहों का अपराधी है, आग के अज़ाब का हकदार है, मगर काफ़िर नहीं, बागी नहीं, डाकू नहीं, एक तबाह हाल मुसलमान है। रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम फ़रमाते हैं: "तुम पर हर मुसलमान की जनाज़ा नमाज़ वाजिब (अनिवार्य) है जो मर जाए, चाहे वह नेक हो या गुनहगार, भले ही उसने कबीरा गुनाह किए हों।" (2) तुम पर हर मुसलमान की जनाज़ा नमाज़ फर्ज़ है सिवाय चार के: बागी, लुटेरा जब वे युद्ध में मारे जाएँ। इसी तरह रात को शहर के अंदर हथियार लेकर लूटपाट करने वाला, जानबूझकर मारने वाला जल्लाद, अपने माता-पिता में से किसी का हत्यारा; नहर (नदी) में उसे बागियों के साथ ही जोड़ा गया है। (त) और आप सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम फ़रमाते हैं: "दफ़्तर (पंजी) तीन हैं: एक दफ़्तर वह है जिसमें से अल्लाह तआला कुछ भी माफ़ न फ़रमाएगा, और दूसरे की अल्लाह को कोई परवाह नहीं, और तीसरे में अल्लाह कुछ न छोड़ेगा। तो वह दफ़्तर जिसमें से अल्लाह तआला कुछ भी माफ़ न फ़रमाएगा, शिर्क (अल्लाह के साथ किसी को शरीक करना) है। और वह दफ़्तर जिसकी अल्लाह को कोई परवाह नहीं, वह बंदे का अपने रब के मामले में अपनी जान पर ज़ुल्म है..." दफ़्तर तीन हैं, एक दफ़्तर में से अल्लाह तआला कुछ माफ़ न फ़रमाएगा, और दूसरे की अल्लाह को कुछ परवाह नहीं, और तीसरे में अल्लाह कुछ न छोड़ेगा। वह दफ़्तर जिसमें अल्लाह तआला कुछ माफ़ न फ़रमाएगा कुफ़्र (अविश्वास) का दफ़्तर है। और जिसकी अल्लाह को कुछ परवाह नहीं वह बंदे का अपने रब के मामले में अपनी जान पर [किया गया पाप] है।

1 अल-क़ुरान 6 / 68 2 सुनन अबू दाऊद, किताबुल जिहाद, आफताब आलम प्रेस लाहौर 1 / 343 द्वारा प्रकाशित पृष्ठ 160 का 948

چھوڑ دیں اُس سے بات نہ کریں، اُس کے پاس نہ بیٹھیں، تو ضرور اس کا سزا وار ہے۔ اللہ تعالٰی فرماتا ہے: وَ اِمَّا یُنْسِیَنَّكَ الشَّیْطٰنُ فَلَا تَقْعُدْ بَعْدَ الذِّكْرٰی مَعَ الْقَوْمِ الظّٰلِمِیْنَ (۱) - ۱ اگر شیطان تجھے بھلا دے تو یاد آنے کے بعد ظالموں کے ساتھ نہ بیٹھنا۔ (ت) مگر بعدِ موت ہر سنی صحیح العقیدہ کو غسل و کفن دینا، اس کے جنازے کی نماز پڑھنا اِلا مَا استثنیٰ ولیس ھذا منھم (اگر وہ جن کا استثنیٰ کیا گیا ہے اور یہ ان میں سے نہیں ۔ت) فرضِ قطعی علی الکفایہ ہے۔ اگر سب چھوڑ دیں جن جن کو اطلاع تھی سب گنہگار و تارکِ فرض و مستحقِ عذاب ہوں گے۔ جس نے تین مسلمانوں جو بے نماز دفن کرا دیا فاسق، مرتکبِ کبیرہ، مستوجبِ سزائے شدید ہوا، بے نماز کے نماز کو فرض جانتا ہو اس کی تحقیر نہ کرتا اگرچہ نفس و شیطان کے پھندے میں آکر نہ پڑھتا ہو مرتکبِ کبائر ہے، مستحقِ عذابِ نار ہے، مگر کافر نہیں، باغی نہیں، ڈاکو نہیں، ایک تباہ کار مسلمان ہے۔ رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم فرماتے ہیں: الصلوٰۃ واجبۃ علیکم علی کل مسلم یموت برا کان او فاجرا وان ھو عمل الکبائر (۲)۔ تم پر ہر مسلمان کی نمازِ جنازہ فرض ہے سوا چار کے، باغی، رہزن جب کہ یہ جنگ میں قتل ہوں۔ اسی طرح رات کو شہر کے اندر ہتھیار لے کر لوٹ مار کرنے والا جلاد با کر مارنے والا، اپنے ماں باپ میں سے کسی کا قاتل، نہر میں اسے باغیوں سے بھی لاحق کیا ہے (ت) اور فرماتے ہیں صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم: الدواوین ثلثۃ فدیوان لا یغفر اللہ منہ شیئا، ودیوان لا یعبأ اللہ منہ شیئا، ودیوان لا یترك اللہ منہ شیئا، فاما الدیوان الذي لا یغفر اللہ منہ شیئا، فالاشراك باللہ ، واما الدیوان الذي لا یعبأ اللہ منہ شیئا فظلم العبد دفتر تین ہیں، ایک دفتر میں سے اللہ تعالٰی کچھ معاف نہ فرمائے گا، اور دوسرے کی اللہ کو کچھ پرواہ نہیں، اور تیسرے میں اللہ کچھ نہ چھوڑے گا، وہ

دفتر جس میں اللہ تعالیٰ کچھ معاف نہ فرمائے گا دفترِ کفر ہے۔ اور جس کی اللہ کو کچھ پرواہ نہیں وہ بندے کا اپنے رب کے معاملے میں اپنی جان پر

---

1 القرآن ۶ / ۶۸ 2 سنن ابوداؤد کتاب الجہاد مطبوعہ آفتاب عالم پریس، لاہور ۱ / ۳۴۳ Page of 948 160

Fatawa Razawiyya Volume 9

(Arabic Text)

regarding what is between him and his Lord of a fast left or a prayer left, then Allah Almighty will forgive that if He wills and overlook it. As for the record from which Allah will not leave anything, it is the injustice of people among themselves; retaliation is inevitable. [1] Narrated by Imam Ahmad and Al-Hakim in Al-Mustadrak on the authority of Umm al-Mu'minin as-Siddiqah (may Allah be pleased with her).

(Urdu Translation)

Oppressing [oneself] by leaving a day's fast or leaving a prayer; if Allah Almighty wills, He will forgive and overlook it. And that register from which Allah Almighty will not leave anything is the mutual injustice among people; its retribution is certain. Imam Ahmad and Al-Hakim in Al-Mustadrak narrated it from Umm al-Mu'minin Siddiqah (may Allah be pleased with her).

Also, he (peace and blessings of Allah be upon him) said:

(Arabic Text)

Five prayers Allah has prescribed for the servants. Whoever performs them and does not lose any of them out of disregard for their right, he has a covenant with Allah that He will admit him to Paradise. And whoever does not perform them, he has no covenant with Allah; if He wills, He will punish him, and if He wills, He will admit him to Paradise. [2] Narrated by Imams Malik, Ahmad, Abu Dawood, An-Nasa'i, Ibn Majah, Ibn Hibban, Al-Hakim, and Al-Bayhaqi with a sound chain on the authority of 'Ubadah ibn al-Samit (may Allah be pleased with him).

(Urdu Translation)

Five prayers Allah Almighty has made obligatory on the servants; whoever performs them and does not waste any of them by considering their right light, Allah has a covenant that He will admit him to Paradise. And whoever does not perform them, there is no covenant with Allah for him; if He wills, He may punish him, and if He wills, He may admit him to Paradise. It was narrated by Imam Malik, Imam Ahmad, Abu Dawood, An-Nasa'i, Ibn Majah, Ibn Hibban, Al-Hakim, and Al-Bayhaqi with a sahih chain from Hazrat Ubadah bin Samit (may Allah be pleased with him).

In Durr al-Mukhtar it is stated:

(Arabic Text)	(Urdu Translation)
It is obligatory for every Muslim who dies, except four.	The funeral prayer is obligatory for every Muslim who dies, except for four [categories].

[1] Musnad Ahmad bin Hanbal, narrated by Aisha Siddiqah (may Allah be pleased with her), published by Dar al-Fikr Beirut 6/240; Al-Mustadrak 'ala al-Sahihayn, Kitab al-Ahwal, published by Dar al-Fikr Beirut 4/575. [2] Sunan Abu Dawood, chapter on one who does not perform Witr, published by Aftab Alam Press Lahore 1/201; Musnad Ahmad bin Hanbal, narrated by Ubadah bin al-Samit, published by Dar al-Fikr Beirut 5/315.

फ़तावा रज़विया जिल्द 9

(अरबी पाठ)

स्वयं के प्रति अन्याय करना जैसे किसी दिन का रोज़ा छोड़ देना या नमाज़ छोड़ देना, अल्लाह चाहे तो उसे माफ़ कर देगा और दरगुज़र करेगा। लेकिन वह रजिस्टर जिसमें से अल्लाह कुछ भी नहीं छोड़ेगा, वह बंदों का एक-दूसरे पर किया गया ज़ुल्म है; उसका बदला अवश्यम्भावी है। [1] इसे इमाम अहमद और मुस्तदरक में हाकिम ने उम्मुल मोमिनीन सिद्दीका (रज़ियल्लाहु अन्हा) से रिवायत किया है।

(हिन्दी अनुवाद)

ज़ुल्म करना कि किसी दिन का रोज़ा छोड़ दिया या नमाज़ छोड़ दी अल्लाह तआला चाहेगा तो माफ़ फरमा देगा और दरगुज़र फरमाएगा। और वह दफ़्तर जिसमें से अल्लाह तआला कुछ न छोड़ेगा वह बंदों के बाहम एक दूसरे पर ज़ुल्म हैं उनका बदला ज़रूर होना। इसे इमाम अहमद ने और मुस्तदरक में हाकिम ने उम्मुल मोमिनीन सिद्दीका रज़ियल्लाहु तआला अन्हा से रिवायत किया।

साथ ही आप (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) फ़रमाते हैं:

(अरबी पाठ)

पाँच नमाज़ें अल्लाह तआला ने बंदों पर फ़र्ज़ की हैं। जो उन्हें अदा करे और उनके हक़ को हल्का जानकर उनमें से कुछ भी ज़ाया न करे, अल्लाह के पास उसके लिए वादा है कि वह उसे जन्नत में दाखिल फ़रमाएगा। और जो उन्हें अदा न करे, उसके लिए अल्लाह के पास कोई वादा नहीं; चाहे तो उसे अज़ाब दे और चाहे तो उसे जन्नत में दाखिल करे। [2] इसे इमाम मालिक, अहमद, अबू दाऊद, नसाई, इब्ने माजा, इब्ने हिब्बान, हाकिम और बैहक़ी ने सही सनद के साथ उबादा बिन सामित (रज़ियल्लाहु अन्हु) से रिवायत किया है।

(हिन्दी अनुवाद)

पाँच नमाज़ें अल्लाह तआला ने बंदों पर फ़र्ज़ की हैं जो उन्हें बजालाए और उनके हक़ को हल्का जान कर उनमें से कुछ ज़ाया न करे अल्लाह के पास अहद हो कि उसे जन्नत में दाखिल फ़रमाए और जो उन्हें बजा न लाए उसके लिए अल्लाह के पास अहद नहीं कि चाहे उसे अज़ाब करे चाहे उसे जन्नत में दाखिल करे। इसे इमाम मालिक, इमाम अहमद, अबू दाऊद, नसाई, इब्न माजा, इब्न हिब्बान, हाकिम और बैहक़ी ने बसन्द-ए-सही हज़रत उबादा बिन सामित रज़ियल्लाहु तआला अन्हु से रिवायत किया।

'दुर्रे मुख़्तार' में है:

(अरबी पाठ)	(हिन्दी अनुवाद)
यह हर उस मुसलमान पर फ़र्ज़ है जो मर गया, सिवाय चार के।	हर मुसलमान की नमाज़-ए-जनाज़ा फ़र्ज़ है सिवाए चार के,

---

[1] मुसनद अहमद बिन हंबल, हज़रत आयशा सिद्दीका (रज़ियल्लाहु अन्हा) से रिवायत, दारुल फ़िक्र बेरुत 6/240; अल-मुस्तदरक अलस सहीहैन, किताबुल अहवाल, दारुल फ़िक्र बेरुत 4/575। [2] सुनन अबू दाऊद, बाब फ़ीमन लम युतिर, आफ़ताब आलम प्रेस लाहौर 1/201; मुसनद अहमद बिन हंबल, उबादा बिन सामित से रिवायत, दारुल फ़िक्र बेरुत 5/315।

पृष्ठ 161/948

فتاوٰی رضویہ جلد نہم

| نفسہ فیما بینہ وبین ربہ من صوم یوم ترک او صلاۃ ترکھا فان اللہ تعالٰی یغفر ذلک ان شاؤیتجاوز، وامادیوان الذی لایترک اللہ منہ شیئا فظالم العباد بینھم القصاص لامحالۃ [1] رواہ الامام احمد والحاکم فی المستدرک عن ام المؤمنین الصدیقۃ رضی اللہ تعالٰی عنھا۔ | ظلم کرنا کہ کسی دن کا روزہ چھوڑ دیا یا نماز چھوڑ دی اللہ تعالٰی چاہے گا تو معاف فرمادے گا اور درگزر فرمائیگا۔ اور وہ دفتر جس میں سے اللہ تعالٰی کچھ نہ چھوڑے گا وہ بندوں کے باہم ایک دوسرے پر ظلم ہیں ان کا بدلہ ضرور ہونا۔ اسے امام احمد نے اور مستدرک میں حاکم نے ام المومنین صدیقہ رضی اللہ تعالٰی عنہا سے روایت کیا۔ |

نیز فرماتے ہیں صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم:

| خمس صلوات کتبھن اللہ علی العباد، فمن جاء بھن فلم یضع منھن شیئا استخفافا بحقھن کان لہ عنداللہ عھد ان یدخل فی الجنۃ، ومن لم یأت بھن فلیس لہ عنداللہ عھد، ان شاء عذبہ وان شاء ادخلہ الجنۃ [2]۔ رواہ الائمۃ مالک واحمد وابوداؤد والنسائی وابن ماجۃ وابن حبان والحاکم والبیھقی بسند صحیح عن عبادۃ بن الصامت رضی اللہ تعالٰی عنہ۔ | پانچ نمازیں اللہ تعالٰی نے بندوں پر فرض ہیں جو انہیں بجالائے اور ان کے حق کو ہلکا جان کر ان میں سے کچھ ضائع نہ کرے اللہ کے پاس عہد ہو کہ اسے جنت میں داخل فرمائے اور جو انہیں بجانہ لائے اس کے لئے اللہ کے پاس عہد نہیں کہ چاہے اسے عذاب کرے چاہے اسے جنت میں داخل کرے۔ اسے امام مالک، امام احمد، ابو داؤد، نسائی، ابن ماجہ، ابن حبان، حاکم اور بیہقی نے بسند صحیح حضرت عبادہ بن صامت رضی اللہ تعالٰی عنہ سے روایت کیا۔ |

دُرِ مختار میں ہے:

| ہی فرض علی کل مسلم مات خلا اربعۃ | ہر مسلمان کی نماز جنازہ فرض ہے سوائے چار کے، |

---

[1] مسند احمد بن حنبل مروی عائشہ صدیقہ رضی اللہ تعالیٰ عنہا مطبوعہ دار الفکر بیروت ۲۴۰/۶، المستدرک علی الصحیحین کتاب الاحوال مطبوعہ دار الفکر بیروت ۴/ ۵۷۵ [2] سنن ابو داؤد باب فیمن لم یوتر مطبوعہ آفتاب عالم پریس لاہور ۱/ ۲۰۱، مسند احمد بن حنبل مروی از عبادہ بن الصامت مطبوعہ دار الفکر بیروت ۵/ ۳۱۵

Fatawa Ridawiyyah Volume 9

Rebels and highway robbers, if they are killed in battle; similarly, one who commits armed robbery in a city at night, a strangler, and one who kills one of their parents; they are joined with the rebels in the river [in terms of legal status] (Summarized). And Allah Almighty knows best.

Rebels, highway robbers, when they are killed in battle. Similarly, one who commits armed robbery inside a city at night with weapons, a strangler, one who kills any of their parents, the river has also joined them with the rebels (Summarized). And Allah Almighty knows best. (T)

Problem No. 28: From Bangla, District Sylhet, Village Qasim Nagar, sent by Maulvi Muhammad Akram Sahab, 1st Rabi al-Awwal 1320 AH.

Should the funeral prayer for a person who does not pray (be-namazi) be performed or not? If it should be, then what is the evidence? Please write a detailed answer with references from authentic books. State the ruling and be rewarded.

The Answer: The correct position is that abandoning prayer is a severe major sin and an extreme ingratitude for blessings, but it is not disbelief (kufr) or apostasy (irtidad), provided the person does not deny its obligation or show contempt and disrespect towards it. The funeral prayer is a communal obligation (fard al-kifayah) for every Muslim. If everyone abandons it, all will be sinners. The five daily prayers were obligatory for him, which he abandoned; the funeral prayer is obligatory for us, why should we abandon it? He abandoned the obligation which was purely the right of Allah, the Gracious, the Wealthy, and the Almighty. Should we abandon the obligation which involves the right of Allah Almighty as well as the right of the needy servant? This is mere ignorance and self-ill-will. The scholars have excluded only a few individuals from the obligation of funeral prayer: rebels and those involved in mutual riots where parties fight due to ignorance, their spectators, robbers, those who strangle or hang people to death, and those who kill their parents. It is evident that a non-praying person is outside these categories, so his funeral prayer is obligatory like that of common Muslims.

In Durr al-Mukhtar, it is stated: It [funeral prayer] is obligatory for every Muslim who dies, except for rebels and highway robbers when killed in battle, and people of partisanship, and armed robbers in a city at night, and stranglers, and the killer of one of their parents... (Summarized) and in Radd al-Muhtar, in the commentary:

In Durr al-Mukhtar, it says: Funeral prayer is obligatory for every deceased Muslim except for rebels and highway robbers when killed in battle, and those who fight among themselves out of partisanship, one who commits robbery in the city at night with weapons, one who kills by strangling, and someone who kills one of their parents...

1. Durr al-Mukhtar, Chapter on Funeral Prayers, printed by Matba' Mujtabai, Delhi, 1/122
2. Durr al-Mukhtar, Chapter on Funeral Prayers, printed by Matba' Mujtabai, Delhi, 1/122

फ़तावा रज़विया खंड 9

विद्रोही और लुटेरे, यदि वे युद्ध में मारे जाएं इसी तरह शहर में रात को हथियार लेकर लूटपाट करने वाला, गला दबाकर मारने वाला और अपने माता-पिता में से किसी की हत्या करने वाला; इन्हें नहर में विद्रोहियों के साथ जोड़ा गया है (संक्षेप में)। और अल्लाह सर्वशक्तिमान बेहतर जानता है।

विद्रोही, लुटेरे, जब वे लड़ाई में मारे गए हों। इसी तरह रात को शहर के भीतर हथियार लेकर लूट-मार करने वाला, गला दबाकर मारने वाला, अपने माँ-बाप में से किसी को क़त्ल करने वाला, नहर में इसे भी विद्रोहियों के साथ जोड़ा गया है (संक्षेप में)। और अल्लाह तआला बेहतर जानता है। (त)

मसला नंबर 28: बंगला, जिला सिलहट, गाँव कासिम नगर से, मौलवी मुहम्मद अकरम साहब द्वारा भेजा गया, 1 रबी-उल-अव्वल 1320 हिजरी।

बे-नमाज़ी की नमाज़-ए-जनाज़ा होनी चाहिए या नहीं? अगर होनी चाहिए तो क्या दलील है, विश्वसनीय पुस्तकों के संदर्भ के साथ विस्तार से उत्तर लिखें। हुक्म बयान करें और पुण्य पाएँ।

उत्तर: सही बात यह है कि नमाज़ छोड़ना एक गंभीर बड़ा पाप और ईश्वरीय वरदानों के प्रति अत्यधिक कृतघ्नता है, लेकिन यह कुफ्र और धर्मत्याग नहीं है, जब तक कि वह नमाज़ की अनिवार्यता का इनकार न करे या उसका अनादर और अपमान न करे। नमाज़-ए-जनाज़ा हर मुसलमान के लिए फ़र्ज़-ए-किफ़ाया (सामूहिक दायित्व) है। अगर सब इसे छोड़ देंगे, तो सब पापी होंगे। पाँच समय की नमाज़ उस पर फ़र्ज़ थी जिसे उसने छोड़ दिया; नमाज़-ए-जनाज़ा हम पर फ़र्ज़ है, हम इसे क्यों छोड़ें? उसने वह फ़र्ज़ छोड़ा जो विशुद्ध रूप से अल्लाह करीम, गनी और अज़-ओ-जल्ल का अधिकार था। क्या हम उस फ़र्ज़ को छोड़ दें जिसमें अल्लाह अज़-ओ-जल्ल का भी अधिकार है और उस ज़रूरतमंद बंदे का भी अधिकार है? यह कोरी अज्ञानता और खुद का बुरा चाहना है। विद्वानों ने जनाज़े की नमाज़ की अनिवार्यता से केवल कुछ व्यक्तियों को बाहर रखा है: विद्रोही और आपस के दंगई जो अज्ञानता के कारण लड़ें, और उनके दर्शक, डाकू और वे जो लोगों का गला दबाकर या फाँसी देकर मार डालते हों, और वह जिसने अपने माँ-बाप का क़त्ल किया हो। ज़ाहिर है कि बे-नमाज़ी इनसे बाहर है, तो उसकी नमाज़-ए-जनाज़ा आम मुसलमानों की तरह फ़र्ज़ है।

'दुर अल-मुख्तार' में है: यह [जनाज़े की नमाज़] हर उस मुसलमान पर फ़र्ज़ है जो मर जाए, सिवाय विद्रोहियों और लुटेरों के जब वे लड़ाई में मारे जाएं, और पक्षपाती समूहों के, और शहर में रात में

हथियारबंद लूटपाट करने वाले, और गला घोंटने वाले, और अपने माता-पिता में से किसी के हत्यारे के.. (संक्षेप में) और 'रद्द अल-मुह्तार' की व्याख्या में:

'दुर अल-मुख्तार' में है: हर मरने वाले मुसलमान की नमाज़-ए-जनाज़ा फ़र्ज़ है सिवाय विद्रोही और लुटेरों के जब वे लड़ाई में मारे जाएं, और जो पक्षपात के कारण आपस में लड़ें, रात को हथियार लेकर शहर में लूटपाट करने वाला, गला दबाकर मार डालने वाला, अपने माता-पिता में से किसी का...

1. दुर अल-मुख्तार, अध्याय नमाज़-ए-जनाज़ा, मतबा मुजतबाई, दिल्ली से प्रकाशित, 1/122
2. दुर अल-मुख्तार, अध्याय नमाज़-ए-जनाज़ा, मतबा मुजतबाई, दिल्ली से प्रकाशित, 1/122

पृष्ठ 162/948

فتاوٰی رضویہ جلد نہم

بُغَاۃٌ وقُطّاعُ طَریقٍ اذا قُتِلُوا فی الحربِ وکذا مُکابِرٌ فی مِصر لَیلاً بِسلاحٍ وخنّاق وقاتِلُ احدِ اَبَوَیْہِ اَلْحقّ فی النھر بِالبُغَاۃِ 1 (ملخصاً) واللہ تعالٰی اعلم۔

باغی، رہزن، جبکہ یہ لڑائی میں مارے گئے ہوں۔ اسی طرح رات کو شہر کے اندر ہتھیار لے کر لوٹ مار کرنے والا، گلا دبا کر مارنے والا، اپنے ماں باپ میں سے کسی کو قتل کرنے والا، نہر میں اسے بھی باغیوں سے لاحق کیا ہے(ملخصاً) واللہ تعالٰی اعلم (ت)

مسئلہ نمبر ۲۸: از بنگلہ ضلع سلہٹ موضوع قاسم نگر مرسلہ مولوی محمد اکرم صاحب یکم ربیع الاول ۱۳۲۰ھ بے نمازی کی نماز جنازہ چاہئے یا نہیں۔ اگر چاہئے تو کیا دلیل، جواب بالتفصیل بحوالہ کتب معتبرہ تحریر فرمائے۔ بینوا توجروا

الجواب: صحیح یہ ہے کہ ترک نماز سخت کبیرہ گناہ اشد کفران نعمت ہے، مگر کفر وارتداد نہیں، جبکہ انکارِ فرضیت یا استخفاف و اہانت نہ کرے، اور نماز ہر مسلمان کے جنازے کی فرض کفایہ ہے، اگر سب چھوڑیں گے سب گنہگار رہیں گے، نماز پنجگانہ اس پر فرض تھی اس نے چھوڑی، نماز جنازہ ہم پر فرض ہے ہم کیوں چھوڑیں، اس نے وہ فرض چھوڑا جو خالص حق اللہ کریم غنی و عزوجل کا تھا، ہم وہ فرض چھوڑ دیں جس میں اللہ عزوجل کا بھی حق اور اس محتاج باشد الاحتیاج کا بھی حق العبد، یہ محض نادانی اور خود اپنی بھی بدخواہی ہے، علمائے کرام نے فرضیت نماز جنازہ سے صرف چند شخصوں کا استثناء فرمایا۔ باغی اور آپس کے بلوائی کہ فریقین بطورِ جاہلیت لڑیں اور ان کے تماشائی اور ڈاکو، اور وہ کہ لوگوں کا گلہ دبا کر، پھانسی دے کر

مار ڈالا کرتا ہو، اور وہ جس نے اپنے ماں باپ کو قتل کیا۔ ظاہر ہے کہ بے نمازی ان سے خارج ہے تو اس کی نماز جنازہ مثل عام مسلمانوں کے فرض ہے۔

فی الدر المختار ھی فرض علی مسلم مات خلا بغاۃ و قطاع طریق اذا قتلوا فی الحرب و اھل عصبہ و مکابر فی مصر لیلا و خناق و قاتل احد ابویہ اھ ملخصا و فی رد المحتار فی شرح

در مختار میں ہے: ہر مرنے والے مسلمان کی نماز جنازہ فرض ہے سوا باغی، رہزن کے جب لڑائی میں مارے جائیں، اور جو براہ عصبیت آپس میں لڑیں، رات کو ہتھیار لے کر شہر میں لوٹ مار کرنے والا گلا دبا کر مار ڈالنے والا، اپنے والدین میں سے کسی کا

1 در مختار باب صلوٰۃ الجنائز مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی 1/122 2 در مختار باب صلوٰۃ الجنائز مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی 1/122

Fatawa Razawiyya, Volume 9

Durar al-Bihar fi al-Nawazil: Our sheikhs have placed those killed in partisanship (asabiyyah) in the same category as rebels. Similarly, those standing and watching them; if they were hit by a stone etc. and died in that state, [they are treated the same]. However, if they died after dispersing, then their funeral prayer shall be performed. Briefly, and Allah Almighty knows best.

The killer, etc., in summary. It is in Rad al-Muhtar: It is stated in Sharh Durar al-Bihar with reference to Nawazil that our sheikhs have placed those killed due to fanaticism in the category of rebels. Likewise, those standing nearby as spectators; if a stone etc. hit them and they died in that condition. Yes, if they died after being separated, then their prayer will be performed. Briefly, and Allah Almighty knows best (T).

Problem No. 29: From Arrah, Madrasa Faiz-ul-Ghuraba, sent by Maulvi Rahim Bakhsh Sahib Qadri Barakati Razavi, 7 Jumada al-Ukhra 1336 AH. Zaid accepts all the necessities of religion and considers the denial of any one of them as disbelief, but he is a non-performer of prayer (be-namazi) purely out of laziness and neglect. So, is the funeral prayer of such non-performers permissible or not? Should no one pray it nor lead it?

The Answer: La ilaha illallah. Even if a Muslim is a non-performer of prayer, his funeral prayer is obligatory (Fard) upon the Muslims. If no one performs it when the people are aware, everyone will be sinners and neglectors of a mandatory duty. Yes, if for the sake of rebuking/admonishing, the scholars do not pray themselves but have others lead it, it is not improper. But if due to their not praying, no one else prays or they forbid others from praying as well, then these scholars will also be deserving of the fire of punishment, in fact, even more so, for upon you is the sin. The Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) says:

"Prayer is obligatory for you upon every Muslim who dies, whether he be righteous or a sinner, even if he committed major sins." 2 - Narrated by Abu Dawud and Abu Ya'la from Abu Hurairah (may Allah be pleased with him) with an authentic chain according to our principles.

"The prayer is obligatory upon you for every Muslim who dies, whether he be good or bad, even if he has committed major sins." Abu Dawud and Abu Ya'la narrated it from Hazrat Abu Hurairah (may Allah be pleased with him) with an authentic chain based on our principles.

It is in Durr al-Mukhtar:

1. Rad al-Muhtar, Chapter of Funeral Prayer, printed by Mustafa al-Babi, Egypt, 1/642
2. Sunan Abu Dawud, Book of Jihad, printed by Idarah al-Tiba'ah al-Misriyah, Egypt, 1/590

फ़तावा रिज़विया, खंड 9

दुरर अल-बिहार फ़िल नवाज़िल: हमारे मशाइख़ ने पक्षपात (असबीय्या) में मारे गए लोगों को बागियों के हुक्म में रखा है। इसी तरह उनके पास खड़े होकर तमाशा देखने वाले; अगर उन्हें कोई पत्थर आदि लगा और उसी हालत में वे मर गए, [तो उनके साथ वैसा ही व्यवहार होगा]। हाँ, अगर वे अलग होने के बाद मरे तो उनका जनाज़ा पढ़ा जाएगा। संक्षेप में, और अल्लाह तआला बेहतर जानता है।

हत्यारा आदि सारांश के साथ। रद अल-मुह्तार में है: शरह दुरर अल-बिहार में नवाज़िल के हवाले से है कि हमारे मशाइख़ ने पक्षपात में मारे जाने वालों को बागियों के हुक्म में रखा है। ऐसे ही उनके पास खड़े तमाशा देखने वाले; अगर उन्हें कोई पत्थर वगैरह लगा और उसी हालत में मर गए। हाँ, अगर जुदा होने के बाद मरे तो उनकी नमाज़ पढ़ी जाएगी। संक्षेप में। और अल्लाह तआला बेहतर जानता है (त)।

मसला नंबर 29: आरा से, मदरसा फ़ैज़-उल-गुरबा, मौलवी रहीम बख्श साहब कादरी बरकाती रिज़वी द्वारा प्रेषित, 7 जमादी अल-उखरा 1336 हिजरी। ज़ैद तमाम ज़रूरीयाते दीन को तस्लीम करता है, किसी एक के इनकार को कुफ़्र जानता है, लेकिन महज़ सुस्ती और ग़फ़लत से बे-नमाज़ी है। तो क्या ऐसे बे-नमाज़ियों के जनाज़े की नमाज़ जाइज़ है या नहीं? क्या कोई न पढ़े और न पढ़ाए?

उत्तर: ला इलाहा इल्लल्लाह। मुस्लिम भले ही बे-नमाज़ी हो, उसके जनाज़े की नमाज़ मुसलमानों पर फ़र्ज़ है। अगर कोई नहीं पढ़ेगा जबकि लोगों को खबर हो, तो सब गुनहगार और फ़र्ज़ के छोड़ने वाले होंगे। हाँ, अगर ज़ज्र (नसीहत/डाँट) के लिए उलमा खुद न पढ़ें बल्कि दूसरों से पढ़वा दें, तो बेजा नहीं। और अगर उनके न पढ़ने से कोई और भी न पढ़े या वे उनको भी मना करें, तो ये उलमा भी अज़ाब-ए-नार के मुस्तहिक होंगे, बल्कि जहाँ से ज़्यादा, क्योंकि आप पर गुनाह होगा। रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम फरमाते हैं:

"नमाज़ तुम पर हर उस मुसलमान के लिए वाजिब है जो मर जाए, चाहे वह नेक हो या पापी, भले ही उसने कबीरा गुनाह किए हों।" 2 - इसे अबू दाऊद और अबू यअला ने हज़रत अबू हुरैरा (रज़ियल्लाहु तआला अन्हु) से हमारे उसूलों के अनुसार सही सनद के साथ रिवायत किया है।

"तुम पर हर मुसलमान के जनाज़े की नमाज़ फ़र्ज़ है, चाहे वह नेक हो या बुरा, भले ही उसने कबीरा गुनाह किए हों।" इसे अबू दाऊद और अबू यअला ने हज़रत अबू हुरैरा (रज़ियल्लाहु तआला अन्हु) से हमारे उसूलों पर सही सनद के साथ रिवायत किया।

दुर-ए-मुख्तार में है:

1. रद अल-मुह्तार, बाब सलात अल-जनाज़ा, मुद्रित मुस्तफ़ा अल-बाबी, मिस्र, 1/642
2. सुनन अबू दाऊद, किताब अल-जिहाद, मुद्रित इदारा अल-तिबाआ अल-मिसरिया, मिस्र, 1/590

पृष्ठ 163 / 948

درر البحار فی النوازل جعل مشائخنا المقتولین فی العصبیة فی حکم اھل البغی وکذا الواقفون الناظرون الیھما ان اصابھم حجرا وغیرہ وماتوا فی تلك الحالة ولو ماتوا بعد تفرقھم یصلی علیھم اھ مختصرا واللہ تعالٰی اعلم۔

قاتل اھ بتلخیص۔ ردالمحتار میں ہے : شرح دررالبحار میں نواز ل کے حوالے سے ہے کہ ہمارے مشائخ نے عصبیت میں مارے جانے والوں کو باغیوں کے حکم میں رکھا ہے ایسے ہی ان کے پاس کھڑے تماشا دیکھنے والے، اگر انہیں کوئی پتھر وغیرہ لگا اور اسی حالت میں مر گئے ، ہاں اگر جدا ہونے کے بعد مرے تو ان کی نماز پڑھی جائے گی اھ مختصراً۔ واللہ تعالٰی اعلم (ت)

مسئلہ نمبر ۲۹: از آرہ، مدرسہ فیض الغرباء مرسلہ مولوی رحیم بخش صاحب قادری برکاتی رضوی ۷ جمادی الاخرٰی ۱۳۳۶ ھ زید تمام ضروریات دین کو تسلیم کرتا ہے کسی ایک کے انکار کو کفر جانتا ہے محض سستی و غفلت سے بے نماز ہے۔ پس ایسے بے نمازوں کے جنازے کی نماز جائز ہے یا نہیں؟ کوئی نہ پڑھے نہ پڑھائے؟

الجواب: لا الہ الا اللہ مسلمان اگر چہ بے نماز ہو اس کے جنازے کی نماز مسلمانوں پر فرض ہے۔ اگر کوئی نہ پڑھے گا جتوں کو خبر ہو سب گنہگار و تارک فرض رہیں گے۔ ہاں اگر زجر کے لئے علماء خود نہ پڑھیں دوسروں سے پڑھوادیں تو بیجا نہیں ، اور اگر ان کے نہ پڑھنے سے اور بھی کوئی نہ پڑھے یا ان کو بھی منع کریں تو یہ علماء بھی مستحق عذاب نار ہوں گے ، بلکہ جہاں سے زیادہ فانما علیك اثم۔ رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم فرماتے ہیں :

الصَّلوۃ واجبۃ علیکم علی کل مسلم یموت برا کان او فاجرا وان ھو عمل الکبائر 2 - رواہ ابو داؤد وابو یعلی عن ابی ہریرہ رضی اللہ تعالیٰ عنہ بسند صحیح علی اصولنا۔

تم پر ہر مسلمان کے جنازے کی نماز فرض ہے نیک ہو یا بد اگر چہ اُس نے کبیرہ گناہ کئے ہوں۔ اسے ابوداؤد اور ابو یعلی نے حضرت ابوہریرہ رضی اللہ تعالیٰ عنہ سے ہمارے اصول پر بسند صحیح روایت کیا۔

در مختار میں ہے :

1 ردالمحتار باب صلوۃ علی الجنازۃ مطبوعہ مصطفیٰ البابی مصر ۱ / ۶۴۲ 2 سنن ابوداؤد کتاب الجہاد مطبوعہ ادارۃ الطباعۃ المصریہ مصر ۱ / ۵۹۰

Fatawa Razawiyya Volume 9

It [Funeral prayer] is obligatory upon every Muslim who dies, except for four: rebels, and highway robbers if they are killed in battle; and similarly, one who commits armed robbery within a city at night, a strangler (one who kills by strangling), and one who kills one of their parents; they are joined with the rebels. Summarized. And Allah Almighty knows best. (T) Funeral prayer is obligatory for every Muslim except four: rebels and highway robbers when they are killed in war. Similarly, one who carries weapons at night inside a city to loot, one who kills by strangulation, and the killer of one of their parents; these are also categorized with rebels. Summarized. And Allah Almighty knows best. (T)

Issue 30: From village Baka Jibi Wala, area Jagal, police station Haripur, post office Kot Najibullah Khan, sent by Molvi Sher Muhammad Sahib, 23 Ramadan ul Mubarak 1311 AH. What do the scholars of religion say regarding this issue: Is it permissible to perform the funeral prayer for a person who sometimes prays and sometimes does not? And is the funeral prayer of a minor son of a non-prayer permissible or not?

Answer: A person who does not pray, although a transgressor (fasiq), is still a Muslim. The ruling for washing, shrouding, funeral prayer, and burial of his minor children is the same as for other Muslims. It is stated in the Hadith: "Pray over every righteous and wicked person." (T) And Allah Almighty knows best.

Issue 31: What do the scholars of religion and jurists of the firm Sharia say regarding this issue: A student, who is a disciple of Molvi Yasin in village Faridpur and resides in the mosque there, says that it is not permissible to perform the funeral prayer for a non-prayer, giving Adhan at the grave is not permissible, and performing Fatiha etc. and the Niyaz of Giyarwin Sharif is not permissible. He is misleading all the Muslims of the village here. Therefore, please write whether these things are permissible or not, and honor us with an answer according to the noble Sharia. Explain and be rewarded.

Answer: These rulings stated by this person are absolutely wrong and without authority. The funeral prayer is obligatory for every Muslim except for those whom the scholars have exempted, and this person is not among them. (T)

1 Durr al-Mukhtar, Chapter on Funeral Prayers, printed by Mujtabai Press Delhi, 1/122
2 Sunan al-Daraqutni, Chapter on the Characteristics of One with Whom Prayer is

Permissible and Prayer over Him, Nashr al-Sunnah Multan, 2/75; Sunan Abi Dawud, Chapter on Fighting with Oppressive Rulers, Aftab-e-Alam Press Lahore, 1/343

फ़तावा रज़विया जिल्द 9

यह [जनाज़े की नमाज़] हर मरने वाले मुसलमान पर फ़र्ज़ है, सिवाय चार के बागी और डकैत जब वे युद्ध में मारे जाएं और इसी तरह, रात में शहर के भीतर हथियार लेकर लूटपाट करने वाला, गला दबाकर मारने वाला, और अपने माता-पिता में से किसी का हत्यारा; उन्हें विद्रोहियों (बागियों) की श्रेणी में रखा गया है। संक्षेप में। और अल्लाह तआला बेहतर जानता है। (त) हर मुसलमान की नमाज़-ए-जनाज़ा फ़र्ज़ है सिवा चार के, बाग़ी, रहज़न जबकि ये जंग में क़त्ल हों। इसी तरह रात को शहर के अन्दर हथियार ले कर लूट मार करने वाला, गला दबा कर मारने वाला, अपने मां बाप में से किसी का क़ातिल, उन्हें भी बागियों से लाक़ किया गया है। मुल्ख़सा। वल्लाह तआला आलम (त)

मसला 30: गाँव बका जीभी वाला, इलाका जागल, थाना हरीपुर, डाकखाना कोट नजीबुल्लाह खान, प्रेषक मौलवी शेर मुहम्मद साहब, 23 रमजानुल मुबारक 1311 हिजरी। दीन के उलेमा इस मसले में क्या फ़रमाते हैं कि जो शख़्स कभी नमाज़ पढ़े और कभी न पढ़े, उसका जनाज़ा करना जायज़ है या नहीं? और बे-नमाज़ी के नाबालिग़ लड़के का जनाज़ा जायज़ है या नहीं?

अल-जवाब: बे-नमाज़ी अगरचे फ़ासिक़ है मगर मुसलमान है, और उसकी नाबालिग़ औलाद का ग़ुस्ल, कफ़न, नमाज़ और दफ़न में वही हुक्म है जो और मुसलमानों का है। हदीस में इरशाद हुआ: "सल्लू अला कुल्लि बर्रिन व फ़ाजिर" (हर नेक और बद की नमाज़-ए-जनाज़ा पढ़ो। त) वल्लाह तआला आलम।

मसला नंबर 31: दीन के उलेमा और शरई मुफ़्तियान इस मसले में क्या फ़रमाते हैं कि एक तालिब-ए-इल्म जो फ़रीदपुर गाँव में मौलवी यासीन का शागिर्द है और वहाँ की मस्जिद में ठहरा हुआ है, वह कहता है कि बे-नमाज़ी के जनाज़े की नमाज़ पढ़ना जायज़ नहीं है, और क़ब्र पर अज़ान देना जायज़ नहीं है, और फ़ातिहा वग़ैरह और ग्याहरवीं शरीफ़ की नियाज़ करना जायज़ नहीं है। वह यहाँ गाँव के तमाम मुसलमानों को गुमराह कर रहा है। लिहाज़ा, मेहरबानी करके लिख दें कि ये बातें जायज़ हैं या नहीं, शरीअत के मुताबिक़ जवाब से नवाज़ें। बयान करें और सवाब पायें।

अल-जवाब: उस शख़्स के ये मसले महज़ ग़लत और बे-सनद हैं। जनाज़े की नमाज़ हर मुसलमान पर फ़र्ज़ है "इल्ला मा इस्तस्नाहु-ल-उलमाउ व लैसा हाज़ा मिन्हुम" (मगर वे जिनका उलेमा ने इस्तस्ना (अपवाद) किया है और यह उनमें से नहीं है। त)

1 दुर्रे मुख़्तार बाब सलातुल जनाइज़, मत्तबूआ मज्तबाई दिल्ली 1/122 2 सुनन दारुक़ुतनी बाब सिफ़त मन तजूज़ुस सलात मअहु व सलातु अलैहि, नश्रुस सुन्ना मुल्तान 2/75; सुनन अबी दाऊद बाब फ़िल ग़ज़वि मअ अइम्मतुल जौर, आफ़ताब आलम प्रेस लाहौर 1/343

पृष्ठ 164 / 948

فتاوی رضویہ جلد نہم

ہی فرض علی کل مسلم مات، خلا اربعۃ بغاۃ و قطاع طریق اذا قتلوا فی الحرب و کذا مکابر فی مصر لیلا بسلاح خناق وقاتل احد ابویہ الحقہ فی النہر بالبغاۃ ملخصاً واللہ تعالیٰ اعلم ہر مسلمان کی نمازِ جنازہ فرض ہے سوا چار کے ، باغی ، رہزن جبکہ یہ جنگ میں قتل ہوں ۔ اسی طرح رات کو شہر کے اندر ہتھیار لے کر لوٹ مار کرنے والا، گلا دبا کر مارنے والا، اپنے ماں باپ میں سے کسی کا قاتل، نہر میں اسے بھی باغیوں سے لاحق کیا ہے۔ ملخصاً۔ واللہ تعالیٰ اعلم (ت)

مسئلہ ۳۰: از موضع بکہ جیبی والا، علاقہ جاگل، تھانہ ہری پور، ڈاکخانہ کوٹ نجیب اللہ خان، مرسلہ مولوی شیر محمد صاحب ۲۳ رمضان المبارک ۱۳۱۱ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ جو شخص کبھی نماز پڑھے اور کبھی نہ پڑھے اس کا جنازہ کرنا جائز ہے یا نہیں؟ اور بے نمازی کے لڑکے نابالغ کا جنازہ جائز ہے یا نہیں؟

الجواب: بے نمازی اگرچہ فاسق ہے مگر مسلمان ہے، اور اس کی نابالغ اولاد کا غسل و کفن اور نماز و دفن میں وہی حکم ہے جو اور مسلمانوں کا حدیث میں ارشاد ہوا: صلو علی کل بر و فاجر (ہر نیک وبد کی نماز جنازہ پڑھو۔ ت) واللہ تعالیٰ اعلم

مسئلہ نمبر ۳۱: کیا فرماتے ہیں علمائے دین و مفتیانِ شرع متین اس مسئلہ میں کہ ایک طالب علم موضع فرید پور میں مولوی یسین کا شاگرد وہاں کی مسجد میں مقیم ہے اور وہ یہ کہتا ہے کہ بے نمازی کے جنازے کی نماز پڑھنا جائز نہیں ہے، اور قبر پر اذان دینا جائز نہیں ہے، اور فاتحہ وغیرہ اور گیارہویں شریف کی نیاز کرنا جائز نہیں ہے، اور یہاں پر سب گاؤں کے مسلمانوں کو

گمراہ کئے دیتا ہے، لہذا یہ باتیں تحریر کر دیں جائز ہیں یا نہیں، بموجب شرع شریف کے جواب سے مشرف فرمائیے گا۔ بینوا توجروا۔

الجواب: اس شخص کے یہ مسئلے محض غلط اور بے سند ہیں۔ جنازے کی نماز ہر مسلمان پر فرض ہے الا ما استثناہ العلماء و لیس ھذا منھم (مگر وہ جس کا علماء نے استثناء کیا ہے اور یہ ان میں سے نہیں۔ ت)

1 در مختار باب صلوۃ الجنائز مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی ۱/ ۱۲۲ 2 سنن الدار قطنی باب صفۃ من تجوز الصلوۃ معہ والصلوۃ علیہ نشر السنۃ ملتان ۲/ ۷۵، سنن ابی داؤد باب فی الغزو مع ائمۃ الجور آفتاب عالم پریس لاہور ۳۴۳/۱

Fatawa Razawiyya Volume 9

Giving Azan at the grave is permissible as clarified in *Izaan al-Ajr fi Azan al-Qabr* (as in our treatise "Izaan al-Ajr fi Azan al-Qabr", it is clearly explained. - Translator's note). And the offerings (Niyaz) and sending of rewards (Isal-e-Sawab) for Fatiha and the 11th Sharif are permissible and better according to the Ahl-e-Sunnat, as in *Al-Hidayah*, *Fath al-Qadeer*, *Ad-Durr al-Mukhtar*, *Radd al-Muhtar*, etc. (as it is in Hidayah, Fath al-Qadeer, Durr al-Mukhtar, Radd al-Muhtar, etc. - T). To someone who calls these things impermissible, it is enough to ask one question: are you calling it impermissible because Allah and His Messenger have said so, or are you saying it from yourself? If Allah and His Messenger called it impermissible, show us which verse or Hadith says that Azan, which is called at a Muslim's grave to repel Satan, ward off fear, gain peace, and bring down blessings, is impermissible, and that Fatiha and the 11th Sharif for the purpose of sending rewards are impermissible. And if Allah and His Messenger did not forbid them, then your saying so of your own accord is rejected back at you. Nothing can be impermissible without the prohibition of Allah and His Messenger. The Quran and Hadith have taught us this universal rule: whatever Allah and His Messenger command is obligatory, whatever they forbid is impermissible, and whatever they have not mentioned is exempt; if it is not obligatory, it is not impermissible either. And Allah knows best.

Problem No. 32: What do the scholars of religion say regarding this matter: Zaid died. Bakr said Zaid did not pray Salah, so his funeral prayer should not be performed unless on the condition that he be dragged. Then Zaid was dragged by his feet tied to oxen. Is this correct according to Quran and Hadith? And if not, what is the ruling on Bakr? Please reply from the Book and the Hadith of the Prophet.

Answer: Bakr committed a sin and oppressed the dead. The Mother of the Believers, Siddiqah (Aisha) may Allah be pleased with her, even forbade combing the hair of the deceased, saying it would cause them pain. She said:

[Table Header] (Arabic): "Why are you plucking the hair from your dead?" Narrated by Imam Muhammad in Kitab al-Athar. He said: Abu Hanifa informed us. And Abdur Razzaq narrated it in his Musannaf. He said: Sufyan informed us, he is the narrator from Sufyan al-Thawri... both personalities. (Urdu Translation): Why do you pull the forehead hair of your dead? Imam Muhammad narrated this in Kitab al-Athar. He said Imam Abu Hanifa informed us, and Abdur Razzaq narrated it in his Musannaf. He said Sufyan informed us, he narrates from Sufyan Thawri -- both gentlemen.

फ़तावा रज़विया जिल्द नौवीं

क़ब्र पर अज़ान देना जायज़ है जैसा कि "ईज़ान अल-अज्र फ़ी अज़ान अल-क़ब्र" में स्पष्ट किया गया है (जैसा कि हमारे रिसाले "ईज़ान अल-अज्र फ़ी अज़ान अल-क़ब्र" में इसका स्पष्ट वर्णन है - त)। और फ़ातिहा व ग्यारहवीं शरीफ़ की नियाज़ व ईसाल-ए-सवाब अहल-ए-सुन्नत के नज़दीक जायज़ और बेहतर है जैसा कि हिदाया, फ़त्ह अल-क़दीर, दुर्रे मुख़्तार और रद उल-मुह्तार वगैरह में है। जो शख़्स इन चीज़ों को नाजायज़ कहे, उससे बस एक ही बात पूछना काफ़ी है: क्या तू इसे इसलिए नाजायज़ कहता है कि अल्लाह और रसूल ने इन्हें नाजायज़ कहा है, या तू अपनी तरफ़ से कह रहा है? अगर अल्लाह और रसूल ने नाजायज़ कहा है, तो दिखा कि कौन सी आयत या हदीस में है कि वह अज़ान जो मुसलमान की क़ब्र पर शैतान को भगाने, घबराहट दूर करने, चैन हासिल करने और बरकत के लिए दी जाए, वह नाजायज़ है, और फ़ातिहा और ग्यारहवीं शरीफ़ ईसाल-ए-सवाब के लिए करना नाजायज़ है। और अगर अल्लाह और रसूल ने मना नहीं किया, तो तेरा अपनी तरफ़ से कहना तेरे मुँह पर ही मारा जाता है। अल्लाह और रसूल के मना किए बिना कोई चीज़ नाजायज़ नहीं हो सकती। हमें क़ुरान और हदीस ने यह बुनियादी नियम बताया है कि अल्लाह और रसूल जिस बात का हुक्म दें वह वाजिब है, जिससे मना करें वह नाजायज़ है, और जिसके बारे में कुछ न कहें वह माफ़ है; यानी अगर वह वाजिब नहीं है तो नाजायज़ भी नहीं है। वल्लाहु तआला आलम (और अल्लाह बेहतर जानता है)।

मसला नंबर ३२: उलेमा-ए-दीन इस मसले में क्या फ़रमाते हैं कि ज़ैद मर गया, बक्र ने कहा ज़ैद नमाज़ नहीं पढ़ता था इसलिए उसकी जनाज़े की नमाज़ न पढ़ी जाए, मगर इस शर्त पर कि उसे घसीटा जाए। फिर ज़ैद को बैलों से पैर बाँधकर घसीटवाया गया। क्या यह बात क़ुरान और हदीस से सही है या नहीं? और अगर नहीं, तो बक्र पर क्या हुक्म है? किताब और हदीस-ए-रसूल से फ़रमाएँ।

उत्तर: बक्र गुनहगार हुआ और उसने मुर्दे पर ज़ुल्म किया। उम्मुल मोमिनीन सिद्दीक़ा (रज़ियल्लाहु तआला अन्हा) ने तो मय्यत को कंघी करने तक से मना फ़रमाया कि उसे तकलीफ़ होगी, फ़रमाया:

[तालिका शीर्षक] (अरबी): "तुम अपने मुर्दों के बाल क्यों खींचते हो?" इसे इमाम मुहम्मद ने 'किताबुल आसार' में रिवायत किया। फ़रमाया: हमें इमाम अबू हनीफ़ा ने ख़बर दी। और अब्दुर रज़्ज़ाक ने अपनी 'मुसन्निफ़' में रिवायत किया। कहा: हमें सुफ़ियान ने ख़बर दी, वह सुफ़ियान सौरी से रिवायत करते हैं--दोनों हज़रात। (उर्दू अनुवाद): तुम अपने मुर्दे के माथे के बाल क्यों खींचते हो? इसे

इमाम मुहम्मद ने किताबुल आसार में रिवायत किया। फ़रमाया हमें इमाम अबू हनीफ़ा ने ख़बर दी, और अब्दुर रज़्ज़ाक ने अपनी मुसन्निफ़ में रिवायत किया। कहा हमें सुफ़ियान ने ख़बर दी, वह रावी हैं सुफ़ियान सौरी से--दोनों हज़रात।

पृष्ठ 948 का 165

قبر پر اذان دینا جائز ہے کما ھو مبین فی ایذان الاجر فی اذان القبر (جیسا کہ ہمارے رسالہ "ایذان الاجر فی اذان القبر" میں اس کا واضح بیان ہے۔ ت) اور فاتحہ گیارھویں شریف کی نیاز و ایصال ثواب اہلسنّت کے نزدیک جائز و بہتر ہے کما فی الھدایۃ و فتح القدیر والدر مختار ورد المحتار و غیرھما (جیسا کہ ہدایہ، فتح القدیر، در مختار اور ردالمحتار وغیرہ میں ہے۔ ت) ان چیزوں کو جو شخص ناجائز کہے اس سے ایک ہی بات دریافت کرنا کافی ہے وہ یہ کہ تو جو ناجائز کہتا ہے آیا اللہ و رسول نے انہیں ناجائز کہا ہے یا تو اپنی طرف سے کہتا ہے؟ اگر اللہ و رسول نے ناجائز کہا تو دکھا کون سی آیت یا حدیث میں ہے کہ اذان جو مسلمان کی قبر پر دفع شیطان و دفع وحشت و حصول اطمینان و نزول برکت کے لئے کہی جائے وہ ناجائز ہے اور فاتحہ اور گیارھویں شریف کو بغرض ایصالِ ثواب کی جائے ناجائز ہے، اور اگر اللہ و رسول نے ناجائز نہ کہا تو خود اپنی طرف سے کہتا ہے تو تیرا قول تیرے منہ پر مردود ہے۔ بغیر خدا اور رسول کے منع فرمائے کوئی چیز ناجائز نہیں ہوسکتی۔ ہمیں قرآن وحدیث نے یہ قاعدہ کلیہ ارشاد فرمایا ہے کہ اللہ اور رسول جس بات کا حکم دیں وہ واجب ہے جس سے منع فرمائیں وہ ناجائز ہے اور جس کا کچھ ذکر نہ فرمائیں وہ معافی ہے وہ اگر واجب نہیں تو ناجائز بھی نہیں۔ واللہ تعالٰی اعلم۔

مسئلہ نمبر ۳۲: کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ زید مر گیا بکر نے کہا زید نماز نہیں پڑھتا تھا اس کے جنازہ کی نماز نہ پڑھی جائے مگر اس شرط پر کہ اس کو کھنچوانا چاہئے، پھر زید کو بیلوں سے پاؤں باندھ کر کھنچوایا۔ یہ بات قرآن وحدیث سے درست ہے یا نہیں؟ اور اگر نہیں تو بکر پر کیا حکم ہے؟ فرمائیے کتاب اور حدیث رسول سے۔

الجواب: بکر گنہگار ہوا اور اُس نے مردے پر ظلم کیا۔ ام المؤمنین صدیقہ رضی اللہ تعالیٰ عنہا نے تو میت کے کنگھی کرنے سے منع فرمایا کہ اُسے تکلیف ہوگی، فرمایا:

[جدول] (عربی): علام تنصون میتکم۔ رواہ الامام محمد فی کتاب الاثار قال اخبرنا ابو حنیفۃ و رواہ عبدالرزاق فی مصنفہ قال اخبرنا سفیان عن الثوری کلاھما عن حماد بن ابی سلیمن عن ابراھیم النخعی (اردو ترجمہ): کاہے پر اپنے مُردے کے موئے پیشانی کھینچتے ہو۔ اسے امام محمد نے کتاب الاثار میں روایت کیا۔ فرمایا ہمیں خبر دی امام ابو حنیفہ نے، اور اسے عبدالرزاق نے اپنی مصنف میں روایت کیا۔ کہا ہمیں خبر دی سفیان نے، وہ راوی ہیں سفیان ثوری سے۔۔ دونوں حضرات

Fatawa Razawiyya Volume 9

Narrated from Aisha (may Allah be pleased with her) that she saw a woman combing the head of a deceased person with a comb. She said, "Why are you pulling the forehead hair of your deceased?" Recorded by Abu Ubaid al-Qasim bin Sallam and Ibrahim al-Harbi in their respective books 'Gharib al-Hadith' from Ibrahim, from Aisha, that she was asked about combing the head of a deceased. She said, "Why are you pulling the forehead hair of your deceased?" (T)

The Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) said:

"Indeed, breaking the bone of a deceased Muslim is like breaking it while they are alive." Recorded by Imams Malik, Ahmad, Sa'id bin Mansur, Abd al-Razzaq, Abu Dawood, and Ibn Majah with a good chain of narration from the Mother of the Believers, Aisha (may Allah be pleased with her).

Giving punishment is the task of the Sharia judge; not everyone has the authority for it. And after death, there is no meaning to giving punishment. Far from punishment, the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) even forbade speaking ill after death. He (peace and blessings of Allah be upon him) said:

"Do not abuse the dead, for they have reached what they sent forward (their deeds)." Recorded by Ahmad, Al-Bukhari, and An-Nasa'i from the Mother of the Believers, Aisha (may Allah be pleased with her).

1. Al-Musannaf by Abd al-Razzaq, Chapter: Hair and Nails of the Deceased, published by Al-Maktab al-Islami Beirut, 3/437; Kitab al-Athar, Chapter: Funerals and Washing of the Deceased, published by Idarat al-Qur'an wal-Ulum al-Islamiyya Karachi, p. 46.
2. Gharib al-Hadith.
3. Sunan Abi Dawood, Kitab al-Jana'iz, published by Aftab-e-Alam Press Lahore, 2/102.
4. Sunan an-Nasa'i, Kitab al-Jana'iz, Al-Maktaba as-Salafiyya Lahore, 1/222. Note: In both 'Kitab al-Athar' and 'Musannaf Abd al-Razzaq', the word "with a comb" (bi-musht) is not present. Instead, in 'Kitab al-Athar', it is "I saw a deceased person's head being combed," and in 'Musannaf', it is "I saw a woman being combed." (Nazir Ahmad)

फतावा रज़विया जिल्द नौवीं

आयशा (रज़ियल्लाहु अन्हा) से रिवायत है कि उन्होंने एक औरत को देखा कि वह एक मय्यत (मृतक) के सिर में कंघी कर रही थी। तो उन्होंने फ़रमाया: तुम अपने मुर्दे की पेशानी के बाल क्यों खींचते हो? और इसे अबू उबैद क़ासिम बिन सलाम और इब्राहीम हर्बी ने अपनी अपनी किताब 'ग़रीबुल हदीस' में हज़रत इब्राहीम नख़ई से, उन्होंने हज़रत सिद्दीक़ा से रिवायत की कि उनसे मय्यत के सिर पर कंघी करने के मुताल्लिक पूछा गया तो फ़रमाया: क्यों अपने मुर्दे की पेशानी के बाल खींचते हो? (त)

रसूलुल्लाह (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने फ़रमाया:

"बेशक मुर्दा मुसलमान की हड्डी तोड़ना ऐसा ही है जैसे ज़िंदा मुसलमान की हड्डी तोड़ना।" इसे इमाम मालिक, इमाम अहमद, सईद बिन मंसूर, अब्दुर रज़्ज़ाक़, अबू दाऊद और इब्न माजा ने बसंदे हसन उम्मुल मोमिनीन सिद्दीक़ा (रज़ियल्लाहु अन्हा) से रिवायत किया।

सज़ा देना तो हाकिमे शरअ (इस्लामी न्यायधीश) का काम है, हर किसी को इसका अधिकार नहीं। और मौत के बाद तो सज़ा देने का कोई मतलब ही नहीं। सज़ा तो दूर की बात, रसूलुल्लाह (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने मौत के बाद बुरा-भला कहने से भी मना फ़रमाया है। आप (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) फ़रमाते हैं:

"मुर्दों को बुरा मत कहो क्योंकि वे अपने किए (कर्मों) तक पहुँच चुके हैं।" इसे इमाम अहमद और नसाई ने उम्मुल मोमिनीन सिद्दीक़ा (रज़ियल्लाहु अन्हा) से रिवायत किया।

1. अल-मुसन्नफ़ अब्दुर रज़्ज़ाक़, बाब: मय्यत के बाल और नाख़ून, प्रकाशित अल-मकतब अल-इस्लामी बैरूत 3/437; किताबुल आसार, बाबुल जनाइज़ व गुस्लुल मय्यत, प्रकाशित इदारातुल क़ुरआन वल-उलूम अल-इस्लामिया कराची, पृ. 46.
2. ग़रीबुल हदीस।
3. सुनन अबू दाऊद, किताबुल जनाइज़, प्रकाशित आफ़ताब-ए-आलम प्रेस लाहौर 2/102.
4. सुनन नसाई, किताबुल जनाइज़, अल-मकतबा अस-सलफ़िया लाहौर 1/222. फ़ अ: किताबुल आसार और मुसन्नफ़ अब्दुर रज़्ज़ाक़ दोनों किताबों में "बमुश्त" (कंघी के साथ) शब्द नहीं है, बल्कि "किताबुल आसार" में "मैंने एक मय्यत को देखा जिसका सिर संवारा जा रहा था" और

"मुसन्नफ़" में "मैंने एक औरत को देखा जिसके सिर के बाल संवारे जा रहे थे" है। (नज़ीर अहमद)

فتاوٰی رضویہ جلد نہم

عن عائشة رضی اللہ تعالی عنها انها رأت امرأة یکدون راسها بمشط فقالت علامه تنصون میتکم 1 ورواه ابو عبید القاسم بن سلام، وابراهیم الحربي وکتابیها في غریب الحدیث عن ابراهیم عن عائشة انها سئلت عن المیت بسرح راسه فقالت علامه تنصون میتکم 2۔

راوی ہیں حماد بن ابی سلیمان سے۔وہ ابراھیم نخعی سے۔ وہ حضرت عائشہ رضی اللہ تعالٰی عنہا سے انہوں نے دیکھا کہ ایک عورت کے سر میں کنگھا کر رہے ہیں تو فرمایا: کیوں اپنے مردے کی پیشانی کے بال کھینچتے ہو۔ اور اسے ابو عبید قاسم بن سلام اور ابراھیم حربی نے اپنی اپنی کتاب غریب الحدیث میں حضرت ابراھیم نخعی سے، انہوں نے حضرت صدیقہ سے روایت کی کہ ان سے میت کے سر پر کنگھا کرنے سے متعلق پوچھا تو فرمایا: کیوں اپنے مُردے کی موئے پیشانی کھینچتے ہو۔ (ت)

رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم نے فرمایا:

ان کسر عظم المسلم میتا ککسره حیاً 3 رواه الائمة مالك واحمد وسعید بن منصور وعبد الرزاق و ابوداؤد وابن ماجة بسند حسن عن ام المؤمنین الصدیقة رضی اللہ تعالٰی عنها۔

بیشک مردہ مسلمان کی ہڈی توڑنی ایسی ہے جیسے زندہ مسلمان کی ہڈی توڑنی۔اسے امام مالک، امام احمد، سعید بن منصور، عبدالرزاق، ابوداؤد اور ابن ماجہ نے بسند حسن ام المومنین صدیقہ رضی اللہ تعالٰی عنہا سے روایت کیا۔

سزا دینا تو حاکم شرع کا کام ہے ہر کس و ناکس کو اس کا اختیار نہیں اور موت کے بعد تو سزا دینے کے کوئی معنی ہی نہیں، سزا در کنار موت کے بعد بُرا بھلا کہنے سے رسول اللہ صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم نے منع فرمایا۔ فرماتے ہیں صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم:

لاتسبوا الاموات فانهم قد افضوا الی ما قدموا 4۔ رواہ احمد والبخاري والنسائی

مُردوں کو بُرا مت کہو کہ وہ اپنے کئے کو پہنچ چکے۔ اسے امام احمد اور نسائی نے ام المومنین صدیقہ رضی اللہ

1 المصنف لعبد الرزاق باب شعر المیت واظفارہ مطبوعہ المکتب الاسلامی بیروت ۳/ ۴۳۷، کتاب الآثار باب الجنائز وغسل المیت مطبوعہ ادارۃ القرآن والعلوم الاسلامیہ کراچی ص ۴۶ 2 غریب الحدیث 3 سنن ابی داؤد کتاب الجنائز مطبوعہ آفتاب عالم پریس لاہور ۲/ ۱۰۲ 4 سنن النسائی کتاب الجنائز المکتبہ السلفیہ لاہور ۱/ ۲۲۲ ف ا: کتاب الآثار اور مصنف عبد الرزاق دونوں کتابوں میں "بمشط" کا لفظ نہیں ہے بلکہ "کتاب الآثار" میں "رأیت میتا یسرح رأسه" اور "مصنف" میں "رأیت امرأة یکدون راسها" ہے۔ (نذیر احمد)

Fatawa Razawiyya, Volume 9

[Table Header] - Narrated from Mother of the Believers, al-Siddiqah, may Allah be pleased with her. - Narrated from her (may Allah be pleased with her).

And he (the Holy Prophet), peace and blessings of Allah be upon him, said:

[Table Box 1] - "Do not mention your dead except with good; if they are among the people of Paradise, you will be sinning [by speaking ill], and if they are among the people of Hell, the punishment they are in is enough for them." (Narrated by al-Nasa'i from her, may Allah be pleased with her, with a strong chain of narration.) - Do not remember your dead except with goodness; for if they are people of Paradise, you will become sinners by speaking ill of them, and if they are people of Hell, the torment they are in is sufficient for them. Imam Nasa'i narrated this from Hazrat Siddiqah (may Allah be pleased with her) with a strong chain of narration.

And he (the Holy Prophet), peace and blessings of Allah be upon him, said:

[Table Box 2] - "Do not abuse the dead, for you would harm the living thereby." (Narrated by Ahmad and al-Tirmidhi from al-Mughirah, may Allah be pleased with him, with a sound chain of narration.) - Do not speak ill of the dead; you cause pain to the living because of it. Imam Ahmad and Tirmidhi narrated this from Hazrat Mughirah (may Allah be pleased with him) with an authentic chain of narration.

And he (the Holy Prophet), peace and blessings of Allah be upon him, said:

[Table Box 3] - "When your companion dies, leave him and do not fall upon [criticize] him." (Narrated by Abu Dawood from the Mother of the Believers, al-Siddiqah, may Allah be pleased with her.) - When your companion dies, let him be forgiven and do not taunt him. Abu Dawood narrated this from the Mother of the Believers Siddiqah (may Allah be pleased with her) with an authentic chain of narration.

[Section Heading] Amr bin Hazm (may Allah be pleased with him) says: The Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) saw me leaning against a grave and said:

[Table Box 4] - "Do not harm the occupant of this grave." (Narrated by Imam Ahmad.) - Do not cause pain to the deceased. Imam Ahmad narrated this.

Subhan Allah! When leaning against a grave causes pain to the deceased, then to what extent from such severe oppression...

1. Sunan al-Nasa'i, Kitab al-Jana'iz, published by Maktaba Salafiyya, Lahore, 1/222
2. Musnad Ahmad bin Hanbal, Hadith of Mughirah bin Shu'ba, published by Dar al-Fikr, Beirut, 4/252
3. Sunan Abu Dawood, chapter on 'Prohibition of abusing the dead', published by Aftab Alam Press, Lahore, 2/315
4. Mishkat al-Masabih, ref. Ahmad, chapter on 'Burial of the Dead', Mujtabai Press, Delhi, p. 149

फ़तावा रज़विय्या, भाग 9

[तालिका शीर्षक] - उम्मुल मोमिनीन सिद्दीक़ा रज़ियल्लाहु तआला अन्हा से रिवायत है। - उनसे (तआला अन्हा) रिवायत किया।

और आप सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम फ़रमाते हैं:

[तालिका बॉक्स 1] - "अपने मुर्दों का ज़िक्र सिवाए भलाई के न करो; क्योंकि अगर वे जन्नती हैं तो तुम बुरा कहने से गुनहगार होगे, और अगर वे दोज़ख़ी हैं तो उनके लिए वही अज़ाब काफ़ी है जिसमें वे हैं।" (इसे नसाई ने हज़रत सिद्दीक़ा रज़ियल्लाहु तआला अन्हा से सनदे जय्यद के साथ रिवायत किया।) - अपने मुर्दों को याद न करो मगर भलाई के साथ कि अगर वो जन्नती हैं तो बुरा कहने से तुम गुनहगार होगे और अगर दोज़ख़ी हैं तो उन्हें वो अज़ाब ही बहुत है जिस में वो हैं। इसे नसाई ने हज़रत सिद्दीक़ा रज़ियल्लाहु तआला अन्हा से सनदे जय्यद रिवायत किया।

और आप सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम फ़रमाते हैं:

[तालिका बॉक्स 2] - "मुर्दों को बुरा न कहो कि इसके ज़रिए तुम ज़िन्दों को तकलीफ़ पहुँचाते हो।" (इसे अहमद और तिर्मिज़ी ने हज़रत मुग़ीरा रज़ियल्लाहु तआला अन्हु से सनदे सहीह के साथ रिवायत किया।) - मुर्दों को बुरा न कहो उस के बाइस ज़िन्दों को ईज़ा दो। इसे इमाम अहमद और तिर्मिज़ी ने हज़रत मुग़ीरा रज़ियल्लाहु तआला अन्हु से सनदे सहीह रिवायत किया।

और आप सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम फ़रमाते हैं:

[तालिका बॉक्स 3] - "जब तुम्हारा साथी मर जाए तो उसे छोड़ दो और उस पर तान न करो।" (इसे अबू दाऊद ने उम्मुल मोमिनीन सिद्दीक़ा रज़ियल्लाहु तआला अन्हा से रिवायत किया।) - जब तुम्हारा साथी मर जाए तो उसे माफ़ रखो और उस पर तअन न करो। इसे अबू दाऊद ने उम्मुल मोमिनीन सिद्दीक़ा रज़ियल्लाहु तआला अन्हा से सनदे सहीह रिवायत किया।

[अनुभाग शीर्षक] अम्र बिन हज़्म रज़ियल्लाहु तआला अन्हु फ़रमाते हैं मुझे रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम ने एक क़ब्र से तकिया लगाए देखा, फ़रमाया:

[तालिका बॉक्स 4] - "इस क़ब्र वाले को ईज़ा (तकलीफ़) न दो।" (इसे इमाम अहमद ने रिवायत किया।) - मुर्दे को ईज़ा न दे। इसे इमाम अहमद ने रिवायत किया।

सुब्हान अल्लाह! जब क़ब्र पर तकिया लगाने से मुर्दे को ईज़ा होती है तो ऐसे ज़ुल्म-ए-शदीद से किस क़दर...

---

1. सुनन नसाई, किताबुल जनाइज़, प्रकाशित मकतबा सलफ़िया, लाहौर, 1/222
2. मुसनद अहमद बिन हंबल, हदीस मुग़ीरा बिन शुबा, प्रकाशित दारुल फ़िक्र, बेरूत, 4/252
3. सुनन अबू दाऊद, बाब 'मुर्दों को बुरा कहने की मनाही', प्रकाशित आफ़ताब आलम प्रेस, लाहौर, 2/315
4. मिश्कातुल मसाबीह, हवाला अहमद, बाब 'मर्दे का दफ़न', मुजतबाई प्रेस, दिल्ली, पृ. 149

पृष्ठ 167/948

فتاوٰی رضویہ، جلد نہم

[ٹیبل ہیڈر] - عن ام المؤمنین الصدیقة رضی اللہ تعالٰی عنہا۔ - تعالٰی عنہا سے روایت کیا۔

اور فرماتے ہیں صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم :

[ٹیبل باکس 1] - لاتذکرو اھلکم الا بخیر ان یکونوا من اھل الجنۃ تأثمون وان یکونوا من اھل النار فحسبہم ماہم فیہ 1۔ رواہ النسائی عنہا رضی اللہ تعالٰی عنہا بسند جید۔ - اپنے مُردوں کو یاد نہ کرو مگر بھلائی کے ساتھ کہ اگر وہ جنتی ہیں تو برا کہنے سے تم گنہگار ہوگے اور اگر دوزخی ہیں تو انہیں وہ عذاب ہی بہت جس میں وہ ہیں۔ اسے نسائی نے حضرت صدیقہ رضی اللہ تعالٰی عنہا سے بسند جید روایت کیا۔

اور فرماتے ہیں صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم :

[ٹیبل باکس 2] - لاتسبواالاموات فتؤذوا بہ الاحیاء 2۔ رواہ احمد والترمذی عن المغیرۃ رضی اللہ تعالٰی عنہ بسند صحیح۔ - مُردوں کو بُرا نہ کہو اس کے باعث زندوں کو ایذا دو۔ اسے امام احمد اور ترمذی نے حضرت مغیرہ رضی اللہ تعالٰی عنہ سے بسند صحیح روایت کیا۔

اور فرماتے ہیں صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم :

[ٹیبل باکس 3] - اذامات صاحبکم فدعوہ ولاتقعوا فیہ 3۔ رواہ ابوداؤد عن ام المؤمنین الصدیقة رضی اللہ تعالٰی عنہا۔ - جب تمہارا ساتھی مر جائے تو اسے معاف رکھو اور اس پر طعن نہ کرو۔ اسے ابوداؤد نے ام المومنین صدیقہ رضی اللہ تعالٰی عنہا سے بسند صحیح روایت کیا۔

[سیکشن ہیڈنگ] عمرو بن حزم رضی اللہ تعالیٰ عنہ فرماتے ہیں مجھے رسول اللہ صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم نے ایک قبر سے تکیہ لگائے دیکھا، فرمایا :

[ٹیبل باکس 4] - لاتؤذ صاحب هذا القبر 4۔ رواه الامام احمد۔ - مردے کو ایذا نہ دے۔ اسے امام احمد نے روایت کیا۔

سبحان اللہ ! جب قبر پر تکیہ لگانے سے مُردے کو ایذا ہوتی ہے تو ایسے ظلم شدید سے کس قدر

1۔ سنن النسائی کتاب الجنائز مطبوعہ مکتبہ سلفیہ لاہور ۱/ ۲۲۲ 2۔ مسند احمد بن حنبل حدیث مغیرہ بن شعبہ مطبوعہ دارالفکر بیروت ۴ /۲۵۲ 3۔ سنن ابوداؤد باب فی النہی عن سب الموتی مطبوعہ آفتاب عالم پریس لاہور ۲ /۳۱۵ 4۔ مشکوۃ المصابیح بحوالہ احمد باب دفن المیت مطبع مجتبائی دہلی ص ۱۴۹

Fatawa Razviya, Volume 9

It will be a great harm, and there is no power nor might except with Allah, the High, the Great. And Allah Almighty knows best.

Issue No. 33: Syed Muhammad Shah (Address in English not readable) 18 Dhu al-Qi'dah 1339 AH.

What do the scholars of religion say on this matter? A Muslim man had married a newly converted Muslim woman. After two years, on 29th Ramadan 1339 AH, she departed from this mortal world for the realm of non-existence. This Muslim had no heir here. He informed the local Muslims; they replied, "We will not carry your wife's funeral, nor will we provide a place in the graveyard because you do not offer prayers and you do not give donations to the mosque committee and Khilafat committee, etc., and you never participate in our committees. Therefore, you make some other arrangement." That person replied, "If my excuse is trustworthy, then forgive me; whatever punishment you people decide for me, I accept. If it is my fault, then punish me and forgive me and carry the deceased." Those people, who are members, secretary, and president of the Khilafat committee, flatly refused. Then he pleaded with the Hindus. Seeing his helplessness and misery, Hindus came to that neighborhood and spoke to the Muslims. With great difficulty, they agreed, but they prevented the woman who was meant to give the ritual bath (Ghusl) from doing so. Out of necessity, he performed the bath with his own hands and put on the shroud (Kafan). After that, four or five Muslims said, "We fine you eight rupees; if accepted, then we will carry the deceased, otherwise we go to our respective homes." Since he was distressed, he agreed. In short, the body that was ready at eight in the morning was lifted at twelve midnight. Now the request is: is this what is stated in the noble Hadith, and is this the command of Allah and His Messenger? Please inform me. And if this action is not according to Shariah, what is their punishment according to Shariah and law? Explain and be rewarded.

The Answer: These people committed severe oppression and a grave crime. If it were an Islamic state, the Islamic ruler would have whipped each one of them and imprisoned them, and they are deserving of the punishment of Hell in the hereafter. The Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) says:

"The [funeral] prayer is obligatory upon you for every Muslim, whether virtuous or wicked, even if he committed major sins."	**Funeral prayer for every Muslim is obligatory on you, whether he is good or bad, even if he has committed major sins.**

- (Summarized)

Especially a Muslim who passed away in the blessed month of Ramadan is a martyr by the command of the Hadith. Not giving donations to the Khilafat committee or not participating in it is not a crime; rather, not giving donations to the mosque is also not a sin, let alone where the matter is the opposite, prayer...

---

1. Sunan Abi Dawud, Chapter on Military Expeditions with Unjust Imams, published by Aftab Alam Press Lahore 1/334, Mishkat al-Masabih with reference to Abi Dawud, Chapter on Imamate, published by Matba' Mujtabai Delhi, p. 100.

फ़तावा रज़विया, खंड 9

यह एक बड़ी पीड़ा होगी और अल्लाह के सिवा कोई शक्ति या सामर्थ्य नहीं है जो सर्वोच्च और महान है। और अल्लाह बेहतर जानता है।

मसला नंबर 33: सैयद मोहम्मद शाह (अंग्रेजी में पता पढ़ा नहीं जा सका) 18 ज़िल-क़ादा 1339 हिजरी।

धर्म के विद्वान इस मामले में क्या कहते हैं कि एक मुसलमान ने एक नव-मुस्लिम महिला से निकाह किया था। दो साल बाद 29 रमज़ान 1339 हिजरी को वह इस नश्वर संसार से विदा हो गई। इस मुसलमान का यहाँ कोई वारिस नहीं था। उसने मुसलमानों को सूचित किया, उन्होंने उत्तर दिया, "हम तुम्हारी पत्नी का जनाज़ा नहीं उठाएंगे और न ही कब्रिस्तान में जगह देंगे क्योंकि तुम नमाज़ नहीं पढ़ते हो और मस्जिद कमेटी और खिलाफत कमेटी आदि में चंदा भी नहीं देते हो, कभी हमारी कमेटियों में भाग नहीं लेते हो, इसलिए तुम कोई और व्यवस्था करो।" उस व्यक्ति ने उत्तर दिया, "यदि मेरा बहाना भरोसेमंद है तो मुझे क्षमा करें; आप लोग मेरे लिए जो भी सज़ा तय करें, मैं उसे स्वीकार करता हूँ। यदि मेरा कसूर है, तो मुझे सज़ा दें और माफ़ करके मैय्यत (शव) को उठाएँ।" उन लोगों ने साफ इनकार कर दिया जो खिलाफत कमेटी के सदस्य, सचिव और अध्यक्ष हैं। तब उसने हिंदुओं से गुहार लगाई। उसकी बेबसी और लाचारी देखकर हिंदू उस मोहल्ले में आए और मुसलमानों को समझाया। बड़ी मुश्किल से वे राजी हुए लेकिन ग़ुस्ल (स्नान) देने वाली महिला को रोक दिया। मजबूरी में उसने अपने हाथों से ग़ुस्ल दिया और कफ़न पहनाया। उसके बाद चार-पाँच मुसलमान आए, उन्होंने कहा, "हम तुम पर आठ रुपये जुर्माना करते हैं, अगर मंजूर हो तो हम जनाज़ा उठाएंगे, वरना हम अपने-अपने घर जाते हैं।" चूँकि वह मुसीबत में था, इसलिए वह राज़ी हो गया। संक्षेप में, सुबह आठ बजे तैयार जनाज़ा रात बारह बजे उठाया गया। अब अर्ज़ है कि क्या हदीस शरीफ में यही फरमान है और खुदा और उसके रसूल का यही हुक्म है? कृपया मुझे सूचित करें। और यदि यह कृत्य शरिया के अनुसार नहीं है, तो शरिया और कानून के अनुसार उनकी सज़ा क्या है? स्पष्ट करें और पुण्य प्राप्त करें।

उत्तर: इन लोगों ने भारी ज़ुल्म किया और संगीन जुर्म किया। अगर इस्लामी हुकूमत होती, तो इस्लामी हाकिम उनमें से एक-एक को कोड़े मारता और कैद करता, और वे आखिरत में जहन्नम की आग के हकदार हैं। अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) फरमाते हैं:

"हर मुसलमान का जनाज़ा पढ़ना तुम पर फ़र्ज़ है, चाहे वह नेक हो या गुनहगार, चाहे उसने बड़े गुनाह ही क्यों न किए हों।"

हर मुसलमान की नमाज़े जनाज़ा तुम पर फ़र्ज़ है, चाहे वह नेक हो या बुरा, भले ही उसने बड़े गुनाह किए हों।

- (संक्षिप्त)

विशेष रूप से एक मुसलमान जिसने रमज़ान के मुबारक महीने में वफ़ात पाई, वह हदीस के हुक्म से शहीद है। खिलाफत कमेटी में चंदा न देना या उसमें शामिल न होना कोई जुर्म नहीं है; बल्कि मस्जिद में चंदा न देना भी गुनाह नहीं है, न कि जहाँ मामला इसके विपरीत हो, नमाज़...

---

1. सुनन अबू दाऊद, अत्याचारी इमामों के साथ जिहाद का अध्याय, आफ़ताब आलम प्रेस लाहौर 1/334 द्वारा प्रकाशित, मिशकात अल-मसाबीह, अबू दाऊद के संदर्भ में, इमामत का अध्याय, मतबा मुजतबाई दिल्ली द्वारा प्रकाशित, पृष्ठ 100।

فتاوی رضویہ جلد نہم

ایذائے عظیم ہو گی ولا حول ولا قوۃ الا باللہ العلی العظیم۔ واللہ تعالٰی اعلم۔

مسئلہ نمبر ۳۳: سید محمد شاہ (پتا انگریزی میں پڑھا نہ گیا) ۱۸ ذیقعدہ ۱۳۳۹ھ

کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ ایک مسلمان نے نو مسلم عورت سے عقد کیا تھا، دو برس کے بعد ۲۹ رمضان ۱۳۳۹ھ کو دنیائے فانی سے ملک عدم کو رخصت ہوئی۔ اس مسلمان کا یہاں کوئی وارث اور نہ تھا اس نے مسلمانوں کو اطلاع دی، انہوں نے جواب دیا ہم تمہاری عورت کا جنازہ نہیں اٹھائیں گے نہ قبرستان میں جگہ دیں گے کیونکہ تم نماز نہیں پڑھتے ہو اور مسجد کمیٹی وخلافت کمیٹی وغیرہ میں چندہ بھی نہیں دیتے کبھی ہماری کمیٹیوں میں شرکت نہیں کرتے، لہذا تم اور کوئی انتظام کرو۔ اس شخص نے جواب دیا اگر میرا عذر قابل اعتماد ہو تو مجھ کو معافی دیجئے جو سزا میرے لئے آپ لوگ قرار دیں قبول کرتا ہوں۔ اگر میرا قصور ہے تو مجھے سزا دیں اور معافی دے کر میت کو اٹھائیں۔ ان لوگوں نے مطلق انکار کر دیا جو خلافت کمیٹی کے ممبران و سیکرٹری و پریذیڈنٹ ہیں۔ تب اس نے ہندوؤں سے التجا کی، اسکی بیکسی وبے بسی دیکھ کر ہندو اس محلہ میں آئے اور مسلمانوں کو سمجھایا، بمشکل تمام راضی ہوئے مگر غسل دینے والی عورت کو روک دیا۔ مجبوراً اس نے اپنے ہاتھ سے غسل دیا اور کفن پہنایا۔ بعد اس کے چار پانچ مسلمان، انہوں نے کہا ہم تم پر آٹھ روپیہ جرمانہ کرتے ہیں، اگر منظور ہو تو ہم میت اٹھائیں ورنہ ہم اپنے اپنے گھر جاتے ہیں۔ وہ چونکہ مصیبت زدہ تھا راضی ہوا۔ غرض صبح آٹھ بجے کی میت بارہ ۱۲ بجے شب اٹھائی گئی۔ اب عرض ہے کہ آیا حدیث شریف میں یہی فرمان ہے

اور خدا اور اسکے رسول کا یہی حکم ہے تو مجھے مطلع فرمائیں، اور اگر یہ حرکت مطابق شرع نہ ہو تو ان کی کیا سزا شرعا و قانونا؟ بینوا توجروا

الجواب: ان لوگوں نے سخت ظلم کیا اور شدید جرم کیا، اگر سلطنت اسلام ہوتی حاکم اسلام ان میں ایک ایک کو کوڑے لگاتا، قید کرتا، اور وہ آخرت میں عذاب جہنم کے مستحق ہیں۔ رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم فرماتے ہیں:

الصلوۃ واجبۃ علیکم علی کل مسلم برا کان او فاجرا وان عمل الکبائر۔ (ملخصاً) **ہر مسلمان کے جنازے کی نماز تم پر فرض ہے نیک ہو یا بد، اگرچہ اس نے گناہ کبیرہ کئے ہوں۔**

خصوصاً جس مسلمان نے رمضان مبارک میں انتقال کیا تو وہ بحکم حدیث شہید ہے۔ خلافت کمیٹی میں چندہ نہ دینا یا اس میں شریک نہ ہونا کوئی جرم نہیں، بلکہ مسجد میں چندہ نہ دینا بھی گناہ نہیں، نہ کہ جہاں امر بالعکس ہو، نماز

---

1 سنن ابو داؤد باب فی الغزو مع ائمۃ الجور مطبوعہ آفتاب عالم پریس لاہور ۱/۳۳۴، مشکوٰۃ المصابیح بحوالہ ابی داؤد باب الامامۃ مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی ص ۱۰۰

Fatawa Razawiyya Volume 9

Not praying [prayers] is certainly a severe major sin, but what Sharia says that its sin is tied to his wife's head? Allah Almighty says: 'And no bearer of burdens shall bear another's burden.' (1). The eight rupees that they took are strictly forbidden (haram) and for them, they are like a pig. It is obligatory upon them to return it.

[Boxed Text] Allah Almighty says: 'Do not consume one another's wealth unjustly.' (2) (t) The Noble Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) says: 'The hand is responsible for what it has taken until it returns it.' (3). Narrated by Ahmad, the four (Sunan authors), and Al-Hakim from Samrah bin Jundub (may Allah be pleased with him) with a good (hasan) chain of narration. (t)

And that person gave the woman a bath (ghusl), which was not permissible for him. A husband cannot touch the body of his wife after her death. He should have instructed an intelligent girl or boy on how to bathe her and had them bathe her in his presence, or had another woman bathe her even if she had to be paid a fee. And if nothing was possible, he should have put cloth bags/gloves on his hands and performed dry ablution (tayammum) on her face and hands up to the elbows. And Allah Almighty knows best.

Problem No. 34: From District Azamgarh, Post Office Indara, Village Adri, Hafiz Abdul Shakoor Khan, 14 Dhu al-Qi'dah 1339 AH.

Question: What do the scholars of religion say about this: Zaid is a Hanafi Muslim, he was an employee of Bakr, a Christian, and used to eat his leftovers. Muslims forbade him from doing so, even Bakr did, but Zaid did not desist. Upon his death, all Muslims refused his funeral preparations, shrouding, and funeral prayer. Finally, a few Muslims offered the funeral prayer and buried him. If such a situation arises in the future, what should be done? Explain and be rewarded. How should Zaid's family be treated, because Zaid's...

---

1 The Quran 6/164 and 17/15 and 35/18 and 39/7 2 The Quran 2/188 3 Musnad Ahmad bin Hanbal, Hadith of Samrah bin Jundub (may Allah be pleased with him), published by Dar al-Fikr Beirut 5/8

फतवा रज़विया, जिल्द 9

नमाज़ न पढ़ना यकीनन एक बड़ा संगीन गुनाह है, लेकिन इसकी सज़ा उसकी पत्नी के सर मढ़ना कौन सी शरीयत है? अल्लाह तआला फरमाता है: 'और कोई बोझ उठाने वाला दूसरे का बोझ नहीं उठाएगा' (1)। उन्होंने जो आठ रुपये लिए हैं वह सख्त हराम हैं और उनके लिए सूअर की तरह हैं। उन पर लाज़िम है कि इसे वापस कर दें।

[बॉक्स किया गया टेक्स्ट] अल्लाह तआला फरमाता है: 'आपस में एक दूसरे का माल नाहक (गलत तरीके से) न खाओ।' (2) (त) हुज़ूर अकरम (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) फरमाते हैं: 'हाथ ने जो लिया है वह उसकी ज़िम्मेदारी है जब तक कि उसे अदा न कर दे।' (3) इसे इमाम अहमद, अबू दाऊद, तिर्मिज़ी, नसाई, इब्न माजा और हाकिम ने समरह बिन जुन्दुब (रज़ियल्लाहु अन्हु) से हसन सनद के साथ रिवायत किया है। (त)

और उस व्यक्ति ने औरत को गुसल (स्नान) दिया, यह उसके लिए जायज़ नहीं था। शौहर (पति) वफ़ात के बाद अपनी पत्नी के शरीर को हाथ नहीं लगा सकता। उसे चाहिए था कि किसी समझदार लड़की या लड़के को गुसल देने का तरीका बताता और अपने सामने उससे गुसल दिलवाता, या किसी और औरत से, चाहे उसे उजरत (मजदूरी) ही क्यों न देनी पड़े, गुसल दिलवाता। और अगर कुछ भी मुमकिन न होता, तो अपने हाथों में कपड़े की थैलियां पहनकर उसके चेहरे और कोहनियों तक हाथों का तयम्मुम करा देता। वल्लाहु तआला आलम (और अल्लाह बेहतर जानता है)।

मसला नंबर 34: जिला आजमगढ़, डाकखाना इंदारा, मौजा अदरी से, हाफिज अब्दुल शकूर खान, 14 ज़ुल-क़ादा 1339 हिजरी।

प्रश्न: आलिमों का क्या कहना है कि ज़ैद एक हनफी मुसलमान है, वह बक्र नाम के एक ईसाई के यहाँ मुलाज़िम (कर्मचारी) था और उसका जूठा खाया करता था। मुसलमानों ने उसे मना किया, यहाँ तक कि बक्र ने भी, लेकिन ज़ैद बाज़ नहीं आया। उसकी मौत पर तमाम मुसलमानों ने उसके कफ़न-दफ़न और नमाज़-ए-जनाज़ा से इनकार कर दिया। आखिरकार चंद मुसलमानों ने नमाज़-ए-जनाज़ा पढ़कर उसे दफ़न कर दिया। अगर आइंदा कभी ऐसा मौका आए तो क्या करना चाहिए? बयान करें और अज्र पाएं। ज़ैद के घर वालों के साथ कैसा बर्ताव करना चाहिए क्योंकि ज़ैद के..

1 अल कुरान 6/164 और 17/15 और 35/18 और 39/7 2 अल कुरान 2/188 3 मुस्नद अहमद बिन हंबल, हदीस समरह बिन जुन्दुब (रज़ियल्लाहु अन्हु), मकतबा दारुल फ़िक्र बेरूत 5/8

पृष्ठ 169/948

نہ پڑھنا ضرور کبیرہ شدید ہے مگر اس کا گناہ اس کی بی بی کے سر باندھنا کون سی شریعت ہے۔ اللہ تعالٰی فرماتا ہے : وَلَا تَزِرُ وَازِرَةٌ وِزْرَ أُخْرٰی (1)۔ (کوئی جان کسی دوسری جان کا بوجھ نہیں اٹھاتی۔ ت) آٹھ روپے کہ انہوں نے لئے سخت حرام اور اُن کے حق میں مثلِ سُؤر کے ہیں۔ اُن پر فرض ہے اسے واپس کر دیں۔

قال اللہ تعالی لَا تَأْكُلُوا أَمْوَالَكُمْ بَيْنَكُمْ بِالْبَاطِلِ (2)۔ اللہ تعالٰی فرماتا ہے: اپنے مال آپس میں ناحق نہ کھاؤ۔ (ت) وقال صلی اللہ تعالی علیہ وسلم علی الید ما اخذت حضورِ اکرم صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم فرماتے ہیں : ہاتھ نے حتی تودیہ (3)۔ رواہ احمد والاربعۃ والحاکم عن جو لیا اس کے ذمہ ہے یہاں تک کہ اسے ادا کر دے۔ اسے امام سمرۃ بن جندب رضی اللہ تعالٰی عنہ بسند احمد، ابوداؤد، ترمذی، نسائی، ابن ماجہ اور حاکم نے سمرہ بن احسن۔ جندب رضی اللہ تعالٰی عنہ سے بہ سند حسن روایت کیا۔ (ت)

اور اُس شخص نے عورت کو غسل دیا یہ اسے جائز نہ تھا، شوہر عورت کے بدن کو بعد انتقال ہاتھ نہیں لگا سکتا، اسے چاہئے تھا کہ کسی سمجھ والی لڑکی یا لڑکے کو نہلانے کا طریقہ بتاتا اور اپنے سامنے اُس سے نہلواتا، یا کوئی اور عورت اگرچہ اجرت پر ملتی اس سے غسل دلاتا۔ اور اگر کچھ ممکن نہ ہوتا تو اپنے ہاتھوں میں کپڑے کی تھیلیاں چڑھا کر اُس کے چہرے اور کہنیوں تک ہاتھوں کا تیمم کرا دیتا۔ واللہ تعالٰی اعلم۔

مسئلہ نمبر ۳۴: از ضلع اعظم گڑھ ڈاکخانہ اندر ا موضوع ادری حافظ عبد الشکور خاں ۱۴ ذی القعدہ ۱۳۳۹ھ

کیا فرماتے ہیں علمائے دین کہ زید مسلمان حنفی، بکر نصرانی کے یہاں ملازم تھا اور اس کا جھوٹا کھالیا کرتا تھا، مسلمانوں نے اس سے منع کیا، حتی کہ بکر نے بھی، مگر زید باز نہ آیا اور اس کے مرنے پر جمیع مسلمانوں نے اس کی تجہیز و تکفین و نمازِ جنازہ سے انکار کیا، بالآخر چند مسلمانوں نے نمازِ جنازہ پڑھ کر دفن کیا، اگر ایسا موقع آئندہ آئے تو کیا کرنا چاہئے؟ بینوا توجروا۔ زید کے گھر والوں کے ساتھ کیا برتاؤ کرنا چاہئے کیونکہ زید کے

---

1 القرآن ۶/ ۱۶۴ و ۱۷/ ۱۵ و ۳۵/ ۱۸ و ۳۹/ ۷ 2 القرآن ۸۸/ ۲ 3 مسند احمد بن حنبل حدیث سمرہ بن جندب رضی اللہ تعالی عنہ مطبوعہ دارالفکر بیروت ۵/ ۸

Fatawa Razvia - Volume 9

...their food etc. has been stopped here.

The Answer: For a Muslim to eat the leftovers of a Christian is very heinous and bad as we have explained in our fatwas (T). However, if there was no change in (his) religion, then he did not become a disbeliever (kafir) by this bad action. It was obligatory (wajib) upon Muslims to perform his funeral rites (tahjeez o takfeen) and funeral prayer (Janaza). But this task is a collective obligation (Farz-e-Kifayah); since some performed it, the obligation is removed from all. It is not necessary for every Muslim to participate in them. If no one had done it, all would have been sinners. These same rulings apply for the future as well. There was no fault of his family members in this act; to penalize them is unjustified.

Allah Almighty says: "And no bearer of burdens shall bear the burden of another." (1) And Allah	**The saying of Allah Almighty: No soul shall bear the burden of another**
knows best.	will bear. (T) And Allah Almighty knows best.

Issue Number 35: From Ujjain, residence of Mir Khadam Ali Sahib Assistant, 29 Rajab 1309 AH. What do the scholars of religion and jurists of the clear Sharia say regarding this issue: A person from the people of Islam, until the end of his life, abandoned prayer (Salah) and fasting (Sawm), and was a consumer of wine night and day, associated with the religion of Christians, until it was confirmed that he moved to a Dak Bungalow without repentance. Then the heirs brought him to his house, Allah forbid, and for fear of non-participation in the burial by the people of Islam, they appointed a barber, a woodturner, and a green-grocer, who were themselves brought up there, as fake witnesses to testify to the repentance of this deceased. We seek refuge in Allah. Then the funeral was taken out, and Christians were also with the funeral procession. Even then, a few people knowingly prayed the funeral prayer and, taking the compensation (Isqat), recited the Quran at the grave. After the entry into the grave, the Christians took off their hats and gave a salute. Thus, the Muslims, by the ruling of Sharia, had a true doubt about the Islam of the deceased and were fully convinced (of his deviance). Out of Islamic zeal, they shunned them so that others might take heed. Because due to the dominance of Hindus, legal punishment (Ta'zir) is impossible. With this thought, is it permissible to treat those people as apostates or not? Until they repent, is congregational prayer (Salat-al-Jama'ah) behind

them correct or forbidden? What is the Sharia ruling regarding him and those associated with him? Explain in detail with references from books. May Allah have mercy on them all.

The Answer: Abandoning fasting, prayer, and drinking wine are major sins (Kaba'ir). The perpetrator is a transgressor (Fasiq) and wicked (Fajir), deserving of the punishment of Hell. However, if he does so due to the malice of his self (nafs) while considering it forbidden (haram), he is not a disbeliever (kafir). So if the mentioned person had not changed his religion, but only through the instigation of Satan...

---

1 Al-Quran 6:164, 17:15, 35:18, 39:7.

फ़तावा रज़विया - जिल्द 9

...यहाँ का खाना आदि बंद कर दिया गया है।

अल-जवाब (उत्तर): मुसलमान के लिए ईसाई का जूठा खाना बहुत घृणित और बुरा है जैसा कि हमने अपने फतवों में बयान किया है (त)। लेकिन अगर धर्म में कोई बदलाव नहीं हुआ था, तो इस बुरे कृत्य से वह काफिर (अविश्वासी) नहीं हुआ। मुसलमानों पर उसके अंतिम संस्कार (तजहीज़-ओ-तक्फीन) और जनाज़े की नमाज़ अदा करना लाज़िम (अनिवार्य) था। लेकिन यह कार्य फ़र्ज़-ए-किफ़ाया (सामूहिक दायित्व) है; चूंकि कुछ लोगों ने इसे पूरा कर लिया, इसलिए यह सबके ऊपर से उतर गया। हर मुसलमान का उनमें शामिल होना ज़रूरी नहीं है। यदि कोई न करता तो सब पापी होते। भविष्य के लिए भी यही नियम हैं। इस कृत्य में उसके परिवार वालों का कोई दोष नहीं था; उन पर दण्ड देना अनुचित है।

अल्लाह तआला फ़रमाता है: "और कोई बोझ उठाने वाला किसी दूसरे का बोझ नहीं उठाएगा।" (1) और अल्लाह

बेहतर जानता है।

अल्लाह तआला का इरशाद है: कोई जान किसी दूसरी जान का बोझ नहीं

उठाएगी। (त) और अल्लाह तआला बेहतर जानता है।

मसला नंबर 35: उज्जैन से, मीर खादिम अली साहब असिस्टेंट का निवास, 29 रजब 1309 हिजरी। दीन के विद्वान और शरीयत के मुफ़्ती इस मसले में क्या फ़रमाते हैं: इस्लाम के लोगों में से एक व्यक्ति, जीवन के अंत तक नमाज़ और रोज़ा छोड़ने वाला और रात-दिन शराब पीने वाला, ईसाइयों के धर्म से जुड़ा रहा, यहाँ तक कि यह प्रमाणित हो गया कि वह बिना तौबा (पश्चाताप) के डाक बंगले में चला गया। फिर वारिस उसे उसके घर ले आए, अल्लाह की पनाह, और इस्लाम के लोगों द्वारा दफन में शामिल न होने के डर से, उन्होंने एक नाई, एक खरादी और एक कुंजड़े को, जो वहीं पले-बढ़े थे, उस मृत व्यक्ति की तौबा का झूठा गवाह नियुक्त किया। अल्लाह की पनाह। तब जनाज़ा उठाया गया और जनाज़े के साथ ईसाई भी थे। फिर भी कुछ लोगों ने जानबूझकर जनाज़े की नमाज़ पढ़ी और इस्क़ात (कफ़्फ़ारा) लेकर कब्र पर क़ुरान पढ़ा। कब्र में उतरने के बाद, ईसाइयों ने अपनी टोपी उतारकर सलामी दी। अतः, शरीयत के हुक्म से मुसलमानों को मृत व्यक्ति के इस्लाम पर सच्चा संदेह था और पूर्ण विश्वास हो गया (उसके भटकाव पर)। इस्लामी गौरव के कारण वे उनसे अलग हो

गए ताकि दूसरों को शिक्षा मिले। चूंकि हिंदुओं के प्रभुत्व के कारण कानूनी सजा (ताज़ीर) असंभव है। इस विचार से, उन लोगों के साथ धर्मत्यागियों (मुरतदीन) जैसा व्यवहार करना जायज़ है या नहीं? जब तक वे तौबा न करें, उनके पीछे जमाअत से नमाज़ पढ़ना सही है या मना? उसके और उसके साथियों के हक में शरीयत का क्या हुक्म है? किताबों की इबारत के साथ विस्तार से बताएं। अल्लाह उन सब पर रहम करे।

अल-जवाब (उत्तर): नमाज़, रोज़ा छोड़ना और शराब पीना गुनाह-ए-कबीरा (बड़े पाप) हैं। इनका अपराधी फ़ासिक और फ़ाजिर है और दोज़ख (नरक) की सज़ा का हक़दार है। लेकिन अगर वह इसे हराम जानकर अपने नफ़्स की बुराई के कारण करता है, तो वह काफ़िर नहीं है। अतः यदि उक्त व्यक्ति ने अपना धर्म नहीं बदला था, बल्कि केवल शैतान के बहकावे में आकर...

---

1 अल-क़ुरान 6/164 और 17/15 और 35/18 और 39/7

یہاں کا کھانا وغیرہ بند کر دیا گیا ہے۔

الجواب: مسلمان کو نصرانی کا جھوٹا کھانا بہت شنیع وبد ہے کما بینا في فتاونا (جیسا کہ ہم نے اپنے فتاوی میں بیان کیا ہے۔ ت) لیکن اگر مذہب میں کچھ فرق نہ تھا تو اس بدحرکت سے کافر نہ ہوا۔ مسلمانوں پر اس کی تجہیز و تکفین اور جنازہ کی نماز لازم تھی، مگر یہ کام فرض کفایہ ہے بعض نے کر لیا سب پر سے اتر گیا۔ ہر مسلمان کا ان میں شریک ہونا ضروری نہیں، اگر کوئی نہ کرتا تو سب گنہگار ہوتے۔ آئندہ کے لئے بھی یہی احکام ہیں ، اس فعل میں اس کے گھر والوں کا کوئی قصور نہ تھا ان پر تعزیر بیجا ہے۔

اللہ تعالٰی کا ارشاد ہے : کوئی جان کسی دوسری جان کا بوجھ نہ اٹھائے گی۔ (ت) واللہ تعالٰی اعلم

قال اللہ تعالٰی وَلَا تَزِرُ وَازِرَةٌ وِزْرَ أُخْرٰی ۱ واللہ تعالٰی اعلم۔

مسئلہ نمبر ۳۵: از او جین مکان میر خادم علی صاحب اسٹنٹ ۲۹ رجب ۱۳۰۹ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین و مفتیان شرع متین اس مسئلہ میں کہ ایک شخص اہل اسلام سے آخر عمر تک تارک صلوٰۃ والصیام و مشارب الخمر باللیل والایام ملحق دین نصاریٰ رہا حتیٰ کہ بہ تحقیق بدون توبہ ڈاک بنگلہ پر منتقل ہوا، پھر ورثاء اس کے مکان پر لائے ، معاذ اللہ اور بخوف عدم شرکت دفن اہل اسلام کے ایک حجام اور خراطی اور کنجڑا پرورش یافتہ خود کو مصنوعی شاہد مقرر کر کے توبہ پر اس میت کی قائم کئے۔ عیاذاً باللہ۔ تب جنازہ اُٹھا اور ہمراہ جنازہ کے عیسائی بھی تھے۔ تب بھی چند کس نے دیدہ و دانستہ نماز جنازہ پڑھی اور اسقاط لے کر قبر پر قرآن پڑھا۔ بعد دخول قبر عیسائیوں

نے ٹوپی اتار کر سلامی لی، پس مسلمانوں کو بحکم شرع میت کے اسلام پر خدشہ صادقہ تھا اور یقین کامل ہوا، اور بحمیت اسلامی اُن سے روکش ہوئے کہ اوروں کو عبرت ہو ، کیونکہ بوجہ بملداری ہنود اور تعزیر غیر ممکن، اس خیال سے اُن لوگوں سے مرتدین کا معاملہ کرنا جائز ہے یا نہیں جب تک توبہ نہ کریں اُن کے پیچھے نماز جماعت درست ہے یا ممنوع، اس کے حق میں اور اُن کے مشترک کے حق میں شرعاً کیا حکم ہے؟ مشرح بعبارت کتب بیان فرمائیں۔ رحمۃ اللہ علیہم اجمعین۔

الجواب: ترک صوم صلوٰۃ و شرب خمار گناہان کبیرہ ہیں جن کا مرتکب فاسق و فاجر اور عذابِ دوزخ کا مستحق ہے مگر حرام جان کر بشامت نفس کرے تو کافر نہیں۔ پس اگر شخص مذکور نے مذہب نہ بدلا تھا صرف باغوائے شیطان

---

۱ القرآن ۶/ ۱۶۴ و ۱۷ / ۱۵ و ۳۵/ ۱۸ و ۳۹/ ۷

Fatawa Rizvia, Volume 9

If someone committed acts like those of world-worshippers who do not fear God and socialized with Christians, he cannot be decreed a kafir (infidel). Rather, as long as he recited the Kalima (creed) and called himself a Muslim, we will consider him a Muslim. In this case, his shrouding, burial, and funeral prayer were certainly necessary and obligatory. If people had not performed them, they would have been sinners.

From the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him): Funeral prayer is obligatory upon you for every Muslim, whether he be righteous or sinful, even if he committed major sins. Reported by Abu Dawud and others. (T)

And, God forbid, the presence of Christians with the funeral or their act of taking off their hats and saluting after burial was their own action, due to which a Muslim cannot be declared an infidel. And the ill-suspicion that if he was not of their faith, why did they participate in the funeral, is simply rejected. Rulings are not based on such illusions, especially in matters of disbelief and Islam where extreme caution is required. Rather, the opposite assumption is stronger: if they had known him to be one of their own, they would have performed the shrouding and burial according to their own custom. Why would they give his funeral to Muslims? In short, in this scenario, those who performed the prayer fulfilled their divine obligation; it was not fundamentally prohibited for them. Blame would only be on them if they intended to treat him as an apostate. And if it is proven by Shari'a evidence that the deceased—Allah forbid—had changed his religion and become a Christian, then indeed, his funeral prayer and shrouding/burial like Muslims were absolutely forbidden.

Allah the Almighty says: And never pray [funeral prayer] over any of them who has died, nor stand at his grave. [Quran 9:84] (T)

However, if those who performed the prayer were not aware of his conversion to Christianity and, based on previous knowledge, considered him a Muslim, and his becoming a Christian was not proven to them until the funeral rites, then they are excused and blameless in these acts. Because, in their knowledge, he was a Muslim, and performing these acts was legally obligatory upon them in their own estimation. Yes, if they were also aware of his conversion to Christianity and still proceeded with the prayer, shrouding, and burial, they have certainly committed a severe sin and are caught in a great burden. Until they repent, praying behind them is disliked (makruh).

फ़तावा रज़विया, जिल्द नहम (9)

अगर कोई दुनिया परस्त बे-ख़ुदा-तरस की तरह इन कामों को करता और ईसाइयों के साथ मेल-जोल रखता था, तो उस पर कुफ़्र का फ़तवा नहीं दिया जा सकता। बल्कि, जब तक वह कलमा पढ़ता और अपने आप को मुसलमान कहता था, उसे मुसलमान ही माना जाएगा। इस स्थिति में उसके कफ़न-दफ़न और जनाज़े की नमाज़ यक़ीनन ज़रूरी और लाज़िम थी; अगर वे इसे अदा न करते तो गुनहगार होते।

नबी करीम (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) से रिवायत है: हर मुसलमान की नमाज़-ए-जनाज़ा तुम पर फ़र्ज़ है, चाहे वह नेक हो या गुनहगार, चाहे उसने गुनाह-ए-कबीरा ही क्यों न किए हों। इसे अबू दाऊद वग़ैरा ने रिवायत किया। (त)

और ईसाइयों का—अल्लाह की पनाह—जनाज़े के साथ होना या दफ़्न के बाद टोपी उतारकर सलामी देना उनका अपना काम था, जिसकी वजह से किसी मुसलमान को काफ़िर नहीं ठहराया जा सकता। और यह ग़लतफ़हमी कि अगर वह उनके धर्म का न होता तो वे जनाज़े में क्यों शामिल होते, बिलकुल ग़लत है। हुक्म ऐसी शंकाओं पर आधारित नहीं होते, ख़ास तौर पर कुफ़्र और इस्लाम के मामले में जहाँ अत्यधिक सावधानी बरतनी चाहिए। बल्कि, इसके विपरीत सोच ज़्यादा मज़बूत है कि अगर वे उसे अपना हम-धर्म समझते, तो अपने तरीक़े से उसका कफ़न-दफ़न करते। वे उसका जनाज़ा मुसलमानों को क्यों देते? सारांश यह कि इस स्थिति में नमाज़ पढ़ने वालों ने अल्लाह का फ़र्ज़ अदा किया, उन पर यह ज़रा भी लाज़िम नहीं था। उन पर आरोप तब लगता जब वे मुर्तद (धर्म त्यागी) के साथ ऐसा व्यवहार करते। और अगर शरीयत के सबूत से यह साबित हो जाए कि मृतक—अल्लाह की पनाह—धर्म बदलकर ईसाई हो चुका था, तो बेशक उसके जनाज़े की नमाज़ और मुसलमानों की तरह कफ़न-दफ़न सब क़तई हराम था।

अल्लाह तआला फ़रमाता है: और उनमें से जो कोई मर जाए, तो कभी भी उसकी नमाज़-ए-जनाज़ा न पढ़ो और न उसकी क़ब्र पर खड़े हो। [क़ुरआन 9:84] (त)

मगर नमाज़ पढ़ने वाले अगर उसकी ईसाइयत से वाक़िफ़ नहीं थे और पुराने इल्म की बिना पर उसे मुसलमान समझते थे, और कफ़न-दफ़न व नमाज़ तक उनके नज़दीक उस व्यक्ति का ईसाई होना साबित नहीं हुआ था, तो वे इन कामों में माज़ूर (माफ़ किए जाने योग्य) और बेक़सूर हैं। क्योंकि उनकी समझ में वह मुसलमान था और उनके अपने ख़याल में ये काम करना शरीयत के मुताबिक़

उन पर लाज़िम थे। हाँ, अगर वे भी उसकी ईसाइयत से वाक़िफ़ थे और फिर भी नमाज़ व कफ़न-दफ़न किया, तो वे निश्चित रूप से बहुत बड़े गुनहगार हुए और भारी बोझ के नीचे दब गए। जब तक वे तौबा न करें, उनके पीछे नमाज़ पढ़ना मकरूह है।

دنیا پرست نان خدا ترس کی طرح ان امور کا مرتکب ہوتا اور عیسائیوں سے میل جول رکھتا تھا تو اس پر کفر کا فتوٰی نہیں دیا جا سکتا، بلکہ جب وہ کلمہ پڑھتا اور اپنے آپ کو مسلمان کہتا تھا مسلمان ہی ٹھہرائیں گے اور اس تقدیر پر اس کے تجہیز و تکفین اور جنازہ کی نماز بیشک ضروری ولازم تھی، اگر بجانہ لاتے گنہگار رہتے۔

عن النبي صلی اللہ تعالی علیہ وسلم الصلوٰۃ واجبۃ علیکم کل مسلم براً کان او فاجراً وان ھو عمل الکبائر1۔ (ملخصاً) نبی کریم صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم سے مروی ہے: ہر مسلمان کی نمازِ جنازہ تم پر فرض ہے نیک ہو یا بد، اگرچہ اس نے گناہِ کبیرہ کئے ہوں۔ اسے ابو داؤد وغیرہ نے روایت کیا۔ (ت)

اور نصرانیوں کا معاذ اللہ جنازہ کے ساتھ ہونا یا بعد دفن ٹوپی اتار کر سلامی دینا اُن کا اپنا فعل تھا جس کے سبب مسلمان کو کافر نہیں ٹھہرا سکتے۔ اور یہ بد گمانی کہ اگر یہ ان کا ہم مذہب نہ ہوتا تو وہ جنازہ میں کیوں شرکت کرتے، محض مردود ہے۔ ایسے اوہام پر بنائے احکام نہیں، نہ کہ معاذ اللہ معاملہ کفر و اسلام جس میں انتہا درجہ کی احتیاط لازم، بلکہ اس کا عکس دوسرا گمان قوی تر ہے کہ اگر وہ اسے اپنا ہم مذہب جانتے، اپنی روش پر تجہیز و تکفین کرتے۔ مسلمانوں کو اس کا جنازہ کیوں دیتے، غرض اس صورت میں نماز پڑھنے والوں نے فرضِ خدا ادا کیا ان پر اصلاً لازم نہیں۔ الزام ان پر ان سے معاملہ مرتدین کرنا چاہیں اور اگر بہ ثبوت شرعی ثابت ہو کہ میت عیاذاً باللہ تبدیل مذہب کر کے عیسائی ہو چکا تھا تو بیشک اس کے جنازہ کی نماز اور مسلمانوں کی طرح اس کی جہیز و تکفین سب حرامِ قطعی تھی۔

قال اللہ تعالی ولا تصل علی احد منھم مات ابداً ولا تقم علی قبرہ2۔ اللہ تعالیٰ فرماتا ہے: ان میں سے جو بھی مرے نہ کبھی ان کی نمازِ جنازہ پڑھو اور نہ اس کی قبر پر کھڑے ہو (ت)

مگر نماز پڑھنے والے اگر اس کی نصرانیت پر مطلع نہ تھے اور بر بنائے علمِ سابق اسے مسلمان سمجھتے تھے نہ اس کی تجہیز و تکفین و نماز تک ان کے نزدیک اس شخص کا نصرانی ہو جانا ثابت ہوا، تو ان افعال میں وہ اب بھی معذور و بے قصور ہیں کہ جب ان کی دانست میں وہ مسلمان تھا ان پر یہ افعال بجالانے بزعمِ خود شرعاً لازم تھے، ہاں اگر یہ بھی اس کی عیسائیت سے خبردار تھے پھر نماز و تجہیز و تکفین کے مرتکب ہوئے قطعاً سخت گنہ گار اور وبالِ کثیر میں گرفتار ہوئے، جب تک توبہ نہ کریں نماز ان کے پیچھے مکروہ،

Fatawa Ridawiyya - Volume 9

[Box]: As is the ruling for the 'Fasik' (sinner), which is clearly stated in several books such as 'Al-Muharrar al-Munqah' in 'Al-Ghunyah' and others, and whose explanation and refinement have already been done. (T)

However, it is still not permissible to treat them as apostates, because these people will not become disbelievers due to this sin. Our pure Sharia is the straight path; it does not favor excess or deficiency in any matter. However, if it is proven that they, knowing him to be a Christian, did not do it out of mere folly or ignorance for some worldly purpose, but rather considered Christianity itself worthy of honor and eligible for funeral preparations, shrouding, and funeral prayers, then undoubtedly everyone who holds such a belief is a disbeliever and an apostate. It is mandatory to treat them in the same way as apostates are treated, and their participation in any other way is not permissible, and all partners and helpers are sinners. And Allah Almighty knows best.

Issue Number 36: From Kheripur, Kheri, house of Hafiz Muhammad Hussain Saudagar, sent by Hakim Muhammad Tafazzul Hussain Sahib, month of Jumada al-Ula 1319 AH.

What do the scholars of religion say regarding this matter: Is it permissible for the Ahl-us-Sunnah wal-Jama'at to perform the funeral prayer of a Shia person or not? And if a group of Sunnat wal-Jama'at has performed the funeral prayer for any Shia, what is the ruling for them in Sharia?

The Answer: If a Rafidhi is a denier of the necessities of religion—for example, he believes that some surahs or verses or even a single letter in the Holy Quran was removed by Amir-ul-Momineen Uthman Dhun-Noorayn Ghani (may Allah be pleased with him) or any other Sahaba (Companion) or person. Or if he considers Mawla Ali (may Allah honor his face) or other pure Imams to be superior to any of the previous Prophets (peace and blessings be upon them). Nowadays, the 'Tabra'i' Rafidhis here are generally like this; perhaps not even one person among them would be found who does not hold these blasphemous beliefs. In such a case, he is a disbelieving apostate, and performing his funeral prayer is absolutely forbidden and a severe sin. Allah Almighty says:

[Box]: 'And never pray [funeral prayer] over any of them who has died, nor stand at his grave. Indeed, they disbelieved in Allah and His Messenger and died while they

were defiantly disobedient.' Never pray over any of their dead, nor stand by his grave; they committed disbelief against Allah and His Messenger and remained without order [in sin] until death.

1. Al-Quran 9/84

फ़तावा रिज़विया - भाग 9

[बॉक्स]: जैसा कि 'फ़ासिक' (पापी) का हुक्म है, जिसका स्पष्ट उल्लेख 'अल-गुनिया' और अन्य में 'अल-मुहर्रर अल-मुनक़ह' जैसी कई पुस्तकों में मौजूद है, और जिसका स्पष्टीकरण और शोधन पहले ही किया जा चुका है। (त)

मगर इसके बावजूद उनके साथ मुर्तदों (धर्मत्यागियों) जैसा व्यवहार करना जायज़ नहीं है क्योंकि ये लोग इस गुनाह के कारण काफ़िर नहीं होंगे। हमारी शरीअत-ए-मुतह्हरा (पवित्र शरीयत) सिरात-ए-मुस्तक़ीम (सीधा रास्ता) है, यह किसी भी मामले में इफ़रात-ओ-तफ़रीत (अतिवाद या कमी) को पसंद नहीं करती। हाँ, अगर यह साबित हो जाए कि उन्होंने उसे ईसाई जानकर न केवल मूर्खता और अज्ञानता वश किसी दुनियावी मक़सद سے، बल्कि स्वयं ईसाइयत को ही सम्मान के योग्य और अंतिम संस्कार की तैयारियों, कफ़न-दफ़न और जनाज़े की नमाज़ के पात्र मानकर ऐसा किया, तो निस्संदेह जो कोई भी ऐसा विचार रखेगा, वे सभी काफ़िर और मुर्तद हैं। उनके साथ वही व्यवहार करना अनिवार्य है जो मुर्तदों के साथ किया जाता है, और उनकी किसी और तरह की भागीदारी जायज़ नहीं है, और सभी भागीदार और सहायक गुनेहगार हैं। और अल्लाह तआला बेहतर जानता है।

मसला नंबर 36: खेरीपुर, खेरी से, हाफ़िज़ मुहम्मद हुसैन सौदागर का मकान, प्रेषक हकीम मुहम्मद तफ़ज़्ज़ुल हुसैन साहिब, माह जमादी-उल-उला 1319 हिजरी।

धर्म के विद्वान इस मसले में क्या कहते हैं कि: क्या अहले सुन्नत व जमाअत के लिए किसी शिया व्यक्ति के जनाज़े की نماز पढ़ना जायज़ है या नहीं? और अगर सुन्नत व जमाअत के किसी समूह ने किसी शिया के जनाज़े की नमाज़ पढ़ी, तो उनके लिए शरीयत में क्या हुक्म है?

अल-जवाब (उत्तर): अगर राफ़िज़ी दीन की ज़रूरतों (आवश्यकताओं) का मुनकिर (इनकारी) है, उदाहरण के लिए, वह मानता है कि पवित्र कुरान में कुछ सूरह या आयतें या कोई अक्षर अमीर-उल-मोमिनीन उस्मान ज़ुन्नूरैन ग़नी (रज़ियल्लाहु अन्हु) या किसी अन्य सहाबी या व्यक्ति द्वारा कम किया गया है। या मौला अली (कर्रमल्लाहु वज्हहुल करीम) या अन्य इमामों को पिछले पैग़ंबरों (उन पर शांति और आशीर्वाद हो) में से किसी से श्रेष्ठ मानता है। आज कल यहाँ के'तबर्राई' राफ़िज़ी आम तौर पर ऐसे ही हैं; शायद उनमें से एक भी व्यक्ति ऐसा न निकले जो इन कुफ्रिया अकीदों (ईशनिंदापूर्ण

विश्वासों) का मानने वाला न हो। ऐसी स्थिति में वह काफ़िर मुर्तद है और उसके जनाज़े की नमाज़ कतई हराम और घोर पाप है। अल्लाह अज़्वजल फ़रमाता है:

[बॉक्स]: 'और उनके(मुनाफ़िक़ों) में से जो कोई मर जाए, उस पर कभी नमाज़ न पढ़ना और न उसकी क़ब्र पर खड़े होना। बेशक उन्होंने अल्लाह और उसके रसूल के साथ कुफ़्र किया और वे मरते दम तक नाफ़रमान रहे।' उनके किसी भी मृतक पर कभी नमाज़ न पढ़ो, और न ही उसकी क़ब्र के पास खड़े हो; उन्होंने अल्लाह और उसके रसूल के साथ कुफ़्र किया और मरते दम तक बिना हुक्म (पाप में) रहे।

1. अल-कुरान 9/84

पृष्ठ 172/948

فتاوٰی رضویہ - جلد نہم

[باکس]: کما حکم ھو الفاسق المصرح بہ فی غیر ما کتاب المحرر المنقح فی الغنیۃ وغیرھا۔ جیسا کہ یہ فاسق کا حکم ہے جس کی صراحت متعدد کتابوں میں موجود ہے اور جس کی توضیح وتنقیح غنیہ وغیرہا میں ہو چکی ہے۔(ت)

مگر معاملہ مرتدین پھر بھی برتنا جائز نہیں کہ یہ لوگ بھی اس گناہ سے کافر نہ ہوں گے۔ ہماری شرع مطہر صراط مستقیم ہے، افراط و تفریط کسی بات میں پسند نہیں فرماتی، البتہ اگر ثابت ہو جائے کہ انہوں نے اسے نصرانی جان کر نہ صرف بوجھ حماقت و جہالت کسی غرض دنیوی کی نیت سے بلکہ خود اسے نصرانیت مستحق تعظیم و قابل تجہیز و تکفین و نماز جنازہ تصور کیا تو بیشک جس جس کا ایسا خیال ہو گا وہ سب بھی کافر و مرتد ہیں اور ان سے وہی معاملہ برتنا واجب جو مرتدین سے برتا جائے اور ان کی شرکت کسی اور طرح روا نہیں، اور شریک و معاون سب گنہگار۔ واللہ تعالٰی اعلم۔

مسئلہ نمبر ۳۶: از کھیری پور کھیری مکان حافظ محمد حسین سوداگر، مرسلہ حکیم محمد تفضل حسین صاحب ماہ جمادی الاولی ۱۳۱۹ھ

کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ اہل شیعہ کی نماز جنازہ پڑھنا اہلسنت و جماعت کے لئے جائز ہے یا نہیں؟ اور اگر کسی قوم سنت والجماعت نے نماز کسی شیعہ کی جنازہ کی پڑھی تو اس کے لئے شرع میں کیا حکم ہے۔

الجواب: اگر رافضی ضروریات دین کا منکر ہے، مثلاً قرآن کریم میں کچھ سورتیں یا آیتیں یا کوئی حرف صرف امیر المومنین عثمان ذی النورین غنی رضی اللہ تعالٰی عنہ یا اور صحابہ خواہ کسی

شخص کا گھٹایا ہوا مانتا ہے۔ یا مولی علی کرم اللہ وجہہ الکریم خواہ دیگر ائمہ اطہار کو انبیاے سابقین علیہم الصلوۃ والتسلیم میں کسی سے افضل جانتا ہے۔ اور آج کل یہاں کے رافضی تبرائی عموماً ایسے ہی ہیں ان میں شاید ایک شخص بھی ایسا نہ نکلے جو ان عقائد کفریہ کا معتقد نہ ہو جب تو وہ کافر مرتد ہے اور اس کے جنازہ کی نماز حرام قطعی و گناہ شدید ہے۔ اللہ عزوجل فرماتا ہے:

[باکس]: وَلَا تُصَلِّ عَلَىٰ أَحَدٍ مِّنْهُم مَّاتَ أَبَدًا وَلَا تَقُمْ عَلَىٰ قَبْرِهِۖ إِنَّهُمْ كَفَرُوا بِاللَّهِ وَرَسُولِهِ وَمَاتُوا وَهُمْ فَاسِقُونَ (۱) کبھی نماز نہ پڑھ ان کے کسی مردے پر، نہ اس کی قبر پر کھڑا ہو، انہوں نے اللہ ورسول کے ساتھ کفر کیا اور مرتے دم تک بے حکم رہے۔

1 القرآن ۸۴/۹

Fatawa Razawiya Volume 9

If one does not deny the essentials of the religion but is a Tabarrai (one who curses the Sahaba), then according to the majority of Imams and jurists, the ruling for him is the same.

| As mentioned in Khulasa, Fath al-Qadir, Tanwir al-Absar, al-Durr al-Mukhtar, al-Hidayah, and other general books. | كما في خلاصة وفتح القدير وتنوير الابصار والدر المختار والهداية وغيرها عامة الاسفار۔ |

And if he is only a Tafziliyah (one who prefers Ali over Abu Bakr and Umar), then his funeral prayer should not be offered either. In many Hadiths, it has been stated regarding the innovators: 'If they die, do not attend their funerals' (An matu fala tashhaduhum). And 'Do not pray over them' (Wa la tusallu 'alayhim). Those who offered the prayer must repent and seek forgiveness. And if it was the first case, i.e., the deceased Rafidhi was a denier of some essentials of the religion, and a person aware of his condition deliberately offered his funeral prayer and prayed for his forgiveness, then that person must renew his Islam and perform his marriage again with his wife.

| In 'al-Hilyah', quoted from 'al-Qarafi' and affirmed: praying for forgiveness for a disbeliever (kafir) is disbelief (kufr) because it is a demand to belie what Allah Almighty has informed. (T) | في الحلية نقلا عن القرافي واقره الدعاء بالمغفرة للكافر كفر لطلبه تكذيب اللہ تعالی فیما اخبر بہ۔ |

Problem No. 74: From Shaman Burj, Wazirabad, District Gujranwala, Punjab. Sent by Muhammad Khalilullah Sahib, Retired Risaldar, 23 Rabi al-Awwal 1327 AH.

What do the scholars of religion say regarding the following situation: A person who followed the Ithna 'Ashari Shia sect and believed in the Kalima 'La ilaha illa Allah, Muhammad Rasul Allah, Ali Khalifatuhu bila fasl' and other Shia beliefs, died. His funeral prayer was led by our Imam, who follows the Hanafi school, at the central mosque, and he also gave him the ritual bath (ghusl) and participated in his 'Khatam' (memorial ceremony). After the said Imam led the funeral prayer, the Shia community again...

---

1. Tarikh Baghdad, biography 4240, al-Husayn bin al-Walid etc., Dar al-Kutub al-Arabi, Beirut, 8/134; Sunan ibn Majah, al-Husayn bin al-Walid etc., H.M. Saeed

Company, Karachi, p. 100; Musnad Imam Azam, section on condemning al-Qadariyah, printed by Nur Muhammad Asah al-Matabi, Karachi, p. 14.

2. Kanz al-Ummal, with reference to ibn al-Najjar from Anas (may Allah be pleased with him), Hadith 32529, printed by Mu'assasat al-Risalah, Beirut, 11/520.
3. Hilyat al-Mahalli Sharh Munyat al-Musalli.

फ़तावा रज़विया खंड 9

यदि कोई धर्म की अनिवार्यताओं (ज़रूरियात-ए-दीन) का इनकार नहीं करता है, लेकिन तबर्राई (सहाबा को बुरा-भला कहने वाला) है, तो अधिकांश इमामों और न्यायविदों के अनुसार, उसके लिए भी वही हुक्म है।

| जैसा कि 'खुलासा', 'फत्ह अल-क़दीर', 'तन्वीर अल-अबसार', 'अल-दुर्र अल-मुख्तार', 'हिदाया' और अन्य सामान्य पुस्तकों में है। | كما في خلاصة وفتح القدير وتنوير الابصار والدر المختار والهداية وغيرها عامة الاسفار۔ |

और यदि वह केवल तफ़्ज़ीलिया (अली को अबू बक्र और उमर पर प्राथमिकता देने वाला) है, तो भी उसके जनाज़े की नमाज़ नहीं पढ़ी जानी चाहिए। कई हदीसों में बद-मज़हबों (नवाचारियों) के बारे में कहा गया है: 'यदि वे मर जाएँ तो उनके जनाज़े में शामिल न हों' (अन मातू फला तशहदुहुम)। और 'उन पर नमाज़ न पढ़ें' (वा ला तुसल्लू अलैहिम)। नमाज़ पढ़ने वालों को तौबा और इस्तिग़फ़ार (क्षमा याचना) करनी चाहिए। और यदि पहली स्थिति थी, यानी मृत राफ़ज़ी धर्म की कुछ अनिवार्यताओं का इनकार करने वाला था और किसी व्यक्ति ने उसकी स्थिति से वाक़िफ़ होने के बावजूद जानबूझकर उसके जनाज़े की नमाज़ पढ़ी और उसके लिए क्षमा की प्रार्थना की, तो उस व्यक्ति को अपने इस्लाम का नवीनीकरण करना चाहिए और अपनी पत्नी के साथ फिर से निकाह करना चाहिए।

| 'अल-हिल्या' में 'अल-क़राफ़ी' से उद्धृत किया गया और इसे स्वीकार किया गया कि: काफ़िर के लिए मग़फ़िरत (क्षमा) की दुआ करना कुफ़्र है क्योंकि यह अल्लाह तआला द्वारा दी गई ख़बर को झुठलाने की मांग है। (त) | في الحلية نقلا عن القرافي واقره الدعاء بالمغفرة للكافر كفر لطلبه تكذيب الله تعالى فيما اخبر به۔ |

समस्या संख्या 74: शमन बुर्ज, वज़ीराबाद, जिला गुजरांवाला, पंजाब से। प्रेषक मुहम्मद ख़लीलउल्लाह साहब, रिटायर्ड रिसालदार, 23 रबी उल-अव्वल 1327 हिजरी।

धर्म के विद्वान निम्नलिखित स्थिति में क्या कहते हैं: एक व्यक्ति जो शिया इस्ना अशरी संप्रदाय का था और कलिमा 'ला इलाहा इल्लल्लाह मुहम्मद रसूलुल्लाह अली ख़लीफ़तुहु बिला फ़स्ल' और शिया संप्रदाय के अन्य विश्वासों को मानता था, उसकी मृत्यु हो गई। उसका जनाज़ा हमारे हनफ़ी मज़हब के जामा मस्जिद के इमाम ने पढ़ाया और उसे ग़ुस्ल (स्नान) दिया, साथ ही उसके'ख़त्म' (मृत्यु के बाद की

रस्म) में भी शामिल हुए। उक्त इमाम द्वारा जनाज़े की नमाज़ पढ़ाने के बाद, शिया समुदाय ने फिर से...

---

1. तारीख़ बग़दाद, जीवनी 4240, अल-हुसैन बिन अल-वलीद आदि, दार अल-कुतुब अल-अरबी, बेरुत, 8/134; सुनन इब्न माजा, अल-हुसैन बिन अल-वलीद आदि, एच.एम. सईद कंपनी, कराची, पृ. 100; मुस्नद इमाम आज़म, अल-क़दरिया की निंदा पर अनुभाग, नूर मुहम्मद असद अल-मताबी, कराची द्वारा मुद्रित, पृ. 14।
2. कंज़ अल-उम्माल, अनस (अल्लाह उनसे प्रसन्न हो) से इब्न अल-नज्जार के संदर्भ में, हदीस 32529, मुअस्ससत अल-रिसाला, बेरुत द्वारा मुद्रित, 11/520।
3. हिल्लत अल-महल्ली शरह मुनियत अल-मुसल्ली।

पृष्ठ 173/948

فتاوی رضویہ جلد نہم

اگر ضروریاتِ دین کا منکر نہیں مگر تبرائی ہے تو جمہور ائمہ و فقہائے کے نزدیک اس کا بھی وہی حکم ہے۔

| كما في خلاصة وفتح القدير وتنوير الابصار والدر المختار والهداية وغيرها عامة الاسفار۔ | جیسا کہ خلاصہ، فتح القدیر، تنویر الابصار، در مختار، ہدایہ وغیرہ عام کتب میں ہے۔ |

اور اگر صرف تفضیلیہ ہے تو اس کے جنازے کی نماز بھی نہ چاہتے، متعدد حدیثوں میں بد مذہبوں کی نسبت ارشاد ہوا: ان مأتوا فلا تشھدوھم وہ مریں تو ان کے جنازہ پر نہ جائیں۔ ولا تصلوا علیھم انکے جنازے کی نماز نہ پڑھو۔ نماز پڑھنے والوں کو توبہ استغفار کرنی چاہئے۔ اور اگر صورتِ پہلی تھی یعنی وہ مُردہ رافضی منکرِ بعض ضروریاتِ دین تھا اور کسی شخص نے باآں کہ اس کے حال سے مطلع تھا دانستہ اس کے جنازے کی نماز پڑھی اس کے لئے استغفار کی جب تو اس شخص کی تجدیدِ اسلام اور اپنی عورت سے از سرِ نو نکاح کرنا چاہئے۔

| في الحلية نقلا عن القرافي واقره الدعاء بالمغفرة للكافر كفر لطلبه تكذيب الله تعالى فيما اخبر بہ۔ | حلیہ میں قرانی سے نقل کیا اور اسے برقرار رکھا کہ: کافر کے لئے دعائے مغفرت کفر ہے کیونکہ یہ خبر الٰہی کی تکذیب کا مطالب ہے (ت) |

مسئلہ نمبر ۷۴: از شمن برج وزیر آباد ضلع گوجرانوالہ، پنجاب۔ مرسلہ محمد خلیل اللہ صاحب پنشنر رسالدار، ۲۳ ربیع الاول ۱۳۲۷ھ

کیا فرماتے ہیں علمائے دین مندرجہ ذیل صورت میں ایک شخص جو شیعہ اثناء عشری مذہب رکھتا ہے اور کلمہ لا الہ الا اللہ محمد رسول اللہ علی خلیفتہ بلا فصل وغیرہ اعتقادات مذہب شیعہ کا معتقد

ہے فوت ہوا ہے اس کا جنازہ ہمارے امام حنفی المذہب جامع مسجد نے پڑھایا اور اس کو غسل دیا، نیز اس کے ختم میں شامل ہوا، شیعہ جماعت نے امام مذکور کے نمازِ جنازہ پڑھانے کے بعد دوبارہ

---

1 تاریخ بغداد ترجمہ ۴۲۴۰ الحسین بن الولید الخ دار الکتاب العربی بیروت ۱۳۴/۸، سنن ابن ماجہ الحسین بن الولید الخ ایچ ایم سعید کمپنی کراچی ص ۱۰۰، مسند امام اعظم بیان ذم القادریة مطبوعہ نور محمد اصح المطابع کراچی ص ۱۴ 2 کنزالعمال بحوالہ ابن النجار عن انس رضی اللہ عنہ حدیث ۳۲۵۲۹ مطبوعہ موسسة الرسالة بیروت ۵۲۰/۱۱ 3 حلیہ المحلی شرح منیة المصلی

Fatawa Rizvia - Volume 9

A Shia imam led the funeral prayer of the aforementioned deceased. Is this act of the mentioned Hanafi imam permissible according to the Hanafi Imams? If it is impermissible, then is this act of the said imam Shariah-wise punishable (Ta'zir), and what should be the punishment?

The Answer: In the mentioned situation, that imam has committed an extremely severe major sin; he has gone against the command of the Magnificent Quran. Allah the Almighty says: "And never pray [funeral prayer] over any of them who has died, ever."[1] - Allah says: Never perform the funeral prayer for any of their dead. (T)

Who can give Ta'zir here? Its punishment depends on the discretion of the Islamic ruler; if he wished, he could have given seventy-five lashes, and if he wished, he could have executed him because he insulted the religion. Prayer behind him is not permissible, and it is obligatory to dismiss him from the imamate. It is stated in Tabyin al-Haqa'iq and others: "Because putting him forward for the imamate is honoring him, while it has become obligatory upon them to humiliate him according to Shariah."[2] - Because making him an imam is a form of respect, whereas according to Shariah, it is obligatory upon them to humiliate him. (T)

It is stated in Fatawa Hujjah and Ghunyah: "If they put forward a transgressor (fasiq), they are sinners."[3] (If people made a transgressor an imam, they will be sinners. T). All this is in the case that he did this for some worldly greed. If, from a religious standpoint, he considered it a rewardable act and deemed the Rafidi Tabarrai [one who curses the companions] worthy of ritual bathing and prayer, and performed these rejected actions, then he did not remain a Muslim. If he has a wife, she is out of his marriage contract, because nowadays Rafidi Tabarrais are generally apostates, as we have researched in our treatise "Radd al-Rafidah" (As we have researched in our treatise "Radd al-Rafidah". T). And according to the ruling of the noble jurists, the act of cursing (tabarra) itself is disbelief (kufr), as in Al-Khulasah, Fath al-Qadir, and many other books (As it is in Al-Khulasah and Fath al-Qadir etc., in many books. T), let alone performing the funeral prayer, as in Al-I'lam etc., and we have explained it in our fatwas (As it is in Al-I'lam bi-Qawati' al-Islam and we have explained in our fatwas. T). And Allah Almighty knows best.

[1] Quran 9/84 [2] Tabyin al-Haqa'iq, Chapter on Imamate and Impurity in Prayer, printed at Al-Matba'ah al-Kubra al-Amiriyyah, Egypt, 1/134 [3] Ghunyat al-Mustamli, section on Imamate, Sohail Academy Lahore, p. 513

फ़तावा रज़विया - जिल्द 9

एक शिया इमाम ने उपर्युक्त मृतक की जनाज़े की नमाज़ पढ़ाई। क्या उक्त हनफ़ी इमाम का यह कृत्य हनफ़ी इमामों के नज़दीक जायज़ है? यदि यह नाजायज़ है, तो क्या उक्त इमाम का यह कार्य शरीअत के अनुसार ताज़ीर (दंड) के योग्य है और क्या ताज़ीर होनी चाहिए?

उत्तर: उपर्युक्त स्थिति में, वह इमाम एक अत्यंत गंभीर बड़े पाप (कबीरा गुनाह) का दोषी हुआ है, उसने महान कुरान के आदेश का उल्लंघन किया है। अल्लाह तआला फ़रमाता है: "और उनमें से जो मर जाए उस पर कभी (जनाज़े की) नमाज़ न पढ़ो।"[1] - अल्लाह तआला फ़रमाता है: उनके किसी भी मुर्दे की जनाज़े की नमाज़ कभी न पढ़ो। (त)

यहाँ ताज़ीर कौन दे सकता है, इसकी सज़ा इस्लामी शासक की राय पर निर्भर है; यदि वह चाहता तो पचहत्तर कोड़े लगवाता और यदि चाहता तो उसे मार भी सकता था क्योंकि उसने धर्म का अपमान किया। उसके पीछे नमाज़ जायज़ नहीं है और उसे इमामत से हटाना अनिवार्य है। 'तबीन अल-हकाइक' आदि में है: "क्योंकि उसे इमामत के लिए आगे बढ़ाने में उसका सम्मान है, जबकि शरीअत के अनुसार उनका अपमान करना अनिवार्य हो गया है।"[2] - इसलिए कि उसे इमाम बनाने में उसका सम्मान है, जबकि शरीअत के अनुसार उन पर उसका अपमान करना अनिवार्य है। (त)

'फ़तावा हुज्जह' और 'गुनया' में है: "यदि उन्होंने किसी फ़ासिक़ (पापी) को इमाम बनाया तो वे गुनहगार होंगे।"[3] (यदि लोगों ने किसी फ़ासिक़ को इमाम बनाया तो वे गुनहगार होंगे। त)। यह सब उस स्थिति में है जब उसने किसी सांसारिक लालच के कारण ऐसा किया हो। यदि धार्मिक दृष्टि से उसने इसे सवाब (पुण्य) का कार्य माना और राफ़ज़ी तबर्राई (सहाबा को बुरा कहने वाला) को ग़ुस्ल और नमाज़ का पात्र समझकर ये घृणित कार्य किए, तो वह मुसलमान ही नहीं रहा। यदि उसकी पत्नी है, तो वह उसके निकाह से निकल गई क्योंकि आजकल राफ़ज़ी तबर्राई आम तौर पर धर्मत्यागी (मुरतद) हैं, जैसा कि हमने अपने शोध ग्रंथ "रद्द अल-रफ़्ज़ा" में शोध किया है (जैसा कि हमने अपने रिसाला "रद्द अल-रफ़्ज़ा" में इसकी तहक़ीक़ की है। त)। और श्रेष्ठ न्यायविदों (फ़ुक़हा) के आदेशानुसार, तबर्रा (गाली-गलौज) करना स्वयं कुफ़्र (अविश्वास) है, जैसा कि 'अल-खुलासा', 'फ़तह अल-क़दीर' और कई अन्य पुस्तकों में है (जैसा कि खुलासा और फ़तह अल-क़दीर आदि बहुत सी किताबों में है। त), फिर जनाज़े की नमाज़ तो दूर की बात है, जैसा कि 'अल-इलाम' आदि में है और

हमने अपने फ़तावा में इसका वर्णन किया है (जैसा कि 'अल-इलाम बि-क़वाती अल-इस्लाम' में है और हमने अपने फ़तावा में बयान किया है। त)। और अल्लाह तआला ही बेहतर जानता है।

[1] कुरान 9/84 [2] तबीन अल-हकाइक, इमामत और नमाज़ में अशुद्धि का अध्याय, अल-मतबा अल-कुबरा अल-अमीरिया मिस्र द्वारा मुद्रित, 1/134 [3] ग़ुनयत अल-मुस्तमली, इमामत का खंड, सोहैल अकादमी लाहौर, पृ. 513

فتاوٰی رضویہ - جلد نہم

شیعہ امام سے متوفی مذکور کی نماز جنازہ پڑھائی۔ کیا امام مذکور حنفی المذہب کا یہ فعل ائمہ احناف کے نزدیک جائز ہے۔ اگر ناجائز ہے تو کیا امام صاحب مذکور کا یہ فعل شرعاً قابلِ تعزیر ہے اور کیا تعزیر ہونی چاہئے؟

الجواب: صورتِ مذکورہ میں وہ امام سخت اشد کبیرہ گناہ کا مرتکب ہوا، اُس نے حکمِ قرآنِ عظیم کا خلاف کیا، قال اللہ تعالٰی وَلَا تُصَلِّ عَلٰٓی اَحَدٍ مِّنْھُمْ مَّاتَ اَبَدًا - اللہ تعالٰی فرماتا ہے: ان کے کسی مُردے کی نمازِ جنازہ کبھی نہ پڑھو۔ (ت)

تعزیر یہاں کون دے سکتا ہے، اس کی سزا حاکمِ اسلام کی رائے پر ہے، وہ چاہتا تو پچھتر کوڑے لگاتا اور چاہتا تو قتل کرسکتا تھا کہ اُس نے مذہب کی توہین کی۔ اُس کے پیچھے نماز جائز نہیں اور اسے امامت سے معزول کرنا واجب، تبیین الحقائق وغیرہ میں ہے : لان في تقدیمه للامامة تعظیمه وقد وجب علیهم اهانة شرعاً - اس لئے کہ اسے امام بنانے میں تعظیم ہے جبکہ شرعاً ان پر اس کی اہانت واجب ہے (ت)

فتاوٰی حجہ وغنیہ میں ہے: لوقدموا فاسقا یا ثمون (اگر لوگوں نے کسی فاسق کو امام بنایا تو گنہگار ہوں گے۔ ت) یہ سب اس صورت میں ہے کہ اس نے کسی دنیوی طمع سے ایسا کیا ہو، اگر دینی طور پر اسے کارِ ثواب اور رافضی تبرائی کو مستحقِ غسل و نمازِ جان کر یہ حرکاتِ مردودہ کیں تو وہ مسلمان ہی نہ رہا۔ اگر عورت رکھتا ہو اس کے نکاح سے نکل گئی کہ آجکل رافضی تبرائی عموماً مرتدین ہیں کما حققناہ فی ردالرفضۃ (جیسا کہ ہم نے اپنے رسالہ "رد الرفضہ" میں اس کی تحقیق کی ہے۔ ت) اور بحکم فقہائے کرام تو نفسِ تبر اکفر ہے کما فی الخلاصۃ وفتح القدیر وغیرھا

کتب کثیرۃ (جیسا کہ خلاصہ اور فتح القدیر وغیرہ بہت سی کتابوں میں ہے۔ ت) نہ کہ نمازِ جنازہ کما فی الاعلام وغیرہ وبیناہ فی فتاونا (جیسا کہ الاعلام بقواطع الاسلام میں ہے اور ہم نے اپنے فتاوٰی میں بیان کیا ہے۔ ت) واللہ تعالٰی اعلم۔

1 القرآن ۸۴/۹ 2 تبیین الحقائق باب الامامۃ والحدث فی الصلوٰۃ مطبوعہ مطبعہ کبری امیریۃ مصر ۱/۱۳۴ 3 غنیۃ المستملی فصل فی الامامۃ سہیل اکیڈمی لاہور ص ۵۱۳

Fatawa Razawiyya Volume 9

Issue No. 38: From Chittorgarh, Mohalla Chhipian, submitted by all Muslims of Gangrar, 15 Muharram 1339 AH. Question: What do the scholars of religion say: if a transgender person (hijra) dies, should the funeral prayer be performed for them or not? And if it is performed, should the intention be made for a man or a woman? The Answer: If the transgender person is a Muslim, then performing their funeral prayer is obligatory (fard). There is no need for specific intention for male or female. The prayer for both men and women is the same. Particularly, these transgender people found here are actually men who make themselves appear as women. And Allah Almighty knows best.

Issue No. 39: From Mainpuri, submitted by Mujeebullah Sahab, 29 Jumada al-Akhirah 1339 AH. Question: What do the scholars of religion say: who is most entitled and superior for leading (imamat) the funeral prayer? Can the Imam of a Jameh Mosque or a Qazi, who in this sense conducts marriages but lacks other qualifications and has only read some common Urdu books, lead the funeral prayer without seeking permission from the heirs or guardians (awliya) of the deceased? And how is it for him to lead the prayer in the presence of several more superior and knowledgeable scholars (Aalim bi-Sunnah) and those more entitled to imamat? Is it necessary to seek permission from the primary heir or guardian of the deceased to lead the prayer, as is commonly practiced? And which Imam can lead the prayer even without seeking permission? Please explain and be rewarded. The Answer: The funeral prayer is the right of the deceased's guardian (wali). Others depend on his permission. If someone leads it without his permission, it is permissible to repeat the prayer, although repeating the funeral prayer is generally not sanctioned (mashroo'). A marriage registrar Qazi holds no Sharia office; he can never lead the prayer without the guardian's permission. Similarly, the Imam of a Jameh Mosque cannot lead if the deceased did not pray Friday prayers behind him or if he does not exceed the guardian in knowledge and virtue. Likewise, the Imam of the local neighborhood mosque (Imam al-Mahallah). Yes, if the deceased used to pray behind them and they are superior to the guardian in religious merit, they can lead without the guardian's permission. Additionally, holders of general authority (wilayat-e-aammah) such as the Sultan of Islam or his deputy, the ruler of the city or his deputy, and the Sharia Qazi appointed by the Sultan of Islam to adjudicate cases or his deputy—these individuals take precedence over the guardian and have absolutely no need to seek permission from him. In cases other than those mentioned, if both Imams and these public

officials lead the prayer, the guardian does not have the right to repeat it, but the communal obligation (fard kifayah) will be fulfilled. If the guardian followed them in prayer, then it is well and good; even if there was no initial permission, it is established now.

फ़तावा रज़विया जिल्द नहुम

मसला नंबर 38: चित्तौड़गढ़, मोहल्ला छिपियाँ से, गंग्रार के सभी मुसलमानों द्वारा प्रेषित, 15 मुहर्रम 1339 हिजरी। सवाल: धर्म के विद्वान क्या कहते हैं: यदि किसी हिजड़े की मृत्यु हो जाए, तो क्या उसकी जनाज़ा की नमाज़ पढ़ी जानी चाहिए या नहीं? और यदि पढ़ी जाए, तो नियत (इरादा) पुरुष की की जाए या स्त्री की? जवाब: यदि हिजड़ा मुसलमान है, तो उसकी जनाज़ा की नमाज़ फ़र्ज़ है। नियत में पुरुष या स्त्री के विशेष उल्लेख की कोई आवश्यकता नहीं है। पुरुष और स्त्री दोनों के लिए एक ही दुआ है। विशेष रूप से, यहाँ पाए जाने वाले ये हिजड़े वास्तव में पुरुष ही होते हैं जो स्वयं को स्त्री बनाते हैं। और अल्लाह तआला बेहतर जानता है।

मसला नंबर 39: मैनपुरी से, मुजीबुल्लाह साहब द्वारा प्रेषित, 29 जमादि-उल-आख़िरा 1339 हिजरी। सवाल: धर्म के विद्वान क्या कहते हैं कि जनाज़ा की नमाज़ की इमामत के लिए सबसे योग्य और श्रेष्ठ कौन है? क्या जामा मस्जिद का इमाम या काज़ी, जो इस अर्थ में निकाह पढ़वाता है लेकिन अन्य कोई योग्यता नहीं रखता और केवल मामूली उर्दू किताबें पढ़ी हैं, मृतक के वारिसों या वलियों (अभिभावकों) से अनुमति मांगे बिना जनाज़ा की नमाज़ पढ़ा सकता है? और कई श्रेष्ठ और सुन्नत के जानकार आलिमों की उपस्थिति में उसका नमाज़ पढ़ाना कैसा है? नमाज़ पढ़ाने के लिए वारिस या वली से अनुमति लेना, जैसा कि आमतौर पर प्रचलित है, क्या यह ज़रूरी है? और कौन सा इमाम बिना अनुमति मांगे भी नमाज़ पढ़ा सकता है? स्पष्ट करें और पुण्य प्राप्त करें। जवाब: जनाज़ा की नमाज़ मृतक के वली (अभिभावक) का अधिकार है। अन्य लोग उसकी अनुमति के मोहताज हैं। यदि कोई उसकी अनुमति के बिना नमाज़ पढ़ा दे, तो नमाज़ को दोहराना जायज़ है, हालाँकि जनाज़ा की नमाज़ को दोहराना सामान्यतः नियमसंगत (मशरूअ) नहीं है। निकाह पढ़ाने वाला काज़ी कोई शरीयत का पद नहीं है; वह वली की अनुमति के बिना हरगिज़ नमाज़ नहीं पढ़ा सकता। इसी तरह जामा मस्जिद का इमाम भी, यदि मृतक उसके पीछे जुमा आदि की नमाज़ न पढ़ता हो या वह ज्ञान और गुणों में वली से श्रेष्ठ न हो। इसी तरह मोहल्ले की मस्जिद का इमाम। हाँ, अगर मृतक उनके पीछे नमाज़ पढ़ा करता था और वे धार्मिक गुणों में वली से श्रेष्ठ हैं, तो वे वली की अनुमति के बिना नमाज़ पढ़ा सकते हैं। इसके अलावा, आम अधिकार रखने वाले लोग (अस्हाब-ए-विलायत-ए-आम्मा) जैसे सुल्तान-ए-इस्लाम या उसका नायब, शहर का हाकिम या उसका नायब, और शरीयत का काज़ी जिसे सुल्तान-ए-इस्लाम ने मुकदमों के फैसले के लिए नियुक्त किया हो या उसका नायब—ये लोग वली पर प्राथमिकता रखते हैं, उन्हें वली से अनुमति लेने की बिल्कुल ज़रूरत नहीं है। उल्लेखित

स्थितियों के अलावा, यदि दोनों इमाम और ये आम अधिकारी नमाज़ पढ़ा दें, तो वली को दोहराने का अधिकार नहीं है, लेकिन फ़र्ज़-ए-किफ़ाया अदा हो जाएगा। यदि वली ने उनके पीछे नमाज़ पढ़ ली, तो बहुत अच्छा; भले ही शुरू में अनुमति नहीं थी, अब हो गई।

पृष्ठ 175 का 948

فتاوی رضویہ جلد نہم

مسئلہ نمبر ۳۸: از چتور گڑھ محلہ چھپیاں مسئولہ جمیع مسلمان گنگرار ۱۵ محرم ۱۳۳۹ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین اگر ہجڑہ مر جائے اس پر نماز جنازہ پڑھی جائے یا نہیں؟ اور اگر پڑھی جائے تو نیت مرد کی جائے یا عورت کی؟ الجواب: ہجڑہ اگر مسلمان ہے تو اس کے جنازہ کی نماز فرض ہے، اور نیت میں مرد عورت کی تخصیص کی کوئی حاجت نہیں۔ مرد و عورت دونوں کی ایک ہی دعا ہے، خصوصاً یہ ہجڑے جو یہاں ہوتے ہیں مرد ہی ہوتے ہیں جو اپنے آپ کو عورت بناتے ہیں۔ واللہ تعالیٰ اعلم۔

مسئلہ نمبر ۳۹: از مین پوری مسئولہ مجیب اللہ صاحب ۲۹ جمادی الآخرہ ۱۳۳۹ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین کہ نماز جنازہ کے لئے امامت میں احق افضل کون ہے؟ کیا امام جامع مسجد یا قاضی اس معنی میں نکاح خوانی کرتا ہو اور لیاقت کچھ نہیں رکھتا، صرف معمولی اردو کی کتابیں دیکھے ہوئے ہو وہ بلا اذن طلب کئے میت کے ورثاء یا اولیاء سے نماز جنازہ پڑھا سکتا ہے؟ اور بوجودگی کئی افضل و اعلم بالسنہ عالم و احق بالامامۃ اس کا نماز پڑھنا کیسا ہے؟ یہ جو عام طور پر رائج کہ اول وارث یا ولی میت سے اذن لیتے ہیں نماز پڑھانے کا یہ کیا کچھ ضروری چیز ہے؟ اور کون امام بلا اذن طلب کئے بھی نماز پڑھا سکتا ہے؟ بینوا توجروا۔ الجواب: نماز جنازہ ولی میت کا حق ہے، دوسرا کہ اس کے اذن کا محتاج ہے، اگر بے اس کے اذن کے پڑھائے اسے اعادہ نماز جائز ہے حالانکہ نماز جنازہ کی تکرار مشروع نہیں۔ نکاح خوانی کا قاضی کوئی عہدہ شرعی نہیں وہ بے اذنِ ولی ہرگز نہیں پڑھا سکتا۔ یونہی جامع مسجد کا امام اگر میت جمعہ وغیرہ اس کے پیچھے نہ پڑھتا ہو یا وہ علم و فضل میں ولی میت سے زائد نہ ہو۔ اسی طرح امام المحلہ یعنی مسجد محلہ کا امام، ہاں اگر میت ان کے پیچھے نماز پڑھا کرتا تھا۔ اور یہ فضل دینی میں ولی سے زائد

ہیں تو بے اذنِ ولی پڑھا سکتے ہیں اور اصحابِ ولایت عامہ مثلاً سلطان اسلام یا اس کا نائب، حاکم شہر یا اس کا نائب، قاضی شرع جسے سلطان اسلام نے فصل مقدمات پر مقرر کیا یا اس کا نائب، یہ لوگ ولی پر مقدم ہیں، انہیں ولی سے اجازت لینے کی مطلقاً حاجت نہیں، اور صورتِ مذکورہ کے علاوہ دونوں امام اور یہ والیان عام اگر نماز پڑھا دیں تو ولی کو حق اعادہ نہیں مگر فرض کفایہ ادا ہو جائے گا، ولی نے اگر ان کی اقتدا کرلی فبہا کہ اذن ابتدا میں نہ تھا تو اب ہو گیا

Fatawa Razawiya, Volume 9

And if one did not follow the first congregation, it is permissible for them to pray again, and those who did not participate in the first congregation are allowed to join this congregation led by the guardian (Wali). It is stated in Tanwir al-Absar and Durr al-Mukhtar:

[Arabic side (Left Column)]: The ruler or his deputy is prioritized for the funeral prayer (firstly, then his deputy as mentioned in al-Fath and others - Shami), then the Qazi (then the governor's deputy, then the Qazi's deputy - Imdad from al-Zayla'i - Shami), then the local Imam. The precedence of rulers is mandatory, while the precedence of the local Imam is conditional upon being superior to the guardian; otherwise, the guardian is preferred, as stated in al-Mujtaba (I say: narrated from al-Baqali) and the author's commentary on al-Majma' (I say: narrated from al-Atabi). (The local Imam is the Imam of the specific mosque of the neighborhood; he has priority because the deceased was content with praying behind him during his life, so it is appropriate that he leads his prayer after death - Shami). In al-Dirayah, the Imam of the Grand Mosque (referred to in Sharh al-Munyah as the Friday Imam - Shami) has priority over the local Imam. (I say: evidently, his precedence is also recommended provided he is superior to the guardian. The reason for this is also because the deceased accepted him as his Imam during his life. If the deceased was not someone who performs the Friday prayer, like a woman for example, or if he used to pray behind someone else and did not pray behind him, then he [the Friday Imam] would not take precedence over the guardian - Shami).

[Urdu side (Right Column)]: In the funeral prayer, the ruler or his deputy takes precedence (it is better to say: then his deputy, as in Fath al-Qadir etc. - Shami). Then the Qazi (then the city ruler's deputy, then the Qazi's deputy - Imdad from Zayla'i - Shami). Then the local Imam and the rulers' precedence is mandatory, while the local Imam's precedence is recommended provided he is superior to the guardian, otherwise the guardian is better as in Mujtaba (I say: narrated from Baqali) and in the author's commentary on Majma' (I say: narrated from Atabi). (By local Imam is meant the one who is the Imam of the neighborhood mosque; the reason for his priority is that the deceased preferred to follow him during his life, so after death, he should lead his funeral prayer - Shami). In Dirayah, it says that the Imam of the Grand Mosque (expressed in Sharh Munyah as the Friday Imam - Shami) is better than the local Imam. (I say: it appears that his precedence is also optional/recommended provided he is superior to the guardian. The reason for this is also that the deceased

liked him as his Imam in life. So, if the deceased was not a Friday prayer-goer, like a woman, or someone who prays behind someone else and doesn't pray behind him, then he [the Friday Imam] will not take precedence over the guardian either - Shami).

फ़तावा रज़विया, जिल्द 9

और अगर उसने पहली जमात की पैरवी नहीं की, तो उसके लिए फिर से पढ़ना जायज़ है, और जो पहली जमात में शरीक नहीं हुए थे उन्हें वली की इस जमात में शामिल होने की इजाजत है। तनवीरुल अबसार और दुर्रे मुख्तार में है:

[अरबी पक्ष (बायाँ कॉलम)]: सुलतान या उसका नायब नमाज़े जनाज़ा के लिए सबसे पहले है (पहले फिर उसका नायब जैसे फ़तह वग़ैराह में है - शामी), फिर क़ाज़ी (फिर हाकिम का नायब, फिर क़ाज़ी का नायब - इमदाद अज़ ज़ैलई - शामी), फिर महल्ले का इमाम। हाकिमों को प्राथमिकता देना वाजिब है और महल्ले के इमाम को प्राथमिकता देना मुस्तहब है बशर्ते कि वह वली से अफ़ज़ल (श्रेष्ठ) हो, वरना वली बेहतर है जैसा कि मुजतबा में (मैं कहता हूँ: बक़ाली से मंक़ूल) है और लेखक की शराह मजमा में (मैं कहता हूँ: अताबी से मंक़ूल) है। (महल्ले के इमाम से मुराद वह है जो महल्ले की मस्जिद का इमाम हो, उसके औला होने की वजह यह है कि मरने वाले ने अपनी ज़िंदगी में उसकी पैरवी पसंद की, तो वफ़ात के बाद उसकी नमाज़े जनाज़ा भी उसी को पढ़ानी चाहिए - शामी)। दराया में है कि जामे मस्जिद का इमाम (शराह मुनिया में इसे इमाम-ए-जुमा कहा गया - शामी) महल्ले के इमाम से बेहतर है। (मैं कहता हूँ: ज़ाहिर यह है कि उसकी तक़दीम भी मुस्तहबी है बशर्ते कि वली से अफ़ज़ल हो। इसकी वजह भी यही है कि मरने वाले ने ज़िंदगी में उसे अपना इमाम पसंद किया, तो अगर मय्यत जुमा पढ़ने वाली नहीं है, जैसे औरत, या किसी और के पीछे नमाज़ पढ़ने वाला उसके पीछे नमाज़ नहीं पढ़ता, तो वह भी वली पर मुक़द्दम नहीं होगा - शामी)।

[उर्दू पक्ष (दायाँ कॉलम)]: नमाज़े जनाज़ा में मुक़द्दम सुलतान है या उसका नायब (बेहतर यह कहना है कि: फिर उसका नायब, जैसा कि फ़तहुल क़दीर वग़ैराह में है - शामी)। फिर क़ाज़ी (फिर हाकिम-ए-शहर का नायब, फिर क़ाज़ी का नायब -- इमदाद -- अज़ ज़ैलई -- शामी)। फिर महल्ले का इमाम और हुक्काम की तक़दीम वाजिब है और महल्ले के इमाम की तक़दीम मुस्तहब है बशर्ते कि वली से अफ़ज़ल हो, वरना वली बेहतर जैसा कि मुजतबा में (मैं कहता हूँ: बक़ाली से मंक़ूल) है और मुसन्निफ़ की शराह मजमा में (मैं कहता हूँ: अताबी से मंक़ूल) है। (महल्ले के इमाम से मुराद वह जो महल्ले की मस्जिद का इमाम हो, उसके औला होने की वजह यह है कि मरने वाले ने ज़िंदगी में उसकी इक़्तेदा पसंद की तो बा'ْद वफ़ात उसकी नमाज़े जनाज़ा इसी को पढ़ानी चाहिए -- शामी)। दराया में है कि इमाम-ए-जामे मस्जिद (शराह मुनिया में इसे इमाम-ए-जुमा से ता'बीर किया। शामी) महल्ले के इमाम से बेहतर है। (मैं कहता हूँ: ज़ाहिर यह है कि उसकी तक़दीम भी इस्तेहबाबी है बशर्ते कि वली से

अफ़ज़ल हो। इसकी वजह भी यही है कि मरने वाले ने ज़िंदगी में उसे अपना इमाम पसंद किया, तो मय्यत अगर जुमा पढ़ने वाली नहीं, जैसे औरत, या दूसरे के पीछे नमाज़ पढ़ने वाला उस के पीछे नमाज़ नहीं पढ़ता तो वह भी वली पर मुक़द्दम न होगा। शामी)।

पृष्ठ 176 का 948

اور اگر اقتداء نہ کی تو اُسے جائز ہے کہ دوبارہ پڑھے ، اور جو پہلی جماعت میں شریک نہ ہوئے تھے انہیں اس جماعتِ ولی میں شرکت کی اجازت ہے۔ تنویر الابصار و درِ مختار میں ہے :

[عربی حصہ (بائیں طرف)]: يُقدم في الصلوة عليه السلطان او نائبه (الاولی ثم نائبه كما فی الفتح وغيره ش) ثم القاضی (ثم خليفة الوالی ثم خليفة القاضی امداد عن زيلعي ش) ثم امام الحی وتقديم الولاة واجب وتقديم امام الحی بشرط ان يكون افضل من الولی والا فالولی كما في المجتبی (قلت عن البقالي) وشرح المجمع للمصنف (قلت عن العتابي) (وامام الحی وامام المسجد الخاص بالمحلة وانما كان اولی لان الميت رضی بالصلوة خلفه فی حال حياته فينبغي ان يصلی عليه بعد وفاته ش) وفي الدراية امام الجامع (عبر عنه فی شرح المنية بامام الجمعة ش) اولی من امام الحی (قلت والظاهر ان تقديمه ايضاً ندبي بشرط كونه افضل من الولی والعلة فيه ايضاً كون الميت رضيه امام له في حياته فلو لم يكن من يصلی الجمعة كالمرأة مثلاً او كان يصلی خلف غيره لم يقدم علی امام الحی اذالم يكن الميت يصلی خلفه لا يقدم علی الولی قال ش

[اردو حصہ (دائیں طرف)]: نماز جنازہ میں مقدم سلطان ہے یا اس کا نائب (بہتر یہ کہنا ہے کہ : پھر اس کا نائب، جیسا کہ فتح القدیر وغیرہ میں ہے۔ شامی) پھر قاضی (پھر حاکم شہر کا نائب، پھر قاضی کا نائب -- امداد۔ از زیلعی ۔ شامی) پھر امام محلہ اور حکام کی تقدیم واجب ہے اور امام محلہ کی تقدیم مستحب ہے بشرطیکہ ولی سے افضل ہو، ورنہ ولی بہتر جیسا کہ مجتبٰی میں (میں کہتا ہوں: بقالی سے منقول) ہے اور مصنف کی شرح مجمع میں (میں کہتا ہوں: عتابی سے منقول) ہے (امام محلہ سے مراد وہ کہ جو مسجد محلہ کا امام ہو، اس کے اولٰی ہونے کی وجہ یہ ہے کہ مرنے والے نے زندگی میں اس کی اقتداء پسند کی تو بعد وفات اس کی نماز جنازہ اسی کو پڑھانا

چاہئے۔شامی) درایہ میں ہے کہ امامِ جامع مسجد (شرح منیہ میں اسے امامِ جمعہ سے تعبیر کیا۔ شامی) امامِ محلہ سے بہتر ہے۔ (میں کہتا ہوں: ظاہر یہ ہے کہ اس کی تقدیم بھی استحبابی ہے بشرطیکہ ولی سے افضل ہو۔ اس کی وجہ بھی یہی ہے کہ مرنے والے نے زندگی میں اسے اپنا امام پسند کیا، تو میت اگر جمعہ پڑھنے والا نہیں، جیسے عورت، یا دوسرے کے پیچھے نماز پڑھنے والا اُس کے پیچھے نماز نہیں پڑھتا تو وہ بھی ولی پر مقدم نہ ہو گا۔ شامی

Fatawa Rizwia Volume 9

[Top Left Arabic Text:] As it will follow, the original right belongs to the guardian (wali). The rulers and the local Imam were prioritized over him for reasons already mentioned, and that reason is not present here. Then the guardian is determined according to the order of 'asabah' (paternal relatives) in marriage. If someone other than the guardian, who does not have the right of precedence over the guardian, performs the prayer and the guardian did not follow him, then the guardian can perform it again, even if it is at the grave, if he wishes, because of his right and not to fulfill the obligation (fard). Therefore, those who have already prayed are not allowed to repeat it with the guardian, because repeating the funeral prayer is not prescribed (unlawful). The text ends here. The additions in parentheses starting with 'I say' (qultu) are my own additions of references. Allah the Almighty knows best. (T)

[Top Right Urdu Translation:] ...said because it will be mentioned later that the original right belongs to the guardian. The precedence of rulers and the neighborhood Imam over him was due to the aforementioned reasoning, and that reason is not present here. Then the guardian follows the order of being an 'asabah' for conducting the marriage. If someone other than the guardian, who does not have the right of precedence over him, leads the prayer and the guardian did not follow him, the guardian can pray again, even at the grave if he wishes. This permission is due to his right, not because the obligation of the funeral prayer was not fulfilled. For this reason, those who have already prayed are not permitted to repeat it with the guardian because repeating the funeral prayer is not prescribed. The passage ends here. The additions of references within parentheses marked with 'I say' (qultu) are from my side, and the pure and exalted God knows best. (T)

[Bottom Urdu Section:] Issue No. 40: From Bengal, Sylhet District, Adam Pur Post Office, Ghor-Mar. Sent by Hafiz Abdul Hameed, Imam of the Mosque, 18 Jumada al-Akhirah 1321 AH. What is your ruling—may Allah have mercy on you—regarding this issue: Khadija Bibi, wife of Maulvi Abdul Kaleem, passed away. In the matter of the funeral prayer, will the woman's guardian be her husband, or her father, brothers, and paternal uncles? However, the father and other aforementioned relatives are uneducated and ignorant, unlike the husband. Also, from the husband's side, his uncle Hafiz Abdul Hallah, the Imam, etc., are present. What is your opinion—may Allah have mercy on you—on this case: Khadija Bibi, wife of Abdul Kaleem, died. Regarding the right to lead the funeral prayer, who is the woman's guardian—the husband, father, brother, or uncle? However, the father and other mentioned

relatives are uneducated/ignorant, while the husband is learned, and from the husband's side, his uncle is a Hafiz...

---

1 Durr al-Mukhtar Sharh Tanwir al-Absar, Chapter of Funeral Prayers, printed by Matba' Mujtabai Delhi, 1/122-23; Radd al-Muhtar, Chapter of Funeral Prayers, printed by Idara al-Tiba'ah al-Misriyah Egypt, 1/590.

फ़तावा रज़विया, जिल्द 9

[ऊपर बाईं ओर अरबी पाठ:] जैसा कि आगे आएगा, मूल अधिकार वली (अभिभावक) का है। शासकों और मोहल्ले के इमाम को उन पर प्राथमिकता दी गई थी जो पहले बताए गए कारणों की वजह से थी, और वह कारण यहाँ मौजूद नहीं है। फिर वली विवाह के'असबाह' (निकट संबंधियों) के क्रम के अनुसार है। यदि वली के अलावा किसी ऐसे व्यक्ति ने नमाज़ पढ़ाई जिसे वली पर प्राथमिकता का अधिकार नहीं है और वली ने उसका अनुसरण नहीं किया, तो वली फिर से नमाज़ पढ़ सकता है, चाहे वह कब्र पर ही क्यों न हो, अगर वह चाहे। यह अनुमति उसके अधिकार के कारण है, इसलिए नहीं कि नमाज़-ए-जनाज़ा का फ़र्ज़ अदा नहीं हुआ। इसीलिए जो लोग पहले नमाज़ पढ़ चुके हैं, उन्हें वली के साथ इसे दोहराने की अनुमति नहीं है क्योंकि नमाज़-ए-जनाज़ा का दोहराव शरीयत में मान्य नहीं है। मूल पाठ समाप्त हुआ। कोष्ठक में 'मैंने कहा' (क़ुलतु) के साथ दिए गए संदर्भ मेरी ओर से जोड़े गए हैं। और अल्लाह सुब्हानहु व तआला सबसे बेहतर जानता है। (त)

[ऊपर दाईं ओर उर्दू अनुवाद:] ...ने कहा इसलिए कि आगे आ रहा है कि असल में हक़ वली का है, इस पर हुक्काम और इमाम-ए-मोहल्ला की तक़दीम तअलील-ए-मज़कूरा के बाइस थी, वह इल्लत ही यहाँ मौजूद नहीं। फिर वली जो निकाह कराने में असबाह होने की तरतीब के एतबार से है, तो अगर वली के अलावा किसी ऐसे ने नमाज़ पढ़ी जिसे वली पर हक़-ए-तक़दीम हासिल नहीं और वली ने उसकी मुताबाअत न की तो वली फिर पढ़ सकता है अगरचे क़ब्र पर, अगर चाहे। यह इजाज़त उसके हक़ के सबब है, इस वजह से नहीं कि फ़र्ज़-ए-जनाज़ा अदा न हुआ। इसी लिए पहले जो लोग पढ़ चुके हों उन्हें वली के साथ एआदा (दोहराने) की इजाज़त नहीं इस लिए कि नमाज़-ए-जनाज़ा की तकरार ग़ैर मशरूअ (अमान्य) है। इबारत ख़त्म हुई। दरमियान में हलालैन (कोष्ठक) के अंदर 'क़ुलतु' (मैं कहता हूँ) के साथ हवालों का मेरी जानिब से इज़ाफ़ा है, और ख़ुदा-ए-पाक व बरतर ख़ूब जानने वाला है। (त)

[नीचे उर्दू भाग:] मसला नंबर 40: मुल्क-ए-बंगाल, ज़िला सिलहट, डाकखाना आदमपुर, घोड़ मरा। प्रेषक: हाफ़िज़ अब्दुल हमीद, इमाम मस्जिद, 18 जमादी-उल-आख़िरा 1321 हिजरी। आपका क्या कहना है—अल्लाह आप पर रहम करे—इस मसले में कि मौलवी अब्दुल कलीम की पत्नी ख़दीजा बीबी का इंतकाल हो गया। नमाज़-ए-जनाज़ा के मामले में औरत का वली उसका पति होगा या उसका पिता, भाई और चाचा? लेकिन पिता और अन्य उल्लिखित रिश्तेदार जाहिल और अनपढ़ हैं, जबकि पति शिक्षित (आलिम) है। साथ ही, पति की ओर से उसके चाचा हाफ़िज़ अब्दुल हल्ला, जो

इमाम हैं आदि मौजूद हैं। आप (रहमकुमुल्लाह तआला) का इस मसले में क्या विचार है कि अब्दुल कलीम की पत्नी ख़दीजा बीबी का इंतकाल हुआ, नमाज़-ए-जनाज़ा के हक़ में औरत का वली उसका पति होगा या बाप, भाई, चाचा? मगर बाप आदि ज़िक्र किए गए रिश्तेदार अनपढ़ (जाहिल) हैं, जबकि पति पढ़ा-लिखा है और पति की तरफ़ से उसके चाचा जो हाफ़िज़ हैं...

---

1 दुर्रे मुख़्तार शरह तनवीरुल अबसार, बाब सलातुल जनाइज़, मतबूआ मतबअ मुजतबाई दिल्ली, 1/122-23; रद्दुल मुहतार, बाब सलातुल जनाइज़, मतबूआ इदारातुत्तबाअतुल मिस्रिया मिस्र, 1/590.

فتاوٰی رضویہ جلد نہم

[اوپر بائیں جانب عربی عبارت:] لما یأتی من ان الاصل ان الحق للولی وانما قدم علیہ الولاۃ وامام الحی لما مر من التعلیل وھو غیر موجود ھھنا) ثم الولی بترتیب عصوبۃ الانکاح، فان صلی غیر الولی ممن لیس لہ حق التقدم علی الولی ولم یتابعہ عاد الولی ولو ھی قبرہ ان شاء لاجل حقہ لا لاسقاط الفرض ولذا لیس لمن صلی علیھا ان یعید من الولی لان تکرارھا غیر مشروع انتھی مزید امنی کل مصدر بلفظۃ قلت مختوما بھلال۔ واللہ سبحنہ تعالی اعلم۔

[اوپر دائیں جانب اردو ترجمہ:] نے کہا اس لئے کہ آگے آ رہا ہے کہ اصل میں حق ولی کا ہے، اس پر حکام اور امام محلہ کی تقدیم تعلیل مذکور کے باعث تھی وہ علت ہی یہاں موجود نہیں) پھر ولی جو نکاح کرانے میں عصبہ ہونے کی ترتیب کے اعتبار سے ہے تو اگر ولی کے علاوہ کسی ایسے نے نماز پڑھی جسے ولی پر حق تقدم حاصل نہیں اور ولی نے اس کی متابعت نہ کی تو ولی پھر پڑھ سکتا ہے اگرچہ قبر، اگر چاہے۔ یہ اجازت اس کے حق کے سبب ہے، اس وجہ سے نہیں کہ فرض جنازہ ادا نہ ہوا۔ اسی لئے پہلے جو لوگ پڑھ چکے ہوں انہیں ولی کے ساتھ اعادہ کی اجازت نہیں اس لئے کہ نماز جنازہ کی تکرار غیر مشروع ہے۔ عبارت ختم ہوئی۔ درمیان میں ہلالین کے اندر قلت (میں کہتا ہوں) کے ساتھ حوالوں کا میری جانب سے اضافہ ہے، اور خدائے پاک و برتر خوب جاننے والا ہے۔ (ت)

[نیچے اردو کا حصہ:] مسئلہ نمبر ۴۰: از ملک بنگال ضلع سلہٹ ڈاکخانہ آدم پور، گھوڑ مرامرسلہ حافظ عبدالحمید صاحب امام مسجد ۱۸ جمادی الآخرہ ۱۳۲۱ھ ما قولکم رحمکم اللہ تعالٰی اندریں مسئلہ کہ خدیجہ بی بی زوجہ مولوی عبدالکلیم صاحب رحلت نمود در حق صلوٰۃ جنازہ ولی زن شوھرش باشد یا پدرش و برادران و عمام او مگر پدر و غیرہ اقارب مذکورین جاہلان بے علم اند

بخلاف شوھر، نیز از جانب شوھر عم او حافظ عبدالحلہ امام الخ موجودست آپ رحمکم اللہ تعالیٰ کا اس مسئلہ میں کیا قول ہے کہ خدیجہ بی بی زوجہ عبدالکلیم صاحب کا انتقال ہوا، نمازِ جنازہ کے حق میں عورت کا ولی اس کا شوہر ہو گا یا باپ، بھائی، چچا؟ مگر باپ وغیرہ اقارب مذکورین جاہل بے علم ہیں، جب کہ شوہر صاحب علم ہے اور شوہر کی جانب سے اس کے چچا حافظ

---

1 در مختار شرح تنویر الابصار باب صلوٰۃ الجنائز مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی ۱/ ۱۲۲-۲۳، ردالمختار باب صلوٰۃ الجنائز مطبوعہ ادارۃ الطباعۃ المصریۃ مصر ۱/ ۵۹۰

Fatawa Razawiya, Volume 9

Question: Abdul Hameed, the local imam, is also present. In the mentioned case, to whom among them does the right to lead the funeral prayer belong? It should be noted that for two years, the scholars of Sylhet have disagreed on this issue. We hope that you will clear this doubt. Please state the ruling so you may be rewarded.

[Persian text of the question]: Then the guardianship (wilayat) of the prayer in the two mentioned cases, from whom is it hidden, let it not be hidden that for two years the scholars of Sylhet have had disagreements among themselves on this issue. I hope you will remove the doubt. Give your verdict and be rewarded.

The Answer: [Urdu Column]: The right to lead the funeral prayer for a husband comes after all other relatives. This right, similar to the right in marriage guardianship, follows the order of agnatic relationship (asabah) and proximity, going from the closest to the next closest. If none of these are present, only then does the husband take precedence. And their lack of knowledge (about rituals) does not waive their right; it is permissible for them to appoint whomever they wish to lead the prayer. Their appointee will also take precedence over the husband, just as they do. Even if the husband is an agnate himself, he has no right to dispute with the appointee, even if the latter is an outsider (non-relative). And the preference given to the local imam as a recommendation is based on legal reasoning and consideration of the current situation. It pertains specifically to the funerals of men. Women have no business with the mosque or the imam, as they neither attend congregational prayers nor are they permitted to do so by Sharia. Therefore, in the case under inquiry, the right to lead the prayer belongs to Khadija's father. Yes, if Khadija had a sane and adult son from Maulvi Abdul Kaleem, he would have had the right of precedence, as a son is preferred over a father in agnatic priority. And that son...

[Persian Column]: In the funeral prayer, the husband's guardianship comes after all relatives. This guardianship, like the guardianship of marriage, is according to the order of 'asabat' (agnatic relationship) and proximity, from the closest to the next closest. If none of them are present, then the husband takes precedence. And their ignorance (of prayer rituals) does not prevent their right; it is permissible for them to appoint whomever they wish for the imamate. Their appointee will also take precedence over the husband just like them, because the one who comes later (the husband), even if he is an agnate, has no right to dispute with the appointee, even if he (the appointee) is a stranger. And the precedence given to the local imam as a

recommendation is based on reasoning and consideration of special circumstances in funerals of men. What business do women have with the mosque and the imam, as they do not attend the congregation nor are they permitted by Sharia to do so? Therefore, in the case asked, the guardianship of the prayer belongs to Khadija's father. Indeed, if Khadija had a sane, adult son from Maulvi Abdul Kaleem, he would have the right of precedence, because in agnatic relationship, the son is preferred over the father. And that son...

फ़तावा रज़विया, जिल्द नौ (9)

प्रश्न: अब्दुल हमीद मोहल्ले के इमाम भी मौजूद हैं। तो उपरोक्त स्थिति में नमाज़ (जनाज़े) की विलायत (अधिकार) उनमें से किसके लिए है? स्पष्ट हो कि दो वर्षों से सिलहट के विद्वान इस मसले में आपस में मतभेद रखते हैं। आशा है कि भ्रम दूर फ़रमाएंगे। बयान फ़रमाएं, पुण्य प्राप्त करें।

[फ़ारसी प्रश्न]: तो बताए गए दो मामलों में नमाज़ का अधिकार (विलायत) किसके पास है? यह स्पष्ट हो कि दो साल से सिलहट के विद्वान इस मामले में आपस में मतभेद रख रहे हैं। आशा है कि आप इस भ्रम को दूर करेंगे। बयान फ़रमाएं, पुण्य प्राप्त करें।

उत्तर: [उर्दू कॉलम]: जनाज़े की नमाज़ की विलायत पति के लिए सभी रिश्तेदारों के बाद है। यह विलायत, निकाह की विलायत की तरह असबा (पितृवंशीय रिश्तेदार) होने और नजदीकी के क्रम पर 'करीब से करीब' के लिए होती है। अगर उनमें से कोई न हो, तो उस समय पति अग्रगामी (मुक़द्दम) होगा। और उनका अज्ञान उनके अधिकार में बाधक नहीं है, उनके लिए यह जायज़ है कि जिसे चाहें इमामत का हुक्म दे दें। उनका नियुक्त किया हुआ (मामूर) भी उन्हीं की तरह पति पर अग्रगामी होगा, क्योंकि बाद वाले को (पति), चाहे वह स्वयं असबा क्यों न हो, नियुक्त व्यक्ति के साथ विवाद (निज़ा) का अधिकार नहीं है, भले ही वह अजनबी ही क्यों न हो। और मोहल्ले के इमाम को जो प्राथमिकता दी गई है, उसकी वजह और वर्तमान स्थिति को देखते हुए, वह केवल पुरुषों के जनाज़े के लिए विशेष है। औरतों का मस्जिद और इमाम से क्या सरोकार, क्योंकि न तो वे जमात में उपस्थित होती हैं और न ही उन्हें शरई तौर पर इसकी अनुमति है। अतः पूछे गए मसले में नमाज़ की विलायत ख़दीजा के पिता को होगी। हाँ, अगर ख़दीजा का मौलवी अब्दुल कलीम से कोई अक्ल वाला बालिग लड़का होता, तो उसे प्राथमिकता का अधिकार होता क्योंकि असबा होने में बेटे को बाप पर वरीयता (तरजीह) प्राप्त है। और उस लड़के को...

[फ़ारसी कॉलम]: जनाज़े की नमाज़ की विलायत पति के लिए सभी रिश्तेदारों के बाद है। यह विलायत, निकाह की विलायत की तरह असबा होने और नजदीकी के क्रम पर सबसे करीबी फिर उससे करीबी के लिए होती है। अगर उनमें से कोई न हो, तो उस समय पति अग्रगामी होगा। और उनकी अज्ञानता उनके अधिकार में बाधक नहीं है, उनके लिए यह जायज़ है कि जिसे चाहें इमामत का हुक्म दे दें। उनका नियुक्त किया हुआ व्यक्ति भी उनकी तरह पति पर अग्रगामी होगा, क्योंकि बाद वाले को, चाहे वह स्वयं असबा क्यों न हो, नियुक्त व्यक्ति के साथ विवाद करने का अधिकार नहीं

है, भले ही वह अजनबी ही क्यों न हो। और मोहल्ले के इमाम को जो प्राथमिकता दी गई है, उसका कारण वर्तमान समय की स्थिति को देखते हुए है। वह पुरुषों के जनाज़े के साथ विशेष है। औरतों का मस्जिद और इमाम से क्या काम, न तो वे जमात में उपस्थित होती हैं और न ही उन्हें शरई तौर पर इसकी अनुमति है। तो पूछे गए मामले में नमाज़ की विलायत ख़दीजा के पिता को होगी। हाँ, अगर ख़दीजा का मौलवी अब्दुल कलीम से कोई अक्ल वाला बालिग लड़का होता, तो उसे प्राथमिकता का अधिकार होता क्योंकि असबा होने में बेटे को बाप पर प्राथमिकता प्राप्त है। और उस लड़के को...

فتاویٰ رضویہ، جلد نہم

پس ولایتِ نماز دو صورتِ مذکورہ ازیناں کہ است مخفی مباد کہ از دو سال علماے سلہٹ دریں مسئلہ باہم اختلاف دارند۔ اُمید کہ رفع شک فرمایند۔ بینوا توجروا | عبدالحمید امام محلہ بھی موجود ہیں۔ تو صورتِ مذکورہ میں نماز کی ولایت ان میں سے کس کے لئے ہے۔ واضح ہو کہ دو سال سے سلہٹ کے علماء اس مسئلہ میں باہم اختلاف رکھتے ہیں۔ امید ہے کہ شک دور فرمائیں گے۔ بیان فرمائیں اجر پائیں۔

الجواب:

در ولایتِ نمازِ جنازہ شوہر از ہمہ اقارب موخر است ایں ولایت ہمچو ولایتِ نکاح بترتیب عصوبت و قرابت اقرب فالاقرب را رسد اگر زیناں ہیچکس نباشد شوہر مقدم بود۔ | نمازِ جنازہ کی ولایت شوہر تمام اقارب کے بعد ہے۔ یہ ولایت، ولایتِ نکاح کی طرح عصبہ ہونے اور قریبی ہونے کی ترتیب پر قریب تر پھر قریب تر کے لئے ہوتی ہے۔ اگر ان میں سے کوئی نہ ہو تو اُس وقت شوہر مقدّم ہوگا۔

و جہلِ آناں مانع حقِ آناں نیست، ایشاں را رواست کہ ہر کرا خواہند بامامت امر کنند۔ مامور ایشاں ہمچو ایشاں مقدم بر زوج بود کہ متاخر را اگرچہ خود عصبہ باشد بامامور متقدم حقِ منازعت نیست گواجنی باش۔ | اور ان کا جہل ان کے حق سے مانع نہیں، ان کے لئے روا ہے کہ جسے چاہیں امامت کا حکم دے دیں، ان کا مامور بھی ان ہی طرح شوہر پر مقدم ہوگا کہ متاخر کو اگرچہ عصبہ ہو مامور کے ساتھ نزاع کا حق نہیں گو وہ اجنبی ہو۔

و آں کہ امامِ محلہ را استحبابا تقدیم دادہ اند بحکم تعلیل و نظر بر مان خاص در جنازہ مردان ست۔ زنان را با مسجد و امام چہ کار کہ ایشاں نہ حاضر جماعت می شوند نہ شرعاً اجازتش دادند پس در صورت مستفسرہ ولایتِ نمازِ پدر خدیجہ را بود۔ | اور امامِ محلہ کو جو تقدیم دی گئی ہے اس کی علت اور زمانہ حال پر نظر کرتے ہوئے۔ وہ مردوں کے جنازے سے خاص ہے۔ عورتوں جو مسجد اور امام سے کیا کام کہ یہ حاضر جماعت ہوتی ہیں نہ ان کو شرعاً اس کی اجازت ہی ہے۔ تو صورتِ مسئولہ میں نماز کی ولایت خدیجہ کے والد کو ہوگی۔

آرے اگر خدیجہ از مولوی عبدالکلیم پسرے عاقل بالغ داشتے حقِ تقدم مراور بودے کہ پسر بر پدر در عصوبت مرجح است و آں پسر را | ہاں اگر خدیجہ کا مولوی عبدالکلیم سے کوئی عاقل بالغ لڑکا ہوتا تو اسے حقِ تقدّم ہوتا کیونکہ عصبہ ہونے میں بیٹے کو باپ پر ترجیح حاصل ہے۔ اور اس لڑکے کو

Fatawa Rizvia Volume 9

Sharia commands that you should put forward your father, Maulvi Abdul Hakim, and out of respect, do not step ahead of him. In this way, Maulvi Abdul Hakim would have precedence. It is stated in 'Durr-al-Mukhtar': In leading the funeral prayer, the Sultan of Islam is foremost if he is present, or his deputy, who is the governor of the city. Then the Qadi (judge), then the Kotwal (police chief), then his deputy, then the deputy of the Qadi, and then the Imam of the neighborhood (Imam al-Hayy). There is some ambiguity here, and the ruling is that prioritizing the officials is mandatory (wajib), while prioritizing the Imam of the neighborhood is only recommended (mandub), provided he is more virtuous than the guardian (wali); otherwise, the guardian is better. Then comes the guardian. The order of priority here is the same as the order of agnatic kinship (asaba) in marriage, except that the father is unanimously given precedence over the son here. However, if the son is a scholar and the father is ignorant, then the son is more deserving. If there is no guardian, then the husband, then the neighbors. The guardian, and similarly anyone who has precedence, has the right to give permission to someone else to lead, because it is his right and he has the power to waive it. However, if there is someone equal to him in rank, even if younger in age, that person has the right to prevent him because they share the same right. As for a distant relative, they do not have the right to prevent. (Taken briefly). In 'Radd-al-Muhtar', it is said regarding the phrase (then the Imam of the neighborhood): The Imam of the neighborhood is more deserving because...

1 Durr-al-Mukhtar, Chapter on Funeral Prayers, printed by Matba' Mujtabai Delhi, 1/122 Page 179 of 948

फतावा रज़विया जिल्द 9

शरीयत हुक्म देती है कि अपने बाप मौलवी अब्दुल हकीम को आगे कर, और अदब का लिहाज़ कर के उनके आगे कदम न रख। इस तरह मौलवी अब्दुल हकीम को तक़दुम (प्राथमिकता) प्राप्त हो जाता। 'दुर्रे मुख़्तार' में है: नमाज़-ए-जनाज़ा पढ़ाने में मुक़द्दम (प्रथम) सुल्तान-ए-इस्लाम है अगर वह मौजूद हो या उसका नायब, यह शहर का हाकिम-ए-इस्लाम है। फिर क़ाज़ी, फिर कोतवाल, फिर उसका ख़लीफ़ा, फिर क़ाज़ी का ख़लीफ़ा, फिर इमाम-ए-मोहल्ला। इसमें बराबरी का इह्याम (संदेह) है और हुक्म यह है कि हुक्काम की तक़दीम वाजिब है और इमाम-ए-मोहल्ला की तक़दीम सिर्फ़ मंदूब (पसंदीदा) है बशर्ते कि वह वली (अभिभावक) से अफ़ज़ल हो, वरना वली बेहतर है। फिर वली। निकाह कराने में अस्बा (पितृवंशीय संबंधी) होने की जो तरतीब है वही यहाँ भी होगी, मगर बाप कि वह बेटे पर यहाँ बिल-इत्तेफ़ाक़ मुक़द्दम है लेकिन अगर बेटा आलिम और बाप जाहिल हो तो बेटा औला (अधिक योग्य) है। अगर कोई न हो तो शौहर फिर हमसाये (पड़ोसी)। वली को और इसी तरह हर उस शख़्स को जिसे दूसरों पर तक़दुम है यह हक़ हासिल है कि किसी और को इज़न (अनुमति) दे दे क्योंकि यह उसका हक़ है तो उसे बातिल (रद्द) करने का अख्तियार होगा। लेकिन वहाँ अगर कोई उसके मसावी (बराबर) हो तो उसे अगरचे वह उम्र में छोटा ही हो, दूसरे को रोकने का हक़ हासिल है क्योंकि हक़ में वह उसका शरीक (साझेदार) है। हाँ बईद (दूर के रिश्तेदार) को रोकने का अख्तियार नहीं है। (संक्षेप में)। 'रद-उल-मुह्तार' में है: इमाम-ए-मोहल्ला इसलिए औला है...

1 दुर्रे मुख़्तार, बाब सलातुल जनाइज़, मत्तबूआ मतबा मुज्तबाई दिल्ली, 1/122 पृष्ठ 948 का 179

فتاوٰی رضویہ جلد نہم

شریعت حکم دیتی ہے کہ اپنے باپ مولوی عبدالحکیم کو آگے کر ، اور ادب کا لحاظ کر کے اس کے آگے قدم نہ رکھ۔ اس طرح مولوی عبدالحکیم کو تقدم ہو جاتا۔ در مختار میں ہے: نماز جنازہ پڑھانے میں مقدم سلطان اسلام ہے اگر وہ موجود ہو یا اس کا نائب، یہ شہر کا حاکم اسلام ہے۔ پھر قاضی ، پھر کوتوال ، پھر اس کا خلیفہ پھر قاضی کا خلیفہ ، پھر امام محلہ۔ اس میں برابری کا ایہام ہے اور حکم یہ ہے کہ حکام کی تقدیم واجب ہے اور امام محلہ کی تقدیم صرف مندوب ہے بشرطیکہ ولی سے افضل ہو، ورنہ ولی بہتر ہے۔ پھر ولی۔ نکاح کرانے میں عصبہ ہونے کی جو ترتیب ہے وہی یہاں بھی ہوگی مگر باپ کہ وہ بیٹے پر یہاں بالاتفاق مقدم ہے لیکن اگر بیٹا عالم اور باپ جاہل تو بیٹا اولٰی ہے۔ اگر کوئی نہ ہو تو شوہر پھر ہمسائے۔ ولی کو اور اسی طرح ہر اس شخص کو جسے دوسروں پر تقدم ہے یہ حق حاصل ہے کہ کسی اور کو اذن دے دے کیونکہ یہ اس کا حق ہے تو اسے باطل کرنے کا اختیار ہو گا۔ لیکن وہاں اگر کوئی اس کے مساوی ہو تو اسے اگرچہ وہ عمر میں چھوٹا ہی ہو۔ دوسرے کو روکنے کا حق حاصل ہے کیونکہ حق میں وہ اس کا شریک ہے ہاں بعید کو روکنے کا اختیار نہیں اھ باختصار۔ ردالمحتار میں ہے: امام محلہ اس لئے اولٰی ہے

1 در مختار باب صلوۃ الجنائز مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی ۱/ ۱۲۲ صفحہ 179 از 948

Fatawa Razawiya - Volume 9

(Arabic Text): "And it is indeed more appropriate because the deceased was pleased with praying behind him during his lifetime, so it is fitting that he should lead the prayer over him after his death. It is said in Sharh al-Munya: Based on this reasoning, if it were known that he was not pleased with him during his lifetime, it would be appropriate that his precedence should not be recommended (mustahab). End. I say: This is accepted if his lack of pleasure was for a valid reason, otherwise not. Reflect. This is what is in Radd al-Muhtar. And I saw myself writing on its margin what follows:"

(Urdu Translation/Explanation): Because the deceased was pleased with praying behind him during his life, so after his death, he should also be the one to lead the prayer. It is stated in Sharh al-Munya: In view of this reasoning, if he was not pleased with him in his life, then his precedence should not be recommended. End. I say, this is acceptable only in the case when there is a valid reason for his displeasure, otherwise not. Reflect. The text of Radd al-Muhtar ends. I saw and wrote the following on its margin:

(Arabic Text): "I say: After a few lines, it comes that the right belongs to the guardian (wali) only, and the precedence of the local imam is recommended because of the aforementioned reasoning. So when the cause (illa) is absent, the effect (ma'lul) will also be absent, and there is no involvement in this regarding whether his lack of pleasure was for a valid reason or not. Reflect. Then it is mentioned in Radd al-Muhtar: As for the imam of the funeral prayer whose condition was made by the endower (waqif) and for whom a stipend was set from his endowment, does he take precedence over the guardian like the local imam or not? Because it is definitive that the cause of being pleased with praying behind him during lifetime is specific only to the local imam. Al-Maqdisi considered him to be like a complete stranger because he is only appointed for travelers and those who have no guardian."

(Urdu Translation/Explanation): I say: After a few lines, it is mentioned that the right belongs only to the guardian (wali), and the precedence of the local Imam is recommended due to the aforementioned reasoning. So when this cause (illa) expires, the effect (ma'lul) will also expire, and there is no involvement of any valid reason for his displeasure in this. One should reflect. Further, it is mentioned in Radd al-Muhtar: Now the question is whether the Imam who is appointed to lead the funeral prayer, as stipulated by the endower and for whom a salary is fixed from the

endowment, will take precedence over the guardian like the local Imam or not? Because it is a definitive matter that the cause of being pleased with following in prayer during life is specific only to the local Imam. Imam al-Maqdisi stated that he is like a total stranger because his appointment is for travelers and those deceased who have no guardian.

---

1 Radd al-Muhtar, Chapter on Funeral Prayers, printed by Mustafa al-Babi, Egypt, 1/649

फ़तावा रज़विया - जिल्द नवीं (9)

(अरबी पाठ): "और यह वास्तव में अधिक उपयुक्त है क्योंकि मृतक अपने जीवनकाल में उनके पीछे नमाज़ पढ़ने से प्रसन्न था, इसलिए यह उचित है कि उसकी मृत्यु के बाद भी वही नमाज़ पढ़ाए। 'शरह अल-मुन्या' में है: इस तर्क के आधार पर, यदि यह ज्ञात हो कि वह अपने जीवनकाल में उससे प्रसन्न नहीं था, तो उसकी प्राथमिकता मुस्तहब (पसंदीदा) नहीं होनी चाहिए। समाप्त। मैं कहता हूँ: यह उस स्थिति में स्वीकार्य है जब उसकी अप्रसन्नता का कोई वैध कारण हो, अन्यथा नहीं। विचार करें। यह 'रद अल-मुहतार' में है। और मैंने देखा कि मैंने इसके हाशिये पर यह लिखा है:"

(उर्दू अनुवाद/व्याख्या): कि मरने वाला अपनी ज़िन्दगी में उसके पीछे नमाज़ पढ़ने पर राजी था तो वफ़ात के बाद भी उसी को पढ़ाना चाहिए। शरह मुन्या में है: इस दलील के पेशे नज़र अगर वो ज़िन्दगी में उससे राजी न था तो उसकी तक़दीम मुस्तहब न होनी चाहिए। इह (समाप्त)। मैं कहता हूँ ये उस सूरत में मुसल्लम (स्वीकार्य) है जब उसकी नाराजगी की सही वजह हो वर्ना नहीं। ताम्मुल (विचार) करो। रद अल-मुहतार की इबारत खत्म हुई। मैंने देखा और उसके हाशिये पर मैंने ये लिखा है:

(अरबी पाठ): "अकौल (मैं कहता हूँ): कुछ पंक्तियों के बाद आ रहा है कि अधिकार केवल वली (अभिभावक) का ही है, और स्थानीय इमाम की प्राथमिकता पूर्वोक्त तर्क के कारण मुस्तहब है। इसलिए जब कारण (इल्लत) समाप्त हो जाता है, तो परिणाम (मलूल) भी समाप्त हो जाएगा, और इसमें इस बात का कोई दखल नहीं है कि उसकी अप्रसन्नता किसी वैध कारण से थी या नहीं। इस पर विचार करना चाहिए। फिर 'रद अल-मुहतार' में उल्लेख है: जहाँ तक जनाज़ा पढ़ाने वाले उस इमाम का सवाल है जिसकी शर्त वक़्फ़ करने वाले ने रखी थी और उसके लिए वक़्फ़ से वेतन निर्धारित किया गया था, तो क्या उसे स्थानीय इमाम की तरह वली पर प्राथमिकता दी जाएगी या नहीं? क्योंकि यह निश्चित है कि जीवन में उसके पीछे नमाज़ पढ़ने पर राजी होने का तर्क केवल स्थानीय इमाम के मामले में ही है। अल-मक़दिसी ने इसे बिल्कुल अजनबी की तरह माना है क्योंकि उसकी नियुक्ति केवल मुसाफिरों और उन लोगों के लिए होती है जिनका कोई वली नहीं होता।"

(उर्दू अनुवाद/व्याख्या): अकौल: चंद सुतूर (पंक्तियों) के बाद आ रहा है कि हक़ वली ही का है और इमाम-ए-महल्ला की तक़दीम (प्राथमिकता) तलील-ए-मज़कूर के बाइस मुस्तहब है, तो जब ये इल्लत फ़ौत (समाप्त) हो तो मलूल भी फ़ौत होगा और इसमें किसी वजह-ए-सही के तहत उसकी नाराज़गी

होने को कोई दखल नहीं। ताम्मुल करना चाहिए। आगे रद अल-मुहतार में ज़िक्र है कि: अब सवाल ये है कि वो इमाम जो जनाज़ा पढ़ाने के लिए मुक़र्रर (नियुक्त) हो, जिसकी शर्त वक़्फ़ करने वाले ने की है और वक़्फ़ से उसके लिए तनख्वाह मुक़र्रर कर दी है, क्या इमाम-ए-महल्ला की तरह वो भी वली पर मुक़द्दम (प्रथम) होगा या मुक़द्दम न होगा? क्योंकि क़तई बात है ज़िन्दगी में इक़्तिदा (अनुसरण) से राजी होने की इल्लत सिर्फ़ इमाम-ए-महल्ला के हक़ में है। इमाम मक़दिसी ने इज़हार फ़रमाया कि वो बिल्कुल अजनबी की तरह है क्योंकि उसका तक़र्रुर (नियुक्ति) मुसाफिरों और ऐसे मुर्दों के लिए होता है जिनका कोई वली न हो।

---

1 रद अल-मुहतार, बाब सलातुल जनाइज़, मुस्तफ़ा अल-बाबी मिस्र द्वारा मुद्रित, 1/649

وانما كان اولى لان الميت رضى بالصلوة خلفه فيه حال حياته فينبغي ان يصلى عليه بعد وفاته قال في شرح المنية فعلى هذا العلم انه كان غير راض به حال حياته ينبغي ان لايستحب تقديمه اه قلت هذا مسلم ان كان عدم رضاه به لوجه صحيح والا فلا تأمل ١ ه ما في ردالمحتار ورأيتني كتبت على هامشه مانصه۔

کہ مرنے والا اپنی زندگی میں اس کے پیچھے نماز پڑھنے پر راضی تھا تو بعد وفات بھی اسی کو پڑھانا چاہئے۔ شرح منیہ میں ہے : اس تعلیل کے پیش نظر اگر وہ زندگی میں اس سے راضی نہ تھا تو اس کی تقدیم مستحب نہ ہونی چاہئے۔ اھ۔ میں کہتا ہوں یہ اس صورت میں مسلّم ہے جب اس کی ناراضی کی صحیح وجہ تحت ہو ورنہ نہیں۔ تامل کرو۔۔ ردالمحتار کی عبارت ختم ہوئی۔ میں نے دیکھا اور اس کے حاشیہ پر میں نے یہ لکھا ہے:

اقول: سيأتي بعد سطران الحق انما هو للولى وانما يستحب تقديم امام الحى لاجل التعليل المذكور فاذ افاتت العلة فليفت المعلول ولادخل فى ذلك لكون عدم رضاه بوجه صحيح فليتأمل۔ ثم قال فى ردالمحتار واما امام مصلى الجنازة الذى شرطه الواقف وجعل له معلوما من وقفه فهل يقدم على الولى كامام الحى ام لا للقطع بان علة الرضا بالصلوة خلفه فى حياته خاصة بامام المحلة واستظهر المقدسى انه كالاجنبى مطلقا لانه انما يجعل للغرباء ومن لا ولى له۔

اقول : چند سطور بعد آرہا ہے کہ حق ولی ہی کا ہے اور امامِ محلّہ کی تقدیم تعلیل مذکور کے باعث مستحب ہے تو جب یہ علّت فوت ہو تو معلول بھی فوت ہوگا اور اس میں کسی وجہ صحیح کے تحت اس کی ناراضی ہونے کو کوئی دخل نہیں۔ تامل کرنا چاہئے۔ آگے ردالمحتار میں ذکر ہے کہ :

اب سوال یہ ہے کہ وہ امام جو جنازہ پڑھانے کے لئے مقرر ہو، جس کی وقف کرنے والے نے شرط کی ہے اور وقف سے اس کے لئے تنخواہ مقرر کردی ہے کیا امامِ محلّہ کی طرح وہ بھی ولی پر مقدم ہوگا یا مقدم نہ ہوگا ؟ کیونکہ قطعی بات ہے زندگی میں اقتدا سے راضی ہونے کے علت صرف امامِ محلّہ کے حق میں ہے۔ امام مقدسی نے اظہار فرمایا کہ وہ بالکل اجنبی کی طرح ہے کیونکہ اس کا تقرر مسافروں اور ایسے مُردوں کے لئے ہوتا جن کا کوئی ولی نہ ہو۔

---

1 ردالمحتار باب صلوۃ الجنائز مطبوعہ مصطفیٰ البابی مصر ۱/ ۶۴۹

Fatawa Razawiyya, Volume 9

(Arabic Column): I say: And this is more appropriate because of what follows, that the original rule is that the right belongs to the guardian (wali). The rulers and the local imam are prioritized over him because of the aforementioned reason, which is not present here. The difference between him and the regular imam (Imam al-Ratib) is clear because he was not satisfied to pray behind him during his lifetime, unlike the regular imam. It is stated in Sharh al-Munyah: "The basic rule is that the right to lead the [funeral] prayer belongs to the guardian. Therefore, he is prioritized over everyone according to the view of Abu Yusuf and a narration from Abu Hanifah, because this is a ruling related to guardianship, like marriage. However, the preferred legal opinion (Istihsan), which is the manifest report (Zahir al-Riwayah), is to prioritize the ruler and the like for the reason already mentioned." His statement (according to the order of agnatic kinship in marriage): Therefore, there is no guardianship for women or the husband, although he is more entitled than a stranger. I say: It appears that the maternal relatives (Dhu al-Arham) are included in the guardianship, and the restriction to agnates (Asubah) is only to exclude women. Thus, they are more entitled than a stranger, and it is...

(Urdu Column): I say: (I say) This is better because it is coming up that the original right belongs to the guardian. The prioritization of rulers and the local imam over him is due to the mentioned reason, and that reason is not present here. And the difference between this funeral imam and the appointed imam for the five daily prayers is clear because he did not intend to pray behind him during his life, while the case of the appointed imam is not like this. It is in Sharh Munyah that the basic rule is that the right to the prayer belongs to the guardian. That's why according to Imam Abu Yusuf and in one narration from Imam Abu Hanifah, he is prior to all. Because this is such a ruling which relates to guardianship, just like the matter of performing a marriage. But the preference (Istihsan) is that here the Sultan etc. should be prioritized, the reason for which has been explained. And this is the Zahir al-Riwayah. __ The text of Durr-e-Mukhtar (The order of being agnates in performing marriage will be the same). From this, it became known that there is no guardianship for women, nor for the husband, but he is more entitled than a stranger. I say the apparent thing is that maternal relatives (Dhu al-Arham) are also included in guardianship, and the restriction of being an agnate is only to exclude women.

फतावा रज़विया, जिल्द 9

(अरबी स्तंभ): मैं कहता हूँ: और यह अधिक उचित है क्योंकि आगे आने वाला है कि मूल रूप से यह अधिकार अभिभावक (वली) का है। उन पर शासकों और मोहल्ले के इमाम को जो प्राथमिकता दी गई है, वह पूर्वोक्त तर्क के कारण है, और वह कारण यहाँ मौजूद नहीं है। जनाज़ा पढ़ाने वाले इमाम और नियमित इमाम (इमाम अल-रातिब) के बीच का अंतर स्पष्ट है क्योंकि मृतक अपने जीवनकाल में उसके पीछे नमाज़ पढ़ने से संतुष्ट नहीं था, जबकि नियमित इमाम की स्थिति अलग है। शरह अल-मुन्याह में कहा गया है: "मूल सिद्धांत यह है कि नमाज़ का अधिकार अभिभावक का है। इसलिए उन्हें इमाम अबू यूसुफ के अनुसार और इमाम अबू हनीफा की एक रिवायत में सभी पर प्राथमिकता दी गई है, क्योंकि यह विलायत (संरक्षण) से संबंधित हुक्म है, जैसे निकाह। हालाँकि, इस्तेहसान (पसंदीदा राय), जो कि ज़ाहिर अर-रिवायत है, सुल्तान आदि को प्राथमिकता देना है, जैसा कि उल्लेख किया जा चुका है।" उनका कथन (निकाह में असबा (पुरुष सगे-संबंधी) होने के क्रम के अनुसार): अतः महिलाओं या पति के लिए कोई विलायत नहीं है, हालांकि वह एक अजनबी से अधिक हकदार है। मैं कहता हूँ: ऐसा प्रतीत होता है कि ज़वी अल-अर्हाम (मातृ-पक्ष के रिश्तेदार) भी विलायत में शामिल हैं, और असबा होने की शर्त केवल महिलाओं को बाहर करने के लिए है। अतः वे अजनबी से अधिक हकदार हैं और...

(उर्दू स्तंभ): मैं कहता हूँ: (मैं कहता हूँ) यह बेहतर है इसलिए कि आगे आ रहा है कि वास्तव में यह अधिकार वली का है। इस पर शासकों और मोहल्ले के इमाम को जो प्राथमिकता दी गई है, वह वर्णित कारण की वजह से है, और वह कारण यहाँ मौजूद नहीं है। और इस जनाज़े के इमाम और पाँच वक़्त के नियुक्त इमाम के बीच का अंतर स्पष्ट है, क्योंकि उसने (मृतक ने) अपने जीवन में उसके पीछे नमाज़ पढ़ने का इरादा नहीं किया था, जबकि नियुक्त इमाम का मामला ऐसा नहीं है। शरह मुनियाह में है कि मूल बात यह है कि नमाज़ का अधिकार वली को है। इसीलिए इमाम अबू यूसुफ के नज़दीक और इमाम अबू हनीफा से एक रिवायत में वह सब से पहले है। क्योंकि यह ऐसा हुक्म है जिसका संबंध विलायत से है जैसे निकाह कराने का मामला है, मगर इस्तेहसान यह है कि यहाँ सुल्तान आदि को प्राथमिकता दी जाए, जिसकी वजह बयान हो चुकी है। और यही ज़ाहिर अर-रिवायत है __ दुर्रे मुख्तार की इबारत (निकाह कराने में असबा होने की जो व्यवस्था है वही होगी)। इससे मालूम हुआ कि महिलाओं के लिए विलायत नहीं है, और न ही पति के लिए, मगर वह अजनबी

से ज़्यादा हकदार है। मैं कहता हूँ कि ज़ाहिर बात यह है कि ज़वी अल-अर्हाम भी विलायत में शामिल हैं और असबा होने की शर्त सिर्फ़ औरतों को बाहर करने के लिए है।

(عربی کالم): اقول: وھذا اولی لمایاتی من ان الاصل ان الحق للولی وانما قدم علیه الولاۃ وامام الحی لما مر من التعلیل وھو غیر موجود ھنا، والفرق بینه وبین الامام الراتب ظاہر لانه لم یرضه للصلوۃ خلفه فی حیاتہ بخلاف الراتب، قال فی شرح المنیة الاصل ان الحق فی الصلوۃ للولی ولذا قدم علی الجمیع فی قول ابی یوسف و روایة عن ابی حنیفة لان ھذا حکم یتعلق بالولایة عن ابی حنیفة لان ھذا حکم یتعلق بالولایة کالانکاح الا ان الاستحسان وھو ظاہر الروایة تقدیم السلطان ونحوہ لما مر من الوجہ قولہ (بترتیب عصوبة الانکاح) فلا ولایة للنساء ولا للزوج الا انہ احق من الاجنبی قلت والظاہر ان ذوی الارحام داخلون فی الولایة، والتقیید بالعصوبة لاخراج النساء فقط فہم اولی من الاجنبی وھو

(اردو کالم): اقول: (میں کہتا ہوں) یہ بہتر ہے اس لئے کہ آگے آ رہا ہے کہ اصل یہ حق ولی کا ہے اس پر حُکام اور امام محلّہ کی تقدیم تعلیل مذکور کے سبب ہے اور وہ علت یہاں موجود نہیں۔ اور اس امامِ جنازہ اور پنجگانہ کے امامِ مقرر کے درمیان فرق ظاہر ہے اس لئے اس نے زندگی میں اس کے پیچھے نماز پڑھنے کا ارادہ نہ کیا جبکہ امامِ مقرر کا حال یہ نہیں، شرح منیہ میں ہے کہ اصل یہ ہے کہ نماز کا حق ولی کو ہے۔ اسی لئے امام ابو یوسف کے نزدیک اور امام ابو حنیفہ سے ایک روایت میں وہ سب سے مقدم ہے۔ اس لئے کہ یہ ایسا حکم ہے جس کا تعلق ولایت سے ہے جیسے نکاح کرانے کا معاملہ ہے، مگر استحسان یہ ہے کہ یہاں سلطان وغیرہ مقدم ہوں جس کی وجہ بیان ہو چکی۔ اور یہی ظاہر الروایہ ہے ــــ عبارت در مختار (نکاح کرانے میں عصبہ ہونے کی جو ترتیب ہے وہی ہو گی) اس سے معلوم ہوا کہ عورتوں کے لئے ولایت نہیں، اور شوہر کے لئے بھی نہیں مگر وہ اجنبی سے زیادہ حقدار ہے۔ میں کہتا ہوں ظاہر یہ ہے کہ ذوی الارحام بھی ولایت میں داخل ہیں اور عصبہ ہونے کی قید صرف عورتوں کو خارج کرنے کے لئے ہے

Fatawa Razawiya Volume 9

[Left Column: Arabic Text Translation] A visible point that supports al-Hidayah's expression regarding the guardianship of marriage is the statement: (So he is prioritized over the son by consensus), which is the most correct view. It was said that this is the statement of Imam Muhammad, while according to the two [Imam Abu Hanifa and Imam Abu Yusuf], the son is more entitled. It is mentioned in al-Fath: We only prioritized the eldest based on the hadith of al-Qasamah, "let the eldest among them speak." This implies that the right belongs to the son according to them, except that the Sunnah is for the son to put his father forward. This is indicated by their saying: All other relatives are more entitled than the husband if she has no son by him; if she does, then the husband is more entitled than them because the right belongs to the son, and he puts his father forward. It is not far-fetched to say that for him to put [the father] ahead of himself is mandatory by the Sunnah. In al-Bada'i: Regarding the son's role in guardianship, he may put someone else forward because the guardianship belongs to him. He was only forbidden from stepping forward himself so as not to slight his father, so his guardianship did not lapse by putting someone else forward. His statement: (Except if it be...) He said in al-Bahr: Even if the father is ignorant and the son is a scholar, the son should be prioritized, unless it is said that the attribute of knowledge does not necessitate precedence in prayer.

[Right Column: Urdu Text Translation] So they will be more entitled than a stranger. And this is evident, which is supported by the words of al-Hidayah regarding "Guardianship of Marriage." The text of Durr al-Mukhtar states (the father is unanimously prioritized over the son here), this is the most correct view. And it was said that this is the statement of Imam Muhammad, while according to the Shaykhayn (Imam al-A'zam and Imam Abu Yusuf), the son is more entitled. It is stated in Fath al-Qadir: We prioritized the elder based on the hadith of Qasamah, which states that "the older of the two should speak." From this, it is inferred that according to the Shaykhayn, the right belongs to the son. However, the Sunnah is for him to put his father forward; the scholars' words indicate this: other relatives are more entitled than the husband if the woman has no son by him; if she does, then the husband is more entitled than them. This is because the right belongs to the son, and he will put his father forward. It would not be far-fetched to say that for the son to prioritize his father over himself is mandatory according to the Hadith. It is stated in al-Bada'i: Under the rule of guardianship, the son has this choice, and he was only stopped from stepping forward himself so as not to be disrespectful to his father; thus, the

right to put someone else forward was not taken from him. The text of Durr al-Mukhtar says (unless the son is a scholar). In al-Bahr, it says: If the father is ignorant and the son is a scholar, then the son should be prioritized. However, it should be said that regarding the funeral prayer, knowledge...

फ़तावा रज़विया जिल्द 9

[बायां कॉलम: अरबी पाठ का अनुवाद] एक स्पष्ट पहलू जो निकाह की विलायत (अभिभावकता) के बारे में अल-हिदाया की अभिव्यक्ति का समर्थन करता है, वह यह कथन है: (तो उसे सर्वसम्मति से बेटे पर प्राथमिकता दी जाती है), जो सबसे सही विचार है। यह कहा गया था कि यह इमाम मुहम्मद का कथन है, जबकि दोनों साथियों [इमाम अबू हनीफा और इमाम अबू यूसुफ] के अनुसार, बेटा अधिक हकदार है। अल-फ़तह में इसका उल्लेख है: हमने कसामत की हदीस के आधार पर केवल सबसे बड़े को प्राथमिकता दी, "उनमें से सबसे बड़े को बोलने दें।" इसका तात्पर्य यह है कि उनके अनुसार अधिकार बेटे का है, सिवाय इसके कि सुन्नत यह है कि बेटा अपने पिता को आगे करे। यह उनके इस कथन से संकेतित होता है: पति से अन्य सभी रिश्तेदार अधिक हकदार हैं यदि उसका उससे कोई बेटा नहीं है; यदि है, तो पति उनसे अधिक हकदार है क्योंकि अधिकार बेटे का है, और वह अपने पिता को आगे करता है। यह कहना दूर की कौड़ी नहीं है कि उसके लिए [पिता को] खुद से आगे रखना सुन्नत द्वारा अनिवार्य है। अल-बदाई में: विलायत में बेटे की भूमिका के संबंध में, वह किसी और को आगे रख सकता है क्योंकि विलायत उसी की है। उसे केवल स्वयं आगे बढ़ने से मना किया गया था ताकि वह अपने पिता का अनादर न करे, इसलिए किसी और को आगे रखने से उसकी विलायत समाप्त नहीं हुई। उनका कथन: (सिवाय अगर...) उन्होंने अल-बहर में कहा: भले ही पिता अज्ञानी हो और बेटा विद्वान हो, बेटे को प्राथमिकता दी जानी चाहिए, जब तक कि यह न कहा जाए कि ज्ञान का गुण प्रार्थना में प्राथमिकता की आवश्यकता नहीं रखता है।

[दायां कॉलम: उर्दू पाठ का अनुवाद] तो वे अजनबी से ज़्यादा हक़दार होंगे। और यह ज़ाहिर है जिसकी ताईद हिदाया के शब्दों 'विलायत-ए-निकाह' से होती है। दुर्रे-मुख़्तार की इबारत है (यहाँ बाप बेटे पर सर्वसम्मति से प्राथमिकता रखता है) यही सबसे सही है। और कहा गया कि यह इमाम मुहम्मद का कथन है और शैख़ैन (इमाम-ए-आज़म और इमाम अबू यूसुफ) के नज़दीक बेटा ज़्यादा हक़दार है। फ़तहुल क़दीर में है: हमने سامت کی حدیث کے پیش نظر अधिक आयु वाले को प्राथमिकता दी है जिसमें है कि 'दोनों में से जो बड़ा है वह बात करे'। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि शैख़ैन के अनुसार हक़ बेटे का है। लेकिन सुन्नत यह है कि वह अपने पिता को आगे करे, विद्वानों का यह कथन इसी पर संकेत करता है: पति से अन्य रिश्तेदार अधिक हक़दार हैं यदि उस महिला से पति का कोई बेटा न हो, यदि हो तो पति उनसे अधिक हक़दार है। इसलिए कि हक़ बेटे का है और वह अपने पिता को आगे करेगा। और यह कहना अनुचित न होगा कि बेटे का अपने पिता को स्वयं

पर प्राथमिकता देना हदीस के अनुसार अनिवार्य है। बदाइ'अ में है: विलायत के नियम के तहत बेटे को यह अधिकार प्राप्त है और उसे स्वयं आगे बढ़ने से इसलिए रोका गया ताकि वह अपने पिता के प्रति अपमानजनक न हो, तो दूसरे को आगे बढ़ाने का अधिकार उससे नहीं छीना गया। दुर्रे-मुख़्तार की इ़ॸत है (मगर यह कि बेटा विद्वान हो) 'बहर' में है: यदि पिता अनपढ़ हो और बेटा विद्वान हो, तो बेटे को आगे करना चाहिए। लेकिन यह कहा जाए कि जनाज़ा की नमाज़ में ज्ञान...

पृष्ठ 182 / 948

فتاویٰ رضویہ جلد نہم

[بایاں کالم: عربی متن کا ترجمہ] ایک ظاہر پہلو جو نکاح کی ولایت کے بارے میں ہدایہ کی تعبیر کی تائید کرتا ہے وہ قول ہے: (چنانچہ اسے بالاتفاق بیٹے پر مقدم کیا جائے گا)، یہی سب سے زیادہ صحیح ہے۔ کہا گیا کہ یہ امام محمد کا قول ہے، جبکہ صاحبین [امام ابو حنیفہ اور امام ابو یوسف] کے نزدیک بیٹا زیادہ حقدار ہے۔ فتح القدیر میں کہا گیا: ہم نے حدیثِ قسامت کی وجہ سے زیادہ عمر والے کو مقدم کیا، جس میں ہے کہ "ان میں سے جو زیادہ بڑا ہے وہ کلام کرے"۔ یہ اس بات کا فائدہ دیتا ہے کہ ان کے نزدیک حق بیٹے کا ہے، مگر سنت یہ ہے کہ بیٹا اپنے باپ کو آگے کرے۔ اور اس پر ان کا یہ قول دلالت کرتا ہے کہ شوہر سے دیگر تمام قرابت دار زیادہ حقدار ہیں اگر اس عورت سے اس کا کوئی بیٹا نہ ہو؛ لیکن اگر ہو تو شوہر ان سے زیادہ حقدار ہے کیونکہ حق بیٹے کا ہے اور وہ اپنے باپ کو آگے کرتا ہے۔ اور یہ کہنا بعید نہیں کہ باپ کو اپنی ذات پر مقدم کرنا سنت کی رو سے واجب ہے۔ بدائع میں ہے: ولایت کے حکم میں بیٹے کو اختیار حاصل ہے کہ وہ کسی اور کو آگے کر دے کیونکہ ولایت اسی کی ہے۔ اسے خود آگے بڑھنے سے محض اس لیے روکا گیا کہ اپنے باپ کی توہین نہ کرے، لہذا کسی اور کو آگے کرنے سے اس کی ولایت ختم نہیں ہوئی۔ ان کا قول: (مگر یہ کہ...) بحر میں فرمایا: اگرچہ باپ جاہل اور بیٹا عالم ہو تو مناسب ہے کہ بیٹے کو مقدم کیا جائے، الا یہ کہ یہ کہا جائے کہ علم کی صفت نماز میں تقدیم کو واجب نہیں کرتی۔

[دایاں کالم: اردو متن] تو وہ اجنبی سے اولیٰ ہوں گے۔ اور یہ ظاہر ہے جس کی تائید ہدایہ کے الفاظ "ولایت نکاح" سے ہوتی ہے۔ عبارت در مختار (باپ بیٹے پر یہاں بالاتفاق مقدم ہے) یہی اصح ہے۔ اور کہا گیا کہ یہ امام محمد کا قول ہے اور شیخین (امام اعظم و امام ابویوسف) کے نزدیک بیٹا

اولیٰ ہے۔ فتح القدیر میں ہے: ہم نے زیادہ عمر والے کو مقدم کیا حدیثِ قسامت کے پیش نظر جس میں ہے کہ "دونوں میں جو زیادہ بڑا ہے وہ کلام کرے"۔ اس سے مستفاد ہوتا ہے کہ شیخین کے نزدیک حق بیٹے کا ہے۔ مگر سنّت یہ ہے کہ وہ اپنے باپ کو آگے کرے، اس پر علماء کا یہ کلام دلالت کررہا ہے: دیگر اہلِ قرابت شوہر سے اولیٰ ہیں اگر شوھر کا اس عورت سے کوئی بیٹا نہ ہو، اگر ہو تو شوہر ان سے اولیٰ ہے۔ اس لئے کہ حق بیٹے کا ہے اور وہ اپنے باپ کو آگے کرے گا۔ اور یہ کہنا بعید نہ ہوگا کہ بیٹے کا باپ کو اپنی ذات پر مقدم کرنا از روئے حدیث واجب ہے اھ بدائع میں ہے: حکمِ ولایت کے تحت بیٹے کو یہ اختیار حاصل ہے اور خود آگے بڑھنے سے اس کو اس لئے روکا گیا کہ اپنے باپ کی بے ادبی کا مرتکب نہ ہو، تو دوسرے کو آگے بڑھانے کا حق اُس سے نہ گیا۔ عبارت دُر مختار (مگر یہ کہ بیٹا عالم ہو) بحر میں ہے: اگر باپ جاہل اور بیٹا عالم ہو تو بیٹے کو آگے کرنا چاہئے۔ مگر یہ کہا جائے کہ علم نمازِ جنازہ میں

Fatawa Ridawiyya Volume 9

[Table Header - Arabic Column]: ...funeral because he is not in need of it. This was challenged in 'Al-Nahr' with what was mentioned previously that the Imam of the neighborhood is only prioritized over the guardian if he is more virtuous. He said: Yes, Quduri explained the dislike of a son preceding his father by saying it involves a slight towards him. This implies the obligation of prioritizing him absolutely. I say: This supports what was mentioned earlier from 'Al-Fath'. End of what is in 'Radd al-Muhtar' summarized and selected. In 'Al-Khaniya' then 'Al-Hindiya' in the Book of Prayer: A man built a mosque and dedicated it to Allah Almighty, so he is the most entitled of people to its maintenance, construction, Adhan, Iqamah, and Imamate if he is eligible for that. If he is not, then the decision in that regard belongs to him. End (summarized). And Allah Subhanuhu wa Ta'ala knows best.

[Table Header - Urdu Column]: ...does not cause precedence because knowledge is not required in it. An objection is raised against this in 'An-Nahr' that the Imam of the locality only takes precedence over the guardian (wali) when he is superior to him. Yes, Quduri stated the reason for it being disliked for a son to precede his father is that in it, absolute precedence of the father is necessary... I say this supports the statement passed with reference to 'Fath al-Qadir'. The summary and selection from 'Radd al-Muhtar' ends here. In 'Khaniyah' then 'Hindiyyah', Book of Prayer: If a person built a mosque and endowed it to God Almighty, then he is more entitled than all people to its maintenance, construction, and (leading) the Adhan, Iqamah, and Imamate if he is eligible for that; otherwise, his opinion will be taken in this regard (i.e., he will have the right to appoint another) - and God Pure and Exalted knows best. (T)

Problem No. 41: Village Bakka Jaibi Wala, Area Jagal, Station Haripur, Post Office Najeebullah Khan, sent by Molvi Sher Muhammad Sahib, 12 Jumada al-Akhirah 1312 AH.

What do the scholars of religion say regarding this matter: if the deceased, whether an adult or a minor, was not joined by the guardian (wali) in their funeral prayer, was the funeral prayer valid or not?

Answer: The prayer was valid. The prayer performed without the permission of the guardian, the guardian has the right to pray it again. But the one who prayed earlier...

1. Radd al-Muhtar, Chapter on Funeral Prayer, printed by Mustafa al-Babi, Egypt, 1/560-639.
2. Fatawa Hindiyyah, Second Section on what is disliked in prayer etc., printed by Noorani Kutub Khana, Peshawar, 1/110.

फतावा रिज़विया जिल्द 9

[तालिका शीर्षक - अरबी स्तंभ]: ...जनाज़ा क्योंकि उसे इसकी आवश्यकता नहीं है। इस पर 'अल-नहर' में उस बात से आपत्ति की गई जो पहले गुज़री कि मोहल्ले का इमाम वली पर तभी प्राथमिकता पाता है जब वह उससे अधिक गुणी हो। उन्होंने कहा: हाँ, कुदुरी ने पिता से पहले बेटे के खड़े होने की नापसंदगी का कारण यह बताया कि इसमें उनका अनादर है। इसका अर्थ है कि उन्हें पूर्ण रूप से प्राथमिकता देना अनिवार्य है। मैं कहता हूँ: यह 'अल-फतह' से पहले बताई गई बात का समर्थन करता है। 'रद्द अल-मुह्तार' का सारांश और चयन यहाँ समाप्त हुआ। 'अल-खानिया' फिर 'अल-हिन्दिया' में नमाज़ की किताब में है: एक व्यक्ति ने मस्जिद बनाई और उसे अल्लाह तआला के लिए समर्पित कर दिया, तो वह उसकी मरम्मत, निर्माण, अज़ान, इकामत और इमामत का सभी लोगों से अधिक हकदार है यदि वह उसके योग्य हो। यदि वह योग्य नहीं है, तो इस संबंध में निर्णय उसका होगा। (सारांश)। और अल्लाह सुब्हानहु व तआला बेहतर जानता है।

[तालिका शीर्षक - उर्दू स्तंभ]: ...प्रथमता का कारण नहीं है क्योंकि इसमें ज्ञान की आवश्यकता नहीं है। इस पर 'अन-नहर' में यह आपत्ति है कि मोहल्ले का इमाम वली (अभिभावक) पर उसी समय प्रथमता पाता है जब वह उससे श्रेष्ठ हो। हाँ, कुदुरी ने बेटे का पिता से पहले होना मकरूह (नापसंद) होने का कारण यह बताया कि इसमें पिता की प्रथमता पूर्णतः आवश्यक है... मैं कहता हूँ कि इससे उस बात की पुष्टि हो रही है जो 'फ़तह अल-क़दीर' के हवाले से गुज़री। सारांश और चयन के साथ 'रद्द अल-मुह्तार' की विषय-वस्तु समाप्त हुई। 'खानिया' फिर 'हिन्दिया' किताबुस-सलात में है: किसी व्यक्ति ने मस्जिद बनाई और उसे अल्लाह के लिए वक़्फ़ कर दिया, तो वह उसकी मरम्मत, इमारत, अज़ान, इकामत और इमामत का सब लोगों से अधिक हकदार है यदि वह उसके योग्य हो; अन्यथा इस बारे में उसकी राय ली जाएगी (यानी दूसरे को नियुक्त करने का हक उसी को होगा) और अल्लाह पाक और बुलंद सबसे बेहतर जानने वाला है। (त)

मसला नंबर 41: स्थान बक्का जैबी वाला, क्षेत्र जागल, थाना हरीपुर, डाकखाना नजीबुल्लाह खान, प्रेषक मौलवी शेर मुहम्मद साहिब, 12 जमादी अल-आखिरह 1312 हिजरी।

दीन के विद्वान इस मसले में क्या कहते हैं: यदि मृतक, चाहे वह बालिग हो या नाबलिग, उसके जनाज़े में वली शामिल नहीं हुआ, तो उसका जनाज़ा हुआ या नहीं:

जवाब: नमाज़ हो गई। जो नमाज़ वली की अनुमति के बिना पढ़ी जाए, वली को अधिकार है कि उसे दोबारा पढ़े। लेकिन जिसने पहले पढ़ी...

---

1. रद्द अल-मुह्तार, बाब-अस-सलात-अल-जनाइज़, मुस्तफ़ा अल-बाबी द्वारा प्रकाशित, मिस्र, 1/560-639।
2. फतावा हिन्दिया, अल-फसल अल-सानी फ़ीमा युकरहु फ़िस-सलात अलख, नूरानी कुतुब खाना द्वारा प्रकाशित, पेशावर, 1/110।

पृष्ठ 183 का 948

فتاوٰی رضویہ جلد نہم

[جدول کی سرخی - عربی کالم]: الجنازة لعدم احتیاجهالہ واعترضه فی النهر بما مر من ان امام الحی انما یقدم علی الولی اذا کان افضل قال نعم علل القدوری کراهة تقدم الابن علی ابیه بأن فیه استخفافا به وهذا یقتضی وجوب تقدیمه مطلقا هـ قلت وهذا مؤید لمامر عن الفتح اهـ ما فی ردالمحتار ملخصا ملتقطا وفی الخانیة ثم الهندیة من الصلوة رجل بنی مسجدا وجعله لله تعالی فهو احق الناس بمرمته وعمارته والاذان والاقامة والامامة ان کان اهلا لذلك فان لم یکن فالرای فی ذلك الیه اهـ(ملخصا) واللہ سبحانہ وتعالی اعلم۔

[جدول کی سرخی - اردو کالم]: تقدم کا موجب نہیں کیونکہ اس میں علم کی ضرورت نہیں، اس پر نہر میں یہ اعتراض ہے کہ امامِ محلہ ولی پر اُسی وقت تقدم پاتا ہے جب اُس سے افضل ہو۔ ہاں قدوری نے باپ پر بیٹے کا تقدم مکروہ ہونے کی علّت یہ بتائی کہ اس میں باپ کی تقدیم مطلقاً ضروری ہے۔۔۔ میں کہتا ہوں اس سے اس کلام کی تائید ہو رہی ہے جو فتح القدیر کے حوالے سے گزرا۔ تلخیص و انتخاب کے ساتھ ردالمحتار کا مضمون ختم ہوا۔ خانیہ پھر ہندیہ کتاب الصلوۃ میں ہے: کسی شخص نے مسجد تعمیر کی اور اسے خدا کے لئے وقف کردیا تو اس کی مرمت، عمارت، اذان، اقامت اور امامت کا وہ سب لوگوں سے زیادہ حقدار ہے اگر وہ اس کا اہل ہو ورنہ اس بارے میں رائے اُسی کی لی جائے گی اھ (یعنی دوسرے کو مقرر کرنے کا حق اسی کو ہوگا) اور خدائے پاک وبرتر خوب جاننے والا ہے۔ (ت)

مسئلہ نمبر ۴۱: موضع بکہ جیبی والا، علاقہ جاگل، تھانہ ہری پور ڈاک خانہ نجیب اللہ خان مرسلہ مولوی شیر محمد صاحب ۱۲ جمادی الاخرہ ۱۳۱۲ھ

کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ میت اگرچہ بالغ ہو یا نابالغ ہو اُس کے جنازہ میں ولی داخل نہیں ہوا تو اس کا جنازہ ہوا یا نہیں:

الجواب: نماز ہو گئی جو نماز بے اجازت ولی پڑھی جائے ولی کو اختیار ہے کہ دوبارہ پڑھے۔ مگر جو پہلے پڑھ

---

1. ردالمحتار باب الصلوۃ الجنائز مطبوعہ مصطفی البابی مصر ۱/۵۶۰-۶۳۹

2. فتاویٰ ہندیہ الفصل الثانی فیما یکرہ فی الصلوۃ الخ مطبوعہ نورانی کتب خانہ پشاور ۱/۱۱۰

Fatawa Rizvia Volume 9

...they cannot pray it again. Furthermore, this is in the case where the first prayer was led by someone over whom the guardian (Wali) had preference. Otherwise, if, for example, the Ruler of Islam, or the Shariah Judge, or the Regular Imam of the locality led the prayer, then the guardian does not have the right to repeat it, as they take precedence over the guardian in this matter.

In Al-Durr al-Mukhtar: Precedence in praying over him (the deceased) is for the Sultan	**In Durr-e-Mukhtar: The one with precedence in leading the funeral prayer is the Sultan or Ruler**
or the Amir of the city, then the Judge, then the local Imam, then the Guardian.	of the city, then the Judge, then the local Imam, then the Guardian. If someone other than
For if someone other than the Guardian, who does not have the right of precedence	the Guardian, who does not have the right of precedence over the Guardian, leads the funeral prayer
over the Guardian, prayed and the Guardian did not follow him, the Guardian	and the Guardian did not follow him, then if the Guardian wishes, he may pray it
repeats it even at the grave if he wishes, due to his right and not	again even at the grave. He has this choice because of his own right,
to discharge the obligation. Therefore, we say it is not for one who has already prayed	not because the funeral obligation was not fulfilled. For this reason,
over it to repeat with the Guardian because its repetition is not sanctioned.	we say that those who have already prayed cannot join the Guardian to pray
And if one who has the right of precedence, like a Judge or his deputy	again, because repeating the funeral prayer is not permissible. And if it was first led
or the local Imam, leads it, or someone who does not have the right of precedence	by someone who has the right of precedence, like a Judge or his deputy or the local Imam,
and the Guardian follows him, he does not repeat. ^1 [Abbreviated]	

In Al-Durr al-Mukhtar: Precedence in praying over him (the deceased) is for the Sultan	**In Durr-e-Mukhtar: The one with precedence in leading the funeral prayer is the Sultan or Ruler**
	or by someone who does not have the right of precedence but the Guardian followed him,
And Allah Almighty knows best.	then he cannot repeat it. [Abbreviated] (T)
Question No. 42:	**From Bareilly, sent by Nawab Maulvi Sultan Ahmad Khan Sahib (May Allah keep him safe), 3 Ramadan-ul-Mubarak 1310 AH.**
What do the noble scholars say on this issue: if at the time of Maghrib prayer	What do the noble scholars say in this matter, that if at the time of Maghrib
a funeral arrives, should the obligatory prayer be offered first or the funeral prayer?	a funeral arrives, should the obligatory prayer be performed first or the funeral prayer?
The Answer:	
The Maghrib prayer should be offered first as stated in Radd al-Muhtar, rather, even the	First, the Maghrib prayer should be offered as mentioned in Radd al-Muhtar, in fact,
regular Sunnahs should also be offered, as is the verdict in Al-Bahr etc.	the prescribed Sunnahs should also be performed. This is the verdict.

1. Al-Durr al-Mukhtar, Chapter on Funeral Prayers, published by Matba' Mujtabai, Delhi, 1/122-123. Page 184 of 948

फ़तावा रज़विया खंड 9

...वे इसे दोबारा नहीं पढ़ सकते। फिर यह भी उस स्थिति में है जब पहली नमाज़ किसी ऐसे व्यक्ति ने पढ़ी हो जिस पर वली (अभिभावक) को प्राथमिकता प्राप्त थी। अन्यथा, यदि उदाहरण के तौर पर इस्लामी सुल्तान, या शरई न्यायाधीश, या क्षेत्र के इमाम ने नमाज़ पढ़ा दी, तो वली को दोहराने का अधिकार नहीं है क्योंकि वे इस मामले में वली से ऊपर हैं।

'अल-दुर अल-मुख्तार' में है: मृत व्यक्ति पर नमाज़ पढ़ने में प्राथमिकता सुल्तान की है

या शहर के अमीर की, फिर काज़ी की, फिर मोहल्ले के इमाम की, फिर वली की।

यदि वली के अलावा किसी ऐसे व्यक्ति ने, जिसे वली पर प्राथमिकता का अधिकार नहीं है,

नमाज़ पढ़ ली और वली ने उसका अनुसरण नहीं किया, तो वली यदि चाहे तो

दोबारा पढ़ सकता है, चाहे कब्र पर ही पढ़े। उसे यह अधिकार अपने हक़ के

कारण है, न कि फ़र्ज़ अदा करने के लिए। इसीलिए हम कहते हैं कि जो

पहले नमाज़ पढ़ चुके हैं, वे वली के साथ दोबारा नहीं पढ़ सकते

क्योंकि नमाज़ को दोहराना जायज़ नहीं है। और यदि किसी प्राथमिकता वाले ने,

जैसे काज़ी या नायब या मोहल्ले के इमाम, या किसी बिना प्राथमिकता वाले ने पढ़ी

और वली ने उसका अनुसरण किया, तो वह दोबारा नहीं पढ़ी जाएगी। ^1 [संक्षेप में]

'दुर्रे मुख्तार' में है: मय्यत की नमाज़ पढ़ने में प्राथमिकता बादशाह या शहर के हाकिम की है

फिर काज़ी की, फिर मोहल्ले के इमाम की, फिर वली की। यदि वली के अतिरिक्त किसी ऐसे

व्यक्ति ने, जिसे वली पर प्राथमिकता प्राप्त नहीं है, जनाज़े की नमाज़

पढ़ा ली और वली ने उसका पालन नहीं किया, तो वली यदि चाहे तो दोबारा

पढ़ सकता है, चाहे कब्र पर ही पढ़े। उसे यह अधिकार अपने अधिकार के

कारण है न कि इसलिए कि जनाज़े का फ़र्ज़ अदा नहीं हुआ था। इसी

लिए हम कहते हैं कि जो पहले पढ़ चुके थे, वे वली के साथ शामिल होकर

दोबारा नहीं पढ़ सकते। क्योंकि जनाज़े की नमाज़ को दोहराना जायज़

नहीं है। और यदि पहले ऐसे व्यक्ति ने पढ़ी जिसे वली पर प्राथमिकता

प्राप्त है, जैसे काज़ी या नायब काज़ी या मोहल्ले का इमाम, या ऐसे व्यक्ति

'अल-दुर अल-मुख्तार' में है: मृत व्यक्ति पर नमाज़ पढ़ने में प्राथमिकता सुल्तान की है

और अल्लाह तआला बेहतर जानता है।

'दुर्रे मुख्तार' में है: मय्यत की नमाज़ पढ़ने में प्राथमिकता बादशाह या शहर के हाकिम की है

ने पढ़ी जिसे प्राथमिकता प्राप्त नहीं थी लेकिन वली ने उसका

अनुसरण कर लिया था, तो दोबारा नहीं पढ़ा जा सकता। [संक्षेप में] (T)

मसला नम्बर 42:

बरेली से, नवाब मौलवी सुल्तान अहमद खान साहिब (अल्लाह उन्हें सलामत रखे) द्वारा प्रेषित, 3 रमज़ानुल मुबारक 1310 हिजरी।

विद्वान इस मसले में क्या फ़रमाते हैं कि मग़रिब की नमाज़ के समय जनाज़ा आ जाए, तो पहले फ़र्ज़ नमाज़ पढ़ी जाए या जनाज़े की नमाज़?

इस मसले में विद्वान क्या फ़रमाते हैं कि यदि मग़रिब के समय जनाज़ा आए तो पहले फ़र्ज़ नमाज़ अदा की जाए या जनाज़े की?

जवाब:

मग़रिब की नमाज़ पहले पढ़नी चाहिए जैसा कि 'रद अल-मुह्तार' में है, बल्कि सुन्नतें भी पढ़ लेनी चाहिए, जैसा कि 'अल-बहर' आदि में फ़तवा है।

पहले मग़रिब की नमाज़ अदा करनी चाहिए जैसा कि 'रद अल-मुह्तार' में है, बल्कि निर्धारित सुन्नतों को भी अदा कर लेना चाहिए। इसी पर फ़तवा है।

---

1. 'दुर्रे मुख्तार', जनाज़े की नमाज़ का अध्याय, मुजतबाई प्रेस, दिल्ली, 1/122-123 पृष्ठ 184 / 948

چکے ہیں وہ دوبارہ نہیں پڑھ سکتے۔ پھر یہ بھی اس صورت میں ہے کہ پہلی نماز کسی ایسے نے پڑھی جس پر ولی کو ترجیح تھی، ورنہ اگر مثلاً بادشاہ اسلام یا قاضی شرع یا امام حی نے نماز پڑھا دی تو ولی کو اعادہ کا اختیار نہیں کہ وہ اس بات میں ولی سے مقدم ہیں۔

فی الدر المختار یقدم فی الصلوٰۃ علیہ السلطان

در مختار میں ہے : میت کی نماز پڑھنے میں مقدم بادشاہ یا والی

او امیر المصر ثم القاضی ثم امام الحی ثم الولی

شہر ہے پھر قاضی پھر امام محلہ پھر ولی۔ اگر ولی کے علاوہ ایسے

فان صلی غیر الولی من لیس لہ حق التقدم علی

شخص نے جس کو ولی پر تقدم کا حق حاصل نہیں، نماز جنازہ

الولی ولم یتابعہ الولی اعاد الولی ولو علی قبرہ ان

پڑھ لی اور ولی نے اس کی متابعت نہ کی تو ولی اگر چاہے تو دوبارہ

شاء لاجل حقہ لاسقاط الفرض ولذا قلنا

پڑھ سکتا ہے خواہ قبر پر ہی پڑھے اسے یہ اختیار اپنے حق کے

لیس لمن صلی علیھا ان یعید مع الولی لان

سبب ہے اس لئے نہیں کہ فرض جنازہ ادا نہ ہوا تھا، اسی لئے

تکرار ھا غیر مشروع وان صلی من لہ حق التقدم

ہم کہتے ہیں کہ پہلے جو پڑھ چکے تھے وہ ولی کے ساتھ ہو کر

فی الدر المختار یقدم فی الصلوٰۃ علیہ السلطان

کقاض او نائبہ او امام الحی او من لیس لہ حق

التقدم وتابعہ الولی لا یعید ۱۸ اھ مختصراً۔

واللہ تعالیٰ اعلم۔

در مختار میں ہے : میت کی نماز پڑھنے میں مقدم بادشاہ یا والی

دوبارہ نہیں پڑھ سکتے۔ اس لئے کہ نماز جنازہ کی تکرار جائز

نہیں۔ اور اگر پہلے ایسے شخص نے پڑھی جسے ولی پر تقدم کا

حاصل ہے جیسے قاضی یا نائب قاضی یا امام محلہ یا ایسے شخص

نے پڑھ لی جسے حق تقدم حاصل نہیں مگر ولی نے اس کی

متابعت کر لی تھی تو دوبارہ نہیں پڑھ سکتا اھ مختصراً (ت)

مسئلہ نمبر ۴۲:

از بریلی مرسلہ نواب مولوی سلطان احمد خاں صاحب سلمہ اللہ تعالیٰ ۳ رمضان المبارک ۱۳۱۰ھ

چے می فرمایند علمائے کرام دریں مسئلہ کہ بوقت نماز مغرب جنازہ بیاید تقدیم نماز فرض باید یا نماز میت۔

اس مسئلہ میں علمائے کرام کیا فرماتے ہیں کہ مغرب کے وقت

جنازہ آئے تو پہلے نماز فرض کی ادائیگی ہو یا نماز جنازہ کی؟

الجواب:

نماز مغرب را تقدیم باید کما فی ردالمحتار بلکہ سنن راتبہ نیز بہ یفتی کما فی البحر وغیرہ

پہلے نماز مغرب ادا کرنا چاہئے جیسا کہ ردالمحتار میں ہے بلکہ مقررہ سنتوں کو بھی ادا کر لینا چاہئے۔ اسی پر

---

1 در مختار باب صلوٰۃ الجنائز مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی ۱ / ۱۲۲-۲۳ Page 184 of 948

Fatawa Ridawiyya, Volume 9

I say: Yes, if there is a compelling necessity to prioritize the funeral prayer, for example, the abdomen of the deceased is bloated and there is a fear that if delayed, it will burst, and there is still enough time such that prioritizing the funeral prayer will not cause the Maghrib (sunset prayer) to be missed; then in such a case, by consensus, the funeral prayer must be performed first, as is evident. And Allah Almighty knows best. (T)

Issue No. 43: 8 Shawwal 1338 AH Zuhr prayer time has just begun, and a funeral has also arrived, and there is plenty of time. Which prayer should be prioritized now, and when should the Sunnah prayers be offered? The Answer: When the Zuhr time is ample, prioritize the funeral prayer. Yes, if those carrying the funeral will also join the Zuhr congregation, such that if the funeral prayer is offered first, the body would still wait until the Zuhr prayer is finished and there is no fear of decomposition, then offer the obligatory (Fard) and Sunnah of Zuhr first. In this delay, perhaps more worshippers will arrive, increasing the congregation for the funeral prayer. And Allah Almighty knows best.

Issue No. 44: From Gul Shaheed locality, Muradabad, sent by Maulvi Jamiluddin Ahmed Sahab, 12 Safar 1316 AH. [Arabic Text]: What is the opinion of the well-versed scholars and expert jurists regarding a situation where the guardian of the deceased, or someone else with his permission, performed the funeral prayer at the beginning of Asr time before performing the Asr prayer? Is the funeral prayer valid before the Asr prayer or not? If it is valid, is a person who repeats it after the Asr prayer, believing it was not valid before, considered an innovator (Mubtadi') in Shariah or not? Explain clearly and comprehensively to receive an ample reward from Allah. [Urdu Translation]: What is the decree of the profound scholars and expert jurists regarding this: at the beginning of Asr time, the guardian of the deceased or another person with his permission offered the funeral prayer before the performance of the Asr prayer; did this prayer become valid before Asr or not? If it became valid, and someone repeats the funeral prayer after Asr thinking it was not valid before Asr, is he a religious innovator (mubtadi') according to Shariah or not? State clearly so you may receive a full reward from God.

फ़तावा रज़विया, खंड 9

मैं कहता हूँ: हाँ, यदि जनाज़ा (अंतिम संस्कार) की प्रार्थना को प्राथमिकता देने की कोई विवश करने वाली आवश्यकता है, उदाहरण के लिए मृतक का पेट फूल गया है और आशंका है कि यदि देरी की गई तो वह फट जाएगा, और अभी समय में इतनी गुंजाइश है कि जनाज़ा पहले अदा करने से मगरिब (सूर्यास्त की नमाज़) नहीं छूटेगी, तो ऐसे समय में लाचारी में, सर्वसम्मति से जनाज़े की नमाज़ पहले होगी, जैसा कि स्पष्ट है। और अल्लाह तआला बेहतर जानता है। (त)

मसला नंबर 43: 8 शव्वाल 1338 हिजरी ज़ुहर की नमाज़ का समय अभी शुरू हुआ है और जनाज़ा भी आ गया है, और समय बहुत है, अब कौन सी नमाज़ पहले हो, और सुन्नत किस समय? उत्तर: जब ज़ुहर का समय पर्याप्त हो, तो जनाज़े को प्राथमिकता दें। हाँ, यदि जनाज़ा ले जाने वाले भी उसी ज़ुहर की जमात में शामिल होंगे कि यदि जनाज़े की नमाज़ पहले हो जाए तब भी जनाज़ा ज़ुहर की नमाज़ से फ़ारिग होने तक रुका रहेगा और उसके बिगड़ने का डर न हो, तो ज़ुहर के फ़र्ज़ और सुन्नत पहले पढ़ें। इस देरी में शायद और नमाज़ी भी आ जाएं और जनाज़े पर भीड़ अधिक हो जाए। और अल्लाह तआला बेहतर जानता है।

मसला नंबर 44: मुरादाबाद, मोहल्ला गुल शहीद से, प्रेषक मौलवी जमीलुद्दीन अहमद साहब, 12 सफ़र 1316 हिजरी। [अरबी पाठ]: उलेमा-ए-रासिख़ीन और माहिर फ़ुक़्हा का इस बारे में क्या कहना है कि यदि मृतक के वली (अभिभावक) ने या उसकी अनुमति से किसी दूसरे ने अस्र के शुरुआती समय में अस्र की नमाज़ पढ़ने से पहले जनाज़े की नमाज़ पढ़ी? क्या अस्र की नमाज़ से पहले जनाज़े की नमाज़ जायज़ है या नहीं? यदि यह जायज़ है, तो क्या वह व्यक्ति जो अस्र की नमाज़ के बाद इसे फिर से पढ़ता है, यह मानते हुए कि यह पहले जायज़ नहीं थी, शरीयत में बिदअती (नवाचारी) माना जाएगा या नहीं? स्पष्ट और व्यापक रूप से समझाएं ताकि आपको अल्लाह से पर्याप्त पुरस्कार मिल सके। [उर्दू अनुवाद]: उलेमा-ए-रासिख़ीन और माहिर फ़ुक़्हा का इस बारे में क्या इरशाद है कि अस्र के शुरुआती समय में मृतक के वली (अभिभावक) ने या उसकी अनुमति से किसी दूसरे ने अस्र की नमाज़ से पहले जनाज़े की नमाज़ पढ़ ली, तो क्या अस्र से पहले यह नमाज़ जायज़ हुई या नहीं? यदि जायज़ हुई, तो जो व्यक्ति इस विचार से अस्र के बाद जनाज़ा दोबारा पढ़े कि अस्र से पहले वह जायज़ नहीं थी, तो वह शरीयत के अनुसार मुब्तदी (बिदअती) है या नहीं? स्पष्ट रूप से बयान फ़रमाएं ताकि खुदा के यहाँ पूर्ण प्रतिफल प्राप्त करें।

اقول: آرے اگر ضرورت داعیہ بتقدیم جنازہ است مثلاً شکمِ مُردہ منتقخ شد واندیشہ است کہ اگر دیر کنند منشق شود وھنوز در وقت سعتی ست کہ بتقدیم جنازہ فوت نہ شود آنگاہ لاجرم تقدیم جنازہ مے شاید بالاتفاق کما لا یخفی، واللہ تعالٰی اعلم۔ فتوٰی ہے جیسا کہ بحر وغیرہ میں ہے اقول: ہاں اگر ضرورت پہلے ادائے جنازہ کی طالب ہے مثلاً مُردہ کا پیٹ پھولا ہوا ہے اور اندیشہ ہے کہ اگر دیر کریں تو پھٹ جائے گا، اور ابھی وقت میں اتنی وسعت ہے کہ جنازہ پہلے ادا کرنے سے مغرب فوت نہ ہوگی تو ایسے وقت میں ناچار، بالاتفاق نمازِ جنازہ کی ادائیگی پہلے ہوگی، جیسا کہ پوشیدہ نہیں واللہ تعالٰی اعلم (ت)

مسئلہ نمبر ۴۳: ۸ شوال ۱۳۳۸ھ ظہر کی نماز کا وقت ابھی شروع ہوا پھر جنازہ بھی آیا، اور وقت بہت ہے، اب کون نماز مقدم ہو، اور سنّت کس وقت؟ الجواب: جب وقتِ ظہر وسیع ہے جنازے کی تقدیم کریں، ہاں اگر جنازہ لے جانے والے بھی اسی جماعتِ ظہر میں شریک ہوں گے کہ اگر جنازہ کی نماز پہلے ہو جائے جب بھی جنازہ نمازِ ظہر سے فارغ ہونے کے لئے رکا رہے گا اس کے تغیر کا اندیشہ نہ ہو تو ظہر کے فرض و سنّت پہلے پڑھیں اس دیر میں شاید اور نمازی بھی آجائیں اور جنازے پر تکثیر ہو۔ واللہ تعالٰی اعلم

مسئلہ نمبر ۴۴: از مراد آباد محلہ گل شہید مرسلہ مولوی جمیل الدین احمد صاحب ۱۲ صفر ۱۳۱۶ھ ما قولکم ایھا العلماء الراسخون والفقھاء الماھرون في ان ولي المیت صلی علیه او غیره بانابته صلوٰة الجنازة اول وقت العصر قبل ان یصلی العصر ھل تجوز صلوٰة الجنازة قبل صلوٰة العصر ام لا وان تجز فمن اعادھا بعد صلوٰة العصر باعتقاد انھا لا تجوز قبلھا ھل یکون مبتدعا شرعا اولا۔ بینوه بیانا شافیا توجروا عند اللہ اجرا وافیا۔ علمائے راسخین وفقہائے ماہرین کا اس بارے میں کیا ارشاد ہے کہ

اول وقتِ عصر میں ولیِ میت نے یا اس کی اجازت سے دوسرے نے نمازِ جنازہ ادائے عصر سے پہلے پڑھ لی تو عصر سے پہلے یہ نماز جائز ہوئی یا نہیں؟ اگر جائز ہوئی تو بعدِ عصر جنازہ دوبارہ پڑھے اس خیال سے کہ قبلِ عصر وہ جائز نہیں تو شرعاً مبتدع ہے یا نہیں؟ شافی طور پر بیان فرمائیں خدا کے یہاں وافی اجر پائیں۔

صفحہ 185 از 948

fatawa Rizvia Volume 9

The Answer: Funeral prayer (Salat al-Janazah) is prescribed at all times, even during the three disliked times, if the funeral arrives at that time. It is stated in Al-Durr al-Mukhtar: In these times, the supererogatory (Nafl) prayer will be valid but with prohibitive dislike (karahat al-tahrim), while the obligatory (Fard) prayer and what is attached to it like 'wajib li-aynihi' (obligatory per se), such as Witr, Sajdah Tilawah (prostration of recitation), and the funeral prayer, will not be valid if the verse of prostration was recited in a complete time and the funeral arrived before the disliked time. This is because their obligation became complete, so the performance in an incomplete manner will not be valid. However, if the obligation for both of these occurred during these very times, then their performance in these times is not prohibitively disliked. It is mentioned in Al-Tuhfah: It is better not to delay the funeral. In Radd al-Muhtar, it is stated: What is mentioned in Al-Tuhfah has been affirmed in Al-Bahr, Al-Nahr, Al-Fath, and Al-Mi'raj because the Hadith says: Three things should not be delayed, and one of them is the funeral when it arrives. And the notion that the funeral prayer is impermissible before the Asr prayer is a disgraceful ignorance or a clear deviation and an indisputable slander against the glorious Shariah. Yes, if time is short, it is necessary to offer Asr first, but if the funeral prayer was offered first, that too would be valid. And once the guardian (Wali) or someone else with his permission has performed the funeral prayer, it is not permissible to repeat it, as we have established by the grace of Allah in our treatise with no more to add.

1. Al-Durr al-Mukhtar, Kitab al-Salat, printed at Mutba Mujtabai Delhi, 1/61
2. Radd al-Muhtar, Kitab al-Salat, Mustafa al-Babi Egypt, 1/475

Page 186 of 948

फ़तावा रज़विया जिल्द नहम (खंड 9)

उत्तर (अल-जवाब): जनाज़े की नमाज़ हर समय शरीयत के अनुसार जायज़ है, यहाँ तक कि तीनों मकरूह (वर्जित) समयों में भी, यदि जनाज़ा उसी समय आया हो। 'दुर्रुल मुख्तार' में है: इन समयों में नफ़्ल नमाज़ 'कराहते तहरीमी' (सख्त नापसंदगी) के साथ हो जाएगी, लेकिन फ़र्ज़ नमाज़ और वह जो इसके साथ जुड़ी है जैसे 'वाजिब बे-ऐनही', जैसे वित्र, सज्दा तिलावत और नमाज़े जनाज़ा, अदा नहीं होगी यदि सज्दे की आयत कामिल (पूर्ण) समय में पढ़ी गई हो और जनाज़ा मकरूह समय शुरू होने से पहले आ गया हो। ऐसा इसलिए है क्योंकि उनका वाजिब होना पूर्ण हुआ, तो अपूर्ण रूप से अदायगी नहीं होगी। हाँ, यदि इन दोनों का वाजिब होना इन्हीं समयों के दौरान हुआ हो, तो इन समयों में उनकी अदायगी 'मकरूह तहरीमी' नहीं है। 'तुहफ़ा' में है: श्रेष्ठ यह है कि जनाज़े में देरी न की जाए। 'रद्दुल मुहतार' में है: 'तुहफ़ा' में जो उल्लेख है उसे बहर, नहर, फ़तह और मेराज में बरकरार रखा गया है क्योंकि हदीस में आया है: तीन चीज़ों में देरी न की जाए, उनमें से एक जनाज़ा है जब वह आ जाए। और यह विचार कि अस्र की नमाज़ से पहले जनाज़ा नमाज़ नाजायज़ है, यह शर्मनाक अज्ञानता या स्पष्ट गुमराहियत है, और पवित्र शरीयत पर पक्का आरोप है। हाँ, यदि समय कम हो तो पहले अस्र पढ़ना ज़रूरी है, लेकिन अगर जनाज़े की नमाज़ पहले पढ़ ली गई तो वह भी सही हो गई। और जब वली (अभिभावक) ने या उसकी अनुमति से किसी और ने जनाज़ा नमाज़ पढ़ ली, तो उसे दोबारा पढ़ना जायज़ नहीं है, जैसा कि हमने अल्लाह की तौफ़ीक़ से अपने रिसाले (लेख) में पूरी स्पष्टता के साथ सिद्ध किया है।

1. दुर्रुल मुख्तार, किताबुस सलात, मुतबा मुजतबाई दिल्ली, 1/61
2. रद्दुल मुहतार, किताबुस सलात, मुस्तफ़ा अल-बाबी मिस्र, 1/475

पृष्ठ 186/948

فتاوٰی رضویہ جلد نہم

الجواب: نماز جنازہ ہر وقت مشروع ہے یہاں تک کہ تینوں اوقاتِ مکروہ میں بھی، اگر اُسی وقت آئی ہو۔ درِ مختار میں ہے: ان اوقات میں نمازِ نفل کراہتِ تحریم کے ساتھ ہو جائے گی، فرض نہ ہوگا اور وہ بھی جو اس سے ملحق ہے جیسے واجبِ بعینہ، جیسے وتر اور سجدہ تلاوت و نمازِ جنازہ جبکہ آیتِ سجدہ کامل وقت میں پڑھی گئی ہو اور جنازہ وقتِ مکروہ سے پہلے آگیا ہو اس لئے کہ ان کا وجوب کامل ہوا تو ناقص طور پر ادائیگی نہ ہوگی، ہاں اگر ان دونوں کا وجوب ان ہی اوقات میں ہوا ہو تو ان اوقات میں ان کی ادائیگی مکروہِ تحریمی نہیں۔ تحفہ میں ہے: افضل یہ ہے کہ جنازہ میں دیر نہ کی جائے اھ ردالمحتار میں ہے: تحفہ میں جو مذکور ہے اسے بحر، نہر، فتح اور معراج میں برقرار رکھا ہے کیونکہ حدیث میں ہے: ۳ تین چیزوں میں دیر نہ کی جائے ان میں سے ایک یہ جنازہ ہے جب آجائے اھ اور یہ خیال ہے کہ نمازِ عصر سے پہلے جنازہ ناجائز ہے رسوا کن جہالت ہے یا کھلی ہوئی گمراہی، اور شریعت مبارکہ پر قطعی افتراء۔ ہاں اگر وقت تنگ ہو تو پہلے عصر پڑھنا ضروری ہے لیکن اگر نمازِ جنازہ پہلے پڑھ لی تو وہ بھی صحیح ہوگئی۔ اور جب ولی نے یا اس کی اجازت سے دوسرے نے نمازِ جنازہ پڑھ لی تو دوبارہ پڑھنا جائز نہیں جیسا کہ ہم نے بتوفیقِ الٰہی اپنے رسالہ بما لا مزید فی رسالتنا میں حققناہ کیا ہے۔

1۔ در مختار کتاب الصلوٰۃ مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی ۱/۶۱ 2۔ ردالمحتار کتاب الصلوٰۃ مصطفٰی البابی مصر ۱/۴۷۵

Fatawa Ridawiyya, Volume 9

[Boxed Text] Arabic: An-Nahy al-Hajiz 'an Takrar Salat al-Jana'iz (1315 AH). In al-Siraj al-Wahhaj, al-Bahr al-Ra'iq, Radd al-Muhtar, Jami' al-Rumuz, al-Jawhara al-Nayyirah, al-Hindiyya, Majma' al-Anhur, etc.: If the guardian (Wali) has offered the funeral prayer, it is not permissible for anyone to offer it after him. End. And in al-Durr al-Mukhtar: Or if someone who does not have the right of precedence led the prayer and the guardian followed him, it shall not be repeated. End (briefly). And Allah Almighty knows best.

Urdu: An-Nahy al-Hajiz 'an Takrar Salat al-Jana'iz contains a thorough research on this. It is stated in Siraj al-Wahhaj, Bahr al-Ra'iq, Radd al-Muhtar, Jami' al-Rumuz, Jawhara al-Nayyirah, Hindiyya, Majma' al-Anhur, etc.: If the guardian (Wali) has offered the funeral prayer, then it is not permissible for anyone to offer it after him. End. In Dur al-Mukhtar it is: Or if someone who does not have the right of precedence led the prayer but the guardian followed him, it cannot be prayed again. End (briefly). And the Supreme Lord knows best (T).

Problem Number 45: What do the scholars of religion say regarding this matter: if food is ready and the funeral is also ready, should one eat food first or bury the deceased?

The Answer: If the funeral has arrived, offer the prayer first as it doesn't take much time. Then, if needs like hunger etc. persist (see note), go to eat food after burial or just content with the prayer, provided those who carry the funeral are present and no Shariah violation occurs by not going. And Allah Almighty knows best.

Problem Number 46: From Etawah Station, Deor-Nayamar-Sila, Sheikh Niyaz Ahmed Sahib, 9 Dhu al-Qi'dah 1311 AH. What do the scholars of religion say regarding this matter: some people joined a funeral prayer without Wudu (ablution) and without Tayammum. Was their prayer valid or not? And what is the ruling regarding them? One person said they did nothing wrong because only the Imam's purity is necessary for funeral prayer, and there is no need for the followers' purity. How is this statement of his? Explain and you shall be rewarded.

Note (Ah): Food is served and after eating the funeral can be joined, or if one joins the funeral first, the heart will be towards food due to hunger, the food will get cold

and tasteless, or his teeth are weak and the bread will become cold and unchewable. 12 (M)

1. Al-Bahr al-Ra'iq, with reference to Siraj al-Wahhaj, Section: The Sultan is most deserving of the prayer, published by H.M. Saeed Company, Karachi, 2/212.
2. Al-Durr al-Mukhtar, Chapter: Funeral Prayer, published by Mujtabai, Delhi, 1/123.

फतावा रज़विया, जिल्द 9

[बॉक्स वाला टेक्स्ट] अरबी: अन-नह्युल हाज़िज़ अन तकरार सलातिल जनाइज़ (1315 हिजरी)। सिराजुल वहाज, बहरुर रैक, रद-दुल मुहतार, जामिउर रुमूज़, अल-जौहरातुन नय्यिरा, अल-हिन्दिया, मजमउल अन्हुर आदि में है: यदि वली (अभिभावक) ने जनाज़ा पढ़ लिया है, तो उसके बाद किसी के लिए पढ़ना जायज़ नहीं है। (समाप्त)। अल-दुर्रुल मुख्तार में है: या किसी ऐसे व्यक्ति ने पढ़ाया जिसे वली पर प्राथमिकता का अधिकार नहीं था, लेकिन वली ने उसका अनुसरण कर लिया, तो इसे दोहराया नहीं जाएगा। (संक्षेप में) और अल्लाह तआला बेहतर जानता है।

उर्दू: अन-नह्युल हाज़िज़ तकरार सलातिल जनाइज़ में इस पर गहन शोध है। सिराजुल वहाज, बहरुर रैक, रद-दुल मुहतार, जामिउर रुमूज़, अल-जौहरातुन नय्यिरा, अल-हिन्दिया, मजमउल अन्हुर आदि में है: यदि वली (अभिभावक) ने जनाज़ा पढ़ लिया है, तो उसके बाद किसी के लिए पढ़ना जायज़ नहीं है। अल-दुर्रुल मुख्तार में है: या किसी ऐसे व्यक्ति ने पढ़ाया जिसे वली पर प्राथमिकता का अधिकार नहीं था, लेकिन वली ने उसका अनुसरण कर लिया, तो इसे दोहराया नहीं जाएगा। (संक्षेप में) और अल्लाह तआला बेहतर जानता है (त)।

मसला नंबर 45: दीन के उलेमा इस मसले में क्या फ़रमाते हैं कि: खाना तैयार है और जनाज़ा भी तैयार है, तो पहले खाना खाया जाए या मुर्दे को दफ़्न किया जाए?

जवाब: जनाज़ा आ गया तो पहले उसकी नमाज़ पढ़ ले, उसकी नमाज़ में इतनी देर नहीं होती। फिर भूख वगैरह की ज़रूरतें (देखें नोट) हों तो दफ़्न के बाद खाना खाने जाए या केवल नमाज़ पर संतोष करे, जबकि ले जाने वाले मौजूद हों और न जाने से कोई शरीअत की बाधा न आती हो। वल्लाह तआला आलम।

मसला नंबर 46: इटावा स्टेशन, देवर-नियामार-सिला, शेख नियाज़ अहमद साहब, 9 ज़ीक़ादा 1311 हिजरी। दीन के उलेमा इस मसले में क्या फ़रमाते हैं कि: एक जनाज़ा की नमाज़ में कुछ लोग बिना वज़ू और बिना तयम्मुम के शामिल हो गए। उनकी नमाज़ हुई या नहीं? और उनके संबंध में क्या हुक्म है? और एक व्यक्ति ने कहा कि उन्होंने कुछ बुरा नहीं किया क्योंकि जनाज़ा की नमाज़ में केवल इमाम की तहारत (पवित्रता) ज़रूरी है, मुक्तदियों (अनुयायियों) की तहारत की ज़रूरत नहीं है, उसका यह कहना कैसा है? बयान फ़रमाएं और सवाब पाएं।

नोट (अह): खाना सामने आया और खाने के बाद जनाज़ा मिल जाएगा, या पहले जनाज़ा में शामिल हो जाए तो भूख की वजह से दिल खाने की तरफ रहेगा, खाना ठंडा होकर बेमज़ा हो जाएगा, या उसके दांत कमज़ोर हैं और रोटी ठंडी होने पर चबाई नहीं जाएगी। 12 (म)

1. अल-बहरुर रैक, सिराजुल वहाज के हवाले से, खंड: सुल्तान नमाज़ का सबसे ज़्यादा हक़दार है, एच.एम. सईद कंपनी, कराची द्वारा प्रकाशित, 2/212।
2. अल-दुर्रुल मुख्तार, अध्याय: जनाज़ा की नमाज़, मुजतबाई दिल्ली द्वारा प्रकाशित, 1/123।

पृष्ठ 187/948

فتاوٰی رضویہ، جلد نہم

[باکس ٹیکسٹ] النهي الحاجز عن تكرار صلوة الجنائز ۱۳۱۵ھ في السراج الوهاج والبحر الرائق وردالمحتار و جامع الرموز الجوهرة النيرة والهندية ومجمع الانهر وغيرها ان صلى الولى عليه لم يجز ان يصلى احد بعده اهـ وفي الدر المختاراو من ليس له حق التقدم وتابعه الولى لا يعيد اهـ مختصرا والله تعالى اعلم۔

النهي الحاجز تکرار صلوٰۃ الجنائز میں اس کی بھر پور تحقیق کی ہے۔ سراج وہاج، بحر الرائق، ردالمحتار، جامع الرموز، جوہرہ نیرہ، ہندیہ، مجمع الانہر وغیرہما میں ہے: اگر ولی نے جنازہ پڑھ لیا تو اس کے بعد کسی کو پڑھنا جائز نہیں اھ در مختار میں ہے: یا کسی ایسے شخص نے پڑھا جسے ولی پر حق تقدم حاصل نہیں مگر ولی نے اس کی متابعت کر لی تو دوبارہ نہیں پڑھ سکتا اھ مختصرا۔ اور خدائے برتر خوب جاننے والا ہے (ت)

مسئلہ نمبر ۴۵: کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ کھانا تیار ہے جنازہ بھی تیار ہے تو پہلے کھانا کھائے یا مردے کو دفن کرے؟

الجواب: جنازہ آگیا تو پہلے اس کی نماز پڑھ لے اس کی نماز میں ایسی دیر نہیں ہوتی، پھر بھوک وغیرہ وہی عہ ضرورتیں لاحق ہوں تو دفن کے لئے بعد کھانا کھانے کے جائے یا فقط نماز پر قناعت کرے، جبکہ لے جانیوالے موجود ہوں اور اس کے نہ جانے سے کوئی شرعی حرج شرعی نہ آتا ہو۔ واللہ تعالٰی اعلم۔

مسئلہ نمبر ۴۶: از ٹاوا اسٹیشن دیور نیامر سلہ شیخ نیاز احمد صاحب ۹ ذیقعدہ ۱۳۱۱ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ ایک جنازہ کی نماز میں کچھ لوگ بلا وضو و بلا تیمم شریک

ہوگئے اُن کی نماز ہوئی یا نہیں؟ اور ان کی نسبت کیا حکم ہے؟ اور ایک شخص نے کہا کہ انہوں نے کچھ بُرا نہ کیا کہ نماز جنازہ میں صرف امام کی طہارت ضروری ہے مقتدیوں کی طہارت کی حاجت نہیں، اُس کا یہ قول کیسا ہے؟ بینوا توجروا

عہ: کھانا سامنے آیا اور کھانے کے بعد جنازہ مل جائیگا، یا پہلے جنازہ میں شرکت کرے تو بھوک کی وجہ سے دل کھانے کی طرف رہے کھانا ٹھنڈا ہو کر بے مزہ ہو جائے گا، یا اس کے دانت کمزور ہیں روٹی ٹھنڈی ہو جائے گی اور چبائی نہ جائے گی ۱۲ (م)

1 البحر الرائق بحوالہ سراج الوھاج فصل السلطان احق بصلوتہ مطبوعہ ایچ ایم سعید کمپنی کراچی ۲/ ۲۱۲ 2 در مختار باب صلوۃ الجنائز مطبوعہ مجتبائی دہلی ۱/ ۱۲۳

The Answer: The funeral prayer (Janaza), like all other prayers, is absolutely not valid without ritual purity (tahara). Those who offered it [without purity] have sinned and committed a severe wrong, and their prayer was not fulfilled at all. The meaning of purity being a condition only for the imam in the funeral prayer is that if the imam was pure, his prayer is valid, which is sufficient for fulfilling this obligation because a congregation is not a condition for it. It does not mean that the imam's purity alone suffices for the validity of the followers' prayer, or that it is permissible for followers to pray without purity. This is sheer and gross ignorance. Whoever gave this nonsensical fatwa is legally deserving of punishment (ta'zir), as it is forbidden for an ignorant person to become a Mufti.

In Radd al-Muhtar: As for the conditions related to the worshiper, they are the conditions of the rest of the prayers: physical purity (of body, clothes, and place) and ritual purity, covering of private parts (satr al-awrat), facing the Qibla, and intention, except for [specific] timing.[1]

In the same [book]: It is not valid without purity.[2] Funeral prayer without purity is not valid. (T) In Durr-e-Mukhtar, it is stated:

If he leads [the prayer] without purity while the people are with it, it shall be repeated; conversely, it is not, just as if a woman led, even if she were a slave-girl, because the obligation is fulfilled by one [person].[3]

It is stated in Radd al-Muhtar: The conditions related to the person performing the funeral prayer are the same as those for other prayers: that the body, clothing, and place be clean from real impurity (najasa haqiqiya), the body be clean from ritual impurity (najasa hukmiya), the private parts be covered, facing the Qibla, and having intention; the condition of a specific time does not apply. (T)

If the imam is without purity and the followers are with purity, the funeral prayer must be repeated. In the opposite case, there is no need for repetition. For example, if a woman performs the imamate, even if she is a slave-girl, there is no repetition because the obligation is fulfilled by even one person performing it. (T)

[1] Radd al-Muhtar, Chapter of Funeral Prayer, published by Idara al-Taba'at al-Misriyya, Egypt, 1/582. [2] Radd al-Muhtar, Chapter of Funeral Prayer, published by Idara al-Taba'at al-Misriyya, Egypt, 1/582. [3] Durr-e-Mukhtar, published by Matba' Mujtabai, Delhi, 1/121.

जवाब: जनाज़े की नमाज़, अन्य सभी नमाज़ों की तरह, बिना तहारत (पवित्रता) के हरगिज़ सही नहीं है। इसे [बिना तहारत के] पढ़ने वाले गुनहगार हुए और उन्होंने बहुत बुरा किया, और उनकी नमाज़ हरगिज़ अदा नहीं हुई। नमाज़-ए-जनाज़ा में केवल इमाम की तहारत शर्त होने का अर्थ यह है कि यदि इमाम पाक (शुद्ध) था, तो उसकी नमाज़ सही हो गई, और इस फ़र्ज़ की अदायगी के लिए इतना ही काफ़ी है क्योंकि इसमें जमाअत (समूह) शर्त नहीं है। इसका यह अर्थ कतई नहीं है कि केवल इमाम की तहारत मक्तदियों (पीछे नमाज़ पढ़ने वालों) की नमाज़ की शुद्धि के लिए भी पर्याप्त है या मक्तदियों के लिए बिना तहारत नमाज़ पढ़ना जायज़ है। यह कोरी और घोर अज्ञानता है। जिस किसी ने यह बेतुका फ़तवा दिया है, वह शरीयत के अनुसार ताज़ीर (दंड) का पात्र है, क्योंकि किसी अज्ञानी का मुफ़्ती बनना हराम है।

रद अल-मुह्तार में है: जहाँ तक नमाज़ पढ़ने वाले से संबंधित शर्तों का सवाल है, तो वे अन्य नमाज़ों की शर्तों के समान ही हैं: जैसे शरीर, वस्त्र और स्थान की हकीकी (वास्तविक) पाकी, और हुक्मी (विधिक) पाकी (वज़ू/ग़ुस्ल), सतर-ए-औरत (शरीर ढकना), क़िबला की ओर मुख करना और नियत करना, सिवाय समय की शर्त के।[1]

रद अल-मुह्तार में है: नमाज़-ए-जनाज़ा पढ़ने वाले से संबंधित शर्तें वही हैं जो शेष नमाज़ों से संबंधित हैं: कि शरीर, कपड़े और स्थान हकीकी नजासत (गंदगी) से पाक हों, शरीर हुक्मी नजासत से भी पाक हो, सतर-ए-औरत हो, क़िबला की ओर रुख हो और नियत हो; समय की शर्त नहीं है। (त)

इसी में है: तहारत के बिना यह (नमाज़) सही नहीं है।[2]
बिना तहारत के नमाज़-ए-जनाज़ा सही नहीं है। (त)
दुर्रे मुख्तार में है:

यदि उसने (इमाम ने) बिना तहारत के इमामत की और लोग बा-तहारत (पवित्र) थे, तो नमाज़ दोहराई जाएगी; और इसके विपरीत (यदि इमाम पाक हो और मक्तदी बे-वज़ू हो) तो नहीं, जैसे कि यदि किसी औरत ने इमामत की हो, चाहे वह कनीज़ (दासी) ही क्यों न

अगर इमाम बिना तहारत के है और मक्तदी बा-तहारत हैं, तो जनाज़ा फिर से पढ़ना होगा। और इसके विपरीत स्थिति में दोहराने की ज़रूरत नहीं है। जैसे अगर कोई औरत इमामत कर दे, चाहे वह दासी ही क्यों न हो,

रद अल-मुह्तार में है: जहाँ तक नमाज़ पढ़ने वाले से संबंधित शर्तों का सवाल है, तो वे अन्य नमाज़ों की शर्तों के समान ही हैं: जैसे शरीर, वस्त्र और स्थान की हकीकी (वास्तविक) पाकी, और हुक्मी (विधिक) पाकी (वज़ू/ग़ुस्ल), सतर-ए-औरत (शरीर ढकना), क़िबला की ओर मुख करना और नियत करना, सिवाय समय की शर्त के।[1]

रद अल-मुह्तार में है: नमाज़-ए-जनाज़ा पढ़ने वाले से संबंधित शर्तें वही हैं जो शेष नमाज़ों से संबंधित हैं: कि शरीर, कपड़े और स्थान हकीकी नजासत (गंदगी) से पाक हों, शरीर हुक्मी नजासत से भी पाक हो, सतर-ए-औरत हो, क़िबला की ओर रुख हो और नियत हो; समय की शर्त नहीं है। (त)

हो, क्योंकि फ़र्ज़ एक व्यक्ति के पढ़ लेने से भी पूरा हो जाता है।[3]

तो दोहराना नहीं होगा क्योंकि एक व्यक्ति के पढ़ लेने से भी फ़र्ज़ पूरा हो जाता है। (त)

[1] रद अल-मुह्तार, बाब सलातुल जनाइज़, मुद्रित इदारा अल-तबात अल-मिसरिया, मिस्र, 1/582। [2] रद अल-मुह्तार, बाब सलातुल जनाइज़, मुद्रित इदारा अल-तबात अल-मिसरिया, मिस्र, 1/582। [3] दुर्रे मुख्तार, मुद्रित मतबा मुज्तबाई, दिल्ली, 1/121।

الجواب: جنازہ کی نماز مثل اور سب نمازوں کے بغیر طہارت کے ہرگز صحیح نہیں۔ وہ پڑھنے والے گنہگار ہوئے اور انہوں نے بہت سخت برا کیا اور اُن کی نماز ہرگز ادا نہ ہوئی۔ نمازِ جنازہ میں صرف طہارتِ امام شرط ہونے کے یہ معنی ہیں کہ اگر ایسا ہو جب امام طاہر تھا تو اس کی نماز صحیح ہو گئی، اس فرض کے ادا کرنے کو اتنا کافی ہے کہ اس میں جماعت شرط نہیں یہ معنی نہیں ہیں کہ فقط طہارتِ امام صحتِ نمازِ مقتدیان کے لئے بھی کفایت کرتی ہے مقتدیوں کو بے طہارت پڑھ لینی جائز ہے، یہ محض جہالتِ فاحشہ ہے، جس نے یہ فتوٰی بیہودہ دیا وہ شرعاً تعزیر دئے جانے کے قابل ہے کہ جاہل کو مفتی بننا حرام ہے۔

فی ردالمحتار امّاالشروط التی ترجع الی المصلی فھی شروط بقیة الصلوة من الطھارة الحقیقة بدنًا و ثوبًا و مکانًا و الحکمیة و سترالعورت و لاستقبال و النیة سوی الوقت[1]۔

ردالمحتار میں ہے: نمازِ جنازہ پڑھنے والے سے متعلق شرطیں وہی ہیں جو بقیہ نمازوں سے متعلق کہ بدن، جامہ، جگہ نجاستِ حقیقیہ سے پاک ہو، بدن نجاستِ حکمیہ سے بھی پاک ہو، سترِ عورت ہو، استقبالِ قبلہ اور نیت ہو وقت کی شرط نہیں۔ (ت)

اسی میں ہے: لا صحة لھا بدون الطھارة[2]۔

بغیر طہارت کے نمازِ جنازہ صحیح نہیں۔

(ت) درمختار میں ہے:

لو امّ بلا طھارة و القوم بھا اعیدت و بعکسه لا کما لو امّت امرأة و لو امة لسقوط فرضھا بواحد[3]۔

اگر امام بے طہارت ہے اور مقتدی باطہارت تو جنازہ پھر سے پڑھنا ہے اور اس کے برعکس ہے تو اعادہ نہیں، جیسے اگر کوئی عورت امامت کر دے خواہ کنیز

فی ردالمحتار امّاالشروط التی ترجع الی ردالمحتار میں ہے: نمازِ جنازہ پڑھنے والے سے متعلق

المصلی فھی شروط بقیة الصلوة من الطھارة الحقیقة بدنًا و ثوبًا و مکانًا و الحکمیة و سترالعورت و لاستقبال و النیة سوی الوقت[1]۔

شرطیں وہی ہیں جو بقیہ نمازوں سے متعلق کہ بدن، جامہ، جگہ نجاستِ حقیقیہ سے پاک ہو، بدن نجاستِ حکمیہ سے بھی پاک ہو، سترِ عورت ہو، استقبالِ قبلہ اور نیت ہو وقت کی شرط نہیں۔ (ت)

ہی ہو تو اعادہ نہیں اس لئے کہ ایک کے پڑھ لینے سے بھی فرض ادا ہو جاتا ہے (ت)

[1] ردالمحتار باب صلوة الجنائز مطبوعہ ادارۃ الطباعۃ المصریہ مصر ۱/ ۵۸۲ [2] ردالمحتار باب صلوة الجنائز مطبوعہ ادارۃ الطباعۃ المصریہ مصر ۱/ ۵۸۲ [3] دُرِّ مختار مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی ۱/ ۱۲۱

Fatawa Ridawiyya Volume 9

It is mentioned in Radd al-Muhtar: "That is, it is not repeated because the Imam's prayer was valid, even if the prayer of those behind him was not valid. And Allah, the Exalted, knows best, and His knowledge, glorified be He, is most complete and most wise." (T)

Problem 74: From Gwalior, asked by Maulvi Muhammad Mahmood-ul-Hasan Sahib, 13 Rabi-ul-Akhir 1339 AH. What do the scholars of religion say regarding these matters: (1) In a funeral prayer, Zaid tried to stop people who wanted to pray by taking their feet out of their shoes and standing on top of them, saying, "Do not take your feet out of your shoes; praying while wearing shoes is correct." Amr, in an authoritative tone, said that some say to pray while wearing shoes, [but] everyone should take off their shoes. Consequently, some acted on Zaid's words and some on Amr's. After the prayer, a debate ensued. Zaid gave a written reply stating that the Messenger of Allah took off his shoes during prayer, and the followers followed suit. The Prophet asked, "Why did you take off your shoes?" They replied, "In following you." He said, "Gabriel (peace be upon him) told me there was impurity on my shoes." Therefore, it should be understood that for Amr to say such a thing was wrong because how could he utter such spontaneous words when he had no proof of impurity? In the local situation where Amr had said to take off shoes for prayer, the reason was that horses etc. urinate there. All the people wearing shoes had dry shoes. So in this situation, will Amr's statement be considered correct according to Sharia or Zaid's? (2) The aforementioned Amr once also did this: he led the funeral prayer a second time. Zaid called this 'makruh' (disliked). When people debated on Amr's behalf, Zaid, in addition to calling it 'makruh', also proved it to be a sign of 'fitna' (strife) and 'bid'at' (innovation). Is Zaid's statement correct?

Answer: (1) If that place was impure due to urine etc., or the soles of the shoes were impure and the prayer was performed while wearing them in that state, their prayer is not valid. The precaution is to take off the shoes and stand on top of them to pray, so that if the ground or the sole is impure, it does not interfere with the prayer. It is mentioned in Radd al-Muhtar:

---

1 Radd al-Muhtar, Chapter of Funeral Prayer, printed by Idara-tut-Taba'at-il-Misriyya, Egypt, 1/582.

फ़तावा रज़विया जिल्द 9

रद अल-मुह्तार में है: "यानी दोहराया नहीं जाएगा क्योंकि इमाम की नमाज़ सही हो गई, भले ही पीछे वालों की नमाज़ सही न हुई हो। और अल्लाह सुब्हानहू व ताला सबसे बेहतर जानता है, और उसका इल्म सबसे मुकम्मल और सबसे हिकमत वाला है।" (त)

मसला नंबर 74: ग्वालियर से, सायल मौलवी मोहम्मद महमूद अल-हसन साहब, 13 रबी-उल-आख़िर 1339 हिजरी। दीन के उलेमा इन मसलों में क्या फरमाते हैं कि: (1) एक जनाज़े की नमाज़ में ज़ैद ने उन लोगों को रोका जो जूतों से पैर निकाल कर जूतों के ऊपर पैर रख कर नमाज़ पढ़ना चाहते थे, और कहा कि पैर जूतों से मत निकालो, जूते पहने हुए नमाज़ पढ़ना दुरुस्त है। उम्र ने एक मज़बूत लहजे में कहा कि कोई कहता है जूते पहन कर नमाज़ पढ़ो, सब जूते उतार दो। चुनाँचे कुछ ने ज़ैद के कहने पर अमल किया और कुछ ने उम्र के कहने पर। नमाज़ के बाद बहस छिड़ गई। ज़ैद ने तहरीरी जवाब में कहा कि रसूले ख़ुदा ने नमाज़ में जूता उतारा, मुक़्तदियों ने भी उतार दिया, पैग़म्बर साहब ने पूछा कि तुमने जूते क्यों उतारे? जवाब दिया कि आपकी पैरवी में। आपने फरमाया कि मुझसे जिब्राईल अलैहिस्सलाम ने कहा कि जूते में नापाकी है। पस मालूम कर लेना चाहिए कि उम्र का ऐसा कहना ख़िलाफ़ था क्योंकि वह ऐसे बेधड़क अल्फ़ाज़ कैसे कह सकता था जबकि उसके पास नापाकी का कोई सबूत नहीं था। मक़ामी हालत में जहाँ उम्र ने जूते उतार कर नमाज़ पढ़ने के लिए कहा था, वह यह थी कि वहाँ घोड़े वगैरह पेशाब करते हैं, जितने लोग जूते पहने हुए थे उनके जूते खुश्क (सूखे) थे, पस इस हालत में शरीअत के मुताबिक़ उम्र की बात सही मानी जाएगी या ज़ैद की? (2) मज़कूरा उम्र ने एक मर्तबा ऐसा भी किया कि नमाज़े जनाज़ा दोबारा पढ़ाई, ज़ैद ने इसे मकरूह कहा, और जब उम्र की जानिब से लोगों ने बहस की तो उसने मकरूह के अलावा इसे फ़ित्ना और बिदअत के आसार भी साबित किया, क्या ज़ैद का कहना हक़ है?

उत्तर: (1) अगर वह जगह पेशाब वगैरह से नापाक थी या जिनके जूतों के तले नापाक थे और इस हालत में जूता पहने हुए नमाज़ पढ़ी, उनकी नमाज़ नहीं हुई। एहतियात (सावधानी) यही है कि जूता उतार कर उस पर पाँव रख कर नमाज़ पढ़ ली जाए ताकि अगर ज़मीन या तला नापाक हो तो नमाज़ में ख़लल न आए। रद अल-मुह्तार में है:

---

1 रद अल-मुह्तार, बाब सलातुल जनाइज़, मतबुआ इदारा-तुत-तबात-इल-मिस्रिया, मिस्र, 1/582.

ردالمختار میں ہے: ای لاتعاد لصحة صلوة الامام وان لم تصح صلوة | یعنی اعادہ اس لئے نہیں کہ امام کی نماز صحیح ہو گئی اگرچہ پیچھے من خلفہ ۱۔ واللہ سبحنہ وتعالٰی اعلم وعلمہ جل | والوں کی نماز صحیح نہ ہوئی واللہ سبحنہ وتعالٰی اعلم مجدہ اتم واحکم۔ | وعلمہ جل مجدہ اتم واحکم (ت)

مسئلہ نمبر ۷۴: از گوالیار مسئولہ مولوی محمد محمود الحسن صاحب ۱۳ ربیع الآخر ۱۳۳۹ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین ان مسائل میں کہ : (۱) ایک جنازے کی نماز میں زید نے لوگوں کو جنہوں نے جوتوں میں سے پیروں کو نکال کر اور جوتے کے اوپر پیر رکھ کر نماز پڑھنا چاہا، روکا کہ پیر جوتوں سے مت نکالوا جوتے پہنے ہوئے نماز درست ہے۔ عمرو نے ایک شخصیت کے الفاظ میں کہا کہ کوئی کہتا ہے جوتے پہنے ہوئے نماز پڑھو، جوتے سب اتار ڈالیں۔ چنانچہ بعض نے زید کے کہنے پر عمل کیا بعض نے عمرو کے کہنے پر۔ بعد نماز بحث پیش آئی۔ زید نے تحریری جواب میں کہ رسول خدا نے نماز میں جوتا اتارا، مقتدیوں نے بھی اتارا، پیغمبر صاحب نے دریافت کیا تم نے جوتے کیوں اتارے؟ جواب دیا کہ اتباع کیا۔ آپ نے فرمایا مجھ سے جبرئیل علیہ السلام نے کہا کہ جوتے میں ناپاکی ہے۔ پس معلوم کر لینا چاہئے، عمرو کو ایسا کہنا خلاف تھا اس لئے کہ وہ کیسے برجستہ الفاظ صدر کہہ سکتا تھا اس لئے ناپاکی کا ثبوت نہیں رکھتا تھا، مقامی حالت میں جہاں جوتے اتار کر نماز پڑھنے کے واسطے عمرو نے کہا تھا یہ تھی کہ وہاں گھوڑے وغیرہ پیشاب کرتے ہیں، جوتے پہنے ہوئے جسقدر لوگ تھے اُن کے جوتے خشک تھے، پس اس حالت میں شرعاً عمرو کا کہنا صحیح سمجھا جائے گا یا زید کا؟ (۲) عمر و مذکور نے ایک مرتبہ ایسا بھی کیا کہ نماز جنازہ دوبارہ پڑھائی، زید نے اس کو مکروہ کہا، اور جب عمرو کی جانب سے

لوگوں نے بحث کی تو اُس نے علاوہ مکروہ کے آثار فتنہ اور بدعت بھی ثابت کیا، کیا زید کا کہنا حق ہے؟

الجواب: (۱) اگر وہ جگہ پیشاب وغیرہ سے ناپاک تھی یا جن کے جوتوں کے تلے ناپاک تھے اور اس حالت میں جوتا پہنے ہوئے نماز پڑھی ان کی نماز نہ ہوئی، احتیاط یہی ہے کہ جوتا اتار کر اس پر پاؤں رکھ کر نماز پڑھ لی جائے کہ زمین یا تلا ناپاک ہو تو نماز میں خلل نہ آئے۔ ردالمحتار میں ہے :

---

1 ردالمحتار باب صلوۃ الجنائز مطبوعہ ادارۃ الطباعۃ المصریہ مصر ۱/ ۵۸۲

Fatawa Razawiya Volume 9

Sometimes in some places outside the mosque, the funeral prayer is offered by placing the bier on the road. This results in the invalidation of the prayer for many people because those places are impure and people do not take off their impurity-stained shoes (T).

In the same source: It is mentioned in 'Al-Bada'i': If someone prays on a cube whose top is pure and its interior is impure, it is permissible according to Imam Muhammad, because he prayed in a pure place, like a pure cloth under which is another impure cloth. The apparent view is the preference for Imam Muhammad's opinion and it is the most similar (resemblant) (Summarized) (T).

Zaid made a mistake in narrating the Hadith; the word in the Hadith is not 'Najasa' (impurity) but 'Qadhar' (filth/loathsomeness), meaning something repulsive like nasal discharge etc. If it were actual impurity, the prayer would not have been valid at all, as the invalidation of even one part of the prayer invalidates the whole prayer. And Allah Almighty knows best. (2) Once the funeral prayer is led by the guardian (Wali) or with the guardian's permission, it is not permissible to repeat it. As is explicitly stated in all books, and its detail is in our treatise 'Al-Nahi al-Hajiz 'an Tikrar Salat al-Jana'iz' (The Preventive Prohibition against Repeating Funeral Prayers). And Allah Almighty knows best (T).

Problem No. 49: What do the scholars of religion and muftis of the firm Shariah say about this matter: Is it permissible to perform the funeral prayer while the deceased is on a charpai (cot), and the legs of the charpai are more than one hand's length high? If it is permissible, by what evidence is it permissible? Explain and be rewarded. The Answer: During the time of prayer, having the deceased on a charpai is the common practice of Muslims since the earliest era; its legs [should be] according to the custom.

1. Radd al-Muhtar, Chapter on Funeral Prayers, printed by Idara-tul-Tiba'ah al-Misriyah, Egypt, 1/592.
2. Radd al-Muhtar, Chapter on things that invalidate the prayer and what is disliked in it, printed by Idara-tul-Tiba'ah al-Misriyah, Egypt, 1/421.

फ़तावा रज़विया जिल्द नहम (खंड 9)

कभी-कभी कुछ स्थानों पर मस्जिद के बाहर सड़क पर जनाज़ा रखकर नमाज़ पढ़ी जाती है, इससे बहुत से लोगों की नमाज़ का फ़साद (बिगड़ना) लाज़िम आता है क्योंकि वे जगहें नजिस (अशुद्ध) होती हैं और लोग अपने नजासत-आलूद (गंदगी से सने) जूते नहीं उतारते (त)।

उसी में है: 'अल-बदाए' में है: अगर किसी ऐसे मुकब (घन/क्यूब) पर नमाज़ पढ़ी जिसका ऊपरी हिस्सा पाक है और अंदरूनी हिस्सा नापाक है, तो इमाम मुहम्मद के नज़दीक जायज़ है, इसलिए कि नमाज़ पाक जगह पर अदा हुई जैसे कोई पाक कपड़ा हो जिसके नीचे दूसरा नापाक कपड़ा हो। इसका ज़ाहिर इमाम मुहम्मद के क़ौल की तरजीह है और वही 'अशबह' (समान) है (मुल्ख़सन/संक्षिप्त) (त)।

ज़ैद ने बयान-ए-हदीस में ग़लती की, हदीस में लफ्ज़ 'नजासत' नहीं लफ्ज़ 'क़दर' है यानी घिनौनी चीज़, जैसे नाक की आमेज़िश (नाक का मैल) वग़ैरा। नजासत होती तो नमाज़ सिरे से न होती कि नमाज़ का एक जुज़ (हिस्सा) बातिल होना पूरी नमाज़ को बातिल कर देता है, वल्लाहु तआला आलम। (२) नमाज़-ए-जनाज़ा जब वली (अभिभावक) पढ़ा दे या बा-इज़न-ए-वली (वली की अनुमति से) हो जाए, तो दोबारा पढ़ना जायज़ नहीं। जैसा कि तमाम किताबों में इसकी तसरीह (स्पष्टीकरण) है और इसकी तफ़सील हमारे रिसाले 'अन्नही अल-हाजिज़ अन तकरार सलातुल जनाइज़' में है। वल्लाहु तआला आलम (त)।

मसला नंबर ४९: क्या फ़रमाते हैं उलेमा-ए-दीन व मुफ़्तियान-ए-शरअ-ए-मतीन इस मसले में कि नमाज़-ए-जनाज़ा इस तरह अदा करना कि मय्यत चारपाई पर हो और चारपाई के पाये एक हाथ से ज़ायद (अधिक) बुलंद हों जायज़ है या नहीं? अगर जायज़ है तो किस दलील से जायज़ है? बय्यिनू तूजरू (बयान करें और पुण्य पाएं)। अल-जवाब: नमाज़ के वक़्त मय्यत का चारपाई पर होना सदर-ए-औ़ली (प्राचीन काल) के मामूली मुसलमानों का तरीका है, इसके पाये हस्ब-ए-आदत (रिवाज़ के अनुसार) [होने चाहिए]।

1. रद्दुल मुहतार, बाब सलातुल जनाइज़, मतबूआ इदारा-तुल-तिबा'ह अल-मिसरियाह, मिस्र, १/५९२।
2. रद्दुल मुहतार, बाब मुफ़सिद-उस-सलात व मा युक़रहु फ़ीहा, मतबूआ इदारा-तुल-तिबा'ह अल-मिसरियाह, मिस्र, १/४२१।

পৃষ্ঠ ১৭০/৭৪৮

قد توضع في بعض المواضع خارج المسجد في الشارع فیصلی علیها ویلزم منه فسادها من کثیر من المصلین لعموم النجاسة وعدم خلفهم نعالهم المتنجسة - کبھی بعض مقامات میں بیرونِ مسجد سڑک پر جنازہ رکھ کر نماز پڑھی جاتی ہے اس سے بہت سے لوگوں کی نماز کا فساد لازم آتا ہے کیونکہ وہ جگہیں نجس ہوتی ہیں اور لوگ اپنے نجاست آلود جوتے اتارتے نہیں (ت)۔

اُسی میں ہے: في البدائع لو صلی علی مکعب اعلاہ طاھر وباطنه نجس عند محمد یجوز لانه صلی في موضع طاھر کثوب طاھر تحته ثوب نجس اھ وظاھرہ ترجیح قول محمد وھو الا شبه (ملخصاً) بدائع میں ہے: اگر کسی ایسے مکعب پر نماز پڑھی جس کا بالائی حصہ پاک ہے اور اندرونی حصہ ناپاک ہے تو امام محمد کے نزدیک جائز ہے، اس لئے کہ نماز پاک جگہ ادا ہوئی جیسے کوئی پاک کپڑا ہو جس کے نیچے دوسرا ناپاک کپڑا ہو۔ اس کا ظاہر امام محمد کے قول کی ترجیح ہے اور وہی اشبہ ہے (ملخصاً) (ت)

زید نے بیانِ حدیث میں غلطی کی، حدیث میں تو لفظِ نجاست نہیں لفظ قذر ہے یعنی گھن کی چیز، جیسے ناک کی آمیزش وغیرہ نجاست ہوتی ہے تو نماز سرے سے پڑھی جاتی کہ نماز کا ایک جز باطل ہونا ساری نماز کو باطل کردیتا ہے، واللہ تعالٰی اعلم (۲) نمازِ جنازہ جب ولی پڑھائے یا باذنِ ولی ہو جائے تو دوبارہ پڑھنا جائز نہیں، کما ھو مصرح في جمیع الکتب وتفصیله في رسالتنا النھی الحاجز عن تکرار صلوۃ الجنائز - واللہ تعالی اعلم۔ جیسا کہ تمام کتابوں میں اس کی تصریح ہے اور اس کی تفصیل ہمارے رسالے النھی الحاجز عن تکرار صلوۃ الجنائز میں ہے۔ واللہ تعالٰی اعلم (ت)

مسئلہ نمبر ۴۹: کیا فرماتے ہیں علمائے دین ومفتیانِ شرع متین اس مسئلہ میں کہ نمازِ جنازہ اس طرح ادا کرنا کہ میت چار پائی پر ہو اور چار پائی کے پائے ایک ہاتھ سے زائد بلند ہوں جائز ہے یا نہیں؟ اگر جائز ہے تو کس دلیل سے جائز ہے؟ بینوا توجروا۔ الجواب: نماز کے وقت میت کا چار پائی پر ہونا صدرِ اولیٰ معمولی مسلمانان ہے اس کے پائے حسبِ عادت

1 ردالمحتار باب صلوۃ الجنائز مطبوعہ ادارۃ الطباعۃ المصریۃ مصر ۱/ ۵۹۲ 2 ردالمحتار باب مفسد الصلوۃ ومایکرہ فیھا مطبوعہ ادارۃ الطباعۃ المصریۃ مصر ۱/ ۴۲۱

Fatawa Razviya, Volume 9.

...be it a cubit, less, or sometimes more; there has never been any objection to this. Whoever claims that slightly more than a cubit is impermissible must provide proof. Whoever called it impermissible or wrote it as such will never be able to provide proof. At that time, it will be revealed to them that calling it impermissible was a fabrication against the pure Shari'ah. Yes, if the bed is so high that it exceeds human height, such that no part of the Imam is aligned with any part of the deceased, then the prayer would be invalid, as alignment is a condition. However, no bed is that high.

In 'Radd al-Muhtar', quoted from 'Jami' al-Rumuz', and in that from 'Tuhfat al-Fuqaha', it is mentioned: "The pillar of the funeral prayer is standing (Qiyam) and the alignment of the worshiper with any part of the deceased. And Allah Almighty knows best."

Question 50: From Ajmer Sharif, sent by Mahmood al-Hassan, 23 Muharram 1338 AH. What do the scholars of religion say regarding this matter: Zaid says that if the funeral prayer is performed while placing the deceased on a cot whose legs are less than one span (balisht) high, then the prayer is valid, otherwise not. In proof, he presents 'Shami' and 'Kabiri' and says that the deceased is like the Imam; just as the Imam standing more than one span higher (than followers) invalidates the prayer, in this case also, legs higher than one span prevent the funeral prayer. Is it true that if the legs are more than one span, it invalidates the funeral prayer, or is one span preferable? And is more than that disliked (makruh), or is it absolutely permissible regardless of how long the legs are? Explain and be rewarded.

The Answer: All of Zaid's statements are false and baseless. Neither has the height of the legs been specifically limited by Shari'ah to any degree, nor is there any priority in one span height. Neither is the Imam's height of one span or one yard an invalidator of prayer, nor is the funeral like the Imam in every aspect. These are idle desires and false delusions. It is a necessary condition for the funeral to be placed on the ground even if the legs are ever so high. And for the Imam to be higher than all the followers by an amount that distinguishes him is disliked (makruh), not an invalidator of the prayer. And Allah Almighty knows best.

Question 51: In the funeral prayer, the Imam stands on a prayer mat and all the followers are on the ground. Is this permissible or impermissible? Explain and be rewarded.

1. Radd al-Muhtar, Chapter of Funeral Prayers, published by H.M. Saeed Company, Karachi, 2/208. Page 191 of 948

फतावा रज़विया, जिल्द 9.

...चाहे एक हाथ हो, कम हो या कभी ज़्यादा, हर तरह के होते हैं, कभी इस पर इनकार नहीं हुआ। जो हाथ भर से थोड़ा ज़्यादा को नाजायज़ बताए, उसे दलील देनी चाहिए। जिसने नाजायज़ कहा या जिसने नाजायज़ लिखा, वह हरगिज़ दलील नहीं दे सकेगा। उस वक़्त उस पर खुल जाएगा कि उसका नाजायज़ कहना शरीअते मुतहरा पर इफ़्तरा (झूठ) था। हाँ, अगर पलंग इतना ऊँचा हो कि इंसान के क़द से ज़्यादा हो, जिसमें इमाम का कोई हिस्सा मय्यत के किसी हिस्से के सामने न हो, तो बेशक नमाज़ नाजायज़ होगी क्योंकि मुहाज़ात (सामना होना) शर्त है, लेकिन कोई पलंग इतना ऊँचा नहीं होता।

रद्दुल मुहतार में जामिउर रूमूज़ से, उसमें तोहफ़तुल फुक़हा से नक़्ल है: "नमाज़े जनाज़ा का रुक्न क़ियाम है और नमाज़ी का मय्यत के किसी हिस्से के मुक़ाबले में होना है। वल्लाहु तआला आलम।"

मसला नंबर 50: अजमेर शरीफ़ से, मुरसला महमूदुल हसन, 23 मुहर्रम 1338 हिजरी। क्या फ़रमाते हैं उलेमा-ए-दीन इस मसले में कि ज़ैद कहता है कि अगर जनाज़ा को ऐसी चारपाई पर रखकर नमाज़ पढ़ी जाए जिसके पाए एक बालिश्त से कम हों तो नमाज़ हो गई, वरना नहीं। और सुबूत में शामी और कबीरी पेश करके कहता है कि जनाज़ा इमाम की तरह है, जिस तरह इमाम का एक बालिश्त से ऊपर खड़ा होना मुफ़्सिदे नमाज़ (नमाज़ बिगाड़ने वाला) है, उसी तरह इस सूरत में भी पाए एक बालिश्त से ज़्यादा होना नमाज़े जनाज़ा के लिए मना है। क्या वाक़ई अगर पाए एक बालिश्त से ज़्यादा हों तो मुफ़्सिदे नमाज़े जनाज़ा हैं, या एक बालिश्त होना बेहतर है? और इससे ज़्यादा मकरूह, या मुतलक़न चाहे पाए कितने भी लंबे हों जायज़ है? बयान फ़रमाएं और सवाब पायें।

अल-जवाब: ज़ैद के तमाम अक़वाल बातिल और बे-अस्ल हैं। न तो पायों की बुलंदी शरीअत में किसी हद तक मख़्सूस (तय) की गई है, न एक बालिश्त बुलंदी में कोई फ़ज़ीलत है। न ही एक बालिश्त या एक गज़ इमाम की बुलंदी मुफ़्सिदे नमाज़ है, और न ही हर बात में जनाज़ा इमाम की तरह है। ये सब बेकार की हसरतें और बातिल वहम हैं। जनाज़ा का ज़मीन पर रखा होना ज़रूरी शर्त है, चाहे पाए कितने ही ऊँचे हों। और इमाम का सब मुक़्तदियों से इतना ऊँचा होना कि वह अलग नज़र आए, मकरूह है, मुफ़्सिदे नमाज़ नहीं। वल्लाहु तआला आलम।

मसला नंबर 51: नमाज़े जनाज़ा में इमाम के नीचे जानमाज़ होती है और मुक़्तदी सब ज़मीन पर, यह जायज़ है या नाजायज़? बयान फ़रमाएं और सवाब पायें।

1. रद्दुल मुहतार, बाब सलातुल जनाइज़, मतबुआ एच.एम. सईद कंपनी, कराची, 2/208. पेज 191/948

ہاتھ بھر یا کم یا کبھی زائد ہر طرح کے ہوتے ہیں، کبھی اس پر انکار نہیں ہوا۔ جو ہاتھ بھر سے تھوڑے زائد کو ناجائز بتائے وہ سند دے۔ جس نے ناجائز کہا جس نے ناجائز لکھا اور ہرگز سند نہ دے سکے گا، اُس وقت اُس پر کھل جائے گا کہ اُس کا ناجائز کہنا شریعت مطہرہ پر افتراء تھا۔ ہاں اگر پلنگ اتنا اونچا ہو کہ قد آدم سے زائد، جس میں امام کی محاذات میت کے کسی جزو سے نہ ہو البتہ نماز ناجائز ہوگی کہ محاذات شرط ہے، مگر کوئی پلنگ اتنا اونچا نہیں ہوتا۔

في رد المحتار عن جامع الرموز عن تحفة الفقهاء ان ركنها القيام ومحاذاته الى جزء من اجزاء الميت ۱ اه واللہ تعالیٰ اعلم ردالمحتار میں جامع الرموز سے، اس میں تحفۃ الفقہاء سے منقول ہے نماز جنازہ کا رکن قیام ہے اور نمازی کا میت کے کسی جز کے مقابل ہونا ہے واللہ تعالیٰ اعلم۔

مسئلہ نمبر ۵۰: از اجمیر شریف مرسلہ محمود الحسن ۲۳ محرم ۱۳۳۸ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ زید کہتا ہے کہ اگر جنازہ کو ایسی چارپائی پر رکھ کر نماز پڑھی کہ جس کے پائے ایک بالشت سے کم تھے تب تو نماز ہوگئی ورنہ نہیں۔ اور ثبوت میں شامی اور کبیری پیش کر کے کہتا ہے کہ جنازہ مثل امام کے ہے جس طرح امام کا ایک بالشت سے اوپر کھڑا ہونا مفسدِ صلوٰۃ ہے اس صورت میں بھی پائے ایک بالشت سے زائد ہونا مانع صلوٰۃ جنازہ ہے۔ کیا واقعی اگر پائے ایک بالشت سے زیادہ ہوں تو مفسد صلوٰۃ جنازہ ہیں یا ایک بالشت ہونا اولیٰ۔ اور اس سے زائد مکروہ یا مطلقاً خواہ جس قدر بھی پائے لمبے ہوں جائز ہے؟ بینوا توجروا۔

الجواب: زید کے اقوال سب باطل وبے اصل ہیں، نہ پایوں کی بلندی شرعاً کسی حد پر مخصوص رکھی گئی ہے، نہ ایک بالشت بلندی میں کچھ اولیت، نہ ایک بالشت یا ایک گز امام کی بلندی مفسدِ

نماز، نہ ہر بات میں جنازہ مثل امام، یہ ہوسات عاطلہ واوہام باطلہ ہیں، جنازہ کا زمین پر رکھا ہونا ضرور شرط ہے اگرچہ پائے کتنے ہی بلند ہوں اور امام بقدر امتیاز سب مقتدیوں سے اونچا ہو نا مکروہ ہے نہ مفسد نماز۔ واللہ تعالیٰ اعلم

مسئلہ نمبر ۵۱: نماز جنازہ میں امام کے نیچے جانماز ہوتی ہے اور مقتدی سب زمین پر، یہ جائز ہے یا ناجائز؟ بینوا توجروا

۱ ردالمحتار باب صلوٰۃ الجنائز مطبوعہ ایچ ایم سعید کمپنی کراچی ۲/۲۰۸ Page 191 of 948

Fatawa Rizvia, Volume 9

The Answer: In the described situation, permissibility is certain. There is no reason for it to be considered disliked (makruh) either. I (the humble servant) do not recall it being forbidden in any book. In Durr-e-Mukhtar, where it mentions that a height causing a distinction between the Imam and the followers is disliked, it refers to the elevation of the place, meaning it is disliked for the Imam to stand so much higher than the followers that it creates a clear distinction. The reason for this is the prohibition found in the Hadith and the resemblance to the People of the Book, as Jews and others used to designate a high place for their leader. As long as the prohibition and resemblance are not proven here, a ruling of 'disliked' cannot be given.

Arabic Text

In *Durr al-Mukhtar*: The Imam standing alone on a 'dukkan' (elevated platform) is disliked due to prohibition. The amount of elevation is one arm's length (dhira), and anything less is fine. It is said that whatever creates a distinction is the preferred view. (1) In *Radd al-Muhtar*: "due to prohibition" refers to what Al-Hakim narrated, that the Prophet (peace be upon him) forbade the Imam from standing above while people remain behind him below. Scholars explained the reason as being a resemblance to the People of the Book, who would make a platform for their leader. (2) End. And Allah, the Exalted, knows best. May Allah send blessings, peace, and mercy upon our master and leader Muhammad, and upon his entire family and companions. Ameen.

Urdu Translation

It is in *Durr al-Mukhtar*: It is disliked for the Imam to stand alone on a 'dukkan' (elevated place) because there is a prohibition against it. The measure of height is one hand's length; if it is less than that, there is no harm. And it is said that just enough height so that he appears prominent is the more correct view. In *Radd al-Muhtar*: The Hadith of prohibition is the one narrated by Al-Hakim that the Prophet (peace be upon him) forbade for the Imam to stand above and people stay behind him below. Scholars have stated the reason for this is that it resembles the People of the Book, as they make an elevated place for their Imam. (Bahr, end). And Allah the Pure and Most High knows best. May Allah's mercy, blessings, and peace be upon our Master and Lord Muhammad, the Messenger of Allah, and upon all his family and companions. O Lord, accept it. (T)

Problem No. 52: 22 Shawwal Al-Mukarram 1322 AH. What do the scholars of religion say regarding this issue: Is it permissible or not to make a shirt or other

clothes from the prayer mat (janamaz) received for leading a funeral prayer? And if it is not permissible, then will the obligatory (fard) prayer performed on it have to be repeated or not? And is it permissible to take out cloth for this prayer mat from the shroud (kafan) or not? Explain and you will be rewarded.

---

1. *Durr al-Mukhtar*, Chapter on what invalidates prayer and what is disliked in it, Majtabai Press, Delhi, 1/92.
2. *Radd al-Muhtar*, Chapter on what invalidates prayer and what is disliked in it, Idara al-Tiba'ah al-Misriyah, Egypt, 1/434.

फतावा रज़विया, जिल्द 9

उत्तर: पूछी गई स्थिति में जायज़ होना तो निश्चित है। इसके नापसंद (मक़रूह) होने का भी कोई कारण नहीं है। मुझे (इस फ़क़ीर को) याद नहीं है कि किसी किताब में इसे मना किया गया हो। 'दुर्रे मुख़्तार' में जिस ऊँचाई को मक़रूह लिखा गया है जिससे इमाम और मुक्तदी (पीछे नमाज़ पढ़ने वाले) के बीच अंतर स्पष्ट हो, वहाँ स्थान की ऊँचाई की बात है, यानी इमाम का मुक्तदियों से इतना ऊँचा खड़ा होना मक़रूह है जिससे अंतर पैदा हो। इसका कारण हदीस में मनाही और 'अहले किताब' (यहूदी और ईसाई) के साथ समानता पाया जाना है क्योंकि वे अपने इमाम के लिए ऊँचा स्थान नियत करते हैं। जब तक यहाँ मनाही और समानता साबित नहीं होती, तब तक मक़रूह होने का हुक्म भी नहीं दिया जा सकता।

अरबी पाठ

'दुर्रे मुख़्तार' में है: इमाम का अकेले किसी ऊंचे चबूतरे (दुक्कान) पर खड़ा होना मनाही के कारण मक़रूह है। ऊँचाई की मात्रा एक हाथ (ज़िरा) है, और इससे कम में कोई हर्ज नहीं। कहा गया है कि जिससे अंतर पैदा हो वही सही दृष्टिकोण है। (1) 'रद-उल-मुहतार' में: "मनाही के कारण" का अर्थ वह है जिसे हाकिम ने रिवायत किया कि रसूलुल्लाह (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) ने इससे मना फ़रमाया कि इमाम ऊपर खड़ा हो और लोग उसके पीछे नीचे रहें। विद्वानों ने इसका कारण यह बताया है कि इसमें अहले किताब से समानता है क्योंकि वे अपने इमाम के लिए चबूतरा बनाते हैं। (2) समाप्त। और अल्लाह पाक सबसे बेहतर जानने वाला है। हमारे आका और मौला हज़रत मुहम्मद और उनकी आल व असहाब पर अल्लाह की रहमतें और सलामती हो। आमीन।

उर्दू अनुवाद

'दुर्रे मुख़्तार' में है: इमाम का अकेले किसी चबूतरे (ऊँची जगह) पर खड़ा होना मक़रूह है क्योंकि इससे मनाही आई है। ऊँचाई की मात्रा एक हाथ है, इससे कम हो तो कोई हर्ज नहीं और कहा गया कि बस इतनी ऊँचाई जिससे वह अलग नज़र आए और यही बेहतर है। 'रद-उल-मुहतार' में है: मनाही की हदीस वह है जिसे हाकिम ने रिवायत किया कि हुज़ूर (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) ने इससे मना फ़रमाया कि इमाम ऊपर खड़ा हो और लोग उसके पीछे नीचे रहें। उलेमा ने इसकी वजह यह बताई है कि इसमें अहले किताब से समानता है इसलिए वे इमाम के लिए कोई ऊँची जगह बनाते हैं, बहर, समाप्त। और खुदाए पाक व बरतर खूब जानने वाला है, अल्लाह तआला की रहमत, बरकत और सलाम हो हमारे आका व मौलो मुहम्मद रसूलुल्लाह और उनकी आल व असहाब सब पर। ऐ अल्लाह! कुबूल फ़रमा। (त)

मसला नंबर 52: 22 शव्वाल अल-मुकर्रम 1322 हिजरी। उलेमा-ए-दीन इस मसले में क्या फ़रमाते हैं कि मुर्दे की नमाज़ पढ़ाने के लिए जो जाय-नमाज़ (नमाज़ पढ़ने वाला कपड़ा) मिलती है, उससे कुर्ता और कुछ कपड़ा बनाना जायज़ है या नहीं? और अगर जायज़ नहीं तो उससे जो फर्ज़ नमाज़ पढ़ी गई हो, वह लौटाई जाएगी या नहीं? और इस कफ़न से यह जाय-नमाज़ के लिए कपड़ा निकालना जायज़ है या नहीं? बयान कीजिए, आपको सवाब मिलेगा।

---

1. 'दुर्रे मुख़्तार', बाब: जो चीज़ें नमाज़ को खराब करती हैं और जो उसमें मक़रूह हैं, मकतबा मुज्तबाई दिल्ली 1/92।
2. 'रद-उल-मुहतार', बाब: जो चीज़ें नमाज़ को खराब करती हैं और जो उसमें मक़रूह हैं, इदारा अत-तिबाह अल-मिसरिया, मिस्र 1/434।

पेज 192/948

الجواب: صورت مستفسرہ میں جواز تو یقینی ہے۔ رہی کراہت اس کے لئے بھی کوئی وجہ نہیں۔ نہ فقیر کو یاد کہ کسی کتاب میں اسے منع لکھا ہو۔ دُرِ مختار میں جو اس مقدار کو جس سے امام و مقتدی میں امتیاز پایا جائے مکروہ لکھا وہاں بلندیِ موضع میں کلام ہے یعنی امام کو مقتدیوں سے اتنا اونچا کھڑا ہونا مکروہ ہے جس سے امتیاز واقع ہو اور وجہ اس کی حدیث میں نہی آنا اور اہل کتاب سے مشابہت پایا جانا ہے کہ یہود و ہنود اپنے امام کے لئے جائے بلند مقرر کرتے ہیں یہاں تک کہ نہی و مشابہت ثابت نہیں تو کراہت پر بھی حکم نہیں دے سکتے۔

عربی عبارت	اردو ترجمہ
في الدر المختار وانفراد الامام على الدكان للنهى وقدر الاتفاع بذراع ولا بأس بما دونه وقيل ما يقع به الامتياز هو الا وجه 1- فى ردالمحتار قوله للنهى وهوما اخرجه الحاكم انه صلى الله تعالى عليه وسلم نهى ان يقوم الامام فوق ويبقى الناس خلفه وعللوه بانه تشبه باهل الكتاب فانهم يتخذون لامامهم دكاناً 2- اھ واللہ سبحانہ وتعالیٰ اعلم صلى الله تعالىٰ عليه	درّ مختار میں ہے : امام کا تنہا کسی دکان (اونچی جگہ) پر کھڑا ہونا مکروہ ہے کیونکہ اس سے ممانعت آئی ہے اونچائی کی مقدار ایک ہاتھ ہے اس سے کم ہو تو حرج نہیں اور کہا گیا کہ بس اتنی اونچائی جس کی وجہ سے وہ ممتاز نظر آئے اور یہی اوجہ ہے۔ ردالمحتار میں ہے: ممانعت کی حدیث وہ ہے جسے حاکم نے روایت کیا کہ حضور صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم نے اس سے منع فرمایا کہ امام اوپر کھڑا ہو اور لوگ اسکے پیچھے نیچے رہیں۔ علماء نے اس کی علت یہ بتائی ہے کہ اس میں اہل کتاب سے مشابہت ہے اس لئے وہ امام کے لئے کوئی اونچی جگہ بناتے ہیں، بحر ، اھ اور خدائے پاک وبرتر خوب جاننے والا ہے، اللہ تعالیٰ کی

عربی عبارت **اردو ترجمہ**

سیدنا ومولنا محمد وعلی آلہ وصحبہ رحمت، برکت اور سلام ہو ہمارے آقا و مولیٰ محمد رسول اللہ اجمعین وبارک وسلم آمین۔ اور ان کی آل واصحاب سب پر۔ الٰہی قبول فرما۔ (ت)

مسئلہ نمبر ۵۲: ۲۲ شوال المکرم ۱۳۲۲ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ مُردہ کے نماز پڑھانے کے واسطے جو جانماز ملتی ہے اس سے کُرتا اور کچھ کپڑا بنانا جائز ہے یا نہیں؟ اور اگر جائز نہیں تو اس سے جو نماز مفروضہ پڑھی گئی ہو وہ لوٹائی جائے گی یا نہیں؟ اور اس کفن سے یہ جانماز کے واسطے کپڑا نکالنا جائز ہے یا نہیں؟ بینوا توجروا

---

1 درمختار باب ما یفسد الصلوۃ ومایکرہ فیھا مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی ۱/۹۲ 2 ردالمحتار باب ما یفسد الصلوۃ ومایکرہ فیھا ادارۃ الطباعۃ المصریۃ مصر ۱/۴۳۴

The Answer: People have two purposes for this prayer mat: One is that often funeral prayers are held in places like paths where there is a lack of caution [regarding cleanliness]. It is prohibited to hold funeral prayers in the clean and pure mosque. Therefore, for the sake of caution, a prayer mat is spread under the Imam, as it is difficult to provide one for all the followers. Even if we assume that the entire area is so impure that no one's prayer could be considered valid, then because of the prayer mat, at least the Imam's prayer will be valid. This is sufficient for all Muslims to fulfill their obligation and clear their responsibility, as congregation is not a condition for funeral prayer. Secondly, the benefit of the poor; that prayer mat is donated to some student or another poor person after the prayer. Both of these purposes are commendable, so there is no dispute about its permissibility. And it becomes the property of the poor person to whom it was donated; he can make a shirt or whatever he wants out of it. Praying in it is not even disliked (makruh), and there is absolutely no need to repeat [the prayer]. As it is not hidden (as is clear). And Allah Almighty knows best.

Masala Number 53: From Mandi Haldwani, District Nainital, sent by Hafeez Ahmed Mistri, 29 Rabi-ul-Akhir 1336 AH. Is it permissible or not to spread a prayer mat in front of the Imam at the time of funeral prayer? **The Answer:** It is permissible, and we have explained the wisdom behind it in our Fatwas (and we have explained its wisdom in our fatwas. - Trans).

Masala Number 54: 23 Shawwal 1320 AH. What do the scholars of religion say regarding this matter: Zaid offered sheets (chaddars) at the shrine of a saint. The attendant (mujawar) of the shrine took possession of them and sold those sheets to Amr, and Amr sold them to Bakr. In this state, is it permissible for Bakr to wear it and perform prayer or not? Please explain and be rewarded. **The Answer:** If it is explicitly established by custom and tradition that those sheets are offered for the attendants to take, then the attendant becomes the owner and the sale is valid, and there is no harm in performing prayer while wearing it. But if the sheet was offered so that it remains on the shrine, then it remains the property of Zaid, and the sales depend on his permission. If he permits it, they will be valid; otherwise, they are void. And Allah Almighty knows best.

उत्तर: इस जाय़नमाज़ (प्रार्थना चटाई) के लिए लोगों के दो उद्देश्य हैं: पहला यह कि अक्सर जनाज़े की नमाज़ रास्तों आदि जैसी असावधानी वाली जगहों पर होती है। साफ और पाक मस्जिद में जनाज़े की नमाज़ मना है, इसलिए सावधानी के तौर पर इमाम के नीचे जाय़नमाज़ बिछा दी जाती है, क्योंकि सभी मुक़्तदियों (अनुयायियों) के लिए इसका प्रबंध करना कठिन होता है। और मान लीजिए कि वह पूरी जगह इतनी अपवित्र है कि किसी की नमाज़ सही न हो सके, तो जाय़नमाज़ के कारण इमाम की नमाज़ तो हो जाएगी, और सभी मुसलमानों की ओर से फ़र्ज़ की अदायगी और ज़िम्मेदारी से मुक्ति के लिए इतना पर्याप्त है क्योंकि जनाज़े की नमाज़ में जमात (सामूहिक प्रार्थना) शर्त नहीं है। दूसरा, फ़क़ीर (ग़रीब) का लाभ; वह जाय़नमाज़ नमाज़ के बाद किसी छात्र या अन्य ग़रीब को दान कर दी जाती है। और ये दोनों उद्देश्य प्रशंसनीय हैं, इसलिए इसकी अनुमति में कोई विवाद नहीं है। और जिस ग़रीब को वह दान की गई, वह उसकी संपत्ति है; वह उसका कुर्ता या जो चाहे बना सकता है। उसमें नमाज़ पढ़ना मकरूह (नापसंद) भी नहीं है, और इसे दोहराने की बिल्कुल ज़रूरत नहीं है। जैसा कि स्पष्ट है। और अल्लाह तआला सबसे बेहतर जानता है।

मसला नंबर 53: मंडी हलद्वानी, जिला नैनीताल से, प्रेषक हफीज़ अहमद मिस्त्री, 29 रबी-उल-आखिर 1336 हिजरी। जनाज़े की नमाज़ के समय इमाम के सामने जो जाय़नमाज़ बिछाते हैं, वह जायज़ है या नहीं? **उत्तर:** जायज़ है, और हमने अपने फ़तावा में इसके पीछे की हिकमत (तर्क) बयान की है (और इसकी हिकमत हमने अपने फतावा में बयान की है। - त)।

मसला नंबर 54: 23 शव्वाल 1320 हिजरी। धर्म के विद्वान इस मामले में क्या कहते हैं: ज़ैद ने एक बुज़ुर्ग की मज़ार पर चादरें चढ़ाईं, और मज़ार के मुजावर (सेवक) ने उन्हें अपने कब्ज़े में लेकर अम्र को बेच दिया और अम्र ने बक्र को। तो इस स्थिति में, बक्र के लिए उसे ओढ़कर नमाज़ पढ़ना जायज़ है या नहीं? स्पष्ट करें और पुण्य प्राप्त करें। **उत्तर:** अगर स्पष्ट रूप से प्रथा और परंपरा से यह बात साबित है कि वे चादरें मुजावरों के लेने के लिए चढ़ाई जाती हैं, तो मुजावर मालिक हो गया और बिक्री जायज़ हुई और उसे ओढ़कर नमाज़ पढ़ने में कोई हर्ज नहीं है। और अगर चादर इसलिए चढ़ाई कि वह मज़ार पर ही रहे, तो वह ज़ैद की ही मिल्कियत (संपत्ति) है और दोनों बिक्री उसकी अनुमति पर निर्भर हैं। अगर वह अनुमति दे देगा तो वे प्रभावी होंगी, अन्यथा अमान्य। और अल्लाह तआला सबसे बेहतर जानता है।

فتاوٰی رضویہ جلد نہم

الجواب: اس جانماز سے دو غرضیں لوگوں کی ہیں: ایک یہ اکثر نمازِ جنازہ راستے وغیرہ بے احتیاطی کے مقامات پر ہوتی ہے، مسجد کے صاف و پاکیزہ رکھی جاتی ہے اُس میں نمازِ جنازہ منع ہے تو بغرض احتیاط امام کے نیچے جانماز بچھا دیجاتی ہے کہ سب مقتدیوں کے لئے اس کا مہیا کرنا دشوار ہوتا ہے اور اگر فرض کیجئے کہ وہ تمام جگہ ایسی ناپاک ہے کہ کسی کی نماز نظر بوقع نہ ہو سکے تو جانماز کے سبب امام کی تو ہو جائے گی اور اسی قدر سب مسلمانوں کی طرف سے ادائے فرض وابراء ذمّہ کے لئے کافی ہے کہ نمازِ جنازہ میں جماعت شرط نہیں، دوسرے نفع فقیر کہ وہ جانماز بعد نماز کسی طالب علم یا اور فقیر پر تصدیق کردی جاتی ہے، اور یہ دونوں غرضیں محمود ہیں تو اس کے جواز میں کلام نہیں، اور جس فقیر پر وہ تصدیق کی گئی اسکی ملک ہے کرتا وغیرہ جو چاہے بنائے اُس میں نماز مکروہ بھی نہیں، نہ اصلاً حاجت اعادہ۔ کما لا یخفی (جیسا کہ واضح ہے۔ ت) واللہ تعالٰی اعلم۔

مسئلہ نمبر ۵۳: از منڈی ہلدیوانی، ضلع نینی تال، مرسلہ حفیظ احمد مستری ۲۹ ربیع الآخر ۱۳۳۶ھ نمازِ جنازہ کے وقت امام کے سامنے جو جانماز بچھاتے ہیں یہ جائز ہے یا نہیں؟ الجواب: جائز ہے وقد بینا الحکمۃ فیہ فی فتاونا (اور اس کی حکمت ہم نے اپنے فتاوٰی میں بیان کی ہے۔ ت)

مسئلہ نمبر ۵۴: ۲۳ شوال ۱۳۲۰ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ زید نے ایک بزرگ کے مزار پر چادریں چڑھائیں، اور زیات کے مجاور نے اپنے قبضہ میں لاکر ان چادروں کو عمرو کے ہاتھ فروخت کیا اور عمرو نے بکر کے ہاتھ، پس اس حالت میں بکر نے اس کا اوڑھ کر نماز پڑھنا جائز ہے یا نہیں؟ بینوا توجروا۔ الجواب: اگر تصریحاً عُرف و رواج سے یہ امر ثابت ہے کہ وہ چادریں مجاوروں کے لینے کے لئے چڑھائی جاتی ہیں تو مجاور مالک ہوگیا اور بیع

جائز ہوئی اور اُسے اوڑھ کر نماز پڑھنے میں حرج نہیں، اور اگر چادر اس لئے چڑھائی کہ مزار پر رہے تو وہ ملک زید پر باقی ہے اور بیعین اس کی اجازت پر موقوف ہیں، اگر جائز کردے گا نافذ ہوجائیں گی ورنہ باطل۔ واللہ تعالٰی اعلم

Fatawa Razvia Volume 9

Problem No. 55: From Katti Nagarpur Ganh Puranpur, District Pilibhit, house of Alan Khan Numberdar, sent by Akbar Ali Shah, 16 Jamadi al-Ula 1311 AH. What do the scholars of religion say in this matter, that in the funeral prayer, should the follower (Muqtadi) remain silent after only reciting 'Subhanaka' and not recite anything else, or should the follower also recite Subhan, Durud Sharif, and whatever supplications the Imam recites? State the ruling and be rewarded.

The Answer: The followers should also recite everything, as in the funeral prayer there is only remembrance (dhikr) and supplication (dua), not Quranic recitation (qira'at). Followers are only forbidden from reciting the Great Quran; in other supplications and remembrances, they are participants with the Imam.

Arabic Text	**Urdu Translation**
In 'Al-Rahmaniyyah' via 'Al-Tahtawi': They say the opening Takbir while raising hands to the ears, then they recite the praise (Thana), then they say Takbir and send blessings upon the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him), then they say Takbir and seek forgiveness for the deceased, then they say Takbir and perform Salams. They do not raise their hands in the three subsequent Takbirs. And there is no Quranic recitation in the funeral prayer.	In 'Rahmaniyyah': It is in 'Tahtawi' that one should say the opening Takbir while taking the hands to the ears, then recite the praise (Thana), then say Takbir and send blessings (Durud) upon the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him), then say Takbir and seek forgiveness for the deceased, then say Takbir and perform Salams. Do not raise hands in the subsequent three Takbirs. And there is no Quranic recitation in the funeral prayer. (T)

In 'Khazanat-ul-Muftiyeen' it is stated: | Arabic Text | Urdu Translation | | :--- | :--- | | And if the deceased is not an adult, then the Imam and those behind him say: O Allah! Make him for us a forerunner, a treasure, an intercessor, and one whose intercession is accepted[2]. And Allah the Almighty knows best, and His knowledge, glorified be His Majesty, is most perfect and most precise. | If the deceased is not an adult, the Imam and all followers will say: O Allah! make him for us a forerunner, and make him for us a treasure, and an intercessor, and one whose intercession is accepted. And Allah the Almighty knows best, and His knowledge, glorified be His Majesty, is most perfect and most precise. (T) |

Problem No. 56: From Lashkar Kanpur, Mohalla Topkhana Bazaar Qadeem, Chhoti Masjid, sent by Muhammad Yusuf Ali Sahib, 20 Safar al-Muzaffar 1337 AH. What do the scholars of religion say in this matter, that in the funeral prayer, should the Salam be turned after releasing the hands or before releasing the hands? What is more virtuous?

---

[1] Rahmaniyyah [2] Khazanat-ul-Muftiyeen

फतावा रज़विया जिल्द 9

मसला नंबर 55: कट्टी नागपुर गंज पूरनपुर, जिला पीलीभीत, एलन खान नंबरदार का घर, प्रेषक अकबर अली शाह, 16 जमादी-उल-उला 1311 हिजरी। दीन के विद्वान इस मसले में क्या फरमाते हैं कि नमाज़-ए-जनाज़ा में मुक्तदी सिर्फ'सुब्हानक' पढ़कर खामोश हो जाएँ और कुछ न पढ़ें, या सुब्हान, दरूद शरीफ, और दुआ जो कुछ इमाम पढ़े मुक्तदी भी पढ़ें? जवाब दें और पुण्य पाएँ।

अल-जवाब: मुक्तदी भी सब कुछ पढ़ें क्योंकि नमाज़-ए-जनाज़ा में सिर्फ ज़िक्र और दुआ है, कुरान की क़िरात (पाठ) नहीं, और मुक्तदियों को सिर्फ क़ुरान-ए-अज़ीम की क़िरात ही मना है, बाकी दुआओं और अज़कार में वे इमाम के शरीक हैं।

अरबी इबारत

अल-रहमानिया में अल-तहतावी के हवाले से: वे कानों तक हाथ उठाकर तकबीर-ए-तहरीमा कहें, फिर सना पढ़ें, फिर तकबीर कहें और नबी सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम पर दरूद भेजें, फिर तकबीर कहें और मय्यत के लिए मगफिरत (क्षमा) चाहें, फिर तकबीर कहें और सलाम फेरें। बाद की तीनों तकबीरों में हाथ न उठाएं। और जनाज़ा नमाज़ में कुरान की क़िरात नहीं है।

उर्दू अनुवाद

रहमानिया में है: तहतावी में है कि कानों तक हाथ ले जाने के साथ तकबीर-ए-इफ्तिताह (प्रारंभिक तकबीर) कहें, फिर सना पढ़ें, फिर तकबीर कहें और नबी सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम पर दरूद पढ़ें, फिर तकबीर कहें और मय्यत के लिए इस्तगफार करें, फिर तकबीर कहें और सलाम फेरें। बाद की तीनों तकबीरों में हाथ न उठाएं। और नमाज़-ए-जनाज़ा में कुरान की क़िरात नहीं। (त)

'ख़ज़ानतुल मुफ़्तीन' में है: | अरबी इबारत | उर्दू अनुवाद | | :--- | :--- | | और अगर मय्यत बालिग न हो, तो इमाम और जो उसके पीछे हैं कहेंगे: ऐ अल्लाह! इसे हमारे लिए आगे जाने वाला, ज़खीरा और शफ़ाअत करने वाला और जिसकी शफ़ाअत स्वीकार हो, बना दे।[2] और अल्लाह तआला खूब जानता है और उसका ज्ञान, उसकी शान महान है, सबसे पूर्ण और सबसे मज़बूत है। | अगर मय्यत नाबालिग हो तो इमाम और मुक्तदी सब कहेंगे: ऐ अल्लाह! इसे हमारे लिए आगे जाने वाला कर दे और इसे हमारे लिए ज़खीरा बना दे, और शफ़ाअत करने वाला, मक़बूलुश-शफ़ाअत कर दे। और अल्लाह तआला खूब जानता है और उसका इल्म, उसकी शान महान है, सबसे पूर्ण और सबसे मज़बूत है। (त) |

मसला नंबर 56: लश्कर कानपुर, मोहल्ला तोपखाना बाज़ार कदीम, छोटी मस्जिद, प्रेषक मोहम्मद यूसुफ अली साहब, 20 सफरुल मुजफ्फर 1337 हिजरी। दीन के विद्वान इस मसले में क्या फरमाते हैं कि नमाज़-ए-जनाज़ा में सलाम हाथ छोड़ने के बाद फेरना चाहिए या हाथ छोड़ने से पहले, अफ़ज़ल (बेहतर) क्या है?

---

[1] रहमानिया [2] ख़ज़ानतुल मुफ़्तीन

فتاوٰی رضویہ جلد نہم

مسئلہ نمبر ۵۵: از کٹنی ناگر پور گنہ پورن پور ضلع پیلی بھیت مکان علن خان نمبر دار مرسلہ اکبر علی شاہ ۱۶ جمادی الاولٰی ۱۳۱۱ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ نماز جنازہ میں مقتدی فقط سبحانک پڑھ کر خاموش ہو جائیں اور کچھ نہ پڑھیں یا سبحان ، درود شریف، دعا جو کچھ امام پڑھے مقتدی بھی پڑھیں؟ بینوا توجروا۔

الجواب: مقتدی بھی سب کچھ پڑھیں کہ نماز جنازہ میں صرف ذکر و دعا ہے قرائت قرآن نہیں، اور مقتدیوں کو صرف قرأت قرآن عظیم ہی منع باقی دعا اذکار میں وہ امام کے شریک ہیں۔

عبارۃ العربیۃ	**الترجمۃ الاردو**
فی الرحمانیہ فی الطحطاوی یکبرون الافتتاح مع رفع الیدین ثم یقرؤن الثناء ثم یکبرون ویصلون علی النبی صلی اللہ تعالی علیہ وسلم ثم یکبرون ویستغفرون للمیت ثم یکبرون ویسلمون ولا یرفعون ایدیھم فی التکبیرات الثلث ولا قرأۃ فیھا 1۔	رحمانیہ میں ہے : طحطاوی میں ہے کہ کانوں تک ہاتھ لے جانے کے ساتھ تکبیر افتتاح کہیں ، پھر ثناء پڑھیں ، پھر تکبیر کہیں اور نبی صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم پر درود پڑھیں ، پھر تکبیر کہیں اور میت کے لئے استغفار کریں پھر تکبیر کہیں اور سلام پھیریں۔ بعد کی تینوں تکبیروں میں ہاتھ نہ اٹھائیں۔ اور نماز جنازہ میں قرأت قرآن نہیں۔ (ت)

خزانتہ المفتین میں ہے : | عبارۃ العربیۃ | الترجمۃ الاردو | | :--- | :--- | | وان کان المیت غیر بالغ فان الامام ومن خلفہ یقولون اللھم اجعلہ لنا ذخرا و شافعا و مشفعا 2 واللہ تعالی اعلم وعلمہ جل مجدہ اتم واحکم۔ | اگر میت نابالغ ہو تو امام اور مقتدی سب کہیں گے اے اللہ ! اسے ہمارے لئے

آگے جانے والا کر دے اور اسے ہمارے لئے ذخیرہ بنادے ، اور شفاعت کرنے والا، مقبول الشفاعۃ کردے۔ واللہ تعالی اعلم وعلمہ جل مجدہ اتم واحکم۔ (ت) |

مسئلہ نمبر ۵۶: از لشکر کانپور محلہ توپخانہ بازار قدیم، چھوٹی مسجد، مرسلہ محمد یوسف علی صاحب ۲۰ صفر مظفر ۱۳۳۷ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ نماز جنازہ میں سلام ہاتھ چھوڑنے کے بعد پھیرنا چاہئے یا قبل ہاتھ چھوڑنے کے ، افضل کیا ہے؟

---

1 رحمانیہ 2 خزانتہ المفتین

Fatawa Razawiyya Volume 9

Answer: Folding hands is a Sunnah of the standing (Qiyam) for which there is a stay, as mentioned in Al-Durr al-Mukhtar and other books. (T) Greeting (Salaam) is the time of exit; at that time, there is no reason to keep the hands folded. So, the apparent ruling is that after the fourth Takbir, hands should be released. And Allah Almighty knows best.

Issue No. 57: From Banaras, Kachi Bagh, questioned by Maulana Muhammad Ibrahim Sahib, 10 Dhu al-Qi'dah 1339 AH. In Bahar-e-Shariat, Volume 4, it is written that after the fourth Takbir, one should open the hands and then perform Salaam (referencing Durr-e-Mukhtar, Radd al-Muhtar). However, in those books, there is no mention of opening the hands. This is causing great confusion; please resolve it.

Answer: The day your question arrived, by coincidence, Maulana Amjad Ali Sahib came from Bareilly to meet me the next day. I asked him, and he said that this issue consists of many long and varied problems, and at the end of it, I have written from Durr al-Mukhtar and Radd al-Muhtar etc. By "etc.", I meant Fatawa Razawiyya. Whatever is mentioned there, some of it is taken from Durr al-Mukhtar and some from Radd al-Muhtar. Since there is no Sunnah mention of it, there is no reason to keep the hands folded. After the fourth Takbir, it is the time for exiting the prayer, and there is no reliance on any specific school of thought for exiting. And Allah Almighty knows best.

Issue No. 58: In the funeral prayer (Janaza), after the final Takbir, "Assalamu Alaikum wa Rahmatullah" was said once. After being reminded, the Takbir was said, and then Salaam was performed again.

Answer: In the second case, the prayer being valid is also on the condition that he performed the Salaam out of forgetfulness. If he performed it intentionally, knowing that there are only three Takbirs in the funeral prayer, then this prayer will not be valid either. And Allah Almighty knows best.

Issue No. 59: From the city of Moradabad, Mohalla Mughalpura, Part One. Sent by Maulana Syed Aulad Ali Sahib, 9 Ramadan-ul-Mubarak 1337 AH. What do the scholars of religion say regarding the issue that if a latecomer (Masbuq) to the funeral prayer has to complete the missed Takbirs, what should he recite in each of those Takbirs?

Answer: If there is a fear that the funeral bier will be lifted, he should quickly say the Takbirs without the supplications (du'as) and perform Salaam. Otherwise, in order...

फ़तावा रज़विया जिल्द नौवीं (9)

उत्तर: हाथ बाँधना उस क़ियाम (खड़े होने) की सुन्नत है जिसके लिए ठहराव हो, जैसा कि दुर्रे मुख्तार आदि किताबों में है। (त) सलाम फेरना नमाज़ से बाहर निकलने का समय है; उस समय हाथ बाँधने का कोई कारण नहीं है, तो ज़ाहिर यही है कि चौथी तकबीर के बाद हाथ छोड़ दिए जाएँ। और अल्लाह तआला बेहतर जानता है।

मसला नंबर 57: बनारस, कच्ची बाग़ से, मौलवी मोहम्मद इब्राहिम साहब द्वारा पूछा गया, 10 ज़िलक़ादा 1339 हिजरी। बहार-ए-शरीअत जिल्द 4 में है कि चौथी तकबीर के बाद हाथ खोलकर सलाम फेरे (दुर्रे मुख्तार, रद्दे मुहतार)। हालाँकि इन किताबों में हाथ खोलने का ज़िक्र नहीं है, इससे बहुत उलझन है, कृपया इसे दूर करें।

उत्तर: जिस दिन आपका सवाल आया, सौभाग्य से उसके दूसरे दिन मौलवी अमजद अली साहब बरेली से मुझसे मिलने यहाँ आए। मैंने उनसे पूछा, उन्होंने कहा कि यह मसला कई लंबे और विविध मसलों पर आधारित है और इसके अंत में मैंने दुर्रे मुख्तार और रद्दे मुहतार आदि से लिखा है। यहाँ 'आदि' से मेरा तात्पर्य फ़तावा रज़विया है। वहाँ जो कुछ भी उल्लेखित है, उसका कुछ हिस्सा दुर्रे मुख्तार से और कुछ रद्दे मुहतार से लिया गया है। चूँकि इसका कोई सुन्नत ज़िक्र नहीं है, इसलिए हाथ बाँधे रखने का कोई कारण नहीं है। चौथी तकबीर के बाद नमाज़ से निकलने का समय है, और निकलने के लिए किसी मज़हब में कोई विशेष निर्भरता नहीं है। और अल्लाह तआला बेहतर जानता है।

मसला नंबर 58: नमाज़-ए-जनाज़ा में आखिरी तकबीर के बाद 'अस्सलामु अलैकुम व रहमतुल्लाह' एक बार कहा, याद दिलाने पर फिर से तकबीर कही और फिर सलाम फेरा।

उत्तर: दूसरी स्थिति में नमाज़ का होना भी इसी सूरत में है कि उसने भूलकर सलाम फेरा हो। और अगर जानबूझकर फेरा यह जानकर कि जनाज़े की नमाज़ में तीन तकबीरें हैं, तो यह नमाज़ भी नहीं होगी। और अल्लाह तआला बेहतर जानता है।

मसला नंबर 59: मुरादाबाद शहर, मोहल्ला मुग़लपुरा, हिस्सा अव्वल। प्रेषक: मौलवी सैयद औलाद अली साहब, 9 रमज़ान-उल-मुबारक 1337 हिजरी। धर्मगुरु इस मसले में क्या कहते हैं कि अगर जनाज़े की नमाज़ का मसबूक (देर से आने वाला) छूटी हुई तकबीरों को पूरा करे, तो उनमें से किस-किस तकबीर में क्या-क्या पढ़े?

उत्तर: अगर जनाज़ा उठा लिए जाने का डर हो, तो जल्दी-जल्दी बिना दुआ के तकबीरें कहकर सलाम फेर दे, अन्यथा क्रमवार...

पृष्ठ 948 का 195

الجواب: ہاتھ باندھنا سُنت اس قیام کی ہے جس کے لئے قرار ہو، کما فی الدرالمختار وغیرہا من الاسفار (جیسا کہ درمختار وغیرہ کتابوں میں ہے۔ت) سلام وقتِ خروج ہے اُس وقت ہاتھ باندھنے کی طرف کوئی داعی نہیں، تو ظاہر یہی ہے کہ تکبیرِ چہارم کے بعد ہاتھ چھوڑ دیا جائے۔ واللہ تعالٰی اعلم

مسئلہ نمبر ۵۷: از بنارس کچی باغ مسئولہ مولوی محمد ابراہیم صاحب ۱۰ ذیقعدہ ۱۳۳۹ھ بہارِ شریعت جلد ۴ میں ہے چوتھی تکبیر کے بعد ہاتھ کھول کر سلام پھیرے (درمختار، ردِمختار) حالانکہ ان کتابوں میں ہاتھ کھولنے کا ذکر نہیں سخت اضطراب ہے رفع فرمائیے۔

الجواب: جس روز آپ کا سوال آیا حسن اتفاق سے اُس کے دوسرے دن بریلی سے مولوی امجد علی صاحب میرے ملنے کے لئے یہاں آئے میں نے اُن سے پوچھا انہوں نے فرمایا یہ مسئلہ طویل متعدد مسائل پر مشتمل ہے اور اس کے آخر میں میں نے درمختار اور ردالمختار وغیرہ کا لکھا ہے۔ وغیرہما سے یہاں میری مراد فتاوٰی رضویہ ہے۔ وہاں جو کچھ مذکور ہے اس کا بعض درمختار سے لیا گیا اور بعض ردالمحتار سے اور کوئی ذکر مسنون، تو ہاتھ باندھے رہنے کی کوئی وجہ نہیں۔ تکبیرِ رابع کے بعد خروج عن الصلاۃ کا وقت ہے اور خروج کے لئے اعتماد کسی مذہب میں نہیں۔ واللہ تعالٰی اعلم۔

مسئلہ نمبر ۵۸: نمازِ جنازہ میں تکبیرِ اخیر کے بعد السلام علیکم ورحمتہ ایک بار کہا بعد یاد دہانی تکبیر کہی اور پھر سلام پھیرا۔

الجواب: دوسری صورت میں نماز ہو جانا بھی اسی صورت میں ہے کہ اس نے بھول کر سلام پھیرا ہو، اور اگر قصداً پھیرا یہ جان کر کہ نماز جنازہ میں تین تکبیریں ہیں، تو یہ نماز بھی نہیں ہوگی۔ واللہ تعالٰی اعلم

مسئلہ نمبر ۵۹: از شہر مرادآباد محلہ مغلپورہ حصہ اول۔ مرسلہ مولوی سید اولاد علی صاحب ۹ رمضان المبارک ۱۳۳۷ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ نماز جنازہ کا مسبوق فوت شدہ تکبیروں کو پورا کرے تو ان میں کس کس تکبیر میں کیا کیا پڑھے؟

الجواب: اگر جنازہ اٹھا لیا جانے کا اندیشہ ہو جلد جلد تکبیریں بلا دُعا کہہ کر سلام پھیر دے ورنہ ترتیب وار

Fatawa Razvia Volume 9

...recited. For example, if three takbirs were missed, say the fourth with the Imam, and after the salam, recite the Thana (praise) after the first takbir, then Durud, then Du'a. If two were missed, recite the Du'a with the third takbir with the Imam, and after the fourth salam, recite Thana after the first and Durud after the second. If only one was missed, recite Thana after one takbir after the salam. And Allah Almighty knows best.

Problem No. 60: From Kanpur, Boojar Khana Masjid Rangiyan, sent by Maulvi Abdul Rahman Jalshani, student of Madrasa Faiz-e-Alam, 23 Rabi-ul-Awwal 1312 AH. What is your answer, O Ulema, may Allah Almighty have mercy on you, in this matter: if the funeral prayer for the deceased was not performed, for how many days is it permissible to perform it?

The Answer: As long as it is presumed that the body of the deceased is intact. This matter varies in terms of speed and delay according to the season, the condition of the ground, and the condition of the deceased. In heat, it decomposes quickly; in cold, slowly. In saline or salty ground, quickly; in hard and non-saline ground, slowly. An obese and moist body decomposes quickly; a dry and thin one, slowly. Therefore, a specific period cannot be fixed for it.

[Arabic Citations]: In 'Al-Durr': [If] buried and dust is poured over him without prayer, or with prayer but without washing, prayer is performed over his grave as long as it is not most likely thought that he has decomposed, without a specific estimation, which is the most correct view.1 In 'Radd al-Muhtar': Because it varies with the change of seasons, heat and cold, and [body types], fat and thin, and locations. [This is from] Al-Bahr. In 'Al-Hilyah', the companions explicitly stated that it is not prayed over him if there is doubt about that. This is mentioned in Al-Mufid, Al-Mazid, Jawami' al-Fiqh, and common books. It is explained in 'Al-Muhit' as a doubt occurring in the permissibility. End of quote. The full discussion is there. Summarized.2 And Allah Almighty knows best.

[Urdu Translation of Citations]: In Durr-e-Mukhtar, it is stated: If the deceased was buried without prayer, or after praying without a bath (ghusl), and earth was thrown over him, then the prayer should be offered at his grave as long as there is no dominant presumption of decomposition. There is no specific limit for this; this is the most correct view. In Radd-ul-Muhtar, it says: This is because it varies according to cold and heat, according to the difference in the deceased, and the difference in

locations. [From] Al-Bahr. In Hilyah, it is stated that our scholars have explicitly mentioned that if there is a doubt in this, the prayer will not be offered. It is mentioned in Al-Mufid, Al-Mazid, Jawami-ul-Fiqh, and common books. Al-Muhit states the reason is that doubt has arisen regarding its permissibility, and the complete matter is therein. Summarized. And Allah Almighty knows best. (T)

1- Durr-e-Mukhtar, Chapter on Funeral Prayers, published by Mujtabai Press, Delhi, 1/123 2- Radd-ul-Muhtar, Chapter on Funeral Prayers, published by H.M. Saeed Company, Karachi, 2/224

फतवा-ए-रज़विया जिल्द नहुम (नौ)

...पढ़े। उदाहरण के लिए, यदि तीन तकबीरें छूट गईं, तो चौथी इमाम के साथ कहकर सलाम के बाद पहली तकबीर के बाद सना (प्रशंसा), फिर दुरूद, फिर दुआ पढ़े। और यदि दो छूट गईं, तो तीसरी इमाम के साथ दुआ, चौथी के बाद सलाम, फिर पहली के बाद सना और दूसरी के बाद दुरूद। और यदि केवल एक छूटी हो, तो सलाम के बाद एक तकबीर के बाद सना पढ़े। और अल्लाह तआला सबसे बेहतर जानता है।

मसला नंबर 60: कानपुर से, बूजड़ खाना मस्जिद रंगियाँ, प्रेषक मौलवी अब्दुल रहमान जलशानी, छात्र मदरसा फैज़-ए-आलम, 23 रबी-उल-अव्वल 1312 हिजरी। ऐ उलमा, अल्लाह तआला आप पर रहम करे, इस मसले में आपका क्या उत्तर है कि यदि मृतक की नमाज़-ए-जनाज़ा न पढ़ी गई हो, तो कितने दिनों तक पढ़ना जायज़ है?

उत्तर: जब तक यह गुमान (धारणा) हो कि मृतक का शरीर सुरक्षित है। यह मामला मौसम, ज़मीन की स्थिति और मृतक की स्थिति के अनुसार जल्दी या देरी में भिन्न होता है। गर्मी में शरीर जल्दी खराब हो जाता है, सर्दी में देर से। शोर या नमकीन ज़मीन में जल्दी, सख्त और गैर-शोर ज़मीन में देर से। मोटा और आर्द्र शरीर जल्दी, और सूखा तथा दुबला-पतला शरीर देर से खराब होता है। इसलिए इसके लिए कोई निश्चित समय तय नहीं किया जा सकता।

[अरबी उद्धरण]: 'अल-दुर्र' में है: [यदि] बिना नमाज़ के दफना दिया गया और उस पर मिट्टी डाल दी गई, या नमाज़ के साथ लेकिन बिना गुसल के, तो उसकी कब्र पर नमाज़ पढ़ी जाए जब तक कि उसके गलने-सड़ने का प्रबल गुमान न हो, बिना किसी निश्चित अनुमान के, यही सबसे सही मत है।1 'रद्द-अल-मुह्तार' में है: क्योंकि यह समय (गर्मी और सर्दी), शरीर (मोटा और दुबला) और स्थानों के अंतर से बदलता रहता है। [यह] 'अल-बहर' से है। 'अल-हिल्या' में है कि हमारे साथियों (विद्वानों) ने स्पष्ट किया है कि इसमें संदेह होने पर उस पर नमाज़ नहीं पढ़ी जाएगी। इसका उल्लेख 'अल-मुफीद', 'अल-मज़ीद', 'जवामी-अल-फिक्ह' और आम किताबों में है। 'अल-मुहीत' में इसका कारण यह बताया गया है कि इसके जायज़ होने में संदेह उत्पन्न हो गया है। समाप्त। पूरी चर्चा वहीं है। संक्षेप में।2 और अल्लाह तआला सबसे बेहतर जानता है।

[उर्दू अनुवाद/व्याख्या]: दुर्र-ए-मुख़्तार में है: बिना नमाज़ के, या बिना गुसल (स्नान) के नमाज़ पढ़कर मृतक को दफना दिया गया और उस पर मिट्टी डाल दी गई, तो उसकी कब्र पर नमाज़ पढ़ी जाएगी

जब तक कि उसके फटने (सड़ने) का प्रबल अनुमान न हो। इसमें किसी सीमा का निर्धारण नहीं है, यही सबसे सही बात है। रद्द-उल-मुह्तार में है: इसलिए कि इसमें सर्दी और गर्मी के लिहाज़ से, मुर्दों के अंतर से, और स्थानों के अंतर से फर्क पड़ता है। [स्रोत] बहर। हिल्या में है कि हमारे विद्वानों ने स्पष्ट रूप से फरमाया है कि यदि इसमें संदेह हो तो नमाज़ नहीं पढ़ी जाएगी। इसे मुफीद, मज़ीद, जवामी-उल-फिक्ह और आम किताबों में बयान किया गया है। मुहीत में इसकी वजह यह बताई गई है कि जायज़ होने में संदेह हो गया और पूरी बात उसी में है। संक्षेप में। और अल्लाह तआला सबसे बेहतर जानता है। (त)

1- दुर्र-ए-मुख़्तार, जनाज़े की नमाज़ का अध्याय, मुजतबाई प्रेस, दिल्ली द्वारा प्रकाशित, 1/123 2- रद्द-उल-मुह्तार, जनाज़े की नमाज़ का अध्याय, एच. एम. सईद कंपनी, कराची द्वारा प्रकाशित, 2/224

पृष्ठ 196/948

فتاوٰی رضویہ جلد نہم

پڑھتے۔ مثلاً تین تکبیریں فوت ہوئیں تو چوتھی امام کے ساتھ کہہ کر بعد سلام پہلی تکبیر کے ثناء پھر درود پھر دعا پڑھے اور دو ۲ فوت ہوئیں تیسری امام کے ساتھ دُعا، چوتھی کے بعد سلام، پھر اول کے بعد ثناء دوم کے بعد درود، اور ایک ہی فوت ہوئی تو بعد سلام ایک تکبیر کے بعد ثناء۔ واللہ تعالٰی اعلم۔ مسئلہ نمبر ۶۰: از کانپور بوجڑ خانہ مسجد رنگیاں مرسلہ مولوی عبدالرحمن جلشانی طالبعلم مدرسہ فیض عالم ۲۳ ربیع الاول ۱۳۱۲ھ ما جوابکم ایھا العلماء رحمکم اللہ تعالٰی اس مسئلہ میں کہ مُردہ کی نماز جنازہ نہ پڑھی ہو تو کتنے دن تک پڑھنا جائز ہے؟

الجواب: جب تک بدن میت کا سالم ہونا مظنون ہو اور یہ امر اختلاف موسم و حال زمین و حال میت سے جلدی ودیر میں مختلف ہو جاتا ہے ، گرمی میں جلد بگڑ جاتا ہے سردی میں بدیر، زمین شور یا نمک میں جلد، سخت وغیر شور میں بدیر ، فربہ مرطوب جلد، خشک والاغر بدیر، تو اس کے لئے معین نہیں کر سکتے۔

في الدر، دفن واهيل عليه التراب بغير صلوة او بها بلا غسل صلى على قبره مالم يغلب على الظن تفسخه من غير تقدير هو الاصح 1- في رد المحتار لانه يختلف باختلاف الاوقات حرا وبردًا والبيوت سمنا وهز الاوالا مكنة بحر، وفي الحلية نص الاصحاب على انه لا يصلى عليه مع الشك في ذلك ذكره في المفيد والمزيد وجوامع الفقه وعامة الكتب، وعلّله في المحيط بوقوع الشك في الجواز اه وتمامه فيها اه ملخصين 2 واللہ تعالٰی اعلم۔

در مختار میں ہے بغیر نماز کے، یا بغیر غسل کے نماز پڑھ کر میت کو دفن کردیا گیا اور اس پر مٹی ڈال دی گئی تو اس کی قبر پر نماز پڑھی جائے جب تک اس کے پھٹنے کا ظن غالب نہ ہو، اس

میں کسی حد کی تعین نہیں یہی اصح ہے۔ ردالمحتار میں ہے: اس لئے کہ اس میں سردی گرمی کے لحاظ سے مردے کے فرق سے، اور مقامات کے فرق سے فرق پڑتا ہے، بحر۔ حلیہ میں ہے کہ ہمارے علماء نے صراحت فرمائی ہے کہ اس میں شک ہو تو نماز نہ پڑھی جائے گی۔ اسے مفید، مزید، جوامع الفقہ اور عام کتب میں بیان کیا ہے۔ محیط میں اس کی علّت یہ بتائی کہ جواز میں شک ہو گیا اور پوری بات اسی میں ہے اھ بہ تلخیص۔ واللہ تعالٰی اعلم (ت)

1- در مختار باب صلوۃ الجنائز مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی ۱ / ۱۲۳ 2- ردالمحتار باب صلوۃ الجنائز مطبوعہ ایچ ایم سعید کمپنی کراچی ۲ / ۲۲۴

Fatawa-e-Razviyya Volume 9

Question No. 61: From Khairabad, District Sitapur, Mohalla Miansarai, Madrasa Arabia Qadeem, sent by Maulvi Syed Fakhrul Hasan Sahib Razvi, 19th Rabi-ul-Akhir 1330 AH.

What do the scholars of religion say regarding this issue: when there is one Imam and five followers in the funeral prayer, in order to attain the blessing of the glad tidings of forgiveness, can three rows be formed in such a way that there are two persons each in the first and second rows, and one person in the third row? Because it is known from the statements of Jurisprudence (Fiqh) that a single person's row is exempt from dislike (karahat) in the funeral prayer, as stated by the author of Radd al-Muhtar with reference to the book Al-Muheet:

Arabic Quote

It is stated in Al-Muheet: "It is recommended that three rows be formed, so much so that if there are seven people, one steps forward for the Imamate, and three stand behind him, then two, then one (end). If the first row were also superior in the funeral prayer, it would have been better to make them all one row, and the standing of one person alone would have been disliked, just as it is disliked in prayers other than the funeral prayer (end)."

Urdu Translation

It is written in Al-Muheet that it is recommended (mustahabb) to have three rows, even if there are seven people, one becomes the Imam, three stand behind him, then two, then one. If the first row were better in funeral prayers, it would have been better to make them all one row, and for one person to stand alone would be disliked (makruh), just as it is disliked in prayers other than the funeral prayer (end).

Similarly, it is in Alamgiriyah with reference to the book Tatar Khaniyah, and in Quniyya with reference to the book Jami' al-Tafariq by al-Baqali and Ain al-Hidayah, and in the treatise on Preparation and Shrouding (Tajheez-o-Takfeen), this same arrangement is recorded. From this consensus of statements, it is clearly evident that the preferred method of the noble jurists is the aforementioned arrangement. Only.

Answer: The Hadith that contains this glad tiding mentions three rows. Therefore, as far as each row can have at least two or three people, doing so is excellent, because one person is not called a 'row'. Otherwise, if there are three followers, three rows should be made, although this might not be preferred by any jurist. In the commentary of this Hadith in Mirqat by Mulla Ali Qari, this statement is quoted:

Arabic Quote	Urdu Translation
"And in making it rows is an indication towards the dislike of being alone."[2]	"And in making several rows, there is an indication towards the dislike of being alone." (T)

[1] Radd al-Muhtar, Chapter of Funeral Prayer, printed at Dar al-Tiba'ah al-Misriyah, Egypt, 1/586. [2] Mirqat Sharh Mishkat, Chapter of Walking with the Funeral, etc., printed at Maktabah Imdadiyah, Multan, 4/64.

फ़तावा-ए-रज़विया जिल्द 9

प्रश्न संख्या 61: खैराबाद, ज़िला सीतापुर, मोहल्ला मियांसराय, मदरसा अरबिया कदीम से, मौलवी सैयद फख्रुल हसन साहब रज़वी द्वारा भेजा गया, 19 रबी-उल-आख़िर 1330 हिजरी।

विद्वान इस मसले में क्या फ़रमाते हैं कि नमाज़-ए-जनाज़ा में जब एक इमाम और पाँच मुक्तदी (अनुयायी) हों, तो मग़फ़िरत (क्षमा) की खुशखबरी की नेमत हासिल करने के लिए क्या तीन सफ़ें (पंक्तियाँ) इस तरह बनाई जा सकती हैं कि पहली और दूसरी सफ़ में दो-दो व्यक्ति हों और तीसरी सफ़ में एक व्यक्ति हो? क्योंकि फ़िकह (इस्लामी न्यायशास्त्र) के कथनों से ज्ञात होता है कि जनाज़ा की नमाज़ में एक व्यक्ति की सफ़ कराहियत (नापसंदगी) से मुक्त है, जैसा कि रद्दे मुहतार के लेखक ने 'अल-मुहीत' के हवाले से तहरीर फ़रमाया है:

अरबी उद्धरण

अल-मुहीत में कहा गया है: "मुस्तहब है कि तीन सफ़ें बनाई जाएँ, यहाँ तक कि अगर सात लोग हों तो एक इमामत के लिए आगे बढ़े और तीन उसके पीछे खड़े हों, फिर दो, फिर एक। अगर जनाज़ा में भी पहली सफ़ ही अफ़ज़ल (श्रेष्ठ) होती, तो उन सबको एक ही सफ़ में कर देना बेहतर होता, और अकेले एक का खड़ा होना मकरूह होता जैसा कि जनाज़ा के अलावा नमाज़ों में मकरूह है।"

उर्दू अनुवाद

मुहीत में तहरीर किया गया कि मुस्तहब है कि तीन सफ़ें हों यहाँ तक कि अगर सात आदमी हों तो एक इमाम हो जाए तीन उसके पीछे खड़े हों फिर दो फिर एक। तो अगर जनाज़ा में पहली सफ़ अफ़ज़ल होती तो उन सबको एक सफ़ में कर देना बेहतर होता है और तन्हा एक का खड़ा होना मकरूह होता जैसे ग़ैर नमाज़-ए-जनाज़ा में मकरूह है।

इसी तरह आलमगीरिया में 'ततार ख़ानिया' और 'कुनिया' के हवाले से, और 'जामि-उल-तफ़ारीक़' तथा 'ऐनुल हिदाया' में, और 'तजहीज़-ओ-तकफ़ीन' के रिसाले में यही क्रम दर्ज है। इन बयानों की सहमति से साफ़ ज़ाहिर होता है कि फ़ुक़हा-ए-किराम (प्रतिष्ठित न्यायविदों) का पसंदीदा तरीक़ा यही ज़िक्र किया गया क्रम है। बस।

जवाब: जिस हदीस में यह खुशखबरी है, उसमें तीन सफ़ों का ज़िक्र है। लिहाज़ा जहाँ तक हर सफ़ में कम से कम दो-तीन आदमी हो सकें, ऐसा करना उमदा है क्योंकि एक शख़्स को 'सफ़' नहीं कहते। वरना फिर तीन मुक्तदी हों तो तीन सफ़ें करनी चाहिए, हालाँकि यह शायद ही किसी फ़कीह को पसंद हो। इस हदीस की शरह (व्याख्या) में 'मिरक़ात' में मुल्ला अली क़ारी ने यह इबारत नक़्ल की है:

अरबी उद्धरण	उर्दू अनुवाद
"और उसके सफ़ें बनाने में अकेले होने की कराहियत की तरफ़ इशारा है।"[2]	"और इसके कई सफ़ बनाने में अकेले होने की कराहियत की जानिब इशारा है।" (त)

[1] रद्दे मुहतार, बाब सलातुल जनाइज़, मिस्र 1/586. [2] मिरक़ात शरह मिश्कात, बाब अल-मशी बिल-जनाज़ा आदि, मुल्तान 4/64.

पृष्ठ 197/948

فتاوی رضویہ جلد نہم

مسئلہ نمبر ۶۱: از خیر آباد ضلع سیتا پور محلہ میانسرائے مدرسہ عربیہ قدیم مرسلہ مولوی سید فخر الحسن صاحب رضوی ۱۹ ربیع الآخر ۱۳۳۰ھ

کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ نماز جنازہ میں جب ایک امام اور پانچ مقتدی ہوں تو بنظر حصول نعمت بشارت مغفرت تین صفوف اس طرح کرلی جائیں کہ صف اول ودوم میں دو دو نفر اور صف سوم میں ایک نفر ہو۔ کیونکہ عبارات فقہ سے معلوم ہوتا ہے کہ نماز جنازہ میں ایک شخص کی صف کراہت سے مستثنیٰ ہے جیسا کہ صاحب ردالمحتار بحوالہ کتاب محیط تحریر فرماتے ہیں۔

| قال في المحیط، ویستحب ان یصف ثلاثة صفوف حتی لوکانو اسبعة یتقدم احدھم للامامة ویقف وراء ثلاثة ثم اثنان ثم واحد اه فلوکان الصف الاول افضل فی الجنازة ایضا لکان الافضل جعلھم صفا واحدا ولکرہ قیام الواحد وحدہ کما کرہ اھـ | محیط میں تحریر کیا گیا کہ مستحب ہے کہ تین صفیں ہوں یہاں کہ اگر سات آدمی ہوں تو ایک امام ہو جائے تین اس کے پیچھے کھڑے ہوں پھر دو پھر ایک۔ تو اگر جنازہ میں پہلی صف افضل ہوتی تو ان سب کو ایک صف میں کر دینا بہتر ہوتا ہے اور تنہا ایک کا کھڑا ہونا مکروہ ہوتا جیسے غیر نماز جنازہ میں مکروہ ہے اھـ |

اسی طرح عالمگیریہ میں ہے بحوالہ کتاب تاتار خانیہ اور قنیہ میں بحوالہ کتاب جامع التفاریق للبقالی وعین الہدایہ میں اور رسالہ تجہیز و تکفین میں یہی ترتیب درج ہے اس اتفاق عبارات سے صاف ظاہر ہوتا ہے کہ طریقہ پسندیدہ فقہائے کرام یہی ترتیب مذکور ہے۔ فقط

الجواب: جس حدیث میں یہ بشارت ہے اُس میں تین صفوف مروی ہیں پس جہاں تک ہر ایک صف میں کم از کم دو تین آدمی ہو سکیں ایسا کرنا عمدہ ہے کیونکہ ایک شخص کو صف نہیں کہتے ہیں۔ ورنہ پھر تین مقتدی ہوں تو تین صف کرنی چاہئے۔ حالانکہ یہ شاید کسی فقیہ کو پسندیدہ نہ ہو۔ اس حدیث کہ شرح میں مراقاۃ ملا علی قاری میں یہ عبارت منقول ہے:

| وفی جعله صفوفا اشارة الی کراهة الانفراد 2۔ | اور اس کے چند صف بنانے میں اکیلے ہونے کی کراہت کی جانب اشارہ ہے۔ (ت) |

1 رد المحتار باب صلوۃ الجنائز مطبوعہ دار الطباعۃ المصریۃ مصر ۱/ ۵۸۶ 2 مراقاۃ شرح مشکوۃ باب المشی بالجنازۃ الخ مطبوعہ مکتبہ امدادیہ ملتان ۴/ ۶۴

Fatawa Rizvia, Volume 9

Its apparent meaning is that if one is not alone, then this is an indication. Based on the narration of 'Al-Muheet' about 'Al-Infarad' (standing alone in a row) being incorrect, in any case, there is no need for such formality among five followers (Muqtadis). And the general rule is that avoiding what is disliked (Karahat) takes precedence over attaining what is recommended (Istihbab), and the narrations of prohibition from 'Infarad' do not seem to have an exception for the funeral prayer. Also, in 'Mirqat Sharh Mishkat' it is stated:

"And the minimum of a row is that it consists of two, according to the more correct opinion." - The correct view is that a row should be at least two people. (T)

Thus, the dislike of 'Infarad' became very clear from this phrase. This detail appears from the elaborations of the masters (Mashaikh). It is not narrated from the three Imams. Hadrat Maulana Mahmood Hassan Sahib said regarding this that one person does not constitute a row, otherwise, for three people, three rows should be made.

And this is far-fetched. Written by Aziz-ur-Rahman.

Now, what do the scholars of religion and jurists of the bright Sharia say regarding the following request: that two matters from the book of jurisprudence (Fiqh) are derived from 'Al-Hidayah'. In funeral prayers, the exception of a single person's row from being disliked, and also that a single person, according to the more correct opinion, following other rows, being termed as a row. The priority of the first row over the second, and the second over the third, even to the extent that for the sake of increasing the first row, in the case of seven worshippers, standing three people in the first row and leaving only one person in the third row was preferred, although it was possible to stand two people in each row. It is not known from any book which Hadith or text the noble jurists used to extract this preferred arrangement themselves, and on what basis did Hadrat Mulla Ali Qari prefer to oppose them by denying the very existence of a single person's row? Due to which the preferred arrangement of the noble jurists becomes entirely wrong and futile. Therefore, I seek guidance that whatever research and scrutiny regarding this difference in the arrangement of the three rows is in accordance with the Hanafi school (may Allah have mercy on them), please write it with clear references from books, and be rewarded by Allah and thanked by people. Also, guidance should be provided whether in the state of one person and in the third row, a single person standing or the entire group of followers should be made into one congregation, as the

arrangement of three rows being for at least seven persons is written in all books; there is no mention of less than that, even though an arrangement for six persons is also possible.

The Answer:

The teacher of our master Imam Azam Abu Hanifa (may Allah be pleased with him), the great Imam Ata bin Abi Rabah, the illustrious Tab'ee (successor) and student of...

---

1. Mirqat Sharh Mishkat, Chapter of Walking with the Funeral, etc., printed by Maktaba Imdadia Multan, 4/25.

फ़तावा रज़विया, जिल्द नौ

इसका ज़ाहिरी मतलब यही है कि अगर कोई अकेला न हो तो यह इशारा है। 'मुहीत' की रिवायत 'अल-इनफ़िराद' (सफ़ में अकेला खड़ा होना) के सही न होने पर, बहरहाल पाँच मुक्तदियों में इस तकल्लुफ़ की ज़रूरत नहीं है। और कुल्लिया (सामान्य नियम) है कि कराहत (नापसंदगी) से बचना इस्तहबाब (पसंदीदा कार्य) हासिल करने पर मुक़द्दम (प्राथमिक) है, और 'इनफ़िराद' की मनाही वाली रिवायतों से जनाज़े की नमाज़ का मुस्तसना (अपवाद) होना मालूम नहीं होता। साथ ही 'मिरक़ात शरह मिश्कात' में है:

"और सफ़ कम से कम दो की हो, असह् (ज़्यादा सही) यही है।" - असह् यह है कि सफ़ कम से कम दो की हो। (त)

चुनाँचे इस इबारत से 'इनफ़िराद' की कराहत ख़ूब ज़ाहिर हो गई। यह तफ़रीह (स्पष्टीकरण) मशाइख़ की तशरीहात से मालूम होती है। आइम्मा-ए-सलासा (तीन इमामों) से मंकूल नहीं है। हज़रत मौलाना महमूद हसन साहब ने इसमें यह फ़रमाया कि एक शख़्स की सफ़ नहीं होती, वर्ना तीन लोगों की तीन सफ़ बनानी चाहिए।

वहुवा बईद (और यह बात ग़लत है)। कतबह अज़ीज़ुर रहमान।

अब क्या फ़रमाते हैं उलेमा-ए-दीन और मुफ़्तियान-ए-शरह-ए-मतीन कि ज़ैल की गुज़ारिश में कि फ़िक़्ह की किताब से दो बातें 'अल-हिदाया' से अख़ज़ की जाती हैं। नमाज़-ए-जनाज़ा में एक शख़्स की सफ़ का कराहत से मुस्तसना होना, और साथ ही एक शख़्स को 'असह्य' (ज़्यादा सही क़ौल) के मुताबिक़ दूसरी सफ़ों की पैरवी में 'सफ़' कहना। पहले सफ़ की फ़ज़ीलत दूसरी सफ़ के मुक़ाबले में और दूसरी की तीसरी के मुक़ाबले में अव्वल होना, यहाँ तक कि पहले सफ़ की ज़्यादती के लिए सात नमाज़ियों की हालत में पहले सफ़ में तीन लोगों को खड़ा करना और तीसरी सफ़ में सिर्फ़ एक शख़्स का रहना पसंद किया गया, हालाँकि मुमकिन था कि हर सफ़ में दो-दो अफ़राद खड़े किए जाते। यह किसी किताब से पता नहीं चलता कि मुअज्ज़ज़ फ़ुक़हा ने इस पसंदीदा तरतीब को खुद किस हदीस या नस (प्रमाण) से अख़ज़ किया, और हज़रत मुल्ला अली क़ारी ने किस बुनियाद पर उनकी मुख़ालफ़त पसंद की कि एक शख़्स की सफ़ के वजूद से ही इंकार फ़रमा दिया? जिससे फ़ुक़हा-ए-किराम की पसंदीदा तरतीब पूरी तरह से ग़लत और बेकार हो जाती है। लिहाज़ा हिदायत का तालिब हूँ कि सफ़ों की इस तरतीब के इख़्तिलाफ़ के मुताल्लिक़ जो कुछ तहक़ीक़ और तन्क़ीह मिल्लत-ए-

अहनाफ़ (रहमहुमुल्लाह) के मुवाफ़िक़ हो, किताबों के हवाले से साफ़ तौर पर लिखकर अल्लाह के यहाँ अजर और लोगों के यहाँ शुक्रिया के मुस्तहिक़ बनें। और यह भी बताया जाए कि नफ़र (संख्या) और तीसरी सफ़ में एक शख़्स के खड़े होने की सूरत में, क्या तमाम मुक्तदियों की एक ही जमात बनाई जाए, क्योंकि तीन सफ़ों की तरतीब कम से कम सात अफ़राद के लिए तमाम किताबों में लिखी है, इससे कम के बारे में ज़िक्र नहीं है, हालाँकि छह अफ़राद की तरतीब भी मुमकिन है।

अल-जवाब:

सैयदुना इमाम-ए-आज़म अबू हनीफ़ा (रज़ियल्लाहु तआला अन्हु) के उस्ताद इमाम-ए-अजल अता बिन अबी रबाह, ताबई जलील और शागिर्द...

---

1. मिरक़ात शरह मिश्कात, बाबुल मश्इ बिल-जनाज़ह वग़ैरा, मतबुआ मकतबा इमदादिया मुल्तान, 4/25.

فتاوٰی رضویہ جلد نہم

اس کا مطلب بظاہر یہی ہے کہ اکیلا نہ ہو تو یہ اشارہ ہے۔ محیط کی روایت الانفراد کے غیر صحیح ہونے پر، بہر حال پانچ مقتدیوں میں اس تکلف کی حاجت نہیں ہے۔ اور قاعدہ کلیہ ہے کہ کراہت سے بچنا استحباب کے حاصل کرنے کا مقدم ہے اور روایات نہی عن انفراد سے استثنائے صلوٰۃ جنازہ موجبہ نہیں معلوم ہوتا ہے، نیز مرقاۃ شرح مشکوٰۃ میں ہے:

واقل الصف ان یکون اثنین علی الاصح1 ۔ اصح یہ ہے کہ صف کم سے کم دو کی ہو۔ (ت)

پس کراہت انفراد اس عبارت سے خوب ظاہر ہوگئی۔ یہ تفریح تفریحات مشائخ سے معلوم ہوتی ہے۔ ائمہ ثلاثہ سے منقول نہیں۔ حضرت مولانا محمود حسن صاحب نے اس میں یہ فرمایا کہ ایک شخص کی صف نہیں ورنہ تین کی تین صف کرنی چاہئے۔

وہو بعید۔ کتبہ عزیز الرحمان

اب کیا فرماتے ہیں علمائے دین و مفتیان شرع متین گزارش ذیل میں کہ کتاب فقہ سے دو امر بالہدایۃ ماخوذ ہوتے ہیں۔ صلاۃ جنازہ میں شخص واحد کی صف کا کراہت سے مستثنیٰ ہونا نیز شخص واحد کو علی الاصح بہ تبعیت دیگر صفوف صف سے تعبیر کیا جانا، اولیٰ ہونا زیادتی صف اول کی بمقابلہ صف دوم اور صف دوم بمقابلہ صف سوم کی، حتی کہ واسطے زیادتی صف اول کے سات نمازی ہونے کی حالت میں صف اول میں تین اشخاص کا کھڑا کیا جانا اور صف سوم میں صرف ایک شخص کا رہنا پسند کیا گیا، حالانکہ ممکن تھا کہ ہر صف میں دو دو نفر کھڑے کئے جاتے۔ یہ پتا کسی کتاب سے نہیں چلتا ہے فقہائے کرام نے اس ترتیب پسندیدگی خود کا استخراج کس حدیث یا نص سے کیا اور حضرت ملا علی قاری نے کس بنا پر ان کی مخالفت پسند کی کہ

شخص واحد کے صف کے وجود ہی سے انکار فرما دیا۔ جس سے ترتیب پسندیدہ فقہاء کرام بالکلیہ غلط و عبث ہوئی جاتی ہے۔ پس ہدایت خواہ ہوں کہ اس اختلاف ترتیب صفوف ثلاثہ کے متعلق جو کچھ تحقیق و تنقیح موافق ملت احناف رحمہم اللہ ہو، بحوالہ کتب بخوبی صراحت سے تحریر فرما کر عند اللہ ماجور و عند الناس مشکور ہوں، نیز یہ بھی ہدایت فرمائی جائے کہ بحالت نفر اور صف سوم میں شخص واحد کا کھڑا ہونا یا جملہ مقتدیوں کی ایک ہی جماعت کی جائے کہ صفوف ثلاثہ کی ترتیب کم از کم سات اشخاص کا ہونا سب کتب میں مرقوم ہے، اس سے کم کی نسبت کچھ ذکر نہیں ہے حالانکہ ترتیب چھ اشخاص کی بھی ممکن ہے۔

الجواب:

سیدنا امام اعظم ابو حنیفہ رضی اللہ تعالیٰ عنہ کے استاد امام اجل عطاء بن ابی رباح تابعی جلیل تلمیذ

---

1 مرقاۃ شرح مشکوٰۃ باب المشی بالجنازہ الخ مطبوعہ مکتبہ امدادیہ ملتان ۲۵/۴

Fatawa Ridawiyyah Volume 9

Umm al-Mu'minin Siddiqah, Umm al-Mu'minin Umm Salama, Abu Hurairah, Abu Sa'id al-Khudri, and Abdullah bin Abbas (may Allah be pleased with them all) narrate:

Arabic	Urdu
The Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) prayed a funeral prayer over a deceased person. There were only seven people. So he made the first row of three, the second of two, and the third of one.	The Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) prayed a funeral prayer over a deceased person. There were only seven people. The Holy Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) made the first row of three people, the second row of two, and the third row of one person.

Imam Muhammad Muhammad bin Amir al-Hajj states in 'Halyah':

Arabic	Urdu
In 'Al-Qunyah': If there are seven people, complete three rows. One should step forward [to lead], three behind him, two behind them, and one behind those two. End of quote. I say, the proof for this is what Ata bin Abi Rabah narrated, that the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him and his family and companions) prayed over a funeral and there were seven people (he then cited the hadith and said) had it not been for this hadith, we would have considered it disliked (Makruh) to form a row with a single person, because of the Prophet's (peace and blessings of Allah be upon him and his family and companions) command for the person standing alone behind the row in general prayer (Salat al-Mutlaqah) to repeat it, as mentioned previously. O Allah, unless it is said that this applies only when there is no	It is in 'Al-Qunyah': If there are seven people, form three complete rows; one in front, three behind him, two behind them, and one behind those (End of quote from Al-Qunyah). I say, the proof for this is from the hadith narrated by Hazrat Ata bin Abi Rabah that the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him and his family and companions) prayed a funeral prayer and there were only seven people (he then mentioned the hadith and said) had it not been for this hadith, we would have considered it disliked to form a row with one person. This is because the Holy Prophet (peace and blessings of Allah be upon him and his family and companions) commanded the person standing alone behind a row in general prayer to repeat the prayer, as has been mentioned in its appropriate place. However, it can be said that this applies only when there is no

Arabic

attainment of an intended purpose, which is the effort to seek forgiveness for the deceased, as he informed.

Page 199 of 948

Urdu

attainment of the intended purpose of the prayer, and here an intended purpose of the prayer exists, which is for the deceased [seeking forgiveness, as he informed].

फ़तावा रज़विया जिल्द 9

उम्मुल मुमिनीन सिद्दीका, उम्मुल मुमिनीन उम्मे सलमा, अबू हुरैरा, अबू सईद खुदरी और अब्दुल्ला बिन अब्बास (रज़ियल्लाहु तआला अन्हुम अजमईन) रिवायत करते हैं:

अरबी	उर्दू
बेशक नबी सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम ने एक जनाज़े पर नमाज़ पढ़ी, तो वो सात लोग थे। तो आपने पहली सफ तीन, दूसरी दो और तीसरी एक की बनाई।	नबी सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम ने एक जनाज़े पर नमाज़ पढ़ी, सिर्फ सात आदमी थे, हुज़ूर अकदस सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम ने पहली सफ तीन आदमियों की की, दूसरी सफ दो की और तीसरी सफ एक शख्स की।

इमाम मुहम्मद मुहम्मद बिन अमीरुल हज्ज 'हिलिया' में फरमाते हैं:

अरबी	उर्दू
'कुनिया' में है: फिर अगर सात लोग हों तो तीन सफ़ें पूरी करें, एक आगे हो, तीन उसके पीछे, दो उनके पीछे और एक उन दोनों के पीछे। बात खत्म हुई। मैं कहता हूँ इसका गवाह यह है कि अता बिन अबी रबाह ने रिवायत की कि नबी सल्लल्लाहु तआला अलैहि वआलिही वसल्लम ने एक जनाज़े की नमाज़ पढ़ी और सात लोग थे (हदीस बयान की और कहा) अगर यह हदीस न होती तो हम एक शख्स की सफ बनाने को मकरूह कहते, क्योंकि हुज़ूर सल्लल्लाहु तआला अलैहि वआलिही वसल्लम ने आम नमाज़ में सफ के पीछे अकेले खड़े होने वाले को नमाज़ दोहराने का हुक्म दिया, जैसा कि पहले गुज़र चुका है। ऐ अल्लाह, मगर ये कहा जाए कि वह भी उस वक़्त है जब इसमें	'कुनिया' में है: अगर सात आदमी हों तो पूरी तीन सफ बनाएं एक आगे हो, तीन उसके पीछे, दो उनके पीछे, एक उनके पीछे (कुनिया की इबारत खत्म)। मैं कहता हूँ इसका सबूत इस हदीस से है कि हज़रत अता बिन अबी रबाह ने बयान किया कि नबी सल्लल्लाहु तआला अलैहि वआलिही वसल्लम ने एक जनाज़े पर नमाज़ पढ़ी, सिर्फ सात आदमी थे (आगे हदीस का ज़िक्र किया, फिर कहा) अगर यह हदीस न होती तो हम एक शख्स की सफ बनाने को मकरूह कहते। क्योंकि हुज़ूर सल्लल्लाहु तआला अलैहि वआलिही वसल्लम ने सलात-ए-मुतलका में सफ के पीछे अलग-थलग खड़े होने वाले को नमाज़ लौटाने का हुक्म फ़रमाया जैसा कि यह अपने मौके पर बयान हो चुका है -- मगर यह कहा जाए कि वह भी उस वक़्त है जब इसमें नमाज़ की मसलेहत-ए-

अरबी

मक्सूदा मस्लहत हासिल न हो रही हो, जो कि मय्यत के लिए मग़फिरत की कोशिश करना है जैसा कि उन्होंने बताया।

पृष्ठ 199/948

उर्दू

मकसूदा की बजाआवरी न हो, और यहाँ नमाज़ की एक मसलेहत-ए-मकसूदा मौजूद है, वह है मय्यत के लिए [मग़फिरत की कोशिश, जैसा कि उन्होंने बताया]।

فتاویٰ رضویہ جلد نہم

ام المؤمنین صدیقہ و ام المؤمنین ام سلمہ وابو ہریرہ وابو سعید خدری و عبداللہ بن عباس رضی اللہ تعالیٰ عنہم اجمعین روایت فرماتے ہیں :

عربی	اردو
ان النبی صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم علی جنازۃ فکانوا سبعۃ فجعل الصف الاول ثلثہ والثانی اثنین والثالث واحدا ۔	نبی صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم نے ایک جنازہ پر نماز پڑھی، صرف سات آدمی تھے، حضور اقدس صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم نے پہلی صف تین آدمیوں کی کی، دوسری صف دو کی اور تیسری صف ایک شخص کی ۔

امام محمد محمد بن امیر الحاج حلیہ میں فرماتے ہیں :

عربی	اردو
فی القنیۃ ثم ان کان القوم سبعۃ فأتموھا ثلثۃ صفوف یقدم احدھم وخلفہ ثلثہ وخلفھم اثنان وخلفھما واحد انتھی قلت ویشھد لہ ان عطاء بن ابي رباح روی ان النبي صلی اللہ تعالی علیہ وسلم وعلی آلہ وصحبہ وسلم صلی علی جنازۃ فکانو سبعۃ (وساق الحدیث وقال) ولو لاھذا الحدیث لقنا بکراھۃ جعل	قنیہ میں ہے : اگر سات آدمی ہوں تو پوری تین صف بنائیں، ایک آگے ہو، تین اس کے پیچھے، دو ان کے پیچھے ایک ان کے پیچھے (عبارت قنیہ ختم) میں کہتا ہوں اس کا ثبوت اس حدیث سے ہے کہ حضرت عطاء بن ابی رباح نے بیان کیا کہ نبی صلی اللہ تعالیٰ علیہ وآلہ وصحبہ وسلم نے ایک جنازہ پر نماز پڑھی صرف سات آدمی تھے (آگے حدیث ذکر کی، پھر کہا) اگر یہ حدیث نہ ہوتی تو ایک شخص کی صف بنانے کو ہم مکروہ کہتے۔ کیونکہ

عربی	اردو
الواحد صفا لا مره صلى الله تعالى عليه وآله وصحبه وسلم للمنتبذ وراء الصف فى الصلوة المطلة با عادتها كما تقدم فى موضعه، اللهم الا ان يقال ان ذلك ايضا اذالم يكن فيه تحصيل مصلحة مقصودة من وهى السعى في حصول المغفرة للميت كما اخبره	حضور صلى الله تعالىٰ عليہ وآلہ وصحبہ وسلم نے صلاةِ مطلقہ میں صف کے پیچھے الگ تھلگ کھڑے ہونے والے کو نماز لوٹانے کا حکم فرمایا جیسا کہ یہ اپنے موقع پر بیان ہو چکا ہے -- مگر یہ کہا جائے کہ وہ بھی اُس وقت ہے جب اس میں نماز کی مصلحتِ مقصودہ کہ بجا آواری نہ ہو، اور یہاں نماز کی ایک مصلحتِ مقصودہ موجود ہے وہ ہے میت کے لئے [حصول مغفرت کی کوشش جیسا کہ انہوں نے خبر دی]

Fatawa Rizvia Volume 9

[Top Box] Left column: The Lawgiver, peace and blessings of Allah be upon Him[1]. Right column: Striving for the means of forgiveness, as the Lawgiver, peace and blessings of Allah be upon Him, has informed. (T)

[Second Section - From Ghunyat al-Mutamalli/Munyah] It is stated in Ghunyah Sharh Munyah: Arabic Text: It is recommended that they form three rows, so much so that if there are seven people, one of them comes forward for leadership (Imamat) and three stand behind him, then two behind them, then one. This was mentioned in Al-Muheet because of the saying of the Prophet, peace and blessings of Allah be upon him: "Whoever has three rows (of people) pray (funeral prayer) over him, he will be forgiven." Reported by Abu Dawud and Tirmidhi, and he (Tirmidhi) said it is a Good (Hasan) hadith. Al-Hakim reported it and said it is Sahih (authentic) according to the condition of Muslim[2].

Urdu Text: It is recommended to make three (rows) even if there are seven people; one person should stand in front for Imamat and three should stand behind him, then two behind them, and then one. This is mentioned in Al-Muheet because the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) said: "Whoever has three rows pray over him, he will be forgiven." Abu Dawud and Tirmidhi narrated it, and Tirmidhi said it is a Hasan hadith. Al-Hakim narrated it and said it is Sahih according to the condition of Muslim. I say: Ahmad, Ibn Majah, Ibn Sa'd in At-Tabaqat, Al-Bayhaqi in Al-Sunan, and Ibn Mandah in Al-Ma'rifah have also narrated it. All of them narrated from Hazrat Malik bin Hubayrah (may Allah be pleased with him) with different wordings, and by the grace of Allah, all are in my view (authentic). (T)

[Third Section - From Rehmania] In Rehmania, it is from Aqabiyah: Arabic Text: If the people are seven, they should stand in three rows: one moves forward, then three after him, then two after them, and then one after that. This is because it is stated in the hadith: "Whoever has three rows pray over him, he shall be forgiven."[3] I say: and single...

Urdu Text: If there are seven people, they should stand in three rows: one in front, three after him, two after that, and one after that. Because the hadith states that one whose funeral is prayed over by three rows, their forgiveness is guaranteed.

[Footnotes] 1. Hilyat al-Mahalli Sharh Munyat al-Musalli. 2. Ghunyat al-Mustamli Sharh Munyah, Chapter on Funerals, published by Sohail Academy, Chowk Urdu Bazaar, Lahore, p. 588. 3. Rehmania.

फ़तावा-ए-रज़विया खंड नौ (९)

[प्रथम बॉक्स] बायां: शरीअत के व्यवस्थापक (शारे), अल्लाह के दूत उन पर शांति और आशीर्वाद हो।[1] दायां: क्षमा के साधनों के लिए प्रयास करना, जैसा कि शरीअत के व्यवस्थापक (शारे) सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने सूचित किया है। (त)

[दूसरा खंड - ग़ुनियत अल-मुतमल्ली/मुन्या से] ग़ुनया शरह मुन्या में उल्लेख है: अरबी पाठ: यह अनुशंसा की जाती है कि वे तीन पंक्तियाँ बनाएँ यहाँ तक कि यदि सात लोग हों, तो उनमें से एक इमामत के लिए आगे बढ़े और तीन उसके पीछे खड़े हों, फिर उनके पीछे दो, फिर एक। अल-मुहीत में इसका उल्लेख किया गया है क्योंकि नबी सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम का कथन है: "जिस पर तीन पंक्तियों ने (जनाज़ा) नमाज़ पढ़ी, उसे क्षमा कर दिया जाएगा।" इसे अबू दाऊद और तिर्मिज़ी ने वर्णित किया है, और तिर्मिज़ी ने कहा कि यह एक हसन (अच्छी) हदीस है। अल-हाकिम ने इसे वर्णित किया और कहा कि यह मुस्लिम की शर्तों के अनुसार सहीह (प्रामाणिक) है।[2]

उर्दू पाठ: तीन करना मुस्तहब (पसंदीदा) है, यहाँ तक कि अगर सात आदमी हों तो एक व्यक्ति इमामत के लिए आगे हो और उसके पीछे तीन खड़े हों, उनके पीछे दो, फिर एक। इसे मुहीत में ज़िक्र किया गया है क्योंकि हुज़ूर सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम का इर्शाद (कथन) है: "जिस पर तीन सफें(पंक्तियाँ) नमाज़ पढ़ें उसकी बख्शिश (क्षमा) हो जाए।" इसे अबू दाऊद और तिर्मिज़ी ने रिवायत (वर्णन) किया। और तिर्मिज़ी ने कहा हदीस हसन है। और हाकिम ने रिवायत किया और कहा सहीह बर शर्त मुस्लिम है। मैं कहता हूँ: इसे इमाम अहमद, इब्न माजा, तबक़ात में इब्न साद, सुनन में बैहक़ी, मारिफ़ा में इब्न मंदा ने भी रिवायत किया है। इन सभी मुहद्दिसों ने हज़रत मालिक बिन हुबैरा रज़ियल्लाहु अन्हु से मुख़्तलिफ़ (विभिन्न) अल्फ़ाज़ के साथ रिवायत किया और अल्लाह तआला के फ़ज़्ल से सब मेरी नज़र में (सहीह) हैं। (त)

[तीसरा खंड - रहमानिया से] रहमानिया में अक़ाबिया से है: अरबी पाठ: यदि लोग सात हों, तो वे तीन पंक्तियों में खड़े हों: एक व्यक्ति आगे बढ़े, उसके बाद तीन, फिर दो, और फिर एक। ऐसा इसलिए है क्योंकि हदीस में है: "जिसके जनाज़े पर तीन पंक्तियाँ नमाज़ पढ़ें, उसकी क्षमा हो जाएगी।"[3] मैं कहता हूँ: और एकाकी...

उर्दू पाठ: अगर सात आदमी हों तो तीन सफ़ (पंक्ति) में खड़े हों, एक आगे हो, तीन उसके बाद, दो उसके बाद, और एक उसके बाद। इसलिए कि हदीस में है जिस का जनाज़ा तीन सफें पढ़ें उसकी मग्फ़िरत (क्षमा) हो जाए।

[पाद टिप्पणियाँ] 1. हिलियत अल-महल्ली शरह मुन्यात अल-मुसल्ली। 2. ग़ुनियत अल-मुस्तमली शरह मुन्या, फ़स्ल फ़िल जनाइज़ (जनाज़ा अध्याय), सुहैल अकादमी, चौक उर्दू बाज़ार, लाहौर द्वारा प्रकाशित, पृष्ठ ५८८। 3. रहमानिया।

पृष्ठ ९४८ का २००

فتاوٰی رضویہ جلد نہم

الشارع صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم 1 - اصول مغفرت کی کوشش، جیسا کہ شارع صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم نے خبر دی ہے۔(ت)

غنیہ شرح منیہ میں ہے: یستحب ان یصفوا ثلثۃ صفوف حتی لوکانوا سبعۃ یتقدم احدھم للامامۃ ویقف ورائہ ثلثۃ دوراھم اثنان ثم واحد ذکرہ فی المحیط لقولہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم من صلی علیہ ثلثۃ صفوف غفرلہ رواہ ابوداؤد والترمذی وقال حدیث حسن والحاکم وقال صحیح علی شرط مسلم 2 اھ تین کرنا مستحب ہے یہاں تک کہ اگر سات آدمی ہوں تو ایک شخص امامت کے لئے آگے ہو اور اس کے پیچھے تین کھڑے ہوں، ان کے پیچھے دو، پھر ایک۔ اسے محیط میں ذکر کیا ہے کیونکہ حضور صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم کا ارشاد ہے: جس پر تین صفیں نماز پڑھیں اس کی بخشش ہو جائے۔ اسے ابوداؤد اور ترمذی نے روایت کیا۔ اور ترمذی نے کہا حدیث حسن ہے۔ اور حاکم نے روایت کیا اور کہا صحیح بر شرط مسلم ہے اھ میں کہتا ہوں: اسے امام احمد، ابن ماجہ، طبقات میں ابن سعد، سنن میں بیہقی، معرفہ میں ابن مندہ نے بھی روایت کیا ہے۔ ان سبھی محدثین نے حضرت مالک بن ہبیرہ رضی اللہ تعالٰی عنہ سے بالفاظ مختلفہ روایت کیا اور بحمدہ تعالٰی سب میری نظر میں ہیں۔(ت)

رحمانیہ میں عقابیہ سے ہے: لوکان القوم سبعاً قاموا ثلثۃ صفوف یتقدم واحد وثلثۃ بعدہ واثنان بعدہ وواحد بعدہ لان فی الحدیث من صلی علیہ ثلثۃ صفوف غفرلہ 3 اھ قلت وافرد اگر سات آدمی ہوں تو تین صف میں کھڑے ہوں، ایک آگے ہو، تین اس کے بعد، دو اسکے بعد، اور ایک اسکے بعد۔ اس لئے کہ حدیث میں ہے جس کا جنازہ تین صفیں پڑھیں اس کی مغفرت ہو جائے اھ

1 حلیة المحلی شرح منیة المصلی 2 غنیة المستملی شرح منیة فصل فی الجنائز مطبوعہ سہیل اکیڈمی چوک اردو بازار لاہور ص ۵۸۸ 3 رحمانیہ

Fatawa Ridawiyya Volume 9

Arabic Text: الضمير في "بعدي" في آخرين ارجاعہ الی الصف۔ | Urdu Translation: I say, the singular pronoun was used in the last two "after this" because the reference is made to the row. (T)

In reliable commentaries such as Halya, Ghuniya, and Radd al-Muhtar, and in authoritative Fatawa books like Jami al-Tafariq, Muhit, 'Itabiya, Tatarkhaniya, and 'Alamgiriya, and in the books of the school, there is no disagreement regarding this. Consequently, Imam Ibn Amir al-Hajj attributed the dislike (karahah) of a single person forming a row in a funeral prayer to a narration from Imam Ahmad bin Hanbal:

Arabic Text: 1 حیث قال بعد ما قدمنا عنه هذا وعن احمد انه کره ان یکون الواحد صفا - | Urdu Translation: In this way, after the passage we quoted, he said: keep this in mind, and there is a narration from Imam Ahmad that he considered it disliked (makruh) for one man to form a row. (T)

If there were any narration regarding the dislike in our own school, it would have been more worthy of mention; only the attribution to another school would have been sufficient. In short, this is the jurisprudence and that is the Hadith, so what is the point of opposition then? As for the indication deduced in al-Mirqat, due to which the ignorant have set aside the texts of Hadith and jurisprudence. I say: And with Allah is the guidance (I say by Allah's guidance. T). Neither is that deduction acceptable, nor is relying on it permissible. Firstly, it is a discussion by 'Ali Qari, and a discussion in the presence of a transmitted text is not worthy of attention at all.

Arabic Text: کما نص علیه في ردالمحتار وغیره من معتمدات الاسفار وقد اکثرنا نقو له في فتاؤنا۔ | Urdu Translation: As is explicitly stated in Radd al-Muhtar and other reliable books, and we have quoted many such passages in our Fatawa. (T)

And to call it something transmitted in al-Mirqat is clear ignorance or a vile fabrication. Furthermore, to invalidate an explicitly mentioned subsidiary (juz'iyya) of the school's books based on a statement of [Ali] Qari is a severe, rejected audacity. Most Fatawa write the explicitly mentioned statements of the Imams and transmitted [narrations] without attribution, as is not hidden from a servant of jurisprudence (as is not hidden from a student of Fiqh. T). Rather, the ancient scholars of Fatawa mostly attributed the statements of the masters and the texts of the school without

attribution, especially when no disagreement among the Imams of the school is reported. Shurunbulali states in [his commentary] on Durar al-Hukkam:

Arabic Text: صرح به قاضي خان من غير اسناده | Urdu Translation: (Qadi Khan stated it without attributing it to anyone.)

1 Halya al-Mahalli Sharh Munya al-Musalli

फ़तावा रज़विया जिल्द नहम (खंड 9)

अरबी पाठ: الضمير في "بعدي" في آخرين ارجاعہ الی الصف۔ | उर्दू अनुवाद: मैं कहता हूँ कि पिछले दो "इसके बाद" में वाहिद (एकवचन) ज़मीर इसलिए रखी गई क्योंकि मरजा (संदर्भ) सफ़ को बनाया है। (त)

हलिया, ग़ुनिया और रद-उल-मुहतार जैसी विश्वसनीय शरहों (व्याख्याओं) में, और जामिउल-तफ़ारीक़, मुहीत, इताबिया, तातार खानिया और आलमगीरिया जैसी मुस्तनद (प्रामाणिक) फ़तावा किताबों और मज़हब की किताबों में कहीं भी इसके ख़िलाफ़ कुछ नहीं है। अंततः इमाम इब्न अमीर अल-हाज ने जनाज़ा की नमाज़ में एक व्यक्ति के सफ़ (कतार) बनाने की कराहत (नापसंदगी) को इमाम अहमद बिन हनबल की एक रिवायत की ओर मंसूब (संबद्ध) किया:

अरबी पाठ: 1 حیث قال بعد ما قدمنا عنه هذا وعن احمد انه کره ان یکون الواحد صفا - | उर्दू अनुवाद: इस तरह कि हमारी नकल की गई इबारत के बाद फ़रमाया: यह सुरक्षित रखो, और इमाम अहमद से एक रिवायत है कि उन्होंने एक आदमी की सफ़ को मकरूह जाना। (त)

अगर अपने मज़हब में कराहत की कोई रिवायत होती तो वही ज़िक्र के ज़्यादा लायक़ थी, महज़ दूसरे मज़हब की ओर मंसूब करने पर इक्तिफ़ा (संतोष) किया जाता। संक्षेप में, फ़िक़्ह यह है और हदीस वह, फिर मुख़ालिफ़त के क्या मायने? रही वह बात जो मिरक़ात में इस्तिनबात (निष्कर्ष) की गई और जिसके कारण जाहिलों ने हदीस और फ़िक़्ह के नुसूस (मूल पाठों) को नज़रअंदाज़ कर दिया। मैं कहता हूँ: और अल्लाह की तौफ़ीक़ से (मैं अल्लाह की तौफ़ीक़ से कहता हूँ। त) न वह इस्तिनबात क़बूल के लायक़ है और न ही उस पर भरोसा करना जायज़ है, अव्वल तो वह अली क़ारी की एक बहस है और मंक़ूल (नकल किए गए पाठ) के सामने बहस कतई तौर पर ध्यान देने योग्य नहीं है।

अरबी पाठ: کما نص علیه في ردالمحتار وغیره من معتمدات الاسفار وقد اکثرنا نقو له في فتاوٰنا۔ | उर्दू अनुवाद: जैसा कि रद-उल-मुहतार वगैरह मुस्तनद किताबों में तसरीह है और बहुत सी इबारतें हमने अपने फ़तावा में नक़ल की हैं। (त)

और उसे मिरक़ात में मंक़ूल बताना सरासर जिहालत (अज्ञानता) है या बुरा बोहतान (झूठा आरोप), फिर मज़हब की किताबों के मंसूसा जुज़िया (स्पष्ट उप-नियम) को क़ारी के कौल से ग़ैर-सही कर देना सख्त जुर्रत और मरदूद है। अक्सर फ़तावा इमामों के मंसूसात और मुरसल को बिना किसी हवाले के लिखते हैं, जैसा कि ख़ादिम-ए-फ़िक़्ह पर पोशीदा नहीं है (जैसा कि फ़िक़्ह के विद्यार्थी से छिपा नहीं

है। त)। बल्कि फ़तावा देने वाले पुराने विद्वान ग़ालिबन मशायख (गुरुओं) के कौल को मंसूब करके लिखते हैं और मज़हब के नुसूस को बिना हवाले के ख़ासकर जब इमामों के बीच उनमें कोई मतभेद नक़ल न हो। शुरुनबुलाली 'दुरर अल-हुक्काम' पर लिखते हैं:

अरबी पाठ: صرح به قاضي خان من غير اسناده | उर्दू अनुवाद: (क़ाज़ी ख़ान ने किसी की ओर सनद किए बिना इसकी...

1 हलिया अल-महल्ली शरह मुन्या अल-मुसल्ली

पृष्ठ 948 का 201

فتاوٰی رضویہ جلد نہم

الضمیر في "بعدي" في آخرین ارجاعہ الی الصف۔ | میں کہتا ہوں دو اخیر والے "اس کے بعد" میں ضمیر واحد اس لئے رکھی کہ مرجع صف کو بنایا ہے (ت)

حلیہ و غنیہ و ردالمختار شروح معتمدہ میں اور جامع التفاریق و محیط و عتابیہ و تاتار خانیہ و عالمگیریہ فتاوٰی مستندہ اور کتب مذہب میں ان کا کہیں خلاف نہیں۔ لاجرم امام ابن امیر الحاج نے جنازہ میں ایک شخص کے صف ہونے کی کراہت کو امام احمد بن حنبل سے ایک روایت کی طرف نسبت فرمایا:

حیث قال بعد ما قدمنا عنہ ھذا وعن احمد انہ کرہ ان یکون الواحد صفا 1 - | اس طرح کہ ہماری نقل کردہ عبارت کے بعد فرمایا: یہ محفوظ رکھو، اور امام احمد سے ایک روایت ہے کہ انہوں نے ایک آدمی کی صف کو مکروہ جانا۔ (ت)

اپنے مذہب میں کراہت کی کوئی روایت ہوتی تو وہی احق بالذکر تھی، صرف مذہب غیر کی طرف نسبت پر اکتفاء کی جاتی۔ غرض فقہ یہ ہے اور حدیث وہ، پھر مخالفت کیا معنی۔ رہا وہ اشارہ جو مرقاۃ میں استنباط کیا اور اس کے سبب جُہال نے نصوص حدیث و فقہ کو بالائے طاق رکھ دیا۔ اقول: و باللہ التوفیق (میں اللہ کی توفیق سے کہتا ہوں۔ ت) نہ وہ استنباط مقبول ہے نہ اُس پر اعتماد جائز، اوّلاً وہ علی قاری کی ایک بحث ہے اور منقول کے حضور بحث اصلاً قابل التفات نہیں

کما نص علیہ في ردالمحتار وغیرہ من معتمدات الاسفار وقد اکثرنا نقو لہ في فتاوٰنا۔ | جیسا کہ ردالمختار وغیرہ معتمد کتابوں میں تصریح ہے اور بہت سی عبارتیں ہم نے اپنے فتاوٰی میں نقل کی ہیں۔ (ت)

اور اُسے مرقاۃ میں منقول بتانا جہلِ صریح ہے یا افترائے قبیح، پھر جزئیہ منصوصہ کتب مذہب کو قول قاری سے غیر صحیح کر دینا سخت جرات مردود ہے۔ فتاوائے اکثر منصوصاتِ ائمہ و مرسل بلاعزو لکھتے ہیں کما لایخفی علی خادم الفقہ (جیسا کہ خادم فقہ پر پوشیدہ نہیں۔ ت) بلکہ قدمائے اہل فتاویٰ غالباً اقوالِ مشائخ کو معزو لکھتے ہیں اور نصوص مذہب کو بلاعزو خصوصاً جبکہ ائمہ مذہب سے ان میں اختلاف نہ منقول ہو۔ شرنبلالی علی دررالحکام میں ہے:

صرح به قاضي خان من غير اسناده | (قاضی خان نے کسی کی طرف اسناد کئے بغیر اس کی

1 حلیہ المحلی شرح منیۃ المصلی

Fatawa Razawiyya Volume 9

- 1 احد فاقتضى كونه المذهب - ...[if] he stated it clearly, its requirement is that it should be the school of thought (madhhab). (T)

And even if, for the sake of argument, it is the guidance of the mujtahid imams regarding the issues or the derivation of issues, what authority does Ali Qari have to reject it with his own discussion? Is he not among those about whom it was said:

2 امانحن فعلينا اتباع مارجحوه وماصححوه كما لو افتوا في حياتهم - As for us, it is incumbent upon us to follow what they [the former scholars] preferred and what they deemed correct, just as if they had issued fatwas during their lifetimes. - However, we must follow what those gentlemen gave preference to and what they termed correct, just as if they had given a fatwa in their lives, we would have had to do the same. (T)

As it is in 'Tashih al-Quduri' by Allama Qasim, then in 'Radd al-Muhtar': فانه لا يسعنا 3 مخالفتهم - For it is not permissible for us to oppose them. - (Because there is no room for us to go against them. T)

Secondly, even if it were transmitted, transmissions of Shari'ah Hadith against the texts (nusoos) of reliable books of jurisprudence (fiqh) are not acceptable; in fact, let alone texts, even explicit clarifications of the commentaries of Hadith were not considered contradictory to the indications of the books of the school of thought (madhhab). A problem was transmitted from 'Sharh Mashariq al-Anwar' of Allama Ibn Malik, who is earlier and greater than Allama Ali Qari; upon this, Allama Shami said in 'Radd al-Muhtar':

4 ان هذا الكتاب ليس موضوعا لنقل المذهب و اطلاق المتون والشرح يرده - Indeed, this book is not compiled for the transmission of the school of thought, and the absolute statements of the primary texts and commentaries reject it. - This compilation is not for the transmission of the madhhab, and the general statements of the texts and commentaries are rejecting it. (T)

Thirdly, even if, for the sake of argument, an isolated (shaadh) transmission was found in some book of jurisprudence, then that transmission would not be accepted against numerous famous and reliable books,

كما نص عليه في الشرنبلالية والعقود الدرية ورد المحتار وغيرها وكثرنا النقول فيه فتاونا و في كتابنا في رسم المفتى۔ As is stated in 'Shurunbulaliyyah', 'al-Uqud al-Durriyyah', 'Radd al-Muhtar' etc., and we have cited many of their passages in our Fatawa and in our

book regarding the 'Rasm al-Mufti'. - As specified in Shurunbulaliyyah, al-Uqud al-Durriyyah, Radd al-Muhtar etc. and we have quoted many of their expressions in our fatwas and in our book related to Rasm al-Mufti. (T)

Fourthly, even if it were not isolated, still based on the aforementioned order, reliance would be on 'Jami' al-Tafariq', 'Muheet', 'Hilyah', 'Ghunyah', etc.

1 Ghuniyat Dhawi al-Ahkam, marginalia on Durar al-Hukkam, Chapter: Nullifiers of Wudu, Ahmed Kamil Press, Dar al-Sa'adat, Egypt, 1/15. 2 Durr-e-Mukhtar, Book Prologue, Mujtabai Press, Delhi, 1/15. 3 Radd al-Muhtar, Book Prologue, Mustafa al-Babi, Egypt, 1/75. 4 Radd al-Muhtar, Book Prologue, Mustafa al-Babi, Egypt, 1/75.

फ़तावा रज़विया खंड 9

- 1 احد فاقتضى كونه المذهب - ...[यदि] उन्होंने स्पष्ट रूप से बताया, तो उसकी आवश्यकता यह है कि वह पंथ (मज़हब) हो। (त)

और मान लीजिए कि अगर यह मुद्दों में मुजतहिद इमामों का मार्गदर्शन या मुद्दों का निष्कर्ष ही हो, तो अली क़ारी को अपनी चर्चा से इसे रद्द करने का क्या अधिकार है? क्या वह उनमें से नहीं हैं जिनके बारे में कहा गया:

2 امانحن فعلينا اتباع مارجحوه وماصححوه كما لو افتوا في حياتهم - अम्मा नहनु फ़अलायना इत्तिबाउ मा रज-जहूहू व मा सह-हहूहू कमा लौ अफ़तौ फ़ी हयातिहिम - लेकिन हमें उसी का अनुसरण करना है जिसे इन महानुभावों ने प्राथमिकता दी और जिसे सही कहा, जैसे कि अगर वे अपने जीवन काल में फ़तवा देते तो हमें यही करना था। (त)

जैसा कि अल्लामा क़ासिम द्वारा 'तसहीह अल-क़ुदूरी' में है, फिर 'रद्द अल-मुह्तार' में है: لا فانه يسعنا 3 مخالفتهم - फ़इन्नहू ला यस-अुना मुखालिफ़तुहुम - (क्योंकि हमारे लिए उनके खिलाफ जाने की कोई गुंजाइश नहीं है। त)

दूसरे, यदि वह उद्धृत ही होती, तो शरीयत की हदीस के उद्धरण विश्वसनीय फ़िक़्ह की किताबों के पाठ (नुसूस) के विरुद्ध स्वीकार्य नहीं हैं, बल्कि पाठ तो क्या, हदीस की व्याख्याओं (शुरुह) के स्पष्ट स्पष्टीकरणों को भी पंथ (मज़हब) की किताबों के संकेतों के विपरीत नहीं माना गया। अल्लामा इब्न मलिक की 'शरह मशारिक अल-अनवार' से, जो अल्लामा अली क़ारी से पहले के और महान हैं, एक मुद्दा उद्धृत हुआ; इस पर अल्लामा शामी ने 'रद्द अल-मुह्तार' में फरमाया:

4 ان هذا الكتاب ليس موضوعا لنقل المذهب و اطلاق المتون والشرح يرده - इन्ना हाज़ल किताब लैसा मौज़ूअ़न लिनक़्लिल मज़हब व इतलाकुल मुतून वश-शरह यरुद्दूहू - इस पुस्तक का संकलन मज़हब के हस्तांतरण के लिए नहीं है और मूल पाठों तथा व्याख्याओं की व्यापकता इसे नकारती है। (त)

तीसरे, मान लीजिए कि अगर किसी फ़िक़्ह की किताब में कोई दुर्लभ (शाज़) उद्धरण मिल भी जाता, तो वह उद्धरण कई प्रसिद्ध और विश्वसनीय किताबों के मुकाबले स्वीकार नहीं किया जाता,

كما نص عليه في الشرنبلالية والعقود الدرية ورد المحتار وغيرها وكثرنا النقول فيه فتاونا و في كتابنا في رسم المفتى। जैसा कि 'शुरुनबुलालिय्या', 'अल-उकूद अल-दुर्रिय्या', 'रद्द अल-मुह्तार' आदि में स्पष्ट रूप से उल्लेख किया गया है, और हमने अपने फतवों में और 'रस्म अल-मुफ़्ती' से संबंधित अपनी पुस्तक में उनके कई अंश उद्धृत किए हैं। - जैसा कि शुरुनबुलालिय्या, अल-उकूद अल-दुर्रिय्या, रद्द अल-मुह्तार आदि में उल्लेख है और हमने अपने फतवों में और रस्म अल-मुफ़्ती से संबंधित अपनी पुस्तक में उनके कई वाक्यों को उद्धृत किया है। (त)

चौथे, भले ही वह दुर्लभ न भी होती, फिर भी ऊपर बताए गए क्रम के अनुसार 'जामिअ़ अल-तफ़ारिक़', 'मुहीत', 'हिलया', 'ग़ुनिया' आदि पर ही भरोसा किया जाता।

1 ग़ुनियत ज़वी अल-अहकाम, दुरर अल-हुक्काम पर हाशिए, अध्याय: वज़ू तोड़ने वाली चीज़ें, अहमद कामिल प्रेस, दार अल-सआदत, मिस्र, 1/15. 2 दुर्र-ए-मुख़्तार, किताब की प्रस्तावना, मुजतबाई प्रेस, दिल्ली, 1/15. 3 रद्द अल-मुह्तार, किताब की प्रस्तावना, मुस्तफा अल-बाबी, मिस्र, 1/75. 4 रद्द अल-मुह्तार, किताब की प्रस्तावना, मुस्तफा अल-बाबी, मिस्र, 1/75.

فتاوٰی رضویہ جلد نہم

• احد فاقتضی کونہ المذھب 1 - صراحت فرمائی صراحت فرمائی تو اس کا تقاضا یہ ہے کہ وہ مذہب ہو (ت)

اور بالفرض ارشاد ائمہ مجتہدین فی المسائل یا تخریج مسائل ہی ہو تو علی قاری کو اپنی بحث سے اس کے رد کا کیا اختیار ہے، کیا وہ ان میں نہیں جن کو فرمایا گیا :

امانحن فعلینا اتباع مارجحوہ وماصححوہ کما لو افتوا في حیاتھم 2 - مگر ہم پر اسی کی پیروی کرنی ہے جسے ان حضرات نے ترجیح دی اور جسے صحیح کہا جیسے اگر وہ اپنی حیات میں فتوٰی دیتے تو ہمیں یہی کرنا تھا۔ (ت)

جیسا کہ تصحیح القدوری للعلامہ قاسم پھر رد المحتار میں ہے: فانہ لا یسعنا مخالفتھم 3 - (کیونکہ ہمارے لئے ان کے خلاف جانے کی گنجائش نہیں ۔ت)

ثانیاً اگر وہ منقول ہی ہوتی تو مشروع حدیث کی نقول نصوص کتب معتمدہ فقہیہ کے خلاف مقبول نہیں ، بلکہ نصوص تو نصوص کہ شروح حدیث کی تصریح صریح اشارات کتب مذہب کے بھی معارض نہ مانی گئی ۔ شرح مشارق الانوار علامہ ابن مالک سے کہ علامہ علی قاری سے اقدم وا عظم ہیں ایک مسئلہ منقول ہوا اس پر علامہ شامی نے رد المحتار میں فرمایا :

ان ھذا الکتاب لیس موضوعا لنقل المذھب و اطلاق المتون والشرح یردہ 4 - اس کی تالیف نقل مذہب کے لئے نہیں اور اطلاق متون وشروح اس کو رد کر رہی ہے۔ (ت)

ثالثاً اگر بالفرض کسی کتاب فقہ ہی میں ایک نقل شاذ پائی جاتی تو نقل ، مشہور کتب معتبرہ کثیرہ کے مقابل نہ مانی جاتی ،

کمانص علیه في الشرنبلالية والعقود الدرية ورد المحتار وغیرها وکثرنا النقول فیه فتاونا و في کتابنا في رسم المفتی۔ جیسا کہ شرنبلالیہ ، العقود الدریہ ، رد المحتار وغیرہا میں اس کی تصریح ہے اور ہم نے اپنے فتاوی میں اور رسم المفتی سے متعلق اپنی کتاب میں ان کی بہت سی عبارتیں نقل کی ہیں ۔(ت)

رابعاً اگر شاذ بھی نہ ہوتی جب بھی اسی ترتیب مذکور جامع التفاریق و محیط وحلیہ وغنیہ و غیر با پر اعتماد

1 غنیہ ذوی الاحکام حاشیہ علی درر الحکام نواقض الوضوء مطبعہ احمد کامل الکائنہ فی دار السعادت مصر ۱/ ۱۵ 2 دُر مختار خطبة الکتاب مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی ۱/ ۱۵ 3 ردالمحتار خطبة الکتاب مصطفیٰ البابی مصر ۱/ ۷۵ 4 ردالمحتار خطبة الکتاب مصطفیٰ البابی مصر ۱/ ۷۵

Fatawa Razawiyya, Volume 9

Because the literal text (Nass) of the Hadith points in that direction and the scholars explicitly state:

La ya'dilu 'an dirayatin ma wafa-qatha riwayatan kama nassa 'alayhi fil-Ghunyah wa Radd-ul-Muhtar wa ghayrihima.	**One should not deviate from a rational deduction as long as some narration supports it, as is explicitly stated in Ghunyah and Radd-ul-Muhtar etc. (T)**

Fifthly: The entire basis of this discussion and deduction is that in the narration of Abu Dawud, the words 'jaza-ahum thalathata sufuf'[2] (he divided them into three rows - T) occur, and one person is not called a 'row'. In this Hadith of Tirmidhi, it is 'jaza-ahum thalathata ajza'[3] (he divided them into three parts - T), and 'part' (juz') is general. We have just quoted from a Marfu' Hadith that the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) made a single row of just one person. Allama Qari explained the narration of Tirmidhi saying that dividing into three parts means: the elderly, the middle-aged, and the youth, or scholars, students, and the common public.

Haythu qala ay qasamahum thalathata aqsamin ay shyukhan wa kuhulan wa shababan au fudala'a wa talabatil-'ilmi wal-'ammah.[4]	**He said: He divided them into three parts, meaning into the elderly, middle-aged, and youth, or into scholars, students, and common people. (T)**

This too is merely the personal reasoning (ijtihad) of the Allama, which is neither indicated in the Marfu' Hadith nor in the subsequent action of the companion, nor is it based on the condition 'When a funeral prayer is performed and people are found to be few'[5] (T). These factors necessitate division into parts, not distribution into groups. Thus, this interpretation is without basis; such a practice is not known in Sharia for any prayer—that the elderly should be separated, middle-aged people apart, and youth separately.

Sixthly: We accept that in itself, an independent row consists of at least two people, but if one person stands as a separate row along with a row or rows, then the term 'row' certainly applies to him as well, and this is exactly what applies to our issue.

---

1 Radd al-Muhtar, Matlub Idha Ta'arada al-Ta'mim, printed by Mustafa al-Babi, Egypt, 1/531. 2 Sunan Abi Dawud, Chapter on Rows in Funeral Prayer, Aftab Alam Press,

Lahore, 2/95. 3 Jami' al-Tirmidhi, Chapters of Funerals, Chapter on How the Prayer for the Deceased is Offered etc., Amin Company, Kutub Khana Rashidiyah, Delhi, 1/122. 4 Mirqat al-Mafatih, Book of Funerals (Hadith: 1687), Al-Maktaba al-Habibiyah, Quetta, 3/701. 5 Jami' al-Tirmidhi, Chapters of Funerals, Chapter on How the Prayer for the Deceased is Offered, Amin Company, Kutub Khana Rashidiyah, Delhi, 1/122.

फ़तावा रज़विया, जिल्द 9

ताकि हदीस का मूल पाठ (नस्स) उसी दिशा में हो और विद्वान स्पष्ट रूप से कहते हैं:

ला यद्दिलु अन दरायातिन मा वाफ़क़तहा रिवायतन कमा नस्सा अलैहि फ़िल-ग़ुन्याह व रद्दुल-मुह्तार व ग़ैरिहिमा।	**किसी बुद्धिसंगत निष्कर्ष (दरायत) से विचलन नहीं किया जाएगा जब तक कि कोई रिवायत उसका समर्थन करती हो, जैसा कि ग़ुन्याह और रद्दुल-मुह्तार आदि में स्पष्ट रूप से उल्लेखित है। (त)**

पाँचवाँ: इस बहस और निष्कर्ष का पूरा आधार इस बात पर है कि अबू दाऊद की रिवायत में 'जज़ाहुम सलासता सुफ़ूफ़'[2] (उन्हें तीन पंक्तियों में विभाजित किया - त) शब्द आया है, और एक व्यक्ति को पंक्ति नहीं कहा जाएगा। तिरमिज़ी की इस हदीस में 'जज़ाहुम सलासता अज्ज़ा'[3] (उन्हें तीन भागों में विभाजित किया - त) है, और 'भाग' (जुज़) सामान्य है। हम अभी मरफ़ू हदीस से उद्धृत कर चुके हैं कि नबी (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने एक ही व्यक्ति की एक पंक्ति बनाई। अल्लामा क़ारी ने तिरमिज़ी की रिवायत की व्याख्या करते हुए कहा कि तीन भागों में विभाजित करने का अर्थ है: बुजुर्ग, अधेड़ और युवा, या विद्वान, छात्र और सामान्य लोग।

हैसु क़ाला अय क़समाहुम सलासता अक़सामिन अय श्यूख़न व कुहूलन व शबाबन औ फ़ुदला'अ व तलबातिल-इल्मि वल-आम्माह।[4]	**उन्होंने कहा: उन्हें तीन भागों में विभाजित किया गया, अर्थात् बुजुर्गों, अधेड़ों और युवाओं में, या विद्वानों, छात्रों और सामान्य लोगों में। (त)**

यह भी अल्लामा का केवल व्यक्तिगत शोध (इजतिहाद) है, जिसका न तो मरफ़ू हदीस में संकेत है और न ही सहाबी के बाद के कार्य में, और न ही यह इस शर्त 'जब जनाजे की नमाज़ पढ़ी गई और लोगों को कम पाया गया'[5] (त) पर आधारित है। ये कारक विभाजन की आवश्यकता पैदा करते हैं, न कि वितरण की। इसलिए, यह व्याख्या बिना किसी प्रमाण के है; शरीयत में किसी भी नमाज़ के लिए ऐसा विभाजन ज्ञात नहीं है कि बुजुर्गों को अलग किया जाए, अधेड़ों को अलग और युवाओं को अलग।

छठा: हम स्वीकार करते हैं कि अपने आप में एक स्वतंत्र पंक्ति कम से कम दो व्यक्तियों की होती है, लेकिन यदि एक व्यक्ति एक पंक्ति या पंक्तियों के साथ एक अलग पंक्ति के रूप में खड़ा होता है, तो 'पंक्ति' शब्द निश्चित रूप से उस पर भी लागू होता है, और हमारे इस मुद्दे में भी यही स्थिति है।

1 रद्दुल-मुह्तार, मतलब इजा ता'अरदा अल-ता'मीम, मुस्तफ़ा अल-बाबी मिस्र द्वारा मुद्रित, 1/531। 2 सुनन अबी दाऊद, जनाजे की पंक्तियों के बारे में अध्याय, आफ़ताब आलम प्रेस, लाहौर, 2/95। 3 जामिअ अल-तिरमिज़ी, जनाजे के अध्याय, मृतक पर नमाज़ कैसे पढ़ें आदि अध्याय, अमीन कंपनी, कुतुब ख़ाना रशीदिया, दिल्ली, 1/122। 4 मिरक़ात अल-मफ़ातीह, जनाजे की किताब (हदीस: 1687), अल-मकतबा अल-हबीबिया, क्वेटा, 3/701। 5 जामिअ अल-तिरमिज़ी, जनाजे के अध्याय, मृतक पर नमाज़ कैसे पढ़ें अध्याय, अमीन कंपनी, कुतुब ख़ाना रशीदिया, दिल्ली, 1/122।

فتاوٰی رضویہ جلد نہم

ہو تا کہ نصِ حدیث اُسی طرف ہے اور علماء تصریح فرماتے ہیں :

لا یعدل عن درایۃ ما وافقتھا روایۃ کسی درایت سے عدول نہ ہو گا جب تک کوئی روایت اس کی کما نص علیہ في الغنیۃ ورد المحتار موافقت کرتی ہو جیسا کہ غنیہ اور ردالمختار وغیرہما میں وغیرھما۔ اس کی تصریح ہے (ت)

خامساً اس بحث واستنباط کا سار ا مدار اس پر ہے کہ روایتِ ابی داؤد میں جزاھم ثلثۃ صفوف 2 (انہیں تین صفوف میں تقسیم کیا-ت) کا لفظ وارد ہے، اور ایک شخص کو صف نہ کہیں گے ترمذی کی اس حدیث میں جزاھم ثلثۃ اجزاء 3۔ (انہیں تین صفوں میں تقسیم کیا-ت) ہے اور جز مطلق ہے اور ہم ابھی حدیث مرفوع سے نقل کر چکے ہیں کہ نبی صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم نے ایک صف ایک ہی صاحب کی کی، علامہ قاری نے روایتِ ترمذی کی جو شرح ٹھہرائی کہ تین حصے کرنے سے مراد یہ ہے کہ بوڑھے اور ادھیڑ اور جوان یا علماء و طلبہ و عوام،

حیث قال ای قسمھم ثلثۃ اقسام ای انہوں نے کہا : ان کو تین حصوں میں تقسیم کیا یعنی شیوخا وکھولا وشبابا او فضلاء وطلبۃ بوڑھوں، ادھیڑوں اور جوانوں میں یا علماء، طلباء اور العلم والعامۃ 4 عوام میں تقسیم کیا۔ (ت)

یہ بھی نرا اجتہادِ علامہ ہے جس پر نہ حدیثِ مرفوع میں دلالت نہ اُس کی فرع فعلِ صحابی میں، نہ اُسے اس کی شرط اذا صلی علی جنازۃ فتقال الناس علیھا 5 (جب نمازِ جنازہ پڑھی اور اس پر آدمی کم محسوس کئے-ت) پر ترتب، یہ مقتضی تجزیہ ہیں، نہ طالبِ توزیع، تو یہ تفسیر بلا انشاء ہے، نہ

شرع سے کہیں کسی نماز میں یہ تقسیم معہود کو بوڑھے الگ چھانٹے جائیں اور ادھیڑ جدا اور جوان علیحدہ۔

سادساً ہمیں مسلم کہ فی نفسہ مستقل صف کم از کم دو کی ہو گی، مگر صف یا صفوف کے ساتھ اگر ایک شخص صف جدا گانہ ہو تو اُس پر بھی ضرور اطلاقِ صف ہے اور یہی ہمارے اس مسئلہ میں ہے۔

---

1 رد المحتار مطلب اذا تعارض التعمیم مطبوعہ مصطفی البابی مصر ۱/ ۵۳۱ 2 سنن ابی داؤد باب فی الصفوف علی الجنازۃ آفتاب عالم پریس لاہور ۲/ ۹۵ 3 جامع الترمذی ابواب الجنائز باب کیف الصلوۃ علی المیت الخ امین کمپنی کتب خانہ رشیدیہ دہلی ۱/ ۱۲۲ 4 مرقاۃ المفاتیح کتاب الجنائز (حدیث: ۱۶۸۷) المکتبہ الحبیبیہ کوئٹہ ۳/ ۷۰۱ 5 جامع الترمذی ابواب الجنائز باب کیف الصلوۃ علی المیت امین کمپنی کتب خانہ رشیدیہ دہلی ۱/ ۱۲۲

Fatawa Razawiyya Volume Nine

So the very basis of denial is dropped and false; Allah Almighty states:

[Quran 78:38] The Day that the Spirit and the angels will stand in rows. | The day when the Spirit and the angels will stand, forming a row.

Ibn Jarir narrates from Sayyiduna Abdullah bin Mas'ud (may Allah be pleased with him) regarding the interpretation of this verse:

Arabic Text: The Spirit is an angel in the seventh heaven and is greater than the heavens, the mountains, and the angels. He glorifies [Allah] twelve thousand times every day. From each glorification, Allah creates an angel from the angels. He will come on the Day of Judgment in a row by himself. | Urdu Translation: This Spirit is an angel in the seventh heaven; it is greater than the heavens, mountains, and all angels. It recites twelve thousand glorifications daily. From each glorification, Allah Almighty creates one angel. This Spirit (angel) will be a single row on the Day of Resurrection.

In 'Ma'alim al-Tanzil', narrated by 'Ata bin Abi Rabah from Sayyiduna Abdullah bin 'Abbas (may Allah be pleased with them) regarding the interpretation of this verse:

Arabic Text: The Spirit is an angel among the angels. Allah Almighty has not created any creature physically larger than him. When the Day of Judgment occurs, he will stand alone as one row, and all the angels together will be one row. So his physical size will be equal to all of them. | Urdu Translation: The Spirit is an angel; Allah Almighty has not created any physical creature larger than it. When the Day of Judgment comes, it will stand alone as one row, and all the angels together as another row. Its physical size will be equal to all of them.

Imam Abu 'Umar ibn 'Abd al-Barr narrates from Mother of the Believers 'Aisha al-Siddiqa (may Allah be pleased with her) that the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) said: "A woman alone is a row." In Sahih al-Bukhari: "A woman alone constitutes a row." It was mentioned in the Hadith of 'Ata: "Make the third row one [person]." The Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) placed one person in the third row.

Footnotes: 1 Quran 78/38. 2 Jami' al-Bayan, known as Tafsir Ibn Jarir, under the aforementioned verse, published by Matba'ah al-Maymaniyya, Egypt, 10/13. 3 Ma'alim al-Tanzil on the margin of Tafsir al-Khazin, under the aforementioned verse,

published by Mustafa al-Babi, Egypt, 7/202-203. 4 Al-Tamheed, fifth Hadith for Ishaq, published by Al-Maktabah al-Quddusiyya, Lahore, 11/268. 5 Sahih al-Bukhari, chapter 'A woman alone constitutes a row', published by Qadimi Kutub Khana, Karachi, 1/101.

फतावा रज़विया जिल्द नहम (भाग 9)

तो इनकार का आधार ही गिर गया और गलत है; अल्लाह सर्वशक्तिमान फरमाता है:

[कुरान 78:38] जिस दिन रूह और फ़रिश्ते कतार बांध कर खड़े होंगे। | जिस दिन खड़े होंगे रूह और मलायका (फ़रिश्ते) सफ (कतार) बांध कर।

इब्ने जरीर इस आयत की व्याख्या में सैय्यदना अब्दुल्लाह बिन मसूद (रज़ियल्लाहु अन्हु) से वर्णन करते हैं:

अरबी पाठ: रूह सातवें आसमान में एक फरिश्ता है और वह आसमानों, पहाड़ों और सभी फरिश्तों से बड़ा है। वह प्रतिदिन बारह हजार तस्बीह पढ़ता है। अल्लाह सर्वशक्तिमान हर तस्बीह से एक फरिश्ता बनाता है। वह कयामत के दिन अकेले एक कतार होकर आएगा। | उर्दू अनुवाद: यह रूह फरिश्ता सातवें आसमान में है, वह आसमानों और पहाड़ों और सब फरिश्तों से बड़ा (अज़म) है, वह रोजाना बारह हज़ार तस्बीहें करता है, अल्लाह अज़्वजल हर तस्बीह से एक फरिश्ता बनाता है, यह रूह (फरिश्ता) रोज़-ए-क़यामत अकेला एक सफ होगा।

'मआलिम-उत-तंज़ील' में अता इब्ने अबी रबाह के हवाले से सैय्यदना अब्दुल्लाह बिन अब्बास (रज़ियल्लाहु अन्हुमा) से इस आयत की व्याख्या में है:

अरबी पाठ: रूह फरिश्तों में से एक फरिश्ता है। अल्लाह तआला ने शरीर के आकार में इससे बड़ी कोई रचना नहीं बनाई। जब कयामत का दिन होगा, तो वह अकेला एक कतार बनकर खड़ा होगा और तमाम फरिश्ते मिलकर एक कतार होंगे। तो उसका भौतिक निर्माण उन सबके बराबर होगा। | उर्दू अनुवाद: रूह एक फरिश्ता है, अल्लाह तआला ने कोई मखलूक जिस्म में इससे बड़ी न बनाई। जब कयामत का दिन होगा, वह अकेला एक सफ होकर खड़ा होगा और तमाम फरिश्ते मिलकर एक सफ, तो इसकी जसामत इन सबके बराबर होगी।

इमाम अबू उमर इब्ने अब्दुल बर मोमिनों की माँ आइशा सिद्दीका (रज़ियल्लाहु अन्हा) से रिवायत करते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने फरमाया: "अकेली औरत एक सफ (कतार) है।" सहीह बुखारी शरीफ में है: "अकेली औरत एक सफ होती है।" अता की हदीस से गुजरा: "तीसरी सफ को एक (व्यक्ति) बनाओ।" नबी (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने एक व्यक्ति को तीसरी सफ में रखा।

फुटनोट: 1 अल-कुरान 78/38. 2 जामिअल बयान, जिसे तफ़सीर इब्ने जरीर के नाम से जाना जाता है, उल्लेखित आयत के तहत, मुद्रित मटबा अल-मैमनिया, मिस्र, 10/13. 3 तफ़सीर अल-खाज़िन के हाशिये पर मआलिम-उत-तंज़ील, उल्लेखित आयत के तहत, मुद्रित मुस्तफा अल-बाबी, मिस्र, 7/202-203. 4 अल-तम्हीद, इशाक के लिए पांचवीं हदीस, मुद्रित अल-मकतब अल-कुद्दुसिया, लाहौर, 11/268. 5 सहीह अल-बुखारी, अध्याय 'अकेली औरत एक सफ होती है', मुद्रित कदीमी कुतुब खाना, कराची, 1/101.

पृष्ठ 204 / 948

فتاوی رضویہ جلد نہم

تو اصل بنائے انکار ہی ساقط و باطل ہے، اللہ عزوجل فرماتا ہے:

یَوْمَ یَقُومُ الرُّوحُ وَالْمَلَئِکَۃُ صَفًّا 1 | جس دن کھڑے ہوں گے روح اور ملائکہ صف باندھ کر۔

ابن جریر اس آیت کی تفسیر میں سید ناعبداللہ بن مسعود رضی اللہ تعالی عنہ سے راوی:

الروح ملك في السماء السابعة و اعظم من السموات ومن الجبال ومن الملئكة يسبح كل يوم اثنى عشر الف تسبيحة يخلق الله من كل تسبيحة ملكا من الملئكة يجي يوم القيمة صفا وحده 2 | یہ روح فرشتہ آسمانِ ہفتم میں ہے وہ آسمانوں اور پہاڑوں اور سب فرشتوں سے اعظم ہے، وہ روزانہ بارہ ہزار تسبیحیں کرتا ہے اللہ عزوجل ہر تسبیح سے ایک فرشتہ بناتا ہے یہ روح (فرشتہ) روز قیامت اکیلا ایک صف ہوگا۔

معالم التنزیل میں بروایت عطاء ابن ابی رباح سید نا عبداللہ بن عباس رضی اللہ عنہما سے اس آیت کی تفسیر میں ہے:

الروح ملك من الملئكة ما خلق الله تعالى مخلوقاً اعظم منه فاذا كان يوم القيمة قام وحده صفاً وقامت الملئكة كلهم صفاً واحداً فيكون اعظم خلقة مثله 3 | روح ایک فرشتہ ہے اللہ تعالی نے کوئی مخلوق جسم میں اس سے بڑی نہ بنائی۔ جب قیامت کا دن ہوگا وہ اکیلا ایک صف ہو کر کھڑا ہوگا اور تمام فرشتے ملکر ایک صف، تو اس کی جسامت ان سب کے برابر ہوگی۔

امام ابوعمر ابن عبدالبر ام المومنین عائشہ صدیقہ رضی اللہ تعالی عنہ سے روایت کرتے ہیں کہ رسول اللہ صلی اللہ علیہ وسلم فرمایا: المرأة وحدها صف اکیلی عورت ایک صف ہے۔ صحیح بخاری

شریف میں: المرأة وحدها تکون صفاً تنہا عورت ایک صف ہوتی ہے۔ حدیث عطاء سے گزرا اجعل الصف الثالث واحد نبی صلی اللہ علیہ وسلم نے ایک شخص کو تیسری صف میں کیا۔

حواشی: 1 القرآن ۷۸/۳۸ 2 جامع البیان المعروف تفسیر ابن جریر تحت آیہ مذکورہ مطبوعہ مطبعہ میمنیہ مصر ۱۰ / ۱۳ 3 معالم النزل علی ہامش تفسیر الخازن تحت آیہ مذکورہ مطبوعہ مصطفی البابی مصر ۷ / ۲۰۲ - ۲۰۳ 4 التمہید حدیث الخامس لا سحاق مطبوعہ المکتبۃ القدوسیہ لاہور ۱۱ / ۲۶۸ 5 صحیح البخاری باب المراۃ وحدها تکون صفاً مطبوعہ قدیمی کتب خانہ کراچی ۱ / ۱۰۱

In the aforementioned narration of Imam Ahmad, a single person is also referred to as a row (saff), saying: "He disliked that one person should be a row"[1] (T). It does not mean "a row is not established by one person at all." (T). From this, it becomes clear that the objection regarding the inability to form rows of three people is a gross ignorance. For "there are many things which are valid implicitly but not valid explicitly." (T).

Earlier, the dislike of praying alone was mentioned regarding general prayers; its application to the funeral prayer is a point of contention. It is stated in 'Tabyin al-Haqa'iq':

| Salat al-Janaza (Funeral Prayer) is not a prayer in every sense; it is only a prayer (supplication) for the deceased.[2] | The funeral prayer is not a prayer from every aspect, it is simply a supplication for the deceased. (T) |

Imam Nasafi states in the book 'Al-Kafi Sharh al-Wafi':

| Even if one takes an oath not to pray, they would not break the oath by performing the funeral prayer; so it became like the prostration of recitation.[3] | If one took an oath not to pray, they would not break their oath by performing the funeral prayer; thus, it became like the prostration of recitation. (T) |

I say: In fact, there is a clear difference between general prayer and funeral prayer in this regard. In general prayer, the most excellent row is the first row, whereas in funeral prayer, the most excellent row is the last row. In general prayer, a second row should never be formed until the first row is complete. The Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) says:

| Complete the front row, then the one following it; whatever deficiency remains should be in the last row.[4] Narrated by Ahmad, Abu Dawud, An-Nasa'i, Ibn Hibban, Ibn Khuzaymah, and Ad-Diya' in Al-Mukhtarah from... | Complete the first row, then the one after it, so that whatever shortfall remains is in the last row. Narrated by Imam Ahmad, Abu Dawud, Nasa'i, Ibn Hibban, Ibn Khuzaymah and Diya in Mukhtara from Hazrat Anas bin Malik (may Allah be pleased with him). (T) |

---

1. Hilya al-Mahalli Sharh Munya al-Musalli
2. Tabyin al-Haqa'iq Sharh Kanz al-Daqa'iq, Chapter on Imamate and Impurity in Prayer, printed at Matba'ah Kubra Amiriyyah, Egypt, 1/173

3. Sunan Abu Dawud, Chapter on Straightening Rows, printed at Aftab-e-Alam Press, Lahore, 1/98
4. Sunan Abu Dawud, Chapter on Straightening Rows, printed at Aftab-e-Alam Press, Lahore, 1/98

इमाम अहमद की ज़िक्र की गई रिवायत में भी एक शख़्स को सफ़ कहा गया कि 'उसे नापसंद किया गया कि एक आदमी सफ़ हो'[1]। (त)। यह नहीं कि 'एक आदमी से बिल्कुल सफ़ बनती ही नहीं।' (त)। और यहीं से ज़ाहिर हो गया कि तीन आदमियों की सफ़ें न हो सकने से ऐतराज़ घोर अज्ञानता है। क्योंकि 'बहुत सी चीज़ें ज़िमनी तौर पर सही होती हैं और क़स्दन (इरादतन) सही नहीं होतीं।' (त)

पहले आम नमाज़ों में अकेले नमाज़ पढ़ने की कराहत (नापसंदगी) बयान हुई है, नमाज़-ए-जनाज़ा को इस पर लागू करना मना है। 'तब्बीनुल हक़ाएक' में फ़रमाया:

| नमाज़-ए-जनाज़ा हर लिहाज़ से नमाज़ नहीं है, यह तो बस मैयत के लिए दुआ है।[2] | नमाज़-ए-जनाज़ा हर लिहाज़ से नमाज़ नहीं है, यह तो बस मैयत के लिए दुआ है। (त) |

इमाम नसफ़ी किताब 'काफ़ी शरह वाफ़ी' में फ़रमाते हैं:

| यहाँ तक कि अगर कोई नमाज़ न पढ़ने की क़सम खाए तो नमाज़-ए-जनाज़ा पढ़ने से क़सम नहीं टूटेगी, तो यह सजदा-ए-तिलावत की तरह हुई।[3] | अगर नमाज़ न पढ़ने की क़सम खाई तो नमाज़-ए-जनाज़ा पढ़ने से क़सम नहीं टूटेगी, तो यह सजदा-ए-तिलावत की तरह हुई। (त) |

मैं कहता हूँ: बल्कि इस मक़ाम पर आम नमाज़ और नमाज़-ए-जनाज़ा में साफ़ फ़र्क़ है। आम नमाज़ में सबसे अफ़ज़ल (बेहतर) पहली सफ़ है और नमाज़-ए-जनाज़ा में सबसे अफ़ज़ल आख़िरी सफ़। आम नमाज़ में जब तक पहली सफ़ पूरी न हो जाए, दूसरी सफ़ हरगिज़ न बनाई जाए। रसूलुल्लाह (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) फ़रमाते हैं:

| अगली सफ़ पूरी करो फिर वह जो उसके बाद है, तो जो कुछ कमी रहे पिछली सफ़ में रहे।[4] इमाम अहमद, अबू दाऊद, नसाई, इब्न हब्बान, इब्न खुज़ैमा और मुख़्तारा में ज़िया ने... से रिवायत किया। | अगली सफ़ पूरी करो फिर वह जो उसके बाद है कि जो कुछ कमी रहे पिछली सफ़ में रहे। इसे इमाम अहमद, अबू दाऊद, नसाई, इब्न हब्बान, इब्न खुज़ैमा और मुख़्तारा में ज़िया ने हज़रत अनस बिन मालिक (रज़ियल्लाहु अन्हु) से रिवायत किया। (त) |

---

1. हिल्यातुल महल्ली शरह मुनियतुल मुसल्ली

2. तब्बीनुल हक़ाएक शरह कंज़ुद्दक़ाएक, बाबुल इमामत वल हदस्त फ़ीस सलात, मतबूआ मतबआ कुबरा अमीरिय्या मिस्र, 1/173
3. सुनन अबू दाऊद, बाबु तस्वियतुल सुफ़ूफ़, मतबूआ आफ़ताब-ए-आलम प्रेस लाहौर, 1/98
4. सुनन अबू दाऊद, बाबु तस्वियतुल सुफ़ूफ़, मतबूआ आफ़ताब-ए-आलम प्रेस लाहौर, 1/98

पेज 205 का 948

امام احمد کی روایت مذکورہ میں بھی ایک شخص کو صف کہا کہ کَرِہَ اَنْ یَّکُونَ الْوَاحِدُ صَفًّا[1] (اسے ناپسند کیا کہ ایک آدمی صف ہو۔ ت) نہ یہ کہ اَلصَّفُّ لَا یَقُومُ بِوَاحِدٍ اَصْلًا (ایک آدمی سے بالکل صف بنتی ہی نہیں۔ت) اور یہیں سے ظاہر ہو گیا کہ تین آدمیوں کی صفیں نہ ہو سکنے سے اعتراض جہالت فاحشہ ہے۔ فَکَمْ مِنْ شَیءٍ یَّصِحُّ ضِمْنًا وَّلَا یَصِحُّ قَصْدًا (بہت سی چیزیں ضمناً ہوں تو صحیح ہیں اور قصداً صحیح نہیں۔ت)

سابقاً کراہتِ انفراد صلوٰۃِ مطلقہ میں ارشاد ہوئی ہے، صلوٰۃِ جنازہ کا اس سے الحاق محل منع ہے، تبیین الحقائق میں فرمایا:

| صَلٰوۃُ الْجَنَازَۃِ لَیْسَتْ بِصَلٰوۃٍ مِّنْ کُلِّ وَجْہٍ وَّ اِنَّمَا ھِیَ دُعَاءٌ لِلْمَیِّتِ۔[2] | نمازِ جنازہ ہر لحاظ سے نماز نہیں، یہ تو بس میت کے لئے دُعا ہے۔ (ت) |

امام نسفی کتاب کافی شرح وافی میں فرماتے ہیں:

| حَتّٰی لَا یَحْنَثَ بِصَلٰوۃِ الْجَنَازَۃِ لَوْ حَلَفَ اَنْ لَّا یُصَلِّیَ فَصَارَتْ کَسَجْدَۃِ التِّلَاوَۃِ۔[3] | اگر نماز نہ پڑھنے کی قسم کھائی تو نمازِ جنازہ پڑھنے سے حانث نہ ہوگا، تو یہ سجدہ تلاوت کی طرح ہوئی۔ (ت) |

اقول: بلکہ محل مقام میں صلوٰۃِ مطلقہ کا اس سے بیّن تفاوت ہے۔ صلوٰۃِ مطلقہ میں سب سے افضل صفِ اول ہے اور نمازِ جنازہ میں سب سے افضل صفِ اخیر۔ صلوٰۃِ مطلقہ میں جب تک پہلی صف پوری نہ ہو جائے دوسری صف ہر گز نہ کی جائے گی۔ رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم فرماتے ہیں:

| اَتِمُّوا الصَّفَّ الْمُقَدَّمَ ثُمَّ الَّذِیْ یَلِیْهِ فَمَا کَانَ مِنْ نَقْصٍ فَلْیَکُنْ فِی الصَّفِّ الْمُؤَخَّرِ[4] رواہ احمد وابو داؤد والنسائی وابن حبان وابن خزیمة و الضیاء في المختاره عن | اگلی صف پوری کرو پھر وہ جو اس کے بعد ہے کہ جو کچھ کمی رہے پچھلی صف میں رہے۔ اسے امام احمد، ابوداؤد، نسائی، ابن حبان، ابن خزیمہ اور مختارہ میں ضیاء نے حضرت انس بن مالک رضی اللہ عنہ (سے روایت کیا۔ ت) |

---

1. حلیة المحلی شرح منیة المصلی
2. تبیین الحقائق شرح کنز الدقائق باب الامامة والحدث فی الصلوة مطبوعہ مطبعہ کبریٰ امیریہ مصر ۱/ ۱۷۳
3. سنن ابو داؤد باب تسویة الصفوف مطبوعہ آفتاب عالم پریس لاہور ۱/ ۹۸
4. سنن ابو داؤد باب تسویة الصفوف مطبوعہ آفتاب عالم پریس لاہور ۱/ ۹۸

Fatawa Razawiyya, Volume 9

Anas bin Malik (may Allah be pleased with him) reported with an authentic chain of narration: (T) The Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) said: "Will you not form ranks as the angels form ranks before their Lord?" (T) The Companions asked: "O Messenger of Allah! How do the angels form ranks before their Lord?" (T) He replied: "They complete the first rank [first] and stand close together in the rank."1 (T) - Reported by Muslim, Abu Dawood, and Ibn Majah from Jabir bin Samrah (may Allah be pleased with him). (T) And in funeral prayers, the separation of ranks is accepted by all. In general prayers (Salat-e-Mutlaqa), the alignment with women according to the ten conditions invalidates the prayer, but in funeral prayers, it is not fundamentally invalidating, as stated clearly in definitive books. (T) Thus, it is far-fetched to say that standing alone behind a rank, which is disliked in general prayers, would also be disliked in funeral prayers. This weakens what is stated in 'Al-Hilyah': "If it weren't for the hadith, we would have considered it disliked."2 (T) In short, the matter is clear and researched, and relying on something contrary to hadith and jurisprudence is gross ignorance. Now, as for the actual question: Should this separation [into three ranks] be done for five followers as well, or is it specific to six? I say: Yes, it should be done even for five; hadith and jurisprudence inform us that the Chosen One (Mustafa, peace and blessings of Allah be upon him) said: "No Muslim dies and three ranks of Muslims pray over him except that [Paradise] becomes mandatory [for him]."3 — If a Muslim passes away and three ranks of Muslims perform his funeral prayer, Paradise becomes mandatory for him. (T)

Footnotes: 1. Sahih Muslim, Chapter on Straightening Ranks... Qadimi Kutub Khana, Karachi, 1/181; Sunan Abi Dawood, Chapter on Straightening Ranks... Aftab-e-Alam Press, Lahore, 1/97. 2. Hilyat al-Mahalli Sharh Munyat al-Musalli. 3. Mishkat al-Masabih, Chapter on Walking with the Funeral... Published by Matba' Mujtabai, Delhi, 1/147.

फतावा रज़विया, जिल्द 9

अनस बिन मालिक (रज़ियल्लाहु तआला अन्हु) ने एक सहीह सनद के साथ रिवायत किया: (त) अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम) ने फरमाया: "क्या तुम वैसी सफ़ें(पंक्तियाँ) नहीं लगाते जैसी फ़रिश्ते अपने रब के हुज़ूर लगाते हैं?" (त) सहाबा ने अर्ज़ की: "या रसूल अल्लाह! फ़रिश्ते अपने रब के हुज़ूर कैसे सफ़ें लगाते हैं?" (त) आप ने इर्शाद फरमाया: "वे पहली सफ़ को पूरा करते हैं और सफ़ के अंदर खूब मिल कर खड़े होते हैं।"1 (त) — इसे मुस्लिम, अबू दाऊद और इब्न माजा ने हज़रत जाबिर बिन समराह (रज़ियल्लाहु तआला अन्हु) से रिवायत किया। (त) और नमाज़-ए-जनाज़ा में सफ़ों को अलग करना सबको मान्य है। आम नमाज़ (सलात-ए-मुतलक़ा) में महिलाओं के साथ खड़े होने की दस शर्तों के अनुसार नमाज़ फासिद (अमान्य) हो जाती है, लेकिन नमाज़-ए-जनाज़ा में यह मूल रूप से फासिद नहीं है, जैसा कि तमाम किताबों में इसका स्पष्ट विवरण है। (त) तो यह कहना दूर की बात है कि सफ़ के पीछे अकेले व्यक्ति का होना, जो आम नमाज़ में मकरूह (नापसंद) है, नमाज़-ए-जनाज़ा में भी हो। इसी से 'अल-हिलिया' में वर्णित यह बात कमज़ोर हो जाती है कि: "अगर हदीस न होती, तो हम इसके मकरूह होने के कायल होते।"2 (त) सारांश यह है कि मामला स्पष्ट और शोधपूर्ण है, और हदीस और फ़िक़्ह (इस्लामी न्यायशास्त्र) के विपरीत किसी चीज़ पर भरोसा करना घोर अज्ञानता है। अब असल सवाल यह है कि क्या यह विभाजन पाँच मुक्तदियों (नमाज़ियों) में भी किया जाएगा या सिर्फ छह के साथ विशिष्ट है? अक़ूल (मैं कहता हूँ): हाँ, पाँच में भी किया जाएगा, हमें हदीस और फ़िक़्ह ने बताया है कि मुस्तफ़ा (सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम) का इर्शाद है: "कोई भी मुसलमान मरता है और उस पर मुसलमानों की तीन सफ़ें नमाज़ पढ़ती हैं, तो उसके लिए (जन्नत) वाजिब हो गई।"3 — मुसलमानों में से कोई फ़ौत हो गया और उस पर मुसलमानों की तीन सफ़ों ने नमाज़-ए-जनाज़ा पढ़ी तो उसके लिए जन्नत वाजिब हो गई। (त)

पाद-टिप्पणियाँ: 1. सहीह मुस्लिम, बाब तस्वियत-उस-सुफ़ूफ... क़दीमी कुतुब ख़ाना, कराची, 1/181; सुनन अबी दाऊद, बाब तस्वियत-उस-सुफ़ूफ... आफ़ताब-ए-आलम प्रेस, लाहौर, 1/97. 2. हिलियत-उल-महल्ली शरह मुनियत-उल-मुसल्ली। 3. मिश्कात-उल-मसाबीह, बाब अल-मशी बिल-जनाज़ह... मतबूआ मतबा मुज्तबाई, दिल्ली, 1/147.

पृष्ठ 206 का 948

انس بن مالک رضی اللہ تعالٰی عنہ بسند صحیح- تعالٰی عنہ سے بسند صحیح روایت کیا۔ (ت) رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم نے فرمایا: الا تصفون کما تصف الملئکۃ عند ربھا (کیا تم ویسے صف نہیں لگاتے جیسے ملائکہ اپنے رب کے حضور صف لگاتے ہیں۔ت) صحابہ نے عرض کی: یا رسول اللہ و کیف تصف ملئکۃ عند ربھا (یارسول اللہ ملائکہ اپنے رب کے حضور کیسے صف لگاتے ہیں؟۔ت) ارشاد فرمایا: یتمون الصف الاول و یتراصون في الصف1 (پہلی صف پوری کرتے ہیں اور صف کے اندر خوب مل کر کھڑے ہوتے ہیں۔ت) رواہ مسلم وابوداؤد وابن ماجۃ عن جابر بن سمرۃ رضی اللہ تعالٰی عنہ (اسے ابوداؤد اور ابن ماجہ نے حضرت جابر بن سمرہ رضی اللہ تعالٰی عنہ سے روایت کیا۔ت) اور نمازِ جنازہ میں تفریق صفوف سب کو مسلم۔ صلوٰۃ مطلقہ میں محاذات زن حسب شرائط عشرہ مفسد نماز ہے اور نمازِ جنازہ میں اصلاً مفسد نہیں کما نص علیہ في الکتب قاطبۃ (جیسا کہ تمام کتابوں میں اس کی تصریح ہے۔ت) تو کیا بعید ہے کہ صف کے پیچھے انفراد صلاۃ مطلقہ میں مکروہ ہونا نمازِ جنازہ میں و بہ یضعف ما وقع في الحلیۃ ان لولا الحدیث لقلنا بکراھتہ 2 (اور اسی سے حلیہ میں واقع یہ کلام ضعیف ہو جاتا ہے کہ اگر حدیث نہ ہوتی تو ہم اس کی کراہت کے قائل ہوتے۔ت) بالجملہ مسئلہ واضح ہے اور بحث طالع اور برخلاف حدیث وفقہ اُس پر اعتماد جہل فاحش۔ اب رہا اصل سائل کہ یہ تفریق پانچ مقتدیوں میں بھی کی جائے یا صرف چھ سے مخصوص ہے۔ اقول: ہاں پانچ میں بھی کی جائے، ہمیں حدیث وفقہ نے بتایا کہ ارشادِ مصطفی صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم: ما من مسلم یموت فیصلی علیہ ثلثۃ صفوف من المسلمین الا اوجب 3 - مسلمانوں میں سے کوئی فوت ہو گیا اور اس پر مسلمانوں کی تین صفوں نے نماز جنازہ پڑھا تو اس کے لئے جنت واجب ہوگئی۔ (ت)

حواشی: 1. صحیح مسلم باب تسویۃ الصفوف و اقامتہا الخ قدیمی کتب خانہ کراچی ۱/۱۸۱، سنن ابی داؤد باب تسویۃ الصفوف آفتاب عالم پریس لاہور ۱/۹۷ 2. حلیۃ المحلی شرح منیۃ المصلی 3. مشکوۃ المصابیح باب المشی بالجنازہ مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی ۱/۱۴۷

Fatawa Razawiyya - Volume 9

To obtain the blessing, as far as possible, three rows of the attendees should be made, even if the last row consists of only one person. This is certainly achievable with five followers (Muqtadis). Let the first two rows consist of two people each, as two people form a regular row even in general prayer (Salat-e-Mutlaqa). In Muwatta Imam Malik and Musannaf Abd al-Razzaq, it is narrated from Anas (may Allah be pleased with him):

Arabic	Urdu Translation
قام رسول الله صلى الله تعالى عليه وسلم وصففت انا واليتيم من ورائه 1۔	The Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) stood up, and the orphan and I formed a row behind him. (T)

In Muwatta Imam Muhammad, from Abdullah bin Utbah:

Arabic	Urdu Translation
قال دخلت على عمر بن الخطاب بالهاجرة فوجدته يسبح فقمت ورائه فقربني فجعلنى بحذائه عن يمينہ فلما جاء يرفاء تأخرت فصففناوراءه 2۔	I came to Hazrat Umar bin al-Khattab (may Allah be pleased with him) at noon and found him praying [nawafil]. I stood behind him; he drew me close and placed me on his right side. Then when Yarfa came, I moved back, and we both formed a row behind him. (T)

And the third row of one; the jurists have described the scenario of six followers.

Firstly: Restricting to some forms does not negate others. It is mentioned in Radd al-Muhtar: "It is not necessary that what is silent about is opposite in ruling to what is mentioned, as is not hidden." It is not necessary that what is omitted is contrary in ruling to what is mentioned, as is clear. (T)

Secondly, I say: There are three reasons for this: First, to seek blessing (Tabarruk) by mentioning the aforementioned hadith. Second, an admonition that in the case of six followers, although it could be two people in each row, they should follow the Sunnah such that the first row is of three, the second of two, and the third of one.

Thirdly: The complete removal of the dislike (karahat) of being alone, that despite being three rows, the plurality of isolation was chosen. If it is asked whether there is any other wisdom in this arrangement of six followers, I say the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) knows best the wisdom of his actions.

1. Muwatta, Imam Malik, Jami' Sabhat al-Duha, published by Mir Muhammad Kutub Khana, Karachi, p. 713.
2. Muwatta Imam Muhammad, Bab al-Rajulan Yusalliyan Jama'at, published by Nur Muhammad Asah al-Matabi, Karachi, p. 122.
3. Radd al-Muhtar.

फ़तावा रज़विया - खंड 9

बरकत हासिल करने के लिए, जहाँ तक संभव हो, उपस्थित लोगों की तीन सफ़ें(पंक्तियाँ) बनाई जानी चाहिए, भले ही अंतिम सफ़ केवल एक व्यक्ति की हो। यह निश्चित रूप से पाँच मुक़्तदियों (अनुयायियों) के साथ प्राप्त किया जा सकता है। पहली दो सफ़ें दो-दो लोगों की होनी चाहिए, क्योंकि दो व्यक्ति सामान्य नमाज़ (सलात-ए-मुतलक़ा) में भी एक स्वतंत्र सफ़ बनाते हैं। मुवट्टा इमाम मालिक और मुसन्नफ़ अब्द अल-रज़्ज़ाक़ में अनस (रज़ियल्लाहु अन्हु) से वर्णित है:

अरबी	उर्दू अनुवाद
قام رسول الله صلى الله تعالى عليه وسلم وصففت انا واليتيم من ورائه 1.	अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) खड़े हुए और मैंने और एक अनाथ ने हुज़ूर के पीछे सफ़ बनाई। (त)

मुवट्टा इमाम मुहम्मद में अब्दुल्ला बिन उतबा से है:

अरबी	उर्दू अनुवाद
قال دخلت على عمر بن الخطاب بالهاجرة فوجدته يسبح فقمت ورائه فقربني فجعلنى بحذائه عن يمينہ فلما جاء يرفاء تأخرت فصففناوراءه 2.	मैं दोपहर के समय हज़रत उमर बिन अल-खत्ताब (रज़ियल्लाहु अन्हु) के यहाँ आया तो उन्हें नफ़्ल पढ़ते हुए पाया, मैं उनके पीछे खड़ा हो गया, उन्होंने मुझे करीब करके अपने बराबर दाहिने कर लिया, फिर जब यरफ़ा आ गया तो मैं पीछे हो गया, हम दोनों ने उनके पीछे सफ़ बना ली। (त)

और तीसरी सफ़ एक व्यक्ति की; फ़ुक़हा-ए-किराम (धर्मशास्त्रियों) ने केवल छह मुक़्तदियों की स्थिति के बारे में लिखा है।

पहला: कुछ स्थितियों तक सीमित रहने का अर्थ अन्य का निषेध नहीं है। रद अल-मुहतार में है: "यह आवश्यक नहीं है कि जिसके बारे में मौन है, वह उस हुक्म (आदेश) के विपरीत हो जो उल्लेखित है, जैसा कि स्पष्ट है।" यह आवश्यक नहीं है कि जिससे मौन साधा गया है, वह हुक्म में उसके विपरीत हो जो ज़िक्र किया गया है, जैसा कि स्पष्ट है। (त)

दूसरा, मैं कहता हूँ: इसके तीन कारण हैं: पहला, उपर्युक्त हदीस के उल्लेख से बरकत (तबर्रुक) प्राप्त करना। दूसरा, इस पर चेतावनी कि छह मुक़्तदियों की स्थिति में यद्यपि प्रत्येक सफ़ दो व्यक्तियों

की हो सकती है, लेकिन सुन्नत के अनुसरण में ऐसा ही करें कि पहली सफ़ तीन की, दूसरी दो की और तीसरी एक की हो।

तीसरा: अकेले खड़े होने की नापसंदगी (कराहियत) का पूर्ण उन्मूलन कि तीन की संख्या होने के बावजूद अलगाव की बहुलता को चुना गया। यदि कहा जाए कि छह मुक़्तदियों की इस व्यवस्था में कोई और हिकमत (बुद्धि) भी है, तो मैं कहता हूँ कि अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) अपने कार्यों की हिकमतों को बेहतर जानते हैं।

---

1. मुवट्टा, इमाम मालिक, जामे सबहत अल-दुहा, मीर मुहम्मद कुतुब खाना, कराची, पृष्ठ 713 द्वारा प्रकाशित।
2. मुवट्टा इमाम मुहम्मद, बाब अल-रजलान युसल्लियान जमाअत, नूर मुहम्मद असहु अल-मताबी, कराची, पृष्ठ 122 द्वारा प्रकाशित।
3. रद अल-मुहतार।

کی برکت حاصل کرنے کو حتی الوسع حاضرین کی تین صفیں کی جائیں، اگر صفِ اخیر صرف ایک شخص کی ہو۔ یہ بات پانچ مقتدیوں میں یقیناً حاصل۔ پہلی دو صفیں دو دو کی ہوں کہ دو آدمی صلوۃ مطلقہ میں بھی مستقل صف ہیں۔ موطائے امام مالک و مصنف عبدالرزاق میں انس رضی اللہ تعالیٰ عنہ سے ہے :

عربی متن	اردو ترجمہ
قام رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم وصففت انا والیتیم من ورائہ 1۔	رسول اللہ صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کھڑے ہوئے اور میں نے اور یتیم نے حضور کے پیچھے صف لگائی۔ (ت)

موطائے امام محمد میں عبد اللہ بن عتبہ سے ہے:

عربی متن	اردو ترجمہ
قال دخلت علی عمر بن الخطاب بالھاجرۃ فوجدتہ یسبح فقمت ورائہ فقربنی فجعلنی بحذائہ عن یمینہم فلما جاء یرفاء تأخرت فصففناوراءہ 2۔	میں حضرت عمر بن خطاب رضی اللہ تعالیٰ عنہ کے یہاں دو پہر کو آیا تو انہیں نفل پڑھتے ہوئے پایا، میں ان کے پیچھے کھڑا ہو گیا ،انہوں نے مجھے قریب کر کے اپنے برابر دائیں کر لیا، پھر جب یرفا آگیا تو میں پیچھے ہو گیا، ہم دونوں نے ان کے پیچھے صف بنالی(ت)

اور تیسری صف ایک کی، فقہائے کرام نے کہ چھ ہی مقتدیوں کی صورت لکھی،

اولاً بعض صور پر اقتصار بعض دیگر کا نافی نہیں، ردالمحتار میں ہے : لا یلزم ان یکون ماسکت عنہ مخالفافی الحکم لماذکرہ کمالایخفی 3 ضروری نہیں کہ جس سے سکوت ہو وہ حکم میں اس کے مخالف ہو جو مذکور ہے جیسا کہ واضح ہے۔ (ت)

ثانیاً اقول : اس کے لئے تین سبب ہیں : اول صورت مذکورہ حدیث کے ذکر سے تبرک۔ دوم اس پر تنبیہ کہ چھ مقتدیوں کی صورت میں اگر چہ ہر دو شخص کی ہو سکتی ہے مگر بہ اتباع سنت یونہی کریں کہ پہلی صف تین کی، دوسری دو کی، تیسری ایک کی۔

سوم کراہت انفراد کا کامل ازالہ کہ باوصف تیسر تعدد انفراد اختیار کیا ، اگر کہیے چھ مقتدیوں کی اس ترتیب میں کوئی اور حکمت بھی، اقول رسول اللہ صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم اپنے افعال کی حکمتیں خوب جانتے ہیں

---

1 موطا، امام مالک جامع سبحۃ الضحی مطبوعہ میر محمد کتب خانہ کراچی ص ۷۱۳ 2 موطا امام محمد باب الرجلان یصلیان جماعۃ مطبوعہ نور محمد اصح المطابع کراچی ص ۱۲۲ 3 ردالمحتار

Fatawa Razawiyya Volume 9

Apparently, two wisdoms are understood here: Firstly, it is a complete plural (Jam' Taam), and a complete plural is like a complete attribute. Therefore, in one narration, three women were stated to be the obstructers (qati') of the prayers of all the rows behind them. Even in Zahir al-Riwayah, it is mentioned as so strong that one row was not considered a barrier for another, and he ruled on the corruption of the prayer for groups of three men up to the last rows in their alignment. It is in Fath al-Qadir:

[Arabic Box Text]: "The correct view is that with the prayer of three, the prayer of one on their right and another on their left is corrupted, and groups of three up to the end of the rows. And in one narration, three are like a complete row, so the prayers of all the rows behind them are corrupted."

[Urdu Translation in Box]: The correct view is that due to three women, the prayer of the man to their right, the man to their left, and three men from each subsequent row until the last row is invalidated. And in one narration, three are considered as a complete row, so the prayers of all the rows behind them will be invalidated. (T)

To achieve this spiritual abundance and strength, three persons should be placed in the first row. Secondly, there is an adjustment of virtue (ta'deel-e-fadl) in this, as there is blessing in a gathering; more in two than one, more in three than two, and in funeral rows, the last one followed by the next is superior. The second is better than the first, the third than the second, so according to this order, four virtues will be obtained for each row. In the first row, one in terms of row and three in terms of men; in the second row, two in terms of both row and men; in the third, three in terms of row and one in terms of men. And Allah is the Possessor of Great Bounty, and Allah (Glorified and Exalted is He) knows best. (And Allah is of great bounty. And the Pure and Exalted God knows best. - T)

1. Fath al-Qadir, Chapter on Imamate, Published by Nooriya Razawiyya, Sukkur, 1/316. Page 208 of 948

फतावा रज़विया जिल्द 9

ज़ाहिरी तौर पर यहाँ दो हिकमतें (महारत) मालूम होती हैं: अव्वल, यह एक पूर्ण बहुवचन (जमा ताम) है, और पूर्ण बहुवचन मानो एक पूर्ण गुण है। इसलिए, एक रिवायत में तीन औरतों को उनके पीछे की सभी सफ़ों की नमाज़ को काटने वाला (बाधित करने वाला) बताया गया है। ज़ाहिर अल-रिवायत में भी इसे इतना मज़बूत बताया गया है कि एक सफ़ को दूसरी के लिए रुकावट नहीं माना गया, और उनकी सीध (अलाइनमेंट) में आखिरी सफ़ों तक तीन-तीन मर्दों की नमाज़ के फासिद (खराब) होने का हुक्म दिया गया। फ़त्हुल क़दीर में है:

[अरबी बॉक्स टेक्स्ट]: "सही यह है कि तीन (औरतों) की नमाज़ के कारण, उनके दाईं ओर के एक मर्द की, और उनके बाईं ओर के एक मर्द की नमाज़, और आखिरी सफ़ों तक हर सफ़ से तीन-तीन मर्दों की नमाज़ फासिद हो जाती है। और एक रिवायत में तीन को एक पूर्ण सफ़ की तरह माना गया है, तो उनके पीछे की सभी सफ़ों की नमाज़ फासिद हो जाएगी।"

[उर्दू अनुवाद बॉक्स में]: सही यह है कि तीन औरतों के कारण, उनके दाईं ओर वाले एक मर्द की, उनके बाईं ओर वाले एक की, और आखिरी सफ़ तक हर सफ़ से तीन-तीन मर्दों की नमाज़ फासिद हो जाती है। और एक रिवायत में है कि तीन औरतें गोया पूरी सफ़ हैं, तो उनके पीछे की तमाम सफ़ों की नमाज़ फासिद हो जाएगी। (त)

इस रूहानी कसरत और कुव्वत को हासिल करने के लिए पहली सफ़ में तीन लोगों को रखा जाए। दूसरा, इसमें फ़ज़ीलत (पुण्य) का संतुलन है कि जमात में बरकत है; एक से दो में ज़्यादा, दो से तीन में ज़्यादा, और जनाज़े की सफ़ों में आखिरी वाली अधिक फ़ज़ीलत वाली होती है। पहली से दूसरी बेहतर, दूसरी से तीसरी, तो इस तरतीब से हर सफ़ के लिए चार फ़ज़ीलतें हासिल होंगी। पहली सफ़ में सफ़ के एतबार से एक और मर्दों के लिहाज़ से तीन; दूसरी सफ़ में सफ़ और मर्द दोनों के एतबार से दो-दो; तीसरी में सफ़ के एतबार से तीन और मर्द के लिहाज़ से एक। और अल्लाह बड़े फ़ज़्ल वाला है, और अल्लाह सुब्हानहु व तआला बेहतर जानता है। (और अल्लाह बड़े फ़ज़्ल वाला है। और पाक और बुलंद खुदा बेहतर जानने वाला है। - त)

1. फ़त्हुल क़दीर, बाबुल इमामत, मतबुआ नूरिया रज़विया, सुक्कुर, 1/316. पृष्ठ 208/948

فتاوی رضویہ جلد نہم

نظر ظاہر میں یہاں دو ۲ حکمتیں معلوم ہوتی ہیں : اولاً جمع تام ہے اور جمع تام گویا صفت تام ہے و لہذا ایک روایت میں تین عورتوں کو جمیع صفوف مابعد کی نماز کا قاطع بتایا، اور ظاہر الروایۃ میں بھی اسے اس درجہ قوی بتایا کہ ایک صف کو دوسری کا حائل نہ جانا، اور ان کی محاذات میں آخر صفوف تک تین تین مردوں کی نماز پر حکم فساد فرمایا۔ فتح القدیر میں ہے:

[عربی عبارت]: الصحیح ان بالصلاۃ بالثلاث تفسد صلوۃ واحد عن یمینھن وأخر عن شمالھن وثلثۃ ثلثۃ الی اخر الصفوف وفی روایۃ الثلث کالصفت التام فتفسد صلوۃ جمیع الصف التی خلفھن

[اردو ترجمہ باکس میں]: صحیح یہ ہے کہ تین عورتوں سے ایک ان کے دائیں والے مرد کی، ایک ان کے بائیں والے کی، اور آخری صف تک ہر صف سے تین تین مردوں کی نماز فاسد ہو جاتی ہے۔ اور ایک روایت میں ہے تین گویا پوری صف ہے تو ان کے پیچھے کی تمام صفوں کی نماز فاسد ہو جائے گی۔ (ت)

اس معنوی کثرت و قوت کی تحصیل کو صف اول میں تین شخص رکھے۔ ثانیاً اس میں تعدیلِ فضل ہے کہ جمع میں برکت ہے ایک سے دو ۲ میں زائد، دو ۲ سے تین ۳ میں، اور صفوف جنازہ میں آخری فالاخر افضل ہے۔ پہلی سے دوسری افضل، دوسری سے تیسری تو اس ترتیب سے ہر صف کے لئے چار فضل حاصل ہونگے۔ پہلی صف میں باعتبار صف ایک، بلحاظ رجال تین دوسری صف میں صف اور رجل دونوں کے اعتبار سے دو دو تیسری میں باعتبار صف تین باللحاظ رجل ایک، واللہ ذو الفضل العظیم، واللہ سبحانہ وتعالیٰ اعلم (اور اللہ بڑے فضل والا ہے۔ اور خدائے پاک و برتر خوب جاننے والا ہے۔ت)

1 فتح القدیر باب الامامة مطبوعہ نوریہ رضویہ سکھر ۱/ ۳۱۶ صفحہ 208 از 948

Fatawa Rizvia, Volume 9

AL-MINNAT-UL-MUMTAZAH FI DA'WAT-IL-JANAZAH (1318 AH) (Description of the prayers mentioned in the Hadith regarding the funeral prayer and the method of Talqin (instructing the deceased))

Problem No. 62: Asked by Hafiz Haji Qari Zair Syed Muhammad Abdul Karim Sahib, 25 Jamadi-ul-Akhira 1318 AH. What do the scholars of religion say regarding the prayers for the funeral prayer?

The Answer: Maulana Al-Hafiz Al-Qari Al-Haj Al-Zair Al-Sayyid Al-Salih Al-Qadri Al-Barkati, may Allah Almighty perpetuate your honor in this world and the hereafter, Peace be upon you and the mercy of Allah and His blessings. Those are thirteen (13) prayers that have been mentioned in the Hadiths of the funeral prayer. This humble servant has collected them and added one more to them. I request you to memorize them and recite them over the funeral of Ahl-e-Sunnat, considering their meaning. The words enclosed in double crescent lines with a line drawn over them and other words written above the line should be recited in place of those words in the funeral of a woman. This humble servant bequeaths to you that if you find my funeral, perform the prayer yourself and recite all these prayers with the humility and submissiveness of your pure Qadri heart, and also perform Talqin at the grave of this needy servant. And Allah is sufficient for us, and He is the best Disposer of affairs. And there is no power nor might except with Allah, the Exalted, the Magnificent.

Prayers after the third Takbir: (1) O Allah, forgive our living and our dead, those of us who are present and those who are absent, our young and our old, our males and our...

फ़तावा रज़विया, खंड 9

अल-मिन्नत-उल-मुमताज़ह फ़ी दावत-इल-जनाज़ा (1318 हिजरी) (जनाज़े की नमाज़ से संबंधित हदीस में वर्णित दुआओं का वर्णन और मैयत को तलकीन करने का तरीका)

मसाला नंबर 62: प्रस्तुतकर्ता हाफ़िज़ हाजी कारी ज़ायेर सैयद मुहम्मद अब्दुल करीम साहिब, 25 जमादी-उल-आख़िरा 1318 हिजरी। दीन के विद्वान क्या कहते हैं कि जनाज़े की नमाज़ की दुआएं क्या हैं?

उत्तर: मौलाना अल-हाफ़िज़ अल-क़ारी अल-हज अल-ज़ायेर अल-सैय्यद अल-सालिह अल-कादरी अल-बरकाती, अल्लाह तआला वर्तमान और भविष्य में आपका सम्मान बनाए रखे, आप पर शांति और अल्लाह की दया और उसकी बरकतें हों। वे तेरह (13) दुआएं हैं जो जनाज़े की नमाज़ की हदीसों में आई हैं। मुझ फ़कीर ने उन्हें जमा करके एक और का इजाफ़ा किया है। मैं गुज़ारिश करता हूँ कि उन्हें याद कर लें और अहले सुन्नत के जनाज़े पर उनके अर्थों को ध्यान में रखते हुए पढ़ा करें। जिन शब्दों को दो अर्धचंद्राकार कोष्ठकों में लेकर उन पर लकीर खींचकर लाइन के ऊपर दूसरे शब्द लिखे गए हैं, वे शब्द औरत के जनाज़े में उन शब्दों की जगह पढ़े जाएँ। यह फ़कीर आपको वसीयत करता है कि अगर मेरा जनाज़ा पाएँ तो नमाज़ खुद ही पढ़ाएँ और ये सब दुआएं अपने शुद्ध कादरी दिल की विनम्रता और श्रद्धा के साथ पढ़ें और इस मोहताज फ़कीर की कब्र पर तलकीन भी करें। और अल्लाह हमारे लिए काफी है और वह सबसे अच्छा कार्यसाधक है। और अल्लाह के सिवा कोई शक्ति और सामर्थ्य नहीं है, जो सर्वोच्च और महान है।

तीसरी तकबीर के बाद की दुआएं (1) ऐ अल्लाह! हमारे जीवितों और हमारे मृतकों को, हमारे उपस्थितों और हमारे अनुपस्थितों को, हमारे छोटों और हमारे बड़ों को, हमारे पुरुषों और हमारी...

पृष्ठ 948 में से 210

فتاویٰ رضویہ جلد نہم

الْمِنَّۃُ الْمُمْتَازَۃُ فِیْ دَعَوَاتِ الْجَنَازَۃِ ۱۳۱۸ھ (نمازِ جنازہ سے متعلق حدیث میں وارد شدہ دُعاؤں کا بیان اور تلقین میت کا طریقہ)

مسئلہ نمبر ۶۲: مسئولہ حافظ حاجی قاری زائر سید محمد عبد الکریم صاحب ۲۵ جمادی الاخریٰ ۱۳۱۸ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین کہ نماز جنازہ کی کیا دعائیں ہیں؟

الجواب: مولنا الحافظ القاری الحاج الزائر السید الصالح القادری البرکاتی ادام اللہ تعالیٰ کرامتکم فی الحاضرۃ والاٰتی، السلام علیکم ورحمۃ اللہ وبرکاتہ،، وہ تیرہ ۱۳ دعائیں ہیں کہ نماز جنازہ کی احادیث میں وارد ہوئیں۔ فقیر نے انہیں جمع کر کے ایک اور کا اضافہ کیا انہیں میں گزارش کرتا ہوں کہ حفظ فرمالیں اور باللحاظ معنی جنازہ اہلسنت پر پڑھا کریں، جن کلمات کو دو خط ہلالی میں لے کر ان پر خط کھینچ کر بالائے سطر دوسرے الفاظ لکھے جاتے ہیں وہ لفظ عورت کے جنازے میں ان کلمات کی جگہ پڑھے جائیں۔ فقیر آپ کو وصیت کرتا ہے کہ میرا جنازہ پائیں تو نماز خود ہی پڑھائیں اور یہ سب دعائیں اپنے خالص قادری قلب کے خضوع و خشوع سے پڑھیں اور قبرِ فقیر محتاج پر تلقین بھی کریں وحسبنا اللہ ونعم الوکیل ولاحول ولاقوۃ الا باللہ العلی العظیم۔

ادعیہ بعد تکبیر سوم (۱) اَللّٰھُمَّ اغْفِرْ لِحَیِّنَا وَ مَیِّتِنَا وَ شَاھِدِنَا وَ غَائِبِنَا وَ صَغِیْرِنَا وَ کَبِیْرِنَا وَ ذَکَرِنَا وَ

Fatawa Razawiyyah Volume 9

...and our females. O Allah, whomever of us You keep alive, keep him alive upon Islam, and whomever of us You cause to die, let him die upon faith. O Allah, do not deprive us of his/her reward and do not put us into trial after him/her. [Footnote 1]

(2) O Allah, forgive him/her, have mercy on him/her, grant him/her safety, pardon him/her, make honorable his/her reception, expand his/her entry, wash him/her with water, snow, and hail, and cleanse him/her of sins as You have cleansed a white garment of filth. Exchange for him/her a home better than his/her home, a family better than his/her family, (and a spouse better than his/her spouse) [Footnote 2]. Admit him/her into Paradise and protect him/her from the punishment of the grave and from the trial of the grave.

Footnote 1: Narrated by Ahmad, Abu Dawood, Tirmidhi, Nasai, Ibn Hibban, and Al-Hakim from Abu Hurairah, and by Ahmad, Abu Ya'la, Al-Bayhaqi, and Sa'id bin Mansur in Sunan from Abu Qatada (may Allah be pleased with them both). (M)

Imam Ahmad, Abu Dawood, Tirmidhi, Nasai, Ibn Hibban, and Al-Hakim narrated it from Abu Hurairah. Imam Ahmad, Abu Ya'la, Bayhaqi, and in Sunan, Sa'id bin Mansur narrated it from Hazrat Abu Qatada (may Allah be pleased with them both). (T)

Footnote 2: That is, these words should not be recited during a woman's funeral prayer. 12 Kulluhu minhu, may Allah be pleased with him. (M)

1. Sunan Abu Dawood, Bab al-Du'a lil-Mayyit, printed at Aftab-e-Alam Press, Lahore, 2/4-101; Jami' al-Tirmidhi, Bab ma Yaqulu fi al-Salah 'ala al-Mayyit, printed at Amin Company Kutub Khana Rashidiyah, Delhi, 1/121; Al-Mustadrak 'ala al-Sahihayn, Kitab al-Jana'iz, printed at Dar al-Fikr, Beirut, 1/358; Musnad Abu Ya'la, Hadith 5983, printed at Mu'assasah 'Ulum al-Qur'an, Beirut, 5/376.

फ़तावा रज़विया जिल्द नहम

...और हमारी औरतों को। ऐ अल्लाह, हममें से जिसे तू ज़िंदा रखे, उसे इस्लाम पर ज़िंदा रख, और हममें से जिसे तू मौत दे, उसे ईमान पर मौत दे। ऐ अल्लाह, हमें उसके अज्र (सवाब) से महरूम न कर और उसके बाद हमें फ़ित्ने (आज़माइश) में न डाल। [टिप्पणी 1]

(2) ऐ अल्लाह, उसे बख़्श दे, उस पर रहम फ़रमा, उसे आफियत दे, उसे मुआफ़ कर, उसकी मेज़बानी को इज़्ज़त वाला बना, उसके दाख़िले को वुसअत दे, उसे पानी, बर्फ़ और ओलों से धो दे, और उसे गुनाहों से ऐसे पाक कर दे जैसे तू सफ़ेद कपड़े को मैल-कुचैल से पाक करता है। उसे उसके घर से बेहतर घर, उसके घर वालों से बेहतर घर वाले अता फ़रमा (और उसके जोड़े से बेहतर जोड़ा) [टिप्पणी 2]। उसे जन्नत में दाख़िल फ़रमा और उसे कब्र के अज़ाब और कब्र के फ़ित्ने से पनाह दे।

टिप्पणी 1: इसे अहमद, अबू दाऊद, तिर्मिज़ी, नसाई, इब्न हिब्बान और हाकिम ने अबू हुरैरा से रिवायत किया है, और अहमद, अबू याला, बैहकी और सईद बिन मंसूर ने सुनन में अबू कतादा (रज़ियल्लाहु अन्हुमा) से रिवायत किया है। (म)

इसे इमाम अहमद, अबू दाऊद, तिर्मिज़ी, नसाई, इब्न हिब्बान और हाकिम ने अबू हुरैरा से। और इमाम अहमद, अबू याला, बैहकी और सुनन में सईद बिन मंसूर ने हज़रत अबू कतादा से रिवायत किया (रज़ियल्लाहु अन्हुमा)। (त)

टिप्पणी 2: यानी ये शब्द औरत के जनाज़े पर न पढ़े जाएँ। 12 कुल्लुहू मिन्हु, रज़ियल्लाहु अन्हु। (म)

1. सुनन अबू दाऊद, बाब अद-दुआ लिल-मय्यित, मुतबुआ आफ़ताब-ए-आलम प्रेस, लाहौर, 2/4-101; जामे अत-तिर्मिज़ी, बाब मा यकुलु फ़ी अस-सलात अलल मय्यित, मुतबुआ अमीन कंपनी कुतुब ख़ाना रशीदिया, दिल्ली, 1/121; अल-मुस्तदरक अलल सहीहैन, किताब अल-जनाइज़, मुतबुआ दार अल-फ़िक्र, बेरुत, 1/358; मसनद अबू याला, हदीस 5983, मुतबुआ मुअस्ससह उलूम अल-क़ुरआन, बेरुत, 5/376।

पृष्ठ 211 का 948

فتاوٰی رضویہ جلد نہم

وَأُنْثَانَا اَللّٰھُمَّ مَنْ اَحْیَیْتَہٗ مِنَّا فَاَحْیِہٖ عَلَی الْاِسْلَامِ وَمَنْ تَوَفَّیْتَہٗ مِنَّا فَتَوَفَّہٗ عَلَی الْاِیْمَانِ اَللّٰھُمَّ لَا تَحْرِمْنَا اَجْرَہٗ(ہٗ) ھَا وَلَا تَفْتِنَّا بَعْدَہٗ(ہٗ) ھَا۔ عہ1

(۲) اَللّٰھُمَّ اغْفِرْ لَہٗ لَھَا ، وَارْحَمْہُ ھَا ، وَعَافِہٖ ھَا وَاعْفُ عَنْہُ ھَا وَوَسِّعْ مُدْخَلَہٗ ھَا وَاغْسِلْہُ ھَا بِالْمَاءِ وَالثَّلْجِ وَالْبَرَدِ وَنَقِّہٖ ھَا مِنَ الْخَطَایَا کَمَا نَقَّیْتَ الثَّوْبَ الْاَبْیَضَ مِنَ الدَّنَسِ وَاَبْدِلْہُ ھَا دَارًا خَیْرًا مِنْ دَارِہٖ ھَا وَاَھْلًا خَیْرًا مِنْ اَھْلِہٖ (وَزَوْجًا خَیْرًا مِنْ زَوْجِہٖ عہ۲ وَاَدْخِلْہُ ھَا الْجَنَّۃَ وَاَعِذْہُ ھَا مِنْ عَذَابِ الْقَبْرِ مِنْ فِتْنَۃِ الْقَبْرِ

عہ۱ رواہ احمد وابوداؤد والترمذی والنسائی وابن حبان والحاکم عن ابی ھریرۃ واحمد وابویعلی والبیھقی وسعید بن منصور فی سنن عن ابی قتادۃ رضی اللہ تعالی عنھما (م)

اسے امام احمد، ابوداؤد، ترمذی، نسائی، ابن حبان اور حاکم نے ابو ہریرہ سے۔ اور امام احمد، ابو یعلی، بیہقی اور سنن میں سعید بن منصور نے حضرت ابو قتادہ سے روایت کیا رضی اللہ تعالی عنہما۔ (ت)

عہ۲ یعنی یہ الفاظ عورت کے جنازہ پر نہ پڑھے جائیں ۱۲ کلھامن ہ رضی اللہ تعالی عنہ (م)

1 سنن ابوداؤد باب الدعاء للمیت مطبوعہ آفتاب عالم پریس لاہور ۲/۴ - ۱۰۱، جامع الترمذی باب ما یقول فی الصلوۃ علی المیت مطبوعہ امین کمپنی کتب خانہ رشیدیہ دہلی ۱/۱۲۱، المستدرک علی الصحیحین کتاب الجنائز مطبوعہ دارالفکر بیروت ۱/ ۳۵۸، مسند ابویعلی حدیث ۵۹۸۳ مطبوعہ موسسہ علوم القرآن بیروت ۳۷۶/۵

Fatawa Razawiyya Volume 9

AND PUNISHMENT OF THE FIRE (1) [Footnote A] (3) O Allah, Your servant, the son of Your bondwoman, and the son of Your bondwoman's daughter testifies that there is no god but You, You are alone without any partner, and he testifies that Muhammad is Your servant and messenger. He has become needy of Your mercy and You are independent of punishing him. He has departed from the world and its people. If he was pure, then increase him in purity, and if he was a sinner, then forgive him. O Allah, do not deprive us of his reward and do not lead us astray after him. [Footnote A-1] (4) O Allah, (this is Your servant) / (this is Your bondwoman, the daughter of Your servant's son / daughter of Your bondwoman) Your command has been passed regarding him/her. You created him/her when he/she was nothing mentioned. He/She has come to stay with You and You are the best of those with whom one can stay. O Allah, teach him/her his/her argument and join him/her with Your Prophet Muhammad (peace and blessings of Allah be upon him) and make him/her firm with the firm word. [Footnote A-2]

[Footnote A-1]: Narrated by Muslim, Tirmidhi, Nasa'i, Ibn Majah, and Abu Bakr bin Abi Shaybah from Awf bin Malik al-Ashja'i (may Allah be pleased with him). (Text) It was narrated by Muslim, Tirmidhi, Nasa'i, Ibn Majah, and Abu Bakr bin Abi Shaybah from Hazrat Awf bin Malik al-Ashja'i (may Allah be pleased with him). (Translation)

[Footnote A-2]: Narrated by al-Hakim from Ibn Abbas (may Allah be pleased with them both). (Text) It was narrated by al-Hakim from Hazrat Ibn Abbas (may Allah be pleased with them both). (Translation)

1. Sahih Muslim, Kitab al-Jana'iz, published by Noor Muhammad Asah al-Matabi' Karachi, 1/311; Sunan an-Nasa'i, Ad-Du'a lil-Mayyit, published by Noor Muhammad Karkhana Tijarat Kutub Karachi, 1/281.
2. Al-Mustadrak 'ala al-Sahihayn, Kitab al-Jana'iz, published by Dar al-Fikr Beirut, 1/359.

फतावा रज़विया जिल्द 9

और आग के अज़ाब से (1) [हाशिया अ] (3) ऐ अल्लाह! तेरा बंदा और तेरी दासी का बेटा और तेरी दासी की बेटी का बेटा गवाही देता है कि तेरे सिवा कोई पूज्य नहीं है, तू अकेला है तेरा कोई साझी नहीं है, और वह गवाही देता है कि मुहम्मद तेरे बंदे और रसूल हैं। वह तेरी दया का मोहताज हो गया है और तू उसे दंड देने से बेनियाज़ है। वह दुनिया और उसके लोगों से विदा हो गया है। अगर वह पवित्र था तो उसे और पवित्र कर दे, और अगर वह गुनहगार था तो उसे क्षमा कर दे। ऐ अल्लाह! हमें उसके प्रतिफल से वंचित न कर और उसके बाद हमें गुमराह न कर। [हाशिया अ-1] (4) ऐ अल्लाह! (यह तेरा बंदा है) / (यह तेरी दासी है, तेरे बंदे के बेटे की बेटी / तेरी दासी की बेटी) तेरा हुक्म उस पर चल चुका है। तूने उसे पैदा किया जब वह कुछ भी न था। वह तेरे पास मेहमान बनकर आया है और तू सबसे उत्तम मेज़बान है। ऐ अल्लाह! उसे उसकी दलील सिखा दे और उसे अपने नबी मुहम्मद (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) के साथ मिला दे और उसे 'कलिमा-ए-थय्यबा' पर अटल रख। [हाशिया अ-2]

[हाशिया अ-1]: इसे मुस्लिम, तिर्मिज़ी, नसाई, इब्न माजा और अबू बक्र बिन अबी शैबा ने औफ़ बिन मालिक अल-अशजई (रज़ियल्लाहु अन्हु) से रिवायत किया। (मूल पाठ) इसे मुस्लिम, तिर्मिज़ी, नसाई, इब्न माजा और अबू बक्र बिन अबी शैबा ने हज़रत औफ़ बिन मालिक अल-अशजई (रज़ियल्लाहु अन्हु) से रिवायत किया। (अनुवाद)

[हाशिया अ-2]: इसे हाकिम ने इब्न अब्बास (रज़ियल्लाहु अन्हुमा) से रिवायत किया। (मूल पाठ) इसे हाकिम ने हज़रत इब्न अब्बास (रज़ियल्लाहु अन्हुमा) से रिवायत किया। (अनुवाद)

1. सहीह मुस्लिम, किताबुल जनाइज़, मुद्रित नूर मुहम्मद असहुल मताबे कराची, 1/311; सुनन नसाई, अद-दुआ लिल-मय्यित, मुद्रित नूर मुहम्मद कारखाना तिजारत कुतुब कराची, 1/281।
2. अल-मुस्तदरक अलल सहीहैन, किताबुल जनाइज़, मुद्रित दारुल फिक्र बेरुत, 1/359।

पृष्ठ 212 / 948

فتاوٰی رضویہ جلد نہم

وَعَذَابِ النَّارِ ۔ عہ (1) (۳) اَللّٰھُمَّ عَبْدُکَ وَابْنُ اَمَتِکَ وَابْنُ بِنْتِ اَمَتِکَ یَشْھَدُ اَنْ لَّا اِلٰہَ اِلَّا اَنْتَ وَحْدَکَ لَا شَرِیْکَ لَکَ وَیَشْھَدُ اَنَّ مُحَمَّدًا عَبْدُکَ وَرَسُوْلُکَ اَصْبَحَ فَقِیْرًا اِلٰی رَحْمَتِکَ وَاَصْبَحْتَ غَنِیًّا عَنْ عَذَابِہٖ ھَا تَخَلّٰی مِنَ الدُّنْیَا وَاَھْلِھَا اِنْ کَانَ زَاکِیًا فَزَکِّہٖ ھَا وَاِنْ کَانَ مُخْطِئًا فَاغْفِرْ لَہٗ ھَا اَللّٰھُمَّ لَا تَحْرِمْنَا اَجْرَہٗ ھَا وَلَا تُضِلَّنَا بَعْدَہٗ ھَا عہ2 (۴) اَللّٰھُمَّ (ھٰذَا عَبْدُکَ) ہٗ (ذِہٖ اَمَتُکَ بِنْتُ اِبْنِ عَبْدِہٖ بْنُ اَمَتِکَ مَاضٍ فِیْہِ) ھَا حُکْمُکَ، خَلَقْتَہٗ ھَا وَلَمْ یَکُ (تَکُ ھِیَ) شَیْئًا مَّذْکُوْرًا، نَزَلَ لَکَ بِکَ وَاَنْتَ خَیْرُ مَنْزُوْلٍ بِہٖ ط اَللّٰھُمَّ لَقِّنْہُ ھَا حُجَّتَہٗ ھَا وَاَلْحِقْہُ بِنَبِیِّہٖ مُحَمَّدٍ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم وَثَبِّتْہُ ھَا بِالْقَوْلِ الثَّابِتِ

عہ1: رواہ مسلم والترمذی والنسائی وابن ماجۃ وابوبکر بن شیبۃ عن عوف بن مالک الاشجعی رضی اللہ تعالٰی عنہ۔ (م) اسے مسلم، ترمذی، نسائی، ابن ماجہ اور ابوبکر بن ابی شیبہ نے حضرت عوف بن مالک اشجعی رضی اللہ تعالٰی عنہ سے روایت کیا۔ (ت)

عہ2: رواہ الحاکم عن ابن عباس رضی اللہ تعالٰی عنہ (م) اسے حاکم نے حضرت ابن عباس رضی اللہ تعالٰی عنہما سے روایت کیا۔ (ت)

1 صحیح مسلم کتاب الجنائز مطبوعہ نور محمد اصح المطابع کراچی ۱/۳۱۱، سنن النسائی الدعاء للمیت مطبوعہ نور محمد کارخانہ تجارت کتب کراچی ۱/۲۸۱ 2 المستدرک علی الصحیحین کتاب الجنائز مطبوعہ دارالفکر بیروت ۱/۳۵۹

Fatawa Razawiya Volume 9

For he has become needy of You, and You are independent of him. He used to testify that there is no god but Allah, so forgive him and have mercy on him. Do not deprive us of his reward, and do not test us after him. O Allah, if he was pure (Zakiyan), then purify him further, and if he was a sinner, then forgive him. 1 AH -

Note: Narrated from the Leader of the Faithful, Ali (may Allah honor him) (M).

1 AH: This was narrated from the Leader of the Faithful, Ali (may Allah honor him). 12 (T)

Imam ibn al-Jazari said in his commentary on Al-Hisn al-Hasin: "Zakiyan" means pure from sins, and "Fazakkihu" means: purify him thoroughly by granting him forgiveness and raising his ranks. Mulla Ali al-Qari criticized this, saying it is clear that there is a lack of suitability between interpreting "Zakiyan" as pure from sins and then saying "purify him through forgiveness."

I say: Praying for forgiveness for someone who is already pure from sins is not something alien or inappropriate. The leader of the pure ones, the Imam of the infallible ones, the Holy Prophet (peace and blessings of Allah be upon him), used to seek forgiveness from Allah a hundred times every day. The point is that no matter how great a servant becomes, his actions can never reach the level of perfect gratitude for Allah's blessings... (Continued on the next page)

1 Kanz al-Ummal, Kitab as-Salat (Funeral Prayer), Hadith 22864, published by Mu'assasat al-Risalah, Beirut, 15/18.

फतावा रज़विया, खंड 9

क्योंकि वह तेरा मोहताज हो गया है और तू उससे बेनियाज़ (स्वतंत्र) है। वह गवाही देता था कि अल्लाह के सिवा कोई पूज्य नहीं, अतः उसे क्षमा कर दे और उस पर दया कर। हमें उसके पुण्य से वंचित न कर और उसके बाद हमें परीक्षा में न डाल। ऐ अल्लाह! यदि वह पवित्र (ज़कियान) था, तो उसे और पवित्र कर दे, और यदि वह पापी था, तो उसे क्षमा कर दे। 1 अ.ह. -

नोट: अमीरुल मोमिनीन अली (अल्लाह उनके चेहरे को सम्मानित करे) से वर्णित है (म)।

1 अ.ह.: इसे अमीरुल मोमिनीन अली (अल्लाह उनके चेहरे को सम्मानित करे) से रिवायत किया गया है। 12 (त)

इमाम इब्न अल-जज़री ने अपनी 'हिस्न हसीन' की व्याख्या में फ़रमाया: 'ज़कियान' का अर्थ है गुनाहों से पाक, और 'फ़ज़क्किहु' का अर्थ है: उसे मग़फ़िरत (क्षमा) प्रदान करके और दरजात बुलंद करके खूब पाक कर दे। इस पर मुल्ला अली क़ारी ने आलोचना की कि 'ज़कियान' की व्याख्या (गुनाहों से पाक) और (क्षमा प्रदान करके उसे गुनाहों से पाक कर दे) इन दोनों के बीच तालमेल न होना स्पष्ट है।

अक़ूल (मैं कहता हूँ): जो गुनाहों से पाक है उसके लिए मग़फ़िरत (क्षमा) की दुआ करना कोई अजनबी या अनुचित बात नहीं है। पाकों के सरदार, मासूमों के इमाम हुज़ूर अकदस (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) प्रतिदिन अल्लाह की बारगाह में सौ बार इस्तिग़फ़ार (क्षमा याचना) करते थे। बात यह है कि बंदा चाहे कितना भी बड़ा क्यों न हो जाए, उसका कर्म अल्लाह की नेमतों के पूर्ण शुक्र की सीमा तक कभी नहीं... (शेष अगले पृष्ठ पर)

1 कंज़ुल उम्माल, किताबुस-सलात (जनाजे की नमाज), हदीस 22864, मुअस्ससतुर् रिसालाह, बेरूत, 15/18।

فتاوٰی رضویہ جلد نہم

فَإِنَّهٗ قَدِ افْتَقَرَ إِلَيْكَ وَاسْتَغْنَيْتَ عَنْهُ كَانَ يَشْهَدُ اَنْ لَّا اِلٰهَ اِلَّا اللهُ فَاغْفِرْ لَهٗ وَارْحَمْهُ وَلَا تَحْرِمْنَا اَجْرَهٗ وَلَا تَفْتِنَّا بَعْدَهٗ، اَللّٰهُمَّ إِنْ كَانَ زَاكِيًا فَزَكِّهٖ وَإِنْ كَانَ خَاطِئًا فَاغْفِرْ لَهٗ ۱ عه -

عه: رواه عن امیر المومنین علی کرم اللہ تعالی وجهه (م) قال الامام ابن الجزري وشرح حصنه (زاکیا) ای طاهرا من الذنوب فزکه ای فطهره بالمغفرة و رفع الدرجات اه وتعقبه العلامة القاری بأنه لا یخفی عدم المناسبة بین تفسیره زاکیا بطاهر ای من الذنوب وبین قوله وطهره بالمغفرة اه اقول: لا بدع فی سؤال المغفرة بالطاهرة من الذنوب قد کان سید الطاهرین امام المعصومین صلی اللہ تعالی علیه وعلیهم یستغفر الیه کل یوم مائة مرة و ذلك ان العبد وان جل ماجل لا یبلغ عما عمله شکر نعمة اللہ تعالی ابدا ولا یخلوا عامة الصالحین عن

۱ عہ اسے امیر المومنین علی کرم اللہ وجہہ سے روایت کیا ۱۲(ت) امام ابن الجزری نے اپنی حصن حصین کی شرح میں فرمایا: زاکیا کا معنی گناہوں سے پاک، فزکہ کا معنی : اسے مغفرت فرما کر اور درجات بلند فرما کر خوب پاک کر دے اھ اس پر علامہ قاری نے تنقید کی کہ زاکیا کی تفسیر (گناہوں سے پاک) اور (مغفرت فرما کر اسے گناہوں سے پاک کر دے) ان دونوں میں مناسبت نہ ہونا واضح ہے اھ اقول: جو گناہوں سے پاک ہے اس کے لئے دعائے مغفرت کوئی اجنبی اور نامناسب چیز نہیں۔ پاکوں کے سردار، معصوموں کے امام حضور اقدس صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم روزانہ خدا کی بارگاہ میں سو بار استغفار کرتے۔ بات یہ ہے کہ بندہ جتنا بھی بزرگ ہو جائے اس کا عمل اللہ تعالٰی کی نعمتوں کے کامل شکر کی حد تک کبھی نہیں (باقی اگلے صفحہ پر)

1 کنز العمال صلوٰۃ الجنائز حدیث ۲۲۸۶۴ مطبوعہ موسسۃ الرسالۃ بیروت ۱۸/۱۵

(5) O Allah, Your servant, [and the son of] the daughter of Your female servant, is in need of Your mercy, and You are independent of... (Remaining from the previous page's footnote) ...can reach. Considering the majesty of the Noble Lord, the general righteous people will not be free from some deficiency or another. So, forgiveness for them means that He overlooks that and deals with them not according to the measure of their deeds, but according to His grace and kindness. And Ibn al-Jazari (may Allah have mercy on him) alluded to this in his statement "and by raising the ranks." Allama Ali al-Qari states: A Hanafi scholar wrote an extraordinary point that in its interpretation, it would be better to say: "Increase his purity and cleanliness." [Arabic text]: Shortcoming is with respect to what is befitting the majesty of the Noble Countenance. Thus, forgiveness for them is to overlook that and not deal with them according to the measure of their deeds, but rather the measure of His favors. To this, he alluded with his words 'Allah's mercy and the raising of ranks'. Al-Qari said: And the Hanafi [scholar] was remarkable in his statement: 'The better way is to say: Increase his purity and cleanliness' etc. I say: Its reference is to what we mentioned, meaning that if he was pure from sins, then increase his purity by forgiving the deficiency in your great gratitude. Al-Qari himself interpreted it with his statement "i.e., increase his goodness," as it appeared in a narration. I say: and success is from Allah, rather it is from the 'tazkiyah' (vouching) of witnesses, i.e., if he was pure, then manifest in Your kingdom that he is so and bear witness for him with that. This is not an interpretation, unlike what preceded. And success is entirely from Allah, may He be pleased. I say: Its outcome is also the same as we stated. If he is pure from sins, then increase his purity in such a way that He forgives his shortcoming in performing great gratitude. And Mawlana al-Qari himself has interpreted it in these words: i.e., increase his goodness as it has come in a narration. I say: And with Allah is success (I say and success is only from God), rather this is from the 'tazkiyah' of witnesses (the 'tazkiyah' of witnesses is to examine their internal integrity and piety and make it apparent) (Continued on the next page).

फ़तावा-ए-रिज़विया - जिल्द नहम

(5) ऐ अल्लाह, तेरा बंदा, तेरी बंदी का [बेटा] तेरी रहमत का मोहताज है और तू बे-नियाज़ है... (पिछले पृष्ठ के फुटनोट का शेष) ...पहुँच सकता। रब-ए-करीम की बुजुर्गी और शान के लिहाज़ से आम नेक लोग किसी न किसी कमी से खाली न होंगे, तो उनके हक में मग्फिरत यह है कि वह उससे दरगुज़र फरमाए और उनके साथ उनके आमाल के हिसाब से नहीं बल्कि अपने फज़्ल व करम के लिहाज़ से मामला फरमाए। और इब्न-ए-जज़री (रहमतुल्लाहि अलैहि) ने इसी बात की तरफ अपने कौल (और दरजात बुलंद फरमा कर) से इशारा फरमाया। अल्लामा अली कारी फरमाते हैं: अल्लामा हनफ़ी ने यह अजीब व गरीब बात लिखी कि इसकी तफ़सीर में यह कहना बेहतर होगा कि उसकी सुथराई और पाकी में इज़ाफ़ा फरमा। [अरबी पाठ]: बुज़ुर्ग शान के लिहाज़ से कोताही मुमकिन है, लिहाज़ा मग्फिरत का मतलब दरगुज़र करना और फज़्ल के मुताबिक मुआमला करना है। कारी ने कहा कि हनफी आलिम ने अजीब बात कही कि पाकी में इज़ाफे की दुआ की जाए। मेरा कहना है: इसका रुजूअ उसी तरफ है जो हमने ज़िक्र किया, यानी अगर वह गुनाहों से पाक था, तो उसके शुक्र की बजा-आवरी में कमी को बख्श कर उसकी पाकी में इज़ाफ़ा फरमा। और खुद कारी ने इसकी तफ़सीर अपने कौल 'यानी उसकी नेकी में इज़ाफ़ा फरमा' से की है जैसा कि एक रिवायत में आया है। मैं कहता हूँ: और तौफीक अल्लाह ही से है, बल्कि यह गवाहों की तज़किया (तसदीक) से है, यानी अगर वह पाक था तो अपनी मलकूत में ज़ाहिर फरमा दे कि वह ऐसा ही है और उसके लिए इसकी गवाही दे। और यह तावील नहीं है, उसके बरखिलाफ जो पहले गुज़रा। और सारी तौफीक अल्लाह ही की तरफ से है, अल्लाह उससे राज़ी हो। मेरा कहना है: इसका नतीजा भी वही है जो हमने बयान किया। अगर वह गुनाहों से पाक है तो उसकी पाकी में इज़ाफ़ा फरमा इस तरह कि अपने अज़ीम शुक्र की बजा-आवरी में उसकी कोताही को बख्श दे। और खुद मौलाना कारी ने इसकी तफ़सीर इन अल्फाज़ में की है: यानी उसकी नेकी में इज़ाफ़ा फरमा जैसा कि एक रिवायत में आया है। मैं कहता हूँ: और तौफीक अल्लाह ही से है (मैं कहता हूँ और तौफीक खुदा ही से है) बल्कि यह 'तज़किया-ए-शहूद' (गवाहों की तस्दीक) से है (गवाहों का तज़किया यह होता है कि उनकी बातिनी अदालत और परहेज़गारी की जांच कर ज़ाहिर (बाकी अगले सफहे पर)।

पृष्ठ 214 / 948 आई.टी. मज्लिस-ए-दावत-ए-इस्लामी

(۵) اَللّٰھُمَّ عَبْدُكَ اَمَتُكَ وَ(ابْنُ) بِنْتُ اَمَتِكَ (احْتَاجَتْ) إِلٰی رَحْمَتِكَ وَاَنْتَ غَنِيٌّ عَنْ (بقیہ حاشیہ صفحہ گزشتہ) پہنچ سکتا۔ رب کریم کی بزرگی شان کے لحاظ سے عامہ صالحین کسی نہ کسی کی کمی سے خالی نہ ہوں گے تو ان کے حق میں مغفرت یہ ہے کہ اس سے در گزر فرمائے اور ان کے ساتھ ان کے اعمال کے حساب سے نہیں بلکہ اپنے فضل و کرم کے لحاظ سے معاملہ فرمائے اور ابن جزری رحمۃ اللہ علیہ نے اسی بات کی طرف اپنے قول (اور درجات بلند فرما کر) سے اشارہ فرمایا۔ علامہ علی قاری فرماتے ہیں: علامہ حنفی نے یہ عجیب و غریب بات لکھی کہ اس کی تفسیر میں یہ کہنا بہتر ہوگا کہ اس کی ستھرائی اور پاکی میں اضافہ فرما۔ تقصیر ما بالنظر الی ما ینبغی لجلال وجه الکریم فالمغفرة في حقهم ان یتجاوز عن ذلك ولا یعاملهم بقدر اعمالهم بل قدر افضاله والیه اشارة بقوله رحمة اللہ تعالٰی ورفع الدرجات قال القاری واغرب الحنفی بقوله، الاولی ان یقال ای زدفی زکاته وطهارته اھ اقول: مرجعه الی ما ذکرنا ای ان کان طاہرا من الذنوب فزدنی طهارته بمغفرة التقصیر في شکرك الخطیر وقد فسره القاری نفسه بقوله ای فزد فی احسانہ کما في روایة اہ لا یعبد عن قول الحنفی کثیرا و انا اقول: وباللہ التوفیق بل هو من تزکیة الشهود ای ان کان زا کیا فاظهر فی ملکوتك انه ذاك واشهد لہ بذالك وهذا لیس بتاویل بخلاف ما تقدم وباللہ التوفیق کلها منہ رضی اللہ اقول: اسکا مآل بھی وہی ہے جو ہم نے بیان کی اگر گناہوں سے پاک ہے تو اس کی پاکی میں اضافہ فرما اس طرح کہ اپنے عظیم شکر کی بجا آوری میں اس کی تقصیر کو بخش دے۔ اور خود مولانا قاری نے اس کی تفسیر ان الفاظ میں کی ہے: یعنی اس کی نیکی میں اضافہ فرما جیسا کہ ایک روایت میں آیا ہے اھ اقول: وباللہ التوفیق (میں کہتا ہوں اور توفیق خدا ہی سے ہے) بلکہ یہ تزکیہ

شہود سے ہے (گواہوں کا تزکیہ یہ ہوتا ہے کہ ان کی باطنی عدالت و پر ہیز گاری کی جانچ کر

ظاہر (باقی بر صفحہ آیندہ)

Fatawa Razawiyya Volume 9

...from its punishment. If he (she) was righteous, then increase his (her) righteousness, and if he (she) was a sinner, then overlook his (her) faults. (Footnote 1) (6) O Allah! (He is Your servant) She is Your handmaiden, and the (son) daughter of Your servant. (He/She) used to bear witness that there is no god but Allah and that Muhammad is Your servant and Messenger, may Allah Almighty bless him and grant him peace. And You know him (her) better than us. If he (she) was righteous, then increase his (her) righteousness, and if he (she) was a sinner, then forgive him (her) and do not deprive us of his (her) reward, nor put us to trial after him (her). (Footnote 2)

(Remainder of the footnote from the previous page): ...be made (clear); that is, if he/she is pure, then reveal this condition of his/hers in Your kingdom and take witnesses for it. This is its literal meaning, not an interpretation (ta'wil), as the previous meanings were interpretations. And success is from Allah alone. (T) [May Allah be pleased with] him. (M) Footnote 1: Narrated by al-Hakim from Yazid bin Rukanah, may Allah be pleased with him. [May Allah be pleased with] him. (M) Al-Hakim narrated it from Yazid bin Rukanah, may Allah be pleased with him. (T) Footnote 2: Narrated by Ibn Hibban from Abu Hurairah, may Allah be pleased with him. Ibn Hibban narrated it from Hazrat Abu Hurairah, may Allah be pleased with him. (T)

I.T. Majlis of Dawatelslami www.islami.net

1 Al-Mustadrak 'ala al-Sahihayn, Book of Funerals, published by Dar al-Fikr, Beirut, 1/359. 2 Al-Ihsan bi Tartib Sahih Ibn Hibban, Hadith 3022, published by Mu'assasat al-Risalah, Beirut, 6/30; Mawarid al-Zaman, Book of Funerals, published by Matba'at Salafiyyah, Madinah Munawwarah, 1/192; Musnad Abu Ya'la, Hadith 6567, published by Mu'assasat 'Ulum al-Qur'an, Beirut, 6/106.

फ़तावा रज़विया जिल्द 9

...उसके अज़ाब से। अगर वह नेक था (थी), तो उसकी नेकी में इज़ाफ़ा फरमा, और अगर वह गुनहगार था (थी), तो उससे दरगुज़र फरमा। (हाशिया 1) (6) ऐ अल्लाह! (वह तेरा बंदा है) वह तेरी बंदी है और तेरे बंदे की (बेटा) बेटी है। (वह) गवाही देता (देती) थी कि अल्लाह के सिवा कोई इबादत के लायक नहीं और बेशक मुहम्मद तेरे बंदे और रसूल हैं, अल्लाह तआला उन पर दुरूद और सलाम भेजे। और तू उसे हमसे बेहतर जानता है। अगर वह नेक था (थी), तो उसकी नेकी में इज़ाफ़ा फरमा, और अगर वह गुनहगार था (थी), तो उसे बख़्श दे और हमें उसके अज्र (पुण्य) से महरूम न कर, और उसके बाद हमें आज़माइश में न डाल। (हाशिया 2)

(पिछले पृष्ठ के हाशिये का शेष भाग): ...कर दी जाए); यानी अगर वह पाक है तो अपनी सल्तनत में उसकी यह हालत ज़ाहिर कर दे और उसके लिए इस पर गवाह ले ले। यह इसका शाब्दिक अर्थ है, तावील (व्याख्या) नहीं, क्योंकि पिछली व्याख्याएं तावील थीं। और कामयाबी अल्लाह ही की तरफ़ से है। (त) अल्लाह उनसे राज़ी हो। (म) हाशिया 1: इसे हाकिम ने यज़ीद बिन रुकाना रज़ियल्लाहु तआला अन्हु से रिवायत किया। अल्लाह उनसे राज़ी हो। (म) इसे हाकिम ने यज़ीद बिन रुकाना रज़ियल्लाहु तआला अन्हु से रिवायत किया। (त) हाशिया 2: इसे इब्न हिब्बान ने अबू हुरैरा रज़ियल्लाहु तआला अन्हु से रिवायत किया। इसे इब्न हिब्बान ने हज़रत अबू हुरैरा रज़ियल्लाहु तआला अन्हु से रिवायत किया। (त)

आई.टी. मजलिस-ए-दावत-ए-इस्लामी (I.T. Majlis of Dawatelslami) www.islami.net

1 अल-मुस्तदरक अलस-सहीहैन, किताबुल जनाइज़, प्रकाशित दारुल फ़िक्र, बेरूत, 1/359। 2 अल-इहसान बी तरतीब सहीह इब्न हिब्बान, हदीस 3022, प्रकाशित मुअस्ससतुल रिसाला, बेरूत, 6/30; मवारिद-उज़-ज़मान, किताबुल जनाइज़, प्रकाशित मतब-ए-सलफ़िया, मदीना मुनव्वरा, 1/192; मुसनद अबू यअला, हदीस 6567, प्रकाशित मुअस्ससा उलूमुल क़ुरआन, बेरूत, 6/106।

पेज 948 में से 215

فتاوی رضویہ جلد نہم

عَذَابِہٖ ہ اِنْ کَانَ کَانَتْ مُحْسِنَۃً فَزِدْ فِي اِحْسَانِہٖ ہَا وَاِنْ کَانَ کَانَتْ مُسِیْئَۃً فَتَجَاوَزْ عَنْہُ (عَنْھَا) 1عہ۔ (۶) اَللّٰھُمَّ (عَبْدُكَ) اَمَتُكَ وَ(ابْنُ) بِنْتُ عَبْدِكَ (کَانَتْ) (یَشْھَدُ) تَشْھَدُ اَنْ لَّا اِلٰہَ اِلَّا اللہُ وَاَنَّ مُحَمَّدًا عَبْدُكَ وَرَسُوْلُكَ صَلَّی اللہُ تَعَالٰی عَلَیْہِ وَسَلَّمَ ط وَاَنْتَ اَعْلَمُ بِہٖ ھَا مِنَّا اِنْ کَانَ (کَانَتْ) (مُحْسِنًا) مُحْسِنَۃً فَزِدْ فِي اِحْسَانِہٖ ھَا وَاِنْ کَانَ (کَانَتْ) (مُسِیْئًا) مُسِیْئَۃً فَاغْفِرْ لَہٗ ھَا وَلَا تَحْرِمْنَا اَجْرَہٗ ھَا تَفْتِنَّا بَعْدَہٗ ھَا 2عہ

(بقیہ حاشیہ صفحہ گزشتہ) کردی جائے) یعنی اگر وہ پاکیزہ ہے تو اپنی بادشاہت میں اس کی یہ حالت عیاں کر دے اور اس کے لئے اس پر گواہ لے لے۔ یہ اس کا لفظی معنی ہے، تاویل نہیں کہ گزشتہ معانی تاویل تھے، اور توفیق خدا ہی سے ہے۔ (ت) تعالیٰ عنہ۔ (م) عہ ۱: رواہ الحاکم عن یزید بن رکانہ رضی اللہ تعالی عنہ۔ تعالیٰ عنہ۔ (م) اسے حاکم نے یزید بن رکانہ رضی اللہ تعالیٰ عنہ سے روایت کیا۔ (ت) عہ ۲: رواہ ابن حبان عن ابی ھریرہ رضی اللہ تعالی عنہ۔ اسے ابن حبان نے حضرت ابوہریرہ رضی اللہ تعالیٰ عنہ سے روایت کیا۔ (ت)

I.T. Majlis of Dawatelslami www.islami.net

1 المستدرك على الصحیحین کتاب الجنائز مطبوعہ دارالفکر بیروت ۱ / ۳۵۹ 2 الاحسان بترتیب صحیح ابن حبان حدیث ۳۰۲۲ مطبوعہ مؤسسة الرسالة بیروت ۶ / ۳۰ ، موارد الظمآن کتاب الجنائز مطبوعہ مطبعہ سلفیہ مدینہ منورہ ۱ / ۱۹۲، مسند ابویعلی حدیث ۶۵۶۷ مطبوعہ موسسة علوم القرآن بیروت ۶ / ۱۰۶

Fatawa Rizwia Volume 9

(7) (Asbaha abduka hadha) / Asbahat amatuka hadhihi qad (takhalla) / takhallat 'anid-dunya wa (tarahaha) / tarakath-ha liahliha wa (iftaqara) / iftaqarat ilayka wastaghnayta 'anhu / ha wa qad (kana yash-hadu) / kanat tash-hadu al-la ilaha illallahu wa anna muhammadan 'abduka wa rasuluka sallallahu ta'ala 'alayhi wa sallam. Allahummagh-fir (lahu) / ha wa tajawaz 'anhu / ha wa alhiq-hu / ha binabiyyihi sallallahu ta'ala 'alayhi wa sallam. [Note 1] (Translation: This servant of Yours has entered the morning [or: this maid-servant of Yours has entered the morning], having departed from the world and left it for its people, and has become in need of You while You are independent of him/her. He/she used to bear witness that there is no god but Allah and that Muhammad is Your servant and messenger, may Allah's peace and blessings be upon him. O Allah, forgive him/her, overlook his/her shortcomings, and join him/her with his/her Prophet, may Allah's peace and blessings be upon him.)

(8) Allahumma anta rabbuha wa anta khalaqtaha wa anta hadaytaha lil-islami wa anta qabadta ruhaha wa anta a'lamu bisirriha wa 'alaniyatiha ji'na shufa'aa-a faghfir laha. [Note 2] (Translation: O Allah, You are her Lord, You created her, You guided her to Islam, You took her soul, and You know her secret and her manifest state best. We have come as intercessors, so forgive her.)

Note 1: Narrated by Abu Ya'la with an authentic chain from Sa'id ibn al-Musayyib from the Commander of the Faithful 'Umar (may Allah be pleased with him) as his own saying (i.e., mawquf). We have appended it here due to its suitability to the preceding marfu' (elevated) prayers. (T) Note 2: Narrated by Abu Dawud, al-Nasa'i, and al-Bayhaqi from Abu Hurayrah (may Allah be pleased with him). (T)

1. Al-Musannaf of 'Abd al-Razzaq, Chapter: Recitation in Funeral Prayer, Hadith 6421, published by Maktabah Islamiyyah, Beirut, 3/78; Al-Musannaf of Ibn Abi Shaybah, Book of Funerals, published by Idarat al-Qur'an wal-'Ulum al-Islamiyyah, Karachi, 3/292.
2. Sunan Abi Dawud, Chapter: Prayer for the Deceased, published by Aftab-e-'Alam Press, Lahore, 3/100.

फ़तावा रिज़विया खंड 9

(7) (असबहा अब्दुका हाज़ा) / असबहत अमतुका हाज़िही क़द (तख़ल्ला) / तख़ल्लत अनिद्दुनिया व (तरकहा) / तरकत-हा लिअहलिहा व (इफ़्तक़रा) / इफ़्तक़रत इलयका वस्तग़नयता अन्हु / हा व क़द (काना यश-हदु) / कानत तश-हदु अल-ला इलाहा इल्लल्लाहु व अन्ना मुहम्मदन अब्दुका व रसूलुका सल्लल्लाहु तआला अलैहि व सल्लम। अल्लाहुम्मग़-फ़िर (लहू) / हा व तजावज़ अन्हु / हा व अल्हिक़-हु / हा बिनबिय्यिही सल्लल्लाहु तआला अलैहि व सल्लम। [नोट 1] (अनुवाद: आपका यह बंदा सुबह में दाखिल हुआ [या: आपकी यह दासी सुबह में दाखिल हुई], उसने दुनिया को छोड़ दिया और इसे इसके चाहने वालों के लिए छोड़ दिया, और वह आपका मोहताज हो गया/गई जबकि आप उससे बेपरवाह हैं। वह गवाही देता था/देती थी कि अल्लाह के सिवा कोई इबादत के लायक नहीं और मुहम्मद सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम आपके बंदे और रसूल हैं। ऐ अल्लाह! उसे बख़्श दे और उसके गुनाहों से दरगुज़र फरमा और उसे अपने नबी सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम के साथ मिला दे।)

(8) अल्लाहुम्मा अन्ता रब्बुहा व अन्ता ख़लक़्तहा व अन्ता हदयतहा लिल-इस्लामी व अन्ता क़बज़्ता रूहहा व अन्ता आलमू बिसिर्रिहा व अलानियतिहा जिअना शुफ़आ-अ फ़ग़फ़िर लहा। [नोट 2] (अनुवाद: ऐ अल्लाह! तू इसका रब है, तूने इसे पैदा किया, तूने इसे इस्लाम की हिदायत दी, तूने इसकी रूह कब्ज़ की और तू इसके पोशीदा और ज़ाहिर हाल को खूब जानता है, हम सिफारिशी बनकर आए हैं, तो तू इसे बख़्श दे।)

नोट 1: इसे अबू यअला ने सही सनद के साथ हज़रत सईद बिन मुसय्यब से, उन्होंने अमीरुल मोमिनीन हज़रत उमर रज़ियल्लाहु अन्हु से उनके अपने कौल (यानी मौकूफ) के तौर पर रिवायत किया। इसे पिछली मरफ़ू दुआओं की मुनासिबत की वजह से हमने यहाँ ज़िक्र कर दिया है। (त) नोट 2: इसे अबू दाऊद, नसाई और बैहक़ी ने हज़रत अबू हुरैरा रज़ियल्लाहु अन्हु से रिवायत किया। (त)

1. अल-मुसन्निफ़ अब्द-अर-रज़्ज़ाक, मय्यित पर नमाज़ की किराअत का बाब, हदीस 6421, मक्तबा इस्लामिया बेरूत 3/78; अल-मुसन्निफ़ इब्न अबी शैबा, किताबुल जनाइज़, इदारातुल कुरान वल-उलूम अल-इस्लामिया कराची 3/292।
2. सुनन अबू दाऊद, मय्यित के लिए दुआ का बाब, आफ़ताब-ए-आलम प्रेस लाहौर 3/100।

فتاوٰی رضویہ جلد نہم

(۷) (اَصْبَحَ عَبْدُكَ ہٰذَا) اَصْبَحَتْ اَمَتُكَ ہٰذِہٖ قَدْ (تَخَلّٰی) تَخَلَّتْ عَنِ الدُّنْیَا وَ (تَرَکَہَا تَرَکَتْہَا لِاَہْلِہَا وَ (اِفْتَقَرَ) اِفْتَقَرَتْ اِلَیْكَ وَاسْتَغْنَیْتَ عَنْہُ ہَا وَقَدْ (کَانَ یَشْہَدُ) کَانَتْ تَشْہَدُ اَنْ لَّا اِلٰہَ اِلَّا اللہُ وَاَنَّ مُحَمَّدًا عَبْدُكَ وَرَسُوْلُكَ صَلَّی اللہُ تَعَالٰی عَلَیْہِ وَسَلَّمَ ط اَللّٰھُمَّ اغْفِرْ (لَہٗ) ہَا وَتَجَاوَزْ عَنْہُ ہَا وَاَلْحِقْہُ ہَا بِنَبِیِّہٖ صلَّی اللہ تَعَالٰی علیہ وسلم عہ 1

(۸) اَللّٰھُمَّ اَنْتَ رَبُّہَا وَاَنْتَ خَلَقْتَہَا وَاَنْتَ ھَدَیْتَہَا لِلْاِسْلَامِ ط وَاَنْتَ قَبَضْتَ رُوْحَہَا وَاَنْتَ اَعْلَمُ بِسِرِّھَا وَعَلَانِیَتِہَا جِئْنَا شُفَعَاءَ فَاغْفِرْ لَہَا۔ عہ 2

عہ ۱: رواہ ابویعلی بسند صحیح عن سعید بن المسیب ان امیر المومنین عمر رضی اللہ تعالٰی عنہ من قولہ "الحقنا بما قبلہ من المرفوعات للمناسبۃ ۱۲ کلہا منہ رضی اللہ تعالٰی عنہ"۔ اسے ابویعلی نے بسند صحیح حضرت سعید بن مسیب سے، انہوں نے امیر المومنین عمر رضی اللہ تعالیٰ عنہ سے انہی کے قول کے طور پر (یعنی موقوفا) روایت کیا اسے ماقبل کی مرفوع دعاؤں کی مناسبت کے باعث ہم نے لاحق کردیا ۱۲ کلہا منہ رضی اللہ تعالیٰ عنہ (ت) عہ ۲: رواہ ابوداؤد والنسائی والبیہقی عن ابی ہریرۃ رضی اللہ تعالٰی عنہ۔ (م) ابوداؤد، نسائی اور بیہقی نے حضرت ابوہریرہ رضی اللہ تعالیٰ عنہ سے روایت کیا۔ (ت)

1 المصنف لعبد الرزاق باب القراۃ الصلوٰۃ علی المیت حدیث ۶۴۲۱ مطبوعہ مکتب اسلامی بیروت ۳/ ۷۸، المصنف لابن ابی شیبہ کتاب الجنائز مطبوعہ ادارۃ القرآن والعلوم الاسلامیہ کراچی ۳/ ۲۹۲

2 سنن ابوداؤد باب الدعاء للمیت مطبوعہ آفتاب عالم پریس لاہور ۳/ ۱۰۰

Fatawa Rizvia Volume 9

(9) O Allah, forgive our living ones and reconcile the matters between us and unite our hearts. O Allah, (this is Your servant, this is Your handmaiden, so-and-so son of so-and-so / daughter of so-and-so), and we know nothing but good about him/her, and You know more about him/her than us, so forgive us and him/her. [Note 1]

(10) O Allah, indeed so-and-so (son/daughter of so-and-so) is under Your protection and in the rope of Your neighborhood, so protect him/her from the trial of the grave and the punishment of the Fire, for You are the One deserving of faithfulness and praise. O Allah, forgive him/her and have mercy on him/her, for You are indeed the Forgiving, the Merciful. [Note 2]

Note 1: Narrated by Abu Nu'aym from Abdullah bin Al-Harith bin Nawfal from his father (may Allah be pleased with him) that the Prophet (may peace and blessings of Allah be upon him) taught them the prayer for the deceased "O Allah, forgive...", until the end of the hadith. He said: "I said: 'I am the youngest of the people, so what if I don't know any good (about the deceased)?'" He said: "Then do not say anything except what you know." All of this is from him (may Allah be pleased with him). (M) Abu Nu'aym narrated this from Abdullah bin Harith bin Nawfal, from his father (may Allah be pleased with him), that the Prophet (may peace and blessings of Allah be upon him) taught them the funeral prayer "O Allah, forgive..." until the end of the hadith. He says that I requested: "I am the youngest among the people, if I do not know any good (about the deceased)?" He replied: "Then you say only what you know." 12 All from him (may Allah be pleased with him). (T)

Note 2: Narrated by Abu Dawud and Ibn Majah from Wathila bin Al-Asqa (may Allah be pleased with him). (M) Abu Dawud and Ibn Majah narrated this from Wathila bin Al-Asqa (may Allah be pleased with him). (T)

1 Kanz al-Ummal, with reference to Abu Nu'aym, Hadith 42844, published by Mu'assasat al-Risala Beirut 15/1712. 2 Sunan Abi Dawud, Chapter of Supplication for the Deceased, published by Aftab-e-Alam Press Lahore 1/101; Sunan Ibn Majah, Chapter on Supplication in Funeral, published by H.M. Saeed Company Karachi p. 109.

फ़तावा रज़विया जिल्द नहुम (नौ)

(9) ऐ अल्लाह! हमारे जीवितों को क्षमा कर और हमारे आपसी मामलों को सुधार दे और हमारे दिलों के बीच मेल-मिलाप पैदा कर। ऐ अल्लाह! (यह तेरा बंदा है/यह तेरी बंदी है फ़लां बिन/बिन्त फ़लां) और हम उसके बारे में सिवाय भलाई के कुछ नहीं जानते और तू उसके बारे में हमसे बेहतर जानता है, पस हमें और उसे बख्श दे। [हवाला 1]

(10) ऐ अल्लाह! बेशक फ़लां (बिन/बिन्त फ़लां) तेरे ज़िम्मे और तेरी पनाह की रस्सी में है, लिहाज़ा उसे कब्र के फ़ितने और आग के अज़ाब से बचा, और तू वफ़ा और हम्द का हक़दार है। ऐ अल्लाह! उसे बख्श दे और उस पर रहम फ़रमा, बेशक तू बख्शने वाला निहायत मेहरबान है। [हवाला 2]

हवाला 1: अबू नईम ने अब्दुल्लाह बिन अल-हारिस बिन नौफ़ल से, उन्होंने अपने वालिद (रज़ियल्लाहु अन्हु) से रिवायत किया कि नबी (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने उन्हें मय्यत पर नमाज़ सिखाई "ऐ अल्लाह बख्श दे...", पूरी हदीस। उन्होंने कहा: "मैंने अर्ज़ किया कि मैं लोगों में सबसे छोटा हूँ, तो अगर मुझे कोई भलाई मालूम न हो?" उन्होंने फ़रमाया: "तो तुम वही कहो जो तुम जानते हो।" यह सब उन्हीं से है (रज़ियल्लाहु अन्हु)। (म) अबू नईम ने इसे अब्दुल्लाह बिन हारिस बिन नौफ़ल से, उन्होंने अपने वालिद (रज़ियल्लाहु अन्हु) से रिवायत किया कि नबी (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने उन्हें नमाज़-ए-जनाज़ा सिखाई "ऐ अल्लाह बख्श दे..." हदीस के आख़िर तक। वह कहते हैं कि मैंने अर्ज़ किया मैं लोगों में सबसे कम उम्र हूँ अगर मुझे कोई खैर मालूम न हो? फ़रमाया: तो तुम वही कहो जो जानते हो। 12 यह सब उन्हीं से है (रज़ियल्लाहु अन्हु)। (त)

हवाला 2: अबू दाऊद और इब्न माजह ने वाथिला बिन अल-असका' (रज़ियल्लाहु अन्हु) से रिवायत किया। (म) इसे अबू दाऊद और इब्न माजह ने वाथिला बिन अल-असका' (रज़ियल्लाहु अन्हु) से रिवायत किया। (त)

1 कंज़ुल उम्माल, बहवाला अबू नईम, हदीस 42844, मतबुआ मुअस्ससतुर्-रिसाला बैरूत 15/1712 2 सुनन अबी दाऊद, बाब अद्-दुआ लिल-मय्यित, मतबुआ आफ़ताबे-आलम प्रेस लाहौर 1/101, सुनन इब्न माजह बाब अद्-दुआ फ़िल-जनाज़ा, मतबुआ एच.एम. सईद कंपनी कराची सफ़हा 109।

पेज 217 ऑफ़ 948

فتاوٰی رضویہ جلد نہم

(۹) اَللّٰھُمَّ اغْفِرْ لِاَحْیَانِنَا وَاَصْلِحْ ذَاتَ بَیْنِنَا وَ اَلِّفْ بَیْنَ قُلُوْبِنَا اَللّٰھُمَّ (ھٰذَا عَبْدُکَ ھٰذِہٖ اَمَتُکَ فُلَانُ (ابْنُ) بِنْتُ فُلَانٍ وَلَا نَعْلَمُ اِلَّا خَیْرًا وَاَنْتَ اَعْلَمُ بِہٖ مِنَّا فَاغْفِرْ لَنَا وَ لَہٗ لھا عه 1 (۱۰) اَللّٰھُمَّ اِنَّ فُلَانَ (ابْنَ) بِنْتَ فُلَانٍ فِیْ ذِمَّتِکَ وَ حَبْلِ جِوَارِکَ فَقِہٖ مِنْ فِتْنَۃِ الْقَبْرِ وَ عَذَابِ النَّارِ وَ اَنْتَ اَھْلُ الْوَفَاءِ وَالْحَمْدِ ط اَللّٰھُمَّ فَاغْفِرْ لَہٗ وَارْحَمْھُھَا اِنَّکَ اَنْتَ الْغَفُوْرُ الرَّحِیْمُ۔ عه 2

عه۱: رواہ ابونعیم عن عبداللہ بن الحارث بن نوفل عن ابیہ رضی اللہ تعالٰی عنہ ان النبی صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم علّمہم الصلوٰۃ علی المیت اللھم اغفر، الحدیث قال فقلت انا اصغر القوم فلن لم اعلم خیر قال فلا تقل الاّ ما تعلم کلھامنہ رضی اللہ تعالٰی عنہ۔ (م) اسے ابونعیم نے عبداللہ بن حارث بن نوفل سے انہوں نے اپنے والد رضی اللہ تعالٰی عنہ سے روایت کیا کہ نبی صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم نے انہیں نمازِ جنازہ سکھائی اللّٰھُم اغفر۔۔ آخر حدیث تک۔ وہ کہتے ہیں کہ میں نے عرض کیا میں لوگوں میں سب سے کم عمر ہوں اگر مجھے کوئی خیر معلوم نہ ہو؟ فرمایا: تو تم وہی کہو جو جانتے ہو ۱۲ کلہا منہ رضی اللہ تعالٰی عنہ (ت)

عه۲: رواہ ابو داود ابن ماجۃ عن واثلۃ بن اسقع رضی اللہ تعالٰی عنہ (م) اسے ابوداؤد اور ابن ماجہ نے واثلہ بن اسقع رضی اللہ تعالٰی عنہ سے روایت کیا (ت)

1 کنز العمال، بحوالہ ابونعیم، حدیث ۴۲۸۴۴، مطبوعہ موسسہ الرسالہ بیروت ۱۵ / ۱۷۱۲ 2 سنن ابی داؤد، باب الدعاء للمیت، مطبوعہ آفتاب عالم پریس لاہور ۱ / ۱۰۱ ، سنن ابن ماجہ باب، اجاء فی الدعاء فی الجنازہ، مطبوعہ ایچ ایم سعید کمپنی کراچی ص ۱۰۹

Fatawa Razawiyya Volume 9

(11) O Allah! Protect her from Satan and the punishment of the grave. O Allah! Make the earth spacious on both her sides and raise her soul, and grant her pleasure from You. 1

(12) O Allah! Indeed, You created us and we are Your servants. You are our Lord and to You is our return. 2

(13) O Allah! Forgive our living and our dead, our present and our absent, our young and our old, our male and our female. O Allah! Whomever among us You keep alive, keep him alive upon Islam; and whomever among us You cause to die, let him die upon faith. 3 O Allah! Do not deprive us of his reward and do not put us into trial after him. O Allah! O Most Merciful of the merciful! O Most Merciful of the merciful! O Most Merciful of the merciful!

Reference 1: Narrated by Ibn Majah from Ibn 'Umar (may Allah be pleased with them both). (M) Ibn Majah narrated it from Hazrat Ibn 'Umar (may Allah be pleased with him). (T)

Reference 2: Narrated by al-Baghawi, Ibn Mandah, and al-Daylami in Musnad al-Firdaws from Abu Hasir (may Allah be pleased with him). (M) Al-Baghawi, Ibn Mandah, and al-Daylami in Musnad al-Firdaws narrated it from Abu Hasir (may Allah be pleased with him). (T)

Reference 3: Narrated by al-Baghawi from Ibrahim al-Ash'ali from his father (may Allah be pleased with him). (M) Al-Baghawi narrated it from Ibrahim al-Ash'ali, who narrated it from his father (may Allah be pleased with him). (T)

Footnotes: 1. Sunan Ibn Majah, Chapter on placing the deceased into the grave, printed by HM Saeed Company Karachi, p. 112. 2. Kanz al-Ummal, with reference to al-Daylami, Hadith 42849, printed by Mu'assasat al-Risalah Beirut, 15/15. 3. Kanz al-Ummal, with reference to al-Baghawi, Hadith 42299, printed by Mu'assasat al-Risalah Beirut, 586/15; Sharh al-Sunnah, Chapter on Funeral Prayer and Supplication for the Deceased, printed by al-Maktab al-Islami Beirut, 5/355.

फ़तावा रज़विया जिल्द नहुम

(11) ऐ अल्लाह! इसे शैतान से और कब्र के अज़ाब से बचा। ऐ अल्लाह! ज़मीन को इसके दोनों पहलुओं से कुशादा कर दे और इसकी रूह को बुलंद कर, और इसे अपनी तरफ़ से रज़ामंदी अता फरमा। 1

(12) ऐ अल्लाह! बेशक तूने हमें पैदा किया और हम तेरे बंदे हैं। तू हमारा रब है और तेरी ही तरफ़ हमें लौटना है। 2

(13) ऐ अल्लाह! हमारे ज़िंदा और हमारे मुर्दा को, हमारे हाज़िर और हमारे ग़ायब को, हमारे छोटे और हमारे बड़े को, हमारे मर्द और हमारी औरत को बख्श दे। ऐ अल्लाह! हम में से जिसे तू ज़िंदा रखे उसे इस्लाम पर ज़िंदा रख, और जिसे तू वफ़ात दे उसे ईमान पर वफ़ात दे। 3 ऐ अल्लाह! हमें इसके अज्र से महरूम न कर और इसके बाद हमें आज़माइश में न डाल। ऐ अल्लाह! ऐ सब रहम करने वालों से बढ़कर रहम करने वाले! ऐ सब रहम करने वालों से बढ़कर रहम करने वाले! ऐ सब रहम करने वालों से बढ़कर रहम करने वाले!

हवाला 1: इसे इब्ने माजा ने इब्ने उमर रज़ियल्लाहु अन्हुमा से रिवायत किया। (म) इसे इब्ने माजा ने हज़रत इब्ने उमर रज़ियल्लाहु तआला अन्हु से रिवायत किया। (त)

हवाला 2: इसे बग़वी, इब्ने मंदह और दैलमी ने मुस्नद अल-फ़िरदौस में अबू हासिर रज़ियल्लाहु तआला अन्हु से रिवायत किया। (म) इसे बग़वी, इब्ने मंदह और मुस्नद अल-फ़िरदौस में दैलमी ने अबू हासिर रज़ियल्लाहु तआला अन्हु से रिवायत किया। (त)

हवाला 3: इसे बग़वी ने इब्राहीम अल-अशअली से, उन्होंने अपने वालिद रज़ियल्लाहु तआला अन्हु से रिवायत किया। (म) इसे बग़वी ने इब्राहीम अशअली से, उन्होंने अपने वालिद रज़ियल्लाहु तआला अन्हु से रिवायत किया। (त)

फुटनोट्स: 1. सुनन इब्ने माजा, बाब माजाअ फ़ी इख़्तिलिल मय्यितिल कब्र, मक़बुआ एच.एम. सईद कंपनी कराची, पृ. 112। 2. कंज़ुल उम्माल, बहवाला दैलमी, हदीस 42849, मक़बुआ मुअस्ससतुर रिसाला बेरूत, 15/15। 3. कंज़ुल उम्माल, बहवाला बग़वी, हदीस 42299, मक़बुआ मुअस्ससतुर रिसाला बेरूत, 586/15, शरहुस सुन्नाह, बाब फ़ी सलातिल जनाज़ा वदुआ लिलमय्यित, मक़बुआ अल-मक्तबुल इस्लामी बेरूत, 355/5।

فتاوٰی رضویہ جلد نہم

(۱۱) اَللّٰھُمَّ أَجِرْھَا مِنَ الشَّیْطٰنِ وَعَذَابِ الْقَبْرِ ط اَللّٰھُمَّ جافِ الْاَرْضَ عَنْ جَنْبَیْھَا وَصَعِّدْ رُوْحَھَا وَلَقِّھَا مِنْكَ رِضْوَانًا عہ1۔ (۱۲) اَللّٰھُمَّ إِنَّكَ خَلَقْتَنَا وَنَحْنُ عِبَادُكَ ط أَنْتَ رَبُّنَا وَإِلَیْكَ مَعَادُنَا۔ عہ2۔ (۱۳) اَللّٰھُمَّ اغْفِرْ لِحَیِّنَا وَ مَیِّتِنَا وَ شَاھِدِنَا وَ غَآئِبِنَا وَ صَغِیْرِنَا وَ کَبِیْرِنَا وَ ذَکَرِنَا وَ اُنْثَانَا ط اَللّٰھُمَّ مَنْ اَحْیَیْتَہٗ مِنَّا فَاَحْیِہٖ عَلَی الْاِسْلَامِ وَ مَنْ تَوَفَّیْتَہٗ مِنَّا فَتَوَفَّہٗ عَلَی الْاِیْمَانِ عہ3۔ اَللّٰھُمَّ لَا تَحْرِمْنَا اَجْرَہٗ (ہ) وَ لَا تَفْتِنَّا بَعْدَہٗ (ہ)۔ اَللّٰھُمَّ یَا اَرْحَمَ الرَّاحِمِیْنَ یَا اَرْحَمَ الرَّاحِمِیْنَ یَا اَرْحَمَ الرَّاحِمِیْنَ

عہ1: رواہ ابن ماجۃ عن ابن عمر رضی اللہ تعالی عنھما۔ (م) اسے ابن ماجہ نے حضرت ابن عمر رضی اللہ تعالیٰ عنہ سے روایت کیا۔ (ت)

عہ2: رواہ البغوی وابن مندۃ والدیلمی في مسند الفردوس عن ابی حاصر رضی اللہ تعالی عنہ (م) اسے بغوی، ابن مندہ اور مسند الفردوس میں دیلمی نے ابو حاصر رضی اللہ تعالیٰ عنہ سے روایت کیا۔ (ت)

عہ3: رواہ البغوی عن ابراھیم الاشھلی عن ابیہ رضی اللہ تعالی عنہ (م) اسے بغوی نے ابراہیم اشہلی سے، انہوں نے اپنے والد رضی اللہ تعالیٰ سے روایت کیا۔ (ت)

حواشی: 1 سنن ابن ماجہ باب ماجاء فی ادخال المیت القبر مطبوعہ ایچ ایم سعید کمپنی کراچی ص ۱۱۲ 2 کنز العمال بحوالہ الدیلمی حدیث ۴۲۸۴۹ مطبوعہ موسسۃ الرسالۃ بیروت ۱۵/۱۵ 3 کنز العمال بحوالہ بغوی حدیث ۴۲۲۹۹ مطبوعہ موسسۃ الرسالۃ بیروت ۵۸۶/۱۵، شرح السنۃ باب فی صلوٰۃ الجنازۃ والدعاء للمیت مطبوعہ المکتب الاسلامی بیروت ۳۵۵/۵

Fatawa Razawiya, Volume 9

O Ever-Living, O Self-Subsisting, O Originator of the heavens and the earth, O Lord of Majesty and Honor, I ask You by my witnessing that You are Allah, the One, the Eternal Refuge, Who neither begets nor was born, and to Whom there is no equivalent. O Allah, I ask You and turn to You through Your Prophet Muhammad, the Prophet of Mercy, peace and blessings of Allah be upon him. O Allah, indeed the Generous, when He commands asking, He never rejects it. And You have commanded us, so we have supplicated, and You permitted us, so we have interceded. You are the Most Generous of the generous. So grant us intercession for him/her, and have mercy on him/her in his/her loneliness, and have mercy on him/her in his/her isolation, and have mercy on him/her in his/her strangeness, and have mercy on him/her in his/her distress, and magnify his/her reward, and illuminate his/her grave, and brighten his/her face, and cool his/her resting place, and fragrance his/her abode, and honor his/her descent. O Best of those who cause descent, O Best of those who forgive, O Best of those who show mercy. Amen, Amen, Amen. Send blessings, peace, and benediction upon the Master of Intercessors, Muhammad, and all his family and companions. And all praise is due to Allah, Lord of the worlds. - Footnote

Footnote: Zadah al-Faqir (The son of the humble one) - may the Generous and All-Powerful forgive him for all of it | This prayer was added by the humble one (the author), may the Generous and All-Powerful Lord grant him forgiveness. May Allah be pleased with him. (M) | 12 All from him, may Allah be pleased with him. (T)

Page 219 of 948

फतावा रज़विया, जिल्द नहूम (नौवीं)

हे जीवंत, हे सर्वशक्तिमान, हे आकाश और पृथ्वी के निर्माता, हे महिमा और सम्मान के स्वामी, मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि मैं गवाही देता हूँ कि आप ही अल्लाह हैं, जो एक है, शाश्वत है, जिसे न किसी ने जना और न ही वह किसी से जना गया, और जिसका कोई समकक्ष नहीं है। हे अल्लाह, मैं आपसे माँगता हूँ और आपके पैगंबर मुहम्मद, दया के पैगंबर, अल्लाह उन पर कृपा और शांति बनाए रखे, के माध्यम से आपकी ओर मुड़ता हूँ। हे अल्लाह, वास्तव में जब उदारवादी (अल्लाह) मांगने का आदेश देता है, तो वह उसे कभी अस्वीकार नहीं करता। और आपने हमें आदेश दिया, तो हमने प्रार्थना की, और आपने हमें अनुमति दी, तो हमने मध्यस्थता की। आप सबसे उदार हैं। अतः उसके लिए हमारी मध्यस्थता स्वीकार करें, और उसके अकेलेपन में उस पर दया करें, और उसके सूनेपन में उस पर दया करें, और उसके परदेश में उस पर दया करें, और उसके संकट में उस पर दया करें, और उसके पुरस्कार को बढ़ा दें, और उसकी कब्र को रोशन करें, और उसके चेहरे को चमका दें, और उसके विश्राम स्थल को शीतल कर दें, और उसके निवास स्थान को सुगंधित कर दें, और उसके आगमन का सम्मान करें। हे सर्वोत्तम सत्कार करने वाले, हे सर्वोत्तम क्षमा करने वाले, हे सर्वोत्तम दया करने वाले। आमीन, आमीन, आमीन। सिफ़ारिश करने वालों के सरदार मुहम्मद और उनके समस्त परिवार और साथियों पर दया, शांति और आशीर्वाद हो। और सारी प्रशंसा अल्लाह के लिए है, जो सारे संसार का पालनहार है। - टिप्पणी

टिप्पणी: जादह अल-फकीर (फकीर का बेटा) - उदार और सर्वशक्तिमान उसे सब कुछ क्षमा करे | यह प्रार्थना फकीर (लेखक) ने अधिक की है, उदार और शक्तिशाली प्रभु उसकी क्षमा करे। अल्लाह उनसे प्रसन्न हो। (म) | १२ सब उन्हीं से, अल्लाह उनसे प्रसन्न हो। (त)

पृष्ठ ९४८ का २१९

یَا حَیُّ یَا قَیُّوْمُ یَا بَدِیْعَ السَّمٰوٰتِ وَالْاَرْضِ یَا ذَاالْجَلَالِ وَالْاِکْرَامِ اِنِّیْ اَسْئَلُکَ بِاَنِّیْ اَشْھَدُ اَنَّکَ اَنْتَ اللہُ الْاَحَدُ الصَّمَدُ الَّذِیْ لَمْ یَلِدْ وَلَمْ یُولَدْ وَلَمْ یَکُنْ لَّہٗ کُفُوًا اَحَدٌ اَللّٰھُمَّ اِنِّیْ اَسْئَلُکَ وَاَتَوَجَّہُ اِلَیْکَ بِنَبِیِّکَ مُحَمَّدٍ نَّبِیِّ الرَّحْمَۃِ صَلَّی اللہُ تَعَالٰی عَلَیْہِ وَسَلَّمَ ط اَللّٰھُمَّ اِنَّ الْکَرِیْمَ اِذَا اَمَرَ بِالسُّؤَالِ لَمْ یَرُدَّہٗ اَبَدًا وَّقَدْ اَمَرْتَنَا فَدَعَوْنَا وَاَذِنْتَ لَنَا فَشَفَعْنَا وَاَنْتَ اَکْرَمُ الْاَکْرَمِیْنَ فَشَفِّعْنَا فِیْہِ ھَا وَارْحَمْہُ ھَا فِیْ وَحْدَتِہٖ ھَا فِیْ وَحْشَتِہٖ ھَا وَارْحَمْہُ ھَا فِیْ غُرْبَتِھَا وَارْحَمْہُ ھَا فِیْ کُرْبَتِہٖ ھَا وَاَعْظِمْ لَہٗ ھَا اَجْرَہٗ ھَا وَنَوِّرْ لَہٗ ھَا قَبْرَہٗ ھَا وَبَیِّضْ لَہٗ ھَا وَجْھَہٗ ھَا وَبَرِّدْ لہٗ ھَا مَضْجَعَہٗ ھَا وَ عَطِّرْ لہٗ ھَا مَنْزِلَہٗ ھَا وَ اَکْرِمْ لہٗ ھَا نُزُلَہٗ ھَا یَا خَیْرَ الْمُنْزِلِیْنَ یَا خَیْرَ الْغَافِرِیْنَ وَ یَا خَیْرَ الرَّاحِمِیْنَ اٰمِیْنَ اٰمِیْنَ اٰمِیْنَ صَلِّ وَ سَلِّمْ وَبَارِکْ عَلٰی سَیِّدِ الشَّافِعِیْنَ مُحَمَّدٍ وَّ اٰلِہٖ وَ صَحْبِہٖ اَجْمَعِیْنَ ط وَالْحَمْدُ لِلّٰہِ رَبِّ الْعٰلَمِیْنَ - عہ

عہ: زادہ الفقیر غفرلہ الکریم القدیر کلہا منہ | یہ دعا فقیر نے زیادہ کی، رب کریم وقدیر اس کی مغفرت فرمائے۔ رضی اللہ تعالٰی عنہ (م) | ۱۲ کلہا منہ رضی اللہ تعالٰی عنہ (ت)

Volume Nine Fatawa Rizvia

Translation of Transmitted Supplications

(1) O Allah! Forgive our living and our dead, those present and those absent, our young and our old, and our males and our females. O Allah! Whomever You keep alive among us, keep him alive on Islam, and whomever You cause to die among us, cause him to die on faith. O Allah! Do not deprive us of the reward of this deceased, and do not put us into trial after him.

(2) O Allah! Forgive this deceased, and have mercy on him, protect him from every calamity, and excuse him, and grant him an honorable reception, and expand his grave, and wash him with water, snow, and hail, and cleanse him from sins as You have cleansed a white garment from filth, and give him a home better than his home, and a family better than his family, and a spouse better than his spouse. And admit him into Paradise, and grant him refuge from the questioning of the grave and the punishment of Hell.

(3) O Allah! This deceased is Your servant and the child of Your maidservant. He bears witness that there is no true deity but You alone, You have no partner, and he bears witness that Muhammad is Your servant and Your Messenger. He is in need of Your mercy, and You are independent of punishing him. He lived alone from the world and the people of the world. If he was virtuous, then make him better, and if he was a sinner, then forgive him. O Allah! Do not deprive us of his reward and do not lead us astray after him.

(4) O Allah! This is Your servant, the son of Your maidservant, and the child of Your maidservant. Your decree is executed upon him. You created him where a stranger would alight. O Allah! Teach him his proof and unite him with Muhammad (peace and blessings of Allah be upon him). Keep him firm on the right word, for he is in need of You, and You are independent of him. He used to bear witness that there is no true deity except Allah; so forgive him and have mercy on him, and do not deprive us of his reward, and do not put us into trial. O Allah! If he was virtuous, then make him better, and if he was a sinner, forgive him.

(5) O Allah! This servant of Yours and child of Your maidservant is in need of Your mercy, and You are independent of punishing him. If he was righteous, increase his good deeds, and if he was bad, then overlook his sins.

(6) O Allah! This servant of Yours and son of Your servant used to bear witness that there is no true deity but Allah, and that Muhammad is Your...

खंड नौ फ़तावा रज़विया

उद्धृत दुआओं का अनुवाद

(1) ऐ अल्लाह! हमारे जीवित और मृत, उपस्थित और अनुपस्थित, छोटे और बड़े, और पुरुष और महिला को क्षमा कर दे। ऐ अल्लाह! तू हममें से जिसे जीवित रखे, उसे इस्लाम पर जीवित रख, और जिसे मृत्यु दे, उसे ईमान पर मृत्यु दे। ऐ अल्लाह! हमें इस मृत व्यक्ति के सवाब (पुण्य) से वंचित न कर और उसके बाद हमें किसी फ़ितने (परीक्षा) में न डाल।

(2) ऐ अल्लाह! इस मृत व्यक्ति को क्षमा कर दे, और उस पर दया कर, और उसे हर विपत्ति से बचा, और उसे माफ़ कर दे, और उसे सम्मानजनक आतिथ्य प्रदान कर, और उसकी कब्र को विशाल कर दे, और उसे पानी, बर्फ और ओलों से धो दे, और उसे पापों से वैसे ही स्वच्छ कर दे जैसे तूने सफ़ेद कपड़े को मैल से स्वच्छ किया है। और उसे उसके घर से बेहतर घर, उसके परिवार से बेहतर परिवार, और उसकी पत्नी से बेहतर पत्नी प्रदान कर। और उसे स्वर्ग में प्रवेश करा, और उसे कब्र के सवाल और नरक के दंड से पनाह दे।

(3) ऐ अल्लाह! यह मृत व्यक्ति तेरा बंदा और तेरी बांदी (दासी) का बच्चा गवाही देता है कि तेरे सिवा कोई सच्चा पूज्य नहीं, तू अकेला है, तेरा कोई साथी नहीं, और गवाही देता है कि मुहम्मद तेरे बंदे और तेरे रसूल हैं। यह तेरी दया का मोहताज है और तू उसे दंड देने से बेपरवाह है। यह दुनिया और दुनिया के लोगों से अकेला रहा। अगर यह नेक था तो इसे और नेक बना दे और अगर यह गुनहगार था तो इसे क्षमा कर दे। ऐ अल्लाह! हमें इसके सवाब से वंचित न कर और इसके बाद हमें गुमराह न कर।

(4) ऐ अल्लाह! यह तेरा बंदा, तेरी बांदी का बेटा और तेरी बांदी का बच्चा है। उस पर तेरा आदेश लागू है। तूने उसे वहाँ पैदा किया जहाँ कोई परदेसी उतरे। ऐ अल्लाह! उसे उसकी दलील सिखा दे और उसे उसके लिए मुहम्मद (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) से मिला दे। और उसे सही बात पर अडिग रख क्योंकि यह तेरा मोहताज है और तू इससे बेपरवाह है। यह गवाही देता था कि अल्लाह के सिवा कोई सच्चा पूज्य नहीं; अतः उसे क्षमा कर दे और उस पर दया कर, और हमें इसके सवाब से वंचित न कर, और इसके बाद हमें किसी फ़ितने (परीक्षा) में न डाल। ऐ अल्लाह! अगर यह नेक था तो इसे और बेहतर बना दे और अगर यह गुनहगार था तो इसे क्षमा कर दे।

(5) ऐ अल्लाह! तेरा यह बंदा और तेरी बांदी का बच्चा तेरी दया का मोहताज है और तू उसे दंड देने से बेपरवाह है। अगर यह नेक था तो इसकी नेकियाँ बढ़ा दे और अगर बुरा था तो उसे माफ़ कर दे।

(6) ऐ अल्लाह! तेरा यह बंदा और तेरे बंदे का बेटा गवाही देता था कि अल्लाह के सिवा कोई सच्चा पूज्य नहीं, और यह कि मुहम्मद तेरे...

पृष्ठ 220 / 948

جلد نہم فتاویٰ رضویہ

ترجمہ ادعیہ منقولہ

(۱) الٰہی ! بخش دے ہمارے زندے اور مردے، اور حاضر اور غائب، اور چھوٹے اور بڑے، اور مرد اور عورت کو۔ الٰہی ! تو جسے زندہ رکھے ہم میں سے اُسے زندہ رکھ اسلام پر، اور جسے موت دے ہم میں سے اُسے موت دے ایمان پر۔ الٰہی ! ہمیں اس میت کے ثواب سے محروم نہ کر۔ اور ہمیں اس کے بعد فتنہ میں نہ ڈال۔

(۲) الٰہی ! اس میت کو بخش دے، اور اس پر رحم فرما، اور اسے ہر بلا سے بچا، اور اسے معاف کر، اور اسے عزّت کی مہمانی دے، اور اس کی قبر کو وسیع کر، اور اسے دھو دے پانی اور برف اور اولوں سے، اور اسے پاک کر دے گناہوں سے جیسے تو نے پاک کیا سپید کپڑا میل سے، اور اسے بدل دے مکان بہتر اس کے مکان سے، اور گھر والے بہتر اس کے گھر والوں سے، اور زوجہ بہتر اس کی زوجہ سے۔ اور اسے داخل فرما بہشت میں، اور اسے پناہ دے قبر کے سوال اور دوزخ کے عذاب سے۔

(۳) الٰہی ! یہ میت تیرا بندہ اور تیری باندی کا بچہ گواہی دیتا ہے کہ کوئی سچا معبود نہیں مگر ایک اکیلا تو، تیرا کوئی شریک نہیں، اور گواہی دیتا ہے کہ محمد تیرے بندے اور تیرے رسول ہیں، یہ محتاج ہے تیری مہربانی کا اور تُو بے نیاز ہے اس کے عذاب سے، یہ اکیلا رہا دنیا اور دُنیا کے لوگوں سے، اگر یہ سُتھرا تھا تو اسے ستھرا فرما دے اور اگر خطا وار تھا تو اسے بخش دے۔ الٰہی ! ہمیں محروم نہ کر اسکے ثواب سے اور گمراہ نہ کر اس کے بعد۔

(۴) الہی ! یہ تیرا بندہ تیری باندی کا بیٹا تیری باندی کا بچہ ہے، نافذ اس میں حکم تیرا، تو نے اسے پیدا کیا جن کے یہاں کوئی غریب الوطن اترے۔ الہی ! اُسے اس کی حجت سکھا دے اور اُسے اُس کے لئے محمد صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم سے ملادے، اور اُسے ٹھیک بات پر ثابت رکھ کہ یہ تیرا محتاج ہے اور تو اس سے غنی ہے، یہ گواہی دیتا تھا کہ کوئی سچا معبود نہیں سوائے اللہ کے، پس اُسے بخش دے اور اس پر رحم فرما، اور ہمیں اس کے ثواب سے محروم نہ کر، اور اس کے فتنے میں نہ ڈال۔ الہی ! اگر یہ ستھرا تھا تو اسے ستھرا فرما دے اور اگر یہ خطا کار تھا اور اسے بخش دے۔

(۵) الہی ! تیرا یہ بندہ اور تیری باندی کا بچہ تیری رحمت کا محتاج ہے اور تُو اُسے عذاب کرنے سے غنی ہے، اگر نیک تھا اس کی نیکیاں زیادہ کر اور اگر بد تھا تو اُس سے درگزر فرما۔

(۶) الہی ! تیرا یہ بندہ اور تیرے بندے کا بیٹا گواہی دیتا تھا کہ کوئی سچا معبود نہیں مگر اللہ، اور یہ کہ محمد تیرے

Fatawa Razawiyya Volume Nine

...servants and Your Messenger (may Allah Almighty bless him and grant him peace), and You know his state better than us. If he was righteous, increase his righteousness, and if he was an evildoer, forgive him, and do not deprive us of his reward, and do not put us into trial after him. (7) Your servant has reached the morning by departing from this world and leaving it for its people, and he has become in need of You, while You are independent of him. And surely he used to bear witness that there is no true god but Allah, and Muhammad is Your servant and Your Messenger (may Allah Almighty bless him and grant him peace). O Allah! Forgive him and pardon him and unite him with his Prophet (may Allah Almighty bless him and grant him peace). (8) O Allah! You are the Lord of this funeral, and You created him, and You guided him to the path of Islam, and You took his soul, and You know best his hidden and manifest state. We have come to intercede, so forgive him. (9) O Allah! Forgive all our brothers and sisters and reform our mutual relations, and bring harmony to our hearts. O Allah! This is Your servant, so-and-so son of so-and-so, and we know nothing but good of him, and You have more knowledge of him than us, so forgive us and him. (10) O Allah! Indeed so-and-so son of so-and-so is in Your protection and the rope of Your security, so save him from the questioning of Munkar and Nakir and the punishment of Hell, for You are the One Who fulfills promises and is worthy of all praise. O Allah! Forgive him and have mercy on him, for surely You are the Forgiving, the Merciful. (11) O Allah! Give him refuge from Satan and the punishment of the grave. O Allah! Make the earth wide for his sides, and take his soul up to the heavens, and grant him Your pleasure. (12) O Allah! Surely You created us and we are Your servants, and You are our Lord and to You is our return. (13) O Allah! Forgive our predecessors and successors, the living and the dead, the young and the old, the present and the absent. O Allah! Do not deprive us of his reward and do not put us into trial after him. (14) O Allah, O most Merciful of all who show mercy, O Ever-Living, O Self-Sustaining, O Sole Creator of the heavens and the earths, O Possessor of Majesty and Honor! I ask You through the means of my testimony that You are Allah, the One, the Eternally Besought, Who neither begets nor was begotten, and there is none co-equal to Him.

फतवा रज़विया खंड नौ

...बंदे और तेरे रसूल हैं (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) और तू उसका हाल हमसे ज्यादा जानने वाला है। अगर यह नेक था तो उसकी नेकी बढ़ा और अगर बुरा था तो उसे बख्श दे, और हमें इसके सवाब से महरूम न कर और उसके बाद हमें फितने में न डाल। (७) तेरे उस बंदे ने सुबह की कि दुनिया से अलग हुआ और उसे दुनिया वालों के लिए छोड़ दिया, और तेरा मोहताज हुआ और तू उससे बे-नियाज़ (धनी) है। और बेशक वह गवाही देता था कि अल्लाह के सिवा कोई सच्चा माबूद नहीं और मुहम्मद तेरे बंदे और तेरे रसूल हैं (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम)। ऐ अल्लाह! उसे बख्श दे और उससे दरगुज़र फरमा और उसे उसके नबी सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम से मिला दे। (८) ऐ अल्लाह! तू इस जनाज़े का परवरदिगार है, और तूने ही इसे पैदा किया, और तूने ही इसे इस्लाम की राह दिखाई, और तूने ही इसकी जान कब्ज़ की, और तू उसके छुपे और ज़ाहिर हाल को खूब जानता है, हम हाज़िर हुए हैं और शफ़ाअत करने आए हैं तो उसे बख्श दे। (९) ऐ अल्लाह! हमारे सब भाइयों और बहनों को बख्श दे और हमारे आपस के ताल्लुकात की इस्लाह (सुधार) कर दे, और हमारे दिलों में मिलाप पैदा कर दे। ऐ अल्लाह! यह तेरा बंदा फ़लां बिन फ़लां है और हम तो उसे अच्छा ही जानते हैं और तुझे उसका इल्म हमसे ज्यादा है, तो हमें और उसे बख्श दे। (१०) ऐ अल्लाह! बेशक फ़लां बिन फ़लां तेरी पनाह और तेरी अमान की रस्सी में है, तो उसे मुनकर-नकीर के सवाल और दोज़ख के अज़ाब से बचा कि तू वादा पूरा करने वाला और सब खूबियों का अहल है। ऐ अल्लाह! उसे बख्श दे और उस पर रहम कर, बेशक तू ही बख्शने वाला मेहरबान है। (११) ऐ अल्लाह! इसे शैतान से और कब्र के अज़ाब से पनाह दे। ऐ अल्लाह! ज़मीन को इसकी दोनों करवटों से दूर कर (कुशादा कर), और इसकी रूह को आसमान पर ले जा, और उसे अपनी खुशूदी (प्रसन्नता) अता कर। (१२) ऐ अल्लाह! बेशक तूने हमें पैदा किया और हम तेरे बंदे हैं और तू हमारा रब है और तेरी ही तरफ हमें लौटना है। (१३) ऐ अल्लाह! बख्श दे हमारे अगलों-पिछलों और ज़िन्दा और मुर्दा और छोटों-बड़ों और हाज़िर और गायब को। ऐ अल्लाह! हमें उसके सवाब से महरूम न कर और उसके बाद हमें फितने में न डाल। (१४) ऐ अल्लाह, ऐ सब मेहरबानों से बढ़कर मेहरबान, ऐ ज़िन्दा, ऐ कायम रहने वाले, ऐ आसमानों और ज़मीनों को तन्हा बनाने वाले, ऐ बुजुर्गी और इज़्ज़त बख्शने वाले! मैं तुझसे इस वसीले से मांगता हूं कि मैं गवाही देता हूं कि तू ही अल्लाह है, यकता (एक), बे-नियाज़ (निस्पृह), कि न उसकी कोई औलाद है न वह किसी से पैदा हुआ, और न कोई उसके बराबर का है।

पृष्ठ २२१/९४८

بندے اور تیرے رسول ہیں (صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم) اور تُو اُس کا یہ حال زیادہ جاننے والا ہے ہم سے، اگر یہ نیک تھا تو اس کی نیکی بڑھا اور اگر بد تھا تو اسے بخش دے، اور ہمیں اس کے ثواب سے محروم نہ کر اور اس کے فتنے میں نہ ڈال۔ (۷) تیرے اُس بندے نے صبح کی کہ الگ ہوا دنیا سے اور اسے چھوڑ دیا اس کے لوگوں کے لئے، اور تیرا محتاج ہوا اور تُو اس سے غنی ہے۔ اور بیشک یہ گواہی دیتا تھا کہ کوئی سچا معبود نہیں سوا اللہ کے اور محمد تیرے بندے اور تیرے رسول ہیں صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم، الٰہی! اُسے بخش دے اور اس سے درگزر فرما اور اُسے ملا دے اس کے نبی صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم سے۔ (۸) الٰہی! تو اس جنازے کا پروردگار ہے، اور تونے اسے پیدا کیا، اور تو نے اسے اسلام کی راہ دکھائی، اور تو نے اس کی جان قبض کی، اور تو خوب جانتا ہے اُس کا چھپا اور ظاہر حال، ہم حاضر ہوئے ہیں اور شفاعت کرنے تو اسے بخش دے۔ (۹) الٰہی! بخش دے ہمارے سب بھائیوں بہنوں کو اور اصلاح کر دے ہمارے آپس میں، اور ملاپ کر دے ہمارے دلوں میں۔ الٰہی! یہ تیرا بندہ فلاں بن فلاں ہے اور ہم تو اس کو اچھا ہی جانتے ہیں اور تجھے اس کا علم ہم سے زیادہ ہے تو ہمیں اور اُسے بخش دے۔ (۱۰) الٰہی! بیشک فلاں بن فلاں تیری پناہ اور تیری امان کی رسی میں ہے تو اسے بچا سوال نکیرین اور عذاب دوزخ سے کہ تو وعدہ پورا کرنے والا سب خوبیوں کا اہل ہے۔ الٰہی! تو اسے بخش دے اور اس پر رحم کر بیشک تو ہی ہے بخشنے والا مہربان (۱۱) الٰہی! اسے پناہ دے شیطان سے اور قبر کے عذاب سے، الٰہی دُور کر زمین کو اس کی دونوں کروٹوں سے، اور آسمان پر لے جا اس کی روح کو، اور اسے اپنی خوشنودی عطا کر۔ (۱۲) الٰہی! بیشک تونے ہمیں پیدا کیا اور ہم تیرے بندے ہیں اور تُو ہمارا رب اور تیری ہی طرف ہمیں پھرنا ہے۔ (۱۳) الٰہی! بخش دے ہمارے اگلے پچھلے اور

زندہ اور مردہ اور خوردوکلاں اور حاضر اور غائب کو۔ الہی! ہمیں محروم نہ کر اُس کے ثواب سے اور ہمیں فتنے میں ڈال اُس کے بعد۔ (۱۴) اے اللہ، اے سب مہربانوں سے زیادہ مہربان، اے زندہ، اے پائندہ، اے تنہا بنانے والے آسمانوں اور زمینوں کے، اے بزرگی و عزت بخشنے والے! میں تجھ سے مانگتا ہوں اس وسیلہ سے کہ میں گواہی دیتا ہوں کہ تو ہی ہے اللہ یکتا بے نیاز کہ نہ کوئی اس کے اولاد نہ وہ کسی سے پیدا، نہ کوئی اس کے جوڑ کا۔

Fatawa Razawiya - Volume 9

O Allah! I ask of You and turn towards You through the intercession of Your Prophet Muhammad, the Prophet of Mercy, peace and blessings of Allah be upon him. O Allah! Indeed, when the Generous One Himself commands to ask, He never rejects that request. And indeed, You commanded us, so we prayed; and You permitted us, so we interceded. And You are more generous than every generous one, so accept our intercession for this deceased person, and have mercy on him/her in his/her loneliness, and have mercy on him/her in his/her anxiety, and have mercy on him/her in his/her helplessness, and have mercy on him/her in his/her distress, and grant him/her a great reward, and illuminate his/her grave, and make his/her face radiant, and make his/her resting place cool, and make his/her place fragrant, and give him/her a hospitable welcome, O Best of all hosts, O Best of all forgivers, O Best of all compassionate ones! Accept it, accept it, accept it. Send blessings, peace, and benedictions upon the leader of all intercessors, Muhammad, and upon all his family and companions. And all praise is due to Allah, the Lord of all the worlds.

Note: In the ninth and tenth prayers, if the name of the deceased's father is not known, say 'Adam, peace and blessings be upon him' instead, as he is the father of all humans. If even the name of the deceased is not known, then in the ninth prayer, be content with the words 'this male servant of Yours' or 'this female servant of Yours' and leave out 'so-and-so son of so-and-so' or 'so-and-so daughter of so-and-so'. In the tenth prayer, use 'this male servant of Yours' (for a man) or 'this female servant of Yours' (for a woman).

Note: If, God forbid, the deceased is known for sin and transgression, then in the ninth prayer, instead of 'we do not know anything but good,' say 'we have known good from him/her' because Islam is greater than any good. And Allah is Forgiving, Merciful.

Note: Some themes are repeated in these prayers, and repetition in prayer is beneficial and commendable. If there is haste or difficulty in memorizing, then reading the first, second, third, and fourth prayers up to 'bil qawl ath-thabit' and from eighth to twelfth is sufficient and ample, God willing. This remains less than half. If one wishes, the fourth and tenth can also be added; it will still be slightly more than half. If time permits, reading everything is better. While the Imam reads these prayers, the followers, after the famous prayer, if they do not remember any of these prayers, should just keep saying 'Ameen, Ameen'.

Method of Talqeen at the Grave: It is mentioned in a Hadith that the Master of the World (Prophet Muhammad), peace and blessings of Allah be upon him, says: When your...

(Footnote): Narrated by al-Tabarani in al-Mu'jam al-Kabir, al-Diya in al-Ahkam, Ibn Shahin in Dhikr al-Mawt, and others as we mentioned in the treatise 'Hayat al-Mawt'. 12 (m) Al-Tabarani narrated it in Mu'jam Kabir, Diya in Ahkam, Ibn Shahin in Dhikr al-Mawt, and other gentlemen also narrated it, as we explained in the treatise 'Hayat al-Mawt'. 12 (t)

फ़तावा रज़विया - जिल्द नहम

ऐ अल्लाह! मैं तुझसे माँगता हूँ और तेरी तरफ मुँह करता हूँ तेरे नबी मुहम्मद, जो रहमत के नबी हैं, सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम के वसीले से। ऐ अल्लाह! बेशक जब करीम खुद माँगने का हुक्म देता है तो वह उस सवाल को कभी रद्द नहीं करता। और बेशक तूने हमें हुक्म दिया तो हमने दुआ की, और तूने हमें इजाज़त दी तो हमने शफ़ाअत की, और तू हर करीम से बढ़कर करम वाला है, तो इस मय्यत के हक़ में हमारी शफ़ाअत क़बूल फरमा, और उसकी तन्हाई में उस पर रहम कर, और उसकी घबराहट में उस पर रहम कर, और उसकी बेबसी में उस पर रहम कर, और उसकी तकलीफ में उस पर रहम कर, और उसे बड़ा सवाब अता कर, और उसकी कब्र को नूरानी कर, और उसके चेहरे को पुर-नूर कर, और उसकी ख्वाबगाह (आरामगाह) को ठंडी कर, और उसकी जगह को महका दे, और उसे इज़्ज़त वाली मेहमान-नवाजी अता कर, ऐ तमाम मेज़बानों से बेहतर, ऐ तमाम बख्शने वालों से बेहतर, ऐ तमाम मेहरबानों से बेहतर! कबूल फरमा, कबूल फरमा, कबूल फरमा। तमाम शफाअत करने वालों के सरदार मुहम्मद और उनकी आल और असहाब सब पर दुरूद व सलाम और बरकतें नाजिल फरमा। और तमाम खूबियाँ अल्लाह के लिए हैं जो सारे जहाँ का पालने वाला है।

फायदा: नौवीं और दसवीं दुआओं में अगर मय्यत के बाप का नाम मालूम न हो, तो उसकी जगह 'आदम अलैहिस्सलाम' कहे क्योंकि वे तमाम इंसानों के बाप हैं। अगर खुद मय्यत का नाम भी मालूम न हो, तो नौवीं दुआ में 'हाज़ा अब्दुका' (यह तेरा बंदा) या 'हाज़िही अमतुका' (यह तेरी बांदी) लफ्ज़ पर इत्तेफाक करे और 'फलां इब्ने फलां' या 'फलां बिन्ते फलां' छोड़ दे, और दसवीं में उसकी जगह 'हाज़ा अब्दुका' (यह तेरा बंदा) या अगर औरत हो तो 'अमतुका हाज़ा' (तेरी यह बांदी) कहे।

फायदा: मय्यत का फस्क व फुजूर (गुनाहगारी) अगर माज़अल्लाह मालूम हो, तो नौवीं दुआ में 'ला नालमु इल्ला खैरा' की जगह 'कद अलिम्ना मिन्हा खैरा' कहे कि इस्लाम हर खैर से बढ़कर है। और अल्लाह बख्शने वाला निहायत मेहरबान है।

फायदा: इन दुआओं में कुछ मज़ामीन बार-बार आए हैं और दुआ में दोहराव मुफीद और पसंदीदा है। जैसे जल्दी हो या याद करने में मुश्किल हो, तो दुआ-ए-अव्वल, दोयम, सोयम और चहारम 'बिल-कौल-अस-साबित' तक और अष्टम से द्वादश (आठवीं से बारहवीं) तक पढ़े, इंशा अल्लाह यही काफी है। यह आधे से भी कम रह गया। अगर चाहे तो चहारम और दहम भी मिला ले, अब भी आधे से कुछ

ज्यादा रहेगा। और वक्त साथ दे तो सब पढ़ना बेहतर है। इमाम जितनी देर में ये दुआएं पढ़े, मुक्तदी मशहूर दुआ के बाद अगर इन दुआओं में से कुछ याद न हो तो सिर्फ आमीन-आमीन कहते रहें।

क़ब्र की तल्कीन का तरीका: हदीस में है कि हुज़ूर सद्र-ए-आलम सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम फरमाते हैं: जब तुम्हारा...

(फुटनोट): इसे तबरानी ने 'मोजम कबीर' में, ज़िया ने 'अहकाम' में, इब्न शाहीन ने 'ज़िक्रुल मौत' में रिवायत किया और दूसरे हज़रात ने भी रिवायत किया, जैसा कि हमने रिसाला 'हयातुल मौत' में बयान किया है। 12 (म) इसे तबरानी ने 'मोजम कबीर' में, ज़िया ने 'अहकाम' में, इब्न शाहीन ने 'ज़िक्रुल मौत' में रिवायत किया और दूसरे हज़रात ने भी रिवायत किया, जैसा कि हमने रिसाला 'हयातुल मौत' में बयान किया है। 12 (त)

पेज 222 का 948

الٰہی! میں تجھ سے مانگتا ہوں اور تیری طرف منہ کرتا ہوں وسیلے سے تیرے نبی محمد کے کہ رحمت کے نبی صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم۔ الٰہی! بیشک کریم جب خود حکم سوال کا دیتا ہے تو اس سوال کو کبھی رد نہیں کرتا۔ اور بیشک تو نے ہمیں حکم دیا تو ہم نے دعا کی، اور تو نے ہمیں اجازت دی تو ہم نے شفاعت کی، اور تو ہر کریم سے بڑھ کر کرم والا ہے، تو ہماری شفاعت اس میت کے حق میں قبول فرما، اور اس پر رحم کر اس کی تنہائی میں، اور اس پر رحم کر اس کی گھبراہٹ میں، اور اس پر رحم کر اس کی بیکسی میں، اور اس پر رحم کر اس کی تکلیف میں، اور اسے بڑا ثواب دے، اور اس کی قبر نورانی کر، اور اس کا چہرہ پُر نور کر، اور اس کی خواب گاہ ٹھنڈی کر، اور اس کی جگہ معطر کرے، اور اسے عزت والی مہمانی دے، اے سب میزبانوں سے بہتر، اے سب بخشنے والوں سے بہتر، اے سب مہربانوں سے بہتر! قبول فرما، قبول فرما، قبول فرما۔ درود و سلام وبرکات اتار سب شفیعوں کے سردار محمد اور ان کی آل اور اصحاب سب پر۔ اور سب خوبیاں اللہ کو جو سارے جہان کا پروردگار۔

فائدہ: نویں اور دسویں دعاؤں میں اگر میت کے باپ کا نام معلوم نہ ہو اس کی جگہ اٰدَمُ عَلَیْہِ الصَّلٰوۃُ وَالسَّلَام کہے سب آدمیوں کے باپ ہیں۔ اگر خود میت کا نام بھی نہ معلوم ہو تو نویں دعا میں لفظ ھٰذَا عَبْدُكَ یَا ھٰذِہِ اَمَتُكَ پر قناعت کرے فلاں ابن فلاں یا بنت فلاں کو چھوڑ دے اور دسویں میں اس کی جگہ عَبْدُكَ ھٰذَا (یہ تیرا بندہ) یا عورت ہو تو اَمَتُكَ ھٰذَا (تیری یہ باندی) کہے۔

فائدہ: میت کا فسق و فجور اگر معاذاللہ معلوم ہو تو نویں دعا میں لَا نَعْلَمُ اِلَّا خَیْرًا کی جگہ قَدْ عَلِمْنَا مِنْھَا خَیْرًا کہے کہ اسلام ہر خیر سے بڑھ کر ہے واللہ غَفُوْرٌ رَّحِیْمٌ۔

فائدہ: ان دعاؤں میں بعض مضامین مکرر بھی ہیں اور دعا میں تکرار مفید و مستحسن ہے، جیسے جلدی ہو یا یاد کرنے میں دقت جانے تو دعائے اول و دوم و سوم اور چہارم بالقول الثابت تک اور ہشتم اور دوازدہم تک پڑھے، ان شاء اللہ یہی کافی و وافی ہے، یہ نصف سے کم بھی کم رہ گیا اور چاہے تو چہارم دہم بھی ملائے اب بھی نصف سے کچھ زائد رہے گا، اور وقت مساعدت کرے تو سب کا پڑھنا اولیٰ ہے، امام جتنی دیر میں یہ دعائیں پڑھے مقتدی دعائے مشہور کے بعد اگر ان ادعیہ سے کچھ یاد نہ ہو صرف آمین آمین کہتے رہیں۔

طریقہ تلقینِ قبر: حدیث میں عہ ہے حضور سید عالم صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم فرماتے ہیں: جب تمہارا

عہ: عن رواہ الطبرانی المعجم الکبیر والضیاء فی الاحکام وابن شاہین فی ذکر الموت وأخرون کما ذکرنا فی حیاۃ الموت ۱۲منہ (م) اسے طبرانی نے معجم کبیر میں، ضیاء نے احکام میں، ابن شاہین نے ذکر الموت میں روایت کیا اور دوسرے حضرات نے بھی روایت کیا، جیسا کہ ہم نے رسالہ حیاۃ الموت میں بیان کیا ہے ۱۲منہ (ت)

Fatawa Ridawiyya (Right) Volume 9 (Left)

If any Muslim brother dies and you have finished leveling the soil over his grave, then one of you should stand at the head of his grave and say: "O so-and-so, son of so-and-so!" for he will hear but will not answer. Then say: "O so-and-so, son of the daughter of so-and-so!" and he will sit up straight. Then say, then say: "O so-and-so, son of the daughter of so-and-so!" and he will say: "Instruct us, may Allah have mercy on you." However, you will not be aware of his speaking. Then say: "Remember that upon which you departed from the world: the testimony that there is no god but Allah and that Muhammad is His servant and His Messenger, may Allah bless him and grant him peace. (And that you were pleased) You were pleased with Allah as your Lord, with Islam as your religion, with Muhammad (may Allah bless him and grant him peace) as your Prophet, and with the Qur'an as your leader (Imam)." (The two angels, Munkar and Nakir, will then hold each other's hands and say: "Let us go, for why should we sit with one whose proof people have already taught him?") At this, someone asked: "O Messenger of Allah! If his mother's name is not known?" He replied: "Then attribute him to Eve (Hawwa)."

Rashid bin Sa'd (Note), Damrah bin Habib, and Hakim bin Umayr—all three of whom are from among the eminent Tabi'un Imams—state that when the soil on the grave is leveled and people...

(Note): It was narrated from them by Sa'id bin Mansur in his 'Sunan' (12 menh) (N) | Sa'id bin Mansur narrated it from them in his Sunan (T).

1. Kanz al-Ummal, with reference to Tabarani, Hadith 42406, published by Mu'assasat al-Risalah, Beirut, 15/605
2. Kanz al-Ummal, with reference to Tabarani, Hadith 42406, published by Mu'assasat al-Risalah, Beirut, 15/605

फ़तावा रज़विया (दाएं) जिल्द नवां (बाएं)

जब कोई मुसलमान भाई मर जाए और तुम उसकी क़ब्र पर मिट्टी बराबर कर चुको, तो तुममें से एक व्यक्ति उसकी क़ब्र के सिरहाने खड़ा होकर कहे: "ऐ फ़ुलां इब्ने फ़ुलां (ऐ फ़लां के बेटे फ़लां)!" क्योंकि वह सुनेगा लेकिन जवाब नहीं देगा। फिर कहे: "ऐ फ़ुलां बिन बिन्ते फ़ुलां!" वह सीधा होकर बैठ जाएगा। फिर कहे, फिर कहे: "ऐ फ़ुलां बिन बिन्ते फ़ुलां!" वह कहेगा: "हमें हिदायत (निर्देश) दें, अल्लाह आप पर रहम फ़रमाए।" मगर तुम्हें उसके कहने की ख़बर नहीं होगी। फिर कहे: "याद कर उस चीज़ को जिसके साथ तू दुनिया से निकला: इस गवाही को कि अल्लाह के सिवा कोई माबूद नहीं और मुहम्मद उसके बंदे और रसूल हैं, सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम; (और कि तू राज़ी था) तू राज़ी हुआ अल्लाह के रब होने पर, इस्लाम के दीन होने पर, मुहम्मद (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) के नबी होने पर और क़ुरआन के इमाम (मार्गदर्शक) होने पर।" (नकीरैन यानी मुनकर-नकीर एक-दूसरे का हाथ पकड़ कर कहेंगे: "चलो, हम उसके पास क्यों बैठें जिसकी दलील लोगों ने उसे सिखा दी है।") इस पर किसी ने अर्ज़ की: "या रसूल अल्लाह! अगर उसकी माँ का नाम मालूम न हो?" आपने फ़रमाया: "तो हव्वा की तरफ़ निस्बत दे (यानी उसे हव्वा का बेटा कहे)।"

राशद बिन साद (नोट), ज़मरा बिन हबीब और हकीम बिन उमैर—कि ये तीनों अज्जला (महान) ताबईन इमामों में से हैं—फ़रमाते हैं कि जब क़ब्र पर मिट्टी बराबर कर चुकें और लोग...

(नोट): इन से सईद बिन मंसूर ने अपनी सुनन में रिवायत किया (त)।

1. कन्ज़ुल उम्माल, बहवाला तबरानी हदीस 42406, मुअस्ससतुर् रसाला बेरूत द्वारा प्रकाशित, 15/605
2. कन्ज़ुल उम्माल, बहवाला तबरानी हदीस 42406, मुअस्ससतुर् रसाला बेरूत द्वारा प्रकाशित, 15/605

पृष्ठ 223 / 948

فتاوی رضویہ (دائیں) جلد نہم (بائیں)

کوئی بھائی مسلمان مرے اور اس کی قبر پر مٹی برابر کر چکوتو تم میں سے ایک شخص اس کی قبر کے سرہانے کھڑا ہو کر کہے یا فُلان ابنُ فُلانَة کہ وہ سُنے گا اور جواب نہ دے گا۔ پھر کہے یا فُلان بن بنت فلانة وہ سیدھا ہو کر بیٹھ جائے گا پھر کہے، پھر کہے یا فلاں بن بنت فلانة وہ کہے گا ہمیں ارشاد کر، اللہ تعالٰی تجھ پر رحم فرمائے۔ مگر تمہیں اس کے کہنے کی خبر نہیں ہوتی۔ پھر کہے اذکُر ماخَرَجتَ عَلَیہِ مِنَ الدُّنیَا شَھَادَةَ اَنْ لَّا اِلَہَ اِلَّا اللہُ وَاَنَّ مُحَمَّدًا عَبْدُہ، وَرَسُولُہ، صَلَّی اللہُ تَعَالٰی عَلَیہِ وَسَلَّمَ (وَاَنَّكَ رَضِیتَ) اِنَّكَ رَضِیْتَ بِاللہِ رَبًّا وَّبِالْاِسْلَامِ دِیْنًا وَّبِمُحَمَّدٍ صَلَّی اللہُ تَعَالٰی عَلَیْہِ وَسَلَّمَ وَبِالْقُرْآنِ اِمَامًا ط (نکیرین ایک دوسرے کا ہاتھ پکڑ کر کہیں گے چلو ہم اس کے پاس بیٹھیں گے جسے لوگ اس کی حجت سکھا چکے۔ اس پر کسی نے عرض کی : یارسول اللہ ! اگر اس کی ماں کا نام معلوم نہ ہو، فرمایا: تو حوّا کی طرف نسبت کرے۔

راشد بن سعدعہ وضمرہ بن حبیب و حکیم بن عمیر کہ تینوں صاحب اجلہ ائمہ تابعین سے ہیں فرماتے ہیں جب قبر پر مٹی برابر کر چکیں اور لوگ

عہ : رواہ عنھم سعید بن منصور فی سننہ ۱۲ منہ (ن) | ان سے اس کو سعید بن منصور نے اپنی سنن میں روایت کیا (ت)

1 کنز العمال بحوالہ طبرانی حدیث ۴۲۴۰۶ مطبوعہ موسسۃ الرسالۃ بیروت ۱۵/ ۶۰۵ 2 کنز العمال بحوالہ طبرانی حدیث ۴۲۴۰۶ مطبوعہ موسسۃ الرسالۃ بیروت ۱۵/ ۶۰۵

صفحہ 223 / 948

Fatawa Razawiya Volume 9

When returning, it was considered recommended to stand by the grave of the deceased and say: "O so-and-so, say (my word is 'There is no god but Allah' three times, then say: say my word 'My Lord is Allah, my religion is Islam, and my Prophet is Muhammad, peace and blessings of Allah be upon him'). The humble servant (Imam Ahmad Raza), may Allah forgive him, adds this much more: 'And know (O man/O woman) that these two who have come to you or will come to you are two servants of Allah; they can neither harm nor benefit except by Allah's permission. So do not fear and do not grieve, and bear witness that your Lord is Allah, your religion is Islam, and your Prophet is Muhammad, peace and blessings of Allah be upon him. May Allah keep us and you steadfast with the firm word in the life of this world and in the hereafter. Indeed, He is the All-Forgiving, the All-Merciful.'"

Translation: Say: My Lord is Allah, my religion is Islam, and my Prophet is Muhammad, peace and blessings of Allah be upon him. (The humble servant, may Allah forgive him, added this much more:) And know that these two who have come to you or will come to you, they are also two servants of Allah, they neither benefit nor harm except by God's command. So do not fear nor grieve, and bear witness that your Lord is Allah, and your religion is Islam, and your Prophet is Muhammad, peace and blessings of Allah be upon him. May Allah keep us, and you, steadfast on the right word, in the life of this world and in the hereafter. Indeed, He is the All-Forgiving, the Merciful.

The documentation and strengthening of the Hadith of Talqin (Instruction to the deceased) has been mentioned by the humble servant in the second objective and fifth chapter of the book 'Hayat-ul-Amwat fi Bayan Sama-ul-Amwat', and the narrations and refinement of the issue of Talqin in the third objective, thirteenth chapter, which, by the grace of Allah Almighty, is sufficient to dispel all the misconceptions of the Wahhabis.

| And success is with Allah, and praise be to Allah, the Lord of the worlds, and may Allah Almighty's blessings be upon our master Muhammad and all his progeny. And Allah knows best. | And success is only from God, and all praise is for Allah who is the Sustainer of all the worlds, and God the Exalted, the Glorified, is the most knowledgeable. May He send mercy upon our master Muhammad and his entire progeny, and God is pure and exalted. |

फ़तावा रज़विया जिल्द नौ (9)

जब वापस लौटें, तो इसे मुस्तहब (पसंदीदा) समझा जाता था कि मय्यत (मृतक) की क़ब्र के पास खड़े होकर कहा जाए: "ऐ फलाँ, कहो (मेरा कहना है 'ला इलाहा इल्लल्लाह' तीन बार, फिर कहा जाए: कहो मेरा कहना 'रब्बी अल्लाह व दीनी अल-इस्लाम व नबीय्यी मुहम्मद सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम')। फ़क़ीर (इमाम अहमद रज़ा), अल्लाह उसे माफ़ करे, इसमें इतना और ज़्यादा करता है: 'और जान लो (ऐ पुरुष/ऐ स्त्री) कि ये दो जो तुम्हारे पास आए हैं या आएंगे, ये अल्लाह के दो बंदे हैं; न ये नुक़सान पहुँचा सकते हैं और न नफ़ा (लाभ) दे सकते हैं सिवाय अल्लाह के हुक्म के। तो न डरो और न गम करो, और गवाही दो कि तुम्हारा रब अल्लाह है, तुम्हारा दीन इस्लाम है, और तुम्हारे नबी मुहम्मद सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम हैं। अल्लाह हमें और तुम्हें दुनिया की ज़िन्दगी और आख़िरत में मज़बूत बात पर कायम रखे। बेशक वही बख्शने वाला मेहरबान है।'

अनुवाद: कहो मेरा रब अल्लाह और मेरा दीन इस्लाम और मेरा नबी मुहम्मद सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम (फ़क़ीर, अल्लाह उसे माफ़ करे, ने इतना और ज़्यादा किया) और जान ले कि ये दो जो तेरे पास आए या आएंगे तो ये भी दो बंदे हैं अल्लाह के, न नफ़ा दें न नुक़सान पहुँचाएँ मगर ख़ुदा के हुक्म से। तो न डर और न ग़म कर, और गवाही दे कि तेरा रब अल्लाह है और तेरा दीन इस्लाम, और तेरे नबी मुहम्मद सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम, साबित रखे हमें अल्लाह, और तुझ को ठीक बात पर, दुनिया की ज़िंदगी और आख़िरत में। बेशक वही है बख्शने वाला मेहरबान।

हदीस-ए-तल्क़ीन की तख़रीज व तक़वियत फ़क़ीर ने किताब 'हयातुल अमवात फी बयान समाउल अमवात' के मक़सद दोम व फ़स्ल पंजुम और मसला-ए-तल्क़ीन की रिवायात व तन्क़ीह मक़सद सोयम फ़स्ल सीज़दहुम में ज़िक्र की है, जिससे अल्लाह तआला के फ़ज़्ल से वहाबियों के तमाम वहमों का काफी तसल्लीबख्श जवाब मिलता है।

| और अल्लाह ही की तौफ़ीक़ से है और तमाम तारीफ़ें अल्लाह के लिए हैं जो तमाम जहानों का पालने वाला है, और अल्लाह तआला की रहमत हो हमारे सरदार मुहम्मद और उनकी तमाम औलाद पर, और अल्लाह ही बेहतर जानने वाला है। | और ख़ुदा ही से तौफ़ीक़ है, और सारी तारीफ़ अल्लाह के लिए जो सारे जहानों का परवरदिगार है, और ख़ुदा-ए-बर्तर सुब्हानहु व तआला आलम। हमारे आका हज़रत मुहम्मद और उनकी तमाम आल पर रहमत नाज़िल फ़रमाए और ख़ुदा-ए-पाक व बर्तर। |

فتاوٰی رضویہ جلد نہم

واپس جائیں تو مستحب سمجھا جاتا تھا کہ میت سے اس کی قبر کے پاس کھڑے ہو کر کہا جائے یَا فُلَانُ قُلْ (قَوْلِي لَا إِلٰهَ إِلَّا اللهُ تین بار، پھر کہا جائے قُلْ قَوْلِي رَبِّيَ اللهُ وَدِينِيَ الْإِسْلَامُ وَنَبِيِّيَ مُحَمَّدٌ صَلَّى اللهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ فقیر غفراللہ تعالی اس قدر اور زائد کرتا ہے وَاعْلَمُوا وَاعْلَمِي أَنَّ هٰذَيْنِ الَّذِينَ أَتَيَاكَ أَوْ يَأْتِيَانِكَ نِكٌ هُوَ عَبْدَانِ لِلّٰهِ لَا يَضُرَّانِ وَلَا يَنْفَعَانِ إِلَّا بِإِذْنِ اللهِ فَلَا تَخَفْ فَلَا تَخَافِي وَلَا تَحْزَنْ تَحْزَنِي وَأَشْهَدُ وَأَشْهَدِي أَنَّ رَبَّكَ اللهُ وَدِيْنَكَ الْإِسْلَامُ وَنَبِيَّكَ مُحَمَّدٌ صَلَّى اللهُ تَعَالٰى عَلَيْهِ وَسَلَّمَ ثَبَّتَنَا اللهُ وَإِيَّاكَ بِالْقَوْلِ الثَّابِتِ فِي الْحَيٰوةِ الدُّنْيَا وَفِى الْآخِرَةِ إِنَّهُ هُوَ الْغَفُورُ الرَّحِيمُ ہ

ترجمہ : کہہ میرا رب اللہ اور میرا دین اسلام اور میرا نبی محمد صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم (فقیر غفر اللہ تعالیٰ نے اس قدر اور زائد کیا) اور جان لے کہ یہ دو جو تیرے پاس آئے یا آئیں گے تو یہ بھی دو بندے ہیں اللہ کے، نہ نفع دیں نہ نقصان پہنچائیں مگر خدا کے حکم سے۔ تو نہ ڈر اور نہ غم کر ، اور گواہی دے کہ تیرا رب اللہ ہے اور تیرا دین اسلام ، اور تیرے نبی محمد صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم ، ثابت رکھے ہمیں اللہ ، اور تجھ کو ٹھیک بات پر ، دنیا کی زندگی اور آخرت میں۔ بیشک وہی ہے بخشنے والا مہربان۔

حدیثِ تلقین کی تخریج و تقویت فقیر نے کتاب حیوۃ الاموات فی بیان سماع الاموات کے مقصد دوم و فصل پنجم اور مسئلہ تلقین کی روایات و تنقیح مقصد سوم فصل سیز دہم میں ذکر کی جس سے بحمد اللہ تعالیٰ وہابیہ کے تمام اوہام کی تسکین کافی ہوتی ہے ،

| وباللہ التوفیق والحمد للہ رب العلمین وصلی اللہ تعالیٰ علی سیدنا محمد و آلہ اجمعین واللہ | اور خدا ہی سے توفیق ہے، اور ساری تعریف اللہ کے لئے جو سارے جہانوں کا پروردگار ہے، اور خدائے

برتر سبحانہ، وتعالیٰ اعلم۔ ہمارے آقا حضرت محمد اور ان کی تمام آل پر رحمت نازل فرمائے اور

خدائے پاک و برتر |

Fatawa Razawiyya, Volume 9

And Allah the Exalted knows best. The Knower of the truth (T).

Question No. 63: From Mumbai, Jamli Mohalla, house of Haji Muhammad Siddiq Jaffar, sent by Moulvi Muhammad Umar-ud-din Sahib, 3 Jumada al-Ula 1311 AH. What do the scholars of religion and the jurists of the clear Sharia say regarding the practice after the funeral prayer, where the rows are broken and the prayer "O Allah, do not deprive us of his reward and do not put us to trial after him, and forgive us and him" or similar to it is offered? This has been practiced and introduced since ancient times in Mumbai and its surroundings like Malegaon etc. cities. Is it correct or not? And if it is permissible, is the statement of some individuals who call it forbidden and prohibited correct or not? Explain so you may be rewarded.

The Answer:

In the name of Allah, the Most Gracious, the Most Merciful. Praise be to Allah, the Answerer of prayers, and the best of blessings and most complete salutations be upon the refuge of the living and the resort of the dead, pure goodness and sheer blessings, in the first life and the eternal life after death, and upon his family and companions of noble attributes, as long as the past is gone and the coming is near. Amen. (Urdu Translation: In the name of Allah, the most Gracious, the most Merciful. And better blessings and more complete salutations upon him who is the refuge of the living, the return of the dead, pure goodness and absolute blessings, in the life of the world as well as in the superior life after death, and upon his progeny and companions, who are of noble qualities, as long as the past era and the coming one remain near. O Allah, accept it! (T))

Supplicating for deceased Muslims is absolutely beloved and legally recommended (Mandub). The verses and Hadiths regarding its general encouragement and recommendation are eloquent without any time constraint or specification; undoubtedly, the ruling of permissibility applies to it at all times, as long as prohibition at a specific time is not proven from the pure Sharia. To time-bind a general Sharia ruling by one's own self and to restrict a free one is 'Tashri' min 'ind an-nafs' (legislating from oneself). Although prayer (Salah) is the greatest and most beautiful of ways, there is no command to limit oneself to it, nor is there certainty in making it a habit; rather, the blessed Sharia commands seeking the breezes of mercy frequently and repeatedly from time to time; who knows at what time the prayer

might be accepted. In a Sahih Hadith, the Holy Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) said:

"Let him increase in supplication." (Reported by al-Tirmidhi and al-Hakim from Abu Hurayra, may Allah be pleased with him. He (Hakim) said it is Sahih and they (scholars) concurred. (T)) (Urdu Translation: Increase the supplication. Tirmidhi and Hakim narrated it from Hazrat Abu Hurairah (may Allah be pleased with him) and Hakim said it is correct (Sahih), and scholars maintained it. (T))

---

1. Jami' at-Tirmidhi, Chapters on Supplications, printed by Amin Company Kutub Khana Rashidiyah Delhi, 2/217.

फ़तावा रज़विया, जिल्द 9

और अल्लाह तआला बेहतर जानता है। वह सच्चाई को जानने वाला है (त)।

मसला नंबर 63: मुंबई, जामली मोहल्ला, हाजी मुहम्मद सिद्दीक़ जाफ़र के घर से, मौलवी मुहम्मद उमर-उद-दीन साहब द्वारा भेजा गया, 3 जमादी-उल-अव्वल 1311 हिजरी। क्या फ़रमाते हैं दीन के उलमा और शरीयत-ए-मतीन के मुफ़्ती कि जनाज़े की नमाज़ के बाद सफ़ें तोड़कर यह दुआ "अल्लाहुम्मा ला तहरिमना अजरहु व ला तफ़्तिन्ना बादहु वफ़िर लना व लहू" या इसके जैसी कोई दुआ की जाती है, जैसा कि मुंबई और उसके आसपास जैसे मालेगाँव आदि शहरों में प्राचीन काल से प्रचलित और व्यवहार में है, क्या यह सही है या नहीं? और इसके जायज़ होने की स्थिति में, कुछ लोग जो इसे हराम और वर्जित कहते हैं, उनका कहना सही है या नहीं? बयान फ़रमाएँ, आपको सवाब मिलेगा।

उत्तर:

बिस्मिल्लाह हिर्रहमान निर्रहीम, अल्हम्दुलिल्लाहि मुजीब-उद-दावत व अफ़ज़ल-उस-सलात व अकमल-उत-तहियात अला मआज़ अल-अहिया व मआद अल-अमवात खालिस अल-खैर व महज़ अल-बरकात फ़िल हयात-उल-उला वल हयात-उल-ऐनी बाद अल-ममात व अला आलिहि व सहबिहि करीमी-उस-सिफ़ात मा बाद माज़ व क़ुरब आत आमीन। (उर्दू अनुवाद: अल्लाह के नाम से शुरू जो निहायत मेहरबान रहम वाला। और बेहतर दरूद और कामिल तर तहियतें उन पर जो ज़िन्दों की पनाहगाह, मुर्दों का मरजा, खालिस खैर और महज़ बरकात हैं, दुनिया की ज़िन्दगी में भी, और मौत के बाद की आला ज़िन्दगी में भी, और उनकी आल व असहाब पर भी, जो बुज़ुर्ग सिफ़ात वाले हैं, जब तक कि गुज़रा हुआ दौर और आने वाला क़रीब होता रहे। इलाही क़बूल फ़रमा! (त))

मुसलमानों के मुर्दों के लिए दुआ करना क़तई तौर पर पसंदीदा और शरई तौर पर मुस्तहब है। इसकी आम तरग़ीब और पसंदगी पर आयतें और हदीसें बिना किसी समय या विशिष्टता की पाबंदी के साफ़ तौर पर मौजूद हैं; निःसंदेह, हर समय इस पर जायज़ होने का हुक्म लागू होता है, जब तक कि शरीयत-ए-मुतह्हरा से किसी खास समय पर इसकी मनाही साबित न हो जाए। शरीयत के किसी आम हुक्म को अपनी मर्जी से किसी समय के साथ बांधना और स्वतंत्र को पाबंद बनाना अपनी तरफ से शरीयत बनाना है। यद्यपि नमाज़ सबसे महान और खूबसूरत ज़रिया है, मगर सिर्फ उसी पर संतोष करने का हुक्म नहीं है और न ही उसकी आदत पर कोई यक़ीन है, बल्कि शरीयत-ए-मुबारक समय-

समय पर कसरत से और बार-बार रहमत की हवाओं को तलाश करने का हुक्म देती है; क्या पता किस वक्त की दुआ क़बूल हो जाए। सही हदीस में हुज़ूर अक़दस सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम ने फ़रमाया:

"दुआ की कसरत करो।" (इसे तिर्मिज़ी और हाकिम ने हज़रत अबू हुरैरा रज़ियल्लाहु तआला अन्हु से रिवायत किया और हाकिम ने कहा कि यह सही है, और उलमा ने इसे बरक़रार रखा। (त)) (उर्दू अनुवाद: दुआ की कसरत करे। इसे तिर्मिज़ी व हाकिम ने हज़रत अबू हुरैरा रज़ियल्लाहु तआला अन्हु से रिवायत किया और हाकिम ने कहा सही है, और उलमा ने इसे बरकरार रखा। (त))

---

1. जामिउत तिर्मिज़ी, अबवाबुद दावात, मुद्रित अमीन कंपनी कुतुब खाना रशीदिया दिल्ली, 2/217।

فتاوٰی رضویہ جلد نہم

وتعالٰی اعلم۔ خوب جاننے والا ہے (ت)

مسئلہ نمبر ۶۳: از بمبئی جاملی محلہ مکان حاجی محمد صدیق جعفر مرسلہ مولوی محمد عمر الدین صاحب ۳ جمادی الاولٰی ۱۳۱۱ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین و مفتیان شرع متین کہ بعد نماز جنازہ کے صفوف توڑ کر یہ دُعا اَللّٰھُمَّ لَا تَحْرِمْنَا اَجْرَہٗ وَلَا تَفْتِنَّا بَعْدَہٗ وَاغْفِرْ لَنَا وَ لَہٗ یا مثل اس کے کی جاتی ہے جیسا کہ بمبئی اور اس کے اطراف مانند مالاگاؤں وغیرہ بلاد میں قدیم الایام سے متعارف و متعامل درست ہے یا نہیں؟ اور بر تقدیر جواز بعض اشخاص جو اس کو حرام و ممنوع کہتے ہیں ان کا قول صحیح ہے یا نہیں؟ بینوا توجروا الجواب:

بسم اللہ الرحمٰن الرحیم، الحمد للہ مجیب الدعوات وافضل الصلوۃ واکمل التحیات علی معاذ الاحیاء ومعاد الاموات خالص الخیر ومحض البرکات فی الحیوۃ الاولٰی والحیوۃ العینی بعد الممات وعلی آلہ وصحبہ کریمی الصفات ما بعد ماض وقرب آت آمین۔ اللہ کے نام سے شروع جو نہایت مہربان رحم والا۔ اور بہتر درود اور کامل تر تحیتیں ان پر جو زندوں کی پناگاہ، مردوں کا مرجع، خالص خیر اور محض برکات ہیں، دنیا کی زندگی میں بھی، اور بعد موت کی بالاتر زندگی میں بھی، اور ان کی آل و اصحاب پر بھی، جو بزرگ صفات والے ہیں، جب تک کہ گزرا ہوا دور اور آنے والا قریب ہوتا رہے۔ الٰہی قبول فرما! (ت)

اموات مسلمین کے لئے دُعا قطعاً محبوب و شرعاً مندوب جس کی ندب و ترغیب مطلق پر آیات و احادیث بلا توقیت و تخصیص، ناطق تو بلا شبہ ہر وقت اُس پر حکم جواز صادق، جب تک کسی خاص وقت ممانعت شرعِ مطہر سے ثابت نہ ہو مطلق شرع کو از پیش خویش موقت اور مرسل کو

مقید کرنا، تشریع من عند النفس ہے اور نماز ہر چند اعظم و اجمل طرق ہے مگر اس پر اقتصار کا حکم نہ اُس کے اعتیاد پر جزم، بلکہ شرعِ مبارک وقتاً فوقتاً بکثرت اور بار بار تعرضِ نفحاتِ رحمت کا حکم فرماتی ہے کیا معلوم کس وقت کی دعا قبول ہو جائے۔ صحیح حدیث میں حضور اقدس صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم نے فرمایا: لیکثر من الدعاء اخرجتہ الترمذی والحاکم عن ابی ھریرہ رضی اللہ تعالیٰ عنہ وقال صحیح واقروہ۔ دعا کی کثرت کرے۔ اسے ترمذی و حاکم نے حضرت ابوہریرہ رضی اللہ تعالیٰ عنہ سے روایت کیا اور حاکم نے کہا صحیح ہے، اور علماء نے اسے برقرار رکھا۔ (ت)

---

1 جامع الترمذی ابواب الدعوات مطبوعہ امین کمپنی کتب خانہ رشیدیہ دہلی ۲ / ۲۱۷

Fatawa Rizvia, Volume 9

It is narrated from Anas (may Allah be pleased with him) in Mustadrak Hakim and Sahih Ibn Hibban that the Holy Prophet (peace and blessings of Allah be upon him and his family) said:

"Do not show weakness in making supplications (du'a), for no one will perish while making supplications." In Hirz-e-Thameen, the meaning is given as: do not be negligent or lazy in performing supplications. (T)

It is narrated in Musnad Abu Ya'la from Jabir bin Abdullah (may Allah be pleased with both of them) that the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) said:

"Keep calling upon Allah Almighty day and night, for supplication is the weapon of a believer."

Tabarani in Kitab-ud-Dua, Ibn Adi in Kamil, Imam Tirmidhi in Nawadir, and Bayhaqi in Shu'ab-ul-Iman narrate from Abu al-Shaikh and Quda'i on the authority of Umm al-Mu'minin Siddiqah (may Allah be pleased with her) that the Master of the Universe (peace and blessings of Allah be upon him) said:

"Verily, Allah Almighty loves those who supplicate persistently and repeatedly."

Tabarani in Mu'jam al-Kabir narrates from Muhammad bin Maslamah (may Allah be pleased with him) that the luminous Holy Prophet, the Master of Messengers (peace and blessings of Allah be upon him) said:

"Verily, for your Lord, there are certain fragrant breezes (of mercy) during the days of your time; so expose yourselves to them. Perhaps one of those breezes will touch you, after which you will never be unfortunate." This means: keep seeking them (i.e., keep supplicating at all times—sitting, standing, lying down; who knows when the treasures of divine mercy will be opened?) so that perhaps a manifestation (tajalli) might reach you as well, so that misfortune never returns.

Footnotes: 1. Al-Mustadrak 'ala al-Sahihayn, Kitab-ud-Dua, published by Dar-ul-Fikr, Beirut, 1/294. 2. Hirz-e-Thameen Sharh Hisn-e-Hasin, under the mentioned hadith, Afzal al-Matabi', Lucknow, p. 11. 3. Musnad Abu Ya'la, Hadith 1806, Ad-Da'wat, etc., published by Mu'assasat 'Ulum al-Qur'an, Beirut, 329/2. 4. Nawadir al-Usul, Principle 180 on persistence in supplication, published by Dar Sadir, Beirut, p. 220. 5. Al-

Mu'jam al-Kabir, narrated from Muhammad bin Maslamah, Hadith 519, published by Maktabah Faisaliyah, Beirut, 19/234.

फ़तावा रज़विया, जिल्द नौ (९)

मुस्तदरक हाकिम और सहीह इब्न हिब्बान में हज़रत अनस (रज़ियल्लाहु अन्हु) से मरवी है कि हुज़ूर अक़दस (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) फ़रमाते हैं:

"दुआ करने में कमज़ोरी और कमी न करो क्योंकि दुआ के साथ कोई हलाक नहीं होगा।" 'हिर्ज़-ए-थमीन' में इसका अर्थ यह है कि दुआ करने में कोताही और सुस्ती न करो। (त)

मुसनद अबू यअला में जाबिर बिन अब्दुल्लाह (रज़ियल्लाहु अन्हुमा) से मरवी है, रसूलुल्लाह (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) फ़रमाते हैं:

"रात-दिन अल्लाह तआला से दुआ मांगते रहो कि दुआ मुसलमान का हथियार है।"

तबरानी 'किताब-उद-दुआ', इब्न अदी 'कामिल', इमाम तिर्मिज़ी 'नवादिर' और बैहक़ी 'शुअतुल ईमान' में अबू अल-शैख़ और क़ुज़ाई के बाद उम्मुल मोमिनीन सिद्दीक़ा (रज़ियल्लाहु अन्हा) से रिवायत करते हैं, हुज़ूर सरवर-ए-आलम (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) फ़रमाते हैं:

"बेशक अल्लाह तआला कसरत से और बार-बार दुआ करने वालों को पसंद करता है।"

तबरानी 'मुअजम कबीर' में मुहम्मद बिन मसलमा (रज़ियल्लाहु अन्हु) से मरवी है, हुज़ूर पुर-नूर सैयदुल मुर्सलीन (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) फ़रमाते हैं:

"यानी तुम्हारे रब के लिए ज़माने के दिनों में कुछ अताएँ रहमतें, तजल्लियाँ हैं तो उनकी तलाश रखो (यानी खड़े-बैठे-लेटे हर वक़्त दुआ मांगते रहो, तुम्हें क्या मालूम किस वक़्त रहमत-ए-इलाही के ख़ज़ाने खोले जाएँ, शायद उनमें से कोई तजल्ली तुम तक भी पहुँच जाए कि फिर कभी बदबख़्ती न आए।"

फ़ुटनोट्स: 1. मुस्तदरक अलल-सहीहैन, किताब-उद-दुआ, प्रकाशित: दारुल फ़िक्र, बैरूत, 1/294. 2. हिर्ज़-ए-थमीन शरह हिस्न-ए-हसीन, उक्त हदीस के तहत, अफ़ज़ल अल-मताबे, लखनऊ, पृष्ठ 11. 3. मुसनद अबू यअला, हदीस 1806, अद-दअवात आदि, प्रकाशित: मुअस्ससतुल उलूम अल-क़ुरआन, बैरूत, 329/2. 4. नवादिर अल-उसूल, असल 180 दुआ में इसरार के बारे में, प्रकाशित: दार सादर, बैरूत, पृष्ठ 220. 5. अल-मुअजम अल-कबीर, मरवी अज़ मुहम्मद बिन मसलमा, हदीस 519, प्रकाशित: मकतबा फ़ैसलिया, बैरूत, 19/234.

فتاوٰی رضویہ ، جلد نہم

مستدرک حاکم و صحیح ابن حبان میں انس رضی اللہ تعالٰی عنہ سے ہے حضور اقدس صلوات اللہ تعالٰی وسلامہ علیہ وآلہ فرماتے ہیں:

لا تعجزوا فی الدعاء فانه لن یهلك مع الدعاء احد۱۔ قال فی الحرز المعنی لا تقصروا ولا تکسلوا فی تحصیل الدعاء ۲۔ | دُعا میں کسل و کمی نہ کرو کہ دعا کے ساتھ کوئی ہلاک نہ ہوگا— حرزِ ثمین میں ہے معنی یہ ہے کہ دُعا کی بجا آوری میں کوتاہی و سستی نہ کرو۔(ت)

مسند ابویعلی میں جابر بن عبداللہ رضی اللہ تعالٰی عنہما سے مروی، رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم فرماتے ہیں:

تدعون اللہ تعالی فی لیلکم ونهارکم فان الدعاء سلاح المؤمنین ۳۔ | رات دن اللہ تعالٰی سے دعا مانگتے رہو کہ دعا مسلمان کا ہتھیار ہے۔

طبرانی کتاب الدعاء، ابن عدی کامل، امام ترمذی، نوادر و بیہقی شعب الایمان میں بعد ابوالشیخ و قضاعی ام المومنین صدیقہ رضی اللہ تعالٰی عنہا سے روایت کرتے ہیں، حضور سرورِ عالم صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم فرماتے ہیں:

ان اللہ یحب الملحین فی الدعاء ۴۔ | بیشک اللہ تعالٰی بکثرت و بار بار دعا کرنے والوں کو دوست رکھتا ہے۔

طبرانی معجم کبیر میں محمد بن مسلمہ رضی اللہ تعالٰی عنہ سے راوی حضور پُر نور سید المرسلین صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم فرماتے ہیں:

ان لربکم فی ایام دھرکم نفحات فتعرضوا لھا لعل ان یصبکم نفحۃ منھا فلا تشقون بعدھا ابدا ۵۔ | یعنی تمہارے رب کے لئے زمانے کے دنوں میں کچھ عطائیں، رحمتیں، تجلیاں ہیں تو ان کی تلاش رکھو (یعنی کھڑے بیٹھے لیٹے ہر وقت دُعا مانگتے رہو، تمہیں کیا معلوم کس وقت رحمت الٰہی کے خزانے کھولے جائیں) شاید ان میں کوئی تجلی تمہیں بھی پہنچ جائے کہ پھر بدبختی نہ آئے۔

حواشی: 1 المستدرک علی الصحیحین کتاب الدعاء مطبوعہ دارالفکر بیروت ۲۹۴/۱ 2 حرزِ ثمین شرح حصنِ حصین حدیث مذکور کے تحت افضل المطابع لکھنو ص ۱۱ 3 مسند ابویعلی حدیث ۱۸۰۶ الدعوات الخ مطبوعہ مؤسسۃ علوم القرآن بیروت ۳۲۹/۲ 4 نوادر الاصول الاصل الثمانون و المایۃ فی الالحاح و الدعاء مطبوعہ دار صادر بیروت ص ۲۲۰ 5 المعجم الکبیر مروی از محمد بن مسلمہ حدیث ۵۱۹ مطبوعہ مکتبہ فیصلیہ بیروت ۲۳۴/۱۹

Fatawa Rizvia, Volume 9

Allama al-Munawi stated in 'al-Taysir': "Expose yourselves to them [the breaths of Divine mercy] by purifying the heart and cleansing it from impurities and blameworthy traits. And ask of Him, the Exalted, at all times - standing, sitting, on your sides, and while occupied with worldly tasks. For indeed, the servant does not know at which time the treasures of grace will be opened." (1)

Allama Munawi said in 'Taysir': So seek them in such a way that you purify and cleanse hearts from impurities and bad morals; and keep asking the Almighty Lord while standing, sitting, lying down, or doing worldly work, at all times, because a servant does not know at what time the treasures of mercy will open. (T)

In 'Siraj al-Munir', after mentioning something similar, he stated: "The Shaykh said: This is a Hasan (Good) Hadith." (2) (The Shaykh said: This hadith is good. T). When there is a clear command regarding supplication (dua)—that one should not show lethargy in it, but should ask abundantly, day and night, in every state—then how can sufficing with only one supplication be desired? Consequently, it is established from the radiant Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) to supplicate for the deceased both before and after the funeral prayer and to command the Muslims to supplicate.

Muslim narrated from Umm Salama (may Allah be pleased with her) that she said: The Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) said: "When you visit a sick person or the deceased, speak good, for indeed the angels say 'Amen' to whatever you say." (3) And narrated from her (may Allah be pleased with her), she said: The Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) visited Abu Salama when his eyes had fixed in a stare; he closed them (until she said), then he prayed: "O Allah, forgive Abu Salama, elevate his rank among those who are guided, grant him a successor among his descendants who remain behind, and forgive us and him, O Lord of the worlds, and expand for him his grave."

Imam Muslim narrates from Hazrat Umm Salama (may Allah be pleased with her) that the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) said: "When you come to a sick person or a deceased one, say good things, because the angels say 'Amen' to your words." The same Imam narrates from the same Umm Salama (may Allah be pleased with her), she says: The Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) came upon the death of Abu Salama, and his eyes were still open. The Master (Prophet) closed them (until she said) then the Master

(Prophet) prayed: "O Allah! Forgive Abu Salama, and elevate his rank among the guided people, and provide for him a righteous successor among those left behind."

1. Al-Taysir Sharh al-Jami' al-Saghir, mentioned under the Hadith 'Inna li-Rabbikum', Maktaba al-Imam al-Shafi'i, Riyadh, Saudi Arabia, 1/339
2. Al-Siraj al-Munir Sharh al-Jami' al-Saghir, under the aforementioned Hadith, printed at Matba'a al-Azhariya al-Masriya, Egypt, 1/12
3. Sahih Muslim, Kitab al-Jana'iz, printed by Noor Muhammad Asah al-Matabi', Karachi, 1/300

फ़तावा रज़विया, जिल्द 9

अल्लामा अल-मुनावी ने 'अत-तयसीर' में कहा: "अपने आप को उनके[ईश्वरीय दया की हवाओं के] सामने पेश करो, दिलों को अशुद्धियों और निंदनीय आचरणों से पवित्र और साफ़ करके। उनसे, जो महान हैं, हर समय माँगते रहो - खड़े, बैठे, करवटों पर, और यहाँ तक कि दुनियावी कामों में व्यस्त रहते हुए भी। क्योंकि वास्तव में, बंदा नहीं जानता कि किस समय कृपा के खजाने खुलेंगे।" (1)

अल्लामा मुनावी ने 'तयसीर' में फ़रमाया: तो उन्हें तलाश करो इस तरह कि दिलों को कलुषताओं (कदूरतों) और बुरे व्यवहार (अख़्लाक़) से पाक साफ़ कर लो, और बारी तआला से खड़े, बैठे, लेटे, दुनियावी काम करते, हर वक़्त माँगते रहो, इसलिए कि बंदे को कुछ पता नहीं कि किस वक़्त रहमत के ख़ज़ाने खुल जाएँ। (त)

'सिराज अल-मुनीर' में इसी तरह का ज़िक्र करके फ़रमाया: "शेख ने कहा: यह हदीस हसन (अच्छी) है।" (2) (शेख ने फ़रमाया: यह हदीस हसन है। त)। जब दुआ के बारे में साफ़ हुक्म है कि इसमें सुस्ती (कसल्) न करो, कसरत से माँगो, रात-दिन माँगो, हर हाल में माँगो। तो एक बार की दुआ पर बस करना (इक़्तिसार) कैसे वांछित हो सकता है। निश्चित रूप से हुज़ूर पुरनूर सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम से नमाज़ (जनाज़ा) से पहले और बाद दोनों वक़्त मय्यत के लिए दुआ फ़रमाना और मुसलमानों को दुआ का हुक्म देना साबित है।

मुस्लिम ने हज़रत उम्मे सलमा (रज़ियल्लाहु तआला अन्हा) से रिवायत की है कि उन्होंने कहा: अल्लाह के रसूल सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम ने फ़रमाया: "जब तुम बीमार या मय्यत के पास जाओ तो अच्छी बात बोलो, क्योंकि वास्तव में फरिश्ते तुम्हारी बातों पर 'आमीन' कहते हैं।" (3) और उन्हीं (रज़ियल्लाहु तआला अन्हा) से रिवायत है, उन्होंने कहा: अल्लाह के रसूल सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम अबू सलमा के पास आए जब उनकी आँखें फटी रह गई थीं; उन्होंने उन्हें बंद कर दिया (यहाँ तक कि उन्होंने कहा), फिर आपने दुआ की: "ऐ अल्लाह, अबू सलमा को माफ़ फ़रमा, हिदायत पाए हुए लोगों में उनका दर्जा बुलंद फ़रमा, उनके पीछे रह जाने वालों में उनका अच्छा जानशीन (उत्तराधिकारी) बना, और हमें और उन्हें माफ़ फ़रमा, ऐ दुनिया के रब, और उनके लिए उनकी क़ब्र को विस्तृत (कुशादा) कर दे।"

इमाम मुस्लिम हज़रत उम्मे सलमा रज़ियल्लाहु तआला अन्हा से रिवायत करते हैं कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम ने फ़रमाया: "जब तुम बीमार या मय्यत के पास आओ तो अच्छी

बात बोलो, इसलिए कि मलाइका (फरिश्ते) तुम्हारी बातों पर 'आमीन' कहते हैं।" वही इमाम, उन्हीं उम्मे सलमा रज़ियल्लाहु तआला अन्हा से रिवायत करते हैं कि वे फ़रमाती हैं: रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम अबू सलमा की वफ़ात पर तशरीफ़ लाए तो अभी उनकी आँख खुली हुई थी, सरकार ने बंद की (यहाँ तक फरमाया) फिर सरकार ने दुआ की: "ऐ अल्लाह! अबू सलमा को बख़्श दे और हिदायत प्राप्त लोगों में इसका दर्जा बुलंद फ़रमा और उनके पीछे रह जाने वालों में इनका नेक विकल्प (बदल) प्रदान कर।"

1. अत-तयसीर शरह अल-जामी अल-सगीर, हदीस 'इन्ना ली-रब्बिकुम' के तहत, मकतबा अल-इमाम अल-शाफ़ई, रियाद, सऊदी अरब, 1/339
2. अस-सिराज अल-मुनीर शरह अल-जामी अल-सगीर, उक्त हदीस के तहत, मतबा अल-अज़हरिया अल-मिस्रिया, मिस्र, 1/12 में मुद्रित
3. सहीह मुस्लिम, किताब अल-जनाइज़, नूर मुहम्मद असहा अल-मताबे, कराची, 1/300 द्वारा मुद्रित

पृष्ठ 948 का 227

فتاوٰی رضویہ، جلد نہم

قال العلامة المناوي في التيسير تعرضوا لها بتطهير القلب وتزكية من الاكدار والاخلاق الذميمة والطلب منه تعالٰی في كل وقت قياماً وقعوداً و على الجنب و وقت التصرف في الاشتغال الدنيا فان العبد لايدرى فی ای وقت يكون فتح خزائن المنن ١-

علامہ مناوی نے تیسیر میں فرمایا: تو انہیں تلاش کرو اس طرح کہ دلوں کو کدورتوں اور برے اخلاق سے پاک صاف کرلو، اور باری تعالٰی سے کھڑے، بیٹھے، لیٹے، دنیاوی کام کرتے، ہر وقت مانگتے رہو، اس لئے کہ بندے کو کچھ پتا نہیں کہ کس وقت رحمت کے خزانے کھل جائیں۔ (ت)\n سراج المنیر میں اس کے مثل ذکر کر کے فرمایا: قال الشیخ حدیث حسن ٢ (شیخ فرمایا: یہ حدیث حسن ہے۔ت) جب دعا کی نسبت صاف حکم ہے کہ اس میں کسل نہ کرو، بکثرت مانگو، رات دن مانگو، ہر حال مانگو۔ تو ایک بار کی دعا پر اقتصار کیونکر مطلوب ہوسکتا ہے۔ لاجرم حضور پرنور صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم سے قبل نماز وبعد نماز دونوں وقت میت کے لئے دعا فرمانا اور مسلمانوں کو دعا کا حکم دینا ثابت۔

مسلم عن ام سلمة رضی الله تعالٰی عنها قالت قال رسول الله صلی الله تعالٰی علیہ وسلم اذا حضرتم المريض اوالميت فقولوا خيرافان الملئكة يؤمنون على ماتقولون ٣ وهو عنها رضی الله تعالٰی عنہا قالت دخل رسول الله صلی الله تعالٰی علیہ وسلم على ابی سلمة وقد شق بصره فاغمضه (الی ان قالت) ثم قال اللهم اغفر لابی سلمة وارفع درجته فی المهديين واخلفه فی عقبه فی الغابرين واغفر لنا وله يارب العلمين وافسح فی قبره

امام مسلم حضرت ام سلمہ رضی اللہ تعالیٰ عنہا سے راوی فرماتی ہیں کہ رسول اللہ صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم نے فرمایا: جب تم بیمار یا میت کے پاس آؤ تو اچھی بات بولو، اس لئے کہ ملائکہ تمہاری باتوں پر آمین کہتے ہیں۔ وہی امام، انہی ام سلمہ رضی اللہ تعالیٰ عنہا سے راوی ہیں فرماتی ہیں : رسول اللہ صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم ابوسلمہ کی وفات پر تشریف لائے تو ابھی ان کی آنکھ کھلی ہوئی تھی سرکار نے بند کی (یہاں تک فرمایا) پھر سرکار نے دعا کی: اے اللہ! ابو سلمہ کو بخش دے اور ہدایت یافتہ لوگوں میں اس کا درجہ بلند فرما اور پسماندان میں اس کا نیک بدل۔

۱ التیسیر شرح الجامع الصغیر حدیث ان لربکم کے تحت مذکور ہے مکتبۃ الامام الشافعی الریاض السعودیہ ۳۳۹/۱ ۲ السراج المنیر شرح الجامع الصغیر حدیث مذکور کے تحت مطبوعہ مطبعۃ ازہریۃ مصریہ مصر ۱۲/۱ ۳ صحیح مسلم کتاب الجنائز مطبوعہ نور محمد اصح المطابع کراچی ۳۰۰/۱

Fatawa Razawiyya Volume 9

...and grant him light in it. Abu Dawood and al-Hakim narrated, and al-Hakim declared it authentic, from the Commander of the Faithful, Uthman (may Allah be pleased with him), who said: When the Prophet (may Allah's peace and blessings be upon him) finished burying the deceased, he would stand over him and say, "Ask forgiveness for your brother and ask for steadfastness for him, for he is being questioned now." Ahmad narrated from Abu Huraira (may Allah be pleased with him) that the Prophet (may Allah's peace and blessings be upon him) announced the death of Negus (Najashi) to his companions, then said, "Ask forgiveness for him." Then he went out with his companions to the prayer ground, stood, and led them in prayer as the funeral prayer is offered. Ibn Majah and al-Bayhaqi narrated in his Sunan from Sa'id ibn al-Musayyib, who said: I was present at a funeral with Ibn Umar (may Allah be pleased with them). When they placed the deceased in the niche (lahd), he said, "In the name of Allah, in the path of Allah, and upon the religion of the Messenger of Allah (may Allah's peace and blessings be upon him)." Then, when he began to level [the bricks over the niche]...

1. Sahih Muslim, Book of Funerals, published by Noor Muhammad Asah al-Matabi Karachi, 1/300.
2. Sunan Abi Dawood, Book of Funerals, published by Aftab Alam Press Lahore, 2/103; Mustadrak 'ala al-Sahihayn, Book of Funerals, published by Dar Sader Beirut, 1/370.
3. Musnad Ahmad bin Hanbal, narrated from Abu Huraira, published by Dar al-Fikr Beirut, 2/529.

फ़तावा रज़विया खंड 9

...और उसे उसमें नूर अता कर। अबू दाऊद और अल-हाकिम ने इसे रिवायत किया और हाकिम ने इसे सहीह कहा, अमीरुल मोमिनीन हज़रत उस्मान (रज़ियल्लाहु अन्हु) से, उन्होंने कहा: जब नबी करीम (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) मय्यत के दफ़न से फ़ारिग़ होते तो वहाँ कुछ देर रुकते और फ़रमाते, "अपने भाई के लिए मग़फ़िरत की दुआ करो और उसके लिए साबित-क़दमी (अटल रहने) की दुआ करो, क्योंकि इस वक़्त उससे सवाल किया जा रहा है।" इमाम अहमद हज़रत अबू हुरैरा (रज़ियल्लाहु अन्हु) से रिवायत करते हैं कि नबी (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने अपने सहाबा को नजाशी के वफ़ात की ख़बर दी, फिर फ़रमाया: "उसके लिए मग़फ़िरत की दुआ करो।" फिर सहाबा को लेकर नमाज़गाह तशरीफ़ ले गए और उन्हें वैसे ही नमाज़ पढ़ाई जैसे जनाज़ा की नमाज़ पढ़ी जाती है। इब्न माजा और बैहक़ी सुनन में हज़रत सईद बिन मुसय्यब से रिवायत करते हैं, वह फ़रमाते हैं कि मैं हज़रत इब्न उमर (रज़ियल्लाहु अन्हुमा) के साथ एक जनाज़े में हाज़िर था, जब उन्होंने जनाज़े को लहद में रखा तो कहा: "अल्लाह के नाम से, अल्लाह की राह में, और अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) के दीन पर।" फिर जब लहद पर कच्ची ईंटें दुरुस्त...

1. सहीह मुस्लिम, किताबुल जनाइज़, मतबूआ नूर मोहम्मद असहुत तबात कराची, 1/300.
2. सुनन अबू दाऊद, किताबुल जनाइज़, मतबूआ आफ़ताबे आलम प्रेस लाहौर, 2/103; मुस्तदरक अलल सहीहैन, किताबुल जनाइज़, मतबूआ दार सादिर बैरूत, 1/370.
3. मुसनद अहमद बिन हंबल, मरवी अज़ अबू हुरैरा, मतबूआ दारुल फ़िक्र बैरूत, 2/529.

पृष्ठ 228 का 948

فتاوی رضویہ جلد نہم

ونور له فیه، ابوداؤد والحاکم وصححه عن | عطا فرما، اور ہمیں اور اسے اپنی رحمت سے چھپا، اس کی قبر امیر المومنین عثمان رضی اللہ تعالیٰ عنه قال کان | کشادہ فرمادے اور اس کے لیے اس میں روشنی ونور پیدا النبی صلی اللہ تعالیٰ علیه وسلم اذا فرغ من دفن | فرما۔۔ ابو داؤد و حاکم امیر المومنین حضرت عثمان رضی اللہ المیّت وقف علیه وقال استغفر وا لاخیکم | تعالیٰ عنہ سے راوی حاکم نے اس حدیث کو صحیح بھی کہا۔ وہ وسلواله التثبیت انه الأن یسأل۔ احمد عن ابی | فرماتے ہیں نبی اکرم صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم جب میت کی ھریرہ رضی اللہ تعالیٰ عنه ان النبی صلی اللہ تعالیٰ | تدفین سے فارغ ہوتے تو وہاں کچھ دیر رکتے اور فرماتے ، اپنے علیه وسلم نعی النجاشی لاصحابه ثم قال | بھائی کے لئے دعائے مغفرت کرو اور اس وقت اس سے سوال استغفر واله ثم خرج باصحابه الی المصلی ثم | ہونے والا ہے۔۔ امام احمد ، حضرت ابوہریرہ رضی اللہ تعالیٰ عنہ قام فصلی بهم کما یصلی علی الجنازة ابن ماجة | سے راوی ہیں کہ نبی صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم نے اپنے صحابہ والبیهقی فی سننه عن سعید بن المسیب قال | کو نجاشی کے مرنے کی اطلاع دی پھر فرمایا : اس کے لئے حضرت ابن عمر رضی اللہ تعالیٰ عنها فی جنازة | دعائے مغفرت کرو۔ پھر صحابہ کو لے کر نماز گاہ تشریف لے فلما وضعها فی اللحد قال بسم اللہ وفی سبیل اللہ | گئے پھر انہیں نماز پڑھائی جیسے جنازہ کی نماز پڑھی جاتی ہے۔۔ وعلی ملّة رسول اللہ صلی اللہ تعالیٰ علیه وسلم، | ابن ماجہ اور بیہقی سنن میں حضرت سعید بن مسیب سے فلما اخذ فی تسویة | راوی ہیں۔ وہ فرماتے ہیں حضرت ابن عمر رضی اللہ تعالیٰ عنہ کے ساتھ ایک جنازہ میں حاضر تھا جب انہوں نے جنازہ کو لحد میں رکھا تو کہا: اللہ کے نام سے ، اللہ کی راہ میں، اور اللہ کے رسول صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کے دین پر۔ پھر جب لحد پر کچی اینٹیں درست

1 صحیح مسلم کتاب الجنائز مطبوعہ نور محمد اصح المطابع کراچی ۱/ ۳۰۰ 2 سنن ابی داؤد کتاب الجنائز مطبوعہ آفتاب عالم پریس لاہور ۲/ ۱۰۳، مستدرک علی الصحیحین کتاب الجنائز مطبوعہ دار صادر بیروت ۱/ ۳۷۰ 3 سند احمد بن حنبل مروی از ابوہریرہ مطبوعہ دار الفکر بیروت ۲/ ۵۲۹

Fatawa Rizvia Volume 9

[Arabic Text Block] (Placing) bricks on the niche (lahad), he said: O Allah, protect them from Satan and from the punishment of the grave. O Allah, keep the earth away from their sides, elevate their soul, and grant them Your pleasure. I said: O Ibn Umar! Is this something you heard from the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) or is it your own opinion? He said: I am capable of expressing an opinion, but rather it is something I heard from the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him).[1] This is the narration of Ibn Majah. And in another narration: When he began leveling the niche, he said: O Allah, protect her from Satan and from the punishment of the grave. When he finished leveling the bricks over it, he stood by the side of the grave and said: O Allah, keep the earth away from her sides, elevate her soul, and grant her pleasure. Then he said: I heard it from the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him).[2]

[Urdu Translation Column] ...began to do so, he said: O Allah! Keep him/her protected from Satan and the punishment of the grave. O Allah! Keep the earth separate from his/her sides, reach his/her soul to the heights, and grant him/her Your pleasure. I submitted: O Ibn Umar! Is this such a prayer that you have heard from the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) or have you said it of your own opinion? He said: It is so, I can make that prayer which I have heard from the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him). This is the narration of Ibn Majah. And in another narration, it is like this: when he began to level the niche (lahad), he said: O Allah! Keep him/her protected from Satan and the punishment of the grave. Then, when he leveled the bricks over it, he stood by the side of the grave and made this prayer: O Allah! Keep the earth separate from his/her sides, reach his/her soul to the heights and grant him/her Your pleasure. Then he said: I have heard this from the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him). (T)

Ahadith on this matter are at the level of fame and wide transmission; among them is the hadith of Abdullah bin Abi Bakr and Asim bin Umar bin Qatadah narrated in Maghazi al-Waqidi, which was mentioned in answer [marginal note].

[Margin Note]: Meaning the answer of the first respondent which was for the purpose of verification from... | Meaning the answer of the first respondent which was for verification to Mumbai (remaining on next page).

1 Sunan Ibn Majah, Chapter on Entering the Deceased into the Grave, printed by H.M. Saeed, Karachi, p. 112. 2 Al-Sunan al-Kubra, Book of Funerals, printed by Dar Sader, Beirut, 4/55.

फ़तावा रज़विया, खंड 9

[अरबी पाठ ब्लॉक] (लहद पर) ईंटें (रखते हुए), उन्होंने कहा: ऐ अल्लाह! उन्हें शैतान से और क़ब्र के अज़ाब से बचा। ऐ अल्लाह! ज़मीन को उनके पहलुओं से दूर रख, उनकी रूह को ऊपर उठा, और उन्हें अपनी रज़ा अता फरमा। मैंने कहा: ऐ इब्न उमर! क्या यह कोई ऐसी चीज़ है जो आपने अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) से सुनी है या यह आपकी अपनी राय है? उन्होंने कहा: मैं अपनी राय देने में सक्षम हूँ, बल्कि यह वह चीज़ है जो मैंने अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) से सुनी है।[1] यह इब्न माजा की रिवायत है। और दूसरी रिवायत में है: जब उन्होंने लहद को बराबर करना शुरू किया, तो कहा: ऐ अल्लाह! उसे शैतान से और क़ब्र के अज़ाब से बचा। जब उन्होंने उस पर ईंटें बराबर कर दीं, तो वह क़ब्र के किनारे खड़े हो गए और कहा: ऐ अल्लाह! ज़मीन को उसके पहलुओं से दूर रख, उसकी रूह को ऊपर उठा और उसे रज़ा अता कर। फिर उन्होंने कहा: मैंने इसे अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) से सुना है।[2]

[उर्दू अनुवाद कॉलम] ...करने लगे तो कहा: ऐ अल्लाह! इसे शैतान से और अज़ाब-ए-क़ब्र से पनाह में रख, ऐ अल्लाह! इसकी करवटों से ज़मीन जुदा रख, इसकी रूह को ऊपर पहुँचा, और इसे अपनी ख़ुशनूदी अता फरमा। मैंने अर्ज़ किया: ऐ इब्न उमर! क्या यह कोई ऐसी दुआ है जो आपने रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम से सुनी है या अपनी राय से की है? फरमाया: ऐसा है तो वह दुआ कर सकता हूँ जो मैंने रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम से सुनी है। यह इब्न माजा की रिवायत है। और दूसरी रिवायत में यूँ है कि जब लहद बराबर करने लगे तो कहा: ऐ अल्लाह! इसे शैतान से और अज़ाब-ए-क़ब्र से पनाह में रख। फिर जब उस पर ईंटें बराबर कर दीं तो क़ब्र के किनारे खड़े होकर यह दुआ की: ऐ अल्लाह! इसकी करवटों से ज़मीन को जुदा रख, इसकी रूह को ऊपर पहुँचा और इसे अपनी ख़ुशनूदी अता फरमा। फिर फरमाया: मैंने इसे रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम से सुना है। (त)

इस बारे में हदीसें बहुत प्रसिद्ध (शौहरत व इस्तफ़ाज़ा) हैं, उन्हीं में से अब्दुल्लाह बिन अबी बक्र और आसिम बिन उमर बिन क़तादा की रिवायत मगाज़ी वाक़िदी में वर्णित है, जो जवाब 'अ' में ज़िक्र हुई।

[हाशिया]: यानी पहले जवाब देने वाले का उत्तर जो तस्दीक़ (पुष्टि) के लिए भेजा गया था... | यानी पहले जवाब देने वाले का उत्तर जो तस्दीक़ के लिए बंबई (बाकी अगले सफ़हे पर)।

1 सुनन इब्न माजा, बाब मा जा फ़ी इदख़ाल अल-मय्यित अल-क़ब्र, मुद्रित एच.एम. सईद, कराची, पृ. 112। 2 अल-सुनन अल-कुबरा, किताब अल-जनाइज़, मुद्रित दार सादर, बेरुत, 4/55।

पृष्ठ 229 का 948

اللبن علی اللحد، قال اللھم اجرھم من الشیطان ومن عذاب القبر، اللھم جاف الارض عن جنبیھا وصعد روحھا و لققھا منك رضوانا قلت یا ابن عمر اشیئی سمعتہ من رسول اللہ صلی اللہ تعالی علیہ وسلم ام قلتہ برأیك، قال انی اذا لقادر علی القول بل شیئی سمعتہ من رسول اللہ صلی اللہ تعالی علیہ وسلم ۱ ھذہ روایۃ ابن ماجۃ وفی اخری فلما اخذفی تسویۃ اللحد قال اللھم اجرھا من الشیطان و من عذاب القبر فلما سوی اللبن علیھا قام جانب القبر ثم قال اللھم جاف الارض من جنبیھا و صعد روحھا و تلقھا رضوانا ثم قال سمعتہ من رسول اللہ صلی اللہ تعالی علیہ وسلم ۲۔

کرنے لگے تو کہا: اے اللہ! اسے شیطان سے اور عذابِ قبر سے پناہ میں رکھ، اے اللہ! اس کی کروٹوں سے زمین جدا رکھ، اس کی روح کو اوپر پہنچا، اور اسے اپنی خوشنودی عطا فرما۔ میں نے عرض کیا: اے ابن عمر! یہ کوئی ایسی دعا ہے جو آپ نے رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم سے سُنی ہے یا اپنی رائے سے کی ہے؟ فرمایا: ایسا ہے تو وہ دُعا کر سکتا ہوں جو میں نے رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم سے سُنی ہے۔ یہ ابن ماجہ کی روایت ہے۔ اور دوسری روایت میں یوں ہے کہ جب لحد برابر کرنے لگے تو کہا: اے اللہ! اسے شیطان سے اور عذابِ قبر سے پناہ میں رکھ۔ پھر جب اس پر اینٹیں برابر کر دیں تو قبر کے کنارے کھڑے ہو کر یہ دعا کی: اے اللہ اس کی کروٹوں سے زمین کو جدا رکھ، اس کی روح کو اوپر پہنچا اور اسے اپنی خوشنودی عطا فرما۔ پھر فرمایا: میں نے اسے رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم سے سُنا ہے۔ (ت)

احادیث اس بارہ میں حدِ شہرت واستفاضہ پر ہیں، انہیں میں سے حدیث عبداللہ بن ابی بکر و عاصم بن عمر بن قتادہ مروی مغازی واقدی ہے کہ جواب عہ میں مذکور ہوئی۔ عہ: یعنی جوابِ مجیبِ اول کہ بغرضِ تصدیق از | یعنی مجیب اول کا جواب جو تصدیق کے لئے بمبئی (باقی اگلے صفحہ پر)

1 سنن ابن ماجہ باب ماجاء فی ادخال المیت القبر مطبوعہ ایچ ایم سعید کراچی ص ۱۱۲ 2 السنن الکبریٰ کتاب الجنائز مطبوعہ دار صادر بیروت ۵۵/۴

Fatawa Razawiyyah Volume 9

I say: Although this (Hadith) is Mursal (disconnected) through its chains, according to us and the majority (of scholars), a Mursal Hadith is a valid proof.

(Continuation of previous page's footnote) ...the text from that place is this. If you are still not satisfied, then take something even more explicit. Kabiri, the commentary of Munyah, narrates from Abdullah bin Abi Bakr: He said: When the people met (in battle) at Mu'tah, the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) sat on the pulpit, and what was between him and Sham (Syria) was revealed to him. He was looking at their battlefield. Then he (peace and blessings be upon him) said: Zaid bin Harithah took the flag and continued until he was martyred. The Prophet prayed over him, supplicated for him, and said, "Seek forgiveness for him; he entered Paradise running." Then Ja'far bin Abi Talib took the flag and continued until he was martyred. The Prophet prayed over him, and he entered Paradise, flying therein with wings wherever he willed (1).

(The Urdu explanation of the Arabic text:) When the battle began at the place of Mu'tah, the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) presided on the pulpit, and Allah Almighty lifted the veils for the Holy Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) so that he was watching the land of Syria and that battlefield. Meanwhile, the Holy Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) said: Zaid bin Harithah raised the flag and continued fighting until he was martyred. The Holy Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) honored him with his prayer and supplication, and the companions were told, "Seek forgiveness for him; indeed, he entered Paradise running." The Holy Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) said: Then Ja'far bin Abi Talib raised the flag and continued fighting until he was martyred. The Holy Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) bestowed him with the honor of his prayer and supplication, and the companions were told, "Seek forgiveness for him; he has entered Paradise and flies therein wherever he wishes with his wings." (T)

It is clearly evident from this noble Hadith that you (the Prophet) supplicated after the funeral prayer and also commanded the noble companions to do so. Therefore, what doubt remains regarding the permissibility of the case in question? End of quote from him (12), may Allah be pleased with him. (M)

1 Ghunyat al-Mustamli Sharh Munyat al-Musalli, Section on Funerals, Suhail Academy Lahore, p. 584. Page 230 of 948

मैं कहता हूँ: हालाँकि यह (हदीस) अपनी दोनों श्रृंखलाओं से 'मुरसल' (अपूर्ण श्रृंखला वाली) है, लेकिन हमारे और बहुमत (विद्वानों) के निकट 'मुरसल' एक प्रमाण है।

(पिछले पृष्ठ के हाशिये का शेष भाग) ...वहां से इसका विवरण यह है। यदि इस पर भी संतुष्टि न हो, तो और भी स्पष्ट उदाहरण लें; मुन्याह की व्याख्या 'कबीर' में अब्दुल्ला बिन अबी बक्र से वर्णित है: उन्होंने कहा: जब मुताह के स्थान पर युद्ध शुरू हुआ, तो अल्लाह के रसूल (उन पर अल्लाह की शांति और आशीर्वाद हो) मिम्बर पर आसीन हुए और अल्लाह ने हुज़ूर (उन पर अल्लाह की शांति और आशीर्वाद हो) के लिए पर्दे हटा दिए ताकि वह शाम के देश और उस रणक्षेत्र को देख सकें। इतने में हुज़ूर (उन पर अल्लाह की शांति और आशीर्वाद हो) ने फरमाया: ज़ैद बिन हारिसा ने झंडा उठाया और लड़ते रहे यहाँ तक कि शहीद हो गए। हुज़ूर (उन पर अल्लाह की शांति और आशीर्वाद हो) ने उन्हें अपनी नमाज़ और दुआ से सम्मानित किया और सहाबा से कहा कि उनके लिए माफ़ी मांगो, वह निश्चित रूप से दौड़ते हुए स्वर्ग में प्रवेश कर गए। फिर जाफ़र बिन अबी तालिब ने झंडा उठाया और लड़ते रहे यहाँ तक कि शहीद हो गए। हुज़ूर (उन पर अल्लाह की शांति और आशीर्वाद हो) ने उन्हें अपनी नमाज़ और दुआ से सम्मानित किया और सहाबा को आदेश दिया कि उनके लिए माफ़ी मांगो, वह स्वर्ग में प्रवेश कर गए और उसमें जहाँ चाहें अपने पंखों से उड़ते फिरते हैं (1)।

(अरबी पाठ का उर्दू अनुवाद इस प्रकार है:) जब मुताह के स्थान पर लड़ाई शुरू हुई, अल्लाह के रसूल (उन पर अल्लाह की शांति और आशीर्वाद हो) मिम्बर पर सुशोभित हुए और अल्लाह अज़्ज़वजल ने हुज़ूर (उन पर अल्लाह की शांति और आशीर्वाद हो) के लिए पर्दे हटा दिए ताकि हुज़ूर (उन पर अल्लाह की शांति और आशीर्वाद हो) शाम का देश और वह रणक्षेत्र देख रहे थे। उसी समय हुज़ूर अकदस (उन पर अल्लाह की शांति और आशीर्वाद हो) ने फरमाया: ज़ैद बिन हारिसा ने झंडा उठाया और लड़ता रहा यहाँ तक कि शहीद हो गया। हुज़ूर (उन पर अल्लाह की शांति और आशीर्वाद हो) ने उन्हें अपनी नमाज़ और दुआ से सम्मानित किया और सहाबा को निर्देश दिया गया कि उनके लिए इस्तग़फ़ार (माफ़ी की दुआ) करो, निश्चित रूप से वह दौड़ते हुए जन्नत में दाखिल हुए। हुज़ूर (उन पर अल्लाह की शांति और आशीर्वाद हो) ने फरमाया: फिर जाफ़र बिन अबी तालिब ने झंडा उठाया और लड़ता रहा यहाँ तक कि शहीद हुआ, हुज़ूर (उन पर अल्लाह की शांति और आशीर्वाद हो) ने उन्हें अपनी नमाज़ और दुआ से सम्मानित किया और सहाबा को निर्देश दिया गया

कि उनके लिए इस्तग़फ़ार करो, वह जन्नत में दाखिल हुआ और उसमें जहाँ चाहे अपने पंखों से उड़ता फिरता है। (त)

इसी हदीस शरीफ से साफ ज़ाहिर है कि आपने जनाज़े की नमाज़ के बाद दुआ की है और सहाबा किराम को भी आपने आदेश दिया है। अतः पूछे गए मामले की वैधता में अब क्या शंका रह जाती है? उनसे अंत तक (12) अल्लाह उनसे प्रसन्न हो। (म)

1 गुनियातुल मुस्तमली शरह मुनयातुल मुसल्ली, जनाज़ों का खंड, सुहैल अकादमी लाहौर, पृष्ठ 584।

فتاوٰی رضویہ جلد نہم

اقول: وھو وان کان مرسلا بطریقتہ فالمرسل حجۃ عندنا وعند الجمھور اقول: یہ حدیث اگرچہ اپنے دونوں طریقوں مُرسَل ہے مگر مُرسَل ہمارے نزدیک اور جمہور کے نزدیک

(بقیہ حاشیہ صفحہ گزشتہ) بمیٹی آمدہ بود عبارتش ازیں مقام اینست۔ اگر اس پر بھی تسلی نہ ہو تو زیادہ صریح لیجئے، کبیری شرح منیہ عبد اللہ بن ابی بکر سے روایت ہے : قال لما التقی الناس بموتۃ جلس رسول اللہ صلی اللہ تعالی علیہ وسلم علی المنبر وکشف لہ مابینہ وبین الشام فھو ینظر الی معترکھم فقال علیہ الصلوۃ والسلام اخذ الرایۃ زید بن حارثۃ فمضی حتی استشھد وصلی علیہ ودعا لہ وقال استغفروا لہ دخل الجنۃ وھو یسعی ثم اخذ الرایۃ جعفر بن ابي طالب فمضی حتی استشھد وصلی علیہ ودخل الجنۃ فھو یطیر فیھا بجناحین حیث شاء ۱۔

سے آیا تھا اس جگہ سے اس کی عبارت یہ ہے جب مقام موتہ میں لڑائی شروع ہوئی رسول اللہ صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم منبر پر تشریف فرما ہوئے اور اللہ عزوجل نے حضور صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کے لئے پردے اٹھادئے کہ ملکِ شام اور وہ معرکہ حضور صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم دیکھ رہے تھے ، اتنے میں حضور اقدس صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم نے فرمایا: زید بن حارثہ نے جھنڈا اٹھایا اور لڑتا رہا یہاں تک کہ شہید ہوا۔ حضور صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم نے انہیں اپنی صلاۃ و دعاء سے مشرف فرمایا اور صحابہ کو ارشاد ہوا اس کے لئے استغفرار کرو، بیشک وہ دوڑتا ہوا جنت میں داخل ہوا۔ حضور صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم نے فرمایا: پھر جعفر بن ابی طالب نے علم اٹھایا اور لڑتا رہا یہاں تک کہ شہید ہوا، حضور صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم نے ان کو اپنی صلاۃ و دعا سے شرف بخشا اور صحابہ کو ارشاد ہوا اس کے لئے استغفرار کرو وہ جنت میں داخل ہوا اور اس میں جہاں چاہے اپنے پروں سے اڑتا پھرتا ہے۔ (ت)

اسی حدیث شریف سے صاف ظاہر ہے کہ آپ نے بعدِ نمازِ جنازہ کے دعا کی ہے اور صحابہ کرام کو بھی آپ نے امر فرمایا ہے پس صورتِ مسئولہ کے جواز میں کیا کلام رہا انتہی منہ ۱۲ رضی اللہ تعالیٰ عنہ (م)

۱ غنیۃ المستملی شرح منیۃ المصلی فصل فی الجنائز سہیل اکیڈمی لاہور ص ۵۸۴ Page 230 of 948

Fatawa Razawiya Volume 9

The third point for us is the reliability of al-Waqidi, as stated by the researcher (Al-Muhaqqiq) where he mentioned it unconditionally in Al-Fath. Furthermore, the fundamental rule regarding Shar'i (legal) terms is that 'Salaat' should be understood in its Shar'i meaning; hence 'Salaat' is distinct from 'Dua' (supplication). Additionally, establishing a new meaning (Ta'sis) is better than mere corroboration (Ta'keed), so 'Dua' is distinct from 'Salaat'. (T)

When supplication (Dua) is recommended, absolutely recommended, frequently recommended, and recommended in every way before and after prayer, then what prevents it immediately after prayer? In fact, this time is specifically an occasion for divine inspirations, as righteous deeds, especially prayer, are a state of mercy, and divine mercy is a cause for the acceptance of prayers. Therefore, performing a righteous deed before supplication is desirable.

As mentioned in Al-Hisn, Al-Qari said: "Performing a righteous deed beforehand, meaning before supplication, so that it may be a cause for its acceptance, as in the hadith of Abu Bakr (may Allah be pleased with him) regarding the prayer of repentance, as will come later in the original book. It was narrated by the four (collectors) and Ibn Hibban." (T)

Therefore, the encouragement to supplicate after the completion of the Quran, the completion of fasting, and the five daily prayers, rather after every prescribed prayer, even every obligatory act, has come in the Hadiths, which definitively includes the funeral prayer as well.

At-Tirmidhi (who graded it Hasan) and An-Nasa'i narrated from Abu Umamah (may Allah be pleased with him) that he asked: "O Messenger of Allah, which supplication is most heard?" He replied: "In the depth of the last part of the night and after the prescribed prayers."

1. Hirz al-Thamin Sharh Hisn al-Hasin, annotations on Hisn al-Hasin, Manners of Supplication p. 7, annotation 15, Afdal al-Matabi' Lucknow p. 9.
2. Jami' at-Tirmidhi, Chapters on Supplications, published by Amin Company, Kutub Khana Rashidiyah Delhi, 2/188.

फ़तावा रज़विया, खंड 9

तीसरा बिंदु हमारे लिए वाक़िदी की विश्वसनीयता है, जैसा कि शोधकर्ता (अल-मुहक़्क़िक़) ने बताया है जहाँ उन्होंने 'अल-फ़तह' में इसे बिना किसी शर्त के उल्लेख किया है। इसके अलावा, शरीयत के शब्दों के संबंध में मूल नियम यह है कि 'सलात' को उसके शरीयत के अर्थ में लिया जाना चाहिए; अतः 'सलात', 'दुआ' (प्रार्थना) से अलग है। साथ ही, नया अर्थ स्थापित करना (तासीस) केवल पुष्ट करने (ताकीद) से बेहतर है, इसलिए 'दुआ', 'सलात' से अलग है। (त)

जब दुआ मुस्तहब (पसंदीदा) है, और हर तरह से मुस्तहब है, और अक्सर मुस्तहब है, और नमाज़ से पहले और बाद में हर तरह से मुस्तहब है, तो नमाज़ के तुरंत बाद इससे कौन रोक सकता है? बल्कि यह समय तो विशेष रूप से ईश्वरीय कृपाओं का अवसर है क्योंकि नेक काम, विशेष रूप से नमाज़, रहमत की स्थिति है और ईश्वरीय रहमत दुआ की स्वीकृति का कारण है। इसलिए, दुआ से पहले नेक काम करना वांछनीय माना गया है।

जैसा कि 'हिसन' में है, अल-क़ारी ने कहा: "नेक काम को आगे रखना, यानी दुआ से पहले नेक काम करना ताकि यह दुआ की स्वीकृति का कारण बने, जैसा कि हज़रत अबू बक्र (रज़ियल्लाहु अन्हु) की हदीस में तौबा की नमाज़ के बारे में है, जैसा कि मूल पुस्तक में आगे आएगा। इसे अरबा (चार हदीस संग्रहकर्ताओं) और इब्न हिब्बान ने रिवायत किया है।" (त)

इसलिए, कुरान खत्म करने, रोज़ा पूरा करने और पाँचों वक्त की नमाज़, बल्कि हर फ़र्ज़ नमाज़ और हर फ़र्ज़ काम के बाद दुआ करने की प्रेरणा हदीसों में आई है, जिसमें नमाज़-ए-जनाज़ा भी निश्चित रूप से शामिल है।

तिर्मिज़ी (जिन्होंने इसे हसन कहा) और नसाई ने हज़रत अबू उमामा (रज़ियल्लाहु अन्हु) से रिवायत की है कि उन्होंने पूछा: "हे अल्लाह के रसूल, कौन सी दुआ सबसे ज़्यादा सुनी जाती है?" उन्होंने उत्तर दिया: "रात के अंतिम भाग में और फ़र्ज़ नमाज़ों के बाद।"

1. हिर्ज़ अल-थमीन शरह हिसन अल-हसीन, हाशिया हिसन अल-हसीन, दुआ के आदाब पृ. 7, हाशिया 15, अफ़ज़ल अल-मताबे' लखनऊ पृ. 9।
2. जामि' अत-तिर्मिज़ी, दुआओं के अध्याय, अमीन कंपनी द्वारा मुद्रित, कुतुब खाना रशीदिया दिल्ली 2/188।

948 का पृष्ठ 231

ثم الثالث عندنا توثیق الواقدی کما افادہ المحقق حیث اطلق في الفتح ثم الاصل في الالفاظ الشرعیة فالصلوة حملھا علی معانیھا الشرعیة فالصلوة غیر الدعاء ثم التاسیس خیر من التاکید فالدعاء غیر الصلوة۔ حجت ہے---پھر ہمارے نزدیک ثابت یہی ہے کہ امام واقدی ثقہ ہیں جیسا کہ امام محقق نے فتح القدیر میں افادہ فرمایا۔ پھر الفاظ شرعیہ میں اصل یہ ہے کہ اپنے شرعی معانی پر محمول ہوں تو صلاۃ، غیر دعا ہے۔ پھر تاسیس (از سر نو کوئی افادہ) تاکید سے بہتر ہے، تو دعا، غیر صلاۃ ہے۔(ت)

پھر جب دعا مستحب اور مطلقاً مستحب اور اکثر مستحب اور قبل نماز بعد نماز ہر طرح مستحب، تو بعد نماز متصلاً اس سے کون مانع، بلکہ یہ وقت تو خاص مظنہ نفحاتِ ربانیہ ہے کہ عمل صالح خصوصاً نماز حالت رحمت و رحمت الٰہی سبب اجابت، و لہٰذا دعا سے پہلے تقدیم عمل صالح مطلوب ہوئی،

کما فی الحصن قال القاري و تقدیم عمل صالح ای قبل الدعاء لیکون سبباً للقبولہ کما فی حدث ابی بکر رضي اللہ تعالی عنہ فی صلوۃ التوبۃ علی ماسیاتي فی اصل الکتاب ورواہ الاربعۃ وابن حبان[1]- جیسا کہ حصن حصین میں ہے۔ اس کی شرح میں مولانا علی قاری نے فرمایا: عمل صالح کی تقدیم، یعنی دعا سے قبل نیک کام کی بجا آوری تاکہ قبولِ دعا کا سبب ہو، جیسا کہ نمازِ توبہ میں حضرت ابو بکر رضی اللہ تعالٰی عنہ کی حدیث میں ہے، جیسا کہ اصل کتاب حصن حصین میں آرہا ہے اور اسے اربعہ (ابوداؤد، ترمذی، نسائی، ابن ماجہ) اور ابن حبان نے روایت کیا۔ (ت)

و لہٰذا ختم قرآن و اتمام صوم و نمازِ پنجگانہ بلکہ ہر نمازِ مفروض بلکہ ہر فرض کے بعد دعا کی ترغیب احادیث میں آئی ہے جن میں نمازِ جنازہ بھی قطعاً داخل،

الترمذي وحسنه والنسائی عن ابی امامة رضی اللہ تعالی عنه قال قالت یارسول اللہ ای الدعاء اسمع قال جوف اللیل الاخر ودبر الصلوات المکتوبات[2] قال ترمذی بافادہ تحسین اور نسائی حضرت ابو امامہ رضی اللہ تعالیٰ عنہ سے راوی ہیں، وہ فرماتے ہیں میں نے عرض کیا یا رسول اللہ ! کون سی دعا سُنی جانے والی ہے؟ فرمایا: وہ جو اخیر شب کے درمیان ہو اور فرض

1 حرز ثمین شرح حصن حصین حواشی حصن حصین آدابِ دُعا ص ۷ احاشیہ ۱۵ افضل المطابع لکھنؤ ص ۹ 2 جامع الترمذی ابواب الدعوات مطبوعہ امین کمپنی کتب خانہ رشیدیہ دہلی ۲ / ۱۸۸

Fatawa Razaviyya Volume Nine

[Table Content] Arabic Text: Al-Qari (commenting on) the restriction (of prayers after obligatory ones) said that since these are the best of states, they are the most hopeful for the acceptance of supplications. End quote. - Bayhaqi, al-Khatib, Abu Nu'aym, and Ibn Asakir narrate from Anas (may Allah be pleased with him) that he said, the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) said: "With every completion of the Quran, there is an accepted supplication." Ahmad, at-Tirmidhi (who graded it as Hasan), Ibn Majah, Ibn Khuzaymah, and Ibn Hibban in their Sahih collections, and al-Bazzar narrate from Abu Hurairah (may Allah be pleased with him) that he said, the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) said: "There are three whose supplication is not rejected: a fasting person when he breaks his fast..." [to the end of the Hadith]. Al-Tabarani in 'al-Kabir' narrates from Irbad bin Sariyah (may Allah be pleased with him) from the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him): "Whoever performs an obligatory prayer, for him is an accepted supplication, and whoever completes the Quran, for him is an accepted supplication." Al-Daylami in 'Musnad al-Firdaws' narrates from the Commander of the Faithful Ali (may Allah honor his face): "Whoever performs an obligation, for him [is...]"

Urdu Translation: After prayers, Allama Ali Qari stated: The restriction after obligatory prayers is because these are all the best states, so in them, the hope of acceptance of supplication is greater. End quote. Bayhaqi, Khatib, Abu Nu'aym, and Ibn Asakir are narrators from Hazrat Anas (may Allah be pleased with him) that the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) said: With every completion of the Quran, one supplication is accepted. Imam Ahmad, Tirmidhi with the benefit of being Hasan, Ibn Majah, Ibn Khuzaymah, Ibn Hibban in their Sahihs, and Bazzar (in his Musnad) are narrators from Hazrat Abu Hurairah (may Allah be pleased with him), who states that the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) said: There are three persons whose prayer is not rejected; one is a fasting person when he breaks the fast, [to the end of] the Hadith. Tabarani in Mu'jam Kabir narrates from Hazrat Irbad bin Sariyah (may Allah be pleased with him) that he narrates from the Holy Prophet (peace and blessings of Allah be upon him): Whoever performed an obligatory prayer, his one supplication is accepted, and whoever completed the Quran, his one supplication is also accepted. Daylami in Musnad al-Firdaws is a narrator from the Commander of the Faithful Ali (may Allah be pleased with him) that whoever performed any obligation, with God, he has one...

[Watermark: Majlis of Dawat-e-Islami]

[Footnotes]: 1. Hirz-e-Thamin Sharh-e-Hisn-e-Hasin, Hawashi Hisn-e-Hasin, Awqat al-Ijabah, p. 22, Footnote 16; Afzal al-Matabi' Lucknow, p. 14. 2. Kanz al-Ummal with reference to al-Bayhaqi from Anas (may Allah be pleased with him), Hadith 24312, published by Mu'assasat al-Risalah, Beirut, 1/517. 3. Sunan Ibn Majah, Chapter on Fasting (Prayer not being rejected), published by H.M. Saeed Company, Karachi, p. 126. 4. Al-Mu'jam al-Kabir, narrated from Irbad bin Sariyah (may Allah be pleased with him), Hadith 672, published by Maktabah Fayisliya, Beirut, 8/259.

फतावा रज़विया, खंड 9

[तालिका सामग्री] अरबी पाठ: अल्लामा अली क़ारी ने (फ़र्ज़ नमाज़ों के बाद दुआ की पाबंदी पर टिप्पणी करते हुए) कहा कि चूँकि ये सबसे उत्तम स्थितियाँ हैं, इसलिए इनमें दुआओं की क़बूलियत की सबसे अधिक उम्मीद होती है। उद्धरण समाप्त। - बैहक़ी, अल-ख़तीब, अबू नुऐम और इब्न असाकिर हज़रत अनस (रज़ियल्लाहु अन्हु) से रिवायत करते हैं कि उन्होंने कहा, अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने फ़रमाया: "क़ुरआन के हर ख़त्म के साथ एक दुआ क़बूल होती है।" अहमद, तिर्मिज़ी (जिन्होंने इसे हसन माना), इब्न माजाह, इब्न ख़ुज़ैमा और इब्न हिब्बान ने अपनी सहीह किताबों में और बज़ार ने हज़रत अबू हुरैरा (रज़ियल्लाहु अन्हु) से रिवायत किया है कि उन्होंने कहा, अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने फ़रमाया: "तीन व्यक्ति ऐसे हैं जिनकी दुआ रद्द नहीं की जाती: एक रोज़ेदार जब वह इफ़्तार करता है..." [हदीस के अंत तक]। तबरानी ने 'अल-कबीर' में इरबाज़ बिन सारिया (रज़ियल्लाहु अन्हु) से नबी (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) के हवाले से रिवायत किया है: "जिसने फ़र्ज़ नमाज़ अदा की, उसके लिए एक दुआ क़बूल होती है, और जिसने क़ुरआन ख़त्म किया, उसके लिए एक दुआ क़बूल होती है।" दैलमी ने 'मसनद अल-फ़िरदौस' में अमीरुल मोमिनीन अली (कर्रमल्लाहु वज्हहू) से रिवायत किया है: "जिसने कोई फ़र्ज़ अदा किया, उसके लिए [है...]"

उर्दू अनुवाद: नमाज़ों के बाद अल्लामा अली क़ारी ने फ़रमाया: बाद फ़राइज़ की तक़यीद इसलिए है कि ये सब अफ़ज़ल हालत तो इसमें क़बूल-ए-दुआ की उम्मीद ज़्यादा है इह। बैहक़ी, ख़तीब, अबू नुऐम और इब्न असाकिर हज़रत अनस रज़ियल्लाहु तआला अन्हु से रावी हैं कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम का इरशाद है: हर ख़त्म-ए-क़ुरआन के साथ एक दुआ मक़बूल होती है। इमाम अहमद, तिर्मिज़ी बा-फ़ादा तहसीन, इब्न माजाह, इब्न ख़ुज़ैमा, इब्न हिब्बान अपनी सिहाह में और बज़ार (अपनी मसनद में) हज़रत अबू हुरैरा रज़ियल्लाहु तआला अन्हु से रावी हैं वो फ़रमाते हैं कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम का इरशाद है: तीन शख़्स हैं जिनकी दुआ रद्द नहीं होती एक रोज़ादार जब इफ़्तार करे, अल-हदीस। तबरानी मोजम कबीर में हज़रत इरबाज़ बिन सारिया रज़ियल्लाहु तआला अन्हु से वो नबी करीम सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम से रिवायत करते हैं: जिसने फ़र्ज़ नमाज़ अदा की उसकी एक दुआ मक़बूल होती है और जिसने क़ुरआन ख़त्म किया उसकी भी एक दुआ मक़बूल होती है। दैलमी मसनद अल-फ़िरदौस में अमीरुल मोमिनीन अली कर्रमल्लाहु तआला वज्हहू से रावी हैं जिसने कोई फ़रीज़ा अदा किया ख़ुदा के यहाँ उसकी एक

[वॉटरमार्क मजलिस-ए-दावत-ए-इस्लामी]

[पाद-टिप्पणियाँ]: 1. हिर्ज़-ए-समीन शरह-ए-हिस्न-ए-हसीन, हवाशी हिस्न-ए-हसीन, औक़ातुल इजाबत, पृ. 22, पाद-टिप्पणी 16; अफ़ज़ल अल-मताबे लखनऊ, पृ. 14. 2. कंज़ुल उम्माल बैहक़ी के हवाले से, अनस (रज़ियल्लाहु अन्हु) से रिवायत, हदीस 24312, मुअस्ससतुर रिसाला बेरूत द्वारा प्रकाशित, 1/517. 3. सुनन इब्न माजाह, रोज़े के अध्याय में (दुआ का रद्द न होना), एच.एम. सईद कंपनी कराची द्वारा प्रकाशित, पृ. 126. 4. अल-मोजमुल कबीर, इरबाज़ बिन सारिया (रज़ियल्लाहु अन्हु) से रिवायत, हदीस 672, मकतबा फ़ैसलिया बेरूत द्वारा प्रकाशित, 8/259.

فتاوٰی رضویہ جلد نہم

[جدول کا متن] عربی متن: القاری التقیید بھاکونہا افضل الحالات فہی ارجی لا جابۃ الدعوات اھـ۔ البیہقی والخطیب وابونعیم وابن عساکر عن انس رضی اللہ تعالیٰ عنہ قال قال رسول اللہ صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم مع کل ختمۃ دعوۃ مستجابۃ، احمد والترمذی وحسنہ وابن ماجۃ وحزیمۃ وحبان فی صحاحہم والبزار عن ابی ہریرۃ رضی اللہ تعالیٰ عنہ قال قال رسول اللہ صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم ثلثہ لا ترد دعوتہم الصائم حین افطر الحدیث، الطبرانی فی الکبیر عن العرباض بن سارۃ رضی اللہ تعالیٰ عنہ عن النبی صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم من صلی صلوۃ فریضہ فلہ دعوۃ مستجابۃ و من ختم القرآن فلہ دعوۃ مستجابۃ، الدیلمی فی مسند الفردوس عن امیر المومنین علی کرم اللہ وجہہ من ادی فریضہ فلہ

اردو ترجمہ: نمازوں کے بعد علامہ علی قاری نے فرمایا: بعد فرائض کی تقیید اس لئے ہے کہ یہ سب افضل حالت تو اس میں قبول دعا کی امید زیادہ ہے اھـ بیہقی، خطیب، ابو نعیم اور ابن عساکر حضرت انس رضی اللہ تعالٰی عنہ سے راوی ہیں کہ رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم کا ارشاد ہے: ہر ختم قرآن کے ساتھ ایک دعا مقبول ہوتی ہے۔ امام احمد، ترمذی بافادہ تحسین، ابن ماجہ، ابن خزیمہ، ابن حبان اپنی صحاح میں اور بزار (اپنی مسند میں) حضرت ابوہریرہ رضی اللہ تعالٰی عنہ سے راوی ہیں وہ فرماتے ہیں کہ رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم کا ارشاد ہے: تین شخص ہیں جن کی دعا رد نہیں ہوتی ایک روزہ دار جب افطار کرے، الحدیث۔ طبرانی معجم کبیر میں حضرت عرباض بن ساریہ رضی اللہ تعالٰی عنہ سے وہ نبی کریم صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم سے روایت کرتے ہیں: جس نے فرض نماز ادا کی اس کی ایک دعا مقبول ہوتی ہے اور جس نے قرآن ختم کیا اس کی بھی ایک دعا مقبول ہوتی ہے۔ دیلمی مسند الفردوس میں امیر المومنین علی کرم اللہ تعالیٰ وجہہ سے راوی ہیں جس نے کوئی فریضہ ادا کیا خدا کے یہاں اس کی ایک

[واٹرمارک: مجلس دعوتِ اسلامی]

[حواشی]: 1 حرز ثمین شرح حصن حصین حواشی حصن حصین اوقات الاجابتہ ص ۲۲ حاشیہ ۱۶ افضل المطابع لکھنو ص ۱۴ 2 کنز العمال بحوالہ البیہقی عن انس رضی اللہ تعالیٰ عنہ حدیث ۲۴۳۱۲ مطبوعہ موسستہ الرسالہ بیروت ۱/ ۵۱۷ 3 سنن ابن ماجہ باب فی الصیام لاترد دعوتہ مطبوعہ ایچ ایم سعید کمپنی کراچی ص ۱۲۶ 4 المعجم الکبیر مروی عرباض بن ساریہ رضی اللہ عنہ حدیث ۶۷۲ مطبوعہ مکتبہ فیصلیہ بیروت ۸/ ۲۵۹

Fatawa Razawiyya Volume 9

By Allah, it is an accepted prayer[1]. There are other ahadith in this chapter, some of which we have quoted in our treatise 'Suroor al-Eid al-Saeed fi Hall al-Du'a ba'd Salat al-Eid' (1307 AH).

The Almighty Lord Himself says: So when you have finished [your duties], then stand up [for worship]. And to your Lord direct [your] longing. (Quran 94:7-8)[2] Translation: When you finish your prayer, then strive hard in supplication and turn towards your Lord with weeping and humility. (T)

It is mentioned in Jalalayn: When you finish the prayer, strive hard in supplication and turn to your Lord with humility and submissiveness. (T)[3]

In short, there is no doubt about the permissibility of the mentioned supplication. However, to avoid the possibility of [it being seen as an] addition, breaking the rows is sufficient to the extent that there remains no possibility of addition. Just as after the conclusion of the Zuhr, Maghrib, and Isha prayers, it is Sunnah for the followers to break the rows for the performance of Sunnah prayers, so that anyone coming afterwards cannot mistake it for the continuation of the congregation. Allama Muhammad Muhammad Muhammad ibn Amir al-Hajj al-Halbi states in Al-Hilyah:

The wording of Al-Bada'i: As for the followers, some of our scholars said there is no harm in not moving from their places because there is no confusion for one entering [the mosque] when they see the Imam's place is empty. It is narrated from Muhammad that he said: It is also recommended for the people to break the rows and disperse so that [confusion] may cease.

---

1 Kanz al-Ummal, narrated from Al-Daylami on the authority of Ali (may Allah be pleased with him), Hadith 19040, printed by Mu'assasat al-Risalah, Beirut, 17/313. 2 Al-Quran 94/7, 8. 3 Jalalayn, second half, Surah Alam Nashrah, printed by Matba' Mujtabai, Delhi, p. 500.

फ़तावा रज़विया जिल्द नहम

अल्लाह की कसम, यह एक स्वीकार्य दुआ है[1]। इस अध्याय में और भी हदीसें हैं, जिनमें से कुछ हमने अपने रिसाला 'सुरूर अल-ईद अल-सईद फी हल्ल अल-दुआ बाद सलात अल-ईद' (1307 हिजरी) में उद्धृत की हैं।

स्वयं सर्वशक्तिमान ईश्वर फरमाता है: तो जब तुम (नमाज़ से) फारिग हो जाओ तो इबादत में मशक्कत करो। और अपने रब की तरफ़ राग़िब हो। (क़ुरआन 94:7-8)[2] अनुवाद: जब तुम नमाज़ से फारिग हो जाओ, तो दुआ में मशक्कत करो और अपने रब की तरफ आजीजी और गिड़गिड़ाहट के साथ मुतवज्जे हो। (त)

जलालयन में है: जब तुम नमाज़ से फारिग हो जाओ, तो दुआ में मशक्कत करो और अपने रब की तरफ आजीजी और गिड़गिड़ाहट के साथ मुतवज्जे हो। (त)[3]

संक्षेप में, उक्त दुआ के जायज़ होने में कोई संदेह नहीं है। हाँ, (नमाज़ में) ज़्यादती के अंदेशे को दूर करने के लिए सफ़ें तोड़ना काफी है ताकि उसके बाद ज़्यादती की गुंजाइश न रहे। जिस तरह ज़ुहर, मग़रिब और इशा की नमाज़ खत्म होने के बाद सुन्नतें अदा करने के लिए मुक़्तदियों का सफ़ें तोड़ना सुन्नत है, ताकि बाद में आने वाले को जमाअत जारी रहने का भ्रम न हो। अल्लामा मुहम्मद मुहम्मद मुहम्मद इब्न अमीर अल-हाज अल-हलबी 'हिलिया' में फरमाते हैं:

अल-बदाए के शब्द हैं: जहाँ तक मुक़्तदियों का सवाल है, हमारे कुछ उलेमा ने कहा है कि अगर वे अपनी जगह से न हटें तो कोई हर्ज नहीं है क्योंकि आने वाले को तब कोई भ्रम नहीं होगा जब वह इमाम की जगह खाली देखेगा। इमाम मुहम्मद से रिवायत है कि उन्होंने फरमाया: लोगों के लिए भी मुस्तहब है कि वे सफ़ें तोड़ दें और बिखर जाएँ ताकि (भ्रम) दूर हो जाए।

---

1 कंज़ अल-उम्माल, अल-दैलमी के हवाले से हज़रत अली (रज़ियल्लाहु अन्हु) से रिवायत, हदीस 19040, मतबुआ मुअस्ससत अल-रिसाला बेरूत 17/313। 2 अल-क़ुरआन 94/7, 8। 3 जलालयन दूसरा हिस्सा, सूरह अलम नशरह, मतबुआ मतबा मुजतबाई दिल्ली, पृ. 500।

فتاوی رضویہ جلد نہم

واللہ دعوۃ مستجابۃ[1] ، وفي الباب احادیث اخر اوردنا بعضھا في رسالتنا سرورالعیدالسعید في حل الدعاء بعد صلاۃ العید (۱۳۰۷ھ) دعا مقبول ہوتی ہے۔ اس باب میں اور بھی حدیثیں ہیں جن میں سے کچھ ہم نے اپنے رسالہ سرور العید السعید فی حل الدعاء بعد صلاۃ العید (۱۳۰۷ھ) میں نقل کی ہیں۔

خود رب العزت عزوجل ارشاد فرماتا ہے: فَاِذَا فَرَغْتَ فَانْصَبْۙ(۷) وَ اِلٰی رَبِّكَ فَارْغَبْ(۸) [2] جب تو نماز سے فارغ ہو تو دعا میں مشقت کر اور اپنے رب کی طرف زاری و تضرع کے ساتھ راغب ہو۔ (ت)

جلالین میں ہے: فاذا فرغت من الصلوۃ فانصب اتعب في الدعاء والی ربك فارغب تضرع[3]۔ جب تو نماز سے فارغ ہو تو دعا میں مشقت کر اور اپنے رب کی طرف زاری و تضرع کے ساتھ راغب ہو۔ (ت)

بالجملہ دعائے مذکور کے جواز میں شک نہیں، ہاں دفع احتمالِ زیادت کو نقض صفوف کرلیں اسی قدر کافی ہے کہ اس کے بعد احتمالِ زیادت کا اصلاً محل نہیں ہے، جس طرح بعد ختم نماز ظہر و مغرب و عشاء ادائے سنن کے لئے مقتدیوں کو کسرِ صفوف مسنون، کہ اس کے بعد کسی آنے والے کو بقائے جماعت کا احتمال نہیں ہوسکتا۔ علامہ محمد محمد محمد ابن امیر الحاج حلبی حلیہ میں فرماتے ہیں:

لفظ البدائع اما المقتدون فبعض مشائخنا قالوا لا حرج في ترك الانتقال لانعدام الاشتباہ علی الداخل عند معاینۃ فراغ مکان الامام عنہ، وروی عن محمد انہ قال مستحب للقوم ایضا ان ینقضوا الصفوف

ویتفرقوا لیزول بدائع عبارت یہ ہے : رہا مقتدیوں کا حکم تو ہمارے بعض مشائخ نے فرمایا وہ اگر اپنی جگہ سے نہ ہٹیں تو کوئی حرج نہیں اس لئے کہ آنے والا جب امام کی جگہ خالی دیکھ لے گا تو اسے بقائے جماعت کا شبہ نہ رہ جائے گا۔ اور امام محمد سے روایت ہے کہ انہوں نے فرمایا: قوم کے لئے بھی مستحب ہے کہ صفیں توڑ دیں اور منتشر ہو جائیں

---

1 کنز العمال بحوالہ الدیلمی عن علی رضی اللہ عنہ حدیث ۱۹۰۴۰ مطبوعہ مؤسسۃ الرسالۃ بیروت ۱۷ / ۳۱۳ 2 القرآن ۸/۹۴ ، ۷ 3 جلالین نصف ثانی الم نشرح مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی ص ۵۰۰

Fatawa Rizvia, Volume 9

Arabic Text	Urdu Translation
Al-ishtibah ala al-dakhil al-mu'ayin al-kull fi al-salat al-ba'id an al-imam wa lima ruwina min hadith abi hurairah radhi Allahu ta'ala anhu wa hadha fi al-dhakhirat annahu ruwi an Muhammad wa masha alaihi radhi al-din fi al-muheet nassan ala annahu al-sunnah. (End of Quote)	So that there is no doubt for the person who arrives later and sees everyone in prayer, and he is far from the Imam. And also because of the hadith we narrated from Hadrat Abu Hurairah (may Allah be pleased with him). And in Al-Dhakhirah, it is mentioned that this is narrated from Imam Muhammad, and Radi al-Din followed this in Al-Muheet, explicitly stating that this is the Sunnah. (End of Quote - T)

Then I say: It is also necessary to keep in mind that the funeral should not be delayed simply for the purpose of this prayer, because in Shari'ah, promptness (ta'jeel) is commanded. The prayer is not dependent on delay; one can say these words: 'Allahumma la tahrimna ajrahu wa la taftinna ba'dahu waghfirlana walahu' (O Allah, do not deprive us of his reward and do not try us after him, and forgive us and him), or even more than that while carrying the funeral, as is obvious. (As it is not hidden. - T) Imam Ibn al-Hajj al-Makki states in 'Al-Madkhal':

Arabic Text	Urdu Translation
Inna ba'da man ya'tanoona bihi min al-mawta yatrukunahu ba'da an yusalla alaihi fi al-masjidi wa yaqifoona indahu, wa yuteeloona al-du'a wa ba'duhum yaf'alu ma huwa aktharu min dhalika wa huwa takbir al-mu'adhdhinin idhdhaka ala ma taqaddama min za'qatihim wa yuteeloona fi dhalika, wa al-sunnatu al-ta'jeelu bil-mayyit ila dafnihi wa muwaratihi wa fi'luhum yudiddu dhalika, fal-yuhdhar min hadha wa Allahu al-musta'an.	For whichever deceased they have concern, after performing the funeral prayer, they leave him in the mosque and stay by him, prolonging the supplication. Some do even more than that, which is that at that time the Mu'adhdhins call out the Takbir as has been mentioned regarding their loud shouting, and they prolong it. Whereas the Sunnah is to hasten with the deceased to his burial and interment, and their action is contrary to this. Therefore, this should be avoided, and help is sought from Allah. (End of Quote - T)

See, these Imams maintain extreme exaggeration in rejecting innovations, to the extent that in some places, they exceeded the limit, as stated by the investigating Imam Jalal al-Millah wal-Din al-Suyuti (just as Imam Muhaqqiq Jalal al-Din...)

---

1. Bada'i al-Sana'i, Chapter on explaining what is recommended for the Imam, etc., published by H.M. Saeed Company, Karachi, 1/160.
2. Al-Madkhal by Ibn al-Hajj, Prayer of Funerals, published by Dar al-Kitab al-Arabi, Beirut, 3/263. F: Hilyah is not available to me, so a reference to Bada'i al-Sana'i is being given. - Nazir Ahmad.

फ़तावा रिज़विया, खंड 9

अरबी पाठ

अल-इश्तिबाह अला अद-दाखिल अल-मुआइन अल-कुल्ल फी अस-सलात अल-बईद अन अल-इमाम व लिमा रुवीना मिन हदीस अबी हुरैरा रदियल्लाहु तआला अन्हु व हाज़ा फ़ी अज़-ज़खीरा अन्नहु रुविया अन मुहम्मद व मशा अलैहि रदियुद्दीन फ़ी अल-मुहीत नसन अला अन्नहु अस-सुन्नाह। (अह)

उर्दू अनुवाद

ताकि उस व्यक्ति को कोई संदेह न हो जो बाद में आए और सबको नमाज़ में देखे, और वह इमाम से दूर हो। और उस हदीस की वजह से भी जो हमने हज़रत अबू हुरैरा (रदियल्लाहु तआला अन्हु) से रिवायत की। और 'ज़खीरा' में यह है कि यह इमाम मुहम्मद से रिवायत है और इसी पर 'मुहीत' में रदियुद्दीन ने पैरवी फरमाई इस स्पष्टीकरण के साथ कि यही सुन्नत है। (त)

फिर मैं कहता हूँ: यह भी ध्यान रखना आवश्यक है कि केवल इस दुआ के उद्देश्य से जनाज़ा उठाने में देरी न की जाए, क्योंकि शरीयत में जल्दी (ताजील) करने का हुक्म है। दुआ किसी देरी पर निर्भर नहीं है; ये शब्द: 'अल्लाहुम्मा ला तहरिम्ना अज्रहू वला तफ़्तिन्ना बादहू वफ़िर लना वलाहू' (ऐ अल्लाह, हमें इसके सवाब से वंचित न कर और इसके बाद हमें आज़माइश में न डाल, और हमें और उसे माफ़ कर दे), बल्कि इससे ज़्यादा भी जनाज़ा उठाते-उठाते कह सकते हैं जैसा कि स्पष्ट है। (जैसा कि छुपा नहीं है। - त) इमाम इब्न अल-हाज मक्की 'मदख़ल' में फरमाते हैं:

अरबी पाठ

इन्ना बअज़ मन यअतनुना बिही मिन अल-मौता यतरुकुनहु बाद अन युसल्ला अलैहि फ़ी अल-मस्जिदि व यक़िफ़ूना इन्दहु, व युतीलून अद-दुआ व बअज़ुहुम यफ़अलु मा हुवा अक्सरु मिन ज़ालिका व हुवा तकबीर अल-मुअज़्ज़िनीन इज़्ज़ाका अला मा तक़द्दमा मिन ज़अक़ातिहिम व युतीलूना फ़ी ज़ालिका, व अस-सुन्नतु अत-ताजीलु बिल-मय्यित इला दफ़्निही व मुवारातिही व फ़िअलुहुम युज़िद्दु ज़ालिका, फ़ल-युहज़र मिन हाज़ा व अल्लाहु अल-मुस्तआन।

उर्दू अनुवाद

जिन्हें जिस मुर्दे से लगाव होता है, नमाज़-ए-जनाज़ा पढ़ने के बाद उसे मस्जिद में छोड़ देते हैं और उसके पास ठहर कर देर तक दुआ करते हैं, और कुछ इससे भी ज़्यादा करते हैं, वह यह कि उस समय मुअज़्ज़िन तकबीर कहते हैं जैसा कि उनके ऊँचे स्वर में पुकारने का ज़िक्र पहले हो चुका है। और इसमें वे लंबा समय लगाते हैं। जबकि सुन्नत यह है कि मय्यित को ले जाकर जल्दी दफ़्न करें और इन लोगों का अमल इसके

अरबी पाठ	उर्दू अनुवाद
	विपरीत है, तो इससे बचना चाहिए, और अल्लाह ही से मदद की प्रार्थना है। (त)

देखो, इन इमामों ने नए कार्यों (हवादिस) के इनकार में बहुत कड़ाई की है, यहाँ तक कि कुछ जगहों पर वे सीमा पार कर गए, जैसा कि इमाम मोहक़्क़िक़ जलाल अल-मिल्लह वद-दीन अस-सुयूती ने स्पष्ट किया है (जैसा कि इमाम मोहक़्क़िक़ जलालुद्दीन...)

---

1. बदाइय्य-उस-सनाइय्य, इमाम के लिए मुस्तहब कार्यों के वर्णन वाला अध्याय आदि, प्रकाशित: एच.एम. सईद कंपनी, कराची 1/160।
2. अल-मदख़ल ल-इब्निल हाज, सलातुल जनाइज़, प्रकाशित: दारुल किताब अल-अरबी, बेरूत 3/263। फ़: हिल्या मुझे उपलब्ध नहीं है इसलिए बदाइय्य-उस-सनाइय्य का हवाला दिया जा रहा है। - नज़ीर अहमद।

पृष्ठ 948 में से 234

متنِ عربی	اردو ترجمہ
الاشتباہ علی الداخل المعاین الکل فی الصلوۃ البعید عن الامام ولماروینا من حدیث ابی ھریرۃ رضی اللہ تعالی عنہ وھذا فی الذخیرۃ انہ روی عن محمد ومشی علیہ رضی الدین فی المحیط ناصاً علی انہ السنۃ اھ۔	تاکہ ایسے شخص کو شبہ نہ ہو جو بعد میں آئے اور سب کو نماز میں دیکھے، اور امام سے دور ہو۔ اور اس حدیث کی وجہ سے بھی جو ہم نے حضرت ابوہریرہ رضی اللہ تعالٰی عنہ سے روایت کی۔ اور ذخیرہ میں یہ ہے کہ یہ امام محمد سے روایت ہے اور اسی پر محیط میں رضی الدین نے مشی فرمائی اس تصریح کے ساتھ کہ یہی سنّت ہے اھ (ت)

ثم اقول: یہ بھی لحاظ لازم کہ صرف اس دُعا کی غرض سے جنازہ اٹھانے کو تعویق و دیرنگ میں نہ ڈالیں کہ یہاں شرعاً تعجیل مامور ہے اور دُعا کچھ تعویق پر موقوف نہیں، اتنے کلمات اللھم لاتحرمنا اجرہ ولاتفتنا بعدہ واغفرلنا ولہ بلکہ اس سے زائد جنازہ اٹھاتے اٹھاتے کہہ سکتے ہیں کما لا یخفی (جیسا کہ پوشیدہ نہیں۔ ت) امام ابن حاج مکی مدخل میں فرماتے ہیں:

متنِ عربی	اردو ترجمہ
ان بعض من یعتنون بہ من الموتی یترکونہ بعد ان یصلی علیہ فی المسجد ویقفون عندہ، ویطولون الدعاء وبعضھم یفعل ما ھو اکثر من ذلك وھو تکبیر	انہیں جس مُردے سے اعتنا ہوتا ہے نمازِ جنازہ پڑھنے کے بعد مسجد میں چھوڑ دیتے ہیں اور اس کے پاس ٹھہر کر دیر تک دعا کرتے ہیں، اور بعض اس سے زیادہ کرتے ہیں، وہ یہ کہ اُس وقت مؤذنین تکبیر کہتے ہیں

متنِ عربی	اردو ترجمہ
المؤذنین اذ ذاك علی ما تقدم من زعقاتهم ویطولون فی ذلك، والسنة التعجیل بالمیت الی دفنه ومواراته وفعلهم یضد ذلك، فلیحذر من هذا والله المستعان۔	جیسا کہ ان کی بلند بانگوں کا ذکر پہلے ہو چکا ہے۔ اور اس میں طول دیتے ہیں۔ جب کہ سنت یہ ہے کہ میت کو لے جا کر جلد دفن کریں اور ان لوگوں کا عمل اس کے برخلاف ہے، تو اِس سے بچنا چاہئے، اور خدا ہی سے مدد طلبی ہے۔ (ت)

دیکھو ان امام نے بانگہ انکارِ حوادث میں مبالغہ شدید رکھتے ہیں یہاں تک کہ بعض جگہ حد سے تجاوز واقع ہو گیا، کما نص علیہ الامام المحقق جلال الملۃ والدین السیوطی (جیسا کہ امام محقق جلال الدین---)

---

1. بدائع الصنائع فصل فی بیان ما یستحب للامام الخ مطبوعہ ایچ ایم سعید کمپنی کراچی ۱/ ۱۶۰
2. المدخل لابن الحاج صلوۃ الجنائز مطبوعہ دارالکتاب العربی بیروت ۳/ ۲۶۳ ف: حلیہ مجھے دستیاب نہیں اس لئے بدائع الصنائع کا حوالہ دیا جارہا ہے۔ نذیر احمد

(Suyuti has clarified this. T) After the funeral prayer, the act of supplicating (dua) for the deceased was not prohibited; rather, the lengthening of the supplication was forbidden as it contradicts the requirement for haste (taj'eel). In some Fatwas it is stated: 'He should not stand while supplicating for him,' 'He should not stand for supplication after the funeral prayer.' (He should not be standing while making dua. Or... he should not stand for the dua after the funeral prayer. T). Some scholars interpreted this as a prohibition of standing in a fixed upright position, and concluded that supplicating while sitting does not fall under this prohibition.

As narrated from some of them with their exact text: Since the prohibition in books occurs with the word 'standing' (qiyam), perhaps there is an indication in it that if one supplicates while sitting, it would be permissible.[1]

As narrated from some, the text is: Since the prohibition has come with the word 'standing' in the books, it is possible that there is a hint that if one prays while sitting, it is permissible (T).

Rather, even this much of a dislike (karahat) in the general prohibition of those who object is problematic. And I say, and success is by Allah's grace: (and I say and this is by Allah's grace. T) 'Standing' (qiyam) in these words of the scholars means 'staying' and 'lingering', as its use in this sense is also common.

Allah Almighty's command is: What a fine abode and place (maqam) heaven is. 'Maqam' means a place to stay, not a place to stand, because that's not the context.

Allah Almighty said, 'What an excellent abode and standing place (muqama).' [2] i.e., place of residence, not a place of standing upright, as there is no occasion for it. Similarly, narrating the saying of the disbelievers, the Almighty says: 'O people of Yathrib, there is no standing place (muqam) for you.' [3] And the Almighty said: 'They establish (yuqimuna) prayer.' [4] i.e., they are constant in it. From this also are the names of Allah Almighty Al-Qayyum, Al-Qiyam, and Al-Qayyim, in the sense of the Ever-Constant in managing creation.[5] - And from it is the Hadith regarding his miracles (may Allah Almighty bless him

Similarly, narrating the words of the disbelievers, Allah's command is: O people of Yathrib! There is no 'maqam' for you, meaning no place of residence. And Allah's command is: They establish prayer. Meaning they maintain constancy and always practice it. And from this are the names of Allah

As narrated from some of them with their exact text: Since the prohibition in books occurs with the word 'standing' (qiyam), perhaps there is an indication in it that if one supplicates while sitting, it would be permissible.[1]

As narrated from some, the text is: Since the prohibition has come with the word 'standing' in the books, it is possible that there is a hint that if one prays while sitting, it is permissible (T).

and grant him peace): 'Had you not left it, it would have stood for you.' [6] i.e., lasted and remained fixed and not passed.

Almighty: Qayyum, Qiyam, Qayyim. Meaning...

[1] Kashf al-Ghita, Chapter Six, Funeral Prayer, Ahmadi Press Delhi, p. 40 [2] Al-Quran 25/76 [3] Al-Quran 33/13 [4] Al-Quran 5/31 [5] Majma al-Bihar under the word 'Qawm', Munshi Nawal Kishore Lucknow 3/181 [6] Sahih Muslim, Book of Virtues, printed by Nur Muhammad Asah al-Matabi Karachi 2/246

(सुयुति ने इसकी स्पष्ट व्याख्या की है। त) जनाज़ा की नमाज़ के बाद मृतक के लिए दुआ करने से इनकार नहीं किया गया, बल्कि दुआ को लंबा करने से मना किया गया क्योंकि यह जल्दी करने (तज्वील) के विरुद्ध है। कुछ फतवों में आया है: 'ला यक़ूमु दाईयन लहू, ला यक़ूमु लिद-दुआ बा'दा सलातिल जनाज़ह' (दुआ करते हुए खड़ा न हो। या... जनाज़ा की नमाज़ के बाद दुआ के लिए खड़ा न हो। त)। कुछ विद्वानों ने इसे सीधे खड़े होने (इंतिसाब) की मनाही माना है और बैठकर दुआ करने को इस मनाही में शामिल न होने की संभावना जताई है।

जैसा कि उनमें से कुछ से उनके मूल शब्दों के साथ उद्धृत किया गया है: चूँकि किताबों में 'क़याम' (खड़े होने) शब्द के साथ मनाही आई है, शायद इसमें यह इशारा हो कि अगर बैठकर दुआ करे तो जायज़ हो। [1]

बल्कि कराहत (नापसंदगी) के इस स्तर से भी मना करने वालों के सामान्य निषेध में दोष आता है। और मैं कहता हूँ, और तौफीक अल्लाह की ओर से है: (और मैं कहता हूँ और यह अल्लाह की तौफीक से है। त) विद्वानों के इन शब्दों में 'क़याम' का अर्थ 'रुकना' और 'ठहरना' है, क्योंकि इन अर्थों में भी इसका उपयोग प्रचलित है।

अल्लाह तआला ने फरमाया: 'कितना अच्छा ठिकाना और स्थान (मक़ामा) है।' [2] यानी ठहरने की जगह, न कि सीधे खड़े होने की जगह, क्योंकि यहाँ उसका कोई अवसर नहीं है। इसी तरह काफिरों के कथन को उद्धृत करते हुए अल्लाह फरमाता है: 'ऐ यसरिब वालो! तुम्हारे लिए कोई स्थान (मक़ाम) नहीं है।' [3] और अल्लाह तआला ने फरमाया: 'वे नमाज़ क़ायम करते हैं।' [4] यानी उस पर निरंतरता रखते हैं। और इसी से अल्लाह तआला के नाम

जैसा कि कुछ से वर्णित है, इबारत यह है: चूँकि किताबों में लफ़्ज़ 'क़याम' के साथ मनाही आई है, इसलिए हो सकता है कि उस समय यह इशारा हो कि अगर बैठकर दुआ करे तो जायज़ है (त)।

बारी तआला का इरशाद है: जन्नत कैसा ही उम्दा ठिकाना और मक़ाम है। मक़ाम का अर्थ ठहरने की जगह है, खड़े होने की जगह नहीं क्योंकि उसका कोई मौक़ा नहीं।

इसी तरह काफ़िरों के क़ौल की हिकायत करते हुए इरशाद-ए-बारी है: ऐ अहल-ए-यसरिब! तुम्हारे लिए मक़ाम नहीं यानी जाए-क़रार (ठहरने की जगह) नहीं। और इरशाद-ए-बारी है:

जैसा कि उनमें से कुछ से उनके मूल शब्दों के साथ उद्धृत किया गया है: चूँकि किताबों में 'क़याम' (खड़े होने) शब्द के साथ मनाही आई है, शायद इसमें यह इशारा हो कि अगर बैठकर दुआ करे तो जायज़ हो। [1]

जैसा कि कुछ से वर्णित है, इबारत यह है: चूँकि किताबों में लफ़्ज़ 'क़याम' के साथ मनाही आई है, इसलिए हो सकता है कि उस समय यह इशारा हो कि अगर बैठकर दुआ करे तो जायज़ है (त)।

अल-क़य्यूम, अल-क़ियाम और अल-क़य्यिम हैं, सृष्टि के प्रबंधन में निरंतर बने रहने के अर्थ में।[5] - और इसी से उनके(सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम) मोजिजों (चमत्कारों) के बारे में हदीस है: 'यदि तुम उसे न छोड़ते, तो वह तुम्हारे लिए क़ायम (स्थायी) रहता।' [6] यानी टिका रहता और स्थिर रहता और खत्म न होता।

नमाज क़ायम करते हैं। यानी इस पर मदावमत (निरंतरता) करते हैं और हमेशा बरतते हैं। और इसी से बारी तआला के अस्मा (नाम) क़य्यूम, क़ियाम, क़य्यिम हैं। यानी...

[1] कश्फ अल-ग़िता, छठा अध्याय, जनाज़ा की नमाज़, मतबा अहमदी दिल्ली, पृ. 40 [2] अल-क़ुरआन 25/76 [3] अल-क़ुरआन 33/13 [4] अल-क़ुरआन 5/31 [5] मजमा अल-बिहार, शब्द 'क़ौम' के अंतर्गत, मुंशी नवल किशोर लखनऊ 181/3 [6] सहीह मुस्लिम, किताब अल-फज़ाइल, नूर मुहम्मद असहा अल-मताबी कराची 246/2 द्वारा मुद्रित

سیوطی نے اس کی تصریح فرمائی ہے۔ ت) بعد نمازِ جنازہ میت کے لئے نفسِ دعا پر انکار نہ فرمایا بلکہ تطویلِ دعا کی ممانعت فرمائی کہ منافیِ تعجیل ہے بعض فتاوٰی میں کہ واقع ہوا لا یقوم داعیاً لہ، لا یقوم للدعاء بعد صلوۃ الجنازۃ (دعا کرتے ہوئے کھڑا نہ ہو۔ یا۔ بعد نمازِ جنازہ دعا کے لئے کھڑا نہ ہو۔ ت) بعض علماء نے اسے منعِ قیام، بمعنی انتصاب، پر محمول کرکے بیٹھ کر دعا کو، اس ممانعت میں داخل نہ ہونے کا استظہار کیا۔

جیسا کہ بعض سے منقول ہے عبارت یہ

کما نقل عن بعضھم بمانصہ چوں منع در کتب بلفظ قیام ہے: چونکہ کتابوں میں لفظِ قیام کے ساتھ واقع شدہ شاید کہ دراں اشارت باشد باں کہ اگر نشستہ دعا کند جائز باشد۔ 1

ممانعت آئی ہے اس لئے ہو سکتا ہے کہ اس وقت یہ اشارہ ہو کہ اگر بیٹھ کر دعا کرے تو جائز ہے (ت)

بلکہ کراہت اس قدر سے بھی اطلاقِ منع مانعین میں خلل واقع، وانا اقول: وباللہ التوفیق (اور میں کہتا ہوں اور یہ اللہ کی توفیق سے ہے۔ ت) قیام، ان کلماتِ علماء میں بمعنی توقف ودرنگ ہے کہ ان معنی میں بھی اس کا استعمال شائع،

باری تعالٰی کا ارشاد ہے: جنت کیسا ہی عمدہ ٹھکانہ اور مقام ہے۔ مقام کا معنی ٹھہرنے کی جگہ، کھڑے ہونے کی جگہ نہیں اس لئے کہ اس کا موقع نہیں۔

قال تعالی حَسُنَتْ مُسْتَقَرًّا وَ مُقَامًا 2 ای موضع قرار، لا محل انتصاب، اذ لا محل لہ، وکذا قولہ تعالی حاکیا عن الکفار ، یٰاَھْلَ یَثْرِبَ لَا مُقَامَ لَکُمْ 3 وقال تعالی یُقِیمُوْنَ

اسی طرح قولِ کفار کی حکایت فرماتے ہوئے ارشادِ باری ہے: اے اہل یثرب! تمہارے لئے مقام نہیں یعنی جائے قرار

جیسا کہ بعض سے منقول ہے عبارت یہ

کما نقل عن بعضھم بمانصہ چوں منع در کتب بلفظ قیام ہے: چونکہ کتابوں میں لفظِ قیام کے ساتھ واقع شدہ شاید کہ دراں اشارت باشد ہاں کہ اگر نشستہ دعا کند جائز باشد۔ 1

ممانعت آئی ہے اس لئے ہو سکتا ہے کہ اس وقت یہ اشارہ ہو کہ اگر بیٹھ کر دعا کرے تو جائز ہے (ت)

الصَّلٰوۃَ 4 ای یواظبون علیھا ومنہ اسمائہ تعالی القیوم القیام والقیم بمعنی الدائم القیام بتدبیر الخلق 5 - ومنہ حدیث فی معجزاتہ صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم لولم تکلہ لقام لکم 6 ای دام وثبت ولم ینفذ و

نہیں۔ اور ارشادِ باری ہے: نماز قائم کرتے ہیں۔ یعنی اس پر مداومت کرتے اور ہمیشہ برتے ہیں۔ اور اس سے باری تعالیٰ کے اسماء قیوم، قیام، قیم ہیں۔ یعنی--

1 کشف الغطاء فصل ششم نمازِ جنازہ مطبع احمدی دہلی ص ۴۰ 2 القرآن ۲۵/۷۶ 3 القرآن ۳۳/۱۳

4 القرآن ۵/۳۱ 5 مجمع البحار تحت لفظ قوم منشی نولکشور لکھنؤ ۱۸۱/۳ 6 صحیح مسلم کتاب الفضائل مطبوعہ نور محمد اصح المطابع کراچی ۲۴۶/۲

Fatawa Ridawiyya Volume 9

From a Hadith: 'Sunnat-e-Qa'ima' (established sunnah) means continuous and permanent. And in the supplication of the Adhan, 'as-Salat al-Qa'ima' means the permanent prayer that is not subject to abrogation. In the Hadith of Hakim bin Hizam (may Allah be pleased with him): 'I pledged allegiance to the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) that I would not fall except while standing,' meaning I would not die except while being firm upon Islam. This was stated by Al-Majd in Al-Qamus. It is said, 'Qama al-ma'u' (the water stood), meaning it froze. 'Qamat al-dabbatu' (the beast stood), meaning it stopped. 'Aqama bil-makan' (he resided in the place), meaning he stayed there permanently. 'Aqama al-shay'a' (he established the thing), meaning he made it continuous. 'Ma lahu qimah' (it has no value/worth), when it does not persist in anything. (Summarized). It is mentioned in Majma' Bihar al-Anwar: regarding the hadith 'Rise for your master,' it indicates the desirability of standing upon the arrival of a superior person. This is different from the prohibited standing, which means standing as in attendance (while the other is sitting). This, however, means rising (to greet). (Al-Tayyibi, commentator of Mishkat). It is not part of the prohibited standing; that only applies to those who stand over someone who is sitting, and they remain standing throughout his sitting. (Summarized).

Footnotes: 1. Mishkat al-Masabih with reference to Abi Dawud, Ibn Majah, Kitab al-'Ilm, published by Matba' Mujtabai Delhi, p. 35; Majma' al-Bihar under the word 'Qaum', published by Naval Kishore Lucknow 3 / 181. 2. Musnad Ahmad bin Hanbal, narrated from Hakim bin Hizam, published by Dar al-Fikr Beirut 3 / 204. 3. Al-Qamus al-Muhit, Chapter Mim, Section Qaf, published by Mustafa al-Babi Egypt 4 / 170. 4. Al-Qamus al-Muhit, Chapter Mim, Section Qaf, published by Mustafa al-Babi Egypt 4 / 170. 5. Majma' Bihar al-Anwar under the word 'Qaum', published by Naval Kishore Lucknow 3 / 182.

Page 236 of 948

फ़तावा रज़विया जिल्द 9

एक हदीस से: 'सुन्नत-ए-का़इमा' का अर्थ है निरंतर और स्थायी। और अज़ान की दुआ में, 'अस-सलात अल-का़इमा' का अर्थ है स्थायी नमाज़ जो मंसूख (रद्द) होने वाली नहीं है। हकीम बिन हिज़ाम (रज़ियल्लाहु अ़न्हु) की हदीस में है: 'मैंने अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अ़लैहि वसल्लम) से इस बात पर बैअत की कि मैं गिरूँगा नहीं मगर का़इम रहकर,' अर्थात् इस्लाम पर अटल और दृढ़ रहकर ही मरूँगा। यह बात अल-मज्द ने अल-का़मूस में कही है। कहा जाता है, 'क़ा़म अल-माउ' (पानी खड़ा हो गया), अर्थात् जम गया। 'क़ा़मत अद-दाब्बतु' (जानवर रुक गया), अर्थात् वह ठहर गया। 'अका़ॅम बिल-मकान' (वह स्थान पर ठहर गया), अर्थात् वह वहाँ स्थायी रूप से रहा। 'अका़ॅम अश-शैअ़' (उसने चीज़ को कायम किया), अर्थात् उसे निरंतर रखा। 'मा लहू क़ीमतुन' (उसका कोई मूल्य नहीं), जब वह किसी चीज़ पर टिकता नहीं। (संक्षिप्त)। मज्मअ़ बिहार अल-अनवार में है: 'अपने सरदार के लिए खड़े हो जाओ' के संबंध में, इसमें श्रेष्ठ व्यक्ति के आने पर सम्मान में खड़े होने की मुस्तहब (पसंदीदा) होने का ज़िक्र है। यह उस मना किए गए खड़े होने से अलग है क्योंकि उसका अर्थ खड़ा रहना (सेवा में) है, जबकि इसका अर्थ (सम्मान में) उठना है। (अल-तैय्यिबी, मिश्कात के व्याख्याकार)। यह मना किया गया खड़ा होना नहीं है; वह केवल उन लोगों के लिए है जो किसी बैठे हुए व्यक्ति के ऊपर खड़े रहते हैं और उसके पूरे बैठने के दौरान खड़े रहते हैं। (संक्षिप्त)।

पाद-टिप्पणियाँ: 1. मिश्कात अल-मसाबीह, अबू दाऊद और इब्न माजा के हवाले से, किताब अल-इल्म, मुज्तबाई दिल्ली द्वारा प्रकाशित, पृष्ठ 35; मज्मअ़ अल-बिहार, शब्द 'क़ौम' के अंतर्गत, नवल किशोर लखनऊ द्वारा प्रकाशित 3 / 181। 2. मसनद अहमद बिन हंबल, हकीम बिन हिज़ाम से वर्णित, दार अल-फ़िक्र बेरुत द्वारा प्रकाशित 3 / 204। 3. अल-क़ामूस अल-मुहीत, अध्याय 'मीम', खंड 'क़ाफ़', मुस्तफ़ा अल-बाबी मिस्र द्वारा प्रकाशित 4 / 170। 4. अल-क़ामूस अल-मुहीत, अध्याय 'मीम', खंड 'क़ाफ़', मुस्तफ़ा अल-बाबी मिस्र द्वारा प्रकाशित 4 / 170। 5. मज्मअ़ बिहार अल-अनवार, शब्द 'क़ौम' के अंतर्गत, नवल किशोर लखनऊ द्वारा प्रकाशित 3 / 182।

पृष्ठ 948 में से 236

فتاوی رضویہ جلد نہم

منہ حدیث، سنۃ قائمۃ ای دائمۃ مستمرۃ وفی دعاء الاذان والصلاۃ القائمۃ ای الدائمۃ التی لایعتریھانسخ وفی حدیث حکیم بن حزام رضی اللہ تعالیٰ عنہ بایعت رسول اللہ صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم ان لااخر الاقائماً ۲ ای لاموت الا ثابتا علی الاسلام ۳ قالہ المجد فی القاموس وقال قام الماء، جمد والدابۃ وقفت واقام بالمکان اقامۃ وقامۃ دام والشیئ ادامہ و مالہ قیمۃ، اذالم یدم علی شیئ ٤ (ملخصاً) اھ و قال فی مجمع بحار الانوار، وفی قوموا الی سیدکم، فیہ استحباب القیام عنددخول الافضل وھو غیرالقیام المنھی لان ذلک بمعنی الوقوف وھذا بمعنی النھوض ط (للطیبی شارح المشکوۃ) لیس ھو من القیام المنھی عنہ انما ھو فیمن یقومون علیہ وھو جالس و یظلّون قیاماً طول جلوسہ ٥ (ملخصاً)

دوام والا، ہمیشہ مخلوق کی تدبیر فرمانے والا۔ اسی سے حضور صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کے معجزات کی ایک حدیث ہے: اگر تم اسے نہ ناپتے تو وہ تمہارے لئے قائم رہتا یعنی وہ غلہ دائم و ثابت رہتا اور ختم نہ ہوتا۔ اسی سے یہ حدیث ہے۔ سنت قائمہ یعنی دائمی اور ہمیشہ رہنے والا طریقہ۔ اور دعائے اذان میں ہے: والصلوۃ القائمۃ۔ یعنی دائمی نماز جسے نسخ عارض ہونے والا نہیں۔ حکیم بن حزام رضی اللہ تعالیٰ عنہ کی حدیث میں ہے: میں نے رسول اللہ صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم سے اس پر بیعت کی کہ زمین پر نہ گروں گا مگر قائم رہ کر۔ یعنی نہ مروں گا مگر اسلام پر برقرار اور ثابت رہ کر۔ اسے مجد الدین فیروز آبادی نے القاموس المحیط میں ذکر کیا۔ اور مزید لکھا: قام الماء۔ پانی جم گیا۔ قام الدابۃ۔ جانور ٹھہرا۔ اقام بالمکان۔ اس جگہ ہمیشہ رہا۔ اقام الشیئ۔ اس شئی کو ہمیشہ رکھا۔ مالہ قیمۃ۔ اسے کسی چیز پر دوام نہیں اھ۔ مجمع بحر الانوار میں ہے:

حدیث : اپنے سردار کے لئے قیام کرو۔

1 مشکوۃ المصابیح بحوالہ ابی داؤد ابن ماجہ کتاب العلم مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی ص ۳۵، مجمع البحار تحت لفظ قوم مطبوعہ نولکشور لکھنؤ ۳ / ۱۸۱ 2 مسند احمد بن حنبل مروی از حکیم بن حزام مطبوعہ دارالفکر بیروت ۳ / ۲۰۴ 3 القاموس المحیط باب المیم فصل القاف مطبوعہ مصطفی البابی مصر ۴ / ۱۷۰ 4 القاموس المحیط باب المیم فصل القاف مطبوعہ مصطفی البابی مصر ۴ / ۱۷۰ 5 مجمع بحار الانوار تحت لفظ قوم مطبوعہ نولکشور لکھنؤ ۳ / ۱۸۲

Fatawa Razawiyya Volume 9

From this Hadith, the recommendability of standing at the time of the arrival of a superior person is established. And this standing is distinct from the prohibited kind, because that standing means staying [in a fixed position while another is seated] whereas this means rising [standing up out of respect]. Al-Tayyibi, the commentator of Mishkat, stated: This standing is not among the prohibited ones; that refers to those people who remain standing straight before someone while he remains seated (T). Thus, the statements refer back to this prohibition of lengthening prayers which might cause a delay in the funeral preparations and burial. Otherwise, if brief words are uttered as mentioned in the question, or if there is already a delay in carrying the funeral due to some other necessity and one continues to offer lengthy prayers in such a state, then it is absolutely not included in the prohibition. For in the first scenario there is no delay at all, and in the second, the delay is due to another reason, not for the purpose of prayer. Therefore, the honorable jurists said 'one should not stand for prayer' (T), nor 'one should not pray while standing [still]' (T), or 'one should not pray at all after the funeral' (T). Inevitably, it is proven from the Hadith that the noble Companions (may Allah be pleased with them) crowded around the blessed funeral of Amir al-Mu'minin Umar al-Farooq al-A'zam (may Allah be pleased with him) and stood surrounding it from four sides, and continued to offer prayers for him. Even Amir al-Mu'minin Mawla Ali (may Allah Almighty honor him) joined this gathering and participated in the prayers and praise for the martyred Amir al-Mu'minin (may Allah be pleased with him). Narrated in Sahih Bukhari and Sahih Muslim from Abdullah bin Abbas (may Allah be pleased with them both):

[Table/Box Content] (Arabic Column): And the wording is for Muslim: Umar ibn al-Khattab was placed on his bier, and the people surrounded him, praying for him, praising him, and invoking blessings upon him before he was lifted. I was among them. He (Ibn Abbas) said: I was startled by a man who took hold of my shoulder from behind me. I turned toward him, and it was Ali. He invoked mercy upon Umar and said, "You have not left behind anyone whose deeds I would more love to meet Allah with than yours. And by Allah, I certainly used to think that Allah would place you with your two companions." 1 - And in...

(Urdu Translation Column): That is, the funeral of Amir al-Mu'minin Farooq-e-Azam (may Allah be pleased with him) was placed; people had surrounded it from four sides and were busy in prayer and praise for him. I was also standing among those praying for him. Suddenly, a person came from behind and placed his elbow on my

shoulder. I turned around and saw it was Ali Murtaza (may Allah honor him). Addressing the blessed funeral, he said: May Allah have mercy on you. You have not left anyone after you who is dearer to me than you, such that I would [wish to meet Allah with his deeds] like him...

1. Sahih Muslim, Kitab al-Fadail, Chapter on the Virtues of Umar (may Allah be pleased with him), printed by Noor Muhammad Asah al-Matabi, Karachi, 2/246.

फ़तावा रज़विया जिल्द नवीं

इस हदीस से अफ़ज़ल (श्रेष्ठ व्यक्ति) के आगमन के समय खड़े होने का मुस्तहब (पसंदीदा) होना साबित होता है। और यह खड़ा होना वर्जित खड़े होने से अलग है क्योंकि वह खड़ा होना रुकने (एक स्थिति में जमे रहने) के अर्थ में है और यह खड़े होने (सम्मान में उठने) के अर्थ में है। मिश्कात के व्याख्याकार तैय्यबी ने कहा: यह खड़ा होना मना नहीं है; वह तो उन लोगों के बारे में है जो किसी के बैठे रहने की स्थिति में जब तक वह बैठा रहे उसके सामने सीधे खड़े रहते हैं (त)। अतः कथन इसी दुआ को लंबा करने की मनाही की ओर इशारा करते हैं जिसके कारण कफ़न-दफ़न के काम में देरी हो सकती है। अन्यथा यदि संक्षिप्त शब्द कहे जाएं जैसा कि प्रश्न में उल्लेखित है, या यदि जनाज़ा ले जाने में किसी अन्य आवश्यकता के कारण पहले से ही देरी हो और ऐसी स्थिति में लंबी दुआ करते रहें, तो यह हरगिज़ मनाही में शामिल नहीं है। क्योंकि पहली स्थिति में तो कोई देरी है ही नहीं और दूसरी में देरी किसी और कारण से है, न कि दुआ के उद्देश्य से। इसीलिए फ़ुक़हा-ए-किराम (धर्मशास्त्रियों) ने फ़रमाया 'दुआ के लिए न ठहरे' (त), न 'खड़े रहने की स्थिति में दुआ न करे' (त) या 'जनाज़े के बाद बिल्कुल दुआ न करे' (त)। लाज़मी तौर पर हदीस से साबित है कि सहाबा किराम (रज़ियल्लाहु अन्हुम) ने अमीरुल मोमिनीन उमर फ़ारूक़-ए-आज़म (रज़ियल्लाहु अन्हु) के मुबारक जनाज़े के चारों ओर भीड़ लगा ली और चारों तरफ़ से घेरकर खड़े हो गए और अमीरुल मोमिनीन (रज़ियल्लाहु अन्हु) के लिए दुआएं करते रहे। यहाँ तक कि अमीरुल मोमिनीन मौला अली (कर्रमल्लाहु वज्हहुल करीम) भी इस मजमे (भीड़) में शामिल हुए और शहीद अमीरुल मोमिनीन (रज़ियल्लाहु अन्हु) की दुआ और प्रशंसा में शरीक हुए। सहीह बुखारी और सहीह मुस्लिम में अब्दुल्ला बिन अब्बास (रज़ियल्लाहु अन्हुमा) से रिवायत है:

[टेबल/बॉक्स सामग्री] (अरबी कॉलम): और शब्द मुस्लिम के हैं: उमर बिन अल-खत्ताब को उनके तख्त पर रखा गया, तो लोगों ने उन्हें घेर लिया, वे उनके लिए दुआ कर रहे थे, उनकी प्रशंसा कर रहे थे और उनके उठाए जाने से पहले उन पर दुरूद पढ़ रहे थे, और मैं उनमें था। उन्होंने कहा: एक आदमी ने मुझे पीछे से मेरे कंधे पकड़कर चौंका दिया, तो मैंने उसकी ओर मुड़कर देखा, तो वे अली थे। उन्होंने उमर के लिए रहम की दुआ की और कहा: "आपने अपने पीछे कोई ऐसा नहीं छोड़ा जिसके कर्मों के साथ अल्लाह से मिलना मुझे आपके कर्मों के समान प्रिय हो। और अल्लाह की कसम, मेरा तो ख्याल था कि अल्लाह आपको आपके दो साथियों के साथ रखेगा।" 1 - और... में

(उर्दू अनुवाद कॉलम): यानी अमीरुल मोमिनीन फ़ारूक़-ए-आज़म (रज़ियल्लाहु अन्हु) का जनाज़ा रखा था; लोग चारों तरफ़ से घेरे हुए उनके लिए दुआ और प्रशंसा में व्यस्त थे। मैं भी उन्हें दुआ करने वालों में खड़ा था। अचानक एक व्यक्ति ने पीछे से आकर मेरे कंधे पर कोहनी रखी। मैंने पलट कर देखा तो वे अली मुर्तज़ा (कर्रमल्लाहु वज्हहु) थे। जनाज़ा शरीफ़ की ओर मुखातिब होकर बोले: अल्लाह आप पर रहम फ़रमाए। आपने अपने बाद कोई ऐसा नहीं छोड़ा जो मुझे आपसे ज़्यादा प्यारा हो कि मैं उसके जैसे [कर्मों के साथ अल्लाह से मिलूँ]...

1. सहीह मुस्लिम, किताबुल फ़ज़ाइल, बाब मन फ़ज़ाइल उमर (रज़ियल्लाहु अन्हु), नूर मोहम्मद असहुल मताबे कराची द्वारा मुद्रित 2/246।

पृष्ठ 948 का 237

فتاوٰی رضویہ جلد نہم

اس حدیث سے افضل کی آمد کے وقت قیام کا مستحب ہونا ثابت ہوتا ہے۔ اور یہ قیام ممنوع سے جدا ہے اس لئے کہ وہ قیام بمعنی وقوف ہے اور یہ بمعنی نہوض (اٹھنا) ہے۔ طیبی شارح مشکوٰۃ نے فرمایا: یہ قیام ممنوع سے نہیں، وہ تو ان لوگوں کے بارے میں ہے جو کسی کے بیٹھے رہنے کی حالت میں جب تک وہ بیٹھا رہے اس کے سامنے سیدھے کھڑے رہتے ہیں (ت) پس عبارات اسی منع تطویل دعا کی طرف راجع ہیں جس کے باعث امر تجہیز و تعویق میں پڑے، ورنہ اگر کلمات یسیرہ کہے جائیں جیسا سوال میں مذکور یا ہنوز جنازہ لے چلنے میں کسی اور ضرورت سے دیر ہو اور ایسی حالت میں دعائے تطویل کرتے رہیں تو ہرگز ہرگز منع داخل نہیں کہ صورت اولٰی میں تاخیر ہی نہیں اور ثانیہ میں تاخیر بوجہ آخر ہے، نہ بغرض دعا۔ ولہذا فقہائے کرام نے لایقوم للدعاء (دعا کے لئے نہ ٹھہرے۔ ت) فرمایا نہ لایدعو قائما (ٹھہرنے کی حالت میں دعا نہ کرے۔ ت) یا لایدعو بعدھا اصلا (بعد جنازہ بالکل دعا نہ کرے۔ ت) لاجرم حدیث سے ثابت کہ صحابہ کرام رضی اللہ تعالٰی عنہم نے امیر المومنین عمر فاروق اعظم رضی اللہ تعالٰی عنہ کے جنازہ مبارک کے گرد ہجوم کیا اور چار طرف سے احاطہ کرکے کھڑے ہوئے اور امیر المومنین رضی اللہ تعالٰی عنہ کے لئے دعائیں کرتے رہے۔ یہاں تک کہ امیر المومنین مولٰی علی کرم اللہ تعالٰی وجہہ الکریم بھی اس مجمع میں شامل اور امیر المومنین شہید رضی اللہ تعالٰی عنہ کے دعاء و ثناء میں شریک ہوئے۔ صحیح بخاری و صحیح مسلم میں عبداللہ بن عباس رضی اللہ تعالٰی عنہما سے مروی:

واللفظ لمسلم وضع عمر بن الخطاب علی سریرہ فتکنفہ الناس یدعون ویثنون ویصلون علیہ قبل ان یرفع، وانا فیھم قال فلم یرعنی الارجل قد اخذ بمنکبی من ورائی فالتفت الیہ فاذاھو علی فترحم علی عمر وقال ما خلفت احدا احب الی ان القی اللہ بمثل عملہ منك وایم اللہ ان کنت لاظن ان یجعلك اللہ مع

صاحبیک 1 - وفي | یعنی امیر المومنین فاروق اعظم رضی اللہ تعالیٰ عنہ کا جنازہ رکھا تھا، لوگ چار طرف سے احاطہ کئے ہوئے ان کے لئے دعا و ثناء میں مشغول تھے، میں بھی انہیں دعا کرنے والوں میں کھڑا تھا ناگاہ ایک شخص نے پیچھے سے آکر میرے شانے پر کہنی رکھی میں نے پلٹ کر دیکھا تو علی مرتضیٰ کرم اللہ وجہہ تھے۔ جنازہ شریفہ کی طرف مخاطب ہو کر بولے: اللہ آپ پر رحم فرمائے آپ نے اپنے بعد کوئی ایسا نہ چھوڑا جو مجھے آپ سے زیادہ پیارا ہو کہ میں اس کے سے

1 صحیح مسلم کتاب الفضائل باب من فضائل عمر رضی اللہ تعالیٰ عنہ مطبوعہ نور محمد اصح المطابع کراچی ۲/۲۴۶

Fatawa Ridwiyya Volume 9

| Arabic: Narration from al-Bukhari: He said, I was standing among people who were supplicating to Allah for Umar bin al-Khattab, and he had been placed on his bed. Suddenly, a man from behind me placed his elbow on my shoulder and said, "May Allah have mercy on you. I used to hope that Allah would join you with your two companions." | ...to meet Allah Almighty with good deeds, and by God, I had firm hope that Allah Almighty would grant you the companionship of your two masters, the Master of the Messengers (peace and blessings of Allah be upon him) and the Commander of the Faithful, Siddiq al-Akbar (may Allah be pleased with him). [Al-Hadith] |

Then I say: Every person should supplicate within themselves; being occupied in urging or demanding from others, or disputing and showing anger towards those who do not do so, is not appropriate for that occasion. It is a time for consideration, reflection, taking heed, and deliberation, not for heedless raising of voices, debate, and contention.

| Arabic: And many narrations have been reported regarding this from the noble companions and the prominent successors (may Allah Almighty be pleased with them), and the Hanafi, Maliki, Shafi'i, and other scholars (may their secrets be sanctified) have explicitly stated it. | Regarding this, many reports have been transmitted from the noble companions and the prominent successors (may Allah Almighty be pleased with them). Hanafi, Maliki, Shafi'i, and scholars besides them (may their secrets be sanctified) have explicitly stated this (T). |

I hope that this is the decisive word and just judgement which every fair-minded person would approve. And with Allah is success. As for the concern about corruption of belief, which is often the pretext for those who prohibit, and they—either through ignorance or feigned ignorance—use it as a reason for prohibiting the act itself and for the absolute necessity of abandoning it, instead of just abandoning the regularity of it, even if done by some followed leaders (though the abandonment of regularity from some leaders and elders should suffice. T). They consider it a proof for the obligation of absolute abandonment. Upon investigation, this is merely a far-fetched allusion. The truth is that where such a concern exists, occasional abandonment is sufficient for its removal, as scholars have stated in numerous books (as scholars have explicitly mentioned in various books. T). (Meaning if there is a suspicion that people will consider it obligatory, then leave it sometimes. Not that permanent

abandonment becomes obligatory. - Translator). And even that is generally not necessary; it suffices if done by prominent scholars who are pointed to with fingers, as people look towards their actions and they are the cause of guidance for the general public. And Allah is the Guide to the paths of peace. And blessings and peace until the Day of Resurrection upon His Beloved, his family, his noble companions, and upon us through them.

---

1. Sahih al-Bukhari, Book of Merits, published by Qadimi Kutub Khana, Karachi, 1/519. Page 238 of 948

फ़तावा रज़विया जिल्द नहम (9)

| अरबी: बुख़ारी की एक रिवायत में है कि उन्होंने कहा: मैं उन लोगों में खड़ा था जो अल्लाह से उमर बिन ख़त्ताब के लिए दुआ कर रहे थे, और उन्हें उनके बिस्तर पर रख दिया गया था। तभी मेरे पीछे से एक व्यक्ति ने अपनी कोहनी मेरे कंधे पर रखी और कहा, "अल्लाह आप पर रहम करे। मुझे उम्मीद थी कि अल्लाह आपको आपके दो साथियों के साथ रखेगा।" | ...अमल करके अल्लाह तआला से मिलूँ, और ख़ुदा की क़सम मुझे उम्मीद-ए-वाशिक़ (दृढ़ आशा) थी कि अल्लाह तआला आपको आपके दोनों साहबों सैयदुल मुर्सलीन सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम और अमीरुल मोमिनीन सिद्दीक़-ए-अकबर रज़ियल्लाहु तआला अन्हु की रफ़ाक़त (साथ) नसीब फ़रमाएगा। (हदीस का अंश) |

फिर मैं कहता हूँ: हर व्यक्ति अपने दिल में दुआ करे; दूसरों से ताकीद और तक़ाज़ा में मसरूफ़ियत या न करने वालों से झगड़ा और क्रोध का वह स्थान नहीं है क्योंकि वह समय विचार, चिंतन, नसीहत और ग़ौर-ओ-फ़िक्र का है, न कि ग़ाफ़िलाना आवाज़ें उठाने, बहस और विवाद का।

| अरबी: इस बारे में सहाबा किराम और ताबेईन-ए-इज़ाम (रज़ियल्लाहु तआला अन्हुम) से कई आसार (वर्णन) आए हैं और हनफ़ी, मालिकी, शाफ़ई और अन्य विद्वानों (अल्लाह उनके रहस्यों को पवित्र करे) ने इसकी स्पष्ट रूप से पुष्टि की है। | इस बारे में सहाबा किराम और ताबेईन-ए-इज़ाम रज़ियल्लाहु तआला अन्हुम से कई आसार (वर्णन) आए हैं। हनफ़ी, मालिकी, शाफ़ई और उनके अलावा विद्वानों (अल्लाह उनके रहस्यों को पवित्र करे) ने इसकी स्पष्ट रूप से पुष्टि की है। (त) |

मुझे आशा है कि यह वह निर्णायक बात और न्यायपूर्ण निर्णय होगा जिसे हर इंसाफ़ पसंद व्यक्ति पसंद करेगा। और सफलता अल्लाह की ओर से है। जहाँ तक अक़ीदे (विश्वास) की ख़राबी का अंदेशा है जो अक्सर रोकने वालों का बहाना होता है और वे इसे अज्ञानता या जानबूझकर अज्ञानता बरतते हुए मूल कार्य को रोकने और हराम करने का कारण बना लेते हैं, और इसके बजाय कि पाबंदी (मुवाज़बत) छोड़ी जाए, भले ही वह कुछ पेशवाओं की ओर से हो (हालाँकि पाबंदी का छोड़ना कुछ पेशवाओं और बड़ों की ओर से ही अमल में आ जाए तो काफ़ी है। त), वे पूर्ण रूप से छोड़ने के अनिवार्य होने की दलील देते हैं। वास्तविकता यह है कि यह केवल उनकी दूर की सोच है। सच तो यह है कि जहाँ ऐसा अंदेशा हो, वहाँ कभी-कभी छोड़ देना ही उसे दूर करने के लिए पर्याप्त है, जैसा कि विद्वानों ने अनेक पुस्तकों में स्पष्ट किया है। (त) (अर्थात यदि यह गुमान हो कि लोग इसे अनिवार्य

समझेंगे, तो कभी-कभी छोड़ भी दे। यह नहीं कि हमेशा के लिए छोड़ना अनिवार्य हो जाए। - अनुवादक)। और वह भी सामान्यतः आवश्यक नहीं, केवल उन उलेमा की ओर से काफ़ी है जिनकी ओर उँगलियों से इशारा किया जाता है, क्योंकि लोगों की नज़र उन्हीं के कार्यों पर होती है और वही आम जनता के लिए मार्गदर्शन का कारण बनते हैं। और अल्लाह शांति के मार्गों की ओर मार्गदर्शन करने वाला है। और कयामत के दिन तक दुरूद और सलाम हो उसके हबीब पर, उनकी आल (संतान) पर, उनके श्रेष्ठ साथियों पर और उन सबके वसीले से हम पर।

---

1. सहीह अल-बुख़ारी, किताबुल मनाक़िब, प्रकाशक: क़दीमी कुतुब ख़ाना, कराची, 519/1 पृष्ठ 238 / 948

| رواية للبخاري قال اني لواقف في قوم يدعون الله لعمر بن الخطاب وقد وضع على سريره اذا رجل من خلقى قد وضع مرفقه على منكبى يقول رحمك الله ان كنت لارجو ان يجعلك الله مع صاحبيك الحديث | عمل کر کے اللہ تعالٰی سے ملوں، اور خدا کی قسم مجھے امیدِ واثق تھی کہ اللہ تعالٰی آپ کو آپ کے دونوں صاحبوں سید المرسلین صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم و امیر المومنین صدیق اکبر رضی اللہ تعالٰی عنہ کی رفاقت نصیب فرمائے گا۔ الحدیث |

ثم اقول: ہر شخص اپنے نفس میں دُعا کرے دوسروں سے تاکید و تقاضا میں مصروفیت و اشتغال یا نہ کرنے والوں سے نزاع و جلال کا وہ محل نہیں کہ وہ وقت اعتبار و تفکر و اتعاظ و تدبر کا ہے، نہ غافلانہ رفع اصوات و بحث و منازعت کا۔

| وقد وردت في ذلك اثار كثيرة عن الصحابة الكرام والتابعين الاعلام رضى الله تعالى عنهم وصرحت به العلماء الحنفية والمالكية والشافعية وغيرهم قدست اسرارهم۔ | اس بارے میں صحابہ کرام اور تابعین اعلام رضی اللہ تعالٰی عنہم سے کثیر آثار وارد ہیں۔ حنفی، مالکی، شافعی اور ان کے علاوہ علماء قدست اسرارہم نے اس کی صراحت فرمائی ہے (ت) |

امید کرتا ہوں کہ یہ وہ قولِ فصل و حکم عدل ہو، جسے ہر ذی انصاف پسند کرے وباللہ التوفیق رہا مظنہ فسادِ اعتقاد کہ ایسے مواضع میں اکثر دستاویزِ مانعین ہوتا ہے اور اُسے جہلًا خواہ تجاہلًا موجبِ منع و تحریم نفسِ فعل و بجائے ترکِ مواظبت و لومن البعض المقتدی بھم (اگرچہ مداومت کا ترک بعض مقتداء و پیشوا حضرات سے ہی عمل میں آ جائے۔ ت) مواظبتِ ترکِ مطلق کے وجوب پر دلیل ٹھہراتے ہیں، عندالتحقیق یہ صرف ان کی تلمیح سحیق ہے، حق یہ کہ جہاں ایسا ہو تو

صرف ترکِ احیاناً اُس کے ازالہ میں کافی، کما نص علیہ العلماء في غیر ما کتاب (جیسا کہ علماء نے متعدد کتابوں میں اس کی صراحت فرمائی ہے۔ ت) (یعنی اگر یہ گمان ہو کہ لوگ واجب سمجھیں گے تو کبھی ترک بھی کر دے۔ نہ یہ کہ ہمیشہ ترک کرنا واجب ہو جائے ۔ مترجم) اور وہ بھی عموماً ضروری نہیں صرف علمائے مشار الیھم بالبنان کی جانب سے کفایت کرتا ہے کہ اُنہیں کے افعال پر نظر ہوتی ہے اور وہی باعثِ ہدایتِ عوام، واللہ الہادی الی سبل السلام والصلوۃ والسلام الی یوم القیام الی حبیبہ وآلہ وصحبہ الکرام وعلینا بھم۔

---

1 صحیح البخاری کتاب المناقب مطبوعہ قدیمی کتب خانہ کراچی ۱/۵۱۹ Page 238 of 948

Fatawa Razawiyya Volume 9

O Possessor of Majesty and Honor! And Allah Almighty knows best, and His knowledge is most perfect and most decisive. (And Allah alone is the Guide to the paths of peace. May blessings and peace be upon His Beloved, and upon his noble family and companions until the Day of Resurrection, and for their sake upon us as well, O One of Greatness and Honor! And the Supreme God knows best, and His knowledge is more complete and firm. (T))

Page 239 of 948

फ़तावा रज़विया जिल्द 9

या ज़ल-जलालि वल-इकराम, वल्लाहु तआला अअलम व इल्मुहू अतम्म व अहकम (और अल्लाह ही सलामती के रास्तों की हिदायत देने वाला है, रोज़-ए-क़यामत तक दरूद-ओ-सलाम हो उसके हबीब पर, और उनके मोअज्ज़ज़ आल-ओ-असहब पर, और उनके वास्ते हम पर भी ऐ बुज़ुर्गी व इज़्ज़त वाले! और खुदा-ए-बर्तर खूब जानने वाला है और उसका इल्म ज़्यादा कामिल व मोहकम है। (त))

पृष्ठ 948 में से 239

یا ذاالجلال والاکرام، واللہ تعالٰی اعلم و علمہ اتم و احکم (اور اللہ ہی سلامتی کے راستوں کی ہدایت دینے والا ہے، روزِ قیامت تک درود و سلام ہو اس کے حبیب، اور ان کے معزز آل واصحاب پر، اور ان کے واسطے ہم پر بھی اے بزرگی و عزت والے! اور خدائے برتر خوب جاننے والا ہے اور اس کا علم زیادہ کامل و محکم ہے۔ (ت))

Fatawa Rizvia Volume 9

Bazd-ul-Jawaiz 'ala al-Du'a ba'd Salat al-Janayiz 1311 AH (Distribution of rewards for praying after the funeral prayer)

Issue No. 64: Inquiry from Kanpur

To the honorable observation of the gatherer of rational and traditional sciences, expert in branches and principles, Hazrat Maulana Molvi Ahmad Raza Khan Sahab (May his high shadow endure), after greetings it is submitted, please grant an answer to this. Salutations from Muhammad Abdul Wahhab from Kanpur, Madrasa Faiz-e-Aam.

Question: What do the scholars of religion and the muftis of the strong Sharia say on this issue: that nowadays in the cities of Deccan etc. it is prevalent that after the salutation of the funeral prayer and before the dispersal of rows, meaning both Imam and followers remain facing the Qibla in that same known posture of the funeral prayer and recite some supplications and Surah Fatiha etc. for the deceased. Is this matter Sharia-compliant or not? It is hoped that a healing answer with references from reliable books of the Hanafi school of thought will be granted. Explain and you shall be rewarded.

The Answer:

In the name of Allah, the Most Gracious, the Most Merciful. Praise be to Allah, the Responder to prayers, and the best of blessings and the most complete greetings be upon the refuge of the living and the return of the dead, purely... | Starting in the name of Allah, the Most Kind, the Merciful. All praises are for God who is the accepter of prayers, and may the best blessings and most complete salutations be upon him who is the refuge of the living, the return of the dead, pure and...

फ़तावा रिज़विया, खंड 9

बज़्लुल जवाईज़ अलल दुआ बाद सलातुल जनाइज़ 1311 हिजरी (जनाज़ा की नमाज़ के बाद दुआ करने पर इनामों का वितरण)

सवाल नंबर 64: कानपुर से इस्तफ़्ता (प्रश्न)

तार्किक और पारंपरिक विज्ञान के ज्ञाता, शाखाओं और सिद्धांतों के जानकार हज़रत मौलाना मौलवी अहमद रज़ा ख़ान साहब (मद ज़िल्लहुल आली) की खिदमत में अर्ज़ है, कृपया इसका उत्तर प्रदान करें। सलाम के साथ मोहम्मद अब्दुल वहाब, कानपुर, मदरसा फैज़-ए-आम।

सवाल: दीन के विद्वान और शरीअत के मुफ़्ती इस मसले पर क्या फ़रमाते हैं कि इन दिनों दकन (दक्षिण) आदि के शहरों में यह बात प्रचलित है कि जनाज़ा की नमाज़ के सलाम के बाद, सफ़ों के बिखरने से पहले यानी इमाम और मुक़्तदी दोनों उसी जानी-मानी मुद्रा में क़िबला की तरफ़ मुँह किए खड़े रहते हैं और मय्यत के लिए कुछ दुआएं और सूरह फ़ातिहा आदि पढ़ कर उसे बख़्शते हैं। क्या यह बात शरीयत के अनुसार जायज़ है या नहीं? उम्मीद है कि इसका संतोषजनक जवाब हनफ़ी मज़हब की प्रामाणिक किताबों के हवालों के साथ दिया जाएगा। बयान फ़रमाएं सवाब पाएं।

अल-जवाब (उत्तर):

अल्लाह के नाम से शुरू जो अत्यंत कृपाशील, दयावान है। सभी प्रशंसा अल्लाह के लिए है जो दुआओं को स्वीकार करने वाला है, और श्रेष्ठ दुरूद और पूर्ण सलाम हों उन पर जो जीवितों के लिए शरणस्थली और मृतकों के लौटने का स्थान हैं, शुद्ध और... | अल्लाह के नाम से शुरू जो बहुत मेहरबान और रहम वाला है। सभी प्रशंसाएं खुदा के लिए हैं जो दुआएं स्वीकार करने वाला है, और सबसे अच्छी दुआएं और पूर्ण अभिवादन उन पर हों जो जीवितों की शरणस्थली और मृतकों का ठिकाना हैं, शुद्ध और...

فتاویٰ رضویہ جلد نہم

بذل الجوائز علی الدّعاء بعد صلاۃ الجنائز ۱۳۱۱ھ (نمازِ جنازہ کے بعد دُعا کرنے پر انعامات کی تقسیم)

مسئلہ نمبر ۶۴: استفتاء از کانپور

بشرف ملاحظہ جامع المعقول والمنقول، واقف الفروع والا صول حضرت مولانا مولوی احمد رضا خاں صاحب مدظلہ العالی، پس از تسلیم معروض، براہ کرم اس کا جواب مرحمت فرمائے گا۔ والتسلیم محمد عبد الوہاب از کانپور، مدرسہ فیضِ عام۔

کیا فرماتے ہیں علمائے دین و مفتیانِ شرع متین اس مسئلہ میں کہ ان دنوں جو بلاد دکن وغیرہ میں یہ امر مروج ہے کہ بعد سلام نمازِ جنازہ قبل تفرق صفوف یعنی امام و مقتدی دونوں رو بقبلہ اسی ہیئت معلومہ صلاۃ جنازہ پر قائم رہتے ہیں اور میت کے حق میں چند دعائیں اور سورہ فاتحہ وغیرہ پڑھ کر بخشتے ہیں آیا یہ امر شرعاً جائز ہے یا نہیں؟ امید کہ اس کا شافی جواب بحوالہ عباراتِ کتب معتبرہ مذہب حنفیہ مرحمت ہو۔ بینوا توجروا۔

الجواب:

بسم اللہ الرحمن الرحیم والحمد للہ مجیب الدعوات وافضل الصلاۃ واکمل التحیات علی ملاذ الاحیاء ومعاد الاموات خالص | اللہ کے نام سے شروع نہایت مہربان، رحم والا۔ سب خوبیاں خدا کے لئے جو دعائیں قبول فرمانے والا ہے، اور بہتر درود، کامل ترین تحیتیں ہوں ان پر جو زندوں کی پناہ گاہ، مردوں کا مرجع، خالص اور

Fatawa Razawiyya Volume Nine

[Top Box - Arabic]: Goodness and pure blessings in the first life and the higher life after death, and upon his family and companions of noble attributes, as long as a past era goes by and a coming one approaches. Amen. [Top Box - Urdu Translation]: May Allah accept pure goodness and blessings for us in the life of this world and in the higher life after death, and upon his noble-natured family and companions, as long as any passing era goes and any coming one draws near. (T)

In the end of the month of Rabi' al-Akhir 1311 AH, some scholars of Ahl al-Sunnah from Bombay sent a question regarding this issue, which was answered concisely with some Hadith research. Now, on 12 Rajab al-Murajjab 1311 AH, this question came from Madrasa Faiz-e-Aam, Kanpur. In this, the actual situation is different from the Bombay case. There, after the funeral prayer, rows were broken and the prayer "O Allah, do not deprive us of his reward, and do not put us into trial after him, and forgive us and him" or something similar was recited. Here, the situation is that they remain in the known formation facing the Qibla before the rows disperse, etc. It was enough for the duty of issuing a fatwa to write the ruling for this specific case, but it's possible the fatwa reaches the common gaze, and the humble author has experience that many laypeople are negligent of specific forms, and some observers intentionally mislead them. Therefore, in such places, it is always appropriate to mention the full matter because "whoever does not know the people of his time is ignorant." (T). There it was Hadith research; here, with the help of Allah Almighty, let us start with a preliminary introduction for legal clarification so that despite the repetition, it is not redundant, and by the grace of Allah, clarification of intent and removal of doubts reach their peak. So I say: And success is from Allah, and through Him is the attainment of the heights of research. (T). There is a consensus among the past and later Imams of the Ahl al-Sunnah wa'l-Jama'at (may Allah be pleased with them and with us through them) that praying for deceased Muslims is beloved and religiously required. Scriptural texts, both verses and Hadiths, indicate absolute and general sending [of prayers], without any restriction or renewal of time, such as it being recommended and prescribed at one time and impermissible and forbidden at another. Some Hadiths were mentioned in the first fatwa; here I mention some fresh Hadiths to show that the grace and gifts of the Messenger (peace and blessings be upon him) are not limited.

Hadith 1: The luminous presence, the Master of the Worlds, peace and blessings of Allah be upon him, says:

[Lower Box - Arabic]: "Increase in supplication." Al-Hakim in al-Mustadrak from...
[Lower Box - Urdu Translation]: Pray abundantly. Al-Hakim narrated it in al-Mustadrak from Hazrat Ibn Abbas.

[Footer]: 1. Al-Mustadrak 'ala al-Sahihayn, Kitab al-Du'a, published by Dar al-Fikr Beirut, 1/529. Page 241 of 948

फ़तावा रज़विया जिल्द 9

[शीर्ष बॉक्स - अरबी]: दुनिया की पहली ज़िंदगी में और मौत के बाद की आला ज़िंदगी में ख़ैर और निराली बरकतें, और उनकी नेक सिफ़त वाली आल और असहाब पर, जब तक कोई गुज़रने वाला दौर जाए और आने वाला करीब आए। आमीन। [शीर्ष बॉक्स - उर्दू अनुवाद]: महज़ खैर और बरकत हमें दुनिया की ज़िंदगी में और मौत के बाद की आला ज़िंदगी में, और उनके नेक स्वभाव वाले आल और असहाब पर, जब तक कोई गुज़रने वाला दौर जाए और आने वाला करीब आए, इलाही कुबूल फ़रमा। (त)

रबी-उल-आख़िर 1311 हिजरी के आख़िरी दिनों में बम्बई के कुछ अहल-ए-सुन्नत विद्वानों ने इस मसले पर एक सवाल भेजा था, जिसका संक्षिप्त जवाब हदीस की तहक़ीक़ के साथ दिया गया था। अब 12 रजब 1311 हिजरी को यही सवाल कानपुर के मदरसा फैज़-ए-आम से आया है। इसमें मामला बम्बई वाले मामले से अलग है। वहां यह था कि जनाज़े की नमाज़ के बाद सफ़ें तोड़कर यह दुआ पढ़ी जाती थी: "ऐ अल्लाह! हमें इसके सवाब से महरूम न कर और इसके बाद हमें आज़माइश में न डाल और हमें और उसे बख्श दे" या इसके जैसा कुछ। यहाँ मामला यह है कि सफ़ें बिखरने से पहले किबला-रू होकर उसी जानी-पहचानी सूरत में खड़े रहते हैं आदि। फ़तवा देने के फ़र्ज़ के लिए इतना काफी था कि इस खास सूरत का हुक्म लिख दिया जाए, मगर मुमकिन है कि फ़तवा आम लोगों की नज़र तक पहुंचे, और फ़क़ीर का तजुर्बा है कि बहुत से आम लोग विशेष स्थितियों से ग़फ़लत करते हैं और कुछ देखने वाले जानबूझकर उन्हें ग़लती में डालते हैं। लिहाज़ा ऐसी जगह हमेशा पूरी बात का ज़िक्र करना बेहतर है क्योंकि "जो अपने ज़माने के लोगों को नहीं जानता वह जाहिल है।" (त)। वहां हदीस की तहक़ीक़ थी, यहाँ अल्लाह के फ़ज़ल से एक प्रस्तावना तैयार करके फ़िक़ही तहक़ीक़ से काम लिया जाए ताकि दोहराव के बावजूद वह बोझ न लगे और अल्लाह के करम से मक़सद की वज़ाहत और शंकाओं का निवारण अपनी इंतहा को पहुंचे। तो मैं कहता हूँ: और अल्लाह ही तौफीक देने वाला है और उसी की मदद से तहक़ीक़ की बुलंदियों तक पहुंचना मुमकिन है। (त)। अहल-ए-सुन्नत वल जमात के पिछले और बाद के इमामों (अल्लाह उनसे राज़ी हो और उनके ज़रिए हमसे भी) का इस बात पर इज्मा (सहमति) है कि मुसलमान मुर्दों के लिए दुआ करना पसंदीदा और शरीअत में वांछित है। शरीअत की दलीलें, आयतें और हदीसें आम दुआ करने की तरफ इशारा करती हैं, जिनमें किसी खास ज़माने की पाबंदी नहीं है कि फलां वक्त तो मुस्तहब और मशरूअ है और फलां वक्त नाजायज़ और ममनूअ। पहली फ़तवे में कुछ हदीसें गुज़री थीं, यहाँ कुछ

नई हदीसें ज़िक्र कर दूँ ताकि पता चले कि हुज़ूर सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम की फ़ैज़ और अता की कोई हद नहीं है।

हदीस 1: हुज़ूर सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम फ़रमाते हैं:

[निचला बॉक्स - अरबी]: "दुआ अधिक किया करो।" अल-हाकिम ने अल-मुस्तदरक में... से रिवायत की। [निचला बॉक्स - उर्दू अनुवाद]: दुआ कसरत से कर। इसे हाकिम ने मुस्तदरक में हज़रत इब्न अब्बास से रिवायत किया।

[फुटर]: 1. अल-मुस्तदरक अलल सहीहैन, किताब-उद-दुआ, मतबुआ दारुल फिक्र बेरुत 1/529. पृष्ठ 241/948

فتاوٰی رضویہ جلد نہم

[اوپر والا خانہ - عربی]: الخیر ومحض البرکات فی الحیاۃ الاولی والحیاۃ العلیی بعد الممات وعلی الہ وصحبہ کریمی الصفات مابعد ماضٍ وقرب ات امین۔ [اوپر والا خانہ - اردو]: محض خیر وبرکت ہمیں دنیا کی زندگی میں اور بعد موت کی بالاتر زندگی میں، اور ان کے بزرگ صفات والے آل واصحاب پر، جب تک کوئی گزرنے والا دور اور آنے والا قریب ہوتا رہے الٰہی قبول فرما۔(ت)

اواخر ماہ فاخر حضرت مفیض المفاخر شہر ربیع الاخر ۱۳۱۱ھ ہجری میں اس مسئلہ کے متعلق ایک سوال بعض اہل علم وسنت نے بمبئی سے بھیجا جس کا اجمالی جواب قدرے تحقیق حدیثی پر مشتمل دیا گیا، اب کہ ۱۲ رجب المرجب ۱۳۱۱ھ کو یہ سوال کانپور مدرسہ فیض عام سے آیا اس میں صورت نازلہ شکل مسئلہ بمبئی سے جدا ہے، وہاں یہ تھا کہ بعد نماز جنازہ کے صفوف توڑ کر یہ دعا اللھم لا تحرمنا اجرہ وتفتنا بعدہ واغفر لنا ولہ یا مثل اس کے کی جاتی ہے، یہاں یوں ہے کہ قبل تفرق صفوف رو بقبلہ اسی ہیئت معلومہ پر قائم رہتے ہیں الخ ادائے حق افتاء کو بس تھا کہ اس صورت خاصہ کا حکم لکھتا مگر ممکن کہ فتوٰی نظرگاہ عامہ تک پہنچے اور فقیر کو تجربہ ہے کہ بہت عوام تملز صور سے غفلت کرتے اور بعض ناظرین قصداً بھی انہیں غلط میں ڈالتے ہیں، لہذا ایسی جگہ ہمیشہ پوری بات کا ذکر کرنا مناسب کہ من لم یعرف اھل زمانہ فھو جاھل (جو اپنے زمانہ والوں سے نا آشنا ہو وہ جاہل ہے۔ت) وہاں تحقیق حدیثی تھی یہاں بعونہ عزوجل ایک مقدمہ تمہید کر کے تنقیح فقہی سے کام لیجئے کہ باوصف تکرار، تکرار بھی نہ ہو اور ایضاح مرام وازاحت اوہام بھی بحمد اللہ تعالٰی نہایت کو پہنچے۔ فاقول : وباللہ التوفیق وبہ الوصول الی ذری التحقیق (تو میں کہتا ہوں اور خدا ہی کی جانب سے توفیق ہے اور اسی کی مدد سے بلندی تحقیق تک رسائی ہے۔ت) سلفاً وخلفاً ائمہ اہلسنت و جماعت رضی اللہ تعالٰی عنہم وعنا بہم کا اجماع ہے کہ

اموات مسلمین کے لئے دعا محبوب اور شرعاً مطلوب، نصوص شرعیہ آیۃً وحدیثاً بارہ ارسالِ مطلق واطلاق مرسل پر وارد جن میں کسی زمانہ کی تقلید و تجدید نہیں کہ فلاں وقت تو مستحب و مشروع ہے اور فلاں وقت ناجائز و ممنوع۔ چند حدیثیں فتویٰ اولیٰ میں گزریں، یہاں بعض احادیث تازہ ذکر کردوں کہ فیض وعطائے حضرت رسالت علیہ الصلوٰۃ والتحیۃ محدود نہیں۔

حدیث ۱: حضور پر نور سید العالمین صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم فرماتے ہیں:

[نیچے والا خانہ - عربی]: اكثر الدعاء الحاكم فی مستدرك عن [نیچے والا خانہ - اردو]: دعا بکثرت کر۔ اسے حاکم نے مستدرک میں حضرت ابن عباس سے روایت کیا۔

[فٹ نوٹ]: 1 المستدرک علی الصحیحین کتاب الدعاء مطبوعہ دارالفکر بیروت ۵۲۹/۱ صفحہ ۲۴۱ از ۹۴۸

Volume 9 Fatawa-e-Razawiyya

Ibn Abbas (may Allah be pleased with them both) narrated it and authenticated it, and Imam Suyuti also marked it as authentic.

Hadith 2: He (peace and blessings of Allah be upon him) said: "When one of you asks, let him ask for much, for he is only asking his Lord." Narrated by Ibn Hibban in his Sahih, and Al-Tabarani in Al-Awsat, on the authority of Umm al-Mu'minin al-Siddiqah (may Allah be pleased with her) with an authentic chain.

I say (Aqool): This hadith points towards abundance in both asking and the One asked. Regarding the One asked, it means asking for a lot, for great things, because one is asking from the Almighty Lord. Regarding asking, it means asking repeatedly, abundantly, because one is asking from the Generous One. He is pleased with the abundance of asking, unlike the son of Adam who gets irritated by repeated asking. So all praise belongs to Allah alone. (T)

Hadith 3: He (peace and blessings of Allah be upon him) said: "Increase your supplication, for supplication repels the definitive decree (Qadha-e-Mubram)." Narrated by Abu al-Shaykh on the authority of Anas (may Allah be pleased with him).

I say (Aqool): The research into the meaning of what is intended by "Qadha-e-Mubram" here, this humble one has mentioned in his treatise "Dhail al-Mudd 'ala Husn al-Wi'a".

Hadith 4: He (peace and blessings of Allah be upon him) said: "Allah has indeed placed a blessing for a man in a need for which he increases his supplication." Narrated by Al-Bayhaqi in Shu'ab and Al-Khatib.

1. Majma' al-Zawa'id, referencing Al-Mu'jam al-Awsat, Chapter: The slave asking for all his needs, etc., published by Dar al-Kitab, Beirut, 10/150.
2. Kanz al-Ummal, referencing Abu al-Shaykh from Anas (may Allah be pleased with him), Hadith 31200, published by Mu'assasat al-Risalah, Beirut, 2/63.
3. Shu'ab al-Iman, mention of chapters on supplication, published by Dar al-Kutub al-Ilmiyyah, Beirut, 1/2.

Page 242 of 948

जिल्द 9 फतावा रज़विया

इब्न अब्बास (रज़ियल्लाहु अन्हुमा) ने इसे रिवायत किया और इसे सहीह कहा। इमाम सुयूती ने भी इसके सहीह होने का निशान लगाया।

हदीस 2: हुज़ूर ﷺ फ़रमाते हैं: "जब तुम में से कोई दुआ मांगे तो बहुत ज़्यादा मांगे क्योंकि वह अपने रब से ही मांग रहा है।" इसे इब्न हिब्बान ने अपनी सहीह में और तबरानी ने मुअजम औसत में उम्मुल मोमिनीन सिद्दीक़ा (रज़ियल्लाहु अन्हा) से सहीह सनद के साथ रिवायत किया।

अक़ूल (मैं कहता हूँ): यह हदीस सवाल (मांगने) और मसहूल (जिससे मांगा जाए) दोनों में अधिकता (तक्सीर) की ओर इशारा करती है। मसहूल में इस तरह कि बहुत कुछ मांगे, बड़ी चीज़ मांगे क्योंकि आखिर रब्बे क़दीर से सवाल कर रहा है, और सवाल में इस तरह कि बार-बार मांगे, कसरत से मांगे क्योंकि आखिर करीम से मांग रहा है, वह सवाल की कसरत से खुश होता है, आदम के बेटे के विपरीत जो बार-बार मांगने से झल्ला जाता है। अल्लाह ही के लिए तमाम खूबियां हैं जो अकेला है। (त)

हदीस 3: हुज़ूर ﷺ फ़रमाते हैं: "दुआ कसरत से मांगो क्योंकि दुआ क़ज़ा-ए-मुब्रम (अटल तक़दीर) को टाल देती है।" इसे अबू अल-शेख़ ने हज़रत अनस (रज़ियल्लाहु अन्हु) से रिवायत किया।

अक़ूल: इस मायने की तहक़ीक़ कि यहाँ क़ज़ा-ए-मुब्रम से क्या मुराद है, फ़क़ीर ने अपने रिसाला 'ज़ैलुल मुद अला हुस्निल विआ' में ज़िक्र की है।

हदीस 4: हुज़ूर ﷺ फ़रमाते हैं: "बेशक अल्लाह तआला ने उस हाजत (ज़रूरत) में बरकत रखी है जिसमें आदमी दुआ की कसरत करे।" इसे बैहक़ी ने।

1. मजमा अल-ज़वाइद ब-हवाला अल-मुअजम अल-औसत, बाब सुवाल अल-अब्द हवाइजह कुल्लहा इलख, मत्तबूआ दार अल-किताब बेरुत 150/10
2. कंज़ अल-उम्माल ब-हवाला अबी अल-शेख़ अन अनस रज़ियल्लाहु अन्हु, हदीस 31200, मत्तबूआ मुअस्ससत अल-रिसाला बेरुत 63/2
3. शेअब अल-ईमान, ज़िक्र फ़ुसूल फ़ी अल-दुआ, मत्तबूआ दार अल-कुतुब अल-इल्मिया बेरुत 1/2.

ابن عباس رضی اللہ تعالٰی عنہما وصححہ ورمز الامام السیوطی لصحتہ۔ رضی اللہ تعالٰی عنہما سے روایت کیا اور اسے صحیح کہا۔ امام سیوطی نے بھی اس کے صحیح ہونے کا نشان (رمز) لگایا۔

حدیث ۲: فرماتے ہیں صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم : اذا سأل احدکم فلیکثر فانما یسأل ربہ ۱۔ ابن حبان فی صحیحہ والطبرانی فی الاوسط عن ام المؤمنین الصدیقۃ رضی اللہ تعالٰی عنہا بسند صحیح۔ جب تم میں سے کوئی شخص دعا مانگے تو بکثرت کرے کہ اپنے رب سے ہی سوال کر رہا ہے۔ اسے ابنِ حبان نے اپنی صحیح میں اور طبرانی نے معجم اوسط میں ام المؤمنین صدیقہ رضی اللہ تعالٰی عنہا سے بسندِ صحیح روایت کیا۔

اقول: یہ حدیث سوال و مسئول دونوں میں تکثیر کی طرف ارشاد فرماتی ہے۔ مسئول میں یوں کہ بہت کچھ مانگے، بڑی چیز مانگے کہ آخر ربِ قدیر سے سوال کرتا ہے، اور سوال میں یوں بار بار مانگے، بکثرت مانگے کہ آخر کریم سے مانگ رہا ہے، وہ تکثیرِ سوال سے خوش ہوتا ہے، بخلاف ابنِ آدم کے کہ بار بار مانگنے سے جھنجھلا جاتا ہے فلہ الحمد وحدہ (تو خدائے یکتا ہی کے لئے ساری خوبیاں ہیں۔ت)

حدیث ۳: فرماتے ہیں صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم : اکثر من الدعاء فان الدعاء یرد القضاء المبرم ۲۔ ابوالشیخ عن انس رضی اللہ تعالٰی عنہ۔ دعا بکثرت مانگ کر دُعا قضائے مبرم کو ٹال دیتی ہے۔ اسے ابوالشیخ نے حضرت انس رضی اللہ تعالٰی عنہ سے روایت کیا۔

اقول: اس معنی کی تحقیق کہ یہاں قضاء مبرم سے کیا مراد ہے، فقیر نے اپنے رسالہ ذیل المد علیٰ حسن الوعاء میں ذکر کی۔

حدیث ۴: فرماتے ہیں صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم : لقد بارك الله لرجل فی حاجة اکثر الدعاء فیها ۳۔ البیهقی فی الشعب والخطیب۔ بیشک اللہ تعالٰی نے برکت رکھی آدمی کی اس حاجت میں جس میں وہ دعا کی کثرت کرے۔ اسے بیہقی نے

1 مجمع الزوائد بحوالہ المعجم الاوسط باب سوال العبد حوائجہ کلها الخ مطبوعہ دارالکتاب بیروت ۱۵۰/۱۰ 2 کنزالعمال بحوالہ ابی الشیخ عن انس رضی اللہ عنہ حدیث ۳۱۲۰۰ مطبوعہ موسسۃالرسالہ بیروت ۶۳/۲ 3 شعب الایمان ذکر فصول فی الدعاء مطبوعہ دارالکتب العلمیہ بیروت ۱/۲

Fatawa Razawiyya | Volume Nine

Topic: In history from Jabir, may Allah be pleased with him. | It is narrated by Hazrat Jabir (RA) in 'Shu'ab al-Iman' and by Al-Khatib in 'Tarikh'.

Hadith 5: Regarding the person who gets tired of excessive supplication and stops, he (the Prophet) said: such a person's prayer is not accepted. He (peace and blessings of Allah be upon him) says: Arabic text: "A servant's prayer continues to be accepted as long as he does not pray for a sin or breaking of family ties, and as long as he is not hasty." It was asked, "O Messenger of Allah, what is hastiness?" He said, "When the servant says, 'I have prayed again and again, but I do not see it being accepted,' and then he gets frustrated at that point and gives up the prayer." - Narrated by Muslim from Abu Huraira (RA), and the source of this Hadith is found in the collections of Bukhari, Muslim, Abu Dawood, Tirmidhi, and Ibn Majah, all from Abu Huraira, and there are other Hadiths in this chapter as well. (T) Urdu Translation/ Explanation: A servant's supplication continues to be accepted as long as he does not ask for something sinful or for the severing of family ties, and as long as he does not show haste. It was submitted, "O Messenger of Allah! What is haste?" He replied, "When a servant starts saying, 'I have prayed repeatedly, but it doesn't seem to be accepted,' and at that point, he gets tired and gives it up." This Hadith was narrated by Imam Muslim from Hazrat Abu Huraira (may Allah be pleased with him). The original Hadith is present in the works of Bukhari, Muslim, Abu Dawood, Tirmidhi, and Ibn Majah, all narrated from Hazrat Abu Huraira, and there are other Hadiths in this chapter besides this one. (T)

Hadiths 6 & 7: In a Hasan Hadith, the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) clearly stated: Arabic text: "Seek goodness throughout your life and expose yourselves to the breaths of Allah's mercy, for Allah has breaths of His mercy which He bestows upon whomsoever He wills of His servants." - Abu Bakr bin Abi al-Dunya in 'Al-Faraj Ba'd al-Shiddah', and the great Imam, Knower of Allah, Sayyidi Muhammad al-Tirmidhi in 'Nawadir al-Usul', al-Bayhaqi in 'Shu'ab al-Iman', and Abu Nu'aym in 'Hilyat al-Awliya' from Anas bin Malik, and in 'Ash-Shu'ab'. Urdu Translation/Explanation: Keep seeking goodness at every moment and every hour throughout your life, and keep looking for the manifestations of Divine mercy, for Allah (The Exalted) has certain manifestations of His mercy that He conveys to whomsoever He wills among His servants. This was recorded by Abu Bakr bin Abi al-Dunya in "Al-Faraj Ba'd al-Shiddah", by the great Imam and Knower of Allah, Sayyidi Muhammad Tirmidhi in "Nawadir al-Usul", by Bayhaqi in "Shu'ab al-Iman", by Abu

Nu'aym in "Hilyat al-Awliya" from Anas bin Malik, and in "Shu'ab al-Iman" from Hazrat.

Footnotes: 1 Sahih Muslim, Kitab al-Dhikr wa al-Du'a, published by Noor Muhammad Asah al-Matabi', Karachi, 352/2. 2 Nawadir al-Usul, the eighty-fourth and hundredth principles regarding seeking goodness, published by Dar Sader, Beirut, p. 223.

विषय: हज़रत जाबिर रज़ियल्लाहु अन्हु से इतिहास में। | 'शुआब अल-ईमान' में और अल-ख़तीब ने 'तारीख़' में हज़रत जाबिर रज़ियल्लाहु अन्हु से रिवायत किया है।

हदीस ५: बहुत अधिक दुआ मांगने से घबराकर दुआ छोड़ देने वाले के लिए फ़रमाया: ऐसे की दुआ क़बूल नहीं होती। सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम फ़रमाते हैं: अरबी पाठ: "बंदे की दुआ तब तक क़बूल होती रहती है जब तक कि वह किसी गुनाह या रिश्तों को तोड़ने की दुआ न करे, और जब तक कि वह जल्दबाज़ी न करे।" पूछा गया, "हे अल्लाह के रसूल, जल्दबाज़ी क्या है?" उन्होंने फ़रमाया, "जब बंदा कहने लगे, 'मैंने बार-बार दुआ की, लेकिन मुझे वह क़बूल होती नहीं दिखती,' और फिर वह उस समय उकता कर दुआ छोड़ दे।" - मुस्लिम, हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि.) से। यह मूल हदीस बुख़ारी, मुस्लिम, अबू दाऊद, तिर्मिज़ी और इब्न माजा सभी के पास हज़रत अबू हुरैरा की रिवायत से मौजूद है, और इस विषय में अन्य हदीसें भी हैं। (त) उर्दू अनुवाद/व्याख्या: बंदे की दुआ क़बूल होती रहती है जब तक कि वह किसी गुनाह या रिश्तों को तोड़ने (क़तअ-ए-रहम) का सवाल न करे और जब तक जल्दबाज़ी न करे। अर्ज़ किया गया: ऐ अल्लाह के रसूल! जल्दबाज़ी क्या है? फ़रमाया: जब बंदा कहने लगे कि मैंने बार-बार दुआ की, क़बूल होती नज़र नहीं आती, उस वक़्त उकता कर छोड़ दे। यह हदीस इमाम मुस्लिम ने हज़रत अबू हुरैरा रज़ियल्लाहु तआला अन्हु से रिवायत की। और असल हदीस बुख़ारी, मुस्लिम, अबू दाऊद, तिर्मिज़ी, इब्न माजा सभी के यहाँ हज़रत अबू हुरैरा की रिवायत से मौजूद है और इस बाब (अध्याय) में इसके अलावा और हदीसें हैं। (त)

हदीस ६ व ७: हदीस-ए-हसन में स्पष्ट रूप से सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम फ़रमाते हैं: अरबी पाठ: "जीवन भर भलाई की तलाश करो और अल्लाह की रहमत की हवाओं (झोंकों) के सामने खुद को पेश करो, क्योंकि अल्लाह की रहमत के कुछ ऐसे झोंके हैं जिन्हें वह अपने बंदों में से जिसे चाहता है, पहुँचाता है।" - अबू बक्र बिन अबी अल-दुनिया ने 'अल-फ़रज बाद अल-शिद्दा' में, और इमाम अजल आरिफ़ बिल्लाह सय्यिदी मुहम्मद तिर्मिज़ी ने 'नवादिर अल-उसूल' में, बैहक़ी ने 'शुआब अल-ईमान' में और अबू नुऐम ने 'हिल्यतुल औलिया' में अनस बिन मलिक से। उर्दू अनुवाद/व्याख्या: हर वक़्त हर घड़ी उम्र भर खैर (भलाई) माँगे जाओ और तजल्लियात-ए-रहमत-ए-इलाही की तलाश रखो कि अल्लाह अज़्ज़वजल के लिए उसकी रहमत की कुछ तजल्लियाँ हैं कि अपने बंदों में जिसे चाहता है पहुँचाता है। इसे अबू बक्र बिन अबी अल-दुनिया ने "अल-फ़रज बाद अल-शिद्दा" में, इमाम अजल

आरिफ़ बिल्लाह सय्यिदी मुहम्मद तिर्मिज़ी ने "नवादिर अल-उसूल" में, बैहक़ी ने "शुआब अल-ईमान" में, अबू नुऐम ने "हिल्यतुल औलिया" में अनस बिन मलिक से और "शुआब अल-ईमान" में हज़रत से।

पाद-टिप्पणियाँ: 1 सहीह मुस्लिम, किताब अल-ज़िक्र व अल-दुआ, नूर मुहम्मद असहा उल-मताबे, कराची, 352/2. 2 नवादिर अल-उसूल, खैर की तलाश के बारे में 84वाँ और 100वाँ सिद्धांत, दार सादिर बेरूत, पृ. 223.

فی التاریخ عن جابر رضی اللہ تعالٰی عنہ۔ | شعب الایمان میں اور خطیب نے تاریخ میں حضرت جابر رضی اللہ تعالٰی عنہ سے روایت کیا

حدیث ۵ : کثرت دعا سے گھبرا کر دعا چھوڑ دینے والے کو فرمایا : ایسے کی دعا قبول نہیں ہوتی ۔ فرماتے ہیں صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم : لا یزال یستجاب للعبد مالم یدع باثم او قطعیة رحم مالم یستعجل قیل یارسول اللہ ما الاستعجال یقول قد دعوت فلم اریستجیب لی فیستحسر عند ذلك ویدع الدعاء - مسلم عن ابی ھریرة رضی اللہ تعالی عنه واصل الحدیث عند الشیخین وابی داود والترمذی وابن ماجة جمیعا عنه وفی الباب وغیرہ۔ بندے کی دعا قبول ہوتی رہتی ہے جب تک کہ کسی گناہ یا قطع رحم کا سوال نہ کرے اور جب تک کہ جلد بازی نہ کرے۔ عرض کیا یا رسول اللہ جلد بازی کیا ہے؟ فرمایا جب بندہ کہنے لگے کہ میں نے بار بار دعا کی، قبول ہوتی نظر نہیں آتی، اُس وقت اُکتا کر چھوڑ دے۔ یہ حدیث امام مسلم نے حضرت ابوہریرہ رضی اللہ تعالٰی عنہ سے روایت کی۔ اور اصل حدیث بخاری، مسلم، ابوداؤد، ترمذی، ابن ماجہ سبھی کے یہاں حضرت ابوہریرہ کی روایت سے موجود ہے اور اس باب میں اس کے علاوہ اور حدیثیں ہیں۔ (ت)

حدیث ۶ و ۷ : حدیث حسن میں تصریحاً ارشاد فرماتے ہیں صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم : اطلبوا الخیر دھرکم کله وتعرضوا لنفحات رحمة اللہ فان للہ نفحات من رحمة یصیب بھا من یشاء من عباده - ابوبکر بن ابی الدنیا في الفرج بعد الشدة والامام الاجل عارف باللہ سیدی محمد الترمذی فی نوادر الاصول والبیھقی في شعب الایمان وابو نعیم فی حلیة الاولیاء عن انس بن مالك وفی الشعب ہر وقت ہر گھڑی عمر بھر خیر مانگے جاؤ اور تجلیات رحمت الہی کی تلاش رکھو کہ اللہ عزوجل کے لئے اس کی رحمت کی کچھ تجلیاں ہیں کہ اپنے بندوں میں جسے چاہتا ہے پہنچاتا ہے۔ اسے ابوبکر بن ابی الدنیا

نے "الفرج بعد الشدة" میں ، امام اجل عارف باللہ سیدی محمد ترمذی نے نوادر الاصول میں، بیہقی نے شعب الایمان میں، ابو نعیم نے حلیۃ الاولیاء میں انس بن مالک سے اور شعب الایمان میں حضرت

1 صحیح مسلم کتاب الذکر والدعاء مطبوعہ نور محمد اصح المطابع کراچی ۳۵۲/۲ 2 نوادر الاصول الاصل الرابع والثمانون والمائة فی طلب الخیر مطبوعہ دار صادر بیروت ص ۲۲۳

(Arabic text in the box): It was also narrated from Abu Hurayrah (may Allah be pleased with both of them), and a similar report was mentioned previously by al-Tabarani in al-Mu'jam al-Kabir on the authority of Muhammad ibn Maslamah (may Allah be pleased with him) in the first fatwa. Al-Amiri said: "This Hadith is Hasan Sahih (good authentic)." I say: My grading of it as Hasan or Hasan Sahih is appropriate and correct because it has multiple chains of narration. And Sheikh Muhammad Hijazi al-Sha'rani has graded the Hadith from al-Mu'jam al-Kabir as Hasan. (T)

(Urdu commentary): Here, by the grace of Allah, there is not only a general application but an explicit generalization of time, which absolutely includes all times —before the funeral prayer, and immediately or separately after it. Therefore, whenever one supplicates, it is undoubtedly exactly what is commanded and is good in itself. Until a specific prohibition for a particular time is proven from the pure Sharia, forbidding it or denying it is a rejection and nullification of the Sharia's command. Now, the argument of "lack of specific transmission" or "absence of a specific mention," which the deniers often use in such matters to mislead, has been completely scattered like dust. For when a general command of Sharia is issued with explicit generalization, all times come under that command. Then what is the meaning of "lack of mention" in a specific case? If it were based on such reasoning, it would be as if Zaid said: "Although the Great Quran commands 'Establish prayer' etc. in a general form, where is the command mentioning my name specifically? Therefore, the obligation of prayer is not proven for me." To such a person, any sensible person would say: "When a general command is revealed, you are also included. If the claimant argues for an exception, let him prove that exception." In short, such obstinacy would only be a few degrees below the highest level of insanity. Yes, it is certainly true that something "good in itself" can sometimes be obstructed by an external factor that makes it "accidentally bad." Whoever claims this in a specific case bears the burden of proof. It is evident that the obstructing factor will only interfere as long as it exists; once it is removed, the original ruling of being "good" will return. "As is not hidden from anyone who has even the slightest portion of sound intellect." (T) After this clear premise, look at these statements of the jurists (Fuqaha) by which some shallow people were misled, or clever people deliberately misled the common public.

I say: These general statements in the common books are by no means absolute or unrestricted when they describe supplication after funeral prayer as disliked

(makruh). And why would they write so, when there are numerous, successive (mutawatir) sayings and actions of the Radiant Prophet, the Master of the World (peace and blessings of Allah be upon him), the Companions, and the Imams of the past and later generations, as well as the abundant clarifications and corroborated statements of these very jurists? In summary, the texts of the Sharia and...

(बॉक्स में अरबी और उर्दू पाठ का अनुवाद): अबू हुरैरा (रज़ियल्लाहु अन्हुमा) से भी रिवायत है। और इसी के समान अर्थ वाली हदीस तबरानी की मुअजम कबीर के हवाले से हज़रत मुहम्मद बिन मशलमा (रज़ियल्लाहु अन्हु) की रिवायत पहले फतवे में गुज़र चुकी है। आमरी ने कहा: "यह हदीस हसन सही है।" मैं कहता हूँ: मेरा इसे हसन या हसन सही कहना उचित और सही है, क्योंकि इसके कई मार्ग (सनद) हैं। और शेख मुहम्मद हिजाज़ी शअरानी ने मुअजम कबीर की हदीस को हसन कहा है। (त)

(उर्दू व्याख्या): यहाँ, अल्लाह की कृपा से, न केवल सामान्य अनुप्रयोग है, बल्कि समय का स्पष्ट सामान्यीकरण है जिसमें जनाज़ा की नमाज़ से पहले और बाद में, तुरंत या अलग, सभी समय निश्चित रूप से शामिल हैं। तो जिस समय भी दुआ की जाए, वह निस्संदेह बिल्कुल आदेशित और अपने आप में अच्छी (हसन फी ज़ातिही) है। जब तक शरीयत से किसी विशेष समय की मनाही साबित न हो जाए, तब तक उसे रोकना या उसका इनकार करना शरीयत के आदेश को रद्द करना और उसे बेकार करना है। अब वह 'विशेष उल्लेख की कमी' या 'विशेष रिवायत की अनुपलब्धि' का बहाना, जिसका उपयोग इनकार करने वाले हज़रात ऐसे मामलों में अक्सर गुमराह करने के लिए करते हैं, पूरी तरह से धूल के समान उड़ गया है। क्योंकि जब शरीयत का आदेश स्पष्ट सामान्यीकरण के साथ आया है, तो सभी समय उस आदेश के तहत शामिल हैं। फिर किसी विशेष समय में 'उल्लेख की कमी' का क्या अर्थ है? यदि इस तर्क को आधार बनाया जाए, तो यह ऐसा होगा जैसे ज़ैद कहे: "यद्यपि महान कुरान में 'नमाज़ कायम करो' आदि सामान्य रूप में आया है, लेकिन विशेष रूप से मेरा नाम लेकर आदेश कहाँ है? इसलिए, मुझ पर नमाज़ की फर्ज़ियत साबित नहीं होती।" किसी भी बुद्धिमान व्यक्ति द्वारा उससे यही कहा जाएगा कि जब सामान्य आदेश आया है, तो तुम भी उसमें शामिल हो। यदि कोई अपवाद का दावा करता है, तो वह उस अपवाद को साबित करे। संक्षेप में, ऐसी हठधर्मिता तो पागलपन के उच्चतम स्तर से केवल कुछ ही डिग्री कम होगी। हाँ, यह निश्चित रूप से सच है कि 'स्वयं में अच्छी' चीज़ कभी-कभी बाहरी कारणों से 'आकस्मिक रूप से बुरी' हो सकती है। जो कोई किसी विशेष मामले में इसका दावा करता है, सबूत का बोझ उसी पर है। यह स्पष्ट है कि बाधा डालने वाला कारण केवल तभी तक बाधा रहेगा जब तक वह मौजूद है; उसके हटते ही 'अच्छाई' का मूल आदेश वापस आ जाएगा। "जैसा कि उस हर व्यक्ति पर स्पष्ट है जिसे सही बुद्धि का थोड़ा सा भी

हिस्सा मिला है।" (त) इस स्पष्ट प्रस्तावना के बाद, फकीहों (धर्मशास्त्रियों) के उन शब्दों पर नज़र डालें जिनसे कुछ कमअक्ल लोग धोखे में आ गए या चतुर लोगों ने जानबूझकर जनता को गुमराह किया।

मैं कहता हूँ: सामान्य किताबों में ये सामान्य कथन हरगिज़ इस व्यापक अर्थ में नहीं हैं कि वे जनाज़ा की नमाज़ के बाद दुआ को पूर्णतः मकरूह (नापसंद) लिखते हैं। और वे ऐसा क्यों लिखते जबकि स्वयं नूर वाले नबी, सैयदे आलम (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम), सहाबा, और पूर्ववर्ती व परवर्ती इमामों के अनेक मुतवातिर (लगातार) कथन और कार्य मौजूद हैं, और स्वयं उन्हीं फकीहों की प्रचुर स्पष्टीकरण और पुख्ता शब्द मौजूद हैं। सारांश यह है कि शरीयत के स्रोत और...

(ڈبے میں موجود تحریر): عن ابي هريرة رضي الله تعالى عنهما وتقدم نحوه للطبرانی فی المعجم الکبیر عن محمد بن مسلمة رضي الله تعالى عنه في الفتوى الاولى قال العامری حسن صحیح اقول: وقولی حسن حسن صحیح لمارایت من تعدد طرقه وقد حسن الشیخ محمد حجازی الشعرانی حدیث المعجم الکبیر۔ (ت)

ابو ہریرہ رضی اللہ تعالٰی عنہما سے بھی روایت کیا۔ اور اسی کے ہم معنی حدیث طبرانی کی معجم کبیر کے حوالے سے حضرت محمد بن مسلمہ رضی اللہ تعالٰی عنہ کی روایت پہلے فتوی میں گزر چکی ہے۔ عامری نے کہا یہ حدیث حسن صحیح ہے۔ اقول: اور میرا اسے حسن کہنا اچھا اور درست ہے، کیونکہ اس کے متعدد طریق ہیں۔ اور شیخ محمد حجازی شعرانی نے معجم کبیر کی حدیث کو حسن کہا ہے۔ (ت)

یہاں تو بحمد اللہ نہ صرف اطلاق بلکہ صراحۃً تعمیم زمانہ ہے جس میں نماز جنازہ سے قبل و بعد متصل و منفصل سب اوقات قطعاً داخل، تو جس وقت دعا کیجئے بلاشبہ عین مامور بہ اور حسن فی حد ذاتہ ہے، تو جب تک کسی خاص وقت کی ممانعت شرع مطہر سے ثابت نہ ہو منع و انکار حکم شرع کا رد و ابطال ہے۔ اب وہ عدمِ نقلِ خصوص و عدمِ ورودِ خاص کا شگوفہ جس سے حضرات منکرین امثال مسائل میں اکثر مغالطہ دیتے ہیں، رائساً ہباء منثور ہو گیا کہ جب بہ تصریح تعمیم امرِ شرع وارد تو جمیع ازمنہ تحتِ امر داخل، پھر کسی خاص میں عدمِ ورود کیا معنی، بہ استناد اگر ہوگا تو ایسا ہوگا کہ زید کہے اگرچہ قرآنِ عظیم میں اقیموا الصلوٰۃ وغیرہا بصیغہ عموم وارد مگر خاص میرا نام لے کر حکم کہاں ہے، تو مجھ پر فرضیتِ نماز کا ثبوت نہیں۔ آپ سے ذی ہوش سے یہی کہا جائے گا کہ جب عام نازل تو تو بھی داخل۔ اگر مدعی خروج ہے تو خروج ثابت کر۔ غرض

ایسا مکابرہ تو مقیاس الجنون کے اعلیٰ نمبر سے کچھ ہی درجے گھٹا ہو گا۔ ہاں یہ ضرور ہے کہ حسن فی ذاتہ کو کبھی خارج سے کوئی امر مزاحم حسن عارض ہوتا ہے، جو کسی خاص مادہ میں اس کا دعوی کرے وہ مدعی ہے بارِ ثبوت اس کے ذمہ ہے۔ پھر ظاہر کہ عارض اپنے عروض ہی تک مزاحم رہے گا زائل ہوتے ہی اصل حسن کا حکم عود کرے گا۔ کما لا یخفی علی من لہ ادنی نصیب من عقل مصیب (جیسا کہ ہر اس شخص پر واضح ہے جسے عقلِ صحیح کا کوئی بھی حصہ نصیب ہوا ہے۔ ت) اس مقدمہ واضحہ کے بعد ان کلماتِ فقہاء پر نظر ڈالئے جن سے بے مایہ صاحبوں کو دھوکا ہوا یا ہوشیار لوگ دانستہ عوام کو مغالطہ دیں۔

اقول: عامہ کتب میں یہ عامہ اقوال ہرگز اطلاق و ارسال پر نہیں کہ بعد نمازِ جنازہ مطلقاً دعا کو مکروہ لکھتے ہیں، اور کیونکہ لکھتے کہ خود حضورِ پُر نور سیدِ عالم صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم و صحابہ و ائمہ سلف و خلف کے اقوال و افعالِ کثیرہ متواترہ اور انہیں فقہاء کی تصریحاتِ وافرہ و کلماتِ متظافرہ۔ خلاصہ یہ کہ نصوصِ شریعت و

Fatawa Razawiyya Volume Ninth

The consensus of the Ummah stands as a just witness against this generalization and absolute claim. It is not known whether the objectors visit the graves after the funeral prayer or before it. If it is after, then perhaps at that time, the hadiths and the sayings of the ancient and modern scholars and jurists regarding supplication for the deceased are so evident in their manifestation that there was no room for such an absolute claim. Yes, they did impose a restriction, and with what? With the word 'Qiyam' (standing), meaning they said that after the funeral prayer, one should not stand for the sake of supplication, not that one should not supplicate at all after the funeral prayer. It is stated in Jami al-Rumuz: 'He should not stand supplicating for him' [1] (meaning he should not remain standing while praying for the deceased). In Dhakhira Kubra and Muheet Waqtiya, it is: 'He should not stand for supplication after the funeral prayer.' [2] In Kashf al-Ghita, it is: 'He should not stand after the prayer for supplication, as is in most books.' [3] In the same book, it is narrated: 'The prohibition in the books occurred with the word standing.' [4] So, if an absolute prohibitor argues from these sayings, he would be relying on and citing what is clearly contrary. But the Najdis are an ignorant people. (T)

Then I say, and success is from Allah: Now, a high-sighted, precision-loving, and investigative mind will be active in examining the underlying reason as to what that 'standing' is, by the restriction of which the jurists are giving this ruling. After all, the essence of supplication itself is not fit for prohibition at all. Nor do they rule on the essence of supplication itself; perhaps standing up to supplicate is forbidden, this is wrong.

Allah Almighty says: "[Those] who remember Allah standing, sitting, and [lying] on their sides." [5]

And He Almighty says: "And when the Servant of Allah stood up supplicating Him..."

Allah Almighty says: They remember Allah while standing, sitting, and lying down.

And Allah Almighty says: Verily, when that servant of God stood up supplicating Him.

1. Jami al-Rumuz, Chapter on Funerals, Maktabah Islamiyyah Gonbad Qamous Iran, 1/283
2. Quniya, Chapter on Funerals, printed and published in India, p. 56
3. Kashf al-Ghita, Sixth Section, Funeral Prayer, Ahmadi Press Delhi, p. 40
4. Kashf al-Ghita, Sixth Section, Funeral Prayer, Ahmadi Press Delhi, p. 40

5. Al-Quran 3/191

फतावा रज़विया जिल्द नहम

उम्मत का इज्मा (आम सहमति) इस सामान्यीकरण और निरपेक्षता के विरुद्ध एक न्यायपूर्ण गवाह है। यह ज्ञात नहीं है कि इन्कार करने वालों के यहाँ कब्रों की ज़ियारत (दर्शन) जनाज़े की नमाज़ के बाद होती है या पहले। यदि बाद में होती है, तो शायद उस समय मृतकों के लिए दुआ के बारे में जो हदीसें और प्राचीन व आधुनिक विद्वानों और फुकहा (न्यायविदों) के कथन आए हैं, वे अपने स्पष्ट प्रकटीकरण के कारण बयान करने से बेनयाज़ हों, तो निरपेक्षता का तो कोई अवसर ही न था। हाँ, उन्होंने पाबंदी लगाई और वह किस शब्द से? 'कयाम' (खड़े होने) के शब्द के साथ, यानी यह कहा कि जनाज़े की नमाज़ के बाद दुआ के लिए खड़ा न हो, न कि यह कि जनाज़े की नमाज़ के बाद दुआ ही न करे। 'जामिउर रुमुज़' में है: 'ला यक़ूमु दाइयन लहू' [1] (अर्थात मय्यित के लिए दुआ करते हुए न ठहरे)। 'ज़खीरा कुबरा' और 'मुहीत वक़्तिया' में है: 'ला यक़ूमु बिद्दुआइ बाद सलातुल जनाज़ह' [2] (जनाज़े की नमाज़ के बाद दुआ के लिए खड़ा न हो)। 'कश्फुल गिता' में है: 'काएम न शवद बाद अज़ नमाज़ बराए दुआ कज़ा फी अक्सरुल कुतुब' [3] (नमाज़ के बाद दुआ के लिए खड़ा न हो, ऐसा ही अधिकांश किताबों में है)। उसी में उद्धृत है: 'मन्अ दर कुतुब ब-लफ़्ज़े कयाम वाक़ेअ़ शुदा' [4] (किताबों में मनाही 'कयाम' शब्द के साथ आई है)। तो यदि पूर्ण निषेध करने वाला इन कथनों से तर्क करता है, तो वह स्पष्ट रूप से विपरीत बात का सहारा लेगा। लेकिन नजदिय्या ऐसी कौम है जिसे ज्ञान नहीं है। (त)

फिर मैं कहता हूँ, और अल्लाह ही से तौफीक है: अब ऊँची नज़र रखने वाला, सूक्ष्मता पसंद और कारण की जाँच करने वाला दिमाग इस बात पर विचार करेगा कि वह कौन सा खड़ा होना है जिसकी पाबंदी के साथ फुकहा यह हुक्म दे रहे हैं। आखिरकार दुआ का मूल अपने आप में किसी भी तरह से मनाही के योग्य नहीं है। न ही वे दुआ के मूल पर हुक्म देते हैं, शायद खड़े होकर दुआ करना मना हो, यह गलत है।

अल्लाह तआला फरमाता है: "वे खड़े, बैठे और लेटे हुए अल्लाह का ज़िक्र करते हैं।" [5]

और अल्लाह तआला फरमाता है: "और जब अल्लाह का बंदा उससे दुआ करता हुआ खड़ा हुआ..."

अल्लाह तआला फरमाता है: वे खड़े, बैठे और लेटे अल्लाह का ज़िक्र करते हैं।

और अल्लाह तआला फरमाता है: बेशक जब वह बंदा-ए-खुदा उससे दुआ करता खड़ा हुआ।

1. जामिउर रुमुज़, फ़स्ल फ़िल जनाइज़, मकतबा इस्लामिया गुम्बद क़ामूस ईरान, 1/283
2. क़ुनया, बाबुल जनाइज़, मतबूआ मुश्तहरा बिल-हिंदिया (इंडिया), पृ. 56
3. कश्फुल गिता, फ़स्ल शशम नमाज़-ए-जनाज़ा, मतबा अहमदी दिल्ली, पृ. 40
4. कश्फुल गिता, फ़स्ल शशम नमाज़-ए-जनाज़ा, मतबा अहमदी दिल्ली, पृ. 40
5. अल-क़ुरआन 3/191

पृष्ठ 245/948

اجماعِ اُمت اس تعمیم و اطلاق کے رو پر شاہدِ عدل ہیں، معلوم نہیں حضرات منکرین کے یہاں زیارت قبور نماز جنازہ کے بعد ہوتی ہے یا پیشگی ہولیتے ہے، اگر بعد ہی ہوتی ہے تو شاید اُس وقت دعائے اموات میں جو احادیث و اقوال علماء و فقہائے قدیم و حدیث وارد ہیں اپنے ظہور بین کے سبب اظہار سے غنی ہوں تو اطلاق کا تو کوئی محل ہی نہ تھا۔ ہاں انہوں نے تقیید کی اور کاہے سے کی، بلفظ قیام یعنی یہ کہا کہ نماز جنازہ کے بعد دعا کے لئے قیام برائے دعا نہ کرے، نہ یہ کہ بعد نماز جنازہ دعا ہی نہ کرے۔ جامع الرموز میں ہے: لایقوم داعیا لہ 1 (میت کے لئے دعا کرتے ہوئے نہ ٹھہرے ت) ذخیرہ کبرٰی و محیط وقتیہ میں ہے: لایقوم بالدعا بعد صلاۃ الجنازۃ 2 (نماز جنازہ کے بعد دعا کے لئے نہ ٹھہرے ت) کشف الغطاء میں ہے: قائم نشود بعد از نماز برائے دعا کذا فی اکثر الکتب 3 (نماز کے بعد دعا کے لئے نہ ٹھہرے، ایسا ہی اکثر کتابوں میں ہے۔ت) اُسی میں منقول ہے: منع در کتب بلفظ قیام واقع شدہ 4 (کتابوں میں ممانعت لفظ قیام کے ساتھ آئی ہے۔ ت) تو مانع مطلق اگر ان اقوال سے استدلال کرے، صریح مخالف سے تمسک و استناد کرے گا و لکن النجدیۃ قوم یجھلون (مگر نجدیہ ایسی قوم ہے جس کے پاس علم نہیں۔ ت)

ثم اقول: وباللہ التوفیق (پھر میں کہتا ہوں، اور خدا ہی سے توفیق ہے۔ت) اب نظرِ بلند تدقیق پسند تنقیح مناط میں گرم جولاں ہوگی کہ وہ کیا قیام ہے جس کی قید سے فقہاء یہ حکم دے رہے ہیں۔ آخر نفسِ دُعا اصلاً صالح ممانعت نہیں۔ نہ وہ خود اس کے نفس پر حکم کرتے ہیں، شاید کھڑے ہو کر دُعا منع ہو، یہ غلط ہے۔

قال اللہ تعالٰی: اَلَّذِیْنَ یَذْکُرُوْنَ اللہَ قِیٰمًا وَّ قُعُوْدًا اللہ تعالٰی فرماتا ہے: وہ کھڑے بیٹھے اور لیٹے اللہ کا وَّ عَلٰی جُنُوْبِہِمْ 5 ذکر کرتے ہیں۔

وقال تعالٰی: وَ اَنَّہٗ لَمَّا قَامَ عَبْدُ اللہِ یَدْعُوْہُ کَادُوْا اور اللہ تعالٰی فرماتا ہے: بے شک جب وہ بندہ خدا اس یَکُوْنُوْنَ عَلَیْہِ لِبَدًا سے دعا کرتا کھڑا ہوا۔

1 جامع الرموز فصل فی الجنائز مکتبہ اسلامیہ گنبد قاموس ایران ۱/ ۲۸۳ 2 قنیہ باب الجنائز مطبوعہ مشتہرہ بالہندیہ (انڈیا) ص ۵۶ 3 کشف الغطاء فصل ششم نماز جنازہ مطبع احمدی دہلی ص ۴۰ 4 کشف الغطاء فصل ششم نماز جنازہ مطبع احمدی دہلی ص ۴۰ 5 القرآن ۳/ ۱۹۱

Fatawa-e-Razawiyya Volume 9

“Lidā” (1) It seems that they will fall upon it layer upon layer. (T)

Perhaps standing specifically for the deceased for prayer is forbidden; this too is incorrect. It is narrated from the Holy Prophet (may Allah's peace and blessings be upon him) himself that he stood while praying for the deceased. The jurists themselves state: Standing near the grave and praying is Sunnah. In Fath al-Qadir, it is stated:

[Arabic Box Left]: "Al-ma’hud minha (ay min al-Sunnah) laysa illa ziyaratuha wa-al-du’a ‘indaha qa’iman kama kana yaf’alu Rasul Allah sallallahu ta’ala ‘alayhi wa-sallam fi-al-khuruj ila al-Baqi’." [Urdu Translation Right]: What is established from the Sunnah is only the visitation of graves and praying there while standing, as was the blessed practice of the Messenger of Allah (may Allah's peace and blessings be upon him) when going out to Baqi. (T)

It is mentioned in Maslak al-Muqassit:

[Arabic Box Left]: "Min adab al-ziyarah an yusallima thumma yad’u qa’iman tawilan ah mulakhasan." [Urdu Translation Right]: Among the etiquettes of visiting graves is to offer salutations and then stand and pray for a long time. Summary (T)

Perhaps this prohibition is only during the funeral prayer, and after burial it is permitted; this is also incorrect. In the first fatwa, we mentioned the Hadith from Sahihayn that the noble companions (may Allah be pleased with them) gathered around the blessed body of the Commander of the Faithful, Faruq al-A’zam (may Allah be pleased with him), and standing in a circle from all four sides, they continued to pray for the martyred Commander of the Faithful. Furthermore, setting all aside, whether this obstacle has the capacity for good or evil, or if it necessarily becomes an obstacle; ultimately, what is special about standing (qiyam) that its inclusion would make the prayer for the deceased—which is Sharia-prescribed and recommended—disliked and flawed? Now, having found all these possibilities dismissed, the mind has become certain that some specific meaning is intended which can serve as the basis and origin of the ruling. Then what is it? For that, it found a subtle path of investigation and looked into the meanings of standing, the methods of discourse, and the evidences for rulings. Two meanings of standing (qiyam) appeared: standing on one's feet, which is the opposite of sleeping and sitting (i.e., standing on feet

which is the opposite of sleeping or sitting. T), and pausing and staying, which is the opposite of haste and hurry.

(1) Al-Qur'an 7/19 (2) Fath al-Qadir, Bab al-Shahid, published by Nooria Rizvia Sukkur, 2/202 (3) Al-Maslak al-Muqassit with Irshad al-Sari, section 'It is recommended to visit the people of Ma'la', published by Dar al-Kitab al-Arabiya Beirut, pp. 333-334.

फ़तावा-ए-रजविया जिल्द 9

“लिदा” (1) तो मालूम होता है कि उस पर ये तह-ब-तह टूट पड़ेंगे। (त)

शायद विशेष रूप से मृतक के लिए खड़े होकर दुआ करना मना हो, यह भी गलत है। स्वयं हुज़ूर अकदस (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) से मृतक के लिए खड़े होकर दुआ करना वर्णित है। स्वयं फुकहा (कानूनविद) फरमाते हैं: कब्र के पास खड़े होकर दुआ करना सुन्नत है... फ़त्ह अल-क़दीर में है:

[अरबी बॉक्स]: "अल-महूद मिन्हा (ऐ मिन अल-सुन्नत) लैसा इल्ला ज़ियारतुहा वल-दुआ इन्दाहा क़ा'इमन कमा काना यफ़अलु रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम फ़िल-खुरूज इलल-बक़ी' (2)।" [उर्दू अनुवाद]: सुन्नत से जो साबित है वह केवल कब्रों की ज़ियारत करना और वहां खड़े होकर दुआ करना है, जैसा कि बक़ी जाने के समय अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) का मुबारक अमल था। (त)

मसलक अल-मुतकस्सित में है:

[अरबी बॉक्स]: "मिन आदाब अल-ज़ियारत अन यूसल्लिम सुम्मा यद'उ क़ा'इमन तवीलन अह मुलख़सन (3)।" [उर्दू अनुवाद]: ज़ियारत-ए-कुबूर के आदाब में से यह है कि सलाम करे फिर खड़े होकर देर तक दुआ करे। सारांश (त)

शायद यह मनाही केवल नमाज़-ए-जनाज़ा की स्थिति में हो, दफनाने के बाद अनुमति हो, यह भी गलत है। हमने पहले फतवे में सहीहैन की हदीस ज़िक्र की कि सहाबा किराम (रज़ियल्लाहु अन्हुम) ने अमीरुल मोमिनीन फ़ारूक़-ए-आज़म (रज़ियल्लाहु अन्हु) के मुबारक जनाज़े के चारों ओर भीड़ लगा ली और चारों तरफ से घेरा बनाकर खड़े होकर शहीद अमीरुल मोमिनीन के लिए दुआएं करते रहे। फिर सब कुछ छोड़कर देखें, तो क्या इस बाधा में अच्छे या बुरे परिणाम की क्षमता हो, या वह वैसे ही बाधा बन जाए; आखिरकार 'क़ियाम' (खड़े होने) में ऐसी क्या खासियत है कि उसका समावेश मृतक की दुआ को—जो शरीअत के अनुसार वांछित और अनुशंसित थी—मकरूह और दोषपूर्ण बना देगा। अब सोच ने इन सभी संभावनाओं को खारिज पाकर इतना तो पक्का कर लिया कि कोई विशेष अर्थ अभीष्ट है जो इस आदेश का आधार और मूल हो सके। फिर वह क्या है? उसके लिए उसने सूक्ष्म जांच का रास्ता निकाला और क़ियाम के अर्थों, संवाद के तरीकों और आदेशों के प्रमाणों पर नज़र डाली। क़ियाम के दो अर्थ नज़र आए: पैरों पर खड़ा होना जो सोने और बैठने के विपरीत है (यानी पैरों

पर खड़ा होना जो सोने-बैठने के विपरीत है। त) और रुकना और ठहरना जो जल्दबाज़ी और फुर्ती के विपरीत है।

(1) अल-क़ुरान 7/19 (2) फ़त्ह अल-क़दीर, बाब अल-शहीद, नूरुया रज़विया सुक्कुर द्वारा प्रकाशित, 2/202 (3) अल-मसलक अल-मुतकस्सित मय इर्शाद अल-सारी, खंड 'अहले मआला की ज़ियारत मुस्तहब है', दार अल-किताब अल-अरबिया बेरुत द्वारा प्रकाशित, पृष्ठ 333-334।

فتاوٰی رضویہ جلد نہم

لِیدًا (1) تو معلوم ہوتا ہے کہ اس پر یہ تہ بہ تہ ٹوٹ پڑیں گے (ت)

شاید خاص میت کے لئے استادہ دعا منع ہو، یہ بھی غلط خود حضور اقدس صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم سے کھڑے ہو کر میت کے لئے مروی۔ خود فقہاء فرماتے ہیں: قبر کے پاس کھڑے ہو کر دعا سنت ہے۔۔۔ فتح القدیر میں ہے:

[عربی باکس]: المعهود منها (ای من السنة) لیس الا زیارتها والدعاء عندها قائما کما کان یفعل رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیه وسلم في الخروج الی البقیع (2)۔ [اردو ترجمہ]: سنت سے معہود صرف قبروں کی زیارت ہے اور وہاں کھڑے ہو کر دعا کرنا جیسے بقیع تشریف لے جانے کے وقت رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم کا عمل مبارک تھا۔ (ت)

مسلک متقسط میں ہے:

[عربی باکس]: من آداب الزیارة ان یسلم ثم یدعو قائما طویلا اه ملخصاً (3)۔ [اردو ترجمہ]: زیارت قبور کے آداب سے یہ ہے کہ سلام کرے پھر کھڑے ہو کر دیر تک دعا کرے اه ملخصاً (ت)

شاید یہ ممانعت صرف نماز جنازہ کی حالت میں ہو، بعد دفن اجازت ہو، یہ بھی غلط ہم نے فتوٰی اولٰی میں حدیث صحیحین ذکر کی کہ صحابہ کرام رضی اللہ تعالٰی عنہم نے نعش مبارک امیر المؤمنین فاروق اعظم رضی اللہ تعالٰی عنہ کے گرد ہجوم کیا اور چار طرف سے احاطہ کر کے کھڑے ہوئے امیر المؤمنین شہید کے لئے دعائیں کرتے رہے۔ پھر سب سے قطع نظر کیجئے تو اس عارض میں مزاحمت حسن و براث قبیح کی صلاحیت بھی ہو، یا خواہی نخواہی یو نہی مزاحم ہو جائے گا۔ آخر قیام میں کیا خصوصیت ہے کہ اس کا انضمام دعائے میت کو کہ شرعاً مطلوب و

مندوب تھی مکروہ و معیوب کر دے گا۔ اب نظر نے ان سب احتمالات کو ساقط پا کر اتنا تو جزم کر لیا کہ کوئی معنی خاص مقصود ہے جو مناط و منشاء حکم ہو سکے۔ پھر وہ ہے کیا اس کے لئے اس نے باریک راہ تدقیق نکالی اور معانی قیام و مناہج کلام و دلائل احکام پر نگاہ ڈالی، معانی قیام دو نظر آئے: بر پا استادن کہ مخالف خفتن و نشستن ہے (یعنی پاؤں پر کھڑا ہونا جو سونے بیٹھنے کے مخالف ہے۔ ت) اور توقف و درنگ کہ مخالف عجلت و شتاب ہے،

(1) القرآن ۷/ ۱۹ (2) فتح القدیر باب الشہید مطبوعہ نوریہ رضویہ سکھر ۲/ ۲۰۲ (3) المسلک المتقسط مع ارشاد الساری فصل یستحب زیارۃ اہل المعلی مطبوعہ دار الکتاب العربیۃ بیروت ص ۳۳۳-۳۳۴

Fatawa Razawiyya Volume 9

As we explained in the first fatwa, and from it is the poet's saying:	**As we explained in the first fatwa, and from it is the poet's saying:**
وَلَا يَقُوْمُ عَلَىٰ ذُلٍّ يُرَادُ بِهٖ	Upon the humiliation that is intended for them, none remain firm
اِلَّا الْاَذَلَّانِ عِيْرُ النَّجْدِ وَالْوَتَدُ	except two most humiliated: the wild ass (donkey) of Najd and the tent peg.
فَلَيْسَ الْمُرَادُ اَنَّ حِمَارَ النَّجْدِ عِنْدَ اِرَادَةِ الذُّلِّ بِهٖ	It does not mean that when humiliation is intended for the Najdi donkey,
يَقُوْمُ وَلَا يَقْعُدُ بِخِلَافِ غَيْرِهٖ وَاَنَّهٗ يَقْعُدُ اِنَّمَا اَرَادَ	it stands and does not sit, unlike others who sit. Rather, the intent is
اَنَّ الْحِمَارَ النَّجْدِیَّ يَدُوْمُ وَيَصْبِرُ عَلَى الذُّلِّ	that the Najdi donkey persists and is patient in humiliation,
اَمَّا غَيْرُهٗ فَلَا يَرْضٰى بِهٖ۔	whereas others do not accept it. (T)

There are two types of discourse found: in some places, there is a specification for after the funeral prayer, as in most of the mentioned passages (T), and in some places, the ruling is general, as in the passage of Al-Quhistani (T); rather, in some places, there is clear clarification even before the prayer.

In Kashf al-Ghata: وَ پیش اَز نَمَاز نِیز بِدُعَا نَه اِیستَد زِیْرَا چِه دُعَا مِي کُنَد بِدُعَائِیکه اُو فَرُو اَکبَر اَست بَودَنِ دُعَا یَعنِی نَمَازِ جَنَازَه کَذَا فِي التَّجْنِیْس1۔	**In Kashf al-Ghata: And do not stand for supplication even before the prayer, because one must perform a supplication that is more abundant and greater than this one, namely the funeral prayer. This is also mentioned in Al-Tajnis. (T)**

Although, supplication before the prayer itself is established from the Holy Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) in authentic hadiths, and some of them have already been mentioned in the first fatwa (T). Standing for supplication has also been narrated from the Sahaba (Companions). Two reasons for the rulings were found: one is the suspicion of adding something to the funeral prayer, as in Al-Muhit, Al-Qunya, etc. (T); and another is that one has already prayed once, as quoted from Wajiz al-Kardari (T), or that one will perform a better prayer than that, as mentioned from Al-Tajnis (T). Now, the principles...

1 Kashf al-Ghata, Chapter 6, Funeral Prayer, Ahmadi Press Delhi, p. 404

फ़तावा रज़विया जिल्द 9

जैसा कि हमने पहले फ़तवे में बयान किया, और इसी से कवि का यह शेर है:	**जैसा कि हमने पहले फ़तवे में बयान किया, और इसी से कवि का यह शेर है:**
وَلَا يَقُوْمُ عَلٰى ذُلٍّ يُرَادُ بِهٖ	उस ज़िल्लत (अपमान) पर, जिसका उसके साथ इरादा किया जाए, वे कायम नहीं रहते
اِلَّا الْاَذَلَّانِ عِيْرُ النَّجْدِ وَالْوَتَدُ	सिवाय दो सबसे ज़लील चीज़ों के नजद का गधा और खूँटा।
فَلَيْسَ الْمُرَادُ اَنَّ حِمَارَ النَّجْدِ عِنْدَ اِرَادَةِ الذُّلِّ بِهٖ	इसका मतलब यह नहीं है कि जब नजदी गधे के साथ ज़िल्लत का इरादा किया जाता है,
يَقُوْمُ وَلَا يَقْعُدُ بِخِلَافِ غَيْرِهٖ وَاَنَّهٗ يَقْعُدُ اِنَّمَا اَرَادَ	तो वह खड़ा रहता है और बैठता नहीं है, जबकि दूसरे बैठ जाते हैं। बल्कि उद्देश्य यह है
اَنَّ الْحِمَارَ النَّجْدِیَّ يَدُوْمُ وَيَصْبِرُ عَلَى الذُّلِّ	कि नजदी गधा ज़िल्लत पर मुस्तकिल और धैर्यवान रहता है,
اَمَّا غَيْرُهٗ فَلَا يَرْضٰى بِهٖ۔	और दूसरा ज़िल्लत से राज़ी नहीं होता। (त)

कलाम (भाषण) के तरीके भी दो प्रकार के पाए गए, कहीं तो नमाज़-ए-जनाज़ा के बाद की विशेषता है: जैसा कि अधिकांश उल्लेखित इबारतों में है (त); और कहीं हुक्म मुतलक (बिना शर्त) है जैसा कि कुहिस्तानी की इबारत में है (त); बल्कि कहीं नमाज़ से पहले की भी साफ़ वजाहत है।

کشف الغطا میں: وَ پیش اَز نَماز نیز بِدُعَا نَه اِیستَد زِیْرَا چه دُعَا مِي کُنَد بِدُعَائِیکه اُو فَرُو اَکبَر اَست بَودَنِ دُعَا یَعنِی نَمَازِ جَنَازَه کَذَا فِي التَّجْنِیْس1۔	**कश्फ़ अल-ग़ता में है: और नमाज़ से पहले भी दुआ के लिए न खड़ा हो, क्योंकि उसे वह दुआ करनी है जो इस दुआ से ज़्यादा भरपूर और बड़ी है यानी नमाज़-ए-जनाज़ा, ऐसा ही तजनीस में भी है। (त)**

हालाँकि, नमाज़ से पहले दुआ खुद सही हदीसों में हुज़ूर अकदस (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) से साबित है और उनमें से कुछ पहले फ़तवे में गुज़र चुकी हैं (त)। और खड़े होकर दुआ करना भी सहाबा किराम से साबित है। अहकाम (नियमों) के दो दलाल (प्रमाण) मिले: कहीं नमाज़-ए-जनाज़ा में कुछ बढ़ाने का संदेह है जैसा कि अल-मुहीत और अल-कुनिया आदि में है (त); कहीं यह कि एक बार

दुआ कर चुका जैसा कि वजीज़ अल-करदरी से उद्धृत है (त), या इससे बेहतर दुआ करेगा जैसा कि तजनीस के हवाले से गुज़रा (त)। अब जो उसूल (सिद्धांत)...

1 कश्फ़ अल-ग़ता, छठा अध्याय, नमाज़-ए-जनाज़ा, मटबा अहमदी दिल्ली, पृष्ठ 404

पृष्ठ 948 का 247

کما بیناہ فی الفتوی الاولی ومنہ قول القائل

جیسا کہ ہم نے اسے پہلے فتوے میں بیان کیا اور اسی سے شاعر کا یہ شعر ہے

ولا یقوم علی ذل یراد بہ الا الاذلان عیر النجد والوتد

اُس ذلت پر، جس کا اس کے ساتھ ارادہ کیا جائے قائم نہیں رہتے مگر دو ذلیل تر نجد کا گدھا اور اس کے باندھنے کا کھونٹا۔

فلیس المراد ان حمار النجد عند ارادۃ الذل بہ یقوم ولا یقعد بخلاف غیرہ وانہ یقعد انما اراد ان الحمار النجدی یدوم ویصبر علی الذل

اس کا مطلب یہ نہیں کہ جب نجد کے گدھے کے ساتھ ذلت کا ارادہ کیا جاتا ہے تو وہ کھڑا رہتا ہے بیٹھتا نہیں ہے اور دوسرا بیٹھ جاتا ہے۔ بلکہ مقصود یہ ہے کہ نجدی گدھا ذلت پر دائم و صابر رہتا ہے

اما غیرہ فلا یرضی بہ۔

اور دوسرا ذلت سے راضی نہیں ہوتا۔ (ت)

مناہج کلام بھی دو قسم پائے، کہیں تو بعد صلاۃ الجنازہ کی تخصیص ہے : کما فی اکثر العبارات المذکورۃ (جیسا کہ اکثر مذکورہ عبارتوں میں ہے ت) اور کہیں حکم مطلق کما فی عبارۃ القہستانی (جیسا کہ قہستانی کی عبارت میں ہے ت) بلکہ کہیں قبل نماز کے بھی صاف تصریح،

فی کشف الغطا و پیش از نماز نیز بد عانہ کشف الغطا میں ہے : اور نماز سے پہلے بھی دعا لیستد زیرا چہ دعامیکند بد عائیکہ او فرو کے لئے نہ کھڑا ہو اس لئے کہ اسے وہ دعا کرنی اکبر است بودن دعا یعنی نماز جنازہ کذافی ہے جو اس دعا سے زیادہ وافر اور بڑی ہے یعنی التجنیس1۔ نمازِ جنازہ، ایسا ہی تجنیس میں ہے۔ (ت)

حالانکہ پیش از نماز دعا خود احادیثِ صحیحہ میں حضور اقدس صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم سے ثابت وقد مر بعضھا في الفتوی الاولی (بعض حدیثیں پہلے فتوے میں گزر چکیں۔ ت) اور کھڑے ہو کر دعا بھی صحابہ کرام سے گزری، دلائل احکام بھی دو ملے، کہیں نماز جنازہ میں زیادت کا شبہ کما فی المحیط والقنیۃ وغیر ہما (جیسا کہ محیط اور قنیہ وغیرہما میں ہے۔ ت) کہیں یہ کہ ایک بار دعا کر چکا کما نقل عن وجیز الکردری (جیسا کہ وجیز کردری سے منقول ہے۔ ت) یا اس سے افضل دعا کرے گا کما مر عن التجنیس (جیسا کہ تجنیس کے حوالے سے گزرا۔ ت) اب جو اصول

و

1 کشف الغطاء فصل ششم نماز جنازہ مطبع احمدی دہلی ص ۴۰۴

Fatawa Razawiyya Volume 9

If we look at the branches of Sharia, we find that praying once or intending to pray a better prayer in the future has no effect on the prohibition or rejection of prayer. Otherwise, praying more than once would either not be permissible or would be considered disliked (makruh). However, according to established scriptural texts (nusus mutawatira) and the consensus of the community (ijma-e-ummat), increasing prayers is beloved. Alternatively, prayer after the five daily prayers would be considered prohibited or disliked because one has already prayed in the final sitting (qa'da akhira). Yet, its command is found in the Hadiths and the practice of all Muslims since the sacred era. Furthermore, if that were the case, prayer in the final sitting would not be msunoon (according to Sunnah) because a more complete and better prayer has already been offered in Surah Al-Fatihah. Looking at the specific topic of discussion, praying for the deceased both before and after the funeral prayer and commanding it is proven from the radiant Presence, the Master of the Day of Resurrection, peace and blessings of Allah be upon him, as we have mentioned in the first fatwa. His Excellency, peace and blessings of Allah be upon him, did not consider that 'we have already prayed once' or that 'those praying are offering a better and more complete prayer'. Despite this, standing and sitting are the same in these regards; if one prays while sitting, will it not remain true that a better prayer has been or is being offered? So, is the restriction of standing (qiyam) based on the consensus of books incorrect and erroneous, or are these arguments unrelated to the claim? Attributing such a hollow reason to the words of scholars, which clearly distances them from established texts, consensus, and even their own numerous explanations and the alignment of proof and claim, is an open disrespect to their stature and, God forbid, equates their words to those of the insane. When, with the help of Allah Almighty, correct insight cleared all the thorns from the path of truth, and by holding the hand of divine success (tawfiq), it was firmly judged that in such statements, 'qiyam' means waiting and delaying. As soon as this was said, by the grace of Allah Almighty, all objections and difficulties suddenly disappeared, and the matter became completely true on the scales of Sharia and intellect. Indeed, the pure Sharia would never like delaying the funeral arrangements for the sake of any long prayer other than the [funeral] prayer. Increasing the prayer is certainly beloved, but delay (ta’wiq) for it is not desired, just as increasing the congregation (jama'at) for the funeral is certainly desired, but delay (takhir) for it is not beloved. For example, some

people delay the funeral and burial of the deceased on Friday so that a large congregation can join after the Friday prayer. It is stated in Tanwir al-Absar:

[Arabic Boxed Text]: It is disliked to delay his prayer and burial so that a large congregation may pray over him after the Friday prayer. 1

[Urdu Translation in Box]: It is disliked (makruh) to delay the funeral prayer and burial with the thought that a large congregation will participate in the funeral prayer after the Friday prayer. (T)

---

1. Durr al-Mukhtar, Commentary on Tanwir al-Absar, Chapter of Funeral Prayer, Printed by Mujtabai Press, Delhi, 1/124.

शरीयत की शाखाओं पर गौर करें तो एक बार दुआ करने या भविष्य में और भी बेहतर दुआ करने के इरादे को दुआ की मनाही या इनकार में कोई प्रभावी कारण नहीं पाया गया, अन्यथा एक बार से अधिक दुआ करना या तो जायज़ नहीं होता या मकरूह (नापसंद) ठहराया जाता। जबकि तवातुर वाले प्रमाणों (नुसूस-ए-मुतवातिरा) और उम्मत के इज्मा (सहमति) से दुआ की अधिकता पसंद की गई है। या फिर पांचों वक्त की नमाज़ों के बाद दुआ करना वर्जित और मकरूह माना जाता क्योंकि नमाज़ के आखिरी कायदे (बैठने) में दुआ की जा चुकी है, हालांकि हदीसों में इसका हुक्म है और पाक ज़माने से तमाम मुसलमानों का इस पर अमल है। बल्कि आखिरी कायदे में दुआ मसनून ही न होती क्योंकि सूरह फातिहा में इससे भी अफ़ज़ल और मुकम्मल दुआ हो चुकी है। खास चर्चा के विषय पर गौर करें तो खुद मय्यत (मृतक) के लिए नमाज़-ए-जनाज़ा से पहले और बाद, दोनों समय दुआ करना और इसका हुक्म देना हुज़ूर पुरनूर सैयदे यौमुल नुशूर सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम से साबित है, जैसा कि हमने पहले फतवे में बयान किया है। हुज़ूर ने यह ख्याल नहीं फरमाया कि एक बार तो हम दुआ कर चुके हैं या अफ़ज़ल और मुकम्मल दुआ करने वाले हैं। इसके बावजूद इन वजहों पर कयाम (खड़ा होना) और कुऊद (बैठना) सब बराबर हैं; क्या बैठकर दुआ करेगा तो यह बात नहीं रहेगी कि वह अफ़ज़ल दुआ कर चुका है या करने वाला है? तो क्या कयाम की कैद पर किताबों का इत्तेफाक गलत है या ये दलीलें दावे से अलग हैं? विद्वानों (उलेमा) की बातों को ऐसी बेकार वजहों पर थोपना, जिससे वे स्पष्ट रूप से प्रामाणिक ग्रंथों, उम्मत की सहमति और खुद अपनी ही अनेक व्याख्याओं और दलील व दावे के मेल से दूर हो जाएं, उनकी शान में खुली गुस्ताखी है और अल्लाह न करे, उनके कलाम (कथन) को पागलों के कलाम के बराबर कर देता है। जब सही दृष्टि ने अल्लाह की मदद से हक की राह के सभी कांटे साफ कर दिए, तो तौफीक के मुबारक हाथ में हाथ देकर दृढ़ता से हुक्म दिया गया कि इस तरह के कथनों में 'कयाम' का अर्थ 'रुकना और देरी करना' ही है। इतना कहते ही अल्हम्दुलिल्लाह तमाम आपत्तियां और मुश्किलें अचानक दूर हो गईं और बात शरीयत और अक्ल के पैमाने पर पूरी तरह सच साबित हुई। वास्तव में, पाकीज़ा शरीयत नमाज़ के अलावा किसी लंबी दुआ के मकसद से जनाज़े की तैयारी में देरी और टालमटोल को हरगिज़ पसंद नहीं करेगी। दुआ की अधिकता बेशक पसंद की गई है, लेकिन इसके लिए देरी (तअव्वीक़) वांछित नहीं है, जिस तरह जनाज़े पर जमात की अधिकता निश्चित रूप से वांछित है, मगर इसके लिए देरी

(ताखीर) पसंद नहीं है। जैसे कुछ लोग शुक्रवार (जुमे) के दिन मय्यत के दफन और नमाज़ में देरी करते हैं ताकि बाद में बड़ी जमात जनाज़े में शामिल हो सके। 'तन्वीरुल अबसार' में है:

[अरबी बॉक्स]: नमाज़-ए-जुमा के बाद एक बड़ी जमात के साथ नमाज़ अदा करने के लिए मय्यत की नमाज़ और दफन में देरी करना मकरूह है। 1

[उर्दू अनुवाद बॉक्स]: इस ख्याल से कि नमाज़-ए-जुमा के बाद एक बड़ी जमात नमाज़-ए-जनाज़ा में शरीक होगी, नमाज़-ए-जनाज़ा और दफन में देरी करना मकरूह है। (त)

---

1. दुर्रे मुख्तार शरह तन्वीरुल अबसार, बाब सलातुल जनाइज़, मुतबूआ मतबा मुज्तबाई दिल्ली 1/124

فروعِ شرع پر نظر کیجئے تو ایک بار دُعا کرنے یا آئندہ دُعائے افضل کا قصد رکھنے کو منع وانکارِ دُعا میں اصلاً مؤثر نہ پایا ورنہ ایک بار سے زیادہ دُعا جائز نہ ہوتی یا مکروہ ٹھہرتی، حالانکہ نصوصِ متواترہ واجماعِ امت سے اس کی تکثیر محبوب، یا نمازِ پنجگانہ کے بعد دُعا ممنوع ومکروہ قرار پائے گی کہ قعدہ اخیرہ میں دُعا کر چکا ہے حالانکہ احادیث میں اس کا حکم اور زمانہ اقدس سے تمام مسلمین کا اس پر عمل بلکہ قعدہ اخیرہ میں دُعا مسنون نہ ہوتی کہ فاتحہ میں اس سے افضل واکمل دُعا ہو چکی، خاص محلِ سخن میں نظر کیجئے تو خود میت کے لئے بھی قبل از نمازِ جنازہ وبعد از نماز دونوں وقت دُعا فرمانا اور اس کا حکم دینا حضورِ پر نور سید یوم النشور صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم سے ثابت کما اسلفنا فی الفتوٰی الاولٰی (جیسا کہ ہم نے پہلے فتوے میں بیان کیا ت) حضورِ والا صلوٰۃ اللہ تعالٰی وسلامہ علیہ نے خیال نہ فرمایا کہ ایک بار تو ہم دُعا کر چکے ہیں یا افضل واکمل دُعا فرمانے والے ہیں۔ معہذا ان وجوہ پر قیام و قعود سب یکساں، کیا بیٹھ کر دُعا کرے گا تو یہ بات نہ رہے گی کہ افضل دُعا کر چکا ہے یا کرنے والا ہے تو کیا قیدِ قیام پر تظافرِ کتب غلط و تغلیط ہے یا یہ دلائل دعوٰی سے بیگانہ۔ ایسی مہمل وجہ پر کلامِ علماء کا حمل جس سے وہ نصوصِ متواترہ واجماعِ امت اور خود اپنی تصریحات کثیرہ اور نیز انسانی کلام و تطابقِ دلیل ودعوٰی سے صراحۃً دور پڑیں ان کی شان میں کھلی گستاخی اور معاذ اللہ ان کے کلام کو کلامِ مجانین سے ملحق کر دیتا ہے، جب نظرِ صحیح نے بعونہ تعالٰی سب کانٹے راہِ حق سے صاف کر لئے، قلّد توفیق کے مبارک ہاتھ میں ہاتھ دے کر حکم بالجزم کیا کہ اس قسم کے اقوال میں قیام بمعنی وقوف و درنگ ہی ہے۔ اتنا کہتے ہی بحمد اللہ تعالٰی سب اعتراض واشکال دفعۃً اٹھ گئے اور بات میزانِ شرع وعقل پر پوری سچ گئی، فی الواقع نماز کے علاوہ کسی دُعائے طویل

کی غرض سے تجہیزِ جنازہ کو درنگ وتعویق میں ڈالنا شرعِ مطہر ہرگز پسند نہ فرمائے گی۔ تکثیرِ دُعا بیشک محبوب ہے مگر اس کے لئے تعویق مطلوب نہیں جس طرح جنازہ پر تکثیرِ جماعت قطعاً مطلوب ہے، مگر اس کے لئے تاخیر محبوب نہیں، جیسے بعض لوگ میت جمعہ کے دن دفن ونماز میں تاخیر کرتے ہیں تاکہ بعد میں جماعتِ عظیم شریکِ جنازہ ہو۔ تنویر الابصار میں ہے:

کرہ تاخیر صلاتہ ودفنہ لیصلی علیہ جمع عظیم | اس خیال سے کہ نمازِ جمعہ کے بعد ایک عظیم جماعت نمازِ جنازہ میں شریک ہوگی نمازِ جنازہ اور دفن میں تاخیر کرنا مکروہ ہے۔ (ت) بعد صلاۃ الجمعۃ 1۔

---

1 درمختار شرح تنویر الابصار باب صلوٰۃ الجنائز مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی ۱ / ۱۲۴

In short, in the pure Shariah, hastening the funeral arrangements is strongly desired, and delaying it without a Shariah necessity is prohibited. Apart from the prayer itself, there is no other Shariah necessity for which standing and waiting should be preferred. Whatever prayer was necessary in Shariah, i.e., the funeral prayer, has either already been performed or is about to be. So why keep it waiting for any other long prayer? By the grace of Allah, this is the meaning of the scholars' words that the prayer has been performed or is about to be. **Thus should the speech be understood, and Allah is the Guardian of guidance and blessings.** (T) And indeed, those who spoke on this meaning of standing, keeping it absolute as Shams al-Quhistani did (T), or explicitly including both times before and after the prayer as Imam Burhan al-Din al-Farghani did (T), was not out of place; rather, it was excellent and most fitting. In this sense, standing is not preferred at any time before or after. Although, on this premise, the phrases "not with Allah" regarding the suspicion of excess could have the motive of restriction to "after" because usually the funeral is not ready before the prayer; necessary matters like washing and shrouding are ongoing, so there is no harm in long prayers then, as the delay won't be for the sake of prayer, unlike after the prayer when usually no waiting state prevents moving forward, and the speech of jurists is mostly based on prevailing matters.

And with this, the more apparent view is to count all the restrictive clauses from the coming category, for it is more appropriate and conforming as is not hidden.

Despite this, the more apparent necessity is that all the restrictions be counted from the upcoming category, because it is more conforming and suitable, as is clear. (T)

This was the discussion on this category of statements... As for the first category, i.e., those words in which there is a reliance on specifying "after-ness" and the suspicion of excess. I say: And with Allah is success. (I say and from Allah alone is success. T) It is among the clear self-evident truths that here the intention of absolute "after-ness" is by no means the reason for correctness, because besides the previous impossibilities, the reasoning itself forbids it. Has the prayer been completed today? Standing to pray tomorrow, would that lead to a suspicion of adding something to the prayer? Unavoidably, "after-ness" without a gap is intended, in which the breaking of rows and the dispersal of men is included a fortiori. For when the rows have opened and people have moved away, what resemblance remains for any action to be an addition to the prayer?

As we explained in the first fatwa, and it is clear in itself to those of understanding. And if you seek more, then listen to what is being recited.	**As we stated in the first fatwa, and it is clear itself to the wise. And if further explanation is desired, then listen to the upcoming statement carefully (T)**

In Sahih Muslim Sharif, it is narrated that Sa'ib bin Yazid (may Allah be pleased with him) prayed the Friday prayer behind Amir Muawiya (may Allah be pleased with him). As soon as the Imam said the Salaam, he stood up to pray the Sunnahs. Amir (may Allah be pleased with him) called him and...

संक्षेप में, शुद्ध शरीयत में अंतिम संस्कार की व्यवस्था में तेज़ी लाना दृढ़ता से वांछित है, और बिना किसी शरीयत आवश्यकता के इसमें देरी करना निषिद्ध है। नमाज़ के अलावा शरीयत की कोई अन्य आवश्यकता नहीं है जिसके लिए खड़े होने और प्रतीक्षा करने को प्राथमिकता दी जाए। शरीयत में जितनी दुआ आवश्यक थी, यानी जनाजे की नमाज़, वह या तो हो चुकी है या होने वाली है। तो किसी अन्य लंबी दुआ के लिए इसे क्यों रोक कर रखा जाए? अल्लाह के अनुग्रह से, विद्वानों के शब्दों का यही अर्थ है कि दुआ हो चुकी है या होने वाली है। **इस प्रकार वाणी को समझा जाना चाहिए, और अल्लाह ही मार्गदर्शन और आशीर्वाद का संरक्षक है।** (टी) और वास्तव में, जिन्होंने खड़े होने के इस अर्थ पर बात की है, चाहे इसे निरपेक्ष रखा हो जैसा कि शम्स अल-कुहिस्तानी ने किया (टी), या स्पष्ट रूप से नमाज़ से पहले और बाद के दोनों समय को शामिल किया जैसा कि इमाम बुरहान अल-दीन अल-फ़रग़ानी ने किया (टी), वह अनुचित नहीं था; बल्कि यही सबसे अच्छा और उपयुक्त था। इस अर्थ में, नमाज़ से पहले या बाद में किसी भी समय खड़ा होना पसंदीदा नहीं है। हालांकि, इस आधार पर, 'अधिकता के संदेह' के संदर्भ में 'बाद में' होने के प्रतिबंध का उद्देश्य यह हो सकता है कि आमतौर पर नमाज़ से पहले जनाज़ा तैयार नहीं होता है; आवश्यक कार्य जैसे नहलाना और कफ़न पहनाना चल रहे होते हैं, इसलिए उस समय लंबी दुआओं में कोई हर्ज नहीं है क्योंकि देरी दुआ के लिए नहीं होगी, नमाज़ के बाद के विपरीत जब आमतौर पर कोई प्रतीक्षा की स्थिति आगे बढ़ने से नहीं रोकती है, और न्यायविदों (फ़ुक़हा) की बात अधिकतर प्रचलित मामलों पर आधारित होती है।

और इसके साथ, अधिक स्पष्ट दृष्टिकोण आने वाली श्रेणी से सभी प्रतिबंधात्मक खंडों को गिनना है, क्योंकि यह अधिक उपयुक्त और अनुरूप है जैसा कि छिपा नहीं है।

इसके बावजूद, अधिक स्पष्ट आवश्यकता यह है कि सभी प्रतिबंधों को आगामी श्रेणी से गिना जाए, क्योंकि यह अधिक अनुरूप और उपयुक्त है, जैसा कि स्पष्ट है। (टी)

यह कथनों की इस श्रेणी पर चर्चा थी... रही बात पहली श्रेणी की, यानी वे शब्द जिनमें 'बाद में होने' की विशिष्टता और 'अधिकता के संदेह' पर भरोसा है। मैं कहता हूँ: और अल्लाह से ही सफलता है। (मैं कहता हूँ और अल्लाह ही से सफलता है। टी) यह स्पष्ट स्वयंसिद्ध सत्यों में से है कि यहाँ पूर्ण 'बाद में होने' का इरादा किसी भी तरह से शुद्धता का कारण नहीं है, क्योंकि पिछली असंभवताओं के अलावा, तर्क स्वयं इसे मना करता है। क्या आज नमाज़ पूरी हो गई है? कल दुआ करने के लिए खड़े होना, क्या इससे नमाज़ में कुछ जोड़ने का संदेह होगा? अनिवार्य रूप से, बिना अंतराल के'बाद में

होना' ही अभीष्ट है, जिसमें पंक्तियों का टूटना और पुरुषों का तितर-बितर होना प्राथमिकता के आधार पर शामिल है। क्योंकि जब पंक्तियाँ खुल गईं और लोग दूर चले गए, तो किसी भी कार्य की नमाज़ में अधिकता होने की क्या समानता रह गई?

जैसा कि हमने पहले फ़तवे में स्पष्ट किया है, और यह समझने वालों के लिए अपने आप में स्पष्ट है। और यदि आप और चाहते हैं, तो सुनें जो पढ़ा जा रहा है।	**जैसा कि हमने पहले फ़तवे में बताया है, और यह बुद्धिमानों के लिए स्वयं स्पष्ट है। और यदि और स्पष्टीकरण वांछित है, तो आगामी कथन को ध्यान से सुनें (टी)**

सहीह मुस्लिम शरीफ़ में है कि साएब बिन यज़ीद (रज़ियल्लाहु अन्हु) ने अमीर मुआविया (रज़ियल्लाहु अन्हु) के पीछे जुमे की नमाज़ पढ़ी। जैसे ही इमाम ने सलाम फेरा, वे सुन्नतें पढ़ने के लिए खड़े हो गए। अमीर (रज़ियल्लाहु अन्हु) ने उन्हें बुलाकर...

غرض شرع مطہر میں تعجیل تجہیز بتاکید تمام مطلوب اور بے ضرورت شرعیہ اس کی تاخیر سے ممانعت، اور نماز کے علاوہ شرعاً ضروری و واجب نہیں جس کے لئے قیام و درنگ پسند کریں۔ شرع میں جتنی دعا ضروری تھی یعنی نماز جنازہ، وہ ہوچکی یا ہونے والی ہے تو اس کے سوا اور دعائے طویل کے لئے کیوں رکھ چھوڑیں، بحمد اللہ یہ معنی ہیں کلام علماء کے کہ دعا ہوچکی یا ہونے والی ہے **ھکذا ینبغی ان یفھم الکلام واللہ ولی الھدایۃ والانعام** (کلام علماء اسی طرح سمجھنا چاہئے اور خدا ہی ہدایت وانعام کا والی ہے۔ت) اور واقعی جو اس معنی قیام پر کلام فرمائیں ان کا مطلق رکھنا کما فعل الشمس القھستانی (جیسا کہ شمس قہستانی نے کیا۔ت) یا بالتصریح قبل و بعد نماز دونوں وقت کو لے لینا کما صنع الامام البرھان الفرغانی (جیسا کہ امام برہان الدین فرغانی نے کیا۔ ت) کچھ بے جا نہ ہوا بلکہ یہی احسن و ازین تھا کہ بایں معنی قیام قبل و بعد کسی وقت پسندیدہ نہیں اگرچہ اس تقدیر پر عبارات غیر مع للہ بشبہ زیادت میں تقیید بعد کا یہ منشا ٹھہر سکتے ہیں کہ قبل نماز عادۃً جنازہ مہیا نہیں ہوتا۔ امور ضروریہ غسل و کفن جاری ہوتے ہیں تو اس وقت دعائے طویل میں حرج نہیں کہ تاخیر بغرض دعانہ ہوگی بخلاف بعد نماز کہ غالباً کوئی حالت منتظرہ لے چلنے سے مانع نہیں ہوتی اور کلام فقہاء اکثر امور غالبہ پر مبتنی ہوتا ہے)

ومع ھذا فالوجہ الاظھر عد جمیع المقیدات من القسم الاتی فانہ ھو الافعد الاوفق کما لایخفی۔

اس کے باوجود زیادہ ظاہر ضرورت یہ ہے کہ تمام قیدوں کو قسم آئندہ سے شمار کیا جائے، اس لئے کہ وہ زیادہ مطابق و موافق ہے، جیسا کہ واضح ہے۔ (ت)

یہ اس قسم اقوال پر کلام تھا۔۔ رہی قسم اول یعنی جن کلمات میں تخصیص بعدیت اور شبہ زیادت سے تمسک ہے اقول : وباللہ التوفیق (میں کہتا ہوں اور خدا ہی سے توفیق ہے۔ت) بدیہیات جلیہ سے

ہے کہ یہاں مطلق بعدیت کا ارادہ ہر گز وجہ صحت نہیں رکھتا کہ استحالات سالفہ کے علاوہ نفس تعلیل ہی اس سے آبی کیا آج نماز ہو چکی، کل استادہ دعا کرو، تو نماز میں کچھ بڑھا دینے کا اشتباہ ہو، لاجرم بعدیت بلا فاصل ہی مقصود جس میں نقض سے صفوف و تفرق رجال بروجہ اولی داخل کہ جب صفیں کھل گئیں لوگ ہٹ گئے تو اس کے بعد کسی فعل کو نماز میں زیادت سے کیا مشابہت رہی۔

كما بيناه في الفتوى الاولى وهو بين بنفسه عند اولى النهى وان تتبع زيادة فاستمع لما يتلى .

جیسا کہ ہم نے اسے پہلے فتوے میں بیان کیا، اور اہل عقل کے نزدیک وہ خود ہی واضح ہے۔ اور اگر مزید وضاحت مطلوب ہو تو بیان آئندہ بغور سنو (ت)

صحیح مسلم شریف میں ہے سائب بن یزید رضی اللہ تعالیٰ عنہ نے امیر معاویہ رضی اللہ تعالیٰ عنہ کے پیچھے نماز جمعہ پڑھی ، سلام امام ہوتے ہی سنتیں پڑھنے کھڑے ہوگئے، امیر رضی اللہ تعالیٰ عنہ نے بلا کر

Fatawa Razawiya, Volume 9

It was stated:

[Arabic Quote]: "Do not repeat what you did. When you have prayed Friday (Jumu'ah), do not join it with another prayer until you speak or go out, for the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) commanded us not to join one prayer with another until we speak or go out." [Urdu Explanation]: "Now do not do this; when you pray Jumu'ah, do not join it with another prayer until you speak or move from that place, because the Luminous Master of the Messengers (peace and blessings of Allah be upon him) commanded that one prayer should not be joined with another until you have some conversation or move from the place."

Scholars state that joining is prohibited so that one prayer is not perceived as an extension of another, and there is no suspicion of adding more than two rakahs in the Friday prayer. The great Imam Abu Zakariya Nawawi states in 'Minhaj':

[Arabic Quote]: "The best is to move to one's house, otherwise to another place in the mosque or elsewhere, so that the places of prostration increase and the form of the supererogatory prayer (Nafl) is distinct from the form of the obligatory prayer (Fard)." [Urdu Explanation]: "It is better to go home and pray, otherwise pray in another place within the mosque or outside, so that the number of your prostration spots increases and the form of the Nafl prayer becomes distinct from the Fard. (T)"

Maulana Ali Qari states in 'Mirqat':

[Arabic Quote]: "(When you pray Jumu'ah) is an example, as other prayers are similar. This is supported by the wisdom mentioned later. Jumu'ah is mentioned specifically after the incident for added emphasis in its case, especially as it might lead to the delusion that one is praying four cycles and that it is Dhuhr. In a public gathering, this is a cause for confusion. (So do not join it) with another prayer." [Urdu Explanation]: "(When you pray Jumu'ah) this is as an example; other than Jumu'ah has the same rule. This is reinforced by the wisdom explained later. Ibn Hajar mentioned it. It is possible that Jumu'ah is mentioned because there is more emphasis regarding it, especially as there might be a suspicion that one is praying four rakahs of Dhuhr. This act in a public gathering would be a cause for creating such a suspicion. (So do not join it with another prayer)."

1. Sahih Muslim, Book of Jumu'ah, published by Nur Muhammad Asah al-Matabi', Karachi, 1/288.

2. Minhaj al-Nawawi, Sharh Sahih Muslim with Muslim, Book of Jumu'ah, published by Nur Muhammad Asah al-Matabi', Karachi, 1/288.

फतवा रज़विया, खंड 9

कहा गया:

[अरबी उद्धरण]: "जो आपने किया उसे न दोहराएं। जब आप जुमे की नमाज़ पढ़ लें, तो उसे दूसरी नमाज़ के साथ न जोड़ें जब तक कि आप बात न कर लें या बाहर न निकल जाएं, क्योंकि अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) ने हमें आदेश दिया है कि हम एक नमाज़ को दूसरी नमाज़ के साथ तब तक न जोड़ें जब तक कि हम बात न कर लें या उस जगह से हट न जाएं।" [उर्दू स्पष्टीकरण]: "अब ऐसा न करें; जब जुमे की नमाज़ पढ़ें तो उसे दूसरी नमाज़ के साथ न मिलाएं जब तक कि बात न करें या उस जगह से हट जाएं, क्योंकि नबियों के सरदार (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) ने हुक्म दिया है कि एक नमाज़ दूसरी नमाज़ से न मिलाएं यहाँ तक कि कुछ गुफ्तगू करें या जगह से हट जाएं।"

विद्वान कहते हैं कि जोड़ने की मनाही इसलिए है ताकि एक नमाज़ दूसरी नमाज़ का हिस्सा न लगे, और जुमे में दो रकात से अधिक का भ्रम न हो। महान इमाम अबू ज़कारिया नववी 'मिन्हाज' में फरमाते हैं:

[अरबी उद्धरण]: "सबसे अच्छा यह है कि अपने घर चले जाएँ, अन्यथा मस्जिद या कहीं और किसी अन्य स्थान पर चले जाएँ ताकि सिजदा करने के स्थानों की संख्या बढ़ जाए और नफिल नमाज़ का स्वरूप फर्ज़ नमाज़ के स्वरूप से अलग हो जाए।" [उर्दू स्पष्टीकरण]: "बेहतर तो यह है कि घर जाकर पढ़ें, वरना मस्जिद ही में या मस्जिद के बाहर किसी और जगह पढ़ें ताकि अपने सजदागाहों की तादाद बढ़ा सकें और ताकि नफिल की सूरत फर्ज़ की सूरत से जुदा हो जाए। (त)"

मौलाना अली कारी 'मिरकात' में फरमाते हैं:

[अरबी उद्धरण]: "(जब आप जुमे की नमाज़ पढ़ें) यह एक उदाहरण है, क्योंकि अन्य नमाज़ें भी इसी तरह हैं। इसकी पुष्टि बाद में बताई जाने वाली हिकमत (बुद्धिमत्ता) से होती है। जुमे का उल्लेख घटना के बाद विशेष रूप से इसके मामले में अधिक जोर देने के लिए किया गया है, विशेष रूप से इसलिए कि इससे यह भ्रम हो सकता है कि कोई चार रकात पढ़ रहा है और यह ज़ुहर की नमाज़ है। सार्वजनिक सभा में यह भ्रम पैदा करने का कारण है। (तो इसे न जोड़ें) दूसरी नमाज़ के साथ।" [उर्दू स्पष्टीकरण]: "(जब जुमा नमाज़ पढ़ो) यह बतौर उदाहरण है कि गैर-जुमा का भी यही हुक्म है, इसकी ताकीद उससे होती है जो इसकी हिकमत बयान की गई है। इसे इब्न हजर ने ज़िक्र किया। और हो

सकता है कि जुमे का ज़िक्र इसलिए हो कि इसके बारे में ज़्यादा ताकीद है, ख़ुसूसन इसमें यह वहम हो सकता है कि वो चार रकात ज़ुहर पढ़ रहा है। और ये फ़ेल मज्मा-ए-आम में वहम पैदा करने का सबब होगा। (तो इसे और नमाज़ से न मिलाओ)।"

1. सहीह मुस्लिम, किताबुल जुमुआ, प्रकाशित नूर मुहम्मद असहुत मताबे, कराची, 1/288।
2. मिन्हाजुन नववी, शरह सहीह मुस्लिम, किताबुल जुमुआ, प्रकाशित नूर मुहम्मद असहुत मताबे, कराची, 1/288।

पृष्ठ 250 / 948

فتاوی رضویہ جلد نہم

فرمایا:

لا تعد لما فعلت اذا صلیت الجمعة فلا تصلها | اب ایسانہ کرنا جب جمعہ پڑھو تو اُسے اور نماز سے نہ ملاؤ یہاں بالصلاۃ حتی تکلم او تخرج فان رسول اللہ صلی | تک کہ بات کرو یا اس جگہ سے ہٹ جاؤ کہ ہمیں حضور پر اللہ تعالی علیہ وسلم امرنا بذلك ان لا نوصل | نور سید المرسلین صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم نے حکم فرمایا کہ ایک صلاۃ بصلاۃ حتی نتکلم او نخرج۔ 1 | نماز دوسری نماز سے نہ ملائیں یہاں تک کہ کچھ گفتگو کریں یا جگہ سے ہٹ جائیں

علماء فرماتے ہیں وصل سے نہیں اس لئے ہے کہ ایک نماز دوسری نماز کا تمہ نہ معلوم ہو، جمعہ میں دو ۲ رکعت پر زیادت نہ موہوم ہو۔ امام اجل ابوز کریا نووی منہاج میں فرماتے ہیں:

افضله التحول الی بیته والا فموضع اخر من | بہتر تو یہ ہے کہ گھر جا کر پڑھے ، ورنہ مسجد ہی میں یا بیرون المسجد اوغیرہ لیکثر مواضع سجود ولتنفصل | مسجد کسی اور جگہ پڑھے تاکہ اپنی سجدہ گاہوں کی تعداد بڑھا صورة النافلة عن صورة الفریضة۔ 2 | سکے اور تاکہ نفل کی صورت فرض کی صورت سے جُدا ہو جائے۔ (ت)

مولانا علی قاری مراقاۃ میں فرماتے ہیں:

(اذا صلیت الجمعة) هی مثال اذغیرها کذلك، | (جب نمازِ جمعہ پڑھو) یہ بطورِ مثال ہے کہ غیر جمعہ کا ویؤیده ما یأتی من حکمة ذلك کذا ذکر الجمعة | بھی یہی حکم ہے، اس کی تاکید اس سے ہوتی ہے جو اس کی بعد خصوص الواقعة للتأکید الزائد فی حقها، | حکمت بیان کی گئی ہے۔ اسے ابن حجر نے ذکر کیا۔ اور ہو سکتا اسیما ویوهم انه یصلی اربعا وانه الظهر، وهذا | ہے کہ جمعہ کا

ذکر اس لئے ہو کہ اس کے بارے میں زیادہ تاکید فی مجتمع العام سبب للایھام (فلا تصلھا) | ہے، خصوصاً اس میں یہ وہم ہو سکتا ہے کہ وہ چار رکعت ظہر بصلوۃ | پڑھ رہا ہے۔۔ اور یہ فعلِ مجمعِ عام میں وہم پیدا کرنے کا سبب ہوگا۔۔ (تو اسے اور نماز سے نہ ملاؤ)

1 صحیح مسلم کتاب الجمعۃ مطبوعہ نور محمد اصح المطابع کراچی ۲۸۸/۱ 2 منہاج النووی شرح صحیح مسلم مع مسلم کتاب الجمعۃ مطبوعہ نور محمد اصح المطابع کراچی ۲۸۸/۱

Fatawa Razawiyya Volume Nine

(Until you speak) i.e., to any human being, because through this, the separation will be achieved. Separation will not be achieved by speaking with the remembrance of Allah. (Or you go out) i.e., literally, such that you go out of the mosque... or figuratively... such that you move away from that place. The purpose of both is to create a separation between the two prayers so that the illusion of connection does not arise. This command is for recommendation (Istihbab) and the prohibition is for discouragement (Tanziyah) - Summary (T).

It is clearly established from here that moving from that spot is sufficient to remove such a doubt. Therefore, there is absolutely no scope for breaking the rows based on this reason. Inevitably, the meaning is that after the funeral prayer, one should not pray while standing in the same posture and keeping the rows intact, so that there is no resemblance to an addition in the prayer. These meanings are correct and sound, free from dust and corruption, and according to a sound intellect, they are derived specifically from the text of the evidence itself. From here it became clear that in such statements, 'Qiyam' in the sense of standing is perfectly correct and the reason for following (Taqlid) was also revealed. And the deduction of some scholars also became apparent that 'If one sits for prayer, it should be permissible' (If one sits and prays, it will be permissible - T) without any dislike. In reality, sitting down can also be a certain separator from the funeral prayer, such that after it, there is no doubt of addition. However, breaking the rows is more complete and perfect than this, as is not hidden (T). Now, by the grace of Allah Almighty, all the statements of the scholars are organized and the forms and aspects of the issue, with evidence, have become as clear as the sun and yesterday. By the grace of Allah, there is neither any internal contradiction in the words of the scholars nor are the principles and rules of Shariah contrary to reason. Each is correct and appropriate in its own place and is pure and separate from the ignorance and foolishness of the deniers of the time. This is how research should be, and Allah Almighty is the guardian of success (T). And you will see not in one, but in hundreds of places, that the words of the noble scholars seemingly appear very disturbed and contradictory, to the extent that an ignorant person or one who passes over easily may be troubled by the intensity of the conflict, or by making a guess into the unknown, or by considering some reason for preference before himself, may turn away from and deny the remaining options.

1 Mirqat Sharh Mishkat, Chapter of Sunan and its Virtues, printed by Maktaba Imdadia Multan, 3 / 119.

(यहाँ तक कि तुम कलाम करलो) यानी किसी आदमी से बात करलो, क्योंकि उसी से फ़र्क(जुदाई) होगा, अल्लाह के ज़िक्र के साथ कलाम करने से फ़र्क नहीं होगा (या उस जगह से निकल जाओ) यानी हकीकत में, इस तरह कि मस्जिद से बाहर चले जाओ... या हुक्म के तौर पर... इस तरह कि उस जगह से हट जाओ। दोनों का मक़सद यह है कि दोनों नमाज़ों के बीच फ़सल (अन्तराल) हो जाए, ताकि वस्ल (मिलाने) का वहम पैदा न हो। यह हुक्म इस्तिहबाब (पसंदीदा) के लिए है और मनाही तन्ज़ीह (हल्की नापसंदगी) के लिए है। - सारांश (त)

यहाँ से साफ़ साबित हुआ कि ऐसे संदेह को दूर करने के लिए उस जगह से हट जाना काफी है, तो इस कारण से सफों (पंक्तियों) को तोड़ने की कोई गुंजाइश नहीं है। अनिवार्य रूप से अर्थ यह है कि जनाज़ा की नमाज़ के बाद उसी स्थिति में पंक्तियाँ बांधे हुए खड़े होकर दुआ न करें ताकि नमाज़ में बढ़ोतरी की समानता न हो। ये अर्थ सही और ठोस हैं, दोष और बिगाड़ से मुक्त हैं, और स्वस्थ बुद्धि के अनुसार प्रमाण के मूल पाठ से विशेष रूप से प्राप्त होते हैं। यहाँ से स्पष्ट हुआ कि इस प्रकार के कथनों में 'क़ियाम' का अर्थ खड़े रहना बिल्कुल सही है और तकलीद (अनुसरण) का कारण भी स्पष्ट हो गया। और कुछ विद्वानों का वह निष्कर्ष भी प्रकट हो गया कि 'अगर बैठकर दुआ करे तो जायज़ होगा' (अगर बैठकर दुआ करे तो जायज़ होगा - त) बिना किसी नापसंदगी के। वास्तव में बैठ जाना भी जनाज़ा की नमाज़ से एक निश्चित अलगाव हो सकता है, कि इसके बाद बढ़ोतरी का संदेह नहीं रहता। मगर सफों का तोड़ना इससे भी अधिक पूर्ण और श्रेष्ठ है, जैसा कि छिपा नहीं है (त)। अब अल्लाह तआला की कृपा से विद्वानों के सभी कथन व्यवस्थित हो गए हैं और मसले के रूप और पहलू प्रमाणों के साथ सूरज की तरह स्पष्ट हो गए हैं। अल्लाह की कृपा से न तो विद्वानों के कथनों में आपसी विरोध है और न ही शरीयत के सिद्धांत और नियम बुद्धि के विरुद्ध हैं। हर एक अपनी जगह पर सही और उचित है और ज़माने के इन्कार करने वालों की अज्ञानता और मूर्खता से पाक और अलग है। इसी तरह शोध होना चाहिए और अल्लाह तआला ही तौफीक (सफलता) देने वाला है (त)। और आप एक नहीं, बल्कि सैंकड़ों जगहों पर देखेंगे कि विद्वानों के शब्द ऊपरी तौर पर बहुत व्याकुल और विरोधाभासी लगते हैं, यहाँ तक कि कोई अनजान या सतही तौर पर गुज़रने वाला टकराव की तीव्रता से परेशान हो जाए, या अंधेरे में तीर चलाकर या अपने मन से किसी वरीयता का कारण मानकर कुछ विकल्पों को छोड़ने या इन्कार करने लगे।

1 मिर्कात शरह मिश्कात, बाब अल-सुनन व फज़ाइलुहा, मुद्रित मकतबा इमदादिया मुल्तान, 3 / 119।

पृष्ठ 251/948

فتاوی رضویہ جلد نہم

حتی تکلم) ای احدا من الناس فان بہ یحصل الفصل لابتکلم بذکر اللہ (او تخرج) ای حقیقۃ او حکماً بان تتاخر عن ذلك المکان والمقصود بھما الفصل بین الصلاتین لئلا یوھم الوصل فالامر للاستحباب والنھی للتنزیہ اہ ملخصا | یہاں تک کہ کلام کرلو) یعنی کسی آدمی سے بات کرلو، اس لئے فرق اسی سے ہوگا، کلام بہ ذکر الٰہی سے فرق نہ ہوگا (یا اس جگہ سے نکل جاؤ) یعنی حقیقۃً ، اس طرح کہ مسجد سے باہر چلے جاؤ۔ یا حکماً۔ اس طرح کہ اس جگہ سے ہٹ جاؤ۔ دونوں کا مقصد یہ ہے کہ دونوں نمازوں میں فصل ہو جائے ، تاکہ وصل اور ملانے کا وہم نہ پیدا ہو ، یہ حکم استحباب کے لئے ہے اور نہی برائے تنزیہ ہے اھ ملخصا (ت)

یہاں سے صاف ثابت کہ ایسے شبہ کے رفع کو اُس جگہ سے ہٹ جانا بس ہے تو بعض نقضِ صفوف اس علت کی اصلاً گنجائش نہیں۔ لاجرم معنی یہ ہیں کہ نمازِ جنازہ کے بعد اسی ہیئت پر بدستور صفیں باندھے وہیں کھڑے ہوئے دُعا نہ کریں کہ زیادت فی الصلاۃ سے مشابہت نہ ہو۔ یہ معنی صحیح و سدید، بے غبار و فساد ہیں، اور عقل سلیم کے نزدیک نفسِ عبارتِ دلیل سے بالتعیین مستفاد۔ یہاں سے روشن ہوا کہ اس قسم کے اقوال میں قیام بمعنی استادن بے تکلف درست اور وجہ تقلید بھی منکشف ہوگئی ، اور بعض علماء کا وہ استظہار بھی ظاہر ہوگیا کہ اگر نشستۂ دُعا کند جائز باشد (اگر بیٹھ کر دعا کرے جائز ہوگا۔ ت) بلا کراہت فی الواقع بیٹھ جانا بھی نماز جنازہ سے فاصل یقین ہو سکتا ہے کہ اس کے بعد شبہہ زیادت نہیں، مگر نقض صفوف اس سے بھی اتم و اکمل ہے کما لا یخی (جیسا کہ پوشیدہ نہیں۔ت) اب بحمد اللہ تعالٰی تمام کلماتِ علماء منظم ہو گئے اور مسئلہ کی صور و وجوہ مع دلائل شمس وامس کی طرح روشن ہو گئیں۔ بحمد اللہ نہ کلماتِ علماء میں باہم اختلاف ہے نہ اصول و قواعد شرع عقل سے خلاف۔ ہر ایک اپنے اپنے محل پر

درست وبجا ہے اور منکرین زمانہ کی جہالت و سفاہت سے پاک وجدا۔ ھکذا ینبغی التحقیق واللہ تعالیٰ ولی التوفیق (اسی طرح تحقیق ہونی چاہئے اور خدائے برتر ہی توفیق کا والی ہے۔ت) اور ایک نہیں کیا صد ہا جگہ دیکھے گا کہ کلماتِ علمائے کرام بظاہر سخت مضطرب و متخالف معلوم ہوتے ہیں، یہاں تک کہ ناواقف یا سہل گزر جانے والا شدتِ تصادم سے پریشان ہو جائے یا رجماً بالغیب خواہ پیشِ خویش کوئی وجہ رجحان سمجھ کر بعض کے اختیار باقی سے اغراض وانکار۔

---

1 مرقات شرح مشکوۃ باب السنن و فضائلہا مطبوعہ مکتبہ امدادیہ ملتان ۳ / ۱۱۹

Fatawa Razawiya, Volume 9

...comes, and when the balance of appraisal and research reaches the hands of someone whom the Exalted Lord (Jalla wa A'la) has granted a profound critical eye, he places every discourse in its proper place and weaves scattered pearls into a coherent system to beautify the interconnected meanings. Through this, those diverse words naturally find a unified color, and all doubts and objections vanish like the darkness of night in the presence of the sun.

"That is the grace of Allah, which He bestows on whom He wills, and Allah is the Lord of great bounty." (Quranic verse) O my Lord! Grant me that I may be grateful for Your favor which You have bestowed upon me and upon my parents, and that I may do righteous deeds that please You. And make my offspring righteous for me. Indeed, I have turned to You, and indeed, I am of the Muslims. (T)	**That is the grace of Allah, which He bestows on whom He wills, and God is the Lord of great bounty. O my Lord! Grant me this fate that I may be grateful for that favor which You have bestowed upon me and upon my parents, and that I may do such righteous deeds that You are pleased with. And create righteousness for me in my offspring; indeed, I have turned towards You, and surely I am of the Muslims. (T)**

Yes, as for the narration from Imam Ibn Hamid, which Zahidi mentioned in *Qunyah*,

Where he said from Abu Bakr bin Hamid: "Indeed, supplication after the funeral prayer is disliked (Makruh)[1]."	**Its text is that it is reported from Abu Bakr bin Hamid that supplication after the funeral prayer is Makruh. (T)**

This is a matter of joy for those who prohibit [supplication], as it does not even include the condition of standing (qiyam). I say: And with Allah is the success (I say, and success is from God alone. T). This is a place of great reproach for the deniers, as it lacks the condition of standing. He who has observed our discourse with careful insight and precision will find it clear that the more absolute the denial, the harsher the calamity upon those who use it as evidence. Is the dislike of supplication after the funeral prayer absolutely not void by the consensus of the Ummah? Are the verbal and practical narrations of the Exalted Messenger (peace and blessings of Allah be upon him) and the sayings of all the predecessor and successor Imams not just witnesses to its falsehood? If this absolute statement remains unchecked, then wouldn't the supplication for visiting graves be included in it? Thus, it becomes

necessary that absolute posteriority (being after) is not intended, but rather immediate posteriority without any intervening gap. Now, the condition of standing comes in naturally because this posteriority is not conceivable without the continuation of standing, as we have established (T). So its reference is exactly to those same sayings…

[1] *Qunyah*, Chapter of Funerals, published by Al-Mahandiya, pp. 55-56.

फतावी रज़विया, जिल्द 9

...आए और जब आलोचना और शोध का तराजू उसके हाथ में पहुँचे जिसे मौला तआला (जल्ल व अला) ने गहरी आलोचनात्मक दृष्टि से नवाज़ा हो, वह हर शब्द को उसके सही स्थान पर रखता है और बिखरे हुए मोतियों को एक व्यवस्थित तंत्र में पिरोकर जुड़े हुए अर्थों को सँवारता है, जिससे वही विभिन्न शब्द स्वयं ही एकता का रंग पा लेते हैं और सभी शंकाएँ और बाधाएँ सूर्य के सामने रात के अंधेरे की तरह गायब हो जाती हैं।

"यह अल्लाह का अनुग्रह है जिसे वह चाहता है प्रदान करता है, और अल्लाह बड़े अनुग्रह वाला है।" ऐ मेरे रब! मुझे यह नसीब कर कि मैं उस उपकार का शुक्र अदा करूँ जो तूने मुझ पर और मेरे माता-पिता पर किया, और यह कि मैं ऐसा नेक काम करूँ जिसे तू पसंद फरमाए। और मेरे लिए मेरी संतान में नेकी पैदा कर, बेशक मैंने तेरी ओर रुजू किया, और यकीनन मैं मुसलमानों में से हूँ। (त)

वह अल्लाह का अनुग्रह है जिसे वह चाहता है अता फरमाता है और खुदा बड़े अनुग्रह वाला है। ऐ मेरे रब! मुझे यह नसीब कर कि मैं उस एहसान का शुक्र अदा करूँ जो तूने मुझ पर और मेरे माँ बाप पर किया, और यह कि मैं ऐसा नेक काम करूँ जिसे तू पसंद फरमाए। और मेरे लिए मेरी औलाद में नेकी पैदा कर, बेशक मैं तेरी जानिब रुजू लाया, और यकीनन मैं मुसलमानों में से हूँ। (त)

हाँ, जहाँ तक इमाम इब्न हामिद से एक रिवायत का ताल्लुक है जिसे जाहिदी ने 'कुनिया' में ज़िक्र किया है,

जहाँ उन्होंने अबू बक्र बिन हामिद से कहा: "बेशक जनाज़े की नमाज़ के बाद दुआ मकरूह (नापसंद) है[1]।"

इसकी इबारत यह है कि अबू बक्र बिन हामिद से मन्कूल है कि नमाज़-ए-जनाज़ा के बाद दुआ मकरूह है (त)

यह तो मना करने वालों की खुशी की चीज़ है कि इसमें खड़े रहने (क़ियाम) की कैद भी नहीं है। मैं कहता हूँ: और खुदा ही से तौफीक है (त)। यह तो इनकार करने वालों पर बड़ी डांट-फटकार की जगह है कि इसमें खड़े रहने की कैद भी नहीं है। जिसने हमारे कलाम को गौर व फिक्र और बारीकी से देखा है, उस पर साफ़ है कि इनकार में जितना ज़्यादा सामान्यीकरण होगा, दलील देने वालों पर उतनी ही कड़ी मुसीबत होगी। क्या जनाज़े की नमाज़ के बाद मुतलक़न दुआ की कराहत उम्मत की सर्वसम्मति (इजमा) से बातिल नहीं है? क्या हुज़ूर मुअल्ला (सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम) की

कथनी और करनी की दलीलें और तमाम पिछले और बाद के इमामों के कथन इसके बातिल होने पर सच्चे गवाह नहीं हैं? अगर यह मुतलक़ बयान इसी तरह बेकाबू रहे, तो क्या कब्रों की ज़ियारत की दुआ इसमें शामिल नहीं होगी? तो वाजिब हुआ कि मुतलक़ बाद (बादियत) मुराद न हो, बल्कि वही निरंतर बाद मुराद हो जिसमें कोई फासला न हो। अब खड़े रहने की कैद खुद ही आ गई कि यह बादियत खड़े रहने की स्थिति के बिना मुमकिन नहीं है जैसा कि हमने बयान किया (त)। तो इसका मरजअ (सन्दर्भ) बिल्कुल उन्हीं अक़्वाल (कथनों) की तरफ है...

[1] कुनिया, बाब अल-जनाइज़, अल-महन्दिया द्वारा प्रकाशित, पृ. 55-56।

پر آئے اور جب میزان نقد و تحقیق اُس کے ہاتھ میں پہنچے جسے مولا تعالٰی جل وعلا نظر تنقیحی سے بہرہ وافی بخشے وہ ہر کلام کو اس کے ٹھیک محل پر اتارے اور بکھرے موتیوں کو متسق نظام میں گوندھ کر منسلک معنی سنوارے جس سے وہی مختلف کلمات خود بخود رنگ ائتلاف پائیں اور سب خدشے خرخشے آفتاب کے حضور شب دیجور کی طرح کافور ہو جائیں۔

ذلک فضل اللہ یؤتیہ من یشاء واللہ ذوالفضل العظیم ۵ رب او زعنی ان اشکر نعمتک التی انعمت علی وعلی والدی وان اعمل صالحا ترضہ واصلح لی فی ذریتی انی تبت الیک وانی من المسلمین۔

وہ اللہ کا فضل ہے جسے چاہتا ہے عطا فرماتا ہے اور خدا بڑے فضل والا ہے۔ اے میرے رب! مجھے یہ نصیب کر کہ میں اُس احسان کا شکر ادا کروں جو تو نے مجھ پر اور میرے ماں باپ پر کیا، اور یہ کہ میں ایسا نیک عمل کروں جسے تو پسند فرمائے۔ اور میرے لئے میری اولاد میں نیکی پیدا کر، بے شک میں تیری جانب رجوع لایا، اور یقیناً میں مسلمانوں سے ہوں (ت)

ہاں باقی رہی امام ابن حامد سے ایک حکایت کہ زاہدی نے قنیہ میں ذکر کی،

حیث قال عن ابی بکر بن حامد، ان الدعاء بعد الصلوٰۃ الجنازۃ مکروہ 1۔

اس کی عبارت یہ ہے کہ ابوبکر بن حامد سے منقول ہے کہ نمازِ جنازہ کے بعد دعا مکروہ ہے (ت)

یہ تو حضرات مانعین کی خوشی کی چیز ہے کہ اس میں قید قیام بھی نہیں، اقول: وباللہ التوفیق (میں کہتا ہوں اور خدا ہی سے توفیق ہے۔ت) یہ تو حضرات منکرین پر بڑی تشنیع کی جگہ ہے کہ اس میں قید قیام بھی نہیں، جس نے ہمارا کلام بالانظر امعان و اتقان دیکھا ہے اُس پر روشن ہے کہ

انکار میں جس قدر اطلاق زائد، متدل صاحبوں پر اُتنی ہی آفت سخت، کیا نمازِ جنازہ کے بعد مطلقاً دعا کی کراہت باجماع امت باطل نہیں، کیا نصوص قولیہ و فعلیہ حضور معلیٰ صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم واقوال تمام ائمہ سلف وخلف اس کے بطلان پر شاہد عادل نہیں، کیا یہ اطلاق یونہی عنان گسستہ رہے تو دعائے زیارت قبور اس میں داخل نہیں، تو واجب ہوا کہ مطلق بعدیت مراد نہ ہو، بلکہ وہی بعدیت متصلہ بے فاصل بین، اب قیدِ قیام خود ہی آگئی کہ یہ بعدیت بے بقائے قیام متصور نہیں کما قررنا (جیسا کہ ہم نے بیان کیا۔ت) تو اس کا مرجع بعینہ انہیں اقوال

1 قنیہ باب الجنائز مطبوعہ بالمہندیہ ص ۵۵ و ۵۶

Fatawa Razawiyya Volume 9

The first type and the doubt of the abstainers are completely cast aside. By the grace of Allah, the jurisprudential investigation has been mentioned here in the most perfect and beautiful manner, but the stubborn opponent, seeing the absolute freedom in the literal wording of its narration, might want to interpret it in his favor, and would forcefully drag the general and extended meaning of "afterwards" (ba'adiyat) towards his side. It would be better if, by the help of Allah, he engages with us through critique and debate. So, I say first: Is "afterwards" (ba'adiyat) immediate (muttasila), or absolute (mutlaqa), or somewhere in between? The first is harmful to the opponent, the second is against the consensus (ijma') and recurrent texts (nusus-e-mutawatirah), and the third is unorganized. Neither one restriction (taqyeed) is more worthy of acceptance than the other, so the speech is ambiguous (mujmal) and the reliance is futile. In any case, there is no room for the opponent to hold onto it. Secondly (in other words): Since there is no escape from restriction and no power to accept absoluteness (because the opponent must also accept the permissibility of praying for the deceased at the time of visiting graves), the focus now remains on determining the restriction. Even setting aside the apparent and organized nature of the restriction of immediacy (ittisal), at the very least, the probability is equal, and the opponent is the one using it as evidence. "And when probability arises, the argumentation becomes void" (wa idhajaa al-ihtimal batal al-istidlal - when multiple probabilities arise in a statement, using it for one specific argument becomes invalid). Thirdly: If these absolute words contradict other surviving words, then due to the unity of ruling and event, they should be applied to the restricted (muqayyad). This would also lead to the same conclusion, and the discussion remains the same. Otherwise, due to contradiction with the majority, it is unacceptable.

In Ad-Durr al-Mukhtar, from the chapter of Al-Ta'zir: It is absolute, so it is applied	**In Durr-e-Mukhtar, chapter of Al-Ta'zir, it is: "This is absolute, so it will be applied to the restricted**
to the restricted so that their statements may agree 1 (End of quote). And shortly before the chapter on	so that there is agreement among the words of the scholars." ---

In Ad-Durr al-Mukhtar, from the chapter of Al-Ta'zir: It is absolute, so it is applied	In Durr-e-Mukhtar, chapter of Al-Ta'zir, it is: "This is absolute, so it will be applied to the restricted
The Leaning Wall: The absolute statements of the fatwas are applied to what occurred	Just before the chapter regarding the leaning wall: "The absolute nature of fatwas
restricted because of the unity of the ruling and the event 2 (End of quote). A similar point is quoted	will be applied to that which is restricted because the ruling and the event
in Radd al-Muhtar 3 at the end of the chapter on Mudaraba from the collection of Mulla Ali	are one." --- The same meaning is quoted from the collection of Mulla Ali at the end of Mudaraba in Radd al-Muhtar.
al-Mula Ali al-Qari says in Al-Maslak al-Mutaqassit: Their absolute statement	And Maulana Ali Qari says in Al-Maslak
does not contradict the restriction of Al-Kirmani 4 (End of quote). Al-Shami says, i.e.,	al-Mutaqassit: "The absolute statement of these personages is not contrary to the restriction of Al-Kirmani." Upon this

1. Ad-Durr al-Mukhtar, Chapter on Al-Ta'zir, published by Matba' Mujtabai Delhi, 1/326
2. Ad-Durr al-Mukhtar, before the chapter on The Leaning Wall, published by Matba' Mujtabai Delhi, 2/301
3. Radd al-Muhtar, citing Mulla Ali at the end of the chapter on Al-Mudaraba, published by Mustafa al-Babi Egypt, 4/549
4. Radd al-Muhtar, citing Al-Maslak al-Mutaqassit, Chapter on Al-Jinayat, published by Mustafa al-Babi Egypt, 2/249

फ़तावा रज़विया जिल्द नौ

पहली किस्म और मना करने वालों का संदेह पूरी तरह से खत्म हो गया। अल्लाह के शुक्र से, फिक़्ही तहक़ीक़ यहाँ तक बेहतरीन और मुकम्मल तौर पर बयान की गई है, लेकिन ज़बरदस्ती करने वाला मुख़ालिफ़ इसके शब्दों की ज़ाहिरी आज़ादी को देखकर उसे अपने हक़ में करना चाहेगा, और चाहे अनचाहे 'बाद' (बादियत) के अर्थ को विस्तार देकर अपनी तरफ खींचना चाहेगा। बेहतर होता कि वो अल्लाह की मदद से हमसे बहस और मुनाज़रा करता। तो मैं कहता हूँ कि अव्वल: क्या ये 'बाद' (बादियत) मुत्तसिला (जुड़ा हुआ) है, या मुतलक़ा (स्वतंत्र), या दोनों के बीच का? पहला मुख़ालिफ़ के लिए नुकसानदेह है, दूसरा इजमा (आम सहमति) और नूस-ए-मुतवातिरा (निरंतर पाठों) के खिलाफ है, और तीसरा अव्यवस्थित है। न तो एक शर्त (तक़यीद) दूसरी से ज़्यादा स्वीकार्य है, इसलिए बात अधूरी (मुजमल) है और दलील बेकार है। बहरहाल, मुख़ालिफ़ के पास पकड़ने के लिए कोई जगह नहीं है। दूसरा (दूसरे शब्दों में): जब तक़यीद (शर्त लगाने) के सिवा कोई चारा नहीं और मुतलक (बिना शर्त) को मानने की हिम्मत नहीं, क्योंकि क़ब्रों की ज़ियारत के वक्त मुर्दों के लिए दुआ करना तो मुख़ालिफ़ भी जायज़ मानता होगा, तो अब नज़र तक़यीद (शर्त) तय करने पर रही। मुत्तसिल (जुड़े होने) की शर्त के ज़ाहिर और व्यवस्थित होने को अगर किनारे भी रख दें, तो कम से कम संभावना बराबर है और मुख़ालिफ़ दलील देने वाला है। "और जब संभावना आ जाए, तो दलील बातिल (अमान्य) हो जाती है" (जब किसी बात में कई संभावनाएं हों, तो एक विशेष दलील के लिए उसका इस्तेमाल मान्य नहीं रहता)। तीसरा: अगर बाकी शब्दों की ये मुतलक बात दूसरों के खिलाफ है, तो हुक्म और घटना की समानता के कारण इसे मुक़य्यद (शर्त वाले) पर लागू किया जाएगा, तो ये भी उसी तरफ लौटेगा और बात वही रहेगी। वरना, बहुमत के विरोध के कारण ये स्वीकार्य नहीं है।

अल-दुर्र अल-मुख़्तार के ताज़ीर के अध्याय में है: मुतलक को

मुक़य्यद पर लागू किया जाएगा ताकि उनके कलाम में सहमति हो जाए 1 (अंत)। और झुकने वाली

दीवार के अध्याय से ठीक पहले है: फ़तावा के मुतलक को उस पर लागू किया जाएगा

दुर्र-ए-मुख़्तार के ताज़ीर के अध्याय में है: यह मुतलक है तो इसे मुक़य्यद पर लागू किया

जाएगा ताकि उलेमा के कलाम में आपसी सहमति हो जाए ---

झुकने वाली दीवार से संबंधित अध्याय से ज़रा पहले है: फ़तावा का

अल-दुर्र अल-मुख़्तार के ताज़ीर के अध्याय में है: मुतलक को	**दुर्र-ए-मुख़्तार के ताज़ीर के अध्याय में है: यह मुतलक है तो इसे मुक़य्यद पर लागू किया**
जो मुक़य्यद वाक़े हुआ है क्योंकि हुक्म और घटना	मुतलक उस पर लागू होगा जो मुक़य्यद वाक़े हुआ है क्योंकि हुक्म और वाक़िया
एक ही है 2 (अंत)। और इसी तरह का ज़िक्र रद अल-मुहतार 3 में मुज़ारबत के आखिर में	एक ही है --- इसी के हम-मानी रद अल-मुहतार के आख़िर में मुज़ारबत
मजमुआ मुल्ला अली से किया गया। और मौलाना अली क़ारी मस्लक अल-मुतकास्सित	में मजमुआ मुल्ला अली से नक़्ल किया गया। और मौलाना अली क़ारी मस्लक
में फ़रमाते हैं: उनका मुतलक होना किरमानी की तक़यीद	मुतकास्सित में फ़रमाते हैं: इन हज़रात का मुतलक होना किरमानी की तक़यीद
के विपरीत नहीं है 4 (अंत)। शामी ने कहा यानी	के ख़िलाफ़ नहीं है --- इस पर

1. दुर्र अल-मुख़्तार, बाबुल ताज़ीर, मक्तबा मुस्तफ़ाई दिल्ली, 1/326
2. दुर्र अल-मुख़्तार, दीवार झुकने के अध्याय से पहले, मक्तबा मुस्तफ़ाई दिल्ली, 2/301
3. रद अल-मुहतार, मुल्ला अली के हवाले से, मुज़ारबत के आखिर में, मुस्तफ़ा अल-बाबी मिस्र, 4/549
4. रद अल-मुहतार, मस्लक अल-मुतकास्सित के हवाले से, जिनायात का अध्याय, मुस्तफ़ा अल-बाबी मिस्र, 2/249

فتاویٰ رضویہ جلد نہم

قسم اول کی طرف اور شبہہ مانعین یکسر برطرف۔ تحقیقِ نظر فقہی تو بحمد اللہ یہاں تک بروجہ اتم واجمل مذکور ہوئی مگر مخالفِ متعسف اس کی حکایت کے ظاہرِ لفظ میں بالکل آزادی دیکھ کر اپنے موافق ہی کیا چاہے، اور خواہ ہی نخواہ ہی اطلاق و توسیع بعدیت کی طرف کھینچتے تو بہت بہتر۔ بعونہ تعالیٰ ہم سے ایراد و مناظرانہ لے۔ فاقول اولاً بعدیت متصلہ ہے یا مطلقہ یا بین بین اول مخالف کو مضر اور ثانی اجماع و نصوصِ متواترہ کے خلاف اور ثالث غیر منضبط، نہ ایک تقیید دوسری سے اولیٰ بالمقبول تو کلام مجمل اور استناد مہمل، بہر حال مخالف کو گنجائش تمسک نہیں۔ ثانیاً (بعبارتِ اخریٰ) جب نہ تقیید سے چارہ نہ تسلیمِ اطلاق کا یارا کہ زیارتِ قبور کے وقت دعا للاموات مخالف بھی جائز مانتا ہوگا، تو اب نظر تعیین تقیید میں رہی، قیدِ اتصال کے ظہور و انضباط سے قطع نظر بھی کیجئے تو اقل درجہ احتمال مساوی ہے اور مخالف مستدل۔ واذاجاء الاحتمال بطل الاستدلال (جب کلام میں کئی احتمال آگئے تو ایک پر اس سے استدلال باطل ہوا ت) ثالثاً یہ اطلاق کلماتِ باقیین کے مخالف اگر بوجہ اتحاد و حکم و حادثہ حمل علی المقید کیجئے تو یہ بھی اسی طرف راجع والکلام الکلام ورنہ بسبب مخالفت اکثرین نا قابلِ قبول۔

فی الدر المختار من باب التعزیر مطلق در مختار باب التعزیر میں ہے: یہ مطلق ہے تو مقید پر

فیحمل **محمول کیا**

علی المقید لیتفق کلامھم 1 اہ وقبیل فصل فی جائے گا تاکہ کلماتِ علماء میں باہم اتفاق ہو جائے اھ۔

الحائط المائل، یحمل اطلاق الفتاوی علی ما جھکی ہوئی دیوار سے متعلق فصل سے ذرا پہلے ہے:

وقع فتاویٰ کا

فی الدر المختار من باب التعزير مطلق در مختار باب التعزیر میں ہے: یہ مطلق ہے تو مقید پر

فيحمل **محمول کیا**

مقيدا لاتحاد الحكم والحادثة 2 اه ونقل نحوه اطلاق اس پر محمول ہوگا جو مقید واقع ہے کیونکہ حکم اور حادثہ

فی رد المحتار 3 اخر مضاربة عن مجموعة ملا على ایک ہی ہے اھ۔ اسی کے ہم معنی ردالمحتار آخر مضاربت

المولى على قارى في المسلك المتقسط اطلاقهم میں مجموعہ ملا علی سے نقل کیا۔ اور مولانا علی قاری مسلک

لا ينافي تقليد الكرمانى 4 اه قال الشامى ای متقسط میں فرماتے ہیں: ان حضرات کا اطلاق کرمانی کی تقیید

کے منافی نہیں اھ اس پر

1 در مختار باب التعزير مطبوعه مطبع مجتبائی دہلی ۳۲۶/۱ 2 در مختار قبل فصل الحائط المائل مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی ۳۰۱/۲ 3 رد المحتار بحوالہ ملا علی آخر باب المضاربہ مطبوعہ مصطفی البابی مصر ۵۴۹/۴ 4 رد المحتار بحوالہ المسلك المتقسط باب الجنايات مطبوعہ مصطفی البابی مصر ۲۴۹/۲

Fatawa Rizvia Volume 9

[Table Header] [Arabic Text]: To carry the absolute upon the restricted (End of quote). He mentioned something similar shortly after this, just before the chapter of 'al-Ihsar'. And he said just before the chapter of 'al-Tayammum': They have explicitly stated that action is according to what the majority is upon (End of quote). And in the chapter of 'Prayer of the Sick' from 'Imdad al-Fattah' by Allama al-Shurunbulali: The rule is that action is according to what the majority is upon (End of quote). At the beginning of the chapter of 'Fear Prayer': It is not acted upon because it is the opinion of some (End of quote). Allama al-Biri said in the commentary of 'al-Ashbah' under the principle 'In speech, the origin is reality': It is not permissible for anyone to adopt it because it is established among the masters that whenever there is disagreement in a matter, the consideration is for what the majority said (End of quote). It was cited in 'al-Uqud al-Durriyyah' at the end of the first chapter of the Book of Endowment (Waqf).

[Urdu Translation/Explanation]: Shami wrote: The meaning is that the absolute will be carried upon the restricted (End of quote). He mentioned something of the same meaning a little after this, slightly before the chapter of 'al-Ihsar', and wrote just before the chapter of 'al-Tayammum': The scholars have explicitly stated that action will be upon that which the majority are upon (End of quote). In the chapter of 'Prayer of the Sick', it is cited from Allama Shurunbulali's 'Imdad al-Fattah': The rule is that action will be upon that which the majority are upon (End of quote). At the beginning of the chapter of 'Fear Prayer', it says: Action will not be upon it because it is only the opinion of some (End of quote). Allama Biri, in the commentary of 'Ashbah' under the principle 'The origin in speech is reality', writes in one place: It is not correct for anyone to adopt it because it is settled among the masters that when there is disagreement in a matter, the consideration will be for that which the majority says (End of quote). This was cited from the end of the first chapter of the Book of Endowment in 'al-Uqud al-Durriyyah'. (T)

Fourthly: The narrator of this report is Zahidi, the author of 'al-Quniyah'. Neither Zahidi is reliable nor is 'al-Quniyah' authoritative, especially in such a narrative that implies a beneficial contradiction and is fundamentally inconsistent with the principles of Sharia.

[Arabic]: In Rad al-Muhtar, at the beginning of the Book of Purification, the book 'al-Quniyah' is famous for the weakness of its reports (End of quote). [Urdu]: In Rad al-

Muhtar, at the beginning of the Book of Purification, it says: The book 'al-Quniyah' is famous for weakness of reports (End of quote).

Footnotes: 1. Rad al-Muhtar, Chapter of Injuries, published by Mustafa al-Babi, Egypt, 250/2 2. Rad al-Muhtar, before the Chapter of Tayammum, published by Mustafa al-Babi, Egypt, 166/1 3. Rad al-Muhtar, Chapter of Prayer of the Sick, published by Mustafa al-Babi, Egypt, 562/1 4. Rad al-Muhtar, Chapter of Fear Prayer, published by Mustafa al-Babi, Egypt, 625/1 5. Al-Uqud al-Durriyyah, citing Allama al-Biri, topic regarding disagreement in a matter etc., Haji Abdul Ghaffar and Sons, Booksellers, Arg Bazar, Kandahar, 57/2 6. Rad al-Muhtar, Book of Purification, published by Mustafa al-Babi, Egypt, 59/1 Page 254 of 948

फ़तावा रज़विया खंड 9

[तालिका शीर्षक] [अरबी पाठ]: निरपेक्ष को प्रतिबंधित पर रखा जाए (उद्धरण समाप्त)। उन्होंने इसके कुछ समय बाद 'अल-इहसार' अध्याय से ठीक पहले इसी तरह की बात कही। और 'अल-तयम्मुम' अध्याय से ठीक पहले कहा: उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा है कि कार्य उसी पर है जिस पर बहुमत है (उद्धरण समाप्त)। और अल्लामा अल-शुरुनबुलाली द्वारा 'इमदाद अल-फ़त्ताह' से 'बीमार की नमाज़' के अध्याय में: नियम यह है कि कार्य बहुमत के अनुसार होता है (उद्धरण समाप्त)। 'डर की नमाज़' अध्याय की शुरुआत में: इस पर अमल नहीं किया जाता क्योंकि यह कुछ लोगों की राय है (उद्धरण समाप्त)। अल्लामा अल-बीरी ने 'अल-अश्बाह' की व्याख्या में 'भाषण में मूल वास्तविकता है' सिद्धांत के तहत कहा: किसी के लिए इसे अपनाना जायज़ नहीं है क्योंकि उस्तादों के बीच यह स्थापित है कि जब भी किसी मामले में असहमति हो, तो उस पर विचार किया जाता है जो बहुमत ने कहा (उद्धरण समाप्त)। इसे वक्फ की किताब के पहले अध्याय के अंत में 'अल-उक़ूद अल-दुर्रिय्या' में उद्धृत किया गया था।

[उर्दू अनुवाद/व्याख्या]: शामी ने लिखा है: इसका मतलब है कि निरपेक्ष को प्रतिबंधित पर माना जाएगा (उद्धरण समाप्त)। उन्होंने इसके कुछ समय बाद 'अल-इहसार' अध्याय से थोड़ा पहले इसी अर्थ की कुछ बात कही, और 'अल-तयम्मुम' अध्याय से ठीक पहले लिखा: विद्वानों ने स्पष्ट रूप से कहा है कि कार्य उसी पर होगा जिस पर बहुमत है (उद्धरण समाप्त)। 'बीमार की नमाज़' के अध्याय में अल्लामा शूरुनबुलाली की 'इमदाद अल-फ़त्ताह' से उद्धृत है: नियम यह है कि कार्य उसी पर होगा जिस पर बहुमत है (उद्धरण समाप्त)। 'डर की नमाज़' अध्याय की शुरुआत में कहा गया है: इस पर अमल नहीं होगा क्योंकि यह केवल कुछ लोगों की राय है (उद्धरण समाप्त)। अल्लामा बीरी ने 'अश्बाह' की व्याख्या में 'भाषण में मूल वास्तविकता है' सिद्धांत के तहत एक जगह लिखा है: किसी के लिए इसे अपनाना सही नहीं है क्योंकि बुजुर्गों के बीच यह तय है कि जब किसी मामले में मतभेद हो, तो विचार उसी पर होगा जो बहुमत कहता है (उद्धरण समाप्त)। इसे 'अल-उक़ूद अल-दुर्रिय्या' में वक्फ की किताब के पहले अध्याय के अंत से उद्धृत किया गया था। (त)

चौथा: इस रिपोर्ट के कथावाचक ज़ाहिदी हैं, जो 'अल-कुनिया' के लेखक हैं। न तो ज़ाहिदी विश्वसनीय हैं और न ही 'अल-कुनिया' आधिकारिक है, विशेष रूप से ऐसी कथा में जिसका तात्पर्य लाभकारी विरोधाभास है और जो मौलिक रूप से शरीयत के सिद्धांतों के साथ असंगत है।

[अरबी]: रद अल-मुह्तार में, पवित्रता की पुस्तक की शुरुआत में, 'अल-कुनिया' पुस्तक अपनी रिपोर्टों की कमजोरी के लिए प्रसिद्ध है (उद्धरण समाप्त)। [उर्दू]: रद अल-मुह्तार में, पवित्रता की पुस्तक की शुरुआत में कहा गया है: 'अल-कुनिया' पुस्तक रिपोर्टों की कमजोरी के लिए प्रसिद्ध है (उद्धरण समाप्त)।

फुटनोट्स: 1. रद अल-मुह्तार, चोटों का अध्याय, मुस्तफा अल-बाबी द्वारा प्रकाशित, मिस्र, 250/2 2. रद अल-मुह्तार, तयम्मुम के अध्याय से पहले, मुस्तफा अल-बाबी द्वारा प्रकाशित, मिस्र, 166/1 3. रद अल-मुह्तार, बीमार की नमाज़ का अध्याय, मुस्तफा अल-बाबी द्वारा प्रकाशित, मिस्र, 562/1 4. रद अल-मुह्तार, डर की नमाज़ का अध्याय, मुस्तफा अल-बाबी द्वारा प्रकाशित, मिस्र, 625/1 5. अल-उक़ूद अल-दुर्रिय्या, अल्लामा अल-बीरी का हवाला देते हुए, एक मामले में मतभेद आदि के संबंध में विषय, हाजी अब्दुल गफ्फार और संस, बुकसेलर्स, अर्ग बाज़ार, कंधार, 57/2 6. रद अल-मुह्तार, पवित्रता की पुस्तक, मुस्तफा अल-बाबी द्वारा प्रकाशित, मिस्र, 59/1 पृष्ठ 948 का 254

لیحمل المطلق علی المقید اھ و ذکر نحوہ بعد ھذا بقلیل، قبیل باب الاحصار و قال قبیل باب الیتیم قد صرحوا بان العمل بما علیہ الاکثر اھ و فی باب صلاۃ المریض عن امداد الفتاح للعلامۃ الشرنبلالی من ان القاعدۃ العمل بما علیہ الاکثر اھ و اول باب صلوۃ الخوف لا یعمل بہ لانہ قول البعض اھ و قال العلامۃ البیری فی شرح الاشباہ من قاعدۃ ان الاصل فی الکلام الحقیقۃ لایجوز لاحد الاخذ بہ لان المقرر عند المشائخ انہ متی اختلف فی مسئلۃ فالعبرۃ بما قالہ الاکثر اھ نقلہ فی العقود الدریۃ اخر الباب الاول من الوقف۔

شامی نے لکھا : مراد یہ ہے کہ مطلق مقید پر محمول کر دیا جائے گا اھ اسی کے ہم معنی اس سے ذرا بعد باب الاحصار سے تھوڑا پہلے ذکر کیا اور باب التیمم سے ذرا قبل لکھا : علماء نے تصریح فرمائی ہے کہ عمل اُسی پر ہوگا جس پر اکثر ہیں اھ باب صلاۃ المریض میں علامہ شرنبلالی کی امداد الفتاح سے نقل ہے : قاعدہ یہ ہے کہ عمل اس پر ہوگا جس پر اکثر ہوں اھ شروع باب صلوۃ الخوف میں ہے : اس پر عمل نہ ہوگا کیونکہ یہ صرف بعض کا قول ہے اھ علامہ بیری شرح اشباہ میں قاعدہ "کلام میں اصل حقیقت ہے" کے تحت ایک جگہ لکھتے ہیں : کسی کے لئے اسے اخذ کرنا درست نہیں اس لئے کہ مشائخ کے نزدیک طے شدہ یہ ہے کہ جب مسئلہ میں اختلاف ہو تو اعتبار اس کا ہوگا جس کے قائل اکثر ہوں اھ اسے العقود الدرایہ میں کتاب الوقف باب اول کے آخر سے نقل کیا (ت)

رابعًا: اس روایت کا حاکی زاہدی مخی فیہ قنیہ و زاہدی معتمد نہ قنیہ معتبر خصوصًا ایسی حکایت میں کہ بمعنی مفید مخالف، اصلاً قواعدِ شرع سے مطابق نہیں۔

فی ردالمحتار اول الطهارة کتاب القنیة مشهور بضعف الروایة اهـ و فی ردالمحتار شروع کتاب الطهارة میں ہے: کتاب "قنیہ" ضعف روایت میں مشہور ہے اهـ

1 ردالمحتار باب الجنایات مطبوعہ مصطفی البابی مصر ۲۵۰/۲ 2 ردالمحتار قبیل باب التیمم مطبوعہ مصطفی البابی مصر ۱۶۶/۱ 3 ردالمحتار باب صلوة المریض مطبوعہ مصطفی البابی مصر ۵۶۲/۱ 4 ردالمحتار باب صلوة الخوف مطبوعہ مصطفی البابی مصر ۶۲۵/۱ 5 العقودالدریة بحوالہ العلامة البیری مطلب فی اختلف فی مسئلة الخ حاجی عبدالغفار و پسران کتب ارگ بازار قندهار ۵۷/۲ 6 ردالمحتار کتاب الطهارة مطبوعہ مصطفی البابی مصر ۵۹/۱ Page 254 of 948

Fatawa Razawiyya, Volume 9

[Text in Arabic Box] *Al-Uqud al-Durriyyah*, at the end of the book: Ibn Wahban mentioned that what the author of *Al-Quniyah*, meaning al-Zahidi, narrates in opposition to the established principles will not be considered unless it is supported by a narration from someone else. Similarly, it is stated in *An-Nahr* as well. It is also narrated in *Ad-Durr* [al-Mukhtar] from the author on the authority of Ibn Wahban. And in the marginalia of *At-Tahtawi* on the Book of Fasting, about one leaf before the chapter on *Al-Awarid* (impediments): *Al-Quniyah* is not among the reliable books.

[Translation/Explanation in Urdu Box] It is in the end of the book *Al-Uqud al-Durriyyah*: Ibn Wahban has mentioned that the narration of the author of *Quniyah*, i.e., Zahidi, which is against the principles, will not be paid attention to unless another narration is found to support it... similar to this is also in *An-Nahr*. It has been quoted in *Durr-e-Mukhtar* on the authority of Ibn Wahban from the author. And in *At-Tahtawi*, Book of Fasting, in the chapter of *Awarid*, about one page before, it is stated: *Quniyah* is not from the reliable books. (T)

Fifthly, Zahidi is particularly suspect in this matter because he is a Mu'tazilite in belief, and according to the Mu'tazilites (may Allah humble them), praying for the deceased Muslims is completely useless, as explicitly stated in *Sharh al-Aqa'id*, *Sharh al-Fiqh al-Akbar*, and others. (As it is specified in *Sharh al-Aqa'id* and *Sharh al-Fiqh al-Akbar* etc. - T). It is his habit to insert Mu'tazilite issues into his book.

[Text in Arabic Box] As he did in a matter regarding beverages (*Al-Ashribah*), a matter regarding slaughtering (*Ad-Dhaba'ih*), a matter regarding Pilgrimage (*Al-Hajj*), and other issues, as explained in *Ad-Durr al-Mukhtar*, *Radd al-Muhtar*, and others in their respective places.

[Translation/Explanation in Urdu Box] Just as he did in a matter regarding drinks, a matter regarding slaughtering, a matter regarding Hajj, and in other issues as well, as mentioned in their respective places in *Durr-e-Mukhtar*, *Radd al-Muhtar*, etc. (T)

His grand-teacher, Zamakhshari, was also habituated to this. The difference is that while he may say whatever he wishes, he is reliable in narration, unlike Zahidi, whose narration cannot be trusted either. These foolish people defamed the name of the Hanafi school by inserting hidden mischiefs into subsidiary matters, which even misled some authors. Gradually, those narrations spread across numerous books, and today they are considered valuable treasures and great spoils by the Najdis and

their ilk. I (the humble faqir, may Allah forgive him) have explained some of this in my book "Hayat al-Amwat fi Bayan Sima' al-Amwat". And success is from Allah.

---

1. *Al-Uqud al-Durriyyah*: Zahidi's narration does not contradict the narration of reliable works. Published by Haji Abdul Ghaffar and Sons, Booksellers, Arg Bazaar, Kandahar, 2/365.
2. Marginalia of At-Tahtawi on *Ad-Durr al-Mukhtar*, just before the chapter on *Al-Awarid*. Published by Dar al-Ma'rifah, Beirut, 1/46.

फ़तावा रज़विया, जिल्द 9

[अरबी बॉक्स का पाठ] अल-उक़ूद अद-दुर्रिय्या के अंत में है: इब्न वहबान ने ज़िक्र किया है कि साहब-ए-क़ुनिया यानी ज़ाहिदी जो नियमों के विरुद्ध नक़ल करे उसकी ओर ध्यान नहीं दिया जाएगा जब तक कि किसी और की नक़ल उसकी पुष्टि न कर दे। इसी तरह अन-नह्र में भी है। इसे दुर्र-ए-मुख़्तार में लेखक के हवाले से इब्न वहबान से नक़ल किया गया है। और तहावी (हाशिया अद-दुर्र अल-मुख़्तार), किताबुस-सौम में फ़स्ल-ए-अवारिज़ से लगभग एक पन्ना पहले है: क़ुनिया भरोसेमंद किताबों में से नहीं है।

[उर्दू बॉक्स का पाठ] अल-उक़ूद अद-दुर्रिय्या के अंत में है: इब्न वहबान ने ज़िक्र किया है कि साहब-ए-क़ुनिया यानी ज़ाहिदी जो नियमों के विरुद्ध नक़ल करे उसकी ओर ध्यान नहीं दिया जाएगा जब तक कि किसी और की नक़ल उसकी पुष्टि न कर दे... इसी तरह अन-नह्र में भी है। इसे दुर्र-ए-मुख़्तार में लेखक के हवाले से इब्न वहबान से नक़ल किया गया है। और तहावी (हाशिया अद-दुर्र अल-मुख़्तार), किताबुस-सौम में फ़स्ल-ए-अवारिज़ से लगभग एक पन्ना पहले है: क़ुनिया भरोसेमंद किताबों में से नहीं है। (त)

पांचवीं बात यह है कि ज़ाहिदी इस मसले में विशेष रूप से संदिग्ध है क्योंकि वह मज़हब का मुअतज़ली है और मुअतज़िला (अल्लाह उन्हें ज़लील करे) के निकट मुसलमानों के मृतकों के लिए दुआ बिल्कुल बेकार है, जैसा कि शरह अल-अक़ायद और शरह अल-फ़िक़्ह अल-अकबर आदि में स्पष्ट रूप से वर्णित है। (जैसा कि शरह अल-अक़ायद और शरह अल-फ़िक़्ह अल-अकबर आदि में स्पष्टता है। त) उसकी यह आदत है कि वह अपनी किताब में एतज़ाल (मुअतज़ली विचारधारा) के मसले शामिल कर देता है।

[अरबी बॉक्स का पाठ] जैसा कि उसने पेय पदार्थों (अशरबा) के एक मसले, ज़बह के एक मसले, हज के एक मसले और अन्य मसलों में भी ऐसा ही किया है, जैसा कि दुर्र-ए-मुख़्तार और रद अल-मुह्तार आदि में उनके संबंधित स्थानों पर वर्णित है।

[उर्दू बॉक्स का पाठ] जैसा कि उसने अशरबा के एक मसले, ज़बाह के एक मसले, हज के एक मसले और अन्य मसलों में भी ऐसा ही किया है, जैसा कि दुर्र-ए-मुख़्तार और रद अल-मुह्तार आदि में उनके संबंधित स्थानों पर वर्णित है। (त)

उसका उस्ताद-उल-उस्ताद ज़मख़्शरी भी इसी तरह का आदी है। फ़र्क़ बस इतना है कि वह अपनी ओर से कुछ भी कहे मगर नक़ल (उद्धरण) करने में विश्वसनीय है, ज़ाहिदी के विपरीत जिसकी नक़ल पर भी भरोसा नहीं किया जा सकता। इन मूर्खों ने हनफ़ियत का नाम बदनाम करके उपशाखाओं (फ़ुरू) में ऐसी कुछ गुप्त शरारतें भर दीं जिनसे कुछ लेखकों ने भी धोखा खाया और धीरे-धीरे वे नक़लें अनेक पुस्तकों में फैल गईं, जो आज के नजदियों और उनके जैसे लोगों के निकट बहुमूल्य संपत्ति और बड़ी ग़नीमत बनी हुई हैं। इस बारे में कुछ विवरण मुझ फ़क़ीर (अल्लाह तआला माफ़ करे) ने अपनी किताब "हयात अल-अमवात फ़ी बयान समा' अल-अमवात" में किया है। और तौफ़ीक़ अल्लाह ही की ओर से है।

---

1. अल-उक़ूद अद-दुर्रिय्या: ज़ाहिदी की नक़ल विश्वसनीय किताबों की नक़ल के ख़िलाफ़ मान्य नहीं, हाजी अब्दुल ग़फ़्फ़ार एंड संस, बुकसेलर्स, अर्ग बाज़ार कंधार द्वारा प्रकाशित, 2/365।
2. हाशिया अत-तहावी अला अद-दुर्र अल-मुख़्तार, फ़स्ल अल-अवारिज़ से पहले। दार अल-मआरिफ़ा बेरुत द्वारा प्रकाशित, 1/46।

فتاوی رضویہ جلد نہم

[عربی عبارت] العقود الدرية أخر الكتاب ذكر ابن وهبان انه لايلتفت مانقله صاحب القنية يعنى الزاهدي مخالفاً للقواعد مالم يعضده نقل من غيره و مثله في النهر ايضا اه و نقله ايضا فى الدر عن المصنف عن ابن وهبان، وفى صوم الطحطاوى قبل فصل العوارض بنحو ورقه، القنية ليست من كتب المعتمدة۔

[اردو عبارت] العقود الدرية آخر کتاب میں ہے: ابن وہبان نے ذکر کیا ہے کہ صاحب قنیہ یعنی زاہدی خلافِ قواعد جو نقل کرے اسکی جانب التفات نہ ہوگا جب تک کسی اور سے کوئی نقل اس کی تائید میں نہ ملے--- اسی کے مثل نہر میں بھی ہے۔ اسے در مختار میں مصنف کے حوالے سے ابن وہبان سے نقل کیا گیا ہے۔ اور طحطاوی کتاب الصوم میں فصل عوارض میں تقریباً ایک ورق پہلے ہے: قنیہ کتب معتمدہ سے نہیں۔ (ت)

خامساً زاہدی اس مسئلہ میں بالخصوص متہم کہ وہ مذہب کا معتزلی ہے اور معتزلہ خذلہم اللہ تعالٰی کے نزدیک اموات مسلمین کے لئے دعا محض بیکار کما نص علیہ فی شرح العقائد و شرح الفقہ الاکبر وغیرہما (جیسا کہ شرح عقائد اور شرح فقہ اکبر وغیرہما میں اس کی تصریح ہے۔ ت) اُس کی یہ عادت ہے کہ وہ مسائل اعتزال اپنی کتاب میں داخل کرتا ہے۔

[عربی عبارت] كما فعل في مسئلة فى الاشربة و مسئلة في الذبائح و مسئلة فى الحج وغيره ذلك كما بينه فى الدر المختار ورد المحتار وغيرهما فى مواضعه -

[اردو عبارت] جیسا کہ اشربہ کے ایک مسئلہ، ذباح کے ایک مسئلہ، حج کے ایک مسئلہ میں، اور بھی مسائل میں اس نے ایسا کیا ہے، جیسا کہ در مختار و رد المحتار وغیرہما میں اس کے مقامات پر مذکور ہے۔ (ت)

اس کا استاذ الاستاذ زمخشری بھی اس کا خو گر ہے۔ فرق اتنا ہے کہ وہ آپ کچھ بکے مگر نقل میں ثقہ ہے، بخلاف زاہدی کے اس کی نقل پر بھی اعتماد نہیں۔ ان سفہانے حنفیت کا نام بدنام کر کے فروع میں بعض وہ خفی شرارتیں بھر دیں جن سے بعض مصنفین نے بھی دھوکا کھایا اور شدہ شدہ وہ نقول متعدد کتب میں پھیل گئیں جو آج تک حضرات نجدیہ و امثالہم کے نزدیک علقِ نفیس و غنیمتِ بار وہ ہیں اس کا بعض بیان فقیر غفراللہ تعالٰی اپنی کتاب "حیاۃ الامواۃ فی بیان سماع الاموات" میں کیا وباللہ التوفیق۔

---

1 العقود الدریۃ نقل الزاھدي لا یعارض نقل المعتبرات مطبوعہ حاجی عبد الغفار و پسران تاجران کتب ارگ بازار قندھار ۲ / ۳۶۵ 2 حاشیہ الطحطاوی علی الدر المختار قبیل فصل فی العوارض مطبوعہ دار المعرفۃ بیروت ۱ / ۴۶

Fatawa Razawiyya Volume 9

Sav Shah and the poor fellow himself relate this anecdote with the word 'an' (from), which indicates oddity and weakness. Eventually, he follows the path of the majority opinion.

Arabic	Urdu
Since he said after what has passed: Muhammad ibn al-Fadl said, there is no harm in it (Zahiri report). And a person should not stand for supplication after the funeral prayer. He (may Allah be pleased with him) said: because it resembles an addition to the funeral prayer. Understand this.	In this way, after the previous passage, he says: And Muhammad bin Fadl said: There is no harm in it, Zahir (report). And after the funeral prayer, a man should not stay for prayer (Dua); the mentioned Imam (may Allah be pleased with him) said this is because it bears a resemblance to an increase and addition in the funeral prayer. Understand it. (T)

Forget everything from before; at most, even if this is just an anecdote from some elders, now preference is required. In books of jurisprudence, the decree (fatwa) is on the side of permissibility. It is written in Kashf al-Ghita after mentioning the passage from Qunya and others:

Persian/Urdu	Urdu
Reciting Fatiha and supplication for the deceased before burial is correct and this is the practiced narration, as in Al-Khulasah al-Fiqh, ends.	Fatiha and Dua for the deceased before burial are correct and this is the practiced narration. Similarly, it is in Khulasa-tul-Fiqh, ends. (T)

Allama Shami states that this phrase "humeen ast riwayat-e-ma'moola" (this is the practiced narration) is equal in strength and authority to "alaihil fatwa" (the fatwa is upon this) and "bihi yufta" (decree is given by this), which are the most emphatic words for issuing a decree.

Arabic	Urdu
In Ad-Durr al-Mukhtar: The word 'al-fatwa' is more emphatic than the words 'as-sahih', 'al-asah', 'al-ashbah', etc. In Radd al-Muhtar: It appears to me that the phrase 'wa alaihil	In Durr-e-Mukhtar, it is: The word Fatwa is more emphatic than the words sahih, asah, ashbah, etc. In Radd al-Muhtar, it is: I think that the phrase "Alaihil 'Amal"

Arabic	Urdu
'amal' (and upon it is the practice) is equal to the word 'al-fatwa'.	(on this is the practice) is equal to the word Fatwa. (T)

1 Qunya, Chapter of Funerals, published by Al-Maktaba al-Hindiyah, p. 56 2 Kashf al-Ghita, Chapter 6: Funeral Prayer, Ahmadi Press Delhi, p. 40 3 Durr al-Mukhtar, Introduction of the book, published by Mujtabai Press Delhi, 1/15 4 Radd al-Muhtar, Introduction of the book, published by Mustafa al-Babi Egypt, 1/54

फ़तावा रज़विया जिल्द नहम (9)

साव शाह और बेचारा खुद भी इस हिकायत को लफ़्ज़ 'अन' (से) के साथ नक़ल करता है जो ग़राबत और कमज़ोरी का सूचक है। अंततः वह उसी अक्सरी (बहुमत) कौल की राह पर चलता है।

अरबी

जैसा कि उसने पिछली इबारत के बाद कहा: और मुहम्मद बिन अल-फ़ज़ल ने कहा कि इसमें कोई हर्ज नहीं है (ज़ाहिरी रिवायत)। और जनाज़े की नमाज़ के बाद दुआ के लिए न रुकें। इमाम (रज़ियल्लाहु अन्हु) ने फ़रमाया क्योंकि यह जनाज़े की नमाज़ में ज़्यादती (बढ़ावे) के समान है। इसे समझो।

उर्दू

इसी तरह पिछली इबारत के बाद वह कहता है: और मुहम्मद बिन फ़ज़ल ने कहा: इसमें कोई हर्ज नहीं, ज़ाहिर (रिवायत)। और नमाज़-ए-जनाज़ा के बाद आदमी दुआ के लिए न ठहरे, इमाम मौसूफ़ (रज़ियल्लाहु अन्हु) ने फ़रमाया इसलिए कि यह नमाज़-ए-जनाज़ा में ज़्यादती और इज़ाफ़े से मुशाबहत (समानता) रखता है। इसे समझो। (त)

पिछली सब बातें जाने दो, तो हद से हद यह भी कुछ बुज़ुर्गों से एक हिकायत ही सही, अब तर्जीह (प्राथमिकता) की ज़रूरत होगी। फिक़्ह (इस्लामी कानून) की किताबों में फ़तवा जवाज़ (अनुमति) की तरफ़ है। 'कश्फ़ुल ग़िता' में 'कुनिया' आदि की इबारत के ज़िक्र के बाद लिखा है:

फ़ारसी/उर्दू

दफ़्न से पहले मय्यत के लिए फातिहा और दुआ दुरुस्त है और यही मामूला रिवायत (प्रचलित वर्णन) है, जैसा कि 'खुलासतुल फिक़्ह' में है।

उर्दू

मय्यत के लिए दफ़्न से पहले फातिहा और दुआ दुरुस्त है और यही रिवायत मामूल-बिहा है। ऐसा ही 'खुलासतुल फिक़्ह' में है। (त)

अल्लामा शामी फ़रमाते हैं कि यह लफ़्ज़ 'हमीन अस्त रिवायत-ए-मामूला' (यही प्रचलित वर्णन है) कुव्वत और प्रभाव में 'अलैहिल फ़तवा' और 'बेही युफ़्ता' (फ़तवा इसी पर है) के बराबर है, जो फ़तवा देने के सबसे मज़बूत शब्द हैं।

अरबी

'अद-दुर्रुल मुख्तार' में है: लफ़्ज़ 'अल-फ़तवा' लफ़्ज़ 'अस-सहीह', 'अल-असह', 'अल-अश्बह' आदि से अधिक ताकीदी है। 'रद्दुल मुह्तार' में है: मुझे ऐसा

उर्दू

'दुर्र-ए-मुख्तार' में है: लफ़्ज़ फ़तवा, लफ़्ज़ सहीह, असह, अश्बह वगैरह से ज़्यादा मोअक्किद (पुरज़ोर) है। 'रद्दुल मुह्तार' में है:

अरबी	उर्दू
लगता है कि लफ़्ज़ 'वा अलैहिल अमल' (और इसी पर अमल है) लफ़्ज़ 'अल-फ़तवा' के बराबर है।	मेरा ख्याल है कि लफ़्ज़ "अलैहिल अमल" (इसी पर अमल है) लफ़्ज़ फ़तवा के बराबर है। (त)

1 कुनिया, बाबुल जनाइज़, मक्तबा हिंदिया, पृष्ठ 56 2 कश्फ़ुल ग़िता, फ़स्ल शशम (छठा अध्याय): नमाज़-ए-जनाज़ा, अहमदी प्रेस दिल्ली, पृष्ठ 40 3 दुर्र-ए-मुख्तार, किताब की प्रस्तावना, मुजतबाई प्रेस दिल्ली, 1/15 4 रद्दुल मुह्तार, किताब की प्रस्तावना, मुस्तफा अल-बाबी मिस्र, 1/54

पृष्ठ 256/948

ساؤ شاہ و بیچارہ خود بھی اس حکایت کو بلفظ عن کہ مشیرِ غرابت و تمریض ہے نقل کرتا آخر میں اسی قولِ اکثر کی راہ پر چلتا ہے۔

عربی	اردو
حیث قال بعد ما مر و قال محمد بن الفضل لاباس به ظ ولا یقوم الرجل بالدعاء بعد صلوٰۃ الجنازۃ قال رضی اللہ تعالی عنه لانه یشبه الزیادۃ في صلوۃ الجنازۃ اھ فافھم	اس طرح گزشتہ عبارت کے بعد وہ کہتا ہے : اور محمد بن فضل نے کہا : اس میں کوئی حرج نہیں، ظ اور بعد نماز جنازہ آدمی دُعا کے لئے نہ ٹھہرے، امام موصوف رضی اللہ تعالیٰ عنہ نے فرمایا اس لئے کہ یہ نماز جنازہ میں زیادتی واضافہ سے مشابہت رکھتا ہے اھ اسے سمجھو۔ (ت)

سابقاً سب جانے دو ، تو غایت درجہ یہ بھی بعض مشائخ سے ایک حکایت سہی ، اب ترجیح مطلوب ہوگی۔ کتب فقہ میں فتوٰی جانبِ جواز ہے۔ کشف الغطاء میں بعدِ ذکرِ عبارت قنیہ وغیرہا لکھا:

فارسی/اردو	اردو
فاتحه ودُعا برائے میت پیش از دفن درست است و ہمیں است روایت معمولہ کذا فی الخلاصۃ الفقه انتھی ۔	میت کے لئے دفن سے پہلے فاتحہ ودعا درست ہے اور یہی روایت معمول بہا ہے۔ ایسا ہی خلاصۃ الفقہ میں ہے انتہٰی (ت)

علامہ شامی افادہ فرماتے ہیں کہ یہ لفظ فتوٰی یعنی ہمیں است روایت معمولہ (یہی روایت معمول بہا ہے ۔ ت) قوت و شوکت میں علیہ الفتوی و بہ یفتی (فتوی اسی پر ہے۔ ت) کے برابر ہے جو آکد الفاظ افتاء ہیں۔

عربی	اردو
في الدر المختار لفظ الفتوی اکد من لفظ الصحیح والاصح والاشبہ وغیرھا فی ردالمحتار ویظھر لی ان لفظ وعلیہ العمل مساوٍ للفظ الفتوی اھ	درمختار میں ہے : لفظ فتویٰ، لفظ صحیح، اصح، اشبہ وغیرہ سے زیادہ مؤکد ہے۔ ردالمحتار میں ہے میرا خیال ہے کہ لفظ "علیہ العمل" (اسی پر عمل ہے) لفظ فتویٰ کے برابر ہے اھ (ت)

1 قنیہ باب الجنائز مطبعہ المشتہرۃ بالمکتبہ الہندیہ ص ۵۶ 2 کشف الغطاء فصل ششم نمازِ جنازہ مطبع احمدی دہلی ص ۴۰ 3 در مختار مقدمۃ الکتاب مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی ۱/ ۱۵ 4 ردالمحتار مقدمۃ الکتاب مطبوعہ مصطفی البابی مصر ۱/ ۵۴

Fatawa Rizvia, Volume 9

Praise be to Allah that the truth is manifest and evident in every way, and every doubt and illusion is dispelled and destroyed. It is hoped that from the beginning to the end of this fatwa, all the shining gems presented for the observation of those with insight are the special products of the pen of this humble one, which will not be found anywhere else but in this writing.

[Table Header: Arabic on the left, Urdu Translation on the right] [Arabic]: This is from the grace of Allah upon us and upon people, but most people do not give thanks. And all praise is due to Allah, the Lord of the worlds. And blessings and peace be upon the most generous of the generous, our Master and Lord Muhammad, and upon all his family and companions. [Urdu]: This is God's grace upon us and upon the people, but most people do not express gratitude. And all praise is for Allah who is the Sustainer of all the worlds, and peace and blessings be upon the most generous among the generous, the one with the most bounty and generosity, our Master and Lord and upon all his family and companions. (T)

In short, the statements of the jurists (Fuqaha) relate only to two scenarios: First, praying (dua) after the funeral prayer while remaining in the same formation, standing with rows intact. Second, delaying the burial process, whether before or after the prayer, specifically for the purpose of a long prayer. Apparently, in this second case, it can reach the level of prohibited dislike (Karahat-e-Tahrimi), and in the first case, it is slightly disliked (Tanzihi). It was just mentioned from *Mirqat* that the illusion of adding something to the religion causes slight dislike (Tanzihi) and nothing more; the gist of which is that it is 'contrary to what is better', not that it is forbidden or illegal. Some scholars of Lucknow, in some of their treatises, described slightly disliked (Makruh-e-Tanzihi) as a minor sin (Gunah-e-Saghira), which is a grave error. To invalidate this, several lines titled "Mujmal Mujliyah in al-Makruh Tanzeehan Laisa bi-Ma'siyah" (Summary clarifying that what is slightly disliked is not a sin) were written using hundreds of statements from Imams and legal proofs in refutation. Anyway, these were the two scenarios discussed by the jurists' statements. Apart from these, all forms of prayer (dua) in which there is no delay for the purpose of prayer, and it is not done in that specific manner after the prayer—for example, breaking the rows and making a short prayer, or a long prayer due to a special delay in the funeral—there is no objection at all. Nor is there any rejection of them in the scholars' words; rather, they fall under general commanded acts and are examples of recommended legal (Mustahab Shar'i) acts. The rest of the discourse was mentioned

in the fatwas. Success is from Allah. And Allah, the Glorified and Exalted, knows best, and His knowledge, glorified be His majesty, is most complete and most perfect.

Praise be to Allah that this blessed answer reached its conclusion on the 14th of Rajab al-Murajjab, on the soul-illuminating day of Monday, starting at forenoon (Chasht) and finishing at the time of Isha. In terms of the date, it is named "Bazl al-Jawaiz ad-Du'a ba'd as-Salat al-Jana'iz".

[Final Table: Arabic on the left, Urdu Translation on the right] [Arabic]: And our final call is that all praise be to Allah, Lord of the worlds, and may the most complete blessings and peace be upon the leader of the messengers, Muhammad, and upon all his family and companions. Amen! [Urdu]: And our final call is that all praise is for God who is the Master of all the worlds, and the best blessings, the most perfect peace be upon the leader of the messengers, Hazrat Muhammad and upon all his family and companions. O God, accept! (T)

फ़तावा रज़विया, जिल्द नहम (9)

अल्हम्दुलिल्लाह कि हक़ हर लिहाज़ से साफ़ और ज़ाहिर हो गया और हर शक-ओ-शुबा दूर और ख़त्म हो गया। उम्मीद है कि इस फ़तवे में शुरू से आख़िर तक जितने चमकते हुए मोती साहिब-ए-नज़र लोगों की नज़र में पेश किए गए हैं, वे सब इस फ़कीर की क़लम के विशेष हिस्से हैं, जो इस तहरीर के अलावा कहीं नहीं मिलेंगे।

[तालिका शीर्षक: बाईं ओर अरबी, दाईं ओर उर्दू अनुवाद] [अरबी]: यह हम पर और लोगों पर अल्लाह का फ़ज़ल है, लेकिन अक्सर लोग शुक्र अदा नहीं करते। और सारी तारीफ़ अल्लाह के लिए है जो तमाम जहानों का रब है, और दुरूद-ओ-सलाम सखियों में सबसे ज़्यादा सखी हमारे आक़ा-ओ-मौला मुहम्मद और उनकी तमाम आल-ओ-असहाब पर। [उर्दू]: यह हम पर और लोगों पर ख़ुदा का फ़ज़ल है, लेकिन अक्सर लोग शुक्र अदा नहीं करते। और सारी तारीफ़ अल्लाह के लिए जो सारे जहानों का पालने वाला है, और दुरूद-ओ-सलाम सखी तरीन लोगों में सबसे ज़्यादा जूद-ओ-सख़ा वाले हमारे आक़ा-ओ-मौला और उनकी तमाम आल-ओ-असहाब पर (त)।

संक्षेप में, फ़ुक़्हा (धर्मशास्त्रियों) के बयान सिर्फ़ दो सूरतों से मुताल्लिक़ हैं: एक जनाज़े की नमाज़ के बाद उसी तरह सफें बांधे खड़े होकर दुआ करना। दूसरे, नमाज़ से पहले या नमाज़ के बाद लम्बी दुआ के ख़ास मक़सद से तजहीज़ (दफ़नाने के काम) में देरी करना। ज़ाहिर है कि इस सूरत में कराहत-ए-तहरीमी तक हो सकती है और पहली सूरत में तन्ज़ीही। अभी मिरक़ात के हवाले से गुज़रा कि दीन में ज्यादती का भ्रम होना कराहत-ए-तन्ज़ीही का कारण बनता है और बस, जिसका हासिल ख़िलाफ़-ए-औला यानी बेहतर न होना है, न कि यह कि ममनू और नाज़ायज़ हो। लखनऊ के कुछ उलमा ने अपने कुछ रिसालों में मकरूह-ए-तन्ज़ीही को गुनाह-ए-सग़ीरा लिख दिया, जो एक बड़ी ग़लती है। इसके रद्द में और इसके बातिल होने पर इमामों के सैकड़ों जुमलों और शरई दलीलों के साथ चन्द मुख़्तसर सत्रें "मुजमल मुज्लिया अन अल-मकरूह तन्ज़ीहन लैस बि-मा'सिया" (संक्षेप में स्पष्टीकरण कि मकरूह तन्ज़ीही गुनाह नहीं है) के नाम से लिखीं। ख़ैर, ये दो सूरतें थीं जिनसे फ़ुक़्हा के बयान मुताल्लिक़ थे। इनके अलावा दुआ की तमाम सूरतें जिनमें दुआ की ग़रज़ से ताख़ीर (देरी) न हो और न ही नमाज़ के बाद उस मख़्सूस अंदाज़ में हो, बल्कि मिसाल के तौर पर सफें तोड़कर थोड़ी दुआ करना या किसी ख़ास वजह से जनाज़े में देरी की हालत में लम्बी दुआ करने में कोई हर्ज नहीं। और न ही उलमा के कलाम में इनका इंकार है, बल्कि वे आम हुक्म के तहत आते हैं और मुस्तहब-ए-शरई की एक किस्म हैं। बाक़ी गुफ़्तगू फ़तवों में ज़िक्र हुई। कामयाबी अल्लाह की तरफ़ से है। और

अल्लाह सुब्हानहू व तआला सबसे बेहतर जानता है और उसका इल्म सबसे कामिल और सबसे मज़बूत है।

अल्हम्दुलिल्लाह कि यह मुबारक जवाब दुरुस्त मुक़ाम पर चौदहवीं रजब अल-मुरज्जब, सोमवार के दिन चाश्त के वक़्त शुरू हुआ और इशा के वक़्त मुकम्मल हुआ और तारीख़ के लिहाज़ से इसका नाम "बज़्ल अल-जवाइज़ अद-दुआ बाद अस-सलात अल-जनाइज़" पड़ा।

[अंतिम तालिका: बाईं ओर अरबी, दाईं ओर उर्दू अनुवाद] [अरबी]: और हमारी आख़िरी पुकार यह है कि तमाम तारीफ़ें अल्लाह रब्बुल आलमीन के लिए हैं, और सबसे मुकम्मल दुरूद-ओ-सलाम रसूलों के सरदार मुहम्मद और उनकी तमाम आल-ओ-असहाब पर। आमीन! [उर्दू]: और हमारी आख़िरी पुकार यह है कि सारी हम्द ख़ुदा के लिए जो सारे जहानों का मालिक है और बेहतर दुरूद, कामिल तरीन सलाम रसूलों के सरदार हज़रत मुहम्मद और उनकी तमाम आल-ओ-असहाब पर। इलाही क़बूल फ़र्मा (त)।

पेज 257 ऑफ 948

فتاوی رضویہ، جلد نہم

الحمد للہ کہ حق بہمہ وجوہ ظاہر و باہر اور ہر شک و وہم زائل و بائر ہوا۔ امید ہے کہ اس فتوے میں اول تا آخر جتنے جواہر زواہر ہدیہ انظار اولی الابصار ہوئے سب حصہ خاصہ خامہ فقیر ہوں کہ اس تحریر کے سوا کہیں نہ ملیں۔

ذلك من فضل الله علينا وعلى الناس ولكن اكثر الناس لا يشكرون والحمد لله رب العلمين و الصلوة والسلام على اجود الاجودين سيدنا و مولانا محمد وآلہ وصحبہ اجمعين۔ یہ خدا کا فضل ہے ہم پر اور لوگوں پر، لیکن اکثر لوگ شکر ادا نہیں کرتے۔ اور ساری تعریف اللہ کے لئے جو سارے جہانوں کا پروردگار ہے، اور درود و سلام سخی تر لوگوں میں سب سے زیادہ جود و سخا والے ہمارے آقا و مولا اور ان کی تمام آل و اصحاب پر (ت)۔

بالجملہ عبارات فقہاء صرف دو صورتوں سے متعلق ہیں: ایک بعد نماز جنازہ اسی ہیئت پر بدستور صفیں باندھے وہیں کھڑے دعا کرنا۔ دوسرے قبل نماز خواہ بعد نماز دعائے طویل کی خاص غرض سے امر تجہیز کو تعویق میں ڈالنا۔ ظاہرًا اس صورت میں کراہت تحریمی تک ہو سکتی ہے اور صورت اولیٰ میں تنزیہی۔ ابھی مرقاۃ سے گزرا کہ ایہام زیادت مورث کراہت تنزیہ ہے وبس، جس کا حاصل خلاف اولیٰ یعنی بہتر نہیں، نہ یہ کہ ممنوع و ناجائز ہو۔ بعض علمائے لکھنؤ نے جو اپنے بعض رسائل میں مکروہ تنزیہی کو گناہِ صغیرہ لکھ دیا سخت ذلتِ کبیرہ جس کے بطلان پر صدہا کلمات ائمہ و دلائل شرعیہ رد میں چند مختصر سطور مسمّیٰ بہ "مجمل مجلية ان المكروه تنزيها ليس بمعصية" لکھیں۔ خیر یہ دو صورتیں تھیں جن سے کلمات فقہاء باحث، ان کے سوا تمام صور دعا جن میں دعا کی غرض سے تاخیر کریں نہ بعد نماز اس انداز پر ہو بلکہ مثلاً صفیں توڑ کر دعائے قلیل یا بوجہ خاص جنازہ میں دیر کی حالت میں دعائے طویل اصلاً مضائقہ نہیں رکھتی، نہ

کلمات علماء میں ان کا انکار، بلکہ وہ عام مامور بہ کے تحت میں داخل اور مستحب شرعی کی فرد ہے۔ باقی کلام فتویا و لمیں مذکور ہوا، وباللہ التوفیق۔ واللہ سبحانہ وتعالی اعلم وعلمہ جل مجدہ اتم واحکم۔

الحمد للہ کہ یہ مبارک جواب موضع صواب چار دہم، رجب مرجب، روزِ جاں افروز دو شنبہ کو وقتِ چاشت شروع اور وقتِ عشاء تمام اور بلحاظِ تاریخ "بذل الجوائز الدعاء بعد الصلوۃ الجنائز" نام ہوا۔

واخر دعوانا ان الحمد للہ رب العلمین والصلوۃ و اکمل السلام علی سید المرسلین محمد وآلہ وصحبہ اجمعین۔ آمین! اور ہماری آخری پکار یہ ہے کہ ساری حمد خدا کے لئے جو سارے جہانوں کا مالک ہے اور بہتر درود، کامل تر سلام رسولوں کے سردار حضرت محمد اور ان کی تمام آل و اصحاب پر الٰہی قبول فرما (ت)۔

Volume 9 Fatawa Razawiyya

Issue No. 6: From Jalandhar, Mohalla Rasta Darwaza Bhagwara. Sent by Muhammad Ahmad Khan Sahab, 6 Ramadan 1323 AH. What do the scholars of Islam say regarding this matter? In most cities of Punjab, it is customary that after finishing the funeral prayer and the Salaam, at the same place where the funeral prayer was offered, a prayer for the forgiveness of the deceased is made. Some people, before this prayer, recite Surah Al-Fatihah once and Surah Al-Ikhlas three or eleven times and then pray for the deceased's forgiveness. This has always been the custom. Now, the sect of non-conformists (Ghair-Muqallideen) is attempting to abolish this custom. In support of its impermissibility, they present the argument that there is no proof for it in any Hadith; instead, they quote passages from books of jurisprudence (Fiqh). Among their relied-upon texts is this:

[Box 1] Arabic: When finished with the prayer, one should not stand for supplication. (1) Sirajiyya. Urdu: When the funeral prayer is finished, one should not stand for prayer. (T) Bazzaziyya Vol 1, margin of Alamgiri.

It is mentioned on the margin of Quduri: [Box 2] Arabic: Supplication after the funeral prayer is disliked. (2) Similarly in Al-Birjandi: One does not stand for supplication after funeral prayers because he has already prayed once, as most of it (the prayer) is supplication. (3) Urdu: Supplication after the funeral prayer is disliked. As it is in Al-Birjandi: One should not stand for prayer after the funeral prayer because he has already prayed once, since most parts of the funeral prayer are supplication. (T)

Please grant a reasoned answer with arguments based on references from reliable books and authoritative texts. Explain with proof and detail, you will be rewarded with a great reward.

The Answer: Eleven years ago, in 1311 AH, this issue was a matter of great debate. Repeated questions in various forms came from Mumbai and Kanpur regarding this. The humble one (Faqir) answered sometimes through the investigation of Hadith and sometimes through the scrutiny of Fiqh. Finally, on this topic, I wrote a concise and comprehensive treatise titled 'Bazl al-Jawa'iz 'ala al-Du'a ba'da Salat al-Jana'iz'. In it, with the help of Allah Almighty, I brought the investigation of the jurisprudential ruling and the explanation of the meanings of the aforementioned texts from Sirajiyya and other books of Fiqh to the highest level of excellence. By the grace of

Allah, I established the foundation of research to demonstrate that praying for the deceased before the funeral prayer and after the funeral prayer is always absolutely...

1. Fatawa Sirajiyya, Chapter on Funeral Prayer, published by Munshi Nawal Kishore, Lucknow, p. 23.
2. Al-Birjandi Sharh Nuqaya, Section on Funeral Prayer, published by Munshi Nawal Kishore, Lucknow, 1/180.
3. Fatawa Bazzaziyya, on the margin of Fatawa Hindiyya, 25th [section] on Funerals etc., Noorani Kutub Khana, Peshawar, 4/80.

खंड 9 फतवा रजविया

मसला नंबर 6: जालंधर, मोहल्ला रास्ता दरवाजा भगवाड़ा से। प्रेषक: मुहम्मद अहमद खान साहब, 6 रमजान 1323 हिजरी। इस्लाम के विद्वान इस विषय में क्या कहते हैं? पंजाब के अधिकांश शहरों में यह रिवाज है कि जनाजे की नमाज पूरी करने और सलाम फेरने के बाद, उसी स्थान पर जहाँ जनाजे की नमाज अदा की गई थी, मृतक की मगफिरत (क्षमा) के लिए दुआ की जाती है। कुछ लोग इस दुआ से पहले एक बार सूरह फातिहा और तीन या ग्यारह बार सूरह इखलास पढ़कर मृतक के लिए मगफिरत की दुआ करते हैं। यह रिवाज हमेशा से चला आ रहा है। अब गैर-मुक़ल्लिद गुट इस रिवाज को खत्म करने की कोशिश कर रहा है। इसके नाजायज होने के समर्थन में वे यह दलील देते हैं कि इसका किसी हदीस से सबूत नहीं है, बल्कि वे फिकह (इस्लामी न्यायशास्त्र) की किताबों के उद्धरण देते हैं। उनके विश्वसनीय प्रमाणों में से एक यह है:

[बॉक्स 1] अरबी: जब नमाज से फारिग हो जाए, तो दुआ के लिए न खड़ा हो। (1) सिराजिया। उर्दू: जब जनाजे की नमाज से फारिग हो जाए, तो दुआ के लिए न खड़ा हो। (त) बज़ाज़िया खंड 1, आलमगीरी के हाशिये पर।

कुदूरी के हाशिये पर है: [बॉक्स 2] अरबी: जनाजे की नमाज के बाद दुआ करना मकरूह (नापसंद) है। (2) इसी तरह बिरजंदी में है: जनाजे की नमाज के बाद दुआ के लिए खड़ा न हो क्योंकि वह एक बार दुआ कर चुका है, क्योंकि जनाजे की नमाज का अधिकांश हिस्सा दुआ ही है। (3) उर्दू: जनाजे की नमाज के बाद दुआ मकरूह है। जैसा कि बिरजंदी में है, जनाजे की नमाज के बाद दुआ के लिए खड़ा न हो कि एक बार दुआ कर चुका है क्योंकि जनाजे की नमाज का अधिकांश हिस्सा दुआ ही है। (त)

कृपया विश्वसनीय किताबों के संदर्भ और प्रमाणिक इबारतों के साथ तर्कपूर्ण उत्तर लिखकर अनुगृहीत करें। दलील और विस्तार के साथ स्पष्ट करें, आपको महान प्रतिफल मिलेगा।

जवाब: ग्यारह साल हुए, 1311 हिजरी में यह मसला बहुत चर्चा में रहा। मुंबई और कानपुर से इस बारे में अलग-अलग रूपों में बार-बार सवाल आए। फकीर (लेखक) ने कभी हदीस की शोध और कभी फिकह की छानबीन से उत्तर दिया। अंततः इस विषय पर 'बज़्ल अल-जवाइज़ अला अद-दुआ बाद सलात अल-जनाइज़' नामक एक संक्षिप्त और व्यापक शोध पत्र लिखा। इसमें अल्लाह की मदद से, फिकही हुक्म की शोध और सिराजिया आदि फिकह की किताबों की उक्त इबारतों के अर्थों की

व्याख्या को उच्चतम स्तर तक पहुँचाया। अल्लाह के फजल से, शोध की ऐसी बुनियाद स्थापित की जिससे यह स्पष्ट हो गया कि जनाजे की नमाज से पहले और जनाजे की नमाज के बाद मृतक के लिए दुआ हमेशा पूर्णतः..

1. फतावा सिराजिया, जनाजे की नमाज का अध्याय, मुंशी नवल किशोर द्वारा प्रकाशित, लखनऊ, पृष्ठ 23।
2. बिरजंदी शरह नुक़ाया, जनाजे की नमाज का अनुभाग, मुंशी नवल किशोर द्वारा प्रकाशित, लखनऊ, 1/180।
3. फतावा बज़ाज़िया, फतावा हिंदीया के हाशिये पर, 25वां [अनुभाग] जनाजे आदि पर, नूरानी कुतुब खाना, पेशावर, 4/80।

पृष्ठ 258/948

جلد نہم فتاویٰ رضویہ

مسئلہ نمبر ۶: از جالندھر محلہ راستہ دروازہ بھگواڑہ۔ مرسلہ محمد احمد خان صاحب ۶ رمضان المبارک ۱۳۲۳ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں، پنجاب کے اکثر شہروں میں دستور ہے کہ نمازِ جنازہ سے فارغ ہو کر بعد سلام کے اسی جگہ جہاں نمازِ جنازہ ادا کی گئی ہے میت کے لئے دعائے مغفرت کی جاتی ہے اور بعض لوگ پیشتر دعا کے سورہ فاتحہ ایک بار سورہ اخلاص تین بار یا گیارہ دفعہ پڑھ کر میت کے لئے مغفرت کی دعا کرتے ہیں، اور ہمیشہ سے یہی دستور چلا آیا اب فرقہ غیر مقلدین اس دستور کے ہٹانے میں کوشش کر رہے ہیں، اس کے عدم جواز میں غیر مقلدین یہ دلیل پیش کرتے ہیں کہ اس کا ثبوت کسی حدیث سے نہیں بلکہ فقہ کی کتابوں کی عبارتیں سناتے ہیں، منجملہ ان کے مستندات کے ایک یہ ہے:

اذا فرغ من الصلوۃ لا یقوم بالدعاء ۱ سراجیہ، | جب نمازِ جنازہ سے فارغ ہو جائے تو دعا کے لئے نہ کھڑا ہو۔ (ت) بزازیہ جلد اول برحاشیہ عالمگیری

قدوری کے حاشیہ پر ہے: الدعاء بعد صلاۃ الجنازۃ مکروہ ۲ کذا فی البرجندی لا یقوم بالدعاء بعد صلاۃ الجنائز لانہ دعا مرۃ لان اکثرھا دعاء ۳ | دعا بعد نمازِ جنازہ مکروہ ہے۔ جیسا کہ بر جندی میں ہے نمازِ جنازہ کے بعد دعا کے لئے کھڑا نہ ہو کہ ایک مرتبہ دعا کر چکا ہے کیونکہ نمازِ جنازہ کا اکثر حصہ دعا ہی ہے۔ (ت)

جواب مدلل بدلائل بحوالہ کتب معتبرہ اور تحریر عبارات معتمدہ تحریر فرما کر ممنون و مشکور فرمائیں۔ بینوا بالدلیل والتفصیل توجروا بالاجر الجزیل

الجواب: گیارہ سال ہوئے یہ مسئلہ ۱۳۱۱ھ میں معرکہ الآراء رہا، بمبئی وکانپور سے اس کے بارہ میں بار بار سوالات مختلف صورتوں میں آئے فقیر نے جواب کبھی تحقیقِ حدیث اور کبھی تنقیحِ فقہ سے کام لیا اور بالآخر اس کے باب میں ایک موجز وکافی رسالہ مسمّی بہ بذل الجوائز علی الدعاء بعد صلاۃ الجنائز لکھا جس میں تحقیقِ حکمِ فقہی و توضیحِ معانی عباراتِ مذکورہ سراجیہ وغیرہ کتب فقہ کو بعونہ عزوجل ذروہِ علیاتک پہنچایا اور بفضلہ تعالیٰ عرشِ تحقیق مستقر کر دکھایا کہ میت کے لئے دعا قبل نمازِ جنازہ و بعد نمازِ جنازہ ہمیشہ مطلقاً

۱ فتاویٰ سراجیہ باب الصلوۃ علی الجنازہ مطبوعہ منشی نولکشور لکھنؤ ص ۲۳ ۲ بر جندی شرح نقایہ فصل فی صلوۃ الجنازہ مطبوعہ منشی نولکشور لکھنؤ ۱ / ۱۸۰ ۳ فتاویٰ بزازیہ علی ہامش فتاویٰ ہندیۃ الخامس والعشرون فی الجنائز الخ نورانی کتب خانہ پشاور ۴ / ۸۰

Fatawa Ridawiyya, Volume 9

...is recommended and desirable. And there is absolutely no prohibition against it. It is proven from the practice of the luminous Master of the Worlds (peace and blessings of Allah be upon him) and his noble companions (may Allah be pleased with them all) that they would pray for the deceased both before and after the funeral prayer and would command to do so. The venerable jurists do not forbid it at all; the prohibition, whether 'tahrimi' (strictly forbidden) or 'tanzihi' (disliked), is only for two situations, and those are the points intended in the various aforementioned and non-mentioned legal texts. One is to cause a delay in the funeral preparations either before or after the prayer specifically for a long prayer; for example, if the prayer is finished and there's no other reason to wait for departure, but the funeral is kept solely for prayer, causing delay and extension—this is forbidden, and most texts refer to this. Second is that after the prayer, the Imam and the followers remain standing in the same formation to pray; this is inappropriate so that there is no suspicion of an addition to the prescribed prayer. Some texts refer to this. Besides these, in all situations where they do not delay specifically for prayer, nor is it in the same manner after prayer, but rather they break ranks and perform a short prayer, or a long prayer in case of delay for other reasons in the funeral, there is no harm at all. Nor is there any denial of this in the words of the scholars; rather, it falls under the general command and is a part of Shari'ah-recommended (Mustahabb) deeds. This treatise has been printed and published in Mumbai at the Gulzar-e-Husaini press. A full detail of all these stages will be found in that treatise and in the fatwa preceding it. In Kashf al-Ghita, after mentioning the texts of al-Qunyah and others, it is stated:

[Boxed Text] Fatihah and prayer for the deceased before burial is correct and this is the practiced narration, as in al-Khulasat al-Fiqh 1. And Allah Almighty knows best. | Reciting Fatihah and praying for the deceased before burial is correct, and this is the practiced narration. It is also mentioned in Khulasat al-Fiqh. (T) And Allah Almighty knows best.

Question Number 66: From Banaras, Kandi Garhtola neighborhood, Masjid Bibi Raji Shifakhana. 6 Jumada al-Akhirah 1312 AH.

To the service of the one whose presence is a blessing, the compiler of rational and traditional knowledge, encompasser of branches and principles, Hazrat Maulana Maulvi Ahmad Raza Khan Sahib (may his grace endure), from the servant of students

Abdul Ghafoor, peace be upon you. There is disagreement among the scholars here on some issues; therefore, the matter is being sent to your blessed service. It is hoped that you will inform us of the answer. Zaid says that according to the Hanafis, performing the funeral prayer inside the mosque is generally disliked (Makruh) for several reasons, whether the deceased died of cholera or diarrhea, or any other illness. Among these reasons is the risk of polluting (soiling) the mosque. Amr says that a person who dies due to cholera, diarrhea, or any other stomach ailment, their funeral prayer in the mosque certainly carries a probability of mosque pollution.

1. Kashf al-Ghita, Chapter Six, Funeral Prayer, Ahmadi Press Delhi, p. 40

फ़तावा रज़विया, जिल्द 9

...मुस्तहब (पसंदीदा) और मंदूब है। और इसमें कोई मनाही नहीं है। स्वयं हुज़ूर पुरनूर सैय्यद-ए-आलम (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) और सहाबा किराम (रज़ियल्लाहु अन्हुम) से नमाज़ से पहले और बाद, दोनों समय मय्यत के लिए दुआ करना और इसका हुक्म देना साबित है। फ़ुक़हा-ए-किराम (कानूनविद) इसे हरगिज़ मना नहीं करते। यहाँ मनाही, चाहे वह तहरीमी (सख्त वर्जित) हो या तन्ज़ीही (नापसंद), केवल दो स्थितियों के लिए है और वही पूर्वोक्त और अन्य कानूनी इबारतों में अलग-अलग तौर पर लक्षित हैं। एक यह कि विशेष लंबी दुआ के उद्देश्य से नमाज़ के बाद या नमाज़ से पहले मय्यत की तजहीज़ (अंतिम संस्कार की तैयारी) में देरी करना, उदाहरण के लिए नमाज़ हो चुकी और ले जाने के लिए किसी और चीज़ का इंतज़ार नहीं है, फिर भी केवल दुआ के लिए जनाज़ा रोके रखें और देरी और तौवील (लंबा करना) करें, यह वर्जित है। अधिकांश इबारतें इसी ओर संकेत करती हैं। दूसरा यह कि नमाज़ के बाद इमाम और मुक्तदी उसी तरह सफें(पंक्तियाँ) बांधे हुए खड़े होकर दुआ करें, यह अनुचित है ताकि नमाज़ में किसी बढ़ोतरी का संदेह न हो। कुछ इबारतें इसी ओर संकेत करती हैं। इनके अलावा उन सभी स्थितियों में जिनमें न तो विशेष दुआ के उद्देश्य से देरी की जाए और न ही नमाज़ के बाद उसी अंदाज़ में हो, बल्कि सफें तोड़कर कम दुआ करें या जनाज़े में किसी अन्य कारण से देरी की स्थिति में लंबी दुआ करें, इसमें कोई बुराई नहीं है। न ही उलेमा के शब्दों में इसका खंडन है, बल्कि यह सामान्य आदेश के अंतर्गत आता है और शरीयत के अनुसार मुस्तहब कार्यों का एक हिस्सा है। यह रिसाला मुंबई के गुलज़ार-ए-हुसैनी प्रेस में छपकर प्रकाशित हो चुका है। इन सभी चरणों का पूरा विवरण उसी रिसाले और उसके पहले के फ़तवे में मिलेगा। कश्फ़ अल-ग़िता में कुन्या आदि की इबारतों के उल्लेख के बाद कहा गया है:

[Boxed Text] दफ़नाने से पहले मय्यत के लिए फ़ातिहा और दुआ करना सही है और यही प्रचलित रिवायत है, जैसा कि खुलासत अल-फ़िक़्ह 1 में है। और अल्लाह तआला ही बेहतर जानता है। | मय्यत के लिए दफ़्न से पहले फ़ातिहा व दुआ दुरुस्त है और यही रिवायत मामूल-बेहा (प्रचलित) है। ऐसा ही खुलासत अल-फ़िक़्ह में है। (त) और अल्लाह तआला ही बेहतर जानता है।

मसला नंबर 66: बनारस, मोहल्ला कंडी गढ़टोला, मस्जिद बीबी राजी शिफ़ाखाना। 6 जमादी अल-आखिर 1312 हिजरी।

बरकत वाली सेवा में, बुद्धि और परंपरा के ज्ञाता, शाखाओं और सिद्धांतों के संकलक, हज़रत मौलाना मौलवी अहमद रज़ा ख़ान साहब (अल्लाह उनकी कृपा को बढ़ाए), छात्रों के सेवक अब्दुल ग़फ़ूर की ओर से, सलाम कुबूल हो। यहाँ कुछ मसलों में उलेमा के बीच मतभेद है, इसलिए मसला आपकी सेवा में भेजा जा रहा है। आशा है कि आप उत्तर से अवगत कराएंगे। ज़ैद का कहना है कि हनफ़ी संप्रदाय के अनुसार मस्जिद के अंदर जनाज़े की नमाज़ पढ़ना सामान्यतः मकरूह (नापसंद) है, चाहे मय्यत हैज़ा (कौलेरा) या दस्त (डायरिया) की बीमारी से मरी हो या किसी अन्य बीमारी से, इसके कई कारण हैं। उनमें से एक कारण मस्जिद को गंदा (तलवीस) होने की संभावना है। अम्र का कहना है कि जो व्यक्ति हैज़ा, दस्त या पेट की किसी अन्य बीमारी के कारण मरा हो, उसका जनाज़ा मस्जिद में पढ़ने से निश्चित रूप से मस्जिद के गंदा होने की संभावना रहती है।

1. कश्फ़ अल-ग़िता, अध्याय छह, नमाज़-ए-जनाज़ा, अहमदी प्रेस दिल्ली, पृष्ठ 40

पृष्ठ 259 का 948

فتاوی رضویہ جلد نہم

مستحب و مندوب ہے۔ اور اس سے اصلاً ممانعت نہیں۔ خود حضور پُرنور سید عالم صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم و صحابہ کرام رضوان اللہ تعالیٰ علیہم اجمعین سے قبل و بعد نماز دونوں وقت میت کے لئے دعا فرمانا اور اس کا حکم دینا ثابت ہے، فقہائے کرام ہرگز اسے منع نہیں فرماتے، یہاں ممانعت تحریمی خواہ تنزیہی صرف دو صورتوں کے لئے ہے اور وہی عباراتِ مذکورہ و غیر مذکورہ فقیہہ میں علی التنوع مقصود ہیں۔ ایک یہ کہ خاص دعا طویل کی غرض سے بعد نماز خواہ قبل نماز تجہیز میت کو تعویق میں ڈالنا، مثلاً نماز ہو چکی اور کوئی حالتِ منتظرہ لے چلنے کے لئے باقی نہیں رہی، صرف دعا کے لئے جنازہ رکھ چھوڑیں اور درنگ و تطویل کریں یہ ممنوع ہے، اکثر عبارات اسی طرف ناظر ہیں، دوسرے یہ کہ بعد نماز اُسی ہیئت پر بدستور صفیں باندھے امام و مقتدی وہیں کھڑے دعا کریں یہ نامناسب ہے کہ نماز پر شبہہِ زیادت نہ ہو۔ بعض عبارات اُسی طرف ناظر ہیں، ان کے سوا تمام صورتیں جن میں نہ خاص دعا کی غرض سے درنگ و تعویق کریں نہ بعد نماز اُسی انداز میں ہو بلکہ صفیں توڑ کر دعاء قلیل یا بوجہ دیگر جنازہ میں دیر کی حالت میں دعا طویل اصلاً مضائقہ نہیں رکھتے، نہ کلماتِ علماء میں اس کا انکار، بلکہ وہ عام مامور بہ کے حکم میں داخل اور مستحب شرعی کا فرد ہے۔ یہ رسالہ بمبئی مطبع گلزار حسینی میں چھپ کر شائع ہو چکا۔ ان تمام مراتب کی تفصیل تام اُسی رسالہ اور اس کے پہلے کے فتویٰ میں ملے گی۔ کشف الغطاء میں بعد ذکر عباراتِ قنیہ و غیرہا فرمایا:

[Boxed Text] فاتحہ و دعا برائے میت پیش از دفن درست است و ہمیں است روایت معمولہ، کذا فی الخلاصۃ الفقہ 1۔ واللہ تعالیٰ اعلم میت کے لئے دفن سے قبل فاتحہ و دعا درست ہے اور یہی روایت معمول بہا ہے۔ ایسا ہی خلاصۃ الفقہ میں ہے (ت) واللہ تعالیٰ اعلم

مسئلہ نمبر ۶۶: از بنارس محلہ کندی گڑ ٹولہ مسجد بی بی راجی شفا خانہ ۶ جمادی الآخرۃ ۱۳۱۲ھ

بخدمت لازم البرکۃ جامع معقول و منقول، حاوی فروع و اصول جناب مولانا مولوی احمد رضا خاں صاحب مد اللہ فیضانہ از جانب خادم الطلبہ عبدالغفور ، سلام علیک قبول باد۔ کچھ مسائل میں یہاں علماء کے درمیان اختلاف ہے لہذا مسئلہ ارسال خدمت لازم البرکتہ ہے امید ہے کہ جواب سے مطلع فرمائیں، زید کہتا ہے نمازِ جنازہ عند الحنفیہ اندر مسجد کے پڑھنی علی العموم خواہ میت مرضِ حیضہ اسہال میں مرا ہو یا دوسرے مرض میں بچند وجوہ مکروہ ہے۔ منجملہ اس کے ایک وجہ تلویثِ مسجد ہے۔ عمرو کہتا ہے جو شخص مرضِ حیضہ اسہال یا کسی اور مرضِ معدہ کی وجہ سے مرا اُس کا جنازہ مسجد میں پڑھنا البتہ موجبِ احتمالِ تلویثِ مسجد کا

1 کشف الغطاء فصل ششم نمازِ جنازہ مطبع احمدی دہلی ص ۴۰

Fatawa Razawiyyah, Volume 9

...and performing his funeral prayer in the mosque is disliked (makruh), but not in a general sense.

The Answer: Zaid's statement is correct. Amr's restriction to stomach patients is completely wrong. Yes, a rare report (riwayah nadirah) of Sayyiduna Imam Abu Yusuf (may Allah Almighty have mercy on him) has been quoted in some books as: if there is no fear of contamination (tallawwuth), then it is permissible in the mosque. This statement apparently supports the discussion of Allama Tahtawi that it is appropriate to restrict the reasoning of contamination to a 'presumption of contamination' (zann-e-tallawwuth); mere suspicion or delusion (wahm) is not a barrier. Even based on this statement and isolated report (riwayah shadhah), stomach, intestinal, uterine diseases, wounds, pus, etc. - everything where there is a likely suspicion (mazinnah) of contamination - are unanimously included in the category of 'disliked' (makruh). It is stated in Al-Hilya:

[Arabic Box 1] It is reported in Al-Dirayah from Abu Yusuf that the funeral prayer is not disliked in the mosque if there is no fear of anything coming out that would contaminate the mosque. Based on this, when one is certain of that, it is not disliked in any case, etc. (T)

It is stated in the Hashiyah (marginalia) of Maraqi al-Falah:

[Arabic Box 2] It is appropriate to restrict the dislike (karahah) to a presumption of contamination. As for mere apprehension or doubt, dislike is not established by them. (T)

However, in the general books of the school of thought (Madhab), as far as the humble servant's (faqir's) gaze has wandered at this time, this rare report is also narrated and transmitted as a general and universal principle without division or detail. The scholars who have leaned towards its preference, correction, and adoption state that bringing a funeral into the mosque is absolutely disliked. Those who provide reasoning base it on the possibility and apprehension of contamination. They do not give the restriction and specification of the state of 'presumption'. The eminent scholars restrict the disagreement among masters (mashayikh) to the situation where the funeral is outside the mosque, and they clearly state that having the funeral inside the mosque is unanimously disliked. **I say: And with Allah is the**

guidance (I say, and success is from Allah Almighty alone. T): Here the generality...

1. Hilya al-Mahalli Sharh Munyah al-Musalli
2. Hashiyah al-Tahtawi 'ala Maraqi al-Falah, Chapter: The Sultan is most deserving of his prayer, printed by Noor Muhammad Karkhana Tijarat Kutub Karachi, p. 327.

फ़तावा रज़विया, खंड 9

...और उसकी नमाज़-ए-जनाज़ा मस्जिद में पढ़ना मकरूह है, न कि सामान्य रूप से।

उत्तर: ज़ैद का कथन सही है। अम्र का इसे केवल पेट के रोगियों तक सीमित करना सरासर गलत है। हाँ, सैयदना इमाम अबू यूसुफ़ (अल्लाह तआला उन पर रहम फरमाए) की एक दुर्लभ रिवायत (नदीरा) कुछ किताबों में इस प्रकार उद्धृत की गई है कि यदि गंदगी (तल्लुवुथ) का डर न हो तो मस्जिद में जायज़ है। यह कथन स्पष्ट रूप से अल्लामा तहतावी की उस चर्चा का समर्थन करता है कि गंदगी के कारण को 'गंदगी की आशंका' (ज़न्न-ए-तल्लुवुथ) तक सीमित करना उचित है; मात्र संदेह या भ्रम (वह्म) बाधक नहीं है। इस कथन और एकाकी रिवायत (रिवायत-ए-शाज़ा) के आधार पर भी पेट, आंतों, गर्भाशय के रोग, घाव, मवाद आदि - वह सब जहाँ गंदगी की प्रबल संभावना (मज़िन्ना) हो - सर्वसम्मति से 'मकरूह' की श्रेणी में आते हैं। हलिया में फरमाया गया है:

[अरबी बॉक्स 1] अल-दिरयाह में अबू यूसुफ से रिवायत है कि जब मस्जिद को गंदा करने वाली किसी चीज़ के निकलने का डर न हो, तो मस्जिद में जनाज़े की नमाज़ मकरूह नहीं है। इस आधार पर जब इसकी निश्चितता हो, तो सभी स्थितियों में मकरूह नहीं है, इत्यादि। (त)

मराक़ी अल-फ़लाह के हाशिये में है:

[अरबी बॉक्स 2] कराहियत (मकरूह होना) को गंदगी की आशंका (ज़न्न) तक सीमित रखना चाहिए। जहाँ तक केवल वह्म या शक की बात है, तो उससे कराहियत साबित नहीं होगी। (त)

लेकिन मज़हब (विचारधारा) की आम किताबों में जहाँ तक इस वक्त फकीर (लेखक) की नज़र गई है, यह दुर्लभ रिवायत भी बिना किसी विभाजन या विवरण के व्यापक और सामान्य रूप से वर्णित और उद्धृत है। जो विद्वान इसकी प्राथमिकता, शुद्धता और चयन की ओर गए हैं, वे मस्जिद में जनाज़ा लाने को पूर्णतः मकरूह बताते हैं। इसके पीछे तर्क देने वाले इसे गंदगी की संभावना और आशंका से जोड़ते हैं। वे 'आशंका' (ज़न्न) की स्थिति का कोई विशिष्ट प्रतिबंध या विशेषीकरण नहीं देते। विद्वान जन मशायख़ (बुज़ुर्गों) के मतभेद को उस स्थिति तक सीमित करते हैं जब जनाज़ा मस्जिद के बाहर हो, और वे स्पष्ट रूप से कहते हैं कि मस्जिद के भीतर जनाज़े का होना सर्वसम्मति से मकरूह है।

अकौल: वबिल्लाहि तौफीक (मैं कहता हूँ, और सफलता अल्लाह तआला ही से है। त): यहाँ व्यापकता...

1. हलिया अल-महल्ली शरह मुन्या अल-मुसल्ली
2. हाशिया अल-तहतावी अला मराक़ी अल-फ़लाह, अध्याय: सुल्तान अपनी नमाज़ का सबसे ज़्यादा हकदार है, नूर मुहम्मद कारखाना तिज़ारत कुतुब कराची द्वारा मुद्रित, पृ. 327

पृष्ठ 260 / 948

فتاوٰی رضویہ، جلد نہم

ہے اور اس کی نمازِ جنازہ مسجد میں پڑھنی مکروہ ہے، نہ علی العموم۔ الجواب: قولِ زید صحیح ہے۔ عمرو کا مریضِ معدہ میں حصر تو محض غلط ، ہاں سیدنا امام ابو یوسف رحمہ اللہ تعالٰی علیہ کی روایتِ نادرہ بعض کتب میں یوں نقل کی گئی کہ خوفِ تلّوث نہ ہو تو مسجد میں جائز۔ یہ عبارت بظاہر اُس بحث علامہ طحطاوی کی مؤید کہ قول تعلیل بہ تلّوث پر ظنِ تلّوث سے تقیید مناسب، شبہ و توہم مانع نہیں۔ اس عبارت و روایتِ شاذہ پر بھی امراض معدہ و امعاء و رحم و زخم و ریم و غیر با ہر مظنہ تلّوث بالاتفاق داخلِ کراہت۔ حلیہ میں فرمایا :

[عربی و اردو باکس 1] ونقل في الدراية عن ابي يوسف رواية انه لا تكره صلاة الجنازة في المسجد اذالم يخف خروج شيئ يلوث المسجد فعلى هذا اذا امن ذلك لم يكره على سائر الوجوه الخ 1 درایہ میں امام ابویوسف سے ایک روایت یہ نقل ہے کہ جب مسجد کو آلودہ کرنے والی کسی چیز کے نکلنے کا اندیشہ نہ ہو تو مسجد میں نماز جنازہ مکروہ نہیں۔ اس کی بنیاد پر جب اس سے اطمینان ہو تو تمام صورتوں میں کراہت نہیں الخ (ت)

حاشیہ مراقی الفلاح میں ہے :

[عربی و اردو باکس 2] ينبغي تقييد الكراهة بظن التلويث فاما توهمه او شكه فلا تثبيت به الكراهة 2 کراہت کو آلودگی کے ظن میں مقید کرنا چاہئے اگر اس کا وہم یا شک ہو تو اس سے کراہت ثابت نہ ہوگی۔ (ت)

مگر عامہ کتبِ مذہب میں جہاں تک اس وقت نظرِ فقیر نے جولان کیا یہ روایت نوادر بھی برسبیلِ اطلاق و تعمیم بے تشقیق و تفصیل ماثور و منقول، جو علماء اس کے ترجیح و تصحیح و اختیار کی

طرف گئے جنازہ کا مسجد میں لانا مطلقاً مکروہ بتاتے ہیں۔ معلّلین اُسے احتمال و توہمِ تلّوث سے تعلیل فرماتے ہیں۔ تقیید و تخصیصِ حالتِ ظن کا پتا نہیں دیتے، علمائے کرام اختلافِ مشایخ کو اُس حالت سے مقید کرتے ہیں کہ جنازہ مسجد کے باہر ہو اور مطلقاً صاف تصریح فرماتے ہیں کہ جنازہ کا مسجد میں ہونا بالاتفاق مکروہ، اقول: وباللہ التوفیق (میں کہتا ہوں اور توفیق اللہ تعالیٰ ہی سے ہے۔ت) یہاں اطلاق

1 حلیہ المحلی شرح منیۃ المصلی 2 حاشیہ الطحطاوی علی مراقی الفلاح فصل السلطان احق بصلوتہ مطبوعہ نور محمد کارخانہ تجارت کتب کراچی ص ۳۲۷

Fatawa Rizvia, Volume 9

This is most appropriate, correct, and supported by evidence because intestines are usually not free from waste, and death removes control and causes complete relaxation. The movement of carrying the funeral bier further aids excretion, so in every deceased, the fear of contamination is present. Why the need for a dominant thought due to some specific reason? Bringing young children who lack understanding into the mosque was prohibited absolutely because the possibility of contamination exists in all of them; it's not a condition that only the child suffering from diarrhea etc. should not be brought to the mosque. Similarly for the deceased, rather even more so as is not hidden from the intelligent (as is obvious to the wise. - T). Then this too is an unusual narration from Imam Thani (Imam Abu Yusuf). In Zahir al-Riwayah, according to our three Imams (Allah be pleased with them), the funeral prayer in the mosque is absolutely disliked (Makruh), even if the deceased is outside the mosque. This is the most preferred, correct, chosen, and adopted view:

Arabic	Urdu Translation
فان الفتوى متى اختلفت وجب المصير الى ظاہر الرواية كما افاده في البحر والدر وغيرها۔	Therefore, when there is disagreement in a fatwa, it is necessary to refer to Zahir al-Riwayah (manifest narrations), as informed in Bahr, Durr, and others. (T)

Now listen to the statements of the scholars. It is stated in Tanwir al-Absar and Durr al-Mukhtar:

Arabic	Urdu Translation
كرهت تحريما وقيل تنزيها فى مسجد جماعة هواى الميت فيه وحده او مع القوم واختلف في الخارجة عن المسجد وحده او مع بعض القوم والمختار الكرهة مطلقاً خلاصة -1۔	It is Makruh Tahrimi (prohibitively disliked)... and it was said to be Tanzihi (mildly disliked), in a congregational mosque, where the deceased is alone or with the people. There is a disagreement regarding the funeral prayer that is outside the mosque, either alone or with some people, and the preferred view is that it is absolutely Makruh. - Summary. (T)

It is stated in Radd al-Muhtar:

Arabic	Urdu Translation
مطلقا فى اى جميع الصور المتقدمة كما في الفتح عن الخلاصة وفى مختارات النوازل	Absolutely, meaning in all previous cases, as narrated in Fath al-Qadir from Khulasa, and in Mukhtarat al-Nawazil it says whether the deceased is inside the

Arabic	Urdu Translation
سواء كان الميت فيه اوخارجه و ظاہر الروایة ، وفی روایة لایکرہ اذاکان المیت خارج المسجد -2۔	mosque or outside, this is the Zahir al-Riwayah. And in one narration it is that when the deceased is outside the mosque, it is not Makruh. (T)

1. Durr al-Mukhtar, Chapter on Funeral Prayer, printed by Matba' Mujtabai, Delhi, 1/123
2. Radd al-Muhtar, Chapter on Funeral Prayer, H.M. Saeed Company, Karachi, 2/225

फतावा रिज़विया, खंड 9

यह सबसे उपयुक्त, सही और प्रमाण द्वारा समर्थित है कि आंतें आमतौर पर अपशिष्ट से खाली नहीं होती हैं और मृत्यु नियंत्रण को समाप्त कर देती है और पूर्ण शिथिलता का कारण बनती है। अर्थी को ले जाने की गति उत्सर्जन में और सहायता करती है, इसलिए प्रत्येक मृत व्यक्ति में अपवित्रता का भय बना रहता है। किसी विशिष्ट कारण से प्रबल धारणा की क्या आवश्यकता है? नासमझ बच्चों को मस्जिद में लाना पूरी तरह से निषिद्ध कर दिया गया क्योंकि उन सभी में अपवित्रता की संभावना बनी रहती है; यह शर्त नहीं है कि केवल दस्त आदि से पीड़ित बच्चे को ही मस्जिद में न लाया जाए। इसी तरह मृत व्यक्ति के लिए, बल्कि उससे भी अधिक, जैसा कि बुद्धिमानों से छिपा नहीं है (जैसा कि बुद्धिमान पर स्पष्ट है। - त)। फिर यह भी इमाम थानी (इमाम अबू यूसुफ) से एक दुर्लभ वर्णन है। ज़ाहिर अल-रिवायत में, हमारे तीनों इमामों (अल्लाह उन पर प्रसन्न हो) के अनुसार, मस्जिद में जनाज़ा बिल्कुल मकरूह (नापसंद) है, भले ही मृत व्यक्ति मस्जिद से बाहर हो। यही सबसे अधिमान्य, सही, चुना हुआ और अपनाया गया विचार है:

अरबी	**उर्दू अनुवाद**
فان الفتوى متى اختلفت وجب المصير الى ظابر الرواية كما افاده في البحر والدر وغيرها۔	इसलिए जब फतवा में मतभेद हो, तो ज़ाहिर अल-रिवायत (प्रकट कथनों) की ओर लौटना आवश्यक है, जैसा कि बहर और दुर्र आदि में बताया गया है। (त)

अब विद्वानों के कथन सुनिए। तनवीर अल-अबसार और दुर्रे मुख्तार में कहा गया है:

अरबी	**उर्दू अनुवाद**
كرهت تحريما وقيل تنزيها فى مسجد جماعة هواى الميت فيه وحده او مع القوم واختلف في الخارجة عن المسجد وحده او مع بعض القوم والمختار الكرهة مطلقاً خلاصة -1۔	मकरूहे तहरीमी (हराम के करीब नापसंदगी)... और कहा गया कि तनजीही (हल्की नापसंदगी) है, जमाअत वाली मस्जिद में, जिसमें अकेला मृत हो या लोगों के साथ हो, और उस जनाज़ा के बारे में मतभेद है जो अकेला या कुछ लोगों के साथ मस्जिद के बाहर हो, और मुख्तार यह है कि बिल्कुल मकरूह है। - सारांश। (त)

रद्दे मुहतार में कहा गया है:

अरबी

مطلقا فی ای جمیع الصور المتقدمة
كما في الفتح عن الخلاصة وفی
مختارات النوازل سواء كان الميت فيه
اوخارجه و ظاہر الرواية ، وفی رواية
لايكره اذاكان الميت خارج المسجد -2۔

उर्दू अनुवाद

बिल्कुल, यानी पिछली तमाम सूरतों में, जैसा कि खुलासा से फतह अल-कादिर में उद्धृत है और मुख्तारातुल नवाज़िल में है कि चाहे मृत मस्जिद के अंदर हो या बाहर, यही ज़ाहिर अल-रिवायत है। और एक रिवायत में यह है कि जब मृत मस्जिद के बाहर हो तो मकरूह नहीं। (त)

1. दुर्रे मुख्तार, जनाज़ा की नमाज़ का अध्याय, मुतबा मुजतबाई, दिल्ली, 1/123
2. रद्दे मुहतार, जनाज़ा की नमाज़ का अध्याय, एच.एम. सईद कंपनी, कराची, 2/225

पृष्ठ 261 / 948

ہی اوفق واحقر واصق بدلیل ہے کہ امعاء غالباً فضلات سے خالی نہیں ہوتیں اور موت مزیل استمساک و موجب استرخائے تام ہے اور جنازہ لے چلنے کی حرکت مؤید خروج، تو ہر میت میں خوف تلویث موجود۔ باقی کس خاص وجہ سے غلبہ ظن کی کیا حاجت، ناسمجھ بچوں کو مسجد میں لانا مطلقاً ممنوع ہوا کہ سب میں احتمال تلویث قائم، کچھ یہ شرط نہیں کہ جس بچہ کو اسہال وغیرہ کا عارضہ لاحق ہو وہی مسجد میں نہ لایا جائے، یونہی میت بلکہ اس سے بھی زائد کما لا یخفی علی افطن (جیسا کہ زیرک پر پوشیدہ نہیں۔ت) پھر یہ بھی امام ثانی سے ایک روایت نادرہ ہے ظاہر الروایۃ میں ہمارے ائمہ ثلثہ رضی اللہ تعالٰی عنہم کے نزدیک مسجد میں جنازہ مطلقاً مکروہ ہے اگرچہ میت بیرون مسجد ہو، یہی ارجح واصح و مختار و ماخوذ ہے:

عربی	اردو ترجمہ
فان الفتوی متی اختلفت وجب المصیر الی ظاہر الروایۃ کما افادہ في البحر والدر وغیرھا۔	اس لئے جب فتوٰی میں اختلاف ہو تو ظاہر الروایہ کی طرف رجوع ضروری ہے، جیسا کہ بحر اور در مختار وغیرہما میں افادہ کیا۔ (ت)

اب عبارتِ علماء سنئے۔ تنویر الابصار ودر مختار میں ہے:

عربی	اردو ترجمہ
کرھت تحریما وقیل تنزیھا فی مسجد جماعۃ ھوای المیت فیہ وحدہ او مع القوم واختلف في الخارجۃ عن المسجد وحدہ	مکروہِ تحریمی۔ اور کہا گیا کہ تنزیہی ہے مسجد جماعت میں، جس میں تنہا میت ہو یا پڑھنے والوں کے ساتھ ہو، اور اس جنازہ کے بارے میں اختلاف ہے جو تنہا یا بعض

عربی	اردو ترجمہ
او مع بعض القوم والمختار الکرھة مطلقاً خلاصة -1۔	لوگوں کے ساتھ بیرون مسجد ہو، اور مختار یہ ہے کہ مطلقاً مکروہ ہے۔ خلاصہ۔(ت)

رد المحتار میں ہے:

عربی	اردو ترجمہ
مطلقا فی ای جمیع الصور المتقدمة کما في الفتح عن الخلاصة وفی مختارات النوازل سواء کان المیت فیه اوخارجه و ظاہر الروایة ، وفی روایة لایکرہ اذاکان المیت خارج المسجد -2۔	مطلقاً یعنی گزشتہ تمام صورتوں میں، جیسا کہ فتح القدیر میں خلاصہ سے منقول ہے اور مختارات النوازل میں ہے کہ خواہ میت مسجد کے اندر ہو یا باہر، یہی ظاہر الروایۃ ہے۔۔ اور ایک روایت میں یہ ہے کہ جب میت مسجد کے باہر ہو تو مکروہ نہیں (ت)

1 در مختار باب صلوۃ الجنازہ مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی 1/123 2 رد المحتار باب صلوۃ الجنازہ ایچ ایم سعید کمپنی کراچی 2/225

Fatawa Razawiyya, Volume 9

It is stated in 'Al-Ashbah':

- It is forbidden to bring the deceased into the mosque. The correct position is that the prohibition is for the funeral prayer, even if the deceased is not inside the mosque. However, if there is an excuse like rain etc., then there is a concession. (T)[1]

In 'Bahr al-Ra'iq', after stating the chosen position, it says:

- And it was said that when the deceased is outside the mosque, it is not disliked (Makruh). This saying is based on the reasoning that the ruling of dislike is due to the possibility of the mosque being polluted. However, the first saying is more in line with the generality of the Hadith. Thus it is in 'Fath al-Qadir'. (T)[2]

In 'Al-Hidayah':

- The funeral prayer for a deceased person shall not be performed in a congregational mosque because the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) said: "Whoever performs a funeral prayer in a mosque, there is no reward for him." Also, because the mosque was built for performing the prescribed (fard) prayers, and because there is a possibility of polluting the mosque. And in 'Al-Hidayah' itself: When the deceased is outside the mosque, there is a difference of opinion among the scholars. (T)[3]

From 'Mabsut' by Imam Shams al-A'imma al-Sarakhsi, as cited in 'Al-Hilya':

- According to us, when the funeral is outside the mosque...

---

1. Al-Ashbah wa al-Naza'ir, Chapter on Mosque Rulings, published by Idarat al-Qur'an wa al-'Ulum al-Islamiyya, Karachi, 12 / 230.
2. Bahr al-Ra'iq, [section on] 'The Ruler is most entitled to lead the prayer', published by H.M. Saeed Company, Karachi, 2 / 187.
3. Al-Hidayah, Section on Prayer over the Deceased, published by al-Maktaba al-'Arabiyya, Karachi, 1 / 161.

फतावा रज़विया, जिल्द 9

'अल-अशबाह' में है:

- मस्जिद में मैय्यत (मृत शरीर) को ले जाना वर्जित है और सही बात यह है कि मनाही जनाज़े की नमाज़ के कारण है, भले ही मैय्यत मस्जिद के अंदर न हो। लेकिन बारिश आदि जैसी कोई मजबूरी हो तो इजाज़त है। (त)[1]

'बहर अल-राइक' में पसंदीदा मत बयान करने के बाद फरमाया:

- और कहा गया कि जब मैय्यत मस्जिद के बाहर हो तो मकरूह (नापसंद) नहीं है। इस मत का आधार इस बात पर है कि मकरूह होने का हुक्म मस्जिद के प्रदूषित होने की संभावना के कारण है, और पहला मत ही हदीस की व्यापकता के अधिक अनुकूल है। ऐसा ही 'फतह अल-कदीर' में है। (त)[2]

'अल-हिदाया' में है:

- जमात वाली मस्जिद में किसी मैय्यत की नमाज़-ए-जनाज़ा नहीं पढ़ी जाएगी क्योंकि नबी सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम का फरमान है: "जिसने मस्जिद में जनाज़े की नमाज़ पढ़ी उसके लिए कोई सवाब (पुण्य) नहीं है।" और इसलिए भी कि मस्जिद फर्ज़ नमाज़ों की अदायगी के लिए बनी है, और इसलिए भी कि इसमें मस्जिद के गंदा होने की आशंका है। और 'हिदाया' में ही है: जब मैय्यत मस्जिद के बाहर हो तो इसमें उलेमा (मशाइख) का मतभेद है। (त)[3]

इमाम शम्सुल अइम्मा सरखसी की 'मबसूत' से 'हिलिया' में है:

- हमारे नज़दीक जब जनाज़ा मस्जिद के बाहर हो...

---

1. अल-अशबाह व अन-नज़ाइर, अल-कौल फ़ी अहकाम अल-मस्जिद, इदारतुल कुरान वल उलूम अल-इस्लामिया, कराची द्वारा प्रकाशित, 12 / 230
2. बहर अल-राइक, सल अस्-सुल्तान अहाक़ बि-सलातिह, एच.एम. सईद कंपनी, कराची द्वारा प्रकाशित, 2 / 187

3. अल-हिदाया, फ़स्ल फ़ी अस्-सलात अलल मय्यित, अल-मक्तबा अल-अरबिया, कराची द्वारा प्रकाशित, 1 / 161

पृष्ठ 262/948

فتاوٰی رضویہ، جلد نہم

اشباہ میں ہے:

- منع ادخال المیت فیہ والصحیح ان المنع لصلاۃ الجنازۃ وان لم یکن المیت فیہ الا لعذر مطر ونحوہ ۔ مسجد میں میت کو لے جانا منع ہے اور صحیح یہ ہے کہ ممانعت نماز جنازہ کی وجہ سے ہے، اگرچہ میت مسجد کے اندر نہ ہو، مگر بارش وغیرہ کا عذر ہو تو رخصت ہے۔ (ت)[1]

بحر الرائق میں بعد بیان مذہب مختار فرمایا:

- وقیل لایکرہ اذاکان المیت خارج المسجد وھو مبنی علی ان الکراھۃ الاحتمال تلویث المسجد والاول ھو الا وفق لاطلاق الحدیث کذا فی الفتح القدیر ۔ اور کہا گیا کہ جب میت مسجد کے باہر ہو تو مکروہ نہیں، اس قول کی بنیاد اس پر ہے کہ کراہت کا حکم آلودگی مسجد کے احتمال کی وجہ سے ہے، اور پہلا قول ہی اطلاقِ حدیث کے مطابق ہے۔ ایسا ہی فتح القدیر میں ہے۔ (ت)[2]

ہدایہ میں ہے:

- لایصلی علی میت فی مسجدجماعۃ لقول النبی صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم من صلی علی جنازۃ فی المسجد فلااجرلہ ولانہ بنی لاداء المکتوب ولانہ یحتمل تلویث المسجد و فیھا اذاکان المیت خارج المسجد اختلف المشائخ ۔ مسجدِ جماعت میں کسی میت کی نمازِ جنازہ نہ پڑھی جائے گی اس لئے کہ نبی صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم کا ارشاد ہے : جس نے مسجد میں نمازِ جنازہ پڑھی اس کے لئے اجر نہیں۔ اور اس لئے کہ مسجد فرض نمازوں کی ادائیگی کے لئے بنی ہے۔ اور اس

لئے اس میں مسجد کی آلودگی کا احتمال ہے۔ اور ہدایہ ہی میں ہے : جب میت مسجد کے باہر ہو تو اس میں مشائخ کا اختلاف ہے۔ (ت)[3]

مبسوط امام شمس الائمہ سرخسی سے حلیہ میں ہے:

- عندنا اذاکانت الجنازۃ خارج المسجد۔ جب جنازہ مسجد کے باہر ہو تو ہمارے نزدیک

---

1. الاشباہ والنظائر القول فی احکام المسجد مطبوعہ ادارۃ القرآن والعلوم اسلامیہ کراچی ۱۲ / ۲۳۰
2. بحر الرائق صل السلطان احق بصلاتہ مطبوعہ ایچ ایم سعید کمپنی کراچی ۲ / ۱۸۷
3. الھدایۃ فصل فی الصلوٰۃ علی المیت مطبوعہ المکتبۃ العربیۃ کراچی ۱ / ۱۶۱

[Table Header - Arabic]: It is not disliked for people to pray over the deceased in the mosque; the dislike is only in bringing the funeral (bier/body) into the mosque.[1] [Table Header - Urdu Translation]: It is not disliked for people to pray its (funeral) prayer inside the mosque; the dislike is only in the case of bringing it inside the mosque. (T)

In Burjandi's Sharh al-Nuqayah, it is stated: [Table Middle - Arabic]: It is unanimously disliked to perform funeral prayer in a congregational mosque if the funeral is placed within it. If it is placed outside, the masters (scholars) differ. This is because the reason for dislike is either the apprehension of pollution (of the mosque) or because the mosque is specifically built for performing the obligatory daily prayers.[2] Summary. [Table Middle - Urdu Translation]: It is unanimously disliked to perform funeral prayer by placing the funeral inside a congregational mosque. If the funeral is placed outside, there is a difference of opinion among the scholars. This difference is because the cause of dislike is the possibility of polluting the mosque or that the mosque is built for the performance of the five daily obligatory prayers. Summary (T).

In Thamrat al-Nabayah, it is stated: [Table Bottom - Arabic]: Regarding the statement (i.e., from al-Ghurar): 'It is disliked in a mosque where it (the funeral) is located.' I say: Here, the dislike is according to the consensus of our companions (scholars), as stated in al-'Inayah.[3] [Table Bottom - Urdu Translation]: In the phrase of al-Ghurar (if the funeral is placed in the mosque, then the funeral prayer in it is disliked), I say: Our scholars agree on the dislike here, as it is in al-'Inayah. (T)

There are numerous phrases here; what we have quoted is sufficient, and through it, everything we have presented to you has become clear. (And whatever we have quoted is enough, and through it all those matters became clear which we described. T) And Allah, Glorified and Exalted, knows best.

Problem Nos. 67 to 70: From Firozabad, district Agra, Mohalla Kotla, sent by Miskeen Taj Muhammad, 11 Shawwal 1337 AH. What do the scholars of religion say in these matters: (1) On the farewell Friday of Ramadan al-Mubarak, a Muslim's funeral arrived at the congregational mosque, the number of worshippers was very high...

---

[1] Kitab al-Mabsut, Chapter on Washing the Deceased, printed by Dar al-Ma'rifah, Beirut 2/68. [2] Sharh al-Nuqayah by al-Burjandi, Section on Funeral Prayers, printed by Munshi Nawal Kishore, Lucknow 1/181. [3] Ghuniyat Dhawi al-Ahkam, Annotation on

Durar al-Hukkam, Chapter on Funerals, printed by Ahmad Kamil al-Ka'inah, Dar al-Sa'adah, Beirut 1/165.

फतावा रज़विया | जिल्द 9

[तालिका - अरबी]: यह मकरूह नहीं है कि लोग मस्जिद में इसके लिए नमाज़ पढ़ें, नापसंदगी (कराहत) केवल मस्जिद में जनाज़ा लाने के कारण है।[1] तालिका - उर्दू अनुवाद: यह मकरूह नहीं है कि लोग मस्जिद के अंदर इसकी नमाज़ पढ़ें, कराहत इसे मस्जिद के अंदर दाखिल करने ही की सूरत में है। (त)

बर्जंदी शरह नुक़ाया में है: [तालिका - अरबी]: जमाअत वाली मस्जिद में जनाज़ा रखकर नमाज़े जनाज़ा पढ़ना सर्वसम्मति से मकरूह है, यदि जनाज़ा उसमें रखा हो। और यदि उसे बाहर रखा जाए, तो मशाईख (विद्वानों) का इसमें मतभेद है। इसका कारण यह है कि कराहत का कारण या तो प्रदूषण का अंदेशा है या यह कि मस्जिद अनिवार्य दैनिक नमाज़ों की अदायगी के लिए बनी है।[2] संक्षेप। तालिका - उर्दू अनुवाद: मस्जिद जमाअत में जनाज़ा रख कर नमाज़े जनाज़ा पढ़ना सर्वसम्मति से मकरूह है, और अगर जनाज़ा बाहर रखा हो तो इसमें मशाईख का मतभेद है। यह मतभेद इस लिए है कि कराहत का कारण मस्जिद के दूषित होने की संभावना है या यह कि मस्जिद फ़राइज़-ए-वक़्तिया (अनिवार्य नमाज़ों) की अदायगी के लिए बनी है। संक्षेप (त)।

समरत अल-नबाया में है: [तालिका - अरबी]: कथन (अर्थात अल-ग़ुरर का) 'मकरूह है उस मस्जिद में जहाँ वह (जनाज़ा) हो।' मैं कहता हूँ: यहाँ कराहत पर हमारे साथियों (विद्वानों) की सहमति है जैसा कि इनाया में है।[3]

यहाँ इबारतें (उद्धरण) बहुत अधिक हैं, हमने जो उद्धृत किया है वह पर्याप्त है और उससे वह सब स्पष्ट हो गया जो हमने आपके सामने रखा। (और जिस कदर हमने नक़ल कर दिया वह काफी है, और उससे वो सारी बातें साफ़ हो गईं जो हमने बयान कीं। त) और अल्लाह सुब्हानहू व तआला बेहतर जानता है।

मसला नंबर 67 से 70: फ़िरोज़ाबाद, ज़िला आगरा, मोहल्ला कोटला से, प्रेषक मिसकीन ताज मोहम्मद, 11 शव्वाल 1337 हिजरी। उलमा-ए-दीन इन मसलों के बारे में क्या कहते हैं: (1) रमज़ान अल-मुबारक के अलविदाई जुमा को जामा मस्जिद में मुसलमानों का जनाज़ा आया, नमाज़ियों की बहुत ज़्यादा संख्या...

---

[1] किताब अल-मब्सूत, बाब ग़ुस्ल अल-मय्यित, मुद्रित दार अल-मआरिफ़, बेरूत 68/2 [2] शरह अल-नुक़ाया बर्जंदी, फ़स्ल फ़ी सलात अल-जनाइज़, मुद्रित मुंशी नवल किशोर, लखनऊ 181/1 [3] ग़ुनियत ज़वी अल-अहकाम हाशिया दुरर अल-हुक्काम, बाब अल-जनाइज़, मुद्रित अहमद कामिल अल-काइनह दार अल-सआदत, बेरूत 165/1

لم یکرہ ان یصلی الناس علیھا فی المسجد انما الکرھۃ فی ادخال الجنازۃ فی المسجد[1]۔ یہ مکروہ نہیں کہ لوگ مسجد کے اندر اس کی نماز پڑھیں کراہت اسے مسجد کے اندر داخل کرنے ہی کی صورت میں ہے۔ (ت)

برجندی شرح نقایہ میں ہے : کرھت صلوٰۃ الجنازۃ فی مسجد جماعۃ اتفاقاً اذا وضعت الجنازۃ فیہ ولو وضع خارجہ اختلف المشائخ فیہ و ذلک لان علۃ الکرھۃ اما توھم التلوث او کون المسجد مبینا لاداء المکتوبۃ[2] اھ ملخصاً۔ مسجد جماعت میں جنازہ رکھ کر نماز جنازہ پڑھنا بالاتفاق مکروہ ہے، اور اگر جنازہ باہر رکھا ہو تو اس میں مشائخ کا اختلاف ہے۔ یہ اختلاف اس لئے ہے کہ کراہت کی علت آلودگی مسجد کا احتمال ہے یا یہ کہ مسجد فرائض وقتیہ کی ادائیگی کے لئے بنی ہے اھ بہ تلخیص (ت)

ثمر نبایہ میں ہے : قولہ (یعنی الغرر) کرھت فی مسجد ھو فیہ، اقول: والکرھۃ ھنا باتفاق اصحابنا کما فی العنایۃ[3]۔ عبارت غرر (مسجد میں جنازہ رکھا ہو تو اس میں جنازہ مکروہ) میں کہتا ہوں یہاں کراہت پر ہمارے مشائخ کا اتفاق ہے، جیسا کہ عنایہ میں ہے۔ (ت)

عبارات یہاں بکثرت ہیں فیما نقلناہ کفایۃ و قد ظھر بہ کل ما القینا علیک (اور جس قدر ہم نے نقل کر دیا وہ کافی ہے، اور اس سے وہ ساری باتیں واضح ہو گئیں جو ہم نے بیان کیں۔ ت) واللہ سبحانہ و تعالٰی اعلم۔ مسئلہ نمبر ۶۷ تا ۷۰ : از فیروز آباد ضلع آگرہ محلہ کوٹلہ مرسلہ مسکین تاج محمد ۱۱ شوال ۱۳۳۷ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین ان مسائل میں : (۱) رمضان المبارک کے الوداعی جمعہ کو جامع مسجد میں مسلمانوں کا جنازہ آیا، نمازیوں کی بہت زیادہ

1 کتاب المبسوط باب غسل المیت مطبوعہ دار المعرفہ بیروت ۶۸/۲ 2 شرح النقایة للبرجندی فصل فی صلوٰة الجنائز مطبوعہ منشی نولکشور لکھنؤ ۱۸۱/۱ 3 غنیة ذوی الاحکام حاشیہ در الحکام باب الجنائز مطبوعہ احمد کامل الکائنہ دارالسعادت بیروت ۱۶۵/۱

Fatawa Razawiyya Volume Nine

...There was a huge crowd. If the funeral prayer is offered outside the mosque, the rows will not be straight due to graves and trees, nor will all worshipers be able to come due to the large number. Also, the sun was painfully hot for those fasting. In light of these aforementioned excuses, can the funeral prayer be offered on the mosque floor or not, and will there be a reward or not?

(2) What is the ruling for a person who knows that all the aforementioned excuses of the Muslims are valid, the funeral has entered the mosque, and the Friday prayer has been offered, but he moves the funeral outside the mosque and leads the prayer outside? He disregards the cramped space, the breaking of rows, and the fasters standing in the sun, causing the worshipers' desire to participate in the funeral prayer to be lost. What is the ruling?

(3) If there is no excuse and the funeral prayer is offered in the mosque, will the prayer be valid or not, and will there be a reward or not?

(4) Is it better to offer the funeral prayer immediately after the Friday prayer, or after performing the Sunnah prayers etc.? Explain and you will be rewarded.

Answer:

(1) Placing the funeral inside the mosque and praying over it is Makruh Tahrimi (prohibitively disliked) according to the Hanafi school of thought. It is stated in Tanwir al-Absar:

"It is prohibitively disliked (Makruh Tahriman) to perform it in a mosque of congregation if the deceased is inside it. There is disagreement if the deceased is outside, but the preferred view is that it is disliked."[1]

The funeral prayer is in a mosque of congregation is Makruh Tahrimi while the funeral is inside the mosque, and if it is outside then there is disagreement about it; the preferred view is that it is Makruh. (T)

The funeral prayer is a very short and quick act; exposure to the sun for such a short duration is not a hardship for which Makruh Tahrimi acts should be tolerated or the sanctity of the mosque violated. As for the prayer itself, it will be valid, the obligation will be fulfilled, but violating the command is a sin. The reward for the prayer itself is with Allah Almighty, similar to someone praying the five daily prayers on usurped land.

(2) He acted according to the school of thought; he prevented what was forbidden in the religion. The funeral prayer is Fard al-Kifayah (a communal obligation). Those Muslims who could not join due to the cramped space but desired to join will, Insha-Allah, get the reward for joining. It is in the Hadith: "One who goes towards the mosque with the intention of joining the congregation, and the prayer is finished, for him the reward is written."

Allah Almighty says: "...his reward is surely with Allah." [2]

Allah Almighty's command is: Thus his reward is fixed upon the grace of God. (T)

1. Durr al-Mukhtar, Chapter of Funeral Prayer, Printed at Matba' Mujtabai, Delhi, 1/123.
2. Al-Qur'an 4/100.

फ़तावा रज़विय्या जिल्द नौवीं

...भीड़ बहुत थी, यदि जनाज़े की नमाज़ मस्जिद के बाहर पढ़ाई जाएगी तो न सफें सीधी होंगी कब्रों और पेड़ों के कारण, और न ही अधिकता के कारण नमाज़ी आ सकेंगे, और धूप रोज़ेदारों के लिए कष्टदायक थी। इन उपरोक्त मजबूरियों को ध्यान में रखते हुए क्या जनाज़े की नमाज़ मस्जिद के फर्श पर पढ़ाई जाए या नहीं, और क्या सवाब मिलेगा या नहीं?

(२) उस व्यक्ति के लिए क्या हुक्म है जो जानता है कि मुसलमानों की उपरोक्त सभी मजबूरियां सही हैं और जनाज़ा मस्जिद के अंदर आ गया है और जुमे की नमाज़ भी हो चुकी है, लेकिन वह जनाज़े को मस्जिद से बाहर निकाल देता है और बाहर ले जाकर नमाज़ पढ़ाता है, और जगह की तंगी, सफों के टूटने और रोज़ेदारों के धूप में खड़े होने की परवाह न करते हुए नमाज़ियों की जनाज़े की नमाज़ में शामिल होने की इच्छा को खत्म कर देता है, क्या हुक्म है?

(३) यदि कोई मजबूरी न हो और मस्जिद में जनाज़े की नमाज़ पढ़ ली जाए तो नमाज़ होगी या नहीं, और सवाब मिलेगा या नहीं?

(४) यदि जुमे की नमाज़ के बाद तुरंत जनाज़े की नमाज़ पढ़ ली जाए तो बेहतर है या सुन्नत आदि पढ़ने के बाद जनाज़े की नमाज़ पढ़ना बेहतर है? बयान फ़रमाएं, पुण्य मिलेगा।

उत्तर:

(१) मस्जिद में जनाज़ा रखकर उस पर नमाज़ पढ़ना हनफ़ी मज़हब में मकरूह-ए-तहरीमी (कठोरता से नापसंद) है। तन्वीर अल-अबसार में है:

"मस्जिद-ए-जमात में जनाज़े की नमाज़ पढ़ना मकरूह-ए-तहरीमी है यदि मृतक (जनाज़ा) उसमें हो, और यदि बाहर हो तो इस बारे में मतभेद है, और चुना हुआ मत यह है कि यह मकरूह है।"[1]

मस्जिद-ए-जमात में जनाज़े की नमाज़ मकरूह-ए-तहरीमी है जबकि जनाज़ा मस्जिद के अंदर हो, और अगर बाहर है तो इस बारे में मतभेद है, मुख़्तार (चुना हुआ मत) यह है कि मकरूह है। (त)

जनाज़े की नमाज़ बहुत हल्की और जल्दी होने वाली चीज़ है, इतनी देर धूप की तकलीफ़ ऐसी नहीं है कि उसके लिए मकरूह-ए-तहरीमी को बर्दाश्त किया जाए और मस्जिद के अपमान को जायज़ ठहराया जाए। रही नमाज़, तो वह अदा हो जाएगी, फ़र्ज़ उतर जाएगा लेकिन हुक्म की ख़िलाफ़त

गुनाह है और खुद नमाज़ का सवाब अल्लाह अज़्ज़वजल के हाथ में है, जैसे कोई छीनी हुई ज़मीन पर पंजगाना (पांच वक्त की) नमाज़ पढ़े।

(२) उसने मज़हब पर अमल किया, जो बात मज़हब में मना थी उससे रोका। जनाज़े की नमाज़ फ़र्ज़-ए-किफ़ाया है। जो मुसलमान जगह की तंगी के कारण शामिल नहीं हो सके और शामिल होने की इच्छा रखते थे, उन्हें इंशाअल्लाह शामिल होने का ही सवाब मिलेगा। हदीस में है: जो जमात की नियत से मस्जिद की ओर चला और नमाज़ हो चुकी, उसके लिए सवाब लिख दिया गया।

अल्लाह तआला का फ़रमान है: "...तो उसका बदला अल्लाह के ज़िम्मे है।" [2]

अल्लाह तआला का फ़रमान है: तो उसका बदला ख़ुदा के करम पर तय है। (त)

1. दुर्रे मुख्तार, बाबू सलातुल जनाइज़, मुतबूआ मतबअ मुज्तबाई दिल्ली १/१२३
2. अल-कुरआन ४/१००

पेज २६४ का ९४८

فتاوی رضویہ جلد نہم

کثرت تھی ، نماز جنازہ اگر بیرون مسجد پڑھائی جائے گی تو نہ صفیں سیدھی ہوں گی بسبب قبروں اور درختوں کے اور نہ نمازی آ سکیں بسبب زیادتی کے ، اور دھوپ تکلیف دہ تھی روزہ داروں کو ، اس صورت مذکورہ عذرات کو مد نظر رکھتے ہوئے نماز جنازہ فرش مسجد پر پڑھائی جائے یا نہیں ، اور ثواب ہو گا یا نہیں؟

(۲) اس شخص کے واسطے کیا حکم ہے کہ وہ جانتا ہے کہ تمام مسلمانوں سے عذرات مذکورہ بالا صحیح ہیں اور اندرون مسجد جنازہ آ گیا ہے اور نماز جمعہ بھی ہو چکی ہے مگر وہ جنازہ کو مسجد سے باہر کرتا ہے اور باہر کر کے نماز جنازہ پڑھاتا ہے اور جائے کی تنگی اور صفوں کی شکستگی اور روزہ داروں کے دھوپ میں کھڑے ہونے کی پرواہ نہ کرتے ہوئے نمازیوں کی خواہش شرکت نماز جنازہ فوت کرے کیا حکم ہے؟

(۳) اگر کوئی عذر نہ ہو اور نماز جنازہ مسجد میں پڑھ لی جائے تو نماز ہو گی یا نہیں ، اور ثواب ہو گا یا نہیں؟

(۴) اگر بعد نماز جمعہ نماز جنازہ پڑھ لی جائے تو اولیٰ ہے یا سنت وغیرہ پڑھنے کے بعد نماز جنازہ پڑھنا اولیٰ ہے؟ بینوا توجروا۔

الجواب:

(۱) جنازہ مسجد میں رکھ کر اس پر نماز مذہب حنفی میں مکروہ تحریمی ہے ، تنویر الابصار میں ہے :

کرہت تحریمًا فی مسجد جماعۃ ہی فیہ واختلف فی الخارجۃ والمختار الکراہۃ۔1

مسجد جماعت میں نمازِ جنازہ مکروہِ تحریمی ہے جبکہ جنازہ مسجد کے اندر ہو ، اور اگر باہر ہے تو اس بارے میں اختلاف ہے ، مختار یہ ہے کہ مکروہ ہے (ت)

نماز جنازہ بہت ہلکی اور جلد ہونے والی چیز ہے اتنی دیر دھوپ کی تکلیف ایسی نہیں کہ اس کے لئے مکروہ تحریمی گوارا کیا جائے اور مسجد کی بے حرمتی روا رکھیں ۔ رہی نماز ، وہ ادا ہو جائے گی ، فرض اتر جائے گا اور مخالفت حکم گناہ اور نفس نماز کا ثواب اللہ عز وجل کے ہاتھ ، جیسے کوئی مغصوب زمین میں نماز پنجگانہ پڑھے۔

(۲) اُس نے مذہب پر عمل کیا ، جو بات مذہب میں منع تھی اس سے روکا ، نماز جنازہ فرض کفایہ ہے جو مسلمان تنگی جا کے سبب نہ مل سکے اور ملنے کی خواہش رکھتے تھے اور انہیں ان شاء اللہ العزیز ملنے ہی کا ثواب ہے۔ حدیث میں ہے : جو جماعت کی نیت سے مسجد چلا ، نماز ہو چکی ، اس کے لئے ثواب لکھ گیا۔

قال اللہ تعالٰی فقد وقع اجرہ علی اللہ 2۔

اللہ تعالیٰ کا فرمان ہے : تو اس کا اجر خدا کے ذمہ کرم پر ثابت ہے۔ (ت)

1 دُرِّ مختار باب صلوۃ الجنائز مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی ۱ / ۱۲۳ 2 القرآن ۴/۱۰۰

Fatawa Rizwia, Volume 9

And Allah Almighty said upon him (peace be upon him): Indeed, actions are only by intentions. | And the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) said: For a person is only that which he intended. (T)

The prayer will be valid, and now the sin of opposition is even greater as it is without reason, and the answer regarding the reward has passed above. (4) Perform the funeral prayer after finishing the Sunnahs; absolutely keep the optional prayers (Nawaafil) and litanies (Wazaif) for after. It is in Durr-e-Mukhtar:

In al-Bahr, before the Adhan, from al-Halabi: The Fatwa is for delaying the funeral [prayer] until after the Sunnah [prayers].[2] | In [al-]Bahr, just before the Adhan, it is quoted from Halabi [in] Hilya that the Fatwa is on this that the funeral [prayer] will be after the Sunnah. (T)

Yes, if the state of the funeral is such that it will deteriorate with delay, then pray the funeral [prayer] first, then Sunnah, etc. It is in Ashbah:

When a funeral and a timed Sunnah coincide, the funeral is prioritized.[3] | If both funeral and timed Sunnah are gathered, the funeral will be prioritized. (T) And Allah Almighty knows best.

Problem No. 71: From Suniya, District Bareilly, asked by Amir Ali Sahib, 12 Shawwal 1304 AH. What do the scholars of the firm religion say on this matter that in the Jamia Masjid of Bareilly, the funeral prayer is led in the Nabi-khana, and the Imam is in the Nabi-khana and the followers are in the Jamia Masjid and in the Nabi-khana, in equal rows, is it correct or not?

The Answer: The correct view is that there should be no funeral, no Imam for funeral, nor funeral rows in the mosque. All this is disliked (Makruh). And Allah Almighty knows best.

Problem No. 72 to 87: From Qadri Ganj, District Birbhum, Bengal region, sent by Syed Zahoor-ul-Hasan Sahib Qadri Razzaqi, Murshidi, Kirmani, 22 Jumada al-Ula 1336 AH. (1) Outside the mosque on the east side, which is a paved courtyard built in front, mostly in summers there for Maghrib...

---

1. Sahih al-Bukhari, Chapter 'How the Revelation Started', printed by Qadimi Kutub Khana, Karachi, 1/2.

2. Durr-e-Mukhtar, Chapter on Eid prayers, printed by Mujtabai Press, Delhi, 1/131.
3. Al-Ashbah wa al-Naza'ir, Al-Qaul fi al-Din, printed by Idarat al-Qur'an, Karachi, 2/218, 217.

फ़तावा रज़विया, जिल्द नहम (9)

और अल्लाह तआला अलैहि वसल्लम ने फ़रमाया: 'बेशक हर अमल का दारोमदार नियत पर है।' | और अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम) ने फ़रमाया: आदमी के लिए वही है जिसकी उसने नियत की। (त)

नमाज़ हो जाएगी, और अब मुख़ालफ़त का गुनाह और ज़्यादा है कि महज़ बिला वजह है, और सवाब का जवाब ऊपर गुज़रा। (4) सुन्नत से फ़ारिग होकर नमाज़े जनाज़ा पढ़ें, नवाफ़िल और वज़ाइफ़ क़तई तौर पर बाद के लिए रखें। 'दुर्रे मुख़्तार' में है:

'अल-बहर' में अज़ान से कुछ पहले अल-हलबी से नक़ल है: फतवा जनाज़े को सुन्नत से मोअख़र (देर) करने पर है।[2] | 'बहर' में अज़ान से ज़रा पहले हलबी साहब 'हिलिया' से नक़ल करते हैं कि फतवा इस पर है कि जनाज़ा सुन्नत के बाद होगा। (त)

हाँ, अगर जनाज़े की हालत ऐसी हो कि देर होने पर उसमें तब्दीली (खराबी) आने का अंदेशा हो, तो पहले जनाज़ा पढ़ें फिर सुन्नत वगैरह। 'अशबाह' में है:

जब जनाज़ा और सुन्नते वक़्तिया दोनों जमा हो जाएं तो जनाज़े को मुक़द्दम (पहले) किया जाएगा।[3] | जनाज़ा और सुन्नते वक़्तिया दोनों जमा हों तो जनाज़ा मुक़द्दम होगा। (त) वल्लाह तआला आलम।

मसला नम्बर 71: अज़ सुनिया ज़िला बरेली, मसूला अमीर अली साहब, 12 शव्वाल 1304 हिजरी। क्या फ़रमाते हैं उलेमा-ए-दीन मतीन इस मसले में कि बरेली की जामे मस्जिद में 'नबी ख़ाना' में नमाज़े जनाज़ा पढ़ाई जाए और इमाम नबी ख़ाना में हो और मुक़्तदी जामे मस्जिद में और नबी ख़ाना में, बराबर सफ़ बंदी हो, दुरुस्त है या नहीं?

अल-जवाब: सही यह है कि मस्जिद में न जनाज़ा हो न इमाम-ए-जनाज़ा, न सफ़-ए-जनाज़ा। ये सब मकरूह है। वल्लाह तआला आलम।

मसला नम्बर 72 ता 87: अज़ क़ादरी गंज ज़िला बीरभूम, मुल्क-ए-बंगाल, मुरसला सैयद ज़हूरुल हसन साहब क़ादरी रज़ाक़ी, मुर्शिदी, किरमानी, 22 जमाद उल ऊला 1336 हिजरी। (1) मस्जिद के बाहर पूरब जानिब जो सामने पुख़्ता सहन बना हुआ है अक्सर गर्मियों में वहां पर मग़रिब की...

---

1. सहीह अल-बुखारी, बाब 'कैफ़ कान बद-उल-वही', मतबुआ क़दीमी कुतुब ख़ाना, कराची, 1/2

2. दुर्रे मुख़्तार, बाब अल-ईदैन, मतबुआ मतबा मुजतबाई, देहली, 1/131
3. अल-अशबाह वन-नज़ायर, अल-क़ौल फ़िद-दीन, मतबुआ इदारतुल क़ुरआन, कराची, 2/218, 217

सफ़ा 265 का 948

فتاوٰی رضویہ، جلد نہم

وقال اللہ تعالٰی علیہ وسلم انما لکل امر مانوی | اور رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم نے فرمایا آدمی کے لئے وہی ہے جس کی اس نے نیت کی(ت)

نماز ہو جائے گی ،اور اب مخالفت کا گناہ اور زیادہ ہے کہ محض بلا وجہ ہے ،اور ثواب کا جواب اوپر گزرا۔ (۴) سنت سے فارغ ہو کر نماز جنازہ پڑھیں ،نوافل و وظائف قطعاً بعد کورکھیں۔

درمختار میں ہے :

في البحر قبيل الاذان عن الحلبي الفتوی علی تاخير الجنازة عن السنة[2] | بحر میں اذان سے ذرا پہلے حلبی صاحب حلیہ سے نقل ہے کہ فتوٰی اس پر ہے کہ جنازہ سنت کے بعد ہو گا۔(ت)

ہاں اگر جنازہ کی حالت ایسی ہو کہ دیر میں متغیر ہو جائے گا تو پہلے جنازہ پڑھیں پھر سنت وغیرہ۔ اشباہ میں ہے :

اجتمعت جنازة و سنة وقتية قدمت الجنازة[3] | جنازہ اور سنت وقتیہ دونوں جمع ہوں تو جنازہ مقدم ہوگا۔(ت) واللہ تعالٰی اعلم۔

مسئلہ نمبر ۷۱: از سنیا ضلع بریلی مسئولہ امیر علی صاحب ۱۲ شوال ۱۳۰۴ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین متین اس مسئلہ میں کہ بریلی کی جامع مسجد میں نبی خانہ میں نماز جنازہ پڑھائی جائے اور امام نبی خانہ میں ہو اور مقتدی جامع مسجد میں اور نبی خانہ میں، برابر صف بندی ہو ،درست ہے یا نہیں؟

الجواب: صحیح یہ ہے کہ مسجد میں نہ جنازہ ہو نہ امام جنازہ ، نہ صف جنازہ ۔یہ سب مکروہ ہے۔ واللہ تعالٰی اعلم۔

مسئلہ نمبر ۷۲ تا ۸۷ :از قادری گنج ضلع پیر بھوم ملک بنگال، مرسلہ سید ظہور الحسن صاحب قادری رزاقی ، مرشدی، کرمانی ۲۲ جمادی الاولیٰ ۱۳۳۶ھ (۱) مسجد کے باہر پورب جانب جو سامنے پختہ صحن بنا ہوا ہے اکثر گرمیوں میں وہاں پر مغرب کی

---

1 صحیح البخاری باب کیف کان بدء الوحی مطبوعہ قدیمی کتب خانہ کراچی ۱/۲ 2 در مختار باب العیدین مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی ۱/۱۳۱ 3 الاشباہ والنظائر القول فی الدین مطبوعہ ادارۃ القرآن کراچی ۲/۲۱۸، ۲۱۷

Jild Nahum (Volume 9) Fatawa-e-Razvia

...prayer is offered. Is it permissible to offer the funeral prayer in that place or not? (2) And a wooden box that serves as a coffin, if the deceased is placed inside and the box is closed, is it permissible to offer prayer over it or not? (3 & 4) Is it correct to build solid graves for any saint, descendants of the Prophet (Sayyids), or scholars, and to take a body from one country to another or from one city to another for burial or not? (5) Is it permissible to bury the deceased in a wooden box or not? (6) Is it permissible to place the lineage tree (Shajara) of spiritual guides (Peeraan-e-Tariqat) under the shroud on the chest of the deceased and bury them or not? (7) And the righteous elders who, before their demise, had prepared their shroud, coffin, and a grave with a solid interior and courtyard, is it permissible to prepare these things in such states beforehand or not? Give a ruling and be rewarded.

Al-Jawab (The Answer): (1) The courtyard of a mosque is certainly part of the mosque; the jurists call it the summer mosque (Masjid Saifi) and the roofed portion the winter mosque (Masjid Shatwi). And the funeral prayer in the mosque is absolutely disliked (Makruh) as stated in Al-Tanwir, Al-Durr, and others. (As it is in Tanwir al-Absar and Durr al-Mukhtar etc. - T). Yes, it is permissible outside the mosque boundary in the mosque's precincts. (2) If the deceased is inside a coffin, the funeral prayer over it is permissible in the same way, there is no need to open it. (3 & 4) It is prohibited to make the inner part of the grave solid where it is in contact with the deceased. There is no harm in making it solid from the outside, and for great religious figures, there are many legal benefits (Masaleh Shar'iyah) in doing so. As for transporting a corpse from one country to another, even moving it to another city is prohibited. There is no harm in moving it for a distance of a mile or two, as stated in Al-Alamgiriyah and others. (As it is in Alamgiriyah etc. - T). (5) Burying in a coffin is disliked and contrary to the Sunnah, except in cases where the ground is very soft; then there is no harm for protection, as stated in Al-Hindiyyah and others. (As it is in Hindiyah etc. - T). (6) It is better to dig a niche in the grave and place the Shajara there. If sacred relics are placed on the chest, their prohibition is not established either. The detail is in Al-Harf al-Hasan (and the detail is in our treatise "Al-Harf al-Hasan fi al-Kitaba 'ala al-Kafan" - T). (7) There is no harm in keeping the shroud prepared beforehand, but the grave should not be made beforehand, as stated in Al-Durr al-Mukhtar and others. (As it is in Durr al-Mukhtar etc. - T). Allah the Almighty said: "And no soul knows in what land [it will die]."

जिल्द नहुम (खंड 9) फ़तावा-ए-रज़विया

...नमाज़ पढ़ी जाती है। उस जगह जनाज़े की नमाज़ पढ़ना जायज़ है या नहीं? (२) और लकड़ी का संदूक जो ताबूत के समान होता है, उसके अंदर मय्यत (शव) रखकर संदूक बंद किया हो, तो नमाज़ पढ़ना जायज़ है या नहीं? (३ और ४) और किसी वली या सादात या उलेमा की क़ब्रें पक्की बनाना और किसी मुल्क से दूसरे मुल्क या शहर से दूसरे शहर ले जाकर दफ़्न करना दुरुस्त है या नहीं? (५) और मय्यत को लकड़ी के संदूक में रखकर दफ़्न करना जायज़ है या नहीं? (६) और क़ब्र में मय्यत के सीने पर कफ़न के नीचे पीरान-ए-तरीक़त का शजरा रखकर दफ़्न करना जायज़ है या नहीं? (७) और बुज़ुर्गान-ए-दीन ने जो अपने वसाल (निधन) से पहले अपना कफ़न, ताबूत और क़ब्र पक्की अंदर से और सहन पक्की करके तैयार कर रखा है, ऐसा पहले से इन चीज़ों को ऐसी हालतों में तैयार रखना जायज़ है या नहीं? बयान फरमाएं और सवाब पायें।

अल-जवाब: (१) मस्जिद का सहन यकीनन मस्जिद है, फ़ुक़हा-ए-किराम उसे सैफ़ी मस्जिद यानी गर्मियों की और छत वाले हिस्से को शतवी मस्जिद यानी सर्दियों की मस्जिद कहते हैं। और नमाज़-ए-जनाज़ा मस्जिद में मुतलक़न मकरूह (नापसंद) है जैसा कि तनवीर और दुर्र वगैरह में है (जैसा कि तनवीर अल-अब्सार और दुर्र-ए-मुख्तार वगैरह में है - त)। हाँ, मस्जिद की सीमा से बाहर मस्जिद के अहाते में जायज़ है। (२) मय्यत अगर ताबूत के अंदर हो तो नमाज़ उस पर इसी तरह जायज़ है, खोलने की ज़रूरत नहीं। (३ और ४) क़ब्र का जितना हिस्सा मय्यत से जुड़ा हुआ है, उस अंदरूनी हिस्से को पक्का करना मना है और बाहर से पक्का करने में कोई हर्ज़ नहीं, और महान धार्मिक व्यक्तियों के लिए ऐसा करने में बहुत से शरीयत के लाभ हैं। लाश को एक मुल्क से दूसरे मुल्क ले जाना तो बड़ी बात है, दूसरे शहर ले जाना भी मना है, एक या दो मील तक ले जाने में हर्ज़ नहीं जैसा कि आलमगीरिया वगैरह में है (जैसा कि आलमगीरिया वगैरह में है - त)। (५) ताबूत में दफ़्न करना मकरूह और सुन्नत के ख़िलाफ़ है, मगर उस हालत में कि वहाँ ज़मीन बहुत नरम हो तो हिफ़ाज़त के लिए हर्ज़ नहीं जैसा कि हिन्दिया वगैरह में है (जैसा कि हिन्दिया वगैरह में है - त)। (६) बेहतर यह है कि क़ब्र में ताक़ (आला) खोदकर उसमें शजरा रखा जाए और अगर तबर्कात (पवित्र वस्तुएं) सीने पर रखें तो इसकी मनाही भी साबित नहीं। और तफ़्सील (विवरण) हमारे रिसाले "अल-हर्फ़ुल हसन फिल किताबती अलल कफ़न" में है (त)। (७) कफ़न पहले से तैयार रखने में कोई हर्ज़ नहीं और क़ब्र पहले से नहीं बनानी चाहिए जैसा कि दुर्र-ए-मुख्तार वगैरह में है (जैसा कि दुर्र-ए-मुख्तार वगैरह में है - त)। अल्लाह तआला ने फ़रमाया: "और कोई जान नहीं जानती कि किस ज़मीन में (मरेगी)।"

نماز پڑھی جاتی ہے اُس جگہ جنازہ کی نماز پڑھنا جائز ہے یا نہیں ؟ (۲) اور لکڑی کا صندوق جو بمنزلہ تابوت کے ہوتا ہے اس کے اندر میت رکھ کر صندوق بند کیا ہو نماز پڑھنا جائز ہے یا نہیں ؟ (۳ و ۴) اور کسی ولی یا سادات یا علماء کی قبریں پختہ باندھنا اور کسی ملک سے دوسرے ملک یا شہر سے دوسرے شہر لے جا کر دفن کرنا درست ہے یا نہیں ؟ (۵) اور میت کو لکڑی کے صندوق میں رکھ کر دفن کرنا جائز ہے یا نہیں ؟ (۶) اور قبر میں میت کے سینہ کفن کے نیچے شجرہ پیرانِ طریقت رکھ کر دفن کرنا جائز ہے یا نہیں ؟ (۷) اور بزرگانِ دین نے جو اپنے وصال سے قبل اپنا کفن تابوت و قبر پختہ اندر سے صحن پختہ کر کے تیار کر رکھا ہے ایسا قبل سے ان چیزوں کو ایسی حالتوں میں تیار رکھنا جائز ہے یا نہیں ؟ بینوا توجروا الجواب : (۱) صحنِ مسجد یقیناً مسجد ہے، فقہائے کرام اُسے مسجد صیفی یعنی گرمیوں کی اور مسقف درجہ کو مسجد شتوی یعنی جاڑوں کی مسجد کہتے ہیں۔ اور نماز جنازہ مسجد میں مطلقاً مکروہ ہے کما فی التنویر والدر وغیرہما (جیسا کہ تنویر الابصار اور درِ مختار وغیرہما میں ہے۔ت) ہاں حدِ مسجد سے باہر فنائے مسجد میں جائز ہے۔ (۲) میت اگر تابوت کے اندر ہو نماز اس پر اسی طرح جائز ہے کھولنے کی حاجت نہیں۔ (۳ و ۴) قبر جس قدر میت سے متصل ہوئی اس اندرونی حصہ کو پختہ کرنا ممنوع ہے اور باہر سے پختہ کرنے میں حرج نہیں، اور معظم دین کے لئے ایسا کرنے میں بہت مصالح شرعیہ ہیں۔ لاش کا ایک ملک سے دوسرے ملک لے جانا تو بڑی بات دوسرے شہر کو لے جانا بھی ممنوع ہے، میل یا دو میل تک لیجانے میں حرج نہیں کما فی العالمگیریۃ وغیرہا (جیسا کہ عالمگیریہ وغیرہا میں ہے۔ ت) (۵) تابوت میں دفن کرنا مکروہ و خلافِ سنت ہے مگر اس حالت میں کہ وہاں زمین بہت نرم ہو تو حفاظت کے لئے حرج نہیں کما فی الھندیہ وغیرہا (جیسا کہ ہندیہ

وغیرہ میں ہے۔ت) (۶) بہتر یہ ہے کہ قبر طاق کھود کر اس میں شجرہ رکھا جائے اور تبرکات اگر سینہ پر رکھیں تو اس کی ممانعت بھی ثابت نہیں و التفصیل فی الحرف الحسن (اور تفصیل ہمارے رسالہ "الحرف الحسن فی الکتابۃ علی الکفن" میں ہے۔ت) (۷) کفن پہلے سے تیار رکھنے میں حرج نہیں اور قبر پہلے سے نہ بنانا چاہئے کما فی الدرالمختار وغیرہ (جیسا کہ درِ مختار وغیرہ میں ہے۔ ت) قال اللہ تعالٰی وَمَا تَدْرِي نَفْسٌ بِأَيِّ أَرْضٍ

Fatawa Ridawiyya Volume 9

...will die. (Allah the Almighty says: No soul knows in what land it will die. - T) And Allah knows best. Problem No. 79 to 80: From State Kota, Rajputana, Mohalla Chandgarh, asked by Fazl Ahmad Sahib, 6 Muharram 1339 AH. (1) What do the scholars of religion say regarding this issue that previously a part was unpaved, now it has been completely joined with the mosque and made paved. Is this part included in the mosque or not? And is funeral prayer permissible here or not? And is it the courtyard of the mosque or not? (2) Why is funeral prayer performed in the Kaaba and the Holy Prophet's Mosque? And if they pray in the Kaaba Sharif, then what is the harm in the mosque?

The Answer: (1) This place was outside the mosque. Making it paved and joining it with the courtyard of the mosque was not done to make it part of the mosque, but only so that worshippers have comfort during Friday and Eid prayers. So it remains outside the mosque as before, and funeral prayer is permissible in it. And if it was made a mosque by the consensus of all Muslims, then now funeral prayer is not permissible in it. And Allah knows best. (2) There it is according to the Shafi'is; it is not permissible according to the Hanafis. And Allah knows best. Problem No. 81: From Bulandshahr, Balaye Kot, Mohalla Qaziwara, sent by Muhammad Abdus Salam Sahib, 30 Ramadan 1337 AH. The pond is inside the mosque and there is flooring all around it. Funeral prayer is conducted by placing the cot on its ledge. Is this prayer correct or not? Explain and you will be rewarded.

The Answer: The more correct view is that the said prayer is Makruh (disliked) and doing so is prohibited. It is mentioned in 'Tanweer al-Absar' and 'Durr al-Mukhtar': [Arabic text translated in the table below] Funeral prayer in a congregational mosque is macrooh-e-tahreemi (strictly disliked) when the deceased is inside it. And there is disagreement if the funeral alone or the funeral along with some of the people is outside the mosque. The preferred view is that it is absolutely macrooh. Khulasa, etc. (T)

1 Quran 31/34 2 Durr al-Mukhtar, Chapter on Funeral Prayer, printed at Mujtabai Press Delhi, 1/123 Page 267 of 948

फ़तावा रज़विया जिल्द नहम (खंड 9)

...मरेगा। (अल्लाह तआला फ़रमाता है: कोई जान नहीं जानती कि उसकी मौत किस ज़मीन में होगी। - त) वल्लाहु तआला आलम (और अल्लाह तआला बेहतर जानता है)। मसाला नंबर 79 से 80: रियासत कोटा, राजपूताना, मोहल्ला चंदगढ़ से मुर्सला (प्रेषित) फज़ल अहमद साहब, 6 मुहर्रम 1339 हिजरी। (1) उलमा-ए-दीन इस मसले में क्या फ़रमाते हैं कि पहले एक हिस्सा कच्चा था, अब बिल्कुल मस्जिद से मिला कर सब पक्का बना दिया गया है। क्या यह मस्जिद में दाख़िल है या नहीं? और यहाँ नमाज़-ए-जनाज़ा जायज़ है या नहीं? और क्या यह मस्जिद का सहन (आंगन) है या नहीं? (2) ख़ाना काबा और मस्जिद-ए-नबवी में नमाज़-ए-जनाज़ा क्यों होती है? और जब काबा शरीफ़ में नमाज़ पढ़ते हैं तो मस्जिद में क्या हर्ज है?

अल-जवाब (उत्तर): (1) यह जगह मस्जिद से ख़ारिज (बाहर) थी, इसे पक्का करके सहन-ए-मस्जिद से मिला देना मस्जिद के तौर पर नहीं बल्कि सिर्फ़ इसलिए है कि जुमा और ईदैन में नमाज़ियों को आराम हो। तो वह बदस्तूर मस्जिद से ख़ारिज है और इसमें नमाज़-ए-जनाज़ा जायज़ है। और अगर तमाम मुसलमानों की राय से इसे मस्जिद कर लिया गया तो अब इसमें नमाज़-ए-जनाज़ा जायज़ नहीं। वल्लाहु तआला आलम। (2) वहाँ शाफ़ईया के तौर पर होती है, हनफ़िया के नज़दीक जायज़ नहीं। वल्लाहु तआला आलम। मसाला नंबर 81: बुलंदशहर, बाला-ए-कोट, मोहल्ला काज़ीवाड़ा से मुर्सला मुहम्मद अब्दुस्सलाम साहब, 30 रमज़ान 1337 हिजरी। हौज़ (कुंड) मस्जिद के अंदर है और इसके चारों तरफ़ फ़र्श है। उसकी पटरी पर चारपाई रख कर नमाज़-ए-जनाज़ा पढ़ाई जाती है, क्या यह नमाज़ दुरुस्त है या नहीं? बय्यानू तूजरू (बयान करें, सवाब पाएंगे)।

अल-जवाब (उत्तर): क़ौल-ए-राजिह (अधिक सही राय) यह है कि मज़कूरा नमाज़ मकरूह है और ऐसा करना मना है। तनवीरुल अबसार और दुर्रे मुख़्तार में है: मस्जिद-ए-जमात में नमाज़-ए-जनाज़ा मकरूह-ए-तहरीमी है जबकि जनाज़ा मस्जिद के अंदर हो, और अगर तन्हा जनाज़ा या जनाज़ा कुछ नमाज़ियों के साथ मस्जिद के बाहर हो तो इस बारे में इख़्तिलाफ़ (मतभेद) है, मुख़्तार यह है कि मुतलक़न (पूर्ण रूप से) मकरूह है। ख़ुलासा, इत्यादि। (त)

1 अल-कुरान 31/34 2 दुर्रे मुख़्तार, बाब सलातुल जनाज़ा, मुतबूआ मतबा मुज्तबाई दिल्ली, 1/123 पृष्ठ 948 का 267

تَمُوْتُ ۱ (اللہ تعالٰی فرماتا ہے: کوئی جان نہیں جانتی کہ اس کی موت کس زمین میں ہوگی۔ ت) واللہ تعالٰی اعلم مسئلہ نمبر ۷۹ تا ۸۰ : از ریاست کوٹہ راجپوتانہ محلہ چند گڑھ مسئولہ فضل احمد صاحب ۶ محرم ۱۳۳۹ھ (۱) کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ پہلے ایک حصہ خام تھا اب بالکل ملحقہ مسجد کرکے سب پختہ بنا دیا گیا آیا یہ مسجد میں داخل ہے یا نہیں، اور یہاں نماز جنازہ جائز ہے یا نہیں اور صحن مسجد ہے یا نہیں؟ (۲) خانہ کعبہ اور مسجد اقدس نبوی میں نماز جنازہ کیوں ہوتی ہے؟ اور جب کعبہ شریف میں نماز پڑھتے ہیں تو مسجد میں کیا حرج ہے؟

الجواب: (۱) یہ جگہ مسجد سے خارج تھی اسے پختہ کرکے صحن مسجد سے ملا دینا مسجد کے طور پر نہیں بلکہ صرف اس لئے کہ جمعہ وعیدین میں نمازیوں کو آرام ہو تو وہ بدستور مسجد سے خارج ہے اور اس میں نماز جنازہ جائز ہے، اور اگر تمام مسلمانوں کی رائے سے اسے مسجد کر لیا گیا تو اب اس میں نماز جنازہ جائز نہیں۔ واللہ تعالٰی اعلم۔ (۲) وہاں شافعیہ کے طور ہوتی حنفیہ کے نزدیک جائز نہیں۔ واللہ تعالٰی اعلم۔ مسئلہ نمبر ۸۱: از بلند شہر بالائے کوٹ محلہ قاضی واڑہ مرسلہ محمد عبدالسلام صاحب ۳۰ رمضان ۱۳۳۷ھ حوض مسجد کے اندر ہے اور اس کے چاروں طرف فرش ہے اس کی پٹڑی پر چار پائی رکھ کر نماز جنازہ پڑھائی جاتی ہے، آیا یہ نماز درست ہے یا نہیں؟ بینوا توجروا۔

الجواب: قولِ راجح تر یہ ہے کہ نماز مذکورہ مکروہ ہے اور ایسا کرنا منع ہے۔ تنویر الابصار و در مختار میں ہے : کرھت تحریما فی مسجد جماعۃ ھوای المیت فیہ | مسجدِ جماعت میں نمازِ جنازہ مکروہِ تحریمی ہے جبکہ جنازہ مسجد واختلف فی الخارجۃ عن المسجد وحدہ او مع بعض | کے اندر ہو، اور اگر تنہا جنازہ یا جنازہ مع کچھ نمازیوں کے القوم والمختار الکراھۃ مطلقا خلاصۃ ۲ الخ

| بیرونِ مسجد ہو تو اس بارے میں اختلاف ہے، مختار یہ ہے کہ | مطلقاً مکروہ ہے خلاصہ الخ (ت)

۱ القرآن ۳۱ / ۳۴ ۲ در مختار باب صلوۃ الجنازہ مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی ۱/ ۱۲۳ Page of 948 267

Fatawa Razawiyya, Volume 9

And according to the second opinion, there is no such harm in the aforementioned situation because the deceased is outside the mosque, so "there is no dislike (karahat) in the prayer." It is stated in Al-Ghunyah: "This is the chosen (mukhtar) opinion and the practice is mentioned upon it." (So there is no dislike in the prayer; in Al-Ghunyah it is stated: this is the chosen opinion and the practice is described as being upon it. - T). However, when the mosque floor surrounds it on all four sides, then taking the funeral (janaza) to that platform will be inside the mosque, and this is unanimously disliked (makruh) according to the Hanafis. All this is when the pond in the middle of the mosque was built by the founder before it was declared a mosque. Otherwise, if the mosque was already established and then a pond was built in the middle, even if the founder built it, building it is forbidden (haram), performing ablution from it is forbidden, and performing the funeral prayer there is unanimously disliked. Its detailed investigation is in our footnotes on Radd al-Muhtar. (The investigation of this is in our footnotes on Radd al-Muhtar. - T) And Allah Almighty knows best.

Issue 82: From Bantva, Kathiawar, Maulvi Abdul Muttalib Sahib, 1st Sha'ban 1336 AH.

The place built for funeral prayers here is at a distance far from the city. In rain and heat, there is great difficulty. Therefore, to alleviate the hardships, if a platform for funeral prayers is built in the old hundred-year-old graveyard of the settlement, where the graves have crumbled and because of that people throw trash in it, would it be permissible or how?

Answer: Prayer on graves is never permissible, nor is it permissible to throw trash on them. Arrange for it, forbid it. Yes, if there is a plot of land there or near it where there were no graves, then permission for prayer is granted there. And Allah Almighty knows best.

फ़तावा रज़विया, जिल्द 9

और दूसरे कौल (मत) के अनुसार उक्त स्थिति में यह हर्ज तो नहीं क्योंकि मैय्यत (मृतक) मस्जिद से बाहर है, "इसलिए नमाज़ में कोई कराहत (नापसंदगी) नहीं है"। अल-गुनिया में कहा गया है: "यही मुख़्तार (चुना हुआ मत) है और इसी पर अमल बताया गया है।" (तो नमाज़ में कराहत नहीं है, गुनिया में है: यही मुख़्तार है और इसी पर अमल बताया गया है। - त) मगर जब मस्जिद का फर्श चारों तरफ घेरे हुए हो, तो उस पटरी तक जनाज़े को ले जाना मस्जिद के अंदर ही होगा और यह हनफियों के इत्तेफ़ाक (सहमति) से मकरूह (नापसंद) है। यह सब उस समय है जब मस्जिद के बीच में हौज़ खुद मस्जिद बनाने वाले ने मस्जिद घोषित होने से पहले बनाया हो। अन्यथा, अगर मस्जिद बन चुकी हो और उसके बाद बीच में हौज़ बनवाया जाए, चाहे वह संस्थापक ने ही बनवाया हो, तो उसका बनाना हराम है, और उससे वज़ू करना हराम है, और नमाज़-ए-जनाज़ा इत्तेफ़ाकन मकरूह है। इसकी तहकीक (जांच/विस्तृत विवरण) हमारे हाशिया रद्दुल मुख्तार में है। (इसकी तहकीक हमारे हाशिया रद-उल-मुह्तार में है। - त) और अल्लाह तआला सबसे बेहतर जानता है।

मसला 82: बांटवा, काठियावाड़ से मौलवी अब्दुल मुत्तलिब साहब, 1 शाबान 1336 हिजरी।

यहाँ नमाज़-ए-जनाज़ा के लिए जो जगह तामीर (बनाई) की गई है वह शहर से दूर फासले पर है। बारिश और गर्मी में बड़ी दिक्कत होती है। इसलिए तकलीफों को दूर करने के लिए, बस्ती का जो पुराना सौ साल पुराना कब्रिस्तान है, जिसमें कब्रें ढह चुकी हैं और ढहने के कारण लोग उसमें कूड़ा-करकट डालते हैं, अगर वहां नमाज़-ए-जनाज़ा के लिए चबूतरा बनाया जाए तो जायज़ होगा या कैसे?

जवाब: कब्रों पर नमाज़ हरगिज़ जायज़ नहीं, न उन पर कूड़ा-करकट डालना जायज़ है। इसका बंदोबस्त करें, मना करें। हाँ, अगर वहाँ या उसके पास कोई ऐसा ज़मीन का टुकड़ा हो जहाँ कब्रें नहीं थीं, तो वहाँ नमाज़ की इजाज़त है। और अल्लाह तआला सबसे बेहतर जानता है।

اور دوسرے قول پر صورت مذکورہ میں یہ حرج تو نہیں اس لئے کہ میت بیرونِ مسجد ہے فلا کراہۃ فی الصلوۃ قال فی الغنیۃ ھو المختار وذکر علیہ العمل (تو نماز میں کراہت نہیں، غنیہ میں ہے: یہی مختار ہے اور اسی پر عمل بتایا۔ ت) مگر جب فرشِ مسجد چاروں طرف محیط ہے تو اس پٹڑی تک جنازے کا لے جانا مسجد کے اندر ہی ہوگا اور یہ باتفاق حنفیہ مکروہ ہے۔ یہ سب اُس وقت ہے کہ وسطِ مسجد میں حوض خود بانیِ مسجد نے قبل مسجدیت بنایا ہو، ورنہ اگر مسجد ہوچکی اس کے بعد وسط میں حوض بنوایا اگرچہ بانی نے بنایا ہو تو اس کا بنانا حرام، اور اس سے وضو کرنا حرام، اور نمازِ جنازہ بالاتفاق مکروہ ہے وتحقیقہ فی ماعلقنا علی ردالمحتار (اس کی تحقیق ہمارے حاشیہ ردالمختار میں ہے۔ ت) واللہ تعالٰی اعلم۔

مسئلہ ۸۲: از بانٹوھ ملک کاٹھیا واڑ مولوی عبد المطلب صاحب یکم شعبان ۱۳۳۶ھ

یہاں نمازِ جنازہ کے لئے جو جگہ تعمیر کی گئی شہر سے دُور فاصلہ پر ہے، بارش اور گرمی میں بڑی دقت ہوتی ہے لہٰذا برائے رفع تکالیف بستی کے جو پرانا صد سالہ قبرستان ہے کہ جس کے اندر قبریں منہدم ہوچکی ہیں، بسبب انہدام کے لوگ کوڑا کرکٹ اس کے اندر ڈالتے ہیں اگر وہاں نمازِ جنازہ کے لئے چبوترا بنایا جائے تو جائز ہوگا یا کیونہ؟

الجواب: قبور پر نماز ہرگز جائز نہیں، نہ اُن پر کوڑا کرکٹ ڈالنا جائز، بند وبست کریں، ممانعت کریں، ہاں اگر وہاں یا اس کے قریب کوئی قطعہ، زمین ایسا ہو جہاں قبریں نہ تھیں تو وہاں نماز کی اجازت ہے۔ واللہ تعالٰی اعلم۔

Volume 9 Fatawa Razawiyya

Al-Nahy al-Haajiz 'an Tikrar Salat al-Jana'iz (1315 AH) (The prohibition preventing the repetition of the funeral prayer)

Issue 83: From Katra Pargana Munawwar, Post Office Obra, District Gaya, sent by Maulana Maulvi Karim Raza Sahab, Rajab 1315 AH.

To the most noble presence of the leader of scholars, the crown of the virtuous, the gatherer of formal and spiritual perfections, Janab Maulana Maulvi Ahmad Raza Khan Sahab, may Allah Almighty continue His grace. Peace be upon you!

The necessary request is that Maulvi Ismail, the nephew and student of Maulvi Nazir Husain Sahab Dehlvi, who has been residing in the town of Marhat for a long time, is a non-conformist (Ghayr Muqallid) and wishes to bring the poor, simple conformists (Muqallideen) into his sect. Consequently, recently, when a local chief's daughter died, the funeral prayer was offered again at his insistence. He publicly stated that for three days, the prayer can be performed as many times as one desires. Therefore, I am troubling your Presence to write an answer to this inquiry that may silence and overwhelm the opponents. Also, please write the translation of the passages because the people of the place where this fatwa will be sent know Urdu and Persian.

Question: What do the scholars of religion and the jurists of the bright Shari'ah say on this issue: that the guardian of the deceased (Wali) offered the funeral prayer once with the people, then for a second time, he offered it with the same people and other people under the leadership of another person. Is this repetition of the funeral prayer permissible or not? And if the guardian was unaware of this issue and, due to the insistence of a scholar, he offered the prayer again, will he be a sinner, or the scholar, or neither of them?

जिल्द नहम (खंड 9) फ़तावा रज़विया

अल-नह्युल हाज़िज़ु अन तकरारि सलातिल जनाइज़ (1315 हिजरी) (जनाज़ा की नमाज़ के दोहराव को रोकने वाली मनाही)

मसला 83: कटरा परगना मुनव्वरा, डाकखाना ओबरा, जिला गया से, प्रेषक मौलाना मौलवी करीम रज़ा साहब, रजब 1315 हिजरी।

मौलाना साहिब, विद्वानों के शिरोमणि, श्रेष्ठता के ताज, बाह्य और आंतरिक पूर्णता के संगम, जनाब मौलाना मौलवी अहमद रज़ा खान साहिब की पवित्र सेवा में, अल्लाह ताला उनके अनुग्रह को बनाए रखे। अस्सलामु अलैकुम!

आवश्यक निवेदन यह है कि मौलवी इस्माइल, जो मौलवी नज़ीर हुसैन साहिब देहलवी के भांजे और शिष्य हैं और लंबे समय से मरहट कस्बे में निवास कर रहे हैं, वे गैर-मुक़ल्लिद हैं और बेचारे गरीब मुक़ल्लिदीन को अपने पंथ में लाना चाहते हैं। अतः हाल ही में एक रईस की लड़की की मृत्यु हो गई, तो उनके आग्रह पर जनाज़ा की नमाज़ दोबारा पढ़ी गई। उन्होंने सरेआम कह दिया कि तीन दिनों तक जितनी बार जी चाहे नमाज़ पढ़ें। इसलिए हुज़ूर को कष्ट दे रहा हूँ कि इस इस्तफ़्ता (प्रश्न) का ऐसा उत्तर लिखें जो विरोधियों को निरुत्तर और शांत कर दे। और इबारतों (उद्धरणों) का अनुवाद भी लिखें क्योंकि जिस स्थान पर यह फतवा भेजा जाएगा, वहाँ के लोग उर्दू और फारसी जानते हैं।

प्रश्न: धर्म के विद्वान और शरीयत के मुफ्ती इस मसले में क्या फरमाते हैं कि मृतक के वली (अभिभावक) ने एक बार लोगों के साथ जनाज़ा की नमाज़ पढ़ी, फिर दूसरी बार उन्हीं लोगों और अन्य लोगों के साथ किसी दूसरे व्यक्ति की इमामत में जनाज़ा की नमाज़ पढ़ी। तो क्या जनाज़ा की नमाज़ का यह दोहराव जायज़ है या नहीं? और यदि वली इस मसले से अनभिज्ञ था और किसी आलिम (विद्वान) के आग्रह के कारण उसने दोबारा नमाज़ पढ़ी, तो क्या वह गुनहगार होगा या आलिम, या दोनों में से कोई नहीं?

पृष्ठ 948 का 270 मजलिस-ए-दावत-ए-इस्लामी

جلد نہم فتاویٰ رضویہ

النهي الحاجز عن تکرار صلاۃ الجنائز ۱۳۱۵ھ (نماز جنازہ کی تکرار روکنے والی ممانعت)

مسئلہ ۸۳: از کٹرہ پرگنہ منورہ ڈاکخانہ اوبرہ ضلع گیا مرسلہ مولنا مولوی کریم رضا صاحب رجب ۱۳۱۵ھ

بملاحظہ اقدس مولانا صاحب راس العلماء تاج الفضلاء جامع کمالات صوریہ و معنویہ جناب مولانا مولوی احمد رضا خان صاحب ادام اللہ تعالیٰ بالافاضۃ، السلام علیکم!

عرض ضروری یہ ہے مولوی اسماعیل مولوی نذیر حسین صاحب دہلوی کے بھانجے اور شاگرد جو ایک مدت سے قصبہ مرہٹ میں اقامت رکھتے ہیں غیر مقلد ہیں اور بیچارے غریب مقلدین کو اپنے مذہب میں لانا چاہتے ہیں، چنانچہ فی الحال ایک رئیس کی لڑکی مرگئی تو ان کے اصرار سے دوبارہ نماز جنازہ پڑھی گئی انہوں نے علی رؤس الاشہاد کہہ دیا کہ تین روز تک جتنی بار جی چاہے نماز پڑھے۔ اس لئے حضور کو تکلیف دیتا ہوں کہ جواب استفتاء تحریر فرمایئے کہ افحام واسکات مخالفین ہو۔ اور ترجمہ عبارات بھی تحریر فرمائے کہ جس مقام میں یہ فتوی بھیجا جائے گا وہاں کے لوگ اردو، فارسی جانتے ہیں۔

سوال: کیا فرماتے ہیں علمائے دین و مفتیان شرع متین اس مسئلہ میں کہ ولی میت نے ایک بار نماز جنازہ کی لوگوں کے ساتھ پڑھی پھر دوسری بار انہی لوگوں کے ساتھ اور دوسرے لوگوں کے ساتھ بامامت شخص آخر نماز جنازہ پڑھی، تو یہ تکرارِ نمازِ جنازہ جائز ہے یا نہیں؟ اور اگر ولی اس مسئلہ سے ناواقف ہے اور بسبب اصرار کسی عالم کے اس نے دوبارہ نماز پڑھی تو وہ گناہگار ہوگا یا عالم یا دونوں میں کوئی نہیں؟

Fatawa Razawiyya Volume 9

And is the funeral prayer permissible up to three days or not? State [the ruling] and be rewarded.

The Answer:

All praise is due to Allah, Who made the earth a gathering place, and honored the believers in life and death. And blessings and peace be upon him who inhabited hearts with his connections and illuminated the graves with his prayer, and upon all his family, companions, household, and party. Amen!

(Translation: All praise is for Allah Almighty who made the earth for gathering, and bestowed honor upon the people of faith in both the states of life and death, and peace and blessings be upon those who inhabited hearts with their relationships and enlightened graves with their prayer, and upon their progeny, their companions, their family, their group, blessings and peace be upon all, O Allah! Accept it.)

Repetition of the funeral prayer is absolutely impermissible and unauthorized according to our noble Imams (may Allah be pleased with them), but if a stranger without right has prayed it without the permission and without following the guardian (Wali), then the guardian can repeat it. The exalted Imam Burhan al-Millah wa al-Din Abu Bakr states in al-Hidayah:

[Arabic quote]: "If someone other than the guardian or the ruler prays, the guardian may repeat it if he wishes, because the right belongs to the guardians. If the guardian has prayed, it is not permissible for anyone to pray after him because the obligation is fulfilled by the first [prayer] and performing it as a voluntary (Nafl) prayer is not prescribed. That is why we have seen the people from the last of them onward leave the prayer at the grave of the Prophet (may Allah the Exalted grant him peace and blessings), and he is today as he was placed [in the grave]."

(Urdu Translation): That is, if people other than the guardian and the ruler of Islam perform the funeral prayer, then the guardian has the choice to repeat it because the right belongs to the guardians, and if the guardian has already prayed, then it is not permissible for anyone else as the obligation has been fulfilled by the first prayer, and performing this prayer as voluntary (Nafl) is not prescribed. Therefore, we see that all the Muslims of the world have given up praying at the sacred tomb of the Prophet (may Allah the Exalted grant him peace and blessings), even though the Prophet today is just as he was on the day he was laid in the blessed grave.

The absolute research scholar Imam states in Fath al-Qadir:

[Arabic quote]: "If it were prescribed, then all created beings—the scholars, the righteous, and the seekers—would not have turned away from it."

(Urdu Translation): Meaning, if the repetition of funeral prayer were prescribed, then the whole world would not have refrained from praying at the sacred tomb, in which [there are] scholars, the righteous, and the seekers.

Footnote: 1 Al-Hidayah, Chapter on Prayer for the Deceased, published by al-Maktabat al-Arabiyyah Karachi, 1/160.

फ़तावा रज़विया जिल्द 9

और क्या जनाज़ा की नमाज़ तीन दिन तक जायज़ है या नहीं? बयान करें, पुण्य मिलेगा।

उत्तर:

तमाम प्रशंसा अल्लाह के लिए है जिसने ज़मीन को इकट्ठा करने वाली बनाया, और ईमान वालों को जीवन और मृत्यु दोनों स्थितियों में सम्मान दिया। और दुरूद व सलाम हो उन पर जिन्होंने अपने संबंधों से दिलों को आबाद किया और अपनी नमाज़ से कब्रों को रोशन किया, और उनके सभी वंशज, साथियों, घर वालों और समूह पर। आमीन!

(अनुवाद: तमाम खूबियाँ अल्लाह तआला के लिए हैं जिसने ज़मीन को समेटने वाली बनाया, और ईमान वालों को ज़िन्दगी और मौत दोनों हालतों में इज़्ज़त बख्शी, और दुरूद व सलाम हो उन पर जिन्होंने दिलों को अपने ताल्लुक़ात से आबाद फ़रमाया और क़ब्रों को अपनी नमाज़ से रौशन किया, और उनकी आल, उनके असहाब, उनके अहल, उनके गिरोह सब पर दुरूद व सलाम, इलाही! क़बूल फ़रमा।)

जनाज़ा की नमाज़ को दोबारा पढ़ना हमारे इमामों (अल्लाह उन पर प्रसन्न हो) के नज़दीक बिल्कुल जायज़ और शरीयत के ख़िलाफ़ है, सिवाय उस सूरत के जब किसी अधिकार न रखने वाले अजनबी ने वली (अभिभावक) की इजाज़त और पैरवी के बिना नमाज़ पढ़ ली हो, तो वली उसे दोबारा पढ़ सकता है। महान इमाम बुरहान अल-मिल्लह व अल-दीन अबू बक्र 'हिदाया' में फ़रमाते हैं:

[अरबी उद्धरण]: "अगर वली और सुल्तान के अलावा कोई और नमाज़ पढ़े तो वली चाहे तो उसे दोबारा पढ़े क्योंकि हक़ वलियों का है। और अगर वली नमाज़ पढ़ चुका हो तो किसी और के लिए इसके बाद नमाज़ पढ़ना जायज़ नहीं है क्योंकि फ़र्ज़ तो पहली नमाज़ से अदा हो चुका और नफ़्ल के तौर पर इसे पढ़ना शरीयत में मुक़र्रर नहीं है। इसीलिए हमने देखा कि लोगों ने पिछली पीढ़ी से लेकर आज तक नबी (सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम) के रौज़ा-ए-अक़दस पर नमाज़ पढ़ना छोड़ दिया है, हालाँकि हुज़ूर आज भी वैसे ही हैं जैसे जिस दिन क़ब्र-ए-मुबारक में रखे गए थे।"

(उर्दू अनुवाद): यानी अगर वली और हाकिम-ए-इस्लाम के सिवा और लोग जनाज़ा की नमाज़ पढ़ लें तो वली को दोबारा पढ़ने का अख्तियार है कि हक़ वलियों का है और अगर वली पढ़ चुका तो अब किसी को जायज़ नहीं कि फ़र्ज़ तो पहली नमाज़ से अदा हो चुका और यह नमाज़ नफ़्ल के तौर पर

पढ़नी निर्धारित नहीं है। लिहाज़ा हम देखते हैं कि तमाम जहान के मुसलमानों ने नबी (सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम) के मज़ार-ए-अक़दस पर नमाज़ छोड़ दी, हालाँकि हुज़ूर आज भी वैसे ही हैं जैसे जिस दिन क़ब्र-ए-मुबारक में रखे गए थे।

इमाम मुहक़्क़िक़ अली अल-इतलाक़ 'फ़तह अल-क़दीर' में फ़रमाते हैं:

[अरबी उद्धरण]: "अगर यह जायज़ होता तो तमाम मख़लूक़—उलेमा, नेक लोग और चाहने वाले—इससे मुँह न मोड़ते।"

(उर्दू अनुवाद): यानी अगर जनाज़ा की नमाज़ को दोहराना शरीयत में होता तो मज़ार-ए-अक़दस पर नमाज़ पढ़ने से तमाम दुनिया मुँह न मोड़ती, जिसमें उलेमा, सालिहीन और रागेबीन (चाहने वाले) शामिल हैं।

पाद-टिप्पणी: 1 अल-हिदाया, मृतक पर नमाज़ का अध्याय, अल-मकतब अल-अरबिया कराची द्वारा मुद्रित, 1/160.

فتاوٰی رضویہ جلد نہم

اور نمازِ جنازہ تین روز تک جائز ہے یا نہیں؟ بینوا توجروا۔

الجواب:

الحمد للہ الذی جعل الارض کفاتا و اکرم المومنین احیاء و امواتا والصلوۃ والسلام علی من عمر القلوب بصلوتہ ونور القلوب بصلوتہ وعلی الہ وصحبہ واھلہ وحزبہ اجمعین اٰمین!

سب خوبیاں اللہ تعالٰی کے لئے جس نے زمین کو جمع کرنے والی بنایا، اور اہل ایمان کو حیات و موت دونوں حالتوں میں عزت بخشی، اور درود و سلام ہو ان پر جنہوں نے دلوں کو اپنے تعلقات سے آباد فرمایا اور قبروں کو اپنی نماز سے روشن کیا، اور ان کی آل، ان کے اصحاب، ان کے اہل، ان کے گروہ سب پر درود و سلام، الٰہی! قبول فرما (ت)

نمازِ جنازہ کی تکرار ہمارے ائمہ کرام رضی اللہ تعالٰی عنہم کے نزدیک تو مطلقاً ناجائز و نامشروع ہے، مگر جب کہ اجنبی غیر حق نے بلا اذن و بلا متابعت ولی پڑھ لی ہو تو ولی اعادہ کر سکتا ہے۔ امام اجل برہان الملہ والدین ابوبکر ہدایہ میں فرماتے ہیں:

ان صلی غیر الولی و السلطان اعاد الولی ان شاء لان الحق للاولیاء وان صلی الولی لم یجز لاحد ان یصلی بعدہ لان الفرض یتأدی بالاول والتنفل بھا غیر مشروع و لھذا رأینا الناس ترکوامن آخرھم الصلوۃ علی قبر النبی صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم وھو الیوم کما وضع۔

یعنی اگر ولی و حاکم اسلام کے سوا اور لوگ نمازِ جنازہ پڑھ لیں تو ولی کو اعادہ کا اختیار کہ حق اولیاء کا ہے اور اگر ولی پڑھ چکا تو اب کسی کو جائز نہیں کہ فرض تو پہلی نماز سے ادا ہو چکا اور یہ نماز بطور نفل پڑھنی مشروع نہیں ولہٰذا ہم دیکھتے ہیں کہ تمام جہان کے مسلمانوں نے نبی

صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کے مزار اقدس پر نماز چھوڑ دی حالانکہ حضور آج بھی ویسے ہی ہیں جیسے جس دن قبر مبارک میں رکھے گئے تھے۔

امام محقق علی الاطلاق فتح القدیر میں فرماتے ہیں:

لو کان مشروعا لما اعرض الخلق کلھم من العلماء والصالحین والراغبین

یعنی اگر نمازِ جنازہ کی تکرار مشروع ہوتی تو مزارِ اقدس پر نماز پڑھنے سے تمام جہان اعراض نہ کرتا جس میں العلماء و الصالحین و الراغبین۔

1 الہدایہ فصل فی الصلوۃ علی المیت مطبوعہ المکتبۃ العربیۃ کراچی ۱/۱۶۰

Fatawa Razawiyya, Volume 9

“In seeking proximity to him (the Prophet, peace and blessings be upon him) through various paths from him, this is an apparent evidence for it, so it is obligatory to consider it.” Scholars, pious people, and those servants who have the desire to gain proximity to the court of the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) in various ways, then this is an open proof of the legitimacy of repetition; therefore, its consideration is mandatory.

I say: The gist of the matter is that the funeral prayer after burial at the grave is the same as it is before burial. Therefore, if someone was buried without the prayer being performed, it is obligatory to perform the funeral prayer at their grave as long as the predominant opinion is that the body has not decomposed. Performing the funeral prayer is a right of every Muslim; the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) says:

“The rights of a Muslim over another Muslim are five, and he mentioned among them following the funeral processions.” And it will come [later]. There are five rights of a Muslim over another Muslim, in which he also mentioned funeral prayers, the hadith is coming ahead. (T)

Secondly, there is such grace in the prayers of accepted servants that those who pray are forgiven. We will soon mention several ahadith from Anas bin Malik, Abdullah bin Jabir, and Salman Farsi (may Allah be pleased with them) that the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) says: “The first gift given to a righteous believer is that all those who prayed his funeral prayer are forgiven. Allah Almighty feels shy to punish any of them.” Now, if you consider the right, whose right in the whole world can be equal to the right of Muhammad the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him)? And if you look at the grace, whose prayer on an accepted person can be equal to the prayer of the Best of Messengers (peace and blessings of Allah be upon him)? Yes, what prevents praying at the grave is that such a period of time has passed in which the safety of the deceased's body is no longer thought likely. Some narrations have estimated this as three days after burial, but the correct view is that there is no fixed period; when the safety or lack of safety becomes doubtful, the prayer will become impermissible. But regarding the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him), God forbid, there is no possibility of this at all; today too, he is certainly just as he was on the blessed day of burial. He himself says (peace and blessings of Allah be upon him):

“Verily, Allah has forbidden the earth to consume the bodies of the Prophets.” Narrated by Ahmad, Abu Dawood, and al-Nasa'i. Undoubtedly, Allah Almighty has forbidden the earth from eating the blessed bodies of the Prophets (peace and blessings be upon them).

1. Fath al-Qadir, chapter on prayer over the deceased, published by Maktabah Nooriya Razawiyya, Sukkur, 2/84.
2. Musnad Ahmad bin Hanbal, narrated from Abu Hurairah (may Allah be pleased with him), published by Dar al-Fikr, Beirut, 2/540.
3. Sunan Ibn Majah, mention of his passing and burial (peace and blessings of Allah be upon him), published by HM Saeed Company, Karachi, p. 119.

फ़तावा रज़विया, जिल्द नहम (9)

“विभिन्न तरीकों से उनके(नबी स.अ.व.) करीब जाने में, यह इसके लिए एक प्रत्यक्ष प्रमाण है, इसलिए इस पर विचार करना अनिवार्य है।” विद्वान, पुण्य आत्माएं और वे सेवक जो विभिन्न प्रकार से नबी सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम की बारगाह में निकटता प्राप्त करने की इच्छा रखते हैं, तो यह पुनरावृत्ति की वैधता पर एक खुला प्रमाण है, अतः इसका विचार अनिवार्य हुआ।

मैं कहता हूँ: बात का सार यह है कि जनाज़ा की नमाज़ जैसी दफ़न से पहले है वैसी ही दफ़न के बाद कब्र पर है। इसलिए अगर किसी व्यक्ति को बिना नमाज़ पढ़े दफ़न कर दिया गया तो फ़र्ज़ है कि उसकी कब्र पर जनाज़ा की नमाज़ पढ़ें जब तक कि प्रबल संभावना हो कि शरीर बिगड़ा नहीं होगा और जनाज़ा की नमाज़ एक तो हर मुसलमान का हक़ है, रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम फ़रमाते हैं:

“एक मुसलमान के दूसरे मुसलमान पर पाँच हक़ हैं और उनमें से जनाज़े के पीछे चलना उल्लेख किया।” और यह आगे आएगा। मुसलमान के मुसलमान पर पाँच हक़ हैं, उनमें जनाज़ा की नमाज़ का भी ज़िक्र फ़रमाया, हदीस आगे आ रही है। (त)

दूसरे, मक़बूल बंदों की नमाज़ में वह फ़ज़ल (कृपा) है कि पढ़ने वालों की मग़फ़िरत (क्षमा) हो जाती है। हम जल्द ही अनस बिन मालिक, अब्दुल्लाह बिन जाबिर और सलमान फ़ारसी रज़ियल्लाहु अन्हुम से कई हदीसें ज़िक्र करेंगे कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम फ़रमाते हैं: “नेक मोमिन को पहला तोहफ़ा यह दिया जाता है कि जितने लोगों ने उसके जनाज़े की नमाज़ पढ़ी सब बख़्श दिए जाते हैं। अल्लाह अज़्ज़वजल हया फ़रमाता है कि उनमें से किसी पर अज़ाब करे।” अब अगर हक़ का लिहाज़ कीजिए तो पूरे जहान में मुहम्मद रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम के हक़ के बराबर किसका हो सकता है, और फ़ज़ल को देखिये तो अफ़ज़लुल मुरसलीन सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम के नमाज़ पढ़ने के बराबर किस मक़बूल पर नमाज़ पढ़नी हो सकती है। हाँ, कब्र पर नमाज़ पढ़ने से रोकने वाली चीज़ यह है कि इतनी मुद्दत गुज़र जाए जिसमें मय्यित का बदन सलामत होने का गुमान न रहे, इसी को कुछ रिवायतों में दफ़न के बाद तीन दिन से तय किया गया है, और सही यह है कि कोई मुद्दत निश्चित नहीं, जब सलामती और अदम-सलामत (असुरक्षा) संदिग्ध हो जाए तो नमाज़ नाज़ायज़ हो जाएगी। लेकिन रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम के बारे में मआज़अल्लाह इसका

रत्ती भर भी अंदेशा नहीं, वह आज भी यकीनन वैसे ही हैं जैसे मुबारक दफ़न के दिन थे। वह स्वयं इरशाद फ़रमाते हैं सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम:

“बेशक अल्लाह ने ज़मीन पर हराम कर दिया है कि वह नबियों के शरीरों को खाए।” रिवायत अहमद, अबू दाऊद और नसाई। बेशक अल्लाह तआला ने ज़मीन पर हराम फ़रमा दिया है अंबिया अलैहिमुस्सलाम का जिस्म मुबारक खाना।

1. फ़तहुल क़दीर, मय्यित पर नमाज़ का अध्याय, मकतबा नूरिया रज़विया, सुक्कुर, 2/84।
2. मुसनद अहमद बिन हंबल, अबू हुरैरा रज़ियल्लाहु अन्हु से वर्णित, दारुल फ़िक्र, बेरूत, 2/540।
3. सुनन इब्न माजा, उनके देहावसान और दफ़न का ज़िक्र (स.अ.व.), एचएम सईद कंपनी, कराची, पृ. 119।

पृष्ठ 272/948

فِی التَّقْرِیبِ اِلَیْہِ عَلَیْہِ الصَّلٰوۃُ وَ السَّلَامُ بِاَنْوَاعِ الطُّرُقِ عَنْہُ فَہٰذَا دَلِیْلٌ ظَاہِرٌ عَلَیْہِ فَوَجَبَ اِعْتِبَارُہٗ ۱- علماء و صلحاء اور وہ بندے ہیں جو طرح طرح سے نبی صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم کی بارگاہ میں تقرب حاصل کرنے کی رغبت رکھتے ہیں تو یہ تکرار کی مشروعی پر کھلی دلیل ہے پس اس کا اعتبار واجب ہوا۔

اقول: حاصل کلام یہ کہ نماز جنازہ جیسی قبل دفن ویسی بعد دفن قبر پر۔ ولہذا اگر کوئی شخص بے نماز پڑھے دفن کردیا گیا تو فرض ہے کہ اس کی قبر پر نماز جنازہ پڑھیں جب تک ظن غالب رہے کہ بدن بگڑ نہ گیا ہو گا اور نماز جنازہ ایک تو ہر مسلمان کا حق ہے، رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم فرماتے ہیں:

حق المسلم علی المسلم خمس وذکر منہا اتباع الجنائز ۲ و سیأتی۔ مسلمان کے مسلمان پر پانچ حق ہیں، ان میں نماز جنازہ کو بھی ذکر فرمایا، حدیث آگے آرہی ہے۔ (ت)

دوسرے مقبول بندوں کی نماز میں وہ فضل ہے کہ پڑھنے والوں کی مغفرت ہو جاتی ہے۔ ہم عنقریب انس بن مالک و عبد اللہ بن جابر و سلمان فارسی رضی اللہ تعالٰی عنہم سے متعدد احادیث ذکر کریں گے کہ رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم فرماتے ہیں: "مومنِ صالح کو پہلا تحفہ یہ دیا جاتا ہے کہ جتنے لوگوں نے اس کے جنازہ کی نماز پڑھی سب بخش دئے جاتے ہیں۔ اللہ عزوجل حیا فرماتا ہے کہ ان میں کسی پر عذاب کرے" اب اگر حق کا لحاظ کیجئے تو محمد رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم کے حق کے برابر تمام جہان میں کس کا ہو سکتا ہے، اور فضل کو دیکھئے تو افضل المرسلین صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم کے نماز پڑھنے کے برابر کس مقبول پر نماز پڑھنی ہو

سکتی ہے، ہاں قبر پر نماز پڑھنے سے مانع یہ ہوتا ہے کہ اتنی مدت گزر جائے جس میں میت کا بدن سلامت ہونا مظنون نہ رہے، اسی کو بعض روایات میں دفن کے بعد تین دن سے تقدیر کیا، اور صحیح یہ کہ کچھ مدت معین نہیں، جب سلامت و عدم سلامت مشکوک ہو جائے نماز ناجائز ہو جائیگی، مگر رسول اللہ صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کے بارے میں معاذ اللہ اس کا اصلاً احتمال نہیں وہ آج بھی یقیناً ایسے ہی ہیں جیسے روزِ دفن مبارک تھے۔ وہ خود ارشاد فرماتے ہیں صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم:

ان اللہ حرّم علی الارض ان تأکل اجساد الانبیاء ۳- رواہ احمد و ابوداؤد والنسائی بیشک اللہ تعالیٰ نے زمین پر حرام فرمادیا ہے انبیاء علیہم الصلوٰۃ والسلام کا جسم مبارک کھانا۔

۱ فتح القدیر فصل فی الصلوۃ علی المیت مطبوعہ المکتبہ نوریہ رضویہ سکھر ۲/۸۴ ۲ مسند احمد بن حنبل مروی از ابوہریرہ رضی اللہ تعالیٰ عنہ مطبوعہ دارالفکر بیروت ۵۴۰/۲ ۳ سنن ابن ماجہ ذکر وفاتہ ودفنہ صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم مطبوعہ ایچ ایم سعید کمپنی کراچی ص ۱۱۹

Fatawa Razawiyya, Volume 9

[Top Section] Arabic: And Ibn Majah, Ibn Khuzaymah, Ibn Hibban, Al-Hakim, Ad-Daraqutni, and Abu Nu'aym [narrated it]. Ibn Khuzaymah, Ibn Hibban, Al-Hakim, Ad-Daraqutni, and Ibn Dihyah declared it authentic (Sahih), and Abdul Ghani Al-Mundhiri and others declared it good (Hasan). Urdu Translation: Imam Ahmad, Abu Dawud, Nasa'i, Ibn Majah, Ibn Khuzaymah, Ibn Hibban, Hakim, and Abu Nu'aym narrated it. Ibn Khuzaymah, Ibn Hibban, Hakim, Daraqutni, and Ibn Dihyah declared it Sahih, and Abdul Ghani and Mundhiri etc. said it is Hasan. (T)

[Main Text] When the impediment is absent and the requirement is present with such strength, then if the repetition of the funeral prayer (Janaza) were permissible in Sharia, then from the time of the Companions and Successors until today, all the scholars, saints, and righteous people across all ranks throughout the world, and the lovers of Mustafa (may peace and blessings of Allah be upon him), would not have had a consensus (ijma) on its omission. This consensus includes millions of servants of God who have passed away and those who still exist, whose day and night concern is to follow those methods as far as possible to gain proximity in the court of Mustafa (may peace and blessings of Allah be upon him). Consequently, this thirteen-hundred-year global consensus is a clear proof that the repetition of the funeral prayer is not permissible. For this reason, all the remaining were forced to be deprived of this great grace. The great Imam Nasafi says in "Wafi" and its commentary "Sharah al-Wafi":

[Middle Section] Arabic: None other should pray after him, meaning if the guardian (wali) has prayed, it is not permissible for anyone else to pray after him because the right of the deceased is fulfilled by the first group, and the obligation (fard) is dropped by the first prayer. So, if a second group performs it, it would be a supererogatory (nafl) prayer, and here nafl is not prescribed [for funeral prayers], just like one who has been prayed over once, etc.[1] Urdu Translation: If the guardian has performed the funeral prayer, then it is not permissible for another to perform it after him, because the right of the deceased has been fulfilled by the first group, and the obligation was dropped by the first prayer. Now if another group performs it, it will be nafl, and here nafl is not prescribed, like one whose prayer has already been performed once, etc. (T)

Imam Muhammad Muhammad bin Al-Halabi Ibn Amir al-Hajj states in "Haliyah":

[Bottom Section] Arabic: Our scholars said: When the person who has the guardianship (wilayah) has prayed over the deceased, the prayer over him is not prescribed a second time for anyone else.[2] Urdu Translation: Our scholars have stated: When the rightful person has performed the prayer over the deceased, then the prayer is not prescribed for anyone else.

[Footnotes] [1] Al-Kafi Sharah Al-Wafi [2] Haliyah al-Muhalli Sharah Munyah al-Musalli

फ़तावा रज़विया, जिल्द 9

[शीर्ष अनुभाग] अरबी: और इब्न माजा, इब्न खुज़ैमा, इब्न हिब्बान, अल-हाकिम, अद-दाराकुतनी और अबू नुऐम [ने इसे रिवायत किया]। इब्न खुज़ैमा, इब्न हिब्बान, अल-हाकिम, अद-दाराकुतनी और इब्न दिह्या ने इसे सही (सहीह) कहा, और अब्दुल गनी अल-मुंदिरी और अन्य ने इसे अच्छा (हसन) कहा। उर्दू अनुवाद: इसे इमाम अहमद, अबू दाऊद, नसाई, इब्न माजा, इब्न खुज़ैमा, इब्न हिब्बान, हाकिम और अबू नुऐम ने रिवायत किया। इब्न खुज़ैमा, इब्न हिब्बान, हाकिम, दाराकुतनी और इब्न दिह्या ने इसे सहीह कहा, और अब्दुल गनी और मुंदिरी आदि ने इसे हसन कहा। (त)

[मुख्य पाठ] जब रुकावट मौजूद न हो और ज़रूरत इस हद तक मौजूद हो, तो अगर नमाज़-ए-जनाज़ा का दोहराना शरीयत में जायज़ होता, तो सहाबा और ताबेईन से लेकर आज तक पूरी दुनिया के तमाम तबक़ात के तमाम उलमा, औलिया, सालेहीन और आशिक़ान-ए-मुस्तफ़ा (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) का इसके छोड़ने पर इज्मा (आम सहमति) न होता। इस इज्मा में खुदा के लाखों ऐसे बंदे गुज़रे और अब भी हैं जिन्हें दिन-रात यही फिक्र रहती है कि जहाँ तक मुमकिन हो उन तरीकों पर चलें जिनसे मुस्तफ़ा (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) की बारगाह में तक़र्रुब (निकटता) हासिल हो सके। लिहाज़ा, तेरह सौ साल का यह इज्मा एक स्पष्ट दलील है कि नमाज़-ए-जनाज़ा का दोहराना जायज़ नहीं है, इसीलिए मजबूरन बाकी तमाम लोगों को इस महान फ़ज़ीलत से महरूम रहना पड़ा। इमाम अजल नसफी 'वाफी' और उसकी शरह 'वाफी' में फ़रमाते हैं:

[मध्य अनुभाग] अरबी: उसके बाद कोई और नमाज़ न पढ़े, यानी अगर वली (अभिभावक) ने नमाज़ पढ़ ली तो उसके बाद किसी और के लिए नमाज़ पढ़ना जायज़ नहीं है क्योंकि पहले समूह से मय्यत का हक़ अदा हो चुका और पहली नमाज़ से फ़र्ज़ साक़ित (समाप्त) हो गया। अब अगर दूसरा समूह इसे अदा करे तो यह नफ़्ल होगी, और यहाँ नफ़्ल मशरूअ (निर्धारित) नहीं है, जैसे वह जिसकी एक बार नमाज़ पढ़ी जा चुकी हो, इत्यादि।[1] उर्दू अनुवाद: अगर वली ने नमाज़-ए-जनाज़ा पढ़ ली तो उसके बाद दूसरे का पढ़ना जायज़ नहीं, क्योंकि मय्यत का हक़ पहले फ़रीक़ (समूह) से अदा हो चुका, और पहली नमाज़ से फ़र्ज़ साक़ित हो गया। अब अगर दूसरा फ़रीक़ इसे अदा करे तो यह नफ़्ल होगी और यहाँ नफ़्ल मशरूअ नहीं, जैसे वह जिसकी एक बार नमाज़ पढ़ी जा चुकी हो आदि। (त)

इमाम मुहम्मद मुहम्मद बिन अल-हलबी इब्न अमीरुल हज 'हिलिया' में फ़रमाते हैं:

[निचला अनुभाग] अरबी: हमारे उलमा ने कहा: जब मय्यत पर उस शख़्स ने नमाज़ पढ़ ली जिसे इसका हक़ (विलायत) हासिल था, तो किसी और के लिए दूसरी बार उस पर नमाज़ मशरूअ (जायज़) नहीं है।² उर्दू अनुवाद: हमारे उलमा ने फ़रमाया जब मय्यत पर साहब-ए-हक़ नमाज़ पढ़ चुके फिर और कोई उस पर नमाज़ मशरूअ नहीं।

[पादलेख] ¹ अल-काफ़ी शरह अल-वाफ़ी ² हिलिया अल-मुहल्ली शरह मुन्यात अल-मुसल्ली

فتاوی رضویہ، جلد نہم

[اوپری حصہ] عربی: وابن ماجة وابن خزيمة وابن حبان والحاكم والدارقطني وابونعيم و صححه ابن خزيمة وابن حبان والحاكم والدارقطني وابن دحية و حسنه عبدالغني المنذري وغيرهم۔ اردو ترجمہ: اسے امام احمد، ابوداؤد، نسائی، ابن ماجہ، ابن خزیمہ، ابن حبان، حاکم، اور ابونعیم نے روایت کیا۔ ابن خزیمہ، ابن حبان، حاکم دار قطنی اور ابن دحیہ نے صحیح کہا، اور اسے عبدالغنی اور منذری وغیر ہم نے حسن کہا(ت)

[اصل عبارت] جب مانع مفقود اور مقتضی اس درجہ قوت سے موجود، تو اگر نماز جنازہ کی تکرار شرع میں جائز ہوتی تو صحابہ و تابعین سے لے کر آج تک تمام جہان تمام طبقات کے تمام علماء اور اولیاء و صلحاء اور عاشقان مصطفی صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کا اس کے ترک پر اجماع کیا معنی، جن میں لاکھوں بندے خدا کے وہ گزرے اور اب بھی ہیں جنہیں دن رات یہی فکر رہتی ہے کہ جہاں تک مل سکیں وہ طریقے بجالائیں کہ مصطفی صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کی بارگاہ میں تقرب پائیں، لاجرم تیرہ سو برس کا یہ اجماع کلی دلیل ظاہر ہے کہ تکرار نماز جنازہ جائز نہیں، اس لئے مجبوراً سب باقی ماندہ کو اس فضل عظیم سے محروم ہونا پڑا۔ امام اجل نسفی وافی اور اس کی شرح وافی میں فرماتے ہیں :

[درمیانی حصہ] عربی: لم يصل غيره بعده اى ان صلى الولى لم يجز لغيره ان يصلى بعده لان حق الميت يتأدى بالفريق الاول وسقط الفرض بالصلوة الاولى فلو فعله الفريق الثانى لكان نفلا واذا غير مشروع كمن صلى عليه مرة ١ الخ اردو ترجمہ: اگر ولی نے نماز جنازہ پڑھ لی تو اس کے بعد دوسرے کو پڑھنا جائز نہیں، اس لئے کہ میت کا حق پہلے فریق سے ادا ہو چکا، اور پہلی نماز

سے فرض ساقط ہو گیا، اب اگر کوئی دوسرا فریق ادا کرے تو یہ نفل ہوگی اور یہاں نفل مشروع نہیں، جیسے وہ جس کی ایک بار نماز پڑھی جا چکی ہو الخ(ت)

امام محمد محمد محمد بن حلبی ابن امیر الحاج حلیہ میں فرماتے ہیں :

[نچلا حصہ] عربی: قال علماؤنا اذا صلی علی المیت من لہ ولایۃ ذلک لا تشرع الصلوۃ علیہ ثانیا لغیرہ ۲۔ اردو ترجمہ: ہمارے علماء نے فرمایا جب میت پر صاحب حق نماز پڑھ چکے پھر اور کوئی اس پر نماز مشروع نہیں۔

[حواشی] ۱ کافی شرح وافی ۲ حلیۃ المحلی شرح منیۃ المصلی

Fatawa Razawiyya Volume 9

Allama Ibrahim Halabi states in Ghunyah Sharh Munyah:

Arabic Text	Urdu Translation
La yusalla 'alayhi li'alla yu'addi ila tikrar al-salat 'ala mayyit wahid fa'innahu ghayr mashru'[1].	Prayer should not be performed over him so that prayer is not performed twice over one deceased person, as this is not prescribed.

It is stated in Durar Sharh Ghurar and Majma' al-Anhur Sharh Multaqal-Abhur:

Arabic Text	Urdu Translation
Al-fard yuta'adda bi'l-ula wa'l-tanafful biha ghayr mashru'[2].	The obligation was fulfilled by the first prayer, and this prayer is not prescribed as a voluntary (Nafl) one.

It is stated in Durr al-Mukhtar and Fathullah al-Mu'in:

Arabic Text	Urdu Translation
Laysa liman salla 'alayha an yu'ida ma' al-wali li'anna tikraraha ghayr mashru'[3].	One who has already prayed does not have the option to repeat it even with the guardian (wali), because its repetition is not prescribed.

It is stated in Maraqi al-Falah:

Arabic Text	Urdu Translation
La yu'idu ma' lahu haqq al-taqaddum man salla ma' ghayrihi li'anna al-tanafful biha ghayr mashru'[4].	He who has already prayed with someone else should not pray with the one who has the right of precedence, as voluntary prayer is not prescribed in this prayer.

It is stated in Idah and Alamgiriyyah:

Arabic Text	Urdu Translation
La yusalla 'ala mayyit illa marratan wahidah wa'l-tanafful bi-salat al-janazah ghayr mashru'[5].	Prayer should not be performed over a deceased person except once, and performing funeral prayer as a voluntary act is not prescribed.

It is stated in Fatawa Imam Qazi Khan, Zahiriyyah, Sharh Niqayah Birjandi, Khulasah, Al-Walwaljiyyah, At-Tajnis, Al-Waqi'at, and Al-Bahr al-Ra'iq etc.:

Arabic Text	Urdu Translation
In kana al-musalli sultanan aw al-Imam al-A'zam aw al-Qadi aw wali al-misr imam hayyih.	That is, if the King of Islam, the Commander of the Faithful, the Sharia Judge, the Islamic ruler of the city, or the neighborhood Imam has already performed the prayer.

1. Ghunyat al-Mustamli Sharh Munyat al-Musalli, Chapter on Funerals, Published by Sohail Academy Lahore, p. 590.
2. Al-Durar al-Hukkam fi Sharh Ghurar al-Ahkam, Chapter on Funerals, Published by Ahmad Kamil al-Ka'inah in Dar al-Sa'adat Beirut, 1/165.
3. Durr al-Mukhtar, Chapter on Funeral Prayer, Published by Matba' Mujtabai Delhi, 1/123.
4. Maraqi al-Falah with Hashiya al-Tahtawi, Chapter: The Sultan has the most right to the prayer, Published by Noor Muhammad Karkhana Tijarat Kutub Karachi, p. 324.
5. Fatawa Hindiyyah, Section on the Prayer over the Deceased, Published by Noorani Kutub Khana Peshawar, 1/163.

फतावा रज़विया जिल्द नवां

अल्लामा इब्राहिम हलबी गनिया शरह मुनिया में फरमाते हैं:

अरबी पाठ	उर्दू अनुवाद
ला युसल्ला अलैहि लिअल्ला युअद्दी इला तकरार अस्सलात अला मय्यित वाहिद फ़इन्नहु ग़ैर मशरूअ[1]।	उस पर नमाज़ न पढ़ी जाए ताकि एक मय्यत पर दो बार नमाज़ न हो, क्योंकि यह नामशरूअ (अवैध) है।

दुरर शरह ग़ुरर और मजमा अल-अन्हुर शरह मुल्तक़ल-अबहुर में है:

अरबी पाठ	उर्दू अनुवाद
अल-फ़र्ज़ युतअद्दा बिल-उला वत-तनफ़्फ़ुल बिहा ग़ैर मशरूअ[2]।	फर्ज़ तो पहली नमाज़ से अदा हो गया और यह नमाज़ नफ़्ली तौर पर मशरूअ नहीं है।

दुर मुख्तार और फ़तहुल्लाह अल-मुईन में है:

अरबी पाठ	उर्दू अनुवाद
लैसा लिमन सल्ला अलैहा अन युईदा मअल्-वली लिअन्ना तकरारहा ग़ैर मशरूअ[3]।	जो पहले पढ़ चुका वह वली के साथ भी एआदा (दोहराने) का इख़्तियार नहीं रखता क्योंकि इसकी तकरार ग़ैर-मशरूअ है।

मराक़ी अल-फ़लाह में है:

अरबी पाठ	उर्दू अनुवाद
ला युईदु मअ लहु हक़्क़ुत-तक़द्दुम मन सल्ला मअ ग़ैरिही लिअन्ना अत-तनफ़्फ़ुल बिहा ग़ैर मशरूअ[4]।	जो किसी और के साथ पढ़ चुका, वह हक़ रखने वाले के साथ दोबारा न पढ़े क्योंकि इस नमाज़ में नफ़्ल मशरूअ नहीं है।

ईज़ाह और आलमगीरिया में है:

अरबी पाठ	उर्दू अनुवाद
ला युसल्ला अला मय्यित इल्ला मर्रतन वाहिदह वत-तनफ़्फ़ुल बि-सलातिल-जनाज़ा ग़ैर मशरूअ[5]।	किसी मय्यत पर एक बार के सिवा नमाज़ न पढ़ी जाए और नमाज़-ए-जनाज़ा नफ़्ल अदा करना ग़ैर-मशरूअ है।

फ़तावा इमाम क़ाज़ी ख़ान, ज़हीरिया, शरह निक़ाया बिरजंदी, खुलासा, अल-वलवालजिया, अत-तजनीस, अल-वक़िआत और अल-बहररईक वग़ैरा में है:

अरबी पाठ	उर्दू अनुवाद
इन कानल-मुसल्ली सुल्तनान अविल-इमाम अल-आज़म अविल-क़ाज़ी औ वाली अल-मिस्र इमाम हय्यिह।	यानी अगर बादशाह-ए-इस्लाम या अमीर-उल-मोमिनीन या क़ाज़ी-ए-शरअ या इस्लामी हाकिम-ए-मिस्र या इमाम-ए-महल्ला नमाज़ पढ़ चुका हो।

---

1. ग़ुन्यत अल-मुस्तमली शरह मुन्यत अल-मुसल्ली, जनाज़ा का अध्याय, सुहैल अकादमी लाहौर, पृष्ठ 590।
2. अल-दुरर अल-हुक्काम फ़ी शरह ग़ुरर अल-अहकाम, जनाज़ा का अध्याय, दार अल-सआदत बेरूत, 1/165।
3. दुर्रे मुख़्तार, नमाज़-ए-जनाज़ा का अध्याय, मतबा मुजतबाई दिल्ली, 1/123।
4. मराक़ी अल-फ़लाह मअ हाशिया अत-तहातावी, सुल्तान नमाज़ का अधिक हकदार है, नूर मुहम्मद कारख़ाना तिज़ारत कुतुब कराची, पृष्ठ 324।
5. फ़तावा हिन्दिया, मय्यत पर नमाज़ का खंड, नूरानी कुतुब ख़ाना पेशावर, 1/163।

فتاوی رضویہ جلد نہم

علامہ ابراہیم حلبی غنیہ شرح منیہ میں فرماتے ہیں :

لا یصلی علیه لئلا یؤدي الی تکرار الصلوة علی میت واحد فإنه غیر مشروع [1]

اس پر نماز نہ پڑھی جائے کہ ایک میت پر دو بار نماز نہ ہو کہ یہ نامشروع ہے۔

درر شرح غرر ومجمع الانہر شرح ملتقی الابحر میں ہے:

الفرض یتأدی بالأولی والتنفل بهاغیر مشروع [2]

فرض تو پہلی نماز سے ادا ہو گیا اور یہ نماز نفلی طور پر مشروع نہیں۔

در مختار وفتح اللہ المعین میں ہے :

لیس لمن صلی علیها ان یعید مع الولی لان تکرارها غیر مشروع [3]

جو پہلے پڑھ چکا وہ ولی کے ساتھ بھی اعادہ کا اختیار نہیں رکھتا کہ اس کی تکرار غیر مشروع ہے۔

مراقی الفلاح میں ہے :

لا یعید مع له حق التقدم من صلی مع غیره لان التنفل بها غیر مشروع [4]

جو اور کے ساتھ پڑھ چکا صاحبِ حق کے ساتھ نہ پڑھے کہ اس نماز میں نفل مشروع نہیں۔

ایضاح و عالمگیریہ میں ہے:

لا یصلی علی میت الامرة واحدة والتنفل بصلوة الجنازة غیر مشروع [5]

کسی میت پر ایک بار کے سوا نماز نہ پڑھی جائے اور نمازِ جنازہ نفل ادا کرنا غیر مشروع ہے۔

فتاویٰ امام قاضی خان و ظہیریہ و شرح نقایہ برجندی وخلاصہ و والوالجیہ و تجنیس و واقعات و بحر الرائق وغیرہ میں ہے :

ان کان المصلی سلطانا او الامام الاعظم یعنی اگر بادشاہ اسلام یا امیر المومنین یا قاضی شرع یا اوالقاضی او والی المصر امام حیہ اسلامی حاکم مصر یا امامِ محلہ نماز پڑھ چکا

---

۱ غنیۃ المستملی شرح منیۃ المصلی فصل فی الجنائز مطبوعہ سہیل اکیڈمی لاہور ص ۵۹۰ ۲ الدرر الحکام فی شرح غرر الاحکام باب الجنائز مطبوعہ احمد کامل الکائنہ فی دار السعادت بیروت ۱/ ۱۶۵ ۳ در مختار باب صلوۃ الجنائز مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی ۱/ ۱۲۳ ۴ مراقی الفلاح مع حاشیہ الطحطاوی فصل السلطان احق بالصلوۃ مطبوعہ نور محمد کارخانہ تجارت کتب کراچی ص ۳۲۴ ۵ فتاویٰ ہندیہ الفصل فی الصلوۃ علی المیت مطبوعہ نورانی کتب خانہ پشاور ۱/ ۱۶۳

Fatawa Razvia, Volume 9

Arabic Text	Translation / Explanation
Laysa lil-wali an yu'ida (1).	Even the guardian does not have the authority to repeat it.

In Sharh Nuqayah by Allama Quhistani, it is stated: "One should not pray over a deceased person except once" (2). In Siraj al-Wahhaj, al-Bahr al-Ra'iq, Radd al-Muhtar, Jami' al-Rumuz, al-Jawharat al-Nayyirah, al-Hindiyyah, Majma' al-Anhur, etc., it is mentioned:

Arabic Text	Translation / Explanation
And the wording is from al-Bahr citing al-Siraj: "If the guardian prayed over him, it is not permissible for anyone to pray after him." (3)	The words of al-Bahr al-Ra'iq from Siraj al-Wahhaj are: "If the guardian has performed the prayer over him, then it is not permissible for anyone after that to perform the funeral prayer."

In all these books, expressions like 'lam yajuz' (not permissible) and 'la yajuz' (it is not allowed) are used, meaning it is forbidden. Similar statements have appeared in the texts of al-Hidayah. This is also the implication of 'la yusalla' (not to be prayed), 'la yu'idu' (not to be repeated), and 'laysa lahu' (not for him). This is what is meant by 'unprescribed'. However, in this, there is a clear clarification that dispels all doubts and reveals the intended meaning of other texts as well. Likewise, Quduri, Hidayah, Munyah, Wiqayah, Nuqayah, al-Wafi, Kanz, Ghurar, Islah, al-Multaqa, Tanwir, Nur al-Idah—in these twelve and others, there is a clear statement that once the funeral prayer has been performed once, it has passed [and cannot be repeated].

Arabic Text	Translation / Explanation
Mukhtasar: It is permissible for a healthy resident to perform tayammum (dry ablution) when the funeral is present and the guardian is someone else, and he fears that if he engages in [water] purification, he will miss the prayer (4).	(1) Mukhtasar Quduri: Tayammum is permissible for a healthy resident when the funeral arrives and the guardian is someone else, if there is a fear that if he gets busy with wudu, the funeral prayer will be missed.
Hidayah: Tayammum of a healthy person in the city when the funeral is	(2) Hidayah: A healthy person in the city should perform tayammum when the

Arabic Text	Translation / Explanation
present, etc. And he said 'purification' instead of 'wudu', and it is more comprehensive (5).	funeral arrives if there is fear of missing it while being busy with purification. The author of Hidayah used the word "purification" (taharah) instead of "ablution" (wudu), as it is more comprehensive.
Munyah: The healthy person in the city performs tayammum for the funeral prayer if he fears missing it, then it is permissible.	(3) Munyah: A healthy person inside the city...

Footnotes: 1. Al-Bahr al-Ra'iq, Section: The Sultan has more right to lead the prayer, published by H.M. Saeed Company, Karachi, 2/181. 2. Jami' al-Rumuz, Section on Funerals, published by Maktabah Islamiyyah, Gunbad-e-Qamus, Iran, 1/285. 3. Al-Bahr al-Ra'iq, Section: The Sultan has more right to lead the prayer, published by H.M. Saeed Company, Karachi, 2/182. 4. Mukhtasar al-Quduri, Chapter on Tayammum, published by Matba' Majeedi, Kanpur, p. 11. 5. Al-Hidayah, Chapter on Tayammum, published by al-Maktabat al-Arabiyyah, Karachi, 1/38.

फ़तावा-ए-रज़विया जिल्द नहुम (9)

अरबी इबारत **अनुवाद / व्याख्या**

लैसा लिल-वली अन युईदा (1)। वली को भी दोबारा नमाज़ पढ़ने का अधिकार नहीं है।

शरह-ए-नक़ाया अल्लामा कुहिस्तानी में है: "किसी मुर्दे पर एक से ज़्यादा बार नमाज़ न पढ़ी जाए" (2)। सिराज वह्हाज, बहर-उर-रैक़, रद्द-उल-मुहतार, जामि-उर-रुमुज़, जौहरा नैय्यरा, हिन्दिया, मजम-उल-अन्हुर वगैरह में है:

अरबी इबारत	**अनुवाद / व्याख्या**
और अल-बहर के शब्द सिराज के हवाले से हैं: "अगर वली ने उस पर नमाज़ पढ़ ली, तो उसके बाद किसी के लिए नमाज़ पढ़ना जायज़ नहीं (3)।"	सिराज वह्हाज के हवाले से बहर-उर-रैक़ के शब्द हैं कि अगर वली ने उस पर नमाज़ पढ़ ली तो अब उसके बाद किसी को भी जनाज़े की नमाज़ पढ़ना जायज़ नहीं।

इन सब किताबों में 'लम यजुज़' और 'ला यजुज़' के शब्दों में कहा गया है, यानी यह नाजायज़ है। ऐसा ही हिदाया की इबारतों में भी गुज़रा है। और 'ला युसल्ला' (नमाज़ न पढ़ी जाए), 'ला युईदु' (दोहराई न जाए) और 'लैसा लहू' (उसके लिए अधिकार नहीं) का मतलब भी यही है, और 'गैर-मशरूअ' (अवैध) से मुराद भी यही है। लेकिन इसमें साफ़ वज़ाहत है जिससे तमाम शक-ओ-शुबहात दूर हो जाते हैं और बाकी इबारतों का मतलब भी साफ़ हो जाता है। इसी तरह कुदूरी, हिदाया, मुनिया, वक़ाया, नक़ाया, वाफ़ी, कंज़, गुरर, इस्लाह़, मुल्तक़ा, तनवीर, नूर-उल-ईज़ाह़—इन बारह किताबों और इनके अलावा दूसरी किताबों में भी साफ़ तौर पर ज़िक्र है कि जनाज़े की नमाज़ जब एक बार हो गई, तो वह फ़ौत हो गई।

अरबी इबारत	**अनुवाद / व्याख्या**
मुख़्तसर: एक तंदुरुस्त मुक़ीम (निवासी) के लिए तयम्मुम जायज़ है जब जनाज़ा हाज़िर हो और वली कोई और हो, और उसे डर हो कि अगर वह पाकी (वुज़ू) में लगा तो नमाज़ छूट जाएगी (4)।	(1) मुख़्तसर कुदूरी: तंदुरुस्त मुक़ीम के लिए तयम्मुम जायज़ है जब जनाज़ा आ जाए और वली दूसरा हो, और अंदेशा हो कि अगर वुज़ू करने में लगेगा तो जनाज़े की नमाज़ छूट जाएगी।

अरबी इबारत	अनुवाद / व्याख्या
हिदाया: शहर में तंदुरुस्त आदमी का तयम्मुम जब जनाज़ा हाज़िर हो वगैरह। और उन्होंने वुज़ू की जगह 'तहारत' (पाकी) कहा जो ज़्यादा व्यापक है (5)।	(2) हिदाया: तंदुरुस्त आदमी शहर में तयम्मुम कर ले जब जनाज़ा आ जाए और पाकी हासिल करने में मशगूल होने से नमाज़ छूटने का अंदेशा हो। साहिबे हिदाया ने "वुज़ू" की जगह "तहारत" कहा है, यह ज़्यादा व्यापक है।
मुनिया: शहर के अंदर तंदुरुस्त आदमी का जनाज़े की नमाज़ के लिए तयम्मुम करना, अगर उसे नमाज़ छूटने का डर हो, तो जायज़ है।	(3) मुनिया: तंदुरुस्त शहर के अंदर...

हाशिए (Footnotes): 1. बहर-उर-रैक़, फ़स्ल: सुल्तान नमाज़ का ज़्यादा हक़दार है, एच.एम. सईद कंपनी, कराची, 2/181. 2. जामि-उर-रुमुज़, फ़स्ल जनाज़ा, मकतबा इस्लामिया, गुंबद-ए-क़ामूस, ईरान, 1/285. 3. बहर-उर-रैक़, फ़स्ल: सुल्तान नमाज़ का ज़्यादा हक़दार है, एच.एम. सईद कंपनी, कराची, 2/182. 4. मुख़्तसर अल-कुदूरी, बाब-उत-तयम्मुम, मतबा मजीदी, कानपुर, पृ. 11. 5. अल-हिदाया, बाब-उत-तयम्मुम, अल-मकतबतुल अरबिया, कराची, 1/38.

فتاوی رضویہ جلد نہم

| لیس للولی ان یعید (1)۔ | تواب ولی کو بھی اعادہ کا اختیار نہیں۔ |

شرح نقایہ علامہ قہستانی میں ہے: لا یصلی علی میت الا مرۃ (2) (کسی مردے پر ایک سے زیادہ نماز نہ پڑھی جائے۔ سراج وہاج و بحر الرائق و رد المحتار و جامع الرموز و جوہرہ نیرہ و ہندیہ و مجمع الانہر و غیرہ میں ہے:

| واللفظ للبحر عن السراج ان صلی الولی علیه لم یجز ان یصلی احد بعده (3)۔ | سراج وہاج سے بحر الرائق کے الفاظ ہیں کہ اگر ولی نے اس پر نماز پڑھ لی تو اس کے بعد اب کسی کو جائز نہیں کہ نماز جنازہ پڑھے۔ |

ان سب کتابوں میں بلفظ لم یجز، ولا یجوز تعبیر میں فرمایا یعنی ناجائز ہے۔ ایسا ہی عبارات ہدایہ سے گزرا۔ اور یہی لا یصلی ولا یعید ولیس لہ کا مفاد اور یہی غیر مشروع سے مراد، مگر اس میں صاف تصریح ہے جس سے تمام اوہام منصرف اور باقی عبارات کی بھی مراد منکشف۔ یونہی قدوری، ہدایہ، منیہ، وقایہ، نقایہ، وافی، کنز، غرر، اصلاح، الملتقی، تنویر، نور الایضاح۔ ان بارہ متنوں اور ان کی غیر سب میں تصریح ہے کہ نماز جنازہ جب ایک بار ہو چکی، فوت ہو گئی۔

| مختصر: یجوز التیمم للصحیح المقیم اذا حضرت الجنازۃ والولی غیرہ فخاف ان اشتغل بالطھارۃ ان تفوته الصلوۃ (4)۔ | (1) مختصر قدوری: تندرست مقیم کے لئے تیمم جائز ہے جب جنازہ آجائے اور ولی دوسرا ہو، اندیشہ ہو اگر وضو میں لگے تو نماز جنازہ فوت ہو جائے گی۔ | | ھدایۃ، تیمم الصحیح في المصر اذا حضرت الخ وقال بالطھارۃ مکان بالوضوء وھو اشمل (5)۔ | (2) ہدایہ: تندرست شہر میں تیمم کرلے جب جنازہ آجائے طہارت میں مشغول ہو تو فوت کا اندیشہ ہو۔ صاحب

ہدایہ نے "وضو" کی جگہ "طہارت" کہا، یہ زیادہ جامع ہے۔ | | منية، الصحيح في المصر تيمم لصلوة الجنازة اذا خاف الفوت جاز۔ | (3) منیہ: تندرست شہر کے اندر |

1 بحر الرائق فصل السلطان احق بصلوتہ مطبوعہ ایچ ایم سعید کمپنی کراچی ۱۸۱/۲ 2 جامع الرموز فصل فی الجنازۃ مطبوعہ مکتبہ اسلامیہ گنبد قاموس ایران ۲۸۵/۱ 3 بحر الرائق فصل السلطان احق بصلوتہ مطبوعہ ایچ ایم سعید کمپنی کراچی ۱۸۲/۲ 4 مختصر القدوری باب التیمم مطبوعہ مطبع مجیدی کانپور ص ۱۱ 5 الہدایہ باب التیمم مطبوعہ المکتبۃ العربیہ کراچی ۳۸/۱

Fatawa Razawiya, Volume 9

[Main Body - Left Column (Arabic Jurisprudential Text)] Except for the Wali (guardian) 1 - Wiqayah: It is for the muhdith (person without wudu), junub (ritually impure), ha’id (menstruating woman), and nufasa (woman with postpartum bleeding) who are unable to use water due to the fear of missing the funeral prayer, for someone other than the wali. 2- Islah: Similarly, it says they are unable to use water. 3- Nuqayah: That which is missed and has no substitute, like the funeral prayer for someone other than the wali. 4- Kanz: It is valid due to the fear of missing the funeral prayer. 5- Tanwir: Permissible due to fear of missing it. 6- Wafi: Similar to Kanz and adds, 'if he is not the wali'. Ghurar: Permissible for the muhdith, junub, and ha’id who are unable to use water and for fear of missing the funeral prayer for someone other than the wali. 7- Multaqa: Permissible in the city due to fear of missing the funeral prayer. 8- Nur al-Idah: The excuse that makes tayammum permissible is the fear of missing the funeral prayer. 9-

[Main Body - Right Column (Urdu Translation/Explanation)] One shall perform tayammum for the funeral prayer when there is fear of it being missed, but this is not for the wali (guardian). (4) Wiqayah: Tayammum is for the person without wudu, junub, ha’id, and nufasa when they do not have power over water and for someone other than the wali if there is fear of missing the funeral prayer. (5) Islah: Its wording is also like Wiqayah, the difference is that it says 'when they are unable to use water'. (6) Nuqayah: That which is missed and has no substitute, (for it tayammum is permissible). (7) Kanz: Tayammum is correct at the time of fear of missing the funeral prayer. (8) Tanwir: Tayammum is permissible at the time of fear of missing the funeral prayer. (9) Wafi: Its wording is like Kanz, and this addition is made 'when the person himself is not the guardian of the deceased'. (10) Ghurar: Tayammum is permissible for the muhdith, junub, and ha’id who are unable to use water and for someone other than the wali due to the fear of missing the funeral prayer. (11) Multaqa: Due to the fear of missing the funeral prayer. (12) Nur al-Idah: The excuse that makes tayammum permissible is the fear of missing the funeral prayer. (T)

[Footnotes] 1. Munyat al-Musalli, Chapter on Tayammum, published by Maktaba Qadriah Jamia Nizamia Razawiya Lahore, p. 58. 2. Wiqayah with Sharh al-Wiqayah, Chapter on Tayammum, published by Al-Maktabah al-Rashidiyah Delhi, 1/95 to 97. 3. Islah. 4. Nuqayah Mukhtasar al-Wiqayah, Chapter on Tayammum, published by Noor Muhammad Karkhana Tijarat Kutub Khana Karachi, p. 6. 5. Kanz al-Daqaiq, Chapter on Tayammum, published by H.M. Saeed Company Karachi, p. 17. 6. Durr al-Mukhtar

Sharh Tanwir al-Absar, Chapter on Tayammum, published by Matba' Mujtabai Delhi, 1/43. 7. Wafi. 8. Multaqa al-Abhur, Chapter on Tayammum, published by Muassasat al-Risala Beirut, 1/32. 9. Nur al-Idah, Chapter on Tayammum, published by Matba' Alimi Lahore, p. 11.

फ़तावा रज़विया, खंड 9

[मुख्य सामग्री - बायां कॉलम (अरबी न्यायशास्त्र पाठ)] वली (अभिभावक) के अलावा 1 - विक़ायाह: यह मुहदिथ (बिना वज़ू वाले), जुनबी (अनुष्ठानिक रूप से अशुद्ध), हयज़ वाली और निफ़ास वाली महिला के लिए है, जो जनाज़े की नमाज़ छूटने के डर से पानी का उपयोग करने में असमर्थ हैं, वली के अलावा किसी और के लिए। 2- इसलाह: इसी तरह, यह कहता है कि वे पानी का उपयोग करने में असमर्थ हैं। 3- नुक़ायाह: जो छूट जाए और उसका कोई विकल्प न हो, जैसे वली के अलावा किसी और के लिए जनाज़े की नमाज़। 4- कंज़: जनाज़े की नमाज़ छूटने के डर के कारण यह मान्य है। 5- तनवीर: इसे छूटने के डर के कारण जायज़ है। 6- वाफ़ी: कंज़ के समान है और जोड़ता है, 'यदि वह वली नहीं है'। ग़ुरर: मुहदिथ, जुनबी और हयज़ वाली के लिए जायज़ है जो पानी से असमर्थ हों और वली के अलावा किसी और के लिए जनाज़े की नमाज़ छूटने के डर से। 7- मुल्तक़ा: शहर में जनाज़े की नमाज़ छूटने के डर के कारण जायज़ है। 8- नूरुल ईज़ाह: तयम्मुम को जायज़ बनाने वाला उज़्र (कारण) जनाज़े की नमाज़ छूटने का डर है। 9-

[मुख्य सामग्री - दायां कॉलम (उर्दू अनुवाद/व्याख्या)] जनाज़े की नमाज़ के लिए तयम्मुम किया जाएगा जब उसके छूट जाने का डर हो, लेकिन यह वली के लिए नहीं है। (4) विक़ायाह: तयम्मुम बिना वज़ू, जुनबी, हयज़ वाली और निफ़ास वाली महिला के लिए है जब उन्हें पानी पर क़ुदरत न हो और वली के अलावा किसी और को जनाज़े की नमाज़ छूटने का डर हो। (5) इसलाह: इसकी इबारत भी विक़ायाह के मिसल है, फ़र्क यह है कि इसमें कहा है 'जब ये पानी से आजिज़ हों'। (6) नुक़ायाह: जो फ़ौत हो जाए और उसका कोई बदल न हो, (उसके लिए तयम्मुम रवा है)। (7) कंज़: जनाज़े की नमाज़ फ़ौत होने के अंदेशे के वक़्त तयम्मुम दुरुस्त है। (8) तनवीर: जनाज़े की नमाज़ फ़ौत होने के वक़्त तयम्मुम जायज़ है। (9) वाफ़ी: इसकी इबारत कंज़ के मिसल है और यह इज़ाफ़ा है 'जब ख़ुद वली जनाज़ा न हो'। (10) ग़ुरर: तयम्मुम जायज़ है बे-वज़ू, जुनबी और हयज़ वाली के लिए जो पानी से आजिज़ हों और ग़ैर-वली के लिए जनाज़े की नमाज़ के फ़ौत होने के अंदेशे से। (11) मुल्तक़ा: जनाज़े की नमाज़ के फ़ौत होने के अंदेशे से। (12) नूरुल ईज़ाह: तयम्मुम को मुबाह करने वाला उज़्र नमाज़-ए-जनाज़ा फ़ौत होने का अंदेशा है। (त)

[पादलेख] 1. मुन्यतुल मुसल्ली, फ़सल फ़ित तयम्मुम, मक़्तबा कादरिया जामिया निज़ामिया रज़विया लाहौर, पृ. 58. 2. विक़ायाह म'अ शरह अल-विक़ायाह, बाब अत-तयम्मुम, अल-मक़्तबतु रशीदिया दिल्ली, 1/95 से 97. 3. इसलाह. 4. नुक़ायाह मुख़्तसर अल-विक़ायाह, फ़सल अत-तयम्मुम, नूर

मुहम्मद कारख़ाना तिजारत कुतुब ख़ाना कराची, पृ. 6. 5. कंज़ुल दक़ायक़, बाब अत-तयम्मुम, एच.एम. सईद कंपनी कराची, पृ. 17. 6. दुर्रे मुख्तार शरह तनवीरुल अबसार, बाब अत-तयम्मुम, मतबा मुज्तबाई दिल्ली, 1/43. 7. वाफ़ी. 8. मुल्तक़ल अबहुर, बाब अत-तयम्मुम, मुअस्ससतुर रिसाला बेरूत, 1/32. 9. नूरुल ईज़ाह, बाब अत-तयम्मुम, मतबा अलीमी लाहौर, पृ. 11.

पृष्ठ 276 कुल 948 में से

فتاوٰی رضویہ، جلد نہم

[بائیں کالم کی عبارت (عربی)] الا لولیٰ 1- وقایة، ھو لمحدث وجنب وحائض ونفساء لم یقدروا علی الماء، لخوف فوت صلوة الجنازة، لغیر الولی 2- اصلاح، مثلہ وقال عجزوا عن الماء 3- نقایة، ما یفوت لا الی خلف کصلوة الجنازة لغیر الولی 4- کنز، صح لخوف فوت صلوة جنازة 5- تنویر، جاز لفوت 6- وافی، مثل الکنز وزاد لم یکن ولیھا، غرر، جاز لمحدث وجنب وحائض عجزوا من الماء ولخوف فوت صلوة الجنازة لغیر الولی 7- ملتقی، یجوز فی المصر لخوف فوت صلوة جنازة 8- نور الایضاح، العذر المبیح للتیمم خوف فوت صلوة الجنازة 9-

[دائیں کالم کی عبارت (اردو)] نماز جنازہ کے لئے تیمم کرے گا جب فوت ہو جانے کا اندیشہ ہو مگر ولی کے لئے یہ نہیں۔ (۴) وقایہ: تیمم بے وضو، جنب، حائض اور نفاس والی کے لئے ہے جب انہیں پانی پر قدرت نہ ہو اور غیر ولی کو نماز جنازہ فوت ہونے کا اندیشہ ہو (۵) اصلاح: اس کی عبارت بھی وقایہ کے مثل ہے فرق یہ ہے کہ اس میں کہا ہے جب یہ پانی سے عاجز ہوں (۶) نقایہ: جو فوت ہو اور اس کا کوئی بدل نہ ہو، (اس کے لئے تیمم روا ہے) (۷) کنز: نماز جنازہ فوت ہونے کا اندیشہ کے وقت تیمم درست ہے (۸) تنویر: نماز جنازہ فوت ہونے کے وقت تیمم جائز ہے۔ (۹) وافی: اس کی عبارت کنز کے مثل ہے اور یہ اضافہ ہے جب خود ولی جنازہ نہ ہو (۱۰) غرر: تیمم جائز ہے بے وضو، جنب اور حائض کے لئے جو پانی سے عاجز ہوں اور غیر ولی کے لئے نماز جنازہ کے فوت ہونے کے اندیشہ سے۔ (۱۱) ملتقٰی: نماز جنازہ کے فوت ہونے کے اندیشہ سے (۱۲) نور الایضاح: تیمم کو مباح کرنے والا عذر نماز جنازہ فوت ہونے کا اندیشہ ہے (ت)

[حواشی] 1 منیة المصلی فصل فی التیمم مطبوعہ مکتبہ قادریہ جامعہ نظامیہ رضویہ لاہور ص ۵۸ 2 وقایہ مع شرح الوقایہ باب التیمم مطبوعہ المکتبۃ الرشید دہلی ۱/ ۹۵ تا ۹۷ 3 اصلاح 4 نقایہ

مختصر الوقایۃ فصل التیمم مطبوعہ نور محمد کارخانہ تجارت کتب خانہ کراچی ص ۶ 5 کنز الدقائق باب التیمم مطبوعہ ایچ ایم سعید کمپنی کراچی ص ۱۷ 6 در مختار شرح تنویر الابصار باب التیمم مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی ۱/ ۴۳ 7 وافی 8 ملتقی الابحر باب التیمم مطبوعہ موسسۃ الرسالۃ بیروت ۱/ ۳۲ 9 نور الایضاح باب التیمم مطبوعہ مطبع علیمی لاہور ص ۱۱

It is mentioned in Hidayah and Majma' al-Anhur: "Because it (the prayer) cannot be made up for, so inability is established." (Meaning: Since there is no Qaza for it, the state of helplessness is proven). Kafi. In Imam Nasafi, it is mentioned:

| "The funeral prayer and the Eid prayer pass away without a substitute because they cannot be made up for, so inability is established." Al-Bahr. | If funeral and Eid prayers are missed, they have no substitute; hence, since they cannot be made up for, inability is established. Bahr. (T) |

"Because it passes without a replacement." (Since the funeral prayer passes without any substitute). It is mentioned in Fatawa al-Khayriyya:

| "It is not permissible to perform Tayammum when water is available, except in a situation where one fears missing out on something that has no substitute, such as the funeral prayer." | Tayammum is not permissible while water is available, except in a place where there is a fear of missing it without a substitute, like the funeral prayer. (T) |

Upon investigation, the summary of all these statements is that repeating the funeral prayer is not just disliked (Makruh) but purely prohibited (Najaiz). Burhan. In Sharh Mawahib al-Rahman, then Sharh Nazm al-Kanz by Allamah al-Maqdisi, then the marginal notes of Allamah Nuh Effendi, and then in Radd al-Muhtar of Shami, it is mentioned:

| "Mere dislike (Karahah) does not imply the inability that necessitates the permissibility of Tayammum, because it (the funeral prayer) is not stronger than missing the Friday prayer (Jumu'ah) or the timely obligatory prayers, despite Tayammum not being permissible for them." | Mere dislike is not the requisite for that inability which seeks the permissibility of Tayammum, because it is not stronger than missing Friday or timely obligatory prayers, even though Tayammum is not allowed for those two. (T) |

These are quotes from forty (40) books. What is the need for more citations? The issue is clear and evident, and it is prevalent in all the texts (Mutoon), commentaries (Shurooh), and fatwas of the school of thought, specifically regarding the queried scenario where the guardian (Wali) himself has already prayed.

1. Majma' al-Anhur Sharh Multaqa al-Abhur, Kitab al-Tayammum, published by Dar Ihya al-Turath al-Arabi, Beirut, 1/214
2. Kafi and Sharh Wafi
3. Maraqi al-Falah with Hashiyah al-Tahtawi, Bab al-Tayammum, published by Nur Muhammad Karkhana Tijarat Kutub, Karachi, p. 63, Sharh al-Nuqayah by al-Barjindi, Section on Tayammum, published by Naval Kishore, Lucknow 1/46
4. Fatawa Khairiyyah, Bab al-Tayammum, published by Dar al-Ma'rifah, Beirut 1/5
5. Radd al-Muhtar, Bab al-Tayammum, published by Mustafa al-Babi 1/71

हिदाया और मजमा-अल-अनहुर में है: "क्योंकि इसकी क़ज़ा नहीं होती, इसलिए लाचारी (अजज़) सिद्ध है।" काफ़ी। इमाम नसफ़ी में है:

| "जनाज़ा और ईद की नमाज़ बिना किसी विकल्प के छूट जाती है क्योंकि उनकी क़ज़ा नहीं होती, इसलिए लाचारी सिद्ध है।" अल-बहर। | जनाज़ा और ईद की नमाज़ छूट जाए तो उनका कोई विकल्प नहीं है, इसलिए उनकी क़ज़ा नहीं होती तो लाचारी सिद्ध है। बहर। (त) |

"क्योंकि यह बिना किसी विकल्प के छूट जाती है।" (इसलिए कि जनाज़ा बिना किसी विकल्प के छूट जाता है)। फ़तावा-ए-खैरिया में है:

| "पानी के मौजूद होने पर तयम्मुम जायज़ नहीं है, सिवाय उस स्थिति में जहाँ बिना किसी विकल्प के छूटने का डर हो, जैसे कि जनाज़े की नमाज़।" | पानी होते हुए तयम्मुम जायज़ नहीं है, सिवाय ऐसी जगह जहाँ बिना विकल्प छूटने का डर हो, जैसे जनाज़े की नमाज़। (त) |

जाँच करने पर इन सभी कथनों का निष्कर्ष यही है कि जनाज़े की नमाज़ दोबारा पढ़ना केवल मकरूह ही नहीं बल्कि पूरी तरह से नाजायज़ है। बुरहान। शर्ह मवाहिब अल-रहमान, फिर अल्लामा मुक़दसी की शर्ह नज़्म अल-कंज़, फिर अल्लामा नूह अफ़ंदी की हाशिया, और फिर शामी के रद्दुत-मुह्तार में है:

| "केवल मकरूह होना उस लाचारी को नहीं दर्शाता जो तयम्मुम के जायज़ होने की माँग करती है, क्योंकि यह जुमा और समय पर होने वाली अनिवार्य नमाज़ों (वक़्तिया) के छूटने से अधिक महत्वपूर्ण नहीं है, जबकि उन दोनों के लिए तयम्मुम जायज़ नहीं है।" | केवल मकरूह होना उस लाचारी का कारण नहीं है जो तयम्मुम की अनुमति चाहता है, क्योंकि यह जुमा और समय पर होने वाली नमाज़ों के छूटने से ज़्यादा मज़बूत नहीं है, बावजूद इसके कि उन दोनों के लिए तयम्मुम जायज़ नहीं है। (त) |

ये चालीस (40) किताबों के उद्धरण हैं और स्वयं अधिक उद्धरणों की क्या आवश्यकता कि मसला स्पष्ट और ज़ाहिर है, और मज़हब की तमाम किताबों, मतून, शर्ह और फ़तावा में चर्चित इस सूरत में है कि स्वयं वली (अभिभावक) नमाज़ पढ़ चुका था।

आई.टी. मज्लिस-ए-दावत-ए-इस्लामी

1. मजमा-अल-अनहुर शर्ह मुल्तक़ा अल-अब्हुर, किताबुत्तयम्मुम, मतबुआ दारुल इहया अल-तुरास अल-अरबी, बेरुत, 1/214
2. काफ़ी और शर्ह वाफ़ी
3. मराक़ी-अल-फ़लाह मआ हाशिया अल-त़हत़ावी, बाबुत्तयम्मुम, मतबुआ नूर मोहम्मद कारख़ाना तिजारत-ए-कुतुब, कराची, पृ. 63, शर्ह अल-नुक़ाया बरजिंदी, फ़स्लुत्तयम्मुम, मतबुआ नवल किशोर, लखनऊ, 1/46
4. फ़तावा खैरिया, बाबुत्तयम्मुम, मतबुआ दारुल मारिफ़ा, बेरुत 1/5
5. रद्दुत-मुह्तार, बाबुत्तयम्मुम, मतबुआ मुस्तफ़ा अल-बाबी 1/71

948 में से पृष्ठ 277

ہدایہ و مجمع الانہر میں ہے : لانہا لا تقضی فیتحقق العجز 1 (اس لئے کہ اس کی قضاء نہیں ہوتی تو عجز متحقق ہے۔ت) کافی امام نسفی میں ہے : | صلوۃ الجنازۃ والعید تفوتان لاالی بدل لانہما لا تقضیان فیتحقق العجز البحر 2۔ | نمازِ جنازہ وعید فوت ہوں تو ان کا کوئی بدل نہیں اس لئے ان کی قضا نہیں ہوتی تو عجز متحقق ہے۔ بحر۔(ت) |

لانہا تفوت بلا خلف 3 (اس لئے کہ جنازہ بلا بدل فوت ہو جاتا ہے۔ت) فتاوٰی خیریہ میں ہے : | لا یجوز التیمم مع وجود الماء الا فی موضع یخشی الفوات لا الی خلف کصلوۃ الجنازۃ 4۔ | پانی ہوتے ہوئے تیمم جائز نہیں مگر ایسی جگہ جہاں بلا بدل فوت کا اندیشہ ہو جیسے نمازِ جنازہ۔ (ت) |

عند التحقیق ان سب عبارات کا بھی وہی حاصل کہ نماز جنازہ دوبارہ پڑھنی صرف مکروہ ہی نہیں بلکہ محض ناجائز ہے۔ برہان شرح مواہب الرحمن پھر شرح نظم الکنز للعلامۃ المقدسی پھر حاشیہ علامہ نوح آفندی پھر ردالمحتار شامی میں ہے : | مجرد الکراھۃ لا یقتضی العجز المقتضی لجواز التیمم لانہا لیست اقوی من فوات الجمعۃ والوقتیۃ مع عدم جوازہ لھما 5۔ | محض کراہت اس عجز کی مقتضی نہیں جو تیمم کا جواز چاہتا ہے اس لئے کہ وہ جمعہ اور نماز وقتیہ کے فوت ہونے سے زیادہ قوی نہیں باوجودیکہ ان دونوں کے لئے تیمم جائز نہیں (ت) |

یہ چالیس ۴۰ کتابوں کی عبارتیں ہیں اور خود کثرتِ نقول کی کیا حاجت کہ مسئلہ واضح اور ظاہر، اور تمام کتب مذہب متون و شرح و فتاوٰی میں دائر وسائر صورت مستفسرہ میں کہ خود ولی پڑھ چکا تھا

1 مجمع الانہر شرح ملتقی الابحر باب التیمم مطبوعہ داراحیاء التراث العربی بیروت ۱/ ۲۱۴ 2 کافی و شرح وافی 3 مراقی الفلاح مع حاشیہ الطحطاوی باب التیمم مطبوعہ نور محمد کارخانہ تجارت کتب کراچی ص ۶۳ ، شرح النقایہ للبر جندی فصل التیمم مطبوعہ نولکشور لکھنؤ ۱ / ۴۶ 4 فتاوی خیریہ باب التیمم مطبوعہ دارالمعرفتہ بیروت ۱/ ۵ 5 ردالمختار باب التیمم مطبوعہ مصطفی البابی ۱/ ۷۱

Volume 9 Fatawa Razawiya

Re-performing the prayer has occurred as unauthorized and sinful by the consensus of all our noble Imams (may Allah Almighty be pleased with them all). Such ignorance is not a valid excuse to prevent sin, as remaining ignorant of religious matters is a sin in itself. Therefore, it has been stated in a Hadith:

"The sin of a scholar is one, and the sin of an ignorant person is two." It was asked, "O Messenger of Allah (peace and blessings be upon him), why is that?" He replied, "The scholar bears the burden for why he committed the sin, while the ignorant person faces one punishment for the sin and another for not learning." [1] Narrated by Al-Daylami in Musnad al-Firdous from Ibn Abbas (may Allah Almighty be pleased with them both). (T)

A scholar who insisted and urged people to repeat the funeral prayer—if he claims to be a Hanafi, then by the ruling of his own school, he is a sinner. And if he is from the non-conformist group, then besides being a sinner, he is misguided and an innovator. In both scenarios, the scholar bears as many sins as the number of people in the second congregation, plus one more. For instance, if a hundred people performed the prayer for the second time due to his insistence, each of them incurs two sins: one for the act itself and the second for the sin of ignorance. And this scholar incurs one hundred and one sins: one for himself and one hundred for their acts. Ultimately, this amounts to calling towards sin. The Messenger of Allah (peace and blessings be upon him) says:

"Whoever calls to misguidance will bear a burden of sin equal to the sins of those who follow him, without their sins being diminished in the slightest." [2] Narrated by Imams Ahmad, Muslim, and the four (Tirmidhi, Nasa'i, Abu Dawud, Ibn Majah) from Abu Huraira (may Allah Almighty be pleased with him).

Meaning, it will not be the case that because they were incited to sin, they will be saved from it, or only on...

[1] Al-Firdous bi-Ma'thur al-Khitab, Hadith 1325, Dar al-Baz, Makkah al-Mukarramah, 2/248. [2] Jami' al-Tirmidhi, Chapters on Knowledge, Amin Company, Kutubkhana Rashidiya, Delhi, 2/92. Page 278 of 948

जिल्द 9 फ़तावा रज़विया

नमाज़ को दोबारा अदा करना हमारे सभी सम्मानित इमामों (अल्लाह उन सभी से प्रसन्न हो) की सर्वसम्मति से नाजायज़ और गुनाह ठहराया गया है। ऐसी अज्ञानता गुनाह को रोकने वाली नहीं है क्योंकि धार्मिक मसलों से अनजान रहना स्वयं में एक गुनाह है। इसीलिए हदीस में आया है:

"विद्वान का एक गुनाह होता है और अज्ञानी के दो गुनाह।" पूछा गया, "ऐ अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम), ऐसा क्यों है?" आपने फ़रमाया, "विद्वान पर बोझ इस बात का है कि उसने गुनाह क्यों किया, और अज्ञानी पर एक सज़ा गुनाह की है और दूसरी न सीखने की।" [1] इसे दैलामी ने मसनद अल-फ़िरदौस में हज़रत इब्न अब्बास (रज़ियल्लाहु अन्हुमा) से रिवायत किया है। (त)

वह विद्वान जिसने ज़ोर देकर और अड़कर लोगों से नमाज़-ए-जनाज़ा दोबारा पढ़वाई, अगर वह हनफ़ी होने का दावा करता है, तो वह खुद अपने ही मज़हब के हुक्म से गुनहगार है। और अगर वह ग़ैर-मुक़ल्लिद गिरोह से है, तो गुनहगार होने के साथ-साथ बिदअती और गुमराह भी है। इन दोनों सूरतों में उस विद्वान पर उतने ही गुनाह लाज़िम हुए जितने दूसरी जमाअत के लोगों की संख्या थी, और उस पर एक अधिक। मिसाल के तौर पर, अगर उसकी ज़िद की वजह से सौ लोगों ने दूसरी बार नमाज़ पढ़ी, तो उनमें से प्रत्येक पर दो-दो गुनाह हुए: एक उस अमल (कार्य) का और दूसरा अज्ञानता का। और उस विद्वान पर एक सौ एक गुनाह हुए: एक अपना और सौ उनके काम के। अंततः यही गुनाह की तरफ दावत देना हुआ। अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) फ़रमाते हैं:

"जो किसी गुमराही की तरफ बुलाए, उसे मानने वालों के बराबर गुनाह उस पर होगा और उनके गुनाहों में कोई कमी नहीं आएगी।" [2] इसे इमाम अहमद, मुस्लिम और चारों (तिर्मिज़ी, नसाई, अबू दाऊद, इबन माजा) ने हज़रत अबू हुरैरा (रज़ियल्लाहु अन्हु) से रिवायत किया है।

यानी ऐसा नहीं होगा कि उसकी उकसाहट के कारण गुनाह होने की वजह से वे गुनाह से बच रहेंगे या उस पर केवल...

[1] अल-फ़िरदौस बि-मअतूर अल-ख़िताब, हदीस 1325, दार अल-बाज़, मक्का अल-मुकर्रमा, 2/248. [2] जामी' अल-तिर्मिज़ी, इल्म के अध्याय, अमीन कंपनी, कुतुबखाना रशीदिया, दिल्ली, 2/92. पृष्ठ 278 का 948

دوبارہ اعادہ نماز ہمارے سب ائمہ کرام رضوان اللہ تعالیٰ علیہم اجمعین کے اتفاق سے ناجائز و گناہ واقع ہوا، ایسی ناواقفی مانع گناہ نہیں کہ مسائل سے ناواقف رہنا خود گناہ ہے، اس لئے حدیث میں آیا:

ذنب العالم ذنب واحد وذنب الجاهل ذنبان قيل ولم يا رسول الله صلى الله تعالیٰ عليه وسلم العالم يعذب على ركوبه الذنب والجاهل يعذب على ركوبه الذنب وترك التعلم 1-رواه في مسند الفردوس عن ابن عباس رضی اللہ تعالیٰ عنہما۔ یعنی رسول اللہ صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم نے فرمایا عالم کا ایک گناہ اور جاہل کا گناہ دو گناہ کسی نے عرض کی : یا رسول اللہ ! کس لئے؟ فرمایا عالم پر وبال اسی کا ہے کہ گناہ کیوں کیا، اور جاہل پر ایک عذاب گناہ کا اور دوسرا نہ سیکھنے کا۔ اسے دیلمی نے مسند الفردوس میں حضرت ابن عباس رضی اللہ تعالیٰ عنہما سے روایت کیا۔ (ت)

عالم جس نے تاکید واصرار کر کے ان لوگوں سے نماز جنازہ کی تکرار کرائی اگر مدعی حنفیت ہے تو خود اپنے ہی مذہب کے حکم سے گنہگار ہے، اور فرقہ غیر مقلدین سے تو گناہگار در کنار بد مذہب و گمراہ ہے، اور ان دونوں صورتوں میں اس عالم پر اتنے گناہ لازم ہوئے جس قدر شمار جماعت ثانیہ کا تھا، اور اس پر ایک زائد، مثلاً دوسری دفعہ اس کے اصرار سے سو آدمیوں نے نماز پڑھی تو ان میں سے ہر ایک پر دو دو گناہ، ایک گناہ فعل دوسرا گناہِ جہل۔ اور اس عالم پر ایک سو ایک گناہ، ایک اپنا اور سو ان کے فعل کے۔ آخری یہی داعی بگناہ ہوا۔ رسول اللہ صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم فرماتے ہیں :

من دعا الی ضلالة کان علیه من الاثم مثل آثام من تبعه لاینقص ذلك من آثامهم شیئاً 2-رواه الائمة الاحمد ومسلم والاربعة عن ابی هریرة رضی الله تعالی عنه۔ جو کسی ضلالت کی طرف بلائے سب ماننے والوں کے برابر گناہ اُس پر ہوا اور ان کے گناہوں میں کچھ کمی نہیں آئی۔ اسے امام احمد، مسلم، ترمذی، نسائی، ابوداؤد، ابن ماجہ نے حضرت ابوہریرہ رضی اللہ تعالیٰ عنہ سے روایت کیا۔

یعنی یہ نہ ہوگا کہ اس کی ترغیب کے باعث گناہ ہونے کے سبب وہ گناہ سے بچ رہیں یا اس پر صرف

1 الفردوس بماثور الخطاب حدیث ۱۳۲۵ دار الباز مکة المکرمة ۲۴۸/۲ 2 جامع الترمذی ابواب العلم امین کمپنی کتب خانہ رشیدیہ دہلی ۹۲/۲ Page 278 of 948

Header: Fatawa Rizvia, Volume 9

Text: ...it is a sin of one's own action, rather they are all caught in their own sins and the burden on the one who encouraged them is equal to all of them, and refuge is sought with Allah, the Mighty, the Forgiving. And hypothetically, even if he were of the Shafi'i school, he was extremely ignorant because insisting on such a matter for followers of another school, which was a sin in their school and disliked in his own school, is foolish. Imam Abu Yusuf Ardebili Shafi'i says in "Kitab al-Anwar li A'mal al-Abrar":

"It is not recommended for one who has prayed [the funeral prayer] in congregation or individually to repeat it in congregation or individually; rather, it is disliked." [1]

That is, for the person who has prayed the funeral prayer, whether in congregation or alone, it is not preferred for him to pray it again in congregation or alone, rather it is disliked. (T)

And even if you do not consider it disliked, it is certainly not necessary according to any person by the consensus of the entire blessed Ummah. Then, according to which verse or Hadith or statement of which Imam did you choose to make people of other schools insistently commit an act which is impermissible in their school and merely unnecessary in your own? Although some Shafi'i scholars and others allow prayer even after the first prayer for those who have not yet prayed the funeral prayer, this insistence on those who have already prayed is particularly wrong, especially in this state where the closest guardian (wali) is among them. His claim and display in public that one can pray as many times as they want for three days, as mentioned by the learned questioner in his letter, is fundamentally not in accordance with the Hanafi, Shafi'i, Maliki, or Hanbali schools. Nor is there any evidence for it from the pure Shari'ah. If he is truthful, let him present evidence for this insistence and this display; otherwise, he is established in his ignorance, foolishness, and boldness and audacity in the matter of Shari'ah. Say, "Bring your proof, if you are truthful." [2] (Say, bring your evidence if you are truthful. T). It is the habit of the non-conformists (Ghayr Muqallidin), rather all the groups of falsifiers, that when they find nothing useful for their purpose—'a drowning man catches at a straw'—they resort to completely unrelated talks that have no connection to their claim. Instead, blinded by the heat of anger, they end up citing evidence that is harmful and contrary to their own position, as has happened frequently and innumerably in the works of their Shaykh al-Kull Miyan Nadhir Husayn Sahib Dehlawi, such as in his largest composition 'Ma'yar' and

others. If a sample is needed, look at the humble author's treatise 'Hajiz al-Bahrayn al-Waqi 'an Jam' al-Salatayn', which some wits have historically titled 'Hujjat al-Hayn' (Proof of Destruction). [Note symbol] on

Note symbol: Hayn with fatha means death. 12 Minhu (M 12)

Footnotes: 1. Kitab al-Anwar li A'mal al-Abrar, Kitab al-Jana'iz, Bab al-Salat al-Janaza, Jamaliya Press, Egypt, 1/123. 2. Al-Quran 2/111.

हैडर: फतावा रज़विया, जिल्द 9

पाठ: ...अपने ही कर्म का पाप हो, बल्कि वे सभी अपने-अपने पापों में जकड़े हुए हैं और उन सभी के बराबर का बोझ उस व्यक्ति पर है जिसने उन्हें इसके लिए प्रोत्साहित किया, और अल्लाह, सर्वशक्तिमान, क्षमाशील से शरण मांगी जाती है। और मान लीजिए कि यदि वह शाफई पंथ का भी होता, तो वह अत्यंत अज्ञानी था क्योंकि दूसरे पंथ के लोगों के लिए ऐसे मामले पर जोर देना जो उनके पंथ में पाप था और उसके अपने पंथ में भी मकरूह (नापसंद) था, मूर्खता है। इमाम अबू यूसुफ़ अर्देबिली शाफई "किताब अल-अनवर ली अमाल अल-अबरार" में फरमाते हैं:

"जिस व्यक्ति ने जमात (समूह) के साथ या अकेले नमाज़-ए-जनाज़ा पढ़ ली है, उसके लिए इसे जमात के साथ या अकेले दोहराना मुस्तहब (पसंदीदा) नहीं है; बल्कि यह मकरूह है।" [1]

अर्थात्, जिस व्यक्ति ने जनाज़ा की नमाज़ पढ़ ली है, चाहे जमात के साथ या अकेले, उसके लिए दोबारा जमात में या अकेले पढ़ना पसंदीदा नहीं है, बल्कि मकरूह है। (त)

और यदि आप इसे मकरूह नहीं भी मानते हैं, तो संपूर्ण उम्मत के सर्वसम्मति से किसी के भी अनुसार यह आवश्यक तो कतई नहीं था। फिर, आपने किस आयत, हदीस या किस इमाम के कथन के आधार पर दूसरे पंथ वालों को ऐसे कृत्य के लिए मजबूर करने का रास्ता चुना जो उनके पंथ में नाजायज है और आपके अपने विचार में भी केवल अनावश्यक है? हालाँकि कुछ शाफई विद्वान और अन्य लोग उन लोगों के लिए पहली नमाज़ के बाद भी नमाज़ की अनुमति देते हैं जिन्होंने अभी तक जनाज़ा की नमाज़ नहीं पढ़ी है, लेकिन उन लोगों पर यह ज़ोर देना जो पहले ही नमाज़ पढ़ चुके हैं, विशेष रूप से उस स्थिति में जब स्वयं वली-ए-अक़रब (निकटतम अभिभावक) उनमें मौजूद हो, पूरी तरह गलत है। और उनका सार्वजनिक रूप से यह दावा करना और दिखाना कि तीन दिनों तक जितनी बार चाहें नमाज़ पढ़ सकते हैं, जैसा कि विद्वान प्रश्नकर्ता ने अपने पत्र में उल्लेख किया है, यह हनफ़ी, शाफई, मालकी या हंबली पंथों के अनुसार बिल्कुल नहीं है। न ही शरीअत में इसका कोई प्रमाण है। यदि वह सच्चा है, तो वह इस आग्रह और इस दिखावे का प्रमाण प्रस्तुत करे; अन्यथा वह अज्ञानता, मूर्खता और शरीअत के मामले में अपनी ढिठाई और दुस्साहस में स्थापित है। कहो, "अपना प्रमाण लाओ, यदि तुम सच्चे हो।" [2] (कहो, यदि तुम सच्चे हो तो अपनी दलील पेश करो। त)। गैर-मुक्लिदीन (परंपरा को न मानने वालों), बल्कि सभी पथभ्रष्ट समूहों की यह आदत है कि जब उन्हें अपने उद्देश्य के लिए कुछ उपयोगी नहीं मिलता—'डूबते को तिनके का सहारा'—तो वे पूरी

तरह से असंबद्ध बातें करने लगते हैं जिनका उनके दावे से कोई संबंध नहीं होता। इसके बजाय, क्रोध के आवेश में अंधे होकर वे ऐसे प्रमाणों का सहारा ले लेते हैं जो उनके अपने पक्ष के लिए हानिकारक और विपरीत होते हैं, जैसा कि उनके शेख-उल-कुल मियां नजीर हुसैन साहब देहलवी की सबसे बड़ी रचना 'मेयार' आदि में कसरत से और अनगिनत बार हुआ है। यदि नमूना चाहिए, तो फ़क़ीर (लेखक) का शोध पत्र 'हाजिज़ अल-बहरैन अल-वाकी अन जम अल-सलातैन' देखें, जिसे कुछ बुद्धिजीवियों ने ऐतिहासिक रूप से 'हुज्जत अल-हैन' (विनाश का प्रमाण) का शीर्षक दिया है। [चिह्न] पर

नोट: [चिह्न] हैन (ह पर जबर के साथ) का अर्थ मृत्यु है। 12 मिन्हु (म 12)

पादलेख: 1. किताब अल-अनवर ली अमाल अल-अबरार, किताब अल-जनाइज़, बाब अल-सलात अल-जनाज़ा, जमालिया प्रेस, मिस्र, 1/123। 2. कुरान 2/111।

اپنے ہی فعل کا گناہ ہو، بلکہ وہ سب اپنے اپنے گناہ میں گرفتار اور ان سب کے برابر اس ترغیب دہندہ پر بار، والعیاذ باللہ العزیز الغفار۔ اور بالفرض شافعی المذہب بھی ہوتا تو سخت جاہل تھا کہ دوسرے مذہب والوں کو ایسے امر پر مصر ہونا جوان کے مذہب میں گناہ تھا اور اس کے اپنے مذہب میں بھی مکروہ۔ امام ابو یوسف اردبیلی شافعی "کتاب الانوار لاعمال الابرار" میں فرماتے ہیں:

لا یستحب لمن صلی جماعۃ او منفردا اعادتھا جماعۃ او انفرادا بل یکرہ۔۱

یعنی جس نے نماز جنازہ جماعت سے خواہ تنہا پڑھ لی اس کے لئے دوبارہ جماعت میں خواہ تنہا پڑھنی پسندیدہ نہیں بلکہ مکروہ ہے۔ (ت)

اور اگر کراہت نہ بھی لیجئے تو اس قدر تو ضرور کہ باجماعِ تمام امت مرحومہ کسی کے نزدیک ضروری نہ تھا۔ پھر آپ نے کس آیت و حدیث کس امام کے قول سے اختیار کیا تھا کہ غیر مذہب والوں سے باصرار ایسے امر کا ارتکاب کرائے جو ان کے مذہب میں ناجائز اور اپنے نزدیک محض بے حاجت، شافعیہ وغیرہ ہم بعض علماء اگرچہ اس کے لئے جس نے ہنوز نماز جنازہ نہ پڑھی نماز اول ہو جانے کے بعد بھی اجازت نماز دیتے ہیں مگر اس مدعی علم کا پڑھ چکنے والوں پر یہ اصرار خصوصاً اس حالت میں کہ خود ولی اقرب بھی انہیں میں ہے اور اسکا وہ علی رؤس الاشہاد زعم واظہار کہ تین روز تک جتنی بار چاہے نماز پڑھے، جیسا کہ فاضل سائل نے اپنے خط میں ذکر فرمایا یہ حنفی، شافعی، مالکی، حنبلی اصلاً مذہب کے مطابق نہیں، نہ شرع مطہر سے اس پر کوئی دلیل، اگر سچا ہے تو اس اصرار اور اس اظہار کی دلیل پیش کرے ورنہ

اپنے جہل و سفاہت اور امر شرع میں بیباکی و جرات کا مقرر ہو قل ہَاتُوا بُرْھَانَکُمْ اِنْ کُنْتُمْ صٰدِقِیْنَ۔۲ (کہو اپنی دلیل لاؤ اگر تم سچے ہو۔ ت) حضرات غیر مقلدین بلکہ تمام طوائف مبطلین کی عادت ہے کہ جب کچھ اپنے مفید مطلب نہیں پاتے الغریق یتشبث بالحشیش ڈوبتا سوار پکڑتا ہے نری بے علاقہ باتیں، جنہیں ان کے دعوی سے اصلاً مس نہیں بلکہ جوشِ غضب میں مدہوش ہو کر اپنے مضر و مخالف دلیلوں سے استناد کر بیٹھتے ہیں، جیسے ان کے شیخ الکل میاں نذیر حسین صاحب دہلوی سے ان کی سب سے بڑی تالیف معیار وغیرہ میں بکثرت و بے شمار واقع ہوا، نمونہ درکار ہو فقیر کا رسالہ ملاحظہ ہو حاجز البحرین الواقی عن جمع الصلاتین جس کا لقب تاریخی بعض ظرفا نے حجۃ الحین عہ علی

عہ: حین بالفتح بمعنی مرگ ۱۲ منہ (م ۱۲)

۱ کتاب الانوار لاعمال الابرار کتاب الجنائز فصل الصلوۃ الجنازۃ مطبعہ جمالیہ مصر ۱/ ۱۲۳ ۲ القرآن ۲/ ۱۱۲

Fatawa Ridawiyya, Volume 9

...Nazir Hussain kept, far-reaching some non-conformists (Ghair Muqallidin) emphasized combining Dhuhr and Asr, and Maghrib and Isha prayers during travel. The discourse on this issue, which Dehlavi Sahib presented with great flourish in "Ma'yar" and was proud of, was questioned before this humble servant (may Allah Almighty forgive him). In response, this concise treatise was written in which, by the praise of Allah Almighty, the substantiation and proof of the Hanafi school and the weakening and silencing of opposition and contradiction occurred in such a bright manner with Divine help that it will not be found anywhere else except in this treatise. Looking at it reveals the glimpses of this Muhaddith (scholar of Hadith) Sahib's knowledge of Hadith; from the discussion of a single issue, it becomes clear that his Excellency has neither an eye on the Hadiths nor awareness of the chains of transmission (Asanid), nor knowledge of the narrators (Ilm al-Rijal), nor the method of reasoning. Far from distinguishing between the beneficial and the futile, it is difficult to differentiate between the useful and the harmful. Yet, he is ready to confront the Imams of the Ummah and the elders of the community. "Thus does Allah seal over every heart [of an] arrogant tyrant." (Quran 40:35) (God thus sets a seal on the heart of every arrogant oppressor. - T). Well, for this issue, was there any predecessor (Salaf) for the Sheikh Sahib? He fulfilled the lack of independent reasoning (Ijtihad) by begging from Shafi'i books etc. In this issue, this claimant will not find anyone's ready-made material to make themselves an innovator. It is obvious that whatever essence of knowledge and intellect they display will inevitably lead to a waste of time in refuting useless and meaningless words. Therefore, to shorten the distance and repel the density, a few instructions are appropriate beforehand, so that even if they deviate from them after the warning, this discourse of ours would be a reasonable prior answer to it. These claims of the "Mujtahid" Sahib are that although the funeral prayer (Janaza) has been performed in a perfect manner, even if the rightful guardian (Wali-e-Haq) has fulfilled it, everyone who has already performed it should read it again. It won't be insisted upon, but on some necessary or at least recommended matter. However, the prayer that will be legally authorized (Ma'zoon-fiha) will at least be recommended (Mustahabba). This prayer, which is merely permissible (Mubah) and in which there is no hope of any reward or merit in its performance or non-performance, is absolutely not recognized in Sharia. And this repetition is permissible for three consecutive days and is legally limited to three days. Whatever is required for the proof of the later claims is self-evident; a

reliable Shariah proof is needed that allows three days and sets this much limit. It is easy to say whatever comes to mind before the poor ignorant Muslims; the reality opens up while providing proof. As for the first claim, show any Hadith for it that the radiant Master, the Master of the World (peace and blessings of Allah Almighty be upon him) said: "Perform funeral prayers many times," or just said: "When you have performed the funeral prayer, then repeat it," or even just this much: "O performers! You who have performed it with the rightful guardian or with his permission, it is better if you repeat it," or even if it's not "it's no harm for you," at least this much came that the holy Prophet (peace and blessings of Allah Almighty be upon him) used to perform funeral prayers repeatedly or even twice, or moving beyond that, at least it was proven that the rightful guardian had performed it, after which he again and others who had performed it, or just he, or just he and some worshippers, performed it again in front of the holy Prophet (peace and blessings of Allah Almighty be upon him) and the Prophet did not forbid it, the news reached the Prophet and the Prophet...

फ़तावा रज़विया, जिल्द 9

...नज़ीर हुसैन रखा, दूर-दराज के कुछ ग़ैर-मुक़ल्लिदीन ने सफ़र में ज़ुहर और अस्र तथा मग़रिब और ईशा की नमाज़ें मिलाकर पढ़ने पर ज़ोर दिया। इस मसले पर वह तक़रीर जिसे देहलवी साहब ने 'मेयार' में बहुत चमक-दमक के साथ पेश किया था और जिस पर उन्हें नाज़ था, उस पर फ़क़ीर (अल्लाह तआला उन्हें माफ़ फ़रमाए) से सवाल किया गया। इसके जवाब में यह संक्षिप्त पुस्तिका लिखी गई, जिसमें अल्लाह तआला की हम्द व सना के साथ हनफ़ी मज़हब की हक़्क़ानियत और उसके सबूत, और मुख़ालफ़त व इख़्तिलाफ़ की कमज़ोरी और उसे ख़ामोश करने का बयान इलाही मदद से इतने रौशन तरीक़े पर वाक़े हुआ है कि इस रिसाले के सिवा कहीं नहीं मिलेगा। उसे देखने से उन मुहद्दिस साहब की हदीस-दानी की झलकियाँ सामने आती हैं; एक ही मसले की बहस से रौशन होता है कि हज़रत को न हदीसों पर नज़र है, न सनदों की ख़बर, न इल्म-ए-रिजाल की जानकारी और न ही दलील देने का तरीक़ा। फ़ायदेमंद और बेकार में तमीज़ करना तो दूर, नफ़ा-बख़्श और नुक़सानदेह में फ़र्क़ करना भी मुश्किल है। मगर उम्मत के इमामों और मिल्लत के बुज़ुर्गों पर ज़ुबान चलाने के लिए तैयार हैं। "इसी तरह अल्लाह हर मुतकब्बिर (घमंडी) ज़बरदस्ती करने वाले के दिल पर मोहर लगा देता है।" (क़ुरआन 40:35) भला इस मसले में शैख़ साहब के लिए कोई पूर्वज (सलफ़) मौजूद था? शाफ़ई किताबों आदि से मांग-तांग कर इज्तिहाद की कमी पूरी कर ली। इस मसले में यह दावेदार साहब ख़ुद को ईजाद करने वाला (नया कुछ बनाने वाला) साबित करने के लिए किसी का तैयार माल नहीं पाएंगे। ज़ाहिर है कि वे इल्म और अक़्ल का जो भी जौहर दिखाएंगे, उनके बेकार और बे-मतलब शब्दों के खंडन में न चाहते हुए भी वक़्त की बर्बादी होगी। लिहाज़ा दूरी कम करने और सघनता को दूर करने के लिए पहले ही कुछ हिदायतें मुनासिब हैं, ताकि चेतावनी के बाद भी अगर वे उनसे मुँह मोड़ें, तो हमारा यही कलाम उसका पहले से ही एक माकूल जवाब हो। इन "मुज्तहिद" साहब के दावे ये हैं कि नमाज़-ए-जनाज़ा चाहे मुकम्मल तौर पर हो चुकी हो, चाहे वली-ए-हक़ (हक़दार वारिस) उसे अदा कर चुका हो, फिर भी उसे और सब पढ़ने वालों को चाहिए कि दोबारा पढ़ें, ज़ोर तो नहीं होगा मगर किसी ज़रूरी या कम से कम मुस्तहब (पसंदीदा) काम पर। इसके बावजूद जो नमाज़ शरीयत में अनुमत (माज़ून-फ़ीहा) होगी, वह कम से कम मुस्तहब होगी, क्योंकि यह नमाज़ महज़ मुबाह (जायज़) है जिसके करने या न करने में सवाब और फ़ज़ीलत की बिल्कुल उम्मीद न हो, शरीयत में क़तई जानी-पहचानी नहीं है। और यह दोहराव लगातार तीन दिनों तक जायज़ है और शरीयत में तीन दिनों तक सीमित है। पिछले दावों के सबूत में जो कुछ दरकार है

वह ख़ुद स्पष्ट है; एक विश्वसनीय शरीय दलील चाहिए जो तीन दिनों की इजाज़त दे और इतनी ही सीमा तय करे। बेचारे अनपढ़ मुसलमानों के सामने जो मुँह में आए कह देना आसान है, हक़ीक़त तो सबूत देते वक़्त खुलती है। रहा पहला दावा, उसके लिए कोई हदीस दिखाएं कि हुज़ूर-ए-पुरनूर सय्यद-ए-आलम (सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम) ने इरशाद फ़रमाया हो कि नमाज़-ए-जनाज़ा कई-कई बार पढ़ा करो, या इतना ही इरशाद फ़रमाया हो कि जब नमाज़-ए-जनाज़ा पढ़ लो तो फिर उसे दोहराओ, या बस इतना ही सही कि 'ऐ पढ़ने वालो! जो वली-ए-हक़ के साथ या उसकी इजाज़त से अदा कर चुके हो, फिर दोहराओ तो बेहतर है', या इतना कि तुम्हारे लिए कोई हर्ज नहीं है। या इतना ही आया हो कि हुज़ूर अक़दस (सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम) नमाज़-ए-जनाज़ा बार-बार या दो ही बार पढ़ा करते थे, या इसे छोड़ें, बस इतना ही साबित हो कि वली-ए-हक़ पढ़ चुका था, उसके बाद फिर उसी ने और अन्य पढ़ चुके लोगों ने, या सिर्फ़ उसी ने, या सिर्फ़ और कुछ नमाज़ियों ने हुज़ूर अक़दस (सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम) के सामने दोबारा पढ़ी और हुज़ूर ने मना नहीं फ़रमाया, हुज़ूर तक ख़बर पहुँची और हुज़ूर...

نذیر حسین رکھا، دور رس ہوئے بعض غیر مقلدین نے سفر میں ظہر و عصر اور مغرب و عشاء ملا کر پڑھنے پر زور دیا اور اس مسئلہ کی تقریر جو دہلوی صاحب نے معیار میں بہت چمک کر کی اُس پر ناز تھا، فقیر غفراللہ تعالٰی سے سوال ہوا اس کے جواب میں یہ عجالہ لکھا گیا جس میں بحمد اللہ تعالٰی مذہب حنفیہ کا احقاق و اثبات اور خلاف و مخالفت کا ایہان و اسکات بعون باری روشن وجہ پر واقع ہوا کہ اس رسالہ کے سوا کہیں نہ ملے گا۔ اُس کو دیکھنے سے ان محدث صاحب کی حدیث دانی کے جلوے کھلتے ہیں، ایک ہی مسئلہ کی بحث سے روشن ہوتا ہے کہ حضرت کو نہ احادیث پر نظر نہ اسانید سے خبر ، نہ علم رجال نہ طریق استدلال۔ مفید و عبث میں تمیز درکنار، نافع و مضر میں فرق دشوار۔ مگر ائمہ امت و کبرائے ملت پر منہ آنے کو تیار كَذٰلِكَ يَطْبَعُ اللهُ عَلٰى كُلِّ قَلْبِ مُتَكَبِّرٍ جَبَّارٍ (خدا اسی طرح ہر متکبر زبردستی والے کے دل پر مہر کردیتا ہے۔ ت) بھلا اس مسئلہ میں شیخ صاحب کے لئے سلف موجود تھا کتب شافعیہ وغیرہ گداگری اجتہاد کا بھرت پورا کرلیا۔ اس مسئلہ میں یہ مدعی صاحب ایجاد بندہ بنانے کو کسی کا تیار مال نہ پائیں گے ، ظاہر ہے جو کچھ جوہر علم و عقل دکھائیں گے فضول و بے معنی کلمات کے رد میں خواہی نخواہی تضیع اوقات ہوتی ہے لہٰذا قصر مسافت و دفع کثافت کے لئے پہلے ہی چند ہدایتیں مناسب کہ اگرچہ بعد تنبیہ بھی ان سے عدول ہو تو ہمارا یہی کلام اسکا پیشگی جواب معقول ہو۔ ان مجتہد صاحب کے دعوے یہ ہیں کہ نماز جنازہ اگرچہ برو جہ کامل ہوچکی اگرچہ ولی حق ادا کرچکا ہو مگر پھر اُسے اور سب پڑھ چکنے والوں کو چاہئے کہ دوبارہ پڑھیں، اصرار نہ ہو گا مگر کسی امر ضروری یا لااقل مستحب پر معہذا جو نماز شرعاً ماذون فیہا ہوگی کم از کم مستحبہ ہوگی، کہ یہ نماز مباح محض جس کے کرنے نہ کرنے میں کسی ثواب و فضل کی اصلاً امید نہ ہو،

شرعاً زنہار معہود نہیں، اور یہ تکرار تین روز تک متواتر جائز اور تین روز پر شرعاً محدود، پچھلے دعووں کے ثبوت میں جو کچھ درکار وہ خود آشکار، دلیل معتمد شرعی چاہئے جو تین روز کی اجازت دے اور اسی قدر تحدید کرے، بیچارے بے علم مسلمانوں کے سامنے جو منہ پر آئے کہہ دے آسان ہے، ثبوت دیتے حال کھلتا ہے۔ رہا پہلا دعویٰ اسکے لئے کوئی حدیث دکھائیں کہ حضور پر نور سید عالم صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم نے ارشاد فرمایا ہو نماز جنازہ کئی کئی بار پڑھا کرو، اتنا ہی ارشاد فرمایا ہو کہ جب نماز جنازہ پڑھ لو پھر اعادہ کرو، یا اسی قدر سہی کہ پڑھنے والو! جو ولی حق کے ساتھ یا اس کے اذن سے ادا کر چکے ہو پھر اعادہ کرو تو بہتر ہے یا اسی قدر کہ تمہارے لئے حرج نہیں یا نہ سہی، اتنا ہی آیا ہو کہ حضور اقدس صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم نماز جنازہ بار بار یا دو ہی بار پڑھا کرتے یا اس سے درگزر کرے اسی قدر ثابت ہو کہ ولی حق پڑھ چکا تھا بعدہ پھر اُسی نے اور دیگر پڑھ چکنے والوں یا صرف اُسی نے یا صرف اور بعض مصلیوں نے حضور اقدس صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کے سامنے دوبارہ پڑھی اور حضور نے منع نہ فرمایا، حضور کو خبر پہنچی اور حضور

Fatawa Razawiyya Volume 9

...considered it permissible. These are seven forms of proof, among which the first four are verbal proofs, the fifth is action-based, and the remaining two are tacit approvals. Present the lightest and easiest form among them that you can manage. And when you realize all paths are closed, then there is no choice but to admit to fabrications against the pure Sharia or, at the very least, to boldness and audacity regarding Allah's rulings. Muslims should not accept it from this 'Mujtahid' without proof. If found incapable in all seven ways, then inquire into this: it is mentioned in the Hadith of Sunan al-Darimi that the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) said:

The most daring among you in giving fatwas is the most daring against the fire of Hell. (1)	**اجرؤكم على الفتيا اجرؤكم على النار ١۔**

Are you gentlemen not included in this? If, by the rule that: *Waqt-e-zaroorat chu namand gurez* (There is no choice but to flee upon necessity. - T) one compulsively clings to a specific historical event, then remember that 'an event is specific and has no general applicability,' and special events do not constitute general rulings; they are subject to various possibilities.

Firstly, you must prove that prayer (Janaza) had already been performed for this funeral. Mere improbability, thinking 'surely the Companions would not have missed it then', will not suffice. I say (and success is through Allah): this will not be enough as funeral prayer was not always mandatory. Prayer was not performed over the holy funeral of Hazrat Umm al-Mu'minin Khadija al-Kubra (may Allah be pleased with her) because its obligation had not descended by then. So, firstly, prove with an authentic chain when, in which year, and in which month its obligation descended. Mere unsupported stories will not be heard, for you, being a Mujtahid, cannot follow hearsay. Then, demonstrate with clear evidence that this specific event occurred exactly after the obligation; the mere occurrence of prayer does not prove obligation. There are precedents in Sharia where certain actions, even specific prayers, occurred before obligation, and the obligation descended later, like As'ad bin Zurarah and other noble Ansar of Medina (may Allah be pleased with them) praying Friday (Jumu'ah) before its obligation,

As narrated by Abd al-Razzaq, and through his route, Abd bin Humayd in his Tafsir with an authentic chain.	**كما رواه عبدالرزاق ومن طريقه عبد بن حميد فى تفسيره بسند صحيح**

(1) Sunan al-Darimi, Chapter of Fatwa and the severity therein, Nashr al-Sunnah Multan 1/53.

फ़तावा रज़विया जिल्द 9

...ने जायज़ रखा। ये सबूत की सात सूरतें हैं जिनमें पहली चार क़ौली (मौखिक) और पाँचवीं फ़ेली (क्रियात्मक) और बाकी दो तक़रीरी (मौन स्वीकृति) हैं। इनमें से जिस हल्की से हल्की, आसान से आसान सूरत पर आप कुदरत पा सकें उसे पेश करें और जब जान लें कि सारे रास्ते बंद हैं, तो फिर शरीयत-ए-मुतह्हरा पर इफ़्तरा (आरोप) या कम से कम अल्लाह के अहकाम में बेबाकी और जुर्रत का इक़रार करने के अलावा कोई चारा नहीं। मुसलमान इन मुजतहिद साहब से बिना सबूत के न मानें, अगर सातों तरीक़ों से आजिज़ पाएँ तो इतना दरयाफ़्त करके देखें कि हदीस-ए-सुनन दारमी में रसूलुल्लाह (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने फ़रमाया:

तुममें से जो फ़तवा देने में ज़्यादा जुर्रत करने वाला है, वह जहन्नम की आग पर ज़्यादा जुर्रत रखता है। (1)	**اجرؤكم على الفتيا اجرؤكم على النار ۱۔**

इसमें आप हज़रात तो दाखिल नहीं? अगर इस हुक्म के तहत कि: वक़्त-ए-ज़रूरत चु नमांद गुरेज़ (ज़रूरत पर भागने के सिवा चारा नहीं। - त) मजबूरी में किसी वाकये का दामन थाम लें तो इतना याद रहे कि 'वाकया मुकम्मल तौर पर आम नहीं होता' और ख़ास वाकयात आम अहकाम नहीं होते, उनमें हर तरह के एहतमाल (संभावना) की जगह होती है।

अव्वलन आपको साबित करना होगा कि पहले इस जनाज़े पर नमाज़ हो चुकी थी। महज़ इस्तिबाद (असंभाव्यता) कि भला सहाबा उस वक़्त न पढ़ते, काफ़ी न होगा। मैं कहता हूँ (तौफ़ीक अल्लाह से है): यह काफ़ी न होगा कि नमाज़-ए-जनाज़ा हमेशा से फ़र्ज़ न थी। हज़रत उम्मुल मोमिनीन ख़दीजतुल कुबरा (रज़ियल्लाहु अन्हा) के जनाज़े पर नमाज़ इसलिए नहीं हुई कि उस वक़्त तक इसकी फ़र्ज़ियत ही न थी, तो एक तौबा (पहले) सनद-ए-सहीह से यह साबित कीजिए कि यह कब, किस साल, किस महीने में इसकी फ़र्ज़ियत उतरी। महज़ बे-सनद कहानियाँ नहीं सुनी जाएँगी क्योंकि आप मुजतहिद होकर क़ील-ओ-क़ाल (सुनी-सुनाई बातों) की तक़लीद नहीं कर सकते। फिर दलील-ए-सरीह (स्पष्ट प्रमाण) से यह ज़ाहिर कीजिए कि यह वाकया ठीक फ़र्ज़ियत के बाद ही था, महज़ नमाज़ का वाकय होना फ़र्ज़ियत के लिए मुफ़ीद (सिद्ध) नहीं होगा। शरीयत में इसकी मिसालें मौजूद हैं कि कुछ आमाल बल्कि ख़ास नमाज़ फ़र्ज़ियत से पहले वाकय हुई और बाद में फ़र्ज़ियत उतरी, जैसे असअद बिन ज़ुरारा वगैरह अनसार-ए-किराम अहले मदीना (रज़ियल्लाहु अन्हुम) का फ़र्ज़ियत से पहले जुमा पढ़ना,

जैसा कि इसे अब्दुर रज़्ज़ाक़ ने और उन्हीं के तरीक़े से अब्द बिन हुमैद ने अपनी तफ़्सीर में सनद-ए-सहीह के साथ रिवायत किया।	**كما رواه عبدالرزاق ومن طريقه عبد بن حميد فى تفسيره بسند صحيح**

(1) सुनन अल-दारमी, बाबुल फ़तवा व मा फीही मिनश शिद्दह, नश्रुस सुन्ना मुल्तान 1/53.

पृष्ठ 281/948

نے جائز رکھا۔ یہ سات صورتیں ثبوت کی ہیں جن میں چار پہلے ثبوت قولی اور پانچویں فعلی اور دو باقی تقریری۔ ان میں جس ہلکی سے ہلکی، آسان سے آسان صورت پر قدرت پاؤ پیش کرو اور جب جان لو کہ سب راہیں بند ہیں تو پھر شرع مطہر پر افترا یا اقل درجہ احکام اللہ میں بیباکی و اجتراء کا اقرار کرنے سے چارہ نہیں۔ مسلمان ان مجتہد صاحب سے بے ثبوت لئے نہ مانیں، اگر ساتوں وجہ سے عاجز پائیں تو اتنا دریافت کر دیکھیں۔ کہ حدیث سنن دارمی میں رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم نے فرمایا:

اجرؤکم علی الفتیا اجرؤکم علی النار ۱۔

جو تم میں فتوی دینے پر زیادہ جری ہے آتش دوزخ پر زیادہ جرات رکھتا ہے۔

اس میں آپ حضرات تو داخل نہیں؟ اگر بحکم آنکہ ع: وقت ضرورت چو نماند گریز (ضرورت پر بھاگنے کے سوا چارہ نہیں۔ت) مجبوراً یہ کسی واقعہ حال کا دامن پکڑ لے تو اتنا یاد رہے کہ واقعہ عین لا عموم لہا، و وقائع خاصہ احکام عامہ نہیں ہوتے، وہ ہر گونہ احتمال کے محل ہوتے ہیں۔

اولاً آپ کو ثابت کرنا ہوگا کہ پہلے اس جنازہ پر صلوٰۃ ہوچکی تھی، مجرد استبعاد کہ بھلا صحابہ اس وقت نہ پڑھتے۔ اقول: وباللہ التوفیق یہ کافی نہ ہوگا کہ نماز جنازہ ہمیشہ سے فرض نہ تھی۔ حضرت ام المومنین خدیجۃ الکبرٰی رضی اللہ تعالٰی عنہا کے جنازہ مقدس پر اس لئے نماز نہ ہوئی کہ اس وقت تک اس کی فرضیت ہی نہ تھی، تو ایک توبہ سند صحیح یہ ثابت کیجئے کہ یہ کب، کس سال، کس ماہ میں اس کی فرضیت اتری۔ مجرد حکایات بے سند مسموع نہ ہوں گی کہ آپ مجتہد ہو کر قیل و قال کی تقلید نہیں کرسکتے، پھر بدلیل صریح یہ مبرہن کیجئے کہ یہ واقعہ عین

بعد فرضیت ہی تھا، مجرد وقوع صلوٰۃ مفید فرضیت نہ ہوگا۔ شرع میں اس کی نظائر موجود کہ بعض افعال بلکہ خاص نماز کا قبل فرضیت وقوع ہوا بعد کو فرضیت اتری، جیسے اسعد بن زرارہ وغیرہ انصار کرام اہل مدینہ رضی اللہ تعالیٰ عنہم کا قبل فرضیت جمعہ، جمعہ پڑھنا،

کما رواہ عبدالرزاق ومن طریقہ عبد بن حمید فی تفسیرہ بسند صحیح

جیسا کہ اسے عبدالرزاق نے اور ان ہی کے طریق سے عبد بن حمید نے اپنی تفسیر میں بسند صحیح روایت کیا

۱ سنن الدارمی باب الفتیا وما فیہ من الشدۃ نشر السنہ ملتان ۱/۵۳

[Arabic]: Wa qad bayyannahu fi risalatina Lawami' al-Bahani al-Misr lil-Jumu'ati wal-Arba'i Aqibaha. [Urdu]: And we have explained this in our treatise "Lawami' al-Bahani al-Misr lil-Jumu'ati wal-Arba'i Aqibaha". (T)

The Holy Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) discontinued the congregational Tarawih prayer out of concern that regular observance might make it obligatory. 1- [Arabic]: Kama rawahu as-sunnatu min Zaid bin Thabit wash-Shaikhani 'an Ummul Mu'minina Radiyallahu Ta'ala 'Anha. ([Urdu]: As narrated by the authors of the Sunan from Zaid bin Thabit, and the two Sheikhs (Bukhari and Muslim) from the Mother of the Believers (may Allah be pleased with her). (T)) If one says that the very occurrence of the prayer indicates its obligatoriness, that it became known as an obligatory prayer in Shariah and was not originally legislated as a supererogatory (Nafl) act.

I say: Now you have come to the right path. This is exactly why the leading Imams forbid its repetition, stating that in the pure Shariah, this prayer is not of a supererogatory nature, and its obligatoriness is by consensus as a communal obligation (Fard al-Kifayah). Once some have performed the communal obligation, it is fulfilled. Now, whoever performs it will be doing a Nafl act, and supererogatory (Nafl) repetition in it is not legislated.

Secondly, provide proof that in this instance "Salah" meant the specific ritual acts. "Salah upon so-and-so" in the sense of "supplication" (Du'a) is widespread and common in Shariah texts.

[Arabic]: Qala Ta'ala: Khudh min amwalihim sadaqatan tutahhiruhum wa tuzakkihim biha wa salli 'alaihim inna salataka sakanun lahum. 2- [Urdu translation]: Allah Almighty said: O Prophet! Collect Zakat from the wealth of Muslims so that through it you may purify and cleanse them, and pray for them; indeed, your prayer is a source of peace for them.

In accordance with the command of this verse, when people brought Zakat to the Holy Prophet (peace and blessings of Allah be upon him), he would pray for them:

[Arabic]: Allahumma salli 'ala fulan. 3- Kama rawahu Ahmadu wal-Bukhariyu wa Muslimun wa Abu Dawuda wat-Tirmidhiyu wabnu Majah wa ghairuhum 'an Abdillahi bin Abi Awfa. [Urdu translation]: O Allah! Send mercy upon so-and-so. As narrated by

Imam Ahmad, Bukhari, Muslim, Abu Dawood, Tirmidhi, Ibn Majah, and others from Abdullah bin Abi Awfa.

---

1 Sahih al-Bukhari, Chapter on the Virtue of Standing in Ramadan, Qadimi Kutub Khana Karachi, 1/269; Sahih Muslim, Al-Targhib fi Qiyam Ramadan, Qadimi Kutub Khana Karachi, 1/259. 2 Al-Quran 9/103. 3 Sahih al-Bukhari, Book of Zakat, 1/203, and Book of Supplications, 2/93, Qadimi Kutub Khana Karachi.

[अरबी]: व क़द बय्यन्नाहु फ़ी रिसालतिना लवामि अल-बहानी अल-मिस्र लिल-जुमुअती वल-अर्बई अक़ीबहा। [उर्दू]: और हमने इसे अपने रिसाला "लवामि अल-बहानी अल-मिस्र लिल-जुमुअती वल-अर्बई अक़ीबहा" में बयान किया। (त)

हुज़ूर अकदस (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने तरावीह की जमाअत इसी ख़्याल से तर्क फ़रमा दी कि निरंतरता से कहीं यह फ़र्ज़ न हो जाए। 1- [अरबी]: कमा रवाहू अस-सुन्नतु मिन ज़ैद बिन साबित वश-शैख़ानी 'अन उम्मुल मोमिनीन (रज़ियल्लाहु तआला अन्हा)। ([उर्दू]: जैसा कि इसे असहाबे सित्ता (बुखारी, मुस्लिम, अबू दाऊद, तिर्मिज़ी, नसाई, इब्ने माजा) ने हज़रत ज़ैद बिन साबित से और शैख़ैन (बुखारी, मुस्लिम) ने हज़रत उम्मुल मोमिनीन (रज़ियल्लाहु तआला अन्हा) से रिवायत किया। (त)) अगर कोई कहे कि नमाज़ का स्वयं होना ही इसकी फ़र्ज़ियत बताएगा कि यह नमाज़ शरीअत में फ़र्ज़ ही होकर मशहूर हुई है, नफ़्ली तौर पर मूल रूप से शरीअत में शामिल नहीं।

मैं कहता हूँ: अब आप सही रास्ते पर आ गए। इसीलिए तो आइम्मा-ए-किराम इसकी पुनरावृत्ति को नाजायज़ फ़रमाते हैं कि शरीअते मुतह्हरा में यह नमाज़ नफ़्ल के तौर पर नहीं है और इसकी फ़र्ज़ियत इज्मा के साथ फ़र्ज़े किफ़ाया के तौर पर है। और फ़र्ज़े किफ़ाया जब कुछ लोगों ने अदा कर लिया तो अदा हो गया, अब जो पढ़ेगा वह नफ़्ल ही होगा, और इसमें नफ़्ली पुनरावृत्ति शरीअत में शामिल नहीं।

दूसरी बात, यह साबित करें कि इस वाकये में 'सलात' का अर्थ विशेष अंग (अरकान-ए-मख़सूसा) थे। शरीअत के ग्रंथों में 'फ़लां पर सलात' का अर्थ 'दुआ' होना आम है।

[अरबी]: काला तआला: ख़ुज़ मिन अमवालिहिम सदक़तन तुतह्हिरुहुम व तुज़क्किहिम बिहा व सल्लि अलैहिम इन्ना सलातका सकनुन लहुम। 2- [उर्दू अनुवाद]: अल्लाह तआला ने फ़रमाया: ऐ नबी! मुसलमानों के माल से ज़कात हासिल फ़रमा कर इसके ज़रिए तू उनको पाक और साफ़ कर और उनके लिए दुआ कर, बेशक तेरी दुआ उनके लिए सुकून है।

इसी आयत के हुक्म से जब लोग हुज़ूर अकदस (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) के पास ज़कात हाज़िर करते तो हुज़ूर उनके हक़ में दुआ फ़रमाते:

[अरबी]: अल्लाहुम्मा सल्लि अला फ़ुलान। 3- कमा रवाहू अहमदु वल-बुखारियु व मुस्लिमून व अबू दाऊदा वत-तिर्मिधियु वब्नु माजा व ग़ैरहुम 'अन अब्दुल्लाहि बिन अबी औफ़ा। [उर्दू अनुवाद]: ऐ अल्लाह! फ़लां पर रहमत नाज़िल फ़रमा। जैसा कि इसे इमाम अहमद, बुखारी, मुस्लिम, अबू दाऊद, तिर्मिज़ी, इब्ने माजा वग़ैराह ने हज़रत अब्दुल्लाह बिन अबी औफ़ा से रिवायत किया।

---

1 सही अल-बुखारी, बाब फ़ज़्लु मन क़ामा रमज़ान, क़दीमी कुतुब ख़ाना कराची, 1/269; सही मुस्लिम, अत्तर्ग़ीब फ़ी क़ियाम रमज़ान, क़दीमी कुतुब ख़ाना कराची, 1/259. 2 अल-क़ुरआन 9/103. 3 सही अल-बुखारी, किताबुज़ ज़कात, 1/203, और किताबुद्दअवात, 2/93, क़दीमी कुतुब ख़ाना कराची।

وقد بيننا ه في رسالتنا لوامع البهاني المصر للجمعة والاربع عقيبها۔ | اور اسے ہم نے اپنے رسالہ "لوامع البہانی المصر للجمعۃ والاربع عقیبہا" میں بیان کیا۔ (ت)

حضور اقدس صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم نے جماعت تراویح اسی خیال سے ترک فرمادی کہ مداومت کئے سے فرض نہ ہوجائے ۱- کما رواہ السنۃ من زید بن ثابت والشیخان عن ام المؤمنین رضی اللہ تعالٰی عنہا (جیسا کہ اسے اصحاب ستہ (بخاری، مسلم، ابوداؤد، ترمذی، نسائی، ابن ماجہ) نے حضرت زید بن ثابت سے اور شیخین (بخاری، مسلم) نے حضرت ام المؤمنین رضی اللہ تعالٰی عنہا سے روایت کیا۔) اگر کہے نماز میں نفس وقوع ہی فرضیت بتادے گا کہ یہ نماز شرع میں فرض ہی ہو کر معہود ہوئی ہے نفلی طور پر اصلاً مشروع نہیں

اقول: اب راہ پر آگئے اسی لئے تو ائمہ کرام اس کی تکرار کو نامشروع فرماتے ہیں کہ شرع مطہر میں یہ نماز برو جہ تنفل نہیں اور اس کی فرضیت بالا جماع بسبیل الکفایہ ہے، اور فرض کفایہ جب بعض نے ادا کر لیا ادا ہو گیا، اب جو پڑھے گا نفل ہی ہوگا۔ اور اس میں تنفل مشروع نہیں۔

ثانیاً ثبوت دیجئے کہ اس واقعہ میں صلاۃ بمعنی ارکان مخصوصہ تھی، صلاۃ علی فلاں بمعنی دعا نصوص شرعیہ میں شائع وذائع ہے۔

قال تعالٰی خُذْ مِنْ اَمْوَالِهِمْ صَدَقَةً تُطَهِّرُهُمْ وَتُزَكِّيهِمْ بِهَا وَصَلِّ عَلَيْهِمْ اِنَّ صَلٰوتَكَ سَكَنٌ لَّهُمْ ط ۲- | اللہ تعالٰی نے فرمایا: اے نبی! مسلمانوں کے مال سے زکوٰۃ تحصیل فرما کر اس کے سبب تو ان کو پاک اور ستھرا کرے اور ان پر صلاۃ کر، بیشک تیری صلاۃ اُن کے لئے چین ہے۔

اسی آیت کے حکم سے جب لوگ حضور اقدس صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کے پاس زکوٰۃ حاضر کرتے حضور ان کے حق میں دُعا فرماتے:

اللھم صل علی فلان ۳کما رواہ احمد والبخاری ومسلم وابوداؤد والترمذی وابن ماجۃ وغیرھم عن عبداللہ بن ابی اوفی | اے اللہ ! فلاں پر رحمت نازل فرما۔ جیسا کہ اسے امام احمد، بخاری، مسلم، ابوداؤد، ترمذی، ابن ماجہ وغیرہ ہم نے حضرت ابی اوفی سے روایت کیا۔

---

۱ صحیح البخاری باب فضل من قام رمضان قدیمی کتب خانہ کراچی ۱/ ۲۶۹، صحیح مسلم الترغیب فی قیام رمضان قدیمی کتب خانہ کراچی ۲۵۹/۱ ۲ القرآن ۱۰۳/۹ ۳ صحیح البخاری کتاب الزکوٰۃ ۱/ ۲۰۳، وکتاب الدعوات ۲/ ۹۳ قدیمی کتب خانہ کراچی

Fatawa Rizvia, Volume 9

From Abi Aufa, may Allah be pleased with him. | Narrated from both of them, may Allah be pleased with them. (T)

Similarly, the noble verse:

"Indeed, Allah and His angels send blessings upon the Prophet. O you who have believed, ask [Allah to confer] blessing upon him and ask [Allah to grant him] peace." [1] | Truly, God and His angels send blessings on the Prophet. O believers! You too send blessings on him and send greetings of peace abundantly. (T)

"O Allah, send blessings, peace, and barakah upon him and upon his family, his companions, and everyone attributed to him." | O Allah! Send blessings, peace, and barakah on him and on his family and companions and on everyone who has a relation or connection with them. (T)

Noble verse: "He it is who sends blessings on you, and (so do) His angels." [2] (He is the one who sends blessings upon you, and His angels. (T)) Noble Verse: "And of the bedouins is he who believes in Allah and the Last Day and takes what he spends as a means of nearness to Allah and of obtaining the invocations of the Messenger." [3] (And some of the villagers are those who believe in Allah and the Last Day, and regard whatever they spend as a means of closeness to Allah and obtaining the prayers of the Messenger. (T)) etc. 'Salat' means 'dua' (prayer). Scholars have mentioned in the Hadith of Muwatta Imam Malik and Sunan Nasai from the Mother of the Believers as-Siddiqah, may Allah be pleased with them, that the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) said:

"Indeed, I was sent to the people of Al-Baqi to pray for them." [4] | I was sent towards the people of Baqi to offer Salat (prayer) for them. 'Salat' is taken in the sense of seeking forgiveness and prayer.

I say: Rather, in another narration of Sunan Nasai, it is:

"Indeed, Gabriel came to me (so he mentioned the Hadith, he said) so he commanded me to go to Al-Baqi and seek forgiveness for them. I said to him, 'How should I say, O Messenger of Allah?' He said, 'Say: Peace be upon the people of the abode from the believers'." | That is, the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) said: "Gabriel came to me and commanded me to go to Baqi and pray for

forgiveness for the people of Baqi." The Mother of the Believers says: "I submitted, 'O Messenger of Allah! In what way?'"

[1] Al-Quran 33/56 [2] Al-Quran 33/43 [3] Al-Quran 9/99 [4] Sunan al-Nasa'i, Book of Funerals, Noor Muhammad Karkhana Tijarat Kutub Karachi, 7/28

फ़तावा रिज़विया, खंड 9

अबी औफ़ा रज़ियल्लाहु तआला अन्हु से। | उन दोनों रज़ियल्लाहु अन्हुमा से रिवायत किया गया। (त)

इसी तरह करीमा आयत है:

"बेशक अल्लाह और उसके फ़रिश्ते नबी पर दुरूद भेजते हैं। ऐ ईमान वालो! तुम भी उन पर दुरूद और खूब खूब सलाम भेजो।" [1] | बेशक खुदा और उसके फ़रिश्ते नबी पर दुरूद भेजते हैं ऐ ईमान वालो! तुम भी उन पर दुरूद पढ़ो और खूब खूब सलाम भेजो। (त)

"ऐ अल्लाह! उन पर और उनकी आल (संतान), असहाब (साथियों) और उन से निस्बत रखने वाले हर शख़्स पर दुरूद, सलाम और बरकत नाज़िल फ़रमा।" | ऐ अल्लाह! इन पर दुरूद व सलाम व बरकत नाज़िल फ़रमा और उनकी आल व असहाब और उनसे हर निस्बत व ताल्लुक रखने वाले पर भी। (त)

करीमा: "वही है जो तुम पर दुरूद भेजता है और उसके फ़रिश्ते।" [2] (वही है जो तुम पर दुरूद भेजता है और उसके फ़रिश्ते। त) करीमा: "और देहातियों में से वह हैं जो अल्लाह पर और क़यामत के दिन पर ईमान रखते हैं और जो कुछ ख़र्च करते हैं उसे अल्लाह की नज़दीकियों और रसूल से दुआएं लेने का ज़रिया समझते हैं।" [3] (और कुछ गांव वाले वे हैं जो अल्लाह पर और रोज़-ए-क़यामत पर ईमान रखते हैं और जो कुछ ख़र्च करें उसे अल्लाह की नज़दीकियों और रसूल से दुआएं लेने का ज़रिया समझें। त) वगैरह, यहाँ 'सलात' का अर्थ 'दुआ' है। उलेमा ने मुवत्ता इमाम मालिक और सुनन नसाई की हदीस में उम्मुल मोमिनीन सिद्दीक़ा रज़ियल्लाहु तआला अन्हुमा से रिवायत की है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम ने फ़रमाया:

"मुझे अहल-ए-बक़ी (बक़ी के कब्रिस्तान वालों) की तरफ़ भेजा गया ताकि मैं उन पर सलात (दुआ) करूँ।" [4] | मैं अहल-ए-बक़ी की तरफ़ भेजा गया ताकि उन पर सलात करूँ। सलात को इस्तग़फ़ार और दुआ के अर्थ में लिया गया।

मैं कहता हूँ: बल्कि सुनन नसाई की दूसरी रिवायत में है:

"जिब्रील मेरे पास आए (हदीस का ज़िक्र करते हुए कहा) तो उन्होंने मुझे हुक्म दिया कि मैं बक़ी जाऊँ और उनके लिए मग़फ़िरत (क्षमा) की दुआ करूँ। मैंने उनसे कहा, ऐ अल्लाह के रसूल! मैं कैसे कहूँ? उन्होंने फ़रमाया, कहो: सलाम हो ईमान वालों में से इस घर के रहने वालों पर।" | यानी हुज़ूर

सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम ने फ़रमाया: "जिब्रील मेरे पास आए और मुझे हुक्म दिया कि बक़ी जाकर अहल-ए-बक़ी के लिए दुआ-ए-मग़फ़िरت करूँ।" उम्मुल मोमिनीन फ़रमाती हैं, मैंने अर्ज़ किया: "या रसूल अल्लाह! किस तरह?"

[1] अल-क़ुरान 33/56 [2] अल-क़ुरान 33/43 [3] अल-क़ुरान 9/99 [4] सुनन अल-नसाई, किताब अल-जनाइज़, नूर मुहम्मद कारख़ाना तिज़ारत कुतुब कराची 7/28

فتاوٰی رضویہ ، جلد نہم

ابی اوفی رضی اللہ تعالٰی عنہ | رضی اللہ عنہما رضی اللہ تعالٰی عنہما سے روایت کیا۔ (ت)

اسی طرح آیہ کریمہ:

اِنَّ اللّٰہَ وَ مَلٰٓئِکَتَہٗ یُصَلُّوْنَ عَلَی النَّبِیِّ ؕ یٰٓاَیُّھَا الَّذِیْنَ اٰمَنُوْا صَلُّوْا عَلَیْہِ وَ سَلِّمُوْا تَسْلِیْمًا ۱ | بیشک خدا اور اس کے فرشتے نبی پر درود بھیجتے ہیں اے ایمان والو! تم بھی ان پر درود پڑھو اور خوب خوب سلام بھیجو۔ (ت)

اللھم صل وسلم وبارك علیه وعلی آله وصحبه وکل منتم الیه۔ | اے اللہ! ان پر درود و سلام و برکت نازل فرما اور ان کی آل واصحاب اور ان سے ہر نسبت و تعلق رکھنے والے پر بھی۔ (ت)

کریمہ ھُوَ الَّذِیْ یُصَلِّیْ عَلَیْکُمْ وَ مَلٰٓئِکَتُہٗ ۲ (وہی ہے کہ درود بھیجتا ہے تم پر اور اس کے فرشتے۔ ت)
کریمہ وَ مِنَ الْاَعْرَابِ مَنْ یُّؤْمِنُ بِاللّٰہِ وَ الْیَوْمِ الْاٰخِرِ وَ یَتَّخِذُ مَا یُنْفِقُ قُرُبٰتٍ عِنْدَ اللّٰہِ وَ صَلَوٰتِ الرَّسُوْلِ ط ۳ (اور کچھ گاؤں والے وہ ہیں جو اللہ پر اور روز قیامت پر ایمان رکھتے ہیں اور جو کچھ خرچ کریں اسے اللہ کی نزدیکیوں اور رسول سے دعائیں لینے کا ذریعہ سمجھیں۔ ت) وغیرہ صلوۃ بمعنٰی دعا ہے، علماء نے حدیث مؤطا امام مالک و سنن نسائی عن ام المومنین الصدیقہ رضی اللہ تعالٰی عنہما میں رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم نے فرمایا:

انی بعثت الی اھل البقیع لاصل علیھم ۴۔ | میں اہل بقیع کی طرف بھیجا گیا کہ ان پر صلوۃ کروں۔ صلوۃ کو بمعنی استغفار و دعا لیا۔

اقول: بلکہ سُنن نسائی کی دوسری روایت میں ہے:

ان جبریل اتانی (فذکر الحدیث قال) فامرنی ان اتی البقیع فاستغفر لھم قلت لہ کیف اقول یارسول اللہ قال قولی السلام علی اھل الدار من المؤمنین | یعنی حضور صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم نے فرمایا جبرئیل میرے پاس آئے مجھے حکم فرمایا کہ بقیع جا کر اہل بقیع کے لئے دعائے مغفرت کروں، ام المومنین فرماتی ہیں میں نے عرض کیا یا رسول اللہ! کس طرح

1 القرآن ۵۶/۳۳ 2 القرآن ۴۳/۳۳ 3 القرآن ۹۹/۹ 4 سنن النسائی کتاب الجنائز نور محمد کارخانہ تجارت کتب کراچی ۷/ ۲۸

Fatawa Razawiyya, Volume 9

...and the Muslims. And may Allah have mercy on those of us who have gone before and those who are to follow, and if Allah wills, we shall join you. 1

I say, the Prophet (peace and blessings be upon him) taught the supplication for visiting graves: "Peace be upon the inhabitants of the abode of the believers and Muslims. And may Allah have mercy on those of us who have gone before and those who are to follow, and if Allah wills, we shall join you."

This itself is in the Hadith of Bukhari, Muslim, Abu Dawood, and An-Nasa'i from Uqbah bin Amir, that the Prophet (peace and blessings be upon him) went out one day and prayed over the people of Uhud as he prayed over a dead person. 2 (It is narrated from Hazrat Uqbah bin Amir that the Prophet (peace and blessings be upon him) went to Uhud one day and offered prayer for the people of Uhud just as prayer is offered for a dead person. - T). In this as well, scholars have taken 'Salah' to mean supplication (du'a). In Irshad al-Sari Sharh Sahih al-Bukhari, it is said:

(Bukhari) added in the narrative of the Battle of Uhud through the path of Haywah bin Shurayh from Yazid: "after eight years." The meaning is that he (peace and blessings of Allah be upon him) prayed for them with the supplication of the funeral prayer, and the customary funeral prayer is not intended, as in the Almighty's saying: "And pray for them." Consensus (ijma') indicates this because according to us, there is no funeral prayer for a martyr, and according to Imam Abu Hanifa, who disagrees with us on this, there is no funeral prayer over a grave after three days. 3

Imam Bukhari, in the account of the Battle of Uhud, added through the route of Haywah bin Shurayh from Yazid the phrase "after eight years," meaning the event of the mentioned Salah for the people of Uhud occurred eight years after their martyrdom. By "Salah," it is meant that the Holy Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) made for them the same supplication that is made in the funeral prayer; the well-known funeral prayer is not meant. Just as the word of the Almighty "Pray for them" means to supplicate for them. The evidence for this interpretation is consensus, because according to us, the funeral prayer is not offered for a martyr, and Imam Abu Hanifa, who differs from us on this matter, believes that the funeral prayer is not offered over a grave after three days. (T)

Then Imam Nawawi in Sharh al-Muhadhdhab, and then Imam Suyuti in Mirqat al-Su'ud Sharh Sunan Abi Dawood, say:

Our companions and others said that what is meant by...	**Our scholars and others said that here it is meant...**

1. Sunan an-Nasa'i, Kitab al-Jana'iz, Nur Muhammad Karkhana Tijarat Karachi, 1/78.
2. Sunan an-Nasa'i, Kitab al-Jana'iz, Nur Muhammad Karkhana Tijarat Karachi, 1/77.
3. Irshad al-Sari Sharh Sahih al-Bukhari, Chapter of Prayer over the Martyr, Dar al-Kutub al-Arabi, Beirut, 4/440.

फ़तावा रज़विया, जिल्द नहूम (खंड 9)

...और मुसलमान। और अल्लाह हममें से अग्रदूतों और पिछलग्गुओं पर दया करे, और हम भी, यदि अल्लाह ने चाहा, तो आपके साथ शामिल होने वाले हैं। 1	**मैं कहता हूँ, हुज़ूर (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने कब्रों की ज़ियारत की दुआ की शिक्षा दी: "शांति हो उन पर जो ईमान वाले और मुसलमानों के इस घर में रहने वाले हैं। और अल्लाह हममें से पहले गुज़र जाने वालों और बाद में आने वालों पर दया करे, और हम भी, यदि अल्लाह ने चाहा, तो आपके साथ शामिल होने वाले हैं।"**

यह तो स्वयं बुखारी, मुस्लिम, अबू दाऊद और अन-नसाई की हदीस में उकबा बिन आमिर से वर्णित है कि नबी सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम एक दिन बाहर निकले और उहुद के लोगों पर वैसे ही नमाज़ (सलात) पढ़ी जैसे मैय्यत (मृतक) पर नमाज़ पढ़ी जाती है। 2 (हज़रत उकबा बिन आमिर से रिवायत है कि नबी सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने एक दिन उहुद तशरीफ़ ले जाकर अहल-ए-उहुद पर नमाज़ पढ़ी जैसे मैय्यत पर नमाज़ पढ़ी जाती है। - टी) इसमें भी उलेमा ने सलात का अर्थ दुआ लिया है। इरशाद अल-सारी शरह सहीह अल-बुखारी में है:

(बुखारी ने) गज़वा-ए-उहुद के ज़िक्र में हैवह बिन शुरैह के माध्यम से यज़ीद से रिवायत करते हुए "आठ साल बाद" का इज़ाफ़ा (जोड़) किया। और इसका अर्थ यह है कि नबी सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने उनके लिए नमाज़-ए-मैय्यत वाली दुआ की, और यहाँ पारंपरिक नमाज़-ए-मैय्यत अभिप्रेत नहीं है, जैसे अल्लाह तआला का फरमान है: "और उनके लिए दुआ (व सल्लि अलैहिम) करो।" इज्मा (सहमति) इस पर दलील है क्योंकि हमारे नज़दीक शहीद की नमाज़-ए-जनाज़ा नहीं होती, और इमाम अबू हनीफ़ा जो इस मामले में हमारे मुख़ालिफ हैं, उनके नज़दीक तीन दिनों के बाद क़ब्र पर नमाज़-ए-जनाज़ा नहीं होती। 3

इमाम बुखारी ने गज़वा-ए-उहुद के वर्णन में हैवह बिन शुरैह के माध्यम से यज़ीद से "आठ साल बाद" का इज़ाफ़ा किया, यानी अहल-ए-उहुद के लिए उल्लेखित सलात (नमाज़) की घटना उनकी शहादत के आठ साल बाद की है। और सलात से मुराद यह है कि हुज़ूर अक़दस सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने उनके लिए वही दुआ की जो नमाज़-ए-मैय्यत में होती है, प्रसिद्ध नमाज़-ए-जनाज़ा मुराद नहीं है। जैसे अल्लाह तआला के इरशाद "सल्लि अलैहिम" का अर्थ है कि उनके लिए दुआ करो। इस अर्थ की दलील इज्मा (सहमति) है क्योंकि हमारे यहाँ शहीद की नमाज़-ए-जनाज़ा नहीं होती, और इमाम अबू हनीफ़ा जो इस बारे में हमारे विरुद्ध मत रखते हैं, उनके अनुसार तीन दिन के बाद क़ब्र पर नमाज़-ए-जनाज़ा नहीं होती। (टी)

फिर इमाम नववी 'शरह अल-मुहज़्ज़ब' में और फिर इमाम सुयूती 'मिर्क़ात अल-सुऊद शरह सुनन अबी दाऊद' में फ़रमाते हैं:

हमारे साथियों और अन्य लोगों ने कहा कि यहाँ मुराद है...

हमारे विद्वानों और अन्य लोगों ने कहा कि यहाँ मुराद है...

1. सुनन अन-नसाई, किताब अल-जनाइज़, नूर मोहम्मद कारख़ाना तिज़ारत कराची, 78/1
2. सुनन अन-नसाई, किताब अल-जनाइज़, नूर मोहम्मद कारख़ाना तिज़ारत कराची, 77/1
3. इरशाद अल-सारी शरह सहीह अल-बुखारी, बाब अल-सलात अलश-शहीद, दार अल-किताब अल-अरबी बैरुत, 440/4

فتاوٰی رضویہ جلد نہم

...والمسلمین ویرحم اللہ المستقدمین کہوں، حضور نے دعاء زیارت قبور تعلیم فرمائی السلام علی منا والمستاخرین وانا ان شاء اللہ اھل الدار من المؤمنین والمسلمین ویرحم اللہ المستقدمین منا بکم لاحقون 1 والمستاخرین وانا ان شاء اللہ بکم لاحقون۔

یہ تو خود حدیث بخاری و مسلم و ابی داؤد و النسائی عن عقبۃ بن عامر ان النبی صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم خرج یوما فصلی علی اھل احد صلوتہ علی المیت 2 (حضرت عقبہ بن عامر سے مروی ہے کہ نبی صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم نے ایک دن احد تشریف لے جا کر اہل احد پر صلوٰۃ پڑھی جیسے میت پر صلوٰۃ پڑھی جاتی ہے۔ ت) میں بھی علما نے صلوٰۃ بمعنی دعا لی۔ ارشاد الساری شرح صحیح بخاری میں ہے:

امام بخاری نے غزوہ اُحد کے بیان میں بطریق حَیْوَہ بن

زاد (البخاری) فی غزوۃ احد من شریح عن یزید "آٹھ سال بعد" کا اضافہ کیا، یعنی اہل اُحد طریق حیوۃ بن شریح عن یزید بعد کے لئے صلوٰۃ مذکور کا واقعہ ان کی شہادت کے آٹھ سال بعد ثمان سنین والمراد انہ صلی اللہ کا ہے۔ اور صلوٰۃ سے مراد یہ ہے کہ حضور اقدس صلی اللہ تعالی علیہ وسلم دعاء لھم بدعاء تعالیٰ علیہ وسلم نے ان کے لئے وہی دعا کی جو نمازِ میت صلوۃ المیت ولیس المراد صلوۃ میں ہوتی ہے، معروف نمازِ جنازہ مراد نہیں۔ جیسے ارشادِ المیت المعھودۃ کقولہ تعالی وصل باری تعالیٰ "صل علیہم" کا معنی ان کے لئے دعا کرو۔ اس علیھم الاجماع یدل لہ لانہ لایصلی مراد کی دلیل اجماع ہے اسلئے کہ ہمارے نزدیک شہید کی علیہ عندنا وعند ابی حنیفۃ المخالف نمازِ جنازہ نہیں، اور امام ابوحنیفہ جو اس بارے میں ہمارے لایصلی علی القبر بعد ثلثۃ الایام 3۔ مخالف ہیں ان کے نزدیک تین دن کے بعد قبر پر نمازِ جنازہ نہیں۔ (ت)

پھر امام نووی شرح مہذب پھر امام سیوطی مرقاۃ الصعود شرح سنن ابی داؤد میں فرماتے ہیں:

قال اصحابنا وغیرھم ان المراد من ہمارے علماء اور دیگر حضرات نے فرمایا کہ یہاں

1 سنن النسائی کتاب الجنائز نور محمد کارخانہ تجارت کراچی ۱/۷۸ 2 سنن النسائی کتاب الجنائز نور محمد کارخانہ تجارت کراچی ۱/۷۷ 3 ارشاد الساری شرح صحیح بخاری باب الصلوۃ علی الشہید دار الکتاب العربی بیروت ۴/۴۴۰

Fatawa Rizvia, Volume 9

[Top Box] (Arabic): Here, 'Salat' means supplication (dua), and the phrase 'his Salat upon the deceased' means a supplication for them like the supplication in the funeral prayer, and it does not refer to the well-known congregational funeral prayer by consensus. [Condensed] (Urdu): Here, 'Salat' refers to prayer (dua), and the meaning of 'Salat upon the deceased' is that a prayer was made for them just as it is made in the funeral prayer, and it does not mean the well-known funeral prayer by consensus. [Condensed] (T)

Similarly, after the holy passing of the Radiant Prophet (peace and blessings of Allah be upon him), the 'Salat' offered by the noble companions (may Allah be pleased with them) is also interpreted by a group of scholars as blessings and supplication (Durood and Dua), and this is evident from the hadith of the Commander of the Faithful, Ali (may Allah be pleased with him):

[Main Table] (Arabic Column): Ibn Sa'd narrated from Abdullah bin Muhammad bin Abdullah bin Umar bin Ali bin Abi Talib, from his grandfather, from Ali (may Allah be pleased with him) who said: When the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) was placed on the bier, he [Ali] said, "No one should stand as an Imam over him; he is your Imam in life and after death." So people entered in groups, praying over him in rows without an Imam, saying the Takbir. Ali stood in front of the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) saying: "Peace be upon you, O Prophet, and the mercy of Allah and His blessings. O Allah, we testify that he has conveyed what was revealed to him, counseled his nation, and strove in the path of Allah until Allah honored His religion and His word was completed. O Allah, make us among those who follow what was revealed to him, keep us steadfast after him, and gather us with him." The people would say "Ameen" until the prayer was completed.

(Urdu Column): Ibn Sa'd narrated from Abdullah bin Abdullah bin Umar bin Ali bin Abi Talib that he narrated from his father via his grandfather Ali al-Murtaza (may Allah be pleased with him) that when the Radiant Prophet, Master of the Messengers (peace and blessings of Allah be upon him) was bathed and placed on the luminous bier, Hazrat Maula Ali (may Allah honor his face) said, "Let no one stand as an Imam before the Holy Prophet (peace and blessings of Allah be upon him), for he is your Imam in his worldly life and after his passing as well." Thus, people came in groups and ranks to offer Salat upon the Prophet, and they had no Imam. Ali (may Allah

honor his face) stood before the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) and submitted: "Peace be upon the Prophet, and the mercy of Allah and His blessings. O Allah! We testify that the Prophet conveyed whatever was revealed towards him, sought the welfare of his Ummah in every matter, and strove in the path of Allah, until Allah the Exalted and Glorious made His religion dominant."

[Footer] [1] Sharh al-Muhadhdhab by al-Nawawi, Branch on the views of scholars regarding bathing a martyr, etc. Al-Maktaba al-Salafiyya, Medina al-Munawwara, 1395/5

फ़तावा रिज़विया, खंड 9

[शीर्ष बॉक्स] (अरबी): यहाँ 'सलात' का अर्थ दुआ है और 'मय्यित पर सलात' का अर्थ है उनके लिए वैसी ही दुआ करना जैसी जनाज़े की नमाज़ में की जाती है, और सर्वसम्मति से प्रसिद्ध जनाज़े की नमाज़ यहाँ अभिप्रेत नहीं है। [संक्षिप्त] (उर्दू): सलात से मुराद दुआ है और 'सलात अली अल-मय्यित' का अर्थ यह है कि जैसे मय्यित की नमाज़ में दुआ होती है वही दुआ उनके लिए की गई, और सर्वसम्मति से प्रसिद्ध जनाज़े की नमाज़ मुराद नहीं है। [संक्षिप्त] (T)

इसी प्रकार हुज़ूर परनूर (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) के पवित्र देहावसान के बाद सहाबा किराम (रज़ियल्लाहु अन्हुम) ने जो सलात अदा की, उसे विद्वानों का एक समूह दरूद और दुआ के अर्थ में लेता है, और अमीर-उल-मोमिनीन हज़रत अली (रज़ियल्लाहु अन्हु) की हदीस से यही ज़ाहिर है:

[मुख्य तालिका] (अरबी कॉलम): इब्न साद ने अब्दुल्ला बिन मुहम्मद बिन अब्दुल्ला बिन उमर बिन अली बिन अबी तालिब के माध्यम से, उनके दादा अली (रज़ियल्लाहु अन्हु) से रिवायत की कि उन्होंने कहा: जब अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) को चारपाई (बीर) पर रखा गया, तो उन्होंने [अली ने] कहा, "उनके ऊपर कोई इमाम बनकर न खड़ा हो; वे जीवन में और मृत्यु के बाद भी तुम्हारे इमाम हैं।" फिर लोग जत्थों में आए, बिना इमाम के पंक्तियों में उन पर प्रार्थना (सलात) की और तकबीर कही। अली अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) के सामने खड़े होकर कह रहे थे: "आप पर सलाम हो ऐ नबी, और अल्लाह की रहमत और उसकी बरकतें। ऐ अल्लाह, हम गवाही देते हैं कि उन्होंने वह सब पहुँचा दिया जो उनकी ओर उतारा गया, अपनी उम्मत को नसीहत की, और अल्लाह की राह में जिहाद किया यहाँ तक कि अल्लाह ने अपने दीन को सम्मानित किया और उसकी बात पूरी हुई। ऐ अल्लाह, हमें उन लोगों में से बना जो उस चीज़ का अनुसरण करते हैं जो उनकी ओर उतारी गई, उनके बाद हमें दृढ़ रख, और हमें उनके साथ इकट्ठा कर।" लोग 'आमीन' कहते रहे जब तक कि सलात पूरी नहीं हो गई।

(उर्दू कॉलम): इब्न साद ने अब्दुल्ला बिन अब्दुल्ला बिन उमर बिन अली बिन अबी तालिब से उल्लेख किया कि उन्होंने अपने पिता के माध्यम से अपने दादा अली मुर्तज़ा (रज़ियल्लाहु अन्हु) से रिवायत की कि जब हुज़ूर परनूर, सैय्यद-उल-मुरसलीन (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) को गुस्ल देकर पवित्र चारपाई पर लिटाया गया, तो हज़रत मौला अली (करमल्लाहु वज्हहुल करीम) ने फ़रमाया, "हुज़ूर अकदस (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) के आगे कोई इमाम बनकर खड़ा न हो, क्योंकि वे तुम्हारे

इमाम हैं अपनी दुनियावी ज़िंदगी में और देहावसान के बाद भी।" अतः लोग गिरोह दर गिरोह और कतारों में हुज़ूर पर सलात पढ़ते, उनका कोई इमाम नहीं था। अली (करमल्लाहु वज्हहुल करीम) रसूलुल्लाह (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) के सामने खड़े होकर अर्ज़ करते थे: "सलाम हुज़ूर पर ऐ नबी और अल्लाह की रहमत और उसकी बरकतें। इलाही! हम गवाही देते हैं कि हुज़ूर ने पहुँचा दिया जो कुछ उनकी तरफ़ उतारा गया और हर बात में अपनी उम्मत की भलाई की और राह-ए-ख़ुदा में जिहाद फ़रमाया, यहाँ तक कि अल्लाह अज़्ज़-ओ-जल् ने अपने दीन को ग़ालिब किया।"

[फ़ुटर] [1] शरह अल-मुहज़्ज़ब, नवाही, शहीद के गुस्ल के बारे में विद्वानों के मतों की शाखा, अल-मकतबा अल-सलफ़िया, मदीना मुनव्वरा, 1395/5

पृष्ठ 285/948

فتاوٰی رضویہ، جلد نہم

[اوپری خانہ] (عربی): یھان الصلوۃ ھھنا الدعاء وقولہ صلوتہ علی المیت ای دعاء لھم کدعاء صلوۃ المیت ولیس المراد صلاۃ الجنازۃ المعروفۃ بالاجماع اہ مختصرا۔ (اردو): صلوٰۃ سے مراد دعا ہے اور صلوٰۃ علی المیت کا معنی یہ ہے کہ جیسے نمازِ میت میں دعا ہوتی ہے وہی دعا ان کے لئے کی، اور معروف نمازِ جنازہ بالاجماع مراد نہیں اہ مختصراً (ت)

اسی طرح وصالِ اقدس کے بعد حضور پرنور صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم پر جو صلوٰۃ صحابہ کرام رضی اللہ عنہم نے ادا کی ایک جماعتِ علماء سے بھی بمعنی درود ودعا لیتی ہے اور حدیث امیر المومنین علی رضی اللہ تعالٰی عنہ سے یہی ظاہر :

[مرکزی جدول] (عربی کالم): اخرج ابن سعد عن عبداللہ بن محمد بن عبد اللہ بن عمر بن علی بن ابی طالب عن جدہ عن علی رضی اللہ تعالٰی عنہ قال لما وضع رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم علی السریر قال لایقوم علیہ احد ھو امامکم حیّا ومیتًا فکان یدخل الناس رسلًا رسلا فیصلون علیہ صفًا صفًا لیس لھم امام ویکبرون وعلی قائم بحیال رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم یقول السلام علیك ایھا النبي ورحمۃ اللہ وبرکاتہ اللھم انا نشھد ان قد بلغ ما انزل الیہ ونصح لامتہ وجاھد في سبیل اللہ حتی اعز اللہ دینہ وتمت کلمتہ اللھم فاجعلنا ممن تبع ما انزل الیہ وثبتنا بعدہ واجمع بیننا وبینہ فیقول الناس امین حتی صلی

(اردو کالم): ابن سعد نے عبد اللہ بن عبد اللہ بن عمر بن علی بن ابی طالب سے تخریج کی کہ انہوں نے اپنے والد سے بواسطہ اپنے دادا علی مرتضٰی رضی اللہ تعالٰی عنہ روایت کیا یعنی جب حضور پر نور سید المرسلین صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم کو غسل دے کر سریر منیر پر لٹایا حضرت مولٰی

علی کرم اللہ وجہہ نے فرمایا حضور اقدس صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کے آگے کوئی امام بن کے کھڑا نہ ہو کہ وہ تمہارے امام ہیں اپنی زندگی دنیاوی میں اور بعد وصال بھی۔ پس لوگ گروہ در گروہ اور پرے کے پرے حضور پر صلوٰۃ کرتے کوئی ان کا امام نہ تھا۔ علی کرم اللہ وجہہ رسول اللہ صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کے سامنے کھڑے عرض کرتے تھے : سلام حضور پر اے نبی اور اللہ کی رحمت اور اس کی برکتیں۔ الٰہی ! ہم گواہی دیتے ہیں کہ حضور نے پہنچا دیا جو کچھ ان کی طرف اتارا گیا اور ہر بات میں اپنی امت کی بھلائی کی اور راہ خدا میں جہاد فرمایا، یہاں تک کہ اللہ عزوجل نے اپنے دین کو غالب کیا

[فٹر] 1 شرح المہذب للنووی فرع فی مذاہب العلماء فی غسل الشہید الخ المکتبۃ السلفیہ مدینہ منورہ ۱۳۹۵/۵

Fatawa Razawiya, Volume 9

...upon him by men, then women, then children. 1 - And the word of Allah was fulfilled. O Allah! Make us among the followers of the Book revealed to him, and keep us steadfast on his religion after him, and unite us with him on the Day of Judgment. Maula Ali used to make this supplication, and those present would say 'Amen', until the men, then women, then boys offered funeral prayers for him, peace and blessings of Allah be upon him. (T)

And this is evident from the Hadith narrated by Ibn Sa'd and Bayhaqi from Muhammad ibn Ibrahim Taymi Madani: When the Holy Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) was shrouded and placed on the blessed bier, Siddiq and Farooq (may Allah be pleased with them both) came and submitted: "Peace be upon you, O Prophet, and the mercy of Allah and His blessings." With them was a group of Muhajireen and Ansar as many as the holy chamber could accommodate. They all offered salutations just as Abu Bakr and Umar did. Siddiq and Farooq stood in the first row in front of the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) and supplicated: "O Allah! I bear witness that whatever You revealed to Your Prophet, he conveyed it to the Ummah, remained their well-wisher, and strove in the path of Allah as is due, until Allah gave dominance to His religion and His words were fulfilled. So, faith was brought in the One Allah, He has no partner. Therefore, O our God! Make us among those who follow the word that was revealed with him, and unite us with him so that we recognize him and You make us known to him, for he was compassionate and merciful to the believers. We do not seek any substitute for faith, nor will we ever buy anything in exchange for it." Then the people said "Amen, Amen." Then they went out and others entered until men, then women, then children had offered prayers over him. 2 -

1 Al-Tabaqat al-Kubra by Ibn Sa'd, mention of the prayer over the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him), Dar Sader, Beirut, 2/291. 2 Al-Tabaqat al-Kubra by Ibn Sa'd, mention of the prayer over the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him), Dar Sader, Beirut, 2/290.

फ़तावा रज़विया, जिल्द 9

...उन पर पुरुषों ने, फिर महिलाओं ने, फिर बच्चों ने (नमाज़ पढ़ी)। 1 - और अल्लाह का वादा पूरा हुआ। ऐ अल्लाह! हमें उन पर उतारी गई किताब के अनुयायियों में से कर और उनके बाद भी हमें उनके दीन पर अडिग रख और क़यामत के दिन हमें उनसे मिला। मौला अली यह दुआ करते और उपस्थित लोग 'आमीन' कहते, यहाँ तक कि पुरुषों, फिर महिलाओं और फिर लड़कों ने उन पर नमाज़ (जनाज़ा) पढ़ी, सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम। (त)

और यही इस हदीस से ज़ाहिर है जिसे इब्न साद और बैहक़ी ने मुहम्मद बिन इब्राहिम तैमी मदनी से रिवायत किया है: यानी जब हुज़ूर अक़दस सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम को कफ़न देकर मुबारक तख्त पर आराम दिया गया, तो सिद्दीक़ और फ़ारूक़ (रज़ियल्लाहु अन्हुमा) ने उपस्थित होकर अर्ज़ किया: "सलाम हो आप पर ऐ नबी और अल्लाह की रहमत और उसकी बरकतें।" उनके साथ मुहाजिरीन और अंसार का एक समूह था जितना पवित्र कमरे में समा सकता था। उन सब ने इसी तरह सलाम अर्ज़ किया और सिद्दीक़ और फ़ारूक़ पहली सफ़ में रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम के सामने खड़े होकर यह दुआ करते: "ऐ अल्लाह! मैं गवाही देता हूँ कि जो कुछ तूने अपने नबी पर उतारा, हुज़ूर ने उसे उम्मत तक पहुँचाया और उनकी भलाई के इच्छुक रहे और अल्लाह की राह में जिहाद किया जैसा कि उसका हक़ है, यहाँ तक कि अल्लाह तआला ने अपने दीन को ग़लबा दिया और अल्लाह की बातें पूरी हुईं। तो एक अल्लाह पर ईमान लाया गया, उसका कोई शरीक नहीं। तो ऐ हमारे माबूद! हमें उनकी किताब के पैरोकारों में कर जो उनके साथ उतरी और हमें उनसे मिला कि हम उन्हें पहचानें और तू हमारी पहचान उन्हें करा दे क्योंकि वह मुसलमानों पर रहम दिल थे। हम न ईमान के बदले कुछ और चाहेंगे और न ही कभी इसकी कोई कीमत लेंगे।" फिर लोग 'आमीन, आमीन' कहते। फिर वे बाहर निकल जाते और दूसरे अंदर आते यहाँ तक कि पुरुषों, फिर महिलाओं और फिर बच्चों ने उन पर नमाज़ पढ़ ली। 2 -

1 अल-तबाक़ात अल-कुबरा, इब्न साद, रसूलुल्लाह (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) पर नमाज़ का ज़िक्र, दार सादिर बेरूत २९१/२ 2 अल-तबाक़ात अल-कुबरा, इब्न साद, रसूलुल्लाह (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) पर नमाज़ का ज़िक्र, दार सादिर बेरूत २९०/२

पेज 948 का 286

علیہ الرجال ثم النساء ثم الصبیان 1 - اور اللہ کا قول پورا ہوا۔ الہی! تو ہم کو ان پر اتاری ہوئی کتاب کے پیروؤں سے کر اور ان کے بعد بھی ان کے دین پر قائم رکھ اور قیامت ہمیں ان سے ملا۔ مولا علی یہ دعا کرتے اور حاضرین آمین کہتے، یہاں تک کہ ان پر مردوں پھر عورتوں پھر لڑکوں نے صلوۃ کی، صلی اللہ تعالی علیہ وسلم۔ (ت)

اور یہی ظاہر اس حدیث کا ہے جو ابن سعد و بیہقی نے محمد بن ابراہیم تیمی مدنی سے روایت کی: یعنی جب حضور اقدس صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کو کفن دے کر سریر مبارک پر آرام دیا گیا، صدیق و فاروق رضی اللہ تعالیٰ عنہما نے حاضر ہو کر عرض کی: سلام حضور پر اے نبی اور اللہ کی مہر اور اس کی افزونیاں، اور دونوں حضرات کے ساتھ ایک گروہ مہاجرین اور انصار کا تھا جس قدر حجرہ پاک میں سما جاتا ان سب نے یوں ہی سلام عرض کیا اور صدیق و فاروق پہلی صف میں رسول اللہ صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کے سامنے کھڑے یہ دعا کرتے: الہی! میں گواہی دیتا ہوں کہ جو کچھ تو نے اپنے نبی پر اتارا حضور نے امت کو پہنچایا اور اس کی خیر خواہی میں رہے اور راہ خدا میں جہاد فرمایا، یہاں تک کہ اللہ تعالیٰ نے اپنے دین کو غلبہ دیا اور اللہ کی باتیں پوری ہوئیں، تو ایک اللہ پر ایمان لایا گیا اس کا کسی کو شریک نہیں تو اے معبود ہمارے! ہمیں ان کی کتاب کے پیروؤں میں کر جو ان کے ساتھ اتری اور ہمیں ان سے ملا کہ ہم انہیں پہچانیں اور تو ہماری پہچان انہیں کرا دے کہ وہ مسلمانوں پر رحم دل تھے۔ ہم نہ ایمان کسی چیز سے (تبدیل کریں گے)۔ پھر لوگ آمین آمین کہتے پھر وہ نکل جاتے اور دوسرے داخل ہوتے یہاں تک کہ مردوں، پھر عورتوں اور پھر بچوں نے آپ پر نماز پڑھی۔ 2 -

1 الطبقات الکبری لابن سعد ذکر الصلوة علی رسول الله صلی الله تعالی علیه و سلم دار صادر بیروت

۲۹۱/۲ 2 الطبقات الکبری لابن سعد ذکر الصلوة علی رسول الله صلی الله تعالی علیه و سلم دار صادر بیروت ۲۹۰/۲

Fatawa Rizvia, Volume 9

...nor should they want to change it or take any price in return for it. People kept saying 'Ameen, Ameen' to this prayer, then they would go out and others would come, until the men, then women, then children sent blessings (Salawat) upon the Prophet. (T)

Bazzar, Hakim, Ibn Sa'd, Ibn Mani', Bayhaqi, and Tabarani in Mu'jam al-Awsat narrate from Hazrat Abdullah ibn Mas'ood (may Allah be pleased with him) that the Holy Prophet (may Allah's peace and blessings be upon him) said:

Arabic	Urdu Translation
If you have washed me and shrouded me on my bed, then leave me. For the first one to pray over me will be Jibril, then Mika'il, then Israfil, then the Angel of Death along with all his hosts of angels. Then enter in groups, and offer blessings and peace upon me.	When you are finished with my blessed washing and shrouding, place me on the blessed bier and go outside. First of all, Jibril will offer Salawat upon me, then Mika'il, then Israfil, then the Angel of Death with all his armies. Then come to me group by group and offer Durood and Salam upon me.

Imam Jalaluddin al-Suyuti states in Al-Khasa'is al-Kubra:

Arabic	Urdu Translation
Al-Bayhaqi said: Salam al-Tawil is unique in narrating this from Abd al-Malik ibn Abd al-Rahman. Ibn Hajar followed up in 'al-Matalib al-Aliyah' stating that Ibn Mani' narrated it via Muslimah ibn Salih from Abd al-Malik with the same chain. Thus, this is a corroboration for Salam al-Tawil. Al-Bazzar also narrated it from another way from Ibn Mas'ud (may Allah be pleased with him).	Bayhaqi said: Salam al-Tawil is unique in his narration from Abdul Malik ibn Abdul Rahman. On this, Allama Ibn Hajar in 'Matalib al-Aliyah' followed up saying that Ibn Mani' extracted it through the path of Muslimah bin Salih, from Abdul Malik with this same chain, so this became a corroboration for Salam al-Tawil, and Bazzar narrated it through another way from Hazrat Ibn Mas'ood (may Allah be pleased with him). (T)

It is also evident from this Hadith that the Holy Prophet (may Allah's peace and blessings be upon him) himself taught regarding his noble funeral that people should come group by group and read Durood and Salam. In the commentary of

Muwatta Imam Malik by Allama al-Zurqani, after mentioning the said Hadith, the statement of the Leader of the Faithful Ali is:

---

1. Al-Mustadrak 'ala al-Sahihayn, Book of Al-Maghazi, Dar al-Fikr, Beirut, 3/6
2. Al-Khasa'is al-Kubra, Chapter on His Speciality (SAW) of being prayed upon individually etc., Dar al-Kutub al-Hadithiyyah, Egypt, 3/395

फ़तावा रज़विया, जिल्द 9

...न वे इसे बदलना चाहें और न इसके बदले में कोई कीमत लेना चाहें। लोग इस दुआ पर आमीन आमीन कहते, फिर बाहर चले जाते और दूसरे आते यहाँ तक कि मर्दों, फिर औरतों, फिर बच्चों ने हुज़ूर पर सलवात भेजी। (त)

बज़ार, हाकिम, इब्न साद, इब्न मनी और बैहकी व तबरानी ने मुअजम औसत में हज़रत अब्दुल्ला इब्न मसूद (रज़ियल्लाहु अन्हु) से रिवायत की है कि हुज़ूर अकदस (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने फरमाया:

अरबी	उर्दू अनुवाद
जब तुम मुझे गुस्ल और कफ़न दे चुको मेरे बिस्तर पर, तो मुझे छोड़ दो। क्योंकि सबसे पहले जो मुझ पर नमाज़ (सलवात) पढ़ेगा वो जिब्रील है, फिर मीकाईल, फिर इसराफ़ील, फिर मलकुल मौत अपने फरिश्तों के तमाम लश्करों के साथ। फिर तुम गिरोह दर गिरोह दाखिल होना और मुझ पर दरूद व सलाम पेश करना।	जब मेरे गुस्ल और कफन मुबारक से फारिग हो जाओ, मुझे लाश मुबारक पर रखकर बाहर चले जाओ। सबसे पहले जिब्रील मुझ पर सलवात भेजेंगे, फिर मीकाईल, फिर इसराफील, फिर मलकुल मौत अपने सारे लश्करों के साथ। फिर गिरोह दर गिरोह मेरे पास हाज़िर होकर मुझ पर दरूद और सलाम पेश करते जाओ।

इमाम जलालुद्दीन सुयूती खसाइस-ए-कुबरा में फरमाते हैं:

अरबी	उर्दू अनुवाद
बैहकी ने कहा: सलाम अल-तवील इसे अब्दुल मलिक बिन अब्दुल रहमान से रिवायत करने में अकेले हैं। इब्न हजर ने 'मतालिबुल आलिया' में इसका पीछा करते हुए कहा कि इब्न मनी ने इसे मुस्लिमा बिन सालेह के ज़रिए अब्दुल मलिक से इसी सनद के साथ रिवायत किया है। तो यह सलाम अल-तवील की मुताबाअत (पुष्टि) हो गई और बज़ार ने इसे एक और तरीके से हज़रत इब्न मसूद (रज़ियल्लाहु अन्हु) से रिवायत किया है।	बैहकी ने कहा: अब्दुल मलिक बिन अब्दुल रहमान से इसकी रिवायत में सलाम तवील मुनफरिद (अकेले) हैं। इस पर अल्लामा इब्न हजर ने 'मतालिबुल आलिया' में ताकुब फरमाया कि इसे इब्न मनी ने बतरीक मुस्लिमा बिन सालेह, अब्दुल मलिक से इसी सनद से रिवायत किया है तो यह सलाम तवील की मुताबाअत हो गई और इसे बज़ार ने एक और तरीक़ से हज़रत इब्न मसूद रज़ियल्लाहु अन्हा से रिवायत किया है। (त)

इस हदीस से भी ज़ाहिर है कि हुज़ूर अकदस सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने खुद अपने जनाज़ा-ए-अकदस के मुताल्लिक यही तालीम फरमाई कि गिरोह दर गिरोह हाज़िर होकर दरूद व सलाम पढ़ते जाना। शरह मुवत्ता इमाम मालिक लिल-अल्लामा अज़रकानी में उक्त हदीस का ज़िक्र करने के बाद अमीरुल मोमिनीन अली से मरवी है:

---

1. अल-मुस्तदरक अलस-सहीहैन, किताबुल मगाज़ी, दारुल फिक्र बेरुत 3/6
2. अल-खसाइसुल कुबरा, बाब इख़्तिसासहू (स.अ.व.) बिल-सलाति अलैहि इनफिरादन अलख, दारुल कुतुब अल-हदीसिया मिस्र 3/395

पेज 287/948

بدلنا چاہیں نہ اس کے عوض کچھ قیمت لینا۔ لوگ اس دُعا پر آمین آمین کہتے، پھر باہر چلے جاتے اور دوسرے آتے یہاں تک کہ مردوں، پھر عورتوں، پھر بچوں نے حضور پر صلوٰۃ کی۔ (ت)

بزار و حاکم و ابن سعد وابن منیع و بیہقی و طبرانی معجم اوسط میں حضرت عبد اللہ ابن مسعود رضی اللہ تعالٰی عنہ سے راوی حضور اقدس صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم نے فرمایا:

عربی	اردو ترجمہ
اذ غسلتمونی وکفنتمونی علی سریری ثم اخرجواعنی فان اول من یصلی علی جبرئیل ثم میکائیل ثم اسرافیل ثم ملك الموت مع جنوده من الملئکة باجمعهم ثم ادخلوا علی فوجا فصلوا علی وسلموا تسلیماً۔ (1)	جب میرے غسل وکفن مبارک سے فارغ ہو مجھے نعش مبارک پر رکھ کر باہر چلے جاؤ، سب میں پہلے جبرئیل مجھ پر صلوٰۃ کریں گے پھر میکائیل، پھر اسرافیل، پھر ملک الموت اپنے سارے لشکروں کے ساتھ، پھر گروہ گروہ میرے پاس حاضر ہو کر مجھ پر درود و سلام عرض کرتے جاؤ۔

امام جلال الدین سیوطی خصائصِ کبرٰی میں فرماتے ہیں:

عربی	اردو ترجمہ
قال البیهقی، تفردبه سلام الطویل عن عبدالملك بن عبدالرحمن وتعقبه ابن حجر فی المطالب العالیة بان ابن منیع اخرجه من طریق مسلمة بن صالح عن عبدالملك	بیہقی نے کہا: عبدالملک بن عبدالرحمن سے اسکی روایت میں سلام طویل منفرد ہیں۔ اس پر علامہ ابن حجر نے "مطالب عالیہ" میں تعاقب فرمایا کہ اسے ابن منیع نے بطریق مسلمہ بن صالح، عبدالملک سے اسی سند

عربی	اردو ترجمہ
به فهذه متابعة السلام الطويل واخرجه البزار من وجه اخر عن ابن مسعود رضی الله تعالٰی عنہ۔ (2)	سے روایت کیا ہے تو یہ سلام طویل کی متابعت ہوگئی اور اسے بزار نے ایک اور طریق سے حضرت ابن مسعود رضی اللہ تعالیٰ عنہ سے روایت کیا ہے۔ (ت)

اس حدیث سے بھی ظاہر کہ حضور اقدس صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم نے خود اپنے جنازہ اقدس کی نسبت اسی قدر تعلیم فرمائی کہ گروہ گروہ حاضر ہو کر درود و سلام پڑھتے جانا۔ شرح موطائے امام مالک للعلاّمۃ الزرقانی میں بعد ذکر حدیث مذکور امیر المومنین علی ہے:

---

1 المستدرک علی الصحیحین کتاب المغازی دارالفکر بیروت ۳/۶ 2 الخصائص الکبری باب اختصاصہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم بالصلوۃ علیہ افرادا الخ دارالکتب الحدیثیہ مصر ۳۹۵/۳

Fatawa Ridawiyya, Volume 9

Arabic Text: The apparent meaning of this is that what is intended by 'prayer upon him' (salat) for the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) is what a group of scholars held: that it was one of his unique characteristics that a funeral prayer (Janaza) was not performed for him at all. Instead, people would enter, supplicate, and then leave. Al-Baji said: This has a rationale, which is that he is superior to every martyr, and a martyr's own merit suffices him such that the funeral prayer is not required over him. The difference between him and a martyr regarding washing (ghusl) is because washing a martyr is avoided to prevent removing blood from him, as its presence is desired for its pleasant scent and because it serves as a sign of his martyrdom in the Hereafter. However, there is nothing on the body of the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) whose removal would be disliked. Thus, they differ. End of what Imam Abu al-Walid stated. Then he quoted a response that the purpose of performing the prayer upon him (peace and blessings of Allah be upon him) is for the honor to return to the Muslims, while the Perfect One is capable of further completion. Then he cited from Qadi Iyad the correction that the prayer was indeed the well-known funeral prayer, and not just a mere supplication.

Urdu Column Translation: Its apparent meaning is that the prayer upon the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) refers to what a group of scholars believe: that it is among the unique characteristics of the Holy Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) that his funeral prayer was not performed at all. Instead, people would enter, pray (du'a), and leave. Al-Baji said: There is a reason for this, which is that the Prophet is superior to every martyr, and a martyr has such merit that his funeral prayer is not necessary. As for the matter of washing (ghusl) being different from a martyr, the reason is that a martyr is not given a bath so that the blood on him is not removed, as its remaining is desired due to its purity. And also because in the Hereafter, it will be a sign of his martyrdom. And there was nothing on the body of the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) that was undesirable to remove. Therefore, these rulings are different. The benefit from Imam Abu al-Walid al-Baji ends here. Then he quoted the answer that the purpose of performing the prayer for the Holy Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) is for the Muslims to gain honor. Secondly, even a perfect being is capable of further completion. Then the correction was quoted from Imam Qadi Iyad that the prayer was indeed the well-known funeral prayer and not just a mere supplication.

1 Sharh al-Zurqani 'ala Muwatta al-Imam Malik, 149, Chapter on Burying the Dead, Al-Maktaba al-Tijariyah al-Kubra, Egypt, 66/2. Page 288 of 948

फ़तवा रिज़विया, जिल्द 9

अरबी पाठ: इसका प्रत्यक्ष अर्थ यह है कि हुज़ूर सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम पर 'सलात' (नमाज़-ए-जनाज़ा) से मुराद वही है जो एक जमात का मत है: कि यह उनकी विशेषताओं में से है कि उन पर नमाज़-ए-जनाज़ा बिल्कुल नहीं पढ़ी गई। इसके बजाय, लोग दाखिल होते, दुआ करते और फिर चले जाते। बाजी ने फरमाया: इसका एक कारण है, वह यह कि वे हर शहीद से श्रेष्ठ (अफ़ज़ल) हैं और शहीद को इस कदर फज़ीलत हासिल है कि उसकी नमाज़-ए-जनाज़ा की ज़रूरत नहीं होती। रही बात ग़ुस्ल (स्नान) की, तो उनका मामला शहीद से अलग इसलिए रहा क्योंकि शहीद को ग़ुस्ल इसलिए नहीं दिया जाता ताकि उस पर लगा खून हट न जाए, क्योंकि उसकी खुशबू के कारण उसका बना रहना वांछित है और इसलिए भी कि आखिरत में वह उसकी शहादत का निशान होगा। लेकिन नबी सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम के शरीर पर ऐसी कोई चीज़ नहीं थी जिसे हटाना नापसंद हो। इसलिए ये हुक्म अलग-अलग हैं। इमाम अबू अल-वलीद का कथन समाप्त हुआ। फिर इसका उत्तर उद्धृत किया गया कि हुज़ूर सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम की नमाज़ पढ़ने का उद्देश्य यह है कि मुसलमानों को सम्मान (शर्फ़) प्राप्त हो, जबकि पूर्ण (कामिल) और अधिक पूर्णता के योग्य होता है। फिर इमाम काज़ी अयाज़ से इसकी पुष्टि उद्धृत की गई कि वह 'सलात' वही प्रसिद्ध नमाज़-ए-जनाज़ा थी, केवल दुआ नहीं।

उर्दू कॉलम का अनुवाद: इसका ज़ाहिर यही है कि हुज़ूर सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम पर सलात से मुराद वही है जो एक जमात का मज़हब है कि हुज़ूर अकदस सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम के खसाइस (विशेषताओं) में से है कि उनकी नमाज़-ए-जनाज़ा बिल्कुल न पढ़ी गई, पस यह हुआ कि लोग दाखिल होते और दुआ करके जुदा हो जाते। बाजी ने फरमाया: इसकी एक वजह है, वह यह कि सरकार हर शहीद से अफ़ज़ल हैं और शहीद को इस कदर फज़ीलत हासिल है कि उसकी नमाज़-ए-जनाज़ा की ज़रूरत नहीं। रहा यह कि ग़ुस्ल के बारे में सरकार का मामला शहीद से अलग रहा तो इसकी वजह यह है कि शहीद को ग़ुस्ल इसलिए नहीं दिया जाता कि उस पर जो खून लगा है वह ज़ायल (नष्ट) हो जाएगा जबकि पाकीज़गी के बाइस उसका बाकी रहना मतलब (वांछित) है। और इसलिए भी कि आख़िरत में वह उसकी शहादत का निशान होगा। और नबी अकरम सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम के जिस्म पर ऐसी कोई चीज़ नहीं जिसे ज़ायल करना नापसंद न हो। इसलिए यह हुक्म अलग-अलग। इमाम अबू अल-वलीद बाजी का इफ़ादा खत्म हुआ। फिर इसका जवाब नक्ल किया कि हुज़ूर अकदस सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम की नमाज़ पढ़ने का मक़सद यह है कि मुसलमानों को शर्फ

हासिल हो। दूसरे यह कि कामिल मज़ीद तकमील के काबिल होता है। फिर इमाम काज़ी अयाज़ से इसकी तसहीह (पुष्टि) नक्ल की कि वह सलात वही मारूफ नमाज़-ए-जनाज़ा थी महज़ दुआ न थी।

1 शरह अल-ज़ुरकानी अला मुवत्ता अल-इमाम मालिक, 149, मुर्दे को दफनाने का अध्याय, अल-मकतब अल-तिजारिया अल-कुबरा, मिस्र, 66/2. पृष्ठ 948 में से 288

عربی متن: ظاهر هذا، ان المراد بالصلوة عليه صلى الله تعالى عليه وسلم ماذهب اليه جماعة ان من خصائصه انه لم يصل عليه اصلا وانما كان الناس يدخلون فيدعون ويفترقون، قال الباجي ولهذا وجه وهو انه افضل من كل شهيد والشهيد يغنيه فضله عن الصلوة عليه وانما فارق الشهيد فى الغسل لانه حذر من غسله ازالة الدم عنه وهو مطلوب بقائه لطيبه ولانه عنوان بشهادته فى الآخرة وليس على النبى صلى الله تعالى عليه وسلم مايكره ازالته عنه فافترقا انتهى اى ما افاد الامام ابو الوليد۔ ثم نقل عنه جواباً ان المقصود من الصلوة عليه صلى الله عليه وسلم عود التشريف على المسلمين مع ان الكامل يقبل زيادة التكميل۔ ثم اثر عن القاضى عياض تصحيح ان الصلوة كانت هى المعروفة لا مجرد الدعاء فقط اھ

اردو کالم: اسکا ظاہر یہی ہے کہ حضور صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم پر صلوۃ سے مراد وہی ہے جو ایک جماعت کا مذہب ہے کہ حضور اقدس صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کے خصائص سے ہے کہ ان کی نماز جنازہ بالکل نہ پڑھی گئی، پس یہ ہوا کہ لوگ داخل ہوتے اور دعا کر کے جدا ہو جاتے۔ باجی نے فرمایا: اس کی ایک وجہ ہے، وہ یہ کہ سرکار ہر شہید سے افضل ہیں اور شہید کو اس قدر فضیلت حاصل ہے کہ اس کی نماز جنازہ کی ضرورت نہیں۔ رہا یہ کہ غسل کے بارے میں سرکار کا معاملہ شہید سے الگ رہا تو اس کی وجہ یہ ہے کہ شہید کو غسل اس لئے نہیں دیا جاتا کہ اس پر جو خون لگا ہے وہ زائل ہو جائے گا جبکہ پاکیزگی کے باعث اس کا باقی رہنا مطلوب ہے۔ اور اس لئے بھی کہ آخرت میں وہ اس کی شہادت کا نشان ہوگا۔ اور نبی اکرم صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کے جسم پر ایسی کوئی چیز نہیں جسے زائل کرنا ناپسندیدہ نہ ہو۔ اس لئے یہ حکم الگ الگ۔ امام ابو الولید باجی کا افادہ ختم ہوا۔ پھر اس کا جواب نقل کیا کہ حضور اقدس صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کی نماز پڑھنے کا مقصد یہ ہے کہ مسلمانوں کو شرف حاصل ہو۔ دوسرے یہ کہ کامل

مزید تکمیل کے قابل ہوتا ہے۔ پھر امام قاضی عیاض سے اس کی تصحیح نقل کی کہ وہ صلوۃ وہی معروف نماز جنازہ تھی محض دعا نہ تھی۔

1 شرح الزرقانی علی موطا الامام مالک ۱۴۹ باب ماجاء فی دفن المیت المکتبۃ التجاریۃ الکبری مصر ۶۶/۲ Page 288 of 948

Fatawa Razawiya, Volume 9

(Arabic Column): I say: As for the response, it does not touch upon what Abu al-Walid is aiming at, for he does not claim that the well-known prayer for him (peace and blessings of Allah be upon him) is impossible, or that there is no reason for it so that its permissibility must be established in response and a justification provided. Rather, he says that if it happened that the prayer was omitted, there are reasons for it, and it is so. This does not contradict that there are also one or more reasons for its performance. What the respondent mentioned is applicable to the martyr as well, and the discourse follows the school of thought of those who say that the prayer is not performed over him (the martyr). As for the acceptance of increase, it is self-evident, and as for the benefit of the Muslims, it is likewise. Imam Tirmidhi, Muhammad bin Ali, narrated from Anas (may Allah be pleased with him) that the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) said: "The first gift to a believer is that those who prayed over him are forgiven." And al-Daraqutni narrated it in 'Al-Afrad' from Ibn Abbas (may Allah be pleased with both of them) from the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) with the wording: "The first gift given to a believer when he enters his grave..."

(Urdu Column): I say: The response does not touch upon the point of view held by Imam Abu al-Walid, because he does not claim that the funeral prayer of the Holy Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) is impossible, or that its performance has no basis, such that its permissibility should be proven in response and some reason should be manifest. He is only stating that if the Prophet's funeral prayer was not performed, there is a reason for it, and it is in this way. Now, even if there are one or several reasons for performing the prayer, it does not contradict his statement. And what the respondent has mentioned can also be said regarding a martyr. This discourse would be according to the school of those who do not believe in funeral prayers for martyrs. The fact that a martyr is worthy of increased excellence is self-evident. As for the benefit of Muslims, it was the same. Imam Tirmidhi Muhammad bin Ali narrates from Hazrat Anas (may Allah be pleased with him) that the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) said: "The very first gift for a believer is that those who pray his funeral prayer are forgiven." And Daraqutni has narrated from Hazrat Ibn Abbas (may Allah be pleased with both of them) in 'Afrad' from the Holy Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) in these words: "When a believer in the grave..."

(Footnote): 1. Nawadir al-Usul, Al-Asl al-Rabi' wal-Khamsun, Dar Sadir, Beirut, p. 78.

फ़तावा रज़विया, खंड 9

(अरबी कॉलम): मैं कहता हूँ: जहाँ तक उत्तर का संबंध है, यह उस बात को नहीं छूता जिसकी ओर अबू अल-वलीद का संकेत है, क्योंकि वे यह दावा नहीं करते कि आप (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) पर प्रसिद्ध नमाज़ (जनाज़ा) असंभव है, या उसका कोई औचित्य नहीं है ताकि जवाब में उसकी अनुमति सिद्ध की जाए और कोई औचित्य बताया जाए। बल्कि, वे कहते हैं कि यदि यह नमाज़ छोड़ दी गई, तो उसके कुछ कारण हैं, और ऐसा ही है। यह इस बात के विपरीत नहीं है कि इसे करने के भी एक या कई कारण हो सकते हैं। उत्तर देने वाले ने जो उल्लेख किया है वह शहीद पर भी लागू होता है, और यह चर्चा उन लोगों के मत पर आधारित है जो कहते हैं कि शहीद पर नमाज़ नहीं पढ़ी जाती। जहाँ तक वृद्धि की स्वीकार्यता का प्रश्न है, यह स्वयं सिद्ध है, और जहाँ तक मुसलमानों के लाभ का प्रश्न है, वह भी वैसा ही है। इमाम तिर्मिज़ी मुहम्मद बिन अली ने अनस (रज़ियल्लाहु अन्हु) से रिवायत की है कि अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने फ़रमाया: "एक मोमिन को मिलने वाला सबसे पहला उपहार यह है कि उनके लिए नमाज़ पढ़ने वालों को माफ़ कर दिया जाता है।" और इसे दाराकुतनी ने 'अल-अफ़राद' में इब्न अब्बास (रज़ियल्लाहु अन्हुमा) से नबी (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) के इन शब्दों के साथ रिवायत किया है: "एक मोमिन को दी जाने वाली पहली चीज़ जब वह अपनी क़ब्र में प्रवेश करता है..."

(उर्दू कॉलम): मैं कहता हूँ: इमाम अबुल वलीद का जो नज़रिया है, उससे जवाब का कोई सरोकार नहीं है, क्योंकि वे इसके दावेदार नहीं हैं कि हुज़ूर (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) की नमाज़-ए-जनाज़ा असंभव है, और न ही यह कि इसकी अदायगी का कोई आधार नहीं है, ताकि जवाब में उसका जायज़ होना साबित किया जाए और उसकी कोई वजह ज़ाहिर की जाए। वे सिर्फ़ यह फ़रमा रहे हैं कि अगर सरकार (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) की नमाज़ नहीं पढ़ी गई तो उसकी एक वजह है, और वह इस तरह है। अब अगर नमाज़ अदा करने की भी एक या कई वजहें हैं, तो यह उनके बयान के ख़िलाफ़ नहीं है। और जवाब देने वाले ने जो ज़िक्र किया है, वह शहीद के बारे में भी कहा जा सकता है। यह बात उन लोगों के मज़हब के मुताबिक़ होगी जो शहीद की नमाज़-ए-जनाज़ा के कायल नहीं हैं। शहीद का कमाल की ज़ियादती के क़ाबिल होना तो ज़ाहिर है। रही बात मुसलमानों के फ़ायदा पाने की, तो वह भी वैसी ही थी। इमाम तिर्मिज़ी मुहम्मद बिन अली हज़रत अनस (रज़ियल्लाहु अन्हु) से रिवायत करते हैं कि रसूलुल्लाह (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) का इरशाद है: "मोमिन का सबसे पहला तोहफ़ा यह है कि उसकी नमाज़-ए-जनाज़ा पढ़ने वालों की मग़फ़िरत (क्षमा) कर दी

जाती है।" और इसे दाराकुतनी ने 'अफ़राद' में हज़रत इब्न अब्बास (रज़ियल्लाहु अन्हुमा) की रिवायत से नबी करीम (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) से इन लफ़्ज़ों में रिवायत किया है कि: "मोमिन जब क़ब्र में..."

(पाद टिप्पणी): 1. नवाद़िरुल उसूल, अल-अस्लु र्रबेअु वल ख़म्सून, दार सादिर, बैरूत, पृ. ७८।

पृष्ठ 289/948

فتاویٰ رضویہ، جلد نہم

(عربی کالم): اقول: اما الجواب فلا یمس ما ینحو الیه ابو الولید فأنه لا یدعي احالته الصلوة المعروفة علیه صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم وانها لا وجه لها حتی یثبت جوازها ویذکر توجیهاً وانما یقول ان لترکها اوجهاً ان وقع وهو کذلك ولا ینافیه ان لفعلها ایضاً وجهاً او وجوهاً ان ما ذکر المجیب متمش في الشهید ایضاً والکلام علی مذهب من یقول لا یصلی علیه اما قبول الزیادة فبدیهي واما انتفاع المسلمین فکذلك وقد روی الامام الترمذي محمد بن علي عن انس رضي اللہ تعالیٰ عنه قال قال رسول اللہ صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم اول تحفة المومن ان یغفر لمن صلی علیه ورواه الدارقطني في الافراد عن ابن عباس رضي اللہ تعالیٰ عنهما عن النبي صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم بلفظ اول ما یتحف به المومن اذا دخل قبره

(اردو کالم): اقول: امام ابوالولید کا جو مطمح نظر ہے اس سے جواب کو مس نہیں، اس لئے کہ وہ اسکے مدعی نہیں کہ حضور صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کی نماز جنازہ محال ہے، اور اس کی ادائیگی کوئی وجہ نہیں رکھتی، جواباً اس کا جواز ثابت کیا جائے اور اس کی کوئی وجہ ظاہر کی جائے۔---وہ صرف یہ فرما رہے ہیں کہ اگر سرکار کی نماز نہیں پڑھی گئی تو اسکی ایک وجہ ہے۔--اور وہ اس طرح ہے۔-- اب اگر ادائے نماز کی بھی ایک وجہ یا چند وجہیں ہیں تو یہ ان کے بیان کے منافی نہیں۔ اور مجیب نے جو ذکر کیا ہے وہ شہید کے بارے میں بھی کہا جاسکتا ہے۔--یہ کلام ان لوگوں کے مذہب پر ہوگا جو شہید کی نماز جنازہ کے قائل نہیں۔--شہید کا زیادتی کمال کے قابل ہونا تو بدیہی ہے۔--رہا مسلمانوں کا فائدہ پانا تو وہ بھی ایسا ہی تھا۔--امام ترمذی محمد بن علی حضرت انس رضی اللہ تعالیٰ سے راوی ہیں وہ فرماتے ہیں رسول اللہ صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کا ارشاد ہے: مومن کا سب سے پہلا تحفہ یہ ہے کہ اس کی نماز جنازہ پڑھنے والوں کی مغفرت کردی جاتی ہے اور اسے دار قطنی نے افراد میں حضرت ابن عباس رضی اللہ تعالیٰ عنہما کی

روایت سے نبی کریم صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم سے ان الفاظ میں روایت کیا ہے کہ: مومن جب قبر میں

(حاشیہ): 1 نوادر الاصول الاصل الرابع والخمسون دار صادر بیروت ص ۷۸

Fatawa Rizvia - Volume 9

...that he (Allah) forgives whoever prayed over him.[1] And reported by Abd bin Hameed, al-Bazzar, and al-Bayhaqi in Shu'ab al-Iman from him (Ibn Abbas) may Allah be pleased with him, from the Prophet, peace and blessings of Allah be upon him, with the wording: "Indeed, the first thing a believer is rewarded with after his death is that all who followed his funeral procession are forgiven."[2] And reported by Ibn Abi al-Dunya in 'Dhikr al-Mawt' and al-Khatib from Jabir bin Abdullah, may Allah be pleased with both of them, from the Prophet, peace and blessings of Allah be upon him, with the wording: "Indeed, the first gift to a believer is that those who went out in his funeral procession are forgiven."[3] And al-Daylami reported in Musnad al-Firdaws from him from the Prophet, peace and blessings of Allah be upon him: "When a man from the people of Paradise dies, Allah, the Almighty and Majestic, feels shy to punish those who carried him, those who followed him, and those who prayed over him."[4] And Abu Bakr bin Abi Shaybah, Abu al-Shaykh, and Ibn Hibban reported in the book 'at-Thawab' from Salman al-Farisi...

---

[1] Kanz al-Ummal with reference to ad-Daraqutni in al-Afrad, Hadith 22353, Muassasat al-Risala Beirut 15/595 [2] Shu'ab al-Iman Chapter on Praying over the Dead, Hadith 9258, Dar al-Kutub al-Ilmiyya Beirut 7/1 [3] Tarikh Baghdad, biography number 728, Muhammad bin Rashid al-Baghdadi, Dar al-Kutub al-Arabi Beirut 2/275 [4] Al-Firdaws bi Ma'thur al-Khitab Hadith 1108, Dar al-Baz Makkah al-Mukarramah 1/282

फ़तावा रज़विया - जिल्द नहम (9)

...कि अल्लाह उसे माफ़ कर दे जिसने उस पर नमाज़ पढ़ी।[1] और इसे अब्द बिन हमीद, बज़ार और बैहक़ी ने 'शुआब अल-ईमान' में उन्हीं (हज़रत इब्ने अब्बास रज़ियल्लाहु तआला अन्हुमा) की रिवायत से नबी सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम से इन अल्फ़ाज़ में रिवायत किया कि: "मोमिन को मौत के बाद सबसे पहला सिला यह दिया जाता है कि उसके जनाज़े के पीछे चलने वाले तमाम लोगों को बख़्श दिया जाता है।"[2] और इब्ने अबी दुनिया ने 'ज़िक्र अल-मौत' में और खतीब ने हज़रत जाबिर बिन अब्दुल्लाह रज़ियल्लाहु तआला अन्हु की रिवायत से नबी सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम से इन अल्फ़ाज़ में रिवायत किया है कि: "मोमिन का सबसे पहला तोहफ़ा यह है कि जो लोग उसके जनाज़े में निकले उनकी मग़फ़िरत (माफ़ी) कर दी जाती है।"[3] और दैलमी ने 'मुस्नद अल-फ़िरदौस' में उन्हीं (जाबिर बिन अब्दुल्लाह) की रिवायत से नबी करीम सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम से रिवायत किया है कि जब जन्नत के लोगों में से कोई शख़्स इंतक़ाल करता है तो अल्लाह अज़्वजल हया फ़रमाता है कि उन लोगों को अज़ाब दे जो उसका जनाज़ा लेकर चले और जो उसके पीछे चले और जिन्होंने उसकी नमाज़ पढ़ी।[4] और अबू बक्र बिन अबी शैबा, अबू अल-शैख़ और इब्ने हिब्बान ने 'किताब अत-सवाब' में सलमान फ़ारसी की रिवायत से...

---

[1] कंज़ अल-उम्माल बदस्तूर अल-दारक़ुतनी फ़ी अल-अफ़राद हदीस 22353, मुअस्सत अल-रिसाला बेरूत 15/595 [2] शुअब अल-ईमान, मरने वाले पर नमाज़ पढ़ने का अध्याय, हदीस 9258, दार अल-कुतुब अल-इल्मिया बेरूत 7/1 [3] तारीख़ बग़दाद, जीवनी संख्या 728, मुहम्मद बिन राशिद अल-बग़दादी, दार अल-कुतुब अल-अरबी बेरूत 2/275 [4] अल-फ़िरदौस बि मअसूर अल-ख़िताब हदीस 1108, दार अल-बाज़ मक्का अल-मुकर्रमा 1/282

ان یغفر لمن صلی علیہ [1] ورواہ عبد بن حمید والبزار والبیہقی فی شعب الایمان عنہ رضی اللہ عنہ عن النبی صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم بلفظ ان اول ما یجازی بہ المؤمن بعد موتہ ان یغفر لجمیع من تبع جنازۃ [2] ورواہ ابن ابی الدنیا فی ذکر الموت والخطیب عن جابر بن عبداللہ رضی اللہ تعالٰی عنہما عن النبی صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم بلفظ ان اوّل تحفۃ المؤمن ان یغفر لمن خرج فی جنازتہ [3] وروی الدیلمی فی مسند الفردوس عنہ عن النبی صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم اذا مات الرجل من اھل الجنۃ استحی اللہ عزوجل ان یعذب من حملہ و من تبعہ و من صلی علیہ [4] وروی ابوبکر بن ابی شیبۃ وابوالشیخ و ابن حبان فی کتاب الثواب عن سلمان فارسی

داخل ہوتا ہے تو اس کو سب پہلا تحفہ یہ دیا جاتا ہے کہ اس کی نماز پڑھنے والوں کی مغفرت کردی جاتی ہے اور اسے عبد بن حمید ، بزار اور شعب الایمان میں بیہقی نے ان ہی (حضرت ابن عباس رضی اللہ تعالٰی عنہما) کی روایت سے نبی صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم سے ان الفاظ میں روایت کیا کہ : مومن کو بعد موت سب سے پہلا صلہ یہ دیا جاتا ہے کہ اس کے جنازہ کے پیچھے چلنے والے سب لوگوں کو بخش دیا جاتا ہے اور ابن ابی الدنیا نے ذکر موت میں اور خطیب نے حضرت جابر بن عبد اللہ رضی اللہ تعالٰی عنہ کی روایت سے نبی صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم سے ان الفاظ میں روایت کیا ہے کہ : مومن کا سب سے پہلا تحفہ یہ ہے کہ جو لوگ اس کے جنازہ میں نکلے ان کی مغفرت کردی جاتی ہے اور دیلمی نے مسند الفردوس میں انہی (جابر بن عبد اللہ) کی روایت سے نبی کریم صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم سے روایت کیا ہے کہ جب اہل جنت کا کوئی شخص انتقال کرتا ہے تو اللہ عزوجل حیا فرماتا ہے کہ ان لوگوں کو عذاب دے جو اس کا جنازہ لے کر چلے اور جو

اس کے پیچھے چلے اور جنہوں نے اس کی نماز پڑھی۔ اور ابوبکر بن ابی شیبہ ، ابوالشیخ اور ابن حبان نے کتاب الثواب میں بروایت سلمان

---

[1] کنز العمال بحوالہ الدارقطنی فی الافراد حدیث ۲۲۳۵۳ موسسۃ الرسالۃ بیروت ۱۵/ ۵۹۵ [2] شعب الایمان باب فی الصلوۃ علی من مات حدیث ۹۲۵۸ دار الکتب العلمیہ بیروت ۷/ ۱ [3] تاریخ بغداد ترجمہ نمبر ۷۲۸ محمد بن راشد البغدادی دار الکتب العربی بیروت ۲/ ۲۷۵ [4] الفردوس بماثور الخطاب حدیث ۱۱۰۸ دارالباز مکہ المکرمہ ۱/ ۲۸۲

Volume 9 Fatawa-e-Razawiyya

(Arabic text translated in the column below): Narrated from Farsi (may Allah be pleased with him) from the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) that: "The first glad tidings given to a believer is that it is said to him: 'Receive glad tidings, O friend of Allah, of His pleasure and Paradise; your arrival is most welcome. Allah has surely forgiven those who followed your funeral, accepted the prayers of those who sought forgiveness for you, and accepted those who bore witness for you.'" Regarding Qadi Iyad's correction, I say: There is no ground in it for the opponent claiming Ijtihad. How can it be permissible for him to follow Qadi Iyad when he does not follow those whom Qadi Iyad follows, namely Imam Malik, nor those who are greater than him, namely Imam al-A'zam (may Allah be pleased with them both). Then, it is sufficient for us in accepting the correction to say: Yes, the funeral prayer was offered once for the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him), and that was when the pledge of allegiance was completed at the hands of al-Siddiq (may Allah be pleased with him) and his leadership became valid. As for before that, people would simply come, offer supplications, and depart. Then, when al-Siddiq led the prayer...

(Urdu Column): Farsi (may Allah be pleased with him) narrates from the Holy Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) that: "The very first glad tidings given to a believer is that it is said to him: O friend of God! Glad tidings to you of His pleasure, Paradise is ready for your welcome, and Allah has forgiven those who walked with your funeral and accepted the prayers of those who sought forgiveness for you and accepted those who gave witness for you." Regarding Qadi Iyad's correction, I say that there is no ground for the opponent claiming Ijtihad to hold onto. How can taqlid of Qadi Iyad be permissible for him when he does not even follow those of whom Qadi Iyad is a follower (muqallid), i.e., Imam Malik (may Allah be pleased with him), nor those who are even more senior than him, i.e., Imam al-A'zam (may Allah be pleased with him). Then, for us in the matter of accepting the correction, it is enough to say that yes, once the funeral prayer of the Holy Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) was offered—that was at the time when the pledge of allegiance was completed at the hand of Hazrat Siddiq-e-Akbar (may Allah be pleased with him)

and his leadership became valid. Before that, it was only that people would come, offer prayers, and return. Then, when Hazrat Siddiq performed the prayer...

1. Kanz al-Ummal, with reference to Abi al-Shaykh in 'al-Thawab', Hadith 42355, Muassasat al-Risalah, Beirut, 15/596. Page 291 of 948

जिल्द नहम (9) फ़तावा रज़विया

(अरबी पाठ का अनुवाद): हज़रत फ़ारसी (रज़ियल्लाहु अन्हु) से रिवायत है कि नबी करीम (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने फ़रमाया: "मोमिन को जो सबसे पहली बशारत (ख़ुशख़बरी) दी जाती है वह यह है कि उससे कहा जाता है: 'ऐ अल्लाह के वली! तुझे अल्लाह की रज़ामंदी और जन्नत की ख़ुशख़बरी हो, तेरा आना मुबारक है। अल्लाह ने यक़ीनन उन लोगों को माफ़ कर दिया है जो तुम्हारे जनाज़े के साथ चले, उन लोगों की दुआएँ क़ुबूल कर ली हैं जिन्होंने तुम्हारे लिए माफ़ी माँगी, और उन लोगों की गवाही क़ुबूल कर ली है जिन्होंने तुम्हारे हक़ में गवाही दी।'" जहाँ तक क़ाज़ी इयाज़ की तसहीह (पुष्टि) का सवाल है, तो मैं कहता हूँ: इसमें इज्तिहाद का दावा करने वाले विरोधी के लिए कोई आधार नहीं है। उसके लिए क़ाज़ी इयाज़ की तक़लीद (अनुसरण) कैसे जायज़ हो सकती है जबकि वह उन लोगों का भी अनुसरण नहीं करता जिनका अनुसरण क़ाज़ी इयाज़ करते हैं, यानी इमाम मालिक (रज़ियल्लाहु अन्हु), और न ही उनका जो उनसे भी बड़े मर्तबे वाले हैं, यानी इमाम-ए-आज़म (रज़ियल्लाहु अन्हुमा)। फिर, तसहीह को स्वीकार करने के मामले में हमारे लिए यह कहना काफ़ी है: हाँ, हुज़ूर (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) की नमाज़-ए-जनाज़ा एक बार पढ़ी गई, और वह तब हुआ जब हज़रत सिद्दीक़ (रज़ियल्लाहु अन्हु) के हाथ पर बैअत पूरी हो गई और उनकी विलायत (नेतृत्व) सही साबित हो गई। उससे पहले, लोग बस आते थे, दुआ करते थे और चले जाते थे। फिर, जब हज़रत सिद्दीक़ ने नमाज़ अदा की...

(उर्दू कॉलम का अनुवाद): फ़ारसी रज़ियल्लाहु तआला अन्हु नबी करीम सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम से रिवायत करते हैं कि: "मोमिन को जो सबसे पहली बशारत दी जाती है वह यह है कि उससे कहा जाता है: ऐ ख़ुदा के वली! तुझे उसकी ख़ुशनूदी का मुज़दा (ख़ुशख़बरी) हो, जन्नत तेरे ख़ैर-मक़दम (स्वागत) को तैयार है और अल्लाह ने तेरे जनाज़े के साथ चलने वालों की मग़फ़िरत (क्षमा) फ़रमा दी और तेरे लिए इस्तिग़फ़ार (क्षमा प्रार्थना) करने वालों की दुआ कुबूल की और तेरे लिए शहादत (गवाही) देने वालों को कुबूल फ़रमाया।" रही क़ाज़ी इयाज़ की तसहीह, तो मैं कहता हूँ कि इसमें मुख़ालिफ़ मुद्दई-ए-इज्तिहाद के लिए कोई जाए-तमस्सुक (सहारा) नहीं, उसके लिए क़ाज़ी इयाज़ की तक़लीद कैसे रवा होगी जब कि वह उनकी भी तक़लीद नहीं करता जिनके क़ाज़ी इयाज़ मुक़ल्लिद हैं यानी इमाम मालिक रज़ियल्लाहु तआला अन्हु, न उनकी जो उनसे बुज़ुर्ग हैं यानी इमाम-ए-आज़म रज़ियल्लाहु तआला अन्हु। फिर हमारे लिए कुबूल-ए-तसहीह के मामले में यह कहना काफ़ी है कि हाँ एक बार हुज़ूर अक़दस सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम की नमाज़-ए-जनाज़ा पढ़ी गई--

वह उस वक़्त जब हज़रत सिद्दीक़-ए-अकबर रज़ियल्लाहु तआला अन्हु के हाथ पर बैअत तमाम हुई और उनकी विलायत सही हो गई। इससे क़बल सिर्फ़ यह था कि लोग आकर दुआ करते और लौट जाते। फिर जब हज़रत सिद्दीक़ ने नमाज़ अदा की तो...

1. कंज़ुल उम्माल, बहवाला अबी अल-शेख़ फ़ी 'अल-सवाब', हदीस 42355, मुअस्ससत अल-रिसाला, बैरूत, 15/596. पृष्ठ 291/948

جلد نہم فتاویٰ رضویہ

رضی اللہ تعالی عنہ عن النبی صلی اللہ تعالی علیہ وسلم ان اول مایبشربہ المومن ان یقال ابشر ولی اللہ برضا والجنۃ قدمت خیر مقدم قد غفر اللہ لمن تبعك واستجاب لمن استغفرلك وقبل من شھد لك ۱۔ واما تصحیح عیاض اقول لا متمسك فیہ للمخالف المدعی للاجتھاد وکیف یجوز لہ ان یقلد عیاضاً وھو لا یقلد من یقلدہ عیاض اعنی الامام مالك ولا من ھو اکبر منہ اعنی الامام الاعظم رضی اللہ تعالی عنھما۔ ثم حسبنا فی قبول التصحیح ان نقول نعم صلی اللہ تعالی علیہ وسلم صلوۃ الجنازۃ مرۃ وذلك حین تمت البیعتہ علی ید الصدیق رضی اللہ تعالی عنہ صحت ولایتہ اما قبل ذلك فما کان الناس لا یدعون وینصرفون ثم اذا صلی الصدیق

فارسی رضی اللہ تعالیٰ عنہ نبی کریم صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم سے روایت کی ہے کہ: سب سے پہلے مؤمن کو جو بشارت دی جاتی ہے وہ یہ ہے کہ اس سے کہا جاتا ہے اے خدا کے ولی! تجھے اس کی خوشنودی کا مژدہ ہو، جنت تیرے خیر مقدم کو تیار ہے اور اللہ نے تیرے جنازے کے ساتھ چلنے والوں کی مغفرت فرمادی اور تیرے لئے استغفار کرنے والوں کی دعا قبول کی اور تیرے لئے شہادت دینے والوں کو قبول فرمایا۔ رہی قاضی عیاض کی تصحیح، تو میں کہتا ہوں اس میں مخالف مدعی اجتہاد کے لئے کوئی جائے تمسک نہیں، اس کے لئے قاضی عیاض کی تقلید کیسے روا ہوگی جب کہ وہ ان کی بھی تقلید نہیں کرتا جن کے قاضی عیاض مقلد ہیں یعنی امام مالک رضی اللہ تعالیٰ عنہ، نہ ان کی جو ان سے بزرگ ہیں یعنی امام اعظم رضی اللہ تعالیٰ عنہ۔ پھر ہمارے لئے قبول تصحیح کے معاملے میں یہ کہنا کافی ہے کہ ہاں ایک بار حضور اقدس صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کی نماز جنازہ پڑھی گئی۔ وہ اس وقت جب حضرت صدیق اکبر رضی اللہ تعالیٰ

عنہ کے ہاتھ پر بیعت تمام ہوئی اور ان کی ولایت صحیح ہو گئی۔ اس سے قبل صرف یہ تھا کہ لوگ آکر دعا کرتے اور لوٹ جاتے۔ پھر جب حضرت صدیق نے نماز ادا کی تو

١ كنز العمال بحواله ابى الشيخ في الثواب حديث ٤٢٣٥٥ موسسة الرسالة بيروت ٥٩٦/١٥ Page of 948 291

[Top Left Arabic Box] No one prayed over him after [the initial ones], as we will mention the definitive statement regarding it from Imam Shams al-A'immah al-Sarakhsi, may Allah have mercy on him.

[Top Right Urdu Box] After that, no one performed the funeral prayer for the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him). As we will further mention the definitive statement on this from Shams al-A'immah Sarakhsi (may Allah Almighty have mercy on him).

Thirdly, it must be proven that the rightful guardian (wali-e-haqq) himself performed the first prayer and then repeated it. Regardless of the fact that when the first prayer was neither performed by the rightful guardian nor with his permission, he has the right to repeat it according to us as well. The ruling and insistence of that Mujtahid scholar to deem it correct depends particularly on the proof of this circumstance, that this was indeed the event here.

I say: And with Allah is the success. In the sacred era of the Leader of the Worlds, peace and blessings of Allah be upon him, the rightful and foremost guardian of all Muslims was the radiant Prophet himself, peace and blessings of Allah be upon him. Allah Almighty says: "The Prophet is closer to the believers than their own selves" [Al-Ahzab 33:6] (The Prophet has more authority over the Muslims than their own lives). The Messenger of Allah, peace and blessings of Allah be upon him, says:

[Middle Left Arabic Box] "I am closer to the believers than their own selves." 2 - Narrated by Ahmad, the two Sheikhs (Bukhari and Muslim), al-Nasai, and Ibn Majah from Abu Huraira, may Allah be pleased with him.

[Middle Right Urdu Box] "I have more right over the Muslims than their own lives." It was narrated by Imam Ahmad, Bukhari, Muslim, Nasai, and Ibn Majah from Hazrat Abu Huraira. (T)

So, if people perform the prayer before informing the Noble Prophet (peace and blessings of Allah be upon him), and then if the radiant Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) repeats it, it is the same case where the first prayer was performed by someone other than the rightful guardian, and the rightful guardian has the option to repeat it. It will have no connection with the case of that Mujtahid scholar, especially when it had been ordered beforehand: "Inform us when such-and-such patient passes away." After all, this instruction was because he intended to lead

the prayer himself. So, if others' performance of the prayer is proven, it will not just be without the guardian's permission, but rather against the guardian's permission, even if their not informing him was due to etiquette and love, as happened in the case of Sakina Sawda, the female servant of the mosque, Umm Mihjan (may Allah be pleased with them both). In Muwatta Imam Malik and others, there is a Hadith from Abu Umamah As'ad bin Sahl bin Hunayf (may Allah be pleased with them both): when she fell ill, the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) said, "When she dies, inform me." Her funeral was prepared at night; the noble companions (may Allah be pleased with them)...

1. Al-Quran 33/6
2. Sahih al-Bukhari, Kitab al-Kafalah, Qadimi Kutub Khana, Karachi, 1/308
3. Muwatta Imam Malik, At-Takthir 'ala al-Jana'iz, Mir Muhammad Kutub Khana, Karachi, p. 208

[शीर्ष बायाँ अरबी बॉक्स] उनके बाद किसी ने उन पर नमाज़ नहीं पढ़ी, जैसा कि हम इसके बारे में इमाम शम्सुल अइम्मा सरख्सी (रहमतुल्लाह अलैहि) से यक़ीनी कौल आगे ज़िक्र करेंगे।

[शीर्ष दायाँ उर्दू बॉक्स] उसके बाद किसी ने हुज़ूर की नमाज़-ए-जनाज़ा नहीं पढ़ी। जैसा कि शम्सुल अइम्मा सरख्सी रहमतुल्लाह तआला अलैहि से इस पर यक़ीन के साथ हम आगे नक़्ल करेंगे।

तीसरा, यह साबित करना होगा कि पहली नमाज़ हक़ीक़ी वली (अभिभावक) ने खुद पढ़ी थी और फिर उसका दोहराव (एआदा) किया। इस बात से अलग कि जब पहली नमाज़ न तो हक़ीक़ी वली ने खुद पढ़ी और न ही उनकी अनुमति से हुई, तो हमारे नज़दीक भी उन्हें दोहराने का अधिकार है। उन मुजतहिद साहब के उस हुक्म और ज़ोर को सही ठहराना विशेष रूप से इस स्थिति के प्रमाण पर निर्भर है कि यहाँ वाक़िया यही था।

मैं कहता हूँ: और अल्लाह की तौफीक से कामयाबी है। सरकार-ए-दो आलम सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम के मुक़द्दस ज़माने में, तमाम मुसलमानों के हक़ीक़ी और सबसे पहले वली स्वयं हुज़ूर पुरनूर सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम हैं। अल्लाह अज़्ज़वजल फरमाता है: "नबी मोमिनों के उनकी जानों से ज़्यादा मालिक हैं" (नबी मुसलमानों की जानों से ज़्यादा उनके मालिक हैं)। रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम फरमाते हैं:

[मध्य बायाँ अरबी बॉक्स] "मैं मोमिनों के उनकी जानों से ज़्यादा करीब हूँ।" २ - इसे अहमद, शैखन (बुखारी व मुस्लिम), नसाई और इब्ने माजा ने अबू हुरैरा रज़ियल्लाहु तआला अन्हु से रिवायत किया है।

[मध्य दायाँ उर्दू बॉक्स] "मैं मुसलमानों का उनकी जानों से ज़्यादा मालिक हूँ।" इसे इमाम अहमद, बुखारी, मुस्लिम, नसाई, इब्ने माजा ने हज़रत अबू हुरैरा से रिवायत किया। (त)

तो जो नमाज़ हुज़ूर अकदस सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम को सूचित करने से पहले लोग पढ़ लें, फिर अगर हुज़ूर पुरनूर सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम दोहराव फरमाएँ तो यह वही सूरत है कि पहली नमाज़ गैर-वली-ए-हक़ ने पढ़ी, और वली-ए-हक़ को दोहराने का अधिकार है। इसका उन मुजतहिद साहब की सूरत से कोई संबंध नहीं होगा, विशेष रूप से जब पहले से यह निर्देश दिया गया हो कि "जब फलाँ मरीज़ का इंतकाल हो तो हमें खबर देना।" आखिरकार यह निर्देश इसीलिए था कि खुद नमाज़ पढ़ाने का इरादा था। तो अगर दूसरों का नमाज़ पढ़ना साबित हो, तो यह न केवल वली

की अनुमति के बिना होगा बल्कि वली की अनुमति के खिलाफ होगा, भले ही उनका सूचित न करना अदब और मोहब्बत की वजह से हो, जैसा कि मस्जिद की खादिमा सखीना सौदा उम्मे मिहजन रज़ियल्लाहु तआला अन्हुमा के मामले में हुआ। मुअत्ता इमाम मालिक आदि में हदीस अबू उमामा असअद बिन सहल बिन हनीफ रज़ियल्लाहु तआला अन्हुमा से है, जब वह बीमार हुईं तो रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम ने फरमाया: "जब उसका इंतकाल हो तो मुझे खबर देना।" उनका जनाज़ा रात को तैयार हुआ, सहाबा किराम रज़ियल्लाहु तआला अन्हुम...

1. अल-कुरान 33/6
2. सहीह अल-बुखारी, किताब अल-कफाला, क़दीमी कुतुब खाना, कराची, 308/1
3. मुअत्ता इमाम मालिक, अत-तक्सीर अलल जनाइज़, मीर मुहम्मद कुतुब खाना कराची, पृ. 208

جلد نہم فتاوٰی رضویہ

[Top Left Arabic Box] لم یصل علیه احد بعدکما سنذکر الجزم به عن الامام شمس الائمه السرخسی رحمة الله علیهـ

[Top Right Urdu Box] اس کے بعد کسی نے حضور کی نمازِ جنازہ نہ پڑھی۔ جیسا کہ شمس الائمہ سرخسی رحمۃ اللہ تعالٰی علیہ سے اس پر جزم ہم آگے نقل کریں گے۔

ثالثاً ثبوت دینا ہوگا کہ پہلی نماز ولیِ حق نے خود پڑھی تھی پھر اعادہ کی، قطع نظر اس سے کہ جب نمازِ اول نہ ولیِ حق نے خود پڑھی نہ اس کے اذن سے ہوئی تو اُسے ہمارے نزدیک بھی اعادہ کا اختیار ہے۔ ان مجتہد صاحب کا وہ حکم و اصرار صحیح ٹھہرانا خاص اسی صورت کے ثبوت پر موقوف کہ یہاں واقعہ یہی تھا۔ اقول: وباللہ التوفیق زمانہ اقدس حضور سید عالم صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم میں تمام مسلمین کے ولیِ حق واقدم خود حضور پرنور صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم ہیں۔ اللہ عزوجل فرماتا ہے: اَلنَّبِیُّ اَوْلٰی بِالْمُؤْمِنِیْنَ مِنْ اَنْفُسِهِمْ ۱ (نبی مسلمانوں کے انکی جانوں سے زیادہ مالک) رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم فرماتے ہیں:

[Middle Left Arabic Box] انا اولیٰ بالمؤمنین من انفسهم ۲۔ رواه احمد و الشیخان والنسائی وابن ماجة عن ابی ہریره رضی الله تعالیٰ عنهـ

[Middle Right Urdu Box] میں مسلمانوں کا ان کی جانوں سے زیادہ مالک ہوں۔ اسے امام احمد، بخاری، مسلم، نسائی، ابنِ ماجہ نے حضرت ابوہریرہ سے روایت کیا۔ (ت)

توجو نماز قبل اطلاع حضور اقدس صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم اور لوگ پڑھ لیں پھر اگر حضور پرنور صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم اعادہ فرمائیں تو یہ وہی صورت ہے کہ نمازِ اول غیر ولیِ حق نے

پڑھی، ولیِ حق اختیارِ اعادہ رکھتا ہے اسے ان مجتہد صاحب کی صورت سے کچھ علاقہ نہ ہوگا خصوصاً جب کہ پہلے سے ارشاد فرمایا ہو کہ فلاں مریض جب انتقال کرے ہمیں خبر دینا کہ آخر یہ ارشاد اسی لئے تھا کہ خود نماز پڑھنے کا قصد تھا تو اگر وروں کا پڑھنا ثابت ہو تو صرف بے اذنِ ولی نہیں بلکہ خلافِ اذنِ ولی ہوگا، اگر چہ اُن کا اطلاع نہ دینا بمقتضائے ادب ومحبت ہو جیسا کہ سکینہ سوداخادمہ مسجد امِ محجن رضی اللہ تعالیٰ عنہما کے معاملہ میں واقع ہوا۔ موطائے امام مالک وغیرہ میں حدیث ابی امامہ اسعد بن سہل بن حنیف رضی اللہ تعالیٰ عنہما سے ہے، جب وہ بیمار ہوئیں رسول اللہ صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم نے ارشاد فرمایا: اذا ماتت فأذنونی ۳ جب اس کا انتقال ہو مجھے خبر کر دینا ان کا جنازہ شب کو تیار ہوا، صحابہ کرام رضی اللہ تعالیٰ عنہ

۱ القرآن ۶/۳۳ ۲ صحیح البخاری کتاب الکفالۃ قدیمی کتب خانہ کراچی ۳۰۸/۱ ۳ موطا امام مالک التکثیر علی الجنائز میر محمد کتب خانہ کراچی ص ۲۰۸

Fatawa Ridawiyya, Volume 9

(They) considered it against etiquette to wake the Holy Prophet (may Allah's peace and blessings be upon him). (In the narrated report of Ibn Abi Shaybah from the Hadith of Sahl bin Hanayf, may Allah be pleased with him), there was also a fear that the night was dark and there are all kinds of insects in the ground; it was not deemed appropriate for the Radiant Prophet (may Allah's peace and blessings be upon him) to go out at that time. *Qala fadafanaha* (He said: So they buried her), thinking this, they buried her. In the morning, when the Prophet was informed, he said: "Did I not command you to inform me about it?" They replied: "O Messenger of Allah! *Karrihna an nukhrijaka laylan aw nuqizak* (O Messenger of Allah, peace and blessings be upon him! Our hearts could not bear to trouble you to come out at night or to wake you from your restful sleep (for the Prophet's sleep is also revelation, who knows what the Prophet might be seeing or hearing in his dream at that time)). In Sahih Bukhari, from the Hadith of Abu Huraira (may Allah be pleased with him): *Fahaqaru shanaha*. In Sahih Muslim, it is from the same source: *wa ka-annahum sagharu amraha*. That is, they thought she was of such [low] status that they should wake the Prophet and take him out in the dark night for her funeral. In Musnad Imam Ahmad, from the Hadith of Amir bin Rabi'ah (may Allah be pleased with him), the Holy Prophet (may Allah's peace and blessings be upon him) said: *Fala taf'alu ud'uni li-jana'izikum* (Do not do this, call me for your funerals). In Sunan Ibn Majah, from the Hadith of Zaid bin Thabit Ansari (may Allah be pleased with him), the Prophet said:

Fala taf'alu ala-u'rifanna ma mata minkum mayyitun ma kuntu bayna azhurikum la adhantimuni bihi fa-inna salati lahu rahmatun

Never do this. As long as I am among you, let me know of whoever dies, for my prayer over him is a mercy, peace and blessings of Allah be upon him.

Footnotes: 1 Al-Musannaf of Ibn Abi Shaybah, Kitab al-Jana'iz, Idara al-Quran wal-Uloom al-Islamiyyah Karachi 3/361; At-Tamhid by Ibn Abd al-Barr, Al-Salat 'ala al-Qabr... Al-Maktabah al-Quddusiyyah Lahore 6/263. 2 Muwatta Imam Malik, At-Takthir 'ala al-Jana'iz, Mir Muhammad Kutub Khana Karachi p. 208. 3 Sahih al-Bukhari, Kitab al-Jana'iz, Qadimi Kutub Khana Karachi 1/178. 4 Sahih Muslim, Kitab al-Jana'iz, Nur Muhammad Asah al-Matabi' Karachi 1/310. 5 Musnad Imam Ahmad bin Hanbal, Hadith of Amir bin Rabi'ah, Dar al-Fikr Beirut 3/444. 6 Sunan Ibn Majah, Bab ma ja'a fi al-salat 'ala al-qabr, H.M. Saeed Company Karachi p. 111; At-Tamhid by Ibn Abd al-Barr, Ibaha al-salat 'ala al-qabr... Al-Maktabah al-Quddusiyyah Lahore 6/272.

फ़तावा रज़विया, जिल्द नहम (नौ)

उन्होंने हुज़ूर अकदस (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) को जगाना अदब के खिलाफ़ समझा (इब्न शैबा की रिवायत में हदीस सहल बिन हनीफ़ रज़ियल्लाहु अन्हु से है)। यह भी डर था कि रात अंधेरी है, ज़मीन में हर तरह के कीड़े होते हैं, उस वक़्त हुज़ूर पुरनूर (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) का तशरीफ़ ले जाना मुनासिब नहीं। 'काल फ़दफ़नहा' (उन्होंने कहा: तो उन्होंने उसे दफ़ना दिया) यह सोचकर दफ़ना दिया। सुबह हुज़ूर को ख़बर हुई, फ़रमाया: "क्या मैंने तुम्हें हुक्म नहीं दिया था कि मुझे इसकी ख़बर कर देना?" अर्ज़ की: "या रसूल अल्लाह! 'करिहना अन नुख्रिजका लैलन औ नुकिज़क' (या रसूल अल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम! हमारे दिलों को यह गवारा न हुआ कि रात में हुज़ूर को बाहर आने की तकलीफ़ दें या हुज़ूर को ख़्वाब-ए-राहत से जगाएं(क्योंकि हुज़ूर का ख़्वाब भी तो वह्य है, क्या मालूम कि उस वक़्त हुज़ूर ख़्वाब में क्या देखते-सुनते हों))।" सहीह बुखारी शरीफ़ में हदीस अबी हुरैरा (रज़ियल्लाहु अन्हु) से है: 'फ़हक़ररू शानहा'। सहीह मुस्लिम में उन्हीं से है: 'व कानहुम सगरु अम्रहा' यानी यह ख्याल किया कि वह इस काबिल थी कि उसके जनाज़े के लिए हुज़ूर को जगाकर अंधेरी रात में बाहर ले जाएं। मुसनद इमाम अहमद में हदीस आमिर बिन रबीआ (रज़ियल्लाहु अन्हु) से है, हुज़ूर अकदस (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने फ़रमाया: 'फ़ला तफ़अलू उदूनी लि-जनाइज़िकुम' (ऐसा न करो, मुझे अपने जनाज़ों के लिए बुलाया करो)। सुनन इब्न माजा में हदीस जैद बिन साबित अंसारी (रज़ियल्लाहु अन्हु) से है, हुज़ूर ने फ़रमाया:

फ़ला तफ़अलू अला-उरिफ़न्ना मा माता मिंकुम मय्यितुन मा कुन्तु बयना अज़हुरिकुम ला अज़न्तुमुनी बिही फ़इन्ना सलाती लहू रहमतुन

ऐसा कभी न करना। जब तक मैं तुम में तशरीफ़ रखूँ, जो शख़्स मरे मुझे ख़बर कर देना कि मेरी नमाज़ उसके हक़ में रहमत है (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम)।

पाद-टिप्पणियाँ (फ़ुटनोट्स): 1 अल-मुसन्निफ़ इब्न अबी शैबा, किताब अल-जनाइज़, इदारा अल-कुरआन वल-उलूम अल-इस्लामिया कराची 3/361; अत-तमहीद इब्न अब्द अल-बर्र, अस-सलात अलल क़ब्र... अल-मक्तबा अल-कुद्दूसिया लाहौर 6/263। 2 मुवत्ता इमाम मालिक, अत-तक्सीर अलल जनाइज़, मीर मुहम्मद कुतुब ख़ाना कराची पृ. 208। 3 सहीह अल-बुखारी, किताब अल-जनाइज़, क़दीमी कुतुब ख़ाना कराची 1/178। 4 सहीह मुस्लिम, किताब अल-जनाइज़, नूर मुहम्मद असहुत तबाअ कराची 1/310। 5 मुसनद इमाम अहमद बिन हंबल, हदीस आमिर बिन रबीआ, दार

अल-फ़िक्र बेरुत 3/444। 6 सुनन इब्न माजा, बाब मा जा'आ फ़ी अस-सलात अलल क़ब्र, एच. एम. सईद कंपनी कराची पृ. 111; अत-तमहीद इब्न अब्द अल-बर्र, इबाहात अस-सलात अलल क़ब्र... अल-मक्तबा अल-कुद्दूसिया लाहौर 6/272।

पृष्ठ 293/948

نے حضور اقدس صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم کو جگانا خلاف ادب جانا (ابن شیبہ کی روایت موصولہ میں حدیث سہل بن حنیف رضی اللہ تعالٰی عنہ سے ہے) یہ بھی خوف ہوا کہ رات اندھیری ہے زمین میں ہر طرح کے کیڑے ہوتے ہیں اس وقت حضور پُر نور صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم کا تشریف لے جانا مناسب نہیں ،قال فدفنھا یہ خیال کرکے دفن کردیا) صبح حضور کو خبر ہوئی فرمایا : الم امرکم ان تؤذنونی بھا کیا میں نے تم کو حکم نہ دیا تھا کہ مجھے اس کی خبر کر دینا۔ عرض کی : یارسول اللہ کرھنا ان نخرجک لیلا او نوقظک یارسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم ! ہمارے دلوں کو گوارا نہ ہوا کہ رات میں حضور کو باہر آنے کی تکلیف دیں یا حضور کو خواب راحت سے جگائیں (کہ حضور کا خواب بھی تو وحی ہے کیا معلوم کہ اس وقت حضور خواب میں کیا دیکھتے سنتے ہوں) صحیح بخاری شریف میں حدیث ابی ہریرہ رضی اللہ تعالٰی عنہ سے ہے : فحقرو ا شانھا صحیح مسلم میں انہی سے ہے : وکانھم صغرو ا امرھا یعنی یہ خیال کیا کہ وہ اس قابل تھی کہ اس کے جنازہ کے لئے حضور کو جگا کر اندھیری رات میں باہر لے جائیں۔ مسند امام احمد میں حدیث عامر بن ربیعہ رضی اللہ تعالٰی عنہ سے ہے حضور اقدس صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم نے فرمایا: فلا تفعلوا ادعونی لجنائزکم ایسا نہ کرو مجھے اپنے جنازوں کے لئے بلایا کرو۔ سنن ابن ماجہ میں حدیث زید بن ثابت انصاری رضی اللہ تعالٰی عنہ سے ہے حضور نے فرمایا:

فلا تفعلوا الاعرفن مامات منکم میت ماکنت بین اظھرکم لا اذنتمونی بہ فان صلاتی لہ رحمۃ

ایسا کبھی نہ کرنا جب تک میں تم میں تشریف رکھوں جو شخص مرے مجھے خبر کر دینا کہ میری نماز اس کے حق میں رحمت ہے صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم۔

1 المصنف لابن ابی شیبہ کتاب الجنائز ادارۃ القرآن والعلوم الاسلامیہ کراچی ۳۶۱/۳ ، التمہید لابن عبدالبر الصلوۃ علی القبر رویت علی سنتہ وجوہ المکتبہ القدوسیہ لاہور ۲۶۳/۶ 2 موطا الامام مالک التکثیر علی الجنائز میر محمد کتب خانہ کراچی ص ۲۰۸ 3 صحیح البخاری کتاب الجنائز قدیمی کتب خانہ کراچی ۱۷۸/۱ 4 صحیح مسلم کتاب الجنائز نور محمد اصح المطابع کراچی ۳۱۰/۱ 5 مسند امام احمد بن حنبل حدیث عامر بن ربیعہ دارالفکر بیروت ۴۴۴/۳ 6 سنن ابن ماجہ باب ماجاء فی الصلوۃ علی القبر ایچ ایم سعید کمپنی کراچی ص ۱۱۱، التمہید لابن عبدالبر اباحۃ الصلوۃ علی قبر الخ المکتبۃ القدوسیہ لاہور ۲۷۲/۶

Fatawa Razvia, Volume 9

I say: And with Allah's success, Ibn Hibban in his 'Sahih' and Hakim in 'Mustadrak' narrated from Hazrat Yazid bin Thabit al-Ansari, the elder brother of Zaid bin Thabit, may Allah be pleased with him:

Arabic	English Translation
Qala kharajna ma'a Rasulillahi sallallahu ta'ala 'alayhi wa sallam falamma waradna al-Baqi' idha huwa biqabrin fas'ala 'anhu faqalu fulaanatun fa'arafaha faqala ala adhantumuni biha qalu kunta qa'ilan sa'iman qala fala taf'alu li-a'rifanna ma maata minkum mayyitun ma kuntu bayna azhurikum illa adhantumuni bihi fa-inna salati 'alayhi rahmatun [1]	That is, we went out along with the noble entourage of the Master of the World, peace and blessings of Allah be upon him. When we reached al-Baqi', a fresh grave was seen. The Prophet, peace be upon him, inquired about it. People submitted: "So-and-so woman." The Prophet recognized her and asked: "Why did you not inform me?" They submitted: "The Prophet was resting in the afternoon and was fasting." He said: "Do not do so. Whenever a Muslim among you dies, inform me, because my praying for them is a mercy."

It is evident that this incident is different from the incident of Hazrat Sakina (may Allah be pleased with her). There, the situation was that it was a dark night and they did not deem it appropriate to wake the Prophet. Here, it was noon, the Prophet was resting and fasting. In both Hadiths, the same noble instruction is present: "Do not do so, inform us." Now, it could be that the people present at one incident were different, and the people of the other incident were unaware of this command. Or it could be that the noble companions (may Allah be pleased with them) considered this matter a pure instruction based on the mercy of the compassionate and merciful Prophet (peace and blessings be upon him), and not as an obligation. Therefore, where there was a concern of causing inconvenience, they prioritized etiquette and rest. In any case, such occurrences are subject to all the aforementioned reasons. From a single command to "inform me," it cannot be proven that the noble presence was informed every other time, as is not hidden. Inevitably, At-Tabarani narrated from Husayn bin Wahwah al-Ansari (may Allah be pleased with him):

Arabic	English Translation
Inna Talhah bin al-Bara maridha fa-atahu an-	That is, the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) came to visit Hazrat Talha bin al-Bara (may

Arabic	English Translation
Nabiyyu sallallahu ta'ala 'alayhi wa sallam ya'uduhu faqala inni la-ara Talhah illa qad hadatha fihil mautu fa-adhinuni bihi wa 'ajjilu fal-lam yablugh an-Nabiyyu	Allah be pleased with him) and said: "It seems his time has come now, inform me and be quick in the funeral preparations." The noble Prophet (peace be upon him) had not yet reached the neighborhood of Bani Salim when he passed away. He had willed his family at nightfall that if he died at night, they should bury him and not inform the noble Prophet...

[1] Al-Ihsan bi-Tartib Sahih Ibn Hibban, Hadith 3086, Mu'assasat ar-Risalah, Beirut, 6/35

फ़तावा रज़विया, जिल्द नवीं

मैं कहता हूँ: और अल्लाह की तौफ़ीक़ से, इब्न हिब्बान ने अपनी सहीह में और हाकिम ने मुस्तदरक में हज़रत यज़ीद बिन साबित अंसारी, ज़ैद बिन साबित के बड़े भाई, रज़ियल्लाहु तआला अन्हु से रिवायत की है:

अरबी	**हिंदी अनुवाद**
قال خرجنا مع رسول الله صلى الله تعالى عليه وسلم فلما وردنا البقيع اذا هو بقبر فسأل عنه فقالوا فلانة فعرفها فقال الا أذنتمونى بها قالوا كنت قائلا صائما قال فلا تفعلوا لاعرفن مامات منكم ميت ما كنت بين اظهركم الا أذنتمونى به فان صلاتى عليه رحمة ١	यानी हम हुज़ूर सैयदे आलम सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम की हमराही में बाहर गए, जब बक़ीअ पहुंचे तो एक ताज़ा क़ब्र नज़र आई। हुज़ूर पुरनूर सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम ने दरयाफ़्त फ़रमाया: लोगों ने अर्ज़ की: फ़लां औरत। हुज़ूर ने उन्हें पहचाना, फ़रमाया: मुझे क्यों ख़बर न दी? अर्ज़ की: हुज़ूर दोपहर को आराम फ़रमाते थे और हुज़ूर का रोज़ा था। फ़रमाया: तो ऐसा न करो, जब तुम में कोई मुसलमान मरे मुझे ख़बर कर दिया करो क्योंकि उस पर मेरा नमाज़ पढ़ना रहमत है।

ज़ाहिर है कि यह वाक़या हज़रत सकीना रज़ियल्लाहु तआला अन्हा के वाक़ये से अलग है। वहां यह था कि अंधेरी रात थी, हमें गवारा न हुआ कि हुज़ूर को जगाएं। यहाँ यह है कि दोपहर का वक़्त था, हुज़ूर आराम फ़रमा रहे थे और हुज़ूर का रोज़ा था। और दोनों हदीसों में वही इर्शादे अक़दस है कि ऐसा न करो हमें इत्तला दिया करो। अब चाहे यूँ हो कि एक वाक़ये के गवाह और थे और दूसरे वाक़ये के लोगों को इस हुक्म की ख़बर न थी, चाहे यूँ कि सहाबा किराम रज़ियल्लाहु तआला अन्हुम ने इस अमर को हुज़ूर रऊफ़ रहीम अलैहि अफ़ज़लुस्सलात वत्तस्लीम की महज़ रहमत और शफ़क़त पर मबनी इर्शाद समझा, न कि लाज़मी। लिहाज़ा जहाँ तकलीफ़ का ख़याल हुआ, अदब और आराम को मुक़द्दम रखा। बहरहाल, ऐसे वाक़यात उन तमाम मज़कूरा वजहों के तहत आते हैं। एक बार के फ़रमान से कि 'ख़बर दे दिया करो', बाक़ी बार अक़दस इत्तला होना साबित नहीं हो सकता, जैसा कि मख़फ़ी नहीं है। लाज़रम तबरानी ने हसैन बिन वहवह अंसारी रज़ियल्लाहु तआला अन्हु से रिवायत की:

अरबी	हिंदी अनुवाद
ان طلحة بن البراء مرض فأتاه النبي صلى الله تعالى عليه وسلم يعوده فقال انى لارى طلحة الا قد حدث فيه الموت فآذنونى به وعجلو افلم يبلغ النبي	यानी नबी सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम हज़रत तल्हा बिन बरा रज़ियल्लाहु तआला अन्हु की अयादत के लिए तशरीफ़ लाए और ये फ़रमाया कि अब उनका वक़्त आया मालूम होता है, मुझे ख़बर कर देना और तजहीज़ (कफ़न-दफ़न) में जल्दी करना। हुज़ूर अक़दस सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम मोहल्ला बनी सालिम तक न पहुँचे थे कि उनका इंतक़ाल हो गया और उन्होंने रात आने पर अपने घर वालों को वसीयत कर दी थी कि जिस हाल में मैं मरूँ तो मुझे दफ़न कर देना और हुज़ूर अक़दस...

[1] अल-इहसान बि-तरतीब सहीह इब्न हिब्बान, हदीस 3086, मुअस्ससतुर रिसाला, बैरुत, 35/6

اقول: وباللہ التوفیق ابن حبان اپنی صحیح اور حاکم مستدرک میں حضرت یزید بن ثابت انصاری برادرِ اکبر زید بن ثابت رضی اللہ تعالیٰ عنہ سے راوی ہیں:

عربی متن

قال خرجنا مع رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم فلما وردنا البقیع اذا ھو بقبر فسأل عنہ فقالوا فلانۃ فعرفھا فقال الا اذنتمونی بھا قالوا کنت قائلا صائما قال فلا تفعلوا لاعرفن مامات منکم میت ما کنت بین اظھرکم الا اذنتمونی بہ فان صلاتی علیہ رحمۃ [1]

اردو ترجمہ

یعنی ہم ہمراہِ رکاب اقدس حضور سید عالم صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم باہر چلے جب بقیع پر پہنچے ایک قبر تازہ نظر آئی حضور پر نور صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم نے دریافت فرمایا: لوگوں نے عرض کی: فلاں عورت۔ حضور نے انہیں پہچانا، فرمایا: مجھے کیوں خبر نہ دی؟ عرض کی: حضور دوپہر کو آرام فرماتے تھے اور حضور کا روزہ تھا۔ فرمایا: تو ایسا نہ کرو جب تم میں کوئی مسلمان مرے مجھے خبر کر دیا کرو کہ اس پر میرا نماز پڑھنا رحمت ہے۔

ظاہر ہے کہ یہ واقعہ واقعہ حضرت سکینہ رضی اللہ تعالٰی عنہا کا غیر ہے، وہاں یہ تھا کہ اندھیری رات تھی ہمیں گوارا نہ ہوا کہ حضور کو جگائیں، یہاں یہ ہے کہ دوپہر کا وقت تھا حضور آرام فرماتے حضور کو روزہ تھا اور دونوں حدیثوں میں وہی ارشادِ اقدس ہے کہ ایسا نہ کرو ہمیں اطلاع دیا کرو۔ اب خواہ یوں ہو کہ ایک واقعہ کے حضار اور تھے اور دوسرے واقعہ کے لوگوں کو اس حکم کی خبر نہ تھی خواہ یوں کہ صحابہ کرام رضی اللہ تعالٰی عنہم نے اس امر کو ارشادِ محض، بہ نظر رحمت نامہ حضور رؤف رحیم علیہ افضل الصلوۃ والتسلیم خیال کیا، نہ ایجابی۔ لہٰذا جہاں تکلیف کا خیال ہوا ادب و آرام کو مقدم رکھا، بہرحال ایسے وقائع ان سب وجوہ مذکورہ کے

مورد ہیں۔ ایک بار کے فرمان سے، کہ خبر دے دیا کرو، باقی بار کا اطلاع اقدس ہونا ثابت نہیں ہو سکتا، کما لا یخفی، لاجرم طبرانی نے حصین بن وحوح انصاری رضی اللہ تعالٰی عنہ سے روایت کی :

عربی متن	اردو ترجمہ
ان طلحۃ بن البراء مرض فاتا ہ النبی صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم یعود ہ فقال انی لارٰی طلحۃ الا قد حدث فیہ الموت فآذنونی بہ وعجلو افلم یبلغ النبی	یعنی نبی صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم حضرت طلحہ بن براء رضی اللہ تعالٰی عنہ کی عیادت کے لئے تشریف لائے اور یہ فرمائے کہ اب انکا وقت آیا معلوم ہوتا ہے، مجھے خبر کر دینا اور تجہیز میں جلدی کرنا۔ حضور اقدس صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم محلہ بنی سالم تک نہ پہنچے تھے کہ ان کا انتقال ہو گیا اور انہوں نے رات آنے پر اپنے گھر والوں کو وصیت کر دی تھی کہ جن میں مروں تو مجھے دفن کر دینا اور حضور اقدس...

[1] الاحسان بترتیب صحیح ابن حبان حدیث ۳۰۸۶ موسسۃ الرسالہ بیروت ۳۵/۶

Fatawa Razawiyya (Volume 9)

(Arabic Quote) صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم بنی سالم بن عوف حتی توفی، وکان قال لاھلہ لما دخل اللیل اذامت فادفنونی ولا تدعو رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم فانی اخاف علیہ الیھود ان یصاب بسببی فاخبر النبی صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم حین اصبح ملخصاً الحدیث۔	**He (the companion) stayed with the Banu Salim bin 'Awf until he passed away. When night fell, he told his family, "When I die, bury me and do not call the Messenger of Allah (peace and blessings be upon him), for I fear the Jews might cause some harm to the Prophet because of me." His family did as he wished, and in the morning, the Prophet (peace and blessings be upon him) was informed. And success is through Allah. (Summary of the Hadith).**

Then I say: and from Allah I seek help (Then I speak with the help of Allah Almighty. T). Setting aside the reality of 'Wilayah' (sainthood), here is a more subtle discourse that has dawned upon this humble heart by the grace of the Almighty. The funeral prayer is a form of intercession, as clearly stated in the Hadiths (as the specification is present in the Hadiths. T). In a Hadith recorded by Ahmad, Muslim, Abu Dawood, and Ibn Majah from Abdullah bin Abbas (may Allah be pleased with them both), the Messenger of Allah (peace and blessings be upon him) said:

No Muslim dies and forty men who associate nothing with Allah stand for his funeral prayer, except that Allah accepts their intercession for him.	**Whenever a Muslim dies and forty Muslims who do not associate anything with Allah stand in his funeral prayer, Allah Almighty accepts their intercession for him.**

Ahmad, Muslim, and Nasa'i narrated from the Mother of the Believers and Anas bin Malik (may Allah be pleased with them both), and Tirmidhi narrated from Siddiqah (Aisha, may Allah be pleased with her), that the Messenger of Allah (peace and blessings be upon him) said:

No dead person has a group of Muslims, reaching a hundred in number, offering the funeral prayer for him, all of them interceding for him, except that their intercession for him is accepted.	**Any deceased person upon whom a hundred Muslims offer the funeral prayer and act as intercessors, their intercession for him is accepted.**

And the true Master of intercession is none other than the Prophet, the Intercessor of the Day of Resurrection (peace and blessings be upon him), and whoever intercedes, it is through the intercession of the Holy Prophet...

---

1. Al-Mu'jam al-Kabir, Husayn bin Wahwah al-Ansari, Hadith 13554, Al-Maktabah al-Faysaliyyah Beirut, 4/28.
2. Sahih Muslim, Kitab al-Jana'iz, Nur Muhammad Asah al-Matabi' Karachi, 1/308.
3. Sahih Muslim, Kitab al-Jana'iz, Nur Muhammad Asah al-Matabi' Karachi, 1/308.

फ़तावा रज़विया (खंड 9)

(अरबी उद्धरण) صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم بنی سالم بن عوف حتی توفی، وکان قال لاھلہ لما دخل اللیل اذامت فادفنونی ولا تدعو رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم فانی اخاف علیہ الیھود ان یصاب بسببی فاخبر النبی صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم حین اصبح ملخصاً الحدیث۔

वह (सहाबी) बनू सालिम बिन औफ़ के साथ रहे यहाँ तक कि उनका इंतकाल हो गया। जब रात हुई तो उन्होंने अपने घरवालों से कहा, "जब मैं मर जाऊँ तो मुझे दफ़न कर देना और अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) को न बुलाना, क्योंकि मुझे यहूदियों का डर है कि कहीं मेरे कारण हुज़ूर को कोई तकलीफ़ न पहुँचे।" उनके घर वालों ने वैसा ही किया, सुबह नबी (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) को ख़बर हुई। और तौफ़ीक़ अल्लाह ही की ओर से है। (हदीस का सारांश)।

फिर मैं कहता हूँ: और अल्लाह से मैं मदद माँगता हूँ (फिर मैं अल्लाह तआला की मदद से कहता हूँ। टी)। विलायत (संतत्व) की हक़ीक़त से हटकर यहाँ एक सूक्ष्म चर्चा है जो सर्वशक्तिमान की कृपा से इस तुच्छ दिल पर आई है। जनाज़े की नमाज़ एक प्रकार की शिफ़ाअत (सिफ़ारिश) है, जैसा कि हदीसों में साफ़ बताया गया है (जैसा कि हदीसों में इसकी तसरीह मौजूद है। टी)। अहमद, मुस्लिम, अबू दाऊद और इब्न माजाह द्वारा रिवायत की गई हदीस में अब्दुल्ला इब्न अब्बास (रज़ियल्लाहु अन्हुमा) से वर्णित है कि अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने फ़रमाया:

कोई भी मुसलमान नहीं मरता और उसके जनाज़े की नमाज़ में चालीस ऐसे लोग खड़े होते हैं जो अल्लाह के साथ किसी को शरीक नहीं करते, मगर अल्लाह उसके हक़ में उनकी शिफ़ाअत क़बूल फ़रमाता है।

जिस मुसलमान के जनाज़े में चालीस मुसलमान नमाज़ में खड़े हों, अल्लाह तआला उसके हक़ में उनकी शिफ़ाअत क़बूल फ़रमाए।

अहमद, मुस्लिम और नसाई ने उम्मुल मोमिनीन और अनस बिन मालिक (रज़ियल्लाहु अन्हुमा) से और तिरमिज़ी ने सिद्दीक़ा (आयशा रज़ियल्लाहु अन्हा) से रिवायत की है कि अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने फ़रमाया:

कोई भी मृत व्यक्ति ऐसा नहीं है जिस पर मुसलमानों का एक समूह, जिनकी संख्या सौ तक पहुँचती हो, जनाज़े की नमाज़ पढ़े और वे सब उसके लिए शिफ़ाअत करें, मगर उनके हक़ में उनकी शिफ़ाअत क़बूल की जाती है।

जिस मय्यत पर सौ मुसलमान नमाज़-ए-जनाज़ा में शफ़ीअ हों, उनकी शिफ़ाअत उसके(हक़) में क़बूल हो।

और शिफ़ाअत के असली मालिक केवल हुज़ूर शफ़ी-ए-यौमुल नुशूर (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) हैं, और जो कोई शिफ़ाअत करता है, वह हुज़ूर की शिफ़ाअत के माध्यम से ही करता है...

---

1. अल-मुअजम अल-कबीर, हुसैन बिन वहवह अल-अंसारी, हदीस 13554, अल-मकतबा अल-फ़ैसलिया बेरूत, 4/28.
2. सहीह मुस्लिम, किताब अल-जनाइज़, नूर मोहम्मद असहुत तबा' कराची, 1/308.
3. सहीह मुस्लिम, किताब अल-जनाइज़, नूर मोहम्मद असहुत तबा' कराची, 1/308.

صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم بنی سالم بن عوف حتی توفی، وکان قال لاھلہ لما دخل اللیل اذامت فادفنونی ولا تدعو رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم فانی اخاف علیہ الیہود ان یصاب بسببی فاخبر النبی صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم حین اصبح ملخصاً الحدیث۔

صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم کو نہ بلانا، رات کا وقت ہے مجھے یہود سے اندیشہ ہے مبادا حضور کو میرے سبب سے کوئی تکلیف پہنچے۔ ان کے گھر والوں نے ایسا ہی کیا، صبح نبی صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم کو خبر ہوئی۔ وباللہ التوفیق

ثم اقول: وباللہ استعین (پھر میں اللہ تعالٰی کی مدد سے کہتا ہوں۔ ت) حقیقتِ ولایت سے قطعِ نظر کرکے یہاں ایک لطیف تر تقریر ہے کہ فیضِ قدیر سے قلبِ فقیر پر فائز ہوئی، نمازِ جنازہ شفاعت ہے کما صرحت بہ الاحادیث (جیسا کہ احادیث میں اس کی تصریح موجود ہے۔ ت) احمد و مسلم وابوداؤد وابنِ ماجہ کی حدیث میں عبداللہ ابن عباس رضی اللہ تعالٰی عنہما سے ہے رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم نے فرمایا:

ما من رجل مسلم یموت فیقوم علی جنازتہ اربعون رجلا لا یشرکون باللہ شیئا الا شفعھم اللہ فیہ۔

جس مسلمان کے جنازے میں چالیس مسلمان نماز میں کھڑے ہوں اللہ تعالٰی اس کے حق میں ان کی شفاعت قبول فرمائے۔

احمد و مسلم و نسائی نے ام المومنین و انس بن مالک رضی اللہ تعالٰی عنہما اور ترمذی نے صدیقہ رضی اللہ تعالٰی عنہا سے روایت کی رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم نے فرمایا:

ما من میت تصلی علیه أمة من المسلمین یبلغون مائة کلهم یشفعون له الا شفعوا فیه۔

جس میت پر سو مسلمان نمازِ جنازہ میں شفیع ہوں ان کی شفاعت اُس کے میں قبول ہو۔

اور مالکِ شفاعت صرف حضور شفیعِ یوم النشور صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم ہیں، اور جو کوئی شفاعت کرے حضور صلی اللہ علیہ وسلم کی شفاعت سے ہی کرتا ہے...

---

1 المعجم الکبیر حصین بن وحوح انصاری حدیث ۱۳۵۵۴ المکتبة الفیصلیة بیروت ۲۸/۴ 2 صحیح مسلم کتاب الجنائز نور محمد اصح المطابع کراچی ۳۰۸/۱ 3 صحیح مسلم کتاب الجنائز نور محمد اصح المطابع کراچی ۳۰۸/۱

Fatawa Razawiyya Volume 9

[He] will act as a deputy of [the Prophet] (peace and blessings of Allah be upon him). The intercessor of sinners (peace and blessings of Allah be upon him) says:

"I have been granted the [right of] intercession." Reported by al-Bukhari, Muslim, and an-Nasa'i from Jabir ibn Abdullah (may Allah be pleased with them both) in a Hadith stating: "I have been given five things that were not given to any of the Prophets before me."

The honorable Intercessor (peace and blessings of Allah be upon him) says:

"When the Day of Resurrection comes, I shall be the leader of the Prophets, their spokesperson, and the possessor of their intercession, without boast." Reported by [Imam] Ahmad, at-Tirmidhi, Ibn Majah, and al-Hakim with authentic chains from Ubayy ibn Ka'b (may Allah be pleased with him).

So, anyone who intercedes without permission performs an unauthorized act (fuzuli), which depends on the owner's permission. If the owner approves, it becomes valid; but if the owner himself acts from the beginning, it [the unauthorized act] becomes void.

"For a decisive act, when it occurs upon a suspended one, nullifies it, as specified by the jurists in various issues." Because when a final/decisive act occurs upon a suspended one, it renders it void, as jurists have clarified in numerous issues. (T)

For instance, Amr sells Zaid's property without Zaid's permission. If Zaid finds out and approves it, it is valid. But if Zaid himself enters into a new contract of sale, it will be apparent that he was not satisfied with the unauthorized contract; now this very contract will be the owner's contract, not the unauthorized one. In the mentioned case, if the Holy Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) himself leads the funeral prayer over a deceased person, this will not be a repetition of the prayer; rather, this should be considered the primary prayer. By the praise of Allah Almighty, this is the meaning of what some of our Imams said: the obligation of the funeral prayer in the era of the Holy Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) was not discharged by praying without his presence—meaning the Prophet himself would pray or grant permission to others.

---

1 Sahih al-Bukhari, Chapter: The Saying of the Prophet (pbuh) 'The earth has been made for me a mosque...', Qadeemi Kutub Khana, Karachi, 1/62 2 Sahih al-Bukhari,

Chapter: The Saying of the Prophet (pbuh) 'The earth has been made for me a mosque...', Qadeemi Kutub Khana, Karachi, 1/62 3 Jami' at-Tirmidhi, Chapters on Funerals, Amin Company Kutub Khana Rasheediya, Delhi, 1/122

फ़तावा रज़विया, खंड 9

[वह] (अल्लाह की उन पर कृपा और शांति हो) के प्रतिनिधि के रूप में कार्य करेगा। पापियों के शिफ़ाअत करने वाले (अल्लाह की उन पर कृपा और शांति हो) फरमाते हैं:

"मुझे शिफ़ाअत (सिफारिश) प्रदान की गई है।" इसे बुखारी, मुस्लिम और नसाई ने जाबिर बिन अब्दुल्ला (अल्लाह उन दोनों से प्रसन्न हो) से एक हदीस में वर्णित किया है कि: "मुझे पाँच ऐसी चीजें दी गईं जो मुझसे पहले किसी भी नबी को नहीं दी गईं।"

हुज़ूर शाफ़े शफ़ी' (अल्लाह की उन पर कृपा और शांति हो) फरमाते हैं:

"जब कयामत का दिन आएगा, तो मैं नबियों का इमाम, उनका वक्ता और उनकी शिफ़ाअत का स्वामी होऊंगा, और यह बात बिना किसी घमंड के कहता हूँ।" इसे इमाम अहमद, तिर्मिज़ी, इब्न माजह और हाकिम ने हज़रत उबय बिन काब (अल्लाह उनसे प्रसन्न हो) से सहीह सनदों के साथ वर्णित किया है।

तो, जो कोई अनुमति के बिना शिफ़ाअत करता है, वह एक अनधिकृत कार्य (फ़ुज़ूली) करता है, जो मालिक की अनुमति पर निर्भर है। यदि मालिक अनुमति दे देता है, तो वह मान्य हो जाएगा; और यदि मालिक स्वयं शुरू से ही कार्य करता है, तो वह [अनधिकृत कार्य] शून्य हो जाता है।

"क्योंकि एक निर्णयात्मक कार्य, जब वह किसी लंबित कार्य पर आता है, तो उसे शून्य कर देता है, जैसा कि न्यायविदों ने विभिन्न मसलों में स्पष्ट किया है।" क्योंकि जब कोई निर्णयात्मक कार्य किसी लंबित कार्य पर लागू होता है, तो वह उसे शून्य कर देता है, जैसा कि न्यायविदों ने कई मसलों में स्पष्ट किया है। (त)

उदाहरण के तौर पर, अम्र ज़ैद की अनुमति के बिना ज़ैद की संपत्ति बेच देता है। अगर ज़ैद को पता चले और वह इसे स्वीकार कर ले, तो यह मान्य है। और अगर वह स्वयं नए सिरे से बिक्री का अनुबंध करता है, तो यह स्पष्ट होगा कि वह अनधिकृत अनुबंध से संतुष्ट नहीं था; अब यह अनुबंध मालिक का ही अनुबंध होगा, न कि अनधिकृत अनुबंध। तो उल्लिखित स्थिति में, जिस मृतक पर स्वयं हुज़ूर अकदस (अल्लाह की उन पर कृपा और शांति हो) नमाज़ पढ़ें, तो यह नमाज़ को दोहराना नहीं होगा, बल्कि इसी नमाज़ को प्राथमिक माना जाना चाहिए। अल्लाह तआला की प्रशंसा है कि हमारे कुछ इमामों के इस कथन का यही अर्थ है कि हुज़ूर अकदस (अल्लाह की उन पर कृपा और शांति हो) के

ज़माने में जनाज़े की नमाज़ का फ़र्ज़ आपकी उपस्थिति के बिना पढ़ने से अदा नहीं होता था, यानी या तो हुज़ूर स्वयं नमाज़ पढ़ें या दूसरों को अनुमति दें।

---

1 सहीह अल-बुखारी, अध्याय: नबी (सल्ल.) का कथन 'मेरे लिए धरती को मस्जिद बना दिया गया है...', कदीमी कुतुब खाना, कराची, 1/62 2 सहीह अल-बुखारी, अध्याय: नबी (सल्ल.) का कथन 'मेरे लिए धरती को मस्जिद बना दिया गया है...', कदीमी कुतुब खाना, कराची, 1/62 3 जामि' अत-तिर्मिज़ी, जनाज़े के अध्याय, अमीन कंपनी कुतुब खाना रशीदिया, दिल्ली, 1/122

فتاوی رضویہ جلد نہم

صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم کی نیابت سے کرے گا۔ شفیع المذنبین صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم فرماتے ہیں:

اعطیت الشفاعۃ ۔رواہ البخاری ومسلم والنسائی عن جابر بن عبداللہ رضی اللہ تعالٰی عنہا فی حدیث اعطیت خمسا لم یطعھن احد من الانبیاء قبلی۔ شفاعت مجھے عطا فرمادی گئی ہے۔ اسے بخاری، مسلم اور نسائی نے جابر بن عبداللہ رضی اللہ تعالٰی عنہما سے روایت کیا۔ اس حدیث میں کہ مجھے پانچ چیزیں دی گئیں جو مجھ سے پہلے کے انبیاء کو نہ ملیں۔

حضور شافع شفیع صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم فرماتے ہیں:

اذا کان یوم القیمۃ کنت امام النبین وخطیبھم وصاحب شفاعتھم غیر فخر ۔ رواہ احمد والترمذی وابن ماجۃ والحاکم باسانید صحیحۃ عن ابی بن کعب رضی اللہ تعالٰی عنہ۔ روز قیامت تمام انبیاء کا امام اور ان کا خطیب اور ان کی شفاعت کا مالک ہوں اور یہ بات کچھ براہ فخر نہیں فرماتا۔ اسے امام احمد، ترمذی، ابن ماجہ اور حاکم نے صحیح سندوں سے حضرت ابی بن کعب رضی اللہ تعالٰی عنہ سے روایت کیا۔

تو جو شفاعت بے اذن والا کوئی کرے وہ فضولی کا تصرف ہے کہ اذن مالک پر موقوف رہے گا۔ مالک اگر جائز کردے جائز ہو جائے گا اور اگر آپ ابتداً تصرف کرے تو باطل،

فان البات اذ طرء علی موقوف ابطلہ کما نص علیہ الفقہاء فی غیر ما مسئلۃ۔ اس لئے کہ قطعیت والا جب کسی موقوف پر طاری ہو تو اسے باطل کردیتا ہے جیسا کہ فقہاء نے متعدد مسائل میں اس کی تصریح فرمائی ہے۔ (ت)

مثلاً عمرو ملک زید بے اذن زید بیچ کردے، زید خبر پاکر روا رکھے روا ہے، اور اگر خود از سر نو عقد بیع کرے تو ظاہر ہوگا کہ عقد فضولی پر قناعت نہ کی اب عقد یہی عقد مالک ہوگا، نہ عقد فضولی۔ تو صورت مذکور میں جس میت پر حضور اقدس صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم خود نماز پڑھیں۔ یہ اعادۂ نماز نہ ہوگا، بلکہ نماز اول یہی قرار پانی چاہئے۔ بحمد اللہ تعالیٰ یہی معنی ہیں ہمارے بعض ائمہ کے فرمانے کے کہ نمازِ جنازہ کا فرض حضور اقدس صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کے زمانہ میں بے حضور کے پڑھے ساقط نہ ہوتا تھا یعنی حضور خود پڑھیں یا دوسروں کو اذن دیں،

---

1 صحیح البخاری باب قول النبی صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم جعلت لی الارض مسجد قدیمی کتب خانہ کراچی ۱/ ۶۲ 2 صحیح البخاری باب قول النبی صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم جعلت لی الارض مسجد قدیمی کتب خانہ کراچی ۱/ ۶۲ 3 جامع الترمذی ابواب الجنائز امین کمپنی کتب خانہ رشیدیہ دہلی ۱/ ۱۲۲

"As he did in the case of the one who committed treachery in the spoils of war, and he used to do so initially with the one who died in debt and did not leave behind enough to pay it off." (Just as he dealt with the one who embezzled from the spoils of war, previously they used to do the same with a debtor who did not leave anything to pay the debt. (T))

And if people read it themselves without informing the Resplendent Presence (Prophet), then he is the master of intercession without permission; it is not sufficient and does not drop the obligation. It is mentioned in Mirqat Sharh Mishkat Sharif:

Arabic Text	**Urdu Translation**
I saw Al-Suyuti mention in 'Unmuzaj al-Labib' that some Hanafis stated that during the era of the Prophet (peace and blessings be upon him), the obligation of the funeral prayer was not dropped except by his prayer. Thus, it leads to the conclusion that the funeral prayer was an individual obligation (Fard 'Ayn) in his case, and a communal obligation (Fard Kifaya) in the case of others. And Allah is the Guardian of Guidance.	I saw that Imam Suyuti wrote in 'Unmuzaj al-Labib' that some Hanafis stated that during the blessed era of the Prophet (peace and blessings be upon him), the funeral obligation would not be dropped without the Prophet's prayer. And Allah alone is the Master of guidance. (T)
I say: It does not lead to this. How can it be so when what we mentioned regarding the cases of the embezzler and the debtor is proven? That speaker did not say that the funeral obligation would not be dropped without the prayer of the Prophet (peace and blessings be upon him). If this were the intention, there would have been no need to restrict it to his blessed era. The intended meaning is what we have established: that during his blessed era,	I say: This will not be the case. How can it be so when the case of the traitor and debtor we mentioned is proven? That speaker did not say that the obligation would not be dropped without the Prophet's (peace and blessings be upon him) prayer. If this were the intention, there would have been no need to put a restriction of the Prophet's (peace and blessings be upon him) blessed era. The intended meaning is what we have stated, that in the Master's blessed era, this

Arabic Text

the obligation was not dropped for anyone unless he prayed himself or gave permission, because he is the master of intercession (peace and blessings be upon him).

Urdu Translation

obligation would not be dropped from anyone until the Prophet himself prayed or gave permission to another, because he is the Master of intercession, peace and blessings be upon him. (T)

1. Mirqat Sharh Mishkat, Chapter on walking with the funeral and praying over it, Maktaba Imdadia Multan 4/50

फ़तावा रिज़विया जिल्द 9

"जैसा कि उन्होंने माल-ए-गनीमत में खयानत करने वाले के साथ किया, और वे शुरू में उस कर्जदार के साथ भी ऐसा ही करते थे जो कर्ज चुकाने के लिए कुछ नहीं छोड़ता था।" (जैसा कि माल-ए-गनीमत के अंदर खयानत करने वाले के साथ किया, पहले उस कर्जदार के साथ ऐसा करते थे जो अदायगी के लिए कुछ छोड़ कर न जाए। (त))

और अगर लोग नूरानी हुज़ूर को सूचित किए बिना स्वयं (जनाज़ा) पढ़ लें, तो वे बिना अनुमति के शफाअत (सिफारिश) के स्वामी हैं; यह पर्याप्त नहीं है और फ़र्ज़ को समाप्त नहीं करता है। मिरकात शरह मिश्कात शरीफ़ में है:

अरबी पाठ	उर्दू अनुवाद
मैंने देखा कि इमाम सुयूती ने 'अनमूज़ज अल-लबीब' में उल्लेख किया है कि कुछ हनफ़ियों ने कहा कि नबी (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) के धन्य युग में, जनाज़ा की नमाज़ का फ़र्ज़ उनकी नमाज़ के बिना समाप्त नहीं होता था। इस प्रकार, यह इस निष्कर्ष की ओर ले जाता है कि जनाज़ा की नमाज़ उनके मामले में फ़र्ज़-ए-ऐन (व्यक्तिगत दायित्व) थी, और अन्य लोगों के मामले में फ़र्ज़-ए-किफ़ाया (सामुदायिक दायित्व) थी। और अल्लाह ही मार्गदर्शन का स्वामी है।	मैंने देखा कि इमाम सुयूती ने 'अनमूज़ज अल-लबीब' में लिखा है कि कुछ हनफ़ियों ने बयान किया कि हुज़ूर अकदस (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) के अहद-ए-पाक में फ़र्ज़-ए-जनाज़ा हुज़ूर की नमाज़ के बिना साक़ित (समाप्त) न होता। और ख़ुदा ही हिदायत का मालिक है। (त)
मैं कहता हूँ: यह इस ओर नहीं ले जाता। यह कैसे हो सकता है जबकि जो हमने खयानत करने वाले और कर्जदार के मामले में उल्लेख किया है वह सिद्ध है? उस कहने वाले ने यह नहीं कहा कि नबी (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) की नमाज़ के बिना जनाज़ा का फ़र्ज़ समाप्त नहीं होता था। यदि यही उद्देश्य होता, तो इसे उनके धन्य युग तक सीमित	मैं कहता हूँ: यह मतलब नहीं होगा। यह कैसे हो सकता है जब वह जो हमने खाइन और मयून (कर्जदार) का मामला ज़िक्र किया वह साबित है। उस क़ायल (कहने वाले) ने यह नहीं कहा कि हुज़ूर की नमाज़ के बग़ैर फ़र्ज़ साक़ित न होता। अगर इसका मक़सद यह होता तो हुज़ूर (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) के अहद-ए-

अरबी पाठ

रखने की कोई आवश्यकता नहीं थी। अभिप्रेत अर्थ वही है जो हमने स्थापित किया है: कि उनके धन्य युग में, किसी के लिए भी फ़र्ज़ तब तक समाप्त नहीं होता था जब तक वे स्वयं नमाज़ न पढ़ लेते या अनुमति न दे देते, क्योंकि वे ही शफाअत के स्वामी हैं (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम)।

उर्दू अनुवाद

मुबारक की क़ैद लगाने की कोई ज़रूरत ही न थी। मक़सूद वह है जो हमने बयान किया कि सरकार के अहद-ए-मुबारक में किसी से यह फ़र्ज़ साक़ित न होता जब तक हुज़ूर खुद न पढ़ लें या दूसरे को इज़्न (अनुमति) न दे दें, इसलिए कि शफाअत के मालिक वही हैं, सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम। (त)

1. मिरकात शरह मिश्कात, जनाज़ा के साथ चलने और उस पर नमाज़ पढ़ने का अध्याय, मकतबा इमदादिया मुल्तान 4/50

كما فعل في الغال وكان يفعل اولا في من مات مديونا ولم يترك وفاء۔ (جیسا کہ مالِ غنیمت کے اندر خیانت کرنے والے کے ساتھ کیا پہلے اس مدیون کے ساتھ ایسا کرتے تھے جو ادائے عین کے لئے کچھ چھوڑ نہ جائے (ت))

اور اگر بے اطلاع حضور پُر نور لوگ خود پڑھ لیں، تو وہ شفاعت بے اذن کا مالک ہے کافی و مسقطِ فرض نہیں ۔ مرقاۃ شرح مشکوۃ شریف میں ہے:

عربی متن	**اردو ترجمہ**
رأيت السيوطی ذكر في انموذج اللبيب ، انه ذكر بعض الحنفية ان في عهده عليه الصلوة والسلام لا يسقط فرض الجنازة الابصلاته فيؤل الى ان صلاة الجنازة في حقه فرض عين وفي حق غيره فرض كفاية والله ولي الهداية 1۔	میں نے دیکھا کہ امام سیوطی نے انموذج اللبیب میں لکھا ہے کہ بعض حنفیہ نے بیان کیا کہ حضور اقدس علیہ الصلوۃ والسلام کے عہد پاک میں فرضِ جنازہ حضور کی نماز کے بغیر ساقط نہ ہوتا۔ اور خدا ہی ہدایت کا مالک ہے (ت)
اقول: لايؤل اليه وكيف وقد ثبت ما ذكرنا من امر الغال والمديون ولم يقل للقائل ، ان فرض الجنازة كان لا يسقط عنه الا بصلاته صلى الله تعالى عليه وسلم ولو اراد هذا لكان تقييده بعده صلى	اقول: یہ مال نہ ہوگا، یہ کیسے ہوسکتا ہے جب وہ جو ہم نے خائن اور مدیون کا معاملہ ذکر کیا وہ ثابت ہے۔ اُس قائل نے یہ نہیں کہا کہ حضور سے بغیر نماز حضور صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم کے فرض ساقط نہ ہوتا، اگر اس کا مقصد یہ ہوتا تو حضور صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم کے عہد

عربی متن	اردو ترجمہ
الله عليه وسلم عبثا مستغنى عنه انما المعنى ما قررنا ان الفرض لم يكن يسقط عن احد في عهده مالم يصل او يأذن،	مبارک کی قید لگانے کی کوئی ضرورت ہی نہ تھی، مقصود وہ ہے جو ہم نے بیان کیا کہ سرکار کے عہد مبارک میں کسی سے یہ فرض ساقط نہ ہوتا جب تک

لكونه هو مالك الشفاعة صلى الله عليه وسلم۔ حضور خود نہ پڑھیں یا دوسرے کو اذن نہ دیں اس لئے کہ شفاعت کے مالک وہی ہیں، صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم۔(ت)

1 مرقاۃ شرح مشکوۃ باب المشی بالجنازۃ والصلوۃ علیھا مکتبہ امدادیہ ملتان ۴/۵۰

Fatawa Razawiyya, Volume 9

I say: In light of the aforementioned instruction that we should be informed, and since no such information was received, another precedent from Sharia has been found for it. In a neighborhood mosque, when the residents of the neighborhood have completed a valid, non-disliked congregation after publicly performing the Adhan, others are not permitted to hold another congregation there by repeating the Adhan. If the first congregation took place without an Adhan or with a hidden Adhan, then it is permissible for them to establish a congregation in the mihrab (prayer niche) by giving the Adhan in the Sunnah manner. Since that congregation was contrary to the Sunnah command, this second one is not a repetition of the congregation, but rather, this is the primary congregation, as we have explained in our treatise "Al-Qutuf al-Daniya li-man Ahsana al-Jama'at al-Thaniya" (The Low-hanging Fruits for the One who Excels in the Second Congregation). This is why, through these internal discourses, by the praise of Allah Almighty, the discussion on the Hadith of Sakinah and its similar instances has been concluded. This provides a complete response not only to the innovation of that particular mujtahid but also to the arguments of the Shafi'is.

Arabic

From this, it also became apparent that even if it were proven that those who had prayed before were the ones standing in rows behind the Chosen One (Mustafa), peace and blessings of Allah be upon him, there would be nothing in it that could be used to object to anything in our school of thought. We have no need for the answer provided by Allama al-Qastallani in "Irshad al-Sari," approved by Mulla Ali al-Qari in "al-Mirqat," and mentioned by the virtuous al-Zarqani in the commentary of "al-Muwatta," stating that "the prayer of others was in following the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him)." Through this, by the praise of

Urdu Translation

And from this, it also became clear that even if it were proven that those people who had already performed the funeral prayer were the ones later standing in rows behind the Master Mustafa (peace and blessings of Allah be upon him), then there would be nothing in it that could cast a shadow of objection on our school of thought... and we do not need the answer which Allama Qastallani mentioned in "Irshad al-Sari" and Maulana Ali Qari liked in "al-Mirqat" and the learned Zarqani explained in the commentary of "al-Muwatta" that "the prayer of other people was in following the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him)". And with this, by the praise of Allah

Arabic

Allah Almighty, a knot has been untied that the researcher-at-large (Muhaqqiq 'ala al-Itlaq) found difficult in "Fath al-Qadir." Allah the Almighty is the owner of success and unveiling, and all praise is due to Allah, the Lord of all the worlds.

Urdu Translation

Almighty, another difficult knot has been resolved which the absolute researcher declared difficult in "Fath al-Qadir". And only the Holy God is the master of success and unveiling, and all good qualities are for Allah Who is the Lord of all the worlds. (T)

फ़तावा रज़विया, खंड 9

मैं कहता हूँ: उपरोक्त निर्देश के आलोक में कि हमें सूचित किया जाए, और कोई सूचना प्राप्त नहीं हुई, तो इसके लिए शरीयत से एक और उदाहरण मिल गया है। मोहल्ले की मस्जिद में जब मोहल्ले के लोग अज़ान के साथ एक सही और पसंदीदा (ग़ैर-मक़रूह) जमात कर लें, तो दूसरों को वहां फिर से अज़ान देकर जमात करने की अनुमति नहीं है। और अगर पहली जमात बिना अज़ान के या गुप्त अज़ान के साथ हुई थी, तो उनके लिए जायज़ है कि वे सुन्नत के तरीके से अज़ान देकर मेहराब में जमात कायम करें, क्योंकि जब वह पहली जमात सुन्नत के हुक्म के ख़िलाफ़ थी, तो अब यह जमात का दोहराव नहीं है बल्कि यही प्राथमिक जमात है, जैसा कि हमने अपने रिसाले "अल-क़ुतूफ़ अद-दानिया ली-मन अहसना अल-जमात अत-थानिया" में बयान किया है। यही कारण है कि इन आत्मिक विवेचनों से, अल्लाह तआला की प्रशंसा से, हदीस-ए-सकीना और उसके जैसे विषयों पर चर्चा पूरी हो गई है। और न केवल उस मुजतहिद साहब के आविष्कार का बल्कि शाफ़ई संप्रदाय के तर्कों का भी पूरा जवाब मिल गया है।

अरबी

इसी से यह स्पष्ट हो गया कि यदि यह सिद्ध हो जाए कि जिन्होंने पहले नमाज़ पढ़ी थी, वही मुस्तफ़ा (सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम) के पीछे कतारों में खड़े थे, तो इसमें हमारे मज़हब के किसी भी हिस्से पर आपत्ति करने वाली कोई बात नहीं होगी। हमें उस जवाब की ज़रूरत नहीं है जो अल्लामा अल-क़स्तलानी ने "इरशाद अल-सारी" में दिया, मुल्ला अली अल-क़ारी ने "मिरक़ात" में सराहा और फ़ाज़िल अल-ज़रक़ानी ने "शरह मुवत्तआ" में उल्लेख किया कि "दूसरों की नमाज़ हुज़ूर (सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम) की पैरवी में थी"। इसके द्वारा, अल्लाह तआला की प्रशंसा से, वह गुत्थी सुलझ गई जिसे मुहक़्क़िक़ अला अल-इतलाक़ ने "फ़तह अल-क़दीर" में

उर्दू अनुवाद

और इसी से यह भी स्पष्ट हो गया कि अगर यह भी साबित हो जाए कि जो लोग जनाज़ा पहले अदा कर चुके थे वही बाद को सरकार-ए-मुस्तफ़ा सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम के पीछे सफ़ बस्ता थे तो इसमें कोई ऐसी बात न होगी जो हमारे मज़हब पर गर्द-ए-एतराज़ बिठा सके..

और हमें इस जवाब की ज़रूरत नहीं जो अल्लामा क़स्तलानी ने इरशाद अल-सारी में ज़िक्र किया और मौलाना अली क़ारी ने मिरक़ात में इसे पसंद किया और फ़ाज़िल ज़रक़ानी ने शरह मुवत्तआ में इसे बयान किया कि "दूसरे हज़रात की नमाज़ हुज़ूर सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम की तबैय्यत में थी"।। और इसी से बहम्दुल्लाह तआला एक और अक़्दा हल हो गया जिसे

अरबी

कठिन बताया था। अल्लाह तआला ही सफलता और रहस्योद्घाटन का स्वामी है, और समस्त प्रशंसा अल्लाह के लिए है, जो सारे जहानों का रब है।

पेज 298 का 948

उर्दू अनुवाद

मुहक़्क़िक़ अली अल-इतलाक़ ने फ़तह अल-क़दीर में दुश्वार क़रार दिया है। और ख़ुदा-ए-पाक ही तौफ़ीक़ और कश्फ़ का मालिक है, और सारी खूबियाँ अल्लाह के लिये जो सारे जहानों का मालिक है। (त)

فتاویٰ رضویہ جلد نہم

اقول: بنظرِ ارشاد مذکور کہ ہمیں خبر کر دینا، اور اطلاع واقع نہ ہوئی، شرع سے اس کیلئے ایک اور نظیر مل گئی، مسجدِ محلہ میں اہلِ محلہ جب جماعتِ صحیحہ غیر مکروہہ بالاعلان اذان ادا کر چکیں تو دوسروں کو باعادہ اذان وہاں جماعت کی اجازت نہیں، اور اگر پہلی جماعت بے اذان یا باخفائے اذان واقع ہوئی تو انہیں روا ہے کہ اذان برو جہ مسنون دے کر محراب میں جماعت قائم کریں کہ جب وہ جماعت برخلافِ حکم سنت تھی تو اب یہ اعادہ جماعت نہیں بلکہ یہی جماعت اولیٰ ہے کما بیّنّاہ فی رسلتنا القطف الدانیة لمن حسن الجماعة الثانیة (جیسا کہ ہم نے اپنے رسالہ "القطوف الدانیة لمن احسن الجماعة الثانیة" میں بیان کیا ہے۔ت) یہی وجہ ہے ان تقریراتِ نفسیہ سے بحمداللہ تعالیٰ حدیثِ سکینہ اور اس کی نظراء کی بحث کا تصفیہ تمام ہو گیا اور نہ صرف ان مجتہد صاحب کے اختراع بلکہ تمسک شافعیہ کا بھی جواب تمام،

عربی	اردو ترجمہ
وبه ظهر، ان لو ثبت ان الذين صلوا من قبل ان كانو ا هم المصطفين خلف المصطفى صلى الله تعالى عليه وسلم لم يكن فيه ما ينكر به على شيئ من مذهبنا ولا حاجة بنا الى الجواب الذي اورد العلامة القسطلانى فى ارشاد الساری وارتضاه المولى على القارى فى المرقاة وذكره الفاضل الزرقانى فى شرح	اور اسی سے یہ بھی واضح ہو گیا کہ اگر یہ بھی ثابت ہو جائے کہ جو لوگ جنازہ پہلے ادا کر چکے تھے وہی بعد کو سرکارِ مصطفےٰ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم کے پیچھے صف بستہ تھے تو اس میں کوئی ایسی بات نہ ہو گی جو ہمارے مذہب پر گردِ اعتراض بٹھاسکے --- اور ہمیں اس جواب کی ضرورت نہیں جو علامہ قسطلانی نے ارشاد الساری میں ذکر کیا اور مولانا علی قاری نے مرقاۃ میں اسے پسند کیا اور فاضل زرقانی نے شرح موطأ میں اسے

عربی	اردو ترجمہ
الموطأ ان صلوة غیرہ صلی اللہ علیہ وسلم وقعت تبعاً لہ صلی اللہ علیہ وسلم وبہ انحلت بحمد اللہ تعالی عقدۃ استصعبھا المحقق حیث اطلق فی الفتح واللہ سبحانہ ولی التوفیق والفتح والحمد للہ رب العلمین۔	بیان کیا کہ "دوسرے حضرات کی نماز حضور صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم کی تبعیت میں تھی"۔ اور اسی سے بحمد اللہ تعالیٰ ایک اور عقدہ حل ہو گیا جسے محقق علی الاطلاق نے فتح القدیر میں دشوار قرار دیا ہے۔ اور خدائے پاک ہی توفیق اور کشف کا مالک ہے، اور ساری خوبیاں اللہ کے لئے جو سارے جہانوں کا مالک ہے۔ (ت)

Fatawa Razawiya, Volume 9

Warning: I say, and with Allah is the guidance: The guardianship over the deceased is either through the inheritance of property, and therefore, whoever is foremost in inheritance is foremost in guardianship, or through deputyship to the absolute Guardian and Ruler, peace and blessings of Allah be upon him, meaning the Caliphate and Islamic Sultanate in the primary sense. The Holy Prophet, peace and blessings of Allah be upon him, has no guardian. The Messenger of Allah, peace and blessings of Allah be upon him, says:

[Table] Left: We do not leave inheritance; whatever we leave is charity. [Footnote 1] - Narrated by Ahmad, Al-Bukhari, Muslim, Abu Dawood, and An-Nasa'i from Abu Bakr As-Siddiq; and Abu Dawood from the Mother of the Believers, and similar narrations from Az-Zubayr; and Ahmad, the Two Sheikhs (Bukhari and Muslim), and Abu Dawood from Abu Hurayrah, may Allah be pleased with them. Right: There will be no heir for us; whatever we leave behind is charity. Imam Ahmad, Bukhari, Muslim, and Abu Dawood also narrated this from Hazrat Abu Hurayrah, may Allah be pleased with them.

It is stated in the Hadith of the Mother of the Believers Siddiqah (Aisha), may Allah be pleased with her:

[Table] Left: So when I pass away, it (the authority) belongs to the guardian of the matter after me. [Footnote 2] Right: When I pass away, the authority over my estate lies with the one who will be the guardian and caliph after me.

As for the guardianship of the Caliphate, it did not yet belong to anyone until the oath of allegiance was given to Siddiq al-Akbar (may Allah be pleased with him). If you assume that the funeral prayer was offered over the sacred corpse, it was led by someone other than the rightful guardian and without the permission of the most rightful guardian. Yes, let it be proven that Siddiq al-Akbar offered the prayer after the caliphate and it was repeated, but far be it, where is the proof of that? Praise be to Allah, after this discourse, this humble servant (may Allah forgive him) found that Imam Shams al-Aimma al-Sarakhsi in his 'Mabsut' pointed towards exactly this answer. It is mentioned in 'Minhat al-Khaliq' from 'Mabsut':

[Table] Left: The funeral prayer for the deceased is not repeated unless the guardian is the one who arrived later, for then... Right: The funeral prayer is not repeated, unless the guardian himself came later, then he has the right, and the other person...

Footnotes: 1. Sahih Muslim Sharif, Kitab al-Jihad, Bab Hukm al-Fay, Nur Muhammad Asah al-Matabi' Karachi 2/91; Sunan Abu Dawood, Kitab al-Kharaj wa al-Fay, Aftab Alam Press Lahore 2/60. 2. Sunan Abu Dawood, Kitab al-Kharaj wa al-Fay, Aftab Alam Press Lahore 2/60.

फ़तावा रज़विया, खंड 9

चेतावनी: मैं कहता हूँ, और अल्लाह ही मार्गदर्शन देने वाला है: मृतक पर अभिभावकत्व (विलायत) या तो संपत्ति की विरासत के माध्यम से होता है, और इसलिए जो विरासत में आगे है, वह अभिभावकत्व में भी अग्रणी है, या फिर पूर्ण अभिभावक और शासक (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) की ओर से प्रतिनिधित्व (नियाबत) के माध्यम से है, जिसका अर्थ प्राथमिक अर्थ में इस्लामी खिलाफत और सल्तनत है। पवित्र पैगंबर (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) का कोई अभिभावक नहीं है। अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) फरमाते हैं:

[तालिका] बायां: हमारी कोई विरासत नहीं होगी; जो कुछ हम छोड़ेंगे वह सदका (दान) है। [हाशिए 1] - अहमद, बुखारी, मुस्लिम, अबू दाऊद और अन-नसाई ने अबू बक्र सिद्दीक से रिवायत की; और अबू दाऊद ने उम्मुल मोमिनीन से, और इसी तरह की रिवायत ज़ुबैर से; और अहमद, दोनों शेखों (बुखारी और मुस्लिम) और अबू दाऊद ने अबू हुरैरा (रज़ियल्लाहु अन्हु) से रिवायत की। दायां: हमारा कोई वारिस नहीं होगा; हम जो छोड़ जाएंगे वह सदका है। इसे इमाम अहमद, बुखारी, मुस्लिम और अबू दाऊद ने हज़रत अबू हुरैरा से भी रिवायत किया (रज़ियल्लाहु अन्हुम)।

उम्मुल मोमिनीन सिद्दीक़ा (रज़ियल्लाहु अन्हा) की हदीस में है:

[तालिका] बायां: तो जब मैं वफ़ात पा जाऊं तो मेरे बाद जो वली-ए-अम्र (शासक) होगा, वही इसका वली होगा। [हाशिए 2] दायां: जब मैं इंतकाल फरमा जाऊं तो मेरे तरके(विरासत) का अधिकार उसे है जो मेरे बाद वली-ए-अम्र और खलीफा होगा।

रही खिलाफत की विलायत, तो वह अभी तक किसी के पास नहीं थी, यहाँ तक कि सिद्दीक़-ए-अकबर (रज़ियल्लाहु अन्हु) के हाथ पर बैअत हुई। अगर आप यह मानें कि जनाज़ा-ए-अकदस पर नमाज़ हुई, तो वह गैर-वली की ओर से बिना सबसे अधिक हकदार वली की अनुमति के थी। हाँ, यह साबित किया जाए कि सिद्दीक़-ए-अकबर ने खिलाफत के बाद नमाज़ अदा की और फिर उसे दोहराया गया, लेकिन इसका सबूत कहाँ है? अल्हम्दुलिल्लाह, इस तकरीर के बाद, इस फकीर (अल्लाह उसे माफ करे) ने इमाम शम्सुल अइम्मा सरख्सी की 'मबसूत' में पाया कि उन्होंने बिल्कुल इसी जवाब की तरफ इशारा फरमाया। 'मिन्हतुल खालिक' में 'मबसूत' से उद्धृत है:

[तालिका] बायां: मय्यत पर नमाज़-ए-जनाज़ा दोबारा नहीं पढ़ी जाएगी जब तक कि वह वली न हो जो बाद में आया हो, क्योंकि... दायां: नमाज़-ए-जनाज़ा दोबारा नहीं, मगर यह कि वली ही बाद में आया तो उसे हक है और दूसरे को उसका हक...

हाशिए: 1. सहीह मुस्लिम शरीफ, किताबुल जिहाद, बाब हुक्मुल फय, नूर मुहम्मद असहुत तबा' कराची 91/2; सुनन अबू दाऊद, किताबुल खराज वल फय, आफताब आलम प्रेस लाहौर 60/2। 2. सुनन अबू दाऊद, किताबुल खराज वल फय, आफताब आलम प्रेस लाहौर 60/2।

पृष्ठ 299/948

فتاوٰی رضویہ، جلد نہم

تنبیہ : اقول وباللہ التوفیق ولایتِ میت یا بذریعہ وراثت مال ہے ولہذا جو وراثت میں مقدم، ولایت میں اقدم یا بطورِ نیابتِ ولی احق و والی مطلق صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم ہے یعنی خلافتِ اسلام وسلطنتِ اسلام بمعنی اول، حضور اقدس صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم کو کوئی ولی نہیں۔ رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم فرماتے ہیں:

[ٹیبل] بایاں کالم: لانورث ماترکنہ صدقۃ 1-رواہ احمد والبخاری ومسلم وابوداؤد والنسائی عن ابی بکر صدیق وابوداؤد عن ام المؤمنین ونحوہ عن الزبیر واحمد والشیخان وابوداؤد عن ابی ہریرہ رضی اللہ تعالٰی عنہ۔ دایاں کالم: ہمارا کوئی وارث نہ ہوگا ہم جو چھوڑ جائیں گے صدقہ ہے، اسے امام احمد ، بخاری، مسلم اور ابوداؤد نے حضرت ابوہریرہ سے بھی روایت کیا رضی اللہ تعالٰی عنہم۔

حدیث اُمّ المؤمنین صدیقہ رضی اللہ تعالٰی عنہا میں ہے:

[ٹیبل] بایاں کالم: فاذا مت فہوالی ولی الامر من بعدی 2۔ دایاں کالم: جب میں انتقال فرما جاؤں تو میرے ترکے کا اختیار اُسے ہے جو میرے بعد ولی امر و خلیفہ ہوگا۔

رہی ولایتِ خلافت وہ ہنوز کسی کو نہ تھی، یہاں تک صدیقِ اکبر رضی اللہ تعالٰی عنہ کے دستِ حق پرست پر بیعت ہوئی، اگر یہی مانئے کہ جنازہ اقدس پر نماز ہوئی تو غیر والی حق سے ، بے اذنِ ولیِ احق تھی، ہاں یہ ثابت کیا جائے کہ صدیقِ اکبر نے بعدِ خلافت نماز ادا کی اور پھر اعادہ کی گئی، مگر حاشا اس کا ثبوت کہاں۔ الحمد للہ تعالٰی اس تقریر کے بعد فقیر غفر اللہ تعالٰی نے مبسوط امام شمس ائمہ سرخسی سے پایا کہ بعینہ اسی جواب کی طرف اشارہ فرمایا۔ منحۃ الخالق میں مبسوط سے ہے۔

[ٹیبل] بایاں کالم: لاتعادالصلوٰۃ علی المیت الاان یکون الولی ھو الذی حضر، فان دایاں کالم: نمازِ جنازہ دوبارہ نہیں مگر یہ کہ ولی ہی بعد میں آیا تو اسے حق اور دوسرے کو اس کا حق

حواشی: 1. صحیح مسلم شریف کتاب الجہاد باب حکم الفیئ نور محمد اصح المطابع کراچی ۹۱/۲ ، سنن ابو داؤد کتاب الخراج والفیئ آفتاب عالم پریس لاہور ۶۰/۲ 2. سنن ابوداؤد کتاب الخراج والفیئ آفتاب عالم پریس لاہور ۶۰/۲

Fatawa Razawiya - Volume 9

[Boxed Text] Arabic: The right belongs to him, and no one else has the authority to waive it. This is the interpretation of the action of the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him), for the right was his. Allah Almighty says: 'The Prophet is closer to the believers than their own selves.' Similarly, this is the interpretation of the action of the Companions (may Allah be pleased with them). Indeed, Abu Bakr (may Allah be pleased with him) was occupied with settling affairs and calming the fitna (discord). People kept offering prayers before his arrival, and the right was his because he was the Caliph. When he finished, he offered prayers over him, and no one offered prayers over him after that.

Urdu: There is no authority to waive [the right]. This is the interpretation of the action of the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him), because the right belonged to the Prophet. Allah Almighty states: 'The Prophet is a greater master over the believers than their own lives.' And similarly, this is the interpretation of the action of the noble Companions (may Allah be pleased with them), because Hazrat Abu Bakr Siddiq (may Allah be pleased with him) was busy in setting matters right and suppressing the fitna. So, before his arrival, people kept praying the funeral prayer, but the right belonged to Siddiq because he became the Caliph. So when he finished, he prayed the funeral prayer for the Prophet, then no one prayed the prayer for the Prophet after him.

Arabic: I say: And by what we have established, it becomes clear to you the dismissal of what occurred here in Al-Minhah. So understand and be firm, and for Allah is the favor.

Urdu: I say: From our discourse, the objection raised here in Minhat al-Khaliq is dismissed. So understand it and remain steadfast. And all favor is from God. (T)

Fourthly: Let it be proven that those praying for the second time are the same ones who had already prayed the first time. For new people to pray, even if after the legal guardian (wali-ul-haq), is contrary to the Hanafi and Shafi'i schools. It cannot validate the mujtahid's (jurist's) position and fatwa, because he made those who had already prayed pray again.

Fifthly: In any case, it is necessary that the hadith be jurisprudentially sound (Sahih Faqhi). Mere hadith-related authenticity (Sahih Hadithi) is not sufficient for establishing a ruling. If the mujtahid possesses knowledge, he would know the

difference between hadith-related authenticity and jurisprudential authenticity. Otherwise, consult the poor author's treatise 'Al-Fadl al-Mawhabi fi Ma'na Idha Sahha al-Hadith fahuwa Madhhabi', historically titled 'A'azz al-Nukat bi Jawab Sawal Arkat'. This treatise was written in response to a question from Arkat; please examine it. Do not rely on hadiths like those about multiple prayers over our master Hamza (may Allah be pleased with him), because:

Firstly: It is in explicit contradiction to the Sahih Bukhari, in which it is narrated from Hazrat Jabir bin Abdullah Ansari (may Allah be pleased with him), who was an eyewitness at the battle of Uhud:

---

1 Minhat al-Khaliq, marginalia on Al-Bahr al-Ra'iq, chapter: The Sultan is most entitled to lead the prayer. HM Saeed Company Karachi, 182/2.

फ़तावा रज़विया - खंड 9

[बॉक्स वाला टेक्स्ट] अरबी: अधिकार उन्हीं का है और किसी और को इसे समाप्त करने का अधिकार नहीं है। यह अल्लाह के रसूल (उन पर अल्लाह की शांति और कृपा हो) के कृत्य की व्याख्या है, क्योंकि अधिकार उनका था। अल्लाह सर्वशक्तिमान कहता है: 'नबी मोमिनों के लिए उनकी अपनी जानों से भी बढ़कर हैं।' इसी प्रकार, यह सहाबा किराम (अल्लाह उनसे प्रसन्न हो) के कृत्य की व्याख्या है। वास्तव में, हज़रत अबू बक्र सिद्दीक़ (अल्लाह उनसे प्रसन्न हो) मामलों को सुलझाने और फ़ितने को शांत करने में व्यस्त थे। लोग उनके आने से पहले नमाज़ पढ़ते रहे, जबकि अधिकार सिद्दीक़ का था क्योंकि वे खलीफ़ा थे। जब वे फ़ारिग हुए तो उन्होंने सरकार की नमाज़-ए-जनाज़ा पढ़ी, फिर उनके बाद किसी ने हुज़ूर की नमाज़ नहीं पढ़ी।

उर्दू: [अधिकार] समाप्त करने का कोई अधिकार नहीं है। यही अल्लाह के रसूल (उन पर अल्लाह की शांति और कृपा हो) के कार्य की व्याख्या है क्योंकि अधिकार सरकार (पैगंबर) का था। अल्लाह तआला फ़रमाता है: 'नबी मुसलमानों के लिए उनकी जानों से ज़्यादा मालिक हैं।' और इसी तरह सहाबा किराम (अल्लाह उन पर प्रसन्न हो) के कार्य की व्याख्या है क्योंकि हज़रत अबू बक्र सिद्दीक़ (अल्लाह उन पर प्रसन्न हो) मामलात दुरुस्त करने और फ़ितना दबाने में लगे हुए थे, तो उनके आने से पहले लोग नमाज़ (जनाज़ा) पढ़ते रहे, और अधिकार सिद्दीक़ का था क्योंकि वे खलीफ़ा हुए। तो जब वे फ़ारिग हुए तो उन्होंने हुज़ूर की नमाज़-ए-जनाज़ा पढ़ी, फिर उनके बाद किसी ने हुज़ूर की नमाज़ नहीं पढ़ी।

अरबी: मैं कहता हूँ: और जो हमने स्थापित किया है, उससे आपके सामने स्पष्ट हो गया है कि 'अल-मिन्हा' में जो कुछ हुआ है, उसका खंडन हो गया है। तो इसे समझें और दृढ़ रहें, और सारा उपकार अल्लाह ही का है।

उर्दू: मैं कहता हूँ: हमारे बयान से वह आपत्ति समाप्त हो गई जो यहाँ 'मिन्हातुल ख़ालिक़' में है। तो इसे समझो और साबित-क़दम रहो। और उपकार खुदा ही का है। (त)

चौथा: यह साबित हो कि दोबारा नमाज़ पढ़ने वाले वही लोग हैं जो पहले पढ़ चुके थे। नए लोगों का नमाज़ पढ़ना, चाहे वह वली-ए-हक़ के बाद ही क्यों न हो, हनफ़ी और शाफ़ई मतों के विरुद्ध है। यह उन मुज्तहिद साहब के मत और फ़तवे को सही साबित नहीं कर सकता क्योंकि उन्होंने तो पहले से नमाज़ पढ़ चुके लोगों को दोबारा नमाज़ पढ़वाई।

पाँचवां: हर स्थिति में यह आवश्यक है कि हदीस फ़िक़ही (विधिशास्त्रीय) रूप से सही हो। केवल हदीस के स्तर पर सही होना किसी हुक्म (आदेश) को साबित करने के लिए पर्याप्त नहीं होता। यदि मुज्तहिद साहब ज्ञान रखते होंगे, तो वे 'हदीस की शुद्धता' और 'फ़िक़ह की शुद्धता' के बीच के अंतर को जानते होंगे। अन्यथा, इस तुच्छ लेखक (फ़क़ीर) का रिसाला (ग्रंथ) 'अल-फ़ज़लुल मौहबी फ़ी मानी इज़ा सह्हल हदीस फ़हुवा मज़हबी' देखें, जिसका ऐतिहासिक शीर्षक 'अअज़्ज़ुन नुकात बि जवाब सवाल अरकात' है। यह अर्क़ात से आए एक प्रश्न के उत्तर में लिखा गया था, कृपया उसे देखें। यह हज़रत हमज़ा (अल्लाह उन पर प्रसन्न हो) पर कई बार नमाज़ पढ़ने जैसी हदीसों के समान नहीं है क्योंकि:

पहला: यह स्पष्ट रूप से सही बुख़ारी शरीफ़ के विरुद्ध है, जिसमें हज़रत जाबिर बिन अब्दुल्लाह अंसारी (अल्लाह उन पर प्रसन्न हो) से रिवायत है, जो उहुद के गवाह और द्रष्टा थे:

---

1 मिन्हातुल ख़ालिक़, अल-बहरुर रैक़ पर हाशिया (टिप्पणी), अध्याय: सुल्तान नमाज़ का सबसे अधिक हकदार है। एच एम सईद कंपनी कराची, 182/2।

[Boxed Text] الحق له وليس لغيره ولاية اسقاط وهو تأويل فعل رسول الله صلى الله تعالى عليه وسلم فان الحق له قال الله تعالى النبي اولى بالمؤمنين من انفسهم وهكذا تأويل فعل الصحابة رضى الله تعالى عنهم فان ابابكر رضى الله تعالى عنه كان مشغولا بتسوية الامور وتسكين الفتنة فكانوا يصلون عليه قبل حضوره وكان الحق له لانه هو الخليفة فلما فرغ صلى عليه ثم لم يصل احد بعده عليه اھ ساقط کرنے کا اختیار نہیں۔ یہی رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم کے فعل کی تاویل ہے کیونکہ حق سرکار کا تھا، اللہ تعالٰی فرماتا ہے : نبی مسلمانوں کے ان کی جانوں سے زیادہ مالک ہیں۔ اور اسی طرح صحابہ کرام رضی اللہ تعالٰی عنہم کے فعل کی تاویل ہے اس لئے کہ حضرت ابوبکر صدیق رضی اللہ تعالٰی عنہ معاملات درست کرنے اور فتنہ فرو کرنے میں لگے ہوئے تھے تو ان کی آمد سے پہلے لوگ صلوٰۃ پڑھتے جاتے اور حق صدیق کا تھا کیونکہ خلیفہ وہی ہوئے تو جب فارغ ہوئے سرکار کی نماز جنازہ پڑھی پھر کسی نے حضور کی نماز نہ پڑھی۔ اقول : وبما قررنا ظهر لك سقوط ما وقع ههنا فی المنحة فافهم وتثبت ولله المنة۔ اقول: ہماری تقریر سے وہ اعتراض ساقط ہو گیا جو یہاں منحۃ الخالق میں ہے۔ تو اسے سمجھو اور ثابت قدم رہو۔ اور احسان خدا ہی کا ہے (ت)

رابعاً : ثبوت ہو کہ دوبارہ نماز پڑھنے والے خود وہی ہیں جو اول پڑھ چکے تھے کہ نئے لوگوں کا پڑھنا اگرچہ ولیِ حق کے بعد خلافِ حنفیہ و شافعیہ ہو ان مجتہد صاحب کے مذہب و فتوٰی کا مصح نہیں ہو سکتا کہ انہوں نے تو پڑھ چکنے والوں کو دوبارہ پڑھوائی۔

خامساً : ہر تقدیر پر ضرور ہے کہ حدیث ہو صحیح فقہی ہو۔ مجرد صحتِ حدیثی اثباتِ حکم کے لئے بس نہیں ہوتی، مجتہد صاحب اگر علم رکھتے ہوں گے صحتِ حدیثی و صحتِ فقہی کا فرق جانتے ہوں گے، ورنہ فقیر کا رسالہ الفضل الموهبي فی معنی اذا صح الحديث فهو مذهبی ملقب بہ

لقب تاریخی "اعز النکات بجواب سوال ارکات" جس کا سوال مقام ارکات سے آیا اس کے جواب میں لکھا گیا تھا ملاحظہ فرمائیں، نہ مثلِ حدیث تعددِ الصلوٰۃ علی سیدنا حمزہ رضی اللہ تعالیٰ عنہ کہ :

اولاً : حدیث صحیح بخاری شریف کے صریح خلاف جس میں حضرت جابر بن عبداللہ انصاری شاہد و مشاہد اُحد رضی اللہ تعالیٰ عنہ سے مروی :

---

1 منحۃ الخالق حاشیہ علی البحر الرائق فصل السلطان احق الصلوٰۃ ایچ ایم سعید کمپنی کراچی ۱۸۲/۲

Fatawa Razawiyya, Volume 9

Arabic Text	English Translation
He ordered their burial with their blood, and they were neither washed nor was any funeral prayer offered for them[1] — also narrated by Ahmad with a good chain, and by al-Tirmidhi who authenticated it, and by al-Nasa'i and Ibn Majah.	The Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) ordered those noble martyrs to be buried as they were, covered in blood, and they were not given a bath, nor was their funeral prayer offered. Ahmad narrated this with a sound chain. Tirmidhi narrated it and declared it authentic. Nasa'i and Ibn Majah also narrated it. (T)

It is completely against the school of thought of the modern-day mujtahids to consider it permissible to act upon these narrations in order to reject a Hadith from Sahih Bukhari. Secondly: the status of this narration itself is such that not one of its chains of transmission is free from criticism, and its text is highly inconsistent. If detailed, it would fill an entire independent treatise. If the 'Mujtahid Sahib' desires, by the help of Allah Almighty, sufficient satisfaction will be provided. And with Allah is success. Therefore, the grandfather of Ibn Taymiyyah, the elder of these new mujtahids, said in 'Al-Muntaqa':

Arabic Text	English Translation
Indeed, the prayer over them has been narrated through chains that are not established.[2]	The performance of funeral prayer for the martyrs of Uhud is narrated through such chains that are not proven. (T)

Yes, there is a report (Athar Mursal) which Abu Dawud narrated in 'Al-Marasil' with a chain of reliable narrators from Abu Malik al-Ghafari, a Tabi'i:

Arabic Text	English Translation
Indeed, the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) prayed over those slain at Uhud, ten by ten. In every ten, Hamza (may Allah be pleased with him) was included, until he had prayed over him seventy times.[3]	The Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) offered the funeral prayer for the martyrs of Uhud in groups of ten people. In every group of ten, Hazrat Hamza (may Allah be pleased with him) was present, to the extent that he (PBUH) offered the prayer over him seventy times. (T)

[1] Sahih al-Bukhari, Chapter: Prayer over the Martyr, Qadimi Kutub Khana, Karachi, 1/179. [2] Muntaqa al-Akhbar with Nayl al-Awtar, Chapter: Leaving the prayer over the Martyr, Mustafa al-Babi, Egypt, 3/48. [3] Al-Sunan al-Kubra, Book of Funerals, Chapter: On the claim that the Prophet (peace be upon him) prayed over Uhud etc., Dar Sader, Beirut, 4/12.

फ़तावा रज़विया, जिल्द 9

अरबी पाठ

उन्होंने उनके खून के साथ दफनाने का आदेश दिया और उन्हें न तो नहलाया गया और न ही उनके लिए प्रार्थना की गई[1] — अहमद ने भी इसे एक अच्छी श्रृंखला के साथ वर्णित किया है, और अल-तिर्मिज़ी ने इसे प्रमाणित किया है, और अल-नसाई और इब्न माजाह ने भी।

हिंदी अनुवाद

अल्लाह के रसूल (उन पर अल्लाह की शांति और आशीर्वाद हो) ने उन महान शहीदों को वैसे ही खून से लथपथ दफनाने का आदेश दिया, और उन्हें न तो स्नान कराया गया, न ही उनके लिए नमाज़-ए-जनाज़ा अदा की गई। अहमद ने इसे एक मजबूत श्रृंखला के साथ वर्णित किया। तिर्मिज़ी ने इसे वर्णित किया और इसे सही (प्रामाणिक) घोषित किया। नसाई और इब्न माजाह ने भी इसे वर्णित किया है। (त)

आज के ज़माने के मुजतहिदीन के मसलक के बिल्कुल खिलाफ़ है कि सहीह बुखारी की हदीस को रद्द करने के लिए इधर-उधर की रिवायतों पर अमल करना हलाल समझें। दूसरा: इस रिवायत की अपनी हालत यह है कि इसकी कोई सनद (श्रृंखला) चर्चा से खाली नहीं और इसका पाठ (मतन) अत्यंत अस्थिर है। यदि इसका विवरण दिया जाए, तो एक स्वतंत्र ग्रंथ तैयार हो जाए। अगर 'मुजतहिद साहब' को चाहत हो, तो अल्लाह तआला की मदद से उन्हें पर्याप्त संतुष्टि प्रदान की जाएगी। सफलता अल्लाह की ओर से है। इसलिए, इन नए मुजतहिदीन के बुजुर्ग इब्न तैमिया के दादा ने 'अल-मुन्तक़ा' में कहा:

अरबी पाठ

बेशक, उन पर प्रार्थना उन श्रृंखलाओं के माध्यम से वर्णित की गई है जो पुख्ता नहीं हैं।[2]

हिंदी अनुवाद

उहुद के शहीदों की नमाज़ का होना ऐसी सनदों से वर्णित है जो साबित नहीं हैं। (त)

हाँ, एक रिवायत (असर-ए-मुरसल) है जिसे अबू दाऊद ने 'मरासील' में अबू मलिक ग़फ़ारी ताबेई से भरोसेमंद श्रृंखला के साथ वर्णित किया है:

अरबी पाठ

बेशक, नबी (उन पर अल्लाह की शांति और आशीर्वाद हो) ने उहुद के शहीदों पर दस-दस करके प्रार्थना की। हर दस में हज़रत हमज़ा

हिंदी अनुवाद

नबी (उन पर अल्लाह की शांति और आशीर्वाद हो) ने उहुद के शहीदों पर दस-दस आदमी करके नमाज़ पढ़ी, हर दस में हज़रत हमज़ा

अरबी पाठ	हिंदी अनुवाद
(अल्लाह उनसे प्रसन्न हो) शामिल थे, यहाँ तक कि आपने उन पर सत्तर बार प्रार्थना की।[3]	(अल्लाह उनसे प्रसन्न हो) होते, यहाँ तक कि उन पर सत्तर बार नमाज़ पढ़ी। (त)

[1] सहीह अल-बुखारी, अध्याय: शहीद पर नमाज़, क़दीमी कुतुब ख़ाना, कराची, 1/179। [2] मुन्तक़ा अल-अख़बार मय नैल अल-औतार, अध्याय: शहीद पर नमाज़ छोड़ना, मुस्तफ़ा अल-बाबी, मिस्र, 3/48। [3] अल-सुनन अल-कुबरा, किताबुल जनाइज़, अध्याय: जिसके अनुसार नबी (उन पर शांति हो) ने उहुद पर नमाज़ पढ़ी इत्यादि, दार सादिर, बेरूत, 4/12।

عربی متن	اردو ترجمہ
امر بد فنهم بد مائهم ولم يغسلوا ولم يصلوا عليهم[1] ۔ و راه ايضا احمد بسند جيد والترمذي وصححه والنسائي وابن ماجة ۔	رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم نے ان شہدائے کرام کو ویسے ہی خون آلود دفن کرنے کا حکم فرمایا اور انہیں غسل نہ دیا گیا، نہ ان کی نماز ہوئی۔ اسے احمد نے سندِ جید کے ساتھ روایت کیا۔ ترمذی نے روایت کرکے صحیح قرار دیا۔ نسائی اور ابن ماجہ نے بھی روایت کیا ہے (ت)

مجتہدین زمانہ کے مسلک کے بالکل خلاف ہے کہ حدیثِ صحیح بخاری کے رد کے لئے ادھر کی روایات پر عمل حلال جانیں۔ ثانیا: اُس کی خود حالت یہ کہ اس کی کوئی سندِ مسند مقال سے خالی نہیں اور متنِ بشدت مضطرب اگر اس کی تفصیل کیجئے ایک رسالہ مستقل ہوتا ہے، مجتہد صاحب کو ہوس ہوئی تو بعونہ تعالٰی تسکین کافی کی جائے گی وباللہ التوفیق لاجرم ان مجتہدین تازہ کے بزرگوار ابن تیمیہ کے جدِ امجد نے منتقٰی میں کہا:

عربی متن	اردو ترجمہ
قد رويت الصلوة عليهم باسانيد لا تثبت[2]۔	شہدائے اُحد کی نماز ہونا ایسی سندوں سے مروی ہے جو ثابت نہیں۔ (ت)

ہاں تو ایک اثر مرسل ابوداؤد نے مراسیل میں بسند ثقات ابو مالک غفاری تابعی سے روایت کیا:

عربی متن	اردو ترجمہ
ان النبي صلى الله تعالى عليه وسلم صلى على قتلى أحد، عشرة عشرة ، في كل عشرة حمزة رضي الله تعالى عنه حتى صلى عليه سبعين صلوة[3]۔	نبی صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم نے شہدائے اُحد پر دس دس آدمی کرکے نماز پڑھی، ہر دس میں حضرت حمزہ رضی اللہ تعالیٰ عنہ ہوتے، یہاں تک کہ ان پر ستّر بار نماز پڑھی۔ (ت)

[1] صحیح البخاری باب الصلوۃ علی الشہید قدیمی کتب خانہ کراچی ۱/۱۷۹ [2] منتقٰی الاخبار مع نیل الاوطار ترک الصلوۃ علی الشہید مصطفیٰ البابی مصر ۳/۴۸ [3] السنن الکبریٰ کتاب الجنائز باب من زعم ان النبی صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم صلی علی احد الخ دار صادر بیروت ۴/۱۲

Fatawa Ridawiyya, Volume 9

This is, firstly, a Mursal (a tradition with a missing link in the chain) narration, and according to those scholars, a Mursal is considered Muhmal (unreliable/discarded). Secondly, it is inherently difficult. There were 70 martyrs of Uhud (May Allah be pleased with them); when funeral prayers were performed for groups of ten, there would be seven prayers. How then can it be seventy!

I say (Imam Ahmad Raza Khan): And success is with Allah. Even after accepting the authenticity of the Hadith, the most that can be established is that the funeral prayers were performed for the martyrs by changing the bodies, while the blessed body of the Master of Martyrs (Hamza) (May Allah be pleased with him) remained as it was. Merely not lifting it does not necessitate the repetition of the prayer, as this matter depends on the intention of the Radiant Prophet (May Allah bless him and grant him peace), and the intention is hidden, and there is no information about the hidden. It is possible that his body was kept there for inclusion in the descending blessings each time. It is clear that in such a place, the extent of observation is only towards the apparent form, not the inner meaning. The proof of the opponent's argument depends on that inner meaning, for which there is no evidence. Thus, the argument falls apart entirely. Yes, if the Holy Prophet (May Allah bless him and grant him peace) himself had stated it from his blessed tongue, then the reasoning would be correct. Since it is not so, it does not exist. (T)

Sixthly: One should also consider that the context should not be susceptible to being specific (to a particular case), especially where a close indicator for specificity is present. For instance, the Hadith regarding the female servant of the mosque (May Allah be pleased with her), upon whose grave the Holy Prophet (May Allah bless him and grant him peace) prayed and himself explained the reason:

Arabic	**English Translation**
Indeed, these graves are filled with darkness for their inhabitants, and indeed, I illuminate them with my prayers for them (May Allah bless him and grant him peace). May Allah shower blessings and peace upon him according to the measure of his light, beauty, generosity, and bounty, and upon all his family and	Indeed, these graves are filled with darkness for their inhabitants, and indeed, I illuminate them with my prayers for them (May Allah bless him and grant him peace). May Allah shower blessings and peace upon him according to the measure of his light, beauty, generosity, and bounty, and upon all his family and

Arabic	English Translation
companions. This Hadith was narrated by Muslim and Ibn Hibban from Abu Hurairah (May Allah be pleased with him). The origin of the Hadith is agreed upon by Bukhari and Muslim. (T)	companions. This Hadith was narrated by Muslim and Ibn Hibban from Abu Hurairah (May Allah be pleased with him). The origin of the Hadith is agreed upon by Bukhari and Muslim. (T)

It was mentioned in the Hadiths of Zaid bin Thabit and Yazid bin Thabit (May Allah be pleased with them) that [the Prophet said]: "Do not bury [anyone] without informing me, for my prayer for them is a mercy."

I say: From a perspective of faith, one testifies that millions of righteous and pious people may pray a funeral prayer, but it can never match the funeral prayer led by the Holy Prophet (May Allah bless him and grant him peace). Those blessings, ranks, and rewards cannot be attained in anyone else's prayer. And the Radiant Prophet (May Allah bless him and grant him peace), according to the definitive text of the Great Quran: "It grieves him that you should fall into distress; he is intensely eager for your welfare, and to the believers, he is most kind and merciful."[2] Thus, every Muslim's hardship is heavy upon him, and he is concerned for the wellbeing of each follower.

---

[1] Sahih Muslim, Book of Funerals, Noor Muhammad Asah al-Matabi', Karachi 1/310 [2] Al-Quran 9/128

फतावा रज़विया, जिल्द 9

यह एक तो मुरसल (ऐसी हदीस जिसकी कड़ी टूटी हो) है, और उन साहबों के नज़दीक मुरसल, मुहमल (अविश्वसनीय) होती है, और दूसरे यह अपने आप में कठिन है। उहुद के शहीद (रज़ियल्लाहु अन्हुम) ७० सत्तर थे; जब दस-दस पर नमाज़ हुई तो सात नमाज़ें होंगी, फिर सत्तर कैसे!

मैं (इमाम अहमद रज़ा खान) कहता हूँ: और सफलता अल्लाह की ओर से है। हदीस की सेहत (सत्यता) स्वीकार करने के बाद भी, अधिकतम जो साबित होगा वह यह कि शहीदों पर शवों को बदल-बदल कर नमाज़ें होती रहीं और सैयदुश-शोहदा (हज़रत हमज़ा) रज़ियल्लाहु अन्हु का मुबारक शव अपनी जगह रखा रहा। केवल न उठाया जाना नमाज़ को दोहराने का कारण नहीं बनता, क्योंकि यह बात हुज़ूर पुरनूर सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम की नीयत पर निर्भर है और नीयत छिपी हुई होती है, और छिपी हुई बात की कोई जानकारी नहीं होती। संभव है कि उनका शव हर बार उतरने वाली बरकतों में शामिल होने के लिए रखा गया हो। ज़ाहिर है कि ऐसी जगह देखने की सीमा केवल बाहरी स्वरूप तक है, न कि आंतरिक अर्थ तक। और विरोधी की दलील का प्रमाण उसी आंतरिक अर्थ पर निर्भर है, जिसका कोई सबूत नहीं है। अतः तर्क पूरी तरह से समाप्त हो जाता है। हाँ, यदि हुज़ूर अक़दस सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम स्वयं अपनी मुबारक ज़बान से ऐसा बयान फरमाते, तो दलील सही होती। चूँकि ऐसा नहीं है, तो वह भी नहीं है। (त)

छठा: इस बात का भी ध्यान रखा जाए कि वह स्थान विशिष्टता (ख़ास होने) की संभावना न रखता हो, विशेष रूप से जहाँ विशिष्टता का कोई निकट संकेत मौजूद हो। जैसे मस्जिद की खादिमा (रज़ियल्लाहु अन्हुमा) वाली हदीस, जिनकी क़ब्र पर हुज़ूर अक़दस सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने नमाज़ पढ़कर खुद कारण बताया:

अरबी	**हिंदी अनुवाद**
बेशक ये क़ब्रें अपने निवासियों पर अंधेरे से भरी हुई हैं, और बेशक मैं अपनी नमाज़ से उन्हें रोशन कर देता हूँ (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम)। अल्लाह तआला उन पर उनके नूर, जमाल, जूद (उदारता) और नवाज़िश के अनुसार दुरूद ओ सलाम नाज़िल फरमाए, और उनकी आल ओ	बेशक ये क़ब्रें अपने निवासियों पर अंधेरे से भरी हुई हैं, और बेशक मैं अपनी नमाज़ से उन्हें रोशन कर देता हूँ (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम)। अल्लाह तआला उन पर उनके नूर, जमाल, जूद (उदारता) और नवाज़िश के अनुसार दुरूद ओ सलाम नाज़िल फरमाए, और उनकी आल ओ

अरबी	हिंदी अनुवाद
असहाब सब पर। यह हदीस मुस्लिम और इब्न हब्बान ने हज़रत अबू हुरैरा रज़ियल्लाहु अन्हु से रिवायत की। और हदीस की असल बुखारी और मुस्लिम में मुत्तफ़िक़ अलैह है। (त)	असहाब सब पर। यह हदीस मुस्लिम और इब्न हब्बान ने हज़रत अबू हुरैरा रज़ियल्लाहु अन्हु से रिवायत की। और हदीस की असल बुखारी और मुस्लिम में मुत्तफ़िक़ अलैह है। (त)

जैद बिन साबित और यज़ीद बिन साबित रज़ियल्लाहु अन्हुमा की हदीसों में आया है कि [नबी ने फ़रमाया]: "मुझे सूचित किए बिना दफ़न न कर दिया करो क्योंकि मेरी नमाज़ उनके हक़ में रहमत (दया) है।"

मैं कहता हूँ: खुद ईमान की नज़र से गवाह है कि करोड़ों नेक और परहेज़गार लोग किसी जनाज़े की नमाज़ पढ़ें, मगर वह बात कहाँ जो हुज़ूर अक़दस सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम के पढ़ने में है। वे बरकतें, वे दर्जे और सवाब दूसरे की नमाज़ में हासिल नहीं हो सकते। और हुज़ूर पुरनूर सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम क़ुरआन अज़ीम की साफ़ आयत के अनुसार: "तुम्हारी तकलीफ उन पर भारी है, वे तुम्हारी भलाई के बड़े चाहने वाले हैं, और ईमान वालों पर निहायत मेहरबान और रहम करने वाले हैं।"[2] अतः हर मुसलमान का कष्ट उन पर भारी है, और वे एक-एक उम्मती की भलाई चाहते हैं।

---

[1] सहीह मुस्लिम, किताबुल जनाइज़, नूर मुहम्मद असहुल् मताबी, कराची 1/310 [2] अल-क़ुरआन 9/128

یہ ایک تو مرسل، اور مرسل ان صاحبوں کے نزدیک مہمل، اور دوسرے فی نفسہ مشکل۔ شہدائے اُحد رضی اللہ تعالٰی عنہم ۷۰ ستر تھے جب دس دس پر نماز ہوئی تو سات نمازیں ہوں گی ستر کیونکر !

ثم اقول: وباللہ التوفیق بعد تسلیم صحت حدیث غایت درجہ جو ثابت ہوگا وہ اس قدر کہ شہداء پر نفسیں بدل کر نمازیں ہوا کیں اور نعش مبارک سید الشہداء رضی اللہ تعالٰی عنہم بدستور رکھی رہی، مجرد نہ اٹھایا جانا مستلزم اعادہ صلوۃ نہیں کہ یہ امر نیت حضور پر نور صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم کے علم پر موقوف اور نیت غیبت ہے اور غیبت پر اطلاع نہیں، ممکن کہ اُن کی نعش ہر بار کے برکات نازلہ میں شمول کے لئے رکھی گئی ہو۔ ظاہر ہے کہ ایسی جگہ رویت کا مبلغ صرف صورتِ ظاہر ہ تک ہے، نہ معنیِ باطن تک، اور مطلب متدل کا ثبوت اُسی معنیِ باطن پر موقوف، اور اس کی دلیل نہیں، تو استدلال رائساً ساقط ۔ ہاں اگر حضور اقدس صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم خود اپنی زبانِ مبارک سے ایسے بیان فرماتے تو احتجاج صحیح تھا واذ لیس فلیس اور جب وہ نہیں تو یہ بھی نہیں ۔ ت)

سادسا: ذرا بھی یہ ملحوظ رہے کہ وہ محل، محتمل اختصاص نہ ہو خصوصاً جہاں خصوص پر قرینہ قریبہ قائم ہو ، جیسے حدیث خادمہ مسجد رضی اللہ تعالٰی عنہما وغیرہا جن کی قبر پر حضور اقدس صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم نے نماز پڑھ کر وجہ خود ارشاد فرمائی :

عربی متن	اردو ترجمہ
ان هذه القبور مملوه على اهلها ظلمة وانی انورها بصلوتی علیهم صلی الله علیه وسلم قدر نوره وجماله وجوده ونواله علیه وعلی آله اجمعین رواه مسلم و ابن حبان عن ابي هريرة رضي الله تعالی عنه واصل الحديث متفق علیه۔	بیشک یہ قبریں اپنے ساکنوں پر اندھیرے سے بھری ہیں اور بیشک میں اپنی نماز سے انہیں روشن کر دیتا ہوں صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم اللہ تعالیٰ ان پر درود و سلام نازل فرمائے ان کے نور و جمال اور جود ونوال کے اندازے سے اور ان کی آل واصحاب سب پر۔ یہ حدیث مسلم اور ابن حبان نے حضرت ابوہریرہ رضی اللہ تعالیٰ عنہ سے روایت کی۔ او راصل حدیث بخاری و مسلم کی متفق علیہ ہے۔ (ت)

زید بن ثابت ویزید بن ثابت رضی اللہ تعالیٰ عنہما کی حدیثوں میں گزرا کہ بے میری اطلاع کے دفن نہ کر دیا کرو کہ میری نماز اس کے حق میں رحمت ہے۔

اقول: خود بنظر ایمانی گواہ ہے کہ کروڑوں صلحاء و اتقیاء کسی جنازہ کی نماز پڑھیں مگر وہ بات کہاں جو حضور اقدس صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کے پڑھنے میں ہے، وہ برکات وہ درجات و مثوبات دوسرے کی نماز میں حاصل نہیں ہو سکتیں، اور حضور پُر نور صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم بہ نص قطعی قرآن عظیم "عَزِيزٌ عَلَيْهِ مَا عَنِتُّمْ حَرِيصٌ عَلَيْكُمْ بِالْمُؤْمِنِينَ رَؤُوفٌ رَّحِيمٌ"[2] ہیں کہ ہر مسلمان کی کلفت اُن پر گراں، ایک ایک امتی کی بھلائی پر

---

[1] صحیح مسلم کتاب الجنائز نور محمد اصح المطابع کراچی ۱/ ۳۱۰ [2] القرآن ۹/ ۱۲۸

Fatawa Ridawiyya, Volume 9

...desirous [of your good], most kind and merciful to every believer. How could he tolerate that while he was present in the world, a Muslim should travel to the difficult station [afterlife] without the provision of his mercy and blessings? How could the prayer of others prevent his prayer? Thus, it is clear and evident that this action originated from a specific reason, and comparing Zaid and Amr [ordinary people] to Mustafa (peace and blessings of Allah be upon him) is void and wasted. It is mentioned in the commentary of Muwatta Imam Malik:

Arabic Text	Urdu Translation
والدلیل علی الخصوصیت مازاد مسلم (فذکرہ قال) وھذا لایتحقق فی غیرہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم 1۔	The evidence for specificity is what Muslim narrated further (then mentioned the aforementioned Hadith and said): 'This [matter] is not realized in anyone other than the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him). (t)

In Mirqat, the commentary of Mishkat, it is from Allama Ibn Malik:

Arabic Text	Urdu Translation
صلاتہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم کانت لتنویر القبروذا لا یوجد فی صلوۃ غیرہ 2۔	The prayer of the Holy Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) was for the enlightenment of the grave, and this is not found in the prayer of anyone else. (t)

I say (Aqool): Beyond this, there is a specific instance, a specific occurrence concerning the Master of those with special characteristics (peace and blessings of Allah be upon him). There, many things occurred as specificities in those matters. Not taking the blessed remains to the cemetery, being buried exactly in the place where the holy soul returned to the Exalted Companion (Allah), not removing the sacred shirt from the blessed body during washing, the blessed funeral remains staying for nearly two days so that all the companions could be honored, and no one leading the funeral prayer over the holy bier. These are among those specificities, even more so when it is mentioned in the Hadith that this situation occurred according to the holy will, as we have already presented from the Hadith of Abdullah (may Allah be pleased with him). The funeral prayer is a right of a Muslim over another Muslim. The Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) says:

Arabic Text	Urdu Translation
حق المسلم على المسلم خمس ردالسلام و عيادة المريض واتباع الجنازة و	The rights of a Muslim upon a Muslim are five: (1) responding to the greeting (Salam), (2) visiting the sick, (3) following the funeral procession...

1. Sharh az-Zarqani 'ala Muwatta al-Imam Malik, Kitab at-Takbir 'ala al-Jana'iz, al-Tijariyah al-Kubra, Egypt, 2/60.
2. Mirqat Sharh al-Mishkat, Bab al-Mashy bil-Janazah was-Salat 'alayha, Maktabah Imdadiyya Multan, 4/51.

फ़तावा रज़विया, खंड 9

...लालसा रखने वाले, हर मोमिन पर अत्यंत कोमल हृदय और दयालु। वह कैसे सहन कर सकते थे कि जब तक वे दुनिया में मौजूद हैं, कोई मुसलमान उस कठिन मंज़िल (मृत्यु के बाद की यात्रा) पर उनके रहमत और बरकत के सामान के बिना जाए? और दूसरों की नमाज़ उनकी नमाज़ में कैसे बाधक हो सकती थी? अतः यह स्पष्ट और उज्ज्वल है कि यह कार्य एक विशिष्ट कारण से उत्पन्न हुआ था, और ज़ैद और उम्र (आम लोगों) की तुलना मुस्तफ़ा (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) से करना व्यर्थ और निरर्थक है। मुवत्ता इमाम मालिक की व्याख्या में है:

अरबी पाठ	उर्दू अनुवाद
والدليل على الخصوصيت مازاد مسلم (فذكره قال) وهذا لايتحقق فى غيره صلى الله تعالٰى عليه وسلم 1.	विशिष्टता का प्रमाण वह है जिसे मुस्लिम ने और अधिक रिवायत किया (इसके बाद उल्लेखित हदीस को बयान किया और फिर कहा): और यह बात हुज़ूर सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम के अलावा किसी दूसरे में सिद्ध नहीं होती। (त)

मिर्कात शरह मिश्कात में अल्लामा इब्न मालिक से है:

अरबी पाठ	उर्दू अनुवाद
صلاته صلى الله تعالٰى عليه وسلم كانت لتنوير القبروذا لا يوجد فى صلوة غيره 2.	हुज़ूर अकदस सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम की नमाज़ क़ब्र को रोशन करने के लिए थी और यह बात दूसरे की नमाज़ में नहीं है। (त)

मैं कहता हूँ (अकूल): इसके अलावा, यह विशिष्टताओं का एक विशेष मामला है, जो विशिष्टताओं वाले लोगों के स्वामी (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) के बारे में है। वहाँ उन मामलों में कई बातें विशिष्टताओं के रूप में घटित हुईं। पवित्र शव को कब्रिस्तानों की ओर न ले जाना, जहाँ पवित्र आत्मा ने 'रफ़ीक़-ए-आला' की ओर प्रस्थान किया, वहीं दफ़न किया जाना, ग़ुस्ल (स्नान) के समय पवित्र शरीर से पवित्र कमीज़ को अलग न करना, सभी सहाबा के सम्मान पाने के लिए पवित्र जनाज़े का पौने दो दिन तक रखा रहना। पवित्र जनाज़े पर किसी की इमामत न होना, ये भी इन्हीं विशिष्टताओं में से है, विशेष रूप से जब हदीस में आया है कि यह स्थिति पवित्र वसीयत के अनुसार घटित हुई, जैसा कि हम हज़रत अब्दुल्ला (रज़ियल्लाहु अन्हु) की हदीस से पहले ही पेश कर चुके हैं। जनाज़े की नमाज़ एक

मुसलमान का दूसरे मुसलमान पर अधिकार है। अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) फरमाते हैं:

अरबी पाठ	उर्दू अनुवाद
حق المسلم على المسلم خمس ردالسلام و عيادة المريض واتباع الجنازة و	एक मुसलमान के दूसरे मुसलमान पर पाँच अधिकार हैं: (1) सलाम का जवाब देना, (2) बीमारी में हालचाल पूछना (अयादत करना), (3) जनाज़े के साथ जाना...

1. शरह अल-ज़रक़ानी अला मुवत्ता अल-इमाम मालिक, किताब अल-तकबीर अलल-जनाइज़, अल-तिजारिया अल-कुबरा, मिस्र, 2/60।
2. मिर्कात शरह अल-मिश्कात, बाब अल-मशी बिल-जनाज़ह वस-सलात अलैहा, मकतबा इमदादिया मुल्तान, 4/51।

पृष्ठ 303/948

حریص، ہر مومن پر نہایت نرم دل مہربان۔ وہ کیونکر گوارا فرمائیں کہ دنیا میں ان کے تشریف رکھتے ہوئے مسلمان سخت منزل کا سفر کرے اور ان کی رحمت ان کی برکت کا توشہ اس کے ساتھ نہ ہو اوروں کی نماز ان کی نماز سے کیا مانع ہو سکتی ہے تو اس فعل کا وجہ خاص ہی سے ناشی ہونا ظاہر و لامع، وزید و عمر کا مصطفٰی صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم پر قیاس باطل و ضائع۔

شرح موطا امام مالک میں ہے:

عربی عبارت	اردو ترجمہ
والدلیل علی الخصوصیت مازاد مسلم (فذکرہ قال) وھذا لایتحقق فی غیرہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم 1۔	خصوصیت کی دلیل وہ ہے جو مسلم نے مزید روایت کیا (اس کے بعد حدیث مذکور بیان کی پھر کہا) اور یہ بات حضور صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم کے علاوہ کسی دوسرے میں متحقق نہیں (ت)

مرقاۃ شرح مشکوۃ میں علامہ ابن مالک سے ہے:

عربی عبارت	اردو ترجمہ
صلاتہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم کانت لتنویر القبر و ذا لایوجد فی صلوۃ غیرہ 2۔	حضور اقدس صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم کی نماز قبر کو روشن کرنے کے لئے تھی اور یہ بات دوسرے کی نماز میں نہیں۔ (ت)

اقول: اس سے زائد محل خصوص، خصوص واقعہ سید اہل خصائص ہے صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم۔ وہاں تو ان معاملات میں بہت باتیں خصوصیات سے واقع ہوئیں۔ نعش مبارک کا مقابر کی طرف نہ

لے جانا، جہاں روح اقدس نے رفیق اعلیٰ کی طرف رجوع فرمایا، خاص اس جگہ دفن ہونا، نہلانے میں قمیص مقدس بدن اقدس سے نہ جدا کیا جانا، سب صحابہ کے مشرف ہونے کے لئے جنازہ مبارک کا پونے دو دن رکھا رہنا۔ جنازہ اقدس پر کسی کی امامت روانہ نہ ہونا انہیں خصوصیات میں، یہ بھی سہی، خصوصا جبکہ حدیث میں وارد ہے کہ یہ صورت حسب وصیت اقدس واقع ہوئی کما قدمنا من حدیث عبداللہ رضی اللہ تعالٰی عنہ (جیسا کہ حضرت عبداللہ رضی اللہ تعالٰی عنہ کی حدیث سے ہم اس کو پیش کرچکے۔ ت) نماز جنازہ مسلمان کا حق مسلمان پر ہے۔ رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم فرماتے ہیں:

عربی عبارت	اردو ترجمہ
حق المسلم علی المسلم خمس ردالسلام و عیادۃ المریض واتباع الجنازۃ و	مسلمان کے مسلمان پر پانچ حق ہیں (۱) سلام کا جواب دینا (۲) بیماری میں عیادت کرنا (۳) جنازہ کے

1 شرح الزرقانی علی موطا الامام مالک لا تکبیر علی الجنائز التجاریۃ الکبری مصر ۲/۶۰ 2 مرقاۃ شرح مشکوٰۃ باب المشی بالجنازۃ والصلوۃ علیہا مکتبہ امدادیہ ملتان ۴/۵۱

Fatawa Razawiyya Volume 9

[Boxed Top Section] [Arabic:] Accepting the invitation and responding to a sneeze (Tashmit) - Narrated by the two Sheikhs (Bukhari and Muslim) from Abu Hurayrah, may Allah be pleased with him. [Urdu:] ...To be followed (4) To accept an invitation (5) To respond to the praise of Allah upon sneezing. Bukhari and Muslim narrated it from Hazrat Abu Hurayrah, may Allah be pleased with him. (T)

[Main Text] The rights of common believers are such that if some of those present fulfill them, they are considered fulfilled. However, the right of the Benefactor of both worlds, Muhammad the Messenger of Allah (may Allah send peace and blessings upon him), which after the right of Allah Almighty is the greatest of all rights, is immense. If it were mandatory for every person present, would it be unlikely? God forbid, it is one of the most important objectives that every Muslim present should be personally honored with this most exalted and grand honor. We have already mentioned several hadiths above where the Messenger of Allah (may Allah send peace and blessings upon him) says that the first gift a favored servant receives from the Presence of Honor after death is that Allah Almighty forgives all those who perform his funeral prayer. What then of the funeral of a Prophet, let alone the Leader of the Prophets (peace and blessings be upon him and them all)? Who can fathom the magnitude of His grace! The Shari'ah of Muhammad (upon its master be the best blessings and salutations) has brought pure goodness and special benefit for Muslims, not, God forbid, to deprive them of such a great grace. Thus, the wisdom of Shari'ah demanded that general permission be given here. How much space was there in the sacred chamber, and there were thirty thousand present, as mentioned in a hadith. (T) Now, if the command had been that whoever prays the first time has fulfilled the duty, it would have meant the deprivation of thousands of Companions. Secondly, intense competition for it would have been expected, or rather certain. When it was known that here too, like all funerals, only one opportunity would be given, everyone would want to be the one to pray. Therefore, the vast knowledge and immense generosity of Muhammad, the Messenger of Allah (may Allah send peace and blessings upon him), necessitated that He Himself should advise the attendance of groups upon groups in His matter (peace and blessings be upon him). This sublime secret is also a subtle wisdom behind not having a single congregational funeral prayer over the sacred body, so that all those present could personally be honored by the presence of the Holy Prophet (may Allah send peace

and blessings upon him) without any intermediary. The great Imam Suhayli explains the reason for the absence of an Imam here:

[Boxed Bottom Section] [Arabic:] Allah informed that He and His angels send blessings upon him (may Allah send peace and blessings upon him) and He commanded every single one of the believers to send blessings upon him. Thus, it became obligatory for every individual to perform it personally. [Urdu:] That is, Allah Almighty gave news that He and His angels send blessings upon the Beloved (may Allah send peace and blessings upon him) and commanded every Muslim to send blessings upon him (may Allah send peace and blessings upon him and his progeny and grant them peace). So it became obligatory for every person.

[Footnotes] 1. Sahih al-Bukhari, Book of Funerals, Qadimi Kutub Khana, Karachi, 1/166. 2. Nawadir al-Usul fi Ma'rifati Ahadith al-Rasul, Principle 54, etc., Dar Sadir, Beirut, p. 78.

फतावा रज़विया जिल्द नहुम (9)

[शीर्ष बॉक्स] [अरबी:] दावत स्वीकार करना और छींकने वाले को जवाब देना (तश्मीत) - इसे बुखारी और मुस्लिम ने अबू हुरैरा (रज़ियल्लाहु अन्हु) से रिवायत किया है। [उर्दू:] ...पीछे होना (4) दावत स्वीकार करना (5) छींकने पर 'अल्हमदुलिल्लाह' कहने का जवाब देना। इसे बुखारी और मुस्लिम ने हज़रत अबू हुरैरा (रज़ियल्लाहु अन्हु) से रिवायत किया है, (त)।

[मुख्य पाठ] आम मोमिनों के हक़ ऐसे आसान हैं कि अगर हाज़िरीन में से कुछ ने अदा कर दिए तो अदा हो गए। मगर नेमतों के मालिक दोनों जहानों के सुल्तान मुहम्मद रसूलुल्लाह (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) का हक़ इतना बड़ा है कि अल्लाह तआला के हक़ के बाद सबसे महान हक़ है। अगर हाज़िरीन पर हर शख्स के लिए अलग-अलग लाज़िम होता, तो क्या यह असंभव था? अल्लाह की पनाह, यह सबसे बड़े और महत्वपूर्ण उद्देश्यों में से है कि वहां मौजूद हर मुसलमान निजी तौर पर इस सबसे ऊंचे और महान सम्मान से सम्मानित हो। हम ऊपर कई हदीसें बयान कर चुके हैं कि रसूलुल्लाह (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) फरमाते हैं कि एक पसंदीदा बंदे को मौत के बाद सम्मान की बारगाह से जो पहला तोहफा मिलता है वह यह है कि जितने लोग उसके जनाज़े की नमाज़ पढ़ते हैं, अल्लाह तआला उन सबकी मगफिरत (क्षमा) फरमा देता है। फिर नबी के जनाज़े का क्या कहना, बल्कि सैयदुल अंबिया (अलैहि वसलातु वस्सलाम) का, उनकी कृपा की मात्रा का कौन अंदाज़ा लगा सकता है! शरीयते मुहम्मदिया (जिसके स्वामी पर सबसे श्रेष्ठ दुरूद और सलाम हो) मुसलमानों के लिए सरासर भलाई और विशेष लाभ लेकर आई है, न कि उन्हें ऐसे महान पुण्य से वंचित करने के लिए। तो शरीयत की हिकमत का तकाज़ा यही था कि यहाँ आम इजाज़त (अनुमति) दी जाए। हुजरा-ए-अनवर में जगह कितनी और हाज़िरीन तीस हज़ार, जैसा कि एक हदीस में आया है। (त), अब अगर यह हुक्म होता कि जो पहली बार पढ़ लें वह पढ़ लें, तो इससे हज़ारों सहाबा वंचित रह जाते। दूसरे, इस पर भारी होड़ लगना मुमकिन ही नहीं बल्कि यकीनी था। जब मालूम होता कि यहाँ भी तमाम जनाज़ों की तरह सिर्फ एक ही बार की अनुमति मिलेगी, तो हर कोई यही चाहता कि मैं ही पढ़ लूँ। लिहाज़ा मुहम्मद रसूलुल्लाह (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) का असीम ज्ञान और अपार उदारता का तकाज़ा हुआ कि अपने मामले में खुद फौज-दर-फौज (समूहों में) हाज़िरी की वसीयत फरमा दी (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम)। जनाज़े पर (एक ही सामूहिक) जनाज़ा न होने के पीछे एक रूहानी हिकमत यह भी है कि तमाम हाज़िरीन व्यक्तिगत रूप से बिना किसी माध्यम के हुज़ूर अनवर

(सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) से सम्मानित हों। इमाम-ए-अजल सुहैली यहाँ इमामत न होने का कारण बताते हैं:

[निचला बॉक्स] [अरबी:] अल्लाह ने खबर दी कि वह और उसके फरिश्ते उन पर दुरूद भेजते हैं (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) और मोमिनों में से हर एक को हुक्म दिया कि उन पर दुरूद भेजें, तो हर शख्स पर यह खुद करना वाजिब हो गया। [उर्दू:] यानी अल्लाह अज़्ज़वजल ने खबर दी कि वह और उसके फरिश्ते महबूब (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) पर दुरूद भेजते हैं और हर मुसलमान को हुक्म फरमाया कि उन पर दुरूद भेजे (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम व अला आलिही व बारिक वसल्लम)। तो हर शख्स पर वाजिब हुआ।

[पाद लेख] 1. सहीह अल-बुखारी, किताबुल जनाइज़, क़दीमी कुतुब खाना कराची, 1/166 2. नवादिरुल उसूल फ़ी मारिफति अहादीथिर रसूल, असल 54 आदि, दार सादिर बेरुत, पृ. 78

فتاوٰی رضویہ جلد نہم

[اوپر والا خانہ] اجابۃ الدعوۃ وتشمیت العاطس - رواہ الشیخان عن ابی ہریرہ رضی اللہ تعالٰی عنہ۔ پیچھے ہونا (۴) دعوت قبول کرنا (۵) چھینک پر تحمید کا جواب دینا۔ اسے بخاری و مسلم نے حضرت ابوہریرہ رضی اللہ تعالٰی عنہ سے روایت کیا، (ت)

[اصل عبارت] عام مومنین کا حق ایسا ہونا آسان کہ حضار سے بعض نے ادا کر دیا ادا ہو گیا مگر مولائے نعمت ہر دو جہاں محمد رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم کا حق عظیم کہ بعد حضرت حق عزوجل اعظم حقوق ہے۔ اگر حضار پر لازم عین ہو، کیا مستبعد معاذ اللہ، اعظم مقاصد مہمہ سے ہر مسلمان حاضر کا بالذات اس شرف اجل و اعظم سے مشرف ہونا ہے۔ ہم اوپر متعدد احادیث بیان کر چکے کہ رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم فرماتے ہیں کہ بندہ مقبول کو بعد وفات پہلا تحفہ بارگاہِ عزت سے ملتا ہے یہ ہے کہ جتنے لوگ اس کے جنازہ کی نماز پڑھتے ہیں اللہ عزوجل سب کی مغفرت فرما دیتا ہے۔ نہ کہ نبی کا جنازہ نہ کہ سید الانبیاء علیہ وعلیہم افضل الصلوٰۃ والثناء کا، اس کے فضل کی مقدار کون قیاس کر سکتا ہے! شریعت محمدیہ علٰی صاحبہا افضل الصلوٰۃ والتحیۃ مسلمانان کے لئے خیر محض و نفعِ خاص لے کر آئی ہے نہ کہ معاذ اللہ انہیں ایسے فضل عظیم سے محروم کرنا تو حکمت شرعیہ اسی کی مقتضیٰ تھی کہ یہاں اجازتِ عامہ دی جائے۔ حجرہ اقدس میں جگہ کتنی اور حضار تیس ہزار، کما ورد فی حدیث جیسا کہ ایک حدیث میں آیا ہے۔ ت) ، اب اگر یہ حکم ہوتا کہ اول بار جو پڑھ لیں پڑھ لیں تو ہزار صحابہ کی محرومی، دوسرے اس پر تنافس شدید واقع ہونا مظنون بلکہ یقینی، جب معلوم ہوتا کہ یہاں بھی مثلِ تمام جنائز ایک ہی بار کی اجازت ملے گی تو ہر ایک یہ چاہتا کہ میں ہی پڑھ لوں، لہذا محمد رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم کا علم عظیم و جود عمیم، مقتضیٰ ہوا کہ اپنے معاملہ میں خود فوج فوج

حاضری کی وصیت فرمادی صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم۔ یہی سرِ جلیل جنازہ اقدس پر جنازہ نہ ہونے کی بھی ایک حکمتِ نفسیہ ہے تاکہ تمام حضار بالذات بلاواسطہ حضور اقدس صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم سے شرفیاب ہوں۔ امام اجل سہیلی یہاں امامت نہ ہونے کی وجہ فرماتے ہیں:

[نیچے والا خانہ] اخبر اللہ انہ و ملئکتہ یصلون علیہ صلی اللہ علیہ وسلم و امر کل واحد من المومنین ان یصلی علیہ فوجب علی کل واحد ان یباشر یعنی اللہ عزوجل نے خبر دی کہ وہ اور اس کے فرشتے محبوب صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم پر درود بھیجتے ہیں اور ہر مسلمان کو حکم فرمایا کہ ان پر درود بھیجے صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم وعلی آلہ وبارک وسلم۔ تو ہر شخص پر واجب ہوا۔

[حواشی] 1 صحیح البخاری کتاب الجنائز قدیمی کتب خانہ کراچی ۱/۱۶۶ 2 نوادر الاصول فی معرفۃ احادیث الرسول الاصل الرابع و الخمسون الخ دار صادر بیروت ص ۷۸

Fatawa Rizvia Volume Nine

“The prayer upon him is from him to him, and the prayer upon him, peace and blessings be upon him, after his death is of this nature[1] - narrated in Sharh al-Muwatta.” Meaning, that blessings should be sent upon the Beloved (peace and blessings be upon him) such that they reach the presence of the Beloved (peace and blessings be upon him) from that person without the mediation of anyone else. O Allah, send blessings, peace, and benedictions upon him, his family, his companions, and his entire Ummah. And the prayer upon the Beloved (peace and blessings be upon him) after his noble passing is also of this category. That is, it should also be without the mediation of anyone. This was narrated in Sharh al-Muwatta.

In short, this point is among the highest special matters, and inevitably, Allama Sayyid Abul Sa'ood Muhammad al-Zuhri stated in the annotations of 'Kanz': “Repeating the prayer upon the Prophet, peace and blessings be upon him, was specific to him[2].” Repeating the funeral prayer upon the Noble Prophet (peace be upon him) was exclusive to him. (T)

Seventhly, it is again warned that the Mujtahid should worry about his own school of thought. Those incidents which are a refutation of his aforementioned school—for instance, praying after a month (as over Umm Sa'd; T) or months and years later (as over the people of al-Baqi'; T) or after eight years had passed (as over the people of Uhud; T)—besides other responses, will be a refutation of himself. Neither is there a chain of transmission for them, as here the demand from them is to prove their claim, and how is that possible for him? And Allah is the Guide to the most upright paths. (And where will this be possible for them? And only God is the one who guides to the truest path. T)

Praise be to Allah! These few exquisite, concise, and brief sentences have not only opened the eyes and ears of the contemporary 'Mujtahids', but by the grace of Allah Almighty, if viewed with an eye of justice, they have completely settled the issue and finalized the debate. All praise is for Allah. Now, by the grace of Allah Almighty, some points and arguments regarding this issue have dawned upon the heart of this humble one through the Divine grace. I shall mention them and then conclude the discourse, which, by the help of Allah Almighty, will support the Hanafi school in the original issue—that is, the prohibition of repeating the funeral prayer—or completely invalidate the method of the new 'Mujtahid' or its universality.

So I say: And with Allah is success and through Him is the attainment to the heights of investigation (So I say, and success is from God alone, and with His help is the reaching of the heights of research. T) Firstly, the funeral prayer is intercession for the deceased in the presence of Allah, the Almighty and Majestic, as we have already presented from the Hadith (as...

[1] Sharh al-Zurqani 'ala Muwatta al-Imam Malik, Chapter on Burying the Deceased, Al-Maktaba al-Tijariyya al-Kubra, Egypt, 2/66. [2] Fath al-Mueen, Section on Prayer over the Deceased, H.M. Saeed Company, Karachi, 1/353. Page 305 of 948

फ़तावा रज़विया जिल्द नहूम (नौवीं)

“उन (नबी) पर दुरूद उन्हीं की ओर से उन्हीं तक है, और उनके विसाल (देहावसान) के बाद उन (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) पर दुरूद इसी श्रेणी से है[1] - इसे शरह अल-मुवत्ता में नक़ल किया गया है।” अर्थात, महबूब (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) पर ऐसे दुरूद भेजें कि बिना किसी और के माध्यम के उस व्यक्ति की ओर से महबूब (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) की बारगाह में पहुँचें। ऐ अल्लाह! उन पर, उनके परिवार, उनके साथियों और उनकी पूरी उम्मत पर दुरूद, सलाम और बरकतें नाज़िल फ़रमा। और महबूब (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) पर विसाल शरीफ़ के बाद नमाज़ (दुरूद) भी इसी क़बील (श्रेणी) से है। यानी इसका भी किसी के माध्यम के बिना होना चाहिए। इसे शरह मुवत्ता में नक़ल किया गया।

संक्षेप में, यह स्थान विशिष्ट उच्च स्थानों में से है और अनिवार्य रूप से अल्लामा सैयद अबुल सऊद मुहम्मद अल-ज़हरी ने हवाशी कंज़ में फ़रमाया: “नबी (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) पर नमाज़ (जनाज़ा) का दोहराव उन्हीं के साथ विशिष्ट था[2]।” नबी अकरम सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम पर नमाज़ का दोहराव उन्हीं के साथ विशिष्ट था। (त)

सातवीं बात, फिर चेतावनी दी जाती है कि मुजतहिद साहब अपने मज़हब की फ़िक्र करें। वह वाकया जो उनके उपरोक्त मसलक का रद (खंडन) हो, उदाहरण के लिए एक महीने बाद नमाज़ पढ़ना (जैसा कि उम्मे साद पर। त) या महीनों और सालों बाद (जैसा कि अहले बक़ीअ पर। त) या आठ साल बीत गए (जैसा कि अहले उहुद पर। त), अन्य उत्तरों के अलावा स्वयं उनका रद होगा। न उनकी सनद, क्योंकि यहाँ उनसे अपनी बात साबित करने की मांग है और यह उनके लिए कहाँ मुमकिन होगा? और अल्लाह ही सबसे सीधे रास्ते की ओर मार्गदर्शन करने वाला है। (और यह उनसे कहाँ हो सकेगा? और ख़ुदा ही सबसे सच्ची राह की हिदायत फ़रमाने वाला है। त)

अल्लाह का शुक्र है! इन कुछ उत्कृष्ट, संक्षिप्त वाक्यों ने न केवल ज़माने के मुजतहिदों की आँखें और कान खोल दिए हैं, बल्कि अल्लाह तआला के फ़ज़्ल से इंसाफ़ की नज़र से देखें तो मसले का फ़ैसला और बहस का निस्तारण पूरी तरह कर दिया। अल्लाह के लिए ही सब तारीफ़ है। अब अल्लाह तआला की तौफ़ीक़ से इस मसले में कुछ नुक़ते और दलीलें फ़ैज़-ए-क़दीर से फ़क़ीर के दिल पर नाज़िल हुई हैं, जिन्हें ज़िक्र करके कलाम ख़त्म करूँगा, जो अल्लाह तआला की मदद से मूल मसले

यानी जनाज़ा दोहराने की मनाही में हनफ़ी मज़हब की ताईद (समर्थन) करेंगे या नए मुजतहिद के तरीके का पूर्णतः खंडन करेंगे।

तो मैं कहता हूँ: और अल्लाह ही की तौफ़ीक़ से और उसी के ज़रिए तहक़ीक़ (अनुसंधान) की ऊँचाइयों तक पहुँचना है। (तो मैं कहता हूँ, और तौफ़ीक़ ख़ुदा ही से है और उसी की मदद से बुलंदी-ए-तहक़ीक़ तक रसाई है। त) पहली बात, नमाज़-ए-जनाज़ा अल्लाह अज़्ज़-ओ-जल्ल की बारगाह में मय्यत की शफ़ाअत (सिफारिश) है जैसा कि हम हदीस से पहले पेश कर चुके हैं (जैसा...

[1] शरह अल-ज़ुरक़ानी अला मुवत्ता अल-इमाम मालिक, मय्यत को दफ़नाने का बयान, अल-मक्तबा अल-तिजारिया अल-कुबरा, मिस्र, 2/66. [2] फ़तह अल-मुईन, मय्यत पर नमाज़ का बयान, एच.एम. सईद कंपनी, कराची, 1/353. पेज 305 / 948

فتاوٰی رضویہ جلد نہم

الصلوٰۃ علیہ منہ الیہ والصلوۃ علیہ صلی اللہ علیہ وسلم بعد موتہ من ھذا القبیل[18]1- نقلہ فی شرح الموطا۔ کہ محبوب صلی اللہ علیہ وسلم پر ایسے درود بھیجے کہ بلا توسط دیگرے اس شخص کی طرف سے محبوب صلی اللہ علیہ وسلم کی بارگاہ میں پہنچے، اللھم صل وسلم وبارک علیہ وآلہ وصحبہ وامتہ اجمعین۔ اور محبوب صلی اللہ علیہ وسلم پر بعد وصال شریف صلوٰۃ بھی اسی قبیل سے ہے۔ یعنی تواس کا بھی بے وساطت احدے ہونا چاہیے۔ اسے شرح موطا میں نقل کیا۔

بالجملہ یہ محل، اعلیٰ مواطنِ خصوص سے ہے ولاجرم علامہ سید ابوالسعود محمد الزہری نے حواشی کنز میں فرمایا: تکرار الصلوٰۃ علی النبي عیلہ الصلوٰۃ والسلام کان مخصوصا بہ[18]2 - نبی اکرم صلی اللہ علیہ وسلم پر تکرارِ نماز ان ہی کے ساتھ مخصوص تھی۔ (ت)

سابعاً پھر تنبیہ کی جاتی ہے کہ مجتہد صاحب اپنے مذہب کی فکر کریں۔ وہ واقعہ جوان کے مسلک مذکور کا رد ہو مثلاً مہینہ بھر بعد نماز پڑھنا کما علی ام سعد (جیسے ام سعد پر۔ ت) یا مہینوں برسوں پیچھے کما علی اھل البقیع (جیسے بقیع والوں پر۔ ت) یا آٹھ برس گزرے کما علی اھل احد (جیسے احد والوں پر۔ ت) علاوہ اور جوابوں کے خود ان کا رد ہو گا۔ نہ ان کی سند، کہ یہاں ان سے مطالبہ اپنا دعای ثابت کرنے کا ہے وانی لہ ذلك واللہ الہادی الٰی اقوم المسالک (اور ان سے یہ کہاں ہو سکے گا؟ اور خدا ہی راست ترین راہ کی ہدایت فرمانے والا ہے۔ ت)

الحمد اللہ! ان چند جمل نفیسہ، مجملہ مختصرہ، نے صرف مجتہدین زمانہ ہی کی آنکھ کان نہ کھولے بلکہ بحمداللہ تعالیٰ بنظر انصاف دیکھئے تو مسئلہ کا فیصلہ بحث کا تصفیہ کمالہ کر دیا۔ وللہ الحمد اب بتوفیق اللہ تعالیٰ بعضے نکات وتمسّکات کے اس مسئلہ میں فیض قدیر سے قلب فقیر پر فائز

ہوئے ذکر کر کے کلام ختم کروں جو بعونہ تعالٰی اصل مسئلہ یعنی ممانعت تکرارِ جنازہ میں تائیدِ مذہب حنفیت کریں یا مسلک طریقہ مجتہدِ جدید کا ابطال کلی خواہ ابطال کلیت۔

فأقول: وبآللہ التوفیق وبہ الوصول الی ذری التحقیق (تو میں کہتا ہوں، اور توفیق خدا ہی سے ہے اور اسی کی مدد سے بلندی تحقیق تک رسائی ہے۔ ت) اولاً نماز جنازہ اللہ عزوجل کی بارگاہ میں میت کی شفاعت ہے کما قد منا علی الحدیث (جیسا

1؎ شرح الزرقانی علی موطا الامام مالک ماجاء فی دفن المیت المکتبۃ التجاریۃ الکبری مصر ۲/۶۶

2؎ فتح المعین فصل فی الصلوٰۃ علی المیت ایچ ایم سعید کمپنی کراچی ۱/۳۵۳ Page 305 of 948

Fatawa Razawiyya Volume 9

(That we have presented from Hadith-t) And Allah Almighty says: "Who is it that can intercede with Him except by His permission?" (In the manuscript, 'Alif' is not mentioned). And is the permission for the mentioned situation established anywhere, or from the verbal, practical, or tacit permission of the Master of Messengers (peace and blessings of Allah be upon him)? And "whoever claims [something], the burden of proof is on him" (T). Truly, that 'Mujtahid' sir, without proof of Divine permission, showed audacity and fearlessness in intercession in the court of dignity, and put himself and other Muslims in this calamity, and took a share from [the verse]: "And whoever intercedes with an evil intercession will have a portion thereof" (T).

This is a proof that if pursued thoroughly, it leads to the explicit establishment of the school of thought and negates the statement of everyone who opposes it. So, the search for the explicit [truth] is your responsibility.

This is such a proof that if its depths are reached, it will lead to the explicit confirmation of the school of thought and refute the statement of every opponent; so it is your duty to seek clarity. (T)

Secondly, it is narrated in Musnad Imam Ahmad and Sunan Abi Dawud from Hazrat Abdullah bin Umar (may Allah be pleased with them both) that the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) says:

Do not offer the same prayer twice in one day.

Do not pray any prayer twice in one day.

Also, it is in Hadith:

"One should not pray the like of a prayer after it." Narrated by Abu Bakr bin Abi Shaybah from the Commander of the Faithful Umar (may Allah be pleased with him) as his statement, and from the apparent words of Imam Muhammad it seems it is from the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him). Imam Ibn al-Humam says: Imam Muhammad knows more about this than us.

No prayer should be prayed similar to it after it has been performed. Abu Bakr bin Abi Shaybah narrated this from Commander of the Faithful Umar (may Allah be pleased with him) as his own saying, and from the outward words of Imam Muhammad, it appears to be a saying of the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him). Imam Ibn al-Humam says: Imam Muhammad has more knowledge of this than us (T).

1 Quran 4/85 2 Musnad Imam Ahmad bin Hanbal from Abdullah bin Umar (RA), Dar al-Fikr Beirut 2/19; Sunan Abi Dawud, Chapter: If one prays in congregation then finds another congregation, Aftab-e-Alam Press Lahore 1/86. 3 Musannaf Ibn Abi Shaybah, Chapter on those who disliked praying the like of a prayer after it, Idarat al-Qur'an wal-Ulum al-Islamiyya Karachi 2/206.

फ़तवा रिज़विया जिल्द नहुम (9)

(जैसा कि हम हदीस से पेश कर चुके हैं -त) और अल्लाह अज़्ज़वजल फ़रमाता है: "कौन है जो अल्लाह के यहाँ शिफाअत (सिफारिश) करे मगर उसके इज़्न (अनुमति) से।" (नुस्ख़े में 'अलिफ़' का ज़िक्र नहीं है)। और मज़कूरा सूरत का इज़्न कहीं साबित है या सय्यदुल मुरसलीन (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) के इज़्ने क़ौली या.फ़ेली या तक़रीरी से? "और जो दावा करे, दलील उसके ज़िम्मे है" (त)। यक़ीनन उन मुज्तहिद साहब ने इलाही इज़्न के सुबूत के बिना बारगाहे इज़्ज़त में शिफाअत पर जुरअत और बेबाकी दिखाई और अपने साथ दूसरे मुसलमानों को भी इस मुसीबत में डाला और "जो कोई बुरी सिफारिश करे, उसे भी उसका हिस्सा मिलेगा" (त) से हिस्सा लिया-दिया।

यह एक ऐसी दलील है कि अगर इसकी गहराई तक जाएँ तो यह मज़हब की स्पष्ट पुष्टि तक पहुँचाती है और हर मुख़ालिफ़ (विरोधी) के कथन का खंडन करती है। तो स्पष्ट सत्य की तलाश करना तुम्हारी ज़िम्मेदारी है।

यह ऐसी दलील है कि अगर इसकी तह तक जाएँ तो स्पष्ट रूप से मज़हब के प्रमाण तक पहुँचाए और हर मुख़ालिफ़ के क़ौल की तरदीद (खंडन) कर दे, तो स्पष्ट की तलाश तुम्हारे ज़िम्मे है। (त)

दूसरे, मुसनद इमाम अहमद और सुनन अबी दाऊद में हज़रत अब्दुल्ला बिन उमर (रज़ियल्लाहु अन्हुमा) से रिवायत है कि रसूलुल्लाह (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) फ़रमाते हैं:

एक दिन में एक ही नमाज़ दो बार न पढ़ो। कोई नमाज़ एक दिन में दो बार न पढ़ो।

साथ ही हदीस में है:

"किसी नमाज़ के बाद उसके जैसी (दुबारा) न पढ़ी जाए।" इसे अबूबक्र बिन अबी शैबा ने अमीरुल मोमिनीन उमर (रज़ियल्लाहु अन्हु) से उनके क़ौल के तौर पर नक़ल किया है, और इमाम मुहम्मद के ज़ाहिरी कलाम से मालूम होता है कि यह नबी (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) का इर्शाद है। इमाम इब्नुल हुमाम फ़रमाते हैं: इमाम मुहम्मद हमसे ज़्यादा इसका इल्म रखते हैं।

किसी नमाज़ के बाद उसके जैसी न पढ़ी जाए। इसे अबूबक्र बिन अबी शैबा ने अमीरुल मोमिनीन उमर रज़ियल्लाहु अन्हु से उनके क़ौल की हैसियत से नक़ल किया, और इमाम मुहम्मद के ज़ाहिर कलाम से मालूम होता है कि यह नबी सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम का इर्शाद है। इमाम इब्नुल हुमाम फ़रमाते हैं: इमाम मुहम्मद हमसे ज़्यादा इसका इल्म रखते हैं (त)।

1 अल-क़ुरआन 4/85 2 मुसनद इमाम अहमद बिन हंबल अज़ अब्दुल्ला बिन उमर (रज़ियल्लाहु अन्हु), दारुल फ़िक्र बैरुत 2/19; सुनन अबी दाऊद, बाब: जब जमाअत से नमाज़ पढ़ ले फिर जमाअत पाए, आफ़ताबे आलम प्रेस लाहौर 1/86। 3 मुसन्निफ़ इब्न अबी शैबा, उन लोगों के बयान में जिन्होंने नमाज़ के बाद वैसी ही नमाज़ पढ़ने को नापसंद किया, इदारातुल क़ुरआन वल-उलूम अल-इस्लामिया कराची 2/206।

فتاوٰی رضویہ جلد نہم

کہ حدیث سے اس کو ہم پیش کر آئے_ت) اور اللہ عزوجل فرماتا ہے: مَنْ ذَا الَّذِیْ یَشْفَعُ عِنْدَہٗٓ اِلَّا بِاِذْنِہٖ کون ہے جو اللہ کے یہاں شفاعت کرے مگر اس کے اذن سے۔ (نسخہ میں الف مذکور نہیں) اور صورت مذکورہ کا اذن کہیں ثابت ہو یا سید المرسلین صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم کے اذن قولی یا فعلی یا تقریری سے، ومن ادعی فعلیہ البیان (جو دعوٰی کرے دلیل اس کے ذمہ_ت) اجرم ان مجتہد صاحب نے بے ثبوت اذن الٰہی بارگاہِ عزت میں شفاعت پر جرات و بیباکی اور اپنے ساتھ اور مسلمان کو بھی اس بلا میں ڈالا اور مَنْ یَّشْفَعْ شَفَاعَۃً سَیِّئَۃً یَّکُنْ لَّہٗ کِفْلٌ مِّنْھَا (جو کوئی بری سفارش کرے اسے بھی اس کا حصہ ملے _ت) سے حصہ لیا دیا،

وھذا دلیل ان استقصٰی ادی الی اثبات یہ ایسی دلیل ہے کہ اگر اسکی تہ تک جائیں تو صراحۃً المذھب تادیۃ صریحۃ و نفی قول کل من اثباتِ مذہب تک پہنچائے اور ہر مخالف کے قول کی تردید خالف فعلیک بتطبیب الصریحۃ۔ کردے، تو صریح کی تلاش تمہارے ذمے ہے۔(ت)

ثانیاً مسند امام احمد و سنن ابی داؤد میں حضرت عبداللہ بن عمر رضی اللہ تعالٰی عنہما سے مروی رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم فرماتے ہیں :

لا تصلوا صلوۃ فی یوم مرتین۔ کوئی نماز ایک دن میں دو بار نہ پڑھو

نیز حدیث میں ہے:

لا یصلی بعد صلاۃ مثلھا۔ رواہ ابوبکر بن ابی شیبۃ عن امیرالمؤمنین عمر رضی اللہ تعالٰی عنہ من قولہ و ظاہر کلام الامام محمد انہ عن النبی صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم قال الامام ابن الھمام و محمد اعلم بذلک منا۔

کسی نماز کے بعد اس کے مثل نہ پڑھی جائے۔ اسے ابوبکر بن ابی شیبہ نے امیر المومنین عمر رضی اللہ عنہ سے ان کے قول کی حیثیت سے نقل کیا، اور امام محمد کے ظاہر کلام سے معلوم ہوتا ہے کہ یہ نبی صلی اللہ علیہ وسلم کا ارشاد ہے۔ امام ابن الہمام فرماتے ہیں : امام محمد ہم سے زیادہ اس کا علم رکھتے ہیں(ت)

1 القرآن ۸۵/۴ 2 مسند امام احمد بن حنبل از عبداللہ بن عمر رضی اللہ تعالٰی عنہ دارالفکر بیروت ۱۹/۲، سنن ابی داؤد باب اذا صلی فی جماعۃ ثم ادرک جماعۃ آفتاب عالم پریس لاہور ۸۶/۱ 3 مصنف ابن ابی شیبہ من کرہ ان یصلی بعد الصلوۃ مثلھا ادارۃ القرآن والعلوم اسلامیہ کراچی ۲۰۶/۲

Fatawa Razviya, Volume 9

I say: These Hadiths also clearly indicate the negation of repetition. The second Hadith is general and absolute, and the restriction 'in a day' in the first one is from the perspective that, for example, the repetition of Dhuhr prayers will occur by itself; yesterday's Dhuhr and today's, because their cause is time. When time recurs, the prayer recurs. However, it will not be repeated for the same cause, i.e., at the same time. The cause of the funeral prayer is a deceased Muslim. When the deceased is recurring, the prayer will be recurring, but it cannot be repeated for the same deceased person.

Thirdly, Abu Bakr bin Abi Shaybah, the teacher of Imam Bukhari and Muslim, narrated:

"On the authority of Salih, the freed slave of al-Taw'amah, from one who met Abu Bakr and Umar (may Allah be pleased with them both), that when the prayer area became crowded for them, they would leave and not pray the funeral prayer in the mosque."[1]

Meaning, it was the noble habit of Abu Bakr al-Siddiq, Umar al-Farooq, and other Sahaba (may Allah be pleased with them) that when the prayer area for the funeral prayer became congested and they found no space, they would return and not pray the funeral prayer in the mosque.

I say: The great virtues of the funeral prayer were not hidden from al-Siddiq, al-Farooq, and the Sahaba (may Allah be pleased with them), nor could it be expected that they would come for such a great virtue and then, despite having the power, leave it and go. If repeating the funeral prayer were permissible, what harm would a crowded prayer area cause? What was the reason for leaving? They could have formed a second congregation after the first people had finished.

Fourthly, on the authority of Abdullah bin Salam, when he missed the prayer for Umar (may Allah be pleased with him), he said: "If I have been preceded in the prayer, I have not been preceded in the supplication for him."[2] Mentioned by al-Sayyid al-Azhari in Fath-ul-Allah al-Mu'een. This Hadith was in my memory and the reliance on it was in my mind until I saw that al-Sayyid al-Azhari had used it as evidence, so I attributed it to him. At the moment, no other reference for it comes to my mind. (T)

Meaning, when Abdullah bin Salam (may Allah be pleased with him) arrived after the funeral prayer for Amir al-Mu'minin Farooq-e-Azam (may Allah be pleased with him) had already been performed, he said: "There is no restriction on supplication; I will pray for him." This was mentioned by Sayyid Azhari in Fath-ul-Allah al-Mu'een. I remembered this Hadith and had the idea of using it as evidence until I saw that Sayyid Azhari had also reasoned from it, so I attributed it to him, and at that time, no other reference for it was in my mind. (T)

[1] Al-Musannaf of Ibn Abi Shaybah, Chapter on those who disliked the funeral prayer in the mosque, Idarat al-Qur'an wal-Ulum al-Islamiyyah, Karachi, 3/365. [2] Fath-ul-Allah al-Mu'een, Chapter on the Funeral Prayer, H.M. Saeed Company, Karachi, 1/353.

फ़तावा रज़विया, खंड 9

मैं कहता हूँ: ये हदीसें भी स्पष्ट रूप से पुनरावृत्ति (तकरार) के निषेध पर संकेत करती हैं। दूसरी हदीस सामान्य और निरपेक्ष है, और पहली में 'एक दिन में' की शर्त इस दृष्टि से है कि उदाहरण के लिए, ज़ुहर की नमाज़ों की पुनरावृत्ति तो स्वयं ही होगी; कल की ज़ुहर और आज की, क्योंकि उनका कारण समय है। जब समय दोबारा आया, नमाज़ दोबारा आई। लेकिन एक ही कारण यानी एक ही समय में पुनरावृत्ति नहीं होगी। जनाज़े की नमाज़ का कारण एक मुस्लिम मृतक है। जब मृतक अनेक होंगे, तो नमाज़ भी अनेक बार होगी, लेकिन एक ही मृतक पर नमाज़ की पुनरावृत्ति नहीं हो सकती।

तीसरे, इमाम बुखारी और मुस्लिम के उस्ताद अबू बक्र बिन अबी शैबा ने रिवायत की:

"सालिह, तवामा के आज़ाद किए हुए गुलाम से रिवायत है, उन्होंने उससे रिवायत की जिसने अबू बक्र और उमर (अल्लाह उन दोनों से प्रसन्न हो) को पाया, कि जब जनाज़े की जगह उनके लिए तंग हो जाती, तो वे वापस चले जाते और मस्जिद में जनाज़े की नमाज़ नहीं पढ़ते थे।"[1]

अर्थात, अबू बक्र सिद्दीक़, उमर फारूक और अन्य सहाबा (अल्लाह उन सब से प्रसन्न हो) की यह महान आदत थी कि जब जनाज़े की नमाज़ में जगह कम होती और वे उसमें गुंजाइश न पाते, तो वापस चले जाते और मस्जिद में जनाज़े की नमाज़ नहीं पढ़ते थे।

मैं कहता हूँ: जनाज़े की नमाज़ के जो महान गुण हैं, वे सिद्दीक़, फारूक और सहाबा (अल्लाह उन सब से प्रसन्न हो) से छिपे नहीं थे, और न ही उनसे यह अपेक्षा की जा सकती थी कि वे इतने बड़े पुण्य के लिए आएँ और फिर सामर्थ्य होने के बावजूद उसे छोड़कर चले जाएँ। यदि जनाज़े की नमाज़ दोबारा पढ़ना जायज़ होता, तो जगह की कमी से क्या हर्ज होता? वापस जाने का क्या कारण था? जब पहले लोग पढ़ चुके होते, उसके बाद वे दूसरी जमाअत कर लेते।

चौथे, अब्दुल्लाह बिन सलाम से रिवायत है कि जब उनकी उमर (अल्लाह उनसे प्रसन्न हो) के जनाज़े की नमाज़ छूट गई, तो उन्होंने कहा: "यदि नमाज़ मुझ से पहले हो गई, तो उनके लिए दुआ करने से मैं नहीं चूका हूँ।"[2] इसका उल्लेख सैयद अज़हरी ने 'फ़त्हुल-अल्लाह अल-मुईन' में किया है। यह हदीस मुझे याद थी और इससे प्रमाण लेने का विचार मेरे मन में था, यहाँ तक कि मैंने देखा कि सैयद अज़हरी ने इससे दलील ली है, तो मैंने इसे उन्हीं की ओर संबंधित किया। उस समय इसके अलावा कोई और संदर्भ मेरे ध्यान में नहीं था। (त)

अर्थात, जब अब्दुल्लाह बिन सलाम (अल्लाह उनसे प्रसन्न हो) पहुँचे और अमीरुल मोमिनीन फारूक-ए-आज़म (अल्लाह उनसे प्रसन्न हो) के पवित्र जनाज़े की नमाज़ उनके आने से पहले हो चुकी थी, तो उन्होंने कहा कि दुआ करने पर तो कोई पाबंदी नहीं है, मैं उनके लिए दुआ करूँगा। इसे सैयद अज़हरी ने 'फ़त्हुल-अल्लाह अल-मुईन' में ज़िक्र किया है। यह हदीस मुझे याद थी और इससे प्रमाण का विचार मेरे ज़हन में था यहाँ तक कि मैंने देखा कि सैयद अज़हरी ने इससे दलील दी है तो मैंने इसे उन्हीं की तरफ मन्सूब कर दिया और उस समय इसका कोई और हवाला मेरे ज़हन में नहीं था। (त)

[1] अल-मुसन्निफ़ इब्न अबी शैबा, मस्जिद में जनाज़े की नमाज़ को नापसंद करने वालों का अध्याय, इदारतुल कुरआन वल उलूमल इस्लामिया, कराची, 3/365। [2] फ़त्हुल-अल्लाह अल-मुईन, मय्यित पर नमाज़ का अध्याय, एच. एम. सईद कंपनी, कराची, 1/353।

فتاوٰی رضویہ، جلد نہم

اقول: یہ حدیثیں بھی نفی تکرار پر صریح دال ہیں، حدیث ثانی تو عام مطلق ہے اور اول میں فی یوم کی قید اس نظر سے کہ مثلاً ظہر کی نمازوں کی تکرار سے تو آپ ہی مکرر ہوگی، کل کی ظہر اور آج کی اور کہ ان کا سبب وقت ہے، جب وقت دوبارہ آیا دوبارہ آئی، مگر ایک ہی سبب یعنی ایک ہی وقت میں مکرر نہ ہوگی، نماز جنازہ کا سبب مسلم میت ہے۔ جب میت مکرر ہو نماز مکرر ہوگی مگر ایک ہی میت پر مکرر نہیں ہوسکتی۔

ثالثاً ابوبکر بن ابی شیبہ استاد امام بخاری ومسلم نے روایت کی:

عن صالح مولٰی التوأمة عمن ادرك ابابكر و عمر رضی اللہ تعالٰی عنهما انهم كانوا اذا تضايق بهم المصلی انصرفوا ولم يصلوا على الجنازة فی المسجد۔[1]

یعنی ابوبکر صدیق وعمر فاروق ودیگر صحابہ کرام رضی اللہ تعالٰی عنہم کی عادت کریمہ تھی کہ جب نماز جنازہ میں مصلٰی تنگی کرتا اس میں گنجائش نہ پاتے واپس جاتے اور نماز جنازہ مسجد میں نہ پڑھتے۔

اقول: نماز جنازہ کے جو فضائل جلیلہ ہیں صدیق وفاروق وصحابہ رضی اللہ تعالٰی علیہم پر مخفی نہ تھے نہ ان سے توقع کہ ایسے فضل جلیل کے لئے تشریف بھی لائیں اور پھر باوصف قدرت اسے چھوڑ کر چلے جائیں، اگر نماز جنازہ دوبارہ جائز ہوتی تو تنگی مصلٰی کیا حرج کرتی واپس جانے کی کیا وجہ تھی۔ جب پہلے لوگ پڑھ چکے اس کے بعد دوسری جماعت فرما لیتے۔

رابعاً عن عبداللہ بن سلام لما فاتتہ الصلوۃ علی عمر رضی اللہ تعالیٰ عنہ قال ان سبقت بالصلوۃ فلم اسبق بالدعاء لہ[2]۔ ذکرہ السید الازھری فی فتح اللہ المعین وقد کان ہٰذا الحدیث فی ذکری و الاستنادبہ فی خاطری حتی رأیت الازھری تمسك بہ فاسندتہ الیہ ولم یحضرنی الان من غیرہ۔

یعنی عبداللہ بن سلام رضی اللہ تعالیٰ عنہ کو جب امیر المومنین فاروق اعظم رضی اللہ تعالیٰ عنہ کے جنازہ مبارک پر نماز میرے آنے سے پہلے ہوچکی تو کہا کہ دعا کی بندش تو نہیں میں ان کے لئے دعا کروں گا۔ اسے فتح اللہ المعین میں سید ازہری نے ذکر کیا، یہ حدیث مجھے یاد تھی اور اس سے استناد میرے ذہن میں تھا یہاں تک کہ میں نے دیکھا کہ سید ازہری نے اس سے استدلال کیا ہے تو میں نے انہی کی طرف اس کی نسبت کی اور بروقت اس کا کوئی اور حوالہ میرے ذہن میں نہیں (ت)

[1] المصنف لابن ابی شیبہ من کرہ الصلوۃ علی الجنائز فی المسجد ادارۃ القران والعلوم الاسلامیہ کراچی ۳۶۵/۳ [2] فتح اللہ المعین فصل فی الصلوۃ علی المیت ایچ ایم سعید کمپنی کراچی ۱/ ۳۵۳

Fatawa Razawiyyah Volume Nine

Fifthly, Shah Abdul Aziz writes in Tuhfa Ithna Ashariyah:

[Table Header: Historical Narration and Urdu Translation] In some narrations, it is mentioned that the next day, Abu Bakr Siddiq, Umar Farooq, and other companions came to the house of Ali al-Murtaza for condolence. They complained, 'Why didn't you inform us so we could have the honor of attending and offering the funeral prayer?' Ali al-Murtaza replied, 'Fatimah (may Allah be pleased with her) had willed that when I pass away from this world, bury me at night so that no non-mahram's eye falls upon my funeral. Therefore, I acted according to her will.' This is a well-known narration. (T)

I say: From these narrations, it is also clear that Siddiq, Farooq, Abdullah bin Salam, and other senior companions (may Allah be pleased with them) considered repeating the funeral prayer impermissible. Otherwise, what would 'missing out' mean, and what would be the occasion for complaint and regret?

Sixthly, Abu Bakr bin Abi Shaybah in his 'Musannaf' and the great Imam Abu Ja'far al-Tahawi in 'Sharh Ma'ani al-Athar' narrate from Abdullah bin Abbas (may Allah be pleased with them) as a mauquf (suspended) narration, and Ibn Adi in 'al-Kamil' narrates from Ibn Abbas on the authority of the Noble Prophet (peace and blessings of Allah be upon him):

[Table Header: Arabic Text and Urdu Translation] Arabic: And this is the hadith of al-Tahawi via the route of Umar bin Ayyub al-Mawsili from Mughirah bin Ziyad from Ata from Ibn Abbas (may Allah be pleased with them) regarding a man who is surprised by a funeral procession while he is not in a state of wudu (ablution). He said: He should perform tayammum (dry ablution) and offer the prayer over it. Urdu: (And this is the hadith of Imam Tahawi, whose chain of narration is: Umar bin Ayyub al-Mawsili, Mughirah bin Ziyad, Ata, from Ibn Abbas may Allah be pleased with them both. -T). Meaning: A person who suddenly comes across a funeral and does not have wudu should perform tayammum and offer the prayer.

The narration of Ibn Abi Shaybah is: Arabic: We were told by Umar bin Ayyub al-Mawsili from Mughirah. Urdu: (Umar bin Ayyub al-Mawsili narrated to us from Mughirah bin Ziyad).

1. Tuhfa Ithna Ashariyah, Chapter 10, Suhail Academy Lahore, p. 281.

2. Sharh Ma'ani al-Athar, Chapter on Junub and Menstruating Women, H.M. Saeed Company Karachi, 1/231.

फ़तावा रज़विया खंड नौवाँ

पाँचवें, शाह अब्दुल अज़ीज़ तोहफ़ा इस्ना अशरिया में लिखते हैं:

[तालिका शीर्षक: ऐतिहासिक विवरण और उर्दू अनुवाद] कुछ उल्लेखों में आया है कि अगले दिन हज़रत अबू बक्र सिद्दीक़ और उमर फ़ारूक़ और अन्य सहाबा हज़रत अली मुर्तज़ा के घर शोक संवेदना व्यक्त करने आए और शिकायत की कि हमें सूचना क्यों नहीं दी ताकि हम नमाज़ और उपस्थिति का गौरव प्राप्त कर सकें। अली मुर्तज़ा ने फ़रमाया: फ़ातिमा (रज़ियल्लाहु अन्हा) ने वसीयत की थी कि जब मैं दुनिया से जाऊँ तो मुझे रात में दफ़न करना ताकि किसी गैर-महरम की नज़र मेरे जनाज़े पर न पड़े, तो मैंने उनकी वसीयत के अनुसार कार्य किया। यह एक प्रसिद्ध वर्णन है। (त)

मैं कहता हूँ: इन उल्लेखों से यह भी स्पष्ट है कि सिद्दीक़ और फ़ारूक़ और अब्दुल्ला बिन सलाम और अन्य बड़े सहाबा (रज़ियल्लाहु अन्हुम) दोबारा जनाज़े की नमाज़ को नाजायज़ समझते थे, अन्यथा 'छूट जाने' का क्या अर्थ होता, और शिकायत और अफ़सोस का क्या अवसर होता।

छठा, अबू बक्र बिन अबी शैबा अपनी 'मुसन्नफ़' में और महान इमाम अबू जाफ़र तहावी 'शरह मआनी अल-आसार' में हज़रत अब्दुल्ला बिन अब्बास (रज़ियल्लाहु अन्हुमा) से मौक़ूफ़ के तौर पर और इब्न अदी 'अल-कामिल' में इब्न अब्बास के हवाले से हुज़ूर सैय्यद आलम (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) से वर्णन करते हैं:

[तालिका शीर्षक: अरबी पाठ और उर्दू अनुवाद] अरबी: और यह तहावी की हदीस है जो उमर बिन अय्यूब मूसली के माध्यम से मुग़ीरा बिन ज़ियाद से, अता से, इब्न अब्बास (रज़ियल्लाहु अन्हुमा) से उस व्यक्ति के बारे में है जिसके सामने अचानक जनाज़ा आ जाए और वह वज़ू की स्थिति में न हो। उन्होंने कहा: वह तयम्मुम करे और उस पर नमाज़ पढ़े। उर्दू: (और यह इमाम तहावी की हदीस है जिसकी सनद यह है: उमर बिन अय्यूब मूसली, मुग़ीरा बिन ज़ियाद, अता, इब्न अब्बास रज़ियल्लाहु अन्हुमा से। -त)। यानी जिस व्यक्ति के पास अचानक जनाज़ा आ जाए और उसका वज़ू न हो, वह तयम्मुम करके नमाज़ पढ़ ले।

इब्न अबी शैबा का वर्णन यह है: अरबी: हमें उमर बिन अय्यूब मूसली ने मुग़ीरा से बताया। उर्दू: (हमें उमर बिन अय्यूब मूसली ने मुग़ीरा बिन ज़ियाद से बताया)।

1. तोहफ़ा इस्ना अशरिया, अध्याय 10, सुहैल अकादमी लाहौर, पृ. 281।

2. शरह मआनी अल-आसार, जुनुब और माहवारी का अध्याय, एच.एम. सईद कंपनी कराची, 1/231।

पृष्ठ 308/948

فتاوٰی رضویہ جلد نہم

خامسا شاہ عبدالعزیز صاحب تحفہ اثناء عشریہ میں لکھتے ہیں:

در بعض روایات آمدہ کہ روز دیگر ابوبکر صدیق و عمر فاروق و دیگر اصحاب بخانہ علی مرتضٰی بجہت تعزیت آمدند شکایت کردند کہ چرا مارا خبر نہ کردی تاشرف نماز وحضوری دریافتم۔ علی مرتضٰی گفت فاطمہ رضی اللہ تعالٰی عنہا وصیت کردہ بود کہ چوں از دنیا بروم مرا بہ شب دفن کنی تا چشم نامحرم بر جنازہ من نیفتد، پس بموجب وصیت وے عمل کردم۔ این ست روایت مشہور۔ | بعض روایات میں آیا ہے کہ دوسرے دن حضرات ابوبکر صدیق و عمر فاروق و دیگر صحابہ حضرت علی مرتضٰی کے گھر تعزیت کے لئے آئے اور شکایت فرمائی کہ ہمیں خبر کیوں نہ دی کہ ہم نماز اور حاضری کا شرف حاصل کرتے علی مرتضٰی نے فرمایا: فاطمہ رضی اللہ تعالٰی عنہا نے وصیت کی تھی کہ جب میں دنیا سے جاؤں تو مجھے رات میں دفن کریں تاکہ میرے جنازے پر نامحرم کی نظر نہ پڑے، تو میں نے ان کی وصیت کے مطابق عمل کیا۔ یہ ہے روایت مشہور۔ (ت)

اقول: ان روایات سے بھی روشن کہ صدیق و فاروق و عبد اللہ بن سلام و دیگر اصحاب کبار رضی اللہ تعالٰی عنہم دوبارہ نمازِ جنازہ ناجائز جانتے ورنہ فوت ہونا کیا معنی، اور شکایت و افسوس کا کیا محل۔ سادسا ابوبکر بن ابی شیبہ اپنی مصنف اور امام اجل ابو جعفر طحاوی شرح معانی الآثار میں حضرت عبداللہ بن عباس رضی اللہ تعالٰی عنہما سے موقوفاً اور ابن عدی کامل میں بروایت ابن عباس حضور سید عالم صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم سے راوی:

وهذا حديث الطحاوي بطريق عمر بن ايوب الموصلي عن مغيره بن زياد عن عطاء بن ابن عباس رضى الله تعالى عنهما في الرجل تفجأه الجنازة وهو على غير وضوء قال يتيمم ويصلى عليها۔ | (اور یہ امام طحاوی کی حدیث ہے جس کی سند یہ ہے عمر بن ایوب موصلی، مغیرہ بن زیاد، عطاء، ابن عباس رضی اللہ تعالیٰ عنہما سے۔ت) یعنی جس شخص کے پاس ناگاہ جنازہ آجائے اور اُسے وضو نہ ہو وہ تیمم کرکے نماز پڑھ لے۔

ابن ابی شیبہ کی روایت یہ ہے: حدثنا عمر بن ایوب الموصلي عن مغیرہ | (ہم سے عمر بن ایوب موصلی نے مغیرہ بن زیاد سے

1 تحفہ اثنا عشریہ باب دہم سہیل اکیڈمی لاہور ص ۲۸۱ 2 شرح معانی الآثار باب ذکر الجنب والحائض ایچ ایم سعید کمپنی کراچی ۱/ ۲۳۱

Volume 9 | Fatawa Razviyah

From Bin Ziyad, from Ata, from Ibn Abbas, who said: If you fear missing the funeral prayer and you are not in a state of ablution (wudu), then perform dry ablution (tayammum) and pray.[1] | Narrated from Ata, from Hazrat Ibn Abbas, he said: (Translation) When you fear missing the funeral prayer and you do not have wudu, then perform tayammum and pray.

Ibn Adi's hadith is as follows: From Mu'afi bin Imran, from Mughirah bin Ziyad, from Ata, from Ibn Abbas, from the Prophet (may Allah the Almighty bless him and grant him peace), who said: "If a funeral suddenly comes before you and you are not in a state of wudu, then perform tayammum."[2] Ibn Adi said: This Marfu' (tradition traced back to the Prophet) is not preserved, and the Hadith is Mauquf (stopped at) Ibn Abbas.[3] | (Mu'afi bin Imran narrates from Mughirah bin Ziyad, who narrates from Ata, who narrates from Ibn Abbas, who narrates from the Prophet (SAW). Meaning, the Messenger of Allah (SAW) said: "When a funeral suddenly comes before you and you do not have wudu, perform tayammum." Ibn Adi said: This Marfu' is not preserved, and the hadith is Mauquf on Ibn Abbas.)

Darqutni and Bayhaqi narrate from Hazrat Abdullah bin Umar (may Allah be pleased with them both): That he came to a funeral while he was not in a state of wudu, so he performed tayammum and then prayed over it.[4] | Meaning, a funeral came to him while he did not have wudu, so he performed tayammum and joined the prayer.

Similarly, Ibn Abi Shaybah and Imam Tahawi narrated with numerous chains from Imam Hasan Basri, Imam Ibrahim Nakha'i, Abu Bakr from Ikrimah (the student of Ibn Abbas), and Tahawi narrated from Ata bin Abi Rabah, 'Amir, Ibn Shihab al-Zuhri, and Hakam—seven Imams from the Tabi'un. If repeating the funeral prayer were permissible, what would "missing" mean? And how would tayammum be permissible for a healthy person when water is available? While the Lord, the Mighty and Majestic, says: "And if you find no water, then perform tayammum."[5]

1. Al-Musannaf of Ibn Abi Shaybah, regarding a man fearing he will miss the prayer for a funeral, Idarat al-Qur'an Karachi, 3/305.
2. Al-Kamil of Ibn Adi, biography of Yaman bin Sa'id al-Musabbihi, Dar al-Fikr Beirut, 7/2640.
3. Al-Kamil of Ibn Adi, biography of Yaman bin Sa'id al-Musabbihi, Dar al-Fikr Beirut, 7/2640-2642.

4. Sunan al-Darqutni, chapter on wudu and tayammum from the vessels of polytheists, Nashr al-Sunnah Multan, 1/202.
5. Al-Qur'an 4/43.

बिन ज़ियाद से, अता से, इब्न अब्बास से रिवायत है, उन्होंने कहा: यदि आपको जनाज़े की नमाज़ छूट जाने का डर हो और आप वज़ू की स्थिति में न हों, तो तयम्मुम करें और नमाज़ पढ़ें।[1] | उन्होंने अता से, उन्होंने हज़रत इब्न अब्बास से रिवायत की, उन्होंने फरमाया: (अनुवाद) जब आपको जनाज़े की नमाज़ के छूट जाने की आशंका हो और वज़ू न हो, तो तयम्मुम करके नमाज़ पढ़ लें।

इब्न अदी की हदीस इस प्रकार है: मुआफ़ी बिन इमरान से, मुग़ीराह बिन ज़ियाद से, अता से, इब्न अब्बास से, नबी (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) से रिवायत है, उन्होंने फरमाया: "जब अचानक तुम्हारे सामने जनाज़ा आ जाए और तुम्हारे पास वज़ू न हो, तो तयम्मुम कर लो।"[2] इब्न अदी ने कहा: यह मरफ़ू (पैगंबर तक पहुँची हुई) गैर-महफ़ूज़ है, और हदीस इब्न अब्बास पर मौक़ूफ़ (रुकी हुई) है।[3] | (मुआफ़ी बिन इमरान, मुग़ीराह बिन ज़ियाद से, वह अता से, वह इब्न अब्बास से, वह नबी सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम से रावी हैं। यानी रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने फरमाया: "जब अचानक तेरे सामने जनाज़ा आ जाए और तुझे वज़ू न हो, तो तयम्मुम कर ले", इब्न अदी ने कहा यह मरफ़ू गैर-महफ़ूज़ है और हदीस हज़रत इब्न अब्बास पर मौक़ूफ़ है।)

दारक़ुत्नी और बैहक़ी हज़रत अब्दुल्लाह बिन उमर (रज़ियल्लाहु अन्हुमा) से रावी हैं: कि वह एक जनाज़े पर आए और वह वज़ू की स्थिति में नहीं थे, तो उन्होंने तयम्मुम किया और फिर उस पर नमाज़ पढ़ी।[4] | यानी उनके पास एक जनाज़ा आया, उस समय वज़ू नहीं था, तयम्मुम करके नमाज़ में शरीक हो गए।

इसी के समान इब्न अबी शैबा और इमाम तहावी ने कई सनदों के साथ इमाम हसन बसरी, इमाम इब्राहीम नख़ई, अबू बक्र ने इक़रमा (इब्न अब्बास के छात्र) से, और तहावी ने अता बिन अबी रबाह, आमिर, इब्न शिहाब ज़ुहरी और हकम से—सात ताबेई इमामों से रिवायत की है। यदि जनाज़े की नमाज़ को दोहराना जायज़ होता, तो 'छूटने' का क्या अर्थ होता? और पानी उपलब्ध होने पर एक स्वस्थ व्यक्ति के लिए तयम्मुम कैसे जायज़ होता? जबकि रब्ब-ए-जल्ल व अला फरमाता है: "और यदि तुम्हें पानी न मिले, तो तयम्मुम कर लो।"[5]

1. अल-मुसन्नफ़ इब्न अबी शैबा, उस आदमी के बारे में जिसे जनाज़े की नमाज़ छूट जाने का डर हो, इदारातुल क़ुरआन कराची 3/305

2. अल-कामिल इब्न अदी, यमान बिन सईद अल-मुसब्बिही की जीवनी, दारुल फ़िक्र बेरूत 7/2640
3. अल-कामिल इब्न अदी, यमान बिन सईद अल-मुसब्बिही की जीवनी, दारुल फ़िक्र बेरूत 7/2640-2642
4. सुनन दारक़ुत्नी, मुशरिकों के बर्तनों से वज़ू और तयम्मुम का अध्याय, नश्रुस सुन्नत मुल्तान 1/202
5. अल-क़ुरआन 4/43

بن زیاد عن عطاء عن ابن عباس قال اذا خفت ان تفوتك الجنازة وانت على غير وضوء فتيمم وصل۔[1] | روایت کی انہوں نے عطاء سے، انہوں نے حضرت ابن عباس سے، انہوں نے فرمایا۔ ت) جب تجھے نمازِ جنازۃ کے فوت ہونے کا اندیشہ ہو اور وضو نہیں تو تیمم کر کے پڑھ لے۔

ابن عدی کی حدیث یوں ہے: عن معافی بن عمران عن مغیرۃ بن زیاد عن عطاء عن ابن عباس عن النبي صلى الله تعالیٰ علیه وسلم قال اذا فجأتك الجنازة وانت على غير وضوء فتيمم۔[2] قال ابن عدی هذا مرفوع غير محفوظ والحديث موقوف على ابن عباس۔[3] | (معافی بن عمران، مغیرہ بن زیاد سے وہ عطاء سے، وہ ابن عباس سے، وہ نبی صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم سے راوی ہیں۔ ت) یعنی رسول اللہ صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم نے فرمایا: "جب ناگہانی تیرے سامنے جنازہ آ جائے اور تجھے وضو نہ ہو تو تیمم کرلے"، (ابن عدی نے کہا یہ مرفوع غیر محفوظ ہے اور حدیث حضرت ابن عباس پر موقوف ہے۔ ت)

دار قطنی و بیہقی حضرت عبداللہ بن عمر رضی اللہ تعالیٰ عنہما سے راوی: انه اتى الجنازة و هو على غير وضوء فتيمم ثم صلى عليها۔[4] | یعنی ان کے پاس ایک جنازہ آیا اُس وقت وضو نہ تھا تیمم کر کے نماز میں شریک ہو گئے۔

اسی کے مثل ابن ابی شیبہ وامام طحاوی نے باسانید کثیرہ امام حسن بصری وامام ابراہیم نخعی وابو بکر نے عکرمہ تلمیذ ابن عباس اور طحاوی نے عطاء بن ابی رباح و عامر وابن شہاب زہری و حکم سات ائمہ تابعین سے روایت کیا اگر نماز جنازہ کی تکرار روا ہوتی تو فوت کے کیا معنی

تھے؟ اور اُس کے لئے تندرست کو پانی موجود ہوتے ہوئے تیمم کیونکر جائز ہوتا؟ حالانکہ رب جل وعلا فرماتا ہے: فَلَمْ تَجِدُوا مَاءً فَتَيَمَّمُوا [5]

1 المصنف لابن ابی شیبہ فی الرجل یخاف ان تفوتہ الصلوۃ علی الجنازۃ ادارۃ القرآن کراچی ۳۰۵/۳ 2 الکامل لابن عدی ترجمہ یمان بن سعید المصبحی دارالفکر بیروت ۲۶۴۰/۷ 3 الکامل لابن عدی ترجمہ یمان بن سعید المصبحی دارالفکر بیروت ۲۶۴۲/۲۶۴۰/۷ 4 سنن دار قطنی باب الوضوء والتیمم من آنیۃ المشرکین نشر السنتہ ملتان ۲۰۲/۱ 5 القرآن ۴/۴۳

Fatawa Razawiyya Volume 9

(And if you do not find water. T) And the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) says:

Allah does not accept the prayer of any one of you if he is in a state of impurity until he performs ablution.

As long as one is without ablution, until he performs ablution, God does not accept his prayer. Narrated by Bukhari, Muslim, Abu Dawood, and Tirmidhi from Abu Hurairah (may Allah be pleased with him). (T)

1- Narrated by the Two Shaykhs (Bukhari & Muslim), Abu Dawood, and Tirmidhi from Abu Hurairah (may Allah be pleased with him).

And Hazrat Ibn Umar (may Allah be pleased with both of them) himself narrates that the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) says:

No prayer is accepted without purification, and no charity is accepted from ill-gotten gains. 2- Narrated from him by Muslim, Tirmidhi, and Ibn Majah.

No prayer without purification and no charity from stolen property is acceptable. Narrated by Muslim, Tirmidhi, and Ibn Majah from Hazrat Abu Hurairah. (T)

Haste in the funeral prayer is highly desirable in Shariah. It is narrated in the Sahih Sittah from Abu Hurairah (may Allah be pleased with him) that the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) says: 'Hasten the funeral'. Hurry with the funeral. Imam Ahmad, Tirmidhi, Ibn Hibban, and others narrate from the Leader of the Believers, Mawla Ali (may Allah honor his countenance), that the enlightened Presence, the Master of the Universe (peace and blessings of Allah be upon him) says:

Three things should not be delayed: Prayer when its time arrives, the funeral when it is present, and an unmarried woman when a suitable match is found.

Do not delay in three things: Prayer when its time comes, the funeral when it is ready, and a husbandless woman when her match is found.

It is narrated in Sunan Abi Dawood from Husayn ibn Wahwah al-Ansari (may Allah be pleased with him) that the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) said:

Make haste, for it is not proper for the corpse of a Muslim to	**Hurry, for it is not fitting for a Muslim's funeral to**

---

1. Sahih al-Bukhari, Chapter 'Prayer is not accepted without purification', Qadimi Kutub Khana Karachi, 1/25; Sahih al-Bukhari, Book of Tricks, Qadimi Kutub Khana Karachi, 8/112.
2. Sahih Muslim, Book of Purification, Noor Muhammad Asah al-Matabi Karachi, 1/119.
3. Sahih Muslim, Book of Funerals, Noor Muhammad Asah al-Matabi Karachi, 1/307.
4. Al-Mustadrak 'ala al-Sahihayn, Book of Marriage, Dar al-Fikr Beirut, 2/162; Jami' al-Tirmidhi, Chapters on Funerals, Amin Company Kutub Khana Rashidiya Delhi, 1/714.

फ़तावा रज़विया खंड 9

(और तुम्हें पानी न मिले। त) और अल्लाह के रसूल (उन पर अल्लाह की शांति और कृपा हो) फ़रमाते हैं:

अल्लाह तुम में से किसी की नमाज़ स्वीकार नहीं करता जब वह अशुद्ध हो जाए जब तक कि वह वूज़ू न कर ले।

जब तक कोई बिना वूज़ू के है, जब तक वह वूज़ू न कर ले, ईश्वर उसकी नमाज़ स्वीकार नहीं करता। इसे बुखारी, मुस्लिम, अबू दाऊद और तिर्मिज़ी ने हज़रत अबू हुरैरा (रज़ियल्लाहु अन्हु) से रिवायत किया है। (त)

1- इसे शैखैन (बुखारी और मुस्लिम), अबू दाऊद और तिर्मिज़ी ने अबू हुरैरा (रज़ियल्लाहु अन्हु) से रिवायत किया।

और खुद हज़रत इब्न उमर (रज़ियल्लाहु अन्हुमा) रिवायत करते हैं कि अल्लाह के रसूल (उन पर अल्लाह की शांति और कृपा हो) फ़रमाते हैं:

पवित्रता के बिना कोई नमाज़ स्वीकार नहीं की जाती, और चोरी (खयानत) के माल से कोई सदक़ा स्वीकार नहीं किया जाता। 2- इसे मुस्लिम, तिर्मिज़ी और इब्न माजाह ने उनसे रिवायत किया।

बिना पवित्रता के कोई नमाज़ और खयानत (चोरी) के माल से कोई सदक़ा स्वीकार्य नहीं है। इसे हज़रत अबू हुरैरा से मुस्लिम, तिर्मिज़ी और इब्न माजाह ने रिवायत किया है। (त)

जनाज़ा की नमाज़ में जल्दी करना शरीयत में अत्यंत वांछनीय है। सहाह सित्तह में अबू हुरैरा (रज़ियल्लाहु अन्हु) से है कि अल्लाह के रसूल (उन पर अल्लाह की शांति और कृपा हो) फ़रमाते हैं: 'जनाज़ा में जल्दी करो'। जनाज़ा में जल्दी करो। इमाम अहमद, तिर्मिज़ी, इब्न हिब्बान और अन्य ने मोमिनों के अमीर मौला अली (करमल्लाहु वजहुहुल करीम) से रिवायत की है कि हुज़ूर पुर नूर सैय्यद-ए-आलम (उन पर अल्लाह की शांति और कृपा हो) फ़रमाते हैं:

तीन चीजों में देरी न करो: नमाज़ जब उसका समय आ जाए, जनाज़ा जब वह मौजूद हो, और बे-शौहर औरत जब उसके लिए कुफ़ू (योग्य वर) मिल जाए।

तीन चीजों में देरी न करो: नमाज़ जब उसका समय आ जाए, जनाज़ा जब वह तैयार हो, और बे-शौहर औरत जब उसका कुफ़ू मिल जाए।

सुनन अबू दाऊद में हुसैन बिन वहवह अनसारी (रज़ियल्लाहु अन्हु) से रिवायत है, अल्लाह के रसूल (उन पर अल्लाह की शांति और कृपा हो) ने फ़रमाया:

जल्दी करो क्योंकि यह किसी मुसलमान के शव के लिए उचित नहीं है कि

जल्दी करो क्योंकि मुसलमान के जनाज़े को

---

1. सहीह अल-बुखारी, अध्याय 'पवित्रता के बिना नमाज़ स्वीकार नहीं होती', कदीमी कुतुब खाना कराची, 1/25; सहीह अल-बुखारी, किताबुल हियल, कदीमी कुतुब खाना कराची, 8/112
2. सहीह मुस्लिम, किताबुल तहारत, नूर मोहम्मद असहुल मताबे कराची, 1/119
3. सहीह मुस्लिम, किताबुल जनाइज़, नूर मोहम्मद असहुल मताबे कराची, 1/307
4. अल-मुस्तदरक अलस सहीहैन, किताबुन निकाह, दारुल फिक्र बेरुत, 2/162; जामे तिर्मिज़ी, अबवाबुल जनाइज़, अमीन कंपनी कुतुब खाना रशीदिया दिल्ली, 1/714

पृष्ठ 310/948

فتاوٰی رضویہ جلد نہم

(اور تمہیں پانی نہ ملے۔ ت) اور رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم فرماتے ہیں:

لا یقبل اللہ صلاۃ احدکم اذا احدث حتی یتوضأ

بے وضو جب تک وضو نہ کرے خدا اس کی نماز قبول نہیں فرماتا۔ اسے بخاری و مسلم، ابو داؤد اور ترمذی نے حضرت ابوہریرہ رضی اللہ تعالٰی عنہ سے روایت کیا۔ (ت)

۱- اخرجہ الشیخان وابو داؤد والترمذی عن ابوہریرہ رضی اللہ تعالٰی عنہ۔

اور خود حضرت ابن عمر رضی اللہ تعالٰی عنہما راوی کہ رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم فرماتے ہیں:

لا تقبل صلوۃ بغیر طھور ولا صدقۃ من غلول ۲- اخرجہ عنہ مسلم والترمذی وابن ماجہ۔

کوئی نماز بغیر طہارت کے اور کوئی صدقہ مال خیانت سے مقبول نہیں۔ اسے حضرت ابوہریرہ سے مسلم، ترمذی اور ابن ماجہ نے روایت کیا۔ (ت)

نمازِ جنازہ میں تعجیل شرعاً نہایت درجہ مطلوب۔ صحاح ستہ میں ابوہریرہ رضی اللہ تعالٰی عنہ سے ہے رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم فرماتے ہیں : اسرعوا بالجنازۃ ۳۔ جنازہ میں جلدی کرو۔ امام احمد و ترمذی و ابن حبان و غیرہم امیر المومنین مولا علی کرم اللہ وجہہ الکریم سے راوی حضور پر نور سید عالم صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم فرماتے ہیں :

ثلاث لا تؤخر هن، الصلوٰة اذا اتت تین چیزوں میں دیر نہ کرو: نماز جب اس کا وقت آجائے والجنازة اذا حضرت والایم اذا وجدت اور جنازہ جس وقت حاضر ہو، اور زن بے شوہر جب اس لها كفواً ٤. کا کفو ملے.

سنن ابی داؤد میں حصین بن وحوح انصاری رضی اللہ تعالٰی عنہ سے مروی، رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم نے فرمایا:

عجلوا فانہ لا ینبغی لجیفۃ مسلم ان جلدی کرو کہ مسلمان کے جنازے کو

---

١ صحیح البخاری باب لا تقبل الصلوٰة بغیر طهور قدیمی کتب خانہ کراچی ١/ ٢٥، صحیح البخاری کتاب الحیل قدیمی کتب خانہ کراچی ٨/ ١١٢ ٢ صحیح مسلم کتاب الطہارة نور محمد اصح المطابع کراچی ١/ ١١٩ ٣ صحیح مسلم کتاب الجنائز نور محمد اصح المطابع کراچی ١/ ٣٠٧ ٤ المستدرک علی الصحیحین کتاب النکاح دار الفکر بیروت ٢/ ١٦٢، جامع الترمذی ابواب الجنائز امین کمپنی کتب خانہ رشیدیہ دہلی ١/ ٧١٤

- "He should be kept among his family." - It should be stopped (referring to delaying burial).

Tabarani narrated with a sound (Hasan) chain from Abdullah bin Umar (may Allah be pleased with them both): I heard the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) say:

- "When one of you dies, do not hold him back, but hasten with him to his grave." - When one of you dies, do not delay him, and take him quickly for burial.

Therefore, scholars state: If on a Friday, the funeral is ready before the Friday prayer, do not delay it waiting for a large congregation; bury it beforehand. Great care should be taken regarding this issue as today the opposite is prevalent among the common people. Those who have some understanding keep it waiting for that large congregation, and the completely ignorant have invented other reasons of their own. Some say the deceased will also join the Friday prayer; some say if buried after the prayer, the deceased will always receive the Friday [reward]. All these are baseless and contrary to the purpose of Sharia.

It is stated in Durr-e-Mukhtar: "Hasten with the funeral." (Be quick in the funeral - Translator). It is in Tanweer-ul-Absar:

- "It is disliked (Makruh) to delay the prayer and burial so that a large congregation can join after the Friday prayer." - Delaying the funeral prayer and burial for the purpose of having a large congregation join after Friday prayer is Makruh (disliked). (Translator)

Furthermore, increasing the congregation at a funeral is very beloved in Sharia because there is a great hope for immense help for the deceased, forgiveness of sins, and elevation of ranks. Three hadiths regarding forty and a hundred worshippers have been mentioned above, and Ahmad, Abu Dawood, Tirmidhi, and Ibn Majah narrated from Hazrat Malik bin Hubayrah (may Allah be pleased with him) that the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) said:

- "There is no believer who dies and a community of Muslims reaching three rows prays over him, except that he is forgiven." - Any Muslim over whose funeral a

group of Muslims reaching the size of three rows offers prayer, he will be forgiven.

Footnotes: 1. Sunan Abi Dawood, Bab Taj'il al-Janazah, Aftab-e-Alam Press, Lahore, 94/2 2. Al-Mu'jam al-Kabir, narrated from Abdullah bin Umar, Hadith 13613, Al-Maktaba al-Faysaliya, Beirut, 12/444 3. Durr-e-Mukhtar, Bab Salawat al-Janazah, Matba Mujtabai, Delhi, 144/1 4. Durr-e-Mukhtar Sharh Tanweer al-Absar, Bab Salawat al-Janazah, Matba Mujtabai, Delhi, 144/1 5. Sunan Abi Dawood, Bab fi as-Sufuf ala al-Janazah, Aftab-e-Alam Press, Lahore, 95/2

फ़तावा रज़विया - जिल्द नहम (खंड 9)

- "उसे उसके परिवार के बीच रखा जाए।" - उसे रोका जाना चाहिए (दफ़नाने में देरी के संदर्भ में)।

तबरानी ने हसन सनद के साथ अब्दुल्लाह बिन उमर (रज़ियल्लाहु अन्हुमा) से रिवायत की है, मैंने अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) को फ़रमाते सुना:

- "जब तुम में से किसी की मृत्यु हो जाए, तो उसे मत रोको और उसे उसकी कब्र की ओर जल्दी ले जाओ।" - जब तुम में से कोई मर जाए तो उसे न रोको और जल्दी दफ़नाने को ले जाओ।

इसलिए उलेमा फ़रमाते हैं: अगर जुमे के दिन जुमे से पहले जनाज़ा तैयार हो गया तो बड़ी जमाअत के इंतज़ार में देर न करें बल्कि पहले ही दफ़न कर दें। इस मसले का बहुत लिहाज़ रखना चाहिए क्योंकि आजकल आम लोगों में इसके ख़िलाफ़ चलन है। जिन्हें कुछ समझ है वो तो इसी बड़ी जमाअत के इंतज़ार में रोके रखते हैं, और निरे जाहिलों ने अपने दिल से और बातें गढ़ी हैं। कोई कहता है मैयत भी जुमे की नमाज़ में शरीक हो जाए, कोई कहता है नमाज़ के बाद दफ़न करेंगे तो मैयत को हमेशा जुमा मिलता रहेगा। ये सब बेबुनियाद और शरीअत के मक़सद के ख़िलाफ़ हैं।

'दुर्रे मुख़्तार' में है: "जनाज़े में जल्दी करे।" (जनाज़े में जल्दी करें। - अनु.) 'तनवीरुल अबसार' में है:

- "जनाज़े की नमाज़ और दफ़नाने में देरी करना मकरूह है ताकि जुमे की नमाज़ के बाद एक बड़ा जमावड़ा इसमें शरीक हो सके।" - इस मक़सद से कि जुमे के बाद बड़ी जमाअत जनाज़े में शरीक हो, नमाज़-ए-जनाज़ा और दफ़न में ताख़ीर (देरी) मकरूह है। (अनु.)

इसके अलावा जनाज़े पर जमाअत को बढ़ाना शरीअत में बहुत पसंदीदा है क्योंकि इसमें मैयत की बड़ी मदद और उसके लिए गुनाहों की माफ़ी और दर्जों की बुलंदी की बड़ी उम्मीद है। चालीस और सौ नमाज़ियों वाली तीन हदीसें ऊपर गुज़र चुकी हैं, और अहमद, अबू दाऊद, तिर्मिज़ी और इब्ने माजा हज़रत मालिक बिन हुबैरा (रज़ियल्लाहु अन्हु) से रिवायत करते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने फ़रमाया:

- "कोई भी मोमिन ऐसा नहीं है जिसकी मृत्यु हो और मुसलमानों की एक जमाअत जो तीन सफ़ों (पंक्तियों) तक पहुँचती हो उस पर नमाज़ पढ़े, मगर उसे माफ़ कर दिया जाता है।" - जिस

मुसलमान के जनाज़े पर मुसलमानों का एक गिरोह, जो तीन सफ़ की तादाद को पहुँचता हो, नमाज़ पढ़े, उसकी मग़फ़िरत (माफ़ी) हो जाएगी।

पादलेख (Footnotes): 1. सुनन अबू दाऊद, बाब ताज़ील अल-जनाज़ा, आफ़ताब-ए-आलम प्रेस, लाहौर, 94/2 2. अल-मुअजम अल-कबीर, अब्दुल्लाह बिन उमर से रिवायत, हदीस 13613, अल-मक्तबा अल-फ़ैसलिया, बेरुत, 12/444 3. दुर्रे मुख़्तार, बाब सलातुल जनाज़ा, मतबा मुज्तबाई, दिल्ली, 144/1 4. दुर्रे मुख़्तार शरह तनवीरुल अबसार, बाब सलातुल जनाज़ा, मतबा मुज्तबाई, दिल्ली, 144/1 5. सुनन अबू दाऊद, बाब फ़ी अस-सुफ़ूफ़ अलल जनाज़ा, आफ़ताब-ए-आलम प्रेस, लाहौर, 95/2

یحبس بین ظھرانی اھلہ روکنا چاہیے۔

طبرانی بسند حسن عبد اللہ بن عمر رضی اللہ تعالٰی عنہما سے راوی، میں نے رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم کو فرماتے سنا:

اذامات احدکم فلا تحسبوہ واسرعوا بہ الی قبرہ **جب تم میں سے کوئی مر جائے تو اسے نہ روکو اور جلدی دفن کو لے جاؤ۔**

ولہذا علماء فرماتے ہیں: اگر روزِ جمعہ پیش از جمعہ جنازہ تیار ہو گیا جماعتِ کثیرہ کے انتظار میں دیر نہ کریں پہلے ہی دفن کر دیں۔ اس مسئلہ کا بہت لحاظ رکھنا چاہئے کہ آج کل عوام میں اس کے خلاف رائج ہے، جنہیں کچھ سمجھ ہے وہ تو اسی جماعتِ کثیر کے انتظار میں روکے رکھتے ہیں، اور نرے جہال نے اپنے جی سے اور باتیں تراشی ہیں، کوئی کہتا میت بھی جمعہ کی نماز میں شریک ہو جائے، کوئی کہتا ہے نماز کے بعد دفن کریں گے تو میت کو ہمیشہ جمعہ ملتا رہے گا۔ یہ سب بے اصل وخلاف مقصد شرع ہیں۔

در مختار میں ہے۔ یسرع فی جنازۃ (جنازے میں جلدی کرے۔ ت) تنویر الابصار میں ہے:

وکرہ تأخیر صلاتہ ودفنہ لیصلی علیہ جمع عظیم بعد صلوۃ الجمعۃ **اس مقصد سے کہ جمعہ کے بعد جماعتِ عظیم شریک جنازہ ہو نمازِ جنازہ اور دفن میں تاخیر مکروہ ہے۔ (ت)**

نیز جنازے پر تکثیر جماعت شرعاً بہت محبوب کہ اس میں میت کی اعانت جسیم اور اُس کے لئے عفو سیئات و رفع درجات کی امیدِ عظیم ہے، چالیس نمازیوں اور سو نمازیوں کی تین حدیثیں اوپر

گزریں، اور احمد اور ابوداؤد و ترمذی وابن ماجہ حضرت مالک بن ہبیرہ رضی اللہ تعالیٰ عنہ سے راوی، رسول اللہ صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم فرماتے ہیں:

ما من مومن یموت فیصلی علیه امة من المسلمین یبلغون ان یکونوا ثلثة صفوف الا غفر لہ

جس مسلمان کے جنازے پر مسلمانوں کا ایک گروہ کہ تین صف کی مقدار کو پہنچتا ہو نماز پڑھے اس کی مغفرت ہوجائے گی۔

1 سنن ابی داؤد باب تعجیل الجنازہ آفتاب عالم پریس لاہور ۹۴/۲ 2 المعجم الکبیر مروی از عبداللہ بن عمر حدیث ۱۳۶۱۳ المکتبۃ الفیصلیہ بیروت ۱۲/ ۴۴۴ 3 در مختار باب صلوۃ الجنازہ مطبع مجتبائی دہلی ۱۴۴/۱ 4 در مختار شرح تنویر الابصار باب صلوۃ الجنازہ مطبع مجتبائی دہلی ۱۴۴/۱ 5 سنن ابی داؤد باب فی الصفوف علی الجنازہ آفتاب عالم پریس لاہور ۹۵/۲

Volume Nine Fatawa Ridawiyya

In the narration of Tirmidhi, it is stated: *Man salla 'alayhi thalathatu sufufin awjaba.* (1) | For the one over whom three rows [of people] offer prayers, Paradise becomes mandatory.

Ibn Majah narrates from Hadrat Abu Hurairah (may Allah be pleased with him) that the Messenger of Allah (may Allah send peace and blessings upon him) said: *Man salla 'alayhi mi'atun min al-muslimina ghufira lahu.* (2) | The one over whom a hundred Muslims offer prayer shall be forgiven.

Nasa'i narrates from the Mother of the Believers, Maymunah (may Allah be pleased with her), that the Messenger of Allah (may Allah send peace and blessings upon him) said: *Ma min mayyitin yusalla 'alayhi ummatun min an-nasi illa shuffi'u fihi.* (3) | For any deceased person over whom a group of people offers prayer, their intercession for him will be accepted.

The narrator of the Hadith, Abu al-Malih, said: A "group" is forty people. Tabarani in Mu'jam al-Kabir narrates from Abdullah bin Umar (may Allah be pleased with them both) that the Messenger of Allah (may Allah send peace and blessings upon him) said: *Ma min rajulin yusalla 'alayhi illa ghafara Allahu lahu.* (4) | For any Muslim over whom a hundred people offer prayer, Allah Almighty will grant him forgiveness.

Therefore, the pure Shariah did not settle for just the communal obligation (fard al-kifayah), but also gave promises of great and greatest Divine favors for the worshippers in the funeral prayer, so that if people do not gather for the sake of the deceased's benefit, they will run for their own benefit. Regarding this, six out of six Hadiths have been mentioned above, and in the Sahih Sittah it is narrated from Abu Hurairah (may Allah be pleased with him) that the Messenger of Allah (may Allah send peace and blessings upon him) said: *Man shahida al-janazata hatta yusalla 'alayha falahu...* | For the one who is present at the funeral until the prayer is offered, there is for him...

Footnotes: 1. Jami' al-Tirmidhi, Chapters on Funerals, Amin Company Kutub Khana Rashidiyah Delhi, 1/122 2. Sunan Ibn Majah, Chapter on what has been narrated regarding those over whom a group of Muslims offers prayer, H.M. Saeed Company Karachi, p. 108 3. Sunan al-Nasa'i, Merit of those over whom a hundred people offer prayer, Noor Muhammad Karkhana Tijarat Kutub Karachi, 1/282 4. Majma' al-Zawa'id,

with reference to al-Tabarani in al-Kabir, Chapter on those over whom a group offers prayer, Dar al-Kitab Beirut, 3/36

जिल्द नौ फ़तावा रज़विया

तिर्मिज़ी की रिवायत में है: मन सल्ला 'अलैहि सलासतु सुफ़ूफ़िन अवजबा। (१) | जिस पर तीन सफ़ें नमाज़ पढ़ें उसके लिए जन्नत वाजिब हो गई।

इब्ने माजह हज़रत अबू हुरैरा (रज़ियल्लाहु अन्हु) से रावी हैं, रसूलुल्लाह (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) फ़रमाते हैं: मन सल्ला 'अलैहि मिअतुन मिनल मुस्लिमीना ग़ुफ़िरा लहू। (२) | जिस पर सौ मुसलमान नमाज़ पढ़ें उसे बख्श दिया जाए।

नसाई उम्मुल मोमिनीन मैमूना (रज़ियल्लाहु अन्हा) से रावी हैं, रसूलुल्लाह (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) फ़रमाते हैं: मा मिन मय्यितिन युसल्ला 'अलैहि उम्मतुन मिनन नासि इल्ला शुफ़्फ़िअ'ऊ फ़ीहि। (३) | जिस मुर्दे पर मुसलमानों का एक गिरोह नमाज़ पढ़े, उनके हक़ में उनकी शफ़ाअत (सिफारिश) क़बूल हो।

रावी-ए-हदीस अबुल मलीह ने कहा: गिरोह चालीस आदमी हैं। तबरानी मुअजम कबीर में अब्दुल्लाह बिन उमर (रज़ियल्लाहु अन्हुमा) से रावी हैं, रसूलुल्लाह (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) फ़रमाते हैं: मा मिन रजुलिन युसल्ला 'अलैहि इल्ला ग़फ़रल्लाहु लहू। (४) | जिस मुसलमान पर सौ आदमी नमाज़ पढ़ें अल्लाह अज़्वजल उसकी मग़फ़िरत (बख्शिश) फ़रमा दे।

लिहाज़ा शरीअते मुतहरा ने सिर्फ़ फ़र्ज़े किफ़ाया पर इक्तिफ़ा न फ़रमाया बल्कि नमाज़े जनाज़ा में नमाजियों के लिए अज़ीम व आज़म अफ़ज़ाले इलाहिया के वादे दिए कि लोग अगर नफ़े मय्यित के ख्याल से जमा न होंगे अपने फ़ायदे के लिए दौड़ेंगे, इस बारे में छह में छह हदीसें ऊपर गुज़रीं, और सहाह सित्ता में अबू हुरैरा (रज़ियल्लाहु अन्हु) से है रसूलुल्लाह (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) फ़रमाते हैं: मन शाहिदल जनाज़ता हत्ता युसल्ला अलैहा फ़लाहू... | जो नमाज़ होने तक जनाज़ा में हाज़िर रहे उसके लिए...

फ़ुटनोट्स: १. जामे तिर्मिज़ी, अबवाबुल जनाइज़, अमीन कंपनी कुतुब खाना रशीदिया दिल्ली, १/१२२ २. सुनन इब्ने माजह, बाब मा जाअ फ़ीमन सल्ला अलैहि जमाअतुम मिनल मुस्लिमीन, एच.एम. सईद कंपनी कराची, पृ. १०८ ३. सुनन नसाई, फ़ज़्ल मन सल्ला अलैहि मिअह, नूर मोहम्मद कारख़ाना तिज़ारत कुतुब कराची, १/२८२ ४. मज्मउज़ ज़वाइद बहवाला अत्तबरानी फ़िल कबीर, बाब फ़ीमन सल्ला अलैहि जमाअत, दारुल किताब बैरूत, ३/३६

ترمذی کی روایت میں ہے: من صلی علیہ ثلثۃ صفوف اوجب۔ ۱ | جس پر تین صفیں نماز پڑھیں اُس کے لئے جنت واجب ہوگئی۔

ابن ماجہ حضرت ابوہریرہ رضی اللہ تعالٰی عنہ سے راوی، رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم فرماتے ہیں۔ من صلی علیہ مائۃ من المسلمین غفرلہ ۲ | جس پر سو مسلمان نماز پڑھیں بخشا جائے۔

نسائی ام المومنین میمونہ رضی اللہ تعالٰی عنہا سے راوی، رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم فرماتے ہیں: مامن میت یصلی علیہ امۃ من الناس الا شفعوا فیہ ۳ | جس مُردے پر مسلمانوں کا ایک گروہ نماز پڑھے اُن کی شفاعت اس کے حق میں قبول ہو۔

راوی حدیث ابوا الملیح نے کہا: گروہ چالیس آدمی ہیں۔ طبرانی معجم کبیر میں عبد اللہ بن عمر رضی اللہ تعالٰی عنہما سے راوی، رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم فرماتے ہیں: مامن رجل یصلی علیہ الا غفر اللہ لہ ۴ | جس مسلمان پر سو آدمی نماز پڑھیں اللہ عزوجل اُس کی مغفرت فرمادے۔

لہذا شریعت مطہرہ نے صرف فرضیت کفایہ پر اکتفانہ فرمایا بلکہ نماز جنازہ میں نمازیوں کے لئے عظیم و اعظم افضال الہیہ کے وعدے دئے کہ لوگ اگر نفع میت کے خیال سے جمع نہ ہوں گے اپنے فائدے کے لئے دوڑیں گے، اس بارے میں چھ میں چھ حدیثیں اوپر گزریں، اور صحاح ستہ میں ابوہریرہ رضی اللہ تعالٰی عنہ سے ہے رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم فرماتے ہیں: من شہد الجنازۃ حتی یصلی علیہا فلہ | جو نماز ہونے تک جنازہ میں حاضر رہے اس کے لئے

۱ جامع الترمذی ابواب الجنائز امین کمپنی کتب خانہ رشیدیہ دہلی ۱/ ۱۲۲ ۲ سنن ابن ماجہ باب ماجاء فیمن صلی علیہ جماعۃ من المسلمین ایچ ایم سعید کمپنی کراچی ص ۱۰۸ ۳ سنن النسائی فضل من صلی علیہ مائۃ نور محمد کارخانہ تجارت کتب کراچی ۱/ ۲۸۲ ۴ مجمع الزوائد بحوالہ الطبرانی فی الکبیر باب فیمن صلی علیہ جماعۃ دار الکتاب بیروت ۳/ ۳۶

Fatawa Razawiya, Volume 9

[Table/Box 1] Arabic: ... a qirat, and whoever attends it until the burial, for him are two qirats. It was asked: 'What are two qirats?' He said: 'Like two massive mountains.' - and in Muslim: 'The smaller of the two is like Uhud.' - Urdu Translation: There is one dang (portion) of reward, and if one remains present until the burial, then two dangs; like two large mountains, the smaller of which is equal to Mount Uhud.

Similarly, Muslim and Ibn Majah narrated from Hazrat Thawban, and Imam Ahmad narrated with a sound chain, the Hadith regarding the reward of a qirat for the funeral prayer from Hazrat Abdullah bin Umar (may Allah be pleased with them). And Tabarani in Mu'jam al-Awsat narrates from Hazrat Jabir (may Allah be pleased with him) that the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) said:

[Table/Box 2] Arabic: Whoever follows a funeral until its burial is completed, three qirats are written for him; each qirat among them is greater than Mount Uhud. Urdu Translation: Whoever stays with a funeral until it is buried, three qirats of reward shall be written for him; each qirat being larger than Mount Uhud.

Bazzar has a mawquf Hadith here from Abu Huraira (may Allah be pleased with him): 'Whoever goes to the family of the deceased for a funeral receives one qirat; then if they walk with the funeral, they receive one qirat; for the prayer a third, and for waiting until burial, a fourth qirat.' Ibn Majah narrates from the Commander of the Faithful Ali (may Allah honor his face):

[Table/Box 3] Arabic: Whoever washes a deceased person, shrouds them, perfumes them, carries them, offers prayer over them, and does not disclose any defect they saw, emerges from their sins as they were on the day their mother gave birth to them. Urdu Translation: Whoever bathes a deceased person, puts on their shroud, applies fragrance, carries the funeral bier, offers the prayer, and hides any flaw they see, will become as pure from their sins as the day they were born from their mother's womb.

Now, if permission is given for repeating the funeral prayer, people will fall into the pit of procrastination and laziness. They will say, "What's the rush? If one prayer is over, we will pray again." In this scenario, if waiting for people occurs, the funeral is delayed, and if haste is made, the congregation remains small. Both situations are contrary to the intent of Shariah; therefore, the wisdom [lies in not repeating].

1. Sahih Muslim, Kitab al-Jana'iz, Nur Muhammad Asah al-Matabi' Karachi, 7/30
2. Sahih Muslim, Kitab al-Jana'iz, Nur Muhammad Asah al-Matabi' Karachi, 7/30
3. Majma' al-Zawa'id with reference to Mu'jam al-Awsat, Chapter on Preparing the Deceased, Dar al-Kutub Beirut, 3/20
4. Sunan Ibn Majah, Chapter on What has Been Narrated Regarding Washing the Deceased, H.M. Saeed Company Karachi, p. 106

फ़तावा रज़विया, खंड 9

[बॉक्स 1] अरबी: ... एक क़ीरात, और जो उसे दफ़न होने तक देखे, उसके लिए दो क़ीरात हैं। पूछा गया: 'दो क़ीरात क्या हैं?' उन्होंने कहा: 'दो विशाल पर्वतों की तरह।' - और मुस्लिम में: 'उनमें से छोटा उहुद के समान है।' - उर्दू अनुवाद: एक दांग का सवाब है, और यदि वह दफ़न होने तक उपस्थित रहे, तो दो दांग; जैसे दो बड़े पहाड़, जिनमें से छोटा उहुद पहाड़ के बराबर है।

इसी तरह, मुस्लिम और इब्न माजह ने हज़रत थौबान से और इमाम अहमद ने सहीह सनद के साथ, हज़रत अब्दुल्ला बिन उमर (अल्लाह उन दोनों से प्रसन्न हो) से जनाज़े की नमाज़ के सवाब (क़ीरात) की हदीस रिवायत की है। और तबरानी ने मुअजम अल-औसत में हज़रत जाबिर (अल्लाह उनसे प्रसन्न हो) से रिवायत की है कि अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने फ़रमाया:

[बॉक्स 2] अरबी: जो कोई जनाज़े के पीछे चले यहाँ तक कि उसका दफ़न पूरा हो जाए, उसके लिए तीन क़ीरात लिखे जाते हैं; उनमें से प्रत्येक क़ीरात उहुद पर्वत से बड़ा है। उर्दू अनुवाद: जो कोई जनाज़े के साथ रहे यहाँ तक कि उसका दफ़न हो जाए, उसके लिए तीन क़ीरात का प्रतिफल लिखा जाएगा; प्रत्येक क़ीरात उहुद पर्वत से बड़ा होगा।

बज़्ज़ार की यहाँ एक मौक़ूफ़ हदीस अबू हुरैरा (अल्लाह उनसे प्रसन्न हो) से है: 'जो कोई जनाज़े के लिए शोकाकुल परिवार के पास जाता है, उसे एक क़ीरात मिलता है; फिर यदि वह जनाज़े के साथ चलता है, तो उसे एक और क़ीरात मिलता है; नमाज़ के लिए तीसरा, और दफ़न तक प्रतीक्षा करने के लिए चौथा क़ीरात मिलता है।' इब्न माजह ने अमीरुल मोमिनीन अली (अल्लाह उनके मुख को सम्मानित करे) से रिवायत की है:

[बॉक्स 3] अरबी: जिसने किसी मृतक को नहलाया, उसे कफ़न पहनाया, उसे सुगंधित किया, उसे उठाया, उस पर नमाज़ पढ़ी और उसके द्वारा देखे गए किसी भी दोष को उजागर नहीं किया, वह अपने पापों से वैसे ही मुक्त हो जाता है जैसे वह उस दिन था जब उसकी माँ ने उसे जन्म दिया था। उर्दू अनुवाद: जो किसी मृतक को स्नान कराए, उसे कफ़न पहनाए, सुगंध लगाए, जनाज़ा उठाए, नमाज़ पढ़े और जो भी त्रुटि देखे उसे छुपाए, वह अपने पापों से वैसे ही पवित्र हो जाएगा जैसे वह अपनी माँ के गर्भ से जन्म लेने के दिन था।

अब यदि जनाज़े की नमाज़ को दोहराने की अनुमति दी जाती है, तो लोग टालमटोल और सुस्ती की खाई में गिर जाएँगे। वे कहेंगे, "जल्दी क्या है? यदि एक नमाज़ हो चुकी है, तो हम फिर से पढ़ लेंगे।"

ऐसी स्थिति में, यदि लोगों की प्रतीक्षा की जाती है, तो दफ़न में देरी होती है, और यदि शीघ्रता की जाती है, तो जमात (समूह) छोटी रह जाती है। ये दोनों स्थितियाँ शरीयत के इरादे के विपरीत हैं; इसलिए, बुद्धिमत्ता [दोहराने में नहीं] है।

---

1. सहीह मुस्लिम, किताब अल-जनाइज़, नूर मोहम्मद अस'ह अल-मताबे कराची, 7/30
2. सहीह मुस्लिम, किताब अल-जनाइज़, नूर मोहम्मद अस'ह अल-मताबे कराची, 7/30
3. मजमा अल-ज़वाइद, मुअजम अल-औसत के संदर्भ में, मृतक को तैयार करने का अध्याय, दार अल-कुतुब बेरूत, 3/20
4. सुनन इब्न माजह, मृतक को नहलाने के बारे में जो वर्णित है उसका अध्याय, एच.एम. सईद कंपनी कराची, पृ. 106

पृष्ठ 313/948

فتاوٰی رضویہ جلد نہم

[باکس 1] قیراط ومن شهدها حتی تدفن فله قیراطان قیل وما قیراطان قال مثل الجبلین العظیمین - ولمسلم اصغر هما مثل احد - ایک دانگ ثواب ہے اور دفن تک حاضر رہے تو دو دانگ، جیسے بڑے دو پہاڑ، ان میں کا چھوٹا کوہ احد کے برابر۔

اسی کے مثل مسلم وابن ماجہ نے حضرت ثوبان اور امام احمد نے بسند صحیح، قیراط نماز کی حدیث حضرت عبداللہ بن عمر رضی اللہ تعالٰی عنہم سے روایت کی اور طبرانی معجم اوسط میں حضرت جابر رضی اللہ تعالٰی عنہ سے راوی، رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم فرماتے ہیں:

[باکس 2] من اتبع جنازة حتی یقضی دفنها کتب له ثلثة قراریط، القیراط منها اعظم من جبل أحد - جو کسی جنازے کے ساتھ رہے یہاں تک کہ دفن ہو چکے اس کے لئے تین قیراط اجر لکھا جائے، ہر قیراط کوہ احد سے بڑا۔

بزار کی یہاں حدیث موقوف ابی ہریرہ رضی اللہ تعالٰی عنہ میں ہے: جو کسی جنازہ میں اہل جنازہ کے پاس تک جائے اس کے لئے ایک قیراط ہے، پھر اگر جنازہ کے ساتھ تک چلے تو ایک قیراط ملے اور نماز پر تیسرا اور دفن پر انتظار تک چوتھا قیراط پائے۔ ابن ماجہ امیر المومنین علی کرم اللہ وجہہ سے راوی،

[باکس 3] من غسل میتاً وکفنه وحنطه وحمله وصلی علیه ولم یفش علیه مأرای خرج من خطیته مثل ما ولدته امه - جو کسی میت کو نہلائے، کفن پہنائے، خوشبو لگائے، جنازہ اٹھائے، نماز پڑھے اور جو ناقص بات نظر آئے اسے چھپائے وہ اپنے گناہوں سے ایسا پاک ہو جائے جس دن ماں کے پیٹ سے پیدا ہوا تھا۔

اب اگر نماز جنازہ میں تکرار کی اجازت دیتے ہیں تو لوگ تسویف وکسی کی گھاٹی میں پڑیں گے۔ کہیں گے کہ جلدی کیا ہے اگر ایک نماز ہو چکی ہم دوبارہ پڑھ لیں گے، اس تقدیر پر اگر لوگوں کا انتظار کیا جائے تو جنازہ کو دیر ہوتی ہے اور جلدی کی جائے تو جماعت ہلکی رہتی ہے اور دونوں باتیں مقصودِ شرع کے خلاف، لاجرم مصلحت۔

---

1 صحیح مسلم کتاب الجنائز نور محمد اصح المطابع کراچی ۷/ ۳۰ 2 صحیح مسلم کتاب الجنائز نور محمد اصح المطابع کراچی ۷/ ۳۰ 3 مجمع الزوائد بحوالہ معجم اوسط باب تجھیز المیت دار الکتاب بیروت ۳/ ۲۰ 4 سنن ابن ماجہ باب ماجاء فی غسل المیت ایچ ایم سعید کمپنی کراچی ص ۱۰۶

Sharia requirements dictated that repetition should not be allowed. When people know that if the prayer has been offered, it will not be available again, and such great virtues will be lost, then willy-nilly they will come quickly and gather soon for the benefit of the deceased and their own good, and both purposes of the pure Sharia will manifest in the best way. Praise be to Allah! This is a minor glimpse of the reality-seeing vision of that divine scholar and godly ruler, who is the highest manifestation of the great glad tidings in the authentic Hadith that the Leader of the Messengers, peace and blessings of Allah be upon him, said:

- "If knowledge were suspended at the Pleiades (the stars), a group of people from the sons of Persia would attain it." Reported by Imam Ahmad in Al-Musnad and Abu Nu'aym in Al-Hilya from Abu Huraira, and Al-Shirazi in Al-Alqab from Qais bin Sa'd (may Allah be pleased with them both).

I mean the Imam of Imams, the Lamp of the Ummah, the Dispeller of Grief, Imam al-Azam Abu Hanifa (may Allah be pleased with him), whose enlightened and unparalleled opinion encompasses and collects all Sharia benefits, and is pure good and beneficial for believers in their life and death.

- "May Allah reward him with all goodness on behalf of Islam and the Muslims, and protect him and his followers with good belief from every harm and injury. Amen, O Most Merciful of the merciful! And praise be to Allah, Lord of the worlds, and may Allah's blessings be upon our master and lord Muhammad, and his family, and his companions, and all the mujtahids of the community. Amen!"
- May God reward him with goodness on behalf of Islam and Muslims, and protect him and those who follow him with correct beliefs from every hardship and loss; O Most Merciful of the merciful, accept it! All praise is for Allah, the Lord of all the worlds. And may God Almighty send blessings and peace upon our master and lord Hazrat Muhammad, his family, his companions, and the mujtahids of his religion; O God, accept it!

---

1 Musnad Ahmad bin Hanbal, narrated from Abu Huraira, Dar al-Fikr, Beirut, 2/429, 440, 469; Hilya al-Awliya, biography No. 328, Shahr bin Haushab, Dar al-Kitab al-Arabi,

Beirut, 6/24; Jami' al-Saghir with Fayd al-Qadir, Hadith 7462, Dar al-Ma'rifa, Beirut, 5/323.

शरीयत की आवश्यकता इसी बात की थी कि (नमाज़ की) पुनरावृत्ति की अनुमति न दी जाए। जब लोगों को पता चलेगा कि यदि नमाज़ हो गई तो फिर नहीं मिलेगी और ऐसे महान पुण्य हाथ से निकल जाएँगे, तो वे चाहे-अनचाहे जल्दी आएँगे और मृतक के लाभ और अपने भले के लिए शीघ्र एकत्रित होंगे, और पवित्र शरीयत के दोनों उद्देश्य सर्वोत्तम तरीके से प्रकट होंगे। अल्हम्दुलिल्लाह! यह उस ईश्वरीय विद्वान, रब्बानी हाकिम की यथार्थ-दर्शी दृष्टि का एक छोटा सा नमूना है, जो उस सही हदीस की महान खुशखबरी का सर्वोच्च उदाहरण है जिसे रसूलों के सरदार (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने फ़रमाया:

- "यदि ज्ञान सुरैया (तारों के समूह) पर भी लटका होता, तो फ़ारस की संतान में से कुछ लोग उसे वहाँ से भी प्राप्त कर लेते।" इसे इमाम अहमद ने मसनद में और अबू नुएम ने हिल्या में हज़रत अबू हुरैरा से और शीराज़ी ने अलकाब में हज़रत क़ैस बिन साद (रज़ियल्लाहु अन्हुमा) से रिवायत किया है।

अर्थात् इमामों के इमाम, उम्मत के चिराग, दुखों को दूर करने वाले इमाम-ए-आज़म अबू हनीफ़ा (रज़ियल्लाहु अन्हु), जिनकी रोशन और बेमिसाल राय तमाम शरई हितों को घेरने वाली और व्यापक है, और मोमिनों के लिए उनके जीवन और मृत्यु में सरासर भलाई और लाभकारी है।

- "अल्लाह उन्हें इस्लाम और मुसलमानों की ओर से हर तरह की भलाई का बदला दे और उन्हें और नेक अक़ीदे के साथ उनका अनुसरण करने वालों को हर तकलीफ़ और नुकसान से बचाए। आमीन, ऐ सबसे बड़े रहम करने वाले! और सब तारीफें अल्लाह के लिए हैं जो सारे जहानों का मालिक है। और ख़ुदाए बरतर हमारे आका व मौला हज़रत मुहम्मद, उनकी आल, उनके सहाबा और उनके दीन के तमाम मुजतहिदों पर दुरूद व सलाम नाज़िल फरमाए। इलाही! क़बूल फ़रमा!"
- तो खुदा इस्लाम और मुसलमानों की ओर से उन्हें खैर का सिला दे और उन्हें और हुस्न-ए-एतिकाद (अच्छे विश्वास) के साथ उनका इत्तेबा (अनुसरण) करने वालों को हर तकलीफ और नुक्सान से बचाए, और सब से बढ़ कर रहम फरमाने वाले! कबूल फरमा। और सब खूबियाँ अल्लाह के लिए हैं जो सारे जहानों का मालिक है। और खुदा-ए-बरतर हमारे आका व मौला

हजरत मुहम्मद, उनकी आल (वंश), उनके सहाबा और उनके दीन के मुजतहिदीन सब पर दरूद व सलाम नाजिल फरमाए, इलाही! कबूल फरमा!

---

1 मसनद अहमद बिन हंबल, हज़रत अबू हुरैरा से रिवायत, दार अल-फ़िक्र, बेरूत, 2/429, 440, 469; हिल्या अल-औलिया, जीवनी संख्या 328, शहर बिन हौशब, दार अल-किताब अल-अरबी, बेरूत, 6/24; जामी अल-सगीर मा फ़ैज़ अल-क़दीर, हदीस 7462, दार अल-मआरिफ़ा, बेरूत, 5/323।

شرعیہ اسی کی مقتضی ہوئی کہ تکرار کی اجازت نہ دیں۔ جب لوگ جانیں گے اگر نماز ہو چکی تو پھر نہ ملے گی اور ایسے افضال عظیمہ ہاتھ سے نکل جائیں گے تو خواہی نہ خواہی جلدی کرتے حاضر آئیں گے اور میّت کے فائدے اور اپنے بھلے کے لئے جلد جمع ہو جائیں گے اور شرعِ مطہر کے دونوں مقصد باحسن وجوہ رنگِ ظہور پائیں گے۔ الحمد للہ ! یہ ایک ادنیٰ شمہ ہے اُس الٰہی عالم، ربانی حاکم، کی نظرِ حقائق نگر کا ، جو مصداقِ اعلیٰ عظیم بشارت والا اُس حدیثِ صحیح کا ہے کہ حضور سید المرسلین صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم نے فرمایا:

- لو كان العلم معلقا بالثريا لتناله قوم من ابناء فارس ۱- رواه الامام احمد في المسند وابونعيم في الحلية عن ابي هريرة والشيرازي في الالقاب عن قيس بن سعد رضي الله تعالى عنهما۔
- علم اگر ثریا پر معلق ہوتا تو اولادِ فارس سے کچھ لوگ اسے وہاں سے بھی لے آتے۔ اسے امام احمد نے مسند میں اور ابونعیم نے حلیہ میں حضرت ابوہریرہ سے اور شیرازی نے القاب میں حضرت قیس بن سعد سے روایت کیا۔ رضی اللہ تعالیٰ عنہما۔

اعنی امام الائمہ سراج الامہ کاشف الغمہ امام اعظم ابوحنیفہ رضی اللہ تعالیٰ عنہ جن کی رائے منیر و نظیر بے نظیر تمام مصالح شرعیہ کو محیط و جامع ، اور مومنین کے لئے ان کی حیات و موت میں خیر محض و نافع

- فجزاه الله عن الاسلام والمسلمين كل خير وقاه وتابعيه بحسن الاعتقاد كل ضر وضير امين يا ارحم الراحمين والحمد لله رب العلمين وصلى الله تعالٰى على سيدنا ومولنا محمد واٰله وصحابته ومجتہدی ملة اجمعين امين!

- تو خدا اسلام اور مسلمانوں کی جانب سے انہیں خیر کا صلہ دے اور انہیں اور حسنِ اعتقاد کے ساتھ ان کا اتباع کرنے والوں کو ہر تکلیف اور نقصان سے بچائے ، اور سب سے بڑھ کر رحم فرمانے والے ! قبول فرما۔ اور سب خوبیاں اللہ کے لئے جو سارے جہانوں کا مالک ہے۔ اور خدائے برتر ہمارے آقا و مولا حضرت محمد ، ان کی آل ، ان کے صحابہ اور ان کے دین کے مجتہدین سب پر درود و سلام نازل فرمائے ، الٰہی ! قبول فرما !

---

۱ مسند احمد بن حنبل مروی از ابوہریرہ دار الفکر بیروت ۲ / ۴۲۹، ۴۴۰، ۴۶۹، حلیۃ الاولیاء ترجمہ نمبر ۳۲۸ شہر بن حوشب دار الکتاب العربی بیروت ۶/ ۲۴، جامع الصغیر مع فیض القدیر حدیث ۷۴۶۲ دار المعرفہ بیروت ۵ / ۳۲۳

Volume Nine Fatawa Razvia

Praise be to Allah that this concise and brief summary was completed at the end of Rajab and titled "An-Nahyu al-Hajiz 'an Takrari Salat al-Jana'iz" (The Restraining Prohibition against Repeating the Funeral Prayer) according to the date. Allah, the Glorious and Exalted, knows best, and His knowledge, may His glory be magnified, is most complete and most perfect.

Issue No. 84: From the city of Chittagong, village Char Baklia, house of Roshan Ali Mistri, sent by Munshi Muhammad Ismail, 13 Shawwal 1330 AH.

Question: What do the scholars of the religion say about how many times the funeral prayer of the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) was performed? And who was the first person to lead it? Explain and be rewarded.

The Answer: May Allah the Almighty bless and grant peace to His Beloved, his family, and his progeny. More beneficial to the questioner than the answer to the issue is the fact that what the common and ignorant people often write in place of Durood Sharif (invoking blessings), such as "sal'am", "y-m", "s", or "salm", is purely absurd and ignorance. "The pen is one of the two tongues." Just as saying these absurd words with the tongue instead of Durood Sharif will not fulfill the act of invoking blessings, similarly, writing these absurdities will not serve the purpose of writing Durood. Such short-writing is a severe deprivation. I fear lest such people be included among those mentioned in the verse: "But those who wronged changed [those words] to a statement other than that which had been said to them." (Translation: So the wrongdoers changed the word that was said to them.) [Quran 2:59]. One should always write the full Durood with the holy name: Sallallahu 'alayhi wa sallam. Regarding the prayer over the noble funeral, the reports differ. According to one view, this was not the well-known prayer, but rather people came in groups after groups and presented prayers and salutations. Some hadiths also support this, as we have explained in our treatise "An-Nahyu al-Hajiz 'an Takrari Salat al-Jana'iz" (as we have stated in our treatise). Many scholars accept this as the well-known prayer; Imam Qadi Iyad confirmed this. As mentioned in the commentary of Al-Muwatta by Az-Zurqani: Sayyiduna Siddiq al-Akbar (may Allah be pleased with him) was busy with pacifying the fitna (discord) and organizing the Ummah. Until the oath of allegiance was given at his right hand, people came in crowds and prayed over the radiant funeral. When the oath of allegiance took place, Siddiq became the legitimate religious guardian (Wali Shar'i). He prayed over the sacred funeral, and then no one

else prayed because after the prayer of the guardian, there is no authority to repeat the funeral prayer. The brief detail of all these points is in the aforementioned treatise of this humble servant. [Reference:] Mabsut of Imam Shams al-A'imma.

1: Al-Quran 2/59 Page 315 of 948

खंड नौ फ़तावा रज़विया

अल्लाह का शुक्र है कि यह संक्षिप्त सारांश रजब के अंत में पूरा हुआ और तारीख के अनुसार इसका नाम "अन-नह्युु अल-हाजिज़ 'अन तकरारी सलात अल-जनाइज़" (जनाज़े की नमाज़ को दोहराने के खिलाफ़ रोक) रखा गया। अल्लाह सुब्हानहू व तआला सबसे बेहतर जानता है और उसका ज्ञान, जिसकी महिमा महान है, सबसे पूर्ण और सबसे सटीक है।

मसला नंबर ८४: चटगाँव शहर, चर बकलिया गाँव, रोशन अली मिस्त्री का घर, मुंशी मुहम्मद इस्माइल द्वारा भेजा गया, १३ शव्वाल १३३० हिजरी।

सवाल: दीन के विद्वान क्या कहते हैं कि हुज़ूर सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम के जनाज़े की नमाज़ कितनी बार पढ़ी गई थी? और सबसे पहले किस व्यक्ति ने पढ़ाई थी? स्पष्ट करें और पुण्य प्राप्त करें।

जवाब: अल्लाह तआला अपने हबीब, उनके परिवार और वंश पर आशीर्वाद और शांति बरसाए। प्रश्नकर्ता के लिए मसले के उत्तर से अधिक लाभदायक बात यह है कि जो आम और अज्ञानी लोग दरूद शरीफ़ की जगह "सलअम", "य-म", "स" या "सलम" लिखा करते हैं, वह कोरा निरर्थक और अज्ञानता है। "कलम दो ज़बानों में से एक है।" (अनुवाद: जैसे ज़बान से दरूद शरीफ़ के बजाय इन निरर्थक शब्दों को कहना दरूद की अदायगी नहीं करेगा, वैसे ही इन निरर्थक शब्दों को लिखना दरूद लिखने का काम नहीं देगा)। ऐसी छोटी-लिखावट गंभीर वंचना है। मुझे डर है कि कहीं ऐसे लोग "फ़बद्दलाल्लज़ीना ज़लमू क़ौलन ग़ैरल्लज़ी क़ीला लहुम" (अनुवाद: तो ज़ालिमों ने उस बात को बदल डाला जो उनसे कही गई थी) में शामिल न हो जाएं। पवित्र नाम के साथ हमेशा पूरा दरूद लिखा जाए: सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम। जनाज़े के मुकद्दस (पवित्र) नमाज़ के बारे में विभिन्न अध्याय हैं। एक के अनुसार यह प्रसिद्ध नमाज़ नहीं थी, बल्कि लोग समूहों के समूह में आते और दुरूद-ओ-सलाम पेश करते। कुछ हदीसें भी इसका समर्थन करती हैं जैसा कि हमने अपने शोध पत्र "अन-नह्युु अल-हाजिज़ 'अन तकरारी सलात अल-जनाइज़" में स्पष्ट किया है (जैसा कि उन्हें हमने अपने रिसाले 'अन-नह्युु अल-हाजिज़' में बयान किया है)। और बहुत से विद्वान इसी को प्रसिद्ध नमाज़ मानते हैं, इमाम क़ाज़ी अयाज़ ने इसकी पुष्टि की है। जैसा कि अल-मुवत्ता की व्याख्या (शराह) अज़-ज़ुरक़ानी में है (जैसा कि अल्लामा ज़ुरक़ानी की शराह मुवत्ता में है)। सैयदुना सिद्दीक़-ए-अकबर रज़ियल्लाहु अन्हु फ़ितनों को शांत करने और उम्मत के इंतज़ाम में व्यस्त थे। जब तक उनके हक-परस्त हाथ पर बैअत (निष्ठा की शपथ) नहीं हुई थी, लोग फ़ौज दर फ़ौज आते और जनाज़ा-ए-अनवर पर नमाज़ पढ़ते

जाते। जब बैअत हुई, तो सिद्दीक़ शरई वली बन गए। उन्होंने पवित्र जनाज़े पर नमाज़ पढ़ी, फिर किसी ने नहीं पढ़ी क्योंकि वली की नमाज़ के बाद फिर से जनाज़े की नमाज़ दोहराने का अधिकार नहीं होता। इन तमाम बातों का संक्षिप्त विवरण इस फ़कीर के उपरोक्त शोध पत्र में है। [संदर्भ:] इमाम शम्स अल-आइम्मा की "मबसूत"।

१: अल-कुरान २/५९ पृष्ठ ३१५ / ९४८

جلد نہم فتاویٰ رضویہ

الحمد للہ کہ یہ مجمل و مختصر عجالہ ، سلخ رجب کو غرہ سمائے تمام ہوا اور بلحاظ تاریخ النھی الحاجز عن تکرار صلوۃ الجنائز نام ہوا واللہ سبحنہ وتعالیٰ اعلم وعلمہ جل مجدہ اتم واحکم۔

مسئلہ نمبر ۸۴: از شہر چاٹگام موضع چر با کلیہ مکان روشن علی مستری مرسلہ منشی محمد اسمعیل ۱۳ شوال ۱۳۳۰ھ

کیا فرماتے ہیں علمائے دین کہ آنحضرت صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم کے جنازہ کی نماز کے مرتبہ پڑھی گئی۔ اور اول کس شخص نے پڑھائی تھی؟ بینوا توجروا

الجواب: صلی اللہ تعالٰی علیٰ حبیبہ والہ وبارک وسلم۔ سائل کو جواب مسئلہ سے زیادہ نافع یہ بات ہے کہ درود شریف کی جگہ جو عوام و جہال صلعم یا ع یام یا ص یا صلم لکھا کرتے ہیں، محض مہمل وجہالت ہے، القلم احدی اللسانین (قلم دو زبانوں میں سے ایک ہے۔ت) جیسے زبان سے درود شریف کے عوض یہ مہمل کلمات کہنا درود کو ادا نہ کرے گا یوں ہی ان مہملات کا لکھنا، درود لکھنے کا کام نہ دے گا، ایسی کوتاہ قلمی سخت محرومی ہے۔ میں خوف کرتا ہوں کہ کہیں ایسے لوگ فبدل الذین فَبَدَّلَ الَّذِیْنَ ظَلَمُوْا قَوْلًا غَیْرَ الَّذِیْ قِیْلَ لَھُمْ (تو ظالموں نے بدل ڈالی وہ بات جو ان سے کہی گئی تھی۔ت) میں نہ داخل ہوں۔ نام پاک کے ساتھ ہمیشہ پورا درود لکھا جائے صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم۔ جنازہ اقدس پر نماز کے باب مختلف ہیں۔ ایک کے نزدیک یہ نماز معروف نہ ہوئی بلکہ لوگ گروہ در گروہ حاضر آتے اور صلوٰۃ وسلام عرض کرتے بعض احادیث بھی اس کی مؤید ہیں کما بیناھا فی رسالتنا النھی الحاجز عن تکرار صلوۃ الجنائز (جیسا کہ انہیں ہم نے اپنے رسالہ النھی الحاجز عن تکرار صلوۃ الجنائز میں بیان کیا ہے۔ت) اور بہت علماء یہی نماز معروف مانتے ہیں،

امام قاضی عیاض نے اسی کی تصحیح فرمائی۔ کما فی شرح الموطا للزرقانی (جیسا کہ علامہ زرقانی کی شرح موطا میں ہے۔ت) سیدنا صدیق اکبر رضی اللہ تعالیٰ عنہ تسکین فتن و انتظامِ امت میں مشغول، جب تک ان کے دستِ حق پرست پر بیعت نہ ہوئی تھی، لوگ فوج فوج آتے اور جنازہ انور پر نماز پڑھتے جاتے، جب بیعت ہوئی، ولی شرعی صدیق ہوئے، انہوں نے جنازہ مقدس پر نماز پڑھی، پھر کسی نے نہ پڑھی کہ بعد صلوٰۃِ ولی پھر اعادہ نماز جنازہ کا اختیار نہیں۔ ان تمام مطالب کی تفصیل قلیل، فقیر کے رسالہ مذکورہ میں ہے۔ مبسوط امام شمس الائمہ۔

Fatawa Ridawiyya, Volume 9

It is stated in 'Sarkhi':

Arabic Text	Urdu Translation
Indeed, Abu Bakr (may Allah be pleased with him) was occupied with settling matters and calming the sedition. People used to offer funeral prayers for him before his arrival, and it was his right because he was the Caliph. When he finished, he offered the prayer, and after him, no one else offered the prayer.[1]	Hazrat Abu Bakr (may Allah be pleased with him) was busy in correcting affairs and suppressing sedition. People would come and offer prayers before his arrival, and it was his right because he was the Caliph. So, when he became free, he offered the prayer, then after that, the prayer was not offered. (T)

Bazzar, Hakim, Ibn Mani', Bayhaqi, and Tabarani in Mu'jam al-Awsat narrated from Hazrat Abdullah bin Mas'ud (may Allah be pleased with him) that the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) said:

Arabic Text	Urdu Translation
When you have washed me and shrouded me, place me on my bier, then leave my presence. For the first to offer prayers for me will be Jibril, then Mika'il, then Israfil, then the Angel of Death with all his hosts of angels. Then enter upon me group after group, and offer prayers and greetings of peace upon me.[2]	When you are finished with my washing and shrouding, place me on the blessed bier and go outside. First of all, Jibril will offer prayers for me, then Mika'il, then Israfil, then the Angel of Death with all his armies. Then, come to me group by group and keep offering Durud and Salam upon me. And Allah, the Sublime and Exalted, knows best.

1. Mabsut Imam Sarakhsi, Chapter: Washing the Deceased, Dar al-Ma'rifah Beirut, 2/67.
2. Al-Mustadrak 'ala al-Sahihayn, Book of Military Expeditions, Dar al-Fikr Beirut, 3/7; Sharh al-Zarqani 'ala Muwatta Imam Malik, with reference to al-Bazzar, chapter 9, page 114, Al-Maktabah al-Tijariyyah al-Kubra Egypt. 26/2.

फ़तावा रिज़विया, जिल्द 9

'सुर्खी' में है:

अरबी पाठ

बेशक अबू बकर (रज़ियल्लाहु तआला अन्हु) मामलों को सुलझाने और फ़ितने को शांत करने में व्यस्त थे। लोग उनके आने से पहले उन पर नमाज़ (जनाज़ा) पढ़ते थे, और यह उनका हक था क्योंकि वह खलीफ़ा थे। जब वे फ़ारिग हुए तो उन्होंने नमाज़ पढ़ी, फिर उनके बाद किसी ने नमाज़ नहीं पढ़ी।[1]

उर्दू अनुवाद

हज़रत अबू बकर (रज़ियल्लाहु तआला अन्हु) मामलात दुरुस्त करने और फ़ितना दबाने में मसरूफ़ थे। लोग उनकी आमद से पहले आकर नमाज़ पढ़ते जाते, और हक़ उनका था इसलिए कि वह ख़लीफ़ा थे, तो जब फ़ारिग हुए नमाज़ पढ़ी, फिर इसके बाद नमाज़ न पढ़ी गई। (त)

बज़ार, हाकिम, इब्न मनी, बैहक़ी और तबरानी ने मुअजम अल-औसत में हज़रत अब्दुल्ला बिन मसूद (रज़ियल्लाहु तआला अन्हु) से रिवायत की है कि रसूलुल्लाह (सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम) ने फ़रमाया:

अरबी पाठ

जब तुम मुझे ग़ुस्ल दे चुको और मुझे कफ़न पहना चुको, तो मुझे मेरे तख़्त पर रख दो, फिर मेरे पास से बाहर चले जाओ। क्योंकि सबसे पहले जो मुझ पर नमाज़ पढ़ेंगे वे जिब्रील होंगे, फिर मीकाईल, फिर इस्राफील, फिर मलकुल मौत अपने फरिश्तों के तमाम लश्करों के साथ। फिर तुम मेरे पास गिरोह दर गिरोह दाखिल होना, और मुझ पर दरूद व सलाम पढ़ना।[2]

उर्दू अनुवाद

जब मेरे ग़ुस्ल व कफ़न से फ़ारिग हो मुझे लाश मुबारक पर रखकर बाहर चले जाओ। सब से पहले जिब्रील मुझ पर नमाज़ पढ़ेंगे फिर मीकाईल फिर इस्राफील फिर मलकुल मौत अपने सारे लश्करों के साथ फिर गिरोह गिरोह मेरे पास हाज़िर होकर मुझ पर दरूद व सलाम अर्ज़ करते जाओ। वल्लाहु सुब्हानहु व तआला आलम।

1. मब्सूत इमाम सरख़सी, बाब: ग़ुस्ल अल-मय्यित, दार अल-मआरिफ़ा बेरूत, 2/67।

2. अल-मुस्तदरक अलस-सहीहैन, किताब अल-मगाज़ी, दार अल-फ़िक्र बेरूत, 3/7; शरह अल-ज़रकानी अला मुवत्ता इमाम मालिक, हवाला अल-बज़ार बाब 9 पृ. 114, अल-मकतबा अल-तिजारिया अल-कुबरा मिस्र। 26/2।

पृष्ठ 316 का 948

فتاوٰی رضویہ، جلد نہم

سرخی میں ہے:

عربی عبارت	اردو ترجمہ
ان ابابکر رضی اللہ تعالی عنہ کان مشغولا بتسویۃ الامور وتسکین الفتنۃ فکانوا یصلون علیہ قبل حضورہ وکان الحق لہ لا نہ ھو الخلیفۃ فلما فرغ صلی علیہ ثم لم یصل احد بعدہ علیہ[1]۔	حضرت ابوبکر رضی اللہ تعالٰی عنہ معاملات درست کرنے اور فتنہ فرو کرنے میں مشغول تھے لوگ ان کی آمد سے پہلے آکر صلوٰۃ پڑھتے جاتے، اور حق ان کا تھا اس لئے کہ وہ خلیفہ تھے، تو جب فارغ ہوئے نماز پڑھی، پھر اس کے بعد نماز نہ پڑھی گئی۔ (ت)

بزار و حاکم وابن منیع و بیہقی اور طبرانی معجم اوسط میں حضرت عبداللہ بن مسعود رضی اللہ تعالٰی عنہ سے راوی رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم نے فرمایا:

عربی عبارت	اردو ترجمہ
اذا غسلتمونی و کفنتمونی فضعونی علی سریری ثم اخرجوا عنی فان اول من یصلی علیّ جبرئیل ثم میکائیل ثم اسرافیل ثم ملك الموت مع جنودہ من الملئکۃ باجمعھم ثم ادخلوا علیّ فوجا بعد فوج فصلوا علی وسلموا تسلیما[2]۔	جب میرے غسل و کفن سے فارغ ہو مجھے نعش مبارک پر رکھ کر باہر چلے جاؤ۔ سب سے پہلے جبریل مجھ پر صلوٰۃ کریں گے پھر میکائیل پھر اسرافیل پھر ملک الموت اپنے سارے لشکروں کے ساتھ پھر گروہ گروہ میرے پاس حاضر ہو کر مجھ پر درود و سلام عرض کرتے جاؤ۔ واللہ سبحنہ وتعالی اعلم

1 مبسوط امام سرخسی باب غسل المیت دارالمعرفۃ بیروت ۲/ ۶۷ 2 المستدرک علی الصحیحین کتاب المغازی دارالفکر بیروت ۳/ ۷ ، شرح الزرقانی علی موطا امام مالک بحوالہ البزار باب ۹ ص ۱۱۴ المکتبۃ التجاریۃ الکبری مصر ۲۶/ ۲

Volume 9 Fatawa Rizvia

Al-Hadi al-Hajib 'an Janazah al-Gha'ib 1326 AH (The Guide that Prevents Absentee Funeral Prayer)

Problem No. 85 to 87: From Bangalore Cantonment, Jame Mosque, sent by Maulvi Abdul Rahim Sahib Madrasi, 23 Dhu al-Hijjah 1326 AH. What do the Hanafi scholars (may Allah Almighty have mercy on them) say: In the Hanafi school of thought, if the funeral prayer has been performed with the guardians of the deceased, is it permissible to perform it again? And is it permissible to perform the funeral prayer for an absentee? And if the Imam follows the Shafi'i school, will both these matters become permissible for us Hanafis by following him? Is there any basis for this legal stratagem in our school? In our Deccan regions, Bangalore and Madras districts, there is a dire need for these issues to be clarified. It is hoped that the explanations will be easy to understand.

Answer: In the name of Allah, the Most Gracious, the Most Merciful.

[Table Header:] Arabic: All praise is for Allah, in whose presence no one can intercede except by His permission, and peace and blessings be upon him who commanded to stay within the boundaries of His religion, and upon his family and companions according to the Prophet's excellence and perfection. Ameen. Urdu: All praise is for Allah, in whose presence no one can intercede without His permission, and peace and blessings be upon him who commanded staying within the boundaries of religion, and upon his family and companions according to the Prophet's excellence and perfection. O Lord, accept it.

Page 318 of 948

जिल्द नौ फ़तावा रज़विया

अल-हादी अल-हाजिब 'अन जनाज़ा अल-ग़ायब १३२६ हिजरी (ग़ायब की नमाज़-ए-जनाज़ा से रोकने वाला हादी)

मसला नंबर ८५ से ८७: अज़ लश्कर बैंगलोर जामे, मुर्सला मौलवी अब्दुल रहीम साहब मद्रासी, २३ ज़ुल-हिज्जा १३२६ हिजरी। उलमा-ए-अहनाफ (अल्लाह तआला उन पर रहम फरमाए) क्या फरमाते हैं कि हनफी मज़हब में नमाज़-ए-जनाज़ा मय औलिया-ए-मय्यत पढ़ लिए हों फिर दोबारा पढ़ना, और नमाज़-ए-जनाज़ा ग़ायब पर पढ़ना जायज़ है या नहीं? और अगर इमाम शाफई मज़हब हो तो उसके इक्तिदा से हम हनफियों को ये दोनों अम्र (बातें) जायज़ हो जाएँगे या नहीं? ये हीला (बहाना) हमारे मज़हब में कुछ असल है या नहीं? हमारे बिलाद-ए-दकन अज़ला बैंगलोर व मद्रास में इन मसलों की अशद ज़रूरत है, उम्मीद कि इबारात आम फहम होंगी।

अल-जवाब: बिस्मिल्लाह हिर्रहमान निर्रहीम

[तालिका सामग्री:] बायां (अरबी): सब तारीफें अल्लाह के लिए हैं, जिसके दरबार में उसकी अनुमति के बिना कोई सिफारिश नहीं कर सकता, और दुरूद और सलाम हो उन पर जिन्होंने दीन की हदों पर रुक जाने का हुक्म दिया, और उनकी आल और असहाब पर हुज़ूर के हुस्न और कमाल के बराबर। आमीन। दायां (उर्दू): तमाम तारीफ अल्लाह के लिए है जिसके हुज़ूर उसके इज़्न (इजाज़त) के बगैर कोई शफ़ाअत करने वाला नहीं, और दुरूद व सलाम हो उन पर जिन्होंने दीन की हदों पर रुक जाने का हुक्म दिया, और उनकी आल व असहाब पर हुज़ूर के हुस्न व कमाल के बक़द्र। इलाही कुबूल फरमा।

पृष्ठ ९४८ में से ३१८

جلد نہم فتاویٰ رضویہ

الھادی الحاجب عن جنازۃ الغائب ۱۳۲۶ھ (غائب کی نمازِ جنازہ سے روکنے والا ہادی)

مسئلہ نمبر ۸۵ تا ۸۷: از معسکر بنگلور جامع مرسلہ مولوی عبدالرحیم صاحب مدراسی ۲۳ ذی الحجہ ۱۳۲۶ھ کیا فرماتے ہیں علمائے احناف رحمہم اللہ تعالیٰ کہ حنفی مذہب میں نمازِ جنازہ مع اولیائے میت پڑھ لئے ہوں پھر دوبارہ پڑھنا، اور نمازِ جنازہ غائب پر پڑھنا جائز ہے یا نہیں؟ اور اگر امام شافعی مذہب ہو تو اس کے اقتداء سے ہم حنفیوں کو یہ دونوں امر جائز ہو جائیں گے یا نہیں؟ یہ حیلہ ہمارے مذہب میں کچھ اصل ہے یا نہیں؟ ہمارے بلادِ دکن اضلاع بنگلور و مدراس میں ان مسئلوں کی اشد ضرورت ہے، اُمید کہ عباراتِ عام فہم ہوں گی۔

الجواب: بسم اللہ الرحمن الرحیم

| الحمد للہ الذی لا یشفع عندہ الا باذنہ والصلوۃ والسلام علی من امر بالوقوف عند حدود دینہ وعلی الہ وصحبہ قدر کمالہ وحسنہ اٰمین ط | تمام تعریف اللہ کے لئے جس کے حضور اس کے اذن کے بغیر کوئی شفاعت کرنے والا نہیں، اور درود و سلام ہو ان پر جنہوں نے دین کی حدوں پر رُک جانے کا حکم دیا، اور ان کی آل واصحاب پر حضور کے حسن وکمال کے بقدر۔ الٰہی قبول فرما۔ |

صفحہ 318 از 948

Fatawa Razawiya, Volume Nine

Answer to the first question: In the refined Hanafi school of thought, when the guardian (Wali) [Note 1] has already performed the prayer, or the prayer has been performed once with his permission (even if someone else started and the Wali joined in), it is absolutely not permissible for others to perform it again, neither for those who have already prayed nor for those who remain. There is a consensus among the Hanafi Imams on this; whoever goes against it opposes the Hanafi school. All the books of the school—original texts, commentaries, and fatwas—are resounding with these clarifications. A complete investigation and analysis of this issue has already been done by this humble servant in his treatise *An-Nahy al-Hajiz 'an Takrar Salawat al-Jana'iz* (The Preventive Prohibition of Repeating Funeral Prayers), by the grace of Allah, in the most perfect manner. Here, I shall only mention the texts and statements of the Imams and scholars of the Hanafi school (may Allah encompass them with His hidden favors). And since this writing is not devoid of new benefits, take heed of the novelties and additions within them. Success is from Allah. Here, for the purpose of organized discourse [Note 2], the desired objectives are divided into several types:

Type One: The funeral prayer is not permissible a second time. (1) It is stated in *Durr-e-Mukhtar*: Repetition of it (the funeral prayer) is not prescribed [1]. Repeating the funeral prayer is not permissible. (2) It is stated in *Ghunya Sharh Munya*: Repeating the prayer over one deceased person is not prescribed [2]. A second prayer over one deceased person is unlawful. (3) The most exalted Imam, Mufti of Jinns and Humans, My Master Najmuddin Umar Nasafi, the teacher of the most exalted author of *Hidaya* (may Allah have mercy on both), states in his blessed poetic work:

Note 1: By "Wali" here is meant the one most deserving, and by "non-Wali" is meant the one who has no right. Keep this in mind, the details will follow later. (From the Author - m) | Here, by "Wali" is meant the one who is most entitled, and by "non-Wali" is meant the one who does not have the right. Keep this in mind, details will come ahead. (From the Author - t)

Note 2: Each type, with divine assistance, will comprise refined and grand issues that were needed in this chapter, and in matters of disagreement, there will be a

summary indication towards the most correct opinion. Success is from Allah. (From the Author - m)

1. *Durr-e-Mukhtar*, Chapter on Funeral Prayers, Mujtabai Press, Delhi, 1/123.
2. *Ghunya al-Mustamli Sharh Munya al-Musalli*, section on Funerals, Suhail Academy, Lahore, p. 59.

फ़तावा रज़विया, नौवीं जिल्द

पहले सवाल का जवाब: हनफ़ी मज़हब में, जब वली (अभिभावक) [नोट १] नमाज़ पढ़ चुका हो या उसकी अनुमति से एक बार नमाज़ हो चुकी हो (भले ही किसी और ने शुरू की हो और वली उसमें शामिल हो गया हो), तो अब दूसरों के लिए इसे दोबारा पढ़ना बिल्कुल जायज़ नहीं है, न उनके लिए जो पढ़ चुके हैं और न ही उनके लिए जो बाकी रह गए हैं। हनफ़ी इमामों का इस पर इजमा (सहमति) है; जो इसका विरोध करे वह हनफ़ी मज़हब का विरोधी है। मज़हब की तमाम किताबें—मूल ग्रंथ, व्याख्याएँ और फ़तावा—इसकी स्पष्टताओं से गूंज रही हैं। इस मसले की पूरी तहकीक़ और छानबीन फकीर (लेखक) के रिसाले 'अन-नह्युल हाज़िज़ अन तकरार सलातुल जनाइज़' में अल्लाह के फज़्ल से बेहतरीन तरीके से हो चुकी है। यहाँ केवल हनफ़ी इमामों और विद्वानों के ग्रंथों और कथनों का ज़िक्र किया जाएगा, अल्लाह उन पर अपनी गुप्त कृपाएँ बनाए रखे। और चूँकि यह लेखन नए लाभों से खाली नहीं है, इसलिए इनमें नवीनता और अतिरिक्त जानकारी का ध्यान रखें। सफलता अल्लाह की ओर से है। यहाँ व्यवस्थित चर्चा के उद्देश्य से [नोट २], वांछित लक्ष्यों को कई प्रकारों में विभाजित किया गया है:

पहला प्रकार: जनाज़े की नमाज़ दोबारा पढ़ना जायज़ नहीं है। (१) 'दुर्रे मुख्तार' में है: इसकी पुनरावृत्ति शरीयत में नहीं है [१]। जनाज़े की नमाज़ को दोबारा पढ़ना जायज़ नहीं है। (२) 'गुनिया शरह मुनिया' में है: एक ही मय्यत पर नमाज़ दोहराना शरीयत में नहीं है [२]। एक मय्यत पर दूसरी बार नमाज़ पढ़ना नाजायज़ है। (३) महान इमाम, जिन्नों और इंसानों के मुफ्ती, मेरे आका नजमुद्दीन उमर नसफ़ी, जो 'हिदाया' के महान लेखक के उस्ताद हैं (अल्लाह उन दोनों पर रहम करे), अपनी बरकत वाली पद्य रचना में फरमाते हैं:

नोट १: यहाँ 'वली' से मुराद वह है जो सबसे ज़्यादा हकदार है, और 'ग़ैर-वली' से मुराद वह है जिसे हक नहीं है। इसे ज़हन में रखें, तफ़सील आगे आएगी। (लेखक से - m) | यहाँ वली से मुराद वह है जो सबसे ज़्यादा हकदार है, और ग़ैर-वली से मुराद वह है जिसका हक नहीं है, यह ज़हन नशीन रहे, तफ़सील आगे आएगी। (लेखक से - t)

नोट २: हर प्रकार, ईश्वरीय सहायता से, उत्तम और महान मसलों पर आधारित होगा जिनकी इस अध्याय में आवश्यकता पड़ी, और मतभेद वाली जगहों पर सबसे सही राय की ओर एक संक्षिप्त इशारा भी होगा। सफलता अल्लाह की ओर से है। (लेखक से - m)

1. 'दुर्रे मुख्तार', जनाज़े की न७ज़ का अध्याय, मुजतबाई प्रेस, दिल्ली, १/१२३।
2. 'गुनिया अल-मुस्तमली शरह मुनिया अल-मुसल्ली', जनाज़ों का खंड, सुहेल एकेडमी, लाहौर, पृष्ठ ५९।

पृष्ठ ३१९ / ९४८

فتاوٰی رضویہ جلد نہم

جواب سوال اول: مذہب مہذب حنفی میں جبکہ ولی عہ۱ نماز پڑھ چکا یا اس کے اذن سے ایک بار نماز ہو چکی (اگرچہ یونہی کہ دوسرے نے شروع کی ولی شریک ہو گیا) تو اب دوسروں کو مطلقاً جائز نہیں ، نہ ان کو جو پڑھ چکے نہ ان کو جو باقی رہے۔ ائمہ حنفیہ کا اس پر اجماع ہے، جو اس کا خلاف کرے مذہب حنفی کا مخالف ہے۔ تمام کتب مذہب متون و شروح و فتاوٰی اس کی تصریحات سے گونج رہی ہیں۔ اس مسئلہ کی پوری تحقیق و تنقیح فقیر کے رسالہ النهي الحاجز عن تكرار صلوة الجنائز میں بفضلہ بر وجہ اتم ہو چکی ہے یہاں صرف نصوص و عبارات ائمہ و علمائے حنفیہ خصم اللہ تعالٰی بالطافہ الخفیہ ، ذکر کریں اور از آنجا کہ یہ تحریر فائدہ جدیدہ سے خالی نہ ہو، ان میں جدت و زیادت کا لحاظ رکھیں، وباللہ التوفیق یہاں کلام بنظر انتظام عہ۲ مرام چند انواع پر خواہان انقسام:

نوع اول: نماز جنازہ دوبارہ روا نہیں۔ (۱) در مختار میں ہے: تکرارها غیر مشروع ۱ـہ نماز جنازہ کی تکرار جائز نہیں۔ (۲) غنیہ شرح منیہ میں ہے: تكرار الصلوة على ميت واحد غير مشروع ۲ـہ ایک میت پر دوبارہ نماز ناجائز ہے۔ (۳) امام اجل مفتی الجن والانس سیدی نجم الدین عمر نسفی استاذ امام اجل صاحب ہدایہ رحمہما اللہ تعالٰی منظومہ مبارکہ میں فرماتے ہیں:

عہ۱: المراد بالولی ههنا هو الاحق و غیره من لیس له الحق فاحفظ وسیأتی التفصیل ۱۲منہ (م) | یہاں ولی سے مراد وہ ہے جو سب سے زیادہ حقدار ہے، اور غیر ولی سے مراد وہ جس کا حق نہیں یہ ذہن نشین رہے تفصیل آگے آئیگی ۱۲منہ (ت)

عہ۲: ہر نوع بعون الہی نفیس و جلیل مسائل پر مشتمل ہوگی کہ اس باب میں جن کی حاجت واقع ہوئی اور محل خلاف میں قول ارجح کی طرف بھی اجمالی اشارہ ہوگا وباللہ التوفیق ۱۲منہ (م)

۱ در مختار باب صلوۃ الجنائز مطبع مجتبائی دہلی ۱/ ۱۲۳ ۲ غنیہ المستملی شرح منیہ المصلی فصل فی الجنائز سہیل اکیڈمی لاہور ص ۵۹

Fatawa-e-Razvia Volume 9

Chapter on the Fatwas of Imam Shafi'i alone, and what he said and we said opposite to it.

And repetition in its performance is permissible, and odd numbers enter the graves. (1)

Meaning, the permissibility of repeating the funeral prayer is only the opinion of Imam Shafi'i; according to us, it is not permissible. (4) Izah Imam Abul Fazl Kirmani (5) Fatawa Alamgiri (6) It is mentioned in Jami' al-Rumuz: "The prayer should not be offered over a deceased person except once." (2) No prayer should be offered over a deceased person more than once. (7) Allama Sayyid Ahmad Tahtawi states in the Hashiyah of Durr al-Mukhtar: "The obligation is fulfilled by one performance; so if they repeat it, it becomes a repetition, and repeated performance is not prescribed (in Sharia)." (3) The obligation of the funeral prayer is discharged with one performance; now if it is performed again, it will be a repetition, and such repetition is not prescribed. Statements from Bahr al-Ra'iq, Shamil Bayhaqi, etc., appear in the third type, in the fourth of Hulyah, and in the "Wahm" of 'Inayah. (8) Al-Mabsut by Imam Shams al-A'immah al-Sarakhsi (9) Nihayah Sharh al-Hidayah (10) It is mentioned in Minhat al-Khaliq Hashiyah Bahr al-Ra'iq: "The prayer over the deceased is not repeated except if the guardian (Wali) is the one who arrives, for the right belongs to him and others do not have the authority to waive his right." (4) Let no prayer be performed twice on any deceased, yes, if the Wali comes then it is his right and no one else can waive his right. (11) Hidayah (12) Kafi Sharh Wafi by the Great Imam Abu al-Barakat al-Nasafi (13) Tabyin al-Haqa'iq Sharh.

Note (Ah): "According to him, no one enters the grave to place the deceased except in odd numbers, whereas according to us, odd and even are equal." (m) According to Imam Shafi'i, the number of people entering the grave to lower the deceased must be odd, and according to us, odd and even are equal. (t)

1. Manzuma Mubaraka Najmuddin Umar bin Muhammad Nasafi.
2. Jami' al-Rumuz, Chapter on Funerals, Maktaba Islamia Gumbad Qamus Iran, 1/285; Fatawa Hindiya, Chapter Five on Prayer over the Deceased, Noorani Kutub Khana Peshawar, 1/163.
3. Hashiyah al-Tahtawi 'ala al-Durr al-Mukhtar, Chapter on Funeral Prayers, Dar al-Ma'rifah Beirut, 1/371.

4. Minhat al-Khaliq Hashiyah 'ala al-Bahr al-Ra'iq, Section on who is more entitled to the prayer, H.M. Saeed Company Karachi, 2/182.

फ़तावा-ए-रज़विया जिल्द नवीं

अध्याय: केवल इमाम शाफ़ई के फ़तवे और जो उन्होंने कहा और हमने उसके विपरीत कहा।

और इसके प्रदर्शन (जनाज़े की नमाज़) में दोहराव जायज़ है और कब्रों में विषम संख्या प्रवेश करती है। (1)

अर्थात् जनाज़े की नमाज़ का दोहराव जायज़ होना केवल इमाम शाफ़ई का मत है, हमारे निकट जायज़ नहीं है। (4) ईज़ाह इमाम अबुल फ़ज़ल किरमानी (5) फ़तावा आलमगीरी (6) जामे अल-रुमूज़ में है: "एक मृतक पर एक से अधिक बार नमाज़ न पढ़ी जाए।" (2) किसी मृतक पर एक बार से ज़्यादा नमाज़ न पढ़ी जाए। (7) अल्लामा सैय्यद अहमद तहतावी हाशिया दुर्र-ए-मुख्तार में फ़रमाते हैं: "एक के पढ़ने से फ़र्ज़ साक़ित (पूरा) हो जाता है, अब अगर दोबारा पढ़ेंगे तो वह दोहराव होगा और दोहराव शरीयत में निर्धारित नहीं है।" (3) जनाज़े की नमाज़ का फ़र्ज़ एक के पढ़ने से साक़ित हो जाता है; अब अगर पढ़ेंगे तो वह दोहराव हो जाएगा और वह दोहराव शरीयत में जायज़ नहीं है। बहर-उल-राइक और शामुल बैहक़ी आदि के कथन तीसरी श्रेणी में, हुलिया की चौथी श्रेणी में और इनाया के"वहम" में आते हैं। (8) मबसूत इमाम शम्स-उल-आइम्मा सरख़सी (9) निहाया शरह हिदाया (10) मिन्हत-उल-ख़ालिक हाशिया बहर-उल-राइक में है: "मृतक पर नमाज़ नहीं दोहराई जाती सिवाय इसके कि वली (अभिभावक) वह हो जो उपस्थित हो, क्योंकि अधिकार उसका है और दूसरे के पास उसका अधिकार समाप्त करने का अधिकार नहीं है।" (4) किसी मृतक पर दो बार नमाज़ न हो, हाँ अगर वली आए तो अधिकार उसका है और दूसरा उसका अधिकार ख़त्म नहीं कर सकता। (11) हिदाया (12) काफ़ी शरह वाफ़ी लिल-इमाम अल-अजल अबी अल-बरकात अल-नसफ़ी (13) तब्यीन अल-हकाइक शरह।

विशेष नोट (अह): "उनके(इमाम शाफ़ई) निकट मृतक को रखने के लिए कब्र में उतरने वालों की संख्या केवल विषम (ताक़) होगी और हमारे निकट विषम और सम (जुफ़्त) बराबर हैं।" (म) इमाम शाफ़ई के निकट मृतक को उतारने के लिए कब्र में जाने वालों की संख्या विषम ही होगी और हमारे निकट विषम और सम एक समान हैं। (त)

1. मंज़ूमा मुबारका नजमुद्दीन उमर बिन मुहम्मद नसफ़ी।
2. जामे अल-रुमूज़, जनाज़े का अध्याय, मकतबा इस्लामिया गुम्बद क़ामूस ईरान, 1/285; फ़तावा हिन्दिया, मृतक पर नमाज़ का पाँचवाँ अध्याय, नूरानी कुतुब ख़ाना पेशावर, 1/163।

3. हाशिया अल-तहतावी अल दुर्र-अल-मुख्तार, जनाज़े की नमाज़ का अध्याय, दार अल-मआरिफ़ बेरुत, 1/371।
4. मिन्हत-उल-ख़ालिक हाशिया अल अल-बहर-अल-राइक, नमाज़ के अधिक हक़दार के अध्याय में, एच.एम. सईद कंपनी कराची, 2/182।

فتاوٰی رضویہ جلد نہم

باب فتاوی الشافعی وحدہ ومابہ قال وقلنا ضدّہ

وجائز فی فعلھا التکرار وفی القبور ع یدخل الاوتار 1

یعنی نماز جنازہ کی تکرار جائز ہونا صرف امام شافعی کا قول ہے ہمارے نزدیک جائز نہیں۔ (۴) ایضاح امام ابوالفضل کرمانی (۵) فتاوٰی عالمگیریہ (۶) جامع الرموز میں ہے: لا یصلی علی میّت الامرۃ واحدۃ 2 کسی میت پر ایک بار سے زیادہ نماز نہ پڑھی جائے۔ (۷) علامہ سید احمد طحطاوی حاشیہ در مختار میں فرماتے ہیں: سقوط فرضھا بواحد فلو اعادوا تکررت ولم تشرع مکررۃ 3 نماز جنازہ کا فرض ایک کے پڑھنے سے ساقط ہو جاتا ہے اب اگر پڑھیں تو مکرر ہو جائے گی اور وہ مکرر مشروع نہیں۔ بحر الرائق و شامل بیہقی وغیرہما کی عبارات نوع سوم میں آتی ہیں اور حلیہ کی چہارم اور عنایہ کی وہم میں۔ (۸) مبسوط امام شمس الائمہ سرخسی (۹) نہایہ شرح ہدایہ (۱۰) منحۃ الخالق حاشیہ بحر الرائق میں ہے: لا تعاد الصلوٰۃ علی المیت الا ان یکون الولي ھو الذی حضر فان الحق لہ ولیس لغیرہ ولایۃ اسقاط حقہ۔ 4 کسی میت پر دو دفعہ نماز نہ ہو، ہاں اگر ولی آئے تو حق اس کا ہے اور دوسرا اس کا حق ساقط نہیں کر سکتا (۱۱) ہدایہ (۱۲) کافی شرح وافی للامام الاجل ابی البرکات النسفی (۱۳) تبیین الحقائق شرح

عہ: لایدخل القبر عندہ لوضع المیت الا الوتر و عندنا الوتر والشفع سواء ۱۲ منہ (م) امام شافعی کے نزدیک میت کو اتارنے کے لئے قبر میں جانے والوں کی تعداد طاق ہی ہو گی اور ہمارے نزدیک طاق اور جفت یکساں ہیں ۱۲ منہ (ت)

1 منظومہ مبارکہ نجم الدین عمر بن محمد نسفی 2 جامع الرموز فصل فی الجنائز مکتبہ اسلامیہ گنبد قاموس ایران ۲۸۵/۱، فتاوٰی ہندیہ الفصل الخامس فی الصلوۃ علی المیت نورانی کتب خانہ پشاور ۱۶۳/۱ 3 حاشیہ الطحطاوی علی الدر المختار باب صلوۃ الجنائز دار المعرفۃ بیروت ۳۷۱/۱ 4 منحۃ الخالق حاشیہ علی البحر الرائق فصل فی السلطان احق بصلوتہ ایچ ایم سعید کمپنی کراچی ۱۸۲/۲

Fatawa Razawiya Volume 9

Type Two 2: If [the funeral prayer] is performed again, it would be a supererogatory (Nafl) prayer, and this prayer is not permissible as a Nafl. It is stated in Kanz al-Daqaiq by Imam al-Zaila'i (13), Jawaharah al-Nayyirah commentary on Mukhtasar al-Quduri (15), Durar Sharh Ghurar (16), Bahr al-Raiq Sharh al-Kanz by Allama Zayn (17), Majma' al-Anhur Sharh Multaqa al-Abhur (18), Mustakhlas al-Haqaiq Sharh Kanz (19), and Kabiri ala al-Munyah:

Arabic: Al-fardu yuta'adda bil-awwal wa at-tanaffulu biha ghayru mashru' (zada fit-Tabyin) wa lihadha la yusalla 'alayhi man salla 'alayhi marratan.	**The obligation is fulfilled with the first prayer, and this prayer is not permissible as a supererogatory (Nafl) prayer. Therefore, one who has already prayed once should not pray again.**

The words in Al-Kafi are:

Arabic: Haqqul-mayyiti yuta'adda bil-fariqil-awwal wa saqat-al-fardu bis-salatil-ula falaw fa'alahul-fariqu-thani lakana naflan wa dha ghayru mashru'in kaman salla 'alayhi marratan.	**The right of the deceased was fulfilled by the first group, and the collective obligation (Fard Kifayah) was waived by the first prayer. Now, if other people pray, it will be a Nafl prayer, and this is not permissible, just as a person who has already prayed once is not allowed to pray again.**

(20) In Sharh Tajrid al-Kirmani, (21) Fatawa al-Hindiyyah, (22) Maraqi al-Falah by Allama Shurunbulali, it is stated: "At-tanaffulu bi-salatil-janazati ghayru mashru'." Funeral prayer as a Nafl is not permissible. (23) Imam Muhammad bin Amir al-Hajj states in Hilyat al-Munyah Sharh Munyat al-Musalli:

Arabic: Al-madh-habu 'inda ashabina ann-at-tanaffula biha ghayru mashru'in.	**The school of thought according to our Imams is that the funeral prayer is not valid as a supererogatory prayer.**

(24) Bahr al-Uloom Malik al-Ulama states in Rasa'il al-Arkan:

Arabic: Law sallu al-zama at-tanaffula bi-salatil-janazati wa dha ghayru ja'izin.	**If they pray again, it would necessitate performing the funeral prayer as a supererogatory (Nafl) prayer, and this is impermissible.**

1. Tabyin al-Haqaiq, Chapter of Funerals, published by Kubra Amiriyah, Egypt, 1/240.
2. Al-Kafi.
3. Fatawa al-Hindiyyah, Chapter Five on Praying over the Deceased, Noorani Kutub Khana, Peshawar, 1/163.
4. Hilyat al-Mahalli Sharh Munyat al-Musalli.
5. Rasa'il al-Arkan, section on the ruling of funerals, Maktaba Islamia, Quetta, p. 155.

फ़तावा रज़विया जिल्द 9

प्रकार दो 2: यदि [जनाज़े की नमाज़] दोबारा पढ़ी जाए तो यह नफ़्ल (स्वैच्छिक) नमाज़ होगी और यह नमाज़ नफ़्ल के तौर पर जायज़ नहीं है। कंज़ अद-दक़ाइक़ लिल-इमाम अज़-ज़ैलई (13), जौहरह नैय्यिरा शरह मुख़्तसर अल-क़ुदूरी (15), दुरर शरह ग़ुरर (16), बह्र अर-रैइक़ शरह अल-कंज़ लिल-अल्लामा ज़ैन (17), मजम' अल-अनहुर शरह मुल्तक़ा अल-अबहुर (18), मुस्तख़लस अल-हक़ाइक़ शरह कंज़ (19), और कबीरी अलल-मुनया में है:

अरबी: अल-फ़र्दु युतअद्दा बिल-अव्वल व अत-तनफ़्फ़ुलु बिहा ग़ैरु मशरू' (ज़ादा फ़ित-तबीन) व लिहाज़ा ला युसल्ला 'अलैहि मन सल्ला 'अलैहि मर्रतन।	**फ़र्ज़ तो पहली नमाज़ से अदा हो जाता है और यह नमाज़ नफ़्ल के तौर पर जायज़ नहीं है, इसलिए जो एक بار पढ़ चुका हो वह दोबारा न पढ़े।**

काफ़ी के शब्द ये हैं:

अरबी: हक़्क़ुल-मय्यिति युतअद्दा बिल-फ़रीक़िल-अव्वल व सक़त-अल-फ़र्दु बिस-सलातिल-ऊला फ़लव फ़'अलहुत-फ़रीक़ु-थानी लकाना नफ़्लन व ज़ा ग़ैरु मशरू'इन कमन सल्ला 'अलैहि मर्रतन।	**मय्यित (मृतक) का हक़ पहले फ़रीक़ (समूह) ने अदा कर दिया और फ़र्ज़-ए-किफ़ाया पहली नमाज़ से साक़ित (समाप्त) हो गया। अब और लोग पढ़ेंगे तो नमाज़ नफ़्ल होगी और यह जायज़ नहीं है, जैसे एक बार पढ़ चुके व्यक्ति को दोबारा अनुमति नहीं है।**

(20) शरह तजरीद किरमानी, (21) फ़तावा हिन्दिया, (22) मराक़ी अल-फ़लाह अल्लामा शुरुनबुलाली में है: 'अत-तनफ़्फ़ुलु बि-सलातिल-जनाज़ति ग़ैरु मशरू'।' नमाज़-ए-जनाज़ा नफ़्ल के तौर पर जायज़ नहीं है। (23) इमाम मुहम्मद मुहम्मद bin अमीर अल-हज्ज हिलाह शरह मुनया में फ़रमाते हैं:

अरबी: अल-मज़हबु 'इन्दा असहाबिना अन अत-तनफ़्फ़ुलु बिहा ग़ैरु मशरू'इन।	**हमारे इमामों का मज़हब यह है कि नमाज़-ए-जनाज़ा नफ़्लन रवा (मान्य) नहीं।**

(24) बह्र उल-उलूम मलिक उल-उलमा रसाईल अल-अरकान में फ़रमाते हैं:

अरबी: लव सल्लू अल-ज़मा अत-तनफ़्फ़ुलु बि-सलातिल-जनाज़ति व ज़ा ग़ैरु जा'इज़िन।	**फिर पढ़ें तो नमाज़-ए-जनाज़ा बतौर नफ़्ल پڑھنی लाज़िम (अनिवार्य) आएगी और यह नाजायज़ है।**

1. तबयीन अल-हक़ाइक़, बाब अल-जनाइज़, मुद्रित कुबरा अमीरिया, मिस्र 1/240।
2. काफ़ी।
3. फ़तावा हिन्दिया, अल-फ़सल अल-खामिस फ़ी अस-सलात अलल-मय्यित, नूरानी कुतुब ख़ाना, पेशावर 1/163।
4. हिलात अल-महल्ली शरह मुनयत अल-मुसल्ली।
5. रसाईल अल-अरकान, फ़सल फ़ी हुक्म अल-जनाज़ा, मकतबा इस्लामिया, क्वेटा, पृ. 155।

فتاوٰی رضویہ جلد نہم

نوع دوم ۲: دوبارہ پڑھیں تو نفل ہوگی اور یہ نماز بطور نفل جائز نہیں۔ کنز الدقائق للامام الزیلعی (۱۳) جوہرہ نیرہ شرح مختصر القدوری (۱۵) در شرح غرر (۱۶) بحر الرائق شرح الکنز للعلامہ زین (۱۷) مجمع الانہر شرح ملتقی الابحر (۱۸) مستخلص الحقائق شرح کنز (۱۹) کبیری علی المنیہ میں ہے :

الفرض یتادی بالاول والتنفل بھا غیر مشروع (زاد فی التبیین) ولھذا لایصلی علیہ من صلی علیہ مرۃً۔

فرض تو پہلی نماز سے ادا ہو جاتا ہے اور یہ نماز نفل کے طور پر جائز نہیں اس لئے جو ایک بار پڑھ چکا دوبارہ نہ پڑھے۔

کافی کے الفاظ یہ ہیں:

حق المیت یتادی بالفریق الاول وسقط الفرض بالصلوٰۃ الاولٰی فلو فعلہ الفریق الثانی لکان نفلا وذا غیر مشروع کمن صلّٰی علیہ مرۃً۔

میت کا حق پہلے فریق نے ادا کر دیا اور فرض کفایہ نماز اول سے ساقط ہو گیا، اب اور لوگ پڑھیں تو نماز نفل ہوگی اور یہ جائز نہیں جیسے ایک بار پڑھ چکنے والے کو دوبارہ اجازت نہیں۔

(۲۰) شرح تجرید کرمانی (۲۱) فتاوٰی ہندیہ (۲۲) مراقی الفلاح علامہ شرنبلالی میں ہے: التنفل بصلوۃ الجنازۃ غیر مشروع۔ نماز جنازہ بطور نفل جائز نہیں۔ (۲۳) امام محمد محمد بن امیر الحاج حلیہ شرح منیہ میں فرماتے ہیں:

المذھب عند اصحابنا ان التنفل بھا غیر مشروع۔

ہمارے اماموں کا مذہب یہ ہے کہ نماز جنازہ نفلاً روا نہیں۔

(۲۴) بحر العلوم ملک العلماء رسائل الارکان میں فرماتے ہیں :

لو صلوا الزم التنفل بصلوۃ الجنازۃ وذا پھر پڑھیں تو نماز جنازہ بطور نفل پڑھنی لازم آئیگی اور غیر جائز۔ یہ ناجائز ہے۔

1 تبیین الحقائق باب الجنائز مطبوعہ کبری امیر یہ مصر ۱ / ۲۴۰ 2 کافی 3 فتاویٰ ہندیہ الفصل الخامس فی الصلوٰۃ علی المیت نورانی کتب خانہ پشاور ۱ / ۱۶۳ 4 حلیہ المحلی شرح منیۃ المصلی 5 رسائل الارکان فصل فی حکم الجنازۃ مکتبہ اسلامیہ کوئٹہ ص ۱۵۵

Fatawa Razvia Volume 9

The text of Radd al-Muhtar will appear in the sixth category. Third Category 3: To the extent that if all the followers were without ritual purity, or all their clothes were impure, or they stood on an impure place, or a woman was the Imam and men were followers; in short, if for any reason the entire congregation's prayer became void and only the Imam's was valid, now it cannot be repeated because the obligation was fulfilled by the lone Imam. Yes, if there was no reason for invalidity in the congregation but there was in the Imam, then it will be repeated, because when the Imam's prayer was not valid, no one else's was valid. It is mentioned in (25) Khulasa, (26) Bazzaziya, (27) Muheet, (28) Badai' by Imam Malik al-Ulama Abu Bakr Mas'ud Kasani, (29) Shamil lil-Imam al-Bayhaqi, (30) Tajreed by Imam Abi al-Fadl, (31) Miftah, (32) Jawahir Akhlati, (33) Qunyah, (34) Mujtaba, (35) Sharh al-Tanwir by Al-Ala'i, (36) Ismail Mufti of Damascus, student of the author of Durr al-Mukhtar, (37) Radd al-Muhtar, (38) Hindiyah, (39) Bahr, (40) Hilyah, (41) Rahmaniyah.

[Arabic Box 1 Left]: Some exceed others, and the arrangement for Ad-Durr: He commanded [prayer] without purity while the people were with it, it is repeated; and in the opposite case, they complete it; if a woman leads, even if she is a slave girl, because the obligation is fulfilled by one. -1 [Urdu Box 1 Right]: The Imam was not in a state of purity while the followers were, so the prayer should be repeated. In the opposite case, it is not repeated, such as when a woman is the Imam even if she is a slave girl, because the obligation is fulfilled by one person performing it.

The words of Muheet and Bahr al-Ra'iq are these:

[Arabic Box 2 Left]: If the Imam was in a state of purity and the people were not, it is not repeated because the Imam's prayer was valid; if they repeat it, the prayer would be repeated twice, and that is not permissible. -2 [Urdu Box 2 Right]: If the Imam is in a state of purity and the followers are without purity, the prayer will not be repeated because the Imam's prayer became valid. Now, if they repeat it, the funeral prayer will be performed twice, which is impermissible.

The words of Shamil Bayhaqi are these:

[Arabic Box 3 Left]: And if the people are not pure, do not repeat it, as repetition is not permissible. -3 [Urdu Box 3 Right]: If the followers are without purity, they should not repeat the prayer, as repeating this prayer is not permissible.

Fourth Category 4: When the guardian (wali) himself or someone else with his permission leads the prayer, or the guardian himself prays alone, then now...

1. Durr al-Mukhtar, Chapter on Funeral Prayers, Mujtabai Press, Delhi, 1/121.
2. Bahr al-Ra'iq, Section: The Ruler is more entitled to lead his prayer, H.M. Saeed Company, Karachi, 2/179.
3. Shamil Bayhaqi

फ़तावा रज़विया जिल्द 9

रद अल-मुह्तार की इबारत छठे प्रकार में आएगी। तीसरा प्रकार ३: यहाँ तक कि यदि सभी अनुयायी (मुक़्तदी) बिना पवित्रता (बे-तहारत) के थे, या उन सभी के कपड़े अशुद्ध (नजिस) थे, या वे अशुद्ध स्थान पर खड़े थे, या एक महिला इमाम थी और पुरुष अनुयायी थे - संक्षेप में, यदि किसी कारण से पूरी जमात की नमाज़ शून्य हो गई और केवल इमाम की नमाज़ सही हुई, तो अब इसे दोहराया नहीं जा सकता क्योंकि अकेले इमाम द्वारा फ़र्ज़ (कर्तव्य) पूरा हो गया। हाँ, यदि जमात में अमान्यता का कोई कारण नहीं था लेकिन इमाम में था, तो इसे फिर से पढ़ा जाएगा, क्योंकि जब इमाम की नमाज़ सही नहीं हुई, तो किसी की भी सही नहीं हुई। यह (२५) खुलासा, (२६) बज़ाज़िया, (२७) मुहीत, (२८) बदाइ' इमाम मलिक अल-उलमा अबू बक्र मसूद कसानी, (२९) शामिल लिल-इमाम अल-बैहकी, (३०) तज्रीद इमाम अबी अल-फ़ज़ल, (३१) मिफ़्ताह, (३२) जवाहिर अख़लाती, (३३) कुन्या, (३४) मुज्तबा, (३५) शरह अल-तन्वीर लिल-अला'ई, (३६) इस्माइल मुफ़्ती दमिश्क, दुर्र-ए-मुख़्तार के लेखक के छात्र, (३७) रद अल-मुह्तार, (३८) हिंदिया, (३९) बहर, (४०) हिल्या, (४१) रहमानिया में है।

[अरबी बॉक्स १ बायाँ]: कुछ दूसरों से बढ़कर होते हैं, और व्यवस्था अद-दुर्र के लिए है: उसने बिना पवित्रता के[नमाज़] का आदेश दिया और लोग उसके साथ थे, इसे दोहराया जाता है; और इसके विपरीत, वे इसे पूरा करते हैं; यदि कोई महिला नेतृत्व करती है, भले ही वह दासी हो, क्योंकि दायित्व एक के द्वारा पूरा हो जाता है। -1 [हिन्दी बॉक्स १ दायाँ]: इमाम पवित्रता की स्थिति में नहीं था और अनुयायी पवित्रता पर थे, तो नमाज़ फिर से पढ़ी जाएगी। और इसके विपरीत नहीं, जबकि महिला इमाम हो चाहे वह दासी ही क्यों न हो, क्योंकि फ़र्ज़ एक के पढ़ लेने से समाप्त हो गया।

मुहीत और बहर अल-राइक के शब्द ये हैं:

[अरबी बॉक्स २ बायाँ]: यदि इमाम पवित्रता की स्थिति में था और लोग नहीं थे, तो इसे दोहराया नहीं जाता क्योंकि इमाम की नमाज़ वैध थी; यदि वे इसे दोहराते हैं, तो नमाज़ दो बार दोहराई जाएगी, और यह अनुमति योग्य नहीं है। -2 [हिन्दी बॉक्स २ दायाँ]: इमाम पवित्रता पर हो और अनुयायी बिना पवित्रता के तो नमाज़ नहीं दोहराई जाएगी क्योंकि इमाम की नमाज़ सही हो गई। अब अगर दोहराएँ तो जनाज़ा की नमाज़ दो बार होगी और यह नाजायज़ है।

शामिल बैहकी के शब्द ये हैं:

[अरबी बॉक्स ३ बायाँ]: और यदि लोग पवित्र नहीं हैं, तो इसे न दोहराएं क्योंकि दोहराना अनुमति योग्य नहीं है। -3 [हिन्दी बॉक्स ३ दायाँ]: यदि अनुयायी बिना पवित्रता के हों, तो नमाज़ न दोहराएँ क्योंकि यह नमाज़ दोबारा जायज़ नहीं।

चौथा प्रकार ४: जब वली (संरक्षक) स्वयं या उसकी अनुमति से कोई दूसरा नमाज़ पढ़ाए या वली स्वयं ही अकेला पढ़ ले तो अब...

1. दुर्र-ए-मुख़्तार, जनाज़ा की नमाज़ का अध्याय, मुज्तबाई प्रेस, दिल्ली, १/१२१।
2. बहर अल-राइक, खंड: सुल्तान अपनी नमाज़ का अधिक हकदार है, एच.एम. सईद कंपनी, कराची, २/१७९।
3. शामिल बैहकी

पृष्ठ 948 का 322

فتاوٰی رضویہ جلد نہم

ردالمحتار کی عبارت نوع ششم میں آئے گی۔ نوع سوم ۳ : یہاں تک کہ اگر سب مقتدی بے طہارت یا سب کے کپڑے نجس تھے یا نجس جگہ کھڑے تھے یا عورت امام اور مرد مقتدی تھے، غرض کسی وجہ سے جماعت بھر کی نماز باطل اور فقط امام کی صحیح ہوئی، اب اعادہ نہیں کرسکتے کہ اکیلے امام سے فرض ساقط ہوگیا، ہاں اگر قوم میں کوئی وجہ بطلان نہ تھی امام میں تھی تو پھر پڑھی جائیگی کہ جب امام کی صحیح نہ ہوئی کسی کی صحیح نہ ہوئی۔ (۲۵) خلاصہ (۲۶) بزازیہ (۲۷) محیط (۲۸) بدائع امام ملک العلماء ابو بکر مسعود کاسانی (۲۹) شامل للامام البیہقی (۳۰) تجرید للامام ابی الفضل (۳۱) مفتاح (۳۲) جواھر اخلاطی (۳۳) قنیہ (۳۴) مجتبیٰ (۳۵) شرح التنویر للعلائی (۳۶) اسمعیل مفتی دمشق تلمیذ صاحب درمختار (۳۷) ردالمحتار (۳۸) ھندیہ (۳۹) بحر (۴۰) حلیہ (۴۱) رحمانیہ میں ہے۔

[عربی حصہ]: بعضھم یزید علی بعض والنظم للدر امر بلاطھارۃ والقوم بھا اعیدت وبعکسہ لاکمالوا امت امرأۃ ولو امۃ لسقوط فرضھا بواحد-1 [اردو ترجمہ]: امام طہارت سے نہ تھا اور مقتدی طہارت پر تو نماز پھیری جائے اور عکس میں نہیں جبکہ عورت امام ہو اگرچہ کنیز ہو کہ فرض ایک کے پڑھ لینے سے ساقط ہو گیا۔

محیط وبحر الرائق کے لفظ یہ ہیں:

[عربی حصہ]: لوکان الامام علی طھارۃ والقوم علی غیرھا لاتعادلان صلوۃ الامام صحت فلواعادوا تتکرر الصلوۃ وانہ لا یجوز -2 [اردو ترجمہ]: امام طہارت پر ہو اور مقتدی بے طہارت تو نماز نہ

پھیری جائے گی کہ امام کی نماز صحیح ہو گئی۔ اب اگر پھیریں تو نماز جنازہ دو بار ہوگی اور یہ ناجائز ہے۔

شامل بیہقی کے لفظ یہ ہیں:

[عربی حصہ]: وان کان القوم غیر طاھر لاتعادلان الاعادۃ لا تجوز -3 [اردو ترجمہ]: اگر مقتدی بے طہارت ہوں نماز نہ پھیریں کہ یہ نماز دوبارہ جائز نہیں۔

نوع چہارم ۴ : جب ولی خود یا اس کے اذن سے دوسرا نماز پڑھائے یا ولی خود ہی تنہا پڑھ لے تو اب

1 درمختار باب صلوۃ الجنائز مطبع مجتبائی دہلی ۱۲۱/۱ 2 بحر الرائق فصل السلطان احق بصلوتہ ایچ ایم سعید کمپنی کراچی ۱۷۹/۲ 3 شامل بیہقی

Volume 9 Fatawa Razawiyya

No one has permission for funeral prayer [after the guardian has prayed]. (42) Kanz ad-Daqaiq (43) Al-Wafi by Imam Abul Barakat an-Nasafi (44) Al-Wiqayah (45) An-Nuqayah (46) Ghurar by Allama Mulla Khusraw (47) Tanwir al-Absar wa Jami' al-Bihar by Shaykh al-Islam Abu Abdullah Muhammad bin Abdullah al-Ghazzi (48) Multaqa al-Abhur (49) Islah by Allama Ibn Kamal Pasha (50) Fath al-Qadir by Imam al-Muhaqqiq 'ala al-Itlaq (51) Sharh Munyah by Ibn Amir al-Hajj (52) Sharh Nur al-Idah by the author himself states:

The wording of Allama Ibrahim's text: Non-guardians shall not pray after his prayer [the guardian's prayer].[1]	**(The words of Allama Ibrahim Halabi's text are these. T) No one should offer funeral prayer after the guardian.**

The words of Imam Ibn al-Humam are as follows:

If the guardian prayed, even if he was alone, it is not permissible for anyone to pray after him.[2]	**Even if the guardian offers the prayer alone, it is not permissible for anyone to pray after that.**

Similarly, it is stated in Maraqi al-Falah:

No one shall pray over them after him, even if the guardian prayed alone.[3]	**When the guardian has already prayed alone, even then no one else should pray after him.**

The text of Hilyah is as follows:

Our scholars said: When the one who has authority [the guardian] has prayed over the deceased, the prayer is not legislated for a second time for anyone else.[4]	**Our scholars stated: When the rightful person [guardian] has offered the funeral prayer for the deceased, then the prayer is not prescribed for anyone else on him.**

(53) Mukhtasar (54) Al-Hidayah by Imam Abul Hasan bin Abdul Jalil al-Farghani (55) Nafi' matn al-Mustasfa by Imam Nasir al-Din Abul Qasim al-Madani al-Samarqandi (56) Sharh al-Kanz by Allama Ibn Nujaym (57) Sharh al-Multaqa by Allama Shaykh Zadah (58) Sharh an-Nuqayah by al-Quhistani (59) Ibrahim al-Halabi 'ala al-Munyah.

Footnotes: 1. Multaqa al-Abhur, Chapter on funeral prayer, Mu'assasat al-Risalah Beirut 1/159 2. Fath al-Qadir, Chapter on funeral prayer, Maktabah Nuriyyah Razawiyyah Sukkur 2/82 3. Maraqi al-Falah with Hashiyah al-Tahtawi, Chapter: The

Sultan is most entitled to lead his prayer, Nur Muhammad Karkhana Tijarat Kutub Karachi p. 324 4. Hilyat al-Mahalli Sharh Munyat al-Musalli

जिल्द नहम (खंड 9) फ़तावा रज़विया

किसी को [वली के बाद] नमाज़-ए-जनाज़ा की इजाज़त नहीं। (४२) कnzुद् दक़ाइक़ (४३) वाफ़ी लिल-इमाम अजल्ल अबी अल-बरकात अन-नसफ़ी (४४) विक़ाया (४५) नक़ाया (४६) ग़ुरर लिल-अल्लामा मुल्ला ख़ुसरु (४७) तनवीरुल अबसार व जामिउल बिहार, शैखुल इस्लाम अबी अब्दुल्लाह मुहम्मद बिन अब्दुल्लाह अल-ग़ज़्ज़ी (४८) मुल्तक़ल अबहुर (४९) इस्लाह लिल-अल्लामा इब्न कमाल पाशा (५०) फ़तहुल क़दीर लिल-इमाम अल-मुहक़्क़िक़ अलल इतलाक़ (५१) शरह मुन्या इब्न अमीरुल हाज्ज (५२) शरह नूरुल ईज़ाह लिल-मुसन्निफ़ में है:

अल्लामा इब्राहिम के मतन (मूल पाठ) के अल्फ़ाज़ ये हैं: "वली के नमाज़ पढ़ने के बाद कोई दूसरा नमाज़ न पढ़े।"[1]

(अल्लामा इब्राहिम हलबि के मतन के अल्फ़ाज़ ये हैं। त) वली के बाद कोई शख्स नमाज़-ए-जनाज़ा न पढ़े।

इमाम इब्नुल हुमाम के अल्फ़ाज़ ये हैं:

अगर वली ने नमाज़ पढ़ ली, चाहे वो तन्हा हो, तो उसके बाद किसी के लिए नमाज़ पढ़ना जाइज़ नहीं।[2]

वली अगरचे तन्हा नमाज़ पढ़ ले उसके बाद किसी को पढ़ना जाइज़ नहीं।

यूं ही मराक़िल फ़लाह में फ़रमाया:

उनके बाद कोई नमाज़ न पढ़े, अगरचे वली तन्हा ही पढ़ चुका हो।[3]

वली अकेला ही पढ़ चुका जब भी उसके बाद कोई न पढ़े।

हुलिया की इबारत ये है:

हमारे उलेमा ने फ़रमाया: जब मय्यत पर साहिब-ए-विलायत (जिसका हक़ है) ने नमाज़ पढ़ ली, तो उसके बाद किसी और के लिए नमाज़ मशरूअ (वैध) नहीं।[4]

हमारे उलेमा ने फ़रमाया जब मय्यत पर साहिब-ए-हक़ नमाज़ पढ़ ले फिर किसी को उस पर नमाज़ मशरूअ नहीं।

(५३) मुख़्तसर (५४) हिदाया लिल-इमाम अल-अजल्ल अबी अल-हसन बिन अब्दुल जलील अल-फ़रग़ानी (५५) नाफ़ेअ मतन मुस्तस्फ़ा लिल-इमाम नासिरुद्दीन अबी अल-क़ासिम अल-मदनी अस-समरक़ंदी (५६) शरह अल-कnz लिल-अल्लामा इब्न नुजैम (५७) शरह अल-मुल्तक़ा लिल-अल्लामा शैख़ी ज़ादा (५८) शरह अन-नक़ाया लिल-क़ुहिस्तानी (५९) इब्राहिम अल-हलबि अलल मुन्या।

हाशिये (Footnotes): 1. मुल्तक़ल अबहुर, फ़स्ल फ़ी अल-सलात अलल मय्यत, मुअस्ससतुर रिसाला बैरुत 1/159 2. फ़तहुल क़दीर, फ़स्ल फ़ी अल-सलात अलल मय्यत, मकतबा नूरिय्या रज़विय्या सुक्कुर 2/82 3. मराक़िल फ़लाह मा हाशिया अत-तहतवी, फ़स्ल अस-सुल्तान अ-हक़्क़ु बि-सलातिही, नूर मुहम्मद कारख़ाना तिजारत कुतुब कराची सफा 324 4. हुलियतुल महल्ली शरह मुन्यातुल मुसल्ली

جلد نہم فتاوی رضویہ

کسی کو نماز جنازہ کی اجازت نہیں۔ (۴۲) کنز الدقائق (۴۳) وافی للامام اجل ابی البرکات النسفی (۴۴) وقایہ (۴۵) نقایہ (۴۶) غرر للعلامہ مولی خسرو (۴۷) تنویر الابصار و جامع البحار، شیخ الاسلام ابی عبداللہ محمد بن عبد اللہ الغزی (۴۸) ملتقی الابحر (۴۹) اصلاح للعلامہ ابن کمال پاشا (۵۰) فتح القدیر للامام المحقق علی الاطلاق (۵۱) شرح منیۃ ابن امیر الحاج (۵۲) شرح نور الایضاح للمصنف میں ہے :

واللفظ لمتن العلامۃ ابراہیم لایصلی غیر الولی بعد صلاتہ -[1] **(علامہ ابراہیم حلبی کے متن کے الفاظ یہ ہیں:ت) ولی کے بعد کوئی شخص نماز جنازہ نہ پڑھے۔**

امام ابن الہمام کے الفاظ یہ ہیں:

ان صلی الولی ان کان وحدہ لم یجز لاحد ان یصلی بعدہ -[2] **ولی اگرچہ تنہا نماز پڑھ لے اس کے بعد کسی کو پڑھنا جائز نہیں۔**

یوں ہی مراقی الفلاح میں فرمایا:

لایصلی احد علیہم بعدہ وان صلی وحدہ ولی -[3] **ولی اکیلا ہی پڑھ چکا جب بھی اس کے بعد کوئی نہ پڑھے۔**

حلیہ کی عبارت یہ ہے:

قال علماؤنا اذاصلی علی المیت من لہ ولایۃ ذلك لاتشرع الصلوٰۃ علیہ ثانیا لغیرہ -[4] **ہمارے علماء نے فرمایا جب میت پر صاحبِ حق نماز پڑھ لے پھر کسی کو اس پر نماز مشروع نہیں۔**

(۵۳) مختصر (۵۴) ہدایہ للامام الاجل ابی الحسن بن عبدالجلیل الفرغانی (۵۵) نافع متن مستصفی للامام ناصر الدین ابی القاسم المدنی السمر قندی (۵۶) شرح الکنز للعلامۃ ابن نجیم (۵۷) شرح الملتقٰی للعلا مہ شیخی زادہ (۵۸) شرح النقا یہ للقہستانی (۵۹) ابراہیم الحلبی علی المنیہ

حواشی: [1] ملتقی الابحر فصل فی الصلوٰۃ علی المیت موسسۃ الرسالۃ بیروت ۱/۱۵۹ [2] فتح القدیر فصل فی الصلوٰۃ علی المیت مکتبہ نوریہ رضویہ سکھر ۲/۸۲ [3] مراقی الفلاح مع حاشیہ الطحطاوی فصل السلطان احق بصلوتہ نور محمد کارخانہ تجارت کتب کراچی ص ۳۲۴ [4] حلیۃ المحلی شرح منیۃ المصلی

Fatawa Ridawiyya Volume Nine

(60) In Sharh Miskeen lil-Kanz and (61) Birjandi Sharh Niqayah, it is stated: If the guardian (Wali) has offered the prayer over him, it is not permissible for anyone to offer it after him. | If the guardian has prayed over the funeral, it is no longer permissible for anyone else to pray.

The words of Ghunyah are: Impermissibility of prayer by someone other than the guardian after him is our school of thought. | Our school holds that prayer is impermissible for everyone after the guardian has prayed.

(62) In Mustasfa lil-Imam al-Nasafi and (63) Shalabiyyah 'ala al-Kanz, it is stated: If the Sultan is not present and the guardian prays, no one has the right to repeat it. | If the Sultan is not present and the guardian performs the prayer, now no one can repeat it.

Fifth Type: It is not exclusive to the guardian. The ruler of Islam or the Imam of the Grand Mosque or the Imam of the deceased's neighborhood mosque are also [rightful authorities], then others are not permitted as they are also holders of the right. (64) Imam Fakhruddin Uthman stated in Sharh Kanz after the issue of the guardian: And likewise after the Imam of the neighborhood and after everyone who takes precedence over the guardian. | Meaning, similarly, if the Imam of the deceased's neighborhood mosque or the Sultan etc., the rulers of Islam, perform the funeral prayer, then others are not allowed to pray.

(65) In Fatih Sharh Quduri, (66) Dhakhirat al-'Uqba 'ala Sadr al-Shari'ah, and (67) Hawashi Sayyid Hamwi, it is stated: Specifying the guardian is not a restriction because if he prays... | It is not exclusive to the guardian, rather the Sultan etc. who...

---

1 Al-Mukhtasar lil-Quduri, Bab al-Jana'iz, published by Matba' Majeedi Kanpur, India, p. 45; Al-Hidayah, Fasl fi al-Salat 'ala al-Mayyit, Al-Maktabah al-Arabiyyah, Karachi, 1/160; Sharh al-Niqayah lil-Birjandi, Fasl fi al-Salat 'ala al-Jana'iz, Munshi Naval Kishore, Lucknow, 1/181. 2 Ghunyat al-Muttamalli Sharh Munyat al-Musalli, Fasl fi al-Jana'iz, Suhail Academy, Lahore, p. 585. 3 Shalabi 'ala al-Kanz on the margin of Tabyin al-Haqa'iq, Bab al-Jana'iz, Matba' Kubra Amiriyyah, Egypt, 1/238. 4 Tabyin al-Haqa'iq, Bab al-Jana'iz, Matba' Kubra Amiriyyah, Egypt, 1/240.

फतावा रज़विया खंड नौ

(60) शरह मिस्कीन लिल-कन्ज़ और (61) बिरजंदी शरह निक़ाया में है: अगर वली (अभिभावक) ने उस पर नमाज़ पढ़ ली, तो उसके बाद किसी के लिए नमाज़ पढ़ना जायज़ नहीं है। | यदि वली जनाज़े की नमाज़ पढ़ ले, तो अब किसी और का पढ़ना जायज़ नहीं।

गुन्याह के शब्द ये हैं: वली के बाद किसी अन्य द्वारा नमाज़ का जायज़ न होना हमारा मज़हब है। | वली के बाद सभी के लिए नमाज़ का नाजायज़ होना हमारा मज़हब है।

(62) मुस्तस्फ़ा लिल-इमाम नसाफ़ी और (63) शलबिया अलल-कन्ज़ में है: अगर सुल्तान उपस्थित न हो और वली नमाज़ पढ़ ले, तो किसी को उसे दोहराने का अधिकार नहीं। | यदि सुल्तान हाज़िर न हो और वली पढ़ ले, तो अब कोई दोहरा नहीं सकता।

पाँचवीं किस्म: यह केवल वली की विशेषता नहीं है। हाकिमे इस्लाम या जामे मस्जिद के इमाम या मैय्यत के मोहल्ले की मस्जिद के इमाम भी हक़दार हैं, फिर दूसरों को अनुमति नहीं है क्योंकि वे भी हक़ के मालिक हैं। (64) इमाम फ़ख़रुद्दीन उस्मान ने शरह कन्ज़ में वली के मसले के बाद फ़रमाया: और इसी तरह मोहल्ले के इमाम के बाद और उन सबके बाद जो वली से पहले आते हैं। | यानी इसी तरह अगर मैय्यत के मोहल्ले की मस्जिद के इमाम या सुल्तान वगैरह हुक्कामे इस्लाम नमाज़े जनाज़ा पढ़ लें, तो फिर औरों को नमाज़ की इजाज़त नहीं।

(65) फ़ातिह शरह कुदूरी, (66) ज़खीरतुल उक़बा अला सदरुश्शरिया, और (67) हवाशी सय्यद हमवी में है: वली को विशिष्ट करना कोई शर्त नहीं है क्योंकि अगर वह नमाज़ पढ़ ले... | यह केवल वली की विशेषता नहीं है बल्कि सुल्तान वगैरह जो...

---

1 अल-मुख्तसर लिल-कुदूरी, बाब अल-जनाइज़, मुद्रित मतबा मजीदी कानपुर भारत, पृष्ठ 45; अल-हिदाया, फ़स्ल फ़ि अस-सलात अलल मय्यत, अल-मकतबा अल-अरबिया कराची 1/160; शरह अन-निक़ाया लिल-बिरजंदी, फ़स्ल फ़ि अस-सलात अलल जनाइज़, मुंशी नवल किशोर लखनऊ 1/181। 2 गुन्यातुल मुस्तमल्ली शरह मुनियतुल मुसल्ली, फ़स्ल फ़िल जनाइज़, सुहैल एकेडमी लाहौर, पृष्ठ 585। 3 शलबी अलल कन्ज़, तबय्यनुल हक़ाइक के हाशिया पर, बाब अल-जनाइज़, मतबा कुबरा अमीरिय्या मिस्र, 1/238। 4 तबय्यनुल हक़ाइक, बाब अल-जनाइज़, मतबा कुबरा अमीरिय्या मिस्र, 1/240।

فتاوی رضویہ جلد نہم

(۶۰) شرح مسکین للکنز (۶۱) بر جندی شرح نقایہ میں ہے: ان صلی علیه الولی لم یجز لاحد ان یصلی بعده[1]۔ | اگر جنازے پر ولی نماز پڑھ لے تو اب کسی کو پڑھنا جائز نہیں۔

غنیہ کے لفظ یہ ہیں: عدم جواز صلوة غیر الولی بعده مذهبنا[2]۔ | ولی کے بعد سب کو نماز نا جائز ہونا ہمارا مذہب ہے۔

(۶۲) مستصفی للامام النسفی (۶۳) شلبیہ علی الکنز میں ہے: لو لم یحضر السلطان وصلی الولی لیس لاحد الاعادة[3]۔ | اگر سلطان حاضر نہ ہو اور ولی پڑھ لے اب کوئی اعادہ نہیں کر سکتا۔

نوع پنجم: کچھ ولی کی خصوصیت نہیں۔ حاکم اسلام یا امام مسجد جامع یا امام مسجد محلہ میت کے بھی، پھر دوسروں کو اجازت نہیں کہ یہ بھی صاحب حق ہیں۔ (۶۴) امام فخر الدین عثمان نے شرح کنز میں بعد مسئلہ ولی فرمایا: وکذا بعد امام الحی وبعد کل من یتقدم علی الولی[4]۔ | یعنی یونہی اگر مسجد محلہ میت کا امام یا سلطان وغیرہ حکام اسلام نمازِ جنازہ پڑھ لیں تو پھر اوروں کو نماز کی اجازت نہیں۔

(۶۵) فاتح شرح قدوری (۶۶) ذخیرة العقبی علی صدر الشریعة (۶۷) حواشی سید حموی میں ہے: تخصیص الولی لیس بقید لانه لو صلی | کچھ ولی کی خصوصیت نہیں بلکہ سلطان وغیرہ جو

---

1 المختصر للقدوری باب الجنائز مطبوعہ مطبع مجیدی کانپور بھارت ص ۴۵، الہدایة فصل فی الصلوة علی المیت المکتبة العربیة کراچی ۱/۱۶۰، شرح النقایہ للبرجندی فصل فی الصلوة علی الجنائز منشی نولکشور لکھنؤ ۱/۱۸۱ 2 غنیة المستملی شرح منیة المصلی فصل فی الجنائز سہیل

اکیڈمی لاہور ص ۵۸۵ 3 شلبی علی الکنز علی ہامش تبیین الحقائق باب الجنائز مطبع کبری امیریہ مصر ۲۳۸/۱ 4 تبیین الحقائق باب الجنائز مطبع کبری امیریہ مصر ۲۴۰/۱

Fatawa Ridawiyya, Volume 9

[Table Header] Arabic Text: As-Sultanu wa Ghayruhu mimman huwa awla minal wali laysa li-ahadin an yusalliya ba'dahu. Urdu Text: Those who are more worthy than the guardian (Wali), no one is allowed to pray after them.

(68) In 'Fath al-Qadir' and (69) 'Fath Allah al-Mu'in' it is stated:

[Table Header] Arabic Text: Idha muni'ati-l-i'adatu bi-salati-l-wali fa-bi-salati man huwa muqaddamun 'ala-l-wali awla. Urdu Text: When a second person is not allowed after the guardian, then after the Sultan etc., who take precedence over him, not having permission is even more appropriate.

(70) In 'Quhistani 'ala Mukhtasar al-Wiqayah' it is stated:

[Table Header] Arabic Text: La yajuzu an yusalliya ghayru-l-ahaqqi ba'da salati-l-wali wa-l-arhaqqi wa-ghayrihi. Urdu Text: In this prayer, for those who are the rightful possessors, it is not permissible for another to pray after any of them has prayed.

The excerpt from 'Hilyah' was mentioned in the fourth type. Sixth type: In cases where the guardian or a rightful person can repeat the prayer for their right, even in that case, one who has already prayed cannot join their prayer. (71) Nur al-Idah, (72) Durr al-Mukhtar, (73) Bahr al-Ra'iq, (74) Qunyah, (75) Sharh Mukhtasar al-Wiqayah by Allama Abd al-Ali, (76) Sharh al-Multaqa by Allama Abd al-Rahman Rumi, (77) Ghunyat Dhawi al-Ahkam by Allama al-Shurunbulali, (78) Sharh Manzumah Ibn Wahban by Allama Ibn al-Shihnah, (79) Khadimi 'ala al-Durar, it is stated:

[Table Header] Arabic Text: Wa-l-lafzu lahu laysa li-man yusalliya al-ana yu'idu ma'al wali. Urdu Text: (And these are his words-T) One who has already prayed once cannot repeat it with the guardian.

(80) In 'Fath al-Qadir' it is stated:

[Table Header] Arabic Text: Wa-lidha qulna lam yushra' li-man salla marratan. Urdu Text: For this reason, our creed is that one who has prayed once...

---

1. Dhakhirat al-Uqba 'ala Sadr al-Shariah, Bab al-Jana'iz, Munshi Naval Kishore, Kanpur, 1/118
2. Fath al-Qadir, Fasl fi Salati 'ala al-Mayyit, Maktaba Nuriyah Ridawiyya, Lucknow, 2/82; Fath Allah al-Mu'in citing Sayyid Hamawi, Fasl fi as-Sultani ahaqqu bi-salatihi, H.M. Saeed Company, Karachi, 1/353

3. Jami' al-Rumuz, Fasl al-Jana'iz, Maktaba Islamia Gumbad Qamus, Iran, 1/284
4. Khadimi 'ala al-Durar, Bab al-Jana'iz, Matba' Uthmaniya Dar Sa'adat, Turkey, p. 99

फ़तावा रज़विया, जिल्द 9

[तालिका हेडर] अरबी पाठ: अस-सुल्तान व ग़ैरुहु मिम्मन हुवा औला मिनल वली लैसा लि-अहादिन अन युसल्लिया बादहु। उर्दू पाठ: वली से औली हैं उनके बाद किसी को (जनाज़ा) पढ़ना जायज़ नहीं।

(68) 'फ़तह अल-क़दीर' और (69) 'फ़तह अल्लाह अल-मुईन' में है:

[तालिका हेडर] अरबी पाठ: इज़ा मुनिअतिल इआदतु बिसलातिल वली फ़बिसलाति मन हुवा मुक़द्दमून अलल वली औला। उर्दू पाठ: जब वली के दूसरे को इजाज़त नहीं तो सुल्तान वग़ैरह कि उससे भी मुक़द्दम हैं, उनके बाद इजाज़त न होना बदरजा-ए-औली है।

(70) 'कुहिस्तानी अला मुख़्तसर अल-वक़ाया' में है:

[तालिका हेडर] अरबी पाठ: ला यज़ूज़ु अन युसल्लिया ग़ैरुल अहक़्क़िक़ बाद सलातिल वली वल अरहक़्क़िक़ वग़ैरिही। उर्दू पाठ: जो इस नमाज़ में साहब-ए-हक़ हैं उनमें किसी के पढ़ने के बाद ग़ैर को पढ़ना जायज़ नहीं।

'हिल्या' की इबारत चौथी क़िस्म में गुज़री। छठी क़िस्म: वली वग़ैरह ज़ी-हक़ जिस सूरत में अपने हक़ के लिए एआदा (दोहराना) कर सकते हैं। इस हाल में भी जो पहले पढ़ चुका उनकी नमाज़ में शरीक नहीं हो सकता। (71) नूर अल-ईज़ाह, (72) दुर्र-ए-मुख़्तार, (73) बहर अल-राईक़, (74) क़ुनिया, (75) शरह मुख़्तसर अल-वक़ाया अल्लामा अब्दुल अली, (76) शरह अल-मुल्तक़ा अल्लामा अब्दुर रहमान रूमी, (77) ग़ुनयत ज़वी अल-अहकाम अल्लामा अश्शुरुनबुलाली, (78) शरह मंज़ूमा इब्न वहबान अल्लामा इब्न अल-शिहना, (79) खादिमी अला अद-दुरर में है:

[तालिका हेडर] अरबी पाठ: वल लफ़्ज़ु लहू लैसा लिमन युसल्लिया अल-आना युईदु मअल वली। उर्दू पाठ: (और उनके अलफ़ाज़ ये हैं-त) जो एक बार पढ़ चुका वो वली के साथ एआदा नहीं कर सकता।

(80) 'फ़तह अल-क़दीर' में है:

[तालिका हेडर] अरबी पाठ: वलिज़ा कुलना लम युशरा' लिमन सल्ला मर्रतन। उर्दू पाठ: इसीलिए हमारा मज़हब है कि जो एक बार पढ़ चुका...

---

1. ज़ख़ीरत अल-उक़बा अला सद्र अल-शरिया, बाब अल-जनाइज़, मुंशी नवल किशोर, कानपुर, 1/118

2. फ़तह अल-क़दीर, फ़स्ल फ़ी सलाति अलल मय्यित, मकतबा नूरिया रज़विया, लखनऊ, 2/82; फ़तह अल्लाह अल-मुईन बहवाला सैय्यद हमवी, फ़स्ल फ़ी अस-सुल्तानी अहक्कु बिसलातिही, एच.एम. सईद कंपनी, कराची, 1/353
3. जामे अल-रुमूज़, फ़स्ल अल-जनाइज़, मकतबा इस्लामिया गुम्बद क़ामूस, ईरान, 1/284
4. खादिमी अला अद-दुरर, बाब अल-जनाइज़, मतबा उस्मानिया दार साअदत, तुर्की, पृ. 99

पृष्ठ 325 का 948

فتاویٰ رضویہ، جلد نہم

[جدول کا متن] عربی متن: السلطان اوغیرہ ممن ھواولیٰ من الولی لیس لاحد ان یصلی بعدہ۔ اردو متن: ولی سے اولیٰ ہیں ان کے بعد کسی کو پڑھنا جائز نہیں۔

(۶۸) فتح القدیر (۶۹) فتح اللہ المعین میں ہے:

[جدول کا متن] عربی متن: اذامنعت الاعادۃ بصلوۃ الولی فبصلوۃ من ھو مقدم علی الولی اولیٰ۔ اردو متن: جب ولی کے دوسرے کو اجازت نہیں تو سلطان وغیرہ کہ اس سے بھی مقدم ہیں، ان کے بعد اجازت نہ ہونا بدرجہ اولیٰ۔

(۷۰) قہستانی علی مختصر الوقایہ میں ہے:

[جدول کا متن] عربی متن: لا یجوزان یصلی غیر الاحق بعد صلوۃ الولی والارحق وغیرہ۔ اردو متن: جو اس نماز میں صاحب حق ہیں ان میں کسی کے پڑھنے کے بعد غیر کو پڑھنا جائز نہیں۔

حلیہ کی عبارت نوع چہارم میں گزری۔ نوع ششم: ولی وغیرہ ذی حق جس صورت میں اپنے حق کے لئے اعادہ کرسکتے ہیں۔ اس حال میں بھی جو پہلے پڑھ چکا ان کی نماز میں شریک نہیں ہوسکتا۔ (۷۱) نورالایضاح (۷۲) در مختار (۷۳) بحر الرائق (۷۴) قنیہ (۷۵) شرح مختصر الوقایۃ للعلامۃ عبدالعلی (۷۶) شرح الملتقٰی للعلا مہ عبدالرحمن رومی (۷۷) غنیۃ ذوی الاحکام للعلا مۃ الشرنبلالی (۷۸) شرح منظومہ ابن وہبان للعلا مۃ ابن الشحنہ (۷۹) خادمی علی الدرر میں ہے:

[جدول کا متن] عربی متن: واللفظ لہ لیس لمن یصلی والان یعید مع الولی۔ اردو متن: (اور ان کے الفاظ یہ ہیں۔ت) جو ایک بار پڑھ چکا وہ ولی کے ساتھ اعادہ نہیں کرسکتا۔

(۸۰) فتح القدیر میں ہے:

[جدول کا متن] عربی متن: ولذا قلنا لم یشرع لمن صلی مرۃ۔ اردو متن: اسی لئے ہمارا مذہب ہے کہ جو ایک بار پڑھ چکا۔

---

1 ذخیرۃ العقبی علی صدر الشریعۃ باب الجنائز منشی نولکشور کانپور ۱/۱۱۸ 2 فتح القدیر فصل فی صلوۃ علی المیت مکتبہ نوریہ رضویہ لکھنو ۲/۸۲ ، فتح اللہ المعین بحوالہ سید حموی فصل فی السلطان احق بصلوتہ ایچ ایم سعید کمپنی کراچی ۱/۳۵۳ 3 جامع الرموز فصل الجنائز مکتبہ اسلامیہ گنبد قاموس ایران ۱/۲۸۴ 4 خادمی علی الدرر باب الجنائز مطبعہ عثمانیہ دار سعادت ترکی ص ۹۹

Fatawa Razawiyyah, Volume 9

Repetition[1] - It is not permissible to read it again. (81) It is mentioned in Shami ala al-Durr: Arabic: Because its repetition would be voluntary (nafl) in every respect, unlike the guardian (wali) because he is the holder of the right[2]. Urdu: Because its repetition will be nafl (voluntary) in every respect and this is not permissible, unlike the wali (guardian) who is the owner of the right.

Seventh Type: When the guardian has given permission to another, even if he himself did not join the prayer, or if a stranger led the prayer without the guardian's permission but the guardian joined the prayer, then in these cases the guardian also cannot repeat it. (82) It is mentioned in Jawhara: Arabic: If the guardian gave permission to another and he prayed, repetition is not permissible for him[3]. Urdu: If another person has prayed with the guardian's permission, then now even the guardian is not allowed to repeat.

(83) It is mentioned in Bahr: Arabic: Giving permission to another for prayer leaves him with no right to repeat[4]. Urdu: When the guardian gives permission for prayer to another, he no longer has the right to repeat.

It is mentioned in (84) Fatawa Qazi Khan (85) Fatawa Zahiriyyah (86) Fatawa Walwalajiyyah (87) Waqi'at (88) Tajnis for Imam Sahib Hidaya (89) Fatawa Itabiyyah (90) Fatawa Khulasah (91) Inayah Sharh Hidaya (92) Nihayah, the first of the commentaries on Hidaya (93) Manba' (94) Abdul Haleem Rumi on Al-Durar (95) Shalabi on Zaylai's Al-Kanz (96) Hilyah (97) Barjandi (98) Bahr (99) Rahmaniyyah (100) Sharh Ala'i (101) Hindiyyah: Arabic: The wording is from Inayah, from Al-Walwalaji; and from Shalabi, from Al-Nihayah, Al-Walwalaji, Al-Zahiriyyah, and Al-Tajnis; and from Bahr from them and from Al-Waqi'at: A man prayed the funeral prayer while the guardian was behind him and... Urdu: (The words are from Inayah, Shalabi, and Bahr. It is narrated from Walwalaji in Inayah, and in Shalabi from Nihayah, in which it is narrated from Walwalaji, Zahiriyyah, and Tajnis. And in Bahr it is narrated from all of them and from Waqi'at.)

Footnotes: [1] Fath al-Qadir, Fasl al-Salat ala al-Mayyit, Maktaba Nooriyah Razawiyyah Sukkur 2/84 [2] Radd al-Muhtar, Bab Salat al-Jana'iz, Mustafa al-Babi Egypt 1/652 [3] Al-Jawharah al-Nayyirah, Bab al-Tayammum, Maktaba Imdadiyah Multan 1/27 [4] Bahr al-Raiq, Bab al-Tayammum, HM Saeed Company Karachi 1/157

फतावा रज़विया, जिल्द 9

पुनरावृत्ति[1] - इसे फिर से पढ़ना जायज़ नहीं है। (81) शामी अला अल-दुर्र में है: अरबी: क्योंकि इसकी पुनरावृत्ति हर तरह से नफ़्ल (स्वैच्छिक) होगी, वली (अभिभावक) के विपरीत क्योंकि वह अधिकार का स्वामी है[2]। उर्दू: इसलिए कि इसका इआदा (दोहराव) हर तरह से नफ़्ल ही होगा और यह जायज़ नहीं है, वली के ख़िलाफ़ कि वह साहिब-ए-हक़ (अधिकार का स्वामी) है।

सातवीं किस्म: जब वली ने दूसरे को इजाज़त दे दी, भले ही वह ख़ुद नमाज़ में शरीक न हुआ हो, या कोई अजनबी वली की इजाज़त के बिना ख़ुद ही पढ़ गया हो लेकिन वली नमाज़ में शरीक हो गया, तो इन सूरतों में वली भी इआदा (दोहराव) नहीं कर सकता। (82) जौहरा में है: अरबी: अगर वली ने दूसरे को इजाज़त दी और उसने नमाज़ पढ़ ली, तो उसके लिए दोहराव जायज़ नहीं है[3]। उर्दू: अगर वली की इजाज़त से दूसरे ने पढ़ ली, तो अब वली को भी इआदा (दोहराव) की इजाज़त नहीं।

(83) बहर में है: अरबी: नमाज़ के लिए दूसरे को दी गई इजाज़त के बाद उसे दोहराव का हक़ नहीं है[4]। उर्दू: वली जब दूसरे को नमाज़ की इजाज़त दे दे, अब उसे इआदा (दोहराव) का हक़ नहीं।

(84) फतावा काज़ी खान (85) फतावा ज़हीरिया (86) फतावा वलवालजिया (87) वाक़ियात (88) तजनीस लिल-इमाम साहिब हिदाया (89) फतावा इताबिया (90) फतावा खुलासा (91) इनाया शरह हिदाया (92) निहाया अव्वल शुरुह हिदाया (93) मंबा (94) अब्दुल हलीम रूमी अला अल-दुरर (95) शलबी अला ज़ैलई अल-कन्ज़ (96) हिलया (97) बरजंदी (98) बहर (99) रहमनिया (100) शरह अलाई (101) हिन्दिया में है: अरबी: शब्द इनाया के हैं, जो वलवालजी से है; और शलबी के लिए निहाया से, वलवालजी, ज़हीरिया और तजनीस से; और बहर के लिए उनसे और वाक़ियात से: एक आदमी ने जनाज़ा की नमाज़ पढ़ी और वली उसके पीछे था और... उर्दू: (अलफ़ाज़, इनाया, शलबी और बहर के हैं। इनाया से वलवालजी से मन्कूल (उद्धृत) है और शलबी में निहाया से, उस में वलवालजी, ज़हीरिया और तजनीस से नक़ल (उद्धृत) है। और बहर में इन सब से और वाक़ियात से नक़ल है।)

फुटनोट्स: [1] फ़तह अल-क़दीर, फ़स्ल अल-सलात अला अल-मय्यित, मकतबा नूरिया रज़विया सुक्कुर 2/84 [2] रद अल-मुहतार, बाब सलात अल-जनाइज़, मुस्तफ़ा अल-बाबी मिस्र 1/652 [3] अल-जौहरा अल-नय्यिरा, बाब अल-तयम्मुम, मकतबा इमदादिया मुल्तान 1/27 [4] बहर अल-राइक़, बाब अल-तयम्मुम, एच एम सईद कंपनी कराची 1/157

التکرر[1] - اسے پھر پڑھنا جائز نہیں۔ (۸۱) شامی علی الدر میں ہے: عربی: لان اعادته تکون نفلا من کل وجه بخلاف الولی لانـه صاحب الحق[2] - اردو: اس لئے کہ اس کا اعادہ ہر طرح نفل ہی ہوگا اور یہ جائز نہیں بخلاف ولی کے کہ صاحب حق ہے۔

نوع ہفتم : جب ولی نے دوسرے کو اذن دے دیا اگرچہ آپ شریک نماز نہ ہوا، یا کوئی اجنبی بے اذنِ ولی خود ہی پڑھ گیا مگر ولی شریک نماز ہو گیا تو ان صورتوں میں ولی بھی اعادہ نہیں کر سکتا۔ (۸۲) جوہرہ میں ہے : عربی: ان اذن الولی لغیره فصلی لا تجوز له الاعادة[3] - اردو: اگر ولی کے اذن سے دوسرے نے پڑھ لی تو اب ولی کو بھی اعادہ کی اجازت نہیں۔

(۸۳) بحر میں ہے : عربی: اذن لغیره بالصلوة لا حق له فی الاعادة[4] - اردو: ولی جب دوسرے کو نماز کا اذن دے دے اب اسے اعادہ کا حق نہیں۔

(۸۴) فتاوٰی قاضی خان (۸۵) فتاوٰی ظہریہ (۸۶) فتاوٰی ولوالجیہ (۸۷) واقعات (۸۸) تجنیس للامام صاحب ہدایہ (۸۹) فتاوٰی عتابیہ (۹۰) فتاوٰی خلاصہ (۹۱) عنایہ شرح ہدایہ (۹۲) نہایہ اول شروح ہدایہ (۹۳) منبع (۹۴) عبدالحلیم رومی علی الدرر (۹۵) شلبی علی زیلعی الکنز (۹۶) حلیہ (۹۷) بر جندی (۹۸) بحر (۹۹) رحمانیہ (۱۰۰) شرح علائی (۱۰۱) ہندیہ میں ہے : عربی: واللفظ للعناية عن الولوالجي وللشلبي عن النهاية الولوالجي والظهيرية والتجنيس وللبحر عنهم وعن الواقعات رجل صلى على جنازة والولى خلفه و اردو: (الفاظ ، عنایہ ، شلبی اور بحر کے ہیں۔ عنایہ سے ولوالجی سے منقول ہے اور شلبی میں نہایہ سے اُس میں ولوالجی، ظہریہ اور تجنیس سے نقل ہے۔ اور بحر میں ان سب سے اور واقعات سے نقل ہے۔)

حواشی: 1 فتح القدیر فصل الصلوۃ علی المیت مکتبہ نوریہ رضویہ سکھر 2/ 84 2 ردالمختار باب صلوۃ الجنائز مصطفی البابی مصر 1/ 652 3 الجوہرۃ النیرہ باب التیمم مکتبہ امدادیہ ملتان 1/ 27 4 بحر الرائق باب التیمم ایچ ایم سعید کمپنی کراچی 1/ 157

[Arabic Box Left]: "If he was not satisfied but followed him and prayed with him, he does not repeat it because he has prayed once." [Urdu Box Right]: (Translation: A person led the prayer and the guardian (wali) was not satisfied but joined in; now he shall not repeat it as he has already prayed once.)

Type 8: Similarly, if the Sultan or other rightful authorities who take precedence over the guardian perform the prayer themselves or have it performed, the guardian has no right to repeat it even if someone else leads it with their permission.

(102 to 119) From 82 to 101, all mentioned books, (120) Fath al-Qadir, (121) Fath al-Mu'in state:

[Arabic Table Left]: "The Imams whose wording we mentioned just now used agreed terms, and the rest used similar meanings. This is the wording of Al-Khaniyah: If the one leading the prayer was the Sultan, or the Great Imam (Head of State), or the Judge, or the City Governor, or the neighborhood Imam, the guardian does not have the right to repeat it according to Zahir al-Riwayah[2]. Those whose wording we cited added that they are more worthy of leading the prayer than him (the guardian)[3]."

[Urdu Table Right]: (Those whose text we just mentioned use identical words, and others express similar meanings. Here is the text from Al-Khaniyah: If the Leader of the Believers, the Sultan of Islam, the Judge, the City Governor, or the Imam of the local neighborhood mosque has led the prayer, then according to Zahir al-Riwayah from our Imams, the guardian has no choice to repeat it because these individuals take precedence over the guardian in this prayer.)

(122) Ghunyah, (123) Hilyah, (124) Bahr, (125) Tahtawi on Maraqi al-Falah, all state in the chapter on Tayammum: [Arabic Column Left]: "If someone with the right of precedence, like the Sultan or similar, leads the prayer, he (the guardian) has no right to repeat it[4]." [Urdu Column Right]: (If the Sultan or others who take precedence over the guardian have prayed, the guardian has no right of repetition after them.)

In the text of Kifayah and Mustakhlas, this appears in Type 10. Imam 'Attabi mentioned a text similar to Khaniyah and included the Imam of the Jami (Central) Mosque in the count of those who take precedence over the guardian. In Dirayah, then Nahr, then Durr al-Mukhtar and Jawami' al-Fiqh, and then Shurunbulaliyah, it is clarified that the Imam of the Jami Mosque takes precedence over the neighborhood Imam.

1 Al-Inayah on the margin of Fath al-Qadir, Chapter on Funeral Prayer, Maktabah Nooriyah Rizviyah Sukkur 2/83 2 Fatawa Qazi Khan, Chapter on Washing the Deceased etc., Munshi Naval Kishore Lucknow 1/92 3 Bahr al-Ra'iq, Chapter on the Sultan's Right to Lead Prayer, HM Saeed Company Karachi 2/181 4 Ghunyat al-Mustamli Sharh Munyat al-Musalli, Chapter on Tayammum, Suhail Academy Lahore p. 81

फतावा-ए-रजविया | जिल्द 9

[अरबी बॉक्स बाएँ: "यदि वह संतुष्ट नहीं था लेकिन उसने उसका अनुसरण किया और उसके साथ नमाज़ पढ़ी, तो वह इसे दोबारा नहीं दोहराएगा क्योंकि वह एक बार नमाज़ पढ़ चुका है।" [उर्दू बॉक्स दाएँ: (अनुवाद: एक व्यक्ति ने नमाज़ पढ़ाई और वली (अभिभावक) संतुष्ट नहीं था लेकिन शामिल हो गया; अब वह दोहराव नहीं करेगा क्योंकि वह एक बार पढ़ चुका है।)

प्रकार 8: इसी तरह, यदि सुल्तान या अन्य अधिकार प्राप्त व्यक्ति जो वली से पहले वरीयता रखते हैं, स्वयं नमाज़ पढ़ लें या उनके अनुमति से कोई और पढ़ ले, तो वली को दोहराने का अधिकार नहीं है।

(102 से 119) 82 से 101 तक सभी उल्लिखित पुस्तकों, (120) फ़तह अल-क़दीर, (121) फ़तह अल-मुईन में है:

[अरबी तालिका बाएँ: "जिन इमामों का शब्दों का हमने अभी उल्लेख किया है वे सहमत शब्दों में हैं, और बाकी समान अर्थों में हैं। यह अल-खानिया का शब्द है: यदि नमाज़ पढ़ाने वाला सुल्तान, या इमाम-ए-आज़म, या काज़ी, या शहर का गवर्नर, या मोहल्ले का इमाम हो, तो जाहिर-अल-रिवाया के अनुसार वली को दोहराने का अधिकार नहीं है[2]। जिन लोगों के शब्दों को हमने उद्धृत किया है, उन्होंने यह भी जोड़ा कि वे उससे (वली से) नमाज़ के अधिक हकदार हैं[3]।"

[उर्दू तालिका दाएँ: (जिनकी इबारत हमने अभी ज़िक्र की, वे सहमत शब्दों में हैं और बाकी समान अर्थों में बयान करते हैं। यहाँ खानिया की इबारत है: यदि अमीर-उल-मोमिनीन या सुल्तान-ए-इस्लाम या काज़ी या शहर के गवर्नर या मोहल्ले की मस्जिद के इमाम ने नमाज़ पढ़ ली, तो हमारे इमामों से ज़ाहिर-अर-रिवाया में वली को भी दोहराने का अधिकार नहीं है क्योंकि ये लोग इस नमाज़ के हक में वली से पहले आते हैं।)

(122) गुनिया, (123) हिल्या, (124) बहर, (125) तहतावी अल-मराक़ी अल-फलाह, इन सभी के तयम्मुम अध्याय में है: [अरबी कॉलम बाएँ: "यदि सुल्तान या उसके जैसे वरीयता रखने वाले किसी व्यक्ति ने नमाज़ पढ़ी है, तो उसे (वली को) दोहराने का अधिकार नहीं है[4]।" [उर्दू कॉलम दाएँ: (सुल्तान वगैरह जो वली पर वरीयता रखते हैं, उनके नमाज़ पढ़ने के बाद वली को दोहराने का अधिकार नहीं है।)

किफ़ाया और मुस्तख़लस की इबारत प्रकार 10 में आती है। इमाम अत्ताबी ने खानिया जैसी इबारत का ज़िक्र किया और वली पर वरीयता रखने वालों की गिनती में जामे मस्जिद के इमाम को भी जोड़ा। दिराया, फिर नहर, फिर दुर्र-ए-मुख्तार और जवामे अल-फ़िक्ह, और फिर शुरुनबुललिया में यह स्पष्ट किया गया है कि जामे मस्जिद का इमाम मोहल्ले के इमाम पर वरीयता रखता है।

---

1 अल-इनाया, फ़तह अल-क़दीर के हाशिये पर, मय्यत की नमाज़ का अध्याय, मकतबा नूरिया रज़विया सुक्कुर 2/83 2 फतावा काज़ी ख़ान, मय्यत को गुस्ल देने का अध्याय आदि, मुंशी नवल किशोर लखनऊ 1/92 3 बहर अल-राईक़, सुल्तान के नमाज़ पढ़ाने के हक का अध्याय, एच.एम. सईद कंपनी कराची 2/181 4 गुनियात अल-मुस्तमली शरह मुनियत अल-मुसल्ली, तयम्मुम का अध्याय, सुहैल एकेडमी लाहौर पृ. 81

[عربی باکس]: لم یرض به ان تابعه وصلی معه لا یعید لانه صلی مرة۔ [اردو باکس]: ہے۔ت) ایک شخص نے نماز پڑھائی اور ولی راضی نہ تھا لیکن شریک ہوگیا تو اب اعادہ نہ کرے گا کہ ایک بار پڑھ چکا۔

نوع ہشتم ۸: یونہی اگر سلطان وغیرہ ذی حق کہ ولی سے مقدم ہیں پڑھ لیں یا خود نہ پڑھ لیں۔ ان کے اذن سے کوئی پڑھ دے جب بھی ولی کو اختیار اعادہ نہیں۔

(۱۰۲تا ۱۱۹) ۸۲ سے ۱۰۱ تک تمام کتب مذکورہ (۱۲۰) فتح القدیر (۱۲۱) فتح المعین میں ہے:

[عربی ٹیبل]: اماماً ذکرنا لفظهم انفاً بالفاظ متفقة و الباقون بمعانی متقاربة، وهذا لفظ الخانیة ان کان المصلی سلطانا او الامام الاعظم او القاضی او والی مصر او امام حیه لیس للولی ان یعید في ظاہر الروایة [2] زاد الذین سقنا لفظهم لانهم اولی بالصلوة منه [3]

[اردو ٹیبل]: جن کی عبارت ابھی ہم نے ذکر کی وہ بہ الفاظ متفقہ اور باقی بمعانی متقاربہ بیان کرتے ہیں اور یہاں عبارت خانیہ کی ہے۔ت) اگر امیر المومنین یا سلطان اسلام یا قاضی یا والی شہر یا امام مسجد محلہ نے نماز پڑھ لی تو ہمارے ائمہ سے ظاہر الروایہ میں ولی کو بھی اعادہ کا اختیار نہیں کہ یہ لوگ اس نماز کے حق میں ولی سے مقدم ہیں۔

(۱۲۲) غنیہ (۱۲۳) حلیہ (۱۲۴) بحر (۱۲۵) طحطاوی علی مراقی الفلاح سب کے باب تیمم میں ہے: [عربی کالم]: لوصلی من له حق التقدم کالسلطان ونحوه لایکون له حق بالاعادة [4] ۔ [اردو کالم]: سلطان وغیرہ جو ولی پر مقدم ہیں ان کے پڑھ لینے کے بعد ولی کو حق اعادہ نہیں۔

کفایہ و مستخلص کی عبارت نوع دہم میں آتی ہے۔ امام عتابی نے مثل عبارت مذکورہ خانیہ ذکر کیا اور ان کی گنتی میں جو ولی پر مقدم ہیں امام مسجد جامع کو بھی بڑھایا۔ اور درایہ پھر نہر پھر درمختار اور جوامع الفقہ اور پھر شرنبلالیہ میں تصریح فرمائی کہ امام جامع مسجد امام محلہ پر مقدم ہے۔

---

1 العنایۃ علی ہامش فتح القدیر فصل فی الصلوۃ علی المیت مکتبہ نوریہ رضویہ سکھر ۸۳/۲ 2 فتاوی قاضی خاں باب فی غسل المیت الخ منشی نولکشور لکھنؤ ۹۲/۱ 3 بحر الرائق فصل فی السلطان احق بصلوتہ ایچ ایم سعید کمپنی کراچی ۱۸۱/۲ 4 غنیۃ المستملی شرح منیۃ المصلی فصل فی التیمم سہیل اکیڈمی لاہور ص ۸۱

Fatawa-e-Razvia, Volume 9

(126) In 'Diraya Sharh Hidaya' and (127) 'Shalabiya alal Kanz' it is stated: "If the Imam of the Jami Masjid leads the prayer, it shall not be repeated." - If the Imam of the congregational mosque leads it, then there is no repetition. (128) In 'Majma' al-Bihar', (129) 'Sharh-e-Majma'', (130) 'Bahr', and (131) 'Radd al-Muhtar' it is stated: "The Imam of the locality is like the Sultan in terms of the non-repetition by the guardian (Wali)." - The local Imam is also like the ruler in this matter, meaning that after he has led the prayer, the guardian is not permitted to repeat it. Note: Imam Ittabi set a condition for the Imam to take precedence over the guardian: that the Imam must be superior to the guardian; otherwise, the guardian himself is more deserving. This condition was cited by Shurunbulaliya in 'Mi'raj al-Diraya' and in 'Durr al-Mukhtar' from 'Mujtaba' and 'Sharh al-Majma'' by the author himself. In 'Hilya', citing Ittabi via 'Sharh al-Majma'' and Imam Baqalli via 'Mujtaba', it is mentioned as "Wa huwa ahsan" (And this is better), stating this is a fine statement. Similarly, it is stated in 'Bahr al-Ra'iq'. (132) In 'Khania', (133) 'Wajiz Kurdari', (134) 'Alamgiriya', and (135) 'Khizanat al-Muftin' it is stated: "The wording is from 'Al-Wajiz': [If someone] died in a city other than his own and strangers prayed over him, then he was brought back to his home; if the first prayer was by the permission of the ruler or the judge, then it shall not be repeated." - (The text of 'Wajiz'-Translator) If a person died in another city and strangers performed the funeral prayer, then his relatives came and brought him back to his homeland; if the first prayer was held with the permission of the Islamic ruler or judge, the relatives should not repeat it now. Ninth Category: If the guardian has performed the prayer, and the ruler or authorities, who are more deserving than him, arrive later, they also cannot repeat it by consensus. Yes, if they were present and someone performed it without the guardian's permission and they did not participate, then according to one group of scholars, they have the option to repeat it. "And this is the interpretation of what is in 'Al-Durr' from 'Al-Mujtaba'" - This is the meaning of the statement quoted in 'Durr al-Mukhtar' from 'Mujtaba'.

---

1 Shalabi on Al-Kanz in the margins of Tabyeen al-Haqa'iq, Chapter: The Sultan has the most right to the prayer, Kubra Amiriya Press, Egypt 1/220 2 Radd al-Muhtar, Chapter: Funeral Prayer, Mustafa Al-Babi, Egypt 1/652 3 Fatawa Bazzaziya in the margins of Fatawa Hindiyya, 25th in Funerals, Noorani Kutub Khana Peshawar 2/80; Fatawa Hindiyya, Chapter Five on Prayer over the Deceased, Noorani Kutub Khana Peshawar 1/162

फ़तावा-ए-रज़विया, खंड 9

(126) 'दराया शरह हिदाया' और (127) 'शलबीया अलल कंज' में है: "यदि जामी मस्जिद का इमाम नमाज़ पढ़ ले, तो इसे दोहराया नहीं जाएगा।" - जामी मस्जिद का इमाम पढ़ ले तो फिर दोहराना नहीं है। (128) 'मजमा अल-बिहार', (129) 'शरह मजमा', (130) 'बहर', और (131) 'रद्द अल-मुह्तार' में है: "इलाके का इमाम भी सुल्तान की तरह है वली (अभिभावक) द्वारा नमाज़ न दोहराए जाने के मामले में।" - मोहल्ले का इमाम भी इस मामले में सुल्तान के समान है कि उसके बाद वली को नमाज़ दोहराना जायज़ नहीं। चेतावनी: इमाम इत्ताबी ने वली पर इमाम की प्राथमिकता के लिए यह शर्त रखी कि इमाम वली से बेहतर हो, अन्यथा वली ही अधिक हकदार है। यह शर्त शुरुनबुलालिया ने 'मेराज अद-दराया' में और 'दुर-ए-मुख्तार' में 'मुजतबा' और लेखक की अपनी 'शरह अल-मजमा' के हवाले से उद्धृत की है। 'हिलिया' में इसे इत्ताबी से 'शरह मजमा' के हवाले से और इमाम बक़ाली से 'मुजतबा' के हवाले से उद्धृत करके कहा गया "वहुवा अहसन" (और यह बेहतर है); यह कथन उत्तम है। इसी तरह 'बहर अल-राइक़' में कहा गया है। (132) 'खानिआ', (133) 'वजीज़ कुरदरी', (134) 'आलमगीरिया', और (135) 'खज़ानतुल मुफ़्तीन' में है: "शब्द 'अल-वजीज़' के हैं: (यदि कोई) अपने शहर के अलावा कहीं मर गया और अजनबियों ने उस पर नमाज़ पढ़ी, फिर उसे उसके घर लाया गया; यदि पहली नमाज़ शासक या काज़ी की अनुमति से हुई थी, तो इसे दोहराया नहीं जाएगा।" - (इबारत 'वजीज़' की है) दूसरे शहर में मरा, अजनबी लोगों ने नमाज़ पढ़ ली, फिर उसके रिश्तेदार आए और उसे उसके वतन ले आए; अगर पहली नमाज़ हाकिम-ए-इस्लाम या काज़ी की अनुमति से हुई थी, तो अब रिश्तेदार इसे न दोहराएं। नौवीं श्रेणी: यदि वली ने नमाज़ पढ़ ली है, और सुल्तान या अधिकारी, जो उससे अधिक हकदार हैं, बाद में आते हैं, तो वे भी सर्वसम्मति से इसे दोहरा नहीं सकते। हाँ, अगर वे मौजूद थे और वली की अनुमति के बिना किसी ने नमाज़ पढ़ ली और वे शामिल नहीं हुए, तो विद्वानों के एक समूह के अनुसार उन्हें दोहराने का अधिकार है। "और 'अद-दुर' में 'अल-मुजतबा' से जो उद्धृत है, उसका यही अर्थ है।" - यही उस बात का अर्थ है जो 'दुर-ए-मुख्तार' में 'मुजतबा' से (नकल) है।

---

1 शलबी अली अल-कंज, तब्यीन अल-हक़ा'इक के हाशिये पर, अध्याय: सुल्तान नमाज़ का अधिक हकदार है, मतब'आ कुबरा अमीरिया मिस्र 1/220 2 रद्द अल-मुह्तार, अध्याय: नमाज़-ए-जनाज़ा, मुस्तफ़ा अल-बाबी मिस्र 1/652 3 फ़तावा बज़ाज़िया, फ़तावा हिंदिया के हाशिये पर, जनाज़ों में

25वाँ, नूरानी कुतुब ख़ाना पेशावर 2/80, फ़तावा हिंदिया, मृत व्यक्ति पर नमाज़ के बारे में पाँचवाँ अध्याय, नूरानी कुतुब ख़ाना पेशावर 1/162

पृष्ठ 948 का 328

(۱۲۶) درایہ شرح ہدایہ (۱۲۷) شلبیہ علی الکنز میں ہے: ولو صلی امام المسجد الجامع لاتعاد - جامع مسجد کا امام پڑھ لے تو پھر اعادہ نہیں۔ (۱۲۸) مجمع البحار (۱۲۹) شرح مجمع (۱۳۰) بحر (۱۳۱) ردالمختار میں ہے: امام الحی کالسلطان فی عدم اعادۃ الولی - امام محلہ بھی اس امر میں مثل سلطان ہے کہ اس کے بعد ولی کو اعادہ جائز نہیں۔ تنبیہ: امام عتابی نے ولی پر تقدیم امام میں یہ شرط لگائی کہ ولی سے افضل ہو ورنہ ولی ہی اولٰی ہے۔ یہ شرط شرنبلالیہ میں معراج الدرایہ اور در مختار میں مجتبٰی و شرح المجمع لمصنف سے نقل فرمائی۔ حلیہ میں اسے عتابی سے بحوالہ شرح مجمع اور امام بقالی سے بحوالہ مجتبٰی نقل کرکے فرمایا وھو احسن یہ کلام عمدہ ہے۔ اسی طرح بحر الرائق میں فرمایا۔ (۱۳۲) خانیہ (۱۳۳) وجیز کردری (۱۳۴) عالمگیریہ (۱۳۵) خزانۃ المفتین میں ہے: واللفظ للوجیز مات فی غیر بلدہ فصلی علیہ غیر اھلہ ثم حملہ الی منزلہ ان کانت الصلوۃ الاولی باذن الوالی او القاضی لاتعاد - (عبارت "وجیز" کی ہے-ت) غیر شہر میں مرا اجنبی لوگوں نے نماز پڑھ لی پھر اس کے اقارب آئے اسے اس کے وطن لے آئے، اگر پہلی نماز حاکم اسلام یا قاضی کے اذن سے ہوئی تھی تو اب اقارب اعادہ نہ کریں۔ نوع نہم: اگر ولی نے نماز پڑھ لی اور سلطان و حکام کہ اس سے اولٰی ہیں بعد کو آئے اب وہ بھی بالاتفاق اعادہ نہیں کر سکتے، ہاں اگر وہ موجود تھے اور ان کے بے اذن ولی نے پڑھ لی اور وہ شریک نہ ہوئے تو ایک جماعت علماء کے نزدیک انہیں اختیار اعادہ ہے۔ وھو محمل ما فی الدر عن المجتبی و یہی اس کلام کا مطلب ہے جو در مختار میں مجتبٰی سے (منقول ہے)۔

---

1 شلبی علی الکنز علی ہامش تبیین الحقائق فصل السلطان احق بصلوۃ مطبعہ کبرٰی امیریہ مصر ۱/ ۲۲۰ 2 ردالمختار باب صلوۃ الجنائز مصطفی البابی مصر ۱/ ۶۵۲ 3 فتاوٰی بزازیہ ہامش فتاوٰی

ہندیہ الخامس والعشرون فی الجنائز نورانی کتب خانہ پشاور ۲/ ۸۰، فتاویٰ ہندیہ الفصل الخامس فی الصلوۃ علی المیت نورانی کتب خانہ پشاور ۱/ ۱۶۲

Fatawa Ridawiya, Volume 9

| It is reported in al-Nihaya and al-Jawhara, then al-Hindiyya and al-Tahtawi, and in al-Inaya and al-Barjandi from al-Nihaya, and in al-Fatih Sharh al-Quduri, and in the marginalia of Abu Sa'id 'ala al-Durar from al-Mujtaba etc. (T) |

And according to a group of scholars, now neither the Sultan nor anyone else has the option of repetition (of the funeral prayer). This was supported in Mi'raj al-Diraya and given preference in Radd al-Muhtar. And this is apparent from the general phrasing of the texts and is stronger in terms of evidence. So the outcome is that if the Sultan has prayed, the guardian (wali) cannot pray, and if the guardian has prayed, the Sultan cannot pray. In short, they close the door on repetition and recurrence in every way. (136) It is stated in Ghayat al-Bayan Sharh al-Hidaya by al-Allama al-Atqani:

| Arabic: This is in a general sense, such that repetition is not permissible, neither for the Sultan nor for anyone else. (1) | Urdu: Meaning, the ruling that no one is allowed to pray after the guardian is general, to the extent that it is not permissible for the Sultan or anyone else to repeat it. |

(137) In Saghiri it is: | Arabic: If he (the guardian) has prayed, no one else has the right to pray after him, whether it be the Sultan or anyone below him. (2) | Urdu: If the guardian has prayed, then no one has the right to pray, whether it be the Sultan or anyone else. |

In Siraj Wahaj Sharh Quduri it is: | Arabic: Whoever the guardian has prayed over, it is not permissible for anyone to pray after him, whether he be the Sultan or someone else. (3) | Urdu: After the guardian, prayer is not permissible for anyone, Sultan or otherwise. |

(138 & 139) Abu al-Su'ud, quoting Nafi' and others, said: | Arabic: The term 'other' was used generally, including the Sultan. Thus, the implication is the absence of repetition by the Sultan after the guardian's prayer, and with it... | Urdu: In Kanz, Imam Matin kept 'other' absolute, which includes the Sultan. So its implication is that after the guardian... |

---

1. Radd al-Muhtar, citing Ghayat al-Bayan, Bab Salawat al-Jana'iz, Dar al-Tiba'at al-Misriyya, Egypt, 1/592
2. Saghiri Sharh Muniyat al-Musalli, Fasl fil Janaza, Matba' Mujtabai, Delhi, p. 289

3. Bahr al-Ra'iq, citing Siraj al-Wahaj, Fasl al-Sultan Ahaq bi-Salatihi, H.M. Saeed Company, Karachi, 2/182

फतावा रज़विया, खंड 9

| यह अल-निहाया और अल-जौहरा, फिर अल-हिन्दिया और अल-तहतावी में उद्धृत है, और अल-इनाया और अल-बरजन्दी में अल-निहाया के हवाले से है, और अल-फातिह शरह अल-कुदूरी में है, और हाशिए अबू सईद अली अल-दुरर में अल-मुजतबा आदि से उद्धृत है। (त) |

और विद्वानों के एक समूह के अनुसार, अब सुल्तान या किसी और को (जनाज़े की नमाज़) दोहराने का अधिकार नहीं है। मेराज अल-दिराया में इसका समर्थन किया गया और रद अल-मुह्तार में इसे प्राथमिकता दी गई। और यही मूल ग्रंथों के सामान्य विवरणों से स्पष्ट है और साक्ष्य के मामले में अधिक प्रबल है। तो निष्कर्ष यह निकला कि यदि सुल्तान ने नमाज़ पढ़ ली है, तो वली (अभिभावक) नहीं पढ़ सकता, और यदि वली ने पढ़ ली है, तो सुल्तान नहीं पढ़ सकता। संक्षेप में, वे हर तरह से दोहराव का दरवाजा बंद करते हैं। (136) अल्लामा अल-अतकानी की 'गायतुल बयान शरह अल-हिदाया' में है:

| अरबी: यह सामान्य रूप से है ताकि दोहराना जायज़ न हो, न तो सुल्तान के लिए और न ही किसी और के लिए। (1) | उर्दू: यानी वली के बाद किसी को नमाज़ की इजाज़त न होने का हुक्म आम है यहाँ तक कि फिर सुल्तान वगैरह किसी को दोहराना जायज़ नहीं। |

(137) सगीरी में है: | अरबी: यदि उसने (वली ने) नमाज़ पढ़ ली, तो उसके बाद किसी और को नमाज़ पढ़ने का अधिकार नहीं है, चाहे वह सुल्तान हो या उससे नीचे का कोई। (2) | उर्दू: वली पढ़ ले तो फिर किसी को पढ़ने का हक़ नहीं सुल्तान हो या और कोई। |

सिराज वहाज शरह कुदूरी में है: | अरबी: जिस पर वली ने नमाज़ पढ़ ली, उसके बाद किसी के लिए नमाज़ पढ़ना जायज़ नहीं, चाहे वह सुल्तान हो या कोई और। (3) | उर्दू: वली के बाद किसी को नमाज़ जायज़ नहीं सुल्तान हो या उसका गैर। |

(138 और 139) अबू अल-सऊद ने नाफ़े आदि से नक़ल करते हुए फ़रमाया: | अरबी: 'गैर' (अन्य) शब्द का उपयोग सामान्य रूप से किया गया है जिसमें सुल्तान भी शामिल है। तो इसका अर्थ वली की नमाज़ के बाद सुल्तान द्वारा न दोहराना है और इसी के साथ... | उर्दू: कंज़ में इमाम मातिन ने 'गैर' को मुतलक़ (निरपेक्ष) रखा जो सुल्तान को भी शामिल है, तो इसका मफ़ाद (निष्कर्ष) यह है कि वली के बाद... |

1. रद अल-मुह्तार, गायत अल-बयान के हवाले से, बाब सलात अल-जनाइज़, दार अल-तिबात अल-मिसरिया, मिस्र, 1/592
2. सगीरी शरह मुनियत अल-मुसल्ली, फस्ल फिल जनाजा, मतबा मुजतबाई, दिल्ली, पृष्ठ 289
3. बहर अल-राइक, सिराज अल-वहाज के हवाले से, फस्ल अल-सुल्तान अहाक़ बि-सलातिहि, एच.एम. सईद कंपनी, कराची, 2/182

فتاوٰی رضویہ ، جلد نہم

| في النهاية والجوهرة ثم الهندية والطحطاوي وفی العناية والبرجندی عن النهاية وفی الفاتح شرح القدوری وفی ابی سعید علی الدرر عن المجتبی وغیرھا۔ | منقول ہے، اور نہایہ، جوہرہ پھر ہندیہ اور طحطاوی میں ہے اور عنایہ وبرجندی میں نہایہ کے حوالے سے ہے، اور فاتح شرح قدوری میں ہے اور حاشیہ ابوسعید علی الدرر میں مجتبٰی وغیرہ سے منقول ہے۔ (ت) |

اور ایک جماعت علماء کے نزدیک اب بھی سلطان وغیرہ کسی کو اختیارِ اعادہ نہیں، معراج الدرایہ میں اسی کی تائید کی، ردالمحتار میں اسی کو ترجیح دی۔ اور یہی ظاہرِ اطلاق متون اور ظاہرًا من حیث الدلیل اقوٰی ہے تو حاصل یہ ٹھہرا کہ سلطان نے پڑھ لی تو ولی نہیں پڑھ سکتا ولی نے پڑھ لی تو سلطان نہیں پڑھ سکتا، غرض ہر طرح اعادہ و تکرار کا دروازہ بند فرماتے ہیں: (۱۳۶) غایۃ البیان شرح الہدایہ للعلامۃ الاتقانی میں ہے:

| هذا على سبيل العموم حتى لا تجوز الاعادة لا لسلطان ولا لغيره -1 | یعنی ولی کے بعد کسی کو نماز کی اجازت نہ ہونے کا حکم عام ہے یہاں تک کہ پھر سلطان وغیرہ کسی کو اعادہ جائز نہیں۔ |

(۱۳۷) صغیری میں ہے: | ان صلی هو فليس لغيره ان يصلی بعده من السلطان فمن دونه -2 | ولی پڑھ لے تو پھر کسی کو پڑھنے کا حق نہیں سلطان ہو یا اور کوئی۔ |

سراج وہاج شرح قدوری میں ہے: | من صلی الولی علیه لم یجز ان یصلی احد بعده سلطانا کان او غیره 3 | ولی کے بعد کسی کو نماز جائز نہیں سلطان ہو یا اس کا غیر۔ |

(۱۳۹اور ۱۴۰) ابوالسعود میں نافع وغیرہ سے نقل کرتے ہوئے فرمایا: | اطلق فی الغیر فعم السلطان فمفاده عدم اعادة السلطان بعد صلوٰة الولی وبه | کنز میں امام ماتن نے غیر کو مطلق رکھا جو سلطان کو بھی شامل، تو اس کا مفاد یہ ہے کہ ولی کے بعد |

---

1 ردالمحتار، بحوالہ غایۃ البیان باب صلوٰۃ الجنائز دار الطباعۃ المصریہ مصر ۱ / ۵۹۲ 2 صغیری شرح منیہ المصلی فصل فی الجنازۃ مطبع مجتبائی دہلی ص ۲۸۹ 3 بحر الرائق بحوالہ سراج الوہاج فصل السلطان احق بصلوتہ ایچ ایم سعید کمپنی کراچی ۲ / ۱۸۲

Fatawa Rizvia Volume 9

It is asserted in Al-Siraj, Ghayat al-Bayan, and Al-Nafi'1: Even the Sultan should not repeat [the funeral prayer], and Al-Haddadi, Al-Itqani, and [the author of] Al-Nafi' have also asserted this.

(141) In Mustasfa by Imam al-Nasafi and (142) Shalabi 'ala al-Kanz, it is mentioned: "The right belongs to the guardians, hence he said: After him, no one has the right to repeat [the prayer] in a general sense, whether it be a Sultan or anyone else."2 The original right belongs to the guardian, therefore the text—namely the author of Al-Fiqh al-Nafi'—stated generally that after the guardian, no one has the authority to repeat, be it a Sultan or anyone.

(143 and 144) In Radd al-Muhtar, quoting from Mi'raj al-Dirayah etc., it is stated: "When the guardian has prayed, do those who preceded him, like the Sultan, have the right to repeat? In Al-Siraj and Al-Mustasfa, it is prohibited. The statement in Al-Hidayah serves as proof for this, where it says: If the guardian has prayed, it is not permissible for anyone to pray after him; and similar statements are in Al-Kanz and others. So, the phrase 'it is not permissible for anyone' includes the Sultan. And it is narrated in Al-Mi'raj from Al-Nafi' [marginal note 'e'] that the Sultan does not have the right to repeat, then he supported the narration of Al-Nafi'."3 - Summary.

Marginal note (e): "Al-Manafi'": This is the Mustasfa by the great Imam Abu al-Barakat al-Nasafi, which is a commentary on Al-Fiqh al-Nafi', famously known as "Nafi'", by Imam Nasir al-Din Abu al-Qasim al-Madani al-Samarqandi. Imam al-Nasafi (may Allah have mercy on him) wrote at the end of his book Al-Musaffa Sharh al-Manzumah al-Nasafiyyah: "When I..." (continued on the next page).

1 Fath al-Mu'in 'ala Sharh Mulla Miskeen, Chapter on Funeral Prayers, H.M. Saeed Company Karachi, 1/353 2 Shalabi 'ala al-Kanz on the margin of Tabyin al-Haqa'iq, Chapter on the Sultan's Right to Lead the Prayer, Al-Matba'ah al-Kubra al-Amiriyya, Egypt, 1/238 3 Radd al-Muhtar, Chapter on Funeral Prayers, Al-Matba'ah al-Kubra al-Amiriyya, Egypt, 1/591-92/1

फ़तावा रज़विया, जिल्द 9

'अस-सिराज', 'ग़ायत अल-बयान' और 'अन-नाफ़े 1 में यह दृढ़ता से कहा गया है: सुल्तान को भी दोबारा [जनाज़े की नमाज़] नहीं पढ़नी चाहिए, और अल-हद्दादी, अल-इतक़ानी और 'अन-नाफ़े ने भी इसी पर ज़ोर दिया है।

(141) इमाम नसफ़ी की 'मुस्तस्फ़ा' और (142) 'शलबी अला अल-कंज' में है: "हक़ वलियों का है, इसलिए उन्होंने कहा: उनके बाद किसी को सामान्य रूप से दोबारा [नमाज़] पढ़ने का अधिकार नहीं है, चाहे वह सुल्तान हो या कोई और।"2 मूल हक़ वली का है, इसलिए मूल ग्रंथ, यानी 'अल-फ़िक़्ह अल-नाफ़े के लेखक ने सामान्य रूप से कहा है कि वली के बाद किसी को भी दोहराने का अधिकार नहीं है, चाहे सुल्तान हो या कोई और।

(143 और 144) 'रद अल-मुहतार' में 'मेराज अद-दिराया' आदि से उद्धृत करते हुए कहा गया है: "जब वली ने नमाज़ पढ़ ली, तो क्या उनसे पहले आने वाले, जैसे सुल्तान, को दोबारा पढ़ने का हक़ है? 'सिराज' और 'मुस्तस्फ़ा' में इसे मना किया गया है। 'हिदाया' का कथन इस पर प्रमाण है जहाँ कहा गया है: यदि वली ने नमाज़ पढ़ ली है, तो उसके बाद किसी के लिए नमाज़ पढ़ना जायज़ नहीं है; और इसी तरह 'कंज' आदि में भी है। अत; 'किसी के लिए जायज़ नहीं' वाक्यांश में सुल्तान भी शामिल है। 'मेराज' में 'नाफ़े [हाशिये का नोट 'अ'] के हवाले से नक़ल किया गया है कि सुल्तान के पास दोबारा पढ़ने का अधिकार नहीं है, फिर उन्होंने 'नाफ़े के वर्णन का समर्थन किया।"3 - सारांश।

हाशिये का नोट (अ): "अल-मनाफ़े': यह इमाम अबुल बरकात नसफ़ी की 'मुस्तस्फ़ा' है, जो इमाम नासिरुद्दीन अबुल क़ासिम मदनी समरकंदी की किताब 'अल-फ़िक़्ह अल-नाफ़े (मशहूर 'नाफ़े) की व्याख्या है। इमाम नसफ़ी (रहमतुल्लाह अलैह) ने अपनी किताब 'अल-मुसफ़्फ़ा शरह मंज़ूमा नसफ़िया' के अंत में लिखा है कि: "जब मैं..." (बाकी अगले पन्ने पर)।

1 'फ़तह अल-मुईन अला शरह मुल्ला मिस्कीन', जनाज़े की नमाज़ का अध्याय, एच.एम. सईद कंपनी कराची, 1/353 2 'शलबी अला अल-कंज', 'तबईन अल-हक़ाइक' के हाशिये पर, सुल्तान का नमाज़ पढ़ाने के हक़ का अध्याय, अल-मत्बा अल-कुबरा अल-अमीरिया, मिस्र, 1/238 3 'रद अल-मुहतार', जनाज़े की नमाज़ का अध्याय, अल-मत्बा अल-कुबरा अल-अमीरिया, मिस्र, 1/591-92/1

فتاوی رضویہ جلد نہم

جزم فی السراج وغایۃ البیان والنافع 1۔ سلطان بھی اعادہ نہ کرے، اور اسی پر حدادی واتقانی ونافع نے جزم کیا۔

(۱۴۱) مستصفی للامام النسفی (۱۴۲) شلبی علی الکنز میں ہے: الحق الی الاولیاء حیث قال لیس لاحد بعدہ الاعادۃ بطریق العموم سلطاناً کان او غیرہ 2۔ اصل حق ولی کا ہے ولہذا متن یعنی صاحب الفقہ النافع نے عام فرمایا کہ ولی کے بعد کسی کو اعادہ کا اختیار نہیں، سلطان ہو یا کوئی۔

(۱۴۳ و ۱۴۴) ردالمحتار میں معراج الدرایہ وغیرہ سے نقل کرتے ہوئے فرمایا: اذا صلی الولی فھل لمن قبلہ کالسلطان حق الاعادۃ، فی السراج والمستصفی لاویدل علی ھذا قول الھدایۃ ان صلی الولی لم یجز لاحد ان یصلی بعدہ ونحوہ فی الکنز وغیرہ فقولہ لم یجز لاحد یشمل السلطان ونقل فی المعراج عن النافع عہ لیس للسلطان الاعادۃ ثم ایدروایۃ النافع 3۔ اھ ملخصاً۔ کیا ولی کے بعد سلطان وغیرہ جو اس سے مقدم ہیں اعادہ کا حق رکھتے ہیں، سراج و مستصفی میں منع فرمایا۔ اور ہدایہ کا قول اس پر دلیل ہے کہ فرمایا ولی کے بعد کسی کو جائز نہیں، اور یونہی کنز وغیرہ میں ہے، کسی میں سلطان بھی آگیا، اور معراج میں منافع سے سلطان کو منع اعادہ نقل کرکے اس کی تائید فرمائی۔

عہ: المنافع ھذا ھو المستصفی للامام اجل ابی البرکات النسفی شرح الفقہ النافع الشھیر بالنافع للامام ناصر الدین ابی القاسم المدنی السمرقندی وقد قال رحمہ اللہ تعالی فی آخر کتابہ المصفی شرح المنظومۃ النسفیۃ منافع ، یہی امام اجل ابوالبرکات نسفی کی مستصفی ہے جو امام ناصر الدین ابوالقاسم مدنی سمرقندی کی کتاب "الفقہ النافع" مشہور بہ "نافع" کی شرح ہے۔ امام نسفی رحمۃ اللہ

تعالیٰ علیہ نے اپنی کتاب "المصفی شرح منظومہ نسفیہ" کے آخر میں لکھا ہے کہ : جب میں (باقی اگلے صفحہ پر)

1 فتح المعین علی شرح ملا مسکین فصل فی الصلوۃ علی المیت ایچ ایم سعید کمپنی کراچی 353/1

2 شلبی علی الکنز علی ہامش تبیین الحقائق فصل السلطان احق بصلوتہ مطبعہ کبری امیریہ مصر 238/1

3 ردالمحتار باب صلوۃ الجنائز مطبعہ کبری امیریہ مصر 92/1-591

Fatawa Rizvia, Volume 9

(125) In Bahr al-Ra'iq it is stated:

(Arabic) صلى الولى ثم جاء المقدم عليه فليس له الاعادة	**(Urdu) The guardian (wali) has already prayed, then the ruler (Sultan) or others who have precedence over him arrive; they do not have the choice to repeat the prayer.**

1. Bahr al-Ra'iq, Section: The Sultan is most deserving of leading his prayer, H.M. Saeed Company Karachi, 182/2.

(Remaining footnote from the previous page): (Arabic): When I finished compiling and dictating 'Al-Manafi', which is 'Al-Mustasfa', some of my brothers asked me to compile a commentary for 'Al-Manzuma' that includes its intricacies. So, I commented on it and named it 'Al-Musaffa'. It became clear that 'Al-Mustasfa' and 'Al-Manafi' are one and the same, and it is a commentary on 'Al-Nafi'. While 'Al-Musaffa' is something else, a commentary on 'Al-Manzuma'. It is not identical to 'Al-Mustasfa' nor an abridgment of it. Nor is 'Al-Mustasfa' a commentary on 'Al-Manzuma'. A mistake has occurred here by Allama al-Katibi in 'Kashf al-Zunun', so be warned. It is most astonishing that he tried to prove his claim—that 'Al-Mustasfa' is a commentary on 'Al-Manzuma' and 'Al-Musaffa' is its abridgment—using the words of the author (may Allah have mercy on him) from the end of 'Al-Musaffa', while those words loudly testify against his claim. Then he mentioned 'Al-Mustasfa' under 'Al-Nafi' again, correctly calling it its commentary, but mentioned a weak opinion that it is 'Al-Musaffa', which is incorrect. Know this. 12 (from him, M).

(Urdu): Al-Manafi is the same as Al-Mustasfa... When I finished the compilation and dictation, some dear friends requested me to write a commentary on the 'Manzuma' that includes its intricacies. So I wrote the commentary on 'Manzuma' and named it 'Musaffa'. It is clear from this text that 'Mustasfa' and 'Manafi' are the same, and it is a commentary on 'Nafi', whereas 'Musaffa' is another book, which is specifically the commentary on 'Manzuma'. It is neither 'Mustasfa' itself nor its abridgment. Nor is 'Mustasfa' a commentary on 'Manzuma'. A mistake occurred here by Allama Katibi in 'Kashf al-Zunun', so one should be cautious. He wrote that 'Mustasfa' is the commentary on 'Manzuma' and 'Musaffa' is its abridgment. It is extremely surprising that as evidence for this claim, he presented the same passage from the end of 'Musaffa' mentioned earlier, even though it loudly testifies against his claim. After that, under 'Al-Nafi', Katibi mentioned 'Mustasfa' again, rightly calling it its

commentary, but also mentioned a weak saying that it is 'Musaffa' itself, which is not correct. So this should be known. 12 (T)

फ़तावा रिज़विया, जिल्द 9

(125) बहर अल-राईक़ में है:

(अरबी) सल्लल वली सुम्मा जा अल-मुक़द्दम अलैहि फ़लैसा लहू अल-इआदा	(उर्दू) वली नमाज़ पढ़ चुका फिर सुल्तान वगैरह वे लोग आए जो वली पर मुक़द्दम हैं, उन्हें दोबारा पढ़ने का अख्तियार नहीं।

1. बहर अल-राईक़, फ़स्ल: सुल्तान अपनी नमाज़ का अधिक हक़दार है, एच.एम. सईद कंपनी कराची, 182/2.

(पिछले पृष्ठ का शेष हाशिया): (अरबी): जब मैं 'मनाफ़े को जमा करने और लिखाने से फ़ारिग हुआ, और वही 'मुस्तस्फ़ा' है, तो मेरे कुछ भाइयों ने चाहा कि मैं 'मंज़ूमा' की एक ऐसी शरह (व्याख्या) लिख दूँ जो उसकी बारीकियों पर मुश्तमिल हो। तो मैंने उसकी शरह लिखी और उसका नाम 'मुसफ़्फ़ा' रखा। तो ज़ाहिर हुआ कि 'मुस्तस्फ़ा' और 'मनाफ़े एक ही चीज़ हैं और वह 'नाफ़े की शरह है। जबकि 'मुसफ़्फ़ा' अलग है, वह 'मंज़ूमा' की शरह है। वह न तो 'मुस्तस्फ़ा' है और न ही उसका इख़्तसार (संक्षेप)। और न ही 'मुस्तस्फ़ा' मंज़ूमा की शरह है। यहाँ 'कश्फ़ अज़-ज़ुनून' में अल्लामा कातिबी से ग़लती हुई है, अतः सावधान रहें। यह अत्यंत आश्चर्यजनक है कि उन्होंने अपने दावे के लिए —कि 'मुस्तस्फ़ा' मंज़ूमा की शरह है और 'मुसफ़्फ़ा' उसका इख़्तसार है—मुसफ़्फ़ा के अंत में मुसन्निफ़ (اللہ تعالی رحمہ) के उसी कलाम से दलील दी है, जबकि वह कलाम उनके दावे के बिल्कुल विपरीत गवाही दे रहा है। फिर उन्होंने 'नाफ़े के तहत 'मुस्तस्फ़ा' का दोबारा ज़िक्र किया और वहाँ सही तौर पर उसे उसकी शरह बताया, और एक ज़ईफ़ (कमज़ोर) कौल का ज़िक्र किया कि वह मुसफ़्फ़ा ही है, जबकि वह सही नहीं है। तो यह मालूम रहे। 12 (मुसन्निफ़ की ओर से)

(उर्दू): मनाफ़े ही मुस्तस्फ़ा है... जब मैं इसकी तालीफ़ (लेखन) और इमला (लिखवाने) से फ़ारिग हुआ तो कुछ अज़ीज़ों ने चाहा कि मंज़ूमा की एक ऐसी शरह लिख दूँ जो उसकी दक़ाईक़ (बारीकियों) के बयान पर मुश्तमिल हो, तो मैंने मंज़ूमा की शरह लिखी और उसका नाम "मुसफ़्फ़ा" रखा। इस इबारत से वाज़ेह है कि मुस्तस्फ़ा और मनाफ़े एक ही हैं और यह "नाफ़े की शरह है, और मुसफ़्फ़ा दूसरी किताब है जो मंज़ूमा की शरह है, वह न तो मुस्तस्फ़ा है और न उसका इख़्तसार। न ही मुस्तस्फ़ा मंज़ूमा की शरह है। यहाँ 'कश्फ़ अज़-ज़ुनून' में अल्लामा कातिबी से ग़लती हो गई है,

इसलिए मुतन्बिह (सतर्क) रहना चाहिए। उन्होंने लिख दिया कि मुस्तस्फ़ा मंज़ूमा की शरह है और मुसफ़्फ़ा उसका इख़्तसार है। सख़्त हैरत की बात यह है कि इस दावे की दलील में उन्होंने आख़िर-ए-मुसफ़्फ़ा की वही इबारत पेश की जो अभी ज़िक्र हुई, हालाँकि वह बुलंद आवाज़ में उनके दावे के ख़िलाफ़ गवाही दे रही है। इसके बाद "अल-नाफ़े' के तहत कातिबी ने मुस्तस्फ़ा को दोबारा ज़िक्र किया, वहाँ सही तौर पर उसे उसकी शरह बताया और एक कमज़ोर मत का ज़िक्र किया कि वह मुसफ़्फ़ा ही है, और यह दुरुस्त नहीं। तो यह मालूम रहे। 12 (त)

पृष्ठ 331 का 948

فتاویٰ رضویہ جلد نہم

(۱۲۵) بحر الرائق میں ہے:

صلی الولی ثم جاء المقدم علیه فلیس له الاعادة **ولی پڑھ چکا پھر سلطان وغیرہ وہ لوگ آئے جو ولی پر مقدم ہیں انہیں اعادہ کا اختیار نہیں۔**

1۔ بحر الرائق فصل السلطان احق بصلوتہ ایچ ایم سعید کمپنی کراچی ۱۸۲/۲

(بقیہ حاشیہ صفحہ گزشتہ) لما فرغت من جمع المنافع واملاہ وھوالمستصفی سألنی بعض اخوانی ان اجمع للمنظومة شرحاً مشتملا علی الدقائق فشرحتھا وسمیته المصفی فظھران المستصفی والمنافع شیئ واحد وھو شرح النافع، والمصفی غیرہ وھو شرح المنظومة فلیس عین المستصفی ولا اختصارہ، ولا المستصفی شرح المنظومة وقد وقع ھھنا غلط من العلامة الکاتبي في کشف الظنون فتنبہ ومن اشد العجب ان استدل ماادعاہ من المستصفی شرح المنظومة وان المصفی اختصارہ بمامر من کلامہ رحمہ اللہ تعالی في اخر المصفی مع انہ شاھد بأعلی نداء علی نقیض ماادعاہ ثم اعاد ذکر المستصفی فی النافع فجعلہ شرحہ علی الصواب وذکر قیلا انہ المصفی ولیس بالصواب فأعلم ۱۲ منہ (م)

منافع وہی مستصفٰی ہے--- کی تالیف واملاء سے فارغ ہوا تو بعض عزیزوں نے مجھ سے چاہا کہ منظومہ کی ایک ایسی شرح لکھ دوں جو اس کے دقائق کے بیان پر مشتمل ہو، تو میں نے منظومہ کی شرح لکھی اور اس کا نام "مصفیٰ" رکھا۔ اس عبارت سے واضح ہے کہ مستصفٰی اور منافع ایک ہی ہیں اور یہ "نافع" کی شرح ہے، اور مصفیٰ دوسری کتاب ہے وہ منظومہ کی شرح ہے بعینہ مستصفٰی یا اس کا اختصار نہیں ہے۔ نہ ہی مستصفٰی منظومہ کی شرح ہے--- یہاں کشف الظنون میں علامہ کاتبی سے غلطی ہو گئی ہے اس لئے متنبہ رہنا چاہئے۔ انہوں نے یہ لکھ دیا کہ

مستصفٰی منظومہ کی شرح ہے اور مصفٰی اس کا (مستصفٰی کا) اختصار ہے اور سخت حیرت کی بات یہ ہے کہ اس دعوے کی دلیل میں انہوں نے آخر مصفٰی کی وہی عبارت پیش کی ہے جو ابھی ذکر ہوئی حالانکہ وہ بہ آواز بلند ان کے دعوے کے خلاف شہادت دے رہی ہے--- اس کے بعد "النافع" کے تحت کاتبی نے مستصفٰی کو دوبارہ ذکر کیا وہاں بجاطور پر اس کی شرح بتایا اور ایک ضعیف قول کا ذکر کیا کہ وہ مصفٰی ہی ہے اور یہ درست نہیں۔ تو یہ معلوم رہے ۱۲ (ت)

Fatawa Razawiyya Volume Nine

[Arabic Column Text]: And by this, the author of 'al-Bahr' attempted a reconciliation, interpreting what is in 'al-Nihayah' and 'al-'Inayah' as applying to the case where the guardian (Wali) comes forward in the presence of the Sultan without his permission, and what is in 'al-Siraj' and 'al-Mustasfa' as applying to the case where he comes forward while they are absent, then they arrive. The author of 'al-Nahr' disputed with him, stating that their words are unanimous that the Sultan and those below him have no right [of precedence] before the guardian except in their presence, so the disagreement only arises if they are present. I say: whatever the case may be, the one who argues for the repetition of the prayer by the Sultan only does so when they are present and the guardian advances without his permission. It is stated in 'al-Hulyah' regarding the depiction of this disagreement: "The guardian and the Sultan, or the local Imam, prayed while those between them were present, but they did not follow him," etc. Similarly, a condition was placed in 'al-Nafi'' by his statement "if he is present". It is said in its commentary 'al-Mustasfa': "The Sultan is only put forward due to an incidental cause; for this reason, he said 'if he is present'". And in 'al-Mujtaba': "If the guardian prayed, it is not permissible for anyone else to pray after him."

[Urdu Column Text]: From this, the author of 'Bahr' sought to harmonize; he interpreted the text of 'Nihayah' etc. as referring to the case where the guardian leads the prayer in the presence of the Sultan without his permission. And he interpreted the words of 'Siraj' and 'Mustasfa' as referring to the case where the guardian leads in their absence and they arrive later. The author of 'Nahr' objected that the words of the scholars agree that the Sultan etc. gain the right of precedence over the guardian only when they are present, so the disagreement will only be in the case of presence. I say: however it may be, whoever accepts the right for the Sultan to repeat the prayer says this only when the Sultan is present and the guardian leads without his permission, then he can pray again. In 'Hulyah', the form of this disagreement is presented thus: "The guardian led the prayer while the Sultan or the Imam of the quarter or those whose rank is between them were present, and they did not follow the guardian" etc. Likewise, in 'Nafi'', this condition was applied: "if he is present". In its commentary 'Mustasfa', it is stated: "The Sultan's precedence is due to an incidental cause: that is why it said 'if he is present'". In 'Mujtaba', it is said: "If the guardian has prayed, then no one can pray after him."

[Footnotes]: 1. Hulyat al-Mahalli Sharh Munyat al-Musalli 2. al-Mustasfa Sharh al-Fiqh al-Nafi' of al-Nasafi

फ़तावा रज़विया जिल्द नवीं

[अरबी कॉलम का पाठ]: और इसी के द्वारा 'अल-बहर' के लेखक ने सामंजस्य स्थापित करने का प्रयास किया, उन्होंने 'अल-निहाया' और 'अल-इनाया' में जो कुछ है उसे उस स्थिति पर लागू किया जब वली (अभिभावक) सुल्तान की उपस्थिति में उसकी अनुमति के बिना आगे बढ़ता है, और 'अल-सिराज' और 'अल-मुस्तसफ़ा' में जो कुछ है उसे उस स्थिति पर लागू किया जब वे अनुपस्थित थे और फिर वे उपस्थित हो गए। 'अल-नहर' के लेखक ने उनसे विवाद किया कि उनके शब्द एकमत हैं कि सुल्तान और उसके नीचे के लोगों को वली से पहले कोई अधिकार नहीं है सिवाय उनकी उपस्थिति के अतः मतभेद केवल तभी होता है जब वे उपस्थित हों। मैं कहता हूँ: मामला जो भी हो, जो सुल्तान द्वारा नमाज़ दोहराने की बात करता है वह केवल तभी कहता है जब वे उपस्थित हों और वली उसकी अनुमति के बिना आगे बढ़े। 'अल-हुलिया' में इस मतभेद के चित्रण के बारे में कहा गया है: "वली और सुल्तान या मोहल्ले के इमाम ने नमाज़ पढ़ाई जबकि उनके बीच वाले लोग उपस्थित थे, लेकिन उन्होंने उसका अनुसरण नहीं किया" आदि। इसी तरह, 'अल-नाफ़े में "यदि वह उपस्थित हो" शब्दों के साथ प्रतिबंध लगाया गया था। इसकी व्याख्या 'अल-मुस्तसफ़ा' में कहा गया है: "सुल्तान को केवल एक आकस्मिक कारण से आगे रखा जाता है; इसी कारण से उसने कहा 'यदि वह उपस्थित हो'"। और 'अल-मुजतबा' में है: "यदि वली ने नमाज़ पढ़ ली, तो उसके बाद किसी और के लिए नमाज़ पढ़ना जायज़ नहीं है।"

[उर्दू कॉलम का पाठ]: इसी से 'बहर' के लेखक ने सामंजस्य देना चाहा है, उन्होंने 'निहाया' आदि की इबारत को उस स्थिति पर लागू किया है जब सुल्तान के मौजूद होते हुए उसकी अनुमति के बिना वली पढ़ा दे। और 'सिराज' और 'मुस्तसफ़ा' के कलाम को उस स्थिति पर लागू किया है जब वली उनकी अनुपस्थिति में पढ़ा दे और बाद में वे आ जाएं। 'नहर' के लेखक ने इस पर आपत्ति की है कि विद्वानों के शब्द इस बारे में एकमत हैं कि सुल्तान आदि को वली पर प्राथमिकता का अधिकार तभी प्राप्त होता है जब वे मौजूद हों, तो मतभेद मौजूदगी की ही स्थिति में होगा। मैं कहता हूँ: जैसा भी हो, जो सुल्तान के लिए दोबारा पढ़ने का अधिकार मानता है वह यही कहता है कि जब सुल्तान मौजूद हो और वली उसकी अनुमति के बिना पढ़ा दे, तो वह फिर पढ़ सकता है। 'हुलिया' में इस मतभेद की सूरत इस प्रकार पेश की गई है: "वली ने नमाज़ पढ़ाई और सुल्तान या मोहल्ले के इमाम या वे जिनका दर्जा उनके बीच है, मौजूद हैं और उन्होंने वली का अनुसरण नहीं किया" आदि। इसी तरह 'नाफ़े में यह शर्त लगाई गई है कि "अगर वह मौजूद हो"। इसकी व्याख्या 'मुस्तसफ़ा' में फ़रमाया:

सुल्तान को प्राथमिकता आकस्मिक कारण की वजह से है: इसीलिए फ़रमाया "अगर वह मौजूद हो"। 'मुजतबा' में है: "वली ने पढ़ ली तो उसके बाद कोई नहीं पढ़ सकता।"

[फ़ुटनोट्स]: १. हुलियत अल-महल्ली शरह मुनियत अल-मुसल्ली २. अल-मुस्तसफ़ा शरह अल-फ़िक़ह अन-नाफ़े लिन-नसफ़ी

पृष्ठ ३३२/९४८

فتاوٰی رضویہ جلد نہم

[Arabic Column]: وبہذا حاول البحر التوفیق فحمل ما في النہایة والعنایة علی ما اذا تقدم الولي بمحضر السلطان من دون اذنه وما في السراج والمستصفی علی ما اذا تقدم وھم غیب ثم حضروا ونازعه في النہر بأن کلماتھم متفقة علی ان لاحق للسلطان فمن دونه قبل الولي الا عند حضورھم فالخلاف انما ھو اذا حضروا۔ اقول: کیف ما کان الامر فالذي یقول باعادة السلطان انما یقول اذا حضروا تقدم الولي بلا اذنه قال في الحلیة في تصویر ھذا الخلاف صلی الولی والسلطان او امام الحي ومن بینھما حاضر ولم یتابعه ۱ الخ وکذلك قید في النافع بقوله ان حضر قال في شرحه المستصفی انما قدم السلطان بعارض ولھذا قال ان حضر ۲ اہ وفی المجتبی صلی الولی لم یجز ان یصلی احد بعدہ

[Urdu Column]: اسی سے صاحب بحر نے تطبیق دینا چاہا ہے، انہوں نے نہایہ وغیرہ کی عبارت کو اس صورت پر محمول کیا ہے جب سلطان کے موجود ہوتے ہوئے اس کی اجازت کے بغیر ولی پڑھادے۔ اور سراج و مستصفیٰ کے کلام کو اس صورت پر محمول کیا ہے جب ولی انکی غیر موجودگی میں پڑھا دے بعد میں وہ آجائیں۔ صاحبِ نہر نے اس پر اعتراض کیا ہے کہ کلماتِ علماء اس بارے میں متفق ہیں کہ سلطان وغیرہ کو ولی پر حقِ تقدم اُسی وقت حاصل ہوتا ہے جب وہ موجود ہوں تو اختلاف موجودگی ہی کی صورت میں ہوگا۔ اقول: جیسا بھی ہو جو سلطان کے لئے دوبارہ پڑھنے کا حق مانتا ہے وہ یہی کہتا ہے کہ جب سلطان موجود ہو اور ولی اس کی اجازت کے بغیر پڑھا دے تو وہ پھر پڑھ سکتا ہے۔ حلبیہ میں اس اختلاف کی صورت یوں پیش کی ہے "ولی نے نماز پڑھائی اور سلطان یا امام محلہ یا وہ جن کا درجہ ان کے مابین ہے موجود ہیں اور انہوں نے ولی کی متابعت نہ کی" الخ۔ اسی طرح "نافع" میں یہ قید لگائی ہے کہ "اگر وہ

موجود ہو"۔ اس کی شرح مستصفیٰ میں فرمایا: سلطان کو تقدم عارض کی وجہ سے ہے: اسی لئے فرمایا "اگر وہ موجود ہو" اہ مجتبیٰ میں ہے ولی نے پڑھ لی تو اس کے بعد کوئی نہیں پڑھ سکتا

[حواشی]: ۱ حلیۃ المحلی شرح منیۃ المصلی ۲ المستصفی شرح الفقہ النافع للنسفی

Fatawa Razawiyya, Volume 9

[Arabic Text] This is if the Sultan is not present. But if he is present and the guardian (Wali) has prayed, the Sultan repeats [it] (End of quote). Similar to this is in Al-Fatih and in Al-Durr: if the guardian prayed in the presence of the Sultan, for example, the Sultan repeats [it] (End of quote). In Al-Mi'raj and Al-Hawi, on the authority of Al-Mujtaba: the Sultan has the right of repetition if the guardian prayed in his presence (End of quote). In Tahtawi's marginalia on Al-Maraqi: the guardian prayed and the Sultan wanted to pray over him [the deceased], so he has that right. (Jawhara), meaning when he was present at the time of prayer and did not pray with the guardian, nor did he give permission, because of the agreement of their words [scholars] that the right belongs to the Sultan in the absence of his attendance (Nahr, end of quote). Thus, the invalidity of what occurred from Abdul Haleem on Al-Durar becomes apparent from his saying: "If the Sultan was not present and someone besides him prayed, then the Sultan arrived, he repeats it if he wishes" (End of quote). Let this be noted, and success is through Allah.

[Urdu Text] This is the case when the Sultan is not present. If the guardian performs it in his presence, he can perform it again. (End of quote). Similar to this is in Fatih Sharh Quduri. In Durr al-Mukhtar: If, for instance, the guardian performs it in the presence of the Sultan, the Sultan can perform it again. (End of quote). In Mi'raj and Hawi, with reference to Mujtaba: The Sultan has the right of repetition if the guardian performs it in his presence. (End of quote). In the Marginalia of Tahtawi on Al-Maraqi: The guardian performed the prayer and the Sultan wants to perform it too, so he has this right. (Jawhara)... meaning when the Sultan was present at the time of prayer and neither prayed with the guardian nor gave permission, because the statements of the scholars are unanimous on this that the Sultan has no right in the state of absence. (Nahr, end of quote). From this, it is clear that the discourse is unreliable which was recorded from the pen of Abdul Haleem Rumi in the marginalia of Durar, that in the absence of the Sultan, a person of lower rank performed the funeral prayer, then the Sultan arrived; if he wishes, he can perform it again. (End of quote). One should be aware of this, and guidance is from God alone (T).

[Footnotes] 1. Al-Mujtaba 2. Durr al-Mukhtar, Chapter of Funeral Prayers, Mujtabai Press, Delhi, 1/123. 3. Al-Mi'raj 4. Tahtawi on Al-Maraqi, Chapter: The Sultan is most deserving of leading the prayer, Noor Muhammad Trade Center of Books, Karachi, p. 324. 5. Marginalia of Al-Durar on Al-Ghurar by Abdul Haleem, Chapter of Funerals, Ottoman Press, Turkey, 1/108.

फ़तावा रज़विया, खंड 9

[अरबी पाठ] यह तब है जब सुल्तान मौजूद न हो। लेकिन, यदि वह मौजूद हो और वली (संरक्षक) नमाज़ पढ़ा दे, तो सुल्तान उसे दोहराएगा। (समाप्त)। अल-फ़ातिह और अल-दुर्र में भी ऐसा ही है: यदि वली सुल्तान की उपस्थिति में नमाज़ पढ़ाता है, उदाहरण के लिए, सुल्तान उसे दोहराता है। (समाप्त)। अल-मेराज और अल-हावी में अल-मुज्तबा के हवाले से है: सुल्तान को दोहराने का अधिकार है यदि वली उसकी उपस्थिति में नमाज़ पढ़ाए। (समाप्त)। अल-मराक़ी पर तहतावी के हाशिये में है: वली ने नमाज़ पढ़ा ली और सुल्तान स्वयं उसे पढ़ाना चाहता है, तो उसे वह अधिकार है। (जौहरा), अर्थात जब वह नमाज़ के समय उपस्थित था और न तो वली के साथ नमाज़ पढ़ी, और न ही अनुमति दी, क्योंकि विद्वानों की आम सहमति है कि सुल्तान का अधिकार उसकी अनुपस्थिति में नहीं है (नहर, समाप्त)। इस प्रकार, अल-दुरर पर अब्दुल हलीम द्वारा उल्लिखित बात की अमान्यता स्पष्ट हो जाती है, जहाँ उन्होंने कहा: "यदि सुल्तान उपस्थित नहीं है और कोई अन्य नमाज़ पढ़ाता है, फिर सुल्तान आता है, तो वह चाहे तो उसे दोहरा सकता है।" (समाप्त)। इस पर ध्यान दिया जाना चाहिए, और सफलता अल्लाह की ओर से है।

[उर्दू पाठ का अनुवाद] यह उस स्थिति में है जब सुल्तान मौजूद न हो, यदि उसकी उपस्थिति में वली पढ़ ले तो वह फिर से पढ़ सकता है। (समाप्त)। इसी के समान फ़ातिह शरह क़ुदूरी में है। दुर्रे मुख़्तार में है: अगर वली ने उदाहरण के लिए सुल्तान की मौजूदगी में पढ़ लिया तो सुल्तान दोबारा पढ़ सकता है। (समाप्त)। मेराज और हावी में मुज्तबा के हवाले से है: सुल्तान को दोहराने का अधिकार प्राप्त है अगर वली उसकी मौजूदगी में पढ़ ले। (समाप्त)। हाशिया तहतावी अली अल-मराक़ी में है: वली ने नमाज़ पढ़ ली और सुल्तान चाहता है कि वह भी पढ़े तो उसे इसका अधिकार प्राप्त है, जौहरा... यानी जब सुल्तान नमाज़ के समय मौजूद रहा हो और वली के साथ न पढ़ा हो और न ही अनुमति दी हो, क्योंकि विद्वानों के कथन इस बारे में सहमत हैं कि सुल्तान को अनुपस्थिति की स्थिति में कोई अधिकार नहीं है, नहर (समाप्त)। इससे स्पष्ट है कि वह बात अविश्वसनीय है जो अब्दुल हलीम रूमी की कलम से हाशिया दुरर में दर्ज हुई कि सुल्तान की अनुपस्थिति में उससे कम पद वाले ने जनाज़ा पढ़ लिया फिर सुल्तान आया तो अगर वह चाहे तो फिर पढ़ सकता है। (समाप्त)। इससे अवगत रहना चाहिए और मार्गदर्शन ईश्वर की ओर से ही है (त)।

[पादलेख] 1. अल-मुज्तबा 2. दुर्रे मुख़्तार, जनाज़े की नमाज़ का अध्याय, मुज्तबाई प्रेस दिल्ली, 1/123। 3. अल-मेराज 4. तहतावी अली अल-मराक़ी, अनुभाग: सुल्तान नमाज़ का सबसे अधिक

हकदार है, नूर मुहम्मद किताबों का व्यापार केंद्र, कराची, पृ. 324। 5. हाशिया अल-दुरर अली अल-ग़ुरर, अब्दुल हलीम, जनाज़े का अध्याय, उस्मानी प्रेस तुर्की, 1/108।

[عربی متن] هذا اذالم یحضر السلطان اما اذا حضر صلی الولی یعید السلطان اھ ومثله فی الفاتح وفی الدرلو صلی الولی بحضرة السلطان مثلا اعاد السلطان اھ وفی المعراج والحاوی عن المجتبی للسلطان الاعادة اذا صلی الولی بحضرته اھ وفي ط علی المراقی صلی ولی واراد السلطان ان یصلی علیه فله ذلک ، جوہرہ ، یعنی اذا کان حاضر وقت الصلوٰۃ ولم یصل مع الولی ولم یأذن لاتفاق کلمتھم ان الحق للسلطان عند عدم حضورہ نہر اھ فظھر سقوط ما وقع لعبد الحلیم علی الدرر من قولہ ان السلطان اذالم یحضر فصلی من دونہ فحضّر السلطان یعیدھا ان شاء اھ فلیتنبہ وباللہ التوفیق۔

[اردو متن] یہ اُس صورت میں ہے جب سلطان موجود نہ ہو ، اگر اس کی موجودگی میں ولی پڑھ لے تو وہ پھر پڑھ سکتا ہے اھ۔ اسی کے مثل فاتح شرح قدوری میں ہے۔۔ در مختار میں ہے: اگر ولی نے مثلا سلطان کی موجودگی میں پڑھ لیا تو سلطان دوبارہ پڑھ سکتا ہے اھ معراج اور حاوی میں مجتبیٰ کے حوالے سے ہے: سلطان کو حق اعادہ حاصل ہے اگر ولی اس کی موجودگی میں پڑھ لے اھ۔ حاشیہ طحطاوی علی المراقی میں ہے: ولی نے نماز پڑھ لی اور سلطان چاہتا ہے کہ وہ بھی پڑھے تو اسے اس کا حق حاصل ہے، جوہرہ۔۔ یعنی جب سلطان وقت نماز موجود رہا ہو اور ولی کے ساتھ نہ پڑھا نہ ہی اجازت دی ہو اس لئے کہ عباراتِ عُلماء اس بارے میں متفق ہیں کہ سلطان کو غیر موجودگی کی حالت میں کوئی حق نہیں، نہر اھ۔ اس سے واضح ہے کہ وہ کلام ساقط الاعتبار ہے جو عبدالحلیم رومی کے قلم سے حاشیہ درر میں درج ہوا کہ سلطان کی غیر موجودگی میں اس سے کم درجہ والے نے جنازہ پڑھ لیا پھر سلطان آیا تو اگر وہ چاہے تو پھر پڑھ سکتا ہے اھ اس سے آگاہ رہنا چاہئے اور توفیق خدا ہی سے ہے (ت)۔

[حواشی] ۱۔ المجتبیٰ ۲۔ درمختار باب صلوۃ الجنائز مطبع مجتبائی دہلی ۱ / ۱۲۳ ۳۔ المعراج ۴۔ طحطاوی علی المراقی فصل فی السلطان احق بصلوۃ نور محمد کارخانہ تجارت کتب کراچی ص ۳۲۴ ۵۔ حاشیۃ الدرر علی الغرر عبدالحلیم باب الجنائز مطبعہ عثمانیہ ترکی ۱ / ۱۰۸

Fatawa Rizvia Volume 9

Type 10: For instance, if there is a funeral and someone without wudu fears missing the prayer if they perform wudu, or someone needing a major ritual bath (due to ritual impurity, menstruation, or post-childbirth bleeding) fears missing it if they bathe, Shariah allows performing tayammum to participate. This is because once the prayer is over, it cannot be repeated, like the Eid prayer. Therefore, when authorities like the Sultan, who take precedence over the guardian (Wali), are present, the guardian is also permitted to perform tayammum. In fact, if the guardian grants permission to someone else to lead the prayer, the guardian can then perform tayammum since, by giving permission, they no longer have the authority to repeat it. Similarly, if one funeral prayer is offered with tayammum performed in place of wudu or ghusl, and another funeral arrives without enough time for wudu or ghusl, they can offer the second and third prayers with the same tayammum. (146) Kanz (147) Tanwir (148) Multaqa (149) Nur al-Idah (150) It is in Muheet: 'It is valid due to fear of missing the funeral prayer.' (151) Mukhtasar Quduri (152) Hidaya (153) Wiqayah (154) Niqayah (155) Islah (156) Wafi (157) Ghurar (158) Munyah state:

Arabic Text	Urdu Translation
And the wording in Islah and Wiqayah is: One who is in a state of minor or major ritual impurity, or a menstruating woman, or a woman in postpartum bleeding, who is unable to use water due to the fear of missing the funeral prayer, [tayammum is permissible] for other than the guardian (wali). Similarly in Ghurar, except it says 'other than the foremost' (ghair al-awla).	(In Islah and Wiqayah. T) A man or woman who needs wudu or ghusl and fears missing the funeral prayer, tayammum is permissible for them, except in the case of a prayer where there is no fear of missing it. Similarly in Ghurar, but there instead of 'non-guardian' (ghair wali), it says 'non-foremost' (ghair awla). (T)

Briefly, the words of Wiqayah are: | Arabic Text | Urdu Translation | | :--- | :--- | | That which is missed and has no substitute, like the funeral prayer for one other than the guardian. | Among the excuses for the permissibility of tayammum is the missing of an obligatory act that has no substitute, such as the funeral prayer for one other than the guardian. |

1. Kanz al-Daqaiq, Chapter of Tayammum, H.M. Saeed Company, Karachi, p. 17
2. Ghurar al-Ahkam with Sharh al-Durar al-Ahkam, Chapter of Tayammum, Matba Ahmad Kamil al-Kainah fi Dar al-Sa'adat, Beirut, 1/29, 30

3. Ghurar al-Ahkam with Sharh al-Durar al-Ahkam, Chapter of Tayammum, Matba Ahmad Kamil al-Kainah fi Dar al-Sa'adat, Beirut, 1/29, 30, 30
4. Al-Niqayah Mukhtasar Wiqayah, Chapter of Tayammum, Noor Muhammad Karkhana Tijarat Kutub, Karachi, p. 6

फतवा रज़विया जिल्द नहुम

प्रकार १०: मसला यह है कि यदि जनाज़ा हो और बिना वज़ू वाले को वज़ू करने में या जुनुब (अशुद्ध), मासिक धर्म या प्रसव के बाद की स्थिति वाली महिला को स्नान करने में नमाज़ छूट जाने का डर हो, तो शरीयत ने अनुमति दी है कि तयम्मुम करके शामिल हो जाए, क्योंकि एक बार हो जाने पर वह दोबारा नहीं पढ़ सकेगा जैसे कि ईद की नमाज़। इसलिए, जब सुल्तान आदि जो वली (अभिभावक) से आगे हैं, उपस्थित हों, तो वली के लिए भी तयम्मुम जायज़ है। बल्कि अगर वली ने किसी दूसरे को इमामत की इजाज़त दे दी, तो अब वली भी तयम्मुम कर सकेगा क्योंकि इजाज़त देने के बाद उसे नमाज़ दोहराने का अधिकार नहीं रहा। इसी तरह, अगर वज़ू या गुस्ल के तयम्मुम से एक जनाज़ा पढ़ा गया और दूसरा आ गया और वज़ू या गुस्ल की मोहलत न मिली, तो उसी तयम्मुम से दूसरा और तीसरा, जितने भी हों, पढ़ सकते हैं। (१४६) कंज़ (१४७) तनवीर (१४८) मुल्तका (१४९) नूर अल-इज़ाह (१५०) मुहीत में है: 'जनाज़ा छूटने के डर के कारण यह (तयम्मुम) सही है।' (१५१) मुख़्तसर क़ुदूरी (१५२) हिदाया (१५३) विक़ाया (१५४) निक़ाया (१५५) इस्लाह (१५६) वाफ़ी (१५७) ग़ुरर (१५८) मुन्या में है:

अरबी पाठ

और इबारत इस्लाह और विक़ाया की है: वह शख्स जो बे-वज़ू हो, जुनुब हो, या मासिक धर्म या प्रसव वाली महिला हो, और पानी के इस्तेमाल से असमर्थ हों जनाज़ा की नमाज़ छूट जाने के डर से, तो वली के अलावा अन्य के लिए [तयम्मुम जायज़ है]। ग़ुरर में भी ऐसा ही है, सिवाय इसके कि वहाँ 'ग़ैर-वली' के बजाय 'ग़ैर-औला' (जो सबसे योग्य न हो) कहा गया है।

हिंदी अनुवाद

(इस्लाह और विक़ाया में है। त) पुरुष या महिला जिसे वज़ू या गुस्ल की आवश्यकता हो और उसमें नमाज़-ए-जनाज़ा छूट जाने का डर हो, उनके लिए तयम्मुम जायज़ है, सिवाय उस नमाज़ के जिसके बारे में छूटने का डर न हो। और इसी तरह ग़ुरर में है, लेकिन वहाँ 'ग़ैर-वली' के बजाय 'ग़ैर-औला' कहा गया है। (त)

संक्षेप में विक़ाया के शब्द ये हैं: | अरबी पाठ | हिंदी अनुवाद | | :--- | :--- | | वह जो छूट जाए और उसका कोई विकल्प न हो, जैसे वली के अलावा किसी अन्य के लिए जनाज़ा की नमाज़। |

तयम्मुम की अनुमति के कारणों में से एक ऐसा कर्तव्य (वाजिब) का छूट जाना है जिसका कोई विकल्प न हो, जैसे कि गैर-वली के लिए जनाज़ा की नमाज़। |

1. कंज़ अल-दक़ाइक़, बाब अल-तयम्मुम, एच.एम. सईद कंपनी, कराची, पृ. १७
2. ग़ुरर अल-अहकाम मअ शरह अल-दुरर अल-अहकाम, बाब अल-तयम्मुम, मतबा अहमद कामिल अल-काइनह फ़ी दार अल-साअदत, बेरूत, १/२९, ३०
3. ग़ुरर अल-अहकाम मअ शरह अल-दुरर अल-अहकाम, बाब अल-तयम्मुम, मतबा अहमद कामिल अल-काइनह फ़ी दार अल-साअदत, बेरूत, १/२९, ३०, ३०
4. अल-निक़ाया मुख़्तसर विक़ाया, फ़स्ल अल-तयम्मुम, नूर मोहम्मद कारख़ाना तिजारत कुतुब, कराची, पृ. ६

पृष्ठ ३३४ का ९४८

نوع دہم: حد یہ کہ جنازہ ہو اور بے وضو کو وضو کرنے یا جنب یا حیض یا نفاس سے فارغ ہونے والی کو نہانے میں فوتِ نماز کا اندیشہ ہو تو شرع نے اجازت فرمائی کہ تیمم کرکے شریک ہو جائے کہ ہوچکی تو پھر نہ پڑھ سکے گا جیسے نمازِ عید، ولہذا سلطان وغیرہ جو ولی سے مقدم ہیں جب حاضر ہوں تو ولی کو بھی تیمم جائز ہے، بلکہ اگر ولی نے دوسرے کو اجازتِ امامت دے دی تو اب ولی بھی تیمم کر سکے گا کہ اجازت دے کر اختیارِ اعادہ نہ رہا، یونہی اگر وضو یا غسل کے تیمم سے ایک جنازہ پڑھا گیا کہ دوسرا آگیا اور وضو یا غسل کی مہلت نہ پائی تو اسی تیمم سے دوسرا اور تیسرا جہاں تک ہوں پڑھ سکتے ہو - (۱۴۶) کنز (۱۴۷) تنویر (۱۴۸) ملتقی (۱۴۹) نورالایضاح (۱۵۰) محیط میں ہے: صحّ لخوف فوت الجنازۃ 1 اندیشہ فوتِ جنازہ کے لئے تیمم جائز ہے - (۱۵۱) مختصر قدوری (۱۵۲) ہدایہ (۱۵۳) وقایہ (۱۵۴) نقایہ (۱۵۵) اصلاح (۱۵۶) وافی (۱۵۷) غرر (۱۵۸) منیہ میں ہے:

عربی عبارت	اردو ترجمہ
واللفظ للاصلاح والوقایۃ ھو المحدث والجنب وحائض ونفساء عجزوا عن الماء لخوف فوت صلاۃ الجنازۃ لغیر الولی اہ مثلہ فی الغرر غیر انہ قال لغیر الاولی 3۔	(اصلاح اور وقایہ میں ہے۔ ت) مرد یا عورت جسے وضو یا غسل کی حاجت ہو اور اس میں نمازِ جنازہ فوت ہو جانے کا خوف کریں ان کو تیمم جائز ہے سوائے اس نماز کے حق ہو کہ اسے خوفِ فوت نہیں۔ اور اسی طرح غرر میں ہے مگر وہاں غیر ولی کی بجائے غیر اولیٰ کہا۔ (ت)

مختصر وقایہ کے لفظ یہ ہیں: | عربی عبارت | اردو ترجمہ | | :--- | :--- | | مایفوت لاالی خلف کصلوۃ الجنازۃ لغیر الولی 4۔ | جوازِ تیمم کے عذروں سے ہے ایسے واجب کا فوت جس کا بدل نہ ہوسکے جیسے غیر ولی کے لئے نمازِ جنازہ۔ |

1 کنز الدقائق باب التیمم ایچ ایم سعید کمپنی کراچی ص ۱۷ 2 غرر الاحکام مع شرح الدرر الحکام باب التیمم مطبعہ احمد کامل الکائنۃ فی دار السعادت بیروت ۲۹/۱ ، ۳۰ 3 غرر الاحکام مع شرح الدرر الحکام باب التیمم مطبعہ احمد کامل الکائنۃ فی دار السعادت بیروت ۲۹/۱ ، ۳۰، ۳۰ 4 النقایۃ مختصر وقایۃ فصل التیمم نور محمد کارخانہ تجارت کتب کراچی ص ۶

Fatawa Rizwia Volume 9

(159) In Muntaqa Imam Hakim Shaheed and (160) Fatawa Ghiyathiyah, it is stated:

Arabic	Urdu Translation
Tayammum is not permissible for one for whom people wait. If they do not wait for him, it is valid[1].	For one who will be waited for, i.e., the Wali (guardian) or someone prioritized, tayammum is not permissible, and for one who will not be waited for, i.e., someone other than the Wali, tayammum is permissible.

(161) In Tahtawi 'ala al-Durr, it is mentioned: "Fear [of missing prayer] is considered based on the preponderance of thought (Ghalba-e-Zann)[2]." Fear of missing [the prayer] is based on the dominant thought. (162) Imam al-Ajal Tahawi states in Sharh Ma'ani al-Athar:

Arabic	Urdu Translation
Permission for tayammum has been granted in cities due to fear of missing the funeral prayer or the two Eid prayers, because if these are missed, they are not made up (qaza)[3].	Due to the fear of missing the funeral prayer or Eid, tayammum is permitted in cities despite the presence of water, because there is no makeup (qaza) for these two prayers.

(163) In Hidaya and (164) Majma' al-Anhur, it is said: "Because it is not made up, thus inability [to use water] is established[4]." Because there is no makeup (qaza) for the funeral prayer, inability to use water is established. (165) Hilya, (166) Barjandi, (167) Maraqi al-Falah, and (168) Fatawa Khairiyyah state:

Arabic	Urdu Translation
Verily, they are missed without a substitute (Barjandi added: in relation to someone other than the Wali)[5].	Once the prayer has taken place, there is no substitute for someone other than the Wali.

(169) In Kafi, both terms are combined:

Arabic	Urdu Translation
The funeral prayer and the Eid prayer are both missed without a substitute because they are not made up, thus inability is established[6].	If the funeral prayer and Eid are missed, there is no substitute for them as they are not made up, thus inability to use water is established.

[1] Fatawa Ghiyathiyah, Chapter on Shrouding, Maktaba Islamiyah Quetta, p. 44 [2] Hashiyat al-Tahtawi 'ala al-Durr, Chapter on Tayammum, Dar al-Ma'rifah Beirut, 1/129 [3] Tahawi, Sharh Ma'ani al-Athar, Chapter on Janaba and Menstruation, H.M. Saeed Company Karachi, 1/64 [4] Majma' al-Anhur Sharh Multaqa al-Abhur, Chapter on Tayammum, Dar Ihya al-Turath al-Arabi Beirut, 1/41 [5] Sharh al-Nuqayah by al-Barjandi, Chapter on Tayammum, Nawalkishore Lucknow 1/176; Maraqi al-Falah on the margin of al-Tahtawi, Chapter on Tayammum, Noor Muhammad Kar Khana Tijarat Kutub Karachi, p. 63 [6] Kafi Sharh Wafi

फ़तावा रिज़विया जिल्द नवीं

(159) मुन्तका इमाम हाकिम शहीद और (160) फतावा गियाथिया में है:

अरबी	उर्दू अनुवाद
जिसका लोग इंतजार करें उसके लिए तयम्मुम जायज़ नहीं है। अगर उसका इंतज़ार न किया जाए तो यह जायज़ है[1]।	जिसका इंतज़ार होगा यानी वली व औली, उसे तयम्मुम जायज़ नहीं और जिसका इंतज़ार न होगा यानी ग़ैर औली, उसे तयम्मुम जायज़ है।

(161) तहतावी अल-दुर्र में है: "फ़ौत होने (निकल जाने) के डर में ग़ालिब गुमान (प्रबल संभावना) का एतबार है[2]।" फ़ौत होने के डर में ग़ालिब गुमान का एतबार है। (162) इमाम अल-अजल तहावी 'शरह मानी अल-आसार' में फ़रमाते हैं:

अरबी	उर्दू अनुवाद
शहरों में जनाज़े की नमाज़ या दो ईदों की नमाज़ फ़ौत होने के डर से तयम्मुम की इजाज़त दी गई है, क्योंकि अगर ये फ़ौत हो जाएं तो इनकी क़ज़ा नहीं होती[3]।	नमाज़-ए-जनाज़ा या ईद फ़ौत होने के ख़ौफ़ से पानी होते हुए शहरों में तयम्मुम की इजाज़त है इसलिए कि इन दोनों नमाज़ों की क़ज़ा नहीं।

(163) हिदाया और (164) मजमा अल-अन्हुर में है: "चूंकि उनकी क़ज़ा नहीं होती, इसलिए (पानी के इस्तेमाल से) बेबसी साबित हो गई[4]।" इसलिए कि नमाज़-ए-जनाज़ा की क़ज़ा नहीं तो पानी से इज़्ज़ (बेबसी) साबित हुआ। (165) हिलया, (166) बरजन्दी, (167) मराकी अल-फ़लाह, (168) फतावा खैरिया में है:

अरबी	उर्दू अनुवाद
वे बिना किसी बदल (विकल्प) के फ़ौत हो जाती हैं (बरजन्दी ने जोड़ा: वली के अलावा दूसरों के संबंध में)[5]।	नमाज़ हो चुके तो ग़ैर वली के लिए उसका बदल नहीं।

(169) 'काफ़ी' में दोनों लफ्ज़ जमा फ़रमाए कि:

अरबी	उर्दू अनुवाद
जनाज़े की नमाज़ और ईद दोनों बिना बदल के फ़ौत होती हैं क्योंकि उनकी क़ज़ा नहीं होती, लिहाज़ा इज्ज़ (असमर्थता) साबित हो जाती है[6]।	नमाज़-ए-जनाज़ा व ईद फ़ौत हो जाएं तो उनका बदल नहीं कि वो क़ज़ा नहीं की जातीं तो पानी से इज्ज़ साबित हुआ।

[1] फतावा गियाथिया, तकफ़ीन का अध्याय, मकतबा इस्लामिया क्वेटा, पृष्ठ 44 [2] हाशिया अत-तहतावी अल-दुर्र, तयम्मुम का अध्याय, दार अल-मआरिफा बेरूत, 1/129 [3] तहावी, शरह मानी अल-आसार, जुनुब और माहवारी का ज़िक्र, एच.एम. सईद कंपनी कराची, 1/64 [4] मजमा अल-अन्हुर शरह मुल्तका अल-अब्हुर, तयम्मुम का अध्याय, दार इह्या अत-तुराथ अल-अरबी बेरूत, 1/41 [5] शरह अल-नुकाया बरजन्दी द्वारा, तयम्मुम का अध्याय, नवलकिशोर लखनऊ 1/176; मराकी अल-फ़लाह तहतावी के हाशिये पर, तयम्मुम का अध्याय, नूर मुहम्मद कारख़ाना तिजारत कुतुब कराची, पृष्ठ 63 [6] काफ़ी शरह वाफ़ी

فتاویٰ رضویہ جلد نہم

(۱۵۹) منتقی امام حاکم شہید (۱۶۰) فتاویٰ غیاثیہ میں ہے:

عربی عبارت	اردو ترجمہ
لا یجوز التیمم لمن ینتظرہ الناس فلو لم ینتظروہ اجزاء ۱ -	جس کا انتظار ہوگا یعنی ولی و اولیٰ اسے تیمم جائز نہیں اور جس کا انتظار نہ ہوگا یعنی غیر اولیٰ اسے تیمم جائز ہے۔

(۱۶۱) طحطاوی علی الدر میں ہے: یعتبر الخوف بغلبة الظن ۲ خوف فوت میں غالب گمان کا اعتبار ہے (۱۶۲) امام اجل طحاوی شرح معانی الآثار میں فرماتے ہیں:

عربی عبارت	اردو ترجمہ
قد رخص فی التیمم فی الامصار خوف فوت الصلوة علی الجنازة وفی صلوة العیدین لان ذلك اذا فات لم یقض ۳ -	نمازِ جنازہ یا عید فوت ہونے کے خوف سے پانی ہوتے ہوئے شہروں میں تیمم کی اجازت ہے اس لئے کہ ان دونوں نمازوں کی قضا نہیں۔

(۱۶۳) ہدایہ (۱۶۴) مجمع الانہر میں ہے: لانه لاتقضی فیتحقق العجز ۴ اس لئے کہ نماز جنازہ کی قضا نہیں تو پانی سے عجز ثابت ہوا۔ (۱۶۵) حلیہ (۱۶۶) بر جندی (۱۶۷) مراقی الفلاح (۱۶۸) فتاویٰ خیریہ میں ہے:

عربی عبارت	اردو ترجمہ
انها تفوت بلاخلف (زادالبر جندی) بالنسبة الی غیر الولی ۵ -	نماز ہو چکے تو غیر ولی کے لئے اس کا بدل نہیں۔

(۱۶۹) کافی میں دونوں لفظ جمع فرمائے کہ:

عربی عبارت	اردو ترجمہ
صلوة الجنازة والعید تفوتان لا الی بدل لانهما لا تقضیان فیتحقق العجز ۶ -	نمازِ جنازہ و عید فوت ہو جائیں تو ان کا بدل نہیں کہ وہ قضا نہیں کی جاتییں تو پانی سے عجز ثابت ہوا۔

---

۱ فتاویٰ غیاثیہ فصل فی التکفین مکتبہ اسلامیہ کوئٹہ ص ۴۴ ۲ حاشیة الطحطاوی علی الدر باب التیمم دارالمعرفہ بیروت ۱۲۹/۱ ۳ طحاوی شرح معانی الآثار باب ذکر الجنب والحائض ایچ ایم سعید کمپنی کراچی ۱/ ۶۴ ۴ مجمع الانہر شرح ملتقی الابحر باب التیمم داراحیاء التراث العربی بیروت ۱/ ۴۱ ۵ شرح النقایۃ للبرجندی باب التیمم نولکشور لکھنو ۱/ ۱۷۶، مراقی الفلاح علی ہامش الطحطاوی باب التیمم نور محمد کار خانہ تجارت کتب کراچی ص ۶۳ ۶ کافی شرح وافی

Fatawa Razawiya - Volume 9

(170) In 'Inayah' it is stated: Every [act of worship] that, if missed, has no replacement can be performed with Tayammum even when water is available; and for us, the funeral prayer (Salatul Janazah) is like that, as it cannot be repeated. Urdu Translation: Every obligatory act that doesn't have a replacement upon being missed can be performed with Tayammum while water is present, and funeral prayer is the same for us as it cannot be repeated.

(171) In 'Tabyeen' and (172) 'Arkan' it is stated: Funeral prayer is missed without leaving a replacement, so water is considered non-existent in relation to it. Urdu Translation: Since funeral prayer has no replacement, water is deemed non-existent for it.

(173) In 'Zahiriyyah', (174) 'Alamgiriyyah', (175) 'Sirajiyyah', (176) 'Sharh Nur al-Idah', (177) 'Durr al-Mukhtar', (178) 'Rahmaniyyah' it is stated: The wording is from 'Durr': even for one in a state of major ritual impurity (Junub) or menstruation (Ha'id). Urdu Translation: Tayammum is also permissible for Junub and menstruating women for it... and this issue has already been clearly explained from Wiqayah, Islah, and Ghurar.

(179) In 'Bahr', (180) 'Hindiyyah', (181) 'Tahtawi ala Maraqi', (182) 'Hulyah', (183) 'Ghunyah' it is stated: The wording is from 'Bahr': Tayammum is permissible for the guardian (Wali) if someone who has precedence over him is present, by consensus, because he fears missing it. Urdu Translation: If the Sultan or rulers, who precede the guardian, are present, then Tayammum is also permissible for the guardian as now he too might fear missing it.

(184) In 'Jawharah', (185) 'Bahr', (186) 'Alamgiriyyah' it is stated: The wording for these two: It is permissible for the guardian if he grants permission to another for the prayer, but it is not permissible for the one whom the guardian ordered, as stated in 'al-Khulasah'. Urdu Translation: (These are the words of these two - T) Even if the guardian gives permission to someone else for the prayer, Tayammum is permissible for him (because now he fears missing it), but for the one to whom the guardian gave permission, Tayammum is not permissible, as specified in 'Khulasah' (because now he has no fear of missing it).

Footnotes: 1. Al-Inayah on the margin of Fath al-Qadir, Chapter on Tayammum, Nuriyyah Razawiyyah Sukkur, 1/122 2. Tabyin al-Haqa'iq Sharh Kanz al-Daqa'iq,

Chapter on Tayammum, Matba'ah Kubra Amiriyyah Egypt, 1/44 3. Durr al-Mukhtar, Chapter on Tayammum, Matba' Mujtabai Delhi, 1/44 4. Al-Bahr al-Ra'iq, Chapter on Tayammum, H.M. Saeed Company Karachi, 1/158 5. Fatawa Hindiyyah, Third Section on Miscellaneous Matters, Noorani Kutub Khana Peshawar, 1/31

फ़तावा रज़विया - जिल्द 9

(170) 'इनाया' में है: अरबी: हर वह इबादत जिसके छूट जाने पर कोई विकल्प न हो, पानी की मौजूदगी में भी तैयममुम से अदा की जा सकती है; और हमारे नज़दीक जनाज़े की नमाज़ ऐसी ही है क्योंकि इसे दोबारा नहीं पढ़ा जा सकता। उर्दू अनुवाद: हर वाजिब जो छूट जाने पर विकल्प न रखता हो, पानी होते हुए भी उसे तैयममुम से अदा कर सकते हैं और नमाज़-ए-जनाज़ा हमारे नज़दीक ऐसी ही है कि वह दोबारा नहीं हो सकती।

(171) 'तबीन' (172) 'अरकान' में है: अरबी: जनाज़े की नमाज़ छूट जाती है और उसका कोई विकल्प नहीं होता, इसलिए उसके संबंध में पानी को अनुपलब्ध माना जाता है। उर्दू अनुवाद: नमाज़-ए-जनाज़ा का कोई विकल्प नहीं है, इसलिए इसके लिए पानी को नायाब (अनुपलब्ध) माना गया।

(173) ज़हीरिया (174) आलमगीरिया (175) सिराजिया (176) शरह नूरुल ईज़ाह (177) दुर्रे मुख़्तार (178) रहमानिया में है: अरबी: और शब्द 'दुर्र' के हैं: चाहे जुनुब (महा-अशुद्धि वाला) हो या हाएज़ा (ऋतुस्त्राव वाली महिला)। उर्दू अनुवाद: इसके लिए जुनुब और हाएज़ा को भी तैयममुम जायज़ है... और यह मसला 'विक़ाया', 'इस्लाह' और 'ग़ुरर' से ज़्यादा स्पष्ट गुज़रा।

(179) बह्र (180) हिंदिया (181) तहतावी अलल मराक़ी (182) हुलिया (183) ग़ुनिया में है: अरबी: और शब्द 'बह्र' के हैं: वली (संरक्षक) के लिए तैयममुम जायज़ है अगर वह व्यक्ति हाज़िर हो जिसे उस पर प्राथमिकता प्राप्त है, सर्वसम्मति से, क्योंकि उसे (नमाज़) छूट जाने का डर है। उर्दू अनुवाद: सुल्तान और शासक जो वली से मुक़द्दम (वरिष्ठ) हैं, अगर वे हाज़िर हों तो वली को भी तैयममुम जायज़ है क्योंकि अब उसे भी नमाज़ छूट जाने का डर हो सकता है।

(184) जौहरा (185) बह्र (186) आलमगीरिया में है: अरबी: इन दोनों के शब्द हैं: वली के लिए (तैयममुम) जायज़ है अगर वह किसी दूसरे को नमाज़ की इजाज़त दे दे, लेकिन उस व्यक्ति के लिए जायज़ नहीं है जिसे वली ने हुक्म दिया है, जैसा कि 'ख़ुलासा' में है। उर्दू अनुवाद: (इन दोनों के शब्द हैं कि - त) वली दूसरे को नमाज़ की इजाज़त दे दे, तब भी उसे तैयममुम जायज़ है (क्योंकि अब उसे नमाज़ छूटने का डर हो गया) और जिसे वली ने इजाज़त दी अब उसे तैयममुम जायज़ नहीं जैसा कि 'ख़ुलासा' में स्पष्ट किया गया (क्योंकि अब उसे नमाज़ छूटने का डर नहीं है)।

फ़ुटनोट्स: 1. अल-इनाया, फ़तह अल-क़दीर के हाशिये पर, बाब अल-तयम्मुम, नूरिय्या रज़विया सुक्कुर, 1/122 2. तबीन अल-हक़ाएक शरह कंज़ अद-दक़ाएक, बाब अल-तयम्मुम, मतबा कुबरा

अमीरिया मिस्र, 1/44 3. दुर्रे मुख़्तार, बाब अल-तयम्मुम, मतबा मुजतबाई दिल्ली, 1/44 4. अल-बह्र अर-राईक़, बाब अल-तयम्मुम, एच.एम. सईद कंपनी कराची, 1/158 5. फ़तावा हिंदिया, विविध विषयों पर तीसरा अनुभाग, नूरानी कुतुब ख़ाना पेशावर, 1/31

पेज 336/948

(۱۷۰) عنایہ میں ہے : کل مایفوت لا الٰی بدل جاز ادائہ بالتیمم مع وجود الماء وصلوٰۃ الجنازۃ عندنا کذٰلك لانہا لا تعاد۔ ہر واجب کہ فوت پر بدل نہ رکھتا ہو پانی ہوتے ہوئے اسے تیمم سے ادا کر سکتے ہیں اور نمازِ جنازہ ہمارے نزدیک ایسی ہی ہے کہ وہ دوبارہ نہیں ہو سکتی۔

(۱۷۱) تبیین (۱۷۲) ارکان میں ہے : صلوٰۃ الجنازۃ تفوت لا الی خلف فصار الماء معدوما بالنسبۃ الیہا۔ نمازِ جنازہ کا بدل نہیں تو اسکے لئے پانی معدوم ٹھہرا۔

(۱۷۳) ظہیریہ (۱۷۴) عالمگیریہ (۱۷۵) سراجیہ (۱۷۶) شرح نورالایضاح (۱۷۷) دُرِ مختار (۱۷۸) رحمانیہ میں ہے : والنظم للدر ولو جنبا و حائضا۔ اس کے لئے جنب و حائض کو بھی تیمم روا۔ اور یہ مسئلہ وقایہ و اصلاح و غرر سے واضح تر گزرا۔

(۱۷۹) بحر (۱۸۰) ہندیہ (۱۸۱) طحطاوی علی المراقی (۱۸۲) حلیہ (۱۸۳) غنیہ میں ہے : واللفظ للبحر یجوز التیمم للولی اذا کان من ہو مقدم علیہ حاضرا اتفاقا لانہ یخاف الفوت۔ سلطان و حکام کہ ولی سے مقدم ہیں وہ حاضر ہوں تو ولی کو بھی تیمم جائز ہے کہ اب اسے بھی خوفِ فوت ہو سکتا ہے۔

(۱۸۴) جوہرہ (۱۸۵) بحر (۱۸۶) عالمگیریہ میں ہے : واللفظ لھذین یجوز للولی اذا اذن لغیرہ بالصلوٰۃ ولا یجوز لمن امرہ الولی کذا فی الخلاصۃ۔ (ان دونوں کے الفاظ ہیں کہ-ت) ولی دوسرے کو اذنِ نماز دے دے جب بھی اسے تیمم روا ہے (کہ اب اسے خوفِ فوت ہو گیا) اور جسے ولی نے اذن دیا اب اسے تیمم جائز نہیں جیسا کہ خلاصہ میں تصریح فرمائی (کہ اب اسے خوفِ فوت نہیں)

حواشی: 1. العناية على ہامش فتح القدير باب التيمم نوريہ رضويہ سكھر ١ / ١٢٢ 2. تبيين الحقائق شرح كنز الدقائق باب التيمم مطبعۃ كبرى اميريہ مصر ١ / ۴۴ 3. در مختار باب التيمم مطبع مجتبائى دہلى ١ / ۴۴ 4. بحر الرائق باب التيمم ايچ ايم سعيد كمپنى كراچى ١ / ١۵٨ 5. فتاوىٰ ہنديہ الفصل الثالث فى المتفرقات نورانى كتب خانہ پشاور ١ / ٣١

Fatawa Razawiya Volume 9

(187) Fatawa Kubra, (188) Fatawa Qazi Khan, (189) Khazanat al-Muftin, (190) Jami al-Mudmarat Sharh Quduri, (191) Fatawa Hindiya, (192) Fath al-Qadir, (193) Jawahir al-Akhlati, (194) Sharh Tanwir states:

Tayammum was performed in the city and a funeral prayer was offered. Then another funeral arrived. If there was enough time between them to perform Wudu (it is said in Ad-Durr: then the ability was lost), he should repeat the Tayammum. If he was unable [to perform Wudu], he may pray with that same Tayammum. It is stated in Ad-Durr: "This is the fatwa." It is also stated in Al-Mudmarat, Al-Jawahir, and Al-Hindiya: "The fatwa is based on this." | While water was available, he prayed the funeral prayer with Tayammum for fear of missing it. Now another funeral has arrived. If there was enough time in between to perform Wudu and he didn't, he should perform Wudu now. If the second funeral is missed [due to Wudu], then in this case he should perform Tayammum again. If there was no such leisure, he should pray this one too with the first Tayammum. The fatwa is on this.

(195) Burhan Sharh Mawahib al-Rahman, (196) Sharh Nazm al-Kanz by Al-Maqdisi, (197) Hashiyah of Allamah Nuh Afandi, (198) Hashiyah of Allamah Ibn Abidin states:

Mere dislike (karahah) does not necessitate the inability that permits Tayammum, because it is not stronger than missing Friday prayer or the prescribed five daily prayers, yet Tayammum is not permitted for them. | Meaning, Tayammum is not allowed merely due to dislike, just as it is not allowed for fear of missing Jumu'ah or daily prayers. This won't be more than that; rather, the permission is because if a funeral is missed, there is no substitute (qada).

Note: What we mentioned regarding the impermissibility [of Tayammum] for the guardian (wali), they attributed it to the narration of Al-Hasan from the Great Imam (Abu Hanifa). In Al-Jawhara, it is attributed to the Nawadir (rare narrations). It was authenticated in Al-Hidayah, Al-Khaniyah, Al-Kafi, and At-Tabyin. Similarly, its authentication was cited in Al-Jawhara, Al-Hindiya, Al-Mustakhlas, and Al-Maraqi. This was the view followed in Al-Khulasa, Al-Inayah, Al-Muniya, and Al-Hindiya. | Note: What we mentioned, that Tayammum is not permissible for the guardian (wali), scholars have identified it as a narration of Hasan bin Ziyad from the Great Imam (Abu Hanifa), and it is called a rare (nawadir) narration in Al-Jawhara. This ruling was

deemed correct in Al-Hidayah, Al-Khaniyah, Al-Kafi, and At-Tabyin; likewise, it was declared correct in Al-Jawhara, Al-Hindiya, and Al-Mustakhlas.

1. Fatawa Hindiya, Chapter 3 on Miscellaneous, Nurani Kutub Khana Peshawar 1/31; Durr al-Mukhtar, Chapter on Tayammum, Mujtabai Press Delhi 1/34; Jawahir al-Akhlati, Chapter on Funeral Prayer, Manuscript at Library Jamia Nizamia Razawiya Lahore p. 22; Fatawa Qazi Khan, Chapter on what makes Tayammum permissible, Naval Kishore Lucknow 1/30.
2. Radd al-Muhtar, Chapter on Tayammum, Dar Ihya al-Turath al-Arabi Beirut 1/161.

फ़तावा रज़विया जिल्द नहुम

(187) फ़तावा कुबरा (188) फ़तावा क़ाज़ी ख़ान (189) ख़ज़ानतुल मुफ़्तीन (190) जामेउल मुदमरात शरह कुदूरी (191) फ़तावा हिन्दिया (192) फ़तहुल क़दीर (193) जवाहिर अख़्लाती (194) शरह तनवीर में है:

शहर में तयम्मुम किया और जनाज़े की नमाज़ पढ़ी, फिर दूसरा जनाज़ा आया, अगर दोनों के बीच इतना समय था कि वज़ू कर सकता (दुर में कहा है: फिर उसकी क्षमता ख़त्म हो गई), तो वह तयम्मुम दोहराए। और अगर वह सक्षम नहीं था, तो उसी तयम्मुम से नमाज़ पढ़े। दुर में कहा गया है: इसी पर फ़तवा है। मुदमरात, जवाहिर और हिन्दिया में कहा गया है: इसी पर फ़तवा है। | पानी होते हुए फ़ौत (छूटने) के डर से तयम्मुम से नमाज़-ए-जनाज़ा पढ़ी, अब दूसरा जनाज़ा आया। अगर बीच में इतनी मोहलत पाई थी कि वज़ू कर लेता और नहीं किया, तो अब वज़ू करे। अगर यह दूसरा जनाज़ा फ़ौत हो जाए, तो इस सूरत में दोबारा तयम्मुम करे। और अगर मोहलत नहीं पाई थी, तो उसी पहले तयम्मुम से यह भी पढ़े। इसी पर फ़तवा है।

(195) बुरहान शरह मवाहिबुर रहमान (196) शरह नज़मुल कंज़ अल-मक़दिसी (197) हाशिया अल्लामा नूह अफ़ंदी (198) हाशिया अल्लामा इब्ने आबिदीन में है:

महज़ कराहत उस बेबसी का तक़ाज़ा नहीं करती जो तयम्मुम की इजाज़त दे, क्योंकि यह जुमा या पंजगाना नमाज़ के फ़ौत होने से ज़्यादा मज़बूत नहीं है, फिर भी उनके लिए तयम्मुम जायज़ नहीं है। | यानी सिर्फ़ कराहत के सबब तयम्मुम की इजाज़त नहीं, कि जुमा या पंजगाना फ़ौत होने के ख़ौफ़ से तयम्मुम की इजाज़त नहीं। यह इससे ज़्यादा तो न होगी, बल्कि इजाज़त इसलिए है कि जनाज़ा फ़ौत हो तो बदल (क़ज़ा) मुमकिन नहीं है।

तम्बीह: जो हमने वली के लिए तयम्मुम के जायज़ न होने के बारे में ज़िक्र किया, उसे इमाम-ए-आज़म से हसन बिन ज़ियाद की रिवायत बताया गया है, और जवाहिर में इसे नवादिरात (दुर्लभ रिवायतों) में गिना गया है। और हिदाया, ख़ानिया, काफ़ी और तबीयन में इसे सही कहा गया है। इसी तरह जवाहिर, हिन्दिया, मुस्तख़लस और मराक़ी में भी इसे सही कहा गया है। और खुलासा, इनाया, मुनिया और हिन्दिया में इसी पर अमल किया गया है। | तम्बीह: हमने जो ज़िक्र किया कि वली के लिए तयम्मुम जायज़ नहीं, इसे उलेमा ने इमाम-ए-आज़म से हसन बिन ज़ियाद की रिवायत बताया है, और

जवाहिर में इसे रिवायत-ए-नवादिरात कहा है। हिदाया, ख़ानिया, काफ़ी और तबीयन में इसी हुक्म को सही कहा, इसी तरह जवाहिर, हिन्दिया, मुस्तख़लस में इसे सही कहा।

1. फ़तावा हिन्दिया, अल-फ़स्ल अल-सालिस फ़िल-मुतफ़र्रिक़ात, नूरानी कुतुब ख़ाना पेशावर 1/31; दर्रे मुख़्तार, बाबुल तयम्मुम, मतबा मुजतबाई दिल्ली 1/34; जवाहिर अल-अख़्लाती, फ़स्ल फ़ी सलातुल जनाज़ा, क़लमी नुस्ख़ा मौज़ूदा लाइब्रेरी जामिया निज़ामिया रज़विया लाहौर, पृ. 22; फ़तावा क़ाज़ी ख़ान, फ़स्ल फ़ीमा यज़ूज़ु बिहित तयम्मुम, नवल किशोर लखनऊ 1/30।
2. रदुल मुहतार, बाबुल तयम्मुम, दार इहयाउल तुरातुल अरबी बेरुत 1/161।

فتاوٰی رضویہ جلد نہم

(۱۸۷) فتاوٰی کبرٰی (۱۸۸) فتاوٰی قاضی خاں (۱۸۹) خزانۃ المفتین (۱۹۰) جامع المضمرات شرح قدوری (۱۹۱) فتاوٰی ہندیہ (۱۹۲) فتح القدیر (۱۹۳) جواہر اخلاطی (۱۹۴) شرح تنویر میں ہے:

تیمم فی المصر وصلی علی جنازۃ ثم اتی بأخری فان کان بینھما مدۃ یقدر علی الوضوء (قال فی الدر ثم زال تمکنہ) یعید التیمم وان لم یقدر صلّی بذلک التیمم اھ قال فی الدر بہ یفتی اھ قال فی المضمرات والجواہر والھندیۃ، علیہ الفتوٰی1۔ | پانی ہوتے ہوئے بخوف فوت تیمّم سے نماز جنازہ پڑھی اب دوسرا جنازہ آیا اگر بیچ میں اتنی مہلت پائی تھی کہ وضو کر لیتا اور نہ کیا اب وضو کرے تو یہ دوسرا جنازہ فوت ہو تو اس صورت میں دوبارہ تیمّم کرے اور مہلت نہ پائی تھی تو اسی پہلے تیمّم سے یہ بھی پڑھے اسی پر فتوٰی ہے۔

(۱۹۵) برہان شرح مواہب الرحمن (۱۹۶) شرح نظم الکنز للعلا مۃ المقدسی (۱۹۷) حاشیہ علامہ نوح آفندی (۱۹۸) حاشیہ علامہ ابن عابدین میں ہے:

مجرد الکراھۃ لایقتضی العجز المقتضی لجواز التیمم لآنھا لیست اقوٰی من فوات الجمعۃ والوقتیۃ مع عدم جوازہ لھما2۔ | یعنی صرف کراہت کے سبب تیمّم کی اجازت نہیں کہ جمعہ یا پنجگانہ فوت ہونے کے خوف سے تیمّم کی اجازت نہیں، یہ اس سے زائد تو نہ ہو گی، بلکہ اجازت اس لئے ہے کہ جنازہ فوت ہو تو بدل نا ممکن ہے۔

تنبیہ: ما ذکرنا من عدم جوازہ للولی نسبوہ لروایۃ الحسن عن الامام الاعظم وعزاہ فی الجوہرۃ للنوادر وصححہ فی الھدایۃ والخانیۃ والکافی والتبیین وکذا نقل تصحیحہ فی الجوہرۃ والھندیۃ والمستخلص والمراقی وعلیہ مشی فی الخلا صۃ والعنایۃ والمنیۃ والھندیۃ | تنبیہ: ہم نے جو ذکر کیا کہ ولی کے

لئے تیمّم جائز نہیں، اسے علماء نے امام اعظم سے حسن بن زیاد کی روایت بتایا ہے، اور جوہرہ میں اسے روایت نوادر کہا ہے۔ ہدایہ، خانیہ، کافی اور تبیین میں اسی حکم کو صحیح کہا، اسی طرح جوہرہ، ہندیہ، مستخلص میں اسے صحیح کہا۔

1 فتاوٰی ہندیہ الفصل الثالث فی المتفرقات نورانی کتب خانہ پشاور ۱/۳۱، درمختار باب التیمم مطبع مجتبائی دہلی ۱/۳۴، جواہر الاخلاطی فصل فی صلوۃ الجنازۃ قلمی نسخہ موجودہ لائبریری جامعہ نظامیہ رضویہ لاہور ص ۲۲، فتاوٰی قاضی خاں فصل فیما یجوز بہ التیمم نولکشور لکھنؤ ۱/۳۰ 2 ردالمحتار باب التیمم داراحیاء التراث العربی بیروت ۱/۱۶۱

Fatawa Razawiyya, Volume 9

[Arabic Column Text Translation] ...and Al-Kafi, Ad-Durar, Al-Mujtaba, and Jami' al-Rumuz. Al-Sadr al-Shahid said: "We take this position," as in Al-Khulasa. Similarly, Al-Imam Shams al-A'immah al-Halwani corrected it as in Al-Ghiyathiya from Al-Muntaqa by Al-Shahid, and in Al-Ghuniyah from Al-Dhakhira. I say: What occurred in Ibn Kamal Pasha regarding the attribution of the correction of its opposite to Shams al-A'immah, and its following by Abd al-Halim in Ad-Durar and Al-Shami in Ad-Durr, seems to be an oversight. They said: In Zahir al-Riwaya, it is also permissible for the guardian (wali) because waiting in it is disliked (makruh). The answer to this is what we quoted earlier from Al-Burhan and what followed it. It was attributed in Al-Khulasa to Al-Asl, and Fatawa al-Sughra, and was followed in Al-Zahiriya and Khizanat al-Muftin. It was corrected in Jawahir al-Akhlati, and its correction was attributed in Abd al-Halim to Khawahirzada, in Al-Rahmaniya to Hashiya Shaykh al-Islam from An-Nisab, Al-Ghiyathiya, and Fatawa al-Ghara'ib and Al-Zahiriya.

[Urdu Column Text Translation] And in Maraqi, its correction was cited; based on this, Al-Khulasa, Al-'Inaya, Al-Munya, Al-Hindiya, Al-Kafi, Ad-Durar, Al-Mujtaba, and Jami' al-Rumuz proceeded. Sadr al-Shahid said "Bihi Na'khudh" (we take this position), as it is in Al-Khulasa. Likewise, Shams al-A'immah al-Halwani declared it correct, as mentioned in Al-Ghiyathiya with reference to Sadr al-Shahid's Al-Muntaqa and in Al-Ghuniyah with reference to Al-Dhakhira. I say: The attribution found in Ibn Kamal Pasha regarding the correction of its contrary to Shams al-A'immah, followed by Abd al-Halim al-Rumi in Hashiya Ad-Durar and by Al-Shami in Hashiya Ad-Durr al-Mukhtar, is as if it were an oversight. Scholars said: In Zahir al-Riwaya, tayammum is also permissible for the guardian because waiting in a funeral is disliked. The answer to it is what we just cited from Al-Burhan and subsequent books mentioned. And this (permissibility of tayammum for the guardian) was stated in Al-Khulasa with reference to Al-Asl (Al-Mabsut) and Fatawa Sughra, and on this basis, Al-Zahiriya and Khizanat al-Muftin proceeded. In Jawahir al-Akhlati, it was declared correct, and in Hashiya Abd al-Halim its correction was attributed to Khawahirzada, and in Al-Rahmaniya it was attributed to Hashiya Shaykh al-Islam with reference to Nisab, Ghiyathiya, Fatawa Ghara'ib, and Zahiriya.

[Footer] 1. Radd al-Muhtar, Chapter on Tayammum, Dar Ihya al-Turath al-Arabi, Beirut, 1/161 Page 338 of 948

फ़तावा रज़विया, जिल्द 9

[बायां कॉलम - अरबी अनुवाद] ...और अल-काफ़ी, अद-दुरर, अल-मुज्तबा और जामे अल-रुमूज़। अल-सदर अल-शहीद ने कहा: "हम इसी को अपनाते हैं," जैसा कि अल-ख़ुलासा में है। इसी तरह अल-इमाम शम्स अल-अइम्मा अल-हलवानी ने अल-ग़ियासिया में अल-शहीद की अल-मुंतक़ा से और अल-ग़निया में अल-ज़ख़ीरा से इसकी पुष्टि की। मैं कहता हूँ: इब्ने कमाल पाशा में जो इसके विपरीत की पुष्टि का श्रेय शम्स अल-अइम्मा को दिया गया है, और अद-दुरर में अब्दुल हलीम तथा अद-दुरर में शामी द्वारा इसका अनुसरण किया गया है, वह नज़र की चूक प्रतीत होता है। उन्होंने कहा: ज़ाहिर अल-रिवायत में वली के लिए भी यह जायज़ है क्योंकि इसमें इंतज़ार मकरूह (नापसंद) है। इसका उत्तर वही है जो हमने पहले अल-बुरहान और उसके बाद आने वाली चीज़ों से उद्धृत किया है। अल-ख़ुलासा में इसका श्रेय अल-अस्ल और फ़तावा अल-सुग़रा को दिया गया है, और अल-ज़हीरिया तथा ख़ज़ानत अल-मुफ़्तीन में इसका अनुसरण किया गया है। जवाहर अल-अख़लाती में इसे सही ठहराया गया है, और अब्दुल हलीम में इसकी पुष्टि ख़्वाहिरज़ादा को, अल-रहमानिया में हशिया शैख़ुल इस्लाम को अन-निसाब, अल-ग़ियासिया, और फ़तावा अल-ग़राइब और अल-ज़हीरिया से श्रेय दिया गया है।

[दायां कॉलम - उर्दू अनुवाद] और 'मराकी' में इसकी तस्हीह (पुष्टि) नक़ल की गई। इसी पर 'ख़ुलासा', 'इनाया', 'मुन्या', 'हंदिया', 'काफ़ी', 'दुरर', 'मुज्तबा' और 'जामे अल-रुमूज़' में उल्लेख किया गया और सदर शहीद ने फ़रमाया "बह ना़ख़ुज़" (हम इसी को अपनाते हैं) जैसा कि 'ख़ुलासा' में है। इसी तरह शम्स अल-अइम्मा हलवानी ने इसे सही कहा, जैसा कि 'ग़ियासिया' में सदर शहीद की 'मुंतक़ी' और 'ग़निया' में 'ज़ख़ीरा' के हवाले से है। मैं कहता हूँ: तो अल्लामा इब्ने कमाल पाशा से जो इसके ख़िलाफ़ की तस्हीह का श्रेय शम्स अल-अइम्मा की तरफ़ हुआ और 'हाशिया दुरर' में अब्दुल हलीम रूमी ने और 'हाशिया दुर्रे मुख़्तार' में अल्लामा शामी ने इसकी पैरवी की, गोया यह सबक़ते नज़र (नज़र की चूक) है। उलेमा ने कहा: ज़ाहिरुल रिवायत में वली के लिए भी तयम्मुम जायज़ है क्योंकि जनाज़ा में इंतज़ार मकरूह है। इसका जवाब वह है जो अभी हमने 'बुरहान' और उसके बाद ज़िक्र शुदा किताबों से नक़ल किया। और इसे (वली के लिए जवाज़-ए-तयम्मुम को) 'ख़ुलासा' में 'अस्ल' (मबसूत) और 'फ़तावा सोग़रा' के हवाले से बयान किया और इसी पर 'ज़हीरिया' व 'ख़ज़ानतुल मुफ़्तीन' में उल्लेख किया गया, और 'जवाहर अल-अख़लाती' में इसे सही कहा और 'हाशिया अब्दुल

हलीम' में इसकी तस्हीह 'ख़्वाहिरज़ादा' की तरफ़, और 'रहमानिया' में 'नसाब', 'ग़ियासिया', 'फ़तावा ग़राइब' और 'ज़हीरिया' के हवाले से 'हाशिया शैख़ुल इस्लाम' की तरफ़ मंसूब की।

[फुटनोट] 1. रद्दुल मुहतार, बाब अल-तयम्मुम, दार इह्या अल-तुराथ अल-अरबी, बेरुत 1/161 पेज 948 का 338

فتاوٰی رضویہ، جلد نہم

[عربی کالم] والكافى والدرر والمجتبى وجامع الرموز وقال الصدر الشهيد به ناخذ كما في الخلاصة وكذا صححه الامام شمس الائمة الحلوانى كما فى الغياثية عن منتقى الشهيد وفي الغنية عن الذخيرة۔ اقول: فما وقع في ابن كمال پاشا من نسبة تصحيح خلافه لشمس الائمة وتبعه عبد الحليم على الدرر و الشامي على الدر فكانه سبق نظر۔ قالوا وفي ظاہر الروایۃ یجوز للولی ایضا لان الانتظار فیہا مکروہ ۱ وجوابہ ما نقلنا انفا عن البرہان فما بعدہ وعزاہ فی الخلاصۃ للاصل الفتاوی الصغیری وعلیہ مشی فی الظھیریۃ و خزانۃ المفتین وصححہ في جواھر الاخلاطی و عزا تصحیحہ فی عبدالحلیم لخواہر زادہ فی الرحمانیۃ لحاشیۃ شیخ الاسلام عن النصاب و الغیاثیۃ و فتاوی الغرائب والظھیریۃ۔

[اردو کالم] اور مراقی میں اس کی تصحیح نقل کی، اسی پر خلاصہ، عنایہ، منیہ، ہندیہ، کافی، درر، مجتبیٰ اور جامع الرموز میں مشی کی اور صدر شہید نے فرمایا "بہ ناخذ" (ہم اسی کو لیتے ہیں) جیسا کہ خلاصہ میں ہے۔ اسی طرح شمس الائمہ حلوانی نے اس کو صحیح کہا، جیسا کہ غیاثیہ میں صدر شہید کی منتقٰی اور غنیہ میں ذخیرہ کے حوالے سے ہے۔ اقول: تو علامہ ابن کمال پاشا سے جو اس کے خلاف کی تصحیح کا انتساب شمس الائمہ کی طرف ہوا اور حاشیہ درر میں عبدالحلیم رومی نے اور حاشیہ دُرِّ مختار میں علامہ شامی نے اس کی پیروی کی گویا یہ سبقتِ نظر ہے۔ علماء نے کہا: ظاہر الروایہ میں ولی کے لئے بھی تیمم جائز ہے اس لئے کہ جنازہ میں انتظار مکروہ ہے۔ اس کا جواب وہ ہے جو ابھی ہم نے برہان اور اس کے بعد ذکر شدہ کتابوں سے نقل کیا۔ اور اسے (ولی کے لئے جوازِ تیمم کو) خلاصہ میں اصل (مبسوط) اور فتاوٰی صغریٰ کے حوالے سے بیان کیا اور اسی پر ظہیریہ و خزانۃ المفتین میں مشی کی، اور جواہر الاخلاطی میں اسے

صحیح کہا اور حاشیہ عبدالحلیم میں اس کی تصحیح خواہرزادہ کی طرف، اور رحمانیہ میں نصاب، غیاثیہ، فتاویٰ غرائب اور ظہیریہ کے حوالے سے حاشیہ شیخ الاسلام کی طرف منسوب کی۔

[فٹ نوٹ] 1. ردالمحتار باب التیمم دار احیاء التراث العربی بیروت 1/161 صفحہ 338 از 948

Fatawa Razawiyya, Volume 9

[Arabic Column] I say: But what I saw in 'Al-Ghiyathiyya' is what I presented earlier, that Al-Halwani said: the correct [view] is the narration of Al-Hasan, and we give Fatwa according to this. End. It (the word) 'Al-'Atabiyya' might have been written with an undotted 'Ayn', then 'Ta', 'Qaf', 'Ra', 'Shin', 'Ta', then a single-dotted 'Ba'. I say: We have already let you hear the explicit statement regarding the exception of the guardian (Wali) from the 'Mukhtasar', 'Al-Hidayah', 'Al-Wiqayah', 'Al-Nuqayah', 'Al-Islah', 'Al-Wafi', 'Al-Ghurar', and 'Al-Hidayah'. The permission [for tayammum] is restricted only to the fear of missing it (the prayer), based on the aforementioned books, as well as Al-Tahtawi, Al-Kanz, Al-Tanwir, Al-Multaqa, and Nur al-Idah. All of these are authoritative texts of the school of thought (Madhab) upon which reliance is placed, and they were authored specifically to transmit the Madhab. Therefore, at the very least, this (non-permissibility for the guardian) should also be [considered] 'Zahir al-Riwayah' (the prominent narration). Numerous corrections by eminent scholars have gathered upon it. The strength of the evidence supporting it is not hidden from you; thus, it is necessary to rely and depend upon it. In 'Al-Hilyah', an indication towards reconciliation was made: that the lack of permission for the guardian applies when no one more senior than him is present, while permission applies when someone more senior is present. To this, the words of 'Al-Ghunya' and 'Al-Bahr' also point. I say: It would have been a most excellent reconciliation if not for the explicit text in 'Al-Mabsut' and 'Al-Sughra' that whether he is a follower or...

[Urdu Column] I say: But what I saw in 'Ghiyathiyya' is as I mentioned earlier, that Halwani said the correct narration is from Hasan and we issue fatwa on it. End. So it is possible that this word is 'Atabiyya' with an undotted 'Ayn', then 'Ta' of 'Qarasht', then a single-dotted 'Ba'. I say: We have already presented the explicit exclusion of the guardian from the permissibility of tayammum with references to 'Mukhtasar Quduri', 'Bidayah', 'Wiqayah', 'Nuqayah', 'Islah', 'Wafi', 'Ghurar', and 'Hidayah'. And the permission for tayammum only at the time of fear of missing [the funeral prayer] was described with references to the aforementioned books and Tahtawi, Kanz, Tanwir, Multaqa, and Nur al-Idah. These are all the authoritative texts of the Madhab on which reliance is placed and which were written solely for the narration of the Madhab. So, at least, it is certain that this (non-permissibility of tayammum for the guardian) will also be 'Zahir al-Riwayah'. Corrections from great scholars are also gathered on this. The strength of the argument in this is also apparent, so reliance on it is necessary. In 'Al-Hilyah', an indication towards reconciliation has been made

that the non-permissibility for the guardian is when no one with more seniority than him is present, and permissibility is when someone with seniority over him is present. An indication towards this is also found in the phrases of 'Ghunya' and 'Bahr'. I say: This was a very excellent reconciliation if there weren't this clarification in 'Mabsut' and 'Sughra' that whether he is a follower or...

---

[1] Fatawa Ghiyathiya, Chapter on Shrouding, Maktaba Islamia Quetta, p. 40. Page 339 of 948

फ़तावा रज़विया, जिल्द 9

[अरबी कॉलम] मैं कहता हूँ: लेकिन जो मैंने 'अल-गियाथिया' में देखा, वह वही है जो मैंने पहले पेश किया था: कि 'अल-हलवानी' ने कहा कि सही हसन की रिवायत है, और हम इसी पर फतवा देते हैं। समाप्त। [शब्द] 'अल-अताबिया' मुमकिन है कि बिना नुक्ते वाली 'ऐन', फिर 'ता', 'क़ाफ़', 'रा', 'शीन', 'ता' और फिर एक नुक्ते वाली 'बा' के साथ लिखा गया हो। मैं कहता हूँ: हमने आपको मुख्तसर, अल-हिदाया, अल-विकाया, अल-नुकाया, अल-इस्लाह, अल-वाफी, अल-गुर्र और अल-हिदाया के हवाले से वली (अभिभावक) को [तयम्मुम करने से] बाहर रखने के स्पष्ट बयान सुना दिए हैं। तयम्मुम की अनुमति केवल इसके छूट जाने के डर तक ही सीमित है, जैसा कि उपरोक्त पुस्तकों के साथ-साथ अल-तहतावी, अल-कन्ज़, अल-तन्वीर, अल-मुल्तका और नूर अल-इदाह में कहा गया है। ये सभी मज़हब के वो प्रामाणिक ग्रंथ हैं जिन पर भरोसा किया जाता है और जिन्हें विशेष रूप से मज़हब के वर्णन के लिए लिखा गया था। तो कम से कम, यह (वली के लिए अनुमति न होना) भी 'ज़ाहिर अल-रिवायत' (प्रचलित रिवायत) होना चाहिए। महान विद्वानों के अनेक संशोधन इस पर एकत्र हुए हैं। इसके लिए प्रमाण की शक्ति आप पर छिपी नहीं है, इसलिए इसी पर भरोसा और निर्भरता आवश्यक है। 'अल-हिल्या' में समन्वय की ओर संकेत किया गया है: कि वली के लिए अनुमति का न होना तब है जब कोई ऐसा व्यक्ति मौजूद न हो जो उससे वरिष्ठता रखता हो, और अनुमति तब है जब उससे वरिष्ठ व्यक्ति मौजूद हो। 'अल-गुन्या' और 'अल-बहर' के शब्दों में भी इसी ओर इशारा मिलता है। मैं कहता हूँ: यह एक बहुत ही उत्कृष्ट समन्वय होता यदि 'अल-मबसूत' और 'अल-सुगरा' में यह स्पष्ट कथन न होता कि चाहे वह अनुयायी हो या...

[उर्दू कॉलम] मैं कहता हूँ: लेकिन 'गियाथिया' में जो मैंने देखा वह वैसा ही है जैसा मैंने पहले उल्लेख किया था, कि हलवानी ने कहा सही रिवायत हसन की है और हम इसी पर फतवा देते हैं। समाप्त। तो हो सकता है कि यह शब्द बिना नुक्ते वाली 'ऐन', फिर 'क़रशत' की 'ता', फिर एक नुक्ते वाली 'बा' से "अताबिया" हो। मैं कहता हूँ: हम तयम्मुम की अनुमति से वली के अपवाद को 'मुख्तसर कुदूरी', 'बिदाया', 'विकाया', 'नुकाया', 'इस्लाह', 'वाफी', 'गुर्र' और 'हिदाया' के हवाले से पेश कर चुके हैं। और केवल [नमाज़] छूटने के डर के समय तयम्मुम की अनुमति होने को उपरोक्त पुस्तकों और तहतावी, कन्ज़, तन्वीर, मुल्तका और नूरुल ईज़ाह के हवाले से बयान किया गया है। ये सभी मज़हब के मूल ग्रंथ हैं जिन पर भरोसा है और जो मज़हब के वर्णन के लिए ही लिखे गए हैं। तो कम से कम इतना ज़रूर है कि यह (वली के लिए तयम्मुम की अनुमति न होना) भी 'ज़ाहिरुल रिवायत' होगा। इस

पर बड़े-बड़े विद्वानों के संशोधन भी जमा हैं। इसमें दलील की जो ताक़त है वह भी साफ़ है, इसलिए इसी पर भरोसा ज़रूरी है। 'हिल्या' में मिलान (ततबीक़) की तरफ इशारा किया गया है कि वली के लिए अनुमति का न होना उस समय है जब उससे ज़्यादा वरिष्ठता रखने वाला मौजूद न हो, और अनुमति उस समय है जब उस पर वरिष्ठता वाला मौजूद हो। इसी की तरफ़ 'ग़ुनिया' और 'बहर' की इबारतों में भी इशारा मिलता है। मैं कहता हूँ: यह बहुत अच्छी ततबीक़ थी अगर 'मबसूत' और 'सुग़रा' की यह स्पष्टता न होती कि चाहे वह मुक़्तदी हो या...

---

[1] फ़तावा गियाथिया, कफ़न पहनाने का अध्याय, मकतबा इस्लामिया क्वेटा, पृ. 40 पृष्ठ 339/948

[عربی کالم] اقول لكن الذي رأيت في الغياثية ما قدمت ان قال الحلواني الصحيح رواية الحسن ونفتي بهذا اه فعلها العتابية بمهملة فتاء قرشت فموحدة - اقول: وقد اسمعناك التنصيص على استثناء الولى عن المختصر والهداية والوقاية والنقاية والاصلاح والوافى والغر والهداية وقصر الاجازة على خوف الفوت عنها وعن الطحطاوى والكنز والتنوير والملتقى ونور الايضاح وهذه كلها متون المذهب المعتمد عليها الموضوعة لنقل المذهب فلا اقل من ان يكون ايضاً ظاهر الرواية وقد تظافرت عليه تصحيحات الجلة ولا يذهب عليك ما له من قوة الدليل فعليه يجب الاعتماد والتعويل۔ وقد اشار في الحلية الى التوفيق بان عدم الجواز للولى اذا لم يحضر من هو اقدم منه والجواز اذا حضر و اليه يومى كلام الغنية والبحر۔ اقول: ولقد كان احسن توفيقاً لولان نص الاصل والصغرى سواء كان

[اردو کالم] اقول لیکن غیاثیہ میں جو میں نے دیکھا وہ جیسا کہ میں نے پہلے ذکر کیا یہی ہے کہ حلوانی نے فرمایا صحیح روایت حسن ہے اور ہم اسی پر فتویٰ دیتے ہیں اھ تو ہوسکتا ہے یہ عین مہملہ پھرتاے قرشت پھر ایک نقطے والی ب سے "عتابیہ " ہو۔ اقول : ہم جوازِ تیمم سے استثنائے ولی کی تصریح مختصر قدوری، ہدایہ ، وقایہ ، نقایہ ، اصلاح ، وافی، غرر اور ہدایہ کے حوالے سے پیش کر آئے اور صرف اندیشہِ فوت کے وقت اجازتِ تیمم ہونے کو کتبِ مذکورہ اور طحطاوی، کنز، تنویر، ملتقی اور نورالایضاح کے حوالے سے بیان کیا۔ یہ سب متونِ مذہب ہیں جن پر اعتماد ہے اور جو نقلِ مذہب کے لئے ہی لکھے گئے ہیں تو کم سے کم اتنا ضرور ہے کہ یہ (ولی کے لئے عدمِ جوازِ تیمم) بھی ظاہر الروایۃ ہوگا۔ اس پر جلیل القدر علماء کی تصحیحات بھی مجتمع ہیں اس میں دلیل کی جو قوت ہے وہ بھی عیاں ہے تو اسی پر اعتماد ضروری ہے۔ حلیہ میں تطبیق کی جانب اشارہ کیا ہے کہ ولی کے لئے عدمِ جواز اُس وقت ہے جب اس سے زیادہ تقدم

رکھنے والا موجود نہ ہو اور جواز اُس وقت ہے جب اس پر تقدم والا موجود ہو۔ اسی کی طرف غنیہ اور بحر کی عبارتوں میں بھی اشارہ ملتا ہے۔ اقول: یہ بہت عمدہ تطبیق تھی اگر مبسوط اور صغریٰ کی یہ تصریح نہ ہوتی کہ خواہ وہ مقتدی ہو یا

---

1 فتاویٰ غیاثیہ فصل فی التکفین مکتبہ اسلامیہ کوئٹہ ص ۴۰ Page 339 of 948

Arabic Text	Urdu Translation
Whether he is a follower or an Imam. Al-Zahiriyyah and Al-Khazanah specified that if he is an Imam, and Al-Jawahir specified whether he is a follower or an Imam or someone who has the right to lead the funeral prayer. Al-Nisab specified that Tayammum is permissible for the Imam and for the person who has the right to lead the prayer. So the correct position is to maintain the difference of opinion and research that the truth lies in this detail (meaning: permissible for the guardian when no one with higher priority is present, otherwise not). And Allah, the Exalted and Most High, knows best.	An Imam, and the clarification of Zahiriyyah and Khazanah is that if he is an Imam, and the clarification of Jawahir is whether he is a follower or an Imam or the person who has the right of precedence over it, and the clarification of Nisab is that Tayammum is permissible for the Imam and for the one who has the right of prayer. Thus, the correct view is that the difference should be maintained, and research should establish that the truth lies in this detail (i.e., permission for the guardian when there is no one with greater precedence, otherwise not), and Allah, the Pure and Exalted, knows best.

Type Eleven: (199) Al-Hidayah (200) Al-Kafi (201) Al-Tabyin (202) Fath al-Qadir (203) Ghunyah (204) Siraj al-Wahhaj (205) Imdad al-Fattah (206) Al-Mustakhlas (207) Tahtawi ‘ala al-Maraqi:

Arabic Text	Urdu Translation
And the wording is from Fath al-Qadir: People, to the last of them, left performing the [funeral] prayer at the grave of the Prophet (may Allah's peace and blessings be upon him). If it were legislated, all creations would not have turned away from it, including scholars, the righteous, and those desiring to draw closer to him (may Allah's peace and blessings be upon him) through various means. This is an evident proof for its	(These are the words of Fath al-Qadir. T) All the Muslims of the world abandoned the funeral prayer at the blessed shrine of the Messenger of Allah (may Allah's peace and blessings be upon him). If this prayer were permissible as a voluntary (Nafl) act, all Muslims would not have avoided prayer at the luminous shrine, including the scholars, the pious, and those individuals who desire to gain proximity to the court of the Prophet (may Allah's peace and blessings be upon him) through various means. Thus, this is an

Arabic Text	Urdu Translation
impermissibility, so it must be taken into account.	open proof of the impermissibility of repeating the funeral prayer, the consideration of which is necessary.

The words from the marginalia of Nur al-Idah according to Siraj, Ghunyah, and Imdad are as follows:

Arabic Text	Urdu Translation
And the prayer shall not be performed at his noble grave until the Day of Resurrection, because he (may Allah's peace and blessings be upon him) remains just as he was buried, fresh; rather, he is alive, receiving sustenance, and enjoying all delights and acts of worship. This is also the case for all other Prophets (peace and blessings be upon them), and they have gathered...	If the repetition of this prayer were permissible, it would have been offered at the sacred shrine until the Day of Resurrection, for the Prophet (PBUH) is forever as fresh as he was at the blessed time of burial; rather, he is alive, provided with sustenance, and is in the grace and comfort of all delights and acts of worship. And similarly, the rest of the Prophets (peace be upon them)...

1. Fath al-Qadir, Chapter on Funeral Prayers, Nuriyya Razawiyya Sukkur, 2/84. Page 340 of 948

अरबी पाठ

चाहे वह मुक्तदी हो या इमाम। ज़हीरिया और खज़ाना ने स्पष्ट किया कि यदि वह इमाम हो, और जवाहर ने स्पष्ट किया कि मुक्तदी हो या इमाम या वह जिसे नमाज़ पढ़ाने का अधिकार हो। और निसाब ने स्पष्ट किया कि इमाम के लिए और उस व्यक्ति के लिए जिसे नमाज़ पढ़ाने का अधिकार है, तयम्मुम जायज़ है। तो सही यह है कि मतभेद को बना रहने दिया जाए और शोध यह किया जाए कि सच यह विस्तार है (अर्थात: वली के लिए अनुमति है जब उससे अधिक प्राथमिकता वाला उपस्थित न हो, अन्यथा नहीं)। और अल्लाह, पाक और महान, बेहतर जानता है।

उर्दू अनुवाद

इमाम, और ज़हीरिया व खज़ाना का यह स्पष्टीकरण कि यदि वह इमाम हो, और जवाहर का यह स्पष्टीकरण कि वह मुक्तदी हो या इमाम या वह जिसे इस पर प्राथमिकता का अधिकार हो, और निसाब का यह स्पष्टीकरण कि तयम्मुम इमाम के लिए और उस व्यक्ति के लिए जायज़ है जिसे नमाज़ का अधिकार है। तो सही यह है कि मतभेद को बना रहने दिया जाए और शोध यह किया जाए कि हक़ यह विस्तार है (यानी वली के लिए अनुमति जब उससे अधिक प्राथमिकता वाला उपस्थित न हो, अन्यथा नहीं) और अल्लाह पाक और महान खूब जानने वाला है।

ग्यारहवां प्रकार: (199) हिदाया (200) काफी (201) तबयीन (202) फ़तह अल-क़दीर (203) ग़ुनिया (204) सिराज वह्जाज (205) इमदाद अल-फ़त्ताह (206) मुस्तख़लस (207) तहतावी अल-मराक़ी:

अरबी पाठ

और शब्द फ़तह के हैं: लोगों ने, उनके अंतिम व्यक्ति तक, पैगंबर (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) की कब्र पर नमाज़ [जनाज़ा] छोड़ दी। यदि यह शरीयत के अनुसार होता, तो विद्वानों, नेक लोगों और उन लोगों सहित सभी सृष्टि इससे पीछे नहीं हटती जो विभिन्न तरीकों से उनकी (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) बारगाह में निकटता प्राप्त करने के इच्छुक हैं।

उर्दू अनुवाद

(फ़तह के शब्द हैं - त) दुनिया भर के मुसलमानों ने अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) के पवित्र मज़ार पर नमाज़ छोड़ दी। यदि यह नमाज़ नफ़्ल के रूप में जायज़ होती, तो सभी मुसलमान मज़ार-ए-अनवर पर नमाज़ से परहेज़ नहीं करते, जिनमें विद्वान, नेक और वे लोग शामिल हैं जो विभिन्न तरीकों से पैगंबर (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) की बारगाह में निकटता प्राप्त करने की इच्छा रखते हैं। तो यह नमाज़-ए-जनाज़ा को दोहराने के नाजायज़

अरबी पाठ	उर्दू अनुवाद
तो यह इसके लिए एक स्पष्ट प्रमाण है, इसलिए इस पर विचार करना आवश्यक है।	होने पर एक स्पष्ट दलील है, जिसका एतबार (मान्यता) लाज़िमी है।

नूरुल ईज़ाह के हाशिया के शब्द सिराज, ग़ुनिया और इमदाद के अनुसार इस प्रकार हैं:

अरबी पाठ	उर्दू अनुवाद
और क़यामत के दिन तक उनकी पवित्र कब्र पर नमाज़ नहीं पढ़ी जाएगी क्योंकि वे (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) वैसे ही ताज़ा रहते हैं जैसे उन्हें दफ़नाया गया था। बल्कि वे जीवित हैं, उन्हें रिज़्क़ दिया जाता है और वे सभी सुखों और इबादतों के आनंद में रहते हैं। और अन्य सभी अंबिया (अलैहिमुस्सलाम) का भी यही हाल है, और वे जमा हुए हैं...	अगर इस नमाज़ को दोहराना जायज़ होता तो पवित्र मज़ार पर क़यामत तक पढ़ी जाती, क्योंकि हुज़ूर हमेशा वैसे ही तरोताज़ा हैं जैसे वे दफ़न के मुक़द्दस समय पर थे। बल्कि वे ज़िंदा हैं, उन्हें रिज़्क़ दिया जाता है और वे तमाम नेमतों और इबादतों के सुख और चैन में हैं। और इसी तरह बाकी अंबिया (अलैहिमुस्सलाम)...

1. फ़तह अल-क़दीर, मय्यत की नमाज़ का अध्याय, नूरिया रज़विया सुक्कुर, 2/84 पृष्ठ 340 / 948

| مقتدیا او اماماً ونص الظھیریة والخزانة لو کان اماماً ونص الجواھر مقتدیا او اماماً او من لہ حق الصلوة علیہ ونص النصاب یجوز التیمم للامام ومن لہ حق الصلوة فالصواب ابقاء الخلاف وتحقیق ان الحق ھو ھذا التفصیل واللہ سبحانہ وتعالی اعلم۔ | امام، اور ظہیریہ وخزانہ کی یہ تصریح کہ اگر وہ امام ہو، اور جواہر کی یہ تصریح کہ مقتدی ہو یا امام یا وہ ہو جسے اس پر حق تقدم ہے اور نصاب کی یہ تصریح کہ تیمم جائز ہے امام کے لئے اور اس کے لئے جسے حق نماز ہے۔ تو صحیح یہ ہے کہ خلاف باقی رکھا جائے اور تحقیق یہ کی جائے کہ حق یہ تفصیل ہے (یعنی ولی کے لئے جواز جب اس سے زیادہ تقدم والا نہ ہو ورنہ نہیں) اور خدائے پاک وبرتر خوب جاننے والا ہے۔ |

نوع یازدہم: (۱۹۹) ہدایہ (۲۰۰) کافی (۲۰۱) تبیین (۲۰۲) فتح القدیر (۲۰۳) غنیہ (۲۰۴) سراج وہاج (۲۰۵) امداد الفتاح (۲۰۶) مستخلص (۲۰۷) طحطاوی علی المراقی:

| واللفظ للفتح ترك الناس عن أخرھم الصلوة علی قبر النبی صلی اللہ تعالی علیہ وسلم ولو کان مشروعا لما أعرض الخلق کلھم من العلماء ولا الصالحین والراغبین فی التقرب الیہ صلی اللہ تعالی علیہ وسلم بأنواع الطرق عنہ فھذا دلیل ظاہر علیہ فوجب اعتبارہ 1۔ | (فتح کے الفاظ ہیں۔ ت) تمام جہان کے مسلمانوں نے رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم کے مزار اقدس پر نماز چھوڑ دی۔ اگر یہ نماز بطور نفل جائز ہوتی تو مزار انور پر نماز سے تمام مسلمان اعراض نہ کرتے جن میں علماء اور صلحاء وہ بندے جو طرح طرح سے نبی صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم کی بارگاہ اقدس میں تقرب حاصل کرنے کی رغبت رکھتے ہیں، تو یہ نماز جنازہ کی تکرار ناجائز ہونے پر کھلی دلیل ہے جس کا اعتبار لازم۔ |

حاشیہ نور الایضاح کے لفظ سراج و غنیہ و امداد سے یوں ہیں:

| والا یصلی علی قبرہ الشریف الی یوم القیمۃ لبقائہ صلی اللہ تعالی علیہ وسلم کما دفن طریاً بل ھو حی یرزق ویتنعم لسائر الملاذ والعبادات وکذا سائر الانبیاء علیہم الصلوۃ والسلام وقد اجتمعت | اس نماز کی تکرار جائز ہوتی تو مزار اقدس پر قیامت تک پڑھی جاتی کہ حضور ہمیشہ ویسے ہی ترو تازہ ہیں جیسے وقت دفن مبارک تھے بلکہ وہ زندہ ہیں روزی دئے جاتے ہیں اور تمام لذتوں اور عبادتوں کے ناز و نعم میں ہیں اور ایسے ہی باقی انبیاء علیہم الصلوۃ |

1 فتح القدیر فصل فی الصلوۃ علی المیت نوریہ رضویہ سکھر ۸۴/۲ Page 340 of 948

Volume 9 Fatawa Rizvia

...the Ummah upon its abandonment. (1) and praise, whereas the entire Ummah has reached a consensus on the abandonment of this prayer.

In 'Al-Nahy al-Hajiz', there were fifty-one citations from forty books; these are two hundred and seven citations from eighty-five books of texts, commentaries, and fatwas. In short, except for the aforementioned exceptional case, there is a definitive consensus in the Hanafi school that repeating the funeral prayer is impermissible and a sin, and anyone who opposes this opposes the Hanafi school. Some nominal Hanafis, out of ignorance or to deceive the general public, ignore all these clear and powerful explications of the school and take evidence from two historical books written by Shafi'is:

First: In 'Tabyid al-Sahifa' by Imam Jalaluddin Suyuti Shafi'i, it is stated that the funeral prayer was performed six times over the blessed remains of Imam Abu Hanifa (may Allah Almighty be pleased with him), and due to the immense crowd, burial was not possible until 'Asr time.

Second: In 'Siyar al-Nubala' by Shamsuddin Dhahabi Shafi'i, it is mentioned that Sheikh Tajuddin Abu Aiman Zaid bin Hasan Kindi Hanafi passed away on 6 Shawwal 613 AH. Chief Justice Jamal ibn al-Harastani led the prayer, then Sheikh al-Hanafiyya Jamaluddin Hasiri led it at Bab al-Faradis, then Sheikh Muwaffaquddin, Sheikh of the Hanbalis, led it on the mountain, i.e., Mount Qasiyun in Damascus.

Response 1: To rely on two historical books against the explicit consensus of all books of the school is severe ignorance.

Response 2: The world does not only consist of people of the Hanafi school, especially in the early centuries when mujtahids themselves were numerous and everyone had followers. Where in this story does it say that Hanafis performed it six times? Rather, there was a crowd of people from every school and sect coming in droves. If non-Hanafis performed it a hundred times, what weight does that carry in the Hanafi school? Allah is the Greatest! Imam Azam Abu Hanifa (may Allah Almighty be pleased with him) is such a magnificent, illustriously proven Imam that when the independent absolute mujtahid, our master Imam Shafi'i (may Allah Almighty be pleased with him), led the morning prayer near the illuminated shrine of this Imam of Imams, the Lamp of the Ummah, he did not recite Bismillah aloud, nor did he perform 'Raf' al-Yadayn' (raising of hands), nor did he recite Qunut. When someone

asked the reason, he said: "Out of respect for the occupant of this grave," as stated in 'al-Khayrat al-Hissan' by Imam Ibn Hajar al-Makki al-Shafi'i (as it is in Al-Khairat-ul-Hassan by Imam Ibn Hajar Makki Shafi'i. T). And in another narration, he said: "I felt ashamed to act contrary to this great Imam in his presence," as stated in 'al-Maslak al-Mutaqassit' by Mulla Ali Qari (as it is in Al-Maslak-ul-Mutaqassit by Mulla Ali Qari. T). SubhanAllah! An independent mujtahid chooses to follow the Imam in his presence out of respect, yet Hanafis themselves, specifically for the Imam's funeral, choose to oppose the Imam and...

1 Hashiya al-Tahtawi 'ala al-Maraqi al-Falah, Section: The Ruler is more entitled to the prayer, Nur Muhammad Factory of Book Trade Karachi, p. 324. Page 341 of 948

जिल्द 9 फ़तावा रज़विया

उम्मत इसके त्याग पर। (1) और प्रशंसा, जबकि पूरी उम्मत ने इस नमाज़ को छोड़ने पर आम सहमति व्यक्त की है।

'अल-नह्य अल-हाजिज़' में चालीस किताबों के इक्यावन उद्धरण थे, ये मतून, शरह और फ़तवों की पचासी 85 किताबों के दो सौ सात 207 उद्धरण हैं। संक्षेप में, उपर्युक्त अपवाद के अलावा, जनाज़ा की नमाज़ को दोहराने के नाजायज़ और गुनाह होने पर हनफ़ी मज़हब का कतई इज्मा (आम सहमति) है और इसका विरोधी हनफ़ी मज़हब का विरोधी है। कुछ नाम के हनफ़ी, अज्ञानता वश या जनता को गुमराह करने के लिए मज़हब की इन तमाम स्पष्ट और प्रबल व्याख्याओं को छोड़कर यहाँ शाफ़ई संप्रदाय की दो इतिहास की किताबों से प्रमाण लेते हैं:

पहला: इमाम जलालुद्दीन सुयूती शाफ़ई की 'तबीयद अल-सहीफ़ा' में है कि इमाम अबू हनीफ़ा (रज़ियल्लाहु तआला अन्हु) के जनाज़ा-ए-मुबारक पर छह बार नमाज़ पढ़ी गई और लोगों की भारी भीड़ के कारण असर तक उनके दफ़न की शक्ति नहीं मिली।

दूसरा: शम्सुद्दीन ज़हबी शाफ़ई की 'सियर अल-नुबला' में है कि शेख ताजुद्दीन अबू ऐमन ज़ैद बिन हसन किन्दी हनफ़ी का 6 शव्वाल 613 हिजरी में देहांत हुआ। क़ाज़ी अल-क़ुज़ात जमाल इब्न अल-हरस्तानी ने नमाज़ पढ़ाई, फिर शेखुल हनफ़िया जमालुद्दीन हसीरी ने बाबुल फ़रादीस में, फिर शेख मुवफ्फ़क़ुद्दीन शेखुल हनबलिया ने पहाड़ यानी दमिश्क के जबल-ए-क़ासियून में।

प्रतिक्रिया 1: संप्रदाय की तमाम किताबों के स्पष्ट विरोध में दो ऐतिहासिक किताबों पर भरोसा करना कैसी घोर अज्ञानता है।

प्रतिक्रिया 2: दुनिया में सिर्फ हनफ़ी मज़हब के लोग ही नहीं हैं, विशेष रूप से शुरुआती सदियों में जब मुजतहिद खुद कसरत से थे और हर एक के अनुयायी थे। इस कहानी में यह कहाँ है कि हनफ़ियों ने छह बार पढ़ी, बल्कि लोगों का हुजूम था, हर मसलक और हर मज़हब के लोग झुंड के झुंड आते थे। अगर गैर-हनफ़ियों ने सौ बार पढ़ी तो हनफ़ी मज़हब में इसकी क्या दलील हो सकती है? अल्लाह सबसे बड़ा है! इमाम आज़म अबू हनीफ़ा (रज़ियल्लाहु तआला अन्हु) वे महान और गरिमामय इमाम हैं कि जब स्वतंत्र मुजतहिद-ए-मुतलक़ हमारे सैय्यद इमाम शाफ़ई (रज़ियल्लाहु तआला अन्हु) ने इस इमामुल अइम्मा सिराजुल उम्मा के रोशन मज़ार के पास सुबह की नमाज़ पढ़ाई, तो न बिस्मिल्लाह ज़ोर से पढ़ी, न रफ़-ए-यदैन किया और न ही क़ुनूत पढ़ी। किसी ने कारण पूछा, तो

फ़रमाया: "इस क़ब्र वाले के अदब के कारण", जैसा कि इमाम इब्न हजर मक्की शाफ़ई की 'अल-खैरात अल-हिस्सान' में है (जैसा कि अल-खैरातुल हस्सान लिल इमाम इब्न हजर मक्की शाफई में है। त)। और एक रिवायत में है कि मुझे शर्म आई कि इस अज़ीम इमाम के सामने उनके खिलाफ करूँ जैसा कि मुल्ला अली क़ारी की 'अल-मस्लक अल-मुतक़स्सित' में है (जैसा कि अल-मस्लकुल मुतक़स्सित लिल मौला अली क़ारी में है। त)। सुभानअल्लाह! स्वतंत्र मुजतहिद तो इमाम के अदब से इमाम की मौजूदगी में इमाम का अनुसरण अपनाएं और खुद हनफ़ी विशेष रूप से इमाम के जनाज़े पर इमाम की मुख़ालफ़त और...

1 हाशिया अत-तहत़ावी अलल-मराक़िल-फ़लाह, अध्याय: सुल्तान नमाज़ का अधिक हक़दार है, नूर मुहम्मद कारखाना-ए-तिजारत-ए-कुतुब कराची, पृ. 324। पेज 341/948

جلد نہم فتاویٰ رضویہ

الامة علی ترکھا ۱ ۔ والثناء، حالانکہ تمام امت نے اس نماز کے ترک پر اجماع کیا۔

النھی الحاجز میں چالیس کتابوں کی اکاون عبارتیں تھیں، یہ پچاسی ۸۵ کتب متون وشروح وفتاویٰ کی دو سو سات ۲۰۷ عبارات ہیں۔ غرض صورت مذکورہ استثناء کے سوا نماز جنازہ کی تکرار ناجائز وگناہ ہونے پر مذہب حنفی کا اجماع قطعی ہے اور اس کا مخالف مخالف مذہب حنفی ہے۔ بعض نام کے حنفی برائے جہالت یا مغالطہ عوام ان تمام روشن وقاہر تصریحات مذہب کو چھوڑ کر یہاں دو کتب تاریخ تصنیف شافعیہ سے سند لیتے ہیں:

اول: تبییض الصحیفہ امام جلال الدین سیوطی شافعی میں ہے کہ امام ابوحنیفہ رضی اللہ تعالیٰ عنہ کے جنازہ مبارک پر چھ دفعہ نماز ہوئی اور کثرت ازدحام خلائق سے عصر تک ان کے دفن پر قدرت نہ پائی۔

دوم: سیر النبلاء شمس الدین ذہبی شافعی میں ہے کہ شیخ تاج الدین ابوایمن زید بن حسن کندی حنفی نے ۶ شوال ۶۱۳ھ میں وفات پائی۔ قاضی القضاۃ جمال ابن الحرستانی نے نماز پڑھائی، پھر شیخ الحنفیہ جمال الدین حصیری نے باب الفرادیس میں، پھر شیخ موفق الدین شیخ الحنبلیہ نے پہاڑ میں یعنی جبل قاسیون کوہ دمشق میں۔

اولاً: جمیع کتب مذہب کے صریح خلاف میں دو ۲ کتاب تاریخ پر کیسی جہالت شدیدہ ہے۔

ثانیاً: دنیا میں صرف حنفی ہی مذہب کے لوگ نہیں، خصوصاً پہلی صدیوں میں کہ خود مجتہدین بکثرت تھے اور ہر ایک کے لئے اتباع تھے۔ اس حکایت میں یہ کہاں ہے کہ حنفیہ نے چھ بار پڑھی، بلکہ ہجوم خلائق تھا ہر مسلک ہر مذہب کے لوگ جوق در جوق آتے تھے، غیر حنفیہ نے

اگر سو بار پڑھی تو حنفی مذہب میں اس کی کیا حجت ہوسکتی ہے، اللہ اکبر! امام اعظم ابوحنیفہ رضی اللہ تعالیٰ عنہ وہ عظیم الشان جلیل البرہان امام ہیں کہ مستقل مجتہد مطلق سیدنا امام شافعی رضی اللہ تعالیٰ عنہ نے جب اس امام الائمہ سراج الامہ کے مزار پُر انوار کے پاس نماز صبح پڑھائی بسم اللہ آواز سے نہ پڑھی نہ رفع یدین کیانہ قنوت پڑھی کسی نے سبب پوچھا، فرمایا: ان صاحب قبر کے ادب سے کما فی الخیرات الحسان للامام ابن حجر المکی الشافعی (جیسا کہ خیرات الحسان للامام ابن حجر مکی شافعی میں ہے۔ ت) اور ایک روایت میں ہے مجھے حیا آئی کہ اس امام جلیل کے سامنے اس کا خلاف کروں کما فی المسلک المتقسط للمولیٰ علی قاری (جیسا کہ المسلک المتقسط للمولی علی قاری میں ہے۔ ت) سبحان اللہ مجتہد مستقل تو ادب امام سے حضور امام میں اتباع امام اختیار کریں اور خود حنفیہ خاص جنازہ امام پر مخالفت امام و

۱ حاشیۃ الطحطاوی علی المراقی الفلاح فصل السلطان احق بصلوتہ نور محمد کارخانہ تجارت کتب کراچی ص ۳۲۴ Page 341 of 948

Fatawa Rizvia, Volume 9

How can it be conceived that they would abandon their school of thought? Thirdly: If the initial prayers were offered by someone other than the guardian (Wali), the guardian retained the right to repeat them, as the guardian was the Imam's noble son, Hazrat Sayyiduna Hammad bin Abi Hanifa. Once he performed it, no one else performed it over the blessed funeral again. Imam Ibn Hajar Makki states in 'Al-Khayrat al-Hissan':

[Arabic Quote]: They did not finish washing him but that a multitude of people from Baghdad gathered, whom none but Allah can count, as if his death had been announced to them. Those who prayed over him were estimated; it was said they reached fifty thousand, and some said more. The prayer was repeated over him six times, the last being by his son Hammad.

[Urdu Translation in Box]: Just as they finished the ghusl (washing) of Imam Abu Hanifa, such a vast number of people from Baghdad gathered that only God knows their count, as if someone had proclaimed the news of the Imam's passing. An estimation was made of the worshippers; some said fifty thousand, while others claimed even more. The funeral prayer was performed over him six times. The final time, it was led by his son, Hazrat Hammad.

Fourthly: Similarly, in the second incident, what proof is there that the first prayer was with the guardian's permission? Rather, it is apparent that it was the second prayer that was with the guardian's permission, as the funeral was for a Hanafi scholar, and the chief of the Hanafis there at that time was this Imam Jalal al-Din Mahmud bin Ahmad al-Husairi, a special student of the great Imam Qadi Khan, in whose works it is explicitly stated in various places that repeating the funeral prayer is not permissible. Those who performed the third prayer belonged to the Hanbali school; their allowance is not a binding argument for us. In short, scholars and the wise agree that 'a specific event does not imply a general rule' (Waqi'a 'ayn la 'umum laha); specific events are subject to various possibilities. Using them as evidence is a mere fantasy, especially when it goes against the definitive consensus of all the Imams of the school—an act which no one would dare unless they are incompetent and extremely ignorant. There is no power or strength except from Allah, the Most High, the Most Great.

Answer to the second question: In the refined Hanafi school, the funeral prayer in absentia (Janaza Gha'ib) is also strictly impermissible. There is a consensus among

the Hanafi Imams regarding its impermissibility. Beyond its specific detail being explicitly mentioned, all the statements related to the first issue also apply here, as a prayer in absentia would likely necessitate the repetition of the funeral prayer. In Muslim lands, wherever a deceased Muslim is, a funeral prayer will definitely take place, and the news will only reach other places afterward. Thus, the great Imam al-Nasafi in 'Al-Kafi' regarded this issue as a branch of that, although in reality, both are independent issues. Now, take the specific texts of this issue, and maintaining the aforementioned connection, follow the same sequence of statements.

1. Al-Khayrat al-Hissan, Chapter 35 on his funeral preparations, H.M. Saeed Company, Karachi, p. 714

फ़तावा रज़विया, खंड 9

धर्म (मज़हब) छोड़ना कैसे संभव माना जा सकता है। तीसरा: यदि पहली नमाज़ें वली (अभिभावक) के अलावा किसी और ने पढ़ाई थीं, तो वली को उन्हें दोहराने का अधिकार था, क्योंकि इमाम के वली उनके महान पुत्र हज़रत सैयदुना हम्माद बिन अबी हनीफ़ा थे। जब उन्होंने नमाज़ पढ़ ली, तो उसके बाद किसी और ने धन्य जनाज़े पर नमाज़ नहीं पढ़ी। इमाम इब्न हजर मक्की 'अल-ख़ैरात अल-हिसान' में फ़रमाते हैं:

[अरबी उद्धरण]: उनके ग़ुस्ल (स्नान) से फ़ारिग ही हुए थे कि बग़दाद के इतने लोग इकट्ठा हो गए कि अल्लाह के अलावा उनका कोई हिसाब नहीं जानता, मानो उनकी मृत्यु की घोषणा कर दी गई हो। नमाज़ पढ़ने वालों का अनुमान लगाया गया; कहा गया कि वे पचास हज़ार थे, और कहा गया कि अधिक थे। उन पर छह बार नमाज़ दोहराई गई, जिनमें आख़िरी उनके बेटे हम्माद ने पढ़ाई।

[बॉक्स में उर्दू का अनुवाद]: इधर इमाम अबू हनीफ़ा के ग़ुस्ल से फ़ारिग हुए थे कि उधर बग़दाद की इतनी बड़ी भीड़ जमा हो गई जिसकी गिनती केवल ईश्वर ही जानता है, जैसे किसी ने इमाम के निधन की सूचना पुकार दी हो। नमाज़ पढ़ने वालों का अनुमान लगाया गया तो कोई कहता पचास हज़ार थे, कोई कहता कि उससे भी ज़्यादा थे। और उन पर छह बार नमाज़ हुई। आख़िरी मर्तबा उनके साहबज़ादे इमाम हज़रत हम्माद ने पढ़ाई।

चौथा: इसी तरह, दूसरी घटना में क्या प्रमाण है कि पहली नमाज़ वली की अनुमति से हुई थी? बल्कि ज़ाहिर यही है कि दूसरी नमाज़ ही वली की अनुमति से हुई, क्योंकि जनाज़ा एक हनफ़ी विद्वान का था और वहां उस समय हनफ़ियों के प्रमुख यही इमाम जलालुद्दीन महमूद बिन अहमद हसीरी थे, जो महान इमाम क़ाज़ी ख़ान के विशेष शिष्य थे। उनकी रचनाओं में जगह-जगह यह स्पष्ट उल्लेख है कि जनाज़े की नमाज़ को दोहराना जायज़ नहीं है। तीसरी नमाज़ वाले हंबली मज़हब के थे, हंबलियों के यहाँ इसकी अनुमति है लेकिन यह हमारे लिए कोई प्रमाण नहीं है। संक्षेप में, विद्वानों और बुद्धिजीवियों का इस पर इत्तेफ़ाक़ है कि 'विशिष्ट घटना सामान्य नियम नहीं बनाती' (वाकिआ एन ला उमूम लहा); विशिष्ट घटनाएं हर तरह की संभावनाओं का स्थान होती हैं। उनसे तर्क करना महज़ कच्चा विचार है, न कि तमाम मज़हब के इमामों के पक्के इज़्मा (आम सहमति) को रद्द करने के लिए, जिस पर अयोग्य और घोर अज्ञानी के सिवा कोई साहस नहीं करेगा। अल्लाह के सिवा न कोई ताक़त है न कोई कुव्वत, जो बुलंद और अज़ीम है।

दूसरे सवाल का जवाब: सुसंस्कृत हनफ़ी मज़हब में अनुपस्थित जनाज़े की नमाज़ (जनाज़ा ग़ायब) भी पूरी तरह से नाजायज़ है। हनफ़ी इमामों का इसके नाजायज़ होने पर भी इज़्मा है। इसके विशिष्ट विवरण के स्पष्ट होने के अलावा, पहले मसले की सभी इबारतें भी इससे संबंधित हैं कि संभवतः ग़ायब नमाज़ में जनाज़े की नमाज़ को दोहराना अनिवार्य हो जाता है। इस्लामी देशों में जहाँ कहीं भी मुसलमान का इंतकाल होगा, नमाज़ ज़रूर होगी, और दूसरी जगह खबर उसके बाद ही पहुँचेगी। इसलिए महान इमाम नसफ़ी ने 'अल-काफ़ी' में इस मसले को उसकी शाख़ माना, हालाँकि वास्तव में दोनों स्वतंत्र मसले हैं। अब इस मसले के विशेष प्रमाणों को लें, और पूर्वोक्त संबंध को ध्यान में रखते हुए कथनों का वही क्रम रखें।

1. अल-ख़ैरात अल-हिसान, अध्याय 35 उनके कफ़न-दफ़न की तैयारी के बारे में, एच.एम. सईद कंपनी कराची, पृष्ठ 714

فتاوی رضویہ، جلد نہم

ترک مذہب کرتے یہ کیونکر متصور ہو سکتا ہے۔ ثالثاً: پہلی نمازیں غیر ولی نے پڑھیں تو ولی کو اختیار اعادہ تھا کہ امام کے ولی صاحبزادہ جلیل حضرت سید نا حماد ابن ابی حنیفہ تھے جب انہوں نے پڑھی پھر جنازہ مبارک پر کسی نے نہ پڑھی۔ امام ابن حجر مکی خیرات الحسان میں فرماتے ہیں:

[عربی عبارت]: مافرغوا من غسله الا وقد اجتمع من اهل بغداد خلق لایحصیهم الا الله تعالیٰ کانهم نودی لهم بموته وحرز من صلی علیه فقیل : بلغوا خمسین الفاً، وقیل : اکثر، واعیدت الصلوة علیه ستة مرات آخرها ابنه حماد 1۔

[اردو ترجمہ]: ادھر امام ابو حنیفہ کے غسل سے فارغ ہوئے تھے کہ ادھر بغداد کی اتنی خلقت جمع ہو گئی جس کا شمار خدا ہی جانتا ہے گویا کسی نے انتقال امام کی خبر پکار دی تھی، نماز پڑھنے والوں کا اندازہ کیا گیا تو کوئی کہتا پچاس ہزار تھے کوئی کہتا ہے کہ اس سے بھی زیادہ تھے، اور ان پر چھ بار نماز ہوئی۔ آخر مرتبہ صاحبزادہ امام حضرت حماد نے پڑھی۔

رابعاً: یوں ہی واقعہ دوم میں کیا ثبوت ہے کہ پہلی نماز باذن ولی تھی، بلکہ ظاہر یہی ہے کہ نماز دوم ہی باذن ولی ہوئی کہ جنازہ ایک عالم حنفی کا تھا اور وہاں اس وقت حنفیہ کے رئیس الرؤساء یہی امام جلال الدین محمود بن احمد حصیری تلمیذ خاص امام جلیل قاضی خان تھے جن کی تصانیف میں جابجا تصریح ہے کہ نماز جنازہ کی تکرار جائز نہیں۔ تیسری نماز والے حنبلی مذہب تھے، حنبلیہ کے یہاں جواز ہے کہ ہم پر حجت نہیں۔ بالجملہ علماء وعقلاء کا اتفاق ہے کہ واقعہ عین لا عموم لها خاص واقعے محل ہر گونہ احتمال، ان سے استدلال محض خام خیال نہ کہ وہ بھی اجماع

قطعی تمام ائمہ مذہب کے رد کرنے کو، جس پر جرات نہ کرے گا مگر نااہل، شدید الجہل لاحول ولاقوۃ الا باللہ العلی العظیم۔

جواب سوال دوم: مذہب مہذب حنفی میں جنازہ غائب پر بھی محض ناجائز ہے۔ ائمہ حنفیہ کا اس کے عدم جواز پر بھی اجماع ہے خاص اسکا جزئیہ بھی مصرح ہونے کے علاوہ تمام عبارات مسئلہ اولیٰ بھی اس سے متعلق کہ غالبا نماز غائب کو تکرار صلوۃ جنازہ لازم۔ بلاد اسلام میں جہاں مسلمان انتقال کرے نماز ضرور ہوگی، اور دوسری جگہ خبر اس کے بعد ہی پہنچے گی، ولہذا امام اجل نسفی نے کافی میں اس مسئلہ کو اس کی فرع ٹھہرایا، اگر چہ حقیقۃً دونوں مستقل مسئلے ہیں۔ اب اس مسئلہ کی نصوص خاصہ لیجئے، اور بہ نظر تعلق مذکور سلسلہ عبارات بھی وہی رکھئے۔

1. الخیرات الحسان فصل ۳۵ فی تجہیزہ ایچ ایم سعید کمپنی کراچی ص ۷۱۴

Fatawa Ridawiyya - Volume 9

(208) Fath al-Qadir (209) Hilya (210) Ghunyah (211) Shalabi (212) Bahr al-Ra'iq (213) in Arkan (Pillars): [Arabic]: And the condition for its validity is the Islam of the deceased, their purity, and placing them in front of the prayer performer. For this restriction, it is not permissible for an absent person. - 1 [Urdu Translation]: The condition for the validity of the funeral prayer is that the deceased must be a Muslim and pure, and the funeral must be placed on the ground in front of the person performing the prayer. Due to this condition, the funeral prayer for an absent person is not permissible.

Words from Hilya are these: [Arabic]: The condition for its validity is that it is placed in front of the one performing the prayer. From here they said that prayer over an absent person is absolutely not permissible. - 2 [Urdu Translation]: Among the conditions for the validity of the funeral prayer is that the funeral should be in front of the prayer performer. That is why our scholars have said that prayer over any absent person is absolutely not permissible.

(214) In the text of Tanwir al-Absar: [Arabic]: Its condition is placing it in front of the prayer performer. - 3 [Urdu Translation]: It is a condition of the funeral prayer that the funeral be in front of the prayer performer.

(215) Burhan Sharh Mawahib al-Rahman, (216) Nahr al-Fa'iq, (217) Sharh al-Nuqayah ala al-Durar, (218) Khadimi, (219) Hindiyya, (220) Abu Sa'ud. (221) In Durr al-Mukhtar: [Arabic]: Its condition is its presence, so it is not valid for an absent person. - 4 [Urdu Translation]: The presence of the funeral is a condition of the prayer, therefore, the funeral prayer for any absent person is not correct.

(222) In the text of Nur al-Idah: [Arabic]: Its conditions are the Islam of the deceased and their presence. - 5 [Urdu Translation]: Among the conditions for the validity of the funeral prayer is the deceased being a Muslim and being present in front of the prayer performers.

(223) In the text of Multaqa al-Abhur: [Arabic]: Prayer is not performed over a limb nor over an absent person. - 6 If a limb of the deceased is found somewhere...

---

1 Fath al-Qadir, Chapter of Prayer over the Deceased, Maktaba Nooria Razvia, 80/2, Ghunyah al-Mustamli, Sharh Munya al-Musalli, Chapter of Funerals, Sohail Academy Lahore, p. 583 2 Hilya al-Mahalli, Sharh Munya al-Musalli 3 Durr al-Mukhtar, Chapter

of Funerals, Matba' Mujtabai Delhi, 121/1 4 Durr al-Mukhtar, Chapter of Funerals, Matba' Mujtabai Delhi, 121/1 5 Nur al-Idah, Chapter of Prayer over the Deceased, Matba' Alimi Lahore, p. 556 6 Multaqa al-Abhur, Chapter of Prayer over the Deceased, Muassasat al-Risala Beirut, 161/1

फ़तावा रज़विया - जिल्द 9

(208) फ़तह अल-क़दीर (209) हिल्या (210) ग़ुनय्या (211) शलबी (212) बहर अल-रायिक़ (213) अरकान में है: [अरबी]: व शर्तु सिह्हतिहा इस्लामुल मय्यिति व तहारतुहू व वज़उहू अमामल मुसल्ली फ़लिहाज़ल क़ैदि ला तजूज़ु अला ग़ाइबिन। - 1 [उर्दू अनुवाद]: नमाज़े जनाज़ा की शुद्धता (सिहत) की शर्त यह है कि मय्यित मुसलमान हो, पाक हो, जनाज़ा नमाज़ी के आगे ज़मीन पर रखा हो। इसी शर्त के कारण किसी ग़ायब की नमाज़े जनाज़ा जायज़ नहीं।

हिल्या के शब्द ये हैं: [अरबी]: शर्तु सिह्हतिहा कौनुहू मौज़ूअन अमामल मुसल्ली व मिन हुना क़ालू ला तजूज़ुस सलातु अला ग़ाइबिन मुतलक़न। - 2 [उर्दू अनुवाद]: नमाज़े जनाज़ा की सिहत की शर्तों में से है जनाज़ा का मुसल्ली के आगे होना। इसी लिए हमारे उलेमा ने फ़रमाया कि मुतलक़न किसी ग़ायब पर नमाज़ जायज़ नहीं।

(214) मतन तनवीरुल अबसार में है: [अरबी]: शर्तुहा वज़उहू अमामल मुसल्ली। - 3 [उर्दू अनुवाद]: जनाज़ा का नमाज़ी के सामने होना नमाज़े जनाज़ा की शर्त है।

(215) बुहरान शरह मवाहिबुर रहमान, (216) नहरुल फ़ाइक़, (217) शरहुन निक़ाया अलद दुरर, (218) खादिमी, (219) हिन्दिया, (220) अबू सऊद। (221) दुर्रे मुख़्तार में है: [अरबी]: शर्तुहा हुज़ूरुहू फ़ला तिसिह्हु अला ग़ाइबिन। - 4 [उर्दू अनुवाद]: जनाज़ा का हाज़िर होना नमाज़ की शर्त है, लिहाज़ा किसी ग़ायब पर नमाज़े जनाज़ा सही नहीं।

(222) मतन नूरुल ईज़ाह में है: [अरबी]: शराइतुहा इस्लामुल मय्यिति व हुज़ूरुहू। - 5 [उर्दू अनुवाद]: नमाज़े जनाज़ा की सिहत की शर्तों में से है मय्यित का मुसलमान होना और नमाज़ियों के सामने हाज़िर होना।

(223) मतन मुल्तक़ल अबहुर में है: [अरबी]: ला युसल्ला अला इज़्विन व ला अला ग़ाइबिन। - 6 मय्यित का कोई अंग किसी जगह मिले तो...

---

1 फ़तह अल-क़दीर, फ़स्ल फ़ीस सलाति अलल मय्यित, मकतबा नूरिय्या रज़विया, 80/2, ग़ुनय्यातुल मुस्तमली शरह मुनयतुल मुसल्ली, फ़स्ल फ़िल जनाइज़, सुहैल एकेडमी लाहौर, पृ. 583 2 हिल्या अल-महल्ली शरह मुनयतुल मुसल्ली 3 दुर्रे मुख़्तार, बाब सलातिल जनाइज़, मतबा मुज्तबाई दिल्ली, 121/1 4 दुर्रे मुख़्तार, बाब सलातिल जनाइज़, मतबा मुज्तबाई दिल्ली, 121/1 5 नूरुल ईज़ाह, फ़स्ल

फ़ीस़ स़लाति अलल मय्यित, मतबा अलीमी लाहौर, पृ. 556 6 मुल्तक़ल अबहुर, फ़स्ल फ़ीस़ स़लाति अलल मय्यित, मुअस्ससातुर रिसाला बेरूत, 161/1

(۲۰۸) فتح القدیر (۲۰۹) حلیہ (۲۱۰) غنیہ (۲۱۱) شلبیہ (۲۱۲) بحرالرائق (۲۱۳) ارکان میں ہے: وشرط صحتھا اسلام المیت وطھارتہ ووضعہ امام المصلی فلھذا القید لاتجو ز علی غائب ۱۔ صحتِ نمازِ جنازہ کی شرط یہ ہے کہ میت مسلمان ہو طاہر ہو، جنازہ نمازی کے آگے زمین پر رکھا ہو۔ اسی شرط کے سبب کسی غائب کی نمازِ جنازہ جائز نہیں۔

حلیہ کے لفظ یہ ہیں: شرط صحتھا کونہ موضوعاً امام المصلی ومن ھنا قالو الاتجوز الصلوۃ علی غائب مطلقاً ۲۔ نمازِ جنازہ کی شرائط صحت سے ہے جنازہ کا مصلی کے آگے ہونا۔ اسی لئے ہمارے علماء نے فرمایا کہ مطلقاً کسی غائب پر نماز جائز نہیں۔

(۲۱۴) متن تنویر الابصار میں ہے: شرطھا وضعہ امام المصلی ۳۔ جنازہ کا نمازی کے سامنے ہونا شرطِ نمازِ جنازہ ہے۔

(۲۱۵) برہان شرح مواہب الرحمن (۲۱۶) نہر الفائق (۲۱۷) شرنبلالیہ علی الدرر (۲۱۸) خادمی (۲۱۹) ہندیہ (۲۲۰) ابو السعود (۲۲۱) درمختار میں ہے: شرطھا حضور ہ فلا تصح علی غائب ۴۔ جنازہ کا حاضر ہونا شرطِ نماز ہے لہذا کسی غائب پر نمازِ جنازہ صحیح نہیں۔

(۲۲۲) متن نورالایضاح میں ہے: شرائطھا اسلام المیت وحضور ہ ۵۔ صحتِ نمازِ جنازہ کی شرطوں سے ہے میت کا مسلمان ہونا اور نمازیوں کے سامنے حاضر ہونا۔

(۲۲۳) متن ملتقی الابحر میں ہے : لایصلی علی عضو ولا علی غائب ۶۔ میت کا کوئی عضو کسی جگہ ملے تو

1 فتح القدیر فصل فی الصلوۃ علی المیت مکتبہ نوریہ رضویہ ۸۰/۲ ، غنیۃ المستملی شرح منیۃ المصلی فصل فی الجنائز سہیل اکیڈمی لاہور ص ۵۸۳ 2 حلیۃ المحلی شرح منیۃ المصلی 3 درمختار باب صلوۃ الجنائز مطبع مجتبائی دہلی ۱۲۱/۱ 4 درمختار باب صلوۃ الجنائز مطبع مجتبائی دہلی ۱۲۱/۱ 5 نورالایضاح فصل فی الصلوۃ علی المیت مطبع علیمی لاہور ص ۵۵۶ 6 ملتقی الابحر فصل فی الصلوۃ علی المیت موسسۃ الرسالہ بیروت ۱۶۱/۱

Fatawa Ridawiyya, Volume 9.

Prayer is not permissible over it, nor is it permissible over any absent person. (225) It is stated in Sharh Majma' (225) Majma' Sharh Multaqa:

Arabic Text	English Translation of Urdu Commentary
The point of contention regarding an absent person from the city is because if he were in the city, it would not be permissible to pray over him until he is brought before [the congregation] by consensus, due to the lack of difficulty in attending.	Imam Shafi'i (may Allah be pleased with him) disagrees with us in this matter only in the case where the deceased is in another city. If [the deceased] is in the same city, then funeral prayer in absentia is not permissible even according to Imam Shafi'i, because there is no hardship in being present now.

(226) In Fatawa Khulasa, it is stated: "Prayer is not performed over an absent deceased according to us." According to us, funeral prayer should not be offered over any absent deceased person. (227) In Matn al-Wafi, it is stated:

Arabic Text	English Translation of Urdu Commentary
Whoever begins [life with a cry] is prayed over, otherwise not, like an absent person.	A child who is born and makes some sound from which its life is known and then dies, funeral prayer should be performed over it, otherwise not, just as there is no funeral prayer over an absent person.

(228) In al-Kafi, it is stated:

Arabic Text	English Translation of Urdu Commentary
Funeral prayer is not offered for an absent person or a limb, contrary to Shafi'i, based on whether the funeral prayer is repeated or not.	Funeral prayer over an absent person or a limb is impermissible according to us. In this, there is disagreement from Imam Shafi'i based on the fact that funeral prayer can be repeated according to them, but not according to us.

(229) In the Fatawa of Shaykh al-Islam Abu Abdullah Muhammad bin Abdullah Ghazi Tumurtashi, it is stated:

Arabic Text	English Translation of Urdu Commentary
Verily, Abu Hanifa does not speak of the permissibility of prayer over the absent.	Our Imam Azam (may Allah be pleased with him) does not consider the funeral prayer over an absent person to be permissible.

(230) In the Manzumah of Imam Mufti al-Thaqalayn, it is stated:

---

1. Majma' al-Anhur Sharh Multaqa al-Abhur, Chapter on Prayer over the Deceased, Dar Ihya al-Turath al-Arabi, Beirut, 1/185.
2. Khulasat al-Fatawa, Funeral Prayer with Four Takbirs, Maktabah Habibiyyah, Quetta, 1/224.
3. Al-Wafi.
4. Al-Kafi Sharh al-Wafi.
5. Fatawa Imam Ghazi Tumurtashi, Book of Purification and Prayer, Matba' Ahl al-Sunnat wal-Jama'at, Bareilly, p. 4.

फ़तावा रिज़विया, खंड 9.

इस पर नमाज़ जायज़ नहीं है, और न ही किसी ग़ायब (अनुपस्थित) व्यक्ति पर जायज़ है। (225) शरह मजमा' (225) मजमा' शरह मुल्तका में है:

अरबी मूल पाठ	उर्दू टीका का हिंदी अनुवाद
शहर से बाहर के अनुपस्थित व्यक्ति के बारे में विवाद का बिंदु यह है कि यदि वह शहर में होता, तो आम सहमति से उस पर नमाज़ तब तक जायज़ नहीं होती जब तक कि उसे सामने न लाया जाता, क्योंकि उपस्थित होने में कोई कठिनाई नहीं है।	इस मसले में इमाम शाफ़ई (रज़ियल्लाहु अन्हु) का हमसे मतभेद केवल उसी स्थिति में है जब मृतक दूसरे शहर में हो। यदि वह उसी शहर में हो, तो इमाम शाफ़ई के नज़दीक भी ग़ायब की नमाज़ जायज़ नहीं है क्योंकि अब हाज़िर होने में कोई मशक्कत (कठिनाई) नहीं है।

(226) फ़तावा खुलासा में है: "हमारे यहाँ किसी ग़ायब मैय्यत (मृतक) पर नमाज़ नहीं पढ़ी जाती।" हमारे नज़दीक किसी ग़ायब मैय्यत पर नमाज़ न पढ़ी जाए। (227) मतन-ए-वाफ़ी में है:

अरबी मूल पाठ	उर्दू टीका का हिंदी अनुवाद
जो जन्म के समय आवाज़ करे (जीवित पैदा हो) उस पर नमाज़ पढ़ी जाए, अन्यथा नहीं, जैसे ग़ायब व्यक्ति की।	जो बच्चा पैदा होकर कुछ आवाज़ करे जिससे उसका जीवित होना ज्ञात हो, फिर मर जाए, तो उस पर नमाज़ पढ़ी जाए, वरना नहीं, जैसे ग़ायब के जनाज़े पर नमाज़ नहीं होती।

(228) काफ़ी में है:

अरबी मूल पाठ	उर्दू टीका का हिंदी अनुवाद
ग़ायब या अंग पर नमाज़ नहीं पढ़ी जाती, शाफ़ई के विपरीत, इस आधार पर कि जनाज़े की नमाज़ दोबारा पढ़ी जाती है या नहीं।	किसी ग़ायब या अंग पर नमाज़ हमारे नज़दीक नाजायज़ है और इसमें इमाम शाफ़ई का मतभेद इस आधार पर है कि उनके नज़दीक जनाज़े की नमाज़ दोबारा हो सकती है, हमारे नज़दीक नहीं।

(229) फ़तावा शैखुल इस्लाम अबू अब्दुल्लाह मुहम्मद बिन अब्दुल्लाह ग़ज़ी तुमुरताशी में है:

अरबी मूल पाठ	उर्दू टीका का हिंदी अनुवाद
बेशक अबू हनीफ़ा ग़ायब पर नमाज़ के जायज़ होने के क़ायल नहीं हैं।	हमारे इमाम-ए-आज़म (रज़ियल्लाहु अन्हु) जनाज़ा-ए-ग़ायब पर नमाज़ जायज़ नहीं मानते।

(230) मंजूमह इमाम मुफ्ती अस्-सक़लैन में है:

---

1. मजमा' अल-अन्हुर शरह मुल्तक़ा अल-अभर, फ़स्ल फ़िस-सलाति अलल मय्यत, दार इहया अल-तुरास अल-अरबी, बेरुत, 1/185।
2. खुलासातुल फ़तावा, अस्-सलातु अलल जनाज़ह अरबा तकबीरात, मक्तबा हबीबिया, क्वेटा, 1/224।
3. वाफ़ी।
4. काफ़ी शरह वाफ़ी।
5. फ़तावा इमाम ग़ज़ी तुमुरताशी, किताबुत तहारति वस-सलात, मतबा अहले सुन्नत वल जमात, बरेली, पृ. 4।

पृष्ठ 948 का 344

اس پر نماز جائز نہیں، نہ کسی غائب پر جائز ہے۔ (۲۲۵) شرح مجمع (۲۲۵) مجمع شرح ملتقی میں ہے:

عربی عبارت	اردو ترجمہ و تشریح
محل الخلاف فی الغائب عن البلد اذلوکان فی البلد لم یجز ان یصلی علیه حتی یحضر عنده اتفاقاً لعدم المشقة فی الحضور ۱۔	امام شافعی رضی اللہ تعالیٰ عنہ کا اس مسئلہ میں ہم سے خلاف بھی اس صورت میں ہے کہ میت دوسرے شہر میں ہو اگر اسی شہر میں ہو تو نماز غائب امام شافعی کے نزدیک بھی جائز نہیں کہ اب حاضر ہونے میں مشقت نہیں۔

(۲۲۶) فتاویٰ خلاصہ میں ہے: لا یصلی علی میت غائب عندنا ۲۔ ہمارے نزدیک کسی میت غائب پر نماز نہ پڑھی جائے۔ (۲۲۷) متن وافی میں ہے:

عربی عبارت	اردو ترجمہ و تشریح
من استهل صلی علیه والا لا کغائب ۳۔	جو بچہ پیدا ہو کر کچھ آواز کرے جس سے اس کی حیات معلوم ہو پھر مر جائے اس پر نماز پڑھی جائے ورنہ نہیں، جیسے غائب کے جنازہ پر نماز نہیں۔

(۲۲۸) کافی میں ہے:

عربی عبارت	اردو ترجمہ و تشریح
لا یصلی علی غائب وعضو خلافا للشافعی بناء علی ان صلاۃ الجنازۃ تعاد امر لاء ۴۔	کسی غائب یا عضو پر نماز ہمارے نزدیک ناجائز ہے اور اس میں امام شافعی کا خلاف ہے اس بناء پر کہ نماز جنازہ ان کے نزدیک دوبارہ ہو سکتی ہے، ہمارے نزدیک نہیں۔

(۲۲۹) فتاویٰ شیخ الاسلام ابو عبداللہ محمد بن عبد اللہ غزی تمرتاشی میں ہے:

عربی عبارت	اردو ترجمہ و تشریح
ان اباحنیفہ لا یقول بجواز الصلاۃ علی الغائب ۵۔	ہمارے امام اعظم رضی اللہ تعالیٰ عنہ جنازہ غائب پر نماز جائز نہیں مانتے۔

(۲۳۰) منظومہ امام مفتی الثقلین میں ہے:۔

---

1 مجمع الانہر شرح ملتقی الابحر فصل فی الصلوۃ علی المیت داراحیاء التراث العربی بیروت ۱/۱۸۵ 2 خلاصۃ الفتاوی الصلوۃ علی الجنازۃ اربع تکبیرات مکتبہ حبیبیہ کوئٹہ ۲۲۴/۱ 3 وافی 4 کافی شرح وافی 5 فتاویٰ امام غزی تمرتاشی کتاب الطھارۃ والصلوۃ مطبع اہل السنتہ والجماعۃ بریلی ص ۴

Volume Nine Fatawa Razawiyya

Chapter: The Juridical Decrees of Imam Shafi'i Alone and our disagreement with what he said.

"It [the funeral prayer] is valid over the absent and a limb, and that has been discarded regarding the martyr."[1]

Only Imam Shafi'i is of the opinion that the prayer over an absentee and a severed limb is valid, while the prayer for a martyr is not. In all these matters, our school of thought is against this. According to us, prayer over an absentee and a limb is not valid, and the prayer for a martyr shall be performed.

These are 230 excerpts from 86 books. Praise be to Allah, the discussion on the first issue has already been completed sufficiently in 'Ad-Dala'il an-Nahyi al-Haajiz' by the grace of Allah Almighty. Here, let us speak on the arguments of the second issue with great brevity and conciseness.

So we say, and success is from Allah, for the ruling of the pure Shari'ah and any addition to it is impermissible.

I say (in Arabic): That is, what is without its specific or general permission, even if it is within the context of 'Irsal' (sending) or silence, because it is a clarification, and he [the Prophet PBUH] does not remain silent out of forgetfulness. So this is the true addition, and not anything else. This is because that which is attributed to Shari'ah, even if through his silence, is attributed to it and is not an addition upon it. And following (ittiba') is in 'Kaff' (intentional refraining), not in 'Tark' (simple non-action). For indeed, 'Tark' is not the act of a servant, nor is it within his power, as stated by the great masters. Rather, it is logically reasoned as well, for non-existence has no cause. Understand this, if you are among those who understand.

I say (in Urdu): That is, that addition which is without the specific or general permission of the Shari'ah, even if it is in the context of 'Irsal' (letting loose) or silence, because that too is an explanation. His silence does not happen due to forgetfulness. This is the actual addition, not anything else; because that whose basis is from the Shari'ah, even if it is from silence, is attributed to the Shari'ah and is not an addition to it. And following (ittiba') is in 'Kaff' (intentionally refraining), not in 'not happening' (If the Prophet ﷺ intentionally refrained from an action, then he will be followed in that; and if simply an action did not occur in his practice, then it will not be forbidden nor will it be necessary to avoid it), because 'Tark' (omission) is not an

act of the servant, nor is it in his power, as the great elders of religion have clarified. Rather, it holds evidence according to intellect as well because non-existence (adam) cannot be reasoned. Understand it if you are a person of understanding. (T)

The radiant presence, the Master of the Day of Resurrection, who is compassionate and merciful to the believers (peace and blessings be upon him and his family), used to take great care of the funeral prayers of Muslims. If at any time, due to the darkness of the night, or the heat of the midday, or the Prophet's resting, the Companions [informed him not]...

---

[1] Poem of Imam Mufti al-Thaqalayn Umar al-Nasafi

खंड नौ फ़तावा रज़विया

अध्याय: अकेले इमाम शाफ़ई के फ़तवे और जो उन्होंने कहा, हमने उसका विपरीत कहा।

"वह (जनाज़ा नमाज़) अनुपस्थित और अंग पर सही है, और शहीद के हक में उसे हटा दिया गया है।"[1]

केवल इमाम शाफ़ई इस बात के कायल हैं कि अनुपस्थित (ग़ायब) और शरीर के कटे हुए अंग पर नमाज़ सही है, और शहीद की नमाज़ न हो। इन सभी मसलों में हमारा मज़हब इसके खिलाफ है। हमारे नज़दीक अनुपस्थित और अंग पर नमाज़ सही नहीं है और शहीद की नमाज़ पढ़ी जाएगी।

ये 86 किताबों के230 अंश हैं। अल्लाह का शुक्र है कि पहले मसले पर चर्चा 'अद-दलायल अन-नहयी अल-हाजिज़' में अल्लाह तआला के फ़ज़्ल से पर्याप्त रूप से हो चुकी है। यहाँ बहुत संक्षेप और संक्षिप्तता के साथ दूसरे मसले के तर्कों पर बात करें।

तो हम कहते हैं, और सफलता अल्लाह से है, पाक शरीयत के हुक्म के लिए और उस पर अधिकता (ज़ियादती) नाजायज़ है।

मैं कहता हूँ (अरबी): अर्थात वह जो शरीयत की विशेष या सामान्य अनुमति के बिना हो, भले ही वह 'इरसाल' या चुप्पी (सुकूत) के भीतर हो, क्योंकि वह भी एक स्पष्टीकरण है, और वह [नबी ﷺ] भूलवश चुप नहीं रहते। अतः यही वास्तविक ज़ियादती है, इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं। इसका कारण यह है कि जिस चीज़ का आधार शरीयत पर हो, भले ही वह उनकी चुप्पी से हो, वह शरीयत पर ही आधारित है और उस पर कोई ज़ियादती नहीं है। और अनुसरण (इत्तेबा) 'कफ़' (जानबूझकर रुकने) में होता है, न कि 'तर्क (साधारण न करने) में। क्योंकि वास्तव में, 'तर्क बंदे का कार्य नहीं है, और न ही यह उसकी शक्ति में है, जैसा कि महान विद्वानों ने कहा है। बल्कि, यह तर्कसंगत भी है, क्योंकि अस्तित्वहीनता (अदम) का कोई कारण नहीं होता। इसे समझें यदि आप समझने वालों में से हैं।

मैं कहता हूँ (उर्दू): अर्थात वह ज़ियादती जो शरीयत की विशेष या सामान्य अनुमति के बिना हो, भले ही वह 'इरसाल' या चुप्पी (सुकूत) के दायरे में हो, क्योंकि वह भी एक बयान है। उनकी चुप्पी भूलने के कारण नहीं होती। यही वास्तविक ज़ियादती है, इसके अलावा नहीं। इसलिए जिसका आधार शरीयत से हो, चाहे वह चुप्पी से ही क्यों न हो, वह शरीयत की ओर ही आधारित है, उस पर

अधिकता नहीं। और अनुसरण (इत्तेबा) 'कफ़' (जानबूझकर रुकने) में होता है, न होने में नहीं। (हुज़ूर अलैहिस सलातो वस्सलाम जानबूझकर किसी काम से रुके तो उसमें उनका अनुसरण होगा और यदि कोई काम सरकार के अमल में नहीं आया तो वह मना नहीं होगा और न ही उससे बचना अनिवार्य होगा) क्योंकि 'तर्क (छोड़ना) बंदे का कर्म ही नहीं है, न ही उसकी शक्ति में है, जैसा कि महान बुजुर्गों ने स्पष्ट किया है। बल्कि बुद्धि के निकट भी इसका तर्क है क्योंकि 'अदम' (अस्तित्वहीनता) का कोई कारण नहीं होता। इसे समझो अगर समझने वाले हो। (त)

नूरानी हस्ती, क़यामत के दिन के स्वामी, ईमान वालों पर अत्यंत दयालु और कृपालु (उन पर और उनके परिवार पर सर्वश्रेष्ठ दुरूद और सलाम हो), मुसलमानों की जनाज़ा नमाज़ का बहुत ध्यान रखते थे। अगर किसी समय रात के अंधेरे या दोपहर की गर्मी या हुज़ूर के आराम फरमाने के कारण सहाबा ने हुज़ूर...

---

[1] इमाम मुफ्ती अल-सकलैन उमर अल-नस्फ़ी की कविता।

جلد نہم فتاویٰ رضویہ

باب فتاوی الشافعی وحدہ وما بہ قال قلنا ضدہ وھی علی الغائب والعضو تصح وذاك في حق الشهيد قد طرح[1]

صرف امام شافعی قائل ہیں کہ غائب اور عضو پر نماز صحیح ہے اور شہید کی نماز نہ ہو اور ان سب مسائل میں ہمارا مذہب اس کے خلاف ہے۔ ہمارے نزدیک غائب و عضو پر نماز صحیح نہیں اور شہید کی نماز پڑھی جائے گی۔

یہ ۸۶ کتابوں کی ۲۳۰ عبارتیں ہیں، وللہ الحمد مسئلہ اولیٰ پر بحث دلائل النہی الحاجز میں بحمد اللہ تعالیٰ بروجہ کافی ہو چکی، یہاں بہت اختصار و اجمال کے ساتھ مسئلہ ثانیہ کے دلائل پر کلام کریں۔

فنقول وباللہ التوفیق حکم شرع مطہر کے لئے اور اس پر زیادت ناروا۔

اقول: ای ماکان بدون اذنه الخاص والعام ولو في ضمن الارسال او السكوت فانه بيان وليس يسكت عن نسيان فهذه هي الزيادة حقيقة لا غيره اذ المستند ولو الى سكوته مستند اليه لا زائد عليه والمتبع الكف دون الترك فانه ليس بفعل العبد ولا مقدور كما نص عليه الاجلة الصدور بل هو في العقل مدلل فان الاعدام لا تعلل فافهم ان كنت تفهم۔

اقول: یعنی وہ زیادتی جو شرع کے اذنِ خاص یا عام کے بغیر ہو اگرچہ وہ ارسال یا سکوت کے ضمن میں ہو اس لئے کہ وہ بھی بیان ہے اس کا سکوت نسیان سے نہیں ہوتا، یہی زیادتی حقیقیہ زیادتی ہے، اس کے علاوہ نہیں اس لئے جس کا استناد شرع سے ہو گو سکوت ہی سے ہو وہ شریعت کی طرف مستند ہے اس پر زائد نہیں۔ اور اتباع کف (قصداً باز رہنے) میں ہوتی ہے۔ نہ

ہونے میں نہیں (حضور علیہ الصلوۃ والسلام قصداً کسی کام سے باز رہے تو اس میں ان کی پیروی ہوگی اور یوں کوئی کام سرکار کے عمل میں نہ آیا تو وہ ممنوع نہ ہوگا نہ اس سے بچنا ضروری ہوگا) اس لئے کہ ترک بندے کا فعل ہی نہیں، نہ ہی اس کی قدرت میں ہے جیسا اجلہ بزرگانِ دین نے اس کی تصریح فرمائی، بلکہ عقل کے نزدیک بھی یہ دلیل رکھتا ہے کیونکہ عدم کی تعلیل نہیں ہوتی، اسے سمجھو اگر سمجھ والے ہو۔ (ت)

حضور پُر نور سید یوم النشور بالمؤمنین رؤف رحیم علیہ و علی آلہ افضل الصلوۃ والتسلیم کو نماز جنازہ مسلمین کا کمال اہتمام تھا۔ اگر کسی وقت رات اندھیری یا دو پہر کی گرمی یا حضور کے آرام فرما ہونے کے سبب صحابہ نے حضور...

---

[1] منظومہ امام مفتی الثقلین عمر النسفی

Fatawa Razawiya, Volume 9

[When someone] did not inform and buried [the deceased], so he [the Prophet ﷺ] stated:

“Do not do [this], call me for your funerals.” - Narrated by Ibn Majah from 'Amir bin Rabi'ah (may Allah be pleased with him).

And he said: “Do not do [this], as long as I am amongst you, no dead person among you should die without informing me about it, for indeed my prayer over him is a mercy.” - Narrated by Imam Ahmad from Zaid bin Thabit (may Allah be pleased with him), and narrated by Ibn Hibban and Al-Hakim from Zaid bin Thabit (may Allah be pleased with him) in another hadith.

And he said: “Verily, these graves are full of darkness for their inhabitants, and indeed I illuminate them with my prayer over them.” - Sallallahu Ta'ala (Peace and blessings of Allah be upon him).

Footnote 1: This hadith is also mentioned in "Tamheed". The researcher gave a reference to Jana’iz Ibn Majah, but I could not find this hadith in Ibn Majah with these exact words; however, it is narrated in Musnad Ahmad bin Hanbal with these words. See reference. - Nazir Ahmad. Footnote 2: Ibn Majah narrated this same hadith from Yazid bin Thabit, and it is also narrated in Musnad Ahmad bin Hanbal from Yazid, and Yazid is the elder brother of Zaid. - Nazir Ahmad.

---

1. Musnad Ahmad bin Hanbal, Hadith of 'Amir bin Rabi'ah, Dar al-Fikr Beirut 3/444; At-Tamheed 'Ibahat as-Salat 'ala al-Qabr etc., Al-Maktabah al-Quddusiyah Urdu Bazar Lahore 6/167.
2. Musnad Ahmad bin Hanbal, Hadith of Yazid bin Thabit, Dar al-Fikr Beirut 2/388.
3. Sahih Muslim, Kitab al-Jana'iz, Noor Muhammad Asah al-Matabi' Karachi 1/310; Musnad Ahmad bin Hanbal narrated from Abu Hurairah (may Allah be pleased with him), Dar al-Fikr Beirut 2/388; Al-Ihsan bi-Tarteeb Sahih Ibn Hibban, Chapter on Funeral Prayer, Mu'assasah ar-Risalah Beirut 5/35.

फ़तावा रज़विया, खंड 9

[उन्होंने] सूचना नहीं दी और दफना दिया, तो आप [सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम] ने फरमाया:

“ऐसा न करो, मुझे अपने जनाज़ों के लिए बुला लिया करो।” - इसे इब्न माजा ने आमिर बिन रबीअह (रज़ियल्लाहु अन्हु) से रिवायत किया है।

और फरमाया: “ऐसा न करो, जब तक मैं तुम्हारे बीच मौजूद हूँ, तुममें से कोई भी मय्यत मुझे सूचित किए बिना न मरे, क्योंकि उस पर मेरी नमाज़ (जनाज़ा) रहमत का कारण है।” - इसे इमाम अहमद ने ज़ैद बिन साबित (रज़ियल्लाहु अन्हु) से रिवायत किया है, और इब्न हिब्बान और हाकिम ने ज़ैद बिन साबित (रज़ियल्लाहु अन्हु) से एक अन्य हदीस में रिवायत किया है।

और फरमाया: “बेशक ये कब्रें अपने निवासियों पर अंधेरे से भरी हुई हैं, और बेशक मैं अपनी नमाज़ से उन्हें रोशन कर देता हूँ।” - सल्लल्लाहु तआला।

पाद-टिप्पणी 1: यह हदीस "तम्हीद" में भी वर्णित है। शोधकर्ता ने इब्न माजा के जनाज़ अध्याय का संदर्भ दिया है, लेकिन मुझे इब्न माजा में इन शब्दों के साथ यह हदीस नहीं मिली, हालांकि मुसनद अहमद बिन हंबल में इन्ही शब्दों के साथ यह हदीस वर्णित है। संदर्भ देखें। - नज़ीर अहमद। पाद-टिप्पणी 2: यही हदीस इब्न माजा ने यज़ीद बिन साबित के हवाले से नक़ल की है और मुसनद अहमद बिन हंबल में भी यज़ीद के हवाले से वर्णित है, और यज़ीद, ज़ैद के बड़े भाई हैं। - नज़ीर अहमद।

---

1. मुसनद अहमद बिन हंबल, हदीस आमिर बिन रबीअह, दारुल फिक्र बेरूत 3/444; अत-तम्हीद इबाहत अस-सलात अलल क़ब्र आदि, अल-मकतबा अल-कुद्दूसिया उर्दू बाज़ार लाहौर 6/167।
2. मुसनद अहमद बिन हंबल, हदीस यज़ीद बिन साबित, दारुल फिक्र बेरूत 2/388।
3. सहीह मुस्लिम, किताबुल जनाइज़, नूर मुहम्मद असहुल मताबे कराची 1/310; मुसनद अहमद बिन हंबल, अबू हुरैरा (रज़ियल्लाहु अन्हु) से वर्णित, दारुल फिक्र बेरूत 2/388; अल-इहसान बी-तरतीब सहीह इब्न हिब्बान, जनाज़ा की नमाज़ पर अध्याय, मुअस्ससा अर-रिसाला बेरूत 5/35।

جلد نہم فتاوٰی رضویہ

کو اطلاع نہ دی اور دفن کر دیا تو ارشاد فرماتے :

لا تفعلوا ادعونی لجنائزکم - رواہ ابن ماجۃ عن عامر بن ربیعۃ رضی اللہ تعالی عنہ۔ ایسا نہ کرو مجھے اپنے جنازوں کے لئے بلا لیا کرو، اسے ابن ماجہ نے عامر بن ربیعہ رضی اللہ تعالیٰ عنہ سے روایت کیا،

اور فرماتے: لا تفعلوا لا یموتن فیکم میت ما کنت بین اظھر کم الا اذنتمونی بہ فان صلوتی علیہ رحمۃ۔ رواہ الامام احمد عن زید بن ثابت رضی اللہ تعالی عنہ و رواہ ابن حبان والحاکم عن زید بن ثابت رضی اللہ تعالی عنہ فی حدیث آخر۔ ایسا نہ کرو جب تک میں تم میں تشریف فرما ہوں ہر گز کوئی میت تم میں نہ مرے جس کی اطلاع مجھے نہ دو کہ اُس پر میری نماز موجبِ رحمت ہے۔ اسے امام احمد نے زید بن ثابت رضی اللہ تعالیٰ عنہ سے روایت کیا۔ اور اسے ابن حبان اور حاکم نے زید بن ثابت رضی اللہ تعالیٰ عنہ سے حدیث کے آخر میں روایت کیا۔

اور فرماتے: ھذہ القبور مملوۃ ظلمۃً علی اھلھا واني انورھا بصلوتی علیھم - صلی اللہ تعالی بیشک یہ قبریں اپنے ساکنوں پر تاریکی سے بھری ہیں اور بیشک میں اپنی نماز سے انہیں روشن فرما دیتا ہوں۔

ف۱: یہ حدیث "تمہید" میں بھی منقول ہے اس پر تحقیق والے نے جنائز ابن ماجہ کا حوالہ دیا لیکن مجھے یہ حدیث ابن ماجہ میں ان الفاظ کے ساتھ نہیں مل سکی البتہ مسند احمد بن حنبل میں انہی الفاظ سے یہ حدیث منقول ہے حوالہ ملاحظہ ہو۔ نذیر احمد ف۲: یہی حدیث ابن ماجہ نے یزید بن

ثابت کے حوالہ سے نقل کی اور مسند احمد بن حنبل میں بھی یزید کے حوالہ سے منقول ہے اور یزید زید کے بڑے بھائی ہیں۔ نذیر احمد

---

1 مسند احمد بن حنبل حدیث عامر بن ربیعہ دارالفکر بیروت ۳/ ۴۴۴، التمہید اباحۃ الصلوۃ علی القبر الخ المکتبۃ القدوسیہ اردو بازار لاہور ۶/ ۱۶۷ 2 مسند احمد بن حنبل حدیث یزید بن ثابت دار الفکر بیروت ۲/ ۳۸۸ 3 صحیح مسلم کتاب الجنائز نور محمد اصح المطابع کراچی ۱/ ۳۱۰، مسند احمد بن حنبل مروی از ابوہریرہ رضی اللہ عنہ دارالفکر بیروت ۲/ ۳۸۸، الاحسان بترتیب صحیح ابن حبان فصل فی الصلوٰۃ الجنائز مؤسسۃ الرسالہ بیروت ۳۵/۵

Volume 9 Fatawa Razawiyyah

| "And may Allah bless and grant him and his family peace, in accordance with the measure of his light, beauty, status, majesty, generosity, bounty, blessings, and favors. This Hadith was narrated by Muslim and Ibn Hibban from Abu Hurayrah (may Allah be pleased with him)." | May Allah Ta'ala send mercy, blessings, and peace upon him and his family according to their light and beauty, majesty and glory, generosity and gift, favors and blessings. The mentioned Hadith was narrated by Muslim and Ibn Hibban from Hazrat Abu Huraira (may Allah Ta'ala be pleased with him). |

Despite this, while hundreds of noble companions (may Allah be pleased with them) passed away in other places during his holy era, it is never proven by any clear Hadith that the Prophet (peace be upon him) offered their funeral prayers in absentia. Were they not in need of mercy? God forbid, did the Holy Prophet (peace be upon him) not have this mercy and compassion for them? Did he not wish to illuminate their graves with his pure prayer? Were only the graves of those who died in Medina in need of light, and there was no need for it elsewhere? These things are obviously false. Therefore, the fact that the Holy Prophet (peace be upon him) generally did not offer their funeral prayer is clear and bright evidence that funeral prayer in absentia was not possible, otherwise he would have certainly performed it because the requirement was fully present and any obstacle was absent. Necessarily, not performing it was an intentional refrain, and an act from which Mustafa (peace be upon him) intentionally abstains without any compelling excuse cannot be a Sharia-compliant or prescribed matter. Regarding the mention of prayer for the deceased of another city, it is narrated in only three incidents: the incident of Najashi, the incident of Mu'awiyah al-Laythi, and the incident of the leaders of Mu'tah (may Allah be pleased with them all). Among these, in the first and second, and rather in the third too, the funeral was present before the Holy Prophet (peace be upon him), so it was not a prayer in absentia but for one who was present. Moreover, the chains of narration for the second and third are not authentic, and in the third, 'Salah' in the sense of prayer is not authentic. Their details, with Allah's help, are coming shortly. If we assume that prayer was offered in these three incidents, then despite this great and abundant attention of the Prophet and this severe need of all the deceased for mercy and the light of the graves, why were hundreds not performed? They too were in need of the Prophet and in need of mercy and light, and the Prophet was kind and merciful to them as well. The fact that the prayer was not an individual obligation

(Fard al-Ayn) for everyone will not be the answer to this great attention, nor is it a remedy for the severe need of all the deceased. Indeed, 'concerned for you' (Harisun 'Alaykum) is his glory. Helping one or two and leaving hundreds—how is that worthy of his generosity? Observing these situations and indications, the general practice of abstaining and only one or two occurrences themselves will show that there were specific peculiarities there, the ruling of which cannot be general. The general ruling is the same non-permissibility, on the basis of which there is general abstention. Now look at the incident of Bir Ma'unah. Seventy pieces of the heart of Medina, the special beloveds of Muhammad the Messenger of Allah (peace be upon him), the eminent scholars among the noble companions (may Allah be pleased with them), were martyred by the disbelievers through deception. Mustafa (peace be upon him) felt intense and severe grief and pain over them. For a full month, he cursed the miscreant disbelievers within the special prayer, but it is not reported at all that he offered funeral prayer for those dear beloveds.

| "अल्लाह तआला उन पर और उनकी आल पर उनके नूर व जमाल, जाह व जलाल, जूदो नवाल, नेअम व अफ़ज़ाल के हिसाब से रहमत व बरकत व सलामती नाज़िल फरमाए। मज़कूर हदीस को मुस्लिम और इब्ने हिब्बान ने हज़रत अबू हुरैरा रज़ियल्लाहु तआला अन्हु से रिवायत किया।" | अल्लाह तआला रहमत व बरकत व सलामती नाज़िल फरमाए उन पर और उनकी आल पर उनके नूर व जमाल, जाह व जलाल, जूदो नवाल, नेअम व अफ़ज़ाल के हिसाब से। मज़कूर हदीस को मुस्लिम और इब्ने हिब्बान ने हज़रत अबू हुरैरा रज़ियल्लाहु तआला अन्हु से रिवायत किया। |

इसके बावजूद, हालांकि अक़दस (पवित्र) ज़माने में सैकड़ों सहाबा किराम (रज़ियल्लाहु अन्हुम) ने दूसरे स्थानों पर वफात पाई, कभी किसी सरीह (स्पष्ट) हदीस से साबित नहीं कि हुज़ूर ने ग़ायबाना तौर पर उनके जनाज़े की नमाज़ पढ़ी। क्या वे रहमत के मोहताज न थे? क्या मआज़ल्लाह (अल्लाह की पनाह) हुज़ूर अक़दस (सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम) को उन पर यह रहमत व शफ़क़त न थी? क्या वे उनकी क़ब्रों को अपनी पाकीज़ा नमाज़ से रोशन नहीं करना चाहते थे? क्या केवल मदीना तैयबा में मरने वालों की ही क़ब्रें नूर की मोहताज थीं और दूसरी जगह उसकी ज़रूरत न थी? ये सब बातें स्पष्टतः निराधार हैं, तो हुज़ूर अक़दस (सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम) का सामान्य रूप से उनकी नमाज़े जनाज़ा न पढ़ना ही एक स्पष्ट और उज्ज्वल प्रमाण है कि जनाज़ा ग़ायब पर नमाज़ नामुमकिन थी, अन्यथा वे अवश्य पढ़ते क्योंकि कारण पूरी तरह मौजूद था और कोई रुकावट नहीं थी। अतः न पढ़ना जानबूझकर रुकना था, और जिस कार्य से मुस्तफ़ा (सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम) बिना किसी मज़बूरी के जानबूझकर परहेज फरमाएँ वह कभी शरीयत का हुक्म या जायज़ कार्य नहीं हो सकता। दूसरे शहर के मैय्यत (मृतक) पर नमाज़ का उल्लेख केवल तीन घटनाओं में रिवायत किया जाता है: नजाशी की घटना, मुआविया लैसी की घटना और मोता के सरदारों की घटना (रज़ियल्लाहु तआला अन्हुम अजमईन)। इनमें से पहली और दूसरी, बल्कि तीसरी घटना में भी जनाज़ा हुज़ूर अक़दस (सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम) के सामने मौजूद था, तो वह नमाज़ ग़ायब पर नहीं बल्कि मौजूद पर हुई, और दूसरी व तीसरी की सनद (प्रमाण) सही नहीं है, और तीसरी में सलात (नमाज़) के अर्थ में सही नहीं है। इनका विवरण अल्लाह की मदद से अभी आने वाला है। यदि मान भी लिया जाए कि इन तीन घटनाओं में नमाज़ पढ़ी गई, तो हुज़ूर के इतने बड़े और भरपूर ध्यान के बावजूद और तमाम मृतकों की रहमत और क़ब्रों के नूर की इस तीव्र आवश्यकता के बावजूद सैकड़ों की नमाज़ क्यों न पढ़ी? वे भी हुज़ूर के मोहताज और रहमत व नूर के ज़रूरतमंद थे,

और हुज़ूर उन पर भी अत्यंत दयालु और कृपालु थे। नमाज़ का सब पर फर्ज़े ऐन (अनिवार्य) न होना इस बड़े ध्यान का उत्तर नहीं होगा, और न ही यह तमाम मृतकों की इस तीव्र ज़रूरत का समाधान है। जबकि 'तुम पर बहुत दयालु' (हरीसुन अलैकुम) उनकी शान है। एक या दो की मदद करना और सैकड़ों को छोड़ देना उनके करम (कृपा) के योग्य कब है। इन परिस्थितियों और संकेतों को देखने से सामान्य रूप से न पढ़ना और केवल एक या दो घटनाओं का होना स्वयं ही बता देगा कि वहाँ कुछ विशेष विशेषताएँ थीं जिनका हुक्म आम नहीं हो सकता। आम हुक्म वही है जो जायज़ न होना है, जिसके आधार पर सामान्य परहेज है। अब 'बिअरे मऊना' की घटना ही देखिये। मदीना तैयबा के सत्तर (70) जिगर के टुकड़ों, मुहम्मद रसूलुल्लाह (सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम) के विशेष प्यारों, सहाबा किराम के महान विद्वानों को काफिरों ने धोखे से शहीद कर दिया। मुस्तफ़ा (सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम) को इसका अत्यंत गहरा दुःख और दर्द हुआ। एक महीने तक लगातार विशेष नमाज़ के भीतर वे दुष्ट काफिरों पर लानत भेजते रहे, लेकिन यह कहीं भी वर्णित नहीं है कि उन प्यारे महबूबों पर नमाज़े जनाज़ा पढ़ी गई हो।

पृष्ठ 347/948

| وبارك وسلم عليه وعلى اله قدر نوره وجماله وجاهه وجلاله وجوده ونواله ونعمه وافضاله رواه مسلم وابن حبان عن ابي هريرة رضي الله تعالى عنه ۔ | اللہ تعالیٰ رحمت و برکت و سلامتی نازل فرمائے ان پر اور ان کی آل پر ان کے نور و جمال، جاہ و جلال، جود و نوال، نعم و افضال کے حساب سے ۔ حدیث مذکور کو مسلم اور ابن حبان نے حضرت ابو ہریرہ رضی اللہ تعالیٰ عنہ سے روایت کیا۔ |

با ایں ہمہ حالانکہ زمانہ اقدس میں صدہا صحابہ کرام رضی اللہ تعالیٰ عنہم نے دوسرے مواضع میں وفات پائی، کبھی کسی حدیث صریح سے ثابت نہیں کہ حضور نے غائبانہ ان کے جنازہ کی نماز پڑھی۔ کیا وہ محتاج رحمت والا نہ تھے، کیا معاذ اللہ حضور اقدس صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کو ان پر یہ رحمت و شفقت نہ تھی، کیا ان کی قبور اپنی نماز پاک سے پُر نور نہ کرنا چاہتے تھے، کیا جو مدینہ طیبہ میں مرتے انہیں کی قبور محتاج نور ہوتیں اور جگہ اس کی حاجت نہ تھی۔ یہ سب باتیں بداہۃً باطل ہیں تو حضور اقدس صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کا عام طور پر ان کی نماز جنازہ نہ پڑھنا ہی دلیل روشن و واضح ہے کہ جنازہ غائب پر نماز ناممکن تھی ورنہ ضرور پڑھتے کہ مقتضی بحال وفور موجود اور مانع مفقود۔ لاجرم نہ پڑھنا قصداً باز رہنا تھا اور جس امر سے مصطفیٰ صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم بے عذر مانع بالقصد احتراز فرمائیں وہ ضرور امر شرعی و مشروع نہیں ہو سکتا دوسرے شہر کی میت پر صلوۃ کا ذکر صرف تین واقعوں میں روایت کیا جاتا ہے۔ واقعہ نجاشی و واقعہ معاویہ لیثی و واقعہ امرائے موتہ رضی اللہ تعالیٰ عنہم اجمعین ان میں اول ودوم و بلکہ سوم کا بھی جنازہ حضور اقدس صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کے سامنے حاضر تھا تو نماز غائب پر نہ ہوئی بلکہ حاضر پر، اور دوم وسوم کی سند صحیح نہیں، اور سوم صلوۃ بمعنی

نماز میں صحیح نہیں۔ ان کی تفصیل بعونہ تعالیٰ ابھی آتی ہے۔ اگر فرض کیجئے کہ ان تینوں واقعوں میں نماز پڑھی تو باوصف حضور کے اس اہتمام عظیم و موفور اور تمام اموات کے اس حاجت شدید رحمت و نور قبور کے صدہا کیوں نہ پڑھی، وہ بھی محتاج حضور و حاجتمند رحمت و نور، اور حضور ان پر بھی رؤف و رحیم تھے۔ نماز سب پر فرض عین نہ ہونا اس اہتمام عظیم کا جواب نہ ہوگا، نہ تمام اموات کی اس حاجت شدید ہ کا علاج۔ حالانکہ حریص علیکم ان کی شان ہے۔ دو ایک کی دستگیری فرمانا اور صدہا کو چھوڑنا کب ان کے کرم کے شایان ہے۔ ان حالات و اشارات کے ملاحظہ سے عام طور پر ترک اور صرف دو ایک با وقوع خود ہی بتادے گا کہ وہاں خصوصیات خاصہ تھی جس کا حکم عام نہیں ہو سکتا۔ حکم عام وہی عدم جواز ہے جس کی بنا پر عام احتراز ہے۔ اب واقعہ بئر معونہ ہی دیکھئے۔ مدینہ طیبہ کے ستر ۷۰ جگر پاروں محمد رسول اللہ صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کے خاص پیاروں، اجلہ علمائے کرام صحابہ کرام رضی اللہ تعالیٰ عنہم کو کفار نے دغا سے شہید کر دیا ۔ مصطفیٰ صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کو ان کا سخت و شدید غم والم ہوا۔ ایک مہینہ کامل خاص نماز کے اندر کفار ناہنجار پر لعنت فرماتے رہے، مگر ہرگز منقول نہیں کہ ان پیارے محبوبوں پر نماز پڑھی ہو۔

Fatawa Razawiya - Volume 9

(E) Ultimately, this omission and to this degree is not without reason. (After the martyrdom of the eminent companions (Sahaba), the Prophet's (peace and blessings of Allah be upon him) omission of their funeral prayer cannot be without a reason.) For the people of justice, the discourse concludes with this much, but by the permission of Allah Almighty, we shall also resolve these three incidents. First Incident: When Ashama (may Allah be pleased with him), the King of Abyssinia, passed away in Abyssinia, the Master of Messengers (peace and blessings of Allah be upon him) informed the companions in Medina the Radiant. He went to the place of prayer, formed rows, and uttered four Takbirs (1). Reported by the Six (compilers of Hadith) from Abu Huraira, and the Two Sheikhs (Bukhari and Muslim) from Jabir: "I was in the second or third row" (2) (may Allah be pleased with them both). (The Six authors reported it from Hazrat Abu Huraira, and in Bukhari and Muslim from Hazrat Jabir, it is also stated: "I was in the second or third row," may Allah be pleased with them both - T). Firstly, in Sahih Ibn Hibban, from Imran bin Husain (may Allah be pleased with him) and from all the companions together, it is recorded:

"Indeed, the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) said: Your brother the Negus (Najashi) has passed away, so stand up and pray over him. Then the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) stood up, and they formed rows behind him, and he said four Takbirs, and they did not think except that his funeral was before him." (3)	The Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) said, "Your brother Negus has died; get up and pray for him." Then the Holy Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) stood up, the companions formed rows behind him. The Prophet said four Takbirs; the Sahaba were under the impression that his funeral was present before the Holy Prophet (peace and blessings of Allah be upon him).

In Sahih Abu Awanah, among them it is mentioned:

"So we prayed behind him, and we did not see except that the funeral was in front of us." (4)	We prayed behind the Prophet and we held the belief that the funeral was present in front of us.

I say: This is in Fath al-Bari, then in Al-Mawahib, then its commentary, and likewise in...	I say: These words are in Fath al-Bari on the authority of Abu Awanah and Ibn Hibban, then in Mawahib, then in the commentary of Mawahib.

1. Sahih al-Bukhari, Chapter on Rows for Funerals, Qadimi Kutub Khana, Karachi, 1/167.
2. Sahih al-Bukhari, Chapter on He who Forms Two Rows, Qadimi Kutub Khana, Karachi, 1/171.
3. Al-Ihsan bi-Tartib Sahih Ibn Hibban, Section on Prayers over Funerals, Mu'assasat al-Risalah, Beirut, 5/20.
4. Fath al-Bari, referencing Abu Awanah, Chapter on Rows for Funerals, Mustafa al-Babi, Egypt, 3/334.

फतावा रज़विया - जिल्द 9

(ऐन) अंततः यह परित्याग और इस स्तर का होना बिना किसी कारण के नहीं है। (महान सहाबा किराम की शहादत पर हुज़ूर सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम का उनकी नमाज़-ए-जनाज़ा न पढ़ना बिना किसी कारण के नहीं हो सकता) इंसाफ पसंद लोगों के नज़दीक कलाम इतना ही काफी है, मगर हम अल्लाह की इज़ाज़त से इन तीन वाकयात (घटनाओं) का भी समाधान करेंगे। पहला वाकया: जब हबशा (इथियोपिया) के बादशाह असहमा रज़ियल्लाहु अन्हु का हबशा में इंतकाल हुआ, तो सैयदुल मुरसलीन सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने मदीना तय्यबा में सहाबा किराम को खबर दी। मुसल्ले (नमाज़ की जगह) में जाकर सफें(पंक्तियाँ) बनाईं और चार तकबीरें कहीं (1)। इसे छह हदीस की किताबों (सिहाह सित्ता) के लेखकों ने अबू हुरैरा से और शैखैन (बुखारी और मुस्लिम) ने जाबिर से रिवायत किया है: "मैं दूसरी या तीसरी सफ में था" (2) रज़ियल्लाहु अन्हुमा। (इसे सहाब-ए-सित्ता ने हज़रत अबू हुरैरा से रिवायत किया और बुखारी व मुस्लिम में हज़रत जाबिर से यह भी है कि मैं दूसरी या तीसरी सफ में था, रज़ियल्लाहु अन्हुमा - त)। सबसे पहले सहीह इब्न हिब्बान में इमरान बिन हुसैन रज़ियल्लाहु अन्हु और सभी सहाबा से रिवायत है:

"नबी सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने फ़रमाया: तुम्हारा भाई नज्जाशी फौत (मृत्यु) हो गया है, सो उठो और उस पर नमाज़ पढ़ो। फिर रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम खड़े हुए और सहाबा ने उनके पीछे सफें बनाईं और उन्होंने चार तकबीरें कहीं, और वे यही समझते थे कि उसका जनाज़ा उनके सामने मौजूद है।" (3)

रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने फ़रमाया, "तुम्हारा भाई नज्जाशी मर गया है, उठो उस पर नमाज़ पढ़ो।" फिर हुज़ूर अकदस सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम खड़े हुए और सहाबा ने पीछे सफें बांधीं। हुज़ूर ने चार तकबीरें कहीं, सहाबा को यही गुमान था कि उनका जनाज़ा हुज़ूर अकदस सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम के सामने हाज़िर है।

सहीह अबू अवाना में उन्हीं में से यह है:

"हमने उनके पीछे नमाज़ पढ़ी और हम यही समझते थे कि जनाज़ा हमारे सामने है।" (4)

हमने हुज़ूर के पीछे नमाज़ पढ़ी और हम यही विश्वास रखते थे कि जनाज़ा हमारे आगे मौजूद है।

अकुल: यह फ़तह अल-बारी में है, फिर अल-मवाहिब में, फिर उसकी शरह (व्याख्या) में और इसी तरह...

अकुल: अबू अवाना और इब्न हिब्बान के हवाले से फ़तह अल-बारी फिर मवाहिब फिर शरह मवाहिब में यही शब्द हैं।

1. सहीह अल-बुखारी, बाब अस-सुफ़ूफ़ अल-लल-जनाज़ह, कदीमी कुतुब खाना कराची 1/167
2. सहीह अल-बुखारी, बाब मन सफ सफ़ैन, कदीमी कुतुब खाना कराची 1/171
3. अल-इहसान बि-तरतीब सहीह इब्न हिब्बान, फ़सल फ़ी अस-सलाह अलल-जनाइज़, मुअस्ससात अल-रिसाला बैरूत 5/20
4. फ़तह अल-बारी ब-हवाला अबी अवाना, बाब अस-सुफ़ूफ़ अल-लल-जनाज़ह, मुस्तफा अल-बाबी मिस्र 3/334

فتاوی رضویہ جلد نہم

ع آخرایں ترک و بایں مرتبہ بے چیزے نیست (آخر اجلہ صحابہ کرام کے شہید ہونے پر آپ صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کا ان کی نماز جنازہ کو ترک فرمانا بغیر کسی وجہ کے نہیں ہو سکتا) اہل انصاف کے نزدیک کلام تو اسی قدر سے تمام ہوا مگر ہم ان وقائع ثلثہ کا بھی باذنہ تعالیٰ تصفیہ کریں۔ واقعہ اولیٰ: جب اصحمہ رضی اللہ تعالیٰ عنہ بادشاہ حبشہ نے حبشہ میں انتقال کیا۔ سید المرسلین صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم نے مدینہ طیبہ میں صحابہ کرام کو خبر دی مصلیٰ میں جاکر صفیں باندھ کر چار تکبیریں کہیں ۱۔ رواہ الستۃ عن ابی ھریرۃ و الشیخان عن جابر کنت فی الصف الثانی اوالثالث ۲ رضی اللہ تعالیٰ عنھما (اسے اصحاب ستہ نے حضرت ابو ہریرہ سے روایت کیا اور بخاری و مسلم میں حضرت جابر سے یہ بھی ہے کہ میں دوسری یا تیسری صف میں تھا، رضی اللہ تعالیٰ عنہما ت) اولاً صحیح ابن حبان میں عمران بن حصین رضی اللہ تعالیٰ عنہ و عن الصحابۃ جمیعا سے ہے:

ان النبی صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم قال ان اخاکم النجاشی توفی فقوموا فصلوا علیہ فقام رسول اللہ صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم وصفوا خلفہ فکبر اربعا وھم لایظنون الا ان جنازتہ بین یدیہ ۳۔

رسول اللہ صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم نے فرمایا، تمہارا بھائی نجاشی مرگیا، اٹھو اس پر نماز پڑھو۔ پھر حضور اقدس صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کھڑے ہوئے صحابہ نے پیچھے صفیں باندھیں ۔ حضور نے چار تکبیریں کہیں، صحابہ کو یہی ظن تھا کہ ان کا جنازہ حضور اقدس صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کے سامنے حاضر ہے۔

صحیح ابو عوانہ میں انہیں میں سے ہے:

فصلینا خلفہ ونحن لانری الا ان ہم نے حضور کے پیچھے نماز پڑھی اور ہم یہی اعتقاد کرتے

جنازۃ قدامنا ۴۔ تھے کہ جنازہ ہمارے آگے موجود ہے۔

اقول: ھذا فی فتح الباری ثم المواھب ثم شرحھا وکذلک فی اقول: ابو عوانہ و ابن حبان کے حوالے سے فتح الباری پھر مواہب پھر شرح مواہب میں یہی الفاظ

۱ صحیح البخاری باب الصفوف علی الجنازہ قدیمی کتب خانہ کراچی ۱/ ۱۶۷ ۲ صحیح البخاری باب من صف صفین قدیمی کتب خانہ کراچی ۱/ ۱۷۱ ۳ الاحسان بترتیب صحیح ابن حبان فصل فی الصلوۃ علی الجنائز مؤسسۃ الرسالۃ بیروت ۵/ ۲۰ ۴ فتح الباری بحوالہ ابی عوانہ باب الصفوف علی الجنازہ مصطفیٰ البابی مصر ۳/ ۳۳۴

Umdat al-Qari and other books have mentioned it similarly. In Nasb al-Rayah, within the narration of Ibn Hibban, the phrase 'wahum la yazunnuna anna janazatahu bayna yadayhi' (and they did not think his bier was before him) occurs with the omission of 'illa' (except). Therefore, the 'Muhaqqiq 'ala al-Itlaq' [Ibn al-Humam] felt the need to reconcile the hadith with the intended meaning and said: This wording indicates that the reality was contrary to their assumption, because that is the useful point intended by the phrase. Either they heard it from the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) or it was revealed to him. This was followed by the authors of al-Ghunya and al-Mirqat. As you can see, his words are elegant, but there is no need for them after the word 'illa' has been established in the two authentic books [Sahih Ibn Hibban and Sahih Abi Awanah]. For it is more manifest and clear, and all praise is due to Allah. In short, this refutes what Sheikh Taqi al-Din said, that this requires a narration to prove it and mere possibility is not enough. (T)

Mentioned above, and similarly it is narrated in Umdat al-Qari and other books. In Nasb al-Rayah, within the narration of Ibn Hibban, the phrase 'wahum la yazunnuna anna janazatahu bayna yadayhi' (and people did not think that his funeral was placed before the Prophet) occurred with the omission of 'illa' (but/except). Thus, the Muhaqqiq 'ala al-Itlaq felt the need to prove the hadith according to the claim and said: This word indicates that in reality it was contrary to the thought of those gentlemen because the countable and considerable benefit of this sentence is this (so the meaning became that they were not thinking so, but in reality the funeral was present before the Prophet). Now, whether this became known to them by hearing it from the Prophet or it was revealed to them... In this discourse, the author of Ghunyah and the author of Mirqat have also followed the respected Muhaqqiq. And truly this is elegant discourse, but after the word 'illa' has been established in both Sahih books (Sahih Ibn Hibban and Sahih Abi Awanah), there is no need for it, because what is with 'illa' is more apparent and bright. And all praise is for God alone. In short, from this, the objection that Sheikh Taqi al-Din wrote—that there is a need to bring some evidence for this, mere possibility is not enough—was refuted. (T)

These two authentic narrations strongly support the 'mursal' hadith that Imam Wahidi mentioned in 'Asbab al-Nuzul al-Quran' from Hazrat Abdullah bin Abbas (may Allah be pleased with both of them), who said:

'The Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) was shown the bier of the Negus until he saw it.'

The funeral of the Negus was made manifest to the Holy Prophet (peace and blessings of Allah be upon him); the Prophet saw it and...

---

1. Fath al-Qadir, Chapter on Prayer over the Deceased, Nuriya Razawiya, Sukkur, 2/80.
2. Nasb al-Rayah, citing Taqi al-Din, Hadiths of Prayer over the Absent, Al-Maktabah al-Islamiyyah, Riyadh al-Sheikh, 2/283.

फ़तावा रज़विया जिल्द नौ

ये दोनों सही रिवायतें उस हदीस-ए-मुरसल को मजबूती प्रदान करती हैं जिसे इमाम वाहिदी ने 'अस्बाब अन-नुज़ूल अल-क़ुरान' में हज़रत अब्दुल्लाह बिन अब्बास (रज़ियल्लाहु अन्हुमा) से ज़िक्र किया है कि उन्होंने कहा:

'नबी सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम के लिए नजाशी की चारपाई (जनाज़ा) प्रकट कर दी गई यहाँ तक कि उन्होंने उसे देख लिया।'

नजाशी का जनाज़ा हुज़ूर अकदस सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम के लिए ज़ाहिर कर दिया गया था, हुज़ूर ने उसे देखा और...

---

1. फ़तह अल-क़दीर, मैयित पर नमाज़ का अध्याय, नूरिया रज़विया सुक्कुर, 2/80.
2. नसब अल-राय्या शेख़ तक़ी अल-दीन के हवाले से, ग़ायब पर नमाज़ की हदीसें, अल-मकतबा अल-इस्लामिया, रियाज़ अल-शेख, 2/283.

पृष्ठ 349/948

فتاوی رضویہ جلد نہم

مذکورہ آئے اور ایسے ہی عمدۃ القاری وغیرہ کتابوں میں نقل ہے۔ نصب الرایہ کے اندر روایت ابن حبان میں وھم لایظنون

عمدة القاری و غیرها من الکتب و وقع فی نصب الرایة فی روایة ابن حبان وهم لا یظنون ان جنازته بین یدیه باسقاط الا فاحتاج المحقق علی الاطلاق الی التقریب بان قال فهذا اللفظ یشیر الی ان الواقع خلاف ظنهم لانه هو فائدة المعتد بها فاما ان یکون سمعه منه صلی الله تعالیٰ علیه وسلم او کشف له ۱ اھ و تبعه فی الغنیة والمرقاة وهو کما تری کلامه نفیس لکن لا حاجة الیه بعد ثبوت الا فی الکتابین الصحیحین فانه ح اظهر و ازهر ولله الحمد وبالجملة اندفع به ما قال الشیخ تقی الدین ان هذا یحتاج الی نقل یثبته ولا یکتفی فیه بمجرد الاحتمال ۲۔

ان جنازتہ بین یدیہ (اور لوگ نہیں سمجھ رہے تھے کہ ان کا جنازہ حضور کے آگے رکھا ہوا ہے الا (مگر) کے اسقاط کے ساتھ واقع ہوا تو محقق علی الاطلاق نے حدیث کو مدعا کے مطابق ثابت کرنے کی ضرورت محسوس کی اور فرمایا: اس لفظ سے یہ اشارہ ہو رہا ہے کہ واقع میں ان حضرات کے گمان کے بر خلاف تھا کیونکہ اس جملے کا قابل شمار و لحاظ فائدہ یہی ہے (تو معنی یہ ہوا کہ وہ ایسا نہیں سمجھ رہے تھے مگر واقع میں جنازہ حضور کے آگے موجود تھا) اب یہ ان کو حضور سے سن کر معلوم ہوا ہو یا ان پر انکشاف ہوا ہو، اھ ... اس کلام میں حضرت محقق کا اتباع صاحب غنیہ و صاحب مرقات نے بھی کیا ہے۔ اور واقعی یہ نفیس کلام ہے مگر دونوں صحیح کتابوں (صحیح ابن حبان و صحیح ابی عوانہ) میں لفظ الا ثابت ہو جانے کے بعد اس کی کوئی ضرورت نہیں، کیونکہ جو الا کے ساتھ ہے وہ زیادہ ظاہر اور روشن ہے۔ اور خدا ہی کے لئے ساری حمد ہے۔ الحاصل اس سے وہ اعتراض دفع ہو گیا جو شیخ تقی الدین نے لکھا کہ اس پر کوئی دلیل لانے کی ضرورت ہے محض احتمال کافی نہیں۔ (ت)

یہ دونوں روایت صحیح عاضد قوی ہیں اس حدیث مرسل اصولی کی کہ امام واحدی نے اسباب نزول قرآن میں حضرت عبداللہ بن عباس رضی اللہ عنہما سے ذکر کی کہ فرمایا:

کشف النبی صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم عن سریر النجاشی حتی راہ

نجاشی کا جنازہ حضور اقدس صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کے لئے ظاہر کر دیا گیا تھا حضور نے اسے دیکھا اور

---

۱ فتح القدیر فصل فی الصلوۃ علی المیت نوریہ رضویہ سکھر ۲/۸۰ ۲ نصب الرایہ بحوالہ تقی الدین احادیث الصلوۃ علی الغائب المکتبۃ الاسلامیہ لصاحبھا ریاض الشیخ ۲/ ۲۸۳

Fatawa Razawiya - Volume 9

- And he offered prayer over him (1). | He prayed over him.

Secondly, when you are an inquirer, a probability is sufficient for us, not when it is proven itself by sound chains of transmission. This answer was quoted and established by a Shafi'i Imam Qastalani himself in Mawahib Sharifah.

[Table/Columns] [Left Column (Arabic/Urdu Mix)]: I say: because it is established that the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) refrained from it, then obviously the meaning of "probability" is based on evidence. Then, what is surprising is the statement of al-Kirmani that he (Najashi) was absent from the view of the Sahaba (2), and this was approved in al-Fath, saying that Abu Hamid preceded him in that (3) etc. and similarly al-Ruyani found it good, and all four are Shafi'is. Note: And this is based on what the Hanafis and Malikis have stipulated about the agreement on the permissibility of praying over someone absent from the people while the Imam sees him. I say: based on the Hadith of Imran, we do not see except...

[Right Column (Urdu)]: I say, meaning when it is proven that the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) refrained from praying for the absent, then the meaning of praying the funeral prayer for Hazrat Ashama al-Najashi is that his funeral was in front of him. So it is apparent that probability means probability with evidence. Then a strange thing is that Kirmani wrote: Najashi's funeral was only absent from the sight of the companions; this was liked in Fath al-Bari saying that before this Abu Hamid has said so. In this way, Ruyani considered it a fine thing; these four gentlemen are Shafi'is. The surprising thing is that Hanafis and Malikis also agree on this, that...

[Bottom Section] [Left Column (Arabic/Urdu Mix)]: Note: The mujtahid of the Wahhabis, al-Shawkani in Nayl al-Awtar and al-Bhopali in Awn al-Bari, blindly followed them, oblivious to what the Hanafis refuted it with. This is the habit of these claimants of ijtihad, that they follow the followers in clear errors and declare the following of the Mujtahid Imams as forbidden. 12 Minhu (M)

[Right Column (Urdu)]: In this, the Mujtahid of the Wahhabis, Shawkani, in Nayl al-Awtar, and Bhopali in Awn al-Bari, have blindly followed them. And they remained oblivious to the discourse through which the Hanafis refuted this answer. This is the habit of these claimants of ijtihad, that they follow the followers in clear errors and declare the following of the Mujtahid Imams as forbidden. 12 Minhu (T)

[Footnotes] 1. Sharh al-Zarqani 'ala al-Mawahib, referencing al-Wahidi, fourth type regarding his prayer, etc., Dar al-Ma'rifah, Beirut, 1/87. 2. Fath al-Bari, referencing al-Kirmani, chapter on rows at the funeral, Mustafa al-Babi, Egypt, 3/332. 3. Fath al-Bari, commentary on Bukhari, chapter on rows at the funeral, Mustafa al-Babi, Egypt, 3/332.

फ़तावा रज़विया - खंड 9

• और उस पर नमाज़ पढ़ी (1)। | उस पर नमाज़ पढ़ी।

दूसरा यह कि जब आप दलील पेश करने वाले हों, तो हमारे लिए एक संभावना ही काफी है, न कि जब वह स्वयं सही सनद (प्रमाण) के साथ सिद्ध हो। यह उत्तर स्वयं एक शाफ़ई इमाम क़स्तलानी ने मवाहब शरीफ़ा में उद्धृत किया और स्थापित किया है।

[तालिका/कॉलम] [बायां कॉलम (अरबी/उर्दू मिश्रण)]: मैं कहता हूँ: चूँकि यह स्थापित है कि नबी (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने इससे परहेज किया, तो जाहिर है कि "संभावना" का अर्थ प्रमाण पर आधारित संभावना है। फिर किरमानी का यह कहना आश्चर्यजनक है कि वह (नजाशी) सहाबा की दृष्टि से ओझल थे (2), और इसे अल-फतह में स्वीकार किया गया, यह कहते हुए कि अबू हामिद इस बात में उनसे आगे थे (3) इत्यादि, और इसी तरह अल-रुयानी ने इसे अच्छा पाया, और ये चारों शाफ़ई हैं। नोट: और यह उस पर आधारित है जो हनफियों और मलिकियों ने लोगों से अनुपस्थित व्यक्ति पर प्रार्थना करने की अनुमति के समझौते पर निर्धारित किया है जबकि इमाम उसे देखता है। मैं कहता हूँ: इमरान की हदीस के आधार पर, हम केवल ... को देखते हैं।

[दायां कॉलम (उर्दू)]: कहता हूँ, यानी जब हुज़ूर (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) का ग़ायबों (जो मौजूद न हों) की नमाज़ से परहेज़ करना साबित है, तो हज़रत असहामा नजाशी की नमाज़-ए-जनाज़ा पढ़ने का मतलब यह है कि उनका जनाज़ा सामने था। तो ज़ाहिर यह है कि संभावना से तात्पर्य दलील के साथ संभावना है। फिर अजीब बात यह है कि किरमानी ने लिखा: नजाशी का जनाज़ा केवल सहाबा की नज़रों से ओझल था, इसे फ़तह अल-बारी में यह कहते हुए पसंद किया गया कि इससे पहले अबू हामिद यह कह चुके हैं। इसी तरह रुयानी ने इसे एक अच्छी बात माना, ये चारों सज्जन शाफ़ई हैं। ताज्जुब की बात यह है कि इस पर हनफ़िया और मालकिया का भी इत्तिफ़ाक़ (सहमति) है कि...

[निचला भाग] [बायां कॉलम (अरबी/उर्दू मिश्रण)]: नोट: वहाबियों के मुजतहिद अल-शौकानी ने नैल अल-औतार में और अल-भोपाली ने औन अल-बारी में उनका अंधानुकरण किया है, वे इस बात से बेखबर रहे कि हनफियों ने इसका खंडन कैसे किया। इजतिहाद के इन दावेदारों की यही आदत है कि वे खुली हुई गलत बातों में मुक़ल्लिदीन का अनुसरण करते हैं और मुजतहिद इमामों के अनुसरण को हराम क़रार देते हैं। 12 मिन्हु (म)

[दायां कॉलम (उर्दू)]: इसमें वहाबियों के मुजतहिद शौकानी ने नैल अल-औतार में और भोपाली ने औन अल-बारी में उनका अंधानुकरण किया है। और वे उस कलाम से बेख़बर रहे जिसके ज़रिए हनफ़िया ने इस जवाब को खारिज कर दिया है। इजतिहाद के इन दावेदारों की यही आदत है कि वे खुली हुई गलत बातों में मुक़ल्लिदीन का अनुसरण करते हैं और मुजतहिद इमामों के अनुसरण को हराम क़रार देते हैं। 12 मिन्हु (त)

[पाद लेख (फुटनोट्स)] 1. शरह अल-ज़रक़ानी अलल-मवाहिब, वाहिदी के हवाले से, चौथी श्रेणी उसकी नमाज़ के बारे में, दारुल मारिफ़ा, बेरूत, 1/87. 2. फ़तह अल-बारी, किरमानी के हवाले से, जनाज़े की सफ़ों का अध्याय, मुस्तफ़ा अल-बाबी, मिस्र, 3/332. 3. फ़तह अल-बारी शरह बुखारी, जनाज़े की सफ़ों का अध्याय, मुस्तफ़ा अल-बाबी, मिस्र, 3/332.

فتاویٰ رضویہ - جلد نہم

• وصلّی علیه 1. | اُس پر نماز پڑھی۔

ثانیاً بلکہ جب تم مستدل ہو ہمیں احتمال کافی، نہ کہ جب خود باسانید صحیحہ ثابت ہے۔ یہ جواب خود ایک شافعی امام قسطلانی نے مواہب شریفہ میں نقل کیا اور مقرر رکھا۔

[جدول/کالم] [بایاں کالم (عربی/اردو آمیز)]: اقول ای لما تقرر من کفه صلی الله تعالیٰ علیه وسلم فالظاهر معناه الاحتمال عن دلیل ثم من العجب قول الکرمانی کان غائباً عن الصحابة 2 وارتضاه فی الفتح قائلاً سبقه الی ذلك ابوحامد 3 الخ وکذا استحسنه الرویانی واربعتهم شافعیه عه وهذا لمأ نص علیه الحنفیة والمالکیة من الاتفاق علی جواز الصلوة علی غائب عن القوم والامام یراه۔ اقول: علی ان فی حدیث عمران نحن لانری الا

[دایاں کالم (اردو)]: اقول یعنی جب حضور صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم کا غائبوں کی نماز سے باز رہنا ثابت ہے تو حضرت اصحمہ نجاشی کی نماز جنازہ پڑھنے کا مطلب یہ ہے کہ ان کا جنازہ سامنے تھا، تو ظاہر یہ ہے کہ احتمال سے مراد احتمال بدلیل ہے۔ پھر عجیب بات ہے کہ کرمانی نے لکھا: نجاشی کا جنازہ صرف نظر صحابہ سے غائب تھا، اس کو فتح الباری میں پسند کیا یہ کہتے ہوئے کہ اس سے پہلے ابو حامد یہ فرما چکے ہیں۔ اس طرح رویانی نے اسے عمدہ چیز سمجھا، یہ چاروں حضرات شافعی ہیں۔ تعجب کی چیز یہ ہے کہ اس پر حنفیہ و مالکیہ کا بھی اتفاق ہے کہ

[نچلا حصہ] [بایاں کالم (عربی/اردو آمیز)]: عه: قلدهم فيه تقليداً جامداً مجتهد الوهابية الشوكاني في نيل الاوطار والبوفالي في عون الباری غافلين عما رده به الحنفية وهذا ديدن هؤلاء المدعين للاجتهاد يقلدون المقلدين في الغلط المبين ويحرمون تقليد الائمة المجتهدين ۱۲ منہ (م)

[دایاں کالم (اردو)]: اس میں ان کی تقلید جامد کی ہے مجتہد وہابیہ شوکانی نے نیل الاوطار میں اور بھوپالی نے عون الباری میں۔ اور اس کلام سے غافل رہے جس کے ذریعے حنفیہ نے اس جواب کو رد کر دیا ہے۔ یہی ان مدعیانِ اجتہاد کی عادت ہے کہ کھلی ہوئی غلط باتوں میں مقلدین کی تقلید کرتے ہیں اور ائمہ مجتہدین کی تقلید کو حرام ٹھہراتے ہیں ۱۲ منہ (ت)

[حواشی] 1 شرح الزرقاني على المواهب بحواله واحدى النوع الرابع فی صلوته الخ دارالمعرفة بيروت 1/ 87 2 فتح الباری بحوالہ الکرمانی باب الصفوف على الجنازه مصطفی البابی مصر 3/ 332 3 فتح الباری شرح بخاری باب الصفوف على الجنازه مصطفی البابی مصر 3/ 332

Fatawa Razawiya, Volume 9

(Arabic Text)	(Urdu Explanation)
ان الجنازة قدامنا كما قدمنا اما حديث مجمع بن جارية رضى الله تعالى عنه فصففنا خلفه صفين و مانرى شيئاً رواه الطبراني فـ (وهم من نسبه لابن ماجة مغترا بقول الحافظ اصله في ابن ماجة غافلا ان ليس عنده "ومانرى شيئا" و هو المقصود) ففيه حمران بن اعين رافضى ضعيف على ان كلاحكى عن حاله فلاتعارض و لايعقل من عاقل اشتراط ان يرى الميت الكل و الا لما صحت لماعد الصف الاول۔	The funeral prayer of such a person is permissible who is absent from the people but the Imam is seeing him. I say: Furthermore, in the hadith of Imran it is mentioned that "we used to believe that the funeral was present before us" as we have already presented. As for the hadith of Majma' bin Jariyah (may Allah be pleased with him), we formed two rows behind the Holy Prophet (PBUH) and we were not seeing anything; al-Tabarani narrated this. (Whoever gave the reference of Ibn Majah had a misconception; in fact, he was deceived by Ibn Hajar's statement that "its origin is in Ibn Majah" and remained heedless that the words "we were not seeing anything" are not present in Ibn Majah, whereas that is the objective). In it, Hamran bin A'yan is a weak Rafidi. Besides, every narrator has described his own state, therefore there is no contradiction, otherwise no one's prayer would be valid except for the first row. (T)

Thirdly, Najashi (may Allah be pleased with him) passed away in Dar-ul-Kufr (land of disbelief) where his funeral prayer was not performed, therefore the Holy Prophet (may peace and blessings of Allah be upon him) performed it here. Based on this, Imam Abu Dawood established this chapter for this hadith in his Sunan:

(Arabic Text)	(Urdu Explanation)
الصلوة على مسلم يليه اهل شرك في بلد آخر3۔	Funeral prayer of such a Muslim in another city near whom there are only people of polytheism. (T)

F: In Mu'jam al-Kabir, under the ahadith of Majma' bin Jariyah, with reference to Ibn Abi Shaybah, the words are: "So we lined up behind him in two rows". In this, the words "and we did not see anything" are not present. See Mu'jam al-Kabir hadith 1086, Vol. 19, p. 246. - Nazir Ahmad

---

1. Sharh al-Zarqani 'ala al-Mawahib, with reference to Imran bin Husain, fourth type regarding his prayer etc., Dar al-Ma'rifah Beirut, 7/178.

2. Sharh al-Zarqani 'ala al-Mawahib, with reference to Tabarani, fourth type regarding his prayer etc., Dar al-Ma'rifah Beirut, 7/178; Fath al-Bari Sharh al-Bukhari, chapter on Prayer over the Funeral, Mustafa al-Babi Egypt, 3/434.
3. Sunan Abi Dawood, chapter on Prayer over a Muslim who dies in the land of polytheism, Aftab-e-Alam Press Lahore, 2/101.

फतावा रज़विया, खंड 9

(अरबी पाठ)

ان الجنازة قدامنا كما قدمنا اما حديث مجمع بن جارية رضى الله تعالى عنه فصففنا خلفه صفين و مانرى شيئاً رواه الطبراني فـ (وهم من نسبه لابن ماجة مغترا بقول الحافظ اصله في ابن ماجة غافلا ان ليس عنده "ومانرى شيئا" و هو بن اعين المقصود) ففيه حمر رافضى ضعيف على ان كلاحكى عن حاله فلاتعارض و لايعقل من عاقل اشتراط ان يرى الميت الكل و الا لما صحت لماعد الصف الاول۔

(उर्दू स्पष्टीकरण)

ऐसे व्यक्ति की नमाज़-ए-जनाज़ा जायज़ है जो लोगों से ओझल हो और इमाम उसे देख रहा हो। मैं कहता हूँ: इसके अलावा इमरान की हदीस में यह है कि 'हम यही विश्वास करते थे कि जनाज़ा हमारे सामने मौजूद है' जैसा कि हम पहले बता चुके हैं। जहाँ तक मजमा' बिन जारिया (रज़ियल्लाहु अन्हु) की हदीस की बात है, हमने नबी (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) के पीछे दो सफ़ें बनाईं और हम कुछ नहीं देख रहे थे; इसे तबरानी ने रिवायत किया है। (जिसने इब्न माजा का हवाला दिया उसे भ्रम हुआ, वास्तव में वह इब्न हजर के इस बयान से कि 'इसका मूल इब्न माजा में है' धोखे में आ गया और इस बात से बेखबर रहा कि इब्न माजा में यह शब्द 'हम कुछ नहीं देख रहे थे' मौजूद नहीं है, जबकि वही उद्देश्य है)। इसमें हमरान बिन अयन एक कमज़ोर राफ़िज़ी है। इसके अलावा, हर रावी ने अपनी स्थिति बताई है, इसलिए कोई विरोध नहीं है, अन्यथा पहली सफ़ के अलावा किसी की नमाज़ ही नहीं होगी। (त)

तीसरा, नजाशी (रज़ियल्लाहु अन्हु) का निधन दार-उल-कुफ़्र (काफ़िरों के देश) में हुआ था, वहाँ उनकी नमाज़ नहीं हुई थी, इसलिए हुज़ूर अकदस (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने यहाँ पढ़ी। इसी आधार पर इमाम अबू दाऊद ने अपनी सुनन में इस हदीस के लिए यह अध्याय बनाया:

(अरबी पाठ)

الصلوة على مسلم يليه اهل شرك في بلد آخر3۔

(उर्दू स्पष्टीकरण)

दूसरे शहर में ऐसे मुस्लिम की नमाज़ जिसके पास केवल मुशरिक (मूर्तिपूजक) हों। (त)

फ: मुअजम कबीर में मजमा' बिन जारिया की हदीसों के तहत इब्न अबी शैबा के हवाले से शब्द इस प्रकार हैं: "हमने उनके पीछे दो सफ़ें बनाईं"। इसमें "और हम कुछ नहीं देख रहे थे" शब्द नहीं हैं। मुअजम कबीर हदीस 1086, खंड 19, पृष्ठ 246 देखें। - नज़ीर अहमद

1. शरह अल-ज़रकानी अलल मवाहिब, इमरान बिन हुसैन के हवाले से, चौथा प्रकार उसकी नमाज़ आदि में, दारुल मारिफा बेरूत, 7/178.
2. शरह अल-ज़रकानी अलल मवाहिब, तबरानी के हवाले से, चौथा प्रकार उसकी नमाज़ आदि में, दारुल मारिफा बेरूत, 7/178; फ़तह अल-बारी शरह अल-बुखारी, जनाज़ा की नमाज़ का अध्याय, मुस्तफा अल-बाबी मिस्र, 3/434.
3. सुनन अबू दाऊद, मुशरिकों के देशों में मरने वाले मुस्लिम की नमाज़ का अध्याय, आफ़ताब-ए-आलम प्रेस लाहौर, 2/101.

(عربی متن) **(اردو وضاحت)**

ان الجنازة قدامنا کما قدمنا اما حدیث مجمع بن جاریة رضی اللہ تعالی عنه فصففنا خلفه صفین و مانری شیئاً رواه الطبراني فـ (وهم من نسبه لابن ماجة مغترا بقول الحافظ اصله في ابن ماجة غافلا ان لیس عنده "ومانری شیئا" و هو المقصود) ففیه علی ان کلاحکی عن حاله فلاتعارض و لایعقل من عاقل اشتراط ان یری المیت الکل و الا لما صحت لماعد الصف الاول۔

ایسے کی نماز جنازہ جائز ہے جو لوگوں سے غائب ہو اور امام اسے دیکھ رہا ہو۔ اقول: علاوہ ازیں حدیث عمران میں یہ ہے کہ "ہم یہی اعتقاد کرتے تھے کہ جنازہ ہمارے آگے موجود ہے" جیسا کہ ہم پیش کر چکے۔ رہی مجمع بن جاریہ رضی اللہ تعالٰی عنہ کی حدیث، ہم نے حضور کے پیچھے دو صفیں لگائیں اور ہم کچھ نہ دیکھ رہے تھے اسے طبرانی نے روایت کیا (جس نے ابن ماجہ کا حوالہ دیا اُسے وہم ہوا، دراصل ابن حجر کی اس عبارت سے کہ "اس کی اصل ابن ماجہ میں ہے" وہ فریب خوردہ ہو گیا اور اس سے غافل رہا کہ ابن ماجہ میں یہ لفظ "ہم کچھ نہ دیکھ رہے تھے" موجود نہیں جبکہ وہی مقصود ہے) اس میں حمران بن اعین رافضی ضعیف ہے۔ علاوہ ازیں ہر راوی نے اپنا حال بیان کیا ہے، اس لئے کوئی تعارض نہیں، ورنہ پہلی صف کے علاوہ کسی کی نماز ہی نہ ہو۔ (ت)

ثالثاً نجاشی رضی اللہ تعالٰی عنہ کا انتقال دارالکفر میں ہوا وہاں ان پر نماز نہ ہوئی تھی لہذا حضور اقدس صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم نے یہاں پڑھی۔ اسی بنا پر امام ابو داؤد نے اپنی سنن میں اس حدیث کے لئے یہ باب وضع کیا:

(عربی متن) **(اردو وضاحت)**

الصلوۃ علی مسلم یلیه اهل شرك في دوسرے شہر میں ایسے مسلم کی نماز جس کے قریب صرف بلد آخر3۔ اہل شرک ہیں۔ (ت)

ف: معجم کبیر میں مجمع بن جاریہ کی احادیث کے تحت بحوالہ ابن ابی شیبہ کے الفاظ یوں ہیں: "فصففنا خلفہ صفین" اس میں "وما نری شیئا" کے الفاظ نہیں ہیں۔ ملاحظہ ہو معجم کبیر حدیث ۱۰۸۶ جلد ۱۹ ص ۲۴۶۔ نذیر احمد

---

1. شرح الزرقانی علی مواہب بحوالہ عمران بن حصین النوع الرابع فی صلوتہ الخ دارالمعرفۃ بیروت ۷/ ۱۷۸
2. شرح الزرقانی علی مواہب بحوالہ طبرانی النوع الرابع فی صلوتہ الخ دارالمعرفۃ بیروت ۷/ ۱۷۸ ، فتح الباری شرح البخاری باب الصلوۃ علی الجنازۃ مصطفی البابی مصر ۳/ ۴۳۴
3. سنن ابی داؤد باب الصلوۃ علی المسلم یموت فی بلاد شرک آفتاب عالم پریس لاہور ۲/ ۱۰۱

Fatawa Razawiyya Volume 9

Al-Hafiz said in al-Fath: "This is possible, except that I have not found in any of the reports that no one prayed over him in his city." (End quote). Al-Zarqani said: "This is a shared obligation, for it has not been narrated in reports that anyone prayed over him in his city, as Abu Dawud asserted; his position regarding the breadth of memory is well-known." (End quote). I say: That is, he has spared us the trouble with his saying 'this is possible'. Then I say: There is an indication of this in what Ahmad and Ibn Majah narrated from Hudhayfah ibn Asid (may Allah be pleased with him) that the Prophet (may Allah bless him and grant him peace) went out with them and said: "Pray for a brother of yours who died in a land other than yours." They said: "Who is he?" He said: "Najashi." Then I saw it in the Musnad of Abu Dawud al-Tayalisi.

Then I saw that al-Shawkani mentioned it from the leader of his corrupt school of thought, Ibn Taymiyyah, that he chose the detailed view that funeral prayer over the absent is permissible if prayer was not offered over him where he died, otherwise it is not. He said: "And he cited as evidence for it what was narrated by al-Tayalisi, Ahmad, Ibn Majah, Ibn Qani', al-Tabarani, and al-Diya', and he mentioned the hadith." I say: As for seeking support (istinas), then yes. But as for it being an authoritative proof for it, then no, as is clear. 12 (m)

1. Fath al-Bari Sharh al-Bukhari, Chapter on Rows for Funeral Prayer, Mustafa al-Babi Egypt 3/432.
2. Sharh al-Zarqani 'ala al-Mawahib, the fourth type, Dar al-Ma'rifah Beirut 8/87.
3. Sunan Ibn Majah, Chapter on what has come regarding prayer over Najashi, H.M. Saeed Company Karachi, p. 111.
4. Nayl al-Awtar by al-Shawkani, Prayer over the absent with intention, Mustafa al-Babi Egypt 2/57.

फ़तावा रज़विया खंड 9

अल-हाफ़िज़ ने अल-फ़तह में कहा: "यह संभव है, सिवाय इसके कि मुझे किसी भी रिपोर्ट में ऐसा नहीं मिला कि उनके शहर में किसी ने भी उन पर नमाज़ नहीं पढ़ी।" (अंत)। अल-ज़रकानी ने कहा: "यह दायित्व दोनों ओर से साझा है, क्योंकि रिपोर्टों में यह उल्लेख नहीं किया गया है कि उनके शहर में किसी ने उन पर नमाज़ पढ़ी थी, जैसा कि अबू दाऊद ने दृढ़तापूर्वक कहा था; स्मृति की व्यापकता के संबंध में उनका स्थान ज्ञात है।" (अंत)। मैं कहता हूँ: अर्थात, उन्होंने 'यह संभव है' कहकर हमारा बोझ हल्का कर दिया। फिर मैं कहता हूँ: इसका कुछ संकेत उस रिवायत में मिलता है जिसे इमाम अहमद और इब्न माजा ने हुज़ैफ़ा बिन असैद (अल्लाह उन पर प्रसन्न हो) से रिवायत किया है कि पैगंबर (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) लोगों के साथ बाहर आए और फरमाया: "अपने एक ऐसे भाई की नमाज़ (जनाज़ा) पढ़ो जिसकी मृत्यु तुम्हारे देश के अलावा किसी और देश में हुई है।" उन्होंने पूछा: "वह कौन है?" फरमाया: "नजाशी।" फिर मैंने इसे मुसनद अबू दाऊद अत-तायालिसी में देखा।

फिर मैंने देखा कि अल-शौकानी ने अपने भ्रष्ट पंथ के नेता इब्न तैमिया के हवाले से उल्लेख किया है कि उन्होंने यह विस्तृत दृष्टिकोण अपनाया कि ग़ायब (अनुपस्थित) की नमाज़-ए-जनाज़ा जायज़ है यदि वहाँ नमाज़ न पढ़ी गई हो जहाँ उनका निधन हुआ हो, अन्यथा जायज़ नहीं है। उन्होंने कहा: "और इसके प्रमाण में उन्होंने वह हदीस पेश की जिसे अत-तायालिसी, अहमद, इब्न माजा, इब्न काने, तबरानी और ज़िया ने रिवायत किया है।" मैं कहता हूँ: जहाँ तक समर्थन (इस्तिनास) की बात है, तो हाँ। लेकिन जहाँ तक इसके प्रमाण होने की बात है, तो ऐसा नहीं है, जैसा कि स्पष्ट है। 12 (त)

1. फ़तह अल-बारी शरह अल-बुखारी, जनाज़ा के लिए सफ़ों का अध्याय, मुस्तफ़ा अल-बाबी मिस्र 3/432.
2. शरह अल-ज़रकानी अली अल-मवाहिब, चौथा प्रकार, दार अल-मआरिफ़ा बेरूत 8/87.
3. सुनन इब्न माजा, नजाशी पर नमाज़ के बारे में जो आया है उसका अध्याय, एच.एम. सईद कंपनी कराची, पृ. 111.
4. नील अल-अवतार लिल-शौकानी, नीयत के साथ ग़ायब पर नमाज़, मुस्तफ़ा अल-बाबी मिस्र 2/57.

पृष्ठ 352/948

قال الحافظ فی الفتح هذا محتمل الا انی لم اقف فی شیئ من الاخبار علی انه لم یصل علیه فی بلده احد ۱۱ھ حافظ ابن حجر نے فتح الباری میں کہا یہ احتمال تو ہے مگر کسی حدیث میں یہ اطلاع میں نے نہ پائی کہ نجاشی کے اہل شہر میں سے کسی نے ان کی نماز جنازہ نہ پڑھی اھ قال الزرقانی وھو مشترك الالزام فلم یرو فی الاخبار انه صلی علیه احد فی بلده کما جزم به ابو داؤد محله فی اتساع الحفظ معلوم ۱۲ھ علامہ زرقانی نے لکھا: یہ الزام دونوں طرف سے مشترک ہے کیونکہ کسی حدیث میں یہ بھی مروی نہیں کہ ان کے اہل شہر میں سے کسی نے ان کی نماز جنازہ پڑھی تھی۔ جیسا کہ ابوداؤد نے اس پر جزم کیا ہے اور وسعت حفظ میں ان کا مقام معلوم ہے اھ اقول: ای فقد کفانا المؤنة بقوله هذا محتمل ثم اقول: قد یومی له ما اخرج احمد وابن ماجة عن حذیفة بن اسید رضی اللہ تعالی عنه ان النبی صلی اللہ تعالی علیه وسلم خرج بهم فقال صلوا علی اخ لکم مات بغیر ارضکم قالوا من هو قال النجاشی ۳ ثم رأیته عـ هـ فی مسند ابی داؤد الطیالسی اقول: یعنی یہ احتمال مان کر ہمارا بوجھ انہوں نے خود ہی اتار دیا، ثم اقول: اس کا کچھ اشارہ اس سے ملتا ہے جو امام احمد اور ابن ماجہ نے حذیفہ بن اسید رضی اللہ تعالیٰ عنہ سے روایت کی ہے کہ نبی اکرم صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم لوگوں کو لے کر باہر آئے پھر فرمایا: اپنے ایک بھائی کی۔

عـ هـ: ثم رأیت الشوکانی ذکره عن شیخ مذهبه الفاسد ابن تیمیة انه اختار التفصیل بجواز الصلوة علی الغائب ان لم یصل علیه حیث مات والا لا قال واستدل له بما اخرجه الطیالسی واحمد وابن ماجة وابن قانع والطبرانی والضیاء ٤ فذکر الحدیث اقول: اما الاستئناس فنعم واما کونه دلیلا علیه حجة فیه فلا کما لا یخفی ۱۲ منہ (م) پھر میں نے دیکھا کہ شوکانی نے اپنے فاسد مذہب کے پیشوا ابن تیمیہ سے متعلق ذکر کیا اس نے یہ تفصیل اختیار کی ہے کہ غائب کی نماز جائز ہے اگر وہاں اس کی نماز نہ

ہوئی ہو جہاں انتقال کیا ورنہ جائز نہیں۔ اور کہا کہ اس پر دلیل میں وہ حدیث پیش کی ہے جو طیالسی، امام احمد، ابن ماجہ، ابن قانع، طبرانی اور ضیاء نے روایت کی پھر حدیث بالا ذکر کی اقول: اس حدیث سے رائے مذکور پر استئناس تو ہورہا ہے مگر یہ کہ اس پر یہ دلیل اور اس بارے میں حجت ہو تو ایسا نہیں جیسا کہ واضح ہے، ۱۲منہ (ت)

۱ فتح الباری شرح البخاری باب الصفوف علی الجنازۃ مصطفٰی البابی مصر ۳/ ۴۳۲ ۲ شرح الزرقانی علی المواہب النوع الرابع دارالمعرفۃ بیروت ۸/ ۸۷ ۳ سنن ابن ماجہ باب ماجاء فی الصلوۃ علی النجاشی ایچ ایم سعید کمپنی کراچی ص ۱۱۱ ٤ نیل الاوطار للشوکانی الصلوۃ علی الغائب بالنیۃ مصطفٰی البابی مصر ۲/ ۵۷

Fatawa Ridawiyya, Volume 9

[Arabic Boxed Text]: It was narrated by Al-Muthanna ibn Sa'id from Qatadah from Abu Tufayl from Hudhayfah ibn Asid that news of the death of the Negus (Najashi) reached the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him). He said: "Verily your brother has passed away in a land other than yours, so stand up and offer prayers for him." This strengthens the deduction because of the presence of the conjunction 'fa' (so/then) in 'faqumu' (so stand). (T)

[Urdu Boxed Text]: Offer the prayer for the one who passed away in a land other than yours. People asked: Who is he? He replied: "Najashi." Then I saw it in Musnad Abu Dawood Tayalisi; they said: Muthanna bin Sa'id narrated the hadith to us from Qatadah, from Abu al-Tufayl, from Hudhayfah bin Asid that the news of the death of Najashi reached the Holy Prophet (peace and blessings of Allah be upon him). He said: "Your brother has passed away in a land other than yours, so get up and pray for him." This narration strengthens the deduction because it contains 'fa' (so) in 'faqumu' (so stand). (T)

[Main Text]: Therefore, Abu Sulayman al-Khattabi, a scholar of the Shafi'i school, adopted the stance that funeral prayer in absentia is not permissible except in the specific case where the person died in a place where no one prayed over him. I say (Aqool): Still, there is no choice but to accept the uniqueness of the case of Negus, especially since other deaths occurred under similar circumstances and yet the funeral prayer in absentia was not offered for anyone else.

Fourthly, some (A) had doubts about his conversion to Islam, even to the extent that some said: "He offered prayers for a disbeliever of Abyssinia."

[Second Arabic Boxed Text]: Narrated by Ibn Abi Hatim in the Tafsir from Thabit, and al-Daraqutni in al-Afrad, and al-Bazzar from Humayd, both from Anas. It has a supporting narration (shahid) in al-Tabarani's al-Kabir from Wahshi, and in his al-Awsat from Abu Sa'id (may Allah be pleased with them).

[Second Urdu Boxed Text]: Ibn Abi Hatim narrated it in Tafsir from Thabit, Al-Daraqutni in Afrad, and Al-Bazzar in Musnad from Humayd; both narrated it from Hazrat Anas. And this hadith has a witness in Tabarani Kabir from Hazrat Wahshi and in Mu'jam-ul-Awsat from Hazrat Abu Sa'id (may Allah be pleased with them). (T)

The purpose of this prayer was to publicize his conversion to Islam. I say (Aqool): i.e., the verbal statement is stronger, hence he went to the prayer place so that a large congregation could gather.

(A): In the narration of Tabarani, it is mentioned that the person who said this was a hypocrite. (M)

Footnotes: 1. Musnad Abu Dawood al-Tayalisi, Hadith 1068, Dar al-Ma'rifah Beirut, 2/124. 2. Fath al-Bari, citing Ibn Abi Hatim, al-Daraqutni, and al-Bazzar, Chapter: Rows for Funeral Prayer, Mustafa al-Babi Egypt, 3/431. 3. Fath al-Bari, citing Ibn Baziza, al-Daraqutni, and al-Bazzar, Chapter: Rows for Funeral Prayer, Mustafa al-Babi Egypt, 3/431. 4. Fath al-Bari, citing al-Tabarani al-Awsat, Chapter: Rows for Funeral Prayer, Mustafa al-Babi Egypt, 3/431.

फ़तावा रज़विया, जिल्द नवीं

[अरबी बॉक्स टेक्स्ट]: अल-मुथन्ना इब्न सईद ने क़तादा से, उन्होंने अबू तुफैल से और उन्होंने हुज़ैफा इब्न असिद से रिवायत की है कि नबी (सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम) के पास नजाशी की वफ़ात की ख़बर आई। आपने फ़रमाया: "बेशक तुम्हारा भाई तुम्हारी सरज़मीन के अलावा किसी और ज़मीन में फ़ौत हो गया है, तो खड़े हो जाओ और उस पर नमाज़ पढ़ो।" यह रिवायत इस्तिनास (अनुमान) को मज़बूती देती है क्योंकि 'फ़क़ुमु' (तो खड़े हो जाओ) में 'फ़ा' (तो/अतः) का प्रयोग हुआ है। (त)

[उर्दू बॉक्स टेक्स्ट]: नमाज़ अदा करो जो तुम्हारी सरज़मीन के अलावा में फ़ौत हुआ। लोगों ने अर्ज़ किया: वह कौन है? फ़रमाया: नजाशी, फिर मैंने इसे मुसनद अबु दाऊद त़यालिसी में देखा, उन्होंने कहा हमसे मुसन्नी बिन सईद ने हदीस बयान की, वह क़तादा से वह अबू अल्-तुफ़ैल से वह हुज़ैफ़ा बिन असैद से रावी हैं कि नबी करीम सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम के पास नजाशी की वफ़ात की ख़बर आई तो फ़रमाया: तुम्हारा भाई तुम्हारी सरज़मीन के अलावा में इन्तेक़ाल कर गया, तो उठो उसकी नमाज़ पढ़ो। यह रिवायत इस्तिनास को क़ुव्वत दे रही है इसलिए कि इसके अन्दर फ़क़ूमू (तो उठो) में फ़ा (तो) है (त)।

[मुख्य टेक्स्ट]: लिहाज़ा खुद इमाम शाफ़ई मज़हब अबू सुलैमान ख़त्ताबी ने यह मसलक लिया कि ग़ायब पर नमाज़ जायज़ नहीं सिवाय उस विशेष सूरत के कि उसका इन्तेक़ाल ऐसी जगह हुआ हो जहाँ किसी ने उसकी नमाज़ न पढ़ी हो। अक़ूल (मैं कहता हूँ): अब भी नजाशी की विशिष्टता मानने के अलावा कोई चारा नहीं होगा, जबकि अन्य मौतें भी ऐसी हुईं और ग़ायबाना नमाज़ किसी पर नहीं पढ़ी गई।

चौथा, कुछ (अ) को उनके इस्लाम में संदेह था यहाँ तक कि कुछ ने कहा: "हबशा के एक काफ़िर पर नमाज़ पढ़ी गई।"

[दूसरा अरबी बॉक्स टेक्स्ट]: इब्ने अबी हातिम ने तफ़सीर में साबित से, दार क़ुत्नी ने अफ़राद में और बज़्ज़ार ने हमीद से, इन दोनों ने अनस से इसे रिवायत किया। त़बरानी कबीर में हज़रत वह्शी से और औसत में हज़रत अबू सईद से इसका एक शाहिद (गवाह रिवायत) मौजूद है (अल्लाह उन सब से राज़ी हो)।

[दूसरा उर्दू बॉक्स टेक्स्ट]: इसे इब्ने अबी हातिम ने तफ़सीर में साबित से, दार क़ुत्नी ने अफ़राद में और बज़्ज़ार ने मुसनद में हमीद से, दोनों हज़रात ने हज़रत अनस से रिवायत किया, और इस हदीस की एक शाहिद त़बरानी कबीर में हज़रत वह्शी से और मजमा-उल-औसत में हज़रत अबू सईद से है रज़ियल्लाहु तआला अन्हुम (त)।

इस नमाज़ से मक़सद उनके इस्लाम का प्रचार था। अक़ूल: यानी क्रियात्मक बयान अधिक प्रभावी होता है, इसीलिए आप नमाज़ की जगह (मुसल्ला) तशरीफ़ ले गए ताकि बड़ी जमाअत जमा हो।

(अ): त़बरानी की रिवायत में है कि ऐसा कहने वाला एक मुनाफ़िक़ (पाखंडी) था। (म)

पाद-टिप्पणियाँ: 1. मुसनद अबू दाऊद अल-त़यालिसी, हदीस 1068, दार अल-मारिफ़ा बेरुत, 2/124. 2. फ़तह अल-बारी, हवाले से इब्न अबी हातिम, अल-दार क़ुत्नी और अल-बज़्ज़ार, अध्याय: जनाज़े की सफ़ें, मुस्तफ़ा अल-बाबी मिस्र, 3/431. 3. फ़तह अल-बारी, हवाले से इब्न बज़ीज़ा, अल-दार क़ुत्नी और अल-बज़्ज़ार, अध्याय: जनाज़े की सफ़ें, मुस्तफ़ा अल-बाबी मिस्र, 3/431. 4. फ़तह अल-बारी, हवाले से त़बरानी औसत, अध्याय: जनाज़े की सफ़ें, मुस्तफ़ा अल-बाबी मिस्र, 3/431.

فتاوی رضویہ جلد نہم

قال حدثنا المثنی بن سعید عن قتادة عن ابی طفیل عن حذیفة بن اسیدان النبي صلی اللہ تعالی علیه وسلم اتاه موت النجاشي فقال ان اخاکم مات بغیر ارضکم فقوموافصلوا علیه فهذا یقوی الاستئناس لمکان الفاء في فقوموا۔ (ت) نماز ادا کرو جو تمہاری سرزمین کے علاوہ میں فوت ہوا۔ لوگوں نے عرض کیا: وہ کون ہے؟ فرمایا: نجاشی، پھر میں نے اسے مسند ابوداؤد طیالسی میں دیکھا، انھوں نے کہا ہم سے مثنی بن سعید نے حدیث بیان کی، وہ قتادہ سے وہ ابو الطفیل سے وہ حذیفہ بن اسید سے راوی ہیں کہ نبی کریم صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کے پاس نجاشی کی وفات کی خبر آئی تو فرمایا: تمہارا بھائی تمہاری سرزمین کے علاوہ میں انتقال کر گیا، تو اٹھو اس کی نماز پڑھو یہ روایت استیناس کو قوت دے رہی ہے اس لیے کہ اس کے اندر فقوموا (تو اٹھو) میں فا (تو) ہے (ت)۔

ولہذا خود امام شافعی المذہب ابو سلیمان خطابی نے یہ مسلک لیا کہ غائب پر نماز جائز نہیں سوا اس صورت خاص کے کہ اس کا انتقال ایسی جگہ ہوا ہو جہاں کسی نے اس کی نماز نہ پڑھی ہو۔ اقول اب بھی خصوصیت نجاشی ماننے سے چارہ نہ ہوگا، جبکہ اور موتیں بھی ایسی ہوئیں اور نماز غائب کسی پر نہ پڑھی گئی۔ رابعاً بعض ع کو ان کے اسلام میں شبہ تھا یہاں تک کہ بعض نے کہا: حبشہ کے ایک کافر پر نماز پڑھی۔ رواہ ابن ابی حاتم فی التفسیر عن ثابت والدار قطنی فی الافراد والبزار عن حمید معاً عن انس وله شاهد فی کبیر الطبرانی عن وحشی و اوسطه عن ابی سعید رضی اللہ تعالی عنهم۔ اسے ابن ابی حاتم نے تفسیر میں ثابت سے، دار قطنی نے افراد میں اور بزار نے مسند میں حمید سے، دونوں حضرات نے حضرت انس سے روایت کیا، اور اس حدیث کی ایک شاہد طبرانی کبیر میں حضرت وحشی سے اور معجم اوسط میں حضرت ابوسعید سے ہے رضی اللہ تعالیٰ عنہم (ت)۔ اس نماز سے مقصود ان کی اشاعت اسلام تھی۔ اقول: یعنی بیان بالفعل اقوی ہے

ولہذا مصلی میں تشریف لے گئے کہ جماعت کثیر ہو۔ عہ: روایت طبرانی میں ہے اس کا قائل ایک منافق تھا ۱۲ منہ (م)

1 مسند ابوداؤد الطیالسی حدیث ۱۰۶۸دار المعرفۃ بیروت ۲/ ۱۲۴ 2 فتح الباری بحوالہ ابن ابی حاتم والدار قطنی والبزار باب الصفوف علی الجنازۃ مصطفی البابی مصر ۳/ ۴۳۱ 3 فتح الباری بحوالہ ابن بزیزہ والدار قطنی والبزار باب الصفوف علی الجنازۃ مصطفی البابی مصر ۳/ ۴۳۱ 4 فتح الباری بحوالہ طبرانی اوسط باب الصفوف علی الجنازۃ مصطفی البابی مصر ۳/ ۴۳۱

Fatawa Razawiya, Volume 9

[Arabic Quote]: Ibn Bazizah and others from the Shafi'is who advocate for the permissibility of funeral prayers in the mosque stated this, arguing that the lack of the Prophet (peace be upon him) performing prayers in the mosque despite being there when he announced his death, does not imply prohibition. Do not overlook that 'Al-Tiraz Al-Mu'allam' refers to the first two.

[Urdu Explanation]: Ibn Bazizah and other Shafi'is, who believe that funeral prayer in the mosque is permissible, said this. They argue that when the Holy Prophet (peace be upon him) was informed of the passing of Negus (Najashi), he was present in the mosque at that time, but he went outside for the funeral. The reason given by these gentlemen is that the aim was to declare his acceptance of Islam through a large congregation. (We have made four comments on this incident, but) bear in mind that the status of 'gold-engraved inscriptions' belongs only to the first two. (T)

Warning: The Bhopali Imam of the non-conformists stated regarding the Hadith of Najashi in 'Aun al-Bari' that it proves prayer for an absent person is permissible, even if the funeral is not in the direction of the Qibla while the prayer is facing the Qibla.

I say (Aqool): This is blind imitation by this claimant of Ijtihad and evidence of his extreme ignorance. The funeral of Najashi was in Abyssinia (Habshah), and Abyssinia is to the south of Medina Tayyiba. The Qibla of Medina Tayyiba is also towards the south. So how was the funeral not in the direction of the Qibla?

[Arabic Quote]: Therefore, when Al-Hafiz [Ibn Hajar] quoted in 'Al-Fath' the statement of Ibn Hibban that it is only permissible for those in the direction of the Qibla, he said: His argument is restricted to the story of Najashi. (End)

[Urdu Explanation]: When Hafiz Ibn Hajar quoted this statement of Ibn Hibban in 'Fath al-Bari'—that the funeral prayer for an absent person can only be held if they are in the direction of the Qibla—he commented: Their evidence is based solely on the incident of Najashi. (End) (T)

Thus, the ignorance of this 'Mujtahid' sir is a spectacle, as he does not even know the direction of the Qibla. Furthermore, the claim that the Prophet (peace be upon him) offered their funeral prayer while they were in a direction other than the Qibla is a second level of ignorance. It is clearly stated in the Hadith that the Holy Prophet prayed facing the direction of Abyssinia. Narrated by al-Tabarani from Hudhayfah bin

Asid (may Allah be pleased with him). (Al-Tabarani narrated it from Hudhayfah bin Asid (may Allah be pleased with him). T)

Second incident: Muawiyah bin Muawiyah al-Muzani (may Allah be pleased with him) passed away in Medina Tayyiba. The Messenger of Allah (peace be upon him) offered prayers for him while in Tabuk.

Footnotes: 1. Fath al-Bari, citing Ibn Bazizah, Chapter: Rows for Funerals, Mustafa al-Babi Egypt, 3/431. 2. Majma' al-Kabir, narrated from Hudhayfah bin Asid, Hadith 3048, Maktaba Fayzalia Beirut, 9/179.

फ़तावा रज़विया, जिल्द नहम

[अरबी उद्धरण]: इब्न बज़ीज़ा और अन्य शाफ़ई फ़कीहों ने कहा है जो मस्जिद में जनाज़े की नमाज़ के जवाज़ के क़ायल हैं, यह दलील देते हुए कि मस्जिद में नबी (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) की नमाज़ न होना इस बावजूद कि जब उन्होंने उसकी मौत की खबर दी तो वह वहीं थे...

[उर्दू विवरण]: यह इब्न बज़ीज़ा वगैरह शाफ़ईया ने कहा जो इसके क़ायल हैं कि मस्जिद में नमाज़-ए-जनाज़ा जायज़ है, और हुज़ूर सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम ने जब रहलत-ए-नजाशी की इत्तिला दी तो उस वक़्त मस्जिद ही में तशरीफ़ फ़रमा थे मगर जनाज़े के लिए बाहर तशरीफ़ ले गए। इसकी इल्लत इन हज़रात ने यह बताई कि इससे मक़सूद तकसीर-ए-जमाअत के ज़रिया उनके इस्लाम का ऐलान करना था। (इस वाक़ये पर हमने चार कलाम किए मगर) ख़याल रहे कि नक़्श-ए-ज़रनिगार की हैसियत सिर्फ़ पहले दो को हासिल है। (त)

तन्बीह: ग़ैर मुक़ल्लिदों के भोपाली इमाम ने 'औनुल बारी' में हदीस-ए-नजाशी की निस्बत कहा, इससे साबित हुआ कि ग़ायब पर नमाज़ जायज़ है अगरचे जनाज़ा ग़ैर जेहत-ए-क़िबला में हो और नमाज़ क़िबला रू।

अक़ूल (मैं कहता हूँ): यह इस मुद्दई-ए-इज्तिहाद की कोराना तक़लीद और इसके इदआ पर मुस्बत जहल-ए-शदीद है, नजाशी का जनाज़ा हबशा में था और हबशा मदीना तय्यबा से जानिब-ए-जुनूब है और मदीना तय्यबा का क़िबला जुनूब ही को है तो जनाज़ा ग़ैर जेहत-ए-क़िबला को कब था।

[अरबी उद्धरण]: ला जरम... जब हाफ़िज़ ने अल-फ़तह में इब्न हिब्बान का क़ौल नक़ल किया कि यह केवल उनके लिए जायज़ है जो क़िबला की दिशा में हों, उन्होंने कहा उनकी दलील नजाशी के वाक़ये पर जुमूद है।

[उर्दू विवरण]: जब हाफ़िज़ इब्न हजर ने फ़तह अल-बारी में इब्न हिब्बान का यह क़ौल नक़ल किया कि सिर्फ़ उसी ग़ायब की नमाज़-ए-जनाज़ा हो सकती है जो सम्त-ए-क़िबला में हो तो इस पर कहा कि: उनकी दलील वाक़या-ए-नजाशी पर जुमूद है। (अतः) (त)

तो उन मुजतहिद साहब का जहल क़ाबिल-ए-तमाशा है जिनको सम्त-ए-क़िबला तक मालूम नहीं। फिर नबी सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम का उनके जनाज़े पर नमाज़ उनकी ग़ैर सम्त पढ़ने का

इदआ दूसरा जहल है। हदीस में तसरीह है कि हुज़ूर ने जानिब-ए-हबशा नमाज़ पढ़ी, इसे तबरानी ने हुज़ैफ़ा बिन असैद रज़ियल्लाहु तआला अन्हु से रिवायत किया है। (त)

वाक़या दोम: मुआविया बिन मुआविया मुज़नी रज़ियल्लाहु तआला अन्हु ने मदीना तय्यबा में इंतक़ाल किया। रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम ने तबूक में उन पर नमाज़ पढ़ी।

पादलेख (फुटनोट्स): 1. फ़तह अल-बारी बहवाला इब्न बज़ीज़ा, बाबुल सुफ़ूफ़ अलाल जनाज़ा, मुस्तफ़ा अल-बाबी मिस्र, 3/431. 2. मजमा अल-कबीर मरवी अज़ हुज़ैफ़ा बिन असैद, हदीस 3048, मकतबा फ़ैसलिया बैरूत, 9/179.

فتاوٰی رضویہ، جلد نہم

قاله ابن بزيزة وغيره من الشافعية القائلين بجواز صلوة الجنازة في المسجد معتلين لعدم صلوة صلى الله تعالى عليه وسلم في المسجد مع انه حين نعاه كان فيه هذا ولا يذهب عنك ان الطراز المعلم هما الاولان۔

یہ ابن بزیزہ وغیرہ شافعیہ نے کہا جو اس کے قائل ہیں کہ مسجد میں نماز جنازہ جائز ہے، اور حضور صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم نے جب رحلتِ نجاشی کی اطلاع دی تو اس وقت مسجد ہی میں تشریف فرما تھے مگر جنازہ کیلئے باہر تشریف لے گئے اس کی علت ان حضرات نے یہ بتائی کہ اس سے مقصود تکثیرِ جماعت کے ذریعہ ان کے اسلام کا اعلان کرنا تھا۔ (اس واقعہ پر ہم نے چار کلام کئے مگر) خیال رہے کہ نقشِ زرنگار کی حیثیت صرف پہلے دو کو حاصل ہے۔ (ت)

تنبیہ: غیر مقلدوں کے بھوپالی امام نے عون الباری میں حدیثِ نجاشی کی نسبت کہا، اس سے ثابت ہوا کہ غائب پر نماز جائز ہے اگرچہ جنازہ غیر جہت قبلہ میں ہو اور نماز قبلہ رُؤ۔

اقول: یہ اس مدعی اجتہاد کی کورانہ تقلید اور اس کے ادعا پر مثبت جہلِ شدید ہے، نجاشی کا جنازہ حبشہ میں تھا اور حبشہ مدینہ طیبہ سے جانب جنوب ہے اور مدینہ طیبہ کا قبلہ جنوب ہی کو ہے تو جنازہ غیر جہت قبلہ کو کب تھا۔

لا جرم لما نقل الحافظ في الفتح قول ابن حبان انه انما يجوز ذلك لمن في جهة القبله، قال حجته الجمود على قصة النجاشی 1 اه

جب حافظ ابن حجر نے فتح الباری میں ابن حبان کا یہ قول نقل کیا کہ صرف اسی غائب کی نماز جنازہ ہو سکتی ہے جو سمتِ قبلہ میں تو اس پر کہا کہ: ان کی دلیل واقعہ نجاشی پر جمود ہے اھ (ت)

توان مجتہد صاحب کا جہلِ قابل تماشہ ہے جن کو سمتِ قبلہ تک معلوم نہیں۔ پھر نبی صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کا ان کے جنازہ پر نماز ان کی غیر سمت پڑھنے کا ادعا دوسرا جہل ہے۔ حدیث میں تصریح ہے کہ حضور نے جانبِ حبشہ نماز پڑھی 2 رواہ الطبرانی عن حذیفۃ بن اسید رضی اللہ تعالیٰ عنہ (اسے طبرانی نے حذیفہ بن اسید رضی اللہ تعالیٰ عنہ سے روایت کیا ہے۔ت)

واقعہ دوم: معاویہ بن معاویہ مزنی رضی اللہ تعالیٰ عنہ نے مدینہ طیبہ میں انتقال کیا۔ رسول اللہ صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم نے تبوک میں ان پر نماز پڑھی۔

1 فتح الباری بحوالہ ابن بزیزہ باب الصفوف علی الجنازہ مصطفی البابی مصر ۳/ ۴۳۱ 2 مجمع کبیر مروی از حذیفہ بن اسید حدیث ۳۰۴۸ مکتبہ فیصلیہ بیروت ۹/ ۱۷۹

Firstly, the masters of Hadith such as al-Uqayli, Ibn Hibban, al-Bayhaqi, Abu Imran bin Abd al-Barr, Ibn al-Jawzi, al-Nawawi, al-Dhahabi, Ibn al-Humam, and others declared this Hadith weak. Al-Tabarani narrated it in 'al-Mu'jam al-Awsat' and 'Musnad al-Shamiyyin' from Abu Umamah al-Bahili (may Allah be pleased with him).

Via the route of Nuh bin Amr al-Saksaki from Baqiyyah bin al-Walid

from Muhammad bin Ziyad al-Alhani from Abu Umamah from Muhammad bin Ziyad al-Alhani from Abu Umamah (may Allah be pleased with him).

I say (author): through this route Abu Ahmad al-Hakim narrated it in his 'Fawa'id', al-Khallal in 'Fawa'id Surah al-Ikhlas', and Ibn Abd al-Barr in 'al-Isti'ab', and Ibn Hibban in 'al-Du'afa', and pointed towards it Ibn Mandah.

Its chain is as follows: Nuh bin Amr al-Saksaki said: we

were narrated the Hadith by Baqiyyah bin al-Walid from Muhammad bin Ziyad al-Alhani from Abu Umamah (may Allah be pleased with him).

I say: Abu Ahmad al-Hakim narrated it through this same route in 'Fawa'id', al-Khallal in 'Fawa'id Surah al-Ikhlas', Ibn Abd al-Barr in 'al-Isti'ab', and Ibn Hibban narrated it in 'al-Du'afa', and Ibn Mandah pointed towards the same. (T)

In its chain, Baqiyyah bin al-Walid is a 'Mudallis' (narrator who omits intermediaries) and he used 'An'anah' (narrating with the word 'from'), meaning he didn't explicitly mention hearing it from Muhammad bin Ziyad, but rather said it is a narration from Ibn Ziyad. It is unknown who the actual narrator is!

He declared it defective in 'al-Fath'. I say: but the chain of Abu

Ahmad al-Hakim is like this: Abu al-Hasan Ahmad bin Umayr informed us in Damascus: Nuh bin Amr bin Harra narrated to us: Baqiyyah narrated to us: Muhammad bin Ziyad from Abu Umamah, then he mentioned it.

The researcher in 'Fath al-Qadir' declared it defective based on this.

I say, however, the chain of Abu Ahmad al-Hakim is as follows: we were informed by Abu al-Hasan Ahmad bin Umayr in Damascus, they said Nuh bin Amr bin Harra narrated the Hadith to us, saying: Muhammad bin Ziyad narrated to us, he is the narrator from Abu Umamah, then mentioned the Hadith. -(T)

Al-Dhahabi said that the Hadith is 'Munkar' (denied), and also in its chain is Nuh ibn Amr. Ibn Hibban called him a 'thief of Hadith', meaning a severely weak person used to narrate it from Anas (may Allah be pleased with him), he stole it from him and attributed it to Baqiyyah.

Al-Dhahabi said in the biography of Nuh: Ibn Hibban said: It is said	**Al-Dhahabi wrote in the circumstances of Nuh: "Ibn Hibban stated that '**
that he stole this Hadith. I say:	it is said that he stole this Hadith.' I say:

1. Mizan al-I'tidal, biography number 9139, Nuh bin Amr bin Nuh, Dar al-Ma'rifah Beirut, 4/278.

सबसे पहले, हदीस के उस्तादों जैसे अल-उकैली, इब्न हिब्बान, अल-बैहकी, अबू इमरान बिन अब्दुल बर्र, इब्न अल-जौज़ी, अल-नवावी, अल-धहाबी, इब्न अल-हुमाम और अन्य लोगों ने इस हदीस को कमज़ोर (ज़ईफ़) बताया है। अल-तबरानी ने इसे 'अल-मुअजम अल-औसत' और 'मुसनद अल-शामियीन' में अबू उमामा अल-बाहीली (रज़ियल्लाहु अन्हु) से रिवायत किया है।

नूह बिन अम्र अल-सकसाकी के माध्यम से बक़िय्या बिन अल-वलीद से

मुहम्मद बिन ज़ियाद अल-अलहानी से, उन्होंने अबू उमामा से, उन्होंने मुहम्मद

बिन ज़ियाद अल-अलहानी से, उन्होंने अबू उमामा (रज़ियल्लाहु अन्हु) से।

मैं (लेखक) कहता हूँ: इसी मार्ग से इसे अबू अहमद अल-हाकिम ने अपनी

फ़वाइद में, अल-खल्लाल ने फ़वाइद सूरह अल-इखलास में, और इब्न

अब्दुल बर्र ने अल-इस्तिआब में, और इब्न हिब्बान ने अल-ज़ुआफ़ा में रिवायत किया,

और इब्न मंदा ने इसकी ओर संकेत किया।

इसकी सनद इस प्रकार है: नूह बिन अम्र सकसाकी ने कहा: हम

से हदीस बयान की बक़िय्या बिन वलीद ने, मुहम्मद बिन ज़ियाद

अल-अलहानी से, उन्होंने अबू उमामा (रज़ियल्लाहु अन्हु) से।

मैंने कहा (मैं कहता हूँ): इसी मार्ग से इसे अबू अहमद हाकिम ने

फ़वाइद में, खल्लाल ने फ़वाइद सूरह इखलास में, इब्न अब्दुल बर्र ने

इस्तियाब में, और इब्न हिब्बान ने ज़ुआफ़ा में रिवायत किया, और

उसी की ओर इब्न मंदा ने संकेत किया। (त)

इसकी सनद में बक़िय्या बिन वलीद 'मुदल्लिस' (रावी जो मध्यस्थ को छोड़ देता है) है और उसने 'अन-अना' (शब्द 'से' के साथ रिवायत करना) का प्रयोग किया है, अर्थात उसने स्पष्ट रूप से मुहम्मद बिन ज़ियाद से अपना सुनना बयान नहीं किया, बल्कि कहा कि इब्न ज़ियाद से रिवायत है। यह ज्ञात नहीं है कि रावी कौन है!

'अल-फ़तह' में इसे दोषपूर्ण ठहराया गया। मैं कहता हूँ: लेकिन अबू

अहमद अल-हाकिम की सनद इस प्रकार है: हमें अबुल हसन अहमद बिन उमैर ने दमिश्क में ख़बर दी: हमसे नूह बिन अम्र बिन हर्रा ने हदीस बयान की: बक़िय्या ने हमसे हदीस बयान की: मुहम्मद बिन ज़ियाद ने अबू उमामा से, फिर उसे ज़िक्र किया।

हज़रत मुहक़्क़िक़ ने 'फ़तह अल-क़दीर' में इसी आधार पर इसे दोषपूर्ण (महलूल) ठहराया।

मैं कहता हूँ, मगर अबू अहमद हाकिम की सनद इस प्रकार है: हमें ख़बर दी अबुल हसन अहमद बिन उमैर ने दमिश्क में, उन्होंने कहा हमसे हदीस बयान की नूह बिन अम्र बिन हर्रा ने, कहा हमसे हदीस बयान की मुहम्मद बिन ज़ियाद ने, वह अबू उमामा से रावी हैं, इसके बाद हदीस ज़िक्र की। -(त)

धहाबी ने कहा कि हदीस 'मुनकर' (अस्वीकार्य) है, साथ ही इसकी सनद में नूह इब्न अम्र भी है। इब्न हिब्बान ने उसे 'हदीस का चोर' बताया है, यानी एक अत्यंत कमज़ोर व्यक्ति इसे अनस (रज़ियल्लाहु अन्हु) से रिवायत करता था, उसने उससे चुराकर बक़िय्या के नाम कर दिया।

अल-धहाबी ने नूह की जीवनी में कहा: इब्न हिब्बान ने कहा: कहा जाता है

कि उसने यह हदीस चुराई है। मैं कहता हूँ:

धहाबी ने नूह के हालात में लिखा: इब्न हिब्बान ने बयान किया कि "

कहा जाता है उसने यह हदीस चुरा ली है।" मैं कहता हूँ:

---

1. मीज़ान अल-इ'तिदाल, जीवनी संख्या 9139, नूह बिन अम्र बिन नूह, दार अल-मारिफ़ा बेरुत, 4/278.

اولاً ائمہ حدیث عقیلی وابن حبان وبیہقی وابوعمران بن عبدالبر وابن الجوزی ونووی وذہبی وابن الہمام وغیرہ نے اس حدیث کو ضعیف بتایا، اسے طبرانی نے معجم اوسط و مسند الشامیین میں ابوامامہ باہلی رضی اللہ تعالی سے روایت کیا

بطریق نوح بن عمرو السکسکی ثنابقیہ بن الولید

اس کی سند اس طرح ہے: نوح بن عمرو سکسکی نے کہا ہم

عن محمد بن زیاد الالھانی عن ابی امامۃ عن محمد

سے حدیث بیان کی بقیہ بن ولید نے عن محمد بن زیاد

بن زیاد الالہانی عن ابی امامۃ رضی اللہ تعالیٰ عنہ ۔

الالہانی عن ابی امامہ رضی اللہ تعالیٰ عنہ۔

قلت ومن ہذا الطریق رواہ ابو احمد الحاکم فی فوائدہ والخلال فی فوائد سورۃ الاخلاص وابن عبدالبر فی الاستیعاب وابن حبان فی الضعفاء واشار الیہ ابن مندۃ۔

قلت (میں کہتا ہوں) اسی طریق سے اس کو ابو احمد حاکم نے فوائد میں، خلال نے فوائد سورہ اخلاص میں، ابن عبدالبر نے استیعاب میں، اور ابن حبان نے ضعفاء میں روایت کیا، اور اسی کی طرف ابن مندہ نے اشارہ کیا۔ (ت)

اس کی سند میں بقیہ بن ولید مدلس ہے اور اس نے عنعنہ کیا یعنی محمد بن زیاد سے اپنا سننا نہ بیان کیا، بلکہ کہا کہ ابن زیاد سے روایت ہے معلوم نہیں راوی کون ہے!

به اعله المحقق فی الفتح **حضرت محقق نے فتح القدیر میں اسی سے اس کو معلول ٹھہرایا۔**

اقول لکن سند ابی

احمد الحاکم هکذا اخبرنا اقول مگر ابواحمد حاکم کی سند اس طرح ہے: ہمیں خبر دی ابوالحسن ابوالحسن احمد بن

عمیر بد مشق ثنا نوح بن احمد بن عمیر نے دمشق میں، انھوں نے کہا ہم سے حدیث بیان عمرو بن حری ثنا

بقیة ثنا محمد بن زیاد عن کی نوح بن عمرو بن حری نے، کہا ہم سے حدیث بیان کی محمد بن زیاد ابی امامة فذکره۔ نے، وہ ابوامامہ سے راوی ہیں، اس کے بعد حدیث ذکر کی -(ت)

ذہبی نے کہا کہ حدیث منکر ہے نیز اس کی سند میں نوح ابن عمرو ہے۔ ابن حبان نے اسے حدیث کا چور بتایا، یعنی ایک سخت ضعیف شخص اسے انس رضی اللہ تعالیٰ عنہ سے روایت کرتا تھا، اس نے اس سے چرا کر بقیہ کے سر باندھ دی،

قال الذهبی فی ترجمة نوح قال ابن حبان **ذہبی نے نوح کے حالات میں لکھا: ابن حبان نے بیان کیا**

یقال **کہ "**

انه سرق هذا الحدیث اه اقول: کہا جاتا ہے اس نے یہ حدیث چرا لی اھ اقول:

---

1 میزان الاعتدال ترجمہ نمبر ۹۱۳۹ نوح بن عمرو بن نوح دارالمعرفۃ بیروت ۴/ ۲۷۸

Fatawa Rizvia - Volume 9

[Main Box - Left Side (Arabic)] The word of al-Hafiz in 'al-Isabah': Ibn Hibban said in the biography of al-Ala' ath-Thaqafi among the weak narrators, after mentioning this hadith: A Sheikh from the people of Syria stole it and narrated it from Baqiyyah, then he mentioned the hadith... 1 End. In this text of 'al-Isabah', the word "yuqalu" (it is said) is not present in the reference to Ibn Hibban. And Adh-Dhahabi himself quoted similarly from Ibn Hibban regarding Al-Ala'. Now, as for Hafiz Ibn Hajar's statement: "I do not know whether he meant Noah or someone else, because he did not mention Noah among the weak narrators." 2

[Main Box - Right Side (Urdu Translation)] The words of Hafiz Ibn Hajar in 'al-Isabah' are: Ibn Hibban, in the biography of Al-Ala' ath-Thaqafi among the weak narrators, after mentioning this hadith, said: A Sheikh from Syria stole it and narrated it from Baqiyyah, then he mentioned the hadith... End. In this statement of 'al-Isabah', the word "yuqalu" (it is said) is not present in the reference to Ibn Hibban— and Adh-Dhahabi himself narrated similarly from Ibn Hibban about al-Ala'. Now, regarding Hafiz Ibn Hajar's statement that "It is unknown whether Ibn Hibban meant Noah or someone else? Because he did not mention Noah in 'al-Du'afa' (The Weak)."

[Main Box - Second Part] I say: (I mean to say) it is apparent that Noah is that Syrian Sheikh who narrated this hadith from Baqiyyah; there is no room for doubt in this unless it is proven that some other Syrian Sheikh is the narrator from him. Inevitably, Adh-Dhahabi determined that Ibn Hibban meant Noah by it. (T)

[Lower Text] The narration of Anas (may Allah be pleased with him) in 'Tabaqat Ibn Sa'd' is through two routes: one route is Mahbub bin Hilal al-Mazani.

Note (Tanbih): This hadith is not narrated from any companion other than Anas and Abu Umamah— As for this statement in 'Fath al-Qadir' which is in both the Egypt and India printed editions, after mentioning the story of Negus (Najashi), they write: "If it is objected that the Prophet (peace be upon him) offered funeral prayer in absentia for someone other than Negus as well, that was Muawiyah bin Muawiyah al-Mazani, and it is said 'al-Laythi'"— it is narrated by at-Tabarani from the hadith of Abu Umamah (rest on the next page).

Footnotes: 1. Al-Isabah fi Tamyiz al-Sahabah, biography No. 8080, Muawiyah bin Muawiyah al-Mazani, Dar Sader Beirut, 3/437. 2. Al-Isabah fi Tamyiz al-Sahabah, biography No. 8080, Muawiyah bin Muawiyah al-Mazani, Dar Sader Beirut, 3/437.

फ़तवा-ए-रिज़विया - खंड 9

[मुख्य बॉक्स - बायां हिस्सा (अरबी)] 'अल-इसाबा' में अल-हाफ़िज़ के शब्द: इब्न हिब्बान ने कमज़ोर रावियों में अला' अस-सक़फ़ी की जीवनी में, इस हदीस का उल्लेख करने के बाद कहा: शाम (सीरिया) के एक शेख ने इसे चुरा लिया और बक़िय्याह से रिवायत किया, फिर उन्होंने हदीस का ज़िक्र किया... 1 अंत। इब्न हिब्बान के संदर्भ में 'अल-इसाबा' के इस पाठ में "युक़ालु" (कहा जाता है) शब्द नहीं है। और अज़-ज़हबी ने स्वयं अला' के बारे में इब्न हिब्बान से इसी तरह उद्धृत किया है। अब, हाफ़िज़ इब्न हजर के इस कथन के बारे में: "मुझे नहीं पता कि उन्होंने नूह को मुराद लिया है या किसी और को, क्योंकि उन्होंने नूह का ज़िक्र कमज़ोरों में नहीं किया है।" 2

[मुख्य बॉक्स - दायां हिस्सा (उर्दू अनुवाद)] 'इसाबा' में हाफ़िज़ इब्न हजर के शब्द ये हैं: इब्न हिब्बान ने अला' सक़फ़ी ज़ईफ़ (कमज़ोर) के तर्जुमा में उसकी यह हदीस ज़िक्र करने के बाद कहा: इसे शाम के एक शेख़ ने चुरा कर इसे बक़िय्याह से रिवायत कर दिया, फिर हदीस ज़िक्र की — 'इसाबा' की इस इबारत में इब्न हिब्बान के हवाले में लफ़्ज़ "युक़ालु" (कहा जाता है) नहीं है — और ख़ुद ज़हबी ने अला' के बारे में इब्न हिब्बान से इसी तरह नक़ल किया है — अब रहा हाफ़िज़ इब्न हजर का यह कलाम कि "पता नहीं इब्न हिब्बान ने नूह ही को मुराद लिया है या किसी और को? क्योंकि उन्होंने नूह को 'ज़ुअफ़ा' (कमज़ोरों) में ज़िक्र नहीं किया है।"

[मुख्य बॉक्स - दूसरा भाग] मैं कहता हूँ: (तो मैं कहता हूँ) ज़ाहिर है कि नूह वह शामी शेख़ है जिसने यह हदीस बक़िय्याह से रिवायत की है, इसमें किसी शक की गुंजाइश ही नहीं है जब तक कि यह साबित किया जाए कि कोई और शामी शेख़ उससे रिवायत करने वाला है, ला-मुहाला ज़हबी ने जज़्म (निश्चय) किया कि इब्न हिब्बान ने इससे नूह ही को मुराद लिया है। (त)

[निचला पाठ] हज़रत अनस (रज़ियल्लाहु तआला अन्हु) की रिवायत 'तबाक़ात इब्न सअद' में दो तरीक़ (रास्तों) से है: एक तरीक़ महबूब बिन हिलाल मज़नी है।

तन्बीह (विशेष सूचना): यह हज़रत अनस और अबू उमामा के अलावा किसी और सहाबी से वारिद (वर्णित) नहीं है — रही 'फ़तह अल-क़दीर' की यह इबारत जो इसके मिस्र और हिन्द के तबा (मुद्रित) शुदा दोनों नुस्ख़ों में है कि "वाक़िया नजाशी ज़िक्र करने के बाद वे लिखते हैं: अगर एतराज़ हो कि हुज़ूर ने नजाशी के अलावा दूसरे पर भी ग़ायबाना नमाज़-ए-जनाज़ा पढ़ी है। वह मुआविया बिन

मुआविया मज़नी हैं और कहा जाता है कि "लैसी" — इसे तबरानी ने हज़रत अबू उमामा से (बाक़ी अगले सफ़हे पर)।

पादलेख (Footnotes): 1. अल-इसाबा फ़ी तमयीज़ अस-सहाबा, अनुवाद संख्या 8080, मुआविया बिन मुआविया मज़नी, दार सादिर बेरुत, 3/437 2. अल-इसाबा फ़ी तमयीज़ अस-सहाबा, अनुवाद संख्या 8080, मुआविया बिन मुआविया मज़नी, दार सादिर बेरुत, 3/437

पृष्ठ 356/948

فتاوٰی رضویہ - جلد نہم

[Main Box - Left Column (Arabic Text)] لفظ الحافظ في الاصابة قال ابن حبان في ترجمة العلاء الثقفی من الضعفاء بعد ان ذکر لي هذا الحدیث سرقه شیخ من اهل الشام، فرواه عن بقیة فذکره 1 اهـ ولیس فیه یقال وقد نقل عنه هکذا الذهبي في العلاء اما قول الحافظ فما ادری عنی نوحاً او غیره فانه لم یذکر نوحاً في الضعفاء 2

[Main Box - Right Column (Urdu Text)] اصابہ میں حافظ ابن حجر کے الفاظ یہ ہیں: ابن حبان نے علاء ثقفی ضعیف کے ترجمہ میں اس کی یہ حدیث ذکر کرنے کے بعد کہا: اسے شام کے ایک شیخ نے چرا کر اسے بقیہ سے روایت کر دیا، پھر حدیث ذکر کی اھ — اصابہ کی اس عبارت میں ابن حبان کے حوالہ میں لفظ "یقال" (کہا جاتا ہے) نہیں ہے— اور خود ذہبی نے علاء کے بارے میں ابن حبان سے اسی طرح نقل کیا ہے— اب رہا حافظ ابن حجر کا یہ کلام کہ "پتا نہیں ابن حبان نے نوح ہی کو مراد لیا ہے یا کسی اور کو؟ کیونکہ انھوں نے نوح کو ضعفاء میں ذکر نہیں کیا ہے۔"

[Main Box - Bottom Section (Urdu Text)] فاقول: (تو میں کہتا ہوں) ظاہر ہے کہ نوح وہ شامی شیخ ہے جس نے یہ حدیث بقیہ سے روایت کی ہے، اس میں کسی شک کی گنجائش ہی نہیں کہ یہ ثابت کیا جائے کہ کوئی اور شامی شیخ اس سے روایت کرنے والا ہے، لا محالہ ذہبی نے جزم کیا کہ ابن حبان نے اس سے نوح ہی کو مراد لیا ہے۔ (ت)

[Bottom Section (Urdu/Arabic Text)] انس عہ رضی اللہ تعالٰی عنہ کی روایت طبقات ابن سعد میں دو طریق سے ہے: ایک طریق محبوب بن ہلال مزنی ہے۔ عہ : تنبیه : لم یرد الحدیث عن صحابی غیر انس وابی امامة اماما وقع في نسختی فتح القدیر والمطبوعتین بمصر والهند

من قوله بعد ذكر قصه النجاشي فان قيل بل قد صلى على غيره من الغيب وهو معاوية بن معاوية المزنى۔ ويقال اليثى رواه الطبرانى من حديث ابى امامة۔

تنبیہ: یہ حضرت انس اور ابوامامہ کے علاوہ کسی اور صحابی سے وارد نہیں— رہی فتح القدیر کی یہ عبارت جو اس کے مصر اور ہند کے طبع شدہ دونوں نسخوں میں ہے کہ "واقعہ نجاشی ذکر کرنے کے بعد وہ لکھتے ہیں: اگر اعتراض ہو کہ حضور نے نجاشی کے علاوہ دوسرے پر بھی غائبانہ نماز جنازہ پڑھی ہے۔ وہ معاویہ بن معاویہ مزنی ہیں اور کہا جاتا ہے کہ "لیثی" — اسے طبرانی نے حضرت ابوامامہ سے (باقی اگلے صفحہ پر)

[Footnotes] 1 الاصابۃ فی تمیز الصحابۃ ترجمہ نمبر ۸۰۸۰ معاویہ بن معاویہ مزنی دار صادر بیروت ۳ / ۴۳۷ 2 الاصابۃ فی تمیز الصحابۃ ترجمہ نمبر ۸۰۸۰ معاویہ بن معاویہ مزنی دار صادر بیروت ۳ / ۴۳۷

Fatawa-e-Razvia Volume 9

I say: From this same route, it was narrated by At-Tabarani, Ibn al-Durays, Samuwayh in his Fawa'id, Ibn Mandah, and al-Bayhaqi in ad-Dala'il[1].

I say: Through this same route, it was narrated by At-Tabarani, Ibn al-Durays, Samuwayh in Fawa'id, Ibn Mandah, and al-Bayhaqi in ad-Dala'il. (T)

(Continued from previous page's footnote) And Ibn Sa'd from the hadith of Anas, Ali, Zaid, and Ja'far when he offered prayer over them after they were martyred at Mu'tah, as per what is in Maghazi al-Waqidi.[2] There is an error of transcription (tashif) in this phrase (from the hadith of Anas, Ali, Zaid, and Ja'far). The correct wording is: "And Ibn Sa'd from the hadith of Anas, and he prayed over Zaid and Ja'far,"[3] meaning Ibn Sa'd narrated it from Hazrat Anas, and the Prophet (PBUH) offered the funeral prayer in absentia for Hazrat Zaid and Hazrat Ja'far. The proof of this scribal error is that Allama al-Halabi, taking the entire discourse of Fath al-Qadir, wrote in al-Ghunyah: "And Ibn Sa'd from the hadith of Anas, and similarly he prayed over Zaid and Ja'far."[3] Likewise, Allama Ali al-Qari took it completely and wrote in al-Mirqat: "And Ibn Sa'd from the hadith of Anas, and he prayed over Zaid and Ja'far."[4] Hafiz Ibn Hajar collected all the chains of this hadith in al-Isabah, but there is no mention of a narration from Hazrat Ali or any other Companion except Anas and Abu Umamah (may Allah be pleased with them). (T)

[1] Al-Isabah, Biography 8080, 3/336. [2] Fath al-Qadir, 2/81. [3] Ghunyat al-Mustamli, p. 544. [4] Mirqat al-Mafatih, 4/140.

Page 357 of 948

फतावा रजविया जिल्द 9

मैं कहता हूँ: इसी माध्यम से इसे तबरानी, इब्न अल-दुरैस, फवाइद में समुवैह, इब्न मंदह और अल-बैहकी ने अद्दलाइल[1] में रिवायत किया है।

मैं कहता हूँ: इसी माध्यम से इसे तबरानी, इब्न अल-दुरैस, फवाइद में समुवैह, इब्न मंदह और दलाइल में बैहकी ने रिवायत किया। (त)

(पिछले पृष्ठ के फुटनोट का शेष भाग) रिवायत किया है और इब्न साद ने हज़रत अनस और अली से, और ज़ैद व जाफ़र पर भी नमाज़ पढ़ी, जब ये दोनों हज़रात मोता में शहीद हुए जैसा कि मग़ाज़ी वाक़िदी[2] में है। तो इस इबारत (हज़रत अनस, अली, ज़ैद और जाफ़र की हदीस से) में तशहीफ़ (लिखने की गलती) है। सही इबारत इस तरह है (और इब्न साद हज़रत अनस की हदीस से और ज़ैद व जाफ़र पर नमाज़ पढ़ी) यानी इसे इब्न साद ने हज़रत अनस से रिवायत किया, और हुज़ूर ने हज़रत ज़ैद और हज़रत जाफ़र की ग़ायबाना नमाज़-ए-जनाज़ा पढ़ी। इस लिपिक त्रुटि का प्रमाण यह है कि फ़तह अल-क़दीर का पूरा कलाम लेकर अल्लामा हलाबी ने ग़ुनिया में यूँ लिखा: "और इब्न साद हज़रत अनस की हदीस से, और इसी तरह हुज़ूर ने हज़रत ज़ैद और हज़रत जाफ़र की नमाज़ पढ़ी[3]।" इसी तरह अल्लामा अली क़ारी ने इसे पूरी तरह लेकर मिर्क़ात में यूँ लिखा: "और इब्न साद हज़रत अनस की हदीस से, और हज़रत ज़ैद और जाफ़र पर नमाज़ पढ़ी[4]।" हाफ़िज़ इब्न हजर ने अल-इसाबा में इस हदीस के सभी मार्गों को एकत्रित किया है, लेकिन उनमें हज़रत अली या किसी अन्य सहाबी से रिवायत का कोई उल्लेख नहीं है, केवल हज़रत अनस और अबू उमामा का उल्लेख है। (अल्लाह उन पर प्रसन्न हो) (त)

[1] अल-इसाबा, जीवनी 8080, 3/336। [2] फ़तह अल-क़दीर, 2/81। [3] ग़ुनीयतुल मुस्तमली, पृ. 544। [4] मिर्क़ातुल मफ़ातीह, 4/140।

पृष्ठ 357 / 948

فتاوی رضویہ جلد نہم

قلت ومن هذا الوجه اخرجه الطبراني وابن الضريس وسموية في فوائده وابن مندة والبيهقي في الدلائل^1۔ قلت (میں کہتا ہوں) اسی طریق سے اسے طبرانی، ابن ضریس، فوائد میں سمویہ، ابن مندہ، اور دلائل میں بیہقی نے روایت کیا۔ (ت)

(بقیہ حاشیہ صفحہ گزشتہ) وابن سعد من حديث انس وعلى وزيد وجعفر لما استشهد بموته على مافي مغازی الواقدی^2 تصحيف وصوابه وابن سعد من حديث انس وعلى زيد و جعفر ای وصلى عليهما فقد اخذ كلام الفتح هذا برمته الحبلى في الغنية فقال وابن سعد من حديث انس وكذا اصلى على زيد و جعفر^3 وكذا اخذه بتمامه القاری فی المرقاة فقال وابن سعد من حديث انس وصلى على زيد وجعفر^4 وقد جمع الحافظ طرق الحديث فی الاصابة فلم يذكره عن على ولا عن غيره من الصحابة سوى انس وابي امامة رضی الله تعالى عنهم ۱۲ منه (م)

روایت کیا ہے اور ابن سعد نے حضرت انس اور علی سے، اور زید و جعفر پر بھی نماز پڑھی، جب یہ دونوں حضرات موتہ میں شہید ہوئے جیسا کہ مغازی واقدی میں ہے۔ تو اس عبارت (من حدیث انس وعلی وزید و جعفر) میں تصحیف (کتابت کی غلطی) ہے۔ صحیح عبارت اس طرح ہے (وابن سعد من حدیث انس وعلی زید و جعفر) یعنی اور اسے ابن سعد نے حضرت انس سے روایت کیا، اور حضور نے حضرت زید و حضرت جعفر کی بھی غائبانہ نماز جنازہ پڑھی۔ اس خطائے کتابت کی دلیل یہ ہے کہ فتح القدیر کا پورا کلام لے کر علامہ حلبی نے غنیہ میں یوں لکھا: وابن سعد من حدیث انس، وکذا صلی علی زید و جعفر (اور ابن سعد نے اسے حضرت انس سے روایت کیا، اور اسی طرح حضور نے حضرت زید و حضرت جعفر کی نماز پڑھی) یوں ہی علامہ علی قاری نے اسے مکمل اخذ کرکے مرقات میں یوں لکھا: وابن سعد من حدیث انس، وصلی علی زید

وجعفر (اور ابن سعد نے حضرت انس کی حدیث میں اسے روایت کیا اور حضور نے حضرات زید و جعفر کی نماز پڑھی_ اور حافظ ابن حجر نے اصابہ میں اس حدیث کے تمام طرق جمع کئے ہیں مگر ان میں حضرت علی یا کسی اور صحابی سے روایت کا ذکر نہیں، صرف حضرت انس وابوامامہ کا ذکر ہے۔ رضی اللہ تعالی عنہم (ت)

1۸ الاصابۃ ترجمہ ۸۰۸۰، ۳/ ۳۳۶ 2۸ فتح القدیر ۸۱/ ۲ 3۸ غنیۃ المستملی ص ۵۴۴ 4۸ مرقات المفاتیح ۴/ ۱۴۰

Dhahabi said: this person is unknown (Majhul) and this Hadith of his is rejected (Munkar)[1]. In another chain, there is Ala bin Zaid al-Thaqafi.

Arabic Original	Urdu Commentary/Translation
قلت ومن هذا الطريق اخرجه ابن ابى الدنيا ومن طريقه ابن الجوزى فى العلل المتناهية والعقيلى وابن سنجر فى مسنده وابن الاعرابى وابن عبدالبرو حاجب الطوسى فى فوائده ٢۔	I say (Ibn al-Jawzi): Through this chain, Ibn Abi al-Dunya has narrated it, and from his chain, Ibn al-Jawzi in 'Al-Ilal al-Mutanahiya', and al-Uqayli and Ibn Sanjar in their 'Musnads', and Ibn al-Arabi, Ibn Abd al-Barr, and in 'Fawa'id', Hajib al-Tusi has narrated it. (T)

Imam Nawawi said in 'Al-Khulasah': There is a consensus among all Hadith scholars regarding its weakness. Imam Bukhari, Ibn Adi, and Abu Hatim said: He is 'Munkar al-Hadith' (a rejected narrator). Abu Hatim and al-Daraqutni said: He is 'Matruk al-Hadith' (an abandoned narrator). Imam Ali ibn al-Madini, the teacher of Imam Bukhari, said: He used to fabricate Hadiths from his heart. Ibn Hibban said: This Hadith is also his fabrication; a Syrian stole it from him and narrated it from Baqiyyah[3]. It is mentioned in 'Mizan' (Dhahabi mentioned it in 'Mizan al-I'tidal'. T). Abu al-Walid al-Tayalisi said: The scholar was a liar. Al-Uqayli said: "Ala bin Yazid al-Thaqafi is not followed by anyone in this Hadith except those who are like him or lower than him."[4] Apart from Ala, everyone who narrated this Hadith is like Ala or even worse. It is mentioned in 'Al-Ilal al-Mutanahiya' (Ibn al-Jawzi mentioned it in 'Al-Ilal al-Mutanahiya'. T). Abu Umar ibn Abd al-Barr said: All the chains of this Hadith are weak and are not proof in matters of rulings (Ahkam) at all. No person by the name of Mu'awiyah bin Mu'awiyah is known among the Sahaba[5]. He said this in 'Al-Isti'ab' and it was quoted in 'Al-Isaba' (Ibn Abd al-Barr said this in 'Al-Isti'ab' and al-Hafiz [Ibn Hajar] quoted it in 'Al-Isaba'. T). Similarly, Ibn Hibban said that for me... of this name...

Note: Shawkani, the Imam of the Wahhabis, performed a strange act here in 'Nayl al-Awtar'. Firstly, he quoted from 'Al-Isti'ab' that the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) prayed over Mu'awiyah bin Mu'awiyah al-Laythi. Then he said (continued on the next page).

---

[1] Mizan al-I'tidal, biography 7085, Mahbub bin Hilal, Dar al-Ma'rifah Beirut, 3/ 442 [2] Mizan al-I'tidal, biography 4507, Al-Ala bin Zaid al-Thaqafi, Dar al-Ma'rifah Beirut, 3/ 99 [3] Mizan al-I'tidal, biography 4507, Al-Ala bin Zaid al-Thaqafi, Dar al-Ma'rifah Beirut,

3/ 99 [4] Al-Ilal al-Mutanahiya, Hadith on the virtue of Mu'awiyah bin Mu'awiyah, Dar al-Nashr al-Kutub al-Islamiyyah Lahore, 1/ 299 [5] Al-Isaba fi Tamyiz al-Sahaba, biography 8080, Mu'awiyah bin Mu'awiyah, Dar Sadir Beirut, 3/ 473

ज़हबी ने कहा: यह व्यक्ति मजहूल है और इसकी यह हदीस मुनकर (अस्वीकार्य) है[1]। दूसरे मार्ग में अला बिन ज़ैद सक़फ़ी है।

अरबी मूल	उर्दू भाष्य/अनुवाद
قلت ومن هذا الطريق اخرجه ابن ابى الدنيا ومن طريقه ابن الجوزى فى العلل المتناهية والعقيلى وابن سنجر فى مسنده وابن الاعرابى وابن عبدالبرو حاجب الطوسى فى فوائده ۲۔	मैं कहता हूँ (इब्न अल-जौज़ी): इसी मार्ग से इसे इब्न अबी अल-दुनिया ने रिवायत किया है और उन्हीं के मार्ग से इब्न अल-जौज़ी ने 'अल-इलल अल-मुतनाहिया' में, और अक़ीली और इब्न संजर ने अपनी 'मुसनद' में, और इब्न अल-अराबी, इब्न अब्द अल-बर ने और 'फ़वाइद' में हाज़िब तौसी ने इसे रिवायत किया है। (त)

इमाम नववी ने 'खुलासा' में फ़रमाया: इसके ज़ईफ़ (कमज़ोर) होने पर सभी मुहद्दिसों की सहमति है। इमाम बुखारी, इब्न अदी और अबू हातिम ने कहा: वह 'मुनकरुल हदीस' है। अबू हातिम और दारकुतनी ने कहा: वह 'मतरूक अल-हदीस' है। इमाम अली बिन मदनी (इमाम बुखारी के उस्ताद) ने कहा: वह दिल से हदीसें गढ़ता था। इब्न हिब्बान ने कहा: यह हदीस भी उसी की गढ़ी हुई है, उसी से चुराकर एक शामी ने बकिया से रिवायत की[3]। इसका ज़िक्र 'मीज़ान' में है (इसे 'मीज़ान अल-इतेदाल' में ज़हबी ने ज़िक्र किया। त)। अबू अल-वलीद तयालिसी ने कहा: वह अल्लामा कज़्ज़ाब (झूठा) था। अक़ीली ने कहा: "अला बिन यज़ीद सक़फ़ी का इस हदीस में किसी ने अनुसरण नहीं किया सिवाय उसके जो उसके जैसा या उससे कमतर हो।"[4] अला के अलावा जिसने भी यह हदीस रिवायत की, वे सब अला जैसे ही हैं या उससे भी बदतर। इसका ज़िक्र 'अल-इलल अल-मुतनाहिया' में है (इब्न अल-जौज़ी ने इसे 'इलल मुतनाहिया' में ज़िक्र किया। त)। अबू उमर इब्न अब्द अल-बर ने कहा: इस हदीस की सभी सनदें ज़ईफ़ हैं और अहकाम (नियमों) के मामले में बिल्कुल हुज्जत (प्रमाण) नहीं हैं। सहाबा में मुआविया बिन मुआविया नाम का कोई व्यक्ति ज्ञात नहीं है[5]। उन्होंने यह बात 'अल-इस्तिआब' में कही और 'अल-इसाबा' में इसे उद्धृत किया गया (इब्न अब्द अल-बर ने इसे 'इस्तिआब' में कहा और हाफ़िज़ ने इसे 'इसाबा' में नक़ल किया। त)। इसी तरह इब्न हिब्बान ने कहा कि मुझे... इस नाम के..

नोट: वहाबियों के इमाम शौक़ानी ने 'नेलुल अवतार' में यहाँ एक अजीब तमाशा किया है, पहले 'इस्तिआब' से नक़ल किया कि रसूलुल्लाह (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने मुआविया बिन मुआविया लैसी पर नमाज़ पढ़ी। फिर कहा (बाकी अगले सफ़े पर)।

---

[1] मीज़ान अल-इतेदाल, अनुवाद 7085, महबूब बिन हिलाल, दार अल-मआरिफ़ह बेरूत, 3/ 442 [2] मीज़ान अल-इतेदाल, अनुवाद 4507, अल-अला बिन ज़ैद अल-सक़फ़ी, दार अल-मआरिफ़ह बेरूत, 3/ 99 [3] मीज़ान अल-इतेदाल, अनुवाद 4507, अल-अला बिन ज़ैद अल-सक़फ़ी, दार अल-मआरिफ़ह बेरूत, 3/ 99 [4] अल-इलल अल-मुतनाहिया, हदीस मकामे मुआविया बिन मुआविया, दार अल-नश्र अल-कुतुब अल-इस्लामिया लाहौर, 1/ 299 [5] अल-इसाबा फ़ी तमीज़ अल-सहाबा, अनुवाद 8080, मुआविया बिन मुआविया, दार सादिर बेरूत, 3/ 473

ذہبی نے یہ کہا یہ شخص مجہول ہے اور اس کی یہ حدیث منکر ۱۔ دوسرے طریق میں علاء بن زید ثقفی ہے۔

عربی عبارت	اردو ترجمہ و تشریح
قلت ومن هذا الطريق اخرجه ابن ابی الدنیا ومن طریقه ابن الجوزی فی العلل المتناهية والعقیلی وابن سنجر فی مسنده وابن الاعرابی وابن عبدالبرو حاجب الطوسی فی فوائده ۲۔	قلت (میں کہتا ہوں) اسی طریق سے اس کو ابن ابی الدنیا نے روایت کیا ہے اور اسی کے طریق سے ابن الجوزی نے العلل المتناہیہ میں، اور عقیلی اور ابن سنجر نے اپنی مسند میں اور ابن الاعرابی، ابن عبدالبر نے اور فوائد میں حاجب طوسی نے روایت کیا ہے۔(ت)

امام نووی نے خلاصہ میں فرمایا: اس کے ضعیف ہونے پر تمام محدثین کا اتفاق ہے۔ امام بخاری و ابن عدی و ابو حاتم نے کہا: وہ منکر الحدیث ہے۔ ابو حاتم و دارقطنی نے کہا: متروک الحدیث ہے۔ امام علی بن مدینی استاد امام بخاری نے کہا: وہ حدیثیں دل سے گھڑتا تھا، ابن حبان نے کہا: یہ حدیث بھی اسی کی گھڑی ہوئی ہے، اسی سے چرا کر ایک شامی نے بقیہ سے روایت کی ۳۔ ذکرہ فی المیزان (اسے میزان الاعتدال میں ذہبی نے ذکر کیا) ابوالولید طیالسی نے کہا: علامہ کذاب تھا، عقیلی نے کہا: العلاء بن یزید ثقفی لایتابعہ احد علی ھذا الحدیث الامن ھو مثلہ او دونہ ۴ علاء کے سوا جس جس نے یہ حدیث روایت کی سب علاء ہی جیسے ہیں یا اس سے بھی بدتر ، ذکرہ فی العلل المتناھیۃ (ابن الجوزی نے اسے علل متناہیہ میں ذکر کیا) ابو عمر بن عبدالبر نے کہا: اس حدیث کی سب سندیں ضعیف ہیں اور درباره احکام اصلاً حجت نہیں، صحابہ میں کوئی شخص

معاویہ بن معاویہ نام معلوم نہیں ۵۔ قالہ فی الاستیعاب ونقلہ فی الاصابۃ (ابن عبدالبر نے یہ استیعاب میں کہا اور حافظ نے اسے اصابہ میں نقل کیا۔ت) یونہی ابن حبان نے کہا کہ مجھے عہ اس نام کے

عہ: وہابیہ کے امام شوکانی نے نیل الاوطار میں یہاں عجیب تماشہ کیا ہے، اولاً استیعاب سے نقل کیا کہ رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم نے معاویہ بن معاویہ لیثی پر نماز پڑھی۔ پھر کہا (باقی اگلے صفحہ پر)

---

۱ میزان الاعتدال ترجمہ ۷۰۸۵ محبوب بن ہلال دارالمعرفہ بیروت ۳/ ۴۴۲ ۲ میزان الاعتدال ترجمہ ۴۵۰۷ العلاء بن زید الثقفی دارالمعرفہ بیروت ۳/ ۹۹ ۳ میزان الاعتدال ترجمہ ۴۵۰۷ العلاء بن زید الثقفی دارالمعرفہ بیروت ۳/ ۹۹ ۴ العلل المتناہیۃ حدیث فی فضل معاویۃ بن معاویۃ دارالنشر الکتب الاسلامیہ لاہور ۱/ ۲۹۹ ۵ الاصابۃ فی تمیز الصحابۃ ترجمہ ۸۰۸۰ معاویہ بن معاویہ دار صادر بیروت ۳/ ۴۷۳

No such person is remembered among the Companions (Sahaba). 1. Its trace is in Al-Mizan (Imam Dhahabi quoted it in Al-Mizan. - Translator) Secondly, suppose this Hadith does not remain weak due to its chains of transmission, as chose by Al-Hafiz in Al-Fath (as Hafiz Ibn Hajar has adopted in Fath al-Bari. - Translator) or, incorrectly assuming it to be authentic in itself, what then? It is explicitly mentioned in it that the funeral was brought before the noble sight of the Holy Prophet (may peace and blessings of Allah be upon him), so the funeral prayer was offered over one present, not over one absent. The words of the Hadith from Abu Umamah (may Allah be pleased with him) in Tabarani are as follows: Jibreel Amin (peace be upon him) came and said: O Messenger of Allah! Muawiyah bin Muawiyah al-Mazni has passed away in Medina.

"Do you wish that I fold the earth for you so that you may pray over him?" He said, "Yes." So he struck the earth with his wing, and his bier was raised before him. Then he prayed over him, and behind him were two rows of angels, seventy in each row.	**"Do you wish that I fold the earth for you so that you may pray over him?" He said, "Yes." Jibreel struck the earth with his wing; the funeral was brought before the Prophet. At that time, the Prophet offered prayers over him, and there were two rows of angels.**

(Remaining footnote from previous page) In Al-Isti'ab, a similar story was narrated from Abu Umamah regarding Muawiyah bin Muqarrin. Then he said, likewise, a similar story was narrated from Anas regarding Muawiyah under the entry of Muawiyah al-Mazni 2. This creates an illusion as if there are three separate companions for whom funeral prayer in absentia is reported, whereas this is sheer ignorance or feigned ignorance. It is one companion named Muawiyah, regarding whose lineage and affiliation confusion occurred among narrators; some said al-Mazni, some said al-Laythi, some said Muawiyah bin Muawiyah, some said Muawiyah bin Muqarrin. Abu Umar preferred Muawiyah bin Muqarrin al-Mazni because no Muawiyah bin Muawiyah is known among the companions. Hafiz, in Al-Isaba, preferred Muawiyah bin Muawiyah al-Mazni and called the mention of 'Laythi' an error of Ala' al-Thaqafi, and considered Muawiyah bin Muqarrin as another companion for whom this narration does not exist. In any case, the person of the story is a single individual, and Shawkani's illusion of a trinity is purely false. Ibn al-Athir said in Usd al-Ghabah: Muawiyah bin Muawiyah al-Mazni, also called al-Laythi and Muawiyah bin Muqarrin al-Mazni. Abu Umar said: This is closer to being correct

3, etc. meaning Muawiyah bin Muawiyah al-Mazni, and someone says Muawiyah bin Muqarrin al-Mazni, Abu Umar said this is closer to being correct. Then the name was mentioned in one way through the first path of Anas's Hadith, in another way through the second path, and in a third way through the Hadith of Abu Umamah. 12 Minhu.

---

1 Mizan al-I'tidal, biography 3075, Al-Ala bin Zaid al-Thaqafi, Dar al-Ma'rifah, Beirut, 3/99. 2 Nayl al-Awtar, Prayer over the Absent by Intention, Mustafa al-Babi, Egypt, 2/57. 3 Usd al-Ghabah fi Ma'rifat al-Sahabah, entry of Muawiyah bin Muawiyah al-Mazni, Al-Maktabah al-Islamiyyah, Beirut, 4/388.

सहाबा में कोई भी ऐसा याद नहीं है। १. इसका ज़िक्र 'अल-मीज़ान' में है (इसे ज़हबी ने मीज़ान में नक़ल किया है। -अनुवादक) दूसरा, मान लीजिए कि यह हदीस अपने विभिन्न माध्यमों (तुरुक़) से कमज़ोर नहीं रहती, जैसा कि हाफ़िज़ [इब्न हजर] ने 'अल-फ़तह' में चुना है (जैसा कि हाफ़िज़ इब्न हजर ने फ़तह अल-बारी में अपनाया है। -अनुवादक), या अगर गलत तरीक़े से इसे स्वयं ही सही मान लिया जाए, तो इसमें क्या है? इसी में स्पष्ट है कि जनाज़ा हुज़ूर अकदस (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) के पवित्र नज़रों के सामने कर दिया गया था, इसलिए जनाज़े की नमाज़ हाज़िर पर हुई न कि गायब (अनुपस्थित) पर। तबरानी के यहाँ हज़रत अबू उमामा (रज़ियल्लाहु अन्हु) की हदीस के शब्द ये हैं: जिब्रील अमीन (अलैहिस्सलाम) ने हाज़िर होकर अर्ज़ किया: या रसूल अल्लाह! मुआविया बिन मुआविया मज़नी का मदीना में इंतकाल हो गया।

क्या हुज़ूर चाहते हैं कि हुज़ूर के लिए ज़मीन समेट दूँ ताकि हुज़ूर उन पर नमाज़ पढ़ें? फ़रमाया: हाँ। फिर उन्होंने (जिब्रील ने) अपना पर ज़मीन पर मारा तो उनके सामने उनका तख्त (जनाज़ा) उठा दिया गया। फिर हुज़ूर ने उन पर नमाज़ पढ़ी, और उनके पीछे फ़रिश्तों की दो सफ़ें(कतारें) थीं, हर सफ़ में सत्तर थे।

क्या हुज़ूर चाहते हैं कि हुज़ूर के लिए ज़मीन लपेट दूँ ताकि हुज़ूर उन पर नमाज़ पढ़ें, फ़रमाया: हाँ। जिब्रील ने अपना पर ज़मीन पर मारा जनाज़ा हुज़ूर के सामने हो गया उस वक़्त हुज़ूर ने उन पर नमाज़ पढ़ी, और फ़रिश्तों की दो सफ़ें।

(पिछले पृष्ठ का शेष फुटनोट) 'इस्तीआब' में इस किस्से के जैसा ही मुआविया बिन मुकर्रिन के हक़ में अबू उमामा से रिवायत किया गया। फिर कहा कि इसी के जैसा हज़रत अनस से मुआविया के बारे में भी मुआविया मज़नी में रिवायत किया २। इसमें यह भ्रम पैदा होता है कि जैसे तीन अलग-अलग सहाबी हैं जिन पर नमाज़े गायब (अनुपस्थित की नमाज़) रिवायत है, जबकि यह केवल अज्ञानता या जानबूझकर की गई अज्ञानता है। वे एक ही सहाबी मुआविया नाम के हैं, जिनके वंश और संबंध में रिवायत करने वालों से भ्रम हुआ है, किसी ने मज़नी कहा, किसी ने लैसी, किसी ने मुआविया बिन मुआविया, किसी ने मुआविया बिन मुकर्रिन। अबू उमर ने मुआविया बिन मुकर्रिन मज़नी को प्राथमिकता दी क्योंकि सहाबा में मुआविया बिन मुआविया कोई ज्ञात नहीं है। हाफ़िज़ ने 'असाबा' में मुआविया बिन मुआविया मज़नी को प्राथमिकता दी और 'लैसी' कहने को अलाअ सक़फ़ी की गलती बताया और मुआविया बिन मुकर्रिन को एक और सहाबी माना जिनके लिए यह रिवायत नहीं है।

बहरहाल किस्से का पात्र एक ही व्यक्ति है, और शौकानी का इसे तीन अलग व्यक्ति बताना सरासर गलत है। इब्न अल-असीर ने 'असदुल ग़ाबा' में फ़रमाया: मुआविया बिन मुआविया अल-मज़नी और उन्हें लैसी भी कहा जाता है और मुआविया बिन मुकर्रिन अल-मज़नी भी कहा जाता है। अबू उमर ने कहा: यही सत्य के अधिक निकट है ३ इत्यादि, यानी मुआविया बिन मुआविया मज़नी, और कोई कहता है मुआविया बिन मुकर्रिन मज़नी, अबू उमर ने कहा यही सही के अधिक निकट है। फिर अनस की हदीस के पहले तरीके से एक तरह से नाम ज़िक्र किया और दूसरे तरीके से दूसरी तरह से और अबू उमामा की हदीस से तीसरी तरह से। १२ मिन्हु।

---

१ मीज़ानुल एतदाल, जीवनी ३०७५, अल-अला बिन ज़ैद अस-सक़फ़ी, दारुल मारिफ़ा, बेरूत, ३/९९। २ नैलुल अवतार, अनुपस्थित पर नियत के साथ नमाज़, मुस्तफ़ा अल-बाबी, मिस्र, २/५७। ३ असदुल ग़ाबा फ़ी मारिफ़त-ए-सहाबा, मुआविया बिन मुआविया मज़नी की जीवनी, अल-मक्तबा अल-इस्लामिया, बेरूत, ४/३८८।

کوئی صاحب صحابہ میں یاد نہیں ۱ اثرہ فی المیزان (اسے ذہبی نے میزان میں نقل کیا۔ت) ثانیاً فرض کیجئے کہ یہ حدیث اپنے طُرق سے ضعیف نہ رہے کما اختارہ الحافظ فی الفتح (جیسا کہ حافظ ابن حجر نے اسے فتح الباری میں اختیار کیا ہے۔ت) یا بفرض غلط لذاتہ صحیح سہی پھر اس میں کیا ہے خود اسی میں تصریح ہے کہ جنازہ حضور اقدس صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کے پیش نظر انور کردیا گیا تھا تو نماز جنازہ حاضر پر ہوئی نہ کہ غائب پر حدیث ابی امامہ رضی اللہ تعالیٰ عنہ کے لفظ طبرانی کے یہاں یہ ہیں: جبریل امین علیہ الصلوٰۃ والسلام نے حاضر ہو کر عرض کی: یارسول اللہ ! معاویہ بن معاویہ مزنی نے مدینہ میں انتقال کیا۔

اتحب ان اطوی لك الارض، فتصلی علیه کیا حضور چاہتے ہیں کہ حضور کے لئے زمین لپیٹ دوں
قال نعم، فضرب بجناحه علی الارض تاکہ حضور ان پر نماز پڑھیں، فرمایا: ہاں۔ جبریل نے اپنا
فرفع له سریره فصلی علیه، و خلفه پر زمین پر مارا جنازہ حضور کے سامنے ہو گیا اس وقت
صفان من الملائکۃ کل صف سبعون حضور نے ان پر نماز پڑھی، اور فرشتوں کی دو صفیں

(بقیہ حاشیہ صفحہ گزشتہ) استیعاب میں اس قصہ کا مثل معاویہ بن مقرن کے حق میں ابوامامہ سے روایت کیا۔ پھر کہا نیز اس کا مثل انس سے ترجمہ معاویہ بھی معاویہ مزنی میں روایت کیا ۲۔ اس میں یہ وہم لاتا ہے کہ گویا تین صحابی جدا جدا ہیں جن پر نماز غائب مروی ہے، حالانکہ یہ محض جہل یا تجاہل ہے وہ ایک صحابی ہیں معاویہ نام جن کے نسب و نسبت میں راویوں سے اضطراب واقع ہوا، کسی نے مزنی کہا، کسی نے لیثی، کسی نے معاویہ بن معاویہ، کسی نے معاویہ بن مقرن، ابو عمر نے معاویہ بن مقرن مزنی کو ترجیح دی کہ صحابہ میں معاویہ بن معاویہ کوئی معلوم نہیں اور حافظ نے اصابہ میں معاویہ بن معاویہ مزنی کو ترجیح دی اور لیثی کہنے کو علاء ثقفی کی

خطا بتایا اور معاویہ بن مقرن کو ایک اور صحابی مانا جن کے لئے یہ روایت نہیں بہر حال صاحب قصہ شخص واحد ہیں، اور شوکانی کا ایہام تثلیث محض باطل۔ ابن الاثیر نے اسدالغابہ میں فرمایا: معاویہ بن معاویہ المزنی ویقال اللیثی ویقال معاویہ بن مقرن المزنی قال ابو عمر وھو اولی بالصواب ۳ الخ یعنی معاویہ بن معاویہ مزنی، اور کوئی کہتا ہے معاویہ بن مقرن مزنی، ابو عمرو نے کہا یہی صواب سے نزدیک تر ہے۔ پھر حدیث انس کے طریق اول سے پہلے طور پر نام ذکر کیا اور طریق دوم سے دوسرے طور پر اور حدیث ابوامامہ سے تیسرے طور پر۔ ۱۲ منہ

---

۱ میزان الاعتدال ترجمہ ۳۰۷۵ العلاء بن زید الثقفی دارالمعرفہ بیروت ۳/ ۹۹ ۲ نیل الاوطار الصلوٰۃ علی الغائب بالنیۃ مصطفی البابی مصر ۲/ ۵۷ ۳ اسد الغابہ فی معرفۃ الصحابہ ترجمہ معاویہ بن معاویہ مزنی المکتبہ الاسلامیہ بیروت ۴/ ۳۸۸

Fatawa Razawiyya Volume 9

A thousand angels[1] — were behind the Holy Prophet, with seventy thousand angels in each row.

In Abu Ahmad Hakim, it is recorded as follows: [Arabic]: He (Gabriel) placed his right wing on the mountains, and they bowed down, and he placed his left wing on the earths, and they became low, until we looked towards Makkah and Madinah. Then the Messenger of Allah (peace and blessings be upon him), Gabriel, and the angels prayed over him.[2] [Urdu]: Gabriel placed his right wing on the mountains and they bent down; he placed his left wing on the earths and they became low, until Makkah and Madinah became visible to us. At that time, the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah the Almighty be upon him), Gabriel, and the angels (peace and blessings be upon them) offered prayers over him.

The words of the Hadith of Anas via Mahbub are: Gabriel asked, "Does the Holy Prophet wish to pray over him?" He replied, "Yes." [Arabic]: So he (Gabriel) struck the earth with his wing, and not a tree or a hill remained that did not sink, and his bier was raised for him until he looked at it, and then he prayed over him.[3] [Urdu]: Then Gabriel struck the earth with his wing, and no tree or hill remained that did not sink low, and his funeral bier was raised before the Holy Prophet until it was within his sacred sight; at that time, the Prophet prayed over him.

The words via Ala are as follows: [Arabic]: Would you like to pray over him? I will contract the earth for you. He said, "Yes." So he prayed over him.[4] [Urdu]: Gabriel requested, "If the Holy Prophet wishes to pray over him, I will fold up the earth." He said, "Yes." Gabriel did so, and at that time, the Holy Prophet prayed over him.

I say: Rather, the style of speech indicates that the presence of the funeral was considered necessary for offering the prayer; hence Gabriel requested that if the Holy Prophet wished to offer the prayer, he would fold up the earth so that the Holy Prophet could pray. Understand this.

[1] Mirqat Sharh Mishkat, citing Al-Tabarani, Chapter on Walking with the Funeral, etc., Maktaba Imdadia Multan 4/464; Fath al-Qadir, citing Al-Tabarani, Chapter on Prayer over the Deceased, Maktaba Nuriya Razawiyya Sukkur 2/81 [2] Majma' al-Zawa'id, citing Al-Tabarani, Chapter on Prayer over the Absent, Dar al-Kitab al-Arabi Beirut 3/38 [3] Al-Isabah fi Tamyiz al-Sahabah, biography 8080 Muawiyah bin Muawiyah, Dar Sadir

Beirut 3/436 [4] Al-Isabah fi Tamyiz al-Sahabah, biography 8080 Muawiyah bin Muawiyah, Dar Sadir Beirut 3/437

फ़तावा रज़विया जिल्द नहम (खंड 9)

एक हज़ार फ़रिश्ते[1] — हुज़ूर के पीछे थे, हर कतार में सत्तर हज़ार फ़रिश्ते।

अबू अहमद हाकिम के यहाँ इस प्रकार है: [अरबी]: उसने (जिब्रईल ने) अपना दायां पंख पहाड़ों पर रखा और वे झुक गए, और अपना बायां पंख ज़मीनों पर रखा और वे पस्त हो गए, यहाँ तक कि हमें मक्का और मदीना दिखाई देने लगे। फिर अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम), जिब्रईल और फ़रिश्तों ने उन पर नमाज़ पढ़ी।[2] [उर्दू]: जिब्रईल ने अपना दायां पर पहाड़ों पर रखा वे झुक गए, बायां ज़मीनों पर रखा वे पस्त हो गईं यहाँ तक कि मक्का व मदीना हमको नज़र आने लगे, उस वक़्त रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम और जिब्रईल व मलाइका अलैहिमुस्सलातु वस्सलाम ने उन पर नमाज़ पढ़ी।

महबूब के माध्यम से हज़रत अनस की हदीस के शब्द ये हैं: जिब्रईल ने अर्ज़ किया, "क्या हुज़ूर इस पर नमाज़ पढ़ना चाहते हैं?" फ़रमाया: "हाँ।" [अरबी]: तो उन्होंने (जिब्रईल ने) अपने पंख से ज़मीन पर मारा, तो कोई पेड़ या टीला ऐसा न रहा जो पस्त न हो गया हो, और उनका जनाज़ा हुज़ूर के सामने बुलंद किया गया यहाँ तक कि वह नज़रों के सामने आ गया, उस वक़्त हुज़ूर ने उन पर नमाज़ पढ़ी।[3] [उर्दू]: पस जिब्रईल ने ज़मीन पर अपना पर मारा कोई पेड़ और टीला न रहा जो पस्त न हो गया और उनका जनाज़ा हुज़ूर के सामने बुलंद किया गया यहाँ तक कि पेशे नज़रे अक़दस हो गया, उस वक़्त हुज़ूर ने उन पर नमाज़ पढ़ी।

अला के माध्यम से शब्द इस प्रकार हैं: [अरबी]: क्या आप उन पर नमाज़ पढ़ना चाहेंगे? मैं आपके लिए ज़मीन समेट दूँ। फ़रमाया: "हाँ।" तो उन्होंने उन पर नमाज़ पढ़ी।[4] [उर्दू]: जिब्रईल ने अर्ज़ की हुज़ूर उन पर नमाज़ पढ़नी चाहें तो मैं ज़मीन समेट दूँ, फ़रमाया: हाँ। जिब्रईल ने ऐसा ही किया, उस वक़्त हुज़ूर ने उन पर नमाज़ पढ़ी।

मैं कहता हूँ: बल्कि तर्ज़े-कलाम संकेत देता है कि नमाज़ पढ़ने के लिए जनाज़ा सामने होने की हाजत समझी गई थी, तभी जिब्रईल ने अर्ज़ की कि हुज़ूर नमाज़ पढ़नी चाहें तो मैं ज़मीन लपेट दूँ ताकि हुज़ूर नमाज़ पढ़ें। इसे समझें।

[1] मिरक़ात शरह मिश्क़ात, हवाल-ए-तबरानी, बाब अल-मशी बिल जनाज़ाह आदि, मकतबा इंदादिया मुल्तान 4/464; फ़तह अल-क़दीर, हवाल-ए-तबरानी, फ़स्ल फ़ी अल-सलात अलल मय्यित, मकतबा नूरिया रज़विया सख्खर 2/81 [2] मजमा अल-ज़वाइद, हवाल-ए-तबरानी, बाब अल-सलात अलल

ग़ाइब, दार अल-किताब अल-अरबी बैरूत 3/38 [3] अल-इसाबा फ़ी तमीज़ अल-सहाबा, तर्जुमा 8080 मुआविया बिन मुआविया, दार सादिर बैरूत 3/436 [4] अल-इसाबा फ़ी तमीज़ अल-सहाबा, तर्जुमा 8080 मुआविया बिन मुआविया, दार सादिर बैरूत 3/437

पेज 360/948

فتاویٰ رضویہ جلد نہم

الف ملك 1 ۔ حضور کے پیچھے تھیں، ہر صف میں ستر ہزار فرشتے۔

ابواحمد حاکم کے یہاں یوں ہے: وضع جناحه الایمن علی الجبال ، فتواضعت ووضعت جناحه الایسر علی الارضین فتواضعت حتی نظرنا الی مکة والمدینة فصلی علیه رسول الله صلی الله علیه وسلم وجبریل والملئکة 2 ۔ جبریل نے اپنا داہنا پر پہاڑوں پر رکھا وہ جھک گئے بایاں زمینوں پر رکھا وہ پست ہو گئیں یہاں تک کہ مکہ ومدینہ ہم کو نظر آنے لگے، اس وقت رسول اللہ صلی اللہ تعالی علیہ وسلم اور جبریل وملائکہ علیہم الصلوۃ والسلام نے ان پر نماز پڑھی۔

حدیث انس بطریق محبوب کے لفظ یہ ہیں: جبریل، نے عرض کی کیا حضور اس پر نماز پڑھنا چاہتے ہیں؟ فرمایا: ہاں۔ فضرب بجناحه الارض فلم تبق شجرة ولا اکمة الا تضعضعت ورفع له سریره حتی نظر الیه فصلی علیه 3 ۔ پس جبریل نے زمین پر اپنا پر مارا کوئی پیڑ اور ٹیلہ نہ رہا جو پست نہ ہوگیا اور ان کا جنازہ حضور کے سامنے بلند کیا گیا یہاں تک کہ پیش نظر اقدس ہو گیا، اس وقت حضور نے ان پر نماز پڑھی۔

بطریق علاء کے لفظ یوں ہیں: هل لك ان تصلی علیه فاقبض لك الارض قال نعم فصلی علیه 4 ۔ جبریل نے عرض کی حضور ان پر نماز پڑھنی چاہیں تو میں زمین سمیٹ دوں، فرمایا: ہاں۔ جبریل نے ایسا ہی کیا، اُس وقت حضور نے ان پر نماز پڑھی۔

اقول: بلکہ طرزِ کلام مشیر ہے کہ نماز پڑھنے کے لئے جنازہ سامنے ہونے کی حاجت سمجھی گئی، جب تو جبریل نے عرض کی کہ حضور نماز پڑھنی چاہیں تو میں زمین لپیٹ دوں تاکہ حضور نماز پڑھیں۔ فافهم

1 مرقاة شرح مشكوة بحواله الطبرانى باب المشى بالجنازة الخ مكتبہ امداديہ ملتان ۴ / ۴۶۴، فتح القدير بحواله الطبرانى فصل فى الصلوة على الميت مكتبہ نوريہ رضويہ سكهر ۸۱/۲ 2 مجمع الزوائد بحواله الطبرانى باب الصلوة على الغائب دار الكتاب العربى بيروت ۳ / ۳۸ 3 الاصابہ فى تمييز الصحابہ ترجمہ ۸۰۸۰ معاويہ بن معاويہ دار صادر بيروت ۳ / ۴۳۶ 4 الاصابہ فى تمييز الصحابہ ترجمہ ۸۰۸۰ معاويہ بن معاويہ دار صادر بيروت ۳ / ۴۳۷

Volume 9 Fatawa Razawiya

Third Event: Al-Waqidi narrated in Maghazi from Asim bin Umar bin Qatadah and Abdullah bin Abi Bakr: When the people met at Mu'tah, the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) sat on the pulpit and the area between him and ash-Sham was revealed to him. He was looking at their battlefield. Then he (peace and blessings of Allah be upon him) said: Zaid bin Harithah took the banner, and he went forward until he was martyred. He (the Prophet) prayed for him and supplicated for him and said: Seek forgiveness for him, for he has entered Paradise while running. Then Ja'far bin Abi Talib took the banner and went forward until he was martyred. The Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) prayed for him and supplicated and said: Seek forgiveness for him, for he has entered Paradise and flies therein with two wings wherever he wishes. - (Summary) When the battle began at the place of Mu'tah, the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) sat on the pulpit and Allah Almighty lifted the veils for the Prophet so that he was watching the land of Syria and that battlefield. In the meantime, the Holy Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) said: Zaid bin Harithah took up the flag and continued to fight until he was martyred. The Prophet honored him with his prayer and supplication, and the Companions were told to seek forgiveness for him, as he entered Paradise running. Then the Prophet said that Ja'far bin Abi Talib took up the flag and continued to fight until he was martyred. The Prophet blessed him with his prayer and supplication, and the Companions were told to seek forgiveness for him, as he entered Paradise and flies around in it wherever he wishes with his wings.

Firstly, from both paths, it is Mursal (a type of Hadith chain). I say: Asim bin Umar is from the middle generation of Tabi'un (successors), the grandson of the companion Qatadah bin Nu'man (may Allah be pleased with him). And this Abdullah bin Abi Bakr is Abdullah bin Abi Bakr Muhammad bin Amr bin Hazm, from the junior Tabi'un, the great-grandson of the companion Amr bin Hazm (may Allah be pleased with him).

Secondly, when do the scholars of Hadith accept Al-Waqidi himself? Even Al-Dhahabi claimed a consensus on his being abandoned (Matrook).[2] I say: And I added this in support of the first point, and both are obligatory objections; otherwise, for us, the Mursal Hadith is acceptable and Al-Waqidi is trustworthy (Thiqah). (T)

[1] Kitab al-Maghazi, account of the Battle of Mu'tah, Muassasah al-Alami, Beirut, 2/727
[2] Mizan al-I'tidal, translation no. 994, Muhammad bin Umar al-Waqidi, Dar al-Ma'rifah, Beirut, 3/226

जिल्द 9 फ़तावा रज़विया

तीसरी घटना: वाक़िदी ने 'मग़ाज़ी' में आसिम बिन उमर बिन क़तादह और अब्दुल्लाह बिन अबी बक्र से रिवायत की: जब लोग मुता में मिले, तो अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) मिम्बर पर बैठे और उनके लिए उनके और शाम के बीच का पर्दा हटा दिया गया। वह उनके युद्धक्षेत्र को देख रहे थे। फिर आपने (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) फरमाया: ज़ैद बिन हारिथह ने परचम संभाला और वह आगे बढ़ते रहे यहाँ तक कि शहीद हो गए। आपने उनके लिए नमाज़-ए-जनाज़ा पढ़ी और दुआ की और फ़रमाया: उनके लिए मग़फ़िरत माँगो, वह जन्नत में दौड़ते हुए दाखिल हुए हैं। फिर जाफ़र बिन अबी तालिब ने परचम लिया और आगे बढ़ते रहे यहाँ तक कि शहीद हो गए। अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने उन पर नमाज़ पढ़ी और दुआ की और फ़रमाया: उनके लिए मग़फ़िरत माँगो, वह जन्नत में दाखिल हो गए हैं और उसमें अपने पंखों से जहाँ चाहें उड़ते फिरते हैं। - (संक्षिप्त) जब मुता के स्थान पर युद्ध शुरू हुआ, तो अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) मिम्बर पर सुशोभित हुए और अल्लाह अज़-व-जल्ल ने हुज़ूर के लिए पर्दे उठा दिए कि हुज़ूर शाम देश और उस युद्धक्षेत्र को देख रहे थे। इसी दौरान हुज़ूर अकदस (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने फ़रमाया: ज़ैद बिन हारिथह ने निशान (झंडा) उठाया और लड़ते रहे यहाँ तक कि शहीद हो गए, हुज़ूर ने उन्हें अपनी सलात और दुआ से सम्मानित किया और सहाबा को आदेश हुआ कि उनके लिए इस्तिग़फ़ार (क्षमा प्रार्थना) करो, बेशक वह दौड़ते हुए जन्नत में दाखिल हुए। हुज़ूर ने फ़रमाया फिर जाफ़र बिन अबी तालिब ने निशान उठाया और लड़ते रहे यहाँ तक कि शहीद हुए, हुज़ूर ने उन्हें अपनी सलात और दुआ का गौरव प्रदान किया और सहाबा को आदेश हुआ कि उनके लिए इस्तिग़फ़ार करो, वह जन्नत में दाखिल हुए और उसमें जहाँ चाहें अपने पंखों से उड़ते फिरते हैं।

प्रथम, ये दोनों तरीकों से 'मुरसल' (एक प्रकार की हदीस) है। मैं कहता हूँ: आसिम बिन उमर औसत ताबेईन (उत्तराधिकारियों) में से हैं, सहाबी क़तादह बिन नुमान (रज़ियल्लाहु अन्हु) के पोते हैं। और यह अब्दुल्लाह बिन अबी बक्र, अब्दुल्लाह बिन अबी बक्र मुहम्मद बिन अम्र बिन हज़्म हैं, छोटे ताबेईन में से, सहाबी अम्र बिन हज़्म (रज़ियल्लाहु अन्हु) के परपोते।

द्वितीय, मुहद्दिसीन खुद वाक़िदी को कब स्वीकार करते हैं, यहाँ तक कि ज़हबी ने उनके'मतरूक' (त्याज्य) होने पर इजमा (सर्वसम्मति) का दावा किया है।[2] मैं कहता हूँ: मैंने यह पहले की आलोचना के समर्थन में जोड़ा है और दोनों अनिवार्य आक्षेप हैं; अन्यथा हमारे निकट मुरसल हदीस स्वीकार्य है और वाक़िदी विश्वसनीय (सिक़ह) हैं। (त)

[1] किताब अल-मग़ाज़ी, ग़ज़वा-ए-मुता का बयान, मुअस्सिसतुल आलमी, बेरुत, 2/727 [2] मीज़ानुल एतदाल, अनुवाद 994, मुहम्मद बिन उमर वाक़िदी, दारुल मारिफ़ह, बेरुत, 3/226

جلد نہم فتاویٰ رضویہ

واقعہ سوم: واقدی نے مغازی میں عاصم بن عمر بن قتادہ اور عبد اللہ بن ابی بکر سے روایت کی: لما التقی الناس بموتہ، جلس رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم علی المنبر و کشف لہ ما بینہ و بین الشام، فھو ینظر الی معرکتھم، فقال صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم اخذ الروایۃ زید بن حارثۃ، فمضی حتی استشھد، وصلی علیہ و دعالہ وقال استغفروا لہ وقد دخل الجنۃ وھو یسعی ثم اخذ الروایۃ جعفر بن ابي طالب فمضی حتی استشھد فصلی علیہ رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم و دعا وقال استغفروا لہ وقد دخل الجنۃ فھو یطیر فیھا بجناحین حیث شاء - (ملخصاً) جب مقام موتہ میں لڑائی شروع ہوئی، رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم منبر پر تشریف فرما ہوئے اور اللہ عز وجل نے حضور کے لئے پردے اٹھا دیئے کہ ملک شام اور وہ معرکہ حضور دیکھ رہے تھے، اتنے میں حضور اقدس صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم نے فرمایا: زید بن حارثہ نے نشان اٹھایا اور لڑتا رہا یہاں تک کہ شہید ہوا، حضور نے انھیں اپنی صلوٰۃ و دعا سے مشرف فرمایا اور صحابہ کو ارشاد ہوا اس کے لئے استغفار کرو بیشک وہ دوڑتا ہوا جنت میں داخل ہوا۔ حضور نے فرمایا پھر جعفر بن ابی طالب نے نشان اٹھایا اور لڑتا رہا یہاں تک کہ شہید ہوا حضور نے ان کو اپنی صلوٰۃ و دعا سے شرف بخشا اور صحابہ کو ارشاد ہوا اس کے لئے استغفار کرو وہ جنت میں داخل ہوا اور اس میں جہاں چاہے اپنے پروں سے اڑتا پھرتا ہے۔

اولاً یہ دونوں طریق سے مرسل ہے اقول عاصم بن عمر اوسط تابعین سے ہیں، قتادہ بن نعمان رضی اللہ تعالٰی عنہ صحابی کے پوتے اور یہ عبد اللہ بن ابی بکر عبد اللہ بن ابی بکر محمد بن عمر و بن حزم ہیں، صغار تابعین سے عمر و بن حزم صحابی رضی اللہ عنہ کے پرپوتے۔

ثانیاً خود واقدی کو محدثین کب مانتے ہیں، یہاں تک کہ ذہبی نے ان کے متروک ہونے پر اجماع کا ادعا کیا[2] اقول: و زدات هذا مشایعة للاول و کلاهما الزام فالمرسل نقبله و الواقدی نوثقه۔ اقول: (میں کہتا ہوں) یہ نقد، پہلے نقد کی روش پر میں نے بڑھا دیا ہے اور دونوں اعتراض الزامی ہیں ورنہ ہمارے نزدیک حدیث مرسل مقبول ہے اور واقدی ثقہ ہیں۔ (ت)

[1] کتاب المغازی بیان غزوہ موتہ موسسة العلمی بیروت ۲/ ۷۲۷ [2] میزان الاعتدال ترجمہ ۹۹۴ محمد بن عمر واقدی دار المعرفۃ بیروت ۳/ ۲۲۶

Fatawa Ridawiyya, Volume 9

Thirdly, I say: The narrator from Sheikh Waqidi, Abdul Jabbar bin Amara, reporting from Abdullah bin Abi Bakr, is unknown (Majhul), as mentioned in Al-Mizan [1] (as it is in Al-Mizan. - T). Thus, the Mursal (disconnected narration) is not supported. (Meaning: If the narrators were trustworthy, this Mursal would be strong and acceptable; due to the narrator's obscurity, it lacks strength. - 12, Translator)

Fourthly: In this very narration itself, it is explicitly stated that the veils were lifted, and the battlefield was right before the eyes of the Noble Prophet (peace and blessings of Allah be upon him).

[Table Section] Arabic Text: I say: But Muta is in Syria, two stages away from Jerusalem, and its expedition was in the year eight [Hijri], while the Qibla had been changed a long time before that. So how can the vision be sufficient when it is a condition that it [the deceased] be in front of the prayer area (Musalla)? Unless it is said that the intention was only to refute the argument for the prayer in absentia, and that has been accomplished. And if our stance is proven in this regard, that condition will also be proven for us, because seeing while facing away is not possible for us.

Urdu Text: I say: But the location of Muta in the land of Syria is situated two stages from Jerusalem (so it is not in the direction of the Qibla from Medina, but rather the Qibla was in the opposite northern direction, - Translator), and the Battle of Muta occurred in 8 Hijri, long after the change of Qibla had already taken place. Then how would this narration be sufficient when it is a condition for the funeral to be in front of the prayer area (Musalla)? In response, it can be said that the intention was to refute the deduction for the prayer in absentia, which was fulfilled. And when our statement is proven in this regard, that condition will also be proven in our favor, because it is impossible for us to see the funeral while it is behind our backs. (T)

Fifthly, I say: What is the evidence that 'Salah' here means the customary ritual prayer? Rather, it is blessings (Durood), and the phrase 'prayed for him' is not an explanatory conjunction but a generalization after specification. The context of the narration makes it clear that the Radiant Messenger (peace and blessings of Allah be upon him) was seated on the blessed pulpit at that time, and the luminous pulpit was near the Qibla wall. It is customary to sit on the pulpit facing the audience with one's back to the Qibla. In this narration, there is no mention of descending from the pulpit and then going for prayer. Furthermore, unlike the narration concerning Najashi,

there is no prayer of the Companions in this, nor did the Prophet command them to pray. If this was a prayer, what was the reason for not including the Companions? Also, in this same battle, the third martyrdom was of Abdullah bin Rawaha.

Marginal Note: Because the change of Qibla occurred in the 2nd year [Hijri]. 12, from it (M) | Because the change of Qibla occurred in 2 AH. (T)

--- Footnote --- 1. Mizan al-I'tidal, biography 4744, Abdul Jabbar bin Amara, Dar al-Ma'rifah, Beirut 2/532

फ़तावा रज़विया, जिल्द नहम (नौवाँ)

तीसरा, मैं कहता हूँ: शेख वाकिदी अब्दुल जब्बार बिन अमारह, जो अब्दुल्ला बिन अबी बक्र से रिवायत करते हैं, अज्ञात (मझूल) हैं, जैसा कि मीज़ान [1] में है (जैसा कि मीज़ान में है। - त)। अतः यह मुर्सल (कटी हुई रिवायत) पुष्ट नहीं है। (अर्थात: यदि रावी विश्वसनीय होते तो यह मुर्सल मज़बूत और मकबूल होती; रावी की अज्ञातता के कारण इसमें शक्ति नहीं रही - १२, अनुवादक)

चौथा: स्वयं इसी रिवायत में स्पष्ट रूप से उल्लेख है कि परदे उठा दिए गए थे, और युद्ध स्थल हज़रत अकदस (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) की नज़रों के सामने था।

[तालिका खंड] अरबी पाठ: मैं कहता हूँ: लेकिन शाम में मूता बैतुल मुक़द्दस से दो मंज़िल की दूरी पर है और उसका युद्ध आठवें वर्ष में हुआ था, और क़िबला उससे बहुत पहले बदल चुका था। तो नमाज़ी के सामने होने की शर्त के साथ केवल देखना कैसे पर्याप्त हो सकता है? सिवाय इसके कि यह कहा जाए कि इसका उद्देश्य केवल ग़ायबाना नमाज़ के तर्क का खंडन करना था और वह पूरा हो गया। और यदि उसमें हमारा कथन सिद्ध हो जाता है, तो वह शर्त भी हमारे लिए सिद्ध हो जाएगी, क्योंकि पीठ पीछे देखना हमारे लिए संभव नहीं है।

उर्दू पाठ: मैं कहता हूँ: लेकिन मकाम-ए-मूता सरज़मीन-ए-शाम में बैतुल मुक़द्दस से दो मंज़िला पर स्थित है (तो मदीना से क़िबला की दिशा में नहीं बल्कि क़िबला के विपरीत उत्तर दिशा में हुआ - अनुवादक), और ग़ज़वा-ए-मूता ८ हिजरी में हुआ जिससे बहुत पहले तहवील-ए-क़िबला (क़िबला का बदलना) हो चुकी थी। फिर यह रिवायत कैसे काफ़ी होगी जबकि जनाज़े का मुसल्ला के आगे होना शर्त है? जवाब में कहा जा सकता है कि ग़ायबाना नमाज़ पर दलील का खंडन करना मक़सद था वह पूरा हो गया, और इस बारे में जब हमारा कौल (कथन) साबित हो जाएगा तो वह शर्त भी हमारे हक़ में साबित होगी इसलिए कि पीठ की जानिब जनाज़ा होते हुए देख लेना हमारे लिए नामुमकिन है। (त)

पाँचवाँ, मैं कहता हूँ: क्या दलील है कि यहाँ 'सलात' का अर्थ प्रचलित नमाज़ है? बल्कि यह दुरूद है, और 'दुआ लहू' (उसके लिए दुआ) व्याख्यात्मक संयोजन नहीं है बल्कि विशिष्टता के बाद सामान्यीकरण है। रिवायत का संदर्भ इसी में ज़ाहिर है कि हुज़ूर पुरनूर (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) उस वक्त मिम्बर-ए-अतहर पर तशरीफ़ फ़रमा थे और मिम्बर-ए-अनवर क़िबला की दीवार के पास था। सामान्यतः मिम्बर पर बैठने का तरीका यही है कि व्यक्ति हाज़रीन की ओर मुख करे और पीठ क़िबला की ओर हो। इस रिवायत में नमाज़ के लिए मिम्बर से उतरने और फिर जाने का कहीं

उल्लेख नहीं है। साथ ही, नजाशी की रिवायत के विपरीत इसमें सहाबा की नमाज़ भी नहीं है, और न ही हुज़ूर ने उन्हें नमाज़ के लिए फ़रमाया। यदि यह नमाज़ थी, तो सहाबा को शरीक न करने की क्या वजह थी? साथ ही, इसी मोर्चे में तीसरी शहादत अब्दुल्ला बिन रवाहा की हुई।

हाशिये का नोट: क्योंकि तहवील-ए-क़िबला दूसरे साल (हिजरी) में हुई। १२, उसी से (म) | क्योंकि तहवील-ए-क़िबला २ हिजरी में हुई है। (त)

--- पाद टिप्पणी --- १. मीज़ानुल एतदाल, तर्जुमा ४७४४, अब्दुल जब्बार बिन अमारह, दारुल मारिफ़ा, बैरुत २/ ५३२

पृष्ठ ३६२/९४८

فتاوٰی رضویہ، جلد نہم

ثالثاً، اقول عبد اللہ بن ابی بکر سے راوی شیخ واقدی عبدالجبار بن عمارہ مجہول ہے ۱ کما فی المیزان (جیسا کہ میزان میں ہے۔ت) تو مرسل نامعتضد ہے۔ (یعنی رواۃ ثقہ ہو تو یہ مرسل قوی و مقبول ہوتی، جہالت راوی کے باعث اس میں قوت نہ رہی ۱۲ مترجم)

رابعاً خود اسی روایت میں صاف تصریح ہے کہ پردے اٹھادئے گئے تھے، معرکہ حضرت اقدس صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم کے پیش نظر تھا۔

[جدول] عربی عبارت: اقول: لکن موتة بالشام علی مرحلتین من بیت المقدس وغزوتها سنة ثمان وقد حولت القبلة قبلها ۴ بزمان فکیف یکفی الرؤیة مع اشتراط کونها امام المصلی الان یقال انما ارید الرد علی الاحتجاج لصلوة الغیب وقد تم واذا ثبت فیها قولنا ثبت ذلك الشرط لنا لان الروية مع الاستدبار لاتمکننا۔

اردو عبارت: اقول: لیکن مقام موتہ سرزمین شام میں بیت المقدس سے دو منزلہ پر واقع ہے (تو مدینہ سے سمت قبلہ میں نہیں بلکہ قبلہ سمت مخالف شمال میں ہوا، مترجم) اور غزوہ موتہ ۸ ہجری میں ہوا جس سے بہت پہلے تحویل قبلہ ہو چکی تھی پھر یہ روایت کیسے کافی ہوگی جبکہ جنازہ کا مصلیٰ کے آگے ہونا شرط ہے۔ جواباً کہا جاسکتا ہے کہ غائبانہ نماز پر استدلال کا رد کرنا مقصود تھا وہ پورا ہوگیا، اور اس بارے میں جب ہمارا قول ثابت ہو جائیگا تو وہ شرط بھی ہمارے حق میں ثابت ہوگی اس لئے کہ پشت کی جانب جنازہ ہوتے ہوئے دیکھ لینا ہمارے لیے ناممکن ہے۔ت)

خامساً، اقول: کیا دلیل ہے کہ یہاں صلوٰۃ بمعنی نماز معہود ہے بلکہ درود ہے اور دعا لہ عطف تفسیری نہیں بلکہ تعمیم بعد تخصیص ہے اور سوق روایت اسی میں ظاہر کہ حضور پرنور صلی

اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کا اس وقت منبر اطہر پر تشریف فرما ہونا مذکور اور منبر انور دیوار قبلہ کے پاس تھا اور معتاد یہی ہے کہ منبر پر رُوبہ حاضرین و پشت بہ قبلہ جلوس ہو۔ اور اس روایت میں نماز کے لئے منبر پر سے اترنے پھر تشریف لے جانے کا کہیں ذکر نہیں، نیز برخلاف روایت نجاشی اس میں نماز صحابہ بھی نہیں، نہ یہ کہ حضور نے ان کو نماز کے لئے فرمایا۔ اگر یہ نماز تھی تو صحابہ کو شریک نہ فرمانے کی کیا وجہ۔ نیز اسی معرکہ میں تیسری شہادت عبداللہ بن رواحہ

حاشیہ: لان تحویلھا فی السنۃ الثانیۃ ۱۲ منہ (م) | اس لئے کہ تحویل قبلہ ۲ ھ میں ہوئی ہے۔ (ت)

--- حاشیہ --- ۱ میزان الاعتدال ترجمہ ۴۷۴۴ عبدالجبار بن عمارہ دارالمعرفہ بیروت ۲/ ۵۳۲

Fatawa Razawiyya, Volume 9

...of Radi Allahu Anhu, there is no mention of Salat (funeral prayer) for them. If it were a formal prayer, it would have been performed for them as well. Yes, the specification of Durood for these two holds a valid reason, although a reason is not strictly necessary as these are not part of general rulings. The reason will become apparent from the Hadith which mentions the difference between these two noble souls and Hazrat Ibn Rawahah, stating that they were found in Paradise with their faces turned away, because a slight aversion occurred during the battle before they moved forward.

[Boxed Section] Arabic: “And it is at the end of these two reports narrated by al-Bayhaqi via al-Waqidi with his two chains of narration, and to it Ibn Sa'd alluded in the Hadith of Abu ‘Amir al-Sahabi (Radi Allahu Ta'ala Anhu) as a Marfu' narration: 'I saw some aversion in one of them as if he disliked the sword.'”[1] Urdu: That matter is at the end of those two mursal reports; al-Bayhaqi narrated it via al-Waqidi with both his chains. And towards the same point, the Hadith in Tabaqat Ibn Sa'd alludes, narrated as Marfu' from Hazrat Abu ‘Amir Sahabi (Radi Allahu Ta'ala Anhu) that the Prophet (peace be upon him) said: "In one of them I saw some aversion, as if he felt distaste for the sword." (T)

And most significantly, they are martyrs of the battlefield. Those who consider funeral prayer in absentia permissible do not consider it for a martyr on the battlefield. Thus, by the consensus of both parties, it is mandatory for 'Salat' here to mean 'supplication' (dua). This is as Imam Nawawi Shafi'i, Imam Qastalani Shafi'i, and Imam Suyuwi Shafi'i (may Allah have mercy on them) mentioned regarding 'Salat' over the graves of the martyrs of Uhud—that there is a consensus on 'Salat' meaning 'supplication' here, as we have recorded in 'An-Nahy al-Hajiz'. Even though there it states "He prayed over the people of Uhud his prayer over the deceased"[2] (meaning he performed the prayer over the people of Uhud just as a funeral prayer is performed), whereas here, it is not even that much. Some ignorant and witless individuals among the Wahhabis, like Mr. Shawkani, author of 'Nayl al-Awtar', display their mastery of principles by claiming that 'Salat' in its technical legal sense (Haqiqat-e-Shar'iyyah) means formal prayer, and deviating from the technical meaning without evidence is impermissible.

I say (Aqool): Firstly, these aspiring Mujtahids do not even know that the technical legal meaning of 'Salat' involves specific pillars (Ruku, Sujud, etc.). Where are these

components found in the funeral prayer itself? For it contains no bowing (Ruku), no prostration (Sujud), no recitation (Qira'at), and no sitting (Qa'ood). Recitation is not part of it according to us, and the other three are missing according to everyone else by consensus. Therefore, scholars explain that the funeral prayer is not 'Salat' in the absolute sense, and the research concludes it is absolute supplication and absolute Salat.

[1] At-Tabaqat al-Kubra, account of the Battle of Mu'tah, Dar Sader Beirut, 2/130 [2] Sahih al-Bukhari, regarding Salat over the Martyrs, Qadeemi Kutub Khana Karachi, 1/179

फ़तावा रज़विया, खंड 9

...रज़ी अल्लाहु अन्हु की है, उन पर सलात (जनाज़े की नमाज़) का उल्लेख नहीं है। यदि यह नमाज़ होती, तो उन पर भी होती। हाँ, उन दो के लिए 'दुरूद' के विशेष उल्लेख का एक ठोस कारण है, हालांकि कारण की आवश्यकता नहीं है क्योंकि वे सामान्य नियमों में से नहीं हैं। कारण उस हदीस से स्पष्ट होगा जिसमें इन दो महानुभावों और हज़रत इब्न रवाहा के बीच अंतर बताया गया है और यह कि उन्हें जन्नत में मुँह फेरे हुए पाया गया क्योंकि युद्ध के दौरान थोड़ी सी विमुखता (अराज़) हुई थी फिर वे आगे बढ़े थे।

[बॉक्स वाला भाग] अरबी: "वहुवा फ़ी आखिर हज़ैनिल मुरसलैन...[1]" उर्दू अनुवाद: वह बात उन दोनों मुर्सल के अंत में है, जिसे बैहक़ी ने वाक़िदी के माध्यम से अपनी दोनों सनदों से वर्णित किया है। और इब्न साद की 'तबक़ात' की हदीस में भी इसी ओर संकेत है जो हज़रत अबू आमिर सहाबी रज़ी अल्लाहु अन्हा से मर्फ़ूअन वर्णित है कि सरकार (स.अ.व) ने फ़रमाया: "उनमें से एक के भीतर मैंने कुछ विमुखता (अराज़) देखी, मानो तलवार से उसे अरुचि हुई थी।" (त)

और सबसे बड़ी बात यह है कि वे युद्ध के शहीद हैं। जो लोग 'नमाज़-ए-ग़ायब' को जायज़ मानते हैं, वे भी युद्ध के शहीद पर नमाज़ नहीं मानते। अतः दोनों पक्षों की सहमति (इज्मा) से यहाँ 'सलात' का अर्थ 'दुआ' होना अनिवार्य है। जैसा कि स्वयं इमाम नववी शाफ़ई, इमाम क़स्तलानी शाफ़ई, इमाम सुयूती शाफ़ई (रहमहुमुल्लाह) ने उहुद के शहीदों की क़ब्रों पर सलात के बारे में फ़रमाया कि यहाँ सलात का अर्थ दुआ होने पर सहमति है, जैसा कि हमने 'अन-नह्युल हाज़िज़' में उद्धृत किया है। हालाँकि वहाँ "सल्ला अला अहल-ए-उहुद सलातहु अलल-मय्यित"[2] (उहुद वालों पर वैसे ही सलात पढ़ी जैसे मय्यित पर सलात होती है) है, यहाँ तो उतना भी नहीं। वहाबियों के कुछ नासमझ अज्ञानी, जैसे नीलुल अवतार के लेखक शौकानी साहब, अपनी उसूल-दानी इस तरह दिखाते हैं कि 'सलात' का अर्थ नमाज़ की 'हक़ीक़त-ए-शरई' है और बिना प्रमाण हक़ीक़त से हटना जायज़ नहीं।

अक़ूल (मैं कहता हूँ): पहले तो इन मुज्तहिद बनने वालों को इतनी ख़बर नहीं कि सलात की हक़ीक़त-ए-शरई विशिष्ट अरकान (स्तंभों) के साथ है। यह अर्थ स्वयं जनाज़े की नमाज़ में कहाँ है? क्योंकि उसमें न रुकू है, न सुजूद, न किराअत और न क़ुऊद। हमारे यहाँ किराअत नहीं है और बाक़ी तीनों पर सर्वसम्मति है कि किसी के यहाँ नहीं हैं। इसलिए विद्वान व्याख्या करते हैं कि जनाज़े की

नमाज़ 'सलात' मुतलक़न (पूर्ण रूप से) नहीं है, और शोध यह है कि वह 'दुआ-ए-मुतलक़' और 'सलात-ए-मुतलक़ा' है।

[1] अत-तबक़ात अल-कुबरा, बयान सरिय्यह मूतह, दार सादिर बेरुत, 2/130 [2] सहीह अल-बुखारी, शहीदों पर सलात के बारे में, क़दीमी कुतुब ख़ाना कराची, 1/179

فتاوٰی رضویہ جلد نہم

رضی اللہ عنہ کی ہے ان پر صلوۃ کا ذکر نہیں، اگر نماز ہوتی تو ان پر بھی ہوتی، ہاں درود کی ان دو کے لئے تخصیص وجہ وجیہ رکھتی ہے اگرچہ وجہ کی حاجت بھی نہیں کہ وہ احکام عامہ سے نہیں، وجہ اس حدیث سے ظاہر ہو گی کہ جس میں ان دو کرام کا حضرت ابن رواحہ سے فرق ارشاد ہوا ہے اور یہ کہ ان کو جنت میں منہ پھیرے ہوئے پایا کہ معرکہ میں قدرے اعراض واقع ہو کر اقبال ہوا تھا۔

[Boxed Section] وہو فی اخر ہذین المرسلین رواہ البیہقی عن طریق الواقدی بسندیہ والیہ اشار فی حدیث ابن سعد عن ابی عامر الصحابی رضی اللہ تعالٰی عنہ مرفوعا رأیت فی بعضہم اعراضا کانہ کرہ السیف[1]- وہ بات ان ہی دونوں مرسل کے آخر میں ہے اسے بیہقی نے بطریق واقدی اس کی دونوں سندوں سے روایت کیا ہے، اور اسی کی طرف طبقات ابن سعد کی حدیث میں اشارہ ہے جو حضرت ابو عامر صحابی رضی اللہ تعالٰی عنہ سے مرفوعا مروی ہے کہ سرکار نے فرمایا ان میں سے ایک کے اندر میں نے کچھ اعراض دیکھا گویا شمشیر سے اسے ناگواری ہوئی ۔ (ت)

اور سب سے زائد یہ کہ وہ شہید معرکہ ہیں، نماز غائب جائز ماننے والے شہید معرکہ پر نماز نہیں مانتے، تو باجماع فریقین یہاں صلوۃ بمعنی دعا ہونا لازم، جس طرح خود امام نووی شافعی، امام قسطلانی شافعی، امام سیوطی شافعی رحمہم اللہ تعالٰی نے صلوۃ علی قبور شہداء اُحد میں ذکر فرمایا کہ یہاں صلوۃ بمعنی دعا ہونے پر اجماع ہے کما اثرناہ فی النہی الحاجز (جیسا کہ ہم نے اسے النہی الحاجز میں نقل کیا ہے۔ ت) حالانکہ وہاں صلی علی اھل احد صلوتہ علی المیت[2] (اہلِ اُحد پر ویسے ہی صلوۃ پڑھی جیسے میت پر صلوۃ ہوتی ہے۔ ت) ہے، یہاں اس قدر بھی نہیں، وہابیہ کے بعض

جاہلان بیخرد مثل شوکانی صاحب نیل الاوطار ایسی جگہ اپنی اُصول دانی یوں کھولتے ہیں کہ صلوۃ بمعنی نماز حقیقت شرعیہ ہے اور بلادلیل حقیقت سے عدول ناجائز۔

اقول: اولاً ان مجتہد بننے والوں کو اتنی خبر نہیں کہ حقیقت شرعیہ صلوۃ بمعنی ارکان مخصوصہ ہے یہ معنی خود نماز جنازہ میں کہاں کہ اس میں نہ رکوع ہے نہ سجود نہ قراءت نہ قعود الثالث عندنا والبواقی اجماعاً (قراءت ہمارے نزدیک اور باقی تینوں بالاجماع کسی کے یہاں نہیں۔ ت) و لہذا علماء تشریح فرماتے ہیں کہ نماز جنازہ صلوۃ مطلقاً نہیں اور تحقیق یہ کہ وہ دعائے مطلق و صلوۃ مطلقہ

[1] الطبقات الکبری بیان سریہ موتہ دار صادر بیروت ۲ / ۱۳۰ [2] صحیح البخاری بالصلوۃ علی الشہید قدیمی کتب خانہ کراچی ۱ / ۱۷۹

Fatawa Razawiyya, Volume 9

...is in Barzakh as Al-Bukhari indicated in his Sahih and spoke at length about it. (T) Mahmud al-Ayni stated that applying the term 'Salah' to the funeral prayer is metaphorical. It is in Sahih al-Bukhari: "He named it Salah [even though] it is a prayer in which there is no bowing (ruku') or prostration (sujud)." (1) In 'Umdat al-Qari, it says:

Arabic	Urdu
But the naming is not by way of literal truth, nor by way of homonymy, but by way of metaphor. (2)	But the naming is not by way of literal truth, nor by way of homonymy, but by way of metaphor. (T)

Secondly: When 'Salah' is mentioned along with 'ala falan' (upon someone), it never refers to the literal Shariah meaning, nor can it.

Arabic	Urdu
Allah Almighty says: "O you who believe! Send blessings upon him and salute him with a worthy salutation." (3)	Allah Almighty says: "O you who believe! Send blessings upon him and salute him with a worthy salutation."
O Allah! Send blessings, peace, and grace upon him and his family as You love and are pleased with.	O Allah! Send mercy, peace, and blessings upon him and his family as You love and prefer.
And He said: "And pray for them; surely your prayer is a source of peace for them." (4) And the Prophet (peace and blessings be upon him) said: "O Allah! Send blessings upon the family of Abu Awfa." (5)	And the Divine Word says: "Send blessings upon them, surely your prayer is peace for them." And the Messenger (peace and blessings of Allah be upon him) said: "O Allah! Send blessings upon the family of Abu Awfa." (T)

Does this mean: "O God! You perform the ritual prayer or funeral prayer for the family of Abu Awfa?" Is 'Salah alayhi' in Shariah not in the sense of 'Durood' (invoking blessings)? "But the Wahhabis are an ignorant people." (T)

Note: Some who claim to be Hanafi present this meaningless excuse here, as stated in Madarij al-Nubuwwah:

Persian	Urdu
And now in the two holy sanctuaries (Haramayn) it is customary that when news...	And at this time in the two holy sanctuaries it is customary that...

1. Sahih al-Bukhari, Chapter on the Sunnah of Prayer for the Funeral, Qadeemi Kutub Khana, Karachi, 1/167
2. 'Umdat al-Qari Sharh Sahih al-Bukhari, Chapter on the Sunnah of Prayer for the Funeral, Idarat al-Tiba'at al-Muniriyyah, Beirut, 8/122
3. Al-Quran 33/56
4. Al-Quran 9/103
5. Sahih al-Bukhari, Chapter on Whether Blessings Can Be Sent on Others Besides the Prophet (peace be upon him), Qadeemi Kutub Khana, Karachi, 2/941

फ़तावा रज़विया, खंड 9

...बरज़ख़ में है जैसा कि बुखारी ने अपनी सहीह में इसकी ओर संकेत किया है और इस बारे में विस्तार से बात की है। (त) महमूद अल-ऐनी ने स्पष्ट किया कि जनाज़े की नमाज़ पर 'सलाह' शब्द का प्रयोग करना लाक्षणिक (मज़ाज़) है। सहीह बुखारी में है: "इसका नाम ऐसी नमाज़ रखा गया जिसमें रुकू और सजदा नहीं है।" (1) उम्दतुल क़ारी में है:

अरबी	उर्दू
लेकिन इसका नामकरण वास्तविक (हक़ीक़त) तौर पर नहीं है, न ही समान शब्द (इश्तिराक) के तौर पर, बल्कि लाक्षणिक (मज़ाज़) तौर पर है। (2)	लेकिन नामकरण वास्तविकता के तौर पर नहीं है, न ही इश्तिराक के तौर पर, बल्कि लाक्षणिक (मज़ाज़) तौर पर है। (त)

दूसरा: जब 'सलाह' के साथ 'अला फ़ुलान' (किसी व्यक्ति पर) का उल्लेख हो, तो उसका अर्थ कभी भी वास्तविक शरीयत का अर्थ (नमाज़) नहीं होता, और न ही हो सकता है।

अरबी	उर्दू
अल्लाह तआला फ़रमाता है: "ऐ ईमान वालो! उन पर सलात (दरूद) भेजो और खूब सलाम भेजो।" (3)	अल्लाह तआला फ़रमाता है: "ऐ ईमान वालो! उन पर सलात भेजो और खूब सलाम भेजो।"
ऐ अल्लाह! उन पर और उनके परिवार पर रहमत, सलामती और बरकत नाज़िल फ़रमा जैसा कि तुझे प्रिय और पसंद है।	ऐ अल्लाह! उन पर और उनके परिवार पर रहमत, सलामती और बरकत नाज़िल फ़रमा जैसा कि तुझे प्रिय और पसंद है।
और अल्लाह ने फ़रमाया: "और उन पर सलात भेजो; बेशक तुम्हारी सलात उनके लिए सुकून है।" (4) और नबी (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने फ़रमाया: "ऐ अल्लाह! अबू औफ़ा के परिवार पर सलात (रहम) भेज।" (5)	और अल्लाह का फ़रमान है: "उन पर सलात भेजो, बेशक तुम्हारी सलात उनके लिए सुकून है।" और हुज़ूर सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने फ़रमाया: "ऐ अल्लाह! अबू औफ़ा के परिवार पर सलात फ़रमा।" (त)

क्या इसका यह मतलब है कि "ऐ अल्लाह! तू अबू औफ़ा के परिवार पर नमाज़ पढ़ या उनका जनाज़ा पढ़?" क्या शरीयत में 'सलात अलैह' का अर्थ दरूद नहीं है? "लेकिन वहाबी एक अज्ञानी कौम है।" (त)

सावधानी: कुछ लोग जो हनफी बनने का दावा करते हैं, यहाँ यह अर्थहीन बहाना पेश करते हैं जैसा कि मदारिज अल-नुबुव्वत में है:

फ़ारसी	**उर्दू**
और अब हरमैन शरीफ़ैन में यह प्रचलित है कि जब खबर...	और इस समय हरमैन शरीफ़ैन में यह प्रचलित है कि...

1. सहीह अल-बुखारी, अध्याय: जनाज़े की नमाज़ की सुन्नत, क़दीमी कुतुब ख़ाना, कराची, 1/167
2. उम्दतुल क़ारी शरह सहीह अल-बुखारी, अध्याय: जनाज़े की नमाज़ की सुन्नत, इदारात अल-तिबाअत अल-मुनीरिया, बेरूत, 8/122
3. अल-क़ुरान 33/56
4. अल-क़ुरान 9/103
5. सहीह अल-बुखारी, अध्याय: क्या नबी (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) के अलावा दूसरों पर दरूद भेजा जा सकता है, क़दीमी कुतुब ख़ाना, कराची, 2/941

فتاوٰی رضویہ، جلد نہم

میں برزخ ہے کما اشار الیہ البخاری فی صحیحہ واطال فیہ (جیسا کہ امام بخاری نے اپنی صحیح میں اس کی جانب اشارہ کیا ہے اور اس بارے میں طویل کلام کیا ہے۔ت) محمود عینی نے تصریح فرمائی کہ نماز جنازہ پر اطلاقِ صلوٰۃ مجاز ہے۔ صحیح بخاری میں ہے: سماھا صلوٰۃ لیس فیھا رکوع ولا سجود 1 (اس کا نام رکھا ایسی نماز جس میں رکوع و سجود نہیں،ت) عمدۃ القاری میں ہے:

| لیکن تسمیہ بطور حقیقت نہیں، نہ بطور اشتراک بلکہ بطریقِ مجاز ہے۔ (ت) | لکن التسمیۃ لیست بطریق الحقیقۃ ولا بطریق الاشتراك ولکن بطریق المجاز 2۔ |

ثانیا: صلوٰۃ کے ساتھ جب علی فلان مذکور ہو ہرگز اس سے حقیقت شرعیہ مراد نہیں ہوتی، نہ ہو سکتی ہے،

| اللہ تعالٰی فرماتا ہے: اے ایمان والو! ان پر صلوٰۃ بھیجو اور خوب سلام بھیجو۔ | قال اللہ تعالٰی یا ایھا الذین امنوا صلو علیہ وسلموا تسلیما 3 | | اے اللہ! ان پر اور ان کی آل پر رحمت و سلامتی اور برکت نازل فرما جیسی تجھے محبوب و پسندیدہ ہے۔ | اللھم صل وسلم وبارك علیہ وعلی اٰلہ کما تحب و ترضٰی | | اور ارشاد باری ہے: ان پر صلوٰۃ بھیج بیشک تیری صلوٰۃ ان کے لئے سکون ہے۔ اور حضور صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم نے فرمایا: اے اللہ! آل ابی اوفٰی پر صلوٰۃ فرما۔ (ت) | وقال وَصَلِّ عَلَیْھِمْ اِنَّ صَلٰوتَكَ سَکَنٌ لَّھُمْ 4 وقال صلی اللہ علیہ وسلم اللھم صل علی اٰل ابی اوفٰی 5۔ |

کیا اس کے یہ معنی ہیں کہ الٰہی! تو آل ابی اوفٰی پر نماز یا ان کا جنازہ پڑھ؟ کیا صلوۃ علیہ شرع میں بمعنی دورد نہیں؟ ولکن الوھابیۃ قول یجھلون (لیکن وہابیہ نادان قوم ہے۔ت)

تنبیہ: بعض حنفی بننے والے یہاں یہ عذرِ بے معنیٰ پیش کرتے ہیں کہ مدارج النبوۃ میں ہے:

| اور اس وقت حرمین شریفین میں متعارف ہے کہ | والان در حرمین شریفین متعارف ست کہ چوں خبر |

1 صحیح البخاری باب سنۃ الصلوۃ علی الجنازۃ قدیمی کتب خانہ کراچی ۱/ ۱۶۷ 2 عمدۃ القاری شرح صحیح البخاری باب سنۃ الصلوۃ علی الجنازۃ ادارۃ الطباعۃ المنیریۃ بیروت ۱۲۲/۸ 3 القرآن ۳۳/ ۵۶ 4 القرآن ۹/ ۱۰۳ 5 صحیح البخاری باب ہل یصلی علی غیر النبی صلی اللہ علیہ وسلم قدیمی کتب خانہ کراچی ۲/ ۹۴۱

Fatawa Razawiyya Volume 9

It is reported that a pious man died in one of the cities of Islam. Shafi'is performed his funeral prayer, and some Hanafis joined them. Qadi Ali bin Jar-Allah, who was the Hadith teacher of this humble servant, was asked: How can Hanafis participate in this prayer? He replied: It is a prayer that these people offer, so there is no harm in it. (T)

One should feel ashamed while presenting the narrative of a scholar-judge of the eleventh century against all clear texts of reliable books and the consensus of all the Imams of the school of thought.

(1) The Absolute Researcher Imam Kamal al-Milla wa al-Din Ibn al-Humam (may Allah Almighty have mercy on him), whose status of Ijtihad was testified not only by the later scholars but also by his own contemporaries; such is the state of this noble Imam that if he wished to discuss a matter of the school of thought, he would say fearfully: "If I had any authority, I would have said such and such." (See Fath al-Qadir, the issue of Amin and the Book of Hajj, Chapter of Criminal Acts, issue of shaving, etc.) Then, whatever discussion he puts forward, the noble scholars clearly state that it will not be considered, practice upon it is not permissible, and the school of thought itself must be followed. It is stated in Radd al-Muhtar, Nullifiers of Wiping over Socks:

Allamah Qasim said: There is no consideration for the discussions of our teacher, i.e., Ibn al-Humam, if they contradict the transmitted school of thought.

The same is mentioned in the Criminal Acts of Hajj. In the Marriage of Slaves, it is narrated from Allamah Nur al-Din Ali al-Maqdisi:

Al-Kamal (Ibn al-Humam) reached the level of Ijtihad, although his discussion cannot prevail over the school of thought.

1 Madarij al-Nubuwwah, Death of the Negus of Abyssinia, Maktaba Nooria Razavia, Sukkur, 2/77. 2 Fath al-Qadir, Chapter on the Description of Prayer and Chapter on Criminal Acts, Maktaba Nooria Razavia, Sukkur, 1/257 and 2/228. 3 Radd al-Muhtar, Chapter on Wiping over Socks, Idarat al-Tiba'at al-Misriyya, Egypt, 1/182. 4 Radd al-Muhtar, Chapter on Marriage of Slaves, Idarat al-Tiba'at al-Misriyya, Egypt, 2/378.

फ़तावा रज़विया, खंड 9

यह खबर मिलती है कि इस्लाम के शहरों में से किसी शहर में एक नेक व्यक्ति का निधन हो गया। शाफ़ईयों ने उनका जनाज़ा पढ़ाया और कुछ हनफ़ी भी उनके साथ शामिल हो गए। क़ाज़ी अली बिन जार-अल्लाह से, जो इस फ़क़ीर के हदीस के उस्ताद थे, पूछा गया कि हनफ़ी इस नमाज़ की अदायगी में कैसे शामिल होते हैं? उन्होंने फ़रमाया कि यह एक दुआ है जो ये लोग करते हैं, तो इसमें कोई हर्ज नहीं। (त)

भरोसेमंद किताबों के स्पष्ट ग्रंथों और संप्रदाय (मज़हब) के सभी इमामों की सहमति के खिलाफ ग्यारहवीं सदी के एक विद्वान क़ाज़ी की कहानी पेश करते हुए शर्म आनी चाहिए थी।

(1) इमाम मुहक़्क़िक़ अली अल-इतलाक़ कमाल अल-मिल्लत वल-दीन इब्न अल-हुमाम (अल्लाह उन पर रहमत करे), जिनके इज्तिहाद के रुतबे की गवाही न केवल बाद के विद्वानों ने बल्कि स्वयं उनके समकालीनों ने भी दी थी; इस महान इमाम की यह हालत है कि अगर वे संप्रदाय के किसी मसले पर चर्चा करना चाहें, तो डरते-डरते इस तरह फ़रमाते हैं: "यदि मुझे कोई अधिकार होता तो मैं ऐसा-ऐसा कहता।" (देखें फ़तह अल-क़दीर मसला-ए-आमीन और किताब अल-हज, बाब अल-जिनायात, मसला-ए-हलक़ आदि)। फिर वे जो भी चर्चा करते हैं, आलिमों ने स्पष्ट रूप से कहा है कि वह सुनने योग्य नहीं होगी, उस पर अमल करना जायज़ नहीं होगा, बल्कि संप्रदाय (मज़हब) का ही पालन किया जाएगा। रद अल-मुहतार, नवाक़िज़-ए-मसह अल-ख़ुफ़ में है:

अल्लामा क़ासिम ने फ़रमाया: हमारे उस्ताद इमाम इब्न अल-हुमाम की चर्चाओं का कोई महत्व नहीं है जब वे संप्रदाय (मज़हब) की प्रचलित रिवायतों के खिलाफ हों।

इसी तरह जिनायात-ए-हज में भी है। निकाह अर-रक़ीक़ (दासों का निकाह) में अल्लामा नूर अल-दीन अली मक़दीसी से है:

इमाम इब्न अल-हुमाम इज्तिहाद के रुतबे तक पहुँच चुके हैं, हालाँकि उनकी चर्चा संप्रदाय (मज़हब) पर हावी नहीं हो सकती।

1 मदारिजुन नुबुव्वह, हबशा के राजा नजाशी का निधन, मक्तबा नूरिया रज़विया, सुक्कुर, 2/77. 2 फ़तह अल-क़दीर, बाब सिफ़त अल-सलात और बाब अल-जिनायात, मक्तबा नूरिया रज़विया, सुक्कुर, 1/257 और 2/228. 3 रद अल-मुहतार, बाब अल-मसह अलल ख़ुफ़ैन, इदारा-ए-तिबातुल

मिसरिया, मिस्र, 1/182. 4 रद अल-मुहतार, बाब निकाह अर-रक़ीक़, इदारा-ए-तिबातुल मिसरिया, मिस्र, 2/378.

می رسد کہ فلان مرد صالح در بلدی از بلاد اسلام فوت کردہ است شافعیہ نماز بروے میکنند و بعضے حنفیہ با ایشاں شریک می شوند از قاضی علی بن جار اللہ کہ شیخ حدیث فقیر بود پرسیدہ شد کہ حنفیہ چوں شریک می شوند در گزاردن این نماز، گفت دُعائے است کہ میکنند فلا بأس بہ۱۔ جب اطلاع ملتی ہے کہ فلاں مرد صالح بلادِ اسلام میں سے کسی شہر میں فوت ہو گیا تو شافعیہ اس کی نماز پڑھتے ہیں اور کچھ حنفی بھی ان کے ساتھ شریک ہو جاتے ہیں۔ قاضی علی بن جار اللہ سے جو فقیر کے شیخِ حدیث تھے پوچھا گیا کہ حنفیہ اس نماز کی ادائیگی میں کیسے شریک ہوتے ہیں؟ انھوں نے فرمایا کہ ایک دعا ہے جو یہ لوگ کرتے ہیں تو اس میں کوئی حرج نہیں۔(ت)

تمام نصوص صریحہ کتبِ معتمدہ و اجماعِ جمیع ائمہ مذہب کے مقابل گیارہویں صدی کے ایک فاضل قاضی کی حکایت پیش کرتے ہوئے شرم چاہئے تھی۔ (۱) امام محقق علی الاطلاق کمال الملۃ والدین ابن الہمام رحمہ اللہ تعالٰی کہ متاخرین تو متاخرین خود ان کے معاصرین ان کے لئے مرتبہ اجتہاد کی شہادت دیتے، ان امام جلیل کی یہ حالت ہے کہ اگر کسی مسئلہ مذہب پر بحث کرنا چاہیں تو ڈرتے ڈرتے یوں فرماتے ہیں: لوکان الی شیئ لقلت کذا۲ مجھے کچھ اختیار ہوتا تو یوں کہتا۔ (دیکھو فتح القدیر مسئلہ آمین و کتاب الحج باب الجنایات مسئلہ حلق وغیرہما) پھر جو بحث وہ کرتے ہیں علمائے کرام تصریح فرماتے ہیں مسموع نہ ہو گی، اس پر عمل جائز نہیں، مذہب ہی کا اتباع کیا جائے گا۔ ردالمحتار نواقض مسح الخف میں ہے:

قد قال العلامۃ قاسم لا عبرۃ بأبحاث شیخنا یعنی ابن الہمام اذا خالف المنقول ۳۔ علامہ قاسم نے فرمایا: ہمارے استاد امام ابن الہمام کی بحثوں کا کچھ اعتبار نہیں جب وہ مسئلہ منقولہ مذہب کے خلاف ہوں۔

اسی طرح جنایاتِ الحج میں ہے۔ نکاح الرقیق میں علامہ نور الدین علی مقدسی سے ہے:

الکمال بلغ الاجتہاد وان کان البحث لا یقضی علی المذھب ۴۔ امام ابن الہمام رتبہ اجتہاد تک پہنچے ہوئے ہیں اگر چہ بحث مذہب پر غالب نہیں آسکتے۔

۱ مدارج النبوۃ انتقال شاہ حبشہ نجاشی مکتبہ نوریہ رضویہ سکھر ۷۷/۲ ۲ فتح القدیر باب صفۃ الصلوۃ وباب الجنایات مکتبہ نوریہ رضویہ سکھر ۲۲۸/۲ و ۲۵۷/۱ ۳ ردالمحتار باب المسح علی الخفین ادارۃ الطباعۃ المصریۃ مصر ۱۸۲/۱ ۴ ردالمحتار باب نکاح الرقیق ادارۃ الطباعۃ المصریۃ مصر ۳۷۸/۲

Fatawa Razawiyya Volume 9

Then, an opinion of someone who does not possess even a minimal aptitude for independent legal reasoning (Ijtihad) and goes against all the Imams of the school of thought—how can it be worthy of any attention! It is stated in Al-Tahtawi, chapter on 'Iddah': "The text is what must be followed; therefore, one should not rely on research [that contradicts] it."[1] When the transmission is to be followed, then if a matter is clearly transmitted, research/debate will not be considered.

(2) It is clearly stated that even an opinion of some jurists of the school of thought is not acted upon if it goes against the [established] school. We have cited many such transmissions in Al-Ataya al-Nabawiyya. In Al-Halabi on Al-Durr, chapter on 'Salat al-Khawf', it says: "It is not acted upon because it is only the opinion of some."[2] It should not be acted upon because it is the opinion of [only] some. So how can that be acted upon which is not the opinion of even a single [established authority]?

(3) There are clear texts (Nusus) stating that one should not act upon commentaries (Shurooh) in opposition to the primary manuals (Mutun), nor upon Fatwa collections in opposition to the commentaries. We have illuminated their continuous transmissions in our book 'Fasl al-Qadani Rasm al-Ifta'. It is mentioned in the statement of Allama Ibrahim Halabi, the commentator of [Al-Durr al-Mukhtar]: "It is not acted upon because it contradicts the general expressions of all the primary manuals (Mutun)."[3] It is not acted upon because it contradicts the general scope of all the primary manuals.

When something that contradicts not just the manuals themselves, but merely their general expressions, is considered unactable, then how can acting upon something that contradicts manuals, commentaries, and fatwas all together be possible!

(4) Furthermore, even if that argument held any weight, funeral prayer is by no means like a simple supplication (Dua). In supplication, purity of the body, purity of clothes, purity of place, facing the Qibla, Takbir al-Tahrimah, standing (Qiyam), Tahlil, and stability on the ground are not necessary at all. However, in the funeral prayer, these and many other things are obligatory (Fard). If some people, having just urinated, without cleansing (Istinja), without ablution (Wudu), and without Tayammum, come to the funeral, and among them one person sits with his back to the Qibla leaning against the funeral bed, and others lie or sit in front of him, some mounted on horses and camels, facing different directions like South or East contrary

to the Qibla, and the leader says in Pashto: "O Allah! Forgive this deceased," and they all say "Ameen" in English etc., then would anyone...

---

[1] Hashiyah al-Tahtawi 'ala al-Durr al-Mukhtar, Chapter: Iddah, Section: Proof of Lineage, Dar al-Ma'rifah, Beirut, 2/241. [2] Al-Durr al-Mukhtar citing Al-Halabi, Chapter: Prayer of Fear, Idarah al-Tiba'ah al-Misriyyah, Egypt, 1/568. [3] Al-Durr al-Mukhtar citing Al-Halabi, Chapter: Prayer of Fear, Idarah al-Tiba'ah al-Misriyyah, Egypt, 1/568.

फ़तावा रज़विया जिल्द नहुम (9)

फिर जिसकी अदना लियाक़ते-इज्तिहाद भी नहीं, जमीअ् अइम्मा-ए-मज़हब के ख़िलाफ़ उसकी बात क्या क़ाबिले-इल्तिफ़ात! तहतावी बाबुल इद्दत में है: "अन-नस्सु हुवल मुत्तबउ फ़ला युअ्व्वलु अ्लल बहस माअ्हु" [1] (नक़्ल ही की पैरवी है, तो मसला मन्क़ूल होते हुए बहस का एतिबार न होगा।)

(२) तसरीह है कि ख़िलाफ़ेमज़हब बाज़ मशाइख़े-मज़हब के क़ौल पर भी अमल नहीं, हमने अल-अ्ताया अन-नबविया में इसकी बहुत नक़ुल ज़िक्र कीं, हलबी अ्लद-दुर्र बाब सलातुल ख़ौफ़ में है: "ला युअ्मलु बिही लिअन्नहू क़ौलुल बाअ्ज़" [2] (इस पर अमल न किया जाए कि यह बाज़ का क़ौल है। तो जो एक का भी क़ौल न हो उस पर क्योंकर अमल हो सकता है।)

(३) नुसूसे-जलीया हैं कि मतून के मुक़ाबिल शूरूह, शूरूह के मुक़ाबिल फ़तावा पर अमल नहीं। हमने उनकी नक़ुल मुतवातिरा अपनी किताब 'फ़स्लुल क़ज़ानी रस्मुल इफ़्ता' में रौशन कीं और अल्लामा इब्राहीम हलबी मुशशी-ए-दुर के क़ौल में मज़कूर है: "ला युअ्मलु बिही लिमुखालफ़तिही लि-इतलाक़ि साइरिल मतून" [3] (इस पर अमल नहीं कि इतलाक़ जुमला मतून के ख़िलाफ़ है।)

जब न मतून बल्कि सिर्फ़ इतलाक़ इबाराते मतून का मुख़ालिफ़ नाक़ाबिले-अमल, तो जो मतून व शूरूह व फ़तावा सब के ख़िलाफ़ है उस पर अमल क्योंकर मुहतमल!

(४) फिर वह बहस कुछ हस्ती भी रखती हो, नमाज़े-जनाज़ा मुजर्रद दुआ के मिस्ल ज़िन्हार नहीं। दुआ में तहारते-बदन, तहारते-जामा, तहारते-मकान, इस्तक़बाले-क़िबला, तकबीरे-तहरीमा, क़ियाम तहलील, इस्तक़रार अ्लल अर्ज़ कुछ भी ज़रूर नहीं, और नमाज़े-जनाज़ा में ये और इनसे ज़ाइद और बहुत बातें सब फ़र्ज़ हैं, क्या अगर कुछ लोग इसी वक़्त पेशाब करके, बे-इस्तिन्जा, बे-वज़ू, बे-तयम्मुम जनाज़ा के पास आएं और उनमें एक शख़्स क़िबला को पुश्त करके जनाज़ा की पट्टी से पीठ लगा कर बैठे और बाक़ी कुछ उसके आगे बराबर लेटे-बैठे, कुछ घोड़ों पर चढ़े और ऊँट, दक्खन, पूरब मुख़्तलिफ़ जहतों ख़िलाफ़ेक़िबला को मुँह किये हों वह पश्तो में कहे: "इलाही! इस मय्यत को बख़्श दे" और ये सब अंग्रेज़ी वग़ैरा में 'आमीन' कहें, तो कोई...

---

[1] हाशिया अत-तहतावी अ्लद-दुर्रिल मुख़्तार, बाबुल इद्दत, फ़स्ल फ़ी सुबूतित नसब, दारुल माअ्रिफ़ा बैरुत २/२४१ [2] दुर्रुल मुख़्तार ब-हवाला हलबी, बाब सलातुल ख़ौफ़, इदारातुल तिबाअ्तुल

मिस्रिया मिस्र १/५६८ [3] दुर्रुल मुख़्तार ब-हवाला हलबी, बाब सलातुल ख़ौफ़, इदारातुल तिबाअ़तुल मिस्रिया मिस्र १/५६८

सफ़हा ३६६ अज़ ९४८

پھر جسے ادنٰی لیاقتِ اجتہاد بھی نہیں جمیع ائمہ مذہب کے خلاف اس کی بات کیا قابل التفات!

طحطاوی باب العدت میں ہے: النص ھو المتبع فلا یعول علی البحث معه [1] نقل ہی کا اتباع ہے تو مسئلہ منقول ہوتے ہوئے بحث کا اعتبار نہ ہوگا۔

(۲) تصریح ہے کہ خلاف مذہب بعض مشائخ مذہب کے قول پر بھی عمل نہیں، ہم نے العطایا النبویہ میں اس کی بہت نقول ذکر کیں، حلبی علی الدر باب صلوۃ الخوف میں ہے: لا یعمل به لانه قول البعض [2] اس پر عمل نہ کیا جائے کہ یہ بعض کا قول ہے۔ تو جو ایک کا بھی قول نہ ہو اس پر کیونکر عمل ہوسکتا ہے۔

(۳) نصوص جلیہ ہیں کہ متون کے مقابل شروح، شروح کے مقابل فتاوٰی پر عمل نہیں۔ ہم نے ان کی نقول متواترہ اپنی کتاب فصل القضانی رسم الافتاء میں روشن کیں اور علامہ ابراہیم حلبی محشی درکے قول میں مذکور ہے: لا یعمل به لمخالفته لاطلاق سائر المتون [3] اس پر عمل نہیں کہ اطلاق جملہ متون کے خلاف ہے۔

جب نہ متون بلکہ صرف اطلاق عبارات متون کا مخالف ناقابل عمل تو جو متون و شروح و فتاوٰی سب کے خلاف ہے اس پر عمل کیونکر محتمل!

(۴) پھر وہ بحث کچھ ہستی بھی رکھتی ہو، نماز جنازہ مجرد دعا کے مثل زنہار نہیں۔ دعا میں طہارت بدن، طہارت جامہ، طہارت مکان، استقبال قبلہ، تکبیر تحریمہ، قیام تحلیل، استقرار علی الارض کچھ بھی ضرور نہیں، اور نماز جنازہ میں یہ اور ان سے زائد اور بہت باتیں سب فرض ہیں، کیا اگر کچھ لوگ اسی وقت پیشاب کرکے، بے استنجا، بے وضو، بے تیمم جنازہ کے پاس آئیں

اور ان میں ایک شخص قبلہ کو پشت کرکے جنازہ کی پٹی سے پیٹھ لگا کر بیٹھے اور باقی کچھ اس کے آگے برابر لیٹ بیٹھے، کچھ گھوڑوں پر چڑھے اور اُونٹ، دکھن، پورب مختلف جہتوں خلاف قبلہ کو منہ کئے ہوں وہ پشتو میں کہے : الہی ! اس میت کو بخش دے اور یہ سب انگریزی وغیرہ میں آمین کہیں، تو کوئی

---

[1] حاشیۃ الطحطاوی علی الدر المختار باب العدۃ فصل فی ثبوت النسب دار المعرفۃ بیروت ۲/ ۲۴۱ [2] در المختار بحوالہ حلبی باب صلوۃ الخوف ادارۃ الطباعۃ المصریہ مصر ۱/ ۵۶۸ [3] در المختار بحوالہ حلبی باب صلوۃ الخوف ادارۃ الطباعۃ المصریہ مصر ۱/ ۵۶۸

Fatawa Ridawiyya, Volume 9

A sane person can say that the funeral prayer was performed and there is no harm in such a prayer; 'du’ā-e-sut ki mi-kunand falā bā’sa bihi' (it is a prayer that these people recite, so there is no harm in it - T). Such meaningless reliance against the consensus of the Imams of the school of thought is a severe form of ignorance. There is no doubt that the praised Qazi was a scholar of the eleventh century, but even a scholar can slip. Furthermore, the command is to avoid his slip, not to follow it. It is stated in the Hadith that the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) says:

"Beware of the scholar's slip and await his return [to the truth]." Narrated by Al-Hasan bin Ali al-Hulwani, the teacher of [Imam] Muslim, Ibn Adi, al-Bayhaqi, and al-Askari in al-Amthal from Amr bin Auf al-Mazni (may Allah be pleased with him). (T)

Abdullah bin Abbas (may Allah be pleased with them) says: A scholar may slip, then he retracts it. However, the news of his slip reaches cities and remains narrated from him. Al-Munawi mentioned it in Fayd al-Qadir. (Allama Munawi wrote this in Fayd al-Qadir - T).

By God, be fair! Imagine for a moment if there were general explicit statements in the books of the school of thought regarding the permissibility of funeral prayer in absentia and repeated funeral prayers, and not just one praised Qazi but two hundred such Qazis declared it impermissible, and someone brought the authority of those two hundred against the books of the school of thought, then see how much noise these gentlemen would make, jumping around saying, "Look, there is clear explicit permission in the books of the school of thought, and this person is citing the authority of two hundred Qazis of the eleventh century against them all; should we follow them or consider the books of the school of thought as truth?" But now that it's their turn, the consensus of all the Imams of the school of thought and the agreement of all the books of the school of thought are set aside, and the sole right to be followed is given to the praised Qazi. Is there any limit to this clear injustice and ugly ignorance? But the truth is that when they find nothing anywhere, 'al-ghariq yatashabbath bi al-hashish' - a drowning man catches at a straw. And protection is from Allah.

Madarij al-Nubuwwah is not a book of jurisprudence, nor is this anecdote mentioned in it for the purpose of authority, nor does the Sheikh [author] rely on or trust it. He is

a Hanafi, and he himself is stating the Hanafi school of thought in that very book just above this passage; the school of Imam Abu Hanifa...

1. Al-Sunan al-Kubra by al-Bayhaqi, Book of Testimonies, Dar Sadir Beirut, 10/211.
2. Fayd al-Qadir Sharh al-Jami' al-Saghir, Hadith 11477, "Ittaqu..." etc., Dar al-Ma'rifa Beirut, 1/140.

फ़तावा रज़विया, जिल्द नौवीं

एक बुद्धिमान व्यक्ति कह सकता है कि जनाज़ा की नमाज़ अदा हो गई और इस तरह की नमाज़ में कोई हर्ज नहीं है, 'दुआ-ए-सुत कि मी-कुनंद फला बासा बिही' (यह एक दुआ है जो ये लोग पढ़ते हैं, तो इसमें कोई हर्ज नहीं है - त)। मज़हब के इमामों की सहमति के खिलाफ इस तरह का बेमानी आधार देना घोर अज्ञानता है। इसमें कोई शक नहीं कि प्रशंसित काजी ग्यारहवीं सदी के एक विद्वान थे, लेकिन विद्वान से भी गलती (फिसलन) हो सकती है। इसके अलावा, उनकी गलती से बचने का हुक्म है, न कि उसका अनुसरण करने का। हदीस में है कि अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) फरमाते हैं:

"विद्वान की गलती से बचो और उसके पलटने का इंतज़ार करो।" इसे इमाम मुस्लिम के उस्ताद हसन बिन अली हलवानी, इब्न अदी, बैहकी और अमसाल में अस्करी ने हज़रत अम्र बिन औफ मज़नी (रज़ियल्लाहु अन्हु) से रिवायत किया। (त)

अब्दुल्लाह बिन अब्बास (रज़ियल्लाहु अन्हुमा) फरमाते हैं: विद्वान से गलती होती है तो वह उससे रुजू (सुधार) कर लेता है, लेकिन उसकी गलती की खबर शहरों-शहरों पहुँच जाती है और उससे उसी रूप में नक़ल होती रहती है। इसे अल्लामा मुनावी ने 'फ़ैज़ुल क़दीर' में लिखा है। (त)

खुदा के लिए इंसाफ करें! ज़रा मान लीजिए कि अगर मज़हब की किताबों में गायब की नमाज़े जनाज़ा और जनाज़ा दोहराने की अनुमति के बारे में आम स्पष्ट निर्देश होते, और अकेले प्रशंसित काजी ही नहीं बल्कि उनके जैसे दो सौ काजी इसे नाजायज़ बताते और कोई व्यक्ति मज़हब की किताबों के मुकाबले उन दो सौ का हवाला लाता, तो देखिए ये हज़रात कितना शोर मचाते, उछल-उछल कर कहते कि देखो मज़हब की किताबों में तो साफ़ तौर पर अनुमति है और यह व्यक्ति उन सबके खिलाफ ग्यारहवीं सदी के दो सौ काज़ियों का हवाला दे रहा है, हम उनकी बात मानें या मज़हब की किताबों को हक समझें? और अब जब अपनी बारी है, तो मज़हब के तमाम इमामों की सहमति, मज़हब की तमाम किताबों का इत्तेफाक सब किनारे रख दिया गया, और अकेले प्रशंसित काजी को ही पैरवी का हकदार मान लिया गया। इस स्पष्ट ज़ुल्म और भद्दे अज्ञान की क्या कोई सीमा है? मगर बात यह है कि जब कहीं कुछ नहीं मिलता तो 'अल-गरीक़ु यतशब्बसु बिल-हशीश' - डूबता आदमी तिनके का सहारा लेता है। और अल्लाह ही हिफाज़त करने वाला है।

'मदारिजुन नबुव्वत' न तो फिक़्ह (इस्लामी न्यायशास्त्र) की किताब है और न ही इसमें यह किस्सा प्रमाण के उद्देश्य से है, और न ही शेख़ का इस पर कोई भरोसा या निर्भरता है। वह हनफी हैं और खुद इसी किताब में इस इबारत से ऊपर हनफी मज़हब बता रहे हैं, इमाम अबू हनीफा का मज़हब...

1. अस्सुननुल कुबरा लिल-बैहक़ी, किताबुश शहादात, दार सादिर बेरुत 10/211.
2. फ़ैज़ुल क़दीर शरह अल-जामिउल सगीर, हदीस 11477, तक़्वु इलख़, दारुल मारिफ़ा बेरुत 1/140.

पृष्ठ 948 का 367

عاقل کہہ سکتا ہے کہ نماز جنازہ ادا ہوئی اور اس طرح کی نماز میں حرج نہیں، دعاے ست کہ می کنند فلا باس بہ (ایک دعا ہے جو یہ لوگ کرتے ہیں تو اس میں کوئی حرج نہیں۔ت) اجماع ائمہ مذہب کے خلاف ایسی بے معنی استناد کیسی جہالت شدید ہے۔ شک نہیں کہ قاضی مدوح گیارہویں صدی کے ایک عالم تھے مگر عالم، سے لغزش بھی ہوتی ہے، پھر اس کی لغزش سے بچنے کا حکم ہے نہ کہ اتباع کا۔ حدیث میں ہے کہ رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم فرماتے ہیں:

اتقوا زلۃ العالم وانتظر فَیئتَہ، رواہ الحسن بن علی الحلوانی استاذ مسلم و ابن عدی والبیھقی والعسکری فی الامثال عن عمر وبن عوف المزنی رضی اللہ تعالٰی عنہ۔(ت) (عالم کی لغزش سے بچو اور اس کے رجوع کا انتظار رکھو۔ اسے استاذ امام مسلم حسن بن علی حلوانی، ابن عدی، بیہقی اور امثال میں عسکری نے حضرت عمر و بن عوف مزنی رضی اللہ تعالٰی عنہ سے روایت کیا۔ (ت))

عبد اللہ بن عباس رضی اللہ تعالٰی عنہما فرماتے ہیں : عالم سے لغزش ہوتی ہے تو وہ اس سے رجوع کر لیتا ہے اور اس کی خبر شہروں شہروں پہنچ کر لغزش اس سے منقول رہ جاتی ہے، ذکرہ المناوی فی فیض القدیر (اسے علامہ مناوی نے فیض القدیر میں لکھا۔ت)

خدا را انصاف! ذرا یوں فرض دیکھئے کہ کتب مذہب میں جواز نماز غائب و تکرارِ جنازہ کی عام تصریحات ہوتیں، اور ایک قاضی مدوح نہیں ان جیسے دو سو قاضی اسے ناجائز بتاتے اور کوئی شخص کتب مذہب کے مقابل ان دوسو سے سند لاتا تو دیکھئیے یہ حضرات کس قدر غل مچاتے، اچھل اچھل پڑتے کہ دیکھو کتب مذہب میں تو جواز کی صاف تصریح ہے اور یہ شخص ان سب کے خلاف گیارہویں صدی کے دوسو قاضیوں کی سند دیتا ہم ان کی مانیں یا کتب مذہب کو حق

جانیں، اور اب جو اپنی باری ہے تو تمام ائمہ مذہب کا اجماع، تمام کتب مذہب کا اتفاق سب بالائے طاق، اور تنہا قاضی مدوح کو تقلید کا استحقاق، اس ظلم صریح و جہل فتیح کی کوئی حد ہے، مگر یہ ہے کہ جب کہیں کچھ نہ پایا الغریق یتشبث بالحشیش ڈوبتا سوار (تنکا) پکڑتا ہے وباللہ العصمۃ۔

مدراج النبوۃ نہ کوئی فقہ کی کتاب ہے نہ اس میں یہ حکایت بغرض استناد، نہ شیخ کو اس پر تعویل و اعتماد، وہ حنفی ہیں اور مذہب حنفی خود اسی کتاب میں اسی عبارت سے اوپر بتارہے ہیں، مذہب امام ابو حنیفہ...

1. السنن الکبری للبیہقی کتاب الشہادات دار صادر بیروت ۱۰/ ۲۱۱
2. فیض القدیر شرح الجامع الصغیر حدیث ۱۱۴۷۷ تقوا الخ دار المعرفۃ بیروت ۱/ ۱۴۰

Fatawa Rizvia, Volume 9

And [the opinion of] Malikiyya (may Allah have mercy on them) is that it is not permissible.[1] (The school of Imam Abu Hanifa and the Malikiyya, may Allah have mercy on them, is that it is not permissible). Then, after providing evidence for this, responses are given to the opponents. Furthermore, immediately after this account, the testament of the luminous master, our liege lord Ghaus al-Azam (may Allah be pleased with him), to pray the funeral prayer in absentia every day with the intention for all deceased Muslims is quoted. No silence was maintained as to where Qadi Ali bin Zuhra [stood], and he said: "Luminous Presence of Ghausiyat-Ma’ab. Lest the servants of the Presence consider it permissible for the Hanafis, therefore, a warning was immediately given that they are Hanbalis and according to Imam Ahmad bin Hanbal, it is permissible." (They are Hanbalis and it is permissible according to Imam Ahmad bin Hanbal). If the Sheikh intended to rely on this account as an authority, he would not have made this rectification and removal of doubt here, but rather would have established it as a support for it, as is not hidden. And Allah (Glorified and Exalted is He) knows best. (As it is not hidden, and the Holy and Exalted God knows best).

Answer to the third question: Firstly, since it has become as clear as the sun that prayer in absentia and repetition of the funeral prayer are both impermissible in our school of thought, and every impermissible act is a sin, and there is no following anyone in sin. So how can the Imam being of the Shafi'i school make this impermissible act permissible for us! The Messenger of Allah (may Allah send peace and blessings upon him) says:

"There is no obedience to anyone in disobedience to Allah."[2] - Narrated by al-Bukhari, Muslim, Abu Dawud, and an-Nasa'i from the Commander of the Faithful Ali, and something similar by Ahmad and al-Hakim with a sound chain from Imran bin Husayn and from Umar bin al-Hakam al-Ghifari (may Allah be pleased with them). There is no obedience in an impermissible matter. It was narrated by Bukhari, Muslim, Abu Dawud, and Nasa'i from the Commander of the Faithful Ali, and with the same meaning by Imam Ahmad and Hakim with a sound chain from Imran bin Husayn and from Umar bin al-Hakam al-Ghifari. May Allah be pleased with them.

Secondly: The excuse of obeying the Imam here is strange and unfounded. Brothers! He becomes your Imam only when you follow him in prayer. Why should his obedience be upon you before following him? And when it is a sin and impermissible

in your school of thought, then when is it even lawful for you to follow him in such a matter! This is like the proverb that someone wrote some poems full of foul and atrocious mistakes and read them to a poet. The poet said, "These words are incorrectly joined." He replied, "Out of necessity."

[1] Madarij al-Nubuwwah, Demise of the King of Abyssinia, Negus, Maktabah Nuriyyah Razawiyyah Sukkur, 2/773. [2] Sahih al-Bukhari, Book of Judgments, Qadimi Kutub Khana Karachi, 2/1058; Sahih Muslim, Book of Peace, Noor Muhammad Asah al-Matabi Karachi, 2/125; Musnad Ahmad bin Hanbal, narrated from Imran bin Husayn, Dar al-Fikr Beirut, 5/66 and 67.

फ़तावा रज़विया, जिल्द नौ

और मालिकिया (अल्लाह उन पर रहम करे) की राय यह है कि यह जायज़ नहीं है।[1] (इमाम अबू हनीफा और मालिकिया, अल्लाह उन पर रहम करे, का मज़हब यह है कि यह जायज़ नहीं है।) फिर इस पर दलील देकर विरोधियों को जवाब दिए गए हैं, साथ ही इस वाक़ये के साथ ही नूरानी आका हमारे सरदार ग़ौस-ए-आज़म (अल्लाह उनसे राज़ी हो) की वसीयत नक़ल की गई है कि हर रोज़ तमाम मुसलमान मुर्दों की नीयत से नमाज़-ए-ग़ायबा पढ़ी जाए। इस पर खामोशी नहीं अख्तियार की गई कि क़ाज़ी अली बिन ज़ुहरा कहाँ हैं और कहा कि हुज़ूर पुर नूर ग़ौसियत माआब। कहीं हुज़ूर के गुलाम इसे हनफियों के लिए जायज़ न समझ लें, इसलिए तुरंत इस पर चेतावनी दी कि वे हनबली हैं और इमाम अहमद बिन हनबल के नज़दीक यह जायज़ है। (वे हनबली हैं और इमाम अहमद बिन हनबल के नज़दीक जायज़ है।) अगर शेख का मक़सद इस वाक़ये से सनद लेना होता तो यहाँ सुधार और वहम को दूर न करते बल्कि इसे इसका समर्थक ठहराते जैसा कि छिपा नहीं है। और अल्लाह (सुब्हानहु व तआला) बेहतर जानता है। (जैसा कि छिपा नहीं है, और पाक और बुलंद खुदा खूब जानने वाला है।)

तीसरे सवाल का जवाब: अव्वल, जब यह सूरज की तरह साफ़ हो गया कि हमारे मज़हब में नमाज़-ए-ग़ायबा और नमाज़-ए-जनाज़ा का दोहराना दोनों नाजायज़ हैं और हर नाजायज़ काम गुनाह है और गुनाह में किसी का अनुसरण नहीं है। तो इमाम का शाफ़ई मज़हब का होना इस नाजायज़ को हमारे लिए कैसे जायज़ कर सकता है! अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) फरमाते हैं:

"अल्लाह तआला की नाफरमानी में किसी की कोई इताअत (आज्ञाकारी) नहीं है।"[2] - इसे बुखारी, मुस्लिम, अबू दाऊद और नसाई ने अमीरुल मोमिनीन अली से और इसी के समान इमाम अहमद और हाकिम ने सही सनद के साथ इमरान बिन हुसैन से और उमर बिन अल-हकम अल-ग़िफ़ारी से रिवायत किया (अल्लाह उन सबसे राज़ी हो)। नाजायज़ बात में किसी की इताअत नहीं। इसे बुखारी, मुस्लिम, अबू दाऊद और नसाई ने अमीरुल मोमिनीन अली से और इसी के अर्थ में इमाम अहमद और हाकिम ने सही सनद के साथ इमरान बिन हुसैन से और उमर बिन हकम ग़िफ़ारी से रिवायत किया। अल्लाह तआला उन पर राज़ी हो।

दूम: यहाँ इमाम की इताअत का हीला (बहाना) अजीब और बेबुनियाद है। भाइयों! वह तुम्हारा इमाम तो तब हो जब तुम उसका अनुसरण (इक्तिदा) करो। अनुसरण से पहले उसकी इताअत तुम पर क्यों

हो, और जब तुम्हारे मज़हब में वह गुनाह और नाजायज़ है तो तुम्हें ऐसे काम में उसका अनुसरण ही कब जायज़ है! यह उसी मिसाल की तरह है कि किसी बेवकूफ ने कुछ भद्दे और घिनौने गलतियों से भरे शेर लिखकर किसी शायर को सुनाए। शायर ने कहा कि ये शब्द गलत बाँधे गए हैं, उसने कहा "ज़रूरत के कारण"।

[1] मदारीजुल नुबुव्वत, शाह-ए-हबशा नजाशी का इंतकाल, मकतबा नूरिया रज़विया सुक्कुर, 2/773।
[2] सही अल-बुखारी, किताबुल अहकाम, क़दीमी कुतुब खाना कराची, 2/1058; सही मुस्लिम, किताबुस सलाम, नूर मुहम्मद असहुल मताबे कराची, 2/125; मसनद अहमद बिन हनबल, इमरान बिन हुसैन से मरवी, दारुल फिक्र बेरुत, 5/66 और 67।

فتاوٰی رضویہ جلد نہم

و مالکیہ رحمہم اللہ تعالٰی آنست کہ جائز نیست ۱ (امام ابو حنیفہ و مالکیہ رحمہم اللہ تعالٰی کا مذہب یہ ہے کہ جائز نہیں ہے۔ت) پھر اس پر دلیل بتا کر مخالفین کے جواب دیئے ہیں، نیز اس حکایت کے متصل ہی حضور پُر نور سیدنا غوث اعظم رضی اللہ تعالٰی عنہ سے ہر روز بہ نیت جملہ اموات مسلمین نماز غائب پڑھنے کی وصیت نقل کر کے اس پر سکوت نہ کیا کہ کہاں قاضی علی بن ظہرہ اور کہا حضور پُر نور غوثیت مآب۔ مبادا غلامانِ حضور اس سے حنفیہ کے لئے جواز خیال کریں لہٰذا معاً اس پر تنبیہ کو فرما دیا کہ ایشاں حنبلی اند و نز دامام احمد بن حنبل جائز است (وہ حنبلی ہیں اور امام احمد بن حنبل کے نزدیک جائز ہے۔ت) اگر شیخ کو اس حکایت سے استناد مقصود ہوتا تو یہاں استدراک و دفع وہم نہ فرماتے بلکہ اسے اس کا مویّد ٹھہراتے کما لا یخفی واللہ سبحنہ وتعالی اعلم (جیسا کہ پوشیدہ نہیں، اور خدائے پاک وبرتر خوب جاننے والا ہے۔ت)

جواب سوال سوم: اولاً جبکہ آفتاب کی طرح روشن ہو گیا کہ نماز غائب و تکرارِ نمازِ جنازہ پر دونوں ہمارے مذہب میں ناجائز ہیں اور ہر ناجائز گناہ ہے اور گناہ میں کسی کا اتباع نہیں۔ تو امام کا شافعی المذہب ہونا اس ناجائز کو ہمارے لیے کیو نکر جائز کر سکتا ہے! رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم فرماتے ہیں:

لاطاعة لا حد في معصية اللہ تعالی ۲۔ رواہ البخاری و مسلم وابو داؤد والنسائي عن امیر المؤمنین علی ونحوہ احمد و الحاکم بسند صحیح عن عمر ان بن حصین وعن عمر وبن الحکم الغفاری رضی اللہ تعالی عنہم۔ ناجائز بات میں کسی کی اطاعت نہیں۔ اسے بخاری، مسلم، ابوداؤد اور نسائی نے امیر المومنین علی سے اور اسی کے ہم معنی امام احمد اور حاکم نے بسند صحیح عمران بن حصین سے اور عمر بن حکم غفاری سے روایت کیا۔ رضی اللہ تعالٰی عنہم (ت)

ثانیا : یہاں اطاعتِ امام کا حیلہ عجیب پادر ہوا ہے۔ بھائیو! وہ تمھارا امام تو جب ہو کہ تم اس کی اقتداء کرو۔ پیش از اقتداء اس کی اطاعت تم پر کیوں ہو، اور جب تمھارے مذہب میں وہ گناہ و ناجائز ہے تو تمھیں ایسے امر میں اس کی اقتداء ہی کب روا ہے! یہ وہی مثل ہے کہ کسی کودن نے کچھ اشعار قبیح و شنیع اغلاط پر مشتمل لکھ کر کسی شاعر کو سنائے۔ اس نے کہا یہ الفاظ غلط باندھے ہیں، کہا بضرورت۔

۱ مدارج النبوۃ انتقال شاہ حبشہ نجاشی مکتبہ نوریہ رضویہ سکھر ۲ / ۷۷۳ ۲ صحیح البخاری کتاب الاحکام قدیمی کتب خانہ کراچی ۲ / ۱۰۵۸، صحیح مسلم کتاب السلام نور محمد اصح المطابع کراچی ۲ / ۱۲۵، مسند احمد بن حنبل مروی از عمران بن حصین دارالفکر بیروت ۵ / ۶۶ و ۶۷

Fatawa Ridawiyya, Volume 9

Poetic, it is said: "Old man, what's the need to recite poetry."

Thirdly: Regarding permissible or obligatory prayers in which a Hanafi, according to the mentioned conditions in Bahr al-Ra'iq etc., follows a person from another school of Ahl al-Sunnah, such as Shafi'i etc. Our Imams clearly state that regarding matters which are fundamentally impermissible in our school, one should not follow them even if they are permissible in their school. For example, if he (the Shafi'i Imam) recites Qunut in the morning (Fajr) prayer, the follower should not. If the Imam says a fifth Takbir in the funeral prayer, the follower should not. It is stated in Inayah, the commentary of Hidayah:

Arabic Text	Urdu Translation
"He only follows him in what is legislated (in his own school), not otherwise."[1]	He will follow him only in what is prescribed, not in what is not. (T)

It is in Tanwir:

Arabic Text	Urdu Translation
"The follower performs Qunut in Witr, not in Fajr; rather, he stands silent."[2]	The follower should recite the Qunut of Witr, but not of Fajr; instead, he should remain standing silently. (T)

It is in al-Bahr:

Arabic Text	Urdu Translation
"If he says five takbirs in the funeral (prayer), he is not followed in the fifth."[3]	If the Imam says five takbirs during the funeral prayer, do not follow him in the fifth. (T)

When this is the ruling after following (the Imam in prayer), how could permission be granted to follow in an impermissible and unlegislated act before following? In short, the ruling of the refined Hanafi school is this. As for anyone who wants to become a non-conformist (Ghair-Muqallid), the wind of freedom and lawlessness is blowing today; every person has the choice to be like an unbridled camel. And in refutation of this, by the grace of Allah Almighty, our treatises like 'al-Nahy al-Akid' etc. are sufficient.

Arabic Text	Urdu Translation
And Allah's help is sought against the people of transgression, and our final call is that all praise belongs to Allah, Lord of the worlds, and the best of blessings and most complete...	Help is sought from God alone against the rebellious, and our final cry is that all praise be to God, who is the sustainer of all the worlds. And better...

---

[1] Al-Inayah on the margins of Fath al-Qadir, Chapter of Witr Prayer, Maktaba Nooria Razvia, Sukkur, 1/380 [2] Durr al-Mukhtar Sharh Tanwir al-Absar, Chapter of Witr and Nawafil, Matba Mujtabai, Delhi, 1/94 [3] Bahr al-Ra'iq, Chapter of Witr and Nawafil, H.M. Saeed Company, Karachi, 2/45

फ़तावा रिज़विया, जिल्द 9

काव्य, कहा गया है: "बाबा, कविता कहने की क्या ज़रूरत है।"

तीसरा: जायज़ या फ़र्ज़ और वाजिब नमाज़ें जिनमें एक हनफी, बहर अल-राइक आदि में वर्णित शर्तों के अनुसार, अहले सुन्नत के किसी अन्य मज़हब (पंथ) जैसे शाफ़ई आदि के व्यक्ति का अनुसरण (इक़्तिदा) करता है। इस बारे में हमारे इमाम स्पष्ट रूप से फ़रमाते हैं कि जो कार्य हमारे मज़हब में मूल रूप से बिल्कुल जायज़ नहीं हैं, उनमें उनका पालन न किया जाए, भले ही वे उनके मज़हब में जायज़ हों। उदाहरण के लिए, यदि वह (शाफ़ई इमाम) सुबह (फ़ज्र) की नमाज़ में क़ुनूत पढ़ता है, तो यह (हनफी मुक्तदी) न पढ़े। यदि जनाज़े की नमाज़ में इमाम पाँचवीं तकबीर कहता है, तो यह न कहे। इनाया शरह हिदाया में है:

अरबी पाठ	**उर्दू अनुवाद**
"वह केवल उसी में उसका अनुसरण करता है जो (उसके अपने पंथ में) विधानित है, अन्यथा नहीं।"[1]	वह केवल उन्हीं कार्यों में उसका पालन करेगा जो शरीयत में निर्धारित हैं, दूसरों में नहीं। (त)

तनवीर में है:

अरबी पाठ	**उर्दू अनुवाद**
"मुक्तदी वित्र में क़ुनूत पढ़ेगा, फ़ज्र में नहीं; बल्कि वह चुपचाप खड़ा रहेगा।"[2]	मुक्तदी वित्र की क़ुनूत पढ़े, फ़ज्र की नहीं, बल्कि चुपचाप खड़ा रहे। (त)

बहर में है:

अरबी पाठ	**उर्दू अनुवाद**
"यदि उसने जनाज़े में पाँच तकबीरें कहीं, तो पाँचवीं में उसका अनुसरण नहीं किया जाएगा।"[3]	अगर इमाम ने जनाज़े के अंदर पाँच तकबीरें कहीं, तो पाँचवीं में उसकी पैरवी (अनुसरण) न करे। (त)

जब इक़्तिदा (नमाज़ में शामिल होने) के बाद यह हुक्म है, तो इक़्तिदा से पहले किसी नाजायज़ और ग़ैर-मशरूअ (अवैध) कार्य में इक़्तिदा की अनुमति कैसे संभव है। संक्षेप में, परिष्कृत हनफ़ी मज़हब का हुक्म तो यही है। बाकी जो कोई ग़ैर-मुक़ल्लिद बनना चाहे, तो आज कल आज़ादी और बेलगामी

की हवा चल रही है; हर व्यक्ति को बेलगाम ऊँट होने का अधिकार है। और इसके रद (खंडन) में, अल्लाह तआला के अनुग्रह से, हमारे रिसाले (लेख) जैसे 'अल-नही अल-अकीद' आदि पर्याप्त हैं।

अरबी पाठ

और अल्लाह की मदद सरकशी करने वालों के खिलाफ़ माँगी जाती है, और हमारी आखिरी पुकार यह है कि तमाम तारीफ़ें अल्लाह के लिए हैं जो तमाम जहानों का पालने वाला है, और बेहतरीन दरूद और पूर्ण...

उर्दू अनुवाद

सरकशी वालों के खिलाफ ख़ुदा ही से मदद तलबी है, और हमारी आख़िरी पुकार यह है कि तमाम हम्द (प्रशंसा) ख़ुदा के लिये जो सारे जहानों का परवरदिगार है। और बेहतर...

---

[1] अल-इनाया, फ़तह अल-क़दीर के हाशिये पर, बाब सलातुल वित्र, मकतबा नूरिया रिज़विया, सुक्कुर, 1/380 [2] दुर्रे मुख़्तार शरह तनवीरुल अबसार, बाब अल-वित्र वल नवाफ़िल, मतबा मुजतबाई, दिल्ली, 1/94 [3] बहर अल-राइक, बाब अल-वित्र वल नवाफ़िल, एच.एम. सईद कंपनी, कराची, 2/45

فتاوٰی رضویہ، جلد نہم

شعری، کہا بابا شعر گفتن چہ ضرور۔

ثالثاً : جائز یا فرض و واجب نمازیں جن میں حنفی حسبِ شرائطِ مذکور بحر الرائق وغیرہ۔ اہل سنت کے کسی دوسرے مذہب والے مثلاً شافعی وغیرہ کی اقتداء کرے۔ اس میں ہمارے ائمہ تصریح فرماتے ہیں کہ جو امور ہمارے مذہب میں اصل سے محض ناجائز ہیں، ان میں اس کی پیروی نہ کرے اگرچہ اس کے مذہب میں جائز ہوں۔ مثلاً صبح کی نماز میں وہ قنوت پڑھے تو یہ نہ پڑھے۔ نماز جنازہ میں امام پانچویں تکبیر کہے تو یہ نہ کہے عنایہ شرحِ ہدایہ میں ہے:

عربی متن **اردو ترجمہ**

انما یتبعه فی المشروع دون غیره 1۔ اس کی پیروی صرف مشروع میں کرے گا غیر میں نہیں ۔(ت)

تنویر میں ہے:

عربی متن **اردو ترجمہ**

یأتي المأموم بقنوت الوتر لا الفجر بل یقف مقتدی قنوتِ وتر پڑھے فجر نہ پڑھے بلکہ خاموش کھڑا

ساکتاً 2۔ رہے ۔(ت)

بحر میں ہے:

عربی متن **اردو ترجمہ**

لوکبر خمسا فی الجنازة حیث لا اگر امام نے جنازہ کے اندر پانچ تکبیریں کہیں تو پانچویں میں

یتابعه فی الخامسة 3۔ اس کی پیروی نہ کرے۔(ت)

جب بعد اقتداء یہ حکم ہے تو قبل اقتداء امرِ ناجائز و نامشروع میں اقتداء کی اجازت کیونکر ممکن۔ غرض مذہب مہذب حنفی کا حکم تو یہ ہے۔ باقی جو کوئی غیر مقلد بننا چاہے تو آج کل آزادی و بے لگامی کی ہوا چل رہی ہے ہر شخص کو شترِ بے مہار ہونے کا اختیار ہے اور اس کے رَد میں بحمد اللہ تعالی ہمارے رسائل النہی الاکید وغیرہ کافی۔

عربی متن	اردو ترجمہ
واللہ المستعان علی اھل طغیان ، وآخِرُ دَعوٰنَا ان الحمد للہ رب العالمین وافضل الصلوٰۃ واکمل	سرکشی والوں کے خلاف خدا ہی سے مدد طلبی ہے، اور ہماری آخری پکار یہ ہے کہ تمام حمد خدا کے لئے جو سارے جہانوں کا پروردگار ہے۔ اور بہتر

---

1 العنایۃ علی ھامش فتح القدیر باب صلوٰۃ الوتر مکتبہ نوریہ رضویہ سکھر ۱ / ۳۸۰ 2 در مختار شرح تنویر الابصار باب الوتر والنوافل مطبع مجتبائی دہلی ۱ / ۹۴ 3 بحر الرائق باب الوتر والنوافل ایچ ایم سعید کمپنی کراچی ۲ / ۴۵

Fatawa Rizvia Volume 9

Peace be upon the leader of the messengers, Muhammad, and his family and all his companions. Amen. And Allah Almighty knows best. | Perfect blessings and peace be upon the leader of the messengers, Prophet Muhammad, and upon all his family and companions. O Allah! Accept it. And the Exalted God knows best. (T)

Problem 88: Sent by Abdul Ghaffar bin Usman Sarash, resident of Ahmedabad, Gujarat, Mahalla Kalupur Khushkla's Bol, Jami' al-Uloom, to Maulana Maulvi Ahmed Raza Khan Sahib. After greetings, it is stated that a discussion took place between me and a person, and my statement is that the funeral prayer for Mother of the Believers, Khadijah al-Kubra (may Allah be pleased with her), was not performed. If it was performed, who was the leading Imam? Please write a correct answer with references from reliable books, as I have not found satisfaction from the scholars here.

Answer: In fact, scholars have written in books of Seerah (biography) that the blessed funeral prayer of the Mother of the Believers, Khadijah al-Kubra (may Allah be pleased with her), was not performed because at that time, this prayer had not yet been ordained. Its command came later. It is mentioned in Zarqani ala al-Mawahib:

In Ramadan, ten years after the Prophethood, the pure truthful one, Khadijah (may Allah be pleased with her), died and was buried in Al-Hajun. The Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) descended into her grave, and at that time, funeral prayers were not yet performed. And Allah Almighty knows best.

The pure truthful one, Lady Khadijah (may Allah be pleased with her), passed away in the month of Ramadan ten years after the start of the Prophethood and was buried in the place of Hajun. The Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) descended into her grave. At that time, there was no funeral prayer. And Allah Almighty knows best. (T)

Problem 89: From the city of Bareilly, Madrasa Ahl-e-Sunnat-o-Jamaat, asked by Maulvi Rajabuddin, one of the students of the mentioned madrasa, on 4 Dhu al-Hijjah 1321 AH. In the name of Allah, the Most Gracious, the Most Merciful. What do the scholars of religion say regarding this matter: a person says that the 'Shaqq' (split) grave, which most Muslims in the country build, is made in an incorrect and impermissible way, the diagram of which is this:

[Blank Box]

Rather, in the case of a 'Shaqq' grave, he says that in the middle of the mentioned diagram and...

---

1 Sharh al-Zarqani ala al-Mawahib, Death of Khadijah and Abu Talib, Dar al-Ma'rifah Beirut, 1/296.

फ़तावा रिज़विया जिल्द 9

शांति हो रसूलो के सरदार मुहम्मद और उनके परिवार और उनके सभी साथियों पर। आमीन। और अल्लाह तआला बेहतर जानता है। | रसूलो के सरदार हज़रत मुहम्मद और उनके सभी परिवार और साथियों पर पूर्ण आशीर्वाद और शांति हो। ऐ अल्लाह! इसे स्वीकार कर। और महान ईश्वर बेहतर जानता है। (त)

मसला 88: अब्दुल गफ्फार बिन उस्मान सरश, निवासी अहमदाबाद, गुजरात, मोहल्ला कालूपुर खुशकला की बोल, जामे उलूम, द्वारा मौलाना मौलवी अहमद रज़ा खान साहब को भेजा गया। सलाम के बाद निवेदन है कि यहाँ मेरे और एक व्यक्ति के बीच चर्चा हुई कि मेरा कहना यह है कि उम्मुल मोमिनीन खदीजा अल-कुबरा (रज़ियल्लाहु अन्हा) के जनाज़े की नमाज़ नहीं पढ़ी गई, अगर पढ़ी गई तो पेश इमाम कौन था? कृपया विश्वसनीय किताबों के हवाले के साथ सही जवाब लिखें, क्योंकि यहाँ के उलमा से संतुष्टि नहीं हुई।

जवाब: वास्तव में, सीरत की किताबों में उलमा ने यही लिखा है कि उम्मुल मोमिनीन खदीजा अल-कुबरा रज़ियल्लाहु तआला अन्हा के मुबारक जनाज़े की नमाज़ नहीं हुई क्योंकि उस समय यह नमाज़ शुरू ही नहीं हुई थी। इसका हुक्म बाद में आया। ज़रकानी अलल मवाहिब में है:

रमज़ान में बेअसत (नबी बनने) के दस साल बाद, पाक सिद्दीका खदीजा रज़ियल्लाहु तआला अन्हा का वफ़ात हुआ और हजून में दफ़न की गईं। नबी सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम उनकी कब्र में उतरे और उस समय जनाज़े की नमाज़ नहीं थी। और अल्लाह तआला बेहतर जानता है।

सिद्दीका ताहिरा हज़रत खदीजा रज़ियल्लाहु तआला अन्हा ने बेअसत के दस साल बाद माहे रमज़ान में वफ़ात पाई और मकाम-ए-हजून में दफ़न की गईं। रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम उनकी कब्र में उतरे, उस वक्त नमाज़-ए-जनाज़ा न थी। वल्लाहु तआला आलम। (त)

मसला 89: बरेली शहर से, मदरसा अहले सुन्नत व जमाअत, मसऊला मौलवी रजबुद्दीन, मदरसा के छात्रों में से एक, 4 ज़ुल-हिज्जा 1321 हिजरी। बिस्मिल्लाहिर रहमानिर रहीम। उलमा-ए-दीन इस मसले में क्या फ़रमाते हैं कि एक शख्स यह कहता है कि कब्र-ए-शक़ जो देश में ज़्यादातर मुसलमान बनाते हैं, गलत और नाजायज़ तरीके से बनाते हैं जिसका नक्शा यह है।

[खाली बक्सा]

बल्कि कब्र-ए-शक़ की सूरत में वह यह बताता है कि ज़िक्र किए गए नक्शे के बीच में और...

---

1 शरह अज़-ज़रकानी अलल मवाहिब, वफ़ात-ए-खदीजा व अबी तालिब, दारुल मारिफ़ा बेरुत 1/296.

فتاوٰی رضویہ جلد نہم

السلام علی سید المرسلین محمد والہ واصحابہ اجمعین امین واللہ تعالی اعلم۔ | درود کامل تر سلام رسولوں کے سردار حضرت محمد پر اور ان کی آل واصحاب سب پر۔ الہی! قبول فرما۔ اور خدائے برتر خوب جاننے والا ہے۔ (ت)

مسئلہ ۸۸: مرسلہ عبدالغفار بن عثمان سرش والہ مقام احمد آباد گجرات محلہ کالو پور خوشکلا کی بول جامع علوم مولانا مولوی احمد رضا خان صاحب بعد از سلام نیاز اینکہ یہاں میرے اور ایک شخص کے درمیان تقریر ہوئی کہ مقولہ میرا یہ ہے کہ حضرت اُم المؤمنین خدیجہ الکبرٰی کے جنازہ کی نماز نہیں پڑھی گئی، اگر پڑھی گئی ہے تو پیش امام کون تھا؟ بنظر عنایت جواب باصواب مع حوالہ کتب معتبرہ ارقام فرمائیں کہ یہاں کے علماء سے تشفی نہیں ہوئی۔

الجواب: فی الواقع کتب سیر میں علماء نے یہی لکھا ہے کہ ام المؤمنین خدیجہ الکبرٰی رضی اللہ تعالٰی عنہا کے جنازہ مبارکہ کی نماز نہیں ہوئی کہ اس وقت یہ نماز ہوئی ہی نہ تھی۔ اس کے بعد اس کا حکم ہوا ہے۔ زرقانی علی المواہب میں ہے:

في رمضان بعد البعث بعشر سنين ماتت الصديقة الطاهرة خديجة رضى الله تعالى عنها ودفنت بالحجون ونزل صلى الله تعالى عليه وسلم حفرتها ولم تكن يومئذ الصلوة على الجنازة 1۔ واللہ تعالی اعلم

صدیقہ طاہرہ حضرت خدیجہ رضی اللہ تعالٰی عنہا نے بعثت کے دس سال بعد ماہِ رمضان میں وفات پائی اور مقام حجون میں دفن کی گئیں۔ رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم ان کی قبر میں اترے اس وقت نماز جنازہ نہ تھی۔ واللہ تعالٰی اعلم (ت)

مسئلہ ۸۹: از شہر بریلی، مدرسہ اہلسنت وجماعت، مسئولہ مولوی رجب الدین یکے از طلبائے مدرسہ مذکور ۴ ذی الحجہ ۱۳۲۱ھ بسم اللہ الرحمن الرحیم ، کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ ایک شخص یہ کہتا ہے کہ قبر شق اکثر ملک میں جو اہل اسلام بناتے ہیں، خلاف اور ناجائز طریقے سے بناتے ہی جس کا نقشہ یہ ہے۔

[خالی ڈبہ]

بلکہ قبر شق کی صورت میں وہ یہ بتاتا ہے کہ نقشہ مذکورہ کے درمیان اور...

---

1 شرح الزرقانی علی المواہب وفات خدیجہ والی طالب دار المعرفۃ بیروت ۱/ ۲۹۶

Fatawa Ridawiyya, Volume 9

...by making a shaqq (slit/trench) like a very small stream. In this small stream, place the body in a Qibla-facing layout on the right side. And this is what is called a 'Shaqq'.

The diagram is as follows: [Diagram: A rectangular box with '4/4' on the left and 'Place for the Deceased' inside.]

Is this second form, which the aforementioned person has invented, correct or not? And is this what is meant by 'Shaqq'? The text in Fatawa Alamgiri states:

'That a pit like a stream should be dug in the middle of the grave.'[1] (A pit should be dug in the middle of the grave like a stream. - Translator) Does this 'pit' refer to this second form, or to the first statement of his which is prevalent in most countries? This 'pit' means after digging the grave, a small stream-like trench is made and the deceased is placed in it; this is called 'Shaqq', which will be less than half a yard deep below the [main] grave floor. Therefore, may the noble Muftis and exalted scholars, may Allah increase their numbers, ponder over this issue and provide a fatwa in accordance with the Hanafi school of thought with reference to books of fatwa, so they may receive a great reward from Allah.

The Answer: The meaning of 'Shaqq' is that first, a larger rectangular pit (wide and long) is dug, then in its middle, a second rectangle is dug which is smaller than the first, slightly longer than the height of the deceased, with its width equal to half the height [of the deceased], and its depth up to the chest or a man's full height. Place the deceased in this second rectangle facing the Qibla, and above it, within the first rectangle, cover it with planks etc., and fill the space of the first rectangle with soil, keeping the soil a quarter-yard higher than the ground level. This is the method of 'Shaqq' and this is what is customary in India. This is also the meaning of the text in Alamgiriya. The first form—where only one rectangle is dug, the deceased is placed in it and then filled with soil, or planks are placed on the ground surface and soil is poured over them—is neither 'Shaqq' nor is it prevalent in India or any other country. It is stated in Alamgiriya:

(Arabic Text)	**(Urdu Translation)**
The description of 'Shaqq' is that a pit like a stream is dug in the middle of the grave, and its sides are built with bricks or other materials, the deceased	The form of 'Shaqq' is that a trench like a stream is dug in the middle of the grave, its two sides are made with unbaked bricks or something else, the deceased is placed in it,

(Arabic Text)	(Urdu Translation)
is placed in it, and it is roofed over. Thus it is in Mi'raj al-Dirayah.[2] And Allah knows best.	and it is closed from above like a roof. It is similar in Mi'raj al-Dirayah. And Allah Almighty knows best. (T)

[1] Fatawa Hindiyya, Chapter Six on Graves and Burial, etc., Noorani Kutub Khana Peshawar, 1/166. [2] Fatawa Hindiyya, Chapter Six on Graves and Burial, etc., Noorani Kutub Khana Peshawar, 1/166.

फतावा रज़विया, जिल्द 9

...एक बहुत छोटी सी नहर की तरह 'शक्क' (दरार/गड्ढा) बना कर। इस छोटी नहर में शव को किबला की ओर मुख करके दाईं करवट पर रखें। और शक्क इसी को कहते हैं।

नक्शा यह है: [चित्र: एक आयताकार बॉक्स जिसके बाईं ओर '4/4' और बीच में 'मृतक का स्थान' लिखा है।]

क्या यह दूसरी सूरत, जो उपर्युक्त व्यक्ति ने ईजाद की है, सही है या नहीं? और क्या शक्क से यही मुराद है? और 'आलमगीरी' की इबारत (पाठ) में है:

'कि कब्र के बीच में नहर की तरह एक गड्ढा खोदा जाए।'[1] (कब्र के बीच में नहर की तरह एक गड्ढा खोदा जाए। - त) इस गड्ढे (हफीरा) से यही दूसरी सूरत मुराद है या उनकी पहली बात जो अक्सर देशों में प्रचलित है? यह गड्ढा यानी कब्र खोदने के बाद एक छोटी नहर बना कर मृतक को उसमें रखा जाए, इसी को शक्क कहते हैं जो कि नहर के नीचे आधे गज़ से भी कम होगी। अतः हज़रात मुफ़्तियान-ए-इज़ाम और उलमा-ए-किराम, अल्लाह उनके ज्ञान में वृद्धि करे, इस मसले पर गौर फरमाकर हनफी मज़हब के अनुसार फतवे की किताबों के हवाले से जवाब दें ताकि अल्लाह के पास महान प्रतिफल पाएं।

अल-जवाब (उत्तर): शक्क का अर्थ यह है कि पहले एक बड़ा आयताकार (मस्ततील) गड्ढा चौड़ा और लंबा खोदें, फिर उसके बीच में दूसरा आयताकार गड्ढा खोदें जो पहले से छोटा हो, लेकिन लंबाई में मृतक के कद से कुछ अधिक हो और चौड़ाई में कद का आधा हो, और गहराई में सीने तक या पूरे कद (कदे-आदम) तक हो। इस दूसरे आयताकार गड्ढे में मृतक को किबला की ओर रुख करके रखें और उसके ऊपर पहले गड्ढे के अंदर तख्तों आदि से बंद करके पहले गड्ढे की जगह को मिट्टी से भर दें, और ज़मीन की सतह से पाव गज़ ऊँची मिट्टी रखें। शक्क का यही तरीका है और भारत में यही प्रचलित है। और आलमगीरिया की इबारत का यही अर्थ है। पहली सूरत कि सिर्फ एक आयताकार गड्ढा खोदें और उसमें मृतक को रखकर मिट्टी भर दें या तख्ते ज़मीन पर रखकर उन पर मिट्टी डाल दें, न तो यह शक्क है और न ही भारत या किसी अन्य देश में प्रचलित है। आलमगीरिया में लिखा है:

(अरबी पाठ)

शक्क का वर्णन यह है कि कब्र के बीच में नहर की तरह एक गड्ढा खोदा जाए, और उसके दोनों किनारे कच्ची ईंटों या किसी और चीज़ से बनाए जाएं मृतक को उसमें रखा जाए, और ऊपर से छत की तरह बंद कर दिया जाए। मिराज अल-दिरयाह में भी इसी प्रकार है।[2] और अल्लाह बेहतर जानता है।

(उर्दू अनुवाद)

शक्क का तरीका यह है कि कब्र के बीच में नहर की तरह एक गड्ढा खोदा जाए, जिसके दोनों किनारे कच्ची ईंटों या किसी और चीज़ से बना दिए जाएं और उसमें मृतक को रखकर ऊपर से छत की तरह बंद कर दें। मिराज अल-दिरयाह में भी ऐसा ही है। और अल्लाह तआला बेहतर जानता है। (त)

[1] फतावा हिंदिया, छठा अध्याय कब्र और दफन आदि, नूरानी कुतुब खाना पेशावर, 1/166 [2] फतावा हिंदिया, छठा अध्याय कब्र और दफन आदि, नूरानी कुतुब खाना पेशावर, 1/166

पेज 371/948

فتاوی رضویہ جلد نہم

ایک بہت چھوٹی سی مثل نہر کے شق بنا کر۔ اس نہر صغیر میں نقش قبلہ رُخ دائیں کروٹ پر رکھیں۔ اور شق اسی کو کہتے ہیں۔

نقشہ یہ ہے: [خاکہ: ایک مستطیل جس کے بائیں جانب '4/4' اور درمیان میں 'جائے مُردہ' لکھا ہے۔]

آیا یہ صورت ثانی جو شخص مذکور نے ایجاد کی ہے وہ صحیح ہے یا نہیں، اور شق سے یہی مراد ہے؟ اور عبارت عالمگیری میں ہے:

ان تحفر حفیرۃ کالنھر وسط القبر 1 (قبر کے درمیان میں نہر کی طرح ایک گڑھا کھودا جائے۔ ت)

اس حفیرہ سے یہی صورت ثانیہ مراد ہے یا اول اُس کا یہ قول جو اکثر ملکوں میں مروج ہے یہ حفیرہ ہے یعنی قبر اور بعد کھودنے قبر کے نہر صغیر بنا کر مُردہ کو اس میں رکھے اسی کو شق کہتے ہیں جو کہ نہر کے نیچے آدھ گز سے بھی کم ہو گی۔ پس حضرات مفتیان عظام و علمائے کرام کثرہم اللہ تعالٰی اس مسئلہ میں غور فرماکر موافق مذہب حنفی بحوالہ کتب فتوٰی دیں عند اللہ اجر عظیم پائیں۔

الجواب: شق کی معنی یہ ہے کہ اول ایک مستطیل زیادہ عریض و طویل کھودیں پھر اس کے وسط میں دوسرا مستطیل اُس سے چھوٹا اور طویل میں قامت میت سے کچھ زائد اور عریض میں نصف قامت کے برابر اور عمق میں سینہ تک یا قد آدم کھودیں۔ اس دوسرے مستطیل میں میت کو قبلہ رُخ رکھیں اور اس کے اوپر مستطیل اول کے اندر تختوں وغیرہ سے بند کر کے مستطیل اول کی جگہ مٹی سے بھر دیں اور سطح زمین سے پاؤ گز بلند مٹی رکھیں۔ یہی طریقہ شق کا ہے اور یہی

ہندوستان میں معمول ہے۔ اور یہی عبارت عالمگیریہ کا مفہوم ہے۔ پہلی صورت کہ صرف ایک مستطیل کھودیں اور اس میں میت کو رکھ کر مٹی بھر دیں یا تختے رُوئے زمیں پر رکھ کر ان میں مٹی ڈال دیں، نہ شق ہے نہ ہندوستان خواہ کسی ملک میں رائج ہے۔ عالمگیریہ میں ہے:

| صفة الشق ان تحفر حفیرة کالنهر وسط القبر ویبنی جانباها باللبن اوغیره ویوضع المیت فیه ویسقف کذا فی معراج الدرایة 2- واللہ تعالی اعلم | شق کی صورت یہ ہے کہ قبر کے بیچ میں نہر کی طرح ایک گڑھا کھودا جائے جس کے دونوں کنارے کچی اینٹوں یا کسی اور چیز سے بنا دیں اور اس میں میت کو رکھ کر اوپر سے چھت کی طرح بند کر دیں۔ ایسا ہی معراج الدرایة میں ہے۔ واللہ تعالیٰ اعلم (ت) |

1 فتاوی ہندیہ، الفصل السادس فی القبر والدفن الخ نورانی کتب خانہ پشاور ۱/ ۱۶۶ 2 فتاوی ہندیہ، الفصل السادس فی القبر والدفن الخ نورانی کتب خانہ پشاور ۱/ ۱۶۶

Fatawa-e-Razvia Volume 9

Question 90: From the town of Mau Nath Bhanjan, District Azamgarh, Madrasa Darul Uloom, sent by Abdul Rahim Sahib, 11 Safar 1338 AH. What do the scholars of religion say regarding this matter: should the deceased be placed into the grave from the west side, or as some say, from the south side?

The Answer: According to us, it is recommended (Mustahabb) to take the deceased into the grave from the direction of the Qibla. It is mentioned in 'Durr-e-Mukhtar': "*Wayustahabbu an yudkhala min qibali-l-qiblati bi-an yuda'a min jihatiha.*" [It is recommended that they be entered from the direction of the Qibla by being placed from that direction.] 1. And Allah Almighty knows best. It is recommended to enter the deceased from the direction of the Qibla in such a way that they are lowered from that same direction. And Allah Almighty knows best. (t)

Question 91: From Abruha, District Katha, Post Lin, asked by Amir Khan, shopkeeper, 9 Shawwal 1339 AH. What do the scholars of religion say regarding this matter: it is written in the books of jurisprudence that the deceased's face should be turned towards the Qibla. What is meant by this? There are five possible ways for this: The first way is to lay the deceased in a coffin-style grave on their right side in such a way that the weight of the entire body is on the right side and the total weight of the right side falls on the right arm, and the deceased's forehead, nose, and knees are placed against the right wall of the coffin, and stones or clods of earth are placed behind the back. The second way is to lift the deceased's left side and place clods under it so that the deceased remains inclined on the left side. The third way is to lay the deceased flat on their back and only turn the face towards the Qibla. The fourth way is that while digging the grave, the right side is made slightly lower and the left side slightly higher. After placing the body, it turns onto the right side and faces the Qibla. The fifth way is to point the deceased's feet towards the Qibla and the face towards the East, as is done during the agony of death. In the books of jurisprudence, which of these ways is meant, and if all are permissible, which is superior and best? State and be rewarded.

The Answer: The fifth way is purely impermissible as it is completely against the continuous Sunnah of the Muslims. The best method is to lay the deceased on their right side. Behind them, a pillow-like support should be made of soft soil or sand, and the arms should be kept separate from the side so that the weight of the body is

not on the arm, as this would cause pain to the deceased. It is in the Hadith that the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) said:

---

1. Durr-e-Mukhtar, Chapter on Funerary Prayer, Mujtabai Press, Delhi, 1/124. Page 372 of 948

फ़तावा-ए-रज़विया खण्ड 9

प्रश्न 90: मऊ नाथ भंजन कस्बा, जिला आज़मगढ़, मदरसा दारुल उलूम से, अब्दुल रहीम साहिब द्वारा भेजा गया, 11 सफ़र 1338 हिजरी। धर्म के विद्वान इस विषय में क्या कहते हैं कि मृतक को कब्र में पश्चिम की ओर से डाला जाना चाहिए, जबकि कुछ कहते हैं कि दक्षिण की ओर से डालना चाहिए।

उत्तर: हमारे निकट यही मुस्तहब (पसंदीदा) है कि मैयत (मृतक) को क़िबला की दिशा से कब्र में ले जाया जाए। 'दुर्रे मुख़्तार' में है: "वयुस्तहब्बु अन युदख़ला मिन क़िबलि-ल-क़िबलति बि-अन युद'अ मिन जिहतिहा।" [मुस्तहब यह है कि (मृतक को) क़िबला की दिशा से प्रवेश कराया जाए, इस तरह कि उसे उसी दिशा से रखा जाए।] 1. और अल्लाह तआला बेहतर जानता है। मुस्तहब यह है कि मैयत को क़िबला की दिशा से दाखिल करें, इस तरह कि उसी दिशा से उतारें। और अल्लाह तआला बेहतर जानता है। (त)

प्रश्न 91: अबरूहा, जिला कथा, पोस्ट लिन से, अमीर खान दुकानदार द्वारा पूछा गया, 9 शव्वाल 1339 हिजरी। धर्म के विद्वान इस विषय में क्या कहते हैं कि फ़िक़्ह (इस्लामी न्यायशास्त्र) की किताबों में लिखा है कि मैयत का चेहरा क़िबला की ओर किया जाए। इसका क्या अर्थ है? इसमें पांच स्थितियां हैं: पहली स्थिति यह है कि मैयत को संदूक़ी कब्र में इस तरह दाहिनी करवट पर लिटाया जाए कि पूरे शरीर का भार दाहिनी करवट पर हो और दाहिनी करवट का पूरा भार दाहिने बाजू पर पड़े, और मैयत का माथा, नाक, घुटना संदूक़ की दाहिनी दीवार से सटाकर पीठ की तरफ पत्थर और ढेले रख दिए जाएं। दूसरी स्थिति यह है कि मैयत के बाएं पहलू को उठाकर उसके नीचे ढेले देकर मैयत को बाएं पहलू के बल रखा जाए। तीसरी स्थिति यह है कि मैयत को चित लिटाया जाए और केवल चेहरा ही क़िबला की ओर फेर दिया जाए। चौथी स्थिति यह है कि कब्र खोदते समय कब्र की दाहिनी ओर थोड़ा नीचा और बाईं ओर थोड़ा ऊंचा करके खोदी जाए। लाश रखने के बाद वह दाहिने पहलू पर होकर क़िबला की ओर रुख हो जाती है। पांचवीं स्थिति यह है कि मैयत के पैर क़िबला की ओर और चेहरा पूर्व की ओर किया जाए जैसा कि मृत्यु के समय (नज़अ की हालत में) होता है। फ़िक़्ह की किताबों में इन स्थितियों में से कौन सी स्थिति अभिप्रेत है, और यदि सभी जायज़ हैं तो सबसे श्रेष्ठ और उत्तम कौन सी है? स्पष्ट करें, पुण्य पाएं।

उत्तर: पांचवीं स्थिति पूर्णतः नाजायज़ है क्योंकि यह मुसलमानों की निरंतर सुन्नत के बिल्कुल विरुद्ध है। सबसे श्रेष्ठ तरीका यह है कि मैयत को दाहिनी करवट पर लिटाएं। उसके पीछे नरम मिट्टी या रेत का तकिया सा बना दें और हाथ को करवट से अलग रखें, शरीर का भार हाथ पर न हो, इससे मैयत को कष्ट होगा। हदीस में है कि नबी सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम फरमाते हैं:

---

1. दुर्रे मुख़्तार, बाब सलातुल जनाइज़, मतबअ मुज्तबाई दिल्ली, 1/124. पृष्ठ 372/948

فتاویٰ رضویہ جلد نہم

مسئلہ ۹۰: از قصبہ مونا تھ بھنجن ضلع اعظم گڑھ مدرسہ دارالعلوم مرسلہ عبدالرحیم صاحب ۱۱ صفر ۱۳۳۸ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ مردہ کو قبر کے پچھم جانب سے گور میں ڈالنا چاہئے اور بعض کہتے ہیں کہ دکھن جانب سے ڈالے۔

الجواب: ہمارے نزدیک مستحب یہی ہے کہ میت کو قبلہ کی طرف سے قبر میں لے جائیں۔ در مختار میں ہے: ویستحب ان یدخل من قبل القبلۃ بأن یوضع من جہتھا۔ ۱۔ واللہ تعالٰی اعلم مستحب یہ ہے کہ میت کو قبلہ کی طرف سے داخل کریں اس طرح کہ اسی سمت سے اتاریں۔ واللہ تعالٰی اعلم (ت)

مسئلہ ۹۱: از ابر بہا ضلع کٹھا پوست لین مسئولہ امیر خان دکاندار ۹ شوال ۱۳۳۹ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ کتب فقہیہ میں لکھتے ہیں کہ میت کا منہ قبلہ کی طرف کیا جائے، اس سے کیا مراد ہے، اس میں پانچ صورتیں ہیں: پہلی صورت تو یہ ہے کہ میت کو صندوقی قبر میں اس طرح سے داہنی کروٹ پر لٹائیں کہ تمام بدن کا بوجھ داہنی کروٹ پر اور داہنی کروٹ کا تمام بوجھ داہنے بازو پر گرے اور میت کی پیشانی، ناک، گھٹنا صندوق کی داہنی طرف کی دیوار سے لگا کر پشت کی طرف پتھر اور ڈھیلے رکھ دئے جائیں۔ اور دوسری صورت یہ ہے کہ میت کے بائیں پہلو کو اٹھا کر اس کے نیچے ڈھیلے دے کر میت کو بائیں پہلو بل رکھیں۔ تیسری صورت یہ ہے کہ میت کو چت لٹایا جائے اور فقط منہ ہی قبلہ کی طرف پھیر دی جائے۔ چوتھی صورت یہ ہے کہ قبر کھودتے وقت قبر کی داہنی طرف تھوڑا نیچا اور بائیں طرف تھوڑا اونچا کر کے کھودی جائے۔ لاش رکھنے کے بعد داہنے پہلو پر ہو کر قبلہ رُخ ہو جاتی ہے۔ پانچویں صورت یہ ہے کہ

میت کا پاؤں قبلہ کی طرف اور منہ پورب کی طرف کیا جائے جیسا کہ حالتِ نزع میں ہے۔ کتب فقہ میں ان صورتوں میں کون صورت مراد ہے اور اگر سب جائز ہیں تو اعلیٰ وافضل کون ہے؟ بینوا توجروا

الجواب: پانچویں صورت محض ناجائز ہے کہ سنت متواترہ مسلمین کے محض خلاف ہے اور افضل طریقہ یہ ہے کہ میت کو داہنی کروٹ پر لٹائیں۔ اس کے پیچھے نرم مٹی یا ریتے کا تکیہ سا بنا دیں اور ہاتھ کروٹ سے الگ رکھیں، بدن کا بوجھ ہاتھ پر نہ ہو اس سے میت کو ایذا ہوگی۔ حدیث میں ہے نبی صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم فرماتے ہیں:

---

۱ در مختار باب صلوٰۃ الجنائز مطبع مجتبائی دہلی ۱/ ۱۲۴ صفحہ 372 از 948

Fatawa Razawiya - Volume 9

[Box 1] Arabic: Indeed the deceased suffers from what the living suffers from. Translation: Surely, the deceased experiences pain from what causes pain to a living person. (T)

And bricks or stones should not be used as a pillow as they will pierce the body and cause pain. There is no permission to rest body parts like the nose against the walls of the grave, nor is there any reason for it. Where there is space, lay the body flat on its back and turn the face towards the Qibla; this is the common practice now. If, God forbid, the face remains turned away from the Qibla and has become so stiff that it cannot be turned, then leave it and do not cause further distress. The small grave style is also completely against the Sunnah, and it too causes suffering for the deceased as it makes sitting difficult. Angels who come for questioning make the deceased sit; sitting on such a sloped surface will be very difficult. The second form is also deficient; the first form is better, but with the corrections we have written. It is stated in Durr-e-Mukhtar:

[Box 2] Arabic: And turning [the face] towards it (Qibla) is mandatory, and it is appropriate that it be on its right side. Translation: It is mandatory that the deceased be turned towards the Qibla and they should be on their right side, and Allah Almighty knows best. (T) Arabic: And Allah Almighty knows best.

Problem 92 to 93: (1) Should all the soil excavated from the grave be put back on it, or should the grave be raised only by a span or one and a quarter spans? (2) Should people disperse immediately after burying the deceased, or should they go to the house, recite Fatiha, and then disperse as is the custom nowadays?

Answer: (1) Only a span high. And Allah Almighty knows best. (2) It is better that they disperse; then they should not consider going to the house of the deceased as a requirement. And Allah Almighty knows best.

Problem 94: From Shahjahanpur, Mohalla Rangi Chaupal, submitted by Salamatullah Rizvi, 24 Safar 1339 AH. What do the scholars of religion say regarding this matter: Zaid says that whether the grave is old or new (by 'new' meaning it has been made for a short time but before this Day of Ashura), it is better to sprinkle water on it specifically on the Day of Ashura. What is this statement of Zaid like? And Amr's question is, what is the ruling on sprinkling water on graves on days other than the

Day of Ashura, and what is the ruling on sprinkling water on the grave after burying the deceased...

---

1. Radd al-Muhtar, Chapter on Istinja, Idarat al-Taba'at al-Misriyya, Egypt, 1/229
2. Durr-e-Mukhtar, Chapter on Funeral Prayer, Matba' Mujtabai, Delhi, 1/125

फ़तावा रज़विया - जिल्द नहम (नौवां)

[बॉक्स १] अरबी: बेशक मृत व्यक्ति को उसी से कष्ट होता है जिससे जीवित व्यक्ति को कष्ट होता है। अनुवाद: निस्संदेह, मुर्दे को उस चीज़ से तकलीफ़ होती है जिससे ज़िंदा को तकलीफ़ होती है। (त)

और ईंट या पत्थर का तकिया नहीं लगाना चाहिए क्योंकि वे शरीर में चुभेंगे और कष्ट पहुँचाएंगे, और नाक आदि अंगों को कब्र की दीवार से सटाने की अनुमति नहीं है, और न ही इसका कोई कारण है। जहाँ गुंजाइश हो वहाँ सीधा (पीठ के बल) लिटाकर चेहरा क़िबला की ओर कर दें, अब अक्सर यही रिवाज है। और अगर अल्लाह न करे, चेहरा क़िबला की दिशा में न रहा और इतना सख्त हो गया कि अब मुड़ नहीं सकता, तो छोड़ दें और अधिक कष्ट न दें। छोटी सूरत (छोटी कब्र) भी बिल्कुल सुन्नत के खिलाफ है और इसमें भी मृत व्यक्ति के लिए कष्ट है क्योंकि बैठने में कठिनाई होगी। फ़रिश्ते जो सवाल के लिए आते हैं, वे मृत व्यक्ति को बिठाते हैं, ऐसी ढलान वाली जगह पर बैठना बहुत कठिन होगा। दूसरी सूरत भी अपूर्ण है, पहली सूरत बेहतर है, लेकिन उन सुधारों के साथ जो हमने लिखे हैं। 'दुर्रे मुख़्तार' में है:

[बॉक्स २] अरबी: और (मृतक का चेहरा) इसकी (क़िबला की) ओर करना वाजिब है और चाहिए कि वह दाहिनी करवट पर हो। अनुवाद: वाजिब है कि उसे क़िबला की ओर किया जाए और उसे दाहिनी करवट पर होना चाहिए, वल्लाहु तआला आलम। (त) अरबी: वल्लाहु तआला आलम (और अल्लाह तआला सबसे बेहतर जानता है)

मसला ९२ से ९३: (१) कब्र से जितनी मिट्टी निकली वह सब उस पर डाल देनी चाहिए या सिर्फ एक बालिश्त (हाथ की बित्ता) या सवा बालिश्त कब्र को ऊँचा करना चाहिए? (२) मैयत (मृतक) को दफन करते ही लोगों को बिखर जाना चाहिए या घर पर आकर फातिहा पढ़कर फिर बिखरना चाहिए जैसा कि आजकल रिवाज है?

अल-जवाब (उत्तर): (१) सिर्फ एक बालिश्त भर। वल्लाहु तआला आलम। (२) बेहतर यह है कि बिखर जाएं, फिर मैयत के घर जाने को लाज़िम (ज़रूरी) न समझें। वल्लाहु तआला आलम।

मसला ९४: शाहजहाँपुर, मुहल्ला रंगी चौपाल से, प्रेषक सलामतुल्लाह रिज़वी, २४ सफ़र १३३९ हिजरी। दीन के उलेमा इस मसले में क्या फ़रमाते हैं कि ज़ैद कहता है कि पुरानी कब्र हो या नई (नई से मुराद जिसे बने हुए थोड़ा समय बीता हो मगर इस यौम-ए-आशूरा से पहले की हो) इस विशेष रूप से आशूरा के दिन पानी छिड़कना बेहतर है, ज़ैद का यह कहना कैसा है? और अम्र का सवाल यह है

कि यौम-ए-आशूरा के अलावा दिनों में कब्रों पर पानी छिड़कने का क्या हुक्म है और दफन करने के बाद मैयत की कब्र पर पानी छिड़कने का क्या हुक्म...

१- रद अल-मुह्तार, फ़स्ल अल-इस्तिंजा, इदारात अल-तबात अल-मिसरिया, मिस्र, १/२२९ २- दुर्रे मुख़्तार, बाब सलातुल जनाइज़, मतबा मुजतबाई, दिल्ली, १/१२५

पृष्ठ ३७३ / ९४८

فتاوٰی رضویہ - جلد نہم

[Box 1] ان المیت یتاذی ممایتاذی بہ الحیّ ۔ بے شک مُردے کو اس سے ایذا ہوتی ہے جس سے زندہ کو ایذا ہوتی ہے۔ (ت)

اور اینٹ پتھر کا تکیہ نہ چاہئے کہ بدن میں چبھیں گے اور ایذا ہو گی اور ناک وغیرہ اعضاء دیوارِ قبر سے ملا دینے کی اجازت نہیں، نہ اس کی کوئی وجہ۔ اور جہاں اس میں وقت ہو تو چت لٹا کر منہ قبلہ کو کر دیں، اب اکثر یہی معمول ہے اور اگر معاذ اللہ معاذ اللہ منہ غیر قبلہ کی طرف رہا اور ایسا سخت ہو گیا کہ پھر نہیں سکتا تو چھوڑ دیں اور زیادہ تکلیف نہ دیں۔ چھوٹی صورت بھی بالکل خلافِ سنت ہے اور اس میں بھی میت کے لیے اذیت ہے کہ بیٹھنے میں دقت ہو گی۔ ملائکہ کہ سوال کے لئے آتے ہیں، میت کو بٹھاتے ہیں، ایسی ڈھلوان جگہ پر بیٹھنا بہت دشوار ہوگا۔ اور دوسری صورت بھی ناقص ہے، بہتر پہلی صورت ہے، مگر ان اصلاحوں کے بعد جو ہم نے لکھیں۔ دُرِّمختار میں ہے:

[Box 2] ویوجہ الیھا وجوبًا و ینبغی کونہ علی شقہ الایمن واجب ہے کہ اسے قبلہ رو کیا جائے اور اسے داہنی کروٹ پر ہونا چاہئے، واللہ تعالی اعلم (ت) واللہ تعالٰی اعلم

مسئلہ ۹۲ تا ۹۳: (۱) قبر میں سے جس قدر مٹی نکلی وہ سب اس پر ڈال دینا چاہئے یا صرف بالشت یا سوا بالشت قبر کو اونچا کرنا چاہئے؟ (۲) میت کو دفن کرتے ہی آدمیوں کو منتشر ہو جانا چاہئے یا گھر پر آن کر فاتحہ پڑھ کر پھر منتشر ہونا چاہئے جیسا کہ آج کل رواج ہے؟

الجواب: (۱) صرف بالشت بھر۔ واللہ تعالی اعلم (۲) بہتر یہ ہے کہ منتشر ہو جائیں، پھر میت کے گھر جانے کو لازم نہ سمجھیں۔ واللہ تعالی اعلم

مسئلہ ۹۴: از شاہجہاں پور، محلہ رنگی چو پال مسئولہ سلامت اللہ رضوی ۲۴ صفر ۱۳۳۹ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ زید کہتا ہے کہ پُرانی قبر ہو یا جدید (جدید سے مراد جسے بنے ہوئے تھوڑا زمانہ گزرا ہو مگر اس یومِ عاشورہ سے پہلے کی ہو) اس خاص کر عاشورہ کے دن پانی چھڑکنا بہتر ہے، یہ قول زید کیسا ہے؟ اور عمرو کا سوال یہ ہے کہ یومِ عاشورہ سے علاوہ دنوں میں قبروں پر پانی چھڑکنا کیا حکم رکھتا ہے اور بعد دفن میت کے قبر پر پانی چھڑکنا کیا حکم

1- ردالمختار فصل الاستنجا ادارۃ الطباعۃ المصریہ مصر ۱ / ۲۲۹ 2- دُرِ مختار باب صلٰوۃ الجنائز مطبع مجتبائی دہلی ۱ / ۱۲۵

Fatawa Rizvia, Volume 9

...maintains? A detailed, reasoned answer with references to books should be kindly provided. State the ruling and be rewarded.

The Answer: Sprinkling water on the grave after burial is Sunnah. If, over time, its dust has dispersed and new soil has been added, or if there is a risk of its dispersion, then water should be added even now so that the marker remains and the grave is not desecrated. This is based on what is mentioned in 'Al-Durr' etc., that "the marker should not vanish such that it becomes disrespected." (This reason is mentioned in 'Durr-e-Mukhtar' etc., that disrespect should not occur due to the sign being erased. - T). No specific day can be fixed for this; it can be done whenever needed. Pouring water without need is wasting it, and wasting water is not permissible. Specifying Ashura (the 10th of Muharram) for this is completely baseless and meaningless. And Allah Almighty knows best.

Issue 95: From the city of Aligarh, Mohalla Madar Darwaza, sent by Umar Ahmad Sahab, cloth merchant of Banaras. 4 Rabi' al-Awwal 1332 AH.

Hindah (a deceased woman) was lowered into the grave and after placing the planks, only a small amount of soil had been added when the rain of mercy (rain) began. There was no need to pour any water on Hindah's grave other than the rainwater. Some people say that the deceased on whose grave rain falls instead of worldly water is a dweller of Paradise. Is there any reality to this in Sharia or not? That is all.

The Answer: The rain of mercy is a good omen (Faal-e-Hasan), especially if it occurs contrary to the usual norm. And Allah Almighty knows best.

Issue 96: From Shahr-e-Kohna, 11 Jumada al-Akhirah 1317 AH.

[Persian text]: What do the scholars of religion say regarding which forty questions are asked of the deceased from death until burial? State the ruling and be rewarded. | [Urdu text]: What do the scholars of religion say about which forty questions are asked of the deceased from the time of death until they are buried? State the ruling and be rewarded. (T)

The Answer: [Persian text]: Questioning of the deceased occurs after burial; no hadith mentions any questioning before that. And Allah Almighty knows best. | [Urdu text]: Questioning the deceased happens after burial; no question has been mentioned in the Hadith before that. And Allah Almighty knows best. (T)

Issue 97: From village Shamsabad, district Campbellpur, Punjab, questioned by Maulvi Ghulam Rabbani Sahab. 11 Jumada al-Akhirah 1339 AH.

What do the scholars of the firm religion say, especially the scholar of Ahl al-Sunnah wa al-Jama'ah, the Mujaddid of the present century (may his glory increase), on this issue: that in fifty or sixty villages of Campbellpur district and similarly in ten or twenty villages of Peshawar district, occasionally...

फ़तावा रिज़विया, जिल्द नहम (9)

...रखता है? मुफ़स्सल मुदल्लल (सप्रमाण) किताबों के हवाले से जवाब इनायत फरमाया जाए। बयान करें और सवाब पायें।

अल-जवाब: दफ़न के बाद क़ब्र पर पानी छिड़कना सुन्नत है और अगर समय बीतने के कारण उसकी मिट्टी बिखर गई हो और नई मिट्टी डाली गई हो या बिखरने का अंदेशा हो, तो अब भी पानी डाला जाए ताकि निशानी बनी रहे और क़ब्र का अनादर न हो। जैसा कि 'अल-दुर्र' आदि में है कि "निशानी नहीं मिटनी चाहिए ताकि उसका अनादर न हो" (दुर्रे-मुख़्तार आदि में यह कारण बताया गया है कि निशानी मिट जाने के कारण बेअदबी न हो। - त)। इसके लिए कोई दिन निश्चित नहीं किया जा सकता; जब ज़रूरत हो तब किया जाए। बिना ज़रूरत पानी डालना उसे बर्बाद करना है, और पानी बर्बाद करना जायज़ नहीं है। और इस काम के लिए आशूरा के दिन को खास करना बिल्कुल बेबुनियाद और बेमानी है। और अल्लाह तआला बेहतर जानता है।

मसला 95: शहर अलीगढ़, मोहल्ला मदार दरवाज़ा से, प्रेषक उमर अहमद साहब, कपड़ा व्यापारी बनारसी। 4 रबी-उल-अव्वल 1332 हिजरी।

हिंदा को क़ब्र में उतारने और पटरे लगाने के बाद थोड़ी ही मिट्टी डाली गई थी कि रहमत की बारिश शुरू हो गई। हिंदा की क़ब्र पर बारिश के पानी के अलावा और पानी डालने की ज़रूरत न हुई। कुछ लोग कहते हैं कि जिस मुर्दे की क़ब्र पर दुनियावी पानी के बजाय रहमत की बारिश हो, वह मुर्दा जन्नती (स्वर्गवासी) है, क्या शरिया में इसकी कोई हकीकत है या नहीं? फ़क़त।

अल-जवाब: रहमत की बारिश एक नेक शगुन (फ़ाले हसन) है, ख़ासकर अगर वह सामान्य से हटकर हो। और अल्लाह तआला बेहतर जानता है।

मसला 96: शहर-ए-कोहना से, 11 जमादी-उल-उखरा 1317 हिजरी।

उलेमा-ए-दीन क्या फरमाते हैं कि मरने के बाद से दफ़न होने तक मैय्यत (मृतक) से कौन से चालीस सवाल पूछे जाते हैं? बयान करें और सवाब पायें। (त)

अल-जवाब: मैय्यत से सवाल दफ़न के बाद होता है, उससे पहले हदीस में किसी सवाल का ज़िक्र नहीं आया। और अल्लाह तआला बेहतर जानता है। (त)

मसला 97: मौज़ा शम्स आबाद, जिला कैमलपुर (अटैक), पंजाब से, मुस्तफ़ा मौलवी गुलाम रब्बानी साहब। 11 जमादी-उल-उखरा 1339 हिजरी।

उलेमा-ए-दीन-ए-मतीन, विशेष रूप से अहल-ए-सुन्नत व जमात के आलिम, वर्तमान सदी के मुजद्दिद (ज़ैद मजदुहुम) इस मसले में क्या फरमाते हैं: कि जिला कैमलपुर के पचास साठ गाँवों में और इसी तरह पेशावर जिले के दस बीस गाँवों में कभी-कभी...

فتاویٰ رضویہ، جلد نہم

رکھتا ہے؟ مفصل مدلل بحوالہ کتب جواب باصواب مرحمت فرمایا جائے۔ بینوا توجروا۔

الجواب: بعد دفن قبر پر پانی چھڑکنا مسنون ہے اور اگر مرورِ زمانہ سے اس کی خاک منتشر ہو گئی ہو اور نئی ڈالی گئی یا منتشر ہو جانے کا احتمال ہو تو اب بھی پانی ڈالا جائے کہ نشانی باقی رہے اور قبر کی توہین نہ ہونے پائے بہ علت مافی الدر وغیرہ ان لا یذھب الاثر فیمتھن (در مختار وغیرہ میں یہ علت بیان فرمائی ہے کہ نشانی مٹ جانے کے سبب بے حرمتی نہ ہو۔ ت) اس کے لئے کوئی دن معین نہیں ہو سکتا ہے جب حاجت ہو اور بے حاجت پانی کا ڈالنا ضائع کرنا ہے اور پانی ضائع کرنا جائز نہیں، اور عاشورہ کی تخصیص محض بے اصل وبے معنی ہے واللہ تعالٰی اعلم

مسئلہ ۹۵: از شہر علی گڑھ محلہ مدار دروازہ مرسلہ عمر احمد صاحب سوداگر پارچہ بنارسی ۴ ربیع الاول ۱۳۳۲ھ

ہندہ کو قبر میں اتارنے اور تختے لگانے کے بعد مٹی کچھ ہی دی گئی کہ بارانِ رحمت شروع ہو گئی ہندہ کی قبر پر بارش کے پانی کے علاوہ اور پانی ڈالنے کی ضرورت نہ ہوئی۔ کچھ اشخاص کہتے ہیں جس مُردہ کی قبر پر بجائے پانی دنیا کے بارانِ رحمت ہو وہ مُردہ جنتی ہے، اس کی کچھ اصلیت شرع میں ہے یا نہیں؟ فقط

الجواب: بارش رحمت فالِ حسن ہے خصوصاً اگر خلافِ عادت ہو۔ واللہ تعالٰی اعلم

مسئلہ ۹۶: از شہر کہنہ ۱۱ جمادی الاخریٰ ۱۳۱۷ھ

چه می فرمایند علمائے دین کہ بعدِ مُردنِ میّت تادفنِ میّت از کدام چل سوال از میّت می پرسند۔ بینوا توجروا۔ | کیا فرماتے ہیں علمائے دین کہ میّت کے مرنے کے بعد سے دفن ہونے تک کون سے چالیس سوال میّت سے ہوتے ہیں؟ بینوا توجروا۔(ت)

الجواب: سوال از میّت بعدِ دفن ست پیش ازاں ھیچ سوالے در حدیث نیامدہ۔ واللہ تعالٰی اعلم | میّت سے سوال دفن کے بعد ہوتا ہے اس سے پہلے کوئی سوال حدیث میں نہ آیا۔ واللہ تعالٰی اعلم(ت)

مسئلہ ۹۷: از موضع شمس آباد ضلع کیمل پور پنجاب مسئولہ مولوی غلام ربانی صاحب ۱۱ جمادی الآخر ۱۳۳۹ھ

کیا فرماتے ہیں علمائے دین متین، خصوصاً حضرت عالمِ اہلسنت وجماعت مجدّدِ مائتہِ حاضرہ زید مجدہم اس مسئلہ میں کہ ضلع کیمل پور کے پچاس ساٹھ موضع میں اور ایسا پشاور کے ضلع میں دس بیس موضع میں گاہے گاہے

Fatawa Razawiyya Volume 9

The Imam of the mosque, after the burial of the deceased, has the digging tools thrown from the head of the grave towards the feet and considers it a cause of safety in the grave, presenting this Hadith as proof:

"Whoever sprinkles water on the grave and throws the tools with which the grave was dug [upon it], will be safe from the punishment of the grave."	**Whoever sprinkled water on the grave and threw the tools with which the grave was dug, became safe from the punishment of the grave. (T)**

They cannot show this issue from within any book; they only show it written on the margins of some book, which they or their ancestors might have written. They reference "Munyat al-Murideen" and "Khizanat al-Riwayaat," but that is also incorrect because several libraries have been searched for three years, and those books were not found by them, nor was any witness found in any other book. They try to prove it by the words and actions of their ancestors or some Maulvi Akhundzada. This custom is only fifty to sixty years old. The scholars of Punjab and Afghanistan, who forbid this act, say that while the first part of this sentence is undoubtedly recorded, the part about throwing tools is fabricated. It probably started like this: after burying the deceased, to count the grave digging tools, the person at the head of the grave would throw them towards the person at the feet (who normally stand ready to leave after burial, so they take their shovels back according to routine). Someone might have foolishly misunderstood throwing them in this manner [as a ritual]. Later, when a dispute arose, the promoter might have created this sentence, seeing its similarity with Hadith wording, and mixed it in. And truly, this has happened in many places where some less-learned people of earlier times added or removed content in manuscript books to support or emphasize their point; now that they are printed, this is being discovered. Those who forbid it say: what does this work have to do with reward? A Maulvi, a doer of this baseless act, even gave this answer: just as these tools were troubled in digging the deceased's grave, it is now appropriate that these tools also pass over the deceased so that there is a recompense. The response was given in kind: that the gravediggers should also jump over the deceased or his grave and go towards the feet—what strange ignorance. Afterwards, the forbidding scholars issued a notice stating that the act appears to be a bad innovation (Bid'ah Sayyi'ah). Thousands of books were searched, no trace was found, and the proponents also cannot show it. Therefore, it should be abandoned. Zaid, the Imam

of the mosque, says that bringing proof for the impermissibility of this act based on "absence of mention in books" is not correct. The wording of his writing is this:

"The non-existence of the issue in books of Fiqh, Usul al-Fiqh, Tafsir, Hadith, etc., is 'nafi al-dhikr' (absence of mention), and 'al-dhikr' (mention) in books is what constitutes proof; so adhering to 'nafi al-dhikr' is without proof."	**(1) The non-existence of a problem in books of Fiqh, Principles of Fiqh, Exegesis, Hadith, etc., is the absence of mention. And proof is what is mentioned in books; so, relying on the absence of mention is without proof.**

फ़तावा रज़विया जिल्द नवीं

मस्जिद के इमाम मय्यत के दफ़न के बाद क़ब्र खोदने के औज़ारों को क़ब्र के सिरहाने से पाँव की तरफ़ डलवाते हैं और इसे अज़ाब-ए-क़ब्र से अमन का सबब समझते हैं और यह हदीस पेश करते हैं:

"मन रश अल-मा'आ अलल क़ब्र व अलक़ा आलताहु अल्लती हफ़रा बिहा अल-क़ब्र आमिना मिन अज़ाब अल-क़ब्र अ.ह."	**जिसने क़ब्र पर पानी छिड़का और जिस सामान से क़ब्र खोदी गई थी उसे डाल दिया तो अज़ाब-ए-क़ब्र से महफ़ूज़ रहा। (त)**

किसी किताब के अंदर से यह मसला नहीं दिखा सकते, सिर्फ़ किसी किताब के हाशिये पर लिखा हुआ दिखाते हैं जो कि शायद उन्होंने या उनके बाप-दादा ने लिखा होगा। वे "मुनियतुल मुरीदीन" और "ख़िज़ानतुल रिवायत" का हवाला देते हैं लेकिन वह भी ग़लत है क्योंकि तीन साल से कई कुतुब-खानों की तलाश की गई, न वे किताबें उन्हें मिलीं और न ही किसी दूसरी किताब में इसका कोई गवाह पाया गया। वे अपने बाप-दादा या किसी मौलवी अखुंदज़ादा के क़ौल व फ़ेल से इसे साबित करने की कोशिश करते हैं। यह रिवाज अभी महज़ पचास-साठ साल पुराना है। पंजाब और अफ़गानिस्तान के उलेमा-ए-किराम जो इस काम से रोकते हैं, वे कहते हैं कि इस इबारत का पहला हिस्सा तो यकीनन नक़ल किया हुआ है, लेकिन औज़ारों को डालने वाला जुमला मनगढ़ंत है। इसकी शुरुआत शायद इस तरह हुई होगी कि दफ़न के बाद क़ब्र के औज़ारों को गिनने के लिए सिरहाने वाले ने पाँव वाले की तरफ़ (जो आम तौर पर दफ़न के बाद जाने के लिए खड़े होते हैं, तो उस वक्त बेलचा वग़ैरह गिनकर अपना-अपना ले जाते हैं) देने या गिनने के लिए फेंक दिया होगा। किसी ने नादानी में उसे उसी सूरत में डालना ही समझ लिया होगा। बाद में जब विवाद हुआ होगा तो इसे बढ़ावा देने वाले ने अपनी इज़्ज़त बचाने के लिए हदीस की इबारत से मिलता-जुलता यह जुमला बनाकर इसमें मिला दिया होगा। और हक़ीक़त में ऐसा बहुत जगह हुआ है कि पुराने ज़माने के कुछ कम-इल्म लोगों ने अपनी किसी बात की तहकीक़ और ताकीद के लिए हस्तलिखित किताबों में जो-जो मज़मून बढ़ाया या घटाया, अब उनके छपने के बाद उसका पता चल रहा है। रोकने वाले कहते हैं कि इस काम का सवाब से क्या वास्ता? इस बे-अस्ल काम को करने वाले एक मौलवी ने यह जवाब भी दिया है कि जैसे इन औज़ारों को मय्यत की क़ब्र खोदने में तकलीफ़ हुई है, अब मुनासिब है कि ये औज़ार भी मय्यत के ऊपर से गुज़रें ताकि बदला हो जाए। इसका जवाब भी वैसे ही दिया गया कि फिर तो गोर-कन (क़ब्र खोदने वाले) भी मय्यत या उसकी क़ब्र के ऊपर से कूदकर पाँव की तरफ़ चले जाया करें, अजीब जहालत है। इसके बाद रोकने वाले उलेमा ने इश्तेहार दे दिया कि यह फ़ेल 'बिदअत-ए-

सय्यिया' (बुरी नई बात) मालूम होता है। हज़ारों किताबें तलाशी गईं मगर कोई सुराग़ नहीं मिला और इजाज़त देने वाले भी नहीं दिखा सकते। लिहाज़ा इसे छोड़ देना चाहिए। मस्जिद के इमाम ज़ैद का कहना है कि किताबों में ज़िक्र न होने को इस काम के नाजायज़ होने की दलील बनाना सही नहीं है। उनके लिखे हुए खत की इबारत यह है:

"अदमु वुजूदिल मसला फ़ी कुतुबिल फिक्ह व उसूलिल फिक्ह वत तफ़्सीर वल हदीस व ग़ैरिहा नफ़ियुज़ ज़िक्र वज़ ज़िक्र फ़िल कुतुब मिनद दलील"

(१) मसले का फिक्ह, उसूल-ए-फिक्ह, तफ़्सीर, हदीस वग़ैरा की किताबों में मौजूद न होना 'नफ़िय-ए-ज़िक्र' (ज़िक्र न होना) है। और दलील किताबों में ज़िक्र होना है, तो 'नफ़िय-ए-ज़िक्र' से सहारा लेना बिना दलील के है।

पेज ३७५ / ९४८

فتاوٰی رضویہ جلد نہم

امام مسجد بعدِ دفنِ میت کے آلاتِ کندیدنی گور قبر کے سرے سے لے کر قبر کی پاؤں کی طرف کو ڈلواتا ہے اور اس کو موجبِ امنِ گور جانتا ہے اور یہ حدیث پیش کرتا ہے:

من رش الماء علی القبر و القی التہ التی حفر بہا القبر امن من عذاب القبر اھ

جس نے قبر پر پانی چھڑکا اور جس سامان سے قبر کھودی گئی تھی اسے ڈال دیا تو عذاب قبر سے مامون ہوا۔ (ت)

کسی کتاب کے اندر سے یہ مسئلہ نہیں دکھا سکتے، فقط کسی کتاب کے وقایہ پر لکھا، یادکھاتے ہیں جو کہ خود انھوں نے یا ان کے باپ دادا نے لکھا ہوگا، منیۃ المریدین اور خزانۃ الروایات کا حوالہ دیتے ہیں مگر وہ بھی غلط ہے کیونکہ عرصہ تین سال سے چند کتب خانے تلاش کر چکے، نہ وہ کتابیں ان کو ملیں، نہ اور کسی کتاب سے اس کا شاہد پایا، کسی اپنے باپ دادا اور کسی مولوی اخوند زادہ کا قول و فعل ثابت کرتے ہیں اور یہ رواج ابھی ابھی پچاس ساٹھ سال کا ہے اور علمائے کرام پنجاب و افغانستان کہ جو اس فعل کے مانع ہیں وہ کہتے ہیں کہ اول جملہ اس عبارت کا تو بیشک منصوص ہے مگر جملہ القائے آلات کا مخترعہ ہے، ابتداء یوں ہوئی ہوگی کہ بعدِ دفنِ میت کے آلاتِ قبر کو بطورِ شمار کرنے کے سرہانے والے نے پاؤں والے کی طرف کو (جو کہ عادتًا بعدِ دفن کھڑے ہو کر جانا چاہتے ہیں تو اس وقت بیلچہ گرووں معمولِ شمار کر کے اپنا اپنا لے جاتے ہیں) دینے یا شمار کرنے کے لئے پھینک دیا ہوگا، کسی نے نادانی سے اس کا اس صورت سے ڈالنا ہی سمجھ لیا ہوگا۔ بعد کو جب نزاع ہوا ہوگا تو مروج نے عزت بچانے کے لئے یہ عبارت بنا کر حدیث کی عبارت سے مناسبت دیکھ کر ملالی ہوگی۔ اور واقعی ایسا بہت جگہ ہوا ہے کہ پہلے زمانے کے بعض کم علموں نے اپنی کسی بات کی تحقیق و تاکید کے لئے قلمی کتابوں

میں جو جو مضمون بڑھایا یا کم کیا اب وہ چھاپے ہو جانے کے بعد ان کا پتا چل رہا ہے۔ مانعین کہتے ہیں کہ اس کام کو ثواب سے کیا علاقہ ہے، ایک مولوی اس فعلِ بے اصل کے فاعل نے یہ جواب بھی دیا ہے کہ جیسا کہ ان آلات کو میت کی قبر کھودنے میں تکلیف ہوئی ہے اب مناسب ہے کہ یہ آلات بھی میت کے اوپر سے گزریں تاکہ بدلہ ہو جائے اس کا جواب بھی ترکی بہ ترکی دیا گیا کہ گور کن لوگ بھی میت یا اس کی قبر سے کود کر پاؤں کی طرف کو چلے جایا کریں، عجیب جہالت ہے۔ بعدہ علمائے مانعین نے اشتہار دے دیا کہ فعلِ بدعتِ سیئہ معلوم ہوتا ہے۔ ہزاروں کتابیں تلاش کی گئیں پتہ نہ ملا اور مجوزین بھی نہیں دکھا سکتے۔ لہٰذا ترک کرنا چاہیے۔ زید امامِ مسجد کہتا ہے کہ عدمِ ذکر فی الکتب کے ساتھ دلیل عدم جواز اس فعل پر لانا درست نہیں۔ عبارت اس کے مکتوب کی یہ ہے:

عدم وجود المسئلة في كتب الفقه واصول الفقه والتفسير والحديث وغيرها نفي الذكر و الذكر فی الكتب من الدليل

(۱) مسئلہ کا فقہ، اصولِ فقہ، تفسیر، حدیث وغیرہ کی کتابوں میں موجود نہ ہونا نفیِ ذکر ہے۔ اور دلیل کتابوں میں مذکور ہونا ہے، تو نفیِ ذکر سے تمسک بلا دلیل ہے

Volume 9 - Fatawa Razawiyyah

[Left Column Text] Seeking proof from the absence of mention without evidence, and seeking proof without evidence is among the corrupt aspects which carry no weight according to the Hanafis, as mentioned by the author of Ghayat al-Tahqiq (the commentary of al-Husami) and the author of Nur al-Anwar (the commentary of al-Manar). (2) Also, prohibition (hurmat) and dislike (karahat) are two Shari'ah rulings that must have evidence, as stated in Radd al-Muhtar regarding the phrase 'and the stench which...', and the original state of things is original permissibility (ibahat asliyah), as written in al-Ashbah, and there is no evidence for either of them here, so the ruling on the aforementioned 'throwing' (alqaa) remains on original permissibility according to the fatwa, along with the consistent practice of scholars from various places, which is a type of consensus (ijma') as mentioned in Fusul al-Hawashi for Usul al-Shashi. (3) Also, an evil innovation (bid'ah sayyi'ah) is that which abolishes a similar sunnah, as clearly stated in Mishkat al-Masabih, and when the sunnah of not 'throwing' is not proven by reliable evidence, how can one speak of 'throwing' as an innovation? (4) Also, the absence of mention in reliable books is more general than affirmation (ijab) and negation (salb), so how was the prohibitor (negation) preferred over affirmation? (5) Also, the books are silent regarding the prohibition of 'throwing' or its performance, and there is no ruling for a silent one, as mentioned in several books of the principles of jurisprudence (Usul al-Fiqh) under the commentary on the verse: 'And whoever among you cannot afford... [Quran 4:25]' etc. (T)

The ruling of the authorizing Mawlawi is completed as he wrote it in his script. Petition presented by the humble servant of the court, Muhammad Ghulam Rabbani.

Page 376 of 948

जिल्द नौ - फतावा रज़विया

[बाएँ कॉलम का पाठ] बिना प्रमाण के उल्लेख के अभाव से प्रमाण मांगना, और बिना प्रमाण के प्रमाण मांगना उन भ्रष्ट पहलुओं में से है जिनका हनफियों के निकट कोई महत्व नहीं है, जैसा कि ग़ायत-उत-तहक़ीक़ (हुसामी की व्याख्या) के लेखक और नूर-अल-अनवार (मनार की व्याख्या) के लेखक ने उल्लेख किया है। (२) साथ ही, निषेध (हुरमत) और नापसंदगी (कराहत) दो ऐसे शरई हुक्म हैं जिनके लिए प्रमाण आवश्यक है, जैसा कि रद-उल-मुहतार में 'और वह दुर्गंध जो...' वाक्यांश के संबंध में स्पष्ट किया गया है, और चीजों की मूल स्थिति मूल अनुमति (इबाहत असलियह) है, जैसा कि अल-अशबाह में लिखा गया है, और यहाँ इनमें से किसी के लिए भी कोई प्रमाण नहीं है, इसलिए फतवे के अनुसार उक्त 'फेंकने' (अलक़ा) का हुक्म मूल अनुमति पर बना रहता है, साथ ही विभिन्न स्थानों के विद्वानों का निरंतर व्यवहार भी इसमें शामिल है, जो इज्मा (आम सहमति) का एक प्रकार है जैसा कि उसूल अल-शाशी के लिए फूसूल अल-हवाशी में उल्लेख किया गया है। (३) इसके अलावा, एक बुरी बिद्दत (नवाचार) वह है जो वैसी ही सुन्नत को खत्म करने वाली हो, जैसा कि मिश्कात-उल-मसाबीह में स्पष्ट रूप से कहा गया है, और जब विश्वसनीय प्रमाण से 'न फेंकने' की सुन्नत साबित नहीं होती, तो 'फेंकने' को बिद्दत कैसे कहा जा सकता है! (४) साथ ही, विश्वसनीय पुस्तकों में उल्लेख न होना इजब (पुष्टि) और सल्ब (निषेध) से अधिक व्यापक है, तो निषेध करने वाले (सल्ब) को पुष्टि (इजब) पर वरीयता कैसे दी गई! (५) इसके अलावा, पुस्तकें'फेंकने' के निषेध और उसके करने के संबंध में मौन हैं, और मौन रहने वाले के लिए कोई आदेश नहीं होता, जैसा कि उसूल अल-फ़िक़्ह (न्यायशास्त्र के सिद्धांतों) की कई पुस्तकों में आयत: 'और तुम में से जो सामर्थ्य न रखता हो...' (क़ुरान ४:२५) आदि की व्याख्या के तहत उल्लेख किया गया है। (त)

प्राधिकृत मौलवी का निर्णय पूरा हुआ जैसा कि उसने अपनी लिखावट में लिखा था। दरबार के विनम्र सेवक मुहम्मद गुलाम रब्बानी द्वारा प्रस्तुत याचिका।

पृष्ठ 376 of 948

فالتمسك بنفي الذكر بلادليل والتمسك بلادليل ان وجوہ فاسدہ سے ہے جن کا حنفیہ کے نزدیک کوئی اعتبار نہیں، جیسا کہ صاحب غایۃ التحقیق شرح حسامی اور صاحب نورالانوار شرح منار نے ذکر کیا ہے۔ (۲) ایضاً ان الحرمۃ والکراھۃ حکمان شرعیان لابد لھما من الدلیل کما ھو مصرح فی ردالمحتار حرمت اور کراہت ایسے حکم شرعی ہیں جن کے لئے دلیل ضروری ہے جیسا کہ ردالمحتار کی عبارت والنتن الذی الخ میں اس کی صراحت ہے، اور اشیاء میں اصل اباحت اصلیہ ہے، جیسا کہ اشباہ میں لکھا ہوا ہے، اور یہاں ان دونوں پر کوئی دلیل نہیں تو فتوے کی رو سے القائے مذکور کا حکم اباحت اصلیہ پر باقی رہا۔ اس کے ساتھ متعدد مقامات کے علماء کا تعامل بھی شامل ہے جو ایک قسم اجماع ہے جیسا کہ فصول الحواشی لاصول الشاشی میں مذکور ہے۔ (۳) بدعت سیئہ وہ ہے جو ویسی ہی سنت کو ختم کرنے والی ہو جیسا کہ مشکوٰۃ المصابیح میں صراحت ہے۔ اور جب معتبر دلیل سے عدم القاء کا مسنون ہونا ثابت نہیں تو لقاء کو بدعت کیسے کہا جارہا ہے! (۴) کتب معتبرہ کا سکوت (ذکر منفی) ایجاب وسلب سے اعم ہے تو مانع سلب کو ایجاب پر ترجیح کیسے دے دی گئی! (۵) کتابیں القاء کے منع وفعل سے ساکت ہیں اور ساکت کا کوئی حکم نہیں ہوتا جیسا کہ متعدد کتب اصول فقہ میں ارشاد باری تعالیٰ وَمَنْ لَّمْ یَسْتَطِعْ مِنْکُمْ طَوْلًا الخ کی تعلیق کے تحت مذکور ہے۔ (ت)

تمام ہوئی مولوی مجوز کی جس رسم خط سے کہ اس نے لکھی تھی۔ عرضیہ نیاز فقیر خادم دربار محمد غلام ربانی

Fatawa-e-Razvia - Volume 9

The Answer:

Indeed, the aforementioned action, for the stated reason, is an evil, repulsive innovation (bid'ah) that must be abandoned. In itself, it was a futile act in which there is no benefit either rationally or traditionally, and the reason given by the permitter is purely ridiculous. What does it mean for the tools to suffer! And even if they did, what comfort would passing them over [the grave] give them? This very movement itself causes hardship. And what hardship does the deceased suffer that requires compensation? And even if there was hardship, what is the fault of the deceased! The hardship was caused by the gravediggers or those who ordered the digging, so the tools should be passed over them. And supposedly, if the deceased is the culprit because they caused the hardship, then the living are more deserving [of this treatment]. For example, if a builder, even if he were a king building a fort, then every evening all the tools of the masons and laborers should be passed over him. No, no, they should descend upon him personally, because in reality, the hardship was caused to them. And why isn't the cot (charpai) passed over the deceased, which they occupied the whole way? The tools do not thank him for fulfilling an obligation through them; instead, they complain. And if this is the compensation in an obligatory act, then the preacher (khateeb) who places weight on the pulpit (minbar) just to perform a Sunnah—there, even passing the pulpit over his head would not be enough; rather, after the sermon, the pulpit should be loaded onto the preacher's head! In short, ignorance is a strange thing. More time is dearer than obeying its rebuttal. Yes, its futility became even clearer because its supporters could not state any benefit, and were forced to fabricate a joke. Futility in itself is absurd, especially when associated with the grave and the deceased, which are places for remembrance and reflection, not for useless trivialities. Regarding such matters, it is stated in Hidayah, Durar-ul-Ghunyah, Taqreer Kifayah, Inayah, and Fathul Qadeer:

"Futility outside of prayer is prohibited, so what do you think of it inside prayer?" -1 If futility is prohibited outside prayer, then how would it be inside?

-(T)

Furthermore, they perform this detestable futility thinking it beneficial in religion and a repeller of punishment from the deceased. This is definitely an addition and invention in Sharia, and a loathsome innovation. The text presented in the name of Hadith is fabricated by a liar and a forger; the ignorant person didn't even know how

to construct the sentence properly. Or perhaps the more ignorant increased their ignorance; how did the phrase "cast the tool with which the grave was dug" convey the meaning that it should be passed over the grave, especially by throwing it from the head side to the foot side, and the reward for 'man' (whoever) is 'aman' (safety) from punishment.

---

1 Al-Hidayah, Chapter: Disliked Actions for the Person Praying, etc., Al-Maktabat-ul-Arabia, Karachi, 1/118

फतावा-ए-रजविया - जिल्द 9

उत्तर:

बेशक, उल्लेखित कार्य, बताए गए कारण की वजह से, एक बुरी और घृणित बिदअत (नवाचार) है जिसे छोड़ना अनिवार्य है। अपने आप में यह एक व्यर्थ कार्य था जिसमें बुद्धि या परंपरा के आधार पर कोई लाभ नहीं है, और अनुमति देने वाले ने जो कारण बताया है वह सरासर हास्यास्पद है। औजारों को तकलीफ होने का क्या अर्थ! और अगर हो भी, तो उन्हें [कब्र के ऊपर से] गुज़ारने में उन्हें क्या आराम मिलेगा? यह हरकत खुद तकलीफ का कारण है। और मृतक को क्या तकलीफ है कि उसका बदला हो, और अगर हो भी, तो मृतक का क्या कसूर! तकलीफ कब्र खोदने वालों ने दी या खुदवाने वालों ने, तो औजार उनके ऊपर से गुज़ारे जाने चाहिए। और मान लीजिए कि मृतक अपराधी है जिसके कारण तकलीफ हुई, तो जीवित लोग इस व्यवहार के अधिक पात्र हैं। उदाहरण के लिए, यदि कोई भवन निर्माता, चाहे वह राजा ही क्यों न हो जो किला बनवा रहा हो, तो हर शाम राजमिस्त्रियों और मजदूरों के सभी औजार उसके ऊपर से गुज़ारे जाने चाहिए। नहीं, नहीं, उन्हें खुद उसके ऊपर से उतारना चाहिए क्योंकि वास्तविकता में तकलीफ तो उन्हीं को हुई। और मृतक के ऊपर से वह चारपाई क्यों नहीं उतारी जाती जो उसने पूरे रास्ते तोड़ी? औजार उसका शुक्रिया अदा नहीं करते कि उनके ज़रिये फर्ज अदा हुआ, बल्कि वे शिकायत करते हैं। और फर्ज में जब यह बदला है, तो वह खतीब (उपदेशक) जो केवल सुन्नत अदा करने के लिए मिंबर (मंच) पर बोझ डालता है, वहां तो मिंबर को सिर से उतारना भी काफी नहीं होगा, बल्कि खुतबे के बाद मिंबर को खतीब के सिर पर लाद देना चाहिए! संक्षेप में, अज्ञानता एक अजीब चीज़ है। इसके खंडन में आज्ञाकारिता से अधिक समय कीमती है। हाँ, इससे इसकी व्यर्थता और स्पष्ट हो गई कि इसके समर्थक कोई लाभ नहीं बता सके, और मजबूरन एक मज़ाक गढ़ा। व्यर्थता अपने आप में बेतुकी है, विशेष रूप से कब्र और मृतक के साथ, जो याद और नसीहत के स्थान हैं, न कि बेकार की बातों के। ऐसी ही चीज़ों के लिए हिदाया, दुरर-उल-गुनिया, तक़रीर किफाया, इनाया और फ़तहुल क़दीर में मार्गदर्शन है:

"नमाज़ के बाहर व्यर्थ कार्य करना हराम है, तो नमाज़ के अंदर इसके बारे में आपका क्या विचार है?" -1 यदि व्यर्थता नमाज़ के बाहर हराम है, तो नमाज़ के अंदर कैसी होगी?

-(त)

फिर वे इस घृणित व्यर्थता को धर्म में लाभकारी और मृतक से अज़ाब (दंड) को दूर करने वाला समझकर करते हैं। यह निश्चित रूप से शरीयत में अधिकता और आविष्कार और एक घृणित नवाचार है। और हदीस के नाम पर जो इबारत (लेख) पेश की गई है, वह किसी झूठ बोलने वाले और गढ़ने वाले की रचना है; उस अज्ञानी को इबारत बनानी भी नहीं आई। या शायद अधिक अज्ञानियों ने अपनी अज्ञानता बढ़ाई; "القبر الی حفر بها التی آلتہ القی।" (उस औजार को फेंक दिया जिससे कब्र खोदी गई थी) से यह अर्थ कैसे निकला कि उसे कब्र के ऊपर से उतारें, विशेष रूप से सिरहाने से पायताने की ओर फेंकें और 'मन' (जो कोई) के बदले में 'अमन' (अज़ाब से सुरक्षा) हो।

---

1 अल-हिदाया, फ़स्ल: नमाज़ी के लिए जो चीज़ें नापसंद हैं आदि, अल-मकतबत-उल-अरबिया, कराची, 1/118

الجواب: بیشک فعل مذکور بوجہ مذکور بدعت سیئہ شنیعہ واجب الترک ہے۔ فی نفسہ وہ ایک فعل عبث تھا جس میں عقلاً ونقلاً کوئی فائدہ نہیں اور اس کی وجہ کہ مجوز نے بیان کی محض مضحکہ ہے۔ آلات کو تکلیف ہونا کیا معنی! اور ہو بھی تو اس گزار دینے میں ان کو کیا آرام، یہ بھی حرکت ہے کہ باعث تکلیف ہے اور میت پر کیا تکلیف کہ بدلہ ہو، اور ہو بھی تو میت کا کیا قصور! تکلیف حفاروں نے دی یا حفر کرانے والوں نے، تو ان پر سے آلات گزارے جائیں، اور بالفرض میت مجرم ہے کہ اس کے سبب تکلیف ہوئی تو احیاء بدرجہ اولٰی، تو عمارت بنوانے والا اگر چہ بادشاہ کہ قلعہ بنوائے روز شام کو تمام آلات معماران و مزدوران اس پر سے گزارے جائیں۔ نہیں نہیں، یہ خود اس پر سے اتریں کہ حقیقۃً تکلیف تو انہی کو ہوئی ہوئی۔ اور میت پر سے چار پائی کیوں نہیں اتاری جاتی جو اس نے راستے بھر توڑی، آلات اس کا شکر نہیں کرتے کہ ان سے اقامتِ فرض کی، الٹے شاکی ہوتے ہیں، اور فرض میں جب یہ بدلہ ہے تو خطیب کہ محض ادائے سنت کے لئے منبر پر بوجھ ڈالتا ہے وہاں تو سر سے منبر اتار دینا کافی بھی نہ ہوگا بلکہ بعد خطبہ خطیب کے سر پر منبر لاد دینا چاہئے، غرض جہل عجیب چیز ہے اس کے رد میں اطاعت سے زیادہ وقت عزیز ہے، ہاں اس سے اس کا عبث ہونا زیادہ واضح ہوگیا کہ اس کے حامی بھی کوئی فائدہ نہ بتا سکے، ناچار مضحکہ تراشا، اور عبث بجائے خود بیہودہ ہے نہ کہ قبر و میت کے ساتھ کہ محل تذکر واعتبار ہیں، نہ کہ جائے لغویات بیکار، ایسی ہی جگہ کے لئے ارشادِ ہدایت و درر وغنیہ و تقریر کفایہ وعنایہ وفتح القدیر ہے:

العبث خارج الصلوۃ حرام فما ظنك فی الصلوۃ -1 عبث نماز کے باہر ہو تو حرام ہے پھر نماز کے اندر ہو تو کیسا ہوگا -(ت)

پھر اس عبث مبغوض کو دین میں نافع اور میت سے عذاب کا دافع سمجھ کر کرتے ہیں، یہ قطعاً شرع میں زیادت واختراع وشنیع ابتداع ہے، اور حدیث کے نام سے جو عبارت پیش کی ساختہ کذاب و وضاع ہے، جاہل کو عبارت بنانی بھی نہ آئی، یا اجہلوں نے اپنی جہالت بڑھائی القی آلتہ التی حفر بھا القبر سے یہ مضمون کیونکر ادا ہوا کہ قبر پر سے اتاریں، خصوصاً یوں کہ سرہانے سے پائینتی پھینکیں اور من کی جزا میں امن من عذاب

---

1 الہدایہ فصل ویکرہ للمصلی الخ المکتبۃ العربیہ کراچی ۱ / ۱۱۸

Fatawa Razawiya, Volume 9

...the grave, it would be beneficial for the one doing it to be safe from the punishment of the grave, not the deceased. In short, this futile innovation at the grave, rather futile with the grave, has abolished the Sunnah of remembrance and taking heed. This claim of safety from the punishment of the grave has discarded the Sunnah of "And follow not that of which you have no knowledge" (t) and replaced it with the major sin of "Ye say of Allah that which ye know not" (t). What doubt remains in it being a heinous and repulsive innovation? These are the arguments for prohibition, not that silence of books and lack of evidence was used as an argument. That was a rebuttal to the claimant of benefit and prevention of punishment: "It is but a word that he speaks; Allah has sent down no authority for it" (t). And this rebuttal is absolutely correct. Undeniably, a claim without evidence is absolutely false and debased. In Fawatih al-Rahamut, on the page where the corruption of arguing without evidence is mentioned, it is stated a few lines later under the discussion of Istishab: "A ruling without evidence is invalid" (t). Especially here, where such a thing would necessarily be a matter of worship whose meaning is beyond reason, requiring a specific text from the Lawgiver. And since that is absolutely intended, the claim of the opponent is certainly rejected. And for some limited individuals in limited places to fabricate an act for fifty or sixty years and call it practice and a type of consensus—how far removed from knowledge and how discarded is that!

"We have already finished explaining it in our book 'Shama'im al-Anbar fi Adab al-Nida' Imam al-Minbar'. This being so, the rattling of those who exceed His command has been repelled by what we have mentioned. And Allah Almighty knows best." We have already stated this in our book "Shama'im al-Anbar fi Adab al-Nida' Imam al-Minbar". Keep this in mind, and through our explanation, the senseless voices of those who call this act permissible have been repelled, and the Most High God knows best. (t)

Issue 98: From Dalir Ganj, Pargana Jahanabad, District Pilibhit, sent by Khalifa Ilahi Bakhsh, 18 Rajab 1317 AH. What do the scholars of religion say regarding this issue: If a Muslim passes away on any day other than Friday or the eve of Friday, is it correct to entrust him to Friday, meaning to sit by the grave until Friday, or not?

The Answer: Sitting after burial for as long as it takes to slaughter a camel is Sunnah. A hadith is recorded in Sahih Muslim regarding this from Hazrat Amr ibn al-Aas (may Allah be pleased with him). Sitting for longer or for days is also not prohibited,

provided one avoids idle and absurd talk, laughing, and other acts of negligence and hard-heartedness, and remains occupied in recitation, sending blessings (Durood), and good deeds, as these matters are a cause for the descent of mercy. And the heart of the deceased is comforted by the presence of the living, as we have explained in 'Hayat al-Mawat' (t). The origin for sitting until Friday is likely that narration...

1 Fawatih al-Rahamut under al-Mustasfa, 2/359 2 Sahih Muslim, Book of Faith, Nur Muhammad Asah al-Matabi, Karachi, 1/71

फ़तावा रज़विया, जिल्द नहम (9)

...क़ब्र तो इसका फ़ायदा यह कि ऐसा करने वाला अज़ाब-ए-क़ब्र (क़ब्र की सज़ा) से महफ़ूज़ रहेगा, न कि मय्यत। संक्षेप में, क़ब्र के पास इस बेकार बिदअत (नवाचार) ने, बल्कि क़ब्र के साथ इस बेकार काम ने सुन्नत-ए-तज़क्कुर-ओ-एतबार (याद करने और नसीहत लेने की सुन्नत) को खत्म कर दिया। और अज़ाब-ए-क़ब्र से अमन (सुरक्षा) के इस दावे ने सुन्नत "उस चीज़ के पीछे न पड़ जिसका तुझे ज्ञान नहीं" (त) को हटाकर उसकी जगह कबीरा (बड़ा गुनाह) "तुम अल्लाह पर वह बोलते हो जिसका तुम्हें ज्ञान नहीं" (त) को रख दिया। इसके घृणित और बुरा नवाचार होने में क्या संदेह रहा? मना करने के तर्क ये हैं, न कि यह कि किताबों की खामोशी और बिना दलील से तर्क दिया गया हो। वह लाभ और अज़ाब टालने के दावेदार पर रद (खंडन) था कि: "वह ऐसी बात है जिससे वह नादान बना, खुदा ने इसकी कोई सनद (प्रमाण) नहीं उतारी" (त)। और यह रद निश्चित रूप से सही है। निस्संदेह बिना दलील के दावा बिल्कुल गलत और तुच्छ है। 'फ़वातिह-उर-रहमूत' में जिस पृष्ठ पर बिना दलील के तर्क की खराबी का ज़िक्र है, उसमें कुछ पंक्तियों के बाद 'इस्तिसहाब' के ज़िक्र में है: "बिना दलील के हुक्म बातिल (अमान्य) है" (त)। विशेष रूप से यहाँ कि ऐसा होना अनिवार्य रूप से एक इबादत का मामला होता जिसका अर्थ बुद्धि से परे है, जिसके लिए शरीअत देने वाले (शारे') का विशेष पाठ (नस्स) आवश्यक होता। और वह निश्चित रूप से अभीष्ट है, तो विरोधी का दावा निश्चित रूप से अस्वीकार्य है। और सीमित स्थानों के सीमित व्यक्तियों द्वारा पचास-साठ वर्षों से कोई कार्य गढ़ लेना और उसे व्यवहार और एक प्रकार का इजमा (सहमति) करार देना ज्ञान से कितना दूर और त्याज्य है।

"हम इसे अपनी किताब 'शमाइमुल अनबर फ़ी अदबिन निदा-ए-इमामुल मिम्बर' में बयान कर चुके हैं। इसके साथ ही, हमारे द्वारा बताए गए तर्कों से उनकी निरर्थक आवाज़ें जो उनकी सीमाओं को लांघती हैं, दबा दी गई हैं। और अल्लाह तआला बेहतर जानता है।" हम इसे अपनी किताब "शमाइमुल अनबर फ़ी अदबिन निदा-ए-इमामुल मिम्बर" में बयान कर चुके हैं, इसे ज़हननशीन रखें, और हमारे बयान से इस काम को जायज़ कहने वालों की बेमानी आवाज़ें दफ़ा हो गईं, और खुदा-ए-बर्तर (महान ईश्वर) खूब जानने वाला है। (त)

मसला ९८: दलेर गंज, परगना जहानाबाद, जिला पीलीभीत से, प्रेषक खलीफा इलाही बख्श, १८ रजब १३१७ हिजरी। धर्म के विद्वान इस मसले में क्या फरमाते हैं कि जुमा या शबे-जुमा के अलावा किसी और दिन में मुसलमान का इंतकाल हो, तो उसे जुमा के सुपुर्द करना यानी जुमा तक कब्र पर बैठना दुरुस्त है या नहीं?

अल-जवाब (उत्तर): दफन के बाद इतनी देर बैठना कि एक ऊँट ज़बह किया जाए, मसनून (सुन्नत) है। सहीह मुस्लिम शरीफ में इस बारे में हज़रत अमर बिन आस (रज़ियल्लाहु अन्हु) से हदीस आई है। और ज़्यादा देर या दिनों तक बैठना भी मना नहीं है, बल्कि वहाँ फालतू और बेहुदा बातें करने, हँसने वगैरह लापरवाही और कठोरता की हरकतों से बचें, और तिलावत (क़ुरआन पाठ) व दरूद ख्वानी और अच्छे कामों में व्यस्त रहें, क्योंकि ये बातें रहमत के अवतरण का कारण होती हैं। और जीवितों के पास होने से मुर्दे का दिल बहलता है जैसा कि हमने 'हयातुल मवात' में बयान किया है। (त) जुमा तक बैठने की वजह शायद वह रिवायत है...

1. फ़वातिहुर रहमूत, ज़ैल अल-मुस्तसफ़ा, २/३५९
2. सहीह मुस्लिम, किताबुल ईमान, नूर मोहम्मद असहुत तबाअ, कराची, १/७१

पृष्ठ ३७८ के ९४८

القبر تو اس کا مفید کہ ایسا کرنے والا عذاب قبر سے محفوظ رہے گا، نہ کہ میت۔ بالجملہ اس بدعت عبث عند القبر بلکہ عبث مع القبر نے سنیت تذکرو اعتبار کا رفع کیا اور اس ادعائے امن من عذاب القبر نے سنت ولا تقف مالیس لک بہ علم (اس کے پیچھے نہ پڑ جس کا تجھے علم نہیں ۔ ت) رفع کرکے اس کی جگہ کبیرہ تقولون علی اللہ مالاتعلمون (خدا پر تم وہ بولتے ہو جس کا تمہیں علم نہیں۔ ت) رکھ دیا اس کے بدعت شنیعہ قبیحہ ہونے میں کیا شک رہا۔ دلائل منع یہ ہیں، نہ یہ کہ سکوت کتب ولادلیل سے استدلال کیا ہو، وہ مدعی نفع نہ دفع عذاب پر رَد کو تھا کہ تلك كلمة هو تجاهلها، ما انزل اللہ بھا سلطان (وہ ایسی بات ہے جس سے وہ نادان بناخدا نے اس کی کوئی سند نہ اتاری۔ ت) اور یہ رد قطعاً صحیح ہے۔ بلاشبہ دعوی بے دلیل۔ قطعاً باطل و ذلیل۔ فواتح الرحموت میں جس صفحہ میں لادلیل سے فساد استدلال کا ذکر ہے اس میں چند سطر کے بعد ذکر استصحاب میں ہے: الحکم بلا دلیل باطل (حکم بلادلیل باطل ہے ۔ ت) خصوصاً یہاں کہ ایسا ہونا ضر در امر تعبدی غیر معقول المعنیٰ ہوتا جس کے لئے خاص نص شارع درکار۔ اور وہ قطعاً مقصود، تو ادعائے مخالف یقیناً مردود۔ اور محدود مواضع کے محدود اشخاص کا پچاس ساٹھ برس سے کوئی فعل تراش لینا اسے تعامل و قسم اجماع قرار دینا کس درجہ علم سے بعید و مطرود۔

وقد فرغنا من ابانته في كتابنا شمائم العنبر في ادب النداء امام المنبر، هذا وقد اندفعت بما ذكرنا قعقع المجاوزين بامره۔ واللہ تعالیٰ اعلم ہم اسے اپنی کتاب "شمائم العنبر فی ادب النداء امام المنبر" میں بیان کر چکے ہیں، یہ ذہن نشین رہے، اور ہمارے بیان سے اس کام کو جائز کہنے والوں کی بے معنی آوازیں دفع ہو گئیں، اور خدائے برتر خوب جاننے والا ہے۔ (ت)

مسئلہ ۹۸: از دلیر گنج پر گنہ جہان آباد ضلع پیلی بھیت مرسلہ خلیفہ الہی بخش ۱۸ رجب ۱۳۱۷ھ

کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ جمعہ یا شبِ جمعہ کے سوا کسی اور دن میں مسلمان کا انتقال ہو تو اس کو جمعہ کے سپرد کرنا یعنی جمعہ تک قبر پر بیٹھنا درست ہے یا نہیں؟

الجواب: بعد دفن اتنی دیر بیٹھنا کہ ایک اونٹ ذبح کیا جائے، مسنون ہے۔ صحیح مسلم شریف میں اس بارے میں حضرت عمر و بن عاص رضی اللہ تعالیٰ عنہ سے حدیث وارد ہے اور زیادہ دیر یادنوں تک بیٹھنا بھی ممنوع نہیں، بلکہ وہاں لغو و بیہودہ باتیں کرنے، ہنسنے وغیرہ غفلت و قسوت کی حرکات سے بچیں، اور تلاوت و درود خوانی اور اعمالِ حسنہ میں مشغول رہیں کہ یہ امور موجب نزولِ رحمت ہوتے ہیں، اور احیاء کے پاس ہونے سے مردے کا دل بہلتا ہے کما بینا فی حیاۃ الموات (جیسا کہ اسے 'حیات الموات' میں بیان کیا ہے۔ ت) جمعہ تک بیٹھنے کا منشاء غالباً وہ روایت ہے

1 فواتح الرحموت بذیل المستصفی ۲/ ۳۵۹ 2 صحیح مسلم کتاب الایمان نور محمد اصح المطابع کراچی ۱/ ۷۱

Fatawa Razawiyya, Volume 9

What Imam Nasafi mentioned in 'Bahr al-Kalam' is that if a Muslim faces punishment in the grave (God forbid), it only lasts until Friday. As soon as Friday night arrives, it is lifted and does not return. Although Imam Suyuti and Allama Ali Qari have reservations about this report, for a purely beneficial matter, even a possibility is sufficient intellectually and legally. If this report matches reality, then as long as there was apprehension (God forbid), assistance was provided through conveying rewards and seeking blessings via Dhikr and the Quran. When Friday arrived, divine mercy itself took responsibility. And if it does not match, at least the needy Muslim was helped and benefited during those days. The Messenger of Allah (peace and blessings be upon him) said:

"Whoever among you is able to benefit his brother, let him do so." Narrated by Muslim from Jabir bin Abdullah (may Allah be pleased with them). (T)

In any case, this deed is not void of goodness, as long as there is no legal prohibition in intention or action. It is stated in Sharh al-Sudur Sharif:

Imam Nasafi generalized in 'Bahr al-Kalam' saying: "The punishment is lifted from the disbeliever on Friday day and night and throughout the whole month of Ramadan. As for the sinning Muslim, he is punished in his grave, but the punishment is lifted from him on Friday day and night, and then it does not return to him until the Day of Resurrection. If he dies on the day or night of Friday, there is only one hour of punishment, and the squeezing of the grave is similar. Then the punishment is cut off from him and does not return until the Day of Resurrection. (Finis)." This indicates that sinning Muslims will be punished for only one Friday or less, and when...

1. Sahih Muslim, Chapter on the Recommendation of Ruqyah, etc. Noor Muhammad Asah al-Matabi Karachi 2/242.

फतवा रज़विया, जिल्द 9

जो इमाम नसफ़ी ने 'बहर अल-कलाम' में ज़िक्र फ़रमाया कि मुसलमान पर (अल्लाह बचाए) अज़ाबे-क़ब्र अगर होता है तो सिर्फ़ जुमे तक होता है। शबे-जुमा आते ही उठा लिया जाता है और फिर दोबारा नहीं होता। इमाम सुयूती और अल्लामा अली क़ारी को अगरचे इस रिवायत में तावुक़ुफ़ (संकोच) है, मगर अक़्लन और शरअन नफ़ा पहुँचाने वाली बात के लिए सिर्फ़ एहतमाल (संभावना) ही काफ़ी होता है। अगर ये रिवायत वाक़िअत के मुताबिक़ है, तो जब तक (अल्लाह बचाए) अंदेशा था, ईसाले-सवाब और ज़िक्रो-क़ुरआन से बरकतें हासिल करने के ज़रिए उसकी मदद की गई। जब जुमा आ गया, तो अल्लाह की रहमत खुद इसकी ज़िम्मेदार हो गई। और अगर ये मुताबिक़ नहीं भी है, तो उन दिनों एक ज़रूरतमंद मुसलमान की मदद और नफ़ा रसानी ही हुई। रसूलुल्लाह (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) फ़रमाते हैं:

"तुम में से जो कोई अपने भाई को नफ़ा पहुँचा सके, उसे चाहिए कि पहुँचाए।" मुस्लिम ने जाबिर बिन अब्दुल्लाह (रज़ियल्लाहु अन्हुमा) से रिवायत किया। (त)

बहरहाल ये काम खैर (भलाई) से खाली नहीं, जबकि नियत या अमल में इसके साथ कोई शरई रुकावट न हो। 'शरह अल-सुदूर शरीफ़' में है:

इमाम नसफ़ी ने 'बहर अल-कलाम' में आम राय देते हुए कहा कि जुमे के दिन और रात और पूरे रमज़ान के महीने में काफ़िर से अज़ाब उठा लिया जाता है। और गुनहगार मुसलमान को क़ब्र में अज़ाब दिया जाता है, मगर उससे जुमे के दिन और रात अज़ाब उठा लिया जाता है, फिर क़यामत तक दोबारा अज़ाब नहीं होता। और अगर जुमे के दिन या जुमे की रात इंतिक़ाल हुआ है, तो सिर्फ़ एक साअत (घड़ी) अज़ाब होता है। क़ब्र के दबाने का मामला भी इसी तरह है। फिर उससे अज़ाब बंद हो जाता है और क़यामत तक फिर नहीं लौटता। (इन्तेहा)। इससे पता चलता है कि गुनहगार मुसलमानों को एक जुमे तक या उससे भी कम अज़ाब होगा और जब...

1. सहीह मुस्लिम, बाब इस्तहबाब अल-रुक़्या वग़ैरा, नूर मुहम्मद असहु अल-मताबी कराची 2/242.

पेज 379 का 948

فتاوی رضویہ، جلد نہم

جو امام نسفی نے بحر الکلام میں ذکر فرمائی کہ مسلمان پر معاذاللہ عذابِ قبر اگر ہوتا ہے تو صرف جمعہ تک ہوتا ہے شبِ جمعہ آتے ہی اٹھالیا جاتا ہے اور پھر عود نہیں کرتا۔ امام سیوطی وعلامہ علی قاری کو اگر چہ اس روایت میں توقف ہے مگر عقلاً و شرعاً امرِ نافع محض کو صرفِ احتمال کافی ہوتا ہے۔ اگر یہ روایت مطابقِ واقع ہے تو جب تک معاذ اللہ اندیشہ تھا۔ ایصالِ ثواب و استنزالِ برکاتِ ذکر وقرآن سے اس کی مدد کی گئی، جب جمعہ آگیا خود رحمتِ الٰہی اس کی متکفل ہوئی۔ اور اگر نامطابق ہے تو اتنے دنوں آخر مسلمان محتاج کی مدد و نفع رسانی ہی ہوئی، رسول اللہ صلی اللہ تعالی علیہ و سلم فرماتے ہیں:

من استطاع منکم ان ینفع اخاہ فـ لیفنعہ تم میں جو اپنے بھائی مسلمان کو نفع پہنچا سکے، اسے چاہیے۔ رواہ مسلم عن جابر بن عبداللہ رضی اللہ تعالی عنہما۔ کیا ہے۔ (ت)

بہر حال یہ کام خیر سے خالی نہیں جبکہ نیتًا یا عملًا اس کے ساتھ کوئی محذورِ شرعی نہ ہو۔ شرح الصدور شریف میں ہے:

عمم النسفی فی بحر الکلام فقال ان الکافر یرفع عنہ العذاب یوم الجمعۃ ولیلتھا وجمیع شھر رمضان، قال واما المسلم العاصی فانہ یعذب فی قبرہ لکن یرفع عنہ العذاب یوم الجمعۃ ولیلتھا ثم لایعود الیہ الی یوم القیمۃ وان مات یوم الجمعۃ اولیلۃ الجمعۃ یکون لہ العذاب ساعۃ واحدۃ وضغطۃ القبر کذلک ثم ینقطع عنہ العذاب ولا یعود الیہ الی یوم القیمۃ انتھی۔ امام نسفی نے بحر الکلام میں عام لگاتے ہوئے کہا کہ روزِ شبِ جمعہ اور پورے ماہِ رمضان میں کافر سے عذاب اٹھا لیا جاتا ہے اور گنہگار مسلمان کو قبر میں عذاب دیا جاتا ہے، مگر اس سے روز اور شبِ جمعہ عذاب اٹھا لیا جاتا ہے پھر

قیامت تک دوبارہ عذاب نہیں ہوتا، اور اگر روزِ جمعہ یا شبِ جمعہ کو انتقال کیا ہے تو صرف ایک ساعت عذاب ہوتا ہے۔ قبر کے دبانے کا معاملہ بھی اسی طرح ہے۔ پھر اس سے عذاب بند ہو جاتا ہے اور قیامت تک پھر نہیں لوٹتا۔ انتہی۔ اس سے پتا چلتا ہے کہ گنہگار مسلمانوں کو ایک جمعہ تک یا اس سے بھی کم عذاب ہوگا اور جب

1 صحیح مسلم باب استحباب الرقیۃ الخ نور محمد اصح المطابع کراچی ۲/ ۲۴۲

Fatawa Razawiyya, Volume 9.

"...and reached until the day of Friday, it ceased then did not return, and this requires evidence 1 - ended." The day of Friday will come, then it will stop and then not occur again. There is a need for evidence regarding this - ended. (T) Similarly, it is mentioned in 'Minh al-Rawd al-Azhar'. And Allah, Glory be to Him and the Most High, knows best. Problem 99 to 102: What do the scholars of religion and jurists of the clear Shari'ah say regarding this matter: (1) Is burying a deceased person in someone's land without permission an act subject to penalty? (2) Will those who do this be sinners? (3) Is this act preferable for the deceased? (4) If the deceased makes a will regarding this, then if the survivors of the deceased act upon it in such a way that they bury the deceased without the permission of the landowner, will this act be a cause of reward for the deceased or the survivors according to Shari'ah?

The Answer: Burying in someone's land without the owner's permission is forbidden (Haram). Those who do so are sinners; if the deceased made a will saying that whether the owner permits it or not, I must be buried there, then he is also a severe sinner. What reward is there for the deceased or survivors! In this, there is entitlement to punishment. The owner has the choice to remove the corpse of the deceased and empty his land, or let the corpse remain and level the grave and build whatever he wants on it, walk around, or utilize it, because the Hadiths about graves are not for such illegal graves. The Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) said: "An unjust vein has no right" 2 (There is no right for the effort of an oppressor. T). It is mentioned in 'Durr al-Mukhtar': "The deceased shall not be taken out from it (the grave) after soil has been poured except for a human right, such as the land being usurped. The owner shall have the choice between removing it or leveling it with the ground" 3. Meaning: After putting soil, the deceased will not be taken out of the grave except due to a person's right, for example, that the land was usurped, and the owner will have the choice to take the deceased out or level the grave with the ground. (T)

1. Sharh al-Sadr bi-Sharh Hal al-Mawta wal-Qubur, Chapter: Punishment of the Grave, Khilafat Academy Mingora Swat, p. 76.
2. Sunan Abi Dawud, Chapter: Revival of Dead Lands, Aftab-e-Alam Press Lahore, 2/81.
3. Durr al-Mukhtar, Chapter: Funeral Prayer, Matba' Mujtabai Delhi, 3/126.

फ़तावा रज़विया, जिल्द नहम (9)

"...और जुमे के दिन तक पहुँचा, फिर रुक गया और दोबारा नहीं लौटा, और इस पर दलील की हाजत है 1 - समाप्त।" जुमे का दिन आ जाएगा तो (अज़ाब) बंद हो जाएगा फिर दोबारा नहीं होगा। इस बारे में दलील की ज़रूरत है - समाप्त। (त) इसी तरह 'मन्ह-उर-रौज़ अल-अज़हर' में है। और अल्लाह सुब्हानहु व तआला बेहतर जानता है। मसला 99 से 102: उलमा-ए-दीन और मुफ़्तियान-ए-शरअ-ए-मतीन इस मसले में क्या फ़रमाते हैं कि: (1) मय्यत को बिना इजाज़त किसी शख़्स की ज़मीन में दफ़न करना क्या कोई सज़ा के योग्य काम है? (2) क्या ऐसा करने वाले गुनहगार होंगे? (3) क्या मय्यत के हक़ में यह काम बेहतर (औला) है? (4) अगर मय्यत इसके बारे में वसीयत करे तो क्या मय्यत के वारिस उस पर इस तरह अमल करें कि बिना ज़मीन के मालिक की इजाज़त के मय्यत को दफ़न कर दें, तो क्या शरीयत की नज़र में यह काम मय्यत या वारिसों के लिए सवाब का कारण होगा?

जवाब: मालिक की इजाज़त के बिना उसकी ज़मीन में दफ़न करना हराम है। ऐसा करने वाले गुनहगार हैं; मय्यत अगर अपनी वसीयत यूँ कर गया कि चाहे मालिक इजाज़त दे या न दे मुझे वहीं दफ़न करना, तो वह भी सख़्त गुनहगार है। मय्यत या वारिसों के लिए सवाब कैसा! इसमें अज़ाब की हक़दारी है। मालिक को अधिकार है कि मय्यत की लाश निकाल दे और अपनी ज़मीन खाली कर ले, या लाश रहने दे और क़ब्र बराबर करके उस पर जो चाहे बनाए, चले-फिरे, इस्तेमाल करे, क्योंकि क़ब्रों के बारे में जो हदीसें हैं वे ऐसी नाजायज़ क़ब्र के लिए नहीं हैं। रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम फ़रमाते हैं: "किसी ज़ालिम की रग का कोई हक़ नहीं 2" (किसी ज़ालिम की कोशिश का कोई हक़ नहीं। त)। 'दुर्रे मुख्तार' में है: "मिट्टी डालने के बाद मय्यत को क़ब्र से नहीं निकाला जाएगा सिवाय किसी इंसान के हक़ के कारण, जैसे कि ज़मीन ग़सब की हुई (हड़पी हुई) हो, और मालिक को अख्तियार होगा कि मुर्दे को बाहर निकाले या क़ब्र ज़मीन के बराबर कर दे 3।" मतलब: मिट्टी डालने के बाद मय्यत को क़ब्र से नहीं निकाला जाएगा मगर किसी आदमी के हक़ के सबब, मसलन ये कि ज़मीन ग़सब की हुई हो और मालिक को अख्तियार होगा कि मुर्दे को बाहर निकाले या क़ब्र ज़मीन के बराबर कर दे। (त)

1. शरह-उस-सदर ब-शरह हाल अल-मौता वल-कुबूर, बाब: अज़ाब-ए-क़ब्र, ख़िलाफ़त एकेडमी मिंगोरा स्वात, पृ. 76

2. सुनन अबू दाऊद, बाब: इहया-उल-मवात, आफ़ताब-ए-आलम प्रेस लाहौर, 2/81

3. दुर्रे मुख्तार, बाब: सलात-उल-जनाज़ा, मतबा मुज्तबाई दिल्ली, 3/126

وصلوا الی یوم الجمعۃ انقطع ثم لایعود وھو یحتاج الی دلیل ۱ انتھی۔ جمعہ کا دن آ جائے گا تو بند ہو جائے گا پھر دوبارہ نہ ہوگا۔ اس بارے میں دلیل کی ضرورت ہے انتھی۔ (ت) اسی طرح منح الروض الازہر میں ہے۔ واللہ سبحنہ وتعالٰی اعلم۔ مسئلہ ۹۹ تا ۱۰۲: کیا فرماتے ہیں علمائے دین ومفتیانِ شرعِ متین اس مسئلہ میں کہ : (۱) میت کا دفن بلا اجازت کسی شخص کی اراضی میں کوئی قابلِ مواخذہ فعل ہے؟ (۲) کیا ایسا کرنے والے گنہگار ہوں گے؟ (۳) کیا میت کے حق میں یہ فعل اولٰی ہے؟ (۴) اگر میت وصیت اس کے متعلق کرے تو کیا پسماندہ گانِ میت اس پر اس طور سے عمل کریں کہ بلا اجازت مالک زمین کے میت کو دفن کر دیں تو کیا عندالشرع یہ فعل میت یا پسماندگان کے واسطے موجبِ ثواب ہوگا؟

الجواب: بے اجازتِ مالک اس کی زمین میں دفن کرنا حرام ہے۔ ایسا کرنے والے گنہگار ہیں، میت اگر اس کی وصیت یوں کر گیا کہ چاہئے مالک اجازت دے یا نہ دے مجھے وہیں دفن کرنا تو وہ بھی سخت گنہگار ہے۔ میت یا پسماندگان کے لئے ثواب کیسا! اس میں استحقاقِ عذاب ہے، مالک کو اختیار ہے کہ میت کی نعش نکال دے اور اپنی زمین خالی کر لے یا نعش رہنے دے اور قبر برابر کر کے اس پر جو چاہے بنائے، چلے پھرے، تصرف کرے کہ قبر کی جو حدیثیں ہیں ایسی ناجائز قبر کے لیے نہیں، رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم فرماتے ہیں : لیس لعرق ظالم حق ۲ (کسی ظالم کی رگ کا کوئی حق نہیں۔ ت) در مختار میں ہے : لا یخرج منہ بعد اھالۃ التراب الالحق آدمی کان تکون الارض مغصوبۃ ویخیر المالك بین اخراجہ ومساواتہ بالارض ۳۔ مٹی ڈالنے کے بعد میت کو قبر سے نہ نکالا جائے گا مگر کسی آدمی کے حق کے باعث مثلاً یہ کہ زمین غصب کی ہوئی ہو اور مالک کو اختیار ہوگا کہ مُردہ کو باہر نکالے یا قبر زمین کے برابر کردے۔ (ت)

۱ شرح الصدر بشرح حال الموتی والقبور باب عذاب القبر خلافت اکیڈمی منگورہ سوات ص ۷۶ ۲

سنن ابی داؤد باب احیاء الموات آفتاب عالم پریس لاہور ۲/ ۸۱ ۳ در مختار باب صلوۃ الجنازہ مطبع مجتبائی دہلی ۳/ ۱۲۶

Fatawa Razawiyya Volume IX

This is the original jurisprudential ruling, but a Muslim is soft-hearted and especially compassionate towards other Muslims, particularly the deceased. Allah Almighty says:

"Merciful among themselves"[1] (Allah Almighty says: They are compassionate towards each other. -T). If he forgives, Allah Almighty will forgive his mistakes. "Do you not love that Allah should forgive you?"[2] (Do you not like that God forgives you? -T). If he does a favor to his deceased brother, Allah will do a favor to him. "As you judge, so you shall be judged"[3] (As you do, so shall be done to you. -T). If he does not expose his deceased brother's flaws, Allah will cover his flaws. "Whoever covers [the faults of a Muslim], Allah will cover [his faults]"[4] (Whoever covers someone's faults, God will cover his. -T). If he respects his deceased brother's grave, Allah will grant him respect in his life and death. "Allah is in the aid of the servant as long as the servant is in the aid of his brother"[5] (Allah helps a person as long as he helps his brother. -T). And Allah Almighty knows best.

Problem 103: From Hyderabad Deccan, Secunderabad city, Nallagutta locality, house of Syed Muhammad Akbar Sahib, Railway Master, sent by Syed Ghulam Ghaus Sahib, 6 Safar 1317 AH.

Is it permissible to bury in land that is on a perpetual lease (dawami patta)? Some people say that national (milki) land is required for burial; on this basis, burial would not be permissible in estates (jagirs). Please clarify and you will be rewarded.

The Answer:

Undoubtedly it is permissible, provided it is with the permission of the lessee. Land belonging to someone else does not contradict the permissibility of burial; the ultimate consequence is that the owner would have the authority to remove the grave. However, when it is a perpetual lease, there is no such concern from the owner's side, to the extent that scholars have permitted building a mosque on perpetually leased land and considered the endowment (waqf) valid because it will remain forever, so support is gained. It is stated in Rad al-Muhtar:

"He said in Al-Is'af and mentioned in Awqaf al-Khassaf": It is in Al-Is'af that it is mentioned in Awqaf al-Khassaf.

[1] Al-Quran 48/29 [2] Al-Quran 24/22 [3] Al-Asrar al-Marfu'a, letter Jeem, Hadith 394, Dar al-Kutub al-Ilmiyah, Beirut, p. 103 [4] Mishkat al-Masabih, Chapter on Compassion towards Creation, Mujtabai Press, Delhi, p. 422 [5] Sahih Muslim, Chapter on the Virtue of Gathering for Reciting the Quran, Nur Muhammad Asah al-Matabi', Karachi, 2/345

फतावा रज़विया जिल्द नौ

यह मूल फिकही हुक्म है, लेकिन एक मुसलमान नरम दिल होता है और दूसरे मुसलमानों पर, विशेष रूप से मृत पर दयालु होता है। अल्लाह तआला फ़रमाता है:

"वे आपस में दयालु हैं"[1] (अल्लाह तआला फ़रमाता है: वे आपस में दयालु हैं। -त)। यदि वह दरगुज़र (माफ़) करेगा, तो अल्लाह अज़-व-जल्ल उसकी गलतियों को माफ़ फ़रमाएगा। "क्या तुम नहीं चाहते कि अल्लाह तुम्हें माफ़ कर दे?"[2] (क्या तुम पसंद नहीं करते कि खुदा तुम्हें बख्श दे? -त)। यदि वह अपने मृत भाई पर उपकार करेगा, तो अल्लाह उस पर उपकार करेगा। "जैसा तुम करोगे वैसा ही तुम्हारे साथ किया जाएगा"[3] (जैसा तुम करोगे वैसा ही तुम्हारे साथ बर्ताव किया जाएगा। -त)। यदि वह अपने मृत भाई के दोषों को उजागर नहीं करेगा, तो अल्लाह उसके दोषों को छुपाएगा। "जो किसी के दोषों को छुपाएगा, अल्लाह उसके दोषों को छुपाएगा"[4] (जो किसी की पर्दापोशी करेगा, खुदा उसकी पर्दापोशी करेगा। -त)। यदि वह अपने मृत भाई की कब्र का सम्मान करेगा, तो अल्लाह उसके जीवन और मृत्यु में उसे सम्मान प्रदान करेगा। "अल्लाह बंदे की मदद फ़रमाता है जब तक बंदा अपने भाई की मदद करता है"[5] (अल्लाह बंदे की मदद फ़रमाता है जब तक बंदा अपने भाई की मदद करता है। -त)। और अल्लाह तआला बेहतर जानता है।

मसला १०३: हैदराबाद दक्कन, सिकंदराबाद शहर, मोहल्ला नल्लागुट्टा, मकान सैयद मुहम्मद अकबर साहब मास्टर रेलवे, प्रेषक सैयद गुलाम गौस साहब, ६ सफ़र १३१७ हिजरी।

ज़मीन जो स्थायी पट्टे (दवामी पट्टा) पर हो, उसमें दफ़न करना जायज़ है या नहीं? कुछ लोग कहते हैं कि दफ़न के लिए मिल्की (निजी) ज़मीन होनी चाहिए, फिर इस आधार पर तो जागीरों में दफ़न जायज़ नहीं होगा। बयान फरमाएं ताकि पुण्य मिले।

अल-जवाब:

निस्संदेह जायज़ है बशर्ते कि पट्टेदार की अनुमति से हो। दूसरे की मिल्कियत होना दफ़न की वैधता के विरुद्ध नहीं है; अंतिम बात यह कि मालिक को कब्र हटाने का अधिकार होगा। लेकिन जब पट्टा स्थायी हो, तो मालिक की ओर से ऐसा कोई डर नहीं रहता, यहाँ तक कि विद्वानों ने स्थायी पट्टे वाली ज़मीन पर मस्जिद बनाने की अनुमति दी है और उसमें वक़्फ़ को सही माना है क्योंकि वह हमेशा बनी रहेगी, तो इससे समर्थन प्राप्त होता है। रद अल-मुह्तार में है:

"अल-इसआफ में कहा और औक़ाफ़ अल-खस्साफ़ में उल्लेख किया गया": इसआफ में है कि औक़ाफ़ अल-खस्साफ़ में इसका उल्लेख है।

---

[1] अल-क़ुरआन २९/४८ (४८/२९) [2] अल-क़ुरआन २२/२४ (२४/२२) [3] अल-असरार अल-मरफ़ूआ, अक्षर जीम, हदीस ३९४, दारुल कुतुब अल-इल्मिया, बेरुत, पृ. १०३ [4] मिशकात अल-मसाबीह, मखलूक पर शफक़त का बाब, मुजतबाई प्रेस, दिल्ली, पृ. ४२२ [5] सहीह मुस्लिम, कुरआन की तिलावत के लिए एकत्र होने की फ़ज़ीलत का बाब, नूर मुहम्मद असहुत तबा', कराची, २/३४५

فتاوٰی رضویہ جلد نہم

یہ اصل حکم فقہی ہے، مگر مسلمان نرم دل اور دوسرے مسلمان خصوصاً میت پر رحم دل ہوتا ہے، قال اللہ تعالٰی

رُحَمَآءُ بَیْنَہُمْ[1] (اللہ تعالٰی فرماتا ہے: وہ آپس میں رحم دل ہیں۔ ت) اگر وہ درگزر کرے گا اللہ عزوجل اسکی خطاؤں سے درگزر فرمائے گا اَلَا تُحِبُّوْنَ اَنْ یَّغْفِرَ اللہُ لَکُمْ[2] (کیا تم اسے پسند نہیں کرتے کہ خدا تمہیں بخشے؟ت) اگر وہ اپنے مردہ بھائی پر احسان کرے گا اللہ اس پر احسان کرے گا کما تدین تدان[3] (جیسا تم کرو گے ویسا ہی تمہارے ساتھ کیا جائے گا۔ت) اگر وہ اپنے مردہ بھائی کا پردہ فاش نہ کرے گا اللہ اس کی پردہ پوشی کرے گا من ستر سترہ اللہ[4] (جو کسی کی پردہ پوشی کرے خدا اس کی پردہ پوشی کرے گا۔ت) اگر وہ اپنے مردہ بھائی کی قبر کا احترام کرے گا اللہ اس کی زندگی و موت میں اسے احترام بخشے گا۔ اللہ فی عون العبد ماکان العبد فی عون اخیہ[5] (اللہ بندے کی مدد فرماتا ہے جب تک بندہ اپنے بھائی کی مدد کرتا ہے ۔ت) واللہ تعالٰی اعلم

مسئلہ ۱۰۳: از حیدرآباد دکن شہر سکندر آباد محلہ نلا گٹہ مکان سید محمد اکبر صاحب ماسٹر ریلوے مرسلہ سید غلام غوث صاحب ۶ صفر ۱۳۱۷ھ

زمین جو دوامی پٹہ کی ہو اس میں دفن جائز ہے یا نہیں؟ بعض لوگ کہتے ہیں کہ دفن کے لیے ملکی زمین چاہئے، پھر اس بناء پر تو جاگیرات میں دفن جائز نہ ہوگا۔ بینوا توجروا

الجواب:

بلا شبہ جائز ہے جبکہ باجازت مستاجر ہو۔ ملک غیر ہونا منافی جواز دفن نہیں، غایت یہ کہ مالک کو ازالہ قبر کا اختیار ہوگا۔ مگر جب اس کا اجارہ دوامی ہو تو مالک کی طرف سے یہ اندیشہ بھی

نہیں یہاں تک کہ علماء نے دوامی اجارہ کی زمین میں مسجد بنانے کی اجازت دی اور اس میں وقف صحیح مانا اسی بنا پر کہ وہ ہمیشہ رہے گی تو تائید حاصل ہے۔ ردالمحتار میں ہے:

قال فی اسعاف و ذکر فی اوقاف الخصاف: اسعاف میں ہے کہ اوقاف خصاف میں مذکور ہے

---

[1] القرآن ۲۹/۴۸ [2] القرآن ۲۲/۲۴ [3] الاسرار المرفوعۃ حرف الجیم حدیث ۳۹۴ دارالکتب العلمیۃ بیروت ص ۱۰۳ [4] مشکوٰۃ المصابیح باب الشفقۃ علی الخلق مطبع مجتبائی دہلی ص ۴۲۲ [5] صحیح مسلم باب فضل الاجتماع علی تلاوۃ القرآن نور محمد اصح المطابع کراچی ۲/۳۴۵

Volume Nine Fatawa Razawiyya

Arabic Text

The endowment of shops in the markets is permissible if the land is held through lease in the hands of those who built them, such that the ruler does not evict them. This is because we see that these remain in the hands of the builders; inheritance and division among them continue. The ruler does not interfere with them nor disturb them; he only receives a fixed income from them. This custom has continued from generation to generation, and they are in their hands in such a way that they conduct transactions of buying, selling, and leasing them. Their wills are executed regarding them; they demolish and rebuild structures, and build others. Thus, the endowment in them will also be permissible. (The text ends). It has also been upheld in 'Fath al-Qadir'. The reason for this, as known, is perpetual existence. And Allah the Almighty knows best. (t)

Urdu Translation

The endowment of shops is permissible if the land is in the possession of those people through a lease such that the ruler does not evict them. This is because we see that these remain in the hands of the builders; inheritance and division among them continue. The ruler does not interfere with them, nor does he distress them; he only receives a fixed income from them. This custom has continued for generations and they are in their hands in such a way that they continue to engage in buying, selling, and leasing them. Their wills are implemented regarding them, they continue to demolish and build structures. Thus, their endowment will also be permissible. (The text ended). It has also been maintained in Fath al-Qadir. And its reason, as it became known, is eternal remaining... and God the Exalted is the Knower of all things. (t)

Problem 102: From Gorakhpur, 12 Shawwal 1313 AH What do the scholars of religion say regarding this issue: The municipality wants Muslims to bury their dead outside the city. If there is any obstacle, they should bury in a piece of land that the municipality will keep in its possession for this purpose. It will charge a fixed fee for burying those deceased Muslims whose fees cannot be paid due to poverty, with a difference between unbaked and baked graves. The rule for buying land is that even if the seller is not willing or wants to sell but asks for any amount in price, it will not be cared for nor will he be persuaded. Instead, the fixed government rate will be given to him, and ownership possession of that land will be taken. In such a case, is it

religiously permissible to forcibly purchase compensation for land from the municipality's income in the manner described?

1. Radd al-Muhtar, Kitab al-Waqf, Idarat al-Tiba'at al-Misriyya, Egypt, 3/391.

अरबी पाठ

बाज़ारों की दुकानों का वक्फ़ जायज़ है अगर ज़मीन इजारा (पट्टे) के ज़रिए उन लोगों के कब्ज़े में हो कि सुल्तान उनको उससे न निकाले, इसलिए कि हम देखते हैं कि ये तामीर (निर्माण) करने वालों के हाथ में रहती हैं, उनके दरमियान उनमें विरासत और तक़सीम जारी होती है, सुल्तान उनसे कोई तअरुज़ (हस्तक्षेप) नहीं करता। न ही उनको परेशान करता है, बस उसके लिए कुछ मुक़र्रर (निश्चित) आमदनी होती है जो उनसे वसूल करता है। ये दस्तूर पुश्त-दर-पुश्त से चला आ रहा है और ये उनके हाथ में इस तरह हैं कि ये उनकी खरीद-व-फरोख्त और इजारा पर देने का तसर्रुफ (लेन-देन) करते रहते हैं, उनकी वसीयतें उनमें नाफ़िज़ होती हैं, इमारत गिराते-बनाते रहते हैं, तो इसी तरह उनका वक्फ़ भी जायज़ होगा। (इबारत ख़त्म हुई) इसे फ़त्हुल क़दीर में भी बरक़रार रखा है। और इसकी वजह, जैसा कि मालूम हुआ वह बक़ाए ता'बीद (सदैव रहना) है — और खुदा-ए-बर्तर खूब जानने वाला है। (त)

उर्दू अनुवाद

बाज़ारों की दुकानों का वक्फ़ जायज़ है अगर ज़मीन पट्टे के माध्यम से उन लोगों के कब्ज़े में हो कि सुल्तान उनको वहाँ से न निकाले। इसका कारण यह है कि हम देखते हैं कि वे निर्माणकर्ताओं के हाथों में रहती हैं, उनके बीच विरासत और विभाजन की प्रक्रिया जारी रहती है। सुल्तान उनमें हस्तक्षेप नहीं करता और न ही उन्हें परेशान करता है; वह केवल उनसे एक निश्चित आय प्राप्त करता है। यह रीति पीढ़ियों से चली आ रही है और ये उनके हाथों में इस प्रकार हैं कि वे उनकी खरीद-फरोख्त और पट्टे पर देने का व्यवहार करते हैं। उनकी वसीयतें उनमें लागू होती हैं, वे इमारतें गिराते और बनाते रहते हैं। अत; इसी तरह उनका वक्फ़ भी जायज़ होगा। (उद्धरण समाप्त)। इसे फ़त्हुल क़दीर में भी यथावत रखा गया है। और इसका कारण, जैसा कि ज्ञात हुआ, शाश्वतता है... और अल्लाह सर्वशक्तिमान सबसे बेहतर जानने वाला है। (त)

मसला 102: गोरखपुर से, 12 शव्वाल 1313 हिजरी उलेमा-ए-दीन इस मसले में क्या फ़रमाते हैं कि म्युनिसिपैलिटी मुसलमानों से चाहती है कि तुम अपने मुर्दे शहर के बाहर दफ़न करो और अगर कोई बात रुकावट बने तो उस ज़मीन के टुकड़े में दफ़न करो जिसे म्युनिसिपैलिटी इस काम के लिए अपने कब्ज़े में रखेगी। वह उन गरीब मुसलमानों के दफनाने के बदले एक निश्चित शुल्क लेगी जिनकी फीस निर्धनता के कारण किसी तरह अदा नहीं हो सकती, और कच्ची और पक्की कब्रों के बीच शुल्क में

अंतर होगा। ज़मीन खरीदने का नियम यह है कि भले ही बेचने वाला सहमत न हो या बेचना चाहता हो और कोई भी कीमत मांगे, उसकी परवाह नहीं की जाएगी और न ही उसे मनाया जाएगा, बल्कि सरकार द्वारा निर्धारित दर उसे दे दी जाएगी और उस ज़मीन पर मालिकाना कब्ज़ा कर लिया जाएगा। ऐसी स्थिति में, क्या म्युनिसिपैलिटी की आय से ज़मीन का मुआवज़ा जबरन देकर उसे खरीदना, जैसा कि बताया गया है, शरीयत के अनुसार उचित है?

1. रद्दुल मुहतार, किताबुल वक़्फ़, इदारातुत तिबा'अतुल मिस्रिया, मिस्र, 3/391.

पृष्ठ 382/948

عربی عبارت **اردو ترجمہ**

کہ دکانوں کا وقف جائز ہے اگر زمین اجارہ کے ذریعہ ان

ان وقف حوانیت الاسواق یجوز ان لوگوں کے قبضے میں ہو کہ سلطان ان کو اس سے نہ

کانت الارض باجارۃ فی ایدی الذین نکالے، اس لیے کہ ہم دیکھتے ہیں کہ یہ تعمیر کرنے والوں

بنوھا لایخرجھم السلطان عنھا من قبل کے ہاتھ میں رہتی ہیں ان کے درمیان ان میں وراثت اور

انا رأیناھا فی ایدی اصحاب البناء تقسیم جاری ہوتی ہے سلطان ان سے کوئی تعرض نہیں

توارثوھا وتقسم بینھم لایتعرض لھم کرتا۔ نہ ہی ان کو پریشان کرتا ہے بس اس کے لیے کچھ

السلطان فیھا ولا یزعجھم وانما لہ غلۃ مقررہ آمدنی ہوتی ہے جو ان سے وصول کرتا ہے۔ یہ

یأخذھا منھم وتداولھا خلف عن سلف دستور پشت ہاپشت سے چلا آرہا ہے اور یہ ان کے ہاتھ میں

ومضی علیھا الدھور وھی فی ایدیھم اس طرح ہیں کہ یہ ان کی خرید وفروخت اور اجارہ پر

یتبایعونھا ویوجرونھا وتجوز فیھا دینے کا تصرف کرتے رہتے ہیں، ان کی وصیتیں ان میں

وصایاھم ویھدمون بنائھا ویعیدونہ نافذ ہوتی ہیں، عمارت گراتے بناتے رہتے ہیں، تو اسی

ویبنون غیرہ فذلك الوقف فیھا جائز طرح ان کا وقف بھی جائز ہوگا۔ (عبارت ختم ہوئی) اسے

انتھی واقرہ فی الفتح وقد علمت وجھہ فتح القدیر میں بھی برقرار رکھا ہے۔ اور اس کی وجہ، جیسا

وھو بقاء التأبید ۱۔ واللہ تعالیٰ اعلم کہ معلوم ہوا وہ بقائے تابد ہے ــــ اور خدا ئے برتر خوب

جاننے والا ہے۔ت)

مسئلہ ۱۰۲: از گورکھپور ۱۲ شوال ۱۳۱۳ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ

میونسپلٹی مسلمانوں سے چاہتی ہے کہ تم اپنے مردے باہر شہر کے دفن کرو اور اگر کوئی امر

مانع ہو تو اس قطعہ زمین میں دفن کرو جو اس کام کے لئے میونسپلٹی اپنے ہاتھ میں رکھے گی اور تم سے بابت دفن ان مردہ مسلمانوں کے جن کی فیس ناداری کی وجہ سے کسی طرح ادا نہیں ہو سکتی ایک فیس مقررہ لے گی، اور خام و پختہ میں فرق ہوگا۔ اور زمین خریدنے کا قاعدہ یہ ہے کہ گو بیچنے والا راضی نہ ہو، بیچنا چاہتا ہو، یہ کتنی ہی تعداد میں قیمت مانگتا ہو مگر اس کی پروا نہیں کی جائے گی نہ وہ راضی کیا جائیگا بلکہ قاعدہ سرکاری کی مقررہ قیمت اس کو دے دی جائے گی اور اس زمین پر مالکانہ قبضہ کر لیا جائے گا۔ ایسی صورت میں میونسپلٹی کی آمدنی سے اس طرح زمین کا معاوضہ جبر کے ساتھ خریدنا جیسا کہ بیان کیا گیا شرعاً

۱۔ ردالمحتار کتاب الوقت ادارۃ الطباعۃ المصریہ مصر ۳/ ۳۹۱

Fatawa Rizvia, Volume 9

Is it unlawful and a form of usurpation? Is it permissible or impermissible for Muslims to bury their dead in it by paying a fee to people of other religions? Is it disliked (makruh) or forbidden (haram)? And is the Muslim burying the dead committing a sin? Explain, and you shall be rewarded.

The Answer: Leaving aside the octroi money, if even a Muslim buys land from his own lawful and pure ownership through coercion, it will be strictly forbidden and the land will be legally considered usurped. Burying the dead in such a manner is forbidden and a sin, to the extent that it is forbidden to remove the dead body from the grave. However, despite this, the grave should be dug in such a place and buried elsewhere. It is stated in Fatawa Qazi Khan and Fatawa Alamgiri:

"It is not appropriate to remove the deceased from the grave after they have been buried, unless the land was usurped or taken through pre-emption."

The deceased should not be removed from the grave after burial unless the land was usurped or taken by someone else through the right of pre-emption. And Allah Almighty knows best. (T)

Issue 105 to 109: From Fatehpur Hasoora, Mohalla Jarri Tola, sent by Mahmood Ali Sahib, Collectorate Official, 7 Rabi-ul-Akhir 1336 AH. (1) Can a graveyard be harmful to the health of nearby residents or not? (2) Is changing the graveyard without a legal (shari'i) excuse permissible or not? (3) Is it permissible to establish a new graveyard on land where filth was previously buried? (4) Is a new graveyard permissible on land near where filth is currently being buried? (5) How should a deceased person be buried in a grave? Please provide an answer with references to authentic books.

The Answer: (1) The pure Shari'ah has mandated that graves be deep so that the health of the living is not harmed. It is stated in Durr-e-Mukhtar:

"Digging his grave to the extent of half a person's height, and if it is more, it is better."

The grave of the deceased should be dug equal to half a person's height; if it is more, it is good. (T)

1. Fatawa Hindiyya, Chapter Six on Graves and Burial, Noorani Kutub Khana Peshawar, 1/167
2. Durr-e-Mukhtar, Chapter of Funeral Prayer, Mujtabai Press Delhi, 1/124

फ़तावा रज़विया, जिल्द नहम (नौवीं जिल्द)

क्या यह नाजायज़ और ग़सब (हड़पना) है या नहीं? और इसमें मुसलमान मुर्दों का दफ़न होना ग़ैर-मज़हब वालों को फ़ीस अदा करके जायज़ है या नाजायज़? मकरूह है या हराम? और मुर्दे दफ़न करने वाला मुसलमान गुनाहगार होगा या नहीं? बयान फरमाएं और सवाब पायें।

अल-जवाब (उत्तर): चुंगी के रुपयों की बात तो अलग, अगर कोई मुसलमान भी अपने ख़ास मम्लूक (स्वामित्व वाली) हलाल और पाकीज़ा जायदाद से ज़मीन इस तरह ज़बरदस्ती खरीदे, तो वह यक़ीनन हराम होगी और ज़मीन क़ानूनी तौर पर मग़सूब (हड़पी हुई) मानी जाएगी। इसमें बताए गए तरीक़े से मुर्दों को दफ़न करना हराम और गुनाह है, यहाँ तक कि दफ़न के बाद मुर्दे को क़ब्र से निकालना हराम है। लेकिन इसके बावजूद ऐसी जगह क़ब्र खोदकर किसी दूसरी जगह दफ़न करना चाहिए। फ़तावा क़ाज़ी ख़ान और फ़तावा आलमगीरी में है:

"मय्यत (मृतक) को दफ़न करने के बाद क़ब्र से निकालना उचित नहीं है, सिवाय इसके कि ज़मीन हड़पी गई हो या हक़-ए-शुफ़ा (पूर्वक्रयाधिकार) के ज़रिए ले ली गई हो।"

दफ़न के बाद मय्यत को क़ब्र से नहीं निकालना चाहिए, सिवाय इसके कि ज़मीन ग़सब की हुई हो या हक़-ए-शुफ़ा से दूसरे ने ले ली हो। और अल्लाह तआला ही बेहतर जानता है। (त)

मसला १०५ से १०९: फतेहपुर हसूरा, मोहल्ला जरी टोला से, प्रेषक महमूद अली साहब, कलेक्टरी कर्मचारी, ७ रबी-उल-आख़िर १३३६ हिजरी। (१) क्या क़ब्रिस्तान पास के निवासियों के स्वास्थ्य के लिए हानिकारक हो सकता है या नहीं? (२) बिना किसी शरीई उज़्र (धार्मिक कारण) के क़ब्रिस्तान बदलना जायज़ है या नहीं? (३) क्या ऐसी भूमि में नया क़ब्रिस्तान शुरू करना जायज़ है जहाँ पहले गंदगी दफ़न की जा रही थी? (४) क्या ऐसी भूमि में नया क़ब्रिस्तान जायज़ है जिसके पास अब गंदगी दफ़न की जा रही हो? (५) मुर्दे को क़ब्र में किस तरह दफ़न करना चाहिए? जवाब प्रामाणिक पुस्तकों के हवाले के साथ इनायत हो।

अल-जवाब (उत्तर): (१) शरीयत-ए-मुतहरा (पवित्र शरीयत) ने क़ब्र को गहरा रखने का आदेश इसी वजह से दिया है ताकि जीवित लोगों के स्वास्थ्य को नुकसान न पहुँचे। 'दुर्र-ए-मुख़्तार' में है:

"उसकी क़ब्र आधी लंबाई के बराबर खोदी जाए, और अगर ज़्यादा हो तो बेहतर है।"

मय्यत की क़ब्र आधे क़द के बराबर खोदी जाए, अगर ज़्यादा हो तो अच्छा है। (त)

1. फ़तावा हिन्दिया, छठा अध्याय क़ब्र और दफ़न के बारे में, नूरानी कुतुब ख़ाना पेशावर, १/१६७
2. दुर्र-ए-मुख़्तार, जनाज़े की नमाज़ का अध्याय, मुज्तबाई प्रेस दिल्ली, १/१२४

पृष्ठ ३८३ / ९४८

فتاوٰی رضویہ، جلد نہم

ناجائز و غصب ہے یا نہیں اور اس میں مسلمان مُردوں کا دفن ہونا غیر مذہب والوں کو فیس ادا کر کے جائز ہے یا ناجائز ؟ مکروہ ہے یا حرام ؟ اور مُردے دفن کرنے والا مسلمان داخل معصیت ہے یا نہیں؟ بینوا توجروا

الجواب: چونگی کا روپیہ در کنار، اگر کوئی مسلمان ہی اپنے خاص مملوک بملک حلال وطیب سے زمین اس طریقہ جبر پر خریدے وہ قطعاً حرام ہوگی اور زمین حکماً مغصوب، اور اس میں برو جہ مذکور مردوں کا دفن کرنا حرام و معصیت، یہاں تک کہ بعد دفن مُردہ کا قبر سے نکالنا حرام مگر اسکے باوجود ایسی جگہ قبر کھود کر دوسری جگہ دفن کرنا چاہئے فتاوٰی قاضی خاں و فتاوٰی عالمگیری میں ہے :

١ - لا ينبغي اخراج الميت من القبر بعد ما دفن الا اذا كانت الارض مغصوبة او اخذت بشفعة

بعد دفن میت کو قبر سے نکالنا چاہئے مگر جب زمین غصب کی ہوئی یا حق شفعہ سے دوسرے نے لے لی ہو۔ واللہ تعالٰی اعلم (ت)

واللہ تعالٰی اعلم

مسئلہ ١٠٥ تا ١٠٩ : از فتحپور ہسورہ محلہ جری ٹولہ مرسلہ محمود علی صاحب اہلکار کلکٹری ٧ ربیع الآخر ١٣٣٦ھ (١) قبرستان باشندگان قرب و جوار کے لئے مضر صحت ہو سکتا ہے یا نہیں؟ (٢) تبدیلی قبرستان بلاعذر شرعی جائز ہے یا نہیں؟ (٣) جدید قبرستان ایسی اراضی میں کہ جس میں پہلے غلیظ دفن ہو رہا ہے جاری کرنا جائز ہے یا نہیں؟ (٤) جدید قبرستان ایسی اراضی میں کہ

جس کے قرب میں اب غلیظ دفن ہو رہا ہے جائز ہے یا نہیں؟ (۵) مُردہ کو کس طرح قبر میں دفن کرنا چاہئے؟ جواب بحوالہ کتب معتبرہ مرحمت ہو۔

الجواب: (۱) شریعت مطہرہ نے قبر کا گہرا ہونا اسی واسطہ رکھا ہے کہ احیاء کی صحت کو ضرر نہ پہنچے در مختار میں ہے :

حفر قبره مقدار نصف قامة فان زاد فحسن - ۲

میت کی قبر نصف قد کے برابر کھودی جائے، اگر زیادہ ہو تو اچھا ہے۔ (ت)

۱ فتاوٰی ہندیہ، الفصل السادس فی القبر والدفن، نورانی کتب خانہ پشاور، ۱ / ۱٦۷ ۲ در مختار، باب صلوة الجنائز، مطبع مجتبائی دہلی، ۱ / ۱۲۴

Fatawa-e-Razawiyya Volume 9

In **Radd-ul-Muhtar** it is stated: "If (the depth of the grave) is increased to the height of a person, it is better, as mentioned in 'al-Dhakhirah'. This is the limit of depth, and its purpose is to go to lengths in preventing odor and protecting from being dug up by wild beasts." [1] (T) If it is increased equal to the height of a person, it is better as in 'al-Dhakhirah', and this is the limit of depth; its objective is to be thorough in stopping the smell and preventing the digging up by predators. (T) In fact, thousands and millions of people live near cemeteries; rather, there are thousands whose profession is managing shrines or living in proximity to graves. There is no difference in their health because of it, as observed. And Allah Almighty knows best.

(2) Regarding change: If this graveyard is taken for someone's residence, or for a mosque or school, and another piece of land is given for the graves, then this is strictly forbidden (Haram). It is forbidden for multiple reasons, such as being an improper use of a religious endowment (Waqf). Even if it were not a Waqf, it is an insult and desecration of the graves of Muslims. Walking on a grave or stepping on it is Haram, let alone designating them to be trampled upon. Detailed information on this is in our treatise 'Ihlaq-ul-Wahhabiyyin fi Tauhin-i-Qubur-il-Muslimin'. In **Alamgiri** (Al-Fatawa al-Hindiyya) it is stated: "It is not permissible to change the form of an endowment (Waqf)." [2] Changing the form of a Waqf is not permissible. (T)

In **Hidayah** it is stated: "It is extremely repulsive that the dead be buried in it one year and crops be sown the next year." [3] It is a great evil that in one year dead bodies are buried in it and in one year there are crops. (T)

In **Radd-ul-Muhtar** it is stated: "They have explicitly stated that passing through a newly-created path within it is Haram." [4] Scholars have clarified that walking on a newly-created path inside a graveyard is forbidden (Haram). (T) Similarly, it is mentioned in Tahtawi on Al-Durr al-Mukhtar. And if the meaning is that the graveyard will be maintained as it is, in it...

1. Radd-ul-Muhtar, Chapter of Funeral Prayer, Mujtabai Press, Delhi, 1/122
2. Fatawa Hindiyya, Book of Endowment, Chapter 10 on Miscellaneous Matters, Noorani Kutub Khana, Peshawar, 2/490
3. Al-Hidayah, Book of Endowment, Al-Maktabah al-Arabiyyah, Karachi, 2/618
4. Radd-ul-Muhtar, Section on Istinja, Idarah al-Tiba'ah al-Arabiyyah, Egypt, 1/229

फ़तावा-ए-रज़विया जिल्द नहुम (खंड 9)

रद्द-उल-मुह्तार में है: "अगर (क़ब्र की गहराई) इंसान के क़द के बराबर बढ़ा दी जाए तो ज़्यादा बेहतर है जैसा कि 'अज़-ज़ख़ीरा' में है, और यह गहराई की हद है, इसका मक़सद गंध रोकने और दरिंदों द्वारा उखाड़े जाने से बचाने में मुबालग़ा (अतिशयता) करना है।" [1] (त) अगर क़द बराबर ज़्यादा किया तो ज़्यादा अच्छा है जैसा कि ज़ख़ीरा में है और यह गहराई की हद है, इसका मक़सद बू रोकने और दरिंदों के उखाड़ने से बचाने में मुबालग़ा है। (त) बल्कि हज़ारों-लाखों लोग क़ब्रिस्तानों के पास रहते हैं, बल्कि हज़ारों ऐसे हैं जिनका पेशा ही तकिया-दारी (खानकाह संभालना) या क़ब्रों के पास रहना है, उनके स्वास्थ्य में इससे कोई फ़र्क़ नहीं आता, जैसा कि मुशाहदा (अवलोकन) है। और अल्लाह तआला बेहतर जानता है।

(२) तब्दीली के बारे में: अगर इस क़ब्रिस्तान को किसी के रहने के लिए, या मस्जिद या मदरसे के लिए ले लिया जाए और क़ब्रों के लिए दूसरी ज़मीन दे दी जाए, तो यह क़तई हराम है और कई कारणों से हराम है कि वक़्फ़ (धार्मिक बंदोबस्ती) में अनुचित हस्तक्षेप है। और अगर वक़्फ़ न भी हो, तो भी मुसलमानों की क़ब्रों की तौहीन (अपमान) और अनादर है। क़ब्र पर चलना-फिरना, पैर रखना हराम है, तो उन्हें कुचलने के लिए मुक़र्रर कर लेना तो और भी बुरा है। इसका विवरण हमारे रिसाले 'एहलाक-उल-वहाबियीन फ़ी तौहीन-ए-क़ुबूर-इल-मुसलीमीन' में है। **आलमगीरी** में है: "वक़्फ़ की हैयत (स्थिति/रूप) बदलना जायज़ नहीं।" [2] वक़्फ़ की हैयत बदलना जायज़ नहीं। (त)

हिदाया में है: "यह बहुत ज़्यादा बुराई है कि उसमें एक साल मुर्दे दफ़न हों और एक साल खेती की जाए।" [3] बहुत ज़्यादा बुराई है कि इसमें एक साल मुर्दे दफ़न हों और एक साल खेती हो। (त)

रद्द-उल-मुह्तार में है: "उन्होंने स्पष्ट किया है कि उसमें (क़ब्रिस्तान में) नए बने रास्ते पर चलना हराम है।" [4] उलेमा ने तस़रीह (स्पष्ट) फ़रमाई है कि क़ब्रिस्तान के अंदर नौपैदा (नवनिर्मित) रास्ते में चलना हराम है। (त) इसी तरह तहतावी अलल दुर्रुल मुख़्तार में है और अगर यह मुराद है कि मक़बरा बदस्तूर रखा जाएगा, इसमें...

1. रद्द-उल-मुह्तार, बाब सलात-उल-जनाइज़, मतबा मुज्तबाई दिल्ली, 1/122
2. फ़तावा हिंदीया, किताब-उल-वक़्फ़, अल-बाब-उल-आशिर फ़िल मुतफ़र्रिक़ात, नूरानी कुतुब ख़ाना पेशावर, 2/490
3. अल-हिदाया, किताब-उल-वक़्फ़, अल-मक़्तबा अल-अरबिया कराची, 2/618

4. रद्द-उल-मुह्तार, फ़स्ल अल-इस्तिंजा, इदारा अत-तिबाअह अल-अरबिया मिस्र, 1/229

पृष्ठ 384 (948 में से)

ردالمحتار میں ہے: وان زاد الی مقدار قامۃ فھو احسن کما فی الذخیرۃ وھذا احد العمق والمقصود منہ المبالغۃ فی منع الرائحۃ ونبش السباع۔1۔ اگر قد برابر زیادہ کیا تو زیادہ اچھا ہے جیسا کہ ذخیرہ میں ہے اور یہ گہرائی کی حد ہے، اس کا مقصد بو روکنے اور درندوں کے اکھاڑنے سے بچانے میں مبالغہ ہے۔ (ت) بلکہ ہزاروں لاکھوں آدمی مقابر کے قریب بستے ہیں بلکہ ہزاروں وہ ہیں جن کا پیشہ ہی تکیہ داری یا قبور کی مجاورت ہے ان کی صحت میں اس سے کوئی فرق نہیں آتا، جیسا کہ مشاہدہ ہے۔ واللہ تعالٰی اعلم

(۲) تبدیلی سے اگر یہ قبرستان کو کوئی اور مکان کسی کے رہنے بسنے کا یا مسجد یا مدرسہ لیا جائے اور قبور کے لئے دوسری زمین دے دی جائے تو یہ قطعی حرام اور بوجوہ حرام کہ وقف میں تصرف بیجا ہے اور وقف نہ بھی ہو تو قبور مسلمین کی توہین و بیحرمتی ہے۔ قبر پر چلنا پھرنا، پاؤں رکھنا حرام ہے چہ جائیکہ انہیں پامالی کے لیے مقرر کرلینا اس کی تفصیل ہمارے رسالہ اھلاک الوھابین فی توھین قبور المسلمین میں ہے۔ عالمگیری میں ہے : لا یجوز تغییر الوقف عن ھیئتہ۔2۔ وقف کی ہیئت بدلنا جائز نہیں۔ (ت)

ہدایہ میں ہے : فی غایۃ القبح ان یُقبر فیہ الموتی سنۃ و یُزرع سنۃ۔3۔ بہت زیادہ بُرائی ہے کہ اس میں ایک سال مردے دفن ہوں اور ایک سال کھیتی ہو۔ (ت)

ردالمختار میں ہے : انھم نصوا علی ان المرور فی سکۃ حادثۃ فیھا حرام۔4۔ علماء نے تصریح فرمائی ہے کہ قبرستان کے اندر نوپیدا راستے میں چلنا حرام ہے۔ (ت) اسی طرح طحطاوی علی الدرالمختار میں ہے اور اگر یہ مراد ہے کہ مقبرہ بدستور رکھا جائے گا م اس میں

1 ردالمحتار باب صلوة الجنائز مطبع مجتبائی دہلی ۱/۱۲۲ 2 فتاوی ہندیہ کتاب الوقف الباب العاشر فی المتفرقات نورانی کتب خانہ پشاور ۲/۴۹۰ 3 الہدایہ کتاب الوقف المکتبة العربیة کراچی ۲/ ۶۱۸ 4 ردالمحتار فصل الاستنجاء ادارة الطباعة العربیة مصر ۱ / ۲۲۹

No interference shall be made. However, burials in it shall be stopped, and they should start burying in another land instead. If the situation is such that the old graveyard is completely full and there is no space for a grave anywhere in it, then it is undoubtedly appropriate if another reasonable and acceptable place for Muslims can be found. And if this is not the case, and there is still space for graves but burial is forbidden, then there are two scenarios: If the place where the deceased were buried belongs to a specific individual and burials were happening with their permission, then they certainly have the right to have the corpse removed. It is stated in Durr al-Mukhtar:

“The deceased shall not be removed from the grave after being covered with soil except for the right of a human being, such as if the land was usurped or taken through pre-emption (shufa). The owner will have the choice between removing the corpse or leveling the grave with the ground.” (T)

If it is not the property of anyone but is an endowment (waqf), then no one has the right to interfere with the waqf. Al-wuquf la yumlak (An endowment does not become the property of any person. T). And Allah Almighty knows best.

(3) This is forbidden and a severe insult to the deceased of Islam. It is forbidden to defecate in graveyards, even though it remains on the surface and does not reach the deceased. So how can this situation be permissible? It is stated in Durr al-Mukhtar: "Urination and defecation in graveyards are disliked (makruh)." (T) It is stated in Tahtawi and Radd al-Muhtar: "It is apparent that it is makruh tahrimi (prohibitively disliked)." (T) And Allah Almighty knows best.

(4) This will also be forbidden by Sharia. Those who go for burial will be harmed, those who go for reciting Fatiha will be harmed. Regardless of that, their harm will only be as long as they stay there, but for the deceased, this harm will be constant (eight watches of the day). The Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) said:

“Indeed, the deceased is harmed by that which harms the living.” Whatever causes pain to a living person also causes pain to the deceased.

---

1. Durr al-Mukhtar, Chapter on Funeral Prayer, Mujtabai Press, Delhi, 1/126.
2. Durr al-Mukhtar, Chapter on Istinja, Mujtabai Press, Delhi, 1/57.

3. Radd al-Muhtar, Chapter on Istinja, Idarah al-Tiba'ah al-Misriyyah, Egypt, 1/229.
4. Radd al-Muhtar, Chapter on Istinja, Idarah al-Tiba'ah al-Misriyyah, Egypt, 1/229.

कोई हस्तक्षेप नहीं किया जाएगा। लेकिन इसमें दफन करना रोक दिया जाएगा और इसके बदले दूसरी ज़मीन में दफन करने लगेंगे, तो यह अगर ऐसा है कि पुराना कब्रिस्तान बिल्कुल भर गया है और उसमें कहीं कब्र की जगह नहीं रही तो निस्संदेह उचित है अगर दूसरी उचित और स्वीकार्य जगह मुसलमानों के लिए मिल सके। और अगर यह भी नहीं बल्कि कब्रों के लिए जगह मौजूद है और फिर मना किया जाए तो दो सूरतें हैं: अगर वह जगह जहां शव दफनाए जाते थे किसी विशिष्ट व्यक्ति की संपत्ति है और उसकी अनुमति से दफन होते थे तो निस्संदेह उसे अधिकार है कि शव को निकलवा दे। 'दुर्रे मुख़्तार' में है:

"मिट्टी डाल देने के बाद कब्र से मुर्दे को निकाला न जाएगा मगर किसी इंसान के हक़ की वजह से, मसलन ज़मीन ग़सब (हड़पना) की हो या शुफ़आ की वजह से ले ली गई हो और मालिक को अधिकार होगा कि मुर्दे को निकाल दे या कब्र ज़मीन के बराबर कर दे।" (त)

अगर वह किसी की मिल्कियत नहीं बल्कि वक्फ़ है तो वक्फ़ में दखलंदाज़ी का किसी को हक़ नहीं। 'अल-वक़ूफ़ ला युमलक' (वक्फ़ किसी आदमी की मिल्कियत नहीं होता। त)। और अल्लाह तआला बेहतर जानता है।

(३) यह हराम और इस्लाम के मृतकों का घोर अपमान है। कब्रिस्तानों में पाखाना फिरना हराम है, जबकि वह ऊपर ही रहेगा और मृतकों तक नहीं पहुंचेगा, तो यह स्थिति कैसे जायज़ हो सकती है? 'दुर्रे मुख़्तार' में है: "कब्रिस्तान में पेशाब और पाखाना मकरूह है।" (त) 'तहतावी' और 'रद्दुल मुहतार' में है: "ज़ाहिर यह है कि मकरूह तहरीमी है।" (त) और अल्लाह तआला बेहतर जानता है।

(४) इसे भी शरीयत की दृष्टि से मना किया जाएगा, जो लोग दफन के लिए जाएंगे उन्हें कष्ट होगा, जो फ़ातिहा पढ़ने जाएंगे उन्हें कष्ट होगा, और उनसे इतर उनका कष्ट तो उतनी ही देर के लिए होगा जब तक वे वहाँ रहेंगे, लेकिन मृतकों के लिए यह आठों पहर का कष्ट होगा। नबी सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम फरमाते हैं:

"निश्चित रूप से मृतक को उसी चीज़ से कष्ट होता है जिससे जीवित को कष्ट होता है।" जिस चीज़ से जीवित व्यक्ति को कष्ट पहुँचता है, उससे मृतक को भी कष्ट होता है।

---

1. दुर्रे मुख़्तार, बाबू सलातिल जनाइज़, मतबअ मुजतबाई दिल्ली, १/१२६

2. दुर्रे मुख़्तार, फ़स्लुल इस्तिनजा, मतबअ मुजतबाई दिल्ली, १/५७

3. रद्दुल मुहतार, फ़स्लुल इस्तिनजा, इदारातुत तिबाअतुल मिस्रिया, मिस्र, १/२२९

4. रद्दुल मुहतार, फ़स्लुल इस्तिनजा, इदारातुत तिबाअतुल मिस्रिया, मिस्र, १/२२९

पृष्ठ ३८५ / ९४८

کوئی تصرف نہ کیا جائے گا۔ مگر اس میں دفن کرنا روک دیا جائے گا اور اس کے عوض دوسری زمین میں دفن کرنے لگیں، تو یہ اگر یوں ہے کہ پرانا مقبرہ بالکل بھر گیا اور اس میں کہیں قبر کی جگہ نہ رہی تو بے شک مناسب ہے اگر دوسری جگہ معقول و قابلِ قبول مسلمین مل سکے اور اگر یہ بھی نہیں بلکہ قبور کے لئے جگہ موجود ہے اور پھر منع کیا جائے تو دو صورتیں ہیں اگر وہ جگہ جہاں اموات دفن ہوتے تھے کسی شخصِ خاص کی ملک ہے کہ اس کی اجازت سے دفن ہوتے تھے تو بلا شبہ اسے اختیار ہے کہ میت کو نکلوا دے۔ درِ مختار میں ہے:

لا یخرج منہ بعد اھالۃ التراب الا لحق ادمی کان تکون الارض مغصوبۃ او اخذت بشفعۃ ویخیر المالك بین اخراجہ ومساواتہ بالارض ۱ ۔ مٹی ڈال دینے کے بعد قبر سے مردے کو نکالا نہ جائے گا مگر کسی انسان کے حق کی وجہ سے، مثلاً زمین غصب کی ہو یا شفعہ کی وجہ سے لے گئی ہو اور مالک کو اختیار ہوگا کہ مردے کو نکال دے یا قبر زمین کے برابر کردے (ت)

اگر وہ کسی کا مملوک نہیں بلکہ وقف ہے تو وقف میں دست اندازی کا کسی کو حق نہیں الوقوف لایملک (وقف کسی آدمی کی ملکیت نہیں ہوتا۔ت) واللہ تعالٰی اعلم (۳) یہ حرام اور سخت توہینِ اموات اہل اسلام ہے۔ مقابر میں پاخانہ پھرنا حرام ہے حالاں کہ وہ اوپر ہی رہے گا اموات تک نہ پہنچے گا تو یہ صورت کیونکر حلال ہو سکتی ہے درِمختار میں ہے: یکرہ بول وغائط فی المقابر ۲ (قبرستان میں پیشاب اور پاخانہ مکروہ ہے۔ت) طحطاوی و ردالمحتار میں ہے: الظاھر انھا تحریمیۃ ۳(ظاہر یہ ہے کہ مکروہ تحریمی ہے۔ ت) واللہ تعالٰی اعلم (۴) اس سے بھی شرعاً منع کیا جائے گا، جولوگ دفن کے لئے جائیں انہیں ایذا ہوگی، جو فاتحہ کو جائیں انہیں ایذا ہوگی، اور ان سے قطع

نظر کیجئے ان کی ایذا تو اتنی دیر کے لئے ہوگی جب تک وہاں رہیں گے اموات کے لئے یہ آٹھ پہر کی ایذا ہوگی نبی صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم فرماتے ہیں:

ان المیت یتأذی مما یتأذی منہ الحی ۴ ۔ جس چیز سے زندہ کو ایذا پہنچتی ہے اس سے مردہ کو بھی ایذا ہوتی ہے۔

---

۱ در مختار باب صلوۃ الجنائز مطبع مجتبائی دہلی ۱ / ۱۲۶ ۲ در مختار فصل الاستنجاء مطبع مجتبائی دہلی ۱ / ۵۷ ۳ ردالمحتار فصل الاستنجاء ادارۃ الطباعۃ المسریۃ مصر ۱ / ۲۲۹ ۴ ردالمحتار فصل الاستنجاء ادارۃ الطباعۃ المسریۃ مصر ۱ / ۲۲۹

Fatawa Razawiyya, Volume 9

Allama Tahtawi and Allama Shami, in support of the ruling that urinating in graveyards is prohibited, stated: "For the deceased is pained by that which pains the living." (i.e., whatever causes distress to a living person also causes distress to a deceased person. - Translator's note) And Allah Almighty knows best.

(5) One should be buried near the righteous so that the blessings of their proximity may encompass them. Even if, God forbid, they deserve punishment, the righteous intercede for them, and the mercy that descends upon the righteous also envelops them. It is stated in a Hadith that the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) said:

"Bury your dead in the midst of righteous people."

And he (peace and blessings of Allah be upon him) said: "They are a people such that their companion is never unfortunate." And if proximity to the righteous is not possible, then bury them near their relatives and kin, for just as a person is happy with the proximity of their relatives in the life of this world and grieved by separation from them, the same applies after death. We have already mentioned from Hadith and jurisprudence that the deceased is pained by everything that pains the living. And Allah is sufficient for us, and He is the best Disposer of affairs. And Allah Almighty knows best.

Problem 106: From Gaya Mohalla, Muradpur, sent by Tegh Ali Sahib, 29 Jumada al-Ula 1336 AH. Question: In a graveyard where, due to lack of space and frequent burials, the situation has become such that when new graves are dug, many human bones are unearthed; given that there is another adjoining graveyard which is free from all such issues, is it Sharia-compliant to insist on burying the deceased in the former graveyard, digging up the bones of others, solely for the purpose of being buried near ancestors?

Answer: The aforementioned situation is purely unlawful and prohibited. "Our scholars have explicitly stated this in numerous books." And Allah Almighty knows best.

Problem 107: From Gaya Mohalla, Muradpur, sent by Tegh Ali Sahib, 21 Jumada al-Akhira 1336 AH. Honorable Maulana, our guide to the straight path, may your excellence endure. After Sunnah greetings, the humble request in your service is that Your Eminence, in response to...

1 Radd al-Muhtar, Chapter of Istinja, Idarat al-Tiba'at al-Misriyya, Egypt, 1/229 2 Al-Mawdu'at by Ibn Jawzi, Chapter on Burying the Dead near the Righteous, Dar al-Fikr, Beirut, 3/73 3 Al-Madkhal by Ibn al-Hajj, Description of Graves, Dar al-Kitab al-Arabi, Beirut, 3/269

फ़तावा रज़विया, जिल्द 9

अल्लामा तहतावी और अल्लामा शामी ने इस मसले की दलील में कि क़ब्रिस्तानों में पेशाब करना मना है, फ़रमाया: "क्योंकि मृतक को उसी चीज़ से तकलीफ होती है जिससे जीवित को तकलीफ होती है।" (अर्थात जिस चीज़ से जीवित को कष्ट पहुँचता है, उससे मृतक को भी कष्ट पहुँचता है। - अनुवादक) और अल्लाह तआला बेहतर जानता है।

(5) नेक लोगों (सालिहीन) के करीब दफ़्न करना चाहिए ताकि उनके सामीप्य की बरकत उसे हासिल हो। अगर खुदा न करे वह अज़ाब का हकदार भी हो जाता है, तो वे (नेक लोग) शफ़ाअत करते हैं, और वह रहमत जो उन पर नाज़िल होती है उसे भी घेर लेती है, हदीस में है कि नबी सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम फ़रमाते हैं:

"अपने मुर्दों को नेक लोगों के बीच दफ़्न करो।"

और फ़रमाते हैं सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम: "वे ऐसे लोग हैं कि उनके पास बैठने वाला भी अभागा नहीं रहता।" और अगर सालिहीन का सामीप्य संभव न हो तो उन्हें उनके रिश्तेदारों और करीबियों के करीब दफ़्न करें, क्योंकि जिस तरह दुनिया की ज़िन्दगी में आदमी अपने अज़ीज़ों के करीब रहने से खुश होता है और उनकी जुदाई से दुखी, उसी तरह मौत के बाद भी होता है। हम अभी हदीस और फ़िक़्ह से ज़िक्र कर आए हैं कि मुर्दे को हर उस बात से तकलीफ होती है जिससे जीवित को। "अल्लाह हमारे लिए काफी है और वह सबसे अच्छा कार्यसाधक है।" और अल्लाह तआला बेहतर जानता है।

मसला 106: गया मोहल्ला, मुरादपुर से प्रेषक तेग़ अली साहब, 29 जमादी उल उला 1336 हिजरी। प्रश्न: जिस कब्रिस्तान में ज़मीन की कमी और मुर्दों के दफ़्न की अधिकता के कारण यह स्थिति हो गई है कि नई क़ब्रें खोदने पर कसरत से मुर्दों की हड्डियाँ निकलती हैं; और मौजूद स्थिति में उसके पास ही दूसरा कब्रिस्तान लगा हुआ है जो इन सभी शिकायतों से पाक और साफ़ है, उसे छोड़कर केवल अपने पूर्वजों के पास दफ़्न होने के विचार से ऐसे कब्रिस्तान में दूसरे मुर्दों की हड्डियाँ उखाड़कर मुर्दा दफ़्न करना शरीअत के अनुसार जायज़ है या नहीं?

उत्तर: उपरोक्त स्थिति पूरी तरह से नाजायज़ और हराम है। "हमारे उलेमा ने कई किताबों में इसकी स्पष्ट व्याख्या की है।" और अल्लाह तआला बेहतर जानता है।

मसला 107: गया मोहल्ला, मुरादपुर से प्रेषक तेग़ अली साहब, 21 जमादी उल आख़िरा 1336 हिजरी। जनाब मौलाना क़िबला, सिराते मुस्तकीम के मार्गदर्शक, आपकी महानता बनी रहे, सुन्नत के अनुसार सलाम के बाद, सेवा में नम्र निवेदन है कि हुज़ूर ने जवाब में...

---

1 रद-अल-मुह्तार, फ़स्ल-अल-इस्तिन्जा, इदारत अल-तिबा'त अल-मिसरिया, मिस्र, 1/229 2 अल-मौज़ूआत, इब्न जौज़ी द्वारा, नेक लोगों के पड़ोस में दफ़्न करने का अध्याय, दार अल-फ़िक्र, बेरूत, 3/73 3 अल-मदख़ल, इब्न अल-हज द्वारा, क़ब्रों का वर्णन, दार अल-किताब अल-अरबी, बेरूत, 3/269

فتاوی رضویہ، جلد نہم

علامہ طحطاوی و علامہ شامی نے اسی مسئلہ کی دلیل میں کہ مقابر میں پیشاب کرنا ممنوع ہے، فرمایا: لان المیت یتأذی بہ الحی ۱ (جس چیز سے زندہ کو ایذا پہنچتی ہے اس سے مردہ کو بھی ایذا ہوتی ہے۔ ت) واللہ تعالیٰ اعلم

(۵) صالحین کے قریب دفن کرنا چاہئے کہ ان کے قرب کی برکت اسے شامل ہوتی ہے۔ اگر معاذ اللہ مستحق عذاب بھی ہو جاتا ہے تو وہ شفاعت کرتے ہیں ، وہ رحمت کہ ان پر نازل ہوتی ہے اسے بھی گھیر لیتی ہے ، حدیث میں ہے نبی صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم فرماتے ہیں :

ادفنوا موتاکم وسط قوم صالحین ۲ اپنے اموات کو اچھے لوگو کے درمیان دفن کرو۔

اور فرماتے ہیں صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم : ھم القوم لایشقی بھم جلیسھم ۳ ان لوگوں کے پاس بیٹھنے والا بھی بدبخت نہیں رہتا۔ اور اگر صالحین کا قرب میسر نہ ہو تو اس کے عزیزوں قریبوں کے قریب دفن کریں کہ جس طرح دنیا کی زندگی میں آدمی اپنے اعزاء کے قرب سے خوش ہوتا ہے اور ان کی جدائی سے ملول، اسی طرح بعد موت بھی۔ ہم ابھی حدیث وفقہ کو ذکر کر آئے کہ مردے کو ہر اس بات سے ایذا ہوتی ہے جس سے زندہ کو۔ وحسبنا اللہ ونعم الوکیل (اور ہمیں اللہ کافی ہے او روہ کیا ہی اچھا کارساز ہے۔ ت) واللہ تعالیٰ اعلم۔

مسئلہ ۱۰۶: از گیا محلہ مراد پور مرسلہ تیغ علی صاحب ۲۹ جمادی الاولی ۱۳۳۶ھ جس گورستان کی بوجہ کمی زمین و کثرتِ دفنِ مردگان سے یہ حالت ہوگئی کہ نئی قبریں کھودنے پر کثرت سے مردوں کی ہڈیاں نکلتی ہوں اور بصورتِ موجود رہنے دوسرے گورستان متصل اس کے جو کہ ان

سب شکایتوں سے پاک وصاف ہو اس کو چھوڑ کر خواہ مخواہ صرف بخیالِ مدفن ہونے آباء واجداد اپنے ایسے گورستان میں دوسرے مردوں کی ہڈیاں اکھاڑ کر مردہ دفن کرنا شرعاً جائز ہے یا نہیں؟

الجواب: صورتِ مذکورہ محض ناجائز و حرام ہے صرح بہ علماؤ نا قاطبۃ فی غیر ماکتاب (ہمارے علماء نے متعدد کتابوں میں اس کی تصریح فرمائی ہے۔ ت) واللہ تعالیٰ اعلم

مسئلہ ۱۰۷: از گیا محلہ مراد پور مرسلہ تیغ علی صاحب ۲۱ جمادی الآخرہ ۱۳۳۶ھ جناب مولانا قبلہ ہادی صراط مستقیم دام افضالکم ، بعد سلام مسنون ملتمس خدمت ہے کہ حضور نے بجواب

---

۱ ردالمحتار فصل الاستنجاء ادارۃ الطباعۃ المصریۃ مصر ۱/ ۲۲۹ ۲ الموضوعات لابن جوزی باب دفن المیت فی جوار الصالحین دارالفکر بیروت ۳/ ۷۳ ۳ المدخل لابن الحاج صفۃ القبور دارالکتاب العربیہ بیروت ۳/ ۲۶۹

Fatawa Razawiya, Volume 9

It was stated in this query that the aforementioned situation is purely unlawful and forbidden. The fatwa from Madrasa Deoband is being sent in its original form, with the hope of guidance from your presence as to which one to follow. The fatwa of Janab Maulana Sajjad Hussain Sahib Bihari, Head Teacher and Administrator of Madrasa Anwar-ul-Uloom, is in accordance with your presence's statements of the jurists.

Question: In a graveyard where, due to lack of land and frequent burials, it has reached a state that while digging new graves, many human bones are unearthed; while there exists another adjacent graveyard free from such issues, is it Shariah-compliant and permissible to insist on digging up another person's bones to bury a dead body there, simply out of the desire for it to be the ancestral burial ground? Written by the seeker of this fatwa, the sinful servant Tegh Ali, may the Creator forgive him, resident of Muradpur.

Answer: Burial in this graveyard is permissible. If bones appear, they should be moved to one side. However, if another clean and vacant spot is available, it is preferable to bury there. Jurists have detailed that it is permissible to bury another person in old graves, but it is not permissible to dig a new grave and bury another person in it. It is stated in Shami:

Al-Zayla'i said: If the deceased has decayed and turned into dust, it is permissible to bury another in their grave, to cultivate there, and to build upon it, etc.	**If the deceased has decayed and turned into dust, it is permissible to bury another in their grave, to farm there, and to build a structure upon it, etc. (T)**

Following this, it is quoted from Tatar Khaniya that doing so without necessity despite another place being available is not good. Thus, the matter depends on necessity and the lack thereof. If there is a necessity, burying the deceased in an old grave is permissible without dislike (karahat). If there is no necessity and another clean, vacant place is available, then although still permissible, it is less preferable and 'Makruh Tanzihi' (mildly disliked). And Allah Almighty knows best. Written by Aziz-ur-Rahman, may he be forgiven, Mufti of Madrasa Deoband, 26 Jumada al-Ula 1336 AH.

Response: The ruling of the pure Sharia is the same as what this humble servant wrote in the previous fatwa; that is, in the mentioned state, burying in this graveyard

is purely unlawful and forbidden. The Deoband fatwa is explicitly false and rejected, filled with betrayal, distortion, fabrication, contradiction, and foolishness. The issue is very clear and obvious, hence I have not provided a reference to any specific book but have written this much.

---

1 Radd al-Muhtar, Chapter on Funeral Prayer, Egyptian Printing House, Egypt, 1/599

फतावा रजविया, जिल्द नहम (भाग 9)

इस इस्तेफ्ता (पूछताछ) में कहा गया है कि उपर्युक्त स्थिति पूरी तरह से नाजायज़ और हराम है। मदरसा देवबंद का फतवा मूल रूप में भेजा जा रहा है, इस उम्मीद के साथ कि आपके हुज़ूर से मार्गदर्शन मिले कि किसका पालन किया जाए। मदरसा अनवारुल उलूम के मुख्य शिक्षक और प्रबंधक जनाब मौलाना सज्जाद हुसैन साहब बिहारी का फतवा फुक़हा (धर्मशास्त्रियों) के कथनों के अनुसार हुज़ूर के अनुकूल है।

प्रश्न: जिस कब्रिस्तान में ज़मीन की कमी और मृतकों को दफनाने की अधिकता के कारण यह स्थिति हो गई है कि नई कब्रें खोदने पर बड़ी संख्या में मुर्दों की हड्डियाँ निकलती हैं; जबकि उसके पास ही एक दूसरा कब्रिस्तान मौजूद है जो इन सभी शिकायतों से पाक और साफ है, तो उसे छोड़कर केवल पूर्वजों का दफन स्थान होने के ख्याल से ऐसे कब्रिस्तान में दूसरे मुर्दे की हड्डियाँ उखाड़कर मुर्दा दफन करना शरीअत के अनुसार जायज़ और दुरुस्त है या नहीं? यह सवाल लिखने वाला पापी बंदा तेग अली, जिसे ईश्वर क्षमा करे, मुरादपुर का निवासी है।

उत्तर: इस कब्रिस्तान में दफन करना दुरुस्त है। अगर हड्डियाँ दिखाई दें, तो उन्हें एक तरफ कर दिया जाए, लेकिन अगर दूसरी जगह साफ और खाली हो तो वहाँ दफन करना बेहतर है। फुक़हा ने इस बारे में यह विस्तार दिया है कि पुरानी कब्रों में दूसरे मैय्यत (मृतक) को दफन करना दुरुस्त है और नई कब्र खोदकर उसमें दूसरी मैय्यत को दफन करना दुरुस्त नहीं है। शामी में है:

अल-ज़ैली ने कहा: अगर मैय्यत सड़-गल कर मिट्टी हो जाए तो उसकी कब्र में दूसरे को दफन करना, वहाँ खेती करना और उस पर इमारत बनाना जायज़ है आदि।	**अगर मैय्यत बोसीदा (सड़-गल) होकर मिट्टी हो जाए तो उसकी कब्र में दूसरे को दफन करना, वहाँ खेती बाड़ी करना और उस पर इमारत बनाना जायज़ है आदि। (त)**

इसके बाद तातार खानिया से यह उद्धृत किया गया है कि दूसरी जगह खाली मिलने के बावजूद बिना ज़रूरत ऐसा करना अच्छा नहीं है। अतः दारोमदार ज़रूरत और ज़रूरत न होने पर है। अगर ज़रूरत हो तो पुरानी कब्र में मैय्यत को दफन करना बिना किसी कराहत (नापसंदगी) के दुरुस्त है, और अगर ज़रूरत कुछ न हो बल्कि दूसरी जगह साफ और खाली हो, तो हालाँकि फिर भी दुरुस्त है लेकिन गैर-औली (कम बेहतर) और मकरूहे तन्ज़ीही है। और अल्लाह तआला सबसे बेहतर जानता

है। लेखक अज़ीज़ुर रहमान, अल्लाह उन्हें क्षमा करे, मुफ्ती मदरसा देवबंद, २६ जमादी उल अव्वल १३३६ हिजरी।

उत्तर: मुताह्हर शरीअत (पवित्र कानून) का हुक्म वही है जो इस फ़क़ीर ने पिछले फतवे में लिखा था, यानी उल्लिखित स्थिति में इस कब्रिस्तान में दफन करना पूरी तरह नाजायज़ और हराम है। देवबंद का फतवा स्पष्ट रूप से बातिल (झूठा) और अस्वीकार्य है और खयानत, मिलावट, झूठ, विरोधाभास और मूर्खता से भरा हुआ है। मसला बहुत स्पष्ट और ज़ाहिर है, इसलिए हमने किसी विशेष किताब का हवाला नहीं दिया बल्कि इतना लिख दिया।

---

1 रद्दुल मुहतार, बाब सलातुल जनाइज़, इदारा अल-तिबा अल-मिसरिया, मिस्र, 1/599

استفتائے ہذا ارشاد فرمایا ہے کہ صورت مذکورہ بالا محض ناجائز و حرام ہے اور مدرسہ دیوبند کا فتویٰ بجنسہ ارسال خدمت کر کے امیدوار کہ کس پر عمل کرنے کا حضور والا سے ارشاد ہوتا ہے اور جناب مولانہ سجاد حسین صاحب بہاری مدرس اول و ناظم مدرسہ انوارالعلوم کا فتویٰ بموجب اقوال فقہاء حضور کی مطابقت میں ہے۔

سوال: جس گورستان میں بوجہ کمی زمین و کثرت دفن مردگان یہ حالت ہوگئی کہ نئی قبریں کھودنے پر کثرت سے مردوں کی ہڈیاں نکلتی ہوں بصورت موجود رہنے دوسرے گورستان متصل اس کے جو ان سب شکایتوں سے پاک اور صاف ہو اس کو چھوڑ کر خواہ مخواہ صرف بخیال ہونے جائے مدفن آباء واجداد اپنے ایسے گورستان میں دوسرے مُردے کی ہڈیاں اکھاڑ کر مردہ دفن کرنا شرعاً جائز و درست ہے یا نہیں؟ راقم استفتاء ہذا بندہ عاصی تیغ علی عفاعنہ الباری ساکن مرادپور گیا۔

الجواب: دفن کرنا اس گورستان میں درست ہے اگر ہڈیاں ظاہر ہوں، ان کو ایک طرف کردیا جائے لیکن اگر دوسری جگہ صاف اور خالی ہو تو وہاں دفن کرنا اولیٰ ہے۔ فقہاء نے اس بارے میں یہ تفصیل کی ہے کہ کہنہ قبور میں دوسرے میت کو دفن کرنا درست ہے اور قبرِ جدید کھود کر اس میں دوسری میت کو دفن کرنا درست نہیں ہے۔ شامی میں ہے:

وقال الزيلعي ولو بلي الميت وصار ترابا جاز دفن غيره فی قبره وزرعه والبناء عليه الخ

اگر میت بوسیدہ ہو کر مٹی ہو جائے تو اس کی قبر میں دوسرے کو دفن کرنا، وہاں کھیتی باڑی کرنا اور اس پر عمارت بنانا جائز ہے الخ (ت)

اس کے بعد تاتار خانیہ سے یہ نقل کیا ہے کہ باوجود دوسری جگہ خالی ملنے کے ایسا کرنا بلا ضرورت اچھا نہیں، پس مدار ضرورت و عدم ضرورت پر ہے۔ اگر ضرورت ہو پرانی قبر میں میت کو دفن کرنا بلا کراہت درست ہے اور اگر ضرورت کچھ نہ ہو بلکہ دوسری جگہ صاف وخالی ہو تو اگرچہ پھر بھی درست ہے مگر غیر اولیٰ مکروہ تنزیہی۔ واللہ تعالیٰ اعلم کتبہ عزیز الرحمن عفی عنہ مفتی مدرسہ دیوبند ۲۶ ج ۱ ۳۳۶ھ

الجواب: حکم شریعت مطہرہ وہی ہے کہ فقیر نے فتویٰ سابقہ لکھا بحالتِ یعنی بحالتِ مذکورہ اس قبرستان میں دفن کرنا محض ناجائز و حرام ہے۔ فتویٰ دیوبند صریح باطل و مردود ہے اور خیانت و تحریف و افترا و تناقض و سفاہت سے مملو۔ مسئلہ بہت ظاہر و واضح ہے لہذا ہم نے کسی خاص کتاب کا حوالہ نہ دیا بلکہ اتنا لکھ دیا

---

1 ردالمحتار باب صلوة الجنائز ادارة الطباعة المصرية مصر ١ / ٥٩٩

Fatawa Razawiya Volume 9

Our scholars have clearly stated this in numerous books. Now, to dispel the delusions of those ignorant people who claim knowledge and perfection, I mention a few texts. Imam Mohaqqiq 'ala al-Itlaq Kamal al-Din Muhammad bin al-Humam (may Allah have mercy on him) states in 'Fath al-Qadir', the commentary on 'Al-Hidayah':

Arabic Text	Urdu Translation/Explanation
Two people should not be buried in one grave except out of necessity. A grave should not be dug to bury another person unless the first one has decayed and no bones remain. However, if there is no other choice, the bones of the first person should be gathered and a barrier of soil should be placed between them and the [new] deceased.	That is, burying two in one grave is not permissible without necessity, nor is it permissible to dig a grave for the burial of another without necessity, except when the first has completely turned to dust such that even his bones do not remain. Yes, if there is a necessity, then gather the bones to one side and establish a barrier of soil between them and this deceased person. (T)

It is stated in 'Tatar Khaniyah' and 'Imdad al-Fattah':

Arabic Text	Urdu Translation/Explanation
When the deceased becomes dust in the grave, it is disliked to bury another in his grave because the sanctity remains. Even if they gather his bones in one corner and then bury another in it to seek the blessing of proximity to righteous neighbors, while a vacant place is available, it is still disliked.	That is, even if the deceased has completely turned to dust, burying another in his grave is prohibited because the sanctity still remains. And even if the bones of the deceased are gathered to one side for the purpose of attaining the blessing of proximity to the shrines of the righteous, it is still prohibited as long as a vacant place for burial can be found. (T)

Imam Muhammad Muhammad ibn Amir al-Hajj (may Allah have mercy on him) states in 'Hilyah':

Arabic Text	Urdu Translation/Explanation
It is disliked for two people to be buried in a single grave except out of necessity. From this, the dislike for	That is, burying two in one grave is not permissible without necessity. From here it becomes clear that burial in cellars/vaults is

Arabic Text	Urdu Translation/Explanation
burying in vaults is known, especially if there is a deceased person there who has not decayed. As for what the ignorant and foolish grave-diggers and others do in public endowed cemeteries and others, of opening graves whose occupants have not yet decayed...	prohibited, especially when there is a deceased person there who has not yet turned to dust. And what some ignorant and mindless grave-diggers etc. do, digging up a grave in an endowed or non-endowed cemetery where the corpse has not yet decomposed to bury another, this...

1. Fath al-Qadir, Chapter on Burial, Maktabah Nooriya Razawiya, Sukkur, 2/102
2. Fatawa Tatar Khaniyah, Al-Jana'iz, Al-Qabr wa al-Dafn, Idarat al-Qur'an wa al-'Ulum al-Islamiyyah, 2/172

फतावा रज़विया खंड 9

हमारे विद्वानों ने कई किताबों में इसे स्पष्ट किया है। अब ज्ञान और पूर्णता का दावा करने वाले अज्ञानियों के भ्रम को दूर करने के लिए कुछ ग्रंथों का उल्लेख करते हैं। इमाम मोहक़्क़िक़ अली अल-इतलाक कमालुद्दीन मुहम्मद बिन अल-हुमाम (अल्लाह उन पर रहम करे) 'फत्ह अल-कदीर', 'अल-हिदाया' की व्याख्या में फरमाते हैं:

अरबी पाठ

एक ही कब्र में दो लोगों को नहीं दफनाया जाना चाहिए सिवाय ज़रूरत के। किसी अन्य को दफनाने के लिए कब्र तब तक नहीं खोदी जानी चाहिए जब तक कि पहला व्यक्ति गल न जाए और उसकी कोई हड्डी न बचे। हालाँकि, अगर कोई चारा न हो, तो पहले व्यक्ति की हड्डियों को इकट्ठा किया जाना चाहिए और उनके और [नए] मृतक के बीच मिट्टी की एक दीवार बना दी जानी चाहिए।

उर्दू अनुवाद/व्याख्या

अर्थात् बिना मजबूरी के एक कब्र में दो का दफन जायज़ नहीं, और न ही बिना मजबूरी के दूसरे के दफन के लिए कब्र खोदने की इजाज़त है, सिवाय इसके कि जब पहला बिल्कुल खाक हो गया हो कि उसकी हड्डी तक न रही हो। हाँ, अगर मजबूरी हो तो हड्डियां एक तरफ जमा करके उनके और इस मैय्यत के बीच मिट्टी की आड़ कायम कर दें। (त)

'तातार खानिया' और 'इमदाद अल-फत्ताह' में है:

अरबी पाठ

जब मृतक कब्र में मिट्टी बन जाए, तो उसकी कब्र में दूसरे को दफनाना मकरूह (नापसंद) है क्योंकि सम्मान बना रहता है। यदि वे उसकी हड्डियों को एक कोने में इकट्ठा करते हैं और फिर नेक पड़ोसियों के पास होने का आशीर्वाद प्राप्त करने के लिए उसमें किसी दूसरे को दफनाते हैं, जबकि खाली जगह उपलब्ध है, तो यह अभी भी मकरूह है।

उर्दू अनुवाद/व्याख्या

अर्थात् अगर मैय्यत बिल्कुल खाक हो जाए तब भी उसकी कब्र में दूसरे को दफन करना मना है क्योंकि सम्मान अब भी बाकी है। और अगर नेक लोगों के मजारों के करीब होने की बरकत हासिल करने की गरज़ से मैय्यत की हड्डियां एक किनारे जमा कर दें तो अब भी मना है जबकि दफन के लिए खाली जगह मिल सकती है। (त)

इमाम मुहम्मद मुहम्मद इब्न अमीर अल-हज्ज (अल्लाह उन पर रहम करे) 'हिलिया' में फरमाते हैं:

अरबी पाठ

मजबूरी के बिना एक कब्र में दो लोगों को दफनाना मकरूह है। इसी से तहखानों में दफनाने की नापसंदगी का पता चलता है, खासकर अगर वहाँ कोई ऐसा मृतक हो जो अभी तक गला न हो। जहाँ तक अज्ञानी और मूर्ख कब्र खोदने वालों और अन्यों का संबंध है जो सार्वजनिक बंदोबस्त वाले कब्रिस्तानों और अन्यों में उन कब्रों को खोदते हैं जिनके मालिक अभी तक गले नहीं हैं...

उर्दू अनुवाद/व्याख्या

अर्थात् बिना मजबूरी के एक कब्र में दो का दफन जायज़ नहीं, और यहीं से ज़ाहिर हुआ कि तहखानों में दफन मना है खासकर जबकि वहाँ कोई मैय्यत मौजूद हो जो अभी खाक न हुई हो। और वह जो कुछ गोरकन (कब्र खोदने वाले) वगैरह जाहिल और कम-अक्ल करते हैं कि वक्फी या गैर-वक्फी कब्रिस्तान में वह कब्र जिसका मुर्दा अभी तक खाक न हुआ हो, खोद कर दूसरा दफन कर देते हैं, यह...

1. फत्ह अल-कदीर, दफन का अध्याय, मकतबा नूरिया रज़विया, सुक्कुर, 2/102
2. फतावा ततार खानिया, अल-जनाइज़, अल-क़ब्र व अल-दफ़न, इदारत अल-कुरआन व अल-उलूम अल-इस्लामिया, 2/172

पृष्ठ 388/948

کہ ہمارے علماء نے متعدد کتابوں میں اس کی تصریح فرمائی۔ اب اوہام جہال مدعیان علم وکمال کے ازالہ کو چند نصوص ذکر کریں۔ امام محقق علی الاطلاق کمال الدین محمد بن الہمام رحمتہ اللہ تعالٰی علیہ فتح القدیر شرح ہدایہ میں فرماتے ہیں:

عربی متن	اردو ترجمہ/تشریح
لا یدفن اثنان فی قبر واحد الا لضرورۃ ولایحفر قبر لدفن آخر الا ان بلی الاول فلم یبق لہ عظم الا ان لا یوجد بد فیضم عظام الاول ویجعل بینھما حاجز من تراب -	یعنی بلا مجبوری ایک قبر میں دو کا دفن جائز نہیں، نہ بلا مجبوری دوسرے کے دفن کے لئے قبر کھودنے کی اجازت، مگر جبکہ پہلا بالکل خاک ہوگیا ہو کہ اس کی ہڈی تک نہ رہی، ہاں مجبوری ہو تو ہڈیاں ایک طرف جمع کرکے انہیں اور اس میت میں مٹی کی آڑ قائم کردیں۔ (ت)

تاتار خانیہ وامداد الفتاح میں ہے:

عربی متن	اردو ترجمہ/تشریح
اذا صار المیت ترابا فی القبر یکرہ دفن غیرہ فی قبرہ لان الحرمۃ باقیۃ وان جمعوا عظامہ فی ناحیۃ ثم دفن غیرہ فیہ تبرکان بالجیران الصالحین ویوجد موضع فارغ یکرہ ذلک -	یعنی اگر میت بالکل خاک ہوجائے جب بھی اس کی قبر میں دوسرے کو دفن کرنا ممنوع ہے کہ حرمت اب بھی باقی ہے، اور اگر مزارات صالحین کے قرب کی برکت حاصل کرنے کی غرض سے میت کی ہڈیاں ایک کنارے جمع کردیں تو اب بھی ممنوع ہے جبکہ فارغ جگہ دفن کو مل سکتی ہے۔ (ت)

امام محمد محمد ابن امیر الحاج رحمتہ اللہ تعالیٰ حلیہ میں فرماتے ہیں:

عربی متن	اردو ترجمہ/تشریح
یکرہ ان یدفن فی القبر الواحد اثنان الا لضرورۃ وبہذا تعرف کراھۃ الدفن فی الفساقی، خصوصا ان کان فیھا میت لم یبل، واما ما یفعلہ جھلتہ اغبیاء من الحفارین وغیر فی المقابر المسبلۃ العامۃ و غیرھا من بنش القبور التی لم یبل اربابھا	یعنی بلا مجبوری ایک قبر میں دو کا دفن جائز نہیں، اور یہیں سے ظاہر ہوا کہ تہ خانوں میں دفن منع ہے خصوصاً جبکہ وہاں کوئی میت موجود ہو جو ابھی خاک نہ ہوا اور وہ جو بعض گورکن وغیرہ جاہلان بد عقل کرتے ہیں کہ وقفی یا غیر وقفی قبرستان میں وہ قبر جس کا مردہ ہنوز خال نہ ہو کھود کر دوسرا دفن کردیتے ہیں، یہ

1 فتح القدیر فصل فی الدفن مکتبہ نوریہ رضویہ سکھر ۲/ ۱۰۲ 2 فتاوی تاتار خانیہ الجنائز، القبر والدفن ادارۃ القرآن والعلوم الاسلامیہ ۲/ ۱۷۲

Volume 9 Fatawa Rizwia

[Arabic Boxed Section]: And burying strangers with them is a manifest evil that every person who witnesses it should condemn according to their ability. If they stop, then it is well; otherwise, report them to the authorities—may Allah guide them—so they may be disciplined. It is known that there is no necessity that permits burying two deceased persons together initially in one grave for the purpose of burying a man with his relative or because the burial place in that cemetery is narrow despite there being another cemetery. Even if that cemetery is one where burial is considered blessed because of the deceased already there, let alone these matters being a justification for exhuming a grave and inserting someone else before decay, considering what that entails in terms of desecrating the first deceased and scattering their remains. So beware of that [1].

[Urdu Boxed Section]: It is a clear sin. Every Muslim should try his best to stop them from doing so, and if they do not stop, then inform the authorities so they can punish these people. It is known from Sharia that it is not permissible to initially place two corpses in one grave for the purpose of burying someone near their relative or for blessings near a shrine, especially when another cemetery is available. Not to mention digging up an existing grave for these reasons and placing another person in it before the first has turned to dust. How can this be permissible while it involves violating the sanctity of the first deceased and scattering their remains? So beware, avoid such actions.

After these excellent passages, there is no need for more. The strange thing is that where the Deobandi quoted the passage from Shami, the words of Fath al-Qadir were also quoted, which he left out; this is a betrayal. Right there, this powerful passage of Hulya was mentioned in summary, which he also removed; this is a second heavy betrayal. Right there was written the passage from Tatar-Khaniya, the translation of which he gave as: "It is not good to do so without necessity." The result of which he himself derived as: "It is not preferable, i.e., Makruh Tanzihi (disliked but not sinful)," whereas in Tatar-Khaniya, the word "Yukrahu" (it is disliked) is used in two places, which implies Makruh Tahrimi (prohibitively disliked). And the reason given for it was that the sanctity still remains, from which the prohibition was clearly evident. Is the desecration of a Muslim deceased valid? Is it just "not preferable"? Removing this reasoning is the third betrayal. Right here, Shami said in his discussion on this: "But there is much hardship in it, so it is better to base the permissibility on the deceased turning to dust," which clearly showed that in Tatar-Khaniya...

[1] Radd al-Muhtar, citing Hulya, summarized, Chapter on Funeral Prayers, Egyptian Printing House, Egypt, 1/598.

जिल्द नौ फ़तावा रिज़विया

[अरबी बॉक्स खंड]: और अजनबियों को उनके साथ दफनाना एक स्पष्ट बुराई है, जिसे हर व्यक्ति को अपनी क्षमता के अनुसार रोकना चाहिए। यदि वे रुकें तो ठीक, अन्यथा अधिकारियों को सूचित करें—अल्लाह उन्हें मार्गदर्शन दे—ताकि उन्हें दंडित किया जा सके। यह ज्ञात है कि कोई ऐसी आवश्यकता नहीं है जो शुरू में एक ही कब्र में दो मृतकों को दफनाने की अनुमति दे, चाहे वह किसी व्यक्ति को उसके रिश्तेदार के साथ दफनाने के उद्देश्य से हो या उस कब्रिस्तान में जगह की कमी के कारण हो जबकि दूसरा कब्रिस्तान उपलब्ध हो। भले ही वह कब्रिस्तान ऐसा हो जहाँ दफन होना वहां के मृतकों के कारण धन्य माना जाता हो, इन कारणों से पुरानी कब्र को खोदना और गलने से पहले दूसरे को डालना कैसे जायज़ हो सकता है, जबकि इसमें पहले मृत व्यक्ति की गरिमा का अपमान और अंगों का बिखरना शामिल है। इसलिए इससे बचें [1]।

[उर्दू बॉक्स खंड]: यह स्पष्ट पाप है। हर मुसलमान को चाहिए कि यथासंभव उन्हें ऐसा करने से रोके, और यदि वे न रुकें तो अधिकारियों को सूचित करें कि वे उन लोगों को सजा दें। शरीयत से यह ज्ञात है कि किसी को उसके रिश्तेदार के पास दफनाने या किसी मज़ार के पास बरकत के लिए शुरू में एक ही कब्र में दो जनाजे रखना हलाल नहीं है, जबकि वहां दूसरा कब्रिस्तान मौजूद हो। इन कारणों से पुरानी कब्र को खोदना और एक के मिट्टी होने से पहले दूसरे को उसमें डालना कैसे जायज़ हो सकता है? जबकि इसमें पहले मृत व्यक्ति की गरिमा का अपमान और उसके अंगों का बिखरना शामिल है, इसलिए सावधान रहें और ऐसी हरकत से बचें।

इन उत्तम लेखों के बाद और अधिक की आवश्यकता नहीं है। विचित्र बात यह है कि जहाँ देवबंदी ने शामी का लेख उद्धृत किया है, वहीं फतह अल-कादिर का लेख भी उद्धृत था, जिसे उन्होंने छोड़ दिया; यह विश्वासघात है। वहीं हुलिया का यह शक्तिशाली संक्षिप्त लेख भी वर्णित था, जिसे उन्होंने हटा दिया; यह दूसरा भारी विश्वासघात है। वहीं तातारखानीया का वह लेख अंकित था जिसका अनुवाद उन्होंने यह किया कि "बिना आवश्यकता ऐसा करना अच्छा नहीं है।" जिसका परिणाम उन्होंने स्वयं यह निकाला कि "गैर-औला यानी मकरूह-ए-तंजीही", जबकि तातारखानीया में दो स्थानों पर 'युकराहू' (घृणास्पद) कहा गया है, जिसका अर्थ मकरूह-ए-तहरीमी (निषिद्ध के करीब) है। और इसका कारण यह बताया गया था कि गरिमा अभी भी शेष है, जिससे स्पष्ट निषेध स्पष्ट था। क्या मुसलमान मृत व्यक्ति का अपमान सही है? क्या यह केवल 'गैर-औला' है? इस तर्क को हटा देना तीसरा विश्वासघात है। यहीं शामी ने इस पर अपनी चर्चा में कहा था कि 'लेकिन इसमें बहुत कठिनाई

है, इसलिए बेहतर यह है कि अनुमति का आधार मृतक के मिट्टी होने पर रखें', जिससे साफ जाहिर था कि तातारखानीया में...

[1] रद अल-मुह्तार, हुलिया के संदर्भ में, सारांशित, जनाजे की नमाज का अध्याय, इदारात अल-तिबाआत अल-मिसरिया, मिस्र, 1/598।

جلد نہم فتاویٰ رضویہ

[عربی باکس]: وادخال اجانب علیهم، فهو من المنکر الظاهر الذی ینبغی لکل واقف علیه انکار ذلك علی متعاطیه بحسب الاستطاعة فان کف والا دفع الی اولیاء الامور وفقهم الله تعالی لیقا بلوه بالتأدیب، ومن المعلوم ان لیس من الضرورة المبیحة جمع میتین ابتداء في قبر واحد لقصد دفن الرجل مع قریبه او ضیق محل الدفن في تلك المقبرة مع وجود غیرها و ان کانت تلك المقبرة مما یتبرك بالدفن فیها البعض من بها من الموتی فضلا عن کون هذه الامور و ما جری مجرها مبیحة للنبش وادخال البعض علی البعض قبل البلی مع ما یحصل في ضمن ذلك من هتك حرمة المیت الاول وتفریق اجزائه فالحذر من ذلك [1] ۔

[اردو باکس]: صریح معصیت ہے۔ ہر مسلمان کو چاہئے کہ حتی الامکان انھیں ایسا کرنے سے خود روکے، اور اس کے روکے نہ رکیں تو حکام کو اطلاع دیں کہ وہ ان لوگوں کو سزا دیں، اور شریعت سے معلوم ہے کہ کسی کو اس کے عزیز یا تبرک کے لئے کسی مزار کے پاس دفن کرنے کی غرض سے ابتداء دو جنازے ایک قبر میں رکھنا حلال نہیں جبکہ وہاں دوسرا مقبرہ موجود ہو، نہ کہ ان وجوہ کے لیے اگلی قبر کھودنا، اور ایک کے خاک ہونے سے پہلے دوسرے کا اس میں داخل کرنا، یہ کیسے حلال ہو سکتا ہے حالانکہ اس میں پہلے میت کی ہتک حرمت اور اس کے اجزاء کا متفرق کرنا ہے تو خبردار اس حرکت سے بچو۔

ان نفیس عبارات کے بعد زیادہ کی حاجت نہیں۔ طرفہ یہ کہ دیو بندی نے جہاں سے شامی کی عبارت نقل کی ہے وہیں وہ فتح القدیر کا کلام منقول تھا اسے چھوڑ دیا، یہ خیانت ہے، وہیں حلیہ کا یہ قاہر کلام ملخصاً مذکور تھا اسے بھی اڑا دیا، یہ دوسری بھاری خیانت ہے۔ وہیں تاتارخانیہ کی وہ عبارت مسطور تھی جس کا ترجمہ یہ کیا کہ "بلا ضرورت ایسا کرنا اچھا نہیں۔" جس کا حاصل

خود یہ نکلا کہ "غیر اولیٰ یعنی مکروہ تنزیہی" حالانکہ تاتارخانیہ میں دو جگہ "یکرہ" فرمایا جس کا اطلاق مفید کراہت تحریم ہے اور اس کی دلیل فرمائی تھی کہ حرمت اب بھی باقی ہے جس سے صاف ممانعت روشن تھی، کیا مسلمان میت کی بیحرمتی درست ہے، صرف غیر اولیٰ ہے۔ اس تعلیل کو اڑا جانا تیسری خیانت ہے۔ یہیں شامی نے اس پر اپنی بحث میں کہا تھا کہ مگر اس میں بہت مشقت ہے تو اولیٰ یہ ہے کہ جواز کا مدار میت کے خاک ہونے پر رکھیں، جس سے صاف ظاہر تھا کہ وہ تاتارخانیہ میں خاک

[1] ردالمحتار بحوالہ حلیہ ملخصاً باب صلوۃ الجنائز ادارۃ الطباعۃ المصریۃ مصر ۱/ ۵۹۸

Fatawa Rizvia, Volume 9

...declared it impermissible even after [the event], not just 'less preferable' (ghair-aula). Look, interpreting it as 'disliked' (makruh) is a distortion. In the same texts of Imam Muhammad Halabi, it should be noted that the intention to bury someone near a relative or a shrine is not such a necessity that would initially make burying two people in one grave permissible. It is clearly proven that doing so is not lawful; then framing it as 'less preferable' is the second distortion. Furthermore, in the same passage, it was stated: "How can it be lawful to then dig up the previous grave and bury another?" Ignoring this and fabricating [an excuse] is the third distortion. Again, in the same place, see that this involves disrespecting a deceased Muslim, and your interpretation of it is the fourth distortion. Observe further that this involves separating the bones of a deceased Muslim, and that invention is the fifth distortion. Then, attributing this fabricated meaning of yours to the jurists is a blatant fabrication (iftira). The height of irony is that the text of 'Shami' was quoted, which mentions from Imam Zailai that once the deceased has turned to dust, it is then permissible to bury another in their grave. This clearly proves it is impermissible before that. Then making your own rejection as your supporting evidence is such open foolishness. It was quoted from the honorable jurists that burying another deceased in an old grave is correct, but digging a new one to bury another is not. Then the terms 'old' and 'new' are your own inventions, with meanings fixed such that if a few months or a year or two pass, it is no longer a 'new' grave, and digging up a Muslim's bones becomes lawful! Whereas in the text you quoted itself, the jurists' ruling is that it's permissible if the deceased has turned to dust, otherwise not. Now these meanings of 'old' and 'new' are established. Regarding the graveyard which the questioner clearly wrote had many bones surfacing upon digging new graves, while a clean and pure graveyard is available adjacent to it, to rule that burying in the other graveyard is correct is a blatant contradiction. The noble jurists gave permission in case of necessity; in this very fatwa itself, it was said that it depends on necessity or lack thereof. Then, keeping it merely 'less preferable' without necessity is such extreme foolishness. Why would 'less preferable' actions require necessity? They are permissible even without necessity. Yes, prohibited matters require necessity to be allowed, as "Necessity makes the prohibited permissible" (Al-darurat tubih al-mahzurat). From the scribe of this fatwa's pen came eight short lines, containing these twelve 'initial house perfections': distortions, betrayals, fabrications, contradictions, and foolishness. Allah forbid that Shariah

deems such people fit for issuing fatwas. Leaving all this aside, the scholars of the Haramayn Sharifayn have issued rulings of apostasy (takfir) against the leaders of Deoband by name and said:

Man shakka fi kufrihi wa 'adhabihi faqad kafar[1]	**He who, having become aware of their sayings, doubts their disbelief (kufr), is also not a Muslim.**

[1]Durr-e-Mukhtar, Chapter of the Apostate, Mujtabai Press, Delhi, 1/356.

फ़तावा रिज़विया, जिल्द 9

...होने के बाद भी नाजायज़ फ़रमाया है, न कि सिर्फ़'ग़ैर-औला' (कम बेहतर)। देखो, 'मक़रूह' (नापसंद) अर्थ बनाना 'तहरीफ़' (विकृति) है। वहीं इमाम मुहम्मद हलबी की इबारतों में यह देखना कि अपने अज़ीज़ या किसी मज़ार के करीब दफ़्न करने का इरादा वह ज़रूरत नहीं जिसके कारण शुरुआत में एक ही कब्र में दो का दफ़्न मुबाह (जायज़) हो जाए, साफ़ साबित हुआ कि ऐसा करना हलाल नहीं। फिर इसे 'ग़ैर-औला' पर ढालना दूसरी तहरीफ़ है। साथ ही उसी इबारत में कहा गया था कि फिर उन वजहों से पिछली कब्र खोदकर दूसरी का दफ़्न करना कैसे हलाल हो सकता है। इससे आँखें मूँदकर वह मनगढ़ंत बात तीसरी तहरीफ़ है। फिर वहीं यह देखना कि इसमें मुसलमान मय्यत की बेहुर्मती (अपमान) है और उस पर वह तराशा हुआ अर्थ चौथी तहरीफ़ है। वहीं यह देखना कि इसमें मुसलमान मय्यत की हड्डी अलग करना है और उस पर वह ईजाद पाँचवीं तहरीफ़ है। फिर अपने इस गढ़े हुए अर्थ को फ़ुक़हा (न्यायविदों) की ओर मंसूब करना सरासर 'इफ़्तरा' (झूठ) है। मज़ा यह है कि 'शामी' की इबारत नक़ल की जिसमें इमाम ज़ैला'ई से है कि जब मय्यत मिट्टी हो जाए तो उसके बाद दूसरे को उसकी कब्र में दफ़्न कर देना जायज़ है; साफ़ साबित हुआ कि उससे पहले नाजायज़ है। फिर अपने इस रद (खारिज) को अपनी सनद (दलील) बनाना कैसी खुली सफ़ाहत (मूर्खता) है। फ़ुक़हा-ए-किराम से नक़ल किया कि पुरानी कब्रों में दूसरे मय्यत को दफ़्न करना दुरुस्त है, नई खोदकर उसमें दूसरे को दफ़्न करना दुरुस्त नहीं। फिर 'पुरानी' और 'नई' बंदे की अपनी ईजाद है जिसके अर्थ यह तय किए कि अगर दो-चार महीने या साल-दो साल गुज़र सकें तो अब वह नई कब्र ही न रही और मुसलमान की हड्डियाँ खोदना हलाल हो गया! हालांकि खुद उसकी नक़ल की हुई इबारत में फ़ुक़हा का इरशाद यह है कि मय्यत मिट्टी हो जाए तो जायज़ है वरना नहीं। अब 'पुरानी' और 'नई' के ये अर्थ तय हो गए। इस पर उस कब्रिस्तान के बारे में जिसे सायल (प्रश्नकर्ता) ने साफ़ लिखा था कि नई कब्रें खोदने पर कसरत से मुर्दों की हड्डियाँ निकलती हैं और उसके साथ ही साफ़ और पाक कब्रिस्तान मौजूद है, यह हुक्म लगाना कि दूसरे कब्रिस्तान में दफ़्न करना दुरुस्त है, स्पष्ट अंतर्विरोध (तनाक़ुज़) है। फ़ुक़हा-ए-किराम ने ज़रूरत की स्थिति में इजाज़त दी है, खुद इसी फतवे में कहा गया कि मदार (आधार) ज़रूरत और अदम-ज़रूरत (ज़रूरत न होने) पर है। फिर बिना ज़रूरत सिर्फ'ग़ैर-औला' रखना कैसी गंभीर मूर्खता है। 'ग़ैर-औला' की इजाज़त के लिए ज़रूरत की क्या दरकार, वह तो बिना ज़रूरत भी जायज़ होता है। हाँ, नाजायज़ चीज़ की इजाज़त के लिए ज़रूरत की ज़रूरत होती है क्योंकि "ज़रूरतें वर्जित चीज़ों को जायज़ कर देती हैं" (अद-दरूरात

तुबीहुल महज़ूरात)। इस फ़तवे के लेखक की कलम से छोटी आठ पंक्तियाँ हैं, उनमें ये बारह 'कमालाते-बंगाह-ए-अव्वलीं' मौजूद हैं: तहरीफ़े खयानतें, इफ़्तरा, तनाक़ुज़ और सफ़ाहतें। अल्लाह की पनाह कि शरीयत ऐसों को फतवा देने के काबिल ठहराए। ये सब तो एक तरफ, हरमैन शरीफ़ैन के उलेमा ने देवबंद के पेशवाओं पर नाम-ब-नाम इर्तदाद (धर्मत्याग) का हुक्म दिया और फ़रमाया:

मन शक्का फ़ी कुफ़्रिही व अज़ाबिही फ़क़द कफ़र[1]	**जो उनके कथनों से अवगत होकर उनके कुफ़्र में शक करे, वह भी मुसलमान नहीं।**

[1]दुर्रे मुख्तार, बाबूल् मुर्तद, मतबा मुज्तबाई दिल्ली, 1/356

ہونے کے بعد بھی ناجائز فرمایا ہے نہ کہ صرف غیر اولٰی۔ یہ دیکھو مکروہ معنی بنانا تحریف ہے۔ وہیں عبارات امام محمد حلبی میں یہ دیکھنا کہ اپنے عزیز یا کسی مزار کے قریب میں دفن کا قصد وہ ضرورت نہیں جس کے باعث ابتداء ایک قبر میں دو کا دفن مباح ہو جائے، صاف ثابت ہوا کہ ایسا کرنا حلال نہیں، پھر اسے غیر اولٰی پر ڈھالنا دوسری تحریف نیز اسی عبارت میں ارشاد ہوا تھا کہ پھر ان وجوہ سے اگلی قبر کھود کر دوسری کا دفن کرنا کیونکر حلال ہو سکتا ہے۔ اس سے آنکھ بند کرکے وہ گھڑت تیسری تحریف ہے۔ پھر وہیں یہ دیکھنا کہ اس میں مسلمان میت کی بیحرمتی ہے اور اس پر وہ تراش چوتھی تحریف ہے۔ وہیں یہ دیکھنا کہ اس میں مسلمان میت کی ہڈی علیحدہ کرنا ہے اور اس پر وہ اختراع پانچویں تحریف ہے۔ پھر اپنے اس معنی تراشیدہ کو فقہاء کی طرف نسبت کرنا صریح افتراء ہے۔ طرفہ یہ ہے کہ عبارت شامی نقل کی جس میں امام زیلعی سے ہے کہ میت خاک ہو جائے تو اس کے بعد دوسرے کو اس کی قبر میں دفن کر دینا جائز ہے، صاف ثابت ہوا کہ قبل اس کے ناجائز ہے، پھر اس اپنے رَد کو اپنی سند بنانا کیسی کھلی سفاہت ہے۔ فقہائے کرام سے نقل کیا کہ کہنہ قبور میں دوسرے میت کو دفن کرنا درست ہے جدید کھود کر اس میں دوسرے کو دفن کرنا درست نہیں، پھر کہنہ وجدید ایجادِ بندہ ہے جس کے معنی یہ ٹھہرائے کہ دوچار مہینے یا سال دوسال گذر سکے تو اب جدید قبر ہی نہ رہی، مسلمان کی ہڈیاں کھودنا حلال ہو گیا، حالانکہ خود اس کی عبارت نقل کردہ میں ارشاد فقہاء یہ ہے کہ میت خاک ہو جائے تو جائز ہے ورنہ نہیں، اب کہنہ وجدید کے یہ معنی متعین ہو گئے اس پر اسے گورستان کی نسبت جسے سائل نے صاف لکھا تھا کہ نئی قبریں کھودنے پر کثرت سے مُردوں کی ہڈیاں نکلتی ہیں اور اس پر گورستان صاف وپاک اس کے متصل موجود ہے یہ حکم لگانا کہ دفن کرنا دوسرے گورستان میں

درست ہے، صریح تناقض، فقہائے کرام نے بحال ضرورت اجازت دی خود اسی فتویٰ میں کہامدار ضرورت اور عدم ضرورت پر ہے۔ پھر بلا ضرورت صرف غیر اولیٰ رکھنا کیسی شدید سفاہت ہے، غیر اولیٰ کی اجازت کو ضرورت کیا درکار، وہ بلا ضرورت بھی جائز ہوتا ہے، ہاں ناجائز بات کی اجازت کو ضرورت کی ضرورت ہوتی ہے کہ الضرورات تبیح المحظورات (ضرورتیں منع کردہ چیزوں کو جائز کردیتی ہیں۔ت) اس فتوے کے کاتب کے قلم سے چھوٹی آٹھ سطریں ہیں ان میں یہ بارہ "اکمالاتِ بنگاہِ اولیں" حاضر ہیں، تحریفیں، خیانتیں، افتراء، تناقض، سفاہتیں، معاذاللہ کہ شرع ایسوں کو قابل افتا ٹھہرائے، یہ سب درکنار علمائے حرمین شریفین نے دیوبند کے پیشواؤں پر نام بنام حکم ارتداد دیا اور فرمایا:

من شك في كفره وعذابه فقد كفر[1]

جوان کے اقوال پر مطلع ہو کر ان کے کفر میں شک کرے وہ بھی مسلمان نہیں۔

[1] دُر مختار باب المرتد مطبع مجتبائی دہلی ۱/ ۳۵۶

Fatawa Razawiya, Volume 9

How can it then be permissible to consider these people as religious scholars or to seek any Sharia ruling from them? It is forbidden, forbidden, strictly forbidden. The investigation into this issue is lengthy. It is proven from our treatise 'Ihlak al-Wahhabiyyin' that even if a deceased person has turned to dust, it is not permissible to dig up their grave and bury someone else without severe necessity, as stated in Tatar-khaniyah and others. However, if it is someone's owned land, they can dispose of it after the remains have turned to dust; this is the context of the statement in Tabyin. In any case, it is not permissible according to anyone to dig before turning to dust without necessity. As for the discussion in Shami regarding great hardship and great sayings, it is refuted because the place of necessity is an exception. But in the scenario mentioned in the question, where digging new graves results in many bones coming out and another clean cemetery is adjacent to it, no Muslim can claim its permissibility except for the Wahhabis, in whose eyes the deceased Muslims have no respect at all. Apart from Shami, no observer can lean towards this view either.

[Table/Box Section] Arabic Text: "For indeed, the prohibition of digging is so that no bone remains at all, not in this [case], although it is a discussion against what is explicitly mentioned. I say: and a bone might belong to a woman, so how can it be permissible for strangers to look at it or touch it, just like her cut hair, as they have explicitly stated? So understand. And Allah the Almighty knows best."

Urdu Translation/Explanation: "Because the prohibition on digging is so that no bone is left at all. --- Not about this. --- Furthermore, their discussion is against the text. I say: It could also be that the bone belongs to a woman, so it is not lawful for non-mahrams to see or touch it. The scholars have clarified this. --- So understand it. --- And the Great and Exalted God knows best. (T)"

Problem 108: From Saniya village, Bareilly district, asked by Amir Ali Sahib Razvi, 16 Shawwal 1330 AH. What do the scholars of religion say in this matter that it is often seen that a child is born dead, they put it in a pot and bury it separately from the cemetery, saying it is 'Pak Masan' (a type of spirit/curse), and they avoid it like Hindus do. How is this? Explain and you will be rewarded.

The Answer: This is a satanic thought. Bury it in the cemetery of Muslims. And Allah the Almighty knows best.

Problem 109: From Munger, Dilawar Pur neighborhood, house of Sheikh Rahmat Ali Sahib, sent by Molvi Syed Ata-ul-Haq Sahib, 1313 AH. What do the scholars of religion say regarding what should be done with the corpse of a disbeliever who has no heir? Explain and you will be rewarded.

फ़तावा रज़विया, जिल्द नहम (खण्ड 9)

फिर इन लोगों को आलिम-ए-दीन समझना या उनसे कोई शरीई फ़तवा तलब करना कैसे हलाल हो सकता है, हराम हराम सख़्त हराम है, इस मसले की तहक़ीक़ में कलाम तवील (लंबा) है। हमारे रिसाला 'अह्लाक अल-वहाबिय्यीन' से साबित है कि मय्यत अगरचे ख़ाक हो गया हो, बिना ज़रूरत-ए-शदीद उसकी क़ब्र खोदकर दूसरे को दफ़न करना जायज़ नहीं जैसा कि तातार-ख़ानिया वग़ैरह में फ़रमाया, मगर किसी की ममलुक (स्वामित्व वाली) ज़मीन है ख़ाक हो जाने के बाद वो अपनी मिल्कियत में तसर्रुफ़ (उपयोग) कर सकता है, इबारत 'तबयीन' का यही महल है, बहरहाल ख़ाक हो जाने से पहले बिना मजबूरी किसी के नज़दीक जायज़ नहीं। रही बहस 'शामी' की मुशक़्क़त-ए-अज़ीमा, अक़्वाल-ए-अज़ीमा मदफ़ूअ है कि महल-ए-ज़रूरत मुस्तस्ना (अपवाद) है, मगर सूरत-ए-सवाल कि नई क़ब्रें खोदने से ब-कसरत हड्डियाँ निकलती हैं और दूसरा साफ़ कब्रिस्तान उसके मुत्तसिल (सटा हुआ) मौजूद है। इसमें तो वहाबिया के सिवा जिनकी निगाह में अमवात-ए-मुस्लिमीन (मुसलमान मृतकों) की असलन इज़्ज़त नहीं, कोई मुसलमान जवाज़ (वैधता) का क़ायल नहीं हो सकता, शामी के अलावा भी इसकी तरफ़ नाज़िर नहीं हो सकता।

[तालिका भाग] अरबी पाठ: "निस्संदेह खोदने की मनाही इसलिए है कि कोई हड्डी बिल्कुल न बचे, न कि इस मामले में, हालाँकि यह स्पष्ट रूप से उल्लेखित के विरुद्ध चर्चा है। मैं कहता हूँ: और हड्डी किसी महिला की हो सकती है, तो अजनबियों के लिए उसे देखना और छूना कैसे जायज़ हो सकता है, जैसे उसके कटे हुए बाल, जैसा कि उन्होंने स्पष्ट उल्लेख किया है। अतः इसे समझो। और अल्लाह तआला सबसे बेहतर जानता है।"

उर्दू अनुवाद/व्याख्या: "इसलिये कि खोदने से ममानअत (रोक) के बारे में है मगर ये कि असलन कोई हड्डी बाक़ी न रह जाये --- इसके बारे में नहीं --- इसके इलावा वो नस (स्पष्ट आदेश) के ख़िलाफ़ उनकी बहस है। अक़ूल: ऐसा भी होगा कि हड्डी किसी औरत की हो तो नामह्रमों का उसे देखना छूना हलाल नहीं, उलमा-ए-किराम ने इसकी तसरीह (स्पष्ट व्याख्या) फ़रमाई है - तो इसे समझो --- और ख़ुदा-ए-बुज़ुर्ग-ओ-बरतर ख़ूब जानने वाला है। (त)"

मसअला १०८: आज़ मौज़ा सनिया जिला बरेली, मसूला अमीर अली साहब रज़वी, १६ शव्वाल १३३० हिजरी। क्या फ़रमाते हैं उलमा-ए-दीन इस मसले में कि अक्सर देखा गया मरा हुआ बच्चा किसी के

पैदा होता है उसको हांडी में रखकर कब्रिस्तान से अलग दफ़न करते हैं और कहते हैं यह 'पका मसान' है, इससे अहल-ए-हनूद (हिंदुओं) की तरह बचते हैं, ये क्योंकर है? बयान करें सवाब पायें।

अल-जवाब: यह शैतानी ख़याल है इसे मुसलमानों के कब्रिस्तान ही में दफ़न करें। वल्लाह तआला आलम।

मसअला १०९: आज़ मुंगेर, मोहल्ला दिलावर पुर मकान शैख़ रहमत अली साहब मुर्सला मौलवी सैयद अता-उल-हक़ साहब १३१३ हिजरी। क्या फ़रमाते हैं उलमा-ए-दीन इस मसले में कि काफ़िर के मुर्दे को जिसका कोई वारिस नहीं, क्या किया जाए? बयान करें सवाब पायें।

पृष्ठ ३९१/९४८

فتاوٰی رضویہ جلد نہم

پھر ان لوگوں کو عالم دین سمجھنا یا ان سے کوئی شرعی فتوٰی طلب کرنا کیسے حلال ہو سکتا ہے، حرام حرام سخت حرام ہے، اس مسئلہ کی تحقیق میں کلام طویل ہے۔ ہمارے رسالہ اھلاک الوھابیین سے ثابت ہے کہ میت اگرچہ خاک ہو گیا ہو بلا ضرورت شدید اس کی قبر کھود کر دوسرے کا دفن کرنا جائز نہیں جیسا کہ تاتارخانیہ وغیرہا میں فرمایا، مگر کسی کی مملوک زمین ہے خاک ہو جانے کے بعد وہ اپنی ملک میں تصرف کر سکتا ہے، عبارت تبیین کا یہی محل ہے، بہر حال خاک ہو جانے سے پہلے بلا مجبوری کسی کی نزدیک جائز نہیں، رہی بحث شامی کی مشقت عظیمہ اقوالِ عظیمہ مدفوع ہے کہ محلِ ضرورت مستثنٰی ہے، مگر صورت سوال کہ نئی قبریں کھودنے سے بکثرت ہڈیاں نکلتی ہیں اور دوسرا صاف قبرستان اس کے متصل موجود ہے۔ اس میں تو وہابیہ کے سوا جن کی نگاہ میں امواتِ مسلمین کی اصلاً عزت نہیں، کوئی مسلمان قائل جواز نہیں ہو سکتا، شامی کا علاوہ بھی اس کی طرف ناظر نہیں ہو سکتا۔

فانہ فی المنع من الحفر ان لایبقی عظم اصلا لافی ھذا علی انہ بحث فیہ علی خلاف المنصوص اقول: وقد یکون عظم امرأۃ فکیف یحل للاجانب النظر الیہ ومسہ کشعرھا المقطوع کما نصوا علیہ فافھم ۔ واللہ تعالٰی اعلم | اس لئے کہ کھودنے سے ممانعت کے بارے میں ہے مگر یہ کہ اصلا کوئی ہڈی باقی نہ رہ جائے ___ اس کے بارے میں نہیں ___ علاوہ ازیں وہ نص کے خلاف ان کی بحث ہے اقول: ایسا بھی ہوگا کہ ہڈی کسی عورت کی ہو تو نامحرموں کا اسے دیکھنا چھونا حلال نہیں، علمائے کرام نے اس کی تصریح فرمائی ہے _ تو اسے سمجھو ___ اور خدائے بزرگ وبرتر خوب جاننے والا ہے۔ت)

مسئلہ ۱۰۸: از موضع سنیا ضلع بریلی مسئولہ امیر علی صاحب رضوی ۱۶ شوال ۱۳۳۰ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ اکثر دیکھا گیا مر ا ہوا بچہ کسی کے پیدا ہوتا ہے اس کو ہانڈی میں رکھ کر گورستان سے علیحدہ دفن کرتے ہیں اور کہتے ہیں یہ پکا مسان ہے، اس سے اہل ہنود کی طرح بچتے ہیں، یہ کیونکر ہے؟ بینوا توجروا الجواب: یہ شیطانی خیال ہے اسے مسلمانوں کے گورستان ہی میں دفن کریں۔ واللہ تعالیٰ اعلم مسئلہ ۱۰۹: از مونگیر، محلہ دلاور پور مکان شیخ رحمت علی صاحب مرسلہ مولوی سید عطاء الحق صاحب ۱۳۱۳ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ کافر کے مُردہ کو جس کا کوئی وراثت نہیں، کیا کیا جائے؟ بینوا توجروا

Fatawa-e-Razvia Volume 9

The Answer: It should be handed over to the people of his religion and community to do as they wish. If no one among the disbelievers is found, then bury him in a pit like the carcass of a dog to prevent the stench. The detailed ruling is that a disbeliever (kafir) is of two types: original (asli) and apostate (murtad). An original is one who has been a disbeliever from the beginning, and an apostate is one who became a disbeliever after accepting Islam or holds beliefs of disbelief despite claiming to be a Muslim; for example, the modern-day Necharis. For an apostate, there is fundamentally no ritual bathing (ghusl), no shrouding (kafan), no burial, nor should he be handed over to any disbeliever by a Muslim, even if the disbeliever is of the same religion, and even if it is his own father or son. Rather, the treatment for him is to bury him like a dead dog. Regarding an original disbeliever, if a Muslim has no kinship with him, then he should not participate in any of his affairs but rather leave him so that his close relatives or co-religionists can do as they please. If they are also not present, then the treatment is similar to that of an apostate. If a Muslim has a close kinship with him, even then, as long as a close disbeliever relative is present, it is better not to participate in his funeral rites. Yes, if for the sake of fulfilling the right of kinship, one follows the funeral procession at a distance, there is no harm. And if only a Muslim is close and there is no disbeliever relative, even then it is not mandatory for a Muslim to arrange his funeral and shrouding. If he hands him over to disbelievers of his own religion or has him thrown into a pit without ghusl and kafan, it is permissible. And if, in consideration of kinship, he performs ghusl, kafan, and burial, that is also permitted, but he must not follow the sunnah (prescribed) method in any act; he should pour water like washing away filth, wrap him in some rag, and bury him in a narrow pit.

O my Lord! I seek refuge in You from disbelief and the disbelievers. (T) In 'Dur-re-Mukhtar', it is written:

(A Muslim may wash, shroud, and bury his [original disbeliever] relative) like his maternal uncle. As for an apostate, he is thrown into a pit like a dog (at the time of need). If he has a relative, it is better to leave him to them. (If he washes, shrouds, and buries him without adhering to the Sunnah), he is washed like washing an impure garment, wrapped in a rag, and cast into a pit. (End of quote). I say: and the wording of 'Al-Bahr' is 'hafirah' (a small pit). Tahthawi said...

(A Muslim should wash, shroud, and bury his relative) like a maternal uncle (who is an original disbeliever). As for an apostate, he should be buried in a pit like a dog (in case of necessity). If there is another relative, it is better to hand him over. (If he performs ghusl, kafan, and burial without adhering to the Sunnah), then wash him like an impure cloth, wrap him in a rag, and place him in some pit. (End of quote). I say: in the text of 'Bahr'...

1. Dur-re-Mukhtar, Chapter on Funeral Prayers, Mujtabai Press, Delhi, 1/123
2. Bahr-ur-Raiq, Book of Funerals, H.M. Saeed Company, Karachi, 2/193

फतावा-ए-रज़विया जिल्द 9

उत्तर: उसे उसके धर्म और संप्रदाय के लोगों को दे दिया जाए ताकि वे जो चाहें करें। और अगर काफ़िरों में भी कोई न मिले तो दुर्गंध दूर करने के लिए कुत्ते के शव की तरह किसी गड्ढे में दबा दें। मसले का विवरण यह है कि काफ़िर दो प्रकार के होते हैं: असली और मुर्तद। असली वह जो आरंभ से ही काफ़िर हो, और मुर्तद वह जो इस्लाम स्वीकार करने के बाद काफ़िर हो गया या इस्लाम का दावा करने के बावजूद कुफ़्र के अक़ीदे (विश्वास) रखता हो: जैसे आज के दौर के नेचरी। मुर्तद के लिए मूल रूप से न ग़ुस्ल (स्नान) है, न कफ़न, न दफ़न, और न ही किसी मुसलमान के हाथ से किसी काफ़िर को दिया जाए चाहे वह उसी के धर्म का हो, चाहे वह उसका बाप या बेटा ही क्यों न हो। बल्कि उसका इलाज वही है जैसा किसी मरे हुए कुत्ते को दबा देना। और असली काफ़िर से अगर मुसलमान की रिश्तेदारी नहीं है तो उसके भी किसी काम में शामिल न हो बल्कि छोड़ दिया जाए कि उसके सगे-संबंधी या धर्म के लोग जो चाहें करें, और वे भी न हों तो मुर्तद जैसा ही व्यवहार किया जाए। और अगर मुसलमान से उसकी क़रीबी रिश्तेदारी है, फिर भी जब तक कोई क़रीबी काफ़िर मौजूद हो, बेहतर यही है कि उसके अंतिम संस्कार में भाग न ले। हाँ, रिश्तेदारी का हक़ अदा करने के लिए अगर उसके जनाज़े के साथ दूर-दूर चला जाए तो कोई हर्ज़ नहीं। और अगर केवल मुसलमान ही क़रीबी है और कोई काफ़िर रिश्तेदार नहीं है, तब भी मुसलमान पर उसका अंतिम संस्कार और कफ़न-दफ़न अनिवार्य नहीं है। अगर वह उसे उसके धर्म के काफ़िरों को दे दे या बिना ग़ुस्ल और कफ़न के किसी गड्ढे में फिंकवा दे, तो यह जायज़ है। और अगर रिश्तेदारी के नाते ग़ुस्ल, कफ़न और दफ़न करे तो भी अनुमति है, लेकिन किसी भी काम में सुन्नत तरीक़े का पालन न करे; पानी ऐसे बहाए जैसे गंदगी धोई जाती है, किसी चिथड़े में लपेट कर तंग गड्ढे में दबा दे।

हे मेरे रब! मैं तेरी पनाह चाहता हूँ कुफ़्र और काफ़िरों से। (त) दुर्रे मुख़्तार में है:

(मुसलमान अपने रिश्तेदार को, जैसे मामा को [जो असली काफ़िर हो], ग़ुस्ल, कफ़न और दफ़न करे। जहाँ तक मुर्तद का सवाल है, उसे कुत्ते की तरह किसी गड्ढे में डाल दिया जाए [ज़रूरत पड़ने पर]। यदि उसका कोई और रिश्तेदार हो तो बेहतर है कि उन्हें सौंप दिया जाए। बिना सुन्नत का पालन किए ग़ुस्ल और कफ़न-दफ़न करे। उसे किसी अशुद्ध कपड़े की तरह धोए, चिथड़े में लपेटे और गड्ढे में डाल दे। [अंत]। मैं कहता हूँ: बहर के शब्दों में 'हफ़ीरह' [गड्ढा] है। तहतावी ने कहा...

(मुसलमान अपने रिश्तेदार को) जैसे मामा को (असली काफ़िर को) ग़ुस्ल, कफ़न और दफ़न करे। रहा मुर्तद, तो उसे किसी गड्ढे में कुत्ते की तरह दबा दे (ज़रूरत के समय)। तो अगर उसका कोई और रिश्तेदार है तो बेहतर यह है कि उन्हें दे दे (बिना सुन्नत का पालन किए ग़ुस्ल और कफ़न-दफ़न करे)। तो किसी नापाक कपड़े की तरह धोए और किसी चिथड़े में लपेट कर किसी गड्ढे में डाल दे। [अंत]। मैं कहता हूँ: बहर की इबारत में...

1. दुर्रे मुख़्तार, जनाज़ा नमाज़ का अध्याय, मुज्तबाई प्रेस, दिल्ली, 1/123
2. बहर-उर-राईक़, जनाज़ा की किताब, एच.एम. सईद कंपनी, कराची, 2/193

الجواب: اس کے مذہب وملت والوں کو دے دیا جائے کہ جو چاہیں کریں، اور اگر کفار میں بھی کوئی نہ ملے تو جیفہ سگ کی طرح دفع عفونت کے لیے کسی گڑھے میں دبا دیں۔ تفصیل مسئلہ یہ ہے کہ کافر دو قسم ہے: اصلی و مرتد۔ اصلی وہ کہ ابتداء سے کافر ہو اور مرتد وہ کہ بعد اسلام کافر ہوا یا با وصف دعوی اسلام عقائد کفر رکھے : جیسے آج کل نیچری مرتد کے لیے تواصلاً نہ غسل، نہ کفن، نہ دفن، نہ مسلمان کے ہاتھ سے کسی کافر کو دیا جائے اگرچہ وہ اسی کے مذہب کا ہو، اگرچہ اس کا باپ یا بیٹا ہو، بلکہ اس کا علاج وہی مرا دار کتے کی طرح دبادینا ہے، اور کافر اصلی سے اگر مسلمان کو قرابت نہیں تو اس کے بھی کسی کام میں شریک نہ ہو بلکہ چھوڑ دیا جائے کہ اس کا عزیز قریب یا مذہب والے جو چاہے کریں، اور وہ بھی نہ ہوں تو علاج مثل علاج مرتد ہے، اور اگر مسلمان کو اس سے قرابت قریبہ ہے تاہم جب کوئی قریب کافر موجود ہو بہتر یہی ہے کہ اس کی تجہیز میں شرکت نہ کرے، ہاں ادائے حق قرابت کے لئے اگر اسکے جنازہ کے ساتھ جنازہ سے دور دور چلا جائے تو مضائقہ نہیں، اور اگر مسلمان ہی قریب ہے کوئی کافر قرابت دار نہیں جب بھی مسلمان پر اس کی تجہیز و تکفین ضروری نہیں، اگر اس کے ہم مذہب کافروں کو دے دے یا بے غسل و کفن کسی گڑھے میں پھنکوا دے، جائز ہے۔ اور اگر بلحاظ قرابت غسل و کفن و دفن کرے تو بھی اجازت ہے مگر کسی کام میں رعایت طریقہ مسنونہ نہ کرے، نجاست دھونے کی طرح پانی بہا دے، کسی چیتھڑے میں لپیٹ کر تنگ گڑھے میں دبا دے۔

رب انی اعوذ بک من الکفر و الکافرین (اے رب! میں تیری پناہ لیتا ہوں کفر اور کافروں سے۔ت)

در مختار میں ہے:

(يغسل المسلم ويكفن ويدفن قريبه) كخاله (الكافر الاصلى) اما المرتد فيلقى فى حفرة كالكلب (عند الاحتياج) فلوله قريب فالا ولى تركه لهم من غير مراعاة السنة فيغسله غسل الثواب النجس ويلفه فى خرقه ويلقيه فى حفرة اه اقول ولفظ البحر حفيرة اه قال الطحطاوى

(مسلمان اپنے قرابت دار) جیسے ماموں (کافر اصلی کو) غسل وکفن دفن کرے، رہا مرتد تو اسے کسی گڑھے میں کتے کی طرح دبا دے (ضرورت کے وقت) تو اگر اس کا کوئی اور قرابت دار ہے تو بہتر یہ ہے کہ انھیں دے دے (بغیر رعایت سنت کے غسل اور کفن دفن کرے) تو کسی ناپاک کپڑے کی طرح دھوئے اور کسی چیتھڑے میں لپیٹ کر کسی گڑھے میں ڈال دیں اھ اقول بحر کی عبارت میں

1 در مختار باب صلوة الجنائز مطبع مجتبائی دہلی ۱/ ۱۲۳ 2 بحر الرائق کتاب الجنائز ایچ ایم سعید کمپنی کراچی ۲/ ۱۹۳

Fatawa Razawiya Volume 9

[Left box - Arabic Text] In Hashiya al-Maraqi, i.e., without a niche (Lahad) or expansion. 1 It is mentioned in al-Idah and Maraqi al-Falah regarding a trench, and throwing him into a pit without placement like a carcass out of consideration for the right of kinship, or handing over the relative to the people of his faith, and following his funeral from afar. In it is an indication that an apostate is not enabled for anyone to wash him because he has no faith, so he is thrown like the carcass of a dog into a pit. 2 Summarized. And in Radd al-Muhtar, his saying: 'He washes the Muslim' means the permissibility, for among the conditions for the obligation of washing is that the deceased be a Muslim 3 etc.

[Right box - Urdu Translation/Explanation] 'Hafira' is a narrow pit. Tahtawi said in Hashiya Maraqi al-Falah, meaning without a niche (Lahad) and widening. In al-Idah and Maraqi al-Falah, it is stated to wash him like a dirty cloth and give a shroud in an ordinary cloth and put him in some pit like a carcass so that the right of kinship is observed, or the relative hands him over to his co-religionists and himself follows the funeral from a distance. And in this, there is an indication that an apostate is not given to anyone for washing because he has no relation or connection with them, so he will be thrown in some pit like a dog. Summarized... It is in Radd al-Muhtar that for a Muslim to wash an original infidel relative is only permissible because one of the conditions for the obligation of washing is that the deceased is a Muslim, etc. (T)

[Middle Box - Persian & Urdu] In 'Kashf al-Ghita', it is from 'Jami' al-Saghir' of Imam Sadr al-Shaheed: If there is no close relative, the body should be handed over to the people of his religion so that they may do with him as they wish. 4 And Allah Almighty knows best. (T)

Problem 110: It is a custom among people that after burying the deceased, they come to his house and say 'recite Fatiha', then they recite something and raise their hands. How is this act? Explain, you will be rewarded.

Answer: Fundamentally, there is no harm in this act as it is sending rewards (Isal-e-Thawab) for the assistance of the deceased and a prayer for their forgiveness.

---

1. Hashiya al-Tahtawi on Maraqi al-Falah, Section: The Sultan is more entitled to the prayer, Nur Muhammad Kar-khana Tijarat-e-Kutub, Karachi, p. 330.
2. Maraqi al-Falah with Hashiya al-Tahtawi, Section: The Sultan is more entitled to the prayer, Nur Muhammad Kar-khana Tijarat-e-Kutub, Karachi, p. 330.

3. Radd al-Muhtar, Chapter: Funeral Prayer, Idarat al-Tiba'at al-Misriyya, Egypt, 1/597.
4. Kashf al-Ghita, Section: Burial of the Deceased, Matba' Ahmadi, Delhi, p. 47.

फ़तावा रज़विया खंड 9

[बायां बॉक्स - अरबी पाठ] हाशिया अल-मराक़ी में, यानी बिना लहद (ताक) या विस्तार के। १ ईज़ाह और मराक़िल फ़लाह में एक खंदक के बारे में उल्लेख है, और रिश्तेदारी के हक के कारण उसे बिना रखे मुर्दार की तरह एक गढ़े में फेंकना, या रिश्तेदार को उसके धर्म के लोगों को सौंप देना, और दूर से उसके जनाज़े के पीछे चलना। इसमें एक संकेत है कि एक मुर्तद (धर्मत्यागी) को किसी के लिए ग़ुस्ल (स्नान) कराने के लिए नहीं दिया जाता क्योंकि उसका कोई धर्म नहीं है, इसलिए उसे कुत्ते के शव की तरह एक गढ़े में फेंक दिया जाता है। २ संक्षेप में। और रद-उल-मुहतार में, उनका कहना: 'वह मुसलमान को नहलाता है' का अर्थ अनुमेयता है, क्योंकि ग़ुस्ल के वाजिब होने की शर्तों में मय्यत का मुसलमान होना है ३ आदि।

[दायां बॉक्स - उर्दू अनुवाद/व्याख्या] 'हफ़ीरा' एक तंग गढ़ा है। तहतावी ने हाशिया मराक़िल फ़लाह में कहा, यानी बिना लहद और कुशादगी के। ईज़ाह और मराक़िल फ़लाह में है कि उसे किसी नापाक कपड़े की तरह धोए और किसी मामूली कपड़े में कफ़न देकर किसी गढ़े में मुर्दार की तरह डाल दे ताकि रिश्तेदारी के हक़ का लिहाज़ हो जाए या रिश्तेदार उसे उसके धर्म वालों को दे दे और खुद दूर से जनाज़े के पीछे चले, और इसमें इस बात की ओर इशारा है कि मुर्तद (धर्मत्यागी) को ग़ुस्ल के लिए किसी को न दे क्योंकि उसका कोई धर्म नहीं है तो कुत्ते की तरह किसी गढ़े में डाल देगा। संक्षिप्त में... रद-उल-मुहतार में है कि मुसलमान का काफ़िर-ए-असली रिश्तेदार को ग़ुस्ल देना सिर्फ जायज़ है क्योंकि ग़ुस्ल के वाजिब होने की शर्तों में यह है कि मय्यत मुसलमान हो आदि (त)

[मध्य बॉक्स - फारसी और उर्दू] 'कश्फ़ुल ग़िता' में जामे' सगीर इमाम सद्र शहीद से है: अगर कोई मुसलमान रिश्तेदार न हो तो उसे उसके धर्म वालों को दे दिया जाएगा कि वे उसके साथ जो चाहें करें। ४ वल्लाहु तआला आलम (त)

मसला ११०: लोगों में रिवाज है कि मय्यत को दफ़न करके उसके घर आते हैं और कहते हैं 'फ़ातिहा पढ़ लो', फिर कुछ पढ़ते हैं और हाथ उठाते हैं, यह काम कैसा है? बयान करें सवाब पाएँ।

जवाब: असल में इस काम में कोई हर्ज नहीं क्योंकि ईसाल-ए-सवाब से मुर्दों की मदद और उनके लिए मग़फ़िरत (क्षमा) की दुआ है।

1. हाशिया अत-तहतावी अल मराक़िल फ़लाह, फ़स्ल: सुल्तान नमाज़ का ज़्यादा हक़दार है, नूर मुहम्मद कारख़ाना तिजारत-ए-कुतुब, कराची, पृ. ३३०।
2. मराक़िल फ़लाह मअ हाशिया अत-तहतावी, फ़स्ल: सुल्तान नमाज़ का ज़्यादा हक़दार है, नूर मुहम्मद कारख़ाना तिजारत-ए-कुतुब, कराची, पृ. ३३०।
3. रद-उल-मुहतार, बाब: नमाज़-ए-जनाज़ा, इदारातुल तिबा'अतुल मिस्रिया, मिस्र, १/५९७।
4. कश्फ़ुल ग़िता, फ़स्ल: दफ़्न-ए-मय्यत, मतबा' अहमदी, दिल्ली, पृ. ४७।

पृष्ठ ३९३ का ९४८

فی حاشیۃ المراقی ای بدون لحد ولا توسعۃ ۱ اھ وفي الایضاح ومراقي الفلاح فی خرفة ، والقاه فی حفرة من غیر وضع کالجیفة مراعاة لحق القرابة او دفع القریب الی اھل ملته، ویتبع جنازته من بعید، وفیه اشارة الی ان المرتد لایمکن منه احد لغسله لان لاملة له فیلقی کجیفة کلب فی حفرة ۲ اھ مختصرا وفی رد المحتار قوله یغسل المسلم ای جواز لا ن من شروط وجوب الغسل کون المیت مسلما ۳ الخـ

حفیرہ (تنگ گڑھا) ہے۔ طحطاوی نے حاشیہ مراقی الفلاح میں کہا یعنی لحد اور کشادگی کے بغیر اھ ایضاح اور مراقی الفلاح میں ہے اسے کسی ناپاک کپڑے کی طرح دھوئے اور کسی معمولی کپڑے میں کفن دے کر کسی گڑھے میں مردار کی طرح ڈال دے تاکہ حق قرابت کی رعایت ہو جائے یا قرابت دار اس کے اہل مذہب کو دے دے اور خود دور سے جنازے کے پیچھے چلا جائے۔ اور اس میں اس بات کی طرف اشارہ ہے کہ مرتد کو غسل کے لئے کسی کو نہ دے اس لئے کہ اس سے کوئی رشتہ و تعلق نہیں تو کتے کی طرح کسی گڑھے میں ڈال دے گا اھ مختصراً۔۔۔ ردالمحتار میں ہے مسلمان کا کافر اصلی قرابت دار کو غسل دینا صرف جائز ہے اس لئے کہ وجوب غسل کی شرطوں میں یہ ہے کہ میت مسلم ہوالخ (ت)

کشف الغطاء میں جامع صغیر امام صدر شہید سے ہے: اگر قریب نباشد دفع کردہ شود باھل دین او تاہر چہ خواہند بوی کنند ٤ ۔ واللہ تعالٰی اعلم اگر کوئی مسلمان قرابت دار نہ ہو تو اس کے اہل مذہب کو دے دیا جائے گا کہ اس کے ساتھ جو چاہیں کریں۔ واللہ تعالٰی اعلم (ت)

مسئلہ ۱۱۰: لوگوں میں رسل ہے کہ میت کو دفن کرکے اس کے مکان میں آتے ہیں اور کہتے ہیں فاتحہ پڑھ لو، پھر کچھ پڑھتے ہیں اور ہاتھ اٹھاتے ہیں، یہ فعل کیسا ہے؟ بینوا توجروا۔

الجواب: اصل اس فعل میں کوئی حرج نہیں کہ ایصالِ ثواب سے اموات کی اعانت اور ان کے لئے دعائے مغفرت۔

---

۱ حاشیۃ الطحطاوی علی مراقی الفلاح فصل السلطان احق بصلوۃ نور محمد کار خانہ تجارت کتب کراچی ص ۳۳۰ ۲ مراقی الفلاح مع حاشیۃ الطحطاوی فصل السلطان احق بصلوۃ نور محمد کار خانہ تجارت کتب کراچی ص ۳۳۰ ۳ رد المحتار باب صلوۃ الجنائز ادارۃ الطباعۃ المصریہ مصر ۱ / ۵۹۷ ٤ کشف الغطاء فصل دفن میت مطبع احمدی دہلی ص ۴۷

Fatawa Razawiyya Volume 9

And providing comfort and condolences to the survivors are all actions commended and permissible by Sharia.

Arabic Text

It was narrated by at-Tirmidhi from the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) that he said: "Whoever consoles a person in distress will have a reward similar to theirs."[1] And also from him (peace and blessings of Allah be upon him): "Whoever consoles a woman who has lost her child, will be clothed with a garment in Paradise."[2] And Ibn Majah and al-Bayhaqi narrated with a good chain that the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) said: "There is no believer who consoles his brother in an affliction but Allah the Exalted will clothe him with garments of honor on the Day of Resurrection."[3]

Urdu Translation

The narration of at-Tirmidhi from the Holy Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) is: "Whoever consoles a person in distress, he shall receive a reward similar to them." Another narration from Imam at-Tirmidhi himself from the Holy Presence (peace and blessings of Allah be upon him) is this: "Whoever consoles a woman distressed by the death of her child, she will be dressed in a fine sheet in Paradise." Ibn Majah and al-Bayhaqi narrated with a good chain, the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) says: "Any believer who consoles his brother in a calamity, God the Exalted will clothe him with a garment of honor and dignity on the Day of Resurrection." (T)

Allama Ibn al-Hajj states in Al-Hilyah:

Arabic Text

Condolence is recommended (mustahabb), as the Legislator (peace be upon him) has encouraged it in more than one hadith. Among them is what was narrated by Ibn Majah and al-Bayhaqi with a good chain... until he said: It is good to combine the prayer for abundant reward for his affliction with a prayer for mercy and forgiveness for the deceased. The Legislator (peace and blessings of Allah be upon him) has

Urdu Translation

Condolence is recommended. The Lawgiver (peace be upon him) has encouraged it in several hadiths. One of those hadiths is the one narrated by Ibn Majah and al-Bayhaqi with a good chain (after presenting the said hadith, he said): "And it is good to pray for a great reward for the afflicted person, along with praying for mercy and forgiveness for their deceased." The Lawgiver (peace be upon him) has also alerted and warned us

Arabic Text	Urdu Translation
alerted us to this purpose in more than one hadith[4] etc. summarized.	about this specific purpose in several hadiths, etc. summary (T)

[1] Jami' at-Tirmidhi, Chapters on Funerals, Kutub Khana Rashidiyah Delhi, 1/17 [2] Jami' at-Tirmidhi, Chapters on Funerals, Kutub Khana Rashidiyah Delhi, 1/17 [3] Sunan Ibn Majah, Chapter on the reward of one who consoles an afflicted person, H.M. Saeed Company Karachi, p. 116 [4] Hilyat al-Mahalli Sharh Munyat al-Musalli

फतवा रज़विय्या खंड 9

और शोक संतप्त लोगों को सांत्वना और संवेदना देना शरीयत की दृष्टि से सराहनीय और जायज़ है।

अरबी पाठ

तिर्मिज़ी ने नबी (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) से रिवायत की कि उन्होंने फरमाया: "जो किसी मुसीबतज़दा की ताज़ियत (संवेदना) करे तो उसे भी उसी की तरह अज्र (पुण्य) मिले।"[1] और उन्हीं (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) से है: "जो औलाद की मौत पर किसी मुसीबतज़दा औरत की ताज़ियत करे उसे जन्नत में उम्दा चादर पहनाई जाएगी।"[2] इब्न माजा और बैहकी ने हसन सनद के साथ रिवायत की कि नबी (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने फरमाया: "जो मोमिन भी किसी मुसीबत पर अपने भाई की ताज़ियत करे, अल्लाह तआला उसे कयामत के दिन इज्ज़त व करामत का लिबास पहनाएगा।"[3]

उर्दू अनुवाद

तिर्मिज़ी की रिवायत नबी करीम (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) से है: "जो किसी मुसीबतज़दा की ताज़ियत करे तो उसे भी उसी की तरह अज्र मिले।" इमाम तिर्मिज़ी की ही दूसरी रिवायत हुज़ूर अकदस (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) से यह है: "जो मौत-ए-फरज़ंद (संतान की मृत्यु) की मुसीबतज़दा किसी औरत को ताज़ियत करे उसे जन्नत में उम्दा चादर पहनाई जाए।" इब्न माजा और बैहकी ने हसन सनद के साथ रिवायत की, रसूल अल्लाह (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) फरमाते हैं: "जो मोमिन भी किसी मुसीबत पर अपने भाई की ताज़ियत करे खुदा तआला उसे कयामत के दिन इज्ज़त व करामत का लिबास पहनाएगा।" (त)

अल्लामा इब्न अल-हाज्ज हिल्या में फरमाते हैं:

अरबी पाठ

ताज़ियत मुस्तहब (पसंदीदा) है, जैसा कि शारेअ (शासक/कानून देने वाला - सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने कई हदीसों में इसकी तरग़ीब (प्रोत्साहन) दी है। उन्हीं में से वह है जिसे इब्न माजा और बैहकी ने हसन सनद के साथ रिवायत किया... आगे फरमाया: और बेहतर यह है कि मुसीबतज़दा के लिए अज़ीम सवाब की दुआ करने

उर्दू अनुवाद

ताज़ियत मुस्तहब है, शारेअ अलैहिस्सलाम ने कई हदीसों में इसकी तरग़ीब दी है, उनमें से एक हदीस वह है जिसे इब्न माजा और बैहकी ने हसन सनद के साथ रिवायत किया (हदीस-ए-मज़कूर पेश करने के बाद फरमाया) और अच्छा यह है कि मुसीबतज़दा के लिए अज़ीम सवाब की दुआ करने के साथ उसके मुर्दे के लिए रहमत व

अरबी पाठ	उर्दू अनुवाद
के साथ-साथ उसके मुर्दे के लिए रहमत व मग़फ़िरत की दुआ भी करे। शारेअ (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने इस खास मक़सद पर हमें कई हदीसों में मुतन्बे किया है[4] इत्यादि सारांश।	मग़फ़िरत की दुआ भी करे। इस खास मकसद पर भी शारेअ अलैहिस्सलाम ने कई हदीसों में हमें मुतन्बे और खबरदार किया है इत्यादि सारांश। (त)

[1] जामिअ़ अत-तिर्मिज़ी, अबवाबुल जनाइज़, कुतुब खाना रशीदिया दिल्ली, 1/17 [2] जामिअ़ अत-तिर्मिज़ी, अबवाबुल जनाइज़, कुतुब खाना रशीदिया दिल्ली, 1/17 [3] सुनन इब्न माजा, बाब मा जाआ फी सवाबि मन अ़ज़्ज़ा मुसाबन, एच.एम. सईद कंपनी कराची, पृ. 116 [4] हिल्या अल-महल्ली शरह मुन्या अल-मुसल्ली

पृष्ठ 394/948

فتاوٰی رضویہ جلد نہم

اور پسماندوں کو تسکین و تعزیت سب باتیں شرعاً محمود وروا۔

عربی عبارت	اردو ترجمہ
فقد روی الترمذی عن النبی صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم من عزی مصاباً فلہ مثل اجرہ 1 وایضاً عنہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم من عزی ثکلی کسی بردا فی الجنۃ 2 وابن ماجۃ والبیھقي باسناد حسن قال صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم مامن مؤمن یعزی اخاہ بمصیبۃ الا کساہ اللہ تعالٰی من حلل الکرامۃ یوم القیمۃ 3 -	ترمذی کی روایت نبی کریم صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم سے ہے: جو کسی مصیبت زدہ کی تعزیت کرے تو اسے بھی اسی کی طرح اجر ملے۔ امام ترمذی ہی کی دوسری روایت حضور اقدس صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم سے یہ ہے: جو مرگ فرزند کی مصیبت زدہ کسی عورت کو تعزیت کرے اسے جنت میں عمدہ چادر پہنائی جائے، ابن ماجہ اور بیہقی نے بسند حسن روایت کی رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم فرماتے ہیں: جو مومن بھی کسی مصیبت پر اپنے بھائی کی تعزیت کرے خدا تعالٰی اسے قیامت کے دن عزت و کرامت کا لباس پہنائے گا (ت)

علامہ ابن الحاج حلیہ میں فرماتے ہیں:

عربی عبارت	اردو ترجمہ
التعزیۃ مستحب قد ندب الیہ الشارع في غیر ما حدیث ومن ذلك ماروی ابن ماجۃ و البیھقي بأسناد حسن الی ان قال وحسن	تعزیت مستحب ہے شارع علیہ السلام نے متعدد حدیثوں میں اس کی ترغیب دی ہے، ان میں سے ایک حدیث وہ ہے جسے ابن ماجہ اور بیہقی نے بسند حسن روایت کیا

عربی عبارت	اردو ترجمہ
ان یقرن مع الدعاء لہ بجزیل الثواب علی مصابہ لمیّتہ بالرحمۃ والمغفرۃ وقد نبھنا الشارع صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم علی ھذا المقصود في غیر ما حدیث 4 الخ اھ ملخصاً۔	(حدیث مذکور پیش کرنے کے بعد فرمایا) اور اچھا یہ ہے کہ مصیبت زدہ کے لئے عظیم ثواب کی دعا کرنے کے ساتھ اس کے مردے کیلئے رحمت و مغفرت کی دعا بھی کرے۔ اس خاص مقصد پر بھی شارع علیہ السلام نے متعدد حدیثوں میں ہمیں متنبہ اور خبردار کیا ہے الخ اھ تلخیص (ت)

1 جامع الترمذی ابواب الجنائز کتب خانہ رشیدیہ دہلی ۱/ ۱۷ 2 جامع الترمذی ابواب الجنائز کتب خانہ رشیدیہ دہلی ۱/ ۱۷ 3 سنن ابن ماجہ باب ماجاء في ثواب من عزی مصاباً ایچ ایم سعید کمپنی کراچی ص ۱۱۶ 4 حلیۃ المحلی شرح منیۃ المصلی

Fatawa Razvia, Volume 9

And Mian Ishaq Sahib Dehlavi admits that raising hands is generally among the etiquettes of prayer. Therefore, there is no harm in it at this time either.

It is in Al-Arba'een:

Issue 32: Regarding going for condolence of the deceased and reciting Surah Fatiha by raising both hands, is it permissible or not? Answer: Going for condolence of the deceased is permissible and praying for their forgiveness is recommended, and similarly, praying for the well-being of the family of the deceased is recommended. However, raising hands for prayer at the time of condolence is apparently permissible because in the noble Hadith, raising hands in prayer is generally established. Thus, there is no harm at this time either. However, raising hands specifically for the prayer at the time of condolence is not narrated in the Hadith. (1) Ends summarized.

Issue 32: Is it permissible or not to go for condolence of the deceased and recite Surah Fatiha by raising both hands? Answer: Going for the condolence of the deceased is permissible, and praying for their forgiveness is recommended. Similarly, it is recommended to pray for the goodness of the family of the deceased. As for raising hands in prayer at the time of condolence, it is apparently permissible because raising hands in prayer is established generally within the noble Hadith, so there is no harm at this time either. However, raising hands specifically for the condolence prayer is not narrated in the Hadith. Ends summarized. (T)

And condolence after burial is better:

In Al-Jawhara then Radd al-Muhtar: It is better after burial than before it, etc. and similarly, it was mentioned by Al-Tahtawi in the marginalia of Maraqi al-Falah.

In Al-Jawhara then in Radd al-Muhtar: Condolence after burial is better than condolence before burial, etc. Similarly, Sayyid Tahtawi mentioned in the marginalia of Maraqi al-Falah. (T)

And it is disliked (Makruh) near the grave:

In Al-Durr al-Mukhtar: Condolence for the second time and near the grave is disliked (Makruh). (3)

In Al-Durr al-Mukhtar: Offering condolence for the second time and similarly offering condolence near the grave is disliked. (T)

In Al-Hilya:

What Ibn Shahin narrated from Ibrahim al-Nakha'i testifies to it.	**The report narrated by Ibn Shahin from Ibrahim al-Nakha'i is a witness to this.**

(1) Arba'een Mian Ishaq Dehlavi (2) Radd al-Muhtar, Chapter of Funeral Prayers, Idarat al-Tiba'at al-Misriyya, Egypt 1/602 (3) Al-Durr al-Mukhtar, Chapter of Funeral Prayers, Matba' Mujtabai Delhi 1/126

फ़तावा रज़विया, जिल्द 9

और मियां इसहाक साहब देहलवी स्वीकार करते हैं कि हाथ उठाना सामान्यतः दुआ के शिष्टाचार में से है। तो इस समय भी कोई हर्ज नहीं है।

अरबईन में है:

मसला 32: मय्यत की ताज़ियत (शोक संवेदना) के लिए जाना और दोनों हाथ उठाकर सूरह फ़ातिहा पढ़ना जायज़ है या नहीं? उत्तर: मय्यत की ताज़ियत के लिए जाना जायज़ है और उसके लिए मग़फ़िरत (क्षमा) की दुआ करना मुस्तहब (पसंदीदा) है, और इसी तरह मय्यत के घरवालों के लिए दुआ-ए-खैर करना भी मुस्तहब है। जहाँ तक ताज़ियत के समय दुआ में हाथ उठाने की बात है, तो ज़ाहिर यह है कि यह जायज़ है क्योंकि हदीस शरीफ में दुआ में हाथ उठाना सामान्य रूप से प्रमाणित है। अतः इस समय भी कोई हर्ज नहीं है। लेकिन विशेष रूप से ताज़ियत की दुआ के समय हाथ उठाना हदीस में वर्णित नहीं है। (1) इति सारांश।

मसला 32: मय्यत की ताज़ियत में जाना और दोनों हाथ उठाकर सूरह फ़ातिहा पढ़ना जायज़ है या नहीं? उत्तर: मय्यत की ताज़ियत के लिए जाना जायज़ है और उसके लिए मग़फ़िरत की दुआ करना मुस्तहब है, इसी तरह अहल-ए-मय्यत (परिवार) के लिए दुआ-ए-खैर करना भी मुस्तहब है। रहा ताज़ियत के वक़्त की दुआ में हाथ उठाना, तो ज़ाहिर यह है कि जायज़ है, इसलिए कि हदीस शरीफ के अंदर दुआ में हाथ उठाना मुतलक़न (सामान्यतः) साबित है तो इस वक़्त भी मुज़ायका (हर्ज) नहीं, मगर ख़ास वक़्त-ए-ताज़ियत की दुआ में हाथ उठाना हदीस में मनक़ूल (वर्णित) नहीं है। इति सारांश (त)

और ताज़ियत दफ़्न के बाद बेहतर है:

'अल-जौहरा' फिर 'रद-उल-मुहतार' में है: यह (ताज़ियत) दफ़्न के बाद, उससे पहले की तुलना में अफ़ज़ल (बेहतर) है, इत्यादि। और इसी के समान तह्तावी ने 'हाशिया मराक़ी अल-फ़लाह' में उल्लेख किया है।

जौहरा फिर रद-उल-मुहतार में है: दफ़्न से पहले ताज़ियत से बेहतर बाद-ए-दफ़्न ताज़ियत है इत्यादि। इसी के मिसल (समान) सैय्यद तह्तावी ने हाशिया मराक़ी अल-फ़लाह में ज़िक्र किया है। (त)

और क़ब्र के पास मकरूह (नापसंद) है,

'अल-दुर्रुल मुख़्तार' में है: दोबारा ताज़ियत करना और क़ब्र के पास ताज़ियत करना मकरूह है। (3)

दुर्र-ए-मुख़्तार में है: दूसरी बार ताज़ियत करना यूँ ही क़ब्र के पास ताज़ियत करना मकरूह है। (त)

हिलिया में है:

इसके लिए वह गवाह है जो इब्न शाहीन ने निकाला (रिवायत की)।

इस पर शाहिद (गवाह) वह असर (कथन) है जो इब्न शाहीन ने इब्राहिम नखई से...

(1) अरबईन मियां इसहाक देहलवी (2) रद-उल-मुहतार, बाब सलातुल जनाइज़, इदारतुल तिबाअतुल मिस्रिया, मिस्र 1/602 (3) दुर्र-ए-मुख़्तार, बाब सलातुल जनाइज़, मतब' मुज्तबाई दिल्ली 1/126

पृष्ठ 395/948

فتاوٰی رضویہ، جلد نہم

اور میاں اسحاق صاحب دہلوی کو تسلیم ہے کہ ہاتھ اٹھانا مطلقاً دعا کے آداب سے ہے۔ تو اس وقت بھی مضائقہ نہیں رکھتا۔

اربعین میں ہے:

مسئلہ ۳۲: در تعزیت میت رفتن و ہر دو دست برداشتہ سورہ فاتحہ خواند جائز است یا نہ؟ جواب: رفتن برائے تعزیت میت جائز است و دعائے مغفرت برائے او نمودن مستحب است و ہمچنین دعائے خیر برائے اہل میت اما دست برداشتن برائے دعا وقت تعزیت ظاہراً جواز است زیرا کہ در حدیث شریف رفع یدین در دعا مطلقاً ثابت شدہ پس دریں وقت ہم مضائقہ نہ دار دلیکن تخصیص آں برائے دعا وقت تعزیت ماثور نیست ۱ انتہی ملخصاً۔

مسئلہ ۳۲: میت کی تعزیت میں جانا اور دونوں ہاتھ اٹھا کر سورہ فاتحہ پڑھنا جائز ہے یا نہیں؟ جواب: میت کی تعزیت کے لئے جانا جائز ہے اور اس کے لئے مغفرت کی دعا کرنا مستحب ہے اسی طرح اہل میت کے لئے دعائے خیر کرنا بھی مستحب ہے۔ رہا تعزیت کے وقت کی دعا میں ہاتھ اٹھانا، تو ظاہر یہ ہے کہ جائز ہے، اس لئے کہ حدیث شریف کے اندر دعا میں ہاتھ اٹھانا مطلقاً ثابت ہے تو اس وقت بھی مضائقہ نہیں مگر خاص وقت تعزیت کی دعا میں ہاتھ اٹھانا حدیث میں منقول نہیں ہے۔ انتہی ملخصاً (ت)

اور تعزیت بعد دفن کے اولٰی ہے:

في الجوهرة ثم ردالمحتار هي بعد الدفن افضل منها قبله ۲ الخ و بمثله ذكر الطحطاوی فی حاشية مراقي الفلاح۔

جوہرہ پھر ردالمحتار میں ہے: قبل دفن تعزیت سے بہتر بعد دفن تعزیت ہے الخ اسی کے مثل سید طحطاوی نے حاشیہ مراقی الفلاح میں ذکر کیا ہے۔ (ت)

اور قبر کے پاس مکروہ ہے،

في الدرالمختار وتكره التعزية ثانيا وعند القبر ۳۔

در مختار میں ہے: دوسری بار تعزیت کرنا یوں ہی قبر کے پاس تعزیت کرنا مکروہ ہے۔ (ت)

حلیہ میں ہے:

يشهد له ما اخرج ابن شاہين اس پر شاہد اثر ہے جو ابن شاہین نے ابراہیم نخعی

۱ اربعین میاں اسحاق دہلوی ۲ ردالمحتار باب صلوۃ الجنائز ادارۃ الطباعۃ المصریۃ مصر ۱/ ۶۰۲ ۳ در مختار باب صلوۃ الجنائز مطبع مجتبائی دہلی ۱/ ۱۲۶

Fatawa Razawiyya Volume 9

| Narrated from Ibrahim that offering condolences at the grave is an innovation (Bid'ah)[1]. End. | It is narrated from him that offering condolences at the grave is an innovation. End (T) |

| It is stated in Madkhal Ibn al-Hajj: |

| The place of condolence, in terms of perfect etiquette, is when the guardian (wali) of the deceased returns to his home[2]. | The most appropriate time for condolences, as a matter of perfect etiquette, is when the guardian of the deceased returns home. (T) |

| And it is better and more virtuous for it to be on the first day, |

| In al-Durr al-Mukhtar: "The first of them is the best of them[3]" etc., meaning the days of condolence. | In Durr al-Mukhtar it is: Among the days of condolence, the first day is best, etc. (T) |

| And going to the house of the deceased's guardians for condolence is also proven by Sunnah, |

| Abu Dawud and al-Nasa'i narrated in a hadith that [the Prophet], peace and blessings of Allah be upon him, said to our lady al-Batul al-Zahra, may Allah be pleased with her: "What made you leave your house, O Fatima?" She said: "I went to the family of this deceased person, so I prayed for mercy for them and offered condolences for their deceased[4]." - And in al-Sunan al-Sihah by Ibn al-Sakan, narrated from Abu Huraira, from the Prophet, peace and blessings of Allah be upon him: "Whoever is informed of a funeral and comes to its family and offers condolences, Allah will record for him a Qirat [of reward][5]." The Hadith. And in al-Nasa'i from Mu'awiya ibn Qurra from his father. | Abu Dawud and al-Nasa'i narrated in a hadith that the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) said to Sayyida Batul Zahra (may Allah be pleased with her): "Fatima, why did you go out of your house?" She submitted: "I went to the family of this deceased, prayed for mercy for them and offered condolences on the calamity of the deceased." And in Ibn Sakan's Sunan Sihah, there is a narration from Hazrat Abu Huraira from the Holy Prophet (peace and blessings of Allah be upon him): "Whoever receives news of a funeral should go to

the family of the deceased and offer condolences, Allah Almighty will write one Qirat of reward for him." The Hadith. |

1. Radd al-Muhtar, referring to Hulyah, Chapter: Prayer for Funerals, Idarat al-Tiba'at al-Misriyya, Egypt, 1/602
2. Al-Madkhal by Ibn al-Hajj, page [of] the Grave, Dar al-Kitab al-Arabi, Beirut, 3/77
3. Durr al-Mukhtar, Chapter: Prayer for Funerals, Mujtabai Press, Delhi, 1/126
4. Sunan Abi Dawud, Chapter: Condolence, Aftab-e-Alam Press, Lahore, 2/89; Sunan al-Nasa'i, Book of Funerals, Chapter: The Prohibition, Noor Muhammad Karkhana Tijarat Kutub, Karachi, 1/265
5. Al-Sunan al-Sihah, Imam Ibn al-Sakan

| इब्राहीम से रिवायत है कि कब्र के पास ताज़ियत (शोक व्यक्त करना) बिदअत है।[1] समाप्त। | इनसे रिवायत किया गया कि कब्र के पास ताज़ियत बिदअत है। समाप्त (त) |

| मदखल इब्नुल हाज में है: |

| कमाल-ए-अदब के तौर पर ताज़ियत का स्थान वह है जब मय्यत का वली अपने घर वापस आ जाए।[2] | कमाल-ए-अदब के तौर पर ताज़ियत का अवसर उस समय है जब वली-ए-मय्यत घर वापस आ जाए। (त) |

| और पहले दिन होना बेहतर और अफ़ज़ल (श्रेष्ठ) है, |

| दुर्रे मुख़्तार में है: "उनमें से पहला दिन सबसे बेहतर है[3]" आदि, यानी ताज़ियत के दिन। | दुर्रे मुख़्तार में है: ताज़ियत के दिनों में पहला दिन अफ़ज़ल है। आदि (त) |

| और ताज़ियत के लिए मय्यत के वारिसों के घर जाना भी सुन्नत से साबित है, |

| अबू दाऊद और नसई ने एक हदीस में रिवायत किया कि [नबी] सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने सैयदा बतूल ज़हरा रज़ियल्लाहु अन्हा से फ़रमाया: "ऐ फ़ातिमा! तुम्हें तुम्हारे घर से किस चीज़ ने निकाला?" उन्होंने कहा: "मैं इस मय्यत के घर वालों के पास गई थी, तो मैंने उनके लिए रहमत की दुआ की और उनके मय्यत पर उन्हें सांत्वना दी[4]।" - और इब्न सकन की 'सुनन सिह़ाह़' में हज़रत अबू हुरैरा से रिवायत है कि नबी करीम सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने फ़रमाया: "जिसे किसी जनाज़े की ख़बर दी गई और वह उसके परिवार के पास आया और उन्हें सांत्वना दी, तो अल्लाह उसके लिए एक 'कीरात' [सवाब] लिखेगा[5]।" हदीस। और नसई में मुआविया बिन कुर्रा से उन्होंने अपने पिता से। | अबू दाऊद और नसई ने एक हदीस में रिवायत किया कि रसुल अल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने सैयदा बतूल ज़हरा रज़ियल्लाहु अन्हा से फ़रमाया: "फ़ातिमा, तुम अपने घर से बाहर किस लिए गई थीं?" अर्ज़ की: "इस मय्यत वालों के यहाँ गई थी, उनके लिए रहमत की दुआ और मय्यत की मुसीबत पर ताज़ियत की।" और इब्न सकन की सुनन सिह़ाह़ में हज़रत अबू हुरैरा की रिवायत नबी करीम सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम से है: "जिसे किसी जनाज़े

की ख़बर मिले वह अहल-ए-मय्यत के पास जाकर उनकी ताज़ियत करे, अल्लाह तआला उसके लिए एक कीरात सवाब लिखेगा।" हदीस। |

1. रद-उल-मुहतार, ब-हवाला हुलिया, बाब सलात-उल-जनाइज़, इदारात-उत-तिबाअत-उल-मिस्रिया, मिस्र 1/602
2. अल-मदखल लि-इब्निल हाज, सफ़हा अल-कब्र, दार अल-किताब अल-अरबी, बैरुत 3/77
3. दुर्रे मुख़्तार, बाब सलात-उल-जनाइज़, मतबअ मुजतबाई दिल्ली 1/126
4. सुनन अबी दाऊद, बाब अत-ताज़ियत, आफ़ताब-ए-आलम प्रेस लाहौर 2/89; सुनन अन-नसई, किताब अल-जनाइज़, बाब अन-नही, नूर मुहम्मद कारख़ाना तिज़ारत कुतुब कराची 1/265
5. अस-सुनन अस-सिहाह, इमाम इब्न सकन

| عن ابراهیم التعزیة عند القبر بدعة[1] انتهیٰ۔ | سے روایت کیا کہ قبر کے پاس تعزیت بدعت ہے انتہی (ت) |

| مدخل ابن الحاج میں ہے: |

| موضع التعزیة علی تمام الادب اذا رجع ولی المیت الی بیتہ[2]۔ | کمال ادب کے طور پر تعزیت کا موقع اس وقت ہے جب ولی میت گھر واپس آجائے۔ (ت) |

| اور پہلے دن ہونا بہتر و افضل ہے، |

| فی الدرالمختار اولھا افضلھا[3] الخ یعنی ایام تعزیت۔ | در مختار میں ہے: ایام تعزیت میں پہلا دن افضل ہے الخ (ت) |

| اور تعزیت کے لئے اولیائے میت کے مکان پر جانا بھی سنت سے ثابت، |

| روی ابو داؤد والنسائی فی حدیث قال صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم لسیدتنا البتول الزھراء رضی اللہ تعالٰی عنھا ما خرجک من بیتک یا فاطمۃ قال اتیت اھل ھذا المیت فترحمت الیھم وعزیتھم بمیتھم[4] - وفی السنن الصحاح لابن سکن عن ابی ھریرۃ عن النبی صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم من اوذون بجنازۃ فاتی اھلھا فعزاھم کتب اللہ لہ قیراطا[5] الحدیث وللنسائی عن معویۃ بن قرۃ عن ابیہ | ابو داؤد اور نسائی نے ایک حدیث میں روایت کیا رسول اللہ صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم نے سیدہ بتول زہراء رضی اللہ تعالیٰ عنہا سے فرمایا: فاطمہ تم اپنے گھر سے باہر کس لئے گئی تھیں؟ عرض کی: اس میت والوں کے یہاں گئی تھی ان کے لئے رحمت کی دعا اور میت کی مصیبت پر تعزیت کی ۔ اور ابن سکن کی سنن صحاح میں حضرت ابو ہریرہ کی روایت نبی کریم صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم سے ہے: جسے کسی جنازہ کی خبر ملے وہ اہل میت کے پاس جا

کر ان کی تعزیت کرے اللہ تعالی اس کے لئے ایک قیراط ثواب لکھے الحدیث |

1. ردالمحتار بحوالہ حلیہ باب صلوۃ الجنائز ادارۃ الطباعۃ المصریۃ مصر ۱/ ۶۰۲
2. المدخل لابن الحاج صفحہ القبر دار الکتاب العربی بیروت ۳/ ۷۷
3. درمختار باب صلوۃ الجنائز مطبع مجتبائی دہلی ۱/ ۱۲۶
4. سنن ابی داؤد باب التعزیۃ آفتاب عالم پریس لاہور ۲/ ۸۹ ، سنن النسائی کتاب الجنائز باب النہی نور محمد کارخانہ تجارت کتب کراچی ۱/ ۲۶۵
5. السنن الصحاح، امام ابن سکن

Fatawa Rizvia, Volume 9

[Arabic Box 1]: It was narrated that the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) used to sit, and a group of his companions would sit with him. Among them was a man who had a young son. One day, the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) missed him and said, "Why do I not see so-and-so?" They said, "O Messenger of Allah! His young son whom you saw has died." So the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) met him and asked him about his son, and he informed him that he had died, so the Prophet offered him condolences. [Footnote 1: Hadith summarized].

[Urdu Box 1]: Nasa'i narrated from Mu'awiya bin Qurrah, from his father, that when the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) was present, some of his companions would sit with him. Among them was a man who had a young son. One day in the gathering, the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) did not see him and said: "What is the matter, so-and-so is not visible?" The companions submitted: "O Messenger of Allah! His young son whom your presence had seen has passed away." So the Holy Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) met him and asked about his son; he gave the news of the death, and the Prophet offered condolences to him. (Hadith summarized).

And the statement of Maulvi Ishaq was mentioned earlier that going for the purpose of offering condolences for the deceased is permissible. (Going for condolence of the deceased is permissible). And for three days, the guardians of the deceased are also permitted to sit in their home for condolence without committing any disliked acts or following the customs of non-believers, so that people may come to them and perform the act of condolence.

[Arabic Box 2]: In Al-Durr al-Mukhtar: There is no harm in offering condolences to his family and encouraging them to be patient, and in making food for them, and in sitting for it in other than a mosque for three days, the first of which is the best. [Footnote 2] etc.

[Urdu Box 2]: In Durr al-Mukhtar it is: There is no harm in offering condolences to the family of the deceased and encouraging them toward patience, and having food cooked for them, and if the family of the deceased sits for condolences in a place other than a mosque, there is no harm in that either, and the first day is best among the days of condolence etc.

In the Marginalia of Tahtawi on Maraqi al-Falah it is:

[Arabic Box 3]: It is said in Sharh al-Sayyid: There is no harm in sitting for it for up to three days without committing a forbidden act such as spreading expensive carpets and [providing] food from...

[Urdu Box 3]: In Sharh-e-Sayyid it is: There is no harm in sitting for condolences for up to three days, but no forbidden act should be committed such as spreading expensive carpets on behalf of the family of the deceased.

1. Sunan an-Nasa'i, Kitab al-Jana'iz, Bab fi al-Ta'ziyah, Nur Muhammad Karkhana Tijarat Kutub, Karachi, 1/296.
2. Durr al-Mukhtar, Bab Salat al-Jana'iz, Matba' Mujtabai, Delhi, 1/126.

फ़तावा रिज़विया, खंड 9

[अरबी बॉक्स 1]: यह रिवायत है कि नबी (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) जब बैठते थे, तो उनके सहाबा में से कुछ लोग उनके पास बैठते थे। उनमें एक व्यक्ति था जिसका एक छोटा बेटा था। एक दिन नबी (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने उन्हें नहीं पाया और पूछा, "मुझे फ़लां दिखाई क्यों नहीं दे रहे?" उन्होंने कहा, "हे अल्लाह के रसूल! उनका छोटा बेटा जिसे आपने देखा था, उसकी मृत्यु हो गई है।" तो नबी (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) उनसे मिले और उनके बेटे के बारे में पूछा, उन्होंने बताया कि उसकी मृत्यु हो गई है, तो नबी ने उन्हें सांत्वना दी। [पाद टिप्पणी 1: हदीस का सारांश]।

[उर्दू बॉक्स 1]: नसाई ने मुआविया बिन कुर्रह से, उन्होंने अपने पिता से रिवायत की है कि नबी करीम (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) जब तशरीफ़ फ़रमा होते तो उनके पास उनके सहाबा में से कुछ हज़रात बैठते। उनमें एक साहब थे जिनका एक कम उम्र बेटा था। एक दिन महफ़िल में हुज़ूर (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने उन्हें नहीं देखा, तो इरशाद फ़रमाया: "क्या बात है, फ़लां नज़र नहीं आ रहे?" सहाबा ने अर्ज़ किया: "या रसूल अल्लाह! उनका छोटा लड़का जिसे हुज़ूर ने देखा था, फ़ौत हो गया है।" तो नबी करीम (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने उनसे मुलाक़ात की और उनके बेटे के बारे में पूछा; उन्होंने मौत की ख़बर सुनाई, हुज़ूर ने उस पर उन्हें ताज़ियत (शोक संवेदना) दी। (हदीस संक्षेप में)।

और मौलवी इसहाक़ का क़ौल पहले ज़िक्र हुआ कि मय्यत की ताज़ियत के लिए जाना जायज़ है। (मय्यत की ताज़ियत के लिए जाना जायज़ है)। और तीन दिन तक मय्यत के वारिसों को भी अनुमति है कि वे बिना किसी नापसंदीदा काम के और काफ़िरों की रस्मों का पालन किए बिना अपने घर में ताज़ियत के लिए बैठें, ताकि लोग उनके पास आ सकें और ताज़ियत की रस्म अदा कर सकें।

[अरबी बॉक्स 2]: अद-दुर्र अल-मुख़्तार में: उसके परिवार को सांत्वना देने और उन्हें सब्र करने के लिए प्रोत्साहित करने, उनके लिए खाना बनाने और मस्जिद के अलावा किसी स्थान पर तीन दिनों तक बैठने में कोई बुराई नहीं है, जिनमें से पहला दिन सबसे उत्तम है। [पाद टिप्पणी 2] आदि।

[उर्दू बॉक्स 2]: दुर्रे मुख़्तार में है: इसमें कोई हर्ज़ नहीं कि मय्यत के घरवालों को ताज़ियत दें और सब्र की तरग़ीब (प्रेरणा) दें, और उनके लिए खाना पकवाएं और ताज़ियत के लिए अगर मय्यत के घरवाले मस्जिद के अलावा किसी जगह बैठें तो उसमें भी कोई हर्ज़ नहीं, और ताज़ियत के दिनों में पहला दिन अफ़ज़ल है आदि।

मराक़ी अल-फ़लाह पर तहतावी के हाशिये में है:

[अरबी बॉक्स 3]: शरह अल-सय्यद में कहा गया है: तीन दिन तक ताज़ियत के लिए बैठने में कोई हर्ज़ नहीं है, बशर्ते कि कोई वर्जित कार्य न किया जाए जैसे महँगे कालीन बिछाना और भोजन की व्यवस्था करना...

[उर्दू बॉक्स 3]: शरह-ए-सय्यद में है: तीन दिन तक ताज़ियत के लिए बैठने में हर्ज़ नहीं, मगर किसी ममनू (वर्जित) काम का इरतिकाब (करना) न हो जैसे मय्यत के घरवालों की तरफ़ से महँगे कालीन बिछाना।

1. सुनन अन-नसाई, किताबुल जनाइज़, बाबुफ़ि ताज़िया, नूर मोहम्मद कारख़ाना तिज़ारत कुतुब, कराची, 1/296।
2. दुर्रे मुख़्तार, बाब सलातुल जनाइज़, मतबा मुज्तबाई, दिल्ली, 1/126।

पृष्ठ 397 का 948

فتاوٰی رضویہ ، جلد نہم

کان نبی صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم اذا جلس یجلس الیہ نفر من اصحابہ فیھم رجل لہ ابن صغیر ففقدہ النبی صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم فقال مالی لا رأی فلا نا قالو یا رسول اللہ بنیہ الذی رأیتہ ھلك فلقیہ النبی صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم فسألہ عن بنیہ فأخبرہ انہ ھلك فعزاہ علیہ ۱ الحدیث اھ ملخصاً ۔

نسائی نے معاویہ بن قرہ سے انھوں نے اپنے والد سے روایت کی ہے نبی کریم صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم جب تشریف فرما ہوتے تو ان کے پاس ان کے صحابہ میں سے چند حضرات بیٹھتے، ان میں ایک صاحب تھے جن کا ایک کم سن فرزند تھا ایک روز مجلس میں حضور صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم نے ان کو نہ دیکھا، ارشاد فرمایا : کیا بات ہے فلاں نظر نہیں آرہا ہے ؟ صحابہ نے عرض کیا : یا رسول اللہ ! اس کا چھوٹا سا لڑکا جسے حضور نے دیکھا تھا فوت ہو گیا تو اس سے بنی کریم صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم نے ملاقات کر کے اس کے فرزند کے بارے میں پوچھا، اس نے موت کی خبر سنائی، حضور نے اس پر اس کی تعزیت فرمائی، الحدیث، اھ بتلخیص (ت)

اور مولوی اسحاق کا قول پہلے مذکور ہوا کہ رفتن برائے تعزیت میت جائز ست (تعزیت میت کے لئے جانا جائز ہے۔ ت) اور تین روز تک اولیائے میت کو بھی رخصت و اجازت ہے کہ بے ارتکاب مکروہات و اتباع رسوم کفار اپنے مکان میں تعزیت کے لئے بیٹھیں تاکہ لوگ ان کے پاس آئیں اور رسم تعزیت بجا لائیں۔

فی الدرالمختار لا بأس بتعزیۃ اھلہ و ترغیبھم فی الصبر و باتخاذ طعام لھم و بالجلوس لھا فی غیر مسجد ثلثۃ ایام و اولھا افضلھا ۲ الخ

درمختار میں ہے : اس میں حرج نہیں کہ اہل میت کو تعزیت کریں اور صبر کی ترغیب دیں اور ان کے لئے کھانا پکوائیں اور تعزیت کے لئے اگر اہل میت مسجد کے علاوہ کسی جگہ بیٹھیں تو اس میں بھی حرج نہیں، اور ایام تعزیت میں پہلا دن افضل ہے الخ (ت)

حاشیہ طحطاوی علی مراقی الفلاح میں ہے :

قال فی شرح السید و لا بأس بالجلوس لھا الی ثلثۃ ایام من غیرا رتکاب محظور من فرش البسط والاطعمۃ من

شرح سید میں ہے : تین دن تک تعزیت کے لئے بیٹھنے میں حرج نہیں مگر کسی ممنوع کام کا ارتکاب نہ ہو جیسے مکلّف فرش بچھانا، اہل میت کی جانب سے

1 سنن النسائی کتاب الجنائز باب فی التعزیۃ نور محمد کارخانہ تجارت کتب کراچی ۱ / ۲۹۶ 2 درمختار باب صلوٰۃ الجنائز مطبع مجتبائی دہلی ۱ / ۱۲۶

Fatawa Rizvia Volume 9

People of the deceased[1] ends.

Arrangement of food. (T)

Reported from Tajnis in Nahr al-Faiq:

There is no harm in sitting for condolence for three days, but sitting at the door of the house and spreading floor coverings on public paths is among the ugliest of deeds.[2] ends.

There is no harm in sitting for condolence for up to three days, but if this activity is done by spreading floor coverings at the door of the house on public streets, then it is very bad. ends (T)

It is quoted in Alamgiriyah from Zahiriyah:

There is no harm for the people of the calamity to sit in the house or in the mosque for three days while people come to them and offer condolences to them[3] etc.

There is no harm if the family of the deceased sits in the house or in the mosque for three days and people come to them and keep offering condolences etc. (T)

Rather, it is narrated from the Holy Prophet (may Allah's peace and blessings be upon him) himself that upon hearing the news of the martyrdom of Zayd, Ja'far, and Ibn Rawahah (may Allah be pleased with them), he sat in the mosque aggrieved and sorrowful, the companions would come and offer condolences as mentioned by Allama Zain in al-Bahr al-Raiq[4] (as Allama Zain bin Nujaym mentioned it in al-Bahr al-Raiq. T) and the Holy Prophet (may Allah's peace and blessings be upon him) did not forbid them from this matter.

The two Shaikhs (Bukhari and Muslim) narrated from the Mother of the Believers (may Allah be pleased with both of them) that when the Prophet (may Allah's peace and blessings be upon him) received the news of the killing of Ibn Harithah, Ja'far, and Ibn Rawahah, he sat and grief was visible on him,[5] the Hadith.

Bukhari and Muslim narrated from Mother of the Believers Siddiqah (may Allah be pleased with her) that when the Prophet (may Allah's peace and blessings be upon him) received the news of the martyrdom of Zayd bin Harithah, Ja'far and Abdullah bin Rawahah, when he sat down, the effect of grief was prominent on the master (peace be upon him), the Hadith. (T)

Sheikh Muhaqqiq (may Allah have mercy on him) says in the commentary: "Jalas" means the sitting of the Holy Prophet (may Allah's peace and blessings be upon him) and his...

[1] Hashiyah al-Tahtawi on Maraqi al-Falah, Section on carrying and burying, Noor Muhammad Factory of Trade Books Karachi, p. 339 [2] Hashiyah al-Tahtawi on Maraqi al-Falah with reference to al-Nahr al-Faiq, Noor Muhammad Factory of Trade Books Karachi, p. 339 [3] Fatawa Hindiyah and Mudhiyah connected with issues of condolence, Noorani Kutub Khana Peshawar 2/167 [4] Al-Bahr al-Raiq Kitab al-Janaiz, H.M. Saeed Company Karachi 2/192 [5] Sahih al-Bukhari Chapter: One who sits at the time of calamity, Qadimi Kutub Khana Karachi 1/173

फतवा-ए-रिज़विया जिल्द 9

अहल अल-मय्यित[1] अंत।

भोजन का प्रबंध होना। (त)

नहर अल-फ़ाएक में तजनीस से उद्धृत:

शोक के लिए तीन दिन बैठने में कोई हर्ज नहीं है, लेकिन घर के दरवाजे पर सार्वजनिक रास्तों पर कालीन बिछाना सबसे बुरी बुराइयों में से है।[2] अंत।

तीन दिन तक शोक के लिए बैठने में कोई हर्ज नहीं है, लेकिन अगर घर के दरवाजे पर आम रास्तों में फर्श बिछाकर यह काम हो तो बहुत बुरा है। अंत (त)

आलमगीरिया में ज़हीरिया से उद्धृत है:

शोक संतप्त लोगों के लिए घर या मस्जिद में तीन दिन बैठने में कोई हर्ज नहीं है, जबकि लोग उनके पास आते हैं और उन्हें सांत्वना देते हैं[3] आदि।

इसमें कोई हर्ज नहीं कि अहल-ए-मय्यित घर में या मस्जिद में तीन दिन बैठें और लोग उनके पास आते और ताज़ियत (शोक) करते रहें आदि (त)

बल्कि खुद हुज़ूर अकदस सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम से रिवायत है कि ज़ैद, जाफ़र और इब्न रवाहा रज़ियल्लाहु अन्हुम की शहादत की खबर सुनकर गमगीन और रंजीदा मस्जिद में तशरीफ़ रखी, सहाबा हाज़िर होते और ताज़ियत करते जाते[4] जैसा कि अल्लामा ज़ैन ने बह्र अल-राइक में ज़िक्र किया है (जैसा कि अल्लामा ज़ैन बिन नजीम ने इसे बह्र अल-राइक में ज़िक्र किया है। त) और हुज़ूर अकदस सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने उन्हें इस बात से मना नहीं फरमाया।

दोनों शेखों (बुखारी और मुस्लिम) ने उम्मुल मोमिनीन रज़ियल्लाहु अन्हा से रिवायत की है कि जब नबी करीम सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम को ज़ैद बिन हारिसा, जाफ़र और इब्न रवाहा की शहादत की सूचना मिली, जब तशरीफ़ रखी तो सरकार पर गम का असर नुमाया था,[5] हदीस।

बुखारी और मुस्लिम ने उम्मुल मोमिनीन सिद्दीका रज़ियल्लाहु अन्हा से रिवायत की है जब नबी करीम सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम को ज़ैद बिन हारिसा, जाफ़र और अब्दुल्लाह बिन रवाहा की शहादत की इत्तिला हुई जब तशरीफ़ रखी सरकार पर गम का असर नुमाया था, हदीस (त)

शेख मुहक्किक रहमतुल्लाह अलैहि शरह में फरमाते हैं: जलस (نشست) आँहज़रत सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम और उनके..

[1] हाशिया अत-तहतावी अली मराक़ी अल-फलाह, दफन और ले जाने का अध्याय, नूर मुहम्मद व्यापारिक पुस्तक कारखाना कराची, पृष्ठ 339 [2] हाशिया अत-तहतावी अली मराक़ी अल-फलाह, अन-नहर अल-फाएक के संदर्भ में, नूर मुहम्मद व्यापारिक पुस्तक कारखाना कराची, पृष्ठ 339 [3] फतवा हिंदिया और मदहिया, शोक के मुद्दों से संबंधित, नूरानी कुतुब खाना पेशावर 2/167 [4] बह्र अल-राइक, किताब अल-जनाइज़, एच.एम. सईद कंपनी कराची 2/192 [5] सहीह अल-बुखारी, शोक के समय बैठने का अध्याय, कदीमी कुतुब खाना कराची 1/173

पृष्ठ 398/948

اھل المیت[1] انتہی۔ کھانے کا اہتمام ہونا۔ (ت)

نہر الفائق میں تجنیس سے منقول:

لاباس بالجلوس لھا ثلثۃ ایام وکونہ علی باب الدار مع فرش بسط علی قوارع الطریق من اقبح القبائح[2] انتہی۔ تین دن تک تعزیت کے لئے بیٹھنے میں حرج نہیں، مگر گھر کے دروازے پر عام راستوں میں فرش فروش بچھا کر یہ کام ہو تو بہت بُرا ہے انتہی (ت)

عالمگیریہ میں ظہیریہ سے نقل کیا ہے:

لاباس لاھل المصیبۃ ان یجلسوا فی البیت او فی مسجد ثلثۃ ایام والناس یاتونھم ویعزونھم[3] الخ اس میں حرج نہیں کہ اہل میت گھر میں یا مسجد میں تین دن بیٹھیں اور لوگ ان کے پاس آتے اور تعزیت کرتے رہیں الخ (ت)

بلکہ خود حضور اقدس صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم سے مروی ہے کہ زید و جعفر و ابن رواحہ رضی اللہ تعالٰی عنہم کی خبر شہادت سن کر مغموم و محزون مسجد میں تشریف رکھی، صحابہ حاضر ہوتے اور تعزیت کرتے جاتے[4] کما ذکرہ العلامۃ زین فی البحر الرائق (جیسا کہ علامہ زین بن بجیم نے اسے بحر الرائق میں ذکر کیا ہے۔ت) اور حضور اقدس صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم نے انہیں اس امر سے منع نہ فرمایا،

واخرج الشیخان عن ام المؤمنین رضی اللہ تعالی عنھا قالت لما جاء النبی صلی اللہ تعالی علیہ وسلم قتل ابن حارثۃ وجعفر بخاری و مسلم نے ام المومنین صدیقہ رضی اللہ تعالٰی عنہا سے روایت کی ہے جب نبی کریم صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم کو زید بن حارثہ، جعفر اور عبداللہ بن رواحہ کی

وابن رواحه لما جلس یعرف فیه الحزن[5] شہادت کی اطلاع ہوئی جب تشریف رکھی سر کار پر غم
الحدیث کا اثر نمایاں تھا، الحدیث (ت)

شیخ محقق رحمہ اللہ تعالیٰ شرح میں فرماتے ہیں: جلس نشست آنحضرت صلی اللہ تعالیٰ علیہ

---

1 حاشیۃ الطحطاوی علی مراقی الفلاح فصل فی حملہا و دفنہا نور محمد کار خانہ تجارت کتب کراچی ص ۳۳۹ 2 حاشیۃ الطحطاوی علی مراقی الفلاح بحوالہ النہر الفائق نور محمد کار خانہ تجارت کتب کراچی ص ۳۳۹ 3 فتاوٰی ہندیہ ومدحیہ متصل بذالک مسائل التعزیۃ نورانی کتب خانہ پشاور ۲/ ۱۶۷ 4 بحر الرائق کتاب الجنائز ایچ ایم سعید کمپنی کراچی ۲/ ۱۹۲ 5 صحیح البخاری باب من جلس عند المصیبۃ قدیمی کتب خانہ کراچی ۱/ ۱۷۳

Fatawa Razawiya, Volume 9

...and peace be upon him, meaning in the mosque for their condolence (i.e., the Messenger of Allah, peace and blessings be upon him, sat in the mosque to receive condolences for those people).

So now, in the act mentioned in the question, there remains no matter whose proof is not found in Hadith and Fiqh. Only this much remains: that after burial, people return straight to that place (of the deceased) and, after reciting Fatiha, depart for their respective homes. There is no need for specific proof for this, because when offering condolences, conveying rewards (Isal-e-Sawab), and prayer are deemed praiseworthy, and it has been established that it is better to do so after burial, on the first day, and upon returning from the grave, and since visiting the house of the deceased is also permissible, then what is the harm in going at that very time to offer condolences? Yes, if going to the house of the deceased was forbidden from the start, then it would certainly be a place of prohibition. When it is not so, what is the need for people to return to their own homes first and then go there again? No Shariah evidence establishes such a requirement. On the contrary, it is proven from the Holy Prophet (peace and blessings be upon him) himself that when he returned after burying a companion, and the noble companions were present in his company, he met a messenger sent by the pure wife of the deceased. The Holy Prophet (peace and blessings be upon him) went to their house.

Imam Ahmad narrated with a sound chain and Abu Dawud from Asim bin Kulaib, from his father, from a man from the Ansar who said: We went out with the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) for a funeral. When he returned, he was met by a messenger from the deceased's wife. So he went, and food was brought. (Summary of the Hadith).	**Imam Ahmad with a sound chain and Abu Dawud narrated from Asim bin Kulaib, who narrated from his father, who narrated from an Ansari companion who said: We accompanied the Messenger of Allah (peace and blessings be upon him) for a funeral. When the Master returned, a caller from the deceased's wife met him. The Prophet (pbuh) went to her house and food was presented. (Abridged Hadith).**

If going to the house of the deceased after returning from the burial was prohibited, why would the Holy Prophet (peace and blessings be upon him) have accepted? This was the ruling for the original act. However, what happened is that the ignorant

introduced many customs of ignorance and nonsensical inventions into this Shariah practice—for example, singing, musical instruments, candles, lamps, fine carpets, various kinds of food, means of ostentation and fame, excessive exaggeration in praising the deceased, and at the time of condolence, saying things that increase grief and sorrow and the deceased...

1. Ash'at al-Lam'at Sharh Mishkat, Kitab al-Janaiz, Nooriya Razawiya, Sukkur, 1/709.
2. Musnad Ahmad bin Hanbal, Hadith of a man from the Ansar, Dar al-Fikr, Beirut, 5/293.

फ़तावा रज़विया, जिल्द 9

...और उन पर शांति हो, यानी मस्जिद में उनकी ताज़ियत के लिए (यानी अल्लाह के रसूल, सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम, उन हज़रात की ताज़ियत लेने के लिए मस्जिद में तशरीफ़ फ़रमा हुए)।

अतः अब सवाल में ज़िक्र किए गए अमल में कोई ऐसी बात नहीं रही जिसका सबूत हदीस और फ़िक़्ह से न हो। बस इतनी बात बाक़ी है कि दफ़न के बाद लोग सीधे उस मकान पर जाते हैं और फ़ातिहा के बाद अपने-अपने घरों की राह लेते हैं। इसके लिए किसी ख़ास सबूत की ज़रूरत नहीं क्योंकि जब ताज़ियत (शोक-संवेदना), ईसाल-ए-सवाब (पुण्य दान) और दुआ पसंदीदा क़रार पाई और यह तय हुआ कि अफ़ज़ल यह है कि दफ़न के बाद हो, पहले दिन हो और क़ब्र से लौटकर हो, और मैयत के घर जाना भी जायज़ हो, तो उसी वक़्त जाकर ताज़ियत अदा करने में क्या हर्ज है। हाँ, अगर सिरे से उसके मकान पर जाना ही मना होता तो बेशक पाबंदी का मकाम होता। और जब ऐसा नहीं है तो इसकी क्या ज़रूरत है कि लोग अपने-अपने घर जाकर फिर वहाँ जाएँ इस पर कोई शरई दलील क़ायम नहीं है। बल्कि खुद हुज़ूर सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम से साबित है कि जब एक सहाबी को दफ़न करके लौटे और सहाबा किराम हमराह थे, तो मैयत की बीवी का भेजा हुआ आदमी मिला, हुज़ूर सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम उनके घर तशरीफ़ ले गए।

इमाम अहमद ने सहीह सनद के साथ और अबू दाऊद ने आसिम बिन कुलैब से, उन्होंने अपने वालिद से, उन्होंने अंसार के एक शख़्स से रिवायत की, उन्होंने कहा: हम अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) के साथ एक जनाज़े में निकले। जब वह लौटे, तो उनकी बीवी के एक बुलाने वाले ने उनका इस्तक़बाल किया। तो वह आए और खाना लाया गया। (हदीस का सारांश)।

इमाम अहमद ने सहीह सनद के साथ और अबू दाऊद ने आसिम बिन कुलैब से, उन्होंने अपने वालिद से, उन्होंने एक अंसारी सहाबी से रिवायत की, वे फ़रमाते हैं कि हम रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम के साथ एक जनाज़े में गए। जब सरकार वापस हुए तो मरने वाले की औरत का बुलाने वाला सामने आया। हुज़ूर उनके घर तशरीफ़ ले गए और खाना पेश किया गया। (हदीस का खुलासा)।

अगर दफ़न से लौटकर मैयत के मकान पर जाना मना होता तो हुज़ूर क्यों क़बूल फ़रमाते? सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम। यह तो असल अमल का हुक्म था, मगर हुआ यह कि जाहिलों ने इस शरई रस्म में बहुत सी जाहिलाना रस्में और बेहूदा ईजादें शामिल कर दीं, मसलन गाना-बजाना,

शमएं क़ंदीलें, उम्दा फ़र्श, तरह-तरह के खाने, दिखावे और नामवरी के सामान, मैयत की तारीफ़ में हद से ज़्यादा ग़ुलू (अतिशयोक्ति), ताज़ियत के वक़्त उलटी बातें जो ग़म और दुख को बढ़ाएँ और मैयत...

1. अशअतुल लमआत शरह मिश्कात, किताबुल जनाइज़, नूरिया रज़विया सक्खर, 1/709.
2. मुस्नद अहमद बिन हंबल, हदीस: अंसार का एक शख़्स, दारुल फ़िक्र बैरूत, 5/293.

وسلم یعنی در مسجد برائے عزائے ایشاں ۱ (یعنی حضور صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم مسجد میں ان حضرات کی تعزیت لینے کے لئے تشریف فرما ہوئے۔ت) پس اب فعل مذکور فی السوال میں کوئی امر ایسا نہ رہا جس کا ثبوت حدیث وفقہ سے نہ ہو، صرف اتنی بات باقی ہے کہ بعد دفن کے پلٹ کر سیدھے اس مکان پر جاتے ہیں اور بعد فاتحہ اپنے اپنے گھروں کی راہ لیتے ہیں، اس کے لئے کسی ثبوت خاص کی حاجت نہیں کہ جب تعزیت وایصال ثواب و دعا محمود ٹھہری اور افضل یہ قرار پایا کہ دفن کے بعد ہو اور پہلے دن ہو اور قبر سے پلٹ کر ہو، اور اس کے مکان میت پر جانا بھی جائز ہو، تو اسی وقت جاکر ادائے تعزیت میں کیا مضائقہ ہے۔ ہاں اگر سرے سے اس کے مکان پر جانا ہی روانہ ہوتا تو بیشک محل منع ہوتا۔ اور جب ایسا نہیں تو اس کی کیا ضرورت ہے کہ اپنے اپنے گھر جا کر پھر وہاں جائیں، کوئی دلیل شرعی اس پر قائم نہیں بلکہ خود حضور اقدس صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم سے ثابت کہ جب ایک صحابی کو دفن کر کے پلٹے اور صحابہ کرام حاضر رکاب سعادت تھے میت مرحوم کی زوجہ مطہرہ کا بھیجا ہوا آدمی ملا، حضور اقدس صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم ان کے مکان پر تشریف لے گئے،

فقد اخرج الامام احمد بسند صحیح و ابوداؤد عن عاصم بن کلیب عن ابیہ عن رجل من الانصار قال خرجنا مع رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم فی جنازۃ فلما رجع استقبلہ داعی امرأتہ فجاء وجیء بالطعام ۲ الحدیث ملخصاً۔

امام احمد نے بسند صحیح اور ابوداؤد نے عاصم بن کلیب سے انھوں نے اپنے والد سے، انھوں نے ایک انصاری صحابی سے روایت کی وہ فرماتے ہیں ہم رسول اللہ صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کے ساتھ ایک جنازہ میں گئے جب سرکار واپس ہوئے تو مرنے والے کی عورت کا داعی سامنے آیا حضور اس کے گھر تشریف لے گئے اور کھانا حاضر کیا گیا۔ الحدیث بہ تلخیص (ت)

اگر دفن سے پلٹ کر مکان میت پر جانا منع ہوتا تو حضور کیوں قبول فرماتے، صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم یہ تو اصل فعل کا حکم تھا، مگر ہوا یہ کہ جہال نے اس رسم شرعی میں بہت رسوم جاہلیت و اختراعات بیہودہ کو دخل دیا، مثلاً گانے، باجے شمعیں، قندیلیں، عمدہ عمدہ فرش، طرح طرح کے کھانے، ریا و ناموری کے اسباب، میت کی تعریف میں حد سے غلو، تعزیت کے وقت اُلٹی وہ باتیں جو غم والم کو زیادہ کریں اور میت

۱ اشعۃ اللمعات شرح مشکوۃ کتاب الجنائز نوریہ رضویہ سکھر ۱/ ۷۰۹ ۲ مسند احمد بن حنبل حدیث رجل من انصار دار الفکر بیروت ۵/ ۲۹۳

Fatawa-e-Razavia, Vol. 9

Remind them of the forgotten things,

[Arabic Text]: "As Allama Shami complains after this, saying: Often at such times, many forbidden acts occur, such as lighting candles and lamps of high value that are not even found in weddings; similarly, beating drums, singing songs in melodious voices, the gathering of women and young beardless men, taking a fee for Dhikr and Quran recitation, and other such things that are witnessed in this age. Whatever is in such a state, there is no doubt about its prohibition." | [Urdu Translation]: As Allama Shami complains after this: "Mostly at this time many bad things happen, like lighting expensive candles and lamps which are not found even in weddings, similarly beating drums, singing songs with a pleasant voice, gathering of women and young boys, taking wages for remembrance (dhikr) and recitation of the Quran, and besides these, all the things that are seen in this time, what doubt is there in the prohibition of the work which is in such a state!(T)"

Besides this, sitting specifically for the purpose of receiving condolences, although permitted, it is better not to do so.

[Arabic Text]: "As in Al-Hindiyyah from Mi'raj al-Dirayah from Khazanat al-Fatawa: Sitting for three days due to calamity is a permission, but leaving it is better." | [Urdu Translation]: As in [Fatawa] Hindiyyah from Mi'raj al-Dirayah, it is quoted from Khazanat al-Fatawa that sitting for three days due to death is allowed, but leaving it is better. (T)

Therefore, many later scholars did not like this crowd and gathering at the house of the deceased and deemed it appropriate that people disperse after burial; the family of the deceased should busy themselves with their work and people should be occupied with their respective affairs.

[Arabic Text]: "As in Maraqi al-Falah by Allama al-Shurunbulali: Many of our later scholars, may Allah have mercy on them, said: Gathering at the house of the bereaved for the purpose of people coming to offer condolences is disliked (Makruh). Rather, when people return from burial, they should disperse and occupy themselves..." | [Urdu Translation]: As in Maraqi al-Falah of Allama Shurunbulali that many of our later scholars, may Allah Almighty have mercy on them, have said that

gathering at the house of the deceased for the purpose that people come there to offer condolences is disliked. When people return from the burial, they...

1. Radd al-Muhtar, Chapter of Funeral Prayers, Dar Ihya al-Turath al-Arabi, Beirut, 1/603
2. Fatawa Hindiyyah, along with issues of condolences, Noorani Kutub Khana Peshawar, 1/167

फ़तावा रिज़विया, जिल्द 9

भूली हुई बातें याद दिलाएं

[अरबी पाठ का अर्थ]: "जैसा कि इसके बाद अल्लामा शामी शिकायत करते हुए कहते हैं: अक्सर ऐसे समय में कई वर्जित कार्य होते हैं, जैसे बहुमूल्य मोमबत्तियाँ और चिराग जलाना जो शादियों में भी नहीं मिलते; इसी तरह ढोल बजाना, सुरीली आवाज़ में गीत सुनाना, महिलाओं और कम उम्र लड़कों का इकट्ठा होना, ज़िक्र और क़ुरआन पाठ के लिए शुल्क लेना, और अन्य ऐसी बातें जो इस ज़माने में देखी जाती हैं। जो काम इस हाल में हो, उसकी मनाही में क्या संदेह है!" | जैसा कि इसके बाद अल्लामा शामी यूँ शिकायत फ़रमाते हैं: "ज़्यादातर इस वक़्त बहुत सी बुरी बातें होती हैं जैसे बेशक़ीमत शमएँ और क़ंदीलें रोशन करना जो शादियों में भी नहीं मिलतीं, ऐसे ही तबल बजाना, ख़ुश आवाज़ से गीत सुनाना, औरतों अमर्दों का जमा होना, ज़िक्र और तिलावत-ए-क़ुरआन पर उजरत लेना, और इन के अलावा सारी बातें जो इस ज़माने में देखने में आती हैं, जिस काम का ये हाल हो उसके हराम होने में क्या शक है!(त)"

इसके अलावा, विशेष रूप से शोक संवेदना (ताज़ियत) प्राप्त करने के उद्देश्य से बैठना, हालांकि अनुमति है, लेकिन ऐसा न करना बेहतर है।

[अरबी पाठ का अर्थ]: "जैसा कि अल-हिंदिया में मिराज अल-दिरयाह से खज़ानत अल-फ़तावा के हवाले से है: विपत्ति के कारण तीन दिन तक बैठना एक अनुमति है, लेकिन इसे छोड़ना बेहतर है।" | जैसा कि हिन्दिया में मेराज-उद-दराया से, इसमें ख़ज़ाना-तुल-फ़तावा से मंक़ूल है मौत के सबब तीन दिन बैठने की इजाज़त है और इसका तर्क(छोड़ना) बेहतर है।(त)

इसलिए बहुत से बाद के विद्वानों ने मृतक के घर इस भीड़ और सभा को नापसंद किया और इसे ही उचित समझा कि लोग दफनाने के बाद तितर-बितर हो जाएं मृतक के अभिभावक अपने काम में लग जाएं और लोग अपने-अपने कामों में व्यस्त रहें।

[अरबी पाठ का अर्थ]: "जैसा कि अल्लामा अल-शुरुनबुलाली की मराकी अल-फलाह में है: हमारे बाद के कई विद्वानों (अल्लाह उन पर रहम करे) ने कहा है: शोक संतप्त व्यक्ति के यहाँ इस उद्देश्य से इकट्ठा होना कि लोग शोक संवेदना देने आएं मकरूह (नापसंद) है। बल्कि जब लोग दफनाने से वापस आएं तो उन्हें अलग हो जाना चाहिए और व्यस्त हो जाना चाहिए..." | जैसा कि अल्लामा शुर्नबुलाली की मराक़ी-उल-फ़लाह में है कि हमारे बहुत से आइम्मा मुतअख़िरीन (बाद के इमाम)

रहमहुमुल्लाह तआला ने फ़रमाया है कि मय्यत वाले के यहाँ इस मक़सद से इजतिमा (इकट्ठा होना) कि उसके यहाँ ताज़ियत करने वाले आएं मकरूह है। लोग जब दफ़न से वापस हों तो...

1. रद-उल-मुहतार, जनाज़े की नमाज़ का अध्याय, दार इहया अत-तुराथ अल-अरबी, बेरूत, 1/603
2. फ़तावा हिन्दिया, और साथ ही ताज़ियत के मसले, नूरानी कुतुब ख़ाना पेशावर, 1/167

पृष्ठ 948 का 400

فتاوٰی رضویہ، جلد نہم

کو بھولی ہوئی باتیں یاد دلائیں،

کما یشکو بعد ذلك العلامة الشامي حیث یقول یحصل عند ذلك غالباً من المنکرات الکثیرة کایقاد الشموع والقنادیل التی لاتوجد فی الافراح وکدق الطبول والغناء بالاصوات الحسان واجتماع النساء والمردان واخذ الاجرة علی الذکر و قرأة القرآن وغیر ذلك مما ھو مشاھد فی ھذا الزمان وماکان کذلك فلا شك فی حرمتہ۔ | جیسا کہ اس کے بعد علامہ شامی یوں شکایت فرماتے ہیں: زیادہ تر اس وقت بہت سی بُری باتیں ہوتی ہیں جیسے بیش قیمت شمعیں اور قندیلیں روشن کرنا جو شادیوں میں بھی نہیں ملتیں، ایسے ہی طبل بجانا، خوش آواز سے گیت سنانا، عورتوں امردوں کا جمع ہونا، ذکر اور تلاوت قرآن پر اُجرت لینا، اور ان کے علاوہ ساری باتیں جو اس زمانے میں دیکھنے میں آتی ہیں، جس کام کا یہ حال ہو اس کے حرام ہونے میں کیا شک ہے!(ت)

معہذا خاص اس قصد سے یعنی تعزیت لینے کے لیے بیٹھنا بھی اگرچہ رخصت ہے مگر افضل نہ کرنا ہے

کما فی الھندیة من معراج الدرایة عن خزانة الفتاوی الجلوس للمصیبت ثلاثت ایام رخصة و ترکه احسن۔ | جیسا کہ ہندیہ میں معراج الدرا یہ سے، اس میں خزانہ الفتاوٰی سے منقول ہے موت کے سبب تین دن بیٹھنے کی اجازت ہے اور اس کا ترک بہتر ہے۔(ت)

لہٰذا بہت علمائے متاخرین نے میت کے گھر اس ہجوم واجتماع کو پسند نہ فرمایا اور یہی مناسب جانا کہ لوگ دفن کر کے متفرق ہو جائیں اولیائے میت اپنے کام میں مشغول ہوں اور لوگ اپنے اپنے کاموں میں مصروف،

كما فی مراقي الفلاح للعلامة الشرنبلالی قال كثير من متاخری ائمتنا رحمهم الله تعالی يكره الاجتماع عند صاحب المصيبة حتی يأتی اليه من يعزی بل اذا رجح الناس من الدفن فليتفرقو او يشتغلوا | جیسا کہ علامہ شرنبلالی کی مراقی الفلاح میں ہے کہ ہمارے بہت سے ائمہ متاخرین رحمہم اللہ تعالیٰ نے فرمایا ہے کہ میت والے کے یہاں اس مقصد سے اجتماع کہ اس کے یہاں تعزیت کرنے والے آئیں مکروہ ہے۔ لوگ جب دفن سے واپس ہوں تو

1 ردالمحتار باب صلوة الجنائز دار احياء التراث العربی بيروت ۱/ ۶۰۳ 2 فتاویٰ ہندیہ و ملحقہ بصلک مسائل التعزية نورانی کتب خانہ پشاور ۱/ ۱۶۷

...occupied with their affairs, and the master of the deceased with his affair.	**...disperse, people should be occupied with their own work, and the family of the deceased should be busy with their work. (T)**

In short, the final word through which disagreement is removed and reconciliation is achieved is that the act of condolence, prayer, and conveying rewards (Isal-e-Thawab) is certainly praiseworthy and recommended, and raising hands at the time of prayer is also permissible. If a person goes to the house of the deceased's heirs to offer condolences, it is absolutely permissible. However, for the heirs to sit specifically for this purpose and for people to gather and crowd around them, whether before or after burial, at that time or later, at the deceased's house or elsewhere, it is permissible and allowed in every way as long as it is free from Sharia-prohibited acts. But not doing it is better; it is not absolutely forbidden or a sin, nor does the doer become an innovator (mubtadi') or misguided.

Glory be to You! This is a great slander. I say: With this detail, the statements from the words of a group saying "there is no harm in it" and another group saying "it is disliked" can be reconciled. What is proven by the mentioned Hadith will be an explanation for permissibility. So, grasp this unique piece of writing firmly, for it is, God willing, the balanced research, even if it opposes the claims of both extreme parties (those of excess and negligence). And Allah, Glory be to Him, the Most High, knows best what is right, and to Him is the return and the final destination.	**Glory be to You! This is a great slander. I say (I state): And with this detail, reconciliation is also achieved in the words of scholars, that some have said there is no harm in it, and other gentlemen have said that this is disliked... and what has been proven from the mentioned Hadith will be for the explanation of permissibility... So, keep this unique clarification well-preserved, for God willing, this is the middle path of research, even if it is contrary to the excess and negligence of both parties... and the Holy and Exalted God knows best the truth, and towards Him is the return and refuge. (T)**

Question 111: 25 Rabi' al-Akhir 1311 AH What do the scholars of religion say regarding this matter: should condolences for the deceased be after burial only, or is it permissible before burial as well? Explain, and you shall be rewarded. Answer: It is

preferable that it be after burial, upon returning from the grave, as stated in Al-Jawhara and others.

1 Maraqi al-Falah on the margin of Hashiyat al-Tahtawi, section on carrying and burying it, Nur Muhammad Karkhana Tijarat Kutub Karachi, p. 338.

...अपने कार्यों में व्यस्त हों, और मृतक का स्वामी अपने कार्य में।

...बिखर जाएँ, लोग अपने-अपने काम में व्यस्त हों और मृतक के परिजन अपने काम में मसरूफ हों। (त)

संक्षेप में, वह अंतिम निर्णय जिससे मतभेद समाप्त हो जाए और सामंजस्य स्थापित हो, यह है कि शोक संवेदना (ताज़ियत), प्रार्थना और सवाब पहुँचाना (ईसाल-ए-सवाब) निश्चित रूप से प्रशंसनीय और अनुशंसित है, और प्रार्थना के समय हाथ उठाना भी जायज़ है। यदि कोई व्यक्ति मृतक के वारिसों के घर जाकर शोक संवेदना व्यक्त करता है, तो यह पूरी तरह से जायज़ है। लेकिन वारिसों का विशेष रूप से इस उद्देश्य से बैठना और लोगों का उनके पास भीड़ और जमावड़ा करना, चाहे दफन से पहले हो या बाद में, उसी समय हो या कभी और, मृतक के घर पर हो या कहीं और, हर तरह से जायज़ और मुबाह (अनुमेय) है जब तक कि यह शरीयत द्वारा वर्जित कार्यों से मुक्त हो। लेकिन ऐसा न करना बेहतर है; यह पूरी तरह से हराम या गुनाह नहीं है, और न ही ऐसा करने वाला बिदअती (नवाचारी) या गुमराह माना जाएगा।

सुभानक हाज़ा बुहतनुन अज़ीम। कुल्तु: व बिहाज़ा तत्तफ़िकुल कलिमातु मिन क़ौलि क़ौमिन ला बासा बिही व क़ौमिन आख़रीन अन्नहू युकरहु व यकूनु मा सबता बिल-हदीसिल मदकूरि बयानन लिल-जवाज़ी फ़त्किन हाज़त तहरीरल फ़रीदा फ़-इन्नहू इन शा-अल्लाहुत तहक़ीकुल वसीतु व इन खालफ़ा ज़अमल फ़रीक़ैनी मिन अहलिल इफ़राति वत-तफ़रीत, वल्लाहु सुब्हानहू व तआला आलम बिस्सववाबी व इलैहिल मरजिउ वल-मआब।

तेरी पाकी है। यह बड़ा आरोप (बुहतन) है। कुल्त (मैं कहता हूँ) और इस विवरण से विद्वानों के शब्दों में सामंजस्य भी हो जाता है कि कुछ लोगों ने कहा है इसमें कोई हर्ज नहीं है, और दूसरे सज्जनों ने कहा है कि यह मकरूह है... और उल्लेखित हदीस से जो साबित हुआ है वह जायज़ होने के बयान के लिए होगा... तो इस अनूठी स्पष्टीकरण को अच्छी तरह सुरक्षित कर लो क्योंकि इंशा अल्लाह यह बीच का शोध है चाहे यह दोनों पक्षों (अति और कमी) वालों के विरुद्ध हो... और पवित्र और उच्च ईश्वर सच्चाई को सबसे अच्छी तरह जानने वाला है और उसी की ओर लौटना और शरण है। (त)

मसला १११: २५ रबी-उल-आख़िर १३११ हिजरी धर्म के विद्वान इस मामले में क्या कहते हैं कि मृतक की शोक संवेदना (ताज़ियत) दफन के बाद ही होनी चाहिए या दफन से पहले भी जायज़ है? स्पष्ट

करें, आपको पुण्य मिलेगा। उत्तर: बेहतर यह है कि दफन के बाद कब्र से लौटकर हो, जैसा कि 'अल-जौहरा' आदि में है।

१ मराक़ी अल-फ़लाह, हाशिया अत-तहत़ावी के हाशिये पर, दफनाने और ले जाने का अध्याय, नूर मोहम्मद कारखाना तिज़ारत कुतुब कराची, पृष्ठ ३३८।

पृष्ठ ४०१ / ९४८

بامورھم وصاحب المیت بامر ہ ۱ ۔ **متفرق ہو جائیں ، لوگ اپنے اپنے کام میں مشغول ہوں اہل میت اپنے کام میں مصروف ہوں ۔ (ت)**

بالجملہ قولِ فیصل جس سے اختلاف زائل ، اور توفیق حاصل ہو یہ ہے کہ نفس تعزیت و دعا و ایصالِ ثواب بیشک محمود و مندوب اور وقتِ دعا ہاتھ اٹھانا بھی جائز ، اور اگر کوئی شخص اولیا ئے میت کے مکان پر جا کر تعزیت کر آئے تو بھی قطعاً روا ۔ مگر اولیا کا خاص اس قصد سے بیٹھنا اور لوگوں کا ان کے پاس ہجوم و مجمع کرنا خواہ قبلِ دفن ہو یا بعد اُسی وقت اگر ہو یا کبھی مکانِ میت پر ہو یا کہیں اور ، بہر طور جائز و مباح ہے جبکہ منکرات شرعیہ سے خالی ہو ، مگر اس کا نہ کرنا افضل ہے ، نہ یہ کہ قطعاً حرام اور گناہ اور فاعل مبتدع و گمراہ ٹھہرے۔

سبحانک هذا بهتان عظیم قلت وبهذا تتفق الکلمات من قول قوم لاباس به وقوم اخرین انه یکره ویکون ما ثبت بالحدیث المذکور بیانًا للجواز فاتقن هذا التحریر الفرید فانه ان شاء الله التحقیق الوسیط وان خالف زعم الفریقین من اهل الافراط والتفریط، والله سبحانه وتعالی اعلم بالصواب والیه المرجع والمآب.

تجھے پاکی ہے۔ یہ بڑا بہتان ہے۔ قلت (میں کہتا ہوں) اور اس تفصیل سے کلماتِ علماء میں تطبیق بھی ہو جاتی ہے کہ کچھ لوگوں نے کہا ہے اس میں کوئی ہرج نہیں ہے ، اورت دوسرے حضرات نے کہا ہے کہ یہ مکروہ ہے ... اور حدیث مذکور سے جو ثابت ہوا ہو بیان جواز کے لئے ہو گا ... تو اس منفرد تنقیح کو اچھی طرح محفوظ کر لو کہ ان شاء اللہ یہ درمیانہ تحقیق ہے اگرچہ دونوں فریق کے افراط و تفریط والوں کے برخلاف ہو ... اور خدائے پاک و برتر درستی کو خوب جاننے والا ہے اور اسی کی جانب رجوع و مآب ہے۔ (ت)

مسئلہ ۱۱۱: ۲۵ ربیع الآخر شریف ۱۳۱۱ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ میت کی تعزیت بعدِ دفن ہی چاہئے یا پیش از دفن بھی جائز ہے؟ بینوا توجروا الجواب: افضل یہ ہے کہ بعدِ دفن قبر سے پلٹ کر ہو کما فی الجو اھرۃ و غیرھا (جیسا کہ جوہرہ وغیرہ میں ہے)

۱ مراقی الفلاح علی ہامش حاشیہ الطحطاوی فصل فی حملھا و دفنھا نور محمد کار خانہ تجارت کتب کراچی ص ۳۳۸

Fatawa-e-Razvia Volume 9

...is mentioned in etc. (T) And it is also permissible before burial without any dislike.

| In Sahih al-Imam Ibn al-Sakan, on the authority of Abu Huraira (may Allah be pleased with him), he said: The Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) said: (T) Whoever is informed of a funeral and goes to its family and offers condolences to them, Allah the Almighty records for him a Qirat (of reward). If he follows the funeral, Allah records for him two Qirats. If he prays over it, Allah records for him three Qirats. If he attends the burial, Allah records for him four Qirats. And each Qirat is like Mount Uhud. - 1 | In Sahih Imam Ibn al-Sakan, it is narrated from Hazrat Abu Huraira (may Allah be pleased with him) that he said: The Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) said (T): Whoever receives news of a funeral and goes to the family of the deceased to offer condolences, Allah Almighty records one Qirat of reward for him. Then, if he accompanies the funeral, Allah Almighty records two Qirats of reward. Then, if he performs the funeral prayer, then three Qirats. Then, if he is present at the burial, then four (Qirats). And each Qirat is equal to Mount Uhud. And Allah Almighty knows best. |

Problem 112: From the city of Bharuch, Lal Bazar, Chinarwad, sent by Maulvi Abbas Mian son of Maulvi Ali Mian, 12 Rabi-ul-Awwal Sharif 1318 AH. What do the scholars of religion say in this matter: if the deceased is present in the house and has not yet been buried, is it correct for the family of the deceased to eat before that or not? Ahmad Saeed says that it is correct and there is nothing wrong with it. In the book of jurisprudence 'Manafi', it is written that eating before burial is haram (forbidden), rather it is haram up to forty houses of neighbors. Now explain what the truth is. The Answer: Eating is not haram, negligence is haram. And it being haram up to forty houses is purely baseless. And Allah Almighty knows best.

Problem 113: From Khairabad district Sitapur, Mohalla Miya Sarai Qadeem, Madrasa Arabiya, sent by Maulvi Syed Fakhrul Hasan Sahab, 7 Rabi-ul-Akhir Sharif 1331 AH. What do the scholars of religion and the jurists of the firm Sharia say in this matter: a child born out of wedlock dies at the age of four or five, and if the mother, out of fear and adherence to the command of Sharia, chooses patience on this tragedy, will the deceased child be a 'fart' (intercessor) for the patient mother or not? And what are its arguments? And if the adulterous father also feels great grief over this tragedy and he too observes patience in view of the Sharia matter, will he also be entitled that the deceased child be a 'fart' for him, or will he not be entitled? It is hoped that a detailed

answer with references from book texts will be written so that someone listening to it may not find an opportunity to deny it against traditional evidence, and the person concerned may attain full satisfaction. That is all.

1 Sahih Imam Ibn al-Sakan Page 402 of 948

फतावा-ए-रजविया जिल्द 9

...वगैरह में है। त) और दफ़न से पहले भी बिना किसी नापसंदगी के जायज़ है।

| फ़ी सहीह अल-इमाम इब्न अल-सकन अन अबी हुरैरा रज़ियल्लाहु तआला अन्हु क़ाला क़ाला रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम मन ऊज़िना बिजनाज़तिन फ़ाती अहलहा फ़-अज़्ज़ाहूम कतबाल्लाहु तआला क़ीरातन फ़-इन तबि'अहा कतबाल्लाहु लहू क़ीरातैनि फ़-इन स़ल्ला अलैहा कतबाल्लाहु लहू सलास़ता क़रारीत़ा फ़-इन शहिदा दफ़नहा कतबाल्लाहु लहू अरब'अता क़रारीत़ा अल-क़ीरातु मिस्लु उहुदिन - 1 | सहीह इमाम इब्न अल-सकन में हज़रत अबू हुरैरा रज़ियल्लाहु तआला अन्हु से रिवायत है उन्होंने फ़रमाया रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम का इर्शाद है (त) जिसे किसी जनाज़े की ख़बर मिले वह अहल-ए-मय्यत के पास जा कर उनकी ताज़ियत करे अल्लाह तआला उसके लिए एक क़ीरात सवाब लिखे, फिर अगर जनाज़े के साथ जाए तो अल्लाह तआला दो क़ीरात अज्र लिखे, फिर उस पर नमाज़ पढ़े तो तीन क़ीरात, फिर दफ़न में हाज़िर हो तो चार, और हर क़ीरात कोह-ए-उहुद के बराबर है। वल्लाहु तआला अ'अलम। |

मसला 112: शहर भड़ौच, लाल बाज़ार, चिनारवाड़ से, मुरसला मौलवी अब्बास मियां वल्द मौलवी अली मियां 12 रबी-उल-अव्वल शरीफ़ 1318 हिजरी। क्या फ़रमाते हैं उलेमा-ए-दीन इस मसले में कि मय्यत मकान में मौजूद है उसे दफ़न नहीं किया गया, उससे पहले अहल-ए-मय्यत के लोगों को खाना दुरुस्त है या नहीं? अहमद सईद का कहना है कि दुरुस्त है और कोई बुरा नहीं। फ़िक्ह की किताब 'मनाफ़े में तो लिखा है कि दफ़न करने से पहले खाना हराम है, बल्कि पड़ोसी के चालीस मकान तक हराम है। अब हक़ कौन है वह बयान करें। अल-जवाब: खाना हराम नहीं, ग़फ़लत हराम है। और चालीस घरों तक हराम होना महज़ बे-अस्ल है। वल्लाहु तआला अ'अलम।

मसला 113: खैरआबाद ज़िला सीतापुर, मोहल्ला मियां सराय क़दीम, मदरसा अरबिया से, मुरसला मौलवी सैयद फ़ख़्रुल हसन साहब 7 रबी-उल-आख़िर शरीफ़ 1331 हिजरी। क्या फ़रमाते हैं उलेमा-ए-दीन और मुफ़्तियान-ए-शरा-ए-मतीन इस मसले में कि जो बच्चा ज़िना से पैदा होकर चार-पाँच साल की उम्र में फ़ौत हो जाए और उसकी माँ शरीयत के हुक्म की पाबंदी के डर से इस हादसे पर सब्र अख्तियार करे, तो क्या वह मुतवफ़्फ़ी बच्चा साबिर माँ के लिए 'फ़रत' (सिफ़ारिशी) होगा या नहीं? और इसके दलाइल क्या-क्या हैं? और अगर ज़िना करने वाले बाप के दिल पर भी इस हादसे का सदमा ज़्यादा हुआ हो और वह भी शरीयत के हुक्म के लिहाज़ से सब्र रखे, तो क्या वह भी मुस्तहिक़

होगा कि मुतवफ़्फ़ी बच्चा उसके लिए 'फ़रत' हो या मुस्तहिक़ न होगा? उम्मीद है कि किताबों की इबारतों के हवाले के साथ तफ़सीली जवाब तहरीर फ़रमाया जाएगा ताकि किसी को सुनकर नक़ली दलाइल के मुक़ाबले में इनकार का मौक़ा न मिले और मुक़र्रर शख़्स को मुकम्मल इत्मीनान हासिल हो जाए। फ़क़त।

1 सहीह इमाम इब्न अल-सकन पेज 402/948

فتاوٰی رضویہ جلد نہم

وغیرہ میں ہے۔ ت) اور قبل دفن بھی بلا کراہت جائز ہے،

| فی صحیح الامام ابن السکن عن ابی ہریرۃ رضی اللہ تعالی عنہ قال قال رسول اللہ صلی اللہ تعالی علیہ وسلم من اوذن بجنازۃ فاتی اھلھا فعزاھم کتب اللہ تعالی قیراطا فان تبعھا کتب اللہ لہ قیراطین فان صلی علیھا کتب اللہ لہ ثلثۃ قراریط فان شھد دفنھا کتب اللہ لہ اربعۃ قراریط القیراط مثل احد - 1 |

صحیح امام ابن سکن میں حضرت ابوہریرہ رضی اللہ تعالٰی عنہ سے روایت ہے انھوں نے فرمایا رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم کا ارشاد ہے (ت) جسے کسی جنازہ کی خبر ملے وہ اہل میت کے پاس جا کر ان کی تعزیت کرے اللہ تعالٰی اس کے لئے ایک قیراط ثواب لکھے ، پھر اگر جنازہ کے ساتھ جائے تو اللہ تعالٰی دو قیراط اجر لکھے ، پھر اس پر نماز پڑھے تو تین قیراط ، پھر دفن میں حاضر ہو تو چار ، اور ہر قیراط کوہِ احد کے برابر ہے۔ واللہ تعالٰی اعلم |

مسئلہ ۱۱۲: از شہر بھڑونچ، لال بازار، چنار واڑ، مرسلہ مولوی عباس میاں ولد مولوی علی میاں ۱۲ ربیع الاول شریف ۱۳۱۸ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ میت مکان میں موجود ہے اس کو دفن نہیں کیا ، اس کے پہلے اہل میت کے لوگوں کو کھانا درست ہے یا نہیں؟ احمد سعید کا کہنا ہے کہ درست ہے اور کوئی برا نہیں۔ فقہ کی کتاب منافع میں تو لکھا ہے کہ دفن کرنے کے پہلے کھانا حرام ہے، بلکہ ہمسایہ کے چالیس مکان تک حرام ہے۔ اب حق کون ہے وہ بیان کریں۔

الجواب: کھانا حرام نہیں ، غفلت حرام ہے۔ اور چالیس گھر تک حرام ہونا بے اصل محض ۔ واللہ تعالٰی اعلم

مسئلہ ۱۱۳: از خیرآباد ضلع سیتاپور محلہ میانسرائے قدیم مدرسہ عربیہ مرسلہ مولوی سید فخر الحسن صاحب ۷ ربیع الآخر شریف ۱۳۳۱ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین ومفتیانِ شرع متین اس مسئلہ میں کہ جو طفل زنا سے متولد ہو کر چار پانچ سال کی عمر میں فوت ہو جائیں اور اس کی مادر بخوفِ پابندی حکم شریعت اس سانحہ پر صبر اختیار کرے تو طفل متوفی مادرِ صابر کا فرط ہو گا یا نہیں؟ اور اس کے دلائل کیا کیا ہیں؟ اور اگر پدرِ زانی کے قلب پر بھی اس سانحہ کا صدمہ زیادہ ہوا ہو اور وہ بھی بلحاظِ امرِ شریعت صبر کو ملحوظ رکھے تو وہ بھی مستحق ہوگا کہ طفل متوفی اس کے لئے فرط ہو یا مستحق نہ ہوگا، امید کہ مفصل جواب بحوالہ عبارات کتب تحریر فرمایا جائیگا تاکہ کسی کو سُن کر بمقابلہ دلائل نقلیہ انکار کا موقع نہ ملے اور شخصِ مقر کو اطمینانِ کامل حاصل ہو جائے۔ فقط

Fatawa Razawiyya - Volume Nine

The Answer:

For a child born out of wedlock (Walad-uz-Zina), there is no father according to Sharia; the Pure Sharia has severed its lineage from the fornicator. The Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) says:

Al-waladu lil-firashi wa lil-'ahiri al-hajar[1]	The child belongs to the bed owner, and for the fornicator is the stone (disappointment/punishment).

So how can he be his 'Farat' (a child who precedes to intercede)? As for being a 'Farat' for the mother, it depends on whether the position of intercession is granted to a child born out of wedlock. Allah knows best. From Hadiths, it appears that such a child is naturally predisposed towards evil. The Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) says: *Waladu az-zina sharru ath-thalatha*[2] (The child of zina is the worst of the three [the fornicator, the fornicatress, and the child]. -T). Another Hadith states:

La yadkhulu al-jannata waladu zaniyatin[3] *ay ma'a as-sabiqeen kama fi nazayirihi.*	The child of a fornicatress will not enter Paradise, meaning with the foremost (the 'Sabiqeen'), just as this interpretation exists in other similar Hadiths. (T)

In the third Hadith it is mentioned:

La yanbaghi 'ala an-nasi illa waladu baghyin wal-ibnu fihi 'arqun minhu[4]	No one commits injustice against people except a child of transgression (out of wedlock) or one who has a vein of it in him. (T)

In the fourth Hadith it is mentioned:

Man lam ya'rif haqqa 'itratî wal-ansâra wal-'araba fahuwa li-ihda thalâthin imma munafiqun wa-imma li-zinatin wa-imma imru'un hamalat bihi ummuhu li-ghayri tuhrin[5] - Reported by Al-Daylami and Al-Bayhaqi from the Hadith of Zaid bin Jubayr from Dawud bin Husayn from Ibn Rafi	Whoever does not recognize the rights of my descendants, the Ansar, and the Arabs is one of three: either a hypocrite, or a child of fornication, or a person whose mother conceived him during menstruation (impure state). It was narrated by Al-Daylami and Al-Bayhaqi from the Hadith of Zaid bin Jubayr from Dawud bin Husayn from Ibn Rafi from his father from the Commander of the Faithful Ali (may Allah honor his face) that he said...

[1] Sahih al-Bukhari, Chapter: The child belongs to the bed, whether free woman or bondwoman, Qadimi Kutub Khana Karachi 2/999 [2] Sunan Abi Dawud, Book of Manumission, Chapter: On manumitting a child of adultery, Aftab-e-Alam Press Lahore 1/196 [3] Tarikh Baghdad, Biography 5900, Abdur Rahman Abu Hafs, Dar al-Kitab al-Arabiyya Beirut 11/191; Shu'ab al-Iman, Hadith 8773, Dar al-Kutub al-Ilmiyya Beirut 2/191 [4] Kanz al-Ummal with reference to Tabarani from Abu Musa (RA), Hadith 13093, Muassasat al-Risala Beirut 5/333 [5] Al-Firdaws bi-Ma'thur al-Khitab, Hadith 5955, Dar al-Kutub al-Ilmiyya Beirut 3/626

फ़तावा रज़विया - नौवां खंड

उत्तर:

शरीयत के अनुसार ज़िना की औलाद (वलद-उज़-ज़िना) के लिए कोई बाप नहीं है, पाक शरीयत ने ज़ानी से उसका नसब (वंश) काट दिया है। अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) फ़रमाते हैं:

अल-वलदु लिल-फ़िराशि व लिल-आहिरि अल-हजर[1]	बच्चा बिस्तर वाले का है और ज़ानी के लिए पत्थर (निराशा/सज़ा)।

तो वह उसका 'फ़रत' (सिफ़ारिश करने वाला बच्चा) कैसे हो सकता है। रही बात माँ के लिए 'फ़रत' होने की, तो यह इस पर निर्भर है कि क्या ज़िना की औलाद को शफ़ाअत (सिफ़ारिश) का पद दिया जाता है। अल्लाह ही बेहतर जानता है। हदीसों से तो यह ज़ाहिर होता है कि वह बुराई की तरफ़ झुकाव वाला पैदा होता है। अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) फ़रमाते हैं: वलदु अज़-ज़िना शर्रु अज़-ज़लज़ह[2] (ज़िना की औलाद तीनों में सबसे बुरी है। -त)। दूसरी हदीस में है:

ला यदख़ुलुल जन्नता वलदु ज़ानियतिन[3] अई मअ़स साबिक़ीन कमा फ़ी नज़ायिरिहि।	ज़ानिया का बच्चा जन्नत में नहीं जाएगा यानी साबिक़ीन (सबसे पहले प्रवेश करने वालों) के साथ, जैसा कि इस तरह की अन्य हदीसों में यह व्याख्या है। (त)

तीसरी हदीस में है:

ला यनबग़ी अ़लन् नासि इल्ला वलदु बग़ायिन वल-इब्नु फ़ीहि अ़र्क़ुन मिन्हु[4]	लोगों पर कोई ज़ुल्म नहीं करता सिवाय ज़िना की औलाद के और वह जिसमें उसका कोई अंश हो। (त)

चौथी हदीस में है:

मन लम यअ़रिफ़ हक़्क़ा इतरती वल-अंसारा वल-अरबा फ़हुवा लि-इहदा ज़लाज़िन इम्मा मुनाफ़िक़ुन व-इम्मा लि-ज़िनतिन व-इम्मा इम्रुउन हमलात बिही उम्मुहु लि-ग़ैरि तुहरिन[5] - इसे दैलमी	जो मेरी औलाद, अंसार और अरबों के अधिकार को नहीं पहचानता, वह तीन में से एक है: या तो मुनाफ़िक़ (पाखंडी) है, या ज़ानिया का बच्चा है, या वह व्यक्ति जिसकी माँ ने उसे अशुद्ध अवस्था (मासिक धर्म) में गर्भ धारण किया। इसे दैलमी ने रिवायत किया और बैहक़ी ने

और बैहक़ी ने ज़ैद बिन जुबैर की हदीस से, दाऊद बिन हुसैन से, इब्न राफ़े के माध्यम से रिवायत किया।

ज़ैद बिन जुबैर की हदीस में दाऊद बिन हुसैन से, उन्होंने अबू राफ़े से, उन्होंने अपने पिता से, उन्होंने अमीरुल मोमिनीन अली (करम अल्लाह वज्हहुल करीम) से रिवायत किया कि उन्होंने फ़रमाया...

---

[1] सहीह बुखारी, बाब: अल-वलदु लिल-फ़िराश हुर्रा कांत औ अमा, कदीमी कुतुब खाना कराची 2/999 [2] सुनन अबू दाऊद, किताब अल-इतक, बाब फी इत्की वलद अल-ज़िना, आफ़ताब-ए-आलम प्रेस लाहौर 1/196 [3] तारीख़ बग़दाद, जीवनी 5900, अब्दुर्रहमान अबू हफ़्स, दार अल-किताब अल-अरबिया बेरुत 11/191; शोअ़बुल ईमान हदीस 8773, दार अल-कुतुब अल-इल्मिया बेरुत 2/191 [4] कज़ुल उम्माल, तबानी के हवाले से अबू मूसा (रज़ि.) से, हदीस 13093, मुअस्ससतुर रिसाला बेरुत 5/333 [5] अल-फ़िरदौस बि-मासूरुल ख़िताब, हदीस 5955, दार अल-कुतुब अल-इल्मिया बेरुत 3/626

فتاوٰی رضویہ - جلد نہم

الجواب:

ولد الزنا کے لئے شرعاً کوئی باپ نہیں، شرعِ مطہر نے زانی سے اس کا نسب قطع فرما دیا ہے۔ رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم فرماتے ہیں :

الولد للفراش وللعاھر الحجر - 1 بچہ بچھونے والے کا اور زانی کے لئے پتھر۔

تو وہ اس کا فرط کیونکر ہو سکتا ہے۔ رہا ماں کے لئے فرط ہونا، یہ اس پر موقوف ہے کہ ولد الزنا کو منصبِ شفاعت دیا جائے۔ واللہ تعالٰی اعلم۔ احادیث سے تو یہ ظاہر ہوتا ہے کہ وہ مطبوع علی الشر ہوتا ہے۔ رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم فرماتے ہیں: ولد الزنا شر الثلثۃ 2 (ولدِ زنا تین میں سب سے بُرا ہے۔ت) دوسری حدیث میں ہے:

لا یدخل الجنۃ ولد زانیۃ 3 ای مع زانیہ کا بچہ جنت میں نہ جائے گا یعنی سابقین کے ساتھ، جیسے السابقین کما فی نظائرہ۔ اس طرح کی دیگر حدیثوں میں یہ تاویل ہے۔ (ت)

تیسری حدیث میں ہے:

لا ینبغی علی الناس الا ولد بغی والابن لوگوں پر ظلم نہ کرے مگر زنا کی اولاد اور وہ جس میں فیہ عرق منہ - 4 اس کی کوئی رگ ہو۔ (ت)

چوتھی حدیث میں ہے:

من لم یعرف حق عترتی والأنصار جو میری اولاد اور انصار اور عرب کا حق نہ پہچانے وہ تین والعرب فھو لاحدی ثلاث امامنافق میں سے ایک ہے۔ منافق ہے یا زانیہ کا بچہ یا ایسا شخص

واما لزنية واما امرء حملت به امه لغير طهر 5 - رواه الديلمی ورواه البيهقی من حديث زيد بن جبير عن داؤد بن حصين عن ابن رافع	جسے اس کی ماں نے بحالت حیض حمل میں لیا۔ اسے دیلمی نے روایت کیا اور اسے بیہقی نے زید بن جبیر کی حدیث میں داؤد بن حصین سے، انھوں نے ابو رافع سے انہوں نے اپنے والد سے انہوں امیر المومنین علی کرم اللہ وجہہ الکریم سے انہوں نے (بیان فرمایا۔)

---

1 صحیح البخاری باب الولد للفراش حرۃ کانت اوامۃ قدیمی کتب خانہ کراچی ۲ / ۹۹۹ 2 سنن ابوداؤد کتاب العتق باب فی عتق ولد الزنا آفتاب عالم پریس لاہور ۱ / ۱۹۶ 3 تاریخ بغداد ترجمہ ۵۹۰۰ عبدالرحمن ابو حفص دارالکتاب العربیہ بیروت ۱۱/ ۱۹۱ ، شعب الایمان حدیث ۸۷۷۳ دارالکتب العلمیہ بیروت ۲/ ۱۹۱ 4 کنزالعمال بحوالہ طب عن ابی موسیٰ رضی اللہ عنہ حدیث ۱۳۰۹۳ موسسۃ الرسالہ بیروت ۵/ ۳۳۳ 5 الفردوس بماثور الخطاب حدیث ۵۹۵۵ دارالکتب العلمیہ بیروت ۳ / ۶۲۶

Volume 9 Fatawa Rizvia

From his father, from the Commander of the Faithful, Ali (may Allah be pleased with him), from the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him), and his words were: "Either he is a hypocrite, or a child of adultery, or born of impurity."[1] — Narrated from the Holy Prophet (peace and blessings of Allah be upon him), his words are: "Either he is a hypocrite, or a child of an adulteress, or born without purity." (Trans.)

Despite this, we cannot command the Almighty. "Allah does what He wills."[2] "Verily, Allah ordains what He intends."[3] (Allah does what He wills, indeed God commands what He intends. - Trans.) Yes, patience in itself is a beautiful virtue. "Indeed, Allah does not allow to be lost the reward of those who do good."[4] (And Allah Almighty does not waste the reward of the doers of good. - Trans.) And Allah Almighty knows best.

Issue 112: From the city, Katra Chand Khan, asked by Jamal Ahmed, 16 Shaban 1336 AH. The wife of the questioner's eldest son, who had been ill with tuberculosis for a long time and was taken home by her parents, passed away there. Upon hearing the news of the passing, the questioner, along with his son and a few other people, and all the funeral and burial arrangements, arrived. They treated us very rudely, did not allow us to participate in the funeral, and did not even let us put soil [on the grave]. What is this act like?

Answer: They did a very bad thing if it was without a valid Sharia reason, as they unjustly harmed a Muslim. The Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) said: "Whoever harms a Muslim has harmed me, and whoever harms me has harmed Allah."[5] — Whoever unjustly harmed a Muslim, he harmed me, and whoever harmed me, he harmed Allah Almighty. And Allah Almighty knows best.

Issue 115: What do the scholars of religion say about this issue: if an old grave opens up for some reason, i.e., its soil is removed and the bones of the deceased etc. become visible, is it permissible to put soil on the grave in this situation or not? If it is permissible, how should it be done? Explain and you will be rewarded with evidence.

Answer: In this case, putting soil on it is not only permissible but obligatory, because covering a Muslim is mandatory.

[1] Shu'ab al-Iman, Chapter on the Veneration of the Prophet (PBUH), Hadith 1612, Dar al-Kutub al-Ilmiyah Beirut 2/232. [2] Al-Quran 14/27 [3] Al-Quran 5/1 [4] Al-Quran 9/120 [5]

Kanz al-Ummal with reference to Tabarani from Anas (may Allah be pleased with him) Hadith 83703, Muassasat al-Risala Beirut 10/16. Page 404 of 948

जिल्द नहम (खंड 9) फतावा रज़विया

अपने वालिद से, उन्होंने अमीरुल् मोमिनीन अली (करमल्लाहु तआला वज्हहुल् करीम) से, उन्होंने नबी करीम (सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम) से रिवायत किया और उनके अल्फाज़ ये हैं: "या तो मुनाफिक है या ज़िना का बच्चा या बे-तहारत का।"[1] — नबी करीम सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम से रिवायत किया उसके अल्फाज़ ये हैं: या तो मुनाफिक है या मज़्निया का बच्चा या बे-तहारत का (त)

इसके बावजूद अज़्ज़-ओ-जल्ल पर हुक्म नहीं कर सकते। "अल्लाह जो चाहता है करता है।"[2] "बेशक अल्लाह जो चाहता है हुक्म फरमाता है।"[3] (अल्लाह जो चाहे करता है बेशक ख़ुदा जो चाहे हुक्म फरमाता है। त) हाँ, सब्र अपने आप में एक हुस्न-ए-जमीला (खूबसूरत नेकी) है। "बेशक अल्लाह नेकी करने वालों का अज्र ज़ायां (व्यर्थ) नहीं करता।"[4] (और अल्लाह तआला नेकी करने वालों का अज्र ज़ायां नहीं करता। त) वल्लाहु तआला आलम।

मसला ११२: शहर मोहल्ला कटरा चाँद खान से, सायल जमाल अहमद, १६ शाबान १३३६ हिजरी सायल के बड़े लड़के की अहलिया, जो अरसे से दिक़ (तपेदिक) के आरज़े में अलील थी और उसके वालिदैन उसे अपने घर ले गए थे वहीं इंतकाल किया, सायल मय पिसर खबर इंतकाल सुन कर मय चंद दीगर अश्ख़ास व जुमला सामान तजहीज़ व तकफ़ीन लेकर पहुंचे उन्होंने हमें निहायत तुर्श रूई (बेरुखी) से शरीक-ए-मैय्यत न होने दिया और मिट्टी तक न देने दी, ये फ़ेल कैसा है?

अल-जवाब: बहुत बुरा किया, अगर बिला वजह-ए-शरई सही मोतबर था कि मुसलमान को नाहक ईज़ा दी, और रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम फरमाते हैं: "जिसने किसी मुसलमान को ईज़ा दी उसने मुझे ईज़ा दी और जिसने मुझे ईज़ा दी उसने अल्लाह को ईज़ा दी।"[5] — जिसने किसी मुसलमान को नाहक ईज़ा दी उसने मुझे ईज़ा दी और जिसने मुझे ईज़ा दी उसने अल्लाह तआला को ईज़ा दी। वल्लाहु तआला आलम।

मसला ११५: क्या फरमाते हैं उलमा-ए-दीन इस मसले में कि कदीम कब्र अगर किसी वजह से खुल जाए यानी उसकी मिट्टी अलग हो जाए और मुर्दे की हड्डियाँ वगैरह ज़ाहिर होने लगें तो इस सूरत में कब्र को मिट्टी देना जाइज़ है या नहीं? अगर जाइज़ है तो किस सूरत से देना चाहिए? बयान करें सवाब पायें दलील के साथ।

अल-जवाब: इस सूरत में उसे मिट्टी देना फ़क़त जाइज़ ही नहीं बल्कि वाजिब है कि सत्र-ए-मुस्लिम (मुसलमान की पर्दापोशी) लाज़िम है।

1 शोअ़बुल ईमान बाब फ़ी ताज़ीमिन नबी सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम हदीस १६१२ दारुल कुतुबुल इलमिया बेरूत २३२/२ 2 अल-क़ुरआन १४/ २७ 3 अल-क़ुरआन ५/ १ 4 अल-क़ुरआन ९/ १२० 5 कंज़ुल उम्माल बहवाला तबरानी अन अनस रज़ियल्लाहु अन्हु हदीस ८३७०३ मुअ़स्ससतुर रिसाला बेरूत १०/ १६ पेज 948 का 404

جلد نہم فتاویٰ رضویہ

عن ابیہ عن امیر المومنین علی کرم اللہ تعالیٰ وجھہ عن النبی صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم ولفظہ اما منافق واما ولد مزنیۃ واما لغیر طھور[1]۔ نبی کریم صلی اللہ علیہ وسلم سے روایت کیا اس کے الفاظ یہ ہیں: یا تو منافق ہے یا مزنیہ کا بچہ یا بے طہارت کا (ت)

بایں ہمہ عزوجل پر حکم نہیں کرسکتے یَفْعَلُ اللّٰہُ مَا یَشَاءُ[2] اِنَّ اللّٰہَ یَحْکُمُ مَا یُرِیْدُ[3] (اللہ جو چاہے کرتا ہے بیشک خدا جو چاہے حکم فرماتا ہے۔ت) ہاں صبر بجائے خود ایک حسنہ جمیلہ ہے اِنَّ اللّٰہَ لَا یُضِیْعُ اَجْرَ الْمُحْسِنِیْنَ[4] اور اللہ تعالیٰ نیکی کرنے والوں کا اجر رائیگاں نہیں کرتا۔ ت) واللہ تعالیٰ اعلم۔

مسئلہ ۱۱۲: از شہر محلہ کٹرہ چاند خان مسئولہ جمال احمد ۱۶ شعبان ۱۳۳۶ھ سائل کے بڑے لڑکے کی اہلیہ نے جو عرصہ سے بعارضہ دق علیل تھی اور اس کے والدین اسے اپنے گھر لے گئے تھے وہیں انتقال کیا، سائل مع پسر خبر انتقال سن کر مع چند دیگر اشخاص و جملہ سامان تجہیز و تکفین لے کر پہنچے انھوں نے ہمیں نہایت ترش روئی سے شریک میّت نہ ہونے دیا اور مٹی تک نہ دینے دی، یہ فعل کیسا ہے؟

الجواب: بہت بُرا کیا، اگر بلا وجہ شرعی صحیح معتبر تھا کہ مسلمان کو ناحق ایذا دی، اور رسول اللہ صلی اللہ علیہ وسلم فرماتے ہیں: مَنْ اٰذٰی مُسْلِمًا فَقَدْ اٰذَانِیْ وَمَنْ اٰذَانِیْ فَقَدْ اٰذَی اللّٰہَ [5]۔ جس نے کسی مسلمان کو ناحق ایذا دی اس نے مجھے ایذا دی اور جس نے مجھے ایذا دی اس نے اللہ تعالیٰ کو ایذا دی۔ واللہ تعالیٰ اعلم

مسئلہ ۱۱۵: کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ قدیم قبر اگر کسی وجہ سے کھل جائے یعنی اس کی مٹی الگ ہو جائے اور مردہ کی ہڈیاں وغیرہ ظاہر ہونے لگیں تو اس صورت میں قبر کو مٹی دینا جائز ہے یا نہیں؟ اگر جائز ہے تو کس صورت سے دینا چاہئے؟ بینوا توجروا بالدلیل

الجواب: اس صورت میں اسے مٹی دینا فقط جائز ہی نہیں بلکہ واجب ہے کہ ستر مسلم لازم ہے۔

1 شعب الایمان باب فی تعظیم النبی صلی اللہ علیہ وسلم حدیث ۱۶۱۲ ادارہ الکتب العلمیہ بیروت ۲۳۲/۲ 2 القرآن ۱۴/ ۲۷ 3 القرآن ۵/ ۱ 4 القرآن ۹/ ۱۲۰ 5 کنز العمال بحوالہ طبر عن انس رضی اللہ عنہ حدیث ۸۳۷۰۳ موسسۃ الرسالہ بیروت ۱۰/ ۱۶ Page 404 of 948

Fatawa Rizvia, Volume 9

[Boxed Text] Arabic: And a foot became exposed when the wall of the noble chamber was demolished in the time of Al-Walid. The people were terrified and thought it was the foot of the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him). They found no one who knew [the truth] until 'Urwah said to them, 'By Allah, it is not the foot of the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him); it is only the foot of 'Umar (may Allah be pleased with him).' As recorded in Sahih al-Bukhari from Hisham from his father. Ibn Zabalah and others have narrated that 'Umar ibn 'Abd al-'Aziz (may Allah be pleased with him) said to the person he ordered to build the wall, 'Cover what you have seen,' and he did so. (T)

Urdu Translation: During the time of Al-Walid, when the wall of the Holy Chamber was demolished, a foot became visible, causing people to panic. They suspected it was the blessed foot of the Holy Prophet (peace and blessings of Allah be upon him). Someone was sought who might be aware of it, until Hazrat 'Urwah said, 'By Allah, this is not the foot of the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him); it is only the foot of Hazrat 'Umar (may Allah be pleased with him).' As narrated in Sahih al-Bukhari from Hisham bin 'Urwah, who narrates from his father; and Ibn Zabalah and others have narrated that Hazrat 'Umar bin 'Abd al-'Aziz said to the person he ordered to build the wall, 'Cover what you have seen,' and he complied. (T)

And no other scenario has been mentioned regarding this; covering is mandatory and exposure is forbidden. They should cover it in such a way that it does not have to be opened further. And Allah Almighty knows best.

Problem 116: From Calcutta, Zakaria Street No. 22, submitted by Mawlawi Abdul Haq and Mawlawi Karim through Haji Lal Khan Sahib, 26 Ramadan-ul-Mubarak 1337 AH.

What do the scholars of the religion say regarding this matter: A Pir (spiritual guide) during his final illness expressed a wish to be buried in the city of a fortunate and upright disciple far from his homeland. After making this will, he reached there during that same illness and was buried there after passing. Now, after four years and a few months, the Pir's son (in whose presence his father had willed to the disciple that he be buried in his city), due to a dispute with that disciple, wants to exhume the body from that chamber and bury it in the Sheikh's homeland or in another place in the same city where the shrine is currently located. Is it possible for a Muslim to be exhumed, which is considered an absolute desecration of the deceased, and for the deceased's will, which was made with such care, to be broken?

1 Sahih al-Bukhari, Book of Funerals, Chapter on what has been narrated regarding the Prophet's grave (peace be upon him), Qadimi Kutub Khana, Karachi, 1/186.

फ़तावा रज़विया, खंड 9

[बक्से का पाठ] अरबी: और जब अल-वलीद के समय में शरीफ कमरे की दीवार गिर गई, तो एक पैर दिखाई दिया। लोग घबरा गए और उन्हें लगा कि यह नबी (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) का मुबारक पैर है। उन्हें कोई ऐसा व्यक्ति नहीं मिला जो इसके बारे में जानता हो, यहाँ तक कि हज़रत उरवा ने उनसे कहा: 'अल्लाह की कसम, यह नबी (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) का पैर नहीं है; यह केवल हज़रत उमर (रज़ियल्लाहु अन्हु) का पैर है।' जैसा कि सहीह बुखारी में हिशाम से उनके पिता के माध्यम से वर्णित है। इब्न ज़बाला और अन्य लोगों ने रिवायत की है कि हज़रत उमर बिन अब्दुल अज़ीज़ (रज़ियल्लाहु अन्हु) ने दीवार बनाने का आदेश देने वाले व्यक्ति से कहा: 'जो कुछ तुमने देखा है उसे ढक दो,' और उसने ऐसा ही किया। (त)

उर्दू अनुवाद: वलीद के ज़माने में जब रौज़ा पाक की दीवार ढह गई, तो एक पैर खुल गया जिससे लोग घबरा उठे, उन्हें गुमान हुआ कि यह नबी अकरम (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) का मुक़द्दस कदम है। किसी ऐसे आदमी को तलाशा गया जो इसके बारे में जानता हो, यहाँ तक कि हज़रत उरवा ने कहा, 'खुदा की कसम, यह नबी (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) का कदम नहीं है, यह तो हज़रत उमर (रज़ियल्लाहु अन्हु) का ही कदम है।' जैसा कि सहीह बुखारी में हिशाम बिन उरवा से रिवायत है, वह अपने पिता से रावी हैं; और इब्न ज़बाला वग़ैरा ने रिवायत की है कि हज़रत उमर बिन अब्दुल अज़ीज़ ने जिसे दीवार बनाने का हुक्म दिया था, उससे फ़रमाया कि 'जो तुमने देखा उसे छुपा दो,' उसने तामील की। (त)

और इस बारे में कोई और विवरण नहीं आया है; पर्दा करना लाज़िमी है और खुलासा करना मना है। उन्हें इस तरह ढंकना चाहिए कि इसे दोबारा खोलने की ज़रूरत न पड़े। और अल्लाह सर्वशक्तिमान बेहतर जानता है।

मसला 116: कलकत्ता, ज़कारिया स्ट्रीट नंबर 22 से, मौलवी अब्दुल हक़ और मौलवी करीम साहबान द्वारा, हाजी लाल खान साहब के माध्यम से, 26 रमज़ान-उल-मुबारक 1337 हिजरी।

दीन के विद्वान इस मसले में क्या फ़रमाते हैं: एक पीर ने अपनी मृत्यु शैय्या पर अपने वतन से दूर एक नेक और सुशिक्षित मुरीद के शहर में दफ़न होने की इच्छा जताई। वसीयत करने के बाद और उसी बीमारी के दौरान वह वहां पहुँच गए और निधन के बाद वहीं दफ़न हुए। अब चार साल और कुछ महीनों के बाद, पीर का बेटा (जिसके सामने उसके पिता ने मुरीद से वसीयत की थी कि हम तुम्हारे

शहर में दफ़न होंगे), उस मुरीद से विवाद के कारण चाहता है कि शव को उस कमरे से निकाल कर शेख के वतन या उसी शहर में जहाँ अभी मज़ार है, दूसरी जगह ले जाकर दफ़न किया जाए। क्या यह संभव है कि एक मुसलमान की कब्र खोदी जाए (नब्श-ए-मुस्लिम), जिसे पूरी तरह से मृत व्यक्ति का अपमान माना जाता है, और मृतक की वसीयत को तोड़ दिया जाए जिसे इतनी सावधानी के साथ किया गया था?

1 सहीह अल-बुखारी, किताबुल जनाइज़, नबी (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) की कब्र के बारे में जो बयान हुआ है, कदीमी कुतुब खाना कराची 1/186.

पृष्ठ 405/948

فتاوٰی رضویہ ، جلد نہم

[باکس میں موجود عبارت] عربی: وقد انکشفت قدم لما انھدم جدر الحجرۃ الشریفۃ في زمان الولید ففزع الناس وظنوا انھا قدم النبي صلی اللہ تعالی علیہ وسلم فما وجدوا احد یعلم ذلك حتی قال لھم عروۃ لا واللہ ماھی قدم النبي صلی اللہ تعالی علیہ وسلم ماھی الا قدم عمر رضي اللہ تعالی عنہ کما في صحیح البخاري عن ھشام عن ابیہ و اخرج ابن زبالۃ و غیرہ ان قال عمر بن عبدالعزیز رضي اللہ تعالی عنہ لمن امرہ ببناء الحائط ان غط مارأیت ففعلہ ۔

اردو ترجمہ: ولید کے زمانے میں جب روضہ پاک کی دیوار منہدم ہوئی تو ایک قدم کھل گیا جس سے لوگ گھبرا اٹھے ، انہیں گمان ہوا کہ یہ نبی اکرم صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم کا قدم مبارک ہے۔ کسی ایسے آدمی کو تلاش کیا جو اس سے آگاہ ہو یہاں تک کہ حضرت عروہ نے کہا، بخدا یہ نبی صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم کا قدم نہیں، یہ تو حضرت عمر رضی اللہ تعالٰی علیہ وسلم کا ہی قدم ہے۔ جیسا کہ صحیح بخاری میں ہشام بن عروہ سے مروی ہے وہ اپنے والد سے راوی ہیں اور ابن زبالہ وغیرہ نے روایت کی ہے کہ حضرت عمر بن عبدالعزیز نے جس کو دیوار تعمیر کرنے کا حکم دیا تھا اس سے فرمایا جو تم نے دیکھا اسے چھپا دو، اس نے تعمیل کی۔ (ت)

اور اس بارے میں کوئی صورت بیان میں نہ آئی ستر لازم ہے اور کشف ممنوع، اس طرح چھپائیں کہ زیادہ نہ کھولنا پڑے۔ واللہ تعالٰی اعلم

مسئلہ ۱۱۶: از کلکتہ زکریا اسٹریٹ نمبر ۲۲ مسئولہ مولوی عبدالحق و مولوی کریم صاحبان بمعرفت حاجی لعل خاں صاحب ۲۶ رمضان المبارک ۱۳۳۷ھ

کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ ایک پیر نے اپنے مرض الموت میں اپنے وطن سے دُور ایک مرید سعید ورشید کے شہر میں اپنے دفن کی خواہش کی، بعد وصیت اور اسی مرض الموت میں وہاں پہنچ گئے اور بعد انتقال وہیں دفن ہوئے، اب چار برس چند ماہ کے بعد اس پیر کا فرزند جس کے سامنے اس کے باپ نے اپنے مرید کو وصیت کی تھی کہ ہم تمہارے شہر میں دفن ہوں، بسبب نزاع کے اس مرید سے چاہتا ہے کہ نعش کو اس حجرے سے اکھاڑ کر وطن شیخ یا اسی شہر میں جہاں اب مزار ہے دوسری جگہ لے جا کر دفن کرے، آیا یہ امر ممکن ہے کہ نبشِ مسلم کیا جائے جس سے سراسر توہین میت متصور ہے اور وصیت متوفی کو جو اس اہتمام کے ساتھ کی، توڑ دیا جائے۔

1 صحیح البخاری کتاب الجنائز باب ماجاء فی قبر النبی صلی اللہ علیہ وسلم قدیمی کتب خانہ کراچی ۱/۱۸۶

Fatawa Razawiyya, Volume 9

Answer from Lucknow: He is the Righteous One. The owner of the land and the chamber buried the body of the Sheikh with his own pleasure and permission. Therefore, exhumation (Nabsh-e-Qabr) is not permissible now, but is haraam (forbidden), as explicitly stated in Shami. And Allah the Almighty knows best what is right. Written by Muhammad Abdul Majeed.

The Answer: In the mentioned case, exhumation is haraam, haraam, strictly haraam, and it is a severe insult and violation of the secret of the Lord of the worlds. Any son who wishes this for his father is disobedient and ungrateful. Although a will regarding burial is not mandatory to follow, the issue of burial without the owner's consent has no relevance here, as the ruling is based on consent. Hypothetically, if the owner's consent was not there at the time of burial, the right to exhume would belong to him, not to a stranger who has no right in the land. It is stated in At-Tajnis wal-Mazid:

If someone is buried in another's land without the owner's permission, the owner has a choice: if he wishes, he can order the removal of the deceased, and if he wishes, he can level the ground and cultivate it. Allah Almighty knows best.

Issue 117: Monday, 23 Safar 1323 AH Question: What do you say, may Allah have mercy on you, about a pregnant woman who died at full term and was buried according to the custom? Then a righteous man saw in a dream that she gave birth to a living child. Is it permissible to dig up her grave and take out the child with her, or only take out her child, relying on the dream of the mentioned man, or not? Explain with proof, and you will be rewarded by the Merciful.

The Answer: No, it is not permissible except with clear evidence, and the concealment [of the body] should be protected.

1. Fatawa Hindiyyah, citing At-Tajnis, Chapter Six on the Grave and Burial, etc., Noorani Kutub Khana Peshawar, 1/167.

फ़तावा रज़विया, खंड 9

लखनऊ से उत्तर: वह सही मार्ग दिखाने वाला है। ज़मीन और कमरे के मालिक ने अपनी मर्ज़ी और इजाज़त से शेख के शव को दफ़न किया, इसलिए अब कब्र को खोदना (नबश-ए-कब्र) जायज़ नहीं है, बल्कि हराम है, जैसा कि शामी में स्पष्ट रूप से उल्लेखित है। और अल्लाह तआला ही बेहतर जानता है। मुहम्मद अब्दुल मजीद द्वारा लिखित।

उत्तर: उपरोक्त मामले में कब्र खोदना हराम, हराम, सख्त हराम है, और यह मृतक का घोर अपमान और रब्बुल आलमीन के रहस्य का उल्लंघन है। जो बेटा अपने पिता के साथ ऐसा करना चाहे, वह आज्ञा न मानने वाला और कपूत है। यद्यपि दफ़न के संबंध में वसीयत पर अमल करना अनिवार्य नहीं है, और न ही यहाँ मालिक की सहमति के बिना दफ़न के मामले का कोई लेना-देना है क्योंकि हुक्म सहमति पर आधारित है। फर्ज़ करें कि दफ़न के समय मालिक की सहमति नहीं थी, तो कब्र खोदने का अधिकार उसे होता, न कि किसी अजनबी को जिसका ज़मीन में कोई अधिकार नहीं है। 'अत-तजनीस वल-मजीद' में लिखा है:

यदि किसी दूसरे की ज़मीन में उसके मालिक की इजाज़त के बिना दफ़न कर दिया जाए, तो मालिक को अधिकार है कि चाहे तो मय्यत को निकलवा दे और चाहे तो ज़मीन के बराबर कर दे और उसमें खेती करे। अल्लाह तआला ही बेहतर जानता है।

मसला 117: सोमवार, 23 सफ़र 1323 हिजरी प्रश्न: इस बारे में आप क्या फरमाते हैं (अल्लाह आप पर रहम करे) कि एक गर्भवती महिला गर्भावस्था की पूरी अवधि के बाद मृत्यु को प्राप्त हो गई और उसे दस्तूर के मुताबिक दफ़न कर दिया गया। फिर एक नेक आदमी ने सपने में देखा कि उस महिला ने एक जीवित बच्चे को जन्म दिया है। क्या अब उस व्यक्ति के सपने पर भरोसा करके कब्र खोदना और बच्चे को महिला के साथ या सिर्फ बच्चे को बाहर निकालना जायज़ है या नहीं? दलील के साथ बयान करें, खुदा से सवाब पाएँ।

उत्तर: नहीं, यह जायज़ नहीं है जब तक कि कोई स्पष्ट प्रमाण न हो, और पर्दे (मय्यत की गोपनीयता) की रक्षा की जानी चाहिए।

1. फ़तावा हिन्दिया, अत-तजनीस के हवाले से, छठा अध्याय: कब्र और दफ़न आदि, नूरानी कुतुब खाना पेशावर, 1/167.

جواب از لکھنؤ: ھوالمصوب، مالک زمین و حجرہ نے اپنی خوشی و اجازت سے نعش شیخ کو دفن کیا، پس اب نبش قبر کا جائز نہیں، بلکہ حرام ہے، جیسا کہ شامی میں مصرح ہے۔ واللہ تعالیٰ اعلم بالصواب۔ حررہ محمد عبدالمجید۔ الجواب: صورت مذکورہ میں نبش حرام، حرام، سخت حرام، اور میت کی اشد توہین وہتک سرّ رب العلمین ہے اور جو بیٹا باپ کے ساتھ ایسا چاہے عاق و ناخلف ہے۔ اگرچہ وصیت درباره دفن واجب العمل نہیں، نہ یہاں دفن بے رضائے مالک کے مسئلہ کو کچھ دخل تھا کہ رضا پر تفریح حکم ہو، بالفرض اگر وقت دفن رضائے مالک نہ ہوتی تو اختیار نبش اُسے ہوتا نہ کہ اجنبی کو جس کا زمین میں کوئی حق نہیں۔ التجنیس والمزید میں ہے:

اذا دفن في ارض غیرہ بغیر اذن مالکھا فالمالك بالخیاران شاء امر باخراج المیت وان شاء سوی الارض وزرع فیھا ۱۔ واللہ تعالی اعلم اگر دوسرے کی زمین اس کے مالک کی اجازت کے بغیر دفن کر دیا جائے تو مالک کو اختیار ہے اگر چاہے میت کو نکلوا دے اور اگر چاہے تو زمین کے برابر کر دے اور اس میں کھیتی کرے ۔ (ت) واللہ تعالیٰ اعلم

مسئلہ ۱۱۷: بروز دوشنبہ ۲۳ صفر ۱۳۲۳ھ ما قولکم رحمکم اللہ تعالی امرأۃ حاملۃ ماتت في مدۃ کاملۃ ودفنت بدستور العمل فرأی رجل صالح في المنام انھا ولدت ولدا حیاً ایجوز ان یحفر قبرھا ویخرج الولد معھا اویخرج ولدھا فقط باعتماد منام الرجل المذکور ام لا ، بینوا بالبرھان توجروا من الرحمٰن ۔ اس بارے میں کیا فرماتے ہیں کہ ایک عورت پوری مدتِ حمل کے بعد بحالت حمل انتقال کر گئی، دستور کے مطابق اسے دفن کردیا گیا، ایک مردِ صالح نے خواب دیکھا کہ اس عورت کو زندہ بچہ پیدا ہوا ہے، اب شخص مذکور کے خواب پر اعتماد کر کے قبر کھود کر بچے کو عورت کے ساتھ نکالنا جائز ہے یا نہیں؟ دلیل کے ساتھ بیان فرمائیں خدا سے اجر پائیں (ت)

الجواب: لا، الابدلیل جائز والستر مصون جائز نہیں، مگر جب کوئی روشن دلیل ہو، پردہ محفوظ

١ فتاویٰ ہندیہ بحوالہ التجنیس الفصل السادس في القبر والدفن الخ نورانی کتب خانہ پشاور ١/ ١٦٧

Fatawa Razawiyya Volume 9

And dreams are of many kinds. It is stated in Sirajiyyah then Hindiyyah: A pregnant woman who was seven months along and the child was moving in her womb, died and was buried. Then she was seen in a dream saying, "I have given birth to the child." The grave shall not be dug up. End quote. And Allah Almighty knows best. (T)

Case 118: From Jauhar Kot, Barkhan, Balochistan, sent by Qadir Bakhsh Sahib, 12 Rabi al-Awwal 1337 AH. What do the scholars of religion say regarding this matter: It is the custom of travelers that if they die during a journey, they are buried there but kept as a trust. After a fixed period, they are taken out from there and moved from east to west and from north to south and vice versa. Is this act permissible or impermissible?

The Answer: This is forbidden (haram). It is not lawful to open the grave after burial, and transporting the body a long distance is also not allowed. And Allah Almighty knows best. (T)

Case 119 to 120: From Jalandhar Chowk Hazrat Imam Nasir-ud-Din Sahib, asked by Malik Muhammad Amin Sahib, 9 Safar 1339 AH. What do the scholars of religion and jurists of the clear Sharia say regarding this matter: (1) If bones of the deceased come out of the grave because the graveyard has become very desolate, in such a situation is it permissible to rebuild the grave anew with solid bricks or not? (2) What is the ruling regarding entering such a graveyard wearing shoes, sleeping on a cot, or tethering a horse? Inform us and be rewarded.

The Answer: (1) It is obligatory to bury those bones, and the grave can be made solid from the top even if it is not solid around the deceased.

1. Fatawa Hindiyyah, Chapter 16 regarding visiting graves, etc. Noorani Kutub Khana Peshawar 5/351.

फ़तावा रज़विया जिल्द नहुम (9)

और ख़्वाब तरह-तरह के होते हैं, सिराजिया फिर हिन्दिया में है: एक औरत के हम्ल (गर्भावस्था) को सात महीने हुए थे, बच्चा उसके पेट में हरकत करता था, वो मर गई और उसे दफ़्न कर दिया गया। फिर किसी ने उसे ख़्वाब में देखा कि वो कहती है 'मैंने बच्चा जना है', तो क़ब्र न खोदी जाएगी। इल्तिक़ात। और खुदाए बरतर ख़ूब जानने वाला है। (त)

मसला ११८: अज जौहर कोट बारखान मुल्क बलोचिस्तान, मुर्सेला क़ादिर बख़्श साहब १२ रबी-उल-अव्वल शरीफ़ १३४७ हिजरी। क्या फ़रमाते हैं उलेमा-ए-दीन इस मसले में कि: मुसाफ़िरों की आदत यूँ है कि जो सफ़र में मरते हैं उनको वैसे ही दफ़्न कर देते हैं लेकिन अमानत रखते हैं, एक मुक़र्ररा मुद्दत के बाद उसे निकाल कर मशरिक़ से मग़रिब, शुमाल से जुनूब और इसके बरअक्स (विपरीत) ले जाते हैं। ये फ़ेल (कार्य) जायज़ है या नाजायज़?

अल-जवाब: ये हराम है, दफ़्न के बाद खोलना जायज़ नहीं, और दूर मसाफ़त (दूरी) तक ले जाना भी रवा नहीं। और खुदाए बरतर ख़ूब जानने वाला है। (त)

मसला ११९ ता १२०: अज जालंधर चौक हज़रत इमाम नासिरुद्दीन साहब, मसतूला मलिक मुहम्मद अमीन साहब ९ सफ़र १३४९ हिजरी। क्या फ़रमाते हैं उलेमा-ए-दीन और मुफ़्तियान-ए-शरअ-ए-मतीन इस मसले में: (१) क़ब्रिस्तान बहुत वीरानी की वजह से मय्यत की हड्डियाँ बाहर निकल पड़ें तो ऐसी हालत में पुख़्ता ईंटों से क़ब्र अज़-सर-ए-नौ (नए सिरे से) बनानी जायज़ है या नहीं? (२) ऐसे क़ब्रिस्तान में जूती पहन कर जाना और चारपाई पर सोना, घोड़ा बाँधने में क्या हुक्म है? बय्यिनू तूजरू।

अल-जवाब: (१) उन हड्डियों को दफ़्न करना वाजिब है और क़ब्र मय्यत के गिर्द कच्ची हो ऊपर से पक्की कर सकते हैं।

१ फ़तावा हिन्दिया अल-बाब अल-सादिसा अश्शरा फ़ी ज़ियारतिल कुबूर इलख़ नूरानी कुतुब ख़ाना पेशावर ५/३५१

सफ़ा ४०७/९४८

والرویا فنون، فی السراجیہ ثم الہندیہ حامل اتت علی حملہا سبعۃ اشہر وکان الولد یتحرك فی بطنہا ماتت فدفنت ثم رؤیت فی المنام انہا قالت ولدت لاینبش القبر ۱ اھ واللہ تعالٰی اعلم ہے۔ اور خواب طرح طرح کے ہوتے ہیں ، سراجیہ پھر ہندیہ میں ہے ایک عورت کے حمل کو ساتھ مہینے ہوئے بچہ اس کے پیٹ میں حرکت کرتا تھا وہ مر گئی اور اسے دفن کردیا گیا، پھر کسی نے اسے خواب میں دیکھا کہ وہ کہتی ہے میں نے بچہ جنا ہے، تو قبر نہ کھودی جائے گی اھ اور خدائے بر تر خوب جاننے والا ہے۔ (ت)

مسئلہ ۱۱۸: از جوہر کوٹ بار کھان ملک بلوچستان مرسلہ قادر بخش صاحب ۱۲ ربیع الاول شریف ۱۳۳۷ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ : مسافران را عادت است کہ در سفر بمیرند ہمانا دفن میکند ولیکن امان میکند بعد از مدت مقررہ ازینجا بیرون کنانیدہ از مشرق بہ مغرب واز شمال بجنوب و علی العکس می برند، آیا ایں فعل جائز است یا ناجائز؟ مسافروں کی عادت یوں ہے کہ جو سفر میں مرتے ہیں ان کو ویسے ہی دفن کر دیتے ہیں لیکن امانت رکھتے ہیں ایک مقررہ مدت کے بعد سے نکالا کر مشرق سے مغرب، شمال سے جنوب اور اس کے برعکس لے جاتے ہیں، یہ فعل جائز ہے یا ناجائز؟

الجواب: این حرام ست، بعد از دفن کشودن حلال نیست، ونقل بمسافت بعیدہ روانسیت، واللہ تعالٰی اعلم یہ حرام ہے، دفن کے بعد کھولنا جائز نہیں، اور دور مسافت تک لے جانا بھی روا نہیں، اور خدائے بر تر خوب جاننے والا ہے۔(ت)

مسئلہ ۱۱۹ تا ۱۲۰: از جالندھر چوک حضرت امام ناصر الدین صاحب مسئولہ ملک محمد امین صاحب ۹ صفر ۱۳۳۹ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین ومفتیان شرع متین اس مسئلہ میں: (۱) قبرستان بوجہ بہت ویرانے کے میت کی ہڈیاں باہر نکل پڑیں تو ایسی حالت میں پختہ اینٹوں سے قبر از سر نو بنانی جائز ہے یا نہیں؟ (۲) ایسے قبرستان میں جوتی پہن کر جانا اور چار پائی پر سونا، گھوڑا باندھنے میں کیا حکم ہے؟ بینوا توجروا

الجواب: (۱) ان ہڈیوں کو دفن کرنا واجب ہے اور قبر میت کے گرد کچی نہ ہو اوپر سے پکی کر سکتے ہیں۔

۱ فتاوی ہندیہ الباب السادس عشر فی زیارۃ القبور الخ نورانی کتب خانہ پشاور ۵/ ۳۵۱

(2) It is forbidden to walk on graves, but not to wear shoes. It is a severe insult to deceased Muslims; however, if there is an old path in the graveyard where there are no graves, it is permissible to walk on it even while wearing shoes. Tying horses, spreading cots, sleeping, or sitting on graves are all forbidden. And Allah Almighty knows best.

Issue 121: From the city of Bareilly, Kohna Mohalla Kankar Tola, asked by Maulvi Huzoor Ahmad Sahib, 12th Rabi-ul-Awwal Sharif, 1337 AH. What do the scholars of religion say regarding this matter: In the courtyard of a mosque, after its construction, three deceased persons were coincidentally buried over time. To the north of the graves, there was a room (hujra) which the heirs of the deceased demolished and built elsewhere, incorporating the land of the former room into the boundaries of the graves. It appears from the circumstances that the former room's land was included for future graves. Furthermore, on three sides of the graves (east, west, and south), some mosque courtyard land was also included when the boundaries were built. In such a case, what should be done according to Sharia? Since the courtyard floor is currently being paved and repaired, should the land of the former room and any mosque land that has been encroached upon by the graves be reclaimed and boundaries set for the three graves, or what should be done? A prompt reply is needed as the floor construction is underway.

The Answer: If the situation is as stated, that after the mosque was built, the heirs of the founder or anyone else made graves in the mosque's courtyard, then those graves are pure injustice. Keeping them there is an injustice, let alone demarcating further land for future graves and including mosque rooms and courtyard land—all of this is injustice and forbidden (haram), and it is obligatory to remove it. The Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) said: "There is no right for an unjust root." (1) An unjust person's root has no right. Here, there is some ambiguity in Ibn Abidin (Shami) which we have clarified in its marginalia. And Allah Almighty knows best (T). Ambiguity we removed in what we understood from it. And Allah Almighty knows best.

Issue 122: If there is an old graveyard adjacent to the mosque's entrance facing the mosque, where grave marks are prominent, and its land is leveled and included in the mosque's courtyard for expansion, and prayers are offered on it, then...

1. Sunan Abu Dawood, Chapter on 'Ihya al-Mawat', Aftab-e-Alam Press, Lahore, 2/81

फतावी रज़विया, जिल्द नहम (नौ)

(२) कब्रों पर चलना मना है, न कि जूता पहनना। यह मुस्लिम मृतकों का घोर अपमान है; हाँ, कब्रिस्तान में कोई पुराना रास्ता हो जहाँ कब्रें न हों, तो उस पर जूता पहनकर भी चलना जायज़ है। कब्रों पर घोड़े बाँधना, चारपाई बिछाना, सोना, बैठना सब मना है। और अल्लाह तआला बेहतर जानता है।

मसला १२१: शहर बरेली कोहना, मुहल्ला कांकर टोला से, मौलवी हुज़ूर अहमद साहब द्वारा पूछा गया, १२ रबी-उल-अव्वल शरीफ, १३३७ हिजरी। दीन के विद्वान इस मामले में क्या कहते हैं: एक मस्जिद के निर्माण के बाद, उसके आंगन में समय के साथ संयोग से तीन शव दफन कर दिए गए। कब्रों के उत्तर में एक कमरा (हुजरा) भी था जिसे मृतकों के वारिसों ने तोड़कर दूसरी जगह बनवा दिया और पुराने कमरे की ज़मीन को कब्रों की सीमा में शामिल कर दिया। परिस्थितियों से ऐसा लगता है कि पुराने कमरे की ज़मीन भविष्य की कब्रों के लिए शामिल की गई है। इसके अलावा, कब्रों के तीन ओर (पूर्व, पश्चिम और दक्षिण) की सीमाओं के निर्माण के समय मस्जिद के आंगन की कुछ ज़मीन भी कब्रों में शामिल हो गई है। ऐसी स्थिति में शरीयत के अनुसार क्या होना चाहिए? चूंकि वर्तमान में मस्जिद के आंगन का फर्श पक्का और दुरुस्त किया जा रहा है, क्या पुराने कमरे की ज़मीन और मस्जिद की जितनी ज़मीन कब्रों के हिस्से में दब गई है, उसे निकाल कर उन तीनों कब्रों के लिए सीमाएं बना दी जाएं या क्या किया जाए? चूंकि फर्श का निर्माण कार्य चल रहा है, इसलिए जवाब की जल्द ज़रूरत है।

अल-जवाब: अगर मामला वैसा ही है जैसा बताया गया है कि मस्जिद के आंगन में मस्जिद बनने के बाद संस्थापक के वारिसों या किसी और ने कब्रें बना लीं, तो वे कब्रें सरासर ज़ुल्म हैं और उन्हें बनाए रखना ज़ुल्म है, न कि भविष्य की कब्रों के लिए घेराबंदी करना और उसमें मस्जिद का कमरा और आंगन की ज़मीन शामिल करना—यह सब ज़ुल्म और हराम है और इसे दूर करना फ़र्ज़ है। अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम) फरमाते हैं: 'लिस लेइरक़िन ज़ालिमिन हक़' (१) ज़ालिम की रग का कोई हक़ नहीं। यहाँ 'शामी' (इब्न आबिदीन) में कुछ भ्रम (इबहाम) पैदा हुआ है जिसे हमने इसके हाशिए में दूर कर दिया है। और अल्लाह तआला बेहतर जानता है। (त) इबहाम अज़लना फ़ीमा अलैह अक़ल्नाहू। वल्लाहु तआला आलम।

मसला १२२: मस्जिद के सामने मस्जिद के दरवाज़े से सटे अगर कोई पुराना कब्रिस्तान हो जिसमें कब्रों के निशान ज़ाहिर हों, और उसकी ज़मीन को मस्जिद के आंगन के विस्तार के लिए बराबर करके आंगन में शामिल कर लिया जाए और उस पर नमाज़ पढ़ी जाए तो...

---

1. सुनन अबू दाऊद, बाब इहया-उल-मवात, आफ़ताब-ए-आलम प्रेस, लाहौर २/८१

पृष्ठ ४०८/९४८

فتاویٰ رضویہ ، جلد نہم

(۲) قبروں پر چلنے کی ممانعت ہے نہ کہ جوتا پہننا۔ سخت توہین اموات مسلمین ہے، ہاں جو قدیم راستہ قبرستان میں ہو جس میں قبر نہیں اس میں چلنا جائز ہے اگرچہ جوتا پہنے ہو۔ قبروں پر گھوڑے باندھنا، چار پائی بچھانا، سونا، بیٹھنا سب منع ہے۔ واللہ تعالیٰ اعلم

مسئلہ ۱۲۱: از شہر بریلی کہنہ محلہ کانکر ٹولہ مسئولہ مولوی حضور احمد صاحب ۱۲ ربیع الاول شریف ۱۳۳۷ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ ایک مسجد کے صحن میں، بعد تعمیر مسجد، ایک عرصہ کے بعد اتفاق سے تین میت دفن ہو گئیں، قبروں کے میل میں شمال کی جانب ایک حجرہ بھی تھا کہ اس کو وارثانِ میت موصوفہ نے توڑ کر دوسری جگہ حجرہ بنوا دیا اور اراضی حجرہ سابق کو شامل قبروں کے حدود قائم کر دئے، وارثانِ میت کا ایما قرینہ سے معلوم ہوتا ہے کہ اراضی حجرہ سابق بغرضِ آئندہ قبروں کے شامل کی گئی ہے۔ علاوہ اس کے قبروں کے تین رُخ یعنی جانب مشرق و مغرب جنوب بوقت بنوانے حدود کے تھوڑی اراضی صحن مسجد قبروں میں اور شامل ہو گئی ہے۔ ایسی صورت میں شرعاً کیا ہونا چاہئے؟ اور چونکہ اس وقت فرش صحن مسجد کا پختہ اور درست ہورہا ہے اراضی حجرہ سابق و نیز اور جو اراضی کسی قدر قبروں کے حصہ میں دب گئی ہے اس کو نکال کر اور تینوں قبروں میں جس قدر اراضی ہے حدود بنا دئے جائیں یا نہیں یا کیا کرنا چاہئے؟ چونکہ تعمیر فرش زیر تعمیر ہے اس کے جواب کی جلد ضرورت ہے۔

الجواب: اگر صورتِ واقعہ یہ ہے کہ صحنِ مسجد میں بعد تعمیر مسجد وارثانِ بانی مسجد خواہ کسی نے قبریں بنا لیں تو وہ قبریں محض ظلم ہیں اور ان کا باقی رکھنا ظلم ہے نہ کہ آئندہ قبروں

کے لئے ایک حد بندی اور اس میں حجرہ مسجد اور صحنِ مسجد سے اور زمین شامل کرنا یہ سب ظلم و حرام ہے اور اس کا دفع کرنا فرض ہے۔ رسول اللہ صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم فرماتے ہیں: لیس لعرق ظالم حق ۱ واوقع ههنا في ابن عابدین ظالم کی رگ کا کوئی حق نہیں۔ یہاں شامی کچھ ایہام واقع ہے جس کا ازالہ ہم نے اس کے حاشیہ میں کیا ہے واللہ تعالیٰ اعلم (ت) ایهام ازلنا فیما علیه عقلناہ۔ واللہ تعالیٰ اعلم۔

مسئلہ ۱۲۲: مسجد کے محاذی مسجد کے دروازے سے ملحق اگر پرانا قبرستان ہو جس میں قبروں کے نشان نمایاں ہوں اس کی اراضی کو مسجد کے صحن کو وسعت دینے کی غرض سے ہموار کر کے شاملِ صحن کر لیا جائے اور اس پر نماز پڑھی جائے تو

---

۱ سنن ابو داؤد باب احیاء الموات آفتاب عالم پریس لاہور ۲/ ۸۱

Fatawa Razawiyya - Volume Nine

Is it permissible or not?

The Answer: Haram (Forbidden), Haram, Haram. And Allah Almighty knows best.

Problem 123: From Bengal, Sylhet district, Shobidpur village, sent by Maulana Anwaruddin Sahib, 24 Shaban-ul-Muazzam 1320 AH. What do the scholars of religion say about this issue: building a house for one's residence or personal benefit in a waqf (endowed) graveyard, or for the owner to build a house specifically over graves or separate from graves in a non-waqf cemetery, especially over a grave built in their land without the owner's permission? Is it permissible to remove the deceased from it or not? State the ruling and be rewarded.

The Answer: It is forbidden to build one's residence in a waqf cemetery or to utilize it for one's own benefit against the terms of the waqf. *For an endowment is not owned, nor can its purpose be opposed.* (Translating the Arabic snippet). And it is permissible for an owner to build a house separate from graves in his owned land, *for ownership is absolute for him and the owner cannot be restricted.* (Translating the Arabic snippet). And it is improper to build over graves that were built with his permission,

[Table content] Arabic: Because it contains disrespect towards Muslims, and we have researched all that pertains to this in our fatwas to such an extent that nothing more needs to be added, and whoever strives to break what was established on his part, then his effort is rejected back upon him. Urdu (Translation): Because there is humiliation for a Muslim in it; we have conducted complete research on all matters related to this in our fatwas. And whoever tries to break the covenant that was completed by him, then his effort will be rejected back on him. (T)

But for a grave built unjustly without the owner's permission, there is no right for it.

[Table content] Arabic: Because of the saying of he, peace and blessings of Allah be upon him, "There is no right for an unjust vein." Urdu (Translation): Because the Messenger of Allah, peace and blessings of Allah be upon him, has stated: An unjust vein has no right. (T)

Scholars give permission that he may either have the deceased removed or simply use the land as he pleases. It is mentioned in Durr-al-Mukhtar:

---

1 Sunan Abu Dawood, Chapter on Reviving Dead Land, Aftab-e-Alam Press, Lahore, 2/81.

फतवा रज़विया - खंड नौ

जायज़ है या नहीं?

अल-जवाब (उत्तर): हराम, हराम, हराम। और अल्लाह सबसे बेहतर जानता है।

मसला 123: बंगाल, जिला सिलहट, गाँव शोबिदपुर से मौलाना अनवारुद्दीन साहब द्वारा प्रेषित, 24 शाबान-उल-मुअज़्ज़म 1320 हिजरी। धर्म के विद्वान इस मसले में क्या कहते हैं कि वक्फ (बंदोबस्ती) कब्रिस्तान में किसी का अपने निवास या व्यक्तिगत लाभ के लिए घर बनाना, या गैर-वक्फ कब्रिस्तान में मालिक का विशेष कब्रों पर या कब्रों से अलग घर बनाना, विशेष रूप से उस कब्र पर जो मालिक की अनुमति के बिना उसकी ज़मीन में बनाई गई हो, उसमें से शव को निकाल कर या बिना निकाले जायज़ है या नहीं? स्पष्ट करें और पुण्य प्राप्त करें।

अल-जवाब (उत्तर): वक्फ कब्रिस्तान में अपना निवास स्थान बनाना या वक्फ के विरुद्ध अपने किसी उपयोग या लाभ में लाना हराम है। क्योंकि वक्फ का न तो स्वामित्व हो सकता है और न ही इसके निर्धारित उद्देश्य के विरुद्ध काम किया जा सकता है। और मालिक के लिए अपनी मिल्कियत वाली ज़मीन में कब्रों से अलग घर बनाना जायज़ है, क्योंकि स्वामित्व उसके लिए पूर्ण है और मालिक को रोका नहीं जा सकता। और उन कब्रों पर जो उसकी अनुमति से बनी हों, (घर बनाना) अनुचित है,

[तालिका सामग्री] अरबी: क्योंकि इसमें मुसलमानों का अपमान है, और हमने अपने फतवों में इससे संबंधित सभी बातों की पूरी जाँच की है जिस पर कुछ और जोड़ने की ज़रूरत नहीं, और जो कोई उस वादे को तोड़ने की कोशिश करेगा जो उसकी तरफ से पूरा हुआ था, तो उसकी कोशिश उसी पर वापस कर दी जाएगी। उर्दू (अनुवाद): क्योंकि इसमें मुसलमानों का अपमान है; हमने अपने फतवों में इससे संबंधित सभी बातों की पूरी जाँच की है। और जो कोई उस वादे को तोड़ने की कोशिश करेगा जो उसकी तरफ से पूरा हुआ था, तो उसकी कोशिश उसी पर वापस कर दी जाएगी। (त)

लेकिन जो कब्र अन्यायपूर्वक मालिक की अनुमति के बिना बनाई जाए, उसके लिए कोई अधिकार नहीं है।

[तालिका सामग्री] अरबी: क्योंकि अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) का फरमान है: "ज़ालिम की रग का कोई अधिकार नहीं है।" उर्दू (अनुवाद): क्योंकि अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) का फरमान है: ज़ालिम की रग का कोई अधिकार नहीं है। (त)

विद्वान अनुमति देते हैं कि चाहे वह शव को निकलवा दे या ज़मीन को अपने उपयोग में ले आए। दुर्र-ए-मुख्तार में है:

---

1 सुनन अबू दाऊद, बाब इहया-उल-मवात, आफ़ताब आलम प्रेस लाहौर, 2/81।

جائز ہے یا نہیں؟

الجواب: حرام، حرام، حرام۔ واللہ تعالٰی اعلم

مسئلہ ۱۲۳: از بنگالہ ضلع سلہٹ موضع شو بید پور مرسلہ مولانا انوار الدین صاحب ۲۴ شعبان المعظم ۱۳۲۰ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ قبرستان وقف میں کسی کو اپنی سکونت یا ذاتی منفعت کے لئے مکان بنانا، یا مقبرہ غیر وقف میں مالک کا خاص قبور پر یا قبروں سے جدا مکان تعمیر کرنا، خصوصاً اس قبر پر جو بلا اجازت مالک اس کی زمین میں بنائی ہو، اس میں سے میت کو نکال کر یا بے نکالے ہوئے جائز ہے یا نہیں؟ بینوا توجروا

الجواب: مقبرہ وقف میں اپنا مکانِ سکونت بنانا یا خلافِ وقف اپنے کسی تصرف و انتفاع میں لانا حرام ہے۔ فان الوقف لایملک ولا یخالف (اس لئے کہ وقف کو نہ اپنی ملک بنایا جاسکتا ہے نہ اس کے مقررہ مقصد کے خلاف کیا جاسکتا ہے۔ت) اور مالک کو اپنی زمین مملوکہ میں قبروں سے جدا مکان بنانا روا، فان الملک مطلق لہ والمالك لایحجر (اس لئے کہ ملک اس کے لیے مطلق ہے اور مالک روکا نہیں جاسکتا۔ت) اور قبور پر کہ اس کی اجازت سے بنی ہوں ناروا،

لما فیه من استهانة بالمسلمین وقد حققنا مایتعلق بهذا فی فتاونا بمالا مزید علیه ومن سعی فی نقض ماتم من جهته فسعیه مردود علیه۔ اس لئے کہ اس میں مسلمان کی اہانت ہے اس سے متعلق تمام باتوں کی کامل تحقیق ہم نے اپنے فتاوٰی میں کردی ہے اور جو اس عہد کو توڑنے کی کوشش کرے جو اسی کی جانب سے تمام ہوا تو اس کی کوشش اس پر رد کردی جائیگی۔ (ت)

مگر جو قبر ظلماً بلا اجازت مالک بنائی جائے اس کے لیے کچھ حق نہیں۔

لقولہ صلی اللہ علیہ وسلم لعرق ظالم حق کیونکہ رسول اللہ صلی اللہ تعالی علیہ وسلم کا ارشاد ہے:

ظالم کی رگ کا کوئی حق نہیں۔ (ت)

علماء اجازت دیتے ہیں کہ چاہے میت کو نکلوادے چاہے یونہی زمین اپنے تصرف میں لائے۔ در

مختار میں ہے:

---

1 سنن ابو داؤد باب احیاء الموات آفتاب عالم پریس لاہور ۲/ ۸۱

Fatawa Razawiyya - Volume 9

"The owner has the option to remove it or level it with the ground." (Arabic maxim) - (T)

Regarding the prayer rows, how much sanctity and respect they hold in Sharia. However, if rows are formed before the completion of the first row, Hadith and Fiqh command to complete the first row even if it means splitting through those rows, as their sanctity is not established due to being formed against Sharia; this is regarding the right of Allah. The right of a person is even more severe. Still, if the rightful owner takes this into account and overlooks their right, as the 'dead in the hands of the living' person did not make a mistake himself, then it is hoped that Allah the Almighty will grant him a great reward. And Allah Almighty knows best.

Problem 124: From Bombay, Nal Bazar locality, Shop of Seth Shamsuddin and Ameeruddin, sent by Ameeruddin via Syed Muhammad Mehdi Hasan Mian Sahib, 8 Rabi al-Awwal 1331 AH.

What do the scholars of religion and jurists of the clear Sharia say about this matter: If a person builds a house in a specific graveyard or near a graveyard, and also builds a toilet. If the dirty water from the toilet's drain flows over the graves, is it permissible or impermissible to build a house for residency and living in such a place? In a place where dirty water from washing clothes flows over graves, can a laundryman wash clothes there? And if that place is in the possession of a Muslim or owned by a Muslim, and if the Muslim does not object, or allows the aforementioned act of the laundryman to continue out of greed for rent. Explain and you shall be rewarded.

The Answer: A graveyard is Waqf (endowment), and building one's own residential house in a Waqf is like selling the Waqf, and unauthorized use in it is Haram (forbidden). Furthermore, if there are graves in that plot, even if their marks have been erased and become non-existent, then it is a collection of multiple prohibitions: one would have to step on graves, walk on them, sit on them, and urinate or defecate on them, all of which are Haram. It involves various kinds of harm to Muslims—and which Muslims? The deceased, who cannot complain or take compensation in this world. Causing harm to Muslims without a Sharia-compliant reason is causing harm to Allah and His Messenger. One who harms Allah and His Messenger is deserving of Hell. Similarly, if a house is built near a graveyard and the flow of dirty water from toilets or laundry is directed over graves, it is also strictly Haram. And whoever, despite having the power, does not stop it is also guilty of a

Haram act. To allow it out of greed for rent is to buy Hell at a cheap price. Such acts can only be performed by a person whose heart has no regard for Islam, no respect for Muslims, no fear of God, and no dread of death. And refuge is sought with Allah.

---

1 Durr-ul-Mukhtar, Chapter on Funeral Prayer, Matba' Mujtabai Delhi, 1/126 Page 410 of 948

फ़तावा रज़विया - जिल्द 9

"मालिक को अधिकार है कि उसे निकाल दे या ज़मीन के बराबर कर दे।" (अरबी कहावत) - (त)

नमाज़ की सफ़ों (पंक्तियों) की शरीयत में कितनी गरिमा और सम्मान है, लेकिन जो सफ़ें पहली सफ़ के पूरा होने से पहले बना ली जाएं, हदीस और फ़िक़्ह का हुक्म है कि उन सफ़ों को चीरते हुए जाकर पहली सफ़ पूरी करें क्योंकि शरीयत के खिलाफ होने के कारण उनकी वह गरिमा नहीं है; यह अल्लाह के हक के बारे में है। बंदे का हक तो और भी सख़्त है। फिर भी अगर हक वाला इसका लिहाज़ करते हुए अपने हक से दरगुज़र (माफ़) करे, जैसा कि उस व्यक्ति ने किया जिसने खुद कोई गलती नहीं की थी, तो उम्मीद है कि अल्लाह सुब्हानहू व तआला उसे बड़ा अज्र (पुण्य) देगा। और अल्लाह सबसे बेहतर जानता है।

मसला 124: मुंबई, नल बाज़ार मोहल्ला, सेठ शम्सुद्दीन और अमीरउद्दीन की दुकान से, प्रेषक: अमीरउद्दीन द्वारा सैयद मोहम्मद मेहदी हसन मियां साहिब, 8 रबी-उल-अव्वल 1331 हिजरी।

धर्म के विद्वान और शरीयत के मुफ्ती इस मसले में क्या फ़रमाते हैं कि अगर कोई व्यक्ति किसी खास कब्रिस्तान में या कब्रिस्तान के करीब मकान तामीर (निर्माण) करे, और शौचालय भी बनाए। अगर शौचालय की नाली का गंदा पानी कब्रों पर से होकर जाए, तो ऐसी जगह रिहाइश के लिए मकान बनाना जायज़ है या नाजायज़? ऐसी जगह जहाँ कपड़ों के धोने से गंदा पानी कब्रों पर बहता हो, क्या वहाँ धोबी कपड़े धो सकता है? और अगर वह जगह किसी मुसलमान के कब्ज़े में है या किसी मुसलमान की मिल्कियत (स्वामित्व) है, और वह मुसलमान इसे नहीं रोकता या किराए के लालच में धोबी के इस काम को जारी रहने देता है। बयान फ़रमाएं, पुण्य मिलेगा।

अल-जवाब (उत्तर): कब्रिस्तान वक्फ़ है और वक्फ़ में अपनी रिहाइश का मकान बनाना वक्फ़ बेचना है और इसमें अनुचित हस्तक्षेप हराम है। फिर अगर उस जगह कब्रें भी हों, चाहे उनके निशान मिट कर खत्म हो गए हों, तो यह कई हराम कामों का समूह है: कब्रों पर पैर रखना होगा, चलना होगा, बैठना होगा, पेशाब-पाखाना करना होगा, और यह सब हराम है। इसमें मुसलमानों को तरह-तरह की तकलीफ़ है, और कौन से मुसलमान? वे जो मर चुके हैं, जो न शिकायत कर सकते हैं और न दुनिया में मुआवज़ा ले सकते हैं। बिना किसी शरीयत की वजह के मुसलमानों को तकलीफ़ देना अल्लाह और उसके रसूल को तकलीफ़ देना है। अल्लाह और उसके रसूल को तकलीफ़ देने वाला जहन्नुम (नरक) का हकदार है। इसी तरह अगर कब्रिस्तान के करीब मकान बनाया और शौचालय या धोबियों

के गंदे पानी का बहाव कब्रों पर रखा, तो यह भी सख्त हराम है। और जो सामर्थ्य होने के बावजूद इसे न रोके वह भी हराम का अपराधी है। किराए के लालच में इसे जायज़ रखना सस्ते दामों में दोज़ख (नरक) मोल लेना है। ये काम उसी व्यक्ति के हो सकते हैं जिसके दिल में न इस्लाम की कद्र है, न मुसलमानों की इज़्ज़त, न खुदा का खौफ और न मौत की दहशत। और अल्लाह की पनाह।

---

1 दुर्रे मुख्तार, जनाज़े की नमाज़ का अध्याय, मतबा मुजतबाई दिल्ली, 1/126 पेज 410 of 948

جلد نہم فتاوی رضویہ

یخیر المالك بین اخراجه ومساواته بالارض | مالک کو اختیار ہے کہ اسے نکال دے یا زمین کے برابر کر دے -(ت) 1 صفوف نماز کی شرعاً کس قدر حرمت و تعظیم ہے، مگر جو صفیں قبل تما می صف اول کرلی جائیں، حدیث وفقہ حکم فرماتے ہیں کہ ان صفوں کو چیرتے ہوئے جا کر صف اول پوری کریں کہ خلاف شرع قائم ہونے کے سبب ان کی حرمت نہیں، یہ حق اللہ میں ہے۔ حق العبد تو اشد ہے۔ پھر بھی اگر صاحبِ حق اس کا لحاظ کرکے اپنے حق سے در گزر کرے کہ مردہ بدست زندہ اس نے خود قصور نہ کیا۔ تو امید ہے کہ حق سبحانہ وتعالیٰ اسے اجر عظیم فرمائے گا۔ واللہ تعالیٰ اعلم

مسئلہ ۱۲۴: از بمبئی، محلہ نل بازار، دکان سیٹھ شمس الدین وامیر الدین مرسلہ امیر الدین معرفت سید محمد مہدی حسن میاں صاحب ۸ ربیع الاول ۱۳۳۱ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین و مفتیان شرع متین اس مسئلہ میں کہ اگر کوئی شخص قبرستان خاص یا قرب قبرستان مکان تعمیر کرے، اور پاخانہ بھی تعمیر کرے۔ پاخانہ کی موری کا غلیظ پانی قبروں پر ہو کر جائے تو ایسی جگہ مکان بغرض سکونت و رہائش بنانا جائز ہے یا نا جائز؟ ایسی جگہ کہ کپڑوں کے دھونے سے غلیظ پانی کپڑوں کا قبروں پر سے جاری ہے وہاں دھوبی کپڑے دھو سکتا ہے اور اگر وہ جگہ بقبضہ مسلمان ہے یا ملکیت مسلمان ہے تو مسلمان اگر مانع نہ آئے، یا بطمع کرایہ دھوبی کے اس عمل مذکور کو جاری رہنے دے۔ بینوا توجروا

الجواب: قبرستان وقف ہے اور وقف میں اپنی سکونت کا مکان بنانا وقف بیچنا ہے اور اس میں تصرف بیجا حرام ہے پھر اگر اس قطعہ میں قبور بھی ہوں اگر چہ نشان مٹ کر ناپید ہوگئی ہوں جب تو متعدد حراموں کا مجموعہ ہے، قبروں پر پاؤں رکھنا ہوگا، چلنا ہوگا، بیٹھنا ہوگا، پیشاب

پاخانہ کرنا ہوگا، اور یہ سب حرام ہے۔ اس میں مسلمانوں کو طرح طرح ایذا ہے اور مسلمان بھی کون، اموات کہ شکایت نہیں کرسکتے، دنیا میں عوض نہیں لے سکتے، بے وجہ شرعی مسلمانوں کی ایذا اللہ ورسول کی ایذا ہے، اللہ ورسول کو ایذا دینے والا مستحق جہنم۔ اسی طرح اگر قبرستان کے قریب مکان بنایا، پاخانے یادھوبیوں کے غلیظ پانی کا بہاؤ قبروں پر رکھا تو یہ بھی سخت حرام ہے اور جو با وصف قدرت اسے منع نہ کرے وہ بھی مرتکب حرام ہے اور بطمع کرایہ اسے روا رکھنا سستے داموں دوزخ مول لینا ہے، یہ کام اسی شخص کے ہو سکتے ہیں جس کے دل میں نہ اسلام کی قدر، نہ مسلمانوں کی عزت، نہ خدا کا خوف، نہ موت کی ہیبت، والعیاذ

---

1 در مختار باب صلوۃ الجنائز مطبع مجتبائی دہلی ۱/ ۱۲۶ Page 410 of 948

Fatawa Rizwiya, Volume 9

By the grace of Allah the Almighty, Imam Ibn Amir al-Hajj mentions in 'Hilya' from 'Nawadir', 'Tuhfat al-Fuqaha', 'Bada'i', 'Muheet', etc.:

- (Arabic): Abu Hanifa, may Allah be pleased with him, disliked walking on a grave, sitting, sleeping, or answering the call of nature upon it.[1] | (Urdu): Imam Abu Hanifa, may Allah be pleased with him, has declared walking, sitting, sleeping, and answering the call of nature on a grave as 'Makruh' (disliked/abominable). (T)

In 'Hadiqa Nadiyya', it is quoted from 'Jami' al-Fatawa':

- (Arabic): Indeed, it [the grave] and the soil upon it are the right of the deceased, so it is not permissible to trample upon it.[2] | (Urdu): It and the soil upon it are the right of the deceased, so walking upon it is not permissible. (T)

In 'Fatawa Alamgiri', it is from Imam Ali Tarjumani:

- (Arabic): One sins by trampling on graves because the roof of the grave is the right of the deceased.[3] | (Urdu): By walking on graves, one will be a sinner because the roof of the grave is the right of the deceased. (T)

In 'Tanwir al-Absar', it is said: Urinating and defecating in graveyards is 'Makruh'.[4] (T)
In 'Radd al-Muhtar', it is said:

- (Arabic): Because the dead person is pained by that which pains the living person. And it is apparent that it is 'Tahrimi' [prohibitively disliked], because they [the scholars] have explicitly stated that passing through a newly-created path within them [graveyards] is 'Haram' [forbidden], so this is even more so.[5] | (Urdu): Therefore, the deceased is also pained by that which causes pain to the living, and it is apparent that this is 'Makruh Tahrimi'. This is because scholars have clarified that passing through a newly-created path within a graveyard is forbidden, so this [urinating/defecating] will be forbidden to a greater degree. (T)

The Messenger of Allah, peace and blessings of Allah be upon him, says:

- (Arabic): That I walk on an ember or a sword is more beloved to me than... | (Urdu): I prefer walking on fire or a sword more than walking on a grave.

Footnotes: 1. Bada'i al-Sana'i, Chapter on Burial Matters, HM Saeed Company Karachi 1/320, Tuhfat al-Fuqaha, Chapter on Burial and the Rule of Martyrs, Dar al-Kutub al-Ilmiyya Beirut 2/257 2. Al-Hadiqa al-Nadiyya, Sharh al-Tariqa al-Muhammadiyya, Eighth Section, Nooriya Rizwiya Faisalabad 2/504 3. Fatawa Hindiyya, Chapter Sixteen, Noorani Kutub Khana Peshawar 5/351 4. Durr al-Mukhtar, Chapter on Istinja, Mujtabai Press Delhi 1/75 5. Radd al-Muhtar, Chapter on Istinja, Idara al-Tiba'at al-Misriyya Egypt 1/229

फ़तावा रज़विया, जिल्द नौ

अल्लाह तआला के फ़ज़ल से, इमाम इब्न अमीर अल-हज 'हिलिया' में 'नवादिर', 'तुहफ़त अल-फ़ुक़्हा', 'बदाइ' और 'मुहीत' वग़ैरह से नक़ल फ़रमाते हैं:

- (अरबी): अबू हनीफ़ा (रज़ियल्लाहु अन्हु) ने क़ब्र पर चलना, बैठना, सोना या वहां क़ज़ाये हाजत करना नापसंद किया है।[1] | (उर्दू): इमाम अबू हनीफ़ा (रज़ियल्लाहु अन्हु) ने क़ब्र पर चलना, बैठना, सोना, क़ज़ाये हाजत करना मकरूह क़रार दिया है। (त)

'हदीक़ा नदिय्या' में 'जामे अल-फ़तावा' से है:

- (अरबी): बेशक वह (क़ब्र) और उस पर की मिट्टी मय्यत का हक़ है, लिहाज़ा उस पर चलना जायज़ नहीं है।[2] | (उर्दू): वह और उस पर की मिट्टी मय्यत का हक़ है, तो उस पर चलना जायज़ नहीं। (त)

'फ़तावा आलमगीरी' में इमाम अली तर्जुमानी से है:

- (अरबी): क़ब्रों को रौंदने से गुनाह होता है क्योंकि क़ब्र की छत मय्यत का हक़ है।[3] | (उर्दू): क़ब्रों पर चलने से गुनहगार होगा इसलिए कि क़ब्र की छत मय्यत का हक़ है। (त)

'तन्वीर अल-अबसार' में है: क़ब्रिस्तान में पेशाब और पाखाना मकरूह है।[4] (त) 'रद अल-मुह्तार' में है:

- (अरबी): क्योंकि मुर्दे को भी उसी चीज़ से तकलीफ़ होती है जिससे ज़िंदा इंसान को होती है। और ज़ाहिर है कि यह मकरूह-ए-तहरीमी है, क्योंकि उन्होंने (उलेमा ने) साफ़ तौर पर कहा है कि उनके(क़ब्रिस्तानों के) अंदर बने नए रास्ते से गुज़रना हराम है, तो यह (पेशाब/पाखाना) और भी ज़्यादा बुरा होगा।[5] | (उर्दू): इसलिए मुर्दे को भी उस चीज़ से अज़ियत होती है जिससे ज़िंदा को अज़ियत होती है, और ज़ाहिर है कि यह मकरूह-ए-तहरीमी है। इसलिए कि उलेमा ने तस़रीह फ़रमाई है कि क़ब्रिस्तान के अंदर नौपैदा (नए) रास्ते से गुज़रना हराम है तो यह बदरजा-ए-औला हराम होगा। (त)

रसूलुल्लाह (सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम) फ़रमाते हैं:

- (अरबी): मेरा किसी अंगारे या तलवार पर चलना मुझे इससे ज़्यादा पसंद है कि... | (उर्दू): मुझे आग या तलवार पर चलना क़ब्र पर चलने से ज़्यादा पसंद है।

फुटनोट्स (हवाशे): 1. बदाइ अस-सनाइ, फ़स्ल फ़ी मसअला अद-दफ़न, एच.एम. सईद कंपनी कराची 1/320, तुहफ़त अल-फ़ुक़्हा, बाब अद-दफ़न व हुक्म अश-शुहदा, दार अल-कुतुब अल-इल्मिया बेरुत 2/257 2. अल-हदीक़ा अन-नदिय्या, शरह अत-तरीक़ा अल-मुहम्मदिया, आठवां हिस्सा, नूरया रज़विया फ़ैसलाबाद 2/504 3. फ़तावा हिन्दिया, सोलहवां बाब, नूरानी कुतुब ख़ाना पेशावर 5/351 4. दुर्र-ए-मुख़्तार, फ़स्ल फ़ी अल-इस्तिंजा, मतबा मुजतबाई दिल्ली 1/75 5. रद अल-मुह्तार, फ़स्ल फ़ी अल-इस्तिंजा, इदारा अत-तिबात अल-मिसरिया मिस्र 1/229

فتاوٰی رضویہ، جلد نہم

باللہ تعالٰی۔ امام ابن امیر الحاج حلیہ میں نوادر و تحفۃ الفقہاء وبدائع ومحیط وغیرہ سے نقل فرماتے ہیں :

- اباحنیفہ رضی اللہ تعالٰی عنہ کرہ وطء القبر والقعود والنوم او قضاء الحاجۃ الیہ۔[1] | امام ابوحنیفہ رضی اللہ تعالٰی عنہ نے قبر پر چلنا، بیٹھنا سونا، قضائے حاجت کرنا مکروہ قرار دیا ہے۔(ت)

حدیقہ ندیہ میں جامع الفتاوٰی سے ہے:

- انہ والتراب الذی علیہ حق المیت فلا یجوز ان یوطء[2]۔ | وہ اور اس پر کی مٹی حق میت ہے تو اس پر چلنا جائز نہیں ۔(ت)

فتاوٰی عالمگیری میں امام علی ترجمانی سے ہے:

- یأثم بوطء القبور لان سقف القبر حق المیت[3]۔ | قبروں پر چلنے سے گنہگار ہوگا اس لئے کہ قبر کی چھت میت کا حق ہے۔ (ت)

تنویر الابصار میں ہے: یکرہ بول و غائط فی مقابر[4] (قبرستان میں پیشاب پاخانہ مکروہ ہے۔ت)

ردالمختار میں ہے:

- لان المیت یتأذی بما یتأذی بہ الحي والظاھر انھا تحرمیۃ لانھم نصوا علی المرور في سکۃ حادثۃ فیھا حرام فھذا اولی[5]۔ | اس لئے مردے کو بھی اس چیز سے اذیت ہوتی ہے جس سے زندہ کو

اذیت ہوتی ہے، اور ظاہر ہے کہ یہ مکروہ تحریمی ہے۔ اس لئے کہ علماء نے تصریح فرمائی ہے کہ قبرستان کے اندر نوپیدا راستے سے گزرنا حرام ہے تو یہ بدرجہ اولیٰ حرام ہوگا۔ (ت)

رسول اللہ صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم فرماتے ہیں :

- لان امشی علی جمرۃ او سیف احب الی من ان | مجھے آگ یا تلوار پر چلنا قبر پر چلنے سے زیادہ پسند ہے

حواشی: 1. بدائع الصنائع فصل فی مسئلۃ الدفن ایچ ایم سعید کمپنی کراچی ۱/ ۳۲۰، تحفۃ الفقہاء باب الدفن و حکم الشہداء دار الکتب العلمیہ بیروت ۲/ ۲۵۷ 2. الحدیقۃ الندیۃ شرح الطریقۃ المحمدیہ الصنف الثامن نوریہ رضویہ فیصل آباد ۲/ ۵۰۴ 3. فتاویٰ ہندیہ الباب السادس عشر نورانی کتب خانہ پشاور ۵/ ۳۵۱ 4. در مختار فصل فی الاستنجا مطبع مجتبائی دہلی ۱/ ۷۵ 5. رد المختار فصل فی الاستنجا ادارۃ الطباعۃ المصریۃ مصر ۱/ ۲۲۹

صفحہ 411 / 948

Volume Nine Fatawa Razawiyya

Arabic Text	Urdu Translation
Walking over the grave [1] - Narrated by Ibn Majah from Uqba bin Amir, may Allah be pleased with him, with a good (jayyid) chain.	Narrated by Ibn Majah from Uqba bin Amir, may Allah be pleased with him, with a good chain.

Also, the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) says:

Arabic Text	Urdu Translation
"Breaking the bone of a dead person in their grave hurts them just as it would hurt them in their house." [2] Abdullah bin Mas'ud, may Allah be pleased with him, said: "Harming a believer in their death is like harming them in their life." [3] From Amara bin Hazm, may Allah be pleased with him, who said: "The Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) saw me sitting on a grave and said: 'O occupant of the grave! Get down from the grave, do not harm the inhabitant of the grave.'" [4]	Breaking the bones of a dead person and harming them is like breaking the bone of a living person. And the words of one narration are: The deceased is also harmed inside the grave by that which caused harm inside the house. Hazrat Abdullah bin Mas'ud, may Allah be pleased with him, says: Harming a believer in the state of death is like harming them in life. It is narrated from Hazrat Amara bin Hazm, may Allah be pleased with him, who says: The Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) saw me sitting on a grave and said: O you who are leaning against the grave! Get off the grave, do not harm the inhabitant of the grave. (T)

From all these authentic hadiths and many other hadiths besides them, it is proven that sitting on the grave or placing feet on it, or even just leaning against it, causes harm to the deceased. And the harm to a dead Muslim is like that to a living Muslim. So how much harm would it cause you to pour water on it? Since the living and the dead are equal in this, would this person allow the water from a toilet drain to be poured on him, or that people urinate on his chest and face, or that a washerman washes impure clothes and sprinkles that water on his face and head? No Muslim, nor even a disbeliever, would allow this for himself. So with what heart is such severe harm to the deceased Muslims allowed? The Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) says:

Arabic Text	Urdu Translation
"Whoever harms a Muslim has harmed me, and whoever harms me has harmed Allah." [5] - Narrated by al-Tabarani.	Whoever harms a Muslim without a Sharia reason has harmed me, and whoever has harmed me has harmed Allah.

1. Sunan Ibn Majah, Chapter on the Prohibition of Walking on Graves, H.M. Saeed Company Karachi 1/113
2. Sunan Abi Dawood, Book of Funerals, Aftab Alam Press Lahore 2/102
3. Mirqat Sharh Mishkat, citing Ibn Abi Shaybah, Chapter on Burying the Dead, Maktaba Imdadia Multan 4/79
4. Mirqat Sharh Mishkat, citing al-Tabarani and al-Hakim, Chapter on Burying the Dead, Maktaba Imdadia Multan 4/69
5. Kanz al-Ummal, citing Tabarani from Anas, may Allah be pleased with him, Hadith 8370, Muassasat al-Risalah Beirut 16/10

जिल्द नौ फतावा रज़विया

अरबी पाठ

कब्र पर चलना [1] - इब्न माजाह ने उकबा बिन आमिर (रज़ियल्लाहु अन्हु) से एक अच्छी (जय्यिद) सनद के साथ रिवायत किया है।

उर्दू अनुवाद

इसे इब्न माजाह ने उकबा बिन आमिर (रज़ियल्लाहु अन्हु) से एक अच्छी सनद के साथ रिवायत किया।

साथ ही, नबी (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) फरमाते हैं:

अरबी पाठ

"मुर्दे की हड्डी तोड़ना उसे उसकी कब्र में उतना ही दुख देता है जितना उसे उसके घर में देता था।" [2] अब्दुल्ला बिन मसूद (रज़ियल्लाहु अन्हु) ने कहा: "मोमिन को उसकी मौत में ईज़ा (दुख) देना वैसा ही है जैसे उसकी ज़िंदगी में उसे ईज़ा देना।" [3] अमारह बिन हज़म (रज़ियल्लाहु अन्हु) से रिवायत है कि उन्होंने कहा: "अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने मुझे एक कब्र पर बैठे देखा तो फरमाया: 'ऐ कब्र वाले! कब्र से उतर जा, कब्र के रहने वाले को ईज़ा न दे।'" [4]

उर्दू अनुवाद

मुर्दे की हड्डियाँ तोड़ना और उसे ईज़ा देना वैसा ही है जैसे ज़िंदा की हड्डी तोड़ना। और एक रिवायत के शब्द हैं: मयत को कब्र के अंदर भी उसी चीज़ से ईज़ा होती है जिससे घर के अंदर ईज़ा होती थी। हज़रत अब्दुल्ला बिन मसूद (रज़ियल्लाहु अन्हु) फरमाते हैं: मौत की हालत में मोमिन को ईज़ा देना वैसे ही है जैसे उसे ज़िंदगी में ईज़ा देना। हज़रत अमारह बिन हज़म (रज़ियल्लाहु अन्हु) से रिवायत है, वे कहते हैं: अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने मुझे एक कब्र पर बैठे देखा तो फरमाया: ऐ कब्र से टेक लगाने वाले! कब्र से उतर जा, कब्र वाले को ईज़ा न दे। (त)

इन तमाम सही हदीसों और उनके अलावा कई अन्य हदीसों से साबित है कि कब्र पर बैठना या पैर रखना बल्कि सिर्फ उससे टेक लगाना भी मयत को ईज़ा पहुँचाता है। और मुर्दा मुसलमान को ईज़ा देना वैसा ही है जैसे ज़िंदा मुसलमान को। तो उस पर पानी बहाना कितना ईज़ा का कारण होगा? जब ज़िंदा और मुर्दा इसमें बराबर हैं तो क्या यह शख्स गवारा करेगा कि शौचालय की नाली का पानी उस पर बहाया जाए, या लोग उसके सीने और मुँह पर पेशाब करें, या धोबी गंदे कपड़े धोकर वह पानी उसके मुँह और सिर पर छिड़क दे? हरगिज़ कोई मुसलमान, बल्कि काफिर भी इसे अपने लिए

बर्दाश्त नहीं करेगा। तो फिर मय्यत मुसलमानों के लिए ऐसी सख्त ईज़ा किस दिल से गवारा की गई? अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) फरमाते हैं:

अरबी पाठ	उर्दू अनुवाद
"जिसने किसी मुसलमान को ईज़ा दी उसने मुझे ईज़ा दी, और जिसने मुझे ईज़ा दी उसने अल्लाह को ईज़ा दी।" [5] - तबरानी द्वारा रिवायत।	जिसने किसी मुसलमान को बिना किसी शरीई वजह के ईज़ा दी, उसने मुझे ईज़ा दी और जिसने मुझे ईज़ा दी उसने अल्लाह को ईज़ा दी।

1. सुनन इब्न माजाह, कब्रों पर चलने के निषेध का अध्याय, एच.एम. सईद कंपनी कराची 1/113
2. सुनन अबू दाऊद, जनाज़ों की किताब, आफ़ताब आलम प्रेस लाहौर 2/102
3. मिर्कात शरह मिश्कात, इब्न अबी शयबा के हवाले से, मुर्दे को दफनाने का अध्याय, मकतबा इमदादिया मुल्तान 4/79
4. मिर्कात शरह मिश्कात, तबरानी और हाकिम के हवाले से, मुर्दे को दफनाने का अध्याय, मकतबा इमदादिया मुल्तान 4/69
5. कंज़ अल-उम्माल, अनस रज़ियल्लाहु अन्हु से तबरानी के हवाले से, हदीस 8370, मुअस्ससत अल-रिसाला बेरूत 16/10

عربی متن	اردو ترجمہ
امشی علی القبر [1]- رواہ ابن ماجۃ عن عقبۃ بن عامر رضی اللہ تعالٰی عنہ بسند جید۔	اسے ابن ماجہ نے عقبہ بن عامر رضی اللہ عنہ سے بسند جید روایت کیا۔

نیز نبی صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم فرماتے ہیں :

عربی متن	اردو ترجمہ
کسر عظم المیت یؤذیہ فی قبرہ مایؤذیہ فی بیتہ [2] وقال عبداللہ بن مسعود رضی اللہ تعالٰی عنہ اذی المومن فی موتہ کادہ فی حیاتہ [3] وعن عمارۃ بن حزم رضی اللہ تعالٰی عنہ قال رانی رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم جالسا علی قبر فقال یا صاحب القبر انزل من علی القبر لاتؤذی صاحب القبر [4] -	مُردے کی ہڈیاں توڑنا اور اسے ایذا دینا ایسا ہے جیسے زندہ کی ہڈی توڑنا، اور ایک روایت کے الفاظ یہ ہے: میت کو قبر کے اندر بھی اس چیز سے ایذا ہوتی ہے جس سے گھر کے اندر ایذا ہوتی تھی، حضرت عبد اللہ بن مسعود رضی اللہ تعالٰی عنہ فرماتے ہیں: بحالتِ وفات مومن کو ایذا دینا ایسے ہے جیسے اسے زندگی میں ایذا دینا۔ حضرت عمارہ بن حزم رضی اللہ تعالٰی عنہ سے مروی ہے وہ کہتے ہیں مجھے رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم نے ایک قبر پر بیٹھے دیکھا تو فرمایا: اے قبر سے لگنے والے ! قبر سے اُتر جا، صاحبِ قبر کو ایذا نہ دے۔ (ت)

ان تمام صحیح حدیثوں اور ان کے سوا اور احادیث کثیرہ سے ثابت ہے کہ قبر پر بیٹھنا یا پاؤں رکھنا بلکہ صرف اُس سے تکیہ لگانے سے میت کو ایذا ہوتی ہے۔ اور مردہ مسلمان کی ایذا ایسی

ہے جیسے زندہ مسلمان کی۔ تو اس پر تُجھے پانی بہانا کس قدر باعث ایذا ہو گا۔ جب زندہ مردہ اس میں برابر ہیں تو کیا یہ شخص روا رکھے گا کہ پاخانے کے بدرو کا پانی اس پر بہایا جائے یا لوگ اس کے سینے اور مُنہ پر پیشاب کیا کریں، یا دھوبی ناپاک کپڑے دھو کر وہ پانی اس کے منہ اور سر پر چھڑک دیا کریں، ہر گز کوئی مسلمان بلکہ کافر اسے اپنے لیے روانہ رکھے گا، تو میت مسلمانوں کے لیے ایسی سخت ایذا کس دل سے روا رکھی، رسول اللہ صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم فرماتے ہیں :

عربی متن	اردو ترجمہ
من أذی مسلمًا فقد اذانی ومن اذانی فقد أذی اللہ [5] - رواہ الطبرانی عنہ	جس نے کسی مسلمان کو بلاوجہ شرعی ایذا دی اس نے مجھے ایذا دی اور جس نے مجھے ایذا دی اس نے اللہ کو

1. سنن ابن ماجہ باب ماجاء فی النہی عن المشی علی القبر ایچ ایم سعید کمپنی کراچی ۱/ ۱۱۳
2. سنن ابو داؤد کتاب الجنائز آفتاب عالم پریس لاہور ۲/ ۱۰۲
3. مرقاۃ شرح مشکوٰۃ بحوالہ ابن ابی شیبہ باب دفن المیت مکتبہ امدادیہ ملتان ۴/ ۷۹
4. مرقاۃ شرح مشکوٰۃ بحوالہ الطبرانی والحاکم باب دفن المیت مکتبہ امدادیہ ملتان ۴/ ۶۹
5. کنز العمال بحوالہ طبر عن انس رضی اللہ عنہ حدیث ۸۳۷۰ موسسۃ الرسالہ بیروت ۱۶/ ۱۰

Fatawa Razawiya Volume 9

[Left box] In Al-Awsat narrated from Anas (may Allah be pleased with him) with a good chain of narration. [Right box] Addition. Tabarani narrated it in Mu'jam al-Awsat with a good chain from Anas (may Allah be pleased with him). (T)

And Allah Almighty says: "Indeed, those who annoy Allah and His Messenger—Allah has cursed them in this world and the Hereafter, and has prepared for them a humiliating punishment."[1] [Side text] Indeed, those who cause pain to Allah and His Messenger, on them is the curse of Allah in this world and the hereafter, and He has prepared for them a humiliating punishment.

And refuge is with Allah. And Allah Almighty knows best.

Problem 125: From Pandol Buzurg, Post Office Raipur, district Muzaffarpur, sent by Niamat Ali Sahab, 12th Rabi-ul-Awwal Sharif 1337 AH. Is it permissible or not to plant trees on a grave, build a wall, or enclose a cemetery for its protection by digging around its four sides, even if it contains old graves?

Answer: There is no harm in building a fence for protection. And if trees are planted to provide shade for visitors, it is good, but they should be separate from the graveyard [plots]. And Allah Almighty knows best.

Problem 126: From Bareilly, Madrasa Manzar-e-Islam, questioned by Ghulam Jan Sahab, student, 18th Shawwal 1337 AH. What do the scholars of religion say regarding the issue of whether it is permissible to use materials from a cemetery, such as wood or bricks, etc., in a mosque, or to take their price and spend it on a mosque, or not?

Answer: The wood of trees planted in a cemetery and the bricks of a tomb belong to the person who planted or built them; they may do with them as they wish. If the owner is unknown or the trees grew naturally, they can be used for the mosque. And Allah Almighty knows best.

Problem 127: From Saharanpur, sent by Maulvi Amir Yar Khan Sahab, Imam of Jami Masjid, 20th Shawwal 1311 AH. What is your statement, may Allah have mercy on you. (T) In this issue that the grave of a saint is unbaked (katcha). From this inhabitant of the grave, a high degree of spiritual benefit like that of the Owaisiya, and the attainment of tranquility of heart, meditation and spiritual occupations are

envisioned for his followers. However, since during the rainy season due to water and floods, and other conditions in summer etc.

---

[1] Quran 33:57 Page 413 of 948

फ़तावा रज़विया जिल्द 9

[बायाँ बॉक्स] अल-अवसत में अनस (रज़ियल्लाहु अन्हु) से एक अच्छी सनद के साथ रिवायत है। [दायाँ बॉक्स] इज़ादी। इसे तबरानी ने मुअजम अल-अवसत में अच्छी सनद के साथ हज़रत अनस (रज़ियल्लाहु अन्हु) से रिवायत किया है। (त)

और अल्लाह अज़्ज़-व-जल्ल फरमाता है: "बेशक जो लोग अल्लाह और उसके रसूल को ईज़ा देते हैं उन पर अल्लाह की लानत है दुनिया और आख़िरत में, और अल्लाह ने उनके लिए ज़िल्लत का अज़ाब तैयार कर रखा है।"[1] [साइड टेक्स्ट] बेशक जो लोग अल्लाह और रसूल को दुख पहुँचाते हैं, उन पर दुनिया और आख़िरत में अल्लाह की लानत है, और उसने उनके लिए अपमानजनक सज़ा तैयार कर रखी है।

अल्लाह की पनाह। और अल्लाह तआला बेहतर जानता है।

मसला १२५: पंडोल बुज़ुर्ग, डाकखाना रायपूर, जिला मुज़फ़्फ़रपुर से नियामत अली साहब द्वारा भेजा गया, १२ रबी-उल-अव्वल शरीफ़ १३३७ हिजरी। क़ब्र पर पेड़ लगाना, दीवार बनाना या कब्रिस्तान की सुरक्षा के लिए उसके चारों ओर खुदाई करके घेरा बनाना, जिसमें पुरानी क़ब्रें भी हों, जायज़ है या नहीं?

जवाब: सुरक्षा के लिए घेरा बनाने में कोई हर्ज़ नहीं है। और अगर पेड़ ज़ायरीन (दर्शनार्थियों) के लिए छाया के लिए हों तो अच्छा है, लेकिन क़ब्रिस्तान (की क़ब्रों) से अलग हों। और अल्लाह तआला बेहतर जानता है।

मसला १२६: बरेली, मदरसा मंज़र-ए-इस्लाम से, गुलाम जान साहब तालिब-ए-इल्म (छात्र) द्वारा पूछा गया, १८ शव्वाल १३३७ हिजरी। दीन के विद्वान इस मसले में क्या फ़रमाते हैं कि कब्रिस्तान की कोई चीज़ जैसे लकड़ी, ईंटें आदि मस्जिद में इस्तेमाल करना या उनकी क़ीमत लेकर मस्जिद में ख़र्च करना जायज़ है या नहीं?

जवाब: कब्रिस्तान में पेड़ जिसने लगाए उसकी लकड़ी और मक़बरा जिसने बनवाया उसकी ईंटें उसी की मिल्कियत (स्वामित्व) हैं, वह जो चाहे करे। और अगर मालिक का पता नहीं है या पेड़ अपने आप उगे हैं, तो उन्हें मस्जिद में इस्तेमाल कर सकते हैं। और अल्लाह तआला बेहतर जानता है।

मसला १२७: सहारनपुर से, मौलवी अमीर यार ख़ान साहब इमाम मस्जिद जामा द्वारा भेजा गया, २० शव्वाल १३११ हिजरी। अल्लाह आप पर रहम करे, आपका क्या फ़रमान है? (त) इस मसले में कि एक बुज़ुर्ग की क़ब्र कच्ची है। उस साहिब-ए-क़ब्र से उनके अनुयायियों के लिए ओवैसिया की तरह कमाल दर्जे का फ़ैज़ (आध्यात्मिक लाभ) और दिल का सुकून, मुराक़बा और रूहानी मशग़ूलियत हासिल होना मुमकिन है। मगर चूंकि बरसात के मौसम में पानी और सैलाब के कारण और गर्मी के दीगर मरासिम वगैरह की वजह से...

---

[1] क़ुरआन ३३/५७ पेज ४१३ ऑफ ९४८

فتاوی رضویہ جلد نہم

[بایاں باکس] في الاوسط عن انس رضی اللہ تعالی عنہ بسند حسن۔ [دایاں باکس] ایزادی۔ اسے طبرانی نے معجم اوسط میں بسند حسن حضرت انس رضی اللہ تعالیٰ عنہ سے روایت کیا۔ (ت)

اور اللہ عزوجل فرماتا ہے: اِنَّ الَّذِیْنَ یُؤْذُوْنَ اللہَ وَرَسُوْلَہٗ لَعَنَہُمُ اللہُ فِی الدُّنْیَا وَالْاٰخِرَۃِ وَ اَعَدَّ لَہُمْ عَذَابًا مُّہِیْنًا ۱ـہ۔ [دائیں جانب عبارت] بیشک جو لوگ اللہ ورسول کو ایذا دیتے ہیں ان پر اللہ کی لعنت ہے دنیا اور آخرت میں، اور اللہ نے ان کے لیے ذلت کا عذاب تیار کر رکھا ہے۔

والعیاذ باللہ تعالیٰ۔ واللہ تعالیٰ اعلم

مسئلہ ۱۲۵: از پنڈول بزرگ ڈاکخانہ رائے پور ضلع مظفر پور مرسلہ نعمت علی صاحب ۱۲ ربیع الاول شریف ۱۳۳۷ھ قبر پر درخت لگانا، دیوار کھینچنا یا قبرستان کی حفاظت کے لیے اس کے چاروں طرف کھود کر، جس میں قدیم قبریں بھی ہیں، محاصرہ کرنا جائز ہے یا نہیں؟

الجواب: حفاظت کے لیے حصار بنانے میں حرج نہیں، اور درخت اگر سایہ زائرین کے لیے ہو اچھا ہے، مگر قبرستان سے جدا ہو۔ واللہ تعالیٰ اعلم

مسئلہ ۱۲۶: از بریلی مدرسہ منظر الاسلام مسئولہ غلام جان صاحب طالبعلم ۱۸ شوال ۱۳۳۷ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ قبرستان کی کوئی چیز مثلاً لکڑی اینٹیں وغیرہ مسجد میں صرف کرانا یا ان کی قیمت لے کر مسجد میں صرف کرنا جائز ہے یا نہ؟

الجواب: قبرستان میں پیڑ جس نے لگائے ان کی لکڑی اور مقبرہ جس نے بنوایا اس کی اینٹیں اس لگانے بنوانے والے کی ملک ہے وہ جو چاہے کرے، اور اگر مالک کا پتا نہیں یا درخت خود رو ہیں تو مسجد میں صرف کر سکتے ہیں، واللہ تعالیٰ اعلم

مسئلہ ۱۲۷: از سہانپور مرسلہ مولوی امیر یار خاں صاحب امام مسجد جامع ۲۰ شوال ۱۳۱۱ھ

ماقولکم رحمکم اللہ (اللہ آپ پر رحم کرے، آپ کا کیا فرمان ہے۔ت) اس مسئلہ میں کہ ایک بزرگ کی قبر خام ہے اس اہل قبر سے اس کے مقتدین کے لیے کمال درجہ کا فیض مثل اویسیہ کے اور حصول تسکین قلب و مراقبہ و اشغال متصور ہے۔ مگر چونکہ موسم برسات میں باعثِ آب و سیلاب کے اور دیگر مراسم گرما وغیرہ

Fatawa-e-Razviya Volume Nine

...the devotees face a lot of difficulty sitting there. Therefore, if the mentioned devotees, for the purpose of their spiritual benefit, build a solid platform and a boundary wall around this grave and keep it open from above, while leaving the grave itself raw (un-cemented), is it permissible or not? Explain and you shall be rewarded.

The Answer: The situation mentioned in the question is permissible. The leaders of religion have allowed building structures around the shrines of scholars and spiritual masters (may their secrets be sanctified) on legally usable land for the purpose that visitors and beneficiaries may find comfort. They have explicitly stated that the reason for prohibition is either a corrupt intention or a lack of benefit; thus, where the intention is commendable and benefit exists, the prohibition is absent. In the detail of forms and investigation of the roots of this issue, it is that if the structure is built first and then burial occurs therein, it does not relate to the issue of 'building upon the grave' at all, as this is considered construction in its own right, not construction upon a grave. Allama Tarabulsi in 'Burhan Sharh Mawahib al-Rahman', then Allama Shurunbulali in 'Ghuniyyat Dhawi al-Ahkam', then Allama Sayyid Abu al-Sa'ud al-Azhari in 'Fath Allah al-Mu'in', then Allama Sayyid Ahmad Misri in the two annotations on 'Durr' and 'Maraqi al-Falah' state:

[Arabic Quote]: "And the wording is from Al-Ghuniyya: It is said in Al-Burhan that building upon it for decoration is forbidden, and it is disliked for reinforcement after burial, but not in a place built before burial because it is not truly a grave without it."

[Urdu Translation]: These are the words of Ghuniyya, stating that it is written in Burhan: it is prohibited to build a structure over a grave for decoration, and building for the sake of solidity and strength after burial is disliked. Where a building already existed, burial there is not disliked because without the act of burial, that place is not truly a grave. (T)

And if construction takes place after burial, there are two scenarios: One is that a building is constructed directly over the grave itself; there is no doubt about its prohibition as the ceiling and the air above the grave are the right of the deceased. Moreover, this act involves disrespect and harm to them, to the extent that sitting or walking on a grave is prohibited, let alone building a structure. Many of our scholars of the school (may their secrets be sanctified) have derived this meaning from the Hadiths and narrations of 'prohibition of building', and indeed, this is the true

meaning of 'building upon a grave'. Building a structure around a grave is 'around the grave' (hawl al-qabr) rather than 'on the grave' (ala al-qabr). Just as the prohibition of 'prayer on the grave' does not include prayer beside the grave, as scholars have stated unanimously and we have explained in our Fatawa. Imam Faqih al-Nafs Fakhr al-Millah wa-al-Din Awzjandi states in 'Khaniyah':

---

1 Ghuniyyat Dhawi al-Ahkam fi Bughyat al-Ahkam, Chapter on Funerals, Ahmad Kamil Press, Dar al-Sa'adat Beirut, 1/167.

फ़तावा-ए-रज़विया जिल्द नहुम (खंड 9)

...वहाँ बैठने में अकीदतमंदों (श्रद्धालुओं) को बहुत तकलीफ़ होती है। अत; यदि उक्त अकीदतमंद अपने आध्यात्मिक लाभ के लिए इस कब्र के चारों ओर एक पक्का चबूतरा और पक्की चारदीवारी बना दें और ऊपर से खुला रखें तथा कब्र को कच्चा रहने दें, तो क्या यह जायज़ है या नहीं? बयान फरमाएं और सवाब (पुण्य) पाएं।

अल-जवाब (उत्तर): प्रश्न में वर्णित स्थिति जायज़ है। धर्म के इमामों ने विद्वानों और सूफी संतों (अल्लाह उनके रहस्यों को पवित्र करे) के मज़ारों के चारों ओर की वैध भूमि पर इस उद्देश्य से इमारत बनाना जायज़ रखा है कि ज़ायरीन (दर्शनार्थी) और लाभान्वित होने वाले लोगों को आराम मिले। उन्होंने स्पष्ट किया है कि मनाही का कारण बुरी नियत या लाभ की कमी है; अतः जहाँ नियत नेक हो और लाभ मौजूद हो, वहाँ मनाही नहीं है। इस मसले के विभिन्न रूपों के विस्तार और शोध में यह है कि यदि इमारत पहले बना ली जाए और उसके बाद उसमें दफ़न किया जाए, तो यह मसला 'कब्र पर इमारत' (बिना अला अल-क़ब्र) से संबंधित ही नहीं है, क्योंकि यह निर्माण में विचार (ऐतबार फ़िल बिना) है, न कि कब्र पर निर्माण। अल्लामा ताराबुलसी 'बुरहान शरह मवाहिब अल-रहमान' में, फिर अल्लामा शुरुनबुलाली 'ग़ुनियत ज़वी अल-अहकाम' में, फिर अल्लामा सैय्यद अबुल सऊद अज़हरी 'फ़तहुल्लाह अल-मुईन' में, फिर अल्लामा सैय्यद अहमद मिस्री 'दुर्र व मराक़ी अल-फ़लाह' की टिप्पणियों में फ़रमाते हैं:

[अरबी उद्धरण]: "वल्लफ़ज़ुल ग़ुनियत क़ाल क़ाल फ़िल बुरहाने युहर्रमुल बिनाउ अलैहे लिज्ज़ीना व युकरहो लिल अहकामे बादल दफ़ने ला दफ़नु मकाम बनी फ़ीहे क़ब्लहू ले अदमे कौनेही क़ब्रन ह़क़ीक़तन बिदूनेही इलख"

[उर्दू से अनुवाद]: ग़ुनियत के शब्द हैं: बुरहान में कहा गया है कि कब्र पर सजावट के लिए इमारत बनाना हराम है और दफ़न के बाद मजबूती और स्थिरता के लिए बनाना मकरूह (नापसंद) है। जहाँ पहले से इमारत थी और वहाँ दफ़न हुआ, वह मकरूह नहीं है क्योंकि दफ़न के बिना वह स्थान वास्तव में कब्र नहीं है। (त)

और यदि दफ़न के बाद निर्माण हो, तो उसकी दो स्थितियाँ हैं: एक यह कि स्वयं कब्र के ऊपर ही कोई इमारत चुन दी जाए; इसके निषेध में कोई संदेह नहीं है क्योंकि कब्र की छत और कब्र के ऊपर की हवा मृत व्यक्ति का अधिकार है। इसके अलावा, इस कार्य में उनका अपमान और कष्ट है, यहाँ

तक कि कब्र पर बैठना और चलना मना है, तो इमारत बनाना तो दूर की बात है। हमारे मज़हब के कई विद्वानों (अल्लाह उनके रहस्यों को पवित्र करे) ने 'निर्माण की मनाही' (नहीं अन अल-बिना) वाली हदीसों और रिवायतों से यही अर्थ लिया है और वास्तव में 'कब्र पर निर्माण' का वास्तविक अर्थ यही है। कब्र के चारों ओर कोई मकान बनाना 'कब्र के चारों ओर' (हौल अल-क़ब्र) है न कि 'कब्र पर' (अला अल-क़ब्र)। जैसे 'कब्र पर नमाज़' की मनाही 'कब्र के पास' को शामिल नहीं करती, जैसा कि विद्वानों ने सर्वसम्मति से स्पष्ट किया है और हमने अपने फ़तावा में इसे बयान किया है। इमाम फ़कीह अल-नफ़्स फ़ख़्र अल-मिल्लह वल-दीन औज़जंदी 'ख़ानिया' में फ़रमाते हैं:

---

1 ग़ुनियत ज़वी अल-अहकाम फ़ी बुग़यत अल-अहकाम, जनाज़ा का अध्याय, मतबअ अहमद कामिल, दारुल सादत बेरूत, 1/167.

میں معتقدین کو وہاں بیٹھنے کی بہت تکلیف رہتی ہے، پس اگر معتقدین مذکورین واسطے اپنے استفاضہ طریقت اس قبر کے گرداگرد چبوترہ پختہ دیوار اور چار دیواری پختہ بنادیں اور اوپر سے کھلی ہوئی رکھیں اور قبر کو خام رہنے دیں تو جائز ہے یا نہیں؟ بینوا توجروا

الجواب: صورت مذکورہ فی السوال جائز ہے۔ ائمہ دین نے مزاراتِ علماء ومشائخ قدست اسرار ہم کے گرد زمین جائز التصرف میں اس غرض سے کہ زائرین و مستفیدین راحت پائیں عمارت بنانا جائز رکھا، اور تصریحات فرمائیں کہ علتِ منع نیتِ فاسدہ یا عدمِ فائدہ ہے تو جہاں نیت محمود اور نفع موجود منع مفقود۔ تفصیلِ صور و تحقیقِ اغراسِ مسئلہ میں یہ ہے کہ اگر پہلے عمارت بنالی جائے بعدہ اس میں دفن واقع ہو جب تو مسئلہ بناء علی القبر سے متعلق ہی نہیں کہ یہ اعتبار فی البناء ہے، نہ بناء علی القبر، علامہ طرابلسی برہان شرح مواہب الرحمن، پھر علامہ شرنبلالی غنیہ ذوی الاحکام، پھر علامہ سید ابوالسعود ازہری فتح اللہ المعین، پھر علامہ سید احمد مصری حاشیتین در و مراقی الفلاح میں فرماتے ہیں: واللفظ الغنیۃ قال قال فی البرھان یحرم البناء علیہ للزینۃ ویکرہ للاحکام بعد الدفن لا الدفن مقام بنی فیہ قبلہ لعدم کونہ قبر حقیقۃ بدونہ اھ الفاظ غنیہ کے ہیں کہا کہ برہان میں ہے کہ قبر پر زینت کے لئے عمارت بنانا حرام ہے اور دفن کے بعد پختگی و مضبوطی کے لئے بنانا مکروہ ہے، جہاں پہلے سے عمارت تھی وہاں دفن مکروہ نہیں کیونکہ بغیر دفن کے وہ جگہ حقیقتاً قبر نہیں اھ (ت) اور اگر دفن کے بعد تعمیر ہو تو اس کی دو صورتیں ہیں: ایک یہ کہ خود نفسِ قبر پر کوئی عمارت چنی جائے اس کی ممانعت میں اصلاً شک نہیں کہ سقفِ قبر و ہوائے قبر حقِ میت ہے، معہذا اس فعل میں اس کی اہانت واذیت، یہاں تک کہ قبر پر بیٹھنا، چلنا ممنوع ہوا نہ کہ عمارت چننا، ہمارے بہت علمائے مذہب قدست اسرار ہم نے احادیث و روایات "نہی

عن البناء" سے یہی معنی مراد لیے اور فی الواقع بناء علی القبر کے حقیقی معنیٰ یہی ہیں۔ گرد قبر کوئی مکان بنانا حول القبر ہے کہ علی القبر۔ جیسے صلوۃ علی القبر کی ممانعت بجنب القبر کو شامل نہیں کما نص علیہ العلماء قاطبۃ وبیناہ فی فتاونا (جیسا کہ علماء نے بالاتفاق اس کی تصریح کی ہے اور ہم نے اپنے فتاویٰ میں اسے بیان کیا ہے ۔ت) امام فقیہ النفس فخر الملۃ والدین اوزجندی خانیہ میں فرماتے ہیں:

---

1 غنیہ ذوی الاحکام فی بغیۃ الاحکام باب الجنائز مطبعۃ احمد کامل الکائنہ دار السعادت بیروت ۱/ ۱۶۷

Fatawa Razvia | Volume 9

[Table Header: Arabic Text | Urdu Translation]

[Row 1] Arabic: The grave should not be plastered (with gypsum), as it is narrated from the Holy Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) that he prohibited plastering, silvering, and building structures over the grave. They (the scholars) said by 'structure' he meant the casket (safat) which is made over the grave in our lands, because it is narrated from Imam Abu Hanifa (may Allah Almighty have mercy on him) that he said: The grave should not be plastered with gypsum or mud, nor should a building or casket be raised over it. [1] Urdu: The grave shall not be made solid with plaster, because it is narrated from the Holy Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) that His Majesty forbade making it solid with plaster and lime, and from constructing a building over the grave. Scholars said by building, it refers to that casket which is built over graves in our region, because it is narrated from Imam Abu Hanifa (may Allah Almighty have mercy on him) that he said: the grave should not be made solid with plaster and mud, nor should a building or casket be raised high upon it. (T)

[Heading]: Imam Tahir bin Abdur Rasheed Bukhari says in 'Khulasa':

[Row 2] Arabic: No building should be raised over it. They said by this he meant the casket that we make on graves in our lands. And it is said in 'Al-Fatawa' that today they have become accustomed to caskets. [2] Urdu: No building should be raised high over it. Scholars said: by it, that casket is meant which is built on graves in our lands, and it is in 'Fatawa' that in this era, the habit of caskets has developed. (T)

[Heading]: In 'Rahmaniyyah' it is quoted from 'Nisab al-Ihtisab':

[Row 3] Arabic: It is not permissible for anyone to build a house or a mosque over graves, because the place of the grave is the right of the deceased. So it is not permissible for anyone to utilize the airspace of his grave. [3] Urdu: It is not permissible to build a house or a mosque over a grave because the place of the grave is the right of the deceased, so it is not allowed for anyone to interfere with the airspace of that grave. (T)

[Heading]: In 'Hindiyyah' it is stated:

[Row 4] Arabic: One sins by treading upon graves because the roof of the grave is the right of the deceased. [4] Urdu: One will be a sinner for walking over graves because the roof of the grave is the right of the deceased. (T)

[Footnotes]: 1. Fatawa Qazi Khan, Chapter: Washing the Deceased etc., Munshi Nawal Kishore, Lucknow, 1/92 2. Khulasa al-Fatawa, Chapter 25: Regarding Funerals, Maktaba Habibiyah, Quetta, 1/226 3. Rahmaniyyah 4. Fatawa Hindiyyah, Chapter 16: Regarding Visiting Graves etc., Noorani Kutub Khana, Peshawar, 5/351

फ़तावा रज़विया | जिल्द 9

[तालिका शीर्षक: अरबी पाठ | उर्दू अनुवाद]

[पंक्ति 1] अरबी: क़ब्र को जिप्सम (गच) से पक्का न किया जाए, क्योंकि नबी करीम (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) से रिवायत है कि उन्होंने गच करने, चांदी चढ़ाने और क़ब्र पर इमारत बनाने से मना फ़रमाया है। विद्वानों ने कहा कि इमारत से मुराद वह संदूक (सफ़त) है जो हमारे देशों में क़ब्रों पर बनाया जाता है, क्योंकि इमाम अबू हनीफ़ा (रहमतुल्लाह अलैह) से रिवायत है कि उन्होंने फ़रमाया: क़ब्र को गच और मिट्टी से पक्का न किया जाए और न ही उस पर इमारत और संदूक ऊँचा किया जाए। [1] उर्दू: क़ब्र को गच से पक्का न किया जाएगा इसलिए कि हुज़ूर नबी करीम सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम से मरवी है कि हुज़ूर ने गच और चूने से पुख़्ता करने से और क़ब्र के ऊपर इमारत बनाने से मुमानअत फ़रमाई है, उलमा ने फ़रमाया इमारत से मुराद वह सफ़त है जो हमारे दयार में क़ब्र पर बनाया जाता है इसलिए कि इमाम अबू हनीफ़ा रहमतुल्लाह तआला से मरवी है कि उन्होंने फ़रमाया: क़ब्र को गच और गारे से पुख़्ता न किया जाए और न इस पर इमारत और सफ़त बुलंद किया जाए। (त)

[शीर्षक]: इमाम ताहिर बिन अब्दुर रशीद बुख़ारी 'ख़ुलासा' में फ़रमाते हैं:

[पंक्ति 2] अरबी: उस पर इमारत ऊँची न की जाए। उन्होंने कहा इससे वह संदूक मुराद है जो हम अपने शहरों में क़ब्रों पर बनाते हैं। और 'अल-फ़तावा' में है कि आज लोग संदूक के आदी हो गए हैं। [2] उर्दू: इस पर कोई इमारत ऊंची न की जाए, उलमा ने फ़रमाया: इस से वह सफ़त मुराद है जो हमारे दयार में क़ब्रों पर बनाया जाता है, और फ़तावा में है कि इस ज़माने में सफ़तों की आदत हो चुकी है। (त)

[शीर्षक]: 'रहमानिया' में 'निसब अल-इहतिसाब' से है:

[पंक्ति 3] अरबी: किसी के लिए क़ब्रों के ऊपर घर या मस्जिद बनाना जायज़ नहीं है क्योंकि क़ब्र की जगह मृतक का अधिकार है। अतः किसी के लिए उसकी क़ब्र की हवा (ऊपर की जगह) में हस्तक्षेप करना जायज़ नहीं है। [3] उर्दू: क़ब्र के ऊपर घर या मस्जिद बनाना जायज़ नहीं इसलिए कि क़ब्र की जगह मय्यत का हक़ है तो किसी के लिए इस क़ब्र की फ़ज़ा में तसर्रुफ़ रवा न होगा। (त)

[शीर्षक]: 'हिन्दिया' में है:

[पंक्ति 4] अरबी: क़ब्रों को रौंदने से गुनाह होता है क्योंकि क़ब्र की छत मृतक का अधिकार है। [4] उर्दू: क़ब्रों पर चलने से गुनहगार होगा इसलिए कि क़ब्र की छत हक़ मय्यत है। (त)

[पाद टिप्पणियां]: 1. फ़तावा क़ाज़ी ख़ां, बाब: गुस्ल-ए-मय्यत आदि, मुंशी नवल किशोर, लखनऊ, 1/92 2. ख़ुलासा अल-फ़तावा, अध्याय 25: जनाज़ों के बारे में, मकतबा हबीबिया, क्वेटा, 1/226 3. रहमानिया 4. फ़तावा हिन्दिया, अध्याय 16: क़ब्रों की ज़ियारत आदि, नूरानी कुतुब ख़ाना, पेशावर, 5/351

لا یجصص القبر لماروي عن النبی صلی اللہ تعالی علیه وسلم انه انهی عن التجصیص والتقضیض وعن البناء فوق القبر، قالوا اراد بالبناء السفط الذی یجعل علی القبر فی دیار نا لماروی عن ابی حنیفة رحمه اللہ تعالی انه قال لا یحصص القبر ولا یطین ولا یرفع علیه بناء وسفط 1- | قبر کو گچ سے پکا نہ کیا جائے گا اس لیے کہ حضور نبی کریم صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم سے مروی ہے کہ حضور نے گچ اور چونے سے پختہ کرنے سے اور قبر کے اوپر عمارت بنانے سے ممانعت فرمائی ہے، علماء نے فرمایا عمارت سے مراد وہ سفط ہے جو ہمارے دیار میں قبر پر بنایا جاتا ہے اس لیے کہ امام ابوحنیفہ رحمہ اللہ تعالٰی سے مروی ہے کہ انہوں نے فرمایا: قبر کو گچ اور گارے سے پختہ نہ کیا جائے اور نہ اس پر عمارت اور سفط بلند کیا جائے۔ (ت)

امام طاہر بن بن عبدالرشید بخاری خلاصہ میں فرماتے ہیں: لا یرفع علیه بناء قالوا ارادبه السفط الذی نجعل في دیارنا علی القبور وقال في الفتاوی الیوم اعتادوا السفط 2- | اس پر کوئی عمارت اونچی نہ کی جائے، علماء نے فرمایا: اس سے وہ سفط مراد ہے جو ہمارے دیار میں قبروں پر بنایا جاتا ہے، اور فتاوٰی میں ہے کہ اس زمانے میں سفطوں کی عادت ہو چکی ہے۔ (ت)

رحمانیہ میں نصاب الاحتساب سے ہے: لا یجوز لاحد ان یبنی فوق القبور بیتا او مسجدا لان موضع القبر حق المقبور فلا یجوز لاحد التصرف في هواء قبره 3- | قبر کے اوپر گھر یا مسجد بنانا جائز نہیں اس لیے کہ قبر کی جگہ میت کا حق ہے تو کسی کے لیے اس قبر کی فضا میں تصرف روا نہ ہوگا۔ (ت)

ہندیہ میں ہے: یأثم بوطء القبور لان سقف القبر حق المیت 4- | قبروں پر چلنے سے گنہگار ہو گا اس لیے کہ قبر کی چھت حق میت ہے۔ (ت)

1 فتاوٰی قاضی خاں باب غسل المیت الخ منشی نولکشور لکھنو ۱/ ۹۲ 2 خلاصہ الفتاوی الفصل الخامس والعشرون فی الجنائز مکتبہ حبیبیہ کوئٹہ ۱/ ۲۲۶ 3 رحمانیہ 4 فتاوی ہندیہ الباب السادس عشر فی زیارۃ القبور الخ نورانی کتب خانہ پشاور ۵/ ۳۵۱

Fatawa Razawiyya, Volume 9

Secondly, if a platform or building is constructed around a grave, and if this land is being used unlawfully, such as private property without the owner's permission or waqf land without the donor's condition, then it is prohibited for this reason because even building a mosque is not permissible in such a place, let alone any other structure.

[Box Left: And therefore, it is narrated in 'Mirqat' from 'Azhar' that prohibition is due to the sanctity of a public (waqf) cemetery, and it is mandatory to demolish it, even if it is a mosque.1] [Box Right: Similarly, it is narrated in 'Mirqat' from 'Azhar' that building in a general waqf cemetery is prohibited, and it is necessary to demolish it even if it is a mosque. (t)]

Similarly, if it is with a corrupt intention like decoration and pride, as grand buildings are constructed over the graves of the wealthy at great expense for this purpose, then it is prohibited due to the corruption of intention.

[Box Left: As passed from Al-Burhan and similar to it in Noor-ul-Idah etc.] [Box Right: As mentioned with reference to 'Burhan', and similarly in 'Noor al-Idah' etc. (t)]

In the same way, where it is purely useless, for example, if a grave is located in a wilderness where people do not pass by, or graves of ordinary non-pious people towards whom no one has such devotion that they would visit their graves for blessings and benefit, nor is it expected from their worldly heirs that they will go and sit there in various seasons like winter, summer, and rains with the intention of visiting the grave and benefiting the deceased, engaging in Quran recitation and remembrance of Allah, or appointing permissible reciters and rememberers there; in such cases, it is prohibited due to extravagance and wastage of wealth. Allama Turpashti says: It is prohibited because there is no benefit in it. 2 (Prohibited because there is no benefit in it - t). In 'Majma' Bihar al-Anwar' it is stated: Prohibited for lack of benefit. 3 (Prohibited due to being useless - t). In 'Mirqat' it is stated:

[Box Left: And some of the commentators among our scholars said, and because of the wastage of wealth. 4] [Box Right: And some of our scholar-commentators have said: and also because of the wastage of wealth. (t)]

Where it is free from all these prohibited factors, there is no reason for prohibition. Therefore, Mullah Ali Qari, after quoting the discourse...

1. Mirqat Sharh Mishkat, Chapter of Burying the Deceased, Maktaba Imdadia Multan, 4/69.
2. Mirqat Sharh Mishkat, ref Turpashti, Chapter of Burying the Deceased, Maktaba Imdadia Multan, 4/69.
3. Majma' Bihar al-Anwar, mentioned under the word "Sharaf", Munshi Naval Kishore Lucknow, 2/187.
4. Mirqat Sharh Mishkat, Chapter of Burying the Deceased, Section One, Maktaba Imdadia Multan, 4/69.

फ़तावा रज़विया, खंड 9

दूसरा यह कि कब्र के चारों ओर कोई चबूतरा या घर बनाया जाए, यदि यह ज़मीन अवैध कब्जे में हो जैसे कि मालिक की अनुमति के बिना किसी और की संपत्ति या वाकिफ़ (दानकर्ता) की शर्त के बिना वक्फ़ की ज़मीन, तो इस कारण से यह नाजायज़ है कि ऐसी जगह पर तो मस्जिद बनाना भी जायज़ नहीं है और इमारत तो दूर की बात है।

[बॉक्स बायाँ: इसलिए 'मिर्कात' में 'अज़हार' से उद्धृत है कि सार्वजनिक (वक्फ़) कब्रिस्तान में (निर्माण) निषेध उसकी पवित्रता के कारण है और उसे गिराना अनिवार्य है, चाहे वह मस्जिद ही क्यों न हो। 1] [बॉक्स दायाँ: इसीलिए मिर्कात में अज़हार से नक़्ल है कि आम वक़्फ़ क़ब्रिस्तान में तामीर हराम होने की वजह से मना है और उसे ढहा देना ज़रूरी है अगरचे मस्जिद ही हो। (त)]

इसी प्रकार, यदि नीयत (इरादा) दूषित हो, जैसे कि सजावट और दिखावे के लिए, जैसे अमीरों की कब्रों पर इस उद्देश्य से भारी खर्च करके ऊँची इमारतें बनाई जाती हैं, तो नीयत के दूषित होने के कारण यह प्रतिबंधित है।

[बॉक्स बायाँ: जैसा कि अल-बुरहान से उद्धृत है और इसी तरह नूर-उल-ईज़ाह आदि में भी।] [बॉक्स दायाँ: जैसा कि 'बुरहान' के हवाले से बीत चुका है, और इसी तरह 'नूर अल-इदाह' आदि में है। (त)]

इसी तरह जहाँ यह बिल्कुल व्यर्थ हो, उदाहरण के लिए, यदि कोई कब्र किसी जंगल में स्थित हो जहाँ लोगों का आना-जाना न हो, या आम गैर-नेक लोगों की कब्रें जिनसे न तो किसी को ऐसी श्रद्धा हो कि वह बरकत और लाभ के लिए उनकी कब्रों पर जाए, और न ही उनके दुनियावी वारिसों से यह उम्मीद हो कि वे सर्दियों, गर्मियों और बरसात के विभिन्न मौसमों में कब्र की ज़ियारत और मृत को लाभ पहुँचाने के इरादे से वहाँ जाकर बैठेंगे, कुरान और ज़िक्र में व्यस्त रहेंगे, या वहाँ जायज़ तरीके से पाठ करने वालों और ज़िक्र करने वालों को नियुक्त करेंगे; ऐसी स्थिति में फिजूलखर्ची और धन की बर्बादी के कारण यह वर्जित है। अल्लामा तुरपश्ती फरमाते हैं: इसमें कोई लाभ न होने के कारण यह निषिद्ध है। 2 (ममनू है क्यूंकि इसमें कोई फ़ायदा नहीं - त)। 'मजमा बिहार अल-अनवार' में है: लाभ न होने के कारण इससे मना किया गया है। 3 (बे-फ़ायदा होने की वजह से ममनू है - त)। 'मिर्कात' में है:

[बॉक्स बायाँ: और हमारे उलमा में से बाज़ शारिहीन ने कहा और माल की बर्बादी के कारण। 4] [बॉक्स दायाँ: और हमारे कुछ विद्वान टीकाकारों ने कहा: और धन की बर्बादी के कारण भी। (त)]

जहाँ यह इन सभी वर्जित बातों से मुक्त हो, वहाँ निषेध का कोई कारण नहीं है। इसलिए मुल्ला अली क़ारी ने कलाम उद्धृत करने के बाद...

---

1. मिर्कात शरह मिश्कात, मुर्दे को दफनाने का अध्याय, मकतबा इमदादिया मुल्तान, 4/69।
2. मिर्कात शरह मिश्कात, हवाल-ए-तुरपश्ती, मुर्दे को दफनाने का अध्याय, मकतबा इमदादिया मुल्तान, 4/69।
3. मजमा बिहार अल-अनवार, शब्द "शरफ़" के अंतर्गत उल्लेखित, मुंशी नवल किशोर लखनऊ, 2/187।
4. मिर्कात शरह मिश्कात, मुर्दे को दफनाने का अध्याय, पहला खंड, मकतबा इमदादिया मुल्तान, 4/69।

पृष्ठ 416 का 948

دوسرا یہ کہ گرد قبر کوئی چبوترہ یا مکان بنایا جائے، یہ اگر زمین ناجائز تصرف میں ہو جیسے ملک غیر بے اذن مالک یا ارض وقف بے شرط واقف، تواس وجہ سے ناجائز ہے کہ ایسی جگہ تو مسجد بنانی بھی جائز نہیں اور عمارت تو اور ہے۔

[ولذا النقل فی المرقاۃ عن الازھاران النھی للحرمۃ فی المقبرۃ المسبلۃ ویجب الھدم وان کان مسجداً 1۔]

[اسی لیے مرقات میں ازہار سے نقل ہے کہ عام وقفی قبرستان میں تعمیر حرام ہونے کی وجہ سے نہی ہے اور اسے ڈھادینا ضروری ہے اگرچہ مسجد ہی ہو۔ (ت)]

یوں ہی اگر بہ نیت فاسدہ ہو مگر زینت و تفاخر جیسے امراء کی قبور پر ابنیہ رفیعہ بمصارف وسیعہ اس غرض سے بنائے جاتے ہیں، تو یہ بوجہ فساد نیت ممنوع،

[کما مرعن البرھان ومثلہ في نور الایضاح وغیرہ۔] [جیسا کہ برہان کے حوالے سے گزرا، اور اسی کے مثل نور الایضاح وغیرہ میں ہے۔ (ت)]

اسی طرح جہاں بے فائدہ محض ہو، جیسے کوئی قبر کسی بن میں واقع ہو جہاں لوگوں کا گزر نہیں یا عوام غیر صلحاء کی قبور جن سے نہ کسی کو عقیدت کہ بہجت تبرک و انتفاع ان کی مقابر پر جائیں نہ ان کے دنیا دار ورثاء سے امید کہ وہی جاڑے، گرمی، برسات مختلف موسموں میں بقصد زیارت قبر و نفع رسانی میت وہاں جاکر بیٹھا کریں گے، قرآن و ذکر میں مشغول رہیں گے یا بروجہ جائز قراء و ذاکرین کو وہاں مقرر رکھیں گے، ایسی صورت میں بوجہ اسراف و اضاعت مال نہی ہے، علامہ تورپشتی فرماتے ہیں : منھي لعدم الفائدۃ فیہ 2 (ممنوع ہے کیونکہ اس میں

کوئی فائدہ نہیں۔ت) مجمع بحار الانوار میں ہے : منھی عنه لعدم الفائدة 3 (بے فائدہ ہونے کی وجہ سے ممنوع ہے۔ت) مرقاۃ میں ہے :

[وقال بعض الشراح من علمائنا ولاضاعة المال 4] [اور ہمارے بعض علمائے شارحین نے فرمایا اور اضاعت مال کی وجہ سے بھی۔ (ت)]

جہاں ان سب محذورات سے پاک ہو وہاں ممانعت کی کوئی وجہ نہیں۔ ولہٰذا مولانا علی قاری نے بعد نقل کلام

---

1 مرقاۃ شرح مشکوۃ باب دفن المیت مکتبہ امدادیہ ملتان ۴/ ۶۹ 2 مرقاۃ شرح مشکوۃ بحوالہ تورپشتی باب دفن المیت مکتبہ امدادیہ ملتان ۴/ ۶۹ 3 مجمع بحار الانوار لفظ "شرف" کے تحت مذکور ہے منشی نولکشور لکھنؤ ۲/ ۱۸۷ 4 مرقاۃ شرح مشکوۃ باب دفن المیت فصل اول مکتبہ امدادیہ ملتان ۴/ ۶۹

The aforementioned Pushti stated: "I say: It is inferred from this that if a tent is for a benefit, such as for reciters to sit under it, then it is not prohibited. Ibn al-Humam said: There is a difference of opinion regarding seating reciters to recite at the grave; the chosen view is that it is not disliked (Makruh)." (T)

Sheikh-ul-Islam states in 'Kashf-ul-Ghita': "If there is a valid purpose, there is no harm in it, just as scholars have said regarding building near a grave for the comfort of people and lighting lamps in graveyards to remove the distress of darkness for people on the path, and similar things. This is what is understood from the Sheikh's commentary." (T)

It is narrated in Sahih Bukhari Sharif: "From Aisha (may Allah be pleased with her), from the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him), who said during his final illness: 'May the curse of Allah be upon the Jews and Christians; they took the graves of their prophets as places of worship.' She said: 'Had it not been for that, his (Prophet's) grave would have been made prominent.'" (T)

1. Mirqat Sharh Mishkat, Chapter on Burying the Dead, First Section, Maktaba Imdadia Multan, 4/69.
2. Kashf-ul-Ghita, Chapter on Burying the Dead, Matba' Ahmadi Delhi, p. 55.
3. Sahih Bukhari, Book of Funerals, Chapter on what is disliked regarding taking graves as mosques, Qadimi Kutub Khana Karachi, 1/177.

फ़तावा रज़विया जिल्द नवीं

मजकूरा तौर पुश्ती फ़रमाया: "मैं कहता हूँ: इससे यह साबित हुआ कि जब खेमा (तंबू) किसी फ़ायदे के लिए हो, जैसे कि क़ुरआन पढ़ने वाले उसके नीचे बैठें, तो वह मना नहीं होगा। इब्न अल-हुमाम ने फ़रमाया: क़ब्र के पास बैठकर पढ़ने के लिए जो टाट बिछाते हैं, उनसे संबंधित मतभेद है; पसंदीदा राय यह है कि यह मकरूह (नापसंद) नहीं है।" (त)

शेखुल इस्लाम 'कश्फ़ुल ग़िता' में फ़रमाते हैं: "अगर कोई सही मक़सद हो तो इसमें कोई हर्ज़ नहीं है, जैसे कि लोगों के आराम के लिए क़ब्र के पास इमारत बनाने और रास्ते के अंधेरे से लोगों की तकलीफ़ दूर करने के लिए क़ब्रिस्तान में चिराग़ जलाने और इसी तरह के कामों के बारे में उलेमा ने फ़रमाया है। शेख की शरह (व्याख्या) से ऐसा ही समझ आता है।" (त)

सहीह बुखारी शरीफ़ में है: "हज़रत आयशा सिद्दीक़ा रज़ियल्लाहु तआला अन्हा नबी सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम से रिवायत करती हैं कि हुज़ूर ने अपनी वफ़ात की बीमारी में फ़रमाया: यहूद व नसारा पर ख़ुदा की लानत हो, उन्होंने अपने अम्बिया की क़ब्रों को मस्जिद बना लिया। अगर यह इर्शाद न होता तो हुज़ूर की क़ब्र अनवर नुमायाँ (खुली) रखी जाती।" (त)

1. मिर्क़ात शरह मिश्क़ात, बाबु दफ़्निल मय्यित, फ़स्ल अव्वल, मकतबा इमदादिया मुल्तान, 4/69।
2. कश्फ़ुल ग़िता, बाबु दफ़्निल मय्यित, मतबा अहमदी दिल्ली, पृ. 55।
3. सहीह अल-बुखारी, किताबुल जनाइज़, बाबु मा युक़रहु मिन इत्तिखाज़िल मस्जिदि अलल क़ुबूर, क़दीमी कुतुब ख़ाना कराची, 1/177।

पृष्ठ 948 में से 417

فتاوٰی رضویہ جلد نہم

مذکور تورپشتی فرمایا: قلت فیستفاد منه انه اذا کانت الخیمة لفائدة مثل ان یقعد القراء تحتها فلا تکون منهیة، قال ابن الهمام واختلف فی اجلاس القارئین لیقرؤا عند القبر والمختار عدم الکراهة۔ 1 میں کہتا ہوں تواس سے مستفاد ہوا کہ جب خیمہ کسی فائدہ کے تحت ہو مثلاً یہ کہ قرآن پڑھنے والے اس کے نیچے بیٹھیں گے تو ممنوع نہ ہوگا۔ ابن ہمام نے فرمایا : قبر کے پاس بیٹھ کر پڑھنے کے لیے جو ٹاٹ بچھاتے ہیں ان سے متعلق اختلاف ہے، مختار یہ ہے کہ کراہت نہیں۔ (ت)

شیخ الاسلام کشف الغطاء میں فرماتے ہیں: اگر غرضے صحیح داشتہ باشد، دراں باک نیست آں چنانکہ دربنائے قبر بہ نیت آسائش مردم و چراغ افروختن درمقابر بقصد دفع ایذائے مردم از تاریکی راہ و نحو آں گفتہ اند ، کذا یفهم من شرح الشیخ 2۔ اگر کوئی صحیح غرض ہو تو اس میں حرج نہیں جیسے لوگوں کے آرام کے لیے قبر کے پاس عمارت بنانے اور راستے کی تاریکی سے لوگوں کی تکلیف دفع کرنے کے لیے قبرستان میں چراغ جلانے اور اس طرح کے کاموں میں علماء نے فرمایا ہے شیخ کی شرح سے ایسا ہی سمجھ میں آتا ہے۔ (ت)

صحیح بخاری شریف میں ہے: عن عائشة رضی اللہ تعالٰی عنها عن النبی صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم قال فی مرضه الذی مات فیه لعن اللہ الیهود والنصاری اتخذ واقبور انبیاء هم مسجدا قالت ولولا ذاک لابرزوا قبره۔ 3 حضرت عائشہ صدیقہ رضی اللہ تعالٰی عنہا نبی صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم سے روایت کرتی ہیں کہ حضور نے اپنے مرض وفات میں فرمایا: یہود و نصاری پر خدا کی لعنت ہو انھوں نے اپنے انبیاء کی قبروں کو مسجد بنالیا۔ اگر یہ ارشاد نہ ہوتا تو حضور کی قبر انور نمایاں رکھی جاتی۔ (ت)

1 مرقاۃ شرح مشکوۃ باب دفن المیت فصل اول مکتبہ امدادیہ ملتان ۴/ ۶۹ 2 کشف الغطاء باب دفن میت مطبع احمدی دہلی ص ۵۵ 3 صحیح البخاری کتاب الجنائز باب مایکرہ من اتخاذ المسجد علی القبور قدیمی کتب خانہ کراچی ۱/ ۱۷۷

Fatawa Razawiyya Volume Nine

Allama Qastallani writes in Irshad al-Sari under the mentioned Hadith: "لکن لم یبرز وہ ای لم یکشفہ بل بنوا علیہ حائلا" Meaning: But they did not leave it exposed and revealed; instead, they built a barrier over it. (T)

In Jazb-ul-Quloob, it is stated: (Persian text) When the Master of Prophets, peace and blessings be upon him, was buried in the blessed chamber (Hujrah Shareefa) by divine command, Aisha Siddiqah was also residing in her house. There was no veil between her and the blessed grave. Finally, due to people coming recklessly near the blessed grave and taking away soil from there, she divided the house into two parts and drew a wall between her living quarters and the blessed grave. When the Commander of the Faithful, Hazrat Umar, expanded the mosque, he built the chamber's structure with raw bricks. This chamber remained visible until the new construction during Walid's time. Umar bin Abdul Aziz, on the orders of Walid bin Abdul Malik, demolished it and rebuilt it with carved stones, and built another enclosure on its outer part, leaving no doors in either of them. It is narrated from Hazrat Urwah that he said to Umar bin Abdul Aziz, "If you had left the blessed chamber as it was and built a structure around it, it would have been better," etc. (Abridged) (T)

Inevitably, the eminent Imams have explicitly stated the permissibility of building around the graves of scholars and spiritual mentors (may their secrets be sanctified). — Allama Tahir Fatani.

---

1 Irshad al-Sari Sharh Sahih Bukhari, Kitab al-Jana'iz, Dar al-Kitab al-Arabi, Beirut, 2/430 2 Jazb-ul-Quloob, Chapter Seven on the description of changes, etc., Naval Kishore Lucknow, p. 121

फतावा रज़विया जिल्द नौ

अल्लामा कस्तलानी 'इरशाद अल-सारी' में ज़िक्र किए गए हदीस के तहत लिखते हैं: "لكن لم يبرز وه ای لم یکشفه بل بن عليه حائلا" लेकिन उसे खुला और ज़ाहिर नहीं रहने दिया बल्कि उस पर एक दीवार (आड़) बना दी। (त)

'जज़्ब उल-क़ुलूब' में फरमाया गया है: (फ़ारसी मूल का उर्दू अनुवाद): जब सरवर-ए-अंबिया (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) को ईश्वरीय आज्ञा से पवित्र कक्ष (हुजरा शरीफ़) में ही दफ़्न कर दिया गया, तब आयशा सिद्दीका भी अपने घर में ही रहती थीं। उनके और पवित्र कब्र के बीच कोई पर्दा नहीं था। अंतत; लोगों के पवित्र कब्र के पास बेधड़क आने और वहाँ की मिट्टी ले जाने के कारण, उन्होंने घर को दो हिस्सों में बाँट दिया और अपने रहने की जगह और पवित्र कब्र के बीच एक दीवार खींच दी। जब अमीरुल मोमिनीन हज़रत उमर ने मस्जिद का विस्तार किया, तो हुजरे की इमारत कच्ची ईंटों की बना दी। वलीद के ज़माने के पुनर्निर्माण तक यह हुजरा ज़ाहिर था। उमर बिन अब्दुल अज़ीज़ ने वलीद बिन अब्दुल मलिक के आदेश से इसे ढहाकर नक्काशीदार पत्थरों से बनवाया और इसके बाहरी हिस्से पर एक और घेरा बनाया, और उन दोनों में कोई दरवाज़ा नहीं छोड़ा। हज़रत उरवाह से रिवायत है कि उन्होंने उमर बिन अब्दुल अज़ीज़ से कहा, "अगर आप हुजरा शरीफ़ को उसकी हालत पर छोड़ देते और उसके चारों ओर एक इमारत बना देते तो बेहतर होता," आदि। (संक्षिप्त) (त)

निश्चित रूप से, महान इमामों ने उलेमा और मशाइख (जिनके रहस्य पवित्र हों) की कब्रों के चारों ओर इमारत बनाने की अनुमति स्पष्ट रूप से दी है। — अल्लामा ताहिर फतनी।

---

1. इरशाद अल-सारी शरह सहीह बुखारी, किताबुल जनाइज़, दार अल-किताब अल-अरबी, बेरुत, २/४३०।
2. जज़्ब उल-क़ुलूब, अध्याय सात, परिवर्तनों के वर्णन में, नवल किशोर लखनऊ, पृ. १२१।

فتاوٰی رضویہ جلد نہم

علامہ قسطلانی ارشاد الساری میں زیرِ حدیثِ مذکور لکھتے ہیں: لکن لم یبرز وہ ای لم یکشفہ بل بنوا علیہ حائلا - لیکن اسے نمایا اور منکشف نہ رکھا بلکہ اس پر ایک حائل بنا دیا (ت)

جذب القلوب میں فرمایا: چوں دفن سرور انبیاء صلی اللہ تعالٰی علیہ وعلٰی آلہ وسلم بموجب حکم الہی ہم در حجرہ شریفہ شد۔ عائشہ صدیقہ نیز در خانہ خود ساکن می بود و میان او و قبر شریف پردہ نہ بود، و در آخر بسبب جرأت و عدم تحاشی مردم از درآمدن بر قبر شریف و برداشتن خاک ازاں خانہ رادو قسم ساخت و دیوارے درمیان مسکن خود و قبر شریف کشید وبعد ازاں کہ امیر المومنین عمر در مسجد زیادت کر دہ حجرہ را از خشت خام بنا کرد و تازمان حدوث عمارت ولید ایں حجرہ ظاہر بود عمر بن عبدالعزیز بحکم ولید بن عبدالملک آں را ہدم کرد و بحجارہ منقوشہ برآورد۔ بر ظاہر آں حظیرہ دیگر بنا کر دو ہیچکدام ازیں دو درے نگذاشت از عروہ روایت می کنند کہ وے بہ عمر بن عبدالعزیز گفت، اگر حجرہ شریفہ را بر حال خود گزارند و عمارتی گرد آں برآرند احسن باشد الخ (ملخصاً)

جب سرورِ انبیاء صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم کو حکم الہی کے باعث حجرہ شریفہ ہی میں دفن کردیا گیا عائشہ صدیقہ بھی اپنے گھر میں سکونت پذیر تھیں، ان کے اور قبر شریف کے درمیان پردہ نہ تھا، آخر میں قبر شریف کے پاس بیباکی سے لوگوں کے بے تحاشہ آنے اور وہاں کی خاک لے جانے کی وجہ سے گھر کو دو حصوں میں تقسیم کردیا اور اپنے مسکن اور قبر شریف کے درمیان ایک دیوار کھینچ دی، جب امیر المومنین حضرت عمر نے مسجد میں اضافہ کیا تو حجرہ کی عمارت کچی اینٹوں کی بنا دی، ولید کے زمانہ کی تعمیرِ جدید تک یہ حجرہ ظاہر تھا، عمر بن عبد العزیز نے ولید بن عبدالملک کے حکم سے اسے منہدم کرکے منقش پتھروں سے بنایا اور اس کے

بیرونی حصہ پر ایک اور حظیرہ بنایا اور ان دونوں دروازوں میں سے کوئی نہ چھوڑا۔ حضرت عروہ سے روایت ہے کہ انھوں نے عمر بن عبدالعزیز سے کہا اگر حجرہ شریف کو اپنے حال پر رکھتے اور اس کے گرد ایک عمارت بنا دیتے تو بہتر ہوتا الخ (ملخصاً) (ت)

لاجرم ائمہ کرام نے گردِ قبورِ علماء و مشائخ قدست اسرارہم اباحتِ بنا کی تصریح فرمائی۔ علامہ طاہر فتنی

---

1 ارشاد الساری شرح صحیح بخاری کتاب الجنائز دار الکتاب العربی بیروت ۲/ ۴۳۰ 2 جذب القلوب باب ہفتم در بیان تغیرات الخ نولکشور لکھنو ص ۱۲۱

Fatawa Razawiya Volume 9

After the mentioned passage, it is stated: "The predecessors (Salaf) permitted building over the graves of famous elders and scholars so that people may visit them and find rest by sitting there." (Trans: T) The predecessors gave permission to construct buildings over the graves of renowned scholars and elders so that people could visit them and sit inside to rest. (Trans: T)

Similarly, Allama Ali Qari Makki mentioned after the recorded passage that: "And the predecessors permitted construction..." etc. (The Salaf allowed building on the graves of scholars and saints. Trans: T). In 'Kashf al-Ghita', it is written: "In 'Matalib al-Mu'minin', it is said that the predecessors made it permissible to build over the graves of famous scholars and elders so that people may visit and rest by sitting there. However, if it is built for decoration, it is forbidden. In Medina Munawwara, domes were built over the graves of the companions in earlier times; it is apparent that this happened because it was deemed permissible then. And there is also a high dome over the radiant resting place of the Holy Prophet (peace and blessings of Allah be upon him)." It is written in 'Matalib al-Mu'minin' that the predecessors considered building structures on the graves of famous scholars and elders permissible so that visitors could find rest. However, building for the sake of adornment is forbidden. In Medina, domes were constructed over the graves of the Sahaba (Companions) in the past. Clearly, this was due to its permissibility at that time. There is also a high dome over the blessed shrine of the Prophet (peace and blessings be upon him). (Trans: T)

In 'Nur al-Iman', it is written: "Sheikh [Abdul Haq] Dehlavi has narrated in 'Madarij' from 'Matalib al-Mu'minin' that the predecessors allowed building a dome over the graves of famous elders and scholars so that visitors can find rest and sit in its shade. Similarly, it is mentioned in 'Mafatih Sharh al-Masabih', and Ismail Zahidi, who is among the famous jurists, has also declared it permissible." Sheikh Muhaqqiq Dehlavi has quoted from 'Matalib al-Mu'minin' in 'Madarij al-Nabuwwah' that the predecessors deemed it permissible and allowed to build domes over the graves of famous elders and scholars so that visitors could find comfort and sit in their shade. The same is stated in 'Mafatih Sharh al-Masabih', and Ismail Zahidi, from among the renowned jurists, has also declared it permissible. (Trans: T)

1. Majma' Bihar al-Anwar, under the word "Sharaf", Munshi Nawal Kishore Lucknow, 3/18.

2. Mirqat Sharh Mishkat, Chapter: Burial of the Deceased, Maktaba Imdadia Multan, 2/29.
3. Kashf al-Ghita, Chapter: Burial of the Deceased, Ahmadi Press Delhi, p. 55.
4. Madarij al-Nabuwwah, referencing Matalib al-Mu'minin, section on funeral prayer, Maktaba Nooriya Razawiya Sukkur, 1/420.

फ़तावा रज़विया जिल्द नहम (खंड 9)

उक्त कथन के बाद फरमाते हैं: "पूर्वजों (सलफ़) ने प्रसिद्ध बुजुर्गों और विद्वानों की कब्रों पर इमारत बनाने की अनुमति दी है ताकि लोग उनके दर्शन के लिए आएं और वहां बैठकर विश्राम कर सकें।" (अनुवाद: त) पूर्वजों ने प्रसिद्ध विद्वानों और बुजुर्गों की कब्रों पर निर्माण कार्य की अनुमति दी है ताकि लोग उनकी ज़ियारत (दर्शन) को आएं और उसमें बैठकर आराम पाएं। (अनुवाद: त)

ठीक इसी तरह अल्लामा अली क़ारी मक्की ने दर्ज इबारत के बाद ज़िक्र फरमाया कि: "और सलफ़ ने निर्माण की अनुमति दी..." इत्यादि। (पूर्वजों ने विद्वानों और बुजुर्गों की कब्रों पर इमारत बनाने की अनुमति दी है। अनुवाद: त)। 'कश्फ़ अल-ग़िता' में है: "'मताल़िब अल-मुअमिनीन' में कहा गया है कि पूर्वजों ने प्रसिद्ध विद्वानों और बुजुर्गों की कब्रों पर निर्माण कार्य को वैध (मुबाह) किया है ताकि लोग दर्शन करें और वहां बैठकर आराम करें। लेकिन अगर सजावट के लिए बनाया जाए तो हराम है। मदीना मुनव्वरा में पूर्व काल में सहाबा की कब्रों पर गुंबद बनाए गए थे; स्पष्ट है कि उस समय इसे जायज़ मानने के कारण ही ऐसा हुआ और हुज़ूर अक़दस (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) के रौज़ा-ए-अक़दस पर भी एक ऊंचा गुंबद है।" मताल़िब अल-मुअमिनीन में लिखा है कि पूर्वजों ने प्रसिद्ध विद्वानों और बुजुर्गों की कब्रों पर इमारत बनाना जायज़ रखा है ताकि लोग ज़ियारत करें और उसमें बैठकर आराम लें, लेकिन अगर शोभा के लिए बनाएं तो वर्जित है। मदीना मुनव्वरा में सहाबा की कब्रों पर पिछले ज़माने में गुंबद तामीर किए गए हैं, ज़ाहिर है कि उस वक़्त जायज़ करार देने से ही यह हुआ और हुज़ूर अक़दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम के मरक़द-ए-अनवर पर भी एक बुलंद गुंबद है। (अनुवाद: त)

'नूर अल-ईमान' में है: "शेख़ [अब्दुल हक़] देहलवी ने 'मदारिज' में 'मताल़िब अल-मुअमिनीन' से उद्धृत किया है कि पूर्वजों ने प्रसिद्ध बुजुर्गों और विद्वानों की कब्रों पर गुंबद बनाने की अनुमति दी ताकि दर्शनार्थियों को आराम मिले और वे उसकी छाया में बैठ सकें। इसी तरह 'मफातीह शरह अल-मसाबीह' में भी है और प्रसिद्ध फकीहों में से इस्माइल ज़ाहिदी ने भी इसे जायज़ करार दिया है।" शेख़ मोहक़्क़िक़ देहलवी ने 'मदारिज अन-नबुव्वह' में 'मताल़िब अल-मुअमिनीन' से नक़ल किया है कि पूर्वजों ने प्रसिद्ध बुज़ुर्गों और विद्वानों की कब्रों पर गुंबद तामीर करना जायज़ और मुबाह रखा है ताकि ज़ायरीन (दर्शनार्थियों) को आराम मिले और उसके साये में बैठ सकें, इसी तरह मफातीह शरह

मसाबीह में भी है और मशहुर फ़ुक़हा में से इस्माइल ज़ाहिदी ने भी इसे जायज़ करार दिया है। (अनुवाद: त)

1. मजमा' बिहार अल-अनवार, शब्द "शराफ़" के तहत, मुंशी नवल किशोर लखनऊ, 3/18.
2. मिर्कात शरह मिश्कात, अध्याय: मृतक को दफनाना, मकतबा इमदादिया मुल्तान, 2/29.
3. कश्फ़ अल-ग़िता, अध्याय: मृतक को दफनाना, अहमदिया प्रेस दिल्ली, पृ. 55.
4. मदारिज अन-नबुव्वह, मताल़िब अल-मुअमिनीन के हवाले से, जनाज़ा की नमाज़ का अनुभाग, मकतबा नूरिया रज़विया सुक्कुर, 1/420.

पृष्ठ 419 / 948

فتاوٰی رضویہ جلد نہم

بعد عبارت مذکورہ فرماتے ہیں: وقد اباح السلف ان یبنی علی قبر المشایخ والعلماء المشاھیر لیزورھم الناس ویستریحوا بالجلوس فیہ ۱ - (ت) سلف نے مشہور علماء و مشائخ کی قبروں پر عمارت بنانے کی اجازت دی ہے تاکہ لوگ ان کی زیارت کو آئیں اور اس میں بیٹھ کر آرام پائیں- (ت)

بعینہ اسی طرح علامہ علی قاری مکی نے بعد عبارت مسطورہ ذکر فرمایا کہ وقد اباح السلف البناء ۲ الخ (سلف نے علماء و مشائخ کی قبروں پر عمارت بنانے کی اجازت دی ہے۔ ت) کشف الغطاء میں ہے : در مطالب المومنین گفتہ کہ مباح کردہ اند سلف بناء رابر قبر مشائخ علمائے مشہور تامردم زیارت کنند و استراحت نمایند بجلوس در آں ولیکن اگر برائے زینت کنند حرام است و در مدینہ مطہرہ بنائے قبا بر قبور اصحاب در زمان پیش کردہ اند ظاہر آنست کہ آں بتجویز آں وقت باشد و بر مرقد منور آنحضرت صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم نیز قبہ عالیہ ست ۳۔ مطالب المومنین میں لکھا ہے کہ سلف نے مشہور علماء و مشائخ کی قبروں پر عمارت بنانا مباح رکھا ہے تاکہ لوگ زیارت کریں اور اس میں بیٹھ کر آرام لیں ، لیکن اگر زینت کے لیے بنائیں تو حرام ہے مدینہ منورہ میں صحابہ کی قبروں پر اگلے زمانے میں قبے تعمیر کئے گئے ہیں ، ظاہر یہ ہے کہ اس وقت جائز قرار دینے سے ہی یہ ہوا اور حضور اقدس صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم کے مرقد انور پر بھی ایک بلند قبہ ہے۔ (ت)

نور الایمان میں ہے : قد نقل الشیخ الدھلوي في مدارج عن مطالب المومنین ان السلف اباحوا ان یبني علی قبر المشایخ والعلماء المشھورین قبۃ لیحصل الاستراحۃ الزائرین و یجلسون في ظلھا وھکذا في المفاتیح شرح المصابیح وقد جوزہ اسمعیل الزاھدي الذي من مشاھیر الفقھاء ۴ - شیخ محقق دہلوی نے مدارج النبوۃ میں مطالب المومنین سے نقل کیا ہے کہ سلف نے مشہور مشائخ و علماء کی قبروں پر

قبے تعمیر کرنا جائز و مباح رکھا ہے تاکہ زائرین کو آرام ملے اور اس کے سائے میں بیٹھ سکیں ، اسی طرح مفاتیح شرح مصابیح میں بھی ہے اور مشاہیر فقہاء میں سے اسمعیل زاہدی نے بھی اسے جائز قرار دیا ہے۔ (ت)

۱ مجمع بحار الانوار تحت لفظ " شرف " منشی نولکشور لکھنؤ ۳/ ۱۸ ۲ مرقاۃ شرح مشکوۃ باب دفن المیت مکتبہ امدادیہ ملتان ۲/ ۲۹ ۳ کشف الغطاء باب دفن میت مطبع احمدی دہلی ص ۵۵ ۴ مدارج النبوۃ بحوالہ مطالب المومنین وصل در نماز جنازہ مکتبہ نوریہ رضویہ سکھر ۱/ ۴۲۰

Fatawa Ridawiyya Volume 9

Allama Sayyid Tahtawi has explicitly stated in the Hashiya of Maraqi al-Falah that there is no dislike (karahat) in this. | As he said regarding the issue of burial in vaults, that in places like the Qarafa of Egypt, it is not possible to make a Lahd (side-grave), and burying a group of people together is due to necessity. As for the construction, the difference of opinion has already been mentioned. And as for mixing, it is out of necessity. If a barrier is placed between the dead, then there is no dislike. 1 | He writes regarding the issue of burial inside vaults: In a place like the Qarafa of Egypt, a Lahd cannot be made and it is a matter of necessity to bury several people together. As for construction, the difference of opinion has already passed, and mixing is due to necessity. If a barrier is placed between the dead, then there is no dislike. (T) | | :--- | :--- |

The ultimate point is that the Great Imam Abu Abdullah Muhammad bin Abdullah Ghazzi Tamartashi in Tanwir al-Absar wa Jami' al-Bihar, then the research scholar Allama Ala al-Din Muhammad Dimashqi in the commentary of Tanwir, then the eminent scholar Sayyidi Ahmad al-Misri in the Hashiya of Maraqi, have explicitly stated and confirmed that the opinion of permissibility is the chosen and fatwa-given one. | This is the wording of Allama Ghazzi: No building should be raised over it, and it was said there is no harm in it, and this is the chosen (opinion). 2 AH | This is the passage from Allama Ghazzi: No tall building should be raised upon it, and it was said that there is no harm in it, and this is what is chosen. AH (T) | | :--- | :--- |

After such explicit fatwa and preference, what room is there for talk? | This position should be researched in this way by the grace of the Munificent King, the All-Knowing. And through this, reconciliation between the words of the eminent scholars is achieved. And Allah, Glorified and Exalted is He, knows best, and His knowledge, Glorious be His Majesty, is most perfect and firm. And His judgment. | This place should be researched in this way by the grace of the Munificent King, the All-Knowing. And through this, reconciliation is also achieved in the words of the eminent scholars. And the Pure and Most High God knows best, and His knowledge is of greater perfection and firmness (T). | | :--- | :--- |

Problem 128 to 129: From Pindol Buzurg, Post Office Raipur, District Muzaffarpur, sent by Ne'mat Ali Sahib, 14 Rabi' al-Awwal Sharif 1337 AH. What do the scholars of religion say regarding these issues: (1) Building structures on the shrines of elders for Fatiha, reciting the Quran, and standing to seek intercession, and (celebrating) Urs.

1 Hashiya al-Tahtawi 'ala Maraqi al-Falah, Chapter on carrying and burying the deceased, Nur Muhammad Karkhana Tijarat Kutub Karachi, p. 336 2 Durr al-Mukhtar sharh Tanwir al-Absar, Chapter on Funeral Prayers, Mujtabai Press Delhi, 1/125 Page 420 of 948

फ़तावा रिज़विया जिल्द नौ

अल्लामा सय्यद तहतावी ने हाशियह मराक़ी अल-फ़लाह में साफ़ तौर पर फ़रमाया है कि इसमें कोई कराहत (नापसंदगी) नहीं है। | जैसा कि उन्होंने तहखानों के अंदर दफन के मसले में कहा कि मिस्र के क़राफ़ह जैसे स्थानों में लहद (बग़ली क़ब्र) बनाना संभव नहीं है और कई लोगों को एक साथ दफ़न करना मजबूरी के कारण है। जहाँ तक निर्माण का सवाल है, तो इस पर मतभेद पहले ही गुज़र चुका है, और मिश्रण मजबूरी के कारण है। अतः यदि मृतकों के बीच कोई ओट (बाधा) बना दी जाए, तो कोई कराहत नहीं है। 1 | वे तहखानों के भीतर दफ़नाने के मसले में लिखते हैं: मिस्र के क़राफ़ह जैसी जगह में लहद नहीं बन पाती और मजबूरी की वजह से कई लोगों को एक साथ दफ़न करना पड़ता है। रही निर्माण की बात, तो उस बारे में मतभेद गुज़र चुका है, और मेल-मिलाप मजबूरी में है। अगर मुर्दों के बीच ओट कर दी जाए तो कोई कराहत नहीं। (त) | | :--- | :--- |

अंतिम बात यह कि महान इमाम अबू अब्दुल्लाह मुहम्मद बिन अब्दुल्लाह ग़ज़ी तमरताशी ने तनवीर अल-अबसार व जामे अल-बिहार में, फिर अल्लामा मुहक़्क़िक़ अलाउद्दीन मुहम्मद दमिश्क़ी ने शरह तनवीर में, फिर फ़ाज़िल जलील सय्यदी अहमद मिस्री ने हाशियह मराक़ी में स्पष्ट रूप से बयान और प्रमाणित किया है कि अनुमति का कथन ही पसंदीदा और फ़तवे के योग्य है। | और यह अल्लामा ग़ज़ी के शब्द हैं: इस पर कोई इमारत न उठाई जाए, और कहा गया कि इसमें कोई हर्ज नहीं है और यही पसंदीदा है। 2 अह | यह अल्लामा ग़ज़ी की इबारत है: इस पर कोई ऊँची इमारत न बनाई जाए, और कहा गया कि इसमें कोई हर्ज नहीं, और यही मुख़्तार है। अह (त) | | :--- | :--- |

स्पष्ट फ़तवे और प्राथमिकता के बाद, अब बहस की क्या गुंजाइश है? | इस विषय की तहक़ीक़ इसी प्रकार बादशाह मोहसिन और सर्वज्ञ (अल्लाह) की कृपा से होनी चाहिए। और इसी से प्रतिष्ठित विद्वानों के वचनों के बीच तालमेल प्राप्त होता है। और अल्लाह सुब्हानहू व तआला बेहतर जानता है और उसका ज्ञान महान और पूर्ण है। और उसका फैसला। | इस मुक़ाम की तहक़ीक़ इसी तरह होनी चाहिए बादशाह मोहसिन अल्लाम की तौफ़ीक़ से। और इसी से उलमा-ए-एलाम के कलमात में सामंजस्य भी हो जाता है। और अल्लाह पाक व बरतर खूब जानने वाला है और उसका ज्ञान ज़्यादा कमाल और मज़बूती वाला है। (त) | | :--- | :--- |

मसला 128 से 129: ग्राम पिंडोल बुज़ुर्ग, डाकखाना रायपुर, ज़िला मुज़फ़्फ़रपुर से, नेअमत अली साहब द्वारा भेजा गया, 14 रबीउल अव्वल शरीफ़ 1337 हिजरी। धर्म के विद्वान इन विषयों में क्या

फ़रमाते हैं: (1) बुज़ुर्गों के मज़ार पर फ़ातिहा, क़ुरआन पढ़ने और खड़े होकर वसीला चाहने के लिए इमारत बना देना और उर्स।

1 हाशियह अत-तहतावी अली मराक़ी अल-फ़लाह, मय्यत को ले जाने और दफनाने का अध्याय, नूर मुहम्मद कारखाना तिजारत कुतुब कराची, पृष्ठ 336 2 दुर्रे मुख्तार शरह तनवीर अल-अबसार, जनाजे की नमाज़ का अध्याय, मुजतबाई प्रेस दिल्ली, 1/125 पृष्ठ 420/948

فتاوٰی رضویہ جلد نہم

علامہ سید طحطاوی نے حاشیہ مراقی الفلاح میں صریحاً فرمایا کہ اس میں کچھ کراہت بھی نہیں۔ | حیث قال فی مسألة الدفن فی الفساق ان فی نحو قرافة مصر لایتأتی للحد ودفن الجماعة لتحقق الضرورة واما البناء فقد مر تقدم الاختلاف فیہ ، ومام الاختلاط فللضرورة، فاذا فعل الحاجز بین الاموات فلا کراھة 1۔ | تہ خانوں کے اندر تدفین کے مسئلہ میں لکھتے ہیں: قرافہ مصر جیسی جگہ میں لحد نہیں بن پاتی اور کئی ایک آدمیوں کو ایک ساتھ دفن کرنا مجبوری کی وجہ سے ہے۔ رہی تعمیر تو اس بارے میں اختلاف گزر چکا ہے، اور اختلاط تو مجبوراً ہے۔ اگر مُردوں کے درمیان آڑ کردی جائے تو کوئی کراہت نہیں -(ت) | | :--- | :--- |

نہایت یہ کہ امام اجل ابو عبداللہ محمد بن عبداللہ غزی تمرتاشی نے تنویر الابصار و جامع البحار پھر علامہ محقق علاء الدین محمد دمشقی نے شرح تنویر پھر فاضل جلیل سیدی احمد مصری نے حاشیہ مراقی میں تصریح و تقریر فرمائی کہ قولِ جواز ہی مختار و مفتی بہ ہے۔ | وھذا اللفظ العلامة الغزی لایرفع علیہ بناء، وقیل لاباس بہ وھو المختار 2اہـ | یہ علامہ غزی کی عبارت ہے: اس پر کوئی عمارت بلند نہ کی جائے اور کہا گیا کہ اس میں کوئی حرج نہیں، اور یہی مختار ہے اہـ (ت) | | :--- | :--- |

بعد تصریح صریح افتاء و ترجیح، مجال کلام کیا ہے، | ھذا ینبغی تحقیق المقام بتوفیق الملك المنعم العلام وبہ یحصل التوفیق بین کلمات الاعلام واللہ سبحانہ وتعالی اعلم وعلمہ جل مجدہ اتم واحکم۔ | اس مقام کی تحقیق اسی طرح ہونی چاہئے بادشاہ محسن علام کی توفیق سے۔ اور اسی سے علمائے اعلام کے کلمات میں تطبیق بھی ہو جاتی ہے۔ اور خدائے پاک و برتر خوب جاننے والا ہے اور اس کا علم زیادہ کمال و استحکام والا ہے (ت) | | :--- | :--- |

مسئلہ ۱۲۸ تا ۱۲۹: از پنڈول بزرگ، ڈاکخانہ رائے پور ضلع مظفر پور مرسلہ نعمت علی صاحب ۱۴ ربیع الاول شریف ۱۳۳۷ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین ان مسائل میں: (۱) بزرگوں کے مزار پر فاتحہ، قرآن پڑھنے اور کھڑے ہو کر وسیلہ چاہنے کے لیے بنا دے اور عُرس

1 حاشیۃ الطحطاوی علی مراقی الفلاح فصل فی حمل المیت ودفنہ نور محمد کارخانہ تجارت کتب کراچی ص ۳۳۶ 2 در مختار شرح تنویر الابصار باب صلوۃ الجنائز مطبع مجتبائی دہلی ۱ / ۱۲۵

Fatawa Rizwia Volume 9

Is it permissible to rent out rooms or not? (2) There are graves in front of the tomb of a saint, and for the sake of expanding the space, is it permissible to place a shed-like structure supported by pillars or a thatched roof over those surrounding graves, attached to the tomb dome, or not?

Answer: (1) It is permissible as stated in Majma' Bihar al-Anwar. (Yes, it is necessary to avoid religiously forbidden acts like musical instruments, etc. - T) (2) It is not permissible to build any pillar on a grave. And Allah Almighty knows best.

Issue 130: From Mauza Shar Shadi, Post Office Rafiq, District Noakhali, sent by Syed Hamiduddin Sahib, 9 Sha'ban 1338 AH. What is the verdict of our scholars, may Allah Almighty have mercy on them? (T) A very famous and well-known saint passed away; his heir built a thatched roof over it with the intention that visitors can comfortably recite the Holy Quran in summer and winter to convey reward, and so that the mark of this saint's grave remains so people can benefit from it. In this, neither is a lamp lit, nor is a canopy spread, nor is anyone allowed grave-worship or foot-kissing; the actual grave and adjacent ground are unpaved.

The Answer: In the aforementioned case, it is undoubtedly permissible, and the builder is entitled to reward for his good intention. And in it, lamps should also be lit for the visitors and those reciting; this is not a lamp on the grave. It is in Majma' Bihar al-Anwar, Volume III: [Arabic Text]: "Qad abahal Salaf al-bina' 'ala qubur al-fudala' al-awliya' wal-'ulama' liyazurahum un-nasu wa yastarihuna fih." (The predecessors allowed building over the graves of virtuous people, saints, and scholars so that people may visit them and find comfort therein. - T) And Allah Almighty knows best.

Issue 131: From Bijnor, sent by Sheikh Moinuddin Sahib, Master Patwari School District Bijnor, 21 Jumada al-Ukhra 1323 AH. What do the scholars of religion say in this matter, that Zaid, considering the softness of the ground and preservation of the body, built a solid (masonry) grave for his spiritual guide (Pir-e-Tariqat) and on the annual death anniversary of the Sheikh, has the Holy Quran, Durood, and Kalima recited and conveys the reward to the blessed soul of the mentioned Sheikh, and sits at the Sheikh's grave hoping for spiritual grace and the resolution of problems, and seeks help through his mediation, then is this...

---

1 Takmila Majma' Bihar al-Anwar, under the word "Qabr", Munshi Naval Kishore Lucknow, 13 / 140

फ़तावा रिज़विया जिल्द नवीं

कमरे किराए पर देना जायज़ है या नहीं? (२) किसी बुज़ुर्ग के रौज़े के सामने क़ब्रें हैं और जगह की वस्त (विस्तार) के लिए उस गुंबद से लगाकर उसके आस-पास की क़ब्र पर सायबान की तरह खंभा या छप्पर डालना जायज़ है या नहीं?

अल-जवाब: (१) जायज़ है जैसा कि मजमा' बिहारुल अनवार में है। (हाँ, मुनकिरात-ए-शरिया जैसे बाजे-गाजे आदि से बचना लाज़िम है। - त) (२) किसी क़ब्र पर कोई पाया (खंभा) चुनना जायज़ नहीं। वल्लाहु तआला आलम।

मसला १३०: मौज़ा शर शादी, डाकख़ाना रफ़ीक़, ज़िला नोआख़ाली, मुरसला सैय्यद हमीदुद्दीन साहब, ९ शाबान १३३८ हिजरी। हमारे उलेमा रहिमहुमुल्लाहु तआला का क्या इरशाद है? (त) एक बहुत ही मशहूर और मारूफ़ बुज़ुर्ग का इंतकाल हुआ, उनके वारिस ने इस नीयत से उस पर घास की छत बनवा दी है कि ज़ायरीन (दर्शनार्थी) इत्मीनान के साथ गर्मी और सर्दी में क़ुरान मजीद पढ़ कर ईसाल-ए-सवाब कर सकें और उस बुज़ुर्ग की क़ब्र का निशान बाक़ी रहे ताकि लोग उससे फ़ैज़ हासिल कर सकें। इसमें न चिराग जलाया जाता है, न चाँदनी तानी गई है और न ही किसी को क़ब्र-परस्ती या क़दमबोसी की इजाज़त है, असल क़ब्र और पास की ज़मीन कच्ची है।

अल-जवाब: मज़कूरा सूरत में वह बेशक जायज़ है, और बनवाने वाला अपनी नेक नीयत पर सवाब का मुस्तहिक़ है, और इसमें ज़ायरों और तिलावत करने वालों के लिए चिराग भी रौशन करें, यह क़ब्र पर चिराग नहीं है। मजमा' बिहारुल अनवार जिल्द तीसरी में है: [अरबी]: "क़द अबाहुस सलफ़ अल-बिना अला क़ुबूरुल फ़ुज़ला अल-औलिया वल उलेमा लियज़ूरहुमुन्नासु व यस्तरीहूना फ़ीह।" (पूर्वजों ने नेक लोगों, औलिया और उलेमा की क़ब्रों पर इमारत बनाना मुबाह (जायज़) क़रार दिया है ताकि लोग उनकी ज़ियारत करें और उसमें आराम लें। - त) वल्लाहु तआला आलम।

मसला १३१: बिजनौर से, मुरसला शेख़ मोईनुद्दीन साहब, मास्टर पटवारी स्कूल ज़िला बिजनौर, २१ जमादी-उल-उख़रा १३२३ हिजरी। क्या फ़रमाते हैं उलेमा-ए-दीन इस मसले में कि ज़ैद ने ज़मीन की नरमी और लाश की हिफ़ाज़त के लिहाज़ से अपने पीर-ए-तरीक़त की क़ब्र को पुख़्ता बनवाया और शेख़ की सालाना बरसी पर क़ुरान शरीफ़, दरूद और कलमा पढ़वा कर शेख़ की रूह को सवाब पहुँचाता है और फ़ैज़ की उम्मीद और मुश्किलों के हल के लिए शेख़ की क़ब्र पर जाकर बैठता है और उनके वसीले से मदद मांगता है, तो क्या यह...

१ तक़मिला मजमा' बिहारुल अनवार, लफ़्ज़ 'क़ब्र' के तहत, मुंशी नवल किशोर लखनऊ, १३ / १४०

पेज ४२१/९४८

فتاوٰی رضویہ جلد نہم

کمرے کرائے تو جائز ہے یا نہیں؟ (۲) کسی بزرگ کے روضے کے سامنے قبریں ہیں اور وسعت جگہ کے لئے اس قبہ سے لگا کر اس گرد کی قبر پر مثل سائبان کے پایہ زینہ دیگر چھپر ڈالنا جائز ہے یا نہیں؟

الجواب: (۱) جائز ہے کمافی مجمع بحار الانوار (جیسا کہ مجمع بحار الانوار میں ہے۔ ت) ہاں منکرات شرعیہ مثل وزمامیر سے بچنا لازم ہے۔ (۲) کسی قبر پر کوئی پایہ چننا جائز نہیں۔ واللہ تعالٰی اعلم

مسئلہ ۱۳۰: از موضع شر شدی، ڈاکخانہ رفیق، ضلع نواکھالی، مرسلہ سید حمید الدین صاحب ۹ شعبان ۱۳۳۸ھ ما قول علماءنا رحمہم اللہ تعالٰی (ہمارے علماء رحمہم اللہ تعالٰی کا کیا ارشاد ہے۔ ت) ایک نہایت مشہور و معروف بزرگ کا انتقال ہوا اس کے وارث نے بایں نیت اس پر گھاس کی چھت بنوادی ہے کہ زائرین اطمینان کے ساتھ صیف وشتا میں قرآن مجید پڑھ کر ثواب رسانی کر سکیں اور اس بزرگ کی قبر کا نشان باقی رہے تاکہ لوگ اس سے فیض حاصل کر سکیں، اس میں نہ چراغ جلایا جاتا ہے، نہ چاندنی تانی گئی ہے نہ کسی کو قبر پرستی اور نہ قدمبوسی کی اجازت ہے، اصل قبر و متصل زمین خام ہے۔

الجواب: صورت مذکورہ میں وہ بلاشبہ جائز ہے، اور بنوانے والا اپنی نیک نیتی پر ثواب کا مستحق ہے، اور اس میں زائروں اور تلاوت کرنے والوں کے لئے چراغ بھی روشن کریں، یہ قبر پر چراغ نہیں، مجمع بحار الانوار جلد ثالث میں ہے: قد اباح السلف البناء علی قبور الفضلاء الاولیاء

والعلماء لیزورھم الناس ویستریحون فیه ۱ ۔ سلف نے اہل فضل اولیاء و علماء کی قبروں پر عمارت بنانا مباح قرار دیا ہے تاکہ لوگ ان کی زیارت کریں اور اس میں آرام لیں۔ (ت) واللہ تعالیٰ اعلم

مسئلہ ۱۳۱: از بجنور مرسلہ شیخ معین الدین صاحب ماسٹر پٹواری اسکول ضلع بجنور ۲۱ جمادی الاخری ۱۳۲۳ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ زید نے بلحاظ نرمی زمین وحفظ نعش اپنے پیر طریقت کی قبر کو پختہ بنوایا اور سالانہ تاریخ وفات شیخ پر قرآن شریف اور درود و کلمہ پڑھوا کر شیخ مذکور کی روح پر فتوح کو ایصال ثواب کرتا ہے اور بامید فیضان وحل مشکلات شیخ کی قبر پر جاکر بیٹھتا ہے اور وساطتًا اس سے استمداد کرتا ہے تو یہ

---

۱ تکملہ مجمع بحار الانوار تحت لفظ "قبر" منشی نولکشور لکھنؤ ۱۳ / ۱۴۰

Fatawa Rizvia Volume 9

[Arabic]: At-Tumurtashi [said]: This is if it is around the deceased. If it is above them, it is not disliked (Makruh) because it serves as protection against wild animals. The scholars of Bukhara said: Baked bricks are not disliked in our city due to necessity because of the weakness of the soil. (T) [Urdu]: And Imam Tumurtashi said: This applies when it is around the deceased. If it is above them, it is not disliked because it serves as a means of protection from wild animals. The scholars of Bukhara said that in our region, baked bricks are not disliked because their use is necessary due to the weakness of the soil. (T)

It is mentioned in Khania, Khulasa, and Hindia: [Arabic]: Baked bricks are disliked in the niche (Lahd) when they are adjacent to the deceased. As for what is beyond that, there is no harm in it. Sunbaked bricks and reeds are recommended. (T) [Urdu]: Baked bricks are disliked in the niche when they are adjacent to the deceased. Besides that, there is no harm, and sunbaked bricks and bamboo are recommended. (T)

It is mentioned in Hasami, then Imdad al-Fattah, then Tahtawi on Maraqi al-Falah: [Arabic]: Ismail al-Zahid explicitly mentioned [placing] baked bricks behind sunbaked ones in the niche and bequeathed it. (T) [Urdu]: Ismail Zahid explicitly mentioned placing baked bricks behind sunbaked ones in the niche and made a will to that effect. (T)

It is mentioned in Manafi' and Mabsut, then Ghuniya: [Arabic]: They chose the trench (Shaqq) in our lands because of the softness of the soil, making the niche difficult. Thus, they permitted baked bricks, wooden planks, and coffins, even if made of iron. (T) [Urdu]: In our regions, the trench (Shaqq) has been chosen because the ground is soft, making a niche difficult. Therefore, scholars have permitted baked bricks, wooden boxes, and coffins, even if they are made of iron. (T)

It is mentioned in Bahr al-Ra'iq: [Arabic]: Imam Sarakhsi restricted it by saying that moisture and softness should not be dominant in the land. If it is... [Urdu]: Imam Sarakhsi restricted this ruling by stating that moisture and softness should not be dominant on the land. If it is so, then baked bricks...

---

1. Radd al-Muhtar, Chapter on Funerals, Dar Ihya al-Turath al-Arabi, Beirut, 1/600
2. Fatawa Qazi Khan, Book of Prayer, Munshi Nawal Kishore, Lucknow, 1/92

3. Al-Tahtawi on Maraqi al-Falah, Section on Carrying and Burying them, Noor Muhammad Karkhana Tijarat Kutub, Karachi, p. 335
4. Ghunyat al-Mustamli Sharh Munyat al-Musalli, Section on Funerals, Suhail Academy, Lahore, p. 595

फ़तावा रिज़विया खंड 9

[अरबी]: अत-तुमुरताशी [ने कहा]: यह तब है जब यह मय्यत के चारों ओर हो। और अगर यह उसके ऊपर हो, तो यह मकरूह (नापसंद) नहीं है क्योंकि यह जंगली जानवरों से सुरक्षा का ज़रिया होगा। बुख़ारा के विद्वानों ने फ़रमाया: हमारे शहरों में पक्की ईंटें मकरूह नहीं हैं क्योंकि ज़मीन कमज़ोर होने के कारण इसकी ज़रूरत है। (त) [उर्दू]: और इमाम तुमुरताशी ने फ़रमाया: यह तब है जब मय्यत के चारों ओर हो, और अगर इसके ऊपर हो तो मकरूह नहीं है क्योंकि यह दरिंदों से हिफ़ाज़त का ज़रिया होगा, मशायख़-ए-बुख़ारा ने फ़रमाया कि हमारे दयार में पक्की ईंटें मकरूह नहीं हैं क्योंकि ज़मीन कमज़ोर होने की वजह से इसकी ज़रूरत है। (त)

ख़ानिया, ख़ुलासा और हिंदिया में है: [अरबी]: लहद में पक्की ईंट मकरूह है जब वह मय्यत के पास हो। इसके अलावा इसमें कोई हर्ज नहीं है। कच्ची ईंट और बाँस मुस्तहब (पसंदीदा) है। (त) [उर्दू]: लहद में पक्की ईंट मकरूह है जबकि मय्यत से मुत्तसिल (जुड़ी) हो इसके अलावा में कोई हर्ज नहीं, और मुस्तहब कच्ची ईंट और बाँस है। (त)

हसामी, फिर इमदाद अल-फ़त्ताह, फिर तहतावी अली मराक़ी अल-फ़लाह में है: [अरबी]: इस्माइल ज़ाहिद ने लहद पर कच्ची ईंट के पीछे पक्की ईंट लगाने की स्पष्ट बात कही और इसकी वसीयत की। (त) [उर्दू]: इस्माईल ज़ाहिद ने लहद पर कच्ची ईंट के पीछे पक्की ईंट लगाने की सराहत फ़रमाई और इसकी वसीयत की (त)

मनाफ़े और मबसूत फिर ग़ुनिया में है: [अरबी]: उन्होंने हमारे देशों में ज़मीन की नरमी के कारण 'शक़' (खाई) को चुना, जिससे लहद (आला) बनाना मुश्किल हो गया। इसलिए उन्होंने पक्की ईंटों, लकड़ी के तख़्तों और ताबूतों की अनुमति दी, चाहे वह लोहे का ही क्यों न हो। (त) [उर्दू]: हमारे दयार में शक़ इख़्तियार की गई है इसलिए कि ज़मीन नरम है जिसमें लहद मुतअज्ज़िर (कठिन) है यहाँ तक कि उलमा ने पक्की ईंट, लकड़ी के संदूक और ताबूत की इजाज़त दी है अगरचे लोहे का हो। (त)

बहर अल-राइक़ में है: [अरबी]: इमाम सरख़सी ने इसे इस बात से बांधा है कि ज़मीन पर नमी और नरमी प्रबल न हो। यदि ऐसा हो... [उर्दू]: इमाम सरख़सी ने इस हुक्म को इस से मुक़य्यद किया है कि ज़मीन पर तरी और नरमी ग़ालिब न हो। अगर ऐसी हो तो पक्की ईंट...

---

1. रद अल-मुह्तार, बाब सलातुल जनाइज़, दार इह्या अल-तुराथ अल-अरबी, बेरुत, 1/600

2. फ़तावा क़ाज़ी ख़ान, किताबुस सलात, मुंशी नवल किशोर, लखनऊ, 1/92
3. अत-तहतावी अली मराक़ी अल-फ़लाह, फ़स्ल फ़ी हम्लिहा व दफ़्निहा, नूर मुहम्मद कारख़ाना तिज़ारत कुतुब, कराची, पृ. 335
4. ग़ुनियतुल मुस्तमली शरह मुनियतुल मुसल्ली, फ़स्ल फ़िल जनाइज़, सुहैल एकेडमी, लाहौर, पृ. 595

فتاوٰی رضویہ جلد نہم

التمرتاشی ھذا ان کان حول المیت وان کان فوقہ لایکرہ لانہ یکون عصمۃ من السبع وقال مشایخ بخارا لا یکرہ الآجر فی بلدتنا لمساس الحاجۃ لضعف الاراضی[1]۔ اور امام تمرتاشی نے فرمایا: یہ اس وقت ہے جب میت کے گرد ہو، اور اگر اس کے اوپر ہو تو مکروہ نہیں اس لیے کہ یہ درندے سے حفاظت کا ذریعہ ہوگا، مشائخ بخارا نے فرمایا کہ ہمارے دیار میں پکی اینٹیں مکروہ نہیں کیونکہ زمین کمزور ہونے کی وجہ سے اس کی ضرورت ہے۔ (ت)

خانیہ و خلاصہ و ہندیہ میں ہے: یکرہ الآجر فی اللحد اذا کان یلی المیت اما فیما وراء ذلك لایباس بہ ویستحب اللبن والقصب[2]۔ لحد میں پکی اینٹ مکروہ ہے جبکہ میت سے متصل ہو اس کے علاوہ میں کوئی حرج نہیں، اور مستحب کچی اینٹ اور بانس ہے۔ (ت)

حسامی پھر امداد الفتاح پھر طحطاوی علی مراقی الفلاح میں ہے: وقد نص اسمعیل الزاھد بالآجر خلف اللبن علی اللحد واوصیٰ بہ[3]۔ اسمعیل زاہد نے لحد پر کچی اینٹ کے پیچھے پکی اینٹ لگانے کی صراحت فرمائی اور اس کی وصیت کی (ت)

منافع و مبسوط پھر غنیہ میں ہے: اختار والشق فی دیار نالرخاوۃ الاراضی فیتعذر اللحد فیھا اجاز واالآجر ورفوف الخشب والتابوت ولو کان من حدید[4]۔ ہمارے دیار میں شق اختیار کی گئی ہے اس لیے کہ زمین نرم ہے جس میں لحد متعذر ہے یہاں تک کہ علماء نے پکی اینٹ، لکڑی کے صندوق اور تابوت کی اجازت دی ہے اگرچہ لوہے کا ہو۔ (ت)

بحر الرائق میں ہے: قیده الامام السرخسی بان لایکون الغالب علی الاراضی النز والرخاوة فان کان امام سرخسی نے اس حکم کو اس سے مقید کیا ہے کہ زمین پر تری اور نرمی غالب نہ ہو۔ اگر ایسی ہو تو پکی اینٹ

---

1 رد المحتار باب صلوة الجنائز دار احیاء التراث العربی بیروت ۱/ ۶۰۰ 2 فتاویٰ قاضی خاں کتاب الصلوة منشی نولکشور لکھنو ۱/ ۹۲ 3 الطحطاوی علی مراقی الفلاح فصل فی حملها و دفنها نور محمد کارخانہ تجارت کتب کراچی ص ۳۳۵ 4 غنیة المستملی شرح منیة المصلی فصل فی الجنائز سہیل اکیڈمی لاہور ص ۵۹۵

Fatawa-e-Razvia Volume 9

- فلا بأس بهما ك اتخاذ تابوت من حديد لهذا[1] - And there is no harm in using them (wood), just as there is no harm in using an iron coffin for this reason. (T)

Also, in Bahr and the marginalia of Abi al-Sa'ud and al-Azhari on Al-Kanz: - وقيده فى شرح المجمع بان يكون حوله اما لو كان فوقه لا يكره لانه يكون عصمة من السبع[2] - In Sharh al-Majma', this condition is set: that it (the support) should be around the deceased, but if it is above, it is not disliked (makruh) because it will provide protection from predatory animals. (T)

In Al-Kafi, then in Ghurar wa Durar: - يسوى اللبن والقصب لا الخشب والآجر وجوز فى ارض رخوة[3] - Unbaked bricks and bamboo should be used, not wood or baked bricks, though in soft soil, these are also permitted. (T)

In Sharh Niqaya by al-Barjandi: - انما يكره الآجر فى اللحد ان كان يلى الميت اما فى وراء ذلك فلا بأس به كذا فى الخلاصة وقال الامام على السغدى اتخاذ التابوت فى ديارنا افضل من تركه[4] - Baked bricks are only disliked in the grave niche (lahd) if they are in direct contact with the deceased. Otherwise, there is no harm; this is also mentioned in Al-Khulasa. Imam Ali al-Sughdi said: In our lands, using a coffin is better than omitting it. (T)

In Majma' al-Anhur: - يكره الآجر والخشب اى كره ستر اللحد بهما وبالحجارة والجص لكن لو كانت الارض رخوة جاز استعمال ما ذكر[5] - Baked bricks and wood are disliked; specifically, covering the niche with them, stones, or plaster is disliked. However, if the ground is soft, the use of all these is permissible. (T)

1. Al-Bahr al-Ra'iq, Kitab al-Jana'iz, Section: Al-Sultan Ahaq bi Salatih, HM Saeed Company Karachi 2/194
2. Fath al-Mu'in 'ala Sharh al-Kanz for Mulla Miskin, Chapter of Funerals, Section on Prayer over the Deceased, HM Saeed Company Karachi 2/194
3. Durar al-Hukkam fi Sharh Ghurar al-Ahkam, Chapter of Funerals, Matba' Ahmed Kamil al-Ka'ina, Dar Sa'adat Beirut 1/167
4. Sharh Niqaya al-Barjandi, Section on Funeral Prayer, Munshi Naval Kishore Lucknow 1/182
5. Majma' al-Anhur Sharh Multaqa al-Abhur, Section on Prayer over the Deceased, Dar Ihya al-Turath al-Arabi Beirut 1/186

फतावा-ए-रज़विया जिल्द नहुम

- فلا بأس بهما ك اتخاذ تابوت من حديد لهذا[1] - और लकड़ी लगाने में कोई हर्ज नहीं है, जैसे इसी आधार पर लोहे का ताबूत लगाने में हर्ज नहीं है। (त)

साथ ही बहर और हाशिया अबी अल-सऊद व अल-अज़हरी अलल कंज़ में है: - وقيده فى شرح المجمع بان يكون حوله اما لو كان فوقه لا يكره لانه يكون عصمة من السبع[2] - शरह मजमा में यह शर्त लगाई गई है कि यह इसके चारों ओर हो लेकिन अगर ऊपर हो तो मकरूह नहीं है क्योंकि इससे दरिंदों से हिफाजत रहेगी। (त)

काफी फिर ग़ुर्र व दुर्र में है: - يسوى اللبن والقصب لا الخشب والآجر وجوز فى ارض رخوة[3] - कच्ची ईंट और बांस लगाया जाए, लकड़ी और पक्की ईंट न हो, और नरम जमीन में इसकी भी इजाजत है। (त)

शरह नकाया बरजंदी में है: - انما يكره الآجر فى اللحد ان كان يلى الميت اما فى وراء ذلك فلا بأس به كذا فى الخلاصة وقال الامام على السغدى اتخاذ التابوت فى ديارنا افضل من تركه[4] - लहद (कब्र की ताख) में पक्की ईंट उसी सूरत में मकरूह है जब वह मैयत से सटी हुई हो, इसके अलावा इसमें कोई हर्ज नहीं है, ऐसा ही खुलासे में है। इमाम अली सुग़दी ने फरमाया: हमारे क्षेत्रों में ताबूत लगाना न लगाने से बेहतर है। (त)

मजमा अल-अनहर में है: - يكره الآجر والخشب اى كره ستر اللحد بهما وبالحجارة والجص لكن لو كانت الارض رخوة جاز استعمال ما ذكر[5] - पक्की ईंट और लकड़ी मकरूह है, केवल लहद को इनसे और पत्थरों और चूने से ढंकना मकरूह है, लेकिन अगर जमीन नरम हो तो इन सबका इस्तेमाल जायज़ है। (त)

1. अल-बहर अल-राइक़, किताब अल-जनाइज़, फ़स्ल: अल-सुल्तान अक़ बि सलातिह, एचएम सईद कंपनी कराची 2/194
2. फ़तह अल-मुईन अला शरह अल-कंज़ मुल्ला मिस्कीन, बाब अल-जनाइज़, फ़स्ल फ़ी अल-सलात अलल मय्यित, एचएम सईद कंपनी कराची 2/194
3. दुरर अल-हुक्काम फ़ी शरह ग़ुरर अल-अहकाम, बाब अल-जनाइज़, मतबा अहमद कामिल अल-काइना, दार सआदत बैरूत 1/167

4. शरह नकाया बरजंदी, फ़स्ल फ़ी सलात अल-जनाइज़, मुंशी नवल किशोर लखनऊ 1/182
5. मजमा अल-अनहर शरह मुल्तक़ा अल-अब्हुर, फ़स्ल फ़ी अल-सलात अल-मय्यित, दार इहया अल-तुरास अल-अरबी बैरूत 1/186

فتاوٰی رضویہ جلد نہم

• فلا بأس بهما ك اتخاذ تابوت من حديد لهذا[1] - اور لکڑی لگانے میں کوئی حرج نہیں ، جیسے اس بناء پر لوہے کا تابوت لگانے میں حرج نہیں ۔ (ت)

نیز بحر و حاشیہ ابی السعود والازہری علی الکنز میں ہے : - وقیدہ فی شرح المجمع بان یکون حولہ اما لو کان فوقہ لا یکرہ لانہ یکون عصمۃ من السبع[2] - شرح مجمع میں یہ قید لگائی ہے کہ اس کے گرد ہو لیکن اگر اوپر ہو تو مکروہ نہیں اس لیے کہ اس سے درندوں سے حفاظت رہے گی ۔(ت)

کافی پھر غرر و درر میں ہے : - یسوی اللبن والقصب لا الخشب والآجر وجوز فی ارض رخوۃ[3] - کچی اینٹ اور بانس چنا جائے ، لکڑی اور پکی اینٹ نہ ہو ، اور نرم زمین میں اس کی بھی اجازت ہے ۔ (ت)

شرح نقایہ بر جندی میں ہے : - انما یکرہ الآجر فی اللحد ان کان یلی المیت اما فی وراء ذلك فلا بأس بہ کذا فی الخلاصۃ وقال الامام علی السغدی اتخاذ التابوت فی دیارنا افضل من ترکہ[4] - لحد میں پکی اینٹ اسی صورت میں مکروہ ہے کہ میت سے متصل ہو ، اس کے علاوہ میں کوئی حرج نہیں ، ایسا ہی خلاصہ میں ہے۔ امام علی سغدی نے فرمایا : ہمارے دیار میں تابوت لگانا نہ لگانے سے بہتر ہے ۔ (ت)

مجمع الانہر میں ہے : - یکرہ الآجر والخشب ای کرہ ستر اللحد بهما وبالحجارۃ والجص لکن لو کانت الارض رخوۃ جاز استعمال ما ذکر[5] - پکی اینٹ اور لکڑی مکروہ ہے صرف لحد کو ان سے اور

پتھروں سے اور گچ سے چھپانا مکروہ ہے لیکن اگر زمین نرم ہو تو ان سب کا استعمال جائز ہے ۔ (ت)

1. بحر الرائق کتاب الجنائز فصل السلطان احق بصلوتہ ایچ ایم سعید کمپنی کراچی ۲/ ۱۹۴
2. فتح المعین علی شرح الکنز لملا مسکین باب الجنائز فصل فی الصلوۃ علی المیت ایچ ایم سعید کمپنی کراچی ۲/ ۱۹۴
3. درر الحکام فی شرح غرر الاحکام باب الجنائز مطبعہ احمد کامل الکائنہ دار سعادت بیروت ۱/ ۱۶۷
4. شرح نقایہ بر جندی فصل فی صلوۃ الجنائز منشی نولکشور لکھنؤ ۱/ ۱۸۲
5. مجمع الانہر شرح ملتقی الابحر فصل فی الصلوۃ المیت دار احیاء التراث العربی بیروت ۱/ ۱۸۶

Volume 9 Fatawa Razawiya

It is in Kashf al-Ghita:

[Persian text: Al-an dar diyar ma niz basabab-e-rakhavat-e-zamin hamin muta'arif ast hatta ki tajwiz karda-and mashaikh dar amthal-e-in diyar ba-in illat khisht-e-pukhta va chob va giriftan-e-tabut ra ki az ahan bashad.] | Now in our lands also, because of the looseness of the earth, this same practice is common, to the extent that the scholars in such lands have, for this reason, declared it permissible to use baked bricks, wood, and iron coffins. (T)

In the same [book]:

[Persian text: Dar Tajnis gufta rukhsat dada ast, Imam Isma'il Zahid ki gardanida shavand khisht-haye pukhta khalf-e-khishtaye kham ba lahad va tahqiq wasiyyat karda bud ba-vey va mashaikh-e-Bukhara gufta-and dar zamin-e-ma khisht-e-pukhta agar binihand makruh nabashad az baraye narmi-e-zamin pas ba-har ja ki zamin narm bashad bak nist binhadan-e-khisht-e-pukhta va manand-e-an az chob.] | In Tajnees it is mentioned that Imam Ismail Zahid gave permission for baked bricks to be placed behind raw bricks in the grave-alcove (lahad), and he also willed for it. The scholars of Bukhara said that if baked bricks are used in our land, it would not be disliked because the soil is soft. So, wherever the soil is soft, there is no harm in using baked bricks or wooden planks. (T)

From these corroborating texts, it became clear that Zaid's action for the aforementioned purpose is absolutely not liable to any accountability, and I say (T) even if we were to assume it is disliked (karahat), the issue, especially after such clear statements by a large group of Imams, can by no means reach the level of sinfulness (tafseeq) such that following him in prayer is called disliked, let alone impermissible. This is mere profound ignorance and intense prejudice. Furthermore, it has become clear from the preceding texts that baked bricks and wood follow the same rule. The original Sunnah is to cover with raw bricks and reeds. Even the objectors are commonly using wooden planks in these cities. Why do they not say it is impermissible to pray behind themselves and their Maulvis? But being authoritative is the old custom of these gentlemen. And there is no power nor strength except with Allah, the Most High, the Most Great. And Allah, Glory be to Him, knows best, and His knowledge is most majestic, most complete, and most perfect.

Problem 132: From High School Najibabad, District Bijnor, through Hamid Hasan Khan, 9th grade student, asked by Allah Rakha Mistri, 21 Muharram 1339 AH. What do the scholars of religion say regarding this matter: is it better to make the grave solid/brick-lined or not? If making it solid is better, then…

1. Kashf al-Ghita
2. Kashf al-Ghita, 53

जिल्द नौ (9) फ़तावा रज़विया

कश्फ़ुल ग़िता में है:

[Persian text] | अब हमारे दियार में भी ज़मीन के ढीलेपन की वजह से यही मुतारिफ़ है यहाँ तक कि मशाईख़ ने इस तरह के दियार में, इसी इल्लत की वजह से पक्की ईंट और लकड़ी और आहनी ताबूत लगाने को जाइज़ कहा है। (त)

इसी में है:

[Persian text] | तजनीस में है कि इमाम इस्माईल ज़ाहिद ने इसकी रुख़सत दी है कि लहद में कच्ची ईंटों के पीछे पक्की ईंटें लगाई जाएँ और इसकी वसियत भी फ़रमाई थी, मशाईख़ बुख़ारा ने फ़रमाया है कि अगर हमारी ज़मीन में पक्की ईंट लगाएँ तो मकरूह न होगा इस लिए कि ज़मीन नर्म है तो जहाँ भी ज़मीन नर्म हो, पक्की ईंट और इसी तरह लकड़ी के तख़्ते लगाने में कोई हर्ज नहीं। (त)

इन इबारात-ए-मुतज़ाफ़िरा से वाज़ेह हुआ कि फ़ेल-ए-ज़ैद ब-ग़रज़-ए-मज़कूर हरगिज़ हरगिज़ किसी तरह क़ाबिल-ए-मुआख़ाज़ा नहीं और मैं कहता हूँ। (त) बिल-फ़र्ज़ कराहत ही मानते तो मसअला खुसूसन ऐसी तसरीहात-ए-जमात-ए-कसीरा आइम्मा के बाद ज़ैनहार हद-ए-तफ़सीक़ तक भी नहीं पहुँच सकता कि उसकी इक्तिदा को मकरूह ही कहा जाए न कि अदम-ए-जवाज़, ये महज़ जहल-ए-बईद व तास्सुब-ए-शदीद है, मा-हाज़ा नुसूस-ए-साबिक़ा से वाज़ेह हुआ कि पक्की ईंट और लकड़ी का एक हुक्म है। असल सुन्नत कच्ची ईंट और ज़र्कल से छुपाना है, लकड़ी के तख़्ते उड़ाना आम तौर पर इन बिलाद में, हज़रात-ए-मुतरिज़ीन भी इस्तेमाल कर रहे हैं, अपने और मौलवियों के पीछे नमाज़ ना-जाइज़ क्यों नहीं कहते, मगर तहक्कुम इन साहबों का अदब-ए-क़दीम है, व ला हौला व ला क़ुव्वता इल्ला बिल्लाहिल अलीयिल अज़ीम, वल्लाह सुब्हानहु व तआला आलम व इल्मुहु जल्ला मजदहु व अत्तमु व अहकम।

मसअला 132: अज़ हाई स्कूल नजीबाबाद ज़िला बिजनौर, मारिफ़त हमीद हसन ख़ाँ तालिब-ए-इल्म दर्जा नुहुम मसूला अल्लाह रक्खा मिस्तरी 21 मुहर्रम 1339 हि.। क्या फ़रमाते हैं उलेमा-ए-दीन इस मसअले में कि क़ब्र का पुख़्ता कराना बेहतर है या न कराना? अगर पुख़्ता बनाना बेहतर है तो...

1. कश्फ़ुल ग़िता
2. कश्फ़ुल ग़िता, 53

جلد نہم فتاویٰ رضویہ

کشف الغطاء میں ہے :

الآن در دیار ما نیز بسبب رخاوت زمین ہمین متعارف است حتی کہ تجویز کردہ اند مشائخ در امثال این دیار بایں علت خشت پختہ و چوب و گرفتن تابوت را کہ از آہن باشد 1۔ | اب ہمارے دیار میں بھی زمین کے ڈھیلے پن کی وجہ سے یہی متعارف ہے یہاں تک کہ مشائخ نے اس طرح کے دیار میں، اسی علت کی وجہ سے پکی اینٹ اور لکڑی اور آہنی تابوت لگانے کو جائز کہا ہے۔ (ت)

اسی میں ہے :

در تجنیس گفتہ رخصت دادہ است، امام اسمعیل زاہد کہ گردانیدہ شوند خشت ہائے پختہ خلف خشتائے خام بہ لحد و تحقیق وصیت کردہ بود بوے ومشائخ بخارا گفتہ اند در زمین ماخشت پختہ اگر بنہند مکروہ نباشد از برائے نرمی زمین پس بہر جاکہ زمین نرم باشد باک نیست بنہادن خشت پختہ و مانند آں از چوب 2۔ | تجنیس میں ہے کہ امام اسمعیل زاہد نے اس کی رخصت دی ہے کہ لحد میں کچی اینٹوں کے پیچھے پکی اینٹیں لگائی جائیں، اور اس کی وصیت بھی فرمائی تھی، مشائخ بخارا نے فرمایا ہے کہ اگر ہماری زمین میں پکی اینٹ لگائیں تو مکروہ نہ ہوگا اس لیے کہ زمین نرم ہے تو جہاں بھی زمین نرم ہو، پکی اینٹ اور اسی طرح لکڑی کے تختے لگانے میں کوئی حرج نہیں۔ (ت)

ان عبارات متظافرہ سے واضح ہوا کہ فعلِ زید بغرضِ مذکور ہرگز ہرگز کسی طرح قابلِ مواخذہ نہیں اور میں کہتا ہوں ۔ ت) بالفرض کراہت ہی مانتے تو مسئلہ خصوصاً ایسے تصریحاتِ جماعتِ کثیرہ ائمہ کے بعد زینہار حدِ تفسیق تک بھی نہیں پہنچ سکتا کہ اس کی اقتداء کو مکروہ ہی کہا

جائے نہ کہ عدمِ جواز، یہ محض جہلِ بعید و تعصبِ شدید ہے، معہٰذا نصوصِ سابقہ سے واضح ہوا کہ پکی اینٹ اور لکڑی کا ایک حکم ہے۔ اصل سنت کچی اینٹ اور زرکل سے چھپانا ہے، لکڑی کے تختے اڑانے عام طور پر ان بلاد میں، حضراتِ معترضین بھی استعمال کر رہے ہیں، اپنے اور مولویوں کے پیچھے نماز ناجائز کیوں نہیں کہتے، مگر تحکم ان صاحبوں کا ادبِ قدیم ہے، ولا حول ولا قوۃ إلا باللہ العلی العظیم، واللہ سبحانہ وتعالی اعلم وعلمہ جل مجدہ واتم واحکم۔

مسئلہ ۱۳۲: از ہائی سکول نجیب آباد ضلع بجنور، معرفت حمید حسن خاں طالب علم درجہ نہم مسئولہ اللہ رکھا مستری ۲۱ محرم ۱۳۳۹ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ قبر کا پختہ کرانا بہتر ہے یا نہ کرانا؟ اگر پختہ بنانا بہتر ہے تو

1 کشف الغطاء 2 کشف الغطاء ۵۳

Fatawa-e-Razvia Volume 9

What special and necessary things should be considered in its construction, for example, length, width, height, and shape etc.? Explain and you will be rewarded.

The Answer: It is better not to make the grave solid (with bricks/mortar), and if it is done, the inside should remain raw (soil), the top can be made solid. The length and width should be according to the grave of the deceased, and the height should not exceed one span (balisht), and a sloped shape is better. Allah Almighty knows best.

Problem 133 to 134: From Bhesoli, Bareilly district, sent by Syed Safdar Ali Sahab, 6 Sha'ban-ul-Mu'azzam 1337 AH. What do the scholars of religion say regarding these matters: (1) Is it permissible or not to make a symbolic (farzi) shrine (Mazar Sharif) of any saint (Wali of Allah), put a cloth (chadar) on it, recite Fatiha over it, and show it the same respect as an actual shrine? And if a spiritual guide (Murshid) gives permission in a dream to his disciples to build his shrine according to his will, would that statement be acceptable or not? (2) If the funeral procession of a deceased is taken towards the West for burial, how should it be carried? Should the head be towards the West or towards the East?

The Answer: (1) Making a symbolic shrine and treating it like an actual one is impermissible and an innovation (bid'ah), and matters in dreams that contradict Shari'ah cannot be entertained. (2) Whichever direction the deceased is being taken, the head should always be in the front. It is in Alamgiri:

"In the state of walking with the funeral, the head is kept in front." This is how it is in 'Mudmarat'.[1] And Allah Almighty knows best.	While carrying the funeral, the head will be kept in front. Similarly it is in Mudmarat. (Translator) And Allah Almighty knows best.

1. Fatawa Hindiyyah, Fourth Chapter on Carrying the Funeral, Noorani Kutub Khana Peshawar 1/ 162

फतावा-ए-रज़विया जिल्द नहुम (खंड 9)

इसके निर्माण में किन खास और ज़रूरी बातों का लिहाज़ रखना चाहिए, जैसे लंबाई, चौड़ाई, ऊंचाई और आकार आदि। बयान फरमाएं और सवाब पाएं।

उत्तर: कब्र को पक्का न करना बेहतर है, और अगर करें तो अंदर से कच्चा रहे, ऊपर से पक्का कर सकते हैं। लंबाई और चौड़ाई मृतक की कब्र के अनुसार हो, और ऊंचाई एक बालिश्त (हाथ की हथेली की लंबाई) से ज़्यादा न हो, और ढलवा आकार बेहतर है। अल्लाह तआला बेहतर जानता है।

मसला 133 से 134: भसोली ज़िला बरेली से, प्रेषक सैय्यद सफदर अली साहब, 6 शाबान-उल-मुअज़्ज़म 1337 हिजरी। उलमा-ए-दीन इन मसलों के बारे में क्या फरमाते हैं: (1) किसी वलीउल्लाह का फर्ज़ी (प्रतीकात्मक) मज़ार शरीफ़ बनाना और उस पर चादर वगैरह चढ़ाना, और उस पर फातिहा पढ़ना और असली मज़ार जैसा अदब व लिहाज़ करना जायज़ है या नहीं? और अगर कोई मुर्शिद अपने मुरीदों को अपने मनचाहे मज़ार बनाने की ख्वाब में इजाज़त दे, तो क्या वह बात मानी जाएगी या नहीं? (2) अगर मैय्यत (मृतक) का जनाज़ा दफन के लिए पश्चिम की दिशा में ले जाएं तो किस तरह ले जाना चाहिए? सर पश्चिम की ओर हो या पूर्व की ओर?

उत्तर: (1) फर्ज़ी मज़ार बनाना और उसके साथ असली जैसा मामला करना नाजायज़ और बिदअत (नवाचार) है, और शरीयत के खिलाफ मामलों में ख्वाब की बात नहीं सुनी जा सकती। (2) मैय्यत को किसी भी तरफ ले जाना हो, हर हाल में सर आगे की तरफ रहे। आलमगीरी में है:

जनाज़ा ले जाने की स्थिति में सिर आगे रखा जाएगा। ऐसा ही 'मुज़मरात'[1] में है। और अल्लाह तआला बेहतर जानता है।	जनाज़ा ले जाने में सिर आगे रखा जाएगा। ऐसा ही मुज़मरात में है। (अनुवादक) और अल्लाह तआला बेहतर जानता है।

1. फतावा हिन्दिया, चौथा अध्याय जनाज़ा ले जाने के बारे में, नूरानी कुतुब खाना पेशावर 1/ 162

पेज 426 ऑफ़ 948

فتاوٰی رضویہ جلد نہم

اس کی تعمیر میں کن خاص اور ضروری باتوں کا لحاظ رکھنا چاہئے، مثلاً طول عرض بلندی اور صورت وغیرہ۔ بینوا توجروا

الجواب: قبر پختہ نہ کرنا بہتر ہے، اور کریں تو اندر سے کڑا کچا رہے، اوپر سے پختہ کر سکتے ہیں، طول و عرض موافق قبر میت ہو، اور بلندی ایک بالشت سے زیادہ نہ ہو، اور صورت ڈھلوان بہتر ہے، واللہ تعالٰی اعلم

مسئلہ ۱۳۳ تا ۱۳۴: از بھسولی ضلع بریلی مرسلہ سید صفدر علی صاحب ۶ شعبان المعظم ۱۳۳۷ھ

کیا فرماتے ہیں علمائے دین ان مسائل میں: (۱) کسی ولی اللہ کا مزار شریف فرضی بنانا اور اس پر چادر وغیرہ چڑھانا، اور اس پر فاتحہ پڑھنا اور اصل مزار کا سا ادب و لحاظ کرنا جائز ہے یا نہیں؟ اور اگر کوئی مرشد اپنے مریدوں کے واسطے بنانے اپنے مرضی مزار کے خواب میں اجازت دے تو وہ قول مقبول ہوگا یا نہیں؟ (۲) اگر جنازہ میت کا واسطے دفن کے جانب پچھم لے جائیں تو کس طرح سے لے جانا چاہئے سر جانب غرب ہو یا جانب پورب؟

الجواب: (۱) فرضی مزار بنانا اور اس کے ساتھ اصل سا معاملہ کرنا نا جائز و بدعت ہے اور خواب کی بات خلاف شرع امور میں مسموع نہیں ہو سکتی۔ (۲) میت کو کسی طرف لے جانا ہو بہر حال سر آگے کی طرف رہے۔ عالمگیری میں ہے:

فی حالۃ المشی بالجنازۃ یقدم الراس کذا فی المضمرات ۱۔ واللہ تعالٰی اعلم

جنازہ لے جانے میں سر آگے رکھا جائے گا۔ ایسا ہی مضمرات میں ہے۔ (ت) واللہ تعالٰی اعلم

۱ فتاوٰی ہندیہ الفصل الرابع فی حمل الجنازۃ نورانی کتب خانہ پشاور ۱/ ۱۶۲

جلد نہم (Volume 9) فتاوی رضویہ (Fatawa Rizvia)

مسئلہ ۱۳۵: از نوشتہ ضلع علی گڑھ ڈاک خانہ دتاؤلی مرسلہ محمد عمر خاں ۱۹ ربیع الآخر ۱۳۳۷ھ Issue 135: From District Aligarh, Post Office Datauli, sent by Muhammad Umar Khan, 19 Rabi-ul-Akhir 1337 AH.

What do the scholars of religion and muftis of the firm Shariah say about this matter: For example, Zaid built a fictitious and artificial grave that had no prior existence, and spread the word that Zain-ul-Abidin of Amroha has arrived in this grave. He says, "I was given glad tidings in a dream." By narrating such stories to the people about the greatness of this grave, he began calling them towards grave-worship. He even started succeeding in this, and many people were drawn to it. They started offering sheets, chickens, goats, sweets, and money at this grave, and began asking for their wishes and vows from this grave. Zaid benefits from this income. What does the Shariah rule for such a person? Is prayer valid behind such a person or not? Is such a person who is a sinner and transgressor a disbeliever (Kafir)? Is the marriage of such a person void? Does Shariah allow attending the gatherings of such a person? Should kinship be maintained with such a person? Furthermore, an inquiry is made regarding a person who is pleased with Zaid's actions and is his helper and supporter in this matter, or a person who can stop Zaid from this matter but remains silent. Explain and you shall be rewarded.

الجواب (The Answer): Calling towards a grave without a deceased person and performing those acts for it is a sin. Since he persists in it and does it openly, he is a public transgressor (Fasiq-e-Mulin). Making a public transgressor an Imam is a sin, and replacing him is obligatory. It is not permissible to participate in the gathering for visiting this fabricated grave. All those who are pleased with Zaid's actions, especially those who are helpers and supporters, are all sinners and transgressors. Allah Almighty says: ۱ وَ لَا تَعَاوَنُوْا عَلَى الْاِثْمِ وَ الْعُدْوَانِ "And do not help one another in sin and transgression." (1) Rather, even those who remain silent despite having the power to act are included. Allah Almighty says:

۲ كَانُوا لَا يَتَنَاهَوْنَ عَنْ مُّنْكَرٍ فَعَلُوْهُ لَبِئْسَ مَا كَانُوا يَفْعَلُونَ "They used not to forbid one another from the wrong they did. How wretched was that which they used to do!" (2)

However, none of these things constitute disbelief (Kufr) such that the marriage would become void. Kinship is not by one's own choice that one may keep or break it as they wish. Similarly, the relationship of a man, which is an optional relationship through marriage, its knot is in the hand of the man. Allah Almighty says: عُقْدَةُ بِيَدِهِ

٣ النِّكَاحِ "In whose hand is the marriage tie." (3) Yes, regarding the treatment of relatives, if they think that cutting ties will affect him, then they should cut ties until he desists. And if they think that maintaining ties and advising him will be effective, then they should do so. And Allah Almighty knows best.

مسئلہ ۱۳۶: از قصبہ اور یا ضلع ایٹاوہ مرسلہ عبدالحہ صاحب مدرسہ اسلامیہ ۹ شعبان ۱۳۳۷ھ Issue 136: From Town Auraiya, District Etawah, sent by Abdul Hai Sahib, Madrasa Islamia, 9 Shaban 1337 AH. What do the scholars of religion say about this matter that in some places, shrines have been built in the name of Piran-e-Pir (Ghaus-ul-Azam), mercy of Allah be upon him, while some...

(Quran 2:237) القرآن ٢/ ٢٣٧ ٣ (Quran 5:79) القرآن ٥/ ٧٩ ٢ (Quran 5:2) القرآن ٥/ ٢ ١

जिल्द नहम (खंड 9) फ़तावा रज़विया

मसाला 135: अलीगढ़ जिले के डाकखाना दतौली से, मुहम्मद उमर खान द्वारा भेजा गया, 19 रबी-उल-आखिर 1337 हिजरी।

धर्म के विद्वान और शरीयत के मुफ्ती इस मामले में क्या कहते हैं: उदाहरण के लिए, ज़ैद ने एक काल्पनिक और कृत्रिम कब्र बनाई जिसका पहले कोई अस्तित्व नहीं था, और यह बात फैला दी कि अमरोहा के ज़ैन-उल-आबिदीन इस कब्र में आए हैं। वह कहता है कि "मुझे सपने में शुभ सूचना मिली है।" लोगों के सामने ऐसी कहानियाँ सुनाकर इस कब्र की महिमा बताकर उसने उन्हें कब्र-पूजा की ओर बुलाना शुरू कर दिया। यहाँ तक कि वह इसमें सफल होने लगा और बहुत से लोग इसकी ओर आकर्षित हो गए। वे इस कब्र पर चादरें, मुर्गियां, बकरियां, मिठाइयां और पैसे चढ़ाने लगे और इस कब्र से अपनी मुरादें और मन्नतें मांगने लगे। ज़ैद इस आमदनी का आनंद लेता है। शरीयत ऐसे व्यक्ति के लिए क्या हुक्म लगाती है? क्या ऐसे व्यक्ति के पीछे नमाज़ होती है या नहीं? क्या ऐसा पापी और पथभ्रष्ट व्यक्ति काफिर (अविश्वासी) है? क्या ऐसे व्यक्ति का निकाह अमान्य हो जाता है? क्या शरीयत ऐसे व्यक्ति के जलसों में शामिल होने की अनुमति देती है? क्या ऐसे व्यक्ति से रिश्तेदारी रखी जाए? इसके अलावा, उस व्यक्ति के बारे में भी पूछा जाता है जो ज़ैद के इस काम से खुश है और इस मामले में उसका सहायक और मददगार है, या ऐसा व्यक्ति जो ज़ैद को इस मामले से रोक सकता है लेकिन खामोश रहता है। स्पष्ट करें, आपको पुण्य मिलेगा।

अल-जवाब (उत्तर): बिना मुर्दे वाली कब्र की ओर बुलाना और उसके लिए वे कार्य करना पाप है। चूँकि वह इस पर अड़ा हुआ है और खुलेआम ऐसा कर रहा है, इसलिए वह एक सार्वजनिक अपराधी (फ़ासिक़-ए-मुअलन) है। सार्वजनिक अपराधी को इमाम बनाना पाप है और उसे बदलना अनिवार्य है। इस बनावटी कब्र की ज़ियारत के जलसे में शामिल होना जायज़ नहीं है। ज़ैद के इस मामले से जो लोग खुश हैं, विशेष रूप से वे जो सहायक और मददगार हैं, वे सभी पापी और फ़ासिक़ हैं। अल्लाह तआला का फ़रमान है: ١ وَ لَا تَعَاوَنُوْا عَلَى الْاِثْمِ وَ الْعُدْوَانِ "और पाप और ज़्यादती पर एक-दूसरे की मदद न करो।" (1) बल्कि वे भी जो सामर्थ्य होने के बावजूद खामोश हैं, अल्लाह तआला का फ़रमान है:

٢ كَانُوا لَا يَتَنَاهَوْنَ عَنْ مُّنْكَرٍ فَعَلُوْهُ لَبِئْسَ مَا كَانُوا يَفْعَلُونَ "वे एक-दूसरे को उन बुरे कामों से नहीं रोकते थे जो वे करते थे, वे कैसा बुरा काम करते थे!" (2)

लेकिन इनमें से कोई भी बात कुफ़्र (अविश्वास) नहीं है जिससे निकाह अमान्य हो सके। रिश्तेदारी अपने वश में नहीं है कि चाहे रखें चाहे तोड़ दें। इसी तरह पुरुष से रिश्ता जो निकाह के ज़रिए एक वैकल्पिक रिश्ता है, उसकी गाँठ पुरुष के हाथ में है। अल्लाह तआला का फ़रमान है: بِيَدِهِ عُقْدَةُ النِّكَاحِ ۳। "जिसके हाथ में निकाह की गाँठ है।" (3) हाँ, रिश्तेदारों के साथ व्यवहार के मामले में, अगर वे समझते हैं कि रिश्ता छोड़ने से उस पर असर पड़ेगा, तो रिश्ता छोड़ दें जब तक कि वह बाज़ न आ जाए। और अगर वे समझते हैं कि रिश्ता कायम रखकर समझाना प्रभावी होगा, तो वैसा ही करें। और अल्लाह तआला ही बेहतर जानता है।

मसाला 136: औरैया कस्बा, इटावा जिला से, मदरसा इस्लामिया के अब्दुल हई साहब द्वारा भेजा गया, 9 शाबान 1337 हिजरी। धर्म के विद्वान इस मामले में क्या कहते हैं कि पीराने-पीर (ग़ौसुल-आज़म) रहमतुल्लाह अलैह के नाम से कुछ जगहों पर मज़ार बना लिए गए हैं, जबकि कुछ...

1. अल-कुरान 5/2
2. अल-कुरान 5/79
3. अल-कुरान 2/237

पेज 427/948

جلد نہم فتاوی رضویہ

مسئلہ ۱۳۵: از نوشتہ ضلع علی گڑھ ڈاک خانہ دتاؤلی مرسلہ محمد عمر خاں ۱۹ ربیع الآخر ۱۳۳۷ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین و مفتیان شرع متین اس مسئلہ میں کہ مثلاً زید نے ایک قبر فرضی اور مصنوعی جس کا پہلے سے کوئی وجود نہ تھا، بنوا کر یہ بات مشہور کی کہ اس قبر میں امروہہ کے زین العابدین تشریف لائے ہیں۔ مجھ کو خواب میں بشارت ہوئی ہے، ایسی روایات سے اس قبر کی عظمت لوگوں کے سامنے بیان کرکے قبر پرستی کی طرف بلانے لگا۔ حتی کہ اس میں اس کو کامیابی ہونے لگی اور بہت سی مخلوق اس کی طرف متوجہ ہو گئی۔ اس قبر پر چادریں اور مرغ اور بکری اور مٹھائیاں، روپیہ اور پیسہ چڑھانے لگے۔ اور اپنی مرادیں اور منتیں اس قبر سے مانگنے لگے۔ اور زید اس آمدنی سے متمتع ہوتا ہے۔ ایسے شخص کے واسطے شریعت کیا حکم لگاتی ہے؟ - آیا ایسے شخص کے پیچھے نماز ہوتی ہے یا نہیں؟ کیا ایسا شخص فاجر و فاسق کافر ہے؟ کیا ایسا شخص کا نکاح باطل ہوتا ہے؟ کیا ایسے شخص کے جلسوں میں شریعت شرکت کی اجازت دیتی ہے؟ آیا ایسے شخص سے رشتہ قرابت رکھا جائے؟ نیز اس شخص کے متعلق بھی استفسار کیا جاتا ہے جو زید کے اس معاملہ سے خوش ہے اور اس کا ممد و معاون اس معاملہ میں ہے یا ایک ایسا شخص ہے جو زید کو اس معاملہ سے باز رکھ سکتا ہے مگر ساکت ہے۔ بینوا توجروا

الجواب: قبر بلا مقبور کی طرف بلانا اور اس کے لئے وہ افعال کرانا گناہ ہے، اور جبکہ وہ اس پر مصر ہے اور باعلان اسے کر رہا ہے تو فاسق معلن ہے اور فاسق معلن کو امام بنانا گناہ اور پھیرنی واجب۔ اس جلسہ زیارت قبرِ متبور میں شرکت جائز نہیں، زید کے اس معاملہ سے جو خوش ہیں خصوصاً وہ جو ممد و معاون ہیں سب گنہگار و فاسق ہیں قال تعالیٰ: وَلَا تَعَاوَنُوْا عَلَى الْإِثْمِ

وَالْعُدْوَانِ ۱۔ گناہ اور زیادتی پر ایک دوسرے کی مدد نہ کرو۔ (ت) بلکہ وہ بھی جو باوصف قدرت ساکت ہے، قال تعالیٰ:

كَانُوا لَا يَتَنَاهَوْنَ عَنْ مُّنْكَرٍ فَعَلُوْهُ لَبِئْسَ مَا كَانُوا يَفْعَلُونَ ۲ وہ برے کام سے ایک دوسرے کو روکتے نہ تھے، کیا ہی برا کام وہ کرتے تھے۔ (ت)

مگر ان میں سے کوئی بات کفر نہیں کہ اس سے نکاح باطل ہوسکے۔ قرابت اپنے اختیار کی نہیں کہ چاہے رکھی چاہے توڑی۔ یونہی مرد سے رشتہ کہ اختیاری رشتہ بذریعہ نکاح ہوتا ہے اس کی گرہ مرد کے ہاتھ میں ہے، قال تعالیٰ: بِيَدِهِ عُقْدَةُ النِّكَاحِ ۳ (اسی کے ہاتھ میں نکاح کی گرہ ہے۔ت)

ہاں عزیز داری کا برتاؤ اگر یہ سمجھیں کہ اس کے چھوڑنے سے اس پر اثر پڑے گا تو چھوڑ دیں یہاں تک کہ باز آئے اور اگر سمجھیں کہ اسے قائم رکھ کر سمجھانا موثر ہوگا تو یوں کریں۔ واللہ تعالیٰ اعلم

مسئلہ ۱۳۶: از قصبہ اور یا ضلع ایٹاوہ مرسلہ عبدالحہ صاحب مدرسہ اسلامیہ ۹ شعبان ۱۳۳۷ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ پیران پیر رحمتہ اللہ علیہ کے نام سے بعض جگہ مزار بنالیا گیا ہے بعض

۱ القرآن ۵/ ۲ ۲ القرآن ۵/ ۷۹ ۳ القرآن ۲/ ۲۳۷

Fatawa Rizvia Volume 9

People say that a brick from their shrine is buried. What is the ruling on going to such a place to perform Urs and offering a cloth (chadar)? Is it worthy of respect or not?

The Answer: Building a fake shrine and its veneration is not permissible. And Allah Subhanahu wa Ta'ala knows best.

Problem 173: From the city, Mohalla Kankar Tola, sent by Abdul Rahim Khan, 28 Dhu al-Qi'dah 1338 AH. What do the scholars of religion say regarding this matter: a person became a Hafiz of the Quran in childhood but spent his entire life in misdeeds. He had a relationship for years with a married woman whose husband was impotent, and they had a daughter. Due to these actions, his parents turned him out of the house. He was going to that woman's house, then fell ill, returned, and died. Now, Zaid's parents made an effort and buried him in a mosque next to an old but unpaved grave of a saint; they had both graves built up and made solid. Now, his parents, with the intent of changing the public's perception, began offering flowers and garlands on this grave in great numbers. They care nothing for the garbage in the mosque, but they sweep the grave once or twice a day or have it swept and tell people, "Look at the splendor here." Some ignorant people have started encouraging others to seek favors from the grave. Consequently, barely twenty to twenty-five days after the grave was made, his sister and brother began offering cloth coverings (chadar) and kissing the grave with respect. God knows what state the parents will bring them to in the future. In such a situation, what is the command of the Shariah for those who worship the grave, those who publicize it and cause it to be publicized, those who do not sweep the mosque, and those who regularly give offerings at the grave and make it famous? Speak out and you shall be rewarded.

The Answer: Calling it "worshiping" is a great exaggeration on the part of the questioner. The Wahhabis call the honoring of graves "worshiping," while the Wahhabis themselves worship Satan. However, to designate the grave of such a person as the shrine of a saint, to make such arrangements to deceive Muslims, and to encourage people to seek favors there is certainly a hateful deception and falsehood. The Hadith states: "He who deceives us is not of us."[1] And Allah Ta'ala knows best.

Problem 138A: From Delhi, Madrasa Nu'mania, Mohalla Ballimaran, sent by Maulvi Abdul Rashid Sahab, Manager of the Madrasa, 15 Muharram al-Haram 1338 AH.

What do the scholars of religion say regarding this matter: there is a mosque and adjacent to it is a graveyard in which...

[1] Sahih Muslim, Chapter: Saying of the Prophet (PBUH) "He who deceives is not of us", Noor Muhammad Asah al-Matabi, Karachi, 1/70.

फ़तावा रज़विया, खंड 9

लोग यह कहते हैं कि उनके मज़ार की ईंट दफ़न है। इस मज़ार में ऐसी जगह जाकर उर्स करना, चादर चढ़ाना कैसा है? वह काबिले-ताज़ीम है या नहीं?

अल-जवाब: झूठा मज़ार बनाना और उसकी ताज़ीम (सम्मान) जाइज़ नहीं। वल्लाहु सुबहा-नहु तआला आलम।

मसला 173: शहर मुहल्ला काँकर टोला से मुरसला अब्दुल रहीम खां, 28 ज़ी क़ादा 1338 हिजरी। क्या फ़रमाते हैं उलेमा-ए-दीन इस मसले में कि एक शख़्स बचपन में हाफ़िज़े-क़ुरआन हुआ और तमाम उम्र बद-अफ़आली (बुरे कामों) में गुज़ारी, एक शादीशुदा औरत से जिसका शौहर नामर्द था बरसों ताल्लुक रहा और उससे एक लड़की पैदा हुई, इन हरकतों पर माँ-बाप ने घर से निकाल दिया। वह उसी औरत के घर जा रहा था, फिर बीमार होकर वापस आया और मर गया। अब ज़ैद के वालिदैन ने कोशिश करके मस्जिद में एक बुज़ुर्ग की क़ब्र पुरानी थी लेकिन कच्ची थी उसके बराबर दफ़न कर दिया, दोनों क़ब्रों को बहुत अच्छा पक्का बनवा दिया। अब उसके वालिदैन ने दुनिया वालों के ख़्यालात बदलने की ग़र्ज़ से उस क़ब्र पर बहुत कसरत से हार फूल चढ़ाने शुरू कर दिए। और मस्जिद में कूड़ा वग़ैरह हो उनको कुछ मतलब नहीं, लेकिन क़ब्र पर दिन में दो एक मर्तबा झाड़ू देना और दिलवाना और लोगों से यह कहना कि देखो कैसी रौनक़ है और बाज़ जाहिल लोगों ने क़ब्र से मुराद माँगने की तरग़ीब देना शुरू किया। चुनाँचे इसी क़ब्र को अभी बीस-पच्चीस दिन गुज़रे होंगे कि चादर बहन और भाई चढ़ाने लगे और क़ब्र को ताज़ीम के साथ बोसा देना शुरू किया। और आइंदा को ख़ुदा जाने क्या हालत को उनके वालिदैन पहुँचा दें, ऐसी हालत में क़ब्र को पूजने वाले और शोहरत करने वाले और कराने वाले और मस्जिद में झाड़ू को न देने वाले, और क़ब्र पर बिला नागा चढ़ावा देना और मशहूर करना, शरअ शरीफ़ में क्या हुक्म है? बय्यिनू तूजरू।

अल-जवाब: इसे पूजना नहीं कहते। यह साइल (पूछने वाले) की बहुत ज़्यादती है। तक़रीमे-क़ुबूर (क़ब्रों के सम्मान) को वहाबिया पूजना कहते हैं, और वहाबिया ख़ुद शैतान को पूजते हैं, बाक़ी ऐसे शख़्स की क़ब्र को वली का मज़ार ठहराना और मुसलमानों को धोखा देने के लिए इसके लिए यह एहतमाम करना और लोगों को वहाँ मुराद माँगने की तरग़ीब देना यह ज़रूर मक्र-ओ-ज़ोर (धोखा और झूठ) है। हदीस में फ़रमाया: 'من غشنا فلیس منا' (जो हमें धोखा दे वह हम में से नहीं)। वल्लाहु तआला आलम।

मसला 138-अलिफ़: दिल्ली मदरसा नोमानिया मुहल्ला बल्ली मारान से मुरसला मौलवी अब्दुल रशीद साहब मोहतमिम मदरसा, 15 मोहर्रम-उल-हराम 1338 हिजरी। क्या फ़रमाते हैं उलेमा-ए-दीन इस मसले में कि एक मस्जिद है और उसके मुत्तसिल (सटा हुआ) क़ब्रिस्तान है जिसमें कि...

[1] सहीह मुस्लिम, बाब: नबी सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम का कौल 'मन ग़श फलयस मिन्ना', नूर मोहम्मद असहम अल-मताबि कराची 1/70.

पृष्ठ 428 / 948

فتاویٰ رضویہ جلد نہم

لوگ یہ کہتے ہیں کہ ان کے مزار کی اینٹ دفن ہے۔ اس مزار میں ایسی جگہ جا کر عرس کرنا، چادر چڑھانا کیسا ہے؟ وہ قابلِ تعظیم ہے یا نہیں؟

الجواب: جھوٹا مزار بنانا اور اس کی تعظیم جائز نہیں۔ واللہ سبحانہ تعالیٰ اعلم

مسئلہ ۱۷۳: از شہر محلہ کانکر ٹولہ مرسلہ عبدالرحیم خاں ۲۸ ذی قعدہ ۱۳۳۸ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ ایک شخص بچپن میں حافظ قرآن ہوا اور تمام عمر بد افعالی میں گزاری، ایک شوہر دار عورت سے جس کا شوہر نامرد تھا برسوں تعلق رہا اور اس سے ایک لڑکی پیدا ہوئی، ان حرکات پر ماں باپ نے گھر سے نکال دیا۔ وہ اسی عورت کے گھر جارہا، پھر بیمار ہو کر واپس آیا اور مر گیا۔ اب زید کے والدین نے کوشش کرکے مسجد میں ایک بزرگ کی قبر پرانی تھی لیکن خام تھی اس کے برابر دفن کر دیا، دونوں قبروں کو بہت اچھا پختہ بنوادیا۔ اب اس کے والدین نے دنیا والوں کے خیالات بدلنے کی غرض سے اس قبر پر بہت کثرت سے ہار پھول چڑھانے شروع کردیا۔ اور مسجد میں کوڑا وغیرہ ہو ان کو کچھ مطلب نہیں، لیکن قبر پر دن میں دوا یک مرتبہ جھاڑو دینا اور دلوانا اور لوگوں سے یہ کہنا کہ دیکھو کیسی رونق ہے اور بعض جاہل لوگ نے قبر سے مراد مانگنے کی ترغیب دینا شروع کیا۔ چنانچہ اسی قبر کو ابھی بیس پچیس دن گزرے ہوں گے کہ چادر بہن اور بھائی چڑھانے لگے اور قبر کو تعظیم کے ساتھ بوسہ دینا شروع کیا۔ اور آئندہ کو خدا جانے کیا حالت کو ان کے والدین پہنچادیں، ایسی حالت میں قبر کو پوجنے والے اور شہرت کرنے والے اور کرانے والے اور مسجد میں جھاڑو کو نہ دینے والے، اور قبر پر بلا ناغہ چڑھاوادینا اور مشہور کرنا، شرع شریف میں کیا حکم ہے؟ بینوا توجروا

الجواب: اسے پوجنا نہیں کہتے۔ یہ سائل کی بہت زیادتی ہے۔ تکریم قبور کو وہابیہ پوجنا کہتے ہیں، اور وہابیہ خود شیطان کو پوجتے ہیں، باقی ایسے شخص کی قبر کو ولی کا مزار ٹھہرانا اور مسلمانوں کو دھوکا دینے کے لیے اس کے لیے یہ اہتمام کرنا اور لوگوں کو وہاں مراد مانگنے کی ترغیب دینا یہ ضرور مکرو زور ہے۔ حدیث میں فرمایا: من غشنا فلیس منا 1 (جو ہمیں دھوکا دے وہ ہم میں سے نہیں -ت) واللہ تعالٰی اعلم

مسئلہ ۱۳۸الف: از دہلی مدرسہ نعمانیہ محلہ بلی ماراں مرسلہ مولوی عبدالرشید صاحب مہتمم مدرسہ ۱۵ محرم الحرام ۱۳۳۸ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ ایک مسجد ہے اور اس کے متصل قبرستان ہے جس میں کہ

1 صحیح مسلم باب قول النبی صلی اللہ علیہ وسلم من غش فلیس منا نور محمد اصح المطابع کراچی ۱/ ۷۰

Volume 9 Fatawa Razawiyya

Treatise Ahlak al-Wahhabiyyin 'ala Tawheen Quboor al-Muslimeen (Suppressing Wahhabis due to their desecration of Muslim graves) 1322 AH

Question 1386: What do the scholars of religion and jurists of the clear Sharia say regarding this matter: Is it permissible according to the Hanafi school of thought to intentionally dig up old graves in an ancient (Sunni) graveyard to build a house for oneself to live in? And will doing so constitute an insult and desecration of the people of the graves? Explain and you shall be rewarded.

Answer: From Him comes guidance to the truth and what is right. It should be known that the deep-seated heart-felt enmity that the Najdi Wahhabi sect has for the Prophets and Saints (peace and blessings be upon them) and the general Sunni believers is unmatched by any other innovative sect. This is why the writings of the cursed leaders of this modern sect are filled with falsehoods and insults towards the beloved of Allah. Anyone who wishes can look at the false publications of the Najdi Mullahs like Ismail Dehlvi, Siddiq Hasan Bhopali, Khurram Ali, and Rashid Gangohi, etc., to see that they are full of various kinds of insults. Among these, desecrating, demolishing, and destroying the graves of Prophets, Martyrs, and Saints (peace be upon them) as much as possible has become the hallmark of this sect.

The Najdi Sheikh intended to demolish the Holy Tomb. Allamah Ahmad bin Ali Basri states in his book 'Fasl al-Khitab fi Radd Dalalat Ibn Abd al-Wahhab':

Page 430 of 948

जिल्द नहम (खंड 9) फ़तावा रज़विया

रिसाला (पुस्तिका) अहलाक अल-वहाबीय्यीन अला तौहीन क़ुबूर अल-मुस्लिमीन (मुस्लिमों की कब्रों के अपमान के आधार पर वहाबियों का दमन) १३२२ हिजरी

मसला १३८६: धर्म के विद्वान और शरीयत के मुफ़्ती इस मसले में क्या फ़रमाते हैं कि एक पुराने (सुन्नी) कब्रिस्तान की पुरानी कब्रों को जानबूझकर खोदकर अपने रहने के लिए मकान बनाना हनफ़ी मज़हब के अनुसार जायज़ है या नहीं? और ऐसा करने में कब्र वालों का अपमान और अनादर होगा या नहीं? स्पष्ट करें, आपको पुण्य मिलेगा।

अल-जवाब (उत्तर): मार्गदर्शन अल्लाह की ओर से है जो सत्य और सही की ओर ले जाता है। यह जानना चाहिए कि नज्दी वहाबी संप्रदाय को नबियों और औलिया (उन पर शांति और आशीर्वाद हो) और आम सुन्नी मुसलमानों के साथ जो गहरी दिली नफरत है, वैसी किसी और पथभ्रष्ट संप्रदाय को नहीं है। इसी कारण इस आधुनिक संप्रदाय के बड़े अभिशप्त विद्वानों की रचनाएँ अल्लाह के प्रियजनों के प्रति अपमानजनक झूठों से भरी पड़ी हैं। जो चाहे वह नज्दी मुल्ला इस्माइल देहलवी, सिद्दीक हसन भोपाली, खुर्रम अली और रशीद गंगोही आदि की झूठी किताबों को उठाकर देख ले कि वे विभिन्न प्रकार के अपमानों से भरी हुई हैं। उनमें से एक अपमान नबियों, शहीदों और औलिया (उन पर शांति हो) की कब्रों को यथासंभव गिराना और नष्ट करना इस संप्रदाय का प्रतीक बन गया है।

नज्दी शेख ने रौज़ा-ए-अकदस (पवित्र मज़ार) को गिराने का इरादा किया था अल्लामा अहमद बिन अली बसरी अपनी किताब 'फ़स्ल अल-ख़िताब फ़ी रद दलालात इब्न अब्द अल-वहाब' में फ़रमाते हैं:

पृष्ठ ९४८ का ४३०

جلد نہم فتاویٰ رضویہ

رسالہ اھلاک الوھابیین علی توھین قبور المسلمین (قبور مسلمین کی توہین کی بناء پر وہابیوں کی سرکوبی) ۱۳۲۲ھ

مسئلہ ۱۳۸۶: علمائے دین و مفتیان شرع متین اس مسئلہ میں کیا فرماتے ہیں کہ ایک گورستان (اہلسنت) قدیم کی (پرانی) قبروں کو عمداً کھود کر اپنے رہنے کے لئے مکان بنانا موافق مذہب حنفی کے جائز ہے یا نہیں؟ اور ایسا کرنے میں اہل قبور کی توہین و اہانت ہوگی یا نہیں؟ بینوا توجروا

الجواب: ومنہ الھدایۃ الی الحق والصواب جاننا چاہئے کہ انبیاء و اولیاء علیہم الصلوٰۃ والسلام و عامہ مومنین اہلسنت کے ساتھ جو قلبی عداوت فرقہ نجدیہ وہابیہ کو ہے ایسی اور کسی فرقہ مبتدعہ کو نہیں ہے، اسی وجہ سے اس فرقہ محدثہ کے اکابر ملاعنہ کی تصانیف اباطیل اہانت محبوبانِ خدا سے بھری پڑی ہیں، جس کا جی چاہے وہ نجدی ملا اسمعیل دہلوی و صدیق حسن بھوپالی و خرم علی و رشید گنگوہی وغیرہ کی تالیفات باطلہ اٹھا کر دیکھ لے کہ قسم قسم کی اہانتوں سے پر ہیں۔ منجملہ ان کے ایک اہانت قبور انبیاء و شہداء و اولیاء علیہم السلام کا منہدم و نابود تا بمقدور کرنا اس فرقے کا شعار ہو گیا ہے۔

شیخ نجدی نے روضہ اقدس کو گرانے کا ارادہ کیا تھا علامہ احمد بن علی بصری کتاب فصل الخطاب فی رد ضلالات ابن عبدالوہاب میں فرماتے ہیں:

Fatawa Razawiyya (Volume 9)

(Arabic): Among them, it is correct that he (Najdi) says: "If I were able to have power over the chamber of the Messenger, may Allah the Exalted bless him and grant him peace, I would have demolished it." (Urdu): One of these correct points is that he says if I had the power, I would demolish the tomb (Rowdah) of the Messenger of Allah, may Allah the Exalted bless him and grant him peace. (T)

The Najdi Sheikh demolished the shrines of martyrs and noble companions. And the same Allama Basri writes in another place:

(Arabic): I say: Demolishing the graves of the mentioned companion martyrs because of the structure over their graves is a misguidance, i.e., his misguidance. End of summarized quote. (Urdu): That is, for the Najdi to demolish the graves of the noble companion martyrs (may Allah be pleased with them) because of the domes is a great deviance and misguidance of this Najdi. (In brief). (T)

And the same mentioned Allama writes in a third place:

(Arabic): Some of them said: Even if the person buried was famous for knowledge and piety, or was a companion, and a dome was built over him, and the building was only the size of his grave, it should not be demolished due to the sanctity of exhuming it even if the trace is obliterated. Since you know this, then building over the graves of these martyrs from the companions, may Allah be pleased with them, is either obligatory or permissible without dislike. In any case, no one proceeds to demolish except a misguided innovator, for it entails violating the sanctity of the companions of the Messenger of Allah, may Allah the Exalted bless him and grant him peace, whose love is obligatory upon every Muslim. Part of their love is the obligation of honoring them. And what kind of honorers are those who demolished the graves of martyrs until their bodies and shrouds became visible, as mentioned by some.

(Urdu): Some scholars have stated that if the occupant of the dome is a famous scholar, a pious person, or a companion, and the dome is only equal to the size of the grave, then it should not be demolished because even if its mark is erased, opening it is not permissible. Now you should know that building structures on the graves of these martyred companions (may Allah be pleased with them) is either mandatory or permissible without any dislike. In any case, demolishing it is not permissible, and only that person can do it who is an innovator and misguided because it results in

the desecration of the companions of the Messenger of Allah, may Allah the Exalted bless him and grant him peace, while their respect and honor is obligatory upon every Muslim. Now how can those people be considered as ones who honor them, who dug up the graves of the martyrs until the bodies of some [were exposed]...

1. Fasl al-Khitab fi Radd Dalalat Ibn Abd al-Wahhab
2. Fasl al-Khitab fi Radd Dalalat Ibn Abd al-Wahhab

फ़तावा रज़विया (खण्ड 9)

(अरबी): उनमें से एक यह बात सही है कि वह (नजदी) कहता है: "यदि मुझमें सामर्थ्य होती तो मैं अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) के कक्ष (रौज़ा) को ढहा देता।" (उर्दू): इनमें से एक यह बात सही है कि वह कहता है कि अगर मुझे सामर्थ्य मिले तो मैं रसूलुल्लाह (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) के रौज़ा को तोड़ दूँ। (त)

नजदी शेख ने शहीदों और सहाबा के मजार तोड़े। और यही अल्लामा बसरी एक दूसरे स्थान पर लिखते हैं:

(अरबी): मैं कहता हूँ: वर्णित सहाबा शहीदों की कब्रों को ढहाना, उनके ऊपर बनी इमारतों के कारण, गुमराह है, यानी यह उनकी (नजदी की) गुमराह है। (संक्षेप में समाप्त) (उर्दू): यानी नजदी का सहाबा किराम (रज़ियल्लाहु अन्हुम) के शहीदों की कब्रों को गुंबदों की वजह से तोड़ डालना बड़ी पथभ्रष्टता और गुमराही इस नजदी की है (संक्षेप में)। (त)

और यही अल्लामा उल्लेखित तीसरे स्थान पर लिखते हैं:

(अरबी): उनमें से कुछ ने कहा कि यदि जिस पर इमारत बनी है वह ज्ञान और धर्मपरायणता के लिए प्रसिद्ध हो या वह सहाबी हो और वह इमारत एक गुंबद हो और वह इमारत केवल उसकी कब्र के बराबर हो, तो उसे नहीं ढहाया जाना चाहिए क्योंकि उसकी कब्र को खोदना हराम है, भले ही निशान मिट गया हो। जब आप यह जान गए, तो इन सहाबा शहीदों (रज़ियल्लाहु अन्हुम) की कब्रों पर इमारत बनाना या तो अनिवार्य होगा या बिना किसी नापसंदगी के जायज़ होगा। और किसी भी स्थिति में ढहाने के लिए वही व्यक्ति आगे बढ़ता है जो पथभ्रष्ट और गुमराह हो क्योंकि इसमें अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) के सहाबा की गरिमा का अपमान शामिल है, जिनका प्रेम हर मुसलमान पर अनिवार्य है। और उनके प्रेम का एक हिस्सा उनका सम्मान करना अनिवार्य है। और वे कैसे सम्मान करने वाले हो सकते हैं जिन्होंने शहीदों की कब्रों को खोद डाला यहाँ तक कि उनके शरीर और कफ़न दिखने लगे, जैसा कि कुछ ने उल्लेख किया है।

(उर्दू): कुछ विद्वानों ने फरमाया कि यदि गुंबद वाला कोई प्रसिद्ध विद्वान, मुत्तकी (संयमी) या सहाबी है और गुंबद केवल कब्र के बराबर है तो उसे नहीं ढहाया जाना चाहिए क्योंकि चाहे उसका निशान भी क्यों न मिट जाए मगर उसे खोलना जायज़ नहीं है। अब आपको ज्ञात होना चाहिए कि इन शहीद

सहाबा (रज़ियल्लाहु अन्हुम) की कब्रों पर इमारतें बनाना या तो अनिवार्य होगा या बिना किसी नापसंदगी के जायज़। और किसी भी सूरत में ढहाना जायज़ नहीं, और यह केवल वही व्यक्ति कर सकता है जो बिदअती (नवाचारी) और गुमराह हो क्योंकि इससे रसूलुल्लाह (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) के सहाबा की बेअदबी होती है, जबकि उनका सम्मान और गौरव हर मुसलमान पर वाजिब (अनिवार्य) है। अब वे लोग सम्मान करने वाले कैसे माने जा सकते हैं जिन्होंने शहीदों की कब्रें खोद डालीं जबकि कुछ के शरीर...

1. फस्ल अल-खिताब फी रद दलालात इब्न अब्दुल वहाब
2. फस्ल अल-खिताब फी रद दलालात इब्न अब्दुल वहाब

पृष्ठ 431 of 948

منہا انہ صح انہ یقول لواقدر علی حجرۃ الرسول صلی اللہ تعالی علیہ وسلم لھدمتھا ۔ ان میں سے ایک یہ بات صحیح ہے کہ وہ کہتا ہے میں اگر قدرت پاؤں تو روضہ رسول اللہ صلی اللہ تعالی علیہ وسلم کو توڑ دوں۔(ت)

شیخ نجدی نے شہداء و صحابہ کرام کے مزار توڑنے اور یہی علامہ بصری ایک دوسرے مقام میں لکھتے ہیں:

اقول: تھدیم قبور شھداء الصحابۃ المذکورین لاجل البناء علی قبورھم ضلالۃ ای ضلالتہ انتھی مختصرا۔ یعنی نجدی کا شہداء صحابہ کرام رضی اللہ تعالی عنہم کی قبور کو قبوں کی وجہ سے توڑ ڈالنا بڑی ضلالت اور گمراہی اس نجدی کی ہے (بالاختصار)۔(ت)

اور یہی علامہ مذکور تیسرے مقام میں لکھتے ہیں:

قال بعضھم ولو کان المبنی علیہ مشھورا بالعلم والصلاح او کان صحابیا وکان المبنی علیہ قبۃ وکان البناء علی قدر قبرہ فقط ینبغی ان لا یھدم لحرمۃ نبشہ وان اندرس اذا علمت ھذا فھذا البناء علی قبور ھؤلاء الشھداء من الصحابۃ رضی اللہ تعالی عنھم لا یخلو اما ان یکون واجبا او جائزا بغیر کراھۃ وعلی کل فلا یقدم علی الھدم الارجل مبتدی ضال لاستلزامہ انتھاك حرمۃ اصحاب رسول اللہ صلی اللہ تعالی علیہ وسلم الواجب علی کل مسلم محبتھم ومن محبتھم وجوب توقیرہم وای توقیر ھم عند من ھدم قبورھم حتی بدت ابدانھم واکفانھم کما ذکر بعض۔ بعض علماء نے فرمایا کہ صاحبِ قبہ اگر کوئی مشہور عالم، متقی یا صحابی ہے اور قبہ صرف قبر کے برابر ہو تو اسے منہدم نہ کرنا چاہیے کیونکہ خواہ اس کا نشان بھی کیوں نہ مٹ جائے مگر اس کا کھولنا جائز نہیں اب آپ معلوم ہونا

چاہیے کہ ان شہید صحابہ رضی اللہ تعالی عنہم کی قبور پر عمارات بنانا یا تو واجب ہوگا یا بلا کراہت جائز۔ اور بہر صورت منہدم کرنا جائز نہیں، اور یہ صرف وہی شخص کرسکتا ہے جو بدعتی اور گمراہ ہو کیونکہ اس سے اصحابِ رسول اللہ صلی اللہ تعالی علیہ وسلم کی بے حرمتی ہوتی ہے، حالانکہ ان کی تعظیم اور توقیر ہر مسلمان پر واجب ہے، اب وہ لوگ تعظیم کرنے والے کیسے قرار پاسکتے ہیں جنھوں نے شہداء کی قبور کھود ڈالیں جبکہ بعض کے جسم...

1 فصل الخطاب فی رد ضلالات ابن عبدالوہاب 2 فصل الخطاب فی رد ضلالات ابن عبدالوہاب

Fatawa Rizvia, Volume 9

[Scholars of Najd, in response to a question sent to them, summarized. | And the shrouds were also revealed, as mentioned by some scholars of Najd in response to this question, summarized.]

According to the black-faced Wahhabis, Prophets (peace and blessings be upon them) - God forbid - have turned into dust after death.

According to these wretched individuals, after physical death, they become completely senseless and unconscious, and - God forbid (seeking refuge with Allah) - mingle with the dust. For example, Ismail Dehlvi, in his book 'Taqwiyat-ul-Iman' on page 60, rants regarding the exalted status of the Holy Prophet (peace and blessings of Allah be upon him): "I too am one day going to die and turn into dust." When these cursed individuals hold such a filthy view regarding the Master of Messengers (peace and blessings be upon him) and harbor the absurd idea of demolishing his pure mausoleum and the graves of the martyrs and noble companions (may Allah be pleased with them), then what is there to ask about the general deceased pious believers? When breaking and demolishing the graves of believers, rather the saints (peace be upon them all), has become the hallmark of the Najdi Wahhabis, it is not permissible for anyone in the questioned scenario to break the graves of Sunni believers, or rather dig them up to build residential and comfortable houses over them to indulge in worldly pleasures. This is absolutely and certainly causing harm, insult, and humiliation to the people of the graves, which is in no way permissible.

According to the Ahl-as-Sunnah, Prophets, martyrs, and saints are alive in their bodies with their shrouds.

According to the Ahl-as-Sunnah, Prophets and martyrs (blessings and praise be upon them) are alive with their noble bodies. In fact, it has been made forbidden for the earth to consume the subtle bodies of the Prophets (peace and blessings be upon them); similarly for the martyrs and saints.

Note: It was mentioned earlier in the statement of Allama Basri (may Allah have mercy on him) that when the Najdi destroyed the graves of the noble companion martyrs (may Allah be pleased with them), their shrouds and noble bodies were all intact, even though approximately twelve hundred years had passed since the burial of the companions (may Allah be pleased with them). Therefore, a thousand curses upon Mulla Ismail and his followers and the black-faced Wahhabis that they hold

such a filthy belief regarding the sacred and pure personality of the Holy Prophet (peace and blessings of Allah be upon him), which is against the dignity of a Muslim. May Allah Almighty protect the Ahl-as-Sunnah from their evil company. Amen!

---

1. Fasl al-Khitab fi Radd Dalalat Ibn Abd al-Wahhab
2. Taqwiyat-ul-Iman, Alimi Press, inside Lohari Gate, Lahore, p. 42

फ़तावा रिज़विया, जिल्द 9

[नजद के विद्वान, उनके पास भेजे गए एक सवाल के जवाब में, संक्षेप में। | और कफ़न भी ज़ाहिर हो गए, जैसा कि नजद के कुछ विद्वानों ने इस सवाल के जवाब में संक्षेप में ज़िक्र किया।]

काले चेहरे वाले वहाबियों के नज़दीक अंबिया (पैगंबर) अलैहिमुस्सलाम - माज़अल्लाह - मरकर मिट्टी हो गए हैं।

इन बदकिस्मतों के नज़दीक ज़ाहिरी मौत के बाद वे बिल्कुल बेसुध और बेहोश हो जाते हैं और - माज़अल्लाह (अल्लाह की पनाह) - मिट्टी में मिल जाते हैं। उदाहरण के लिए, इस्माइल देहलवी अपनी किताब 'तक्वियतुल ईमान' के पेज 60 पर हुज़ूर अकदस सैयदे आलम सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम की बुलंद शान में बकता है कि: "मैं भी एक दिन मरकर मिट्टी में मिलने वाला हूँ।" जब इन मलूनों (अभिशप्तों) का सैयदुल मुर्सलीन अलैहिस्सलाम के बारे में ऐसा नापाक ख्याल है और उनके रौज़े अनवर और शोहदा व सहाबा किराम के मज़ारों को गिराने का बेहूदा ख्याल है, तो बाकी आम मोमिनों और नेक लोगों के बारे में क्या पूछना। जब मोमिनों, बल्कि औलिया किराम के मज़ारों को तोड़ना और गिराना नजदी वहाबियों का तरीका बन गया है, तो किसी के लिए भी जायज़ नहीं है कि वह पूछी गई सूरत में सुन्नी मुसलमानों की कब्रों को तोड़कर बल्कि उन्हें खोदकर उन पर अपने रहने और आराम के मकान बनाकर दुनिया की लज्ज़तों में मशगूल हो जाए, जो यकीनी तौर पर कब्र वालों को तकलीफ पहुँचाना और उनकी तौहीन व अपमान करना है जो किसी तरह जायज़ नहीं।

अहल-ए-सुन्नत के नज़दीक अंबिया, शोहदा और औलिया अपने शरीरों और कफ़न के साथ ज़िंदा हैं।

अहल-ए-सुन्नत के नज़दीक अंबिया और शोहदा अलैहिमुस्सलाम अपने शरीफ़ शरीरों के साथ ज़िंदा हैं, बल्कि अंबिया अलैहिमुस्सलाम के लतीफ़ शरीरों को खाना ज़मीन पर हराम कर दिया गया है; इसी तरह शोहदा और औलिया के लिए भी।

नोट: पहले अल्लामा बसरी अलैहिर्रहमा के कौल में गुज़रा कि नजदी ने जब सहाबा किराम के मज़ारों को शहीद किया तो उनमें उनके कफ़न और जिस्म शरीफ़ सब सलामत थे, जबकि सहाबा रज़ियल्लाहु अन्हुम को दफ़्न हुए करीब बारह सौ साल गुज़र चुके थे। लिहाज़ा हज़ार लानत है मुल्ला इस्माइल और उसके मानने वालों और काले चेहरे वाले वहाबियों पर कि उनका हुज़ूर सल्लल्लाहु

अलैहि वसल्लम की पाक ज़ात के बारे में ऐसा नापाक अकीदा है, जो एक मुसलमान की शान के खिलाफ है। अल्लाह तआला अहल-ए-सुन्नत को उनकी बुरी सोहबत से बचाए। आमीन!

---

1. फ़स्लुल ख़िताब फ़ी रद्दी दलालात इब्ने अब्दुल वहाब
2. तक्वियतुल ईमान, मतबअ अलीमी, अंदरून लोहारी दरवाज़ा, लाहौर, पृ. 42

فتاویٰ رضویہ، جلد نہم

[علماء نجد فی سوال ارسلہ الی انتھی مختصراً۔ | اور کفن بھی ظاہر ہوگئے، جیسا کہ بعض علماء نجد نے اس سوال کے جواب میں ذکر کیا ھ مختصراً]

وہابیہ روسیاہ کے نزدیک انبیاء علیہم الصلوۃ والسلام معاذ اللہ منہا مر کر مٹی ہوگئے ہیں

ان بد بختوں کے نزدیک ظاہری موت کے بعد یہ بالکل بے حس وبے شعور ہو جاتے ہیں اور مر کر معاذ اللہ (پناہ بخدا) مٹی میں مل جاتے ہیں، مثلاً اسمعیل دہلوی اپنی کتاب تقویت الایمان کے صفحہ ۶۰ میں حضور اقدس سید عالم صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم کی شان ارفع واعلیٰ میں بکتا ہے کہ: "میں بھی ایک دن مر کر مٹی میں ملنے والا ہوں"۔ جب سید المرسلین علیہ الصلوۃ والسلام کی نسبت ان ملا عنہ کا ایسا ناپاک خیال ہے اور ان کے روضہ اطہر اور شہداء وصحابہ کرام علیہم الرضوان کی قبور کو منہدم کرنے کا بیہودہ خیال ہے تو باقی اموات عامہ مومنین صالحین کی نسبت پوچھنا کیا ہے۔ جب قبور مومنین بلکہ اولیاء علیہم السلام اجمعین کا توڑنا اور منہدم کرنا شعار نجدیہ وہابیہ ہوا تو کسی کو جائز نہیں ہے کہ وہ صورت مسئولہ میں قبور مومنین اہلسنت کو توڑ کر بلکہ ان کو کھود کر ان پر اپنی رہائش و آسائش کے مکان بنا کر ان میں لذات دنیا میں مشغول و منہمک ہو، جو قطعاً ویقیناً اصحاب قبور کو ایذا دینا اور ان کی اہانت اور توہین کرنا ہے جو کسی طرح جائز نہیں۔

اہلسنت کے نزدیک انبیاء و شہداء و اولیاء اپنے ابدان مع اکفان کے زندہ ہیں

اہلسنت کے نزدیک انبیاء و شہداء علیہم التحیۃ والثناء اپنے ابدان شریفہ سے زندہ ہیں بلکہ انبیاء علیہم الصلوۃ والسلام کے ابدان لطیفہ زمین پر حرام کئے گئے ہیں کہ وہ ان کو کھائے، اسی طرح شہداء واولیاء

عہ: سابقاً علامہ بصری علیہ الرحمۃ کے قول میں گزرا کہ نجدی نے جب قبور شہداء صحابہ کرام علیہم الرضوان کو شہید کیا تو ان میں ان کے کفن اور بدن شریف سب سلامت تھے، اور صحابہ رضی اللہ تعالٰی عنہم کو مدفون ہوئے تخمیناً بارہ سو سال گزر چکے تھے، پس ہزار تف ہے ملا اسمعیل اور اس کے مقلدین و وہابیہ روسیاہ پر کہ ان کا ایسا ناپاک عقیدہ ہے حضور اقدس صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم کی ذات اقدس واطہر کے ساتھ کہ جو مسلمان کی شان کے خلاف ہے۔ اللہ تعالٰی اہلسنت کو ان کی صحبت بد سے بچائے۔ آمین !

---

1. فصل الخطاب في رد ضلالات ابن عبدالوهاب
2. تقویت الایمان مطبع علیمی اندرون لوہاری دروازہ، لاہور ص ۴۲

Fatawa Rizwiya - Volume 9

The bodies and shrouds of those upon whom be mercy and praise remain safe and sound in their graves, and they are provided with sustenance. Allama Subki writes in 'Shifa al-Saqam':

[Table] Arabic text: "The life of the martyrs is more perfect and exalted, and this type of life and provision is not attained by those who are not at their rank. Indeed, the life of the Prophets is more exalted, more perfect, and more complete than all, because it is for both the soul and the body permanently, just as it was in this world."[1] Urdu translation: The life of martyrs is very exalted. This type of life and sustenance is not attained by those who are not of their rank. And the life of Prophets is the most exalted of all because it is with both body and soul as it was in the world and will remain forever.

And Qazi Thanaullah Panipati writes in 'Tazkirat al-Mawta':

[Table] Persian/Urdu text: "The Saints of Allah have said, 'Our souls are our bodies,' meaning their souls perform the work of bodies, and sometimes bodies, due to extreme refinement, appear in the form of souls. It is said that the Messenger of God (peace be upon him) had no shadow. Their souls go wherever they wish in the earth, sky, and paradise. Because of this very life, the earth of the grave does not consume their bodies; rather, even the shroud remains intact. Ibn Abi ad-Dunya narrated from Malik that the souls of believers roam wherever they wish. By believers is meant the perfect ones. Almighty Allah gives their bodies the power of souls so that they perform prayers in graves, perform Dhikr, and recite the Holy Quran."[2] Urdu translation: The decree of the saints of Allah is that our souls are our bodies. That is, their souls perform the work of bodies, and sometimes bodies appear like souls due to extreme refinement. They say that the Messenger of Allah (peace be upon him) had no shadow. Their souls come and go wherever they wish in the earth, sky, and paradise. Therefore, the soil of the graves does not eat their bodies, but even the shroud remains safe. Ibn Abi ad-Dunya has narrated from Malik that the souls of believers roam wherever they want. By believers is meant the perfect ones. Almighty Allah bestows the power of souls upon their bodies, so they perform prayers in graves, do Dhikr, and read the Holy Quran.

And Sheikh al-Hind Muhaddith Dehlawi (may mercy be upon him) says in the commentary of 'Mishkat':

[Table] Persian text: The saints of Almighty Allah were transferred from this mortal world to the eternal abode. Urdu translation: The saints of Allah [transferred] from this mortal world towards the eternal abode.

[1] Shifa al-Saqam, Section 4 of Chapter 9, Maktaba Nooria Rizvia, Faisalabad, p. 206 [2] Tazkirat al-Mawta wal-Qubur, Urdu: "Places where souls stay", Noori Kutub Khana, Noori Masjid, Islam Ganj, Lahore, p. 57

फ़तावा रज़विया - जिल्द 9

उन पर अल्लाह की रहमत और प्रशंसा हो, उनके शरीर और कफ़न कब्रों में सुरक्षित रहते हैं और उन्हें जीविका प्रदान की जाती है। अल्लामा सुबकी 'शिफा अल-सकाम' में लिखते हैं:

[तालिका] अरबी पाठ: "शहीदों का जीवन अधिक पूर्ण और श्रेष्ठ है, और इस प्रकार का जीवन और जीविका उन लोगों को प्राप्त नहीं होती जो उनके पद के नहीं हैं। वास्तव में, पैगंबरों का जीवन सबसे श्रेष्ठ, सबसे पूर्ण और सबसे उत्तम है, क्योंकि यह आत्मा और शरीर दोनों के लिए स्थायी है, जैसा कि इस दुनिया में था।"[1] उर्दू अनुवाद: शहीदों का जीवन बहुत ऊंचा है। जीवन और जीविका का यह प्रकार उन लोगों को प्राप्त नहीं होता जो उनके पद के नहीं हैं। और पैगंबरों का जीवन सबसे ऊंचा है क्योंकि यह शरीर और आत्मा दोनों के साथ है जैसा कि दुनिया में था और हमेशा रहेगा।

और काजी सनाउल्लाह पानीपती 'तज़किरत अल-मौता' में लिखते हैं:

[तालिका] फारसी/उर्दू पाठ: "अल्लाह के वलियों ने कहा है, 'हमारी रूहें हमारे जिस्म हैं,' अर्थात उनकी रूहें शरीरों का काम करती हैं, और कभी-कभी शरीर अत्यधिक सूक्ष्मता के कारण रूहों के रूप में प्रकट होते हैं। कहा जाता है कि अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) की परछाई नहीं थी। उनकी रूहें जमीन, आसमान और जन्नत में जहाँ चाहें जाती हैं। इसी जीवन के कारण, कब्र की मिट्टी उनके शरीरों को नहीं खाती; बल्कि कफ़न भी सुरक्षित रहता है। इब्न अबी अद-दुनिया ने मालिक से रिवायत की है कि मोमिनों की रूहें जहाँ चाहें सैर करती हैं। मोमिनों से मुराद कामिलीन (सिद्ध जन) हैं। अल्लाह तआला उनके शरीरों को रूहों की शक्ति प्रदान करता है ताकि वे कब्रों में नमाज़ अदा करें, ज़िक्र करें और कुरान करीम पढ़ें।"[2] उर्दू अनुवाद: अल्लाह के वलियों का फरमान है कि हमारी रूहें हमारे जिस्म हैं। यानी उनकी रूहें जिस्मों का काम दिया करती हैं और कभी जिस्म अत्यधिक सूक्ष्मता की वजह से रूहों की तरह ज़ाहिर होते हैं। कहते हैं कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम का साया न था। उनकी रूहें ज़मीन, आसमान और जन्नत में जहाँ भी चाहें आती-जाती हैं। इसलिए कब्रों की मिट्टी उनके जिस्मों को नहीं खाती है बल्कि कफ़न भी सलामत रहता है। इब्न अबी अद-दुनिया ने मालिक से रिवायत की है कि मोमिनों की रूहें जहाँ चाहती हैं सैर करती हैं। मोमिनों से मुराद कामिलीन हैं। हक़ तआला उनके जिस्मों को रूहों की कूवत अता फरमाता है तो वे कब्रों में नमाज़ अदा करते और ज़िक्र करते हैं और कुरान करीम पढ़ते हैं।

और शेख अल-हिंद मुहद्दिस देहलवी (रहमतुल्लाहि अलैहि) 'मिशकात' की व्याख्या में फरमाते हैं:

[तालिका] फारसी पाठ: अल्लाह तआला के वली इस फानी दुनिया से हमेशा रहने वाली दुनिया की ओर स्थानांतरित कर दिए गए। उर्दू अनुवाद: अल्लाह तआला के वली इस दार-ए-फानी से दार-ए-बका की ओर।

[1] शिफा अल-सकाम, अध्याय 9 का खंड 4, मकतबा नूरिया रज़विया, फैसलाबाद, पृष्ठ 206 [2] तज़किरत अल-मौता वल-कुबूर, उर्दू: "रूहों के ठहरने की जगह", नूरी कुतुब खाना, नूरी मस्जिद, इस्लाम गंज, लाहौर, पृष्ठ 57

पृष्ठ 433/948

فتاوی رضویہ جلد نہم

علیہم الرحمہ والثناء کے ابدان وکفن بھی قبور میں صحیح و سلامت رہتے ہیں وہ حضرات روزی و رزق دئے جاتے ہیں، علامہ سبکی شفاء السقام میں لکھتے ہیں:

[Box] وحیاۃ الشہداء اکمل واعلی فھذا النوع من الحیاۃ والرزق لا یحصل لمن لیس فی رتبتہم، وانما حیاۃ الانبیاء اعلی واکمل واتم من الجمیع لانھا للروح والجسد علی الدوام علی ماکان فی الدنیا^1 شہداء کی زندگی بہت اعلی ہے، زندگی اور رزق کی یہ قسم ان لوگوں کو حاصل نہیں ہوتی جوان کے ہم مرتبہ نہیں اور انبیاء کی زندگی سب سے اعلی ہے اس لیے کہ وہ جسم و روح دونوں کے ساتھ ہے جیسی کہ دنیا میں تھی اور ہمیشہ رہے گی۔ [/Box]

اور قاضی ثناء اللہ صاحب پانی پتی تذکرۃ الموتی میں لکھتے ہیں: "

[Box] اولیاء اللہ گفتہ اند ارواحنا اجسادنا یعنی ارواح ایشان کار اجساد مے کنند و گاہے اجساد از غایت لطافت برنگ ارواح مے برآید، مے گویند کہ رسول خدا را سایہ نبود (صلی اللہ تعالی علیہ وسلم) ارواح ایشان از زمین و آسمان و بہشت ہر جا کہ خواہند می روند، وبسبب ایں ہمیں حیات اجساد آنہا در قبر خاک نمی خورد بلکہ کفن بھی سلامت می ماند، ابن ابی الدنیا از مالک روایت نمود ارواح مومنین ہر جا کہ خواہند سیر کنند، مراد از مومنین کاملین اند، حق تعالیٰ اجسادِ ایشاں را قوتِ ارواح می دھد کہ در قبورِ نماز میخوانند (ادا کنند) و ذکر می کنند و قرآن کریم می خوانند^2 اولیاء اللہ کا فرمان ہے کہ ہماری روحیں ہمارے جسم ہیں۔ یعنی ان کی ارواح جسموں کا کام دیا کرتی ہیں اور کبھی اجسام انتہائی لطافت کی وجہ سے ارواح کی طرح ظاہر ہوتے ہیں کہتے ہیں کہ رسول اللہ صلی اللہ تعالی علیہ وسلم کا سایہ نہ تھا۔ ان کی ارواح زمین آسمان اور جنت میں جہاں بھی چاہیں

آتی جاتی ہیں، اس لیے قبروں کی مٹی ان کے جسموں کو نہیں کھاتی ہے بلکہ کفن بھی سلامت رہتا ہے۔ ابن ابی الدنیا نے مالک سے روایت کی ہے کہ مومنین کی ارواح جہاں چاہتی ہیں سیر کرتی ہیں۔ مومنین سے مراد کاملین ہیں، حق تعالیٰ ان کے جسموں کو روحوں کی قوت عطا فرماتا ہے تو وہ قبروں میں نماز ادا کرتے اور ذکر کرتے ہیں اور قرآن کریم پڑھتے ہیں۔ [/Box]

اور شیخ الہند محدث دہلوی علیہ الرحمۃ شرح مشکوٰۃ میں فرماتے ہیں:

[Box] اولیاء خدائے تعالی نقل کردہ شدند ازیں دار فانی بدار بقا اللہ تعالیٰ کے اولیاء اس دار فانی سے دار بقا کی طرف [/Box]

1۸ شفاء السقام الفصل الرابع من الباب التاسع مکتبہ نوریہ رضویہ فیصل آباد ص ۲۰۶ 2۸ تذکرۃ الموتی والقبور اردو ارواح کے ٹھہرنے کی جگہ نوری کتب خانہ نوری مسجد اسلام گنج لاہور ص ۵۷

Fatawa Razawiya, Volume 9

[Table Header] They are alive with their Lord, provided for, and happy, and people do not realize this.[1] | They have departed and are alive with their Lord; they are being provided for, they are happy, and people do not have awareness of this.

And Allama Ali Qari writes in the commentary of Mishkat:

[Table Header] There is no difference for them in both states (life and death), hence it is said that the friends of Allah do not die, but rather they move from one abode to another abode.[2] etc. | There is no fundamental difference between the two states (life and death) of the friends of Allah; this is why it is said that they do not die, but rather they move from one house to another house.

Allama Jalaluddin Suyuti (may Allah have mercy on him) has written several authentic narrations in 'Sharh al-Sudur' regarding the life after death of the noble saints (may Allah be pleased with them), which are quoted here: Imam Arif Billah Ustad Abu al-Qasim Qushayri (may his secret be sanctified), narrates in his treatise with his own chain from the famous saint Sayyiduna Abu Sa'id Kharraz (may Allah sanctify his noble secret) that: "I was in Makkah al-Mukarramah, and I found a young dead man at the gate of Bani Shaybah. When I looked at him, he smiled at me and said:

[Table Header] O Abu Sa'id! Do you not know that the beloveds are alive even if they die? They are only moved from one abode to another abode.[3] | O Abu Sa'id! Do you not know that the beloveds of Allah Almighty are alive even if they die? They are just changed from this one house to another house.

The same noble gentleman, Sayyidi Abu Ali (may his secret be sanctified), narrates: "I lowered a poor dervish into the grave. When I opened the shroud and placed his head on the dust so that Allah Almighty might have mercy on his poverty, the dervish opened his eyes and said to me: 'Ya Aba Ali, atudhilluni bayna yaday man yudaliluni' (O Abu Ali! Are you humiliating me before the One who pampers me?) I submitted: O my master! Is there life after death? He said: 'Bal ana hayyun wa kullu muhibbi Allahi hayyun, la-ansurannaka bijahi ghada'[4] (Rather, I am alive, and every beloved of God is alive; indeed, I will help you tomorrow on the Day of Judgment with the prestige and honor that I shall receive.)"

---

[1] Ashi'at al-Lam'at, Book of Jihad, Chapter on the Ruling of Captives, Tejkumar Press Lucknow, 3 / 402 [2] Mirqat Sharh Mishkat, Chapter of Friday, Third Section, Imdadia

Press Multan, 3 / 241 [3] Sharh al-Sudur, Chapter on Visiting Graves and Knowledge of the Dead, Khilafat Academy Mingora Swat, p. 86 [4] Sharh al-Sudur, Chapter on Visiting Graves and Knowledge of the Dead, Khilafat Academy Mingora Swat, p. 86

फतावा रज़विया, जिल्द 9

[तालिका शीर्षक] वे अपने रब के पास जीवित हैं, उन्हें रिज़्क दिया जाता है और वे खुशहाल हैं, और लोगों को इसका बोध नहीं है।[1] | वे कूच कर गए हैं और अपने परवरदिगार के पास ज़िंदा हैं, उन्हें रिज़्क दिया जाता है, वे खुश हाल हैं, और लोगों को उसका शुऊर (बोध) नहीं।

और अल्लामा अली क़ारी शरह मिश्कात में लिखते हैं:

[तालिका शीर्षक] उनके लिए दोनों हालतों (हयात व ममात) में अस्लन कोई फ़र्क नहीं है, इसीलिए कहा गया है कि अल्लाह के वली मरते नहीं बल्कि एक घर से दूसरे घर में तशरीफ़ ले जाते हैं।[2] आदि। | औलिया अल्लाह की दोनों हालतों (हयात व ममात) में अस्लन फ़र्क नहीं, इसीलिए कहा गया है कि वे मरते नहीं बल्कि एक घर से दूसरे घर में तशरीफ़ ले जाते हैं।

अल्लामा जलालुद्दीन सुयूती अलैहिर्रहमा ने शरह-उस-सुदूर में औलिया-ए-कराम अलैहिमुर्ज़िवान की हयात बाद ममात (मृत्यु के बाद का जीवन) के मुताल्लिक़ चंद रिवायात मुस्तनदा (प्रामाणिक कथाएँ) लिखी हैं जो यहाँ नक़्ल की जाती हैं: इमाम आरिफ़ बिल्लाह उस्ताद अबुल कासिम कुशैरी कुद्दिस सिर्रहु, अपने रिसाले में बसन्द-ए-खुद हज़रत वली मशहूर सय्यदना अबू सईद ख़र्राज़ कुद्दिस अल्लाहु सिर्रहु अल-मुमताज़ से रावी (वर्णनकर्ता) हैं कि: "मैं मक्का मुअज़्ज़मा में था, बाब-ए-बनी शैबा पर एक जवान मुर्दा पड़ा पाया, जब मैंने उसकी तरफ़ नज़र की तो मुझे देख कर मुस्कुराया और कहा:

[तालिका शीर्षक] ऐ अबू सईद! क्या तुम नहीं जानते कि महबूब (प्रियजन) जीवित हैं चाहे वे मर जाएँ? वे तो केवल एक घर से दूसरे घर में मुंतक़िल (स्थानांतरित) किए जाते हैं।[3] | ऐ अबू सईद! क्या तुम नहीं जानते कि अल्लाह तआला के प्यारे ज़िंदा हैं अगरचे मर जाएँ वे तो यही एक घर से दूसरे घर में बदल दिए जाते हैं।

वही आली जनाब हज़रत सय्यदी अबू अली कुद्दिस सिर्रहु से रावी हैं: "मैंने एक फ़कीर को क़ब्र में उतारा, जब कफ़न खोला तो उनका सर ख़ाक (मिट्टी) पर रख दिया ताकि अल्लाह तआला उनकी गुर्बत (निर्धनता) पर रहम करे। फ़कीर ने आँखें खोल दीं और मुझसे फ़रमाया: 'या अबा अली अतुज़िल्लुनी बैना यदयी मन युदल्लिलुनी' (ऐ अबू अली! तुम मुझे उसके सामने ज़लील करते हो जो मेरे नाज़ उठाता है?) मैंने अर्ज़ की: ऐ मेरे सरदार! क्या मौत के बाद भी ज़िन्दगी है? फ़रमाया: 'बल अना हय्युंव-व कुल्लू मुहिब्बी अल्लाहि हय्युन, ल-अनसुरन्नका बिजाही ग़दा'[4] (बल्कि मैं ज़िंदा हूँ, और

खुदा का हर प्यारा ज़िंदा है, बेशक वह वजाहत व इज़्ज़त जो मुझे रोज़-ए-क़यामत मिलेगी उससे मैं तेरी मदद करूँगा।)"

---

[1] अश्अतुल लम्आत किताबुल जिहाद बाब हुक्मुल इसरा मतबा तेजकुमार लखनऊ 3 / 402 [2] मिर्कात शरह मिश्कात बाबुल जुमुआ फ़स्ल-ए-सालिथ मतबा इमदादिया मुल्तान 3 / 241 [3] शरह-उस-सुदूर बाबु ज़ियारतुल कुबूर व इल्मुल मौता खिलाफ़त एकेडमी मिंगोरा स्वात पृ. 86 [4] शरह-उस-सुदूर बाबु ज़ियारतुल कुबूर व इल्मुल मौता खिलाफ़त एकेडमी मिंगोरा स्वात पृ. 86

جلد نہم فتاویٰ رضویہ

[Boxed Text] وزندہ اند نزد پروردگار خود، و مرزوق اند و خوشحال اند ، و مردم را ارزاں شعور نیست[1]۔ | کوچ کر گئے ہیں اور اپنے پروردگار کے پاس زندہ ہیں، انہیں رزق دیا جاتا ہے، وہ خوش حال ہیں، اور لوگوں کو اس کا شعور نہیں۔

اور علامہ علی قاری شرح مشکوۃ میں لکھتے ہیں :

[Boxed Text] لافرق لھم فی الحالین ولذا قیل اولیاء اللہ لایموتون ولکن ینتقلون من دارٍ الی دارٍ[2] الخ | اولیاء اللہ کی دونوں حالتوں (حیات وممات) میں اصلاً فرق نہیں اسی لیے کہا گیا ہے کہ وہ مرتے نہیں بلکہ ایک گھر سے دوسرے گھر میں تشریف لے جاتے ہیں۔

علامہ جلال الدین سیوطی علیہ الرحمۃ نے شرح الصدور میں اولیائے کرام علیہم الرضوان کی حیات بعد ممات کے متعلق چند روایات مستندہ لکھی ہیں جو یہاں نقل کی جاتی ہیں : امام عارف باللہ استاذ ابو القاسم قشیری قدہ سرہ، اپنے رسالے میں بسند خود حضرت ولی مشہور سیدنا ابو سعید خراز قدس اللہ سرہ المتاز سے روا ی ہے کہ میں مکہ معظمہ میں تھا، بابِ بنی شیبہ پر ایک جوان مُردہ پڑا پایا، جب میں نے اس کی طرف نظر کی تو مجھے دیکھ مسکرایا اور کہا :

[Boxed Text] یا ابا سعید اما علمت ان الاحباء احیاء وان ماتوا وانما ینقلون من دار الی دار[3]۔ | اے ابو سعید ! کیا تم نہیں جانتے کہ اللہ تعالیٰ کے پیارے زندہ ہیں اگر چہ مر جائیں، وہ تو یہی ایک گھر سے دوسرے گھر میں بد لائے جاتے ہیں۔

وہی عالی جناب حضرت سیدی ابو علی قدس سرہ، سے راوی ہیں: میں نے ایک فقیر کو قبر میں اتارا، جب کفن کھولا ان کا سر خاک پر رکھ دیا کہ اللہ تعالیٰ ان کی غربت پر رحم کرے۔ فقیر نے

آنکھیں کھول دیں اور مجھ سے فرمایا : یا ابا علی اتذللنی بین یدی من یدللنی (اے ابو علی ! تم مجھے اس کے سامنے ذلیل کرتے ہو جو میرے ناز اٹھاتا ہے) میں عرض کی: اے سردار میرے ! کیا موت کے بعد زندگی ہے؟ فرمایا : بل انا حی وکل محب اللہ حی لا نصر نك بجاھی غدا[4] (میں زندہ ہوں ، اور خدا کا ہر پیارا زندہ ہے، بیشک وہ وجاہت و عزت جو مجھے روزِ قیامت ملے گی اس سے میں تیری مدد کروں گا)

---

[1] اشعۃ اللمعات کتاب الجہاد باب حکم الاسراء مطبع تیج کمار لکھنو ۳ / ۴۰۲ [2] مرقاۃ شرح مشکوۃ باب الجمعۃ فصل الثالث مطبع امدادیہ ملتان ۳ / ۲۴۱ [3] شرح الصدور باب زیارۃ القبور و علم الموتی خلافت اکیڈمی منگورہ سوات ص ۸۶ [4] شرح الصدور باب زیارۃ القبور و علم الموتی خلافت اکیڈمی منگورہ سوات ص ۸۶

Fatawa Razawiyya, Volume 9

The same excellent personality narrates from Hazrat Ibrahim bin Shaiban (may his secret be sanctified): "A young disciple of mine passed away, which deeply grieved me. As I sat down to bathe the body, in my distress, I began from the left side. The young man shifted from that side and turned his right side towards me. I said: 'O beloved of my soul! You are right, I have made a mistake.'"[1]

The same Imam narrates from Hazrat Abu Yaqub Susi Nahrajuri (may his secret be sanctified): "I placed a disciple on a wooden board to bathe him. He grabbed my thumb. I said: 'O beloved of my soul! I know you are not dead; this is merely a change of abode. Now, let go of my hand.'"[2]

In Makkah Mukarramah, a disciple said to me: "Spiritual mentor! I shall pass away tomorrow at the time of Zuhr. Master, please take one Ashrafi (gold coin); use half for my burial and the other half for my shroud." When the next day came and the time for Zuhr arrived, the mentioned disciple came and performed Tawaf, then lay down away from the Ka'bah, and his soul departed. I lowered him into the grave. He opened his eyes. I asked: "Life after death?" He replied: "أَنَا حَيٌّ وَكُلُّ مُحِبِّ اللَّهِ حَيٌّ"[3] (I am alive, and every friend of Allah is alive).

Inappropriate actions cause distress to the deceased Muslims.

Even if the bodies of some common believers and remaining deceased do not stay intact, sitting on their graves, or even leaning on them, and the sound of shoes in the cemetery causes them distress. This matter is proven beyond doubt by authentic Hadiths. Hakim and Tabarani narrate from Amara bin Hazm (may Allah be pleased with him) that the Noble Prophet (may Allah's peace and blessings be upon him) saw me sitting on a grave and said:

"O person on the grave! Get down from the grave; do not cause distress to the inhabitant of the grave, nor will he cause it to you."[4]

Sa'id bin Mansur narrates in his Sunan: Someone asked Hazrat Sayyiduna Abdullah bin Mas'ud (may Allah be pleased with him) about the issue of stepping on a grave. He replied:

"Just as I dislike causing distress to a believer during his life, similarly..." ...I dislike it just as I dislike causing distress to a living Muslim.

[1] Sharh as-Sudur, Chapter on visiting graves and knowledge of the deceased, Khilafat Academy Swat, p. 86 [2] Sharh as-Sudur, Chapter on visiting graves and knowledge of the deceased, Khilafat Academy Swat, p. 86 [3] Sharh as-Sudur, Chapter on visiting graves and knowledge of the deceased, Khilafat Academy Swat, p. 86 [4] Sharh as-Sudur, citing at-Tabarani and al-Hakim, Chapter on causing distress through various means, Khilafat Academy Swat, p. 126

फ़तावा रज़विया, खंड 9

वही प्रतिष्ठित व्यक्तित्व हज़रत इब्राहिम बिन शैबान (क़ुद्दिस सिर्रहु) से वर्णन करते हैं: "मेरा एक युवा मुरीद (शिष्य) का इंतकाल हो गया, जिससे मुझे गहरा सदमा हुआ। जब मैं उसे नहलाने बैठा, तो घबराहट में बाईं ओर से शुरुआत कर दी। उस नौजवान ने करवट बदलकर अपनी दाईं करवट मेरी तरफ कर दी। मैंने कहा: 'ऐ जान-ए-पदर! तू सच कह रहा है, मुझसे गलती हो गई'।"[1]

वही इमाम, हज़रत अबू याक़ूब सूसी नहरजूरी (क़ुद्दिस सिर्रहु) से रिवायत करते हैं: "मैंने एक मुरीद को नहलाने के लिए तख़्ते पर लेटाया। उसने मेरा अंगूठा पकड़ लिया। मैंने कहा: 'ऐ जान-ए-पदर! मैं जानता हूँ कि तू मरा नहीं है, यह तो सिर्फ घर बदलना है, मेरा हाथ छोड़ दे'।"[2]

मक्का मुकर्रमा में एक मुरीद ने मुझसे कहा: "पीर-ओ-मुर्शिद! मैं कल ज़ोहर के वक़्त मर जाऊँगा। हुज़ूर, एक अशरफ़ी लें; आधी मेरे दफ़न में और आधी मेरे कफ़न में इस्तेमाल करें।" जब दूसरा दिन हुआ और ज़ोहर का वक़्त आया, तो उक्त मुरीद ने आकर तवाफ़ किया, फिर काबे से हटकर लेट गया और उसकी रूह निकल गई। मैंने उसे कब्र में उतारा। उसने अपनी आँखें खोल दीं। मैंने कहा: "क्या मौत के बाद ज़िंदगी?" उसने कहा: "[3]"أَنَا حَيٌّ وَكُلُّ مُحِبِّ اللَّهِ حَيٌّ। (मैं जीवित हूँ और अल्लाह का हर दोस्त जीवित है)।

अनुचित कार्यों से मृत मुसलमानों को कष्ट होता है।

और यद्यपि कुछ आम मोमिनों और अन्य मृतकों के शरीर सुरक्षित न रहते हों, फिर भी उनकी कब्रों पर बैठने, बल्कि उन पर सहारा लेने और कब्रिस्तान में जूतों की आवाज़ करने से उन्हें कष्ट होता है। यह बात सही हदीसों से निस्संदेह प्रमाणित है। हाकिम और तबरानी हज़रत अमारह बिन हज़म (रज़ियल्लाहु अन्हु) से रिवायत करते हैं कि हुज़ूर अकदस (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने मुझे एक कब्र पर बैठे देखा, तो फ़रमाया:

"ऐ कब्र वाले! कब्र से उतर आ, न तू कब्र वाले को तकलीफ़ पहुँचा और न वह तुझे।"[4]

सईद बिन मंसूर अपनी 'सुनन' में रिवायत करते हैं: किसी ने हज़रत सय्यदुना अब्दुल्लाह बिन मसऊद (रज़ियल्लाहु अन्हु) से कब्र पर पाँव रखने के मसले पर पूछा, तो उन्होंने फ़रमाया:

"जिस तरह मुझे जीवित मुसलमान को तकलीफ़ पहुँचाना नापसंद है, वैसे ही..." ...मुझे उसी तरह नापसंद है जैसे जीवित मुसलमान को कष्ट पहुँचाना।

[1] शरह अस-सुदूर, कब्रों की ज़ियारत और मृतकों के ज्ञान का अध्याय, खिलाफ़त एकेडमी स्वात, पृ. 86 [2] शरह अस-सुदूर, कब्रों की ज़ियारत और मृतकों के ज्ञान का अध्याय, खिलाफ़त एकेडमी स्वात, पृ. 86 [3] शरह अस-सुदूर, कब्रों की ज़ियारत और मृतकों के ज्ञान का अध्याय, खिलाफ़त एकेडमी स्वात, पृ. 86 [4] शरह अस-सुदूर, बहवाला तबरानी व हाकिम, कष्ट पहुँचाने के विभिन्न तरीकों का अध्याय, खिलाफ़त एकेडमी स्वात, पृ. 126

وہی جنان مستطاب حضرات ابراہیم بن شیبان قدس سرہ سے راوی: "میرا ایک مرید جوان فوت ہوگیا، مجھ کو سخت صدمہ ہوا، نہلانے بیٹھا، گھبراہٹ میں بائیں طرف سے ابتدا کی، جوان نے وہ کروٹ ہٹا کر اپنی دہنی کروٹ میری طرف کی، میں نے کہا: جان پدر! تو سچا ہے، مجھ سے غلطی ہوئی"۔[1]

وہی امام، حضرت ابویعقوب سوسی نہر جوری قدس سرہ سے راوی: "میں نے ایک مرید کو نہلانے کے لیے تختے پر لٹایا اس نے میرا انگوٹھا پکڑ لیا۔ میں نے کہا: جان پدر! میں جانتا ہوں کہ تو مردہ نہیں یہ تو صرف مکان بدلنا ہے، لے میرا ہاتھ چھوڑ دے"۔[2]

مکہ معظمہ میں ایک مرید نے مجھ سے کہا: پیر مرشد! میں کل ظہر کے وقت مر جاؤں گا، حضرت ایک اشرفی لیں، آدھی میں میرا دفن اور آدھی میں میرا کفن کریں۔ جب دوسرا دن ہوا اور ظہر کا وقت آیا مرید مذکور نے آکر طواف کیا، پھر کعبے سے ہٹ کر لیٹا تو روح نہ تھی، میں نے قبر میں اتارا۔ آنکھیں کھول دیں۔ میں نے کہا: کیا موت کے بعد زندگی؟ کہا: أَنَا حَيٌّ وَكُلُّ مُحِبِّ اللَّهِ حَيٌّ[3] (میں زندہ ہوں اور اللہ تعالیٰ کا ہر دوست زندہ ہے)۔

نامناسب افعال کرنے سے اموات مسلمین کو ایذا ہوتی ہے۔

اور بعض عامہ مومنین اور بقیہ اموات کے ابدان گو سلامت نہ رہتے ہوں تاہم ان کی قبور پر بیٹھنے بلکہ ان پر تکیہ لگانے اور قبرستان میں جوتوں کی آواز کرنے سے ان کو ایذا ہوتی ہے۔ احادیث صحیحہ سے یہ امر ثابت بلا ریب ہے۔ حاکم وطبرانی عمارہ بن حزم رضی اللہ تعالیٰ عنہ سے راوی ہے کہ حضور اقدس صلی اللہ علیہ وسلم نے مجھے ایک قبر پر بیٹھے دیکھا، فرمایا:

يَا صَاحِبَ الْقَبْرِ، انزل من على القبر لا تؤذي صاحب القبر ولا يؤذيك۔[4] / اور قبر والے! قبر سے اتر آ، نہ تو صاحب قبر کو ایذا دے نہ وہ تجھے۔

سعید بن منصور اپنی سنن میں راوی: کسی نے حضرت سیدنا عبداللہ بن مسعود رضی اللہ تعالیٰ عنہ سے قبر پر پاؤں رکھنے کا مسئلہ پوچھا، فرمایا:

کما اکرہ اذی المؤمن فی حیاتہ فانی / مجھ کو جس طرح مسلمان زندہ کی ایذا نا پسند ہے مجھ کو جس طرح مسلمان زندہ کی ایذا ناپسند ہے۔

---

[1] شرح الصدور باب زیارۃ القبور و علم الموتی خلافت اکیڈمی سوات ص ۸۶ [2] شرح الصدور باب زیارۃ القبور و علم الموتی خلافت اکیڈمی سوات ص ۸۶ [3] شرح الصدور باب زیارۃ القبور و علم الموتی خلافت اکیڈمی سوات ص ۸۶ [4] شرح الصدور بحوالہ الطبرانی والحاکم باب تاذیہ بسائر وجوہ الاذی خلافت اکیڈمی سوات ص ۱۲۶

Fatawa Ridawiyya Volume 9

Heading: It is disliked to hurt him after his death. / Similarly for the deceased.

Imam Ahmad (Mercy of Allah be upon him) narrates with a good chain from Hazrat Amr bin Hazm (Allah be pleased with him): The Master of the Universe (Peace and blessings of Allah be upon him) saw me leaning against a grave and said: "Do not hurt the occupant of this grave" or said: "Do not cause him pain". The experience of this hurt was also gained by the great Tabi'un and other scholars who were people of insight. Ibn Abi ad-Dunya narrates from Abu Qilaba al-Basri: I was traveling from Syria to Basra, I stopped in a trench at night, performed ablution, prayed two rak'ahs, then fell asleep with my head on a grave. When I woke up, I saw the occupant of the grave complaining to me and saying: "You have hurt me throughout the night". Imam Bayhaqi in 'Dala'il al-Nubuwwah' and Ibn Abi ad-Dunya narrate from Hazrat Abu Uthman al-Nahdi, who narrates from Ibn Bayna al-Tabi'i: I went to a graveyard, prayed two rak'ahs and lay down. By Allah, I was wide awake when I heard someone from inside a grave saying: "Get up, for you have hurt me". Hafiz Ibn Manda narrates from Imam Qasim bin Mukhaymara (Mercy of Allah be upon him): "If I were to walk on burning coals so that they pierce through my feet, it would be dearer to me than walking on a grave." A person stepped on a grave and heard while awake: "Get away from me, O man! Do not hurt me." And Allama Shurunbulali writes in 'Maraqi al-Falah':

- My teacher, Allama Muhammad bin Ahmad al-Hanafi (Mercy of Allah be upon him) informed me that they (the deceased) are hurt by the sound of footwear.

Footnotes: 1. Sharh as-Sudur with reference to Sa'id bin Mansur, Chapter: Hurting by all types of harm, Khilafat Academy Swat, p. 126. 2. Mishkat al-Masabih with reference to Ahmad from Amr bin Hazm, Chapter: Burial of the dead, Mujtabai Press Delhi, p. 148. 3. Sharh as-Sudur with reference to Ibn Abi ad-Dunya from Abu Qilaba, Chapter: What benefits the dead in their grave, Khilafat Academy Swat, p. 128. 4. Dala'il al-Nubuwwah by Al-Bayhaqi, Chapter: What has been narrated about a man hearing the occupant of a grave, Dar al-Kutub al-Ilmiyyah Beirut, 7/401. 5. Sharh as-Sudur with reference to Ibn Manda from al-Qasim, Section: Hurting by all types of harm, Khilafat Academy Swat, p. 126. 6. Maraqi al-Falah on the margins of Hashiyah al-Tahtawi, Section on visiting graves, Nur Muhammad Factory Trade of Books Karachi, p. 344.

फ़तावा रज़विया जिल्द 9

शीर्षक: उनकी मृत्यु के बाद उन्हें कष्ट देना नापसंद है। / इसी तरह मृत व्यक्ति के लिए।

इमाम अहमद (अल्लाह उन पर रहम करे) हज़रत अम्र बिन हज़म (अल्लाह उन से राज़ी हो) के हवाले से एक अच्छी सनद के साथ रिवायत करते हैं: सय्यद-ए-आलम (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने मुझे एक कब्र का तकिया लगाए देखा, तो फरमाया: "इस कब्र वाले को ईज़ा (तकलीफ) न दे" या फरमाया: "उसे तकलीफ न पहुँचा"। इस ईज़ा का तजुर्बा उन बड़े ताबईन और दूसरे उलेमा-ए-किराम ने भी किया है जो बसीरत (अंतर्दृष्टि) वाले थे। इब्न अबी अदुनिया, अबू क़िलाबा अल-बसरी से रिवायत करते हैं: मैं मुल्क-ए-शाम से बसरा जा रहा था, रात को एक खंदक में उतरा, वूज़ू किया, दो रकअत नमाज़ पढ़ी, फिर एक कब्र पर सिर रखकर सो गया। जब मैं जागा तो देखा कि कब्र वाला मुझसे शिकायत कर रहा है और कह रहा है: "तूने मुझे पूरी रात ईज़ा दी"। इमाम बैहक़ी 'दलाईल-उन-नबुव्वह' में और इब्न अबी अदुनिया हज़रत अबू उस्मान अल-नहदी से, और वह इब्न बैना ताबिई से रिवायत करते हैं: मैं एक कब्रिस्तान में गया, दो रकअत पढ़कर लेट गया, खुदा की कसम मैं पूरी तरह जाग रहा था जब मैंने कब्र से किसी को यह कहते हुए सुना: "खड़ा हो जा क्योंकि तूने मुझे ईज़ा दी है"। हाफ़िज़ इब्न मंदा, इमाम क़ासिम बिन मुख़ैमिरा (अल्लाह उन पर रहम करे) से रिवायत करते हैं: "अगर मैं जलते हुए कोयलों पर पैर रखूँ कि वे मेरे पैरों के पार हो जाएँ तो यह मुझे कब्र पर पैर रखने से ज़्यादा पसंद है।" एक व्यक्ति ने कब्र पर पैर रखा, उसने जागते हुए सुना: "मुझसे दूर हट जा ऐ आदमी! मुझे ईज़ा न दे।" और अल्लामा शुरुनबुलाली 'मराक़ी अल-फ़लाह' में लिखते हैं:

- मेरे उस्ताद अल्लामा मुहम्मद बिन अहमद अल-हनफ़ी (अल्लाह उन पर रहम करे) ने मुझे बताया कि उन्हें (मृतकों को) जूतों की चाप से ईज़ा पहुँचती है।

पाद टिप्पणियाँ: 1. शरहुस सुदूर, सईद बिन मंसूर के हवाले से, अध्याय: सभी प्रकार के कष्टों द्वारा ईज़ा पहुँचाना, खिलाफत अकादमी स्वात, पृ. 126। 2. मिश्कातुल मसाबीह, अहमद के हवाले से, अम्र बिन हज़म से, अध्याय: मृतक का दफ़न, मुजतबाई प्रेस दिल्ली, पृ. 148। 3. शरहुस सुदूर, इब्न अबी अदुनिया के हवाले से, अबू क़िलाबा से, अध्याय: कब्र में मृतक को क्या लाभ पहुँचाता है, खिलाफत अकादमी स्वात, पृ. 128। 4. दलाईल-उन-नबुव्वह लिल-बैहक़ी, अध्याय: उस आदमी के बारे में रिवायत जिसने कब्र वाले को सुना, दार अल-कुतुब अल-इल्मिया बेरुत, 7/401। 5. शरहुस सुदूर, इब्न मंदा के हवाले से, अल-कासिम से, अनुभाग: सभी प्रकार के कष्टों द्वारा ईज़ा पहुँचाना,

खिलाफत अकादमी स्वात, पृ. 126। 6. मराक़ी अल-फ़लाह, हाशया अल-तहतावी के हाशिये पर, कब्रों की ज़ियारत का अनुभाग, नूर मुहम्मद कारख़ाना तिज़ारत-ए-कुतुब कराची, पृ. 344।

فتاوی رضویہ جلد نہم

۱ اکرہ اذاہ بعد موتہ ۱ یوں ہی مردہ کی۔

امام احمد علیہ الرحمہ بسند حسن انہیں حضرت عمر بن حزم رضی اللہ تعالیٰ عنہ سے راوی: سید عالم صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم نے مجھے ایک قبر سے تکیہ لگائے دیکھا، فرمایا: لا تؤذی صاحب ھذا القبر (اس قبر والے کو ایذا نہ دے) یا فرمایا: لا تؤذہ ۲ (اسے تکلیف نہ پہنچا) اس ایذا کا تجربہ بھی تابعین عظام اور دوسرے علماء کرام نے جو صاحب بصیرت تھے کر لیا ہے۔ ابن ابی الدنیا ابو قلابہ بصری سے راوی: میں ملک شام سے بصرہ کو جاتا تھا، رات کو خندق میں اترا، وضو کیا، دو رکعت نماز پڑھی، پھر ایک قبر پر سر رکھ کر سو گیا، جب جاگا تو صاحب قبر کو دیکھا کہ مجھ سے گلہ کرتا ہے اور کہتا ہے: لقد اذیتنی منذ اللیلۃ ۳ (اے شخص! تو نے مجھ کو رات بھر ایذا دی)۔ امام بیہقی دلائل النبوۃ میں اور ابن ابی الدنیا حضرت ابو عثمان نہدی سے، وہ ابن بینا تابعی سے راوی:، میں مقبرے میں گیا، دو رکعت پڑھ کر لیٹ گیا، خدا کی قسم میں خوب جاگ رہا تھا کہ سنا کوئی شخص قبر میں سے کہتا ہے: قم فقد اذیتنی ۴ (اٹھ کہ تو نے مجھ کو ایذا دی)۔ حافظ ابن مندہ امام قاسم بن مخیمرہ رحمۃ اللہ تعالیٰ علیہ سے راوی: "اگر میں تپائی بھال پر پاؤں رکھوں کہ میرے قدم سے پار ہو جائے تو یہ مجھ کو زیادہ پسند ہے اس سے کہ قبر پر پاؤں رکھوں۔" ایک شخص نے قبر پر پاؤں رکھا، جاگتے میں سنا: الیک عنی یار جل لا تؤذینی ۵ (اے شخص! الگ ہٹ مجھے ایذا نہ دے)۔ اور علامہ شربنبلالی مراقی الفلاح میں لکھتے ہیں:

• اخبرنی شیخی العلامۃ محمد بن احمد الحموی الحنفی رحمہ اللہ تعالی بانھم یتأذون بخفق النعال۔

(مجھ کو میرے استاذ علامہ محمد بن احمد حنفی رحمۃ اللہ تعالیٰ نے خبر دی کہ جوتے کی پپل سے مردے کو ایذا ہوتی ہے۔)

۱ شرح الصدور بحوالہ سعید بن منصور باب تأذیہ بسائر وجوہ الاذی خلافت اکیڈمی سوات ص ۱۲۶

۲ مشکوۃ المصابیح بحوالہ حم عن عمر و بن حزم باب دفن المیت مطبع مجتبائی دہلی ص ۱۴۸ ۳

شرح الصدور بحوالہ ابن ابی الدنیا عن ابی قلابہ باب ینفع المیت فی قبرہ خلافت اکیڈمی سوات ص

۱۲۸ ۴ دلائل النبوۃ للبیہقی باب ماجاء فی الرجل سمع صاحب القبر دار الکتب العلمیۃ بیروت ۷ /

۴۰۱ ۵ شرح الصدور بحوالہ ابن مندہ عن القاسم فصل تأذیہ بسائر وجوہ الاذی خلافت اکیڈمی سوات

ص ۱۲۶ ۶ مراقی الفلاح علی ہامش حاشیۃ الطحطاوی فصل فی زیارۃ القبور نور محمد کارخانہ

تجارت کتب کراچی ص ۳۴۴

Fatawa Razvia Volume 9

For this reason, our noble Hanafi jurists (may Allah have mercy on them) state: "Building a house to live on a grave, or sitting on a grave, or sleeping on it, or urinating and defecating on it or near it—all these matters are severely disliked, close to being forbidden (haram)." It is stated in Fatawa 'Alamgiri:

[Arabic Box 1] It is disliked (makruh) to build over the grave, sit on it, sleep on it, tread on it, or for a person to relieve themselves through urination or defecation. (etc.) [Translation]: Building a structure on a grave, sitting, sleeping, trampling, urinating, or defecating on it is disliked.

Allama Shami states the reason for this in the margins of Durr-ul-Mukhtar:

[Arabic Box 2] Because the deceased is pained by that which pains the living. [Translation]: Meaning, because what causes distress to the living also causes distress to the deceased.

In fact, Daylami has narrated this principle from the Mother of the Believers, Hazrat Siddiqah (may Allah be pleased with her), that the Master of the World (peace and blessings of Allah be upon him) said:

[Arabic Box 3] The deceased is pained in their grave by that which pained them in their house. [Translation]: Whatever causes distress to the deceased in their home, they are also distressed by it in the grave.

Ibn Abi Shaybah narrates in his Musannaf from Sayyiduna Abdullah ibn Mas'ud (may Allah be pleased with him):

[Arabic Box 4] Hurting a believer after their death is like hurting them during their life. [Translation]: Causing pain to a Muslim after death is just like causing them pain during their lifetime.

And it is clearer than the sun that digging up graves and building houses on them to live in involves all these matters, which certainly constitutes disrespect to the inhabitants of the graves and causes them pain. This is absolutely not permissible in our Hanafi school of thought. If an objector says that Allama Zayla'i writes in Sharh Kanz:

---

1. Fatawa Hindiyyah, Al-Fasl al-Sadis fi al-Qabr wa al-Dafn, Noorani Kutub Khana Peshawar, 1/166

2. Radd al-Muhtar, Fasl al-Istinja, Idarat al-Tiba'at al-Misriyyah Egypt, 1/229
3. Al-Firdaus bi-Ma'thur al-Khitab, Hadith 457, Dar al-Kutub al-Ilmiyyah Beirut, 1/199
4. Sharh al-Sudur with reference to Ibn Abi Shaybah, Bab Ta'ziyah bi-Sa'ir Wujuh al-Adha, Khilafat Academy Swat, p. 126

फ़तावा रज़विया जिल्द नहम

इसी वजह से हमारे हनफी फ़ुक़हा (अल्लाह उन पर रहमत फ़रमाए) फ़रमाते हैं कि: "क़ब्र पर रहने के लिए घर बनाना, या क़ब्र पर बैठना, या सोना, या उस पर या उसके करीब पेशाब-पाख़ाना करना ये सब बातें सख़्त नापसंदीदा (मक़रूहे तहरीमी) और हराम के करीब हैं।" फ़तावा आलमगीरी में है:

[अरबी बॉक्स 1] क़ब्र पर इमारत बनाना, बैठना, सोना, पाँव से रोंदना, पेशाब या पाख़ाना करना मक़रूह है।

अल्लामा शामी इसके सुबूत में 'हाशिया दुर्रे मुख़्तार' में फ़रमाते हैं:

[अरबी बॉक्स 2] क्योंकि मुर्दे को उसी चीज़ से तकलीफ़ होती है जिससे ज़िंदा को होती है। [अनुवाद]: यानी इसलिए कि जिससे ज़िन्दों को तकलीफ़ होती है उससे मुर्दे भी तकलीफ़ पाते हैं।

बल्कि दैलमी ने उम्मुल मोमिनीन हज़रत सिद्दीक़ा (रज़ियल्लाहु तआला अन्हा) से इस नियम को स्पष्ट रूप से रिवायत किया कि सरवरे आलम (सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम) ने फ़रमाया:

[अरबी बॉक्स 3] मय्यत को जिस बात से घर में तकलीफ़ होती है, क़ब्र में भी उसी से तकलीफ़ होती है। [अनुवाद]: मय्यत को जिस बात से घर में तकलीफ़ होती है क़ब्र में भी उससे तकलीफ़ पाता है।

इब्न अबी शैबा अपनी 'मुसन्नफ़' में सैयदुना अब्दुल्लाह इब्न मसऊद (रज़ियल्लाहु तआला अन्हु) से रिवायत करते हैं:

[अरबी बॉक्स 4] मुसलमान को मौत के बाद तकलीफ़ देनी ऐसी ही है जैसे उसकी ज़िंदगी में उसे तकलीफ़ पहुँचाई। [अनुवाद]: मुसलमान को मौत के बाद तकलीफ़ देना ऐसा ही है जैसे ज़िंदगी में उसे तकलीफ़ पहुँचाई।

और यह सूरज की तरह साफ़ है कि क़ब्रों को खोदकर उन पर रहने के लिए मकान बनाया जाए तो उसमें ये सब बातें मौजूद हैं, जिससे यक़ीनन क़ब्र वालों की तौहीन होती है और उन्हें अज़ीयत (तकलीफ़) पहुँचती है। जो हमारे हनफी मज़हब में हरगिज़ जायज़ नहीं है। अगर कोई एतराज़ करने वाला कहे कि 'शरह कंज़' में अल्लामा ज़ैलई लिखते हैं:

---

1. फ़तावा हिंदिया, अल-फ़सल अस-सादिम फ़िल क़ब्र वद-दफ़न, नूरानी कुतुब ख़ाना पेशावर, 1/166

2. रद उल-मुह्तार, फ़सल अल-इस्तिंजा, इदारत अल-तिबाअत अल-मिस्रिया मिस्र, 1/229
3. अल-फ़िरदौस बि-मासूर अल-ख़िताब, हदीस 457, दार अल-कुतुब अल-इल्मिया बेरूत, 1/199
4. शरह अस-सुदूर बहवाला इब्न अबी शैबा, बाब ताज़िया बि-सायर वुजूह अल-अज़ा, ख़िलाफ़त एकेडमी स्वात, पृ. 126

فتاوٰی رضویہ جلد نہم

اسی واسطے ہمارے فقہائے کرام احناف علیہم الرحمۃ فرماتے ہیں کہ : "قبر پر رہنے کو مکان بنانا، یا قبر پر بیٹھنا، یا سونا، یا اس پر یا اس کے نزدیک بول وبراز کرنا یہ سب امور اشد مکروہ قریب بحرام ہیں۔" فتاوٰی عالمگیری میں ہے :

[عربی باکس 1] ویکرہ ان یبنی علی القبر اویقعد اوینام علیہ اویطأ علیہ اویقضی حاجۃ الانسان من بول اوغائط 1۔ الخ قبر پر عمارت بنانا، بیٹھنا، سونا، روندنا، بول وبراز کرنا مکروہ ہے۔

علامہ شامی اس کی دلیل میں حاشیہ در مختار میں فرماتے ہیں:

[عربی باکس 2] لان المیت یتاذی بما یتاذی بہ الحی 2۔ یعنی اس لیے کہ جس سے زندوں کو اذیت ہوتی ہے اس سے مردے بھی ایذا پاتے ہیں۔

بلکہ دیلمی نے ام المومنین حضرت صدیقہ رضی اللہ تعالٰی عنہا سے اس کلیے کی تصریح روایت کی کہ سرور عالم صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم نے فرمایا:

[عربی باکس 3] المیت یؤذیہ فی قبرہ مایؤذیہ فی بیتہ 3۔ میت کو جس بات سے گھر میں ایذا ہوتی ہے قبر میں بھی اس سے ایذا پاتا ہے۔

ابن ابی شیبہ اپنی مصنف میں سیدنا عبداللہ ابن مسعود رضی اللہ تعالٰی عنہ سے راوی:

[عربی باکس 4] اذی المؤمن فی موتہ کاذہ فی حیاتہ 4۔ مسلمان کو بعد موت تکلیف دینی ایسی ہی ہے جیسے زندگی میں اسے تکلیف پہنچائی۔

اور اظہر من الشمس ہے کہ قبور کو کھود کر ان پر رہنے کو مکان بنایا تو اس میں یہ سب امور موجود ہیں، جس سے یقینا اہل قبور کی توہین ہوتی ہے اور ان کو ایذا دینا ہے۔ جو ہرگز ہمارے حنفی مذہب میں جائز نہیں ہے۔ اگر کوئی معترض کہے کہ شرح کنز میں علامہ زیلعی لکھتے ہیں :

---

1 فتاویٰ ہندیہ الفصل السادس فی القبر والدفن نورانی کتب خانہ پشاور ۱/ ۱۶۶ 2 ردالمحتار فصل الاستنجاء ادارۃ الطباعۃ المصریہ مصر ۱/ ۲۲۹ 3 الفردوس بماثور الخطاب حدیث ۴۵۷ دارالکتب العلمیہ بیروت ۱۹۹/۱ 4 شرح الصدور بحوالہ ابن ابی شیبہ باب تاذیہ بسائر وجوہ الاذی خلافت اکیڈمی سوات ص ۱۲۶

Fatawa Rizvia, Volume 9

“Even if the deceased has decomposed and become dust, it is permissible to bury another in their grave, to farm on it, and to build over it.”[1]

Translation: If the deceased becomes old and mixes with the soil, then it is permissible to bury another in that grave, to do farming, and to build a structure on it.

The first response to this is that this statement of Allama Zaylai contradicts the aforementioned hadiths and recorded reports, therefore it is not acceptable. Secondly, Allama Shurunbulali in ‘Imdad al-Fattah’ has rejected this statement of Allama Zaylai with a conflicting report; hence, it is not to be followed.

“It is stated in Al-Imdad, and what is in At-Tatarkhaniyah contradicts it: if the deceased becomes dust in the grave, it is disliked to bury another in their grave because the sanctity remains etc.”[2]

Translation: In Imdad al-Fattah it is stated, and in Tatarkhaniyah it is the opposite; meaning even when the deceased has decomposed and become soil in the grave, burying another in their grave is disliked as it is against their honor and sanctity, for the honor and sanctity of this deceased still remains, etc.

And supporting this is the reason written by Allama Nabulsi (may Allah have mercy on him) in ‘Al-Hadiqa an-Nadiyya’, a commentary on ‘Al-Tariqa al-Muhammadiyya’:

“Its meaning is that souls know about the lack of maintaining sanctity and about the disrespect, so they are pained by that.”[3]

Translation: Meaning, the harm caused to the people of the graves by leaning on a grave means that the souls know that one has fallen short in honoring them, hence they suffer pain.

And Sheikh al-Hind (may Allah have mercy on him) writes in ‘Sharh al-Mishkat’:

“Perhaps the meaning is that their soul is unhappy and does not consent to leaning on their grave due to the insult and belittlement it contains.”[4]

Translation: This likely means that their soul is unhappy with leaning on the grave because it is an insult to them.

When leaning on a grave is an insult to the people of the graves and their dishonoring and lack of reverence, then farming on it or building a house on it would, by greater degree, be their insult. Thirdly, we object here...

---

1. Tabyin al-Haqa’iq, Chapter: As-Sultan Ahaqqu bis-Salah, Matba'ah Kubra Amiriyyah, Egypt, 1/266
2. Radd al-Muhtar with reference to Al-Imdad, Chapter: Salatul Jana'iz, Idaratul Taba'at al-Misriyyah, Egypt, 1/599
3. Al-Hadiqa an-Nadiyya Sharh al-Tariqa al-Muhammadiyya, Vol 8, Maktaba Nooria Rizvia, Faisalabad, 2/505
4. Ash’at al-Lam’at, Chapter on Burial, Section 3, Maktaba Nooria Rizvia, Sukkur, 1/699

फ़तावा रिज़विया, जिल्द 9

“यदि मृत व्यक्ति सड़-गल कर मिट्टी हो गया हो, तो उसकी कब्र में किसी अन्य को दफ़नाना, खेती करना और उस पर इमारत बनाना जायज़ है।”[1]

अनुवाद: अगर मय्यित पुरानी हो जाए और मिट्टी में मिल जाए तो दूसरे को उस कब्र में दफ़न करना, खेती-बाड़ी करना और उस पर इमारत बनाना जायज़ है।

इसका पहला उत्तर यह है कि अल्लामा ज़ैली का यह कथन वर्णित हदीसों और उल्लेखित रिवायतों के विरुद्ध है, इसलिए स्वीकार्य नहीं है। और दूसरा यह कि अल्लामा शुरुनबुलाली ने ‘इमदाद अल-फ़त्ताह’ में अल्लामा ज़ैली के इस कथन को दूसरी विरोधाभासी रिवायत से रद्द कर दिया है, इसलिए यह पालन योग्य नहीं है।

“इमदाद में फ़रमाया और तातारख़ानिया में इसके विपरीत है: जब कब्र में मृत व्यक्ति मिट्टी हो जाए, तो उसकी कब्र में किसी अन्य को दफ़नाना मकरूह है क्योंकि गरिमा बनी रहती है इत्यादि।”[2]

अनुवाद: इमदाद अल-फ़त्ताह में फ़रमाया और तातारख़ानिया में इसके विपरीत है, यानी जब कब्र में मय्यित गल कर मिट्टी भी हो जाए, तब भी उसकी कब्र में किसी और को दफ़न करना मकरूह है क्योंकि यह उसकी ताज़ीम (सम्मान) और हुरमत (मर्यादा) के ख़िलाफ़ है, क्योंकि उस मय्यित की ताज़ीम और हुरमत अब भी बाकी है इत्यादि।

और इसका समर्थन वह कारण करता है जो अल्लामा नाबुलसी (रहमतुल्लाह अलैहि) ने ‘हदीक़ा नदिया शरह तरीक़ा मुहम्मदिया’ में लिखा है:

“इसका अर्थ यह है कि रूहें सम्मान की कमी और अपमान के बारे में जान लेती हैं, इसलिए उन्हें इससे दुःख होता है।”[3]

अनुवाद: यानी कब्र पर सहारा लगाने से कब्र वालों को जो कष्ट होता है, उसका अर्थ यह है कि रूहें जान लेती हैं कि इसने हमारे सम्मान में कमी की है, इसलिए वे कष्ट पाती हैं।

और शेख़ुल हिंद (रहमतुल्लाह अलैहि) ‘शरह मिश्कात’ में लिखते हैं:

“शायद इससे अभिप्राय यह है कि उसकी रूह कब्र पर सहारा लेने से नाखुश होती है और सहमत नहीं होती, क्योंकि इसमें उसका अपमान और तिरस्कार निहित है।”[4]

अनुवाद: इससे मुराद संभवतः यह है कि उसकी रूह कब्र पर सहारा लेने से अप्रसन्न होती है क्योंकि इसमें उसकी तौहीन (अपमान) है।

जब कब्र पर सहारा लगाने से कब्र वालों का अपमान होता है और उनके सम्मान में कमी आती है, तो उस पर खेती करने और उस पर मकान बनाने से तो और भी अधिक उनका अपमान होगा। और तीसरा यह कि हम यहाँ आपत्ति...

---

1. तब्यीन अल-हक़ाएक़, फ़स्ल अल-सुल्तान अहक़्क़ु बिस-सलाह, मतबा कुबरा अमीरिया, मिस्र, 1/266
2. रद्द अल-मुह्तार ब-हवाला अल-इमदाद, बाब सलातुल जनाइज़, इदारतुल तबात अल-मिसरिया, मिस्र, 1/599
3. अल-हदीक़ा अन-नदिया शरह अल-तरीक़ा अल-मुहम्मदिया, भाग 8, मकतबा नूरिया रिज़विया, फैसलाबाद, 2/505
4. अशअतुल लमआत, बाब अल-दफ़्न, फ़स्ल 3, मकतबा नूरिया रिज़विया, सक्खर, 1/699

पृष्ठ 438/948

فتاویٰ رضویہ، جلد نہم

ولو بلی المیت وصار تراباً جاز دفن غیرہ فی قبرہ وزرعہ والبناء علیہ[1]۔ اگر میت پرانی ہوجائے اور مٹی میں مل جائے تو دوسرے کو اس قبر میں دفن کرنا، کھیتی باڑی کرنا اور اس پر عمارت بنانا جائز ہے۔

تو جواب اس کا اولاً یہ ہے کہ یہ قول علامہ زیلعی کا احادیث مذکورہ اور روایات مسطورہ کے معارض ہے لہٰذا قابل قبول نہیں ہے، اور ثانیاً یہ کہ علامہ شرنبلالی نے امداد الفتاح میں علامہ زیلعی کے اس قول کو رد کردیا ہے دوسری روایت معارضہ سے، پس قابل تعمیل نہیں۔

قال في الامداد ویخالفه ما فی التتار خانیۃ اذا صار المیت تراباً في القبر یکرہ دفن غیرہ في قبرہ لان الحرمۃ باقیۃ[2] الخ۔ امدادالفتاح میں فرمایا اور تاتارخانیہ میں اس کے برعکس ہے، یعنی جب قبر میں میت گل کر مٹی بھی ہوجائے تب بھی اس کی قبر میں غیر کو دفن کرنا مکروہ ہے کہ اس کی تعظیم و حرمت کے خلاف ہے کہ اس میت کی تعظیم و حرمت اب بھی باقی ہے الخ۔

اور مؤید ہے اس کی وجہ جو علامہ نابلسی علیہ الرحمۃ نے حدیقہ ندیہ شرح طریقہ محمدیہ میں لکھا ہے:

معناہ ان الارواح تعلم بترك اقامۃ الحرمۃ وبالاستهانۃ فتأذی بذلك[3]۔ یعنی قبر پر تکیہ لگانے سے جو اہل قبور کو ایذا ہوتی ہے اس کے یہ معنی ہیں کہ روحیں جان لیتی ہیں کہ اس نے ہماری تعظیم میں قصور کیا، لہٰذا ایذا پاتی ہیں۔

اور شیخ الہند علیہ الرحمۃ شرح مشکوٰۃ میں لکھتے ہیں:

شاید کہ مراد آنست کہ روح وے ناخوش میدارد وراضی نیست بتکیہ کردن بر قبر وے از جہت تضمن وے اہانت واستخفاف را بوے[4]۔ اس سے مراد غالباً یہ ہے کہ اس کی روح قبر پر تکیہ لگانے سے ناخوش ہوتی ہے کیونکہ اس میں اس کی توہین ہے۔

جب قبر پر تکیہ لگانے سے اہل قبور کی اہانت ہوتی اور ان کی توہین اور ان کی ترک تعظیم ہوتی ہے۔ تو اس پر کھیتی کرنے سے اور اس پر مکان بنانے سے تو بطریق اولیٰ ان کی توہین ہوگی، اور ثالثاً یہ کہ ہم یہاں معترض

1۔ تبیین الحقائق فصل السلطان احق بصلوۃ مطبعۃ کبری امیریہ مصر 1 / 266 2۔ ردالمحتار بحوالہ الامداد باب صلوۃ الجنائز ادارۃ الطباعۃ المصریۃ مصر 1 / 599 3۔ الحدیقۃ الندیۃ شرح الطریقۃ المحمدیۃ النصف الثامن الخ مکتبہ نوریہ رضویہ فیصل آباد 2 / 505 4۔ اشعۃ اللمعات باب الدفن فصل الثالث مکتبہ نوریہ رضویہ سکھر 1 / 699

Fatawa Razawiyya Volume 9

We ask those of Najdi ideology, how did it become known to you that the deceased has turned completely into dust and even their bones do not remain? Because the grave has not been dug yet, nor has any specific time been prescribed in the Quran and Hadith for the deceased's body to turn into dust, that after such a duration even the bones turn into soil. Rather, it has been observed through experience many times that if a place is dug in the outskirts of some very old settlement, graves are discovered in which bones (and even the bodies of some) were still intact and safe. Through inscriptions, graves were found to be three to four centuries old. Therefore, to commit a forbidden act based on some vague narration without evidence or Sharia necessity is not permissible at all. If the objector returns and says that in great cities like Mumbai etc., graves are dug and other deceased are buried in them, so if digging graves is an insult to the deceased, why does this happen in those cities? The answer to this is that space is very tight in those cities; graveyards do not have enough expanse for every deceased to have a separate grave. Therefore, due to this severe necessity, it is permissible as per the agreed-upon rule: "Necessities make prohibited things permissible" (forbidden things become permissible at the time of necessity). It is mentioned in 'Kabiri Sharh Munyah':

Arabic Text	**Urdu Translation**
A grave shall not be dug to bury another until the first has decayed such that no bone remains, except in case of necessity when no other place is found besides it ^1 etc.	A grave should not be dug for burying another deceased until the first deceased has decayed to the point that their bones no longer remain, except at the time of necessity when no other place is available, etc. (t)

A grave should not be dug for burying another deceased until the first deceased has decayed to the point that their bones no longer remain, except at the time of necessity when no other place is available, etc. (t)

Arabic Text	**Urdu Translation**
This is what I hold, and the most perfect knowledge is with my Lord. It was spoken by him and ordered to be recorded by the humble servant Muhammad Umaruddin al-Sunni al-Hanafi al-Qadri al-Hazarwi, may Allah Almighty forgive him.	This is my research, and complete knowledge is with my Lord. This fatwa was spoken by his own tongue and ordered to be written by the humble servant Muhammad Umar Din Sunni

Arabic Text	Urdu Translation
	Hanafi Qadri Hazarwi (may Allah Almighty forgive him). (t)

Whatever the intelligent respondent has written is right and correct; accordingly, it is stated in 'Khizanat-ul-Riwayah':

Arabic Text	Urdu Translation
In 'Mufid al-Mustafid' from 'Mafatih al-Masa'il'	It is in 'Mufid al-Mustafid' from 'Mafatih al-Masa'il' that when a grave...

---

^1 Ghunyat-ul-Mustamli Sharh Munyat-ul-Musalli, Chapter on Funerals, Suhail Academy Lahore, p. 707

फ़तावा रज़विया जिल्द 9

हम नजदी विचारधारा वालों से पूछते हैं कि तुम्हें कैसे पता चला कि मृत व्यक्ति पूरी तरह मिट्टी हो गया है और उसकी हड्डियाँ भी शेष नहीं रहीं? क्योंकि कब्र अभी तक खोदी नहीं गई है और न ही मृत व्यक्ति के मिट्टी होने का कोई समय कुरान और हदीस में निर्धारित किया गया है कि इतने समय के बाद मृत की हड्डियाँ भी मिट्टी हो जाती हैं। बल्कि अनुभव से कई बार देखा गया है कि किसी बहुत पुरानी बस्ती के बाहरी इलाकों में अगर कोई जगह खोदी जाए, तो वहां कब्रें निकलती हैं जिनमें हड्डियाँ (बल्कि कुछ के शरीर भी) अब तक सही और सलामत थीं। शिलालेखों से तीन-तीन, चार-चार सदियों पुरानी कब्रें पता चलती थीं, तो बिना प्रमाण और बिना शरीयत की आवश्यकता के किसी अस्पष्ट रिवायत के आधार पर किसी निषिद्ध कार्य को करना कदापि जायज नहीं है। यदि आपत्ति करने वाला फिर लौट आए और कहे कि मुंबई आदि बड़े शहरों में कब्रें खोदकर उनमें दूसरे मृतकों को दफनाया जाता है, तो अगर कब्र खोदने से मृतकों का अपमान होता है, तो इन शहरों में यह काम क्यों होता है? तो इसका उत्तर यह है कि इन शहरों में जगह बहुत कम है, कब्रिस्तानों में इतना विस्तार नहीं है कि प्रत्येक मृतक के लिए अलग-अलग कब्र हो। अतः इस गंभीर आवश्यकता के कारण यह जायज है, जैसा कि सर्वसम्मत नियम है: "आवश्यकताएं निषिद्ध चीजों को जायज बना देती हैं" (आवश्यकता के समय वर्जित चीजें भी जायज हो जाती हैं)। कबीरी शरह मुनिया में है:

अरबी पाठ	**उर्दू अनुवाद**
दूसरे को दफनाने के लिए कब्र तब तक न खोदी जाए जब तक कि पहला क्षय न हो जाए और उसकी कोई हड्डी न बचे, सिवाय आवश्यकता के जब उसके अलावा कोई जगह न मिले ^1 आदि।	दूसरे मुर्दे को दफनाने के लिए कब्र न खोदी जाए जब तक कि पहला मुर्दा सड़ न जाए यहाँ तक कि उसकी हड्डियाँ शेष न रहें, सिवाय आवश्यकता के जब उसके अलावा कोई दूसरी जगह उपलब्ध न हो इत्यादि। (त)

दूसरे मुर्दे को दफनाने के लिए कब्र न खोदी जाए जब तक कि पहला मुर्दा सड़ न जाए यहाँ तक कि उसकी हड्डियाँ शेष न रहें, सिवाय आवश्यकता के जब उसके अलावा कोई दूसरी जगह उपलब्ध न हो इत्यादि। (त)

अरबी पाठ	उर्दू अनुवाद
यह मेरे पास जो है वह है और पूर्ण ज्ञान मेरे रब के पास है। इसे अपनी जुबान से कहा और इसे लिखने का आदेश दिया बंदा फकीर मुहम्मद उमर उद्दीन सुन्नी हनफी कादरी हजारवी ने, अल्लाह तआला उन्हें माफ फरमाए।	यह मेरा शोध है और पूर्ण ज्ञान मेरे रब के पास है, यह फतवा अपनी जुबान से कहा है और इसे लिखने का आदेश दिया है बंदा फकीर मुहम्मद उमर दीन सुन्नी हनफी कादरी हजारवी ने (अल्लाह तआला उन्हें माफ फरमाए)। (त)

बुद्धिमान उत्तरदाता ने जो कुछ लिखा है वह सत्य और सही है, जैसा कि 'खिजानतुल रिवाया' में है:

अरबी पाठ	उर्दू अनुवाद
'मफातीह अल-मसाइल' से 'मुफीद अल-मुस्तफीद' में	'मफातीह अल-मसाइल' से 'मुफीद अल-मुस्तफीद' में है कि जब कब्र...

---

^1 गुनियातुल मुस्तमली शरह मुनियतुल मुसल्ली, जनाज़ा का अध्याय, सुहैल अकादमी लाहौर, पृष्ठ 707

نجدی شعار سے پوچھتے ہیں کہ تجھ کو کیسے معلوم ہوا کہ میت بالکل مٹی ہو گئی ہے اور اس کی ہڈی بھی باقی نہیں رہی ہے اس واسطے کہ قبر ابھی تک کھودی نہیں گئی ہے اور نہ میت کے مٹی ہونے کا قرآن اور حدیث میں کوئی وقت مقرر ہوا ہے کہ اتنی مدت کے بعد میت کی ہڈیاں بھی مٹی ہو جاتی ہیں، بلکہ تجربے سے بارہا مشاہدہ ہوا ہے کہ کسی بہت پرانی بستی کے اطراف میں کوئی جگہ کھودی جائے تو اس میں قبور نکلیں جن میں ہڈیاں (بلکہ بعض کے ابدان) اب تک باقی صحیح و سلامت تھیں، کتبوں سے تین تین چار چار صدیوں کی قبور معلوم ہوتی تھیں تو بلا دلیل بلا ضرورت شرعی کے کسی ممنوع امر کا کسی مبہم روایت کی بنا پر مرتکب ہونا ہرگز جائز نہیں ہے۔ اگر معترض پھر عود کرے اور کہے کہ بمبئی وغیرہ عظیم شہروں میں قبور کھود کر ان میں دوسرے اموات دفن کئے جاتے ہیں، تو اگر قبور کھودنے سے اموات کی توہین ہوتی ہے تو ان شہروں میں یہ کام کیوں ہوتا ہے، تو جواب اس کا یہ ہے کہ ان شہروں میں جگہ بہت تنگ ہے، قبرستانوں میں اتنی وسعت نہیں ہے کہ میت کے لیے الگ الگ قبر ہو، لہٰذا اس ضرورت شدید سے یہ جائز ہے کہ الضرورات تبیح المحظورات (بوقت ضرورت منع کردہ چیزیں بھی جائز ہو جاتی ہیں۔ ت) قاعدہ متفقہ ہے۔ کبیری شرح منیہ میں ہے :

عربی متن	اردو ترجمہ
ولا یحفر قبر لدفن اخر ما لم یبل الاول فلم یبق لہ عظم الا عند الضرورۃ بان لم یوجد مکان سواہ ۱۸ الخ۔	دوسرے مردہ کو دفن کرنے کے لیے قبر نہ کھودی جائے جب تک پہلا مردہ بوسیدہ نہ ہو جائے یہاں تک کہ اس کی ہڈیاں باقی نہ رہیں مگر بوقت ضرورت قبر کھودنا جائز ہے جبکہ اس کے بغیر کوئی دوسری جگہ میسر نہ ہو الخ(ت)

دوسرے مردہ کو دفن کرنے کے لیے قبر نہ کھودی جائے جب تک پہلا مردہ بوسیدہ نہ ہو جائے یہاں تک کہ اس کی ہڈیاں باقی نہ رہیں مگر بوقت ضرورت قبر کھودنا جائز ہے جبکہ اس کے بغیر کوئی دوسری جگہ میسر نہ ہو الخ(ت)

عربی متن	اردو ترجمہ
شهذا ماعندي والعلم الاتم عند ربي قاله بفمه وامر برقمه العبد الفقير محمد عمر الدين السني الحنفى القادرى الهزاروى عفاالله تعالى عنه۔	یہ میری تحقیق ہے اور علم کامل میرے رب کے پاس ہے، یہ فتویٰ بزبان خود کہا ہے اور اس کے لکھنے کا حکم دیا ہے بندہ فقیر محمد عمر دین سنّی حنفی قادری ہزاروی نے (عفا اللہ تعالیٰ عنہ) ۔(ت)

جو کچھ مجیب لبیب نے لکھا ہے حق اور صواب ہے، چنانچہ خزانتہ الروایہ میں ہے :

عربی متن	اردو ترجمہ
في مفيد المستفيد عن مفاتيح المسائل مفاتيح المسائل سے مفید المستفید میں ہے جب قبر	

---

1۸ غنیۃ المستملی شرح منیۃ المصلی فصل فی الجنائز سہیل اکیڈمی لاہور ص ۷۰۷

Fatawa Razawiya Volume 9

[Arabic]: And when the deceased becomes dust in the grave, it is disliked (Makruh) to bury someone else in his grave because the sanctity remains^1. Ended. [Urdu]: Even if the deceased has turned into dust, it is still Makruh (disliked) to bury someone else in their grave because the honor and sanctity of that deceased person still remain. Ended (T).

And this is also in Khizanat-ul-Riwayah: [Arabic]: It is not permissible for anyone to build a house or a mosque over graves because the location of the grave is the right of the deceased, and for this reason, it is not permissible to exhume it^2. Ended briefly. This was penned by the one hopeful of the mercy of his most grateful Lord, Abdul Ghafoor, may Allah protect him from calamities and evils. May Allah reward the respondent well as he answered excellently and accurately in what he provided. Written by the needy Muhammad Bashir-ud-Din, may he be forgiven. [Urdu]: It is not permissible for anyone to build a house or a mosque over graves because the site of the grave is the right of the owner of the grave; for this very reason, it is not permissible to dig up the grave. Briefly summarized. This was written by Abdul Ghafoor, hopeful for the mercy of his grateful Lord, may Allah Almighty protect him from calamities and evils. (T) May Allah Almighty, the Answerer, reward him with good as he gave an excellent answer and provided correct guidance. This was written by the humble Muhammad Bashir-ud-Din, may he be forgiven. (T)

I have seen this fatwa; the fatwa is correct, the answer is right. Written by Muhammad Abdul Rashid Dehlvi, may he be forgiven. [Arabic]: The answer is correct. [Urdu]: (The answer is correct. T) Muhammad Afzal al-Majeed, may he be forgiven.

1. Radd al-Muhtar with reference to al-Imdad, Idarat-ut-Tiba'at-il-Misriyyah, Egypt, 1/599.
2. Khizanat-ul-Riwayah.

फ़तावा रज़विया जिल्द 9

[अरबी]: और जब मृत व्यक्ति कब्र में मिट्टी बन जाए, तब भी उसकी कब्र में किसी अन्य को दफनाना मकरूह (नापसंद) है क्योंकि पवित्रता बनी रहती है^1। समाप्त। [उर्दू]: अगर मृत व्यक्ति गलकर मिट्टी भी हो जाए, तब भी उसकी कब्र में किसी दूसरे को दफ़न करना मकरूह है, क्योंकि उस मृत व्यक्ति का सम्मान और हुरमत अब भी बाकी है। समाप्त (त)।

और यह 'खज़ानतुल रिवायत' में भी है: [अरबी]: किसी के लिए भी कब्रों के ऊपर घर या मस्जिद बनाना जायज़ नहीं है क्योंकि कब्र का स्थान मृत व्यक्ति का अधिकार है, और इसी कारण उसे खोदना जायज़ नहीं है^2। संक्षेप में समाप्त। इसे अपने अत्यंत आभारी रब की दया के आकांक्षी अब्दुल गफ़ूर ने लिखा है, अल्लाह उसे आपदाओं और बुराइयों से बचाए। अल्लाह तआला उत्तर देने वाले को उत्तम प्रतिफल दे कि उन्होंने उत्कृष्ट और सटीक उत्तर दिया। इसे दीन-हीन मुहम्मद बशीर उद्दीन ने लिखा है, अल्लाह उन्हें क्षमा करे। [उर्दू]: कब्रों पर किसी के लिए घर या मस्जिद बनाना जायज़ नहीं है क्योंकि कब्र की जगह कब्र वाले का हक है, इसी वजह से कब्र को खोदना जायज़ नहीं है। संक्षेप में। इसे अपने रब शकूर की रहमत के उम्मीदवार अब्दुल गफ़ूर ने लिखा है, अल्लाह तआला उसे आफतों और बुराइयों से बचाए। (त) अल्लाह तआला मुजीब (उत्तर देने वाले) को जज़ा-ए-खैर दे कि उन्होंने उम्दा जवाब दिया और सही जानकारी दी। इसे मिस्कीन मुहम्मद बशीर उद्दीन अफ़ी अन्हु ने लिखा है। (त)

इस फ़तवे को देखा, फ़तवा सही है, जवाब दुरुस्त है। मुहम्मद अब्दुल रशीद देहलवी अफ़ी अन्हु द्वारा लिखित। [अरबी]: जवाब सही है। [उर्दू]: (जवाब सही है। त) मुहम्मद अफ़ज़ल अल-मजीद अफ़ी अन्हु।

1. रद अल-मुह्तार, अल-इमदाद के हवाले से, इदारतुल तिबातुल मिसरिया, मिस्र, 1/599।
2. खज़ानतुल रिवायत।

पृष्ठ 440 का 948

فتاوٰی رضویہ جلد نہم

واذا صار المیت ترابا في القبر یکرہ دفن غیرہ في قبرہ لان الحرمۃ باقیۃ[1] انتھی۔ میں میّت گل کر مٹّی بھی ہو جائے تب بھی اس کی قبر میں غیر کو دفن کرنا مکروہ ہے کیونکہ اس میّت کی تعظیم و حرمت اب بھی باقی ہے انتہی (ت)

اور یہ بھی خزانہ الروایہ میں ہے: لایجوز لاحد ان یبنی فوق القبور بیتا او مسجدا لان موضع القبر حق المقبور ولھذا لایجوز نبشہ[2] انتھی مختصرا نمقہ الراجی الی رحمۃ ربہ الشکور عبدالغفور صانہ اللہ عن الآفات و الشرور للہ در المجیب حیث اجاب فاجاد واصاب فیما افادہ حررہ المسکین محمد بشیر الدین عفی عنہ۔ قبروں پر کسی کو گھر یا مسجد بنانا جائز نہیں کیونکہ قبر والی جگہ صاحبِ قبر کا حق ہے، اسی وجہ سے قبر کو کھودنا جائز نہیں ہے اھ مختصرا۔ اسے لکھا ہے اپنے رب شکور کی رحمت کے امیدوار عبدالغفور نے، اللہ تعالٰی اسے آفات اور برائیوں سے بچائے۔ (ت) اللہ تعالٰی مجیب کو جزائے خیر دے کہ انھوں نے عمدہ جواب دیا اور صحیح افادہ فرمایا، اسے لکھا ہے مسکین محمد بشیر الدین عفی عنہ۔ (ت)

اس فتوے کو دیکھا، فتوٰی صحیح ہے، جواب درست ہے۔ حررہ محمد عبد الرشید دہلوی عفی عنہ الجواب صحیح۔ (جواب صحیح ہے۔ ت) محمد افضل المجید عفی عنہ

[1] ردالمحتار بحوالہ الامداد ادارۃ الطباعۃ المصریہ مصر ۱ / ۵۹۹ [2] خزانہ الروایہ

Volume Ninth Fatawa Razawiyya

The answer is correct and right. (The answer is correct and right. T) Written by the needy slave, obedient to the Messenger, Abd al-Muqtadir al-Qadiri al-Bada'uni, may he be forgiven. [Al-Rasul Qadiri Hanafi Muhammad Abd al-Muqtadir Muti' 1317] That is so. (This answer is peerless. T) Muhammad Fadl Ahmad al-Bada'uni, may he be forgiven. The responder is correct. (The answer is correct. T) Muhammad Ibrahim Qadiri. [Qadiri Muhammad Ibrahim 1318] He who answered was correct, and Allah knows best the truth. (The answer given is correct and Allah knows best the truth. T) Muhammad Hafiz Bakhsh, teacher at Madrasa al-Muhammadiyya, city of Badaun. [Bakhsh Hanafi Muhammad Hafiz] The answer is correct. (The answer is correct. T) [Muhammad Ahmad Qadiri Abdur Rasul] Written by Abdur Rasul, lover of Ahmad, may he be forgiven, teacher at Madrasa al-Thamid al-Ka'iniya at the Grand Mosque of Badaun.

In the name of Allah, the Beneficent, the Merciful.

[Table Content] (Arabic Column): Praise be to Allah who made the earth a receptacle, and honored the believers, living and dead, and made their death a rest and sleep, and strictly prohibited their humiliation. And peace and blessings be upon him who gave us to drink from his grace and residue pure sweet water, and gave us in every argument the clearest proof in negation and affirmation, and perpetuated the honor of the believers forever and ever and did not set a time for it. So He made them great even if they became bones, and forbade harming them even if they were remains. And upon his family and companions and...

(Urdu Column): All praise is for Allah Almighty Who made the earth a gatherer, granted honor to living and dead believers, made their death a peace and rest, and strictly forbade their insult. Blessings and peace be upon the one who, through his favor and residue, gave us sweet water to drink, and in every field gave us a powerful argument for negation and affirmation, and granted honor to the believers forever and did not set any time for it, and made the believers great even if they become bones, and made it forbidden to hurt them even if they become pieces, and on your family and...

खंड नौ फ़तावा रज़विया

उत्तर सही और सटीक है। (उत्तर सही और दुरुस्त है। त) लेखक: दीन सेवक, रसूल का आज्ञाकारी, अब्द अल-मुक़्तदिर अल-क़ादरी अल-बदायूनी, जिन्हें क्षमा किया गया है। [अल-रसूल कादरी हनफी मोहम्मद अब्द अल-मुक़्तदिर मुती' 1317] यही सत्य है। (यह उत्तर बेमिसाल है। त) मोहम्मद फ़ज़ल अहमद अल-बदायूनी, जिन्हें क्षमा किया गया है। उत्तर देने वाला सही है। (उत्तर सही है। त) मोहम्मद इब्राहिम कादरी। [कादरी मोहम्मद इब्राहिम 1318] जिसने उत्तर दिया वह सही था, और अल्लाह सत्य को सबसे बेहतर जानता है। (दिया गया उत्तर सही है और अल्लाह सत्य को सबसे बेहतर जानता है। त) मोहम्मद हाफ़िज़ बख़्श, मदरसा अल-मुहम्मदिया, शहर बदायूँ में शिक्षक। [बख़्श हनफी मोहम्मद हाफ़िज़] उत्तर सही है। (उत्तर सही है। त) [मोहम्मद अहमद कादरी अब्दुर रसूल] लेखक: अब्दुर रसूल, अहमद के प्रेमी, जिन्हें क्षमा किया गया है, मदरसा अल-थमिद अल-कैनीया, जामा मस्जिद बदायूँ में शिक्षक।

अल्लाह के नाम से जो अत्यंत दयालु और दयावान है।

[तालिका सामग्री] (अरबी स्तंभ): सभी प्रशंसा अल्लाह के लिए है जिसने पृथ्वी को एक पात्र बनाया और जीवित और मृत विश्वासियों (मोमिनों) को सम्मानित किया, और उनकी मृत्यु को शांति और निद्रा बनाया, और उनके अपमान को पूरी तरह से प्रतिबंधित कर दिया। और शांति और आशीर्वाद उस पर हो जिसने हमें अपनी कृपा और शेष भाग से शुद्ध मीठा पानी पिलाया, और हमें हर बहस में निषेध और पुष्टि में स्पष्ट प्रमाण दिए, और विश्वासियों के सम्मान को हमेशा के लिए कायम रखा और इसके लिए कोई समय निर्धारित नहीं किया। तो उसने उन्हें महान बनाया भले ही वे हड्डियाँ बन गए हों, और उन्हें नुकसान पहुँचाना मना कर दिया भले ही वे अवशेष हों। और उनके परिवार और साथियों पर और...

(उर्दू स्तंभ): तमाम तारीफें उस अल्लाह ताआला के लिए हैं जिसने ज़मीन को जमा करने वाली बनाया, ज़िंदा और मुर्दा मोमिनों को इज़्ज़त बख्शी और उनकी मौत को सुकून व आराम बनाया और उनकी तौहीन को कतई तौर पर हराम किया, दुरूद व सलाम हो उस जात पर जिसने अपने एहसान और बक़िया से हमें खूब मीठा पानी पिलाया, और हर मैदान में हमें नक़्ज़ व इसबात के लिए भारी हुज्जत अता फरमाई और हमेशा-हमेशा के लिए मोमिनों को इज़्ज़त बख्शी और इसके लिए कोई वक़्त

मुक़र्रर न फ़रमाया और मोमिनों को अज़मत वाला बनाया अगरचे वह हड्डियाँ हो जाएँ और उनको ईज़ा देना हराम किया अगरचे वह रेज़ा-रेज़ा हो जाएँ और आप के आल और...

جلد نہم فتاویٰ رضویہ

الجواب صحیح وصواب (جواب صحیح اور درست ہے۔ت) حررہ العبد المفتقر مطیع الرسول عبدالمنقتدر القادری البدایونی عفی عنہ۔ [الرسول قادری حنفی محمد عبدالمنقتدر مطیع ۱۳۱۷] ذلک کذلک (یہ جواب بے مثل ہے۔ت) محمد فضل احمد البدایونی عفی عنہ المجیب مصیب (جواب درست ہے۔ت) محمد ابراھیم قادری [قادری محمد ابراھیم ۱۳۱۸] اصاب من اجاب واللہ اعلم بالصواب (جواب درست دیا ہے واللہ اعلم بالصواب۔ت) محمد حافظ بخش المدرس بالمدرسۃ المحمدیۃ بلدہ بدایوں [بخش حنفی محمد حافظ] صح الجواب (جواب صحیح ہے۔ت) [محمد احمد قادری عبدالرسول] حررہ عبدالرسول محب احمد عفی عنہ المدرس بالمدرسۃ الثمید الکائنیۃ بجامع بدایوں

بسم اللہ الرحمن الرحیم

[ٹیبل کا مواد] (عربی کالم): الحمد للہ الذي جعل الارض کفاتا ہ و اکرم المومنین احیاء وامواتا ہ وجعل موتھم راحۃً وسباتًا ہ وحرّم اھانتھم تحریمًا بتاتًا ہ والصلوۃ والسلام علی من سقانا من فضلہ وفضلتہ ماء فراتا ہ واعطانا فی کل محجۃ ابلح حجۃ نقضا و اثباتا ہ وابد تعظیم المؤمنین ابدالابدین ولم یوقت لہ میقاتًا ہ فجعلھم عظامًا وان صاروا عظامًا ہ وحرّم ایذاءھم ولو کانوا رفاتًا ہ وعلی الہ وصحابہ و

(اردو کالم): تمام تعریفیں اس اللہ تعالیٰ کے لیے ہیں جس نے زمین کو جمع کرنیوالی بنایا، زندہ اور مردہ مومنوں کو عزت بخشی اور ان کی موت کو سکون و آرام بنایا اور ان کی توہین کو قطعی طور پر حرام کیا، درود و سلام ہو اس ذات پر جس نے اپنے احسان اور بقیہ سے ہمیں خوب میٹھا پانی پلایا، اور ہر میدان میں ہمیں نقض واثبات کے لیے بھاری حجت عطا فرمائی اور ہمیشہ ہمیشہ

کے لیے مومنوں کو عزت بخشی اور اس کے لیے کوئی وقت مقرر نہ فرمایا اور مومنوں کو عظمت والا بنایا اگرچہ وہ ہڈیاں ہو جائیں، اور ان کو ایذا دینا حرام کیا اگرچہ وہ ریزہ ریزہ ہو جائیں، اور آپ کے آ

[Box 1] Arabic: Ahla wa hizbahul mukramina 'indallahi jami'an ashtatan, jazallahu al-mujiba khayran wa yuthib. Urdu: On the family, companions, people, and your group who are honored in the sight of Allah, collectively and individually, may Allah, the Answerer of prayers, grant the respondent a good reward and recompense. (T)

[Main Text] The answer of the collector of virtues, the subduer of vices, the supporter of traditions, the eraser of mischief, Maulana Maulvi Muhammad Umar al-Din—may Allah make his name reflect his life and care for the faith—is sound, sufficient, and complete. However, by the command of the one who is excused, and with the view of increasing benefit, the addition of two useful sections (Wasl) is intended. The first section is in support and confirmation of the respondent's statement that honoring the graves of Muslims is necessary and disrespecting them is prohibited, and what matters cause distress to the dwellers of graves. If some mentioned matters are repeated in this discourse, it is not objectionable because the repetition of a sub-topic leads to more emphasis and makes a stronger impression on hearts.

Arabic poetic line: Wal misku ma karrartahu yatadhawwa'u (And musk is that which emits fragrance when repeatedly applied/rubbed).

In the second section, the realization of objectives, the removal of delusions, and the refutation of the errors of the Najjari sect are presented, along with a complete and perfect explanation that building even a temporary house in the general graveyards of Muslims is prohibited, let alone making it a place of residence and comfort. Also, the elegant research of the narration of Allama Zayla'i is included. In this section, this humble one is content with quoting two fatwas, as they are sufficient by the grace of Allah Almighty. And with Allah lies the success.

[Section Heading] Section One

[Text] The noble scholars are in agreement that the honor of a Muslim is the same whether dead or alive. The absolute researcher (Muhaqqiq 'al-al-Itlaq), may Allah Almighty have mercy on him, states in 'Fath al-Qadir':

[Box 2] Arabic: Al-ittifaqu 'ala anna hurmatal muslimi mayyitan kahurmatihi hayyan. Urdu: There is a consensus that the honor and sanctity of a deceased Muslim is like that of a living Muslim. (T)

[Text] The Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) says:

[Box 3] Arabic: Kasru 'azmil mayyiti wa idhahu kakasrihi hayyan. Narrated by Imam Ahmad, Abu Dawud, and Ibn Majah. Urdu: Breaking the bone of a deceased person and causing him pain is like breaking the bone of a living person. Imam Ahmad and...

[Footnotes] 1. Fath al-Qadir, Chapter on Burial, Maktaba Nooria Razawiyya, Sukkur, 2/102. 2. Sunan Abi Dawud, Book of Funerals, Aftab-e-Alam Press, Lahore, 2/102.

फतावा रज़विया | खंड नौ

[बॉक्स 1] अरबी: अहल व हिज़बहुल मुकर्रमीना 'इन्दल्लाहि जमीअन् अश्तातन, जज़ल्लाहु अल-मुजीबा खैरन् व युथीब। उर्दू: अल्लाह के यहाँ सम्मानित उनके सभी वंशजों, साथियों, अनुयायियों और आपके समूह पर, चाहे वे सामूहिक हों या अलग-अलग, अल्लाह, जो प्रार्थनाओं का उत्तर देने वाला है, उत्तरदाता को उत्तम प्रतिफल और पुण्य प्रदान करे। (त)

[मुख्य पाठ] गुणों के संग्राहक, दोषों को मिटाने वाले, सुन्नतों के समर्थक, फ़ितनों को खत्म करने वाले मौलाना मौलवी मुहम्मद उमर अल-दीन - अल्लाह उनके नाम को उनके जीवन और धर्म की देखभाल के अनुरूप बनाए - का उत्तर सही, पर्याप्त और पूर्ण है। हालाँकि, आदेशानुसार विवश होकर, लाभ बढ़ाने की दृष्टि से दो उपयोगी खंड (वस्ल) जोड़ने का विचार है। पहला खंड उत्तरदाता के इस कथन के समर्थन और पुष्टि में है कि मुसलमानों की कब्रों का सम्मान आवश्यक है और उनका अपमान वर्जित है, और वे कौन सी बातें हैं जो कब्र वालों को कष्ट पहुँचाती हैं। यदि यहाँ बातचीत के दौरान कुछ उल्लेखित बातों की पुनरावृत्ति हो जाए, तो यह आपत्तिजनक नहीं है क्योंकि शाखा की पुनरावृत्ति अधिक बल देती है और दिलों पर गहरा प्रभाव डालती है।

अरबी काव्य पंक्ति: वल मिस्कु मा कर्र्तहु यतद्व्व'उ (और कस्तूरी वह है जिसकी खुशबू बार-बार रगड़ने से फैलती है)।

दूसरे खंड में लक्ष्यों की प्राप्ति, भ्रमों का निवारण और नजारी संप्रदाय की गलतियों का खंडन है, साथ ही इस बात का पूर्ण और विस्तृत वर्णन है कि मुसलमानों के सामान्य कब्रिस्तानों में कोई अस्थायी घर बनाना भी हराम है, अपने रहने और आराम की जगह बनाना तो दूर की बात है। साथ ही अल्लामा ज़ैली के वर्णन का सुंदर शोध भी शामिल है। इस खंड में, यह विनम्र व्यक्ति दो फतवों को उद्धृत करने तक ही सीमित है, क्योंकि वे अल्लाह तआला की कृपा से पर्याप्त हैं। और सफलता अल्लाह की ओर से है।

[अनुभाग शीर्षक] पहला खंड (वस्ल-ए-अव्वल)

[पाठ] विद्वान इस बात पर सहमत हैं कि एक मुसलमान का सम्मान मृत्यु के बाद और जीवन में बराबर है। मुहक्किक़ अल-इतलाक़ (अल्लाह उन पर दया करे) 'फतह अल-क़दीर' में फरमाते हैं:

[बॉक्स 2] अरबी: अल-इत्तिफ़ाकु अला अन्ना हुरमतल मुस्लिमि मय्यितन् कहुरमतिही हय्यन। उर्दू: इस बात पर सहमति है कि मृत मुसलमान की गरिमा और पवित्रता जीवित मुसलमान की तरह ही है। (त)

[पाठ] नबी (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) फरमाते हैं:

[बॉक्स 3] अरबी: कसरु अज़्मिल मय्यिति व इज़ाहु ककसरिही हय्यन। इमाम अहमद, अबू दाऊद और इब्न माजा द्वारा वर्णित। उर्दू: मृत व्यक्ति की हड्डी तोड़ना और उसे पीड़ा पहुँचाना वैसा ही है जैसा जीवित व्यक्ति की हड्डी तोड़ना। इमाम अहमद और...

[पाद लेख] 1. फतह अल-क़दीर, दफ़न का अध्याय, मकतबा नूरिया रज़विया, सुक्कुर, 2/102 2. सुनन अबी दाऊद, जनाज़ा की किताब, आफ़ताब-ए-आलम प्रेस, लाहौर, 2/102

[Box 1] عربی: اَھْلَ وَحِزْبَہ الْمُکْرَمِیْنَ عِنْدَ اللہِ جَمِیْعًا اَشْتَاتًا، جَزَی اللہُ الْمُجِیْبَ خَیْرًا وَیُثِیْبُ۔ اردو: آل، اصحاب، اہل اور آپ کے گروہ پر جو عند اللہ مکرم ہیں، اجتماعی اور متفرق طور پر، اللہ مجیب کو جزائے خیر اور ثواب عطا فرمائے۔ (ت)

[Main Text] جامع الفضائل، قامع الرذائل، حامی السنن، ماحی الفتن مولانا مولوی محمد عمر الدین جعلہ اللہ کا سمہ عمر الدین وبسعہ ورعیہ عمر الدین کا جواب نائج مناہج صواب کافی و وافی ہے، مگر بحکم المامور معذور بنظر تکثیر افاضہ دو وصلِ مفید کا اضافہ منظور وصلِ اول اس بیان مجیب کی تائید و تصویب میں کہ قبورِ مسلمین کی تعظیم ضرور اور اہانت محظور، اور یہ کہ کیا کیا امور موجب ایذائے اصحابِ قبور، یہاں اگر سلسلہ سخن میں بعض امورِ مذکورہ جواب کا اعادہ ہو تو غیر محذور کہ تکررِ فرع موجب مزید تاکید واوقع فی الصدور ع

عربی مصرع: وَالْمِسْکُ مَا کَرَّرْتَہٗ یَتَضَوَّعُ

وصل دوم میں احقاقِ مرام وازہاق اوہام وتبکیت مخطیان نجاریہ لیام، اور اس امر کا بیان کامل و تام کہ مقابرِ عام مسلمین میں کوئی وقتی مکان بنانا بھی حرام، نہ کہ اپنی سکونت و آرام کا مقام، نیز روایت علامہ زیلعی کی تحقیقِ انیق، اس وصل میں دو فتوے فقیر کی نقل پر قناعت ہے کہ ان میں بحمد اللہ تعالٰی کفایت ہے، وباللہ التوفیق۔

[Heading] وصلِ اول

[Text] علمائے کرام کا اتفاق ہے کہ مسلمان کی عزت مُردہ و زندہ برابر ہے۔ محقق علی الاطلاق رحمۃ اللہ تعالٰی علیہ فتح القدیر میں فرماتے ہیں:

[Box 2] عربی: اَلْاِتِّفَاقُ عَلٰی اَنَّ حُرْمَۃَ الْمُسْلِمِ مَیْتًا کَحُرْمَتِہٖ حَیًّا 1۔ اردو: اس بات پر اتفاق ہے کہ مردہ مسلمان کی عزت و حرمت زندہ مسلمان کی طرح ہے۔ (ت)

[Text] نبی صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم فرماتے ہیں :

[Box 3] عربی: کَسْرُ عَظْمِ الْمَیِّتِ وَاِذَاہُ کَکَسْرِہٖ حَیًّا 2۔ رواہ الامام احمد وابوداؤد وابن ماجۃ اردو: مُردے کی ہڈی کو توڑنا اور اسے ایذا پہنچانا ایسا ہی ہے جیسے زندہ کی ہڈی کو توڑنا، اسے امام احمد و

[Footnotes] 1 فتح القدیر فصل فی الدفن مکتبہ نوریہ رضویہ سکھر ۲/ ۱۰۲ 2 سنن ابی داؤد کتاب الجنائز آفتاب عالم پریس لاہور ۲/ ۱۰۲

Fatawa Razawiya Volume 9

With a good (Hasan) chain of narration from the Mother of the Believers, Aisha al-Siddiqah (may Allah be pleased with her). Abu Dawud and Ibn Majah narrated it from the Mother of the Believers, Aisha al-Siddiqah (may Allah be pleased with her).

This Hadith is in Musnad al-Firdous in these words: The Master of the Universe (may Allah's peace and blessings be upon him) says: "The deceased is harmed in their grave by what harms them in their house."[1] Meaning, the deceased feels pain in the grave from things that would have caused them pain at home.

Allama Munawi states in the commentary: "It informs that the sanctity of the believers remains established even after death."[2] From this noble Hadith, it is learned that a Muslim's sanctity remains intact after death as well.

Our master, Hazrat Ibn Mas'ud (may Allah be pleased with him) says: "Hurting a believer in their death is like hurting them in their life."[3] Narrated by Ibn Abi Shaybah. To cause pain to a deceased Muslim is like causing pain to a living one. Abu Bakr bin Abi Shaybah narrated this.

The scholars state: "The deceased is pained by whatever pains the living."[4] This is also mentioned in Rad al-Muhtar and other reliable books of travel. The deceased experiences pain from whatever causes pain to a living person, as mentioned in Rad al-Muhtar and other authoritative books. (T)

Allama Sheikh Muhaqqiq (may Allah have mercy on him) narrates from Imam Allama Abu Yusuf bin Abdul Barr in Ash'at al-Lam'at: "From this, it is inferred that the deceased experiences pain from everything that a living person feels pain from, and it is also necessary that they derive pleasure from all the things that a living person derives pleasure from."[5] (End of quote). It is inferred from here that the things which cause pain to the living cause distress to the deceased as well, and it is necessary that the things from which the living derive pleasure, the deceased also derives pleasure from them. (End of quote). (T)

1. Al-Firdous bi-Ma'thur al-Khitab, Hadith 754, Dar al-Kutub al-Ilmiyyah, Beirut, 1/199.
2. Fayd al-Qadir Sharh al-Jami' al-Saghir, Hadith 6231, Dar al-Ma'rifah, Beirut, 2/551.
3. Sharh al-Sudur on the authority of Ibn Abi Shaybah, chapter on various forms of harm, Khilafat Academy Swat, p. 126.

4. Rad al-Muhtar, chapter on Istinja, Idarah al-Tiba'ah al-Misriyyah, Egypt, 1/229.
5. Ash'at al-Lam'at, chapter on burying the deceased, second section, Maktabah Nooriya Rizviya, Sukkur, 1/696.

फतावा रजविया नौवाँ भाग

उम्मुल मोमिनीन आयशा सिद्दीका (रज़ियल्लाहु अन्हा) से हसन सनद के साथ। अबू दाऊद और इब्न माजा ने उम्मुल मोमिनीन आयशा सिद्दीका (रज़ियल्लाहु अन्हा) से इसे रिवायत किया है।

यह हदीस मुसनद अल-फिरदौस में इन शब्दों के साथ है: सैयदे आलम (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) फरमाते हैं: "मृतक को कब्र में भी उन बातों से ईज़ा (कष्ट) होती है जिनसे घर में उसे तकलीफ होती थी।"[1] यानी मुर्दे को कब्र में भी उसी बात से दुख होता है जिससे उसे अपने घर में होता।

अल्लामा मुनावी शरह (व्याख्या) में फरमाते हैं: "इससे यह ज्ञात हुआ कि मोमिनों की हुरमत (सम्मान/पवित्रता) उनकी मृत्यु के बाद भी बाकी रहती है।"[2] इस हदीस शरीफ से मालूम हुआ कि मुसलमान की हुरमत मौत के बाद भी वैसे ही बाकी है।

सैयदुना हज़रत इब्न मसूद (रज़ियल्लाहु अन्हु) फरमाते हैं: "मोमिन को उसकी मौत के बाद तकलीफ देना वैसा ही है जैसा उसकी ज़िंदगी में तकलीफ देना।"[3] इसे इब्न अबी शैबा ने रिवायत किया। मुसलमान मुर्दे को ईज़ा देना वैसा ही है जैसे ज़िंदा को। इसे अबू बकर बिन अबी शैबा ने रिवायत किया।

उलेमा फरमाते हैं: "मुर्दे को उन चीज़ों से तकलीफ होती है जिनसे ज़िंदा को तकलीफ होती है।"[4] जैसा कि रद-उल-मुहतार और अन्य विश्वसनीय यात्रा वृत्तांतों की किताबों में दर्ज है। जिस बात से ज़िंदा को ईज़ा पहुँचती है मुर्दे को भी उससे तकलीफ होती है, जैसा कि रद-उल-मुहतार आदि विश्वसनीय किताबों में ज़िक्र है। (त)

अल्लामा शेख मोहक्किक (रहमतुल्लाहि अलैहि) अशअतुल लमआत में इमाम अल्लामा अबू यूसुफ बिन अब्दुल बर्र से नकल फरमाते हैं: "यहाँ से यह ज्ञात होता है कि मृतक को उन तमाम चीज़ों से दुख पहुँचता है जिनसे ज़िंदा व्यक्ति को दुख पहुँचता है, और यह भी लाज़िम है कि जिन चीज़ों से ज़िंदा को लज्जत (आनंद) हासिल हो, उन सबसे मैय्यत को भी लज्जत हासिल होती है।"[5] इति। इस जगह यह मुस्तफाद (प्राप्त) होता है कि जिन चीज़ों से ज़िंदा को दर्द पहुँचता है उन तमाम से मुर्दा को

भी अलम (दुख) पहुँचता है, और यह लाज़िम है कि जिन चीज़ों से ज़िंदा को लज्जत हासिल हो उन सब से मैय्यत को भी लज्जत हासिल होती है। इति। (त)

1. अल-फिरदौस बि-मासूर अल-खिताब, हदीस 754, दार अल-कुतुब अल-इलमिया, बेरूत, 1/199।
2. फैज़ अल-कादिर शरह अल-जामी अल-सगीर, हदीस 6231, दार अल-मा'रिफा, बेरूत, 2/551।
3. शरह अल-सुदूर हवालह इब्न अबी शैबा, ईज़ा के विभिन्न रूपों पर अध्याय, खिलाफत अकादमी स्वात, पृष्ठ 126।
4. रद-उल-मुहतार, इस्तेंजा का अध्याय, इदारा अल-तिबा'ह अल-मिसरिया, मिस्र, 1/229।
5. अशअतुल लमआत, मैय्यत को दफनाने का अध्याय, दूसरा भाग, मकतबा नूरिया रज़विया, सुक्कुर, 1/696।

فتاوٰی رضویہ جلد نہم

باسنا د حسن عن أم المؤمنین عائشه الصدیقة رضی الله تعالی عنها۔ وابوداؤد وابن ماجہ نے بسند حسن ام المومنین عائشہ صدیقہ رضی اللہ تعالیٰ عنہا سے روایت کیا۔

یہ حدیث مسند الفردوس میں ان لفظوں سے ہے : سید عالم صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم فرماتے ہیں : المیت یؤذیه فی قبره ما یؤذیه فی بیته[1] ۔ مُردے کو قبر میں بھی اس بات سے ایذا ہوتی ہے جس سے گھر میں اسے اذیت ہوتی۔

علامہ مناوی شرح میں فرماتے ہیں : افادان حرمة المؤمنین بعد موته فاقیة[2] ۔ اس حدیث شریف سے معلوم ہوا کہ مسلمان کی حُرمت بعد موت کے بھی ویسے ہی باقی ہے۔

سیدنا حضرت ابن مسعود رضی اللہ تعالیٰ عنہ فرماتے ہیں : اذی المؤمن في موته کأذاه فی حیاته[3] ۔ رواہ ابن ابی شیبہ ۔ مسلمان مُردہ کو ایذا دینا ایسا ہے جیسے زندہ کو ۔ اسے ابوبکر بن ابی شیبہ نے روایت کیا۔

علماء فرماتے ہیں : المیت یتأذی بما یتأذی به الحي[4] ۔ کذافی رد المحتار وغیرہ من معتمدات الاسفار۔ جس بات سے زندہ کو ایذا پہنچتی ہے مُردے کو بھی اس سے تکلیف پاتے ہیں ، جیسا کہ ردالمحتار وغیرہ معتمد کتب میں مذکور ہے۔ (ت)

علامہ شیخ محقق رحمۃ اللہ تعالیٰ علیہ اشعۃ اللمعات میں امام علامہ ابویوسف بن عبدالبر سے نقل فرماتے ہیں : ازیں جا مستفاد میگردد کہ میت متألم میگردد بکمیع انچہ متألم میگردد بدان حی و لازم انیست کہ متلذذ گردد تمام انچہ متلذذم میشود بدان زندہ[5] انتھی۔ اس جگہ یہ مستفاد ہوتا ہے کہ جن

چیزوں سے زندہ کو درد پہنچتا ہے ان تمام سے مُردہ کو بھی الم پہنچتا ہے، اور یہ لازم ہے کہ جن چیزوں سے زندہ کو لذت حاصل ہو ان سب سے میت کو بھی لذت حاصل ہوتی ہے انتھی۔ (ت)

1 الفردوس بمأثور الخطاب حدیث ۷۵۴ دار الکتب العلمیہ بیروت ۱/ ۱۹۹ 2 فیض القدیر شرح الجامع الصغیر حدیث ۶۲۳۱ دار المعرفۃ بیروت ۲/ ۵۵۱ 3 شرح الصدور بحوالہ ابن ابی شیبہ فصل ثانیہ بسائر وجوہ الاذی خلافت اکیڈمی سوات ص ۱۲۶ 4 ردالمحتار فصل الاستنجاء ادارۃ الطباعۃ المصریہ مصر ۱/ ۲۲۹ 5 اشعۃ اللمعات باب دفن المیت فصل ثانی مکتبہ نوریہ رضویہ سکھر ۱/ ۶۹۶

Fatawa Ridawiyya Volume 9

Even our scholars have explicitly stated that it is forbidden (haram) for people to walk on a new path that has been created through a graveyard.

In *Ash-Shamiyyah* from *At-Tahthawiyyah* at the end of the Book of Purification, they have explicitly stated that passing through a path newly created in a graveyard is haram.[1]

In *Ash-Shamiyyah* from *At-Tahthawiyyah* at the end of the Book of Purification, it is mentioned: scholars have clarified that it is forbidden to walk on a new path made in a graveyard.

And they say: "It is disliked (Makruh) to cut green grass from a cemetery because as long as it remains green, it glorifies Allah Almighty. Through this (green grass), the hearts of the deceased find solace and Divine Mercy descends upon them. Yes, it is permissible to cut dry grass, but one should take the clippings to the animals; it is prohibited to let animals loose to graze in the graveyard."

In the section on funerals in *Radd al-Muhtar*: It is also disliked to cut green plants and grass from the cemetery, but not dry grass, as mentioned in *al-Bahr*, *ad-Durar*, and *Sharh al-Munyah*.[2] The reason given in *al-Imdad* is that as long as it is moist, it glorifies Allah Almighty, which provides companionship to the deceased and mercy descends through its remembrance. Similar is stated in *al-Khaniyyah* - end.[3] And in *al-Alamgiriyyah* from *al-Bahr ar-Ra'iq*: If there is grass in it, it may be harvested and sent to the animals, but animals should not be released into it.[4] - end.

In the funerals section of *Radd al-Muhtar*, it says that cutting green grass from the cemetery is Makruh, but not dry grass, as mentioned in *al-Bahr*, *ad-Durar*, and *Sharh al-Munyah*. In *al-Imdad*, the reason for this is explained: as long as it is moist, it glorifies Allah, which gives the deceased a sense of companionship, and mercy descends. Similar is in *al-Khaniyyah* - end. And in *al-Alamgiriyyah* from *al-Bahr ar-Ra'iq*, it is stated that if there is dry grass in the cemetery, it can be cut and brought out, but animals should not be left in there - end.

The Prophet (may Allah's peace and blessings be upon him) saw a person walking in the graves wearing shoes and said: "Woe to you, O wearer of Sebteyya shoes! Throw away your shoes."

---

[1] *Radd al-Muhtar*, Chapter of Istinja, Idara al-Taba'at al-Misriyya, Egypt, 1/229 [2] *Radd al-Muhtar*, Chapter of Funeral Prayer, Idara al-Taba'at al-Misriyya, Egypt, 1/606 [3] *Radd al-Muhtar*, Chapter of Funeral Prayer, Idara al-Taba'at al-Misriyya, Egypt, 1/606 [4] *Fatawa Hindiyya*, Chapter Twelve regarding Ribatat, Noorani Kutub Khana, Peshawar, 3/471

फतावा रजविया जिल्द 9

यहाँ तक कि हमारे विद्वानों ने स्पष्ट रूप से फरमाया है कि कब्रिस्तान में जो नया रास्ता निकाला गया हो, उसमें इंसानों का चलना हराम है।

अश-शामिया में अत-तहतविया से तहारत (पवित्रता) की किताब के अंत में है: उन्होंने स्पष्ट किया है कि कब्रिस्तान में बने नए रास्ते पर चलना हराम है।[1]

अश-शामिया में अत-तहतविया से तहारत की किताब के अंत में है: विद्वानों ने इस बात को स्पष्ट किया है कि कब्रिस्तान में जो नया रास्ता निकाला गया हो, उस पर चलना हराम है।

और फरमाते हैं: "कब्रिस्तान की हरी घास काटना मकरूह (नापसंद) है क्योंकि जब तक वह (घास) हरी रहती है, वह अल्लाह तआला की तस्बीह (महिमामंडन) करती है। इस (हरी घास) से मृतकों का दिल बहलता है और उन पर अल्लाह की रहमत का नुज़ूल (अवतरण) होता है। हाँ, सूखी घास काटना जायज़ है, लेकिन वहाँ से काट कर उसे जानवरों के पास ले जाएँ और यह मना है कि उन्हें कब्रिस्तान में चरने के लिए छोड़ दिया जाए।"

रद अल-मुख्तार के जनाज़ा खंड में है: कब्रिस्तान से हरे पौधों और घास को काटना मकरूह है, सूखी घास नहीं, जैसा कि अल-बहर, अद-दुरर और शरह अल-मुन्या में है।[2] अल-इमदाद में इसका कारण यह बताया गया है कि जब तक वह नम रहती है, वह अल्लाह की तस्बीह करती रहती है जिससे मृतक को सुकून मिलता है और उसके ज़िक्र से रहमत उतरती है। अल-खानिया में भी इसी तरह है - समाप्त।[3] और आलमगीरिया में बहर अर-रइक से है: यदि उसमें घास हो, तो उसे काटकर जानवरों के पास भेजा जा सकता है, लेकिन जानवरों को उसमें नहीं छोड़ा जाना चाहिए।[4] - समाप्त।

रद अल-मुख्तार के जनाज़ा खंड में है कि हरी घास का कब्रिस्तान से काटना मकरूह है, सूखी घास का नहीं। जैसा कि बहर, दुरर और शरह अल-मुन्या में है। और इमदाद में इसकी यह वजह बताई गई है कि जब तक वह नम रहती है, अल्लाह की तस्बीह करती रहती है जिससे मय्यत (मृतक) को सुकून हासिल होता है। खानिया में भी इसी तरह है - समाप्त। और आलमगीरिया में बहर अर-रइक से है कि अगर कब्रिस्तान में सूखी घास हो तो काट कर लाई जा सकती है, मगर जानवर उसमें न छोड़े जाएँ - समाप्त।

नबी सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम ने एक व्यक्ति को कब्रिस्तान में जूते पहनकर चलते देखा, तो इरशाद फरमाया: "हाय कमबख्ती तेरी ऐ सिब्तिया जूते वाले! फेंक दे अपनी जूती।"

[1] रद अल-मुख्तार, बाबुल इस्तिंजा, इदारा अल-तबात अल-मिस्रिया, मिस्र, 1/229 [2] रद अल-मुख्तार, बाब सलातुल जनाइज, इदारा अल-तबात अल-मिस्रिया, मिस्र, 1/606 [3] रद अल-मुख्तार, बाब सलातुल जनाइज, इदारा अल-तबात अल-मिस्रिया, मिस्र, 1/606 [4] फतावा हिंदिया, बाब बारहवाँ रिबात के बारे में, नूरानी कुतुब खाना, पेशावर, 3/471

पृष्ठ 444 का 948

فتاوی رضویہ جلد نہم

یہاں تک ہمارے علماء نے تصریح فرمائی، قبرستان میں جو نیا راستہ نکالا گیا ہو اس میں آدمیوں کو چلنا حرام ہے،

في الشاميه عن الطحطاوية آخر كتاب الطهارة نصوا على ان المرور في سكة حادثة فيها حرام [1] -

آخر کتاب الطہارۃ شامی میں طحطاوی سے ہے علماء نے اس بات کی تصریح کی ہے کہ قبرستان میں جو نیا راستہ نکالا گیا ہو اس پر چلنا حرام ہے۔

اور فرماتے ہیں: ”مقبرے کی گھاس (سبز) کاٹنا مکروہ ہے کہ جب تک وہ (گھاس سبز) تر رہتی ہے اللہ تعالیٰ کی تسبیح کرتی ہے، اس (سبز گھاس) سے اموات کا دل بہلتا ہے اور ان پر رحمت الٰہی کا نزول ہوتا ہے، ہاں خشک گھاس کاٹ لینا جائز ہے مگر وہاں سے تراش کو جانوروں کے پاس لے جائیں، اور یہ ممنوع ہے کہ انہیں گورستان میں چرنے چھوڑ دیں۔“

في جنائز ردالمختار يكره ايضاً قطع النبات الرطب والحشيش من المقبرة دون اليابس كما فى البحر والدرر وشرح المنية [2] وعله في الامداد بانه مادام رطبًا يسبح الله تعالىٰ فيونس الميت وتنزل بذكره الرحمة ونحوه في الخانية انتهى [3]- وفي العالمگيرية عن البحر الرائق لوكان فيها حشيش يحش

ردالمحتار کے جنائز میں ہے کہ تر گھاس کا مقبرے سے کاٹنا مکروہ ہے خشک گھاس کا نہیں، جیسا کہ بحر، در اور شرح منیہ میں ہے، اور امداد میں اس کی یہ وجہ بتائی گئی ہے کہ جب تک وہ تر رہتی ہے اللہ کی تسبیح کرتی رہتی ہے جس سے میت کو انس حاصل ہوتا ہے، خانیہ میں بھی اسی طرح ہے انتہی، اور عالمگیریہ میں بحر الرائق سے ہے کہ اگر قبرستان میں

ویرسل الی الدواب ولاترسل الدواب فیھا [4] خشک گھاس ہو تو کاٹ کر لائی جا سکتی ہے مگر اھ۔ جانور اس میں نہ چھوڑے جائیں اھ۔

نبی صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم نے ایک شخص کو مقابر میں جوتا پہنے چلتے دیکھا، ارشاد فرمایا: ”ہائے کم بختی تیری اے طائفی جوتے والے! پھینک اپنی جوتی۔“

---

[1] ردالمحتار فصل الاستنجاء ادارۃ الطباعۃ المصریہ مصر ۱/ ۲۲۹ [2] ردالمحتار باب صلوٰۃ الجنائز ادارۃ الطباعۃ المصریہ مصر ۱/ ۶۰۶ [3] ردالمحتار باب صلوٰۃ الجنائز ادارۃ الطباعۃ المصریہ مصر ۱/ ۶۰۶ [4] فتاوی ہندیہ الباب الثانی عشر فی الرباطات نورانی کتب خانہ پشاور ۳/ ۴۷۱

Fatawa-e-Razvia, Volume 9

"The Imams Abu Dawood, Nasai, Tahawi, and others narrated from Bashir bin al-Khasasiyah—and the wording belongs to Imam al-Hanafi—that the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) saw a man walking between graves wearing sandals. He said: 'Woe to you, O wearer of the Sibti sandals! Take off your Sibti sandals.' [1] 'Sibtiyya' (with a kasra on the letter 'seen' and sukun on the 'ba') refers to leather that has no hair. Qadi Iyad said: It was the custom of the Arabs to wear sandals made of raw hide with hair on it, and tanned leather sandals were manufactured in Ta'if and other places [2] etc."

Abu Dawood, Nasai, Tahawi, and others narrated from Bashir bin Khasasiyah, and the wording is that of Imam Hanafi, that the Holy Messenger (peace and blessings of Allah be upon him) saw a person walking between graves wearing sandals and said: "Woe be upon you, O wearer of sandals! Take off your sandals." Sibti (with kasra on seen and sukun on ba) refers to that leather which has no hair on it. Qadi Iyad said: The Arabs used to wear shoes made of raw leather with hair, and tanned leather shoes were made in Ta'if etc.

The learned researcher Hasan Shurunbulali and his teacher Allama Muhammad bin Ahmad Hamwi say: "The sound produced by footwear while walking causes distress to the deceased."

As stated in Maraqi al-Falah: "My teacher Allama Muhammad bin Ahmad al-Hamwi al-Hanafi (may Allah have mercy on him) informed me that they (the deceased) are pained by the sound of sandals." [3] I say, the reason for this will soon follow from what is narrated from al-Arif al-Tirmidhi (may Allah have mercy on him).

This is because it is mentioned in Maraqi al-Falah that: "My teacher Allama Muhammad bin Ahmad Hamwi Hanafi (may Allah have mercy on him) informed me that the dead feel pain from the sound of shoes." I say its proof will soon appear as narrated from Arif Tirmidhi.

The Holy Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) says:

"That one of you sits on a burning coal until it burns his clothes and reaches his skin is better for him than sitting on a grave." [4] - Narrated by Muslim, Abu Dawood, and Nasai.

Indeed, for a man to sit on a spark of fire until it burns through his clothes and reaches his skin is better for him than sitting on a grave. Narrated by Muslim and Abu Dawood.

---

1. Sharh Ma'ani al-Athar, Chapter on walking between graves with sandals, HM Saeed Company Karachi, 1/342.
2. Tarikh Sabta by Qadi Iyad.
3. Maraqi al-Falah on the margins of at-Tahtawi, Chapter on Visiting Graves, Nur Muhammad Karkhana Tijarat Kutub Karachi, p. 342.
4. Sunan Abi Dawood, Book of Funerals, Aftab-e-Alam Press Lahore, 2/104.

फतावा रज़विया, खंड 9

"इमाम अबू दाऊद, नसाई, तहतावी और अन्य लोगों ने बशीर बिन अल-खसासीया से रिवायत की है —और शब्द इमाम अल-हनफी के हैं—कि अल्लाह के रसूल (उन पर अल्लाह की शांति और आशीर्वाद हो) ने एक व्यक्ति को कब्रों के बीच जूते पहनकर चलते देखा। उन्होंने कहा: 'तुम्हारा बुरा हो, ओ सिब्ती जूते पहनने वाले! अपने सिब्ती जूते उतार दो।' [1] 'सिब्तिया' (अक्षर 'सीन' पर कसरा और 'बा' पर सुकून के साथ) उस चमड़े को संदर्भित करता है जिसमें बाल न हों। काजी अयाज़ ने कहा: अरबों का रिवाज था कि वे बालों वाले कच्चे चमड़े के जूते पहनते थे, और पकाए हुए चमड़े के जूते ताइफ़ आदि में बनाए जाते थे [2] इत्यादि।"

अबू दाऊद, नसाई, तहतावी और अन्य लोगों ने बशीर बिन खसासीया से रिवायत की और शब्द इमाम हनफी के हैं कि पवित्र रसूल (उन पर अल्लाह की शांति और आशीर्वाद हो) ने एक व्यक्ति को कब्रों के बीच जूते पहनकर चलते देखा तो फरमाया: "तेरा बुरा हो, ओ जूतों वाले! अपने जूते उतार दे।" सिब्ती ('सीन' पर कसरा और 'बा' पर सुकून के साथ) उस चमड़े को कहते हैं जिसमें बाल न हों। काजी अयाज़ ने फरमाया: अरब के लोग बालों वाले कच्चे चमड़े के जूते पहनते थे और पकाए हुए चमड़े के जूते ताइफ़ आदि में बनाए जाते थे।

विद्वान शोधकर्ता हसन शुरुनबुलाली और उनके शिक्षक अल्लामा मुहम्मद बिन अहमद हमवी कहते हैं: "चलते समय जूतों से निकलने वाली आवाज़ मृतकों को कष्ट देती है।"

जैसा कि मराकी अल-फलाह में कहा गया है: "मेरे शिक्षक अल्लामा मुहम्मद बिन अहमद अल-हमवी अल-हनफी (अल्लाह उन पर रहम करे) ने मुझे सूचित किया कि वे (मृतक) जूतों की आहट से दुखी होते हैं।" [3] मैं कहता हूँ, इसका कारण जल्द ही आरिफ़ अल-तिर्मिज़ी (अल्लाह उन पर रहम करे) से उद्धृत किया जाएगा।

ऐसा इसलिए है क्योंकि मराकी अल-फलाह में कहा गया है कि: "मेरे उस्ताद अल्लामा मुहम्मद बिन अहमद हमवी हनफी (अल्लाह उन पर रहम करे) ने मुझे खबर दी कि मुर्दे जूतों की आहट से तकलीफ महसूस करते हैं।" मैं कहता हूँ कि इसका प्रमाण जल्द ही आरिफ तिर्मिज़ी से उद्धृत होकर आएगा।

नबी करीम (उन पर अल्लाह की शांति और आशीर्वाद हो) फरमाते हैं:

"तुममें से किसी का जलते हुए कोयले पर बैठना यहाँ तक कि वह उसके कपड़ों को जला दे और उसकी खाल तक पहुँच जाए, उसके लिए कब्र पर बैठने से बेहतर है।" [4] - मुस्लिम, अबू दाऊद और नसाई द्वारा वर्णित।

बेशक, आदमी का आग की चिंगारी पर बैठा रहना यहाँ तक कि वह उसके कपड़े जलाकर खाल तक पहुँच जाए, उसके लिए कब्र पर बैठने से बेहतर है। इसे मुस्लिम और अबू दाऊद ने रिवायत किया।

---

1. शरह मआनी अल-आसार, कब्रों के बीच जूतों के साथ चलने का अध्याय, एचएम सईद कंपनी कराची, 1/342।
2. काजी अयाज़ द्वारा तारीख सब्ता।
3. तहतावी के हाशिये पर मराकी अल-फलाह, कब्रों की ज़ियारत का अध्याय, नूर मुहम्मद कारखाना तिजारत कुतुब कराची, पृष्ठ 342।
4. सुनन अबी दाऊद, जनाज़े की किताब, आफ़ताब-ए-आलम प्रेस लाहौर, 2/104।

فتاوی رضویہ، جلد نہم

"اخرج الائمة ابوداؤد النسائی والطحطاوی وغیرہم عن بشیر بن الخصاصیۃ واللفظ للامام الحنفی ان رسول اللہ صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم رأی رجلاً یمشی بین القبور فی نعلین، فقال ویحک یا صاحب السبتیتین الق سبتیتیک ۱ اھـ السبتۃ بکسر المہملہ وسکون الموحدہ ہی التی لاشعر فیہا۔ قال القاضی عیاض کان من عادۃ العرب لبس النعال بشعرہا غیر مدبوغۃ وکانت المدبغۃ تعمل بالطائف وغیرہ ۲ الخ ۔"

ابوداؤد، نسائی اور طحطاوی وغیرہم نے بشیر بن خصاصیہ سے روایت کی اور لفظ امام حنفی کے ہیں کہ رسول اکرم صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم نے ایک شخص کو قبروں کے درمیان جوتیاں پہن کر چلتے ہوئے دیکھا تو فرمایا: خرابی ہو تیری اے جوتیوں والے اپنی جوتیاں اتار دے، سبتہ مہملہ کے کسرہ اور سکون باء سے مراد وہ چمڑا ہے جس میں بال نہ ہوں، قاضی عیاض نے فرمایا: عرب والے کچے چمڑے کے مع بالوں کے جوتے پہنا کرتے تھے اور پکائے ہوئے چمڑے کے جوتے طائف وغیرہ میں بنائے جاتے تھے الخ۔

فاضل محقق حسن شرنبلالی اور ان کے استاذ علامہ محمد بن احمد حموی فرماتے ہیں: "چلنے میں جو آواز کفش پا سے پیدا ہوتی ہے اموات کو رنج دیتی ہے۔"

حیث قال فی مراقی الفلاح اخبرنی شیخی العلامۃ محمد بن احمد الحموی الحنفی رحمہ اللہ تعالیٰ بانہم یتأذون بخفتی النعال انتہی ۳ اھـ اقول ووجہہ ماسیأتی عن العارف الترمذی رحمہ اللہ تعالیٰ ۔

اس لیے کہ مراقی الفلاح میں کہا کہ مجھے خبر دی میرے شیخ علامہ محمد بن احمد حموی حنفی رحمہ اللہ تعالیٰ نے کہ مُردے جوتیوں کی پچھل سے تکلیف محسوس کرتے ہیں اھ میں کہتا ہوں اس کی دلیل عنقریب عارف ترمذی سے منقول ہو کر آئے گی۔

نبی کریم صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم فرماتے ہیں:

لان یجلس احدکم علی جمرۃ فتحرق ثیابہ حتی تخلص الی جلدہ خیر لہ من ان یجلس علی قبر ۴ - رواہ مسلم وابوداؤد والنسائی

بیشک آدمی کو آگ کی چنگاری پر بیٹھارہنا یہاں تک کہ وہ اس کے کپڑے جلا کر جلد تک توڑ جائے، اس کے لیے بہتر ہے اس سے کہ قبر پر بیٹھے، اسے مسلم وابوداؤد نے روایت کیا۔

---

۱ شرح معانی الآثار باب المشی بین القبور بالنعال ایچ ایم سعید کمپنی کراچی ۱/ ۳۴۲ ۲ تاریخ سبتۃ للقاضی عیاض ۳ مراقی الفلاح علی ہامش الطحطاوی فصل فی زیارۃ القبور نور محمد کارخانہ تجارت کتب کراچی ص ۳۴۲ ۴ سنن ابی داؤد کتاب الجنائز آفتاب عالم پریس لاہور ۲/ ۱۰۴

[Box 1] Arabic: And Ibn Majah from our master Abu Huraira (may Allah be pleased with him). Urdu: Nasa'i and Ibn Majah narrated from our master Abu Huraira (may Allah be pleased with him).

Amarah bin Hazm (may Allah be pleased with him) says: The Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) saw me sitting on a grave and said: "O you sitting on the grave! Get down from the grave, do not cause pain to the inhabitant of the grave, nor let him cause you pain."

[Box 2] Arabic: Al-Tahawi narrated in 'Ma'ani al-Athar', al-Tabarani in 'al-Mu'jam al-Kabir' with a Hasan chain, and al-Hakim and Ibn Mundah narrated from Amarah bin Hazm (may Allah be pleased with him): "The Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) saw me sitting on a grave and said: 'O inhabitant of the grave! Get down from the grave, do not harm the owner of the grave, and let him not harm you. 1 And the wording of Imam Hanafi is: 'So let him not harm you. 2"

Urdu: Al-Tahawi narrated in 'Ma'ani al-Athar', al-Tabarani in 'al-Mu'jam al-Kabir' with a Hasan chain, and al-Hakim and Ibn Mundah narrated from Amarah bin Hazm that: "The Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) saw me sitting on a grave and said: 'O you sitting on a grave, get down from the grave and do not cause pain to the one in the grave and let him not cause you pain.' And the words of Imam Hanafi are 'Fala Yu'zika' (i.e., let him not cause you pain. - T)"

And Imam Ahmad (may Allah have mercy on him) narrated in his Musnad that the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him and his family) saw Amr bin Hazm leaning against a grave and said:

[Box 3] Arabic: "Do not harm the owner of the grave 3", as in al-Mishkat. I say: this hadith does not suit the interpretation of Imam Abu Ja'far, and prohibiting something does not negate prohibiting something more general than it, so understand.

Urdu: "Do not harm the owner of the grave", as it is in Mishkat. I say: with this Hadith, Imam Abu Ja'far's interpretation does not remain suitable, and prohibiting something does not preclude it from being a universal prohibition, so reflect.

Sheikh Muhaqqiq (may Allah have mercy on him) says in the commentary:

[Box 4] Arabic/Persian: "Perhaps it means that his soul becomes unhappy and is not pleased with someone leaning on his grave because it implies humiliation and disrespect towards him. 4 Ah."

Urdu: "Perhaps it means that his soul becomes displeased and feels humiliated due to someone leaning on his grave. Ah."

1. Sharh as-Sudur with reference to al-Tabarani, al-Hakim, and Ibn Mundah, Chapter: 'Tadiyah bi-Sair Wujuh al-Adha', Khilafat Academy, Swat, p. 126
2. Sharh Ma'ani al-Athar, Chapter: 'al-Julus 'ala al-Qubur', H.M. Saeed Company, Karachi, 1/346
3. Mishkat al-Masabih, Chapter: 'Dafn al-Mayyit', third section, Matba Mujtabai, Delhi, 1/129
4. Ashi'at al-Lam'at, Chapter: 'Dafn al-Mayyit', Nooria Razawiya, Sukkur, 1/699

[बॉक्स 1] अरबी: इब्न माजा ने हमारे आका अबू हुरैरा (रज़ियल्लाहु अन्हु) से रिवायत की। उर्दू: नसाई और इब्न माजा ने हमारे आका अबू हुरैरा (रज़ियल्लाहु अन्हु) से रिवायत की।

अमारा बिन हज़म (रज़ियल्लाहु अन्हु) कहते हैं: नबी (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) ने मुझे एक क़ब्र पर बैठे देखा, तो फ़रमाया: "ऐ क़ब्र पर बैठने वाले! क़ब्र से उतर आ, साहिबे-क़ब्र (क़ब्र वाले) को तकलीफ़ न दे, और न ही वह तुझे तकलीफ़ दे।"

[बॉक्स 2] अरबी: अत-तहावी ने 'मआनी अल-आसार' में, और अत-तबरानी ने 'अल-मुअजम अल-कबीर' में एक अच्छी सनद के साथ, और अल-हाकिम और इब्न मंदा ने अमारा बिन हज़म (रज़ियल्लाहु अन्हु) से रिवायत की कि: "अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) ने मुझे एक क़ब्र पर बैठे देखा तो फ़रमाया: 'ऐ क़ब्र पर बैठने वाले, क़ब्र से उतर जा और क़ब्र वाले को तकलीफ़ न दे और वह तुझे तकलीफ़ न दे। 1 और इमाम हनफ़ी के शब्द ये हैं: 'फला यु'ज़िका' (तो वह तुझे तकलीफ़ न दे)। 2"

उर्दू: तहावी ने मआनी अल-आसार में और तबरानी ने मुअजम कबीर में हसन सनद के साथ और हाकिम और इब्न मंदा ने अमारा बिन हज़म से रिवायत की कि: मुझे अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) ने एक क़ब्र पर बैठे देखा तो फ़रमाया: 'ऐ क़ब्र पर बैठने वाले, क़ब्र से उतर और क़ब्र वाले को तकलीफ़ न दे और वह तुझे तकलीफ़ न दे।' और इमाम हनफ़ी के शब्द ये हैं: 'फला यु'ज़िका' (यानी वह तुझे तकलीफ़ न दे। - त)

और इमाम अहमद (रहमतुल्लाहि अलैहि) ने अपनी मुस्नद में इस तरह रिवायत किया है: उन्होंने अम्र बिन हज़म को नबी (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम और उनके परिवार) के पास एक क़ब्र का सहारा लिए हुए देखा, तो फ़रमाया:

[बॉक्स 3] अरबी: "साहिबे-क़ब्र को ईज़ा (तकलीफ़) न पहुँचाओ 3", जैसा कि मिश्कात में है। मैं कहता हूँ कि इस हदीस से इमाम अबू जाफ़र की तावील (व्याख्या) उचित नहीं रहती है, और किसी चीज़ से रोकना उस चीज़ के सामान्य निषेध के विरुद्ध नहीं है, तो गौर करें।

उर्दू: "साहिबे-क़ब्र को ईज़ा न पहुँचाओ", जैसा कि मिश्कात में है। मैं कहता हूँ कि इस हदीस से इमाम अबू जाफ़र की तावील मुनासिब नहीं रहती और किसी चीज़ से रोकना उस चीज़ के सामान्य निषेध के विरुद्ध नहीं है, तो गौर करें।

शेख मोहक्क़िक़ (रहमतुल्लाहि अलैहि) शरह में फ़रमाते हैं:

[बॉक्स 4] अरबी/फ़ारसी: "शायद इसका मतलब यह है कि उसकी रूह (आत्मा) नाखुश होती है और अपनी क़ब्र पर सहारा लेने के कारण अपमान और अनादर महसूस करने की वजह से राज़ी नहीं होती। 4 अह।"

उर्दू: "शायद मुराद यह है कि उसकी रूह नाराज़ होती है अपनी क़ब्र पर तकिया लगाने (सहारा लेने) की वजह से अपमान महसूस करती है। अह।"

1. शरह अस-सुदूर, बहवाला तबरानी, हाकिम और इब्न मंदा, अध्याय: 'तदिया बिसैर वुजूह अल-अज़ा', खिलाफत एकेडमी, स्वात, पृ. 126
2. शरह मआनी अल-आसार, अध्याय: 'अल-जुलूस अलल कुबूर', एच.एम. सईद कंपनी, कराची, 1/346
3. मिश्कात अल-मसाबीह, अध्याय: 'दफ़्न अल-मय्यित', तीसरा खंड, मतबा मुज्तबाई, दिल्ली, 1/129
4. अशिअत अल-लमआत, अध्याय: 'दफ़्न अल-मय्यित', नूरिया रज़विया, सुक्कुर, 1/699

पृष्ठ 948 का 446

[باکس 1] عربی: وابن ماجة عن سیدنا ابی هریرة رضی الله تعالی عنه۔ اردو: نسائی وابن ماجہ نے سیدنا ابوہریرہ رضی اللہ تعالیٰ عنہ سے روایت کیا۔

عمارہ بن حزم رضی اللہ تعالیٰ عنہ فرماتے ہیں: مجھے نبی صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم نے ایک قبر پر بیٹھے دیکھا، ارشاد فرمایا: "او قبر پر بیٹھنے والے! قبر سے اتر آ، صاحب قبر کو ایذا نہ دے، نہ وہ مجھے ایذا دے۔"

[باکس 2] عربی: اخرج الطحاوی فی معانی الآثار والطبرانی فی المعجم الکبیر بسند حسن والحاکم وابن مندة عن عمارة بن حزم رضی الله تعالی عنه رانی رسول الله صلی الله علیه وسلم جالسا علی قبر فقال یا صاحب القبر انزل من علی القبر لا تؤذی صاحب القبر ولا یؤذیك 1 ولفظ الامام الحنفي فلا یؤذیك 2۔ اردو: طحاوی نے معانی الآثار میں اور طبرانی نے معجم کبیر میں بسند حسن اور حاکم اور ابن مندہ نے عمارہ بن حزم سے روایت کی کہ مجھے رسول اللہ صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم نے ایک قبر پر بیٹھے دیکھا تو فرمایا: اے قبر پر بیٹھنے والے قبر سے اتر اور قبر والے کو تکلیف نہ دے اور وہ تجھے تکلیف نہ دے۔ اور امام حنفی کے لفظ یہ ہیں فلا یؤذیک (پس وہ تجھے تکلیف نہ دے۔ت)

اور امام احمد رحمتہ اللہ تعالیٰ علیہ نے اپنی مسند میں یوں روایت کیا: عمرو بن حزم کو نبی صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم وآلہ وسلم نے ایک قبر سے تکیہ لگائے دیکھا، فرمایا:

[باکس 3] عربی: لا تؤذ صاحب القبر 3، کما في المشکوة قلت وهذا الحدیث لا یلائمه تأویل الامام ابی جعفر والنهي عن شیئ لا ینافي النهي عن اعم منه فافهم ۔ اردو: صاحب قبر کو ایذا نہ دے، جیسے

مشکوۃ میں ہے، میں کہتا ہوں اس حدیث سے امام ابو جعفر کی تاویل مناسب نہیں رہتی ہے اور کسی چیز سے روکنا اس چیز سے عالم کے روکنے کو مستلزم نہیں، تو غور کیجئے۔

شیخ محقق رحمۃ اللہ علیہ شرح میں فرماتے ہیں:

[باکس 4] عربی/فارسی: شاید کہ مراد آنست کہ روح وے ناخوش می دارد و راضی نیست بہ تکیہ کردن بر قبر وے جہت تضمن وے اہانت و استخفاف را بوئے 4 اھ اردو: شاید مراد یہ ہے کہ اس کی روح ناراض ہوتی ہے اپنی قبر پر تکیہ لگانے کی وجہ سے اہانت محسوس کرتی ہے۔ اھ

1 شرح الصدور بحوالہ الطبرانی والحاکم وابن مندۃ باب تأدیہ بسائر وجوہ الاذی خلافت اکیڈمی سوات ص ۱۲۶ 2 شرح معانی الآثار باب الجلوس علی القبور ایچ ایم سعید کمپنی کراچی ۱/ ۳۴۶ 3 مشکوۃ المصابیح باب دفن المیت فصل ثالث مطبع مجتبائی دہلی ۱/ ۱۲۹ 4 اشعۃ اللمعات باب دفن المیت نوریہ رضویہ سکھر ۱/ ۶۹۹

Fatawa Rizwiya, Volume 9

I say: Upon this explanation, Imam Allama Arif Billah Hakim-ul-Ummah Sayyidi Muhammad bin Ali Tirmidhi (may Allah sanctify his secret) has reached a firm conclusion and clarifies: "The souls become aware of the disrespect and the diminution of their status shown to them, and therefore they suffer pain."

Sayyidi Abdul Ghani, quoting from 'Nawadir al-Usul' in 'Al-Hadiqa', said: Its meaning is that the souls know when respect is abandoned and when they are held in contempt, and they are pained by that. (End)

The Holy Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) says: Certainly, to walk on a burning coal or a sword or to stitch my sandals to my feet is more beloved to me than to walk on a grave. (Narrated by Ibn Majah from Uqba bin Amir, may Allah be pleased with him, and its chain of narration is excellent, as Al-Mundhiri noted.) (T)

Abdullah bin Mas'ud (may Allah be pleased with him) says: Verily, to step on a burning coal is dearer to me than to step on the grave of a Muslim. (Narrated by Al-Tabarani in 'Al-Mu'jam al-Kabir' with a good chain of narration, as stated by Imam Abdul Azim.) (T)

A person asked the same eminent companion about the matter of stepping on a grave, he said: Just as the harming of a believer during his lifetime was disliked, I similarly dislike harming him after his death. (Reported by Sa'id bin Mansur)

---

1 Al-Hadiqa al-Nadiyya, Chapter 8, Category of human afflictions, Maktaba Nooriya Rizwiya Faisalabad, 2/505. 2 Sunan Ibn Majah, Chapter regarding the prohibition of walking over graves, H.M. Saeed Company Karachi, p. 113. 3 Al-Targhib wa al-Tarhib, Chapter regarding sitting on graves etc., Mustafa al-Babi Egypt, 2/473. 4 Sharh as-Sudur, Chapter on manners and types of harm, Khilafat Academy Mangora Swat, p. 126.

फ़तावा रज़विया, जिल्द नौ

मैं कहता हूँ: इस व्याख्या पर इमाम अल्लामा आरिफ़ बिल्लाह हकीम-उल-उम्मत सैय्यदी मुहम्मद बिन अली तिर्मिज़ी (अल्लाह उनके रहस्य को पवित्र करे) ने दृढ़ निश्चय किया है, वे स्पष्ट करते हैं कि: "आत्माओं को उनके प्रति किए गए अनादर और उनके सम्मान में कमी का पता चल जाता है, इसलिए वे कष्ट पाती हैं।"

सैय्यदी अब्दुल गनी ने 'अल-हदीक़ा' में 'नवादिर' से उद्धृत करते हुए फ़रमाया: इसका अर्थ यह है कि आत्माएं अपने सम्मान के अभाव और अपमान को महसूस करती हैं, और इससे उन्हें कष्ट होता है। (समाप्त)

हुज़ूर अक़दस (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) फ़रमाते हैं: निश्चित रूप से जलती हुई चिंगारी या तलवार पर चलना या अपने पैरों पर जूते सिलना मुझे किसी कब्र पर चलने से अधिक प्रिय है। (इब्न माजा ने इसे उक़बा बिन आमिर रज़ियल्लाहु अन्हु से रिवायत किया, और इसकी सनद उत्कृष्ट है जैसा कि मुन्ज़िरी ने बताया है।) (त)

अब्दुल्ला बिन मसूद (रज़ियल्लाहु अन्हु) फ़रमाते हैं: बेशक मुझे दहकती आग पर पैर रखना एक मुसलमान की कब्र पर पैर रखने से ज़्यादा पसंद है। (तबरानी ने इसे 'मुअजम कबीर' में सनद हसन के साथ रिवायत किया, जैसा कि इमाम अब्दुल अज़ीम ने कहा।) (त)

उन्हीं महान सहाबी से किसी ने कब्र पर पैर रखने के बारे में पूछा, तो उन्होंने फ़रमाया: जिस प्रकार मोमिन को उसके जीवनकाल में कष्ट देना नापसंद किया गया, वैसे ही मैं उसकी मृत्यु के बाद उसे कष्ट देना नापसंद करता हूँ। (सईद बिन मंसूर द्वारा उद्धृत)

---

1 अल-हदीक़ा अन-नदिया, खंड 8, मानवीय व्याधियों के प्रकार, मकतबा नूरिया रज़विया फैसलाबाद, 2/505। 2 सुनन इब्न माजा, कब्रों पर चलने की मनाही का अध्याय, एच.एम. सईद कंपनी कराची, पृष्ठ 113। 3 अत-तरग़ीब वत-तरहीब, कब्रों पर बैठने आदि का अध्याय, मुस्तफा अल-बाबी मिस्र, 2/473। 4 शरह अस-सुदूर, शिष्टाचार और हानि के कारणों का अध्याय, खिलाफत अकादमी मंगोरा स्वात, पृष्ठ 126।

पृष्ठ 948 का 447

فتاوٰی رضویہ جلد نہم

اقول: اس توجیہ پر امام علامہ عارف باللہ حکیم الامۃ سیدی محمد بن علی ترمذی قدس سرہ نے جزم فرمایا، تصریح فرماتے ہیں کہ: "ارواح کو ان کی بے حرمتی و تنقیصِ شان معلوم ہو جاتی ہے لہٰذا ایذا پاتی ہیں۔"

قال سیدی عبد الغنی فی الحدیقۃ عن نوادر الاصول معناہ ان الارواح تعلم بالترک اقامۃ الحرمۃ وبالاستھانہ فتتأذی بذلک 1 اھ | سیدی عبد الغنی نے حدیقہ میں نوادر سے نقل کرتے ہوئے فرمایا: اس کے یہ معنی ہیں کہ ارواح اپنی اہانت و ذلت کو محسوس کرتی ہیں اور اس سے انھیں ایذا ہوتی ہے اھ

حضور اقدس صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم فرماتے ہیں:

لان ام شی علی جمرۃ او سیف او اخصف نعلی برجلیہ احب الی من ان امشی علی قبر 2۔ رواہ ابن ماجۃ عن عقبہ بن عامر رضی اللہ تعالٰی عنہ و اسنادہ جید کما فاد المنذری۔ | البتہ چنگاری یا تلوار پر چلنا یا جوتا پاؤں سے گانٹھنا مجھے اس سے زیادہ پسند ہے کہ کسی قبر پر چلوں اسے ابن ماجہ نے عقبہ بن عامر رضی اللہ تعالٰی عنہ سے روایت کیا، اس کی سند عمدہ ہے جیسا کہ منذری نے افادہ کیا۔ (ت)

عبد اللہ بن مسعود رضی اللہ تعالٰی عنہ فرماتے ہیں:

لان اطاء علی جمرۃ احب الی من ان اطاء علی قبر مسلم، رواہ الطبرانی فی الکبیر باسناد حسن 3 قالہ امام عبد العظیم۔ | بے شک مجھے آگ پر پاؤں رکھنا زیادہ پیارا ہے مسلمان کی قبر پر پاؤں

رکھنے سے، اسے طبرانی نے معجم کبیر میں بسند حسن روایت کیا۔ جیسا کہ امام عبدالعظیم نے کہا۔ (ت)

ان ہی صحابی اجل سے کسی نے قبر پر پاؤں رکھنے کا مسئلہ پوچھا، فرمایا:

کما کرہ اذای المؤمن فی حیاتہ فانی اکرہ اذاہ بعد موتہ 4۔ اخرجہ سعید بن منصور | میں جس طرح مسلمان کی ایذا اس کی زندگی میں مکروہ جانتا ہوں یونہی بعد موت اس کی ایذا کو ناپسند

---

1 حدیقہ ندیہ الصنف الثامن الاصناف القسمیۃ فی آفات الرجل مکتبہ نوریہ رضویہ فیصل آباد ۲/۵۰۵

2 سنن ابن ماجہ باب ماجاء فی النہی عن المشی علی القبور ایچ ایم سعید کمپنی کراچی ص ۱۱۳ 3 الترغیب والترہیب من الجلوس علی القبر الخ مصطفی البابی مصر ۲/ ۴۷۳ 4 شرح الصدور باب تأدیہ و وجوہ الاذی خلافت اکیڈمی منگورہ سوات ص ۱۲۶

Fatawa Ridawiyya - Volume 9

In his 'Sunan' as mentioned in 'Sharh al-Sudur'. I say: These traditions support what we have chosen and signal that the interpretation of Abu Ja'far (may Allah have mercy on him) is not correct. Therefore, we adopt what is in general books for its belief based on explicit texts of hadith, and because the majority is upon it. They have explicitly stated that action should be based on what the majority is upon, and that a narration which aligns with reasoning (dirayah) is not deviated from. So how can one deviate from that which is most famous, most manifest, held by the majority, and most shining? With this, what Al-Allamah Badr asserted in 'Al-Umda' is weakened. So, reflect.

Based on these traditions, our scholars (may Allah have mercy on them) have prohibited walking on graves, sitting on them, or placing feet on them without necessity, as all this is against the sanctity of a believer, a lack of etiquette, and insolence. It is stated in 'Al-Nawadir', 'Al-Tuhfa', 'Al-Bada'i', 'Al-Muhit', etc. that:

Note: His saying "without necessity" refers to situations like going to dig a grave or bury someone in a graveyard where other graves are in the way. In such a need, it is permitted, yet one should avoid [stepping on them] as much as possible, be barefoot, and keep praying and seeking forgiveness for the deceased. In the marginalia of Al-Allamah al-Tahtawi on 'Maraqi al-Falah', quoting from the commentary of 'Mishkat', it is said: Stepping due to necessity, such as burying a dead person, is not disliked. And from 'Al-Siraj': If there is no path except over the grave, walking over it is permissible due to necessity. (12 (ت) منه)

Footnote 1: Hashiya al-Tahtawi on Maraqi al-Falah, chapter on visiting graves, Noor Muhammad Factory of Book Trade, Karachi, p. 340. Page 448 of 948

फ़तावा रिज़विया - जिल्द 9

अपनी 'सुनन' में जैसा कि 'शरह अल-सुदूर' में उल्लेखित है। मैं कहता हूँ: ये हदीसें उसका समर्थन करती हैं जिसे हमने चुना है और संकेत देती हैं कि अबू जाफ़र (अल्लाह उन पर रहम करे) की व्याख्या सही जगह पर नहीं है। इसलिए, हम वही अपनाते हैं जो सामान्य पुस्तकों में है क्योंकि वह हदीसों के स्पष्ट पाठों पर आधारित विश्वास है, और इसलिए भी कि बहुमत इसी पर है। विद्वानों ने स्पष्ट किया है कि अमल उसी पर होगा जिस पर बहुमत हो, और उस रिवायत से नहीं फिरा जाता जो समझ (दरायत) के अनुकूल हो। तो फिर उससे फिरने का औचित्य क्या होगा जो सबसे प्रसिद्ध, सबसे स्पष्ट, बहुमत वाला और सबसे उज्ज्वल हो? इसके साथ, अल्लामा बद्र ने 'अल-उम्दा' में जो दावा किया है वह कमज़ोर हो जाता है। तो गौर कीजिए।

इन्हीं हदीसों के आधार पर हमारे विद्वानों (अल्लाह उन पर रहम करे) ने बिना ज़रूरत कब्र पर चलने, उस पर बैठने और उस पर पैर रखने से मना किया है क्योंकि यह सब एक मोमिन की गरिमा के खिलाफ, अदब की कमी और गुस्ताखी है। 'अल-नवादिर', 'अल-तौफ़ा', 'अल-बदई', 'अल-मुहीत' आदि में है कि:

नोट: उनका कहना "बिना ज़रूरत", ज़रूरत की स्थिति जैसे कि कब्रिस्तान में किसी मृत व्यक्ति के लिए कब्र खोदने या दफनाने जाना हो और बीच में कब्रें आ रही हों। ऐसी ज़रूरत के लिए अनुमति है, फिर भी जहाँ तक हो सके बचते हुए जाएँ और नंगे पाँव हों, उन मृतकों के लिए दुआ और मगफिरत करते रहें। अल्लामा तहतावी के'मराक़ी अल-फलाह' के हाशिये में 'मिशकात' की शरह से उद्धृत है कि: ज़रूरत के चलते जैसे मय्यत को दफनाने जाना हो तो कब्रों पर से गुज़रना मकरूह नहीं है। और 'अल-सिराज' से है कि अगर कब्र के ऊपर से ही गुज़रने का रास्ता हो, तो ज़रूरत के कारण उस पर चलना जायज़ है। (12 मिन्हु (त))

पाद-टिप्पणी 1: हाशिया अत-तहतावी अली मराक़ी अल-फलाह, कब्रों की ज़ियारत का अध्याय, नूर मुहम्मद कारख़ाना तिजारत-ए-कुतुब, कराची, पृ. 340। पेज 448 / 948

فی سننہ کما فی شرح الصدور۔ کرتا ہوں۔ اسے سعید بن منصور نے اپنی سنن میں بیان کیا جیسا کہ شرح الصدور میں ہے۔ میں کہتا ہوں ان احادیث سے معلوم ہوا کہ جو بات ہم نے اختیار کی ہے وہ درست ہے، اور ابو جعفر رحمہ اللہ تعالیٰ علیہ کی تاویل بر محل نہیں۔ لہذا ہم وہ مسلک اختیار کرتے ہیں جو عام کتب میں ہے، کیونکہ اسے احادیث کی صراحت سے تقویت حاصل ہے، اور اس لیے بھی کہ اکثر کا یہی قول ہے کیونکہ علماء نے صراحت کردی ہے کہ عمل اس پر ہوگا جس پر اکثریت ہوگی اور یہ کہ اس روایت سے عدول نہیں کیا جاتا جو درایت کے مطابق ہو، تو پھر اس سے عدول کا جواز کیا ہوگا جو اشہر، اظہر، اکثر اور واضح ہے، اور اسی سے علامہ بدر کا زعم عمدہ میں ضعیف قرار پاتا ہے۔ تو غور کیجئے۔

ان ہی احادیث سے ہمارے علماء رحمۃ اللہ تعالیٰ علیہم نے بے ضرورت قبر پر چلنے اور اس پر بیٹھنے اور پاؤں رکھنے سے منع فرمایا کہ یہ سب حرمت مومن کے خلاف ترک ادب گستاخی ہے، ففی النوادر والتحفة والبدائع والمحیط وغیرھا | تحفہ، بدائع اور محیط وغیرہ میں ہے کہ

عہ: قولہ بے ضرورت، ضرورت کی صورت مثلاً قبرستان میں میت کے لیے قبر کھودنے یا دفن کرنے جانا چاہتے ہیں بیچ میں قبریں حائل ہیں اس حاجت کیلئے اجازت ہے، پھر بھی جہاں تک بن پڑے بچتے ہوئے جائیں اور ننگے پاؤں ہوں، ان اموات کیلئے دعا استغفار کرتے جائیں، فی حاشیة العلامة الطحطاوی علی مراقی الفلاح عن | علامہ طحطاوی کے حاشیہ مراقی الفلاح میں شرح مشکوۃ سے ہے کہ شرح المشکوة الوطء الحاجة کدفن المیت لا یکرہ | ضرورت کے پیش نظر مثلاً میت کو دفن کرنے جانا ہو تو قبروں پر اہ وعن السراج فان لم یکن لہ طریق الا علی القبر | سے

گزرنا مکروہ نہیں اہ اور سراج سے ہے کہ اگر قبر پر ہی گزرنے جازلہ المشی علیہ للضرورۃ ۔ ۱۲ منہ | کا راستہ ہو تو اس پر چلنا ضرورتاً جائز ہے ۱۲ امنہ (ت)

1 حاشیۃ الطحطاوی علی مراقی الفلاح فصل فی زیارۃ القبور نور محمد کارخانہ تجارت کتب کراچی ص ۳۴۰ صفحہ 448 از 948

Fatawa Rizwia Volume 9

Imam Abu Hanifa considered trampling on a grave, sitting, sleeping, or relieving oneself on it as 'Makruh' (disliked). This was cited by Allama Ibn Amir al-Hajj in 'al-Hilya'.

I (the author) say: When 'karahat' (dislike) is mentioned unconditionally, it means 'Karahat-e-Tahrimi' (prohibitively disliked), as jurists have explicitly stated. This is further supported by the prohibition in Ahadith based on the cause of causing harm, and causing harm is 'Haram' (forbidden). So, this is the matter of religious conviction, regardless of what others might say.

In the marginal notes of Tahtawi on the commentary of 'Nur al-Idah', it is mentioned from 'Siraj al-Wahhaj':

If there is no path except over the grave, it is permissible to walk over it due to necessity. (End of quote)

I say: This also proves that our choice of 'Karahat-e-Tahrimi' is correct, because the 'Mafhum-e-Mukhalif' (counter-implication) is considered valid by consensus in reports and the speech of scholars. Thus, it signifies that walking without necessity is not permissible, and what is not permissible, its minimum level is 'Karahat-e-Tahrimi'.

Sayyidi Abdul Ghani Nablusi says in 'al-Hadiqa al-Nadiyya':

My father (may Allah have mercy on him) said in the commentary on 'ad-Durar': It is 'Makruh' to trample on a grave as reported from Ibn Mas'ud (may Allah be pleased with him), etc. Then he mentioned the same report which we have narrated.

1. Bada'i al-Sana'i, Section on Sunnahs of Burial, HM Saeed Company Karachi 1/320, Tuhfat al-Fuqaha, Chapter of Burial and Rulings on Martyrs, Dar al-Kutub al-Ilmiyya Beirut 2/25.
2. Hashiyat al-Tahtawi 'ala Maraqi al-Falah, Section on Visiting Graves, Noor Muhammad Karkhana Tijarat Kutub Karachi, p. 340.
3. Al-Hadiqa al-Nadiyya, Eighth category of nine categories regarding afflictions of the man, Nooria Rizwia Faisalabad 2/504.

फ़तावा रज़विया खंड 9

इमाम अबू हनीफ़ा ने कब्र पर पैर रखना, बैठना, सोना, या उस पर मल-मूत्र त्याग करना मकरूह (नापसंद) बताया है। अल्लामा इब्न अमीर अल-हज ने 'अल-हिल्या' में यही उद्धृत किया है।

मैं (लेखक) कहता हूँ: जब 'कराहत' (नापसंदगी) का ज़िक्र बिना किसी शर्त के हो, तो उसका अर्थ 'कराहत-ए-तहरीमी' (निषेधात्मक नापसंदगी) होता है, जैसा कि न्यायविदों (फ़ुक़हा) ने स्पष्ट किया है। फिर हदीसों में उस मनाही से भी इसकी पुष्टि होती है जो नुकसान पहुँचाने (इज़ा) के कारण वर्णित है, और नुकसान पहुँचाना हराम है। अतः धार्मिक निष्ठा की बात यही है, चाहे कोई कुछ भी कहे।

'नूर अल-इदाह' की व्याख्या पर तहतावी के हाशिये में 'सिराज अल-वहाज' से उद्धृत है:

यदि कब्र के अलावा कोई रास्ता न हो, तो आवश्यकतावश उस पर चलना जायज़ है। (अतः)

मैं कहता हूँ: यह भी हमारे 'कराहत-ए-तहरीमी' के पक्ष को पुख्ता करता है, क्योंकि हदीसों और विद्वानों के वचनों में 'मफ़हूम-ए-मुखालिफ' (विपरीत अर्थ) को सर्वसम्मति से स्वीकार किया गया है। इससे पता चला कि बिना ज़रूरत कब्र पर चलना जायज़ नहीं है, और जो चीज़ जायज़ नहीं है, उसका निम्नतम स्तर 'कराहत-ए-तहरीमी' है।

सैय्यदी अब्दुल ग़नी नाबलुसी 'अल-हदीक़ा अल-नदिय्या' में फरमाते हैं:

मेरे वालिद (अल्लाह उन पर रहम करे) ने 'अद-दुरर' की व्याख्या में कहा है कि कब्र को रौंदना मकरूह है जैसा कि इब्न मसऊद (अल्लाह उनसे प्रसन्न हो) से वर्णित है, आदि। फिर उन्होंने वही रिवायत ज़िक्र की जो हम पहले बयान कर चुके हैं।

1. बदाइ अल-सनाइ, दफन की सुन्नतों का खंड, एचएम सईद कंपनी कराची 1/320, तोहफ़तुल फुकाहा, दफन का अध्याय और शहीदों के नियम, दार अल-कुतुब अल-इल्मिया बेरूत 2/25।
2. हाशियतुल तहतावी अला मराक़िल फलाह, कब्रों की ज़ियारत का खंड, नूर मुहम्मद कारखाना तिजारत कुतुब कराची, पृ. 340।
3. अल-हदीका अन-नदिया, पुरुष की आफतों के बारे में नौ श्रेणियों में से आठवीं श्रेणी, नूरिया रज़विया फैसलाबाद 2/504।

पृष्ठ 948 में से 449

فتاوٰی رضویہ جلد نہم

ان اباحنیفة کرہ وطء القبر والقعود او النوم اوقضاء الحاجة علیه 1 کذا نقل العلامة ابن امیر الحاج في الحلیة۔ ابو حنیفہ نے قبر کا روندنا، بیٹھنا، سونا، اس پر قضائے حاجت کرنا مکروہ کہا ہے، اسی طرح ابن امیر الحاج نے حلیہ میں نقل کیا۔

اقول: والکراھة عند الاطلاق کراھة تحریم کما صرحوا به مع مایفیده من النھي الوارد في الاحادیث معللا بالایذاء والایذاء حرام فھذا مأندین الله تعالی به وان قیل وقیل۔ میں کہتا ہوں جب کراہت مطلق ہو تو مراد کراہت تحریم ہوتی ہے جیسا کہ فقہاء نے تصریح کی ہے، پھر اس نہی سے بھی تائید ہوتی ہے جو احادیث میں ایذاء کی علت سے متعلق وارد ہے اور ایذاء حرام ہے پس دیانتداری کی بات یہی ہے، اب خواہ کوئی کچھ کہتا رہے۔

حاشیہ طحطاوی علی شرح نورالایضاح میں سراج و ہاج سے ہے :

ان لم یکن له طریق الا علی القبر جازله دلیل علیه للضرورة 2 اھ اگر قبر پر ہی سے راستہ ہو تو اس پر چلنا ضرورتاً جائز ہے۔ اھ

اقول: وھذا ایضاً دلیل علی مااخترنا من کراھة التحریم فان المفھوم المخالف معتبر في الروایات وکلام العلماء بالاتفاق فافادان المشی لا یجوز بلا ضرورة وما لا یجوز فادناہ کراھة التحریم۔ اقول: (میں کہتا ہوں) اس سے بھی ثابت کہ ہمارا قول کراہت تحریمی کا درست ہے، کیونکہ مفہوم مخالف روایات اور کلام علماء میں بالاتفاق معتبر ہے، تو معلوم ہوا کہ بلا ضرورت قبر پر چلنا ناجائز ہے اور جو ناجائز ہو اس کا ادنٰی درجہ مکروہ تحریمی ہے۔

سیدی عبدالغنی نابلسی حدیقہ ندیہ میں فرماتے ہیں :

قال الوالد رحمه الله تعالى في شرح على الدرر ويكره ان يوطء القبر لماروى عن ابن مسعود 3 الخ وذكر اثر الذى رويناه۔ والد صاحب نے درر کی شرح میں فرمایا کہ قبر کا روندنا مکروہ ہے جیسا کہ ابن مسعود رضی اللہ تعالیٰ عنہ سے مروی ہے الخ، پھر آپ نے وہی اثر ذکر کیا جو ہم روایت کر چکے ہیں۔

1 بدائع الصنائع فصل فی سنۃ الدفن ایچ ایم سعید کمپنی کراچی ۱ / ۳۲۰ ،تحفۃ الفقہاء باب الدفن و حکم الشہداء دار الکتب العلمیۃ بیروت ۲ / ۲۵ 2 حاشیۃ الطحطاوی علی مراقی الفلاح فصل فی زیارۃ القبور نور محمد کارخانہ تجارت کتب کراچی ص ۳۴۰ 3 حدیقہ ندیہ الصنف الثامن من الاصناف التسعۃ فی آفات الرجل نوریہ رضویہ فیصل آباد ۲ / ۵۰۴

Fatawa Rizvia Volume Nine

And it was quoted from Al-Muheet: It is disliked (Makruh) to tread upon a grave with feet or to sit upon it. [Ah, "Qultu" (I say): The explanation of treading with feet was given so it is not interpreted as sexual intercourse.] I say: It (sexual intercourse) is also disliked, rather it is more severe because of the extra disrespect it entails, like having intercourse on the roof of a mosque. Furthermore, it involves forgetting death. Therefore, the interpretation of treading with feet is to indicate the prohibition of intercourse through dalalat al-nass (textual implication). It does not mean intercourse is not disliked; it should be understood this way. And from Jami' al-Fatawa: It is the soil upon which the deceased has a right, therefore it is not permissible to tread upon it. And in Al-Mujtaba: Walking on graves is disliked. In Sharh-ul-Islam and its commentary: It is Sunnah not to tread on graves with shoes because the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) used to dislike it. And Imam Shams al-Aimma al-Halwani said: It is disliked. And from Imam Ali Tarjumani: One will be a sinner by treading on graves because the roof of the grave is the right of the deceased. I say: (I say) this also explicitly states the view of makruh tahrimi (prohibitively disliked) that we have chosen, because there is no sin in makruh tanzihi (lightly disliked). That is merely contrary to the better way (khilaf al-awla). And because...

Footnotes: 1. Hadīqah Nadīyyah, Eighth Category of the Nine Categories regarding the Afflictions of the Feet, Nuriyah Rizviyah, Faisalabad, 504/2 2. Hadīqah Nadīyyah, Eighth Category of the Nine Categories regarding the Afflictions of the Feet, Nuriyah Rizviyah, Faisalabad, 504/22 3. Hadīqah Nadīyyah, Eighth Category of the Nine Categories regarding the Afflictions of the Feet, Nuriyah Rizviyah, Faisalabad, 504/22 4. Hadīqah Nadīyyah, Eighth Category of the Nine Categories regarding the Afflictions of the Feet, Nuriyah Rizviyah, Faisalabad, 505/22 5. Hadīqah Nadīyyah, Eighth Category of the Nine Categories regarding the Afflictions of the Feet, Nuriyah Rizviyah, Faisalabad, 505/2 6. Hadīqah Nadīyyah, Eighth Category of the Nine Categories regarding the Afflictions of the Feet, Nuriyah Rizviyah, Faisalabad, 505/2

फ़तावा रज़विया जिल्द नहम (नौवीं)

और 'मुहीत' से नक़्ल फ़रमाया: क़ब्र को पैरों से रौंदना और उस पर बैठना मकरूह है। [अह 'क़ुलतु' (मैं कहता हूँ): पैरों से रौंदने की तशरीह (व्याख्या) इसलिए कर दी कि जिमाअ (यौन संबंध) पर महमूल (अनुमानित) न किया जाए।] अक़ूल: (मैं कहता हूँ) जिमाअ भी मकरूह है बल्कि इसकी कराहत ज़ायद है क्योंकि इसमें ज़्यादा तौहीन है, जैसे मस्जिद की छत पर वती करना, फिर इसमें मौत का भूल जाना भी शामिल है। लिहाज़ा पैरों से रौंदने पर महमूल करना इसलिए है ताकि जिमाअ की ममानअत पर 'दलालतुल नस्व' के तरीक़े से दलालत करे, यह मतलब नहीं कि वती मकरूह नहीं, इसी तरह समझना चाहिए। और 'जामे-उल-फ़तावा' से नक़्ल किया कि यह वह मिट्टी है जिस पर मय्यत का हक़ है लिहाज़ा उसको रौंदना जायज़ नहीं। और 'मुज्तबा' में है: क़ब्रों पर चलना मकरूह है। 'शर्त-उल-इस्लाम' और उसकी शरह में है: सुन्नत यह है कि जूतों समेत क़ब्रें न रौंदी जाएँ क्योंकि नबी सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम इसे मकरूह समझते थे। और इमाम शम्सुल अइम्मा हलवानी ने कहा कि यह मकरूह है। और इमाम अली तरजुमानी से है कि क़ब्रों के रौंदने से गुनहगार होगा क्योंकि क़ब्र की छत मय्यत का हक़ है। अक़ूल: (मैं कहता हूँ) यह भी हमारे इख़्तियार करदा क़ौल 'कराहते तहरीमी' की सराहत करता है, क्योंकि 'मकरूहे तन्ज़ीही' में कोई गुनाह नहीं होता। वह सिर्फ़'ख़िलाफ़े औला' है नीज़...

फुटनोट्स (पाद-टिप्पणी): 1. हदीक़ह नदिय्यह, नौ श्रेणियों में से आठवीं श्रेणी पैरों की आफ़तों के बारे में, नूरिया रज़विया, फ़ैसलाबाद, 504/2 2. हदीक़ह नदिय्यह, नौ श्रेणियों में से आठवीं श्रेणी पैरों की आफ़तों के बारे में, नूरिया रज़विया, फ़ैसलाबाद, 504/22 3. हदीक़ह नदिय्यह, नौ श्रेणियों में से आठवीं श्रेणी पैरों की आफ़तों के बारे में, नूरिया रज़विया, फ़ैसलाबाद, 504/22 4. हदीक़ह नदिय्यह, नौ श्रेणियों में से आठवीं श्रेणी पैरों की आफ़तों के बारे में, नूरिया रज़विया, फ़ैसलाबाद, 505/22 5. हदीक़ह नदिय्यह, नौ श्रेणियों में से आठवीं श्रेणी पैरों की आफ़तों के बारे में, नूरिया रज़विया, फ़ैसलाबाद, 505/2 6. हदीक़ह नदिय्यह, नौ श्रेणियों में से आठवीं श्रेणी पैरों की आफ़तों के बारे में, नूरिया रज़विया, फ़ैसलाबाद, 505/2

فتاوٰی رضویہ جلد نہم

اور محیط سے نقل فرمایا: یکرہ ان یطأ علی القبر بالرجل ویقعد علیہ اہ قولہ یعنی بالرجل قلت فسّر بذلک لتلا یحمل علی الجماع۔ اقول: ویکرہ ایضًا بل اشد لما فیہ من زیارۃ الاستخفاف کا لوطأ علی سطح المسجد مع الدلالۃ علی تناھي القلب في تناسی الموت، فکان الحمل علی الوطأ بالرجل لیکون ادخل فی النھی عن الوطأ بمعنی الجماع بطریق دلالۃ ینبغی ان یفھم، اور جامع الفتاوٰی سے لائے: انہ والتراب الذی علیہ حق المیت فلا یجوز ان یوطأ۔ اور مجتبٰی سے لائے: ان المشی علی القبور یکرہ۔ اور شرعۃ الاسلام و شرح شرعہ سے: من السنۃ ان لایطأ القبور فی نعلیہ فان النبی صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم کان یکرہ ذلک الخ۔ اور امام شمس الائمہ حلوانی سے: وانہ قال یکرہ۔ اور امام علی ترجمانی سے: قال یأثم بوطئ القبور لان سقف القبر حق المیت اہ اقول وھذا نص علی ما اخترنا من کراھۃ التحریم اذلا اثم في المکروہ تنزیھا۔ لان مرجعہ الی خلاف الاولی، ولانہ

(اردو ترجمہ/توضیح): قبر کو پیروں سے روندنا اور اس پر بیٹھنا مکروہ ہے اھ قلت پیروں سے روندنے کی تشریح اس لیے کردی کہ جماع پر محمول نہ کیا جائے۔ اقول: (میں کہتا ہوں) جماع بھی مکروہ ہے بلکہ اس کی کراہت زائد ہے کیونکہ اس میں زیادہ توہین ہے، جیسے مسجد کی چھت پر وطی کرنا، پھر اس میں موت کا بھول جانا بھی شامل ہے۔ لہٰذا پیروں سے روندنے پر محمول کرنا اس لیے ہے تاکہ جماع کی ممانعت پر بطریق دلالت النص دلالت کرے، یہ مطلب نہیں کہ وطی مکروہ نہیں، اسی طرح سمجھنا چاہئے، اور جامع الفتاوٰی سے نقل کیا کہ یہ وہ مٹی ہے جس پر میت کا حق ہے لہٰذا اس کو روندنا جائز نہیں، اور مجتبٰی میں ہے: قبروں پر چلنا مکروہ ہے۔ شرعۃ الاسلام اور اس کی شرح میں ہے: سنت یہ ہے کہ جوتوں سمیت قبریں نہ روندی جائیں کیونکہ نبی صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم اسے مکروہ سمجھتے تھے_ اور شمس الائمہ حلوانی نے کہا

کہ یہ مکروہ ہے_ اور امام علی ترجمانی سے ہے کہ قبروں کے روندنے سے گنہگار ہوگا کیونکہ قبر کی چھت میت کا حق ہے۔ اقول: (میں کہتا ہوں) یہ بھی ہمارے اختیار کردہ قول کراہت تحریمی صراحت کرتا ہے، کیونکہ مکروہ تنزیہی میں کوئی گناہ نہیں ہوتا۔ وہ صرف خلاف اولی ہے نیز

حواشی: 1 حدیقہ ندیہ الصنف الثامن من الاصناف التسعۃ فی آفات الرجل نوریہ رضویہ فیصل آباد ۵۰۴/۲ 2 حدیقہ ندیہ الصنف الثامن من الاصناف التسعۃ فی آفات الرجل نوریہ رضویہ فیصل آباد ۵۰۴/۲۲ 3 حدیقہ ندیہ الصنف الثامن من الاصناف التسعۃ فی آفات الرجل نوریہ رضویہ فیصل آباد ۵۰۴/۲۲ 4 حدیقہ ندیہ الصنف الثامن من الاصناف التسعۃ فی آفات الرجل نوریہ رضویہ فیصل آباد ۵۰۵/۲۲ 5 حدیقہ ندیہ الصنف الثامن من الاصناف التسعۃ فی آفات الرجل نوریہ رضویہ فیصل آباد ۵۰۵/۲ 6 حدیقہ ندیہ الصنف الثامن من الاصناف التسعۃ فی آفات الرجل نوریہ رضویہ فیصل آباد ۵۰۵/۲

Fatawa Razawiyya Volume 9

The Holy Prophet (may Allah's peace and blessings be upon him) did so intentionally to demonstrate permissibility, and a Prophet is infallible from committing sin intentionally. Since performing an act that leads to sin is not permissible, what would be the meaning of demonstrating permissibility? Furthermore, this [demonstration of permissibility] aligns with permissibility, as stated regarding 'Drinks' in 'Radd al-Muhtar' from Abu al-Sa'ud, whereas sin does not align with permissibility. Moreover, they express this [category] by 'denying harm/sin' (nafi al-ba's), and what 'ba's' (harm/sin) could be greater than sin itself? Therefore, that which makes one a sinner must be abandoned. And doing something whose abandonment is mandatory is close to being 'Haram' (forbidden), and this is the meaning of 'Karahat-e-Tahrimi' (abominable near prohibition). Also, because jurists have clarified that the doer of 'Makruh Tanzihi' (mildly disliked) will not be punished at all, as mentioned in 'al-Talwih'. Along with this, we believe that Allah the Almighty can punish for every crime, even a small one. By the grace of Allah the Almighty, these are seven vocal proofs showing that what was stated by some contemporaries in the treatise on 'Drinking Tobacco' (smoking)—that 'Makruh Tanzihi' is among minor sins—is a gross error and a great mistake. Yes, the author of 'al-Bahr' has clarified in his work 'al-Bahr' that 'Makruh Tahrimi' is among them [minor sins]. So understand this and do not be irrational.

It is stated in 'Nur al-Idah' and its commentary 'Maraqi al-Falah': Section on visiting graves: "Visiting graves is recommended, but the graves should not be trampled upon."

Footnote: عه: He is Maulvi Abdul Hayy Lucknawi 1122 (T) 1. Maraqi al-Falah with annotations of al-Tahtawi, Section on visiting graves, Nur Muhammad Karkhana Tijarat Kutub Karachi, pp. 340-343. Page 451 of 948

फतावा रज़विया खंड 9

हुज़ूर (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने अनुमति (जवाज़) दिखाने के लिए जानबूझकर ऐसा किया, और नबी जानबूझकर पाप करने से मासूम (निष्पाप) होते हैं। चूँकि पाप में डालने वाली चीज़ का करना जायज़ नहीं है, तो अनुमति दिखाने का क्या अर्थ होगा? फिर यह अनुमति (इबाहत) के साथ मेल खाता है, जैसा कि 'रद्दुल मुहतार' में पेय पदार्थों के बारे में अबी अल-सऊद से उद्धृत है, और पाप अनुमति के साथ मेल नहीं खाता। फिर वे इसे 'बा'स की मनाही' (नफ़ी अल-बा'स) के रूप में व्यक्त करते हैं, और पाप से बड़ा 'बा'स' (नुकसान/पाप) क्या होगा? इसलिए, जो चीज़ गुनहगार बनाती है, उसे छोड़ना अनिवार्य (वाजिब अल-तर्क) है। और जिस चीज़ का त्याग अनिवार्य हो, उसका करना हराम के करीब होगा, और यही 'कराहते तहरीमी' (सख़्त नापसंदगी) का अर्थ है। और इसलिए भी कि फ़ुक़हा (विधिवेत्ताओं) ने स्पष्ट किया है कि 'मक़रूहे तन्ज़ीही' (मामूली नापसंदगी) करने वाले को बिल्कुल भी सजा नहीं होगी, जैसा कि 'तल्वीह' में है। इसके साथ ही हमारा यह विश्वास है कि अल्लाह हर अपराध पर सज़ा दे सकता है, चाहे वह छोटा ही क्यों न हो। अल्लाह के अनुग्रह से ये सात स्पष्ट प्रमाण हैं जिनसे पता चलता है कि कुछ समकालीन लोगों ने तंबाकू पीने पर एक लेख में जो यह कहा कि 'मक़रूहे तन्ज़ीही' छोटे पापों (सग़ायर) में से है, वह एक बड़ी भूल और महान त्रुटि है। हाँ, 'अल-बहर' के लेखक ने अपनी पुस्तक में स्पष्ट किया है कि 'मक़रूहे तहरीमी' उनमें से है। अतः इस पर अडिग रहें और भ्रमित न हों।

'नूरुल ईज़ाह' और उसकी व्याख्या 'मराक़िल फ़लाह' में है: कब्रों की ज़ियारत (दर्शन) के बारे में अध्याय: "कब्रों की ज़ियारत करना मुस्तहब (पसंदीदा) है, बशर्ते कि कब्रों को रौंदा न जाए।"

पाद-टिप्पणी: عه: वह मौलवी अब्दुल हई लखनवी हैं। 1122 (त)। 1. मराक़िल फ़लाह हाशिया अल-तहतावी के साथ, कब्रों की ज़ियारत का अध्याय, नूर मोहम्मद कारखाना तिज़ारत कुतुब कराची, पृष्ठ 340-343। पृष्ठ 451 / 948

فتاوٰی رضویہ جلد نہم

حضور صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم نے بیانِ جواز کے لیے قصداً ایسا کیا اور نبی قصداً گناہ کرنے سے معصوم ہوتا ہے، اور گناہ میں مبتلا کرنے والی چیز کا ارتکاب جائز نہیں ہوتا تو بیانِ جواز کے کیا معنی؟ پھر یہ اباحت کے ساتھ مجتمع ہوتا جیسا کہ اشربہ ردالمحتار میں ابی السعود سے ہے اور معصیت اباحت کے ساتھ مجتمع نہیں ہوتی ہے۔ پھر اس کی تعبیر نفی باس سے کرتے ہیں اور گناہ سے بڑھ کر کون باسِ عظیم ہوگا، اور اسی لیے گنہگار بنانے والی چیز واجب الترک ہے اور جس چیز کا ترک واجب ہو اس کا فعل حرام کے قریب ہو گا اور یہی معنی کراہتِ تحریم کے ہیں، اور اسی لیے بھی کہ فقہاء نے تصریح کردی ہے کہ مکروہ وہ تنزیہی کے فاعل پر بالکل گناہ نہ ہوگا جیسا کہ تلویح میں ہے۔ اس کے ساتھ ہی ہم یہ اعتقاد رکھتے ہیں کہ اللہ چھوٹے سے چھوٹے مجرم پر سزا دے سکتا ہے بحمد اللہ تعالٰی یہ ساتھ دلائل ہیں جن سے معلوم ہوا کہ بعضِ بناء زمانہ نے رسالہ شرب الدخان میں مکروہ تنزیہی کو صغائر سے بتا کر فاحش غلطی اور خطاء عظیم کی ہے۔ البتہ صاحبِ بحر نے اپنی بحر میں تصریح کی ہے کہ مکروہ تحریمی صغائر سے ہے۔ پس اسے سمجھ اور دیوانہ نہ بن۔

نور الایضاح اور اس کی شرح مراقی الفلاح میں ہے: فصل زیارتِ قبور کے بیان میں "زیارتِ قبور مستحب ہے مگر قبریں نہ روندی جائیں۔

حاشیہ: عہ: وہ مولوی عبدالحئی لکھنوی ہے ۱۱۲۲ (ت) 1 مراقی الفلاح علی ہامش الطحطاوی فصل فی زیارۃ القبور نور محمد کارخانہ تجارت کتب کراچی ص ۳۴۰-۳۴۳ صفحہ 451 از 948

Fatawa Razawiyya Volume 9

In the same [book] it is stated:

(Arabic Text)	(Urdu Translation)
Stepping on them [graves] with feet is disliked because of the lack of respect involved. Qadi Khan said: If someone finds a path in a cemetery and thinks it was newly created by people, he should not walk on it. If such a thought does not occur to him, there is no harm in walking on it. [End of summarized quote]	It is disliked to trample graves with feet because it is disrespectful. Qadi Khan stated that if a person sees a path in a graveyard and suspects that people have newly made it, he should not walk on it. If no such thought occurs to his heart, then there is no issue in walking on it. [End of summarized quote]

I say: This is also evidence for our position, as the permissibility is contingent upon the absence of the thought in one's heart that this path is built over graves. This clearly implies that if such a thought occurs to his heart, it would then be problematic. Furthermore, the explicit statement of prohibition from Ash-Shami and At-Tahtawi—who are among our scholars, may Allah Almighty have mercy on them—has already been mentioned.

Allama Ismael Nabulsi states in the commentary on Durr and Ghurar:

(Arabic Text)	(Urdu Translation)
There is no harm in visiting graves and praying for the deceased if they are believers* from [avoiding] being trampled underfoot, as mentioned in Al-Bada'i' and Al-Multaqat.	There is no harm in visiting graves and praying for the deceased, provided that the graves are not trampled upon, as stated in Al-Bada'i' and Al-Multaqat.

In Tariqa Muhammadiya it is stated:

(Arabic Text)	(Urdu Translation)
Among the calamities for the feet is walking upon graves.	Trampling on graves is among the calamities of the feet.

The Imam, the absolute expert researcher, objects to those around whose relatives and kin other people are buried. *Note: [The word] 'Mu'minin' (believers) is in the passive form, meaning when they are secured/protected. (T)

1. Maraqi al-Falah on the margin of Hashiyah at-Tahtawi, Chapter on Visiting Graves, Noor Muhammad Karkhana Tijarat Kutub Karachi, pp. 342, 344.
2. Al-Hadiqat an-Nadiyyah with reference to Sharh ad-Durar, Category Eight on Calamities of the Feet, Maktaba Razawiyya Faisalabad, 2/505.
3. Tariqa Muhammadiya, Category Eight on Calamities of the Feet, Matba' Indo Press Delhi, 2/259.

फतावा रज़विया जिल्द नौ

इसी में है:

(अरबी मूलपाठ)

उन्हें पैरों से कुचलना नापसंद (मक़रूह) है क्योंकि इसमें अनादर है। क़ाज़ी ख़ान ने कहा: यदि कोई क़ब्रिस्तान में कोई रास्ता पाता है और उसे लगता है कि यह लोगों ने नया बनाया है, तो वह उस पर न चले। यदि उसके मन में ऐसा विचार न आए, तो उस पर चलने में कोई हर्ज नहीं है। [संक्षिप्त उद्धरण समाप्त]

(उर्दू अनुवाद)

कब्रों को पैरों से रौंदना मक़रूह है क्योंकि इसमें बेअदबी है। काज़ी ख़ान ने कहा कि अगर किसी व्यक्ति ने कब्रिस्तान में कोई रास्ता देखा जिसके बारे में उसे संदेह है कि यह लोगों ने नया बना लिया है, तो वह उस पर न चले। अगर उसके दिल में इस तरह का विचार न आए, तो चलने में कोई हर्ज नहीं है।

अक़ूल (मैं कहता हूँ): यह भी हमारे कथन का प्रमाण है क्योंकि इसमें अनुमति की स्थिति दिल में यह विचार न आना है कि यह रास्ता कब्रों पर बनाया गया है। जिसका स्पष्ट अर्थ यह हुआ कि यदि उसके दिल में इस प्रकार का विचार उत्पन्न हो, तो फिर समस्या होगी। साथ ही, शामी और तहतावी, जो हमारे विद्वान हैं (अल्लाह तआला उन पर दया करे), उनसे उद्धृत प्रतिबंध का स्पष्ट उल्लेख पहले आ चुका है।

अल्लामा इस्माइल नाबुलसी 'हाशिया दुर्र-ओ-गुर्र' में फ़रमाते हैं:

(अरबी मूलपाठ)

कब्रों की ज़ियारत करने और मृतकों के लिए प्रार्थना करने में कोई बुराई नहीं है, यदि वे मोमिन हों* [पैरों तले रौंदे जाने से सुरक्षित], जैसा कि अल-बदाइ और अल-मुल्तक़त में है।

(उर्दू अनुवाद)

कब्रों की ज़ियारत और मृतकों के लिए दुआ करने में कोई हर्ज नहीं है, बशर्ते कि कब्रें रौंदी न जाएं जैसा कि बदाइ और मुल्तक़त में है।

तरीक़ा-ए-मुहम्मदिया में है:

(अरबी मूलपाठ)

पैरों की आफ़तों में से एक कब्रों पर चलना है। पैर की आफ़तों में से कब्रों का रौंदना है।

(उर्दू अनुवाद)

इमाम अल्लामा मोहक़्क़िक़ अली अल-इतलाक़ उन लोगों पर आपत्ति जताते हैं जिनके रिश्तेदारों और करीबियों के चारों ओर अन्य लोग दफ़न हैं। *नोट: 'मोमिनीन' मफ़ऊल (passive) का रूप है, यानी जब वे सुरक्षित रहें।

1. मराक़ी अल-फ़लाह, हाशया अल-तहतावी के हाशिये पर, कब्रों की ज़ियारत का अध्याय, नूर मुहम्मद कारखाना तिज़ारत कुतुब कराची, पृ. 342, 344।
2. अल-हदीक़त अन-नदिय्या, शरह अद-दुरर के संदर्भ में, पैरों की आफ़तों पर आठवीं श्रेणी, मकतबा रज़विया फ़ैसलाबाद, 2/505।
3. तरीक़ा-ए-मुहम्मदिया, पैरों की आफ़तों पर आठवीं श्रेणी, मतबा इंडो प्रेस दिल्ली, 2/259।

فتاویٰ رضویہ جلد نہم

اسی میں ہے:

(عربی عبارت)	(اردو ترجمہ)
کرہ وطؤھا بالأقدام لما فیہ من عدم الاحترام، وقال قاضی خان لو وجد طریقا فی المقبرۃ وھو یظن انہ طریق احد ثوہ لایمشی فی ذلك وان لم یقع فی ضمیرہ لا بأس بان یمشی فیہ ۱ اھ ملخصاً۔	قبروں کو پیروں سے روندنا مکروہ ہے کیونکہ اس میں بے حرمتی ہے۔ قاضی خاں نے کہا کہ اگر کسی شخص نے قبرستان میں کوئی راستہ دیکھا جس کے بارے میں اسے گمان ہے کہ یہ لوگوں نے نیا بنالیا ہے تو وہ اس پر نہ چلے اگر اس کے دل میں اس قسم کا خیال پیدا نہ ہو تو چلنے میں مضائقہ نہیں اھ ملخصاً،

اقول: (میں کہتا ہوں) یہ بھی ہمارے قول کی دلیل ہے کیونکہ اس میں جواز کی صورت دل میں اس خیال کا نہ آنا ہے کہ یہ راستہ قبروں پر بنایا گیا ہے۔ جس کا صاف مطلب یہ ہوا کہ اگر اس کے دل میں اس قسم کا خیال پیدا ہو تو پھر مضائقہ ہو گا۔ نیز شامی اور طحطاوی جو ہمارے علماء ہیں رحمہم اللہ تعالیٰ ان سے منقول شدہ حرمت کی تصریح پہلے گزر چکی ہے۔

علامہ اسمعیل نابلسی حاشیہ درو غرر میں فرماتے ہیں:

(عربی عبارت)	(اردو ترجمہ)
لابأس بزیارۃ القبور والدعاء للاموات ان کانوا مومنین عہ من وطئ القبور۔ کما فی البدائع والملتقط ۱۲ھ	قبروں کی زیارت اور مردوں کے حق میں دعا کرنے میں حرج نہیں بشرطیکہ قبریں نہ روندی جائیں، جیسا کہ بدائع اور ملتقط میں ہے۔

طریقہ محمدیہ میں ہے:

(عربی عبارت) **(اردو ترجمہ)**

من آفات الرجل المشی علی المقابر ۱۳ھ۔پیر کی آفتوں میں سے قبروں کا روندنا ہے۔ اھ

امام علامہ محقق علی الاطلاق ان لوگوں پر اعتراض فرماتے ہیں جن کے اعزاء واقرباء کے گرد مخلوق دفن ہے، عه: علی صیغۃ المفعول ای امنین | مؤمنین صیغہ مفعول ہے یعنی جب وہ محفوظ رہیں ۱۲(ت)

۱ مراقی الفلاح علی ھامش حاشیۃ الطحطاوی فصل فی زیارۃ القبور نور محمد کارخانہ تجارت کتب کراچی ص ۳۴۲، ۳۴۴ ۲ الحدیقۃ الندیۃ بحوالہ شرح الدرر الصنف الثامن فی آفات الرجل مکتبہ رضویہ فیصل آباد ۲/۵۰۵ ۳ طریقہ محمدیہ الصنف الثامن فی آفات الرجل مطبع ہند و پریس دہلی ۲/ ۲۵۹

Fatawa Razawiya, Volume 9

They walk over these graves to reach the grave of their loved ones; they should perform visitation and prayer from the edge of the graveyard and not go near their graves.

Lost in Al-Fath: It is disliked to sit on a grave or to step on it. As for what people do, those whose relatives were buried and then others were buried around them, your stepping on the graves to reach the grave of your relative is disliked.

Thus, it is said in Al-Fath: Sitting on a grave and stepping on it is disliked (Makruh). Therefore, for those whose relatives are buried surrounded by the graves of others, their trampling over those graves to reach their relative's grave is disliked.

Imam Muhaddith Hafiz al-Hadith Abu Bakr bin Abi al-Dunya narrates from Hadrat Abu Qilabah (may Allah be pleased with him):

I was coming from Syria to Basra. I stopped at Al-Khandaq. I performed ablution and offered two units of prayer during the night. Then, I placed my head on a grave and slept. Then I woke up and behold, the occupant of the grave was complaining and saying: "You have caused me pain since the beginning of the night," etc.

Meaning, I was coming from the land of Syria to Basra. At night, I stopped at Al-Khandaq. I performed ablution and offered two cycles (Rakat) of prayer. Then, I placed my head on a grave and slept. When I woke up, I suddenly heard the dweller of the grave complaining and saying: "You have caused me pain all night long," etc.

Ibn Abi al-Dunya and Imam Bayhaqi in 'Dala'il al-Nubuwwah' narrate from Hadrat Uthman Nahdi, who narrates from a blind Tabi'i: "I went to the graveyard, prayed two cycles, and lay down. By God! I was wide awake when I heard the dweller of the grave saying: 'Get up, for you have hurt me.'" Imam Hafiz Ibn Mandah narrates from Qasim bin Mukhaymarah: "A person placed his foot on a grave, and a voice came from the grave: 'Stay away from me and do not hurt me!'"

Allama Suyuti mentioned both of these in 'Sharh al-Sudur'. I say: These two narrations support the position held by the majority of our scholars, contrary to Imam Abu Ja'far and those who followed him...

Allama Suyuti (may mercy be upon him) mentioned both of these in 'Sharh al-Sudur'. I say: These two narrations support the position held by the majority of our scholars, contrary to...

1. Fath al-Qadir, Chapter on Burial, Maktaba Nooria Razvia, Sukkur, 2/102.
2. Sharh al-Sudur, citing Ibn Abi al-Dunya, Chapter on what benefits the deceased in their grave, Khilafat Academy, Mangora, Swat, p. 128.
3. Dala'il al-Nubuwwah by al-Bayhaqi, Chapter on what has been reported regarding the man..., Dar al-Kutub al-Ilmiyah, Beirut, 7/401.
4. Sharh al-Sudur, citing Ibn Mandah from Al-Qasim bin Mukhaymarah, Chapter on causing harm in various ways, Khilafat Academy, Swat, p. 126.

फ़तावा रज़विया, जिल्द 9

वे उन कब्रों को रौंदते हुए अपने प्रियजनों की कब्र तक जाते हैं, उन्हें चाहिए कि कब्रिस्तान के किनारे से ही ज़ियारत और दुआ कर लें और उनकी कब्रों के करीब न जाएं।

'अल-फ़तह' में कहा गया है: क़ब्र पर बैठना और उसे रौंदना मकरूह है। जैसा कि लोग करते हैं, जिनके रिश्तेदारों को दफ़नाया गया और फिर उनके चारों ओर अन्य लोगों को दफ़नाया गया, अपने रिश्तेदार की क़ब्र तक पहुँचने के लिए क़ब्रों को रौंदना मकरूह है।

'अल-फ़तह' में कहा गया है: क़ब्र पर बैठना और उसे रौंदना मकरूह (नापसंद) है। इसलिए, जिन लोगों के रिश्तेदारों की कब्रें दूसरों की कब्रों से घिरी हुई हैं, उनका अपने करीबी रिश्तेदार की कब्र तक पहुँचने के लिए उन कब्रों को रौंदना मकरूह है।

इमाम मुहद्दिस हाफिज़ अल-हदीस अबू बक्र बिन अबी अल-दुनिया हज़रत अबू किलाबा (रज़ियल्लाहु अन्हु) से रिवायत करते हैं:

मैं शाम से बसरा की ओर आ रहा था, तो मैं खंदक में उतरा। मैंने वज़ू किया और रात में दो रकअत नमाज़ पढ़ी, फिर मैंने अपना सिर एक क़ब्र पर रखा और सो गया। फिर मैं जागा तो अचानक देखा कि क़ब्र वाला शिकायत कर रहा था और कह रहा था: तूने मुझे रात से तकलीफ़ दी है, आदि।

यानी मैं शाम देश से बसरा आ रहा था। रात को खंदक में उतरा। वज़ू किया और दो रकअत नमाज़ पढ़ी। फिर एक कब्र पर सिर रखकर सो रहा था, जब जागा तो अचानक सुना कि कब्र वाला शिकायत कर रहा था और कह रहा था कि तूने रात भर मुझे तकलीफ़ पहुँचाई है, आदि।

इब्न अबी अल-दुनिया और इमाम बैहक़ी ने 'दलायल अल-नुबुव्वह' में हज़रत उस्मान नहदी से, उन्होंने एक नेत्रहीन ताबई से रिवायत किया है: "मैं कब्रिस्तान गया, दो रकअत नमाज़ पढ़ी और लेट गया। खुदा की कसम! मैं अच्छी तरह जाग रहा था जब मैंने सुना, कब्र वाला कह रहा था: 'उठ जा, तूने मुझे तकलीफ़ दी है'।'' इमाम हाफिज़ इब्न मंदा कासिम बिन मुखैमरा से रिवायत करते हैं: "किसी व्यक्ति ने एक कब्र पर पैर रखा, कब्र से आवाज़ आई: 'मुझसे दूर हट जा और मुझे तकलीफ़ न दे!'"

अल्लामा सुयूती ने इन दोनों का ज़िक्र 'शरह अल-सुदूर' में किया है। मैं कहता हूँ कि इन दोनों में हमारे अधिकांश विद्वानों के मत का समर्थन है, इमाम अबू जाफ़र और उनके अनुयायियों के विपरीत...

अल्लामा सुयूती (रहमतुल्लाह अलैह) ने इन दोनों को 'शरह अल-सुदूर' में दर्ज फ़रमाया है। मैं कहता हूँ कि इन दोनों रिवायतों से उस बात की ताईद (पुष्टि) होती है जिस पर हमारे आम उलेमा हैं, इसके विपरीत...

1. फ़तह अल-क़दीर, दफ़्न का अध्याय, मकतबा नूरियह रज़वियह, सुक्कुर, 2/102।
2. शरह अल-सुदूर, इब्न अबी अल-दुनिया के हवाले से, कब्र में मृत को क्या लाभ पहुँचाता है, खिलाफत अकादमी, मंगोरा, स्वात, पृष्ठ 128।
3. दलायल अल-नुबुव्वह, बैहक़ी द्वारा, उस आदमी के बारे में जो आया है..., दार अल-कुतुब अल-इल्मिया, बेरूत, 7/401।
4. शरह अल-सुदूर, इब्न मंदा के हवाले से अल-कासिम बिन मुखैमरा से, विभिन्न प्रकार के कष्ट पहुँचाने का अध्याय, खिलाफत अकादमी, स्वात, पृष्ठ 126।

فتاوی رضویہ جلد نہم

وہ ان قبروں کو روندتے ہوئے اپنے عزیزوں کی گور تک جاتے ہیں، انہیں چاہئے کنار گورستان سے زیارت اور دعا کرلیں اور ان کی قبروں کے قریب نہ جائیں۔

فقد قال فی الفتح یکرہ الجلوس علی القبرو وطؤہ فیما یصنعہ الناس ممن دفنت اقاربہ ثم دفن حوالیھم خلق من وطأتك القبور الی ان یصل الی قبر قریبہ مکروہ ۱۔

چنانچہ فتح میں کہا: قبر پر بیٹھنا اور اس کو روند نا مکروہ ہے، تو وہ لوگ جن کے رشتہ داروں کے گرد دوسروں کی قبریں ہوں ان کا ان قبروں کو روند نا اپنے قریبی رشتہ دار کی قبر تک پہنچنے کے لیے مکروہ ہے۔

امام محدث حافظ الحدیث ابو بکر بن ابی الدنیا حضرت ابو قلابہ رضی اللہ تعالیٰ عنہ سے راوی ہے:

اقبلت من الشام الی البصرۃ فنزلت الخندق فتطھرت وصلیت رکعتین باللیل ثم وضعت راسی علی قبر فنمت۔ ثم انتبھت فاذا بصاحب القبر یشتکی و یقول لقد اذیتنی منذ اللیلۃ ۲الخ۔

یعنی میں ملک شام سے بصرہ کو آتا تھا۔ رات کو خندق میں اترا۔ وضو کیا اور دو رکعت نماز پڑھی۔ پھر ایک قبر پر سر رکھ کر سو رہا ، جب جاگا تو ناگاہ سنا کہ صاحب قبر شکایت کرتا اور فرماتا ہے کہ تو نے رات بھر مجھے ایذا پہنچائی الخ۔

ابن ابی الدنیا اور امام بیہقی دلائل النبوۃ میں حضرت عثمان نہدی سے وہ بینا تابعی سے راوی:

"میں مقبرے میں گیا، دو رکعات پڑھ کر لیٹ رہا۔ خدا کی قسم! میں خوب جاگ رہا تھا کہ سُنا، صاحب قبر کہتا ہے: قم فقد اذیتنی ۳ (اٹھ کہ تو نے مجھے ایذا دی)۔" امام حافظ ابن مندہ قاسم بن

مخیمرہ سے راوی : "کسی شخص نے ایک قبر پر پاؤں رکھا، قبر سے آواز آئی: اليك عنى ولا تؤذنى ۴ (اپنی طرف ہٹ دور ہوا اے شخص میرے پاس سے) اور مجھے ایذا نہ دے"۔

ذكر هما العلامة السيوطى فى شرح الصدور اقول وفيهما تأييد لما عليه عامة علمائنا خلافاً للامام ابى جعفر و من تابعه من

ان دونوں کو علامہ سیوطی علیہ الرحمۃ نے شرح الصدور میں درج فرمایا اقول ان دونوں روایتوں میں اس کو تائید ہوتی ہے جس پر ہمارے عام علماء ہیں، بخلاف

۱ فتح القدیر فصل فی الدفن مکتبہ نوریہ رضویہ سکھر ۲ / ۱۰۲ ۲ شرح الصدور بحوالہ ابن ابی الدنیا باب ما ینفع المیت فی قبرہ خلافت اکیڈمی منگورہ سوات ص ۱۲۸ ۳ دلائل النبوۃ للبیہقی باب ماجاء فی الرجل الخ دار الکتب العلمیہ بیروت ۷ / ۴۰۱ ۴ شرح الصدور بحوالہ ابن مندہ عن القاسم بن مخیمرہ باب تادیہ بسائر وجوہ الاذی خلافت اکیڈمی سوات ص ۱۲۶

Fatawa Razawiyya Volume 9

[Left column heading]: Some of the later scholars. [Right column heading]: Imam Abu Ja'far and some of the later scholars following him.

And this humble servant (may Allah forgive him) heard from Sayyidi Abu al-Hasan Noori (may his shadow be long) that near Marhara Mutahira in our lands, in a forest called Ganj-e-Shahidan, a person was leading his buffalo. The ground was soft at one spot, and suddenly the buffalo's foot sank in. It was realized that there was a grave there. A voice came from the grave: "O person! You have caused me pain; your buffalo's foot fell on my chest." There is a subtle story in this which points towards the great power of Allah Almighty and His wondrous craftsmanship regarding the martyrs. Now, by the praise of Allah Almighty, the ruling on the matter has become as clear as the sun. When the Holy Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) forbade sitting on graves, leaning on them, and walking in graveyards wearing shoes, and the scholars declared it forbidden to walk on a new path made in a graveyard to avoid stepping on graves, and commanded not to step on graves but rather not even to sleep near them; the Sunnah is not to sit even during visitation, but rather it is better out of respect not to go too close, but to visit from a distance. While it was permitted to feed dry grass from the graveyard to animals, it was specified to cut it and take it away, not to graze animals in the graveyards. It has been explicitly stated that the honor of a living and a dead Muslim is equal, and whatever causes pain to the living, the dead also suffer from it, and causing them pain is forbidden. Thus, it is clear how much disrespect, insolence, sin, and deserving of punishment the act mentioned in the question is. When a residential house is built, walking, sitting, lying down, trampling over graves with feet, defecating, urinating, and sexual intercourse will all occur, and no detail of immodesty and causing distress to the deceased Muslims will be left out. We seek refuge in Allah, the Lord of the worlds.

Scholars say: Wherever forty Muslims gather, there is surely a Wali (friend) of Allah among them, as clarified by Allamah al-Munawi (may Allah Almighty have mercy on him) in 'at-Taysir Sharh al-Jami' al-Saghir'. And it is obvious that in the graveyards of Muslims, there are graves of hundreds of Muslims, rather God knows how many are buried in each grave. Therefore, accepted servants of God will certainly be among them. In fact, there is more hope in this regard for the deceased, that many servants of God who were tainted with sins in life became pure and clean after death. The

Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) said: "Death is an atonement for every Muslim." Death is an atonement for the sins of every Sunni Muslim.

Note: Great Benefit: In the idiom of the Quran and Hadith, 'believer' and 'Muslim' refer specifically to the Ahl-us-Sunnah... (Continued on the next page).

---

1 Shu'ab al-Iman, Hadith 9886, Dar al-Kutub al-Ilmiyah, Beirut, 7/171. Page 454 of 948

फ़तावा रज़विया जिल्द 9

[बाएँ स्तंभ का शीर्षक]: बाद के कुछ विद्वान। [दाएँ स्तंभ का शीर्षक]: इमाम अबू जाफ़र और उनके अनुयायी बाद के कुछ विद्वान।

और इस फ़कीर (अल्लाह उसे क्षमा करे) ने हज़रत सय्यदी अबुल हसन नूरी (अल्लाह उनकी छाया को लम्बा करे) से सुना कि हमारे इलाक़ों में मारहरा मुतहरा के पास एक जंगल में 'गंज-ए-शहीदाँ' है। कोई व्यक्ति अपनी भैंस लेकर जा रहा था, एक जगह ज़मीन नरम थी, अचानक भैंस का पैर अंदर धँस गया। पता चला कि यहाँ एक कब्र है। कब्र से आवाज़ आई: "ऐ शख़्स! तूने मुझे तकलीफ़ दी, तेरी भैंस का पैर मेरे सीने पर पड़ा।" इसमें एक सूक्ष्म कथा है जो शहीदों के बारे में अल्लाह तआला की महान शक्ति और अद्भुत कारीगरी की ओर संकेत करती है। अब अल्लाह तआला की प्रशंसा से मामले का हुक्म सूरज की तरह स्पष्ट हो गया है। जब हुज़ूर अकदस (सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम) ने कब्र पर बैठने, उससे टेक लगाने और कब्रों में जूते पहनकर चलने से मना फरमाया, और विद्वानों ने इस विचार से कि कब्रों पर पैर न पड़ें, कब्रिस्तान में निकाले गए नए रास्ते पर चलने को हराम बताया और हुक्म दिया कि कब्रों पर पैर न रखें बल्कि उनके पास सोएँ भी नहीं। सुन्नत यह है कि ज़ियारत (दर्शन) के समय भी वहाँ न बैठें, बल्कि बेहतर यह है कि अदब के लिहाज़ से पास भी न जाएँ दूर से ही ज़ियारत करके आएँ। कब्रिस्तान की सूखी घास अगर जानवरों को खिलाना जायज़ फ़रमाया मगर इस तरह कि यहाँ से काटकर ले जाएँ न कि जानवरों को कब्रों में चराएँ। और स्पष्ट रूप से फ़रमाया कि जीवित और मृत मुसलमान का सम्मान बराबर है, और जिस बात से जीवितों को पीड़ा पहुँचती है, मुर्दों को भी उससे तकलीफ़ होती है और उन्हें तकलीफ़ देना हराम है। तो स्वयं स्पष्ट हो गया कि प्रश्न में वर्णित यह कार्य कितना बड़ा अनादर, ढिठाई, पाप और दंड का कारण है। जब रहने के लिए घर बनाया गया तो चलना-फिरना, बैठना-लेटना, कब्रों को पैरों से रौंदना, उन पर पाखाना-पेशाब, संभोग सब कुछ होगा और निर्लज्जता और मृत मुसलमानों को कष्ट पहुँचाने में कोई कसर नहीं रहेगी। अल्लाह की पनाह, जो तमाम जहानों का रब है।

विद्वान फ़रमाते हैं: जहाँ चालीस मुसलमान जमा होते हैं, उनमें एक अल्लाह का वली (मित्र) ज़रूर होता है, जैसा कि अल्लामा मुनवी (रहमतुल्लाह अलैहि) ने 'तयसीर शरह जामे सगीर' में स्पष्ट किया है। और ज़ाहिर है कि मुसलमानों के कब्रिस्तानों में सैकड़ों मुसलमानों की कब्रें होती हैं, बल्कि खुदा जाने एक-एक कब्र में कितने लोग दफ़्न हैं। तो निश्चित रूप से उनमें अल्लाह के मक़बूल (पसंदीदा) बंदे भी ज़रूर होंगे। बल्कि इस मामले में मृतकों के बारे में अधिक उम्मीद है कि खुदा के बहुत से बंदे

जो ज़िंदगी में गुनाहों से दूषित थे, मौत के बाद पाक व साफ हो गए। नबी (सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम) फ़रमाते हैं: "मौत हर मुसलमान के लिए कफ़्फ़ारा है।" मौत हर सुन्नी मुसलमान के लिए गुनाहों का कफ़्फ़ारा है।

नोट: बड़ा लाभ: कुरान और हदीस के मुहावरे में 'मोमिन' और 'मुस्लिम' विशेष रूप से अहल-ए-सुन्नत को कहते हैं कि... (बाकी अगले पन्ने पर)।

---

1 शुअबुल ईमान, हदीस 9886, दारुल कुतुबुल इल्मिया बेरुत, 7/171 पृष्ठ 454 का 948

بعض المتاخرین | امام ابو جعفر اور ان کے تابع بعض متاخرین کے۔

اور اس فقیر غفراللہ تعالی لہ نے حضرت سیدی ابوالحسن نوری مدظلہ العالی سے سنا کہ ہمارے بلاد میں مارہرہ مطہرہ کے قریب ایک جنگل میں گنجِ شہیداں ہے، کوئی شخص اپنے بھینس لیے جاتا تھا، ایک جگہ زمین نرم تھی، ناگاہ بھینس کا پاؤں جا رہا، معلوم ہوا یہاں قبر ہے، قبر سے آواز آئی : "اے شخص ! تو نے مجھے تکلیف دی، تیری بھینس کا پاؤں میرے سینے پر پڑا۔" فیھا قصۃ لطیفۃ تدل علی عظیم قدرۃ اللہ تعالی وعجیب صنعہ فی الشھداء (اس میں لطیف قصہ ہے جو شہداء کے بارے میں اللہ تعالیٰ کی قدرت عظیمہ اور عجیب صناعی پر دلالت کرتا ہے۔ت) اب بحمداللہ تعالیٰ حکم مسئلہ مثل آفتاب روشن ہو گیا، جب حضور اقدس صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم نے قبر پر بیٹھنے اور اس سے تکیہ لگانے اور مقابر میں جوتا پہن کر چلنے والوں کو منع فرمایا، اور علماء نے اس خیال سے کہ قبور پر پاؤں نہ پڑے گورستان میں جو راستہ جدید نکالا گیا ہو اس میں چلنے کو حرام بتایا اور حکم دیا کہ قبر پر پاؤں نہ رکھیں بلکہ اس کے پاس نہ سوئیں، سنت یہ ہے کہ زیارت میں بھی وہاں نہ بیٹھیں بلکہ بہتر یہ ہے کہ بلحاظِ ادب پاس بھی نہ جائیں، دور ہی سے زیارت کر آئیں اور قبرستان کی خشک گھاس اگر جانور کو کھلانا جائز فرمایا مگر یوں کہ یہاں سے کاٹ کر لے جائیں نہ کہ جانوروں کو مقابر میں چرائیں، اور تصریح فرمائی کہ مسلمان زندہ و مردہ کی عزت برابر ہے، اور جس بات سے زندوں کو ایذا پہنچتی ہے مُردے بھی اس سے تکلیف پاتے ہیں اور انہیں تکلیف دینا حرام، تو خود ظاہر ہوا کہ یہ فعل مذکور فی السوال کس قدر بے ادبی و گستاخی و باعث گناہ اور استحقاق عذاب ہے۔ جب مکانِ سکونت بنایا گیا تو چلنا پھرنا، بیٹھنا لیٹنا،

قبور کو پاؤں سے روندنا، ان پر پاخانہ، پیشاب، جماع سب ہی کچھ ہو گا اور کوئی دقیقہ بے حیائی اور امواتِ مسلمین کی ایذا رسانی کا باقی نہ رہے گا والعیاذ باللہ رب العلمین۔

علماء فرماتے ہیں: جہاں چالیس مسلمان جمع ہوتے ہیں ان میں ایک ولی اللہ ضرور ہوتا ہے کما صرح بہ العلامۃ المناوی رحمہ اللہ تعالی فی التیسیر شرح الجامع الصغیر (جیسا کہ علامہ مناوی رحمہ اللہ تعالیٰ نے تیسر شرح جامع صغیر میں تصریح فرمائی۔ت) اور ظاہر ہے کہ مقابر مسلمین میں صدہا مسلمانوں کی قبریں ہوتی ہیں بلکہ خدا جانے ایک ایک قبر میں کس کس قدر دفن ہیں، تو بالضرورت ان میں بندگانِ مقبول بھی ضرور ہوں گے، بلکہ اس امر کی اموات میں زیادہ امید ہے کہ بہت بندے خدا کے جو زندگی میں آلودہ گناہ تھے بعد موت پاک وطیب ہو گئے۔ نبی صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم فرماتے ہیں: الموت کفارۃ لکل مسلم1 موت کفارہ گناہ ہے ہر سُنّی عہ مسلمان کے لیے۔

عہ: فائدہ جلیلہ: محاورہ قرآن وحدیث میں مومن و مسلم خاص اہلسنت کو کہتے ہیں کہ (باقی اگلے صفحہ پر)

---

1 شعب الایمان حدیث ۹۸۸۶ دار الکتب العلمیۃ بیروت ۷ / ۱۷۱ Page 454 of 948

Fatawa Razawiyya, Volume 9

[Box 1] Arabic: Narrated by Abu Nu'aym and al-Bayhaqi in *Shu'ab al-Iman* from Anas (may Allah be pleased with him), and al-Suyuti said: Ibn al-Arabi authenticated it. Urdu: Abu Nu'aym and al-Bayhaqi narrated it in *Shu'ab al-Iman* from Anas (may Allah be pleased with him), and Allama al-Suyuti stated that Ibn al-Arabi had authenticated it.

Similarly, the Holy Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) commanded that the wickedness and immorality of an open sinner be announced during his lifetime so that people may avoid him.

[Box 2] Arabic: Ibn Abi al-Dunya in *Dham al-Ghibah*, al-Tirmidhi in *al-Nawadir*, al-Hakim in *al-Kuna*, al-Shirazi in *al-Alqab*, Ibn Adi in *al-Kamil*, al-Tabarani in *al-Kabir*, al-Bayhaqi in *al-Sunan*, and al-Khatib in *al-Tarikh*, all narrated from al-Jarud, from Bahz ibn Hakim, from his father, from his grandfather, from the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him): "Do you refrain from mentioning the open sinner? When will the people know him? Mention the open sinner for what is in him, so that the people may beware of him." Urdu: Ibn Abi al-Dunya in *Dham al-Ghibah*, Tirmidhi in *Nawadir*, Hakim in *Kuna*, Shirazi in *Alqab*, Ibn Adi in *Kamil*, Tabarani in *Kabir*, Bayhaqi in *Sunan*, and Khatib in *Tarikh*, all narrated from Jarud, from Bahz ibn Hakim, from his father, from his grandfather, who narrated from the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him): "Are you afraid of mentioning the sinner? When will people recognize him? Describe the evils of the sinner so that people avoid him."[1]

(Remaining footnote from the previous page) During the time of the descent of the Great Quran and the issuance of the noble Hadith, there were only the Ahl al-Sunnah wa'l-Jama'ah. In that blessed era, it was impossible for any deviant or innovator to exist because deviancy arises from doubt and interpretation, and the one who could transform doubt into absolute certainty, the Holy Prophet (peace and blessings of Allah be upon him), was present in the world. If a doubt occurred, the Prophet would reveal its truth; if the doubter accepted, he would be a Sunni; if not, he would become a disbeliever. This middle ground was not possible there. Therefore, when scholars argued for the authority of Ijma (consensus) from the noble verse "and follows other than the way of the believers," they explicitly stated that the agreement of innovators is not considered in Ijma, because by "believers" is meant the *Ummah of Acceptance* (those who accepted the call). Innovators are not of the *Ummah of Acceptance*, but of the *Ummah of Invitation*. See *Tawdih* and *Talwih*, the chapter on

Ijma, etc. This valuable point is worth remembering: in verses like "The believers are but brothers" and other verses and Hadiths, by "believers" only the Ahl al-Sunnah are meant. It is the command for agreement and unity among them. The generalization of Nadwa (may Allah Almighty humiliate it) and the teaching of unity and friendship with all the misguided and deviants, presenting these texts to honor and respect all irreligious people, is sheer irreligion and misguidance. May Allah Almighty protect us. 12 Minhu.

---

[1] *Nawadir al-Usul*, original no. 66 regarding the mention of the sinner, etc., Dar Sadir, Beirut, p. 213; *Tarikh Baghdad*, translation 4547, vol. 3, p. 51, Dar al-Kitab al-Arabi, Beirut, 7/262 & 268 & 1/382.

फ़तावा रज़विया, जिल्द 9

[बॉक्स 1] अरबी: अबू नुयम और बैहक़ी ने 'शुअब अल-ईमान' में अनस (रज़ियल्लाहु अन्हु) से इसे रिवायत किया और अल-सुयुती ने कहा कि इब्न अल-अरबी ने इसे सहीह करार दिया है। उर्दू: इसे अबू नुयम और बैहक़ी ने शुअबुल ईमान में अनस रज़ियल्लाहु तआला अन्हु से रिवायत किया और अल्लामा सुयुती ने फरमाया कि इब्न अरबी ने इसकी तस्हीह की।

इसी तरह नबी अकरम सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम ने हुक्म दिया कि फ़ाजिर मोएलिन (खुल्लम-खुल्ला गुनाह करने वाला) के फ़िस्क़-ओ-फ़ुजूर का उसकी ज़िंदगी में ऐलान किया जाए ताकि लोग उससे बचें।

[बॉक्स 2] अरबी: इब्न अबी अल-दुनिया ने 'ज़म्म अल-ग़ीबाह' में, तिर्मिज़ी ने 'अल-नवादिर' में, हाकिम ने 'अल-कुना' में, शिराज़ी ने 'अल-अल्काब' में, इब्न अदी ने 'अल-कामिल' में, तबरानी ने 'अल-कबीर' में, बैहक़ी ने 'अल-सुनन' में और खतीब ने 'अल-तारीख' में, इन सब ने जारूद से, जारूद ने बहज़ बिन हकीम से, उन्होंने अपने बाप से और उनके दादा ने नबी सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम से रिवायत की: "क्या तुम फ़ाजिर का ज़िक्र करने से परहेज़ करते हो? लोग उसे कब पहचानेंगे? फ़ाजिर की बुराइयां बयान करो ताकि लोग उससे बचें।" उर्दू: इब्न अबी दुनिया ने ज़म्मुल ग़ीबत में और तिर्मिज़ी ने नवादिर में और हाकिम ने कुनी में और शिराज़ी ने अलक़ाब में और इब्न अदी ने कामिल में और तबरानी ने कबीर में और बैहक़ी ने सुनन में और खतीब ने तारीख में सब ने जारूद से, जारूद ने बहज़ बिन हकीम से, उन्होंने अपने बाप से और उनके दादा ने नबी सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम से रिवायत की कि क्या तुम फ़ाजिर का ज़िक्र करने से डरते हो, लोग उसे कब पहचानेंगे, फ़ाजिर की बुराइयां बयान करो ताकि लोग उससे बचें।[1]

(पिछले पृष्ठ का शेष हाशिया) महान कुरान के नुज़ूल और पाक हदीस के इरशाद के ज़माने में केवल अहले सुन्नत व जमाअत ही थे, उस बरकत वाले ज़माने में किसी बद-मज़हब और बिदअती का होना नामुमकिन था क्योंकि बद-मज़हबी संदेह और गलत व्याख्या (तावील) से पैदा होती है, जिसे यकीने क़तई में बदलने वाले हुज़ूर अकदस सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम दुनिया में तशरीफ फरमा थे। अगर कोई संदेह पैदा होता तो हुज़ूर उसे स्पष्ट कर देते; संदेह वाला अगर मान लेता तो सुन्नी होता, न मानता तो काफ़िर हो जाता, यह बीच वाली स्थिति वहां संभव ही नहीं थी। लिहाज़ा जब उलमा ने आयत-ए-करीमा "व यत्तबिअ ग़ैर सबीलिल मुअमिनीन" (और जो मोमिनों के रास्ते के अलावा किसी

और रास्ते पर चले) से इज्मा की दलील दी, तो साफ तौर पर फरमा दिया कि बिदअतियों का इत्तेफाक इज्मा में शामिल नहीं है, क्योंकि मोमिनों से मुराद उम्मते इज़ाबत (दावत स्वीकार करने वाली उम्मत) है। बिदअती उम्मते इज़ाबत नहीं, बल्कि उम्मते दावत हैं। तौज़ीह और तलवीह में इज्मा की बहस आदि देखें। यह एक कीमती नुक्ता याद रखने योग्य है कि "इन्नमल मुअमिनूना इख्वतुन" (बेशक मोमिन भाई-भाई हैं) और अन्य आयतों और हदीसों में मोमिनों से मुराद अहले सुन्नत ही हैं, उन्हीं के बीच आपसी इत्तेफाक और इत्तेहाद का हुक्म है। नदवा (अल्लाह उसे रुसवा करे) का सामान्यीकरण और सभी गुमराहों, बद-मज़हबों से इत्तेहाद और दोस्ती की तालीम, इन नसों (धार्मिक प्रमाणों) को सभी बेदीनों के सम्मान और महिमामंडन के लिए पेश करना केवल बेदीनी और गुमराही है, अल्लाह तआला हमें इससे बचाए। १२ मिन्हु (लेखक द्वारा)।

---

[1] नवादिरुल उसूल असल नंबर 66 फ़ी ज़िक्रिल फ़ाजिर आदि, दार सादिर बेरुत पृ. 213, तारीख बग़दाद तर्जुमा 4547 जिल्द 3 पृ. 51 दारुल किताब अल-अरबी बेरुत 7/262 व 268 व 1/382.

فتاوٰی رضویہ جلد نہم

اخرجه ابو نعيم و البيهقي في شعب الايمان عن انس رضي الله تعالى عنه وقال السيوطي صححه ابن العربي۔ اسے ابو نعیم اور بیہقی نے شعب الایمان میں انس رضی اللہ تعالٰی عنہ سے روایت کیا اور علامہ سیوطی نے فرمایا کہ ابن عربی نے اس کی تصحیح کی۔ اسی طرح نبی اکرم صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم نے حکم دیا کہ فاجر معلن کے فسق وفجور کا اس کی زندگی میں اعلان کیا جائے تاکہ لوگ اس سے احتراز کریں۔

اخرج ابن ابی الدنیا في ذم الغیبة والترمذي في النوادر والحاکم في الکنی والشیرزي في الالقاب وابن عدی في الکامل والطبرانی في الکبیر والبیهقی في السنن والخطیب في التاریخ ، کلهم عن الجارد عن بهز بن حکیم عن ابیه عن جده عن النبي صلی الله تعالی علیه وسلم اترعون عن ذکر الفاجر متی یعرفه الناس اذکروا الفاجر بما فیه یحذره الناس - 1 ابن ابی الدنیا نے ذم الغیبۃ میں اور ترمذی نے نوادر میں اور حاکم نے کنی میں اور شیرازی نے القاب میں اور ابن عدی نے کامل میں اور طبرانی نے کبیر میں اور بیہقی نے سنن میں اور خطیب نے تاریخ میں سب نے جارود سے، جارود نے بہز بن حکیم سے، انہوں نے اپنے باپ سے اور ان کے دادا نے نبی صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم سے روایت کی کہ کیا تم فاجر کا ذکر کرنے سے ڈرتے ہو، لوگ اسے کب پہچانیں گے، فاجر کی برائیاں بیان کرو تاکہ لوگ اس سے بچیں۔

(بقیہ حاشیہ صفحہ گزشتہ) زمانہ نزول قرآن عظیم و ارشاد حدیث کریمہ میں صرف اہل سنت و جماعت ہی تھے، اس زمانے برکت نشان میں کسی بد مذہب و مبتدع کا ہونا محال تھا کہ بد مذہبی شبہ و تاویل سے پیدا ہوتی ہے جسے یقین قطعی سے بدلنے والے حضور اقدس صلی اللہ تعالٰی علیہ

وسلم دنیا میں جلوہ فرما تھے، اگر شبہ گزرتا حضور کشف فرماتے، شبہ والا مانتا تو سنی ہوتا، نہ مانتا تو کافر ہو جاتا، یہ بیچ کی شق وہاں ممکن ہی نہ تھی، لہذا آیہ کریمہ "و یتبع غیر سبیل المؤمنین" سے جب علماء نے حجیت اجماع پر استدلال کیا تصریح فرمادی کہ مبتدعین کا اتفاق اجماع میں ملحوظ نہیں کہ مومنین سے مراد امتِ اجابت ہیں۔ مبتدعین امتِ اجابت نہیں امتِ دعوت ہیں دیکھو تو ضیح و تلویح بحث اجماع وغیرہ۔ یہ فائدہ نفیسہ یاد رکھنے کا ہے کہ انما المؤمنون اخوۃ و غیر ہا آیات و احادیث میں مومنین سے اہلسنت ہی مراد ہیں، انھیں کے باہم اتفاق و اتحاد کا حکم ہے۔ ندوہ خذلھا اللہ تعالیٰ کی تعمیم اور تمام گمراہوں، بد مذہبوں سے اتحاد و وداد کی تعلیم سب بے دینوں کی تکریم و تعظیم پر ان نصوص کو پیش کرنا محض بددینی اور ضلالت ہے والعیاذ باللہ تعالیٰ ۱۲ منہ

---

1 نوادر الاصول اصل نمبر ۶۶ فی ذکر الفاجر الخ دار صادر بیروت ص ۲۱۳ ، تاریخ بغداد ترجمہ ۴۵۴۷ ج ۳ ص ۵۱ دار الکتاب العربی بیروت ۷ / ۲۶۲ و ۲۶۸ و ۱ / ۳۸۲

And after death, no matter how much of a sinner or transgressor a person was, it has been forbidden to speak ill of them or mention their faults, as they have reached what they earned (their deeds).

Arabic Text	Urdu Translation
Imam Ahmad, Bukhari, and Nasa'i narrated from the Mother of the Believers, Aisha Siddiqa (may Allah be pleased with her), that the Holy Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) said: "Do not abuse the dead, for they have reached what they have sent forward (their deeds)."[1]	Imam Ahmad, Bukhari, and Nasa'i narrated from the Mother of the Believers, Aisha Siddiqa (may Allah be pleased with her), that she related from the Holy Prophet (peace and blessings of Allah be upon him): "Do not speak ill of the dead, because they have reached the recompense of whatever they did."
And Abu Dawood, Tirmidhi, Hakim, and Bayhaqi narrated from Ibn Umar (may Allah be pleased with them both) that the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) said: "Mention the good qualities of your dead and refrain from their evils."[2]	And Abu Dawood, Tirmidhi, Hakim, and Bayhaqi narrated from Ibn Umar that he narrated from the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) that: "Narrate the virtues of your dead and overlook their faults."
And Nasa'i narrated with a good chain from Aisha (may Allah be pleased with her) from the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him): "Do not mention your deceased ones except with goodness."[3]	And Nasa'i narrated with a good chain from Aisha (may Allah be pleased with her) that the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) said: "Remember your dead only with goodness."

After this information, if such individuals do not desist from their actions, then their insolence will not only be towards the common believers but also towards the noble Saints (Auliya). And the most severe and greatest calamity is insolence in the exalted presence of the Saints. The Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) says: Allah the Majestic says:

Arabic Text	Urdu Translation
"Whoever shows enmity to a friend (Wali) of Mine, I declare war against him."[4] This	"Whoever builds enmity with any friend (Wali) of Mine, I declare war against him."

Arabic Text	Urdu Translation
was narrated by Imam Bukhari from our master Abu Hurairah (may Allah be pleased with him).	This was narrated by Imam Bukhari from master Abu Hurairah (may Allah be pleased with him).
I say: The reference to 'Jami' al-Sahih' (Sahih Bukhari) is sufficient as proof, even if some doubt remains in the heart of a skeptic.	I say: The reference to 'Jami' al-Sahih' is sufficient as proof, even if some doubt crosses the heart of a doubter.

[1] Sahih al-Bukhari, Kitab al-Jana'iz, Chapter on what is forbidden regarding abusing the dead, Qadeemi Kutub Khana, Karachi, 1/180. [2] Sunan Abi Dawud, Chapter on the prohibition of abusing the dead, Aftab-e-Alam Press, Lahore, 2/315. [3] Sunan al-Nasa'i, Prohibition of mentioning the deceased except with good, Maktabah Salafiyah, Lahore, 1/222. [4] Sahih al-Bukhari, Kitab al-Riqaq, Chapter on Humility, Qadeemi Kutub Khana, Karachi, 2/943.

फ़तावा रज़विय्या - जिल्द नहम (9)

और मौत के बाद, चाहे वह कितना ही बड़ा फासिक़ ओ फाजिर (पापी) क्यों न हो, उसके बारे में बुरा बोलने और उसकी बुराइयों का ज़िक्र करने से मना फरमाया गया है क्योंकि वह अपने किए को पहुँच गया।

अरबी मूल

इमाम अहमद, बुखारी और नसाई ने उम्मुल मोमिनीन आयशा सिद्दीक़ा (रज़ियल्लाहु अन्हा) से रिवायत की, उन्होंने नबी अकरम (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) से फ़रमाया: "मरे हुओं को बुरा न कहो क्योंकि उन्होंने जो कुछ किया था, वे उस तक (अपने कर्मों तक) पहुँच चुके हैं।"[1]

और अबू दाऊद, तिर्मिज़ी, हाकिम और बैहक़ी ने इब्ने उमर (रज़ियल्लाहु अन्हुमा) से रिवायत की कि नबी (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने फ़रमाया: "अपने मुर्दों की खूबियाँ बयान करो और उनकी बुराइयों से दरगुज़र करो।"[2]

और नसाई ने अच्छी सनद के साथ हज़रत आयशा (रज़ियल्लाहु अन्हा) से रिवायत की कि नबी (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने फ़रमाया: "अपने मुर्दों का ज़िक्र सिर्फ़ भलाई के साथ करो।"[3]

उर्दू अनुवाद

इमाम अहमद, बुखारी और नसाई ने उम्मुल मोमिनीन आयशा सिद्दीक़ा (रज़ियल्लाहु अन्हा) से रिवायत की, उन्होंने नबी अकरम (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) से फ़रमाया: "तुम मुर्दों को बुरा न कहो क्योंकि उन्होंने जो कुछ किया था वे उसकी जज़ा (बदले) को पहुँच चुके हैं।"

और अबू दाऊद, तिर्मिज़ी, हाकिम और बैहक़ी ने इब्ने उमर से रिवायत की कि नबी (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने फ़रमाया: "तुम अपने मुर्दों की खूबियाँ बयान करो और उनकी बुराइयों से दरगुज़र करो।"

और नसाई ने अच्छी सनद के साथ आयशा (रज़ियल्लाहु अन्हा) से रिवायत की और उन्होंने नबी (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) से कि: "तुम अपने मुर्दों को भलाई से ही याद करो।"

इस जानकारी के बाद भी अगर ऐसे लोग अपनी हरकतों से बाज़ न आएँ तो अब उनकी गुस्ताख़ियाँ सिर्फ़ आम मोमिनों के साथ ही नहीं बल्कि औलिया-ए-किराम के साथ भी होंगी। और सबसे बड़ी मुसीबत वह है जो औलिया की बारगाह में गुस्ताख़ी हो। नबी (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) फ़रमाते हैं कि अल्लाह तआला फ़रमाता है:

अरबी मूल	उर्दू अनुवाद
"जिसने मेरे किसी वली (मित्र) से दुश्मनी मोल ली, मैंने उससे जंग का ऐलान कर दिया।"[4] इसे इमाम बुखारी ने हमारे आका अबू हुरैरा (रज़ियल्लाहु अन्हु) से रिवायत किया है।	"जो मेरे किसी वली से दुश्मनी बाँधे, मैंने उससे लड़ाई का ऐलान कर दिया," इसे इमाम बुखारी ने सैयदना अबू हुरैरा (रज़ियल्लाहु अन्हु) से रिवायत किया।
मैं कहता हूँ: दलील के तौर पर 'जामे सही' (सही बुखारी) का हवाला काफी है, चाहे किसी शक करने वाले के दिल में कुछ भी गुज़रे।	मैं कहता हूँ: दलील के तौर पर 'जामे सही' का हवाला काफी है अगरचे मुरीब (संशयवादी) के दिल में कुछ शक गुज़रे।

---

1. सहीह अल-बुखारी, किताब अल-जनाइज़, मुर्दों को बुरा कहने की मनाही का अध्याय, क़दीमी कुतुब खाना, कराची, 1/180.
2. सुनन अबू दाऊद, मुर्दों को बुरा कहने की मनाही का अध्याय, आफ़ताबे आलम प्रेस, लाहौर, 2/315.
3. सुनन अन-नसाई, मुर्दों का ज़िक्र सिर्फ़ भलाई के साथ करने का अध्याय, मकतबा सलफिया, लाहौर, 1/222.
4. सहीह अल-बुखारी, किताब अर-रिक़ाक़, विनम्रता का अध्याय, क़दीमी कुतुब खाना, कराची, 2/943.

اور بعد موت کیسا ہی فاسق فاجر ہو اس کے برا بولنے اور اس کی برائیاں ذکر کرنے سے منع فرمایا کہ وہ اپنے کئے کو پہنچ گیا۔

عربی متن	اردو ترجمہ
اخرج الامام احمد والبخاری والنسائی عن ام المومنین الصدیقة رضی اللہ تعالی عنہا عن النبي صلی اللہ تعالی علیہ وسلم قال لاتسبوا الاموات فانھم قدا فضوا الی ما قدموا[1] ۔	امام احمد، بخاری اور نسائی نے ام المومنین عائشہ صدیقہ رضی اللہ تعالیٰ عنہا سے روایت کی انھوں نے نبی اکرم صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم سے ،فرمایا : "تم مردوں کو برا نہ کہو کیونکہ انھوں نے جو کچھ کیا تھا وہ اس کی جزا کو پہنچے"۔
واخرج ابوداؤد والترمذی والحاکم والبیھقي عن ابن عمر رضی اللہ تعالی عنھما عن النبي صلی اللہ تعالی علیہ وسلم اذکر محاسن موتاکم وکفوا عن مساویھم[2]	اور ابوداؤد ،ترمذی، حاکم، بیہقی نے ابن عمر سے انھوں نے نبی صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم سے روایت کی کہ "تم اپنے مُردوں کی خوبیاں بیان کرو اور ان کی برائیوں سے درگزر کرو"۔
واخرج النسائی بسند جید عن عائشہ رضی اللہ تعالی عنھا عن النبي صلی اللہ تعالی علیہ وسلم لا تذکروا ھلکاکم الایخیر[3] ۔	اور نسائی نے بسند جید عائشہ رضی اللہ تعالیٰ عنہا سے روایت کی اور انھوں نے نبی صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم سے کہ "تم اپنے مردوں کو بھلائی سے ہی یاد کرو۔"

بعد اس اطلاع کے بھی اگر ایسے اشخاص اپنی حرکت سے باز نہ آئیں تو اب ان کی گستاخیاں عوام مومنین کے ساتھ ہی نہیں بلکہ حضرات اولیائے کرام کے ساتھ بھی ہوں گی، اور اشد و اعظم مصیبت اس کی جو اولیاء کی جناب رفیع میں گستاخی ہو، نبی صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم فرماتے ہیں: اللہ جل جلالہ فرماتا ہے:

عربی متن	اردو ترجمہ
من عادی لی ولیا فقد اذنته بالحرب[4] ۔ رواہ الامام البخاری عن سیدنا ابی ھریرۃ رضی اللہ تعالی عنه ۔	جو میرے کسی ولی سے دشمنی باندھے میں نے اس سے لڑائی کا اعلان کر دیا، اسے امام بخاری نے سیدنا ابوہریرہ رضی اللہ تعالیٰ عنہ سے روایت کیا۔
اقول : وکفی بالجامع الصحیح حجة وان کان في قلب الذھبي ماکان ۔	اقول: دلیل کے طور پر جامع صحیح کا حوالہ کافی ہے اگرچہ مریب کے دل میں کچھ شک گزرے۔

---

1. صحیح البخاری کتاب الجنائز باب ما ینھی من سب الاموات قدیمی کتب خانہ کراچی ۱ / ۱۸۰
2. سنن ابی داؤد باب مافی النھی عن سب الموتیٰ آفتاب عالم پریس لاہور ۲ / ۳۱۵
3. سنن النسائی النھی عن ذکر الہلکیٰ الا بخیر مکتبہ سلفیہ لاہور ۱ / ۲۲۲
4. صحیح البخاری کتاب الرقاق باب التواضع قدیمی کتب خانہ کراچی ۲ / ۹۴۳

Fatawa-e-Razvia Volume 9

In short, it is necessary for these people to have mercy on their own wretched state and fear the vengeance of God, the Compeller, the Subduer (Jall-e-Jalalahu). They should not cause pain to the deceased Muslims; after all, they too must one day enter the earth like their peers and lie there helpless and powerless. Just as they treat people today, others will treat them tomorrow.

Arabic: As you treat others, so you shall be treated.

Arabic: Recorded by Ibn Adi in al-Kamil from Ibn 'Umar, Ahmad in al-Musnad from Abu al-Darda', and 'Abd al-Razzaq in al-Jami' from Abu Qilaba as a mursal report. According to the latter two, this is a fragment of a hadith. I say: There are numerous supporting reports for it, and this hadith is among the concise words (jawami' al-kalim) of the Prophet, peace and blessings of Allah be upon him.

Urdu Translation: The master of both worlds, peace and blessings of Allah be upon him, has commanded: As you do, so shall you receive.

Urdu Translation: It was recorded by Ibn Adi in al-Kamil from Ibn 'Umar, Ahmad in al-Musnad from Abu al-Darda', and 'Abd al-Razzaq in al-Jami' from Abu Qilaba as a mursal report. According to the last two, this is a piece of a hadith. I (the author) say: There are many supporting evidences for it, and this hadith is among the comprehensive words (Jawami' al-Kalim) of the Messenger of Allah, peace and blessings of Allah be upon him. (T)

Complaints are directed towards Allah that this calamity has been spread among these ignorant people by those even more ignorant who have considered the dead to be like mere stones, thinking they have died and turned to dust, and now hear nothing and understand nothing, nor feel pain or comfort from anything. To the best of their ability, they have stripped away the reverence for Muslim graves from the hearts of the common people. To Allah we belong, and to Him we shall return.

Second Section: Clarification of the position and explanation of the delusions of the base Najdis, copied into the fatwa of the needy one (may the King of Animals forgive him).

First Fatwa:

In the name of Allah, the Most Gracious, the Most Merciful.

Issue: From Calcutta, Amr-tallain No. 8, sent by Haji Laal Khan Sahib; and for the second time in wording from Kanpur, Bazaar Naya Ganj, Company Daduji Dadabhai Surti, sent by Abdul Rahim Sahib, 20 Rabi' al-Akhir 1321 AH.

What do the scholars of religion (may Allah have mercy on them) say about this issue: On one side, several old graves are found, and the remaining one-third surface is an open field. Upon investigation from elderly people around eighty (80) to one hundred (100) years old, they say that as far as they remember and know, no deceased person has been buried in any part of this surface land.

---

1 Kanz al-Ummal, citing Ibn Adi from Ibn 'Umar, Hadith 43032, Muassasat al-Risalah Beirut 15/777

फ़तावा-ए-रज़विया जिल्द 9

संक्षेप में, इन लोगों के लिए ज़रूरी है कि वे अपनी दयनीय स्थिति पर दया करें और ईश्वर, सर्वशक्तिमान, महाबली (जल्ल-ए-जलालुहू) के प्रतिशोध से डरें। वे मृत मुसलमानों को कष्ट न पहुँचाएँ, आख़िरकार, उन्हें भी एक दिन अपने साथियों की तरह मिट्टी में मिलना है और वहाँ असहाय और लाचार होकर लेटना है। जैसा वे आज लोगों के साथ व्यवहार करते हैं, कल दूसरे उनके साथ वैसा ही करेंगे।

अरबी: जैसा तुम व्यवहार करोगे, वैसा ही तुम्हारे साथ किया जाएगा।

अरबी: इसे इब्न अदी ने अल-कामिल में इब्न उमर से, अहमद ने अल-मुसनद में अबू अल-दर्दा से और अब्द अल-रज्जाक ने अल-जामी' में अबू किलाबा से एक मुरसल रिवायत के रूप में दर्ज किया है। अंतिम दो के अनुसार, यह हदीस का एक अंश है। मैं कहता हूँ: इसके लिए कई सहायक रिवायतें मौजूद हैं, और यह हदीस नबी (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) के संक्षिप्त लेकिन व्यापक वचनों (जवामि अल-कलिम) में से एक है।

उर्दू अनुवाद: दो जहाँ के आका (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) का फ़रमान है: जैसा करोगे वैसा भरोगे।

उर्दू अनुवाद: इसे इब्न अदी ने कामिल में इब्न उमर से, अहमद ने मसनद में अबु दर्दा से और अब्दुल रज्जाक ने जामी में अबू क़लाबा से मुरसल रिवायत किया है, और आख़िरी दो के नज़दीक यह हदीस का एक हिस्सा है, मैं (लेखक) कहता हूँ इसके लिए बहुत सी सहायक दलीलें हैं और यह हदीस हुज़ूर (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) के जामे कलाम में से है। (त)

अल्लाह तआला की ओर शिकायत है कि यह आफ़त इन जाहिलों में उन महा-जाहिलों द्वारा फैलाई गई है जिन्होंने मृतकों को बिल्कुल पत्थर समझ लिया है कि वे मर गए और मिट्टी हो गए, अब न कुछ सुनेंगे न समझेंगे, न किसी चीज़ से दुख या सुख पाएंगे और जहाँ तक हो सका मुसलमानों की कब्रों की इज़्ज़त लोगों के दिलों से निकाल दी। हम तो अल्लाह के हैं और उसी की तरफ़ लौटने वाले हैं।

दूसरा हिस्सा: स्थिति का स्पष्टीकरण और नीच नज्दियों के भ्रमों का निराकरण, इस फ़क़ीर के फ़तवे में नक़ल किया गया है, अल्लाह तआला बख़्श दे।

पहला फ़तवा:

अल्लाह के नाम से शुरू जो बहुत मेहरबान रहम वाला है।

मसला: कलकत्ता, अमृतलालिन नंबर 8 से, हाजी लाल खान साहब द्वारा भेजा गया; और दूसरी बार कानपुर, बाज़ार नया गंज, कंपनी दादूजी दादाभाई सुरती से शब्दों में, अब्दुल रहीम साहब द्वारा भेजा गया, 20 रबी अल-आख़िर शरीफ़ 1321 हिजरी।

क्या फ़रमाते हैं उलेमा-ए-दीन इस मसले में कि एक तरफ़ कुछ पुरानी कब्रें पाई जाती हैं और बाकी एक तिहाई हिस्सा मैदान पड़ा हुआ है और वहाँ के अस्सी (80) से सौ (100) साल की उम्र के बुज़ुर्गों से तहक़ीक़ात करने पर वे कहते हैं कि हमारे होश में और हमारी जानकारी में इस ज़मीन के किसी भी हिस्से में कोई मय्यत (मृतक) दफ़न नहीं हुई है।

---

1 कंज़ुल उम्माल, इब्न अदी के हवाले से इब्न उमर से, हदीस 43032, मुअस्ससतु रिसाला बेरुत 15/777

غرض ان لوگوں پر ضرور ہے کہ اپنے حالِ سقیم پر رحم کریں اور خدائے جبار قہار جل جلالہ کے انتقام سے ڈریں اور مسلمانوں کے اموات کو ایذا نہ پہنچائیں، آخر انھیں بھی اپنے امثال کی طرح ایک دن زمین میں جانا اور بیکس بے بس ہو کر پڑنا ہے۔ جیسا کہ آج یہ لوگوں کے ساتھ پیش آتے ہیں ویسا ہی اور لوگ کل ان کے ساتھ کریں گے۔

عنہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم کما تدین تدان — **سرکارِ دو عالم صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم کا فرمان ہے جیسا کرو گے**

1۔ اخرجہ ابن عدی فی الکامل عن ابن عمرو احمد فی المسند عن ابی الدرداء وعبد الرزاق فی الجامع عن ابی قلابۃ مرسلاً وھو عند الاٰخرین قطعۃ حدیث، قلت ولہ شواھد جمۃ، وھو من جوامع کلمہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم

ویسا بھرو گے۔ اسے ابن عدی نے کامل میں ابن عمر سے، احمد نے مسند میں ابی الدرداء سے اور عبدالرزاق نے جامع میں ابوقلابہ سے مرسلاً روایت کیا ہے، اور آخری دو کے نزدیک یہ حدیث کا ٹکڑا ہے، قلت (میں کہتا ہوں) اس کے لیے شواہد کثیر ہیں اور یہ حدیث حضور صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم کے جامع کلمات میں سے ہے(ت)

اللہ تعالٰی کی طرف شکوے کہ یہ بلا ان جاہلوں میں ان اجہلوں کی پھیلائی ہوئی ہے جنھوں نے اموات کو بالکل پتھر سمجھ لیا کہ مر گئے اور خاک ہو گئے، نہ اب کچھ سنیں نہ سمجھیں، نہ کسی چیز سے ایذا یا راحت پائیں اور جہاں تک بن پڑا قبور مسلمین کی عظمت قلوبِ عوام سے چھیل (سلب کر) ڈالی۔ فانا للہ وانا الیہ راجعون۔

وصل دوم: تنقیح مقام و توضیح اوہام نجدیہ لیام، نقل در فتوٰی فقیر غفر لہ ملک الانعام فتویٰ اولٰی:

بسم اللہ الرحمن الرحیم مسئلہ: از کلکتہ امر تلالین نمبر ۸ مرسلہ حاجی لعل خاں صاحب و بار دوم بلفظ از کانپور بازار نیا گنج کمپنی دادو جی دادا بھائی سورتی، مرسلہ عبدالرحیم صاحب ۲۰ ربیع الآخر شریف ۱۳۲۱ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین رحمہم اللہ تعالیٰ اس مسئلے میں کہ ایک طرف چند پرانی قبریں پائی جاتی ہیں اور باقی ایک تہائی سطح میدان پڑا ہوا ہے اور وہاں عمر رسیدہ قریب اسی ۸۰ سے سو ۱۰۰ برس کے بزرگوں سے تحقیق کرنے پر وہ کہتے ہیں کہ ہم لوگوں کے ہوش سے ہم لوگوں کے جاننے میں کسی حصہ اس سطح زمین میں کوئی میت دفن نہیں ہوا ہے،

---

1 کنز العمال بحوالہ ابن عدی عن ابن عمر حدیث ۴۳۰۳۲ موسسۃ الرسالہ بیروت ۱۵ / ۷۷۷

Fatawa Razawiya, Volume 9

Several high-spirited Muslims requested the ruler of the time to build a school and library on this vacant third of the land. After investigation, it was found that there are no graves there, so the ruler granted permission. These gentlemen have provided all materials for building the school and library. In this situation, is it permissible to build a school or library at such a place or not? And if, while digging the foundation for the school, a decayed bone of a deceased person is accidentally found, what is the ruling? Please clarify and be rewarded.

The Answer: Changing a waqf (endowment) is not permissible. It is not allowed to change the purpose for which something is endowed to another purpose. Just as a mosque or school cannot be turned into a graveyard, similarly turning a graveyard into a mosque, school, or library is not lawful. In Siraj al-Wahaj and then in Fatawa Hindiyya, it is stated:

Arabic	**Urdu**
It is not permissible to change the endowment from its state; so it cannot be made into a garden, nor a hostel into a bathhouse, nor a ribat (inn) into a shop, unless the endower has left it to the supervisor's discretion for what they see as being in the interest of the endowment. [End quote]. I say: If it is not permissible to change the physical form, how can changing the original purpose be permissible!	It is not permissible to change the endowment from its form; therefore, making a house into a garden, a hostel into a bathhouse, and a ribat into a shop is not permissible. Yes, when the endower has left the matter to the guardian to do whatever is in the interest of the endowment, then it is permissible. I say (meaning myself): When changing the form is not permissible, then how can changing the original purpose be permissible!

And the absence of any grave in this part of the graveyard for a hundred years cannot exclude it from being a graveyard. According to the fatwa-issued opinion of Imam Abu Yusuf (may Allah have mercy on him), just by the endower saying "I have endowed this land for Muslims" or "I have made this land a cemetery for Muslims," that entire land becomes a graveyard even if not a single dead person has been buried yet. And according to Imam Muhammad's opinion, the entire land becomes a graveyard with the burial of one person. In Is'af and then in Radd al-Muhtar, it is stated:

Arabic	Urdu
Handing over everything is according to its nature; so in a cemetery, it is by one burial, in a water fountain by drinking from it, and in a hostel...	Handing over everything is according to its nature; so in a cemetery, it is to bury one person and in a water fountain...

[1] Fatawa Hindiyya, Kitab al-Waqf, Chapter 14 on Miscellaneous Matters, Noorani Kutub Khana Peshawar, 2/490 Page 458 of 948

फ़तावा रज़विया, खंड 9

कुछ उत्साही मुसलमानों ने इस खाली एक-तिहाई ज़मीन पर मदरसा और पुस्तकालय बनाने के लिए समय के शासक से अनुरोध किया था। जाँच के बाद कि वहाँ कोई कब्र नहीं है, शासक ने अनुमति दे दी, इन सज्जनों ने मदरसा और पुस्तकालय बनाने के लिए सभी सामग्री उपलब्ध करा दी है। ऐसी स्थिति में ऐसी जगह पर मदरसा या पुस्तकालय बनाना सही है या नहीं? और मदरसा की नींव खोदते समय अगर इत्तेफ़ाक से वहाँ किसी मुर्दे की पुरानी हड्डी निकले तो उसका क्या हुक्म है? स्पष्ट करें, आपको पुण्य मिलेगा।

उत्तर: वक्फ़ (धार्मिक बंदोबस्ती) में परिवर्तन जायज़ नहीं है। जिस चीज़ को जिस उद्देश्य के लिए वक्फ़ किया गया है, उसे बदलकर दूसरे उद्देश्य के लिए करना मान्य नहीं है। जिस प्रकार मस्जिद या मदरसा को कब्रिस्तान नहीं बनाया जा सकता, उसी प्रकार कब्रिस्तान को मस्जिद, मदरसा या पुस्तकालय बनाना हलाल नहीं है। सिराज-उल-वहाज फिर फतावा हिंदिया में है:

अरबी

वक्फ़ को उसकी स्थिति से बदलना जायज़ नहीं है, इसलिए घर को बाग़ बनाना, सराय को हमाम बनाना और रिबात (चौकी) को दुकान बनाना जायज़ नहीं है, हाँ, जब वक्फ़ करने वाले ने प्रबंधक पर छोड़ दिया हो कि वह वही करे जो वक्फ़ के हित में हो, तो जायज़ है। मैंने कहा: जब रूप बदलना जायज़ नहीं है, तो मूल उद्देश्य बदलना कैसे जायज़ होगा!

उर्दू

वक्फ़ को उसके रूप (हैयत) से बदलना जायज़ नहीं है, इसलिए घर को बाग़ बनाना, सराय को हमाम बनाना और रिबात को दुकान बनाना जायज़ नहीं है। हाँ, जब वक्फ़ करने वाले ने मामला निगहबान (मुतवल्ली) पर छोड़ दिया हो कि वह हर वह काम कर सकता है जिसमें वक्फ़ की भलाई हो, तो जायज़ है। मैं कहता हूँ: जब एक हैयत की तब्दीली जायज़ नहीं है, तो मूल उद्देश्य का परिवर्तन कैसे जायज़ होगा!

और कब्रिस्तान के इस हिस्से में सौ वर्षों से किसी कब्र का न होना इसे कब्रिस्तान होने से बाहर नहीं कर सकता। इमाम अबू यूसुफ रहमतुल्लाह अलैहि के फतवे वाले कथन के अनुसार, वक्फ़ करने वाले के केवल इतना कहने से कि "मैंने यह ज़मीन मुसलमानों के लिए वक्फ़ की" या "इस ज़मीन को मुसलमानों के लिए मकबरा (कब्रिस्तान) बना दिया", वह पूरी ज़मीन कब्रिस्तान हो जाती है, भले ही

अभी तक एक भी मुर्दा दफ़्न न हुआ हो। और इमाम मुहम्मद के कथन के अनुसार, एक व्यक्ति के दफ़नाने से पूरी ज़मीन कब्रिस्तान हो जाती है। इसाफ़ और फिर रद्दुल मुह्तार में है:

अरबी	उर्दू
हर चीज़ को सुपुर्द करना उसकी प्रकृति के अनुसार होता है, तो कब्रिस्तान में एक व्यक्ति को दफ़नाने से और प्याऊ (सकाया) में पानी पीने से और सराय में...	हर चीज़ को सुपुर्द करना उसकी हैसियत के मुताबिक होता है, तो मक़बरे में एक शख़्स को दफ़्न करना है और सकाया...

[1] फतावा हिंदिया, किताबुल वक्फ़, अध्याय 14 विविध विषयों पर, नूरानी कुतुब खाना पेशावर, 2/490 पृष्ठ 458/948

اس پر چند مسلمانان عالی ہمت نے اس تہائی خالی سطح زمین پر مدرسہ اور کتب خانہ بنانے کے لیے حاکم وقت سے درخواست کی تھی۔ تحقیق کرنے کے بعد کہ وہاں کوئی قبر نہیں ہے، حاکم وقت نے اجازت دے دی، ان حضرات نے مدرسہ وکتب خانہ بنانے کے لیے تمام سامان فراہم کیا ہے۔ اس صورت میں ایسے مقام پر مدرسہ کتب خانہ بنانا درست ہے یا نہیں؟ اور مدرسہ کی نیو (بنیاد) کھودتے وقت اگر احیاناً وہاں مردے کی بوسیدہ ہڈی نکلے تو اس کا کیا حکم ہے؟ بینوا توجروا

الجواب: وقف کی تبدیلی جائز نہیں، جو چیز جس مقصد کے لیے وقف ہے اسے بدل کر دوسرے مقصد کے لئے کر دینا روا نہیں، جس طرح مسجد یا مدرسہ کو قبرستان نہیں کر سکتے یونہی قبرستان کو مسجد یا مدرسہ یا کتب خانہ کر دینا حلال نہیں۔ سراج و ہاج پھر فتاوٰی ہندیہ میں ہے :

عربی متن	**اردو ترجمہ**
لا یجوز تغیر الوقف عن هیأته فلا یجعل بستاناً ولا الخان حماماً ولا الرباط دکاناً الا اذا جعل الواقف الی الناظر ما یری فیه مصلحة الوقف اهـ قلت فاذا لم یجز تبدیل الهیئة فکیف بتغییر اصل المقصود۔	وقف کو اس کی ہیئت سے تبدیل کرنا جائز نہیں لہذا گھر کا باغ بنانا اور سرائے کا حمام بنانا اور رباط کا دکان بنانا جائز نہیں، ہاں جب واقف نے نگہبان پر معاملہ چھوڑ دیا ہو کہ وہ ہر وہ کام کر سکتا جس میں وقف کی مصلحت ہو تو جائز ہے اھ قلت (میں کہتا ہوں) جب ایک ہیئت کی تبدیلی جائز نہیں تو اصل مقصود کی تغییر کیونکر جائز ہوگی!

اور اس پارہ قبرستان میں سو برس سے کوئی قبر نہ ہونا اسے قبرستان ہونے سے خارج نہیں کر سکتا۔ امام ابو یوسف رحمہ اللہ تعالٰی کے قول مفتی بہ پر واقف کے صرف اتنا کہنے سے کہ میں نے یہ زمین مسلمان کیلئے وقف کی یا اس زمین کو مقبرہ مسلمین کر دیا، وہ تمام زمین قبرستان ہو جاتی ہے اگرچہ ہنوز ایک مردہ بھی دفن نہ ہوا۔ اور امام محمد کے قول پر ایک شخص کے دفن سے ساری زمین قبرستان ہو جاتی ہے۔ اسعاف پھر ردالمحتار میں ہے :

عربی متن	اردو ترجمہ
تسلیم کل شیئ بحسبه ففی المقبرة بدفن	ہر چیز کا سپرد کرنا اس کی حیثیت کے مطابق ہوتا ہے تو
واحد و فی السقایة بشربه و فی الخان	مقبرے میں ایک شخص کو دفن کرنا ہے اور سقایہ

[1] فتاوی ہندیہ کتاب الوقف الباب الرابع عشر فی المتفرقات نورانی کتب خانہ پشاور ۲/ ۴۹۰ Page 458 of 948

Fatawa Razawiya, Volume 9

Banzula 1. It means to drink a sip of water and stay in an inn. It is stated in Hidaya and Hindiyyah: "According to Abu Yusuf (may Allah Almighty have mercy on him), ownership ceases by word alone, as is the fundamental principle of endowment (Waqf). According to Imam Muhammad (may Allah Almighty have mercy on him), when people drink from a watering place (siqaya), reside in an inn (khan) or hospice (ribat), and are buried in a graveyard, ownership ceases. A single instance is sufficient because performing the action for the entire category is impossible. The ruling for wells and reservoirs is the same." 2

In Durr al-Multaqa and Shami, it is stated: "The opinion of Abu Yusuf was prioritized in Tanwir, Durar, Wiqayah, and others, and you have already known its preponderance in matters of Waqf and judicial rulings." 3

Therefore, in the inquired situation, it is not permissible to build a school or library there, even if the bones of the deceased do not emerge. If bones do emerge, the prohibition becomes even more severe, as it involves the desecration of a Muslim's grave, as we explained in 'Al-Amr bi-Ihtiram al-Maqabir' (The command to respect graveyards). And Allah Almighty knows best.

Second Fatwa: Problem: From Kanpur, Rangeen Mosque, sent by the late Maulvi Shah Ahmad Hasan Sahib through Maulana Maulvi Wasi Ahmad Sahib, 21 Jumada al-Akhira 1321 AH. To the presence of the blessed Maulana Maulvi Sahib, the Mujaddid of the present century, the possessor of conclusive proof, the Imam of the Ahl al-Sunnah community, our master Maulvi Muhammad Ahmad Raza Khan Sahib, may his blessings continue and encompass the inhabitants of the East and the West. Peace be upon you.

1. Radd al-Muhtar, Book of Waqf, Mustafa al-Babi, Egypt, 3/405.
2. Fatawa Hindiyyah, Chapter Twelve on Hospices etc., Nurani Kutub Khana, Peshawar, 2/465.
3. Radd al-Muhtar, Book of Waqf, Mustafa al-Babi, Egypt, 3/405.

फ़तावा रज़विया, जिल्द नहम (खंड 9)

बन्ज़ुला 1। इसमें एक घूंट पानी पीना है और सराय में ठहरना है। हिदाया और हिन्दिया में लिखा है: "और अबू यूसुफ (रहमतुल्लाह अलैह) के नज़दीक इसकी मिलकियत (स्वामित्व) कहने मात्र से समाप्त हो जाएगी जैसा कि यह वक़्फ़ का मूल है। और इमाम मुहम्मद (रहमतुल्लाह अलैह) के नज़दीक जब लोग सक़ाया (पानी पीने की जगह) से तृप्त हों और सराय और रिबात (धर्मशाला) में रहें, और कब्रिस्तान में दफ़्न करें तो मिलकियत समाप्त हो जाएगी। और एक उदाहरण ही पर्याप्त माना जाएगा क्योंकि पूरी प्रजा का कार्य असंभव है। और कुएं तथा हौज़ का हुक्म भी ऐसा ही है।" 2

दुर्रुल मुंतक़ा और शामी में है: "तनवीर, दुर्रर और वक़ाया आदि में अबू यूसुफ के कथन को प्राथमिकता दी गई है और आप वक़्फ़ और न्याय के मामलों में इसकी श्रेष्ठता जान चुके हैं।" 3

अतः पूछी गई स्थिति में वहां मदरसा और पुस्तकालय बनाना ही जायज़ नहीं है, चाहे मृतक की हड्डियां न निकलें। और हड्डियां निकलने की स्थिति में पाबंदी और भी सख्त हो जाएगी क्योंकि यह मुसलमान की कब्र का अपमान होगा, जैसा कि हमने 'अल-अम्र बि-इहतिराम अल-मकाबिर' (कब्रिस्तानों के सम्मान का आदेश) में बयान किया है। और अल्लाह तआला बेहतर जानता है।

दूसरा फ़तवा: मसला: कानपुर, मस्जिद रंगियां से, प्रेषक स्वर्गीय मौलवी शाह अहमद हसन साहब, द्वारा मौलाना मौलवी वसी अहमद साहब, 21 जुमाद अल-आखिरा 1321 हिजरी। बरकत से भरपूर मौलाना मौलवी साहब, वर्तमान शताब्दी के मुजद्दिद (पुनरुद्धारक), ठोस प्रमाणों के स्वामी, सुन्नत जमात के इमाम, हमारे आका मौलवी मुहम्मद अहमद रज़ा खां साहब की सेवा में, अल्लाह उनके फ़ैज़ को जारी रखे और पूर्व व पश्चिम के निवासियों को इससे लाभान्वित करे। अस्सलामु अलैकुम।

1. रद्दुल मुहतार, किताबुल वक़्फ़, मुस्तफा अल-बाबी, मिस्र, 3/405।
2. फ़तावा हिन्दिया, बारहवां अध्याय रिबात आदि पर, नूरानी कुतुब खाना, पेशावर, 2/465।
3. रद्दुल मुहतार, किताबुल वक़्फ़, मुस्तफा अल-बाबी, मिस्र, 3/405।

पृष्ठ 459 / 948

فتاوٰی رضویہ، جلد نہم

بنزولہ ۱۔ میں ایک گھونٹ پانی پینا ہے اور سرائے میں اترنا ہے۔ ہدایہ و ہندیہ میں ہے: وعند ابی یوسف رحمہ اللہ تعالٰی یزول ملکہ بالقول کما ھو اصلہ ، وعند محمد رحمہ اللہ تعالٰی اذا استقی الناس من السقایۃ وسکنوا الخان والرباط ودفنوافی المقبرۃ زال الملک ویکتفی بالواحد لتعذر فعل الجنس کلہ وعلی ھذا البئر والحوض ۲۔ اور ابو یوسف کے نزدیک اس کی ملک کہنے سے زائل ہو جائیگی جیسی کہ یہ وقف کی اصل ہے اور امام محمد کے نزدیک جب لوگ سقایہ سے سیراب ہوں اور سرائے اور رباط میں رہیں، اور مقبرہ میں دفن کریں تو ملک زائل ہو جائیگی اور ایک پر اکتفاء کیا جائے گا کیونکہ تمام جنس کا فعل متعذر ہے اور کنوئیں اور حوض کا حکم بھی ایسا ہی ہے۔

در ملتقی اور شامی میں ہے: قدم فی التنویر والدرر والوقایۃ وغیرھا قول ابی یوسف وعلمت ارجحیتہ فی الوقف والقضاء ۳ اہ تنویر، درر اور وقایہ و غیرہ میں ابو یوسف کا قول مقدم رکھا اور تم اس کی ارجحیت وقف اور قضا میں جان چکے ہو۔

پس صورت مستفسرہ میں وہاں مدرسہ و کتب خانہ بنانا ہی جائز نہیں اگرچہ مُردے کی ہڈی نہ نکلے اور نکلنے کی حالت میں ممانعت اور اشد ہو جائے گی کہ قبر مسلم کی بے حرمتی ہوئی کما بینّا فی الأمر باحترام المقابر (جیسا کہ ہم نے رسالہ الأمر باحترام المقابر میں بیان کیا ہے۔ ت) واللہ تعالٰی اعلم

فتوٰی ثانیہ: مسئلہ : از کانپور مسجد رنگیاں مرسلہ مولوی شاہ احمد حسن صاحب مرحوم بوساطت جناب مولانا مولوی وصی احمد صاحب ۲۱ جمادی الآخرہ ۱۳۲۱ھ بخدمت سراپائے برکت مولانا

مولوی صاحب مجدد مائۃ حاضرہ، صاحب حجت قاہرہ امام جماعت عالم سنت مولانا وسیدنا المولوی محمد احمد رضا خاں صاحب تمت فیوضاتہم وعمت سکنۃ المشارق والمغارب، السلام علیکم

۱ ردالمختار کتاب الوقف مصطفی البابی مصر ۳ / ۴۰۵ ۲ فتاوٰی ہندیہ کتاب الثانی عشر فی الرباطات الخ نورانی کتب خانہ پشاور ۲ / ۴۶۵ ۳ ردالمختار کتاب الوقف مصطفی البابی مصر ۳ / ۴۰۵

Fatawa Razawiya Volume 9

...and the mercy of Allah and His blessings. Met Maulvi Ahmad Hasan Sahab of Kanpur. He said that currently, there is a dire need. The people of Jami-ul-Uloom wrote a fatwa; the petitioner brought it to me. I wrote a response against them. The people of Jami-ul-Uloom sent it to Deoband, and they confirmed the response of their coreligionists. The petitioner came back to me asking whose word I should act upon. I said act on whatever judgment is made by the arbitrator; who is a greater arbitrator than Hazrat Maulana. Therefore, take this query (Istifta) with you, get an answer from Maulana, and send it immediately. Since I intended to visit, I took the query, and as it happened I couldn't attend, and this is very important, so I am presenting it through this letter via Syed Abdul Shakur Sahab. Please write the judgment at this time and send it back with Syed Sahab so I can dispatch it; Maulvi Ahmad Hasan Sahab will be waiting.

Copy of the Query (Istifta)

What do the scholars of religion say about a piece of land famous as a graveyard, on one side of which some old broken graves are found, etc. Exactly the same question came from Calcutta, Amartala Lane, and from Kanpur Bazaar Ganj, recently in Rabi-ul-Akhar 1321 AH, it appeared in Fatawa.

Answer by the residents of Madrasa Jami-ul-Uloom

Building a library and a school at such a place is permissible due to the absence of any preventive factor (i.e., the obstacle is non-existent. -Editor). And if a decayed bone happens to come out by chance, bury it somewhere.

Al-Zayla'i said: If the deceased is decomposed and has become dust, it is permissible to bury someone else in their grave, to cultivate it, and to build upon it. Ends, Ash-Shamiyyah p. 599. And Allah knows best.	**Imam Zayla'i said that if the deceased decomposes and becomes soil, it is permissible to bury another in that grave, to farm on it, and to construct a building. Ends, Shamiya p. 599. And Allah knows best. (T)**

The humble Muhammad Rashid, second teacher, Madrasa Jami-ul-Uloom, Kanpur. Muhammad Rashid, two worlds from grace (1313 AH)

He who answered has hit the mark (the answer given is correct. -Editor). Muhammad Abdullah, may he be forgiven.

1. Radd al-Muhtar, topic on burial, Dar Ihya al-Turath al-Arabi, Beirut 1/599.

फतावा रज़विया जिल्द 9

...और अल्लाह की रहमत और उसकी बरकतें। कानपुर के मौलवी अहमद हसन साहब से मुलाकात हुई। उन्होंने कहा कि फिलहाल एक सख्त जरूरत है। जामे-उल-उलूम वालों ने एक फतवा लिखा, मुस्तफ़्ती (सवाल पूछने वाला) मेरे पास लाया, मैंने उनके खिलाफ जवाब लिखा, जामे-उल-उलूम वालों ने उसे देवबंद भेजा, उन्होंने अपने हम-मजहबों के जवाब की तस्दीक (पुष्टि) की। मुस्तफ़्ती फिर मेरे पास आया कि अब मैं किसके कौल (बात) पर अमल करूँ?मैंने कहा कि जो फैसला हुक्म करे उस पर अमल करो, हजरत मौलाना से बड़ा हाकिम कौन है। लिहाजा इस इस्तफ़्ता (सवाल) को अपने साथ ले जाओ और मौलाना से जवाब लिखवा लाओ, और फौरन रवाना कर दो। चूंकि मेरा इरादा हाजिरी का था, मैंने इस्तफ़्ता ले लिया और इत्तफ़ाकन मैं हाजिर न हो सका, और यह बहुत जरूरी है इसलिए इस अरीज़े (पत्र) में हमराह सैय्यद अब्दुल शकूर साहब हाजिर-ए-खिदमत करता हूँ, इसी वक्त फैसला लिख दीजिये और सैय्यद साहब ही के साथ वापस फरमाइये कि मैं रवाना कर दूँ, मौलवी अहमद हसन साहब इंतजार में होंगे।

नक्ल इस्तफ़्ता (सवाल की प्रति)

उलेमा-ए-दीन क्या फरमाते हैं कि जमीन की सतह कब्रिस्तान के नाम से मशहूर है जिसके एक तरफ कुछ पुरानी टूटी हुई कब्रें पाई जाती हैं वगैरह। बिलकुल यही सवाल कलकत्ता अमर तल्ला लेन और कानपुर बाजार गंज से आया, २० रबी-उल-आख़िर १३२१ हिजरी के करीब फतावा में गुजरा।

जवाब अहाली मदरसा जामे-उल-उलूम

ऐसी जगह पर कुतुबखाना (पुस्तकालय) और मदरसा बनाना जायज है ले-अदम-उल-मानए (क्योंकि रुकावट मौजूद नहीं है। -संपादक) और अगर बोसीदा (सड़ी-गली) हड्डी इत्तफ़ाकन निकल आए तो उसे कहीं दफन कर दें।

ज़ैलई ने कहा: अगर मैय्यत गल जाए और मिट्टी हो जाए तो उसकी कब्र में दूसरे को दफन करना, उस पर खेती करना और इमारत बनाना जायज है। अत्त-शामिया पृ. 599, वल्लाहू आलम।

इमाम ज़ैलई ने फरमाया अगर मैय्यत बोसीदा होकर मिट्टी हो जाए तो उसकी कब्र में दूसरे को दफन करना और उसकी कब्र पर खेती करना और इमारत बनाना जायज है। अत्त-शामिया पृ. 599, वल्लाहू आलम (त)।

अल-अहकर मुहम्मद रशीद मुदर्रिस दुम मदरसा जामे-उल-उलूम कानपुर। मुहम्मद रशीद दो आलम ज़-फ़ैज़ (१३१३ हिजरी)

मन अजाब फकद असाब (जिसने जवाब दिया उसने सही पाया यानी दिया गया जवाब सही है। -संपादक)। मुहम्मद अब्दुल्लाह अफ़्फ़ी अन्हु।

1. रद-उल-मुहतार, मदफन का बयान, दारुल इहया अत्त-तुरास अल-अरबी बैरूत 1/599।

पृष्ठ 460 / 948

فتاویٰ رضویہ جلد نہم

ورحمۃ اللہ وبرکاتہ۔ کانپوری مولوی احمد حسن صاحب سے ملاقات ہوئی ۔ کہتے تھے کہ بالفعل ایک اشد ضرورت ہے وہ کہ یہ جامع العلوم والوں نے ایک فتویٰ لکھا، مستفتی میرے پاس لایا، میں نے ان کے خلاف جواب لکھا، جامع العلوم والوں نے اس کو دیوبند بھیجا، انھوں نے اپنے ہم مذہبوں کے جواب کی تصدیق کی۔ مستفتی پھر میرے پاس آیا کہ اب میں کس کے قول پر عمل کروں، میں نے کہا کہ جو فیصلہ حکم کرے اس پر عمل کرو، حضرت مولانا سے بڑھ کر حکم کون ہے۔ لہٰذا اس استفتاء کو اپنے ہمراہ لیتے جاؤ اور مولانا سے جواب لکھوا لاؤ، اور فوراً روانہ کر دو۔ چونکہ میرا ارادہ حاضری کا تھا میں نے استفتاء لے لیا اور اتفاق کہ میں حاضر نہ ہو سکا، اور یہ بہت ضروری ہے لہٰذا اس عریضے میں ہمراہ سید عبد الشکور صاحب حاضر خدمت کرتا ہوں اسی وقت فیصلہ لکھ دیجئے اور سید صاحب ہی کے ساتھ واپس فرمائے کہ میں روانہ کر دوں، مولوی احمد حسن صاحب انتظار میں ہوں گے،

نقل استفتاء

کیا فرماتے ہیں علمائے دین کہ سطح زمین قبرستان کے نام سے مشہور ہے جس کی ایک طرف چند پرانی شکستہ قبریں پائی جاتی ہیں الخ، بعینہ سوال آمدہ از کلکتہ امر تلا لین و از کانپور بازار گنج، ۲۰ ربیع الآخر ۱۳۲۱ھ کے عنقریب فتاویٰ میں گزرا۔

جواب اہالی مدرسہ جامع العلوم

ایسے مقام پر کتب خانہ اور مدرسہ بنانا جائز ہے لعدم المانع (کہ مانع معدوم ہے۔ت) اور اگر بوسیدہ ہڈی اتفاقی طور پر نکل آئے تو اس کو کہیں دفن کر دے۔

وقال الزيلعي ولو بلی المیت وصار ترابا جاز دفن غیرہ فی قبرہ و زرعہ والبناء علیہ اھ شامیۃ ص ۵۹۹ واللہ اعلم۔

امام زیلعی نے فرمایا اگر میت بوسیدہ ہو کر مٹی ہو جائے تو اس کی قبر میں دوسرے کو دفن کرنا اور اس کی قبر پر کھیتی کرنا اور عمارت بنانا جائز ہے اھ شامیہ ص ۵۹۹ واللہ اعلم (ت)

الاحقر محمد رشید مدرس دوم مدرسہ جامع العلوم کانپور محمد رشید دو عالم زفیض (۱۳۱۳ھ)

من اجاب فقد اصاب (جو جواب دیا گیا درست ہے۔ت) محمد عبد اللہ عفی عنہ

1. ردالمحتار مطلب فی الدفن داراحیاء التراث العربی بیروت ۱/ ۵۹۹

صفحہ 460 / 948

Fatawa Rizvia, Volume 9

[Boxed Text:] This answer is incorrect because it contradicts the statements of the jurists (fuqaha). (Arabic) This answer is incorrect because it is contrary to the texts of the jurists. (T) (Urdu)

Muhammad Abdul Razzaq, Teacher, Madrasa Imdad-ul-Uloom, Kanpur. [Seal: Muhammad Abdul Razzaq]

Summary of the answer of جناب Maulvi Ahmed Hasan Sahib: In the matter questioned, building a library and a school on this site is impermissible. Since this place is famous by the name of a graveyard and is an endowment (waqf), it will be considered a graveyard according to Sharia. The land for this graveyard is endowed, and its fame is sufficient proof for its establishment. It is stated in Durr-e-Mukhtar: "Testimony based on common knowledge is accepted in it, etc." (Summary: Testimony based on fame is accepted in it, etc. T). Similarly, it is in Radd-ul-Muhtar and Alamgiriyah: "Testimony regarding an endowment (waqf) based on fame is permissible, etc." (Testimony regarding waqf based on fame is permissible, etc. T). And even if it becomes dilapidated, it is not correct to derive any other benefit from it. In Qazi Khan (printed in Egypt, Vol. 3, p. 312), it is stated:

[Table Header:] Arabic: مقبرة قديمة بمحلة لم يبق فيها آثار المقبرة هل يباح لاهل المحلة الانتفاع بها قال ابو نصر رحمه الله تعالى لا يباح -3 Urdu: An old graveyard in a neighborhood where no traces of the graveyard remain. Is it permissible for the residents of the neighborhood to benefit from it? Abu Nasr (may Allah have mercy on him) said: It is not permissible.

From Alamgiriyah, printed in Egypt, Vol. 2, pp. 704 & 717: [Table Header:] Arabic: سئل القاضى الامام شمس الائمة محمود الاوز جندى عن المقبرة اذا اندرست و لم يبق فيها اثر الموتى لالعظم ولاغيره هل يجوز زرعها و استغلالها قال لا ولها Urdu: Qadi Shams-ul-Aimmah Mahmud al-Ozgandi was asked about a graveyard whose traces have disappeared and no remains of the dead, neither bones nor anything else, are left. Is it permissible to cultivate it or rent it out? He said: No, and for it...

[Footnotes:] 1. Durr-e-Mukhtar, Book of Waqf, section on observing waqf conditions in its rental, Mujtabai Press, Delhi, 1/388. 2. Fatawa Hindiyyah, Book of Waqf, second section on testimony, Noorani Book Depot, Peshawar, 2/438. 3. Fatawa Qazi Khan, section on graveyards and hostels, 4/257.

फ़तावा रज़विया, खंड 9

[बॉक्स में पाठ:] यह उत्तर सही नहीं है क्योंकि यह फकीहों (धर्मशास्त्रियों) के कथनों के विरुद्ध है। (अरबी) यह उत्तर गलत है क्योंकि यह फकीहों की इबारतों (کلمات) के खिलाफ है (त)। (उर्दू)

मोहम्मद अब्दुल रज्जाक, शिक्षक, मदरसा इमदाद-उल-उलूम, कानपुर। [मुहर: मोहम्मद अब्दुल रज्जाक]

जनाब मौलवी अहमद हसन साहब के उत्तर का सारांश: पूछे गए मामले में, इस स्थान पर पुस्तकालय और मदरसा बनाना नाजायज है। चूंकि यह स्थान कब्रिस्तान के नाम से प्रसिद्ध है और वक्फ (बंदोबस्ती) है, इसलिए शरीयत के अनुसार इसे कब्रिस्तान ही माना जाएगा। इस कब्रिस्तान के लिए जमीन वक्फ होगी और इसकी प्रसिद्धि इसके प्रमाण के लिए पर्याप्त दलील है। 'दुर्रे मुख्तार' में है: "इसमें प्रसिद्धि के आधार पर गवाही स्वीकार की जाती है आदि" (सारांश: इसमें प्रसिद्धि की बिना पर शहादत कुबूल की जाती है आदि। त)। इसी तरह 'रद्दुल मुहतार' और 'आलमगीरिया' में है: "वक्फ पर प्रसिद्धि के आधार पर गवाही देना जायज है आदि" (वक्फ पर शहादत शोहरत की बिना पर जायज है आदि। त)। और इसके उजड़ जाने के बाद भी इससे कोई दूसरा लाभ लेना सही नहीं होगा। 'काजी खान' (मिस्र में छपा, खंड 3, पृष्ठ 312) में दर्ज है:

[तालिका शीर्षक:] अरबी: مقبرة قديمة بمحلة لم يبق فيها آثار المقبرة هل يباح لاهل المحلة الانتفاع بها قال ابو نصر رحمه الله تعالى لا يباح -3। उर्दू: एक मोहल्ले में पुराना कब्रिस्तान है जिसके कोई निशान बाकी नहीं रहे। क्या मोहल्ले वाले उससे लाभ उठा सकते हैं? अबू नसर (अल्लाह उन पर रहम करे) ने कहा: जायज (वैध) नहीं है।

आलमगीरिया से, मिस्र में छपा, खंड 2, पृष्ठ 704 और 717: [तालिका शीर्षक:] अरबी: سئل القاضى الامام شمس الائمة محمود الاوز جندى عن المقبرة اذا اندرست و لم يبق فيها اثر الموتى لالعظم ولاغيره هل يجوز زرعها و استغلالها قال لا ولها उर्दू: काजी शम्स-उल-आइम्मा महमूद अौजंदी से ऐसे कब्रिस्तान के बारे में पूछा गया जिसके निशान मिट गए हों और उसमें हड्डियाँ तक न बची हों। क्या उसमें खेती-बाड़ी करना और उसे किराए पर देना जायज है? उन्होंने कहा: नहीं, और इसके लिए...

[पाद टिप्पणियाँ:] 1. दुर्रे मुख्तार, किताबुल वक्फ, वक्फ की शर्तों के पालन का अध्याय, मुजतबाई प्रेस, दिल्ली, 1/388। 2. फ़तावा हिन्दिया, किताबुल वक्फ, गवाही के बारे में दूसरा अध्याय, नूरानी।

कुतुबखाना, पेशावर, 2/438। 3. फ़तावा काजी खान, कब्रिस्तानों और सराय के बारे में अध्याय, 4/257।

فتاوی رضویہ، جلد نہم

[خانہ:] ھذا الجواب غیر صحیح لانه مخالف لعبارة الفقهاء۔ (عربی) یہ جواب نادرست ہے کیونکہ یہ فقہاء کی عبارات کے خلاف ہے (ت) (اردو)

محمد عبدالرزاق مدرس مدرسہ امداد العلوم کانپور [مہر: محمد عبدالرزاق]

خلاصہ جواب جناب مولوی احمد حسن صاحب: صورت مسئولہ میں اس مقام پر کتب خانہ ومدرسہ بنانا ناجائز ہے اس لیے کہ یہ جگہ جب مقبرے کے نام سے مشہور اور وقف ہے تو شرعاً یہ مقبرہ سمجھا جائے گا اور اس مقبرے کے لیے زمین وقف ہوگی اور اس کی شہرت اس کے ثبوت کے لیے دلیل کافی ہے۔ درمختار میں ہے: تقبل فیہ الشھادة بالشھرة الخ ملخصاً (اس میں شہرت کی بنا پر شہادت قبول کی جاتی ہے الخ۔ ت) اسی طرح ردالمحتار میں ہے عالمگیریہ میں ہے: الشھادة علی الوقف بالشھرة تجوز الخ (وقف پر شہادت شہرت کی بناء پر جائز ہے الخ۔ ت) اور اس کے مندرس ہو جانے سے دوسرا کوئی نفع لینا درست نہ ہوگا۔ قاضی خاں مطبوعہ مصر جلد ثالث ص ۳۱۲ پر ہے:

[خانہ:] عربی: مقبرة قدیمة بمحلة لم یبق فیھا آثار المقبرة ھل یباح لاھل المحلة الانتفاع بھا قال ابو نصر رحمه الله تعالی لا یباح -3 اردو: ایک محلے میں پرانا قبرستان ہے جس کے نشانات باقی نہیں رہے، کیا اہل محلہ اس سے نفع حاصل کر سکتے ہیں، ابونصر رحمہ اللہ تعالیٰ نے کہا کہ مباح نہیں ہے۔

عالمگیری میں جلد ثانی مطبوعہ مصر صفحہ ۷۰۴ و ۷۱۷: [خانہ:] عربی: سئل القاضی الامام شمس الائمة محمود الاوز جندی عن المقبرة اذا اندرست و لم یبق فیھا اثر الموتی لالعظم ولاغیرہ ھل

یجوز زرعها و استغلالها قال لا ولها اردو: قاضی شمس الائمہ محمود اوزجندی سے ایسے مقام قبرستان کے بارے میں دریافت کیا گیا جس کے نشانات مٹ گئے ہوں اور اس میں ہڈیاں تک نہ رہی ہوں کیا اس میں کھیتی باڑی کرنا اور اسے کرائے پر دینا جائز ہے،

[حواشی:] 1 درمختار کتاب الوقف فصل یراعی شرط الوقف فی اجارته مطبع مجتبائی دہلی ۱ / ۳۸۸ 2 فتاوی ہندیہ کتاب الوقف الفصل الثانی فی الشهادة نورانی کتب خانہ پشاور ۲ / ۴۳۸ 3 فتاوی قاضی خاں فصل فی المقابر والرباطات ۴ / ۲۵۷

Fatawa Ridawiyyah Volume Ninth

Ruling of the graveyard - As in Al-Muhit - 1 He said: No, it is under the ruling of a graveyard as it is in Al-Muhit.

The impermissibility of utilizing a graveyard is contrary to this statement of Imam Az-Zayla'i because he based "permissibility" upon the corpse becoming decayed and turning into dust, whereas here the impermissibility is not due to that, but because the graveyard is an endowment (waqf). As the commentator (mussahih) has written in Fatawa al-Alamgiriyah printed in Egypt, this statement is written upon the quoted text of Alamgiriyah:

Arabic Text: His statement "No, this does not contradict what Az-Zayla'i said, because the obstacle here is that the site is endowed for burial, so its use for other purposes is not permissible. Let it be reflected upon and recorded." End of commentator's note - 2 Urdu Explanation: Their statement "He didn't say no" is not contrary to Zayla'i's statement because the obstacle here is that the site is endowed for burials, so its use for anything else is not permissible. One should reflect upon this and preserve it. End of commentator's note. And from other issues, it is also proven that shifting an endowment to a different category is not permissible. It is in Alamgiriyah, Volume 2, page 478.

Arabic Text: Shams al-A'imma al-Halwani was asked about a mosque or a water tank that fell into ruin and was no longer needed because the people had dispersed: Can the judge spend its endowments on another mosque or another tank? He said: Yes. And if the people haven't dispersed, but the tank no longer needs maintenance while there is a mosque needing maintenance, or vice versa, is it permissible for the judge to spend the endowment of what is not in need on what is in need? He said: No. Thus in Al-Muhit. - 3 Urdu Explanation: Shams al-A'imma Halwani was asked about a mosque or a water tank that had become desolate and was no longer needed because there was no population there: Can the judge spend its endowments on another mosque or another water tank? He said: Yes. And if people still live there but the water tank is no longer needed while the mosque building is in need, or vice versa, can the judge spend the income of that endowment which is not needed on the construction of the other needy endowment? So he said: No. It is the same in Al-Muhit.

Therefore, it would not be permissible to build a school etc. on this land which is endowed for burial, even if it is empty. Secondly, its being empty cannot be proven

just by testimony that in our lifetime and to our knowledge no deceased person was buried, but rather...

1. Fatawa al-Hindiyyah, Al-Bab al-Thani 'Ashar fi al-Ribatat etc., Noorani Kutub Khana Peshawar, 2/70, 71.
2. Hashiya Fatawa al-Hindiyyah, Al-Bab al-Thani 'Ashar fi al-Ribatat etc., Noorani Kutub Khana Peshawar, 2/71.
3. Fatawa al-Hindiyyah, Al-Bab al-Thalith 'Ashar fi al-Awqaf etc., Noorani Kutub Khana Peshawar, 3/478.

फ़तावा रज़विया जिल्द नहुम (नौवीं)

क़ब्रिस्तान का हुक्म - जैसा कि अल-मुहीत में है - १ फ़रमाया: नहीं, वह क़ब्रिस्तान के हुक्म में है जैसा कि मुहीत में है।

क़ब्रिस्तान के उपयोग की अनुमति न होना इमाम ज़ैलई के इस कथन के विरुद्ध ही है क्योंकि उन्होंने "अनुमति" को शव के गलने और धूल हो जाने पर आधारित किया है, और यहाँ अनुमति न होना इस वजह से नहीं बल्कि क़ब्रिस्तान के वक़्फ़ (बंदोबस्ती) होने के कारण है। जैसा कि मुसह्हिह (संशोधक) ने मिस्र में छपी आलमगीरिया में लिखा है, आलमगीरिया के उद्धृत अंश पर यह इबारत लिखी है:

अरबी पाठ: उनका यह कहना कि "नहीं, यह ज़ैलई के कथन के विपरीत नहीं है..." क्योंकि यहाँ बाधा यह है कि स्थान दफ़नाने के लिए वक़्फ़ (मवक़ूफ़) है, अतः अन्य कार्यों में इसका उपयोग जायज़ नहीं है। इस पर विचार किया जाना चाहिए और इसे सुरक्षित किया जाना चाहिए। इति मुसह्हिह। - २ उर्दू विवरण: उनका यह कहना कि "उन्होंने नहीं कहा" यह ज़ैलई के कथन के विरुद्ध नहीं है क्योंकि यहाँ रुकावट स्थान का दफ़नाने के लिए वक़्फ़ होना है, तो इसका अन्य कार्यों में उपयोग जायज़ नहीं है, इस पर गौर करना चाहिए और इसे सुरक्षित करना चाहिए। इति मुसह्हिह। और अन्य मसलों से भी यह बात साबित होती है कि वक़्फ़ को किसी दूसरी श्रेणी (ग़ैर जिंस) में बदलना जायज़ नहीं है, आलमगीरिया जिल्द २, सफ़ा ४७८ में है।

अरबी पाठ: शम्स अल-आइम्मा अल-हलवानी से एक मस्जिद या हौज (पानी की टंकी) के बारे में पूछा गया जो वीरान हो गए हों और लोगों के बिखर जाने के कारण उनकी ज़रूरत न रही हो: क्या काज़ी उनके वक़्फ़ को दूसरी मस्जिद या दूसरे हौज पर खर्च कर सकता है? उन्होंने कहा: हाँ। और अगर लोग वहाँ से न बिखरे हों, लेकिन हौज को मरम्मत की ज़रूरत न हो जबकि वहाँ की मस्जिद को मरम्मत की ज़रूरत हो, या इसके विपरीत, तो क्या काज़ी के लिए उस चीज़ के वक़्फ़ को जिसकी मरम्मत की ज़रूरत नहीं है, उस चीज़ पर खर्च करना जायज़ है जिसकी मरम्मत की ज़रूरत है? तो उन्होंने कहा: नहीं। मुहीत में इसी तरह है। - ३ उर्दू विवरण: शम्स अल-आइम्मा हलवानी से मस्जिद या हौज के बारे में पूछा गया जो वीरान हो गए हों और उनकी ज़रूरत न रही हो क्योंकि वहाँ आबादी नहीं रही, क्या काज़ी उसके औक़ाफ़ को दूसरी मस्जिद या दूसरे हौज में खर्च कर सकता है? फ़रमाया: हाँ। और अगर लोग वहीं रहते हों मगर उस हौज की ज़रूरत न रही हो और वहाँ मस्जिद इमारत की मोहताज हो या इसके विपरीत, तो क्या काज़ी इस वक़्फ़ की आमदनी जिसकी ज़रूरत न

हो दूसरे ज़रूरतमंद वक़्फ़ की तामीर पर खर्च कर सकता है? तो फ़रमाया: नहीं। मुहीत में इसी तरह है।

इसलिए उस ज़मीन में जो दफ़नाने के लिए वक़्फ़ हो, मदरसा आदि बनाना जायज़ न होगा चाहे वह खाली ही क्यों न हो, और दूसरे यह कि उसका खाली होना महज़ इस गवाही से कि हमारी उम्र में हमारे इल्म में कोई मय्यत दफ़न नहीं की गई, साबित नहीं हो सकता बल्कि...

1. फ़तावा हिन्दिया, बाब १२ रिबात आदि के बारे में, नूरानी कुतुब खाना पेशावर, २/७०, ७१।
2. हाशिया फ़तावा हिन्दिया, बाब १२ रिबात आदि के बारे में, नूरानी कुतुब खाना पेशावर, २/७१।
3. फ़तावा हिन्दिया, बाब १३ औक़ाफ़ आदि के बारे में, नूरानी कुतुब खाना पेशावर, ३/४७८।

فتاوی رضویہ جلد نہم

حکم المقبرۃ۔ کذافی المحیط - ۱ فرمایا: نہیں، وہ قبرستان کے حکم میں ہے جیسا کہ محیط میں ہے۔

نہ عدم جواز انتفاع بالمقبرہ امام زیلعی کی اس عبارت ہی کے خلاف ہے اس لیے کہ انھوں نے "جواز میت" کے بوسیدہ اور خاک ہو جانے پر مرتب فرمایا ہے، اور یہاں عدم جواز اس وجہ سے نہیں بلکہ بہ سبب مقبرہ کے وقف ہونے میں ہے۔ جیسا کہ مصحح نے عالمگیریہ مطبوعہ مصر میں لکھا ہے، عبارت منقولہ عالمگیریہ پر یہ عبارت لکھی ہے:

قوله قال لاهذا لا ينا في ما قاله الزيلعي، لان المانع هنا كون المحل موقوفاً على الدفن فلا يجوز استعماله في غيره فليتأمل وليحرر اهـ مصححه - ۲ ان کا قول "انھوں نے کہا نہیں" یہ زیلعی کے قول کے منافی نہیں کیونکہ یہاں مانع حمل کا دفن کے لیے موقوف ہونا ہے تو اس کا استعمال غیر میں جائز نہیں، غور کرنا چاہیے اور اسے محفوظ کرنا چاہئے اھ مصحح۔ اور مسائل سے یہ بات بھی ثابت ہوتی ہے کہ غیر جنس کی طرف وقف جائز نہیں، عالمگیریہ جلد ثانی ص ۴۷۸ میں ہے۔

سئل شمس الائمة الحلواني عن مسجد او حوض خرب لا يحتاج اليه لتفرق الناس هل للقاضي ان يصرف اوقافه الى مسجد اخر او حوض او اخر۔ قال نعم، ولو لم يتفرق الناس ولكن استغنى الحوض عن العمارة وهناك مسجد محتاج الى العمارة اوعلى العكس هل يجوز للقاضي صرف وقف ما استغنى عن العمارة الى عمارة ما هو محتاج الى العمارة فقال لا، كذافي المحيط - ۳ شمس الائمہ حلوانی سے مسجد یا حوض کے بارے میں دریافت کیا گیا جو ویران ہوں اور ان کی ضرورت نہ رہی ہو کیونکہ وہاں آبادی نہیں رہی، کیا قاضی اس کے اوقاف کو دوسری مسجد یا دوسرے حوض میں صرف کر سکتا ہے؟ فرمایا: ہاں اور اگر لوگ وہیں رہتے ہوں مگر اس حوض کی ضرورت نہ رہی ہو اور

وہاں مسجد عمارت کی محتاج ہو یا بالعکس تو کیا قاضی اس وقف کی آمدنی جس کی ضرورت نہ ہو دوسرے محتاج وقف کی تعمیر پر خرچ کر سکتا ہے؟ تو فرمایا نہیں۔ محیط میں اسی طرح ہے۔

لہذا اس زمین میں جو دفن کے لیے وقف ہو مدرسہ وغیرہ بنانا جائز نہ ہو گا گو خالی ہی کیوں نہ ہو، اور دوسرے اس کا خالی ہونا فقط شہادت سے کہ ہماری عمر میں ہمارے علم میں کوئی میت دفن نہ کی گئی، ثابت نہیں ہو سکتا بلکہ

۱ فتاوٰی ہندیہ الباب الثانی عشر فی الرباطات الخ نورانی کتب خانہ پشاور ۲ / ۷۰، ۷۱ ۲ حاشیہ فتاوٰی ہندیہ الباب الثانی عشر فی الرباطات الخ نورانی کتب خانہ پشاور ۲ / ۷۱ ۳ فتاوٰی ہندیہ الباب الثالث عشر فی الاوقاف الخ نورانی کتب خانہ پشاور ۳ / ۴۷۸

Fatawa Rizvia, Volume 9

The age of this old graveyard is understood to be such that since graves in two-thirds of the land are so old that they are from before the memory of people who have lived for a hundred years, then in one-third, they would be even older. They must have completely collapsed and the ground appears clear. Burial was stopped because the land became full. Yes, if someone states that since this land was endowed (waqf) for a graveyard, no deceased person was buried in this one-third, then its being empty can be established. Even then, it is impermissible to use it for other purposes like a school, etc., except for burial. And Allah knows best what is correct. Written by His humble servant, Fazl-e-Ilahi, may he be forgiven.

And this answer is correct. (This answer is correct. - T) Written by Abdul Razzaq, may he be forgiven. The second answer is correct. (The second answer is correct. - T) Written by Ahmad Hasan, may he be forgiven.

Answer of Maulvi Rashid Ahmad Gangohi and other Deobandis

The Answer:

This answer is not correct, and the narration quoted by the respondent also does not prove the claim. In short, if that graveyard is not endowed (waqf), then there is no argument. Making a graveyard famous as waqf is not prevalent everywhere. It is often seen that the graveyard is not waqf. Even after accepting it as waqf, in the case where burial of the dead has been closed for a long time, it is correct to build another temporary building there. Therefore, making a temporary school in this graveyard is permissible, as is clear from this narration, i.e., 'Ayni Sharh Bukhari, Volume 2, Page 359:

Arabic Text	**Urdu Translation**
If you ask, "Is it permissible to build mosques on the graves of Muslims?" I say: Ibn al-Qasim said, "If a graveyard among the graveyards of the Muslims is obliterated and a people build a mosque upon it, I do not see any harm in that. This is because graveyards are an endowment (waqf) among the endowments of the Muslims for burying their dead; it is not permissible for	If you say, "Is it permissible to build mosques on the graves of Muslims?" I will say: Ibn Qasim said that if a graveyard of the Muslims is finished and some people build a mosque there, I do not see any problem in it, because the graveyard is also an endowment (waqf) of the Muslims for burying their dead. It is not permissible for anyone to

Arabic Text

anyone to own it. So when it is worn out and there is no longer a need for burial in it, it is permissible to use it for the mosque because the mosque is also an endowment among the endowments of the Muslims, it is not permissible..."

Page 463 of 948

Urdu Translation

become its owner. Now that it is obliterated and there is no need for burial in it, it became permissible to use it for a mosque because a mosque is also one of the endowments of the Muslims, no one has its...

फ़तावा रिज़विया, खंड 9

इस पुराने कब्रिस्तान की आयु ऐसी समझी जाती है कि जब दो-तिहाई भूमि में कब्रें इतनी पुरानी हैं कि सौ वर्ष के लोगों की स्मृति से पहले की हैं, तो एक-तिहाई में उससे भी पुरानी होंगी। वे पूरी तरह से ढह चुकी होंगी और जमीन साफ दिखाई देती होगी। जमीन भर जाने के कारण दफन करना छोड़ दिया गया हो। हाँ, यदि कोई व्यक्ति यह बयान दे कि जब से यह जमीन कब्रिस्तान के लिए वक्फ हुई है, इस एक-तिहाई भाग में किसी मृत व्यक्ति को दफन नहीं किया गया, तो इसकी रिक्तता सिद्ध हो सकती है। फिर भी, इसे दफनाने के अलावा किसी अन्य काम जैसे मदरसे आदि के लिए उपयोग में लाना नाजायज है। और अल्लाह बेहतर जानता है। इसे उसके पापी सेवक फ़ज़ल इलाही ने लिखा है, अल्लाह उसे क्षमा करे।

और यह उत्तर सही है। (यह उत्तर सही है। - टी) लेखक: अब्दुल रज्जाक, अल्लाह उन्हें क्षमा करे। दूसरा उत्तर सही है। (दूसरा उत्तर सही है। - टी) लेखक: अहमद हसन, अल्लाह उन्हें क्षमा करे।

मौलवी रशीद अहमद गंगोही और अन्य देवबंदियों का उत्तर

उत्तर:

यह उत्तर सही नहीं है और उत्तरदाता ने जो रिवायत उद्धृत की है, उससे भी दावा सिद्ध नहीं होता। संक्षेप में, यदि वह कब्रिस्तान वक्फ नहीं है, तो कोई बहस नहीं है। कब्रिस्तान को वक्फ के रूप में प्रसिद्ध कर देना हर जगह प्रचलित नहीं है। अक्सर देखा गया है कि कब्रिस्तान वक्फ नहीं होता। इसे वक्फ स्वीकार करने के बाद भी, उस स्थिति में जहाँ लंबे समय से मृतकों का दफन बंद है, वहाँ दूसरी अस्थायी इमारत बनाना सही है। इसलिए, इस कब्रिस्तान में एक अस्थायी मदरसा बनाना जायज़ है, जैसा कि इस रिवायत से स्पष्ट है, यानी ऐनी शरह बुखारी खंड 2, पृष्ठ 359:

अरबी पाठ	**हिंदी अनुवाद**
यदि तुम कहो, "क्या मुसलमानों की कब्रों पर मस्जिदें बनाना जायज़ है?" तो मैं कहूँगा: इब्न अल-कासिम ने कहा, "यदि मुसलमानों के कब्रिस्तानों में से कोई कब्रिस्तान समाप्त हो जाए और लोग उस पर मस्जिद बना लें, तो मुझे इसमें कोई बुराई नहीं	यदि तुम कहो, "क्या मुसलमानों की कब्रों पर मस्जिद बनाना जायज़ है?" तो मैं कहूँगा: इब्न कासिम ने कहा कि यदि मुसलमानों का कोई कब्रिस्तान समाप्त हो जाए और वहाँ कुछ लोग मस्जिद बना लें, तो मैं इसमें कोई समस्या नहीं

अरबी पाठ

दिखती। इसका कारण यह है कि कब्रिस्तान मुसलमानों के अपने मृतकों को दफनाने के लिए वक्फ (बंदोबस्त) में से एक वक्फ है; किसी के लिए इसका मालिक बनना जायज़ नहीं है। इसलिए जब वह पुराना हो जाए और उसमें दफनाने की आवश्यकता न रहे, तो उसे मस्जिद के लिए उपयोग करना जायज़ है क्योंकि मस्जिद भी मुसलमानों के वक्फों में से एक वक्फ है, जायज़ नहीं है..."

पृष्ठ 948 का 463

हिंदी अनुवाद

समझता, क्योंकि कब्रिस्तान भी मुसलमानों का एक वक्फ है उनके मृतकों को दफनाने के लिए। किसी के लिए इसका मालिक बनना जायज़ नहीं है। अब जब वह मिट गया और उसमें दफनाने की आवश्यकता नहीं रही, तो उसे मस्जिद के उपयोग में लाना जायज़ हुआ क्योंकि मस्जिद भी मुसलमानों के औकाफ़ (वक्फ़ों) में से एक वक्फ़ है, किसी को इसका...

اس قدیم مقبرے کا پرانا ہونا سمجھا جاتا ہے کہ جب دو تہائی زمین میں قبریں اس قدر پرانی ہیں کہ سو برس کے لوگوں کے ہوش سے قبل کی ہیں تو ایک تہائی میں اس سے بھی پہلے کی ہوں گی اور وہ بالکل منہدم ہوگئی ہوں اور زمین صاف معلوم ہوتی ہو، زمین بھر جانے کی وجہ سے دفن کرنا چھوڑ دیا گیا ہو، ہاں اگر کوئی شخص بیان کرے کہ جب سے یہ زمین مقبرے کے لیے وقف ہوئی کوئی میت اس تہائی میں نہ دفن کی گئی تو البتہ خالی ہونا ثابت ہو سکتا ہے پھر بھی مدرسہ وغیرہ سوائے دفن کے دوسرے کام میں لانا ناجائز ہے۔ واللہ اعلم بالصواب۔ کتبہ عبدہ العاصی فضل الٰہی عفی عنہ

وہذا الجواب صحیح (یہ جواب صحیح ہے۔ ت) کتبہ عبدالرزاق عفی عنہ الجواب الثانی صحیح (جواب ثانی صحیح ہے۔ ت) کتبہ احمد حسن عفی عنہ

جواب مولوی رشید احمد گنگوہی وغیرہ دیو بندیاں

الجواب:

یہ جواب صحیح نہیں ہے اور مجیب صاحب نے جو روایت نقل کی ہے اس سے بھی مدعا ثابت نہیں ہوتا۔ الحاصل وہ قبرستان وقف نہیں ہے تو کچھ کلام نہیں ہے اور قبرستان کو جو وقف مشہور کر دیتے ہیں یہ سب جگہ جاری نہیں، اکثر جگہ دیکھا گیا ہے کہ گورستان وقف نہیں ہوتا اور بعد تسلیم اس بات کے کہ وہ وقفتی ہے اس صورت میں کہ وہاں دفن اموات کا ایک مدت دراز سے بند ہے تو اس میں دوسرا مکان وقتی بنا دینا درست ہے۔ لہذا مدرسہ وقتی بنانا اس گورستان میں جائز ہے، چنانچہ اس روایت سے واضح ہے، یعنی عینی شرح بخاری جلد ۲ صفحہ ۳۵۹:

عربی عبارت	اردو ترجمہ
فان قلت هل يجوز ان تبنى المساجد على قبور المسلمين قلت قال ابن القاسم لو ان مقبرة من مقابر المسلمين عفت فبنى قوم عليها مسجدًا لم ار بذا لك بأسا۔ وذالك لان المقابر وقف من اوقاف المسلمين لدن موتاهم لا يجوز لاحدٍ ان يملكها فاذا درست واستغنى عن الدفن فيها جاز صرفها لای المسجد لان المسجد ايضًا وقف من اوقاف المسلمين، لا يجوز	اگر تم کہو، کیا مسلمانوں کی قبروں پر مساجد کا بنانا جائز ہے؟ میں کہوں گا : ابن قاسم نے کہا اگر مسلمانوں کا کوئی قبرستان ختم ہو جائے اور وہاں کچھ لوگ مسجد بنا لیں تو میں اس میں کوئی مضائقہ نہیں سمجھتا، کیونکہ قبرستان بھی مسلمانوں کا ایک وقف ہے ان کے مردوں کو دفن کرنے کے لیے، کسی کے لیے اس کا مالک بننا جائز نہیں، اب جبکہ وہ مٹ گیا اور اس میں دفن کی ضرورت نہیں رہی تو اسے مسجد کے استعمال میں لانا جائز ہوا کیونکہ مسجد بھی مسلمانوں کے اوقاف میں سے ایک وقف ہے کسی کو اس کا

Fatawa Razawiyya Volume 9

[Boxed text]: Transferring ownership to someone is not permissible. Therefore, the purpose of both is the same.

In jurisprudential books, narrations of permissibility exist, but the servant [the writer] does not have the time [to look them up]. Only Allah Almighty knows best. - Rashid Ahmad Gangohi (may he be forgiven).

[Scholar's name]: Rashid Ahmad (1301 AH)

The answer is correct. The servant Mahmood (may he be forgiven). The answer is correct. The poor servant Muhammad Yasin (may he be forgiven). The answer is correct. Ghulam Rasool (may he be forgiven).

Muhammad Yasin (may he be forgiven): Since that graveyard is extremely ancient and burying there has been abandoned at this time, building a Madrasa in that place, especially in the vacant part, is permissible. However, if that graveyard is currently being used for burying the dead, then no other building is permissible in it.

[Table]: Arabic: It is stated in Alamgiriyyah: If the deceased decays and turns into dust, it is permissible to bury another in their grave, to cultivate it, and to build upon it. The same is in Al-Tabyin. Urdu: It is in Alamgiriyyah that if the deceased becomes old and turns into dust, it is permissible to bury someone else in that grave, and it is also permissible to cultivate it and build a structure upon it, as mentioned in Al-Tabyin.

Only Allah Almighty knows best. Written by Aziz-ur-Rahman (may he be forgiven).

[Boxed text]: Trust in the All-Mighty, the Most Merciful (1307 AH)

THE ANSWER: O Allah, guide us to the Truth and Correctness. The first answer is clearly wrong, the second ruling is true and correct, and the third writing is ugly ignorance.

Mr. Gangohi's Misplaced Rhetoric Firstly, it was clearly specified in the question that "it is a single level of endowed (waqf) land," then the third respondent's bifurcation that "if it is not a cemetery," etc., is purely meaningless rhetoric.

Fame is Sufficient for Endowment (Waqf) and Mr. Gangohi's Ignorance Secondly, designating a graveyard as a waqf based on public fame does not apply everywhere; the referent of this "this" is the fame/notoriety.

Footnotes: 1. 'Umdat al-Qari Sharh Sahih al-Bukhari, Chapter on Digging up Graves of Polytheists, etc., Idarat al-Tiba'ah al-Muniriyyah Beirut 2/179. 2. Fatawa Hindiyyah, Section Six on Grave and Burial, Noorani Kutub Khana Peshawar 1/167.

फ़तावा रज़विया जिल्द 9

[बॉक्स में पाठ]: किसी को मालिक बनाना जायज़ नहीं है। इसलिए, दोनों का उद्देश्य एक ही है।

फ़िक़्ह की किताबों में भी जायज़ होने के हवाले मौजूद हैं, लेकिन बंदे (लेखक) के पास मोहलत नहीं है। केवल अल्लाह तआला ही बेहतर जानता है। - रशीद अहमद गंगोही (क्षमा करें)।

[विद्वान का नाम]: रशीद अहमद (1301 हिजरी)

उत्तर सही है। बंदा महमूद (क्षमा करें)। उत्तर सही है। गरीब बंदा मुहम्मद यासीन (क्षमा करें)। उत्तर सही है। गुलाम रसूल (क्षमा करें)।

मुहम्मद यासीन (क्षमा करें): चूँकि वह कब्रिस्तान अत्यंत प्राचीन है और इस समय वहाँ दफ़नाना छोड़ दिया गया है, तो उस जगह में मदरसा बनाना, विशेष रूप से खाली हिस्से में, सही है। हालाँकि, अगर वह कब्रिस्तान वर्तमान में मृतकों को दफ़नाने के काम आता है, तो उसमें कोई और इमारत बनाना सही नहीं है।

[तालिका]: अरबी: आलमगीरिया में कहा गया है: यदि मृतक गल जाए और मिट्टी हो जाए, तो उसकी कब्र में दूसरे को दफ़नाना, उसमें खेती करना और उस पर इमारत बनाना जायज़ है। अल-तबीन में भी ऐसा ही है। उर्दू: आलमगीरिया में है कि अगर मैय्यत पुरानी हो जाए और मिट्टी हो जाए तो दूसरे को उस कब्र में दफ़नाना जायज़ है और उसमें खेती करना और उस पर इमारत बनाना भी जायज़ है जैसा कि तबीन में है।

केवल अल्लाह तआला ही बेहतर जानता है। अज़ीज़-उर-रहमान द्वारा लिखित (क्षमा करें)।

[बॉक्स में पाठ]: अज़ीज़-उर-रहमान पर भरोसा (1307 हिजरी)

उत्तर: ऐ अल्लाह, सत्य और शुद्धता की ओर मार्गदर्शन कर। पहला उत्तर स्पष्ट रूप से गलत है, दूसरा आदेश सत्य और सही है, और तीसरा लेखन घोर अज्ञानता है।

गंगोही साहब की बेजा बयानबाजी प्रथम, प्रश्न में स्पष्ट रूप से उल्लेख था कि "एक सतह वक़्फ़ ज़मीन," फिर तीसरे उत्तर देने वाले का यह तर्क कि "यदि वह कब्रिस्तान नहीं है," आदि केवल अर्थहीन बयानबाजी है।

वक़्फ़ में प्रसिद्धि पर्याप्त है और गंगोही साहब की अज्ञानता द्वितीय, जो कब्रिस्तान को वक़्फ़ के रूप में प्रसिद्ध कर देते हैं, यह सब जगह लागू नहीं होता, यहाँ "यह" का संदर्भ प्रसिद्धि से है।

पाद-लेख: 1. उम्दतुल क़ारी शरह सहीह बुख़ारी, मुशरिकों की कब्रें खोदने का अध्याय आदि, इदारात अल-तिबाअतुल मुनीरिया बेरुत 2/179। 2. फ़तावा हिंदिया, कब्र और दफ़न पर छठा अध्याय, नूरानी कुतुब खाना पेशावर 1/167।

पृष्ठ 464/948

فتاوٰی رضویہ جلد نہم

تملیکاً لاحد فبعنا ہما علی ہذا واحد[1] مالک بنانا جائز نہیں ۔ لہذا ان دونوں کا مقصد ایک ہے۔

در کتب فقہیہ میں بھی روایات جواز موجود ہیں مگر بندے کو مہلت نہیں، فقط، واللہ تعالٰی اعلم۔

رشید احمد گنگوہی عفی عنہ

رشید احمد (۱۳۰۱ھ)

الجواب صحیح۔ بندہ محمود عفی عنہ الجواب صحیح۔ بندہ مسکین محمد یسین عفی عنہ الجواب صحیح۔ غلام رسول عفی عنہ

محمد یسین عفی عنہ جبکہ وہ مقبرہ نہایت کہنہ ہے اور اس وقت دفن کرنا وہاں متروک ہو گیا ہے تو بناء مدرسہ اس جگہ میں خصوصاً حصہ خالی میں درست ہے۔ البتہ اگر وہ مقبرہ فی الحال دفن اموات میں کام آتا ہو تو کوئی اور بناء اس میں درست نہیں ہے۔

قال فی عالمگیریۃ۔ ولو بلی المیت وصار ترابا جاز دفن غیرہ فی قبرہ وزرعہ والبناء علیہ کذا فی التبیین[2]۔ عالمگیریہ میں ہے کہ اگر میت پرانی ہو جائے اور مٹی ہو جائے تو دوسرے کو اس قبر میں دفن کرنا جائز ہے اور اس میں کھیتی کرنا اور اس پر عمارت بنانا بھی جائز ہے جیسا کہ تبیین میں ہے۔

فقط، واللہ تعالٰی اعلم۔ کتبہ عزیز الرحمن عفی عنہ

فتوکل علی العزیز الرحمن (۱۳۰۷ھ)

الجواب: اللھم ھدایۃ الحق والصواب جواب اول غلط صریح، اور حکم ثانی حق و صحیح اور تحریر ثالث جہل قبیح ہے۔

گنگوہی صاحب کا بے محل شقشقہ اولاً سوال میں صاف تصریح تھی کہ "ایک سطح وقف زمین، پھر مجیب سوم کی تشقیق کہ "اگر وہ قبرستان نہیں" الخ محض شقشقہ بے معنی ہے،

وقف میں شہرت کافی ہے اور گنگوہی صاحب کی جہالت ثانیاً قبرستان کو جو وقف مشہور کر دیتے ہیں یہ سب جگہ جاری نہیں، اس "یہ " کا مشار الیہ شہرت ہے

حواشی: 1 عمدۃ القاری شرح صحیح بخاری باب حل تنبش قبور المشرکین الخ ادارۃ الطباعۃ المنیریۃ بیروت ۲/ ۱۷۹ 2 فتاویٰ ہندیۃ الفصل السادس فی القبر والدفن نورانی کتب خانہ پشاور ۱/ ۱۶۷

Fatawa Razawiyya, Volume 9

Or reality; the first is correct but irrelevant and out of place. The question specifically concerns instances where reputation (shuhrah) exists; why is reputation necessary everywhere for a ruling? Similarly, in the second case, if the intention is to negate reality upon the cessation of reputation, then in both these situations, the statement that "it has been seen in most places that a graveyard is not a waqf (endowment)" holds true, even if not distinguishing between 'many' and 'most' is a narrowing of discourse. And if negating the reality of reputation is intended, it is purely rejected and obviously false. Now, the testimony of observation in most cities is explicitly an account without substance. There are clear explanations in the texts, commentaries, and fatwas of the religion that reputation establishes reality and permits testimony. In the discourse of the second respondent (may he be safe), some narrations are also cited. Then, despite accepting the Sharia evidence, the negation of the conclusion is absolute ignorance. Not accepting the testimony of reputation here is to wipe out not only this graveyard but general ancient endowments altogether. Where are the witnesses of observation after a long period of time? And mere writing is not proof. It is stated in Fatawa Khairiyyah:

[Arabic Quote 1] "Action is not taken merely based on a register or a document, as our scholars have clarified the lack of reliance on handwriting and the lack of action based on it, such as a waqf document that bears the handwriting of past judges. Indeed, action in this regard is based on Sharia evidence."

[Urdu Translation of Quote 1] Action will not be taken based solely on writing, nor solely on evidence, because our scholars have clarified that handwriting is not relied upon and not acted upon, such as an endowment deed which has the writings of past judges. In this matter, action will only be based on Sharia witnesses.

In the same (book) it is stated:

[Arabic Quote 2] "The book of waqf is but a paper with writing on it; it is not relied upon nor acted upon, as many of our scholars have clarified. The consideration in this regard is for Sharia evidence. In waqf, it is permissible for a witness to testify based on hearsay and speak generally. It does not harm his testimony if he says after giving it: 'I did not witness the waqf (personally), but it is well-known to me, or someone I trust informed me of it.'"

[Urdu Translation of Quote 2] The writing of a waqf is just a piece of paper that cannot be relied upon nor acted upon, as many of our scholars have clarified. The consideration in this matter is for Sharia witnesses. For a witness in a waqf case, it is permissible to testify based on hearing and speak generally. It does not harm his testimony to say after giving it, "I did not witness the waqf, but it is famous like this near me or a reliable person informed me." It is not harmful.

---

1. Fatawa Khairiyyah, Kitab al-Waqf, Dar al-Ma'rifah, Beirut, 1/118
2. Fatawa Khairiyyah, Kitab al-Waqf, Dar al-Ma'rifah, Beirut, 1/203

फतावा रज़विया, जिल्द 9

या वास्तविकता; पहला सही है लेकिन निरर्थक और बेमौका है। सवाल उस स्थिति में विशेष रूप से है जहाँ प्रसिद्धि (शौहरत) मौजूद है; उस पर हुक्म के लिए हर जगह शौहरत क्या ज़रूरी है? इसी तरह, दूसरी सूरत में भी अगर मक़सद शौहरत खत्म होने पर वास्तविकता को खत्म करना हो, और इन दोनों सूरतों में यह कहना कि "अक्सर जगहों पर देखा गया है कि कब्रिस्तान वक्फ नहीं होता" सच्चाई रखता है, भले ही 'कसीर' (ज़्यादा) और 'अक्सर' (ज़्यादातर) में फर्क न करना बयान की तंगी हो। और अगर शौहरत की वास्तविकता की नफी (अस्वीकृति) मुराद है तो यह केवल खारिज और स्पष्ट रूप से गलत है। और अब अधिकांश शहरों में मुशाहिदा (देखने) की गवाही स्पष्ट रूप से एक बेबुनियाद किस्सा है। मज़हब के मतून (मूल पाठ), शरुह (व्याख्याओं) और फतावा में स्पष्ट रूप से उल्लेख है कि शौहरत वास्तविकता को साबित करती है और गवाही के लिए अनुमति देती है। दूसरे मुजीब (जवाब देने वाले) के कलाम में भी इसकी कुछ रिवायतें नकल की गई हैं। फिर शरीअत की दलील स्वीकार करने के बावजूद, नतीजे की नफी कतई जहालत (अज्ञानता) है। यहाँ शौहरत की गवाही को न मानना न केवल इस कब्रिस्तान को, बल्कि आम पुराने औकाफ़ (वक्फ की जमा) को पूरी तरह मिटा देना है। लंबे समय के बाद मुशाहिदा (प्रत्यक्षदर्शी) के गवाह कहाँ मिलेंगे? और केवल लिखावट हुज्जत (प्रमाण) नहीं है। फतावा खैरिया में है:

[अरबी उद्धरण 1 का अनुवाद] "सिर्फ दफ्तर या सिर्फ दस्तावेज़ पर अमल नहीं किया जाएगा, जैसा कि हमारे उलमा ने स्पष्ट किया है कि लिखावट पर भरोसा नहीं किया जा सकता और न ही उस पर अमल किया जा सकता है, जैसे वह वक्फनामा जिस पर पिछले काज़ियों की लिखावट हो। दरअसल, इस मामले में अमल शरीई गवाही (बय्यिना) पर ही होगा।"

[उर्दू अनुवाद 1 का हिंदी अनुवाद] सिर्फ तहरीर पर अमल नहीं होगा और न ही सिर्फ दलील पर क्योंकि हमारे उलमा ने तसरीह (स्पष्टीकरण) कर दी है कि खत (लिखावट) पर एतमाद (भरोसा) नहीं और उस पर अमल नहीं, जैसे वह वक्फ नामा जिस पर गुज़श्ता (पिछले) काज़ियों की तहरीरें हों, इस मामले में शरई गवाहों पर ही अमल होगा।

इसी में है:

[अरबी उद्धरण 2 का अनुवाद] "वक्फ की किताब सिर्फ एक कागज है जिस पर लिखावट है; उस पर न तो भरोसा किया जाता है और न ही अमल किया जाता है, जैसा कि हमारे कई उलमा ने स्पष्ट किया

है। इस मामले में एतबार शरीई गवाही का है। वक्फ में गवाह के लिए जायज़ है कि वह सुनकर गवाही दे और आम तौर पर बयान करे। गवाही देने के बाद उसका यह कहना कि 'मैंने वक्फ को अपनी आँखों से नहीं देखा, लेकिन मेरे नज़दीक यह मशहूर है या मुझे किसी विश्वसनीय व्यक्ति ने बताया है' उसकी गवाही को नुकसान नहीं पहुँचाता।"

[उर्दू अनुवाद 2 का हिंदी अनुवाद] वक्फ की तहरीर तो एक कागज है जिस पर एतमाद नहीं किया जा सकता है और न ही अमल किया जा सकता है जैसा कि हमारे बहुत से उलमा ने तसरीह की है, एतबार इस मामले में शरई गवाहों का है और वक्फ में गवाह के लिए जायज़ है कि सुन कर गवाही दे और इतलाक़ (सामान्य उल्लेख) रखे, और उसकी शहादत (गवाही) में अदाय-ए-शहादत के बाद यह कहना कि मैंने वक्फ का मुआयना नहीं किया, लेकिन मेरे नज़दीक मशहूर ऐसा ही है या मुझे काबिले एतमाद शख्स ने खबर दी है कुछ मुज़िर (हानिकारक) नहीं।

---

1. फतावा खैरिया, किताबुल वक्फ, दारुल मारिफा बेरुत 1/118.
2. फतावा खैरिया, किताबुल वक्फ, दारुल मारिफा बेरुत 1/203.

یا واقعیت، اول صحیح ہے مگر مہمل و ندا ئے بے محل، سوال اس صورت میں خاصہ سے ہے جہاں شہرت موجود ہے اس پر حکم کے لیے ہر جگہ شہرت کیا ضرور، یوں ہی دوم بھی اگر مقصود سلب واقعیت بحال انقائے شہرت ہو ، اور ان ہی دونوں صورتوں میں یہ قول کہ "اکثر جگہ دیکھا گیا کہ گورستان وقف نہیں ہوتا" رو بصحت رکھتا ہے اگرچہ کثیر واکثر میں فرق نہ کرنا ضیق نطاق بیان اور اگر نفی واقعیت شہرت مراد تو محض مردود و ظاہر الفساد، اور اب وہ شہادت مشاہدہ اکثر بلاد صراحتاً حکایت بے مگی عنہ ہے متون و شروح و فتاوئے مذہب میں تصریحات جلیہ ہیں کہ شہرت مثبت واقعیت و مسوغ شہادت ہے۔ کلام مجیب دوم سلمہ میں بھی اس کی بعض نقول منقول، پھر باوصف تسلیم دلیل شرعی نفی مدلول جہل قطعی، یہاں شہادت شہرت کو نہ ماننا نہ اسی مقبرے بلکہ عامہ او قاف قدیمہ یکسر مٹادینا ہے، طول عہد کے بعد شہود معاینہ کہاں، اور مجرد خط حجت نہیں، فتاوٰی خیر یہ میں ہے:

لا یعمل بمجرد الدفتر ولا مجرد الحجة لما صرح به علماءنا من عدم الاعتماد على الخط وعدم العمل به كمكتوب الوقف الذي عليه خطوط القضاة الماضين وانما العمل في ذلك بالبينة الشرعية 1۔ [ترجمہ] صرف تحریر پر عمل نہ ہوگا اور نہ صرف دلیل پر کیونکہ ہمارے علماء نے تصریح کردی ہے کہ خط پر اعتماد نہیں اور اس پر عمل نہیں، جیسے وہ وقف نامہ جس پر گزشتہ قاضیوں کی تحریریں ہوں، اس معاملے میں شرعی گواہوں پر ہی عمل ہوگا۔

اسی میں ہے:

كتاب الوقف انما هو كاغذ به خط وهولا يعتمد عليه ولا يعمل به كما صرّح به كثير من علمائنا، والعبرة فى ذلک للبينة الشرعية وفى الوقف يسوغ للشاهدان يشهد بالسماع ويطلق، ولا يضر فى شهادته قول بعد شهادته لم اعائن الوقف ولكن اشتهر عندى او اخبرنى به من اثق به 2۔ [ترجمہ] وقف کی تحریر تو ایک کاغذ ہے جس پر اعتماد نہیں کیا جا سکتا ہے اور نہ ہی عمل کیا جا سکتا ہے جیسا کہ ہمارے بہت سے علماء نے تصریح کی ہے، اعتبار اس معاملہ میں شرعی گواہوں کا ہے اور وقف میں گواہ کے لیے جائز ہے کہ سن کر گواہی دے اور اطلاق رکھے، اور اس کی شہادت میں ادائے شہادت کے بعد یہ کہنا کہ میں نے وقف کا معاینہ نہیں کیا، لیکن میرے نزدیک مشہور ایسا ہی ہے یا مجھے قابل اعتماد شخص نے خبر دی ہے کچھ مضر نہیں۔

1۔ فتاویٰ خیر یہ کتاب الوقف دارالمعرفة بیروت ۱/ ۱۱۸ 2۔ فتاویٰ خیر یہ کتاب الوقف دارالمعرفة بیروت ۱/ ۲۰۳

Fatawa Razawiyya - Volume 9

Now, if even common knowledge is not recorded, then thousands of endowments (waqf) would be declared as merely unproven and void, and what other result would there be? Alteration in a waqf is prohibited (Haram), and it is the foolishness of Mr. Gangohi.

Secondly: Accepting a waqf for a graveyard and then considering it correct to build a school or other endowment buildings in it is clear oppression and manifest ignorance, as it clearly constitutes an alteration of the waqf, which is prohibited. Even a trustee (Mutawalli) has authority over the waqf, let alone a stranger. Scholars have not even allowed changing the structural appearance (Hiyat) without the permission of the endower (Waqif), let alone changing the essence of the waqf. It is stated in 'al-Uqud al-Durriya':

[Arabic Quote]: It is not permissible for the supervisor to change the wording of the endower, as fatwas were given by al-Khayr al-Ramli, al-Hanuti, and others. [Urdu Translation]: It is not permissible for the supervisor of the waqf to change the endower's statement, as Khayr Ramli and Hanuti etc. have given fatwas.

It is stated in 'Siraj-ul-Wahhaj' and 'Hindiyya':

[Arabic Quote]: It is not permissible to change the endowment from its state; hence, a house is not made into a garden, nor an inn into a bathhouse, nor a ribat (hospice) into a shop, unless the endower has given the supervisor the authority to do what he deems beneficial for the endowment. [Urdu Translation]: It is not permissible to change the waqf from its state; therefore, it is not permissible to turn a house into a garden, an inn into a bathhouse, or a ribat into a shop. However, if the endower has given the supervisor permission to do whatever is in the best interest of the waqf, then it is fine.

It is stated in 'Fath al-Qadir', 'Radd al-Muhtar', and 'Sharh al-Ashbah' by Allama al-Biri:

[Arabic Quote]: It is obligatory to keep the endowment in its original state without any other addition. [Urdu Translation]: It is obligatory to keep the waqf in its original state without making any other addition to it. (T)

Ownership is a condition for making an endowment; a thing once endowed cannot be endowed again (and the ignorance of Mr. Gangohi).

Fourthly: Is a school, library, or any house just the name of empty walls? Every person with even minimal intellect knows that land is definitely included in it; walls alone are called construction and materials, not a house or home. A school (madrasa) is a place of teaching.

---

1. Al-Uqud al-Durriya: It is not permissible for the supervisor to change the waqf. Haji Abdul Ghaffar and Sons, Kandahar, Afghanistan, 1/115.
2. Fatawa Hindiyya: Chapter 14 on Miscellaneous Matters, Noorani Kutub Khana, Peshawar, 2/490.
3. Fath al-Qadir: Book of Waqf, Maktaba Nooriya Razawiyya, Sukkur, 5/240.

अब यदि ख्याति भी दर्ज न हो, तो हज़ारों वक्फ़ केवल प्रमाणहीन और शून्य घोषित हो जाएंगे, और इसके अतिरिक्त क्या परिणाम होगा? वक्फ़ में परिवर्तन हराम (निषिद्ध) है और गंगोही साहब की मूर्खता है।

दूसरा: कब्रिस्तां के लिए वक्फ़ स्वीकार करके उसमें मदरसा या अन्य वक्फ़ भवन बनाना उचित ठहराना स्पष्ट अत्याचार और घोर अज्ञानता है, क्योंकि इसमें स्पष्ट रूप से वक्फ़ का परिवर्तन है और वह हराम है। यहाँ तक कि मुतवल्ली (न्यासधारी) को भी वक्फ़ पर अधिकार होता है, किसी अजनबी को नहीं। यहाँ तक कि विद्वानों ने वाक़िफ़ (वक्फ़ करने वाले) की अनुमति के बिना स्वरूप (हियत) बदलने की भी अनुमति नहीं दी, मूल वक्फ़ को बदलना तो दूर की बात है। 'अक़ूद अद-दुर्रिया' में है:

[अरबी उद्धरण]: निरीक्षक के लिए वाक़िफ़ के शब्दों (सिगा) में बदलाव करना जायज़ नहीं है, जैसा कि खैर रमली और हानूती आदि ने फतवा दिया है। [उर्दू अनुवाद]: वक्फ़ के निगहबान (संरक्षक) के लिए वाक़िफ़ के शब्दों को बदलना जायज़ नहीं है, जैसा कि खैर रमली और हानूती आदि ने फतवा दिया है।

'सिराजुल वहाज' और 'हिन्दिया' में है:

[अरबी उद्धरण]: वक्फ़ को उसकी मूल स्थिति से बदलना जायज़ नहीं है। अतः घर को बाग, सराय को हमाम और रिबात (धर्मशाला) को दुकान बनाना जायज़ नहीं है, जब तक कि वाक़िफ़ ने निरीक्षक को वह सब करने की अनुमति न दी हो जिसे वह वक्फ़ के हित में उचित समझे। [उर्दू अनुवाद]: वक्फ़ को उसके स्वरूप से बदलना जायज़ नहीं है, इसलिए घर को बाग़ और सराये को हमाम और रिबात को दुकान बनाना जायज़ नहीं, हाँ वाक़िफ़ ने अगर नग्रान-ए-वक्फ़ (संरक्षक) को इजाज़त दे रखी है कि वह हर वह काम कर सकता है जिसमें वक्फ़ की मसलहत (भलाई) हो तो ठीक है।

'फतह अल-क़दीर', 'रद्द अल-मुह्तार' और अल्लामा बीरी की 'शरह अल-अशबाह' में है:

[अरबी उद्धरण]: वक्फ़ को उसकी पूर्व स्थिति पर बनाए रखना अनिवार्य है, बिना किसी अन्य वृद्धि के। [उर्दू अनुवाद]: वक्फ़ को अपनी असल हालत पर बाकी रखना वाजिब है बग़ैर इसके कि उस पर कोई दूसरी ज़्यादती की जाए। (त)

वक़्फ़ करने के लिए मालिक होना शर्त है, चीज़ एक बार वक़्फ़ होकर दोबारा वक़्फ़ नहीं हो सकती (और गंगोही साहब की नावक़फ़ियत/अनभिज्ञता)।

चौथा: मदरसा या पुस्तकालय या कोई मकान क्या केवल खाली दीवारों का नाम है? सामान्य बुद्धि वाला प्रत्येक व्यक्ति जानता है कि भूमि इसमें निश्चित रूप से शामिल है, अकेली दीवारों को निर्माण और सामग्री (बना व अमला) कहते हैं, घर या मकान नहीं। मदरसा पढ़ने-पढ़ाने की जगह है।

---

1. अक़ूद अद-दुर्रिया: निरीक्षक के लिए वक़्फ़ बदलना जायज़ नहीं है। हाजी अब्दुल गफ्फार और पुत्र, कंधार, अफगानिस्तान, 1/115।
2. फ़तावा हिन्दिया: चौदहवाँ अध्याय विविध विषयों पर, नूरानी कुतुब खाना, पेशावर, 2/490।
3. फ़तह अल-क़दीर: वक़्फ़ की किताब, मकतबा नूरिय्या रज़विय्या, सुक्कुर, 5/240।

पृष्ठ 466 / 948

فتاوی رضویہ جلد نہم

اب اگر شہرت بھی منقول نہ ہو تو ہزاروں وقف سوا اس کے کہ محض بے ثبوت و باطل قرار پائیں اور کیا نتیجہ ہے وقف میں تبدیلی حرام ہے اور گنگوہی صاحب کی سفاہت ثانیاً: مقبرے کے لئے وقف تسلیم کر کے اس میں مدرسہ وغیرہ دوسرے مکان وقفی بنانے کو درست بتانا ظلم واضح و جہل فاصح ہے کہ اس میں صراحۃً تغیر وقف ہے اور وہ حرام ہے حتی کہ متولی بھی وقف پر ولایت رکھتا ہے نہ کہ اجنبی حتی کہ علماء نے تغیر ہیات کی بھی بے اذن واقف اجازت نہ دی، نہ کہ تغیر اصل وقف، عقود الدریہ میں ہے : لا یجوز للناظر تغییر صیغۃ الواقف کما افتی بہ الخیر الرملي والحانوتی وغیرھما [1]۔ وقف کے نگہبان کے لیے واقف کے صیغے کی تبدیلی جائز نہیں، جیسا کہ خیر رملی اور حانوتی وغیر ہمانے فتوٰی دیا ہے۔ سراج وہاج و ہندیہ میں ہے : لا یجوز تغییر الوقف عن ھیأتہ فلا یجعل الدار بستاناً ولا الخان حماماً ولا الرباط دکاناً الا اذا جعل الواقف الی الناظر مأیری فیہ مصلحۃ الوقف [2]۔ وقف کو اس کی ہیئت سے تبدیل کرنا جائز نہیں، لہذا گھر کو باغ اور سرائے کو حمام اور رباط کو دکان بنانا جائز نہیں، ہاں واقف نے اگر نگران وقف کو اجازت دے رکھی ہے کہ وہ ہر وہ کام کر سکتا ہے جس میں وقف کی مصلحت ہو تو ٹھیک ہے۔ فتح القدیر و رد المحتار و شرح الاشباہ للعلامۃ البیری میں ہے : الواجب ابقاء الوقف علی ما کان علیہ دون زیادۃ اخری [3]۔ وقف کو اپنی اصل حالت پر باقی رکھنا واجب ہے بغیر اس کے کہ اس پر کوئی دوسری زیادتی کی جائے۔ (ت) وقف کرنے کے لیے مالک ہونا شرط ہے، شیئ ایک بار وقف ہو کر دوبارہ وقف نہیں ہو سکتی (اور گنگوہی صاحب کی ناواقفی) رابعاً: مدرسہ یا کتب خانہ یا کوئی مکان کیا خالی دیواروں کا نام ہے۔ ہر عاقل ادنیٰ عقل والا بھی جانتا ہے کہ زمین ضرور اس میں داخل، تنہا دیواروں کو بناء و عملہ کہتے ہیں، نہ بیت وخانہ، مدرسہ جائے درس،

1 العقود الدرية لا يجوز للناظر تغيير الوقف حاجى عبدالغفار و پسران قندهار افغانستان ١/ ١١٥ 2 فتاوى ہنديہ الباب الرابع عشر فى المنتفقات نورانى كتب خانہ پشاور ٢/ ٤٩٠ 3 فتح القدير كتاب الوقف مكتبہ نوريہ رضويہ سكهر ٥/ ٢٤٠

Fatawa Razawiyya, Volume 9

Is the place of study the ground, or will the study take place while sitting on the walls? Even so, how can one avoid the requirement of permanence on the ground? Furthermore, this land has already been endowed once for a specific purpose. How can re-endowing it be reasonable, since it is a condition for endowment that the endower must be the owner of the property at the time of endowment? In our school of thought (Madhhab), it is unanimously agreed among legal scholars that the validity of an endowment depends on this ownership, and after an endowment is complete, it is no longer anyone's property. Therefore, even if the original endower wants to endow it again, it will be purely void. This is a general ruling, not specific to Zaid or Amr, whether the second endowment is for another purpose or for the initial purpose; in the first case, the transfer is void, and in the second case, it is a completely void attempt to achieve what has already been achieved (tahsil-e-hasil). It is stated in Al-Bahr al-Ra'iq, Al-Alamgiriyya, etc.:

Arabic Original	**Urdu Translation**
As for its conditions, some of them are sanity and reaching puberty, some are that it must be for a pious purpose, and some are ownership at the time of endowment. It follows from the condition of ownership that the endowment of land grants (iqta'at) is not permissible, nor is the endowment of land seized by the Imam. - (Summarized)[1]	In any case, the conditions for endowment include reaching puberty and sanity, and among them is that it should be for worship. And ownership of the property at the time of endowment is required. Derived from the condition of ownership is that the endowment of a land grant (jagir) is not permissible, nor is the endowment of land seized by the Imam permissible. - (Summarized)
It is in Is'af:	Is'af states:
Abu Yusuf and Muhammad (may Allah Almighty have mercy on them both) agreed that the validity of an endowment depends on certain conditions, some of which pertain to the person making the disposal, such as ownership, because authority over the place is a condition for validity, and	Abu Yusuf and Imam Muhammad (may Allah Almighty have mercy on them) have agreed that the validity of an endowment depends on certain conditions. Some of these are regarding the disposer, like ownership, because authority over the "place" is a condition for validity, and

Arabic Original	Urdu Translation
authority is either derived from ownership or is ownership itself.[2]	authority is either derived from ownership or is itself ownership.
It is in the same:	In the same it is:
If someone endows a land that the Sultan had granted to him, if it was his property or uncultivated land (mawat), it is valid. But if it belongs to the public treasury (Bait al-Mal), it is not valid.[3]	If someone endows a land grant given by the king, then if it is his property or it is uncultivated land, it is correct. And if it is from the public treasury, then it is not correct.

[1] Fatawa Hindiyya, Kitab al-Waqf, Chapter 1, On the Definition etc. Noorani Kutub Khana, Peshawar, 2/352 to 354. [2] Is'af [3] Is'af

फ़तावा रज़विया, जिल्द नहम (खंड 9)

क्या शिक्षण का स्थान भूमि है या दीवारों पर बैठकर शिक्षण होगा? और यदि ऐसा भी हो, तो भूमि पर स्थायित्व के नियम से कैसे बचा जा सकता है, जबकि यह भूमि पहले ही एक बार किसी कार्य के लिए वक़्फ़ हो चुकी है। दोबारा वक़्फ़ करना कैसे तर्कसंगत हो सकता है, क्योंकि वक़्फ़ की शर्त है कि वक़्फ़ करने वाला वक़्फ़ के समय उस संपत्ति का मालिक हो। हमारे मज़हब में सर्वसम्मति से वक़्फ़ के जानकारों का इस बात पर इत्तेफ़ाक़ है कि वक़्फ़ की वैधता इसी पर निर्भर है, और वक़्फ़ पूर्ण होने के बाद वह किसी की संपत्ति नहीं रहती। अत; यदि मूल वक़्फ़ करने वाला भी इसे फिर से वक़्फ़ करना चाहे, तो वह पूरी तरह से अमान्य (बातिल) होगा। यह केवल ज़ैद और अम्र के लिए नहीं बल्कि एक सामान्य नियम है, चाहे दोबारा वक़्फ़ किसी अन्य उद्देश्य के लिए हो या उसी पुराने उद्देश्य के लिए; पहली स्थिति में स्थानांतरण अमान्य है, और दूसरी स्थिति में जो पहले से प्राप्त है उसे फिर से प्राप्त करने की कोशिश (तहसील-ए-हासिल) पूरी तरह अमान्य है। बहर-उर-रायिक और आलमगीरी आदि में लिखा है:

अरबी मूल

जहाँ तक इसकी शर्तों का संबंध है, उनमें से कुछ समझदारी और बालिग़ होना हैं, कुछ यह हैं कि यह पुण्य कार्य के लिए होना चाहिए, और कुछ वक़्फ़ के समय स्वामित्व होना है। स्वामित्व की शर्त से यह निष्कर्ष निकलता है कि जागीरों (इक़्ताआत) का वक़्फ़ करना जायज़ नहीं है, और न ही इमाम द्वारा कब्ज़े में ली गई भूमि का वक़्फ़ जायज़ है। - (संक्षिप्त)[1]

इसआफ़ में है:

अबू यूसुफ़ और मुहम्मद (अल्लाह उन पर कृपा करे) ने सहमति व्यक्त की है कि वक़्फ़ की वैधता कुछ शर्तों पर निर्भर है, जिनमें से कुछ वक़्फ़ करने वाले से संबंधित हैं जैसे स्वामित्व, क्योंकि स्थान पर

उर्दू अनुवाद

बहरहाल वक़्फ़ की शर्तों में से बालिग़ होना और समझदार होना है, और उनमें से एक उसका इबादत (पुण्य कार्य) के लिए होना है, और वक़्फ़ के समय संपत्ति का स्वामित्व होना आवश्यक है। स्वामित्व की शर्त से यह भी निकलता है कि जागीर का वक़्फ़ जायज़ नहीं है, और इमाम द्वारा कब्ज़े में ली गई भूमि का वक़्फ़ भी जायज़ नहीं है। - (संक्षिप्त)

इसआफ़ में है:

अबू यूसुफ़ और इमाम मुहम्मद (अल्लाह उन पर कृपा करे) ने इस बात पर सहमति व्यक्त की है कि वक़्फ़ की वैधता कुछ शर्तों पर निर्भर है। इनमें से कुछ वक़्फ़ करने वाले से संबंधित हैं

अरबी मूल

अधिकार (विलायत) वैधता की शर्त है, और अधिकार या तो स्वामित्व से प्राप्त होता है या वह स्वयं स्वामित्व ही है।[2]

इसी में है:

यदि कोई व्यक्ति सुल्तान द्वारा दी गई भूमि को वक़्फ़ करता है, तो यदि वह उसकी संपत्ति है या बंजर भूमि है, तो यह सही है। और यदि वह बैतुल माल (सरकारी खजाने) से है, तो यह सही नहीं है।[3]

उर्दू अनुवाद

जैसे स्वामित्व, क्योंकि स्थान पर अधिकार वैधता की शर्त है, और अधिकार या तो स्वामित्व से प्राप्त होता है या वह स्वयं स्वामित्व ही है।

इसी में है:

अगर किसी व्यक्ति ने बादशाह की दी हुई जागीर वक़्फ़ कर दी तो अगर वह उसकी अपनी संपत्ति है या वह बंजर भूमि है तो सही है और अगर सरकारी खजाने से है तो सही नहीं है।

---

[1] फ़तावा हिंदीया, किताब-उल-वक़्फ़, अध्याय 1, परिभाषा आदि, नूरानी कुतुब ख़ाना पेशावर, 2/352 से 354 [2] इसआफ़ [3] इसआफ़

पृष्ठ 467 / 948

محل درس زمین ہے یا دیواروں پر بیٹھ کر درس ہوگا؟ اور یوں بھی ہو تاہم قرار استقرار کو انتہا علی الارض سے کیا چارہ، اور یہ زمین ایک بار ایک جہت کے لیے وقف ہو چکی ہے دوبارہ وقفیت کیونکر معقول کہ واقف کا وقت وقف مالک موقوف ہونا شرط وقف ہے ہمارے مذہب میں بالاتفاق اہل وقف اس پر صحت وقف موقوف اور وقف بعد تمامی کسی کی ملک نہیں، تو پھر اصل واقف بھی اگر دوبارہ اسے وقف کرنا چاہے محض باطل ہوگا، نہ کہ زید و عمرو بلکہ حکم عام ہے، خواہ وقف دوبارہ جہت اخری پر ہو یا اسی جہت اولی پر کہ علی الاول تحویل باطل ہے اور علی الثانی تحصیل حاصل بالکل باطل۔ بحر الرائق و عالمگیریہ وغیرہما میں ہے:

عربی عبارت	**اردو ترجمہ**
اما شرائطه فمنها العقل والبلوغ ومنها ان يكون قربة ومنها الملك وقت الوقف ويتفرع على اشتراط الملك انه لايجوز وقف الاقطاعات ولا وقف ارض الحوز للامام ملتقطاً۔[1]	بہر حال وقف کی شرائط تو ان میں سے بلوغ اور عقل ہے اور ان میں سے اس کا عبادت کیلئے ہونا ہے اور وقت وقف ملک کا ہونا ہے ملک کی شرط پر یہ بھی متفرع ہے کہ جاگیر کا وقف جائز نہیں، اور امام کی گھیری ہوئی زمین کا وقف بھی جائز نہیں۔ ملتقطاً
اسعاف میں ہے:	اسعاف میں ہے:
اتفق ابویوسف ومحمد رحمهما الله تعالى ان الوقف يتوقف جوازه على شروط بعضها فی المتصرف كالملك فان الولاية على	ابو یوسف اور امام محمد رحمہما اللہ تعالیٰ نے اتفاق کیا ہے کہ وقف کا جواز بعض شرائط پر موقوف ہے، کچھ تو اس میں سے متصرف ہیں جیسے ملک، کیونکہ

عربی عبارت	اردو ترجمہ
المحل شرط الجواز والولاية تستفاد بالملك	ولایت "محل" شرط جواز ہے اور ولایت یا تو ملک سے
او هی نفس الملك۔[2]	مستفاد ہے یا وہ خود ملک ہے۔
اسی میں ہے:	اسی میں ہے:
لو وقف ارضا قطعه اياها السلطان فان كانت ملكاله او مواتا صح وان كانت من بيت المال لايصح۔[3]	اگر کوئی شخص نے بادشاہ کی دی ہوئی جاگیر وقف کردی تو اگر وہ اس کی ملک ہے یا وہ مردہ زمین ہے تو صحیح ہے اور اگر بیت المال سے ہے تو صحیح نہیں۔

---

1 فتاوی ہندیہ کتاب الوقف باب الاول فی تعریف الخ نورانی کتب خانہ پشاور 2/ 352 تا 354 2 اسعاف 3 اسعاف

Fatawa Rizvia Volume 9

In a Waqf land, no building can be endowed for another purpose (and the ignorance of Mr. Gangohi)

Fifthly, either only the building will be Waqf, or only the land, or both. The second is obviously void because 'al-waqf la yuwqaf' (because re-endowing an endowment is not permissible). Likewise, the third, because 'la-annahu alaihi yatawaqqaf' (because it depends on the Waqf). The permissibility of the first in non-monopolized land is in the case where this building is endowed for the same purpose for which the original land is endowed. 'Huwa as-Sahih bal huwa at-tahqiq wa bihi at-tawfiq' (this is correct, rather this is the research, and success is from Allah). Thus, cemetery land and school walls are mere whims. In Fatawa of Allama Khairuddin Ramli, it says:

Arabic	**Urdu translation**
A question was asked regarding a vineyard containing grapes and figs, and its land, which was an endowment by our master Al-Khalil (peace and blessings be upon him, our Prophet, and all the prophets) from the Exalted King. A man claimed that his grandfather had endowed it. Is his claim heard? It was answered: It is not heard and is not valid. Because 'karm' (vineyard) is a name for the land and the trees combined. If trees are intended, then endowing trees for a purpose other than that of the land is a matter of disagreement. The author of 'al-Dhakhira' said: Endowing a building without endowing the land is not permissible, and this is the correct view. If all land and trees are intended, its invalidity is obvious to conceive. And if only land is intended, its invalidity is even more obvious. Condensed from it.	Now a query was made regarding a garden in which there are grapes and figs, and its land, which our master Ibrahim (peace and blessings be upon him, our Prophet and all the prophets from the Exalted King) had endowed. On such a garden, a person claimed that his grandfather had endowed it. Will his claim be heard? The answer was, no, because a garden is the name for the combination of land and trees. And if it means trees, then endowing trees without the land's purpose is a matter of disagreement. The author of Dhakhira said that endowing a building without the land is not permissible, this is correct. And if both land and trees are intended, then its invalidity is obvious. And if only land is intended, its invalidity is even more obvious. Condensed from it.

In the same context, it is adjacent:

Arabic	Urdu translation
How can it be valid for the endower to endow it upon himself while...	How can the endower endow it upon himself while...

1 Fatawa Khairiyya, Book of Waqf, Dar al-Ma'rifah Beirut, 1/176 Page 468 of 948

फ़तावा रज़विया जिल्द नहुम

वक़्फ़ भूमि में कोई भी इमारत किसी अन्य उद्देश्य के लिए वक़्फ़ नहीं की जा सकती (और गंगोही साहब की नादानी)

पाँचवाँ, या तो केवल इमारत वक़्फ़ होगी या केवल भूमि या दोनों। दूसरा स्पष्ट रूप से शून्य है क्योंकि 'अल-वक़्फ़ ला युवक़्क़फ़' (क्योंकि वक़्फ़ का पुन: वक़्फ़ करना जायज़ नहीं है)। इसी तरह तीसरा भी, क्योंकि 'ला-अन्नहु अलैहि यतवक़्फ़' (क्योंकि यह वक़्फ़ पर निर्भर है)। गैर-एकाधिकार वाली भूमि में पहले की अनुमति उस स्थिति में है जब यह इमारत उसी कार्य के लिए वक़्फ़ हो जिसके लिए मूल भूमि वक़्फ़ है। 'हुवा अस्-सहीह बल हुवा अत-तहक़ीक़ व बिहि अत-तौफ़ीक़' (यही सही है, बल्कि यही शोध है और सफलता अल्लाह से है)। तो कब्रिस्तान की ज़मीन और मदरसे की दीवारें महज़ वहम हैं। अल्लामा खैरुलदीन रमली के फ़तावा में है:

अरबी

एक ऐसे अंगूर के बाग़ के बारे में पूछा गया जिसमें अंगूर और अंजीर के पेड़ हैं और जिसकी ज़मीन हज़रत इब्राहीम ख़लीलुल्लाह (उन पर और हमारे नबी और तमाम अंबिया पर दुरूद और सलाम हो) ने अल्लाह तआला की ओर से वक़्फ़ की थी। एक व्यक्ति ने दावा किया कि यह उसके दादा ने वक़्फ़ किया था। क्या उसका दावा सुना जाएगा? जवाब दिया गया: न तो सुना जाएगा और न ही सही है। क्योंकि 'कर्म' (बाग़) ज़मीन और पेड़ों के समूह का नाम है। और अगर इससे मुराद पेड़ हों, तो पेड़ों का ज़मीन की दिशा के अलावा वक़्फ़ करना विवादास्पद है। साहिबे ज़ख़ीरा ने कहा है कि ज़मीन के बिना इमारत का वक़्फ़ करना जायज़ नहीं है, और यही सही है। और अगर ज़मीन और पेड़ दोनों मुराद हों, तो इसका बातिल (शून्य) होना

उर्दू अनुवाद

अब बाग़ के बारे में दरियाफ़्त किया गया जिसमें अंगूर और अंजीर हैं और उसकी ज़मीन जिसको हज़रत इब्राहीम (उन पर और हमारे नबी और तमाम अंबिया पर अफ़ज़लुल सलात व अतमुल सलाम हो) ने अल्लाह तआला की तरफ़ से वक़्फ़ किया था, ऐसे बाग़ पर एक शख़्स ने दावा कर दिया कि यह उसके दादा ने वक़्फ़ किया था, क्या उसका दावा सुना जाएगा? जवाब दिया गया, नहीं, क्योंकि बाग़ ज़मीन और दरख़्तों के मजमुए का नाम है, और अगर इससे मुराद दरख़्त हों तो दरख़्तों का ज़मीन की जिहत के बग़ैर वक़्फ़ करना मुख़्तलिफ़ फ़ीह है, साहिबे ज़ख़ीरा ने कहा है कि इमारत का वक़्फ़ करना ज़मीन के बग़ैर जायज़ नहीं, यही सही है। और अगर ज़मीन और दरख़्त सब मुराद हों तो

अरबी	उर्दू अनुवाद
ज़ाहिर है। और अगर सिर्फ ज़मीन मुराद हो, तो इसका बातिल होना और भी ज़ाहिर है। संक्षिप्त।	उसका बातिल होना ज़ाहिर है और अगर सिर्फ़ ज़मीन मुराद हो तो उसका बातिल होना और भी ज़ाहिर है। मुख़्तसर।

इसी में इसके साथ जुड़ा हुआ है:

अरबी	उर्दू अनुवाद
वाक़िफ़ (वक़्फ़ करने वाला) इसे अपने ऊपर कैसे वक़्फ़ कर सकता है जबकि...	वाक़िफ़ इसे अपने ऊपर कैसे वक़्फ़ कर सकता है जबकि...

1 फ़तावा ख़ैरिया, किताबुल वक़्फ़, दारुल मारिफ़ा बेरुत, 1/176 पृष्ठ 948 में से 468

زمین وقف میں کوئی عمارت دوسری غرض کے لئے وقف نہیں ہو سکتی (اور گنگوہی صاحب کی نادانی)

خامساً تنہا عمارت وقف ہو گی یا تنہا زمین یا دونوں، ثانی بدیہی البطلان ہے لان الوقف لا یوقف (کیونکہ وقف کا دوبارہ وقف جائز نہیں- ت) یوں ہی ثالث لانہ علیہ یتوقف (کیونکہ وہ وقف پر موقوف ہے- ت) اول کا جواز ارض غیر محتکرہ میں اس صورت میں ہے کہ یہ عمارت اسی کام پر وقف ہو جس پر اصل زمین کا وقف ہے ھو الصحیح بل ھو التحقیق وبہ التوفیق (یہ صحیح ہے بلکہ یہی تحقیق ہے اللہ تعالٰی کی توفیق ہے۔ت) تو زمین مقبرہ اور دیواریں مدرسہ محض وسوسہ- فتاوی علامہ خیر الدین رملی میں ہے:

عربی متن	اردو ترجمہ
سئل فی کرم مشتمل علی عنب وتین وارضہ وقف سیدنا الخلیل علیہ وعلی نبینا وسائر الانبیاء افضل الصلوۃ واتم السلام من الملك الجلیل ادّعی رجل بانہ وقف جدہ ھل تسمع دعواہ، اجاب لا تسمع ولا تصح، اذا الکرم اسم للارض والشجر وان ارید بہ الشجر فوقف الشجر علی جہتہ غیر جہتہ الارض مختلف فیہ وقد قال صاحب	اب باغ کے بارے میں دریافت کیا گیا جس میں انگور اور انجیر ہیں اور اس کی زمین جس کو حضرت ابراہیم علی نبینا وسائر الانبیاء افضل الصلوۃ واتم السلام من الملک الجلیل نے وقف کیا تھا، ایسے باغ پر ایک شخص نے دعوٰی کر دیا کہ یہ اس کے دادا نے وقف کیا تھا، کیا اس کا دعوٰی سنا جائے گا؟ جواب دیا، نہیں، کیونکہ باغ زمین اور درختوں کے مجموعے کا نام ہے، اور اگر اس سے مراد درخت ہوں تو درختوں کا زمین کی جہت

عربی متن	اردو ترجمہ
الذخيرة وقف البناء من غير وقف الارض لم يجز هوالصحيح وان اريد كل من الارض والشجر فبطلانہ بديهى التصور وان اريد الارض فبديهية البطلان اولى اھ ملتقطا-	کے بغیر وقف کرنا مختلف فیہ ہے، صاحب ذخیرہ نے کہا ہے کہ عمارت کا وقف کرنا زمین کے بغیر جائز نہیں، یہی صحیح ہے۔ اور اگر زمین اور درخت سب مراد ہوں تو اس کا باطل ہونا ظاہر ہے اور اگر صرف زمین مراد ہو تو اس کا باطل ہونا اور بھی ظاہر ہے اھ ملتقطا-

اسی میں اس کے متصل ہے:

عربی متن	اردو ترجمہ
كيف يصح للواقف وقفها على نفسه و واقف اس کو اپنے اوپر کیونکر وقف کر سکتا ہے حالانکہ	

1 فتاویٰ خیریہ کتاب الوقف دارالمعرفۃ بیروت 1/ 176 Page 468 of 948

It is the endowment (waqf) of Al-Khalil (Abraham), peace and blessings be upon him. End quote. This is the meaning of his statement that its invalidity is self-evident.

This is the waqf of Ibrahim (peace be upon him). End quote. This is the same meaning of his statement that its invalidity is obvious.

In Radd al-Muhtar it is stated:

What has been written in 'Al-Bahr', taking from the statement of 'Al-Zahiriya': and as for when it is endowed for the purpose for which the piece of land was already an endowment, it is permissible by consensus in following the (original) land's status. The statement of 'Al-Dhakhira' that 'it is not permissible' is correct but limited to cases other than the agreed-upon scenario, which is when the land was private property or an endowment for a different purpose. End quote. Based on this, it is necessary to exclude from the land of waqf cases where it was prepared for 'Ihtikar' (monopoly/leasing). With this, the situation becomes clear and reconciliation is achieved between the various statements. End quote - summarized. We have explained this clearly in our annotations upon it.

What has been written in 'Al-Bahr' is taken from the statement of 'Zahiriya': if it was endowed for the same purpose for which that piece of land was originally endowed, it is permissible by consensus in following it. The statement in 'Dhakhira' that 'it is not permissible' is correct, and this is limited to cases other than the agreed-upon scenario. This applies when the land was private property or an endowment for some other purpose. Based on this, it is necessary to exclude from the land of waqf those cases where the land was prepared for lease (ihtikar). Through this, the situation becomes clear and harmony is achieved among all statements. End quote - summarized. We have explained this well in the annotations of Radd al-Muhtar.

Severe misunderstanding of Mr. Gangohi, calling relevant narrations unrelated

A simple madrasa or library that is built, whereas it cannot legally be a waqf, will necessarily remain with the founders. Now this is explicitly a waqf-like disposal in a proprietary manner and building a structure for one's own benefit. It is as clear as day from the statements of Qazi Khan, Alamgiri, and Muheet quoted by Mujeeb II (may he be safe) that even if a cemetery becomes dilapidated, leaving no trace of a grave, let alone the bones of the deceased, even then deriving benefit from it

remains prohibited, and the ruling of a cemetery will always apply to it. Similarly, the statements from Fatawa Zahiriya, Khizanat al-Muftiyeen, and Is'af mention:

An old cemetery in a locality where no traces of the cemetery remain.	An old cemetery in which no traces of graves remain.

---

1. Fatawa Khairiyyah, Kitab al-Waqf, Dar al-Ma'rifah Beirut, 1/771
2. Radd al-Muhtar, Kitab al-Waqf, Mustafa al-Babi Egypt, 3/428
3. [Internal Reference Number 3]

फतावा रजविया खंड नौ

यह अल-ख़लील (इब्राहीम) अलैहिस्सलाम का वक़्फ़ है। उनके इस कथन का यही अर्थ है कि इसका अमान्य होना स्वयं स्पष्ट है।

यह वक़्फ़ इब्राहीम अलैहिस्सलाम का है, उनके कथन का यही अर्थ है कि इसका अमान्य होना स्पष्ट है।

रद अल-मुह्तार में उल्लेख है:

जो 'अल-बहर' में लिखा गया है, वह 'अज़-ज़हीरिया' के कथन से लिया गया है: यदि इसे उसी उद्देश्य के लिए वक़्फ़ किया गया जिसके लिए वह भूमि का टुकड़ा मूल रूप से वक़्फ़ था, तो मूल वक़्फ़ के अनुसरण में सर्वसम्मति से इसकी अनुमति है। 'अज़-ज़खीरा' का यह कथन कि 'यह जायज़ नहीं है' सही है, लेकिन यह सहमति वाले परिदृश्य के अलावा अन्य मामलों तक सीमित है। यह तब होता है जब भूमि निजी संपत्ति थी या किसी अन्य उद्देश्य के लिए वक़्फ़ थी। इसलिए, वक़्फ़ की भूमि से उन मामलों को बाहर करना आवश्यक है जहाँ भूमि 'इह्तिकार' (इजारा/पट्टा) के लिए तैयार की गई थी। इससे स्थिति स्पष्ट हो जाती है और विभिन्न कथनों के बीच सामंजस्य स्थापित हो जाता है। हमने रद-अल-मुह्तार पर अपनी टिप्पणियों में इसे अच्छी तरह स्पष्ट किया है।

जो 'बहर' में लिखा है वह 'ज़हीरिया' के कथन से लिया गया है और अगर उसी दिशा में वक़्फ़ किया जिस पर वह भूमि वक़्फ़ थी, तो वक़्फ़ उसके अनुसरण में सर्वसम्मति से जायज़ है। 'ज़खीरा' का कथन 'जायज़ नहीं' सही है और यह सहमति की स्थिति के अलावा अन्य पर सीमित है। यह उस समय है जब भूमि निजी संपत्ति या किसी अन्य दिशा में वक़्फ़ हो। इस आधार पर, वक़्फ़ भूमि से उस स्थिति का अपवाद आवश्यक है जब वह भूमि इज़ारे (पट्टे) के लिए तैयार की गई हो। इससे स्थिति स्पष्ट हो जाती है और सभी कथनों में सामंजस्य प्राप्त हो जाता है। हमने रद-अल-मुह्तार की टिप्पणियों में इसकी अच्छी तरह व्याख्या की है।

गंगोही साहब की भारी नासमझी, संबंधित उल्लेखों को असंबद्ध बताना

एक साधारण मदरसा या पुस्तकालय जो बनाया जाएगा जबकि वह शरीयत के अनुसार वक़्फ़ नहीं हो सकता, अनिवार्य रूप से संस्थापकों के पास रहेगा। अब यह स्पष्ट रूप से मालिकाना तरीके से वक़्फ़ का निपटान है और अपने लाभ के लिए संरचना बनाना है। यह काज़ी ख़ान, आलमगीरी और मुहीत के उन कथनों से सूरज की तरह स्पष्ट है जिन्हें मुजीब द्वितीय (ईश्वर उनकी रक्षा करे) ने उद्धृत किया है कि भले ही कोई कब्रिस्तान खंडहर हो जाए, उसमें कब्र का निशान तो क्या मृतकों की हड्डियाँ तक

न बचें, फिर भी उससे लाभ उठाना हराम है, और उस पर हमेशा कब्रिस्तान का ही नियम लागू होगा। इसी प्रकार, फतावा ज़हीरिया, ख़िज़ानतुल मुफ़्तीन और इसआफ़ के कथन हैं कि:

किसी मोहल्ले का पुराना कब्रिस्तान जिसमें कब्रिस्तान के जो कब्रिस्तान पुराना हो उसमें मक़बरे के कोई निशान बाकी न हों। निशान बाकी न हों।

---

1. फतावा खैरिया, किताब अल-वक़्फ़, दार अल-मआरिफ़ बेरूत, 1/771
2. रद अल-मुह्तार, किताब अल-वक़्फ़, मुस्तफा अल-बाबी मिस्र, 3/428
3. [आंतरिक संदर्भ संख्या 3]

पृष्ठ 469/948

ہی وقف الخلیل علیہ الصلوۃ والسلام اھ وھذا معنی قولہ فبطلانہ بدیہی التصور۔

یہ وقف ابراہیم علیہ السلام کا ہے اھ یہی معنی ہیں ان کے قول کے کہ اس کا بطلان ظاہر ہے

رد المحتار میں ہے:

الذی حرّرہ فی البحر اخذا من قولہ الظہیریۃ و امّا اذا وقفہ علی الجہۃ التی کانت البقعۃ وقفاً علیہ جاز اتفاقاً تبعاً للبقعۃ وان قول الذخیرۃ لم یجز ھو الصحیح مقصور علی ماعد اصورۃ الاتفاق وھوما اذا کانت الارض ملکاً او وقفاً علی جہۃ اخری اھ وعلی ھذا فینبغی ان یستثنی من ارض الوقف ما اذا کانت معدۃ للاحتکار وبہ یتضح الحال ویحصل التوفیق بین الاقوال اھ ملخصاً، وقد اوضحناہ فیما علقنا علیہ ۔

جو بحر میں تحریر کیا ہے وہ ظہیریہ کے قول سے ماخوذ ہے اور اگر اسی جہت پر وقف کیا جس پر وہ خطہ وقف تھا تو وقف اسکی اتباع میں بالاتفاق جائز ہے، اور ذخیرہ کا قول "جائز نہیں" صحیح ہے اور یہ اتفاق کی صورت کے غیر پر مقصور ہے اور یہ اس وقت ہے جبکہ زمین ملک یا وقف ہو کسی دوسری جہت پر، اس بناء پر زمین وقف سے اس صورت کا استثنا ضروری ہے جبکہ وہ زمین احتکار کے لیے تیار کی گئی ہو۔ اس سے صورت حال واضح ہو جاتی ہے اور تمام اقوال میں توفیق حاصل ہو جاتی ہے اھ ملخصاً اور ہم نے ردالمحتار کی تعلیقات میں اس کی خوب وضاحت کی ہے۔

گنگوہی صاحب کی سخت نافہمی، متعلقہ روایتوں کو بے علاقہ بتانا

سادہ سا مدرسہ یا کتب خانہ جو بنایا جائے گا جبکہ شرعاً وقف نہیں ہوسکتا، لاجرم بانیان پر رہے گا اور اب یہ صراحۃً وقف تصرف مالکانہ اور اپنے انتفاع کے لیے اس میں عمارت بنانا ہوگا، تو

آفتاب کی طرح واضح ہے کہ قاضی خاں و عالمگیری و محیط کی عبارات جو مجیب دوم سلمہ نے نقل کیں کہ مقبرہ اگرچہ مندرس ہو جائے اس میں قبر کا نشان درکنار، اموات کی ہڈی تک نہ رہے، جب بھی اس سے انتفاع حرام، اور ہمیشہ اس کے لیے حکم مقبرہ رہے گا، اسی طرح فتاویٰ ظہیریہ و خزانیتہ المفتین واسعاف کی عبارات کہ:

مقبرة قديمة بمحلة لم يبق فيها آثار المقبرة جو قبرستان پرانا ہو اس میں مقبرے کے آثار باقی

---

1. فتاویٰ خیر یہ کتاب الوقف دارالمعرفة بیروت ۱ / ۷۷۱
2. ردالمحتار کتاب الوقف مصطفیٰ البابی مصر ۳ / ۴۲۸
3.

It is not permissible for the local people to benefit from it [the graveyard]. Even if there is grass in it, it can be mowed and taken out for the animals, but the animals themselves should not be sent into it.[1]	**...if [the graves] no longer remain, then the local people can benefit from it. If there is grass in it, that too can be mowed; it should be mowed and brought outside, but animals should not be left in the cemetery. [These rulings] were absolutely beneficial for the intended purpose.**

And the claim of the third respondent that: "The report cited by the respondent does not prove the claim either; it is merely a misunderstanding and clear ignorance."

(Severe lack of knowledge by Gangohi Sahib, relying on a Maliki scholar while abandoning the textual evidence of the school)

Objection against Gangohi Sahib

Previously, when the third respondent found no way in jurisprudence, he was forced to set aside all texts, commentaries, and fatwas of the [Hanafi] school. Closing his eyes to all principles and branches of Hanafi jurisprudence, he contented himself with a report outside the school from the commentary of Sahih Bukhari, stating that Ibn al-Qasim said: "In my opinion, when the traces of a cemetery are erased and it is no longer needed, it is permissible to build a mosque there." You have seen the translation of the Arabic words; now, who has the insight to know who this Ibn al-Qasim is? Of which school is he a scholar? To what extent can his statement be accepted in the Hanafi school? And that too is specifically his personal opinion, which is in clear contradiction to the principles and branches of the school. Respondent Sahib, Allama Ayni (may Allah Almighty have mercy on him), in his commentary on the Jami' Sahih, does not restrict himself to the sayings of one school but quotes the sayings of the four Imams and even goes beyond them to some others, past and present, even some innovators like Dawud az-Zahiri and Ibn Hazm. In fact, many times he contents himself with their sayings and does not mention the position of the Imams of the school. An ignorant person who is not aware of the biographies of scholars gets deceived like you, but the servant of knowledge, by the grace of Allah Almighty, is aware of the differences in ranks and the distinctions between schools. Allama Ayni is not writing here in a book of jurisprudence; these are incidental and extraneous benefits intended to inform about the opinions of people, whereas the school's position, in its roots and branches, is already firmly established in the books

of the school. The majority of the material for these quotations comes from the works of Ibn al-Mundhir, Ibn Battal, and other Shafi'is. It is their habit to quote lines upon lines, even pages sometimes, without any change or alteration in wording, about which their contemporary Imam, Ibn Hajar al-Asqalani (may Allah Almighty have mercy on him), cautioned in 'Al-Durar al-Kamina'. Here too, the main discussion...

---

1. Fatawa Zahiriyya **Page 470 of 948**

मुहल्ले के लोगों के लिए इससे [कब्रिस्तान से] लाभ उठाना जायज़ नहीं है। यदि इसमें घास हो, तो उसे काटा जा सकता है और घास को जानवरों के लिए बाहर निकाला जा सकता है, लेकिन जानवरों को इसमें नहीं भेजा जाना चाहिए।[1]

...यदि [कब्रें] शेष न रहें, तो मुहल्ले के लोग इससे लाभ उठा सकते हैं। यदि इसमें घास हो, तो उसे भी काटा जा सकता है; काटकर बाहर लाया जाए, लेकिन जानवरों को कब्रिस्तान में न छोड़ा जाए। [ये नियम] पूर्णतः उद्देश्य के लिए उपयोगी थे।

और तीसरे उत्तरदाता (मुजीब साहब) का यह दावा कि: "उत्तरदाता ने जो रिवायत उद्धृत की है, उससे भी उद्देश्य सिद्ध नहीं होता, यह केवल ग़लतफ़हमी और स्पष्ट अज्ञानता है।"

(गंगोही साहब की गंभीर अज्ञानता, मज़हब के स्पष्ट प्रमाणों को छोड़कर एक मालिकी विद्वान का सहारा लेना)

गंगोही साहब पर आपत्ति

इससे पहले, जब तीसरे उत्तरदाता को फ़िक़्ह (धर्मशास्त्र) में कोई रास्ता नहीं मिला, तो उन्होंने विवश होकर मज़हब के तमाम मूल ग्रंथों, व्याख्याओं और फ़तवों को दरकिनार कर दिया। हनफ़ी फ़िक़्ह के तमाम सिद्धांतों और उप-नियमों से आँखें मूँदकर, उन्होंने सहीह बुखारी की व्याख्या से मज़हब के बाहर की एक रिवायत पर संतोष कर लिया, जिसमें इब्न अल-कासिम ने कहा था: "मेरी राय में, जब कब्रिस्तान के अवशेष मिट जाएं और उसकी ज़रूरत न रहे, तो वहाँ मस्जिद बनाना जायज़ है।" आपने अरबी शब्दों का अनुवाद देख लिया; अब यह बोध किसे है कि ये इब्न अल-कासिम कौन हैं? वे किस मज़हब के विद्वान हैं? हनफ़ी मज़हब में उनकी बात को कहाँ तक सुना जा सकता है? और वह भी विशेष रूप से उनकी अपनी राय, और वह भी मज़हब के सिद्धांतों और उप-नियमों के स्पष्ट विरुद्ध। मुजीब साहब, अल्लामा ऐनी (रहमतुल्लाहि अलैहि) 'जामी सहीह' की व्याख्या में केवल मज़हब के कथनों तक ही सीमित नहीं रहते, बल्कि चारों इमामों और उनसे भी आगे बढ़कर कुछ अन्य पूर्व और उत्तरवर्ती विद्वानों, यहाँ तक कि दाऊद ज़ाहिरी और इब्न हज़म जैसे कुछ पथभ्रष्टों के कथनों को भी उद्धृत कर देते हैं। वास्तव में, वे कई बार उन्हीं के कथनों पर संतोष कर लेते हैं और मज़हब के इमामों का मज़हब बयान नहीं करते। एक अज्ञानी व्यक्ति, जो विद्वानों की जीवनियों से परिचित नहीं है, आपकी तरह धोखा खा जाता है, जबकि ज्ञान का सेवक, अल्लाह के फज़्ल से,

पदक्रम के अंतर और मज़हबों के भेद से अवगत है। अल्लामा ऐनी यहाँ फ़िक़्ह की किसी किताब में नहीं लिख रहे हैं; ये आकस्मिक और अतिरिक्त लाभ हैं जिनका उद्देश्य लोगों के विचारों की जानकारी देना है, जबकि मज़हब तो मूलतः और गौण रूप से मज़हब की किताबों में मज़बूत हो चुका है। उनके इन उद्धरणों का अधिकांश हिस्सा इब्न अल-मुन्ज़िर और इब्न बत्ताल आदि जैसे शाफ़ई विद्वानों की रचनाओं से लिया गया है। उनकी यह आदत है कि वे उद्धरण के स्थान पर लाइनों की लाइनें, यहाँ तक कि पन्ने भी बिना किसी परिवर्तन या शब्दों के बदलाव के उद्धृत कर देते हैं, जिस पर उनके समकालीन इमाम इब्न हजर असकलानी (रहमतुल्लाहि अलैहि) ने 'अल-दुरर अल-कामिना' में सचेत किया है। यहाँ भी मुख्य चर्चा...

---

1. फ़तावा ज़हीरिया **पृष्ठ 470 / 948**

لا یباح لأهل المحلة الانتفاع بها وإن کان فیها حشیش یحش منها ویخرج الحشیش الی الدواب، ولا ترسل الدواب فیها۱-

نہ رہے ہوں تو اس سے اہل محلہ نفع حاصل کر سکتے ہیں، اگر اس میں گھاس ہو تو وہ بھی کاٹی جا سکتی ہے، کاٹ کر باہر لائی جائے مگر جانور قبرستان میں نہ چھوڑے جائیں۔ قطعاً مفید مدعا تھیں۔

اور مجیب صاحب سوم کا یہ زعم کہ: "مجیب صاحب نے جو روایت نقل کی ہے اس سے بھی مدعا ثابت نہیں ہوتا، محض سوء فہم اور جہل مبین۔"

(گنگوہی صاحب کی سخت بے علمی، نصوص مذہب کو چھوڑ کر ایک مالکی عالم سے استناد)

گنگوہی صاحب پر گرفت

سابقاً مجیب سوم کو جب فقہ میں کوئی راہ نہ ملی، ناچار متون و شروح و فتاوائے مذہب سب بالائے طاق رکھ کر نصوص اصول و فروع فقہ حنفی سب سے آنکھ بند کر کے شرح صحیح بخاری سے ایک روایت خارج عن المذہب پر قناعت کی کہ ابن القاسم نے کہا کہ میری رائے میں جب مقبرے کے آثار مٹ جائیں اور اس کی حاجت نہ رہے تو وہاں مسجد بنا لینا جائز ہے۔ عربی لفظوں کا ترجمہ دیکھ لیا، اب یہ ادراک کسے کہ یہ ابن القاسم کون ہیں؟ کس مذہب کے عالم ہیں؟ ان کا قول مذہب حنفی میں کہاں تک سنا جاسکتا ہے؟ اور وہ بھی خاص ان کی رائے، اور وہ بھی اصول و فروع مذہب کے صریح خلاف، مجیب صاحب علامہ عینی رحمۃ اللہ تعالیٰ علیہ شرح جامع صحیح میں صرف اقوال مذہب پر اقتصار نہیں کرتے، بلکہ ائمہ اربعہ اور ان سے بھی گزر کر بعض دیگر سابق ولاحق بلکہ بعض بد مذہبوں مثلاً داؤد ظاہری وابن حزم تک کے اقوال نقل کر جاتے ہیں، بلکہ

بارہا ہین و آن ہی کے قول پر قناعت فرماتے ہیں اور ائمہ مذہب کا مذہب بیان میں نہیں لاتے، جاہل کہ تراجم علماء سے آگاہ نہیں آپ کی طرح دھوکا کھا جاتا ہے اور خادم علم بحمد اللہ تعالیٰ فرق مراتب و تفرقہ مذاہب کی خبر رکھتا ہے۔ علامہ عینی یہاں کسی کتاب فقہ کی تحریر میں نہیں یہ اسطرادی بالائی فوائد ہیں جن سے اقاویل ناس پر اطلاع مقصود اور مذہب تو اصلاً و فرعاً کتب مذہب میں مضبوط ہو چکا۔ ان کی ان نقول کا اکثر مادہ تصانیف ابن المنذر وابن بطال و غیرہما شافعیہ وغیرہما ہیں ان کی عادت ہے کہ محل نقل میں سطریں کی سطریں بلکہ کہیں صفحے بلا غرو بے تغیر لفظ نقل فرماتے ہیں جس پر ان کے امام عصری امام ابن حجر عسقلانی رحمۃ اللہ تعالیٰ نے الدرر الکامنہ میں تنبیہ کی، یہاں بھی صدر کلام

Fatawa Ridawiyyah, Volume 9

From the mention of "What can be deduced from it regarding rulings" to the narrative you quoted, the text is of this nature. A scholar would recognize through multiple reasons that this is not Hanafi speech. You would have seen only this much in that passage: "The Kufis (Hanafis), Ash-Shafi'i, and Ashhab, based on this Hadith[1], reached the conclusion of the permissibility of digging up their graves for wealth." It is not the idiom of Hanafis to state their Imams' school of thought by saying "the Kufis went this way." If the speaker were Hanafi, he would write "our Imams went..." or "our companions (Ashabuna)..." or "our scholars (Ulama'una)..." and such. This Ibn al-Qasim and Ashhab (may Allah's mercy be upon them) are both scholars of the Maliki school. They are like Imam Zufar and Hasan ibn Ziyad in our school—people of report and insight. Your sacred greatness issues a fatwa based on the opinion of a Maliki scholar that is clearly against the Hanafi school, and in your conjecture, you consider it a narration of the Hanafi school. Whereas our Imams are our Imams, even the mujtahid Imam of that school, our leader Imam Malik (may Allah be pleased with him), is such that Ibn al-Qasim is not from among our scholars. But yes, when there is a lack of understanding, what difference does it make to you? You included this mention of "Ashabuna" (our companions) under the statement of "Qala Ibn al-Qasim" (Ibn al-Qasim said) and considered it part of his saying. Gangohi Sahib's three clever moves and their backfiring.

Eighthly, the respondent unjustly contented himself with this narrative from another school, finding justification only for the graves of poor deceased Muslims to be trampled by the sweepers and water-carriers of students and the madrasa. Why was this mention of "our companions" not taken up, which opens the way for running horses or donkeys in mosques or tying them there?

Arabic

Rather, it is more hideous and abominable, and that is making the site of the mosque a latrine or a toilet, because he said: "And our companions mentioned that if a mosque is ruined and obliterated, and no congregation remains around it, and a graveyard, if it is effaced and obliterated, they return as the property of their former

Urdu Translation

Rather, it is worse to turn a mosque into a stable or enclosure because they said: Our companions mentioned that when a mosque becomes desolate and there is no congregation around it, and when a graveyard is effaced, it returns to the ownership of its former owners. They said that when these things come

Arabic	Urdu Translation
owners." He said: "So when they return as property, it is permissible to build a house on the site of the mosque and on the site of [the graveyard...]"	into ownership, the site of the mosque [becomes] a house and the site of the graveyard [becomes]...

Note: The tombs of both gentlemen, overflowing with light, are together in Al-Qarafa. Scholars say that prayers are accepted between these two tombs. 12 [From] him, may his Lord protect him.

[1] Umdat al-Qari, Chapter: Can the graves of the polytheists of the pre-Islamic era be dug up? etc., Idarat al-Tiba'at al-Muniriyyah, Beirut, 3/179.

फ़तावा रिज़विया, जिल्द 9

"जिक्र मा यस्तनबितु मिन्हु मिन अल-अहकाम" से लेकर आपकी उद्धृत हिकायत तक, इबारत इसी प्रकार की है। एक विद्वान कई कारणों से पहचान लेगा कि यह हनफी कलाम नहीं है। आपने केवल इतना ही देखा होगा कि इस इबारत में है: "धन के लिए उनकी कब्रों को खोदने की अनुमति की ओर कूफ़ा वाले (हनफ़ी), शाफ़ई और अश्हब इस हदीस[1] से दलील लेते हुए इस ओर गए हैं।" हनफ़ियों का यह मुहावरा नहीं है कि वे अपने इमामों के मज़हब को इस तरह बयान करें कि "कूफ़ा वाले इधर गए हैं"। यदि कहने वाला हनफ़ी होता तो वह "ज़हब अइम्मतुना" (हमारे इमामों का मत है) या "असहाबुना" (हमारे साथी) या "उलमाउना" (हमारे विद्वान) जैसा कुछ लिखता। ये इब्न अल-कासिम और अश्हब (अल्लाह उन पर रहमत करे) दोनों मालिकी मज़हब के विद्वान हैं। वे स्वयं इमाम-ए-हुमाम के शिष्य हैं, और उनके मज़हब में वे रिवायत और दरायत वाले लोग हैं जैसे हमारे यहाँ ज़ुफ़र और हसन बिन ज़ियाद (अल्लाह उन पर रहमत करे) हैं। आपकी पवित्र महानता हनफ़ी मज़हब के स्पष्ट विरुद्ध एक मालिकी विद्वान की राय पर फ़तवा देते हैं, और अपने भ्रम में इसे हनफ़ी मज़हब की रिवायत समझ रहे हैं, जबकि हमारे इमाम तो हमारे इमाम हैं, यहाँ तक कि उस मज़हब के इमाम मुजतहिद हमारे सरदार इमाम मालिक (रज़ियल्लाहु अन्हु) भी ऐसे हैं कि इब्न अल-कासिम हमारे विद्वानों में से नहीं हैं। लेकिन हाँ, जब समझ की कमी हो, तो आपको क्या लगता है कि इस "ज़िक्र-ए-असहाबना" को भी "क़ाल इब्न अल-कासिम" के तहत शामिल मान लिया और इसे उन्हीं का कथन समझ लिया। गंगोही साहब की तीन चालाकियाँ और उनका उल्टा पड़ना।

आठवें, उत्तरदाता ने अनुचित रूप से दूसरे मज़हब की इस हिकायत पर संतोष किया कि केवल बेचारे मृत मुसलमानों की कब्रों को छात्रों और मदरसे के भंगी-बहिश्ती से कुचलवाने की गुंजाइश मिल गई। "असहाबना" के इस उल्लेख को क्यों नहीं लिया गया जो मस्जिदों में घोड़े या गधे चलाने या बांधने का रास्ता खोलता है?

अरबी	**उर्दू अनुवाद**
बल्कि यह अधिक बुरा और घृणित है कि मस्जिद की जगह को शौचालय या पेशाबखाना बना लिया जाए, क्योंकि उन्होंने कहा: "और हमारे साथियों ने उल्लेख किया कि यदि मस्जिद नष्ट और मिट जाए, और	बल्कि यह ज़्यादा बुरा है कि मस्जिद को अस्तबल या बाड़ा बना लिया जाए क्योंकि उन्होंने कहा: हमारे साथियों ने ज़िक्र किया कि मस्जिद जब वीरान हो जाए और उसके

अरबी	उर्दू अनुवाद
उसके आसपास कोई जमात न रहे, और कब्रिस्तान, यदि वह मिट जाए और पुराना हो जाए, तो वे अपने पूर्व स्वामियों की संपत्ति बन जाते हैं।" उन्होंने कहा: "तो जब वे संपत्ति बन जाते हैं, तो मस्जिद की जगह पर घर बनाना जायज़ है और... की जगह पर"	गिर्द कोई जमात न रहे और क़ब्रिस्तान जब मिट जाए तो उन पर उनके साबिक़ मालिक की मिल्क लौट आती है, उन्होंने फ़रमाया कि जब ये चीज़ें मिल्क में आ गईं तो मस्जिद की जगह को घर और क़ब्रिस्तान की जगह...

नोट: दोनों महापुरुषों के नूर से भरे मज़ार क़राफ़ा में एक साथ हैं। विद्वान कहते हैं कि इन दोनों मज़ारों के बीच दुआ क़बूल होती है। 12 [हस्ताक्षर] उनके द्वारा, जिनका रब उनकी रक्षा करे।

[1] उम्दतुल क़ारी, बाब: क्या जाहिलियत के मुशरिकों की कब्रें खोदी जा सकती हैं? आदि, इदारतुल तिबाअत अल-मुनीरिया, बेरूत, 3/179।

فتاوی رضویہ جلد نہم

ذکر ما یستنبط منہ من الاحکام سے آپ کی منقولہ حکایت تک اسی قسم کی عبارت ہے عالم تو متعدد وجہ سے پہچانے گا کہ یہ کلام حنفیہ نہیں۔ آپ نے اتنا ہی دیکھا ہوتا کہ اس عبارت میں ہے: الی جواز نبش قبورھم للمال ذھب الکوفیون والشافعی واشھب بھذا الحدیث[1] (کوفہ والے، شافعی اور اشہب اس حدیث سے استدلال کرتے ہوئے اس طرف گئے ہیں کہ حصول مال کیلئے انکی قبروں کو اکھاڑنا جائز) حنفیہ کا محاورہ نہیں کہ اپنے ائمہ کا مذہب یوں بیان کریں کہ کوفہ والے ادھر گئے ہیں، قائل حنفی ہوتا تو "ذھب ائمتنا یا اصحابنا یا علماؤنا وامثال ذلک" لکھتا۔ یہ ابن القاسم واشھب عہ دونوں حضرات مالکی مذہب عالم ہیں۔ خود امام ہمام کے شاگرد، اور ان کے مذہب میں اہل روایت و درایت جیسے ہمارے ہاں زفر و حسن بن زیاد رحمۃ اللہ تعالیٰ علیہم، آپ کی مقدس بزرگی کہ مذہب حنفی کے صریح خلاف ایک مالکی عالم کی رائے پر فتویٰ دیتے، اور اپنے زعم میں اسے مذہب حنفی کی روایت سمجھ رہے ہیں حالانکہ ہمارے ائمہ تو ہمارے ائمہ وہ اس مذہب کے بھی امام مجتہد سیدنا امام مالک رضی اللہ تعالیٰ عنہ کہ یہ ابن القاسم ہمارے علماء سے نہیں، مگر ہاں جب ناہمی کی ٹھہری تو آپ کو کیا لگتا ہے کہ اس ذکر اصحابنا کو بھی قال ابن القاسم کے تحت میں داخل اور انھیں کے مقولے میں شامل مانتے۔ گنگوہی صاحب کی تین چالاکیاں اور ان کا الٹا پڑنا۔

ثامناً مجیب صاحب نے ناحق اس حکایت غیر مذہب پر قناعت کی کہ فقط بیچارے مردہ مسلمانوں کی قبریں، طلبہ اور مدرسہ کے بھنگی بہشتی سے پامال کرانے کی گنجائش ملی۔ اس ذکر اصحابنا کو کیوں نہ لیا کہ مسجدوں میں چلانے، گھوڑے یا گدھے باندھنے کی راہ چلتی۔

عربی عبارت	اردو ترجمہ
بل هو اشنع واخنع وهو اتخاذ موضع المسجد حشاً و كنيفاً لقوله و ذكر اصحابنا ان المسجد اذا خرب ودثر ولم يبق حوله جماعة، والمقبرة اذا عفت ودثرت تعود ملكا لاربابها، "قال" فاذا عادت ملكا يجوز ان يبنى موضع المسجد داراً و موضع	بلکہ یہ زیادہ برا ہے کہ مسجد کو اصطبل یا باڑہ بنالیا جائے کیونکہ انھوں نے کہا: ہمارے اصحاب نے ذکر کیا کہ مسجد جب ویران ہوجائے اور اس کے گرد کوئی جماعت نہ رہے اور قبرستان جب مٹ جائے تو ان پر ان کے سابق مالک کی ملک لوٹ آتی ہے، انھوں نے فرمایا کہ جب یہ چیزیں ملک میں آگئیں تو مسجد کی جگہ کو گھر اور قبرستان کی جگہ

عہ: دونوں حضرات کے مزار فائض الانوار قرافہ میں یکجا ہیں، علماء فرماتے ہیں ان دونوں مزار کے بیچ میں دعا قبول ہوتی ہے ۱۲ منہ حفظہ ربہ

[1] عمدة القاری باب هل تنبش قبور مشرکی الجاہلیہ الخ ادارة الطباعة المنيرية بيروت ۳/ ۱۷۹

Fatawa Razvia, Volume 9

[Table/Box 1] Arabic: Al-maqbaru masjidan aw ghaira dhaalika li-anna ad-daara laa budda lahaa min tilka al-ashyaa. English Translation: Making it a mosque etc. was correct, because it is necessary for a house to have these things.

But you certainly acted wisely; first, you knew that in the reliable, well-known, and widely used books of the school of thought, this has been explicitly rejected and a strong fatwa (decree) has been given against it. It is stated in Tanwir al-Absar and Durr al-Mukhtar:

[Table/Box 2] Arabic: Wa law kharaba maa hawlahu istaghnaa 'anhu yabqaa masjidan 'inda al-Imami wa ath-Thani abadan ilaa qiyaami as-saa'ati wa bihi yuftaa. English Translation: And if its surroundings become desolate and it is no longer needed, it remains a mosque according to the Imam (Abu Hanifa) and the Second Imam (Abu Yusuf) forever until the Day of Judgment, and the fatwa is based on this.

It is stated in Hawi al-Qudsi, Bahr al-Raiq, and Radd al-Muhtar:

[Table/Box 3] Arabic: Wa aktharu al-masha'ikhi 'alayhi mujtabaa wa huwa al-awjahu fath - a-ha. English Translation: Most of the scholars are of this opinion, as mentioned in Mujtaba, and this is the most valid view. Fath (T).

Secondly, this saying of Imam Muhammad (may Allah have mercy on him), which Allama Ayni attributed to "our companions" (Hanafi scholars), applies specifically to the situation where the endowed property becomes completely incapable of serving the purpose for which it was originally endowed by the endower and is no longer fit for it in any way. It is stated in Radd al-Muhtar:

[Table/Box 4] Arabic: Dhukira fi al-Fathi maa ma'naahu annahu yatafarra'u 'ala al-khilafi al-madhkuri maa idhaa inhadama al-waqfu wa laysa lahu min al-ghallati maa yu'maru bihi fa-yarji'u ila al-baani aw warathatihi 'inda Muhammadin khilafan li-Abi Yusuf lakin 'inda Muhammadin innamaa ya'oodu ilaa milkihi maa kharaja 'an al-intifa'i al-maqsoodi lil-waaqifi bil-kulliyyah. English Translation: It is mentioned in Fath, the summary of which is that based on the aforementioned disagreement, it follows that when an endowed building collapses and there is no income from it with which it can be rebuilt, then according to Imam Muhammad, it returns to the builder or his heirs, contrary to the view of Abu Yusuf. However, according to Imam Muhammad, only that property returns to his ownership from which all intended benefit for the endower has completely ceased.

How can this be imagined in the aforementioned cemetery when, according to the questioner's statement, one-third of the ground still lies completely empty? Thirdly, perhaps there was some fear that along with this cemetery, the mosque might not be safe either, lest the common people become enraged. For these reasons, leaving the mention of "our companions," he caught hold of the statement "Ibn al-Qasim said," but heedless that from the three fears...

---

1 Umda al-Qari, Chapter: Whether the graves of the pre-Islamic polytheists should be dug up, etc., Idarat al-Tiba'ah al-Muniriyah, Beirut, 3/179 2 Durr al-Mukhtar, Book of Endowment, Mujtabai Press, Delhi, 1/479 3 Radd al-Muhtar, Book of Endowment, Mustafa al-Babi, Egypt, 3/406 4 Radd al-Muhtar, Book of Endowment, Mustafa al-Babi, Egypt, 3/406

फ़तावा रज़विया, जिल्द 9

[टेबल/बॉक्स 1] अरबी: अल-मक़बरु मस्जिदन औ ग़ैरा ज़ालिका लि-अन्ना अद-दारा ला बुद्दा लहा मिन तिल्का अल-अश्या। हिंदी अनुवाद: उसे मस्जिद आदि बनाना सही हुआ, क्योंकि एक घर के लिए इन चीज़ों का होना ज़रूरी है।

मगर आपने ज़रूर होशियारी बरती; पहले, आप जानते थे कि मज़हब की मुअतमिद (विश्वसनीय), मशहूर और मुतदावला (प्रचलन में) किताबों में इसका स्पष्ट रूप से खंडन किया गया है और इसके ख़िलाफ़ कड़ा फ़तवा दिया गया है। तन्वीरुल अबसार और दुर्रे मुख़्तार में है:

[टेबल/बॉक्स 2] अरबी: व लौ खरबा मा हौलाहु इस्तग़ना अ़न्हु यबक़ा मस्जिदन इन्दा अल-इमामि व अ़स-सानी अबदन इला कियामि अस-साअ़ति व बिही युफ़्ता। हिंदी अनुवाद: और अगर इसके आस-पास का क्षेत्र वीरान हो जाए और इसकी ज़रूरत न रहे, तब भी वह इमाम (अबू हनीफ़ा) और इमाम-ए-सानी (अबू यूसुफ़) के नज़दीक क़यामत तक हमेशा मस्जिद ही रहेगी, और इसी पर फ़तवा है।

हावी अल-क़ुदसी, बहरुर राइक़ और रद्दुल मुहतार में है:

[टेबल/बॉक्स 3] अरबी: व अकसरु अल-मशाइख़ि अ़लैहि मुजतबा व हुवा अल-औजहु फ़तह - अ-हा। हिंदी अनुवाद: इसी पर अधिकतर मशाइख़ (विद्वान) हैं, मुजतबा, और यही सबसे ज़्यादा सही पक्ष है। फ़तह (त)।

दूसरे, इमाम मुहम्मद (रहमतुल्लाह अलैह) का यह कथन, जिसे अल्लामा ऐनी ने "हमारे साथियों" (हनफ़ी विद्वानों) की ओर मंसूब किया है, विशेष रूप से उस स्थिति के लिए है जब वह वक़्फ़ की हुई चीज़ उस मक़सद के लिए पूरी तरह से अयोग्य हो जाए जिसके लिए वक़्फ़ करने वाले ने उसे वक़्फ़ किया था और वह किसी भी तरह उसके योग्य न रहे। रद्दुल मुहतार में है:

[टेबल/बॉक्स 4] अरबी: ज़ुकिरा फ़ी अल-फ़तही मा मा'नाहु अन्नाहु यतफ़र्राउ अ़ला अल-ख़िलाफ़ि अल-मज़कूरी मा इज़ा इन्हदमा अल-वक़्फ़ु व लैसा लहू मिन अल-ग़ल्लाति मा युअ़मरु बिही फ़यर्जीउ इला अल-बानी औ वरसतिही इन्दा मुहम्मदिन ख़िलाफ़न लि-अबी यूसुफ़ लाकिन इन्दा मुहम्मदिन इन्नमा यओदु इला मिल्किही मा ख़रजा अ़न अल-इन्तिफ़ाअ़ि अल-मक़सूदी लिल-वाक़िफ़ि बिल-कुल्लिय्याह। हिंदी अनुवाद: फ़तह में ज़िक्र किया गया है जिसका सारांश यह है कि उपर्युक्त मतभेद पर यह बात निकलती है कि जब वक़्फ़ की इमारत ढह जाए और उससे कोई आमदनी न हो जिससे

उसे दोबारा बनवाया जा सके तो इमाम मुहम्मद के नज़दीक वह बनाने वाले या उसके वारिसों के पास लौट जाएगी, इसमें इमाम अबू यूसुफ़ के ख़िलाफ़ है। लेकिन इमाम मुहम्मद के नज़दीक उसकी मिल्कियत (स्वामित्व) में केवल वही चीज़ लौटेगी जिससे पूरी तरह लाभ उठाना मुमकिन न रहा हो।

उक्त क़ब्रिस्तान के मामले में यह बात कैसे सोची जा सकती है जबकि सवाल करने वाले के बयान के मुताबिक़ अभी भी एक तिहाई मैदान बिलकुल खाली पड़ा है। तीसरे, शायद यह अंदेशा भी हुआ कि इस क़ब्रिस्तान के साथ मस्जिद की भी खैर नहीं, कहीं ऐसा न हो कि आम लोग भड़क जाएँ। इन वजहों से "हमारे साथियों" का ज़िक्र छोड़कर "इब्नुल क़ासिम ने कहा" का सिरा पकड़ा, मगर इस बात से बेख़बर कि जिन तीन अंदेशों से...

---

1 उमदतुल क़ारी, अध्याय: क्या जाहिलियत के मुशरिकों की क़ब्रें खोदी जाएँ आदि, इदारतुल तिबाह अल-मुनीरिया, बेरूत, 3/179 2 दुर्रे मुख़्तार, किताबुल वक़्फ़, मतबा मुजतबाई, दिल्ली, 1/479 3 रद्दुल मुहतार, किताबुल वक़्फ़, मुस्तफ़ा अल-बाबी, मिस्र, 3/406 4 रद्दुल मुहतार, किताबुल वक़्फ़, मुस्तफ़ा अल-बाबी, मिस्र, 3/406

पृष्ठ 472/948

فتاوٰی رضویہ جلد نہم

[جدول/باکس 1] المقبر مسجد او غیر ذلک لان الدار لا بد لھا من تلک الاشیاء۔۱ کو مسجد وغیرہ بنانا درست ہوا، کیونکہ گھر کے لیے ان چیزوں کا ہونا ضروری ہے۔

مگر آپ نے ضرور ہوشیاری برتی، اولاً جانتے تھے کہ کتب معتمدہ مذہب مشہورہ متداولہ میں اسے صراحۃً رد کیا اور اس کے خلاف پر بشد و مد فتوٰی دیا ہے تنویر الابصار و در مختار میں ہے:

[جدول/باکس 2] ولو خرب ماحولہ استغنی عنہ یبقی مسجداً عند الامام والثانی ابداً الی قیام الساعۃ و بہ یفتی۔۲ اور اگر اس کا اردگرد ویران ہوگیا اور اس کی ضرورت نہ رہی تو مسجد باقی رہے گی، امام صاحب اور امام ثانی (امام ابو یوسف) کے نزدیک ہمیشہ قیامت تک، اور اسی پر فتوٰی ہے

حاوی القدسی و بحر الرائق و ردالمحتار میں ہے:

[جدول/باکس 3] واکثر المشائخ علیہ مجتبی وھو الاوجہ فتح۔۳ اھ اسی پر اکثر مشائخ ہیں، مجتبٰی، اور یہی اوجہ ہے۔ فتح (ت)

ثانیاً یہ قول امام محمد رحمۃ اللہ تعالٰی علیہ جسے علامہ عینی نے اصحابنا کی طرف نسبت کیا، خاص اسی حالت میں ہے جب وہ شے موقوف اس غرض کی صلاحیت سے بالکل خارج ہوجائے جس کے لیے واقف نے وقف کی تھی اصلاً کسی طرح اس کے قابل نہ رہے۔ ردالمحتار میں ہے:

[جدول/باکس 4] ذکر فی الفتح مامعناہ انہ یتفرع علی الخلاف المذکور ما اذا انھدم الوقف ولیس لہ من الغلۃ ما یعمر بہ فیرجع الی البانی او ورثتہ عند محمد خلافاً لابی یوسف لکن عند محمد انما یعود الی ملکہ ما خرج عن الانتفاع المقصود للواقف بالکلیۃ۔۴ فتح میں ذکر کیا گیا ہے اس کا خلاصہ یہ ہے کہ

خلاف مذکور پر یہ متفرع ہوتا ہے کہ جب وقف عمارت منہدم ہوجائے اور اس کی آمدنی نہ ہو جس سے اسے تعمیر کیا جائے تو وہ بنانے والے یا اس کے ورثاء کی طرف لوٹ جائے گا امام محمد کے نزدیک، اس میں ابو یوسف کے خلاف ہے۔ لیکن محمد کے نزدیک اس کی ملک میں صرف وہی لوٹے گا جس سے بالکل نفع ممکن نہ ہو۔

یہ بات مقبرہ مذکور میں کیونکر متصور ہو کہ ہنوز تہائی میدان حسب بیان سائل بالکل خالی پڑا ہے ثالثاً شاید یہ بھی کچھ اندیشہ گزرا کہ اس مقبرے کے ساتھ مسجد کی بھی خیر نہیں، مبادا عوام بھڑک جائیں ان وجوہ سے ذکر اصحابنا چھوڑ کر قال ابن القاسم کا یہ سرا پکڑا، مگر غافل، کہ جن تین اندیشوں سے

---

۱ عمدة القاری باب هل تنبش قبور مشرکی الجاهلیة الخ ادارة الطباعة المنیریة بیروت ۳/ ۱۷۹ ۲ درمختار کتاب الوقف مطبع مجتبائی دہلی ۱/ ۴۷۹ ۳ ردالمحتار کتاب الوقف مصطفی البابی مصر ۳/ ۴۰۶ ۴ ردالمحتار کتاب الوقف مصطفی البابی مصر ۳/ ۴۰۶

Fatawa Razawiyya, Volume 9

You avoided it, but those three points apply to you here as well, rather with something additional:

Firstly, as seen in the seventh reason, it's far from being against the authoritative fatwa; it's not even a weak opinion of another school of thought.

Secondly, as in the words of Ibn al-Qasim, it is chaste and correct. 'Afa' al-duroos' means to be obliterated, annihilated, non-existent, and traceless. How does this apply to this graveyard when the questioner says old broken graves are found? So it has not yet become non-existent, annihilated, or traceless, and this marginal report did not help you either.

Thirdly, when in their opinion, mere endowment is a cause for unification of meaning and permissibility of establishing one in place of another, then just as it is permissible to turn a graveyard into a mosque, so too is turning a mosque into a graveyard. Similarly, turning a mosque into an inn, and an inn into a toilet. "For all are endowments from the endowments of Muslims; it is not permissible for anyone to own it, so the meaning of all based on this is one." (Because these are all forms of endowment from among the endowments of Muslims, so it is not permissible to make anyone their owner; from this perspective, the meaning of all is one.) Then where is the escape!

Ninthly, please come to your senses for a moment and say: Ibn al-Qasim said it is permissible to turn a graveyard into a mosque after it becomes traceless, while Abul Qasim Muhammad, Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) said: Making mosques upon graves is forbidden. According to you, both these rulings apply to a single state when it is your belief to consider Ibn al-Qasim's word as truth and ignore the command of Abul Qasim (peace and blessings of Allah be upon him). And if the state is different, then first specify that difference on which these two rulings will be divided. Is the distinction only between new and old, that making a mosque on new graves is forbidden, but where they become slightly old, prayer on them becomes permissible? Or should only the surface mark be erased? Or is it necessary that all parts of the corpses, all bones, completely turn into dust, and the dead transition with all their parts towards pure earth, after which it becomes permissible?

Firstly, fundamentally, and perhaps due to Wahhabism, this might be Shirk for you; and secondly, it's similar: the upper mark is the grave, not a pillar or condition for the grave. So its absence or existence is equal. Moreover, in this graveyard, even this situation is not yet realized, as grave marks are present. And your ruling is absolute, without specifying an empty third part: "Building an endowed madrasa in a cemetery is correct." And your follower has clearly stated this absolute ruling that "building a madrasa in this place, especially in the empty part, is correct." This specification has clarified the generality. Necessarily, take the third option: Now it was incumbent upon you to determine from Sharia evidence that period in which no name or trace of the dead person's bones remains. Since the last deceased was buried, has such a period passed? To issue a ruling of permissibility without passing these two stages was mere ignorance. Remember that mere doubt will not work here because "Certainty is not removed by doubt." (Al-Yaqin la yazulu bi-sh-shakk). It is a consensus rule of reason and tradition that if there is no certainty about the existence of an obstacle, i.e., some parts of the dead, the ruling of prohibition and prevention will remain, and your hesitation will not work.

फतावा रजविया, खंड 9

आपने इससे परहेज किया, लेकिन वे तीनों बिंदु यहाँ भी आप पर लागू होते हैं, बल्कि कुछ अतिरिक्त के साथ:

पहली बात तो यह कि जैसा कि सातवें कारण में देखा गया है, यह मुफ्ती-बेह (अधिकृत फतवे) के खिलाफ होना तो दूर, दूसरे संप्रदाय का कोई कमजोर मत भी नहीं है।

और दूसरी बात यह कि इब्न अल-कासिम के शब्दों में यह पवित्र और सही है। 'अफा-उद-दुरुस' का अर्थ है मिट जाना, नष्ट हो जाना, अस्तित्वहीन और बेनिशान हो जाना। यह इस कब्रिस्तान पर कैसे लागू होता है जब पूछने वाला कहता है कि पुरानी टूटी कब्रें पाई जाती हैं? तो यह अभी तक अस्तित्वहीन, नष्ट या बेनिशान नहीं हुआ है, और इस हाशिए की रिपोर्ट ने भी आपकी मदद नहीं की।

तीसरी बात यह कि जब उनकी राय में केवल वक्फ होना ही अर्थों की एकता और एक के स्थान पर दूसरे की स्थापना की अनुमति का कारण है, तो जिस तरह कब्रिस्तान को मस्जिद बनाना जायज है, उसी तरह मस्जिद को कब्रिस्तान बनाना भी। इसी तरह मस्जिद को सराय और सराय को शौचालय बनाना। "क्योंकि ये सभी मुसलमानों के औकाफ में से वक्फ के रूप हैं; किसी के लिए इसका मालिक होना जायज नहीं है, इसलिए इस आधार पर सभी का अर्थ एक ही है।" (चूंकि ये सभी मुसलमानों के औकाफ में से वक्फ की सूरतें हैं, इसलिए किसी को इसका मालिक बनाना जायज नहीं है; इस लिहाज से सबका अर्थ एक ही है।) फिर बचाव का रास्ता कहाँ है!

नौवीं बात, कृपया थोड़ी देर के लिए होश में आएं और कहें: इब्न अल-कासिम ने कहा कि कब्रिस्तान के बेनिशान हो जाने के बाद उसे मस्जिद बनाना जायज है, जबकि अबुल कासिम मुहम्मद, अल्लाह के रसूल (उन पर अल्लाह की शांति और कृपा हो) ने फरमाया: कब्रों पर मस्जिद बनाना हराम है। आपके अनुसार, ये दोनों हुक्म एक ही स्थिति पर लागू होते हैं जब यह आपका विश्वास है कि इब्न अल-कासिम की बात को सच मानें और अबुल कासिम (उन पर अल्लाह की शांति और कृपा हो) के इरशाद को न मानें। और अगर स्थिति अलग है, तो पहले वह अंतर स्पष्ट करें जिस पर इन दोनों हुक्मों का विभाजन होगा। क्या अंतर केवल नया और पुराना होने का है कि नई कब्रों पर मस्जिद बनाना हराम है, और जहाँ थोड़ी पुरानी हो गईं, अब उन पर नमाज जायज हो गई? या केवल ऊपरी निशान मिट जाना चाहिए? या यह आवश्यक है कि शवों के सभी अंग, सारी हड्डियाँ पूरी तरह मिट्टी हो जाएँ मुर्दे अपने सभी अंगों के साथ शुद्ध मिट्टी में बदल जाएँ उसके बाद ही जायज होगा?

पहली बात तो यह कि मौलिक रूप से, और शायद वहाबियत के कारण आपके यहाँ तो यह शिर्क हो; और दूसरी बात भी वैसी ही है: ऊपरी निशान कब्र है, न कि कब्र के लिए कोई स्तंभ या शर्त। इसलिए इसका होना या न होना बराबर है। इसके बावजूद, इस कब्रिस्तान में यह स्थिति भी अभी तक साकार नहीं हुई है क्योंकि कब्र के निशान मौजूद हैं। और आपका हुक्म बिना किसी विशेष तिहाई हिस्से के खाली होने के पूर्णतः निरपेक्ष है कि "कब्रिस्तान में वक्फ का मदरसा बनाना सही है।" और आपके मुकल्लिद (अनुयायी) ने इस निरपेक्षता को पूरी तरह स्पष्ट कर दिया है कि "इस स्थान पर मदरसा बनाना, विशेष रूप से खाली हिस्से में, सही है।" इस विशेषता ने सामान्यता को स्पष्ट कर दिया। अनिवार्य रूप से तीसरा विकल्प लें: अब आप पर यह लाजिम था कि शरीयत की दलील से उस अवधि को निर्धारित करते जिसमें मुर्दे की हड्डियों का कोई नामो-निशान नहीं रहता। जो आखिरी मुर्दा दफन हुआ उसे क्या इतनी अवधि बीत चुकी है? इन दो चरणों को पार किए बिना जायज होने का हुक्म लगा देना सरासर अज्ञानता थी। इतना याद रखें कि यहाँ केवल संदेह काम नहीं देगा क्योंकि "यकीन संदेह से खत्म नहीं होता।" (अल-यकीन ला यजुलु बि-श-शक)। यह अक्ल और नक्ल (तर्क और परंपरा) का सर्वसम्मत नियम है कि जब तक बाधा के अस्तित्व का, यानी मुर्दों के कुछ अंगों के होने का यकीन न हो, तब तक हराम और मनाही का हुक्म ही रहेगा और आपकी टालमटोल काम नहीं आएगी।

पृष्ठ 948 का 473

فتاویٰ رضویہ، جلد نہم

گریز فرمایا وہی تینوں یہاں بھی آپ پر عائد بلکہ مع شی زائد:

اول تو وجہ سابع میں دیکھ چکے کہ خلاف مفتی بہ ہونا در کنار وہ دوسرے مذہب کا کوئی قول ضعیف بھی نہیں۔

اور ثانی یوں کہ کلام ابن القاسم میں عفت و درست ہے۔ عفاء دروس نیست و نابود و ناپید و بے نشان ہونا ہے، یہ اس مقبرے پر کہاں صادق کہ سائل کہتا ہے، پرانی شکستہ قبریں پائی جاتی ہیں تو ابھی نیست و نابود و ناپید نہ ہوا اور اس روایت خارجہ نے بھی آپ کو کام نہ دیا۔ اور ثالث یوں کہ جب ان کی رائے میں مجرد وقفیت موجب اتحاد معنی و جواز اقامت بجائے یک دگر ہے تو جیسے مقبرے کو مسجد کرنا روا، یوں ہی مسجد کو مقبرہ۔ یوں مسجد کو سراء اور سرائے کو بیت الخلاء، فان الکل وقف من اوقاف المسلمین لا یجوز تملیکه لاحد فمعنی الکل علی ہذا واحد (کیونکہ یہ سب مسلمانوں کے اوقاف میں سے وقف کی صورتیں ہیں تو کسی کو اس کا مالک بنانا جائز نہیں اس اعتبار سے سب کا معنی ایک ہے) پھر مفر کدھر! تاسعاً ذرا براہ مہربانی تھوڑی دیر کو ہوش میں آکر فرمائے کہ ابن القاسم نے کہا مقبرے کو بعد بے نشانی مسجد کر دینا روا، اور ابوالقاسم محمد رسول اللہ صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم نے فرمایا: مقابر پر مسجد بنانا حرام، آپ کے نزدیک یہ دونوں حکم حالت واحد پر وارد جب تو آپ کا ایمان ہے کہ ابن القاسم کی بات کو حق جانیں اور ابوالقاسم صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کا ارشاد نہ مانیں، اور اگر حالت مختلف ہے تو پہلے وہ فرق معین کیجئے جس پر ان دونوں احکام کا انقسام ہوگا، کیا فقط نو کہن کا تفر قہ ہے کہ نئی قبروں پر مسجد بنانا حرام، اور جہاں ذرا پرانی پڑیں، اب ان پر نماز جائز ہوگئی یا فقط اوپر کا نشان مٹ جانا چاہئے یا

یہ ضرور ہے کہ لاشوں کے تمام اجزاء، ساری ہڈیاں بالکل خاک ہو جائیں، مردے بجمیع اجزاء تراب خالص کی طرف استحالہ کریں، اس کے بعد روا ہے۔

اول تو بدایۃً بالکل، اور شاید بعلت وہابیت آپ کے یہاں تو شرک ہو اور ثانی بھی اسی کی مثل ہو کہ نشان بالانہ قبر ہے نہ قبر کے لیے رکن شرط، تو اس کا عدم و وجود یکساں، معہذا اس مقبرے میں یہ صورت بھی ہنوز متحقق نہ ہوئی کہ نشان قبر موجود ہیں اور آپ کا حکم بے تخصیص ثلث خالی صاف مطلق ہے کہ "مدرسہ وقفی بنانا گورستان میں درست ہے" اور آپ کے مقلد نے اس اطلاق کی صریح تصریح کر دی ہے کہ "بناء مدرسہ اس جگہ میں خصوصاً حصہ خالی میں درست ہے۔" اس خصوص نے عموم کو واضح کر دیا، لاجرم ثالث لیجئے گا، اب یہ آپ پر لازم تھا کہ دلیل شرعی سے اس مدت کی تعیین کرتے، جس میں مردے کی ہڈی پسلی کا اصلاً نام و نشان نہیں رہتا۔ سب سے پچھلی جو میت دفن ہوئی اسے اتنی مدت گزر چکی، ان دو مرحلوں کو بغیر طے کئے حکم جواز لگا دینا محض جہل تھا، اتنا یاد رکھئے کہ مجرد شک یہاں کام نہ دے گا کہ "الیقین لا یزول بالشک" (شک سے یقین زائل نہیں ہوتا۔) عقل و نقل کا قاعدہ اجماعیہ ہے وجود مانع یعنی بعض اجزائے اموات پر یقین نہ ہو، حکم حرمت و ممانعت ہی رہے گا اور آپ کے لیت ولعل سے کام نہ چلے گا،

So it became clear that holding onto this report, which is outside the school of thought (Madhhab), was also merely a result of poor understanding, servitude to whims, and fancy, and with Allah is the protection.

Tenthly, the irony is that in this external report, the condition of "dispensing with burial" was set. Does this mean that burial can take place elsewhere? If so, then this condition is purely absurd and useless. Which cemetery is it that there is a need for burial in the sense of 'if it were not there, it would be prohibited'? Neither absolute suspension nor ruin is considered in endowments; only two matters are kept in mind: first, the lack of needy people, meaning the population is gone, people have dispersed, now who has the need? As mentioned in the second answer from Alamgiri and Muhit regarding mosques and tanks, 'it fell into ruin and is no longer needed because the people have dispersed.' Second, the lack of need due to lack of suitability, meaning the thing is no longer fit for that task due to some obstruction, deficiency, or defect, for example, water overcame the land such that there is no space left for burial. It is mentioned in Fatawa Kubra, Jami' al-Mudmarat, Hindiyyah, Is'af, etc.:

[Boxed Text] Arabic: A woman turned a piece of her land into a cemetery, removed it from her possession, and buried her son in it. However, this piece of land became unsuitable for a cemetery due to the prevalence of water, which caused damage. So she wanted to sell it. If the land is in a condition where people do not refrain from burying their dead due to the small amount of damage, she cannot sell it. But if people refrain from burying the dead due to the high amount of damage, then she can sell it. Urdu: A woman turned a piece of her land into a cemetery and removed it from her possession and buried her son in it, but this piece did not remain correct for a cemetery due to the dominance of water, so she intended to sell it. If the land is such that people do not avoid burying their dead in it because the damage was not excessive, then that woman cannot sell this piece, and if people do not bury the dead due to more damage, then that woman can sell it.

So it is clear that in the case under inquiry, there is neither a lack of needy people nor a lack of suitability. Then when was the condition of "dispensing with" fulfilled, and from where was the permission to change the endowment (waqf) obtained? Thus, it became clear that the third respondent's reliance on this external report was merely 'the drowning man clutching at a straw'. There is no power or strength except with Allah, the High, the Great. This is how investigation should be, and Allah is the grantor of success.

Note: These are ten complete points against the third respondent, and their refutation is sufficient for all their followers and tails.

Every hunt is inside the belly of the wild ass. (This is an Arabic proverb used when a major need is fulfilled from among many needs.)

1. Fatawa-e-Hindiyyah, Kitab al-Waqf, Chapter 12 on Inns etc., Noorani Kutub Khana Peshawar, 2/471.

तो यह स्पष्ट हो गया कि मज़हब (विचारधारा) से बाहर की इस रिवायत (कथा/नियम) को पकड़ना भी केवल समझ की कमी, मानसिक दासता और भ्रम था। और अल्लाह ही रक्षा करने वाला है।

दसवीं बात यह कि मज़ा यह है कि इस बाहरी रिवायत में "दफन से बेनियाज़ी" (दफन की आवश्यकता न रहना) की शर्त लगाई गई है। क्या इससे यह अभिप्राय है कि इसके अलावा दूसरी जगह दफन हो सकता हो? यदि ऐसा है, तो यह शर्त पूरी तरह व्यर्थ और निरर्थक है। वह कौन सा कब्रिस्तान है जिसकी दफन के लिए ऐसी आवश्यकता हो कि 'अगर वह न हो तो वर्जित हो'। वक्फ (बंदोबस्त) में कभी भी पूर्ण बंदी या उजाड़ का विचार नहीं किया जाता, केवल दो बातों का ध्यान रखा जाता है: पहला, ज़रूरतमंदों का न होना, यानी वहाँ अब आबादी नहीं रही, लोग बिखर गए, अब ज़रूरत किसे हो? जैसा कि दूसरे उत्तर में आलमगीरी और मुहीत के हवाले से मस्जिद और तालाब के बारे में उल्लेख आया कि 'वह वीरान हो गया और लोगों के वहाँ से चले जाने के कारण उसकी ज़रूरत न रही।' दूसरा, उपयुक्तता न होने के कारण ज़रूरत का न रहना, यानी वह चीज़ किसी बाधा या कमी या दोष के कारण अब उस काम के लायक नहीं रही, उदाहरण के लिए, ज़मीन पर पानी इतना बढ़ गया कि अब दफन की गुंजाइश नहीं रही। फतावा कुबरा, जामे अल-मुदमरात, हिन्दिया, इसाफ आदि में है:

[बॉक्स का लेख] अरबी: एक महिला ने अपनी ज़मीन के एक टुकड़े को कब्रिस्तान बना दिया और उसे अपने कब्ज़े से निकाल दिया और उसमें अपने बेटे को दफन कर दिया। लेकिन यह टुकड़ा पानी की अधिकता के कारण कब्रिस्तान के लिए उपयुक्त नहीं रहा जिससे उसमें खराबी पैदा हो गई। तो उसने इसे बेचने का इरादा किया। यदि ज़मीन ऐसी स्थिति में है कि लोग खराबी कम होने के कारण अपने मृतकों को दफन करने से परहेज नहीं करते हैं, तो वह महिला उस टुकड़े को नहीं बेच सकती। और अगर लोग अधिक खराबी की वजह से मुर्दे दफन नहीं करते हैं, तो वह महिला उसे बेच सकती है। उर्दू: एक औरत ने अपनी ज़मीन के एक टुकड़े को कब्रिस्तान बना दिया और उसे अपने हाथ से निकाला और इसमें अपने बेटे को दफ़न कर दिया मगर यह टुकड़ा ग़लबा पानी की वजह से कब्रिस्तान के लिए दुरुस्त न रहा तो उसने इसे बेचने का इरादा किया, अगर ज़मीन ऐसी है कि लोग इसमें अपने मुर्दों को दफ़न करने से पहलू तही नहीं करते हैं क्योंकि फ़साद ज़ायद न था तो वह औरत इस टुकड़े को बेच नहीं सकती और अगर लोग इसमें ज़्यादा ख़राबी की वजह से मुर्दे दफ़न नहीं करते हैं तो वह औरत बेच सकती है।

तो स्पष्ट है कि जिस मामले में पूछताछ की गई है, उसमें न तो ज़रूरतमंदों की कमी है और न ही उपयुक्तता का अभाव। फिर "बेनियाज़ी" की शर्त कब पूरी हुई और वक्फ बदलने की अनुमति कहाँ से मिली? तो यह स्पष्ट हो गया कि तीसरे उत्तर देने वाले का इस बाहरी रिवायत का सहारा लेना केवल 'डूबते को तिनके का सहारा' था। अल्लाह के सिवा कोई शक्ति और सामर्थ्य नहीं है जो सर्वोच्च और महान है। शोध इसी प्रकार होना चाहिए और अल्लाह ही सफलता देने वाला है।

चेतावनी: ये तीसरे उत्तर देने वाले पर दस पूर्ण प्रहार हैं और उनका खंडन उनके सभी अनुयायियों और पिछलग्गुओं के लिए पर्याप्त है।

'हर शिकार जंगली गधे के पेट में है।' (यह अरब की एक कहावत है जिसका प्रयोग तब किया जाता है जब बहुत सी ज़रूरतों में से कोई बड़ी ज़रूरत पूरी हो जाए।)

1. फतावा-ए-हिन्दिया, किताब अल-वक़्फ़, अध्याय 12, सराय आदि के बारे में, नूरानी कुतुब खाना पेशावर, 2/471।

تو ظاہر ہوا کہ اس روایت خارجہ عن المذہب کا دامن پکڑنا بھی محض سوء فہم و بندگی و ہم تھا و باللہ العصمہ۔ عاشراً لطف یہ ہے کہ اس روایت خارجہ میں شرط استغناء عن الدفن لگائی گئی ہے۔ آیا اس سے یہ مراد کہ اس کے سوا دوسری جگہ دفن ہو سکتا ہو، جب تو یہ شرط محض لغو و عبث ہے، وہ کون سا گورستان ہے جس کی طرف احتیاج دفن بمعنی لولاہ لامتنع (اگر وہ نہ ہو تو منع ہے۔ ت) ہے۔ نہ ہرگز تعطل و ویرانی، اوقاف میں صرف اس قدر ملحوظ ہوتا ہے کہ یہاں مطمح النظر دو امر رہتے ہیں، ایک عدم محتاجین یعنی وہاں آبادی نہ رہی، لوگ متفرق ہو گئے، اب حاجت کسے ہو، جیسے جواب دوم میں عالمگیری و محیط سے درباره مسجد و حوض گزرا کہ خرب ولا یحتاج الیہ لتفرق الناس (جو ویران ہو جائے لوگوں کے وہاں سے چلے جانے کی وجہ سے اس کی احتیاج نہ رہے۔ ت) دوسرے عدم حاجت بوجہ عدم صلوح، یعنی وہ شے کسی مانع و قصور و نقص کے سبب اب اس کام کی نہ رہی، مثلاً زمین پر پانی نے غلبہ کیا کہ دفن کی گنجائش نہ رہی، فتاوی کبری و جامع المضمرات و ہندیہ و اسعاف و غیرہما میں ہے:

امرأة جعلت قطعة ارض لہا مقبرة واخرجتہا من یدھا و دفنت فیہا ابنہا وتلك القطعة لاتصلح المقبرة لغلبة الماء عندھا فیصیبہا فساد فارادت بیعھا، ان کانت الارض بحال لایرغب الناس عن دفن الموتی لقلة الفساد لیس لہا البیع وان کانت یرغب الناس عن دفن الموتی لکثرة الفساد فلہا البیع۔ ایک عورت نے اپنی زمین کے ایک ٹکڑے کو قبرستان بنادیا اور اسے اپنے ہاتھ سے نکالا اور اس میں اپنے بیٹے کو دفن کردیا مگر یہ ٹکڑا غلبہ پانی کی وجہ سے قبرستان کے لیے درست نہ رہا تو اس نے اسے بیچنے کا ارادہ کیا، اگر زمین ایسی ہے کہ لوگ اس میں اپنے مردوں کو دفن کرنے سے پہلو

تہی نہیں کرتے ہیں کیونکہ فساد زائد نہ تھا تو وہ عورت اس ٹکڑے کو بیچ نہیں سکتی اور اگر لوگ اس میں زیادہ خرابی کی وجہ سے مردے دفن نہیں کرتے ہیں تو وہ عورت بیچ سکتی ہے۔

پر ظاہر کہ صورت مستفسرہ میں ہر گز نہ عدم محتاجین ہے نہ عدم صلوح، پھر شرط استغناء کب متحقق ہوئی اور تغیر وقف کی اجازت کس گھر سے ملی، تو روشن ہوا کہ مجیب سوم کا اس روایت خارجہ سے تمسک محض تشبث الغریق بالحشیش (ڈوبتے کو تنکے کا سہارا۔ ت) تھا۔ ولا حول ولا قوۃ الا باللہ العلی العظیم۔ ھکذا ینبغی التحقیق واللہ ولی بالتوفیق۔ تنبیہ: یہ مجیب سوم پر تلک عشرہ کاملہ ہیں اور ان کا رد ان کے سب اتباع و اذناب کے رو سے مغنی۔ وکل الصید في جوف الفراء (یہ عرب کا قول بطور مثل اس وقت بولا جاتا ہے جب بہت سی حاجتوں میں سے بڑی حاجت پوری ہو جائے)

1 فتاوٰی ہندیہ کتاب الوقف الباب الثانی عشر فی الرباطات الخ نورانی کتب خانہ پشاور ۲/ ۴۷۱

Fatawa Rizwia, Volume Nine

And what else do the followers have besides Imam Zail'i? The narration of Imam Zail'i (may Allah have mercy on him), which Maulvi Gangohi himself left after some consideration and made the excuse of unavailability for not writing the juristic narration. The first respondent wrote it, the second respondent (may he be safe) replied, and some third followers repeated the same without addressing the reply. However, Mr. Gangohi realized that the discussion here is about an endowed (waqf) graveyard. I found it difficult to extract permission for a specific second endowed house; plowing and farming are becoming permissible in this narration of Imam Zail'i. From which house can I make it permissible? Therefore, he cleverly deviated from it, which the followers did not understand. Probably now the readers would have understood the context and gist of this narration. Gentlemen! The purpose of this is owned land, meaning if a deceased person is buried in someone's property, then when it becomes completely dust, it is permissible for the owner to farm there, build a house, or do whatever they wish.

Because ownership is absolute and the obstacle has been removed. And this is also the case when it was with his permission; otherwise, in the case of usurpation, he has the right to extract the deceased and level the ground as it was, because the Hadith says there is no right for a wrongdoer's vein [meaning a tree planted or something built on usurped land]. | Because ownership is absolute and the obstacle has been removed, and this too is in the case when it is with his permission, otherwise in the case of usurpation, he has the right to remove the corpse and level the ground as it was, because it is in the Hadith that there is no right for an oppressor on the land.

Allama Muhaqqiq Alai (may his secret be sanctified) in 'Durr-ul-Mukhtar' has linked it in such a fine sequence that it has clarified the intended meaning. The first respondent took this narration from there, but where is every understanding's reach to the indications of Allama Muhaqqiq! It is stated in 'Durr-ul-Mukhtar':

After the soil has been poured over him, he is not extracted except for the rights of human beings, such as if the land was usurped or taken by pre-emption. The owner is given a choice between extracting him or leveling him with the ground, just as it is permissible to sow it and build upon it when he has decayed and become dust - Zail'i. | After pouring soil on the corpse, it will be extracted only due to human rights, such as if the land is usurped or taken through pre-emption, and the owner will have the choice to either extract it or level the ground, just as building on it and farming is

correct after the corpses have decayed and become dust - Zail'i (otherwise, farming in an endowed graveyard is not permissible according to anyone).

It is in 'Hidayah':

1 Al-Mu'jam al-Kabir, Hadith 5, Maktaba Faisalia, Beirut, 12/7 2 Durr-ul-Mukhtar, Chapter of Funeral Prayers, Matba' Mujtabai, Delhi, 1/126

फतावा रज़विया, जिल्द नहम (खंड 9)

और पैरोकारों के पास इमाम ज़ैलई के अलावा है ही क्या। इमाम ज़ैलई (रहमतुल्लाहि अलैहि) की रिवायत जिसे खुद मौलवी गंगोही साहब ने कुछ सोच-समझकर छोड़ दिया और फिकही रिवायत न लिखने के लिए अनुपलब्धता का बहाना बनाया। पहले मुजीब (उत्तरदाता) ने लिखा, दूसरे मुजीब (सलमहू) ने जवाब दिया, और कुछ तीसरे पैरोकारों ने बिना किसी आपत्ति के उसी को दोहराया। लेकिन गंगोही साहब ताड़ गए कि यहाँ बहस वक्फ कब्रिस्तान के बारे में है। मुझे किसी और खास वक्फ घर के लिए इजाज़त निकालना मुश्किल लगा; हल चलाना, खेती करना इमाम ज़ैलई की इस रिवायत में जायज़ हो रहा है। मैं इसे किस घर से जायज़ कर सकूँगा? इसलिए बड़ी चतुराई से इससे किनारा कर लिया जो उनके पैरोकारों की समझ में न आया। शायद अब पाठकों ने इस रिवायत का स्थान और सार समझ लिया होगा। सज्जनों! इससे तात्पर्य स्वामित्व वाली भूमि है, यानी अगर किसी की मिल्कियत (स्वामित्व) में कोई शव दफन कर दिया गया हो, तो जब वह पूरी तरह मिट्टी हो जाए, तो मालिक को अधिकार है कि वहां खेती करे, घर बनाए, जो चाहे करे।

क्योंकि स्वामित्व पूर्ण है और बाधा दूर हो गई है। और यह भी तब है जब यह उसकी अनुमति से हो, अन्यथा हड़पने (ग़सब) की स्थिति में उसे शव निकालने और ज़मीन बराबर करने का अधिकार है जैसा कि हदीस में है: "ज़ालिम की जड़ (यानी हड़पी हुई ज़मीन पर उगाई चीज़) का कोई अधिकार नहीं।" | क्योंकि मिल्कियत मुतलक (पूर्ण स्वामित्व) है और रुकावट खत्म हो गई है, और यह भी उसी सूरत में है जब यह उसकी अनुमति से हो, वरना ग़सब (हड़पने) की सूरत में उसे अधिकार है कि शव को निकाले और ज़मीन वैसी ही बराबर कर दे जैसी थी, क्योंकि हदीस में है कि ज़मीन पर ज़ालिम का कोई अधिकार नहीं।

अल्लामा मुदक़्क़िक़ अलई (क़ुद्दिसा सिर्रहु) ने 'दुर्रे मुख्तार' में इसे ऐसे बेहतरीन सिलसिले में पिरोया है जिसने असल अर्थ स्पष्ट कर दिया। पहले मुजीब ने यह रिवायत वहीं से ली, लेकिन अल्लामा मुदक़्क़िक़ के संकेतों तक हर किसी की समझ की पहुँच कहाँ! 'दुर्रे मुख्तार' में फरमाया:

मिट्टी डालने के बाद उसे नहीं निकाला जाता सिवाय इंसानी अधिकारों (हुकुकुल इबाद) के, जैसे कि ज़मीन हड़पी हुई हो या प्री-एम्प्शन (शफ़ा) के माध्यम से ली गई हो। मालिक को शव निकालने या उसे ज़मीन के बराबर करने के बीच विकल्प दिया जाता है, जैसा कि उस पर खेती करना और इमारत बनाना जायज़ है जब वह (शव) गल जाए और मिट्टी बन जाए - ज़ैलई। | मुर्दे को मिट्टी डालने

के बाद सिर्फ इंसानी अधिकारों (हुकुकुल इबाद) की वजह से निकाला जाएगा, जैसे ज़मीन हड़पी हुई हो या शफ़ा से ली गई हो, और मालिक को अधिकार होगा कि उसे निकाले या ज़मीन बराबर कर दे, जैसा कि उस पर इमारत बनाना और खेती-बाड़ी करना मुर्दों के गलने-सड़ने और मिट्टी हो जाने के बाद सही है - ज़ैलई (वरना वक्फ कब्रिस्तान में खेती करना किसी के नज़दीक जायज़ नहीं)।

'हिदाया' में है:

1 अल-मुअजम अल-कबीर, हदीस 5, मकतबा फैसलाया, बेरुत, 12/7 2 दुर्रे मुख्तार, नमाज़-ए-जनाज़ा का अध्याय, मतबा मुज्तबाई दिल्ली, 1/126

اور اذناب کے پاس ہے ہی کیا سوا امام زیلعی کے۔ روایت امام زیلعی رحمہ اللہ تعالیٰ علیہ جسے خود مولوی گنگوہی صاحب نے کچھ سوچ سمجھ کر چھوڑ دیا اور روایت فقہیہ نہ لکھنے کے لیے بے ملتی کا بہانہ لیا، مجیب اول نے لکھی مجیب دوم سلمہ نے جواب دیا، بعض اذناب سوم نے بے تعرض جواب پھر اسی کا اعادہ کیا، مگر جناب گنگوہی صاحب چرکے کہ یہاں مقبرہ وقف میں کلام ہے۔ مجھے خاص دوسرے مکان وقفی کی اجازت نکالنی مشکل پڑی ہے ، ہل چلانا ، کھیتی کرنا کہ اس روایت امام زیلعی میں جائز ہو رہا ہے، کس گھر سے جائز کرسکوں گا لہذا ہوشیارانہ اس سے عدول کیا جو اذناب کی سمجھ میں نہ آیا، غالباً اب تو ناظرین نے اس روایت کا محل و محصل سمجھ لیے ہوں گے۔ صاحبو! اس سے مقصود زمین مملوک، یعنی اگر کسی کی ملک میں کوئی میت دفن کر دی گئی ہو، تو جب وہ بالکل خاک ہو جائے مالک کو روا ہے کہ وہاں کھیتی کرے ، گھر بنائے جو چاہے کرے،

لان الملك مطلق والمانع زال و ھٰذا ایضاً اذا کان ذالك باذنه والا ففی الغصب له اخراج المیت وتسویة الارض کما فی لحدیث لیس لعرق ظالم حق-1 | کیونکہ ملک مطلق ہے اور مانع زائل ہو گیا اور یہ بھی اس صورت میں ہے جبکہ اس کی اجازت سے ہو، ورنہ غصب کی صورت میں اسے حق ہے کہ میت کو نکالے اور زمین برابر کرے جیسے کہ تھی، کیونکہ حدیث میں ہے کہ زمین پر ظالم کا حق نہیں۔

علامہ مدقق علائی قدس سرہ نے در مختار میں اسے ایسے نفیس سلسلے میں منسلک کیا جس نے معنی مرادی کو کھول دیا، مجیب اول نے یہ روایت وہیں سے اخذ کی، مگر علامہ مدقق کے اشارات تک ہر فہم کی دسترس کہاں ! در مختار میں فرمایا:

لا یخرج منه بعد اهالة التراب الالحق آدمی کان تکون الارض مغصوبة او اخذت بشفعة، ویخیر المالك بین اخراجه و مساواته بالارض کما جاز زرعه والبناء علیه اذا بلی وصار تراباً زیلعي-2 | مُردے کو مٹی ڈالنے کے بعد صرف حقوق العباد کی وجہ سے نکالا جائیگا، جیسے زمین مغصوبہ ہو یا شفعہ سے لی گئی ہو، اور مالک کو اختیار ہو گا کہ اسے نکالے یا زمین برابر کر دے، جیسے کہ اس پر عمارت بنانا اور کھیتی باڑی کرنا مردوں کے گلنے سڑنے اور مٹی ہو جانے کے بعد درست ہے زیلعی (ورنہ مقبرہ وقفی میں کھیتی کرنا کسی کے نزدیک جائز نہیں)

ہدایہ میں ہے:

1 المعجم الکبیر حدیث ۵ مکتبہ فیصلیہ بیروت ۱۲/۷ 2 در مختار باب صلوۃ الجنائز مطبع مجتبائی دہلی ۱/۱۲۶

Fatawa Razvia Volume 9

فِي غاية القبح ان يقبر فيه الموتى سنة و يزرع سنة 1	**It is extremely abominable that dead bodies be buried in it for one year and farming be done for another year. (T)**

The point is that in the eyes of the Wahhabis, the graves of Muslims, and especially the shrines of the noble Saints (upon them be Allah's pleasure), hold no value. Instead, they seek to insult them as much as possible and look for any excuse to have them destroyed and trampled. According to them, a human, once dead, becomes a stone, just as they themselves are in their life: "who hears not nor sees nor can avail you anything" (which neither hears, nor sees, nor is of any use to you. T). Whereas, in the Pure Shariah, the shrines of the Saints, and the general graves of Muslims, are worthy of honor and protected from desecration, to the extent that scholars state: "Stepping on a grave is a sin, for the roof of the grave is also the right of the deceased."

يأثم بوطء القبور لان سقف القبر حق الميت 2	**Stepping on a grave is a sin because the roof of the grave is also the right of the deceased.**

Even if the dust from the blessed sandals of Muhammad, the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him), were to fall on a Muslim's grave, the entire grave would be filled with the fragrance of the musk and amber of Paradise. If he were to place his noble foot on a Muslim's chest, face, head, or eyes, the person would remain ecstatic and exalted in its pleasure, blessing, comfort, and grace for eternity. He (the Prophet) states:

لان امشى على جمرة او سيف احبّ الىّ من ان امشى على قبر مسلم 3- رواه ابن ماجة بسند جيد عن عقبة بن عامر رضى الله تعالىٰ عنه۔	**Verily, walking on a live coal or a sword is more pleasing to me than walking on the grave of any Muslim. Ibn Majah narrated this with a good chain from 'Uqbah bin 'Amir (may Allah be pleased with him).**

And the Wahhabis are concerned with how to make Muslims build houses on graves, so people walk and move about, answer the call of nature, and sweepers carry their baskets.

Agar een ast pasand tu naseeb baada (If this is what pleases you, then may it be your destiny. T)

1. Al-Hidayah, Book of Waqf, Al-Maktabah al-Arabiyyah Karachi, 2/218.
2. Fatawa Quniyah, Book of Detested Matters and Preference, Famous Library at Bahmandiyah Calcutta India, p. 167.
3. Sunan Ibn Majah, Chapter on the Prohibition of Walking over Graves, H.M. Saeed Company Karachi, p. 113.

फतवा रज़विया खंड 9

فِي غاية القبح ان يقبر فيه الموتى سنة و يزرع سنة 1	**यह बात अत्यंत घृणित है कि एक साल उसमें मुर्दे दफ़न किए जाएं और एक साल खेती-बाड़ी की जाए। (त)**

बात यह है कि वहाबियों की नज़र में मुसलमानों की कब्रों, बल्कि विशेष रूप से औलिया-ए-कराम (अलैहिर्रिज़वान) की मज़ारात की कुछ कद्र नहीं, बल्कि वे यथासंभव उनका अपमान करना चाहते हैं और जिस किसी बहाने से वश चले उन्हें मिटाने और पामाल कराने की फ़िक्र में रहते हैं। उनके नज़दीक इंसान मर कर पत्थर हो गया, जैसे वे खुद अपनी ज़िंदगी में हैं कि "जो न सुने, न देखे और न तुम्हारे किसी काम आए" (त)। हालांकि पाक शरीयत में औलिया की मज़ारात और आम मुसलमानों की कब्रें सम्मान की हक़दार और अपमान से सुरक्षित हैं, यहाँ तक कि उलेमा फ़रमाते हैं: "कब्र पर पैर रखना गुनाह है क्योंकि कब्र की छत भी मैय्यत (मृतक) का हक़ है।"

يأثم بوطء القبور لان سقف القبر حق الميت 2	**कब्र पर पैर रखना गुनाह है क्योंकि कब्र की छत भी मैय्यत (मृतक) का हक़ है।**

यहाँ तक कि मुहम्मद रसूलुल्लाह (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) जिनके पाक जूतों की धूल अगर किसी मुसलमान की कब्र पर पड़ जाए तो पूरी कब्र जन्नत के मुश्क और अम्बर से महक उठे, अगर वे किसी मुसलमान के सीने, चेहरे, सर और आँखों पर अपना मुबारक कदम रखें तो वह उसकी लज़्ज़त, नेमत, राहत और बरकत में हमेशा-हमेशा के लिए सराबोर और सम्मानित रहे। आप फ़रमाते हैं:

لان امشی علی جمرة او سیف احبّ الیّ من ان امشی علی قبر مسلم 3- رواہ ابن ماجة بسند جید عن عقبة بن عامر رضی اللہ تعالیٰ عنہ	**"बेशक अंगारे या तलवार पर चलना मुझे इससे ज़्यादा पसंद है कि मैं किसी मुसलमान की कब्र पर चलूँ।" इसे इब्ने माजा ने एक अच्छी सनद (प्रमाण) के साथ उक़्बा बिन आमिर (रज़ियल्लाहु अन्हु) से रिवायत किया।**

और वहाबियों को इसकी फ़िक्र है कि किसी तरह मुसलमानों की कब्रों पर मकान बनें, लोग चलें-फिरें, शौच आदि करें, और भंगी अपने टोकरे लेकर चलें।

अगर ईं अस्त पसंद तू नसीब बादा (अगर यही तुझे पसंद है तो तुझे नसीब हो। त)

1. अल-हिदाया, किताबुल वक़्फ़, अल-मकतबतुल अरबिया कराची २/ २१८
2. फतावा कुनिया, किताबुल कराहियत वल इस्तेहसान, मकतबा मुश्तहरा बह्मंदिया कलकत्ता भारत पृ. १६७
3. सुनन इब्ने माजा, कब्रों पर चलने की मनाही का अध्याय, एच. एम. सईद कंपनी कराची पृ. ११३

पृष्ठ 948 का 476

فِي غاية القبح ان يقبر فيه الموتى سنة و يزرع سنة 1 یہ بات انتہائی قبیح ہے کہ ایک سال اس میں مردے دفن کیے جائیں اور ایک سال کھیتی باڑی کی جائے۔ (ت)

بات یہ ہے کہ وہابیہ کی نگاہ میں قبور مسلمین بلکہ خاص مزاراتِ اولیائے کرام علیہم الرضوان ہی کی کچھ قدر نہیں، بلکہ حتی الوسع ان کی توہین چاہتے ہیں اور جس حیلے سے قابو چلے انہیں نیست و نابود و پامال کرانے کی فکر میں رہتے ہیں ان کے نزدیک انسان مرا اور پتھر ہوا، جیسے وہ خود اپنی حیات میں ہیں کہ مالا یسمع ولا یبصر ولا یغني عنك شیئا (جو سنے نہ دیکھے اور نہ تیرے کچھ کام آئے، ت) حالانکہ شرع مطہر میں مزارات اولیاء تو مزارات عالیہ عام قبور مسلمین مستحق تکریم و ممتنع التوہین ، یہاں تک کہ علماء فرماتے ہیں :" قبر پر پاؤں رکھنا گناہ ہے کہ سقفِ قبر بھی حقِ میت ہے۔"

يأثم بوطء القبور لان سقف القبر حق الميت 2 قبر پر پاؤں رکھنا گناہ ہے کہ سقفِ قبر بھی حقِ میت ہے۔

حتی کہ محمد رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم جن کی نعلینِ پاک کی خاک اگر مسلمان کی قبر پر پڑ جائے تو تمام قبر جنت کے مشک، عنبر سے مہک اٹھے ، اگر مسلمان کے سینے اور منہ اور سر اور آنکھوں پر اپنا قدم اکرم رکھیں اس کی لذت و نعمت و راحت و برکت میں ابدالآباد تک سرشار و سرفراز رہے۔ وہ فرماتے ہیں :

لان امشی علی جمرۃ او سیف احبّ الیّ بے شک چنگاری یا تلوار پر چلنا مجھے اس سے زیادہ من ان امشی علی قبر مسلم 3- رواہ ابن پسند ہے کہ میں کسی مسلمان کی قبر پر چلوں، اسے ابنِ ماجۃ بسند جید عن عقبۃ بن عامر رضی ماجہ نے سندِ جید کے ساتھ عقبہ بن عامر رضی اللہ تعالیٰ اللہ تعالیٰ عنہ۔ عنہ سے روایت کیا۔

اور وہابیہ کو اس کی فکر ہے کہ کسی طرح مسلمانوں کو قبروں پر مکان بنیں، لوگ چلیں پھریں، قضائے حاجت کریں، بھنگی اپنے ٹوکرے لے چلیں۔

اگر ایں است پسند تو نصیب بادا (اگر یہی تجھے پسند ہے تو تجھے نصیب ہو۔ ت)

---

1 الہدایۃ کتاب الوقف المکتبۃ العربیۃ کراچی ۲/ ۲۱۸ 2 فتاویٰ قنیہ کتاب الکراہیتہ والاستحسان مکتبہ مشتہرہ بالہمانديہ کلکتہ بھارت ص ۱۶۷ 3 سنن ابن ماجہ باب ماجاء فی النہی عن المشی علی القبور ایچ ایم سعید کمپنی کراچی ص ۱۱۳

Volume Ninth Fatawa Razawiyya

[Table Start] There is no power or strength except with Allah, the Most High, the Supreme. And when the issue has received its full explanation, let us restrain the reins of the pen, praising Allah, Glory be to Him and Exalted, for what He has taught. And may the peace and blessings of Allah be upon our Master and Lord Muhammad, and upon his Family and his Companions. And Allah, Glory be to Him and Exalted, knows best, and His knowledge, glorified be His majesty, is most complete and most perfect, and His glory is most exalted and most wise. | Power and strength are only for Allah Almighty. Since I have explained the issue as it should be, now it is proper to stop the pen while praising Allah Almighty, for it is He Who granted knowledge. And may blessings and peace be upon our Master and Lord, Prophet Muhammad (peace and blessings of Allah be upon him), and upon your family and your companions. And Allah, Glory be to Him and Exalted, knows best, and His knowledge, glorified be His majesty, is most complete and most perfect, and His glory is most exalted and most wise. (T) [Table End]

Completed Written by His sinful servant Ahmad Raza Khan Barelvi, may he be forgiven, by the grace of Muhammad al-Mustafa, the Unlettered Prophet, peace and blessings of Allah be upon him and his family and companions. (Muhammad Sunni Hanafi Qadri Abdul Mustafa Ahmad Raza Khan (1301 AH))

Verily, this is the truth, and the truth is most worthy of being followed. (Indeed, this is the truth and the truth is more worthy of following. T)

(Muhammad Sultan) Everything stated herein is in accordance with the commands of Shariah and the righteous predecessors. Muslims should hold fast to all of them. May the Most High God grant a great reward to the learned author and make his work accepted by the special and the general. And may He not deprive me of the reward as well. And blessings and peace be upon the best of creation and his noble family and companions. The sinful and tearful Muhammad Abdullah, may he be forgiven.

[Table 2 Start] The above issues which the scholars of the firm religion and the luminaries of the Ummah (of the Messenger of Allah, peace and blessings of Allah be upon him) have written and explained are all truth, right, and correct. Those who doubt them are rejected and transgressors. | The above issues which the scholars of the firm religion and the luminaries of the Ummah of the Noble Messenger (peace and blessings of Allah be upon him) have written and explained are all correct and sound. Those who doubt them are rejected and transgressors. (T) [Table 2 End]

The weak servant, hopeful for the mercy of the Subtle, Muhammad Naeem Peshawari, may Allah forgive him, his parents, and all believing men and women. Amen, then Amen.

Page 477 of 948

खंड नौवाँ फ़तावा रज़विया

[तालिका प्रारंभ] शक्ति और सामर्थ्य केवल अल्लाह, जो अत्यंत उच्च और महान है, के पास है। और जब मसले को उचित रूप से स्पष्ट कर दिया गया है, तो आइए कलम की लगाम थाम लें, अल्लाह सुब्हानहु व तआला की प्रशंसा करते हुए उस ज्ञान के लिए जो उसने प्रदान किया है। और अल्लाह की कृपा और शांति हमारे आका और मौला मुहम्मद पर और उनके परिवार और उनके साथियों पर हो। और अल्लाह सुब्हानहु व तआला सबसे बेहतर जानता है, और उसका ज्ञान, जिसकी महिमा महिमामय है, सबसे पूर्ण और सबसे उत्तम है, और उसकी शान सबसे महान और सबसे प्रज्ञावान है। | शक्ति और सामर्थ्य केवल अल्लाह तआला के लिए है। चूँकि मैंने मसले को उचित रूप से बयान कर दिया है, तो अब अल्लाह तआला की प्रशंसा करते हुए कलम को रोक देना चाहिए, क्योंकि उसी ने ज्ञान प्रदान किया है। और हमारे आका और मौला हज़रत मुहम्मद सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम और उनके परिवार और उनके साथियों पर दुरूद और सलाम हो। और अल्लाह सुब्हानहु व तआला सबसे बेहतर जानता है, और उसका ज्ञान, जिसकी महिमा महिमामय है, सबसे पूर्ण और सबसे उत्तम है, और उसकी शान सबसे महान और सबसे प्रज्ञावान है। (त) [तालिका समाप्त]

समाप्त इसे उनके पापी सेवक अहमद रज़ा ख़ाँ बरेलवी ने लिखा है, उन्हें मुहम्मद अल-मुस्तफ़ा, उम्मी नबी, सल्लल्लाहु तआला अलैहि व आलिहि व सल्लम के माध्यम से क्षमा किया जाए। (मुहम्मद सुन्नी हनफी कादरी अब्दुल मुस्तफा अहमद रज़ा खां (1301 हिजरी))

निस्संदेह यही सत्य है, और सत्य ही अनुसरण किए जाने के अधिक योग्य है। (बेशक हक़ यही है और हक़ ही इत्तिबा के ज़्यादा लायक़ है। त)

(मुहम्मद सुल्तान) इसमें जो कुछ भी वर्णन किया गया है, वह शरीयत और नेक पूर्वजों के आदेशों के अनुसार है। मुसलमानों को इन सभी का पालन करना चाहिए। सर्वोच्च ईश्वर विद्वान लेखक को उत्तम प्रतिफल प्रदान करें और उन्हें विशिष्ट और आम लोगों के बीच स्वीकार्य बनाएं। और मुझे भी इसके प्रतिफल से वंचित न रखें। और सृष्टि के सर्वश्रेष्ठ और उनके नेक परिवार और साथियों पर शांति और आशीर्वाद हो। पापी मुहम्मद अब्दुल्ला, उन्हें क्षमा किया जाए।

[तालिका 2 प्रारंभ] दीन-ए-मतीन के विद्वानों और उम्मत (अल्लाह के रसूल सल्लल्लाहु अलैहि व आलिहि व सल्लम) के प्रतिष्ठित व्यक्तियों द्वारा लिखित और वर्णित उपरोक्त मसले पूरी तरह से सत्य, सही और दुरुस्त हैं। इनमें संदेह करने वाले खारिज और पापी हैं। | ऊपर दिए गए मसले जिन्हें दीन-

ए-मतीन के विद्वानों और रसूल-ए-मक़बूल सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम की उम्मत के प्रतिष्ठित लोगों ने लिखा और बयान किया है, वे सभी सही और दुरुस्त हैं। इनमें संदेह करने वाले खारिज और पापी हैं। (त) [तालिका 2 समाप्त]

कमजोर सेवक, दयालु की दया की आशा रखने वाला, मुहम्मद नईम पेशावरी, अल्लाह उन्हें, उनके माता-पिता और सभी मोमिनों (पुरुषों और महिलाओं) को क्षमा करे। आमीन, सुम्मा आमीन।

पृष्ठ 948 का 477

[جدول شروع] ولا حول ولا قوۃ الا باللہ العلی العظیم ہ واذا اخذت المسئلۃ حقھا من البیان ولنکف عنان القلم ہ حامدین اللہ سبحنہ وتعالئ علی ما علم وصلی اللہ تعالی علی سیدنا و مولانا محمد وآلہ واصحابہ وسلم واللہ سبحنہ و تعالی اعلم وعلمہ جل مجدہ اتم واحکم عز شانہ احکم۔ | طاقت وقوت صرف اللہ تعالئ کے لئے ہے جب میں نے مسئلہ کما حقہ بیان کردیا تو اب چاہئے اللہ تعالئ کی حمد کرتے ہوئے قلم کو روکیں کہ اسی نے علم دیا، اور درود و سلام ہو ہمارے آقا و مولا حضرت محمد صلی اللہ تعالئ علیہ وسلم پر اور آپ کی آل پر اور آپ کے صحابہ پر، واللہ سبحنہ و تعالئ اعلم وعلمہ جل مجدہ اتم واحکم عز شانہ احکم (ت) [جدول ختم]

تمت کتبہ عبدہ المذنب احمد رضا خاں بریلوی عفی عنہ بمحمد المصطفئ النبی الامی صلی اللہ تعالئ علیہ وآلہ وسلم (محمد سنی حنفی قادری عبدالمنطفی احمد رضا خاں (۱۳۰۱ھ))

ان ھذا لھو الحق والحق بالاتباع احق۔ (بے شک حق یہی ہے اور حق ہی اتباع کے زیادہ لائق ہے۔ ت)

(محمد سلطان) اس میں جو کچھ بیان ہے سب مطابق احکام شریعت و سلف صالحین ہے، مسلمان ان سب کو تمسک کریں، مؤلف علام کو خدائے برتر جزائے خیر دے اور مقبول خاص و عام کرے اور مجھ کو بھی ثواب سے محروم نہ فرمائے، والصلوۃ والسلام علی خیر الانام وآلہ واصحابہ الکرام۔ المذنب المدموع محمد عبد اللہ عفی عنہ

[جدول 2 شروع] مسائل بالا کہ علمائے دین متین وفضلائے امت (رسول مقبول صلی اللہ تعالئ علیہ والہ وسلم) تحریر و تقریر فرموند ہمہ حق و راست و درست اند۔ شاکی اینہا مردود و فاسق اند۔ |

اوپر والے مسائل جن کو علمائے دین متین وفضلائے امت رسول مقبول صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم نے لکھا ہے اور بیان کیا سب کے سب درست اور صحیح ہیں ان میں شک کرنیوالے مردود اور فاسق ہیں (ت) [جدول 2 ختم]

العبد الضعیف الراجی الی رحمۃ اللطیف محمد نعیم پشاوری عفی اللہ عنہ و عن والدیہ والمومنین والمومنات، آمین ثم آمین۔

صفحہ 477 از 948

Fatawa Ridawiyyah Volume 9

In the name of Allah, the Beneficent, the Merciful. Praise and blessings be upon His Messenger, our leader Muhammad, his family, his companions, the saints of his Ummah, and all their followers. Whatever the learned respondent, a master of intellectual and traditional sciences, a solver of complex branch and root issues, Maulana Muhammad Umar al-Din Sahib al-Hanafi al-Qadri (may Allah grant him the best reward), has written in response to the posed question, is all true and correct; the answer is incomparable and favored by people of intellect. According to the Hanafi school, digging up graves to level them into a field and building houses, etc., upon them is not permissible at all. The respondent master has investigated this excellently. No detail was overlooked; all the objections of the objectors have been very skillfully removed, and all the concerns of the deniers have been dispelled. Furthermore, the brilliant writing of the perfect scholar, scientist, practitioner, researcher of rational sciences, investigator of traditional arts, uprooter of the principles of innovators, suppressor of the delusions of the Najdis, supporter of the Sunnah, eradicator of trials, the Mujaddid of the present century, the crushing proof, Maulana al-Haj Ahmad Raza Khan Sahib (may Allah continue his blessings), struck the deniers like a thunderbolt. It thoroughly tore apart the 'enlightened' writing of Rashid Gangohi; no matter was left out that someone else would need to write about. Thus, this humble person did not find it appropriate to prolong it. Therefore, brevity was employed. No one would deny these fatwas except for the Najdi Wahhabis, Ismailis, Hindis, Ishaqis, Rashidi Gangohi Shaitanis (may Allah degrade them in this world and the hereafter). It is necessary for the Ahl al-Sunnah wa al-Jama'ah to avoid the company of these deceptive misguides and devilish falsehood-spreaders, and it is mandatory to sever all greeting and conversation with them. And Allah Almighty knows best the truth, and to Him is the return and final destination. Written by the seeker of the grace of his Powerful Lord, Abdul Nabi al-Ummi, Sayyid Haider Shah al-Qadri al-Hanafi (may Allah Almighty forgive his manifest and hidden sins, and protect him from the causes of punishment and deviation, by the sanctity of the Hashimi unlettered Prophet, may Allah Almighty's peace and blessings be upon him, his family, and his companions). Resident of Kutch Bhoj, known as Pir Bharwala, residing in Bombay.

Abdul Nabi al-Ummi al-Hanafi. Sayyid Haider Shah Qadri

In the name of Allah, the Beneficent, the Merciful.

[Arabic Box Text]: All praise is for Allah who gifted man with knowledge, hearing, and sight in life and after death. For the dead recognize visitors and hear voices. Perfect and most complete blessings and peace be upon the one who guided me to the straight path and protected us thereby from the fire of Hell, which is prepared for the disbelievers and the rebellious ones from the spreaders of falsehood.

[Urdu Box Text]: All praise be to Allah Almighty, Who bestowed upon man the power of knowing, hearing, and seeing in life and after death. Perfect and complete blessings and peace be upon that personage who showed us the straight path and protected us from the fire of Hell, which is for the disbelievers and rebels, and those who deny the Lord of the worlds, granting excellence over the knowledge of the accursed Satan and the first and last ones.

फ़तावा रज़विया जिल्द 9

बिस्मिल्लाह हिर्रहमान निर्रहीम। अल्लाह के रसूल, हमारे आका मुहम्मद, उनके परिवार, उनके साथियों, उनकी उम्मत के औलिया और उन सभी के अनुयायियों पर प्रशंसा और सलाम हो। आलिम जवाब देने वाले, अकल और नकल के विज्ञान के माहिर, शाखाओं और मूल के जटिल मुद्दों को हल करने वाले, मौलाना मुहम्मद उमर अल-दीन साहिब अल-हनफ़ी अल-कादरी (अल्लाह उन्हें बेहतरीन बदला दे) ने पूछे गए सवाल के जवाब में जो कुछ भी लिखा है, वह सब सच और सही है; जवाब बेमिसाल है और बुद्धिजीवियों द्वारा पसंद किया गया है। हनफ़ी मज़हब के अनुसार, कब्रों को खोदकर उन्हें मैदान के बराबर करना और उन पर मकान आदि बनाना कतई जायज़ नहीं है। जवाब देने वाले मौलाना ने इसकी बहुत अच्छी तरह से तहकीकात की है। कोई कसर नहीं छोड़ी गई; एतराज करने वालों के सभी एतराज बहुत कुशलता से दूर कर दिए गए हैं, और इनकार करने वालों की सभी शंकाओं को खत्म कर दिया गया है। इसके अलावा, कामिल आलिम, विद्वान, अमल करने वाले, तर्कशास्त्र के शोधकर्ता, पारंपरिक कलाओं के जांचकर्ता, नवाचार करने वालों के सिद्धांतों को जड़ से उखाड़ने वाले, नज्दियों के भ्रमों को दबाने वाले, सुन्नत के समर्थक, फितनों को मिटाने वाले, वर्तमान सदी के मुजद्दिद, अटूट प्रमाण, मौलाना अल-हज अहमद रज़ा खान साहिब (अल्लाह उनकी बरकतें जारी रखे) के शानदार लेखन ने इनकार करने वालों पर बिजली की तरह वार किया। इसने रशीद गंगोही के'प्रकाशित' लेखन के चिथड़े उड़ा दिए; कोई भी मामला ऐसा नहीं छूटा जिसे किसी और को लिखने की ज़रूरत पड़े। इसलिए, इस फकीर ने इसे लंबा करना उचित नहीं समझा। अतः संक्षिप्तता से काम लिया गया। इन फ़तवों का इनकार नज्दी वहाबी, इस्माइली, हिंदी, इसहाकी, रशीदी गंगोही शैतानी (अल्लाह उन्हें दुनिया और आखिरत में अपमानित करे) के अलावा कोई नहीं करेगा। अहले सुन्नत व जमाअत के लिए इन गुमराह करने वाले धोखेबाजों और शैतानी झूठ फैलाने वालों की सोहबत से बचना ज़रूरी है, और उनसे सलाम और बातचीत बंद करना अनिवार्य है। और अल्लाह तआला सच्चाई को सबसे बेहतर जानता है, और उसी की ओर लौटना और ठिकाना है। इसे अपने शक्तिशाली रब की कृपा के खोजी, अब्दुल नबी अल-उम्मी, सैय्यद हैदर शाह अल-कादरी अल-हनफ़ी ने लिखा है (अल्लाह तआला उनके ज़ाहिरी और बातिनी गुनाहों को माफ करे, और उन्हें हाशिमी उम्मी नबी के सदके में सज़ा और भटकाव के कारणों से बचाए, अल्लाह तआला का दुरूद और सलाम उन पर, उनके परिवार और उनके साथियों पर हो)। निवासी कच्छ भोज, जो पीर भरवाला के नाम से मशहूर है, बंबई में बसे हुए।

अब्दुल नबी अल-उम्मी अल-हनफ़ी। सैय्यद हैदर शाह कादरी

बिस्मिल्लाह हिर्रहमान निर्रहीम।

[अरबी बॉक्स पाठ]: सभी प्रशंसाएँ अल्लाह के लिए हैं जिसने मनुष्य को जीवन में और मृत्यु के बाद ज्ञान, सुनने और देखने की शक्ति प्रदान की। क्योंकि मुर्दे आगंतुकों को पहचानते हैं और आवाज़ें सुनते हैं। उस हस्ती पर पूर्ण और सर्वोत्तम दुरूद और सलाम हो जिसने मुझे सीधे मार्ग पर निर्देशित किया और हमें इसके द्वारा नरक की आग से बचाया, जो काफिरों और विद्रोहियों के लिए तैयार की गई है।

[उर्दू बॉक्स पाठ]: सब तारीफें उस अल्लाह तआला के लिए हैं जिसने इंसान को ज़िंदगी और मौत के बाद जानने, सुनने और देखने की कूवत बख्शी। अतम व अकमल, दुरूद व सलाम हो उस जात पर जिसने हमें सीधी राह दिखाई और हमें नारे जहन्नम जो काफिरों, सरकशों, रब्बुल आलमीन को झुठलाने वालों, शैतान लईन को अव्वलीन व आखरीन के इल्म पर फज़ीलत बख्शी।

पृष्ठ 478 का 948

فتاوی رضویہ جلد نہم

بسم اللہ الرحمن الرحیم حامدًا و مصلیاً و مسلماً علی رسولہ سیدنا محمدٍ و آلہ و اصحابہ و اولیاء امتہ و متبعیہم اجمعین۔ جو کچھ مولانائے مجیب جامع المعقول والمنقول حلالِ مہماتِ فروع واصول مولوی محمد عمر الدین صاحب الحنفی القادری "جزاہ اللہ تعالیٰ خیر الجزاء" نے صورتِ مسئولہ میں تحریر فرمایا ہے وہ سب حق صواب ہے ، جواب لاجواب ہے ، پسندیدہ اولی الالباب ہے۔ حنیف مذہب کے مطابق قبروں کو کھود کر صاف میدان کردینا اور اس پر مکان وغیرہ بنانا ہرگز درست نہیں، اس کی تحقیق مولائے مجیب نے عمدہ طور سے فرمائی ہے۔ کوئی دقیقہ فروگزاشت نہیں کیا، معترضوں کے کل اعتراض نہایت خوش اسلوبی سے اٹھادیئے ہیں اور منکروں کے سب خدشات دفع کردئے ہیں پھر تحریر مہرِ تنویر فاجلِ کامل، عالم، عامل، محقق علوم عقلیہ، مدقق فنون نقلیہ قاطع اصولِ مبتدعین، قامع اوہام نجدین، حامی سنن ماحی فتن مجددماتہ حاضرہ، حجۃ قاہرہ مولانا الحاج احمد رضا خاں صاحب ادام اللہ تعالیٰ فیوضاتہم تو منکروں پر بجلی سی کڑک پڑی ، رشید گنگوہی کی تحریر پر تنویر کے تو خوب پر نچے اڑائے، ایسا امر کوئی فروگزاشت نہ ہوا کہ جس کے لکھنے کی کسی کو تکلیف ہو۔ پس فقیر نے طول دینا مناسب نہ سمجھا۔ لہذا اختصار سے کام لیا گیا، ان فتووں کا انکار بجز، فرقہ نجدیہ وہابیہ، اسمعیلیہ، ہندیہ، اسحاقیہ، رشیدیہ گنگوہیہ شیطانیہ خذلہم اللہ تعالیٰ فی الدنیا والآخرۃ کے کوئی نہ کرے گا، اہل سنت و جماعت کو ان دجاجلہ ضلالت کیش وابالسہ ابطالت اندیش کی صحبت سے پرہیز کرنا لازم ہے اور سلام وکلام قطع کرنا واجب ہے۔ واللہ تعالیٰ اعلم بالصواب والیہ المرجع والمآب حررہ الراجی الی لطف ربہ القوی عبدالنبی الامی السید حیدر شاہ القادری الحنفی تجاوز اللہ تعالیٰ عن ذنبہ الجلی والخفی ، وحفظہ عن موجبات الکی

والغی بحرمۃ النبی الہاشمی الامی صلی اللہ تعالیٰ علیہ وعلی آلہ واصحابہ وسلم۔ متوطن کچہ بھوج المعروف بہ پیر بھر والہ نزیل بمبئی۔

عبدالنبی الامی الحنفی۔ سید حیدر شاہ قادری

بسم اللہ الرحمن الرحیم

الحمد للہ الذی رزق الانسان علماً وسمعاً وبصراً فی الحیات وبعد الممات، فالموتی یعرفون الزوار و یسمعون الاصوات والصلوۃ والسلام الاتمام الاکملان علی من ھدانی الی الصراط المستقیم وقانا بھا من نار الجحیم التی اعدت للکفرین والماردین من النیاشرۃ

سب تعریفیں اس اللہ تعالیٰ کے لیے ہیں جس نے انسان کو زندگی اور بعد از موت جاننے، سننے اور دیکھنے کی قوت بخشی، اتم واکمل ، درود و سلام ہو اس ذات پر جس نے ہمیں سیدھی راہ دکھائی اور ہمیں نار جہنم جو کافروں سرکشوں، رب العالمین کو جھٹلانے والوں شیطان لعین کو اولین و آخرین کے علم پر فضیلت

Fatawa Ridawiyya - Volume 9

(Left Column - Arabic): ...and those who belie the Lord of the worlds, and those who prefer the accursed Satan over the knowledge of the former and latter ones. May Allah Almighty send blessings upon him and his family, companions, sons, and all his group, and upon us through them, O Most Merciful of the merciful. To proceed: when I saw the response of the helper of the firm religion, our master Maulana Maulvi Muhammad Umar Deen, I found it in accordance with the Sunnah and a defender against fitna (trials). And I looked at the writing of Maulvi Rashid Ahmad Gangohi, and it is nothing but clear misguidance and a violation of the sanctity of the believers. And what the seal of researchers, the support of the meticulous, the scholar of the Ahl al-Sunnah, the reviver of the present century, my master and guide, my treasure and store for my today and tomorrow, Maulana Maulvi Muhammad Ahmad Raza Khan (may Allah grant him his gifts and grace) has refuted it with; I do not find a tongue to praise him, except that I say there is no doubt it is pure truth and clear right. May Allah grant them the best reward on behalf of Islam and Muslims for the sake of the Master of Messengers, peace and blessings of Allah be upon him. And Allah Almighty knows best what is correct, and with Him is the Mother of the Book. He said it with his mouth and recorded it with his pen, Muhammad, called Zafaruddin al-Muhammadi al-Sunni al-Hanafi al-Qadri al-Barkati al-Ridwi al-Mujaddidi al-Bihari al-Azeemabadi.

(Right Column - Urdu): ...has been prepared for the givers, protected from it. Peace and blessings be upon you and your family, companions, sons, and your entire group, and through their means upon us, O Most Merciful of the merciful. After this, when I carefully looked at the response of the helper of the firm religion, Maulana Maulvi Muhammad Umar Deen, I found it in accordance with the Sunnah and a defender against fitna (trials). And when I looked at the writing of Maulvi Rashid Ahmad Gangohi, I found it full of misguidance and insult to believers. And the seal of researchers, the support of the meticulous, the scholar of the Ahl al-Sunnah, the reviver of the present century, my master, my spiritual guide, my treasure for today and tomorrow, Maulana Ahmad Raza Khan (may Allah Almighty keep his gifts and grace continuous) refuted it; I do not have such a tongue to praise it. However, I will certainly say that undoubtedly it is clear truth and pure right. May Allah Almighty grant him a good reward on behalf of Islam and Muslims for the sake of the Master of Messengers, peace and blessings of Allah Almighty be upon him. Allah Almighty knows best what is correct, and with Him is the Mother of the Book. Muhammad

Zafaruddin Muhammadi Sunni Hanafi Qadri Barkati Razvi Mujaddidi Bihari Azeemabadi saw it with his own eyes and wrote it with his own pen. (T)

[Box at Bottom]: Muhammadi Sunni Hanafi Qadri Abul Barakati Muhammad Zafaruddin

(बायां कॉलम - अरबी): ...और उन लोगों को जो संसार के पालनहार को झुठलाते हैं, और उन लोगों को जो शापित शैतान को पूर्ववर्तियों और परवर्तियों के ज्ञान पर प्राथमिकता देते हैं। अल्लाह तआला उन पर और उनके परिवार, साथियों, बेटों और उनके पूरे समूह पर, और उनके माध्यम से हम पर रहमत और शांति भेजे, ऐ सबसे दयालु। इसके बाद: जब मैंने दीन के मददगार, हमारे आका मौलाना मौलवी मुहम्मद उमर दीन के जवाब को देखा, तो उसे सुन्नत के अनुकूल और फितने (उपद्रव) का रक्षक पाया। और मैंने मौलवी रशीद अहमद गंगोही के लेखन को देखा, और वह स्पष्ट गुमराह करने और मोमिनों की गरिमा का उल्लंघन करने के अलावा और कुछ नहीं है। और शोधकर्ताओं की मुहर, सूक्ष्म विचारकों के आधार, सुन्नी विद्वान, वर्तमान शताब्दी के पुनरुद्धारकर्ता, मेरे आका और मार्गदर्शक, आज और कल के लिए मेरे खजाने, मौलाना मौलवी मुहम्मद अहमद रज़ा खान (अल्लाह तआला उनकी कृपा और अनुग्रह निरंतर रखे) ने जो इसका खंडन किया है; मेरे पास उनकी प्रशंसा करने के लिए शब्द नहीं हैं, सिवाय इसके कि मैं कहूं कि इसमें कोई संदेह नहीं है कि यह स्पष्ट सच और शुद्ध हक़ है। अल्लाह उन्हें रसूलों के सरदार (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) के सदके में इस्लाम और मुसलमानों की ओर से बेहतरीन बदला अता फरमाए। अल्लाह तआला ही बेहतर जानता है कि क्या सही है, और उसी के पास मूल पुस्तक है। मुहम्मद, जिन्हें ज़फ़रुद्दीन अल-मुहम्मदी अल-सुन्नी अल-हनफी अल-क़ादरी अल-बरकाती अल-रज़वी अल-मुजद्दिदी अल-बिहारी अल-अज़ीमाबादी कहा जाता है, ने इसे अपनी जुबान से कहा और अपनी कलम से लिखा।

(दायां कॉलम - उर्दू): ...देने वालों के लिए तैयार की गई है, उससे बचाया। आप पर और आपके परिवार, साथियों, बेटों और आपके पूरे समूह पर और उनके माध्यम से हम पर दुरूद और सलाम हो, ऐ सबसे दयालु। इसके बाद, जब मैंने दीन के मददगार मौलाना मौलवी मुहम्मद उमर दीन के जवाब को गौर से देखा, तो उसे सुन्नत के अनुकूल और फितने (उपद्रव) का रक्षक पाया। और जब मौलवी रशीद अहमद गंगोही के लेखन को देखा, तो उसे गुमराह करने वाला और मोमिनों (ईमान वालों) के अपमान से भरा हुआ पाया। और शोधकर्ताओं की मुहर, सूक्ष्म विचारकों के आधार, सुन्नी विद्वान, वर्तमान शताब्दी के पुनरुद्धारकर्ता, मेरे आका, मेरे आध्यात्मिक गुरु, आज और कल के लिए मेरा खजाना, मौलाना अहमद रज़ा खान (अल्लाह तआला उनकी कृपा और अनुग्रह निरंतर रखे) ने जो इसका खंडन किया है, मेरे पास ऐसी भाषा नहीं है कि मैं उसकी प्रशंसा कर सकूं। हाँ, इतना ज़रूर कहूँगा कि निस्संदेह यह स्पष्ट सच और शुद्ध हक़ है। अल्लाह तआला उन्हें रसूलों के सरदार

(सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) के सदके में इस्लाम और मुसलमानों की ओर से बेहतरीन बदला अता फरमाए। अल्लाह तआला ही बेहतर जानता है कि क्या सही है, और उसी के पास मूल पुस्तक है। मुहम्मद ज़फ़रुद्दीन मुहम्मदी सुन्नी हनफी क़ादरी बरकाती रज़वी मुजद्दिदी बिहारी अज़ीमाबादी ने इसे अपनी आँखों से देखा और अपनी कलम से लिखा है। (त)

[नीचे बॉक्स]: मुहम्मदी सुन्नी हनफी क़ादरी अबुल बरकाती मुहम्मद ज़फ़रुद्दीन

(بایاں کالم - عربی): والمکذبین لرب العالمین، والمفضلین للشیطان اللعین علی علم الاولین والأخرین صلی اللہ تعالی علیہ وعلی الہ واصحابہ وابنہ وحزبہ اجمعین، وعلینا بھم یا ارحم الراحمین، وبعد فلما رأیت جواب ناصر الدین المتین ومولنا المولوی محمد عمر الدین وجدتہ موافقا للسنۃ دافعاً للفتنۃ، ونظرت تحریر المولوی رشید احمد گنگوہی فما ھو الاضلال مبین وھتك لحرمۃ المومنین، ومارد بہ علیہ خاتم المحققین عمدۃ المدققین عالم اھل السنۃ مجدد المائۃ الحاضرۃ سیدی و مرشدی و کنزی وذخري لیومي وغدی مولنا المولوی محمد احمد رضا خان اید ہ اللہ لواھب الفیض والمواھب فلا اجد لسانا ثناء علیہ غیر ان اقول لا شك انہ الصدق الصراح والحق القراح فجز اھم اللہ خیر الجزاء عن الاسلام والمسلمین بحرمۃ سید المرسلین صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم، واللہ تعالی اعلم بالصواب وعندہ ام الکتاب قالہ بفمہ ورقمہ بقلمہ محمد المدعو بظفر الدین المحمدی السني الحنفي القادری البرکاتی الرضوی المجددی البھاروی العظیم آبادی۔

(دایاں کالم - اردو): دینے والوں کے لیے تیار کی گئی ہے، سے بچایا، درود وسلام ہو آپ پر اور آپ کے آل، اصحاب، بیٹے، گروہ سب پر اور ان کے وسیلہ سے ہم پر یا ارحم الراحمین، بعد ازیں جب میں نے دین متین کے ناصر مولانا مولوی محمد عمر دین کے جواب کو غور سے دیکھا تو اسے سنت کے موافق اور فتنہ سے مدافع پایا، اور مولوی رشید احمد گنگوہی کی تحریر پر نظر کی تو اسے گمراہ کن اور توہین مومنین سے مملو پایا، اور خاتم المحققین، عمدۃ المدققین، عالم اہل سنت، مجدد مائتہ حاضرہ میرے سردار، میرے مرشد میرے کل اور آج کے لیے ذخیرہ و خزانہ مولانا احمد رضا خاں (اللہ تعالیٰ اس کی عطاؤں اور فیض کو ہمیشہ جاری رکھے) نے جو اس پر رد فرمایا میرے پاس ایسی زبان نہیں کہ اس کی تعریف کر سکوں، ہاں اتنا ضرور کہوں گا کہ بے

شک وہ صاف سچ اور خالص حق ہے، اللہ تعالٰی سید المرسلین صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم کے طفیل اسلام اور مسلمانوں کی طرف سے انہیں جزائے خیر عطا فرمائے، اللہ تعالٰی بہتر جانتا ہے اور اصل کتاب اسی کے پاس ہے۔ محمد ظفر الدین محمدی سنی حنفی قادری برکاتی رضوی مجددی بہاروی عظیم آبادی نے اسے بزبانِ خو دیکھا ہے اور اپنے قلم سے لکھا ہے۔(ت)

[نیچے باکس]: محمدی سنی حنفی قادرے ابوالبرکاتی محمد ظفر الدین

Fatawa Rizvia Volume 9

Problem 139: From the old city, submitted by Rehmat Ali, servant of the shrine of Shahdana (May Allah's mercy be upon him), 9 Rajab-ul-Murajab 1338 AH. What do the scholars of religion say regarding this issue: Zaid was the owner of the mentioned land through a contract, on which shopkeepers used to sit with stalls. He had fixed a daily rate of two to four paise for the shopkeepers. After a few days, within the contract period, Amr took the contract from Zaid and fixed a higher rent than before. However, the shopkeepers could not pay the higher rent as per Amr's wish and were forced to go and sit on the land of the Takiyah (shrine annex), which is adjacent to the said land, with the consent of the Faqir (the ascetic/caretaker). They started giving two paise daily to the Faqir per shop. Amr disliked this and complained to his religious brothers among the butchers. Consequently, Amr the contractor and most of Amr's brothers, who are also buyers of the items there, unanimously pressured the Faqir and said that out of the two paise, every shopkeeper should give one and a half paise to Amr and half to the Faqir. In such a situation, is it permissible for Amr to take one and a half paise, given that the shopkeepers no longer have any connection to Amr's land? Secondly, is it permissible or impermissible for shopkeepers to sit with stalls on the land of the Takiyah and give rent to the Faqir, and for the Faqir to take it? Explain and you will be rewarded.

Answer: Both things are Haraam (forbidden). Neither can the land of the Takiyah be given on rent to shopkeepers, nor can their rent be Halal (permissible) for the Faqir. And if the Faqir had any land owned by himself, then forcing him to give even a single penny to Amr would have been strictly Haraam, so this is Haraam upon Haraam. And Allah Almighty knows best.

Problem 140 to 145: From Sherkot, submitted by Mazharul Hasan Sahib, 9 Rabi-ul-Akhir 1339 AH. What do the scholars of religion say regarding these issues: (1) According to Islamic Sharia, is the sale and mortgaging etc. of a graveyard permissible or not? (2) Can graveyard land be someone's personal property or not? And how is it to create a specific graveyard and what are the Sharia rulings regarding it? (3) How is it to demolish or level graves and cultivate crops etc. in them? And if a person being a Muslim does this, what is the Sharia ruling for him? (4) Is a Muslim authorized by Sharia to stop someone they see demolishing, desolating, or digging up graves? (5) How is it to urinate, defecate, throw filth etc. in the graveyard or its related land, or to make the graveyard a repository of filth?

फ़तावा रज़विया जिल्द नहम (नौ)

मसला 139: शहर-ए-कुहना से, मुस्तौ़ला (प्रस्तुतकर्ता) रहमत अली, खादिम मज़ार शाहदाना (रहमतुल्लाह तआला अलैह), 9 रजब-उल-मुरज्जब 1338 हिजरी। क्या फ़रमाते हैं उलेमा-ए-दीन इस मसले में कि: ज़ैद उस ज़मीन का पट्टे के ज़रिए मालिक था जिस पर दुकानदार लोग खुमचा (ट्रे) लगाकर बैठ जाते हैं, और उसने दुकानदारों पर दो-दो, चार-चार पैसे रोज़ाना के हिसाब से तय कर रखे थे। कुछ दिनों के बाद, पट्टे की अवधि के भीतर ही, अम्र ने ज़ैद से पट्टा ले लिया और दुकानदारों पर पहले से ज़्यादा किराया तय कर दिया। लेकिन दुकानदार अम्र की इच्छा के अनुसार ज़्यादा किराया नहीं दे सके और मजबूर होकर 'तकिया' (मज़ार से जुड़ी ज़मीन) की ज़मीन पर, जो उक्त ज़मीन के साथ जुड़ी हुई है, फ़क़ीर की रज़ामंदी से जा बैठे और फ़क़ीर को दो पैसे रोज़ाना हर दुकानदार देने लगा। अम्र को यह बात पसंद नहीं आई और उसने अपने दीनी भाइयों (कसाई बिरादरी) से शिकायत की। चुनांचे ठेकेदार अम्र और अम्र के ज़्यादातर भाइयों ने, जो वहाँ की चीज़ों के खरीदार भी हैं, सबने मिलकर फ़क़ीर पर दबाव डाला और कहा कि उन दो पैसों में से डेढ़ पैसा अम्र को और आधा पैसा फ़क़ीर को हर दुकानदार दे। ऐसी सूरत में अम्र का डेढ़ पैसा लेना, जबकि दुकानदारों का अम्र की ज़मीन से अब कोई वास्ता नहीं है, सही है या नहीं? दूसरा, तकिया की ज़मीन में दुकानदारों का खुमचा लगाकर बैठना और फ़क़ीर को किराया देना और फ़क़ीर का लेना जायज़ है या नाजायज़? बयान फ़रमाएं, सवाब मिलेगा।

जवाब: दोनों बातें हराम हैं। न तकिया की ज़मीन दुकानदारों को किराए पर दी जा सकती है और न ही उनका किराया फ़क़ीर के लिए हलाल हो सकता है। और अगर फ़क़ीर की अपनी कोई मलकीयती ज़मीन होती, तो उस पर दबाव डालकर अम्र को एक कौड़ी भी दिलवाना कतई हराम था, तो यह तो हराम दर हराम है। वल्लाह तआला आलम।

मसला 140 से 145: शेरकोट से, मुस्तौ़ला मज़हरुल हसन साहब, 9 रबी-उल-आख़िर 1339 हिजरी। क्या फ़रमाते हैं उलेमा-ए-दीन इन मसाइल के बारे में कि: (1) शरीयत-ए-इस्लाम की रू से कब्रिस्तान की खरीद-फरोख्त (बेच) और गिरवी (रहन) वगैरह जायज़ है या नहीं? (2) क्या कब्रिस्तान की ज़मीन किसी की निजी संपत्ति हो सकती है या नहीं? और विशेष कब्रिस्तान बनाना कैसा है और इसके बारे में शरीयत के क्या हुक्म हैं? (3) कब्रों को गिराकर या बराबर करके उसमें खेती-बाड़ी वगैरह करना कैसा है? और अगर कोई मुसलमान ऐसा करे तो उसके लिए शरीयत का क्या हुक्म है? (4) कब्रों को गिराते, उजाड़ते या खोदते देखकर क्या कोई मुसलमान ऐसा करने वाले को रोकने का शरीयत में

अधिकार रखता है या नहीं? (5) कब्रिस्तान में या उसकी संबंधित ज़मीन में पेशाब-पाखाना करना, गंदगी वगैरह फेंकना या कब्रिस्तान को गंदगी का ढेर बनाना कैसा है?

पेज 480 / 948

فتاوٰی رضویہ جلد نہم

مسئلہ ۱۳۹: از شہر کہنہ مسئولہ رحمت علی خادم مزار شاہدانہ رحمۃ اللہ تعالٰی ۹ رجب المرجب ۱۳۳۸ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ زید ارضی مندرج جس پر دکاندار لوگ خوانچہ لگا کر بیٹھ جاتے ہیں بذریعہ ٹھیکہ مالک تھا اور دکانداروں پر دو دو چار چار پیسے روزانہ کے حساب سے مقرر کر لیے تھے بعد چند روز کے اندرون میعاد ٹھیکہ زید سے عمرو نے ٹھیکہ لگا لیا اور دکانداروں پر اول سے زیادہ کرایہ مقرر کر لیا، مگر دکاندار لوگ کرایہ زیادہ حسب منشاء عمرو کو نہ دے سکے اور مجبور ہو کر اراضی تکیہ جو متصل مندرج کے ہے حسب رضامندی فقیر جا بیٹھے اور فقیر کو دو پیسے روز ہر دکان دار دینے لگا، عمرو کو یہ بات ناپسند خاطر ہوئی اور دینی برادروں قصابان سے اپنا عذر کیا، چنانچہ عمرو ٹھیکیدار و نیز اکثر برادران عمرو کہ جو وہاں کی اشیاء کے خریدار بھی ہیں باتفاق سب نے فقیر پر دباؤ ڈالا اور کہا کہ منجملہ دو پیسے کے ڈیڑھ پیسہ عمرو کو اور نصف فقیر کو ہر دکاندار دے، ایسی صورت میں عمرو کو ڈیڑھ پیسہ لینا کہ جو عمرو کی زمین سے کسی دکاندار کو کچھ تعلق نہیں ہے چاہئے یا نہیں؟ دوم تکیہ کی اراضی میں دکانداروں کو خوانچہ لگا کر بیٹھنا اور کرایہ فقیر کو دینا اور فقیر کو لینا جائز ہے یا ناجائز ہے؟ بینوا توجروا

الجواب: دونوں باتیں حرام ہیں، نہ تکیہ کی زمین دکان داروں کو کرایہ پر دی جاسکتی ہے نہ ان کا کرایہ فقیر کو حلال ہو سکتا ہے، اور اگر فقیر کی اپنی مملوک کوئی زمین ہوتی تو اس پر دباؤ ڈال کر کوئی کوڑی عمرو کو دلوانا قطعاً حرام تھا تو یہ حرام در حرام۔ واللہ تعالٰی اعلم

مسئلہ ۱۴۰ تا ۱۴۵: از شیر کوٹ مسئولہ مظہر الحسن صاحب ۹ ربیع الآخر ۱۳۳۹ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ : (۱) از روئے شریعت اسلام قبرستان کی بیع و رہن وغیرہ جائز

ہے یا نہیں؟ (۲) قبرستان کی زمین کسی کی ذاتی ملکیت ہو سکتی ہے یا نہیں، اور مخصوص قبرستان بنانا کیسا ہے اور اسی کی نسبت کیا احکام شرعی ہیں؟ (۳) قبروں کو منہدم یا مسمار کر کے اس میں کھیتی وغیرہ کرنا کیسا ہے، اور اگر کوئی شخص مسلمان ہو کر ایسا کرے تو اس کے لیے شرعاً کیا حکم ہے؟ (۴) قبروں کو منہدم یا ویران کرتے یا کھودتے ہوئے دیکھ کر کوئی مسلمان ایسا کرنے والے کو روکنے کا شرعاً مجاز ہے یا نہیں؟ (۵) قبرستان میں یا اس کی متعلقہ زمین میں بول و براز، گندگی وغیرہ پھینکنا یا قبرستان کو گندگی کا مخزن بنانا کیسا ہے؟

Fatawa Ridawiyya, Volume 9

...how is it [to build it] and what is the ruling regarding it? (6) To what extent is the sanctity of the graveyard obligatory upon Muslims?

The Answer: (1 & 2) General graveyards are waqf (endowments), and the sale or mortgage of waqf is haram (forbidden). Even a private graveyard owned by someone, where they have buried the dead but have not formally endowed it for this purpose, cannot have the locations of the graves sold or mortgaged because it involves insulting the deceased Muslims, and insulting them is haram. (3) It is haram, unless someone buried a dead person in another's owned land without their permission and they did not authorize it; in that case, the owner has the right to have it removed, clear their land, and has the choice of using it for farming, building, or anything else. (4) It is obligatory upon every Muslim to prevent, to the best of their ability, anyone who commits such a severe crime. Whoever shirks this responsibility will face the torment of fire like a transgressor (fasiq).

Allah Almighty says: "They did not forbid one another from the evil they committed. What an evil thing they were doing." (Al-Quran 5:79)

Allah Almighty says: "They did not forbid one another from the evil they committed. What an evil thing they were doing." (Al-Quran 5:79)

(5) It is haram, haram, severely haram, and the perpetrator deserves the punishment of Hellfire and the wrath of the Almighty. (6) It is not permissible to walk, sit, or step on the graves of Muslims. So much so that the Imams (jurists) have specified that it is haram to walk on a new path created in a graveyard. If one's relatives are buried in such a way that other graves have surrounded them, making it impossible to reach them without stepping on other graves, then one should recite Fatihah from a distance and not go close. More details are in our treatise 'Ahlak-ul-Wahabiyyin'. And Allah Almighty knows best.

Problem 146: From Sikandarpur, District Ballia, Patti Gali, questioned by Muhammad Hussain and Ata Hussain, 22 Ramadan 1339 AH. What do the scholars of religion say about this: Zainab gifted her landed property to her grandson Bakr and wrote that she has gifted all its appendages and belongings. Bakr sold this property to Amr along with all rights, appendages, and belongings. Within it is also the burial ground of the donor (Zainab). So, is it permissible for the buyer Amr to build a grave there or not? Is it permissible for the buyer Amr to take possession of this burial place, eat the fruit of the mango trees, etc., or take the wood? And if that burial ground is without a

wall, unrepaired and in bad condition, can Amr have it built? Explain and be rewarded.

---

1. Al-Quran 5/79 Page 481 of 948

फतावा रजविया, जिल्द 9

...बनाना कैसा है और इसके बारे में क्या हुक्म है? (6) मुसलमानों पर कब्रिस्तान की हुरमत (पवित्रता) किस हद तक वाजिब है?

अल-जवाब: (1 और 2) आम कब्रिस्तान वक्फ होते हैं, और वक्फ की बिक्री हराम है और गिरवी रखना हराम है। और जो खास कब्रिस्तान किसी की मिल्कियत हो जिसमें उसने मुर्दे दफन किए हों लेकिन इस काम के लिए वक्फ न किया हो, वह भी कब्रों के स्थानों को न बेच सकता है न गिरवी रख सकता है क्योंकि इसमें मुसलमान मुर्दों की तौहीन (अपमान) है, और उनकी तौहीन हराम है। (3) हराम है, लेकिन अगर किसी ने किसी की निजी जमीन में बिना उसकी इजाजत के मुर्दा दफन कर दिया हो और उसने उसे जायज न रखा हो, तो उसे उसे निकलवाने और अपनी जमीन खाली करने और खेती या इमारत हर चीज का अधिकार है। (4) जो व्यक्ति ऐसे गंभीर अपराध का दोषी हो, हर मुसलमान पर वाजिब है कि अपनी सामर्थ्य के अनुसार उसे रोके। जो इसमें आनाकानी करेगा, उसे फासिक (अधर्मी) की तरह आग का अज़ाब होगा।

अल्लाह तआला फरमाता है: वे एक-दूसरे को उन बुरे कामों से नहीं रोकते थे जो वे करते थे। बहुत ही बुरा था जो वे किया करते थे। (अल-कुरान 5:79)

अल्लाह तआला फरमाता है: वे एक-दूसरे को उन बुरे कामों से नहीं रोकते थे जो वे करते थे। बहुत ही बुरा था जो वे किया करते थे।

(5) हराम, हराम, सख्त हराम है और इसका अपराधी नर्क की आग और अल्लाह के क्रोध का पात्र है। (6) मुस्लिम कब्रों पर चलना जायज नहीं, बैठना जायज नहीं, उन पर पैर रखना जायज नहीं, यहाँ तक कि इमामों ने स्पष्ट किया है कि कब्रिस्तान में जो नया रास्ता बना हो उस पर चलना हराम है। और जिनके रिश्तेदार ऐसी जगह दफन हों कि उनके आसपास और कब्रें हो गई हों और उन कब्रों पर पैर रखे बिना उन तक पहुँचना संभव न हो, तो दूर से ही फातिहा पढ़े और पास न जाए। अधिक विवरण हमारे रिसाले 'अहलाक-उल-वहाबिय्यीन' में है। और अल्लाह तआला बेहतर जानता है।

मसला 146: सिकंदरपुर, जिला बलिया, पट्टी गली से, मुहम्मद हुसैन और अता हुसैन द्वारा पूछा गया, 22 रमज़ान 1339 हिजरी। धर्म के विद्वान क्या कहते हैं कि ज़ैनब ने अपने नवासे बक्र को अपनी ज़मींदारी हिबा (उपहार) की और लिख दिया कि इसके सभी सामान और संबंधित चीजें हिबा कर दीं। बक्र ने उस ज़मींदारी को सभी अधिकारों और संबंधित चीजों के साथ अम्र के हाथ बेच दिया। उसके

अंदर दानकर्ता की कब्रगाह भी है। तो क्या उसके अंदर खरीदार अम्र की कब्र बनाना जायज है या नहीं? या उस कब्रगाह पर खरीदार अम्र का अधिकार जमाना, आम के पेड़ों आदि का फल खाना या लकड़ी लेना जायज है या नहीं? और अगर वह कब्रगाह बिना दीवार के, बिना मरम्मत के और खराब हालत में हो, तो क्या अम्र उसे बनवा सकता है या नहीं? बयान फरमाएं पुण्य मिलेगा।

---

1. अल-कुरान 5/79 पृष्ठ 948 का 481

بنانا کیسا اور اس کی نسبت کیا حکم ہے؟ (۶) مسلمانوں پر قبرستان کی حرمت کس حد تک واجب ہے؟

الجواب: (۱ و ۲) عامہ قبرستان وقف ہوتے ہیں، اور وقف کی بیع حرام و رہن حرام ہے، اور جو خاص قبرستان کسی کی ملک ہو جس میں اس نے مردے دفن کئے ہوں مگر اس کام کے لیے وقف نہ کیا ہو، کہ وہ بھی مواضعِ قبور کو نہ بیچ سکتا ہے نہ رہن کرسکتا ہے کہ اس میں توہینِ اموات مسلمین ہے، اور ان کی توہین حرام ہے۔ (۳) حرام ہے مگر یہ کہ کسی کی مملوک زمین میں بے اس کی اجازت کے کسی نے مردہ دفن کر دیا ہو اور اس نے اسے جائز نہ رکھا تو اسے اس کے نکلوا دینے اور اپنی زمین خالی کر لینے اور کھیتی وعمارت ہر شے کا اختیار ہے۔ (۴) جو شخص ایسے جرم شدید کا مرتکب ہو ہر مسلمان پر واجب ہے کہ بقدر قدرت اسے روکے جو اس میں پہلو تہی کرے گا اسے فاسق کی طرح عذاب نار ہوگا۔

اللہ تعالٰی فرماتا ہے: وہ ایک دوسرے کو برے کام سے روکتے نہ تھے، وہ سب کیا ہی برا کام کرتے تھے۔ (ت) **قَالَ تَعَالٰی كَانُوْا لَا يَتَنَاهَوْنَ عَنْ مُّنْكَرٍ فَعَلُوْهُ لَبِئْسَ مَا كَانُوْا يَفْعَلُوْنَ۔**

(۵) حرام، حرام، سخت حرام ہے اور اس کا مرتکب مستحق عذاب نار و غضب جبار ہے۔ (۶) قبور مسلمین پر چلنا جائز نہیں، بیٹھنا جائز نہیں، ان پر پاؤں رکھنا جائز نہیں، یہاں تک کہ ائمہ نے تصریح فرمائی ہے کہ قبرستان میں جو نیا راستہ پیدا ہوا اس میں چلنا حرام ہے۔ اور جن کے اقربا ایسی جگہ دفن ہوں کہ ان کے گرد اور قبریں ہو گئیں اور اسے ان قبور تک اور قبروں پر پاؤں

رکھے بغیر جانا ممکن نہ ہو، دور ہی سے فاتحہ پڑھے اور پاس نہ جائے زیادہ تفصیل ہمارے رسالہ اہلاک الوہابیین میں ہے۔ واللہ تعالیٰ اعلم

مسئلہ ۱۴۶: از سکندر پور ضلع بلیا پٹی گلی مسئولہ محمد حسین و عطا حسین ۲۲ رمضان ۱۳۳۹ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین کہ زینب نے اپنے نواسہ بکر کو اپنی زمینداری ہبہ کی اور لکھ دیا کہ توابع لواحق اس کے جو کچھ ہے ہبہ کردیا۔ بکر نے عمرو کے ہاتھ اس زمینداری کو مع جملہ حقوق توابع لواحق بیچ کر دیا اور اس کے اندر قبرگاہ واہبہ کا بھی ہے تو اس کے اندر عمرو مشتری کی قبر بنانا جائز ہے یا نہیں یا اس قبرگاہ پر متصرف ہونا مشتری عمرو کا درختانِ انبہ وغیرہ کا پھل کھانا یا لکڑی لینا جائز ہے یا نہیں؟ اور وہ قبرگاہ بغیر دیوار بے مرمت اور خراب ہو تو عمرو بنوا سکتا ہے یا نہیں؟ بینوا توجروا

---

1. القرآن ۵ / ۷۹ صفحہ 481 از 948

Volume 9 Fatawa Razawiyya

The Answer: Cemeteries that are waqf (endowed) are exempt from donation (hiba) and sale. The buyer's grave can also be located in it. He can also carry out repairs to the grave of the donor etc. The trees that are in it are the property of the buyer; he may do with them as he wishes. Even if the cemetery is waqf, its trees are not waqf, as is explained in al-Hindiyyah and others. (As stated in Al-Hindiyyah etc.) And Allah Almighty knows best.

Issue 714: From Calcutta, Zakaria Street No. 22, submitted by Maulvi Abdul Haq Sahab and Maulvi Mubarak Karim Sahab via Haji Lal Khan Sahab, 26th Ramadan-ul-Mubarak 1337 AH. What do the scholars of the religion say on this matter: a special disciple had prepared some land and buildings near a shrine at his own expense for his office and warehouse, and also so that visitors could stay and gatherings could be held there. He neither made these lands and buildings waqf, nor did the Sheikh ever nominate them during his lifetime, nor after the Sheikh's death as a tomb. Due to commercial necessity, he has mortgaged these lands and buildings for a large sum. Now, the Sheikh's son says to transfer all these buildings etc. to his name. Can this claim by the Sheikh's son be correct? Does the disciple have the right to transfer this property to the Sheikh's son before the mortgage is cleared? And can the Sheikh's son have the disciple's property transferred to his name through force and coercion? Does the Sheikh or the Sheikh's heirs have any legal right over the disciple's property in Sharia?

Answer from Lucknow: He is the correct one. In the aforementioned case, the claim of the Sheikh's son over the land, buildings, and the management of the tomb is void. Legally, the Sheikh or his heirs have no entitlement to the disciple's property. Furthermore, the disciple cannot give mortgaged property to anyone without clearing the mortgage, nor can the Sheikh's son use any coercion against the disciple. And Allah Almighty knows best. Muhammad Abdul Majeed.

The Answer: The claim of the Sheikh's son is void, and he has no right of coercion. Allah the Exalted says: "O you who have believed, do not consume one another's wealth unjustly but only [in lawful] business by mutual consent." 1 The Almighty says: Do not eat your wealth among yourselves wrongfully, except it be a trade by mutual consent. (T)

The land, buildings, and tomb are all the property of the disciple and will remain in the possession of his heirs. There is no legal entitlement for the Sheikh over the

disciple's wealth in the sense of a Sharia obligation by virtue of being a Sheikh, even though in the spiritual path (tariqa), he and all his wealth belong to his Sheikh, or for various reasons in Sharia.

1 Al-Quran 4/29 Page 482 of 948

जिल्द नहम (खंड 9) फ़तावा रज़विया

उत्तर: हिबा (दान) और बिक्री से वक्फ़ कब्रिस्तान मुक्त हैं। खरीदार की कब्र भी इसमें बन सकती है। वह दानकर्ता आदि की कब्र की मरम्मत भी कर सकता है। इसमें जो पेड़ हैं वे खरीदार की संपत्ति हैं, वह जो चाहे करे, भले ही कब्रिस्तान वक्फ़ हो, उसके पेड़ वक्फ़ नहीं हैं जैसा कि अल-हिंदिया और अन्य में बताया गया है। (जैसा कि हिंदिया आदि में वर्णित है।) और अल्लाह तआला बेहतर जानता है।

मसला 714: कलकत्ता, जकारिया स्ट्रीट नंबर 22 से, मौलवी अब्दुल हक साहब और मौलवी मुबारक करीम साहब द्वारा हाजी लाल खान साहब के माध्यम से पूछा गया, 26 रमज़ान-उल-मुबारक 1337 हिजरी। धर्म के विद्वान इस मामले में क्या कहते हैं कि इस विशेष मुरीद (शिष्य) ने अपने खर्च पर अपने कार्यालय और माल गोदाम के लिए मज़ार के पास कुछ ज़मीन और मकान तैयार किए थे, साथ ही इसलिए कि ज़ायरीन (तीर्थयात्री) रुक सकें और वहां सभाएं आयोजित की जा सकें। उसने न तो उन ज़मीनों और मकानों को वक्फ़ किया और न ही कभी शेख के जीवनकाल में उन्हें नामित किया गया, न ही शेख की मृत्यु के बाद उन्हें मकबरे के रूप में नामित किया गया। व्यापारिक आवश्यकता के कारण, उसने इस ज़मीन और मकानों को एक बड़ी राशि पर गिरवी रख दिया है। अब शेख का पुत्र कहता है कि ये सभी मकान आदि हमारे नाम कर दो, तो क्या शेख के पुत्र का यह दावा सही हो सकता है? और क्या मुरीद को यह अधिकार है कि गिरवी छुड़ाने से पहले इस संपत्ति को शेख के पुत्र के नाम कर दे? और क्या वह शेख का पुत्र इस मुरीद की संपत्ति ज़बरदस्ती और दबाव से अपने नाम करवा सकता है? क्या शरीयत में मुरीद की संपत्ति पर शेख या शेख के वारिसों का कोई अधिकार है?

लखनऊ से उत्तर: वही सही है। उक्त मामले में, ज़मीन, मकान और मकबरे के प्रबंधन पर शेख के पुत्र का दावा बातिल (अमान्य) है। शरीयत के अनुसार, शेख या शेख के वारिसों का मुरीद की संपत्ति पर कोई अधिकार नहीं है और मुरीद गिरवी रखी हुई संपत्ति को गिरवी छुड़ाए बिना किसी व्यक्ति को नहीं दे सकता, और न ही शेख का पुत्र मुरीद पर कोई ज़बरदस्ती कर सकता है। और अल्लाह तआला बेहतर जानता है। मुहम्मद अब्दुल मजीद।

उत्तर: शेख के पुत्र का दावा बातिल है, और उसे ज़बरदस्ती का कोई अधिकार नहीं है। अल्लाह तआला फ़रमाता है: "ऐ ईमान वालो! आपस में एक-दूसरे का माल नाहक़ (गलत तरीके से) न खाओ, सिवाय इसके कि तुम्हारी आपसी सहमति से कोई व्यापार हो।" 1 बारी तआला इरशाद फरमाता है: अपने माल आपस में नाहक़ न खाओ, मगर यह तुम्हारी आपसी रज़ामंदी से कोई सौदा हो। (त)

ज़मीन, मकान और मकबरा सब मुरीद की मिल्कियत हैं, वे उसके उत्तराधिकारियों के कब्ज़े में रहेंगे। मुरीद पर शेख का माल का अधिकार शरीयत के अनुसार शेख होने की हैसियत से वाजिब नहीं है, हालाँकि तरीक़त (आध्यात्मिक मार्ग) में वह और उसका सारा माल गोया उसके शेख का है, या शरीयत के विभिन्न कारणों से।

1 अल-कुरान 4/29 पेज 482 of 948

جلد نہم فتاوی رضویہ

الجواب: ہبہ و بیع سے قبرستان وقف مستثنیٰ ہیں۔ مشتری کی قبر بھی اس میں بن سکتی ہے۔ واہبہ وغیرہ کی قبر کی مرمت بھی وہ کر سکتا ہے۔ جو درخت اس میں ہیں وہ مشتری کی ملک ہیں جو چاہے کرے، قبرستان اگرچہ وقف ہو اس کے درخت وقف نہیں کما بینہ فی الہندیة و غیرھا (جیسا کہ ہندیہ و غیرہ میں بیان کیا گیا ہے۔ ت) واللہ تعالیٰ اعلم۔

مسئلہ ۷۱۴: از کلکتہ زکریا اسٹریٹ نمبر ۲۲ مسئولہ مولوی عبدالحق صاحب و مولوی مبارک کریم صاحب بمعرفت حاجی لعل خاں صاحب ۲۶ رمضان المبارک ۱۳۳۷ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ اس مرید خاص نے مزار کچھ زمین و مکانات اپنے خرچ اور آفس و مال گودام کے لیے نیز اس لیے کہ زائرین قیام کریں اور مجالس اس میں قائم ہوں تیار رکھتے تھے، نہ وہ زمیں و مکانات وقف کئے نہ کبھی حالت حیات شیخ نے نامزد کئے نہ بعد وفات شیخ بنام مقبرہ اس نے بہ ضرورت تجارت اس اراضی و مکانات کو مبلغ کثیر پر رہن رکھا ہے۔ اب فرزند شیخ کہتے ہیں کہ یہ سب مکانات وغیرہ ہمارے نام کر دو، تو کیا فرزند شیخ کا یہ دعویٰ صحیح ہو سکتا ہے اور کیا مرید کو اختیار ہے کہ قبل فک رہن اس جائداد کو فرزند شیخ کے نام کردے اور کیا وہ فرزند شیخ اس مرید کی جائداد بجبر و اکراہ اپنے نام کروا سکتا ہے۔ آیا شریعت میں مرید پر کچھ استحقاق مال شیخ یا وارثان شیخ کا ہے؟

جواب از لکھنؤ: ھو المصوب صورت مذکورہ میں زمین و مکانات و انتظام مقبرہ پر دعویٰ فرزند شیخ کا باطل ہے، مرید پر مال استحقاق شیخ کا یا وارثان شیخ کا شرعاً نہیں ہے اور مرید جائداد مرہون بغیر فک رہن کسی شخص کو دے نہیں سکتا، نہ فرزند شیخ مرید پر کوئی جبر کرسکتا ہے۔ واللہ تعالیٰ اعلم۔ محمد عبدالمجید

الجواب: فرزند شیخ کا دعویٰ باطل، اور اسے جبر کا کوئی اختیار نہیں۔ قال تعالٰی لَا تَاْكُلُوْٓا اَمْوَالَكُمْ بَيْنَكُمْ بِالْبَاطِلِ اِلَّآ اَنْ تَكُوْنَ تِجَارَةً عَنْ تَرَاضٍ مِّنْكُمْ۔ 1 باری تعالی ارشاد فرماتا ہے: اپنے مال آپس میں ناحق نہ کھاؤ مگر یہ تمہاری باہمی رضامندی سے کوئی سودا ہو۔ (ت)

زمین و مکانات و مقبرہ سب ملک مرید ہیں اس کے ورثاء کے قبضے میں رہیں گے، مرید پر شیخ کا مال استحقاق بمعنی وجوب شرعی بحیثیت شیخیت نہیں، اگرچہ طریقہ وہ اور اس کا مال سب گویا اس کے شیخ کا ہے، یا شریعت بجو بوجوہ۔

1 القرآن ۴/۲۹ Page 482 of 948

Fatawa Razawiyya Volume 9

...another obligation can be. This demand of the Sheikh's son is a request (sawal), and asking without necessity is haram. Yes, if a disciple (murid) wishes of their own free will, they can transfer their property to his name, even if it is before paying off a debt, with the permission of the mortgagee (murtahin). And Allah Almighty knows best.

Issue 148: From Junagadh, Kathiawar, sent by Maulvi Amiruddin Sahib, Circle Madar al-Maham, 10th Dhu al-Qi'dah 1315 AH. What do the scholars of the religion say on this matter: what is the ruling in the noble Shari'ah regarding burning loban (frankincense/incense) on the shrine of a saint (buzurg)? And what is the ruling for a person who calls the one who burns it a 'fasiq' (sinner) and an 'innovator' (bid'ati)? Explain and you will be rewarded.

The Answer: One should avoid burning agarwood, loban, etc., by placing them directly on the grave itself, even if in a vessel, because of the bad omen (tafa'ul al-qabih) in smoke rising over the grave, and refuge is sought in Allah. (T: Because in this, a bad omen is found in smoke coming out from above the grave, and God protect us). It is narrated in Sahih Muslim from Hadrat Amr ibn al-Aas (may Allah be pleased with him):

"He said to his son while in the throes of death: 'When I die, let no wailing woman nor fire accompany me.'" (Hadith) | He told his son at the time of death: "When I die, let neither a wailing woman nor fire go with me." (Hadith) (T)

It is stated in Sharh al-Mishkat by Imam Ibn Hajar al-Makki: "Because it is of a bad omen" (T: Because there is an ill-omen in fire). It is stated in Mirqat, the commentary of Mishkat: "It is a cause for an evil omen" (T: This is a cause for a bad omen). Moreover, if it is lit near the grave and some people are sitting there, or if there is no reciter or dhakir, but rather it is lit and left only for the grave, then it is clearly forbidden as it is extravagance and waste of wealth. A righteous deceased person, due to the window opened in their grave from Paradise, is provided with heavenly breezes and the fragrance of heavenly flowers, and is independent of worldly loban. And God forbid, if they are in the other state, they do not benefit from it. Therefore, as long as a reasonable benefit is not proven through an accepted authority, the way is to avoid it.

"And it is not compared to roses and basil, the desirability of which is explicitly stated in many books, as we have cited." | It cannot be compared to flowers, the desirability of which is clearly mentioned in numerous books, as [mentioned before].

1. Sahih Muslim, Kitab al-Iman, Nur Muhammad Asah al-Matabi' Karachi, 1/76.
2. Mirqat citing Imam Ibn Hajar Makki, Kitab al-Jana'iz, Maktaba al-Habibiya Quetta, 4/196.
3. Mirqat Sharh Mishkat, Kitab al-Jana'iz, Maktaba al-Habibiya Quetta, 4/196.

फ़तावा रज़विया जिल्द 9

...दूसरा वजूद हो सकता है, शेख के बेटे की यह मांग एक सवाल है और बिना ज़रूरत सवाल करना हराम है, हाँ अगर मुरीद अपनी मर्जी से चाहे तो अपनी जायदाद उसके नाम कर सकता है, भले ही वह क़र्ज़ अदा करने से पहले हो, गिरवीदार (मुर्तहिन) की अनुमति से। और अल्लाह तआला बेहतर जानता है।

मसला 148: जूनागढ़, काठियावाड़ से, मौलवी अमीरउद्दीन साहब, सर्कल मदार अल-महम्म द्वारा प्रेषित, 10 ज़िल-कादह 1315 हिजरी। धर्म के विद्वान इस मामले में क्या कहते हैं कि किसी बुज़ुर्ग की मज़ार पर लोबान जलाना शरीयत में क्या हुक्म रखता है? और उस व्यक्ति के लिए क्या हुक्म है जो इसे जलाने वाले को 'फ़ासिक़' और 'बिदअती' (नया तरीका निकालने वाला) कहता है? बयान फरमाएं ताकि आपको सवाब मिले।

अल-जवाब (उत्तर): ऊद, लोबान आदि किसी चीज़ को कब्र के ऊपर ही रखकर जलाने से बचना चाहिए, भले ही वह किसी बर्तन में हो, क्योंकि कब्र पर धुआं उठने में बुरा शगुन (तफ़ाउल अल-क़बीह) है, और अल्लाह की पनाह (T: क्योंकि इसमें कब्र के ऊपर से धुआं निकलने का बुरा शगुन पाया जाता है, और ईश्वर की पनाह)। सही मुस्लिम में हज़रत अम्र इब्न अल-आस (रज़ियल्लाहु अन्हु) से वर्णित है:

"उन्होंने मृत्यु के समय अपने पुत्र से कहा: 'जब मैं मर जाऊं तो मेरे साथ न कोई विलाप करने वाली औरत जाए और न आग।'" (हदीस) | उन्होंने मौत के समय अपने बेटे से कहा: "जब मैं मर जाऊं तो मेरे साथ न कोई रोने वाली हो और न आग ले जाई जाए।" (हदीस) (T)

इमाम इब्न हजर अल-मक्की की शरह अल-मिशकात में है: "क्योंकि यह बुरे शगुन से है" (T: क्योंकि आग में बुरा शगुन है)। मरकात शरह मिशकात में है: "यह बुरे शगुन का कारण है" (T: यह बुरे शगुन का कारण है)। इसके अलावा, अगर कब्र के पास आग जलाई जाए और वहां कुछ लोग बैठे हों, और वहां कोई तिलावत या ज़िक्र करने वाला न हो, बल्कि सिर्फ कब्र के लिए जलाकर चले आएं, तो स्पष्ट रूप से मना है कि यह फिजूलखर्ची और माल की बर्बादी है। नेक मृत व्यक्ति, उस खिड़की के कारण जो उसकी कब्र में जन्नत से खोली जाती है, जन्नती हवाओं और जन्नती फूलों की खुशबुओं का आनंद लेता है, और दुनिया के लोबान से बेनवाज़ है। और अल्लाह न करे, अगर उसकी दूसरी स्थिति है, तो

उसे इससे कोई लाभ नहीं होता। तो जब तक किसी विश्वसनीय प्रमाण से कोई तार्किक लाभ सिद्ध न हो, बचने का रास्ता ही सही है।

"और इसकी तुलना गुलाब और तुलसी से नहीं की जा सकती, जिसकी सिफारिश कई किताबों में स्पष्ट रूप से की गई है, जैसा कि हमने उल्लेख किया है।" | इसकी तुलना फूलों से नहीं की जा सकती, जिनके मुस्तहब (पसंदीदा) होने का ज़िक्र कई किताबों में साफ़ तौर पर मौजूद है जैसा कि...

1. सही मुस्लिम, किताब अल-ईमान, नूर मुहम्मद असहु अल-मताबी कराची, 1/76
2. मरकात हवाला इमाम इब्न हजर मक्की, किताब अल-जनाइज़, मकतबा अल-हबीबिया क्वेटा, 4/196
3. मरकात शरह मिशकात, किताब अल-जनाइज़, मकतबा अल-हबीबिया क्वेटा, 4/196

فتاوٰی رضویہ جلد نہم

دیگر وجوب ہو سکتا ہے، فرزند شیخ کا یہ مطالبہ کرنا سوال ہے اور سوال بلا ضرورت حرام ہے، ہاں اگر مرید رضائے خود چاہے تو اپنا مال اس کے نام کر سکتا ہے اگرچہ قبل ادائے دین مرتہن باذنِ مرتہن۔ واللہ تعالٰی اعلم

مسئلہ ۱۴۸: از جونا گڑھ کاٹھیاواڑ سر کل مدار المہام مرسلہ مولوی امیر الدین صاحب ۱۰ ذی قعدہ ۱۳۱۵ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ کسی بزرگ کے مزار پر لوبان جلانا شرع شریف میں کیا حکم رکھتا ہے؟ اور جو شخص جلانے والے کو فاسق اور بدعتی کہے اس کا کیا حکم ہے؟ بینوا توجروا

الجواب: عود لوبان و غیرہ کوئی چیز نفسِ قبر پر رکھ کر جلانے سے احتراز چاہئے اگرچہ کسی برتن میں ہو لما فیہ من التفاؤل القبیح بطلوع الدخان علی القبر والعیاذ باللہ (کیونکہ اس میں قبر کے اوپر سے دھواں نکلنے کا بُرا فال پایا جاتا ہے، اور خدا کی پناہ۔ت) صحیح مسلم شریف میں حضرت عمرو بن العاص رضی اللہ تعالٰی عنہ سے مروی:

انہ قال لابنہ وھو فی سیاق الموت اذا انا مت فلا تصحبنی نائحۃ ولا نارا الحدیث۔ | انہوں نے دمِ مرگ اپنے فرزند سے فرمایا جب میں مر جاؤں تو میرے ساتھ نہ کوئی نوحہ کرنے والی جائے نہ آگ جائے۔ الحدیث (ت)

شرح المشکوۃ للاِمام ابن حجر المکی میں ہے: لانہا من التفاؤل القبیح (کیونکہ آگ میں فالِ بد ہے ت) مرقاۃ شرح مشکوۃ میں ہے: انہا سبب للتفاؤل القبیح (یہ فالِ بد کا سبب ہے۔ت) اور قریبِ قبر سلگا کر اگر وہاں کچھ لوگ بیٹھے ہوں نہ کوئی تالی یا ذاکر ہو بلکہ صرف قبر کے لیے جلا کر چلا آئے

تو ظاہر منع ہے کہ اسراف و اضاعت مال ہے۔ میت صالح اس غرفے کے سبب جو اس کی قبر میں جنت سے کھولا جاتا ہے اور بہشتی نسیمیں بہشتی پھولوں کی خوشبوئیں لاتی ہیں، دنیا کے اگر لوبان سے غنی اور معاذ اللہ جو دوسری حالت میں ہوا اسے اس سے انتفاع نہیں۔ تو جب تک سند مقبول سے نفع معقول نہ ثابت ہو سبیل احتراز ہے۔

ولا یقاس علی الورد والریا حین المصرح باستحبابه فی غیر ما کتاب کما اوردنا علیه | اس کا قیاس پھولوں پر نہیں ہو سکتا جن کے مستحب ہونے کی صراحت متعدد کتابوں میں موجود ہے جیسا کہ

1 صحیح مسلم کتاب الایمان نور محمد اصح المطابع کراچی ۱/ ۷۶ 2 مرقاۃ بحوالہ امام ابن حجر مکی کتاب الجنائز مکتبہ الحبیبیہ کوئٹہ ۴/ ۱۹۶ 3 مرقاۃ شرح مشکوۃ کتاب الجنائز مکتبہ الحبیبیہ کوئٹہ ۴/ ۱۹۶

Fatawa Razawiyya Volume 9

Many explications are in our book 'Hayat al-Mawat' (Life of the Dead) concerning the hearing of the dead; indeed, the reason for it, as stated by scholars, is that as long as they (the flowers) are fresh, they glorify Allah Almighty and soothe the heart of the deceased, not because of their fragrance. (T)

And if incense is lit for the benefit of those present during Fatiha recitation or recitation of the Holy Quran and remembrance of Allah, then it is better and commendable.

It has been observed in ancient and modern times that the recitation and remembrance are honored, and the gatherings of Muslims are perfumed with it. (T)

One who calls this sin and innovation (bid'at) is either showing sheer ignorant audacity or is dying upon the rejected principles of Wahhabism. In any case, this is a fabrication against the pure Shari'ah. The answer to them is to read these two verses:

"Say, 'Produce your proof, if you should be truthful.'" (1) Say, bring your evidence if you are truthful.

"Say, 'Has Allah permitted you [to do so], or do you invent [something] about Allah?'" (2) - And Allah Almighty knows best. Say, has Allah given you permission, or are you fabricating against Allah? (T) And Allah Almighty knows best.

1 Al-Quran 2/111 2 Al-Quran 10/59

Page 484 of 948

फतावा रज़विया जिल्द नहुम

हमारी किताब 'हयात अल-मवात' में मुर्दों के सुनने के बारे में कई स्पष्टीकरण हैं; वास्तव में, विद्वानों द्वारा बताए गए अनुसार इसका कारण यह है कि जब तक वे (फूल) ताज़े रहते हैं, वे अल्लाह सर्वशक्तिमान की तस्बीह (महिमा) करते हैं और मृत व्यक्ति के दिल को सुकून देते हैं, न कि उनकी खुशबू के कारण। (त)

और अगर फातिहा ख्वानी या पवित्र कुरान की तिलावत और अल्लाह के ज़िक्र के समय हाज़रीन (उपस्थित लोगों) के लिए अगरबत्ती जलाई जाए तो यह बेहतर और प्रशंसनीय है।

पुराने और आधुनिक समय में यह देखा गया है कि तिलावत और ज़िक्र का सम्मान किया जाता है और मुसलमानों की महफिलों को इससे सुगन्धित किया जाता है। (त)

जो इसे फिस्क (पाप) और बिद्दत (नवाचार) कहे, वह केवल अज्ञानतापूर्ण साहस कर रहा है या वहाबियत के ठुकराए हुए सिद्धांतों पर मर रहा है। बहरहाल, यह पवित्र शरीयत पर एक इफ़्तरा (आरोप) है। उनका उत्तर इन दो आयतों को पढ़ना है:

"कहो, 'अपनी दलील लाओ अगर तुम सच्चे हो।'" (1) कहो अपनी दलील लाओ अगर तुम सच्चे हो।

"कहो, 'क्या अल्लाह ने तुम्हें अनुमति दी है या तुम अल्लाह पर आरोप लगा रहे हो?'" (2) - और अल्लाह सर्वशक्तिमान सबसे बेहतर जानता है। कहो, क्या अल्लाह ने तुम्हें अनुमति दी है या तुम अल्लाह पर आरोप लगा रहे हो? (त) और अल्लाह सर्वशक्तिमान सबसे बेहतर जानता है।

1 अल-कुरान 2/111 2 अल-कुरान 10/59

पेज 484 ऑफ 948

تصریحات کثیرہ فی کتابنا حیاۃ الموات فی بیان سماع الاموات، فان العلۃ فیہ کما نصوا علیہ انھا مادامت رطبۃ تسبح اللہ تعالٰی فتؤنس المیت لا طیبھا۔ اس پر کثیر تصریحات ہم نے اپنی کتاب حیاۃ الموات فی بیان سماع الاموات میں نقل کی ہیں اس لیے حسب تصریح علماء ان کے استحباب کی علت یہ ہے کہ وہ پھول جب تک تر رہیں گے اللہ تعالٰی کی تسبیح کرتے اور میت کا دل بہلاتے رہیں گے _ خوشبودار ہونا علت نہیں (ت)

اور اگر بغرض حاضرین وقت فاتحہ خوانی یا تلاوت قرآن مجید وذکر الہی سلگائیں تو بہتر و مستحسن ہے۔ وقد عھد تعظیم التلاوۃ والذکر وتطییب مجالس المسلمین بہ قدیماً وحدیثاً۔ اور تلاوت وذکر کی تعظیم اور اس سے مسلمانوں کی مجلسوں میں خوشبو پھیلانا زمانہ قدیم وجدید میں متعارف ہے (ت)

جو اسے فسق و بدعت کہے محض جاہلانہ جرات کرتا ہے یا اصول مردود وہابیت پر مرتا ہے۔ بہر حال یہ شرع مطہر پر افتراء ہے، اس کا جواب انہیں دو آیتوں کا پڑھنا ہے :

قُلْ ھَاتُوْا بُرْھَانَکُمْ اِنْ کُنْتُمْ صٰدِقِیْنَ 1 تم کہو اپنی دلیل لاؤ اگر سچے ہو

قُلْ اٰللّٰہُ اَذِنَ لَکُمْ اَمْ عَلَی اللّٰہِ تَفْتَرُوْنَ 2 ۔ واللہ تعالٰی اعلم تم کہو کیا خدا نے تمہیں اذن دیا ہے یا اللہ پر افترا کرتے ہو۔ (ت) واللہ تعالٰی اعلم

1 القرآن 2 / 111 2 القرآن 10 / 59

Volume Nine | Fatawa Rizvia

Treatise BARIQ AL-MANAR BI-SHUMU' AL-MAZAR 1331 AH (The brightness of the minaret from the candles of the shrine)

In the name of Allah, the Most Gracious, the Most Merciful. We praise Him and send blessings upon His Noble Messenger.

Problem 149: From Lucknow, Adda Khana Chowk, sent by Maulvi Muhammad Ahmad Sahib Alvi, son of the late Maulvi Habib Ali Sahib, 8 Dhu al-Hijjah 1331 AH.

What do the scholars of the religion and the jurists of the firm Sharia say on this issue: Is it permissible to light candles/illuminate the shrines of the friends of Allah (Awliya Allah) or not? Zaid says that illuminating the shrines of the friends of Allah is impermissible because it involves ritual worship. Therefore, Zaid's writing is reproduced below exactly. Is Zaid's school of thought acceptable and actionable in the eyes of the scholars of religion and the jurists of the firm Sharia or not?

A copy of Zaid's writing is as follows:

I declare by a Sharia oath that I have tried to see if the excellence of lighting lamps on graves could be proven by any interpretation, so that I would not oppose the ancient custom. Accordingly, I consulted Fatawa Alamgiri and found it written that: "Taking out candles to the cemeteries is an innovation (bid'ah) that has no basis." (Lighting lamps on shrines is an innovation, it has no basis. - Translator's note). Similarly...

जिल्द नहम | फ़तावा रज़विया

रिसाला बरीक़ अल-मनार बि-शुमूअ अल-मज़ार १३३१ हिजरी (मज़ार की मोमबत्तियों से मीनार की चमक)

अल्लाह के नाम से, जो अत्यंत दयालु और बहुत दयावान है। हम उसकी स्तुति करते हैं और उसके महान रसूल पर आशीर्वाद भेजते हैं।

मसला १४९: लखनऊ, अड्डा खाना चौक से, मौलवी मोहम्मद अहमद साहब अलवी द्वारा प्रेषित, स्वर्गीय मौलवी हबीब अली साहब के पुत्र, ८ ज़िल हिज्जा १३३१ हिजरी।

सवाल: दीन के विद्वान और शरीअत के मुफ़्ती इस मसले पर क्या कहते हैं कि औलिया अल्लाह के मज़ारों पर रोशनी करना जायज़ है या नहीं? ज़ैद का कहना है कि औलिया अल्लाह के मज़ारों पर रोशनी करना नाजायज़ है क्योंकि इसमें इबादत का इरादा होता है, इसलिए ज़ैद की तहरीर को नीचे वैसा ही नकल किया गया है। क्या ज़ैद का नज़रिया दीन के विद्वानों और शरीअत के मुफ़्तियों की नज़रों में स्वीकार्य और अमल के लायक है या नहीं?

ज़ैद की तहरीर का नकल यह है:

मैं शरीअत की कसम खाकर विश्वास दिलाता हूँ कि मैंने कोशिश की कि कब्रों पर चिराग़ां करने की खूबी किसी व्याख्या से साबित हो जाए ताकि मैं पुरानी रस्म का विरोध न करूँ। चुनाँचे मैंने फ़तावा आलमगीरी को देखा तो उसमें पाया कि: "कब्रिस्तानों में मोमबत्तियां ले जाना एक बिदअत है जिसकी कोई बुनियाद नहीं है।" (मज़ारों पर चिराग़ां करना बिदअत है, इसकी कोई असल नहीं। - अनुवादक) इसी तरह...

पेज ४८६ ऑफ ९४८

رسالہ بَرِیْقُ الْمَنَارِ بِشُمُوْعِ الْمَزَارِ ۱۳۳۱ھ (منارے کی چمک مزار کی شمعوں سے)

بسم اللہ الرحمن الرحیم نحمدہ ونصلی علی رسولہ الکریم۔

مسئلہ ۱۴۹: از لکھنؤ محلہ اڈّا خانہ چوک مرسلہ مولوی محمد احمد صاحب علوی خلف مولوی حبیب علی صاحب مرحوم ۸ ذی الحجہ ۱۳۳۱ھ

کیا فرماتے ہیں علمائے دین ومفتیانِ شرع متین اس مسئلہ میں کہ مزاراتِ اولیاء اللہ پر روشنی کرنا جائز ہے یا نہیں؟ زید کہتا ہے کہ روشنی مزاراتِ اولیاء اللہ پر ناجائز ہے کیونکہ اس میں تعبد منظور ہوتا ہے، چنانچہ زید کی تحریر بجنسہ ذیل میں نقل کی جاتی ہے، آیا مسلک زید کانزدیک علمائے دین ومفتیانِ شرع متین قابل قبول وعمل ہے یا نہیں؟

نقل تحریر زید یہ ہے:

میں بقسمِ شرعیہ اس کو باور کراتا ہوں کہ میں نے کوشش کی کہ چراغانِ قبور کا کسی تاویل سے استحسان ثابت ہو جائے تو میں رسمِ قدیم کی مخالفت نہ کروں، چنانچہ فتاوی عالمگیری کو دیکھا اس میں نکلا کہ اخراج الشموع الی المقابر بدعۃ لا اصل لہ (مزارات پر چراغان کرنا بدعت ہے اس کی کوئی اصل نہیں۔ ت) اسی طرح

It is mentioned in Fatawa Bazzaziya, and the same was found in Durr-e-Mukhtar. Then I looked at the noble Hadith. I had Mishkat Sharif with me, in which this Hadith was found:

[Box Start] Arabic Text: The Messenger of Allah cursed women who visit graves and those who take them as places of worship and light lamps upon them. (Narrated by Tirmidhi and Nasa'i).

Urdu Translation: The Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) cursed the women visiting graves and those who take graves as mosques (i.e., prostrate towards them) and light lamps on them. Narrated by Tirmidhi and Nasa'i. [Box End]

After this, I saw the fatwa of Hazrat Shah Rafi-ud-Din Sahab Muhaddith Dehlavi, brother of Shah Abdul Aziz Sahab Khatam-ul-Muhadditheen, printed at Mujtabai Press, page 14, it says:

[Box Start - Left Column (Persian), Right Column (Urdu)] Persian: So helping with prayer, completion of Quran, and feeding is a permissible innovation (i.e. in the annual 'Urs of saints, if the righteous of the time gather to read the Quran and give charity for rewards, there is no harm; this should be called a permissible innovation). There is no reason for it to be bad. But committing prohibited acts like lighting lamps, dressing graves, singing, and playing musical instruments are heinous innovations. Attendance at such gatherings is forbidden. If capable, one should act upon the Hadith: "Whoever among you sees an evil, let him change it with his hand; if he cannot, then with his tongue; if he cannot, then with his heart, and that is the weakest of faith." Instead of the position of rebuke, dispersing the means of innovation is sufficient.

Urdu: Helping through prayer, completion of Quran and feeding is a permissible innovation (i.e., if in the annual 'Urs of the elders of religion, the pious of that time gather to read the Quran and give charity to send rewards, there is no harm; it can be called a permissible innovation). There is no reason for it to be bad, but committing forbidden acts like lighting lamps, dressing graves, singing, and playing musical instruments are heinous innovations. Participation in such gatherings is forbidden. If capable, one should act upon the Hadith: "Whoever among you sees an evil, let him change it with his hand; if he cannot, then with his tongue; if he cannot, then with his

heart, and that is the weakest of faith." One should act upon this; in place of rebuking, it is sufficient to disperse the causes of innovation. (T) [Box End]

1 Al-Jami' al-Tirmidhi, Chapter on the Dislike of Taking Graves as Mosques, Noor Muhammad Asah al-Matabi' Karachi, p. 47 2 Al-Jami' al-Tirmidhi, Chapters of Trials (Al-Fitan), Noor Muhammad Asah al-Matabi' Karachi, p. 316 3 Fatawa Shah Rafi-ud-Din

फ़तावा बज़ाज़िया में है। दुर्रे मुख्तार में भी यही निकला। फिर मैंने हदीस शरीफ़ को देखा। मिश्कात शरीफ़ मेरे पास थी उसमें यह हदीस निकली:

[बॉक्स प्रारंभ] अरबी: अल्लाह के रसूल ने उन औरतों पर लानत की जो कब्रों की ज़ियारत करती हैं और उन पर जो उन पर मस्जिदें बनाते हैं और चिराग रौशन करते हैं। (तिरमिज़ी और नसाई ने रिवायत किया)।

उर्दू अनुवाद: अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने कब्रों की ज़ियारत करने वाली औरतों पर और उन पर लानत की जो कब्रों पर मस्जिदें बनाते हैं (यानी कब्रों की तरफ़ सज्दा करते हैं) और कब्रों पर चिराग रौशन करते हैं। इसे तिरमिज़ी और नसाई ने रिवायत किया। [बॉक्स अंत]

इसके बाद मैंने हज़रत शाह रफ़ीउद्दीन साहब मुहद्दिस देहलवी, शाह अब्दुल अज़ीज़ साहब ख़ातमुल मुहद्दिसीन के भाई, के फ़तवे मतबूआ मत्तबा मुज्तबाई पेज 14 को देखा, उसमें लिखा है:

[बॉक्स प्रारंभ - बायां कॉलम (फ़ारसी), दायां कॉलम (उर्दू)] फ़ारसी: दुआ, ख़त्म और खाना खिलाने के ज़रिए मदद करना एक जाइज़ बिदअत है (यानी बुज़ुर्गों के सालाना उर्स में अगर नेक लोग जमा होकर क़ुरआन पढ़ें और सवाब के लिए ख़ैरात करें तो कोई हर्ज नहीं, इसे मुबाह बिदअत कहना चाहिए)। इसके बुरा होने की कोई वजह नहीं। लेकिन हराम कामों का इर्तिकाब जैसे चिराग रौशन करना, कब्रों पर चादर चढ़ाना, गाना-बजाना बुरी बिदअतें हैं। ऐसी महफ़िलों में शामिल होना मना है। अगर संभव हो तो हदीस 'मन् रअा मिन्कुम् मुन्करन...' पर अमल करना चाहिए। डांट-फटकार की जगह बिदअत के कारणों को खत्म कर देना ही काफी है।

उर्दू: दुआ, ख़त्म-ए-क़ुरआन और खाना खिलाने के ज़रिए मदद करना एक जाइज़ बिदअत है (यानी बुज़ुर्गान-ए-दीन के सालाना उर्स में अगर उस ज़माने के नेक लोग जमा होकर क़ुरआन शरीफ़ पढ़ें और ख़ैरात करके सवाब पहुँचाएँ तो कोई हर्ज नहीं, इसे बिदअत-ए-मुबाह़ा कहा जा सकता है) इसके बुरा होने की कोई वजह नहीं, लेकिन हराम बातों का इर्तिकाब जैसे चिराग़ रौशन करना, क़ब्रों को मलबूस (कपड़े पहनाना) करना, गाने, बाजे बजाना शनीअ (बुरी) बिदअतें हैं, ऐसी मजलिसों में शिरकत मना है अगर कुदरत हो तो हदीस-ए-पाक "जो तुम में कोई बुराई देखे तो अपने हाथ से रोक दे, यह न हो सके तो ज़बान से, यह भी न हो सके तो दिल से बुरा जाने और यह सब से कमज़ोर ईमान

है" पर अमल करना चाहिये, ज़ज्र की जगह अस्बाब-ए-बिदअत को मुंतशिर कर देना काफ़ी है (त) [बॉक्स अंत]

1 अल-जामी' अत-तिरमिज़ी, बाब: कब्रों पर मस्जिद बनाने की कराहियत, नूर मोहम्मद अस'हुल मताबे कराची, पेज 47 2 अल-जामी' अत-तिरमिज़ी, अबवाबुल फ़ितन, नूर मोहम्मद अस'हुल मताबे कराची, पेज 316 3 फ़तावा शाह रफ़ीउद्दीन

فتاوٰی بزازیہ میں ہے۔ دُر مختار میں بھی یہی نکلا۔ پھر میں نے حدیث شریف کو دیکھا۔ مشکوٰۃ شریف میرے پاس تھی اس میں یہ حدیث نکلی:

[Box Start] لعن رسول اللہ زائرات القبور والمتخذین علیہا المساجد والسراج 1 - رواہ الترمذی والنسائی۔

لعنت کی رسول اللہ صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم نے زائر ات قبور پر اور جو پکڑیں قبروں پر مسجدیں (یعنی قبروں کی طرف سجدہ کریں) اور قبروں پر چراغ روشن کریں۔ اسے ترمذی اور نسائی نے روایت کیا۔ [Box End]

اس کے بعد میں نے حضرت شاہ رفیع الدین صاحب محدث دہلوی، برادرِ شاہ عبدالعزیز صاحب ختم المحدثین کے فتوے مطبوعہ مطبع مجتبائی ص ۱۴ کو دیکھا اس میں لکھا ہے:

[Box Start - Left Column (Persian), Right Column (Urdu)] پس امداد بدعاء وختم واطعام بدعتی مباح است (یعنی در عرس سالانہ بزرگان دین اگر صلحائے وقت جمع شدہ قرآن شریف خوانند وخیرات کردہ ثواب رسانند مضائقہ ندارد، ایں رابدعت مباح باید گفت) وجہ قبح ندارد۔ اما ارتکابِ محرمات از روشن کردن چراغ ہا وملبوس ساختن قبور وسرود ہا ونواختن معازف بدعات شنیعہ اند حضور چنیں مجالس ممنوع اگر مقدور باشد محل حدیث مَن رَای مِنکُم مُنکَرا فَلیغیّر ہ بیدہ وإن لم یستطع فبلسانہ وان لم یستطع فبقلبہ وذٰلک اضعف الایمان 2 عمل باید کرد از مقام زجر پراگندہ کردن اسباب بدعت کافی 3۔

دعا، ختم قرآن اور کھانا کھلانے کے ذریعے مدد کرنا ایک جائز بدعت ہے (یعنی بزرگان دین کے سالانہ عرس میں اگر اس زمانے کے نیک لوگ جمع ہو کر قرآن شریف پڑھیں اور خیرات کرکے ثواب پہنچائیں تو کوئی مضائقہ نہیں اسے بدعتِ مباحہ کہا جاسکتا ہے) قبیح ہونے کی کوئی وجہ نہیں، لیکن حرام باتوں کا ارتکاب جیسے چراغ روشن کرنا، قبروں کو ملبوس کرنا، گانے، باجے بجانا شنیع بدعتیں ہیں، ایسی مجلسوں میں شرکت منع ہے اگر قدرت ہو تو حدیثِ پاک "جو تم میں کوئی برائی دیکھے تو اپنے ہاتھ سے روک دے، یہ نہ ہوسکے تو زبان سے، یہ بھی نہ ہوسکے تو دل سے برا جانے اور یہ سب سے کمزور ایمان ہے" پر عمل کرنا چاہئے، زجر کی جگہ اسبابِ بدعت کو منتشر کردینا کافی ہے (ت) [Box End]

1 الجامع للترمذی باب کراھیة ان یتخذ علی القبر مسجد انور محمد اصح المطالع کراچی ص ۴۷ 2 الجامع للترمذی ابواب الفتن نور محمد اصح المطالع کراچی ص ۳۱۶ 3 فتاوی شاہ رفیع الدین

In addition to this, Qazi Sanaullah Panipati (may Allah have mercy on him) has written in 'Mala Budd Minhu' and 'Irshad-ul-Talibin' that:

"Lighting lamps is an innovation (Bid'at); the Prophet of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) cursed those who light candles near graves and those who prostrate there." 1. Irshad-ul-Talibin, p. 10

Lighting lamps (on graves) is an innovation. The Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) has cursed those who light lamps and prostrate near the grave. (T)

In summary, lighting lamps for the purpose of seeking special closeness or for decoration. Even to the extent that some people make vows and fulfill them, and they do it at the shrines of people of God, not on the graves of ordinary people. Thus, when it appeared in the books of Hadith, Jurisprudence (Fiqh), and the writings of scholars, I abandoned it without any fear or danger. And whatever amount was spent on oil, I spent it on syrup and ice. Seen with a fair eye, what serious crime is this? If one doesn't pray, isn't regular in congregational prayer, shaves the beard - all that is forgivable, but not lighting lamps, for which such a severe warning has come, is such a crime that a claim of Wahhabism is immediately made. Since most of those saying this were ignorant and uneducated people, I didn't pay any attention to it. I thought that if the author of Fatawa Bazzaziya, Alamgiriya, the author of Mishkat, Shah Rafi-ud-Din Muhaddith Dehlawi, and Qazi Sanaullah Panipati are all Wahhabis, then Al-Hamdu Lillah (Praise be to God), I am a Wahhabi. This matter is also worth reporting that I sent a letter to Maulana Ahmad Raza Khan Sahab and asked for a fatwa regarding lighting lamps and also enclosed stamps for the reply, but the mentioned Khan Sahab did not reply. The situation is that if the right answer is written, the descendants of spiritual guides (Pir-zade) become unhappy; if a wrong answer is written, it goes against the Quran, Hadith, and Fiqh. After much searching, in the writings of some people, a hint of permission for a lamp emerges in such a way that it is lit for some other purpose. But even if permission for lighting lamps comes out of the book of any authentic scholar today, I will have no dispute in this matter. There are only two things due to which people have confusion:

First, that the descendants of spiritual guides have been doing it, but the action of the descendants of spiritual guides is not an abrogation (nasikh) of the saying of the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him). The descendants of

spiritual guides are not infallible (ma'sum); they may be righteous, people of God, but not infallible. Where thousands of noble sheikhs of the time do it, they might have done an illegitimate thing for some expediency; God Almighty is the Forgiver. Consider closely, would appearing before non-Mahrams become religiously permissible (just because they do it)?

The second matter causing confusion is that there is light on the blessed grave in Madina Munawwara. The answers to this concern are as follows: (1) The practice of the Two Holy Harams after the first three centuries (the best generations) is not a proof.

---

1 Mala Budd Minhu (Persian), Kitab-ul-Janaiz, Maktabah Shirkat-e-Ilmiyah, Multan, pp. 70 & 71. Page 488 of 948

फ़तावा रज़विया जिल्द नौ (9)

इसके अलावा काज़ी सनाउल्लाह पानीपती (रहमतुल्लाह अलैहि) ने 'माला बुद मिन्हु' और 'इरशाद-उल-तालिबीन' में लिखा है कि:

"चिराग़ां करना बिदअत है, पैग़म्बर-ए-ख़ुदा सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने क़ब्र के पास शम्अ (मोमबत्ती) रौशन करने वालों और सजदा करने वालों पर लानत भेजी है।" 1. इरशाद-उल-तालिबीन, पृ. 10

(क़ब्रों पर) चिराग़ां करना बिदअत है। अल्लाह के रसूल सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने क़ब्र के पास चिराग़ जलाने और सजदा करने वालों पर लानत फरमाई है। (त)

सारांश यह कि चिराग़ां जो विशेष रूप से तक़र्रुब (निकटता) प्राप्त करने या सजावट के उद्देश्य से किया जाता है। यहाँ तक कि कुछ लोग मन्नत मानते हैं और उसे पूरा करते हैं और अल्लाह वालों (बुज़ुर्गों) के मज़ार पर करते हैं, आम आदमी की क़ब्र पर नहीं करते। इस तरह जब हदीस और फ़िक़्ह की किताबों और विद्वानों के लेखों में यह बात आई, तो मैंने बिना किसी डर या ख़तरे के इसे छोड़ दिया और तेल के लिए जो भी रकम आती थी, उसे मैंने शर्बत और बर्फ में खर्च कर दिया। इंसाफ़ की नज़र से देखा जाए तो यह क्या संगीन अपराध है? कोई नमाज़ न पढ़े, जमात का पाबंद न हो, दाढ़ी मुंडवाए - वह सब माफ़ी के लायक़ है, लेकिन चिराग़ां न करना जिसके लिए इतनी कड़ी चेतावनी आई है, वह ऐसा जुर्म है कि तुरंत वहाबियत का दावा कर दिया जाता है। चूंकि ऐसा कहने वाले अक्सर जाहिल अनपढ़ लोग थे, इसलिए मैंने उनकी तरफ ध्यान भी नहीं दिया। मैंने सोचा कि अगर फ़तावा बज़ाज़िया और आलमगीरिया के लेखक, मिश्कात के लेखक, शाह रफ़ी-उद्दीन मुहद्दिस देहलवी और काज़ी सनाउल्लाह पानीपती ये सब वहाबी हैं, तो अल-हम्दुलिल्लाह मैं वहाबी हूँ। यह बात भी बताने लायक़ है कि मैंने मौलवी अहमद रज़ा खां साहब को एक पत्र भेजा और उसमें चिराग़ां के बारे में फ़तवा माँगा और जवाब के लिए टिकट भी रख दिए, लेकिन उक्त खां साहब ने उसका जवाब नहीं दिया। स्थिति यह है कि अगर सही जवाब लिखा जाए तो पीर-जादे नाराज़ होते हैं, अगर गलत लिखा जाए तो यह कुरान, हदीस और फ़िक़्ह के ख़िलाफ़ होता है। बहुत खोज के बाद कुछ लोगों के लेखों में चिराग़ की अनुमति की एक-आध बात इस तरह निकलती है कि किसी अन्य उद्देश्य से चिराग़ जलाया जाए। लेकिन अगर चिराग़ां की अनुमति आज भी किसी प्रामाणिक विद्वान की

किताब से निकल आए, तो मुझे इस मामले में कोई झगड़ा नहीं होगा। केवल दो बातें हैं जिनकी वजह से लोगों को भ्रम होता है:

पहली यह कि पीर-जादे इसे करते चले आ रहे हैं, लेकिन पीर-जादों का काम अल्लाह के रसूल सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम की बात को रद्द करने वाला (नासिख़) नहीं है। पीर-जादे कोई मासूम नहीं हैं; वे नेक हों, अल्लाह वाले हों, लेकिन मासूम नहीं हैं। जहाँ हज़ारों नेक ज़माने के बुज़ुर्ग इसे करते हैं, वहाँ उन्होंने किसी मजबूरी या हित में एक नाजायज़ काम कर लिया हो, खुदा तआला माफ़ करने वाला है। गौर से देखा जाए तो क्या ग़ैर-महरमों के सामने आना शरीयत में जायज़ हो जाएगा (सिर्फ इसलिए कि वे ऐसा करते हैं)?

दूसरा भ्रम का कारण यह है कि मदीना मुनव्वरा में मुबारक क़ब्र पर रोशनी होती है। इस आशंका के उत्तर निम्नलिखित हैं: (1) शुरू की तीन सदियों (जो सबसे बेहतर ज़माना माना जाता है) के बाद हरमैन शरीफ़ैन की परंपरा दलील (सनद) नहीं है।

---

1 माला बुद मिन्हु (फ़ारसी) किताबुल जनाइज़, मकतबा शिरकत-ए-इल्मिया मुल्तान, पृ. 70 और 71 पृष्ठ 488/948

فتاوٰی رضویہ جلد نہم

اس کے علاوہ قاضی ثناء اللہ پانی پتی رحمۃ اللہ علیہ نے مالابدمنہ میں اور ارشاد الطالبین میں لکھا ہے کہ؟

"چراغاں کردن بدعت است، پیغمبر خدا صلی اللہ تعالٰی علیہ و سلم بر شمع افروزاں نزد قبر وسجدہ کنندگان لعنت گفتہ" 1۔ ارشاد الطالبین ص 10

(قبروں پر) چراغاں کرنا بدعت ہے۔ رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم نے قبر کے نزدیک چراغاں کرنے اور سجدہ کرنے والوں پر لعنت فرمائی ہے۔ (ت)

خلاصہ یہ کہ چراغاں جو بغرضِ خاص تقرب کیا جاتا ہے یا بغرض زینت۔ یہاں تک کہ بعض لوگ منت مانتے ہیں اور اس کا ایفاء کرتے ہیں اور اہلِ اللہ کے مزار پر کرتے ہیں معمولی آدمی کی قبر پر نہیں کرتے ہیں، اس طرح جب کتبِ حدیث و فقہ و تحریراتِ علماء میں نکلا تو میں نے بلا خوف و خطر اس کو ترک کر دیا اور جس قدر رقم کا تیل آتا تھا وہ میں نے شربت و برف میں صرف کر دیا۔ نظرِ انصاف سے دیکھا جائے کہ یہ کیا سنگین جرم ہے، نماز نہ پڑھے، جماعت کا پابند نہ ہو، ڈاڑھی منڈائے وہ سب قابلِ عفو ہے لیکن چراغاں نہ کرنا جس کے لیے اس قدر شدید وعید آئی ہے وہ ایسا جرم ہے کہ فوراً وہابیت کا دعوٰی دے دیا جاتا ہے۔ چونکہ اس کے کہنے والے اکثر جاہل ناخواندہ لوگ تھے میں نے اس کی طرف توجہ بھی نہیں کی، میں نے یہ سمجھا تھا کہ اگر صاحبِ فتاوٰی بزازیہ و عالمگیریہ و صاحبِ مشکوٰۃ و اور شاہ رفیع الدین صاحب محدث دہلوی اور قاضی ثناء اللہ پانی پتی یہ سب وہابی ہیں تو میں الحمد للہ وہابی ہوں، یہ امر بھی قابلِ گزارش ہے کہ میں نے مولوی احمد رضا خاں صاحب کو ایک عریضہ بھیجا اور اس میں استفتاء چراغاں کا کہا اور

جواب کے لیے ٹکٹ بھی رکھ دئیے لیکن خاں صاحب موصوف نے اس کا جواب نہیں دیا، شکل یہ ہے کہ اگر حق جواب لکھا جائے تو پیر زادے ناخوش ہوتے ہیں اگر ناحق لکھا جائے تو قرآن وحدیث وفقہ کے خلاف ہوتا ہے، بہت تلاش سے بعض لوگوں کی تحریرات سے ایک آدھ چراغِ جواز اس طرح سے نکلتا ہے کہ کسی دوسری مصلحت سے چراغ جلایا جائے، لیکن چراغاں کا جواز اگر آج بھی کسی مستند عالم کی کتاب سے نکل آئے تو مجھ کو اس معاملہ میں کد نہ ہوگی، صرف دو امور میں جس کی وجہ سے لوگوں کو خلجان ہوتا ہے:

اول یہ کہ پیر زادے اس کو کرتے چلے آئے ہیں مگر پیر زادوں کا فعل ناسخِ قولِ رسول اللہ صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم نہیں ہے، پیر زادگان کچھ معصوم نہیں ہیں، صالح ہوں، اہلِ اللہ ہوں، لیکن معصوم نہیں، جہاں تک ہزاروں نیک مشائخ زمانہ کرتے ہیں وہاں ایک امرِ ناجائز بھی کسی مصلحت سے انھوں نے کر لیا، خدا تعالیٰ معاف کرنے والا ہے، غور سے دیکھا جائے کہ غیر محارم کے سامنے آنا شرعاً جائز ہو جائے گا۔

دوسرا امر باعثِ خلجان یہ ہے کہ مدینہ منورہ میں قبرِ مبارک پر روشنی ہوتی ہے، اس خطرے کو جواب حسب ذیل ہیں: (1) تعاملِ حرمین شریفین کا بعدِ قرونِ ثلثہ مشہود لہا بالخیر کے سند نہیں ہے۔

---

1 مالابد منہ (فارسی) کتاب الجنائز مکتبہ شرکت علمیہ ملتان ص 70 و 71

(2) The sacred grave is located in the chamber of Hazrat Aisha (may Allah be pleased with her), surrounded by Masjid Nabawi on all four sides. The reward for illuminating the mosque is mentioned in the Hadiths. (3) In reality, the sacred grave is hidden; today even the king of the seven climes cannot see it. It is proven from history that Caliph Harun al-Rashid wanted to see it by placing a ladder but was unsuccessful. (4) In Madina Munawwara, illumination is provided by the Sultan of Turkey. The Turkish government has established the Ottoman Bank and started interest-based transactions. Can interest become permissible by the act of a government? Not at all. (5) According to Ahl-us-Sunnah wal-Jama'at, there are only four legal proofs (Hujjat-e-Shar'i): Quran, Hadith, Ijma (Consensus), and Qiyas (Analogical Reasoning) of Mujtahidin. Only the practice of the holy sanctuaries (Harmain) is not a proof. (6) A large portion of people in Harmain Sharifain trim their beards. Can anyone present this as a proof for the permissibility of trimming the beard, that people there trim their beards, therefore this act is permissible? Let a fatwa be taken from the scholars there themselves; they will surely declare trimming beards and such illuminations as impermissible. (7) Now a weak interpretation has been invented that did not occur to any of the predecessors or successors. That is, lighting a lamp *on* the grave is prohibited, but lighting it *around* the grave is not prohibited, because in the Hadith, the word 'Ala' means 'upon'. In Urdu, is an offering on a grave called so only when it is placed specifically on the part called the grave? Some graves are shaped like a camel's hump, where an offering might not even be possible, but 'offering on a grave' is so broad that if someone places it around the grave or even near the door, it will be considered an offering to the grave. This interpretation of the Holy Prophet's (peace and blessings of Allah be upon him) saying is weak. In the Holy Quran, Surah Al-Kahf says: "We will surely build a mosque over them." (1) Does this mean they will place the foundation stone of the mosque on the chests of the people of the Cave? I seek refuge in Allah. One person performed a feat by saying regarding Mulla Ali Qari that he allowed lighting lamps around the grave, whereas in Mirqat, the commentary on Mishkat printed in Egypt page 477, in the commentary on the above-mentioned Hadith of Mishkat Sharif, he only allowed building a mosque around the grave on the basis that the worship of Jews and Christians was that they built mosques *on* the graves. Since the prohibition was due to resemblance with Jews and Christians, when the resemblance ceased, the act became permissible. However, the reasons for prohibiting lamps, Hazrat Mulla Ali Qari...

Note: In Zaid's original text, it is "tattakhidhuna".

---

1 Al-Quran 18/21

फतावा रज़विया - भाग 9

(२) पवित्र कब्र हज़रत आयशा (अल्लाह उनसे प्रसन्न हो) के कमरे में स्थित है, जिसके चारों ओर मस्जिद-ए-नबवी है और मस्जिद में रोशनी करने का सवाब हदीसों में मौजूद है। (३) वास्तव में पवित्र कब्र छिपी हुई है; आज सातों लोकों का राजा भी इसे नहीं देख सकता। इतिहास से सिद्ध है कि ख़लीफ़ा हारून रशीद ने सीढ़ी लगाकर देखना चाहा लेकिन असफल रहे। (४) मदीना मुनव्वरा में रोशनी तुर्की के सुल्तान की ओर से होती है, तुर्की सरकार ने उस्मानिया बैंक की स्थापना करके सूद (ब्याज) का लेन-देन शुरू कर दिया है, क्या सरकार के कृत्य से भी सूद जायज़ हो सकता है? हरगिज़ नहीं। (५) अहले सुन्नत वल जमाअत के निकट शरीअत के प्रमाण केवल चार हैं: कुरान, हदीस, इज्मा और मुज्तहिदीन का क़यास। केवल हरमैन का व्यवहार कोई प्रमाण नहीं है। (६) हरमैन शरीफ़ैन का एक बड़ा हिस्सा दाढ़ी कटवाता है, क्या दाढ़ी कटवाने के जायज़ होने में कोई व्यक्ति यह प्रमाण पेश कर सकता है कि वहाँ के लोग दाढ़ी कटवाते हैं, इसलिए यह कार्य जायज़ है? वहाँ के विद्वानों से स्वयं फतवा लिया जाए, वे दाढ़ी कटवाने और चिरागाँ (दीये जलाने) को निश्चित रूप से नाजायज़ कहेंगे। (७) अब एक कमज़ोर व्याख्या ईजाद हुई है जो न तो पूर्ववर्तियों और न ही बाद के लोगों को सूझी। यानी कब्र पर चिराग जलाना मना है लेकिन कब्र के चारों ओर जलाना मना नहीं है क्योंकि हदीस शरीफ़ में शब्द 'अला' (पर) प्रयुक्त है। उर्दू में क्या कब्र पर चढ़ावा केवल उसी को कहते हैं जो विशेष रूप से उस स्थान पर चढ़ाया जाए जिसे कब्र कहते हैं? कुछ कब्रों का आकार ऊँट के कूबड़ जैसा होता है, उस पर चढ़ावा शायद संभव भी न हो, लेकिन कब्र पर चढ़ावा इतना व्यापक शब्द है कि कोई कब्र के चारों ओर या दरवाज़े के पास भी रख दे तो वह कब्र का चढ़ावा ही समझा जाएगा और अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) के फ़रमान की यह व्याख्या कमज़ोर है। कुरान शरीफ़ के सूरह कहफ़ में है: "हम ज़रूर उन पर एक मस्जिद बनाएंगे।" (१) क्या इसका अर्थ यह है कि वे असहाब-ए-कहफ़ के सीने पर मस्जिद की आधारशिला रखेंगे? अस्तग़फ़िरुल्लाह। एक सज्जन ने यह कमाल किया कि मुल्ला अली क़ारी के बारे में कह दिया कि उन्होंने कब्र के चारों ओर चिराग जलाने को जायज़ कहा है, जबकि मिरकात शरह मिश्कात (मिस्र में मुद्रित, पृष्ठ ४७७) में मिश्कात शरीफ़ की उपरोक्त हदीस की व्याख्या में उन्होंने केवल कब्र के पास मस्जिद बनाने की अनुमति इस आधार पर दी है कि यह यहूदियों और ईसाइयों की इबादत थी कि वे कब्र पर मस्जिद बनाते थे। चूँकि निषेध यहूदियों और ईसाइयों के साथ समानता के कारण था, इसलिए जब समानता नहीं रही तो यह कार्य जायज़ हो गया। लेकिन चिराग की मनाही के कारण हज़रत मुल्ला अली क़ारी ने...

नोट: ज़ैद की मूल इबारत में 'तत्तखिज़ूना' है।

---

१ अल-कुरान १८/२१

पृष्ठ ४८९/९४८

(۲) قبر شریف حجرہ حضرت عائشہ رضی اللہ تعالٰی عنہا میں واقع ہے جس کے چاروں طرف مسجد نبوی ہے اور مسجد میں روشنی کرنے کا ثواب احادیث میں موجود ہے۔ (۳) قبر شریف در حقیقت روپوش ہے آج ہفت اقلیم کا بادشاہ بھی اس کو نہیں دیکھ سکتا۔ تاریخ سے ثابت ہے کہ خلیفہ ہارون الرشید نے سیڑھی لگا کر دیکھنا چاہا نا کامیاب رہا۔ (۴) مدینہ منورہ میں روشنی منجانب سلطان ترکی ہوتی ہے، گورنمنٹ ترکی نے عثمانیہ بینک قائم کر کے سود کا لین دین شروع کر دیا ہے، کیا گورنمنٹ کے بھی فعل سے سود جائز ہو سکتا ہے؟ ہر گز نہیں۔ (۵) نزدیک اہلسنت والجماعت کے حجت شرعی صرف چار ہیں: قرآن وحدیث واجماع و قیاس مجتہدین صرف تعامل حرمین کوئی سند نہیں۔ (۶) بڑا حصہ حرمین شریفین کا داڑھی کتراتا ہے، کیا داڑھی کتروانے کے جواز میں کوئی شخص یہ سند پیش کر سکتا ہے کہ وہاں کے لوگ داڑھی کتراتے ہیں، لہذا یہ فعل جائز ہے، وہاں کے علماء سے خود فتوٰی لیا جائے وہ داڑھی کتراتے چراغاں کرنے کو یقیناً ناجائز کہیں گے۔ (۷) اب ایک تاویل ضعیف اور ایجاد ہوئی ہے کہ متقدمین و متأخرین کسی کو بھی نہیں سوجھی، یعنی قبر پر چراغ جلانے کی ممانعت ہے لیکن قبر کے گرد جلانے میں ممانعت نہیں ہے کیونکہ حدیث شریف میں لفظ علی بمعنٰی پر واقع ہے، اردو میں کیا قبر پر چڑھواؤ صرف اسی کو کہتے ہیں جو خاص اس جگہ پر کیا جائے جتنے حصہ کو قبر کہتے ہیں، بعض قبر کی صورت کوہان شتر کے مانند ہوتی ہے اس پر چڑھواؤ غالباً ممکن بھی نہ ہو گا، لیکن قبر پر چڑھواؤ تو اتنا وسیع ہے کہ گرد قبر سے بلکہ دروازے کے آس پاس بھی کوئی رکھ دے تو وہ قبر کا چڑھواؤ سمجھا جائے گا اور رسول خدا (صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم) کے فرمانے کی یہ تاویل ضعیف ہے۔ قرآن شریف سورہ کہف میں لَنَتَّخِذَنَّ عَلَيْهِمْ مَّسْجِدًا (۱) (قسم ہے کہ ہم تو ان پر مسجد بنائیں گے۔ت)

کیا اس کے یہ معنی ہیں کہ اصحابِ کہف کے سینہ پر سنگِ بنیاد مسجد کا رکھیں گے، استغفر اللہ۔ ایک صاحب نے یہ کمال کیا کہ ملا علی قاری کی نسبت کہہ دیا کہ انھوں نے گرد قبر کے چراغ جلانے کو جائز کہا ہے، حالانکہ مرقاۃ شرح مشکوۃ مطبوعہ مصر صفحہ ۴۷۷ میں حدیث مندرجہ مشکوۃ شریف مذکور بالا کی شرح میں انھوں نے صرف مسجد کو اطرافِ قبر میں بنانے کی اجازت اس بنیاد پر دی ہے کہ عبادت یہود ونصاری یہ تھی کہ وہ قبر پر مسجد بناتے تھے، اور چونکہ مشابہت یہود و نصاری کی وجہ سے ممانعت ہوئی تھی لہذا جب مشابہت نہ رہی تو یہ فعل جائز ہو گیا۔ لیکن چراغ کی ممانعت کے وجوہ حضرت ملا علی قاری نے

عہ: زید کی اصل عبارت میں تتخذون ہے۔

---

1 القرآن ۲۱/۱۸

Fatawa Ridawiyya Volume 9

Three reasons are written: First: Waste of money. Second: The lamp being associated with the signs of Hell due to its fiery nature. Third: Glorification of graves.

Mulla Qari never gave permission to light lamps around the grave; this is a false accusation against him. It is worth reflecting: would the reasons for prohibition he stated simply vanish when lighting lamps *around* the grave, such that he would grant permission? I swear by Shari'ah and assure that if any authentic scholar has permitted the lighting of lamps for graves, I would be the first person ready to act upon that interpretation. The truth is that the caretakers of the graves, for whom these sites are a source of livelihood, have invented these practices. These discussions pertain to lighting a simple lamp, not "Chiraghan" (ritual illumination), which is performed purely as an act of ritual devotion (T'abbud), i.e., as a means of seeking proximity. People make vows for oil and wicks, performing this annually on the night of the 'Urs' and considering it a religious deed. If seeking proximity or ritual devotion were not intended, why would people perform illumination only on the graves of saints? Why don't they do it on the grave of some sinner or transgressor! This clearly shows that the intent behind illumination is purely seeking proximity, i.e., ritual devotion. If such an interpretation were deemed permissible, one might as well light a lamp underneath or in the middle of the grave, arguing that the Hadith only prohibits it "upon" the grave—Allah forbid! This is nothing but mockery of the Hadith. If, after this warning, someone still acts contrary to it or engages in sophistry, the answer is that this matter will be settled in the grave. "To Moses his religion, to Jesus his religion" [let each follow their own path]. Thus ends the writing of Zaid.

Now, whatever is established through justice and research in the books of the scholars of the Ahl-as-Sunnah wal-Jama'ah, please honor us with that. Are these statements of Zaid correct and in accordance with the predecessors (Salaf)? Please provide a full explanation and detail. May Allah Almighty grant you the best reward.

In the name of Allah, the Most Gracious, the Most Merciful. The Answer:

Arabic Prayer	**Urdu Translation**
O Allah! To You belongs eternal praise. Send blessings upon Your radiant lamp (the Prophet) and his progeny forever. O Light of Light, O Light before every light,	O Allah! To You belongs eternal praise. Send blessings upon Your radiant lamp and his family forever. O Light, O Light of Light, O every Light before light, O Light

Arabic Prayer

[O Light] after every light. Light is for You, light is through You, light is from You, light is toward You, You are Light and the Light of light. Send blessings upon...

Page 490 of 948

Urdu Translation

after light. Light is for You, from You is light, toward You is light, You are Light and the Light of light, upon Your light of lights, and upon their progeny.

फ़तावा रज़विया जिल्द नवीं (खंड 9)

तीन बातें लिखी हैं: प्रथम: धन का अपव्यय। द्वितीय: अग्नि तत्व के कारण दीपक का नर्क के प्रतीकों में से होना। तृतीय: कब्रों की महिमा करना।

मुल्ला क़ारी ने कभी भी कब्र के चारों ओर दीपक जलाने की अनुमति नहीं दी है, यह उन पर एक आरोप है। यह समझने की बात है कि क्या उनके द्वारा बताए गए निषेध के कारण कब्र के चारों ओर दीपक जलाने से हट जाएँगे कि वह इसकी अनुमति दे दें? मैं शरीअत की शपथ लेकर विश्वास दिलाता हूँ कि यदि किसी प्रमाणित विद्वान ने कब्र के लिए रोशनी करने को जायज़ ठहराया हो, तो मैं इस व्याख्या पर अमल करने वाला पहला व्यक्ति होऊँगा। सच्चाई यह है कि मुजाविरों (कब्रों के रखवाले), जिनके लिए कब्रें जीविका का साधन हैं, उन्होंने इन बातों का आविष्कार किया है। ये सभी चर्चाएँ दीपक जलाने के बारे में हैं, न कि "चिरागां" (रोशनी के उत्सव) के बारे में, जो विशुद्ध रूप से 'तअ़ब्बुद' यानी निकटता प्राप्त करने के लिए किया जाता है। लोग तेल और बत्ती की मन्नत मांगते हैं, साल-दर-साल उर्स की रात को ऐसा करते हैं और इसे एक धार्मिक कृत्य मानते हैं। यदि निकटता यानी 'तअ़ब्बुद' अभीष्ट नहीं होता, तो लोग बुज़ुर्गों की कब्रों पर रोशनी क्यों करते? किसी पापी या दुराचारी की कब्र पर क्यों नहीं करते! इससे स्पष्ट है कि रोशनी का उद्देश्य विशुद्ध रूप से निकटता यानी 'तअ़ब्बुद' है। यदि ऐसी व्याख्या को जायज़ माना जाए, तो कोई व्यक्ति कब्र के नीचे या कब्र के बीच में दीपक जला सकता है क्योंकि हदीस में कब्र "पर" मनाही है, अल्लाह माफ़ करे! यह तो हदीस के साथ मज़ाक करना है। यदि इस चेतावनी के बाद भी कोई व्यक्ति इसके विरुद्ध कार्य करता है या हठधर्मी करता है, तो उसका उत्तर यह है कि यह मामला कब्र में तय होने के योग्य है। "मूसा अपने दीन पर, ईसा अपने दीन पर" (अर्थात हर कोई अपने मार्ग का उत्तरदायी है)। ज़ैद का लेखन समाप्त।

अब जो कुछ न्याय की दृष्टि से और अहले सुन्नत वल जमाअत के शोधकर्ताओं की पुस्तकों के अनुसरण से सिद्ध हो, उससे हमें सम्मानित करें। क्या ज़ैद के ये कथन सही हैं और पूर्वजों (सलफ़) के अनुकूल हैं? पूरी व्याख्या और विस्तार के साथ मार्गदर्शन करें, अल्लाह तआ़ला आपको इसका उत्तम प्रतिफल प्रदान करे।

बिस्मिल्लाहिर रहमानिर रहीम (अल्लाह के नाम से जो अत्यंत दयालु और कृपाशील है) उत्तर:

अरबी प्रार्थना

ऐ अल्लाह! तेरे लिए शाश्वत प्रशंसा है। अपने रोशन चिराग (पैगंबर) और उनके वंशजों पर हमेशा रहमत नाज़िल फरमा। ऐ नूर के नूर, ऐ हर नूर से पहले के नूर, ऐ हर नूर के बाद के नूर। तेरे लिए नूर है, तुझसे नूर है, तेरी ओर नूर है, और तू नूर है और नूर का नूर है। दुरूद भेज...

उर्दू अनुवाद

ऐ अल्लाह! तेरे लिए स्थायी प्रशंसा है। अपने रोशन चिराग और उनकी आल (वंशजों) पर हमेशा रहमत नाज़िल फरमा। ऐ नूर, ऐ नूर के नूर, ऐ हर नूर जो नूर से पहले है, ऐ नूर जो नूर के बाद है, तेरे लिए नूर है, तुझसे नूर है, तेरी तरफ नूर है, तू नूर और नूर का नूर है अपने नूरों के नूर पर, और उनकी आल पर।

فتاوی رضویہ جلد نہم

تین لکھے ہیں: اولاً تضییع مال۔ دوم چراغ کا آثار جہنم سے ہونا بوجہ ناریت۔ سوم تعظیم قبور۔

ہر گز ملا قاری نے گرد قبر کے چراغ جلانے کی اجازت نہیں دی ہے، یہ ان پر اتہام ہے۔ سمجھنے کی بات ہے کہ جو انھوں نے وجوہ ممانعت لکھے ہیں کیا وہ گرد قبر کے چراغ جلانے سے جاتے رہیں گے جو وہ اجازت دیتے ہیں، بقسم شرعی باور کراتا ہوں کہ اگر کسی عالم مستند نے چراغاں قبر کے لیے جلانے کو جائز کر دیا ہو تو میں پہلا شخص اس تاویل پر عمل کرنے کے لیے تیار ہوں گا، سچ یہ ہے کہ مجاوروں نے جن کے لیے قبور ذریعہ معاش ہیں انھوں نے ان باتوں کی ایجاد کی ہے۔ یہ سب بحث چراغ جلانے میں ہیں نہ کہ چراغاں میں، جو محض تعبداً یعنی ازراہ تقرب کیا جاتا ہے، لوگ تیل بتی کی منت مانتے ہیں، سال کے سال شب عرس کو کرتے اور اس کو مذہبی فعل سمجھتے ہیں، اگر تقرب یعنی تعبد منظور نہیں ہوتا تو لوگ چراغاں بزرگوں کی قبر پر کیوں کرتے ہیں، کسی فاسق فاجر کی قبر پر کیوں نہیں کرتے! اس سے ظاہر ہے کہ منشاء چراغاں محض تقرب یعنی تعبد ہے۔ اگر ایسی تاویل جائز سمجھی جائے تو کوئی شخص قبر کے نیچے یا قبر کے بیچ چراغ جلائے کیونکہ حدیث میں قبر پر کی ممانعت ہے، استغفر اللہ! یہ تو حدیث کے ساتھ مضحکہ کرنا ہے۔ اگر اس وعید کے بعد بھی کوئی شخص پھر اس میں خلاف کرے یا کٹ حجتی کرے، تو اس کا جواب یہ ہے کہ یہ بات قبر میں تصفیہ کے قابل ہے۔ موی بدین خود، عیسی بدین خود، انتہی تحریر زید

اب جو کچھ ازراہ انصاف و تتبع کتب حضرات اہلسنت والجماعت محقق ہووے اس سے معزز فرمائے، اور کیا یہ اقوال زید کے صحیح اور موافق سلف کے ہیں، بہ تشریح و تفصیل تام ارشاد ہو، اللہ تعالیٰ آپ کو جزائے خیر عنایت فرمائے۔

بسم اللہ الرحمن الرحیم الجواب:

عربی دعا	اردو ترجمہ
اللّٰھُمَّ لَکَ الْحَمْدُ سَرْمَدًا، صَلِّ عَلٰی سِرَاجِکَ الْمُنِیْرِ وَآلِہٖ اَبَدًا یَا نُورَ النُّورِ یَانُورُ قَبْلَ کُلِّ نُورٍ بَعْدَ کُلِّ نُورٍ۔ لَکَ النُّورُ وَبِکَ النُّورُ وَمِنْکَ النُّورُ وَالَیْکَ النُّورُ وَاَنْتَ النُّورُ وَنُورَۃَ النُّورِ صَلِّ عَلٰی	اے اللہ ! تیرے لیے دائمی حمد ہے۔ اپنے سراج منیر اور ان کی آل پر ہمیشہ رحمت نازل فرما۔ اے نور، اے نور کے نور، اے ہر نور قبل نور، اے نور کے بعد نور، تیرے لیے نور ہے، تجھ سے نور ہے، تیری طرف نور ہے، تو نور اور نور کا نور ہے اپنے نور انوار پر، اور ان کی آل پر

Volume Nine Fatawa Razawiyya

[In the Name of Allah], Your most radiant light, and upon his progeny who are glorious lamps, and his companions who are bright lanterns. Send such blessings through which our faces, our chests, our hearts, and our graves are illuminated. Amen. (T)

Imam Allama Arif Billah Sayyidi Abdul Ghani bin Ismail bin Abdul Ghani Nabulsi (may Allah sanctify his holy secret) states in his esteemed book Al-Hadiqa al-Nadiyya Sharh al-Tariqa al-Muhammadiyya, Egyptian print, Volume II, page 429:

[He says:] My father (may Allah Almighty have mercy on him) narrated in his commentary on Sharh al-Durar, from miscellaneous issues in Fatawa al-Bazzaziyya, that taking candles to graves is an innovation (bid'ah) and a waste of wealth. This is entirely the case when it is devoid of any benefit. However, if there is a benefit in lighting candles—such as the graveyard being a mosque, or located by a path, or if someone is sitting there, or if it is the grave of a Saint (Wali) from among the Friends of Allah or a verifying scholar, to honor their luminous spirit that shines upon the dust of their body like the sun shines upon the earth, to inform people that this is the pure shrine of a saint so they may seek blessings from it and pray to Allah Almighty there for their prayers to be answered—then this is permissible and not forbidden at all. Indeed, actions are judged by intentions.

Then he says: Abu Dawood and Tirmidhi narrated from Ibn Abbas (may Allah Almighty be pleased with them both) that the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him)...

---

1 Al-Hadiqa al-Nadiyya, Iiqad al-Shumu' fi al-Qubur, Nooria Razavia Faisalabad, 2/ 630
Page 491 of 948

जिल्द नहम (खंड 9) फ़तावा रज़विया

[अल्लाह के नाम से], आपका अत्यंत उज्ज्वल प्रकाश, और उनके वंशजों पर जो यशस्वी दीपक हैं, और उनके साथियों पर जो चमकती हुई मशालें हैं। ऐसी कृपा (दुरूद) भेजें जिसके माध्यम से हमारे चेहरे, हमारे सीने, हमारे दिल और हमारी क़ब्रें रोशन हो जाएं। आमीन। (त)

इमाम अल्लामा आरिफ़ बिल्लाह सैय्यदी अब्दुल ग़नी बिन इस्माइल बिन अब्दुल ग़नी नाबुलसी (अल्लाह उनके पवित्र रहस्य को पवित्र करे) अपनी प्रतिष्ठित पुस्तक 'अल-हदीका अल-नदिया शरह अल-तरीक़ा अल-मुहम्मदिया', मिस्र का संस्करण, खंड II, पृष्ठ 429 में फ़रमाते हैं:

[वे कहते हैं:] मेरे पिता (अल्लाह उन पर रहम फ़रमाए) ने 'शरह अल-दुरर' पर अपनी टिप्पणी में 'फ़तावा अल-बज़्ज़ाज़िया' के विविध मसलों से उद्धृत किया है कि क़ब्रों पर मोमबत्तियाँ ले जाना बिदअत (नवाचार) और धन की बर्बादी है। यह पूरी तरह से तब है जब यह किसी लाभ से रहित हो। लेकिन, यदि मोमबत्तियाँ जलाने में कोई लाभ हो—जैसे कि क़ब्रिस्तान एक मस्जिद हो, या रास्ते के किनारे हो, या वहां कोई बैठा हो, या वह अल्लाह के वलियों में से किसी वली या शोधकर्ता विद्वानों में से किसी विद्वान का मज़ार हो, उनकी नूरानी रूह के सम्मान के लिए जो उनके शरीर की मिट्टी पर वैसे ही चमकती है जैसे सूरज ज़मीन पर चमकता है, ताकि लोगों को पता चले कि यह किसी वली का पवित्र मज़ार है ताकि वे उससे बरकत हासिल करें और वहां अल्लाह तआला से दुआ मांगें ताकि उनकी दुआ क़बूल हो—तो यह जायज़ है और इससे कोई मनाही नहीं है। और कर्मों का दारोमदार नीयतों पर है।

फिर फ़रमाते हैं: अबू दाऊद और तिर्मिज़ी ने इब्न अब्बास (अल्लाह उन दोनों से राज़ी हो) से रिवायत की है कि अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने...

---

1 अल-हदीका अल-नदिया, ईक़ाद अल-शुमूअ फ़ी अल-क़ुबूर, नूरियां रज़विया फ़ैसलाबाद, 2/ 630 पृष्ठ 491 का 948

جلد نہم فتاویٰ رضویہ

نُوْرِكَ الْاَنْوَرِ وَاٰلِهِ السُّرُجِ الْغُرِّ وَصَحْبِهِ الْمَصَابِيْحِ الزُّهْرِ صَلٰوةً تُنَوِّرُ بِهَا وُجُوْهُنَا وَصُدُوْرَنَا وَقُلُوْبَنَا وَقُبُوْرَنَا اٰمِيْنَ۔ جو روشن چراغ ہیں اور ان کے اصحاب پر جو تابناک مصباح ہیں درود نازل فرما ایسا درود جس سے ہمارے چہرے، ہمارے سینے، ہمارے دل اور ہماری قبریں روشن ہو جائیں، الٰہی قبول فرما۔ (ت)

امام علامہ عارف باللہ سیدی عبدالغنی بن اسماعیل بن عبدالغنی نابلسی قدسنا اللہ بسرہ القدسی کتاب مستطاب حدیقہ ندیہ شرح طریقہ محمدیہ مطبع مصر جلد دوم ص ۴۲۹ میں فرماتے ہیں:

قال الوالد رحمه الله تعالى فى شرحه على شرح الدرر من مسائل متفرقة اخراج الشموع الى القبور بدعة اتلاف مال كذا فى البزازية اه وهذا كله اذا خلا عن فائدة واما اذاكان موضع القبور مسجدا او على طريق اوكان هناك احد جالس اوكان قبر ولى من الاولياء اوعالم من المحققين تعظيما لروحه المشرقة على تراب جسده كاشراق الشمس على الارض اعلاماً للناس انه ولى ليتبركوا به ويدعوا الله تعالى عنده فيستجاب لهم فهو ا مرجائز لامنع منه والاعمال بالنيات۔ یعنی والد رحمہ اللہ تعالیٰ نے حاشیہ درر و غرر میں فتاویٰ بزازیہ سے نقل فرمایا کہ قبروں کی طرف شمعیں لے جانا بدعت اور مال کا ضائع کرنا ہے، یہ سب اس صورت میں ہے کہ بالکل فائدہ سے خالی ہو، اور اگر شمعیں روشن کرنے میں فائدہ ہو کہ موضعِ قبور میں مسجد ہے یا قبور سرِ راہ ہیں یا وہاں کوئی شخص بیٹھا ہے یا مزار کسی ولی اللہ یا محققین علماء میں سے کسی عالم کا ہے وہاں شمعیں روشن کریں ان کی روح مبارک کی تعظیم کے لیے جو اپنے بدن کی خاک پر ایسی تجلی ڈال رہی ہے جیسے آفتاب زمین پر، تاکہ اس روشنی کرنے سے لوگ जानیں کہ یہ ولی کا مزار پاک ہے تاکہ اس سے تبرک کریں

اور وہاں اللہ عزوجل سے دعا مانگیں کہ ان کی دعا قبول ہو تو یہ امر جائز ہے اس سے اصلاً ممانعت نہیں، اور اعمال کا مدار نیتوں پر ہے،

پھر فرماتے ہیں: روی ابوداؤد والترمذی عن ابن عباس رضی اللہ تعالیٰ عنہما ان رسول اللہ صلی اللہ علیہ وسلم ابوداؤد اور ترمذی نے ابن عباس رضی اللہ تعالیٰ عنہما سے روایت کیا ہے کہ رسول اللہ صلی اللہ علیہ وسلم

---

1 الحدیقة الندیة ایقاد الشموع فی القبور نوریہ رضویہ فیصل آباد ۲/ ۶۳۰ صفحہ 491 از 948

Fatawa Razawiyya Volume 9

[The Prophet] peace be upon him cursed women who visit graves and those who build mosques over them and place lamps on them, i.e., those who light lamps on graves uselessly without any benefit, as we have mentioned (T).

This means that the above-mentioned hadith which has been narrated also refers to the same situation where candles are lit on graves merely in vain and without benefit; otherwise, there is no prohibition. Note that it is the same hadith and the same text from Fatawa Bazzaziya. That great and illustrious scholar, may Allah Almighty have mercy on him, clarified its meaning and explicitly stated that lighting candles in cemeteries is not at all prohibited when it is for some benefit. He mentioned several examples of benefits: (1) There is a mosque there so that the worshippers will have comfort and the mosque will also have light. (2) The graves are by the roadside; lighting will benefit the passersby, and also the deceased, as Muslims, seeing the Muslim graves, will offer greetings (Salam), recite Al-Fatiha, pray, and convey rewards. If the strength of the passersby is greater, the deceased will receive blessings, and if the strength of the deceased is greater, the passersby will gain spiritual benefit (faiz). (3) If someone is sitting in the cemetery for visitation (ziyarat), sending rewards (isal-e-thawab), spiritual gain (ifadah), or seeking forgiveness (istighfar), they will find comfort through the light; if they want to look at and recite the Great Quran, they can do so. (4) Those three benefits were also applicable to the shrines of the saints (Awliya Kiram), may Allah sanctify their secrets, in a primary manner because there are often mosques near holy shrines, they are in many places thoroughfares, and they are rarely empty of visitors or residents (mujawirin). However, the aforementioned Imam did not suffice with these but stated a grand benefit specifically for lighting at noble shrines: that lighting should be done for the veneration (ta'zim) of their pure souls. I say: It is evident that lighting is a sign of care (i'tina), and care is a sign of veneration (ta'zim). And veneration of the people of Allah is part of faith and a cause for the pleasure of the Compassionate (Rahman), Mighty and Majestic. Allah, Mighty and Majestic, said:

"And whoever honors the symbols of Allah - indeed, it is from the piety of hearts." (Quran 22:32)

1. Al-Hadiqa al-Nadiyya, Lighting Candles at Graves, Nuriya Razawiyya Faisalabad 2/630.
2. Al-Quran 22/32.

फ़तावा रज़विया जिल्द 9

[नबी] सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने कब्रों पर जाने वाली औरतों और उन पर मस्जिदें बनाने वालों और चिराग रखने वालों पर लानत फरमाई, यानी उन लोगों पर जो बिना किसी फायदे के कब्रों पर चिराग जलाते हैं जैसा कि हमने ज़िक्र किया है (त)।

यानी यह उपरोक्त हदीस जो रिवायत की गई है, उससे भी मुराद वही सूरत है कि महज़ व्यर्थ (अबत) बिना किसी फ़ायदे के कब्रों पर शमा (मोमबत्ती) रौशन करें वरना मनाही नहीं है। गौर करें कि वही हदीस है और वही इबारत (टेक्स्ट) फ़तावा बज़ाज़िया की है। उस जलील-उल-क़द्र अज़ीम-उल-फ़ख़्र अल्लामा (रहमतुल्लाहि अलैहि) ने इसके मायने साफ़ फरमाए और साफ़ तौर पर कहा कि कब्रिस्तानों में शमा रौशन करना जब किसी फ़ायदे के लिए हो तो हरगिज़ मना नहीं है। उन्होंने फ़ायदे की कई मिसालें दीं: (1) वहां कोई मस्जिद हो ताकि नमाज़ियों को भी आराम हो और मस्जिद में भी रोशनी रहे। (2) कब्रें रास्ते के किनारे हों; रोशनी करने से राहगीरों को फ़ायदा होगा और मुर्दों को भी, क्योंकि मुसलमान, मुसलमानों की कब्रों को देखकर सलाम करेंगे, फ़ातिहा पढ़ेंगे, दुआ करेंगे और सवाब पहुँचाएंगे। अगर गुज़रने वालों की रूहानी ताक़त ज़्यादा है तो मुर्दे बरकत हासिल करेंगे, और अगर मुर्दों की रूहानी ताक़त ज़्यादा है तो गुज़रने वाले फैज़ हासिल करेंगे। (3) कब्रिस्तान में अगर कोई बैठा हो जो ज़ियारत या ईसाले-सवाब या फ़ायदा पहुँचाने या माफ़ी मांगने के लिए आया है, तो उसे रोशनी से आराम मिलेगा; अगर वह कुरान-ए-अज़ीम देखकर पढ़ना चाहे तो पढ़ सकेगा। (4) वे तीनों फायदे औलिया-ए-किराम (कुदिसल्लाहु तआला असरारहुम) के मज़ारत को भी बेहतर तरीके से शामिल थे क्योंकि मुक़द्दस मज़ारों के पास अक्सर मस्जिदें होती हैं, वे कई जगहों पर रास्ते में होते हैं, और ज़ायरीन या मुजाविरीन से तो शायद ही कभी खाली होते हों। लेकिन उक्त इमाम ने इन पर बस नहीं किया बल्कि खुद मज़ारत-ए-करीमा के लिए खासतौर पर रोशनी में एक बड़ा फायदा बताया कि उनकी पाक रूहों की ताज़ीम (सम्मान) के लिए रोशनी की जाए। अक़ूल (मैं कहता हूँ): ज़ाहिर है कि रोशनी तवज्जो (एहतिमाम) की दलील है और तवज्जो ताज़ीम की दलील है। और अल्लाह वालों की ताज़ीम ईमान का हिस्सा है और अल्लाह रहमान की रज़ा का कारण है। अल्लाह अज़्ज़-व-जल्ल ने फरमाया:

"और जो कोई अल्लाह की निशानियों की ताज़ीम करे, तो बेशक यह दिलों की परहेज़गारी से है।" (कुरान 22:32)

1. अल-हदीक़त-उल-नदिय्या, कब्रों पर शमा जलाना, नूरिया रज़विया फैसलाबाद 2/630
2. अल-कुरान 22/32

فتاوی رضویہ جلد نہم

تَعَالیٰ علیہ وسلم لَعَن زَائِرَاتِ القُبُور وَ المُتَخِذِیْنَ عَلَیْھَا المَسَاجِدَ وَالسُرُجَ اَی الذین یوقدون السرج علی القبور عبثاً من غیر فائدہ 1۔ کماذ کرنا۔ نے قبروں پر جانے والی عورتوں اور قبروں پر مسجدیں بنانے والوں اور چراغ رکھنے والوں پر لعنت فرمائی یعنی اُن لوگوں پر جو کسی فائدہ کے بغیر قبروں پر چراغ جلاتے ہیں جیسا کہ ہم نے ذکر کیا ہے (ت)

یعنی یہ مذکورہ بالا حدیث کہ راویت کی گئی ہے۔ اس سے بھی مراد وہی صورت ہے کہ محض عبث بلا فائدہ قبور پر شمعیں روشن کریں ورنہ ممانعت نہیں، ملاحظہ ہو وہی حدیث ہے وہی عبارت فتاویٰ بزازیہ ہے، ان علامہ جلیل القدر عظیم الفخر رحمہ اللہ تعالیٰ نے ان کے معنی روشن فرمائے اور تصریحاً ارشاد کیا کہ مقابر میں شمعیں روشن کرنا جب کسی فائدہ کے لیے ہو ہرگز منع نہیں، فائدہ کی متعدد مثالیں فرمائیں: (۱) وہاں کوئی مسجد ہو کہ نمازیوں کو بھی آرام ہوگا اور مسجد میں بھی روشنی ہوگی۔ (۲) مقابر برسر راہ ہوں روشنی کرنے سے راہ گیروں کو نفع پہنچے گا اور اموات کو بھی کہ مسلمان مقابر مسلمین دیکھ کر سلام کریں گے، فاتحہ پڑھیں گے، دعا کریں گے، ثواب پہنچائیں گے، گزرنے والوں کی قوت زائد ہے تو اموات برکت لیں گے، اور اگر اموات کی قوت زائد ہے تو گزرنے والے فیض حاصل کریں گے۔ (۳) مقابر میں اگر کوئی بیٹھا ہو کہ زیارت یا ایصال ثواب یا افادہ یا استغفار کے لیے آیا ہے تو اسے روشنی سے آرام ملے گا، قرآن عظیم دیکھ کر پڑھنا چاہے تو پڑھ سکے گا۔ (۴) وہ تینوں منافع مزارات اولیاء کرام قدسنا اللہ تعالیٰ باسرارہم کو بھی بروجہ اولیٰ شامل تھے کہ مزارات مقدسہ کے پاس غالباً مساجد ہوتے ہیں، گزرگاہ بھی بہت جگہ ہے اور حاضرین زائرین خواہ مجاورین سے تو نادرً اخالی ہوتے ہیں مگر امام ممدوح ان پر اکتفانہ فرما کر خود مزارات کریمہ کے لیے بالتحصیص روشنی میں فائدہ جلیلہ کا

افادہ فرماتے ہیں کہ ان کی ارواح طیبہ کی تعظیم کے لیے روشنی کی جائے۔ اقول: ظاہر ہے کہ روشنی دلیل اعتناء ہے اور اعتناء دلیل تعظیم۔ اور تعظیم اہلِ اللہ ایمان و موجب رضائے رحمان عزوجل۔ قال اللہ عزوجل:

وَ مَنْ یُعَظِّمْ شَعَائِرَ اللهِ فَإِنَّهَا مِنْ تَقْوَى الْقُلُوْبِ 2 جو الٰہی نشانیوں کی تعظیم کرے تو وہ دلوں کی پرہیز گاری سے ہے۔

1 الحدیقة الندیة ایقاد الشموع فی القبور نوریہ رضویہ فیصل آباد ۲/ ۶۳۰ 2 القرآن ۲۲/ ۳۲

Fatawa Razawiyya - Volume 9

And Allah, the Blessed and Exalted, said: “And whoever honors the sacred ordinances of Allah - it is best for him in the sight of his Lord.” (Al-Quran 22:30) (1) Whoever respects the things of divine etiquette, it is better for him with his Lord. An example of this is the gilding and decorating of the Holy Quran; although it was not practiced by the early generations (Salaf), it is permissible and recommended as it is an evidence of reverence and etiquette. It is stated in Durr al-Mukhtar: “Decorating the Mushaf (Quran) is permissible because it contains its veneration, just as in the case of decorating the mosque.” (2) Gilding and decorating the Holy Quran is permissible because it signifies its veneration, just as in the case of decorating a mosque. (T) Similarly, the decoration of mosques with gold and silver patterns on their walls did not exist in the first era; rather, it was mentioned in the Hadith: “You will surely decorate them (mosques) as the Jews and Christians decorated [their places of worship].” (3) Reported by Abu Dawud from Ibn Abbas (may Allah be pleased with them both). “You will decorate mosques just as the Jews and Christians decorated [their places of worship],” narrated by Abu Dawud from Hazrat Ibn Abbas (RA). (T) But now, outward pomp and glory itself creates an impression of reverence in the hearts of the general public. Therefore, the Imams of religion gave the ruling of permissibility. In Tabyin al-Haqa'iq it says: “It is not disliked to decorate the mosque with plaster and gold water.” (4) It is not disliked to make patterns in the mosque with plaster and gold water. (T) In Radd al-Muhtar, it says: “His saying ‘as in the decoration of the mosque’ means everything except for its mihrab (prayer niche), i.e., with plaster and gold water.” (5) His statement “as in the decoration of the mosque” refers to everything except the mihrab, meaning with plaster and gold water. (T)

---

1. Al-Quran 22/30
2. Durr al-Mukhtar, Kitab al-Hazr wa al-Ibahah, Chapter on Sale, Mujtabai Press Delhi, 2/245
3. Sunan Abi Dawud, Chapter on building the mosque, Aftab-e-Alam Press Lahore, 1/65
4. Tabyin al-Haqa'iq, Chapter on Disliked Acts facing the Qibla, Kubra Miriya Press Egypt, 1/168
5. Radd al-Muhtar, Kitab al-Hazr wa al-Ibahah, Chapter on Sale, Egyptian Printing Administration Egypt, 5/24

और अल्लाह, जो बरकत वाला और बुलंद है, ने फ़रमाया: “और जो अल्लाह की निशानियों (हुक्मों) की ताज़ीम करे, तो वह उसके रब के नज़दीक उसके लिए बेहतर है।” (अल-क़ुरान 22:30) (1) जो कोई ईश्वरीय शिष्टाचार की वस्तुओं का सम्मान करता है, उसके रब के पास उसके लिए भलाई है। इसका उदाहरण पवित्र क़ुरान को सुनहरा और सुशोभित करना है; हालाँकि यह पूर्वजों (सलफ़) के समय में नहीं था, फिर भी यह जायज़ और मुस्तहब (पसंदीदा) है क्योंकि यह सम्मान और अदब का प्रमाण है। दुर्र अल-मुख़्तार में है: “मुसहफ़ (क़ुरान) को सजाना जायज़ है क्योंकि इसमें उसकी ताज़ीम है, जैसा कि मस्जिद को सजाने में होता है।” (2) मुसहफ़ शरीफ़ को सुनहरा करना और सजाना जायज़ है क्योंकि इसमें उसका सम्मान है, जैसा कि मस्जिद में नक्काशी करना। (त) इसी तरह मस्जिदों की दीवारों पर सोने और चांदी की नक्काशी से सजावट करना भी शुरुआती दौर (सद्र-ए-अव्वल) में नहीं था, बल्कि हदीस में इसका ज़िक्र था: “तुम उन्हें (मस्जिदों को) वैसे ही सजाओगे जैसे यहूदियों और ईसाइयों ने सजाया।” (3) अबू दाऊद ने इसे हज़रत इब्न अब्बास (रज़ि.) से रिवायत किया है। “तुम मस्जिदों की वैसी ही सजावट करोगे जैसे यहूदियों और ईसाइयों ने की,” इसे अबू दाऊद ने हज़रत इब्न अब्बास (रज़ि.) से रिवायत किया है। (त) लेकिन अब, बाहरी शान-ओ-शौकत ही आम लोगों के दिलों में सम्मान का प्रभाव पैदा करती है। इसलिए अइम्मा-ए-दीन (धर्म गुरुओं) ने इसके जायज़ होने का हुक्म दिया। तबीन अल-हक़ाएक़ में है: “मस्जिद में चूने और सोने के पानी से नक्काशी करना मकरूह (नापसंद) नहीं है।” (4) चूने और सोने के पानी से मस्जिद में नक्काशी बनाना मकरूह नहीं है। (त) रद अल-मुहतार में है: “उनका यह कहना ‘जैसा कि मस्जिद की नक्काशी में’, यानी मेहराब के अलावा, यानी चूने और सोने के पानी से।” (5) उनका कथन, जैसा कि मस्जिद की सजावट में, यानी मेहराब के अलावा, यानी चूने और सोने के पानी से। (त)

---

1. अल-क़ुरान 22/30
2. दुर्र-ए-मुख़्तार, किताब अल-हज़र वल-इबाहत, फ़स्ल फ़िल-बय, मुजतबाई प्रेस दिल्ली, 2/245
3. सुनन अबू दाऊद, बाब फ़ी बिना अल-मस्जिद, आफ़ताब-ए-आलम प्रेस लाहौर, 1/65
4. तबीन अल-हक़ाएक़, फ़स्ल करह इस्तिकबाल अल-क़िब्ला, मत्वआ कुबरा मीरिया मिस्र, 1/168

5. रद अल-मुहतार, किताब अल-हज़र वल-इबाहत, बाब फ़िल-बय, इदारा अत-तिबा'त अल-मिसरिया मिस्र, 5/24

पृष्ठ 493 का 948

فتاوی رضویہ - جلد نہم

وقال اللہ تبارك وتعالی وَمَنْ یُّعَظِّمْ حُرُمٰتِ اللّٰہِ فَھُوَ خَیْرٌ لَّہٗ عِنْدَ رَبِّہٖ ط 1۔ جو الہی آداب کی چیزوں کی تعظیم کرے تو اس کے لیے اس کے رب کے یہاں بہتری ہے۔ اس کی نظیر مصحف شریف کا مطلقاً ومذہب کرنا ہے کہ اگر چہ سلف میں نہ تھا، جائز و مستحب ہے کہ دلیل تعظیم و ادب ہے۔ در مختار میں ہے: جاز تحلیة المصحف لما فیه من تعظیمه کما في نقش المسجد 2۔ مصحف شریف مطلقاً ومذہب کرنا جائز ہے کیونکہ اس میں اس کی تعظیم ہے جیسا کہ مسجد کو منقش کرنے میں (ت) یوں ہی مساجد کی آرائش ان کی دیواروں پر سونے چاندی کے نقش و نگار کہ صدر اول میں نہ تھے، بلکہ یہ حدیث میں تھا: لتزخرفنّھا کما زخرفت الیھود والنصاری 3۔ رواہ ابو داؤد عن ابن عباس رضی اللہ تعالیٰ عنھما۔ تم مسجدوں کی آرائش کرو گے جیسے یہود و نصاری نے آرائش کی، اسے ابوداؤد نے حضرت ابن عباس رضی اللہ تعالیٰ عنہما سے روایت کیا۔ (ت) مگر اب ظاہری تزک و احتشام ہی قلوبِ عامہ پر اثرِ تعظیم پیدا کرتا ہے۔ لہذا ائمہ دین نے حکم جواز دیا۔ تبیین الحقائق میں ہے: لا یکرہ نقش المسجد بالجص وماء الذھب 4۔ گچ اور سونے کے پانی سے مسجد میں نقش بنانا مکروہ نہیں ہے (ت) ردالمحتار میں ہے: قوله کما في نقش المسجدای ماخلا محرابه ای بالجص وماء الذھب 5۔ اس کا قول، جیسا کہ مسجد کی آرائش میں، یعنی محراب کے علاوہ، یعنی گچ اور سونے کے پانی سے۔ (ت)

---

1 القرآن ۲۲/ ۳۰ 2 درمختار کتاب الحظر والاباحۃ فصل فی البیع مطبع مجتبائی دہلی ۲/ ۲۴۵ 3 سنن ابوداؤد باب فی بناء المسجد آفتاب عالم پریس لاہور ۱/ ۶۵ 4 تبیین الحقائق فصل کرہ استقبال القبلۃ مطبعۃ کبریٰ میریہ مصر ۱/ ۱۶۸ 5 ردالمحتار کتاب الحظر والاباحۃ باب فی البیع ادارۃ الطباعۃ المصریۃ مصر ۵/ ۲۴

Fatawa Razawiyya Volume 9

(3) Similarly, making battlements (parapets) for mosques serves as a means of distinguishing them and making them visible from afar, although they did not exist in the initial era (the time of the Prophet and companions). However, the following was stated in the blessed Hadith:

Arabic Text	Urdu Translation
اِبْنُوا الْمَسَاجِدَ وَاتَّخِذُوهَا جُمَّاً - رواہ ابن ابی شیبۃ والبیھقي فی السنن عن انس بن مالک رضی اللہ تعالیٰ عنہ۔	Build mosques and make them plain (without battlements). This was narrated by Ibn Abi Shaybah, and in as-Sunan by al-Bayhaqi, from Hazrat Anas bin Malik (may Allah be pleased with him). (T)

It is stated in another Hadith:

Arabic Text	Urdu Translation
اِبْنُوا مَسَاجِدَكُمْ جُمَّاً وَابْنُوا مَدَائِنَكُمْ مُشَرَّفَةً - رواہ ابن ابی شیبۃ فی المصنف عن ابن عباس رضی اللہ تعالیٰ عنہما۔	Build your mosques plain (without battlements) and build your cities with high battlements. This was narrated in al-Musannaf by Ibn Abi Shaybah from Hazrat Ibn Abbas (may Allah be pleased with them both). (T)

But now it is prevalent among Muslims without objection.

Arabic Text	Urdu Translation
وَمَا رَآہُ الْمُسْلِمُوْنَ حَسَنًا فَھُوَ عِنْدَ اللہِ حَسَنٌ -	And whatever the Muslims consider good, it is good in the sight of Allah as well. (T)

Imam Ibn al-Munayyar states in the commentary of Jami' al-Sahih:

Arabic Text	Urdu Translation
استنبط كراهية زخرفة المسجد لاشتغال قلب المصلى بذلك او لصرف المال فى غير وجهه نعم اذا وقع ذلك على سبيل تعظيم المساجد ولم يقع الصرف عليه من بيت المال فلا بأس به ولو اوصى بتشييد مسجد وتحميره وتصفيره	That is, it is deduced from the Hadith that decorating mosques is disliked (Makruh) because it distracts the heart of the worshipper, or because it is a misallocation of funds. Yes, if the decoration is done for the purpose of glorifying the mosque and the expenditure is not from the public treasury (Bait al-Mal), then there is no harm in it. And if a person makes a will to use their wealth for plastering the mosque and painting it red and yellow, the

Arabic Text	Urdu Translation
نفذت وصيته لانه قد حدث للناس	will shall be executed, because among the people, such things...

1. As-Sunan al-Kubra, Chapter on the Method of Building the Mosque, Dar Sadr Beirut, 2/439.
2. Al-Musannaf by Ibn Abi Shaybah, Idara al-Quran al-Ulum al-Islamiyya Karachi, 1/309.
3. Musnad Ahmad bin Hanbal, Dar al-Fikr Beirut, 1/379.

फ़तावा रज़विया जिल्द नहम (9)

(३) इसी तरह मस्जिदों के लिए कंगरे (मुंडेर) बनाना कि मस्जिदों की पहचान और दूर से उनकी सूचना का कारण हैं, हालाँकि प्रारंभिक काल (सद्र-ए-अव्वल) में ये नहीं थे, बल्कि इस हदीस शरीफ़ में इरशाद हुआ था:

अरबी पाठ	उर्दू अनुवाद
اِبْنُوا الْمَسَاجِدَ وَاتَّخِذُوهَا جُمَّاً - رواہ ابن ابی شیبۃ والبیھقي فی السنن عن انس بن مالک رضی اللہ تعالیٰ عنہ۔	मस्जिदें मुंडी (बिना कंगरों के) बनाओ। इसे इब्न अबी शैबा ने और सुनन में बैहक़ी ने हज़रत अनस बिन मालिक (रज़ियल्लाहु अन्हु) से रिवायत किया। (त)

दूसरी हदीस में है:

अरबी पाठ	उर्दू अनुवाद
اِبْنُوا مَسَاجِدَكُمْ جُمَّاً وَابْنُوا مَدَائِنَكُمْ مُشَرَّفَةً - رواہ ابن ابی شیبۃ فی المصنف عن ابن عباس رضی اللہ تعالیٰ عنہما۔	यानी मस्जिदें मुंडी बनाओ, उनमें कंगरे न रखो, और अपने शहर ऊँचे कंगरेदार बनाओ। इसे मुसन्निफ में इब्न अबी शैबा ने हज़रत इब्न अब्बास (रज़ियल्लाहु अन्हुमा) से रिवायत किया। (त)

मगर अब बिना किसी एतराज के मुसलमानों में प्रचलित है।

अरबी पाठ	उर्दू अनुवाद
وَمَا رَآہُ الْمُسْلِمُوْنَ حَسَنًا فَھُوَ عِنْدَ اللہِ حَسَنٌ -	और जिसे मुसलमान अच्छा समझें, वह ख़ुदा के यहाँ भी अच्छा है। (त)

इमाम इब्न अल-मुनय्यर शरह जामे सहीह में फ़रमाते हैं:

अरबी पाठ	उर्दू अनुवाद
استنبط کراھیۃ زخرفۃ المسجد لاشتغال قلب المصلی بذلك او لصرف المال فی غیر وجھہ نعم اذا وقع ذلك علی سبیل تعظیم	यानी हदीस से यह निष्कर्ष निकाला गया है कि मस्जिदों की सजावट मकरूह (नापसंद) है क्योंकि नमाज़ी का ध्यान बँटेगा या इसलिए कि धन का व्यर्थ व्यय होगा। हाँ, अगर मस्जिद की ताज़ीम (महिमा) के तौर पर सजावट की जाए और खर्च बैतुल माल (सरकारी खजाने) से न हो तो कोई हर्ज

अरबी पाठ	उर्दू अनुवाद
المساجد ولم يقع الصرف عليه من بيت المال فلا بأس به ولو اوصى بتشييد مस्जिद وتحميره وتصفيره نفذت وصيته لانه قد حدث للناس	नहीं। और अगर कोई व्यक्ति वसीयत कर जाए कि उसके धन से मस्जिद की पलस्तर (गचकारी) और उसमें लाल व पीले रंग किए जाएँ तो वसीयत लागू होगी क्योंकि लोगों में जैसी...

1. अल-सुनन अल-कुबरा, बाब फ़ी कैफियत बिना अल-मस्जिद, दार सादिर बेरुत, 2/439
2. अल-मुसन्निफ़ इब्न अबी शैबा, इदारातुल कुरान अल-उलूम अल-इस्लामिया कराची, 1/309
3. मुस्नद अहमद बिन हंबल, दारुल फिक्र बेरुत, 1/379

(۳) یونہی مسجدوں کے لیے کنگرے بنانا کہ مساجد کے امتیاز اور دور سے ان پر اطلاع کا سبب ہیں، اگرچہ صدرِاول میں نہ تھے، بلکہ یہ حدیث شریف میں ارشاد ہوا تھا:

عربی عبارت	اردو ترجمہ
اِبْنُوا الْمَسَاجِدَ وَاتَّخِذُوهَا جُمَّاً - رواہ ابن ابی شیبۃ والبیھقي فی السنن عن انس بن مالک رضی اللہ تعالیٰ عنہ۔	مسجدیں منڈّی بناؤ، اسے ابن ابی شیبہ نے اور سنن میں بیہقی نے حضرت انس بن مالک رضی اللہ تعالیٰ عنہ سے روایت کیا۔ (ت)

دوسری حدیث میں ہے:

عربی عبارت	اردو ترجمہ
اِبْنُوا مَسَاجِدَكُمْ جُمَّاً وَابْنُوا مَدَائِنَكُمْ مُشَرَّفَةً - رواہ ابن ابی شیبۃ فی المصنف عن ابن عباس رضی اللہ تعالیٰ عنہما۔	یعنی مسجدیں منڈّی بناؤ ان میں کنگرے نہ رکھو، اور اپنے شہر اونچے کنگرے دار بناؤ_ اسے مصنف میں ابن ابی شیبہ نے حضرت ابن عباس رضی اللہ تعالیٰ عنہما سے روایت کیا۔(ت)

مگر اب بلا نکیر مسلمانوں میں رائج ہے۔

عربی عبارت	اردو ترجمہ
وَمَا رَآهُ الْمُسْلِمُوْنَ حَسَنًا فَهُوَ عِنْدَ اللهِ حَسَنٌ -	اور جسے مسلمان اچھا سمجھیں وہ خدا کے یہاں بھی اچھا ہے۔(ت)

امام ابن المنیر شرح جامع صحیح میں فرماتے ہیں:

عربی عبارت	اردو ترجمہ
استنبط كراهية زخرفة المسجد لاشتغال قلب المصلى بذلك او لصرف المال فى غير وجهه نعم اذا وقع ذلك على سبيل تعظيم المساجد ولم يقع الصرف عليه من بيت المال فلا بأس به ولو اوصى بتشييد مسجد وتحميره وتصفيره نفذت وصيته لانه قد حدث للناس	یعنی حدیث سے مستنبط کیا گیا ہے کہ مسجدوں کی آرائش مکروہ ہے کہ نمازی کا خیال بٹے گا یا اس لیے کہ مال بیجا خرچ ہو گا۔ ہاں اگر تعظیم مسجد کے طور پر آرائش واقع ہو اور خرچ بیت المال سے نہ ہو تو کچھ مضائقہ نہیں، اور اگر کوئی شخص وصیت کر جائے کہ اس کے مال سے مسجد کی گچ کاری اور اس میں سرخ و زرد رنگ کریں تو وصیت نافذ ہو گی کہ لوگوں میں جیسی

1 السنن الکبریٰ باب فی کیفیۃ بناء المسجد دار صادر بیروت ۲ / ۴۳۹ 2 المصنف لابن ابی شیبہ ادارۃ القرآن العلوم الاسلامیہ کراچی ۱ / ۳۰۹ 3 مسند احمد بن حنبل دارالفکر بیروت ۱ / ۳۷۹

[Table Top Left (Arabic):] Fatwas are issued according to the new circumstances that arise. Since people, both believers and disbelievers, have started strengthening and decorating their houses, if we were to build our mosques with unbaked bricks and make them low amidst high-rise buildings—some of which might even belong to the protected non-Muslim citizens—they would appear insignificant in people's eyes. [Footnote 1]

[Table Top Right (Urdu):] As new situations arose, new fatwas were issued accordingly. Since now both Muslims and non-Muslims have begun plastering and decorating their homes, if we build mosques with raw bricks and low walls amidst these tall buildings, some of which may belong to non-Muslims as well as Muslims, they will be devalued in the eyes of people.

In the same category is the construction of structures over the shrines of the noble saints and great scholars (may their secrets be sanctified). Despite the Hadith in Muslim, Abu Dawud, Nasa'i, and Musnad Ahmad:

[Table Middle Left (Arabic):] It is narrated from Jabir (may Allah be pleased with him) that the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) forbade sitting on the grave, plastering it with gypsum, and building over it. [Footnote 2]

[Table Middle Right (Urdu):] It is narrated from Hazrat Jabir (may Allah be pleased with him) that the Holy Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) forbade sitting on a grave, making it solid with gypsum (plaster), and building a structure upon it. (T)

Although its prohibition is explicitly mentioned therein, the noble Imams and eminent scholars of the past and later generations have deemed it permissible. It is stated in Takmila Majma' Bihar al-Anwar, Volume 3, Page 140:

[Table Bottom-Middle Left (Arabic):] The predecessors permitted building over the graves of the virtuous, the saints, and the scholars so that people might visit them and find comfort there. [Footnote 3]

[Table Bottom-Middle Right (Urdu):] Verily, the righteous predecessors (Salaf Saliheen) have declared it permissible to build structures over the pure shrines of the virtuous, saints, and scholars so that people may visit them and find comfort in them.

It is mentioned in Jawahir al-Akhlati:

[Table Bottom Left (Arabic):] Even if it is an innovation, it is a good innovation (bid'ah hasanah). How many things were newly introduced and became a good innovation, and how many things differ according to the variation...

[Table Bottom Right (Urdu):] That is, although this is a new thing, it is still a 'good innovation' (bid'ah hasanah). There are many things that were newly created and are good innovations, and many rulings change with the change of time or place.

---

1. Irshad al-Sari Sharh al-Bukhari, Chapter: Building of Mosques, Dar al-Kutub al-Arabi, Beirut, 11/440.
2. Sahih Muslim, Book of Funerals, Building on Graves, Noor Muhammad Asah al-Mataba', Karachi, 1/312.
3. Takmila Bihar al-Anwar, under the word 'Qabr' (Grave), Munshi Nawal Kishore, Lucknow, 3/140.

फतावा रज़विया | खंड 9

[ऊपरी बॉक्स बाएँ(अरबी):] फतवे नई परिस्थितियों के अनुसार जारी किए जाते हैं जो उत्पन्न होती हैं। चूँकि लोगों ने, चाहे वे आस्तिक हों या काफ़िर, अपने घरों को मज़बूत बनाना और सजाना शुरू कर दिया है, यदि हम अपनी मस्जिदों को कच्ची ईंटों से बनाएंगे और उन्हें ऊँची इमारतों के बीच—जिनमें से कुछ संरक्षित गैर-मुस्लिम नागरिकों की भी हो सकती हैं—नीचा रखेंगे, तो वे लोगों की नज़रों में तुच्छ लगेंगी। [संदर्भ 1]

[ऊपरी बॉक्स दाएँ(उर्दू):] जैसे-जैसे नई बातें पैदा हुईं, वैसे ही उनके लिए फतवे नए हुए कि अब मुसलमानों और काफिरों, सभी ने अपने घरों की गचकारी और सजावट शुरू कर दी है। अगर हम इन ऊँची इमारतों के बीच—जो मुस्लिमों के साथ-साथ काफिरों की भी होंगी—कच्ची ईंट और नीची दीवारों वाली मस्जिदें बनाएंगे, तो लोगों की नज़रों में उनकी कोई अहमियत नहीं रहेगी।

इसी श्रेणी में महान औलिया और प्रतिष्ठित विद्वानों (अल्लाह उनके रहस्यों को पवित्र करे) के मज़ारों पर इमारतों का निर्माण आता है, बावजूद इसके कि मुस्लिम, अबू दाऊद, नसाई और मसनद अहमद की हदीस है:

[मध्य बॉक्स बाएँ(अरबी):] हज़रत जाबिर (रज़ियल्लाहु अन्हु) से रिवायत है कि नबी (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने कब्र पर बैठने, उसे गच (प्लास्टर) से पक्का करने और उस पर इमारत बनाने से मना फ़रमाया। [संदर्भ 2]

[मध्य बॉक्स दाएँ(उर्दू):] हज़रत जाबिर (रज़ियल्लाहु अन्हु) से रिवायत है कि नबी करीम (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने कब्र पर बैठने, उसे गच से पक्का करने और उस पर इमारत बनाने से मना फ़रमाया। (त)

हालाँकि इसमें स्पष्ट रूप से इसकी मनाही बताई गई है, लेकिन पूर्ववर्ती और बाद के प्रतिष्ठित इमामों और विद्वानों ने इसे जायज़ माना है। तकमिला मजमा' बिहार अल-अनवार, खंड 3, पृष्ठ 140 में लिखा है:

[नीचे-मध्य बॉक्स बाएँ(अरबी):] पूर्ववर्तियों ने गुणी लोगों, औलिया और विद्वानों की कब्रों पर इमारत बनाने की अनुमति दी है ताकि लोग उनकी ज़ियारत (दर्शन) कर सकें और वहाँ राहत पा सकें। [संदर्भ 3]

[नीचे-मध्य बॉक्स दाएँ(उर्दू):] बेशक अइम्मा-ए-सलफ़ सालेहीन ने अहल-ए-फ़ज़ल औलिया और उलमा के मज़ारात-ए-तैयबा पर इमारत बनाना मुबाह (जायज़) फ़रमा दिया कि लोग उनकी ज़ियारत करें और उनमें राहत पायें।

जवाहर अख़्लाती में है:

[नीचे बॉक्स बाएँ(अरबी):] हालाँकि यह एक नई चीज़ है, फिर भी यह बिदअत-ए-हसना (अच्छी नवीनता) है। कितनी ही चीज़ें ऐसी हैं जो नई पैदा हुईं और वे अच्छी बिदअत हैं, और बहुत से हुक्म (नियम) भिन्नता के साथ बदलते हैं...

[नीचे बॉक्स दाएँ(उर्दू):] यानी यह अगरचे नौपैदा (नई) है फिर भी बिदअत-ए-हसना है और बहुत सी चीज़ें हैं कि नई पैदा हुईं और हैं अच्छी बिदअत, और बहुत अहकाम हैं कि ज़माने या मकाम की तब्दीली से।

---

1. इरशाद अल-सारी शरह अल-बुखारी, अध्याय: मस्जिदों का निर्माण, दार अल-कुतुब अल-अरबी, बेरूत, 11/440।
2. सहीह मुस्लिम, किताब अल-जनाइज़, कब्र पर निर्माण, नूर मुहम्मद अस-ह अल-मताबा, कराची, 1/312।
3. तकमिला बिहार अल-अनवार, शब्द 'कब्र' के तहत, मुंशी नवल किशोर, लखनऊ, 3/140।

فتأوی بقدر ما احدثوا وقد احدث الناس مؤمنهم وكافرهم تشييد بيوتهم وتزيينها ولو بنينا مساجدنا باللبن وجعلناها متطامنة بين الدور الشاهقة و ربما كانت لاهل الذمة لكانت مستهانة 1۔

نئی نئی باتیں پیدا ہوتی گئیں ویسے ہی ان کے لیے فتوے نئے ہوئے کہ اب مسلمانوں کافروں سب نے اپنے گھروں کی گچکاری اور آرائش شروع کردی، اگر ہم ان بلند عمارتوں کے درمیان جو مسلمین تو مسلمین کافروں کی بھی ہوں گی کچی اینٹ اور نیچی دیواروں کی مسجدیں بنائیں تو نگاہوں میں ان کی بے وقعتی ہوگی۔

اسی قبیل سے ہے مزارات اولیاء کرام و علمائے عظام قدست اسرارہم پر عمارات کی بناء کہ باوصف حدیث مسلم و ابوداؤد و نسائی و مسند احمد :

عن جابر رضی اللہ تعالی عنه نهی النبي صلی اللہ تعالی علیه وسلم ان یجلس علی القبر وان یجصص وان یبنی علیه 2۔

حضرت جابر رضی اللہ تعالٰی عنہ سے مروی ہے کہ نبی کریم صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم نے قبر پر بیٹھنے، اسے گچ سے پکی کرنے اور اس پر عمارت بنانے سے منع فرمایا۔ (ت)

جس میں صراحۃً اس کی ممانعت ارشاد ہوئی ہے سلفاً و خلفاً ائمہ کرام و علمائے اعلام نے جائز رکھی تکملہ مجمع بحار الانوار جلد ثالث صفحہ ۱۴۰ میں ہے :

قد اباح السلف البناء علی قبور الفضلاء الاولیاء والعلماء لیزورهم ویستریحون فیه 3۔

بیشک ائمہ سلف صالحین نے اہل فضل اولیاء و علماء کے مزارات طیبہ پر عمارت بنانا مباح فرما دیا کہ لوگ ان کی زیارت کریں اور ان میں راحت پائیں۔

جواہر اخلاطی میں ہے :

ھو وان کان احداثا فھو بدعة حسنة وکم من شیئ کان احداثاً وھو بدعة حسنة وکم من شیئ یختلف باختلاف

یعنی یہ اگرچہ نوپید ہے پھر بھی بدعتِ حسنہ ہے اور بہت سی چیزیں ہیں کہ نئی پیدا ہوئیں اور ہیں اچھی بدعت، اور بہت احکام ہیں کہ زمانے یا مقام کی تبدیلی سے

---

1 ارشاد الساری شرح البخاری باب بنیان المساجد دار الکتب العربی بیروت ۱۱/ ۴۴۰ 2 صحیح مسلم کتاب الجنائز البناء علی القبر نور محمد اصح المطابع کراچی ۱/ ۳۱۲ 3 تکملہ بحار الانوار تحت لفظ قبر منشی نولکشور لکھنؤ ۳/ ۱۴۰

Fatawa Rizwia Volume 9

Time and Place.[1]

That is, it is folly to cite previous rulings in a place where the current need, if it had occurred in the time of the predecessors, would have led them to command what we are commanding now. For example, the Mother of the Believers, Hazrat Siddiqa (Aisha), may Allah be pleased with her, said:

If the Prophet, may Allah bless him and grant him peace, had seen what women have introduced [nowadays], he would have forbidden them from the mosques as the women of the Children of Israel were forbidden.[2]

And finally, the leaders of the religion (Imams) did indeed forbid women from the mosques, even though the Messenger of Allah, may Allah bless him and grant him peace, had said:

Do not prevent the female servants of Allah from the mosques of Allah.[3] Narrated by Ahmad and Muslim from Ibn Umar, may Allah be pleased with both of them.

change.

That is, if the Messenger of Allah, may Allah bless him and grant him peace, had observed the things that women have innovated until now, he would have forbidden them from the mosques, just as the women of the Children of Israel were forbidden. (T)

Do not prevent the female servants of Allah from the mosques of Allah; Imam Ahmad and Muslim narrated this from Hazrat Ibn Umar, may Allah be pleased with both of them. (T)

Will the ruling given by the leaders of the religion, considering the circumstances of the time, be called opposition to the Hadith? God forbid! None but a fool or one with skewed understanding would say such a thing. Similarly, these are the rulings for modern ways of showing veneration. The hearts of the righteous predecessors were filled with the veneration of the symbols of Allah. They did not need outward refinement and pomp, so in their time, these things were futile and useless, and every futile thing is disliked (makruh), and spending money on it is prohibited. Now that without outward refinement and pomp, value does not enter the hearts of common people, there was a need for these things. Permission was given to gild the

Holy Quran, permission was given for golden domes on mosques and gold and silver engravings, permission was given to build domes over shrines, to place sheets (chaddars), and to provide lighting. No one but an unwise and ignorant person will present previous Hadiths and rulings against all these actions. This is a brief explanation of the statement of the aforementioned Imam (may his secret be sanctified), and its brilliant detail and profound research is in our treatise 'Tawali' al-Nur fi Hukm al-Siraj 'ala al-Qubur'. And success is with Allah. The same illustrious Imam in 'Kashf al-Nur', then Allama Shami in 'Radd al-Muhtar', chapter on clothing (Fasl al-Labs), and in 'Uqud al-Durriyya', various issues (Masail Shati), also argue from this same veneration regarding placing coverings on the shrines of the Awliya (saints), as we have explained in our Fatawa (as we...

[1] Jawahir al-Akhlati, Kitab al-Ihsan wa al-Karahiya, Manuscript p. 168. B. [2] Sahih Muslim, Chapter on Women going out to Mosques, Nur Muhammad Asah al-Matabi' Karachi, 1/183. [3] Sahih Muslim, Chapter on Women going out to Mosques, Nur Muhammad Asah al-Matabi' Karachi, 1/183.

समय और स्थान।[1]

यानी ऐसी जगह पुराने आदेशों से प्रमाण लाना मूर्खता है, जहाँ अब जो आवश्यकता उत्पन्न हुई है, यदि वह पूर्वजों के समय में होती तो वे भी वही आदेश देते जो हम इस समय दे रहे हैं। जैसे उम्मुल मोमिनीन हज़रत सिद्दीक़ा रज़ियल्लाहु अन्हा ने फ़रमाया:

बदल जाते हैं।

यदि नबी सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम वह देखते जो महिलाओं ने (अब) पैदा कर दिया है, तो वह उन्हें मस्जिदों से रोक देते जैसा कि बनी इसराइल की महिलाओं को रोका गया था।[2]

यानी अगर रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम उन बातों को देखते जो महिलाओं ने अब तक निकाली हैं, तो उन्हें मस्जिदों से मना फ़रमा देते जैसा कि बनी इसराइल की औरतों को मस्जिदों से मना किया गया था। (त)

और अंततः धर्म के इमामों ने महिलाओं को मस्जिदों से मना कर ही दिया, जबकि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने फ़रमाया था:

अल्लाह की बंदियों को अल्लाह की मस्जिदों से न रोको।[3] इसे इमाम अहमद और मुस्लिम ने हज़रत इब्न उमर रज़ियल्लाहु अन्हुमा से रिवायत किया।

अल्लाह तआला की बाँदियों को अल्लाह तआला की मस्जिदों से न रोको; इसे इमाम अहमद और मुस्लिम ने हज़रत इब्न उमर रज़ियल्लाहु अन्हुमा से रिवायत किया है (त)

क्या दीन के इमामों ने ज़माने के हालात को देखते हुए जो हुक्म दिया उसे हदीस का विरोध कहा जाएगा? अल्लाह की पनाह! ऐसा कोई मूर्ख या नासमझ ही कहेगा। इसी तरह ये ताज़ा ताज़ीमों (सम्मान प्रकट करने के नए तरीकों) के अहकाम हैं। पूर्वजों के दिल अल्लाह की निशानियों की ताज़ीम से भरे हुए थे। उन्हें बाहरी चमक-धमक और शानो-शौकत की ज़रूरत नहीं थी, इसलिए उनके समय में ये बातें बेकार और फ़ालतू थीं और हर बेकार बात मकरूह है। और उसमें धन खर्च करना वर्जित है। अब जबकि बाहरी चमक-धमक के बिना आम लोगों के दिलों में कद्र नहीं आती, इन

बातों की ज़रूरत हुई, पवित्र क़ुरआन पर सोना चढ़ाने की अनुमति दी गई, मस्जिदों में सोने के कलश, सोने-चाँदी की नक्काशी की अनुमति दी गई, मज़ारों पर गुंबद बनाने, चादर डालने, रोशनी करने की अनुमति दी गई। इन तमाम कार्यों पर कोई मूर्ख और नासमझ ही पुरानी हदीसें और अहकाम पेश करेगा। यह प्रशंसित इमाम (क़ुद्दिस सिर्रहु) के इस कथन की संक्षिप्त व्याख्या है, और इसकी विस्तृत और गहन शोध हमारे रिसाला 'तवालिअल नूर फ़ी हुक्मिल सिराज अलल क़ुबूर' में है। और सफलता अल्लाह ही की ओर से है। यही जलील इमाम 'कश्फ़ुल नूर' में, फिर अल्लामा शामी 'रद्दुल मुहतार' फ़स्लुल लब्स और 'उक़ूदुल दुर्रिय्या' मसाइल शत्ती में औलिया इकराम के मज़ारों पर ग़िलाफ़ डालने के संबंध में भी इसी ताज़ीम से दलील देते हैं जैसा कि हमने अपने फ़तावा में बयान किया (जैसा कि हमने...

[1] जवाहरुल अख़लाती, किताबुल एहसान वल कराहियत, हस्तलिखित प्रति पृ. 168। बी। [2] सहीह मुस्लिम, बाब खुरुजुन निसा इलल मसाजिद, नूर मुहम्मद असहुल मताबे कराची, 1/183। [3] सहीह मुस्लिम, बाब खुरुजुन निसा इलल मसाजिद, नूर मुहम्मद असहुल मताबे कराची, 1/183।

पृष्ठ 496 का 948

فتاوٰی رضویہ جلد نہم

الزمان والمکان ۔[1] **بدل جاتے ہیں۔**

یعنی ایسی جگہ احکام سابقہ سے سند لانا حماقت ہے، جو حاجت اب واقع ہوئی اگر زمانہ سلف میں واقع ہوتی تو وہ بھی حکم کرتے جو اس وقت ہم کرتے ہیں، جیسے ام المومنین حضرت صدیقہ رضی اللہ تعالٰی عنہا نے فرمایا:

لَوْ رَاَی النَّبِیُّ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم مَا اَحْدَثَ النِّسَاءُ لَمَنَعَھُنَّ الْمَسَاجِدَ کَمَا مُنِعَتْ نِسَاءُ بَنِیْ اِسْرَائِیْلَ۔[2]

یعنی اگر رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم ملاحظہ فرماتے جو باتیں عورتوں نے اب تک نکالی ہیں، انہیں مسجدوں سے منع فرما دیتے جیسے بنی اسرائیل کی عورتوں کو مسجدوں سے منع کیا گیا تھا۔ (ت)

اور آخر ائمہ دین نے عورتات کو مسجدوں سے منع فرما ہی دیا، حالانکہ رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم نے فرمایا تھا:

لَا تَمْنَعُوْا اِمَاءَ اللہِ مَسَاجِدَ اللہِ۔[3] رواہ احمد و مسلم عن ابن عمر رضی اللہ تعالٰی عنہما۔

اللہ تعالٰی کی باندیوں کو اللہ تعالٰی کی مسجدوں سے نہ روکو اسے امام احمد و مسلم نے حضرت ابن عمر رضی اللہ تعالٰی عنہما سے روایت کیا(ت)

کیا ائمہ دین نے نظر بحال زمانہ جو حکم فرمایا اسے حدیث کی مخالفت کہا جائے گا؟ حاش للہ !ایسا نہ کہے گا مگر احمق، کج فہم، یوں ہی یہ تازہ تعظیموں کے احکام ہیں۔ سلف صالحین کے قلوب تعظیم شعائر اللہ سے مملو تھے۔ ظاہری تنزک و احتشام کے محتاج نہ تھے، تو ان کے وقت میں یہ باتیں عبث وبے فائدہ تھیں اور ہر عبث مکروہ۔ اور اس میں مال صرف کرنا ممنوع ، اب کہ بے تنزک و احتشام ظاہری قلوب عوام میں وقعت نہیں آتی ان باتوں کی حاجت ہوئی ، مصحف شریف پر سونا چڑھانے کی اجازت ہوئی مسجدوں میں سونے کے کلس، سونے چاندی کے نقش نگار کی اجازت ہوئی، مزارات پر قبہ بنانے ، چادر ڈالنے ، روشنی کرنے کی اجازت ہوئی، ان تمام افعال پر بھی احادیث و احکام سابقہ پیش نہ کرے گا مگر سفیہ و نا فہم۔ یہ مختصر شرح ہے اس ارشاد امام ممدوح قدس سرہ کی ، اور اس کی تفصیل بازغ و تحقیق بالغ ہمارے رسالہ طوالع النور فی حکم السراج علی القبور میں ہے و باللہ التوفیق۔ یہی امام جلیل کشف النور میں ، پھر علامہ شامی ردالمحتار فصل اللبس اور عقود الدر یہ مسائل شتی میں مزارات اولیاء کرام پر غلاف ڈالنے کی نسبت بھی اسی تعظیم سے استدلال فرماتے ہیں کما بینا ہ فی فتاؤنا (جیسا کہ ہم نے

[1] جواہر الاخلاطی کتاب الاحسان والکراہیتہ قلمی نسخہ ص ۱۶۸۔بی [2] صحیح مسلم باب خروج النساء الی المساجد نور محمد اصح المطابع کراچی ۱/ ۱۸۳ [3] صحیح مسلم باب خروج النساء الی المساجد نور محمد اصح المطابع کراچی ۱/ ۱۸۳

Jald-e-Naham (Volume 9) Fatawa Razawiyya

...has explained it in his Fatawas. (Note) Besides this, regarding the special lighting of the noble shrine, a statement from a much earlier, great, and most learned Imam will soon come, by the help of Allah Almighty. Zaid had promised to accept and submit upon finding even a single statement from an authentic scholar. After these investigations by the eminent, trusted, and authoritative Imams and Zaid's promise, there is no need for more. However, I offer a few summarized sentences and submissions so that our common brothers may not fall into doubt. And Allah is the Grantor of success:

(1) The praised Imam (may his secret be sanctified), just as he decided the original issue, also exposed the error of Zaid's meaningless objection that "they light lamps at the shrines of Allah's people, but not on the graves of ordinary people." He demonstrated that after the first three general benefits, in the fourth benefit, he specifically designated the shrines of the noble saints. Furthermore, the predecessor Imams have already granted its permissibility, as their statement appeared from Majma' Bihar al-Anwar that constructing buildings over the shrines of noble saints and great scholars is permissible; why then was permission not given for the graves of commoners and transgressors?

I say: If a person is aware of the sublime wisdom of the noble verse: "That is more appropriate that they may be recognized and not be molested" (Quran 33:59), through which the reason for deduction mentioned in Tawali' al-Nur is known, then such a useless objection would never even cross their mind. Regarding Zaid's question, "Why do they do it on the graves of elders and not on the grave of some transgressor and wicked person?", the praised Imam (may his secret be sanctified) replied: "In veneration for his soul shining upon the earth of his body etc." meaning their soul is venerated and it is shown to people that this is the shrine of a beloved one, so seek blessings and intercession from it so that your prayer may be answered. The praised Imam (may his secret be sanctified) also cured Zaid's misconception that "Ta'ziman li-Ruhihi" (for the veneration of his soul) - Allah forbid! - this is not their worship; it is the veneration of their pure soul. If every veneration were worship, then the veneration of the Prophets (peace be upon them) is obligatory according to the definitive texts of the Great Quran. Allah Blessed and Exalted said:

"That you may believe in Allah and His Messenger, and assist him, and honor him." (Quran 48:9) We sent Our Messenger so that, O people, you may believe in Allah and His Messenger and honor and revere the Messenger.

And Allah Blessed and Exalted said:

1. Al-Quran 33/59
2. Al-Hadiqa al-Nadiyya, Lighting Candles on Graves, Maktaba Nooriya Razawiyya, Faisalabad 2/630
3. Al-Quran 48/9 Page 497 of 948

जिल्द नहम (खण्ड नौ) फ़तावा रज़विया

...ने अपने फ़तावा में इसे बयान किया है। (त) इसके अलावा मज़ार-ए-करीम की विशेष रोशनी के संबंध में उनसे भी बहुत प्राचीन, महान और विद्वान इमाम का कथन अल्लाह तआला की सहायता से शीघ्र ही आने वाला है। ज़ैद ने एक ही विश्वसनीय आलिम का कथन मिलने पर स्वीकार करने और सिर झुकाने का वादा किया था। महान, विश्वसनीय और प्रमाणिक इमामों की इन तहकीकात (अनुसंधानों) और ज़ैद के वादे के बाद और अधिक की आवश्यकता नहीं है, लेकिन संक्षेप में कुछ वाक्य और निवेदन प्रस्तुत हैं ताकि आम भाई संदेह में न पड़ें, और अल्लाह ही सफलता देने वाला है:

(१) प्रशंसित इमाम (क़ुद्दिस सिर्रहु) ने जिस तरह मूल मसले का निर्णय फ़रमाया, ज़ैद के इस अर्थहीन आपत्ति कि "अल्लाह वालों के मज़ार पर (दीये जलाते) हैं, साधारण आदमी की क़ब्र पर नहीं करते" की ग़लती भी स्पष्ट कर दी कि उन पहले तीन सामान्य लाभों के बाद चौथे लाभ में विशेष रूप से औलिया-ए-किराम के मज़ारों को निर्दिष्ट किया। साथ ही, पूर्व इमाम इसकी वैधता (जवाज़) पहले ही दे चुके हैं, जिनका कथन मजमा बिहारुल अनवार से गुज़रा कि औलिया-ए-किराम और विद्वानों के मज़ारों पर इमारत बनाना जायज़ है; आम लोगों और गुनाहगारों की क़ब्रों पर अनुमति क्यों नहीं दी गई।

मैं कहता हूँ: यदि कोई व्यक्ति आयत-ए-करीमा: "यह इस बात के अधिक निकट है कि वे पहचानी जाएँ तो उन्हें सताया न जाए" (क़ुरआन ३३:५९) की महान हिकमत से अवगत हो, जिससे तवालीउल अनवर में वर्णित निष्कर्ष का कारण ज्ञात होता है, तो ऐसी बेकार आपत्ति कभी मन में भी न आती। ज़ैद के इस प्रश्न पर कि "बुज़ुर्गों की क़ब्रों पर क्यों करते हैं, किसी पापी और दुराचारी की क़ब्र पर क्यों नहीं करते?", प्रशंसित इमाम (क़ुद्दिस सिर्रहु) ने उत्तर दिया: "उनकी रूह (आत्मा) की ताज़ीम (सम्मान) के लिए जो उनके शरीर की मिट्टी पर चमक रही है" इत्यादि। यानी उनकी रूह का सम्मान किया जाता है और लोगों को दिखाया जाता है कि यह अल्लाह के प्रिय का मज़ार है, इससे बरकत और वसीला (मध्यस्थता) प्राप्त करो ताकि तुम्हारी दुआ स्वीकार हो। प्रशंसित इमाम (क़ुद्दिस सिर्रहु) ने ज़ैद के इस भ्रम का भी इलाज कर दिया कि "ताज़ीमन लि-रूहिही" (उनकी रूह के सम्मान के लिए) - अल्लाह की पनाह! - यह उनकी इबादत (पूजा) नहीं है, यह उनकी पवित्र रूह का सम्मान है। यदि हर सम्मान इबादत होता, तो नबियों (अलैहिमुस्सलाम) का सम्मान तो क़ुरआन अज़ीम के स्पष्ट आदेशों से अनिवार्य है। अल्लाह तबारक व तआला ने फ़रमाया:

"ताकि तुम अल्लाह और उसके रसूल पर ईमान लाओ और उनकी मदद करो और उनका सम्मान करो।" (क़ुरआन ४८:९) हमने अपने रसूल को इसलिए भेजा कि ऐ लोगो! तुम अल्लाह और रसूल पर ईमान लाओ और रसूल का सम्मान और आदर करो।

और अल्लाह तबारक व तआला ने फ़रमाया:

1. अल-क़ुरआन ३३/५९
2. अल-हदीक़तुल नदिया, मज़ारों पर शमा रोशन करना, मकतबा नूरिया रज़विया, फ़ैसलाबाद २/६३०
3. अल-क़ुरआन ४८/९ पृष्ठ ४९७/९४८

اپنے فتاویٰ میں اسے بیان کیا ہے۔ ت) اس کے علاوہ خاص روشنی مزار کریم کی نسبت ان سے بھی بہت اقدم امام اجل و اعلم کا ارشاد بعونہ تعالیٰ عنقریب آتا ہے۔ زید نے ایک ہی عالم مستند کا قول ملنے پر قبول و سر نہادن کا وعدہ کیا تھا۔ ان تحقیقات ائمہ مستندین اجلہ معتمدین و وعدہ زید کے بعد زیادہ کی حاجت نہیں، مگر اجمالاً بعض جملے اور گزارش ہوں کہ عوام بھائی شبہ میں نہ پڑیں، واللہ الموفق: (۱) امام ممدوح قدس سرہ نے جس طرح اصل مسئلہ کا فیصلہ فرمایا، زید کے اس بے معنیٰ اعتراض کی بھی کہ "اہل اللہ کے مزار پر کرتے ہیں معمولی آدمی کی قبر پر نہیں کرتے" غلطی ظاہر فرمادی کہ ان پہلے تین فوائد عامہ کے بعد چوتھے فائدہ میں خاص مزارات اولیاء کرام کی تخصیص فرمائی، نیز اس کا جواز ائمہ سلف دے چکے ہیں جن کا ارشاد مجمع بحار الانوار سے گزرا کہ مزارات اولیاء کرام و علمائے عظام پر بنائے عمارت جائز ہے، عوام و فساق کی قبور پر کیوں نہ اجازت دی، اقول: آدمی اگر آیہ کریمہ ذٰلِکَ اَدْنٰٓی اَنْ یُّعْرَفْنَ فَلَا یُؤْذَیْنَ ط (وہ اس سے زیادہ قریب ہے کہ ان کی پہچان ہو جائے تو انہیں ایذا نہ دی جائے، ت) کہ حکمت جلیلہ سے آگاہ ہو جس سے وجہ استنباط طوالع النور میں مذکور تو ایسا مہمل اعتراض ہر گز خیال میں بھی نہ آئے۔ امام ممدوح قدس سرہ نے زید کے اس سوال کا کہ "بزرگوں کی قبروں پر کیوں کرتے ہیں، کسی فاسق وفاجر کی قبر پر کیوں نہیں کرتے" جواب ارشاد فرمایا کہ تعظیماً لروحہ المشرقۃ علی تراب جسدہ الخ یعنی ان کی روح کی تعظیم کی جاتی ہے اور لوگوں کو دکھایا جاتا ہے کہ یہ مزار محبوب کا ہے اس سے تبرک و توسل کرو کہ تمہاری دعا مستجاب ہو۔ امام ممدوح قدس سرہ نے زید کے اس توہم کا بھی علاج فرمادیا کہ تعظیماً لروحہ (ان کی روح کی تعظیم کے لیے۔ت) معاذ اللہ! یہ تو ان کی عبادت نہیں ان کی روح پاک کی تعظیم ہے۔ ہر تعظیم عبادت ہو تو تعظیم انبیاء

علیہم الصلوٰۃ والسلام تو نصوص قطعیہ قرآن عظیم سے فرض ہے۔ قال اللہ تبارک وتعالیٰ: لِتُؤْمِنُوْا بِاللّٰہِ وَ رَسُوْلِہٖ وَ تُعَزِّرُوْہُ وَ تُوَقِّرُوْہُ ط ہم نے اپنے رسول کو اس لیے بھیجا کہ اے لوگو! تم اللہ ورسول پر ایمان لاؤ اور رسول کی تعظیم و توقیر کرو۔ وقال تبارک وتعالیٰ:

1 القرآن ۳۳ / ۵۹ 2 الحدیقة الندیة ایقاد الشموع فی القبور مکتبہ نوریہ رضویہ فیصل آباد ۲ / ۶۳۰

3 القرآن ۴۸ / ۹ Page 497 of 948

الَّذِیْنَ یَتَّبِعُونَ الرَّسُوْلَ النَّبِیَّ الْاُمِّیّ ... الی قول عزوجل فَالَّذِیْنَ اٰمَنُوْا بِہٖ وَعَزَّرُوْہُ وَنَصَرُوْہُ وَاتَّبَعُوا النُّوْرَ الَّذِیْٓ اُنْزِلَ مَعَہٗٓ اُولٰٓئِکَ ھُمُ الْمُفْلِحُوْنَ ﴿۱۵۷﴾	**Those who follow this Messenger, the Unlettered Prophet—that is, the one who was not taught by man but is a knower and teller of the unseen sciences—so those who believe in this Prophet, honor him, help him, and follow the light that was sent down with him, they are the ones who will achieve their goal.**

And Allah, Blessed and Exalted, said:

لَئِنْ اَقَمْتُمُ الصَّلٰوۃَ وَاٰتَیْتُمُ الزَّکٰوۃَ وَاٰمَنْتُمْ بِرُسُلِیْ وَعَزَّرْتُمُوْھُمْ وَاَقْرَضْتُمُ اللّٰہَ قَرْضًا حَسَنًا لَّاُکَفِّرَنَّ عَنْکُمْ سَیِّاٰتِکُمْ وَلَاُدْخِلَنَّکُمْ جَنّٰتٍ تَجْرِیْ مِنْ تَحْتِھَا الْاَنْھٰرُ ۚ (۱۲)	**Verily, if you establish prayer, give zakat, believe in My messengers, honor My messengers, and give a beautiful loan for the sake of Allah, I will surely remit your sins and admit you into Gardens beneath which rivers flow.**

In fact, the Great Quran has even made the honoring of parents obligatory. Allah, Blessed and Exalted, said:

وَاخْفِضْ لَھُمَا جَنَاحَ الذُّلِّ مِنَ الرَّحْمَۃِ (۲۴)	**And lower for them (parents) the wing of humility out of mercy.**

God forbid! Has the Great Quran commanded the worship of Prophets and parents?! (2) The praised Imam (may his secret be sanctified) also answered the doubt regarding honoring the grave, saying:

تعظیماً لروحہ الی قولہ قدس سرہ و الاعمال بالنیات	**Meaning, it is not the honoring of bricks and mortar but rather the honoring of the soul of the beloved that is intended, which is undoubtedly commendable, and actions depend on intentions.**

Allah! Allah! What elegant and comprehensive words he spoke, as if he had perceived through his inner light that Zaid and his likes would be afflicted by these doubts; he answered them all in these two words: "out of honor for his soul."

---

1. Al-Quran 7/157
2. Al-Quran 5/12

3. Al-Quran 17/24
4. Al-Hadiqa al-Nadiya, Lighting Candles at Graves, Maktaba Nooria Razavia, Faisalabad 2/630

फतवा रज़विया - जिल्द नौ (९)

الَّذِیْنَ یَتَّبِعُوْنَ الرَّسُوْلَ النَّبِیَّ الْاُمِّیِّ ... الی قول عزوج فَالَّذِیْنَ اٰمَنُوْا بِهٖ وَعَزَّرُوْهُ وَنَصَرُوْهُ وَاتَّبَعُوا النُّوْرَ الَّذِیْۤ اُنْزِلَ مَعَهٗۤ اُولٰٓىِٕكَ هُمُ الْمُفْلِحُوْنَ ﴿۱۵۷﴾	वे जो इस रसूल नबी उम्मी (यानी बिना पढ़े ग़ैब के उलूम जानने और बताने वाले) की पैरवी करेंगे; तो जो इस नबी पर ईमान लाएं और उनकी ताज़ीम (सम्मान) करें और उनकी मदद करें और उस नूर (प्रकाश) के पीछे चलें जो उनके साथ उतारा गया, वही लोग मुराद (कामयाबी) को पहुंचेंगे।

और अल्लाह तबारक व तआला ने फ़रमाया:

لَئِنْ اَقَمْتُمُ الصَّلٰوةَ وَاٰتَیْتُمُ الزَّكٰوةَ وَاٰمَنْتُمْ بِرُسُلِیْ وَعَزَّرْتُمُوْهُمْ وَاَقْرَضْتُمُ اللّٰهَ قَرْضًا حَسَنًا لَّاُكَفِّرَنَّ عَنْكُمْ سَیِّاٰتِكُمْ وَلَاُدْخِلَنَّكُمْ جَنّٰتٍ تَجْرِیْ مِنْ تَحْتِهَا الْاَنْهٰرُ ۚ (۱۲)	बेशक अगर तुम नमाज़ कायम रखो और ज़कात दिया करो और मेरे रसूलों पर ईमान लाओ और मेरे रसूलों की ताज़ीम करो और अल्लाह के लिए क़र्ज़-ए-हसना (अच्छा ऋण) दो, तो मैं ज़रूर तुम्हारे गुनाह तुम पर से उतार दूंगा और तुम्हें जन्नतों में दाख़िल फ़रमाऊंगा जिनके नीचे नहरें बहती हैं।

बल्कि कुरान-ए-अज़ीम ने तो माँ-बाप की ताज़ीम भी फ़र्ज़ की। अल्लाह तबारक व तआला ने फ़रमाया:

وَاخْفِضْ لَهُمَا جَنَاحَ الذُّلِّ مِنَ الرَّحْمَةِ (۲۴)	और तुम उन (माँ-बाप) के लिए नरमी के बाज़ू रहमत से झुका दो।

क्या मआज़ अल्लाह (ईश्वर न करे) कुरान-ए-अज़ीम ने अंबिया और वालिदैन की इबादत का हुक्म फ़रमाया है! (२) इमाम-ए-ममदूह (जिनकी प्रशंसा की गई).क़ुद्दिसा सिर्रहु ने कब्र की ताज़ीम के शुबह (संदेह) का भी जवाब फ़रमाया कि:

تعظیماً لروحه الی قوله قدس سره و الاعمال بالنیات	यानी ताज़ीम ईंट और मिट्टी की नहीं बल्कि महबूब की रूह की ताज़ीम मक़सूद है जो निस्संदेह सराहनीय है और आमाल का मदार (आधार) नियत पर है।

अल्लाह अल्लाह! कितने नफ़ीस (उत्कृष्ट) और जामे (व्यापक) कलिमात इरशाद फ़रमाए, गोया अपने नूर-ए-बातिन से इदराक (महसूस) फ़रमा लिया था कि ज़ैद और उसके जैसों को ये शुबहात (संदेह) लाहिक होंगे, सब का जवाब इन दो लफ्जों में फ़रमा दिया कि "उनकी रूह की ताज़ीम के लिए"।

---

1. अल-कुरान ७/१५७
2. अल-कुरान ५/१२
3. अल-कुरान १७/२४
4. अल-हदीक़तुल नदिय्या, कब्रों पर शमा जलाना, मकतबा नूरिय्या रज़विय्या फैसलाबाद २/६३०

पेज ४९८/९४८

الَّذِیْنَ یَتَّبِعُوْنَ الرَّسُوْلَ النَّبِیَّ الْاُمِّیَّ الی قول عزوجل فَالَّذِیْنَ اٰمَنُوْا بِہٖ وَعَزَّرُوْہُ وَنَصَرُوْہُ وَاتَّبَعُوا النُّوْرَ الَّذِیْٓ اُنْزِلَ مَعَہٗٓ ۙ اُولٰٓئِکَ ھُمُ الْمُفْلِحُوْنَ ﴿۱۵۷﴾

وہ جو پیروی کریں گے اس رسول نبی امی یعنی بے پڑھے غیب کے علوم جاننے بتانے والے کی، تو جو اس نبی پر ایمان لائیں اور اس کی تعظیم کریں اور اس کی مدد کریں اور اس کے ساتھ جو نور اترا اس کے پیرو ہوں وہی لوگ مراد کو پہنچیں گے۔

وقال اللہ تبارک وتعالٰی:

لَئِنْ اَقَمْتُمُ الصَّلٰوۃَ وَاٰتَیْتُمُ الزَّکٰوۃَ وَاٰمَنْتُمْ بِرُسُلِیْ وَعَزَّرْتُمُوْھُمْ وَاَقْرَضْتُمُ اللہَ قَرْضًا حَسَنًا لَّاُکَفِّرَنَّ عَنْکُمْ سَیِّاٰتِکُمْ وَلَاُدْخِلَنَّکُمْ جَنّٰتٍ تَجْرِیْ مِنْ تَحْتِھَا الْاَنْھٰرُ ۚ (۱۲)

بیشک اگر تم نماز قائم رکھو اور زکوۃ دیا کرو اور میرے رسولوں پر ایمان لاؤ اور میرے رسولوں کی تعظیم کرو اللہ کے لیے قرض حسن دو تو ضرور میں تمہارے گناہ تم پر سے اتار دوں گا ضرور تمھیں بہشتوں میں داخل فرماؤں گا جن کے نیچے نہریں بہیں۔

بلکہ قرآن عظیم نے تو ماں باپ کی تعظیم بھی فرض کی۔ قال اللہ تبارک وتعالٰی:

وَاخْفِضْ لَھُمَا جَنَاحَ الذُّلِّ مِنَ الرَّحْمَۃِ (۲۴)

اور جھکا دو تم ان (ماں باپ) کے واسطے نرمی کے بازو رحمت سے۔

کیا معاذ اللہ قرآن عظیم نے انبیاء و والدین کی عبادت کا حکم فرمایا ہے! (۲) امام ممدوح قدس سرہ نے شبہ تعظیم قبر کا بھی جواب فرمایا کہ:

تعظیماً لروحہ الی قولہ قدس یعنی تعظیم خشت و گل نہیں بلکہ روح محبوب کی تعظیم مقصود ہو

سرہ و الاعمال بالنیات جو بلا شبہ محمود ہے اور اعمال کا مدار نیت پر ہے۔

اللہ اللہ! کیسے نفیس و جامع کلمات ارشاد فرمائے، گویا اپنے نورِ باطن سے ادراک فرما لیا تھا کہ زید و امثالہ کو یہ شبہات عارض ہوں گے، سب کا جواب ان دو لفظوں میں فرما دیا کہ تعظیماً لروحہ۔

---

1 القرآن ۷/۱۵۷ 2 القرآن ۵/۱۲ 3 القرآن ۱۷/۲۴ 4 الحدیقۃ الندیۃ ایقاد الشموع فی القبور مکتبہ نوریہ رضویہ فیصل آباد ۲ / ۶۳۰

Fatawa Ridawiyya, Volume 9

(5) Zaid has sometimes expressed 'Ta'abbud' (devotion/worship) as 'Taqarrub' (closeness/proximity), stating: "It is done purely for 'Ta'abbud,' meaning as a means of 'Taqarrub'." And sometimes he interpreted 'Taqarrub' as 'Ta'abbud,' saying: "If 'Taqarrub' is not meant in the sense of 'Ta'abbud,' then 'Taqarrub' means 'Ta'abbud'." It is as if in his mind, 'Taqarrub' and 'Ta'abbud' are one and the same thing; this is completely false. Rather, 'Taqarrub' is broader than even the broadest sense of 'Ta'abbud'. 'Ta'zim' (reverence/veneration) is broader than 'Ta'abbud,' as you have learned (as was known above). And 'Taqarrub' is broader than 'Ta'zim,' such as building bridges or sending gifts. This is 'Taqarrub' but not 'Ta'zim'. The detail of this matter is in our marginalia on Radd al-Muhtar.

(6) Describing it as 'Taqarrub' by way of 'Ta'abbud' is a severe ill-suspicion against Muslims, and to criminalize them for it is a clear oppression and slander. It is mentioned in 'Durr al-Mukhtar' from 'Munyat al-Fatawa,' 'Dhakhirah,' and 'Sharh Wahbaniyyah':

Arabic: Inna la nusiu al-zhanna bil-muslimi annahu yataqarribu ilal-adami bi-hadha an-nahwi. [1]	We cannot harbor this ill-suspicion about any Muslim that he would seek proximity to a human in such a manner. (T)

In 'Radd al-Muhtar' it is stated:

Arabic: Ay 'ala wajhil-'ibadati liannahu al-mukaffiru wa hadha ba'idun min halil-muslimi. [2]	Meaning, seeking proximity as an act of worship, because through this, a person becomes an infidel, and this is far from the state of a Muslim. (T)

It is strange that Zaid said, "Descendants of saints (Pir-zadas) have been doing this, but although Pir-zadas may be righteous and people of God, they are not infallible. While the masters of the time perform thousands of good deeds, if they did this one impermissible act for some benefit, God is the Forgiver." SubhanAllah! They are righteous, they are people of God, and they are also worshippers of other than God? What could be more impossible than this!

(8) When, according to Zaid, it is 'Ta'abbud,' then it is certainly Shirk (polytheism), and Shirk will never be forgiven. "Indeed, Allah does not forgive that partners be associated with Him" [3] (Indeed, Allah does not forgive Shirk. T). Then what remains of the sentence "God is the Forgiver"?

(9) When there is such ill-suspicion against thousands of righteous servants and people of God that the charge of worshipping others is foisted upon them—and not just as a suspicion but as a conviction—then what complaint can there be if the lack of a response to a question from this humble person is attributed to silence regarding the truth out of regard for the Pir-zadas? In response to this question in Fatawa, a permanent fatwa has been recorded in multiple places for many years. Specifically on this subject, the treatise "Tawali' al-Nur" has been written for twenty-six years.

---

[1] Durr al-Mukhtar, Kitab al-Dhaba'ih, Mujtabai Press, Delhi, 2/230. [2] Radd al-Muhtar, Kitab al-Dhaba'ih, Idarah al-Tiba'ah al-Misriyyah, Egypt, 5/179. [3] Al-Quran, 4/48.

फ़तावा रज़विया, खंड 9

(5) ज़ैद ने कभी 'तअबुद' (भक्ति/इबादत) को 'तक़र्रुब' (निकटता) से व्यक्त किया कि "केवल तअबुद के तौर पर यानी तक़र्रुब के रास्ते से किया जाता है" और कभी 'तक़र्रुब' की व्याख्या 'तअबुद' से की कि "अगर तक़र्रुब से तअबुद का अर्थ मक़सूद नहीं है तो तक़र्रुब यानी तअबुद ही है"। मानो उसके विचार में तक़र्रुब और तअबुद एक ही चीज़ हैं, यह बिल्कुल गलत है। बल्कि तक़र्रुब तअबुद के व्यापक से भी अधिक व्यापक है। तअबुद से 'ताज़ीम' (सम्मान) अधिक व्यापक है, जैसा कि पहले बताया जा चुका है। और ताज़ीम से तक़र्रुब अधिक व्यापक है, जैसे पुल बनाना या उपहार भेजना। यह तक़र्रुब है, ताज़ीम नहीं। इस विषय का विस्तार 'रद्दुल मुहतार' पर हमारी टिप्पणियों में है।

(6) इसे 'तअबुद' के माध्यम से 'तक़र्रुब' कहना मुसलमानों पर कितनी गंभीर गलतफ़हमी है, और इसके लिए किसी मुसलमान को दोषी ठहराना कितना स्पष्ट अन्याय और लांछन है। 'दुर्रे मुख़्तार' में 'मुनियतुल फ़तावा', 'ज़ख़ीरा' और 'शह्र वबानिया' के हवाले से है:

अरबी: इन्ना ला नुसिउल ज़न्ना बिल-मुस्लिमि अन्नाहू यतक़र्रबु इलल-आदमी बि-हाज़ा अन-नहवि। [1]	किसी मुसलमान के बारे में हम यह गलतफ़हमी नहीं रख सकते कि वह किसी इंसान की ओर इस तरह का तक़र्रुब करेगा। (त)

'रद्दुल मुहतार' में है:

अरबी: अय अला वज्हिल-इबादति लिअन्नहू अल-मुकफ़्फ़िरु व हाज़ा बईदुन मिन हालिल-मुस्लिमि। [2]	यानी इबादत के तौर पर तक़र्रुब क्योंकि इससे आदमी काफ़िर हो जाता है और यह मुसलमान के हाल से बहुत दूर है। (त)

विडंबना यह है कि ज़ैद ने कहा, "पीरज़ादे ऐसा करते आ रहे हैं, लेकिन भले ही पीरज़ादे नेक और अल्लाह वाले हों, वे मासूम (गुनाह से पाक) नहीं हैं। जहाँ ज़माने के बुज़ुर्ग हज़ारों नेक काम करते हैं, वहीं अगर किसी ज़रूरत के लिए एक यह नाजायज़ काम भी कर लिया, तो अल्लाह माफ़ करने वाला है।" सुभानअल्लाह! नेक भी हैं, अल्लाह वाले भी हैं, और ग़ैर-अल्लाह की इबादत करने वाले भी हैं? इससे बढ़कर असंभव और क्या होगा!

(8) जब ज़ैद के अनुसार वह 'तअबुद' है, तो वह निश्चित रूप से शिर्क(बहुदेववाद) हुआ, और शिर्क कभी भी माफ़ नहीं किया जाएगा। "बेशक अल्लाह इस बात को माफ़ नहीं करता कि उसके साथ

किसी को शरीक ठहराया जाए" [3] (बेशक अल्लाह शिर्क को नहीं बख़्शता। त)। फिर इस वाक्य का क्या अर्थ रह गया कि "अल्लाह माफ़ करने वाला है"?

(9) जब हज़ारों नेक बंदों और अल्लाह वालों पर इस हद तक गलतफ़हमी है कि दूसरों की इबादत का आरोप उनके सिर मढ़ा जाता है—और न केवल संदेह बल्कि इसे निश्चित मान लिया जाता है—तो इस बात की क्या शिकायत कि इस फ़क़ीर के पास से मसले का जवाब न पहुँचने को पीरज़ादों की रियायत के कारण सत्य पर चुप्पी मान लिया गया? फ़तावा में इस सवाल के जवाब में कई जगहों पर सालों से एक स्थायी फ़तवा दर्ज है। विशेष रूप से इस विषय पर छब्बीस वर्षों से "तवालिउल नूर" नामक किताब लिखी हुई है।

---

[1] दुर्रे मुख़्तार, किताबुज़ ज़बाह, मुजतबाई प्रेस, दिल्ली, 2/230 [2] रद्दुल मुहतार, किताबुज़ ज़बाह, इदारातुल तिबाअतुल मिसरिया, मिस्र, 5/179 [3] अल-क़ुरआन, 4/48

فتاوی رضویہ جلد نہم

(۵) زید نے کبھی تعبد کو تقرب سے تعبیر نہیں کیا کہ "محض تعبداً یعنی ازراہ تقرب کیا جاتا ہے" اور کبھی تقرب کو تعبد سے تفسیر کیا کہ "اگر تقرب بمعنی تعبد منظور نہیں تقرب یعنی تعبد ہے" گویا اس کے خیال میں تقرب و تعبد شیئی واحد یعنی ایک ہی چیز ہے، یہ محض باطل ہے، بلکہ تقرب تعبد کے اعم سے اعم ہے، تعبد سے تعظیم اعم ہے کما علمت (جیسا کہ اوپر معلوم ہو چکا ت) اور تعظیم سے تقرب اعم ہے کہ بنائے رباط و ارسال ہدایا۔ تقرب ہے تعظیم نہیں اور تفصیل المقام فی تعلیقاتنا علی ردالمختار (اور اس مقام کی تفصیل ہمارے حاشیہ ردالمحتار میں ہے۔ ت)

(۶) اسے تقرب بروجہ تعبد بتانا مسلمانوں پر کیسی سخت بد گمانی اور اس پر جرم کرنا مسلمان پر کیسا صریح ظلم وافتراء ہے۔ در مختار میں منیتہ الفتاوی و ذخیرہ و شرح وہبانیہ سے ہے:

انا لا نسیئ الظن بالمسلم انہ یتقرب الی الآدمی بھذا النحو۔ [1] — کسی مسلمان کے متعلق ہم یہ بد گمانی نہیں کر سکتے کہ وہ کسی انسان کی طرف اس طرح کا تقرب کرے گا۔ (ت)

رّدالمحتار میں ہے:

ای علی وجہ العبادۃ لانہ المکفر وھذا بعید من حال المسلم۔ [2] — یعنی عبادت کے طور پر تقرب اس لیے کہ اس سے آدمی کافر ہو جاتا ہے اور یہ مسلمان کے حال سے بعید ہے۔ (ت)

طرفہ یہ کہ زید نے کہا "پیرزادے اس کو کرتے چلے آئے ہیں مگر پیرزادہ گان صالح ہوں، اہل اللہ ہوں معصوم نہیں، جہاں ہزاروں نیک کام مشائخ زمانہ کرتے ہیں، ایک یہ ناجائز بھی کسی مصلحت سے کر لیا، خدا معاف کرنے والا ہے۔" سبحان اللہ ! صالح بھی ہیں، اہل اللہ بھی ہیں، اور غیر خدا کے عابد بھی ہیں، اس سے بڑھ کر محال کیا ہوگا!

(۸) جب زید کے نزدیک وہ تعبد ہے تو قطعاً شرک ہوا، اور شرک ہر گز معاف نہ ہوگا اِنَّ اللّٰہَ لَا یَغْفِرُ اَنْ یُّشْرَکَ بِہٖ [3] (بیشک اللہ شرک کو نہیں بخشتا۔ ت) پھر اس جملہ کا کیا محل رہا کہ "خدا معاف کرنے والا ہے۔"

(۹) جب ہزارہا بندگان صالحین و اہل اللہ پر یہاں تک بد گمانی ہے کہ تعبد غیر کا الزام ان کے سر تھوپا جاتا ہے، اور نہ صرف ظن بلکہ اس پر جزم کیا جاتا ہے۔ تو اس کی کیا شکایت کہ فقیر کے پاس سے جواب مسئلہ نہ پہنچنے کو پیر زادوں کی رعایت کے سبب سکوت عن الحق پر محمول کیا، فتاوی میں اس سوال کے جواب میں، متعدد مقامات پر مذکور سالہاسال سے اس پر مستقل فتوی مرقوم۔ خاص اس باب میں چھبیس برس سے رسالہ "طوالع النور" مکتوب،

---

[1] در مختار کتاب الذبائح مطبع مجتبائی دہلی ۲/ ۲۳۰ [2] ردالمحتار کتاب الذبائح ادارۃ الطباعۃ المصریہ مصر ۵ / ۱۷۹ [3] القرآن ۴/ ۴۸

Then what does silence out of consideration and fear mean! Apart from the refutation of Wahhabism (may Allah the Almighty humiliate them) and other numerous religious engagements, the work of issuing fatwas at this humble servant's place is so abundant that it exceeds the work of ten Muftis. Fatwas come from the city and other major urban centers throughout the regions of India, Bengal, Punjab, Malabar, Burma, Arakan, China, Ghazni, America, and Africa, even from the noble Harams (Makkah and Madinah), and five hundred fatwas accumulate at one time. In this situation, if there is a delay in the response or some requests remain without a written answer, then why complain? "Allah does not burden a soul beyond that it can bear" (Quran 2:286). Despite searching through the papers, this gentleman's request was not found; it is possible it was lost in the heap of files, or it never arrived, or it was never sent, and just as the thought of worshipping another is fixed upon the people of Allah, so too sending it might have been imagined. In any case, this is not a form of consideration. Yes, indeed! Open consideration, turning a blind eye, and explicit turning away from the truth for the sake of their self-made leader is what the people of Deoband do. Ismail Dehlavi, in his book named "Izah al-Haq", categorized regarding Allah Almighty as free from time, space, and direction, and believing in His vision (Didar) without modality (Kayf), direction, and alignment as being from the category of 'true innovation' (bid'at-e-haqiqiyah) if anyone considers this a religious belief. This clearly shows that religiously, to believe Allah Almighty is pure from time, space, and direction and to believe in His vision without modality is misguidance, error, and leads to hellfire. And all the past and later Imams of the Ahl al-Sunnah, God forbid, were innovators and misguided according to this. A Muslim inquired from the Deobandi scholars regarding these statements of Dehlavi, following the custom of asking questions using names like 'Amr and 'Bakr, without mentioning Dehlavi's name. To this, his Excellency Sheikh al-Kannagba, Janab Maulvi Rashid Ahmad Gangohi, wrote this reply:

The Answer: "This person is ignorant and devoid of the Ahl al-Sunnah wa al-Jama'ah and the righteous ones, and this belief and statement mentioned in the question is disbelief (kufr). We seek refuge in Allah from it. This is the very school of thought of the righteous predecessors and the Imams of religion, and it is proven from Sahih Hadiths and verses of the Noble Quran that Allah Almighty, glorified be He, is pure from time, space, and direction, and Muslims will be blessed with His vision in

Paradise. Thus, the books of creed are full of this. Allah Almighty knows best. Servant Rashid Ahmad Gangohi."

And on this, the Deobandi scholars, Maulvi Mahmud Hasan, Aziz-ur-Rahman, and others, affixed their seals, striking Ismail Dehlavi as irreligious, heretic, and zindiq. Especially noteworthy for our mention is his Excellency Maulvi Ashraf Ali Thanwi, who confirmed this decree of disbelief against Dehlavi as follows: "The answer is correct. Ashraf Ali, may he be forgiven."

1. Quran 2/286 Page 500 of 948

फ़तावा रज़विया, खंड 9

फिर रियायत और डर से चुप्पी का क्या अर्थ! फ़क़ीर के यहाँ वहाबियत के खंडन (अल्लाह उन्हें ज़लील करे) और अन्य कई धार्मिक कार्यों के अलावा फ़तवे का काम इतना अधिक है कि दस मुफ़्तियों के काम से भी ज़्यादा है। शहर और अन्य बड़े शहरों, पूरे भारत, बंगाल, पंजाब, मलाबार, बर्मा, अराकान, चीन, ग़ज़नी, अमेरिका और अफ़्रीका, यहाँ तक कि हरमैन शरीफ़ैन से भी प्रश्न आते हैं और एक समय में पाँच-पाँच सौ एकत्र हो जाते हैं। इसमें यदि जवाब में देरी हो जाए या कुछ प्रश्नों के उत्तर न दिए जा सकें तो शिकायत की क्या बात है? "अल्लाह किसी जान पर उसकी सामर्थ्य से अधिक बोझ नहीं डालता" (क़ुरान 2:286)। ढूँढने के बावजूद उस व्यक्ति का प्रश्न पत्रों में नहीं मिला, संभव है कि कागज़ों के ढेर में न मिला हो या आया ही न हो या भेजा ही न गया हो, और जिस तरह अल्लाह वालों पर दूसरों की इबादत का विचार थोप दिया गया, वैसे ही उसका भेजा जाना भी कल्पना मात्र हो। बहरहाल, यह रियायत का तरीका नहीं है। हाँ, हाँ! खुली रियायत, अनदेखी और अपने बनाए हुए नेता की खातिर हक़ से पूरी तरह मुँह मोड़ना वह है जो देवबंद के हज़रात करते हैं। इस्माइल देहलवी ने अपनी पुस्तक "ईज़ाह उल हक़" में अल्लाह अज़्ज़-व-जल्ल को समय, स्थान और दिशा से पाक मानने और बिना किसी रूप (कैफ़), दिशा और संरेखण के उसके दीदार को 'बिदअत-ए-हक़ीक़िया' (वास्तविक नवाचार) की श्रेणी में बताया है, यदि कोई इसे धार्मिक अक़ीदा (विश्वास) माने। इससे साफ़ ज़ाहिर है कि धार्मिक तौर पर अल्लाह अज़्ज़-व-जल्ल को समय, स्थान और दिशा से पाक मानना और बिना किसी रूप के उसके दीदार को मानना गुमराही और नरक का मार्ग है। और सुन्नत के सभी पूर्ववर्ती और बाद के इमाम, अल्लाह न करे, उनके अनुसार बिदअती और गुमराह थे। एक मुसलमान ने देहलवी साहब के इन कथनों के बारे में देवबंदी हज़रात से सवाल किया और दस्तूर के मुताबिक अमर, बक्र के नाम लिखकर पूछा, देहलवी साहब का नाम नहीं लिखा। इस पर महामहिम शेख़ अल-कनाग्बा जनाब मौलवी रशीद अहमद गंगोही साहब ने यह जवाब लिखा:

उत्तर: "यह व्यक्ति अहले सुन्नत व जमाअत के नेक लोगों से अनभिज्ञ और वंचित है और यह विश्वास और कथन जो प्रश्न में दर्ज है, कुफ़्र (अधर्म) है। हम इससे अल्लाह की पनाह माँगते हैं। नेक पूर्वजों और धर्म के इमामों का यही धर्म है और यही सही हदीसों और पाक कलाम की आयतों से प्रमाणित है कि हक़ तआला जल्ल शानुहु समय, स्थान और दिशा से पाक है, और जन्नत में मुसलमानों को उसका दीदार नसीब होगा, जैसा कि अक़ीदे की किताबें इससे भरी हुई हैं। अल्लाह तआला बेहतर जानता है। बंदा रशीद अहमद गंगोही।"

और इस पर देवबंद के हज़रात मौलवी महमूद हसन साहब, अज़ीज़ुर रहमान साहब आदि ने अपनी मुहरें लगाईं, और इस्माइल देहलवी साहब पर बेदीन, मुल्हिद और ज़ंदीक होने की चोटें कीं। विशेष रूप से हमारे ज़िक्र के काबिल महामहिम मौलवी अशरफ़ अली थानवी साहब हैं जिन्होंने देहलवी साहब पर कुफ़्र के इस हुक्म की इस तरह तस्दीक़ (पुष्टि) की: "जवाब सही है। अशरफ़ अली, अल्लाह उन्हें क्षमा करे।"

1. अल-क़ुरान 2/286 पृष्ठ 948 में से 500

پھر رعایت وخوف سے سکوت کیا معنی! فقیر کے یہاں علاوہ ردوہابیہ خذ لہم اللہ تعالی ودیگر مشاغل کثیرہ دینیہ کے کار فتوی اس درجہ وافر ہے کہ دس مفتیوں کے کام سے زائد ہے۔ شہر ودیگر بلادِامصار جملہ اقطار ہندوستان وبنگال وپنجاب ومليبار وبر ہما وارکان وچین وغزنی وامریکہ وافریقہ حتی کہ سرکار حرمین شریفین محترمین سے استفتاء آتے ہیں اور ایک وقت میں پانچ پانچ سو جمع ہو جاتے ہیں۔ اس میں اگر جواب میں تاخیر میں ہوں یا بعض استفتاء تحریرء جواب سے رہ جائیں تو کیا جائے شکایت ہے لایکلّف لَا يُكَلِّفُ اللهُ نَفْسًا إِلَّا وُسْعَهَا (خدا کسی کو اس کی وسعت سے زیادہ کا مکلف نہیں بناتا۔ت) ان صاحب کا استفتاء باوصف تلاش کاغذات میں نہ نکلا، ممکن ہے کہ ہجوم انبار میں نہ ملا ہو یا آیا ہی نہ ہو یا بھیجا ہی نہ ہو اور جس طرح اہل اللہ پر تعبد غیر کا خیال بندھ گیا اس کا بھیجنا متخیل ہوا ہو۔ بہر حال رعایت کی صورت یہ نہیں ہوتی، ہاں ہاں ! کھلی کھلی رعایت واغماض اور اپنے ساختہ متبوع کی خاطر حق سے صریح اعراض وہ ہے جو حضرات دیوبند کرتے ہیں، اسمعیل دہلوی صاحب نے اپنی کتاب مسمی بہ "ایضاح الحق" میں زمان ومکان وجہت سے اللہ عزوجل کو منزہ ماننا اور اس کے دیدار بلا کیف وجہت و محاذات حق جاننا بدعت حقیقیہ کے قبیل سے بتایا جبکہ اس عقیدہ کو کوئی دینی عقیدہ تصور کرے جس سے صاف روشن کہ مذہبی طور پر اللہ عزوجل کو زمان و مکان وجہت سے پاک جاننا اور اس کا دیدار بلا کیف مانا ضلالت و گمراہی و فی النار ہے۔ اور اہل سنت کے تمام ائمہ سلف وخلف معاذ اللہ سب بدعتی و گمراہ تھے، ایک مسلمان نے دہلوی صاحب کے اس اقوال کا دیو بندی صاحبوں سے استفتاء کیا اور حسب دستور مسائل عمرو، بکر لکھ کر دریافت کرتے ہیں دہلوی صاحب کا نام نہ

لکھا اس پر عالیجناب شیخ الکناگبہ جناب مولوی رشید احمد گنگوہی صاحب نے یہ جواب تحریر فرمایا :

الجواب : "یہ شخص اہلسنت و جماعت صالحین سے جاہل اور بے بہرہ ہے اور یہ اعتقاد اور مقولہ جو درج سوال ہے کفر ہے۔ نعوذ باللہ منہ۔ حضرت سلف صالحین اور ائمہ دین کا یہی مذہب ہے اور یہی احادیث صحیحہ وکلام شریف کی آیات سے ثابت ہے کہ حق تعالیٰ جل شانہ زمان و مکان وجہت سے پاک ہے، اور دیدار اس کا بہشت میں مسلمانوں کو نصیب ہوگا، چنانچہ عقاید اس سے مشحون ہیں، واللہ تعالیٰ اعلم، بندہ رشید احمد گنگوہی"۔ اور اس پر حضرات دیوبند مولوی محمود حسن صاحب وعزیز الرحمان صاحب و غیر ہما نے مہریں کیں، اور جناب اسمعیل صاحب دہلوی پر بددین، ملحد، زندیق کی چوٹیں جڑیں، علی الخصوص ہمارے ذکر کے قابل عالیجناب مولوی اشرفعلی تھانوی صاحب ہیں جنہوں نے اس حکم کفر دہلوی صاحب پر یوں تصدیق فرمائی :

"الجواب الصحیح۔ اشرفعلی عفی عنہ"۔

Volume Nine Fatawa Razawiyya

When these gentlemen had already given this fatwa, Muslims then presented fifteen questions to them and clearly showed the name and words of Ismail Dehlvi and his flawed book "Idhahul Haq," saying, "O Muftis! Will you still obey the command of Shariat, or will you consider the spiritual leader (pir) of the group to be outside the domain of God?" This inquiry was printed and published on 28th Safar 1329 AH. Three years have passed, and all of them remain silent and quiet, in a deep slumber. The problem is, if they speak, what should they say? How can they wash away what fate has written? They have already labeled their own Imam of the group with the fatwa of disbelief (kufr) from their own mouths. Now, how can they retract it, and how can they issue a decree of disbelief against the Imam of the group? That fatwa has now become like a shrew in a snake's mouth: swallow it and get leprosy, spit it out and go blind. Out of necessity, they have wrapped themselves in silence. This is called concealing the truth, striving for falsehood, worshiping the spiritual leader, and the intoxication of a nature prone to betrayal. Let it be, though they give no answer, they must be regretful in their hearts that they should now leave the slavery of the one they themselves branded as a blasphemer, irreligious heretic, and zindiq (apostate) in their own fatwas, and turn away from considering him a leader. But far from it:

How can this sticking stain of disbelief leave the mouth?

Until now, he is the same 'this and that', the same Imam; these are his same 'this and that' followers, the same slaves. Muslims! Do justice. What kind of religion is this, what kind of honesty is this, and yet there is a claim of faith and trustworthiness? There is no power and no strength except with Allah, the Most High, the Most Great.

O Muslims! It is not surprising why those who commit the gravest insults against Allah, the One, the Conqueror, and Muhammad, the Messenger of Allah, the Leader of the Righteous (Jalla Jalaluhu wa Sallallahu Ta'ala 'Alaihi wa Sallam), are so persistent in their falsehood. Why are they lying headlong one over another in the pit of misguidance? The wonder is that those who witness these antics still get caught in the trap of their robes and turbans. It is as if these actions are a simple matter, unworthy of attention. If someone steals ten or five rupees from another or seizes it by fraud, he falls forever in eyes and is labeled a thief or a fraudster. And God forbid! If such an allegation is made against someone famous for knowledge, its publicity goes beyond limits. A criminal of ten or five rupees is thus irredeemable, yet such

theft and betrayal in religion, creed, and beliefs are all forgiven. What forgiveness? It's not even a mistake; the 'wudu' (ablution) of discernment was never broken. What injustice is this? What indifference? What fat has covered the eyes? O Muslims! Open your eyes, otherwise, be prepared for the presentation of tomorrow (the Day of Judgment).

On the day of resurrection, it will become clear to you like the morning, with whom you played the game of love in the dark night. (On the day of Judgment, it will be clear to you like the morning with whom you played the game of love in the pitch-dark night. - T)

The details of this entire shameful incident and those fifteen questions are in a short booklet titled "The Faith of Deobandi Clerics."

जब हज़रात ये फ़तवा दे चुके, अब मुसलमानों ने पंद्रह सवालों का इस्तफ़्ता (पूछताछ) इन हज़रात से किया और इस्माइल देहलवी साहब और उनकी दोषपूर्ण पुस्तक "इज़ाह-उल-हक़" का नाम और कलाम खोलकर दिखाया कि ऐ मुफ़्ती साहबान! क्या अब भी तुम शरीअत के हुक्म को मानोगे या इस गुट के पीर जी को ख़ुदा की हुकूमत से बाहर समझोगे? २८ सफ़र १३२९ हिजरी को यह इस्तफ़्ता छपकर प्रकाशित हुआ, तीन साल होने को आए हैं, सभी हज़रात शांत और खामोश 'खरगोश की नींद' में सोए हुए हैं। मुश्किल तो यह है कि अगर बोलें तो क्या बोलें, अपनी क़िस्मत का लिखा कैसे धोएं? वे अपने ही मुंह से अपने गुट के इमाम पर कुफ़्र (अधर्म) का फ़तवा लगा चुके हैं, अब उससे कैसे मुकरें और अपने इमाम पर कुफ़्र का हुक्म कैसे लगाएं? अब वह फ़तवा सांप के मुँह की छछूंदर बन गया है—उगले तो अंधा, निगले तो कोढ़ी। हार मानकर उन्होंने ख़ामोशी की चादर ओढ़ ली है; इसे सत्य को छिपाना कहते हैं, इसे असत्य का समर्थन कहते हैं, इसे पीर-परस्ती (गुरु पूजा) कहते हैं, इसे स्वभावगत विश्वासघात की बदमस्ती कहते हैं। छोड़िए, वे जवाब न दें पर दिल में तो पछताते होंगे कि जिस व्यक्ति को उन्होंने अपने फ़तवों में कुफ़्र बकने वाला, अधर्मी, नास्तिक और ज़ंदीक़ लिख दिया है, अब उसकी गुलामी छोड़ें और उसे पेशवा (नेता) मानने से मुंह मोड़ें। लेकिन ऐसा कहाँ:

मुँह से यह कुफ़्र की कालिख कहाँ छूटती है।

अब तक वह वैसे ही 'ये और वो' हैं, वैसा ही इमाम है; ये उसके वैसे ही 'ये और वो' चेले हैं, वैसे ही गुलाम हैं। मुसलमानों! इंसाफ़ करो, यह कौन सा दीन (धर्म) है, कौन सी ईमानदारी है, और फिर इस पर ईमान और अमानत का दावा है? अल्लाह के सिवा कोई शक्ति और सामर्थ्य नहीं है जो सर्वोच्च और महान है।

मुसलमानों! इसमें आश्चर्य नहीं कि अल्लाह वाहिद-ओ-क़हार और मुहम्मद रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम की घोर तौहीन (अपमान) करने वाले अपने असत्य पर इस तरह क्यों अड़े हुए हैं? क्यों वे गुमराहियत के गड्ढे में एक-दूसरे के ऊपर औंधे पड़े हैं? आश्चर्य तो इस बात पर है कि देखने वाले उनके ये करतब देखें और फिर भी उनके जुब्बे और दस्तार (पोशाक और पगड़ी) के जाल में फँस जाएं। मानो ये हरकतें एक मामूली सी बात हों, जिस पर ध्यान देने की ज़रूरत न हो। अगर कोई किसी के दस-पांच रुपये चुरा ले या धोखे से हड़प ले, तो वह हमेशा के लिए नज़रों से गिर जाता है और चोर-धोखेबाज़ कहलाता है। और खुदा न खास्ता! अगर ज्ञान के लिए प्रसिद्ध किसी व्यक्ति पर

ऐसा आरोप लगे, तो उसका प्रचार-प्रसार सीमा से बाहर हो जाता है। दस-पांच रुपये का अपराधी तो अक्षम्य हो गया, और स्वयं दीन, मज़हब और अक़ीदे (विश्वासों) में ऐसी चोरी और विश्वासघात सब माफ़? माफ़ी कैसी, यह तो गलती ही नहीं मानी जाती, जैसे उनकी समझ का वज़ू कभी टूटा ही नहीं। यह कैसा ज़ुल्म है? कैसी बेपरवाही है? आँखों पर कैसी चर्बी छाई हुई है? मुसलमानों! आँखें खोलो, वरना कल (क़यामत के दिन) की पेशी के लिए तैयार हो जाओ।

क़यामत के दिन तुम्हें सुबह की तरह स्पष्ट हो जाएगा कि तुमने घोर अंधेरी रात में किसके साथ प्रेम का खेल खेला था। (क़यामत के दिन सुबह की तरह तुम पर स्पष्ट हो जाएगा कि तुमने काली रात में किसके साथ इश्क़बाज़ी की है। - त)

इस पूरे शर्मनाक वाक़ये का विवरण और वे पंद्रह सवाल एक छोटी पुस्तिका "देवबंदी मौलवियों का ईमान" में मौजूद हैं।

पृष्ठ संख्या ५०१ (कुल ९४८ में से)

جب حضرات یہ فتویٰ دے چکے، اب مسلمانوں نے پندرہ سوال کا استفتاء ان حضرات سے کیا اور اسماعیل دہلوی صاحب اور ان کی ناقص کتاب "ایضاح الحق" کا نام و کلام کھول کر دکھایا کہ مفتی صاحبوں! وہ شریعت کا حکم اب بھی مانوگے یا طائفہ کے پیر جی کو خدا کی حکومت سے باہر جانو گے؟ ۲۸ صفر ۱۳۲۹ھ کو یہ استفتاء طبع ہو کر شائع ہوا، تین برس ہونے کو آئے ہیں سب صاحب ساکت و خاموش در خوابِ خرگوش، مشکل تو یہ ہے کہ بولیں تو کیا بولیں، قسمت کا لکھا کیونکر دھولیں، اپنے منہ اپنے امام الطائفہ پر کفر کا فتویٰ لگا چکے ہیں اب اس سے پھریں تو کیونکر، اور امام الطائفہ پر حکم کفر کریں تو کیونکر؟ اب وہ فتویٰ سانپ کے منہ کی چھچھوندر ہو گیا کہ اگلے تو اندھا، نگلے تو کوڑھی، چار ناچار سکوت کی اوڑھ لی، اسے حق پوشی کہتے ہیں، اسے ناحق کوشی کہتے ہیں، اسے پیر جی پرستی کہتے ہیں، اسے مادہ خیانت کی بدمستی کہتے ہیں، بلا پس ہو، جواب نہ دیتے دل میں پشیماں تو ہوتے کہ جسے خود اپنے فتووں میں کفر بکنے والا، بددین ملحد، زندیق لکھ چکے، اب تو اس کی غلامی چھوڑیں، اسے پیشوا ماننے سے منہ موڑیں، مگر حاشاـہ

تجھٹتی کہاں ہے منہ سے یہ کافر لگی ہوئی

اب تک وہ ویسا ہی چنیں و چناں، ویسا ہی امام، یہ اس کے ویسی ہی چناں چنیں، ویسے ہی غلام۔ مسلمانو! انصاف کرو، یہ کون سا دین ہے، کون سی دیانت ہے، اور اس پر ادعائے ایمان وامانت ہے، ولاحول ولاقوۃ الا باللہ العلی العظیم۔ مسلمانو! اس کا تعجب نہیں کہ اللہ واحد قہار محمد رسول اللہ سید الابرار جل جلالہ و صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کی سخت سے سخت توہینیں کرنے والے کیوں اپنے باطل پر ایسے اڑے ہیں؟ کیوں چاہِ ضلالت میں اوپر تلے یوں اوندھے پڑے ہیں، عجب تو یہ

ہے کہ دیکھنے والے یہ کچھ ان کے کوتک دیکھیں اور پھر ان کے جبہ و دستار کے دام میں پھنسیں، گویا یہ حرکات ایک سہل سی بات، نا قابل التفات، کوئی کسی کا دس پانچ روپے کا مال چرالے یا دغا سے دبالے ہمیشہ کو نظروں سے گر جائے، چور دغا باز نام قرار پائے۔ اور معاذ اللہ! اگر کوئی کسی مشہور بنام علم پر ایسا الزام عائد ہو تو اس کی تشہیر حد سے زائد ہو، دس پانچ روپے کا مجرم یوں ناقابل تلافی، اور خاص دین و مذہب و عقائد میں ایسی چوری خیانت سب معافی، معافی کیسی خطا ہی نہیں، وضوئے تمیز کبھی ٹو ٹاہی نہیں، یہ کیا ظلم ہے؟ کیا بے پروائی ہے، کیسی آنکھوں پر چربی چھائی ہے۔ مسلمانو! آنکھ کھولو، ورنہ پیشی فردا کے لیے مستعد ہو لو۔

بروز حشر شود ہمچو صبح معلومت کہ با کہ باختہ عشق در شبِ دیجور (حشر کے دن صبح کی طرح تجھ پر واضح ہوگا کہ تو نے اندھیری رات میں کس سے عشق بازی کی ہے۔ت)

اس تمام شرمناک واقعہ کی تفصیل اور وہ پندرہ سوال ایک مختصر رسالے "دیوبندی مولویوں کا ایمان" میں ہے۔

Observe this, that the truth is clear and there is full recognition of both betrayal and concealment of truth. Whoever denies it, having forgotten while counting, should count again. Get answers to these questions from Mr. Maulvi Thanvi; true bravery is to get the seal of their mouths opened. This is not such a massive dispute, nor are these intricate academic debates; it is a simple test of truth-telling vs. truth-concealment. As long as Dehlvi Sahib's name was unknown, the decree of disbelief and heresy was recorded. Now that the speaker is known, why has that decree vanished? Has some new Sharia arrived? Has 'Tahzeer-un-Naas' established a new coinage of prophethood that has abrogated the Sharia of Mustafa (upon its possessor be the best of prayers and salutations)? Is the grave of 'Imam Ji' filled with 'Or have you an exemption in the scriptures?' (Do you have any acquittal in the books? - T). And if not, why do you not open your lips? Why do you not speak that decree of disbelief and heresy? 'Bayyinu tujaru, bayyinu tujaru, bayyinu tujaru' (Explain and be rewarded - T). Otherwise, let Zaid Sahib take this much reward; along with this fatwa, those questions are also present. Now get an answer from Hazrat Thanvi. Zaid Sahib's writing is calling out that if they are interested in justice and seeking truth, they will surely check up on Thanvi Sahib, and upon not receiving an answer now, they will do justice. O Lord, grant success, guide the path, Amen Amen, and praise be to Allah, Lord of the worlds.

(10) Now look at Zaid Sahib's references; the reference to Durr-ul-Mukhtar is purely incorrect. (11) In the text of Alamgiri, he added 'la asla lahu' (it has no basis - T) on his own. (12) From the text of Bazzaziya, he omitted 'wa itlaf-ul-maal' (and wasting of wealth - T), which makes the reason for prohibition clear—that where it is purely useless, it is forbidden. (13) Then what to complain about that in Alamgiri it was 'ila ra'sil quboor' (at the head of the graves - T), he changed it to 'ilal maqabir' (towards the graveyards - T) so that the generality increases. (14) Yes, the complete cleverness is that he removed the word 'fil layalil ula' (in the first few nights - T) from the text of Alamgiri. The original text of Alamgiri is this:

EXPELLING CANDLES TO THE HEAD OF THE GRAVES IN THE FIRST NIGHTS IS AN INNOVATION, AS IN AL-SIRAJIYYA.	Meaning, in the first few nights after death, taking candles from homes to the head side of graves is an innovation (Bid'ah), similarly it is in Fatawa Sirajiyya.

[1] Fatawa Hindiyya, Chapter Sixteen regarding Visiting Graves, Noorani Kutub Khana Peshawar 5/351

इसे गौर से देखिए कि सत्य स्पष्ट है और विश्वासघात और सत्य को छिपाने दोनों की पूरी पहचान है। जिसे इनकार हो, गिनते-गिनते भूल गए हों तो फिर गिन लें, जनाब मौलवी थानवी साहब से इन सवालों के जवाब दिलवा लें। बहादुरी तो तब है जब उनके मुँह की मुहर खुलवा लें। यह कोई बहुत बड़ा विवाद नहीं है, कोई सूक्ष्म शैक्षणिक बहस नहीं है, बल्कि सत्य बोलने और सत्य को छिपाने की एक सीधी-सादी परीक्षा है। जब तक देहलवी साहब का नाम मालूम नहीं था, कुफ़्र और इल्हाद (नास्तिकता) का हुक्म लिखा हुआ था। अब जब बोलने वाले का पता चल गया है, तो वह हुक्म क्यों गायब हो गया? क्या कोई नई शरीयत आ गई है? क्या 'तहज़ीर-उन-नास' ने नबूवत का कोई ऐसा नया सिक्का जमा दिया है जिसने मुस्तफ़वी शरीयत (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) को निरस्त कर दिया है? क्या इमाम जी की कब्र 'अम लकुम बरातून फ़िज़ ज़ुबुर' (क्या तुम्हारे लिए किताबों में कोई मुक्ति लिखी है? - त) से भर दी गई है? और अगर नहीं, तो आप अपने होंठ क्यों नहीं खोलते? आप कुफ़्र और इल्हाद का वह हुक्म क्यों नहीं बोलते? 'बय्यिनू तुजारू, बय्यिनू तुजारू, बय्यिनू तुजारू' (बयान करें और पुण्य पाएँ- त)। वरना ज़ैद साहब ही इतना पुण्य लें, इस फ़तवे के साथ वे सवाल भी मौजूद हैं। अब हज़रत थानवी से जवाब लें। ज़ैद साहब का लेखन पुकार रहा है कि अगर उन्हें न्याय और सत्य की तलाश में रुचि है, तो वे ज़रूर थानवी साहब की खबर लेंगे और अब जवाब न मिलने पर न्याय करेंगे। ऐ रब! तौफीक दे, सीधा रास्ता दिखा, आमीन आमीन, और सब तारीफें अल्लाह के लिए हैं जो तमाम जहानों का रब है।

(10) अब ज़ैद साहब के हवालों (संदर्भों) पर नज़र डालिए, दुर्रे मुख्तार का हवाला सरासर गलत है। (11) आलमगीरी की इबारत (पाठ) में 'ला अस्ला लहू' (इसका कोई आधार नहीं है - त) अपनी ओर से बढ़ा लिया। (12) बज़ज़िया की इबारत से 'व इतलाफ़ुल माल' (और धन की बर्बादी - त) कम कर दिया, जिससे मना करने का कारण स्पष्ट हो जाता कि जहाँ केवल बेकार का काम है वहाँ मनाही है। (13) फिर इसकी क्या शिकायत कि आलमगीरी में 'इला रासिल कुबूर' (कब्रों के सिरहाने - त) था, उसे 'इलाल मक़ाबिर' (क़ब्रिस्तानों की ओर - त) बना लिया ताकि व्यापकता बढ़ जाए। (14) हाँ, पूरी चालाकी यह है कि आलमगीरी की इबारत से 'फ़िल लयालिल ऊला' (पहली कुछ रातों में - त) शब्द उड़ा दिया, आलमगीरी की असल इबारत यह है:

इखराजुश शुमू'इ इला रासिल कुबूर फ़िल लयालिल ऊला बिद'अतुन कज़ा फ़िस सिराजिया।	यानी मौत की पहली कुछ रातों में घरों से मोमबत्तियाँ कब्रों के सिरहाने ले जाना बिदअत है, ऐसा ही फतावा सिराजिया में है।

[1] फ़तावा हिन्दिया, अध्याय सोलह, कब्रों की ज़ियारत के बारे में, नूरानी कुतुब खाना पेशावर, 5/351

اسے ملاحظہ کیجئے، کہ حق واضح ہے اور خیانت و حق پوشی دونوں کی پوری پہچان ہے۔ جس صاحب کو انکار ہو، گنتے گنتے بھول گئے، پھر گن لو، جناب مولوی تھانوی صاحب سے ان سوالوں کے جواب دلوا لو، بہادری تو جب ہے کہ ان کے منہ کی مہر کھلوا لو۔ کچھ ایسا بہت سا قضیہ نہیں، کچھ علمی مباحث دقیقہ نہیں، حق گوئی حق پوشی کا سیدھا سادہ امتحان ہے کہ دہلوی صاحب کا جب تک نام معلوم نہ تھا کفر و الحاد کا حکم مرقوم تھا، اب کہ قائل معلوم ہوا کہ وہ حکم کس لیے معدوم ہوا، کیا کوئی نئی شریعت آگئی، تحذیر الناس نئی نبوت کا سکہ جما گئی جس نے شریعت مصطفویہ علی صاحبہا افضل الصلوۃ والتحیۃ منسوخ کر دی۔ امام جی کی قبر اَمْ لَكُمْ بَرَاءَةٌ فِي الزُّبُرِ (کیا تمہارے لیے کتابوں میں کوئی برات ہے۔ت) سے بھر دی، اور اگر نہیں تو کیوں نہیں اپنے ہونٹ کھولتے؟ کیوں نہیں وہ حکم کفر و الحاد بولتے؟ بینواتوجروا، بینوا توجروا، بینوا توجروا (بیان کر کے اجر پاؤ۔ ت) اور نہیں تو زید صاحب ہی اتنا ثواب لیں اس فتوے کے ساتھ وہ سوال بھی حاضر ہوتے ہیں حضرت تھانوی صاحب سے اب جواب لیں، زید صاحب کی تحریر پکار رہی ہے کہ ان کو انصاف وحق جوئی سے دلچسپی ہے وہ ضرور تھانوی صاحب کی خبر لیں گے اور اب جواب نہ ملنے پر انصاف کرلیں گے، اے رب توفیق دے، ہدایت طریق دے، آمین آمین، والحمد للہ رب العالمین۔

(۱۰) اب زید صاحب کے حوالوں پر نظر ڈالئے، درمختار کا حوالہ محض غلط ہے۔ (۱۱) عالمگیری کی عبارت میں لا اصل لہ (اس کی کوئی اصل نہیں۔ت) اپنی طرف سے بڑھا لیا۔ (۱۲) بزازیہ کی عبارت سے واتلاف مال (مال کا ضیاع۔ت) کم کر دیا جس سے علت منع ظاہر ہوتی کہ جہاں بے فائدہ محض ہے وہاں ممانعت ہے۔ (۱۳) پھر اس کی کیا شکایت کہ عالمگیری میں اِلی

رَأْسِ الْقُبُوْرِ (قبروں کے سرہانےت) تھا، اسے اِلَی الْمَقَابِرِ (قبروں کی طرفت) بنا لیا تاکہ عموم بڑھ جائے۔ (۱۴) ہاں پوری چالاکی یہ ہے کہ عبارت عالمگیری سے فِي اللَّيَالِی الْأُوْلٰی (پہلی چند راتوں میںت) کا لفظ اڑا دیا، عالمگیری کی اصل عبارت یہ ہے:

اِخْرَاجُ الشُّمُوْعِ اِلٰی رَأْسِ الْقُبُوْرِ فِي اللَّيَالِي الْأُوْلٰی بِدْعَةٌ كَذَا فِي السِّرَاجِيَّةِ۔

یعنی موت کی پہلی چند راتوں میں شمعیں گھروں سے قبروں کے سرہانے لے جانا بدعت ہے، ایسا ہی فتاویٰ سراجیہ میں ہے۔

[1] فتاویٰ ہندیہ، الباب السادس عشر فی زیارۃ القبور نورانی کتب خانہ پشاور ۵/ ۳۵۱

Fatawa Ridawiyya Volume 9

Look at Fatawa Sirajiyya; this text is exactly the same in it as well. After this, it has this much extra: ۔ 1 ذكره الشيخ الامام الزاهد الصفار البخاري رحمه الله تعالى في كتاب الاعتقاد | This issue was mentioned by Sheikh Imam Zahid Saffar Bukhari, may Allah Almighty have mercy on him, in the Book of Creed (Kitab al-I'tiqad).

It is clear that here the graves of common people are being mentioned, for the illumination of blessed Urs ceremonies or the shrines of saints is not limited to just the first few nights. And it is obvious that this is a description of a specific custom, otherwise, the specification of the first nights would be groundless. Now, just as there is a custom here in Bengal that where they dig some ground to bathe the deceased, which the common people call 'Lahad' (grave niche), they light lamps for forty nights, thinking that the soul comes to the grave niche for forty nights and returns if it sees darkness. Similarly, if there is a custom there in Bengal to take lighted candles from homes for a few nights after death and place them at the head of the graves, thinking that [the soul] will be frightened in the new house without light, then what doubt is there in this being an innovation (Bid'ah)? The sign of this is also seen here in the construction of niches for lamps at the head of graves. Indeed, lighting them with this thought is not just waste and loss of wealth, making it a purely innovative act, but it becomes an innovation in belief, thinking there is light inside the grave and that it comforts the dead. Therefore, Imam Saffar, may Allah Almighty have mercy on him, mentioned this issue in the Book of Creed. Now observe what relation this narration has with our issue! وَالْاِحْتِمَالُ يُقَطِّعُ الْاِسْتِدْلَالَ (And possibility cuts off inference. - Translator) (15) The word "ikhraj" (taking out) in this narration is also worth considering. This condition applies to the graves of common people, where there is no building, no residents, and no lighting equipment; lamps have to be taken from home. This is contrary to the blessed shrines, where there is no need to take them from home. So the mention is of the graves of commoners. If Zaid does not agree and attributes it to the illumination of blessed shrines, then the proof of this lighting dates back eight hundred years, which Zaid called the action of the scholars of the time, as Imam Zahid Saffar, may Allah Almighty have mercy on him, passed away in 534 AH 2 as stated in Al-Tabaqat al-Kubra and Kashf al-Zunun (as it is in Tabaqat Kubra and Kashf al-Zunun). (16) The most terrifying distortion is making the phrase "تَتَّخِذُوْنَ عَلَيْهِمْ مَسٰجِدَ" (you build mosques over them) a noble word of the Great Quran, whereas this sentence is nowhere in the Great Quran. These three words certainly appear separately in the Great Quran, for example, "تَتَّخِذُوْنَ

4 "اَنْعَمْتَ عَلَيْهِمْ" ,3 "مَصَانِعَ, and "5 "وَ مَسٰجِدُ يُذْكَرُ فِيْهَا اسْمُ اللّٰهِ. But they are nowhere in this combination and order.

1 Fatawa Sirajiyya, Kitab al-Karahiya, Munshi Naval Kishore Lucknow, p. 73. 2 Kashf al-Zunun. 3 Quran 26/129. 4 Quran 1/7. 5 Quran 22/40.

फ़तावा रज़विया जिल्द 9

फ़तावा सिराजिया देखें; इसमें भी यह इबारत (पाठ) बिल्कुल वैसी ही है। इसके बाद इतना अतिरिक्त है: 1 ۔ ذكره الشيخ الامام الزاهد الصفار البخاري رحمه الله تعالى في كتاب الاعتقاد | यह मसला शैख़ इमाम ज़ाहिद सफ़्फ़ार बुख़ारी रहमतुल्लाहि तआला अलैहि ने 'किताबुल एतेक़ाद' में ज़िक्र फ़रमाया।

ज़ाहिर है कि यहाँ आम लोगों की क़ब्रों का ज़िक्र है, क्योंकि पाक उर्स या औलिया के मज़ारात (दरगाहों) की रोशनी सिर्फ पहली चंद रातों में नहीं होती। और ज़ाहिर है कि वह एक विशेष आदत का बयान है, वरना पहली रातों की विशिष्टता बेमतलब होती। अब जिस तरह यहाँ बंगाल में रिवाज़ है कि मुर्दे के लिए जहाँ कुछ ज़मीन खोदकर नहलाते हैं जिसे आम लोग 'लहद' कहते हैं, वहाँ चालीस रात चिराग़ जलाते हैं और यह सोचते हैं कि चालीस रातों तक रूह लहद पर आती है और अँधेरा देखकर लौट जाती है। इसी तरह अगर वहाँ बंगाल में रिवाज़ हो कि मौत के बाद चंद रातों तक घरों से शमअ (मोमबत्तियाँ) जलाकर क़ब्रों के सिरहाने रख आते हों और यह सोचते हों कि नए घर में रोशनी के बिना घबराएगा, तो इसके बिदअत (नवाचार) होने में क्या शक है। और इसका पता यहाँ भी क़ब्रों के सिरहाने चिराग़ के लिए ताक बनाने से चलता है। और बेशक इस विचार से जलाना न केवल फ़िज़ूलख़र्ची और माल का नुकसान है कि यह महज बिदअती काम हो, बल्कि यह अक़ीदे (विश्वास) की बिदअत हो गई कि क़ब्र के अंदर रोशनी और मुर्दों का इससे दिल बहलना समझा गया। इसलिए इमाम सफ़्फ़ार रहमतुल्लाहि तआला अलैहि ने इस मसले को 'किताबुल एतेक़ाद' में ज़िक्र फ़रमाया। अब देखिए कि इस रिवायत का हमारे मसले से क्या संबंध रहा! وَالْاِحْتِمَالُ يُقَطِّعُ الْاِسْتِدْلَالَ (और संभावना प्रमाण को समाप्त कर देती है। - अनुवादक) (15) इस रिवायत में 'इख़राज' (बाहर ले जाना) शब्द भी विचारणीय है। आम लोगों की क़ब्रों की ही यह स्थिति होती है कि वहाँ न कोई मकान होता है, न रहने वाले, न रोशनी का कोई सामान; घर से ही चिराग़ ले जाना पड़ता है। इसके विपरीत पाक मज़ारात में घर से ले जाने की ज़रूरत नहीं होती। तो ज़िक्र आम लोगों की क़ब्रों का ही है। और अगर ज़ैद न माने और इसे पाक मज़ारात के चिराग़ाँ के बारे में समझे, तो आठ सौ वर्षों से तो इस रोशनी का सबूत हो गया, जिसे ज़ैद ने ज़माने के मशाइख़ का काम कहा, क्योंकि इमाम ज़ाहिद सफ़्फ़ार रहमतुल्लाहि तआला अलैहि की वफ़ात 534 हिजरी में हुई 2 जैसा कि 'तबक़ातुल कुबरा' और 'कश्फ़ुज़ ज़ुनून' में है। (16) सबसे भयानक फेरबदल (तहरीफ़) यह है कि "تَتَّخِذُوْنَ عَلَيْهِمْ مَسٰجِدَ" (तुम उन पर मस्जिदें बनाते हो) को अज़मत वाले क़ुरआन का पवित्र शब्द बना लिया, जबकि यह

जुमला क़ुरआन-ए-अज़ीम में कहीं नहीं है। ये तीनों शब्द अलग-अलग तौर पर क़ुरआन-ए-अज़ीम में ज़रूर आए हैं, जैसे: "4 "اَنْعَمْتَ عَلَيْهِمْ" ,3 "تَتَّخِذُوْنَ مَصَانِعَ, और "وَ مَسٰجِدُ يُذْكَرُ فِيْهَا اسْمُ 5 "اللّٰهِ।। मगर इस मेल और क्रम के साथ कहीं नहीं।

1 फ़तावा सिराजिया, किताबुल कराहिया, मुंशी नवल किशोर लखनऊ, पृ. 73। 2 कश्फ़ुज़ ज़ुनून। 3 क़ुरआन 26/129। 4 क़ुरआन 1/7। 5 क़ुरआन 22/40।

पेज 503 ऑफ़ 948

فتاوی رضویہ جلد نہم

فتاوی سراجیہ دیکھئے اس میں بھی یہ عبارت بعینہ اسی طرح ہے۔ اس کے بعد اتنا زائد ہے۔ ذکرہ الشیخ الامام الزاھد الصفار البخاري رحمہ اللہ تعالی في کتاب الاعتقاد 1 ۔ | یہ مسئلہ شیخ امام زاہد صفار بخاری رحمہ اللہ تعالیٰ نے کتاب الاعتقاد میں ذکر فرمایا۔

ظاہر ہے کہ یہاں قبور عوام کا ذکر ہے کہ اعراس طیبہ یا مزارات اولیاء کی روشنی فقط پہلی چند راتوں میں نہیں ہوتی، اور ظاہر ہے کہ وہ ایک عادت خاصہ کا بیان ہے ورنہ لیالی اول کی تخصیص بے وجہ تھی، اب جس طرح یہاں بنگال میں رواج ہے کہ مردہ کی جہاں کچھ زمین کھود کر نہلاتے ہیں جسے عوام لحد کہتے ہیں، چالیس رات چراغ جلاتے اور یہ خیال کرتے ہیں کہ چالیس شب روح لحد پر آتی ہے اندھیرا دیکھ کر پلٹ جاتی ہے، یوں ہی اگر وہاں بنگال میں رواج ہو کہ موت سے چند رات تک گھروں سے شمعیں جلا کر قبروں کے سرہانے رکھ آتے ہوں اور یہ خیال کرتے ہوں کہ نئے گھر میں بے روشنی کے گھبرائے گا۔ تو اس کے بدعت ہونے میں کیا شبہ ہے۔ اور اس کا پتا یہاں بھی قبروں کے سرہانے چراغ کے لیے طاق بنانے سے چلتا ہے، اور بیشک اس خیال سے جلانا فقط اسراف و تضییع مال ہی نہیں کہ محض بدعت عمل ہو، بلکہ بدعت عقیدہ ہوئی کہ قبر کے اندر روشنی واموات کا اس سے دل بہلنا سمجھا، ولہذا امام صفار رحمہ اللہ تعالیٰ نے اس مسئلہ کو کتاب الاعتقاد میں ذکر فرمایا۔ اب ملاحظہ ہو کہ اس روایت کو ہمارے مسئلہ سے کیا تعلق رہا! وَالْاِحْتِمَالُ یُقَطِّعُ الْاِسْتِدْلَالَ (اور احتمال استدلال ختم کر دیتا ہے۔ ت) (۱۵) اس روایت میں اخراج کا لفظ بھی قابلِ لحاظ ہے، قبورِ عوام ہی کی یہ حالت ہوتی ہے کہ وہاں نہ کوئی مکان ہوتا ہے نہ حاضر رہنے والے، نہ کوئی سامانِ روشنی، گھر ہی سے چراغ لے جانا پڑتا ہے، بخلاف مزارات طیبہ کے کہ وہاں گھر سے لے جانے کی حاجت نہیں ہوتی، تو ذکر قبورِ عوام ہی

کا ہے، اور اگر زید نہ مانے اور اسے چراغاں مزارات طیبہ کی نسبت جانے تو آٹھ برس سے تو اس روشنی کا ثبوت ہو گیا، جسے زید نے مشائخ زمانہ کا فعل کہا کہ امام زاہد صفار رحمہ اللہ تعالیٰ کی وفات ۵۳۴ ھ میں ہے 2 کمافی الطبقات الکبری وکشف الظنون (جیسا کہ طبقات کبری اور کشف الظنون میں ہے۔) (۱۶) سب سے زیادہ خوفناک تحریف یہ ہے تَتَّخِذُوْنَ عَلَیْھِمْ مَسٰجِدَ کو قرآنِ عظیم کا لفظِ کریم بنالیا، حالانکہ یہ جملہ قرآنِ عظیم میں کہیں نہیں، یہ تینوں لفظ متفرق طور پر ضرور قرآنِ عظیم میں آئے ہیں مثلاً تَتَّخِذُوْنَ مَصَانِعَ 3۔ اَنْعَمْتَ عَلَیْھِمْ 4۔ وَّ مَسٰجِدُ یُذْکَرُ فِیْھَا اسْمُ اللّٰہِ 5 ۔ مگر اس ترکیب و ترتیب سے کہیں نہیں۔

1 فتاوی سراجیہ کتاب الکراہیۃ منشی نولکشور لکھنؤ ص ۷۳ 2 کشف الظنون 3 القرآن ۲۶ / ۱۲۹ 4 القرآن ۱/ ۷ 5 القرآن ۲۲ / ۴۰

Fatawa Razawiya, Volume 9

In Surah Al-Kahf, it is like this: "Said those who prevailed over their affair, 'We will surely build over them a place of worship.'" (1) | They said, those who were dominant in this matter, "By God, we will surely build a mosque over them."

Even then, it is a blessing compared to the state of the Deobandi gentlemen, for they fabricate impossible books from their hearts, create pages for them, carve out passages from their own minds, and attribute them to the great saints and eminent scholars. Look at the Deobandis' red book "Saif-ut-Taqi" and the numerous writings against it like "Al-Azab al-Ba'is" etc. And there is no power nor might except with Allah, the Exalted, the Magnificent.

(17) Zaid admits that the practice of the ancient masters continues, although sometimes he refers to them as masters of the time, sometimes as descendants of spiritual guides, and sometimes as custodians, for whom graves are a means of livelihood. However, he has written at the beginning: "I declare under Sharia oath that I tried to prove the permissibility of lighting lamps at graves through some interpretation so that I would not oppose the ancient custom." And the answer he gave was: "Descendants of spiritual guides may be righteous, may be people of God, but they are not infallible." Mr. Zaid does not listen to anyone except an infallible person. But alas, when they are righteous and people of God, then this very [Fatawa] Alamgiri, whose authority you use to try and make them innovators (bid'ati), considers their actions as a proof and evidence in religion. In Fatawa Alamgiri, while mentioning the noble masters, it says:

"The actions of the people of religion are to be followed/adhered to, as stated in Jawahir al-Fatawa." (2) | One should hold fast to the actions of the people of religion. This is how it is in Jawahir al-Fatawa.

(18) In the presence of the Great Master, the Radiant Presence of Medina, may Allah Exalted bless him who purified it, and his family, and grant them peace, there is that grand and beautiful light, that soul-refreshing and heart-opening light, that heart-kindling and Wahhabi-scorching light, which exists with great splendor and magnificence. In response to this, Zaid fabricated this interpretation that the light is for the noble Mosque, not for the sacred shrine, peace and blessings of Allah be upon its occupant and his family. Perhaps Zaid was not blessed with a visit that is pure in every way; he compared it to some mosque in his own town where lump-oil is used in a local lamp. If you were to see the floor-standing chandeliers, the numerous

lanterns, and the glassware worth thousands of rupees with their heart-soothing brilliance, then according to your harsh and tasteless nature, how could this be permissible for a mosque? Listen also to the same [Fatawa] Bazzaziya from which you brought this authority regarding the mosque; in its Book of Wills, first chapter, it says:

1. Al-Quran 18/21
2. Fatawa Hindiyyah, Kitab al-Karahiya, Chapter 17 on Singing and Amusement etc., Noorani Kutub Khana Peshawar, 15 / 351.

फ़तावा रज़विया, जिल्द 9

सूरह कहफ़ में इस प्रकार है: "जो लोग अपने मामले में प्रबल रहे, उन्होंने कहा, 'हम उनके ऊपर अवश्य ही एक उपासना स्थल (मस्जिद) बनाएंगे।'" (1) | वे बोले जो इस काम में ग़ालिब रहे थे, क़सम है कि हम तो उन पर मस्जिद बनाएंगे।

फिर भी देवबंदी साहबों के हाल से ग़नीमत है कि वे तो अनहोनी किताबें दिल से गढ़ लेते हैं, उनके पन्ने बना लेते हैं, उनकी इबारतें दिल से तराश लेते हैं, और बड़े औलिया-ए-कराम और उलेमा-ए-इज़ाम की तरफ़ मंसूब कर देते हैं। देखो देवबंदियों की लाल किताब "सैफ़-उत-तक़ी" और उसके रद में "अल-अज़ाब अल-बईस" वग़ैरह अनेक लेख। व ला हौला व ला क़ुव्वता इल्ला बिल्लाहिल अलीयिल अज़ीम।

(17) ज़ैद को इक़रार है कि पुराने मशायख़ (बुज़ुर्गों) का अमल चला आ रहा है, हालाँकि कहीं तो उन्हें ज़माने के मशायख़ लिखा, कहीं पीरज़ादे और कहीं मुजाविर, जिनके लिए क़ब्रें आजीविका का साधन हैं। लेकिन शुरू में लिख चुके हैं कि "मैं शरई क़सम खाकर विश्वास दिलाता हूँ कि मैंने कोशिश की कि क़ब्रों पर चराग़ जलाने को किसी तावील (व्याख्या) से जायज़ साबित कर दूँ ताकि मैं पुरानी रस्म की मुख़ालफ़त न करूँ।" और उसका जवाब यह दिया कि "पीरज़ादे नेक हों, अल्लाह वाले हों, पर मासूम नहीं।" ज़ैद साहब मासूम के सिवा किसी की नहीं मानते। मगर अफ़सोस, जब वे नेक हैं, अल्लाह वाले हैं तो यही आलमगीरी जिसकी सनद से आप उन्हें बिदअती बनाना चाहते हैं, उनके कामों को दीन में सनद और दलील बताती है। फ़तावा आलमगीरी में मशायख़-ए-कराम के ज़िक्र में ही है:

"दीन वालों के कामों को मज़बूती से पकड़ा जाए, जैसा कि जवाहरुल फ़तावा में है।" (2) | दीन के लोगों के कामों को अपनाया जाए। ऐसा ही जवाहरुल फ़तावा में है।

(18) सरकार-ए-आज़म हुज़ूर पुर नूर मदीना तैयबा (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) में वह महान और सुंदर रोशनी, वह रूह को ताज़गी देने वाली दिलकश रोशनी, वह दिल को रोशन करने वाली और वहाबियों को जलाने वाली रोशनी जो अत्यंत ठाठ-बाट और शानो-शौकत के साथ होती है, इसके जवाब में ज़ैद ने यह तावील गढ़ी कि वह रोशनी मस्जिद-ए-करीम के लिए है, न कि मज़ार-ए-अक़दस के वास्ते (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम)। शायद ज़ैद को पाकीज़ा ज़ियारत नसीब नहीं हुई; उसने अपने कस्बे की किसी मस्जिद पर क़यास (तुलना) किया जहाँ दीये में ढेले का तेल जलता है। वहाँ के

फ़र्शी झाड़ों, अनगिनत फ़ानूसों और हज़ारों रुपयों के शीशे के सामान और उनकी दिलकश जगमगाहट को देखो तो आपकी रूखी और बे-ज़ौक़ तबीयत के अनुसार यह मस्जिद के लिए कब जायज़ होगा? वही बज़्ज़ाज़िया जिससे आप यह सनद लाए हैं, उसी की मस्जिद के बारे में भी सुनिए। उसकी किताबुल वसाया के पहले अध्याय में है:

1. अल-क़ुरआन 18/21
2. फ़तावा हिन्दिया, किताबुल कराहिया, बाब 17 गायन और आमोद-प्रमोद आदि पर, नूरानी कुतुब ख़ाना पेशावर, 15 / 351.

فتاویٰ رضویہ، جلد نہم

سورہ کہف میں یوں ہے: قَالَ الَّذِیْنَ غَلَبُوْا عَلٰی اَمْرِھِمْ لَنَتَّخِذَنَّ عَلَیْھِمْ مَّسْجِدًا (۱) | وہ بولے جو اس کام میں غالب رہے تھے قسم ہے کہ ہم تو ان پر مسجد بنائیں گے۔ (ت)

پھر بھی دیو بندی صاحبوں کے حال سے غنیمت ہے کہ وہ تو انہونی کتابیں دل سے گڑھ لیتے ہیں، اُن کے صفحے بنالیتے ہیں، ان کی عبارتیں دل سے تراش لیتے ہیں، اور اکابر اولیائے کرام و علمائے عظام کی طرف نسبت کردیتے ہیں، دیکھو دیوبندیوں کی لال کتاب "سیف التقیٰ" اور اس کے رَد میں العذاب البیئس وغیرہ تحریرات کثیرہ۔ ولا حول ولا قوۃ الا باللہ العلی العظیم۔

(۱۷) زید کو اقرار ہے کہ فعلِ مشائخِ قدیم چلا آتا ہے اگرچہ کہیں تو انہیں مشائخِ زمانہ لکھا، کہیں پیر زادے اور کہیں مجاور، جن کے لیے قبور ذریعہ معاش ہیں، مگر شروع میں تحریر فرماچکے ہیں کہ "میں بقسم شرعی باور کراتا ہوں کہ میں نے کوشش کی کہ چراغانِ قبور کا کسی تاویل سے استحسان ثابت ہوجائے تو میں رسمِ قدیم کی مخالفت نہ کروں۔" اور اس کا جواب وہ دیا کہ "پیرزادگان صالح ہوں، اہل اللہ ہوں، معصوم نہیں۔" زید صاحب معصوم کے سوا کسی کی نہیں مانتے، مگر افسوس، جب وہ صالحین ہیں، اہل اللہ ہیں تو یہی عالمگیری جس کی سند سے آپ انہیں بدعتی بنانا چاہتے ہیں ان کے افعال کو دین میں سند و حجت بتاتی ہے، فتاویٰ عالمگیری میں مشائخ کرام ہی کے ذکر میں ہے:

یتمسك بأفعال اهل الدین كذافي جواهر | تمسک کیا جائے اہل دین کے افعال سے۔ ایسا ہی جواہر الفتاویٰ میں ہے۔ الفتاوی (۲) ۔

(۱۸) سرکار اعظم حضور پر نور مدینہ طیبہ صلی اللہ تعالیٰ علیٰ من طیبہا وآلہ وبارک وسلم میں وہ جلیل و جمیل روشنی، وہ جانفزا دلکشا روشنی، وہ دل افروز وہابی سوز روشنی کہ نہایت تزرک و احتشام سے ہوتی ہے، اس کے جواب میں زید نے یہ تاویل گھڑی کہ وہ روشنی مسجد کریم کے لیے ہے، نہ کہ مزارِ اقدس کے واسطے صلی اللہ تعالیٰ علیٰ صاحبہ وآلہ وبارک وسلم۔ شاید زید کو زیارت سراپا طہارت نصیب نہ ہوئی، اپنے قصبہ کی کسی مسجد پر قیاس کیا جہاں دھڑی کے چراغ میں ڈھیلے کا تیل، وہاں کے فرشی جھاڑوں اور کثیر التعداد فانوسوں اور ہزار ہا روپے کے شیشہ آلات اور ان کی دل نواز جگمگاہٹ دیکھو تو آپ کی خشن بے ذوق طبیعت کے طور پر یہ مسجد کے لیے کب جائز ہو، وہی بزازیہ جس سے یہ سند لائے اسی کی درباره مسجد بھی سنیے، اس کی کتاب الوصایا فصل اول میں ہے:

1 القرآن ۱۸/۲۱ 2 فتاویٰ ہندیہ کتاب الکراھیۃ الباب السابع عشر فی الغناء واللمو الخ نورانی کتب خانہ پشاور ۱۵ / ۳۵۱

(Arabic): Said: "A third of my wealth is for the path of Allah." In 'al-Nawazil', it is stated: "If it is spent on a lamp for the mosque, it is permissible, but only for one lamp, whether in Ramadan or otherwise."[1]

(Urdu Translation): That is, if someone bequeaths a third of their wealth for the path of Allah, they can also light a lamp in the mosque with it, but only one lamp, whether it be Ramadan or not. That is, if someone bequeaths a third of their wealth for the path of Allah, they can also light a lamp in the mosque with it, but only one lamp, whether it be Ramadan or not.

(19) Zaid Sahab should be honored with the Hajj and pilgrimage. There in Masjid al-Haram, he will see some lamps around the Mataf (area of circumambulation) that do not provide full light to the entire noble mosque, and in the Presence of the Great Master (Madinah), he will see that which dazzles the eyes. If this light were for the mosque, then Masjid al-Haram would be more deserving, as it is superior to the mosque of Madinah the Radiant and many times larger in area. No, no, certainly that grandeur is for the enlightened tomb of the Master of the Virtuous, peace and blessings of Allah be upon him and his progeny, which every sensible person perceives at first glance. The taste of these words never leaves my heart, which a Muslim pilgrim said after Hajj upon seeing the glory and grandeur of the Radiant Tomb, that "here the status of being the Beloved is revealed." He (Allah) has kept His own house simple, free from domesticity, and these are the arrangements for the Beloved's dwelling, peace be upon him. See what an effect this glory and majesty had on the outward gaze, that faith sparkled in the observer's heart. For this very wisdom, the scholars have favored outward grandeur. Otherwise, God forbid.

حاجت مشاطه نیست روئے دلآرام را (Persian: A heart-soothing face has no need for a makeup artist.) (Decoration is not needed for a heart-soothing face. - T)

(Arabic): O Allah! Grant us complete faith and cause us to die upon it, by the honor of Your Beloved and the Bride of Your Kingdom, peace and blessings of Allah be upon him and his progeny. Amen.

(Urdu Translation): O Allah! Grant us perfect faith and grant death upon the same, for the sake of Your Beloved and the Bride of Your Kingdom. May Allah send blessings, peace, and benediction upon him and his progeny. O Lord, accept it! (T)

(20) Light in a mosque is not for the sake of the bricks and mud themselves, but for the worshippers; rather, even in prayer, the primary focus is intended for obligatory acts, for which the mosque was fundamentally built. Therefore, where those performing Tahajjud or other optional prayers and those remembering Allah stay in the mosque all night, or their coming and going continues throughout all parts of the night, and for this reason there is a habit of keeping lights on all night, or the waqif (endower) himself has specified it, except in such places, the ruling for all other mosques is to extinguish the lights after one-third of the night, as now it is extravagance and waste of wealth.

[1] Fatawa al-Bazzaziyyah on the margin of Fatawa al-Hindiyyah, Book of Wills, Noorani Kutub Khana Peshawar 6 / 435 Page 505 of 948

जिल्द नहम (नौवां खंड) फ़तावा-ए-रज़विया

(अरबी): "कहा: मेरे माल का एक तिहाई अल्लाह की राह में है। 'अल-नवाज़िल' में है: यदि उसे मस्जिद के चिराग पर खर्च किया जाए तो जायज़ है, लेकिन रमज़ान या उसके अलावा केवल एक चिराग के लिए।"[1]

(उर्दू अनुवाद): यानी अगर कोई अपने तिहाई माल की वसीयत राहे-खुदा के लिए करे तो उससे मस्जिद का चिराग भी जला सकते हैं, मगर सिर्फ एक चिराग, रमज़ान हो या ग़ैर-रमज़ान। यानी अगर कोई अपने तिहाई माल की वसीयत राहे-खुदा के लिए करे तो उससे मस्जिद का चिराग भी जला सकते हैं, मगर सिर्फ एक चिराग, रमज़ान हो या ग़ैर-रमज़ान।

(१९) ज़ैद साहब को चाहिए कि हज्ज और ज़ियारत से मुशर्रफ़ हों, वहाँ उन्हें मस्जिद अल-हराम शरीफ़ में मुताफ़ (तवाफ़ की जगह) के गिर्द कुछ हाँडियाँ नज़र आएँगी जो पूरी मस्जिद करीम को पूरी रौशनी नहीं देतीं, और सरकार-ए-आज़म (मदीना) में वह नज़र आएगा जिससे आँखें चुंधिया जाएँ। अगर यह रौशनी मस्जिद के लिए होती तो मस्जिद अल-हराम शरीफ़ ज़्यादा हक़दार थी कि वह मस्जिद-ए-मदीना तय्यबा से अफ़ज़ल भी है और वुसअत में भी कई हिस्से ज़्यादा। नहीं नहीं, यक़ीनन वह तजम्मुल (शान-ओ-शौकत) रौज़ा-ए-पुर अनवार हुज़ूर सय्यदुल अबरार सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम के लिए हैं, जिसे हर समझ वाला पहली नज़र में ही समझ लेता है। मेरे दिल से उन लफ़्ज़ों का ज़ौक़ नहीं जाता जो एक मुसलमान ज़ाइर ने हज्ज के बाद रौज़ा-ए-अनवर की शान-ओ-तजम्मुल देखकर कहे थे कि "यहाँ शान-ए-महबूबियत खुलती है।" उसने कि घर से पाक है, अपना घर यूँ सादा रखा है और काशाना-ए-महबूब के यह साज़-ओ-सामान हैं, सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम। देखिए, ज़ाहिरी निगाह पर इस शान-ओ-शिकोह का कैसा असर पड़ा कि उस नाज़िर के दिल में ईमान जगमगा उठा। इसी हिकमत के लिए तो उलमा-ए-किराम ने तजम्मुल-ए-ज़ाहिर पसंद फ़रमाया है। वरना हाशल्लाह।

हाजत-ए-मशाता नेस्त रू-ए-दिलआराम रा (फ़ारसी: दिल को सुकून देने वाले चेहरे के लिए श्रृंगार की आवश्यकता नहीं है।) (दिल को सुकून देने वाले चेहरे के लिए आराइश की ज़रूरत नहीं। - त)

(अरबी): अल्लाह हुम्मा अरज़ुक़नल ईमानाल कामिला व अमिना अलैहि बिजाहि हबीबिका व उरूसि ममलकतिक सल्लल्लाहु अलैहि व अला आलिहि व बारिक वसल्लम। आमीन।

(उर्दू अनुवाद): ऐ अल्लाह! हमें ईमान-ए-कामिल नसीब कर और इसी पर मौत दे अपने हबीब और अपने उरूस-ए-ममलकत के तुफ़ैल। अल्लाह तआला उन पर और उनकी आल पर दरूद-ओ-सलाम और बरकत नाज़िल फ़रमाए। इलाही क़बूल फ़रमा! (त)

(२०) मस्जिद में रौशनी ईंट-गारे (ख़िश्त-ओ-गिल) की ज़ात के लिए नहीं होती बल्कि नमाज़ियों के वास्ते, बल्कि नमाज़ में भी असल नज़र सिर्फ़ फ़राइज़ पर मक़सूद है कि असल में मस्जिद की तामीर उन्हीं के लिए है। लिहाज़ा जहाँ तहज्जुद वग़ैरह नवाफ़िल पढ़ने वाले और ज़िक्र करने वाले रात भर मस्जिद में रहते हों या रात के सब हिस्सों में उनकी आमद-ओ-रफ़्त रहती हो, और इस वजह से वहाँ रात भर रौशनी रखने की आदत हो या वक़्फ़ करने वाले ने खुद इसकी तसरीह (स्पष्टीकरण) कर दी हो, ऐसी जगह के अलावा बाक़ी तमाम मस्जिदों में तिहाई रात के बाद रौशनी बुझा देने का हुक्म है कि अब इसराफ़ (फ़िज़ूलखर्ची) और माल की बर्बादी है।

[1] फ़तावा बज़ाज़िया अला हामिश फ़तावा हिन्दिया, किताबुल वसाया, नूरानी कुतुब ख़ाना पेशावर ६ / ४३५ पृष्ठ ५०५/९४८

قال ثلث مالی فی سبیل اللہ ففی النوازل لو صرف الی سراج المسجد یجوز لکن الی سراج واحد فی رمضان وغیرہ ۔[1]

یعنی اگر کوئی اپنے تہائی مال کی وصیت راہ خدا کے لیے کرے تو اس سے مسجد کا چراغ بھی جلا سکتے ہیں، مگر صرف ایک چراغ، رمضان ہو یا غیر رمضان۔ یعنی اگر کوئی اپنے تہائی مال کی وصیت راہ خدا کے لیے کرے تو اس سے مسجد کا چراغ بھی جلا سکتے ہیں، مگر صرف ایک چراغ، رمضان ہو یا غیر رمضان۔

(۱۹) زید صاحب کو چاہئے ذرا حج و زیارت سے مشرف ہو وہاں ان مسجد الحرام شریف میں کچھ ہانڈیاں گرد مطاف نظر آئیں گی کہ ساری مسجد کریم کو پوری روشنی نہیں دیتی، اور سرکارِ اعظم میں وہ نظر آئے گا جس سے آنکھیں چندھیا جائیں، اگر یہ روشنی مسجد کے لیے ہوتی تو مسجد الحرام شریف زیادہ مستحق تھی کہ وہ مسجد مدینہ طیبہ سے افضل بھی ہے اور وسعت میں بھی کئی حصے زیادہ۔ نہیں نہیں، بالیقین وہ تجمل روضہ پر انوار حضور سید الابرار صلی اللہ تعالیٰ علیہ وآلہ وسلم کے لیے ہیں، جسے ہر سمجھ والا بنگاہ اولیں ادراک کرلیتا ہے۔ میرے دل سے ان لفظوں کا ذوق نہیں جاتا جو ایک مسلمان زائر نے حج کے بعد شان و تجمل روضہ انور دیکھ کر کہے تھے کہ یہاں شانِ محبوبیت کھلتی ہے۔ اس نے کہ گھر سے پاک ہے اپنا گھر یوں سادہ رکھا ہے اور کاشانہ محبوب کے یہ ساز و سامان ہیں، صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم۔ دیکھئے نگاہِ ظاہر پر اس شان و شکوہ کا کیسا اثر پڑا کہ اس ناظر کے دل میں ایمان جگمگا اٹھا۔ اسی حکمت کے لیے تو علمائے کرام نے تجملِ ظاہر پسند فرمایا ہے۔ ورنہ حاشاللہ۔

حاجت مشاطہ نیست روئے دلآرام را (دل کو سکون دینے والے چہرے کے لیے آرائش کی ضرورت نہیں۔ ت)

اللھم ارزقنا الایمان الکامل وامتنا اے اللہ! ہمیں ایمان کامل نصیب کر اور اسی پر موت دے علیہ بجاہ حبیبک وعروس مملکتک اپنے حبیب اور اپنے عروس مملکت کے طفیل. اللہ تعالیٰ ان صلی اللہ علیہ وعلی الہ وبارک وسلم. پر اور ان کی آل پر درود و سلام اور برکت نازل فرمائے. آمین. الٰہی قبول فرما! (ت)

(۲۰) مسجد میں روشنی خشت و گل کی ذات کے لیے نہیں ہوتی بلکہ نمازیوں کے واسطے، بلکہ نماز میں بھی اصل نظر صرف فرائض پر مقصود ہے کہ اصالتاً بنائے مسجد انہی کے لیے ہے۔ ولہٰذا جہاں تہجد وغیرہ نوافل خواں وذاکرین شب بھر مسجد میں رہتے یارات کے سب حصوں میں ان کی آمد ورفت مسجد میں رہتی ہو، اور اس وجہ سے وہاں شب بھر روشنی رکھنے کی عادت ہو یا واقف نے خود اس کی تصریح کردی ہو، ایسی جگہ کے علاوہ باقی تمام مساجد میں تہائی رات کے بعد روشنی گل کردینے کا حکم ہے کہ اب اسراف و تضییع مال ہے۔

[1] فتاوٰی بزازیہ علی ہامش فتاوٰی ہندیہ کتاب الوصایا نورانی کتب خانہ پشاور ۶ / ۴۳۵ Page 505 of 948

جلد نہم (Volume 9) فتاوی رضویہ (Fatawa Rizvia)

It is stated in Fatawa Khaniya and Fatawa Alamgiriya etc.:

[Arabic]: There is no harm in leaving the lamp of the mosque lit until a third of the night, and it should not be left for more than that, unless the endower stipulated it or it is the custom in that place. (1) [Urdu]: There is no harm in leaving the mosque lamp lit in the mosque until a third of the night, and it should not be lit more than that, but if the endower has made it a condition or there is a custom of it there. (T)

It is in Siraj al-Wahaj and then in Al-Hindiyyah:

[Arabic]: If an endowment is made for the oil of the mosque lamp, it is not permissible to keep it lit all night. Rather, it should be according to the need of the worshippers, and it is permitted until a third or half of the night if needed for prayer therein. (2) [Urdu]: If an endowment was made for the mosque's lamp, then it is not permissible to light the lamp all night, but it is permissible until a third of the night or until midnight when it is needed for prayer. (T)

And in the Noble Mosque of the Great Master, may Allah the Almighty's peace and blessings be upon him, no one is allowed to remain after the Isha prayer; people are turned out and the doors are kept closed until dawn, and these customs have been in place not just today, but for hundreds of years. The venerable Imam Abu al-Hasan al-Samhudi, in his book Wafa al-Wafa, which he composed in 886 AH, and then in its summary Khulasat al-Wafa, states:

[Arabic]: A round is made to turn people out of the mosque after the final Isha prayer with six lanterns arranged by the chief of attendants, Shibl al-Dawla Kafur al-Muzaffari al-Hariri. Previously, the round was made with torches of palm fronds. (3) [Urdu]: After the Isha prayer, in order to turn people out of the Noble Mosque, rounds are now made with six lanterns which were made by the chief of attendants, Shibl al-Dawla Kafur al-Muzaffari al-Hariri, whereas previously the round was made with a torch from a palm branch. (T)

Moreover, the magnificent account of the great miracle of the earth swallowing the ill-wishers of Abu Bakr and Umar (may Allah the Almighty be pleased with them both) from much earlier points to this, which is recorded in the same book Wafa al-Wafa, composed in 886 AH, and before that in the book Riyad al-Nadrah.

1. Fatawa Qazi Khan, Kitab al-Waqf, Munshi Naval Kishore, Lucknow, 4/167

2. Fatawa Hindiyyah, Al-Bab al-Hadi 'Ashar fi al-Masjid etc., Noorani Kutub Khana, Peshawar, 2/459
3. Wafa al-Wafa, Chapter 31, number of mosque lamps, Dar Ihya al-Turath al-Arabi, Beirut, 2/81-82

جلد نہم (जिल्द 9) فتاوی رضویہ (फतावा रज़विया)

फतावा खानिया और फतावा आलमगीरिया आदि में है:

[अरबी]: मस्जिद के चिराग को रात की एक तिहाई तक जलता छोड़ने में कोई हर्ज नहीं है और इससे ज्यादा न छोड़ा जाए सिवाय इसके कि वक़्फ़ करने वाले ने इसकी शर्त रखी हो या उस जगह पर ऐसा ही रिवाज हो। (1) [उर्दू]: मस्जिद का चिराग मस्जिद में तहाई रात तक जलता छोड़ देने में हर्ज नहीं, और इससे ज़्यादा न जलाया जाए, लेकिन जबकि वाकिफ़ ने इसकी शर्त रखी हो या वहाँ इसका रिवाज हो। (त)

सिराज-उल-वहाज फिर हिन्दिया में है:

[अरबी]: अगर मस्जिद के चिराग के तेल के लिए वक़्फ़ किया गया हो तो उसे पूरी रात जलाना जायज़ नहीं है, बल्कि नमाज़ियों की ज़रूरत के मुताबिक हो, और रात की एक तिहाई या आधी रात तक जायज़ है अगर उसमें नमाज़ के लिए इसकी ज़रूरत हो। (2) [उर्दू]: अगर मस्जिद के चिराग के लिये वक्फ़ किया तो पूरी रात चिराग जलाना जायज़ नहीं बल्कि तहाई रात तक जवाज़ है या निस्फ़ शब तक जबकि नमाज़ के लिए इसकी ज़रूरत हो। (त)

और मस्जिद-ए-अकरम सरकार-ए-आज़म सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम में नमाज़-ए-इशा के बाद कोई रहने नहीं पाता, लोगों को बाहर करके सहर तक दरवाज़े बंद रखते हैं, और ये आदात आज से नहीं सदियों साल से है। इमाम जलील अबुल हसन समहूदी किताब वफ़ा-उल-वफ़ा में जिसकी तसनीफ़ 886 हिजरी में फ़रमाई, फिर इसके खुलासा 'खुलासा-तुल-वफ़ा' में फ़रमाते हैं:

[अरबी]: ईशा के बाद मस्जिद से लोगों को निकालने के लिए छह फानूसों के साथ चक्कर लगाया जाता है जिन्हें खादिमों के सरदार शिबल अल-दौला काफूर अल-मुजफ्फर अल-हरीरी ने व्यवस्थित किया था। इससे पहले चक्कर खजूर की टहनियों की मशालों से लगाया जाता था। (3) [उर्दू]: नमाज़-ए-इशा के बाद लोगों को मस्जिद-ए-करीम से बाहर करने के लिये अब छह फ़ानूस लेकर दौरा करते हैं जिनको खुद्दाम के शैख़ शिबल-उद-दौला काफ़ूर अल-मुज़फ़्फ़री अल-हरीरी ने बनाया है जबकि इससे पहले खजूर की शाख की शमा से दौरा होता था। (त)

नीज़ इस पर इससे बहुत पहले की वो जलील-उल-क़दर मोजज़ा खसफ़-ए-बदख़्वाहान-ए-अबू बक्र व उमर रज़ियल्लाहु तआला अन्हुमा की अज़ीम हिकायत दलालत करती है जो इसी किताब वफ़ा-उल-वफ़ा तसनीफ़ 886 हिजरी, और इससे पहले किताब रियाज़ुन नज़रा में है।

1. फतावा काज़ी ख़ान, किताब अल-वक़्फ़, मुंशी नवल किशोर, लखनऊ, 4/167
2. फतावा हिन्दिया, अल-बाब अल-हादी अशर फ़िल मस्जिद, नूरानी कुतुब खाना, पेशावर, 2/459
3. वफ़ा-उल-वफ़ा, फ़स्ल 31, मस्जिद के चिरागों की संख्या, दार इह्या अल-तुरास अल-अरबी, बेरूत, 2/81-82

جلد نہم فتاوی رضویہ

فتاوی خانیہ و فتاوی عالمگیریہ وغیرہ میں ہے:

لاباس بان یترك سراج المسجد الی ثلث اللیل ولا یترك اکثر من ذلك الا اذا شرط الواقف ذلك او کان ذلك معتادا في ذلك الموضع 1۔ مسجد کا چراغ مسجد میں تہائی رات تک جلتا چھوڑ دینے میں حرج نہیں، اور اس سے زیادہ نہ جلایا جائے، لیکن جبکہ واقف نے اس کی شرط رکھی ہو یا وہاں اس کا رواج ہو۔ (ت)

سراج وہاج پھر ہندیہ میں ہے:

لو وقف علی دھن السراج المسجد لا یجوز وضعه جمیع اللیل بل بقدر حاجة المصلین وجوز الی ثلث اللیل او نصفه اذا احتاج الیه للصلوة فیه 2۔ اگر مسجد کے چراغ کے لئے وقف کیا تو پوری رات چراغ جلانا جائز نہیں بلکہ تہائی رات تک جواز ہے یا نصف شب تک جبکہ نماز کے لیے اس کی ضرورت ہو۔ (ت)

اور مسجد اکرم سرکار اعظم صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم میں نماز عشاء کے بعد کوئی رہنے نہیں پاتا، لوگوں کو باہر کر کے سحر تک دروازے بند رکھتے ہیں، اور یہ عادات آج سے نہیں صدہا سال سے ہے۔ امام جلیل ابوالحسن سمہودی کتاب وفاء الوفاء میں جس کی تصنیف ۸۸۶ھ میں فرمائی، پھر اس کے خلاصہ خلاصۃ الوفاء میں فرماتے ہیں:

یطاف لاخراج الناس من المسجد بعد العشاء الاخرة بفوانیس ستة رتبها شیخ الخدام شبل الدولة کافور المظفری الحریری وکان الطواف قبله بشعل من السعف 3۔ نماز عشاء کے بعد لوگوں کو مسجد کریم

سے باہر کرنے کیلئے اب چھ فانوس لے کر دورہ کرتے ہیں جن کو خدام کے شیخ شبل الدولہ کافور المظفری الحریری نے بنایا ہے جبکہ قبل ازیں کھجور کی شاخ کی شمع سے دورہ ہوتا تھا۔ (ت)

نیز اس پر اس سے بہت پہلے کی وہ جلیل القدر معجزہ خسف بدخواہان ابوبکر و عمر رضی اللہ تعالیٰ عنہما کی عظیم حکایت دال ہے جو اسی کتاب وفاء الوفاء تصنیف ۸۸۶ ہجری، اور اس سے پہلے کتاب ریاض النضرۃ

1 فتاوی قاضی خاں کتاب الوقف منشی نولکشور لکھنؤ ۴/ ۱۶۷ 2 فتاوی ہندیہ الباب الحادی عشر فی المسجد الخ نورانی کتب خانہ پشاور ۲/ ۴۵۹ 3 وفاء الوفاء فصل ۳۱ عدد قنادیل المسجد دار احیاء التراث العربی بیروت ۲/ ۸۱-۸۲

Fatawa Ridawiyya Volume 9

Imam Muhibuddin Tabari (died 694 AH) and the book 'Tarikh al-Madina' by the venerable Imam Abi Muhammad Abdullah al-Marjani mention this; and before all of them, the servant of the pure shrine narrated it before Imam Abu Abdullah al-Qurtubi. Its origin is proven from the Leader of the Believers, Umar Farooq the Great (may Allah be pleased with him). Al-Baladhuri narrated from Abu Sa'id, the freed slave of Abu Asid (may Allah be pleased with him):

Arabic: قال كان عمر بن الخطاب رضی اللہ تعالیٰ عنہ یعس فی المسجد بعد العشاء فلا یری احدا الا اخرجہ الا رجلا قائما یصلی۔ [1]	**He said: The Leader of the Believers, Umar Farooq the Great (may Allah be pleased with him), used to go on rounds in the Noble Mosque after the Isha prayer for surveillance; whoever he saw, he would order them out of the mosque, except for the person who was standing and praying.**

In short, lights remain on in the Noble Mosque until morning. And the jurists have explicitly stated its permissibility. See the same in 'Bazzaziyya', Book of Endowments (Waqf), fourth section:

Arabic: یجوز ترک سراج المسجد فیہ من المغرب الی العشاء لا کل اللیل الا اذا جرت العادۃ بذلک کمسجد سیدنا صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم۔ [2]	**It is permissible to leave the mosque's lamp in the mosque from Maghrib to Isha, and not for the whole night, except when it is the custom, such as in the Prophetic Mosque (peace and blessings of Allah be upon him and his progeny).**

From this, it is even clearer that this lighting is not for the worshipers but for the sacred shrine, and we will soon quote the discourse of the Imams clarifying this. And success is from Allah. (21) Zaid Sahib fabricated such a heavy argument for this lighting not being for the pure shrine that he himself got buried under its weight. Behold a logic distinct from the whole world, beyond the 'Logic of Birds' (Mantiq al-Tayr), that "The noble grave is actually hidden; how can lighting be for it?" As if a thing that is not visible cannot be given attention or honored. He accused the people of Allah of grave worship, for whose refutation their being people of Allah was enough, but lest this issue support idolaters—they say exactly this: how can there be veneration without seeing? (22) The decoration of the pure chamber and that sacred covering (Ghilaf) worth thousands of rupees prepared for it, perhaps these too are for the mosque, since the noble shrine is covered.

[1] Wafa al-Wafa, Section 30 regarding gravelling the mosque, Ihya al-Turath al-Arabi, Beirut, 2/669. [2] Fatawa Bazzaziyya on the margins of Fatawa Hindiyya, Book of Endowments, Nurani Kutub Khana Peshawar, 6/269.

फतावा रज़विया जिल्द 9

इमाम मुहिबुद्दीन तबरी (मृत्यु 694 हिजरी) और इमाम अल-जलील अबी मुहम्मद अब्दुल्लाह अल-मरजानी की पुस्तक 'तारीख अल-मदीना' में इसका उल्लेख है; और इन सबसे पहले रौज़ा-ए-मुतहरा (पवित्र मज़ार) के खादिम ने इमाम अबू अब्दुल्लाह कुर्तुबी के सामने इसे रिवायत किया। इसका मूल स्वयं अमीरुल मोमिनीन उमर फ़ारूक़े आज़म (रज़ियल्लाहु अन्हु) से प्रमाणित है। बलाज़ुरी ने अबू सईद मौला अबी असीद (रज़ियल्लाहु अन्हु) से रिवायत की:

अरबी: قال کان عمر بن الخطاب رضی اللہ تعالیٰ عنہ یعس فی المسجد بعد العشاء فلا یری احدا الا اخرجہ الا قائما یصلی لا خرج۔ [1]

उन्होंने फ़रमाया: अमीरुल मोमिनीन उमर फ़ारूक़े आज़म (रज़ियल्लाहु अन्हु) ईशा की नमाज़ के बाद मस्जिद-ए-करीम में देख-भाल के लिए दौरा फ़रमाते; जिसे देखते मस्जिद से बाहर कर देते, मगर जो व्यक्ति खड़ा नमाज़ पढ़ रहा हो।

संक्षेप में, मस्जिद-ए-करीम में सुबह तक रोशनी रहती है। और फ़ुक़हा-ए-किराम (धर्मशास्त्रियों) ने इसके जायज़ होने की स्पष्ट व्याख्या फ़रमाई है। वही बज़ाज़िया किताबुल वक़्फ़, चौथा अध्याय देखें:

अरबी: یجوز ترک سراج المسجد فیہ من المغرب الی العشاء لا کل اللیل الا اذا جرت العادۃ بذلک کمسجد سیدنا صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم۔ [2]

जायज़ है मस्जिद के चिराग का मस्जिद में छोड़ना मग़रिब से ईशा तक, न कि तमाम शब (पूरी रात), मगर जब कि इसकी आदत हो जैसे कि मस्जिद-ए-नबवी (सल्लल्लाहु अलैहि व आलिही वसल्लम)।

इससे यह और भी साफ़ है कि यह रोशनी नमाज़ियों के लिए नहीं है बल्कि रौज़ा-ए-अकदस (पवित्र रौज़े) के लिए है और हम जल्द ही इस पर इमामों का कथन उद्धृत करेंगे। और तौफीक अल्लाह ही की तरफ़ से है। (21) ज़ैद साहब ने इस रोशनी के मज़ार-ए-अतहर के लिए न होने की वह भारी दलील गढ़ी जिसके बोझ के नीचे वह खुद ही दब कर रह गए। ज़रा नई मंतुक (तर्क) देखें जो पूरी दुनिया से अलग है, 'मंतुकुत्तैर' (पक्षियों की भाषा) से भी परे कि "कब्र शरीफ़ वास्तव में ओझल है, भला रोशनी उसके लिए कैसे हो सकती है"। मानों जो चीज़ नज़र न आए उसका सम्मान या उस पर ध्यान नहीं दिया जा सकता। उन्होंने अल्लाह वालों पर कब्र पूजा का आरोप लगाया था, जिसके खंडन के लिए उनका अल्लाह वाला होना ही काफी था, पर कहीं यह मसला बुतपरस्तों का समर्थन न कर

दे, वे यही कहते हैं कि बिना देखे ताज़ीम (सम्मान) कैसी? (22) हुजरा-ए-मुतहरा की सजावट और उस पर हज़ारों रुपयों का वह तैयार किया गया ग़िलाफ़ शरीफ़, शायद यह भी मस्जिद ही के लिए हो क्योंकि मज़ार-ए-करीम तो ढका हुआ है।

[1] वफ़ा अल-वफ़ा, मस्जिद में कंकरी बिछाने के बारे में अध्याय 30, इहया अल-तुराथ अल-अरबी, बेरुत 2/669। [2] फतावा बज़ाज़िया, फतावा हिन्दिया के हाशिये पर, किताबुल वक़्फ़, नूरानी कुतुब खाना पेशावर 6/269।

पृष्ठ 507/948

فتاوٰی رضویہ جلد نہم

امام محب الدین طبری متوفی ۶۹۴ ہجری، وکتاب تاریخ المدینہ للامام الجلیل ابی محمد عبداللہ المرجانی میں مذکور و ماثور ہے، اور ان سب سے پہلے خادم روضہ مطہرہ نے امام ابوعبداللہ قرطبی کے سامنے اسے روایت کیا، اس کی اصل خود امیر المومنین عمر فاروق اعظم رضی اللہ تعالٰی عنہ سے ثابت۔ بلاذری نے ابوسعید مولٰی ابی اسید رضی اللہ تعالٰی عنہ سے روایت کی۔

قال کان عمر بن الخطاب رضی اللہ تعالٰی عنہ یعس فی المسجد بعد العشاء فلا یری احدا الا اخرجه الا رجلا قائما یصلی۔ [1]

فرمایا: امیر المومنین عمر فاروق اعظم رضی اللہ تعالٰی عنہ نماز عشاء کے بعد مسجد کریم میں دیکھ بھال کے لیے دورہ فرماتے جسے دیکھتے مسجد سے باہر فرما دیتے مگر جو شخص کھڑا نماز پڑھ رہا ہو۔

بالجملہ مسجد کریم میں صبح تک روشنی رہتی ہے۔ اور فقہائے کرام نے اس کے جواز کی تصریح فرمائی۔ وہی بزازیہ کتاب الوقف فصل رابعہ ملاحظہ کیجئے،

یجوز ترك سراج المسجد فیہ من المغرب الی العشاء لا کل اللیل الا اذا جرت العادة بذلك کمسجد سیدنا صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم [2]۔

جائز ہے مسجد کے چراغ کا مسجد میں چھوڑنا مغرب سے عشاء تک نہ کہ تمام شب، مگر جب کہ اس کی عادت ہو جیسے کہ مسجد نبوی صلی اللہ تعالٰی علیہ والہ وسلم۔

اس سے بھی روشن کہ یہ روشنی نمازیوں کے لیے نہیں ہے بلکہ روضہ اقدس کے لیے ہے اور ہم عنقریب کلام ائمہ اس کی تصریح نقل کریں گے۔ وباللہ التوفیق۔ (۲۱) زید صاحب نے یہ روشنی مزار اطہر کے لیے نہ ہونے کی وہ بھاری دلیل گھڑی جس کے بوجھ میں خود ہی دب کر رہے۔

ذرا یہ نئی منطق جہاں بھر سے بھی جدا منطق الطیر سے سوا ملاحظہ ہو کہ "قبر شریف در حقیقت روپوش ہے بھلا روشنی اس کے لیے ہو سکتی ہے" گویا جو شے نظر نہ آئے اس سے اعتناء اس کی تکریم ہو ہی نہیں سکتی۔ اہل اللہ پر عبادت قبور کا الزام رکھا تھا جس کی تکذیب کو ان کا اہل اللہ ہونا ہی بس تھا مگر کہیں یہ مسئلہ عباد صنم کی تائید نہ کرے، وہ یہی کہتے ہیں کہ بے دیکھے تعظیم کیسی؟ (۲۲) حجرہ مطہرہ کی آرائش اور اس پر وہ ہزار ہا روپے کی تیاری کا غلاف شریف یہ بھی شاید مسجد ہی کے لیے ہو کہ مزار کریم تو مستور ہے۔

[1] وفاء الوفاء فصل ۳۰ فی تحصیب المسجد احیاء التراث العربی بیروت ۲/ ۶۶۹ [2] فتاوی بزازیہ علی ہامش فتاویٰ ہندیہ کتاب الوقف نورانی کتب خانہ پشاور ۶/ ۲۶۹

Fatawa Razawiya Volume 9

(23) It is a boon that in this matter, the allegation of venerating graves has been completely refuted. Generally, wherever there is lighting at the shrines of noble saints, especially during the days of Urs, they are covered with shrouds. Therefore, even according to Zaid, this lighting cannot be for the purpose of venerating graves.

(24) The second point is that the lighting is provided by the Sultan who established the bank. There would have been a reason for saying this if someone had relied on the Sultan's action as evidence that this lighting is permissible because it comes from the Sultan. Since that is not the case, it is out of place to simply refer to the Sultan of Turkey as "Turkey" using a disliked word following the Christians' accent and criticizing the Sultan of Islam without reason. What is the wisdom in this? It is mentioned in the Hadith:

[Arabic]: The Sultan is the shadow of Allah on earth. Whoever honors him, Allah honors him, and whoever disgraces him, Allah disgraces him. - Narrated by al-Tabarani in al-Mu'jam al-Kabir and al-Bayhaqi in Shu'ab al-Iman from Abu Bakrah (may Allah be pleased with him), from the Prophet (may Allah's peace and blessings be upon him).

[Urdu Translation]: The Sultan is the shadow of Allah Almighty on earth. Whoever honors him, Allah Almighty honors him, and whoever insults him, Allah Almighty gives him humiliation. It was narrated by al-Tabarani in al-Mu'jam al-Kabir and al-Bayhaqi in Shu'ab al-Iman from Hazrat Abu Bakrah (may Allah be pleased with him), who narrated it from the Prophet (may Allah's peace and blessings be upon him).

Indubitably, this in itself is establishing proof for the non-permissibility of lighting. This necessity arose for its mention, although it is still far from the perspective of the pure Shari'ah issue, as its source of documentation would only be some news reports, and news reports are well known for what they are. Imam Hujjat-ul-Islam has stated in Ihya 'Ulum al-Din that attributing a major sin (Kabira) to any Muslim is forbidden (haram) unless it is proven with certainty through mass-reporting (tawatur). Mere news gossip, even if correct, it is possible, rather suspected, to be from that new group of freedom-seekers. Therefore, pinning this major sin on the Sultan is mere conjecture. Furthermore, it remains to be seen whether "the bank is for giving interest or, God forbid, for taking interest." Does the kingdom have such capacity at this time that it can give large loans to people? It is itself in need of money

for its own severe needs, and giving interest is permitted at a time of Shari'ah necessity. It is mentioned in Durr-e-Mukhtar:

[Arabic]: It is permissible for a needy person to borrow with interest.

[Urdu Translation]: It is permissible for a needy person to take a loan on the condition of providing profit (interest). (T)

In short, the essence of the argument is that this is from the Sultan, and the Sultan is a transgressor (fasiq), and whatever is attributed to a transgressor...

---

1. Shu'ab al-Iman, Chapter on Obedience to those in Authority, Hadith 7373, Dar al-Kutub al-Ilmiyah, Beirut, 6/17.
2. Al-Ashbah wa al-Naza'ir, with reference to al-Qunyah and al-Bughyah, Rule Six, Idarah al-Qur'an wa al-Ulum al-Islamiyah, Karachi, 1/126.

फ़तावा रज़विया जिल्द नौ (9)

(23) यह गनीमत है कि इस मसले में कब्रों की ताज़ीम का इल्ज़ाम तो बिल्कुल खत्म हो गया। औलिया-ए-कराम के मज़ारात पर उमूमन जहाँ-जहाँ रोशनी होती है, ख़ासकर उर्स के दिनों में, वे गिलाफों (चादरों) से ढके होते हैं। लिहाज़ा ज़ैद के नज़दीक भी यह रोशनी कब्रों की ताज़ीम के लिए नहीं हो सकती।

(24) दूसरी बात यह है कि रोशनी सुल्तान की तरफ से होती है जिसने बैंक कायम किया। यह कहने का अवसर तब होता जब किसी ने सुल्तान के अमल से दलील ली होती कि यह रोशनी इसलिए जायज़ है क्योंकि यह सुल्तान की तरफ से है। और जब ऐसा नहीं है, तो बिना वजह सुल्तान-ए-तुर्की को ईसाइयों के लहज़े की पैरवी करते हुए मकरूह लफ्ज़ 'टर्की' से ताबीर करके सुल्तान-ए-इस्लाम की ऐब-जोई करना बे-महाल है। इसमें क्या हिकमत है? हदीस में है:

[अरबी]: सुल्तान ज़मीन में अल्लाह का साया है। जो उसकी इज़्ज़त करे, अल्लाह उसे इज़्ज़त देता है, और जो उसकी तौहीन करे, अल्लाह उसे ज़लील करता है। - इसे तबरानी ने मुअजम अल-कबीर में और बैहकी ने शोअबुल ईमान में अबू बकरा रज़ियल्लाहु अन्हु से रिवायत किया, उन्होंने नबी सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम से रिवायत की।

[उर्दू अनुवाद]: सुल्तान ज़मीन में अल्लाह तआला का साया है। जो उसकी इज़्ज़त करे, अल्लाह तआला उसे इज़्ज़त देता है, और जो उसकी तौहीन करे, अल्लाह तआला उसे ज़िल्लत देता है। इसे तबरानी ने मुअजम अल-कबीर में और बैहकी ने शोअबुल ईमान में हज़रत अबू बकरा रज़ियल्लाहु अन्हु से रिवायत किया, उन्होंने नबी सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम से रिवायत की।

ज़ाहिर है यह अपनी तरफ से रोशनी के ना-जायज़ होने पर दलील कायम करना है। इसके ज़िक्र की ज़रूरत इसलिए हुई, हालांकि अब भी शरीयत-ए-मुतहहरा के नज़रिये से यह मसला दूर है कि इसकी सनद (प्रमाण) सिर्फ कुछ अख़बारी ख़बरें ही होंगी, और अख़बारी बयान कैसे होते हैं, सब जानते हैं। इमाम हुज्जतुल इस्लाम ने 'एह्या-उल-उलूम' में वज़ाहत फरमाई है कि किसी मुसलमान की तरफ कबीरा गुनाह की निस्बत करना हराम है, जब तक कि वह तवातुर (निश्चित प्रमाण) से साबित न हो। महज़ अख़बारी अफवाहें, अगर सही भी हों, तो मुमकिन है बल्कि गुमान है कि वह इस 'आज़ादी वाली नई जमात' की तरफ से हो। लिहाज़ा सुल्तान के सर इस गुनाह-ए-कबीरा को मढ़ना महज़ अटकलबाज़ी है। फिर यह भी देखना है कि "बैंक सूद (ब्याज) देने के लिए है या माज़-अल्लाह सूद

लेने के लिए।" हुकूमत के पास इस वक्त इतनी वुसअत (सामर्थ्य) कहाँ कि लोगों को भारी कर्ज दे? वह खुद अपनी शदीद ज़रूरतों के लिए रुपयों की मोहताज है, और शरीई ज़रूरत के समय सूद देना जायज़ है। 'दुर्रे मुख्तार' में है:

[अरबी]: ज़रूरतमंद के लिए सूद पर कर्ज़ लेना जायज़ है।

[उर्दू अनुवाद]: नफा देने की शर्त पर ज़रूरतमंद को कर्ज़ लेना जायज़ है। (त)

बहरहाल दलील का हासिल यह है कि यह सुल्तान की तरफ से है और सुल्तान फासिक (गुनहगार) हैं, और जो फासिक की तरफ...

---

1. शोअबुल ईमान, बाब फ़ी ताअत उली अल-अम्र, हदीस 7373, दार अल-कुतुब अल-इल्मिया, बेरूत, 6/17.
2. अल-अश्बाह वल-नज़ायर, ब-हवाला अल-कुनिया वल-बुग़िया, अल-क़ायदा अल-सादिसा, इदारा अल-कुरआन वल-उलूम अल-इस्लामिया, कराची, 1/126.

पृष्ठ 508 / 948

فتاوی رضویہ جلد نہم

(۲۳) غنیمت ہے کہ اس مسئلہ میں تعظیم قبور کا الزام تو قطع ہوا، مزارات اولیائے کرام عموماً جہاں جہاں روشنی ہوتی ہے خصوصاً ایام اعراس میں غلافوں سے روپوش ہوتے ہیں تو بطور زید بھی یہ روشنی تعظیم قبور کے لیے نہیں ہو سکتی۔ (۲۴) دوسری بات یہ کہ روشنی منجانب سلطان ہوتی ہے جس نے بنک قائم کیا۔ اس کہنے کا محل جب تھا کہ فعل سلطان سے کسی نے استناد کیا ہوتا کہ یہ روشنی اس لیے جائز ہوتی ہے کہ سلطان کی طرف سے ہوتی ہے اور جب ایسا نہیں تو بے محل محض سلطان ترکی کو باتباع لہجہ نصاریٰ مکروہ لفظ ٹرکی سے تعبیر کر کے بلاوجہ سلطان اسلام کی عیب چینی ، کیا مصلحت ہوئی حدیث میں ہے۔ السلطان ظل اللہ فی الارض فمن اکرمہ اکرمہ اللہ ومن اھانہ اھانہ اللہ - رواہ الطبرانی فی الکبیر والبیھقی فی الشعب عن ابی بکرۃ رضی اللہ تعالی عنہ عن النبی صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم - سلطان زمین میں اللہ تعالیٰ کا سایہ ہے جو اس کی عزت کرے اللہ تعالیٰ اس کو عزت دے، اور جو اس کی توہین کرے اللہ تعالیٰ اسے ذلت دے۔ اسے طبرانی نے معجم الکبیر میں اور بیہقی نے شعب الایمان میں حضرت ابوبکرہ رضی اللہ تعالیٰ عنہ سے انہوں نے نبی صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم سے روایت کیا۔ لاجرم یہ اپنی طرف سے عدم جواز روشنی پر اقامت دلیل ہے، یہ ضرورت اس کے ذکر کی طرف ہوئی اگرچہ اب بھی شرع مطہر مسئلہ کی رو سے دور ہے کہ اس کی سند کتابت بعض اخبارات ہی ہو گی اور اخباری بیانات جیسے ہوتے ہیں معلوم ہیں۔ امام حجۃ الاسلام نے احیاء العلوم میں تصریح فرمائی ہے کہ کسی مسلمان کی طرف نسبت کبیرہ حرام ہے، جب تک تواتر سے یقینی الثبوت نہ ہو، کہ محض اخباری گپیں، اگر صحیح بھی ہوں تو ممکن بلکہ مظنون کہ وہ اس نئی جماعت حریت کی طرف سے ہو گا تو سلطان کے سر اس کبیرہ کا باندھنا محض جزاف ہے پھر یہ بھی دیکھنا ہے کہ "بینک سود دینے

کے لیے ہے یا معاذ اللہ سود لینے کے لیے، سلطنت میں اس وقت وہ وسعت کہاں کہ لوگوں کو کثیر المقدار قرض دے، وہ خود اپنی ضروریات شدید ہ کے لیے روپے کی حاجت مند ہے اور حاجت شرعیہ کے وقت سود دینے کی اجازت ہے۔ در مختار میں ہے: یجوز للمحتاج الاستقراض بالربح - نفع دینے کی شرط پر حاجتمند کو قرض لینا جائز ہے (ت) بہر حال حاصلِ دلیل یہ ہے کہ یہ سلطان کی طرف سے ہے اور سلطان فاسق ہیں، اور جو فاسق کی طرف

---

1 شعب الایمان باب فی طاعۃ اولی الامر حدیث ۷۳۷۳ دارالکتب العلمیہ بیروت ۶ / ۱۷ 2 الاشباہ والنظائر بحوالہ القنیہ والبغیہ القاعدہ السادسہ ادارۃ القرآن والعلوم الاسلامیہ کراچی ۱/ ۱۲۶

Fatawa Razawiyya, Volume 9

...from being all forbidden. The merit of this argument is apparent from the universality of its major premise. Applying diacritics (eraab) to the Quran would then perhaps be a much worse act, as it was initiated by an oppressor like Hajjaj.

(25) Leaving the Sultan of Islam, they turned towards the Haramain Sharifain (Two Holy Mosques), where a large part trims the beard. Alhamdu Lillah (Praise be to Allah) that a universal statement was not made; everywhere, the majority is always the common people. If they have generally been performing an act for hundreds of years, and that too in a mosque, and specifically in the Holy Mosque of the Master of Messengers (peace and blessings of Allah be upon him), considering it a good deed that earns reward, honors the symbols of Allah, and glorifies the sanctities of Allah; and the masses of scholars see it daily and do not forbid it, then the authority will be based on the tacit approval of the scholars, not on the mere actions of the common people.

(26) They have understood for themselves that it is continuous practice (ta'amul), not just a solitary act of commoners. Their remedy for this was to say that the continuous practice of Haramain Sharifain after the first three generations (Quroon-e-Thalatha) is not a proof. The issue of specifying the first three generations has been addressed in various places in our treatise refuting Wahhabism. Also, the issue of the continuous practice of Haramain Sharifain has been clearly explained in the blessed book "Usool-ur-Rashad li Qam-i Mabani-il Fasad" under the eleventh rule. Here, it is sufficient that Shaikh Muhaqqiq, in "Jadhb al-Qulub Sharif", mentions the Sahih Bukhari Hadith: "Verily, it is Taybah (the pure city); it removes sins just as a furnace removes the impurities of silver" (T), and so on, and then says:

| "The meaning is the negation and distancing of the people of evil and corruption from the honorable vicinity of this pure city. According to most religious scholars, the aforementioned property is evident in it in all times and ages." | "The meaning is to remove those who cause evil and corruption from the land of this pure city, and according to most religious scholars, this quality is present in it in every era and every time. (T)" |

In the Sahihain (Bukhari and Muslim), it is narrated from Abu Huraira (may Allah be pleased with him) that the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) said:

| Verily, faith retreats to Madinah as a snake retreats to its hole. | "Verily, faith retreats to Madinah as a snake retreats to its hole.[2]" |

Imam Qurtubi says in its commentary:

| "In this there is an indication of the correctness of their school of thought and their safety from innovations, and indeed their practice is a proof in our time.[3]" | In this noble Hadith, there is an indication that their school of thought is correct and they are free from innovations, and their practice is a proof in our era. |

1. Jadhb al-Qulub, Chapter 2, mentioning virtues, Munshi Nawal Kishore Lucknow, p. 25.
2. Sahih al-Bukhari, Chapter 'Faith retreats to Madinah', Qadimi Kutub Khana Karachi, 1/252.
3. 'Umdat al-Qari Sharh al-Bukhari, citing Qurtubi, Dar al-Tiba'at al-Muniriyya Beirut, 10/240.

फ़तावा रज़विया, जिल्द 9

...होना सब नाजायज़ है। इस दलील की ख़ूबी इसके कुबरी (आधार-वाक्य) की व्यापकता से ज़ाहिर है। कुरआन पर एराब (ज़ेर-ज़बर) लगाना तो शायद और भी बुरा काम होगा क्योंकि यह हज्जाज जैसे ज़ालिम की तरफ़ से है।

(25) सुल्तान-ए-इस्लाम से फ़ारिग़ होकर हरमैन शरीफ़ैन की तरफ़ मुतवज्जा हुए कि वहां का बड़ा हिस्सा दाढ़ी कतरवाता है, अल्हम्दुलिल्लाह कि मुकम्मल तौर पर नहीं कहा, हर जगह हमेशा बड़ा हिस्सा अवाम का होता है। अगर आम तौर पर सैंकड़ों सालों से एक फ़ेल (काम) करें और वो भी मस्जिद में, और वो भी सैय्यद-उل-मुरसलीन (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) की मस्जिद-ए-अकदस में, और वो भी कार-ए-खैर اور। अजर का कारण और अल्लाह के प्रतीकों का सम्मान और अल्लाह की हुरमतों की ताज़ीम समझ कर; और उलेमा की बड़ी तादाद इसे रोज़ाना देखे और मना न फरमाए, तो सनद (प्रमाण) उलेमा की ख़ामोश रज़ामंदी होगी न कि अवाम का फ़ेल।

(26) ख़ुद ही समझ कर तआमुल (निरंतर अभ्यास) है न कि सिर्फ अवाम का अमल। इसका उन्होंने ये इलाज किया कि हरमैन शरीफ़ैन का तआमुल 'कुरून-ए-सलासा' (पहले तीन युगों) के बाद सनद नहीं। कुरून-ए-सलासा की विशेषता का मामला हमारे रिसाला रद-ए-वहाबिया में जगह-जगह हो चुका और हरमैन शरीफ़ैन के तआमुल का मसला भी किताब "उलूम-उर-रशाद" के ग्यारहवें कायदे में वाज़ेह (स्पष्ट) कर दिया गया है। यहाँ इतना काफ़ी है कि शैख मोहक़्क़िक "जज़्ब-उल-कुलूब शरीफ़" में सही बुख़ारी की हदीस: "بیشک وہ طیبہ ہے، گناہوں کو دور کرتا ہے جیسے بھٹی چاندی کا میل دور کرتی ہے۔ ت" (बेशक वह तैयबा है, गुनाहों को दूर करता है जैसे भट्टी चाँदी का मैल दूर करती है। त) वगैरह बयान करके फ़रماتے हैं:

| "मुराद नफ़ी व इबाद अहल-ए-शर व फ़साद अस्त अज़ साहत-ए-इज़्ज़त ईं बलदह तैयबा व बक़ौल अक्सर उलेमाए दीन ख़ासियत मज़कूरह दर वे दर जमीअ अज़मान व दहूर पैदास्त" | इस पाक शहर की सरज़मीन से शर और फ़साद वालों को दूर करना मुराद है और अक्सर उलेमा-ए-दीन के बक़ौल इसमें ये ख़ासियत हर दौर और हर ज़माने में है। (त) |

सहीहैन में अबू हुरैرہ (रज़ियल्लाहु अन्हु) से है कि रसूलुल्लाह (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) फ़रमाते हैं:

| बेशक ईमान मदीना की तरफ़ सिमटता है जैसे सांप अपने बिल की तरफ़। | "बेशक ईमान मदीना की तरफ़ सिमटता है जैसे सांप अपने बिल की तरफ़।[2]" |

इमाम कुर्तुबी इसकी शरह (व्याख्या) में फ़रमाते हैं:

| "इसमें उनके मज़हब की सेहत और बिदअतों से उनकी सलामती पर आगाही है और यह कि उनका अमल हमारे बीच हुज्जत है।[3]" | इस हदीस शरीफ़ में इस पर चेतावनी है कि उनका मज़हब सही है और वे बिदअतों से पाक हैं, उनका अमल हमारे ज़माने में हुज्जत (प्रमाण) है। |

1. जज़्ब-उल-कुलूब, दूसरा बाब, फ़ज़ायल के ज़िक्र में, मुंशी नवल किशोर लखनऊ, पृ. 25
2. सही अल-बुखारी, बाब 'ईमान मदीना की तरफ़ लौटता है', कदीमी कुतुब खाना कराची, 1/252
3. उम्दत अल-कारी शरह अल-बुखारी, बहवाला कुर्तुबी, दार-अत-तिबात-अल-मुनीरिया बेरूत, 10/240

سے ہو سب ناجائز ہے۔ اس دلیل کی خوبی اس کے کبری کی کلیت سے ظاہر قرآن پر اعراب لگانا تو شاید سخت ہی بدتر کام ہوگا کہ حجاج جیسے ظالم اظلم کی طرف سے ہے۔

(۲۵) سلطانِ اسلام سے فارغ ہو کر حرمین شریفین کی طرف متوجہ ہوئے کہ وہاں کا بڑا حصہ ڈاڑھی کترواتا ہے، الحمد للہ کہ کلیہ نہ کہا، ہر جگہ ہمیشہ بڑا حصہ عوام کا ہوتا ہے۔ اگر عام طور پر صدہا سال سے ایک فعل کریں اور وہ بھی مسجد میں، اور وہ بھی مسجدِ اقدس سید المرسلین صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم میں، اور وہ بھی کارِ خیر و موجبِ اجر و تعظیم شعائر اللہ واجلالِ حرمات اللہ جان کر۔ بالینمہ جماہیر علماء روزانہ دیکھیں اور منع نہ فرمائیں تو استناد تقریر علماء سے ہوگا نہ کہ فعلِ عوام سے۔

(۲۶) خود ہی سمجھ کر تعامل ہے نہ مجرد عمل عوام اس کا یہ علاج کیا کہ تعامل حرمین شریفین کا بعدِ قرونِ ثلاثہ کے سند نہیں۔ قرونِ ثلاثہ کی تخصیص کا قضیہ ہمارے رسالہ ردّ وہابیہ میں جابجا ہوچکا اور مسئلہ تعاملِ حرمین شریفین بھی کتاب مستطاب "اصول الرشاد لقمع مبانی الفساد" قاعدہ یازدہم میں واضح فرمادیا گیا، یہاں اسی قدر کافی کہ شیخ محقق جذب القلوب شریف میں حدیث صحیح بخاری: "انما طیبة تنفی الذنوب کما تنفی الکیر خبث الفضة" (بیشک وہ طیبہ ہے، گناہوں کو دور کرتا ہے جیسے بھٹی چاندی کا میل دور کرتی ہے۔ ت) وغیرہ بیان کر کے فرماتے ہیں:

| "مراد نفی و ابعاد اہل شر و فساد است از ساحت عزت ایں بلدہ طیبہ وبقول اکثر علمائے دین خاصیت مذکورہ در وے در جمیع از مان و دہور پیداست" | اس شہرِ پاک کی سرزمین سے شر

فساد والوں کو دور کرنا مراد ہے اور اکثر علمائے دین کے بقول اس میں یہ خاصیت ہر دور اور ہر زمانے میں ہے۔ ت) |

صحیحین میں ابوہریرہ رضی اللہ تعالیٰ عنہ سے ہے رسول اللہ صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم فرماتے ہیں :

| ان الایمان لیار زالی ا لمدینة کما تارز الحیة الی جحرھا ۲۔ | بیشک ایمان مدینہ کی طرف سمٹتا ہے جیسے سانپ اپنے بل کی طرف۔ |

امام قرطبی اس کی شرح میں فرماتے ہیں:

| فیه تنبیه علی صحة مذھبھم وسلامتھم من البدع وان عملھم حجة في ماننا ۳۔ | اس حدیث شریف میں تنبیہ ہے اس پر کہ ان کا مذہب صحیح ہے اور وہ بدعتوں سے پاک ہیں ان کا عمل ہمارے زمانہ میں حجت ہے۔ |

۱ جذب القلوب باب دوم در ذکر فضائل منشی نولکشور لکھنؤ ص ۲۵ ۲ صحیح البخاری باب الایمان یازر الی المدینہ قدیمی کتب خانہ کراچی ۱/ ۲۵۲ ۳ عمدة القاری شرح البخاری بحوالہ قرطبی دارالطباعة المنیر یہ بیروت ۱۰/ ۲۴۰

Fatawa Razawiyya Volume 9

(27) Moving forward, [the opponent] has rendered the practice (ta'amul) of the two holy sanctuaries [Makkah and Madinah] completely null and void. The exception of the three [blessed] generations also vanished. The reasoning given is that only the generations, Hadith, consensus (Ijma), and the analogy (Qiyas) of the mujtahids (jurists) are proof. He had just said that "if the permissibility of illuminations were to appear today in the book of any authoritative scholar, I would not be stubborn." Yet, for prohibition, he relied on the fatwas of Shah Rafiuddin Sahib and Qazi Sahib Pani Pati's 'Ma La Bud' and 'Irshad al-Talibin'. Are these people and their speech Quran, Hadith, Ijma, or Qiyas of the mujtahids? Then from where did this fifth proof emerge!

(28) It has just passed from 'Jawahir al-Fatawa' and 'Fatawa 'Alamgiriyyah' that the actions of pious people are a precedent; this became the sixth proof.

(29) Now, by the grace of Allah Almighty, we will mention those heart-invigorating passages from which it is proven what kind of lighting was in the Radiant Garden [of the Prophet ﷺ] and for how many years it has been prevalent. This was even before the foundation of the Ottoman Empire was laid. It is specifically for the Pure Garden, not with the intention of the mosque. It was with the approval of the noble scholars, not just the action of sultans. And how a great Imam gave a brilliant fatwa for its permissibility—nay, not just a fatwa, but authored an independent treatise specifically on this subject, Alhamdu lillah. The scholar of Madinah al-Tayyibah, the great Imam Sayyid Abu al-Hasan 'Ali Nur al-Din bin 'Abdullah Samhudi Madani (may Allah sanctify his secret), a contemporary of the great Imam Jalal al-Milla wa al-Din al-Suyuti (may Allah have mercy on them both—both passed away in 911 AH), in his blessed book 'Khulasat al-Wafa bi-Akhbar Dar al-Mustafa' (peace and blessings of Allah be upon him), authored in 893 AH, provided details in the sixteenth section of the fourth chapter, titled 'Number 11: On the decoration and grandeur of the Pure Garden and glass apparatus and equipment of lighting.' He wrote separately in Section 14 regarding the pillars, lamps, etc., of the Holy Mosque. In this section on the mosque, he stated:

Arabic Original	English Translation
In the courtyard of the mosque are four torches that are lit during the nights of famous visitations. I do not know who first initiated them. In the mosque,	There are four torches in the courtyard of the Noble Mosque that are lit on the famous nights of visitation, and I do not know who first placed these torches. In the

Arabic Original	English Translation
there are many chains for lamps that were made after the fire. The allocated fuel for them increases and decreases for reasons that are not hidden[1].	mosque, there are many chains of lamps that were made after the fire, and the ration of their lighting increases and decreases, the reason for which is apparent.

[1] Wafa al-Wafa, Section 31, Dar Ihya al-Turath al-Arabi, Beirut, 2/681.

फ़तावा रज़विया जिल्द नहम

(27) आगे बढ़कर, [विरोधी] ने हरमैन शरीफैन (मक्का और मदीना) के व्यवहार (ता'अमुल) को पूरी तरह से व्यर्थ और अमान्य कर दिया। तीन पीढ़ियों (कुरून-ए-सलासा) का अपवाद भी हट गया। दलील यह दी गई कि केवल [प्रारंभिक] पीढ़ियाँ, हदीस, इज़्मा (आम सहमति) और मुजतहिदों (विधिवेत्ताओं) का क़ियास (अनुमान) ही प्रमाण हैं। अभी उन्होंने कहा था कि "यदि दीपमाला (चरागाँ) की अनुमति आज भी किसी प्रामाणिक विद्वान की पुस्तक से मिल जाए, तो मैं ज़िद नहीं करूँगा।" फिर भी, मनाही के लिए शाह रफ़ीउद्दीन साहब के फतवे और क़ाज़ी साहब पानीपती की 'मा ला बुद' और 'इरशाद अल-तालिबीन' का सहारा लिया। क्या ये लोग और उनकी बातें कुरान, हदीस, इज़्मा या मुजतहिदों का क़ियास हैं? फिर यह पांचवां प्रमाण कहां से आया!

(28) अभी 'जवाहर अल-फतवा' और 'फतवा-ए-आलमगीरिया' से यह बात गुजरी कि धर्मपरायण लोगों के कार्य भी प्रमाण (सनद) होते हैं; यह छठा प्रमाण हुआ।

(29) अब, अल्लाह अज़्ज़-व-जल्ल के अनुग्रह से, हम उन दिल को सुकून देने वाली इबारतों का ज़िक्र करेंगे जिनसे यह साबित होता है कि रौज़ा-ए-अनवर (नबी ﷺ का रौज़ा) में कैसी रोशनी होती थी और यह कितने वर्षों से प्रचलित है। यह तब से है जब उस्मानी साम्राज्य की नींव भी नहीं पड़ी थी। और यह कि यह विशेष रूप से उसी पवित्र रौज़े के लिए है, न कि मस्जिद की नियत से। और यह कि यह विद्वानों की मंज़ूरी के साथ है, न कि केवल सुल्तानों का कार्य। और यह कि कैसे एक महान इमाम ने इसकी अनुमति का रोशन फतवा दिया—नहीं, केवल फतवा ही नहीं बल्कि विशेष रूप से इस विषय पर एक स्वतंत्र शोधपत्र (रिसाला) लिखा, अल्हम्दुलिल्लाह। मदीना तैयबा के विद्वान, महान इमाम सैय्यद अबुल हसन अली नूरुद्दीन बिन अब्दुल्लाह सम्हूदी मदनी (अल्लाह उनके राज़ को पवित्र करे), जो महान इमाम जलालुद्दीन सुयूती के समकालीन थे (अल्लाह उन दोनों पर दया करे—इन दोनों महानुभावों का निधन 911 हिजरी में हुआ), ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'खुलासतुल वफ़ा बि-अख़बार दारुल मुस्तफ़ा' (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम), जो 893 हिजरी में लिखी गई थी, के चौथे अध्याय के सोलह खंडों में से खंड नंबर 11 में रौज़ा-ए-अकदस की सजावट, भव्यता, कांच के उपकरणों और रोशनी के सामान का विस्तार से विवरण दिया है। और खंड नंबर 14 में पवित्र मस्जिद के स्तंभों, दीपकों आदि के बारे में अलग से लिखा है। मस्जिद के इस खंड में उन्होंने फ़रमाया:

अरबी मूल	हिंदी अनुवाद
मस्जिद के आँगन में चार मशालें हैं जो प्रसिद्ध यात्रा की रातों में जलाई जाती हैं। मुझे नहीं पता कि सबसे पहले उन्हें किसने शुरू किया। मस्जिद में लैंप के लिए बहुत सारी ज़ंजीरें हैं जो आग लगने की घटना के बाद बनाई गई थीं। उनके लिए निर्धारित ईंधन (तेल) बढ़ता और घटता रहता है, जिसका कारण स्पष्ट है[1]।	मस्जिद-ए-करीम के आँगन में चार मशालें हैं जो ज़ियारत (यात्रा) की मशहूर रातों में रोशन की जाती हैं और मुझे मालूम न हुआ कि सबसे पहले ये मशालें किसने रखीं, और मस्जिद में कंदीलों (लैंपों) की बहुत सी ज़ंजीरें हैं जो आग लगने के बाद बनीं और उनकी रोशनी का राशन घटता-बढ़ता रहता है जिसका सबब (कारण) ज़ाहिर है।

[1] वफ़ा अल-वफ़ा, खंड 31, दार इह्या अल-तुरास अल-अरबी, बेरूत, 2/681।

(۲۷) آگے ترقی کرکے تعامل حرمین شریفین کو بالکل ساقط و نامعتبر کردیا۔ قرونِ ثلاثہ کا استثناء بھی اڑ گیا، اور دلیل یہ کہ حجت صرف قرون و حدیث و اجماع و قیاسِ مجتہدین ہیں، ابھی کہا تھا کہ "چراغاں کا جواز اگر آج بھی کسی عالم مستند کی کتاب سے نکل آئے تو مجھ کو کدنہ ہوگی۔" اور ممانعت کے لیے شاہ رفیع الدین صاحب کے فتوے اور قاضی صاحب پانی پتی کی مالا بد وارشاد الطالبین سے استناد کیا۔ یہ لوگ اور ان کا کلام بھی قرآن ہے، نہ حدیث، نہ اجماع، نہ قیاسِ مجتہدین۔ پھر یہ پانچویں حجت کہاں سے نکل آئی!

(۲۸) ابھی جواہر الفتاوٰی و فتاوٰی عالمگیریہ سے گزرا کہ دینداروں کے افعال سند ہوتے ہیں، یہ چھٹی حجت ہوئی۔

(۲۹) اب یہ بفضل اللہ عزوجل ہم وہ عباراتِ جانفزا ذکر کریں جن سے یہ ثابت ہو کہ روضہ انور میں کیسی روشنی ہوتی ہے اور کتنے برسوں سے رائج ہے۔ جب سلطنتِ عثمانیہ کی بنیاد بھی نہ پڑی تھی، اور یہ کہ وہ خاص روضہ اطہر ہی کے واسطے ہے نہ کہ بہ نیت مسجد، اور یہ کہ وہ بمنظوری علماءِ کرام ہے نہ کہ صرف فعلِ سلاطین۔ اور یہ کہ کیسے امام جلیل نے اس کے جواز کا روشن فتوٰی دیا، نہ فتوٰی بلکہ خاص اس باب میں مستقل رسالہ تصنیف فرمایا، والحمدللہ۔ عالم مدینہ طیبہ امام اجل سید ابوالحسن علی نور الدین بن عبداللہ سمہودی مدنی قدس سرہ معاصر امام اجل جلال الملۃ والدین سیوطی رحمہما اللہ تعالٰی نے (کہ دونوں حضرات کی وفات شریف ۹۱۱ھ میں ہوئی) کتاب مستطاب خلاصۃ الوفاء باخبار دار المصطفٰی صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم تصنیف ۸۹۳ ہجری کے باب رابع کی شانزدہ گانہ فصلوں میں تفصیل نمبر ۱۱ روضہ اقدس کے تزرک و

احتشام و شیشہ آلات و سامانِ روشنی کے بیان میں وضع فرمائی، اور فصل نمبر ۱۴ مسجد مقدس کے ستونوں، چراغوں وغیرہ کے بیان میں جدا لکھی، اس فصل مسجد میں فرمایا:

عربی عبارت	اردو ترجمہ
بصحن مسجد اربع مشاعل تشعل فی لیالی الزیارات المشهورة وما علمت اول من احدثها وبالمسجد سلاسل كثيرة للقناديل علمت بعد الحريق والمرتب للوقود منها يزيد وينقص لما لا يخفى[1]۔	مسجد کریم کے صحن میں چار مشعلیں ہیں کہ زیارت کی مشہور راتوں میں روشن کی جاتی ہیں اور مجھے معلوم نہ ہوا کہ اول یہ مشعلیں کس نے رکھیں، اور مسجد میں قندیلوں کی بہت سی زنجیریں ہیں کہ آتشزدگی کے بعد بنیں اور ان کی روشنی کا راتب گھٹتا بڑھتا ہے جس کا سبب ظاہر ہے۔

1 وفاء الوفاء فصل ۳۱ دار احیاء التراث العربی بیروت ۲/ ۶۸۱

Fatawa Rizvia, Volume 9

And in this chapter on the Radiant Garden, he said:

[Table] Left Column (Arabic Text): As for the hangings of the Noble Chamber that are suspended around it, such as gold and silver lamps and the like, I have not come across the beginning of their occurrence except that Ibn al-Najjar said in his words: "In the ceiling of the mosque between the Qibla and the Chamber, above the heads of the visitors when they stand, there are more than forty lamps suspended, large and small, made of engraved and plain silver. Among them are two made of crystal and one of gold, and in them is a silver moon dipped in gold. These are sent from various countries by kings and lords of grandeur." (End). The practice of those mentioned continues in this regard; these lamps have never ceased to increase. Among the most beautiful of the hangings of the Chamber I have seen is a large steel lamp, exquisitely made, perforated and inlaid with gold, which shines when lit. On it is written that Al-Nasir Muhammad ibn Qalawun hung it with his own hand there. — (End, excerpted)

Right Column (Urdu Translation): The gist is that the lighting equipment of the Radiant Garden—gold and silver lamps, and similar valuable items suspended around the Pure Chamber—I do not know when they were first started. However, Imam Hafiz al-Hadith Muhammad ibn Muhammad ibn al-Najjar (d. 642 AH), in his book 'al-Durr al-Thamina fi Akhbar al-Madina', said that in the section of the ceiling of the Noble Mosque between the Qibla wall and the Sacred Chamber, when visitors stand in the Noble Presence of the Master of the Worlds (peace and blessings of Allah be upon him), there are more than forty lamps hanging over their heads. There are large and small ones, made of engraved and plain silver; among them are two made of crystal, one of gold, and a silver moon plated with gold. These are presented by sultans and amirs from various cities. (End). This custom has continued consistently; these lamps have always increased in number. Among all the hanging lights of the Pure Chamber, the most beautiful one I saw was a large steel lamp, which is very beautifully crafted. Its belly and edges are plated with gold, such that it starts to shine when it is lit. It is written on it that Nasir al-Din Mahmud bin Qalawun hung it here with his own hand. — (End, excerpted) [End Table]

Here you have learned that the lighting is specifically for the Radiant Garden, and how abundant and magnificent it is, and that it has existed for hundreds of years,

and that it predates even the Ottoman Empire. Now, listen to the mention of the assembly of noble scholars.

1. Wafa al-Wafa, Chapter 25, Dar Ihya al-Turath al-Arabi, Beirut 2/584 to 589 Page 511 of 948

फ़तावा रिज़विया, जिल्द 9

और इस अध्याय में रौज़ा-ए-अनवर के बारे में फ़रमाया:

[सारणी] बायां स्तंभ (अरबी पाठ): जहाँ तक पाक हुजरे के लटकन का सवाल है जो उसके चारों ओर लटकाए गए हैं, जैसे सोने और चाँदी के चिराग और इसी तरह के अन्य, मुझे उनकी शुरुआत के बारे में जानकारी नहीं मिली, सिवाय इसके कि इब्न अल-नज्जार ने अपने शब्दों में कहा: "क़िबला और हुजरे के बीच मस्जिद की छत में, ज़ायरीन के सिर के ऊपर जब वे खड़े होते हैं, चालीस से अधिक छोटे-बड़े चिराग लटके हुए हैं जो नक्काशीदार और सादी चाँदी के बने हैं। उनमें दो बिल्लौर (क्रिस्टल) के और एक सोने का है, और उनमें चाँदी का एक चाँद है जो सोने में डूबा हुआ है। ये विभिन्न देशों से राजाओं और प्रतिष्ठित लोगों द्वारा भेजे जाते हैं।" (समाप्त)। उन लोगों का कार्य जारी है; ये चिराग हमेशा बढ़ते रहे हैं। पाक हुजरे के लटकन में सबसे सुंदर जो मैंने देखा, वह फ़ौलाद का एक बड़ा चिराग है, जो बहुत खूबसूरती से बना है, जिसमें छेद हैं और सोने से जड़ा हुआ है, जो जलाए जाने पर चमकता है। उस पर लिखा है कि अल-नासिर मुहम्मद बिन क़लाऊन ने इसे वहाँ अपने हाथों से लटकाया था। — (समाप्त, संकलित)

दायां स्तंभ (उर्दू अनुवाद): सारांश यह है कि रौज़ा-ए-अनवर के रोशनी का सामान, सोने और चाँदी के चिराग, और इसी तरह की कीमती चीज़ें जो पाक रौज़े के चारों ओर लटकायी जाती हैं, मुझे मालूम नहीं हुआ कि उनकी शुरुआत कब से हुई। हाँ, इमाम हाफ़िज़ अल-हदीस मुहम्मद बिन मुहम्मद बिन अल-नज्जार (मृत्यु 642 हिजरी) ने अपनी किताब 'अल-दुर्र अल-समीना फ़ी अख़बार अल-मदीना' में फ़रमाया कि मस्जिद-ए-करीम की छत के उस हिस्से में जो क़िबला की दीवार से मुक़द्दस हुजरे तक है, जब ज़ायरीन हुज़ूर सय्यद-ए-आलम (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) की बारगाह में खड़े होते हैं, तो उनके सिरों पर चालीस से ज़्यादा चिराग लटके हुए हैं। वे बड़े और छोटे, नक्काशीदार और सादी चाँदी के हैं; उनमें दो बिल्लौर के हैं, एक सोने का है और एक चाँदी का चाँद है जो सोने में मढ़ाया हुआ है। ये शहरों-शहरों से सुल्तानों और अमीरों द्वारा पेश किए जाते हैं। (समाप्त)। और यह दस्तूर बराबर चला आ रहा है, हमेशा इन चिरागों में बढ़ोतरी होती रही है। पाक रौज़े की तमाम लटकी हुई रोशनियों में सबसे ज़्यादा खूबसूरत जो मैंने देखी, वह फ़ौलाद की एक बड़ी कंदील (चिराग) है जो अत्यंत सुंदर बनी हुई है। इसके पेट और किनारों पर सोना चढ़ा हुआ है जिससे इसमें रोशनी करने पर यह दमकने लगता है। इस पर लिखा हुआ है कि नासिर अल-दीन महमूद बिन क़लाऊन ने इसे यहाँ अपने हाथ से लटकाया था। — (समाप्त, संकलित) [सारणी का अंत]

यहाँ आपको यह मालूम हुआ कि रोशनी विशेष रूप से रौज़ा-ए-मुनव्वरा के लिए है और यह कि कितनी प्रचुर और शानदार है, और यह कि सैकड़ों सालों से है और यह उस्मानी सल्तनत से भी पहले से है। अब उलमा-ए-किराम की मजलिस का ज़िक्र सुनिए।

1. वफ़ा अल-वफ़ा, अध्याय 25, दार इह्या अल-तुरास अल-अरबी, बेरुत 2/584 से 589 पृष्ठ 948 का 511

فتاوی رضویہ جلد نہم

اور اس فصل روضہ انور میں فرمایا:

| اما معالیق الحجرۃ الشریفۃ التی تعلق حولھا من قنادیل الذھب والفضۃ ونحوھا فلم اقف علی ابتداء حدوثھا الا ان ابن النجار قال مالفظہ فی سقف المسجد الذی بین القبلۃ والحجرۃ علی رأس الزوار اذ وقفوا معلق نیف واربعون قندیلا کبارا و صغارا من الفضۃ المنقوشۃ والساذجۃ وفیھا اثنان من بلور وواحد من ذھب وفیھما قمر من فضۃ مغموس فی الذھب، وھذہ تنفذ من البلدان من الملوک وارباب الحشمۃ انتھی، وعمل من ذکر مستمر بذلک لم تزل ھذہ القنادیل فی زیادۃ ومن احسن مارأیت من معالیق الحجرۃ قندیل من فولاد کبیر احسن التکوین مخرما مکفتا بذھب یضیئ اذا اسرج فیہ وعلیہ مکتوب ان الناصر محمد بن قلاون علقہ بیدہ ھناك - انتھی ملتقطاً | حاصل یہ ہے کہ روضہ انور کا سامان روشنی، سونے کی قندیلیں اور چاندی کی، اور ان کے مثل اور قیمتی چیزوں کی کہ روضہ مطہر کے گرد آویزاں کی جاتی ہیں، مجھے معلوم نہ ہوا کہ ان کی ابتداء کب سے ہے، ہاں امام حافظ الحدیث محمد بن محمد بن النجار متوفی ۶۴۲ھ نے اپنی کتاب الدر الثمینہ فی اخبار المدینہ میں فرمایا کہ سقف مسجد کریم کے اتنے ٹکڑے میں کہ دیوار قبلہ سے حجرہ مقدسہ تک ہے۔ جب زائرین مواجہہ اقدس حضور سید عالم صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم میں کھڑے ہوں، ان کے سروں پر چالیس سے زائد قندیلیں آویزاں ہیں۔ بڑی بڑی اور چھوٹی چاندی کی نقشی اور ساری اور ان میں دو بلور کی ہیں ، ایک سونے کی اور ایک چاندی کا چاند ہے سونے میں مغرق، اور یہ شہروں شہروں سے سلاطین وامراء حاضر کیا کرتے ہیں انتہی۔ اور یہ دستور برابر چلا آتا ہے ہمیشہ ان قندیلوں میں ترقی ہوتی رہی، اور روضہ مطہرہ کی تمام آویزاں روشنیوں میں سب سے زیادہ خوبصورت جو میں نے دیکھی وہ فولادی بڑی قندیل ہے کہ نہایت خوبصورت بنی ہوئی ہے اس کے پیٹ اور

کناروں پر سونا چڑھا ہوا ہے کہ اس میں روشنی کرنے سے دمکنے لگتا ہے اس پر لکھا ہوا ہے کہ ناصر الدین محمود بن قلاون نے اسے یہاں اپنے ہاتھ سے لٹکایا، انتہی ملتقطاً |

یہاں تو آپ کو یہ معلوم ہوا کہ روشنی خاص روضہ منورہ کے لیے ہے اور یہ کہ کتنی کثیر و شاندار ہے اور یہ کہ صدہا سال سے ہے اور یہ کہ عثمانی سلطنت سے بھی پہلے سے ہے۔ اب مجمع علمائے کرام کا ذکر سنئے

1 وفاء الوفاء فصل ۲۵ داراحیاء التراث العربی بیروت ۲/ ۵۸۴ تا ۵۸۹ Page 511 of 948

Fatawa-e-Razvia (Volume 9)

Allama Qutb-ud-Din Makki Hanafi, a contemporary of Imam Ibn Hajar Makki (may Allah have mercy on them), mentions this event in his book 'Al-A'lam bi-A'lam Bait-ul-Haram', page 30. He states that when Sultan Murad Khan, son of Sultan Saleem Khan, son of Sulaiman Khan (may the Merciful have mercy on them), sent three golden chandeliers encrusted with precious jewels through Muhammad Chadish Khan from the Sublime Porte in 984 AH, it was intended for them to be hung inside the Holy Kaaba and one in the sacred chamber of the pure shrine, opposite the radiant face (of the Prophet), peace and blessings of Allah be upon him and his family.

When they arrived in Makkah al-Mukarramah, the Sharif of Makkah, Sayyidi Hasan bin Abi Nuhay Hasani, the guardian of the sacred sanctuary, the Qadi of Madinah al-Munawwarah, Shaikh-ul-Islam Syed-ul-Ulama Sayyidi Husain Husayni Makki, and the Qadi of Makkah al-Mukarramah, Maulana Muslih-ud-Din Lutfi Baig Zada, along with all the dignitaries and elders of the sacred sanctuary, were present. He states: "And all the scholars, jurists, and masters," meaning all the scholars, jurists, and leaders of Makkah al-Mukarramah gathered around the Holy Kaaba. Then, robes of honor from the sublime threshold were presented to the Sharif and other dignitaries. The door of the Holy Kaaba was opened, and the Sharif donned the robe and performed the circumambulation (Tawaf) of the Kaaba. While he was performing Tawaf, the chief of the Muezzins was loudly praying for the sultanate and the Sharif atop the Dome of Zamzam, and all those present were engaged in prayers and saying 'Amin'. After completing the Tawaf and the two units of prayer, the Sharif entered the Holy Kaaba and personally hung the chandeliers with his blessed hands. All present—scholars, jurists, leaders, and dignitaries—recited Fateha and offered prayers, and the gathering concluded. The esteemed Allama states:

[Arabic]: "It was a noble, witnessed day and a blessed, auspicious, and fortunate time." | And that day was great and marked by the attendance of all the dignitaries of Makkah, and that time was blessed, happy, and auspicious.

Then Muhammad Chadish took the remaining chandelier and presented himself at the supreme court of Madinah al-Tayyibah. The Allama states:

[Arabic]: "The elders, dignitaries, scholars, and righteous people of the noble city gathered for him." | All the elders, leaders, scholars, and righteous men of Madinah al-Tayyibah gathered around him.

[Arabic]: "A noble gathering was held in the Prophetic noble sanctuary, and the noble Prophetic chamber—peace and best blessings be upon its inhabitant—was opened, and that golden chandelier with jewels was hung." | A grand gathering was organized in the noble sanctuary. The pure chamber, the illuminated shrine of the Master of the Righteous (Peace and blessings of Allah be upon him), was opened, and that golden chandelier with jewels was hung.

1. Al-A'lam bi-A'lam Balad-illah-il-Haram
2. Al-A'lam bi-A'lam Balad-illah-il-Haram
3. Al-A'lam bi-A'lam Balad-illah-il-Haram
4. Al-A'lam bi-A'lam Balad-illah-il-Haram

फ़तावा-ए-रज़विया (खंड नौ)

अल्लामा क़ुत्ब-उद-दीन मक्की हनफ़ी, इमाम इब्न हजर मक्की (अल्लाह उन दोनों पर रहमत करे) के समकालीन, अपनी किताब 'अल-आलाम बि-आलाम बैत-उल-हराम' के पृष्ठ 30 पर इस घटना का उल्लेख करते हैं। वह बताते हैं कि जब सुल्तान मुराद खान पुत्र सुल्तान सलीम खान पुत्र सुलेमान खान (रहमान उन पर रहमत करे) ने 984 हिजरी में उच्च द्वार से मोहम्मद चादिश खान के माध्यम से बहुमूल्य रत्नों से जड़े तीन सोने के झूमर (कंदीलें) भेजे, ताकि उन्हें पवित्र काबा के भीतर लटकाया जाए, और एक पवित्र मजार के कक्ष में नूरानी चेहरे के सामने (नबी सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम के)।

जब वे मक्का मुकर्रमा पहुंचे, तो मक्का के शरीफ सैय्यदी हसन बिन अबी नुही हसनी और पवित्र हरम के संरक्षक, मदीना मुनव्वरा के काजी शैखुल इस्लाम सैयद-उल-उलमा सैय्यदी हुसैन हुसैनी मक्की, और मक्का मुकर्रमा के काजी मौलाना मुसलेह-उद-दीन लुत्फी बेग ज़ादा, हरम के सभी गणमान्य व्यक्तियों और बुजुर्गों के साथ उपस्थित हुए। वे कहते हैं: "व काफ़्फ़त-उल-उलमा वल-फ़ुक़हा वल-मवाली" यानी मक्का मुकर्रमा के सभी विद्वान, न्यायविद और सरदार पवित्र काबा के चारों ओर एकत्र हुए। फिर, उच्च दरबार की ओर से शरीफ और अन्य दिग्गजों को सम्मान के वस्त्र (खलअत) पहनाए गए। पवित्र काबा का दरवाजा खोला गया, सैय्यद शरीफ ने खलअत पहना और काबा का तवाफ (परिक्रमा) किया। जब वे तवाफ कर रहे थे, मुअज्जिनों के प्रमुख ज़मज़म के गुंबद पर सल्तनत और शरीफ के लिए जोर-जोर से दुआ कर रहे थे, और सभी उपस्थित लोग दुआ और आमीन में व्यस्त थे। तवाफ और दो रकात नमाज से फारिग होने के बाद, शरीफ पवित्र काबा के भीतर गए और अपने मुबारक हाथों से झूमर लटकाए। सभी उपस्थित विद्वानों, न्यायविदों, अमीरों और दिग्गजों ने फातिहा पढ़ा और दुआएं कीं, और सभा समाप्त हुई। सम्मानित अल्लामा कहते हैं:

[अरबी]: "वह एक प्रतिष्ठित, देखा गया दिन और एक धन्य, शुभ और सौभाग्यशाली समय था।" | और वह दिन महान था और मक्का के सभी गणमान्य व्यक्तियों की उपस्थिति का था, और वह समय धन्य और अत्यंत सौभाग्यशाली था।

फिर मोहम्मद चादिश बाकी झूमर लेकर मदीना तैयबा के सर्वोच्च दरबार में हाजिर हुए। अल्लामा कहते हैं:

[अरबी]: "मदीना शरीफ के बुजुर्ग, गणमान्य व्यक्ति, विद्वान और नेक लोग उनके पास एकत्र हुए।" | उनके पास मदीना तैयबा के सभी बुजुर्ग, नेता, विद्वान और नेक लोग जमा हुए।

[अरबी]: "मस्जिद-ए-नबवी के पवित्र हरम में एक शानदार महफ़िल आयोजित की गई, और पवित्र नबवी कक्ष—उसके निवासी पर श्रेष्ठतम प्रार्थनाएँ और आशीर्वाद हों—खोला गया, और वह जवाहरात वाला सोने का झूमर लगाया गया।" | हरम-ए-करीम में एक बड़ी महफ़िल आयोजित की गई। हजरह ताहिरा, सैय्यद-उल-अबरार (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) का मजार-ए-पुरनूर खोला गया, और वह सोने का जवाहरात जड़ित झूमर लगाया गया।

1. अल-आलाम बि-आलाम बलद-उल्लाह-इल-हराम
2. अल-आलाम बि-आलाम बलद-उल्लाह-इल-हराम
3. अल-आलाम बि-आलाम बलद-उल्लाह-इल-हराम
4. अल-आलाम बि-आलाम बलद-उल्लाह-इल-हराम

علامہ قطب الدین مکی حنفی معاصر امام ابن حجر مکی رحمہما اللہ تعالیٰ کتاب الاعلام با علام بیت الحرام ص ۳۰ میں اس واقعہ کا ذکر فرماتے ہیں، جب سلطان مراد خان بن سلطان سلیم خان بن سلیمان خان رحمہم الرحمن نے ۹۸۴ھ میں باب عالی سے سونے کی تین قندیلیں بیش بہا جواہرات سے مرصع محمد چادیش خان کے ہاتھ حاضر کی ہیں کہ وہ کعبہ معظمہ کے اندر آویزاں کی جائیں، اور ایک حجرہ مزار اطہر میں چہرہ انور کے مقابل صلی اللہ تعالیٰ علیہ وآلہ وسلم۔ جب مکہ معظمہ میں آئے حضرت شریف مکہ سیدی حسن بن ابی نہی حسنی اور ناصر حرم محترم قاضی مدینہ منورہ شیخ الاسلام سید العلماء سیدی حسین حسینی مکی اور قاضی مکہ معظمہ مولانا مصلح الدین لطفی بیگ زادہ مع جملہ اعیان و اکابر حرم محترم حاضر ہوئے، فرماتے ہیں: وکافة العلماء والفقهاء والموالی یعنی مکہ معظمہ کے تمام علماء و فقہاء وسردار گرد کعبہ معظمہ جمع ہوئے، پھر آستانہ عالیہ کی طرف سے حضرت شریف ودیگر عظماء کو خلعت پہنائے گئے، کعبہ معظمہ کا دروازہ کھولا گیا، سید نا الشریف نے خلعت پہنا اور طواف کعبہ معظمہ کیا، ادھر وہ طواف میں ہیں، اُدھر رئیس مؤذنان قبہ زمزم پر سلطنت و شریف کے لیے بآواز بلند دعا کر رہا ہے اور تمام حاضرین دعا وآمین میں مشغول ہیں، بعد فراغ طواف ور کعتین طواف حضرت شریف کعبہ معظمہ کے اندر حاضر ہوئے اور اپنے دست مبارک سے قندیلیں آویزاں کیں، سب حاضرین جملہ علماء وفقہاء وامراء و عظماء نے فاتحہ پڑھی اور دعائیں کیں، اور جلسہ ختم ہوا، علامہ ممدوح فرماتے ہیں: وکان یوماً شریفاً مشهوداً ووقتاً مبارکاً متیمناً مسعوداً - 2 | اور وہ دن بزرگ اور تمام اعیانِ مکہ کی حاضری کا تھا اور وہ وقت مبارک اور فرخندہ باسعادت تھا۔ پھر محمد چادیش باقی قندیل لے کر سرکار اعظم مدینہ طیبہ حاضر ہوئے ، علامہ فرماتے ہیں: واجتمعت له اکابر المدینة الشریفة

واعیانها وعلماؤها وصلحاؤها۔ 3 | ان کے پاس مدینہ طیبہ کے اکابر وعمائد و علماء و صلحاء سب جمع ہوئے ۔ وعمل محفل شریف فی الحرم الشریف النبوی 4 وفتحت الحجرة الشریفة النبویة علی ساکنها افضل الصلوة و علق ذلک | حرم کریم میں محفلِ عظیم منعقد کی گئی۔ حجرہ طاہرہ مزارِ پر انوار حضرت سید الابرار صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کھولا گیا اور وہ سونے کی قندیل جواہر لگایا اور وہ سونے کی قندیل جواہر

1 الاعلام با علام بلد الله الحرام 2 الاعلام با علام بلد الله الحرام 3 الاعلام با علام بلد الله الحرام 4 الاعلام با علام بلد الله الحرام

Fatawa-e-Razviya Volume Nine

[Arabic]: Qandīl tujāha wajh al-Nabī ṣallallāhu ta‘ālā ‘alayhi wa-sallam. (1) | [Urdu Translation]: A priceless jeweled lamp was hung in front of the blessed face of the pure master, peace and blessings of Allah be upon him.

[Arabic]: Wa quri’at al-fawātiḥ wa ḥaṣala al-du‘ā’. (2) - Those present recited Surah al-Fatiha and made supplication, and the gathering concluded auspiciously. The mentioned scholar concludes this narration with these words:

[Arabic]: Wa huwa awwalu man ‘allaqa qanādīl al-dhahab fī al-ḥaramayn al-sharīfayn min salāṭīn Āl ‘Uthmān khallada Allāh Ta‘ālā salṭanatahum wa qad sabaqa bi-hādhihi al-manqabat al-sharīfat ābā’ahu al-salāṭīn al-‘iẓām. (3) | [Urdu Translation]: That is, among the Ottoman sultans—may Allah Almighty preserve their empire forever—Sultan Murad Khan was the first to initiate this by hanging golden lamps in the two holy sanctuaries; he surpassed his ancestors, the great sultans, in this magnificent meritorious act.

From this conclusion, two benefits are apparent. One is that even before the Ottoman sultans, other sultans also offered golden lamps; among the Ottoman sultans, Sultan Muhammad Murad Khan attained this honor. Secondly, the mentioned scholar expresses approval of it and describes it as a noble meritorious act. Now, refer back to the previous passages of Khulāṣat al-Wafā’ and listen to what the mentioned Imam, my master Nur al-Din al-Samhudi, says regarding the ruling during his description of this soul-refreshing light; the passage is as follows:

[Arabic]: Wa qad allafa al-Subkī ta’līfan sammāhu Tanzīl al-Sakīnah ‘alá Qanādīl al-Madīnah wa dhahaba fīhi ilá jawāzihā wa ṣiḥḥati waqfihā wa ‘adam jawāzi ṣarfi shay’in minhā li-‘imārat al-masjid. (4) | [Urdu Translation]: Indeed, the great Imam Taqi al-Millah wa al-Din Ali bin Abdul Kafi (d. 756 AH), may Allah Almighty have mercy on him, authored a specific book on this subject titled "Tanzīl al-Sakīnah ‘alá Qandīl al-Madīnah". In this book, he stated that their endowment (waqf) is valid and that it is not permissible to use any part of them for the construction of the mosque building.

This great Imam is the one about whom Imam Ibn Hajar says: [Arabic]: Al-Imām al-mujma‘ ‘alá jalālatihi wa ijtihādihi (5) - This is the Imam upon whose majesty of rank and capability of ijtihad there is consensus.

1. Al-I'lam bi-A'lam Balad Allah al-Haram
2. Al-I'lam bi-A'lam Balad Allah al-Haram

3. Al-I'lam bi-A'lam Balad Allah al-Haram
4. Wafa al-Wafa, Chapter 25, Dar Ihya al-Turath al-Arabi, Beirut, 2/591-95
5. Imam Ibn Hajar

फ़तावा-ए-रज़विया जिल्द नहम (नौ)

[अरबी]: क़न्दील तुजाहा वज्ह अन-नबी सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम। (1) | [उर्दू अनुवाद]: बेशकीमती रत्नों से जड़ा एक चिराग शुद्ध आका सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम के पवित्र चेहरे के सामने लटकाया गया।

[अरबी]: व क़ुरिअत अल-फ़वातिह व हसल अद-दुआ। (2) - उपस्थित लोगों ने फ़ातिहा पढ़ी और दुआ की, और सभा कुशलतापूर्वक संपन्न हुई। उक्त विद्वान इस वृत्तांत का समापन इन शब्दों में करते हैं:

[अरबी]: व हुवा अव्वलु मन अल्लाक़ा क़नादील अज़-ज़हब फ़ील हरमैन अश्-शरीफ़ैन मिन सलातीन आल-ए-उस्मान खल्लदल्लाहु तआला सल्तनतहुम व क़द सबक़ा बि-हाज़िहिल मनक़बत अश्-शरीफ़ा आबाअहुल सलातीन अल-इज़ाम। (3) | [उर्दू अनुवाद]: यानी आल-ए-उस्मान के सुल्तानों में - अल्लाह अज़्ज़वजल उनकी सल्तनत को हमेशा रखे - सुल्तान मुराद खान ने इसकी पहल की कि हरमैन मोहतरमैन में सोने के चिराग लटकाए; वह इस महान गुण में अपने पूर्वज महान सुल्तानों से आगे निकल गए।

इस समापन से दो लाभ प्रकट हुए: एक यह कि उस्मानी सुल्तानों से पहले भी सुल्तानों ने सोने के चिराग भेंट किए; उस्मानी सुल्तानों में सुल्तान मुहम्मद मुराद खान ने यह सौभाग्य प्राप्त किया। दूसरा यह कि उक्त विद्वान इसकी सराहना करते हैं और इसे एक नेक गुण (मनक़बत शरीफ़ा) बताते हैं। अब फिर 'ख़ुलासतुल वफ़ा' के पिछले अंशों की ओर लौटें और सुनें कि उक्त इमाम मेरे आका नूरुद्दीन समहूदी इस रूहानी रोशनी के वर्णन के दौरान क्या हुक्म फरमाते हैं, वह इबारत (अंश) यह है:

[अरबी]: व क़द अल्लफ़ अस-सुबकी तालीफ़न सम्माहु तन्ज़ील अस-सकीना अला क़नादील अल-मदीना व ज़हबा फ़ीहि इला जवाज़िहा व सिह्हति वक़्फ़िहा व अदमि जवाज़ि सर्फ़ि शैइम मिन्हा लि-इमारत अल-मस्जिद। (4) | [उर्दू अनुवाद]: बेशक इमाम-ए-अजल तक़ी अल-मिल्लत वद-दीन अली बिन अब्दुल काफ़ी (निधन 756 हिजरी) रहमतुल्लाह तआला ने विशेष रूप से इस विषय पर एक पुस्तक लिखी जिसका नाम "तन्ज़ील अस-सकीना अला क़न्दील अल-मदीना" रखा और इस पुस्तक में उनका वक्फ सही होना बयान फरमाया और यह कि उन्हें मस्जिद की इमारत में खर्च करना जायज़ नहीं।

ये इमाम-ए-अजल वे हैं जिनके बारे में इमाम इब्न हजर फरमाते हैं: [अरबी]: अल-इमाम अल-मुजमा' अला जलालतिहि व इज़्तिहादिहि (5) - यह वह इमाम हैं जिनकी प्रतिष्ठा की महानता और इज़्तिहाद की क्षमता पर आम सहमति (इज्मा) है।

1. अल-इलाम बि-इलाम बलद अल्लाह अल-हराम
2. अल-इलाम बि-इलाम बलद अल्लाह अल-हराम
3. अल-इलाम बि-इलाम बलद अल्लाह अल-हराम
4. वफ़ा उल-वफ़ा, अध्याय 25, दार इहया अत-तुरास अल-अरबी, बेरुत, 2/ 591-95
5. इमाम इब्न हजर

पृष्ठ 513 का 948

فتاوی رضویہ جلد نہم

قندیل تجاہ وجھ النبی صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم - 1 | بے بہا سے مرصع روئے انور سید اطہر صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کے مواجہ اقدس میں آویزاں کی گئی۔

وقرئت الفواتح و حصل الدعاء 2- حاضرین نے فاتحہ پڑھی اور دعا کی، اور مجلس بخیر وخوبی ختم ہوئی۔ علامہ ممدوح اس حکایت کا خاتمہ ان لفظوں میں فرماتے ہیں:

و ھو اول من علق قنادیل الذھب فی الحرمین الشریفین من سلاطین ال عثمان خلد اللہ تعالیٰ سلطنتھم وقد سبق بھذہ المنقبۃ الشریفۃ ابائہ السلاطین العظام 3- | یعنی سلاطین آلِ عثمان میں کہ اللہ عزوجل ان کی سلطنت کو ہمیشہ رکھے، سلطان مراد خاں نے اس کی پہل کی کہ حرمین محترمین میں سونے کی قندیلیں آویزاں کیں، وہ اس عظیم منقبت میں اپنے باپ دادا سلاطین پر سبقت لے گئے۔

اس خاتمہ سے دو فائدے ظاہر ہوئے، ایک یہ کہ سلاطین عثمانیہ سے پہلے سلاطین بھی سونے کی قندیلیں حاضر کرتے، سلاطین عثمانیہ سے پہلے یہ سعادت سلطان محمد مراد خاں نے پائی۔
دوسرے یہ کہ علامہ ممدوح اس کا استحسان فرماتے، اور اسے منقبت شریفہ بتاتے ہیں۔ اب پھر عبارات سابقہ خلاصۃ الوفاء کی طرف رجوع کیجئے اور وہ سنیئے جو امام ممدوح سیدی نور الدین سمہودی اس عبارت کے اثناء میں اس جانفزا روشنی کے بیان میں حکم فرماتے ہیں وہ عبارت یہ ہے:

وقد الف السبکی تالیفاً سماہ تنزیل السکینۃ علی قنادیل المدینۃ وذھب فیہ الی جوازھا وصحۃ وقفھا وعدم جواز صرف شیئ منھا لعمارۃ المسجد 4- | بیشک امام اجل تقی الملتہ والدین علی بن عبدالکافی متوفی ۷۵۶ھ رحمہ اللہ تعالیٰ نے خاص اس باب میں ایک کتاب تالیف فرمائی جس کا نام "تنزیل

السکینۃ علی قندیل المدینۃ" رکھا اور اس کتاب میں ان کا وقف صحیح ہونا بیان فرمایا اور یہ کہ ان کو مسجد کی عمارت میں صرف کرنا جائز نہیں۔

یہ امام اجل وہ ہیں جن کی نسبت امام ابن حجر فرماتے ہیں: الامام المجمع علی جلالتہ و اجتہادہ 5 یہ وہ امام کہ ان کی جلالت شان و قابلیتِ اجتہاد پر اجماع ہے۔

1 الاعلام باعلام بلد اللہ الحرام 2 الاعلام باعلام بلد اللہ الحرام 3 الاعلام باعلام بلد اللہ الحرام 4 وفاء الوفاء فصل ۲۵ دار احیاء التراث العربی بیروت ۲/ ۵۹۱-۹۵ 5 امام ابن حجر

Fatawa-e-Razvia, Volume 9

Salah Safadi said:

People say that after al-Ghazali, no one like him has come, but in my view they do him an injustice, for to me he is like Sufyan al-Thawri. People say that after Imam Hujjat al-Islam, no one like Imam Taqi al-Din al-Subki has been born, and in my view they diminish his status; to me, he is a peer of Imam Sufyan al-Thawri. Those who were from the great elders of the Tabi'un do not only call this light permissible but say that the tranquility of Allah's mercy descends upon it. Perhaps now Zaid Sahib will abandon all his doubts and fulfill his oath. (30) Zaid has definitively attributed the aforementioned hadith as a saying of the Messenger of God (peace and blessings of Allah be upon him). This is extreme boldness and audacity. That hadith is not authentic. Its chain of narration relies on Abu Salih Bazam. The masters of the field have declared Bazam to be weak. In "Taqrib" of Imam Ibn Hajar al-Asqalani, it is stated: Bazam, with the letter 'Dhal' (ذ), and it is said the last letter is 'Nun' (ن) - Abu Salih, the freed slave of Umm Hani, is weak and a concealer of flaws in narrations (mudallis). Bazam is with 'Dhal Mujama' and it is said that at the end is 'Nun'—meaning Bazan—Abu Salih—the freed slave of Umm Hani is weak and a 'mudallis' (one who conceals defects in a narration). (T) (31) From this, it is evident that this hadith is not fit for use as evidence because a weak hadith is not an authority regarding legal rulings. Tirmidhi's grading as 'hasan' (good) is with respect to the chapter heading, as he included it in the chapter 'What has been narrated regarding the dislike of taking a grave as a mosque,' and there are indeed multiple hadiths narrated about not building mosques on graves in Jami' al-Tirmidhi itself: 'And in this chapter, there are narrations from Abu Hurairah and Aisha (may Allah be pleased with them both).' Unlike the lamp, where the prohibition is based only on this weak hadith of Bazam. This part of it is not 'hasan'. Imam Tirmidhi himself says in his terminology: Whatever we mentioned in this book as a 'hadith hasan', we only intended the goodness of its chain according to us. Every hadith narrated that is not... In this book, whenever we have called a hadith 'hasan', it means that it is 'hasan' according to us; for a hadith which...

1. Salah Safadi
2. Taqrib al-Tahdhib, letter 'Ba al-Muwahhadah', Biography 632, Dar al-Kutub al-Ilmiyah, Beirut, 1/121

3. Jami' al-Tirmidhi, Chapters of Prayer, Chapter on the Dislike of Taking Graves etc., Amin Company, Kutub Khana Rashidiyah, Delhi, 1/43 Page 514 of 948

फ़तावा रज़विया, खंड 9

सलाह सफ़दी ने कहा:

अरबी: "लोग कहते हैं कि अल-ग़ज़ाली के बाद उनके जैसा कोई नहीं आया, और मेरे विचार में वे उनके साथ अन्याय करते हैं, क्योंकि वे मेरे निकट सुफ़यान अल-थौरी के समान हैं।" उर्दू अनुवाद: "लोग कहते हैं कि इमाम हुज्जतुल इस्लाम के बाद इमाम तक़ी उद्दीन सुबकी के समान कोई पैदा नहीं हुआ, और मेरे नज़दीक वे उनकी शान घटाते हैं, मेरे नज़दीक तो वे इमाम सुफ़यान थौरी के हमसर हैं।" जो अज़िल्लह अकाबिर ताबिईन में से थे, वे इस रोशनी को न केवल जायज़ बताते हैं बल्कि फ़रमाते हैं कि इस पर रहमत-ए-इलाही का सकीना उतरता है। शायद अब ज़ैद साहब अपने तमाम वसाविस से बाज़ आकर अपनी क़सम पूरी करेंगे। (30) ज़ैद ने उक्त हदीस को पक्के तौर पर अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) का इरशाद बताया। यह सख़्त बेबाकी और जुर्रत है। वह हदीस सही नहीं है। इसकी सनद का दारोमदार अबू सालेह बाज़ाम पर है। बाज़ाम को आइम्मा-ए-फ़न ने ज़ईफ़ बताया है। इमाम इब्न हजर असक़लानी की 'तक़रीब' में है: अरबी: "बाज़ाम (ز के साथ), और कहा जाता है कि अंत में नून (ن) है - अबू सालेह, उम्मे हानी के आज़ाद करदा गुलाम, ज़ईफ़ मुदल्लिस हैं।" उर्दू अनुवाद: "बाज़ाम ज़ाल मुअजमा से और कहा जाता है कि आख़िर में नून—यानी बाज़ान—अबू सालेह—उम्मे हानी का आज़ाद करदा गुलाम ज़ईफ़ तदलीस करने वाला है। (त)" (31) यहीं से ज़ाहिर हुआ कि यह हदीस क़ाबिल-ए-एहतिजाज नहीं कि हदीस-ए-ज़ईफ़ एहकाम के बारे में हुज्जत नहीं होती। तिरमिज़ी की 'तहसीन' (हसन कहना) बाब के तर्जुमा के ऐतबार से है क्योंकि उन्होंने इसे 'बाज़ मा जाअ फ़ी कराहीयति अन युत्तख़ज़ा अलल क़ब्रि मस्जिदन' में दर्ज किया है। और कब्रों पर मस्जिद न बनाने के बारे में बेशक कई हदीसें स्वयं जामे तिरमिज़ी में मौजूद हैं: 'और इस बाब में हज़रत अबू हुरैरा और हज़रत आइशा (रज़ियल्लाहु अन्हा) से भी रिवायत है।' इसके विपरीत चिराग़ के बारे में मनाही केवल बाज़ाम की इसी ज़ईफ़ हदीस में है। इसका यह टुकड़ा हसन नहीं है। स्वयं इमाम तिरमिज़ी अपनी इस्तिलाह में फ़रमाते हैं: अरबी: "हमने इस किताब में जिस हदीस को 'हसन' कहा है, उससे हमारा मतलब हमारे नज़दीक उसकी सनद का हसन होना है। हर हदीस जो रिवायत की गई..." उर्दू अनुवाद: "इस किताब में हमने जिसे हदीस-ए-हसन बताया उससे यही मुराद है कि वह हमारे नज़दीक हसन है जिस हदीस की"

1. सलाह सफ़दी

2. तक़रीब अत-तहज़ीब, हर्फ़ अल-बा अल-मुवहदा, जीवनी 632, दार अल-कुतुब अल-इल्मिया, बेरुत 1/121
3. जामे अत-तिरमिज़ी, अबवाब अस-सलात, बाब मा जाअ फ़ी कराहीयति अन युत्तख़ज़ा अलल क़ब्रि इलख़, अमीन कंपनी, कुतुब ख़ाना रशीदिया, दिल्ली 1/43 पृष्ठ 948 का 514

صلاح صفدی نے کہا: الناس یقولون ماجاء بعد الغزالی مثلہ وعندی انھم یظلمونہ وما ھو عندی الامثل سفین الثوری۔ لوگ کہتے ہیں امام حجتہ الاسلام کے بعد کوئی امام تقی الدین سبکی کے مثل پیدا نہ ہوا اور میرے نزدیک وہ ان کی شان گھٹاتے ہیں، میرے نزدیک تو وہ امام سفیان ثوری کے ہمسر ہیں۔ جو اجلہ اکابر تابعین سے تھے وہ اس روشنی کو فقط جائز ہی نہیں بتاتے بلکہ فرماتے ہیں کہ اس پر رحمتِ الہی کا سکینہ اترتا ہے۔ غالباً اب توزید صاحب اپنے تمام وساوس سے بازآ کر اپنی قسم پوری کریں گے۔ (۳۰) حدیث مذکور کو زید نے بالجزم رسول خدا کا ارشاد بتایا صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم۔ یہ سخت بیباکی وجرات ہے۔ وہ حدیث صحیح نہیں۔ اس کی سند کا مدار ابو صالح باذام پر ہے۔ باذام کو ائمہ فن نے ضعیف بتایا۔ تقریب امام ابن حجر عسقلانی میں ہے: باذام بالذال المعجمۃ ویقال اخرہ نون ابوصالح مولٰی ام ھانئ ضعیف مدلس۔ باذام ذال معجمہ سے اور کہا جاتا ہے کہ اخر میں نون— یعنی باذان— ابوصالح— اُم ہانی کا آزاد کردہ غلام ضعیف تدلیس کرنے والا ہے۔ (ت) (۳۱) یہیں سے ظاہر ہوا کہ یہ حدیث قابلِ احتجاج نہیں کہ حدیثِ ضعیف درباره احکام حجت نہیں ہوتی، تحسین ترمذی باعتبار ترجمہ باب سے کہ اسے باب ماجاء فی کراھیۃ ان یتخذ علی القبر مسجدا میں وارد کیا اور قبروں پر مسجد نہ بنانے میں بیشک احادیثِ متعدد وارد خود جامع ترمذی میں ہے: وفی الباب عن ابی ھریرۃ وعائشۃ رضی اللہ تعالٰی عنھما (اس باب میں حضرت ابوہریرہ و حضرت عائشہ صدیقہ رضی اللہ تعالٰی عنہما سے بھی روایت ہے۔ت) بخلاف چراغ کہ اس کی ممانعت میں یہی حدیثِ ضعیف باذام ہے۔ اس کا یہ ٹکڑا حسن نہیں۔ خود امام ترمذی اپنی اصطلاح میں فرماتے ہیں: ماذکرنا فی ھذا الکتاب حدیث حسن فانما اردنا حسن اسنادہ عندناکل حدیث یروی

لایکون اس کتاب میں ہم نے جسے حدیثِ حسن بتایا اس سے یہی مراد ہے کہ وہ ہمارے نزدیک حسن ہے جس حدیث کی

1 صلاح صفدی 2 تقریب التہذیب حرف الباء الموحدہ ترجمہ ۶۳۲ دار الکتب العلمیہ بیروت ۱/ ۱۲۱

3 جامع الترمذی ابواب الصلوۃ باب ماجاء فی کراھیتہ ان یتخذ علی القبر الخ امین کمپنی کتب خانہ رشیدیہ دہلی ۱/ ۴۳ Page 514 of 948

Fatawa Razawiyya Volume 9

[Box Start] Arabic: Fi isnadihi man yuttahamu bil-kadhib wa la yakunu al-hadithu shadhan wa yarwihi min ghairi wajhin nahwa dhalika fahuwa 'indana hadithun hasan - 1 Urdu: There should not be anyone accused of lying in the chain of narration (isnad), nor should the hadith be odd (shadh), and if it is narrated through multiple paths in a similar way, it is a "hasan" (fair) hadith according to us. (T) [Box End]

(32) There are three (3) answers to the hadith used by the prohibiters: The first is that the hadith is not authentic at its core, and the final humble answer was mentioned through the words of Imam Nablusi. The moderate answer is that the word "ala" (on/upon) is used in the hadith, from which the prohibition of placing lamps on graves arose. We also accept this. It is evident that the literal (real) meanings of "ala" are these, and deviating from reality without necessity is unacceptable; such deviation will be considered an interpretation (tawil). If it lacks a justifiable reason, it will remain rejected. Interpretation means turning a word away from its apparent meaning. However, the irony is that Zaid labeled taking the literal meaning as interpretation, and what a weak interpretation at that—not only weak, but God forbid, a mockery of the hadith. There is no limit to this severe injustice. They failed to see what the Great Imam Allama Nablusi (may his secret be sanctified) states in the commentary of this hadith:

[Box Start] Arabic: Al-mutakhidheen 'alayha ay al-quboor ya'ni fawqaha 2 Urdu: Upon the graves, i.e., above them. (T) [Box End]

Look, he clarified this literal meaning which Zaid, God forbid, turned into a mockery.

(33) In the noble verse "We will surely build a mosque over them (al-kahf)," the pronoun refers to the People of the Cave. Since building a mosque on top of a human body makes no sense, a metaphorical meaning is certain. This is unlike the hadith where the pronoun refers to the graves. Placing a lamp on a grave is possible; in fact, it occurs among common folk in some places. Comparing it to the verse is purely a misunderstanding. He boastfully asked, "Does this mean they will lay the foundation stone of the mosque on the chests of the People of the Cave?" He is striking his own feet with an axe. The fact that this literal meaning is incorrect here is clear evidence against reality and a clue for metaphor. However, in the case of the hadith, where the literal meaning is easily applicable, who is there to turn away from it, and why adopt a metaphor without a clue?

(34) He gave another example of making an offering (chadhawa) on a grave, failing to understand that the metaphor here is not in the word "on" (as if 'ala' meant 'near' as you take it in the hadith). What would be the meaning of offering something near a grave? Rather, the metaphor itself lies in the word "offering" (chadhawa). It is like the charity (sadqa) that ignorant people place at a crossroad for a sick person, etc.

Footnotes: 1. Jami' al-Tirmidhi, Chapters of Prayer, regarding the dislike of making [something] upon graves, etc. Ameen Company, Kutub Khana Rasheediyah, Delhi, 1/43. 2. Al-Hadiqat al-Nadiyyah, Lighting Candles on Graves, Maktaba Nooria Razawiyya, Faisalabad, 2/630.

फ़तावा रज़विया जिल्द नवीं

[बॉक्स प्रारंभ] अरबी: फ़ी इस्नादिही मन युत्तहमु बिल-कज़िब व ला यकूनु अल-हदीसु शाज़्ज़ं व यर्वीहि मिन ग़ैरि वज्हिन नहवा ज़ालिका फ़हुवा इन्दना हदीसुन हसन - १ उर्दू: सनद में कोई मुत्तहम बिल-कज़िब (झूठ का आरोपी) न हो, न ही वह हदीस शाज़ (अनोखी) हो, और इसी तरह वह अनेक मार्गों से वर्णित हो, तो वह हमारे नज़दीक हदीस-ए-हसन है। (त) [बॉक्स अंत]

(३२) मना करने वालों की हदीस के तीन ३ जवाब हैं: पहला यह कि हदीस मूल रूप से सही ही नहीं है और सबसे अंतिम विनम्र जवाब वही है जो इमाम नाबुलुसी के शब्दों से गुज़रा। और मध्यम जवाब यह है कि हदीस में शब्द 'अला' (पर) है, जिससे कब्र पर चिराग रखने की मनाही हुई, इसे हम भी स्वीकार करते हैं। ज़ाहिर है कि 'अला' के हक़ीक़ी (वास्तविक) मायने यही हैं, और हक़ीक़त से बिना ज़रूरत हटना नाक़ाबिल-ए-क़बूल है, वह हटना ही 'तावील' (व्याख्या) कहलाएगा। और अगर वह कोई मज़बूत दलील न रखता हो तो उसे ठुकरा दिया जाएगा। तावील यह है कि लफ़्ज़ को उसके ज़ाहिरी मायने से फेर दिया जाए, मगर कमाल यह है कि ज़ैद ने हक़ीक़ी मायने मुराद लेने का नाम तावील रख दिया और तावील भी कैसी कमज़ोर, और न सिर्फ कमज़ोर बल्कि अल्लाह की पनाह, हदीस के साथ मज़ाक। इस शदीद ज़ुल्म की कोई हद है। और यह नहीं देखा कि इमाम अल्लामा नाबुलुसी (अल्लाह उनके पोशीदा राज़ को पाक रखे) इस हदीस की शरह (व्याख्या) में क्या फ़रमाते हैं:

[बॉक्स प्रारंभ] अरबी: अल-मुत्तखिज़ीन अलैहा अई अल-कुबूर यानी फ़ौक़हा २ उर्दू: कब्रों पर यानी उनके ऊपर। (त) [बॉक्स अंत]

देखो, उन्होंने इस हक़ीक़ी मायने की वज़ाहत फ़रमाई जिसे ज़ैद ने मआज़ल्लाह (अल्लाह की पनाह) मज़ाक बनाया।

(३३) करीमा "लनत्तखिजीन्ना अलैहिम मस्जिदन" में ज़मीर (सर्वनाम) असहाबे कहफ़ की तरफ़ है, और आदमी के जिस्म के ऊपर मस्जिद बनाने के कोई मायने नहीं हैं, तो यहाँ मिजाज़ (लाक्षणिकता) तय है, हदीस के बरअक्स जिसमें ज़मीर कब्रों की तरफ़ है। और कब्र पर चिराग रखना मुमकिन है, बल्कि बाज़ जगहों पर आम लोगों में यह वाक़े होता है, तो इसे आयत पर क़यास करना महज़ ग़लतफ़हमी है। उसने इतरा कर कहा था कि "क्या इसके यह मायने हैं कि असहाबे कहफ़ के सीने पर मस्जिद का संगे-बुनियाद (शिलान्यास) रखेंगे?" वह खुद अपने ही पैरों पर कुल्हाड़ी मार रहा है। यह मायने सही न होना ही हक़ीक़त से साफ़ होने और मिजाज़ के लिए एक दलील है। यहाँ जब बिना

किसी तकल्लुफ़ के हक़ीक़ी मायने बन रहे हैं, तो उनसे फेरने वाला कौन है, और बिना किसी दलील के मिजाज़ क्यों इख़्तियार किया?

(३४) दूसरी मिसाल कब्र पर चढ़ावा चढ़ाने की दी, और यह न समझा कि यहाँ मिजाज़ लफ़्ज़ "पर" में नहीं है कि 'अला' के मायने 'इंदा' (निकट) हों, जैसा कि तुम हदीस में ले रहे हो। कब्र के नज़दीक किसी चीज़ को चढ़ाने के क्या मायने? बल्कि मिजाज़ खुद यहाँ 'चढ़ावे' के लफ़्ज़ में है। वह सदक़ा है जो जाहिल लोग किसी बीमार वग़ैरा के लिए चौराहे पर रखते हैं।

फुटनोट्स: १. जामेअ तिर्मिज़ी, नमाज़ के अध्याय, कब्रों पर [कुछ] बनाने की कराहियत के बारे में, आदि, अमीन कंपनी, कुतुब ख़ाना रशीदिया, दिल्ली, १/४३। २. अल-हद्दीक़तुल नदिय्या, कब्रों पर शमा रोशन करना, मकतबा नूरिय्या रज़विय्या फ़ैसलाबाद, २/६३०।

فتاوی رضویہ جلد نہم

[Box Start] فی اسنادہ من یتہم بالکذب ولایکون الحدیث شاذا ویرویہ من غیر وجہ نحو ذالک فھو عندنا حدیث حسن - 1 | سند میں کوئی متہم بالکذب نہ ہو، نہ ہی وہ حدیث شاذ ہو، اور ایسے ہی متعدد طرق سے مروی ہو، وہ ہمارے نزدیک حدیث حسن ہے۔ (ت) [Box End]

(۳۲) حدیث مانعین سے تین ۳ جواب ہیں: پہلا یہ کہ حدیث سرے سے صحیح ہی نہیں اور سب میں اخیر تنزل کا جواب کہ امام نابلسی کے ارشاد سے گزرا۔ اور اوسط جواب یہ ہے کہ حدیث میں لفظ علی ہے اس سے قبر پر چراغ رکھنے کی ممانعت ہوئی، اسے ہم بھی تسلیم کرتے ہیں، ظاہر کہ علی کے معنی حقیقی یہ ہیں، اور حقیقت سے بلا ضرورت عدول نا مقبول، وہ عدول ہی تاویل ٹھہرے گا۔ اور اگر وجہ موجہ نہ رکھتا ہو مردود رہے گا۔ تاویل یہ ہے کہ لفظ کو اس کے معنی ظاہر سے پھیرا جائے، مگر طرفہ یہ کہ زید نے معنی حقیقی مراد لینے کا نام تاویل رکھا اور تاویل بھی کیسی ضعیف، اور نہ صرف ضعیف بلکہ معاذاللہ حدیث کے ساتھ مضحکہ۔ اس ظلم شدید کی کوئی حد ہے۔ اور نہ دیکھا کہ امام علامہ نابلسی قدس سرہ القدسی اس حدیث کی شرح میں کیا فرماتے ہیں:

[Box Start] المتخذین علیھا ای القبور یعنی فوقھا 2 - | قبروں پر یعنی ان کے اوپر۔ (ت) [Box End]

دیکھو اس معنی حقیقی کی تصریح فرمائی جسے زید نے معاذاللہ مضحکہ بنایا۔

(۳۳) کریمہ لنتخذن علیہم مسجدا میں ضمیر جانب اصحاب کہف ہے، اور آدمی کے جسم کے اوپر مسجد بنانے کے کوئی معنی نہیں تو مجاز متعین ہے، بخلاف حدیث کہ اس میں ضمیر جانب قبور

ہے۔ اور قبر پر چراغ رکھنا ممکن، بلکہ بعض جگہ عوام سے واقع ہے، تو اسے آیت پر قیاس کرنا محض سوئے فہم ہے۔ وہ چمک کر کہا تھا کہ "کیا اس کے یہ معنی ہیں اصحاب کہف کے سینہ پر سنگ بنیاد مسجد کا رکھیں گے۔" وہ خود اپنے شہر کے پاؤں میں تیشہ ہے۔ یہ معنی صحیح نہ ہونا ہی حقیقت سے صاف اور مجاز کا قرینہ ہوا، یہاں کہ بے تکلف معنی حقیقی بن رہے ہیں ان سے پھیرنے والا کون، اور مجاز کے لیے بے قرینہ کیا۔ (۳۴) دوسری مثال قبر پر چڑھاو اپڑھانے کی دی، اور نہ سمجھا کہ یہاں مجاز لفظ "پر" میں نہیں کہ علی بمعنی عند ہو، جس طرح تم حدیث میں لے رہے ہو، قبر کے نزدیک کسی چیز کے چڑھانے کے کیا معنی، بلکہ مجاز خود یہاں چڑھاوے کے لفظ میں ہے۔ صدقہ کہ جہّال کسی مریض وغیرہ کے لیے چوراہے میں رکھتے ہیں اسے

1 جامع الترمذی ابواب الصلوۃ ماجاء فی کراہیۃ ان یتخذ علی القبر الخ امین کمپنی کتب خانہ رشیدیہ دہلی ۱/ ۴۳ 2 الحدیقۃ الندیۃ ایقاد الشموع فی القبور مکتبہ نوریہ رضویہ فیصل آباد ۲/ ۶۳۰

Fatawa Razawiya, Volume 9

People place 'Utara' (offerings) for the lowly, wicked, and devils, while they bring 'Nuzoor' (vows) to the holy shrines; they call them 'Charhawa' (offerings) because they are presented before exalted and honored personages. This distinction between 'Utara' and 'Charhawa' is based on rank, not on physical directions of up and down. Even if a word is used in a metaphorical sense in one place, what kind of logic dictates that it must be forcefully twisted from its literal to a metaphorical meaning in another place based on that?

(35) Regarding Mullah Ali Qari taking the word 'Ala (upon) in its literal sense in this Hadith, Zaid Sahib explains that the reason for prohibition—the resemblance to Jews and Christians—is not present in the metaphorical sense, i.e., being near the grave. On this basis, he took the literal meaning. This implies that taking the literal meaning depends on an external reason; if no reason is found externally, the literal meaning won't be taken. What an upside-down understanding! See the statement of Allama Mullah Ali Qari:

Arabic: قيد عليها يفيد اتخاذ المساجد بجنبها لابأس **The restriction of "(upon graves)" signifies that if mosques are built beside them, there is no harm (T)**

"به -[1] "عليها

Observe, it was proven from the word "'Ala" that there's no harm in "alongside," or from the lack of harm in "alongside," he took "'Ala" in its literal sense.

(36) When Ali Qari has already taken "'Ala" in its literal sense regarding mosques here, which is accepted by you as well, and here there is only one word "'Ala" which has an equal relation to both mosques and lamps (suruj) in "those who take upon them (graves) mosques and lamps" (T). Now, if you take "'Ala" metaphorically regarding graves, it's an open case of combining literal and metaphorical meanings, which is invalid. Necessarily, regarding graves too, "'Ala" will be kept in its literal sense. So, for whoever attributed this to him and reasoned from his speech, how can this be considered an accusation against him?

(37) Regarding lamps (suruj), Ali Qari quoted three reasons for prohibition and wrote: "Thus said some of our scholars" (T). Regardless of the fact that this is a report from an unknown source, our jurists have relied only on the first reason, which is extravagance and waste of wealth. As mentioned above, and this same reason is in your own authoritative 'Bazaziya'.

1. Mirqat Sharh Mishkat, Chapter on Mosques and Places of Prayer, Maktaba Habibia Quetta, 2/444.
2. Jami' al-Tirmidhi, Chapter on what has been said regarding the dislike of taking a mosque over a grave, Amin Company, Kutub Khana Rashidiyah Delhi, 1/43.
3. Mirqat Sharh Mishkat, Chapter on Mosques and Places of Prayer, Maktaba Habibia Quetta, 2/444.

फ़तावा रज़विया, खंड 9

लोग 'उतारा' (भेंट) उन नीच, दुष्टों और शैतानों के लिए रखते हैं, और 'नज़्र' जो पवित्र मज़ारों की हज़ूरी में लाते हैं, उसे 'चढ़ावा' कहते हैं क्योंकि वह बुलंद मर्तबे वाले सम्मानितों के सामने पेश किया जाता है। यह उतारा-चढ़ावा दर्जे के एतबार से है, न कि ऊपर-नीचे की दिशा के एतबार से। और अगर मान भी लें कि एक जगह कोई शब्द मजाज़ी (अलंकारिक) अर्थ में प्रयुक्त हुआ है, तो उसके हवाले से दूसरी जगह भी जान-बूझकर उसे हक़ीक़ी (शाब्दिक) अर्थ से तोड़कर मजाज़ (अलंकार) पर ढालना कौन सी तर्कशीलता है!

(35) मुल्ला अली क़ारी ने जो इस हदीस में 'अला' (पर) को हक़ीक़ी अर्थ पर लिया, ज़ैद साहब इसकी व्याख्या यह करते हैं कि मनाही का कारण यानी यहूद और नसारा की समानता मजाज़ी अर्थ यानी 'क़ब्र के निकट' में नहीं रहती, इस आधार पर हक़ीक़ी अर्थ लिया। यानी हक़ीक़ी अर्थ लेना ही बाहरी कारण का मोहताज है; अगर बाहर से कोई कारण न मिले तो हक़ीक़ी अर्थ नहीं लेंगे। इस उल्टी समझ का क्या ठिकाना है! अल्लामा मुल्ला अली क़ारी की इबारत देखिये:

अरबी: قيد عليها يفيد اتخاذ المساجد بجنبها لابأس	**(क़ब्रों पर) की क़ैद यह जानकारी दे रही है कि उनके पहलू (बग़ल) में मस्जिद बनाएँ तो कोई हर्ज़ नहीं (त)**

"به -1 "عليها

ध्यान दीजिये, शब्द "अला" से यह साबित किया कि बराबर (बग़ल) में तो हर्ज़ नहीं, या बराबर में हर्ज़ न होने से "अला" को अपने हक़ीक़ी अर्थ पर लिया।

(36) जब अली क़ारी यहाँ मस्जिद के मामले में 'अला' को हक़ीक़ी अर्थ पर ले चुके हैं, जो आपको भी स्वीकार्य है, और यहाँ एक ही शब्द 'अला' है जिसका मस्जिदों और चिरागों (सुरज) से एक जैसा संबंध है जैसा कि हदीस में है "वल्मुत्तख़िज़ीना अलैहल मसाजिदा वस्सुरुज" (क़ब्रों पर मस्जिदें और चिराग़ बनाने वाले - त)। अब अगर क़ब्रों के मामले में 'अला' को मजाज़ी अर्थ पर लेंगे तो यह स्पष्ट रूप से हक़ीक़त और मजाज़ का एक साथ प्रयोग होगा जो कि बातिल (अमान्य) है। अनिवार्य रूप से क़ब्रों के मामले में भी 'अला' को हक़ीक़ी अर्थ पर ही रखेंगे। तो जिसने उनकी ओर इसे निस्बत (सम्बद्ध) किया और उनके कलाम से इस्तदलाल (तर्क) किया, वह उन पर इल्ज़ाम कैसे हो जाएगा?

(37) अली क़ारी ने चिराग़ों (सुरज) के बारे में मनाही के तीन कारण नक़्ल करके लिखा: "कज़ा क़ाला व बा'ज़ु उलेमाइना" (ऐसा ही हमारे कुछ उलेमा ने फ़रमाया - त)। इस बात को छोड़कर कि यह

किसी अज्ञात (मजहूल) से नक़्ल किया गया है, हमारे फ़क़ीहों ने उसी पहले कारण पर इक्तिसार (सीमित) किया है कि यह इसराफ़ (फ़िज़ूलखर्ची) और धन की बर्बादी है। जैसा कि ऊपर बयान हुआ, और यही कारण स्वयं आपकी प्रामाणिक 'बज़ज़िया' में है।

---

1. मिरक़ात शरह मिश्कात, बाब अल-मसाजिद व मवाज़ि' अस-सलाह, मकतबा हबीबिया क्वेटा, 2/444.
2. जामि' अत-तिर्मिज़ी, बाब मा जा-अ फ़ी कराहियाती अन युत्तख़ज़ा अलल क़ब्रि मस्जिदन, अमीन कंपनी, कुतुब ख़ाना रशीदिया दिल्ली, 1/43.
3. मिरक़ात शरह मिश्कात, बाब अल-मساजिद व मवाज़ि' अस-सलाह, मकतबा हबीबिया क्वेटा, 2/444.

पृष्ठ 948 का 516

اوتا ر رکھتے ہیں کہ اسے ذلیلوں خبیثوں شیطانوں کے لیے کرتے ہیں، اور نذور کہ مزارات طیبہ کے حضور لاتے ہیں اسے چڑھاؤا کہتے ہیں کہ بلند مرتبہ معظموں کے حضور پیش کرتے ہیں، یہ اتار چڑھاؤا باعتبار مرتبہ ہے۔ نہ باعتبار جہت تحت و فوق۔ اور نہ سہی اگر ایک جگہ کوئی لفظ معنی مجازی میں مستعمل ہو تو اس کے حوالے سے دوسری جگہ بھی خواہی نخواہی اسے حقیقت سے توڑ کر مجاز پر ڈھالنا کون سی منطق ہے!

(۳۵) ملا قاری نے جو اس حدیث میں علی کو معنی حقیقی پر لیا، زید صاحب اس کی توجیہ یہ فرماتے ہیں کہ وجہ ممانعت یعنی مشابہت یہود و نصاریٰ معنی مجازی یعنی قریب قبر میں نہیں رہتی، اس بنیاد پر معنی حقیقی لیے، یعنی معنی حقیقی ہی لینا محتاج وجہ خارجی ہے، اگر خارج سے کوئی وجہ اس کی نہ ملے تو معنی حقیقی نہ لیں گے، اس الٹی سمجھ کا کیا ٹھکانا ہے! علامہ ملا قاری کی عبارت دیکھئے:

قید علیها یفید اتخاذ المساجد بجنبها لابأس **(قبروں پر) کی قید یہ افادہ کر رہی ہے کہ ان کے پہلو میں مسجد بنائیں تو کوئی حرج نہیں (ت)**

به -[1] "علیها"

ملاحظہ ہو لفظ "علی" سے یہ ثابت کیا کہ برابر تو حرج نہیں یا برابر میں حرج نہ ہونے سے علی کو اپنے معنی حقیقی پر لیا۔

(۳۶) علی قاری جب یہاں درباره مسجد علی کو معنی حقیقی پر لے چکے، جو آپ کو بھی مسلم ہے۔ اور یہاں ایک ہی لفظ علی ہے جس سے مساجد و سرج کا یکساں علاقہ ہے کہ والمتخذین علیها

المساجد والسرج (قبروں پر مسجدیں اور چراغ بنانے والے ت) اب اگر درباره قبور علی کو معنی مجازی پر لیجئے تو کھلا ہوا جمع بین الحقیقة والمجاز اور وہ باطل ہے۔ لاجرم درباره قبور بھی علی کو معنی حقیقی پر رکھیں گے، تو جس نے ان کی طرف اسے نسبت کیا ان کے لازم کلام سے استدلال کیا یہ ان پر اتہام کدھر سے ہو جائے گا۔

(۳۷) علی قاری نے درباره سرج جو تین وجہ ممانعت نقل کر کے لکھا: کذا قال وبعض علمائنا (ایسا ہی ہمارے بعض علماء نے فرمایا۔ ت) قطع نظر اس کے کہ یہ نقل عن المجہول ہے اور ہمارے فقہاء نے اسی وجہ اول پر اقتصار فرمایا ہے کہ اسراف و اتلاف مال ہے۔ جیسا کہ اوپر بیان ہوا، اور یہی وجہ خود آپ کی مستند بزازیہ میں

---

1 مرقاة شرح مشکوة باب المساجد و مواضع الصلوة مکتبہ حبیبیہ کوئٹہ ۲/ ۴۴۴ 2 جامع الترمذی باب ماجاء فی کراهیة ان یتخذ علی القبر مسجدا امین کمپنی کتب خانہ رشیدیہ دہلی ۱/ ۴۳ 3 مرقاة شرح مشکوة باب المساجد و مواضع الصلوة مکتبہ حبیبیہ کوئٹہ ۲/ ۴۴۴

Fatawa Razawiya Volume 9

It was explicit, which you omitted, and it has become clear above that this reason is found only in the graves of the common folk, where there is neither a mosque nor a grave, nor any engagement in recitation, etc., by the roadside. As for the other two reasons, honoring the graves will also be established among the common folk, especially in the graves of the transgressors regarding whom you are asking the difference, 'Why do they do it at the graves of the righteous, and why not at the grave of a transgressor?' If done at the grave of a transgressor, it would be considered honoring the grave itself, as the buried person is not honorable. In contrast to the noble shrines, where the honoring is not of the grave, i.e., of bricks and clay, but of their noble soul. As Imam Nabulsi said: 'Honoring his noble soul, etc.' (For their blessed souls, etc. - translator). Honoring the graves of honorable individuals is in reality honoring the honorable people themselves. Who has forbidden it? It is in 'Ikhtiyar Sharh Mukhtar' and in your authentic 'Alamgiri':

Arabic	Urdu Translation
Then he should stand and face his grave, may Allah's peace and blessings be upon him, and not place his hand on the wall of the tomb, for it is more awe-inspiring and greater in respect. He should stand as one stands in prayer, up to the extent of need.	Meaning, then stand up and turn towards the noble grave of the Master of the Universe, may Allah the Exalted bless him and grant him peace, and do not place the hand on the wall of the noble tomb, for in that is greater awe and honoring the dignity of the noble sanctuary. Stand with hands folded as one stands in prayer, to the extent of necessity. (Translator)

In 'Mansak Mutawassit' and its commentary 'Maslak Mutaqassit' by Ali Qari, it is stated:

Arabic	Urdu Translation
And he should seize the opportunity of the days of his stay in Medina the Radiant, striving to remain in the Mosque and constantly looking at the Noble Chamber if possible, or the Eminent Dome if it is difficult, with awe, submission, fear, and humility both outwardly and inwardly, for indeed	Meaning, consider the days of presence in Medina Tayyibah as a blessing; spend most of the time in the Noble Mosque and if possible, keep looking at the sacred chamber of the pure shrine, otherwise just look at its blessed dome. With fear and respect, and with outward and inward humility, for looking at it is itself worship,

Arabic	Urdu Translation
looking at it is an act of worship like looking at the Noble Kaaba.	just like looking at the Kaaba Mu'azzama. (Translator)

Allama al-Qari al-Fakihi al-Makki, a student of Imam Ibn Hajar al-Makki (may Allah have mercy on them both), states in 'Husn al-Tawassul fi Ziyarat Afdal al-Rusul' (may Allah bless him and grant him peace): 'And among them (the etiquettes) is that one should not turn one's back to the noble grave.' Meaning among the etiquettes is:

1. Al-Hadiqa al-Nadiyya, Iiqad al-Shumu' fi al-Qubur, Nooriya Razawiya Faisalabad, 2/630
2. Fatawa Hindiyya, Conclusion on Visiting the Grave of the Prophet (PBUH), Noorani Kutub Khana Peshawar, 1/265
3. Al-Maslak al-Mutaqassit Sharh Mansak Mutawassit with Irshad al-Sari, Chapter: Wa liyaghtanim ayyama maqamih, Dar al-Kutub al-Arabi Beirut, p. 441
4. Husn al-Tawassul fi Ziyarat Afdal al-Rusul

यह स्पष्ट था जिसे आपने हटा दिया, और ऊपर यह स्पष्ट हो गया कि यह कारण केवल आम लोगों की कब्रों में पाया जाता है, जबकि वहां न तो मस्जिद हो और न ही कब्र, और न ही रास्ते के किनारे किसी तिलावत आदि में व्यस्तता हो। बाकी दो कारणों में कब्रों का सम्मान आम लोगों में भी सिद्ध होगा, विशेष रूप से उन पापियों की कब्रों में जिनके बारे में आप अंतर पूछ रहे हैं, कि 'बुजुर्गों की कब्रों पर क्यों करते हैं, पापी-दुराचारी की कब्र पर क्यों नहीं करते?' यदि पापी-दुराचारी की कब्र पर किया जाए, तो वह कब्र का ही सम्मान माना जाएगा क्योंकि दफन व्यक्ति सम्मानित नहीं है। इसके विपरीत महान दरगाहों में कब्र यानी ईंट और मिट्टी का सम्मान नहीं है, बल्कि उनकी पवित्र आत्मा का सम्मान है। जैसा कि इमाम नाबुलसी ने फरमाया: 'उनकी पवित्र आत्मा के सम्मान में आदि' (उनकी पवित्र आत्मा के लिए आदि। - अनुवादक)। सम्मानित व्यक्तियों की कब्रों का सम्मान वास्तव में सम्मानित व्यक्तियों का ही सम्मान है। किसने मना किया है? 'इख्तियार शरह मुख्तार' और आपकी प्रामाणिक 'आलमगीरी' में है:

अरबी

فیقوم مستقبل قبر النبی (صلی اللہ علیہ وسلم) ویبعد عنہ قدر ذراع ویجعل یمینہ علی یسارہ ویطرق رأسہ ویغض بصرہ ویقف کما یقف فی الصلوٰۃ ویسلم علی النبی (صلی اللہ علیہ وسلم) ویدعو بما بدا لہ ولا یمس القبر ولا یقبلہ ولا یمس الحجرۃ ولا یقبلہ ولا یطوف بالقبر ولا یسجد للقبر ولا یضع رأسہ علی القبر ولا یضع یدہ علی القبر ولا یضع رأسہ علی الحجرۃ ولا یضع یدہ علی الحجرۃ

अरबी	उर्दू अनुवाद
हो तो ऊंचे गुंबद को, गरिमा, अधीनता, भय और बाहरी और आंतरिक विनम्रता के साथ, क्योंकि वास्तव में उसे देखना काबा-ए-मुअज्जमा को देखने की तरह इबादत है।	मुबारक गुंबद को ही देखता रहे। भय, अदब और विनम्रता के साथ, क्योंकि इसे देखना ही इबादत है जैसे काबा-ए-मुअज्जमा पर दृष्टि डालना। (अनुवादक)

अल्लामा अल-क़ारी अल-फाकिही अल-मक्की, जो इमाम इब्न हजर अल-मक्की (अल्लाह उन दोनों पर दया करे) के शिष्य हैं, 'हुस्न अल-तवस्सुल फी ज़ियारत अफ़ज़ल अल-रुसुल' (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) में फरमाते हैं: 'और उनमें से (शिष्टाचारों में से) यह है कि पवित्र कब्र की ओर पीठ न की जाए।' अर्थात शिष्टाचारों में से है:

1. अल-हदीक़ा अन-नदिया, ईक़ाद अश-शुमू फी अल-क़ुबूर, नूरियह रज़विया फ़ैसलाबाद, 2/630
2. फ़तावा हिंदिया, पैगंबर (स.अ.व.) की कब्र की ज़ियारत का समापन, नूरानी कुतुब खाना पेशावर, 1/265
3. अल-मसलक अल-मुतक़स्सित शरह मंसक मुतवस्सित म' इर्शाद अस-सारी, अध्याय: वा लियग़तनिम अय्यामा मक़ामिह, दार अल-कुतुब अल-अरबी बेरुत, पृष्ठ 441
4. हुस्न अल-तवस्सुल फी ज़ियारत अफ़ज़ल अल-रुसुल

पेज 517/948

فتاوٰی رضویہ جلد نہم

مصرح تھی جسے آپ نے حذف کر دیا، اور اوپر روشن ہو لیا کہ یہ وجہ صرف قبور عوام میں پائی جاتی ہے، جبکہ وہاں نہ مسجد ہو نہ قبر، سر راہ نہ کوئی تلاوت وغیرہ میں مشغول۔ باقی دو وجہوں میں تعظیم قبور بھی عوام میں متحقق ہو گی خصوصاً قبور فُساق میں جن کی نسبت آپ فرق پوچھ رہے ہیں، کہ "بزرگوں کی قبروں پر کیوں کرتے ہیں، فاسق فاجر کی قبر پر کیوں نہیں کرتے۔" فاسق فاجر کی قبر پر کریں تو نفسِ قبر کی تعظیم ٹھہرے کہ مقبور معظم نہیں۔ بخلاف مزاراتِ کرام کہ وہاں قبر یعنی خشت و گل کی تعظیم نہیں بلکہ ان کی روحِ کریم کی تعظیم ہے۔ جیسا کہ امام نابلسی نے فرمایا: تعظیماً لروحہ المشرفۃ الخ (ان کے روح مبارک کے لیے الخ۔ ت) تعظیم قبور معظمین کہ حقیقتہً تعظیم معظمین ہے۔ کس نے منع کی؟ اختیار شرح مختار اور اسی آپ کی مستند عالمگیری میں ہے:

عربی	اردو ترجمہ
ثم ينهض فيتوجه الى قبره صلى الله تعالٰى عليه وسلم ولا يضع يده على جدار التربة فهو اهيب واعظم للحرمة ويقف كما يقف في الصلوة اه قدر الحاجة۔	یعنی پھر کھڑا ہو کر قبر اکرم حضور سید عالم صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم کی طرف متوجہ ہو ، اور تربت کریمہ کی دیوار پر ہاتھ نہ رکھے کہ اس میں زیادہ ہیبت و تعظیم حرمت کریمہ ہے ، اور یوں ہاتھ باندھ کر کھڑا ہو جیسا نماز میں کھڑا ہوتا ہے اھ بقدر ضرورت۔ (ت)

منسک متوسط اور اس کی شرح مسلک متقسط علی قاری میں ہے:

عربی	اردو ترجمہ
ولیغتنم ایام مقامہ بالمدینۃ المشرفۃ فیحرص علی ملازمۃ المسجد وادامۃ النظر الی الحجرۃ الشریفۃ ان تیسراو القبۃ المنیفۃ ان تعسر مع المھابۃ والخضوع والخشیۃ والخشوع ظاھراً وباطناً فانہ عبادۃ کالنظر الی الکعبۃ الشریفۃ 3۔	یعنی مدینہ طیبہ میں حاضری کے دنوں کو غنیمت جانے اکثر اوقات مسجد کریم میں حاضر رہے اور ہو سکے تو مزار اطہر کے حجرہ مقدسہ ورنہ اس کے گنبد مبارک ہی کو دیکھتا رہے۔ خوف و ادب اور خشوع و خضوع کے ساتھ کہ اس پر نگاہ ہی عبادت ہے جیسے کعبہ معظمہ پر نظر۔(ت)

علامہ القاری فاکہٰی مکی تلمیذ امام ابن حجر مکی رحمہما اللہ تعالیٰ حسن التوسل فی زیارۃ افضل الرسل صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم میں فرماتے ہیں: ومنھا ان لا یستدبر القبر الشریف 4۔ یعنی آداب میں سے ہے:

1 الحدیقۃ الندیۃ ایقاد الشموع فی القبور نوریہ رضویہ فیصل آباد 2 / 630 2 فتاوٰی ہندیہ خاتمہ فی زیارت قبر النبی صلی اللہ علیہ وسلم نورانی کتب خانہ پشاور 1 / 265 3 المسلک المتقسط شرح منسک متوسط مع ارشاد الساری فصل ولیغتنم ایام مقامہ دارالکتب العربی بیروت ص 441 4 حسن التوسل فی زیارۃ افضل الرسل

Fatawa Razawiyya, Volume 9

That one should not turn their back towards the holy grave. Sayyid-e-Aqdas (may his secret be sanctified) stated in "Khulasat al-Wafa": "Neither in prayer nor outside of it" should one turn their back towards it. Then he quoted from Imam Izz al-Din bin Abd al-Salam:

(Arabic)	(Urdu Translation Provided in Original)
When you intend to pray, do not place the chamber of the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) behind your back nor in front of you. Respect for him (peace and blessings of Allah be upon him) after his passing is the same as it was during his apparent earthly life. So, whatever respect you would have shown during his lifetime and how you would have bowed your head before him, do the same before his holy shrine.	When you want to pray, do not turn your back to the pure chamber or the holy shrine, nor place it in front of you during prayer. The respect for the Holy Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) after his passing is the same as it was during his apparent life in this world. Therefore, the way you would respect him and bow your head in his presence at that time, do the same in the presence of the holy shrine.

If this is not reverence, then what is? If the statements of the Imams of this kind were gathered, they would fill a register. And what could be more of a reverence for the holy grave than what is in the Hadith, where the Holy Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) himself taught how to be graced with a vision of his world-adorning beauty in a dream? In "Durr al-Munazzam" by Imam Abu al-Qasim Muhammad al-Lulwi al-Basti, it is stated that the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) says:

(Arabic)	(Urdu Translation Provided in Original)
Whoever sends blessings upon the soul of Muhammad among the souls, upon his body among the bodies, and upon his grave among the graves, will see me in their sleep. And whoever sees me in their sleep will see me on the Day of Resurrection. And whoever sees me on the Day of Resurrection, I will intercede for them. And for whomever I	Whoever sends blessings (Durood) upon the holy soul of Muhammad (peace and blessings of Allah be upon him) among souls, upon his holy body among bodies, and upon his luminous grave among graves, will see me in a dream. And whoever sees me in a dream will see me on the Day of Resurrection. And whoever sees me on the Day of Resurrection, I will

(Arabic)	(Urdu Translation Provided in Original)
intercede, they shall drink from my Pond (al-Kawthar), and Allah the Almighty will forbid hellfire for their body.	intercede for them. And for whomever I intercede, they will drink from my noble pond, and Allah Almighty will make the fire of Hell forbidden for their body.

O Allah! Grant this to us for the sake of his standing before You, Amen. (O Allah! Grant us this through the means of his dignity which he holds before You. O God, accept it.)

---

1. Wafa al-Wafa, Chapter 4, Section 8, Ihya al-Turath al-Arabi, Beirut, 4/1410
2. Wafa al-Wafa, Chapter 4, Section 8, Ihya al-Turath al-Arabi, Beirut, 4/1410
3. Durr al-Munazzam by Imam Abu al-Qasim Muhammad al-Lulwi al-Basti

फ़तावा रज़विया, खंड 9

कि पवित्र कब्र की ओर पीठ न करें। सैयद-ए-अकदस (अल्लाह उनकी पवित्रता को बढ़ाए) ने 'खुलासत अल-वफ़ा' में फ़रमाया: "न नमाज़ में और न ही नमाज़ के बाहर" उधर पीठ करें। फिर इमाम इज़ अल-दीन बिन अब्द अल-सलाम से उद्धृत किया गया:

(अरबी)

जब आप नमाज़ पढ़ने का इरादा करें, तो नबी (उन पर अल्लाह की कृपा और शांति हो) के कमरे को न तो अपनी पीठ के पीछे रखें और न ही अपने सामने। उनके(उन पर अल्लाह की कृपा और शांति हो) प्रति सम्मान उनके निधन के बाद भी वैसा ही है जैसा उनके ज़ाहिरी सांसारिक जीवन के दौरान था। अत; आप उनके जीवनकाल में जो सम्मान प्रदर्शित करते और उनके सामने अपना सिर झुकाते, वही पवित्र मज़ार के सामने करें।

(मूल में दिया गया उर्दू अनुवाद)

जब तू नमाज़ पढ़ना चाहे तो हुजरा-ए-मुतहरा मज़ार-ए-अतहर को पीठ न कर, न नमाज़ में अपने सामने रख, हुज़ूर अकदस (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) का अदब बाद वफ़ात भी वैसा ही है जैसा आलम-ए-हयात ज़ाहिर में था, तो जैसा तू उस वक्त अदब करता और हुज़ूर के सामने सर झुकाता ऐसा ही मज़ार-ए-अतहर के हुज़ूर कर।

यदि यह श्रद्धा नहीं है, तो और क्या है? यदि इस प्रकार के इमामों के बयानों को एकत्र किया जाए, तो वे एक पूरा रजिस्टर भर देंगे। और पवित्र कब्र के लिए इससे बड़ी श्रद्धा और क्या होगी, जो हदीस में है कि स्वयं पवित्र पैगंबर (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने अपने विश्व-सजावट वाले सौंदर्य के सपने के दर्शन से सम्मानित होने के लिए सिखाया? इमाम अबू अल-कासिम मुहम्मद अल-लुलवी अल-बस्ती की पुस्तक 'दुर अल-मुनाज़म' में है कि अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) फ़रमाते हैं:

(अरबी)

जो आत्माओं में मुहम्मद की आत्मा पर, शरीरों में उनके शरीर पर, और कब्रों में उनकी कब्र पर दरूद भेजेगा, वह मुझे अपने सपने में देखेगा। और जो मुझे सपने में देखेगा, वह मुझे कयामत के दिन देखेगा। और जो मुझे कयामत के दिन देखेगा, मैं उसके लिए शफ़ाअत (सिफारिश) करूँगा। और

(मूल में दिया गया उर्दू अनुवाद)

जो मुहम्मद (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) की रूह-ए-अकदस पर अरवाह में, और जसद-ए-अतहर पर अजसाम में, और कब्र-ए-अनवर पर कुबूर में दरूद भेजे वह मुझे ख्वाब में देखे, और जो ख्वाब में देखे मुझे कयामत में देखेगा। और जो मुझे कयामत में देखेगा मैं उसकी शफ़ाअत

(अरबी)

जिसके लिए मैं शफ़ाअत करूँगा, वह मेरे हौज (कौसर) से पिएगा, और अल्लाह सर्वशक्तिमान उसके शरीर पर जहन्नुम की आग को हराम कर देगा।

(मूल में दिया गया उर्दू अनुवाद)

फ़रमाऊँगा। और जिसकी मैं शफ़ाअत फ़रमाऊँगा वह मेरे हौज-ए-करीम से पीयेगा और अल्लाह अज़्ज़वजल उसके बदन पर दोज़ख को हराम फ़रमाएगा।

हे अल्लाह*!* हमें उनके उस सम्मान के बदले यह प्रदान कर जो उनके लिए तेरे पास है*,* आमीन। (ऐ अल्लाह! हमें उनकी उस प्रतिष्ठा के माध्यम से यह नसीब फरमा जो तेरे सामने उनके लिए है। हे ईश्वर, इसे स्वीकार कर।)

---

1. वफ़ा अल-वफ़ा, अध्याय 4, भाग 8, एहया अत-तुराथ अल-अरबी, बेरूत, 4/1410
2. वफ़ा अल-वफ़ा, अध्याय 4, भाग 8, एहया अत-तुराथ अल-अरबी, बेरूत, 4/1410
3. इमाम अबू अल-कासिम मुहम्मद अल-लुलवी बस्ती की पुस्तक 'दुर अल-मुनाज़म'

पृष्ठ 948 का 518

کہ قبر اقدس کو پشت نہ کرے، سیداقدس قدس سرہ نے خلاصتہ الوفاء میں فرمایا: فی الصلوۃ ولا فی غیرھا نہ نماز میں ادھر پیٹھ کرے نہ غیر نماز میں پھر امام عز الدین بن عبدالسلام سے نقل فرمایا:

(عربی)

اذا اردت صلوٰۃ فلا تجعل حجرتہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم وراء ظھرک ولابین یدیک والادب معہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم بعد وفاتہ مثلہ فی حیاتہ فما کنت صانعہ فی حیاتہ فاصنعہ بعد وفاتہ من احترامہ والاطراق بین یدیہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم۔ 2

(اردو)

جب تو نماز پڑھنا چاہے تو حجرہ مطہرہ مزار اطہر کو پیٹھ نہ کر، نہ نماز میں اپنے سامنے رکھ، حضور اقدس صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم کا ادب بعد وفات بھی ویسا ہی ہے جیسا عالم حیات ظاہر میں تھا، تو جیسا تو اس وقت ادب کرتا اور حضور کے سامنے سر جھکاتا ایسا ہی مزار اطہر کے حضور کر۔

یہ سب تعظیم نہیں تو اور کیا ہے۔ اس قسم کے ارشادات ائمہ اگر جمع کئے جائیں تو ایک دفتر ہو، اور خود اس سے زیادہ اور کیا تعظیم قبر اطہر ہوگی، جو حدیث میں ہے کہ خود حضور اقدس صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم نے خواب میں جمال جہاں آرا کی زیارت سے مشرف ہونے کے لیے تعلیم فرمائی در منظّم امام ابوالقاسم محمد لولوی بستی میں ہے رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم فرماتے ہیں:

(عربی) **(اردو)**

من صلی علی روح محمد فی الارواح و علی جسده فی الاجساد وعلی قبره فی القبور رانی فی منامہ ومن رانی فی منامہ رانی یوم القیامۃ ومن رانی یوم القیامۃ شفعت لہ و من شفعت لہ شرب من حوضی وحرم الله جسده علی النار۔ 3

جو محمد صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم کی روح اقدس پر ارواح میں، اور جسد اطہر پر اجسام میں، اور قبر انور پر قبور میں درود بھیجے وہ مجھے خواب میں دیکھے، اور جو خواب میں دیکھے مجھے قیامت میں دیکھے گا۔ اور جو مجھے قیامت میں دیکھے گا میں اس کی شفاعت فرماؤں گا۔ اور جس شفاعت کی میں شفاعت فرماؤں گا وہ میرے حوض کریم سے پیئے گا اور اللہ عزوجل اس کے بدن پر دوزخ کو حرام فرمائے گا۔

اللھم ارزقنا بجاھہ عندک امین (اے اللہ! ہمیں نصیب فرما ان کی اس وجاہت کے طفیل جو تیرے حضور ان کے لیے ہے۔ الٰہی قبول فرماۃت)

---

1 وفاء الوفاء الفصل الرابع من الباب الثامن احیاء التراث العربی بیروت 4/ 1410 2 وفاء الوفاء الفصل الرابع من الباب الثامن احیاء التراث العربی بیروت 4/ 1410 3 در منظّم امام ابوالقاسم محمد لولوی بستی

Fatawa Razawiyya Volume 9

Scholars state that one should recite Salawat (Durud) like this: "O Allah, send blessings upon the soul of our master Muhammad among the souls. O Allah, send blessings upon the body of our master Muhammad among the bodies. O Allah, send blessings upon the grave of our master Muhammad among the graves." The command was given to send blessings upon the noble grave, and such veneration is not permissible for anyone except the Prophets and Angels (peace be upon them) independently.

(38) The third reason is that it is from the signs of Hell. And seeking refuge with Allah the Almighty.

I say: Its ultimate purpose is taking an omen (tafa'ul), it is not such that by not observing it a Muslim deserves to be cursed, so this cannot be its justification. If the Sharia had such a great regard for such omens, there wouldn't be a command to wash the deceased with hot water, as that is also among the signs of Hell.

Allah Almighty says:

"Boiling water will be poured over their heads" [1] - This means hot water will be poured over the heads of those (in Hell). (T)

However, it is Shariah-mandated. In Durr al-Mukhtar it is stated:

"Water boiled with lote-tree leaves (sidr) should be poured over him if available, otherwise pure water." [2] - Pour boiled water with lote-tree leaves on him (deceased) if available, otherwise plain water. (T)

In Radd al-Muhtar and Nahr al-Faiq it is stated:

"He informed that hot water is better whether there is dirt on him or not." [3] - It is inferred from this that hot water is better whether the body of the deceased has dirt on it or not. (T)

And even if we accept it, its place is only to place lamps on specific graves as an omen, not around them or on the towers or the walls of the enclosure. "When scholars declared it disliked to use baked bricks in the grave due to taking an omen because they have seen fire (being baked), seeking refuge with Allah the Almighty, they clarified that this is in the case where baked bricks are placed specifically on the niche (lahd) which is near the deceased; otherwise, there is no harm on top of the

grave, as this is fire itself. There is harm even on top of the grave, but no harm in the surroundings."

1. Al-Quran 22/19
2. Durr al-Mukhtar, Chapter of Janazah Prayer, Mujtabai Press, Delhi, 1/120
3. Radd al-Muhtar, Chapter of Janazah Prayer, Idaratul Tiba'at al-Misriyya, Egypt, 1/575

फ़तावा रज़विया जिल्द नहुम

विद्वान कहते हैं कि इस तरह दरूद शरीफ़ पढ़ो: "ऐ अल्लाह, हमारे आका मुहम्मद की आत्मा पर आत्माओं के बीच आशीर्वाद भेज। ऐ अल्लाह, हमारे आका मुहम्मद के शरीर पर शरीरों के बीच आशीर्वाद भेज। ऐ अल्लाह, हमारे आका मुहम्मद की कब्र पर कब्रों के बीच आशीर्वाद भेज।" पवित्र कब्र पर दरूद भेजने का आदेश हुआ, और यह वैसी महानता है जो स्वतंत्र रूप से नबियों और फ़रिश्तों (उन पर शांति हो) के अलावा किसी और के लिए जायज़ नहीं है।

(38) तीसरा कारण यह है कि यह जहन्नुम (नरक) के निशानों में से है। और हम अल्लाह तआला की पनाह माँगते हैं।

मैं कहता हूँ: इसका अधिकतम उद्देश्य एक शगुन (तफ़ाउल) लेना है, यह इस योग्य नहीं है कि इसे न मानने पर एक मुसलमान लानत का हक़दार हो जाए, इसलिए यह इसकी सफ़ाई नहीं हो सकती। अगर शरीयत में ऐसे शगुनों का इतना बड़ा ख्याल होता, तो मृत शरीर को गर्म पानी से नहलाने का आदेश न होता, क्योंकि वह भी जहन्नुम के निशानों में से है।

अल्लाह तआला फ़रमाता है:

"उनके सिरों के ऊपर से खौलता हुआ पानी डाला जाएगा" [1] - यानी उस (जहन्नमी) के सिर के ऊपर से गर्म पानी बहाया जाएगा। (त)

हालाँकि वह शरई तौर पर वांछित है। 'दुर्रे मुख्तार' में है:

"उन पर बेरी के पत्तों के साथ उबला हुआ पानी डाला जाए यदि उपलब्ध हो, अन्यथा शुद्ध पानी।" [2] - उस (मृत) पर बेरी के पत्तों वाला उबला हुआ पानी बहाया जाए यदि उपलब्ध हो, अन्यथा सादा पानी। (त)

'रद्दुल मुहतार' और 'नहरुल फ़ाईक' में है:

"उसने यह लाभ दिया कि गर्म पानी बेहतर है चाहे उस पर गंदगी हो या नहीं।" [3] - इससे यह पता चला कि मृत शरीर पर गर्म पानी डालना बेहतर है, चाहे उस पर मेल हो या न हो। (त)

और यदि मान भी लिया जाए, तो इसका स्थान केवल यही है कि विशेष कब्रों पर चिराग रखें क्योंकि यह एक शगुन है, न कि उसके चारों ओर या मीनारों या चारदीवारी पर। "जब विद्वानों ने शगुन के

कारण कब्र में पकी हुई ईंटें लगाने को मकरूह (नापसंद) बताया क्योंकि वे आग देखी हुई हैं (आग में पकी हैं), अल्लाह तआला की पनाह, तो उन्होंने स्पष्ट किया कि यह उस स्थिति में है जब विशेष रूप से 'लहद' (कब्र के अंदर का गड्ढा) पर पकी हुई ईंटें लगाई जाएं जो मृतक के करीब है, अन्यथा कब्र के ऊपर इसमें कोई हर्ज नहीं है, यह स्वयं आग है। इसमें कब्र के ऊपर भी हर्ज है, लेकिन आसपास (चारों ओर) में कोई हर्ज नहीं।"

1. अल-कुरान 22/19
2. दुर्रे मुख्तार, बाब सलातुल जनाइज़, मुजतबाई प्रेस, दिल्ली, 1/120
3. रद्दुल मुहतार, बाब सलातुल जनाइज़, इदारातुल तिबाअत अल-मिसरिया, मिस्र, 1/575

पृष्ठ 519/948

علماء فرماتے ہیں یعنی یوں درود شریف پڑھو : اللھم صل علی روح سیدنا محمد فی الارواح اللھم صل علی جسد سیدنا محمد فی الاجسام اللھم صل علی قبر سیدنا محمد فی القبور۔ قبر کریم پر درود بھیجنے کا حکم ہوا، اور درود وہ تعظیم ہے کہ بالاستقلال انبیاء و ملائکہ علیہم الصلوۃ والسلام کے سوا کسی کے لیے جائز نہیں۔ (۳۸) رہی تیسری وجہ کہ وہ آثار جہنم سے ہے۔ والعیاذ باللہ تعالٰی۔ اقول : اس کی غایت ایک تفاول ہے وہ اس قابل نہیں کہ جس کے لحاظ نہ کرنے پر مسلمان لعنت کا مستحق ہو، تو یہ اس کی توجیہ نہیں ہوسکتی، شرع کو ایسی فالوں کا اتنا عظیم لحاظ ہوتا تو میت کو گرم پانی سے نہلانے کا حکم نہ ہوتا کہ وہ بھی آثار جہنم سے ہے۔ قال اللہ تعالٰی: یُصَبُّ مِنْ فَوْقِ رُءُوسِهِمُ الْحَمِیمُ (۱) اس (جہنمی) پر انکے سروں کے اوپر سے گرم پانی بہایا جائے گا۔ (ت) حالانکہ وہ شرعاً مطلوب ہے۔ در مختار میں ہے: یصب علیه ماء مغلی بسدر ان تیسر والا فماء خالص (۲) اس (میت) پر بیری جوش دیا ہوا پانی بہایا جائے اگر میسر ہو، ورنہ سادہ پانی۔ (ت) رد المحتار و نہر الفائق میں ہے: افاد ان الحار افضل سواء کان علیه وسخ اولا (۳) اس سے مستفاد ہوا کہ گرم پانی بہتر ہے میت کے جسم پر میل ہو یا نہ ہو۔ (ت) اور بفرض تسلیم اس کا محل وہی ہے کہ خاص قبروں پر چراغ رکھیں کہ فال ہے تو اس میں ہے نہ کہ اس کے گرد یا مناروں یا احاطہ کی دیواروں پر "علماء نے تفاول کے سبب جب پکی اینٹ قبر میں لگانی مکروہ بتائی کہ وہ آگ دیکھے ہوئے ہے والعیاذ باللہ تعالٰی، تصریح فرمائی کہ یہ اس صورت میں ہے کہ خاص لحد پر پختہ اینٹیں لگائیں جو قریب میت ہے ورنہ بالائے قبر اس میں حرج نہیں، یہ خود آگ ہے۔ اس میں بالائے قبر بھی حرج ہے مگر حول میں حرج۔

1 القرآن ٢٢ / ١٩ 2 در مختار باب صلوة الجنائز مطبع مجتبائی دہلی ١ / ١٢٠ 3 رد المحتار باب صلوة الجنائز ادارة الطباعة المصرية مصر ١ / ٥٧٥

Volume Nine Fatawa Razawiyya

It is not acceptable, as stated in Radd al-Muhtar:

| Levelling with unbaked bricks and reeds is permissible, but not with baked bricks or wood if placed around it. As for placing them above it, it is not disliked. - 1 | Place unbaked bricks and bamboos over it, do not place baked bricks and wood around it; however, if they are above it, there is no harm. (T) |

Ibn Malik says in Bada'i:

| Because it is something touched by fire, it is disliked to place it on the deceased as an omen. - 2 | Because it has been affected by fire, it is disliked to build it over the deceased due to [avoiding] an omen. (T) |

In Al-Hilya:

| Imam al-Tumurtashi said: This is when it is around the deceased; if it is above it, it is not disliked. - 3 | Imam al-Tumurtashi said: This is when it is specifically around the deceased; if it is above, it is not disliked. (T) |

(39) What a foolish objection it is to claim that if 'Ala' (upon) is taken in its literal sense, then it would be permissible for someone to light a lamp under or inside the grave. Regarding the mosque, you also admit that 'Ala' is used in its literal sense, so if someone builds a mosque or prays under or inside the grave, it would be permissible, because the prohibition in the Hadith is 'upon' the grave. Now say, I seek forgiveness from Allah. This is making a mockery of the Hadith.

(40) The mention of frequent lighting of lamps in the illuminated sanctuary [of the Prophet] has passed, and regarding this, let us write another passage from Ihya al-Ulum Sharif so that the hearts of the supporters are enlightened and the eyes of the opponents are dazzled. Imam Hujjat-ul-Islam Muhammad Muhammad Muhammad Ghazali (may his secret be sanctified) states before the book of Manners of Marriage:

| Abu Ali al-Rudhbaari (may Allah Almighty have mercy on him) related about a man that he hosted a banquet and lit a thousand lamps in it. A man said to him, "You have been extravagant." He said to him, "Enter, and whatever I have lit for other than Allah..." | i.e., the great Imam, the perfect gnostic, the authority of the saints, Hazrat Sayyiduna Imam Abu Ali Rudhbaari (may Allah Almighty be pleased with him) - who was among the illustrious companions of the leader of the group, Junayd Baghdadi

(may Allah Almighty be pleased with him), and whose noble passing was in 322 AH... |

1 Durr al-Mukhtar, Chapter on Funeral Prayer, Mujtabai Press, Delhi, 1/125. 2 Bada'i al-Sana'i, section on the Sunnah of Digging, H.M. Saeed Company, Karachi, 1/318. 3 Hilyat al-Mahalli Sharh Munyat al-Musalli.

जिल्द नहम (नौवीं) फ़तावा रज़विया

मुस्लिम नहीं, रद अल-मुह्तार में है:

| [अरबी]: कच्ची ईंटों और नरकटों से समतल करना जायज़ है, लेकिन पकी हुई ईंटों या लकड़ी से नहीं यदि वे उसके चारों ओर हों। जहाँ तक उन्हें ऊपर रखने का सवाल है, तो यह नापसंद नहीं है। - 1 | [उर्दू अनुवाद]: इस पर कच्ची ईंट और बांस चुन दें, पकी ईंट और लकड़ी इसके गिर्द न रखें, हाँ ऊपर हो तो हर्ज नहीं। (त) |

इब्न मलिक बदाइअ में कहते हैं:

| [अरबी]: क्योंकि यह आग से छुई हुई चीज़ है, इसलिए अपशकुन (तफावुल) के कारण इसे मय्यत पर रखना नापसंद है। - 2 | [उर्दू अनुवाद]: इसलिए कि इस पर आग का असर पहुँचा हुआ है तो तफ़ावुल के सबब मय्यत पर चुनना मकरूह है। (त) |

हुलिया में है:

| [अरबी]: इमाम अल-तमुर्ताशी ने फरमाया: यह तब है जब मय्यत के चारों ओर हो; अगर ऊपर हो तो मकरूह नहीं। - 3 | [उर्दू अनुवाद]: इमाम तमुर्ताशी ने फरमाया: यह उस वक्त है जब खास मय्यत के गिर्द हो, ऊपर हो तो मकरूह नहीं। (त) |

(३९) यह कैसी नादानी का ऐतराज़ है कि 'अला' (ऊपर) को हकीकी मायनों में लें तो कोई शख्स कब्र के नीचे या कब्र के बीच में चिराग जलाए तो वह जायज़ हो जाए। मस्जिद के बारे में तो आप भी मानते हैं कि 'अला' हकीकी मायनों में है, तो कोई शख्स कब्र के नीचे या कब्र के बीच में मस्जिद बनाए या नमाज़ पढ़े तो वह जायज़ हो जाए, क्योंकि हदीस में कब्र पर की मनाही है। अब भी कहिए कि अस्तग़फिरुल्लाह। यह हदीस के साथ मज़ाक करना है।

(४०) रौज़ह अनवर में रोशनी की कसरत का ज़िक्र हो चुका है और इसके मुताल्लिक़ 'एहया अल-उलूम' शरीफ की एक इबारत और लिखें ताकि मुवाफ़िक़ीन (समर्थकों) के दिल रौशन हों और मुख़ालिफ़ीन (विरोधियों) की आँखें चौंधिया जाएं इमाम हुज्जत-उल-इस्लाम मुहम्मद मुहम्मद मुहम्मद ग़ज़ाली (कुददसा सिर्रह अल-आली) किताब 'आदाबुन निकाह' से पहले फरमाते हैं:

| [अरबी]: अबू अली अल-रूज़बारी (रहमतुल्लाह अलैह) ने एक शख्स के बारे में बयान किया कि उसने एक दावत की और उसमें एक हज़ार चिराग जलाए। एक शख्स ने उससे कहा, "तुमने इसराफ़

(फ़िज़ूलखर्ची) किया है।" उसने उससे कहा, "अन्दर आओ, और जो कुछ मैंने अल्लाह के अलावा किसी और के लिए जलाया है..." | [उर्दू अनुवाद]: यानी इमाम अजल आरिफ़ अकमल, सनद उल-औलिया हज़रत सैय्यदना इमाम अबू अली रूज़बारी रज़ियल्लाहु अन्हु (कि जो सैय्यद अत-तायफ़ा जुनैद बग़दादी रज़ियल्लाहु अन्हु के बड़े साथियों में से थे, ३२२ हिजरी में उनका विसाल हुआ), |

1 दुर्र अल-मुह्तार, बाब सलातुल जनाइज़, मुतबा मुज्तबाई, दिल्ली, १ / १२५ 2 बदाइअुस सनाइअ फ़स्ल फ़ी सुन्नत अल-हफ़्र, एच.एम. सईद कंपनी कराची, १ / ३१८ 3 हुलियत अल-महल्ली शरह मुनियत अल-मुसल्ली

جلد نہم فتاویٰ رضویہ

مسلم نہیں، ردالمختار میں ہے:

| یسوی اللبن علیہ والقصب لا الاجر المطبوخ والخشب لو حولہ اما فوقہ فلا یکرہ - 1 | اس پر کچی اینٹ اور بانس چن دیں، پکی اینٹ اور لکڑی اس کے گرد نہ رکھیں، ہاں اوپر ہو تو حرج نہیں۔ (ت) |

ابن ملک بدائع میں ہے:

| لانہ مما مستہ النار فیکرہ ان یجعل علی المیت تفاؤلا - 2 | اس لیے کہ اس پر آگ کا اثر پہنچا ہوا ہے تو تفاول کے سبب میت پر چننا مکروہ ہے۔ (ت) |

حلیہ میں ہے:

| قال الامام التمرتاشی ھذا اذکان حول المیت فلو فوقہ لایکرہ - 3 | امام تمرتاشی نے فرمایا: یہ اس وقت ہے جب خاص میت کے گرد ہو، اوپر ہو تو مکروہ نہیں۔ (ت) |

(۳۹) کس نادانی کا اعتراض ہے کہ علی معنی حقیقی پر لیں تو کوئی شخص قبر کے نیچے یا قبر کے بیچ میں چراغ جلائے تو وہ جائز ہوجائے۔ درباره مسجد تو آپ کو بھی مسلم کہ علی معنی حقیقی پر ہے تو کوئی شخص قبر کے نیچے یا قبر کے بیچ میں مسجد بنائے یا نماز پڑھے تو وہ جائز ہوجائے، کیونکہ حدیث میں قبر پر کی ممانعت ہے۔ اب بھی کہیے کہ استغفر اللہ۔ یہ حدیث کے ساتھ مضحکہ کرنا ہے۔

(۴۰) کثرتِ چراغاں کا ذکر روشنی روضہ انور میں گزرا اور اس کے متعلق احیاء العلوم شریف کی ایک عبارت اور لکھیں کہ موافقین کے دل روشن ہوں اور مخالفین کی آنکھیں چکا چوند سے جلیں، امام حجۃ الاسلام محمد محمد محمد غزالی قدس سرہ العالی قبیل کتاب آداب النکاح میں فرماتے ہیں:

| حکی ابو علی الروذباری رحمہ اللہ تعالیٰ عن رجل انہ اتخذ ضیافۃ فاوقد فیہا الف سراج و قال لہ رجل قد اسرفت فقال لہ ادخل فکلما اوقدتہ لغیر اللہ | یعنی امام اجل عارفِ اکمل، سند الاولیاء حضرت سیدنا امام ابوعلی روذباری رضی اللہ تعالیٰ عنہ (کہ اجلّہ اصحاب سید الطائفہ جنید بغدادی رضی اللہ تعالیٰ عنہ سے ہیں ۳۲۲ ہجری میں وصال شریف ہے، |

1 در مختار باب صلوۃ الجنائز مطبع مجتبائی دہلی ۱ / ۱۲۵ 2 بدائع الصنائع فصل فی سنہ الحفر ایچ ایم سعید کمپنی کراچی ۱ / ۳۱۸ 3 حلیۃ المحلی شرح منیۃ المصلی

Fatawa Razawiyya - Volume 9

[Arabic Text]: "So put it out. The man entered but could not put out even one of them, and then it stopped." Imam Arif-billah Ustad Abu al-Qasim Qushayri (may Allah sanctify his secret) stated regarding him in his blessed treatise: "He is the most elegant of the Sheikhs and the most wise among them in the Way (Tariqa)." (Meaning: He is the wisest among the sheikhs and the greatest scholar of the spiritual path. - Translator)

It is narrated that a righteous servant invited friends to a feast and lit thousands of lamps for them. Someone remarked, "You have been wasteful (israf)." The host replied, "Come inside and extinguish any lamp that I have lit for other than God." The objector went inside and despite all his efforts, he could not extinguish even a single lamp. Finally, he became convinced. Praise be to Allah.

In summary, the ruling is that lighting up common graves is certainly wastefulness when there is no external benefit like those mentioned previously. And wastefulness is undoubtedly prohibited; jurists forbid it for this very reason. If the intention is to decorate the grave, the grave is not a place for decoration; it would still be wastefulness, perhaps even more so. Similarly, if the intention is to venerate the grave itself—since here it is not like the veneration due to association at the shrines of the beloveds of Allah—the same prohibition applies because these intentions are not praiseworthy in Sharia. However, if the intention is to honor and respect their noble soul, then it is not wastefulness because a righteous intention exists, nor is it veneration of the grave, but rather veneration of the soul of the beloved (saint), which is undoubtedly desired in Sharia. Imam al-Ajal Taqi al-Din al-Subki, Imam Nur al-Din al-Samhudi, and Imam Abdul Ghani al-Nabulsi (may Allah have mercy on them) consider this permissible. To pass judgment on someone's heart by claiming their intention is only to venerate the grave and not the soul of the saint is mere superstition, ill-suspicion, and forbidden by the text of the Quran. Allah Blessed and Exalted said:

[Arabic Verse]: "And follow not that of which you have no knowledge. Indeed, the hearing, the sight and the heart - about each of those you will be questioned." (Quran 17:36)

Translation: And do not follow that which you have no knowledge of. Indeed, the hearing, the sight, and the heart, each of these shall be questioned. (T)

And Allah Blessed and Exalted said:

[Arabic Verse]: "O you who have believed, avoid much [negative] suspicion. Indeed, some suspicion is sin." (Quran 49:12)

Translation: O you who believe! Avoid much suspicion, for indeed some suspicion is a sin. (T)

And the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) said: And the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) said:

---

1 Ihya Ulum al-Din, Chapter Four on the Etiquettes of Hospitality, Al-Mashhad Al-Husayni Library and Press, Cairo, 12 / 20 2 Al-Quran 17/36 3 Al-Quran 49/12

फ़तावा रज़विया - खंड 9

[अरबी पाठ]: "तो इसे बुझा दो। वह आदमी अंदर गया लेकिन उनमें से एक को भी नहीं बुझा सका, फिर वह बंद हो गया।" इमाम आरिफ-बिल्लाह उस्ताद अबू अल-कासिम क़ुशैरी (अल्लाह उनके रहस्य को पवित्र करे) ने उनके बारे में अपने धन्य ग्रंथ में फरमाया: "वह शेखों में सबसे सुंदर और उनके बीच तरीक़त (आध्यात्मिक मार्ग) में सबसे बुद्धिमान हैं।" (अर्थात: शेखों में सबसे बुद्धिमान और तरीक़त के सबसे बड़े विद्वान। - अनुवादक)

एक वृत्तांत है कि एक नेक बंदे ने दोस्तों को दावत दी और उसमें हज़ारों चिराग रोशन किए। किसी ने कहा, "आपने अपव्यय (इसराफ़) किया है।" मेज़बान ने कहा, "अंदर आएं और उस चिराग को बुझा दें जिसे मैंने अल्लाह के अलावा किसी और के लिए जलाया है।" आपत्ति करने वाला व्यक्ति अंदर गया, उसने बहुत कोशिश की लेकिन एक भी चिराग नहीं बुझा सका। अंत में वह मान गया। अल्लाह का शुक्र है।

संक्षेप में, निर्णय यह है कि आम लोगों की कब्रों पर रोशनी करना, जब ऊपर वर्णित जैसे लाभों में से कोई बाहरी लाभ न हो, तो यह निश्चित रूप से अपव्यय है। और अपव्यय निस्संदेह निषिद्ध है; न्यायविद (फ़ुक़हा) इसी कारण से इसे मना करते हैं। यदि कब्र को सजाना उद्देश्य है, तो कब्र सजावट की जगह नहीं है; यह तब भी अपव्यय होगा, बल्कि कुछ अधिक ही। इसी तरह, अगर कब्र का सम्मान करना उद्देश्य है - क्योंकि यहाँ अल्लाह के प्यारों के मज़ार की तरह सम्मान का संबंध नहीं है - तो वहाँ भी वही प्रतिबंध लागू होगा क्योंकि ये इरादे शरीयत में प्रशंसनीय नहीं हैं। लेकिन अगर उनकी पवित्र आत्मा का आदर और सम्मान करना उद्देश्य है, तो अब न तो यह अपव्यय है क्योंकि एक नेक इरादा मौजूद है, और न ही यह कब्र का सम्मान है, बल्कि यह प्रिय (वली) की आत्मा का सम्मान है, जो निस्संदेह शरीयत में वांछित है। इमाम अल-अजल तक़ी अल-दीन अल-सुबकी, इमाम नूर अल-दीन समहूदी और इमाम अब्दुल ग़नी नाबुलसी (अल्लाह उन पर कृपा करे) इसे जायज़ बताते हैं। किसी के दिल पर यह फैसला थोपना कि उनका उद्देश्य केवल कब्र का सम्मान करना है न कि वली की आत्मा का सम्मान करना, कोरी बकवास, दुर्भावना और कुरान के स्पष्ट आदेशों के अनुसार हराम है। अल्लाह पाक और बुलंद ने फरमाया:

[अरबी आयत]: "और उस चीज़ के पीछे न पड़ जिसका तुझे ज्ञान नहीं। निस्संदेह कान, आँख और दिल, इन सब के बारे में पूछताछ की जाएगी।" (कुरान 17:36)

अनुवाद: और उसके पीछे न पड़ जिसका तुझे ज्ञान नहीं। निस्संदेह कान, आँख, प्रत्येक से पूछताछ होगी। (टी)

और अल्लाह पाक और बुलंद ने फरमाया:

[अरबी आयत]: "हे ईमान वालो! बहुत से गुमान (संदेह) से बचो, निस्संदेह कुछ गुमान गुनाह होते हैं।" (कुरान 49:12)

अनुवाद: ऐ ईमान वालो! ज्यादा गुमान से बचो, बिलाशुबहा कुछ गुमान गुनाह हैं। (टी)

और अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) ने फरमाया: और अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) ने फरमाया:

---

1 इह्या उलूम अल-दीन, आदाब-ए-ज़ियाफ़त (अतिथि सत्कार के शिष्टाचार) पर अध्याय चार, अल-मशहद अल-हुसैनी पुस्तकालय और प्रेस, काहिरा, 12/20 2 अल-कुरान 17/36 3 अल-कुरान 49/12

فأطفئه فدخل الرجل فلم یقدر علی اطفاء واحد منها فانقطع — امام عارف باللہ استاذ ابوالقاسم قشیری قدس سرہ نے رسالہ مبارک میں ان کی نسبت فرمایا اظرف المشائخ واعقلہم بالطریقۃ (مشائخ میں سب سے زیادہ عقلمند اور طریقت کے سب سے بڑے عالم ت)

حکایت فرماتے ہیں کہ ایک بندہ صالح نے احباب کی دعوت کی اس میں ہزار ہا چراغ روشن کئے، کسی نے کہا آپ نے اسراف کیا، صاحب خانہ نے فرمایا: اندر آئیے جو چراغ میں نے غیر خدا کے لیے روشن کیا وہ گل کر دیجئے ، معترض اندر گئے ، ہر چند کوشش کی ایک چراغ بھی نہ بجھا سکے ، آخر قائل ہو گئے واللہ الحمد۔

بالجملہ حاصل حکم یہ ہے کہ قبور عامہ ناس پر روشنی جب خارج سے کوئی مصلحت مصالح مذکورہ کے امثال سے نہ ہو ضرور اسراف ہے اور اسراف بیشک ممنوع ، فقہاء اسی کو منع فرماتے ہیں ، کہ یہی علت منع بتاتے ہیں ، اور اگر زینت قبر مطلوب ہو تو قبر محل زینت نہیں ، اب بھی اسراف ہوا، بلکہ کچھ زائد ، یوں ہی اگر تعظیم قبر مقصود ہو کہ یہاں تعظیم نسبت نہیں رہے مزارات محبوبان الہ ، ان میں اگر زینت قبر یا تعظیم نفس قبر کی نیت ہو یہاں بھی وہی ممانعت رہے گی کہ یہ نیتیں شرعاً محمود نہیں ، اور اگر ان کی روحِ کریم کی تعظیم و تکریم مقصود ہو، اب نہ اسراف ہے کہ نیت صالحہ موجود ہے ، نہ تعظیم قبر ، بلکہ تعظیم روحِ محبوب ، اور وہ شرعاً بلا شبہ مطلوب ، امام اجل تقی الدین سبکی وامام نورالدین سمہودی و امام عبدالغنی نابلسی رحمہم اللہ تعالیٰ اسی کو جائز بتاتے ہیں اور کسی کے قلب پر حکم لگانا کہ اسے تعظیم قبر ہی مقصود ہے نہ کہ تعظیم روحِ ولی محض خراف وبدگمانی و حرام بنص قرآنی ہے۔ قال اللہ تبارک وتعالی :

وَلَا تَقْفُ مَا لَيْسَ لَكَ بِهِ عِلْمٌ ۚ إِنَّ السَّمْعَ وَالْبَصَرَ وَالْفُؤَادَ كُلُّ أُولَٰئِكَ كَانَ عَنْهُ مَسْئُولًا ﴿۳۶﴾ | اور اس کے پیچھے نہ پڑ جس کا تجھے علم نہیں ۔ بیشک کان ، آنکھ ہر ایک سے باز پرس ہو گی ۔ (ت)

وقال اللہ تبارک و تعالٰی :

يَا أَيُّهَا الَّذِينَ آمَنُوا اجْتَنِبُوا كَثِيرًا مِنَ الظَّنِّ إِنَّ بَعْضَ الظَّنِّ إِثْمٌ ﴿۱۲﴾ | اے ایمان والو! زیادہ گمان سے بچو، بلاشبہ بعض گمان گناہ ہیں (ت)

وقال رسول اللہ صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم | اور رسول اللہ صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم نے فرمایا:

---

1 احیاء العلوم والدین الباب الرابع من آداب الضیافۃ مکتبۃ ومطبعۃ المشہد الحسینی قاہرہ ۱۲ / ۲۰ 2 القرآن ۱۷/ ۳۶ 3 القرآن ۴۹ / ۱۲

Fatawa-e-Razvia Volume 9

"Did you then split open his heart?" [1] | So why did you not split open his heart? (T)

"And the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) said: Beware of suspicion, for suspicion is the most false of speech." [2] | And the Master of both worlds (peace and blessings of Allah be upon him) said: Avoid suspicion, for suspicion is the biggest lie. (T)

Failing to distinguish between honoring the soul and honoring the grave is profound ignorance. The saying of Arif Nabulsi has already been mentioned, and Imam Samhudi says:

"The purpose is not to honor the specific site of the grave itself, but rather the one who resides within it." [3] | Honoring the specific ground of the grave is not the intent, but rather honoring the one who is dwelling in it. (T)

Furthermore, Imam Ahmad bin Hanbal (may Allah have mercy on him) narrates in the noble Musnad with a fair (hasan) chain:

"Marwan came one day and found a man placing his face on the grave. Marwan grabbed him by his neck and said, 'Do you know what you are doing?' He turned to him and said, 'Yes, I did not come to the stone; I came to the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) and I did not come to the stone. I heard the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) say: Do not weep over the religion if its people take charge of it, but weep over the religion if its non-people take charge of it.'" [4] | Meaning, during his period of power, Marwan saw a gentleman who had placed his face on the noble grave of the Master of the World (peace and blessings of Allah be upon him). Marwan grabbed his neck and said: "Do you know what you are doing?" Upon this, that gentleman turned towards him and said: "Yes, I have not come to stone and clay; I have come into the presence of the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him). I did not come to bricks and stones. I heard the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) say: 'Do not weep over religion when those who are worthy are in charge of it; yes, weep over religion at the time when the unworthy are in charge.'"

This companion was our master Abu Ayyub al-Ansari (may Allah be pleased with him). So, failing to distinguish between the honor of the grave and the pure soul was Marwan's ignorance, which reached the Wahhabis through his legacy. And to receive the blessings of honoring the noble soul by separating it from honoring the grave...

[1] Musnad Ahmad bin Hanbal, Hadith of Usamah bin Zayd, Dar al-Fikr Beirut 5/207 [2] Sahih al-Bukhari, Chapter on the Word of Allah 'From the will etc.', Qadeemi Kutub Khana Karachi 1/382 [3] Wafa al-Wafa, Section 2 of Chapter 8, Dar Ihya al-Turath al-Arabi Beirut 4/1366 [4] Musnad Ahmad bin Hanbal, Hadith of Abi Ayyub al-Ansari, Dar al-Fikr Beirut 5/422

फ़तावा-ए-रज़विया जिल्द नहुम (9)

"क्या तुमने उसका दिल चीर कर देखा था?" [1] | तो तुमने उसका दिल क्यों नहीं चीरा? (त)

"और अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने फ़रमाया: गुमान (संदेह) से बचो, क्योंकि गुमान सबसे झूठी बात है।" [2] | और दो जहाँ के मालिक (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने फ़रमाया: गुमान से बचो कि गुमान सबसे बड़ा झूठ है। (त)

और रूह की ताज़ीम और क़ब्र की ताज़ीम में फ़र्क न करना सख़्त जहालत (अज्ञानता) है, आरिफ़ नाबुलसी का इरशाद गुज़र चुका, और इमाम समहूदी फ़रमाते हैं:

"मक़सूद (उद्देश्य) ख़ुद क़ब्र की जगह की ताज़ीम नहीं है, बल्कि उसकी ताज़ीम है जो उसमें मुक़ीम है।" [3] | ख़ास क़ब्र की ज़मीन की ताज़ीम मक़सूद नहीं, बल्कि उसकी ताज़ीम मक़सूद है जो उसमें तशरीफ़ फ़रमा है। (त)

बल्कि इमाम अहमद बिन हंबल (रहमतुल्लाह अलैहि) मसनद शरीफ़ में सनद-ए-हसन के साथ रिवायत फ़रमाते हैं:

"मर्वान एक दिन आया तो उसने एक शख़्स को देखा जो अपना चेहरा क़ब्र पर रखे हुए था, तो मर्वान ने उसकी गर्दन पकड़ी और कहा क्या तुम जानते हो कि तुम क्या कर रहे हो? तो वह उसकी तरफ़ मुतवज्जा हुए और कहा, हाँ, मैं पत्थर के पास नहीं आया, मैं तो अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) के पास आया हूँ और मैं पत्थर के पास नहीं आया। मैंने अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) को फ़रमाते सुना है: दीन पर मत रोना जब उसके अहल (योग्य लोग) उसके वाली (संरक्षक) हों, बल्कि दीन पर उस वक़्त रोना जब ना-अहल (अयोग्य) वाली हों।" [4] | यानी मर्वान ने अपने दौर-ए-इक्तदार में एक साहब को देखा कि वे सैयदे आलम (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) की मुक़द्दस क़ब्र पर अपना मुँह रखे हुए हैं। मर्वान ने उनकी गर्दन पकड़ कर कहा: जानते हो क्या कर रहे हो? इस पर उन साहब ने उसकी तरफ़ मुतवज्जा होकर फ़रमाया: हाँ, मैं संग-ओ-गुल (पत्थर और मिट्टी) के पास नहीं आया हूँ, मैं तो अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) के हुज़ूर हाज़िर हुआ हूँ, मैं ईंट-पत्थर के पास नहीं आया। मैंने अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) को फ़रमाते सुना: दीन पर मत रोओ जब उसका अहल उस पर वाली हो, हाँ उस वक़्त दीन पर रोओ जब ना-अहल वाली हो।

ये सहाबी सैयदुना अबू अय्यूब अंसारी (रज़ियल्लाहु अन्हु) थे। तो क़ब्र और रूह-ए-मुतह्ह (पवित्र आत्मा) की ताज़ीम में फ़र्क न करना मर्वान की जहालत थी और उसी की मीरास से वहाबियों तक पहुँची, और क़ब्र की ताज़ीम से जुदा होकर रूह-ए-करीम की ताज़ीम की बरकत लेना...

[1] मसनद अहमद बिन हंबल, हदीस उसामा बिन ज़ैद, दारुल फ़िक्र बेरूत 5/207 [2] सही अल-बुख़ारी, बाब कौलिल्लाह तआला मिन वसिय्यतिन अलख़, क़दीमी कुतुब ख़ाना कराची 1/382 [3] वफ़ा अल-वफ़ा, फ़स्ल 2 बाब 8, दारुल एहया अल-तुरास अल-अरबी बेरूत 4/1366 [4] मसनद अहमद बिन हंबल, हदीस अबी अय्यूब अल-अंसारी, दारुल फ़िक्र बेरूत 5/422

فتاوٰی رضویہ جلد نہم

افلا شققت عن قلبہ ۱ | تو تو نے اس کا دل کیوں نہ چاک کیا؟ (ت)

وقال صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم اِیَّاکم والظن فان الظن اکذب الحدیث ۲ | اور سرکارِ دو عالم صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم نے فرمایا: گمان سے بچو کہ گمان سب سے جھوٹی بات ہے (ت)

اور تعظیمِ رُوح اور تعظیمِ قبر میں فرق نہ کرنا سخت جہالت ہے، عارف نابلسی کا ارشاد گزرا، اور امام سمہودی فرماتے ہیں:

لیس القصد تعظیم بقعۃ القبر بعینھا بل من حل فیھا ۳ | خاص زمینِ قبر کی تعظیم مقصود نہیں بلکہ اس کی تعظیم مقصود ہے جو اس میں فروکش ہے۔ (ت)

بلکہ امام احمد بن حنبل رحمہ اللہ علیہ مسند شریف میں بسند حسن روایت فرماتے ہیں:

اقبل مروان یوماً فوجد رجلاً واضعاً وجہہ علی القبر فاخذ مروان برقبتہ ثم قال ھل تدری ماتصنع فاقبل علیہ فقال نعم انی لم آت الحجر انما جئت رسول اللہ صلی اللہ علیہ وسلم ولم آت الحجر سمعت رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم یقول لَا تَبْکُوْا عَلَی الدِّیْنِ اِذَا وَلِیَہ اَھْلُہ وَلٰکِنِ ابْکُوْا عَلَی الدِّیْنِ اِذَا وَلِیَہ غَیْرُ اَھْلِہ ۴ | یعنی مروان نے اپنے زمانہ تسلط میں ایک صاحب کو دیکھا کہ قبرِ اکرم سیدِ عالم صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم پر اپنا منہ رکھے ہوئے ہیں مروان نے ان کی گردن مبارک پکڑ کر کہا: جانتے ہو کیا کر رہے ہو؟ اس پر ان صاحب نے اس کی طرف متوجہ ہو کر فرمایا: ہاں میں سنگ و گل کے پاس نہیں آیا ہوں میں تو رسول اللہ صلی اللہ علیہ وسلم کے حضور حاضر ہوا ہوں، میں اینٹ پتھر کے پاس نہ آیا، میں نے رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم کو فرماتے سنا دین پر نہ روؤ جب اس کا اہل اس پر والی ہو، ہاں اس وقت دین پر روؤ جبکہ نااہل والی ہو۔

یہ صحابی سیدنا ابو ایوب انصاری تھے رضی اللہ تعالیٰ عنہ۔ تو تعظیمِ قبر و رُوحِ مطہر میں فرق نہ کرنا مروان کی جہالت اور اسی کے ترکہ سے وہابیہ کو پہنچی، اور تعظیمِ قبر سے جدا ہو کر تعظیمِ رُوحِ کریم کی برکت لینا

۱ مسند احمد بن حنبل حدیث اسامہ بن زید دار الفکر بیروت ۵/ ۲۰۷ ۲ صحیح البخاری باب قول اللہ تعالیٰ من وصیۃ الخ قدیمی کتب خانہ کراچی ۱/ ۳۸۲ ۳ وفاء الوفاء الفصل الثانی من الباب الثامن دار احیاء التراث العربی بیروت ۴/ ۱۳۶۶ ۴ مسند احمد بن حنبل حدیث ابی ایوب الانصاری دار الفکر بیروت ۵/ ۴۲۲

Fatawa Rizwia, Volume 9

It is the Sunnah of the noble Companions (may Allah be pleased with them). And the Ahl-us-Sunnah received their inheritance, and all praise is for Allah.

Note: The most important thing is that if Mr. Zaid understands, he should acknowledge the truth and be grateful for guidance. The ending of Zaid's writing concluded with a very heinous and terrible insult: "If someone still argues stubbornly after such a warning, the answer is that this is worth settling in the grave—Moses with his own religion, Jesus with his own religion." Zaid created two parties: one he called truthful and the other a stubborn arguer, behaving with obstinacy against divine warnings. And for this, he cited the example that "Moses with his own religion and Jesus with his own religion." If this analogy is applied, refuge is sought with Allah, what an estimation can be made of its wrath and malice! Mentioning the Prophets (peace and blessings be upon them) in such a context is severe audacity, disrespect, foul-mouthedness, and insolence. Repentance is obligatory, and Allah Almighty is the Guide.

[Table/Box Section] Left: May Allah Almighty's peace and blessings be upon our master and lord Muhammad, his family, his companions, his son, and his group. And Allah, the Glorified and Exalted, knows best. Right: May Allah Almighty send peace, greetings, and blessings upon our master and lord, Hazrat Muhammad, his family, his companions, his children, and his community. And the Pure and Exalted God knows best. (T)

Problem 150: From Benares, Thana Behlopura, Mohalla Ihata Rohilla, sent by Hafiz Abdul Rahman Rufugar, 28 Muharram 1332 AH. Question: The request to your presence is, when going to the shrines of elders, how should Fatiha be recited, and what things should be recited in Fatiha?

The Answer: In the name of Allah, the Most Gracious, the Most Merciful. We praise Him and send blessings upon His Noble Messenger. Dear Hafiz Sahib, may Allah keep you safe. When visiting a noble shrine, approach from the foot-side and stand facing the occupant at a distance of at least four cubits. With a moderate voice and respect, say: "Peace be upon you, O my master, and the mercy of Allah and His blessings." Then recite Durood Ghousiya three times, Surah Al-Fatiha once, Ayatul Kursi once, Surah Al-Ikhlas seven times, then Durood Ghousiya seven times. If time permits, recite Surah Yasin and Surah Al-Mulk as well. Then pray to Allah Almighty: "O God! Grant me such reward for this recitation which is worthy of Your generosity, not that

which is worthy of my action, and present it as an offering from me to this beloved servant of Yours." Then pray for your own legitimate and Sharia-compliant purpose and make the soul of the shrine's occupant your intermediary in the presence of Allah Almighty. Then return in this manner; do not touch the shrine nor kiss it.

फ़तावा रज़विया, खंड 9

यह सहाबा किराम (रज़ियल्लाहु अन्हुम) की सुन्नत है। और अहले सुन्नत को उनकी विरासत मिली, वल्िल्लाहिल हम्द।

चेतावनी: सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि ज़ैद साहब समझें तो बहुत कुछ सच मानेंगे, मार्गदर्शन के लिए आभारी होंगे। ज़ैद के लेखन का अंत अत्यंत जघन्य और भयानक अपमान पर हुआ कि "इतनी चेतावनी के बाद भी अगर कोई इसमें हठधर्मी करता है, तो उसका उत्तर यह है कि यह कब्र में सुलझने योग्य है—मूसा अपने धर्म के साथ, ईसा अपने धर्म के साथ।" ज़ैद ने दो पक्ष बनाए: एक को सच बताया और दूसरे को हठधर्मी करने वाला, ईश्वरीय चेतावनी के विरुद्ध हठधर्मी से पेश आने वाला। और इसके लिए उदाहरण यह दिया कि "मूसा अपने धर्म के साथ और ईसा अपने धर्म के साथ।" यदि इस उपमा को लागू किया जाए, तो अल्लाह की पनाह, इसके क्रोध और द्वेष का क्या अंदाज़ा लगाया जा सकता है! ऐसी जगह नबियों (अलैहिमुस्सलातु वस्सलाम) का उल्लेख करना घोर दुस्साहस, अनादर, अभद्र भाषा और बदज़ुबानी है। तौबा अनिवार्य है और अल्लाह तआला मार्गदर्शक है।

[बॉक्स वाला टेक्स्ट] बाएँ(अरबी): अल्लाह तआला हमारे आका और मौला मुहम्मद, उनकी आल, उनके साथियों, उनके पुत्र और उनके समूह पर दरूद और सलाम और बरकत नाज़िल फरमाए, और अल्लाह पाक और बुलंद बेहतर जानने वाला है। दाएँ(उर्दू): अल्लाह तआला हमारे आका मौला हज़रत मुहम्मद, उनकी आल, उनके असहाब (साथियों), उनके फर्ज़ंद (बच्चों) और उनकी जमाअत पर दरूद व सलाम और बरकत नाज़िल फरमाए, और खुदा-ए-पाक बरतर खूब जानने वाला है। (त)

मसला 150: बनारस, थाना बहलोपुरा, मोहल्ला इहाता रोहिल्ला से, प्रेषक हाफिज़ अब्दुल रहमान रफूगर, 28 मुहर्रम 1332 हिजरी। प्रश्न: हुज़ूर की खिदमत में अर्ज़ यह है कि जब बुज़ुर्गों के मज़ार पर जाएँ तो फातिहा किस तरह से पढ़ा करें और फातिहा में कौन-कौन सी चीज़ें पढ़ा करें?

उत्तर: बिस्मिल्लाहिर रहमानिर रहीम, हम उनकी प्रशंसा करते हैं और उनके महान रसूल पर दरूद भेजते हैं। हाफ़िज़ साहब करम फरमा सल्लमकुम, मज़ार शरीफ़ पर हाज़िर होने में पायंती (पैरों) की तरफ़ से जाएँ और कम से कम चार हाथ की दूरी पर मुवाजेहा (सामने) में खड़ा हो और औसत आवाज़ में अदब के साथ अर्ज़ करे: "अस्सलामु अलैका या सय्यदी व रहमतुल्लाहि व बरकातुहू" (ऐ मेरे आका, आप पर सलाम और अल्लाह की रहमत और उसकी बरकतें हों)। फिर दरूद गौसिया

तीन बार, अलहम्द शरीफ (सूरह फातिहा) एक बार, आयतुल कुर्सी एक बार, सूरह इखलास सात बार, फिर दरूद गौसिया सात बार पढ़ें। और समय मिले तो सूरह यासीन और सूरह मुल्क भी पढ़कर अल्लाह अज़्ज़वजल से दुआ करे कि "ऐ अल्लाह! इस क़िरात पर मुझे इतना सवाब दे जो तेरे करम के योग्य है, न कि उतना जो मेरे कर्म के योग्य है, और इसे मेरी ओर से इस मक़बूल बंदे को नज़्र पहुँचा।" फिर अपना जो भी जायज़ और शरई उद्देश्य हो उसके लिए दुआ करे और मज़ार वाले की रूह को अल्लाह अज़्ज़वजल की बारगाह में अपना वसीला बनाए। फिर इसी तरह वापस आ जाए, मज़ार को न हाथ लगाए न चूमे।

पृष्ठ 523/948

صحابہ کرام رضی اللہ تعالٰی عنہم کی سنت ہے۔ اور اہلسنت کو ان کی میراث ملی، وللہ الحمد۔ تنبیہ: سب سے زائد اہم بات یہ ہے کہ زید صاحب سمجھیں تو بہت کچھ حق مانیں، ہدایت کے شکر گزار ہوں یہ کہ تحریر زید کا خاتمہ کلمہ سخت شنیع وشتم فظیع پر ہوا کہ "اس قدر وعید کے بعد بھی کوئی شخص اس میں کٹ حجتی کرے تو اس کا جواب یہ ہے کہ یہ قبر میں تصفیہ کے قابل موسٰی بدین خود عیسٰی بدین خود۔" زید نے دو فریق بنائے ایک کہ حق پر بتایا اور دوسرے کو کٹ حجتی کرنے والا، و عید الٰہی کے مقابل ہٹ دھرمی سے پیش آنے والا۔ اور اس پر مثال وہ ڈھادی کہ موسٰی بدین خود اور عیسٰی بدین خود، اس تمثیل کی تطبیق کی جائے تو معاذ اللہ جو حاصل نکلے اس کے قہر و خباثت کا کیا اندازہ ہو سکتا ہے، ایسی جگہ انبیاء کرام علیہم الصلوٰۃ والسلام کا ذکر سخت جرات و گستاخی و بد زبانی و دریدہ دہنی ہے۔ توبہ فرض ہے اور اللہ تعالٰی ہادی،

وصلی اللہ تعالٰی علی سیدنا ومولنا محمد وآلہ وصحبہ وابنہ وحزبہ وبارک وسلم، واللہ سبحنہ وتعالٰی اعلم۔ اللہ تعالٰی ہمارے آقا مولٰی حضرت محمد، ان کی آل، ان کے اصحاب، ان کے فرزند اور ان کی جماعت پر درود و سلام اور برکت نازل فرمائے، اور خدائے پاک برتر خوب جاننے والا ہے۔ (ت)

مسئلہ ۱۵۰: از بنارس تھانہ بہلو پور محلہ احاطہ روہیلہ مرسلہ حافظ عبدالرحمن روفوگر ۲۸ محرم ۱۳۳۲ھ حضرت کی خدمت میں عرض یہ ہے کہ بزرگوں کے مزار پر جائیں تو فاتحہ کس طرح سے پڑھا کریں اور فاتحہ میں کون کون سی چیزیں پڑھا کریں؟

الجواب: بسم اللہ الرحمن الرحیم، نحمدہ ونصلی علی رسولہ الکریم حافظ صاحب کرم فرما سلمکم، مزار شریف پر حاضر ہونے میں پائنتی کی طرف سے جائے اور کم از کم چار ہاتھ کے فاصلے پر

مواجہہ میں کھڑا ہو اور متوسط آواز بادب عرض کرے السلام علیک یا سیدی ورحمۃ اللہ وبرکاتہ پھر درود غوثیہ تین بار، الحمد شریف ایک بار، آیۃ الکرسی ایک بار، سورہ اخلاص سات بار، پھر درود غوثیہ سات بار، اور وقت فرصت دے تو سورہ یٰس اور سورہ ملک بھی پڑھ کر اللہ عزوجل سے دعا کرے کہ الٰہی! اس قرات پر مجھے اتنا ثواب دے جو تیرے کرم کے قابل ہے، نہ اتنا جو میرے عمل کے قابل ہے اور اسے میری طرف سے اس بندہ مقبول کو نذر پہنچا، پھر اپنا جو مطلب جائز شرعی ہو اس کے لیے دعا کرے اور صاحب مزار کی روح کو اللہ عزوجل کی بارگاہ میں اپنا وسیلہ قرار دے، پھر اس طرح کرکے واپس آئے، مزار کو نہ ہاتھ لگائے نہ بوسہ دے

Fatawa Rizvia, Volume 9

...and circumambulation is unanimously disallowed, and prostration is forbidden. And Allah Almighty knows best.

Problem 151 & 152: From Aligarh city, Madar Gate neighborhood, sent by Umar Ahmed, cloth merchant from Banaras, 4 Rabi al-Awwal 1342 AH. What do the scholars of religion say regarding these issues: (1) When someone goes to a grave, does the deceased know that my relative or someone has come, or not? And does the deceased feel any kind of pain or comfort from a living person visiting their grave? And if they recite something and bestow the reward, does the deceased come to know of it or not? (2) Zaid used to visit a relative's grave daily, then stopped. It is sought to know whether that deceased person used to feel any kind of comfort or pain from Zaid's visits and subsequent cessation?

The Answer: (1) When someone visits a grave, the deceased sees them, hears whatever they say, and whatever reward is sent reaches them. If a relative or friend visits, the deceased feels comfort and joy, just as they did in the world. All these subjects are found in authentic Hadiths. "And We have detailed these in 'Hayat al-Amwat' in the discussion of 'Hearing of the Dead' (We have explained them in detail there). - Compiler" (2) Its answer is contained in the previous response. Indeed, the deceased feel joy from the visits of relatives and friends, and if there is a delay, they wait for them. "And there is a beautiful narration regarding this in 'Sharh al-Sudur' (by Imam Suyuti). - Compiler". And Allah Almighty knows best.

Problem 153: From Mombasa city, East Africa district, shop of Haji Qasim & Sons, enquired by Haji Abdullah Haji Yaqub, 26 Ramadan 1339 AH. What do the scholars of religion say regarding this issue: is visiting parents' graves in the cemetery better after Fajr prayer, or after Asr prayer, or after Maghrib prayer? And what is the ruling on visiting after Maghrib? Give the ruling and be rewarded.

The Answer: Visiting is permissible at all times, but one should not go to the cemetery alone at night. And the best time for visiting is on Friday after the morning prayer. And Allah Almighty knows best.

Problem 154 & 155: From Baheri, district Bareilly, Mr. Riaz-ud-Din, assistant/clerk of Hakim Maqim-ud-Din, author of 'Islam Khand', 10 Muharram al-Haram 1332 AH. What do the scholars of religion and muftis of the strong Sharia say on this issue that:

फतावा रज़विया, जिल्द नौ (9)

...और तवाफ़ (परिक्रमा) सर्वसम्मति से नाजायज है और सजदा हराम है। और अल्लाह तआला बेहतर जानता है।

मसला १५१ और १५२: अलीगढ़ शहर, मदार दरवाजा मोहल्ला, प्रेषक उमर अहमद, बनारसी कपड़ा व्यापारी, ४ रबी उल-अव्वल १३४२ हिजरी। धर्म के विद्वान इन मसलों के बारे में क्या फरमाते हैं: (१) कब्र पर जाने से मुर्दे को मालूम होता है कि मेरा कोई अज़ीज़ आया या कोई व्यक्ति आया, या नहीं मालूम होता? और ज़िंदा के मुर्दे की कब्र पर जाने से मुर्दे को किसी किस्म की तकलीफ या राहत होती है या नहीं? और अगर वह कुछ पढ़कर सवाब बख्शे तो मुर्दे को इल्म (ज्ञान) होता है या नहीं? (२) ज़ैद किसी अज़ीज़ की कब्र पर रोज़ जाता था फिर जाना बंद कर दिया, यह दरियाफ़्त (पूछना) तलब है कि उस मुर्दे को ज़ैद के आने और जाने से किसी किस्म की तकलीफ या राहत होती थी या नहीं?

उत्तर: (१) कब्र पर कोई जाए तो मुर्दा देखता है और जो कुछ कलाम (बात) करे वह सुनता है और जो सवाब पहुँचाए मुर्दे को पहुँचता है, अगर कोई अज़ीज़ या दोस्त जाए तो उसके जाने से मुर्दे को राहत और फरहत (प्रसन्नता) मिलती है, जैसे दुनिया में, ये सब विषय सही हदीसों में वर्णित हैं। "और हमने 'हयातुल अमवात' में मुर्दों के सुनने के बयान में इनको विस्तार से बयान किया है। (त)" (२) इसका जवाब पिछले सवाल के जवाब में आ गया, बेशक अज़ीज़ों और दोस्तों के जाने से मुर्दों को खुशी होती है और देर लगाने से वे उनका इंतज़ार करते हैं। "और इस सिलसिले में 'शरहुस सुदूर' (सुयूती कृत) के अंदर एक उम्दा हिकायत (कहानी) है। (त)" और अल्लाह तआला बेहतर जानता है।

मसला १५३: मोम्बासा शहर, पूर्वी अफ्रीका जिला, हाजी कासिम एंड संस की दुकान, पूछने वाले हाजी अब्दुल्ला हाजी याकूब २६ रमजान १३३९ हिजरी। धर्म के विद्वान इस मसले में क्या फरमाते हैं कि कब्रिस्तान में माँ-बाप की ज़ियारत करना फज्र की नमाज़ के बाद बेहतर है या असर की नमाज़ के बाद या मगरिब की नमाज़ के बाद? और मगरिब के बाद ज़ियारत करने का क्या हुक्म है? बयां करें और सवाब पायें।

उत्तर: ज़ियारत हर वक्त जायज़ है, मगर रात में अकेले कब्रिस्तान नहीं जाना चाहिए। और ज़ियारत का सबसे अच्छा वक्त जुमे के दिन सुबह की नमाज़ के बाद है। और अल्लाह तआला बेहतर जानता है।

मसला १५४ और १५५: बहेड़ी जिला बरेली, जनाब रियाज़ुद्दीन साहब, हकीम मुकीमुद्दीन साहब (इस्लाम खंड के लेखक) के सहायक/क्लर्क १० मुहर्रम उल-हराम १३३२ हिजरी। धर्म के विद्वान और मज़बूत शरीयत के मुफ्ती इस मसले में क्या फरमाते हैं कि:

पृष्ठ ५२४ (९४८ में से)

اور طواف بالاتفاق ناجائز ہے اور سجدہ حرام۔ واللہ تعالی اعلم مسئلہ ۱۵۱ و ۱۵۲: از شہر علی گڑھ محلہ مدار دروازہ مرسلہ عمر احمد سوداگر پارچہ بناری ۴ ربیع الاول ۱۳۴۲ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین ان مسائل میں : (۱) قبر پر جانے سے مردہ کو معلوم ہوتا ہے کہ میرا کوئی عزیز آیا یا کوئی شخص آیا، یا نہیں معلوم ہوتا اور زندہ کو مردہ کی قبر پر جانے سے مردہ کو کسی قسم کی تکلیف یا راحت ہوتی ہے یا نہیں، اور وہ کچھ پڑھ کر ثواب بخشے تو مردہ کو علم ہوتا ہے یا نہیں؟ (۲) زید قبر پر کسی عزیز کی روز جاتا تھا پھر جانا بند کردیا، یہ دریافت طلب ہے کہ اس مردہ کو زید کے آنے اور جانے سے کسی قسم کی تکلیف یا راحت ہوتی تھی یا نہیں؟ الجواب: (۱) قبر پر کوئی جائے تو مردہ دیکھتا ہے اور جو کچھ کلام کرے وہ سنتا ہے اور جو ثواب پہنچائے مردہ کو پہنچتا ہے، اگر کوئی عزیز یا دوست جائے تو اس کے جانے سے مردہ کو راحت اور فرحت ملتی ہے، جیسے دنیا میں، یہ سب مضامین صحاح احادیث میں وارد ہیں، وقد فصلنا ھا فی حیاۃ الاموات فی بیان سماع الاموات (ہم نے حیاۃ الاموات میں بیان سماع الاموات میں ان کو تفصیل سے بیان کیا ہے۔ ت) (۲) اس کا جواب سوال سابق کے جواب میں آگیا، بیشک اعزہ و احباب کے جانے سے اموات کو فرحت ہوتی ہے اور دیر لگانے سے ان کا انتظار رہتا ہے، وفیہ حکایۃ نفیسۃ في شرح الصدور (اس سلسلے میں شرح الصدور (للسیوطی) کے اندر ایک نفیس حکایت ہے۔ ت) واللہ تعالٰی اعلم مسئلہ ۱۵۳: از شہر ممباسہ ضلع شرقی افریقہ دکان حاجی قاسم اینڈ سنز مسئولہ حاجی عبداللہ حاجی یعقوب ۲۶ رمضان ۱۳۳۹ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ قبرستان میں ماں باپ کی زیارت کرنا بعد نماز فجر افضل یا بعد نماز عصر یا بعد نماز مغرب؟ اور بعد مغرب زیارت کرنا کیا حکم رکھتا ہے؟ بینوا توجروا الجواب: زیارت ہر وقت جائز ہے، مگر شب میں تنہا قبرستان

میں نہ جانا چاہیے۔ اور زیارت کا افضل وقت روزِ جمعہ بعد نماز صبح ہے۔ واللہ تعالیٰ اعلم مسئلہ ۱۵۴ و ۱۵۵: از بہیڑی ضلع بریلی جناب ریاض الدین صاحب کلف حکیم مقیم الدین صاحب مصنف اسلام کھنڈ ۱۰ محرم الحرام ۱۳۳۲ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین و مفتیان شرع متین اس مسئلہ میں کہ :

Fatawa Ridawiyya, Volume 9

(1) Zaid goes to the cemetery and recites Fatiha in such a way that first, he stands at the cemetery gate and offers the reward to the souls of all the inhabitants of the graves. Then, he stands at the grave of a specific relative or a holy person (Wali Allah), recites Fatiha, and offers the reward to each individually. Does standing at each grave separately and reciting provide more reward or joy to his relatives, such as parents, brothers, and sisters, compared to other grave dwellers? And does going to each grave individually fulfill the rights of parents and establish the status of the saint?

(2) Secondly, will the person who recites the Holy Quran and offers its reward also receive any reward? Because Zaid says that once you have recited and offered it, what is left with us? Is this correct or not? While Allah Almighty says: "Is the reward for good [anything] but good?" (1). So, does the reward for a good deed go away? Please enlighten us.

The Answer:

(1) Undoubtedly, in this case, whomever he recites a separate Fatiha for will receive more reward and greater joy. Going to the graves of parents and relatives individually will bring a sense of closeness (uns), just as in life. And attending the shrine of a saint individually is a special way of showing respect that cannot be achieved by including them in a general prayer. Zaid's action is very good. However, it is necessary to ensure that there is an established old path to the grave he specifically wants to visit. If he has to walk over other graves, it is not permitted. In such a case, he should stand at a distance by the path, face the grave, and offer the reward. Allah Almighty knows best.

(2) Zaid is wrong. He is analogizing based on worldly conditions, thinking that if one gives something to another, it is no longer with them. Matters of the hereafter are not based on such worldly analogies. It is stated in a Sahih (authentic) Hadith that one who performs Hajj on behalf of their parents, their souls will be pleased, and the person will be recorded as being righteous towards them. Both will receive the full reward of Hajj, and his own reward will not be diminished in the slightest. An example of this in the world is knowledge; the more you distribute it, others receive it, and nothing decreases from your own store; rather, it increases. Allah Almighty knows best.

Problem 156 & 157: Sent by Ali Muhammad Isa Brader, 8 Ramadan al-Mubarak 1336 AH. (1) Is it permissible to sit near a grave in the cemetery and recite the Holy Quran or Panj Surah? (2) Is it permissible to place greenery or flowers or light incense sticks on a grave?

---

(1) Al-Quran 55/60 [The footnote in the text mentions 20/56, but this verse is from Surah Ar-Rahman, 55:60] Page 525 of 948

फतावा रिज़विया, खंड 9

(1) ज़ैद कब्रिस्तान में जाकर इस तरह फातिहा पढ़ता है कि पहले कब्रिस्तान के दरवाज़े पर खड़ा होकर तमाम अहल-ए-क़ुबूर (कब्र के निवासियों) की रूहों को सवाब बख्शता है, फिर अपने किसी खास अज़ीज़ या किसी अहल-अल्लाह (अल्लाह के नेक बंदे) की कब्र पर खड़ा होकर फातिहा पढ़कर एक-एक को अलग-अलग सवाब बख्शता है। तो क्या अलग-अलग कब्र पर खड़ा होकर पढ़ने से उसके अज़ीज़ों जैसे माँ-बाप और भाई-बहनों आदि को दूसरे अहल-ए-क़ुबूर के मुकाबले में कुछ सवाब या खुशी ज़्यादा होगी या नहीं? और इस तरह अलग-अलग कब्र पर जाने से माँ-बाप का हक और वली का मर्तबा (मकाम) साबित होता है या नहीं?

(2) दूसरा यह कि क़ुरआन मजीद पढ़कर बख्शने वाले को भी कुछ सवाब मिलेगा या नहीं? क्योंकि ज़ैद कहता है कि जब पढ़कर बख्श चुके तो फिर हमारे पास क्या बचा। क्या यह सही है या नहीं? जबकि अल्लाह तआला फरमाता है: "भलाई का बदला भलाई के सिवा और क्या है?" (1) तो क्या एहसान का बदला एहसान भी जाता रहा? जवाब अता फरमाएं।

अल-जवाब (उत्तर):

(1) निस्संदेह इस सूरत में जिसके लिए भी वह अलग से फातिहा पढ़ेगा, उसे सवाब ज़्यादा पहुँचेगा और खुशी ज़्यादा होगी। माँ-बाप और रिश्तेदारों की कब्र पर अलग-अलग जाने से वैसे ही सुकून और लगाव (उन्स) हासिल होगा जैसे उनकी ज़िंदगी में होता था। और किसी वली के मज़ार पर अलग से हाज़िर होने में उनका खास सम्मान (ताज़ीम) है जो कि एक आम दुआ में शामिल करने से हासिल नहीं हो सकती। ज़ैद का यह अमल बहुत अच्छा है, लेकिन इस बात का ध्यान रखना ज़रूरी है कि जिस कब्र के पास वह खास तौर पर जाना चाहता है, वहाँ तक पहुँचने का कोई पुराना रास्ता हो। अगर कब्रों के ऊपर से होकर जाना पड़े तो इसकी इजाज़त नहीं है। ऐसी स्थिति में रास्ते के किनारे दूर खड़े होकर एक कब्र की तरफ ध्यान करके सवाब पहुँचा दे। वल्लाह तआला आलम (अल्लाह बेहतर जानता है)।

(2) ज़ैद गलत कहता है। वह दुनियावी हालात पर कयास (अंदाज़ा) लगाता है कि एक चीज़ दूसरे को दे दें तो अपने पास नहीं रहती। वहाँ की बातें यहाँ के कयास पर नहीं हैं। सही हदीस में फरमाया गया है कि जो अपने माँ-बाप की तरफ से हज करे, उनकी रूहें खुश होंगी और उसे उनके साथ नेकी करने वाला लिखा जाएगा और दोनों को पूरे हज का सवाब मिलेगा, और उसके सवाब में से कुछ भी

कम नहीं होगा। दुनिया में इसकी मिसाल 'इल्म' (ज्ञान) है कि जितना इसे दूसरों में बांटो, उतना ही दूसरों को मिलता है और अपने पास से कुछ घटता नहीं, बल्कि बढ़ जाता है। वल्लाह तआला आलम।

मसला 156 और 157: जानिब अली मुहम्मद ईसा बिरादर, 8 रमज़ानुल मुबारक 1336 हिजरी। (1) कब्रिस्तान में कलाम-ए-पाक या पंज सूरा कब्र के पास बैठकर तिलावत करना जायज़ है या नहीं? (2) कब्र पर हरियाली या फूल रखना या अगरबत्ती जलाना जायज़ है या नहीं?

---

(1) अल-कुरान 55/60 [मूल पाठ के फुटनोट में 20/56 उल्लेखित है, पर यह आयत सूरह अर-रहमान, 55:60 की है] पृष्ठ 525/948

فتاویٰ رضویہ، جلد نہم

(۱) زید قبرستان میں جاکر اس طرح پر فاتحہ پڑھتا ہے کہ اول قبرستان کے دروازے پر کھڑے ہو کر تمام اہل قبور کی ارواح کو ثواب بخشتا ہے پھر اپنے کسی عزیز خاص یا کسی اہل اللہ کی قبر پر کھڑے ہو کر فاتحہ پڑھ کر ایک ایک کو جدا جدا ثواب بخشتا ہے تو کیا جدا جدا قبر پر کھڑے ہو کر پڑھنے سے اس کے عزیز جیسے والدین و بھائی بہن وغیرہ کو کچھ ثواب یا فرحت بہ نسبت دیگر اہل قبور کے زیادہ ہوگا یا نہیں؟ اور اس جدا جدا قبر پر جانے سے والدین کا حق اور ولی کا مرتبہ ثابت ہوتا ہے یا نہیں؟

(۲) دوسرے یہ کہ قرآن مجید پڑھ کر بخشنے والے کو بھی کچھ ثواب ملے گا یا نہیں؟ کیونکہ زید کہتا ہے کہ جب پڑھ کر بخش چکے تو پھر ہمارے پاس کیا رہ گیا۔ آیا یہ صحیح ہے یا نہیں؟ اور اللہ تعالیٰ فرماتا ہے : هَلْ جَزَاءُ الْإِحْسَانِ إِلَّا الْإِحْسَانُ (۱) تو کیا احسان کا بدلہ احسان بھی جاتا رہا۔ توجروا۔

الجواب:

(۱) بلاشبہ اس صورت میں جس جس کے لیے جدا فاتحہ پڑھے گا اسے ثواب زائد پہنچے گا اور فرحت زیادہ ہوگی، اور والدین واعزہ کی قبر پر جدا جدا جانے سے انس حاصل ہوگا جیسے حیات میں۔ اور ولی کے مزار پر جدا حاضر ہونے میں اس کی خاص تعظیم ہے جو ایک عام بات میں شامل کرنے سے نہیں ہوسکتی، زید کا یہ فعل بہت حسن ہے، مگر اس کا لحاظ لازم ہے کہ جس قبر کے پاس بالخصوص جانا چاہتا ہے اس تک قدیم راستہ ہو، اگر قبروں پر سے ہو کر جانا پڑے تو

اجازت نہیں، سر راہ دور کھڑے ہو کر ایک قبر کی طرف متوجہ ہو کر ایصال ثواب کر دے۔ واللہ تعالیٰ اعلم

(۲) زید غلط کہتا ہے وہ دنیا کی حالت پر قیاس کرتا ہے کہ ایک چیز دوسرے کو دے دیں تو اپنے پاس ہی نہ رہے۔ وہاں کی باتیں یہاں کے قیاس پر نہیں۔ صحیح حدیث میں فرمایا کہ جو اپنے ماں باپ کی طرف سے حج کرے ان کی روحیں شاد ہوں، اور یہ ان کے ساتھ نیکو کار لکھا جائے اور دونوں کو پورے حج کا ثواب ملے اور اس کے ثواب سے کچھ کم نہ ہو، اسکی نظیر دنیا میں علم ہے کہ جتنا تقسیم کیجئے اوروں کو ملتا ہے اور اپنے پاس سے کچھ نہیں گھٹتا بلکہ بڑھ جاتا ہے۔ واللہ تعالیٰ اعلم

مسئلہ ۱۵۶ و ۱۵۷: از منجان مرسلہ علی محمد عیسٰی برادر ز ۸ رمضان المبارک ۱۳۳۶ھ (۱) قبرستان میں کلام شریف یا پنج سورہ قبر کے نزدیک بیٹھ کر تلاوت کرنا جائز ہے یا نہیں؟ (۲) قبر پر سبزی یا پھول یا اگر بتی رکھنا، جلانا جائز ہے یا نہیں؟

---

(۱) القرآن ۲۰/۵۶ [یہ آیت سورہ الرحمٰن ، آیت ۶۰ کی ہے] صفحہ ۵۲۵ از ۹۴۸

Fatawa Razawiyya, Volume 9

The Answer: (1) Reciting Quran near a grave, whether from memory or by looking at it, is permissible in every way as long as it is for the sake of Allah. However, one should not sit on a grave, nor should one reach a particular grave by stepping on other graves. If it is impossible to reach without doing so, then going near the grave for recitation is forbidden; instead, one should recite from the edge, from as far as one can go without trampling any grave. It is stated in Durr-e-Mukhtar:

It is disliked to walk on a path in a graveyard that is suspected to be newly created. Even if one cannot reach their deceased's grave except by trampling another grave, one should abandon going there.

Burying at night and making reciters sit near the grave is not disliked; this is the chosen opinion. And Allah knows best.

Placing greenery and flowers on the grave is good. It is stated in Alamgiri: "Placing roses and fragrant plants on graves is good." (2) Placing flowers like roses etc. on graves is good. It is stated in Radd-al-Muhtar:

It is derived from this (i.e., as long as it remains fresh, it glorifies Allah, providing comfort to the deceased, and mercy descends through His remembrance) and from the Hadith that it is recommended (Mandub) to place such things following the practice. By analogy, this also applies to the custom in our times of placing branches of myrtle (Aas) etc. (3)

As long as the flower remains fresh, it glorifies Allah Ta'ala, comforting the heart of the deceased, and mercy descends through the remembrance of God. From this and in terms of following the Holy Hadith, its being recommended (mandub) is derived. The same analogy applies to the custom of placing branches of myrtle etc. in our times.

Incense sticks should not be burnt by placing them on top of the grave, as this is a mark of disrespect and an ill omen. It is stated in Alamgiri: "Indeed, the roof of the grave is the right of the deceased." (4) (The roof of the grave is the right of the deceased). Yes, light them on empty ground near the grave, as fragrance is beloved. And Allah knows best.

1. Durr-e-Mukhtar, Chapter on Funeral Prayer, Mujtabai Press, Delhi, 1/126.
2. Fatawa Hindiyya, Chapter Sixteen on Visiting Graves, etc., Noorani Kutub Khana, Peshawar, 5/331.

3. Radd-al-Muhtar, Discussion on placing branches etc. on graves, Egyptian Printing Press, Egypt, 1/607.
4. Fatawa Hindiyya, Chapter Sixteen on Visiting Graves, etc., Noorani Kutub Khana, Peshawar, 5/351.

फ़तावा रज़विया, जिल्द नौ (9)

उत्तर: (१) कब्र के पास तिलावत (कुरान पाठ) याद से हो या देखकर, हर तरह से जायज़ है जब तक कि यह अल्लाह के लिए हो। और कब्र पर न बैठे, न ही किसी कब्र पर पैर रखकर वहां पहुँचना चाहिए। और अगर इसके बिना वहां तक न पहुँचा जा सके, तो तिलावत के लिए कब्र के पास जाना हराम (वर्जित) है, बल्कि किनारे ही से जहां तक बिना किसी कब्र को रौंदे जाया जा सकता है, तिलावत करे। 'दुर्र-ए-मुख्तार' में है:

कब्रिस्तान के अंदर ऐसे रास्ते पर चलना मना है जिसके बारे में गुमान (संदेह) हो कि वह नया बना लिया गया है। यहाँ तक कि जब अपनी मय्यत (मृतक) की कब्र तक किसी दूसरी कब्र को पामाल (रौंदना) किए बिना न पहुँचा जा सके, तो वहां तक जाना छोड़ दे।

रात को दफन करना और कब्र के पास तिलावत करने वालों को बिठाना मकरूह (नापसंद) नहीं है, यही मुख्तार (पसंदीदा मत) है। और अल्लाह तआला बेहतर जानता है।

कब्र पर सब्ज़ी (हरियाली) या फूल डालना अच्छा है। 'आलमगीरी' में है: "कब्रों पर गुलाब और खुशबूदार पौधे रखना अच्छा है।" (२) कब्रों पर गुलाब वगैरह के फूल रखना अच्छा है। 'रद्दुल मुहतार' में है:

इससे यह लिया जाता है (अर्थात जब तक वह तर/ताज़ा रहता है, अल्लाह तआला की तस्बीह करता है जिससे मय्यत को सुकून मिलता है और उसके ज़िक्र से रहमत नाज़िल होती है) और हदीस से पैरवी के तौर पर इसका मंदूब (पसंदीदा) होना निकलता है। इसी पर क़ियास (अनुमान) किया जाएगा जो हमारे ज़माने में आस (मेंहदी या खुशबूदार झाड़ी) वगैरह की टहनियाँ रखने का दस्तूर है। (३)

फूल जब तक तर रहता है, अल्लाह तआला की तस्बीह करके मय्यत का दिल बहलाता है, और खुदा के ज़िक्र से रहमत नाज़िल होती है। इस बात से और हदीस पाक के इत्तेबा (अनुसरण) के लिहाज़ से इसका मंदूब होना साबित होता है। इसी पर कयास भी होगा जो हमारे ज़माने में आस वगैरह की शाखें रखने का दस्तूर है।

अगरबत्ती कब्र के ऊपर रखकर न जलाई जाए कि इसमें अदब की कमी और बद-फ़ाली (अशकुन) है। 'आलमगीरी' में है: "बेशक कब्र की छत मय्यत का हक है।" (४) (कब्र की छत मय्यत का हक है)।

हाँ, कब्र के करीब खाली ज़मीन पर रखकर सुलगाएं क्योंकि खुशबू महबूब (पसंदीदा) है। और अल्लाह तआला बेहतर जानता है।

1. दुर्र-ए-मुख्तार, बाब सलातुल जनाइज़, मत्व-ए-मुजतबाई, दिल्ली, १/१२६।
2. फ़तावा हिंदिया, अल-बाब-अस्सादिसा अश्अरा फ़ी ज़ियारतिल कुबूर आदि, नूरानी कुतुब खाना, पेशावर, ५/३३१।
3. रद्दुल मुहतार, मतलब वज़-अल-जरीद व नहवाहु अलल कुबूर, इदारा-अत-तिबा-अल-मिसरिया, मिस्र, १/६०७।
4. फ़तावा हिंदिया, अल-बाब-अस्सादिसा अश्अरा फ़ी ज़ियारतिल कुबूर आदि, नूरानी कुतुब खाना, पेशावर, ५/३५१।

فتاوٰی رضویہ جلد نہم

الجواب: (۱) قبر کے پاس تلاوت یاد پر خواہ دیکھ کر ہر طرح جائز ہے جبکہ لوجہ اللہ ہو، اور قبر پر نہ بیٹھے، نہ کسی قبر پر پاؤں رکھ کر وہاں پہنچنا ہو، اور اگر بے اس کے وہاں تک نہ جاسکے تو قبر کے نزدیک تلاوت کے لیے جانا حرام ہے، بلکہ کنارے ہی سے جہاں تک بے کسی قبر کو روندے جاسکتا ہے، تلاوت کرے، در مختار میں ہے:

یکرہ المشی فی طریق ظن انہ محدث حتی اذالم یصل الی قبرہ الابوطئ قبر ترکہ لایکرہ الدفن لیلا ولااجلاس القارئین عند القبر وھو المختار ۱۔ واللہ تعالٰی اعلم

قبرستان کے اندر ایسے راستے پر چلنا ممنوع ہے جس کے بارے میں گمان ہو کہ وہ نیا بنالیا گیا ہے یہاں تک کہ جب اپنی میت کی قبر تک کسی دوسری قبر کو پامال کئے بغیر نہ پہنچ سکتا ہو تو وہاں تک جانا ترک کرے۔ رات کو دفن کرنا اور قبر کے پاس تلاوت کرنے والوں کو بٹھانا مکروہ نہیں، یہی مختار ہے۔ واللہ تعالٰی اعلم (ت)

قبر پر سبزی پھول ڈالنا اچھا ہے۔ عالمگیری میں ہے: وضع الورد والریاحین علی القبور حسن ۲۔

قبروں پر گلاب وغیرہ کے پھول رکھنا اچھا ہے (ت) ردالمحتار میں ہے:

یؤخذ من ذلك (ای من انه مادام رطباً یسبح اللہ تعالٰی فیونس المیت وتنزل بذکرہ الرحمۃ) ومن الحدیث ند با وضع ذلك للاتباع ویقاس علیه مااعتید فی زماننا من وضع اغصان الآس ونحوہ ۳.

پھول جب تک تر رہتا ہے اللہ تعالٰی کی تسبیح کرکے میت کا دل بہلاتا ہے، اور خدا کے ذکر سے رحمت نازل ہوتی ہے۔ اس بات سے اور حدیث پاک کے اتباع کے لحاظ سے اس کا مندوب ہونا اخذ ہوتا ہے۔ اسی پر قیاس بھی ہوگا جو ہمارے زمانے میں آس وغیرہ کی شاخیں رکھنے کا دستور ہے۔ (ت)

اگر بتی قبر کے اوپر رکھ کر نہ جلائی جائے کہ اس میں سوءِ ادب اور بد فالی ہے۔ عالمگیری میں ہے: ان سقف القبر حق المیت ۴ (قبر کی چھت حق میت ہے۔ت) ہاں قریب قبر زمین خالی پر رکھ کر سلگائیں کہ خوشبو محبوب ہے۔ واللہ تعالٰی اعلم۔

۱ در مختار باب صلوۃ الجنائز مطبع مجتبائی دہلی ۱/ ۱۲۶ ۲ فتاوٰی ہندیہ الباب السادس عشر فی زیارۃ القبور الخ نورانی کتب خانہ پشاور ۵/ ۳۳۱ ۳ ردالمحتار مطلب وضع الجرید و نحو الآن علی القبور ادارۃ الطباعۃ المصریہ مصر ۱/ ۶۰۷ ۴ فتاوٰی ہندیہ الباب السادس عشر فی زیارۃ القبور الخ نورانی کتب خانہ پشاور ۵/ ۳۵۱

Fatawa Rizwia Volume Nine

Problem 158: From Moradabad, Mohalla Asalatpura, asked by Kard Ali Sahib 5 Muharram 1339 AH What do the scholars of religion say regarding this matter: Is it permissible to sit on a grave and recite the Holy Quran? Also, how is it to recite the Quran keeping it in front (of oneself)?

The Answer: Recitation should be done while sitting in front of the grave, whether by memory or by looking at the Holy Quran; mercy descends upon it, and the deceased's heart is comforted. However, sitting on the grave is not permissible as it is a dishonor and a cause of distress to the deceased. And Allah Almighty knows best.

Problem 159 to 161: From village Bakka Jibi Wala, area Jagal, Police Station Bari Pur, Post Office Kot Najibullah Khan, sent by Maulvi Sher Muhammad Khan, 23 Ramadan al-Mubarak 1311 AH. What do the religious scholars say on these matters: (1) What is the ruling on kissing the grave? (2) How is it to circumambulate (perform Tawaf of) the grave? (3) To what extent is it permissible to raise the height of the grave?

The Answer: (1) Some scholars grant permission and also cite certain narrations; it is stated in Kashf al-Ghita: In 'Kifayat al-Sha'bi', a tradition regarding the permissibility of kissing the graves of parents is quoted and it is said that there is no harm in this case. The Great Sheikh, in the commentary of 'Mishkat', also hinted at its occurrence in some traditions without raising any objection to it. (T)

But the majority of scholars consider it disliked (Makruh), so it is necessary to abstain from it; it is in Ash'at al-Lam'at: One should not touch the grave with hands, nor kiss it. (T) It is in Kashf al-Ghita: Similarly is mentioned in common books. (T)

1. Kashf al-Ghita, Chapter 10, Visiting the Graves, Ahmadi Press Delhi, p. 97
2. Ash'at al-Lam'at, Chapter on Visiting Graves, Maktaba Nooria Rizwia Sukkur, 1/617
3. Kashf al-Ghita, Chapter 10, Visiting the Graves, Ahmadi Press Delhi, p. 97

फ़तावा रज़विया जिल्द नौ (9)

मसाला 158: मुरादाबाद, मोहल्ला असालतपुरा से, कारद अली साहिब द्वारा पूछा गया 5 मुहर्रम 1339 हिजरी धर्म के विद्वान इस मसले में क्या कहते हैं कि क्या कब्र पर बैठकर कुरान शरीफ पढ़ना जायज़ है या नहीं? और कुरान शरीफ सामने रखकर पढ़ना कैसा है?

उत्तर: कब्र के सामने बैठकर तिलावत की जाए, चाहे हिफ्ज़ (कंठस्थ) हो या कुरान मजीद को देखकर, उस पर रहमत उतरती है और मृत व्यक्ति का दिल बहलता है। लेकिन कब्र पर बैठना जायज़ नहीं है क्योंकि यह मृत व्यक्ति का अपमान और उसे कष्ट पहुँचाना है। और अल्लाह तआला बेहतर जानता है।

मसाला 159 से 161: ग्राम बक्का जीबी वाला, इलाका जागल, थाना बरीपुर, डाकखाना कोट नजीबुल्लाह खान से, मौलवी शेर मोहम्मद खान द्वारा प्रेषित, 23 रमजान-उल-मुबारक 1311 हिजरी। धर्म के विद्वान इन मसलों में क्या कहते हैं: (1) कब्र को चूमने का क्या हुक्म है? (2) कब्र का तवाफ़ (परिक्रमा) करना कैसा है? (3) कब्र को कितना ऊँचा करना जायज़ है?

उत्तर: (1) कुछ विद्वान अनुमति देते हैं और कुछ रिवायतें भी उद्धृत करते हैं, 'कश्फ़ अल-ग़िता' में है: 'किफ़ायत अल-शअबी' में माता-पिता की कब्र को चूमने के बारे में एक असर (रिवायत) नक़ल किया गया है और कहा गया है कि इस सूरत में कोई हर्ज नहीं है। और महान शेख ने भी 'मिशकात' की शरह (व्याख्या) में कुछ आसार में इसके आने का इशारा किया और उस पर कोई ऐतराज नहीं किया। (त)

लेकिन अधिकांश विद्वान इसे मकरूह (नापसंद) मानते हैं, इसलिए इससे बचना ही चाहिए, 'अशअतुल लम्आत' में है: कब्र को हाथ न लगाए और न ही उसे चूमे। (त) 'कश्फ़ अल-ग़िता' में है: ऐसा ही आम किताबों में है। (त)

1. कश्फ़ अल-ग़िता, दसवां अध्याय, कब्रों की ज़ियारत, अहमदी प्रेस दिल्ली, पृष्ठ 97
2. अशअतुल लम्आत, कब्रों की ज़ियारत का अध्याय, मकतबा नूरिया रज़विया सुक्कुर, 1/617
3. कश्फ़ अल-ग़िता, दसवां अध्याय, कब्रों की ज़ियारत, अहमदी प्रेस दिल्ली, पृष्ठ 97

पृष्ठ 527 / 948

فتاوٰی رضویہ جلد نہم

مسئلہ ۱۵۸: از مراد آباد محلہ اصالت پورہ مسئولہ کارد علی صاحب ۵ محرم ۱۳۳۹ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ پڑھنا قرآن شریف کا قبر پر بیٹھ کر جائز ہے یا نہیں؟ و نیز قرآن شریف سامنے رکھ کر پڑھنا کیسا ہے؟

الجواب: قبر کے سامنے بیٹھ کر تلاوت کی جائے، حفظ خواہ قرآن مجید دیکھ کر، اس کی رحمت اترتی ہے، اور مردہ کا دل بہلتا ہے مگر قبر پر بیٹھنا جائز نہیں کہ میت کی توہین و ایذا ہے۔ واللہ تعالٰی اعلم۔

مسئلہ ۱۵۹ تا ۱۶۱: از موضع بکہ جیبی والا علاقہ جاگل تھانہ بری پور ڈاکخانہ کوٹ نجیب اللہ خاں مرسلہ مولوی شیر محمد خاں ۲۳ رمضان المبارک ۱۳۱۱ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین ان مسائل میں: (۱) بوسہ قبر کا کیا حکم ہے؟ (۲) قبر کا طواف کرنا کیسا ہے؟ (۳) قبر کس قدر بلند کرنی جائز ہے؟

الجواب: (۱) بعض علماء اجازت دیتے ہیں اور بعض روایات بھی نقل کرتے ہیں، کشف الغطاء میں ہے: کفایہ الشعبی میں قبر والدین کو بوسہ دینے کے بارے میں ایک اثر نقل کیا ہے اور کہا ہے کہ اس صورت میں کوئی حرج نہیں۔ اور شیخ بزرگ نے بھی شرح مشکوٰۃ میں بعض آثار میں اس کے وارد ہونے کا اشارہ کیا اور اس پر کوئی جرح نہ کی۔ (ت)

مگر جمہور علماء مکروہ جانتے ہیں، تو اس سے احتراز ہی چاہئے، اشعۃ اللمعات میں ہے: قبر کو ہاتھ نہ لگائے، نہ ہی بوسہ دے۔ (ت) کشف الغطاء میں ہے: کذا فی عامۃ الکتب ۳ (ایسا ہی عامہ کتب میں ہے۔ ت)

1 کشف الغطاء فصل دہم زیارت قبور مطبع احمدی دہلی ص ۹۷ 2 اشعۃ اللمعات باب زیارۃ القبور مکتبہ نوریہ رضویہ سکھر ۱/ ۶۱۷ 3 کشف الغطاء فصل دہم زیارت قبور مطبع احمدی دہلی ص ۹۷

Fatawa Razawiyya, Volume 9

In Madarij-un-Nubuwwah, it is mentioned: Regarding kissing the graves of parents, a narration from Bayhaqi is mentioned, but the correct view is that it is not permissible. And Allah knows best. (T) (2) Some scholars have allowed it. It is stated in Majma-ul-Barakat: It is possible for him to circumambulate the grave three times. (T) However, the preferred view is that it is forbidden. Mullah Ali Qari writes in Mansik-e-Mutawassit: Circumambulation (Tawaf) is one of the specific features of the Noble Kaaba, therefore circumambulating the graves of Prophets and Saints is forbidden. (T) But to declare it absolute polytheism (shirk), as is the claim of the Wahhabi sect, is purely false, incorrect, and a slander against the pure Shariah. (3) A hand-span or a little more. In Ad-Durr al-Mukhtar: It should be humped to the extent of a hand-span. In Radd al-Muhtar: Or slightly more, Bada'i. (T) Excessive height is disliked (Makruh). It is stated in Al-Hilyah: The dislike is attributed to excessive height, and the lack of dislike is attributed to a small increase which is about the size of four fingers or slightly more. And Allah knows best. (T) And Allah Almighty knows best.

1. Madarij-un-Nubuwwah, mention of the Prophet (PBUH) praying behind Abu Bakr etc., Maktaba Nooria Razavia Beirut 2/424.
2. Majma-ul-Barakat.
3. Mansik-e-Mutawassit with Irshad-us-Sari, chapter "And let him seize the days of his stay" etc., Dar-ul-Kutub al-Ilmiyah Beirut, p. 342.
4. Durr-e-Mukhtar, chapter of funeral prayers, Matba' Mujtabai Delhi 1/125.
5. Radd-ul-Muhtar, chapter of funeral prayers, Idara-tut-Tab'at-ul-Misriyya Egypt 1/601.
6. Hilyah al-Mahalli Sharh Munyat al-Musalli.

फ़तावा रज़विया, जिल्द 9

मदारिज-उन-नुबुव्वा में है: माता-पिता की कब्रों को चूमने के बारे में बैहक़ी की एक रिवायत का ज़िक्र है, लेकिन सही बात यह है कि यह जायज़ नहीं है। और अल्लाह बेहतर जानता है। (त) (2) कुछ विद्वानों ने इसकी अनुमति दी है। मजमा-उल-बरकात में है: वह कब्र के चारों ओर तीन बार चक्कर (तवाफ़) लगा सकता है। (त) लेकिन सही राय यह है कि यह वर्जित है। मुल्ला अली क़ारी मंसिक-ए-मुतवस्सिट में लिखते हैं: तवाफ़ पवित्र काबा की विशिष्टताओं में से एक है, इसलिए नबियों और वलियों की कब्रों के चारों ओर तवाफ़ करना हराम होगा। (त) लेकिन इसे पूर्णतः शिर्क(बहुदेववाद) घोषित कर देना, जैसा कि वहाबी गुट का दावा है, पूरी तरह से असत्य, गलत और पाक शरीयत पर आरोप है। (3) एक बिलाँद (हाथ की लंबाई) या कुछ अधिक। अल-दुर्रुल मुख्तार में: इसे एक बिलाँद की मात्रा तक कूबड़ की तरह बनाया जाए। रद्दुल मुह्तार में: या थोड़ा अधिक, बदाइ। (त) अत्यधिक ऊंचाई मकरूह (नापसंद) है। अल-हिल्या में है: नापसंदगी अत्यधिक ऊंचाई पर आधारित है, और नापसंदगी का अभाव उस थोड़ी वृद्धि पर है जो चार अंगुलियों की मात्रा के बराबर हो या उससे कुछ अधिक हो। और अल्लाह बेहतर जानता है। (त) और अल्लाह तआला बेहतर जानता है।

1. मदारिज-उन-नुबुव्वा, नबी (स.अ.व.) द्वारा अबू बक्र आदि के पीछे नमाज़ पढ़ने का ज़िक्र, मकतबा नूरिया रज़विया बेरूत 2/424।
2. मजमा-उल-बरकात।
3. मंसिक-ए-मुतवस्सिट साथ इरशाद-उस-सारी, अध्याय "और वह अपने ठहरने के दिनों का लाभ उठाए" आदि, दार-उल-कुतुब अल-अरबी बेरूत, पृष्ठ 342।
4. दुर्र-ए-मुख्तार, जनाज़ा की नमाज़ का अध्याय, मतबा मुजतबाई दिल्ली 1/125।
5. रद्द-उल-मुह्तार, जनाज़ा की नमाज़ का अध्याय, इदारा-तुत-तबात-उल-मिस्रिया मिस्र 1/601।
6. हिल्या अल-महल्ली शरह मुन्यात अल-मुसल्ली।

पेज 528 का 948

فتاوٰی رضویہ، جلد نہم

مدارج النبوۃ میں ہے: در بوسہ دادن قبر والدین روایت بیہقی می کنند و صحیح آنست کہ لا یجوز است 1، واللہ تعالٰی اعلم قبر والدین کو بوسہ دینے کے بارے میں ایک روایت بیہقی ذکر کرتے ہیں مگر صحیح یہ ہے کہ ناجائز ہے (ت) (۲) بعض علماء نے اجازت دی۔ مجمع البرکات میں ہے: ویمکنہ ان یطوف حولہ ثلث مرات فعل ذلك 2 گرد قبر تین بار طواف کرسکتا ہے۔ (ت) مگر راجح یہ کہ ممنوع ہے۔ مولانا علی قاری منسک متوسط میں تحریر فرماتے ہیں: الطواف من مختصات الکعبۃ المنیفۃ فیحرم حول قبور الانبیاء والاولیاء 3۔ طواف کعبہ کی خصوصیات سے ہے انبیاء و اولیاء کی قبروں کے گرد حرام ہوگا۔ (ت) مگر اسے مطلقاً شرک ٹھہرا دینا جیسا کہ طائفہ وہابیہ کا مزعوم ہے محض باطل و غلط اور شریعتِ مطہرہ پر افتراء ہے۔ (۳) ایک بالشت یا کچھ زائد۔ فی الدر المختار یسنم قدر شبر 4 فی ردالمحتار او اکثر شیئاً قلیلا بدائع 5۔ ایک بالشت کی مقدار کوہان کی طرح بنادی جائے (درمختار) یا کچھ زیادہ کردی جائے، بدائع (ردالمحتار) (ت) زیادہ فاحش بلندی مکروہ ہے۔ حلیہ میں ہے: تحمل الکراھۃ علی الزیادۃ الفاحشۃ وعدمھا علی القلیلۃ المبلغۃ لہ مقدار اربع اصابع او ما فوقہ قلیل 6۔ واللہ تعالٰی اعلم کراہت بہت زیادہ اونچی کرنے پر محمول ہے، اور عدمِ کراہت قلیل زیادتی پر جو ایک بالشت کی مقدار ہو یا اس سے کچھ زائد۔ واللہ تعالٰی اعلم (ت) واللہ تعالٰی اعلم

1 مدارج النبوۃ ذکر نماز گزاردن آنحضرت صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم خلف ابو بکر الخ مکتبہ نوریہ رضویہ بیروت ۲/ ۴۲۴ 2 مجمع البرکات 3 منسک متوسط مع ارشاد الساری فصل و لیغتنم ایام مقامہ الخ دارالکتب العربی بیروت ص ۳۴۲ 4 درمختار باب صلوۃ الجنائز مطبع مجتبائی دہلی ۱/

١٢٥ 5 ردالمحتار باب صلوة الجنائز ادارة الطباعة المصرية مصر ١/ ٦٠١ 6 حليه لمحلى شرح منية المصلى

Fatawa Razawiyya Volume 9

Issue: From Qadri Ganj, District Birbhum, Bengal, sent by Syed Zahoor-ul-Hassan Sahib Qadri Razzaqi Murshidi Karnali, 22 Jumada al-Ula 1336 AH. Question: Is it permissible to circumambulate (tawaf) the shrine of one's spiritual guide (pir-o-murshid), kiss the threshold of the shrine and touch it to the eyes, and return from the shrine by walking backwards with hands folded? The Answer: Circumambulating a shrine solely with the intention of veneration is impermissible, as veneration through circumambulation (tawaf) is reserved specifically for the House of Allah (the Kaaba). One should not kiss the grave (mazar); scholars hold differing views on this. It is better to avoid it, and there is more respect in doing so. However, there is no harm in kissing the threshold, and touching it to the eyes is also permissible since no prohibition for it has come in Shariah. And what the Shariah has not prohibited cannot be made prohibited. Allah Almighty says: "Command belongs only to Allah"[1] (Al-Quran 12:40). Returning with hands folded and walking backwards is a form of respect. There is no harm in a form of respect that Shariah has not forbidden. Yes, if there is a risk of harm to oneself or others in it, then it should be avoided. And Allah Almighty knows best.

Issue 163: What is the ruling on calling the kissing of the shrines of the noble saints (Awliya-e-Kiram), may Allah have mercy upon them, as disbelief (kufr) or polytheism (shirk)? The Answer: In reality, scholars differ regarding kissing a grave. The research on this is that it is a matter revolving between two things: a motivator and a prohibitor. The motivator is love, and the prohibitor is respect. So, for one who is overwhelmed by love, there is no accountability, as this is proven from the senior companions (Sahaba), may Allah be pleased with them. For common people, prohibition is more cautious (ahwat). Our scholars state that one should stand at a distance of at least four hands from the shrines of great personalities; so then, what room is there for kissing! The scholar of Medina, Allama Syed Nur-ud-Din Samhudi (may his secret be sanctified), in 'Khulasat al-Wafa' Sharif, after quoting statements prohibiting the touching, kissing, and circumambulating of the wall of the luminous shrine, says:

In the book 'Al-Ilal wal-Mas'ulat' of Abdullah bin Ahmad bin Hanbal: I asked my father about a man who touches the pulpit (minbar) of the Prophet, peace and blessings be upon him...

That is, Imam Abdullah, the son of Imam Ahmad bin Hanbal, says: I asked my father about a person who touches the pulpit of the Prophet, peace and blessings be upon him...

[1] Al-Quran 12/40

फ़तावा रज़विया जिल्द नहुम (खंड 9)

मसला: कादरी गंज, जिला बीरभूम, बंगाल से, सैयद ज़हूर-उल-हसन साहब कादरी रज़ाकी मुर्शिदी करनाली द्वारा प्रेषित, 22 जमादी-उल-उला 1336 हिजरी। प्रश्न: पीर मुर्शिद के मज़ार का तवाफ़ करना, मज़ार की चौखट को चूमना और आँखों से लगाना, और मज़ार से उलटे पाँव पीछे हटकर, हाथ बाँधकर वापस आना जायज़ है या नहीं? अल-जवाब: मज़ार का तवाफ़ करना जो केवल सम्मान की नीयत से हो, नाजायज़ है क्योंकि तवाफ़ के द्वारा सम्मान केवल काबा शरीफ़ के लिए विशिष्ट है। मज़ार को चूमना नहीं चाहिए, उलेमा इस बारे में अलग-अलग राय रखते हैं। और इससे बचना ही बेहतर है, और इसी में अदब (सम्मान) अधिक है। चौखट चूमने में कोई हर्ज नहीं है, और आँखों से लगाना भी जायज़ है क्योंकि शरीयत में इसकी कोई मनाही नहीं आई है। और जिस चीज़ को शरीयत ने मना नहीं फ़रमाया, वह मना नहीं हो सकती। अल्लाह तआला फ़रमाता है: 'हुक्म अल्लाह ही का है।'[1] (अल-क़ुरआन 12:40)। हाथ बाँधकर उलटे पाँव वापस आना अदब का एक तरीका है। और जिस अदब से शरीयत ने मना नहीं फ़रमाया, उसमें कोई हर्ज नहीं है। हाँ, अगर इसमें अपनी या दूसरे की तकलीफ़ का अंदेशा हो, तो इससे बचना चाहिए। और अल्लाह तआला सबसे बेहतर जानता है।

मसला 163: औलिया-ए-कराम (रहमतुल्लाहि अलैहिम) के मज़ारों को चूमने को कुफ़्र या शिर्क कहना कैसा है? अल-जवाब: हकीकत में क़ब्र चूमने के बारे में उलेमाओं के अलग-अलग विचार हैं। शोध यह है कि यह एक ऐसा मामला है जो दो चीज़ों के बीच घूमता है: एक जो उस काम को करने के लिए प्रेरित करता है (प्रेरक) और दूसरा जो रोकता है (निवारक)। प्रेरक प्रेम है और निवारक सम्मान है। तो जिस पर प्रेम का ग़लबा (अतिशयता) हो, उस पर कोई पकड़ नहीं है क्योंकि यह बड़े सहाबा (रज़ियल्लाहु अन्हुम) से साबित है। और आम लोगों के लिए मनाही ही अधिक एहतियात (अहवत) वाला रास्ता है। हमारे उलेमा साफ़ फ़रमाते हैं कि बड़ों के मज़ार से कम से कम चार हाथ की दूरी पर खड़ा होना चाहिए, तो फिर चूमने का रास्ता कहाँ! मदीना के आलिम अल्लामा सैयद नूरुद्दीन समहूदी (कुद्दिसा सिर्रहु) 'खुलासतुल वफ़ा शरीफ़' में मज़ार-ए-अनवर की दीवार को छूने, चूमने और तवाफ़ करने की मनाही के कथनों को उद्धृत करते हुए फ़रमाते हैं:

अब्दुल्लाह बिन अहमद बिन हंबल की किताब 'अल-इल्लल वल-मस्अलात' में है: मैंने अपने पिता से उस व्यक्ति के बारे में पूछा जो नबी (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) के मिंबर को छूता है...

यानी इमाम अहमद बिन हंबल के साहबज़ादे इमाम अब्दुल्लाह फ़रमाते हैं: मैंने अपने पिता से पूछा कि कोई व्यक्ति नबी (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) के मिंबर को छुए...

[1] अल-क़ुरआन 12/40

فتاوی رضویہ جلد نہم

مسئلہ: از قادری گنج ضلع بیر بھوم ملک بنگال مرسلہ سید ظہور الحسن صاحب قادری رزاقی مرشدی کر نالی ۲۲ جمادی الاولیٰ ۱۳۳۶ھ پیر مرشد کے مزار کا طواف کرنا، اور مزار کی چوکھٹ کو بوسہ دینا اور آنکھوں سے لگانا اور مزار سے اُلٹے پاؤں پیچھے ہٹ کے، ہاتھ باندھے ہوئے واپس آنا جائز ہے یا نہیں؟ الجواب: مزار کا طواف کہ محض بہ نیت تعظیم کیا جائے ناجائز ہے کہ تعظیم بالطواف مخصوص بخانہ کعبہ ہے۔ مزار کو بوسہ دینا نہ چاہئے، علماء اس میں مختلف ہیں۔ اور بہتر بچنا، اور اسی میں ادب زیادہ ہے آستانہ بوسی میں حرج نہیں، اور آنکھوں سے لگانا بھی جائز کہ اس سے شرع میں ممانعت نہ آئی۔ اور جس چیز کو شرع نے منع نہ فرمایا منع نہیں ہو سکتی قال اللہ تعالیٰ اِنِ الْحُکْمُ اِلَّا لِلہِ 1 (اللہ کا ارشاد ہے: حکم نہیں مگر اللہ کا۔ ت) ہاتھ باندھے اُلٹے پاؤں واپس آنا ایک طرزِ ادب ہے۔ اور جس ادب سے شرع نے منع نہ فرمایا اس میں حرج نہیں، ہاں اگر اس میں اپنی یا دوسرے کی ایذا کا اندیشہ ہو تو اس سے احتراز کیا جائے۔ واللہ تعالیٰ اعلم مسئلہ ۱۶۳: مزارات اولیائے کرام علیہم رحمۃ المنعام کے چومنے کو کفر یا شرک کہنا کیسا ہے؟ الجواب: فی الواقع بوسہ قبر میں علماء مختلف ہیں، اور تحقیق یہ ہے کہ وہ ایک امر ہے کہ دو چیزوں داعی و مانع کے درمیان دائر، داعی محبت ہے اور مانع ادب، تو جسے غلبہ محبت ہو اس پر مواخذہ نہیں کہ اکابر صحابہ رضی اللہ تعالیٰ عنہم سے ثابت ہے۔ اور عوام کے لیے منع ہی احوط ہے، ہمارے علماء تصریح فرماتے ہیں کہ مزارِ اکابر سے کم از کم چار ہاتھ کے فاصلے سے کھڑا ہو، پھر تقبیل کی کیا سبیل! عالم مدینہ علامہ سید نور الدین سمہودی قدس سرہ خلاصۃ الوفاء شریف میں جدارِ مزار انور کے لمس و تقبیل وطواف سے ممانعت کے اقوال نقل کر کے فرماتے ہیں:

فی کتاب العلل والمسئولات لعبد اللہ بن یعنی امام احمد بن حنبل کے صاحبزادہ امام عبد اللہ احمد بن حنبل سألت ابی عن الرجل یمس فرماتے ہیں: میں نے اپنے باپ سے پوچھا کوئی شخص منبر النبی صلی اللہ تعالیٰ نبی صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کے منبر کو چھوئے

1 القرآن ۱۲/۴۰

Fatawa Razawiyya, Volume 9

[Arabic]: ...blessings upon him and his family, seek blessings by touching and kissing it, and do the same with the grave in hope of reward from Allah Almighty. He said, "There is no harm in it." (T) [Urdu]: ...and kiss it. And do the same with the noble grave in the hope of Divine reward; he said, there is no harm in it. (T)

The great Imam Taqi al-Millat wa al-Din Ali bin Abdul Kafi Subki (may his secret be sanctified) in "Shifa al-Saqam", then Sayyid Nur al-Din in "Khulasat al-Wafa", narrates on the authority of Yahya bin al-Hasan from Umar bin Khalid from Abi Nabata from Kathir bin Yazid from al-Muttalib bin Abdullah bin Hantab, who states that Marwan saw a person clinging to the fragrant shrine of the purest Sayyid (peace and blessings of Allah be upon him) and placing his face on the noble grave. Marwan grabbed him by the neck and said, "Do you know what you are doing?" He turned his face towards him and said:

[Arabic]: "Yes, I did not come to a stone; I came to the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him). I heard the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) say: 'Do not weep for the religion when its ruler is worthy of it, but weep for the religion when its ruler is unworthy.'" [Urdu]: Yes, I did not come to a stone; I have presented myself in the presence of the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him). I heard the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) say: Do not weep for the religion when its guardian is worthy of it; yes, weep for the religion when an unworthy person is its guardian.

The master (may his secret be sanctified) says: Ahmad narrated it with a good (hasan) chain of transmission. Imam Ahmad narrated this hadith with a good chain. He also says:

[Arabic]: Ibn Asakir narrated with a good (jayyid) chain from Abu al-Darda (may Allah be pleased with him) that Bilal saw the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) in a dream, and he was saying to him, "What is this estrangement, O Bilal? Has the time not come for you to visit me?" He woke up sorrowful and fearful, then he mounted his riding animal and headed for Medina. He came to the grave of the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) and began to weep... [Urdu]: Meaning, Ibn Asakir narrated with a correct chain from Abu Darda (may Allah be pleased with him) that Bilal (may Allah be pleased with him) had gone to Syria. One night he saw a dream that the Holy Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) said to him: O Bilal! What is this estrangement? Has that time not come

that you present yourself for our visitation? Bilal (may Allah be pleased with him) woke up sorrowful and fearful and mounted with the intention of the holy visitation; at the luminous shrine...

1. Wafa al-Wafa, Chapter 4, regarding the ethics of visiting and residing, Dar Ihya al-Turath al-Arabi, Beirut, 4/1204
2. Wafa al-Wafa, Chapter 2, regarding the remaining evidence for visiting, Dar Ihya al-Turath al-Arabi, Beirut, 4/1359
3. Wafa al-Wafa, Chapter 2, regarding the remaining evidence for visiting, Dar Ihya al-Turath al-Arabi, Beirut, 4/1359

फ़तावा रज़विया, खंड 9

[अरबी]: ...उन पर और उनके परिवार पर सलाम हो, उसे छूकर और चूमकर बरकत हासिल करना, और अल्लाह तआला से सवाब की उम्मीद में कब्र शरीफ़ के साथ वैसा ही करना, उन्होंने कहा, "इसमें कोई हर्ज नहीं है।" (त) [उर्दू]: ...और उसे चूमे। और अल्लाह के सवाब की आशा में कब्र शरीफ़ के साथ ऐसा ही करे; उन्होंने फ़रमाया, इसमें कोई हर्ज नहीं है। (त)

महान इमाम तक़ी अल-मिल्लत वद-दीन अली बिन अब्दुल काफ़ी सुबकी (अल्लाह उनके रहस्य को पवित्र करे) अपनी पुस्तक "शिफ़ा अल-सक़ाम" में, और फिर सैयद नूरुद्दीन अपनी पुस्तक "खुलासत अल-वफ़ा" में, याह्या बिन अल-हसन के माध्यम से उमर बिन खालिद से, अबी नबाता से, कसीर बिन यज़ीद से, मुत्तलिब बिन अब्दुल्ला बिन हंतब से वर्णन करते हैं कि मरवान ने एक व्यक्ति को सैयद अतहर (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) के सुगंधित मज़ार से लिपटे हुए और अपना चेहरा कब्र शरीफ़ पर रखे हुए देखा। मरवान ने उसकी गर्दन पकड़कर कहा, "क्या तुम जानते हो कि तुम क्या कर रहे हो?" उन्होंने उसकी तरफ़ मुँह किया और कहा:

[अरबी]: "हाँ, मैं किसी पत्थर के पास नहीं आया, मैं तो अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) की बारगाह में हाज़िर हुआ हूँ। मैंने अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) को यह फ़रमाते सुना है: 'दीन (धर्म) पर मत रोओ जब उसका शासक उसके योग्य हो, लेकिन दीन पर रोओ जब उसका शासक अयोग्य हो'।" [उर्दू]: हाँ, मैं किसी पत्थर के पास नहीं आया, मैं अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) की उपस्थिति में उपस्थित हुआ हूँ। मैंने अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) को यह फ़रमाते सुना है: दीन पर मत रोओ जब उसका शासक उसके योग्य हो; हाँ, दीन पर रोओ जब कोई अयोग्य व्यक्ति उसका शासक हो।

सैयद (क़ुद्दिस सिर्रहु) फ़रमाते हैं: इसे अहमद ने एक अच्छी (हसन) सनद के साथ रिवायत किया है। इमाम अहमद ने यह हदीस हसन सनद के साथ रिवायत की है। वह यह भी फ़रमाते हैं:

[अरबी]: इब्न असाकिर ने अबू दरदा (रज़ियल्लाहु अन्हु) से एक उम्दा (जय्यद) सनद के साथ रिवायत किया है कि हज़रत बिलाल (रज़ियल्लाहु अन्हु) ने एक सपने में नबी (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) को देखा, जो उनसे फ़रमा रहे थे: "ऐ बिलाल! यह कैसी बेरुख़ी है? क्या वह समय नहीं आया कि तुम हमारी ज़ियारत के लिए हाज़िर हो?" वह दुखी और भयभीत होकर जागे, फिर अपनी सवारी पर सवार हुए और मदीना की ओर चल पड़े। वह अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) की कब्र

पर आए और रोने लगे... [उर्दू]: अर्थात् इब्न असाकिर ने सही सनद के साथ अबू दरदा (रज़ियल्लाहु अन्हु) से रिवायत की है कि हज़रत बिलाल (रज़ियल्लाहु अन्हु) शाम चले गए थे। एक रात उन्होंने सपना देखा कि हुज़ूर अकदस (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) उनसे कह रहे हैं: ऐ बिलाल! यह कैसी बेरुख़ी है? क्या वह समय नहीं आया कि तुम हमारी ज़ियारत के लिए हाज़िर हो? बिलाल (रज़ियल्लाहु अन्हु) दुखी और भयभीत होकर जागे और पवित्र ज़ियारत के इरादे से सवारी पर सवार हुए; प्रकाशमय मज़ार पर...

1. वफ़ा अल-वफ़ा, अध्याय 4, ज़ियारत और निवास के शिष्टाचार के संबंध में, दार इह्या अल-तुराथ अल-अरबी, बेरुत, 4/1204
2. वफ़ा अल-वफ़ा, अध्याय 2, ज़ियारत के शेष साक्ष्यों के संबंध में, दार इह्या अल-तुराथ अल-अरबी, बेरुत, 4/1359
3. वफ़ा अल-वफ़ा, अध्याय 2, ज़ियारत के शेष साक्ष्यों के संबंध में, दार इह्या अल-तुराथ अल-अरबी, बेरुत, 4/1359

فتاوٰی رضویہ، جلد نہم

علیہ علی الہ وسلم تبرك بمسّہ وتقبیلہ ویفعل بالقبر مثل ذلك جاء ثواب اللہ تعالی فقال لاباس بہ [1]۔ اور بوسہ دے۔ اور ثواب الٰہی کی امید پر ایسا ہی قبر شریف کے ساتھ کرے، فرمایا، اس میں کچھ حرج نہیں۔ (ت)

امام اجل تقی الملۃ والدین علی بن عبد الکافی سبکی قدس سرہ الملکی شفاء السقام، پھر سید نور الدین خلاصۃ الوفاء میں بروایۃ یحیٰی بن الحسن عن عمر بن خالد عن ابی نباتۃ عن کثیر بن یزید عن المطلب بن عبد اللہ بن حنطب ذکر فرماتے ہیں کہ مروان نے ایک صاحب کو دیکھا کہ مزار اعطر سید اطہر صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم سے لپٹے ہوئے ہیں اور قبر شریف پر اپنا منہ رکھے ہوئے ہیں، مروان نے ان کی گردن پکڑ کر کہا جانتے ہو یہ تم کیا کر رہے ہو، انھوں نے اس کی طرف منہ کیا اور فرمایا:

نَعَمْ اِنِّیْ لَمْ اٰتِ الْحَجَرَ اِنَّمَا جِئْتُ رسول اللہ صلی اللہ تعالی علیہ وسلم سَمِعْتُ رسول اللہ صلی اللہ تعالی علیہ وسلم یقول لَا تَبْکُوْا عَلَی الدِّیْنِ اِذَا وَلِیَہٗ اَھْلُہٗ وَلٰکِنْ اَبْکُوْا عَلَی الدِّیْنِ اِذَا وَلِیَہٗ غَیْرُ اَھْلِہٖ [2]. ہاں میں کسی پتھر کے پاس نہ آیا میں رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم کے حضور حاضر ہوا ہوں، میں نے رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم کو فرماتے سنا، دین پر نہ رو جب اس کا والی اس کا اہل ہو، ہاں دین پر رو جب نااہل اس کا والی ہو۔

سید قدس سرہ فرماتے ہیں: رواہ احمد بسند حسن [3] امام احمد نے یہ حدیث بسند حسن روایت فرمائی۔ نیز فرماتے ہیں:

روی ابن عساکر جید عن ابی الدرداء رضی اللہ تعالی عنہ ان بلالا رأی النبی صلی اللہ تعالی علیہ وسلم وھو یقول لہ ماھذہ الجفوۃ یابلال اما آن لك ان تزورني فانتبہ حزینا خائفا فرکب راحلتہ وقصد المدینۃ فأتی قبر رسول اللہ صلی اللہ تعالی علیہ وسلم فجعل یبکی یعنی ابن عساکر نے بسند صحیح ابودرداء رضی اللہ تعالیٰ عنہ سے روایت کیا کہ حضرت بلال رضی اللہ تعالیٰ عنہ شام کو چلے گئے تھے ایک رات خواب دیکھا کہ حضور اقدس صلی اللہ علیہ وسلم ان سے فرماتے ہیں: اے بلال ! یہ کیا جفا ہے کیا وہ وقت نہ آیا کہ ہماری زیارت کو حاضر ہو؟ بلال رضی اللہ تعالیٰ عنہ غمگین اور ڈرتے ہوئے جاگے اور بقصد زیارت اقدس سوار ہوئے، مزار پر انوار پر

1 وفاء الوفا الفصل الرابع فی آداب الزیارۃ والمجاورۃ دار احیاء التراث العربی بیروت ۴/ ۱۲۰۴ 2 وفاء الوفا الفصل الثانی فی بقیۃ ادلۃ الزیارۃ دار احیاء التراث العربی بیروت ۴/ ۱۳۵۹ 3 وفاء الوفا الفصل الثانی فی بقیۃ ادلۃ الزیارۃ دار احیاء التراث العربی بیروت ۴/ ۱۳۵۹

- He would present himself [at the grave], start weeping, and rub his face on the noble grave. [1]
- Imam Hafiz Abdul Ghani and other grand scholars state:
- The reliance for traveling for visitation is not solely on his dream, but rather on his action itself, while the Sahaba (Companions) were present in abundance, and this event was not hidden from them. [2]
- Meaning, for the journey to visit the holy [shrine], we do not rely only on a dream, but on the fact that Bilal (may Allah be pleased with him) did this, and the Sahaba (may Allah be pleased with them) were present in large numbers, it became known to them, and no one expressed disapproval.
- The scholar of Medina (Sayyid Nur al-Din Samhudi, may Allah's mercy be upon him) states:
- Al-Khatib bin Jumla mentioned that Bilal (may Allah be pleased with him) placed both his cheeks on the noble grave, and that Ibn Umar (may Allah be pleased with both of them) used to place his right hand on it. Then he said, "There is no doubt that absorption in love leads to permission for such acts, and the intent is veneration. People differ in their ranks, just as in life; some cannot control themselves and rush towards it, while others have patience and stay back." It is also narrated from Ibn Abi al-Saif and al-Muhib al-Tabari that kissing the graves of the righteous is permissible. And from Ismail al-Taimi, he said: "Ibn al-Munkadir would be afflicted with a condition where speaking became difficult. He would stand and place his cheek on the noble grave of the pure master [the Prophet], peace and blessings of Allah be upon him. When questioned about this, he replied, 'I seek healing from the noble shrine of the Prophet, peace and blessings of Allah be upon him.'" [3]
- Meaning, Khatib bin Jumla mentioned that Bilal (may Allah be pleased with him) placed both his cheeks on the luminous grave, and Ibn Umar (may Allah be pleased with both of them) would place his right hand on it. He then said there is no doubt that being overwhelmed by love serves as an excuse for such acts, and the purpose is respect. People's stations vary, as in life: some act involuntarily and rush forward, while others exercise restraint and hold back. It is narrated from Ibn Abi al-Saif and Imam Muhib al-Tabari that it is permissible

to kiss the shrines of the saints. And it is narrated from Ismail Taimi that the Tabi'i [successor] Al-Munkadir suffered from an illness that made speech difficult; he would stand and place his cheek on the luminous grave of the Pure Master, peace and blessings of Allah be upon him. Someone objected to this, and he said, "I obtain healing from the holy shrine of the Prophet, peace and blessings of Allah be upon him."

[1] Wafa al-Wafa, Chapter Two, on the rest of the etiquettes of visitation, Dar Ihya al-Turath al-Arabi, Beirut, 4/1356. [2] Wafa al-Wafa, Chapter Two, on the rest of the etiquettes of visitation, Dar Ihya al-Turath al-Arabi, Beirut, 4/1357. [3] Wafa al-Wafa, Chapter Four, on the etiquettes of visitation and staying nearby, Dar Ihya al-Turath al-Arabi, Beirut, 4/106-14.

फ़तावा रज़विया खंड 9

- वह [कब्र पर] उपस्थित होते, रोना शुरू करते और अपना चेहरा पवित्र कब्र पर मलते थे। [1]
- इमाम हाफ़िज़ अब्दुल गनी और अन्य बड़े विद्वान कहते हैं:
- ज़ियारत (दर्शन) के लिए यात्रा करने का भरोसा केवल उनके सपने पर नहीं है, बल्कि उनके इस कार्य पर है, जबकि सहाबा (साथी) बड़ी संख्या में मौजूद थे और यह घटना उनसे छिपी नहीं थी। [2]
- यानी, पवित्र ज़ियारत के लिए यात्रा करने में हम केवल सपने पर भरोसा नहीं करते, बल्कि इस बात पर कि बिलाल (रज़ियल्लाहु अन्हु) ने ऐसा किया और सहाबा (रज़ियल्लाहु अन्हुम) बड़ी संख्या में मौजूद थे, उन्हें इसके बारे में पता चला और किसी ने भी इसका विरोध नहीं किया।
- मदीना के विद्वान (सैय्यद नूरुद्दीन समहूदी, अल्लाह की उन पर रहमत हो) कहते हैं:
- अल-खतीब बिन जुमला ने उल्लेख किया कि बिलाल (रज़ियल्लाहु अन्हु) ने पवित्र कब्र पर अपने दोनों गाल रखे थे, और इब्न उमर (रज़ियल्लाहु अन्हुमा) अपना दाहिना हाथ उस पर रखते थे। फिर उन्होंने कहा, "इसमें कोई संदेह नहीं है कि प्रेम में तल्लीनता ऐसे कार्यों की अनुमति का कारण बनती है, और इसका उद्देश्य सम्मान प्रकट करना है। लोगों के दर्जे अलग-अलग होते हैं, जैसे जीवन में; कुछ खुद पर नियंत्रण नहीं रख पाते और उसकी ओर लपकते हैं, जबकि कुछ में धैर्य होता है और वे पीछे रहते हैं।" इब्न अबी अल-सैफ और अल-मुहिब अल-तबरी से यह भी उद्धृत किया गया है कि नेक लोगों की कब्रों को चूमना जायज़ है। और इस्माइल अल-तैमनी से रिवायत है, उन्होंने कहा: "इब्न अल-मुनकादिर को एक ऐसी बीमारी हो जाती थी कि बोलना मुश्किल हो जाता था। वह खड़े होते और अपना गाल पाक आका [नबी] सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम की नूरानी कब्र पर रखते। किसी ने इस पर आपत्ति की, तो उन्होंने कहा, 'मैं नबी सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम के पवित्र मज़ार से शिफ़ा (स्वास्थ्य लाभ) प्राप्त करता हूँ।'" [3]
- यानी, खतीब बिन जुमला ने उल्लेख किया कि बिलाल (रज़ियल्लाहु अन्हु) ने नूरानी कब्र पर अपने दोनों गाल रखे थे, और इब्न उमर (रज़ियल्लाहु अन्हुमा) अपना दाहिना हाथ उस पर रखते थे। फिर उन्होंने कहा कि इसमें कोई शक नहीं कि मोहब्बत में डूबे होना ऐसे कामों के लिए माज़रत (बहाना) बन जाता है और इसका मकसद ताज़ीम (सम्मान) है। लोगों के मर्तबे अलग-

अलग हैं, जैसे ज़िंदगी में; कोई बेसाख़्ता उसकी तरफ़ बढ़ता है और किसी में तहम्मुल (धैर्य) है वह पीछे रहता है। इब्न अबी अल-सैफ और इमाम मुहिब तबरी से नक़्ल किया गया है कि औलिया के मज़ारात को बोसा देना जायज़ है। और इस्माइल तैमी से नक़्ल किया गया कि ताबई अल-मुनकादिर को एक मर्ज़ लाहक़ होता कि कलाम दुश्वार हो जाता, वह खड़े होते और अपना रुखसार पाक आका सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम की नूरानी कब्र पर रखते। किसी ने इस पर एतराज़ (आपत्ति) किया, तो उन्होंने फ़रमाया, "मैं नबी सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम के मज़ार-ए-अकदस से शिफ़ा हासिल करता हूँ।"

[1] वफ़ा अल-वफ़ा, अध्याय दो, ज़ियारत के शेष शिष्टाचार पर, दार इह्या अल-तुराथ अल-अरबी, बेरुत, 4/1356। [2] वफ़ा अल-वफ़ा, अध्याय दो, ज़ियारत के शेष शिष्टाचार पर, दार इह्या अल-तुराथ अल-अरबी, बेरुत, 4/1357। [3] वफ़ा अल-वफ़ा, अध्याय चार, ज़ियारत और पड़ोस में रहने के शिष्टाचार पर, दार इह्या अल-तुराथ अल-अरबी, बेरुत, 4/106-14।

فتاویٰ رضویہ جلد نہم

- حاضر ہو کر رونا شروع کیا اور منہ قبر شریف پر ملتے تھے۔ [1]
- امام حافظ عبدالغنی وغیرہ اکابر فرماتے ہیں:
- لیس الاعتماد فی السفر للزیارۃ علی مجرد منامہ بل علی فعلہ ذلك والصحابۃ متوفرون ولا تخفی عنہم ھذہ القصۃ 2 -
- یعنی زیارت اقدس کے لیے شدالرحال کرنے میں ہم فقط خواب پر اعتماد نہیں کرتے بلکہ اس پر کہ بلال رضی اللہ تعالیٰ عنہ نے یہ کیا اور صحابہ رضی اللہ تعالیٰ عنہم بکثرت موجود تھے اور انہیں معلوم ہوا اور کسی نے اس پر انکار نہیں فرمایا۔
- عالم مدینہ (سید نور الدین سمہودی علیہ الرحمۃ) فرماتے ہیں:
- ذکر الخطیب بن جملۃ ان بلالا رضی اللہ تعالی عنہ وضع خدیہ علی القبر الشریف وان ابن عمر رضی اللہ تعالی عنہما کان یضع یدہ الیمنی علیہ ثم قال ولا شك ان الاستغراق فی المحبۃ یحمل علی الاذن فی ذلك والقصد بہ التعظیم والناس تختلف مراتبھم کما فی الحیوۃ فمنھم من لا یملك نفسہ بل یباد رالیہ ومنھم من فیہ اناۃ فیتأخر اہ ونقل عن ابن ابی الصیف والمحب الطبری جواز تقبیل قبور الصالحین وعن اسمعیل التیمی قال کان ابن المنکدر یصیبہ الصمات فکان یقوم فیضع خدہ علی قبر النبی صلی اللہ تعالی علیہ وسلم فعوتب فی ذلك فقال انہ یستشفی بقبر النبی صلی اللہ تعالی علیہ وسلم 3 -
- یعنی خطیب بن جملہ نے ذکر کیا کہ بلال رضی اللہ تعالیٰ عنہ نے قبر انور پر اپنے دونوں رخسارے رکھے اور ابن عمر رضی اللہ تعالیٰ عنہما اپنا داہنا ہاتھ اس پر رکھتے، پھر کہا شک

نہیں کہ محبت میں استغراق اس میں اذن پر باعث ہوتا ہے اور اس سے مقصود تعظیم ہے، اور لوگوں کے مرتبے مختلف ہیں، جیسے زندگی میں، تو کوئی بے اختیارانہ اس کی طرف سبقت کرتا ہے اور کسی میں تحمل ہے وہ پیچھے رہتا ہے، اور ابن ابی الصیف اور امام محب طبری سے نقل کیا کہ مزارات اولیاء کو بوسہ دینا جائز ہے۔ اور اسماعیل تیمی سے نقل کیا کہ المنکدر تابعی کو ایک مرض لاحق ہوتا کہ کلام دشوار ہو جاتا وہ کھڑے ہوتے اور اپنا رخسار قبر انور سید اطہر صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم پر رکھتے، کسی نے اس پر اعتراض کیا، فرمایا میں نبی صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کے مزار اقدس سے شفا حاصل کرتا ہوں۔

1 وفاء الوفا الفصل الثانی فی بقیہ ادویۃ الزیارۃ دار احیاء التراث العربی بیروت ۴ / ۱۳۵۶ 2 وفاء الوفا الفصل الثانی فی بقیہ ادویۃ الزیارۃ دار احیاء التراث العربی بیروت ۴ / ۱۳۵۷ 3 وفاء الوفا الفصل الرابع فی آداب الزیارۃ والمجاورۃ دار احیاء التراث العربی بیروت ۴ / ۱۰۶-۱۴

Allama Sheikh Abdul Qadir Fakhi Makki (may Allah Almighty have mercy on him) says in the blessed book 'Husn at-Tawassul fi Ziyarat Afdal al-Rusul':

| Rubbing the face, cheek, and beard on the dust of the noble grave and its thresholds during times of solitude—when there's no fear that an ignorant person might mistakenly think it's something religiously forbidden—is a beloved and good act for those seeking it. There appears to be no harm in it, but only for someone who has a righteous intention and is driven to it by an overflow of longing and overwhelming love. | Meaning: in solitude where there is no fear that an ignorant person's suspicion would lead towards something prohibited by Sharia due to it, at such a time, rubbing one's face, cheek, and beard on the soil and threshold of the holy court is desirable and commendable, in which no harm is seen; but for the one whose intention is good and whom excess of longing and dominance of love motivates towards it. |

He further says:

| Furthermore, I present to you a gift through which the meaning will become clear to you. That is, the great Imam Taqi al-Din al-Subki used to place his face on the carpet of the Dar al-Hadith, which the foot of Imam al-Nawawi (may Allah sanctify his secret) had touched, to attain the blessing of his footstep and to proclaim the greatness of his station. As he himself indicated in his poetry, saying: "Perhaps my face might touch the place where the foot of al-Nawawi once trod." And our teacher Taj al-Arifin, the Imam of the Sunnah, the last of the Mujtahids, used to rub his face and beard on the threshold of the Sacred House at the Hijr Ismail (Hatim), where the noble shrine of our master Ishmael (peace be upon him) is located. | Meaning: In addition, I give you a gift here from which the meaning will become manifest to you, that the most venerable Imam Taqi al-Millat wa ad-Din Subki used to rub his face on that carpet of Dar al-Hadith upon which Imam Nawawi (may Allah Almighty sanctify his noble secret) used to place his blessed feet, to seek the blessing of his feet and to publicize the honor of visiting them; as he himself says that there is a subtle meaning in Dar al-Hadith which I have a passion to manifest, that perhaps my face might reach that place which the foot of Nawawi had touched. And our Sheikh Taj al-Arifin, Imam of Sunnah, Seal of Mujtahids, used to rub his face and beard on the threshold of the Sacred House at Hateem Sharif where the noble shrine of our master Ismail (peace be upon him) is located. |

In summary, this is not an act that warrants condemnation, as it is proven from the great Companions (may Allah be pleased with them) and the eminent Imams (may Allah have mercy on them). Therefore, there is no reason for an outcry over it, although, in our view, it is cautious for the common people to avoid it.

---

[1] Husn at-Tawassul fi Ziyarat Afdal al-Rusul [2] Husn at-Tawassul fi Ziyarat Afdal al-Rusul

फतावा रज़विया | जिल्द 9

अल्लामा शेख अब्दुल कादिर फाकी मक्की (अल्लाह उन पर रहम करे) अपनी मुबारिक किताब 'हुस्न अत-तवस्सुल फी ज़ियारत अफ़ज़ल अल-रुसुल' में फ़रमाते हैं:

| तन्हाई के वक्त में जब इस बात का अंदेशा न हो कि कोई जाहिल इसे देखकर किसी ग़ैर-शरई काम की ओर गुमराह होगा, ऐसे समय में रौज़ा-ए-अक़दस की मिट्टी और आस्ताने पर अपना चेहरा, गाल और दाढ़ी रगड़ना एक पसंदीदा और अच्छा काम है। इसमें कोई हर्ज नज़र नहीं आता, लेकिन यह उसी के लिए है जिसकी नीयत नेक हो और जिसे बेपनाह शौक और ग़लबा-ए-मोहब्बत इस पर मजबूर करे। | यानी खलवत (एकांत) में जहाँ इस बात का अंदेशा न हो कि किसी जाहिल का वहम इसके सबब किसी नाजायज़ शरई बात की तरफ जाएगा, ऐसे वक्त बारगाह-ए-अकदस की मिट्टी और आस्ताने पर अपना मुँह और रुख़सार और दाढ़ी रगड़ना मुस्तहब (पसंदीदा) और मुस्तहसन (अच्छा) है जिसमें कोई हर्ज मालूम नहीं होता, मगर उसके लिए जिसकी नियत अच्छी हो और इफरात-ए-शौक (अत्यधिक चाहत) और गलबा-ए-मोहब्बत उसे इस पर बाइस (प्रेरित) हो। |

फिर फ़रमाते हैं:

| इसके अलावा, मैं तुम्हें यहाँ एक ऐसा तोहफ़ा देता हूँ जिससे हकीकत तुम पर ज़ाहिर हो जाएगी। वह यह कि इमाम-ए-अजल्ल तक़ीउद्दीन सुबकी दारुल हदीस के उस बिछावन पर, जिस पर इमाम नववी (अल्लाह उनकी रूह को पाक रखे) के मुकद्दस कदम पड़े थे, बरकत हासिल करने और उनकी अज़मत को उजागर करने के लिए अपना चेहरा मला करते थे। जैसा कि उन्होंने खुद फ़रमाया है: "शायद मेरा चेहरा उस जगह पहुँच जाए जिसे इमाम नववी के कदमों ने छुआ था।" और हमारे शेख ताजुल आरिफीन, इमाम-ए-सुन्नत, आखिरी मुज्तहिद, बैतुल्लाह शरीफ के आस्ताने पर हतीम (हिज्र इस्माइल) में, जहाँ हज़रत इस्माइल अलैहिस्सलाम का मज़ारे करीम है, अपना चेहरा और दाढ़ी मला करते थे। | यानी इसके अलावा मैं तुझे यहाँ एक ऐसा तोहफ़ा देता हूँ जिससे मा'नी तुझ पर ज़ाहिर हो जाएँगे, वह ये कि इमाम-ए-अजल्ल तक़ी उल-मिल्लत वद-दीन सुबकी दारुल हदीस के उस बिछौने पर जिस पर इमाम नववी (अल्लाह उनके गुप्त रहस्य को पवित्र करे) कदम मुबारक रखते थे, उनके कदम की बरकत लेते और उनकी ज़ियारत-ए-ताज़ीम के शोहरा देने को अपना चेहरा इस पर मला करते थे जैसा कि खुद फरमाते हैं कि दारुल हदीस में एक लतीफ मा'नी हैं जिनके ज़ाहिर करने का मुझे इश्क है कि शायद मेरा चेहरा पहुँच जाए उस जगह पर जिसको कदम-ए-नववी ने छुआ था।

और हमारे शेख ताजुल आरिफ़ीन इमाम-ए-सुन्नत ख़ातिमा-ए-मुज्तहिदीन आस्ताना-ए-बैतुल हराम हतीम शरीफ़ पर जहाँ सैय्यदिना इस्माईल अलैहिस्सलाम का मज़ार-ए-करीम है अपना चेहरा और दाढ़ी मला करते थे। |

कुल मिलाकर, यह कोई ऐसी बात नहीं है जिसका इनकार किया जाए, क्योंकि यह बड़े सहाबा (रज़ियल्लाहु अन्हुम) और अइम्मा-ए-किराम (रहमतुल्लाहि अलैहिम) से साबित है। इसलिए इस पर शोर मचाने की कोई वजह नहीं है, हालांकि हमारे नज़दीक आम लोगों के लिए इससे बचना ही एहतियात है।

---

[1] हुस्न अत-तवस्सुल फी ज़ियारत अफ़ज़ल अल-रुसुल [2] हुस्न अत-तवस्सुल फी ज़ियारत अफ़ज़ल अल-रुसुल

علامہ شیخ عبد القادر فاکہتی مکی رحمۃ اللہ تعالٰی کتاب مستطاب حسن التوسل فی زیارۃ افضل الرسل میں فرماتے ہیں:

| تمریغ الوجه والخد واللحیة بتراب الحفرة الشریفة واعتابها فی زمن الخلوة المأمون فیها توهم عامی محذوراً شرعیاً بسببه، امر محبوب، حسن لطلابها، وامره لا بأس به فیها یظهر لکن لمن کان له فی ذلك قصد صالح وحمله علیه فرط الشوق والحب الطافح - | یعنی خلوت میں جہاں اس کا اندیشہ نہ ہو کہ کسی جاہل کا وہم اس کے سبب کسی ناجائز شرعی کی طرف جائے گا، ایسے وقت بارگاہ اقدس کی مٹی اور آستانہ پر اپنا منہ اور رخسارہ اور داڑھی رگڑنا مستحب اور مستحسن ہے جس میں کوئی حرج معلوم نہیں ہوتا، مگر اس کے لیے جس کی نیت اچھی ہو اور افراط شوق اور غلبہ محبت اسے اس پر باعث ہو۔ |

پھر فرماتے ہیں:

| علی انی اتحفك بأمر یلوح لك منه المعنی بان الشیخ الامام السبکی وضع خروجه علی بساط دار الحدیث التی مسها قدم النووی لینال برکة قدمه وینوه بمزید عظمته کما اشار الی ذلك بقوله واوی لعلی ان قال بحروحی مکاناً مسه قدم النووی وبأن شیخنا تاج العارفین امام السنة خاتمة المجتهدین کان یمرغ وجهه ولحیته علی عتبة البیت الحرام بحجر اسمعیل - | یعنی علاوہ بریں میں تجھے یہاں ایک ایسا تحفہ دیتا ہوں جس سے معنی تجھ پر ظاہر ہو جائیں وہ یہ کہ امام اجل تقی الملۃ والدین سبکی دارالحدیث کے اس بچھونے پر جس پر امام نووی قدس اللہ سرہ العزیز قدم مبارک رکھتے تھے ان کے قدم کی برکت لیتے اور ان کی زیارت تعظیم کے شہرہ دینے کو اپنا چہرہ اس پر ملا کرتے

تھے جیسا کہ خود فرماتے ہیں کہ دارالحدیث میں ایک لطیف معنی ہیں جن کے ظاہر کرنے کا مجھے عشق ہے کہ شاید میرا چہرہ پہنچ جائے اس جگہ پر جس کو قدم نووی نے چھوا تھا۔ اور ہمارے شیخ تاج العارفین امام سنت خاتمہ المجتہدین آستانہ بیت الحرام حطیم شریف پر جہاں سیدنا اسمعیل علیہ السلام کا مزار کریم ہے اپنا چہرہ اور داڑھی ملا کرتے تھے۔ |

بالجملہ یہ کوئی امر ایسا نہیں جس پر انکار واجب ہو کہ اکابر صحابہ رضی اللہ تعالیٰ عنہم اور اجلہ ائمہ رحمہم اللہ تعالیٰ سے ثابت ہے تو اس پر شورش کی کوئی وجہ نہیں، اگرچہ ہمارے نزدیک عوام کو اس سے بچنے ہی میں احتیاط ہے۔

---

1 حسن التوسل فی زیارۃ افضل الرسل 2 حسن التوسل فی زیارۃ افضل الرسل

Fatawa-e-Razvia, Volume 9

Imam Allama Abdul Ghani Nabulsi (may Allah sanctify his secret) writes in Hadiqa Nadiyya Sharh Tariqa-e-Muhammadiyya: [Arabic text]: "When a justification for an issue can be found according to an opinion in our school or the schools of other Imams, then it is not such an evil that condemning it and forbidding it becomes mandatory. Indeed, an evil is that which is unanimously agreed upon as forbidden and prohibited. Allah knows best." [Urdu translation of the quote]: When a solution for an issue can be found in our school of thought or in the school of thought of other Imams, it is not such a sin that it becomes mandatory to object to it or forbid it. Yes, a sin is that whose prohibition and forbidden nature has a consensus (Ijma) upon it. And Allah Almighty knows best. (T)

Issue 164: 4 Jumada al-Ula 1338 AH What do the scholars of religion say regarding this matter: Is it permissible to kiss graves or not? What is the etiquette for sitting and standing during a visit to the graves?

Answer: Kissing graves should not be done. Visiting the grave should be done by standing in front of the deceased. One should approach from a direction so as to be in their sight; do not come from the head-side as they would have to lift their head to see. For salutations and conveying of reward (Isal-e-Thawab), if one wishes to stay longer, sit facing the grave and continue reciting, or if it is a saint's shrine, seek blessings from it. And Allah Almighty knows best.

Issue 165 to 166: (1) How is it to go to the graves of martyrs or saints (Awliya Allah) and offer Malida (sweet crushed bread) or sweets along with flowers, etc., on the blessed grave itself? Is it required or not? (2) When we do not know the state of a martyr's or saint's shrine, whether it is actually someone's grave or not? And if it is, whose is it? Of a Muslim man, a Jew, or a Christian, or a Jewish, Christian, or Muslim woman, then how is it to recite Fatiha or perform Niyaz in the aforementioned manner at that shrine? Should it be done or not? Please explain and be rewarded.

Answer: (1) Visiting the graves of Muslims is a Sunnah, and visiting the shrines of the noble saints and martyrs (may Allah's mercy be upon them all) is a blessing upon blessing, and conveying rewards to them is recommended and meritorious. As for Malida and sweets, these are customary specifics, if they are considered obligatory...

---

1 Hadiqa Nadiyya Sharh Tariqa-e-Muhammadiyya, Type 33, Al-Kalam fi Hal al-Khutbah, Maktaba Nooriya Razvia Sukkur, 12/309.

फतवा-ए-रज़विया, खंड 9

इमाम अल्लामा अब्दुल गनी नाबुलसी (अल्लाह उनके रहस्य को पवित्र रखे) हदीक़ा नदिया शरह तरीक़ा-ए-मुहम्मदिया में फरमाते हैं: [अरबी पाठ]: "जब हमारे मज़हब या अन्य इमामों के मज़हब के किसी मत के अनुसार किसी मसले का औचित्य पाया जा सके, तो वह ऐसी बुराई नहीं है जिसका खंडन करना और उससे रोकना वाजिब हो। वास्तव में बुराई वह है जिसके हराम होने और मना होने पर इज्मा (आम सहमति) हो। अल्लाह तआला बेहतर जानता है।" [उर्दू अनुवाद का हिंदी रूपांतरण]: जब किसी मसले का हमारे मज़हब या अन्य इमामों के मज़हब पर जवाज़ (औचित्य) निकल सकता हो, तो वह ऐसा गुनाह नहीं कि उस पर इन्कार (खंडन) करना और उससे मना करना वाजिब हो। हाँ, गुनाह वह है कि जिसके हराम होने और मना होने पर इज्मा हो। और अल्लाह तआला बेहतर जानता है। (त)

मसला 164: 4 जमादी-उल-उला 1338 हिजरी धर्म के विद्वान इस मसले में क्या कहते हैं कि कब्रों को चूमना जायज़ है या नहीं? कब्रों की ज़ियारत के लिए बैठने और खड़े होने का तरीका क्या है?

उत्तर: कब्रों को चूमना नहीं चाहिए। कब्र की ज़ियारत मय्यत (मृतक) के चेहरे के सामने खड़े होकर होनी चाहिए। और उसकी तरफ से आए कि उसकी निगाह के सामने हो, सिरहाने से न आए कि उसे सिर उठाकर देखना पड़े। सलाम और ईसाल-ए-सवाब के लिए अगर देर करना चाहता है तो कब्र की ओर मुँह करके बैठ जाए और पढ़ता रहे, या वली का मज़ार है तो उससे फ़ैज़ (आध्यात्मिक लाभ) ले। और अल्लाह तआला बेहतर जानता है।

मसला 165 से 166: (1) शहीदों या औलिया अल्लाह (रहमतुल्लाह अलैहिम) की कब्रों पर जाकर और खुद कब्र शरीफ पर मलीदा या मिठाई के साथ फूल आदि का नियाज़ करना कैसा है, ऐसा करना चाहिए या नहीं? (2) जिस शहीद या औलिया अल्लाह के मज़ार का हाल हमें मालूम नहीं है कि क्या वह किसी का मज़ार है भी या नहीं? और अगर है तो किसका है? मुस्लिम पुरुष का, यहूदी का या ईसाई का, या यहूदी, ईसाई या मुस्लिम महिला का, तो उस मज़ार पर फ़ातिहा पढ़ना या बताए गए तरीके से नियाज़ आदि करना कैसा है, चाहिए या नहीं? बयान फरमाएं, आपको पुण्य मिलेगा।

उत्तर: (1) मुसलमानों की कब्रों की ज़ियारत सुन्नत है और औलिया-ए-कराम और शहीदों (रहमतुल्लाह अलैहिम अजमईन) की मज़ारों पर हाज़िरी सौभाग्य पर सौभाग्य है और उन्हें ईसाल-ए-

सवाब पहुँचाना मंदूब (पसंदीदा) और सवाब का काम है। और मलीदा और मिठाई पारंपरिक विशेषताओं में से है, अगर इन्हें वाजिब...

---

1 हदीक़ा नदिया शरह तरीक़ा-ए-मुहम्मदिया, प्रकार 33, अल-कलाम फी हाल अल-खुत्बा, मकतबा नूरया रज़विया सुक्कुर, 12/309।

पृष्ठ 533/948

امام علامہ عبدالغنی نابلسی قدس سرہ القدسی حدیقہ ندیہ شرح طریقہ محمدیہ میں فرماتے ہیں: المسئلۃ متیٰ امکن تخریجھا علیٰ قول من الاقوال فی مذھبنا او مذھب غیرنا ، فلیست بمنکر یجب انکارہ والنھی عنہ وانما المنکر ما وقع الاجماع علی حرمتہ والنھی عنہ ۔ واللہ تعالٰی اعلم جب کسی مسئلہ کا ہمارے مذہب یا دیگر ائمہ کے مذہب پر جواز نکل سکتا ہو تو وہ ایسا گناہ نہیں کہ اس پر انکار اور اس سے منع کرنا واجب ہو۔ ہاں گناہ وہ ہے کہ وہ اس کے حرام ہونے اور اس کے منع ہونے پر اجماع ہو۔ واللہ تعالیٰ اعلم (ت)

مسئلہ ۱۶۴: ۴ جمادی الاولٰی ۱۳۳۸ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ قبروں کو بوسہ لینا جائز ہے یا نہیں؟ زیارت قبور کی نشست و برخاست کا طریقہ کیا ہے؟

الجواب: قبروں کا بوسہ لینا نہ چاہئے۔ زیارتِ قبر میت کے مواجہ میں کھڑے ہو کر ہو۔ اور اس کی طرف سے جائے کہ اس کی نگاہ کے سامنے ہو، سرہانے سے نہ آئے کہ اسے سر اٹھا کر دیکھنا پڑے۔ سلام و ایصالِ ثواب کے لیے اگر دیر کرنا چاہتا ہے رُو بقبر بیٹھ جائے اور پڑھتا رہے، یا ولی کا مزار ہے تو اس سے فیض لے۔ واللہ تعالٰی اعلم

مسئلہ ۱۶۵ تا ۱۶۶: (۱) قبور شہداء یا اولیاء اللہ رحمۃ اللہ تعالیٰ علیہم پر جا کر اور قبر شریف ہی پر مالیدہ یا شیرینی مع پھول وغیرہ نیاز کرنا کیسا ہے، چاہئے یا نہیں؟ (۲) جس شہید یا اولیاء اللہ کے مزار کا حال ہم کو معلوم نہیں ہے کہ آیا کسی کی مزار ہے یا نہیں؟ اور اگر ہے تو کس کی ہے؟ مرد اہل اسلام، یہودی یا نصاریٰ یا عورت یہودی، یا نصاریٰ یا مسلمان کی، تو اس مزار پر فاتحہ پڑھنا یا بطریق مذکور نیاز وغیرہ کرنا کیسا ہے، چاہئے یا نہیں؟ بینوا توجروا

الجواب: (۱) قبور مسلمین کی زیارت سنّت اور مزاراتِ اولیاء کرام و شہدائے رحمۃ اللہ تعالیٰ علیہم اجمعین کی حاضری سعادتِ بر سعادت اور انھیں ایصالِ ثواب مندوب و ثواب۔ اور مالیدہ و شیرینی خصوصیاتِ عرفیہ میں اگر وجوب

---

1 حدیقہ ندیہ شرح طریقہ محمدیہ نوع ۳۳ الکلام فی حال الخطبہ مکتبہ نوریہ رضویہ سکھر ۱۲/ ۳۰۹

Fatawa-e-Razvia Volume 9

There is no harm in not going, and there is neither a necessity to take [things] to the grave nor is there any sin in it. Yes, if one considers it religiously mandatory and believes that without it, the Fatiha will not be accepted, then this belief is corrupt, and it is necessary to avoid such a belief. Placing flowers on the graves of Muslims, especially the Awliya (saints), is good; it has been clarified in Alamgiri and other books. However, sweets or similar items taken there should not be placed on the grave. This is forbidden.

(2) If the status of a grave is unknown, whether it belongs to a Muslim or a non-believer, visiting it or offering Fatiha is absolutely not permissible. Visiting a Muslim's grave is Sunnah (traditional practice) and offering Fatiha is Mustahab (recommended), but visiting a non-believer's grave is Haram (forbidden), and the intention of sending rewards (isāl-e-thawāb) to it is an act of disbelief (Kufr).

Arabic Text	**Urdu Translation**
Allah Almighty said: "وَلَا تَقُمْ عَلٰی قَبْرِہٖ" (Quran 9:84) and said	Allah Almighty said: Do not even stand at his grave. And He said,
"وَمَا لَہٗ فِی الْاٰخِرَۃِ مِنْ خَلَاقٍ" (Quran 2:200 & 102) and said	there is no share for him in the Hereafter. And He said,
"اِنَّ اللّٰہَ حَرَّمَھُمَا عَلَی الْکٰفِرِیْنَ" (Quran 7:50)	indeed, Allah has forbidden both of them for the disbelievers. (T)

Problem 167: What is the ruling on vowing to offer flowers or a cloth sheet (chadar) at the shrine of a saint (Wali) or a martyr (Shaheed)? Is it desirable or not?

The Answer: This vow is not Shar'i (legal according to Islamic law) because its kind is not obligatory (Wajib). (Because there is no obligation from its genus. T) Yes, offering flowers is good as mentioned previously (as passed. T) and placing a sheet on the shrines of the noble saints, may Allah sanctify their secrets, with the intention of seeking blessings (tabarruk) is commendable (mustahsan). Allah Almighty said:

Arabic Text	**Urdu Translation**
"ذٰلِکَ اَدْنٰی اَنْ یُّعْرَفْنَ فَلَا یُؤْذَیْنَ" (Quran 33:59)	That is more suitable that they will be known and not be harmed. (T)

Imam Arif Billah Allama Sayyidi Abdul Ghani Nablusi, may his secret be sanctified, clarified this in 'Kashf al-Noor 'an Ashab al-Qubur', then Allama Shami quoted it in 'Uqud al-Durriya' and affirmed it.

1. Quran 9/84
2. Quran 2/200 & 102
3. Quran 7/50
4. Quran 33/59
5. Kashf al-Noor 'an Ashab al-Qubur with Al-Hadiqa al-Nadiya, Maktaba Nooriya Razvia, Faisalabad, p. 12

फ़तावा-ए-रज़विया जिल्द नहम (खंड 9)

न जाने में कोई हर्ज नहीं, और कब्र पर ले जाने की न ज़रूरत है और न ही इसमें कोई गुनाह है। हाँ, अगर इसे शरीअत में लाज़िम (अनिवार्य) समझे बिना फ़ातिहा की क़बूलियत के लिए ज़रूरी न समझे, तो यह अक़ीदा (विश्वास) फ़ासिद (ग़लत) है, इस अक़ीदे से परहेज़ लाज़िम है। मुसलमानों की कब्रों, विशेषकर औलिया (संतों) पर फूल चढ़ाना 'हसन' (अच्छा) है, जैसा कि आलमगीरी वगैरह में स्पष्ट किया गया है। लेकिन मिठाई वगैरह जैसी चीज़ें जो ले जाई जाएँ उन्हें कब्र पर न रखें। यह वर्जित (ममनूअ) है।

(२) जिस कब्र का यह भी हाल मालूम न हो कि यह मुसलमान की है या काफ़िर की, उसकी ज़ियारत करना, फ़ातिहा देना हरगिज़ जायज़ नहीं, क्योंकि मुसलमान की कब्र की ज़ियारत सुन्नत है और फ़ातिहा मुस्तहब (पसंदीदा), और काफ़िर की कब्र की ज़ियारत हराम है और उसे ईसाल-ए-सवाब की नीयत करना कुफ्र (अविश्वास) का इरादा है।

अरबी पाठ	**उर्दू अनुवाद**
अल्लाह तआला ने फ़रमाया: "وَلَا تَقُمْ عَلٰى قَبْرِهٖ" और फ़रमाया	अल्लाह तआला ने फ़रमाया उसकी कब्र पर खड़े भी न होना। और फ़रमाया,
"وَمَا لَهٗ فِى الْاٰخِرَةِ مِنْ خَلَاقٍ" और फ़रमाया	उसके लिए आख़िरत में कोई हिस्सा नहीं। और फ़रमाया
"اِنَّ اللّٰهَ حَرَّمَهُمَا عَلَى الْكٰفِرِيْنَ"	बेशक अल्लाह ने इन दोनों को काफ़िरों पर हराम किया। (त)

मसला १६७: किसी औलिया अल्लाह या शहीद रहमतुल्लाह अलैहि के मज़ार शरीफ़ पर फूल या कपड़े की चादर मन्नत मान कर चढ़ाना कैसा है? क्या ऐसा करना चाहिए या नहीं?

अल-जवाब: यह मन्नत कोई शरई नहीं है क्योंकि इसकी जिन्स (प्रकार) से कोई चीज़ वाज़िब नहीं है। (इसलिए कि इसकी जिन्स से कोई वाज़िब नहीं। त) हाँ, फूल चढ़ाना हसन है जैसा कि पहले बताया जा चुका है (जैसा कि गुज़र चुका। त) और औलिया-ए-कराम, अल्लाह उनके रहस्यों को पवित्र करे, की कब्रों पर बरकत (तबर्रुक) के इरादे से चादर डालना मुस्तहसन (सराहनीय) है। अल्लाह तआला ने फ़रमाया:

अरबी पाठ	उर्दू अनुवाद
"ذٰلِکَ اَدْنٰی اَنْ یُّعْرَفْنَ فَلَا یُؤْذَیْنَ"	वह इससे ज़्यादा करीब है कि पहचान हो जाए तो उन्हें ईज़ा (कष्ट) न दी जाए। (त)

इमाम आरिफ़ बिल्लाह अल्लामा सैय्यदी अब्दुल गनी नाबलुसी (अल्लाह उनके रहस्य को पवित्र करे) ने 'कश्फ़ अल-नूर अन असहाब अल-कुबूर' में इसकी व्याख्या की है, फिर अल्लामा शामी ने 'उक़ूद अल-दुर्रिया' में इसे उद्धृत किया और इसे स्थापित रखा।

---

1. अल-क़ुरआन ९ / ८४
2. अल-क़ुरआन २ / २०० और १०२
3. अल-क़ुरआन ७ / ५०
4. अल-क़ुरआन ३३ / ५९
5. कश्फ़ अल-नूर अन असहाब अल-कुबूर मअ अल-हदीक़त अल-नदिय्या, मकतबा नूरिय्या रज़विया, फ़ैसलाबाद, पृ. १२

पृष्ठ ५३४ / ९४८

فتاوٰی رضویہ جلد نہم

نہ جانے حرج نہیں، اور قبر پر لے جانے کی نہ ضرورت نہ اس میں معصیت۔ ہاں اسے شرعاً لازم جانے بغیر اس کے فاتحہ کا قبول نہ سمجھے تو یہ اعتقاد فاسد ہے، اس اعتقاد سے احتراز لازم ہے۔ قبور مسلمین خصوصاً اولیاء پر پھول چڑھانا حسن ہے، عالمگیری وغیرہ میں اس کی تصریح فرمائی۔ مگر شیرینی وغیرہ جو اس قسم کی چیزیں لے جائے اس کو قبر پر نہ رکھے۔ یہ ممنوع ہے۔

(۲) جس قبر کا یہ بھی حال معلوم نہ ہو کہ یہ مسلمان کی ہے یا کافر کی، اس کی زیارت کرنی، فاتحہ دینی ہرگز جائز نہیں کہ قبر مسلمان کی زیارت سنت ہے اور فاتحہ مستحب، اور قبر کافر کی زیارت حرام ہے اور اسے ایصال ثواب کا قصد کفر،

عربی متن	**اردو ترجمہ**
قال اللہ تعالٰی "وَلَا تَقُمْ عَلٰی قَبْرِہٖ"ط وقال تعالٰی	اللہ تعالٰی نے فرمایا اس کی قبر پر کھڑے بھی نہ ہونا۔ اور فرمایا،
وَمَا لَہٗ فِی الْاٰخِرَۃِ مِنْ خَلَاقٍ ط وقال تعالٰی	اس کے لیے آخرت میں کوئی حصہ نہیں۔ اور فرمایا
اِنَّ اللہَ حَرَّمَھُمَا عَلَی الْکٰفِرِیْنَ ط	بیشک اللہ نے ان دونوں کو کافروں پر حرام کیا۔ (ت)

مسئلہ ۱۶۷: کسی اولیاء اللہ یا شہید رحمۃ اللہ علیہ کے مزار شریف پر پھول یا کپڑے کی چادر منت مان کر چڑھانا کیسا ہے۔ چاہئے یا نہیں؟

الجواب: یہ منت کوئی شرعی نہیں اذلیس من جنسہ واجب (اس لیے کہ اس کی جنس سے کوئی واجب نہیں۔ ت) ہاں پھول چڑھانا حسن ہے کما تقدم (جیسا کہ گزر چکا۔ ت) اور قبور اولیائے کرام قدسنا اللہ باسرارہم پر چادر بقصد تبرک ڈالنا مستحسن ہے۔ قال اللہ تعالٰی:

عربی متن	اردو ترجمہ
ذٰلِکَ اَدْنٰی اَنْ یُّعْرَفْنَ فَلَا یُؤْذَیْنَ ط	وہ اس سے زیادہ قریب ہے کہ پہچان ہو جائے تو انھیں ایذا نہ دی جائے۔ (ت)

امام عارف باللہ علامہ سیدی عبدالغنی نابلسی قدس سرہ القدسی نے کشف النور عن اصحاب القبور میں اس کی تصریح فرمائی، پھر علامہ شامی نے عقود الدریہ میں اسے نقل کیا اور مقرر رکھا۔

---

۱ القرآن ۹ / ۸۴ ۲ القرآن ۲ / ۲۰۰ و ۱۰۲ ۳ القرآن ۷ / ۵۰ ۴ القرآن ۳۳ / ۵۹ ۵ کشف النور عن اصحاب القبور مع الحدیقۃ الندیۃ مکتبہ نوریہ رضویہ فیصل آباد ص ۱۲

Volume Nine Fatawa Ridawiyya

Issue 168: From Calcutta, 22 Zakaria Street, queried by Maulvi Abdul Haq Sahib and Maulvi Mubarak Karim Sahib, accompanied by Haji Lal Khan Sahib, 26th Ramadan-ul-Mubarak 1337 AH. What do the scholars of religion say regarding this matter: A Sheikh willed his disciple (Murid) to manage all the arrangements for his grave, including lighting, Quran recitation, Langar Khana (public kitchen), Urs, etc. Accordingly, the disciple arranged everything as per the will and bore all expenses. Now the question is, the sheets (Chadar), sweets, and cash/goods that people offer at the shrine, who has the right to them? Is it the disciple who made these arrangements and expenses, the servant (Khadim) of the shrine, or the son of the Sheikh?

The Answer: The sheet (Chadar) placed on the grave does not belong to anyone—not to the disciple who is the shrine's servant, nor to the son of the deceased, nor is it Waqf (endowment). Instead, it remains the property of the person who placed it, just like a shroud given as a donation for a deceased person. It is stated in *Durr-ul-Mukhtar*:

"The shroud does not leave the ownership of the donor." 1- (T)

In *Radd-ul-Muhtar*, it is stated:

"If a wild animal devours the deceased, the remaining shroud belongs to the donor, not the heirs. Nahr." 2- (T)

As for other offerings, even if they are sheets that were not placed on the grave nor given to be placed on it, they should be considered like other vows (Nuzoor). The common custom is that the servant of the shrine is considered their owner. People bring them with this intent and see, know, and allow their use and disposal. "What is well-known is like what is stipulated" (T), so the one in service is their owner; it is not inheritance to go to the son. Such offerings are not forbidden anywhere in Sharia, nor are they religious vows; rather, it is a custom that whatever is brought before elders is called an offering (Nazr), just as offerings are presented to kings. Some later scholars prohibited it, forbidding making a vow for the deceased; that situation is not generally present here. Most offerings are not vows at all, nor are they Sharia-compliant vows. There are subtle discussions here that we mentioned in the annotations of *Radd-ul-Muhtar*, along with Imam Allama Arif Billah Sayyidi Abdul Ghani Sayyidi Isma'il bin Abdul Ghani, may his holy secret be sanctified.

1 *Durr-ul-Mukhtar*, Chapter of Funeral Prayers, Mujtabai Press, Delhi, 1/121. 2 *Radd-ul-Muhtar*, Chapter of Funeral Prayers, Idarat-ul-Tiba'at-ul-Misriyya, Egypt, 1/571.

खंड नौ फ़तावा रज़विया

मसाला १६८: कलकत्ता, २२ ज़करिया स्ट्रीट से, मौलवी अब्दुल हक़ साहब और मौलवी मुबारक करीम साहब द्वारा हाजी लाल खान साहब की संगति में पूछा गया, २६ रमज़ान-उल-मुबारक १३३७ हिजरी। धर्म के विद्वान इस मामले में क्या कहते हैं: एक शेख ने अपने मुरीद (शिष्य) को वसीयत की थी कि मेरी कब्र का सारा सामान जैसे रोशनी, कुरान ख्वानी, लंगर खाना, उर्स आदि का प्रबंध तुम करना। तदनुसार, मुरीद ने वसीयत के अनुसार सारा सामान तैयार किया और सभी खर्चों का वहन किया। अब सवाल यह है कि जो लोग मज़ार पर चादर, मिठाई और नकद या सामान चढ़ाते हैं, उन पर किसका हक़ है? उस मुरीद का जिसने ये प्रबंध और खर्चे किए, मज़ार के खादिम (सेवक) का, या शेख के बेटे का?

उत्तर: जवाब: जो चादर मज़ार पर डाली जाती है, वह किसी का हक नहीं है, न उस मुरीद का जो मज़ार का खादिम है, न मज़ार वाले के बेटे का, और न ही वह वक्फ है। बल्कि वह डालने वाले की मिल्कियत (स्वामित्व) में रहती है, जैसे वह कफन जो किसी ने दान के रूप में मृतक को दिया हो। 'दुर्रे मुख्तार' में है:

"कफ़न दान करने वाले (उपकार के रूप में देने वाले) के स्वामित्व से बाहर नहीं जाता।" 1- (त)

'रद-उल-मुह्तार' में है:

"यदि किसी जंगली जानवर ने मृतक को खा लिया, तो जो कफन बच गया वह दान करने वाले का होगा, वारिसों का नहीं। नहर।" 2- (त)

बाकी अन्य चढ़ावे, भले ही वे चादरें हों जो मज़ार पर न डाली गई हों और न डालने के लिए दी गई हों, उन्हें अन्य मन्नत (नज़ूर) की तरह समझा जाना चाहिए। उनमें आम प्रथा यह है कि मज़ार का खादिम ही उनका मालिक समझा जाता है। लोग इसी इरादे से लाते हैं और उसके उपयोग और अधिकार को देखते और जानते हुए इसे स्वीकार करते हैं। "जो प्रसिद्ध है वह शर्त के समान है" (त), तो वह सेवा करने वाला ही उनका मालिक है; यह विरासत नहीं है जो बेटे को मिले। और इस प्रकार के चढ़ावे शरीयत में कहीं भी पूर्णतः वर्जित नहीं हैं, न ही ये धार्मिक मन्नतें हैं, बल्कि यह एक प्रथा है कि बुजुर्गों की सेवा में जो कुछ लाया जाता है उसे नज़्र (भेंट) कहा जाता है, जैसे राजाओं को नज़्र दी जाती है। कुछ बाद के विद्वानों ने इसे मना किया है, उन्होंने मृतक के लिए मन्नत मानने से मना किया है, वह स्थिति यहाँ आम तौर पर नहीं है। अधिकांश चढ़ावे मन्नत ही नहीं होते, और न ही ये शरीयत के

अनुसार मन्नत (नज़्र) हैं। यहाँ कुछ सूक्ष्म चर्चाएँ हैं जिनका उल्लेख हमने 'रद-उल-मुह्तार' की टिप्पणियों में किया है, साथ ही इमाम अल्लामा आरिफ बिल्लाह सैय्यदी अब्दुल गनी सैय्यदी इस्माइल बिन अब्दुल गनी, खुदा उनके पवित्र रहस्य को और पवित्र करे।

1 दुर्रे मुख्तार, नमाज़-ए-जनाज़ा का अध्याय, मुजतबाई प्रेस, दिल्ली १/१२१ 2 रद-उल-मुह्तार, नमाज़-ए-जनाज़ा का अध्याय, इदारात-उल-तिबात-उल-मिस्रया, मिस्र १/५७१

पृष्ठ ५३५/९४८

جلد نہم فتاوی رضویہ

مسئلہ ۱۶۸: از کلکتہ زکریا اسٹریٹ ۲۲ مسئولہ مولوی عبدالحق صاحب و مولوی مبارک کریم صاحب بمرفقت حاجی لعل خاں صاحب ۲۶ رمضان المبارک ۱۳۳۷ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ شیخ نے مرید کو وصیت کی تھی کہ میری قبر کا کل سامان روشنی و قرآن خوانی ولنگر خانہ عرس وغیرہ کا تم انتظام کرنا۔ چنانچہ مرید نے بموجب وصیت تمام سامان کیا، کل اخراجات کا متکفل ہوا۔ اب سوال یہ ہے کہ جو لوگ چادر و شیرینی و نقد جنس مزار پر چڑھاتے ہیں وہ کس کا حق ہے؟ اس مرید کا جس نے یہ سامان اور اخراجات کئے اور جو خادم ہے یا وہ فرزند شیخ کا؟

الجواب: چادر جو مزار پر ڈالی جائے وہ کسی کا حق نہیں ، نہ اس مرید خادم مزار کا، نہ فرزند صاحب مزار کا ، نہ وہ وقف ہو ، بلکہ وہ ڈالنے والے کی ملک پر رہتی ہے، جیسے کفن کہ تبرعاً کسی نے میت کو دیا ۔ درمختار میں ہے: لا یخرج الکفن عن ملك المتبرع 1- کفن تبرع کرنے والے (بطور احسان دینے والے) کی ملک سے نہیں نکلتا۔ (ت)

ردالمحتار میں ہے: لو افترس المیت سبع کان للمتبرع لالورثة نهر 2- اگر میت کو کسی درندے نے کھا لیا تو کفن جو رہ گیا وہ تبرع کرنے والے کا ہوگا ورثہ کا نہیں۔ نہر ۔ (ت)

باقی اور چڑھاوے اگرچہ وہ چادریں ہوں جو مزار پر نہ ڈالیں نہ اس پر ڈالنے کو دیں۔ بلکہ دیگر نذور کی طرح سمجھیں، ان میں عرف عام یہ ہے کہ خادم مزار ہی ان کا مالک سمجھا جاتا ہے۔ اسی قصد سے لوگ لاتے اور اس کا انتفاع و تصرف دیکھتے ، جانتے، روا رکھتے ہیں والمعروف کالمشروط (معروف، مشروط کی طرح ہے۔ ت) تو وہ خدمت والا ہی ان کا مالک ہے ترکہ نہیں کہ

فرزند کو جائے۔ اور اس قسم کے چڑھاوے شرع میں کہیں مطلقاً منع نہیں ، نہ یہ نذور شرعی، بلکہ عرف ہے کہ اکابر کے حضور جو کچھ لے جاتے اسے نذر کہتے ہیں، جیسے بادشاہ کی نذریں گزریں۔ بعض متاخرین نے منع کیا میت کے لیے منت ماننے کو منع کیا ہے، وہ صورت یہاں عام مواقع میں نہیں، اکثر چڑھاوے منت ہی نہیں ہوتے، نہ یہ نذر شرعی نذر۔ اور یہاں مباحث نفسیہ ہیں کہ ہم نے تعلیقات ردالمحتار میں ذکر کیں، معہذا امام علامہ عارف باللہ سیدی عبدالغنی سیدی اسمعیل بن عبدالغنی قدس سرہ القدسی

1 درمختار باب صلوٰۃ الجنائز مطبع مجتبائی دہلی ۱/ ۱۲۱ 2 ردالمحتار باب صلوٰۃ الجنائز ادارۃ الطباعۃ المصریۃ ، مصر ۱/ ۵۷۱

صفحہ ۵۳۵/۹۴۸

Fatawa Razawiya Volume 9

ومن هذا القبيل زيارة القبور والتبرك بضريح الاولياء والصالحين والنذر لهم بتعليق ذلك على حصول شفاء او قدم غائب فانه مجاز عن الصدقة على الخادمين بقبورهم كما قال الفقهاء فيمن دفع الزكوة لفقير وسماها قرضا صح لانه العبرة بالمعنى لا باللفظ وكذلك الصدقة على الغنى هبة والهبة للفقير صدقة[1]

From the same category is visiting graves and seeking blessings from the shrines of saints and the righteous, and making vows for them by conditioning them upon the recovery of a sick person or the arrival of an absent one. For indeed, this is a metaphor for charity given to the servants at their graves, just as the jurists (Fuqaha) have said regarding a person who gives Zakat to a poor person and calls it a loan; the Zakat is fulfilled because consideration is given to the meaning, not the word. Similarly, charity given to a wealthy person is a gift and a present, and a gift given to a poor person is charity. (T)

The refined explanation of vows (Nazr) for saints is in our *Fatawa Africa*. And Allah Almighty knows best.

Issue 169 to 171: From Pindol Buzurg, Post Office Raipur, District Muzaffarpur, sent by Ne'mat Ali Sahib, 14 Rabi' al-Awwal Sharif 1337 AH.

What do the scholars of religion say regarding these issues:

(1) Regarding food served in the name of the deceased to both the rich and the poor, who should eat it and who should not? And it is also said that food in the name of the deceased is fed to the prayerful, the rich, and the poor alike; is this permissible or not?

(2) Women visit the shrines of elders during Urs festivals or otherwise, or in a state of ritual impurity seeking goodness and the fulfillment of needs, and they stay there, and the graveyard itself is their place of stay; is this permissible or not? If these practices are bad, does the saint possess the power of disposal and strength to stop them or not? And it is said that those who come to the court of the elders are their guests; is this correct or not? Some people say that the elders cannot exercise control from their shrines, and they argue that if they could exercise control, then prostitutes would not sing, dance, and play music there, unrelated women would not stay there, and their children would not urinate there, etc., so why do they not stop it? Is saying this and this argument correct or not? What is the answer to this?

(3) What is the nature of the light from lamps at the shrines of elders that occurs from the unseen (miraculously), and does it prove the greatness of the person in the shrine or not?

---

[1] *Al-Hadiqa an-Nadiya fi al-Tariqa al-Muhammadiya*, Al-Khuluq an-Nas wa al-Arba'un etc., Maktaba Nooria Razawiya Faisalabad, 2/151

फ़तावा रज़विया जिल्द 9

ومن هذا القبيل زيارة القبور والتبرك بضريح الاولياء والصالحين والنذر لهم بتعليق ذلك على حصول شفاء او قدم غائب فانه مجاز عن الصدقة على الخادمين بقبورهم كما قال الفقهاء فيمن دفع الزكوة لفقير وسماها قرضا صح لانه العبرة بالمعنى لا باللفظ وكذلك الصدقة على الغنى هبة والهبة للفقير صدقة[1]

इसी श्रेणी से है कब्रों की ज़ियारत और औलिया और नेक लोगों के मज़ारत से बरकत लेना और किसी बीमार की शिफ़ायाबी या किसी गायब (लापता) की वापसी की शर्त के साथ उनके लिए नज़र (मन्नत) पेश करना। क्योंकि वास्तव में यह उन कब्रों के खादिमों पर सदका करने का एक रूपक है, जैसा कि फ़ुक़हा (धर्मशास्त्रियों) ने उस व्यक्ति के बारे में फरमाया जो किसी गरीब को ज़कात देता है और उसे कर्ज कहता है, तो ज़कात अदा हो जाती है क्योंकि महत्त्व अर्थ का है शब्द का नहीं। इसी तरह अमीर पर सदका करना तोहफा और भेंट है और गरीब को तोहफा देना सदका है। (त)

औलिया की नज़र का बेहतरीन बयान हमारे 'फ़तावा अफ्रीका' में है। और अल्लाह तआला सबसे बेहतर जानता है।

मसाला 169 से 171: पिंडोल बुज़ुर्ग, डाकखाना राय पुर, ज़िला मुज़फ़्फ़रपुर से, प्रेषक नेमत अली साहब, 14 रबीउल अव्वल शरीफ 1337 हिजरी।

धर्म के विद्वान इन मसलों में क्या फरमाते हैं कि:

(1) मुर्दे के नाम का खाना जो अमीर और गरीब को खिलाते हैं, उसे किसे खाना चाहिए और किसे नहीं? और यूँ भी कहते हैं कि मुर्दे के नाम का खाना मुसल्ली (नमाज़ी), अमीर और गरीब सबको खिलाते हैं, यह जायज़ है या नहीं?

(2) बुज़ुर्गों के मज़ार पर उर्सों में या उसके अलावा औरतें जाती हैं, या नापाकी की हालत में भलाई की तलब में हाजत पूरी करने के लिए, और वहाँ ठहरती हैं और उनके ठहरने के लिए वही कब्रिस्तान है, क्या यह जायज़ है या नहीं? अगर ये बातें बुरी हैं तो उस बुज़ुर्ग में इसे रोकने का प्रभाव और शक्ति है या नहीं? और यह कहा जाता है कि बुज़ुर्गों के दरबार में आने वाले उनके मेहमान हैं, यह सही है या नहीं? और कुछ लोग कहते हैं कि बुज़ुर्ग लोग अपने मज़ार से कोई प्रभाव नहीं डाल सकते, और यह दलील लाते हैं कि अगर वे प्रभाव डाल सकते तो वहाँ वेश्याएं गाती हैं, नाचती हैं, बजाती हैं, गैर-

महरम औरतें रहती हैं, उनके बच्चे पेशाब वगैरह करते हैं तो वे क्यों नहीं रोकते, यह कहना और उसकी यह दलील सही है या नहीं? इसका क्या जवाब है?

(3) बुज़ुर्गों के मज़ार से जो चिराग की रौशनी गायब से (चमत्कारी रूप से) होती है, यह कैसी है और इससे उस मज़ार वाले की बुज़ुर्गियत साबित होती है या नहीं?

---

[1] अल-हदीक़ह अन-नदियह फ़ी अल-तरीक़ह अल-मुहम्मदिया, अल-खुलुक़ अन-नास व अल-अरबऊन आदि, मक्तबा नूरिया रज़विया फैसलाबाद, 2/151

فتاوٰی رضویہ جلد نہم

ومن هذا القبيل زيارة القبور والتبرك بضريح الاولياء والصالحين والنذر لهم بتعليق ذلك على حصول شفاء او قدم غائب فانه مجاز عن الصدقة على الخادمين بقبورهم كما قال الفقهاء فيمن دفع الزكوة لفقير وسماها قرضا صح لانه العبرة بالمعنى لا باللفظ وكذلك الصدقة على الغنى هبة والهبة للفقير صدقة[1]

اسی قبیل سے ہے قبروں کی زیارت اور اولیاء وصالحین کے مزارات سے برکت لینا اور کسی بیمار کی شفا یابی یا کسی غائب کی آمد کی شرط کرکے ان کے لیے نذر پیش کرنا کہ دراصل یہ قبروں کے خدام پر صدقہ سے مجاز ہے جیسا کہ فقہاء نے اس شخص کے بارے میں فرمایا جو فقیر کو زکوۃ دے اور اسے قرض کہے تو زکوۃ ادا ہو جاتی ہے اس لیے کہ اعتبار معنی کا ہے لفظ کا نہیں، اسی طرح غنی پر صدقہ ہو تو ہبہ وعطیہ ہے اور فقیر کو ہبہ ہو تو صدقہ ہے۔ (ت)

نذر اولیاء کا نفیس بیان ہمارے فتاوٰی افریقہ میں ہے۔ واللہ تعالی اعلم۔

مسئلہ ۱۶۹ تا ۱۷۱: از پنڈول بزرگ ڈاک خانہ رائے پور ضلع مظفر پور مرسلہ نعمت علی صاحب ۱۴ ربیع الاول شریف ۱۳۳۷ھ

کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسائل میں کہ:

(۱) مردہ کے نام کھانا جو امیر و غریب کو کھلاتے ہیں کس کو کھانا چاہیے اور کس کو نہیں؟ اور یوں بھی کہتے ہیں کہ مردہ کے نام کا کھانا مصلّی امیر و غریب سب کو کھلاتے ہیں جائز ہے یا نہیں؟

(۲) بزرگوں کے مزار پر عرسوں میں یا اس کے علاوہ میں عورتیں جاتی ہیں یا ناپاکی کی حالت میں بھلائی کی طلب میں حاجت برآری کے لیے، اور وہاں ٹھہرتی ہیں اور ان کے لیے ٹھہرنے کے لیے وہی قبرستان ہے، آیا یہ جائز ہے یا نہیں؟ اگر یہ باتیں بری ہیں تو اس بزرگ میں تصرف اور قوت اس کے روکنے کی ہے یا نہیں؟ اور یہ کہا جاتا ہے کہ دربار بزرگان میں آنے والے ان کے مہمان ہیں، یہ صحیح ہے یا نہیں؟ اور بعض لوگ کہتے ہیں کہ بزرگ لوگ اپنے مزار سے تصرف نہیں کرسکتے، اور یہ دلیل لاتے ہیں کہ اگر وہ تصرف کرسکتے تو وہاں رنڈیاں گاتی ہیں، ناچتی ہیں، بجاتی ہیں، عورتیں غیر محرم رہتی ہیں، ان کے بچے پیشاب وغیرہ کرتے ہیں تو کیوں نہیں روکتے، یہ کہنا اور اس کی یہ دلیل صحیح ہے یا نہیں؟ اس کا کیا جواب؟

(۳) بزرگوں کے مزار سے جو چراغ کی روشنی غیبی سے ہوتی ہے یہ کیسی ہے اور اس سے اس صاحب مزار کی بزرگی ثابت ہوتی ہے یا نہیں؟

---

[1] الحدیقۃ الندیۃ فی الطریقۃ المحمدیۃ الخلق الناس والاربعون الخ مکتبہ نوریہ رضویہ فیصل آباد ۲/ ۱۵۱

Volume 9 - Fatawa Razawiya

(4) Is it permissible or not to build a structure for reciting Fatiha, Quran, and seeking intercession while standing at the shrines of elders (Saints), and to organize or have Urs ceremonies organized? (5) Is it permissible or not to plant trees on a grave, build a wall, or for the protection of a graveyard, to dig around its four sides, which may include old and new graves, and encircle it? (6) Is it permissible or not to place a thatched roof or canopy supported by pillars over the graves surrounding the tomb of a saint for the purpose of extending the space around that dome? (7) Is there any report of conversing in a manifest manner with a manifest Wali of Allah (a living saint) or with a Wali of Allah who is the inhabitant of a shrine? (8) If a person has 'Qul' recited or 'Fatiha' performed during their lifetime, is it permissible or not, and can they reserve its reward for themselves after death, i.e., by saying, "May I receive its reward after my death"?

The Answer: (1) Food for the deceased should be only for the poor; it is forbidden for those who arrange it as a general invitation; the wealthy should not eat it, as stated in Fath al-Qadir and Majma' al-Barakat. (2) There is a prohibition for women to visit the graves of saints as well as common graves. The spiritual authority of saints from their shrines is undoubtedly true. And that absurd argument is pure falsehood. The inhabitants of shrines are not in a place of suffering; they are currently solely subject to the People of Creation (Ahl-e-Takween). People commit hundreds of acts of negligence in mosques; Allah Almighty is All-Powerful, why does He not stop them? Those present at the shrine are guests, but women are uninvited guests. (3) If it is from Allah, then greatness is certainly established, and if greatness is established, then it is from Allah; otherwise, the matter is ambiguous. Satan also shows many miracles. When one of the noble wives of our master Ghaus-e-Azam (may Allah be pleased with him) would walk in the dark, a candle would light up. One day his Eminence observed this, extinguished it, and said that this is from Satan. Then he designated a divine light for her, as stated in Bahjat al-Asrar wa Ma'dan al-Anwar. (4) It is permissible as stated in Majma' Bihar al-Anwar. Yes, it is necessary to avoid things forbidden by Sharia, such as dancing and musical instruments. (5) There is no harm in making a fence for protection. And trees are good if they are for the shade of pilgrims.

(4) बुजुर्गों के मजार पर फातिहा, कुरान पढ़ने और खड़े होकर वसीला चाहने के लिए इमारत बना देना और उर्स करना या करवाना जायज है या नहीं? (5) कब्र पर दरख्त लगाना, दीवार खींचना या कब्रिस्तान की हिफाजत के लिए उसके चारों तरफ खुदाई करना जिसमें नई और पुरानी कब्रें भी हों, घेराबंदी करना जायज है या नहीं? (6) किसी बुजुर्ग के रौजे के चारों ओर कब्रों और जगह की विस्तार के लिए उस गुंबद से लगाकर उसी घेरे की कब्रों पर साये की तरह खंभों पर छप्पर डालना जायज है या नहीं? (7) क्या कोई ऐसी खबर है जिसमें जाहिर वली अल्लाह यानी जीवित और मजार वाले वली अल्लाह से प्रत्यक्ष रूप से बातचीत करने का जिक्र हो? (8) क्या कोई व्यक्ति अपने जीवन में ही 'कुल' करवाए, फातिहा पढ़वाए, यह जायज है या नहीं, और क्या वह इसका सवाब मरने के बाद के लिए अपने लिए रख सकता है, यानी यह कहे कि मेरे मरने के बाद मुझे इसका सवाब मिले?

जवाब: (1) मुर्दे का खाना सिर्फ गरीबों (फुकरा) के लिए हो, जो इसे आम दावत के तौर पर करते हैं वह मना है, धनी लोग इसे न खाएं जैसा कि फतह अल-कादिर और मजमा अल-बरकात में है। (2) महिलाओं के लिए औलिया और आम लोगों के मजारों पर जाने की मनाही है। औलिया किराम का मजारों से रूहानी अधिकार करना बेशक सच है। और वह बेतुका तर्क सरासर गलत है। मजार वाले तकलीफ के घर में नहीं हैं, वे इस वक्त विशुद्ध रूप से अहले तकवीनिया के अधीन हैं। मस्जिदों में लोग सैकड़ों कोताही करते हैं, अल्लाह तो सर्वशक्तिमान है, वह उन्हें क्यों नहीं रोकता? मजार पर हाजिर होने वाले मेहमान होते हैं लेकिन औरतें बिन बुलायी मेहमान। (3) अगर यह अल्लाह की ओर से है तो यकीनन बुजुर्गी साबित होती है और अगर बुजुर्गी साबित है तो वह अल्लाह की तरफ से है वरना मामला संदिग्ध है। शैतान भी बहुत से करिश्मे दिखाता है। हमारे आका गौस-ए-आजम (अल्लाह उनसे खुश हो) की पाक पत्नियों में से एक बीवी जब अंधेरे में जातीं तो एक मोमबत्ती जल उठती। एक दिन हुजूर ने यह देखा, इसे बुझा दिया और फरमाया कि यह शैतान की तरफ से है। फिर उनके लिए एक रब्बानी नूर मुकर्रर फरमाया, जैसा कि बहजतुल असरार व मादनुल अनवार में है। (4) यह जायज है जैसा कि मजमा बिहारुल अनवार में है। हाँ, शरीयत में वर्जित चीजों जैसे नाच और संगीत के साजों से बचना जरूरी है। (5) हिफाजत के लिए घेराबंदी करने में कोई हर्ज नहीं। और दरख्त अगर जायरीन के साये के लिए हों तो अच्छा है।

पृष्ठ 537 / 948

(۴) بزرگوں کے مزار پر فاتحہ، قرآن پڑھنے اور کھڑے ہو کر وسیلہ چاہنے کے لیے عمارت بنادے اور عرس کرے کرائے تو جائز ہے یا نہیں؟ (۵) قبر پر درخت لگانا، دیوار کھینچنا یا قبرستان کی حفاظت کے لیے اس کے چاروں طرف کھود کر جس میں جدید قدیم قبریں بھی ہیں محاصرہ کرنا جائز ہے یا نہیں؟ (۶) کسی بزرگ کے روضہ کے گرد قبریں اور وسعت جگہ کے لیے اس قبہ سے لگا کر اسی گرد کے قبر پر مثل سائبان کے پایہ زینہ دے کر چھپر ڈالنا جائز ہے یا نہیں؟ (۷) ظاہر ولی اللہ یعنی زندہ اور صاحب مزار ولی اللہ سے ظاہر طریقہ سے ہمکلام ہونے کی کوئی خبر ہے یا نہیں؟ (۸) کوئی شخص اپنی زندگی میں قل کرائے، فاتحہ پڑھوائے، آیا جائز ہے یا نہیں، اور اس کا ثواب اپنے لیے بعد وفات رکھے، یعنی یہ کہے کہ میرے مرنے کے بعد مجھے اس کا ثواب ملے۔ الجواب: (۱) مردے کا کھانا صرف فقراء کے لیے ہو، عام دعوت کے طور پر جو کرتے ہیں یہ منع ہے، غنی نہ کھائے، کمافی فتح القدیر و مجمع البرکات (جیسا کہ فتح القدیر اور مجمع البرکات میں ہے۔ ت) (۲) عورتوں کو مقابر اولیاء و مزارات عوام دونوں پر جانے کی ممانعت ہے۔ اولیاء کرام کا مزارات سے تصرف کرنا بیشک حق ہے۔ اور وہ بیہودہ دلیل محض باطل ہے۔ اصحاب مزارات دار تکلیف میں نہیں وہ اس وقت محض اہل تکوینیہ کے تابع ہیں، سیکڑوں ناحفاظتیاں لوگ مسجدوں میں کرتے ہیں اللہ عز وجل تو قادر مطلق ہے کیوں نہیں روکتا؟ حاضران مزار مہمان ہوتے ہیں مگر عورتیں ناخواندہ مہمان۔ (۳) اگر منجانب اللہ ہے تو ضرور بزرگی ثابت ہوتی اور اگر بزرگی ثابت ہے تو منجانب اللہ ہے ورنہ امر متحمل ہے۔ شیطان بھی بہت کرشمے دکھاتا ہے، حضور سیدنا غوث اعظم رضی اللہ تعالیٰ عنہ کی ازواج مطہرات سے ایک بی بی جب اندھیرے میں جاتیں ایک شمع روشن ہو جاتی، ایک روز حضور نے ملاحظہ فرمایا اسے

بجھا دیا اور فرمایا کہ یہ شیطان کی جانب سے ہے پھر ایک ربانی نور ان کے ساتھ فرمادیا کما فی بھجۃ الاسرار و معدن الانوار (جیسا کہ بھجۃ الاسرار اور معدن الانوار میں ہے۔ت) (۴) جائز ہے کما فی مجمع بحار الانوار (جیسا کہ مجمع بحار الانوار میں ہے۔ ت) ہاں منکرات شرعیہ مثل رقص و مزامیر سے بچنا لازم ہے۔ (۵) حفاظت کے لیے حصار بنانے میں حرج نہیں۔ اور درخت اگر سایہ زائرین کے لیے ہوں تو اچھا ہے

Fatawa Razawiyya Volume 9

... but they should be separate from the grave. (6) It is not permissible to pierce any pillar/stake on any grave. (7) There are many [narrations] mentioned in Imam Jalaluddin (al-Suyuti)'s Sharh al-Sudur etc. (8) It is permissible and if accepted, reward will be granted. And Allah the Almighty knows best.

Problem 177: From Gwalior, sent by Maulvi Mahmood-ul-Hasan Sahib, 13 Rabi-ul-Akhir 1339 AH. What do the scholars of religion say on this issue: Is it correct or incorrect for women to go to graves for Fatiha? The Answer: The most correct view is that women are not allowed to go to graves. And Allah the Almighty knows best.

Problem 178: From Nasirabad, Taluka Jalgaon, District Khandesh, sent by Bismillah Munshi, 2 Dhu al-Hijjah 1337 AH. What do the scholars of religion say regarding the ruling for women visiting graves? Also, if someone has inherited the service and caretaking (mujawari) of the shrines of friends of Allah (Auliya Allah) from ancestors, is it permissible for a woman to offer Fatiha, offer sandalwood, or offer a covering (ghilaf) on that grave in the presence of male caretakers (mujawar)? Male caretakers are always present at this shrine. She belongs to the caretaker's family but is of very bad character. What authority does this woman have? The Answer: Visiting graves is prohibited for women. It is mentioned in the Hadith: "L'an Allah Za'iraat al-Qubur" (Allah curses those women who visit graves). Caretakers should be men. For a woman to sit as a caretaker and mix with those coming and going is extremely bad. A woman is commanded to remain in seclusion (gosha-nasheeni), not to mix with men in such a way, which sometimes involves being alone with men, and this is haram (forbidden). And Allah the Almighty knows best.

Problem 179: From Patna, sent by Abul Masakeen Maulvi Zia-ud-Din, 16 Dhu al-Hijjah 1320 AH. What do the scholars of religion say on this issue: Is it correct for women to visit graves or not? The Answer: The Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) says: "L'an Allah Zawwarat al-Qubur" (Allah curses those women who frequently visit graves...

1. 'Umdat al-Qari Sharh al-Bukhari, Chapter on Visiting Graves, Idarah al-Tiba'ah al-Muniriyyah Beirut, 8/69.
2. Musnad Ahmad bin Hanbal, Hadith of Hassan bin Thabit, Dar al-Fikr Beirut, 3/442.

फ़तावा रज़विया जिल्द नहुम (9)

... मगर क़ब्र से जुदा हों। (६) किसी क़ब्र पर कोई पाया (खंभा) चुभाना जायज़ नहीं। (७) बहुत से (वाकये) हैं जो इमाम जलालुद्दीन (सुयुती) की शरह-उस-सुदूर वगैरह में ज़िक्र हैं। (८) जायज़ है और अगर क़बूल हुआ तो सवाब मिलेगा। वल्लाह तआला आलम।

मसला १७७: ग्वालियर से, मुरसला मौलवी महमूदुल हसन साहिब, १३ रबी-उल-आख़िर १३३९ हिजरी। क्या फ़रमाते हैं उलेमा-ए-दीन इस मसले में कि औरतों को क़ब्रों पर फ़ातिहा के लिए जाना दुरुस्त है या ना-दुरुस्त? अल-जवाब: असह (सबसे सही) यह है कि औरतों को क़ब्रों पर जाने की इजाज़त नहीं। वल्लाह तआला आलम।

मसला १७८: नसीराबाद, तालुका जलगाँव, जिला खानदेश से, मुरसला बिस्मिल्ला मुंशी, २ ज़ुल-हिज्जा १३३७ हिजरी। क्या फ़रमाते हैं उलेमा-ए-दीन इस मसले में कि ज़ियारत-ए-कुबूर में औरतों के लिए क्या हुक्म है? और अगर किसी के पास पुरखों से औलिया अल्लाह की मुजावरी (सेवा) और खिदमतगुज़ारी चली आ रही हो, तो क्या किसी औरत के लिए उस क़ब्र पर फ़ातिहा देना, संदल चढ़ाना, ग़िलाफ़ चढ़ाना जायज़ है जबकि वहाँ मर्द मुजावर मौजूद हों? उस मज़ार पर हमेशा मर्द मुजावर रहा करते हैं, वह औरत मुजावर के ख़ानदान से है मगर निहायत बदचलन है। उस औरत को क्या अख्तियार है? अल-जवाब: औरतों को ज़ियारत-ए-कुबूर मना है। हदीस में है: "ल'अनल्लाह ज़ाइरातुल कुबूर" (अल्लाह की लानत उन औरतों पर जो क़ब्रों की ज़ियारत को जाएँ)। मुजावर मर्दों को होना चाहिए। औरत मुजावर बन कर बैठे और आने-जाने वालों से इख़्तिलात (मेल-जोल) करे, यह सख़्त बुरा है। औरत को गोशानशीनी (परदे में रहना) का हुक्म है, न कि इस तरह मर्दों के साथ मेल-जोल का, जिसमें बाज़ औक़ात उसे मर्दों के साथ तन्हाई भी होगी, और यह हराम है। वल्लाह तआला आलम।

मसला १७९: पटना से, मुरसला अबुल मसाकीन मौलवी ज़ियाउद्दीन, १६ ज़ुल-हिज्जा १३२० हिजरी। क्या फ़रमाते हैं उलेमा-ए-दीन इस मसले में कि औरतों के लिए ज़ियारत-ए-कुबूर दुरुस्त है या नहीं? अल-जवाब: रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम फ़रमाते हैं: "ल'अनल्लाह ज़व्वारातुल कुबूर" (अल्लाह की लानत उन औरतों पर जो कसरत से क़ब्रों की ज़ियारत...

1. उमदतुल क़ारी शरह अल-बुख़ारी, बाब ज़ियारत-अल-कुबूर, इदारा-अल-तिबाह-अल-मुनीरिया बेरूत, ८/६९।

2. मुस्नद अहमद बिन हंबल, हदीस हसन बिन साबित, दार-अल-फ़िक्र बेरूत, ३/४४२।

पृष्ठ ५३८/९४८

... مگر قبر سے جدا ہوں۔ (۶) کسی قبر پر کوئی پایہ چبھنا جائز نہیں۔ (۷) بکثرت ہیں کہ امام جلال الدین (سیوطی) کی شرح الصدور وغیرہ میں مذکور۔ (۸) جائز ہے اور قبول ہوا تو ثواب ملے گا۔ واللہ تعالٰی اعلم

مسئلہ ۱۷۷: از گوالیار مرسلہ مولوی محمود الحسن صاحب ۱۳ ربیع الآخر ۱۳۳۹ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ عورتوں کو قبروں پر فاتحہ کو جانا درست ہے یا نا درست؟ الجواب: اصح یہ ہے کہ عورتوں کو قبروں پر جانے کی اجازت نہیں۔ واللہ تعالٰی اعلم

مسئلہ ۱۷۸: از نصیر آباد تعلقہ جل گاؤں ضلع خانداس مرسلہ بسم اللہ منشی ۲ ذی الحجہ ۱۳۳۷ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ زیارت قبور میں عورتوں کے واسطے کیا حکم ہے؟ دیگر کسی کے بزرگوں کے پاس سے پشت در پشت کسی اولیاء اللہ کی مجاوری اور خدمت گزاری ملی ہے تو فاتحہ دینا اس قبر پر صندل چڑھانا، غلاف چڑھانا، مجاور مرد لوگ موجود ہو کر عورت کو جائز ہے، اس مزار پر ہمیشہ مرد مجاور رہا کرتے ہیں، وہ عورت مجاور کے خاندان سے ہے مگر نہایت بد چلن ہے۔ اس عورت کو کیا اختیار ہے؟ الجواب: عورتوں کو زیارت قبور منع ہے۔ حدیث میں ہے: لعن اللہ زائرات القبور اللہ کی لعنت ان عورتوں پر جو قبروں کی زیارت کو جائیں، مجاور مردوں کو ہونا چاہئے، عورت مجاور بن کر بیٹھے اور آنے جانے والوں سے اختلاط کرے یہ سخت بد ہے، عورت کو گوشہ نشینی کا حکم ہے، نہ یوں مردوں کے ساتھ اختلاط کا، جس میں بعض اوقات مردوں کے ساتھ اسے تنہائی بھی ہوگی، اور یہ حرام ہے۔ واللہ تعالٰی اعلم

مسئلہ ۱۷۹: از پٹنہ مرسلہ ابوالمساکین مولوی ضیاء الدین ۱۶ ذی الحجہ ۱۳۲۰ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ عورتوں کے واسطے زیارت قبور درست ہے یا نہیں؟ الجواب: رسول اللہ صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم فرماتے ہیں: لعن اللہ زوارت القبور (قبروں کی زیارت ...

1 عمدة القاری شرح البخاری باب زیارة القبور ادارة الطباعة المنیریة بیروت ۸/ ۶۹ 2 مسند احمد بن حنبل حدیث حسان بن ثابت دارالفکر بیروت ۳/ ۴۴۲

Fatawa Razawiya, Volume 9

(Allah's curse is upon women who visit graves. T) and he [Peace and blessings of Allah be upon him] said: 'I had forbidden you from visiting graves, listen now, visit them.' (T)

Scholars have disagreed whether women were also included in this divine permission or not. The more correct view is that they are included, as stated in Al-Bahr al-Raiq (as in Al-Bahr al-Raiq. T). However, young women are forbidden, just like they are from mosques, and if the intention is to renew grief, then it is absolutely prohibited.

I say: Especially at the graves of relatives near the time of death, renewal of grief is inevitable for women. And regarding attendance at the shrines of saints, there is a fear of one of two evils: either abandonment of etiquette or excessive etiquette which is illegitimate; hence, the path of general prohibition is taken. Therefore, in Al-Ghunya, a firm opinion on its dislike was given. However, attending and kissing the dust of the threshold of the throne-like court of the Great Master [peace and blessings of Allah be upon him] is among the greatest recommended acts, rather close to obligatory. They shall not be stopped from this, and they will be taught proper etiquette. And Allah Almighty knows best.

Issue 180: From Tarpol Sulul, post office Harul, district Darbhanga, Bilgram Charsa, sent by Abdul Hakim Sahib, 8 Jumada al-Akhira 1336 AH. Someone makes a dargah (shrine) on a Muslim grave in a graveyard considering it to be of a saint, sets a date, and holds a fair every year. Women, young and old, gather there to present their petitions. Rather, there is a large gathering of men and women, and they invite high-ranking officials or Hindus. Drums, music, and phonograms are played. Women offer flowers, castrated roosters, sweets, etc., on that saint's grave. There is no proper arrangement for urination and defecation in that graveyard. Is it permissible or impermissible to pray behind someone who participates in this shrine? Should the participant be considered bad or good? The caretaker of this shrine is from a lower caste, keeps a mustache longer than his beard, wears an iron garland on his hand, and holds an iron dagger. He uses abusive language towards people, and the people participating consider him a saint and elder. Is it permissible to pray behind such people, and should one stay away from them or not?

Answer: The gathering of Muslims every year at the shrines of the noble saints to recite the Holy Quran or hold other gatherings and its...

1 Sunan Ibn Majah, Book of Funerals, H.M. Saeed Company, Karachi.

फ़तावा रज़विया, जिल्द 9

(कब्रों पर जाने वाली औरतों पर अल्लाह की लानत है। त) और आप (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) फरमाते हैं: 'मैंने तुम्हें कब्रों की ज़ियारत से मना किया था, अब सुनो उनकी ज़ियारत करो।' (त)

विद्वानों में इस बात पर मतभेद है कि क्या इस ईश्वरीय अनुमति के बाद महिलाएं भी इसमें शामिल हुईं या नहीं, सबसे सही बात यह है कि वे शामिल हैं जैसा कि अल-बहरुल राइक में है (जैसा कि अल-बहरुल राइक में है। त)। लेकिन युवा महिलाएं वर्जित हैं जैसे मस्जिदों से, और यदि दुख को नया करना उद्देश्य हो तो पूरी तरह से हराम है।

मैं कहता हूँ: विशेष रूप से रिश्तेदारों की कब्रों पर मृत्यु के समय के निकट होने की स्थिति में, महिलाओं के लिए शोक का नवीनीकरण अनिवार्य है। और संतों की दरगाहों पर जाने में दो बुराइयों में से किसी एक का डर रहता है: या तो शिष्टाचार का त्याग या शिष्टाचार में ज़्यादती जो नाजायज़ है; इसलिए सामान्य निषेध का मार्ग अपनाया गया है। इसलिए गनिया (Al-Ghunya) में नापसंदगी पर दृढ़ राय दी गई है। हालाँकि, सरकार-ए-आज़म (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) की अर्श-निशान चौखट पर हाज़िरी और खाकबोसी महानतम सुन्नत कार्यों में से है, बल्कि वाजिबात के करीब है। उन्हें इससे नहीं रोका जाएगा और उन्हें उचित शिष्टाचार सिखाया जाएगा। और अल्लाह तआला ही बेहतर जानता है।

मसला 180: तरपोल सुलुल, डाकखाना हरुल, जिला दरभंगा, बिलग्राम चरस से प्रेषक अब्दुल हकीम साहब, 8 जमादी अल-आखिर 1336 हिजरी। कोई व्यक्ति किसी कब्रिस्तान में एक मुस्लिम कब्र को बुज़ुर्ग समझकर उस पर दरगाह बनाकर एक तारीख तय करके हर साल मेला लगाता है। हर जवान और बूढ़ी औरत अपनी अर्ज़ी के लिए वहाँ जमा होती है, बल्कि औरत और मर्द का भारी जमावड़ा होता है और बड़े-बड़े ओहदेदारों या हिंदुओं को दावत देकर बुलाते हैं जिसमें ढोल-ताशे और फोनोग्राम वगैरह भी बजते हैं। और औरतें उस बुज़ुर्ग की कब्र पर फूल, खस्सी मुर्ग़े, शीरनी वगैरह चढ़ाती हैं, और उस कब्रिस्तान पर पेशाब-पाखाने का कोई ठिकाना नहीं रहता है। इस दरगाह में शिरकत करने वाले के पीछे नमाज़ पढ़ना जायज़ है या नाजायज़? शिरकत करने वाले को बुरा समझें या अच्छा? और इस दरगाह का मुतवल्ली (निगरानी करने वाला) नीच कौम का है, मूँछें दाढ़ी से ज़्यादा रखता है और हाथ में लोहे की माला पहनता है और हाथ में लोहे का छुरा रखता है और लोगों

को गाली-गलौज करता है। और लोग जो शिरकत करते हैं उसे बुज़ुर्ग और पीर समझते हैं। ऐसे लोगों की नमाज़ पढ़ना जायज़ है या नाजायज़, इसलिए दूर रहना चाहिए या नहीं?

जवाब: औलिया-ए-कराम की मज़ार पर हर साल मुसलमानों का जमावड़ा होकर क़ुरआन मजीद की तिलावत या अन्य महफ़िलें करना और उसका...

---

1 सुनन इब्न माजा, जनाज़ा के अध्याय, एच.एम. सईद कंपनी, कराची।

کو جانے والی عورتوں پر اللہ کی لعنت ہے۔ت) اور فرماتے ہیں صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم : کنت نھیتکم عن زیارۃ القبور الا فزورھا ۔ میں نے قبروں کی زیارت سے منع کیا تھا، سن لو اب ان کی زیارت کرو۔(ت)

علماء کو اختلاف ہوا کہ آیا اس اجازت بعد الہی میں عورتیں بھی داخل ہوئیں یا نہیں، اصح یہ ہے کہ داخل ہیں کما فی البحر الرائق (جیساکہ بحر الرائق میں ہے۔ت) مگر جوانیں ممنوع ہیں جیسے مساجد سے اور اگر تجدید حزن مقصود ہو تو مطلقاً حرام۔

اقول: قبور اقرباء پر خصوصاً بحالِ قرب عہدِ ممات تجدید حزن لازم نساء ہے اور مزارات اولیاء پر حاضری میں احدی الشناعتین کا اندیشہ یا ترک ادب یا ادب میں افراط ناجائز تو سبیل اطلاق منع ہے ولہذا غنیہ میں کراہت پر جزم فرمایا البتہ حاضری و خاکبوسیِ آستانِ عرش نشانِ سرکار اعظم صلی اللہ علیہ وسلم اعظم المندوبات بلکہ قریب واجبات ہے۔ اس سے نہ روکیں گے اور تعدیلِ ادب سکھائیں گے۔ واللہ تعالٰی اعلم

مسئلہ ۱۸۰: از ترپول سولول ڈاکخانہ ہرول ضلع دربھنگہ بلگرام چرسہ مرسلہ عبدالحکیم صاحب ۸ جمادی الآخر ۱۳۳۶ھ کوئی آدمی کسی قبرستان میں ایک مسلمان قبر پر بزرگ سمجھ کر اس کی قبر پر درگاہ بنا کر کوئی تاریخ مقرر کرکے ہر سال میلہ لگاتا ہے۔ ہر پیر و جوان عورت واسطے عرض اپنے وہاں جمع ہوتی ہیں، بلکہ عورت مرد کا مجمع کثیر ہوتا ہے اور بڑے بڑے عہدہ دار یا ہندو کو دعوت دے کر بلاتے ہیں جس میں ڈھول باجے اور فونو گرام وغیرہ بھی بجتا ہے اور عورت لوگ اس بزرگ کی قبر پر پھول، خصی مرغے، سرنی وغیرہ چڑھاتے ہیں، اور اس

قبرستان پر پیشاب پاخانہ کا کوئی ٹھکانہ نہیں رہتا ہے اس درگاہ کی شرکت کرنے والے کے پیچھے نماز پڑھنا جائز ہے یا ناجائز، او شرکت کرنے والے کو برا سمجھیں یا اچھا، اور اس درگاہ کا متولی چھوٹی قوم ہے مونچھ داڑھی سے زیادہ رکھتا ہے اور ہاتھ میں لوہے کا مالا پہنتا ہے اور ہاتھ میں لوہے کا چھرا رکھتا ہے اور لوگوں کو گالی فحش دیتا ہے اور لوگ جو شرکت کرتے ہیں اسے بزرگ اور پیر سمجھتے ہیں، ایسے لوگ کی نماز پڑھنا جائز ہے یا ناجائز، اس لیے دور رہنا چاہئے یا نہیں؟

الجواب: اولیاء کرام کے مزارات پر ہر سال مسلمانوں کا مجمع ہو کر قرآن مجید کی تلاوت یا اور مجالس کرنا اور اس کا

---

1 سنن ابن ماجہ ابواب الجنائز ایچ ایم سعید کمپنی کراچی

Fatawa Rizvia Volume Nine

It is permissible to convey rewards to pure souls, provided it is free from things forbidden by Sharia such as dancing and musical instruments, etc. Women should not go to graves at all, let alone appearing in crowds without a veil, making it a fair or spectacle, and playing phonographs etc. All of these are sins and impermissible. A person who commits such acts should not be made an Imam. And Allah Almighty knows best.

www.dawateislami.net I.T. Majlis of Dawat-e-Islami

फ़तावा रिज़विया जिल्द नौ

पवित्र आत्माओं को सवाब पहुँचाना जायज़ है, बशर्ते कि यह शरीयत के वर्जित कार्यों जैसे नृत्य और संगीत वाद्ययंत्रों आदि से मुक्त हो। महिलाओं को कब्रों पर बिलकुल नहीं जाना चाहिए, भीड़-भाड़ में बिना पर्दे के जाना और उसे मेला या तमाशा बनाना, और फोनोग्राफ आदि बजाना तो दूर की बात है; ये सब गुनाह और नाज़ायज़ हैं। जो व्यक्ति ऐसी बातों का अपराधी हो, उसे इमाम नहीं बनाया जाना चाहिए। और अल्लाह ताला बेहतर जानता है।

www.dawateislami.net दावत-ए-इस्लामी की आई.टी. मजलिस

948 का पेज 540

ثواب ارواحِ طیبہ کو پہنچانا جائز ہے۔ جبکہ منکراتِ شرعیہ مثلِ رقص و مزامیر وغیرہ سے خالی ہو۔ عورتوں کو قبور پر ویسے جانا نہ چاہیے نہ کہ مجمع میں بے حجابانہ اور تماشے کا میلہ کرنا، اور فونو وغیرہ بجوانا، یہ سب گناہ و ناجائز ہیں۔ جو شخص ایسی باتوں کا مرتکب ہو اسے امام نہ بنایا جائے۔ واللہ تعالیٰ اعلم

Fatawa Rizvia Volume Nine

Treatise JUMUL UN NOOR FI NAHI AN NISA AN ZIYARAT AL QUBOOR (1339 AH) (Sentences of Light, regarding preventing women from visiting graves)

In the name of Allah, the Most Gracious, the Most Merciful. We praise Him and send blessings upon His Noble Messenger.

Problem 181: From Maulana Hakim Abdul Rahim Sahib, First Teacher of Madrasa Qadriya Ahmadabad, Gujarat, Mohalla Jamalpur. 28 Safar 1339 AH. The aforementioned Maulana sent a registered letter in which, referencing 'Bahr al-Raiq' and 'Tashih al-Masail' by Maulana Fazl-e-Rasool Sahib (Mercy of Allah be upon him), emphasis was placed on the permission for women to visit graves. This reply was sent to him.

The Answer: Respected Maulana Hakim Abdul Rahim Sahib, may your honor increase. Peace be upon you, and the mercy and blessings of Allah. Two of your registered letters arrived. It has been more than three months that my eye has not been well. My opinion on this issue is contrary [to the one cited]. A long time ago, my fatwa on this matter was published in 'Tuhfa-e-Hanfia'. Accepting the permission written in 'Bahr al-Raiq' but considering the current condition of women—except for attending the Radiant Tomb [of the Prophet], which is obligatory or close to obligatory—I absolutely do not favor women going to visit the shrines of saints or other graves, following the 'Ghunyah' of the scholar and researcher Ibrahim Halabi. Especially amidst this storm of indecency, dancing, music, and singing...

Page 542 of 948

फतावा रज़विया जिल्द नौवीं

रिसाला जुमुल उन नूर फी नही अन निसा अन ज़ियारत अल कुबूर (१३३९ हिजरी) (नूर के जुमले, औरतों को ज़ियारत-ए-क़ुबूर से रोकने के बारे में)

बिस्मिल्लाह हिर्रहमान निर्रहीम। हम उसकी प्रशंसा करते हैं और उसके महान रसूल पर दुरूद भेजते हैं।

मसला १८१: मौलवी हकीम अब्दुल रहीम साहब, मुदर्रिस अव्वल मदरसा कादरिया अहमदाबाद गुजरात, मोहल्ला जमालपुर। २८ सफ़र १३३९ हिजरी। मौलाना मौसूफ़ ने एक रजिस्ट्री भेजी जिसमें 'बहरुर राइक' और 'तसहीहुल मसाइल' मौलाना फ़ज़ले रसूल साहब (रहमतुल्लाह अलैह) के हवाले से औरतों के लिए ज़ियारत-ए-क़ुबूर को जाने की इजाज़त पर ज़ोर दिया गया था, उन्हें यह जवाब भेजा गया।

अल-जवाब: मौलाना अल-मुकर्रम मौलवी हकीम अब्दुल रहीम साहब, जैद करमहुम। अस्सलाम अलैकुम व रहमतुल्लाह व बरकातहू। आपकी दो रजिस्ट्रियाँ आईं, तीन महीने से अधिक हुए कि मेरी आँख ठीक नहीं थी, मेरी राय इस मसले में खिलाफ़ पर है, मुद्दत हुई इस बारे में मेरा फ़तवा 'तोहफ़ा-ए-हनफ़िया' में छप चुका, मैं इस रुख़सत को जो 'बहरुर राइक' में लिखी है मानकर नज़र बहलात-ए-निशा सिवाय हाज़िरी रौज़ा-ए-अनवर कि वाजिब या करीब ब-वाजिब है। मज़ारात-ए-औलिया या दीगर क़ुबूर की ज़ियारत को औरतों का जाना ब-इत्तेबा-ए-'ग़ुनया' अल्लामा मोहक़्क़िक़ इब्राहिम हलबी हरगिज़ पसंद नहीं करता, खुसूसन इस तूफ़ान-ए-बे-तमीज़ी रक़्स-ओ-मज़ामीर-ओ-सरूर...

فتاویٰ رضویہ جلد نہم

رسالہ جُمْلُ النُّور فی نھی النساء عن زیارۃ القبور (۱۳۳۹ھ) (نور کے جملے، عورتوں کو زیارت قبور سے روکنے کے بارے میں)

بسم اللہ الرحمن الرحیم ط نحمدہ ونصلی علی رسولہ الکریم ط

مسئلہ ۱۸۱: مولوی حکیم عبدالرحیم صاحب مدرس اول مدرسہ قادریہ احمد آباد گجرات محلہ جمال پور ۲۸ صفر ۱۳۳۹ھ مولانا موصوف نے ایک رجسٹری بھیجی جس میں بحر الرائق و تصحیح المسائل مولانا فضل رسول صاحب رحمۃ اللہ علیہ کے حوالے سے عورتوں کے لیے زیارتِ قبور کو جانے کی اجازت پر زور دیا گیا تھا، ان کو یہ جواب بھیجا گیا۔

الجواب: مولانا المکرم مولوی حکیم عبدالرحیم صاحب زید کرمہم السلام علیکم ورحمۃ اللہ وبرکاتہ آپ کی دو رجسٹریاں آئیں، تین مہینے سے زائد ہوئے کہ میری آنکھ اچھی نہیں تھی، میری رائے اس مسئلہ میں خلاف پر ہے، مدت ہوئی اس بارے میں میرا فتوی تحفہ حنفیہ میں چھپ چکا، میں اس رخصت کو جو بحر الرائق میں لکھی ہے مان کر نظر بحالاتِ نساء سوائے حاضری روضہ انور کہ واجب یا قریب بواجب ہے ۔ مزارات اولیاء یا دیگر قبور کی زیارت کو عورتوں کا جانا باتباعِ غنیہ علامہ محقق ابراہیم حلبی ہر گز پسند نہیں کرتا، خصوصاً اس طوفان بے تمیزی رقص و مزامیر و سرود...

Fatawa-e-Razvia Volume 9

Nowadays, the ignorance displayed by commoners in sacred 'Urs' (commemorative festivals) is such that I do not even approve of the common men's participation, let alone those whom [the Prophet ﷺ] forbade from listening to Anjasha (may Allah be pleased with him) chanting camel-driving songs in a melodious voice in front of women, calling them 'fragile glasses'. Peace. The Maulvi Sahib sent a registered letter again, to which a reply was sent.

Problem: From Ahmedabad, Gujarat, Jamal Pur locality, sent by Maulvi Abdul Rahim Sahib, 13 Rabi-ul-Akhir 1339 AH. My respected, honored, and venerable Maulana Sahib (may your glory endure), after Salam-u-Alaikum wa Rahmatullah wa Barakatuhu, your clear noble opinion was received through the letter of affection. Your fatwa was seen, Hazrat Maulana! Please explain this matter to me that in the Masjid al-Nabawi there were three hundred men and one hundred and seventy women. These hypocrites would stand in the last row and peek at the women. For Fajr and Isha prayers, women would attend for the enlightenment of the 'Haqiqat-e-Muhammadi' (Muhammadan Reality) and the Reality of the Quran. Then, for the unworthy action of the hypocrites, the arrangement made by Allah Almighty and the Great Quran was not to command the hypocrites and the women seeking grace not to gather in the Prophet's Mosque. The provision of grace for women was not closed on this pretext, rather the arrangement for its provision was as follows:

- Verse: "And We certainly know those who go ahead among you and We certainly know those who lag behind." [1] | Translation: Indeed, We know those of you who come forward and those who stay behind. (T)
- Verse: "And indeed, your Lord will gather them. Indeed, He is Wise and Knowing." [2] | Translation: Indeed, your Lord will gather them. Undoubtedly, He is Wise, All-Knowing. (T)

And the arrangement made by the Holy Prophet (peace and blessings be upon him) was this: - Hadith: "The best of the men's rows is the first and the worst is the last, and the best of the women's rows is the last and the worst is the first." [3] | Translation: The best row for men is the frontmost and the least is the hindmost, and for women's rows, the best is the hindmost and the least is the frontmost. (T)

The servant (I) accepts that women's prayer in the mosque was stopped. For five or ten women of the neighborhood to go veiled to the murshid's (spiritual guide's)

house to receive the grace of 'Haqiqat-e-Muhammadi' and the reality of the Quran, and for the spiritual guide, who is elderly and fragile, to seat them behind a veil and give them attention to the reality of Muhammad and the Quran—to issue a ruling of prohibition on this is wrong and a confrontation with the Grace of Muhammad, and it falls under "they wish to...".

[Footnotes]: 1. Al-Quran 15/24 2. Al-Quran 15/25 3. Sahih Muslim, Chapter on Straightening Rows, etc., Nur Muhammad Asah al-Matab'e Karachi 1/182

फ़तावा-ए-रिज़विया जिल्द 9

आजकल जाहिलों ने पाक उर्सों में जो तमाशा मचा रखा है, उसमें तो मैं आम मर्दों की शिरकत को भी पसंद नहीं करता, फिर उनका तो ज़िक्र ही क्या जिन्हें रसूले करीम ﷺ ने हज़रत अंजशा रज़ियल्लाहु अन्हु को औरतों के सामने सुरीली आवाज़ में हुदी (ऊँट हांकने का गीत) पढ़ने से मना फरमाते हुए 'नाज़ुक शीशे' कहा था। वस्सलाम। मौलवी साहब ने दोबारा रजिस्ट्री भेजी, जिस पर जवाब भेजा गया।

मसला: अहमदबाद, गुजरात, मोहल्ला जमालपुर से प्रेषित मौलवी अब्दुल रहीम साहब, 13 रबीउल आखिर 1339 हिजरी। मेरे सम्मानित और आदरणीय जनाब मौलाना साहब (आपकी शान बढ़ती रहे), सलाम अलैकुम व रहमतुल्लाह व बरकातुह के बाद, आपका स्पष्ट और नेक राय वाला पत्र प्राप्त हुआ। आपका फतवा देखा, हज़रत मौलाना! मुझे इस मसले में समझाएं कि मस्जिदे नबवी में तीन सौ मर्द और एक सौ सत्तर औरतें थीं, ये मुनाफ़िक़ (पाखंडी) आखिरी सफ़ में खड़े होते थे और औरतों को झाँकते थे। फज्र और ईशा की नमाज़ में औरतें 'हक़ीक़ते मोहम्मदी' और 'हक़ीक़ते क़ुरआन' के नूर के लिए हाज़िर होती थीं। तो मुनाफ़िक़ों की इस नालायक हरकत के लिए अल्लाह तआला और क़ुरआन करीम ने यह इंतज़ाम नहीं किया कि मुनाफ़िक़ों और फैज़ हासिल करने वाली औरतों को यह हुक्म दिया जाता कि वे दोनों मस्जिदे नबवी में जमा न हों, और इस बहाने औरतों के लिए फैज़ का रास्ता बंद नहीं हुआ बल्कि इसका इंतज़ाम यूँ हुआ कि:

- आयत: "और बेशक हमें मालूम हैं तुम में के आगे वाले और बेशक हमें मालूम हैं तुम में के पीछे वाले।" [1] | अनुवाद: बेशक हमें मालूम हैं तुम में के आगे वाले और पीछे वाले। (त)
- आयत: "और बेशक तुम्हारा रब उन सब को जमा करेगा। बेशक वह हिकमत वाला इल्म वाला है।" [2] | अनुवाद: बेशक तुम्हारा रब उन को जमा करेगा। बिलाशुबा वह हिकमत वाला इल्म वाला है। (त)

और हज़रत नबी अलैहिस सलातो वस्सलाम ने यह इंतज़ाम किया: - हदीस: "मर्दों की सफ़ों में सबसे बेहतर पहली है और सबसे बुरी आखिरी, और औरतों की सफ़ों में सबसे बेहतर आखिरी है और सबसे बुरी पहली।" [3] | अनुवाद: मर्दों की सफ़ों में सब से बढ़ कर अगली है और सब से कमतर पिछली, और औरतों की सफ़ों में सब से बेहतर पिछली है और सब से कमतर अगली है। (त)

मस्जिद में औरतों की नमाज़ बंद हुई, इसे यह बंदा मानता है। 'हक़ीक़ते मोहम्मदी' और 'हक़ीक़ते क़ुरआन' का फैज़ लेने के लिए मोहल्ले की पांच-दस औरतें परदे के साथ मुर्शिद के घर जाएं और

मुर्शिदे तरीक़त जो ज़ईफ़ और बूढ़े हों, उन्हें परदे में बिठाकर 'हक़ीक़ते मोहम्मदी' और क़ुरआन की तवज्जो दें, इस पर हराम होने का हुक्म लगाना गलत है और फैज़-ए-मोहम्मदी का मुक़ाबला है और यह "वे चाहते हैं कि..." के ज़ुमेर में आता है।

[पाद-टिप्पणियाँ]: 1. अल-क़ुरआन 15/24 2. अल-क़ुरआन 15/25 3. सही मुस्लिम, बाब तस्वियतुल सुफ़ूफ़, नूर मोहम्मद असहुल मताबे, कराची 1/182

पृष्ठ 543/948

جلد نہم فتاویٰ رضویہ

میں آج کل جُہال نے اعراسِ طیبہ میں برپا کر رکھا ہے اس کی شرکت تو میں عوامِ رجال کو بھی پسند نہیں رکھتا نہ کہ وہ جن کو انجشہ رضی اللہ تعالیٰ عنہ کی حُدی خوانی بالحانِ خوش پر عورتوں کے سامنے ممانعت فرما کر انھیں نازک شیشاں فرمایا۔ والسلام مولوی صاحب نے دوبارہ رجسٹری بھیجی۔ جس پر جواب ارسال ہوا۔

مسئلہ: از احمد آباد گجرات محلّہ جمال پور مرسلہ مولوی عبدالرحیم صاحب ۱۳ ربیع الآخر ۱۳۳۹ھ مخدومی مکرمی معظمی جناب مولانا صاحب دام مجدکم، بعد سلام علیکم ورحمۃ اللہ وبرکاتہ، کے واضح رائے عالی ہو کہ محبت نامہ موصول ہوا۔ فتویٰ کو آپ کے دیکھا، حضرت مولانا ! مجھے آپ اس مسئلہ میں سمجھائے کہ مسجد نبوی میں تین سو مرد اور ایک سو ستر عورتیں تھیں، یہ منافقین آخری صف میں کھڑے ہوئے تھے اور عورتوں کو جھانکتے تھے، نماز فجر وعشاء میں عورتیں توجہ انوار حقیقت محمدی وحقیقت قرآن کے لیے حاضر ہوتی تھیں تو منافقین کی نالائق حرکت کا انتظام خدائے تعالیٰ اور قرآن عظیم نے یہ نہ کیا کہ منافقین اور فیض لینے والی عورتوں کو یہ حکم دیا ہوتا کہ دونوں مسجد نبوی میں جمع نہ ہوں، اور فیض رسانی عورتوں کی اس بہانے سے بند نہ ہوئی بلکہ انتظام رسانی یہ ہوا کہ

- وَلَقَدْ عَلِمْنَا الْمُسْتَقْدِمِیْنَ مِنْكُمْ وَ لَقَدْ عَلِمْنَا الْمُسْتَاْخِرِیْنَ۱ [1] | بیشک ہمیں معلوم ہیں تم میں کے آگے والے اور پیچھے والے اور (ت)
- وَاِنَّ رَبَّكَ هُوَ یَحْشُرُهُمْؕ اِنَّهٗ حَكِیْمٌ عَلِیْمٌ۲ [2] | بیشک تمہارا رب ان کو جمع کرے گا۔ بلاشبہ وہ حکمت والا علم والا ہے۔(ت)

اور انتظام حضرت نبی علیہ الصلوۃ والسلام نے یہ کیا: - خیر صفوف الرجال اولھا وشرھا اخرھا و خیر صفوف النساء اخرھا وشرھا اولھا۳۔ [3] | مردوں کی صفوں میں سب سے بڑھ کر اگلی ہے اور سب سے کم تر پچھلی، اور عورتوں کی صفوں میں سب سے بہتر پچھلی ہے اور سب سے کم تر اگلی ہے۔ (ت)

مسجد میں عورتوں کی نماز بند ہوئی اس کو بندہ مانتا ہے، فیض حقیقت محمدی وحقیقت قرآن لینے کو با پردہ پانچ دس عورتیں محلہ کی مل کر مرشد کے مکان پر جائیں اور مرشد طریقت مرتعش اور شیخ فانی پردہ میں بٹھا کر ان کو توجہ حقیقت محمدی اور قرآن کی دے اس پر حکم حرمت لگانا غلط اور فیض محمدی کا مقابلہ اور مورد یُرِیْدُوْنَ اَنْ

1 القرآن ۱۵/ ۲۴ 2 القرآن ۱۵/ ۲۵ 3 صحیح مسلم باب تسویۃ الصفوف الخ نور محمد اصح المطابع کراچی ۱/ ۱۸۲

Fatawa Rizvia Volume 9

"They desire to extinguish the light of Allah with their mouths." (The Quran 9:32). A Sheikh of the spiritual path (Tariqa) takes the "trust" mentioned in the verse "Indeed, we offered the Trust..." (The Quran 33:72), and settles it in the hearts of female reciters (Zākirāt) by making them sit in seclusion (parda) and giving them spiritual attention (tawajjuh). And this person uproots the base of that trust. This grace (fayd) will uproot the one who uproots it by stripping them of dignity. A person of the Muhammadan temperament (Muḥammadī al-mashrab) follows the Sunnah of the Prophet (peace and blessings be upon him). The Prophet (peace and blessings be upon him) gave attention to women, first by making them disciples (murid); he too gives attention by making women disciples. The spiritual attention in the exalted Qadiriyya order is through the remembrance (dhikr) of the 'Kalimah Tayyibah' (the creed of faith). Now, women will be seated in seclusion and taught the remembrance of the 'Kalimah Tayyibah', teaching them how to strike the heart (qalb) with 'illa Allah'. In seclusion, a female representative (khalifa) of the spiritual guide sits and teaches the remembrance of the 'Kalimah Tayyibah', while the spiritual guide explains the nuances. There isn't just one woman in seclusion; ten to fifteen women from the neighborhood are seated there. The rule regarding forbidden seclusion with a stranger (khalwat-e-ajnabiyya) does not apply here. This is a public gathering (jalwat). Spiritual grace in the exalted Qadiriyya order is bestowed in public gatherings. Similarly, in this assembly, spiritual attention from the Naqshbandiyya Mujaddidiyya order is also given to women. I have had many opportunities to visit Bareilly; such a practice was not seen there, nor was it heard that any Mashaykh (spiritual elders) do this. In our place, palanquins (doli/miyana) are hard to find; the poor and needy do not have the means to sit in such vehicles. Nor did the Great Quran command the use of palanquins or litters.

"...to bring down over themselves part of their outer garments." (The Quran 33:59) And "Tell the believing men to reduce [some] of their vision..." and "Tell the believing women to reduce [some] of their vision..." (The Quran 24:30-31). "And let them draw their headcovers over their chests." (The Quran 24:31). Upon this veil is the practice of the female reciters (Zākirāt) of Ahmedabad. Umdat al-Qari Sharh al-Bukhari, Vol. 4, p. 78:

[Box Section] (Arabic): The sum of the discourse from all this is that visiting graves is disliked (makruh) for women, rather it is forbidden (haram) in this time, especially for the women of Egypt, because their going out is in a manner of corruption and

temptation (fitna). Permission for visiting was only given for remembering the matters of the hereafter. (Urdu Translation): The gist is that visiting graves is disliked for women, rather it is forbidden in this era, especially for the women of Egypt because their going out happens in a way that causes temptation and mischief. Permission for visiting was granted so that matters of the hereafter could be [remembered].

1. Al-Quran 9/32
2. Al-Quran 33/72
3. Al-Quran 33/59
4. Al-Quran 24/30
5. Al-Quran 24/31
6. Al-Quran 24/31

फ़तावा-ए-रज़विया, खंड 9

"वे अपने मुँह से अल्लाह का नूर बुझाना चाहते हैं।" (क़ुरआन ९:३२)। शेख-ए-तरीकत तो "बेशक हमने अमानत पेश की..." (क़ुरआन ३३:७२) आयत में जो अमानत है, उसे ज़ाकिरात (स्मरण करने वालियों) के सीने में पर्दे में बिठाकर तवज्जो (आध्यात्मिक ध्यान) देकर जमाता है। और यह (विपक्षी) इस अमानत की जड़ उखाड़ता है। यह फ़ैज़ (कृपा) जड़ उखाड़ने वाले को बे-वक़ार (प्रतिष्ठाहीन) करके उखाड़ देगा। मोहम्मदी मशरब वाला हज़रत नबी (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) की सुन्नत पर अमल करता है। हज़रत नबी (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने औरतों को तवज्जो दी, पहले मुरीद बनाकर; यह भी औरतों को मुरीद बनाकर तवज्जो देता है। तरीक़ा-ए-आलिया क़ादरिया की तवज्जो कलमा तय्यिबा के ज़िक्र की होगी, अब औरतों को पर्दे में बिठाकर कलमा तय्यिबा का ज़िक्र बताया जाएगा, 'इल्ला अल्लाह' की चोट दिल (क़ल्ब) पर मारना सिखाया जाएगा। पर्दे में औरत, मुर्शिद-ए-तरीकत की ख़लीफ़ा (प्रतिनिधि) बैठकर कलमा तय्यिबा का ज़िक्र सिखाती है और मुर्शिद-ए-तरीकत ऊँच-नीच (बारीकियाँ) समझाते हैं। पर्दे में एक औरत नहीं, मुहल्ले की दस-पंद्रह औरतें बैठी होती हैं, यहाँ 'ख़लवत-ए-अजनबी' (अजनबी के साथ एकांत) का नियम लागू नहीं होता। यह 'जल्वत' (सार्वजनिक सभा) है। 'जल्वत' में फ़ैज़-रसानी तरीक़ा-ए-आलिया क़ादरिया की होती है। और इसी तरह इस महफ़िल में तरीक़ा-ए-नक़्शबन्दिया मुजद्दिदिया की तवज्जो भी औरतों को दी जाती है। बरेली में हाज़िरी का कई बार मौक़ा हुआ है, वहाँ यह अमल देखने में नहीं आया, न ही वहाँ सुना कि कोई मशाईख़ (बुज़ुर्ग) ऐसा करते हैं। हमारे यहाँ डोली-मियाना मुश्किल से मिलता है, ग़रीबों और मिस्कीनों में इन सवारियों में बैठने की ताक़त नहीं है। और न ही क़ुरआन-ए-अज़ीम ने डोली और मियाना का हुक्म दिया है।

"अपनी चादरों के कुछ हिस्से अपने ऊपर लटका लिया करें।" (क़ुरआन ३३:५९) और "मोमिन मर्दों से कह दो कि अपनी निगाहें नीची रखें," और "मोमिन औरतों से कह दो कि अपनी निगाहें नीची रखें।" (क़ुरआन २४:३०-३१)। "और अपने दुपट्टे अपने गिरेबानों पर डाले रहें।" (क़ुरआन २४:३१)। इसी पर्दे पर अहमद आबाद की ज़ाकिरात का अमल है। 'उमदतुल क़ारी शरह बुखारी' जिल्द ४, सफ़ा ७८:

[बॉक्स अनुभाग] (अरबी): हासिलुल कलाम मिंन हाज़ा कुल्लिहि अन ज़ियारतल क़ुबूर मकरूहतुल लिन्निसाए बल हरामुन फ़ी हाज़ज़ ज़माने ला सिय्यमा निसाउ मिस्र ला अन्ना खुरूजहुन्ना अला वजहिल फ़सादे वल फ़ितनते व इन्नमा रुख्ख़िसतिज़ ज़ियारतु लितज़क्कुरे अमरिल आखिरह (उर्दू अनुवाद): सार यह कि औरतों के लिए क़ब्रों की ज़ियारत मकरूह है, बल्कि इस ज़माने में हराम है, विशेष रूप

से मिस्र की औरतों के लिए, क्योंकि उनका बाहर निकलना फ़ितने और ख़राबी का कारण होता है। ज़ियारत की अनुमति इसलिए दी गई थी ताकि आख़िरत (परलोक) के मामलों को [याद किया जा सके]।

1. अल-क़ुरआन ९ / ३२
2. अल-क़ुरआन ३३ / ७२
3. अल-क़ुरआन ३३ / ५९
4. अल-क़ुरआन २४ / ३०
5. अल-क़ुरआन २४ / ३१
6. अल-क़ुरआन २४ / ३१

یُرِیدُونَ أَنْ یُطْفِئُوا نُورَ اللّٰہِ بِأَفْوَاھِھِمْ (اللہ کا نور اپنے منہ سے بجھانا چاہتے ہیں۔ ت) بننا ہے۔ شیخِ طریقت تو اِنَّا عَرَضْنَا الْأَمَانَۃَ الآیۃ (بیشک ہم نے امانت پیش کی الآیہ۔ ت) میں جو امانت ہے اس کو ذاکرات کے سینہ میں باپردہ بٹھا کر توجہ دے کر جماتا ہے۔ اور یہ اس امانت کی جڑ اکھاڑتا ہے۔ یہ فیض جڑ اکھاڑنے والے کو بے وقار کر کے اکھاڑ دے گا۔ محمدی المشرب سنتِ حضرت نبی علیہ الصلوۃ والسلام پر عمل کرتا ہے۔ حضرت نبی علیہ الصلوۃ والسلام نے عورتوں کو توجہ دی، اول مرید کر کے، یہ بھی عورتوں کو مرید کر کے توجہ دیتا ہے۔ طریقہ عالیہ قادریہ کی توجہ کلمہ طیبہ کے ذکر کی ہوگی، اب عورتوں کو پردہ میں بٹھا کر ذکر کلمہ طیبہ کا بتایا جائے گا ضرب الا اللہ قلب پر مارنا سکھایا جائے گا۔ پردہ میں عورت خلیفہ مرشدِ طریقت کی بیٹھ کر ذکر کلمہ طیبہ کا سکھاتی ہے اور مرشدِ طریقت اونچی نیچ سمجھاتے ہیں، پردہ میں ایک عورت نہیں محلہ کی دس پندرہ عورتیں بیٹھیں ہیں، یہاں خلوتِ اجنبیہ کا حکم نہیں لگتا۔ یہ جلوت ہے۔ جلوت میں فیض رسانی طریقہ عالیہ قادریہ کی ہوتی ہے۔ اور اسی طرح اس مجلس میں طریقہ نقشبندیہ مجددیہ کی توجہ بھی عورتوں کو دی جاتی ہے۔ بریلی میں حاضری کا کئی بار موقع ہوا ہے، وہاں یہ عمل دیکھنے میں نہیں آیا، نہ وہاں سنا کہ کوئی مشائخ یہ کرتے ہیں ہمارے یہاں ڈولی میانہ مشکل سے ملتا ہے، غرباء مساکین میں قدرت ان سواریوں میں بیٹھنے کی نہیں اور نہ قرآنِ عظیم نے ڈولی و میانہ کا حکم دیا ہے۔

یُدْنِینَ عَلَیْھِنَّ مِنْ جَلَابِیبِھِنَّ (ان پر اپنی چادریں ڈال دیں۔ ت) اور قُلْ لِلْمُؤْمِنِینَ یَغُضُّوا مِنْ أَبْصَارِھِمْ وَقُلْ لِلْمُؤْمِنَاتِ یَغْضُضْنَ مِنْ أَبْصَارِھِنَّ (ایمان والے مردوں سے فرماؤ اپنی نگاہیں نیچی رکھیں، اور ایمان والی عورتوں سے فرماؤ اپنی نظریں پست کریں۔ ت) وَلْیَضْرِبْنَ بِخُمُرِھِنَّ عَلَی جُیُوبِھِنَّ (اور دوپٹے

اپنے گریبانوں پر ڈالے رہیں۔ ت) اس پردہ پر احمد آباد کی ذاکرات کا عمل ہے۔ عمدة القاری شرح بخاری ج ۴ ص ۷۸:

[Box Section] حاصل الكلام من هذا كله ان زيارة القبور مكروهة للنساء بل حرام في هذا الزمان لاسيما نساء مصر لان خروجهن على وجه الفساد والفتنة وانما رخصت الزيارة لتذكر امر الآخرة

حاصل یہ کہ عورتوں کے لیے زیارتِ قبور مکروہ ہے بلکہ اس زمانے میں حرام ہے خصوصاً مصر کی عورتوں کے لیے اس لیے کہ ان کا جانا فتنہ اور خرابی کے طور پر ہوتا ہے زیارت کی رخصت اس لیے ہوئی تھی کہ امرِ آخرت کو

1 القرآن ۹ / ۳۲ 2 القرآن ۳۳ / ۷۲ 3 القرآن ۳۳ / ۵۹ 4 القرآن ۲۴ / ۳۰ 5 القرآن ۲۴ / ۳۱ 6 القرآن ۲۴ / ۳۱

Fatawa Razawiya, Volume 9

[Box 1] (1) وللاعتبار بمن مضى وللتزهد فى الدنيا | "...and for taking lessons from those who passed away and for being ascetic in the world." - To take heed from those who have died and to become indifferent towards the world. (T)

This ruling pertains to the rebellious female singers of Egypt; it is wrong to apply this ruling to virtuous women. In the commentary of 'If the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) saw what women have innovated now' (Umda-tul-Qari, Vol 3, P 30), it is stated:

[Box 2] (2) بعضهن يغنين بأصوات عالية مطربة منهن صنف بغايا | "Some of them sing with high, enchanting voices, and among them is a class of harlots." - Some of them are such that they sing with delightful, loud voices and some are of an immoral kind. (T)

In Ahmedabad, three kos (distance unit) away is the shrine of Hazrat Ganj Ahmad (Mercy of Allah be upon him). The location is very airy and has a stone pond. There, women from the weaver and wood-seller communities go wearing lehengas and saris and sing 'Garba'. There are feasts for their community where those women sing 'Garba'. A circle of women is formed, they clap and move around singing songs like prostitutes. The ruling "rather it is forbidden in this time, especially for the women of Egypt" applies perfectly and excellently to them. And in 'Ghunyat-ul-Mustamli', page 595, it is written: "And in our time it would be for prohibition because of the corruption in their going out." (3) (In our time it will be for prohibition because there are evils in their going). And for those women who go to listen to the qawwali of prostitutes and men, it is forbidden for them to visit graves. What harm is there to the female reciters (Dhakirat) and those going to seek spiritual benefit because of those others being forbidden, even if it is one woman in thousands? Suppose ten thousand people cooked biryani of dog and pig meat, and one person cooked biryani of goat meat. Applying the ruling of prohibition to both biryanis or the ruling of permissibility to both would be wrong; the ruling of prohibition on the dog's biryani and the ruling of permissibility on the goat's biryani is correct. A Mufti must state the separate ruling for each.

[Box 3] (4) أَفَمَنْ كَانَ مُؤْمِنًا كَمَنْ كَانَ فَاسِقًا لَا يَسْتَوُونَ | "Is he who was a believer like him who was defiantly disobedient? They are not equal." - So, will one who is a believer be like a transgressor? Both are not equal.

[Box 4] أَمْ نَجْعَلُ الْمُتَّقِينَ كَالْفُجَّارِ (5)۔ | "Or should We treat those who fear Allah like the wicked?" - Or shall we treat the God-fearing like the wicked? (T)

Footnotes: 1. Umda-tul-Qari Sharh al-Bukhari, Chapter on Visiting Graves, Hadith 42, Idarat-ul-Tiba'at-ul-Muniriya, Beirut, 7/18 2. Umda-tul-Qari Sharh al-Bukhari, Chapter on Women going to Mosques, Hadith 250, Idarat-ul-Tiba'at-ul-Muniriya, Beirut, 6/158 3. Ghunyat-ul-Mustamli Sharh Munyat-ul-Musalli, Section on Funerals, Fifth Research, Suhail Academy Lahore, p. 594 4. Al-Quran 32/18 5. Al-Quran 38/28

फ़तावा रज़विया, खंड नौ

[बॉक्स 1] (1) وللاعتبار بمن مضى وللتزهد فى الدنيا | "...और गुज़रे हुए लोगों से सीख लेने और दुनिया से विरक्ति के लिए।" - गुज़रे हुओं से नसीहत लें और दुनिया से बे-रग़बत हों। (त)

यह हुक्म मिस्र की विद्रोही गाने वाली औरतों के बारे में है। इस हुक्म को नेक औरतों पर थोपना गलत है। 'उम्दतुल क़ारी', जिल्द 3, पेज 30 में 'अगर अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) वह देखते जो औरतों ने अब ईजाद किया है' की व्याख्या में लिखा है:

[बॉक्स 2] (2) بعضهن يغنين بأصوات عالية مطربة منهن صنف بغايا | "उनमें से कुछ ऊँची, मदहोश करने वाली आवाज़ों में गाती हैं और उनमें से एक श्रेणी वेश्याओं की है।" - उनमें से कुछ ऐसी हैं जो लुभावनी और बुलंद आवाज़ों में गाती हैं और कुछ बदकार किस्म की हैं। (त)

अहमदाबाद में हज़रत गंज अहमद (रहमतुल्लाह अलैहि) की दरगाह तीन कोस की दूरी पर है। वह स्थान बहुत हवादार है और वहाँ एक पत्थर का तालाब है। वहाँ धुनकर और लकड़हारे समुदाय की औरतें लहंगा-साड़ी पहनकर जाती हैं और 'गरबा' गाती हैं। उनके समुदाय की दावतों में वे औरतें गरबा गाती हैं; औरतों का घेरा बन जाता है और वे ताली बजाती हैं और वेश्याओं की तरह घूम-घूम कर गीत गाती हैं। उन पर "बल्कि इस ज़माने में हराम है, खासकर मिस्र की औरतों के लिए" का हुक्म पूरी तरह और बहुत अच्छी तरह से लागू होता है। और 'गुनियतुल मुस्तमली' के पेज 595 में है: "और हमारे ज़माने में यह हराम होने के लिए होगा क्योंकि उनके बाहर निकलने में फसाद है।" (3) (हमारे समय में यह वर्जित होने के लिए होगा क्योंकि उनके जाने में बुराइयाँ हैं)। और जो औरतें वेश्याओं और पुरुषों की कव्वाली सुनने जाती हैं, उनके लिए कब्रों की ज़ियारत करना हराम है। उन औरतों के हराम होने से ज़ाकिरात (जिक्र करने वालियाँ) और फ़ैज़ लेने वाली औरतों को क्या नुकसान, भले ही वह हज़ारों में एक ही औरत क्यों न हो? मान लीजिए दस हज़ार लोगों ने कुत्ते और सूअर के मांस की बिरयानी पकाई और एक ने बकरी के मांस की बिरयानी पकाई। दोनों बिरयानियों पर हराम का हुक्म या हलाल का हुक्म लगाना गलत है; कुत्ते की बिरयानी पर हराम और बकरी की बिरयानी पर हलाल का हुक्म सही है। मुफ्ती को दोनों का अलग-अलग हुक्म बयान करना होगा।

[बॉक्स 3] (4) أَفَمَنْ كَانَ مُؤْمِنًا كَمَنْ كَانَ فَاسِقًا لَا يَسْتَوُونَ | "तो क्या जो मोमिन है, वह उस व्यक्ति की तरह है जो फ़ासिक (पापी) है? वे बराबर नहीं हैं।" - तो क्या जो मोमिन है वह फ़ासिक की तरह होगा? दोनों बराबर नहीं।

[बॉक्स 4] نَ أَمْ نَجْعَلُ الْمُتَّقِينَ كَالْفُجَّارِ (5) | "या क्या हम परहेज़गारों को बदकारों की तरह कर देंगे?" - या क्या हम खुदा से डरने वालों को बदकारों की तरह कर देंगे? (त)

पाद लेख: 1. उम्दतुल क़ारी शरह अल-बुखारी, अध्याय: कब्रों की ज़ियारत, हदीस 42, इदारतुल तिबा'तुल मुनीरिया, बेरूत, 7/18 2. उम्दतुल क़ारी शरह अल-बुखारी, अध्याय: औरतों का मस्जिदों में जाना, हदीस 250, इदारतुल तिबा'तुल मुनीरिया, बेरूत, 6/158 3. ग़ुनियतुल मुस्तमली शरह मुनियतुल मुसल्ली, जनाज़ों का अध्याय, पाँचवीं शोध, सुहैल अकादमी लाहौर, पेज 594 4. अल-कुरान 32/18 5. अल-कुरान 38/28

فتاوٰی رضویہ جلد نہم

[Box 1] وللاعتبار بمن مضی وللتزھد فی الدنیا (1) | یاد کریں، وفات پانے والوں سے عبرت لیں، اور دنیا سے بے رغبت ہوں۔ (ت)

یہ حکم مصر کی بغایہ مغنیہ دلالہ کا ہے اس حکم کو نیک بخت عورتوں پر لگانا غلط ہے۔ لو ادرک رسول اللہ صلی اللہ تعالی علیہ وسلم ما احدثت النساء (اگر رسول اللہ صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم وہ دیکھتے جو عورتوں نے اب پیدا کیا ۔ ت) کی شرح عمدۃ القاری ج۳ ص۳۰ میں ہے:

[Box 2] بعضھن یغنین بأصوات عالیة مطربة منھن صنف بغایا (2) | ان میں کچھ ایسی ہوتی ہیں جو طرب انگیز بلند آوازوں سے گاتی ہیں اور کچھ بدکار قسم کی ہیں۔ (ت)

احمد آباد میں تین کوس درگاہ حضرت گنج احمد رحمتہ اللہ تعالیٰ علیہ کی ہے، مکان بہت پرفضا ہے اور تالاب سنگین ہے ، وہاں دھنے کی قوم کی اور لکڑ بیچنے والی قوم کی عورتیں لہنگا ساڑھی پہن کر جاتی ہیں اور گربے گاتی ہیں اور ان کی قوم کی ضیافتیں ہوتی ہیں اس میں وہ عورتیں گربے گاتی ہیں ، حلقہ عورتوں کا بن جاتا ہے اور تالی بجاتی ہیں اور پھرتی جاتی ہیں رنڈیوں کی طرح گیت گاتی جاتی ہیں ان پر بل حرام فی ہذا الزمان لاسیما نساء مصر (بلکہ اس زمانے میں خصوصاً زنان مصر کے لیے حرام ہے۔ ت) کا حکم برابر عمدہ طور پر چسپاں ہے۔ اور غنیۃ المستملی کے صفحہ ۵۹۵ میں وان یکون فی زماننا للتحریم لما فی خروجھن من الفساد (3) اھ (ہمارے زمانے میں تحریم کے لیے ہوگا کیونکہ ان کے جانے میں خرابیاں ہیں اھت) اور جو عورتیں قوالی رنڈیوں کی اور قوالی مردوں کی سننے جاتی ہیں ان کو زیارت القبور کو جانا حرام ہے ، ان کے حرام ہونے سے ذاکرات اور فیض لینے جانے والی عورتوں کو کیا نقصان ، اگرچہ

ایک عورت ہزاروں میں ایک ہو۔ دس ہزار آدمیوں نے کتے اور خنزیر کے گوشت کی بریانی پکائی ہے اور ایک نے بکری کے گوشت کی بریانی پکائی۔ دونوں بریانیوں پر حکم حرمت اور حکم حلت غلط، او کتے کی بریانی پر حکم اور بکری کے بریانی پر حکم حلت صحیح ، دونوں کا حکم جدا مفتی کو بیان کرنا پڑے گا۔

[Box 3] أَفَمَنْ كَانَ مُؤْمِنًا كَمَنْ كَانَ فَاسِقًا لَا يَسْتَوُونَ (4) | تو کیا جو مومن ہے فاسق کی طرح ہوگا؟ دونوں برابر نہیں۔

[Box 4] أَمْ نَجْعَلُ الْمُتَّقِينَ كَالْفُجَّارِ (5)۔ | یا پرہیز گاروں کو ہم بدکاروں کی طرح کردیں؟ (ت)

حواشی: 1. عمدة القاری شرح البخاری باب زیارت القبور حدیث ۴۲ ادارة الطباعة المنیریة بیروت ۷ / ۱۸ 2. عمدة القاری شرح البخاری باب خروج النساء الی المساجد حدیث ۲۵۰ ادارة الطباعة المنیریة بیروت ۶ / ۱۵۸ 3. غنیة المستملی شرح منیة المصلی فصل فی الجنائز المبحث الخامس سہیل اکیڈمی لاہور ص ۵۹۴ 4. القرآن ۳۲ / ۱۸ 5. القرآن ۳۸ / ۲۸

Fatawa Razawiyya Volume 9

Isaf and Na'ila committed adultery in the Pre-Islamic period (inside the Kaaba), and Divine Power transformed them both. They committed such vileness in such a blessed place. Or, if someone commits a vile act during the journey to the Two Holy Cities, should a fatwa against the permissibility of women performing Hajj and visiting the Prophet (peace and blessings be upon him) be issued based solely on witnessing such vileness and citing it as a precedent? Certainly not. In the sacred shrine of Hazrat Moinuddin Chishti (may Allah have mercy on him), the Holy Quran is placed in the western wall. Behind this wall, women sit and receive spiritual attention. They perform remembrance (dhikr) and meditation (muraqaba); they come wearing veils (burqa). There is absolutely no mixing of men and women here. Now, these women present themselves to fill their hearts with the light of Allah. Khwaja Gharib Nawaz (may his secret be sanctified) bestows this spiritual grace of the Prophet's Reality (Haqiqat-e-Muhammadi) upon these women. And in that grace, there is such power that he calls those seeking grace from thousands of miles away. This place is far from the place of Qawwali. From the Fajr prayer until Ishraq, and between Maghrib and Isha, women gather in this secluded place to receive grace. At that time, there is no harm from Qawwali at all. These women are virtuous, secluded, and come wearing veils. You have not seen this with your own eyes, but I have seen it with my own eyes. I can testify to this. And I can satisfy you by showing it to your eyes. Now, it is wrong to impose a ruling of prohibition on these women. In the fertile town of Ahmedabad, the women who sing 'Garbe' are immoral women, singers, and prostitutes. To equate those who recite the Kalima Tayyibah one hundred and twenty-five thousand times in seclusion, performing hidden remembrance and meditation, receiving the grace of the Prophet's Reality, with prostitutes and to hang them both in the same noose is wrong. Protecting the rights of the saints, wishing well for the saints, and wishing well for the Master of the First and the Last (peace and blessings be upon him)—"Religion is sincerity towards Allah, His Messenger, and the believers" (1)—how is this being fulfilled? Saints call the female reciters to bestow the grace of the Prophet's Reality; they present themselves while observing the veil and keeping the commands of Sharia above all else. If a Mufti issues a ruling of impermissibility against them, it amounts to blocking the grace of the Prophet's Reality. This is not called friendship with the Holy Prophet (peace and blessings be upon him). We are younger than you and respect your actions, but if your step slips from the straight

path, it must be addressed. Just as the hoopoe bird said to Prophet Solomon (peace be upon him):

"I have encompassed [in knowledge] that which you have not encompassed, and I have come to you from Sheba with certain news." (2) (I have seen what you have not seen, and I have brought sure news to you from the city of Sheba. - T)

1 Al-Sunan al-Nasa'i, Kitab al-Bay'ah, al-Nasiha lil-Imam, Nur Muhammad Karkhana Tijarat Kutub Karachi, 185/2 2 Quran 27/22

फ़तावा रज़विया जिल्द 9

इसाफ़ और नायला ने जाहिलियत के दौर में (ख़ाना काबा के अंदर) ज़िना किया और कुदरत-ए-इलाही ने दोनों की शक्ल बिगाड़ दी। उन्होंने इतने मुक़द्दस मुकाम में ऐसी गंदगी की। या अगर कोई हरमैन तैयबैन के सफ़र में किसी नापाक अमल का हिस्सा बने, तो क्या किसी ख़बीस की ख़बासत को देखकर और उसी का हवाला देकर औरतों के हज और नबी (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) की ज़ियारत के नाजायज़ होने का फ़तवा जारी कर दिया जाएगा? हरगिज़ नहीं। हज़रत मुईनुद्दीन चिश्ती (रहमतुल्लाह अलैह) की मुक़द्दस मज़ार की पश्चिमी दीवार में कुरान शरीफ़ रखा है। इस दीवार के पीछे औरतें बैठकर तवज्जो लेती हैं। वे ज़िक्र और मुराक़बा करती हैं, बुर्क़ा पहनकर आती हैं। यहाँ मर्दों और औरतों का मेल-जोल बिल्कुल नहीं है। अब ये औरतें अपने दिलों में अल्लाह का नूर भरने के लिए हाज़िर होती हैं। ख़्वाजा ग़रीब नवाज़ (क़ुद्दिसा सिर्रहु) औरतों को 'हक़ीक़त-ए-मुहम्मदी' का फ़ैज़ पहुँचाते हैं। और उस फ़ैज़ में वो ताक़त है कि आप हज़ारों मील दूर से फ़ैज़ लेने वालियों को बुला लेते हैं। ये जगह कव्वाली के मुकाम से दूर है। फ़ज्र की नमाज़ से इशराक़ तक और मग़रिब से इशा के बीच, उस पर्दे वाले मकान में औरतें जमा होकर फ़ैज़ हासिल करती हैं। उस वक़्त कव्वाली का कोई नुक़सान नहीं होता। ये औरतें नेकबख़्त और पर्दे वाली हैं जो बुर्क़ा पहनकर आती हैं। आपने इसे अपनी आँखों से नहीं देखा, लेकिन मैंने इसे अपनी आँखों से देखा है। मैं गवाह के तौर पर इसे बयान कर सकता हूँ। और आपको अपनी आँखों से दिखाकर तसल्ली दे सकता हूँ। अब इन औरतों पर हराम होने का हुक्म लगाना ग़लत है। अहमदाबाद के ज़रखेज़ कस्बे में जो औरतें 'गरबा' गाती हैं, वे बदचलन, गायिकाएं और तवायफ़ें हैं। उन पर और सवा लाख बार कलमा तैयबा का विर्द करने वाली, ज़िक्र-ए-ख़फ़ी और मुराक़बा करने वाली, और हक़ीक़त-ए-मुहम्मदी का फ़ैज़ लेने वाली परदा-नशीन औरतों पर एक जैसा हुक्म लगाकर दोनों को एक ही सूली पर लटका देना ग़लत है। औलिया के हुक़ूक़, औलिया की ख़ैरख़्वाही और सैयदुल अव्वलीन वल आख़िरीन (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) की ख़ैरख़्वाही—"दीन अल्लाह, उसके रसूल और मोमिनों के लिए ख़ैरख़्वाही है" (1)—यह कहाँ रही? औलिया 'हक़ीक़त-ए-मुहम्मदी' का फ़ैज़ देने के लिए औरतों को बुलाते हैं, वे परदा-नशीन होकर और शरीयत के अहकाम का एहतराम करते हुए हाज़िर होती हैं। अगर मुफ़्ती उन पर नाजायज़ होने का हुक्म लगाएँ, तो इस सूरत में वे 'हक़ीक़त-ए-मुहम्मदी' के फ़ैज़ को रोक रहे हैं। इसे नबी (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) की दोस्ती नहीं कहा जा सकता। हम आपसे छोटे हैं और आपके क़दमों को अपने

सरों पर रखने वाले हैं, लेकिन अगर आपका क़दम सीधे रास्ते से फिसल जाए, तो अर्ज़ करना ज़रूरी है। जैसे हुदहुद परिंदे ने हज़रत सुलेमान (अलैहिस्सलाम) की ख़िदमत में अर्ज़ किया था:

"मैंने वो देखा है जो आपने नहीं देखा, और मैं आपके पास सबा (शहर) से पक्की ख़बर लेकर आया हूँ।" (2)

1 अस-सुनन अन-नसाई, किताब अल-बैया, अन-नसीहा लिल-इमाम, नूर मुहम्मद कारख़ाना तिजारत कुतुब कराची, 185/2 2 कुरान 27/22

اساف اور نائلہ نے جاہلیت میں (خانہ کعبہ کے اندر) زنا کیا اور قدرتِ الہیہ نے دونوں کو مسخ کردیا ایسے متبرک مکان میں دونوں نے خباثت کی، یا کوئی سفر حرمین طیبین میں خبیث عمل سے پیش آئے تو کیا خبیث کی خباثت کو دیکھ کر اور اسی سے استناد کرکے عورتوں کے حج و زیارتِ حضرت نبی علیہ الصلوۃ والسلام کے عدم جواز کا فتویٰ جاری کردیا جائے گا۔ ہر گز نہیں، حضرت معین الدین چشتی رحمتہ اللہ علیہ کے مزارِ مقدس میں غربی دیوار میں کلام مجید رکھا ہے۔ اس دیوار کے پیچھے عورتیں بیٹھ کر توجہ لیتی ہیں۔ ذکر مراقبہ کرتی ہیں، برقع اوڑھ کر آتی ہیں، اختلاط مردوں اور عورتوں کا یہاں بالکل نہیں، اب یہ عورتیں نوراللہ دل میں بھرنے کے لیے حاضر ہوتی ہیں یہ فیض رسانی حقیقت محمدی کی عورتوں کو خواجہ غریب نواز قدس سرہ العزیز کرتے ہیں، اور اس فیض میں وہ قوت ہیں کہ لاکھوں کوسوں سے فیض لینے والیوں کو آپ بلا لیتے ہیں۔ یہ جگہ مقامِ قوالی سے دور ہے اور نمازِ فجر سے اشراق تک اور مغرب سے عشاء کے بیچ میں اس پردے والے مکان میں عورتیں جمع ہو کر فیض لیتی ہیں اور اس وقت نقصانِ قوالی کا بالکل نہیں، اور یہ عورتیں نیک بخت پردہ نشین برقع اوڑھ کر آنے والی ہیں، آپ نے اس کو آنکھوں سے نہیں دیکھا اور میں نے اسکو آنکھوں سے دیکھا ہے۔ بندہ اس کو شہادت کے طور پر بیان کرسکتا ہے۔ اور آپ کو آنکھوں سے دکھا کر تسلی کرسکتا ہے۔ اب ان عورتوں پر حکمِ حرمت لگانا غلط ہے۔ سرخیز قصبہ احمد آباد میں جو عورتیں گربے گانے والیاں فاحشات، مغنیات اور رنڈییں اور باپردہ سوا لاکھ کلمہ طیب کا ختم پڑھنے والی، ذکرِ خفی، مراقبہ۔ فیضِ حقیقتِ محمدی لینے والی ذاکرات پر رنڈیوں کا حکم لگا کر دونوں کو ایک پھانسی میں لٹکا دینا غلط ہے۔ حقوقِ اولیاء و خیر خواہی اولیاء و خیر خواہیِ سید الاولین والآخرین صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم یہ نہیں الدین

النصیحۃ للہ ولرسولہ وللمؤمنین (دین خیر خواہی ہے اللہ کے لیے اور اس کے رسول کے لیے اور ایمان والوں کے لیے۔ت) یہ کہاں ہوئی۔ اولیاء فیضِ حقیقتِ محمدی کا دینے کو ذاکرات کو بلاتے ہیں، وہ باپردہ اور شریعت کے احکام کو سر پر رکھ کر حاضر ہوتی ہیں اور مفتی ان پر حکمِ عدم جواز لگائیں، اس صورت میں فیضِ حقیقتِ محمدی کو روکنا ہے۔ اس کا نام دوستی حضرت نبی علیہ الصلوۃ والسلام نہیں، ہم آپ سے چھوٹے اور آپ کے اقدام کو اپنے سروں پر رکھنے والے ہیں، مگر آپ کا قدم صراطِ مستقیم سے پھسل گیا تو عرض کرنا چاہئے ہُدہُد و پیسے کی چڑیا حضرت سلیمان علیہ الصلوۃ والسلام کی خدمت میں عرض کرتا ہے:

اَحَطْتُّ بِمَا لَمْ تُحِطْ بِہٖ وَ جِئْتُكَ مِنْ سَبَاٍ بِنَبَاٍ یَّقِیْنٍ۔ میں نے وہ دیکھا جو آپ نے نہ دیکھا اور میں آپ کے کے شہرِ سبا سے یقینی خبر لایا ہوں۔ (ت)

1 السنن للنسائی کتاب البیعۃ النصیحۃ للامام نور محمد کارخانہ تجارت کتب کراچی ۲/۱۸۵ 2 القرآن ۲۷/ ۲۲

Fatawa-e-Razvia Volume Nine

Firstly, for a long time your eyes have been afflicted with ophthalmia and you have shaken hands with great personalities. The nature is disturbed. Do not consider this pen to be mine at this moment, we are your slaves and present this with folded hands, do not consider it rebellion. Prophet Muhammad (peace and blessings of Allah be upon him) taught Hazrat Aisha Siddiqa (may Allah be pleased with her) how to salute when visiting graves. It is mentioned in Mishkat Sharif, Muslim Sharif, and Nasai Juz page 635:

This indicates the permissibility of visiting for women.[1]	This contains a proof for the permissibility of visiting for women. (T)

Imam Nawawi states in Sharh Muslim, Vol. 1, page 314:

In it is a proof for those who allow women to visit graves.[2] etc.	In this is a proof for those who consider women's visiting of graves as permissible. (T)

Fath al-Bari, Part 5, Matba' Ansari Delhi, p. 662 says:

There was a difference of opinion regarding women. It was said they are included in the general permission, and this is the majority view, provided there is safety from fitna (mischief).[3]	There was a disagreement about women; it was said they are included in the generality of permission, and this is the majority view. And its ruling is applicable in a state of safety from fitna. (T)

Now understand the reconciliation: for women who sing songs and listen to Qawwali, visiting the graves of saints is prohibited (haram). But for women seeking divine blessings while following the honorable commands of veiling (purdah), it is not impermissible. I have explained the issue in this detailed manner. Do you consider this correct, or is there an error in my understanding? Please guide me. You are my mentor and the focus of my needs. May Allah grant you complete and speedy health. Amen, then Amen!

Written by Hakim Abdul Rahim (may he be forgiven), Madrasa Qadiria, Ahmedabad Gujarat Deccan, Jabalpur Masjid Kanj, 15 Rabi' al-Awwal Sharif. Please seat Mustafa Miyan nearby, have him write the answer, and satisfy me. If I have understood incorrectly, correct me. Also, please have a copy of the fatwa in 'Tuhfa-e-Hanfia' regarding the non-permissibility of women visiting graves sent to me; this humble servant wishes to be aware of its arguments as well.

[1] Ash'at al-Lam'at Sharh Mishkat, Book of Visiting Graves, Section Three, Nooria Razvia Sukkur 1/719 [2] Sharh Muslim with Sahih Muslim, Book of Funerals, Chapter on Going to Visit Graves, Noor Muhammad Asah al-Matabi' Karachi 1/314 [3] Fath al-Bari Sharh al-Bukhari, Chapter on Visiting Graves, Mustafa al-Babi Egypt 3/39

फ़तावा-ए-रज़विया जिल्द नौ

पहले तो एक अरसे से आपकी आँखें दुखने की बीमारी (रमंद) में मुब्तला हैं और आपने बड़े-बड़ों से हाथ मिलाया है। तबीयत परेशान है। इस कलम को इस वक़्त मेरा न समझें, हम आपके गुलाम हैं तो हाथ जोड़कर अर्ज़ करते हैं, इसे आप बगावत न समझें। हज़रत आयशा सिद्दीका (रज़ियल्लाहु अन्हा) को क़ब्रों की ज़ियारत के वक़्त सलाम करना हज़रत नबी (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने बताया, जो मिश्कात शरीफ़, मुस्लिम शरीफ़, नसाई जुज़ सफ़ा 635 में है:

यह औरतों के लिए ज़ियारत की अनुमति की ओर संकेत करता है।[1]	इसमें औरतों के लिए ज़ियारत के जवाज़ (अनुमति) की दलील है। (त)

इमाम नववी शरह मुस्लिम की जिल्द 1 सफ़ा 314 में फ़रमाते हैं:

इसमें उन लोगों के लिए दलील है जो औरतों के लिए क़ब्रों की ज़ियारत को जायज़ मानते हैं।[2] आदि।	इसमें औरतों के लिए ज़ियारत-ए-क़ुबूर जायज़ मानने वालों के लिए दलील है। (त)

फ़तह अल-बारी पारा 5 मतबा अंसारी दिल्ली सफ़ा 662 में है:

औरतों के बारे में मतभेद हुआ, कहा गया कि वे अनुमति की व्यापकता में शामिल हैं, और यही बहुसंख्यक मत है। और इसका हुक्म फ़ितने से अमन (सुरक्षा) की स्थिति में है।[3]	औरतों के बारे में इख़्तिलाफ़ (मतभेद) हुआ, कहा गया कि इजाज़त के उमूम (व्यापकता) में ये भी दाखिल हैं, और यही अक्सर क़ौल है। और इसका हुक्म फ़ितना से अमन की हालत में है। (त)

अब मेल (ततबीक़) समझ लीजिए कि गाने वाली, कव्वाली सुनने वाली औरतों के लिए औलिया की क़ब्रों की ज़ियारत के लिए जाना हराम है, और फ़ैज़-ए-इलाही लेने वाली औरतों को बा-पर्दा शरीफ़ के अहकाम पर अमल करते हुए जाना नाजायज़ नहीं। मैंने मसले को इस तरह विस्तार से बयान किया है। आप इसे सही समझते हैं या मेरी समझ में कोई ग़लती है, मुझे समझाएं। आप मेरे मुरब्बी (संरक्षक) और क़िबला-ओ-काबा हाजात हैं। खुदा तआला आपको मुकम्मल और जल्द सेहत अता फ़रमाए, आमीन सुम्मा आमीन!

लिखने वाला: हकीम अब्दुल रहीम (अफ़ा अन्हु), मदरसा क़ादरिया, अहमदाबाद गुजरात दकन, जबलपुर मस्जिद कांज, 15 रबीउल अव्वल शरीफ़। और मुस्तफ़ा मियां को पास बैठाकर जवाब उनसे लिखवाकर मेरी तसल्ली कर दीजिए। मैं ग़लत समझा हूँ तो सही समझाएं। और वो फ़तवा जो

'तोहफ़ा-ए-हनफ़िया' में औरतों की ज़ियारत-ए-क़ुबूर की मनाही के बारे में है, उसकी नकल भी करवा कर भेज दें, बंदा उसके दलीलों से भी वाकिफ़ होना चाहता है।

[1] अशअतुल लमआत शरह मिश्कात, बाब ज़ियारतुल क़ुबूर, फ़स्ल सालिस, नूरिया रज़विया सुक्कुर 1/719 [2] शरह मुस्लिम मय सहीह मुस्लिम, किताबुल जनाइज़, फ़स्ल फ़ि ज़हाब इला ज़ियारतुल क़ुबूर, नूर मुहम्मद असहुल् मताबे कराची 1/314 [3] फ़तह अल-बारी शरह अल-बुखारी, बाब ज़ियारतुल क़ुबूर, मुस्तफ़ा अल-बाबी मिस्र 3/39

पृष्ठ 547 का 948

فتاوٰی رضویہ جلد نہم

اول تو ایک مدت سے آنکھیں آپ کی رمد میں مبتلا ہیں اور ہاتھ بڑوں بڑوں سے ملایا ہے۔ طبیعت پریشان ہے۔ یہ قلم اس وقت میرانہ سمجھئے، آپ کے ہم غلام ہیں تو دست بستہ عرض کرتے ہیں، اس کو آپ بغاوت نہ سمجھیں، حضرت عائشہ صدیقہ رضی اللہ تعالٰی عنہا کو زیارت قبور کے وقت سلام کرنا حضرت نبی علیہ الصلوۃ والسلام نے بتایا مشکوۃ شریف، مسلم شریف، نسائی جزا صفحہ ۶۳۵ میں ہے:

این دلالت دارد بر جواز مرنساء را۱۔ اس میں عورتوں کے لیے جواز زیارت کی دلیل ہے۔ (ت)

امام نووی شرح مسلم کی جلد ۱ صفحہ ۳۱۴ میں فرماتے ہیں:

فیه دلیل لمن جوز للنساء زیارة القبور۲۔ الخ — اس میں عورتوں کے لیے زیارت قبور جائز ماننے والوں کے لیے دلیل ہے۔ (ت)

فتح الباری پارہ ۵ مطبع انصاری دہلی ص ۶۶۲ میں ہے:

اختلف فی النساء فقیل دخلن فی عموم الاذن وھوقول الاکثر ومحلہ اذا امنت الفتنة۳۔ — عورتوں کے بارے میں اختلاف ہوا، کہا گیا کہ اجازت کے عموم میں یہ بھی داخل ہیں، اور یہی اکثر قول ہے۔ اور اس کا حکم کاموقع فتنہ سے امن کی حالت میں ہے (ت)

اب تطبیق سمجھ لیجئے کہ گربے گانے والی۔ قوالی سننے والی عورتوں کے لیے زیارت قبور اولیاء کو جانا حرام اور فیض الہی لینے والی عورتوں کو باپردہ شریف کے احکام کو بجالا کر ناجائز، میں نے مسئلہ اس طرح مشرح بیان کیا ہے۔ اس کو آپ صحیح سمجھتے ہیں یا میری سمجھ

میں کوئی غلطی ہے مجھے سمجھائے، آپ میرے مربی اور قبلہ و کعبہ حاجات ہیں، خدا تعالیٰ آپ کو صحت کلیہ عاجلہ عطا فرمائے، آمین ثم آمین!

رقمیہ حکیم عبدالرحیم عفی عنہ مدرسہ قادریہ احمد آباد گجرات دکن جبالپور مسجد کانج ۱۵ ربیع الاول شریف اور مصطفیٰ میاں کو پاس بٹھا کر جواب ان سے لکھوا کر میری تسلی کر دیجئے، میں غلط سمجھا ہوں تو صحیح سمجھائے، اور وہ فتویٰ جو تحفہ حنفیہ میں عدم جواز زیارت قبور نساء کے بارے میں ہے اس کی نقل بھی کروا کر روانہ فرمائے، اس کے دلائل سے بھی واقف ہونا بندہ چاہتا ہے۔

۱ اشعة اللمعات شرح مشکوة باب زیارة القبور فصل ثالث نوریہ رضویہ سکھر ۱/ ۷۱۹ ۲ شرح مسلم مع صحیح مسلم کتاب الجنائز فصل فی الذہاب الی زیارة القبور نور محمد اصح المطابع کراچی ۱/ ۳۱۴ ۳ فتح الباری شرح البخاری باب زیارة القبور مصطفی البابی مصر ۳/ ۳۹

Fatawa Razawiyya Volume 9

The Answer: In the name of Allah, the Most Gracious, the Most Merciful. We praise Him and send blessings upon His Noble Messenger. Honorable Maulana, peace be upon you and the mercy of Allah and His blessings. Your registered letter arrived on the 15th of Rabi' al-Awwal. After attending the gathering on the 12th of Rabi' al-Awwal, I fell so ill from that very evening that I had never been like this before. I even had my will written down. Until today, my condition is such that even though the mosque is adjacent to my door, four people seat me on a chair and carry me to and from the mosque. In my view, the two words I initially reported were sufficient; now let me provide some detail. (1) I have previously reported that the phrases of permission are within my sight. However, considering the times, it is not I, but due to the hypocrites, that Allah Almighty and the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) did not forbid women from attending the Noble Mosque. Instead, the hypocrites were warned and threatened, and men were encouraged to move forward and women to remain behind. And I add further that not only this, but the Prophet (peace be upon him) strictly emphasized women attending Eid prayers. He even ordered that menstruating women should also come out to partake in the blessing of the congregation and the prayers of the Muslims, sitting separately from the prayer area. Even secluded virgins should go. For one who does not have a cloak, her companion should share hers with her. It is narrated in the Sahihayn (Bukhari and Muslim) from Umm 'Atiyah (may Allah be pleased with her):

Arabic Text	**Urdu Translation**
We were commanded to bring out the menstruating women on the day of the two Eids and the secluded ones, so that they might witness the congregation of the Muslims and their supplications, and that the menstruating women should stay away from their place of prayer. A woman said, 'O Messenger of Allah, one of us does not have a jilbab (outer garment).' He said, 'Let her companion cover her with a part of her jilbab.'	We were commanded to bring out the menstruating women and secluded women on the day of Eid so that they may also participate in the congregation and prayers of the Muslims, and the menstruating women should stay away from the place of prayer. A woman submitted: O Messenger of Allah, there are some among us who do not have a cloak. He said: Her companion should cover her with a part of her own cloak.

And this command is not only for the Eids; rather, there is an absolute prohibition against stopping women from the mosques, that Allah's...

1. Sahih Muslim, Book of Eid Prayers, Nur Muhammad Asah al-Matabi', Karachi 1/291; Sahih al-Bukhari, Book of Eid Prayers, Qadimi Kutub Khana, Karachi 1/134. Page 548 of 948

फतावा रज़विया जिल्द 9

उत्तर: बिस्मिल्लाह हिर्रहमान निर्रहीम। हम उसकी प्रशंसा करते हैं और उसके सम्मानित रसूल पर दरूद भेजते हैं। माननीय मौलाना साहब, आप पर सलाम और अल्लाह की रहमत और उसकी बरकतें हों। आपकी रजिस्ट्री 15 रबी-उल-अव्वल को मिली। 12 रबी-उल-अव्वल की मजलिस पढ़कर शाम से ही मैं इतना बीमार हो गया कि ऐसा पहले कभी नहीं हुआ था। मैंने वसीयतनामा भी लिखवा दिया था। आज तक ये हालत है कि मस्जिद घर के दरवाज़े से मिली हुई है, फिर भी चार आदमी कुर्सी पर बैठा कर मस्जिद ले जाते और लाते हैं। मेरे नज़दीक वही दो बातें जो पहले अर्ज़ की थीं काफी थीं, अब ज़रा विस्तार से बताता हूँ। (1) मैं पहले अर्ज़ कर चुका हूँ कि इजाज़त वाली इबारतें मेरी नज़र में हैं, मगर ज़माने के हालात को देखते हुए, मेरी वजह से नहीं बल्कि मुनाफ़िकों (पाखंडियों) की वजह से अल्लाह तआला और अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने औरतों को मस्जिद-ए-करीम में आने से मना नहीं फ़रमाया, बल्कि मुनाफ़िकों को डराया और पुरुषों को आगे बढ़ने और औरतों को पीछे रहने की तरग़ीब (प्रोत्साहन) दी। और मैं इसमें इतना और जोड़ता हूँ कि सिर्फ यही नहीं बल्कि हुज़ूर ने महिलाओं को ईदैन (दोनों ईदों) की नमाज़ के लिए सख्त ताकीद फ़रमाई, यहाँ तक कि हुक्म दिया कि मुसलमानों की जमाअत और दुआ की बरकत हासिल करने के लिए हैज़ (माहवारी) वाली औरतें भी निकलें, लेकिन नमाज़ की जगह से अलग बैठें। पर्दे में रहने वाली कुंवारी लड़कियाँ भी जाएँ। जिसके पास चादर न हो, उसकी सहेली अपनी चादर का हिस्सा उसे ओढ़ा दे। सहीहैन में उम्मे अतिया (रज़ियल्लाहु अन्हा) से रिवायत है:

अरबी इबारत

हमें हुक्म दिया गया कि हम ईदैन के दिन हैज़ वाली और पर्दा-नशीन औरतों को भी बाहर ले जाएँ ताकि वे मुसलमानों की जमाअत और उनकी दुआओं में शरीक हों और हैज़ वाली औरतें नमाज़ की जगह से अलग रहें। एक औरत ने अर्ज़ किया, 'या रसूल अल्लाह, हममें से किसी के पास ओढ़नी (जिलबाब) नहीं होती।' आपने फ़रमाया, 'उसकी सहेली अपनी चादर का हिस्सा उसे ओढ़ा दे।'

उर्दू अनुवाद

हमें हुक्म दिया गया कि ईद के दिन माहवारी वाली और पर्दा-नशीन औरतों को भी साथ ले जाएँ ताकि ये भी मुसलमानों की जमाअत और दुआ में शरीक हों और माहवारी वाली औरतें नमाज़ की जगह से अलग रहें, एक औरत ने अर्ज़ किया या रसूल अल्लाह हममें कोई औरत ऐसी भी होती है जिसके पास चादर नहीं, फ़रमाया: उसके साथ वाली अपनी चादर का हिस्सा ओढ़ा दे।

और यह हुक्म सिर्फ ईदैन के लिए नहीं है, बल्कि मस्जिदों से औरतों को रोकने की मुतलक़न (पूर्ण रूप से) मनाही फ़रमाई गई है कि अल्लाह की...

---

1. सहीह मुस्लिम, किताब सलातुल ईदैन, नूर मुहम्मद अस्सह अल-मताबे, कराची 1/291; सहीह अल-बुखारी, किताब सलातुल ईदैन, क़दीमी कुतुब ख़ाना, कराची 1/134. पृष्ठ 948 का 548

فتاوی رضویہ جلد نہم

الجواب: بسم اللہ الرحمن الرحیم ط نحمدہ و نصلی علی رسولہ الکریم ط مولانہ المکرم اکرم وعلیکم السلام ورحمۃ اللہ وبرکاتہ، آپ کی رجسٹری ۱۵ ربیع الاول شریف کو آئی۔ میں ۱۲ ربیع الاول شریف کی مجلس پڑھ کر شام ہی سے ایسا علیل ہوا کہ کبھی نہ ہوا تھا، میں نے وصیت نامہ بھی لکھوا دیا تھا، آج تک یہ حالت ہے کہ دروازہ سے متصل مسجد ہے چار آدمی کرسی پر بٹھا کر مسجد لے جاتے اور لاتے ہیں میرے نزدیک وہی دو حرف کہ اول گزارش ہوئے کافی تھے اب قدرے تفصیل کروں، (۱) پہلے گزارش کر چکا کہ عبارات رخصت میری نظر میں ہیں، مگر نظر بحال زمانہ میرے نہ میرے بلکہ منافقین کے باعث عورتوں کو مسجد کریم میں حاضری سے اللہ جل وعلا و رسول اللہ صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم نے ممانعت نہ فرمائی بلکہ منافقوں کو تہدید وترہیب ارومردوں کو تقدم عورتوں کو تاخر کی ترغیب فرمائی اور میں اتنا اور زائد کرتا ہوں کہ صرف یہی نہیں بلکہ نساء کو حضور نے عیدین کی سخت تاکید فرمائی، یہاں تک حکم فرمایا کہ برکت جماعت و دعاء مسلمین لینے کو حیض والیاں بھی نکلیں، مصلیٰ سے الگ بیٹھیں، پردہ نشین کنواریاں بھی جائیں، جس کے پاس چادر نہ ہو ساتھ والی اپنی چادر میں لے لے۔ صحیحین میں ام عطیہ رضی اللہ تعالیٰ عنہا سے ہے:

عربی عبارت	اردو ترجمہ
امرنا ان نخرج الحیض یوم العیدین وذوات الخدور فیشھدن جماعۃ المسلمین ودعوتھم وتعتزل الحیض عن مصلاھن قالت امرأۃ یارسول اللہ	ہمیں حکم دیا گیا کہ عیدین کے دن حیض والی اور پردہ نشین عورتوں کو بھی ساتھ لے جائیں تاکہ یہ بھی مسلمانوں کی جماعت اور دعا میں شریک ہوں اور حیض والیاں نماز کی جگہ سے الگ رہیں، ایک عورت نے عرض کیا یا رسول اللہ

عربی عبارت	اردو ترجمہ
احدنا لیس لھا جلباب قال لتلبسھا صاحبتھا من جلبابھا 1 ۔	ہم میں کوئی عورت ایسی بھی ہوتی ہے جس کے پاس چادر نہیں، فرمایا: اس کے ساتھ والی اپنی چادر کا حصہ اڑھا دے۔ (ت)

اور یہ صرف عیدین میں ہی امر نہیں بلکہ مساجد سے عورتوں کو روکنے سے مطلقاً نہی بھی ارشاد ہوئی کہ اللہ کی

---

1 صحیح مسلم کتاب صلوٰۃ العیدین نور محمد اصح المطابع کراچی ۱ / ۲۹۱، صحیح البخاری کتاب صلوٰۃ العیدین قدیمی کتب خانہ کراچی ۱ / ۱۳۴ Page 548 of 948

Fatawa Razawiyya, Volume 9

"Do not prevent the maidservants of Allah from the mosques of Allah." It is in Musnad Ahmad and Sahih Muslim, narrated by Hazrat Abdullah bin Umar (may Allah be pleased with them), that the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) said:

"La tamna'u ima' Allah masajid Allah" — Do not prevent the maidservants of Allah from the mosques of Allah. (T)

Note: This hadith is also in Sahih Bukhari, Kitab al-Jumu'ah. The command of the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) is for obligation and the prohibition is for prohibition (tahrim), and the benefit of receiving grace and blessing was mentioned in the hadith itself. Nevertheless, you yourself write that the prayer of women in the mosque is stopped, which this servant accepts. The text of Durr al-Mukhtar will not be hidden from you:

"Yakrahu huduruhunna al-jama'ata wal-jumu'ata wa 'idan wa wa'zan mutlaqan wa law 'ajuzan laylan 'alal-madhhab al-mufta bihi li fasad al-zaman." Attendance of women in congregation—even if it is for Friday, Eid, or a sermon—is absolutely disliked (makruh), even if an old woman goes at night; this is the school of thought upon which the fatwa is based due to the corruption of the times. (T)

Similarly, it is in other reliable books. The imams of religion have forbidden attendance even at sermons, let alone congregation, Friday, and Eids, even if she is old and even if it is night. The purpose of a sermon is only to gain grace, hear the commanding of good and forbidding of evil, and correct beliefs and actions, which is a thousand times greater than the attention of spiritual guidance (mashaikhat), and its essence is foremost. Its grace without the attention of spiritual guidance is also great, beneficial, and averts every severe harm. And if this is not present, then the heart of spiritual guidance is of no use; rather, it is closer to harm and far from benefit.

Note: However, the name of the Companion is not explicitly mentioned in it. It was said that this narration is from Hazrat Umar, as found in Musannaf Abdur Razzaq and Musnad Imam Ahmad. And it was said that it is from Ibn Umar (may Allah be pleased with them), as found in Sahih Muslim and Musnad Imam Ahmad. And Allah the Almighty knows best. 12 (Minhu, Ghafara lahu) (M)

1 Sahih Muslim Sharif, Bab Khuruj al-Nisa' ila al-Masajid, Noor Muhammad Asah al-Matabi' Karachi, 1/183; Sahih al-Bukhari, Kitab al-Jumu'ah, Qadeemi Kutub Khana Karachi, 1/123. 2 Durr al-Mukhtar, Bab al-Imamah, Matba' Mujtabai Delhi, 1/83.

फ़तावा रज़विया, जिल्द 9

"अल्लाह की बंदियों को अल्लाह की मस्जिदों से न रोको।" मुसनद अहमद और सहीह मुस्लिम शरीफ़ में हज़रत अब्दुल्ला बिन उमर (रज़ियल्लाहु अन्हुमा) से रिवायत है कि रसूलुल्लाह (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने फ़रमाया:

"ला तमनाउ इमाअल्लाह मसाजिदल्लाह" — अल्लाह की बंदियों को अल्लाह की मस्जिदों से न रोको। (त)

नोट: यह हदीस सहीह बुख़ारी किताब अल-जुमुआ में भी है। रसूलुल्लाह (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) का हुक्म वुजूब (अनिवार्यता) के लिए है और मनाही तहरीम (निषिद्धता) के लिए, और फ़ैज़ व बरकत हासिल करने का फ़ायदा खुद हदीस में बताया गया। इसके बावजूद आप खुद लिखते हैं कि मस्जिद में औरतों की नमाज़ बंद हो गई, जिसे यह बंदा स्वीकार करता है। दुर्रे मुख्तार की इबारत आपसे छिपी नहीं होगी:

"यकरहु हुदुरुहुन्ना अल-जमाअत वल-जुमुअत व ईदन व वअज़न मुतलक़न व लव अज़ूज़न लैलन अलल-मज़हब अल-मुफ़्ता बिही लि फ़साद अज़-ज़मान।" जमात में औरतों की हाज़िरी—चाहे वह जुमा, ईद या वअज़ (उपदेश) के लिए हो—मुतलक़न (पूरी तरह) मकरूह है, भले ही बुढ़िया रात को जाए; यही वह मज़हब (विचारधारा) है जिस पर ज़माने के बिगाड़ के कारण फ़तवा है। (त)

इसी तरह अन्य विश्वसनीय पुस्तकों में है। दीन के इमामों ने जमात, जुमा और ईदैन तो दूर, वअज़ की हाज़िरी से भी मुतलक़न मना फ़रमाया है, चाहे वह बुढ़िया हो, चाहे रात हो। वअज़ का मक़सद तो सिर्फ़ फ़ैज़ हासिल करना, अम्र बिल मारूफ़ व नही अनिल मुनकर (भलाई का हुक्म देना और बुराई से रोकना) सुनना और अक़ाएद व आमाल की दुरुस्ती है, जो मशायखत (पीरी-मुरीदी) की तवज्जो से हज़ार गुना अज़ीम (बड़ा) है और इसकी असल मुक़द्दम (प्राथमिक) है। इसका फ़ैज़ मशायखत की तवज्जो के बिना भी महान, लाभदायक और हर सख्त नुकसान को टालने वाला है। और अगर यह न हो तो मशायखत का जिगर कुछ मुफ़ीद (लाभदायक) नहीं बल्कि नफ़ा (लाभ) से दूर और नुक़सान के क़रीब है।

नोट: मगर इसमें सहाबी के नाम की स्पष्टता नहीं है। कहा गया कि यह रिवायत हज़रत उमर से है जैसा कि मुसन्निफ़ अब्दुल रज़्ज़ाक़ और मुसनद इमाम अहमद में है। और कहा गया कि हज़रत इब्ने

उमर से है (रज़ियल्लाहु अन्हुमा), जैसा कि सहीह मुस्लिम और मुसनद इमाम अहमद में है। वल्लाहु तआला आलम। 12 (मिन्हु ग़फ़र लहू) (म)

1 सहीह मुस्लिम शरीफ़, बाब खुरूज अन-निसा इलल मसाजिद, नूर मुहम्मद असहुत तबा' कराची, 1/183; सहीह अल-बुख़ारी, किताब अल-जुमुआ, क़दीमी कुतुब खाना कराची, 1/123। 2 दुर्रे मुख्तार, बाब अल-इमामत, मतबअ मुजतबाई दिल्ली, 1/83।

पृष्ठ 549/948

فتاوٰی رضویہ جلد نہم

باندیوں کو اللہ کی مسجدوں سے نہ روکو۔ مسند احمد و صحیح مسلم شریف میں ہے حضرت عبداللہ عمر رضی اللہ تعالٰی عنہما سے ہے، رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم نے فرمایا:

لا تمنعوا اماء اللہ مساجد اللہ[1] اللہ کی باندیوں کو اللہ کی مسجدوں سے نہ روکو۔(ت)

عہ: یہ حدیث صحیح بخاری کتاب الجمعہ میں بھی ہے۔ رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم کا امر وجوب کے لیے ہے اور نہی تحریم کے لیے، اور فیض و برکت لینے کا فائدہ خود حدیث میں ارشاد ہوا۔ باینہمہ آپ ہی لکھتے ہیں کہ مسجد میں عورتوں کی نماز بند ہوئی اس کو بندہ مانتا ہے۔ در مختار کی عبارت آپ کے سے مخفی نہ ہو گی کہ :

یکرہ حضور ھن الجماعۃ والجمعۃ وعید ووعظ مطلقا ولو عجوزا لیلا علی المذھب المفتی بہ لفساد الزمان[2] جماعت میں عورتوں کی حاضری۔ اگر چہ جمعہ، عید اور وعظ کے لیے ہو ۔ مطلقاً مکروہ ہے اگر چہ بوڑھی عورت رات کو جائے، یہی وہ مذہب ہے جس پر فساد زمانہ کے باعث فتوٰی ہے۔ (ت)

اسی طرح اور کتب معتمدہ میں ہے۔ ائمہ دین نے جماعت وجمعہ و عیدین در کنار وعظ کی حاضری سے بھی مطلقاً منع فرما دیا اگر چہ بڑھیا ہو، اگر چہ رات ہو۔ وعظ سے مقصد تو صرف اخذ فیض وسماع امر بالمعروف و نہی عن المنکر و تصحیح عقائد و اعمال ہے کہ توجہ مشیخت سے ہزار درجہ اعظم اور اس کی اصل مقدم ہے۔ اس کا فیض بے توجہ مشیخت بھی عظیم مفید و واقع ہر ضرر و شدید ہے۔ اور یہ نہ ہو تو جگر مشیخت کچھ مفید نہیں بلکہ ضرر سے قریب نفع سے بعید ہے۔

عہ: غیر انہ لم یصرح فیہ باسم الصحابی فقیل عن عمر کما عند عبدالرزاق واحمد قیل عن ابن عمر کما عند مسلم واحمد واللہ تعالٰی اعلم ۱۲ منہ غفر لہ (م) مگر اس میں صحابی کے نام کی صراحت نہیں، کہا گیا کہ یہ روایت حضرت عمر سے ہے جیسا کہ مصنف عبدالرزاق اور مسند امام احمد میں ہے۔ اور کہا گیا کہ حضرت ابن عمر سے ہے رضی اللہ تعالیٰ عنہما ، جیسا کہ صحیح مسلم اور مسند امام احمد میں ہے۔ واللہ تعالیٰ اعلم ۱۲ منہ غفر لہ (ت)

1 صحیح مسلم شریف باب خروج النساء الی المساجد نور محمد اصح لمطابع کراچی ۱/ ۱۸۳، صحیح البخاری کتاب الجمعہ قدیمی کتب خانہ کراچی ۱/ ۱۲۳ 2 در مختار باب الامامۃ مطبع مجتبائی دہلی ۱/ ۸۳

Fatawa Razawiyya, Volume 9

Will Imam Azam, Imam Abu Yusuf, Imam Muhammad, and all the Imams after them (may Allah be pleased with them) be considered as those who prevent the flow of the sacred reality, and (God forbid, God forbid) be included among those who "want to extinguish the light of Allah with their mouths" [Quran 9:32]? Never! They are the physicians of hearts; they know the interests of the Shari'ah. (2) In Sahih Bukhari, Sahih Muslim, and Sunan Abi Dawud, the statement of the Mother of the Believers, Siddiqah (may Allah be pleased with her), in her time was: "If the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) had perceived what women have introduced now, he would surely have prevented them from the mosque, as the women of the Children of Israel were prevented." Then, from the time of the Tabi'un, the Imams began the prohibition; first for young women, then for old women as well; first during the day, then at night too, until the ruling of prohibition became general. Were the women of that time like singers, dancers, or procuresses of obscenity, and now they are righteous? Or were there more obscene women then and now there are more righteous ones? Or were there no spiritual benefits and blessings then, and now there are? Or were they few then and now they are many? Never! Rather, definitely and certainly, the matter is now the opposite. If there is one righteous woman now, then there were a thousand; if there was one transgressing woman then, there are a thousand now. If there is one portion of spiritual benefit now, then there were a thousand portions. The Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) says: "No year comes but that the one following it is worse than it." Rather, it is mentioned in 'Inayah by Imam Akmal al-Din Babarti that the Leader of the Believers, Faruq-e-Azam (may Allah be pleased with him), prohibited women from the mosque. They went to the Mother of the Believers, Hazrat Siddiqah (may Allah be pleased with her), with a complaint. She said: "If this state had existed in the sacred time [of the Prophet], His Holiness would not have given permission for women to come to the mosque." As it is said: "And Umar (may Allah be pleased with him) indeed prohibited..." He says: Hazrat Umar (may Allah be pleased with him) prohibited women from...

Footnotes: 1. Quran 9:32 2. Sahih Muslim, Chapter on Women going out to the Mosques, Nur Muhammad Asah al-Matabi Karachi, 1/183 3. Sahih al-Bukhari, Chapter 'No time will come...', Qadimi Kutub Khana Karachi, 2/1047; Fath al-Bari Sharh al-Bukhari, Dar al-Ma'rifah Beirut, 13/171. Page 550 of 948

फ़तावा रज़विया, जिल्द 9

क्या इमाम-ए-आज़म, इमाम अबू यूसुफ, इमाम मुहम्मद और उनके बाद के सभी इमामों (अल्लाह उनसे प्रसन्न हो) को पवित्र वास्तविकता के प्रवाह को रोकने वाला माना जाएगा, और (अल्लाह न करे, अल्लाह न करे) उन्हें उन लोगों में शामिल किया जाएगा जो "अल्लाह के नूर को अपने मुँह से बुझाना चाहते हैं" [कुरआन 9:32]? हरगिज़ नहीं! वे दिलों के हकीम हैं; वे शरीयत के हितों को जानते हैं। (2) सहीह बुखारी, सहीह मुस्लिम और सुनन अबी दाऊद में उम्मुल मोमिनीन सिद्दीका (अल्लाह उनसे प्रसन्न हो) का अपने समय में यह कथन था: "अगर अल्लाह के रसूल (अल्लाह की उन पर कृपा और शांति हो) ने वह देखा होता जो महिलाओं ने अब नया शुरू कर दिया है, तो वे उन्हें मस्जिद से वैसे ही रोक देते जैसे बनी इसराइल की महिलाओं को रोक दिया गया था।" फिर ताबिईन के ज़माने से ही इमामों ने पाबंदी लगानी शुरू कर दी, पहले जवान महिलाओं पर, फिर बूढ़ी महिलाओं पर भी; पहले दिन में, फिर रात में भी, यहाँ तक कि पाबंदी का हुक्म आम हो गया। क्या उस ज़माने की महिलाएँ गाने वालियों की तरह नाचने वालियाँ या अश्लीलता फैलाने वाली थीं और अब नेक हैं? या तब अश्लील महिलाएँ ज़्यादा थीं और अब नेक ज़्यादा हैं? या तब रूहानी फ़ायदे और बरकतें नहीं थीं और अब हैं? या तब कम थीं और अब ज़्यादा हैं? हरगिज़ नहीं! बल्कि यक़ीनन अब मामला इसके विपरीत है। अगर अब एक नेक महिला है, तो तब हज़ार थीं; अगर तब एक बदकार महिला थी, तो अब हज़ार हैं। अगर अब रूहानी फ़ैज़ का एक हिस्सा है, तो तब हज़ार हिस्से था। अल्लाह के रसूल (अल्लाह की उन पर कृपा और शांति हो) फरमाते हैं: "कोई साल ऐसा नहीं आता जिसके बाद वाला उससे बुरा न हो।" बल्कि इमाम अकमल उद्दीन बाबरती की 'इनाया' में है कि अमीरुल मोमिनीन फ़ारूक़-ए-आज़म (अल्लाह उनसे प्रसन्न हो) ने महिलाओं को मस्जिद से मना फ़रमाया। वे उम्मुल मोमिनीन हज़रत सिद्दीक़ा (अल्लाह उनसे प्रसन्न हो) के पास शिकायत लेकर गईं। उन्होंने फ़रमाया: "अगर पवित्र ज़माने [पैगंबर के समय] में यह हालत होती, तो हुज़ूर महिलाओं को मस्जिद में आने की इजाज़त न देते।" जैसा कि कहा गया है: "और उमर (अल्लाह उनसे प्रसन्न हो) ने वास्तव में मना किया..." वे फरमाते हैं: हज़रत उमर (अल्लाह उनसे प्रसन्न हो) ने महिलाओं को...

पाद-टिप्पणियाँ: 1. कुरआन 9:32 2. सहीह मुस्लिम, बाब खुरुज-उन-निसा इलल मसाजिद, नूर मुहम्मद असहुत तबा' कराची 1/183 3. सहीह अल-बुखारी, बाब 'ला याती अज़-ज़मान...', क़दीमी कुतुब खाना कराची 2/1047; फ़तह अल-बारी शरह अल-बुखारी, दारुल मा'रिफ़ा बेरूत 13/171। पृष्ठ 550 / 948

کیا امام اعظم وامام ابو یوسف وامام محمد وسائر ائمہ ما بعد رضی اللہ تعالٰی عنہم کو فیضِ حقیقت اقدس سے روکنے والا اور معاذ اللہ معاذ اللہ یُرِیدُونَ اَنْ یُّطْفِئُوْا نُوْرَ اللہِ بِاَفْوَاہِہِمْ ۱ (خدا کا نور اپنے منہ سے بجھانا چاہتے ہیں۔ ت) میں داخل مانا جائے گا، حاشا یہ اطبائے قلوب ہیں، مصالح شرع جانتے ہیں۔ (۲) صحیح بخاری و صحیح مسلم و سُنن ابی داؤد میں اُم المومنین صدیقہ رضی اللہ تعالٰی عنہا کا ارشاد اپنے زمانہ میں تھا: لو ادرک رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم ما احدث النساء لمنعھن المسجد کما منعت نساء بنی اسرائیل ۲ ۔ اگر نبی صلی اللہ تعالٰی وسلم ملاحظہ فرماتے جو باتیں عورتوں نے اب پیدا کی ہیں تو ضرور انہیں مسجد سے منع فرما دیتے جیسے بنی اسرائیل کی عورتیں منع کر دی گئیں۔ پھر تابعین ہی کے زمانے سے ائمہ نے ممانعت شروع فرمادی، پہلے جوان عورتوں کو پھر بوڑھیوں کو بھی، پہلے دن میں پھر رات کو بھی، یہاں تک کہ حکم ممانعت عام ہوگیا، کیا اس زمانے کی عورتیں گانے والیوں کی طرح ناچنے والیاں یا فاحشہ دلالہ تھیں اب صالحات ہیں یا جب فاحشات زائد تھیں اب صالحات زیادہ ہیں یا جب فیوض وبرکات نہ تھے اب ہیں یا جب کم تھے اب زائد ہیں، حاشا بلکہ قطعاً یقیناً اب معاملہ بالعکس ہے۔ اب اگر ایک صالحہ ہے تو جب ہزار تھیں، جب اگر ایک فاسقہ تھی اب ہزار ہیں، اب اگر ایک فیض ہے جب ہزار حصے تھا، رسول اللہ صلی اللہ علیہ وسلم فرماتے ہیں : لا یأتی عام الا والذی بعدہ شر منہ ۳ ۔ جو سال بھی آئے اس کے بعد والا اس سے بُرا ہی ہوگا۔ (ت) بلکہ عنایہ امام اکمل الدین بابرتی میں ہے کہ امیر المومنین فاروق اعظم رضی اللہ تعالٰی عنہ نے عورتوں کو مسجد سے منع فرمایا، وہ ام المومنین حضرت صدیقہ رضی اللہ تعالٰی عنہا کے پاس شکایت لے گئیں، فرمایا: اگر زمانہ اقدس میں حالت

یہ ہوتی حضور عورتوں کو مسجد میں آنے کی اجازت نہ دیتے۔ حیث قال و لقد نھی عمر رضی اللہ تعالی وہ فرماتے ہیں: حضرت عمر رضی اللہ تعالیٰ عنہ نے عورتوں کو

حواشی: 1. القرآن ۳۲/۹ 2. صحیح مسلم باب خروج النساء الی المساجد نور محمد اصح المطابع کراچی ۱/ ۱۸۳ 3. صحیح البخاری باب لا یأتی الزمان الخ قدیمی کتب خانہ کراچی ۲/ ۱۰۴۷، فتح الباری شرح البخاری باب لا یأتی الزمان الخ دارالمعرفتہ بیروت ۱۳/ ۱۷۱ Page 550 of 948

Fatawa Razawiyya, Volume 9

[Top Section] (Arabic): ...He prevented women from going out to the mosques. So they complained to 'A'ishah (may Allah be pleased with her). She said, "If the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) had known what 'Umar knew, he would not have allowed you to go out." (Urdu): ...prevented from going to the mosque; they went to complain to Sayyidah 'A'ishah Siddiqah (may Allah be pleased with her). She said: If the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) had seen what 'Umar had seen, he too would not have given permission to go to the mosque. (T)

[Middle Section] Then he said: (Arabic): Based on this, our scholars agreed and prohibited young women from going out absolutely. Regarding old women, Imam Abu Hanifa (may Allah be pleased with him) forbade them from going out for Dhuhr and 'Asr, while allowing it for Fajr, Maghrib, and 'Isha. Today, the fatwa (legal ruling) is on the dislike of their attendance in all prayers due to the prevalence of corruption (fitnah). (Urdu): From this, our scholars derived an argument and absolutely forbade young women from going. As for old women, for them, Imam Abu Hanifa (may Allah be pleased with him) maintained the prohibition for Dhuhr and 'Asr, and gave permission for Fajr, Maghrib, and 'Isha. Today the fatwa is on this, that their attendance in all prayers is forbidden because evils have arisen. (T)

[Bottom Section] In the same 'Ayni, volume three, one page before your quoted text, it is written: (Arabic): Ibn Mas'ud (may Allah be pleased with him) said: "A woman is 'awrah (to be concealed). She is closest to Allah in the innermost part of her house. When she goes out, Shaytan stares at her." Ibn 'Umar (may Allah be pleased with them both) used to stand on the day of Jumu'ah and throw pebbles to drive women out of the mosque. Ibrahim (an-Nakha'i) used to prevent his women from attending Jumu'ah and congregational prayers. (Urdu): Meaning, Hazrat Abdullah bin Mas'ud (may Allah be pleased with him) says: A woman is an embodiment of modesty. She is closest to Allah (Almighty and Majestic) in the depths of her house, and when she goes out, Shaytan casts his gaze upon her. And Hazrat Abdullah bin Umar (may Allah be pleased with them both) on the day of Jumu'ah, would stand and throw pebbles to drive women out of the mosque. And Imam Ibrahim Nakha'i (the Successor), the teacher of the teacher of Imam al-A'zam Abu Hanifa (may Allah be pleased with him), would not let his veiled women go for Jumu'ah and congregational prayers.

[Footnotes] 1. Al-Inayah on the margin of Fath al-Qadir, Chapter of Imamate, Nuria Razvia Sukkur 1 / 317 2. Al-Inayah on the margin of Fath al-Qadir, Chapter of

Imamate, Nuria Razvia Sukkur 1 / 317 3. Umdat al-Qari Sharh al-Bukhari, Chapter on Women going out to Mosques, Idarat al-Tiba'at al-Muniriyah, Beirut 6 / 157

फ़तावा रज़विया, जिल्द 9

[ऊपर का अनुभाग] (अरबी): ...उन्होंने औरतों को मस्जिदों में जाने से रोका। तो उन्होंने हज़रत आयशा (रज़ियल्लाहु अन्हा) से शिकायत की। उन्होंने फ़रमाया: "अगर नबी (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) को वह पता होता जो उमर को पता चला, तो वह तुम्हें बाहर जाने की इजाज़त न देते।" (उर्दू): मस्जिद जाने से रोक दिया, वे हज़रत आयशा सिद्दीका (रज़ियल्लाहु अन्हा) के पास शिकायत लेकर गईं, उन्होंने फ़रमाया: अगर नबी (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) यह देखते जो हज़रत उमर ने देखा, तो वह भी मस्जिद जाने की इजाज़त न देते। (त)

[मध्य अनुभाग] फिर फ़रमाया: (अरबी): इसी आधार पर हमारे उलेमा एकत्र हुए और उन्होंने जवान औरतों को मुतलक़न (पूरी तरह) बाहर निकलने से मना किया। जहाँ तक वृद्ध महिलाओं की बात है, तो इमाम अबू हनीफ़ा (रज़ियल्लाहु अन्हु) ने उन्हें ज़ुहर और अस्र के लिए निकलने से मना किया, जबकि फ़ज्र, मग्रिब और इशा के लिए इजाज़त दी। आज फ़तवा फ़साद (बुराई) के प्रकट होने के कारण सभी नमाज़ों में उनकी उपस्थिति की मनाही पर है। (उर्दू): इसी से हमारे उलेमा ने दलील ली और जवान औरतों को जाने से मुतलक़न मना फ़रमाया। रही बूढ़ी औरतें, उनके लिए इमाम अबू हनीफ़ा (रज़ियल्लाहु अन्हु) ने ज़ुहर और अस्र में जाने से ममानत और फ़ज्र, मग्रिब और इशा में इजाज़त रखी, और आज फ़तवा इसी पर है कि तमाम नमाज़ों में उनकी भी हाज़िरी मना है क्योंकि ख़राबियाँ पैदा हो चुकी हैं। (त)

[नीचे का अनुभाग] इसी 'ऐनी' जिल्द तीन में आपकी मन्कूला इबारत से एक सफ़हा पहले है: (अरबी): इब्न मसऊद (रज़ियल्लाहु अन्हु) ने कहा: "स्त्री 'औरत' (छिपाये जाने वाली चीज़) है। वह अपने घर के सबसे अंदरूनी हिस्से में अल्लाह के सबसे करीब होती है। जब वह बाहर निकलती है, तो शैतान उसे घूरता है।" इब्न उमर (रज़ियल्लाहु अन्हुमा) जुमा के दिन खड़े होते और औरतों को मस्जिद से निकालने के लिए उन पर कंकड़ फेंकते थे। इब्राहीम (नख़ई) अपनी औरतों को जुमा और जमाअत की नमाज़ में जाने से रोकते थे। (उर्दू): यानी हज़रत अब्दुल्लाह इब्न मसऊद (रज़ियल्लाहु अन्हु) फ़रमाते हैं औरत सरापा शर्म की चीज़ है। सब से ज़्यादा अल्लाह अज़्ज़वजल के सबसे करीब अपने घर की तह में होती है और जब बाहर निकले शैतान उस पर निगाह डालता है। और हज़रत अब्दुल्लाह बिन उमर (रज़ियल्लाहु अन्हुमा) जुमा के दिन खड़े हो कर कंकड़ियाँ मार कर औरतों को मस्जिद से निकालते। और इमाम इब्राहीम नख़ई ताबई उस्ताद-उल-उस्ताद इमाम-ए-आज़म अबू हनीफ़ा (रज़ियल्लाहु अन्हु) अपनी मस्तूरात को जुमा व जमाअत में न जाने देते।

[पाद-टिप्पणियाँ] 1. अल-इनाया, फ़तह अल-क़दीर के हाशिए पर, बाबू-ल-इमामत, नूरिया रज़विया सुक्कुर 1 / 317 2. अल-इनाया, फ़तह अल-क़दीर के हाशिए पर, बाबू-ल-इमामत, नूरिया रज़विया सुक्कुर 1 / 317 3. उम्दतुल क़ारी शरह अल-बुख़ारी, औरतों का मस्जिदों में निकलना अध्याय, इदारतुल तिबाअतुल मुनीरिया बेरूत 6 / 157

فتاوٰی رضویہ، جلد نہم

عنه النساء عن الخروج الی المساجد فشکون الی عائشة رضی اللہ تعالی عنها فقالت لو علم البنی صلی اللہ تعالی علیه وسلم ماعلم عمر ما اذن لکن فی الخروج ^{1}۔ مسجد جانے سے روک دیا، وہ حضرت عائشہ صدیقہ رضی اللہ تعالٰی عنہا کے پاس شکایت لے کر گئیں، انہوں نے فرمایا : اگر نبی صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم یہ دیکھتے جو حضرت عمر نے دیکھا تو وہ بھی مسجد جانے کی اجازت نہ دیتے۔ (ت)

پھر فرمایا: فاجتمع به علماؤنا و منعوا الشواب عن الخروج مطلقاً امام العجائز فمنهن ابو حنیفة رضی اللہ تعالی عنه عن الخروج في الظهر والعصر دون الفجر والمغرب والعشاء والفتوی الیوم علی کراهة حضورهن في الصلوات کلها لظهور الفساد ^{2}۔ اسی سے ہمارے علماء نے استدلال کیا، اور جوان عورتوں کو جانے سے مطلقاً منع فرمایا۔ رہ گئیں بوڑھی عورتیں، ان کے لیے امام ابوحنیفہ رضی اللہ تعالٰی عنہ نے ظہر و عصر میں جانے سے ممانعت اور فجر، مغرب اور عشاء میں اجازت رکھی، اور آج فتوٰی اس پر ہے کہ تمام نمازوں میں ان کی بھی حاضری منع ہے اس لیے کہ خرابیاں پیدا ہو چکی ہیں۔ (ت)

اسی عینی جلد سوم میں آپ کی عبارت منقولہ سے ایک صفحہ پہلے ہے : وقال ابن مسعود رضی اللہ تعالی عنه المراة عورة واقرب ماتکون الی اللہ فی قعر بیتها فاذا خرجت استشرفها الشیطان وکان ابن عمر رضی اللہ تعالی عنهما یقوم یحصب النساء یوم المجمعة یخرجهن من المسجد وکان ابراهیم یمنع نساءه الجمعة والجماعة ^{3}۔ یعنی حضرت عبداللہ ابن مسعود رضی اللہ تعالٰی عنہ فرماتے ہیں عورت سراپا شرم کی چیز ہے۔ سب سے زیادہ اللہ عزوجل سے قریب اپنے گھر کی تہہ میں ہوتی ہے اور جب باہر نکلے شیطان اس پر نگاہ ڈالتا ہے۔ اور حضرت عبداللہ بن عمر رضی اللہ

تعالیٰ عنہما جمعہ کے دن کھڑے ہو کر کنکریاں مار کر عورتوں کو مسجد سے نکالتے۔ اور امام ابراہیم نخعی تابعی استاذ الاستاذ امام اعظم ابوحنیفہ رضی اللہ تعالیٰ عنہ اپنی مستورات کو جمعہ و جماعات میں نہ جانے دیتے۔

1 العنایہ علی ھامش فتح القدیر باب الامامۃ نوریہ رضویہ سکھر ۱ / ۳۱۷ 2 العنایہ علی ھامش فتح القدیر باب الامامۃ نوریہ رضویہ سکھر ۱ / ۳۱۷ 3 عمدۃ القاری شرح البخاری باب خروج النساء الی المساجد ادارۃ الطباعۃ المنیر یہ بیروت ۶ / ۱۵۷

Fatawa Rizvia, Volume 9

When women were prohibited from these great times of blessings and grace, and from what, the presence in mosques and participation in congregations, although both are strongly emphasized in the firm religion. So, will women be permitted in these times of evils on the pretext of these few or imaginary blessings, and that too for what, visiting graves, which is not emphasized by Shari'ah, and especially in those fairs and festivals which the God-fearing people have started at the noble shrines? To what extent is this hypocrisy with the pure Shari'ah. The rule of the pure Shari'ah is that when it prioritizes the removal of corruption over the attainment of benefit: 'Dara' al-Mafasid ahamm min jalb al-Masalih' (Removing the causes of corruption is more important than attaining the causes of goodness. T). While the corruption was much less than this, for this great benefit, the leaders of the religion, Imam-e-Azam, his companions, and those after them stopped it, and they did not create categories of women that the pious should go and the sinful should not come, but rather gave a general order which you are calling hanging in a noose. Had they not heard these verses:

Is he who is a believer like him who is disobedient? Or shall we	**Is he who is a believer like him who is disobedient? (Al-Quran 18/32)**
treat the righteous like the wicked? (T)	Or shall We treat the righteous like the wicked? (Al-Quran 28/38)

So now that the corruption is much more severe than before, why will it not be mandatory to prevent it for the sake of this minor benefit, and how will categories of women be sifted out?

(3) The goodness and corruption of the heart is a hidden matter, and for the sake of claim, everyone's tongue is open, and the researcher and the falsifier are unknown. Furthermore, the transition from goodness to corruption is not difficult, especially for the hearts of women which are very prone to change. Therefore: 'Ruwaydaka Anjashah rifqan bil-qawarir' (O Anjashah! Drive the mounts slowly for the sake of the glassware. T). It was said that a man who trusts himself is a fool, let alone a woman; the self is the biggest liar in the whole world. When it swears an oath, it takes a vow, let alone when it gives hope on empty promises: 'Wa ma ya'iduhum ash-shaytanu illa ghurura' (And Satan promises them nothing but delusion. T). Especially now that corruption is definitely dominant and goodness is rare. In this situation, how is detail

permissible for a Mufti? This will not be a detail but rather giving loose rein to Satan and lengthening his rope. Imam al-Muhaqqiq 'ala al-Itlaq says in Fath al-Qadir:

Those who reside in the Holy Sanctuary and remain safe from sin	**Those who achieve this with safety are very few.**

---

[1] Al-Quran 18/32 [2] Al-Quran 28/38 [3] Al-Quran 4/120

फतावा रिज़विया, खंड 9

जब उन भलाई के समयों में, उन महान कृपाओं और बरकतों के वक्तों में औरतों को रोक दिया गया, और किससे? मस्जिदों में हाज़िरी और जमात में शिरकत से, हालांकि दीन-ए-मतीन में इन दोनों की सख्त ताकीद है। तो क्या बुराइयों के इन ज़मानों में उन कम या काल्पनिक कृपाओं के बहाने से औरतों को इजाज़त दी जाएगी, और वह भी किसकी? मजारों की ज़ियारत के लिए जाने की, जो शरीयत में ताकीदी नहीं है, और विशेष रूप से उन मेलों-ठेलों में जो खुदा से न डरने वालों ने मजारों पर शुरू कर रखे हैं? यह पाक शरीयत के साथ कितनी बड़ी मुनाफ़िक़त (ढोंग) है। पाक शरीयत का नियम है कि जब वह मसलेहत (भलाई) पर बुराई को दूर करने को प्राथमिकता देती है: 'दरुल मफासिद अहम मिन जल्बिल मसालिह' (बुराइयों के कारणों को दूर करना, खूबियों के कारणों को प्राप्त करने से अधिक महत्वपूर्ण है। - त)। जबकि उस समय बुराई इससे बहुत कम थी, इस बड़ी मसलेहत के कारण दीन के इमामों - इमाम-ए-आज़म, उनके साथियों और उनके बाद वालों ने रोक दिया, और औरतों के वर्ग नहीं बनाए कि नेक औरतें जाएं और गुनहगार न आएं, बल्कि एक सामान्य आदेश दिया जिसे आप फांसी पर लटकाना कह रहे हैं। क्या उन्होंने ये आयतें नहीं सुनी थीं:

क्या वह जो ईमान वाला है, उसकी तरह होगा जो नाफरमान है? या हम	**क्या वह जो ईमान वाला है, उस जैसा है जो नाफरमान है? (अल-कुरान 18/32)**
परहेज़गारों को बदकारों की तरह कर दें? (त)	क्या हम परहेज़गारों को बदकारों जैसा कर दें? (अल-कुरान 28/38)

तो अब जबकि बुराई पहले से बहुत अधिक तीव्र है, इस मामूली मसलेहत के कारण रोकना क्यों आवश्यक नहीं होगा, और औरतों की किस्में कैसे छाँटी जाएँगी?

(3) दिल की भलाई और बुराई एक छिपा हुआ मामला है और दावे के लिए सबकी ज़बान खुली है और सच्चा और झूठा अज्ञात है। इसके साथ ही, भलाई से बुराई की ओर बदलाव मुश्किल नहीं है, खासकर औरतों के दिल कि दिल के लिए बहुत तैयार (परिवर्तनशील) हैं। इसीलिए: 'रुवैदका अंजशाह रिफ्कन बिल-क़वारीर' (अंजशाह! शीशों की खातिर सवारियों को धीरे चलाओ। - त)। कहा गया कि वह आदमी जो अपने नफ़्स (स्वयं) पर भरोसा करे मूर्ख है, औरत की तो बात ही क्या; नफ़्स पूरी दुनिया में सबसे बड़ा झूठा है। जब वह कसम खाए, हलफ़ उठाए, तो क्या कहना जब वह खाली वादों पर उम्मीद दिलाए: 'व मा यइदहुमुश शैतानु इल्ला ग़ुरूरन' (और शैतान उन्हें धोखे के सिवा

कोई वादा नहीं देता। - त)। विशेष रूप से अब जबकि निश्चित रूप से बुराई हावी है और भलाई दुर्लभ है। इस स्थिति में मुफ्ती के लिए विस्तार (इजाज़त) देना कैसे जायज़ है? यह विस्तार नहीं होगा बल्कि शैतान को ढील देना और उसकी रस्सी को लंबा करना होगा। इमाम मुहक्किक अलल इतलाक 'फतह अल-कादिर' में फरमाते हैं:

हरम पाक में रहकर गुनाह से सलामत रहने वाले	**इसे सलामती के साथ पाने वाले बहुत ही कम हैं।**

---

[1] अल-कुरान 18/32 [2] अल-कुरान 28/38 [3] अल-कुरान 4/120

पृष्ठ 552/948

فتاوٰی رضویہ، جلد نہم

جب ان خیر کے زمانوں میں ان عظیم فیوض وبرکات کے وقتوں میں عورتیں منع کر دیں گئیں، اور کاہے سے، حضور مساجد و شرکت جماعات سے، حالانکہ دین متین میں ان دونوں کی شدید تاکید ہے۔ تو کیا ان ازمنہ شرور میں ان قلیل یا موہوم فیوض کے حیلے سے عورتوں کو اجازت دی جائے گی، وہ بھی کاہے کی، زیارت قبور کو جانے کی، جو شرعاً موکد نہیں، اور خصوصاً ان میلوں کھیلوں میں جو خدانا ترسوں نے مزارات کرام پر نکال رکھے ہیں، یہ کس قدر شریعت مطہرہ سے منافقت ہے۔ شرع مطہرہ کا قاعدہ ہے کہ جب مصلحت پر سلب مفسدہ کو مقدم رکھتی ہے درء المفاسد اھم جلب المصالح (خرابیوں کے اسباب دور کرنا خوبیوں کے اسباب حاصل کرنے سے زیادہ اہم ہے۔ ت) جبکہ مفسدہ اس سے بہت کم تھا، اس مصلحت عظیمہ سے ائمہ دین امام اعظم و صاحبین و من بعد ہم نے روک دیا، اور عورتوں کی مسلیں نہ بنائیں کہ صالحات جائیں، فاسقات نہ آئیں، بلکہ ایک حکم عام دیا جسے آپ ایک پھانسی میں لٹکانا فرما رہے ہیں، کیا انھوں نے یہ آیتیں نہ سنی تھیں

کیا جو ایمان والا ہے وہ اس کی طرح ہوگا جو نافرمان اَفَمَنْ كَانَ مُؤْمِنًا كَمَنْ كَانَ فَاسِقًا ؕ۱ (القرآن ہے؟ یا ہم ۱۸/۳۲)

پرہیزگاروں کو بدکاروں کی طرح کردیں؟ (ت) اَمْ نَجْعَلُ الْمُتَّقِيْنَ كَالْفُجَّارِ ؕ۲ (القرآن ۲۸/۳۸)

تو اب کہ مفسدہ جب سے بہت اشد ہے۔ اس مصلحت قلیل سے روکنا کیوں لازم ہوگا، اور عورتوں کی قسمیں کیونکر چھانٹی جائیں گی۔

(۳) صلاح وفساد قلب امر مضمر ہے اور دعوے کے لیے سب کی زباں کشادہ اور محقق ومبطل نامعلوم معہذا، اصلاح سے فساد کی طرف انقلاب کچھ دشوار نہیں، خصوصاً ہو الگ کر خصوصاً عورتوں کے دل کہ قلب کیلئے بہت آمادہ۔ ولھذا رویدك انجشة رفقا بالقوارير (انجبشہ! آبگینوں کے ساتھ نرمی کی خاطر سواریاں آہستہ چلاؤ۔ ت) ارشاد ہوا مرد کہ اپنے نفس پر اعتماد کرے احمق ہے نہ کہ عورت، نفس تمام جہاں سے بڑھ کر جھوٹا۔ جب قسم کھائے، حلف اٹھائے، نہ کہ جب خالی وعدوں پر امید دلائے وما یعدھم الشیطن الا غرورا ۳ (اور شیطان انھیں فریب ہی کے وعدے دیتا ہے۔ ت) بالخصوص اب کہ قطعاً فساد غالب اور صلاح نادر ہے۔ اس صورت میں مفتی کو تفصیل کیونکر جائز۔ یہ تفصیل نہ ہوگی بلکہ شیطان کو ڈھیل اور اس کی رسی کو تطویل۔ امام محقق علی الاطلاق فتح القدیر میں فرماتے ہیں:

حرم پاک میں سکونت کرکے گناہ سے سلامت رہ جانیوالے الفائز بھذا مع السلامة اقل قلیل

---

[1] القرآن ۱۸/۳۲ [2] القرآن ۲۸/۳۸ [3] القرآن ۱۲۰/۴

Fatawa Razawiya Volume 9

Arabic Text	Urdu Translation
Fiqh is not built based on them (the few), nor is their state mentioned as a condition for permissibility. This is because the nature of human souls is to make false claims, and they are most deceitful when they swear an oath; so how would it be when they merely claim! (Summary)	The presence of a very few individuals will not be the basis for jurisprudence (Fiqh), nor will their condition be mentioned as a condition for the ruling of permissibility. (Rather, considering the majority, a ruling of absolute impermissibility will be given). For the state of the self is that it makes false claims, and even when it takes an oath, it is most lying at that time; then how would it be when it only makes a claim!

Three masters, Allama Halabi, Allama Tahtawi, and Allama Shami state: | Arabic Text | Urdu Translation | | :--- | :--- | | This is an excellent point; thus, the dislike (karahah) should be explicitly stated, and the qualification of having confidence [in one's self] should be omitted. | This discourse is excellent. Therefore, residing in the Haram will be explicitly stated as disliked (Makruh), and it will not be said that if one trusts their soul to remain safe from sin, then it is not disliked. (T) |

In Muntaqa Sharh al-Multaqa, it is stated: | Arabic Text | Urdu Translation | | :--- | :--- | | As for those who are contrary to them, they are rare in this era. Thus, they are not singled out with a separate ruling, to avoid the difficulty of distinguishing between the reformer and the corrupt. | In this era, the existence of such a student of knowledge who is contrary to those corrupted students is rare. Thus, there will be no separate ruling for them because it is difficult to distinguish who is a reformer and who is corrupt! (T) |

In Sharh al-Lubab, it is stated: | Arabic Text | Urdu Translation | | :--- | :--- | | If the Imams were in our time and our situation was made clear to them, they would have explicitly declared it prohibited (Haram). | If the Imams were in our time and the reality of our condition was before them, they too would have clearly declared residing in the Haram as prohibited (Haram). (T) |

(The inference from these passages is that jurisprudential (Fiqhi) rulings are based on the majority. — Translator) (4) Visiting graves was initially prohibited absolutely, then permission was granted. Scholars differed on whether women are also included in this permission or not. Setting aside the specific prohibition for women in the Hadith

"May Allah curse the women who visit graves," even if it is accepted that yes, for women too...

---

1. Fath al-Qadir, Kitab al-Hajj, Masa'il Manthura, Maktaba Nooriya Razawiya, Sukkur, 3/94
2. Radd al-Muhtar, Kitab al-Hajj, Matlab fi al-Mujawarah bil-Madinah etc., Idarah al-Tiba'ah al-Misriyah, Egypt, 2/258
3. Muntaqa Sharh al-Multaqa on the margins of Majma' al-Anhur, Kitab al-Nikah, Fasl Nafaqat al-Tifl al-Faqir, Dar Ihya al-Turath al-Arabi, Beirut, 1/500
4. Sharh al-Lubab with Irshad al-Sari, Fasl Ajma'u A'la etc., Dar al-Kitab al-Arabi, Beirut, p. 352
5. Umdat al-Qari Sharh al-Bukhari, Bab Ziyarat al-Qubur, Idarah al-Tiba'ah al-Muniriyah, Beirut, 8/69

फ़तावा रज़विया जिल्द 9

अरबी इबारत	उर्दू अनुवाद
फिक़्ह (न्यायशास्त्र) की बुनियाद मुट्ठी भर लोगों के आधार पर नहीं रखी जाएगी, और न ही उनके हाल को जवाज़ (अनुमति) की शर्त के रूप में उल्लेख किया जाएगा। क्योंकि मानव प्रवृत्तियों का स्वभाव झूठे दावे करना है। यदि वे शपथ लेते समय भी सबसे अधिक झूठ बोलते हैं, तो फिर केवल दावा करते समय वे कैसे होंगे! (सारांश)	हज़रात कम से कम तर हैं, फिक़्ही बुनियाद उनके एतबार से न होगी, न ही उनका हाल हुक्म-ए-जवाज़ की क़ैद बना कर मज़कूर होगा, (बल्कि अक्सर का एतबार कर के मुतलक़न अदम-ए-जवाज़ का हुक्म दिया जाएगा) इसलिए नफ्स का हाल ये है कि वो झूठे दावे करता है और वो जब क़सम खाए उस वक़्त भी सब से ज़्यादा झूठा होता है फिर जब सिर्फ दावा करे उस वक़्त कैसा होगा!

सदात-ए-सलासा अल्लामा हलबी, अल्लामा तहतावी और अल्लामा शामी फरमाते हैं: | अरबी इबारत | उर्दू अनुवाद | | :--- | :--- | | यह बात उम्दा है; इसलिए कराहत (नापसंदगी) को स्पष्ट रूप से बताया जाना चाहिए और भरोसे की शर्त को छोड़ देना चाहिए। | ये कलाम उम्दा है तो सुकूत-ए-हरम को सराहतन मकरूह बताया जाएगा और ये न कहा जाएगा कि अगर अपने नफ्स पर गुनाह से सलामती का भरोसा रखता हो तो मकरूह नहीं। (त) |

मुंतक़ा शरह अल-मुल्तक़ा में है: | अरबी इबारत | उर्दू अनुवाद | | :--- | :--- | | जहाँ तक उनके विपरीत लोगों की बात है, वे इस युग में दुर्लभ हैं। अतः उनके लिए कोई अलग आदेश नहीं दिया जाएगा, ताकि सुधारक और भ्रष्ट के बीच अंतर करने की कठिनाई से बचा जा सके। | इस ज़माने में ऐसे तालिब-ए-इल्म का वजूद नादिर है जो इन बिगड़े हुए तलबा के बरखिलाफ़ हो तो उसके लिए कोई अलग हुक्म न होगा क्योंकि ये इम्तियाज़ करना दुश्वार है कि मुसलेह (सुधारक) कौन है और मुफ्सिद (बिगाड़ने वाला) कौन है! (त) |

शरह अल-लुबाब में है: | अरबी इबारत | उर्दू अनुवाद | | :--- | :--- | | यदि इमाम हमारे समय में होते और हमारी वास्तविक स्थिति उन पर प्रकट होती, तो वे निश्चित रूप से हराम (निषिद्ध) होने का स्पष्ट उल्लेख कर देते। | अगर आइम्मा हमारे ज़माने में होते और हमारी हक़ीक़त-ए-हाल उनके सामने आती तो वो भी सुकूत-ए-हरम को साफ़-साफ़ नाजायज़ ही बताते (त)। |

(इन इबारतों से इस्तिनाद ये है कि फिक़्ही अहकाम अक्सर के लिहाज़ से होते हैं - मुतरज्जिम) (4) ज़ियारत-ए-क़ुबूर (कब्रों का दर्शन) पहले मुतलक़न ममनू (वर्जित) थी फिर इजाज़त फरमाई, उलमा को इख़्तिलाफ़ हुआ कि औरतें भी इस रुख़सत में दाख़िल हुईं या नहीं। औरतों को ख़ास मुमानत में हदीस 'ल'अनल्लाह ज़ुवारतुल क़ुबूर' (खुदा की लानत है उन औरतों पर जो कब्रों की ज़ियारत को जाएं त) से क़त-ए-नज़र कर के तस्लीम कीजिये कि हाँ औरतों को भी...

---

1. फतह अल-क़दीर, किताब अल-हज, मसाइल-ए-मन्शूरा, मकतबा नूरिया रज़विया, सख्खर, 3/94
2. रद अल-मुहतार, किताब अल-हज, मतलत फी अल-मुजावरह बिल-मदीना वगैरा, इदारा अल-तिबा'ह अल-मिसरिया, मिस्र, 2/258
3. मुंतक़ा शरह अल-मुल्तक़ा, मजमा अल-अन्हुर के हाशिये पर, किताब अल-निकाह, फ़स्ल नफ़क़त अल-तिफ़्ल अल-फ़क़ीर, दार इहया अल-तुरास अल-अरबी, बेरूत, 1/500
4. शरह अल-लुबाब मअ इरशाद अल-सारी, फ़स्ल अजमऊ आ'ला वगैरा, दार अल-किताब अल-अरबी, बेरूत, पृ. 352
5. उम्दत अल-क़ारी शरह अल-बुखारी, बाब ज़ियारत अल-क़ुबूर, इदारा अल-तिबा'ह अल-मुनीरिया, बेरूत, 8/69

فتاوٰی رضویہ جلد نہم

عربی عبارت **اردو ترجمہ**

فلا یبنی الفقہ باعتبار ہم ولا یذکر حالہم قیدا فی الجواز ، لان شان النفوس الدعوی الکاذبۃ وانہا لاکذب مایکون اذا حلفت فکیف اذا ادعت (ملخصاً)

حضرات کم سے کم تر ہیں فقہی کی بنیاد ان کے اعتبار سے نہ ہوگی ، نہ ہی ان کا حال حکم جواز کی قید بنا کر مذکور ہوگا، (بلکہ اس لیے نفس کا حال یہ ہے کہ وہ جھوٹے دعوے کرتا ہے اور وہ جب قسم کھائے اس وقت بھی سب سے زیادہ جھوٹا ہوتا ہے پھر جب صرف دعوٰی کرے اس وقت کیسا ہوگا!

سادات ثلاثہ علامہ حلبی و علامہ طحطاوی و علامہ شامی فرماتے ہیں : | عربی عبارت | اردو ترجمہ | | :--- | :--- | | وھو وجیہ فینص علی الکراھۃ ویترک التقیید بالوثوق 2 ۔ | یہ کلام عمدہ ہے تو سکونت حرم کو صراحتہ مکروہ بتایا جائے گا اور یہ نہ کہا جائے گا کہ اگر اپنے نفس پر گناہ سے سلامتی کا بھروسہ رکھتا ہو تو مکروہ نہیں ۔ (ت) |

منتقی شرح ملتقی میں ہے : | عربی عبارت | اردو ترجمہ | | :--- | :--- | | اما من کان بخلافھم فنادر فی ھذا الزمان فلا یفرد بحکم دفعا لحرج التمییز بین المصلح والمفسد 3 ۔ | اس زمانے میں ایسے طالب علم کا وجود نادر ہے جو ان بگڑے ہوئے طلبہ کے برخلاف ہو تو اس کے لیے کوئی الگ حکم نہ ہوگا کیونکہ یہ امتیاز کرنا دشوار ہے کہ مصلح کون ہے اور مفسد کون ہے ! (ت) |

شرح لباب میں ہے : | عربی عبارت | اردو ترجمہ | | :--- | :--- | | لو کانت الائمۃ فی زماننا و تحقق لھم شأننا لصرحوا بالحرمۃ 4 ۔ | اگر ائمہ ہمارے زمانے میں ہوتے اور ہماری حقیقت حال ان کے سامنے آتی تو وہ بھی سکونت حرم کو صاف صاف ناجائز ہی بتاتے (ت) ۔ |

(ان عبارتوں سے استناد یہ ہے کہ فقہی احکام اکثر کے لحاظ سے ہوتے ہیں مترجم) (۴) زیارت قبور پہلے مطلقاً ممنوع تھی پھر اجازت فرمائی ، علماء کو اختلاف ہوا کہ عورتیں بھی اس رخصت میں داخل ہوئیں یا نہیں۔ عورتوں کو خاص ممانعت میں حدیث 'لعن اللہ زوارات القبور' 5 (خدا کی لعنت ہے ان عورتوں پر جو قبروں کی زیارت کو جائیں، ت) سے قطع نظر کرکے تسلیم کیجئے کہ ہاں عورتوں کو بھی

---

1 فتح القدیر کتاب الحج مسائل منشورہ مکتبہ نوریہ رضویہ سکھر ۹۴/۳ 2 ردالمحتار کتاب الحج مطلب فی المجاورۃ بالمدینہ الخ ادارۃ الطباعۃ المصریہ مصر ۲۵۸/۲ 3 منتقی شرح الملتقی علی ھامش مجمع الانہر کتاب النکاح فصل نفقہ الطفل الفقیر دار احیاء التراث العربی بیروت ۵۰۰/۱ 4 شرح اللباب مع ارشاد الساری فصل اجمعہ اعلیٰ الخ دار الکتاب العربی بیروت ص ۳۵۲ 5 عمدۃ القاری شرح البخاری باب زیارۃ القبور ادارۃ الطباعۃ المنیریہ بیروت ۶۹/۸

...included, but as much as women of the first era were allowed, or rather commanded, specifically for mosques, Friday prayers, and Eid gatherings, when the era of corruption (fitna) arrived, these necessary and emphasized attendances were prohibited for women. So, certainly by higher priority, on page 595 of this same *Ghunyah*, before the cited passage and connected to it, it is stated:

Arabic	**Urdu**
It is appropriate that the 'tanzih' (disliked but not strictly forbidden) nature of prohibition be specific to the time of the Holy Prophet (peace and blessings be upon him) when their going out to mosques, Eids, and other places was permissible. In our time, it is more appropriate for it to be 'tahrimi' (strictly forbidden). etc.	The prohibition being 'tanzihi' should be specific to the sacred era of the Holy Presence (peace and blessings of Allah be upon him) since for them attendance at mosques, Eids etc. was permissible; in our time, it is only appropriate for it to be 'tahrimi'. etc. (T)

In the same *'Ayni*, volume four, a few lines before the cited passage, it is mentioned by Imam Abu Umar:

Arabic	**Urdu**
Most scholars have disliked their going out for prayers, so what about going to cemeteries? I do not think the waiving of the obligation of Friday prayer for them is anything but a proof for preventing them from going out for anything else.	Most scholars have considered the going of women for prayers to be disliked (makruh), so what would be the ruling for going to graveyards? I believe that the fact that Friday prayer is waived for them is a proof that they should be prevented from other things as well. (T)

(5) The ruling in books is very clear. The permissibility of the issue itself is a sufficient ruling in essence, but prohibition due to a prevailing cause would mean the fatwa is for absolute prohibition. There are many precedents in jurisprudence (Fiqh) where, regarding constraints, the ruling of permissibility and its correction are explicit in books, but looking at the current state of the era, the ruling of scholars is absolute prohibition. Examples include living in the vicinity of the Haram, women entering public baths, alimony for students, playing chess, etc. The passages for the first and third have passed. Regarding the second, it is mentioned in *Durr-ul-Mukhtar*: In our time, there is no doubt about its dislike (going to public baths for women in our time

is undoubtedly forbidden - T). In *Kafi*, *Jami-ur-Rumuz*, and *Durr-ul-Mukhtar*, regarding the last one:

Arabic	Urdu
It is haram and a major sin according to us, and in declaring it permissible is the helping of Satan against Islam.	According to us, playing chess is haram and a major sin, and in considering it permissible [lies the aiding of Satan] against Islam and Muslims.

---

1. *Ghunyatul Mustamli Sharh Munyatul Musalli*, Chapter on Funerals, Suhail Academy Lahore, p. 595
2. *Umdatul Qari Sharh al-Bukhari*, Chapter on Visiting Graves, Idaratul Taba'at-ul-Muniriyah Beirut, 29/8
3. *Durr-e-Mukhtar*, Chapter on Invalid Hiring, Matba' Mujtabai Delhi, 8/2 17

फतावा रज़विया - भाग 9

...शामिल हुई, लेकिन जिस कदर पहले दौर की औरतों को जिनमें विशेषतः मस्जिदों, जुमा और ईदैन की इजाज़त बल्कि हुक्म था, जब ज़माना-ए-फ़साद आया तो इन ज़रूरी ताकीदी हाज़िरियों से औरतों को ममानअत हो गई, तो इससे यकीनन बदरजा औला इसी 'ग़ुनिया' के इसी सफ़ा 595 में इसी आपकी इबारत मनकूला से पहले इसके मुत्तसिल (जुड़ा हुआ) है:

अरबी	उर्दू
उचित है कि ममानअत का तन्ज़ीही (नापसंद) होना हुज़ूर अकदस सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम के अहद-ए-पाक से ख़ास होना चाहिये जबकि उनके लिए मस्जिदों और ईदैन वग़ैरा की हाज़िरी जायज़ थी; हमारे ज़माने में तो तहरीमी (सख्त मना) होना ही मुनासिब है। वग़ैरा।	ममानअत का तन्ज़ीही होना हुज़ूर अकदस सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम के अहद-ए-पाक से ख़ास होना चाहिये जबकि उनके लिए मस्जिदों और ईदैन वग़ैरा की हाज़िरी जायज़ थी; हमारे ज़माने में तो तहरीमी होना ही मुनासिब है। वग़ैरा (त)

इसी 'ऐनी' जिल्द चहारुम में आपकी इबारत मनकूला से चंद सतरें पहले इमाम अबू उमर से है:

अरबी	उर्दू
अक्सर उलमा ने नमाज़ों के लिए उनके बाहर निकलने को नापसंद किया है, तो कब्रिस्तानों की तरफ़ कैसा होगा? मैं नहीं समझता कि उनसे फ़र्ज़ जुमा साकित होना सिवाय इसके कि यह दलील है कि उन्हें इसके अलावा निकलने से भी रोका जाए।	अक्सर उलमा ने नमाज़ों के लिए औरतों का जाना मकरूह रखा है तो कब्रिस्तानों में जाने का हुक्म क्या होगा? मैं तो यही समझता हूँ कि उनसे फ़र्ज़ जुमा साकित हो जाना इस बात की दलील है कि उन्हें इसके मासिवा (अलावा) से भी रोका जाएगा। (त)

(5) हुक्म कुतुब में बहुत वाज़ेह है, जवाज़-ए-नफ़्स-ए-मसअला काफ़ी ज़ातहू हुक्म है और ममानअत बवजह आरिज़-ए-ग़ालिब तो फ़तवा न होगा मगर मन्अ-ए-मुतलक पर। फिक़्ह में इसके नज़ायर बकसरत हैं कि बर रियायत कुयूद हुक्म जवाज़ और उसकी तसहीह तक कुतुब में मुसर्रह और नज़र बहाल-ए-ज़माना हुक्म उलमा मन्अ मुतलकन जैसे जवार-ए-हरम व दुखूल-ए-ज़नाँ बह हम्माम व नफ़्का-ए-तालिब इल्म व लअब-ए-शतरंज वग़ैराह। अव्वल व सुवम की इबारतें गुज़रीं, 'दुर्रे मुख्तार' में

दरबारा दोयम है। 'फ़ी ज़मानाना ला शक फ़िल कराहया' (शहर के आम हम्माम में औरतों का जाना हमारे ज़माने में बिलाशुबा मना है - त) 'काफ़ी' व 'जामेउर रुमूज़' व 'दुर्रे मुख्तार' में दरबारा अख़ीर है:

अरबी	उर्दू
वह हमारे नज़दीक हराम और गुनाह-ए-कबीरा है और इसे जायज़ ठहराने में इस्लाम के खिलाफ शैतान की मदद है।	हमारे नज़दीक शतरंज खेलना हराम और गुनाह-ए-कबीरा है और इसे जायज़ ठहराने में इस्लाम और मुसलमानों के..

---

1. ग़ुनियातुल मुस्तमली शरह मुनयातुल मुसल्ली, फ़सल फ़िल जनाइज़, सुहैल एकेडमी लाहौर, पृ. 595
2. उम्दतुल कारी शरह अल-बुख़ारी, बाब ज़ियारतुल कुबूर, इदारतुल तबातुल मुनीरिया बेरूत, 29/8
3. दुर्रे मुख्तार, बाब अल-इजारातुल फ़ासिदा, मतबअ मुजतबाई दिल्ली, 8/2 17

पृष्ठ 554/948

شامل ہوئی، مگر جس قدر اول کی عورتوں کو جن میں خصوصاً مساجد وجمعہ وعیدین کی اجازت بلکہ حکم تھا، جب زمانہ فساد آیا ان ضروری تاکیدی حاضریوں سے عورتوں کو ممانعت ہوگئی، تو اس سے یقینا بدرجہ اولٰی اسی غنیہ کے اسی صفحہ ۵۹۵ میں اسی آپ کی عبارت منقولہ سے پہلے اس کے متصل ہے:

عربی

ینبغی ان یکون التنزیه مختصاً بز منه صلی الله تعالی علیه وسلم حیث کان یباح لهن الخروج للمساجد والاعیاد وغیره ذلك وان یکون في زماننا للتحریم الخ

اردو

ممانعت کا تنزیہی ہونا حضور اقدس صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم کے عہد پاک سے خاص ہونا چاہئے جبکہ ان کے لیے مسجدوں اور عیدین وغیرہ کی حاضری جائز تھی ہمارے زمانے میں تو تحریمی ہونا ہی مناسب ہے۔ الخ (ت)

اسی عینی جلد چہارم میں آپ کی عبارت منقولہ سے چند سطریں پہلے امام ابو عمر سے ہے:

عربی

ولقد کره اکثر العلماء خروجهن الی الصلوات فکیف الی المقابر ، وما اظن سقوط فرض الجمعة علیهن الا دلیلاً علی امساکهن عن خروج فیها عداها -

اردو

اکثر علماء نے نمازوں کے لیے عورتوں کا جانا مکروہ رکھا ہے تو قبرستانوں میں جانے کا حکم کیا ہوگا؟ میں تو یہی سمجھتا ہوں کہ ان سے فرض جمعہ ساقط ہو جانا اس بات کی دلیل ہے کہ انہیں اس کے ماسوا سے بھی روکا جائے گا۔ (ت)

(۵) حکم کتب میں بہت واضح ہے، جواز نفسِ مسئلہ کافی ذاتہ حکم ہے اور ممانعت بوجہ عارضِ غالب تو فتویٰ نہ ہوگا مگر منع مطلق پر۔ فقہ میں اس کے نظائر بکثرت ہیں کہ بر رعایت قیود حکم جواز اور اس کی تصحیح تک کتب میں مصرح اور نظر بحال زمانہ حکم علماء منع مطلقاً جیسے جوار حرم ودخول زناں بہ حمام ونفقہ طالب علم ولعب شطرنج وغیرہ ہا۔ اول وسوم کی عبارات گزریں، درمختار میں دربارہ دوم ہے۔ فی زماننا لا شك في الكراهبة (شہر کے عام حمام میں عورتوں کا جانا ہمارے زمانے میں بلاشبہ منع ہے ت) کافی وجامع الرموز ودرالمختار میں دربارہ اخیر ہے:

عربی	اردو
هو حرام وكبيرة عندنا وفی اباحته اعانة الشيطان على الاسلام	ہمارے نزدیک شطرنج کھیلنا حرام اور گناہِ کبیرہ ہے اور اسے جائز ٹھہرانے میں اسلام اور مسلمانوں کے

---

1 غنية المستملی شرح منية المصلی فصل فی الجنائز سہیل اکیڈمی لاہور ص ۵۹۵ 2 عمدة القاری شرح البخاری باب زيارة القبور ادارة الطباعة المنيريه بيروت ۲۹/۸ 3 در مختار باب الاجارة الفاسدة مطبع مجتبائی دہلی ۸/۲ ۱۷

Fatawa-e-Razvia Volume 9

...and Muslims 1 - is to help against the devil. (T)

(6) From this discourse, the answer became clear that even if such a woman is one in thousands, or a thousand in thousands, it is still not considered because the ruling of Fiqh (jurisprudence) is based on the majority, not on one in thousands. From here, the case of biryanis is revealed: if there are ten thousand biryanis made from carrion (unslaughtered) rams, sheep, or goats, and ten thousand slaughtered animals are mixed with them, then all twenty thousand are forbidden (haram). Even after deliberation (tahri), eating from them is forbidden, let alone when it's one in ten thousand. It is stated in Durr-e-Mukhtar:

“Prevalence (majority) is considered in pure and impure vessels, and in slaughtered and carrion animals. If the majority are pure, then one should deliberate, and use the one whose purity the heart is satisfied with. Conversely, if the impure are more or equal, then one should not deliberate, as use of any is no longer permissible.” (T)

Yes, if one halal item is separate and distinct, then what effect would the abundance of haram have on it? But here we have heard that corruption and righteousness are hidden in the heart, and distinguishing them is difficult and unavailable. And the passage from Muntaqa has just passed; then when the prevalence of corruption is certain, the ruling of absolute prohibition is fixed. Just as those tens of thousands of biryanis all became haram, even though ten thousand were definitely halal. This is the path taken by the noble scholars.

(7) You quoted a passage from Ayni Sharh Bukhari, Volume 3. In it, there is no specific ruling for the women of Egypt, nor a specialization for singers and procuresses. In it, sixteen categories of corruption among women were mentioned, of which these two are part. And it is stated that besides these, there are many other categories contrary to the principles of Sharia. It was mentioned that Umm al-Mu'minin (the Mother of Believers) said regarding the women of her own time that certain matters had emerged. If only she had seen these occurrences when they were not even a thousandth part of what they are now. Look just one page before your quoted passage, where they have quoted the school of their Hanafi Imams (may Allah be pleased with them) that the ruling is kept absolute, not specific to fitna-inducing (mischievous) women. And the reason for it is given as the fear of fitna, not its specific occurrence. This is exactly the text of Hidaya:

“It is disliked (makruh) for them to attend congregations, i.e., young women.”

1 Radd al-Muhtar, Kitab al-Karahiyah, Section on Sale, Idara al-Tiba'ah al-Misriyyah, Egypt, 5/253. 2 Durr-e-Mukhtar, Kitab al-Hazr wa al-Ibahah, Matba Mujtabai, Delhi, 4/337.

फ़तावा-ए-रज़विया जिल्द 9

...और मुसलमानों 1 - शैतान के खिलाफ मदद देना है। (त)

(6) इस तक़रीर से इसका जवाब साफ़ हो गया कि अगरचे ऐसी औरत हज़ारों में एक हो, जैसे हज़ारों में हज़ार हों, तब भी मोतबर (मान्य) नहीं कि फ़िक़्ह का हुक्म ग़ालिब (बहुमत) के एतबार से होता है न कि हज़ारों में एक पर। यहीं से बिरयानियों का हाल खुल गया, दस हज़ार बिरयानियां मुर्दार (बिना ज़बह किए) मेंढे, दुंबे, बकरे की हों और उनमें दस हज़ार ज़बह शुदा जानवरों की मिली हुई हों, तो बीस हज़ार हराम हैं यहाँ तक कि उनमें तह़री (सोच-विचार) करके जिस पर दिल जमे, उसे खाना भी हराम है, न कि दस हज़ार में एक। दुर्रे मुख्तार में है:

"पाक और नापाक बर्तनों और मुर्दार व ज़बह शुदा जानवरों में कसरत (बहुमत) का एतबार होगा। अगर अक्सर पाक हैं तो तह़री करे और जिसकी पाकी पर दिल जमे उसे इस्तेमाल करे, और अगर नापाक ज़्यादा हों या बराबर हों तो तह़री न करे कि अब किसी का इस्तेमाल जायज़ नहीं।" (त)

हाँ, अगर एक हलाल अलग और अलग मालूम हो तो हराम की अधिकता का उस पर क्या असर। मगर यहाँ सुन चुके कि दिल का फ़साद और सलाह (सुधार) छुपा हुआ है, और पहचानना मुश्किल और नामुमकिन है। मुंतक़ा की इबारत अभी गुज़री, फिर जब फ़साद का ग़ालिब होना यक़ीनी हो, तो क़तई तौर पर मुतलक़न (पूर्णत;) मनाही का हुक्म तय है, जैसे वे बीसियों हज़ार बिरयानियां सब हराम हो गईं हालांकि उनमें यक़ीनन दस हज़ार हलाल थीं। यही रास्ता उलेमा-ए-किराम का रहा है।

(7) ऐनी शरह बुख़ारी जिल्द तीन की इबारत आपने नक़ल की, उसमें न मिस्र की औरतों का कोई ख़ास हुक्म है और न ही मुग़न्निया (गाने वाली) और दलाला (दलाल औरत) की कोई विशेषता। उसमें औरतों के फ़साद की सोलह क़िस्में बयान की गईं जिनमें से दो ये हैं, और फ़रमाया कि इसके अलावा शरीयत के नियमों के ख़िलाफ़ और भी बहुत सी क़िस्में हैं। और बताया कि उम्मुल मोमिनीन अपने ही ज़माने की औरतों के बारे में फ़रमाती हैं कि उनमें कुछ नई बातें पैदा हो गई हैं। काश वे इन हादसों को देखतीं जब वे उनका हज़ारवां हिस्सा भी न थे। अपनी नक़ल की गई इबारत से एक ही पन्ना पहले देखें जहाँ उन्होंने अपने आइम्मा-ए-हनफ़िया (रज़ियल्लाहु अन्हुम) का मज़हब नक़ल किया है कि हुक्म मुतलक़ (निरपेक्ष) रखा गया है न कि सिर्फ फ़ितना फैलाने वाली औरतों के लिए ख़ास। और इसकी वजह फ़ितने का डर बताई गई है न कि उसका ख़ास तौर पर होना। यही हूबहू हिदाया का मूल पाठ है:

"उनके लिए जमातों में हाज़िरी मकरूह है, यानी जवान औरतों की।"

1 रद अल-मुह्तार, किताब अल-कराहिया, बिक्री पर अध्याय, इदारा अल-तिबा'ह अल-मिस्रिया, मिस्र, 5/253। 2 दुर्रे मुख्तार, किताब अल-हज़र वल इबाह़ा, मतबा मुजतबाई, दिल्ली, 4/337।

पृष्ठ 555 / 948

فتاوی رضویہ جلد نہم

والمسلمین 1 - خلاف شیطان کو مدد دینا ہے۔ (ت)

(۶) اس تقریر سے اس کا جواب واضح ہو گیا کہ اگرچہ ایسی عورت ہزاروں میں ایک ہو، جیسی ہزاروں میں ہزار ہوں، جب بھی معتبر نہیں کہ حکم فقہ باعتبار غالب کے ہوتا ہے نہ کہ ہزاروں میں ایک، یہیں سے بریانیوں کا حال کھل گیا، دس ہزار بریانیاں مردار مینڈھے دنبے بکرے کی ہوں اور ان میں دس ہزار مذبوح جانوروں کی مختلط ہوں، بیس ہزار حرام ہیں یہاں تک کہ ان میں تحری کر کے جس کی طرف علت کا خیال جمے، اسے کھانا بھی حرام نہ کہ دس ہزار میں ایک، درمختار میں ہے:

تعتبر الغلبة فی اوان طاهرة ونجسة وذكية ومیتة فان الاغلب طاهر تحری و بالعكس والسواء لا 2 - پاک و ناپاک برتنوں اور مردار و مذبوح جانوروں میں کثرت کا اعتبار ہوگا اگر اکثر پاک ہیں تو تحری کرے اور جس کی پاکی پر دل جمے اسے استعمال کرے اور اگر ناپاک زیادہ ہوں یا برابر ہوں تو تحری نہ کرے کہ اب کسی کا استعمال جائز نہیں۔ (ت)

ہاں ایک حلال جدا ممتاز معلوم ہو تو کثرت حرام سے اس پر کیا اثر۔ مگر یہاں سن چکے کہ فساد و صلاح قلب مضمر، و تمیز متعذر، نامیسر، اور منتقی کی عبارت ابھی گزری پھر غلبہ فساد متیقن، تو قطعاً مطلقاً حکم ممانعت متعین، جیسے وہ بیسیوں ہزار بریانیاں سب حرام ہوئیں حالانکہ ان میں یقیناً دس ہزار حلال تھیں، یہی مسلک علمائے کرام چلے۔

(۷) عینی شرح بخاری جلد سوم کی عبارت آپ نے نقل کی اس میں نہ زنان مصر سے حکم خاص ہے نہ مغنیہ و دلالہ کی تخصیص۔ اس میں سولہ صنف فساد زناں تو بیان کیں جن میں دو یہ ہیں،

اور فرمایا اور اس کے سوا اور بہت سے اصناف قواعد شریعت کے خلاف، اور بتایا کہ اُمّ المومنین اپنے ہی زمانہ کی عورتوں کو فرماتی ہیں کہ ان میں بعض امور حادث ہوئے، کاش ان حادثات کو دیکھتیں کہ جب ان کا ہزارواں حصہ نہ تھے، اپنی عبارت منقولہ سے ایک ہی ورق پہلے دیکھئے جہاں انھوں نے اپنے ائمہ حنفیہ رضی اللہ تعالیٰ عنہم کا مذہب نقل فرمایا ہے کہ حکم مطلق رکھا ہے نہ کہ زنان فتنہ گر سے خاص۔ اور اس کی علت خوف فتنہ بتاتی ہے نہ کہ خاص وقوع، یہی بعینہ نص ہدایہ ہے:

یکرہ لہن حضور الجماعات یعنی الشواب - جماعتوں میں عورتوں یعنی جوان عورتوں کی حاضری

1 ردالمحتار کتاب الکراہیۃ فصل فی البیع ادارۃ الطباعۃ المصریۃ مصر ۵/ ۲۵۳ 2 در مختار کتاب الحظر والاباحۃ مطبع مجتبائی دہلی ۴/ ۳۳۷

Fatawa Rizvia, Volume 9

- "...of them, because of what it entails of the fear of temptation (fitna)."[1] It is disliked (makruh) because it involves the fear of temptation. (T)

Indeed, for those whom it is actually occurring, such as the women of Egypt, it is declared forbidden (haram) to an even higher degree. When our Imams have already issued a general ruling of prohibition based on the fear of temptation, then there is no need to even mention where the temptation is fully present. The text from 'Ayni is as follows:

[Arabic Box Text] The author of al-Hidaya said: "It is disliked for women to attend congregations." Annotation (H): The commentators said: meaning the young women among them. And his statement "congregations" includes Friday prayers, the two Eids, solar eclipses, and prayers for rain. It is narrated from al-Shafi'i that it is permissible for them to go out. Our masters said: because in their going out there is a fear of temptation, and that is a cause for what is forbidden, and whatever leads to the forbidden is itself forbidden. Based on this, when they use the term "disliked," their intention is "forbidden," especially in this age due to the prevalence of corruption among the people.[2]

[Urdu Box Text] The author of al-Hidaya said: Attendance at congregations is disliked for women. Some commentators said it means for young women. And the term "congregations" includes Friday, the two Eids, solar eclipses, and prayers for rain, all of them. It is narrated from Imam Shafi'i that it is permissible for them to go out. Our elders stated the reason for prohibition as being that there is a fear of temptation in their going out, and this is a cause for what is forbidden, and what leads to the forbidden is itself forbidden. In view of this, their intention with the word "disliked" is "forbidden," especially in this time because corruption and evil have now become common among people. (T)

Then, on the same page, it mentioned Abdullah bin Umar (may Allah be pleased with them both) throwing pebbles at women on the day of Friday to turn them out of the mosque, and the great Imam Ibrahim Nakh'i (a Tabi'i) not allowing the veiled women of his household to go for Friday and congregational prayers. As mentioned before (T). It is mentioned in 'Inayah that the Commander of the Faithful, Farooq-e-Azam (Umar), forbade women from attending the mosque. Were those ladies of the pure city of Medina, who were Sahabiyat and Tabi'iyat, God forbid, a group of tempters

and mischief-mongers? Absolutely not! How strange it would be if even the noble Sahaba and Tabi'in were all said to be the same.

H: I say: No, rather it is the text of al-Hidaya itself, as you have heard. - May he be forgiven (T) - May he be forgiven (M)

[1] Al-Hidaya, Chapter on Imamate, Al-Maktaba Al-Arabia, Karachi, 1/105. [2] Umdat al-Qari, Commentary on Sahih al-Bukhari, Chapter on Women going to Mosques, Idarat al-Tiba'at al-Muniriya, Beirut, 6/156.

फ़तावा रज़विया, खंड 9

- "...उनमें से, क्योंकि इसमें फ़ितने (प्रलोभन/उपद्रव) का डर है।"[1] यह नापसंद (मकरूह) है क्योंकि इसमें फ़ितने का अंदेशा है। (त)

हाँ, जिनसे यह घटित हो रहा है, जैसे मिस्र की महिलाएँ, उनके लिए इसे पहले दर्जे में हराम (वर्जित) बताया गया है; क्योंकि जब हमारे इमामों ने फ़ितने के डर पर सामान्य रूप से निषेध का आदेश दे दिया है, तो जहाँ फ़ितने पूरी तरह मौजूद हैं, वहाँ का क्या कहना। 'ऐनी' की इबारत (पाठ) यह है:

[अरबी बॉक्स पाठ] हिदाया के लेखक ने कहा: "महिलाओं के लिए जमाअतों में शामिल होना मकरूह है।" हाशिया (H): व्याख्याकारों ने कहा: यानी उनमें से युवा महिलाओं के लिए। और उनका कथन "जमाअतों" जुमा, ईदैन, सूर्य ग्रहण और वर्षा की प्रार्थना को शामिल करता है। शाफ़ई से रिवायत है कि उनके लिए बाहर निकलना जायज़ है। हमारे उस्तादों ने कहा: क्योंकि उनके निकलने में फ़ितने का डर है, और वह हराम का कारण है, और जो हराम तक ले जाए वह हराम है। इस आधार पर उनके"मकरूह" कहने से मुराद "हराम" है, विशेष रूप से इस ज़माने में क्योंकि लोगों में भ्रष्टाचार आम हो गया है।[2]

[उर्दू बॉक्स पाठ] हिदाया के लेखक ने फ़रमाया: महिलाओं के लिए जमाअतों (सामूहिक नमाज़ों) में हाज़िरी मकरूह है। कुछ व्याख्याकारों ने कहा कि इसका मतलब युवा महिलाओं से है। और "जमाअतों" शब्द में जुमा, ईदैन, कुसूफ़ (सूर्य ग्रहण), और इस्तिसक़ा (वर्षा की प्रार्थना) सभी शामिल हैं। इमाम शाफ़ई से रिवायत है कि उनके लिए जाने की इजाज़त है। हमारे मशाइख़ (विद्वानों) ने मनाही का कारण यह बताया है कि उनके निकलने में फ़ितने का अंदेशा है, और यह हराम का कारण है, और जो हराम तक ले जाने वाला हो वह हराम है। इसके मद्देनज़र शब्द "मकरूह" से उनकी मुराद (उद्देश्य) "हराम" है, विशेष रूप से इस ज़माने में क्योंकि अब लोगों में ख़राबी और बुराई आम हो गई है। (त)

फिर इसी पृष्ठ पर अब्दुल्ला बिन उमर (रज़ियल्लाहु अन्हुमा) का जुमा के दिन महिलाओं को कंकड़ मारकर मस्जिद से निकालना और इमाम अज्ल इब्राहिम नख़ई (ताबी) का अपने यहाँ की महिलाओं को जुमा और जमाअत में न जाने देने का ज़िक्र किया गया। जैसा कि पहले गुज़रा (त)। 'इनाया' से पता चलता है कि अमीरुल मोमिनीन फ़ारूक़-ए-आज़म ने महिलाओं को मस्जिद में आने से मना फ़रमाया। क्या मदीना तय्यबा की वे बीबियाँ जो सहाबियात और ताबियात थीं, माज़अल्लाह फ़ितना

और फ़साद फैलाने वाला समूह थीं? हरगिज़ नहीं! यह आश्चर्य की बात है अगर सहाबा और ताबिईन किराम के बारे में भी यह कहा जाए कि सब एक जैसे हैं।

H: मैं कहता हूँ: नहीं, बल्कि यह स्वयं हिदाया की इबारत है जैसा कि आप सुन चुके हैं। - अल्लाह उन्हें क्षमा करे (त) - अल्लाह उन्हें क्षमा करे (म)

[1] अल-हिदाया, इमामत का अध्याय, अल-मकतबा अल-अरबिया, कराची, 1/105। [2] उम्दतुल क़ारी, बुखारी की व्याख्या, महिलाओं का मस्जिद जाना अध्याय, इदारतुल तिबाअतुल मुनीरिया, बेरूत, 6/156।

पृष्ठ 556/948

فتاوٰی رضویہ، جلد نہم

منهن لما فيه من خوف الفتنة[1] مکروہ ہے اس لیے کہ اس میں فتنے کا اندیشہ ہے۔(ت)۔

ہاں جن سے وقوع ہورہا ہے، جیسے زنانِ مصر، ان کے لیے حرام بدرجہ اولٰی بتایا ہے کہ جب خوفِ فتنہ پر ہمارے ائمہ مطلقاً حکمِ حرمت فرماچکے تو جہاں فتنے پورے ہیں وہاں کا کیا ذکر۔ عبارتِ عینی یہ ہے:

[عربی عبارت] قال صاحب الهداية يكره لهن حضور الجمٰعات وقالت عه الشراح يعنى الشواب منهن و قولہ الجمٰعات يتناول الجمع والاعياد والكسوف والاستسقاء وعن الشافعي يباح لهن الخروج قال اصحابنا لان فی خروجهن خوف الفتنة وهو سبب للحرام ومايفضی الی الحرام فهو حرام فعلی هذا قولهم يكره مرادهم يحرم لاسيما في هذا الزمان الشيوع الفساد في اهله[2]۔

[اردو عبارت] صاحبِ ہدایہ نے فرمایا: عورتوں کے لیے جماعتوں کی حاضری مکروہ ہے۔ بعض شارحین نے کہا یعنی جوان عورتوں کے لیے۔ اور "جماعتوں" کا لفظ جمعہ، عیدین، کسوف، استسقاء سبھی کو شامل ہے، اور امام شافعی سے روایت ہے کہ ان کے لیے جانے کی اجازت ہے۔ ہمارے مشائخ نے ممانعت کی وجہ یہ بتائی ہے کہ ان کے نکلنے میں فتنے کا اندیشہ ہے، اور یہ حرام کا سبب ہے، اور جو حرام تک لے جانے والا ہو وہ حرام ہے۔ اس کے پیش نظر لفظ "مکروہ" سے ان کی مراد "حرام" ہے، خصوصاً اس زمانے میں اس لیے کہ اب لوگوں میں خرابی اور برائی عام ہوگئی ہے(ت)۔

پھر اسی صفحہ پر عبداللہ بن عمر رضی اللہ تعالٰی عنہما کا جمعہ کے دن عورتوں کو کنکریاں مار کر مسجد سے نکالنا اور امام اجل ابراہیم نخعی تابعی کا اپنے یہاں کی مستورات کو جمعہ و جماعت

میں نہ جانے دینا ذکر کیا۔ کما تقدم (جیسا کہ پہلے گزرا۔ت) عنایہ سے گزرا کہ امیر المومنین فاروقِ اعظم نے عورتوں کو حضورِ مسجد سے منع فرمایا۔ کیا مدینہ طیبہ کی وہ بیبیاں کہ صحابیات و تابعات تھیں۔ اور ان امام اجل تابعی کی مستورات معاذ اللہ فتنہ گروہِ اہل فساد تھیں، حاشا ہرگز نہیں، یا للعجب اگر صحابہ و تابعین کرام کو بھی کہا جائے کہ سب کو ایک۔

عہ: اقول: لابل ھو نفس نص الھدایۃ کما سمعت میں کہتا ہوں نہیں بلکہ خود ہدایہ کی عبارت ہے جیسا کہ سن چکے۔ - منہ غفر لہ (ت) - منہ غفر لہ (م)

1 الہدایۃ باب الامامۃ المکتبۃ العربیہ کراچی ۱/۱۰۵ 2 عمدۃ القاری شرح البخاری باب خروج النساء الی المساجد ادارۃ الطباعۃ المنیریہ بیروت ۶/۱۵۶

Fatawa Razawiyya - Volume 9

...treated all alike, making no distinction between the pious and the wicked. God forbid, far be it from us! It has been proven that the prohibition is general and not specific to immoral women. Mentioning them specifically and listing the traits of the women of Egypt was to show that it is prohibited for them to a higher degree, not that the prohibition is only for those who raise strife (fitna) or only for singers and procuresses.

(8) For this reason, the meaning of the passage you cited from 'Ayni, Volume IV, has been made clear: the ruling stated is that visiting graves is now not only disliked (makruh) for women but forbidden (haram). It was not said that it is forbidden for some and permissible for others. For those [of bad character], it was already forbidden even before; what is the specialty of this era? Further, it says: "specifically the women of Egypt," and provides the reasoning that their going out is by way of fitna. This is the very reason for prohibition, not that the ruling is specific to the actual occurrence of fitna or restricted to women who cause it. Yes, this is entirely the Shafi'i school of thought. You have just heard from Imam 'Ayni that "From ash-Shafi'i, it is permissible for them to go out"[1] (Shafi'i held that it was permissible for them to go to mosques, Eid prayers, etc. - translator). Therefore, Kirmani, then 'Asqalani, then Qastallani, all being Shafi'is, followed this direction in their commentaries on Bukhari. Kirmani, after citing Imam Tamimi's view that the corruption of some women is evidence for the prohibition of all women, said:

Arabic	**Urdu Translation**
قلت الذی یعول علیہ ما قلنا و لم یحدث الفساد فی الکل ۲۔	I say: What is relied upon is what we have stated. Corruption and mischief have not spread to all women. (t)

Two curative answers to this thought have just passed, and the third and most superior, by the grace of God Almighty, will follow shortly. Imam 'Ayni did not address it here because, just a page and a half before this same Hadith, he had already stated his school's position and the teachings of his Imams.

(9) Look at the line above the passage from Ghunyah that you cited; the permission existed at a time when going to mosques was permissible for them. Now, see whether the prohibition of mosques applies to all or specifically to the mischief-making women of Egypt. See the passage seven lines after it:

Arabic	Urdu Translation
يعضده المعنى الحادث بأختلاف الزمان الذى بسببہ کرہ لهن حضور الجمع والجماعات الذى اشارت اليه	It is supported by the meaning arising from the change of times, because of which their attendance at Friday and congregational prayers became disliked, towards this meaning...

[1] 'Umdat al-Qari Sharh al-Bukhari, Chapter: Women going out to mosques, Idarat al-Tiba'ah al-Muniriyyah, Beirut, 6/156. [2] 'Umdat al-Qari Sharh al-Bukhari, Chapter: Women going out to mosques, Idarat al-Tiba'ah al-Muniriyyah, Beirut, 6/156.

फ़तावा रज़विया - जिल्द नवीं

...लकड़ी हांका और मुत्तक़ीन (परहेज़गारों) व फ़ुज्जार (पापियों) में कोई अंतर नहीं किया। हाशा-थुम-हाशा (कदापि नहीं), हमसे तो यह साबित हुआ कि निषेध सामान्य है, केवल दुराचारी महिलाओं के लिए विशिष्ट नहीं है। उनका विशेष रूप से उल्लेख करना और मिस्र की महिलाओं के लक्षणों को गिनना इसलिए है कि उनके लिए यह और भी अधिक (बदरजा-ए-औला) हराम है, न कि केवल फ़ितना (बुराई) फैलाने वाली महिलाओं के लिए निषेध है या केवल गायिका और दलालों के लिए।

(८) इसी लिए आपकी उद्धृत की गई इबारत 'ऐनी जिल्द चहारुम' का अर्थ स्पष्ट कर दिया गया कि हुक्म यह बयान किया गया कि अब महिलाओं के लिए कब्रों की ज़ियारत केवल मकरूह ही नहीं बल्कि हराम है। यह नहीं कहा गया कि वैसी महिलाओं के लिए हराम है और ऐसी के लिए हलाल है। वैसी महिलाओं के लिए तो पहले भी हराम था; इस ज़माने की क्या विशेषता! आगे कहा गया: "विशेष रूप से मिस्र की महिलाएँ।" और इसका कारण यह बताया कि उनका बाहर निकलना फ़ितना की वजह से है। यही हराम होने का कारण है, न कि यह हुक्म फ़ितना होने से विशिष्ट है या केवल फ़ितना फैलाने वाली महिलाओं तक सीमित है। हाँ, यह पूर्णतः शाफ़ई मसलक है। अभी इमाम 'ऐनी से सुन चुके कि 'अन-अश-शाफ़ई युबाह लहुन-अल-खुरूज १' (शाफ़ई से उद्धृत है कि उनके लिए मस्जिदों और ईदों आदि के लिए निकलना जायज़ था। - त)। इसलिए किरमानी, फिर अस्क़लानी, फिर क़स्तलानी, क्योंकि सभी शाफ़ई हैं, बुखारी की व्याख्याओं (शरुह) में इसी दिशा में गए। किरमानी ने इमाम तमीमी का विचार उद्धृत किया कि इस हदीस में कुछ महिलाओं के फ़साद के कारण सभी महिलाओं की मनाही पर दलील है, और कहा:

अरबी	**उर्दू अनुवाद**
قلت الذی یعول علیہ ما قلنا و لم یحدث الفساد فی الکل ۲۔	मैंने कहा: विश्वसनीय (मोतमद) वही है जो हमने बयान किया। फ़साद और खराबी सभी महिलाओं में नहीं आई है। (त)

उनके इस विचार के दो संतोषजनक (शाफ़ी) उत्तर अभी गुज़रे और तीसरा सबसे उत्तम, अल्लाह तआला की अनुमति से, शीघ्र ही आ रहा है। इमाम 'ऐनी ने यहाँ इस पर चर्चा नहीं की क्योंकि इसी हदीस से ठीक डेढ़ पृष्ठ पहले उन्होंने अपने पंथ और अपने इमामों का आदेश बता दिया था।

(९) 'ग़ुनिया' की वह इबारत जो आपने उद्धृत की, उससे ऊपर की पंक्ति देखिए कि अनुमति तब थी जब उनके लिए मस्जिदों में जाना मुबाह (अनुमत) था। अब मस्जिदों का निषेध देखिए कि वह सभी के

लिए है या केवल फ़ितना फैलाने वाली मिस्री महिलाओं के लिए। उसकी सात पंक्तियों के बाद की इबारत देखिए:

अरबी	उर्दू अनुवाद
يعضده المعنى الحادث بأختلاف الزمان الذى بسببه كره لهن حضور الجمع والجماعات الذى اشارت اليه	इसका समर्थन समय के परिवर्तन से उत्पन्न अर्थ से होता है, जिसके कारण महिलाओं के लिए जुमा और जमातों में उपस्थित होना मकरूह हो गया, इसी अर्थ की ओर...

---

१ उम्दतुल क़ारी शरह अल-बुखारी, अध्याय: महिलाओं का मस्जिदों की ओर निकलना, इदारातुल तिबातुल मुनीरिया, बेरूत, ६/१५६। २ उम्दतुल क़ारी शरह अल-बुखारी, अध्याय: महिलाओं का मस्जिदों की ओर निकलना, इदारातुल तिबातुल मुनीरिया, बेरूत, ६/१५६।

पृष्ठ ५५७ / ९४८

لکڑی ہانکا اور متقین و فجار کا فرق نہ کیا۔ حاشا ثم حاشا ہم تو ثابت ہوا کہ منع عام ہے صرف فاسقات سے خاص نہیں اور ان کا خصوصاً ذکر فرما کر زنانِ مصر کے خصائل گنانا اس لئے ہے کہ ان پر بدرجہ اولٰی حرام ہے نہ کہ فقط فتنہ اٹھانے والیوں کو ممانعت ہے یا وہ بھی صرف مغنیہ و دلالہ کو۔

(۸) اسی لیے آپ کی منقولہ عبارت عینی جلد چہارم کا مطلب واضح کر دیا کہ حکم یہ بیان فرمایا کہ اب زیارتِ قبور عورتوں کو مکروہ ہی نہیں بلکہ حرام ہے۔ یہ نہ فرمایا کہ ویسی کو حرام ہے ایسی کو حلال ہے۔ ویسی کو تو پہلے بھی حرام تھا اس زمانہ کی کیا تخصیص! آگے فرمایا: خصوصاً زنانِ مصر۔ اور اس کی تعلیل کی کہ ان کا خروج بروجہ فتنہ ہے۔ یہ وہی تحریم کی وجہ ہے نہ کہ حکم وقوعِ فتنہ سے خاص اور فتنہ گر عورتوں سے مخصوص۔ ہاں یہ مسلک شافعیہ کلا ہے۔ ابھی امام عینی سے سن چکے کہ عن الشافعی یباح لھن الخروج ۱ (شافعی سے کہ ان کے لیے مسجدوں اور عیدین وغیرہ کے لیے نکلنا جائز تھا۔) و لہذا کرمانی، پھر عسقلانی، پھر قسطلانی کہ سب شافعیہ ہیں، شروحِ بخاری میں اس طرف گئے۔ کرمانی نے قولِ امام تمیمی کہ اس حدیث میں فسادِ بعض زنان کے سبب سب عورتوں کی ممانعت پر دلیل ہے۔ نقل کرکے کہا:

عربی	اردو ترجمہ
قلت الذی یعول علیہ ما قلنا و لم یحدث الفساد فی الکل ۲۔	میں نے کہا: معتمد وہی ہے جو ہم نے بیان کیا۔ فساد و خرابی سب عورتوں میں نہیں آئی ہے۔ (ت)

ان کے اس خیال کے دو شافی جواب ابھی گزرے اور تیسرا سب سے اعلیٰ باذنہ تعالیٰ عنقریب آتا ہے۔ امام عینی نے یہاں اس سے تعرض نہ فرمایا کہ اسی حدیث کے نیچے ڈیڑھ ہی ورق پہلے اپنے مذہب اور اپنے ائمہ کا ارشاد بتا چکے تھے۔

(۹) عبارت غنیہ کہ آپ نے نقل کی اس سے اوپر کی سطر دیکھیے کہ اجازت اس وقت تھی جب انھیں مسجدوں میں جانا مباح تھا۔ اب مسجدوں کی ممانعت دیکھئے سب کو ہے یا زنانِ مصر فتنہ گر کو۔ اس کے سات سطر بعد کی عبارت دیکھیے :

عربی	اردو ترجمہ
یعضدہ المعنی الحادث بأختلاف الزمان الذی بسببہ کرہ لھن حضور الجمع والجماعات الذی اشارت الیہ	اس کی تائید اختلافِ زمانہ سے پیدا ہونے والے معنی سے ہوتی ہے جس کے سبب عورتوں کے لیے جمعہ اور جماعتوں کی حاضری مکروہ ہوگئی اس معنی کی جانب

---

۱ عمدۃ القاری شرح البخاری باب خروج النساء الی المساجد ادارۃ الطباعۃ المنیریہ بیروت ۱۵۶/۶ ۲ عمدۃ القاری شرح البخاری باب خروج النساء الی المساجد ادارۃ الطباعۃ المنیریہ بیروت ۱۵۶/۶

Fatawa Rizwia Volume Nine

Aisha (may Allah be pleased with her) remarked: "If the Messenger of Allah (may Allah bless him and grant him peace) had seen what women have innovated after him, he would have forbidden them [from mosques] as the women of the Children of Israel were forbidden." When Aisha (may Allah be pleased with her) said this about the women of her time, what do you think about the women of our time?[1]

Hazrat Aisha Siddiqa (may Allah be pleased with her) indicated: If the Messenger of Allah (may Allah bless him and grant him peace) had seen those things which women had innovated after him, he would have forbidden them from mosques just as the women of the Children of Israel were forbidden. When Hazrat Aisha (may Allah be pleased with her) says this about the women of her time, what is your opinion about the women of our time? (T)

Observe, the argument for the prohibition of mosques was taken from the general ruling; so 'because of the corruption in their going out' (there is harm in their going out. T) corruption here refers to only some [incidents], and the prohibition of all is derived from it, rather than the ruling being restricted only to those women who cause corruption.

(10) In Ghunyah, between these two passages, your quoted text was continuously mentioned with reference to Tartar Khaniya. Observe what was quoted from Sha'bi:

The Qadi was asked about the permissibility of women going to graves. He said: "Permissibility is not asked in such a case; rather, ask about the extent of the curse that befalls her in it. Know that whenever she intends to go out, she is under the curse of Allah and His angels. When she steps out, devils surround her from every side. When she reaches the graves, the soul of the deceased curses her, and when she returns, she is under the curse of Allah."[2]

That is, a query was presented to Imam Qadi whether it is permissible for women to go to cemeteries or not? He said: In such a case, do not ask about permissibility or impermissibility; ask how much curse falls upon the woman in this. When she intends to go from home towards the graves, she is under the curse of Allah and the angels. When she steps out of the house, devils surround her from all sides. When she reaches the grave, the soul of the deceased curses her. When she returns, she is under the curse of Allah. (T)

Note, was the inquiry specifically about 'corrupt women' (fasatqat)? The question was about women going to graves in general, and this answer was received. Now, is there any specification of 'corrupt women' in the answer? In short, all these passages from which you...

---

[1] Ghunyah al-Mustamli Sharh Munyah al-Musalli, Chapter on Funerals, Suhail Academy Lahore, p. 594 [2] Ghunyah al-Mustamli Sharh Munyah al-Musalli, Chapter on Funerals, Suhail Academy Lahore, p. 594

आयशा (अल्लाह उन पर प्रसन्न हो) का यह कथन है: "अगर अल्लाह के रसूल (अल्लाह उन पर दरूद और सलाम भेजे) देखते जो औरतों ने उनके बाद ईजाद कर लिया है, तो वे उन्हें [मस्जिदों से] वैसे ही रोक देते जैसे बनी इसराइल की औरतों को रोक दिया गया था।" जब हज़रत आयशा (अल्लाह उन पर प्रसन्न हो) ने यह अपने ज़माने की औरतों के बारे में कहा, तो हमारे ज़माने की औरतों के बारे में आपका क्या ख्याल है?[1]

हज़रत आयशा सिद्दीका (अल्लाह उन पर प्रसन्न हो) ने यूँ इशारा फ़रमाया: अगर अल्लाह के रसूल (अल्लाह उन पर दरूद और सलाम भेजे) वे बातें देखते जो औरतों ने उनके बाद पैदा कर लीं, तो उन्हें मस्जिदों से रोक देते जैसे बनी इसराइल की औरतों को रोक दिया गया, हज़रत आयशा (अल्लाह उन पर प्रसन्न हो) यह जब अपने ज़माने की औरतों के बारे में फ़रमा रही हैं तो हमारे ज़माने की औरतों के बारे में तुम्हारा क्या ख्याल है? (त)

देखिये इसी मस्जिदों की मनाही से सनद (प्रमाण) ली जिसका हुक्म आम है, तो 'लंम्मा फ़ी खुरूजिहिन्ना मिनल फसाद' (उनके निकलने में खराबी है। त) से फसाद कुछ ही मुराद है, और इसी से पूरी मनाही हासिल की गई है, न कि सिर्फ फसाद वाली औरतों पर ही यह हुक्म सीमित है।

(१०) गुनिया में इन दोनों इबारतों (उद्धरणों) के बीच आपकी उद्धृत इबारत तर्तार खानिया के हवाले से मुतसिल (जुड़ी हुई) थी, वह जो शा'बी से नक़ल फ़रमाया वह भी मुलाहिज़ा हो:

काज़ी से औरतों के कब्रों की तरफ़ जाने के जवाज़ (अनुमति) के बारे में पूछा गया। उन्होंने कहा: "ऐसी सूरत में जवाज़ के बारे में नहीं पूछा जाता, बल्कि यह पूछा जाता है कि इसमें उस पर कितनी लानत पड़ती है। जान लो कि जब भी वह निकलने का इरादा करती है, तो वह अल्लाह और उसके फ़रिश्तों की लानत में होती है। जब वह बाहर निकलती है, तो शैतान उसे हर तरफ़ से घेर लेते हैं। जब वह क़ब्रों पर आती है, तो मृत की आत्मा

यानी इमाम काज़ी से इस्तफ़्ता (सवाल) हुआ कि औरतों का मक़ाबिर (कब्रिस्तानों) को जाना जायज़ है या नहीं? फ़रमाया: ऐसी जगह जवाज़ और अदम-ए-जवाज़ (अमान्यता) नहीं पूछते, यह पूछो कि इसमें औरत पर कितनी लानत पड़ती है। जब घर से क़ुबूर की तरफ़ चलने का इरादा करती है अल्लाह और फ़रिश्तों की लानत में होती है, जब घर से बाहर निकलती है सब तरफ़ों से शैतान उसे घेर लेते हैं, जब क़ब्र तक पहुँचती है मय्यत की रूह उस पर लानत

उस पर लानत करती है, और जब वह वापस करती है, जब वापस आती है अल्लाह की आती है, तो अल्लाह की लानत में होती है।"[2] लानत में होती है। (त)

मुलाहिज़ा हो, इस्तफ़्ता क्या विशेष 'फ़ासिकात' (दुराचारी औरतों) के बारे में था? मुतलक़ (सामान्य तौर पर) औरतों के कब्रों पर जाने से सवाल था उसका यह जवाब मिला। अब जवाब में कहीं फ़ासिकात की तख़्सीस (विशेषता) है? ग़रज़ ये तमाम इबारतें जिनसे आपने...

---

[1] गुनिया अल-मुस्तमली शरह मुन्या अल-मुसल्ली, जनाज़ों का अध्याय, सुहैल एकेडमी लाहौर, पृष्ठ ५९४ [2] गुनिया अल-मुस्तमली शरह मुन्या अल-मुसल्ली, जनाज़ों का अध्याय, सुहैल एकेडमी लाहौर, पृष्ठ ५९४

पृष्ठ ५५८/९४८

عائشة رضی اللہ تعالٰی عنها بقولها لوان رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم رأی ما احدث النساء بعده لمنعهن کما منعت نساء بنی اسرائیل واذا قالت عائشة رضی اللہ تعالٰی عنها فما ظنك بنساء زماننا ۱۔

حضرت عائشہ صدیقہ رضی اللہ تعالٰی عنہا نے یوں اشارہ فرمایا: اگر رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم وہ باتیں دیکھتے جو عورتوں نے ان کے بعد پیدا کر لیں تو انہیں مسجدوں سے روک دیتے جیسے بنی اسرائیل کی عورتوں کو روک دیا گیا، حضرت عائشہ رضی اللہ تعالٰی عنہا یہ جب اپنے زمانے کی عورتوں کے بارے میں فرما رہی ہیں تو ہمارے زمانے کی عورتوں کے بارے میں تمہارا کیا خیال ہے؟ (ت)

دیکھیے اسی منع مساجد سے سند لی جس کا حکم عام ہے تو لمّا فی خروجھن من الفساد (ان کے نکلنے میں خرابی ہے۔ت) سے فساد بعض ہی مراد، اور اسی کی منع کل مستفاد ، نہ کہ صرف فساد والیوں پر قصر ارشاد۔ (۱۰) غنیہ نے ان دونوں عبارتوں کے بیچ آپ کی عبارت منقول کردہ متصل بحوالہ تارتار خانیہ تھا، یہ شعبی سے جو کچھ نقل فرمایا وہ بھی ملاحظہ ہو:

سئل القاضی عن جواز خروج النساء الٰی المقابر قال لا یسئل عن الجواز فی مثل هذا وانما یسأل عن مقدار مایلحقها من اللعن فیها واعلم انها کلما قصدت الخروج کانت فی لعنة اللہ و ملائکته واذا خرجت تحفها الشیاطین من کل

یعنی امام قاضی سے استفتاء ہوا کہ عورتوں کا مقابر کو جانا جائز ہے یا نہیں؟ فرمایا: ایسی جگہ جواز و عدم جواز نہیں پوچھتے، یہ پوچھو کہ اس میں عورت پر کتنی لعنت پڑتی ہے۔ جب گھر سے قبور کی طرف چلنے کا ارادہ کرتی ہے اللہ اور فرشتوں کی لعنت میں ہوتی ہے، جب گھر سے باہر نکلتی ہے سب طرفوں سے شیطان

جانب واذا اتت القبور یلعنها روح المیت واذا رجعت کانت فی لعنة اللہ ۲۔

اسے گھیر لیتے ہیں، جب قبر تک پہنچتی ہے میت کی روح اس پر لعنت کرتی ہے، جب واپس آتی ہے اللہ کی لعنت میں ہوتی ہے (ت)

ملاحظہ ہو استفتاء کیا خاص فاسقات کے بارے میں تھا۔ مطلق عورتوں کے قبروں کو جانے سے سوال تھا اس کا یہ جواب ملا اب جواب میں کہیں فاسقات کی تخصیص ہے۔ غرض یہ تمام عبارات جن سے آپ نے

---

۱ غنیہ المستملی شرح منیۃ المصلی فصل فی الجنائز سہیل اکیڈمی لاہور ص ۵۹۴ ۲ غنیہ المستملی شرح منیۃ المصلی فصل فی الجنائز سہیل اکیڈمی لاہور ص ۵۹۴

Fatawa Rizvia, Volume 9

The reasoning they provided is a clear text (Nass) against your claim. There is another subtle point here which renders the classification of women or examining their righteousness or corruption meaningless, and the ruling becomes absolutely general for all, no matter how righteous and pious they may be. Fitna (trial/temptation) is not only that which arises from a woman's heart; there is also another, even more severe type, which is the fear for the woman from profligate men. In this case, how will the woman's righteousness help? Hazrat Sayyiduna Zubair bin al-Awwam (may Allah be pleased with him) warned his holy, righteous, worshipful, abstinent, and pure wife, Hazrat Atika (may Allah be pleased with her), in a practical way and stopped her from attending the Prophet's Mosque in Madinah Tayyibah. That pure lady had a deep love for the Prophet's Mosque. First, she was married to the Commander of the Faithful, Umar Farooq al-Azam (may Allah be pleased with him). Before the marriage, she made a condition with the Commander of the Faithful that he should not stop her from going to the mosque. In those blessed times, there was no absolute and definitive prohibition for women, which is why their attendance at the mosque and occasional visits to some shrines are reported. It is narrated in the Sahihayn from Hazrat Umm Atiyyah (may Allah be pleased with both of them):

نهينا عن اتباع الجنائز ولم يعزم علينا 1-	**We were forbidden from following funeral processions, but it was not made mandatory for us.**

Regarding this, it is stated in the text of Ghunyah that this was at a time when attending the mosque was permissible for them; now it is haraam (forbidden) and strictly prohibited (2). In short, for this reason, the Commander of the Faithful accepted her condition. Even then, he wished that she would not go to the mosque. She would say, "If you forbid me, I will not go." The Commander of the Faithful, bound by the condition, would not forbid her. After the Commander of the Faithful, she married Hazrat Zubair (may Allah be pleased with him). He did not forbid her, and she would not listen. One day, he devised a plan. Before she left at night for the Isha prayer in the darkness, he hid behind a door on the way. When she passed by that door, he came out and struck her head from behind and then hid again. Hazrat Atika said, "Indeed, Allah! Corruption has spread among the people." (3) Saying this, she returned home and only left again for a funeral. So, Hazrat Zubair (may Allah be pleased with him) warned her that no matter how righteous a woman is, even if there is no concern from her side, what is the remedy for the fear from profligate men?

Now, is this hanging everyone on the same gallows, or is it protecting the honor of the holy and chaste from the evil of the wicked? Our Imams...

1. Sahih al-Bukhari, Chapter on Women Following Funerals, Qadimi Kutub Khana, Karachi, 1/177
2. Ghunyah al-Mustamli Sharh Munyah al-Musalli, Section on Funerals, Suhail Academy, Lahore, p. 595
3. Al-Isabah fi Tamyiz al-Sahabah, biography 695, Atika bint Zaid etc., Dar Sadr, Beirut, 7/357

फ़तावा रिज़विया, जिल्द नहम (9)

उन्होंने जो दलील दी है वह आपके दावे के खिलाफ एक स्पष्ट पाठ (नस्स) है। यहाँ एक और बारीक बात है जिससे औरतों की श्रेणियां बनाने या उनके नेक या बद होने पर विचार करने का कोई अर्थ ही नहीं रह जाता, और नियम पूरी तरह से सब पर लागू हो जाता है, चाहे औरत कितनी ही नेक और परहेज़गार क्यों न हो। फ़ितना (बुराई) केवल वही नहीं है जो औरत के दिल से पैदा हो; एक और भी है, और वह अधिक गंभीर है, वह है बदचलन पुरुषों से औरत पर होने वाला खतरा। यहाँ औरत की नेकी क्या काम आएगी? हज़रत सैयदुना ज़ुबैर बिन अल-अव्वम (रज़ियल्लाहु अन्हु) ने अपनी नेक, इबादत गुज़ार, परहेज़गार और पवित्र पत्नी हज़रत आतिका (रज़ियल्लाहु अन्हा) को इसी व्यावहारिक तरीके से सचेत करके मदीना तैयबा की मस्जिद-ए-नबवी जाने से रोक दिया। उन पवित्र महिला को मस्जिद-ए-नबवी से गहरा प्रेम था। पहले वे अमीर-उल-मोमिनीन उमर फ़ारूक़े आज़म (रज़ियल्लाहु अन्हु) के निकाह में आईं। निकाह से पहले उन्होंने अमीर-उल-मोमिनीन से यह शर्त रखी कि वे मुझे मस्जिद जाने से न रोकें। उस खैर के ज़माने में औरतों के लिए कोई कड़ा और पक्का निषेध नहीं था, जिस कारण महिलाओं का मस्जिद जाना और कभी-कभी कुछ मजारों की ज़ियारत करना भी वर्णित है। सहीहैन में हज़रत उम्मे अतिया (रज़ियल्लाहु अन्हा) से वर्णित है:

نهينا عن اتباع الجنائز ولم يعزم علينا 1-	**हमें जनाज़ों के पीछे चलने से मना किया गया, लेकिन यह हम पर अनिवार्य रूप से लागू नहीं किया गया था।**

इसी पर ग़ुनिया की इबारत में कहा गया है कि यह उस समय था जब उनका मस्जिद जाना जायज़ था, अब यह हराम और पूरी तरह से प्रतिबंधित है (2)। संक्षेप में, इसी कारण अमीर-उल-मोमिनीन ने उनकी शर्त स्वीकार कर ली थी। फिर भी वे यही चाहते थे कि वे मस्जिद न जाएँ। वे कहतीं, "आप मना कर दें, मैं नहीं जाऊँगी।" अमीर-उल-मोमिनीन शर्त की पाबंदी के कारण मना नहीं करते थे। अमीर-उल-मोमिनीन के बाद हज़रत ज़ुबैर (रज़ियल्लाहु अन्हु) से उनका निकाह हुआ। वे मना नहीं करते थे और वे मानती नहीं थीं। एक दिन उन्होंने एक योजना बनाई कि ईशा के वक़्त अंधेरी रात में उनके जाने से पहले रास्ते में किसी दरवाज़े के पीछे छिप गए। जब वे उस दरवाज़े के आगे बढ़ीं, तो उन्होंने निकलकर पीछे से उनके मुबारक सिर पर हाथ मारा और छिप गए। हज़रत आतिका ने कहा, "बेशक अल्लाह! लोगों में बुराई फैल गई है।" (3) यह कहकर वे घर वापस आ गईं और फिर केवल जनाज़े के लिए ही निकलीं। तो हज़रत ज़ुबैर (रज़ियल्लाहु अन्हु) ने उन्हें यह चेतावनी दी कि औरत कितनी ही नेक क्यों न हो, भले ही उसकी तरफ़ से कोई चिंता न हो, लेकिन बदचलन पुरुषों की ओर

से होने वाले डर का क्या इलाज! अब क्या यह सबको एक ही फांसी पर लटकाना हुआ या पवित्र और पाक दामन महिलाओं की इज्ज़त को दुष्टों की बुराई से बचाना! हमारे इमाम...

1. सहीह अल-बुखारी, अध्याय: महिलाओं का जनाज़ों के पीछे चलना, क़दीमी कुतुब ख़ाना, कराची, 1/177
2. ग़ुनियातुल मुस्तमली शरह मुनियतुल मुसल्ली, जनाज़े का अध्याय, सुहैल एकेडमी, लाहौर, पृष्ठ 595
3. अल-इसाबा फी तमीज़िस सहाबा, जीवनी 695, आ़तिका बिन्ते ज़ैद आदि, दार सादिर, बेरूत, 7/357

पृष्ठ 948 का 559

استدلال فرمایا آپ کی نقیص مدعا میں نص ہیں۔ یہاں ایک نکتہ اور ہے جس سے عورتوں کی قسمیں بنانے، ان کے صلاح وفساد پر نظر کرنے کے کوئی معنی ہی نہیں رہتے، اور قطعاً حکم سب کو عام ہو جاتا ہے اگرچہ کیسی صالحہ پارسا ہو۔ فتنہ وہی نہیں کہ عورت کے دل سے پیدا ہو وہ بھی ہے اور سخت تر ہے جس کا فساق سے عورت پر اندیشہ ہو۔ یہاں عورت کی صلاح کیا کام دے گی، حضرت سیدنا زبیر بن العوام رضی اللہ تعالیٰ عنہ نے اپنی زوجہ مقدسہ صالحہ، عابدہ زاہدہ تقیہ، نقیہ حضرت عاتکہ رضی اللہ تعالیٰ عنہا کو اسی عملی طور سے متنبہ کر کے حاضری مسجد کریم مدینہ طیبہ سے باز رکھا۔ ان پاک بی بی کو مسجد کریم سے عشق تھا، پہلے امیر المومنین عمر فاروق اعظم رضی اللہ تعالیٰ عنہ کے نکاح میں آئیں، قبل نکاح امیر المومنین سے شرط کرالی کہ مجھے مسجد سے نہ روکیں، اس زمانہ خیر میں محض عورتوں کو ممانعت قطعی جزمی نہ تھی جس کے سبب بیبیوں سے حاضری مسجد اور گاہ گاہ زیارت بعض مزارات بھی منقول۔ صحیحین میں حضرت ام عطیہ رضی اللہ تعالیٰ عنہما سے ہے:

نھینا عن اتباع الجنائز ولم یعزم علینا 1- **ہمیں جنازوں کے پیچھے جانے سے منع فرمایا گیا مگر قطعی ممانعت نہ تھی۔**

اسی پر غنیہ کی اس عبارت میں فرمایا کہ یہ اس وقت تھا جب حاضری مسجد انہیں جائز تھی اب حرام اور قطعی ممنوع ہے 2۔ غرض اس وجہ سے امیر المومنین نے ان کی شرط قبول فرمالی۔ پھر بھی چاہتے یہی تھے کہ مسجد نہ جائیں، یہ کہتیں آپ منع فرمادیں میں نہ جاؤں گی، امیر المومنین بہ پابندی شرط منع نہ فرماتے، امیر المومنین کے بعد حضرت زبیر رضی اللہ تعالیٰ عنہ سے نکاح ہوا، منع نہ فرماتے وہ نہ مانتیں، ایک روز انہوں نے یہ تدبیر کی کہ عشاء کے وقت اندھیری رات

میں ان کے جانے سے پہلے راہ میں کسی دروازے میں چھپ رہے۔ جب یہ آئیں اس دروازے سے آگے بڑھی تھیں کہ انھوں نے نکل کر پیچھے سے ان کے سر مبارک پر ہاتھ مارا اور چھپ رہے حضرت عاتکہ نے کہا: ان اللہ فسد الناس 3 ہم اللہ تعالیٰ کے لیے ہیں لوگوں میں فساد آگیا۔ یہ فرما کر مکان کو واپس آئیں اور پھر جنازہ ہی نکلا۔ تو حضرت زبیر رضی اللہ تعالیٰ عنہ نے انھیں یہ تنبیہ فرمائی کہ عورت کیسی ہی صالحہ ہو اس کی طرف سے اندیشہ نہ سہی فاسق مردوں کی طرف سے اس پر خوف کا کیا علاج! اب یہ سب کو ایک پھانسی پر لٹکانا ہوا یا مقدس پاک دامنوں کی عزت کو شریروں کے شر سے بچانا! ہمارے ائمہ

1 صحیح البخاری باب اتباع النساء الجنائز قدیمی کتب خانہ کراچی ۱ / ۱۷۷ 2 غنیۃ المستملی شرح منیہ المصلی فصل فی الجنائز سہیل اکیڈمی لاہور ص ۵۹۵ 3 الاصابہ فی تمیز الصحابہ ترجمہ ۶۹۵ عاتکہ بنت زید الخ دار صادر بیروت ۷ / ۳۵۷

Fatawa Rizwia, Volume 9

He has mentioned both reasons; the guidance says, "due to what is in it of the fear of fitna[1] (social discord/temptation)" (meaning there is an apprehension of fitna. T). It includes both cases, whether there is a fear from the woman or for the woman. And further on, he explained the second reason:

Arabic

There is no harm for an elderly woman to go out for Fajr, Maghrib, and Isha. This is according to Abu Hanifa. The two companions (Imam Abu Yusuf and Imam Muhammad) said they should go out for all prayers because there is no temptation due to the lack of desire for them. His (Abu Hanifa's) reasoning is that excessive lust exists, so temptation will occur, except that the spread of the wicked is during Zuhr, Asr, and Jumu'ah[2].

Urdu Explanation

There is no harm in an elderly woman going out for Fajr, Maghrib, and Isha prayers. The saying of the two companions is that she may go for all prayers because there is no fitna due to the lack of inclination towards her. The argument of Imam-e-Azam is that the increase in lust among the wicked will incite them even towards an elderly woman; thus fitna will occur. However, the movement of the wicked back and forth occurs during the times of Zuhr, Asr, and Maghrib. (Thus, she was given permission to go for Fajr, Maghrib, and Isha). (T)

The Muhaqqiq ala-Ittilaq stated in Fath al-Qadeer:

Arabic

Considering the aforementioned reasoning, women who are not immoral were also prohibited due to the dominance of the wicked as evidence, even if the text permits it, because the wicked in our time are more widespread and their interference is at night. Later scholars generalized the prohibition for both elderly and young women in all prayers due to the dominance of corruption in all times[3].

Urdu Explanation

In view of the mentioned reasoning, prohibition was also applied to such a woman who is not herself immoral, because of the dominance of bad elements. Prohibition was also applied at night even though its permissibility is proven from the text of Imam-e-Azam. The reason is that in our times, the roaming and harassment by the wicked occurs mostly at night. And later scholars have made a general prohibition for both old and young women for all prayers because corruption and mischief prevail at all times. (T)

If the texts on this subject were collected, it would make a book. See in 'Umdat al-Qari' volume three, a page and a quarter before the quoted text:

Arabic	Urdu
In it (i.e., in the Hadith) it is appropriate (i.e., for the husband)	In this Hadith, there is a topic that in which work for a woman

[1] Al-Hidayah, Chapter of Imamah, Al-Maktabat al-Arabia, Karachi, 1/105 [2] Al-Hidayah, Chapter of Imamah, Al-Maktabat al-Arabia, Karachi, 1/105 [3] Fath al-Qadeer, Chapter of Imamah, Maktaba Nooria Rizwia, Sukkur, 11

फ़तावा रज़विया, जिल्द 9

उन्होंने दोनों कारणों का उल्लेख किया है; हिदाया का निर्देश है, "उसमें फ़ितने[1] (सामाजिक कलह/प्रलोभन) के डर के कारण" (अर्थात इसमें फ़ितने की आशंका है। त)। इसमें दोनों मामले शामिल हैं, चाहे डर औरत से हो या औरत पर। और आगे उन्होंने दूसरे कारण को स्पष्ट करते हुए फ़रमाया:

अरबी

बुढ़िया औरत के लिए फ़ज्र, मग़रिब और इशा की नमाज़ के लिए निकलने में कोई हर्ज नहीं है। यह इमाम अबू हनीफ़ा के अनुसार है। साहबैन (इमाम अबू यूसुफ़ और इमाम मुहम्मद) का कहना है कि वे सभी नमाज़ों के लिए बाहर जा सकती हैं क्योंकि उनकी ओर रुझान की कमी के कारण कोई फ़ितना नहीं है। इमाम-ए-आज़म का तर्क यह है कि पापियों में वासना की अधिकता उन्हें बुढ़िया औरत पर भी उकसाएगी, इस तरह फ़ितना पैदा होगा। लेकिन बात यह है कि पापियों का यहाँ-वहाँ घूमना-फिरना ज़ुहर, अस्र और जुमे के समय होता है।[2]

उर्दू व्याख्या

बुढ़िया औरत के लिए फ़ज्र, मग़रिब और इशा के लिए निकलने में कोई हर्ज नहीं है। साहबैन का कहना यह है कि वह सभी नमाज़ों में जाए क्योंकि उसकी ओर इच्छा कम होने के कारण कोई फ़ितना नहीं है। इमाम-ए-आज़म का तर्क यह है कि पापियों में वासना की अधिकता उन्हें बुढ़िया औरत पर भी उकसाएगी, इस तरह फ़ितना पैदा होगा। लेकिन बात यह है कि पापियों का इधर-उधर चलना-फिरना ज़ुहर, अस्र और मग़रिब के समय होता है (इसलिए उसे फ़ज्र, मग़रिब और इशा में जाने की अनुमति दी गई है)। (त)

मुहक़्क़िक़ अला अल-इतलाक़ ने फ़तह अल-क़दीर में फ़रमाया:

अरबी

उल्लेखित तर्क को देखते हुए, ऐसी स्त्री के लिए भी निषेध किया गया जो स्वयं दुराचारी नहीं है, क्योंकि बदमाशों का प्रभुत्व है। भले ही मूल पाठ इसे अनुमेय मानता है, लेकिन हमारे समय में पापी अधिक फैले हुए हैं और रात के समय उनका हस्तक्षेप अधिक होता है। बाद के विद्वानों ने बुढ़िया और जवान सभी स्त्रियों के

उर्दू व्याख्या

उल्लेखित तर्क के आधार पर ऐसी स्त्री के लिए भी मनाही हुई जो स्वयं बदकार नहीं है, क्योंकि बदमाशों का बोलबाला है। रात को भी मनाही हुई हालाँकि इमाम-ए-आज़म के स्पष्ट प्रमाण से इसकी अनुमति सिद्ध है। कारण यह है कि हमारे ज़माने में पापियों का घूमना-फिरना और छेड़छाड़ करना ज़्यादातर रात को ही होता है। और बाद के विद्वानों ने

अरबी	उर्दू व्याख्या
लिए सभी नमाज़ों में सामान्य निषेध कर दिया है, क्योंकि सभी समयों में भ्रष्टाचार का बोलबाला है।[3]	बुढ़िया, जवान सब औरतों के लिए सभी नमाज़ों में आम मनाही कर दी है क्योंकि सभी समयों में फ़साद और खराबी का बोलबाला है। (त)

इस विषय के कथनों को यदि एकत्रित किया जाए तो एक किताब बन जाए। स्वयं उमदतुल क़ारी जिल्द तीन में अपने उद्धृत कथन से सवा पन्ना पहले देखिए:

अरबी	उर्दू
इसमें (यानी हदीस में) यह है कि (यानी पति के लिए) उचित है	इस हदीस में यह विषय है कि जिस कार्य में स्त्री के लिए

[1] अल-हिदाया, बाब अल-इमामा, अल-मकतबत अल-अरबिया, कराची, 1/105 [2] अल-हिदाया, बाब अल-इमामा, अल-मकतबत अल-अरबिया, कराची, 1/105 [3] फ़तह अल-क़दीर, बाब अल-इमामा, मकतबा नूरिया रज़विया, सुक्कुर, 11

نے دونوں علتیں ارشاد فرمائیں، ارشادِ ہدایتہ لما فیہ من خوف الفتنہ[1] (اس لیے کہ اس میں فتنے کا اندیشہ ہے۔ت) دونوں کو شامل ہے، عورت سے خوف ہو یا عورت پر خوف ہو، اور آگے علت دوم کی تصریح فرمائی کہ :

عربی	اردو تشریح
لاباس للعجوز ان تخرج فی الفجر والمغرب والعشاء هذا عند ابی حنیفة وقالا یخرجن فی الصلوات کلها لانه لافتنة لقلة الرغبة وله ان فرط الشق حاصل فتقع الفتنة غیر ان الفساق انتشار هم فی الظهر والعصر والجمعة[2]	بوڑھی عورت کے لئے فجر، مغرب اور عشاء کے لیے نکلنے میں حرج نہیں، اور صاحبین کا قول یہ ہے کہ یہ تمام نمازوں میں جائے کیونکہ اس کی جانب رغبت کم ہونے کی وجہ سے کوئی فتنہ نہیں، امام اعظم کی دلیل یہ ہے کہ فاسقوں میں شہوت کی زیادتی انہیں بوڑھی عورت پر بھی برانگیختہ کرے گی اس طرح فتنہ واقع ہوگا، مگر یہ ہے کہ فاسقوں کا ادھر ادھر چلنا پھر نا ظہر۔ عصر اور مغرب کے وقت ہوتا ہے (اس لیے فجر، مغرب اور عشاء میں اسے جانے کی اجازت دی گئی۔ (ت)

محقق علی الاطلاق نے فتح القدیر میں فرمایا:

عربی	اردو تشریح
بالنظر الی التعلیل المذکور منعت غیر المزنیة ایضا لغلبة الفساق دلیلا وان کان النص یبیحه لان الفساق في	دلیل مذکور کے پیش نظر ایسی عورت کے لیے بھی ممانعت ہوئی جو خود بدکار نہیں، کیونکہ بدمعاشوں کا غلبہ ہے اور رات کو بھی ممانعت ہوئی اگر چہ امام اعظم کے نص سے

عربی	اردو تشریح
زماننا اکثر انتشار رھم و تعرضھم باللیل و عمم المتاخرون المنع للعجائز والشواب في الصلوات کلھا لغلبة الفساد في سائر الاوقات[3]۔	اس کی اباحت ثابت ہے، وجہ یہ ہے کہ ہمارے زمانے میں فاسقوں کا گھومنا پھرنا اور چھیڑ چھاڑ کرنا زیادہ تر رات ہی کو ہوتا ہے۔ اور متاخرین نے بوڑھی، جوان سب عورتوں کے لیے تمام نمازوں میں عام ممانعت کردی اس لیے کہ سبھی اوقات میں فساد وخرابی کا غلبہ ہے۔ (ت)

اس مضمون کی عبارات جمع کی جائیں تو ایک کتاب ہو۔ خود اسی عمدۃ القاری جلد سوم میں اپنی عبارت منقولہ سے سوا صفحہ پہلے دیکھیے :

عربی	اردو
فیه (ای فی الحدیث) انه ینبغی (ای للزوج)	اس حدیث میں یہ مضمون ہے کہ جس کام میں عورت کے لیے

[1] الھدایة باب الامامة المکتبة العربیة کراچی ۱/۱۰۵ [2] الھدایة باب الامامة المکتبة العربیة کراچی ۱/۱۰۵ [3] فتح القدیر باب الامامة مکتبہ نوریہ رضویہ سکھر ۱۱

[Table Header: Arabic Content | Urdu Translation] (Arabic): That he should permit her and not prevent her in what contains benefit for her, and that is if fitna (strife/ temptation) is not feared for her nor because of her. And this was the prevailing state in that time, contrary to our current time, for corruption is widespread and corruptors are many. And the hadith of Aisha (may Allah be pleased with her) which follows indicates this. — 1 (Urdu): It is beneficial for her, so the husband should give her permission to go out and not prevent her. This ruling is in the case when there is no fear of fitna on the woman or because of the woman. In that era, the majority of conditions were of peace and lack of fear. But now in our time, corruption and evil are common and there are many mischief-makers. The reason for the restriction of peace we mentioned is indicated by the hadith of Hazrat Aisha (may Allah be pleased with her). (T)

The meaning of the passage from its fourth volume has been clarified that now visiting graves is not only disliked (makruh) for women but prohibited (haram). It was not said that it is prohibited for such a woman and allowed for such a woman; it was prohibited for such a woman even before. What is the specification of this time? Further, it was mentioned especially for the women of Egypt, and its reasoning was given that their going out is by way of fitna. You have already heard this for the same reason of priority of prohibition that "from ash-Shafi'i, it is permissible for them to go out" (It is narrated from Imam Shafi'i that their going out was permissible. — 2 (T)). Therefore, Kirmani, then Asqalani, then Qastalani, all of whom are Shafi'is, went towards this in the commentaries of Bukhari. Kirmani, after citing the saying of Imam Tamimi that the corruption of some women is a proof for prohibiting all women, said:

(Arabic): I said: What is relied upon is what we have said, and corruption has not occurred in all. — 3 (Urdu): I said: What is reliable is what we have stated, and corruption and evil have not come into all. (T)

See in Volume 4 from Abu Umar Abd al-Barr:

(Arabic): As for young women, safety from fitna is not assured for them nor because of them wherever they go out, and nothing is better for a woman than staying in the depths of her house. — 4 (Urdu): But young women, wherever they go out, there is no lack of fear of fitna because of them and upon them. And for a woman, staying inside her house is best. (T)

[Footnotes] 1. Umda al-Qari Sharh al-Bukhari, Chapter: Women going out to Mosques, Idara al-Tiba'at al-Muniriyya Beirut 2/157 2. Umda al-Qari Sharh al-Bukhari, Chapter: Women going out to Mosques, Idara al-Tiba'at al-Muniriyya Beirut 2/157 3. Umda al-Qari Sharh al-Bukhari, Chapter: Women going out to Mosques, Idara al-Tiba'at al-Muniriyya Beirut 1/159 4. Umda al-Qari Sharh al-Bukhari, Chapter: Visiting Graves, Idara al-Tiba'at al-Muniriyya Beirut 8/29

[सारणी शीर्षक: अरबी सामग्री | उर्दू अनुवाद] (अरबी): उसे अनुमति देनी चाहिए और उसे उस चीज़ से नहीं रोकना चाहिए जिसमें उसका लाभ हो, और यह तब है जब उसके लिए या उसके कारण फ़ितना (बुराई) का डर न हो। उस समय में यही स्थिति सामान्य थी, हमारे इस वर्तमान समय के विपरीत, क्योंकि इसमें भ्रष्टाचार फैल गया है और भ्रष्ट लोग बहुत हैं। और हज़रत आयशा (रज़ियल्लाहु अन्हा) की हदीस जो आगे आएगी, इसी ओर संकेत करती है। — 1 (उर्दू): उसके लिए इसमें लाभ है, इसलिए पति को चाहिए कि वह उसे बाहर जाने की अनुमति दे दे और मना न करे, और यह आदेश उस स्थिति में है जब महिला पर और महिला के कारण फ़ितने की आशंका न हो। उस ज़माने में अक्सर स्थितियाँ इत्मीनान और बिना डर वाली ही थीं, मगर अब हमारे ज़माने में तो फ़साद और बुराई आम है और भ्रष्ट लोग बहुत हैं, हमने शांति की जो शर्त ज़िक्र की है उसकी दलील हज़रत आयशा (रज़ियल्लाहु अन्हा) की हदीस है। (त)

इसकी चौथी जिल्द की इबारत का अर्थ स्पष्ट कर दिया गया है कि अब महिलाओं के लिए कब्रों की ज़ियारत (दर्शन) करना न केवल मकरूह (नापसंद) है बल्कि हराम (वर्जित) है। यह नहीं कहा गया कि ऐसी महिला के लिए हराम है और वैसी के लिए हलाल है; क्योंकि ऐसी महिला के लिए तो पहले भी हराम था। इस ज़माने की क्या विशेषता है? आगे विशेष रूप से मिस्र की महिलाओं का उल्लेख किया गया और उसका कारण यह बताया गया कि उनका बाहर निकलना फ़ितने का कारण है। यह वही निषेध की प्राथमिकता का कारण है जिसे आप पहले ही सुन चुके हैं कि "इमाम शाफ़ई से रिवायत है कि उनके लिए निकलना जायज़ था" (इमाम शाफ़ई से रिवायत है कि उनका बाहर निकलना जायज़ था। — 2 (त))। इसीलिए किरमानी, फिर असक़लानी, फिर क़स्तलानी, जो सभी शाफ़ई हैं, बुखारी की व्याख्याओं में इसी ओर गए। किरमानी ने इमाम तमीमी का यह कथन उद्धृत करके कहा कि कुछ महिलाओं के भ्रष्टाचार के कारण सभी महिलाओं पर पाबंदी का तर्क दिया गया है:

(अरबी): मैंने कहा: विश्वसनीय वही है जो हमने कहा है और सब में फ़साद (भ्रष्टाचार) नहीं हुआ है। — 3 (उर्दू): मैंने कहा: विश्वसनीय वही है जो हमने बयान किया, और फ़साद और खराबी सब में नहीं आई है। (त)

जिल्द चौथी में अबू उमर अब्द अल-बर्र से देखिए:

(अरबी): जहाँ तक जवान महिलाओं का सवाल है, वे जहाँ भी निकलें उनसे और उनके कारण फ़ितने से बेख़ौफ़ नहीं रहा जा सकता, और महिला के लिए अपने घर के अंदर रहने से बेहतर कुछ नहीं है। — 4 (उर्दू): लेकिन जवान औरतें तो वे जहाँ भी निकलें उनके कारण और उनके ऊपर फ़ितने से बेख़ौफ़ नहीं रहा जा सकता। और औरत के लिए अपने घर के अंदर रहना सबसे अच्छा है। (त)

[पाद टिप्पणियाँ] 1. उम्दह अल-कारी शरह अल-बुखारी, अध्याय: महिलाओं का मस्जिदों की ओर निकलना, इदारा अल-तिबाअत अल-मुनीरिय्या बेरूत 2/157 2. उम्दह अल-कारी शरह अल-बुखारी, अध्याय: महिलाओं का मस्जिदों की ओर निकलना, इदारा अल-तिबाअत अल-मुनीरिय्या बेरूत 2/157 3. उम्दह अल-कारी शरह अल-बुखारी, अध्याय: महिलाओं का मस्जिदों की ओर निकलना, इदारा अल-तिबाअत अल-मुनीरिय्या बेरूत 1/159 4. उम्दह अल-कारी शरह अल-बुखारी, अध्याय: कब्रों की ज़ियारत, इदारा अल-तिबाअत अल-मुनीरिय्या बेरूत 8/29

[جدول: عربی متن | اردو ترجمہ] ان یأذن لها ولا یمنعها مما فیه منفعتها وذلك اذا لم یخف الفتنة علیها ولا بها وقد کان هو الاغلب فی ذلك الزمان بخلاف زماننا هذا فان الفساد فیه فاش والمفسدون کثیرون وحدیث عائشه رضی الله تعالی عنها الذی یأتی یدل علی هذا - 1 | منفعت ہے اس کے لئے چاہئے کہ شوہر اسے نکلنے کی اجازت دے دے اور منع نہ کرے، اور یہ حکم اس صورت میں ہے جب عورت پر اور عورت کے سبب فتنے کا اندیشہ نہ ہو۔ اور اس زمانے میں اکثری حالات اطمینان وبے خوفی ہی کی تھی، مگر اب ہمارے زمانے میں تو فساد اور برائی عام ہے اور مفسد بہت ہیں، ہم نے حالتِ امن کی جو قید ذکر کی اسکی دلیل حضرت عائشہ رضی اللہ تعالٰی عنہا کی حدیث ہے۔ (ت)

اس کی جلد چہارم کی عبارت کا مطلب واضح کر دیا کہ اب زیارتِ قبور عورتوں کو مکروہ ہی نہیں بلکہ حرام ہے۔ یہ نہ فرمایا کہ ویسی کو حرام ہے ایسی کو حلال ہے، ویسی کو تو پہلے بھی حرام تھا، اس زمانہ کی کیا تخصیص آگے فرمایا خصوصاً زنانِ مصر اور اس کی تعلیل کی کہ ان کا خروج بروجہ فتنہ ہے۔ یہ وہی اولویتِ تحریم کی وجہ سے سن چکے کہ عن الشافعی یباح لهن الخروج (امام شافعی سے روایت ہے کہ ان کا نکلنا جائز تھا۔ ت) ولہذا کرمانی پھر عسقلانی پھر قسطلانی کہ سب شافعیہ ہیں، شروحِ بخاری میں اس طرف گئے۔ کرمانی نے قولِ امام تمیمی کہ فسادِ بعضِ زناں کے سبب سب عورتوں کو ممانعت پر دلیل ہے۔ نقل کرکے کہا:

قلت الذی یعول علیه ماقلناه ولم یحدث الفساد فی الکل - 3 | میں نے کہا: معتمد وہی ہے جو ہم نے بیان کیا، اور فساد و خرابی سب میں نہیں آئی ہے۔ (ت)

جلد چہارم میں ابو عمر عبد البر سے دیکھئے :

اما الشواب فلا تومن من الفتنة علیھن وبھن حیث خرجن، ولا شیئ للمرأة احسن من لزوم قعر بیتھا - 4

| لیکن جوان عورتیں تو وہ جہاں بھی نکلیں ان کے سبب اور ان کے اوپر فتنہ سے بے خوفی نہیں۔ اور عورت کے لیے اپنے گھر کے اندر رہنا سب سے اچھا ہے (ت)

1 عمدة القاری شرح البخاری باب خروج النساء الی المساجد ادارة الطباعة المنیریة بیروت ۲ / ۱۵۷

2 عمدة القاری شرح البخاری باب خروج النساء الی المساجد ادارة الطباعة المنیریة بیروت ۲ / ۱۵۷

3 عمدة القاری شرح البخاری باب خروج النساء الی المساجد ادارة الطباعة المنیریة بیروت ۱ / ۱۵۹

4 عمدة القاری شرح البخاری باب زیارت القبور ادارة الطباعة المنیریة بیروت ۲۹/۸

Fatawa Razawiyya Volume 9

Praise be to Allah, now there is no lack of clarity regarding the truth. Look at this also, that our scholars have enumerated a few instances for the emergence (leaving the house) of women, which are described in our treatise "Murawaj al-Naja li Khuruj al-Nisa" (1315 AH). And they have clearly stated that permission is not granted for anything other than these. And if the husband gives permission, then both will be sinners. In Durr al-Mukhtar it is stated:

[Box 1 Content] Arabic Text: لا تخرج الالحق لها او عليها او لزيارة ابويها كل جمعة مرة او المحارم كل سنة ولكونها قابلة او غاسلة لافيها عدا ذلك وان اذن كانا عاصين Urdu Translation: A woman should not go out except for her own right or due to a right over her, or once every week to visit her parents, or once a year to visit other mahram (unmarriageable) relatives, or because she is a midwife or a washer of the dead. She should not go out in situations other than these. If the husband permits, both will be sinners. (T)

In Nawazil Imam Faqih Abu al-Laith, Fatawa Khulasa, Fath al-Qadeer, and others, it is stated:

[Box 2 Content] Arabic Text: يجوز للخروج ان يأذن لها بالخروج الى سبعة مواضع اذا استأذنته زيارة الابوين وعيادتهما وتعزيتهما او احدهما وزيارة المحارم فان كانت قابلة او غاسلة او كان لها على أخر حق او كان لآخر عليها حق تخرج بالاذن ولغير الاذن والحج على هذا وفيما عدا ذلك من زيارة الاجانب وعيادتهم والوليمة لايأذن لها لو اذن وخرجت كانا عصيين Urdu Translation: A husband can allow his wife to go out in seven instances: (1) meeting both parents or one of them, (2) visiting them when they are sick, (3) condoling them, (4) meeting mahram relatives, (5) and if she is a midwife, (6) or if she is a washer of the dead, (7) or if she has a right over someone else or someone else has a right over her, then she can go with or without permission. Hajj is also under the same ruling. Other than these situations, such as visiting strangers, visiting them when sick, and attending feasts, the husband should not give permission for these, and if he gave permission and the woman went, both would be sinners. (T)

Observe, among these, was visiting graves exempted anywhere? Can such an exemption be found in any reliable book? (13) I say: And with Allah is success and through Him is attainment to the heights of verification (I say... and success...

---

1. Durr al-Mukhtar, Book of Nikah, Chapter on Mahr, Mujtabai Press Delhi, 1/202

2. Khulasat al-Fatawa, Fifth Chapter on the Woman Leaving the House, Maktaba Habibiyah Quetta, 2/53

फ़तावा रज़विया जिल्द नवीं (खंड 9)

अल्हम्दु लिल्लाह, अब सत्य की स्पष्टता में कोई कमी नहीं रही। ज़रा यह भी देख लीजिए कि हमारे विद्वानों ने महिलाओं के बाहर निकलने के कुछ स्थानों को गिनाया है, जिसका वर्णन हमारे शोधपत्र 'मुरुज-उन-नजा ली-खुरुज-उन-निसा' (1315 हिजरी) में है। और साफ़ फ़रमा दिया कि इनके सिवा किसी और के लिए अनुमति नहीं है। और अगर पति अनुमति देगा तो दोनों पापी होंगे, 'दुर्रे मुख्तार' में है:

[बॉक्स 1 विषय-वस्तु] अरबी पाठ: لا تخرج الالحق لها او عليها او لزيارة ابويها كل جمعة مرة او المحارم كل سنة ولكونها قابلة او غاسلة لافيها عدا ذلك وان اذن كانا عاصين उर्दू अनुवाद: स्त्री बाहर न निकले सिवाय अपने हक़ के लिए या अपने ऊपर किसी हक़ के कारण, या हर हफ्ते में एक बार माता-पिता से मिलने के लिए। या साल में एक बार अन्य महरम (जिनसे विवाह हराम हो) रिश्तेदारों से मिलने के लिए। या इस वजह से कि वह दाई (प्रसूति सहायिका) है या मृत को नहलाने वाली है। इनके अतिरिक्त स्थितियों में न निकले। यदि पति ने अनुमति दी तो दोनों पापी होंगे। (त)

नवाज़िल इमाम फ़क़ीह अबू अल-लैस और फ़तावा ख़ुलासा व फ़तहुल क़दीर आदि में है:

[बॉक्स 2 विषय-वस्तु] अरबी पाठ: اذا يجوز للخروج ان يأذن لها بالخروج الى سبعة مواضع استأذنته زيارة الابوين وعيادتهما وتعزيتهما او احدهما وزيارة المحارم فان كانت قابلة او غاسلة او كان لها على أخر حق او كان لآخر عليها حق تخرج بالاذن ولغير الاذن والحج على هذا وفيما عدا ذلك من زيارة الاجانب وعيادتهم والوليمة لايأذن لها لو اذن وخرجت كانا عصيين उर्दू अनुवाद: पति स्त्री को सात स्थानों पर जाने की अनुमति दे सकता है: (1) माता-पिता दोनों या किसी एक से मिलना, (2) उनकी बीमारपुर्सी (عیادت) करना, (3) उनकी ताज़ियत (शोक संवेदना) करना, (4) महरम रिश्तेदारों से मिलना, (5) यदि वह दाई हो, (6) या मृत को नहलाने वाली हो, (7) या उसका किसी दूसरे पर हक़ हो या दूसरे का उस पर हक़ हो, तो अनुमति से और बिना अनुमति दोनों तरह से जा सकती है। हज भी इसी हुक्म में है। इनके अलावा स्थितियाँ जैसे अजनबियों से मिलना, बीमारपुर्सी और वलीमा (भोज) के लिए पति अनुमति न दे, और अगर अनुमति दी और स्त्री गई तो दोनों पापी होंगे। (त)

देखिए, इनमें कहीं कब्रों की ज़ियारत (दर्शन) का भी अपवाद किया गया है? क्या यह अपवाद किसी विश्वसनीय पुस्तक में मिल सकता है? (13) अक़ूल: और अल्लाह ही सफलता देने वाला है और उसी के माध्यम से शोध की ऊंचाइयों तक पहुंचना संभव है (मैं कहता हूँ... और तौफ़ीक़...

---

1. दुर्रे मुख्तार, किताबुन निकाह, बाबुल महर, मतबा मुजतबाई देहली, 1/202
2. ख़ुलासतुल फ़तावा, अल-मजलिसुल ख़ामिस फ़ी ख़ुरूज-इल-मरअह मिनल बैत, मकतबा हबीबिया क्वेटा, 2/53

فتاوٰی رضویہ جلد نہم

الحمد للہ اب تو وضوح حق میں کچھ کمی نہ رہی۔ ذرا یہ بھی دیکھ لیجئے کہ ہمارے علماء نے خروج زن کے چند مواضع گنائے جن کا بیان ہمارے رسالہ مروج النجا لخروج النساء (۱۳۱۵ھ) میں ہے۔ اور صاف فرما دیا کہ ان کے سوا میں اجازت نہیں ۔ اور اگر شوہر اذن دے گا تو دونوں گنہگار ہوں گے، در مختار میں ہے :

[Arabic Text [Box 1 Content: لا تخرج الالحق لها او علیها او لزیارة ابویها کل جمعة مرة او المحارم کل سنة ولکونها قابلة او غاسلة لافیها عدا ذلك وان اذن کانا عاصین

Urdu - 1 Translation: عورت نہ نکلے مگر اپنے حق کے لیے یا اپنے اوپر کسی حق کے سبب، یا ہر ہفتہ میں ایک بار والدین کی ملاقات کے لیے۔ یا سال میں ایک بار دیگر محارم کی ملاقات کے لیے۔ یا اس وجہ سے کہ وہ دایہ یا میت کو نہلانے والی ہے۔ ان کے علاوہ صورتوں میں نہ نکلے۔ اگر شوہر نے اجازت دی تو دونوں گنہگار ہوں گے۔ (ت)

نوازل امام فقیہ ابواللیث و فتاوٰی خلاصہ و فتح القدیر و غیر ہا میں ہے :

[Arabic Text [Box 2 Content: یجوز للخروج ان یأذن لها بالخروج الی سبعة مواضع اذا استأذنته زیارة الابوین وعیادتهما وتعزیتهما او احدهما وزیارة المحارم فان کانت قابلة او غاسلة او کان لها علی أخر حق او کان لآخر علیها حق تخرج بالاذن ولغیر الاذن والحج علی هذا وفیما عدا ذلك من زیارة الاجانب وعیادتهم والولیمة لایأذن لها لو اذن وخرجت کانا عصیین

Urdu - 2 Translation: شوہر عورت کو سات مقامات میں نکلنے کی اجازت دے سکتا ہے : (۱) ماں باپ دونوں یا کسی ایک کی ملاقات (۲) ان کی عیادت (۳) ان کی تعزیت (۴) محارم کی ملاقات

(۵) اور اگر دایہ ہو (۶) یا مردہ کو نہلانے والی ہو (۷) یا اس کا کسی دوسرے پر حق ہو یا دوسرے کا اس کے اوپر حق ہو تو اجازت سے اور بلا اجازت دونوں طرح جاسکتی ہے۔ حج بھی اسی حکم میں ہے۔ ان کے علاوہ صورتیں جیسے اجنبیوں کی ملاقات ، عیادت اور ولیمہ ان کے لیے شوہر اجازت نہ دے اور اگر اجازت دی اور عورت گئی تو دونوں گنہگار ہوں گے۔ (ت)

ملاحظہ ہوں ان میں کہیں زیارت قبور کا بھی استثناء کیا ، کیا یہ استثناء کسی معتبر کتاب میں مل سکتا ہے۔ (۱۳) اقول : وباللہ التوفیق وبہ الوصول الی ذری التحقیق (میں کہتا ہوں _ اور توفیق

---

1 در مختار کتاب النکاح باب المہر مطبع مجتبائی دہلی ۱/ ۲۰۲ 2 خلاصۃ الفتاوٰی المجلس الخامس فی خروج المراۃ من البیت مکتبہ حبیبیہ کوئٹہ ۵۳/۲

Fatawa Razawiya - Volume 9

...is only from God. And through His help, access to research is gained. (T) From all these illustrious discussions, by the grace of Allah Almighty, a grand and subtle success has emerged. Common proponents of the essence of visiting graves write that permission has also been granted to women. In general books, it is stated only to this extent, and they do not explicitly mention women going out for visiting graves. On the other hand, those who prevent the visiting of graves prohibit women from going, thus citing the prohibition of going out to the mosque as evidence, and they argue based on the fear of 'fitna' (tribulation/temptation) in their going out. All the texts we have mentioned point in this direction. So if the grave is inside the house, or if a woman, for example, went for Hajj or some permissible journey and encountered a grave on the way and visited it, provided it is free from wailing, lamenting, renewing of grief, crying, mourning, excess or deficiency in etiquette, and other religiously prohibited acts. The reports cited in 'Kashf al-Bazdawi' regarding the correctness of the concession mean only this much.

[Arabic Boxed Text]: Where it is said: "And the most correct opinion is that the concession is established for both men and women. For it is narrated that Aisha (may Allah be pleased with her) used to visit the grave of the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) at all times, and when she went out for Hajj, she visited the grave of her brother Abdur Rahman."

[Urdu Boxed Text]: He states that the most correct opinion is that the concession is established for both men and women, as it is narrated that Hazrat Aisha (may Allah be pleased with her) would visit the grave of the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) at all times, and when she went for Hajj, she would visit the grave of her brother Abdur Rahman situated on the way. (T)

The passages from Bahr al-Ra'iq, Alamgiri, Jami' al-Rumuz, Mukhtar al-Fatawa, Kashf al-Ghita, Sirajiyya, Durr al-Mukhtar, and Fath al-Mannan, which were used to authenticate the issues, are not against us. Yes, there is a rebuttal to 'Miat Masa'il' in which it was stated absolutely:

"For women, visiting graves, according to the most correct opinion, is prohibitively disliked (Makruh Tahrimi)."

[Boxed text below]: For women, visiting graves, according to the most correct opinion, is prohibitively disliked (Makruh Tahrimi). (T)

Undoubtedly, the same Durr al-Mukhtar in which it was stated: "There is no harm in visiting graves for women" (T), also states: "And their going out is prohibitively disliked (Makruh Tahrimi)." (T)

Footnotes: 1. Kashf al-Asrar ‘an Usul al-Bazdawi, Chapter on Permissibility of Women Visiting Graves, Dar al-Kitab al-Arabi Beirut, 3/186. 2. Miat Masa’il. 3. Durr al-Mukhtar, Chapter on Funeral Prayers, Mujtabai Press Delhi, 1/124. 4. Durr al-Mukhtar, Chapter on Funeral Prayers, Mujtabai Press Delhi, 1/124.

फ़तावा रज़विया - जिल्द नौ

...केवल ईश्वर से है। और उसी की सहायता से शोध तक पहुँच प्राप्त होती है। (त) इन सभी गौरवशाली चर्चाओं से, अल्लाह तआला के अनुग्रह से, एक महान और सूक्ष्म सफलता सामने आई है। कब्रों के दर्शन के मूल समर्थकों का लिखना है कि इसकी अनुमति महिलाओं को भी दी गई है। सामान्य पुस्तकों में केवल इतना ही उल्लेख है और वे महिलाओं के कब्रों के दर्शन के लिए बाहर निकलने का उल्लेख नहीं करते हैं। दूसरी ओर, जो कब्रों के दर्शन से रोकते हैं, वे महिलाओं के जाने को मना करते हैं, और इसलिए मस्जिद जाने की मनाही का प्रमाण लाते हैं, और उनके बाहर निकलने में 'फ़ितना' (उपद्रव/प्रलोभन) के डर से दलील देते हैं। हमने जिन सभी ग्रंथों का उल्लेख किया है, वे इसी ओर इशारा करते हैं। इसलिए यदि कब्र घर के भीतर हो, या महिला उदाहरण के तौर पर हज या किसी जायज़ यात्रा पर गई हो और रास्ते में कोई कब्र मिली और उसने उसका दर्शन कर लिया, बशर्ते कि वह विलाप, शोक, दुख के नवीनीकरण, रोने, मातम, शिष्टाचार की अधिकता या कमी और अन्य शरीअत द्वारा वर्जित कार्यों से मुक्त हो। 'कश्फ़ अल-बज़दवी' में जिन रिवायतों से रियायत की प्रमाणिकता पर तर्क दिया गया है, उनका अर्थ केवल इतना ही है।

[अरबी बॉक्स टेक्स्ट]: जहाँ कहा गया: "और सबसे सही राय यह है कि रियायत पुरुषों और महिलाओं दोनों के लिए साबित है। क्योंकि यह रिवायत है कि हज़रत आयशा (अल्लाह उनसे प्रसन्न हो) हर समय अल्लाह के रसूल (उन पर अल्लाह की शांति और दया हो) की कब्र का दर्शन करती थीं, और जब वह हज के लिए बाहर निकलीं, तो उन्होंने रास्ते में स्थित अपने भाई अब्दुल रहमान की कब्र का दर्शन किया।"

[उर्दू बॉक्स टेक्स्ट]: वह कहते हैं कि सबसे सही राय यह है कि रियायत पुरुषों और महिलाओं दोनों के लिए साबित है, जैसा कि रिवायत है कि हज़रत आयशा (अल्लाह उनसे प्रसन्न हो) हर समय अल्लाह के रसूल (उन पर अल्लाह की शांति और दया हो) की कब्र का दर्शन करती थीं, और जब वह हज के लिए जातीं, तो रास्ते में स्थित अपने भाई अब्दुल रहमान की कब्र का दर्शन करतीं। (त)

बहर-उर-रायिक, आलमगीरी, जामी-उर-रुमुज़, मुख्तार अल-फ़तावा, कश्फ़ अल-ग़िता, सिराजिया, दुर्र-ए-मुख्तार और फ़तह अल-मन्नान के वे उद्धरण जिनसे मसलों को सही साबित करने के लिए प्रमाण लिया गया, वे हमारे विरुद्ध नहीं हैं। हाँ, 'मिअत मसाइल' पर खंडन है जिसमें निरपेक्ष रूप से कहा गया था:

"महिलाओं के लिए कब्रों का दर्शन सबसे सही राय के अनुसार मकरूह तहरीमी (निषिद्ध के करीब) है।"

[नीचे बॉक्स वाला टेक्स्ट]: महिलाओं के लिए कब्रों का दर्शन सबसे सही राय के अनुसार मकरूह तहरीमी है। (त)

निश्चित रूप से वही दुर्र-ए-मुख्तार जिसमें यह था: "महिलाओं के लिए कब्रों के दर्शन में कोई हर्ज नहीं है" (त), उसी में यह भी है: "और उनका बाहर निकलना मकरूह तहरीमी है।" (त)

पाद टिप्पणियाँ: 1. कश्फ़ अल-असरार अन उसूल अल-बज़दवी, महिलाओं के कब्र दर्शन की अनुमति का बयान, दार अल-किताब अल-अरबी बेरुत, 3/186। 2. मिअत मसाइल। 3. दुर्र-ए-मुख्तार, जनाज़े की नमाज़ का अध्याय, मुजतबाई प्रेस दिल्ली, 1/124। 4. दुर्र-ए-मुख्तार, जनाज़े की नमाज़ का अध्याय, मुजतबाई प्रेस दिल्ली, 1/124।

पृष्ठ 563/948

خدا ہی سے ہے۔ اور اسی کی مدد سے تحقیق تک رسائی ہے۔ ت) ان تمام مباحث جلیلہ سے بحمد اللہ تعالٰی ایک جلیل و دقیق توفیق انیق ظاہر ہوئی، عام مجوزین نفس زیارتِ قبر لکھتے ہیں کہ اس کی اجازت عورتوں کو بھی ہوئی، زیارتِ قبور کے لیے خروجِ نساء نہیں کہتے میں عام کتب میں اسی قدر ہے اور مانعین زیارتِ قبر کے لیے عورتوں کے جانے کو منع فرماتے ہیں، ولہٰذا خروج الی المسجد کی ممانعت سے سند لاتے ہیں، اور ان کے خروج میں خوف فتنہ سے استدلال فرماتے ہیں۔ تمام نصوص کہ ہم نے ذکر کیے اسی طرف جاتے ہیں، تو اگر قبر گھر میں ہو یا عورت مثلاً حج یا کسی سفر جائز کو گئی راہ میں کوئی قبر ملی اس کی زیارت کرلی بشرطیکہ جزع و فزع و تجدیدِ حزن و بکاء و نوحہ و افراط و تفریطِ ادب و غیرہما منکراتِ شرعیہ سے خالی ہو۔ کشف بزدوی میں جن روایات سے صحتِ رخصت پر استناد فرمایا ان کا مفاد اسی قدر ہے۔

[Boxed Text Left (Arabic)]: حیث قال والاصح ان الرخصة ثابتة للرجال والنساء جمیعا فقد روی ان عائشه رضی اللہ تعالی عنها کانت تزور قبر رسول اللہ صلی اللہ تعالی علیه وسلم فی کل وقت وانها لما خرجت حاجة زارت قبرا اخیها عبدالرحمن 1 ۔

[Boxed Text Right (Urdu)]: وہ فرماتے ہیں اصح یہ ہے کہ رخصت مردوں اور عورتوں دونوں کے لیے ثابت ہے اس لیے کہ مروی ہے کہ حضرت عائشہ رضی اللہ تعالٰی عنہا ہر وقت قبرِ رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم کی زیارت کرتی تھیں اور جب حج کو جاتیں تو راہ میں واقع اپنے بھائی عبدالرحمن کی قبر کی زیارت کرتیں۔ (ت)

بحر الرائق وعالمگیری وجامع الرموز ومختار الفتاوی وکشف الغطاء وسراجیہ ودر مختار وفتح المنان کی عبارتیں جن سے تصحیح المسائل میں استناد کیا۔ ہمارے خلاف نہیں ۔ ہاں مائتہ مسائل پر رد ہیں جس میں مطلق کہا تھا:

زنان را زیارتِ قبور بقول اصح مکروہ تحریمی ست 2۔ عورتوں کے لیے زیارتِ قبور بقول اصح مکروہِ تحریمی ہے۔ (ت)

لا جرم وہی در مختار جس میں تھا۔ لا بأس بزیارۃ القبور للنساء 3 (عورتوں کے لیے زیارتِ قبور میں کوئی حرج نہیں۔ ت) اسی میں ہے: ویکرہ خروجھن تحریما 4 (عورتوں کا نکلنا مکروہ تحریمی ہے۔ ت)

1 کشف الاسرار عن اصول البزدوی بیان جواز زیارۃ القبور للنساء دار الکتاب العربی بیروت ۳/۱۸۶

2 مائتہ مسائل 3 در مختار باب صلوۃ الجنائز مطبع مجتبائی دہلی ۱/ ۱۲۴ 4 در مختار باب صلوۃ الجنائز مطبع مجتبائی دہلی ۱/ ۱۲۴

Volume Nine

Fatawa Razawiyya

The same is in Bahr al-Ra'iq: "The more correct opinion is that the permission is established for both men and women." In the same [book] it is stated:

Arabic Text	**Urdu Translation/Commentary**
It is not appropriate for women to go out for a funeral because the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) forbade them from that and said, "Go back, burdened with sin, not rewarded."	Women should not go to funerals because the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) forbade them from it and said that if they go, they will return without reward and burdened with sin. (t) Following a funeral is Fard Kifayah [communal obligation]; when their going out for it is impermissible, then how can visiting graves, which is only Mustahabb [recommended], be permissible? Furthermore, the permissibility of visiting a grave in itself, for which a woman's going out is not required, is also established upon investigation, provided the aforementioned conditions are met, but their gathering is rarely free from the rebellious gaze of women, and a ruling is not based on the rare. So, the safest path is to refrain from it too. It is in Radd al-Muhtar and Minhat al-Khaliq:
If that [visiting graves] is to renew sorrow, weeping, and wailing according to their custom, then it is not permissible; upon this is based the Hadith: "May Allah curse the women who visit graves." But if it is for taking a lesson, feeling compassion without weeping, and seeking blessings by	If this visit is to renew grief and for weeping and wailing as is the custom of women, then it is impermissible, and the Hadith is interpreted as such: "God's curse be upon those women who go to visit graves." And if it is to take a lesson, to feel compassion without weeping, and to seek blessings from the graves of the righteous,

Arabic Text

visiting the graves of the righteous, then there is no harm if they are elderly women, and it is disliked if they are young, just like attending congregational prayers in the mosque. [End of quote]. It is added in Radd al-Muhtar: "And this is a good reconciliation." [End of quote]. And I have written a marginal note on it.

I say: It is known that the fatwa is on absolute prohibition even if it is an old woman or at night. Similarly, regarding visiting graves, rather it is even more so.

Urdu Translation/Commentary

then just like attending congregational prayers in the mosque, there is no harm for elderly women, and it is disliked for young ones. (End of quote). In Radd al-Muhtar, it is further added that "This is an excellent reconciliation." (End of quote). On this, I (Imam Ahmad Raza) have written this footnote:

I say: It is known that the fatwa is that attendance at congregations is absolutely prohibited for women, even if it is an elderly woman and even if she goes out at night. So, the same ruling will apply to visiting graves, rather it will be even more so here. (t)

1. Bahr al-Ra'iq, Book of Funerals, Chapter: The Sultan is more entitled to the prayer, etc., H.M. Saeed Company Karachi, 2/190
2. Bahr al-Ra'iq, Book of Funerals, Chapter: The Sultan is more entitled to the prayer, etc., H.M. Saeed Company Karachi, 2/192
3. Radd al-Muhtar, Topic regarding visiting graves, Al-Matba'ah al-Misriyyah, Egypt, 1/602

भाग नौ

फ़तावा रज़विया

वही बहर-उर-राईक़ जिसमें था: "सही बात यह है कि अनुमति पुरुषों और महिलाओं दोनों के लिए साबित है।" इसी में है:

अरबी पाठ

महिलाओं के लिए जनाज़े में निकलना उचित नहीं है क्योंकि नबी (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने उन्हें इससे मना किया और फ़रमाया, "वापस जाओ, गुनाह का बोझ लिए हुए, बिना किसी सवाब के।"

अगर वह (कब्रों की ज़ियारत) दुख को ताज़ा करने, रोने और विलाप करने के लिए हो जैसा कि उनकी आदत है, तो यह जायज़ नहीं है; इसी पर यह हदीस

उर्दू अनुवाद/व्याख्या

औरतों को जनाज़े में नहीं जाना चाहिए क्योंकि नबी सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने उनके लिए इससे मना किया है और फ़रमाया है कि अगर वे जाएँगी तो सवाब से महरूम और गुनाह से बोझिल होकर लौटेंगी। (त)

जनाज़े के पीछे चलना फ़र्ज़-ए-किफ़ाया है; जब इसके लिए उनका निकलना नाजायज़ हुआ, तो कब्रों की ज़ियारत, जो केवल मुस्तहब (पसंदीदा) है, उसके लिए कैसे जायज़ हो सकता है? फिर कब्र की ज़ियारत स्वयं, जिसके लिए औरत का बाहर निकलना आवश्यक नहीं है, उसकी अनुमति भी शोध के अनुसार स्वयं में है, बशर्ते कि पूर्वोक्त शर्तें पूरी हों, लेकिन उनका इकट्ठा होना विरल ही औरतों की विद्रोहपूर्ण नज़र से मुक्त होता है, और दुर्लभ पर कोई नियम नहीं होता। तो, सबसे सुरक्षित रास्ता इससे भी दूर रहना है। रद-उल-मुहतार और मिन्हात-उल-खालिक में है:

अगर यह ज़ियारत गम ताज़ा करने और रोने-चिल्लाने के लिए हो जैसा कि औरतों की आदत है, तो यह नाजायज़ है और इसी पर यह हदीस

अरबी पाठ	उर्दू अनुवाद/व्याख्या
लागू होती है: "अल्लाह की लानत उन औरतों पर जो कब्रों की ज़ियारत को जाएं।" और अगर यह सबक लेने, बिना रोए रहम खाने और नेक लोगों की कब्रों की ज़ियारत से बरकत हासिल करने के लिए हो, तो बूढ़ी औरतों के लिए कोई हर्ज नहीं है और जवानों के लिए मकरूह (नापसंद) है, जैसे मस्जिद में जमात में हाज़िरी। [उद्धरण समाप्त]। रद-उल-मुहतार में इतना और जोड़ा गया है: "और यह एक अच्छा सामंजस्य है।" [उद्धरण समाप्त]। और मैंने इस पर हाशिया लिखा है।	आधारित है: "उन औरतों पर खुदा की लानत जो कब्रों की ज़ियारत को जाएँ।" और अगर सबक हासिल करने, बिना रोए रहम खाने और नेक लोगों की कब्रों से बरकत लेने के लिए हो, तो मस्जिद की जमात में हाज़िरी की तरह बूढ़ियों के लिए कोई हर्ज नहीं और जवानों के लिए मकरूह है। (उद्धरण समाप्त)। रद-उल-मुहतार में इतना और है कि "यह बेहतरीन तालमेल है"। इस पर मैंने (इमाम अहमद रज़ा ने) यह हाशिया लिखा है:
मैं कहता हूँ: यह ज्ञात है कि फ़तवा पूर्ण निषेध पर है, चाहे वह बूढ़ी औरत हो या रात का समय हो। इसी तरह कब्रों की ज़ियारत के मामले में भी है, बल्कि यहाँ यह और भी अधिक है।	मैं कहता हूँ: यह ज्ञात है कि फ़तवा इस पर है कि औरतों के लिए जमातों में हाज़िरी पूरी तरह से मना है, चाहे वह बूढ़ी औरत हो और चाहे रात को निकले। तो यही नियम कब्रों की ज़ियारत में भी होगा, बल्कि यहाँ यह और भी प्रबल होगा। (त)

1. बहर-उर-राईक़, किताबुल जनाइज़, फ़स्ल 'उस-सुल्तान-अहक़ु...', एच.एम. सईद कंपनी कराची, 2/190
2. बहर-उर-राईक़, किताबुल जनाइज़, फ़स्ल 'उस-सुल्तान-अहक़ु...', एच.एम. सईद कंपनी कराची, 2/192
3. रद-उल-मुहतार, मतलब फ़ी ज़ियारतुल क़ुबूर, इदारातुल तिबाअतुल मिस्रिया, मिस्र, 1/602

جلد نہم

فتاویٰ رضویہ

وہی بحر الرائق جس میں تھا: الاصح ان الرخصة لهما 1 (اصح یہ ہے کہ رخصت مردوں عورتوں دونوں کے لیے ثابت ہے۔ت) اسی میں ہے:

متنِ عربی	**اردو ترجمہ و تشریح**
لا ينبغی للنساء ان يخرجن فی الجنازة لان النبي صلی الله تعالی عليه وسلم نهاهن عن ذلك وقال انصرفن مأزورات غير مأجورات 2-	عورتوں کو جنازے میں نہ جانا چاہیے اس لئے کہ نبی صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم نے ان کے لیے اس سے ممانعت کی ہے اور ارشاد فرمایا ہے کہ اگر جائیں تو ثواب سے خالی گناہ سے بھاری ہو کر پلٹیں گی۔ (ت) اتباعِ جنازہ کو فرضِ کفایہ ہے جب اس کے لیے ان کا خروج ناجائز ہوا تو زیارت قبور کہ صرف مستحب ہے اس کے لیے کیسے جائز ہو سکتا ہے۔ پھر نفس زیارتِ قبر جس کے لیے عورت کا خروج نہ ہو اس کا جواز بھی عند التحقیق فی نفسہ ہے کہ جن شرائط مذکورہ سے مشروط ان کا اجتماع نظرِ بغاوتِ زنانِ نادر ہے اور نادر پر حکم نہیں ہوتا۔ تو سبیل اسلم اس سے بھی روکنار ہے۔ ردالمختار و منحة الخالق میں ہے:

متنِ عربی	اردو ترجمہ و تشریح
ان كان ذلك لتجديد الحزن والبكاء والندب على مأجرت به عادتهن فلا يجوز عليه حمل حديث لعن الله زائرات القبور وان كان للاعتبار والترحم من غير بكاء والتبرك بزيارة قبور الصالحين فلا بأس اذا كن عجائز ويكره اذا كن شواب كحضور الجماعة في المسجد اه زاد فی رد المحتار وهو توفيق حسن 3 اه وكتبت عليه	اگر یہ زیارت غم تازہ کرنے اور رونے چلانے کے لیے ہو جیسا کہ عورتوں کی عادت ہے تو ناجائز ہے اور اسی پر یہ حدیث محمول ہے: "خدا کی لعنت ان عورتوں پر جو قبروں کی زیارت کو جائیں" اور اگر عبرت حاصل کرنے، روئے بغیر رحم کھانے اور قبور صالحین سے برکت لینے کے لیے ہو تو جماعت مسجد کی حاضری کی طرح بوڑھیوں کے لیے حرج نہیں اور جوانوں کے لیے مکروہ ہے۔ اھ ردالمختار میں مزید اتنا اور ہے کہ "یہ عمدہ تطبیق ہے اھ" اس پر میں نے (امام احمد رضا نے) یہ حاشیہ لکھا ہے :
اقول: قد علم ان الفتوى على المنع مطلقاً ولو عجوز اولو ليلا فكذلك فی زيارة القبور بل اولى-	اقول: معلوم ہے کہ فتویٰ اس پر ہے کہ جماعتوں کی حاضری عورتوں کے لیے مطلقاً ممنوع ہے اگر چہ بوڑھی عورت ہو اور اگر چہ رات کو نکلے۔ تو یہی حکم زیارتِ قبور میں بھی ہوگا بلکہ یہاں بدرجہ اولیٰ ہوگا۔ (ت)

1 بحر الرائق کتاب الجنائز فصل السلطان احق بصلوۃ الخ ایچ ایم سعید کمپنی کراچی ۲/۱۹۰ 2 بحر الرائق کتاب الجنائز فصل السلطان احق بصلوۃ الخ ایچ ایم سعید کمپنی کراچی ۲/۱۹۲ 3 رد المحتار مطلب فی زیارۃ القبور ادارۃ الطباعۃ المصریہ مصر ۱/۶۰۲

Fatawa Razawiyya Volume 9

(14) You have mentioned a case of taking spiritual attention (tawajjuh) from a frail, aged, and trembling Sheikh from behind a veil. What is the harm in this, provided there is no external fitna (temptation) and it has no connection to this matter?

(15) However, what was written regarding a woman being a Khalifa (successor) is not correct. There is a consensus among the spiritual masters (Aimma-e-Batin) that a woman cannot be a caller towards Allah (Da'i il-Allah). Yes, if she is merely an intermediary in conveying the instructions given by the Murshid (spiritual guide), then there is no harm. Imam Sha'rani states in Mizan al-Shari'ah al-Kubra:

[Arabic Box Text]: "The people of spiritual unveiling (Kashf) have reached a consensus that being male is a condition for everyone who invites towards Allah. It has not reached us that any of the women among the righteous predecessors (Salaf-ul-Salihin) ever presided over the training of disciples (murids), due to the inherent deficiency of women in rank. Even if perfection was reported regarding some of them, like Maryam bint Imran and Asiya the wife of Pharaoh, that perfection was in terms of piety (taqwa) and religiosity, not in terms of ruling over people and leading them through the stations of sainthood (wilayah). The ultimate state for a woman is to be a worshiper (abidah) and an ascetic (zahidah), like Rabia al-Adawiyya, may Allah Almighty be pleased with her." And Allah, Glorified and Exalted, knows best, and His knowledge, may His glory be magnificent, is most complete and most wise. (T)

[Urdu Translation Box Text]: There is a consensus among the spiritual masters that being male is a condition for being a caller towards Allah. We have not found any report that any woman among the ladies of the righteous predecessors was ever seated as a leader for training disciples. The reason is that women are lower in rank, and as for some women like Hazrat Maryam bint Imran and Hazrat Asiya the wife of Pharaoh, about whom perfection is mentioned, this perfection is in terms of piety and religiousness, not in terms of being a judge among people and helping them cross the stations of sainthood. The ultimate goal for a woman is to be a worshipper and an ascetic, like Rabia al-Adawiyya (may Allah be pleased with her). And Allah, Glory be to Him and the Exalted, knows best, and His knowledge, may His glory be magnificent, is most complete and most wise. (T)

Problem 182: What do the scholars of religion say regarding the issue that the prevalent method of Fatiha—placing food in front, reciting Salawat and Quran, and then conveying its reward to the deceased, and then giving that food to the needy—

is it permissible or not? Zaid says that the reward cannot reach the deceased before giving the food to the needy, so first give the food and then convey the reward. He also says that placing the food in front is impermissible and wrong. Is his statement correct or...

---

1 Al-Mizan al-Kubra, Book of Judgments, Mustafa al-Babi, Egypt 2/189.

फ़तावा रजविया जिल्द नवीं

(14) आपने एक सूरत एक बहुत बूढ़े और कांपते हुए शेख से पर्दे के पीछे से तवज्जो लेने की ज़िक्र की है। इसमें क्या हर्ज है, जबकि बाहर से कोई फ़ितना न हो, न ही इसका यहाँ से कोई ताल्लुक़ हो।

(15) मगर वह जो औरत का ख़लीफ़ा होना लिखा है, सही नहीं। बातिनी इमामों का इज्मा (आम सहमति) है कि औरत अल्लाह की तरफ़ बुलाने वाली (दाई इलल्लाह) नहीं हो सकती। हाँ, मुर्शिद की बताई हुई तदबीरों को बताने में अगर वह महज़ एक कासिद (संदेशवाहक) हो, तो कोई हर्ज नहीं। इमाम शेरानी "मीज़ान अल-शरीअत अल-कुबरा" में फ़रमाते हैं:

[उर्दू अनुवाद बॉक्स]: बातिनी उलमा का इस पर इज्मा है कि दाई इलल्लाह होने के लिए मर्द होना शर्त है। हमें ऐसी कोई रिवायत नहीं मिली कि नेक बुज़ुर्गों की औरतों में से कोई ख़ातून मुरीदों की तरबियत के लिए कभी सदर नशीन (प्रमुख) हुई हो। वजह यह है कि औरतें रुतबे में कम हैं, और कुछ ख़वातीन जैसे हज़रत मरयम बिन्ते इमरान और फ़िरौन की ज़ौजा हज़रत आसिया के बारे में जो कामिल होने का ज़िक्र आया है, तो यह कमाल तक़्वा और दीनदारी के लिहाज़ से है, लोगों के दरमियान हाकिम होने और उन्हें विलायत के मुक़ामात तय कराने के लिहाज़ से नहीं। औरत की बुलंदी यह है कि वह आबिदा और ज़ाहिदा हो, जैसे रबिया अदविया रज़ियल्लाहु अन्हा। और अल्लाह सुब्हानहू व तआला बेहतर जानता है और उसका इल्म कामिल और सबसे मोहकम है। (त)

मसअला १८२: दीन के उलमा इस मसले में क्या फ़रमाते हैं कि रायज तरीक़े के मुताबिक़ फ़ातिहा दिलाना—कि खाना सामने रखकर दुरूद व क़ुरआन पढ़कर उसका सवाब मय्यित को पहुँचाना और फिर वह खाना ज़रूरतमंदों को दे देना—जायज़ है या नहीं? ज़ैद कहता है कि खाना मोहताज को देने से पहले सवाब मय्यित को नहीं पहुँच सकता, लिहाज़ा पहले खाना दे उसके बाद सवाब पहुँचाए, और कहता है कि खाना सामने रखकर (फ़ातिहा पढ़ना) नाजायज़ और ग़लत है। क्या उसका यह कहना सही है या...

---

1 अल-मीज़ान अल-कुबरा, किताबुल अक़्ज़िया, मुस्तफ़ा अल-बाबी, मिस्र १८९/२

فتاوٰی رضویہ جلد نہم

(۱۴) آپ نے ایک صورت شیخ فانی مرتعش سے پردے کے اندر توجہ لینے کی ذکر کی ہے۔ اس میں کیا حرج ہے، جبکہ خارج سے کوئی فتنہ نہ ہو، نہ اسے یہاں سے علاقہ۔

(۱۵) مگر وہ جو عورت کا خلیفہ ہونا لکھا، صحیح نہیں، ائمہ باطن کا اجماع ہے کہ عورت داعی الی اللہ نہیں ہوسکتی۔ ہاں تدابیر ارشاد کردہ مرشد بتانے میں سفیر محض ہو تو حرج نہیں۔ امام شعرانی میزان الشریعۃ الکبری میں فرماتے ہیں:

[Arabic Box Text]: قد اجمع اهل الكشف على اشتراط الذكورة في كل داع الى الله ولم يبلغنا ان احدا من نساء السلف الصالح تصدرت لتربية المريدين ابد النقص للنساء فى الدرجة وان ورد الكمال فى بعضهن كمريم بنت عمران وآسية امرأة فرعون فذلك كمال بالنسبة للتقوى والدين لابالنسبة للحكم بين الناس وتسليكهم فى مقامات الولاية وغاية امرالمرأة ان تكون عابدة زاهدة كرابعة العدوية رضى الله تعالى عنها ١۔ والله سبحنه وتعالى اعلم وعلمه جل مجده اتم واحكم۔

[Urdu Translation Box Text]: اہل باطن کا اس پر اجماع ہے کہ داعی الی اللہ کیلئے مرد ہونا شرط ہے۔ اور ہمیں ایسی کوئی روایت نہیں ملی کہ سلف صالحین کی مستورات میں سے کوئی خاتون تربیت مریدین کے لیے کبھی صدر نشین ہوئی ہو۔ وجہ یہ ہے کہ عورتیں مرتبہ میں ناقص ہیں، اور بعض خواتین مثلاً حضرت مریم بنت عمران اور حضرت آسیہ زوجہ فرعون کے بارے میں جو کامل ہونے کا ذکر آیا ہے تو یہ کمال تقوٰی اور دین داری کے لحاظ سے ہے لوگوں کے درمیان حاکم ہونے اور انہیں ولایت کے مقامات طے کرانے کے لحاظ سے نہیں۔ عورت کی غایت

شان یہ ہے کہ عابدہ، زاہدہ ہو، جیسے رابعہ عدویہ رضی اللہ تعالٰی عنہا۔ واللہ سبحنہ و تعالٰی اعلم و علمہ جل مجدہ اتم و احکم۔(ت)

مسئلہ ۱۸۲: کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ فاتحہ بہئیت مروجہ کہ کھانا سامنے رکھ کر درود و قرآن پڑھ کر ثواب اس کا بنام میت کرتے ہیں اور وہ کھانا محتاج کو دے دیتے ہیں جائز ہے یا نہیں؟ زید کہتا ہے کہ کھانا محتاج کو دینے سے پہلے ثواب میت کو نہیں پہنچا سکتے، لہذا پہلے کھانا دے اس کے بعد ثواب پہنچائے، اور کہتا ہے کہ کھانا سامنے رکھ کر ناجائز و ناروا ہے۔ آیا قول اس کا صحیح ہے یا

---

۱ المیزان الکبری کتاب الاقضیۃ مصطفی البابی مصر ۲/۱۸۹

Fatawa Rizvia - Volume 9

Is it wrong? Explain and be rewarded. (Express and receive reward - T)

Answer: Fatiha in the customary manner, as mentioned in the question, is undoubtedly permissible and commendable. According to the Ahl-us-Sunnah, sending reward (Isal-e-Sawab) to the deceased is established. Numerous authentic Hadiths and credible legal narrations exist for this. As for combining food and Quran recitation, even their Imam of the group, (the second teacher) Ismail Dehlvi, called this gathering better in 'Sirat-e-Mustaqim'. As he said:

Whenever it is intended to send benefit to the deceased, it should not be limited to feeding. If it is possible, it is better; otherwise, the reward of Surah Al-Fatiha and Al-Ikhlas alone is among the best rewards.[1]	**When it is intended to send benefit to the deceased, do not keep it dependent only on feeding; if available it is better, otherwise only the reward of Surah Fatiha and Ikhlas is the best reward. (T)**

And even before the charity reaches the hand of the needy, it is permissible to send its reward to the deceased, and it is proven as narrated in Sunan Abi Dawud and Sunan Nasa'i from the Hadith of Sayyiduna Sa'd bin Ubadah (may Allah be pleased with him):

Indeed, he said: O Messenger of Allah, surely the mother of Sa'd has died, so which charity is best? He said: Water. So he dug a well and said: This is for the mother of Sa'd.[2]	**That is, he requested to the Holy Prophet (peace and blessings of Allah be upon him): O Messenger of Allah! My mother has passed away, so which charity is superior? He replied: Water. He dug a well and said: This is for the mother of Sa'd. (T)**

It is clearly evident from this that these words were spoken when the well was ready. Even if it was after one or two days, or ten or twenty years, was the intention only to send the reward of the amount of water used by humans and animals at that time? Heaven forbid! Rather, as long as the well remains, the reward for all of it will reach the mother of Sa'd by the command of "This is for the mother of Sa'd." Since the intention was to send the reward for all of it, the attainment of Isal-e-Sawab in every way was achieved even before its consumption. And many Marfu' Hadiths themselves prove that the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) accepted the act of sending reward. And the humble servant has deduced the basis

for placing food in front from these very Hadiths, the details of which are in our Fatawa.

---

[1] Sirat-e-Mustaqim, Hidayat-e-Thalitha dar dhikr-e-Bidaat-e-ka, etc., Al-Maktabah Al-Salafiyyah, Lahore, p. 64 [2] Sunan Abi Dawud, Kitab al-Zakat, Bab fi fadl saqi al-ma, Aftab-e-Alam Press, Lahore, 1/236; Sunan al-Nasa'i, Kitab al-Wasaya, Fadl al-Sadaqah 'an al-Mayyit, Nur Muhammad Karkhana Tijarat Kutub, Karachi, 2/133

फतावा रज़विया - जिल्द नहुम

गलत? बयान करो और अज्र पाओ। (त)

जवाब: फातिहा प्रचलित रीति से जैसा कि प्रश्न में वर्णित है, निस्संदेह जायज़ और सराहनीय है। अहले सुन्नत के अनुसार मृतकों को सवाब पहुँचाना प्रमाणित है। और इस बारे में कई सही हदीसें और विश्वसनीय कानूनी रिवायतें मौजूद हैं। रही बात भोजन और कुरान को एक साथ करने की, तो स्वयं उनके गिरोह के इमाम, (द्वितीय शिक्षक) इस्माइल देहलवी ने 'सिराते मुस्तकीम' में इस सभा को बेहतर कहा है। जैसा कि उन्होंने कहा:

जब भी मृतक को लाभ पहुँचाने का इरादा हो, तो उसे केवल भोजन खिलाने पर ही निर्भर न रखें। यदि संभव हो तो यह बेहतर है, अन्यथा केवल सूरह अल-फातिहा और अल-इखलास का सवाब सबसे अच्छे सवाबों में से है।[1]

जब मृतक को लाभ पहुँचाना मंज़ूर हो, तो उसे केवल खाना खिलाने पर ही निर्भर न रखें; यदि उपलब्ध हो तो बेहतर है, अन्यथा केवल सूरह फातिहा और इखलास का सवाब सबसे अच्छा सवाब है। (त)

और इससे पहले कि दान जरूरतमंद के हाथ में पहुँचे, उसका सवाब मृतक को पहुँचाना जायज़ है, और यह सुनन अबी दाऊद और सुनन नसाई में वर्णित सय्यदुना साद बिन उबादा (रज़ियल्लाहु तआला अन्हु) की हदीस से प्रमाणित है:

उन्होंने कहा: हे अल्लाह के रसूल, निश्चय ही साद की माँ की मृत्यु हो गई है, तो कौन सा दान सबसे उत्तम है? उन्होंने कहा: पानी। तो उन्होंने एक कुआँ खोदा और कहा: यह साद की माँ के लिए है।[2]

अर्थात, उन्होंने पवित्र पैगंबर (सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम) से विनती की: हे अल्लाह के रसूल! मेरी माँ का देहांत हो गया है, तो कौन सा दान श्रेष्ठ है? उन्होंने उत्तर दिया: पानी। उन्होंने कुआँ खोदा और कहा: यह साद की माँ के लिए है। (त)

इससे स्पष्ट रूप से पता चलता है कि ये शब्द तब कहे गए थे जब कुआँ तैयार हो गया था। भले ही वह एक या दो दिन, या दस या बीस साल बाद हो, क्या इरादा केवल उस समय मनुष्यों और जानवरों द्वारा उपयोग किए गए पानी की मात्रा का सवाब भेजने का था? कदापि नहीं! बल्कि, जब तक कुआँ रहेगा, "यह साद की माँ के लिए है" के आदेश से उस सबका सवाब साद की माँ तक पहुँचेगा। चूँकि इरादा उस सबका सवाब भेजने का था, इसलिए उपभोग से पहले ही हर तरह से ईसाले-सवाब प्राप्त हो गया था। और कई मरफू हदीसें स्वयं प्रमाणित करती हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु तआला

अलैहि वसल्लम) ने सवाब भेजने के कार्य को स्वीकार किया। और इस दीन के सेवक ने इन्हीं हदीसों से भोजन सामने रखने का आधार निकाला है, जिसका विवरण हमारे फतावा में है।

---

[1] सिराते मुस्तकीम, हिदायत-ए-थलीथा दर ज़िक्र-ए-बिदआत-ए-का आदि, अल-मकतबा अल-सलफिया, लाहौर, पृष्ठ 64 [2] सुनन अबी दाऊद, किताब अल-ज़कात, बाब फ़ी फज़्ल ़सकी अल-मा, आफ़ताब-ए-आलम प्रेस, लाहौर, 1/236; सुनन अल-नसाई, किताब अल-वसाया, फज़्ल अल-सदक़ा अन अल-मय्यित, नूर मुहम्मद कारख़ाना तिज़ारत कुतुब, कराची, 2/133

فتاوٰی رضویہ جلد نہم

غلط؟ بینوا توجروا (بیان کرو اور اجر پاؤ۔ ت)

الجواب: فاتحہ بہیئت مروجہ جس طرح سوال میں مذکور، بلا ریب جائز و مستحسن ہے۔ اہلسنت کے نزدیک اموات کو ثواب پہنچانا ثابت ہے۔ اور اس میں حدیثیں صحیح اور روایتیں فقہی معتبر بہ کثرت وارد۔ باقی رہا طعام اور قرآن کا جمع، خود ان کے امام الطائفہ معلم ثانی اسمٰعیل دہلوی نے صراط مستقیم میں اس اجتماع کو بہتر کہا۔ کما حیث قال:

ہرگاہ ایصالِ نفع بمیت منظور دارد موقوف بر اطعام نہ گزارد، اگر میسر باشد بہتر ست ثوابہا ست 1.

جب میت کو نفع پہنچانا منظور ہو کھانا کھلانے پر ہی موقوف نہ رکھے، اگر میسر ہو تو بہتر ورنہ صرف ثوابِ سورہ فاتحہ واخلاص بہترین ہے۔ (ت)

اور قبل اس کے کہ صدقہ محتاج کے ہاتھ میں پہنچے ثواب اس کا میت کو پہنچانا جائز، اور حدیث سیدنا سعد بن عبادہ رضی اللہ تعالٰی عنہ سے کہ سنن ابی داؤد و سنن نسائی میں مروی ثابت:

انہ قال یا رسول اللہ ان ام سعد ماتت فای الصدقۃ افضل قال الماء قال فحفر بئر اوقال ھذہ لام سعد 2.

یعنی انھوں نے حضور اقدس صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم سے عرض کی کہ یا رسول اللہ! میری ماں نے انتقال کیا تو کون سا صدقہ افضل ہے؟ فرمایا: پانی۔ انھوں نے کنواں کھود کر کہا: یہ مادر سعد کے لیے ہے۔ (ت)

اس سے صاف متبادر یہ کہ کنواں تیار ہو جانے پر یہ الفاظ کہے، اور ایک دو دن یا دس بیس برس بھی سہی تو صرف اس قدر پانی کا ثواب پہنچانا منظور تھا جو اس وقت آدمیوں جانوروں کے

صرف میں آیا، حاشا بلکہ جب تک کنواں باقی رہے بحکم ھذہ لام سعد سب کا ثواب مادر سعد کو پہنچے گا، اور سب کا ایصال منظور تو تھا تو قبل تصرف ایصال ثواب ہر طرح حاصل۔ اور خود احادیث مرفوعہ کثیرہ سے ثابت کہ رسول اللہ صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم نے ثواب عمل قبول ایصال فرمایا۔ اور فقیر نے انہیں حدیثوں سے کھانا سامنے رکھنے کی اصل استنباط کی جس کی تفصیل ہمارے فتاویٰ میں ہے۔

---

1 صراط مستقیم ہدایتِ ثالثہ در ذکرِ بدعاتئکہ الخ المکتبۃ السلفیہ لاہور ص ۶۴ 2 سنن ابی داؤد کتاب الزکوٰۃ باب فی فضل سقی الماء آفتاب عالم پریس لاہور ۱/۲۳۶ ، سنن النسائی کتاب الوصایا فضل الصدقۃ عن المیت نور محمد کارخانہ تجارت کتب کراچی ۲/۱۳۳

Fatawa Razawiyya, Volume 9

[Arabic Box Content]: Narrated by al-Bayhaqi from Anas, by al-Tabarani in al-Kabir from Sahl ibn Sa'd, by al-Askari in al-Amthal from al-Nawas ibn Sam'an, and by al-Daylami from Abu Musa al-Ash'ari (may Allah be pleased with them). He added: Verily, Allah (the Almighty and Majestic) gives the servant for his intention what He does not give for his action. This is because the intention has no ostentation (Riya) in it, whereas action can be mixed with ostentation. 1 This is the Hadith of al-Ash'ari (may Allah be pleased with him) from the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him). (Al-Bayhaqi narrated it from Hazrat Anas, al-Tabarani in al-Mu'jam al-Kabir from Hazrat Sahl ibn Sa'd, al-Tabarani and al-Askari in al-Amthal from Nawas ibn Sam'an, and al-Daylami narrated it from Hazrat Abu Musa al-Ash'ari (may Allah be pleased with them). It includes this addition: (T) Verily, Allah (the Almighty and Majestic) grants the servant reward based on his intention which He does not grant based on his action. The wisdom behind this is that there is no ostentation in intention, while ostentation can mix with physical action. This is the Hadith of Hazrat al-Ash'ari (may Allah be pleased with him) which he narrated from the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him). (T))

Zaid, who calls this impermissible, opposes the Hadith. Even more strange is that the leader of the sect, Miyan Ismail Dehlvi himself, in his treatise on sacrifice, refuted this Wahhabi discourse. He writes:

[Bilingual Box Content]: (Left Side - Persian): If a person rears [an animal] at home so that its meat becomes good, and after slaughtering and cooking it, recites Fatiha for Hazrat Ghaus al-Azam (may Allah be pleased with him) and feeds it, there is no harm. 2 (Right Side - Urdu): If a person rears a goat at home so that its meat is excellent, then after slaughtering and cooking it, recites the Fatiha of Hazrat Ghaus al-Azam (may Allah be pleased with him) and feeds it, there is no harm. (T)

These people should have been asked how "recite Fatiha then feed" is problematic, they should have said "feed then recite Fatiha". I say (Aqool): The matter is that Fatiha is the name for the conveyance of reward (Isal-e-Thawab). A believer receives the reward of one good deed just by intending it, and it becomes ten upon action 3, as stated in authentic Hadiths. Rather, it has been said in numerous Hadiths: "The intention of the believer is better than his action." 3 A Muslim's intention is better than his action. In Fatiha, there are two good deeds: recitation...

1 Al-Firdaws bi-Ma'thur al-Khitab, Hadith 6823, Dar al-Kutub al-Ilmiyyah, Beirut, 4/286 2 Zubdat al-Nasa'ih 3 Al-Firdaws bi-Ma'thur al-Khitab, Hadith 6823, Dar al-Kutub al-Ilmiyyah, Beirut, 4/286 Page 567 of 948

फतवा रज़विया, जिल्द 9

[अरबी बॉक्स सामग्री]: इसे बैहक़ी ने हज़रत अनस से, और तबरानी ने मुअजम कबीर में हज़रत सहल बिन साद से, और तबरानी और असकरी ने अमसाल में नवास बिन समआन से, और दैलमी ने हज़रत अबू मूसा अशअरी (रज़ियल्लाहु अन्हुम) से रिवायत किया। इसमें इतना और है: बेशक अल्लाह अज़्ज़ा व जल्ला बंदे को उसकी नीयत पर वह सवाब देता है जो उसके अमल पर नहीं देता। इसकी हिकमत यह है कि नीयत में रिया (दिखावा) नहीं होती और अमल के साथ रिया की मिलावट हो जाती है। 1 यह हज़रत अशअरी (रज़ियल्लाहु अन्हु) की हदीस है जो उन्होंने नबी करीम (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) से रिवायत की। (इसे बैहक़ी ने हज़रत अनस से और तबरानी ने मुअजम कबीर में हज़रत सहल बिन साद से और तबरानी व असकरी ने अमसाल में नवास बिन समआन से और दैलमी ने हज़रत अबू मूसा अशअरी रज़ियल्लाहु अन्हुम से रिवायत किया, इसमें इतना और है। त) बेशक अल्लाह अज़्ज़ा व जल्ला बंदे को उसकी नीयत पर वह सवाब देता है जो उसके अमल पर नहीं देता। इसकी हिकमत यह है कि नीयत में रिया नहीं होती और अमल के साथ रिया की आमिज़िश (मिलावट) हो जाती है। यह हज़रत अशअरी रज़ियल्लाहु अन्हु की हदीस है जो उन्होंने नबी करीम सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम से रिवायत की। (त))

ज़ैद, जो इसे नाजायज़ कहता है, हदीस का विरोध करता है। ताज्जुब की बात यह है कि खुद इमाम-उत-ताइफ़ा मियां इस्माइल देहलवी ने अपनी तक़रीर-ए-ज़बीहा में इस वहाबी दलील का खंडन किया है। वे लिखते हैं:

[द्विभाषी बॉक्स सामग्री]: (बायां हिस्सा - फारसी): अगर कोई शख्स घर में [जानवर] पाले ताकि उसका गोश्त अच्छा हो, और उसे ज़बह करके और पकाकर हज़रत ग़ौस-ए-आज़म (रज़ियल्लाहु अन्हु) की फ़ातिहा पढ़कर खिलाए, तो कोई खराबी नहीं है। 2 (दायां हिस्सा - उर्दू): अगर कोई शख्स कोई बकरी घर पाले ताकि उसका गोश्त उम्दा हो, फिर उसको ज़बह करके और पकाकर हज़रत ग़ौस-ए-आज़म रज़ियल्लाहु अन्हु की फ़ातिहा पढ़कर खिलाए तो कोई खलल (खराबी) नहीं है। (त)

उन हज़रत से पूछा होता कि यह "फ़ातिहा पढ़कर खिलाए" कैसा, "खिलाकर फ़ातिहा पढ़े" कहा होता। अक़ूल (मैं कहता हूँ): बात यह है कि फ़ातिहा ईसाल-ए-सवाब (सवाब पहुँचाने) का नाम है, और मोमिन को नेक अमल का एक सवाब उसकी नीयत करते ही हासिल हो जाता है, और अमल करने पर दस 3 हो जाता है, जैसा कि सही हदीसों में फ़रमाया गया। बल्कि अनेक हदीसों में फ़रमाया गया

कि: "मुसलमान की नीयत उसके अमल से बेहतर है।" 3 मुसलमान की नीयत उसके अमल से बेहतर है, फ़ातिहा में दो नेक अमल होते हैं: क़िरात...

1 अल-फ़िरदौस बि-मअसूर अल-खिताब, हदीस 6823, दार अल-कुतुब अल-इल्मिया, बेरुत, 4/286 2 ज़ुबदत अल-नसाएह 3 अल-फ़िरदौस बि-मअसूर अल-खिताब, हदीस 6823, दार अल-कुतुब अल-इल्मिया, बेरुत, 4/286 पृष्ठ 567/948

فتاوٰی رضویہ جلد نہم

رواہ البیھقی عن انس و الطبرانی فی الکبیر عن سھل بن سعد وھو العسکری فی الامثال عن النواس بن سمعان والدیلمي عن ابی موسی الاشعری رضی اللہ تعالٰی عنھم وزاد ان اللہ عز وجل لیعطی العبد علی نیتہ مالایعطیہ علی علمہ وذلك ان النیة لاریاء فیھا والعمل یخالطہ الریاء ۱ ھذا الحدیث الاشعری رضی اللہ تعالٰی عنہ عن النبی صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم۔ (اسے بیہقی نے حضرت انس سے اور طبرانی نے معجم کبیر میں حضرت سہل بن سعد سے اور طبرانی و عسکری نے امثال میں نواس بن سمعان سے اور دیلمی نے حضرت ابو موسٰی اشعری رضی اللہ تعالٰی عنہم سے روایت کیا، اس میں اتنا اور ہے۔ ت) بیشک اللہ عزوجل بندہ کو اس کی نیت پر وہ ثواب دیتا ہے جو اس کے عمل پر نہیں دیتا۔ اس کی حکمت یہ ہے کہ نیت میں ریاء نہیں ہوتی اور عمل کے ساتھ ریا کی آمیزش ہو جاتی ہے۔ یہ حضرت اشعری رضی اللہ تعالٰی عنہ کی حدیث ہے جو انھوں نے نبی کریم صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم سے روایت کی۔ (ت)

زید کہ اسے ناجائز کہتا ہے حدیث کی مخالفت کرتا ہے۔ طرفہ تر یہ کہ خود امام الطائفہ میاں اسماعیل دہلوی اپنی تقریر ذبیحہ میں اس تقریر وہابیہ کو ذبح کر گئے۔ لکھتے ہیں :

اگر شخصی برائے راخانہ پرور کند تا گوشت او خوب شود و از ذبح کر دو پختہ فاتحہ حضرت غوث اعظم رضی اللہ تعالٰی عنہ خواندہ بخوراند خللے نیست۔ ۲ اگو کوئی شخص کوئی بکری گھر پالے تاکہ اس کا گوشت عمدہ ہو پھر اس کو ذبح کر کے اور پکا کر حضرت غوث اعظم رضی اللہ تعالٰی عنہ کی فاتحہ پڑھ کر کھلائے تو کوئی خلل نہیں ہے۔ (ت)

ان حضرت سے پوچھا ہوتا کہ یہ "فاتحہ خوانده بخوراندہ" (فاتحہ پڑھ کر کھلائے۔ت) کیسی، "خوراندہ فاتحہ بخواندہ" (کھلا کر فاتحہ پڑھے۔ ت) کہا ہوتا۔ اقول: بات یہ ہے کہ فاتحہ ایصال ثواب کا نام ہے، اور مومن کو عمل نیک کا ایک ثواب اس کی نیت کرتے ہی حاصل، اور عمل کیے پر دس ۳ ہو جاتا ہے، جیسا کہ صحیح حدیثوں میں ارشاد ہوا۔ بلکہ متعدد حدیثوں میں فرمایا گیا کہ: نیة المؤمن خیر من عمله ۳ مسلمان کی نیت اس کے عمل سے بہتر ہے، فاتحہ میں دو ۲ عمل نیک ہوتے ہیں: قرآت

۱ الفردوس بمأثور الخطاب حدیث ۶۸۲۳ دارالکتب العلمیۃ بیروت ۲۸۶/۴ ۲ زبدة النصائح ۳

الفردوس بمأثور الخطاب حدیث ۶۸۲۳ دارالکتب العلمیۃ بیروت ۲۸۶/۴

Fatawa Ridawiyya Volume 9

Quran recitation and feeding the poor. In the current method, the prayer for sending the reward is done when the intention to give food has been made. And if some of the Great Quran has been recited, then at least eleven rewards can be obtained at that time: ten rewards for recitation and one for the intention of feeding. Can these not be sent to the deceased? As for the reward of giving food, even if it is not present at that time, is sending the reward like sending something in a post or parcel, that it cannot be sent until the item is present? Whereas its method is simply to pray to the Almighty to convey that reward to the deceased. The Imam of the group himself writes in 'Sirat-e-Mustaqim': "The way to convey it is through prayer in the presence of the Almighty." [1] (Transl.: The method of sending it is by praying to the Divine. T) Is it necessary for that thing to be present even for praying? However, the fact is that ignorance causes everything, and although having the food in front of the reciter at the time of Fatiha is a useless thing, it does not cause any hindrance in the receipt of reward or the validity of Fatiha. He who calls it impermissible and unlawful should provide proof from Shariah evidence; otherwise, calling something unlawful by one's own self by invoking the command of Allah and His Messenger is fabricating a lie against Allah and His Messenger. Yes, if a person has the belief that as long as food is not placed in front, the reward will not reach, then this thought of his is purely wrong. But there is no harm even with this belief in the essence of Fatiha itself. "And he who makes a claim, the burden of proof is on him." (And whoever makes a claim, its explanation is his responsibility. T). And Allah Almighty knows best.

---

[1] Sirat-e-Mustaqim, Second Guidance, in the mention of innovations, etc., Al-Maktaba al-Salafiyya, Lahore, p. 55 Page 568 of 948

कुरआन और भोजन कराना। प्रचलित तरीक़े में सवाब पहुँचाने की दुआ उस समय करते हैं जब कि खाना देने की नीयत करली। और कुछ कुरआन अज़ीम पढ़ लिया तो कम से कम ग्यारह सवाब उस वक्त मिल सके। दस सवाब क़िरात के और एक नीयत एतआम (भोजन कराने) का। क्या उन्हें मय्यित (मृतक) को नहीं पहुँचा सकते? रहा खाना देने का सवाब, वह अगरचे उस वक़्त मौजूद नहीं तो क्या सवाब पहुँचाना शायद डाक या पार्सल में किसी चीज़ का भेजना होगा कि जब तक वह शै (चीज़) मौजूद न हो क्या भेजी जाए। हालाँकि इसका तरीक़ा सिर्फ़ जनाबे बारी में दुआ करना है कि वह सवाब मय्यित को पहुँचाए, खुद इमाम-उत-ताइफ़ा 'सिराते मुस्तक़ीम' में लिखता है: "तरीक़े रसानिदन आं दुआ बजनाबे इलाही अस्त" [1] (उसको पहुँचाने का तरीक़ा जनाबे इलाही में दुआ है। त) क्या दुआ करने के लिए भी उस शै का मौजूद फ़िलहाल होना ज़रूरी है। मगर है यह कि जहालत सब कुछ कराती है, और वक़्त फ़ातिहा खाने का क़ारी के पेश नज़र होना अगरचे बेकार बात है मगर इसके सबब से वसुल सवाब या जवाज़ फ़ातिहा में कुछ खलल नहीं। जो इसे नाजायज़ व नारवा कहे, सबूत उसका दलील शरई से दे वरना अपनी तरफ से ब-हुक्मे ख़ुदा और रसूल किसी चीज़ को नारवा कह देना ख़ुदा व रसूल पर इफ़्तरा (झूठ मढ़ना) करना है। हाँ अगर किसी शख़्स का यह एतक़ाद है कि जब तक खाना सामने न किया जाएगा सवाब न पहुँचेगा, तो यह गुमान उसका महज़ ग़लत है। लेकिन नफ़्स फ़ातिहा में इस एतक़ाद से भी कुछ हर्फ़ नहीं आता। "वमन अद्दई फ़-अलैहि अल-बयान" (और जो दावा करे बयान उसके ज़िम्मे। त) वल्लाहु तआला आलम।

---

[1] सिराते मुस्तक़ीम हिदायत सानिया दर ज़िक्र बिदअतिका इलख अल-मक्तबा अस-सलफ़िया लाहौर पृ. 55 Page 568 of 948

فتاوی رضویہ جلد نہم

قرآن و اطعام طعام۔ طریقہ مروجہ میں ثواب پہنچانے کی دعا اس وقت کرتے ہیں جب کہ کھانا دینے کی نیت کرلی۔ اور کچھ قرآن عظیم پڑھ لیا تو کم سے کم گیارہ ثواب اس وقت مل سکے۔ دس ثواب قرأت کے اور ایک نیت اطعام کا۔ کیا انھیں میت کو نہیں پہنچا سکتے؟ رہا کھانا دینے کا ثواب۔ وہ اگرچہ اس وقت موجود نہیں تو کیا ثواب پہنچانا شاید ڈاک یا پارسل میں کیسی چیز کا بھیجنا ہوگا جب تک وہ شے موجود نہ ہو کیا بھیجی جائے۔ حالانکہ اس کا طریقہ صرف جناب باری میں دعا کرنا ہے کہ وہ ثواب میت کو پہنچائے، خود امام الطائفہ صراط مستقیم میں لکھتا ہے: "طریق رسانیدن آں دُعا بجنابِ الٰہی ست" [1] (اس کے پہنچانے کا طریقہ جناب الٰہی میں دعا ہے۔ ت) کیا دعا کرنے کے لیے بھی اس شے کا موجود فی الحال ہونا ضروری ہے۔ مگر ہے یہ کہ جہالت سب کچھ کراتی ہے، اور وقت فاتحہ کھانے کا قاری کے پیش نظر ہونا اگرچہ بیکار بات ہے مگر اس کے سبب سے وصول ثواب یا جواز فاتحہ میں کچھ خلل نہیں۔ جو اسے ناجائز و ناروا کہے، ثبوت اس کا دلیل شرعی سے دے ورنہ اپنی طرف سے بحکم خدا اور رسول کسی چیز کو ناروا کہہ دینا خدا و رسول پر افتراء کرنا ہے۔ ہاں اگر کسی شخص کا یہ اعتقاد ہے کہ جب تک کھانا سامنے نہ کیا جائے گا ثواب نہ پہنچے گا، تو یہ گمان اس کا محض غلط ہے۔ لیکن نفس فاتحہ میں اس اعتقاد سے بھی کچھ حرف نہیں آتا۔ ومن ادعی فعلیہ البیان (اور جو دعوی کرے بیان اس کے ذمہ۔ ت) واللہ تعالٰی اعلم

---

[1] صراط مستقیم ہدایت ثانیہ در ذکر بدعاتیکہ الخ المکتبہ السلفیہ لاہور ص ۵۵ Page 568 of 948

Volume 9 Fatawa-e-Razvia

Treatise: Al-Hujjat-ul-Faiha li-Teeb-at-Tayeeni wal-Fatiha 1307 AH (A fragrant proof on the appointment of days and the excellence of Fatiha)

In the name of Allah, the Most Gracious, the Most Merciful.

Problem 183:

[Right Column - Urdu Translation]: The rituals of Teeja (3rd day), Daswan (10th day), Chaliswan (40th day), Shish-mahi (6-month), and Barsi (anniversary) which are prevalent in the region of India—some scholars call them a detestable and loathsome innovation (Bid'at Shania Makruha), while there are some statements saying they are correct. And any food cooked after a death with the intention of reward (Isal-e-Sawab) where both hands are raised for Fatiha; some apparent non-conformist (Ghayr-Muqallid) scholars, because of the Fatiha, consider it carrion (Murdar) and forbidden (Haram). They say that this method was not in the era of the Holy Prophet (peace and blessings of Allah be upon him), his noble companions, the Tabi'een, and the followers of the Tabi'een (may Allah be pleased with them all)...

[Left Column - Persian Original]: The rituals of the 3rd, 10th, 40th, six-monthly and yearly (death anniversaries) are prevalent in these Indian lands. Some scholars call them a loathsome and detestable innovation, while several opinions support their correctness. The food cooked after someone's death with the intention of reward, over which Fatiha is recited while raising both hands—some apparent non-conformist scholars call it carrion and forbidden because of the Fatiha. They claim that this method did not exist during the time of the Holy Prophet, his great companions, the Tabi'een, and the followers of the Tabi'een (may Allah be pleased with them all). Rather, food and sweets that are Niyaz (offerings) to the elders of religion are like carrion...

Page 570 of 948

जिल्द नहम (खण्ड 9) फ़तावा रज़विया

रिसाला: अल-हुज्जतुल फ़ाइहा लि-तीब-तत-तय्यीनि वल-फ़ातिहा १३०७ हि. (दिन मुतअय्यन करने और फातिहा के उम्दा होने पर अत्र-बेज़ हुज्जत)

बिस्मिल्लाह हिर्रहमान निर्रहीम

मसअला १८३:

[दाहिना कॉलम - उर्दू अनुवाद]: तीजा, दसवां, चालीसवां, छह माही, बरसी जो दीयार-ए-हिन्द में रायज है, इसे कुछ उलेमा बिदअत-ए-शनीआ मकरूहा कहते हैं, और कुछ के अक्काल यह हैं कि वह दुरुस्त है। और किसी मौत के बाद सवाब की नियत से जो खाना पकाते हैं और दोनों हाथ उठाकर फातिहा देते हैं, उसको गैर-मुक़ल्लिद ज़ाहिरी उलेमा फातिहा की वजह से मुर्दार और हराम जानते हैं। वे कहते हैं कि यह तरीका हुज़ूर नबी-ए-अकरम सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम, उनके बुज़ुर्ग सहाबा, ताबिईन और तब-ए-ताबिईन रिज़वानुल्लाहि तआला अलैहिम अजमईन के ज़माने में...

[बायां कॉलम - फ़ारसी मूल]: तीजा, दसवां, चालीसवां, छः माही और सालाना (बरसी) जो हिन्द के इन शहरों में प्रचलित हैं, कुछ विद्वान इसे बिदअत-ए-शनीआ मकरूहा कहते हैं, जबकि कई विचार इसकी शुद्धता का समर्थन करते हैं। और किसी की मृत्यु के बाद सवाब की नियत से जो भोजन पकाया जाता है, और जिस पर दोनों हाथ उठाकर फातिहा पढ़ी जाती है; कुछ प्रकट गैर-मुक़ल्लिद विद्वान इसे फातिहा के कारण मुर्दार और हराम कहते हैं। वे कहते हैं कि यह विधि नबी सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम, उनके महान साथियों (सहाबा), ताबिईन और तब-ए-ताबिईन के समय में नहीं थी। बल्कि जो भोजन और मिठाई धर्म के बड़ों की नियाज़ (भेंट) होती है वह मुर्दार की तरह है...

पृष्ठ 570 का 948

جلد نہم فتاویٰ رضویہ

رسالہ الحُجَّۃُ الفَائِحۃُ لطیب التعیین والفاتحۃ ۱۳۰۷ھ (دن متعین کرنے اور فاتحہ کے عمدہ ہونے پر عطر بیز حجت)

بسم اللہ الرحمن الرحیم

مسئلہ ۱۸۳ :

[دائیں جانب - اردو ترجمہ]: تیجہ ، دسواں ، چالیسواں ، چھ ماہی ، برسی جو دیار ہند میں رائج ہے اسے بعض علماء بدعت شنیعہ مکروہہ کہتے ہیں ، اور کچھ کے اقوال یہ ہیں کہ وہ درست ہے۔ اور کسی موت کے بعد ثواب کی نیت سے جو کھانا پکاتے ہیں اور دونوں ہاتھ اٹھا کر فاتحہ دیتے ہیں اس کو غیر مقلد ظاہری علماء فاتحہ کی وجہ سے مردار اور حرام جانتے ہیں ، وہ کہتے ہیں کہ یہ طریقہ حضور بنی اکرم صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم ، ان کے بزرگ صحابہ ، تابعین اور اتباع تابعین رضوان اللہ تعالیٰ اجمعین کے زمانے میں

[بائیں جانب - فارسی عبارت]: سوم و دہم و چہلم و ششماہی و سالیانہ کہ دریں دیار ہند مروہ است، اور بعض علماء بدعت شنیعہ مکروہہ گویند و اقوال چند بر درستی اوست و طعامے کہ بعد موتے بہ نیت ثواب می پزند و ہر دو دست برداشتہ فاتحہ ہند آن را علماء ظواہر غیر مقلدین باعث فاتحہ، مردار و حرام دانستہ گویند، ایں طریقہ در زمانہ نبوی و اصحاب کبار مصطفوی و تابعین و اتباع تابعین رضوان اللہ تعالیٰ علیہم اجمعین بنود بلکہ طعام و شیرینی کہ نیاز بزرگان دین است مثل مردار پس

Volume Nine Fatawa Razawiyya

In this matter, whatever the Shariah ruling mandatory to be followed may be, please state it with evidence from books. Give the verdict and be rewarded.

[The questioner says:] "It was not so. Rather, the food and sweets intended for the 'Niyaz' (offering) of religious elders is like carrion... So in this matter, please state the Shariah ruling which is mandatory to follow, with reference from a book. State it and receive a reward." (T)

Al-Jawab (The Answer):

The decisive word and summarized discourse in this chapter is that conveying reward (Isal-e-Sawab) and gifting the reward to deceased Muslims is, by the consensus of all Ahl-e-Sunnat wa Jama'at, a desirable matter and recommended in Shariah. Numerous Hadiths have been narrated from the presence of the Master of the Pious (Peace and blessings be upon him from the Sovereign of the All-Powerful) regarding the encouragement and approval of this act. The Imam, the absolute research scholar, in 'Fath al-Qadir'; Imam Allamah Fakhr al-Din al-Zayla'i in 'Nasb al-Rayah'; Imam Allamah Jalal al-Din al-Suyuti in 'Sharh al-Sudur'; and the virtuous Allamah Ali al-Qari in 'Maslak al-Mutaqassit' and others in other books have mentioned some of them. Denial of this act does not come except from a foolishly ignorant person or an absolute deviant among the innovators of this age, whose hidden blood of Mu'tazilism has surged. Under the guise of proxy and specialized advocacy for Mu'tazilite views, they deny the initiation of reward and disrupt the definitive consensus of the Ahl-e-Sunnat in their own view. Furthermore, by the testimony of numerous Hadiths and the firm conviction and authentication (Al-Tashih) of the majority of Imams, the reaching of reward is not exclusive to financial acts of devotion; rather, it is general to both financial and physical ones. This is the school of thought of the Hanafi Imams, and many Shafi'i research scholars are upon this, as is the majority, and it is the correct, preferred, and supported view. Furthermore, the consensus on both—reading the Quran and giving charity—and reaching the reward of both to Muslims is nothing but...

The decisive word and unanimous consensus in this matter is that conveying reward to deceased Muslims and gifting the reward is a desirable and recommended (mandub) act in Shariah, upon which there is a consensus (ijma) of the entire Ahl-e-Sunnat wa Jama'at. Many Hadiths have been narrated from the Master of the Pious (peace and blessings be upon him) regarding declaring this act correct and

encouraging it, some of which Imam Allamah, the absolute researcher, in 'Fath al-Qadir'; Imam Allamah Fakhruddin al-Zayla'i in 'Nasb al-Rayah'; Imam Allamah Jalaluddin al-Suyuti in 'Sharh al-Sudur'; the virtuous Allamah Ali al-Qari in 'Maslak al-Mutaqassit' and other scholars in other books have explained. Only a foolish, ignorant, or misguided person belonging to the innovators of this age will deny this act. Among the ill-religious people of this era, the hidden blood of Mu'tazilism has surged; under the cloak of proxy and specialized advocacy for Mu'tazilite views, they are deniers of conveying reward and are opponents of the definitive consensus of the Ahl-e-Sunnat themselves. Furthermore, it is proven from the testimony of numerous Hadiths and the firm conviction and authentication of the majority of Imams that the reaching of reward is not specific to financial acts of worship but is common to both financial and physical ones. This is the school of thought of the Hanafi Imams, and many Shafi'i researchers are also on this, and the majority is upon it.

जिल्द नवां फ़तावा रज़विया

इस मामले में शरीयत का जो भी हुक्म पालन करना अनिवार्य हो, उसे किताबों के सबूत के साथ बयान फरमाएं। फ़तवा दें और सवाब पायें।

[प्रश्नकर्ता कहता है:] "ऐसा नहीं था। बल्कि बुजुर्गों की 'नियाज़' (पुण्य भेंट) के लिए जो खाना और मिठाई है, वह मुर्दार (सड़ा हुआ मांस) के समान है... तो इस मामले में जो शरीयत का हुक्म अमल करने के लिए अनिवार्य हो, उसे किताब के हवाले से बयान फरमाएं। बयान करें और पुण्य अर्जित करें।" (त)

अल-जवाब:

इस विषय में निर्णायक बात और संक्षिप्त कथन यह है कि मृत मुसलमानों को सवाब (पुण्य) पहुँचाना और उन्हें सवाब भेंट करना, तमाम अहल-ए-सुन्नत व जमाअत की सहमति (इज्मा) से एक पसंदीदा कार्य है और शरीयत में अनुशंसित (मन्दूब) है। इस कार्य को सही ठहराने और इसके प्रति प्रोत्साहित करने के संबंध में सरकार-ए-दो-आलम (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) से बहुत सी हदीसें आई हैं। इनमें से कुछ हदीसें इमाम अल्लामा मुहाक्किक़ अली अल-इतलाक़ ने 'फ़तह अल-क़दीर' में, इमाम अल्लामा फ़खरुद्दीन ज़ैलई ने 'नसब अल-राया' में, इमाम अल्लामा जलालुद्दीन सुयूती ने 'शर्ह अल-सुदूर' में, फ़ाज़िल अल्लामा अली क़ारी ने 'मसलक अल-मुतवस्सित' में और अन्य विद्वानों ने अपनी किताबों में बयान की हैं। इस कार्य का इनकार वही करेगा जो मूर्ख अज्ञानी हो या इस ज़माने के बिदअती गुमराहों में से हो, जिनके भीतर मोअतज़लियत (एक भटका हुआ संप्रदाय) का छिपा हुआ खून उबाल मार रहा है। वे मोअतज़ला की वकालत के पर्दे में सवाब के पहुँचने का इनकार करते हैं और अहल-ए-सुन्नत के निश्चित इज्मा का विरोध करते हैं। फिर बहुत सी हदीसों की गवाही और अधिकांश इमामों के दृढ़ निश्चय और तस्दीक़ (प्रमाणीकरण) से यह साबित है कि सवाब का पहुँचना केवल आर्थिक इबादतों तक सीमित नहीं है, बल्कि माली (आर्थिक) और बदनी (शारीरिक) दोनों प्रकार की इबादतों के लिए सामान्य है। यही हनफ़ी इमामों का मज़हब है, और बहुत से शाफ़ई मुहाक्किक़ीन भी इसी पर हैं, और यही जमहूर (बहुमत) का मत है। यह सही, प्राथमिकता वाला और समर्थित विचार है। इसके अलावा, कुरान पढ़ने और दान देने, दोनों का सवाब मुसलमानों तक पहुँचाने पर इज्मा है...

इस अध्याय में निर्णायक बात और सर्वसम्मत मत यह है कि मृत मुसलमानों को सवाब पहुँचाना और पुण्य भेंट करना एक पसंदीदा कार्य है और शरीयत में मन्दूब (अनुशंसित) है, जिस पर पूरी अहल-ए-सुन्नत व जमाअत की आम सहमति है। इस अमल को सही करार देने और इसकी रफ़्तार (झुकाव) बढ़ाने के संबंध में हुज़ूर सय्यदुल अबरार (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) से बहुत सी हदीसें आई हैं, जिनमें से कुछ हदीसें इमाम अल्लामा मुहाक्क़िक़ अली अल-इतलाक़ ने 'फ़तह अल-क़दीर' में, इमाम अल्लामा फ़खरुद्दीन ज़ैलई ने 'नसब अल-राया' में, इमाम अल्लामा जलालुद्दीन सुयूती ने 'शर्ह अल-सुदूर' में, फ़ाज़िल अल्लामा अली क़ारी ने 'मसलक अल-मुतवस्सित' में और अन्य विद्वानों ने अपनी किताबों में बयान की हैं। इस अमल का इनकार वही करेगा जो बेवकूफ, जाहिल या गुमराह हो। इस ज़माने के बद-मज़हबों में मोअतज़लियत का छिपा हुआ खून जोश में आ गया है; वे मोअतज़ला की वकालत के पर्दे में ईसाल-ए-सवाब के मुनकिर (इनकारी) हैं और खुद अहल-ए-सुन्नत के कतई इज्मा (निश्चित सर्वसम्मति) के खिलाफ हैं। फिर कसीर (अनेक) हदीसों की गवाही और जमहूर इमामों की मजबूती और तस्दीक़ से साबित है कि सवाब का पहुँचना केवल माली कुर्बत (आर्थिक पुण्य) से खास नहीं है बल्कि माली और बदनी दोनों के लिए आम है। यही हनफ़ी इमामों का मज़हब है और इसी पर बहुत से शाफ़ई मुहाक्क़िक़ीन भी हैं और इसी पर जमहूर हैं।

دریں مسئلہ ہر چہ حکم شرعی واجب التعمیل باشد بیان فرمایند بسند کتاب۔ بینوا توجروا نہ تھا۔ بلکہ بزرگان دین کی نیاز کے لیے جو کھانا اور شیرینی ہے وہ مردار کی طرح ہے___ تو اس مسئلہ میں جو واجب العمل حکم شرعی ہو کتاب کے حوالہ سے بیان فرمائیں۔ بیان کریں اور اجر پائیں۔

(ت) الجواب:

قول فیصل و سخن مجمل درین باب آنست کہ ایصال ثواب و ہدیہ اجر باموات مسلمین باجماع کافہ اہلسنت و جماعت امر یست مرغوب و در شرع مندوب۔ احادیث بسیار از حضور سید الابرار علیہ افضل الصلوٰۃ من ملک الجبار و در ترغیب و تصویب این کار وارد شد۔ امام علامہ محقق علی الاطلاق در فتح القدیر وامام علامہ فخر الدین زیلعی در نصب الرایہ وامام علامہ جلال الدین سیوطی در شرح الصدور و فاضل علامہ علی قاری در مسلک متقسط وغیر ہم فی غیر ہا بذکر برخی از انہا پردا ختہ اند و خود انکار این کار نیاید مگر از سفیہ جاہل یا ضال مطلق مبتدعان زمانہ را کہ خون پنہاں معتز لیت بجوش آمدہ است در پردہ ترخیص نیابت و تخصیص وکالت، ابدائے ثواب را انکار کنند و پیش خویش اجماع قطعی اہلسنت را بر ہم زنند باز بشہادت احادیث کثیرہ و جزم التحیح جمہور ائمہ وصول ثواب خاص بقربات مالیہ نیست بلکہ مالیہ و بدنیہ ہر دو را عام ہمیں ست مذہب ائمہ حنفیہ و بریں اند بسیاری از محققین شافعیہ وعلیہ الجمہور و ھو الصحیح الراجح المنصور باز اجماع ایں ہر دو کہ ہم قرآن خوانند و ہم تصدق کنند و ثواب ہر دو بمسلماں رسانند نیست مگر

اس باب میں قول فیصل اور اجماع کلام یہ ہے کہ مسلمان مردوں کو ثواب پہنچانا اور اجر ہدیہ کرنا ایک پسندیدہ اور شریعت میں مندوب امر ہے جس پر تمام اہل سنت و جماعت کا اجماع ہے۔ اس

عمل کو درست قرار دینے اور اس کی رغبت دلانے سے متعلق حضور سید الابرار علیہ الصلوۃ والسلام سے بہت سی حدیثیں وارد ہیں جن میں سے کچھ احادیث امام علامہ محقق علی الاطلاق نے فتح القدیر میں امام علامہ فخر الدین زیلعی نے نصب الرایہ میں امام علامہ جلال الدین سیوطی نے شرح الصدور میں فاضل علامہ علی قاری نے مسلک متقسط میں اور دوسرے حضرات نے دوسری کتابوں میں بیان فرمائی ہیں۔ اس عمل کا انکار وہی کرے گا جو بے وقوف جاہل یا گمراہ صاحب باطل ہو۔ اس زمانہ کے بد مذہبوں میں معتزلیت کا چھپا ہوا خون جوش میں آگیا ہے معتزلہ کی نیابت اور خصوصی وکالت کے پردے میں ایصال ثواب کے منکر ہیں اور خود اہل سنت کے اجماع قطعی کے مخالف ہیں۔ پھر احادیث کثیرہ کی شہادت اور جمہور ائمہ کے جزم اور التصحیح سے ثابت ہے کہ ثواب پہنچنا قربتِ مالی سے خاص نہیں بلکہ مالی و بدنی دونوں کو عام ہے۔ یہی ائمہ حنفیہ کا مذہب ہے اور اسی پر بہت سے محققین شافعیہ بھی ہیں اور اسی پر جمہور ہیں۔

Fatawa Razvia Volume 9

(Right Column) And this is the correct, predominant, and supported creed. Furthermore, combining both physical and monetary [worship] in such a way that the Quran is recited and charity is also given, and the reward of both is conveyed to the Muslims—this is simply uniting goodness with goodness and the recommended with the recommended. There is absolutely no conflict between the two, just as there is no conflict in reciting from the Mushaf during prayer, nor has a prohibition of this combination come in Sharia like the prohibition related to reciting the Quran during bowing (Ruku) or prostration (Sujud). Therefore, declaring it forbidden is to step outside the bounds of reason. Imam Hujjat al-Islam Muhammad Ghazali (may his secret be sanctified) says in Ihya al-Ulum: "When individual units are not prohibited, from where would the collection become prohibited!" And in the same [book] it is stated: "When individual instances of permissible acts come together, the collective will also be permissible." A complete explanation of this excellent principle was provided by the leader of the meticulous, the seal of the researchers, [my] honorable father (may his noble secret be sanctified), in the venerable book 'Usul al-Rashad li-Qam' Mabani al-Fasad', and he derived this meaning from authentic Hadith. Whoever wishes may be honored by its study. Even the primary teacher of the group of deniers, Maulvi Ismail Dehlvi, accepts and acknowledges the goodness of this combination of Quran and food; in 'Sirat-e-Mustaqeem', he adopts the path of confession and acceptance as follows: "When [someone] intends to benefit the deceased... Benefit

(Left Column) Combining one good act with another good and recommended act is by no means contradictory to each other, like reciting from the Mushaf during prayer. Sharia does not negate this combination; rather, it is more guided, like [the prohibition of] reciting the Quran in Ruku and Sujud. Therefore, calling it a prohibited matter is to go beyond the circle of [correct] action. Imam Hujjat al-Islam Muhammad Ghazali (may his secret be sanctified) says in Ihya al-Ulum: "If the individual acts are not forbidden, then from where is the collective forbidden?" Similarly, if individual permissible acts come together, that collective becomes permissible. The complete acquisition of this elegant principle has been mentioned by the Imam of meticulous ones, the finality of researchers, [my] honorable father (may his noble secret be sanctified), in the venerable book 'Usul al-Rashad li-Qam' Mabani al-Fasad', having derived this meaning from authentic Hadith. Whoever wishes may be honored by its study. Even the primary teacher of the group of deniers, Maulvi Ismail Dehlvi, finds

this gathering of Quran and food acceptable and established, and in 'Sirat-e-Mustaqeem', he follows such a path of acknowledgement and acceptance. Whenever the aim is to convey benefit to the deceased, one should not solely rely on food; if possible, it is better, otherwise, only the reward of Surah Al-Fatiha and Al-Ikhlas are the best of rewards. There is no doubt that the method of conveying reward (Isal-e-Sawab) is through prayer to the presence of the Lord of all lords.

(Footnotes) 1. Ihya al-Ulum, Kitab Adab al-Sama' wa al-Wajd, Maktaba wa Matba' al-Mashhad al-Husayni, Cairo, 3/272. 2. Ihya al-Ulum, Kitab Adab al-Sama' wa al-Wajd, Maktaba wa Matba' al-Mashhad al-Husayni, Cairo, 3/272. 3. Sirat-e-Mustaqeem, Hidayat-e-Thalitha regarding Bida'at, etc., published by al-Maktabat al-Salafiyya, Lahore, p. 64.

फ़तावा रज़विया जिल्द नहुम (9)

(दायां कॉलम) और यही सही, श्रेष्ठ और समर्थित पंथ है। फिर शारीरिक और आर्थिक दोनों को इस प्रकार संयोजित करना कि कुरान भी पढ़ा जाए, दान भी दिया जाए, और दोनों का सवाब (पुण्य) मुसलमानों तक पहुँचाया जाए—यह अच्छाई को अच्छाई के साथ और अनुशंसित को अनुशंसित के साथ जोड़ना ही तो है। इन दोनों में कोई विरोध नहीं है, जैसे नमाज़ के दौरान मुसहफ (कुरान) को देखकर पाठ करने में कोई विरोध नहीं है, और न ही शरीयत में इस संयोजन की मनाही आई है जैसा कि रुकू और सजदा में कुरान पढ़ने के संबंध में है। इसलिए, इसे वर्जित ठहराना तर्क के दायरे से बाहर कदम रखना है। इमाम हुज्जत-उल-इस्लाम मुहम्मद गज़ाली (अल्लाह उनकी पवित्रता बनाए रखे) एहिआ उल-उलूम में फरमाते हैं: "जब अलग-अलग इकाइयाँ हराम नहीं हैं, तो उनका समूह कहाँ से हराम हो जाएगा!" और उसी में है: "जब जायज़ कार्यों की इकाइयाँ एक साथ हों, तो समूह भी जायज़ ही होगा।" इस उत्कृष्ट नियम का पूरा विवरण सूक्ष्मदर्शी लोगों के नेता, शोधकर्ताओं की मुहर, [मेरे] पूज्य पिता (अल्लाह उनकी पवित्रता बनाए रखे) ने सम्मानित पुस्तक 'उसूल अल-रशाद ली-क़म मबानी अल-फ़साद' में दिया है और सही हदीस से इसका अर्थ निकाला है। जो चाहे इसके अध्ययन से लाभान्वित हो सकता है। यहाँ तक कि इनकार करने वाले समूह के पहले शिक्षक मौलवी इस्माइल देहलवी भी कुरान और भोजन के इस मेल की अच्छाई को स्वीकार करते हैं; 'सिरात-ए-मुस्तकीम' में उन्होंने इस प्रकार स्वीकार किया है: "जब मृत को कोई... फायदा

(बायां कॉलम) एक अच्छाई को दूसरी अच्छाई और अनुशंसित कार्य के साथ मिलाना एक-दूसरे के विपरीत नहीं है, जैसे नमाज़ में मुसहफ से पाठ करना। शरीयत इस मेल का खंडन नहीं करती; बल्कि यह अधिक मार्गदर्शन वाला है, जैसे रुकू और सजदे में कुरान पढ़ने की मनाही है। अतः इसे वर्जित कहना सही कर्म के घेरे से बाहर जाना है। इमाम हुज्जत-उल-इस्लाम मुहम्मद गज़ाली (अल्लाह उनकी पवित्रता बनाए रखे) एहिआ उल-उलूम में फरमाते हैं: "यदि अलग-अलग कार्य हराम नहीं हैं, तो उनका समूह कहाँ से हराम है?" इसी तरह, यदि अलग-अलग जायज़ कार्य एक साथ आते हैं, तो वह समूह जायज़ हो जाता है। इस सुशोभित सिद्धांत की पूर्ण व्याख्या सूक्ष्मदर्शी इमाम, शोधकर्ताओं के अंत, [मेरे] पूज्य पिता (अल्लाह उनकी पवित्रता बनाए रखे) ने सम्मानित पुस्तक 'उसूल अल-रशाद ली-क़म मबानी अल-फ़साद' में दी है, और सही हदीस से इसका अर्थ निकाला है। जो चाहे इसके अध्ययन से लाभान्वित हो। यहाँ तक कि इनकार करने वाले समूह के मुख्य शिक्षक मौलवी इस्माइल देहलवी भी कुरान और भोजन के इस मिलन को स्वीकार्य और स्थापित मानते हैं, और 'सिरात-ए-

मुस्तकीम' में वे इस तरह की स्वीकृति और पालन का मार्ग अपनाते हैं। जब भी मृतक को लाभ पहुँचाने का लक्ष्य हो, तो केवल भोजन पर निर्भर न रहें; यदि संभव हो तो यह बेहतर है, अन्यथा केवल सूरह अल-फातिहा और अल-इखलास का सवाब ही सबसे उत्तम सवाब है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि सवाब पहुँचाने (ईसाल-ए-सवाब) का तरीका ईश्वर के सम्मुख प्रार्थना करना है।

(पादलेख/Footnotes) 1. एहिआ उल-उलूम, किताब आदाब अस-समा वल-वजद, मकतबा व मतबा अल-मशहद अल-हुसैनी, काहिरा, 3/272। 2. एहिआ उल-उलूम, किताब आदाब अस-समा वल-वजद, मकतबा व मतबा अल-मशहद अल-हुसैनी, काहिरा, 3/272। 3. सिरात-ए-मुस्तकीम, हिदायत-ए-सालिसा बिदअत आदि के बारे में, अल-मकतबत अल-सलफिया, लाहौर, पृष्ठ 64।

पेज 572/948

فتاوی رضویہ جلد نہم

(Right Column) اور یہی صحیح ، راجح اور نصرت یافتہ مسلک ہے۔ پھر بدنی و مالی دونوں کو جمع کرنا اس طرح کہ قرآن بھی پڑھیں، صدقہ بھی کریں، اور دونوں کا ثواب مسلمانوں کو پہنچائیں، یہ حسن کو حسن اور مندوب کو مندوب کے ساتھ یکجا کرنا ہی تو ہے، ہر گز ان دونوں میں کوئی منافات نہیں، جیسے نماز کے اندر مصحف دیکھ کر تلاوت کرنے میں ہے، نہ ہی شریعت میں اس جمع سے منع وارد ہے جیسے رکوع و سجود میں قراءت قرآن سے متعلق ہے، پھر اس کو ممنوع ٹھہرانا عقل کے دائرے سے قدم باہر لانا ہے۔ امام حجۃ الاسلام محمد غزالی قدس سرہ احیاء العلوم میں فرماتے ہیں: جب الگ الگ افراد حرام نہیں تو مجموعہ کہاں سے حرام ہو جائے گا!۔ اور اسی میں ہے: جب مباحات کے افراد مجتمع ہوں تو مجموعہ بھی مباح ہی ہوگا_ اس عمدہ قاعدے کا پورا بیان اہل تدقیق کے پیشوا، اہل تحقیق کی مہر، حضرت والد قدس سرہ، نے کتاب مستطاب اصول الرشاد لقمع مبانی الفساد میں کیا ہے اور صحاح کی حدیث سے اس معنی کا استنباط فرمایا ہے۔ جو چاہے اس کے مطالعہ سے مشرف ہو_ خود طائفہ مانعین کے معلم اول مولوی اسمعیل دہلوی کو قرآن اور طعام کی اس یکجائی کا عمدہ ہونا قبول و تسلیم ہے، صراط مستقیم میں یوں اقرار و تسلیم کی راہ اختیار کی ہے: "جب میت کو کوئی فائدہ

(Left Column) جمع حسن با حسن ومندوب وزنہار یکے بعد دیگرے منافی نیست کالتلاوۃ من المصحف فی الصلوۃ نہ شرعی بانکار ایں جمع و ارشد کقراءۃ القرآن فی الرکوع والسجود پس اور امحذور گفتن از دائرہ عمل بیرون رفتن ست۔ امام حجۃ الاسلام محمد غزالی قدس سرہ العالی در احیاء العلوم فرماید اذا لم یحرم الآحاد فمن این یحرم المجموع1؟ وبہمدرانست ان افراد المباحات اذا اجتمعت کان ذلك المجموع مباحاً2، تمام تخصیل این اصل انیق امام المدققین ختام المحققین حضرت

والد قدس سره الماجد در کتاب مستطاب اصول الرشاد لقمع مبانی الفساد ارشاد فرموده اند و این معنی را از حدیث صحاح استنباط نموده، من شاء فلیتشرف بمطالعته، و خود معلم اول طائفه مانعین مولوی اسمعیل دہلوی راخوبی این اجتماع قرآن و طعام مقبول و مسلم است و صراط مستقیم چناں راه اعتراف وتسلیم پوید، ہر گاه ایصال نفع بمیت منظور دارد موقوف بر اطعام نه گزارد اگر میسر باشد بہتر است والا صرف ثواب سوره فاتحه واخلاص بہترین ثواب ہاست3 اه و شک نیست که طریقه ایصال ثواب دعا بجناب رب الارباب ست

(Footnotes) 1 احیاء العلوم کتاب آداب السماع والوجد مکتبه و مطبعه المشهد الحسینی قاہره ۳ / ۲۷۲ 2 احیاء العلوم کتاب آداب السماع والوجد مکتبه و مطبعه المشهد الحسینی قاہره ۳ / ۲۷۲ 3 صراط مستقیم ہدایت ثالثه در بدا عتیکه الخ مطبوعه المکتبة السلفیه لاہور ص ۶۴

Fatawa Razawiyya, Volume 9

[Left Column] Jalla Jalaluhu. Imam-ul-Taifa says in Sirat-e-Mustaqim: "Whatever worship is performed by a Muslim and its reward is conveyed to the soul of any of the departed, and the method of conveying it is a prayer of goodness in the Divine court, then this in itself is certainly better and commendable etc." Raising both hands is among the general etiquettes of prayer. In Hisn-e-Hasin, it is mentioned under the etiquettes of prayer: "Among them is spreading the hands." T. M. (Tirmidhi and Mustadrak): "and raising them" (2). That is, raising both hands is among the etiquettes of prayer according to the Hadith of Sihah Sitta. And what to say of our Imams and scholars, even the 'Second Teacher' of the group of deniers says in Masa'il Arba'in: "Raising hands for prayer at the time of condolence (Ta'ziyat) is apparently permissible because raising hands in prayer is proven in general, so there is no harm at this time too, but the specification of it for prayer at the time of condolence is not recorded (ma'sur) (3) - End quote." See, despite calling the specifics 'non-recorded,' he inferred permissibility based on the general proof and saw no harm in the act itself. In short, none of these matters are reprehensible (mustankarat) in the pure Shariah. Considering the mere absence of recorded specifics as a reason for absolute prohibition is a clear and manifest error. This humble servant, with the help of the Almighty, has discussed this topic in the blessed collection "Al-Bariqat al-Shariqah 'ala Mariqat al-Mashariqah."

[Right Column] ...if conveying (reward) is intended, it should not be made dependent on feeding; if it is available, it is better, otherwise, the reward of just Surah Al-Fatiha and Al-Ikhlas is the best reward - End quote." And there is no doubt that the method of 'Isal-e-Sawab' (conveying reward) is to pray in the court of the Lord of Lords (Jalla Jalaluhu). Imam-ul-Taifa has written in Sirat-e-Mustaqim: "Whatever worship is performed by a Muslim and its reward is conveyed to the soul of any of the departed, and the method of conveying it is a prayer in the Divine court, then this in itself is undoubtedly better and commendable etc." And raising hands is among the general etiquettes of prayer. It is in Hisn-e-Hasin: "Among the etiquettes of prayer is also to spread the hands (Tirmidhi, Mustadrak Hakim) and raise them (Sihah Sitta)." It became known that raising both hands being part of the etiquettes of prayer is proven from the Hadith of Sihah Sitta. Not to mention our Imams and scholars, even the Second Teacher of the group of deniers himself has written in Masa'il Arba'in: "Raising hands in the prayer at the time of condolence (Ta'ziyat) apparently seems permissible because raising hands in prayer is proven generally from the noble

Hadith, so there would be no harm at that time too, but raising hands specifically for the time of condolence..."

[Footnotes] 1. Sirat-e-Mustaqim, Hidayat-e-Ula, regarding the mention of innovations etc., Al-Maktaba as-Salafiyya, Lahore, p. 55. 2. Hisn-e-Hasin, Etiquettes of Prayer, Afzal al-Matabi, Lucknow, p. 17. 3. Masa'il Arba'in.

फ़तावा रज़विया, जिल्द नहम (9)

[बायां कॉलम] जल्ल जलालुहू। इमाम-उत-ताइफ़ा 'सिरात-ए-मुस्तक़ीम' में कहते हैं: "जो इबादत किसी मुसलमान से अदा हो और उसका सवाब गुज़रे हुए लोगों में से किसी की रूह को पहुँचाए, और उसके पहुँचाने का तरीक़ा जनाब-ए-इलाही में दुआ-ए-खैर है, तो यह ख़ुद बहरहाल बेहतर और मुस्तहसन (सराहनीय) है" इत्यादि। दोनों हाथ उठाना मुतलक़ दुआ के आदाब में से है। 'हिस्न-ए-हसीन' में दुआ के आदाब के तहत फ़रमाया: "उनमें से एक हाथों को फैलाना है।" तिर्मिज़ी व मुस्तदरक: "और उन्हें उठाना" (2)। यानी दोनों हाथ उठाना सिहाह सित्ता की हदीस के हुक्म से दुआ के आदाब में से है। और हमारे आइमा और उलमा की क्या बात करें, ख़ुद मुनकरीन की जमात के 'मुअल्लिम-ए-सानी' (दूसरे उस्ताद) 'मसाइल-ए-अरबईन' में कहते हैं: "ताज़ियत (शोक) के समय दुआ के लिए हाथ उठाना ज़ाहिरा जाइज़ है क्योंकि दुआ में हाथ उठाना मुतलक़ तौर पर साबित है, इसलिए इस समय भी कोई हर्ज नहीं, लेकिन ताज़ियत के समय की दुआ के लिए इसकी तख़्सीस (विशेषता) मासूर (हदीस से वर्णित) नहीं है (3) - इति।" देखिये, बावजूद इसके कि ख़ुसूसियात को ग़ैर-मासूर कहा, लेकिन उमूमी दलील के आधार पर जवाज़ (वैधता) को ज़ाहिर किया और इस काम में कोई हर्ज नहीं देखा। संक्षेप में, इन मामलों में से कोई भी ऐसी चीज़ नहीं है जो शरीयत-ए-मुतहरा में नापसंदीदा हो। महज़ ख़ुसूसियात का उल्लेख न होने को मुतलक़ तौर पर मनाही की वजह मानना एक साफ़ और स्पष्ट ग़लती है। इस अकीदतमंद (फ़क़ीर) ने अल्लाह की मदद से इस विषय पर मुबारक मज्मूआ "अल-बारिक़त-उश-शारिक़ा अला मारिक़त-इल-मशारिक़ा" में चर्चा की है।

[दायां कॉलम] ...पहुँचाना मंज़ूर हो तो खाना खिलाने पर निर्भर न रखे; अगर मुयस्सर हो तो बेहतर है, वरना सिर्फ़ सूरह फ़ातिहा और इख़्लास का सवाब बेहतरीन सवाब है - इति।" और इसमें कोई संदेह नहीं है कि ईसाल-ए-सवाब का तरीक़ा यही है कि रब-उल-अरबाब (जल्ल जलालुहू) की बारगाह में दुआ की जाए। इमाम-उत-ताइफ़ा ने 'सिरात-ए-मुस्तक़ीम' में लिखा है: "जो इबादत किसी मुसलमान से अदा हो और उसका सवाब गुज़रे हुए लोगों में से किसी की रूह को पहुँचाए, और उसके पहुँचाने का तरीक़ा जनाब-ए-इलाही में दुआ है, तो यह ख़ुद बिला-शुबा बेहतर और मुस्तहसन है इत्यादि।" और हाथ उठाना मुतलक़ दुआ के आदाब से है। 'हिस्न-ए-हसीन' में है: "दुआ के आदाब में से यह भी है कि हाथों को फैलाए (तिर्मिज़ी, मुस्तदरक हाकिम) और बुलंद करे (सिहाह सित्ता)।" मालूम हुआ कि दोनों हाथ उठाना दुआ के आदाब से होना सिहाह सित्ता की हदीस से साबित है। हमारे आइमा और उलमा की क्या बात है, ख़ुद मुनकरीन की टोली के मुअल्लिम-ए-सानी ने 'मसाइल-ए-अरबईन' में

लिखा है: "ताज़ियत के समय की दुआ में हाथ उठाना ज़ाहिर यही है कि जाइज़ है क्योंकि हदीस-ए-शरीफ़ से मुतलक़ दुआ में हाथ उठाना साबित है, तो इस समय भी कोई हर्ज न होगा, मगर ख़ास ताज़ियत के समय के लिए हाथ उठाना..."

[पाद-टिप्पणियाँ] 1. सिरात-ए-मुस्तक़ीम, हिदायत-ए-ऊला, बिदअतों के ज़िक्र के बारे में इत्यादि, अल-मकतबा अस-सलफ़िया, लाहौर, पृष्ठ 55. 2. हिस्न-ए-हसीन, आदाब-उद-दुआ, अफ़ज़ल अल-मताबे, लखनऊ, पृष्ठ 17. 3. मसाइल-ए-अरबईन।

فتاوی رضویہ، جلد نہم

[Left Column] جل جلالہ۔ امام الطائفہ در صراط مستقیم گوید " ہر عبادتیکہ از مسلمان ادا شود ثواب آں بروح کسے از گذشتگان برساند وطریق رسانیدن آں دعائے خیر بجناب الٰہی ست پس این خود البتہ بہتر و مستحسن است" الخ دو دست برداشتن از آداب مطلق دُعا ست در حصن حصین فرماید آداب الدعا منها بسط الیدین۔ ت مس : ورفعها ۲ یعنی ہر دودست برداشتن بحکم حدیث صحاح ستہ از آداب دُعا است و از ائمہ وعلمائے ماچہ گوئی خود معلم ثانی طوائف منکرین در مسائل اربعین گوید "دست برداشتن برائے دعاوقت تعزیت ظاہرا جواز است زیرا کہ رفع یدین در دعا مطلقاً ثابت شدہ پس دریں وقت ہم مضائقہ نہ دارد لیکن تخصیص آں برائے دعا وقت تعزیت ماثورہ نیست ۳ اھ " ببینید با آنکہ خصوصیات را غیر ماثور گفت اما بدلیل اطلاق استظہار جواز کرد۔ و در فعل او ہیچ مضائقہ ندید۔ بالجملہ ازیں امور زنہار چیزے نیست کہ در شرع مطہرہ مستنکرات باشد و مجرد عدم ورود خصوصیات را مطلقاً مستلزم منع دانستن غلطی ست واضح و جلے فاضح فقیر بعون القدیر ایں مبحث را در مجموعہ مبارکہ " البارقۃ الشارقۃ علی مارقۃ المشارقۃ"

[Right Column] پہنچانا منظور ہو کھانا کھلانے پر موقوف نہ رکھے اگر میسر ہو بہتر ہے ورنہ صرف سورہ فاتحہ واخلاص کا ثواب بہترین ثواب ہے اھ" اور شک نہیں کہ ایصالِ ثواب کا طریقہ یہی ہے کہ رب الارباب جل جلالہ کی بارگاہ میں دعا ہو ۔ امام الطائفہ نے صراطِ مستقیم میں لکھا ہے: "جو عبادت کسی مسلمان سے ادا ہو اور اس کا ثواب گزرے ہوئے لوگوں میں سے کسی کی روح کو پہنچائے ، اور اس کے پہنچانے کا طریقہ جناب الٰہی میں دعا ہے تو یہ خود بلاشبہ بہتر اور مستحسن ہے الخ" اور ہاتھ اٹھانا مطلق دُعا کے آداب سے ہے۔ حصن حصین میں ہے : "دعا کے آداب میں سے یہ بھی ہے کہ ہاتھوں کو پھیلائے (ترمذی، مستدرک حاکم) اور بلند کرے

(صحاح ستہ)۔" معلوم ہوا کہ دونوں ہاتھ اٹھانے کا آدابِ دعا سے ہونا صحاحِ ستہ کی حدیث سے ثابت ہے۔ ہمارے ائمہ اور علماء کی کیا بات ہے خود طوائف منکرین کے معلمِ ثانی نے مسائلِ اربعین میں لکھا ہے: "وقتِ تعزیت کی دعا میں ہاتھ اٹھانا ظاہر یہی ہے کہ جائز ہے اس لیے کہ حدیثِ شریف سے مطلقاً دعا میں ہاتھ اٹھانا ثابت ہے تو اس وقت میں بھی کوئی مضائقہ نہ ہوگا، مگر خاص وقتِ تعزیت کے لیے ہاتھ اٹھانا

[Footnotes] 1 صراطِ مستقیم ہدایتِ اولیٰ در ذکرِ بدعاتیکہ الخ المکتبۃ السلفیہ لاہور ص ۵۵ 2 حصن حصین آداب الدعاء افض المطابع لکھنؤ ص ۱۷ 3 مسائل اربعین

It is not reported in the traditions. [End quote]. Look, despite calling the specificity non-traditional (ghair mathur), he declared its permissibility as evident based on general reasoning, and there is never anything bad in doing it. To consider the mere absence of these specificities as necessitating a prohibition is a blatant error and shameful ignorance. This humble servant, with the help of the Almighty Lord, has written this discussion more clearly in 'Al-Bariqat al-Shariqah 'ala Mariqat al-Mashariqah'. The scholars of the Sunnah have repeatedly driven these claimants back to their homes and seated them on the dust of humiliation; there is no need for further detail or length. However, what the Imam of the sect [opposing group] has written in this regard despite admitting the lack of traditional precedence is worth listening to. In the printed discourse on 'Dhabihah' (sacrifice) in the treatise 'Zubdat al-Nasaih', it is written: 'All methods except digging wells and similar works, and prayer, seeking forgiveness, and sacrifice—such as Quran recitation, Fatiha recitation, feeding—are innovations (bid'at), though specifically they are good innovations (bid'at hasana), like embracing on the day of Eid and shaking hands after the morning or afternoon prayers.' Let the members of the sect ask their own Imam how they can call these methods in general, and Fatiha recitation in particular, 'good' (hasana) despite declaring them innovations and newly-invented matters? And how do you go against our group? Furthermore, the mention of Eid embracing is a 'hard stone' for them—a very tough obstacle. This Imam's inconsistency brings trouble to the lives and existence of his followers and has ruined all their work. 'And there is no power nor strength except with Allah, the High, the Great.' And the words of the 'Second Teacher' just passed, stating that despite the lack of proven specificity, he saw no harm in it. (T) Now we come to quoting a few more statements from the elders and notables of the sect...

1 Treatise Zubdat al-Nasaih Page 574 of 948

परंपराओं में उल्लेखित नहीं है। [उद्धरण समाप्त]। देखिए, विशिष्टता को गैर-माथुर (परंपरा से हटकर) बताने के बावजूद, व्यापक साक्ष्य के आधार पर इसे जायज़ बताया और इसके करने में कभी कोई बुराई नहीं होती। इन विशिष्टताओं के मात्र न पाए जाने को निषेध का कारण समझना एक स्पष्ट गलती और शर्मनाक अज्ञानता है। फ़क़ीर (लेखक) ने प्रभु की सहायता से इस विषय को 'अल-बारिक़तुल शारिक़ा अल मारिक़तुल मशारिक़ा' में अधिक स्पष्ट रूप से लिखा है। सुन्नत के विद्वानों ने बार-बार इन दावेदारों को उनके घर पहुँचाया और अपमान की धूल चटा दी है; विस्तार की आवश्यकता नहीं है। लेकिन संप्रदाय के इमाम ने इस बारे में परंपराओं के अभाव को स्वीकार करने के बावजूद जो कुछ लिखा है, वह सुनने योग्य है। 'ज़ुबदतुन नसाह' पत्रिका में प्रकाशित 'ज़बीहा' (बलि) के भाषण में लिखा है: 'कुआँ खोदने और इसी तरह के कार्यों और दुआ, इस्तिग़फ़ार, क़ुर्बानी के अलावा क़ुरआन ख्वानी, फ़ातिहा ख्वानी, खाना खिलाना, सब तरीके बिदअत (नवाचार) हैं, हालाँकि विशेष रूप से बिदअते-हसना (अच्छे नवाचार) हैं, जैसे ईद के दिन गले मिलना और सुबह या अस्र की नमाज़ के बाद मुसाफ़हा (हाथ मिलाना)।' संप्रदाय के लोग अपने इमाम से पूछें कि इन तरीकों को सामान्यतः और फ़ातिहा ख्वानी को विशेष रूप से बिदअत और नया आविष्कार करार देने के बावजूद 'हसना' (अच्छा) कैसे कहते हो? और हमारे समूह के विरुद्ध कैसे जाते हो? फिर ईद पर गले मिलने का ज़िक्र उनके लिए 'संग आमद व सख़्त आमद' (मुसीबत पर मुसीबत) है, यह उनके लिए एक बहुत बड़ी चट्टान है। इस इमाम की अस्थिरता उनके अनुयायियों की जान और हड्डियों पर बन आती है और उनके सारे काम को तहस-नहस कर दिया है। 'और अल्लाह के अलावा कोई शक्ति और ताक़त नहीं है, जो महान और श्रेष्ठ है।' और 'मुअल्लिम-ए-सानी' की बात अभी गुज़री कि विशिष्टता सिद्ध न होने के बावजूद कोई हर्ज नहीं समझा। (त) अब हम संप्रदाय के कुछ अन्य बड़ों और प्रमुखों के कथनों की ओर आते हैं...

1 रिसाला ज़ुबदतुन नसाह पृष्ठ 574 / 948

روشن تر گفتہ۔ و علمائے سنت بارہا ایں مدعیان را تا خانہ رسانده و بر خاک مذلت نشانده اند، حاجت تفصیل و تطویل نیست، اما آنچه امام الطائفه با وجود تسلیم عدم ورود دریں باب گفته است شنیدن دارد، در تقریرِ ذبیحہ مطبوع رسالہ زبدة النصائح می گوید "ہمہ اوضاع از قرآن خوانی و فاتحہ خوانی و طعام خورانیدن سوائے کندن چاہ وامثال و دعائے و استغفار واضحہ بدعت است، گو بدعتِ حسنہ بالخصوص است مثل معانقہ روز عید و مصافحہ بعد نمازِ صبح یا عصر اھ " اربابِ طائفہ امامِ خود شاں پرسند کہ با آنکہ ایں طریقہ ہا را عموماً فاتحہ خوانی را خصوصاً بدعت و محدث میدانند چہ گونہ حسنہ می گوئی و خلافِ طائفہ راہ می پوئی، باز ذکر معانقہ عید سنگ آمد و سخت آمد، آرے تلونِ ایں امام متبعانش را کار بجان و کار با استخواں رسانده است ولاحول ولا قوة الا باللہ العلی العظیم و کلامِ معلمِ ثانی حالا گزشت کہ باوجود عدمِ ثبوتِ خصوصیت مضائقہ نہ دانست۔ اکنون آمدیم بر نقلِ چند اقوالِ دیگر از کبراء و عمائد آثار میں منقول نہیں، اھ "دیکھئے خصوصیت کو غیر ماثور بتانے کے باوجود، دلیلِ اطلاق سے جواز کو ظاہر کہا اور اس کے کرنے میں کبھی بھی کوئی چیز بری نہیں ہوتی، اور ان خصوصیات کے صرف وارد نہ ہونے کو مستلزم ممانعت سمجھنا تو ایک کھلی ہوئی غلطی اور شرمناک جہالت ہے۔ فقیر نے رَبِّ قدیر کی مدد سے یہ بحث "البارقة الشارقة علی مارقة المشارقة" میں زیادہ روشن طور پر تحریر کی ہے۔ اور علمائے سنت نے بارہا ان مدعیوں کو گھر تک پہنچایا اور خاک ذلت پر بٹھایا ہے، تفصیل و تطویل کی ضرورت نہیں۔ لیکن امام الطائفہ نے اس باب میں عدم ورود تسلیم کرنے کے باوجود جو کچھ لکھا ہے وہ سننے کے قابل ہے۔ رسالہ "زبدة النصائح" میں طبع شدہ تقریرِ ذبح میں لکھا ہے:۔ "کنواں کھودنے اور اس جیسے کاموں اور دعا، استغفار، قربانی کے سوا قرآن خوانی، فاتحہ خوانی، کھانا کھلانا سب

طریقے بدعت ہیں، گو خاص بدعت حسنہ ہیں، جیسے عید کے دن معانقہ اور نمازِ صبح یا عصر کے بعد مصافحہ۔" اربابِ طائفہ خود اپنے امام سے پوچھیں کہ ان طریقوں کو عموماً اور فاتحہ خوانی کو خصوصاً بدعت اور نو ایجاد قرار دینے کے باوجود "حسنہ" کیسے کہتے ہو؟ _ اور ہمارے گروہ کے خلاف کیسے جاتے ہو؟ پھر معانقہ عید کا ذکر تو "سنگ آمد و سخت آمد" ان کے لیے بڑی سخت چٹان ہے۔ اس امام کو تلون مزاجی سے اس کے متبعین کی جان واستخوان پر بن آتی ہے اور ان کا سارا کام ہی تمام کردیا ہے ولاحول ولاقوۃ الاباللہ باللہ العلی العظیم __ اور معلم ثانی کا کلام ابھی گزرا کہ خصوصیت ثابت نہ ہونے کے باوجود کوئی مضائقہ نہ جانا۔ (ت) اب ہم کچھ اور اقوال امام الطائفہ کے بزرگان و

...dignitaries and teachers are quoted so that these bold people may know what severe punishments are tasted and what bad days are seen for opening one's mouth to declare Fatiha forbidden without Sharia prohibition, and for calling the food of Fatiha and the sweets of the Niyaz of elders as forbidden and carrion. (1) Shah Waliullah, in 'Anfas al-Arifin', quotes from his father Shah Abdul Rahim: "He says that during the days of the demise of the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him), nothing was available to cook food for his Niyaz; Niyaz was performed on some roasted chickpeas and dark sugar (jaggery), etc." In 'Al-Durr al-Thamin fi Mubashshirat al-Nabi al-Amin', the same statement is recorded as follows:

"The twenty-second Hadith: My master and father told me: 'I used to prepare food as a connection to the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him). One year, I did not find any means to prepare food, and I found nothing but roasted chickpeas. So, I distributed them among the people. Then I saw him (peace and blessings of Allah be upon him) in a dream, and before him were these chickpeas, and he was joyful and beaming.'" The mentioned Shah Sahib writes in 'Intibah fi Salasil Awliya Allah': "Usually, Fatiha for the Khawajas of Chisht is performed on a small amount of sweets."

1. Anfas al-Arifin (Urdu), Popularity of items for the Prophet's Niyaz, Al-Ma'arif, Ganj Bakhsh Road, Lahore, p. 106.
2. Al-Durr al-Thamin Mubashshirat al-Nabi al-Amin, Kutub Khana Alaviya Razawiya, Faisalabad, p. 40.

...मान्यवरों और गुरुओं के हवाले दिए जाते हैं ताकि इन बेबाक लोगों को पता चले कि शरीयत की मनाही के बिना फ़ातिहा को हराम बताने के लिए ज़बान खोलने और फ़ातिहा के खाने, बुज़ुर्गों की नियाज़ की मिठाई को हराम और मुरदार कहने पर कैसी सख़्त सज़ाएँ भुगतनी पड़ती हैं और कैसे बुरे दिन देखने पड़ते हैं। (1) शाह वलीउल्लाह 'अनफ़ास अल-आरिफ़ीन' में अपने पिता शाह अब्दुल रहीम से नक़ल करते हैं कि: "वे फ़रमाते हैं कि हज़रत रिसालत पनाह (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) के विसाल के दिनों में कुछ मयस्सर न हुआ कि आप हज़रत की नियाज़ का खाना पकाया जाए; थोड़े से भुने हुए चने और गुड़ पर नियाज़ की गई इत्यादि।" 'अल-दुर्रुल समीन फ़ी मुबशशिरात अल-नबी अल-अमीन' में इसी बात को इस तरह नक़ल किया गया है:

"बाईसवीं हदीस: मुझे मेरे आक़ा और पिता ने बताया: 'मैं हुज़ूर (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) के साथ ताल्लुक़ के तौर पर खाना तैयार करता था। एक साल मुझे खाना तैयार करने का कोई ज़रिया नहीं मिला और मुझे भुने हुए चनों के अलावा कुछ नहीं मिला। इसलिए, मैंने उन्हें लोगों में बाँट दिया। फिर मैंने उन्हें (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ख़्वाब में देखा, और उनके सामने ये चने मौजूद थे, और वे बहुत खुश और प्रफुल्लित थे।'" उक्त शाह साहब 'इन्तिबाह फ़ी सलासिल औलिया अल्लाह' में लिखते हैं: "आम तौर पर चिश्ती ख़्वाजाओं के नाम पर थोड़ी सी मिठाई पर फ़ातिहा दी जाती है।"

1. अनफ़ास अल-आरिफ़ीन (उर्दू), हुज़ूर की नियाज़ की चीज़ों की मक़बूलियत, अल-मआरिफ़, गंज बख़्श रोड, लाहौर, पृष्ठ 106।
2. अल-दुर्रुल समीन मुबशशिरात अल-नबी अल-अमीन, कुतुब ख़ाना अलविया रज़विया, फ़ैसलाबाद, पृष्ठ 40।

पृष्ठ 575 का 948

عمائد اور اساتذہ کے نقل کرتے ہیں تاکہ ان بے باکوں کو پتا چلے کہ شریعت سے ممانعت کے بغیر فاتحہ کو حرام بتانے پر زبان کھولنا اور فاتحہ کے کھانے، بزرگوں کی نیاز کی شیرینی کو حرام و مردار کہنا کیسی سخت سزائیں چکھاتا ہے اور کیسے برے دن دکھاتا ہے۔ (۱) شاہ ولی اللہ انفاس العارفین میں اپنے والد شاہ عبدالرحیم سے نقل کرتے ہیں کہ :"وہ فرماتے ہیں حضرت رسالت پناہ صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کے ایام وفات میں کچھ میسر نہ ہوا کہ آں حضرت کی نیاز کا کھانا پکایا جائے تھوڑے سے بھنے ہوئے چنے اور قند سیاہ (گڑ) پر نیاز کیا الخ۔ الدرالثمین فی مبشرات النبی الامین میں اسی بات کو یوں نقل کیا ہے :

"بائیسویں حدیث: مجھے سیدی والد ماجد نے بتایا کہ حضور صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کی نیاز کیلئے کچھ کھانا تیار کراتا تھا ایک سال کچھ کشائش نہ ہوئی کہ کھانا پکواؤں ، صرف بھنے ہوئے چنے میسر آئے وہی میں نے تقسیم کئے ، میں نے حضور اقدس صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کو خواب میں دیکھا کہ ان کے سامنے یہ چنے موجود ہیں اور حضور مسرور شادماں ہیں۔" یہی شاہ صاحب انتباہ فی سلاسل الاولیاء اللہ میں لکھتے ہیں : "تھوڑی شیرینی پر عموماً خواجگان چشت"

۱۔ انفاس العارفین (اردو) حضور کیا نیاز کی اشیاء کی مقبولیت المعارف گنج بخش روڈ لاہور ص ۱۰۶ ۲۔ الدر الثمین مبشرات النبی الامین کتب خانہ علویہ رضویہ فیصل آباد ص ۴۰

(Left Column - Persian Text) ...generally recite and seek their needs from Allah Almighty. In the same way, let them be read every day. 1 End. "The words sweetmeats and Fatiha every day should not be forgotten by the person." 3. The aforementioned Shah Sahib says in 'Ham'aat': "From here it is proven to maintain the anniversaries (Urs) of the masters, the consistent visiting of their graves, and the obligation of reciting Fatiha and giving charity for them. 2" - The aforementioned Shah Sahib says in a fatwa included in 'Zubdat al-Nasa'ih': "If malida (a sweet dish) and rice pudding are cooked and fed on the occasion of the Fatiha of an elder with the intention of sending reward to their soul, there is no harm, it is permissible. Food of a vow (Nazr) for Allah is not lawful for the wealthy to eat, but if Fatiha is given in the name of an elder, then eating it is also permissible for the wealthy. 3" - The late Shah Sahib writes in 'Anfas al-Arifeen': "His Eminence* went to visit Makhdoom Allah Diya in the town of Dasna. It was night time. At that moment, he said, 'Makhdoom is hosting us and says that you should eat something before you go.' They stopped until the traces of people..."

(Right Column - Urdu Translation/Explanation) ...recite Fatiha in the name of [the elders] and seek your needs from Allah Almighty; keep reading it every day in the same way. "Sweetmeats, Fatiha, and every day"—these words should not leave the mind. 3 The same Shah Sahib says in 'Ham'aat': "It is proven from here that maintaining the anniversaries of the masters, consistency in visiting their graves, and the obligation of reciting Fatiha and giving charity for them [is established]." The same Shah Sahib writes in the fatwa mentioned in 'Zubdat al-Nasa'ih': "If for the Fatiha of any elder, with the intention of sending reward to their blessed soul, someone cooks and feeds malida and kheer, there is no harm; it is permissible. And the food of a vow to God is not lawful for the wealthy. But if Fatiha is given in the name of any elder, then it is permissible for the wealthy to eat from it as well." 5 The same Shah Sahib writes in 'Anfas al-Arifeen': "His Eminence (i.e., his father and spiritual guide Shah Abdur Rahim Sahib) had gone to the town of Dasna to visit Makhdoom Allah Diya; it was night time. At that moment he said that Makhdoom is inviting us and saying...

Note (*): i.e., his father and spiritual guide Shah Abdur Rahim 12 (M) | i.e., their father and spiritual guide Shah Abdur Rahim 12 (T)

1. Al-Intibah fi Salasil al-Awliya, mention of the method of Khatm Khwajgan Chishti, Barqi Press Delhi, p. 100
2. Ham'aat, Hama 11, Academy Ash-Shah Waliullah Hyderabad Sindh, p. 58
3. Zubdat al-Nasa'ih

(बायाँ कॉलम - फारसी पाठ) ...आम तौर पर पढ़ें और अल्लाह तआला से अपनी हाजतें मांगें। इसी तरह हर रोज़ पढ़ते रहें। 1 समाप्त। "शीरीनी और फातिहा हर रोज़ के शब्द व्यक्ति के ज़हन से न निकलें।" 3. उपर्युक्त शाह साहब 'हमात' में कहते हैं: "यहीं से मशायख़ के उर्स का एहतिमाम करना, उनकी क़ब्रों की ज़ियारत पर पाबंदी करना और उनके लिए फातिहा पढ़ने और सदक़ा देने का इल्तिज़ाम साबित है। 2" - उपर्युक्त शाह साहब 'ज़ुब्दतुन नसाह' में दर्ज फतवे में कहते हैं: "अगर किसी बुज़ुर्ग की फातिहा के लिए उनकी रूह को सवाब पहुँचाने की नीयत से मलीदा और खीर पकाएँ और खिलाएँ तो कोई हर्ज नहीं, जायज़ है। अल्लाह की नज़र (मन्नत) का खाना मालदारों (अगुनिया) के लिए हलाल नहीं है, लेकिन अगर किसी बुज़ुर्ग के नाम की फातिहा दी जाए, तो उसमें मालदारों का खाना भी जायज़ है। 3" - मरहूम शाह साहब 'अनफ़ासुल आरिफीन' में लिखते हैं: "हज़रत* कस्बा डासना में मखदूम अल्लाह दिया की ज़ियारत के लिए गए थे। रात का वक़्त था। उसी समय उन्होंने फरमाया कि मखदूम हमारी दावत कर रहे हैं और कह रहे हैं कि कुछ खाकर जाना। वे रुके रहे यहाँ तक कि लोगों के निशान..."

(दायाँ कॉलम - उर्दू अनुवाद/व्याख्या) ...के नाम की फातिहा पढ़ें और अल्लाह तआला से हाजत तलब करें; इसी तरह हर रोज़ पढ़ते रहें। "शीरीनी, फातिहा और हर रोज़"—ये शब्द ज़हन से न निकलें। 3 यही शाह साहब 'हमात' में फरमाते हैं: "यहीं से साबित है कि मशायख़ के उर्स की देख-रेख, उनके मज़ार की ज़ियारत पर निरंतरता और उनके लिए फातिहा पढ़ने और सदक़ा देने का पाबंदी [साबित है]।" यही शाह साहब 'ज़ुब्दतुन नसाह' में शामिल फतवे में लिखते हैं: "अगर किसी बुज़ुर्ग की फातिहा के लिए उनकी मुक़द्दस रूह को सवाब पहुँचाने के इरादे से मलीदा और खीर पकाएँ और खिलाएँ तो कोई हर्ज नहीं; यह जायज़ है। और खुदा की नज़र का खाना मालदारों के लिए हलाल नहीं है। लेकिन अगर किसी बुज़ुर्ग के नाम की फातिहा दी जाए, तो उसमें मालदारों को खाना भी जायज़ है।" 5 यही शाह साहब 'अनफ़ासुल आरिफीन' में लिखते हैं: "हज़रत (यानी उनके वालिद और मुर्शिद शाह अब्दुर रहीम साहब) कस्बा डासना में मखदूम अल्लाह दिया की ज़ियारत के लिए गए थे; रात का वक़्त था। उसी वक़्त फरमाया कि मखदूम हमारी दावत कर रहे हैं और फरमा रहे हैं...

नोट (*): यानी उनके वालिद और मुर्शिद शाह अब्दुर रहीम 12 (म) | यानी उनके वालिद और मुर्शिद शाह अब्दुर रहीम 12 (त)

1. अल-इन्तिबाह फ़ी सलासिल अल-औलिया, ज़िक्र तरीक़ा-ए-ख़त्म ख़्वाजगान चिश्त, बरक़ी प्रेस दिल्ली, पृ. 100
2. हमात, हमा 11, अकादमी अश्-शाह वलीउल्लाह हैदराबाद सिंध, पृ. 58
3. ज़ुब्दतुन नसाह

पृष्ठ 576 का 948

(بایاں کالم - فارسی متن) عموماً، بخوانند و حاجت از خدائے تعالیٰ سوال نمایند۔ ہمیں طور ہر روزے خواندہ باشند ۱ اھ "لفظ شیرینی وفاتحہ ہر روز از یاد مرد ۳ او شاہ صاحب مسطور در ہمعات گویند: "از ینجاست حفظ اعراس مشائخ و مواظبت زیارت قبور ایشاں والتزام فاتحہ خواندن و صدقہ دادن برائے ایشاں 2 " شاہ صاحب مزبور در فتویٰ مندرجہ زبدۃ النصائح گویند: "اگر ملیدہ شیر برنج بنا بر فاتحہ بزرگی بقصد ایصال ثواب بروح ایشاں پزند و بخورانند مضائقہ نیست جائزست و طعام نذر اللہ اغنیاء را خوردن حلال نیست و اگر فاتحہ بنام بزرگی دادہ شد پس اغنیاء راہم خوردن دراں جائزست 3۔" شاہ صاحب مرحوم در انفاس العارفین نگارند: "حضرت ایشاں عہ در قصبہ ڈاسنہ بزیارت مخدوم اللہ دیا رفتہ بودند و شب ہنگام بود دراں فرموند مخدوم ضیافت مامی کنند و می گویند کہ چیزے خوردہ روید توقف کردند تا آنکہ اثر مردم

(دایاں کالم - اردو متن) کے نام فاتحہ پڑھیں اور خدائے تعالیٰ سے حاجت طلب کریں، اسی طرح روز پڑھتے رہیں "اھ شیرینی اور فاتحہ اور ہر روز کے الفاظ ذہن سے نہ نکلیں۔ ۳ یہی شاہ صاحب "ہمات" میں فرماتے ہیں: "یہیں سے ثابت ہے کہ اعراس مشائخ کی نگہداشت اور ان کے مزارات کی زیارت پر مداومت اور ان کے لیے فاتحہ پڑھنے اور صدقہ دینے کا التزام ۔") یہی شاہ صاحب "زبدۃ النصائح "میں مندرج فتویٰ میں لکھتے ہیں: "اگر کسی بزرگ کی فاتحہ کے لیے ان کی روح مبارک کو ایصال ثواب کے قصد سے ملیدہ اور کھیر پکائیں اور کھلائیں تو مضائقہ نہیں۔ جائز ہے۔ اور خدا کی نذر کا کھانا اغنیاء کے لیے حلال نہیں۔ لیکن اگر کسی بزرگ کے نام کی فاتحہ دی جائے تو اس میں اغنیاء کو کھانا بھی جائز ہے۔" ۵یہی شاہ صاحب انفاس العارفین میں لکھتے ہیں: "حضرت (یعنی ان کے والد مرشد شاہ عبدالرحیم صاحب) قصبہ ڈاسنہ میں مخدوم اللہ

دیا کی زیارت کے لیے گئے تھے، رات کا وقت تھا، اسی وقت فرمایا کہ مخدوم ہماری دعوت کر رہے ہیں اور فرما رہے ہیں

عہ: یعنی والد مرشد ایشاں شاہ عبدالرحیم ۱۲ (م) | یعنی ان کے والد مرشد شاہ عبدالرحیم ۱۲ (ت)

۱ الانتباہ فی سلاسل الاولیاء ذکر طریقہ ختم خواجگان چشت برقی پریس دہلی ص ۱۰۰ ۲ ہمعات ہمہ ۱۱ اکادیمیہ الشاہ ولی اللہ حیدر آباد سندھ ص ۵۸ ۳ زبدۃ النصائح

Fatawa-e-Razvia Volume 9

[Left Column - Persian] ...became weary, sadness prevailed over the friends. Then a woman came with a tray of rice and sweets on her head and said, "I had made a vow that if my husband returns, I would immediately cook this food and bring it to those sitting at the shrine of Makhdoom Allah Diya. At this moment he arrived, I fulfilled my vow and desired that someone be there to consume it." Maulana Shah Abdul Aziz Sahab says in Tuhfa Athna Ashariyah: "The Hazrat Amir and his pure offspring are followed by the entire Ummah like pirs and spiritual guides, and cosmic affairs are considered associated with them, and Fatiha, Durood, charity, vows, and offerings in their name have become prevalent and customary, and the same is the case with all the Awliya (saints)." This statement, filled with good tidings, where every single letter is a striking thunderbolt or a destructive whirlwind on the head of the opponent, every letter should be kept in mind, and the opponents should be asked whether the Shah Sahab, by explicitly permitting and praising all these for the entire Ummah, became an infidel and polytheist or not? In the first scenario, the leader of the sect Ismail Dehlvi, who is a servant of their servants and a disciple of their disciples, in 'Sirat-e-Mustaqim' in their praise...

[Right Column - Urdu] ...that eat something before going, he paused, until the movement of people ended and weariness overcame the friends, at that time a woman came with a tray of rice and sweets on her head and said, "I had made a vow that if my husband comes back, I will immediately cook this food and bring it to those present at the shrine of Makhdoom Allah Diya, my husband arrived just now, I fulfilled the vow and my desire was that someone should be present there to consume it." (6) Maulana Shah Abdul Aziz Sahab says in Tuhfa Athna Ashariyah: "The whole Ummah regards Hazrat Amir al-Mu'minin Ali Murtaza and his pure offspring as pirs and spiritual guides and considers cosmic affairs to be associated with them, and there is a custom of Fatiha, Durood, charity, and vows in their names, and the same applies to all the friends of Allah (Awliya)." This statement, filled with good tidings, where every single letter is a striking thunderbolt or a destructive whirlwind on the head of the opponent, should be kept in heart and opponents should be asked whether the Shah Sahab clearly called the whole Ummah misguided and polytheist according to your standards or not? And by calling such things permissible and good himself, did he become an infidel and polytheist or not? In the first scenario, the leader of the sect Ismail Dehlvi, who is a servant of their servants, and their...

[Footnotes] 1 Anfas al-Arifin (Urdu) Da'wat Makhdoom Allah Diya, Al-Ma'arif Ganj Bakhsh Road Lahore, p. 112 2 Tuhfa Athna Ashariyah, Chapter Seven on Imamate, Suhail Academy Lahore, p. 214

फ़तावा रज़विया खंड नौ

[बायां कॉलम - फारसी] ...थकान हो गई, मित्रों पर उदासी छा गई। फिर एक महिला सिर पर चावल और मिठाई का थाल लेकर आई और बोली, "मैंने मन्नत मानी थी कि अगर मेरे पति वापस आ गए, तो मैं तुरंत यह भोजन पकाकर मखदूम अल्लाह दिया की दरगाह पर बैठने वालों के पास लाऊँगी। इसी समय वह आ गए, मैंने अपनी मन्नत पूरी की और चाहा कि कोई वहाँ उसे खाने के लिए मौजूद हो।" मौलाना शाह अब्दुल अज़ीज़ साहब 'तोहफ़ा इस्ना अशरिया' में फ़रमाते हैं: "हज़रत अमीर और उनकी पवित्र संतान को पूरी उम्मत पीरों और मुर्शिदों की तरह मानती है और ब्रह्मांडीय मामलों को उनसे जुड़ा हुआ मानती है, और उनके नाम पर फातिहा, दरूद, सदक़ा, मन्नत और चढ़ावा प्रचलित और प्रथागत हो गया है, और यही मामला सभी औलिया (संतों) के साथ भी है।" शुभ समाचारों से भरी यह इबारत, जिसका एक-एक अक्षर विरोधी के सिर पर गिरती बिजली या विनाशकारी बवंडर है, हर अक्षर को याद रखना चाहिए, और विरोधियों से पूछा जाना चाहिए कि क्या शाह साहब ने पूरी उम्मत के लिए इन सबको स्पष्ट रूप से अनुमति और प्रशंसा देकर काफ़िर और मुशरिक हो गए या नहीं? पहली स्थिति में, संप्रदाय के इमाम इस्माइल देहलवी जो उनके ग़ुलामों के ग़ुलाम और उनके मुरीदों के मुरीद हैं, 'सिरात-ए-मुस्तकीम' में उनकी प्रशंसा में...

[दायां कॉलम - उर्दू] ...कि कुछ खाकर जाओ, उन्होंने इंतज़ार किया, यहाँ तक कि लोगों का आना-जाना समाप्त हो गया और मित्रों पर थकान हावी हो गई, उसी समय एक स्त्री अपने सिर पर चावल और मिठाई का थाल लेकर आई और कहा, "मैंने मन्नत मानी थी कि यदि मेरे पति आ गए तो मैं उसी समय यह भोजन पकाकर मखदूम अल्लाह दिया की दरगाह के उपस्थित लोगों के पास पहुँचाऊँगी, पति उसी समय आ गए मैंने मन्नत पूरी की और मेरी इच्छा थी कि कोई वहां उपस्थित हो जो इसे खाए।" (६) मौलाना शाह अब्दुल अज़ीज़ साहब 'तोहफ़ा इस्ना अशरिया' में फ़रमाते हैं: "हज़रत अमीरुल मोमिनीन अली मुर्तज़ा और उनकी पवित्र संतान को पूरी उम्मत पीरों और मुर्शिदों की तरह मानती है और ब्रह्मांडीय मामलों को उनसे जुड़ा हुआ मानती है और उनके नाम पर फातिहा, दरूद, सदक़ा और मन्नत का चलन है और यही मामला सभी औलिया अल्लाह के साथ है।" शुभ समाचारों से भरी यह इबारत, जिसका एक-एक अक्षर विरोधी के सिर पर गिरती बिजली या विनाशकारी बवंडर है, दिल में संजोकर रखनी चाहिए और विरोधियों से पूछना चाहिए कि क्या शाह साहब ने आपके अनुसार पूरी उम्मत को स्पष्ट रूप से गुमराह और मुशरिक बताया या नहीं? और स्वयं ऐसी बातों को

जायज़ और उत्तम बताकर काफ़िर और मुशरिक हुए या नहीं? पहली स्थिति में, संप्रदाय के इमाम इस्माइल देहलवी जो उनके ग़ुलामों के ग़ुलाम और उनके..

[पाद लेख] 1 अनफ़ासुल आरिफ़ीन (उर्दू) दावत-ए-मखदूम अल्लाह दिया, अल-मारिफ़ गंज बख्श रोड लाहौर, पृष्ठ 112 2 तोहफ़ा इस्ना अशरिया, सातवाँ अध्याय इमामत पर, सुहैल अकादमी लाहौर, पृष्ठ 214

فتاوی رضویہ جلد نہم

[بایاں کالم - فارسی] منقطع شدہ ملال بر یاراں غالب آمد آنگاہ زنے بیامد طبق برنج و شیرینی بر سر و گفت کہ نذر کردہ بودم کہ اگر زوج من بیاید بماں ساعت ایں طعام پختہ بہ نشینندگان درگاہ مخدوم اللہ دیارسانم دریں وقت آمد ایفائے نذر کردم و آرزو کردم کہ کسے آں جا باشد تا تناول کند"۔ مولنا شاہ عبدالعزیز صاحب در تحفہ عشریہ فرمایند : "حضرت امیر وذریۃ طاہرہ اور اتمام اُمت بر مثال پیران و مرشداں می پرستند وامور تکوینیہ را وابستہ بایشان می دانند و فاتحہ و درود و صدقات و نذر و منت بنام ایشاں رائج و معمول گردیدہ چنانچہ ما جمیع اولیاء ہمیں معاملہ است"۔ ایہہ عبارت سراپا بشارت کہ حرف حرفش بر سرِ مخالف برقے ست خاطف یار یخے قاصف حرف حرف بخاطر یابد داشت واز مخالفاں پرسید کہ شاہ صاحب بطور شمار جمیع اُمّتہ را صراحۃً تجویز و تحسین نمودہ کافر و مشرک شدند یا نہ۔ برتقدیر اول امام الطائفہ اسمعیل دہلوی کہ غلاماں غلام و مرید مرید ایشاں ست در صراط مستقیم بمدح ایشاں

[دایاں کالم - اردو] کہ کچھ کھا کر جاؤ، توقف فرمایا، یہاں تک کہ لوگوں کی آمد و رفت ختم ہو گئی اور دوستوں پر اکتاہٹ غالب آگئی، اس وقت ایک عورت چاول اور شیرینی کا طبق سر پر لیے آئی اور کہا میں نے نذر مانی تھی کہ اگر میرے شوہر آجائیں تو اسی وقت یہ کھانا پکا کر مخدوم اللہ دیا کی درگاہ کے حاضرین کے پاس پہنچاؤں گی، شوہر اسی وقت آئے میں نے نذر پوری کی اور میری آرزو تھی کہ کوئی وہاں موجود ہو جو اسے تناول کرے۔ (۶) مولانا شاہ عبدالعزیز صاحب تحفہ اثناء عشریہ میں فرماتے ہیں : "حضرت امیر المومنین علی مرتضیٰ اور ان کی اولاد پاک کو تمام امت پیروں اور مرشدوں کی طرح مانتی ہے اور امور تکوینیہ ان سے وابستہ جانتی ہے اور ان کے نام فاتحہ و درود اور صدقات و نذر و منت کا معمول ہے اور ایسے ہی تمام اولیاء اللہ کے ساتھ

یہی معاملہ ہے۔" یہ عبارات سراپا بشارت جس کا ایک ایک حرف مخالف کے سر پر برقِ خاطف یا تباہ کن بگولا ہے دل میں محفوظ رکھنا چاہئے اور مخالفین سے پوچھنا چاہئے کہ شاہ صاحب نے تمہارے طور پر ساری امت کو صاف صاف گمراہ اور مشرک بتایا یا نہیں؟ اور خود اس طرح کی باتوں کو جائز اور عمدہ بتا کر کافر و مشرک ہوئے یا نہیں؟ برتقدیر اول، امام الطائفہ اسمعیل دہلوی جو ان کے غلاموں کا غلام، اور ان کے

[حواشی] 1 انفاس العارفین (اردو) دعوتِ مخدوم الہ دیہ المعارف گنج بخش روڈ لاہور ص ۱۱۲ 2 تحفہ اثناء عشریہ الباب ہفتم در امامت سہیل اکیڈمی لاہور ص ۲۱۴

Fatawa Razawiyya Volume Nine

[Left Column - Persian/Urdu mix]: Accordingly, the eloquent speaker says, "The honorable refuge of guidance, the leader of the people of truth and purity, the elite of the masters of annihilation and subsistence, the master of scholars, the authority of the saints, the proof of Allah over the gnostics, the heir of the Prophets and Messengers, the resort of all, lowly and noble, our master and our guide, Sheikh Abdul Aziz[1]." God forbid, by praising a kafir and mushrik (disbeliever and polytheist) with such grand and glorious words, and believing him to be the proof of Allah and the successor of prophets, and so on, did he become a kafir and an apostate himself or not? Then, you all, having taken this kafir and apostate as your Imam, leader, chief, master, resort, and refuge, and having bowed your heads before his commands in every issue and belief, following him step by step, have you all become kafirs, irreligious, apostates, and cursed, or what? State the ruling and be rewarded. (T)

[Right Column - Urdu translation of the above]: The follower of the follower in 'Sirat-e-Mustaqim' is thus eloquent in his praise: "The honorable refuge of guidance, the leader of the people of truth and purity, the essence of the masters of annihilation and subsistence, the leader of the scholars, the proof of the saints, the argument of Allah upon all the worlds, the heir of the Prophets and Messengers, the resort for every lowly and noble person. Our master and our guide Sheikh Abdul Aziz." By praising a kafir and mushrik with these grand and glorious words, God forbid, and by believing him to be the proof of Allah and the successor of prophets, etc., did he himself become a kafir and an apostate or not? Then you all, making that kafir and apostate your Imam and leader, chief and master, resort and refuge, and bowing your heads before his commands in every issue and belief, following him step by step, have you become kafirs, irreligious, apostates, and cursed, or something else? State the ruling and be rewarded. (T)

[Middle Section]: Now we turn the reins back towards the objective (T). Maulvi Khurram Ali Bilhouri, the third teacher of the newly-arisen group, says in 'Nasihah al-Muslimin' (Maulvi Khurram Ali Bilhouri, the third teacher of the new group, has written in 'Nasihah al-Muslimin' - T): "Attending the shrine of Hazrat Abbas, the Sahnak of Hazrat Fatima, the Giyarveen of Abdul Qadir Jilani, the Malida of Shah Madar, the Seh-Mani of Bu Ali Qalandar, the Tosha of Shah Abdul Haq; if these are not vows (Mannat), but the intention is only to convey reward (Isal-e-Sawab) to their souls, then it is correct. It is not forbidden at all with this intention[2]." Summary of the text.

[Bottom Box]: ^ The Imam of the group himself sings this tune in 'Taqrir al-Dhabihah': "If (8) The Imam of the group himself sang this tune in 'Taqrir al-Dhabihah'...

[Footnotes]: 1 Sirat-e-Mustaqim, conclusion regarding Parah etc., Maktabah Salafiyah, Lahore, p. 164. 2 Nasihah al-Muslimin, a few lines before, Subhani Academy, Lahore, p. 41.

फ़तावा रज़विया जिल्द नहम

[बायाँ कॉलम - फ़ारसी/उर्दू मिश्रित]: चुनाँचे तर-ज़बाँ "जनाब हिदायत मआब, कुदवा अरबाब-ए-सिदक-ओ-सफ़ा, ज़ुबदा असहाब-ए-फ़ना बका, सैय्यद अल-उलमा, व सनद औलिया हुज्जतुल्लाह अलल आरिफ़ीन, वारिस अल-अम्बिया वल मुरसलीन, मरज'अ कुल ज़लील व अज़ीज़ मौलाना मुर्शिदना अल-शेख अब्दुल अज़ीज़[1]-" माज़ अल्लाह काफ़िर ओ मुशरिक रा ब-चुनी अल्फ़ाज़-ए-अजीमा जलीला सुतूदा व हुज्जत-ए-ख़ुदा व नायब-ए-अम्बिया व कज़ा व कज़ा एतिकाद नमूदा ख़ुद काफ़िर मुर्तद गोयंद या नहे? बाज़ शुमायाँ कि ईं काफ़िर ओ मुर्तद रा इमाम पेशवा व सरवर व मुक़्तदा व मरज'अ मावा गिरफ़्ता व दर हर मसअला व अकीदा सर बर ख़त-ए-फ़रमानश निहादा कदम बर कदम ओ रफ़्ता ऐद अज़ीं रू बर हमा काफ़िर ओ बे-दीन ओ मुर्तद लईन शरीद या चे? बैनू तूजरू।

[दायाँ कॉलम - उपरोक्त का उर्दू अनुवाद]: मुरीद का मुरीद है "सिरात-ए-मुस्तकीम" के अंदर उनकी मदह में यूँ रतबुल लिसान है: "जनाब हिदायत मआब, अरबाब-ए-सिदक-ओ-सफ़ा के पेशवा, असहाब-ए-फ़ना ओ बका के ख़ुलासा, उलमा के सरदार, औलिया की सनद, सारे जहाँ पर अल्लाह की हुज्जत, अम्बिया ओ मुरसलीन के वारिस, हर ज़िल्लत व इज़्ज़त वाले के मरज'अ। हमारे आका और हमारे मुर्शिद शेख अब्दुल अज़ीज़।" इन अज़ीम व जलील अल्फ़ाज़ से माज़ अल्लाह एक काफ़िर ओ मुशरिक की तारीफ़ करके और उसे ख़ुदा की हुज्जत, अम्बिया का नायब वगैरह-वगैरह एतिकाद करके ख़ुद काफ़िर मुर्तद हुआ या नहीं? फिर तुम सब उस काफ़िर व मुर्तद को इमाम व पेशवा, सरदार व मुक़्तदा और मरज'अ व मावा बना कर, और हर मसअला व अकीदा में उसके ख़त-ए-फ़रमान पर सर झुका कर, उसके कदम ब-कदम चल कर काफ़िर व बे-दीन और मुर्तद व लईन हुए या कुछ और? बैनू तूजरू। (त)

[मध्य अनुभाग]: बाज़ ब-मुताबिक़ अ़नान ताबेम (अब फिर हम मकसद की जानिब लगाम मोड़ते हैं। त) मौलवी खुर्रम अली बल्हौरी मुअ़ल्लिम-ए-सालिस ताइफ़ा-ए-हादिस दर 'नसीहतुल मुस्लिमीन' गोयंद (मौलवी खुर्रम अली बल्हौरी ताइफ़ा-ए-नौ के मुअ़ल्लिम-ए-सालिस ने 'नसीहतुल मुस्लिमीन' में लिखा है। त): "हाज़िरी हज़रत अब्बास की, सहनक़ हज़रत फ़ातिमा की, ग्यारहवीं अब्दुल कादिर जिलानी की, मलीदा शाह मदार का, सह-मनी बू अली कलंदर की, तोशा शाह अब्दुल हक का, अगर मन्नत नहीं सिर्फ़ उनकी रूहों को सवाब पहुँचाना मंज़ूर है तो दुरुस्त है। इस नियत से हरगिज़ मना नहीं[2]-" इह मुल्ख़्सन।

[निचला बॉक्स]: ^ ख़ुद इमाम-उत-ताइफ़ा दर 'तक़रीर-ए-ज़बीहा' सरायेद "अगर (८) ख़ुद इमाम-उत-ताइफ़ा ने 'तक़रीर-ए-ज़बीहा' में यह नग़मा सराई की...

[पाद टिप्पणियाँ]: 1 सिरात-ए-मुस्तकीम, ख़ातिमा दर बयान-ए-पारा अ़ल्ख़ मक्तबा सलफ़िया लाहौर पृ. 164 2 नसीहतुल मुस्लिमीन चंद सतर कबीर रमें सुब्हानी एकेडमी लाहौर पृ. 41

पृष्ठ 578 का 948

فتاوٰی رضویہ جلد نہم

[بایاں کالم]: چنانچہ ترزبان "جناب ہدایت مآب، قدوۃ ارباب صدق و صفا، زبدۃ اصحاب فناء بقا، سید العلماء، وسند اولیاء حجتہ اللہ علی العارفین، وارث الانبیاء والمرسلین، مرجع کل ذلیل و عزیز مولا نا مرشد نا الشیخ عبدالعزیز 1-" معاذ اللہ کافر و مشرک را بہ چنیں الفاظ عظیمہ جلیلہ ستودہ و حجت خدا و نائب انبیاء و کذا و کذا اعتقاد نمودہ خود کافر مرتد گوید یا نہیج باز شمایاں کہ ایں کافر و مرتد را امام پیشوا و سرور و مقتداء و مرجع ماوا گرفتہ و در ہر مسئلہ و عقیدہ سر بر خط فرمانش نہادہ قدم بر قدم اور فتہ اید ازیں رو بر ہمہ کافر و بے دین و مرتد لعین شدید یا چہ؟ بینوا توجروا۔

[دایاں کالم]: مرید کا مرید ہے "صراطِ مستقیم" کے اندر ان کی مدح میں یوں رطب اللسان ہے "جناب ہدایت مآب، ارباب صدق وصفا کے پیشوا، اصحاب فناء وبقاء کے خلاصہ، علماء کے سردار اولیاء کی سند، سارے جہاں پر اللہ کی حجت انبیاء ومرسلین کے وارث ہر ذلت و عزت والے کے مرجع۔ ہمارے آقا اور ہمارے مرشد شیخ عبدالعزیز۔" ان عظیم و جلیل الفاظ سے معاذاللہ ایک کافر ومشرک کی تعریف کرکے، اور اسے خدا کی حجت انبیاء کا نائب وغیرہ وغیرہ اعتقاد کر کے خود کافر مرتد ہوا یا نہیں؟ پھر تم سب اس کافر و مرتد کو امام و پیشوا، سردار و مقتداء اور مرجع و ماوا بنا کر، اور ہر مسئلہ و عقیدہ میں اس کے خطِ فرمان پر سر جھکا کر، اس کے قدم بہ قدم چل کر کافر و بے دین اور مرتد و لعین ہوئے یا کچھ اور؟ بینوا توجروا۔ (ت)

[درمیانی حصہ]: باز بمطاب عنان تابیم (اب پھر ہم مقصد کی جانب لگام موڑتے ہیں۔ ت) مولوی خرم علی بلہوری معلم ثالث طائفہ حادث در نصیحۃ المسلمین گوید (مولوی خرم علی بلہوری طائفہ نو کے معلم ثالث نے "نصیحۃ المسلمین" میں لکھا ہے ۔ ت) "حاضری حضرت عباس کی، صحنک حضرت فاطمہ کی، گیارھویں عبدالقادر جیلانی کی، مالیدہ شاہ مدار کا، سہ منی بوعلی قلندر کی،

توشہ شاہ عبدالحق کا، اگر منت نہیں صرف ان کی روحوں کو ثواب پہنچانا منظور ہے تو درست ہے۔ اس نیت سے ہرگز منع نہیں 2-" اھ ملخصاً۔

[نچلا خانہ]: ۸ خود امام الطائفہ در تقریر ذبیحہ سراید "اگر (۸) خود امام الطائفہ نے تقریر ذبیحہ میں یہ نغمہ سرائی

[حواشی]: 1 صراط مستقیم خاتمہ در بیان پارہ الخ مکتبہ سلفیہ لاہور ص ۱۶۴ 2 نصیحۃ المسلمین چند سطر کیر رمیں سبحانی اکیڈمی لاہور ص ۴۱

Fatawa Razawiyya, Volume 9

[Regarding the Persian text]: "If someone raises a goat at home so that its meat becomes good, slaughters it, cooks it, and after reciting Fatiha for Hazrat Ghaus-e-Azam (may Allah be pleased with him), feeds it [to people], there is no harm in it."

The phrase "after reciting feeds it" is also worth noting, as many deniers (munkireen) make this the basis of their rejection. They argue that if the combination of feeding and reciting were permissible, then the feeding should have occurred first and then the reciting, rather than "after reciting feeds it," which they claim is futile and false. We have provided a complete answer to this false doubt in 'Barqa Sharqa'.

Similarly, the term "Ghaus-e-Azam" is also worth engraving on the heart because, according to 'Taqwiyat-ul-Iman', it is considered open polytheism (shirk). What is even more peculiar is that ignorant followers consider the food of Fatiha as forbidden and carrion, while they declare beef and all other meats as permissible (halal), provided the intention of the slaughter is not to seek proximity to the deceased. It clearly states that "as for an animal dedicated as an offering (nazr) to the saints (awliya), even if such a dedication is performed in a forbidden or repulsive manner, there is still no dispute regarding the animal being halal. Then, if the dedication to the saints is done in a good manner, how can it be forbidden? Then, if it is merely for the sake of conveying reward (Isal-e-Thawab) without any formal dedication, how can it be forbidden? Especially when there is no sign of slaughtering an animal or shedding blood, but only the recitation of the Quran and distribution of food."

Footnote 1: Risalah Zubdat-un-Nasaih Page 579 of 948

फ़तावा रज़विया, खंड 9

[फ़ारसी पाठ के संदर्भ में]: "यदि कोई व्यक्ति किसी बकरी को घर में पाले ताकि उसका मांस अच्छा हो, उसे ज़िब्ह (ज़बह) करे और पकाकर हज़रत ग़ौस-ए-आज़म (रज़ियल्लाहु अन्हु) की फ़ातिहा पढ़कर खिलाये, तो इसमें कोई हर्ज (दोष) नहीं है।"

यह शब्द "पढ़कर खिलाये" भी याद रखने योग्य है कि बहुत से मुन्किरीन (इनकार करने वाले) इसे अपने इनकार का आधार बनाते हैं और कहते हैं कि यदि खिलाने और पढ़ने का मिश्रण जायज़ होता, तो भी चाहिए था कि खिलाकर पढ़े, न कि "पढ़कर खिलाये" कि यह व्यर्थ और बातिल (मिथ्या) है। इस बातिल शंका का पूर्ण उत्तर हमने 'बरक़ा शारक़ा' में दिया है।

इसी प्रकार, यह शब्द "ग़ौस-ए-आज़म" भी दिल पर अंकित करने योग्य है क्योंकि 'तक्वियतुल ईमान' के अनुसार यह खुला हुआ शिर्क है। और भी विचित्र बात यह है कि अज्ञानी अनुयायी फ़ातिहा के भोजन को हराम और मुर्दार (सड़ा हुआ मांस) समझते हैं, जबकि वे गाय के मांस और अन्य सभी मांसों को हलाल कहते हैं, बशर्ते कि ज़िब्ह से मृतक की निकटता प्राप्त करना उद्देश्य न हो। और स्पष्ट रूप से कहा गया है कि "जो जानवर औलिया (संतों) की नज़र (भेंट) किया गया हो, भले ही ऐसी नज़र हराम और घृणित तरीके से की गई हो, फिर भी जानवर के हलाल होने में कोई संदेह नहीं है। फिर यदि औलिया की नज़र उत्तम तरीके से हो, तो वह हराम कैसे हो सकती है? फिर बिना किसी नज़र के केवल ईसाले-सवाब (पुण्य पहुँचाने) के लिए हो, तो वह हराम कैसे हो सकती है? विशेष रूप से जब जानवर को ज़िब्ह करने और खून बहाने का कोई नामोनिशान न हो, केवल क़ुरआन का पाठ और भोजन हो।"

पादटिप्पणी 1: रिसाला ज़ुबदतुल नसाह पृष्ठ 579 / 948

شخصے برے راخانہ پرور کند تا گوشت او خوب شود، اورا ذبح کی ہے: "اگر کوئی شخص کسی بکری کو گھر میں پالے تاکہ اس کا کردہ و پختہ فاتحہ حضرت غوث اعظم رضی اللہ تعالیٰ عنہ خواندہ گوشت عمدہ ہو، اس کو ذبح کر کے اور پکا کر حضرت غوثِ اعظم بخوراند خللے نیست ۱۔ رضی اللہ تعالیٰ عنہ کی فاتحہ پڑھ کر کھلائے تو کوئی خلل نہیں ایں لفظ "خواندہ بخوراند" نیز نگاہ داشتن است کہ بسیاری از ہے۔" منکرین ایں را ہم مناط انکار سازند و گویند اگر ایں اجتماع اطعام یہ لفظ "پڑھ کر کھلائے" بھی یاد رکھنے کے قابل ہے کہ بہت وقراءت جائز بودے تاہم بایستے کہ خوراندہ نہ کہ خواندہ خوراندہ سے منکرین اسے مدارِ انکار بناتے ہیں اور کہتے ہیں اگر کھلانے کہ عبث و باطل ست جواب کامل ازیں شبہ باطل در "بارقہ اور پڑھنے کا اجتماع جائز نہ ہوتا تو بھی چاہئے تھا کہ کھلا کر پڑھے شارقہ" یاد کردہ ایم، ہمچناں ایں لفظ غوثِ اعظم بدل نگاہ شستے نہ کہ "پڑھ کر کھلائے" کہ عبث اور باطل ہے ۔۔۔ اس کہ برایمان تقویۃ الایمان صراحۃً شرک است، طرفہ آنکہ باطل شبہہ کا کامل جواب ہم نے بارقہ شارقہ میں بیان کیا ہے اتباع جھول طعام فاتحہ را حرام و مردار دانند وامام الطائفہ طعام ۔ اسی طرح یہ لفظ "غوثِ اعظم" بھی دل پر لکھ رکھنے کے و گوشت گاؤندر اولیا ہمہ را حلال می خواند بشر طیکہ تقرب بذبح قابل ہے کہ "تقویۃ الایمان" کی رو سے کھلا ہوا شرک ہے سوئے میت نباشد و سپیدی گوید کہ "جانورے کہ نذر اولیا ۔ طرفہ تر یہ کہ نادان متبعین تو فاتحہ کے کھانے کو حرام کردہ باشند اگر چہ چنداں نذر بروجہ حرام قبیح ہم کنند۔ تاہم و مردار اور گائے کے گوشت سب کو حلال کہتا ہے بشرطیکہ در حلت جانورے سخنے نیست " فکیف کہ نذر اولیا بروجہ حسن ذبح سے میت کی جانب تقرب مقصود نہ ہو **اور صاف کہتا باشد چہ جائے آنکہ محض بے نذر ایصال ثواب شود چہ محل ہے کہ "جو جانور اولیا کی نذر کیا ہو،**

اگرچہ ایسی نذر حرام قبیح آنکہ از ذبح جانور داراقت دم اثرے نبود۔ ہمیں قراءت قرآنی طور پر بھی کرتے ہیں پھر بھی جانور کے حلال ہونے میں کلام وتصدق طعامے بمیان آید، مگر در تقریر مذکور چناں می نہیں پھر اولیاء کی نذر عمدہ طور پر ہو تو حرمت کیسے؟ نگارد، اگر شخصے نذر کنند کہ اگر فلاں حاجت من بر آید ایں قدر پھر بغیر نذر کے محض ایصالِ ثواب ہو تو وہ حرام کیسے؟ ___ پھر نیاز حضرت سید احمد کبیر بکنم وایں قدر طعام نیاز ایشاں مردم جانور کو ذبح کرنے اور خون بہانے کا کوئی نام و نشان بھی نہ ہو ہم را بخورانم اگر چہ دریں نذر صرف قرآن کی قراءت اور طعام

Fatawa Razawiyya Volume 9

...then what occasion is there for it to be prohibited because charity is involved? ___ In the mentioned discourse, it is written as follows: (9) "If a person makes a vow (nadhr) that if my such-and-such need is fulfilled, I will perform the 'niyaz' (offering/devotion) of Hazrat Sayyid Ahmad Kabir to such an extent and I will feed so much of his niyaz food to people ___ although there is discussion regarding this vow, the food is lawful (halal). The same ruling applies to meat. For example, if a person says that after my need is fulfilled, I will feed two mounds (maunds - a unit of weight) of meat as a vow to Sayyid Ahmad Kabir, then the meat is lawful ___ and if he vows a cow with the same intention, it is also permissible. Because his intention is meat. Similarly, if he gives a live cow in the name of Sayyid Ahmad Kabir to someone, just as money is given, it is also permissible and its meat is lawful. " In the same [text] it is stated: "Similarly, if he makes a vow for deceased saints (May Allah sanctify their secrets), it is permissible ___ the only difference is that due to their transition from the world to the world of Barzakh (limbo), they cannot benefit from cash, goods, and food, but rather only the reward (thawab) of these is sent by Allah Almighty to their pure souls ___ so their conditions during life and after death are equal." (11) Further it is written: "If he vows that if my need is fulfilled, I will offer a two-year-old fat cow for the niyaz of Hazrat Ghaus-e-Azam ___ then its ruling is also like the ruling for food."

...is the discussion, but the food is lawful and likewise is the ruling for meat. For instance, if a person says that I will feed two mounds of meat as a vow for Ahmad Kabir after the fulfillment of the need, the meat is lawful. And if he says I will feed beef, that is also correct. And if he intends the same cow, that is also permissible because his objective is the meat. And likewise, if he gives a live cow in the name of Sayyid Ahmad Kabir to someone just as cash is given, it is permissible and its meat is lawful (1). "It is also in the same text that if he makes a vow in the same manner for the departed saints (May Allah sanctify their secrets), it is permissible. This much difference exists that due to the transition from this world to the world of Barzakh, they cannot benefit from cash, goods, and food, rather only the reward (thawab) of it reaches their pure souls by Allah Almighty. So their states in life and death are the same (2)." He says again, "If the vow is in a good manner, there is no flaw, and if it is in an evil manner, his action is prohibited (haram) but the animal is lawful (3)." These are eleven statements. After the days of the Eleventh Sharif (Ghaus-e-Azam's death anniversary) of Hazrat Ghaus-e-Azam, the Supreme Pole, may Allah be pleased with

him, three from the Imam of the sect regarding meat and twelve from Shah Abdul Aziz Sahib will come shortly. And success and guidance to the right path is from Allah.

Footnotes: 1 Risala Zubdat al-Nasa'ih 2 Risala Zubdat al-Nasa'ih 3 Risala Zubdat al-Nasa'ih

फ़तावा रज़विया जिल्द नहम (नौवीं)

...तो सदका बीच में आने से इसके हराम होने का क्या अवसर है? ___ उक्त विवरण में इस प्रकार लिखा है: (9) "यदि कोई व्यक्ति मन्नत (नज़्र) माने कि यदि मेरी अमुक ज़रूरत पूरी हो गई, तो मैं हज़रत सैयद अहमद कबीर की इतनी नियाज़ करूँगा और उनकी नियाज़ का इतना खाना लोगों को खिलाऊँगा ___ हालाँकि इस मन्नत के बारे में चर्चा है, लेकिन खाना हलाल है। यही हुक्म मांस का भी है। उदाहरण के लिए, यदि कोई व्यक्ति कहे कि मेरी ज़रूरत पूरी होने के बाद मैं सैयद अहमद कबीर की मन्नत का दो मन मांस खिलाऊँगा, तो मांस हलाल है ___ और यदि वह इसी इरादे से गाय की मन्नत माने, तो भी जायज़ है। क्योंकि उसका उद्देश्य मांस है। इसी तरह, यदि वह जीवित गाय सैयद अहमद कबीर के नाम पर किसी को दे दे जैसे नकद देते हैं, तो भी जायज़ है और उसका मांस हलाल है।" उसी में है: "इसी तरह, यदि वह दिवंगत औलिया (अल्लाह उनकी पवित्रता बनाए रखे) के लिए मन्नत माने तो जायज़ है ___ फर्क सिर्फ इतना है कि दुनिया से आलम-ए-बरज़ख में स्थानांतरित होने के कारण वे नकद, वस्तुओं और भोजन से लाभ नहीं उठा सकते, बल्कि अल्लाह तआला केवल इनका सवाब (पुण्य) उनकी पवित्र आत्माओं तक पहुँचाता है ___ तो उनके हालात जीवन और मृत्यु के बाद बराबर हैं।" (11) आगे लिखा है: "यदि वह मन्नत माने कि यदि मेरी ज़रूरत पूरी हो गई, तो मैं हज़रत ग़ौस-ए-आज़म की नियाज़ के लिए दो साल की मोटी गाय दूँगा ___ तो इसका हुक्म भी खाने के हुक्म की तरह है।"

...चर्चा है लेकिन खाना हलाल है और मांस का हुक्म भी वैसा ही है, उदाहरण के लिए यदि कोई व्यक्ति कहे कि मैं ज़रूरत पूरी होने के बाद अहमद कबीर की मन्नत के तौर पर दो मन मांस खिलाऊँगा, तो मांस हलाल है। और यदि वह कहे कि मैं गोमांस खिलाऊँगा, तो भी सही है। और यदि वह उसी गाय का इरादा करे, तो भी जायज़ है क्योंकि उसका उद्देश्य मांस है। और इसी प्रकार, यदि वह जीवित गाय सैयद अहमद कबीर के नाम पर किसी को दे दे जैसे नकद दिया जाता है, तो जायज़ है और उसका मांस हलाल है (1)। "उसी में है कि यदि वह इसी तरह दिवंगत औलिया (अल्लाह उनकी पवित्रता बनाए रखे) के लिए मन्नत माने, तो जायज़ है। इतना अंतर है कि दुनिया से आलम-ए-बरज़ख में जाने के कारण वे नकद, माल और भोजन से लाभान्वित नहीं हो सकते, बल्कि अल्लाह तआला केवल उसका सवाब उनकी पाक रूहों तक पहुँचाता है। तो उनके हालात ज़िंदगी और वफ़ात में बराबर हैं (2)।" वह फिर कहते हैं, "यदि मन्नत नेक तरीके से है तो कोई कमी नहीं, और यदि बुरा तरीका है तो उसका कार्य हराम है और जानवर हलाल (3)।" ये ग्यारह कथन हैं। हज़रत

ग़ौस-ए-आज़म कुतबे अकरम रज़ियल्लाहु अन्हु की ग्यारहवीं शरीफ के दिनों के बाद, इमाम-ए-ताइफा से मांस के बारे में तीन और शाह अब्दुल अज़ीज़ साहब के बारह कथन शीघ्र ही आएंगे। और अल्लाह के साथ ही तौफ़ीक़ और सीधे रास्ते की हिदायत है।

फुटनोट: 1. रिसाला ज़ुबदतुल नसाह 2. रिसाला ज़ुबदतुल नसाह 3. रिसाला ज़ुबदतुल नसाह

पेज फुटर: पेज 580 ऑफ 948

کا صدقہ درمیان میں آئے تو اس کے حرام ہونے کا کیا موقع؟ ___ تقریر مذکور میں یوں لکھا ہے: (9) "اگر کوئی شخص نذر مانے کہ اگر میری فلاں حاجت بر آئے تو اس قدر حضرت سید احمد کبیر کی نیاز کروں گا اور ان کی نیاز کا اتنا کھانا لوگوں کو کھلاؤں گا ___ اگرچہ اس نذر میں کلام ہے مگر کھانا حلال ہے۔ یہی حکم گوشت کا بھی ہے۔ مثلاً اگر کوئی شخص کہے کہ میں اپنی حاجت بر آنے کے بعد سید احمد کبیر کی نذر کا دو من گوشت کھلاؤں گا تو گوشت حلال ہے ___ اور اگر اسی قصد سے گائے کو نذر کرے تو بھی روا ہے۔ اس لیے کہ اس کا مقصود گوشت ہے۔ اسی طرح اگر زندہ گائے سید احمد کبیر کے نام پر کسی کو دے دے جیسے نقد دیتے ہیں۔ تو بھی جائز ہے اور اس کا گوشت حلال ہے۔ " اسی میں ہے: "اسی طرح اگر گشتہ اولیاء قدس اللہ اسرار ہم کے لیے نذر کرے تو جائز ہے ___ فرق اتنا ہے کہ وہ عالم دنیا سے عالم برزخ میں انتقال کر جانے کے سبب نقد و جنس اور طعام سے نفع اندوز نہیں ہو سکتے بلکہ صرف ان کا ثواب اللہ تعالیٰ ان کی ارواح پاک کو پہنچاتا ہے ___ تو ان کے احوال بحالت حیات اور بعد وفات برابر ہیں۔" (11) آگے لکھا ہے: "اگر نذر کرے کہ میری حاجت بر آئے تو دو سال کی فربہ گائے حضرت غوثِ اعظم کی نیاز کروں گا ___ تو اس کا حکم بھی حکم طعام کی طرح ہے۔

گفتگو ست لیکن طعام حلال است و ہمچنین ست حکم گوشت، مثلاً اگر شخصی بگوید کہ دو من گوشت نذر سب احمد کبیر بعد بعد برآمدن حاجت خواہم خورائید گوشت حلال است و اگر بگوید کہ گوشت گاو خواہم خورائید نیز درست است و اگر ہمیں قصد گاؤ راند ر کند نیز رواست چرا کہ مقصودش گوشت ست۔ و ہمچنین اگر گاؤ زندہ بنام سید احمد کبیر کسے را بدہد بطوریکہ نقدی دہند رواست گوشت آں حلال است 1۔ "ہم در آں ست اگر ہمیں طور نذر برائے اولیائے گزشتگاں قدس اللہ

اسرارہم کند رواست، ایں قدر فرق ست کہ بسبب انتقال از عالم دنیا بعالم برزخ منتفع بنقد و جنس و طعام نمی توانند شد بلکہ ثواب صرف آں اللہ تعالیٰ بارواح مطہرہ ایشان میرساند پس احوال ایشاں در حالت حیات وممات برابر ست 2۔ "است باز می گوید"۔ "اگر نذر بطریق حسن است خلل نہ و اگر قبیح ست فعلش حرام است و حیوان حلال 3۔ " ایں یازدہ قول ست بعد دایام یازدہم شریف حضرت غوثِ اعظم قطب اکرم رضی اللہ تعالیٰ عنہ سہ از الامام الطائفہ بالا گوشت و دواز شاہ عبدالعزیز صاحب عنقریب می آید وباللہ التوفیق والھدایۃ الی سواء الطریق۔

1 رسالہ زبدۃ النصائح 2 رسالہ زبدۃ النصائح 3 رسالہ زبدۃ النصائح

Fatawa Ridawiyya, Volume 9

If a person makes a vow that upon the fulfillment of their need, they will offer a fat two-year-old cow to Hazrat Ghaus-ul-Azam, then the ruling is like that of food. If the vow is made in a good way, there is no harm; but if it is made in an evil way, the act is forbidden, though the animal itself is lawful. These are eleven statements, equal to the number of days for the 'Gyarwin' (11th) of Hazrat Ghaus-e-Azam Qutb-e-Akram (may Allah be pleased with him). Three statements of Imam-ul-Taifa have been mentioned above, and two statements of Shah Abdul Aziz Sahib are forthcoming. Success and guidance to the right path are from Allah alone. (T)

[Left Column - Persian]: Now, the discussion remains regarding the fixing of times common among people, such as the 3rd, 40th, one year, and six months. I say: With the help of Allah, the principle of 'Tawqeet' (fixing a time for a task) is of two types: Shar'i and 'Adi. Shar'i is when the pure Sharia has fixed a specific time for an action such that it cannot take any other form outside it, and if performed otherwise, the religious act would not be fulfilled. Examples include the days of sacrifice (Nahr) for animals, or when performing it earlier or later is impermissible, like the sacred months for the Ihram of Hajj, or when the reward found in that time cannot be found at other times, like the third of the night for Isha prayer. 'Adi is when Sharia has given general permission to perform it whenever desired. However, for an event (hadath) to occur, time is unavoidable, and occurrence in an unspecified time is intellectually impossible because existence and specification are concurrent. Thus, specification is inevitable. Therefore, based on the general permissibility, these specified times are suitable for performance, and one is chosen based on some wisdom without considering the fixed time as a basis for validity, lawfulness, or reward. It is evident that with this restriction, the restricted act does not lose its general status, and a general ruling applies to all its individuals as long as there is no specific prohibition. Therefore, the way here is not to seek proof for specificity from the permissibility but to bring a clear prohibition from Sharia for this specific time. Text of the teacher.

[Right Column - Urdu]: Now, a discussion needs to be held regarding fixing specific times that are common among people, such as the 3rd, 40th (days after death), one year, or six months. I say: With the strength granted by Allah, 'Tawqeet' (fixing a time for a task) has two forms: (1) Shar'i and (2) 'Adi. Shar'i: This is when the pure Sharia has fixed a time for an action such that (i) it cannot occur outside that time, and if done, the religious act will not be fulfilled. For example, the days of sacrifice (Nahr) for Qurbani. (ii) Or that it is impermissible to perform the act before or after that

time, such as the sacred months for the Ihram of Hajj (Shawwal, Dhu al-Qi'dah, Dhu al-Hijjah). (iii) Or that the reward found in that specific time is not found in another time, such as the third of the night for Isha prayer. 'Adi: This is when there is no restriction from Sharia; one may perform the act whenever they wish. However, for a task (hadath) to occur, time is necessary. Occurrence in an unspecified time is intellectually impossible because existence and specification are concurrent (together), so specification is inevitable. (iv) So the ruling for all these specified times, due to the general permission of Sharia, remains equal across all of them as long as no evidence of prohibition is found from Sharia for a specific time, otherwise its specificity is established as no explicit prohibition has been mentioned. Text of the teacher.

फ़तावा-ए-रज़विया, जिल्द 9

यदि कोई व्यक्ति मन्नत मानता है कि उसकी ज़रूरत पूरी होने पर वह हज़रत ग़ौस-उल-आज़म को दो साल की मोटी गाय की नियाज़ चढ़ाएगा, तो इसका हुक्म खाने की तरह है। यदि मन्नत अच्छे तरीके से है, तो कोई दोष नहीं है; लेकिन अगर बुरे तरीके से है, तो वह कार्य हराम (निषिद्ध) है, हालाँकि जानवर हलाल है। ये ग्यारह कथन हैं, जो हज़रत ग़ौस-ए-आज़म कुत्ब-ए-अकरम (रज़ियल्लाहु अन्हु) की 'ग्यारहवीं' के दिनों की संख्या के बराबर हैं। इमाम-उत-ताइफ़ा के तीन कथन ऊपर गुज़र चुके हैं, और शाह अब्दुल अज़ीज़ साहब के दो कथन जल्द ही आने वाले हैं। सफलता और सीधे रास्ते का मार्गदर्शन केवल अल्लाह की ओर से है। (त)

[बायां कॉलम - फारसी]: अब, लोगों के बीच प्रचलित समय के निर्धारण के संबंध में चर्चा बनी हुई है, जैसे कि तीसरा, चालीसवां, एक साल और छह महीने। मैं कहता हूँ: अल्लाह की मदद से, 'तौक़ीत' (किसी कार्य के लिए समय निर्धारित करना) का सिद्धांत दो प्रकार का है: शरई और 'आदी। शरई वह है जब शरीयत-ए-मुतहरा ने किसी क्रिया के लिए एक विशिष्ट समय निर्धारित किया हो कि उसके बाहर उसका कोई अन्य रूप नहीं हो सकता, और यदि अन्यथा किया जाए, तो वह धार्मिक कार्य पूरा नहीं होगा। उदाहरणों में जानवरों के लिए बलिदान के दिन (नह्र) शामिल हैं, या जब इसे पहले या बाद में करना वर्जित है, जैसे हज के एहराम के लिए सम्मानित महीने, या जब उस समय में मिलने वाला सवाब किसी अन्य समय में नहीं पाया जा सकता, जैसे ईशा की नमाज़ के लिए रात का तीसरा हिस्सा। 'आदी' वह है जब शरीयत ने इसे जब चाहें तब करने की सामान्य अनुमति दी है। हालांकि, किसी घटना (हदस) के घटित होने के लिए समय अपरिहार्य है, और अनिश्चित समय में घटित होना बौद्धिक रूप से असंभव है क्योंकि अस्तित्व और विनिर्देश समवर्ती हैं। इस प्रकार, विनिर्देश अनिवार्य है। इसलिए, सामान्य स्वीकार्यता के आधार पर, ये निर्दिष्ट समय प्रदर्शन के लिए उपयुक्त हैं, और किसी को वैधता, वैधता या पुरस्कार के आधार के रूप में निश्चित समय पर विचार किए बिना कुछ ज्ञान के आधार पर चुना जाता है। यह स्पष्ट है कि इस प्रतिबंध के साथ, प्रतिबंधित अधिनियम अपनी सामान्य स्थिति को नहीं खोता है, और एक सामान्य नियम इसके सभी व्यक्तियों पर तब तक लागू होता है जब तक कि कोई विशिष्ट निषेध न हो। इसलिए, यहाँ रास्ता अनुमति से विशिष्टता के लिए सबूत मांगना नहीं है, बल्कि इस विशिष्ट समय के लिए शरीयत से स्पष्ट निषेध लाना है। शिक्षक का पाठ।

[दायां कॉलम - उर्दू]: अब विशिष्ट समय निर्धारित करने के संबंध में चर्चा की जानी है जो लोगों में प्रचलित है, जैसे सोयम (तीसरा दिन), चेहलुम (चालीसवां दिन), छह महीने, या एक साल। मैं कहता हूँ

(अल्लाह द्वारा दी गई शक्ति से), 'तौक़ीत' (किसी कार्य के लिए समय निर्धारित करना) के दो रूप हैं: (1) शरई और (2) 'आदी। शरई: यह तब होता है जब शरीयत-ए-मुतहरा ने किसी कार्य के लिए ऐसा समय निर्धारित किया हो कि (i) वह उस समय के अलावा हो ही न सके और यदि किया जाए तो वह धार्मिक कार्य पूरा नहीं होगा। जैसे क़ुर्बानी के लिए अय्याम-ए-नह्र (बलिदान के दिन)। (ii) या यह कि उस कार्य को उस समय से पहले या बाद में करना नाजायज़ हो, जैसे हज के एहराम के लिए सम्मानित महीने (शव्वाल, ज़ुल-क़ादा, ज़ुल-हिज्जा)। (iii) या यह कि उस विशिष्ट समय में जो सवाब (पुण्य) मिले, वह किसी और समय में न मिले, जैसे ईशा की नमाज़ के लिए रात का तीसरा हिस्सा। 'आदी': यह तब होता है जब शरीयत की ओर से कोई पाबंदी न हो; जब चाहें कार्य कर सकते हैं। हालाँकि, किसी कार्य (हदस) के होने के लिए समय का होना आवश्यक है। अनिश्चित समय में किसी घटना का होना बौद्धिक रूप से असंभव है क्योंकि अस्तित्व और निर्धारण एक-दूसरे के मुसावक़ (साथ-साथ) हैं, तो निर्धारण अनिवार्य है। (iv) तो शरीयत की सामान्य अनुमति के कारण, इन सभी निर्धारित समयों का हुक्म सभी उदाहरणों में समान रूप से लागू होगा, जब तक कि शरीयत से किसी विशेष समय के लिए कोई निषेध न मिल जाए। अन्यथा उसकी विशेषता स्थापित है क्योंकि कोई स्पष्ट निषेध नहीं आया है। शिक्षक का पाठ।

पृष्ठ 581 का 948

اگر نذر کنند کہ بشرطِ برآمدن حاجت خود گاؤ دوسالہ فربہ نیاز حضرت غوث الاعظم خواھد کرد۔ پس حکم ایں مثل طعام اگر نذر بطور حسن ہے تو کوئی خلل نہیں ، اور اگر قبیح طور پر ہے تو اس کا فعل حرام ہے اور جانور حلال ہے۔ یہ گیارہ اقوال ہیں حضرت غوثِ اعظم قطبِ اکرم رضی اللہ تعالٰی عنہ کی گیارہویں کے ایام کی تعداد کے برابر۔۔۔ اور تین اقوال امام الطائفہ کے اوپر گزرے ، اور دو قول شاہ عبدالعزیز صاحب کے عنقریب آرہے ہیں، اور خدا ہی سے توفیق اور راہِ راست کی ہدایت ہے۔ (ت)

[بایاں کالم - فارسی]: سخن گفتن ماند از تعین اوقات کہ در مرداں رائج ست بچوں سوم و چہلم وسہ سال و ششماہ اقول: و بحول اللہ اصول توقیت یعنی کارے راوقت معین داشتن بر دو گونہ است شرعی و عادی، شرعی آنکہ شرع مطہر عملی را وقتی تعیین فرمودہ است کہ در غیر او اصلاً صورت نہ بندد واگر بجای آرند آں عمل شرعی نہ کردہ باشند ، چوں ایام نحر مر اضحیہ را یا آنکہ تقدیم و تاخیر ش ازاں وقت ناروا باشد چوں اشہر حرم مر احرامِ حج را یا آنکہ ثوابیکہ در غیر او نیابند چوں ثلث لیل مر نماز عشاء را۔ و عادی آنکہ از جانب شرع اطلاق است ہر وقتیکہ خواہند بجا آرند۔ اما حدث را از زمان ناگزیر ست و وقوع در زمانِ غیر معین محالِ عقلی کہ وجود و تعین مساوق ہم دگر است۔ پس از تعین چارہ نیست۔ ایں ہمہ تعینات بربناء اطلاق علٰی وجہ البدالیہ صالح ایقاع بود از بینما یکے را بر بناء مصلحتے اختیار کنند بے آں کہ وقت معین را مبنائے صحت یا مدار حلت یا مناط اثابت دانند پیدا ست کہ بایں تقیید مقید از فردیتِ مطلق برنیاید وحکے کہ مطلق راست در جمیع افرادش ساری باشد مالم یرد منع عن خصوص خصوصا پس بچوں جا سبیل نہ آنست کہ ثبوت خصوصیت از مجوز جویند بلکہ آنکہ تصریح بمنع ایں خاص از شرع برآرند۔ عبارت معلم

[دایاں کالم - اردو]: اب وقت معین کرنے سے متعلق گفتگو کرنی ہے جس کا لوگوں میں رواج ہے، جیسے سوم، چہلم، ایک سال چھ ماہ، اقول: و بحول اللہ اصول (میں کہتا ہوں اور خدا ہی کی دی ہوئی قوت سے حملہ کرتا ہوں) توقیت یعنی کسی کام کے لیے وقت مقرر کرنے کی دو صورتیں ہیں: (۱) شرعی اور (۲) عادی۔ شرعی یہ کہ شریعتِ مطہرہ نے کسی کام کے لیے کوئی وقت مقرر فرمایا ہے کہ (i) جو اس کے علاوہ وقت میں وہ ہو ہی نہیں سکتا، اور اگر کریں تو وہ عمل شرعی ادا نہ ہوگا۔ جیسے قربانی کے لیے ایامِ نحر۔ (ii) یا یہ کہ اس وقت سے اس عمل کو مقدم یا مؤخر کرنا ناجائز ہو، جیسے احرامِ حج کے لیے حرمت والے مہینے (شوال، ذی قعدہ، ذوالحجہ)۔ (iii) یا یہ کہ اس وقت میں جو ثواب ہو وہ دوسرے وقت میں نہ ملے، جیسے نمازِ عشاء کے لیے تہائی رات، عادی یہ کہ شریعت کی جانب سے کوئی قید نہیں جب چاہیں عمل میں لائیں_ لیکن حدث (کام ہونے) کے لیے زمانہ ضروری ہے۔ اور زمانہ غیر معین میں وقوع محالِ عقلی ہے، اس لیے کہ وجود اور تعین ایک دوسرے کے مُساوق (ساتھ ساتھ) ہیں، تو تعیّن سے چارہ نہیں (iv) تو ان تمام متعینات کا حکم شریعت کے اطلاق کی وجہ سے سب میں برابر جاری ہوگا، جب تک کسی خاص کے بارے میں ممانعت کی کوئی دلیل شرع سے نہ مل جائے، ورنہ اس کی خصوصیت ثابت ہے، اس کی تصریح منع نہیں آئی ہے۔ عبارت معلم

Fatawa Razawiyya Volume Nine

[Left Column] You have heard the second group regarding the raising of hands for the prayer of condolence. And the 'First' and the relied-upon Imam of the group in 'Risala-e-Bid'at' sings this song: "The second way is that by looking at the general essence, an Islamic ruling relates to its essence. Thus, the general, by looking at its own essence, necessitates that same ruling in all characteristics, even if the general ruling differs in some individuals due to external factors (up to where he said) in the investigation of a specific ruling, whoever claims the flow of the general ruling in the specific case under discussion is the one adhering to the principle; in proving his claim, there is no need for evidence. His evidence is that same general ruling and that's it." etc. My father, the honorable (may his secret be sanctified), has provided and instructed a profound investigation and clear clarification of this noble principle and rule of Sharia in 'Usool-ur-Rashad'; one should search for it there.

I return to the first discussion. I say: Then if there is an inherent preference for choosing this specific time, then well and good, otherwise at the time...

[Right Column] All these specifications (fixed times) were worthy of being practiced as permissible based on their general application, but one of them is chosen due to some wisdom. Without considering the fixed time as the basis of validity or the pivot of lawfulness or as a criterion for reward, it is evident that due to this restriction, the restricted one will not cease to be an individual of the general; and whatever the ruling of the general is, it will apply to all its individuals unless a specific prohibition has been issued regarding a particular individual—so in such a place, the way is not to demand proof of specificity from the one who declares it permissible, rather the way would be to extract the explicit prohibition regarding that particular individual from the Sharia. The statement of the 'Second Teacher' of this group regarding raising hands in the prayer for condolence has passed above, and the 'First Teacher' and the trusted Imam of this group sings in "Risala-e-Bid'at" as follows: "The second way is that by looking at the essence of the general itself, a legal ruling is associated with it, then the general, in terms of its own essence, will necessitate that same ruling in all characteristics, even if the ruling of the general becomes different in some individuals due to external accidents (it is written further) In the investigation of the ruling of a specific case, the person who claims the application of the general ruling within the specific case under discussion is the one adhering to the principle, who does not need any evidence to prove his claim. The evidence is that same general ruling and that's it." etc. My honorable father (may his secret be sanctified)

has provided and instructed a complete and brilliant investigation and clarification of this noble principle and rule of Sharia in 'Usool-ur-Rashad'; it should be sought from there. -(T)

I return to the first discussion. I say: Then if there is an inherent preference for choosing this specific time...

---

1 Risala-e-Bid'at (First Teacher) Page 582 of 948

फ़तावा रज़विया जिल्द नहम

[बायां स्तंभ] ताज़ियत की दुआ के लिए हाथ उठाने के बारे में दूसरे गिरोह की बात आपने सुनी। और गिरोह के'अव्वल' और मोतमिद इमाम 'रिसाला-ए-बिदअत' में यूँ नग़मा-सरा हैं: "तरीक़ा-ए-सानी यह कि ब-मुतलक़ बिल-नज़र इला ज़ातिहि हुक्मे अज़ अहकाम-ए-शरईया मुतअल्लिक़ गरदद। पस मुतलक़ ब-नज़र-ए-ज़ात-ए-ख़ुद दर जमीअ-ए-ख़ुसूसियात हमा हुक्म इक़्तिज़ा मी नुमायद गो दर बअज़ अफ़राद ब-हसब-ए-अवारिज़-ए-ख़ारिजीया हुक्म-ए-मुतलक़ मुख़्तलिफ़ गरदद (इला अन क़ाला) दर तहक़ीक़-ए-हुक्म-ए-सूरत-ए-ख़ासा कस-ए-के दाव-ए-जिरयान-ए-हुक्म-ए-मुतलक़ दर सूरत-ए-ख़ासा मबहूसु अन्हा मी नुमायद हमानस्त मुतमस्सिकत ब-अस्ल के दर इसबात-ए-दाव-ए-ख़ुद हाजत ब-दलीले न दारद। दलील-ए-ओ हमा हुक्म-ए-मुतलक़ अस्त व बस" इत्यादि। हज़रत वालिद क़ुद्दिस सिर्रहु ने इस निफ़ अस्ल और क़ायदा-ए-शरीयत को तहक़ीक़-ए-बालिग़ और तन्क़ीह-ए-बाज़िग़ के साथ 'उसूल-उर-रशाद' में इफ़ादा व इरशाद फ़रमाया है, वहाँ तलाश करना चाहिए।

मैं फिर पहली गुफ़्तगू की तरफ पलटता हूँ। अक़ूल (मैं कहता हूँ): फिर अगर इस निश्चित समय की ज़ात में स्वयं कोई प्राथमिकता देने वाली वजह मौजूद हो तो बेहतर, वर्ना...

[दायां स्तंभ] ये सभी नियुक्तियां (निश्चित समय) सामान्यता (इतलाक़) के आधार पर मुबाह (अनुमेय) के रूप में अमल में लाए जाने के योग्य थे, लेकिन उनमें से किसी एक को किसी हिकमत (बुद्धिमत्ता) के कारण अपनाया जाता है। बिना इसके कि निश्चित समय को वैधता का आधार या हलाल होने का केंद्र या सवाब दिए जाने का पैमाना माना जाए, ज़ाहिर है कि इस पाबंदी (तक़यीद) के कारण प्रतिबंधित (मुक़य्यद), सामान्य (मुतलक़) का हिस्सा होने से बाहर नहीं होगा, और मुतलक़ का जो हुक्म है वह उसके तमाम सदस्यों (अफ़राद) पर लागू होगा जब तक कि किसी विशेष सदस्य के संबंध में विशेष रूप से मनाही (ममानत) न आई हो— तो ऐसी स्थिति में रास्ता यह नहीं है कि जायज़ कहने वाले से विशिष्टता का सबूत माँगें बल्कि रास्ता यह होगा कि उस विशेष व्यक्ति/सदस्य से संबंधित मनाही की स्पष्टता शरीयत से निकालें। इस गिरोह के'दूसरे शिक्षक' (मुअल्लिम-ए-सानी) का कथन ताज़ियत (शोक) की दुआ में हाथ उठाने के संबंध में ऊपर गुज़रा, और इसी गिरोह के'पहले शिक्षक' और भरोसेमंद इमाम "रिसाला-ए-बिदअत" में इस तरह नग़मा-सरा (मुखर) हैं: "दूसरा तरीका यह कि स्वयं मुतलक़ (सामान्य) के अस्तित्व की ओर देखते हुए उससे कोई शरई हुक्म संबंधित हो, तो मुतलक़ अपनी ज़ात के लिहाज़ से तमाम विशेषताओं में उसी हुक्म का तक़ाज़ा करेगा, हालाँकि कुछ अफ़राद में बाहरी कारणों (अवारिज़-ए-ख़ारिजीया) के लिहाज़ से मुतलक़ का हुक्म अलग हो जाए

(आगे लिखा है) विशिष्ट स्थिति के हुक्म की जांच में जो व्यक्ति ज़ेर-ए-बहस विशेष स्थिति के भीतर भी मुतलक़ के हुक्म के जारी होने का दावा रखता है, वही असल (सिद्धांत) को पकड़ने वाला है, जिसे अपना दावा साबित करने के लिए किसी दलील की ज़रूरत नहीं। दलील वही हुक्म-ए-मुतलक़ है और बस" इत्यादि। हज़रत वालिद माजिद (क़ुद्दिस सिर्रहु) ने इस महान सिद्धांत और शरीयत के नियम की पूर्ण और स्पष्ट तहक़ीक़ (शोध) व तन्क़ीह (स्पष्टीकरण) 'उसूल-उर-रशाद' में अता फरमाई है, वहाँ से इसे तलाश करना चाहिए। -(त)

मैं फिर पहली गुफ़्तगू की तरफ पलटता हूँ। अक़ूल: फिर अगर इस निश्चित समय की ज़ात में स्वयं कोई प्राथमिकता देने वाली वजह मौजूद हो...

---

1 रिसाला-ए-बिदअत (मुअल्लिम-ए-अव्वल) Page 582 of 948

فتاوی رضویہ جلد نہم

[بایاں کالم] ثانی طائفہ درباره دست برداشتن بدعائے تعزیہ بالاشنیدی وایک اول و امام معول طائفہ در رسالہ بدعت چناں نغمہ سرا "طریق ثانی آنکہ بمطلق بالنظر الی ذاتہ حکمے از احکام شرعیہ متعلق گردد۔ پس مطلق بنظر ذات خود در جمیع خصوصیات ہما حکم اقتضا می نماید گو در بعض افراد بحسب عوارض خارجیہ حکم مطلق مختلف گردد (الی ان قال) در تحقیق حکم صورت خاصہ کسیکه دعوی جریان حکم مطلق در صورت خاصہ مبحوث عنہامی نماید ہمانست متمسکت بہ اصل کہ در اثبات دعوی خود حاجت بدلیلے نہ وراد۔ دلیل او ہما حکم مطلق است وبس " الخ حضرت والد قدس سرہ الماجد این اصل منیف و قاعدہ شریعت را تحقیق بالغ و تنقیح بازغ در اصول الرشاد افادہ وارشاد فرمودہ اند آنجا باید جست۔ من باول سخن باز گردم فاقول: باز اگر دریں وقت معین مر جحے حاصل براختیارش فی نفسہ موجود ست فبہا ورنہ ہنگام

[دایاں کالم] یہ سبھی تعینات (اوقات معینہ) اطلاق کی بناء پر بطورِ اباحت وہ عمل واقع کیے جانے کے قابل تھے، مگر ان ہی میں سے کسی کو کسی مصلحت کی وجہ سے اختیار کرتے ہیں۔ بغیر اس کے کہ وقت معین کو صحت کی بنیاد یا حلت کا مدار یا ثواب دے جانے کا مناطر جانیں، ظاہر ہے کہ اس تقیید کی وجہ سے مقید، مطلق کا فرد ہونے سے خارج نہ ہوگا، اور مطلق کا جو حکم ہے وہ اس کے تمام افراد میں جاری ہوگا تب کہ کسی فردِ خاص سے متعلق خاص طور پر ممانعت وارد نہ ہو— تو ایسے مقام میں راہ یہ نہیں کہ جائز کہنے والے سے خصوصیت کا ثبوت مانگیں بلکہ راہ یہ ہوگی کہ اس فرد خاص سے متعلق ممانعت کی صراحت شریعت سے نکالیں۔ اس طائفہ کے معلمِ ثانی کی عبارت دعائے تعزیت میں ہاتھ اٹھانے سے متعلق اوپر گزری، اور یہ طائفہ کے معلمِ اول اور امام معتمد "رسالہ بدعت" میں یوں نغمہ سرا ہیں "دوسرا طریقہ یہ کہ خود ذاتِ مطلق

کی جانب نظر کرتے ہوئے اس سے کوئی حکمِ شرعی متعلق ہو، تو مطلق اپنی ذات کے لحاظ سے تمام خصوصیات میں اسی حکم کا مقتضی ہوگا، گو بعض افراد میں خارجی عوارض کے اعتبار سے مطلق کا حکم مختلف ہو جائے (آگے لکھا) صورتِ خاص کے حکم کی تحقیق میں جو شخص زیرِ بحث خاص صورت کے اندر بھی مطلق کا حکم جاری ہونے کا دعویٰ رکھتا ہے وہی اصل سے تمسک کرنے والا ہے، جسے اپنا دعویٰ ثابت کرنے کے لیے کسی دلیل کی ضرورت نہیں۔ دلیل وہی حکمِ مطلق ہے اور بس" الخ حضرت والد قدس سرہ الماجد نے اس اصل اور قاعدے کی کامل اور روشن تحقیق و تنقیح اصول الرشاد میں افادہ فرمائی ہے وہاں سے اسے طلب کرنا چاہئے -(ت) میں پھر پہلی گفتگو کی طرف پلٹتا ہوں۔ اقول: پھر اگر اس وقت معین کی ذات میں خود کوئی ترجیح دینے والی

Fatawa-e-Razvia Volume 9

(Left Column - Persian Text) Equality of choice's will for preference is based on evidence, just as you observe in two cups for a thirsty person and two paths. In the first case, the benefit is evident, and in the second, it is no less significant because this fixing of time serves as a reminder and alert, preventing procrastination and providing strength. Every sensible person feels from their own intuition that when a specific time is set for a task, the arrival of that time reminds them of it; otherwise, it would often be missed. It is from here that those engaged in remembrance (dhikr), spiritual practices (shaghl), and worship (ibadat) set specific times for their rituals and worship. One person has taken it upon themselves to recite the Kalima Tayyiba a hundred times before the dawn prayer (Fajr). Another has fixed reciting Durood a hundred times after the night prayer (Isha). If this timing is not considered among the three types of Sharia timing, they will never be religiously reproached. Dear brother! If you refer to 'Al-Qaul al-Jameel' by Shah Waliullah, 'Sirat-e-Mustaqeem' by the leader of the group, and other books of this art written by the elders and leaders of the group, you will find many such necessary fixations that do not have a trace of being Sharia-mandated timing. Alas, what can you say about the determination of days and times there, where you find a vast array of actions, practices, new methods, and invented forms of which there was no sign or news in the preceding centuries, and they themselves confess to their creation and innovation. Shah Waliullah says in 'Al-Qaul al-Jameel': "Our companionship and our learning of the manners of the Path are connected to the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him), even if the specific determination of those manners and practices is not established [from the early sources]1."

(Right Column - Urdu Translation) ...thing exists which is the cause for choosing it, then it's fine. Otherwise, when all times are equal and identical, the choice-maker's will is sufficient to give preference, just as two cups are identical and a thirsty person prefers and chooses one by his will. Similarly, two paths are identical and a traveler chooses one. In the first case, the benefit is itself evident—and in the second case, it is at least certain that by fixing it, there will be reminder and awareness, and it will prevent procrastination and missing it. Every sensible person's inner sense itself witnesses that when a specific time is set for a task, when that time comes, that task is remembered; otherwise, it often happens that it's missed. This is the reason why those who engage in remembrance (dhikr), spiritual practices (shaghl), and worship (ibadat) set specific times for their practices. Someone has taken it upon themselves

to recite the Kalima Tayyiba a hundred times before Fajr prayer. Someone has fixed reciting Durood a hundred times after Isha prayer. If these fixations and timings are not considered among the three types of Sharia timing, then there is absolutely no reproach on them from the Sharia side. Dear brother! If I look at Shah Waliullah's 'Al-Qaul al-Jameel', 'Sirat-e-Mustaqeem' by the leader of the group, and other books of this art written by the elders and leaders of this group, I find many things from the self-imposed fixations in which the side of Sharia...

1 Al-Qaul al-Jameel along with translation Shifa al-Aleel, Section 11, H.M. Saeed Company, Karachi, p. 73

फ़तावा-ए-रिज़विया खंड 9

(बायाँ कॉलम - फारसी पाठ) वरीयता के लिए चयन की इच्छा की समानता साक्ष्य पर आधारित है, जैसा कि आप एक प्यासे व्यक्ति के लिए दो प्यालों और दो रास्तों में देखते हैं। पहले मामले में, लाभ स्पष्ट है, और दूसरे में, यह कम महत्वपूर्ण नहीं है क्योंकि समय का यह निर्धारण एक अनुस्मारक और सचेतक के रूप में कार्य करता है, टालमटोल को रोकता है और शक्ति प्रदान करता है। प्रत्येक समझदार व्यक्ति अपने स्वयं के अंतर्ज्ञान से महसूस करता है कि जब किसी कार्य के लिए एक विशिष्ट समय निर्धारित किया जाता है, तो उस समय का आगमन उसे उसकी याद दिलाता है; अन्यथा, वह अक्सर छूट जाता है। यहीं से ज़िक्र करने वाले (ज़ाकिरीन), आध्यात्मिक अभ्यासों में लगे लोग (शाग़िलीन) और इबादत करने वाले (आबिदीन) अपने अनुष्ठानों और इबादत के लिए विशिष्ट समय निर्धारित करते हैं। एक व्यक्ति ने फज्र की नमाज़ से पहले सौ बार कलिमा तय्यबा पढ़ने का ज़िम्मा लिया है। दूसरे ने ईशा की नमाज़ के बाद सौ बार दुरूद पढ़ना तय किया है। यदि इस समय निर्धारण को शरीयत के तीन प्रकार के समय निर्धारणों में नहीं माना जाता है, तो उन पर कभी भी धार्मिक रूप से फटकार नहीं लगाई जाएगी। प्रिय भाई! यदि आप शाह वलीउल्लाह की 'अल-कौल अल-जमील', समूह के नेता की 'सिरात-ए-मुस्तकीम' और समूह के बड़ों और नेताओं द्वारा लिखी गई इस कला की अन्य पुस्तकों को देखें, तो आपको ऐसे कई आवश्यक निर्धारण मिलेंगे जिनमें शरीयत-अनिवार्य समय होने का कोई संकेत नहीं है। अफसोस, वहां दिनों और समय के निर्धारण के बारे में आप क्या कह सकते हैं, जहां आपको कार्यों, अभ्यासों, नए तरीकों और आविष्कृत रूपों की एक विस्तृत श्रृंखला मिलती है जिनका पिछली शताब्दियों में कोई संकेत या समाचार नहीं था, और वे स्वयं उनके निर्माण और नवाचार को स्वीकार करते हैं। शाह वलीउल्लाह 'अल-कौल अल-जमील' में कहते हैं: "हमारा साथ और पथ के शिष्टाचार का हमारा सीखना अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) से जुड़ा हुआ है, भले ही उन शिष्टाचारों और अभ्यासों का विशिष्ट निर्धारण [प्रारंभिक स्रोतों से] सिद्ध न हो1।"

(दायाँ कॉलम - उर्दू अनुवाद) ...चीज़ मौजूद है जो उसे अख्तियार (चुनने) करने का कारण है, तो ठीक है। अन्यथा, जब सभी समय समान और बराबर हों, तो अख्तियार वाले (चुनने वाले) की इच्छा वरीयता देने के लिए पर्याप्त है, जैसे दो प्याले एक समान हैं और एक प्यासा अपनी इच्छा से किसी एक को वरीयता देकर चुनता है। इसी तरह, दो रास्ते एक समान हैं और चलने वाला किसी एक को चुन लेता है। पहले मामले में तो लाभ स्वयं स्पष्ट है—और दूसरे मामले में, कम से कम इतना तो निश्चित है कि

इसे निर्धारित करने से याद दहानी और जागरूकता होगी, और यह टालने और चूकने से रोकेगा। प्रत्येक बुद्धिमान व्यक्ति का अंतर्मन स्वयं गवाह है कि जब किसी काम के लिए कोई विशिष्ट समय तय करते हैं, तो जब समय आता है तो वह काम याद आ जाता है, वरना अक्सर ऐसा होता है कि वह छूट जाता है। यही कारण है कि ज़िक्र करने वाले, आध्यात्मिक अभ्यास करने वाले और इबादत करने वाले अपनी इबादत और अभ्यास के लिए समय निर्धारित कर लेते हैं। किसी ने फज्र की नमाज़ से पहले सौ बार कलिमा तय्यबा पढ़ना अपने ज़िम्मे ले लिया है। किसी ने ईशा की नमाज़ के बाद सौ बार दुरूद पढ़ना तय कर लिया है। यदि इन निर्धारणों और समय निर्धारण को शरीयत के तीन प्रकार के समय निर्धारणों में से न माना जाए, तो शरीयत की ओर से उन पर कोई फटकार नहीं है। प्रिय भाई! यदि मैं शाह वलीउल्लाह की 'अल-कौल अल-जमील', समूह के नेता की 'सिरात-ए-मुस्तकीम' और उनके अलावा इस समूह के बड़ों की लिखी हुई इस कला की किताबें देखूँ, तो उनमें स्वयं लागू किए गए निर्धारणों से बहुत सी चीज़ें पाओगे जिनमें शरीयत की ओर...

1 अल-कौल अल-जमील मय अनुवाद शिफ़ा अल-अलील, खंड 11, एच.एम. सईद कंपनी, कराची, पृ. 73

تساوی ارادہ مختار ترجیح را بسند ست چنانکہ در دو جام تشنہ و دوراہ را ہے مشاہدہ کنی، علی الاول مصلحت عیاں ست و علی الثانی کم نہ ازاں کہ ایں تعین باعث تذکیر و تنبیہ و مانع تسویف و تقویت باشد ہر عاقل از وجدان خود یابد کہ چوں کارے را وقتے معین بنہند آمدن وقت یادش دہد ورنہ بسا باشد کہ از دست رود۔ از ہمیں جاست اوقات معین کردن ذاکرین و شاغلین و عابدین مر ذکر و شغل عبادت را یکے پیش از نماز صبح صد بار کلمہ طیبہ بر خود گرفتہ است۔ دیگرے پس از نماز عشا صد بار درود واگر ایں توقیت را از اقسام ثلاثہ توقیت شرعی نہ دانند زنہار از شرعا معاتب نشوند جان برادر! اگر بقول الجمیل شاہ ولی اللہ وصراط مستقیم امام الطائفہ و غیر ہما کتب ایں فن کہ اکابر و عمائد طائفہ تصنیف کردہ اند رجوع آرے چیز ہا ازیں تعینات مستلزمہ یابی کہ زنہار از تاقیت شرعی نشانی نہ دارد۔ ہیہات خود از تعین ایام و اوقات چہ گوئی آنجا تو دباہت از اعمال واشغال و طرق و ہیات محدثہ مخترعہ کہ در قرون سالفہ از انہا اثرے و خبرے پیدا نبود و ایناں را باحداث و ابتداع آنہا خود اعتراف است۔ شاہ ولی اللہ در قول الجمیل گویند : "صحبتنا و تعلمنا آداب الطریقۃ متصلۃ الی رسول اللہ صلی اللہ تعالی علیہ وسلم وان لم یثبت تعین الآداب والتلك الاشغال1۔"

چیز موجود ہے جو اسے اختیار کرنے کی باعث ہے تو ٹھیک ہے۔ ورنہ جب تمام اوقات یکساں اور برابر ہوں تو صاحب اختیار کا ارادہ ترجیح دینے کے لیے کافی ہے، جیسے دو جام یکساں ہیں اور پیاسا اپنے ارادے سے کسی ایک کو ترجیح دے کر اختیار کرتا ہے۔ اسی طرح دو راہیں یکساں ہیں اور چلنے والا کسی ایک کو اختیار کر لیتا ہے۔ پہلی صورت میں تو مصلحت خود عیاں ہے_ اور دوسری صورت میں کم از کم اتنا ضرور ہے کہ اس کو معین کر لینے سے یاد دہانی اور آگاہی ہو گی اور یہ ٹالنے اور فوت کر ڈالنے سے مانع ہو گی ہر عقل والے کا وجدان خود گواہ ہے کہ جب

کسی کام کے لیے کوئی وقت معین رکھتے ہیں تو جب وقت آتا ہے وہ کام یاد آ جاتا ہے ورنہ بارہا ایسا ہوتا ہے کہ فوت ہو جاتا ہے یہی وجہ ہے کہ ذاکرین، شاغلین، عابدین اپنے ذکر و شغل اور عبادت کے لیے اوقات معین کر لیتے ہیں۔ کسی نے نماز صبح سے پہلے سو بار کلمہ طیبہ پڑھنا اپنے ذمہ کر لیا ہے۔ کسی نے نماز عشاء کے بعد سو بار درود پڑھنا مقرر کر لیا ہے۔ اگر اس تعین و توقیت کو توقیت شرعی کی تینوں قسموں سے نہ جانیں تو شریعت کی جانب سے ان پر ہر گز کوئی عتاب نہیں_ جان برادر! اگر شاہ ولی اللہ کی القول الجمیل، امام الطائفہ کی صراط مستقیم اور ان کے علاوہ اس طائفہ کے اکابر و عمائد کی تصنیف کردہ اس فن کی کتابیں دیکھوں تو ان میں از خود لازم کیے ہوئے تعینات سے بہت سی چیزیں پاؤ گے جن میں شریعت کی جانب

1 القول الجمیل معہ ترجمہ شفاء العلیل فصل ۱۱ ایچ ایم سعید کمپنی کراچی ص ۷۳

Fatawa Rizwia Volume 9

There is no sign or mention of specification and timing. Why go far and why talk about specification of days and times, there are dozens of invented and innovated acts, occupations, forms and ways present there, which had no name or sign, nor any mention or news in previous centuries. These gentlemen themselves admit their invention and innovation. (1) Shah Waliullah writes in 'Al-Qawl al-Jamil': "Our companionship and our teaching of the etiquettes of the spiritual path is connected to the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him), although the specification of these etiquettes and these occupations is not proven from the Prophet." (T)

2 Maulvi Khurram Ali said in the translation of this phrase. (2) Maulvi Khurram Ali Shah Sahab writes this translation of the above-mentioned Arabic phrase: (T)

"To see the etiquettes of our companionship and spiritual path is connected to the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him), although the specification of these etiquettes and the establishment of these occupations is not proven 1." – Summarized.

3 Also in Shifa al-Alil translation of Al-Qawl al-Jamil it says. (3) The same author writes in the translation of Al-Qawl al-Jamil, Shifa al-Alil: (T)

"The investigating author, with delightful speech and matchless research, uprooted the doubts of the critics. Some ignorant people say that the specific occupations of the Qadiriya, Chishti, and Naqshbandi orders were not present in the era of the Companions and Successors, so they became evil innovations (bid'at-e-sayyiah) 2 etc."

4 Also from Shah Abdul Aziz Sahab. (4) In the same, he quotes from Shah Abdul Aziz Sahab: (T)

"Maulana states in the footnote, and similarly the leaders of the spiritual path have invented sittings and forms for specific remembrances (adhkar) based on intellectual suitability 3." etc.

5 Then he says himself. (5) Then he himself has written: (T)

"That is, such matters should not be considered contrary to Sharia or included in evil innovation, as some of little understanding think 4."

1 Shifa al-Alil Translation of Al-Qawl al-Jamil, Section 11, H.M. Saeed Company Karachi, p. 173 2 Shifa al-Alil Translation of Al-Qawl al-Jamil, Section 11, H.M. Saeed Company Karachi, p. 170 3 Shifa al-Alil Translation of Al-Qawl al-Jamil, Section 11, H.M. Saeed Company Karachi, p. 151 4 Shifa al-Alil Translation of Al-Qawl al-Jamil, Section 11, H.M. Saeed Company Karachi, p. 151

निर्धारण और समय का कोई नाम-ओ-निशान तक नहीं है। दूर क्यों जाएं और दिनों और समयों के निर्धारण की बात क्यों करें, वहाँ तो दर्जनों ऐसे आविष्कृत और नवनिर्मित कार्य, व्यवसाय, स्वरूप और तरीके मौजूद हैं जिनका पिछली सदियों में कोई नाम-ओ-निशान नहीं था, न ही कोई ज़िक्र या ख़बर थी। इन महानुभावों ने स्वयं उनके आविष्कार और नवीनता को स्वीकार किया है। (१) शाह वलीउल्लाह 'अल-क़ौल अल-जमील' में लिखते हैं: "हमारी संगति और आध्यात्मिक मार्ग के शिष्टाचार की हमारी शिक्षा अल्लाह के रसूल (उन पर अल्लाह की शांति और कृपा हो) तक जुड़ी हुई है, हालांकि इन शिष्टाचारों और इन व्यवसायों का निर्धारण हुज़ूर से प्रमाणित नहीं है।" (त)

२ मौलवी खुर्रम अली ने इस इबारत के अनुवाद में कहा। (२) मौलवी खुर्रम अली शाह साहब उपर्युक्त अरबी इबारत का यह अनुवाद लिखते हैं: (त)

"हमारी संगति और तरीक़त के आदाब देखना रसूलुल्लाह (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) तक मुत्तसिल है, अगर्चे तअय्युन इन आदाब का और तक़र्रुर इन अशग़ाल का साबित नहीं १।" – संक्षेप में।

३ हम दर 'शिफ़ा अल-अलील' तर्जुमा 'क़ौल अल-जमील' गोयद। (३) यही साहब 'अल-क़ौल अल-जमील' के अनुवाद 'शिफ़ा अल-अलील' में लिखते हैं: (त)

"हज़रत मुसन्निफ़ मोहक़्क़िक़ ने दिलपज़ीर कलाम और बेमिसाल तहक़ीक़ से आलोचकों के संदेहों को जड़ से उखाड़ दिया। कुछ नादान कहते हैं कि क़ादरिया, चश्तिया और नक़्शबंदिया के विशिष्ट कार्य सहाबा और ताबिईन के ज़माने में नहीं थे, इसलिए वे बिदअत-ए-सय्यिआ (बुरी नवाचार) हुए २ इत्यादि।"

४ हमदरान अज़ शाह अब्दुल अज़ीज़ साहब आरद। (४) इसी में शाह अब्दुल अज़ीज़ साहब से नक़्ल करते हैं: (त)

"मौलाना हाशिए में फ़रमाते हैं और इसी तरह पेशवयान-ए-तरीक़त ने जलसात और हयात वास्ते अज़कार-ए-मख़्सूसा के ईजाद किए हैं मुनासिब-ए-अक़्लिया के सबब से ३।" इत्यादि।

५ बाज़ ख़ुद मी गोयद। (५) फिर ख़ुद लिखा है: (त)

"यानी ऐसे उमूर को मुख़ालिफ़-ए-शरअ या दाख़िल-ए-बिदअत-ए-सय्यिआ न समझना चाहिए जैसा कि बाज़ कम फ़हम समझते हैं ४।"

---

1 शिफ़ा अल-अलील तर्जुमा अल-क़ौल अल-जमील फ़स्ल ११ एच.एम. सईद कंपनी कराची पृ. १७३ 2 शिफ़ा अल-अलील तर्जुमा अल-क़ौल अल-जमील फ़स्ल ११ एच.एम. सईद कंपनी कराची पृ. १७० 3 शिफ़ा अल-अलील तर्जुमा अल-क़ौल अल-जमील फ़स्ल ११ एच.एम. सईद कंपनी कराची पृ. १५१ 4 शिफ़ा अल-अलील तर्जुमा अल-क़ौल अल-जमील फ़स्ल ११ एच.एम. सईद कंपनी कराची पृ. १५१

سے تعیین و توقیت کا کوئی نام و نشان بھی نہیں ہے۔ دُور کیوں جائیے اور تعیین ایام و اوقات کی بات کیوں کیجئے ، وہاں تو بیسیوں اعمال و اشغال اور ہیأت و طرق ایجادی اور اختراعی ایسے موجود ہیں جن کا قرونِ سابقہ میں کوئی نام و نشان تھا ، نہ ذکر و خبر۔ ان حضرات کو ان کی ایجاد اور ابتداع کا خود اقرار ہے۔ (۱) شاہ ولی اللہ القول الجمیل میں لکھتے ہیں: " ہماری صحبت اور ہماری تعلیمِ آدابِ طریقت رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم تک متصل ہے اگرچہ ان آداب اور ان اشغال کی تعیین حضور سے ثابت نہیں۔" (ت)

۲ مولوی خرمعلی در ترجمہ این عبارت گفت۔ (۲) مولوی خرمعلی شاہ صاحب کی مذکورہ بالا عربی عبارت کا ترجمہ یہ لکھتے ہیں: (ت)

"ہماری صحبت اور طریقت کے آداب دیکھنا متصل ہے رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم تک ، اگرچہ تعیین ان آداب کا اور تقرر ان اشغال کا ثابت نہیں ۱۔" اھ ملخصاً

۳ ہم در شفاء العلیل ترجمہ قول الجمیل گوید۔ (۳) یہی صاحب القول الجمیل کے ترجمہ شفاء العلیل میں لکھتے ہیں : (ت)

" حضرت مصنف محقق نے کلام دلپذیر اور تحقیق عدیم النظیر سے شبہات ناقدین کو جڑ سے اکھاڑا۔ بعضے نادان کہتے ہیں کہ قادریہ اور چشتیہ اور نقشبندیہ کے اشغال مخصوصہ صحابہ اور تابعین کے زمانہ میں نہ تھے تو بدعتِ سیئہ ہوئے ۲الخ۔"

۴ ہمدران از شاہ عبدالعزیز صاحب آرد۔ (۴) اسی میں شاہ عبدالعزیز صاحب سے نقل کرتے ہیں : (ت)

”مولانا حاشیے میں فرماتے ہیں اور اسی طرح پیشوایانِ طریقت نے جلسات اور ہیات واسطے اذکار مخصوصہ کے ایجاد کیے ہیں مناسبِ عقلیہ کے سبب سے ۳۔“ الخ

۵ باز خود می گوید۔ (۵) پھر خود لکھا ہے : (ت)

”یعنی ایسے امور کو مخالفِ شرع یا داخلِ بدعتِ سیئہ نہ سمجھنا چاہئے جیسا کہ بعض کم فہم سمجھتے ہیں ۴۔“

---

۱ شفاء العلیل ترجمہ القول الجمیل فصل ۱۱ ایچ ایم سعید کمپنی کراچی ص ۱۷۳ ۲ شفاء العلیل ترجمہ القول الجمیل فصل ۱۱ ایچ ایم سعید کمپنی کراچی ص ۱۷۰ ۳ شفاء العلیل ترجمہ القول الجمیل فصل ۱۱ ایچ ایم سعید کمپنی کراچی ص ۱۵۱ ۴ شفاء العلیل ترجمہ القول الجمیل فصل ۱۱ ایچ ایم سعید کمپنی کراچی ص ۱۵۱

(6) Imam-ul-Taifa has written in Sirat-e-Mustaqim: "The researching elders have made great efforts in the method of renewing spiritual engagements (ashghal); therefore, it was deemed beneficial and required by the time that a chapter of this book be designated for the description of new spiritual engagements suitable for this time, and the renewal of engagements be brought into practice." (Summarized).

(7) It is written regarding his spiritual guide: "He expanded the scope of effort in the instruction and teaching of the Chishti order, and renewed those spiritual engagements which this blessed book contains. Glory be to Allah! These people who, according to your own rules, are clearly guilty of 'innovation in religion' (ahdath-fi-din) and have started open innovations, and have undoubtedly created such things that were unheard of in previous centuries, they are not considered astray and innovators, but rather they remain Imams, leaders, gnostics, and scholars. On the other hand, others are called astray and innovators just for the crime of gathering a few preferred matters established in Sharia and fixing a specific time from the permissible times of Sharia to perform them. For the sake of Allah, be just! What can be said about this undue dominance and improper coercion? Perhaps the Sharia is your household business that you can manipulate as you please. Beware! Beware, seekers of truth!"

---

1. Sirat-e-Mustaqim, Introduction of the book, Chapter 1, Al-Maktaba al-Salafiyya, Lahore, p. 78.
2. Sirat-e-Mustaqim, Chapter 4, Al-Maktaba al-Salafiyya, Lahore, p. 166.

फ़तावा रज़विया - जिल्द नहुम (खंड 9)

(६) इमाम-उत-ताइफ़ा ने सिरात-ए-मुस्तकीम में लिखा है: "अनुसंधानकर्ता बुजुर्गों ने आध्यात्मिक व्यस्तताओं (अश्ग़ाल) के नवीनीकरण के तरीके में बड़े प्रयास किए हैं, इसलिए यह हितकर समझा गया और समय की मांग थी कि इस पुस्तक का एक अध्याय इस समय के उपयुक्त नई आध्यात्मिक व्यस्तताओं के वर्णन के लिए निर्धारित किया जाए और व्यस्तताओं का नवीनीकरण अभ्यास में लाया जाए।" (संक्षिप्त)।

(७) अपने गुरु की स्थिति के बारे में लिखा है: "चिश्ती संप्रदाय के निर्देश और शिक्षण में प्रयास के दायरे को बढ़ाया, और उन आध्यात्मिक व्यस्तताओं का नवीनीकरण किया जिन्हें यह धन्य पुस्तक समाहित करती है। सुभान अल्लाह! ये लोग जो आपके अपने नियमों के अनुसार स्पष्ट रूप से 'धर्म में नवीनता' (अहदाथ-फी-दीन) और खुले नवाचार (बिदअत) शुरू करने के दोषी हैं, और निसंदेह ऐसी चीजें बनाई हैं जिनका पिछली शताब्दियों में कोई पता नहीं था, वे गुमराह और नवाचारी नहीं माने जाते, बल्कि वे वैसे ही इमाम, मार्गदर्शक, सूफी और विद्वान बने रहते हैं। दूसरी ओर, अन्य लोगों को केवल इस अपराध पर गुमराह और नवाचारी कहा जाता है कि उन्होंने शरीयत में स्थापित कुछ पसंदीदा कार्यों को इकट्ठा किया और उन्हें करने के लिए शरीयत के जायज़ समय में से एक विशिष्ट समय निर्धारित कर लिया। अल्लाह के लिए न्याय करें! इस अनुचित वर्चस्व और अनुचित दबाव के बारे में क्या कहा जा सकता है? शायद शरीयत आपके घर का व्यवसाय है कि जैसा चाहो वैसा बदलाव करते रहो। सावधान! सावधान, सत्य के साधकों!"

---

1. सिरात-ए-मुस्तकीम, पुस्तक की प्रस्तावना, अध्याय 1, अल-मकतबा अल-सलफ़िया, लाहौर, पृष्ठ 78।
2. सिरात-ए-मुस्तकीम, अध्याय 4, अल-मकतबा अल-सलफ़िया, लाहौर, पृष्ठ 166।

(۶) امام الطائفہ نے صراطِ مستقیم میں لکھا ہے: "محققین اکابر نے تجدید اشغال کے طریقے میں بڑی کوشش کی ہیں، اسی بنا پر مصلحت اور وقت کا تقاضا یہ ہوا کہ اس کتاب کا ایک باب اس وقت کے مناسب اشغال جدیدہ کے بیان کے لیے معین کیا جائے اور اشغال کی تجدید عمل میں لائی جائے۔" اھ ملخصاً

(۷) اپنے پیر کے حال میں لکھا ہے: "طریقہ چشتیہ کی تلقین و تعلیم میں بازوئے ہمت کشادہ کیا، اور ان اشغال کی تجدید فرمائی جن پر یہ کتاب مستطاب مشتمل ہے۔ سبحان اللہ ! یہ لوگ جو تمہارے قاعدے کے مطابق صراحۃً "احداث فی الدین" اور کھلی ہوئی بدعت جاری کرنے کے مرتکب ہیں، اور بلا شبہ ایسی چیزیں ایجاد کی ہیں جن کی قرون سابقہ میں کوئی خبر نہیں، وہ تو گمراہ اور بدعتی نہ ہوں بلکہ ویسے ہی امام و مقتداء اور عرفاء و علماء رہیں_ دوسرے صرف اتنے جرم پر کہ انھوں نے شریعت میں ثابت چند پسندیدہ امور کو یکجا کر دیا، اور ان کو عمل میں لانے کیلئے شریعت میں جائز اوقات میں سے ایک وقت معین کر لیا، معاذ اللہ گمراہ اور بدعتی ہو جائیں_ اللہ انصاف ! اس بے جا تحکم اور ناروا زبردستی کو کیا کہا جائے، شاید شریعت تمہارے گھر کا کاروبار ہے کہ جیسے چاہو الٹ پھیر کرتے رہو ہوشیار۔ ہوشیار اے طالبانِ حق

---

1 صراط مستقیم مقدمۃ الکتاب باب اول المکتبہ السلفیہ لاہور ص ۷۸ 2 صراط مستقیم باب چہارم المکتبہ السلفیہ لاہور ص ۱۶۶

Fatawa Razawiyya Volume Nine

[Arabic/Persian Text Column]: The Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) established an annual visit to the martyrs of Uhud, as will be mentioned later; his visit to Masjid Quba on Saturdays, as recorded in the Sahihayn (Bukhari and Muslim) from Ibn Umar (may Allah be pleased with them both); the Monday fast as an expression of gratitude for his messengership, as recorded in Sahih Muslim from Abu Qatadah (may Allah be pleased with him); his religious consultations with Siddiq al-Akbar (may Allah be pleased with him) every morning and evening, as recorded in Sahih al-Bukhari from the Mother of the Believers Siddiqah (may Allah be pleased with her); the commencement of journeys for Jihad on Thursdays, as recorded therein from Ka'b bin Malik (may Allah be pleased with him); and seeking knowledge on Mondays, as reported by Abu al-Shaykh, Ibn Hibban, and al-Daylami with a sound chain from Anas ibn Malik (may Allah be pleased with him); Abdullah ibn Mas'ud (may Allah be pleased with him) used to deliver sermons and reminders on Thursdays, as recorded in Sahih al-Bukhari from Wa'il; and the scholars of guidance set Wednesdays for lessons, as mentioned in 'Ta'lim al-Muta'allim' by Imam Burhan al-Islam.

[Urdu Explanation Column]: Leave them to their rebellion and excess, and turn your attention toward the traditions and Hadiths so that we may narrate some habitual assignments (customary fixed timings) to you: Of this same category is what appears in the Hadith that the radiant Master of the World (peace and blessings of Allah be upon him) had fixed an annual time for visiting the martyrs of Uhud, as will be mentioned further on. And coming to Masjid Quba on Saturday, as narrated from Hazrat Ibn Umar (may Allah be pleased with them both) in the Sahihayn (Bukhari and Muslim). (3) And the Monday fast in gratitude for his messengership, as narrated from Hazrat Abu Qatadah (may Allah be pleased with him) in Sahih Muslim. (4) And the determination of morning and evening times for religious consultation with Siddiq al-Akbar (may Allah be pleased with him), as narrated from the Mother of the Believers Siddiqah (may Allah be pleased with her) in Sahih Bukhari. (5) And the determination of Thursday for starting the journey of Jihad, as narrated from Hazrat Ka'b bin Malik (may Allah be pleased with him) in the same Sahih Bukhari. And (6) seeking knowledge...

---

1 Sahih Muslim, Chapter on the Virtue of Masjid Quba, Qadimi Kutub Khana, Karachi, 1/448 2 Sahih Muslim, Chapter on the Desirability of Fasting Three Days etc., Qadimi

Kutub Khana, Karachi, 1/368 3 Sahih Bukhari, Chapter on the Hijrah of the Prophet and his Companions to Madinah, Qadimi Kutub Khana, Karachi, 1/552 4 Sahih Bukhari, Chapter on Whoever Intended a Military Expedition etc., Qadimi Kutub Khana, Karachi, 1/412 5 Al-Firdaws bi-Ma'thur al-Khitab, Hadith 237, Dar al-Kutub al-Ilmiyah, Beirut, 1/81; Kanz al-Ummal, Hadith 29340, Muassasat al-Risalah, Beirut, 10/250 6 Sahih Bukhari, Chapter on One Who Appointed Known Days for the People of Knowledge, Qadimi Kutub Khana, Karachi, 1/16 7 Ta'lim al-Muta'allim, Chapter on the Beginning of the Lesson, Matba' Alimi, Delhi, p. 34

फतावा रज़विया जिल्द नहुम

[अरबी/फारसी पाठ कॉलम]: अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने उहुद के शहीदों की ज़ियारत के लिए हर साल एक समय निर्धारित किया था, जैसा कि आगे आएगा; और शनिवार के दिन मस्जिद कुबा में उनका आना, जैसा कि सहीहैन (बुखारी और मुस्लिम) में इब्न उमर (रज़ियल्लाहु अन्हुमा) से वर्णित है; और उनकी नबूवत (दूतत्व) के आभार के रूप में सोमवार का रोज़ा रखना, जैसा कि सहीह मुस्लिम में अबू क़तादा (रज़ियल्लाहु अन्हु) से वर्णित है; और सिद्दीक़-ए-अकबर (रज़ियल्लाहु अन्हु) के साथ हर सुबह और शाम धार्मिक परामर्श करना, जैसा कि सहीह बुखारी में उम्मुल मोमिनीन सिद्दीक़ा (रज़ियल्लाहु अन्हा) से वर्णित है; और जिहाद की यात्रा गुरुवार को शुरू करना, जैसा कि हज़रत कअब बिन मालिक (रज़ियल्लाहु अन्हु) से वर्णित है; और सोमवार को ज्ञान प्राप्त करना, जैसा कि अबू अल-शेख, इब्न हिब्बान और दैलमी ने एक विश्वसनीय श्रृंखला के साथ अनस इब्न मालिक (रज़ियल्लाहु अन्हु) से रिपोर्ट किया है; अब्दुल्ला इब्न मसूद (रज़ियल्लाहु अन्हु) गुरुवार को उपदेश और अनुस्मारक दिया करते थे, जैसा कि सहीह बुखारी में वाएल से वर्णित है; और हिदायत देने वाले उलमा ने बुधवार को पाठ शुरू करने का दिन निर्धारित किया है, जैसा कि इमाम बुरहानुल इस्लाम की 'तालीमुल मुताअल्लिम' में उल्लेखित है।

[उर्दू स्पष्टीकरण कॉलम]: उन्हें उनकी सरकशी और ज़्यादती में छोड़ दो, और रिवायतों और हदीसों की ओर ध्यान दो ताकि हम तुम्हें कुछ आदती तअय्युनात (पारंपरिक निर्धारित समय) सुनाएँ इसी श्रेणी में वह है जो हदीस में आया है कि जगत् के स्वामी (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने उहुद के शहीदों की ज़ियारत के लिए वार्षिक समय निर्धारित किया था, जैसा कि आगे वर्णन किया गया है। और शनिवार के दिन मस्जिद कुबा में तशरीफ़ लाना, जैसा कि सहीहैन (बुखारी और मुस्लिम) में हज़रत इब्न उमर (रज़ियल्लाहु अन्हुमा) से वर्णित है। (3) और दूतत्व के आभार के लिए सोमवार का रोज़ा, जैसा कि सहीह मुस्लिम में हज़रत अबू क़तादा (रज़ियल्लाहु अन्हु) से वर्णित है। (4) और सिद्दीक़-ए-अकबर (रज़ियल्लाहु अन्हु) के साथ धार्मिक परामर्श के लिए सुबह और शाम के समय का निर्धारण, जैसा कि सहीह बुखारी में उम्मुल मोमिनीन सिद्दीक़ा (रज़ियल्लाहु अन्हा) से वर्णित है। (5) और जिहाद की यात्रा शुरू करने के लिए गुरुवार का निर्धारण, जैसा कि उसी सहीह बुखारी में हज़रत कअब बिन मालिक (रज़ियल्लाहु अन्हु) से वर्णित है। और (6) ज्ञान प्राप्ति...

1 सहीह मुस्लिम, मस्जिद कुबा की फ़ज़ीलत का अध्याय, क़दीमी कुतुब ख़ाना, कराची, 1/448 2 सहीह मुस्लिम, तीन दिनों के रोज़े की मुस्तहब्बत का अध्याय आदि, क़दीमी कुतुब ख़ाना, कराची, 1/368 3 सहीह बुखारी, नबी और उनके साथियों की मदीना की हिजरत का अध्याय, क़दीमी कुतुब ख़ाना, कराची, 1/552 4 सहीह बुखारी, वह व्यक्ति जिसने सैन्य अभियान का इरादा किया हो उसका अध्याय आदि, क़दीमी कुतुब ख़ाना, कराची, 1/412 5 अल-फ़िरदौस बि-मअसूर अल-ख़िताब, हदीस 237, दार अल-कुतुब अल-इल्मियाह, बेरूत, 1/81; कंज़ुल उम्माल, हदीस 29340, मुअस्ससतुल रिसाला, बेरूत, 10/250 6 सहीह बुखारी, वह व्यक्ति जिसने विद्वानों के लिए ज्ञात दिन निर्धारित किए उसका अध्याय, क़दीमी कुतुब ख़ाना, कराची, 1/16 7 तालीमुल मुताअल्लिम, पाठ की शुरुआत का अध्याय, मतबा अलीमी, दिल्ली, पृ. 34

فتاوی رضویه جلد نہم

[Arabic/Persian Text Column]: صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم زیارت شہدائے احد را سر سال مقرر فرمودن کما سیاتی و آمدن مسجد قبارا روز شنبہ کما فی الصحیحین عن ابن عمر رضی اللہ تعالیٰ عنہما و روزہ شکر رسالت را روز دوشنبہ کما فی صحیح مسلم عن ابی قتادہ رضی اللہ تعالیٰ عنہ و با صدیق اکبر رضی اللہ تعالیٰ عنہ مشاورہ دینی صبح و شام کما فی صحیح البخاری عن ام المؤمنین الصدیقہ رضی اللہ تعالیٰ عنہا وانشائے سفر جہاد را پنجشنبہ کما فیہ عن کعب بن مالک رضی اللہ تعالیٰ عنہ و طلب علم را دوشنبہ کما عند ابی الشیخ وابن حبان والدیلمی بسند صالح عن انس ابن مالک رضی اللہ تعالیٰ عنہ، وعبداللہ ابن مسعود رضی اللہ تعالیٰ عنہ وعظ و تذکیر را روز پنجشنبہ کما فی صحیح البخاری عن وائل و علماء ہدایت درس را روز چہار شنبہ کما فی تعلیم المتعلم للامام برہان الاسلام۔

[Urdu Explanation Column]: ان کو، ان کی سرکشی اور زیادتی میں چھوڑ اور آثار واحادیث کی جانب متوجہ ہو تاکہ ہم کچھ تعینات عادیہ تجھے سنائیں: اسی قبیل سے ہے جو حدیث میں آیا کہ حضور پر نور سید عالم صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم نے شہدائے اُحد کی زیارت کے لیے ہر سال کا وقت مقرر فرما لیا تھا جیسا کہ آگے ذکر آرہا ہے۔ اور سنیچر کے دن مسجد قبا میں تشریف لانا، جیسا کہ صحیحین میں (بخاری و مسلم) میں حضرت ابن عمر رضی اللہ تعالیٰ عنہما سے مروی ہے۔ (۳) اور شکرِ رسالت کے لیے دوشنبہ کا روزہ جیسا کہ صحیح مسلم میں حضرت ابو قتادہ رضی اللہ تعالیٰ عنہ سے مروی ہے، (۴) اور صدیق اکبر رضی اللہ تعالیٰ عنہ سے دینی مشاورت کے لیے وقت صبح و شام کی تعین، جیسا کہ صحیح بخاری میں اُم المؤمنین صدیقہ رضی اللہ تعالیٰ عنہا سے مروی ہے۔ (۵) اور سفرِ جہاد شروع کرنے کے لیے پنجشنبہ کی تعین ، جیسا کہ

اسی صحیح بخاری میں حضرت کعب بن مالک رضی اللہ تعالیٰ عنہ سے مروی ہے۔ اور (۶) طلب علم

---

1 صحیح مسلم باب فضل مسجد قبا قدیمی کتب خانہ کراچی ۱ / ۴۴۸ 2 صحیح مسلم باب استحباب صیام ثلاثہ ایام الخ قدیمی کتب خانہ کراچی ۱ / ۳۶۸ 3 صحیح البخاری باب ہجرۃ النبی واصحابہ الی المدینہ قدیمی کتب خانہ کراچی ۱ / ۵۵۲ 4 صحیح البخاری باب من اراد غزوۃ الخ قدیمی کتب خانہ کراچی ۱ / ۴۱۲ 5 الفردوس بماثور الخطاب حدیث ۲۳۷ دارلکتب العلمیہ بیروت ۱ / ۸۱ ، کنز العمال حدیث ۲۹۳۴۰ موسسۃ الرسالۃ بیروت ۱۰ / ۲۵۰ 6 صحیح البخاری باب من جعل لاہل العلم ایاما معلومۃ قدیمی کتب خانہ کراچی ۱ / ۱۶ 7 تعلیم المتعلم فصل فی بدایۃ السبق مطبع علیمی دہلی ص ۳۴

Fatawa Rizvia - Volume 9

[Left Column Text] Al-Zarnuji narrated it from his teacher Imam Burhan al-Din Marghinani, the author of 'Hidayah', and said: "This is what Abu Hanifa (may Allah be pleased with him) used to do." (1) The author of 'Tanzeeh al-Shari'ah' said: "And thus was a group from the people of knowledge." (2) All these are matters of customary timing (Tauqeet-e-Aadi). God forbid that the intent of the Master of Masters (upon him be the best blessings from the Generous King) was that visiting [shrines] is not a visit except at the end of the year, or that it is not permissible, or that the great reward that falls to the King and Refuge of the World (peace and blessings of Allah be upon him) on this day—through kindness to servants, care for the Ummah, and honoring the shrines of the noble martyrs with the dust of his blessed steps—would not be attained on another day. Similarly, the purpose of Ibn Mas'ud was not that there is no preaching except on Thursday, or that it is not permissible on other days, or that the pure Shariah determined this intended reward for this specific day; God forbid. Rather, he made it a habit to commit so that he could engage in reminding Muslims every week. The designation of a day for seekers of good helps in gathering easily. In some instances, there is a separate preference, like the occurrence of the commission of prophethood and the attainment of prophetic knowledge on Monday, and the greatness of blessing in the early hours of Thursday. Regarding the completion at the start of Wednesday, they mention a Hadith: "No thing is started on Wednesday except that it reaches completion." (3) In some other cases, this preference is intentional due to wisdom...

[Right Column Text] ...for [him], the designation of Monday was made, as narrated by Abu al-Shaykh, Ibn Hibban, and Daylami with a sound chain from Hazrat Anas ibn Malik (may Allah be pleased with him). (7) And Hazrat Abdullah ibn Mas'ud (may Allah be pleased with him) fixed Thursday for preaching and reminders, as narrated from Hazrat Abu Wail in Sahih Bukhari. (8) And the scholars kept Wednesday for starting lessons, as mentioned in Imam Burhan al-Islam Zarnuji's 'Ta'lim al-Muta'allim'. He narrated this from his teacher Imam Burhan al-Din Marghinani, the author of 'Hidayah', and said that Imam Abu Hanifa (may Allah be pleased with him) used to do the same. The author of 'Tanzeeh al-Shari'ah' stated that this has been the custom of a group of scholars. All these are matters of customary timing (Tauqeet-e-Aadi). God forbid that the meaning of the Master of Masters (peace and blessings be upon him) was that visiting is not allowed or permissible at any time other than the end of the year, or that the great reward that would be bestowed upon the King and Refuge of

the World (peace and blessings of Allah be upon him) for his kindness to the Ummah and for honoring the shrines of the noble martyrs with the sacred dust of his blessed feet on this day would not be attained on any other day.

[Footnotes] 1 Ta'lim al-Muta'allim, Chapter on Beginning the Lesson, etc., Alimi Press Delhi, p. 33. 2 Tanzeeh al-Shari'ah, Chapter on Mentioning Cities and Days, etc., Second Section, Hadith 24, Dar al-Kutub al-Ilmiyyah Beirut, 56/2. 3 Ta'lim al-Muta'allim, Chapter on Beginning the Lesson, etc., Alimi Press Delhi, p. 33; Tanzeeh al-Shari'ah, Chapter on Mentioning Cities and Days, etc., Second Section, Hadith 24, Dar al-Kutub al-Ilmiyyah Beirut, 56/2.

फतवा रज़विया - भाग 9

[बायां कॉलम टेक्स्ट] ज़रनूजी ने अपने उस्ताद इमाम बुरहान अल-दीन मरग़ीनानी, 'हिदाया' के लेखक से इसका वर्णन किया और कहा: "अबू हनीफा (अल्लाह उन पर प्रसन्न हो) ऐसा ही किया करते थे।" (१) 'तंज़ीह अल-शरिया' के लेखक ने कहा: "और ज्ञान के लोगों में से एक समूह ऐसा ही था।" (२) ये सभी प्रथागत समय (तौक़ीत-ए-आदी) के मामले हैं। खुदा न करे कि स्वामियों के स्वामी (उन पर उदार राजा की ओर से सर्वश्रेष्ठ आशीर्वाद हो) का इरादा यह हो कि साल के अंत के अलावा ज़ियारत, ज़ियारत नहीं है, या जायज़ नहीं है, या यह कि महान फल जो इस दिन उम्मत पर दया और शहीदों के मज़ार को मुबारक क़दमों की मिट्टी से सम्मानित करने के कारण उस शाह-ए-आलम पनाह (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) को प्राप्त होता है, वह किसी और दिन प्राप्त नहीं होगा। इसी तरह इब्न मसूद का उद्देश्य यह नहीं था कि गुरुवार के अलावा कोई उपदेश नहीं है, या अन्य दिनों में इसकी अनुमति नहीं है, या कि पवित्र शरीयत ने किसी अन्य दिन यह इच्छित फल निर्धारित किया है; खुदा न करे। बल्कि, उन्होंने इसे एक आदत बना लिया ताकि वह हर हफ्ते मुसलमानों को नसीहत करने में लगे रहें। भलाई चाहने वालों के लिए एक दिन का निर्धारण आसानी से इकट्ठा होने में मदद करता है। कुछ मामलों में, अलग-अलग प्राथमिकताएँ हैं, जैसे सोमवार को नबुवत (पैग़म्बरी) का मिलना और गुरुवार की सुबह में बरकत की महानता। बुधवार की शुरुआत में पूर्णता के बारे में, वे एक हदीस का उल्लेख करते हैं: "बुधवार को शुरू की गई कोई भी चीज़ पूरी हुए बिना नहीं रहती।" (३) कुछ अन्य मामलों में, यह प्राथमिकता बुद्धिमत्ता के कारण स्वैच्छिक है...

[दायां कॉलम टेक्स्ट] ...के लिए सोमवार का निर्धारण किया गया, जैसा कि अबु अल-शेख, इब्न हिब्बान और दैलामी ने हज़रत अनस इब्न मालिक (अल्लाह उनसे खुश हो) से एक अच्छी सनद के साथ रिवायत की है। (७) और हज़रत अब्दुल्ला इब्न मसूद (अल्लाह उनसे खुश हो) ने उपदेश और नसीहत के लिए गुरुवार का दिन तय किया, जैसा कि सहीह बुखारी में हज़रत अबू वईल से रिवायत है। (८) और विद्वानों ने सबक शुरू करने के लिए बुधवार का दिन रखा, जैसा कि इमाम बुरहान अल-इस्लाम ज़रनूजी की 'तालीम अल-मुताल्लिम' में है। उन्होंने अपने शिक्षक इमाम बुरहान अल-दीन मरग़ीनानी, 'हिदाया' के लेखक, से यह वर्णन किया और कहा कि इमाम अबू हनीफा (अल्लाह उनसे खुश हो) भी ऐसा ही किया करते थे। 'तंज़ीह अल-शरिया' के लेखक ने कहा कि इसी तरह विद्वानों के एक समूह का दस्तूर रहा है। ये सब 'तौक़ीत-ए-आदी' (प्रथागत समय) के विषय से हैं। खुदा न करे कि सैय्यद-ए-सरवराँ (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) का उद्देश्य यह हो कि साल के अंत के अलावा

किसी अन्य समय में ज़ियारत नहीं है, या जायज़ नहीं है, या उस दिन उम्मत पर दया करने और अपने मुबारक क़दमों की धूल से शहीदों के मज़ार को सम्मानित करने पर जो महान फल इस शाह-ए-आलम पनाह (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) को मिलेगा, वह किसी और दिन नहीं मिलेगा।

[फुटनोट्स] 1 तालीम अल-मुताल्लिम, सबक शुरू करने का अध्याय, आदि, अलीमी प्रेस दिल्ली, पृ. 33। 2 तंज़ीह अल-शरिया, शहरों और दिनों के उल्लेख का अध्याय, आदि, दूसरा खंड, हदीस 24, दार अल-कुतुब अल-इल्मिया बेरूत, 56/2। 3 तालीम अल-मुताल्लिम, सबक शुरू करने का अध्याय, आदि, अलीमी प्रेस दिल्ली, पृ. 33; तंज़ीह अल-शरिया, शहरों और दिनों के उल्लेख का अध्याय, आदि, दूसरा खंड, हदीस 24, दार अल-कुतुब अल-इल्मिया बेरूत, 56/2।

[بایاں کالم] الزرنوجی حکایت کردش از اُستاد خود امام برہان الدین مرغینانی صاحب ہدایہ وگفت ھکذا کان یفعل ابو حنیفہ رضی اللہ تعالیٰ عنہ ۱۔ صاحبِ تنزیہہ الشریعۃ فرمود وکذا کان جماعۃ من اھل العلم ۲۔ اینمہ ہا از باب توقیتِ عادی است حاشا کہ مراد سید الاسیاد علیہ افضل الصلوۃ من الملک الجواد آن باشد کہ زیارت جز بر منتہائے سال زیارت نیست یا روا نباشد یا اجر عظیم کہ این روز بر بندہ نوازی وامت پروری و تشریف مزاراتِ شہدائے کرام بتراب اقدامِ برکت نظام نصیب آن شاہِ عالم پناہ صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کنند وز دیگر نہ کنند ہمچناں مقصود ابن مسعود آں نہ بود کہ وعظ جز بروز پنجشنبہ وعظ نیست یا در غیر او جواز نے یاروز دیگر ایں اجر مقصود یا شرع مطہر ایں تعیین نمود، حاش اللہ، بلکہ ہمیں عادتِ التزام فرمودہ تا ہر ہفتہ بتذکیر مسلماناں پردازد تعیین یوم طالبانِ خیر را بآسانی جمع در بعضی از انہار مرجحی جداگانہ حاصل ست ہمچو وقوعِ بعثت و حصولِ علم نبوت در روزِ دوشنبہ و عظمِ برکت در بکورِ پنجشنبہ در جائے اتمام در بدایتِ چار شنبہ کہ حدیثے ذکر کنند ما من شیئ بدئ یوم الاربعاء الاتم ۳ودر بعض دیگر ہمیں ترجیح ارادی ست کہ مصلحت

[دایاں کالم] کے لئے دوشنبہ کی تعیین جیسا کہ ابوالشیخ ، ابن حبان اور دیلمی نے بسند صالح حضرت انس ابن مالک رضی اللہ تعالی عنہ سے روایت کی۔ (۷) اور حضرت عبداللہ بن مسعود رضی اللہ تعالی عنہ نے وعظ وتذکیر کے لئے پنجشنبہ کا دن مقرر کیا، جیسا کہ صحیح بخاری میں حضرت ابووائل سے مروی ہے۔ (۸) اور علماء نے سبق شروع کرنے کے لیے بدھ کا دن رکھا، جیسا کہ امام برہان الاسلام زرنوجی کی تعلیم المتعلم میں ہے۔ انھوں نے اپنے استاد امام برہان الدین مرغینانی صاحبِ ہدایہ سے اس کی حکایت فرمائی اور کہا کہ اسی طرح امام ابوحنیفہ رضی اللہ

تعالی عنہ کہا کرتے تھے، صاحبِ تنزیہہ الشریعہ نے فرمایا اور اسی طرح ایک جماعت کے علماء کا دستور رہا ہے۔ یہ سب توقیتِ عادی کے باب سے ہیں، حاشا کہ سیدِ سروراں علیہ الصلوۃ والسلام کی مراد یہ ہے کہ انتہائے سال کے علاوہ کسی دوسرے وقت، زیارت نہیں، یا جائز نہیں، یا اس دن بندہ نوازی امت پروری اور قدم مبارک کی خاک پاک سے مزاراتِ شہدائے کرام کو شرف بخشنے پر جو اجر عظیم اس شاہِ عالم پناہ صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کو عطا ہوگا وہ دوسرے دن نہ ملے گا۔

[حواشی] 1 تعلیم المتعلم فصل فی بدایۃ السبق الخ مطبع علیمی دہلی ص ۳۳ 2 تنزیہ الشریعۃ باب ذکر البلدان والایام الخ فصل ثانی حدیث ۲۴ دار الکتب العلمیہ بیروت ۵۶/۲ 3 تعلیم المتعلم فصل فی بدایۃ السبق الخ مطبع علیمی دہلی ص ۳۳، تنزیہی الشریعۃ باب ذکر البلدان والایام الخ فصل ثانی حدیث ۲۴ دار الکتب العلمیہ بیروت ۵۶/۲

Fatawa Razawiya, Volume 9

Similarly, Hazrat Ibn Mas'ood's (may Allah be pleased with him) intention was not that there should be no sermon on any day other than Thursday, or that it is not permissible on other days, or that the reward would be lost on another day, as if the sacred law (Sharia) had fixed this specific day. Not at all. Rather, this was just a habit established so that every week the work of reminding Muslims could be performed, and because of a fixed day, seekers of good could easily gather. Analogize other matters in the same way. Yes, in some of them, there is also a separate reason for preference. For instance, the occurrence of the commission (Ba'th) and the attainment of prophetic knowledge on Monday. And the presence of great blessing in setting out early on Thursday morning. And the hope of completion in starting on Wednesday. A Hadith is mentioned here: "Whatever task is started on Wednesday, let it be completed." And in others, this same intentional preference is present where at least the wisdom of reminding and ease is operative. From this same category are the designations of the third day (Soyem), fortieth day (Chehlum), six months, and the end of the year (Barsi) that people have initiated. Some of these have a specific wisdom, while others have become prevalent and customary for the sake of ease and reminding. And there is no objection in terminology. (T) Here, the work of Maulana Shah Abdul Aziz Dehlvi (who was the paternal uncle, scholarly father, and grandfather in spiritual methodology of the Imam of the sect) is worth listening to. In Tafsir Azizi, under the word of the Almighty "And by the moon when it is full (wa al-qamari idha it-tasaq)," he says: "It is reported that the deceased in this state is like a drowning person waiting for a rescuer, and at this time, charities, prayers, and Fatiha are very useful to him. This is why people strive fully in this kind of assistance for up to a year after death, and especially up to forty days." (T)

1 Tafsir Azizi is mentioned under the verse 'wa al-qamari idha it-tasaq', Lal Kunwa Delhi p. 206. Page 588 of 948

फतावा रज़विया, खंड 9

इसी तरह हज़रत इब्न मसूद (रज़ियल्लाहु अन्हु) का उद्देश्य यह नहीं था कि बृहस्पतिवार के अलावा किसी और दिन उपदेश नहीं होगा, या दूसरे दिन इसकी अनुमति नहीं है, या दूसरे दिन यह प्रतिफल (अज्र) खो जाएगा, मानो शरीयत ने यह निर्धारण किया था। बिलकुल नहीं। बल्कि यह एक आदत बना ली गई थी ताकि हर सप्ताह मुसलमानों को याद दिलाने का काम किया जा सके और दिन तय होने के कारण भलाई के चाहने वाले आसानी से जमा हो सकें। इसी तरह अन्य मामलों का भी अनुमान लगाएँ। हाँ, इनमें से कुछ में कोई अलग प्राथमिकता का कारण भी मौजूद है। जैसे सोमवार के दिन मिशन (बेसत) की शुरुआत और नबूवत के ज्ञान की प्राप्ति। और बृहस्पतिवार को सुबह-सवेरे निकलने में महान बरकत का होना। और बुधवार को शुरू करने में काम पूरा होने की उम्मीद। यहाँ एक हदीस का उल्लेख किया गया है कि "जो भी काम बुधवार को शुरू किया जाए, वह पूरा हो।" और कुछ अन्यों में यही स्वैच्छिक प्राथमिकता है जिसमें कम से कम याद दिलाने और आसानी की हिकमत ज़रूर काम कर रही है। इसी तरह तीसरे दिन (सोयम), चालीसवें दिन (चेहलम), छह महीने और साल के अंत (बरसी) के निर्धारण हैं जो लोगों ने शुरू कर रखे हैं। इनमें से कुछ में कोई विशेष हिकमत भी है और कुछ अन्य आसानी और याद दिलाने के विचार से प्रचलित और सामान्य हो गए हैं। और शब्दावली (اصطلاح) में कोई रुकावट नहीं है। (त) यहाँ मौलाना शाह अब्दुल अज़ीज़ देहलवी (जो संप्रदाय के इमाम के चचेरे भाई, शैक्षणिक पिता और आध्यात्मिक पद्धति में दादा थे) की बात सुनने लायक है। तफ़सीर अज़ीज़ी में अल्लाह तआला के फरमान "वल्-क़मरि इज़ा इत्तसक़" के तहत फरमाते हैं: "वर्णित है कि मृत व्यक्ति इस स्थिति में डूबने वाले की तरह किसी रक्षक का इंतज़ार कर रहा होता है और इस समय दान, दुआएं और फातिहा उसके बहुत काम आते हैं। यही कारण है कि लोग मृत्यु के बाद एक साल तक, विशेष रूप से चालीस दिनों तक, इस प्रकार की सहायता में भरपूर कोशिश करते हैं।" (त)

1 तफ़सीर अज़ीज़ी आयत 'वल्-क़मरि इज़ा इत्तसक़' के तहत वर्णित है, लाल कुआँ दिल्ली पृ. 206।
पृष्ठ 588/948

اسی طرح حضرت ابن مسعودؓ کا مقصود یہ نہ تھا کہ پنجشنبہ کے علاوہ کسی اور دن وعظ نہیں، یا دوسرے دن اس کا جواز نہیں، یا دوسرے دن یہ اجر فوت ہو جائے گا، شرع مطہر نے یہ تعیین فرمائی تھی۔ ہر گز نہیں۔ بلکہ یہی ایک عادت مقرر کر لی تھی تاکہ ہر ہفتہ میں مسلمانوں کی تذکیر کا کام انجام دیتے ہیں، اور دن متعین ہونے کی وجہ سے طالبان خیر آسانی سے جمع ہو جائیں۔ اسی طرح باقی امور کو قیاس کرو۔ ہاں ان میں سے بعض میں کوئی الگ مرجح بھی موجود ہے۔ جیسے دوشنبہ کے دن بعثت کا وقود اور علم نبوت کا حصول۔ اور پنجشنبہ کو صبح سویرے نکلنے میں عظیم برکت کا وجود۔ اور چہار شنبہ (بدھ) کو شروع کرنے میں تکمیل کی امید۔ کہ یہاں ایک حدیث ذکر کرتے ہیں کہ "جو کام کی بھی چہار شنبہ کو شروع کیا جائے وہ پورا ہو۔ " اور بعض دیگر میں یہی ترجیح ارادی ہے جس میں کم از کم یاد دہانی اور آسانی کی مصلحت ضرور کارفرما ہے۔ اسی باب سے سوم ، چہلم، چھ ماہ ، اور انتہائے سال کے تعینات سے جو لوگوں نے جاری کر رکھے ہیں۔ ان میں سے بعض میں کوئی خاص مصلحت بھی ہے اور بعض دیگر آسانی و یاد دہانی کے خیال سے رائج و معمول ہیں۔ اور اصطلاح میں کوئی رکاوٹ نہیں۔ (ت) یہاں مولانا شاہ عبدالعزیز صاحب دہلوی (جو امام الطائفہ کے نسبی چچا، علمی باپ اور طریقت میں دادا تھے) کا کام سننے کے قابل ہے۔ تفسیر عزیزی میں قول باری عزوجل "والقمر اذا اتسق" کے تحت فرماتے ہیں: "وارد ہے کہ مُردہ اس حالت میں کسی ڈوبنے والے کی طرح فریاد رس کا منتظر ہوتا ہے اور اس وقت صدقے، دعائیں اور فاتحہ اسے بہت کام آتی ہے۔ یہی وجہ ہے کہ لوگ، موت سے ایک سال تک، خصوصاً چالیس دن تک اس طرح کی امداد میں بھرپور کوشش کرتے ہیں۔ " اھ (ت)

1 تفسیر عزیزی آیہ والقمر اذا اتسق کے تحت مذکور ہے لال کنواں دہلی ص ۲۰۶ Page 588 of 948

Fatawa Razviya Volume 9

[Right Column] More amusing is that the aforementioned Shah Sahib used to organize the Urs (death anniversary commemoration) of his mentors and forefathers with great arrangements. In their presence, with their permission, and through their establishment, there used to be a gathering of people at the graves of dervishes, along with Fateha khwani (recitation of prayers) and distribution of food and sweets, as is common among all keepers of shrines (Ahl-e-Sajjadah). Mufti Abdul Hakim Panjabi, based on the same baseless doubts that the rejectors present, spoke ill and criticized Shah Sahib's actions and wrote that those whose words do not match their actions, considering the Urs of their elders as obligatory upon themselves, gather year after year at the tomb, distribute food and sweets there, and make those tombs worshipped idols." (Summarized). (T)

Shah Sahib, in his "Risala Zabiha" published in the collection "Zubdat-un-Nasaih", responds to this taunt by saying: "The statement regarding the Urs of one's elders etc. - this taunt is based on ignorance of the conditions of the person being criticized. This is because no one considers any act mandatory other than the duties prescribed in Sharia. Yes, visiting the graves of the righteous, helping them with Quranic recitation, prayers for well-being, and distribution of sweets and food is considered commendable (Mustahsan) and a good deed by consensus of scholars... and"

[Left Column - Persian text same as the right column explanation]

1. Mufti Abdul Hakim Panjabi Page 589 of 948

फतावा रज़विया जिल्द 9

[दायाँ कॉलम] इससे भी अधिक रोचक बात यह है कि उक्त शाह साहब अपने पीरों (मार्गदर्शकों) और पूर्वजों का उर्स बड़े उत्साह के साथ मनाते थे। उनकी उपस्थिति में, उनकी अनुमति से और उनके द्वारा स्थापित किए जाने के कारण, दरवेशों की कब्रों पर लोगों का जमावड़ा होता था, फातिहा ख्वानी (प्रार्थना पाठ) और भोजन तथा मिठाई का वितरण होता था, जैसा कि सभी सज्जादा नशीनों (दरगाह के संरक्षकों) के बीच प्रचलित है। मुफ्ती अब्दुल हकीम पंजाबी ने उन्हीं निराधार संदेहों के आधार पर जो इनकार करने वाले पेश करते हैं, शाह साहब के इन कार्यों के कारण शाह साहब पर आलोचना और निंदा की भाषा का प्रयोग किया और लिखा कि वे लोग जिनके शब्द उनके कार्यों के अनुरूप नहीं हैं, अपने बुजुर्गों के उर्स को अपने ऊपर फर्ज की तरह अनिवार्य मानकर साल-दर-साल मकबरे पर इकट्ठा होते हैं और वहाँ भोजन तथा मिठाई बाँटकर उन मकबरों को पूजे जाने वाले बुत (प्रतिमा) बना देते हैं।" (संक्षेपित)। (त)

शाह साहब "रिसाला ज़बीहा" में, जो "ज़ुबदत-उन-नसायह" संग्रह में प्रकाशित है, इस कटाक्ष के उत्तर में फरमाते हैं: "कथन 'अपने बुजुर्गों का उर्स आदि' - यह कटाक्ष उस व्यक्ति की स्थिति से अनभिज्ञता पर आधारित है जिसकी आलोचना की जा रही है। इसका कारण यह है कि शरीयत में निर्धारित अनिवार्य कर्तव्यों (फराइज) के अलावा कोई भी किसी अन्य कार्य को अनिवार्य नहीं मानता। हाँ, नेक लोगों की कब्रों की ज़ियारत (दर्शन), कुरान पाठ, भलाई की दुआ और मिठाई तथा भोजन के वितरण के माध्यम से उनकी सहायता करना विद्वानों की सर्वसम्मति (इज्मा) से सराहनीय (मुस्तहसन) और नेक कार्य है... और"

[बायाँ कॉलम - दाहिने कॉलम के विवरण के अनुसार फारसी मूल पाठ]

1 मुफ्ती अब्दुल हकीम पंजाबी। पेज 589 of 948

فتاوی رضویہ جلد نہم

[دایاں کالم] زیادہ پر لطف بات یہ ہے کہ شاہ صاحب موصوف اپنے پیروں اور باپ دادا کا عرس پورے اہتمام سے کرتے تھے اور ان کے سامنے ان کی اجازت سے ، اور ان کے برقرار رکھنے سے درویشوں کی قبروں پر آدمیوں کا اجتماع، فاتحہ خوانی اور طعام وشیرینی کی تقسیم ہوتی تھی، جیسا کہ سبھی اہل سجادہ میں جاری و ساری ہے۔ مفتی عبدالحکیم پنجابی نے ان ہی بے وزن شبہات کے تحت جو حضرات منکرین پیش کرتے ہیں، شاہ صاحب کے ان افعال کے باعث شاہ صاحب زبان لعن طعن دراز کی اور لکھا کہ وہ لوگ جن کے اقوال افعال کے مطابق نہیں اپنے بزرگوں کا عرس اپنے اوپر فرض کی طرح لازم جان کر سال بہ سال مقبرے پر اجتماع کر کے وہاں طعام و شیرینی تقسیم کر کے ان مقبروں کو بت معبود بناتے ہیں۔" اھ ملخصاً (ت)

شاہ صاحب "رسالہ ذبیحہ" میں جو مجموعہ زبدۃ النصائح میں چھپا ہے اس طعن کے جواب میں فرماتے ہیں "قولہ عرس بزرگان خود الخ۔ یہ طعن مطعون علیہ کے حالات سے بے خبری پر مبنی ہے اس لیے شریعت میں مقررہ فرائض کے سوا کسی کام کو کوئی فرض نہیں جانتا۔ ہاں قبور صالحین کی زیارت قرآن ، دعائے خیر اور تقسیم شیرینی وطعام سے ان کی امداد باجماع علماء مستحسن اور اچھا عمل ہے___ اور

[بایاں کالم] ولطیف تر آنکہ شاہ صاحب موصوف عرس پیران و پدران خود شاں باہتمام تمام بجای آوردند و پیش ایشاں برقبور درویشاں اجتماع مردم و فاتحہ خوانی و تقسیم طعام و شیرینی تجویز و تقریر ایشاں می شد چنانکہ در عامہ اھل سجادہ جاری و ساری است۔ مفتی عبدالحکیم پنجابی بریں افعال شاہبہ یہاں شبہات واہیہ کہ حضرات منکرین بکار می برند بر شاہ صاحب زبان مطاعن و مثالب کشود ورقم نمود "کسانیکہ اقوال اینہا مطابق افعال شان نیستندی، عرس بزرگاں خود بر خود

مثل فرض دانسته سال بسال بر مقبره اجتماع کرده طعام و شیرینی در انجا تقسیم نموده مقابر را و ثنا یعبد می کنند اهـ ملخصا شاه صاحب در رساله ذبیحه مطبوعه مجموعه زبدة النصائح بپاسخ این طعن فرمایند قوله "عرس بزرگان خود آه این طعن مبنی ست بر جهل باحوال مطعون علیه زیرا کہ غیر از فرائض شرعیه مقرره را هیچکس فرض نمیدانند آرے زیارت و تبرک بقبور صالحین و امداد ایشاں باہدائے ثواب و تلاوت قرآن و دعائے خیر و تقسیم طعام و شیرینی امر مستحسن و خوب است باجماع علماء و تعین روز عرس برائے آن ست کہ آن روز متذکر انتقال ایشامی باشد، از

Fatawa Razawiyya - Volume 9

The determination of the day of Urs (anniversary) is because that day serves as a reminder of their passing from the realm of action (Dar-al-'Amal) to the realm of reward (Dar-al-Thawab). Otherwise, on whichever day this act is performed, it is a source of success and salvation. It is incumbent upon successors to continue performing such acts of goodness and kindness for their predecessors. Furthermore, regarding the determination of the year and its adherence, evidence is cited from Ahadith: Ibn al-Mundhir and Ibn Mardawayh narrated from Anas bin Malik (may Allah be pleased with him) that the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) used to visit Uhud every year. When he reached the mountain pass, he would greet the martyrs at their graves and say: "Peace be upon you for your patience; how excellent is the final home (of the hereafter)!" And Imam Ibn Jarir narrated in his exegesis from Muhammad bin Ibrahim that the Master of the Universe (peace and blessings of Allah be upon him) used to visit the soil of the martyrs at the beginning of every year and say: "Peace be upon you..." until the end. After the Prophet, Hazrat Siddiq, Farooq, and Dhu al-Nurayn (may Allah be pleased with them) also used to do the same.

1. Zubdat al-Nasa'ih
2. Al-Durr al-Manthur, with reference to Ibn al-Mundhir and Ibn Mardawayh under the verse 'Salamun 'Alaykum...', Manshurat Maktabah Ayatullah al-Uzma, Qom, Iran, 4/58.
3. Jami' al-Bayan (Tafsir Ibn Jarir) under the verse 'Salamun 'Alaykum...', Matba'ah Maymaniyyah, Egypt, 13/84.

फ़तावा रज़विया - खंड 9

उर्स (पुण्यतिथि) के दिन का निर्धारण इसलिए है क्योंकि वह दिन 'दार-अल-अमल' (कर्म क्षेत्र) से 'दार-अथ-थवाब' (प्रतिफल क्षेत्र) की ओर उनके प्रस्थान की याद दिलाता है। अन्यथा, जिस दिन भी यह कार्य किया जाए, वह सफलता और मोक्ष का कारण है। और उत्तराधिकारियों पर यह अनिवार्य है कि वे अपने पूर्वजों के लिए इसी प्रकार के भलाई और पुण्य के कार्य करते रहें। इसके अतिरिक्त, वर्ष के निर्धारण और उसकी पाबंदी के संबंध में हदीसों से प्रमाण उद्धृत किए गए हैं कि इब्न अल-मुन्ज़िर और इब्न मरदुवैह ने हज़रत अनस बिन मालिक (रज़ियल्लाहु अन्हु) से रिवायत की है कि अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) हर साल उहुद तशरीफ़ लाते थे। जब आप पहाड़ के दर्रे पर पहुँचते, तो शहीदों की क़ब्रों पर सलाम करते और फ़रमाते: "तुम्हें तुम्हारे सब्र पर सलाम हो, तो आख़िरत का घर कितना ही उत्तम घर है!" और इमाम इब्न जरीर ने अपनी तफ़्सीर में मुहम्मद बिन इब्राहीम से रिवायत की है कि सरवर-ए-आलम (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) हर साल की शुरुआत में शहीदों की मिट्टी पर तशरीफ़ लाते और फ़रमाते "तुम पर सलाम हो..." अंत तक। हुज़ूर के बाद हज़रत सिद्दीक़, फ़ारूक़ और ज़ुल-नूरैन (रज़ियल्लाहु अन्हुम) भी ऐसा ही करते थे।

1. ज़ुबदतुल नसाह
2. दुर-ए-मन्सूर, इब्न अल-मुन्ज़िर और इब्न मरदुवैह के हवाले से आयत 'सलामुल अलैकुम...' के अंतर्गत, मन्शूरात मकतबा अयातुल्ला अल-उज़मा, क़ुम, ईरान, 4/58।
3. जामिउल बयान (तफ़्सीर इब्न जरीर), आयत 'सलामुल अलैकुम...' के अंतर्गत, मतबआ मैमनिय्या, मिस्र, 13/84।

पृष्ठ 590/948

روز عرس کا تعین اس لیے ہے کہ وہ دن دارالعمل سے دارالثواب کی جانب ان کے انتقال فرمانے کی یاد دہانی کرنے والا ہے ورنہ جس دن بھی یہ کام ہو فلاح و نجات کا سبب ہے۔ اور خلف پر لازم ہے کہ اپنے سلف کے لیے اسی طرح کی بھلائی اور نیکی کرتا رہے۔ پھر سال کے تعین اور اس کے التزام کے سلسلے میں احادیث سے سند ذکر فرمائی کہ ابن المنذر اور ابن مردویہ نے حضرت انس بن مالک رضی اللہ تعالٰی عنہ سے روایت کی ہے کہ رسول اللہ صلی اللہ علیہ وسلم ہر سال احد تشریف لاتے ، جب درہ کوہ پر پہنچتے تو شہیدوں کی قبر پر سلام کرتے اور فرماتے: تمھیں سلام ہو تمھارے صبر پر کہ دارِ آخرت کیا ہی عمدہ گھر ہے، اور امام ابن جریر نے اپنی تفسیر میں حضرت محمد بن ابراہیم سے روایت کی ہے کہ سرورِ عالم صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم ہر سال کے شروع میں شہداء کی خاک پر قدم رنجہ فرماتے اور کہتے تم پر سلام ہو آخرت تک حضور کے بعد حضرت صدیق و فاروق اور ذی النورین بھی ایسا ہی کرتے ، رضی اللہ تعالٰی عنہم۔

۱۔ زبدۃ النصائح ۲۔ در منثور بحوالہ ابن منذر و ابن مردویہ زیر آیۃ سلام علیکم الخ منشورات مکتبہ آیت اللہ العظمی قم ایران ۵۸/۴ ۳۔ جامع البیان (تفسیر ابن جریر) زیر آیۃ سلام علیکم الخ مطبعہ میمنہ مصر ۸۴/۱۳

Fatawa Razawiyya (Top Right) Volume Nine (Top Left)

(Right Column) ...And it is in Tafsir al-Kabir: The Holy Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) used to visit the shrines of the martyrs every year and recite the aforementioned verse. And similarly, the four Caliphs also used to do so. May Allah be pleased with all of them. (T) In short, the truth is that all the aforementioned specifications are customary assignments that are not at all worthy of any taunt or blame. To call such a matter forbidden (haram) and a loathsome innovation (bid'at-e-shanee'a) is open ignorance and a heinous mistake. Shah Rafi-ud-Din Dehlavi, the brother of Maulana Shah Abdul Aziz, has written a very excellent and just point in his Fatawa. His text is quoted as follows: "Question: To specify foods for the Fateha of elders, for example, Khichra for the Fateha of Imam Husain (may Allah be pleased with him), Toshah for the Fateha of Shah Abdul Haq (may Allah have mercy on him), etc., and similarly specifying the eaters, what is the ruling on all these? Answer: Fateha and food are undoubtedly commendable, and the specification which is the act of the one who specifies is at his discretion, which cannot be a cause for prohibition."

(Left Column) ...may Allah be pleased with them. And it is in Tafsir al-Kabir from the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) that he used to come to the graves of the martyrs at the beginning of every year and say: 'Peace be upon you for what you patiently endured. And how excellent is the final home.' And the four Caliphs used to do the same [1]. That is, the Holy Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) used to go to the shrine of the martyrs every year and read the aforementioned verse and similarly the four Caliphs used to do so, may Allah be pleased with them all [2]. In short, the truth is that the mentioned specifications are all customary assignments that should never be a place for taunting and blaming. Saying this much is prohibited and a loathsome innovation is a clear sentence and a heinous error. Shah Rafi-ud-Din Dehlavi, the late brother of Maulana Shah Abdul Aziz, has spoken very well and justly in his Fatawa, his statement is as follows: Question: What is the ruling on specifying foods in the Fateha of elders, like Khichra in the Fateha of Imam Husain (may Allah be pleased with him) and Toshah in the Fateha of Abdul Haq (may Allah have mercy on him) and so on, and similarly specifying the eaters? Answer: Fateha and food are undoubtedly among the commendable things, and specification, which is the act of the one who specifies, is at his discretion, which cannot cause prohibition. These specifications are of the type of custom and habit

that initially appeared due to hidden benefits and suitability and gradually became widespread [3] etc.

(Footnotes) 1. Al-Tafsir al-Kabir by al-Razi under the verse 'Salamun Alaikum', Al-Bahiyya Egyptian Press, Egypt, 7/451. 2. Zubdat-un-Nasaih. 3. Fatawa Shah Rafi-ud-Din.

फ़तावा रज़विया (ऊपर दाएँ) जिल्द नवीं (ऊपर बाएँ)

(दायां कॉलम) ...और तफ़सीर कबीर में है: हुज़ूर अकदस (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) हर साल शहीदों के मज़ार पर तशरीफ़ ले जाते और मज़कूर आयत पढ़ते। और इसी तरह चारो खुलफ़ा भी करते थे। अल्लाह उन सब से राज़ी हो। (त) अल्हासिल, हक यह है कि मज़कूर तख़्सीसात (विशेषताएं) सभी तईय्यनात-ए-आदिया (सामान्य प्रथाएं) हैं जो हरगिज़ किसी तंज या मलामत के काबिल नहीं हैं। इतनी बात को हराम और बिदअत-ए-शन्नीअह (बुरी नवीनता) कहना खुल्लम-खुल्ला जहालत और कबीह (घिनौनी) खता है। मौलाना शाह अब्दुल अज़ीज़ साहब के भाई शाह रफ़ी-उद-दीन देहलवी ने अपने फ़तावा में कितनी ही उम्दा इंसाफ़ की बात लिखी है। उनकी इबारत यूँ नक़ल की गई है: "सवाल: बुज़ुर्गों की फ़ातिहा में खानों को ख़ास करना, मसलन इमाम हुसैन (रज़ियल्लाहु अन्हु) की फ़ातिहा में खिचड़ा, शाह अब्दुल हक (रहमतुल्लाह अलैहि) की फ़ातिहा में तोशा वग़ैरह ज़ालिक, यूँ ही खाने वालों को ख़ास करना, इन सब का क्या हुक्म है? जवाब: फ़ातिहा और ताम (खाना) बिला शुबहा मुस्तहसन (سराहनीय) हैं, और तख़्सीस जो मुख़स्सिस (विशेष करने वाले) का फेल (काम) है, उसके अख्तियार में है, जो मनाही का कारण नहीं बन सकता।"

(बायां कॉलम) ...अल्लाह उन सब से राज़ी हो। और तफ़सीर कबीर में है रसूल अल्लाह (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) से कि आप हर साल کے شروع میں शहीदों की क़ब्रों पर आते और फ़रमाते 'सलाम हो तुम पर तुम्हारे सब्र के बदले, तो क्या ही खूब है आख़िरत का घर।' और चारो खुलफ़ा भी इसी तरह करते थे [1]। यानी हुज़ूर अकदस (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) हर साल शहीदों के मज़ार पर तशरीफ़ ले जाते और मज़कूर आयत पढ़ते और इसी तरह चारो खुलफ़ा भी करते थे, अल्लाह उन सब से राज़ी हो [2]। कुल मिलाकर हक यह है कि ज़िक्र की गई तख़्सीसात सब तईय्यनात-ए-आदिया हैं कि हरगिज़ तंज व मलामत का स्थान नहीं हैं। इतना हराम और बिदअत-ए-शन्नीअह कहना एक स्पष्ट वाक्य और घिनौनी ग़लती है। शाह रफ़ी-उद-दीन देहलवी मरहूम, मौलाना शाह अब्दुल अज़ीज़ साहब के भाई ने अपने फ़तावा में क्या ही अच्छी इंसाफ़ की बात कही है, उनकी इबारत इस तरह है: सवाल: बुज़ुर्गों की फ़ातिहा में चीज़ों को ख़ास करना जैसे इमाम हुसैन (रज़ियल्लाहु अन्हु) की फ़ातिहा में खिचड़ा और अब्दुल हक (रहमतुल्लाह अलैहि) की फ़ातिहा में तोशा वगैरह और इसी तरह खाने वालों को ख़ास करना क्या हुक्म रखता है? जवाब: फ़ातिहा और खाना बिला शुबहा मुस्तहसनात (अच्छी चीज़ों) में से है और तख़्सीस जो मुख़स्सिस का फेल है उसके अख्तियार में है जो मनाही का

सबब नहीं बन सकता। ये तख़्सीसात उर्फ़ व आदत की क़िस्म से हैं जो छिपी हुई भलाईयों और मुनासबत की वजह से शुरू में आईं और धीरे-धीरे फैल गईं [3] आदि।

(पाद-टिप्पणियाँ) 1. तफ़सीर अल-कबीर लिल-राज़ी, आयत 'सलाम अलैकुम' के तहत, मताब अल-बहिया अल-मिसरिया, मिस्र, 7/451 2. जुब्दत-उन-नसायह 3. फ़तावा शाह रफ़ी-उद-دں

فتاویٰ رضویہ (اوپر دائیں) جلد نہم (اوپر بائیں)

(دایاں کالم) اور تفسیر کبیر میں ہے : حضور اقدس صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم ہر سال شہداء کے مزار پر تشریف لے جاتے اور آیۃ مذکورہ پڑھتے ۔ اور اسی طرح حضرات خلفائے اربعہ بھی کرتے۔ رضوان اللہ تعالیٰ علیہم اجمعین۔ (ت) الحاصل حق یہ ہے کہ مذکورہ تخصیصات سبھی تعینات عادیہ سے ہیں جو ہرگز کسی طعن اور ملامت کے قابل نہیں ۔ اتنی بات کو حرام اور بدعت شنیعہ کہنا کھلی ہوئی جہالت اور قبیح خطا ہے۔ مولانا شاہ عبدالعزیز صاحب کے بھائی شاہ رفیع الدین دہلوی نے اپنے فتاویٰ میں کیا ہی عمدہ انصاف کی بات لکھی ہے۔ ان کی عبارت یوں نقل کی گئی ہے : "سوال: بزرگوں کی فاتحہ میں کھانوں کو خاص کرنا ، مثلاً امام حسین رضی اللہ تعالیٰ عنہ کی فاتحہ میں کھچڑا، شاہ عبدالحق رحمۃ اللہ علیہ کی فاتحہ میں توشہ وغیرہ ذلک، یوں ہی کھانے والوں کو خاص کرنا ، ان سب کا کیا حکم ہے ؟ جواب: فاتحہ اور طعام بلا شبہ مستحسن ہیں، اور تخصیص جو مخصص (خاص کرنے والے) کا فعل ہے۔"

(بایاں کالم) تعالیٰ عنہم۔ و در تفسیر کبیر ست عن رسول اللہ صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم انہ کان یأتی قبور الشہداء راس کل حول فیقول السلام علیکم بما صبرتم فنعم عقبی الدار ۵ والخلفاء الاربعۃ ہکذا کانوا یفعلون 1 یعنی حضور اقدس صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم ہر سال بمزار شہداء می شد و آیہ مذکورہ می خواند و ہمچنان حضرات خلفاء اربعہ می کردند رضوان اللہ تعالیٰ علیہم اجمعین 2- بالجملہ حق آنست کہ تخصیصات مذکورہ ہمہ تعینات عادیہ است کہ زنہار جائے طعن ملامت نیست۔ این قدر احرام و بدعت شنیعہ گفتن جملے ست صریح و خطا ئے قبیح ۔ شاہ رفیع الدین مرحوم دہلوی برادر مولانا شاہ عبدالعزیز صاحب در فتاویٰ خودش چہ خوش سخن انصاف گفتہ عبارتش چناں آوردہ اند۔ سوال: تخصیص ماکولات در فاتحہ بزرگان مثل کھچڑا در فاتحہ امام حسین رضی اللہ

تعالیٰ عنہ و توشہ در فاتحہ عبدالحق رحمۃ اللہ علیہ و غیرہ ذلک و ہمچنان تخصیص خورندگان چہ حکم دارد؟ جواب: فاتحہ و طعام بلاشبہ از مستحسنات ست و تخصیص کہ فعل مخصص است باختیار اوست کہ باعث منع نمی تواند شد این تخصیصات از قسم عرف و عادت اند کہ بمصالح و مناسبت خفیہ ابتداً بطور آمدہ و رفتہ رفتہ شیوع یافتہ 3 الخ

(حواشی) 1 التفسیر الکبیر للرازی زیر آیۃ سلام علیکم مطبعۃ البھیۃ المصریۃ مصر ۷/ ۴۵۱ 2 زبدۃ النصائح 3 فتاویٰ شاہ رفیع الدین

Fatawa Razawiyya Volume Nine

[Right Column - Urdu Translation] ...it is in his choice. It cannot be a reason for prohibition; these examples of making it specific are all types of custom and habit that initially emerged due to specific benefits and subtle suitabilities and then gradually became common. "Etc." **Then I say:** Rather, even if there is no inherent benefit here (it still cannot be forbidden) because the absence of benefit does not mean that a mischief is present which would necessitate denial, otherwise why would it be called permissible? Imam Ahmad narrates in the Musnad with a good chain from a female companion (Allah be pleased with her) that the Resplendent Prophet (may Allah's peace and blessings be upon him) said: Fasting on Saturday is neither for you nor against you. Scholars have stated in its explanation: there is no increase in reward for you in it, nor is there any reproach or blame upon you. It is clear that specifying something without a reason, if not beneficial, will not be harmful either, and this is our purpose. Yes, an ordinary person who considers this customary specification as a Shari'ah timing and thinks that the transfer of reward (Isal-e-Thawab) will not happen on other days, or is not permissible, or the reward in these days is more complete and abundant than other days, then without doubt that person is mistaken and ignorant, and in this thought, he is an error-maker and a follower of falsehood. However, this much thought does not cause a disturbance in the essence of faith, nor does it necessitate any definitive...

[Left Column - Persian Original] **Then I say:** Rather, even if no benefit is seen here, as long as there is no existence of mischief that would cause denial of this action, otherwise where would permissibility go? Imam Ahmad in the Musnad with a good chain from a female companion (Allah be pleased with her) is the narrator that the Resplendent Prophet (may Allah's peace and blessings be upon him) said: Fasting on Saturday is not for you nor against you (1). Saturday fasts are neither for you nor against you. Scholars in the commentary say: "la laka" means no additional reward in it, and "la 'alayka" means no blame nor reproach in it (2). It became clear that specification without a specifier, if not beneficial, is not harmful either, and that is the objective. Yes, every commoner who knows this customary specification as Shari'ah timing and it is thought that Isal-e-Thawab does not take shape in other than these days, or these days are more complete and abundant than other days, is undoubtedly wrong and ignorant, and in this is a wrongdoer and an invalidator, but this much thought, God forbid, does not bring disturbance in the essence of faith nor causes a definitive, final threat. Just as the leader of the group (Imam al-Ta'ifa)

believes in Taqwiyat al-Iman, and this gross ignorance of his is many degrees worse than the ignorance of that commoner...

[Footnotes] 1. Musnad Ahmad bin Hanbal, Hadith of a woman (Allah be pleased with her), Dar al-Fikr Beirut, 6/368. 2. Fayd al-Qadir Sharh al-Jami' al-Saghir, Hadith 5120, Dar al-Ma'rifat Beirut, 4/330.

फ़तावा रज़विया जिल्द नहुम

[दायाँ कॉलम - उर्दू अनुवाद] ...वह उसके अधिकार में है। मनाही का कारण नहीं हो सकता, यह विशेष कर लेने के उदाहरण, सब रस्म और आदत की श्रेणी से हैं जो प्रारंभ में विशेष लाभों और सूक्ष्म अनुकूलताओं के कारण उत्पन्न हुईं फिर धीरे-धीरे सामान्य हो गईं। "इत्यादि" **फिर मैं कहता हूँ:** बल्कि अगर यहाँ स्वयं कोई लाभ न हो (तो भी हराम नहीं हो सकता) क्योंकि लाभ न होने का अर्थ यह नहीं है कि कोई बुराई मौजूद है जो इनकार का कारण बन जाए, अन्यथा मुबाह (अनुमेय) क्यों कहा जाएगा? इमाम अहमद ने मसनद में हदीस की एक अच्छी कड़ी (सनद-ए-हसन) के साथ एक महिला सहाबी (अल्लाह उनसे प्रसन्न हो) से रिवायत की है कि हुज़ूर पुर नूर (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने फरमाया कि शनिवार के रोज़े न तुम्हारे लिए हैं न तुम्हारे ऊपर। विद्वानों ने इसकी व्याख्या में कहा है: न इसमें तुम्हारे लिए कोई पुण्य (सवाब) की अधिकता है और न ही तुम पर कोई फटकार या निंदा है। स्पष्ट हुआ कि बिना किसी कारण के किसी चीज़ को विशेष बनाना यदि लाभदायक न हो तो हानिकारक भी नहीं होगा, और यही हमारा उद्देश्य है। हाँ, जो साधारण व्यक्ति इस प्रथागत निर्धारण को शरीयत का समय माने और यह सोचे कि इनके अलावा अन्य दिनों में सवाब पहुँचाना (ईसाल-ए-सवाब) होगा ही नहीं, या जायज़ नहीं है, या इन दिनों में सवाब अन्य दिनों की तुलना में अधिक पूर्ण और भरपूर है, तो निस्संदेह वह व्यक्ति गलत और अज्ञानी है और इस विचार में त्रुटिपूर्ण और असत्य पर है। लेकिन इतना विचार ईमान की असलियत में खलल नहीं डालता, और न ही किसी निश्चित...

[बायाँ कॉलम - फ़ारसी मूल] **फिर मैं कहता हूँ:** बल्कि अगर यहाँ स्वयं कोई लाभ न देखा जाए, जब तक कि कोई बुराई मौजूद न हो जो इस कार्य के इनकार का कारण बने, अन्यथा मुबाह (अनुमेयता) कहाँ जाएगी? इमाम अहमद मसनद में एक अच्छी सनद के साथ एक महिला सहाबी (अल्लाह उनसे प्रसन्न हो) से रावी हैं कि हुज़ूर पुर नूर (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने फरमाया: शनिवार का रोज़ा न तुम्हारे लिए है और न तुम्हारे खिलाफ (1)। शनिवार के रोज़े न तुम्हारे लिए हैं न तुम पर। विद्वान व्याख्या में कहते हैं: "ला लका" का अर्थ है इसमें कोई अतिरिक्त सवाब नहीं, और "ला अलैका" का अर्थ है इसमें न कोई निंदा है न फटकार (2)। स्पष्ट हुआ कि बिना किसी कारण के विशिष्ट करना यदि लाभदायक न हो तो हानिकारक भी नहीं होता, और यही उद्देश्य है। हाँ, हर वह आम आदमी जो इस प्रथागत निर्धारण को शरीयत का समय समझता है और यह सोचा जाता है कि इन दिनों के अलावा ईसाल-ए-सवाब नहीं होता, या ये दिन अन्य दिनों से अधिक पूर्ण और प्रचुर हैं, वह निस्संदेह गलत और अज्ञानी है, और इसमें वह गलत करने वाला और अमान्य करने वाला है, लेकिन यह विचार, अल्लाह

न करे, ईमान की असलियत में खलल नहीं डालता और न ही किसी निश्चित अंतिम खतरे का कारण बनता है। जैसा कि गिरोह के नेता (इमाम अत-तायफ़ा) का तक़वियतुल ईमान में विश्वास है, और उनकी यह घोर अज्ञानता उस आम आदमी की अज्ञानता से कई गुना बदतर है...

[पाद-टिप्पणियाँ] 1. मसनद अहमद बिन हंबल, एक महिला की हदीस (अल्लाह उनसे प्रसन्न हो), दारुल फ़िक्र बेरूत, 6/368. 2. फैज़ुल क़दीर शरह अल-जामी अस-सगीर, हदीस 5120, दारुल मारिफ़त बेरूत, 4/330.

पृष्ठ 592/948

فتاوٰی رضویہ جلد نہم

[دایاں کالم] وہ اس کے اختیار میں ہے۔ ممانعت کا سبب نہیں ہو سکتا، یہ خاص کر لینے کی مثالیں، سب عرف اور عادت کی قسم سے ہیں جو ابتداء میں خاص مصلحتوں اور خفی مناسبوں کی وجہ سے رونما ہوئیں پھر رفتہ رفتہ عام ہو گئیں۔ "الخ" **ثم اقول:** بلکہ اگر یہاں خود ہی مصلحت نہ ہو (تو بھی حرام نہیں ہو سکتا) کیونکہ مصلحت نہ ہونے کا معنی یہ نہیں کہ مفسدہ موجود ہے کہ باعث انکار ہو جائے ورنہ مباح کہا جائے گا؟ امام احمد مسند میں بسند حسن ایک صحابیہ خاتون رضی اللہ تعالٰی عنہا سے راوی ہے کہ حضور پر نور صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم نے فرمایا کہ سنیچر کے روزے نہ تیرے لیے نہ تیرے اوپر_ علماء نے اس کی شرح میں فرمایا: نہ تیرے لیے اس میں کسی ثواب کی زیادتی ہے نہ اس میں تجھ پر کوئی عتاب اور ملامت ہے_ واضح ہوا کہ بے وجہ تخصیص کے خاص کر لینا اگر مفید نہ ہو تو مضر بھی نہ ہوگا، اور یہی ہمارا مقصود ہے۔ ہاں جو عامی شخص اس تعین عادی کو توقیتِ شرعی جانے اور گمان کرے کہ ان کے علاوہ دنوں میں ایصالِ ثواب ہوگا ہی نہیں، یا جائز نہیں، یا ان ایام میں ثواب دیگر ایام سے زیادہ کامل و وافر ہے، تو بلاشبہ وہ شخص غلط کار اور جاہل ہے اور اس گمان میں خطا کار اور صاحبِ باطل ہے_ لیکن اتنا گمان اصلِ ایمان میں خلل نہیں لاتا، نہ ہی کسی قطعی

[بایاں کالم] **ثم اقول:** بلکہ اگر اینجا خود ہیچ مصلحتی بینا شد تا عدم وجود مفسدت نیست کہ موجب انکار این کار شود ورنہ مباح کجا رود۔ امام احمد در مسند بسند حسن از خاتونے صحابیہ رضی اللہ تعالٰی عنہا راوی است حضور پر نور صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم فرمود صیام السبت لالک ولا علیک ۱روزہائے روز شنبہ نہ مر تراست نہ بر تو علماء در شرح فرماید لالک فیہ مزید ثواب ولا علیک فیہ ملامۃ ولا عتاب ۲۔ روشن شد کہ تخصیص بے مخصص اگر نافع نیاید مضر ہم نباشد، وھو

المراد. آرے ہر عامی کہ ایں تعین عادی را توقیت شرعی داند و گمان برود کہ ایصال ثواب در غیر این ایام صورت نہ بندد یا روانہ باشد ایں ایام از ایام من دیگر اتم است و افر بلا شبہہ غلط کار و جاہل و دریں خاطی و مبطل است، اما ایں قدر گمان معاذاللہ در اصل ایمان خلل نیارد نہ موجب قطعی وعید حتمی گردد. چنانکہ امام الطائفہ در تقویۃ الایمان اعتقاد دارد و این جہالت فاحشہ او از جہل آں عامی بدر جہاتر است آں

[حواشی] 1 مسند احمد بن حنبل حدیث امراۃ رضی اللہ عنہا دار الفکر بیروت ۳۶۸/۶ 2 فیض القدیر شرح الجامع الصغیر حدیث ۵۱۲۰ دار المعرفت بیروت ۳۳۰/۴

It is nothing more than conjectures and assumptions, and this is far-reaching misguidance and severe deviation. And there is no power or might except with Allah, the All-Mighty, the All-Praiseworthy. Here too, the portion of the leader of the sect (Imam al-Ta'ifa) in foolishness, shallowness, stupidity, and guesswork is evident. It is said to them: 'One who knows is not like one who does not know.' Similarly, whatever disapproved matters the common people have innovated regarding the transfer of reward (Isal-e-Thawab), such as ostentation, desire for fame, boasting, gathering the wealthy and excluding the poor, and the practice where a group sits together and everyone recites the Quran loudly while neglecting the obligation to listen—all these are prohibited, forbidden, disliked, and cautioned against. Scholars should reprimand these additional evils, rather than using unrestrained language and sharp tongues to strike at the root of the matter. Just as many among the common people have become accustomed to numerous prohibitions in prayer, especially voluntary (Nawafil) prayers performed alone, such as not observing the proper performance of the pillars (Ta'deel al-Arkan), etc. This situation necessitates warning and instilling fear, and there should be encouragement and inducement to perform prayers correctly. This is a concise discourse and a decisive word, which will be heavy upon the elite of this side and some commoners of that side. But what can be done, for the truth is this, and one cannot deviate from the truth. And Allah alone is the Guide towards the path of righteousness. May blessings and peace be upon the generous master Muhammad, his noble family, and his companions. And Allah Almighty knows best, and His knowledge, may His glory be exalted, is most complete.

It becomes a cause for punishment and a definitive threat, as is the belief of the leader of the sect in his 'Taqwiyat-ul-Iman', and this gross ignorance of his is far worse than the ignorance of that commoner. It is nothing more than foolishness and guesswork, and this is great misguidance and severe deviation. 'And there is no power or might except with Allah, the All-Mighty, the All-Praiseworthy.' Here also, the portion of the leader of the sect in foolishness, shallowness, stupidity, and guesswork is prominent. They will be told that one who knows is not like the ignorant. Similarly, the ignorant common people have innovated undesirable matters in the chapter of transferring rewards (Isal-e-Thawab), such as showing off, seeking fame, boasting, gathering rich people, forbidding the needy, and that on the third day (Soyem) a group sits together and everyone reads the Quran loudly and abandons the duty of listening; all these are forbidden and illegitimate, disliked and bad. Scholars should

reprimand these extra evils, not with complete unbridled tongue-lashing, especially in voluntary prayers which they perform alone, where they are accustomed to many prohibitions like not observing the proper execution of prayer postures (Ta'deel-e-Arkan). This state does not necessitate that they should be stopped from prayer altogether, rather they should be saved and warned from these bad habits, and there should be encouragement and inducement for performing prayers. This is the summary and final word, which will be difficult for the elites of this side and some common people of that side, but what can be done as this is the truth and one cannot exceed the truth. And only God is the guide towards the path of guidance. May blessings and peace be upon the generous Master Muhammad and his great family and companions, and the Supreme God is the best Knower, and the knowledge of that Great Being is the most perfect. (T) ÷

यह केवल अटकलों और अनुमानों के अलावा कुछ नहीं है, और यह दूरगामी गुमराह और गंभीर विचलन है। और अल्लाह के सिवा कोई शक्ति और सामर्थ्य नहीं है, जो सर्वशक्तिमान और प्रशंसनीय है। यहाँ भी, मूर्खता, ओछापन, बेवकूफी और अटकलबाजी में संप्रदाय के नेता (इमाम अल-ताइफ़ा) का हिस्सा स्पष्ट है। उनसे कहा जाता है: 'जो जानता है वह उसके समान नहीं है जो नहीं जानता।' इसी प्रकार, ईसाल-ए-सवाब (पुण्य पहुँचाने) के संबंध में आम लोगों ने जो भी नापसंद चीज़ें ईजाद की हैं, जैसे दिखावा, प्रसिद्धि की इच्छा, घमंड, अमीरों को इकट्ठा करना और गरीबों को रोकना, और यह प्रथा कि एक समूह एक साथ बैठता है और हर कोई ज़ोर-ज़ोर से कुरान पढ़ता है जबकि सुनने के कर्तव्य की उपेक्षा करता है—ये सभी वर्जित, निषिद्ध, नापसंद और चेतावनी देने योग्य हैं। विद्वानों को इन अतिरिक्त बुराइयों पर फटकार लगानी चाहिए, न कि अनियंत्रित भाषा और तीखी जुबान का उपयोग करके मामले की जड़ पर प्रहार करना चाहिए। जैसा कि आम लोगों में से बहुत से लोग नमाज़ में, विशेष रूप से अकेले पढ़ी जाने वाली नफ़्ल नमाज़ों में, अरकानों की अदायगी (तअदील-ए-अरकान) आदि का पालन न करने जैसी कई मनाही वाली चीज़ों के आदी हो गए हैं। यह स्थिति चेतावनी देने और डराने की माँग करती है, और नमाज़ को सही ढंग से अदा करने के लिए प्रोत्साहन और प्रेरणा होनी चाहिए। यह एक संक्षिप्त प्रवचन और निर्णायक शब्द है, जो इस पक्ष के विशिष्ट लोगों और उस पक्ष के कुछ आम लोगों पर भारी पड़ेगा। लेकिन क्या किया जा सकता है, क्योंकि सत्य यही है और सत्य से विचलन नहीं हो सकता। और अल्लाह ही सीधा मार्ग दिखाने वाला है। उदार स्वामी मुहम्मद, उनके महान परिवार और उनके साथियों पर दुरूद और सलाम हो। और अल्लाह सर्वशक्तिमान सबसे अच्छा जानने वाला है, और उस महान सत्ता का ज्ञान सबसे पूर्ण है।

यह अज़ाब और निश्चित चेतावनी का कारण बनता है, जैसा कि संप्रदाय के नेता का अपनी 'तकवियत-उल-ईमान' में विश्वास है, और उनकी यह घोर अज्ञानता उस आम आदमी की अज्ञानता से कहीं बदतर है। वह अज्ञानता और अटकल से अधिक कुछ नहीं है, और यह बड़ी गुमराही और गंभीर विचलन है। 'और अल्लाह के सिवा कोई शक्ति नहीं, जो सर्वशक्तिमान और प्रशंसनीय है।' यहाँ भी मूर्खता, छिछोरापन, बेवकूफी और अटकलबाजी में इमाम-उल-ताइफ़ा का हिस्सा प्रमुख है। उनसे कहा जाएगा कि जानने वाला अनजान की तरह नहीं होता। इसी तरह, अज्ञानी आम लोगों ने सवाब पहुँचाने के अध्याय में जो नापसंदीदा चीज़ें पैदा कर ली हैं, जैसे नुमाइश, प्रसिद्धि, गर्व, अमीरों को इकट्ठा करना, ज़रूरतमंदों को रोकना, और यह कि तीजे (सोयम) में एक जमात इकट्ठा बैठती है और

सब के सब बुलंद आवाज़ से कुरान पढ़ते हैं और सुनने का फ़र्ज़ छोड़ देते हैं; यह सब मना और नाजायज़ है, मकरूह और बुरा है। उलेमा को चाहिए कि इन ज़ायद बुराइयों पर डाँट-डपट करें, न कि पूरी बेलगामी और ज़बान-दराज़ी से, ख़ासकर नफ़्ल नमाज़ों में जिन्हें वे अकेले अदा करते हैं, जहाँ वे अरकानों की अदायगी (तअदील-ए-अरकान) न करने जैसी कई पाबंदियों के आदी हैं। यह स्थिति इस बात की माँग नहीं करती कि उन्हें नमाज़ से रोक दिया जाए, बल्कि इन बुरी आदतों से बचाना और डराना चाहिए, और नमाज़ अदा करने के लिए शौक और प्रेरणा होनी चाहिए। यह इमाली कलाम और आख़िरी फ़ैसला है, जो इस तरफ़ के ख़ास लोगों और उस तरफ़ के कुछ आम लोगों दोनों पर भारी गुज़रेगा, मगर क्या किया जाए कि हक़ यही है और हक़ से आगे नहीं बढ़ा जा सकता। और ख़ुदा ही हिदायत की राह की तरफ़ रहनुमा है। फ़ैयाज़ आक़ा हज़रत मुहम्मद और उनके बुज़ुर्गों और साथियों पर दुरूद और सलाम हो, और ख़ुदाए बरतर खूब जानने वाला है, और उस ज़ात-ए-बुज़ुर्ग का इल्म सबसे कामिल है। (त) ÷

पृष्ठ 593/948

از جملے وجزائے بیش نیست وایں ضلال بعید و اعتزال شدید است ولا حول ولا قوۃ الا باللہ العزیز الحمید۔ اینجانیز حصہ امام الطائفہ در سفاہت و سخافت و حمق و جزافت پیداست یقال لھم لیس من یعلم کمن لا یعلم، ہمچناں انچہ عوام جملہ در باب ایصال ثواب امور مستنکرہ احداث کردہ اند مثلاً ریاء و سمعہ و تفاخر جمع اغنیاء و منع فقراء و آنکہ ورسوم جماعتے یکجا نشستہ ہرہمہ قرآن بجہر خوانند وفریضہ استماع از دست دہند ایں ہمہ ممنوع و محظور مکروہ و محذ درست علماء را باید کہ بر مفاسد زوائد سرزنش کنند نہ آں کہ باطلاق لسان وسلا طب ز بان اصل کار راز نند، چنانچہ بسیار سے از عوام در نماز خصوصاً نوافل کہ تنہا گزارند بعدم مراعات تعدیل ارکان وغیرہ محظورات عدیدہ خو کردہ اند، این معنی مستلزم و ترہیب می باید کرد، و برادائے نماز تحریص وترغیب این ست، سخن مجمل و قول فیصل کہ خواص آنسود کہ حق این است و از حق نشاید گذشت و اللہ الھادی الی سبیل الرشاد والصلوۃ والسلام علی المولی الجوادس محمد وآلہ وصحبہ الامجاد، واللہ تعالیٰ اعلم وعلمہ جل مجدہ اتم۔

عذاب اور حتمی وعید کا سبب ہوتا ہے جیسا کہ امام الطائفہ کا اپنی تقویۃ الایمان میں یہ اعتقاد ہے اور اس کی یہ جہالت فاحشہ اس عامی کی جہالت سے بدر جہا بدتر ہے۔ وہ ایک نادانی اور اٹکل سے زیادہ نہیں، اور یہ بڑی گمراہی اور شدید اعتزال ہے ولا حول ولا قوۃ الا باللہ العزیز الحمد ۔ یہاں بھی سفاہت۔ سخافت، حماقت اور جزافت میں امام الطائفہ کا حصہ نمایاں ہے، ان سے کہا جائے گا جاننے والا انجان کی طرح نہیں، اسی طرح جاہل عوام نے ایصال ثواب کے باب میں جو جو ناپسندیدہ امور پیدا کر لیے ہیں جیسے نمائش، ناموری، مفاخرت، مالداروں کو جمع کرنا، محتاجوں کو منع کرنا، اور یہ کہ سوم میں ایک جماعت اکٹھا بیٹھی ہے اور سب کے سب بلند آواز سے قرآن

پڑھتے ہیں اور سننے کا فرض ترک کرتے ہیں، یہ سب ممنوع و ناروا ہے، مکروہ اور برا ہے۔ علماء کو چاہئے کہ ان زائد مفاسد پر سرزنش کریں نہ یہ پوری بے لگامی اور زبان درازی سے خصوصاً نوافل میں جنہیں تنہا ادا کرتے ہیں تعدیل ارکان وغیرہ کی عدم رعایت جیسے متعدد ممنوعات کے عادی ہیں، یہ حالت اس کو مستلزم نہیں کہ انھیں نماز سے روک دیا جائے، بلکہ ان بری عادات سے بچانا اور ڈرانا چاہئے اور نماز ادا کرنے کی تشویق و ترغیب ہونی چاہئے۔ یہ ہے اجمالی کلام اور قول فیصل، جو اس طرف کے خواص اور اس طرف کے بعض عوام دونوں پر گراں گزرے گا، مگر کیا کیا جائے کہ حق یہی ہے اور حق سے تجاوز نہیں ہو سکتا اور خدا ہی راہ ہدایت کی جانب ہادی ہے فیاض آقا حضرت محمد اور انکی بزرگ و اصحاب پر درود و سلام ہو اور خدائے برتر خوب جاننے والا ہے، ور اس ذات بزرگ کا علم سب سے کامل ہے۔ (ت) ÷

Fatawa Razawiya, Volume 9

Problem 184: From Baghdad Sharif, Armed Car Tank, to the questioner Ali Raza Khan Fitter Mistri, 7 Ramadan 1339 AH.

What do the scholars of religion say regarding whether 'Fatiha Dilana' (donating rewards through Fatiha) is permissible in Sharia or not? Please provide a Hadith that proves the Messenger of Allah (peace and blessings be upon him) offered Fatiha in this manner. Inform us, and you shall be rewarded.

The Answer: Fatiha Dilana is permissible in Sharia. It is stated in Durr-e-Mukhtar:

"The principle is that whoever performs an act of worship has the choice to dedicate its reward to someone else, even if at the time of performing the act, the intention was for oneself. This is established from evident proofs." -1 (T)

It is stated in Radd al-Muhtar: "Whether it be prayer, fasting, charity, or recitation." -2 (T)

And just as madrasas, Sufi lodges (khanqahs), and traveler inns are established and all Muslims consider them acts of merit (thawab), can anyone provide proof that the Prophet (peace and blessings be upon him) had them built in this way? Or can anyone provide proof that the Prophet (peace and blessings be upon him) forbade the way Fatiha is given now, where the rewards of the Holy Quran and food are conveyed to the deceased? When proof of prohibition cannot be given—and it certainly cannot—then whoever forbids what Allah and His Messenger did not forbid is fabricating Sharia from their own heart.

"Indeed, those who invent lies against Allah will not succeed. [It is] a brief enjoyment, and they will have a painful punishment." -3 (T). And Allah Almighty knows best.

Problem 185: What do the scholars of religion say regarding the gathering of Muslims on the third day after a death to recite the Holy Quran and Kalima Tayyiba and distribute chickpeas etc., after reciting over them, which is called 'Soyam' or 'Teeja'? Is it permissible or not? Inform us, and you shall be rewarded.

---

1. Durr-e-Mukhtar, Bab al-Hajj 'an al-Ghayr, Matba' Mujtabai Delhi, 1/181.
2. Radd al-Muhtar, Bab al-Hajj 'an al-Ghayr, Idara al-Tiba'ah al-Misriyah, Egypt, 2/236.
3. Al-Quran, 16/116-117.

फ़तावा रज़विया, जिल्द 9

मसला 184: बग़दाद शरीफ़ से, आर्म्ड कार टैंक, मसऊला अली रज़ा खाँ फ़िटर मिस्त्री, 7 रमज़ान 1339 हिजरी।

उलेमा-ए-दीन क्या फ़रमाते हैं कि 'फ़ातिहा दिलाना' शरीयत से जायज़ है या नहीं? कोई ऐसी हदीस लिख दीजिए जिससे यह साबित हो कि रसूलुल्लाह (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने इसी तरह फ़ातिहा दिलाई थी? बयान फ़रमाएं और सवाब पाएं।

जवाब: फ़ातिहा दिलाना शरीयत में जायज़ है। 'दुर्रे मुख्तार' में है:

"मूल सिद्धांत यह है कि जो कोई इबादत करे उसे यह अधिकार है कि उसका सवाब दूसरे के लिए समर्पित कर दे, चाहे इबादत अदा करने के वक़्त उसने अपने लिए करने की नीयत रखी हो, ज़ाहिर दलीलों से यही साबित है।" -1 (त)

'रद-उल-मुहतार' में है: "चाहे नमाज़ हो या रोज़ा या सदक़ा या क़िराअत।" -2 (त)

और जिस तरह मदरसे, ख़ानक़ाहें और मुसाफ़िरख़ाने बनाए जाते हैं और सब मुसलमान इनको सवाब का काम समझते हैं, क्या कोई इसका सबूत दे सकता है कि नबी (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने इन्हें इसी तरह बनवाया था? या कोई यह सबूत दे सकता है कि फ़ातिहा जिस तरह अब दी जाती है जिसमें क़ुरआन मजीद और खाने दोनों का सवाब मय्यित को पहुँचाते हैं, नबी (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने इससे मना फ़रमाया हो? और जब मनाही का सबूत नहीं दिया जा सकता—और यकीनन नहीं दिया जा सकता—तो जिस चीज़ से अल्लाह और उसके रसूल ने मना नहीं फ़रमाया, जो दूसरा उसे मना करेगा वह अपने दिल से शरीयत गढ़ेगा।

"बेशक जो अल्लाह पर झूठ बाँधते हैं उनका भला न होगा, थोड़ा फ़ायदा उठाना है और उनके लिए दर्दनाक अज़ाब है।" -3 (त)। और अल्लाह तआला बेहतर जानता है।

मसला 185: उलेमा-ए-दीन क्या फ़रमाते हैं इस मसले में कि मय्यित के तीसरे दिन मुसलमानों का जमा होकर क़ुरआन मजीद और कलमा तैय्यबा पढ़ना और चनों वग़ैरह पर कुछ पढ़कर तक़सीम करना, जिसे 'सोयम' या 'तीजा' कहते हैं, जायज़ है या नहीं? बयान फ़रमाएं और सवाब पाएं।

---

1. दुर्रे मुख्तार, बाब अल-हज अनिल ग़ैर, मतबा मुज्तबाई दिल्ली, 181/1

2. रद-उल-मुहतार, बाब अल-हज अनिल ग़ैर, इदारा अल-तिबाअह अल-मिसरिया मिस्र, 236/2

3. अल-क़ुरआन 16/116-117

جلد نہم فتاویٰ رضویہ

مسئلہ ۱۸۴: از بغداد شریف، آرمڈ کار ٹینک کومسئولہ علی رضا خاں فٹر مستری ۷ رمضان ۱۳۳۹ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین کہ فاتحہ دلانہ شرع سے جائز ہے یا نہیں؟ کوئی ایسی حدیث لکھ دیجئے جس سے یہ ثابت ہو کہ رسول اللہ صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم نے اسی طرح فاتحہ دلائی تھی؟ بینوا توجروا الجواب: فاتحہ دلانہ شریعت میں جائز ہے۔ در مختار میں ہے:

الاصول ان کل من اتی بعبادۃ مالہ جعل ثوابھا لغیرہ وان نواھا عند الفعل لنفسہ لظاھر الادلۃ ۱- اصل یہ ہے کہ جو کوئی عبادت کرے اسے اختیار ہے کہ اس کا ثواب دوسرے کے لیے کردے اگر چہ ادائے عبادت کے وقت خود اپنے لیے کرنے کی نیت رہی ہو ، ظاہر دلائل سے یہی ثابت ہے۔ (ت)

رد المحتار میں ہے: سواء کانت صلوۃ اوصوما اوصدقۃ اوقراءۃ ۲- خواہ نماز ہو یا روزہ یا صدقہ یا قرأت۔ (ت)

اور جس طرح مدارس اور خانقاہیں اور مسافر خانے بنائے جاتے ہیں اور سب مسلمان ان کو فعل ثواب سمجھتے ہیں ، کیا کوئی ثبوت دے سکتا ہے کہ نبی صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم نے اس طرح بنوائے تھے، یا کوئی ثبوت دے سکتا ہے کہ فاتحہ جس طرح اب دی جاتی ہے جس میں قرآن مجید اور کھانے دونوں کا ثواب میت کو پہنچاتے ہیں نبی صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم نے اس سے منع فرمایا۔ اور جب ممانعت کا ثبوت نہیں دے سکتا اور بیشک ہرگز نہیں دے سکتا تو جس چیز سے اللہ اور رسول نے منع نہ فرمایا دوسرا کہ منع کرے گا اپنے دل سے شریعت گھڑے گا۔

اِنَّ الَّذِیْنَ یَفْتَرُوْنَ عَلَی اللّٰہِ الْکَذِبَ لَا یُفْلِحُوْنَ ط مَتَاعٌ قَلِیْلٌ وَّلَھُمْ عَذَابٌ اَلِیْمٌ ۳۔ واللہ تعالٰی اعلم بیشک جو اللہ پر جھوٹ باندھتے ہیں ان کا بھلا نہ ہوگا ، تھوڑا برتنا ہے اور ان کے لیے درد ناک عذاب ہے۔ (ت) واللہ تعالٰی اعلم۔

مسئلہ ۱۸۵: کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ میت کے تیسرے دن مسلمانوں کا جمع ہو کر قرآن مجید و کلمہ طیبہ پڑھنا اور چنوں و غیر پر کچھ پڑھ کر تقسیم کرنا ، جسے سوم یا تیجا کہتے ہیں جائز ہے یا نہیں؟ بینوا توجروا

---

1 درمختار باب الحج عن الغیر مطبع مجتبائی دہلی ۱/۱۸۱ 2 رد المحتار باب الحج عن الغیر ادارۃ الطباعۃ المصریۃ مصر ۲/۲۳۶ 3 القرآن ۱۶/ ۱۱۶-۱۱۷

Fatawa Razawiyya Volume 9

The Answer: It is proven from authentic hadiths that the reward of good deeds reaches the deceased. It is also mentioned in hadiths that they become happy upon receiving the reward and they wait for it to reach them. Therefore, reciting the Holy Quran and Kalima Tayyiba and conveying the reward is a good thing, and the specificity of the third day is based on Sharia-compliant customary benefits. There is no harm in this either. The hadith states: "Fasting on Saturday is neither for you nor against you" (i.e., there is no extra benefit or harm in it. - T). Whatever is distributed should be given to the needy, as this is also a matter of reward; wealthy people should not take from it. As for other absurd things people have introduced, such as making elaborate arrangements like a wedding or laying out fine carpets, these things are misplaced. And if someone believes that the reward only reaches on the third day, or more on that day and less on others, then this belief of theirs is also wrong. Similarly, there is no necessity for chickpeas, nor does any evil arise from distributing them. And Allah Almighty knows best.

Issue 186: From Kura Dagshai, District Shimla, through Kamaluddin Merchant, sent by Habibullah, 9 Shawwal 1337 AH. What do the scholars of religion say regarding this matter: that people say reciting the Word of Allah, i.e., Al-Hamd and Qul Huwallah, over food is forbidden, and by reciting it the food becomes haram (forbidden). Therefore, I hope to know why food became haram because of the Word of Allah, and is the Word of Allah so bad that a halal thing becomes haram by its recitation?

The Answer: Fatiha is undoubtedly permissible. It is to benefit a deceased Muslim, and after obligatory duties (fara'iz), nothing is more pleasing to the Lord Almighty than benefiting a Muslim. It is stated in a hadith: "Whoever among you can benefit his brother, let him do so." (T) In another hadith: "The most beloved of deeds to the Lord Almighty after the obligatory ones is..."

1. Musnad Ahmad bin Hanbal, Hadith of Indhima bint Busr (may Allah be pleased with her), Dar al-Fikr, Beirut, 6/268.
2. Sahih Muslim, Chapter on the Recommendation of Ruqya from the Evil Eye, Nur Muhammad As-Sah al-Matabi', Karachi, 2/224.

फ़तावा रज़विया जिल्द नहुम (खंड 9)

उत्तर: सही हदीसों से साबित है कि नेक कामों का सवाब (पुण्य) मृतक को पहुँचता है। और हदीसों में यह भी आया है कि वह सवाब पाकर खुश होता है और सवाब पहुँचने का इंतज़ार करता है। तो क़ुरआन शरीफ़ और कलिमा तय्यिबा पढ़कर सवाब पहुँचाना अच्छी बात है और तीसरे दिन की विशेषता भी शरई प्रथा के लाभों पर आधारित है। इसमें भी कोई हर्ज नहीं है, हदीस में है: "शनिवार का रोज़ा न तुम्हारे पक्ष में है न विपक्ष में" 1 (यानी न कोई अतिरिक्त लाभ है न नुक़सान। - त) और जो कुछ भी बांटा जाए वह ज़रूरतमंदों को दिया जाए क्योंकि यह भी सवाब की बात है, धनी लोग इसमें से न लें। बाकी जो फ़िज़ूल बातें लोगों ने निकाली हैं जैसे शादी की तरह ताम-झाम करना, अच्छे कालीन बिछाना, ये बातें गलत हैं। और अगर कोई यह समझता है कि सवाब तीसरे दिन ही पहुँचता है या उस दिन ज़्यादा पहुँचेगा और बाकी दिन कम, तो उसका यह अक़ीदा (विश्वास) भी गलत है। इसी तरह चनों की कोई ज़रूरत नहीं है, और न ही चने बांटने से कोई बुराई पैदा होती है। वल्लाह तआला आलम (और अल्लाह तआला बेहतर जानता है)।

मसला १८६: कुरह डगशाई, ज़िला शिमला से कमालुद्दीन मर्चेंट के माध्यम से हबीबुल्लाह द्वारा भेजा गया, ९ शव्वाल १३४७ हिजरी। दीन के उलेमा इस मसले में क्या फ़रमाते हैं कि लोग जो कहते हैं कि खाने पर अल्लाह का कलाम यानी अल-हम्द और कुल हुवल्लाहु पढ़ना मना है, और पढ़ने से खाना हराम हो जाता है। अतः मैं आशा करता हूँ कि (बताएं) अल्लाह के कलाम से खाना क्यों हराम हो गया, और क्या अल्लाह का कलाम ऐसा बुरा है कि जिसके पढ़ने से हलाल चीज़ हराम हो जाए?

उत्तर: फ़ातिहा बेशक जायज़ है। वह मुसलमान मय्यत (मृतक) को लाभ पहुँचाना है, और फ़र्ज़ के बाद अल्लाह तआला को इससे ज़्यादा कोई चीज़ पसंद नहीं कि मुसलमान को लाभ पहुँचाया जाए। हदीस में है: "तुम में से जो कोई अपने भाई को लाभ पहुँचा सकता हो, तो उसे पहुँचाना चाहिए।" 2 (त) दूसरी हदीस में है: "अल्लाह तआला की बारगाह में फ़र्ज़ के बाद सबसे ज़्यादा प्रिय काम..."

1. मुसनद अहमद बिन हंबल, हदीस अंज़मा बिन्त बुसर (रज़ियल्लाहु अन्हा), दारुल फ़िक्र बेरूत २६८/६
2. सही मुस्लिम, नज़र-ए-बद से रुक़्या की मुस्तहब होने का बाब, नूर मोहम्मद असहुत मताबे' कराची २२४/२

पृष्ठ 595 का 948

فتاوی رضویہ جلد نہم

الجواب: صحیح حدیثوں سے ثابت ہے کہ نیک اعمال کا مردہ کو ثواب پہنچتا ہے۔ اور یہ بھی حدیثوں میں آیا ہے کہ وہ ثواب پا کر خوش ہوتا ہے اور ثواب کا منتظر ہوتا ہے اور ثواب پہنچنے کا منتظر رہتا ہے، تو قرآن شریف و کلمہ طیبہ پڑھ کر ثواب پہنچانا اچھی بات ہے اور تیسرے دن کی خصوصیت بھی مصالح عرفیہ شرعیہ کی بنا پر ہے۔ اس میں بھی حرج نہیں، حدیث میں ہے : صوم یوم السبت لالک و لاعلیك 1 (ہفتہ کے روزہ میں نہ تیرے لیے کوئی مزید فائدہ ہے نہ کوئی مزید نقصان۔ ت) اور جو کچھ تقسیم کیا جائے محتاجوں کو دیا جائے کہ یہ بھی ثواب کی بات ہے، غنی لوگ اس میں سے نہ لیں، باقی جو بیہودہ باتیں لوگوں نے نکالی ہیں مثلاً اس میں شادی کے سے تکلفات کرنا، عمدہ عمدہ فرش بچھانا، یہ باتیں بیجا ہیں، اور اگر یہ سمجھتا ہے کہ ثواب تیسرے دن پہنچتا ہے یا اس دن زیادہ پہنچے گا اور روز کم، تو یہ عقیدہ بھی اس کا غلط ہے۔ اسی طرح چنوں کی کوئی ضرورت نہیں، نہ چنے بانٹنے کے سبب کوئی برائی پیدا ہو۔ واللہ تعالیٰ اعلم

مسئلہ ۱۸۶: از کرہ ڈگسائی ضلع شملہ بمعرفت کمال الدین مرچنٹ مرسلہ حبیب اللہ ۹ شوال ۱۳۳۷ھ

کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ لوگ جو کہتے ہیں کہ کھانے کے اوپر کلام الٰہی یعنی الحمد اور قل ھو اللہ پڑھنا منع ہے، اور پڑھنے سے طعام حرام ہو جاتا ہے، لہٰذا امیدوار ہوں کہ کلام الٰہی سے کھانا کیوں حرام ہو گیا، اور کلام الٰہی کیا ایسا خراب ہے جس کے پڑھنے سے حلال چیز حرام ہو جائے؟

الجواب: فاتحہ بیشک جائز ہے۔ وہ مسلمان میت کو نفع پہنچانا ہے، اور فرض کے بعد کوئی چیز مولیٰ تعالیٰ کو اس سے زیادہ پسندیدہ نہیں کہ مسلمان کو نفع پہنچایا جائے۔ حدیث میں ہے: من استطاع منکم ان ینفع اخاہ فلیفنعہ 2 جو اپنے بھائی کو نفع پہنچا سکتا ہو تو چاہئے کہ اسے نفع

پہنچائے۔ (ت) دوسری حدیث میں ہے: احب الاعمال الی المولٰی تعالٰی بعد الفرائض اللہ تعالیٰ کی بارگاہ میں فرائض کے بعد سب سے زیادہ

1 مسند احمد بن حنبل حدیث انضماء بنت بسر رضی اللہ عنہا دار الفکر بیروت ۶/۲۶۸ 2 صحیح مسلم باب استحاب الرقیۃ من العین نور محمد اصح المطابع کراچی ۲/۲۲۴

Fatawa Razawiyya Volume 9

ادخال السرور فی قلب المسلم (1)	A preferred deed is to make a Muslim's heart happy. (T)

Those who say that food becomes forbidden (haram) by reciting the Holy Quran over it are liars. They fabricate falsehoods against the pure Shariah. It is stated in the Holy Quran that such people will not find success; for them is a severe punishment. It is stated in the Hadith: The angels of the earth and sky curse them.

من افتی بغیر علم لعنته ملائکة السماء والارض (2)	Whoever gives a fatwa (religious decree) without knowledge, the angels of the heavens and the earth curse him. (T)

It is not permissible to sit with such people. It is stated in the Hadith:

ایاکم وایاهم لایضلونکم ولایفتنونکم (3)	Stay away from them and keep them away from you, lest they mislead you and put you into fitna (tribulation). (T)

Mas'ala 187: From Allahabad, asked by Mahmood Mistri Sahab, 1332 AH. Is it permissible or impermissible to cook food in the name of one's elders (ancestors), place it before them along with water etc., and offer Fatiha? Is it permissible to offer Fatiha for Piran-e-Pir (Ghaus-ul-Azam) with the intention of Giyarween Sharif according to Hadith? Whose way is it? Or is it Sunnah? Only this.

Answer: Cooking food in the name of deceased Muslims and giving it in charity for Isal-e-Sawab (transfer of merit) is undoubtedly permissible and commendable. Offering Fatiha upon it for Isal-e-Sawab is another commendable act, and combining two good things is an increase in goodness. Isal-e-Sawab can also be done with water. In fact, it is stated in the Hadith: "The best charity is providing water" (4). Providing water to drink is the best charity. Another Hadith states: Providing water to someone where water is not available is like giving life to a soul, and where water is available...

---

1. Mirqat al-Mafatih on the authority of Ibn Abbas with reference to Al-Tabarani, Kitab al-Adab, Maktaba Habibiyah, Quetta, 8/537; Majma' al-Zawa'id with reference to Al-Tabarani Al-Awsat, Chapter on the Virtue of Fulfilling Needs, Dar al-Kitab, Beirut, 8/193; Al-Targhib wa al-Tarhib, Kitab al-Birr wa al-Sila, Mustafa al-Babi, Egypt, 3/394.

2. Kanz al-Ummal with reference to Ibn Asakir on the authority of Ali, Hadith 29018, Mu'assasat al-Risala, Beirut, 10/193.
3. Sahih Muslim, Chapter on the Prohibition of Narrating from the Weak, etc., Qadimi Kutub Khana, Karachi, 1/10.
4. Al-Durr al-Manthur under the verse "Afidu alayna min al-ma'i" etc., Maktaba Ayatollah al-Uzma, Qum, Iran, 3/90.

फतावा रज़विया जिल्द नवीं (9)

इख़ालुस सुरूरे फी कल्बिल मुस्लिमि (1)	पसंदीदा अमल यह है कि मुसलमान का दिल खुश करे। (त)

जो लोग कहते हैं कि क़ुरआन मजीद पढ़ने से खाना हराम हो जाता है, वे कज़्ज़ाब (झूठे) हैं। वे शरीअत-ए-मुतह्हरा पर इफ़्तेरा (झूठा इल्जाम) करते हैं। क़ुरआन मजीद में है: ऐसे लोग फलाह (सफलता) नहीं पाएंगे, उनके लिए सख़्त अज़ाब है। हदीस शरीफ में है: उन पर ज़मीन व आसमान के फ़रिश्ते लानत करते हैं।

मन् अफ्ता बिगैरि इल्मिन् लअनतहु मलाइतकुस्समाइ वलअर्ज़ (2)	जो बे-इल्म (बिना ज्ञान के) फतवा दे, उस पर आसमान और ज़मीन के फरिश्तों की लानत हो। (त)

ऐसे लोगों के पास बैठना जायज़ नहीं। हदीस में है:

इय्याकुम व इय्याहुम ला युदिल्लूनकुम व ला यफ्तिनूनकुम (3)	उनसे दूर रहो और उन्हें अपने से दूर रखो, कहीं वे तुम्हें गुमराह न कर दें और फ़ितने में न डाल दें। (त)

मसअला 187: इल्लाहबाद से, सायल महमूद मिस्त्री साहब, 1332 हिजरी। अपने बुज़ुर्गों के नाम पर खाना पकवाकर उसे आगे रखकर, पानी वगैरह रखकर फातिहा देना जायज़ है या नाजायज़? हदीस शरीफ के मुताबिक ग्यारहवीं शरीफ की नियत करके पीराने पीर साहब की फातिहा जायज़ है या नहीं? यह किसका तरीका है? या सुन्नत है? फ़क़त।

अल-जवाब: मुस्लमानों के मुर्दों के नाम पर खाना पकाकर ईसाले सवाब के लिए सदक़ा करना बिला-शुबा जायज़ व मुस्तहसन है और उस पर फातिहा से ईसाले सवाब करना दूसरा मुस्तहसन है, और दो चीज़ों को जमा करना खैर की ज़ियादती है। और पानी से भी ईसाले सवाब कर सकते हैं। बल्कि हदीस में है: "अफ़ज़लुस सदक़ति सक़्युल माई" (4)। सबसे बेहतर सदक़ा पानी पिलाना है। एक हदीस में है: जहाँ पानी न मिलता हो वहाँ किसी को पानी पिलाना एक जान को ज़िंदा करने के बराबर है और जहाँ पानी मिलता हो वहाँ...

---

1. मिर्क़ात अल-मफ़ातीह, इब्न अब्बास के हवाले से, अत-तबरानी किताबुल अदब, मकतबा हबीबिया क्वेटा, 8/537; मज्मअुज़ ज़वाइद, अत-तबरानी अल-औसत, बाब फ़ज़्ल क़ज़ा-इल

हवईज, दारुल किताब बैरूत, 8/193; अत-तरग़ीब वत-तरहीब, किताबुल बिर्र वस-सिला, मुस्तफ़ा अल-बाबी मिस्र, 3/394।

2. कंज़ुल उम्माल, इब्न असाकिर के हवाले से हज़रत अली से हदीस 29018, मुअस्ससतुर् रिसाला बैरूत, 10/193।
3. सही मुस्लिम, बाब नह्य अर-रिवाया अन अद-दुआफ़ा वग़ैरह, क़दीमी कुतुब खाना कराची, 1/10।
4. अद-दुर्रुल मंसूर, आयत 'अफ़ीडू अलयना मिनल माई' के तहत, मकतबा आयतुल्लाहिल उज़मा कुम ईरान, 3/90।

ادخال السرور فی قلب المسلم (1) پسندیدہ عمل یہ ہے کہ مسلمان کا دل خوش کرے (ت)

جو لوگ کہتے ہیں کہ قرآن مجید پڑھنے سے کھانا حرام ہو جاتا ہے وہ کذاب ہیں۔ شرع مطہرہ پر افتراء کرتے ہیں، قرآن مجید میں ہے ایسے لوگ فلاح نہ پائیں گے ان کے لیے سخت عذاب ہے۔ حدیث شریف میں ہے: ان پر زمین و آسمان کے فرشتے لعنت کرتے ہیں۔

من افتی بغیر علم لعنته ملائکة السماء والارض (2)

جو بغیر علم کے فتوٰی دے اس پر آسمان و زمین کے فرشتوں کی لعنت ہو۔ (ت)

ایسے لوگوں کے پاس بیٹھنا جائز نہیں۔ حدیث میں ہے:

ایاکم وایاھم لایضلونکم ولایفتنونکم (3)

ان سے دور رہو اور ان کو اپنے سے دور رکھو کہیں وہ تم کو گمراہ نہ کردیں اور فتنے میں نہ ڈال دیں (ت)

مسئلہ ۱۸۷: ازالہ آباد مسئولہ محمود مستری صاحب ۱۳۳۲ھ اپنے بزرگوں کے نام پر کھانا پکوا کر اس کو آگے رکھ کر ، پانی وغیرہ رکھ کر فاتحہ دینا جائز ہے یا نا جائز؟ موافق حدیث شریف نیت گیارھویں شریف کر کے فاتحہ پیران پیر صاحب کی جائز ہے یا نہیں؟ کس کا طریقہ ہے؟ یا سنت ہے؟ فقط

الجواب: امواتِ مسلمین کے نام پر کھانا پکا کر ایصالِ ثواب کے لیے تصدق کرنا بالاشبہ جائز و مستحسن ہے اور اس پر فاتحہ سے ایصالِ ثواب دوسرا مستحسن ہے، اور دو چیزوں کو جمع کرنا زیادتِ خیر ہے۔ اور پانی سے بھی ایصالِ ثواب کر سکتے ہیں۔ بلکہ حدیث میں ہے: افضل الصدقہ

سقی الماء (4)۔ سب سے بہتر صدقہ پانی پلانا ہے۔ ایک حدیث میں ہے: جہاں پانی نہ ملتا ہو کسی کو پانی پلانا ایک جان کو زندہ کرنے کی مثل ہے اور جہاں پانی ملتا ہو وہاں

---

1. مرقاۃ المفاتیح عن ابن عباس بحوالہ الطبرانی کتاب الادب مکتبہ حبیبیہ کوئٹہ ۸/۵۳۷، مجمع الزوائد بحوالہ الطبرانی الاوسط باب فضل قضاء الحوائج دار الکتاب بیروت ۸/۱۹۳، الترغیب والترہیب کتاب البر والصلۃ مصطفیٰ البابی مصر ۳/۳۹۴
2. کنزالعمال بحوالہ ابن عساکر عن علی حدیث ۲۹۰۱۸ موسسۃ الرسالہ بیروت ۱۰/۱۹۳
3. صحیح مسلم باب النہی عن الروایۃ عن الضعفاء الخ قدیمی کتب خانہ کراچی ۱/۱۰
4. الدر المنشور زیر آیت افیضوا علینا من الماء الخ مکتبہ آیۃ اللہ العظمیٰ قم ایران ۹۰/۳

Fatawa Razviya, Volume 9

Providing water is like freeing a slave, or as the Master of the Worlds (peace and blessings of Allah be upon him) said. Similarly, Gyarvi Sharif is permissible and a source of blessings and a tested means for the fulfillment of needs. The specification of the particular date of Gyarvi is based on customary practice and wisdom, provided it is not considered Shariah-mandated, as we have explained in our Fatawas. And the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) prayed: "Fasting on Saturday is neither for you nor against you" (As we have explained in our Fatawa. And the saying of the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) is that fasting on Saturday is neither more beneficial nor more harmful for you. -T). And Allah Almighty knows best.

Problem 188 to 198: From Udaipur Mewar, Mahawat Mohalla, sent by Fateh Muhammad and Rahim Bakhsh Nalband, 12 Ramadan 1338 AH.

My Master, my Guide, Hazrat Maulana (may your glory be everlasting),

(1) Will the deceased receive reward (Sawab) from feeding the poor twice a day and giving charity in her name? (2) A water vessel has been kept for birds' water and grain is also provided to them in the deceased's name, and bread is also given to dogs in the deceased's name; will she receive the reward for this or not? (3) Thirty separate parts (Para) of the Quran were ordered for twenty rupees and kept in the mosque for worshippers to read in the name of the deceased, and if a pair of clothes is given to the poor and needy, does she get the reward for that too or not? (4) Will offering flowers and burning incense sticks on the deceased's grave twice a day and reciting Fatiha also bring reward? And does the deceased become aware of my visiting the grave or not? (5) And will performing Milad Sharif in the deceased's name also bring reward? (6) She passed away on the Thursday morning of the lunar night at the end of the month of Rabi-ul-Awwal and was buried at two o'clock. Those who recite the Quran were kept until after sunset to entrust her on Friday. Did she participate in Friday or not? (7) The deceased was nine months pregnant; she passed away after bleeding started, and there was a blood stain on the shroud as well. Although the body was bathed (Ghusl), a blood stain was seen at the time of burial too. What is the ruling regarding this? (8) The deceased appeared in my dream; she was seen sitting on a chair teaching small children, and on another day in a dream, seen sitting happily in a bungalow garden telling me to have patience and from me...

1. Musnad Ahmad bin Hanbal, Hadith of Ansama bint Busr (may Allah be pleased with her), Dar al-Fikr Beirut 6/368; Al-Jami' al-Saghir with Fayd al-Qadir, Hadith 513, Dar al-Ma'rifah Beirut 4/230.

फतावा रज़विया, खंड 9

पानी पिलाना गुलाम आज़ाद करने के समान है, जैसा कि दो जहाँ के मालिक (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने फ़रमाया है। इसी तरह ग्यारहवीं शरीफ़ जायज़ है और बरकतों का कारण और हाजतें पूरी होने का एक आज़माया हुआ ज़रिया है। ग्यारहवीं की विशेष तारीख़ का निर्धारण प्रथा और सुविधानुसार है, जब तक इसे शरीयत में अनिवार्य न माना जाए, जैसा कि हमने अपने फ़तवों में वर्णन किया है। और रसूले करीम (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने फ़रमाया: "शनिवार का रोज़ा न तुम्हारे पक्ष में है और न ही तुम्हारे विरुद्ध।" (जैसा कि हमने अपने फ़तवों में वर्णन किया है। और हुज़ूर (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) का इरशाद है कि शनिवार का रोज़ा तुम्हारे लिए न तो ज़्यादा फ़ायदेमंद है और न ही नुकसानदेह। -त)। और अल्लाह तआला बेहतर जानता है।

मसला 188 से 198: उदयपुर मेवाड़, मोहल्ला महावत दौड़ी, प्रेषक फ़तेह मुहम्मद और रहीम बख़्श नलबंद, 12 रमज़ान 1338 हिजरी।

मेरे आका, मेरे हादी, हज़रत मौलाना (दाम इक़बालुहु),

(1) क्या मृतक के नाम पर दोनों समय गरीबों को खाना खिलाने और दान-पुण्य करने से मरहुमा को सवाब मिलेगा या नहीं? (2) मरहुमा के नाम पर पक्षियों के पानी के लिए एक बर्तन रखा गया है और उन्हें अनाज भी डाला जाता है, और मरहुमा के नाम पर कुत्तों को भी रोटी डाली जाती है, क्या इसका सवाब उन्हें पहुँचेगा या नहीं? (3) बीस रुपये के हदीया (भेंट) में तीस पारे (कुरआन के हिस्से) अलग-अलग मँगवाकर मरहुमा के नाम पर मस्जिद में नमाज़ियों के पढ़ने के लिए रखे गए हैं, और अगर फ़क़ीरों और गरीबों को कपड़े का जोड़ा भी दिया जाए तो क्या उनका भी सवाब मरहुमा को होता है या नहीं? (4) मरहुमा की क़ब्र पर दोनों समय फूल चढ़ाना और अगरबत्ती जलाना और फ़ातिहा पढ़ना, क्या इससे भी सवाब मिलेगा? और क्या मेरे क़ब्र पर जाने का हाल मरहुमा को पता चलता है या नहीं? (5) और मरहुमा के नाम से मिलाद शरीफ़ करना, क्या इसका भी सवाब मिलेगा? (6) रबी-उल-अव्वल महीने के अंत की जुमेरात (गुरुवार) की चाँद रात की सुबह को इंतक़ाल हुआ और दो बजे दफ़न हुई, और सूर्यास्त तक क़ुरआन पढ़ने वालों को जुमे के दिन सुपुर्द-ए-खाक करने के लिए रखा गया। क्या वे जुमे में शरीक हुईं या नहीं? (7) मरहुमा नौ महीने की गर्भवती थीं, खून जारी होने के बाद इंतक़ाल हुआ और कफ़न पर भी खून का दाग़ था, हालांकि मैयत को ग़ुस्ल (स्नान) दे दिया गया था लेकिन दफ़न के समय भी खून का दाग़ नज़र आया, इसके बारे में क्या हुक्म है? (8) मरहुमा मेरे

ख़्वाब (सपने) में आईं, एक कुर्सी पर बैठी छोटे-छोटे बच्चों को पढ़ाती हुई नज़र आईं, और किसी दिन ख़्वाब में बंगले के बग़ीचे में बैठी खुश और प्रसन्न दिखाई दीं और मुझसे सब्र करने को कहा और मुझसे...

---

1. मुसनद अहमद बिन हंबल, हदीस अंसामा बिंत बुस्र (रज़ियल्लाहु अन्हा), दारुल फ़िक्र बेरूत 6/368; अल-जामी अस-सग़ीर मय फ़ैज़ुल क़दीर, हदीस 513, दारुल मारिफ़ा बेरूत 4/230।

فتاویٰ رضویہ، جلد نہم

پلانا غلام کو آزاد کرنے کے مثل ہے او کما قال صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم (جیسا کہ سرکار دو عالم صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم نے فرمایا ہے۔ت) یوں ہی گیارہویں شریف جائز ہے اور باعث برکات اور وسیلہ مجربہ قضاء حاجات ہے۔ اور خاص گیارہویں کی تاریخ کی تخصیص تخصیص عرفی اور مصلحت پر مبنی ہے جبکہ اسے شرعاً واجب نہ جانے، کما بیاناہ فی فتاونا وقد صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم صوم یوم السبت لا لك ولا علیك (جیسا کہ ہم نے اپنے فتاویٰ میں بیان کیا۔ اور حضور صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کا ارشاد ہے شنبہ کا روزہ تیرے لیے زیادہ نافع نہ کچھ مضرت۔ت) واللہ تعالیٰ اعلم

مسئلہ ۱۸۸ تا ۱۹۸: از اودے پور میواڑ محلہ مہاوت دوڑی مرسلہ فتح محمد ورحیم بخش نعلبند ۱۲ رمضان ۱۳۳۸ھ

میرے آقا میرے ہادی، حضرت مولانا دام اقبالہ،

(۱) متوفی کے نام پر دونوں وقت مساکین کو کھانا کھلانے اور خیرات کرنے سے مرحومہ کو ثواب ملے گا یا نہیں؟ (۲) مرحومہ کے نام پر ایک پانی کا برتن پرندوں کے پانی کے لیے رکھا ہے اور انھیں اناج بھی ڈالنا، اور مرحومہ کے نام پر کتے کو بھی روٹی ڈالنا اس کا ثواب پہنچے گا یا نہیں؟ (۳) بیس روپے کے ہدیہ میں تیس پارے علیحدہ علیحدہ منگا کر مرحومہ کے نام پر مسجد میں نمازیوں کے پڑھنے کے لیے رکھے ہیں، اور فقیر و مساکین کو جوڑا کپڑا بھی دیا جائے تو ان کا بھی مرحومہ کو ثواب ہوتا ہے یا نہیں؟ (۴) مرحومہ کی قبر پر دونوں وقت پھول چڑھانا اور اگر بتی جلانا اور فاتحہ پڑھنا اس سے بھی ثواب ملے گا؟ اور میرے قبر پر جانے کا حال مرحومہ کو معلوم ہوتا ہے یا نہیں؟ (۵) اور میلاد شریف مرحومہ کے نام سے کرنا اس کا بھی ثواب ملے گا؟

(۶) ربیع الاول کے ماہ ختم ہونے کی پنجشنبہ چاند رات کی صبح کو انتقال ہوا اور دو بجے دفن ہوئی اور بعد مغرب تک قرآن پڑھنے والے کو جمعہ کو سپرد کرنے کے لیے رکھا اور یہ جمعہ میں شریک ہوئے یا نہیں؟ (۷) مرحومہ کو شروع نو ماہ کا حمل تھا، خون جاری ہو کر انتقال ہوا اور کفن پر بھی خون کا داغ تھا، گو میت کو غسل دے دیا تھا مگر وقت دفن بھی خون کا داغ نظر آیا، اس کی نسبت کیا حکم ہے؟ (۸) مرحومہ میرے خواب میں آئیں، ایک کرسی پر بیٹھے ہوئے چھوٹے چھوٹے بچوں کو پڑھاتے ہوئے نظر آئیں، اور کسی روز خواب میں بنگلے باغیچے میں بیٹھے ہوئے خوش و خرم دیکھنا اور مجھے صبر کے لیے کہنا اور مجھ سے

---

1 مسند احمد بن حنبل حدیث انصماء بنت بسر رضی اللہ تعالیٰ عنہا دار الفکر بیروت ۳۶۸/۶، الجامع الصغیر مع فیض القدیر حدیث ۵۱۳ دار المعرفۃ بیروت ۲۳۰/۴

Volume Nine

Fatawa Ridawiyya

To express one's condition, how is this matter? No day passes without meeting in a dream.

The Answer:

May Allah Almighty grant the deceased Paradise and grant you beautiful patience. Read the 'La Hawla' sharif 60 times, blow it on a sip of water, and drink it. Feed the poor and give charity with good intentions, such that no favor is held over the needy nor any distress caused to them. Keep water for birds, put out grain, even give bread, give clothes to the poor, have Milad Sharif recited. All these are matters of reward and recompense; their reward reaches the deceased, and they are as happy with it as with gifts from friends in this world. Angels carry the light of these rewards in a tray to the deceased and say to them, "O dweller of the deep grave! This reward has been sent to you by your such-and-such relative or friend." Placing parts of the Holy Quran in a mosque for reading is a continuous charity (Sadaqah Jariyah). As long as they remain and are read, reward will reach the one who placed them and the deceased. And what kind of reward will reach? Ten good deeds for every letter. And it is stated in an authentic Hadith:

"I do not say Alif-Lam-Mim is one letter; rather, Alif is a separate letter, Lam is a separate letter, and Mim is a separate letter."[1]

Placing flowers on the grave of the deceased is beneficial; as long as they are fresh, they glorify the Lord of Honor, and the heart of the deceased is comforted. If lighting a candle is for the respect of the Quran at the time of recitation, or for the comfort of people sitting there, it is commendable. Otherwise, it is a waste and loss of wealth; the deceased gains no benefit from it. When someone visits a Muslim's grave, the deceased sees them and hears their words. If they knew them in the world, they still recognize them as "my such-and-such relative or friend has come to me." And if they did not know them, they at least know that a Muslim has come and is sending rewards. Entrusting to the grave on a Friday is not a special thing; nor can someone dying on a day other than Friday attain Friday through it. Death during pregnancy is martyrdom. It is stated in an authentic Hadith: "The woman who dies due to pregnancy is a martyr."[2] (The woman who dies because of pregnancy is a martyr. T)

The dream is very good; in sha Allah, it is evidence of forgiveness for them. And Allah Almighty knows best.

Issue 196 to 198: From Chaman Sarai Sambhal, sent by Mr. Ahmed Khan, 8 Jumada al-Ula 1337 AH.

What do the scholars of religion say in these matters that:

---

[1] Jami' al-Tirmidhi, Chapter on what has been narrated about one who recites a letter from the Quran, Amin Company Kutub Khana Rashidiya, Delhi, 15/2. [2] Muwatta Imam Malik, Prohibition of wailing over the deceased, Mir Muhammad Kutub Khana, Karachi, p. 216.

जिल्द नहुम

फ़तावा रज़विया

अपना हाल ज़ाहिर करना, यह मामला कैसा है? कोई दिन ख़्वाब में नहीं मिलता।

अल-जवाब:

अल्लाह तआला मरहूमा को जन्नत अता फरमाए और आपको सब्र-ए-जमील दे। लाहौल शरीफ 60 बार पढ़कर एक घूंट पानी पर दम करके पी लिया कीजिए, मसाकीन को खाना खिलाना और नेक नियत से खैरात करना जिसमें न मोहताज पर एहसान रखा जाए न उसको तकलीफ दी जाए, परिंदों के लिए पानी रखना, दाना डालना हत्ता कि रोटी देना, मिस्कीन को कपड़ा देना, मीलाद शरीफ पढ़वाना। ये सब अज्र व सवाब की बातें हैं उनका सवाब मय्यत को पहुंचता है और वह उससे ऐसा खुश होता है जैसे दुनिया में दोस्तों के हदीये (उपहारों) से। मलायका (फरिश्ते) उन सवाबों के नूर तश्तरी में रखकर मय्यत के पास ले जाते हैं और उससे कहते हैं कि ऐ गहरी गोर (कब्र) वाले! यह सवाब तेरे फलां अज़ीज़ या दोस्त ने तुझे भेजा है। कुरआन मजीद के पारे पढ़ने के लिए मस्जिद में रखने का सदका-ए-जारिया है जब तक वो रहेंगे और पढ़े जाएंगे उस रखने वाले और मय्यत को सवाब पहुंचेगा, और कैसा सवाब पहुंचेगा, हर हर्फ(अक्षर) पर दस नेकियां, और सही हदीस में फरमाया:

"मैं नहीं फरमाता अलम एक हर्फ है बल्कि अलिफ अलग हर्फ है, लाम अलग हर्फ है, मीम अलग हर्फ है।"[1]

मय्यत की कब्र पर फूल चढ़ाना मुफीद है, वह जब तक तर है रब्बुल इज़्ज़त की तस्बीह करता है और मय्यत का दिल बहलता है। अगर कोई बत्ती जलाना अगर तिलावत-ए-कुरआन के वक्त ताज़ीम-ए-कुरआन के लिए हो या वहां कुछ लोग बैठे हों उनकी तरवीह (आराम) के लिए हो तो मुस्तहसन (सराहनीय) है। वरना फुजूल और तज़िय-ए-माल (धन की बर्बादी), मय्यत को उससे कुछ फायदा नहीं। कब्र-ए-मुस्लिम पर जो ज़ियारत के लिए जाता है मय्यत उसे देखता है और उसकी बात सुनता है। अगर दुनिया में उसे पहचानता था अब भी पहचानता है कि मेरा फलां अज़ीज़ या दोस्त मेरे पास आया। और अगर नहीं पहचानता था तो इतना जानता है कि एक मुसलमान आया और सवाब रसानी करता है। जुमे को सुपुर्द करना कोई चीज़ नहीं, न गैर-जुमे में मरने वाले को उससे जुमा मिल सके।

हमल (गर्भावस्था) में इंतकाल शहादत है। सही हदीस में फरमाया: "المرأة تموت بجمع شهيد" (जो औरत हमल की वजह से मरे वह शहीद है। त) ख़्वाब बहुत अच्छा है इनशाअल्लाह उनके लिए दलील-ए-मगफिरत (क्षमा का प्रमाण) है। वल्लाहु तआला आलम।

मसअला 196 से 198: अज़ चमन सराए संभल, मुर्सला अहमद खान साहब, 8 जमादी-उल-उला 1337 हिजरी

क्या फरमाते हैं उलमा-ए-दीन इन मसाइल में कि:

---

[1] जामिअत तिर्मिज़ी, बाब मा जाअ फी मन क़रा हर्फन मिनल कुरआन, अमीन कंपनी कुतुबखाना रशीदिया दिल्ली 15/2 [2] मुवत्ता इमाम मालिक, अन-नही अनिल बुका अलल मय्यत, मीर मुहम्मद कुतुबखाना कराची पृ. 216

पृष्ठ 598/948

جلد نہم

فتاویٰ رضویہ

اپنا حال ظاہر کرنا، یہ معاملہ کیسا ہے؟ کوئی دن خواب میں نہیں ملتا۔

الجواب:

اللہ تعالیٰ مرحومہ کو جنت عطا فرمائے اور آپ کو صبرِ جمیل دے۔ لاحول شریف ۶۰ بار پڑھ کر ایک گھونٹ پانی پر دم کرکے پی لیا کیجئے، مساکین کو کھانا کھلانا اور نیک نیت سے خیرات کرنا جس میں نہ محتاج پر احسان رکھا جائے نہ اس کو تکلیف دی جائے، پرندوں کے لیے پانی رکھنا، دانا ڈالنا حتیٰ کہ روٹی دینا، مسکین کو کپڑا دینا، میلاد شریف پڑھوانا، ۔ یہ سب اجر و ثواب کی باتیں ہیں ان کا ثواب میت کو پہنچتا ہے اور وہ اس سے ایسا خوش ہوتا ہے جیسے دنیا میں دوستوں کے ہدیے سے۔ ملائکہ ان ثوابوں کے نور طبق میں رکھ کر میت کے پاس لے جاتے ہیں اور اس سے کہتے ہیں کہ اے گہری گور والے! یہ ثواب تیرے فلاں عزیز یا دوست نے تجھے بھیجا ہے۔ قرآن مجید کے پارے پڑھنے کے لیے مسجد میں رکھنے کا صدقہ جاریہ ہے جب تک وہ رہیں گے اور پڑھے جائیں گے اس رکھنے والے اور میت کو ثواب پہنچے گا، اور کیسا ثواب پہنچے گا، ہر حرف پر دس نیکیاں، اور صحیح حدیث میں فرمایا:

"میں نہیں فرماتا الم ایک حرف ہے بلکہ الف الگ حرف ہے، لام الگ حرف ہے، میم الگ حرف ہے۔"1

میت کی قبر پر پھول چڑھانا مفید ہے، وہ جب تک تر ہے رب العزت کی تسبیح کرتا ہے اور میت کا دل بہلتا ہے اگر کوئی بتی جلانا اگر تلاوتِ قرآن کے وقت تعظیمِ قرآن کے لیے ہو یا وہاں کچھ

لوگ بیٹھے ہوں ان کی ترویح کے لیے ہو تو مستحسن ہے۔ ورنہ فضول اور تضییع مال، میت کو اس سے کچھ فائدہ نہیں۔ قبر مسلم پر جو زیارت کے لیے جاتا ہے میت اسے دیکھتا ہے اور اس کی بات سنتا ہے۔ اگر دنیا میں اسے پہچانتا تھا اب بھی پہچانتا ہے کہ میرا فلاں عزیز یا دوست میرے پاس آیا۔ اور اگر نہیں پہچانتا تھا تو اتنا جانتا ہے کہ ایک مسلمان آیا اور ثواب رسانی کرتا ہے۔ جمعہ کو سپرد کرنا کوئی چیز نہیں، نہ غیر جمعہ میں مرنے والے کو اس سے جمعہ مل سکے۔ حمل میں انتقال شہادت ہے۔ صحیح حدیث میں فرمایا: المرأۃ تموت بجمع شھید ا (عورت جو حمل کی وجہ سے مرے شہید ہے۔ ت) خواب بہت اچھا ہے ان شاء اللہ ان کے لیے دلیلِ مغفرت ہے۔ واللہ تعالیٰ اعلم

مسئلہ ۱۹۶ تا ۱۹۸: از چمن سرائے سنبھل مرسلہ احمد خان صاحب ۸ جمادی الاولیٰ ۱۳۳۷ھ

کیا فرماتے ہیں علمائے دین ان مسائل میں کہ :

---

1 جامع الترمذی باب ماجاء فی من قرأ حرفا من القرآن امین کمپنی کتب خانہ رشیدیہ دہلی ۲/۱۵ 2 موطا امام مالک النہی عن البقاء علی المیت میر محمد کتب خانہ کراچی ص ۲۱۶

Fatawa Rizwiya Volume 9

(1) During the ten days of Muharram al-Haram, is it permissible to place whatever food, sweets, malida, or syrup is available in front, raise one's hands, and after reciting Al-Hamd Sharif (Surah Al-Fatiha), Qul Huwallahu Sharif (Surah Al-Ikhlas), and Durud Sharif, say, "O Allah and His Messenger, I present the reward of this food and whatever I have recited to the pure souls of the two Imams and all the martyrs of the desert of Karbala"? Also, is this food or whatever is for Fatiha only for the needy, or can the wealthy also eat it? What are the conditions and attributes of being "needy" in Sharia? And if a person, while being a Muslim, calls the 'nazar' and 'niyaz' of the elders of the faith haram, and even says that the syrup of the 'sabil' of Imam Hussain (may Allah be pleased with him) is, God forbid, like urine—is such a person a Muslim or not? Is it permissible to pray behind such a person? Should one greet him with Salam or shake hands with such a person or not?

(2) Are Teeja (3rd day), Daswan (10th day), Chehlum (40th day), Shashmahi (6th month), and Barsi (anniversary) permissible or not? Do the souls come on these days or not? Do they have knowledge of their relatives or not? Who has the right to the food of their Fatiha? If the person offering Fatiha is himself needy, is it permissible for him to have the Fatiha offered and then eat it himself and feed it to his children? What words should be used for conveying the reward? If a wealthy person offers Fatiha and sends the reward to the souls of the deceased, will the reward of the food and Fatiha reach that deceased person immediately, or is it considered one act of worship? If food is given to the needy for Fatiha, is the reward reached based on intention or not? If such needy people are not found who fulfill the conditions of being "needy," then to whom should the food be given and where should it be spent? Did the Holy Messenger of Allah (may Allah grant him peace and blessings) and his companions offer Fatiha or not? Did Teeja occur among the companions or not?

(3) Is it permissible or forbidden to place a canopy (shamiana) on the grave of a saint of Allah, or to place sweets near the grave for 'Isal-e-Sawab' (conveying reward), or to light a lamp near the grave, or to perform 'Urs'?

The Answer:

(1) Offering 'niyaz' on sweets etc. for the noble martyrs is undoubtedly a source of reward and blessings, and the ten days of Muharram Sharif are more appropriate for this. As long as it is not a specific vow (manat), it is permissible for the wealthy to eat it as well. There is no prohibition on keeping food in front at the time of Fatiha, but to

consider it necessary or to think that Fatiha cannot happen without it or that the reward will be less is a wrong and false notion. After reciting Fatiha, when the time for 'Isal-e-Sawab' comes, in which a prayer is made: "O my Lord! Reach this reward to so-and-so," at that time hands should be raised as this is the sunnah of prayer. As long as one is reciting the Holy Quran, there is no need to raise hands. Yes, Surah Fatiha Sharif is a prayer in itself, as is Durud Sharif. It is stated in the Hadith: "The best prayer is Alhamdulillah"[1] (The most excellent prayer is Alhamdulillah) and "Qul Huwallahu..."

---

[1] Sunan Ibn Majah, Chapter on the Virtue of the Praisers, H.M. Saeed Company Karachi p. 278; Al-Mustadrak 'ala al-Sahihayn, Book of Prayer, Dar al-Fikr Beirut 1/298.

फ़तावा रज़विया जिल्द नहुम

(1) मुहर्रमुल हराम के दस दिनों में, जो कुछ भी भोजन, मिठाई, मलीदा या शरबत उपलब्ध हो, उसे सामने रखकर, हाथ उठाकर अल्हमद शरीफ़ (सूरह अल-फ़ातिहा), कुल हुवल्लाहु शरीफ़ (सूरह अल-इखलास) और दरूद शरीफ़ पढ़ने के बाद यह कहना कि "ऐ अल्लाह और उसके रसूल, मैं इस भोजन और जो कुछ मैंने पढ़ा है, उसका सवाब इमामैन और कर्बला के मैदान के सभी शहीदों की पाक रूहों को नज़र करता हूँ", क्या यह जायज़ है या नहीं? और क्या यह खाना या जो कुछ फ़ातिहा का है, केवल ज़रूरतमंदों के लिए है, या धनी लोग भी इसे खा सकते हैं? शरीयत में "ज़रूरतमंद" होने की शर्तें और गुण क्या हैं? और यदि कोई व्यक्ति मुसलमान होकर दीन के बुज़ुर्गों की 'नज़र' और 'नियाज़' को हराम कहता है, और यहाँ तक कहता है कि इमाम हुसैन (रज़ियल्लाहु अन्हु) की 'सबील' का शरबत, नऊज़ुबिल्लाह, पेशाब की तरह है—क्या ऐसा कहने वाला मुसलमान है या नहीं? क्या ऐसे व्यक्ति के पीछे नमाज़ पढ़ना जायज़ है? क्या ऐसे व्यक्ति से सलाम या मुसाफ़ा (हाथ मिलाना) करना चाहिए या नहीं?

(2) तीजा, दसवां, चेहलुम, शशमाही और बरसी जायज़ हैं या नहीं? क्या इन दिनों में रूहें आती हैं या नहीं? क्या उन्हें अपने रिश्तेदारों का ज्ञान होता है या नहीं? और उनके फ़ातिहा के खाने पर किसका हक़ है? और यदि फ़ातिहा दिलाने वाला खुद ज़रूरतमंद है, तो क्या उसके लिए फ़ातिहा दिलाकर खुद खाना और अपने बच्चों को खिलाना जायज़ है या नहीं? सवाब पहुँचाने के लिए किन शब्दों का प्रयोग करना चाहिए? और यदि कोई धनी व्यक्ति फ़ातिहा देता है और मृतकों की रूहों को सवाब पहुँचाता है, तो क्या खाने और फ़ातिहा का सवाब तुरंत उस मृतक को पहुँचेगा या यह एक इबादत मानी जाएगी? यदि ज़रूरतमंदों को फ़ातिहा का खाना दिया जाता है, तो क्या नियत पर सवाब पहुँचा या नहीं? यदि ऐसे ज़रूरतमंद न मिलें जिन पर ज़रूरतमंद होने की शर्तें साबित हों, तो फिर खाना किसे दिया जाए और कहाँ खर्च किया जाए? और क्या अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) और हुज़ूर के सहाबा ने फ़ातिहा दी या नहीं? और क्या सहाबा में तीजा होता रहा या नहीं?

(3) अल्लाह के किसी वली की क़ब्र पर शामियाना चढ़ाना या सवाब पहुँचाने के लिए क़ब्र के पास मिठाई रखना या क़ब्र के पास चिराग जलाना या उर्स करना जायज़ है या हराम है?

जवाब:

(1) शहीदे करबला के नाम पर मिठाई आदि की नियाज़ देना निःसंदेह सवाब और बरकतों का कारण है, और मुहर्रम शरीफ़ के दस दिन इसके लिए अधिक उपयुक्त हैं। जब तक वह मन्नत न मानी गई हो, तो धनवानों के लिए भी इसे खाना जायज़ है। फ़ातिहा के समय सामने खाना रखने की मनाही नहीं है, लेकिन इसे ज़रूरी समझना या यह समझना कि इसके बिना फ़ातिहा नहीं हो सकती या सवाब कम मिलेगा, एक ग़लत और बातिल विचार है। फ़ातिहा पढ़कर जब ईसाले-सवाब का समय आता है, जिसमें दुआ की जाती है कि: "ऐ इलाही! यह सवाब फ़लां को पहुँचा", उस समय हाथ उठाना चाहिए क्योंकि यह दुआ की सुन्नत है। जब तक कोई क़ुरान मजीद की तिलावत कर रहा है, हाथ उठाने की ज़रूरत नहीं है। हाँ, सूरह फ़ातिहा शरीफ़ खुद एक दुआ है, वैसे ही दरूद शरीफ़। हदीस में फ़रमाया गया: "अफ़ज़लुल दुआ अल्हम्दुलिल्लाह"[1] (सबसे अफ़ज़ल दुआ अल्हम्दुलिल्लाह है) और "कुल हुवल्लाहु..."

---

[1] सुनन इब्न माजह, हदीस के अध्याय 'फ़ज़लुल हामिदीन', एच.एम. सईद कंपनी कराची पृ. 278; अल-मुस्तदरक अल-सहीहैन, दुआ की किताब, दारुल फ़िक्र बेरूत 1/298.

فتاویٰ رضویہ جلد نہم

(۱) عشرہ محرم الحرام میں کھانے یا شیرینی یا مالیدہ یا شربت جس قدر میسر ہو رو برو رکھ کر ہاتھ اٹھا کر الحمد شریف قل ہو اللہ شریف، درود شریف پڑھ کر یہ کہنا کہ نذر اللہ رسول، میں اس کھانے اور جو کھانے اور جو کلام پڑھا ہے اس کا ثواب بروح پاک جناب امامین و جمیع شہدائے دشت کربلا پہنچانا بخشا ہوں یہ جائز ہے یا نہیں؟ اور یہ کھانا یا جو کچھ فاتحہ کا ہے یہ حق محتاجین ہے یا غنی بھی کھاسکتے ہیں؟ اور شریعت میں شرائط اور صفات محتاج کیا ہیں؟ اور جو شخص مسلمان ہو کر نذر و نیاز بزرگان دین کو حرام بتائے بلکہ یہ کہے کہ شربت سبیل جناب امام حسین عالی مقام کا نعوذ باللہ مثل پیشاب ہے، ایسا کہنے والا مسلمان ہے یا نہیں؟ اور ایسے شخص کے پیچھے نماز پڑھنا جائز ہے یا نہیں؟ اسلام یا مصافحہ ایسے شخص سے کرے یا نہیں؟

(۲) تیجہ، دسواں، چہلم، ششماہی، برسی جائز ہے یا نہیں؟ اور روحیں ان ایام میں آتی ہے یا نہیں؟ اور اپنے عزیزوں کا ان کو علم ہوتا ہے یا نہیں؟ اور کھانا ان کی فاتحہ کا کس کا حق ہے؟ اور اگر فاتحہ دلانے والا خود محتاج ہے تو فاتحہ دلا کر خود کھالے اور بچوں کو کھلائے تو جائز ہے یا نہیں؟ اور الفاظ ثواب رسانی کیا ادا کرے؟ اور اگر غنی فاتحہ دے اور ثواب پہنچائے بروح اموات، تو ثواب کھانے اور فاتحہ کا فوراً اس میت کو پہنچے گا یا ایک عبادت کا؟ اگر محتاجین کو کھانا فاتحہ دے تو نیت پر ثواب پہنچایا نہیں؟ اگر محتاج ایسے نہ ملیں جن پر شرائط محتاج ثابت ہوں تو پھر کھانا کسے دے اور کہاں صرف کرے؟ اور حضرت رسول خدا صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم نے اور حضور کے صحابہ نے فاتحہ دی یا نہیں؟ اور تیجہ صحابہ میں ہوتا رہا یا نہیں؟

(۳) قبر اہل اللہ پر شامیانہ چڑھانا یا شیرینی نزد قبر رکھ کر ایصال ثواب کرنا یا چراغ نزد قبر جلانا یا عرس کرنا جائز ہے یا حرام ہے؟

الجواب:

(۱) شیرینی وغیرہ پر حضرت شہدائے کرام کی نیاز دینا بیشک باعث اجر و برکات ہے اور عشرہ محرم شریف اس کے لیے زیادہ مناسب، اور جبکہ وہ منت مانی ہوئی نہ ہو تو اغنیاء کو بھی اس کا کھانا جائز ہے۔ اور وقت فاتحہ کھانا سامنے رکھنے کی ممانعت نہیں مگر اسے ضروری جاننا یا یہ سمجھنا کہ بے اس کے فاتحہ نہیں ہوسکتی یا ثواب کم ملے گا، غلط و باطل خیال ہے۔ فاتحہ پڑھ کر جب ایصال ثواب کا وقت جس میں دعا کی جاتی ہے کہ الہی ! یہ ثواب فلاں کو پہنچا، اس وقت ہاتھ اٹھانا چاہئے کہ یہ دعا کی سنت ہے۔ جس وقت تک قرآن مجید کی تلاوت کر رہا ہے ہاتھ اٹھانے کی حاجت نہیں۔ ہاں سورہ فاتحہ شریف خود دعا ہے، یوں ہی درود شریف، حدیث میں فرمایا: افضل الدعاء الحمد اللہ ۱ (سب سے افضل دعا الحمد للہ ہے،ت) اور قل ھو اللہ

---

۱ سنن ابن ماجہ باب فضل الحامدین ایچ ایم سعید کمپنی کراچی ص ۲۷۸، المستدرک علی الصحیحین کتاب الدعاء دار الفکر بیروت ۱/۲۹۸

Fatawa Razawiyya Volume Nine

Noble mention is the praise of Allah. And the scholars say: "Every supplication is a repetition, or every remembrance is a supplication," so that too is a prayer. From the very beginning, raising hands while their numbers increase is certainly appropriate. And using the word "bakhshna" (to bestow/forgive) when sending rewards to elders is inappropriate; "bakhshna" is from a superior to an inferior. In the context of conveying reward (Isal-e-Sawab), one should not say "Nazr-e-Allah" (Offering to Allah). Allah, the Exalted, is pure from having rewards offered to Him. Yes, saying "Nazr-e-Rasulullah" (Offering to the Messenger of Allah) is correct. A gift presented to the court of esteemed personalities is called 'Nazr' in common parlance, just as offerings are presented to kings. There is much evidence for offerings to the saints (Awliya) in our Fatawa-e-Africa. And the latest proof is that Shah Waliullah says in Insaan-ul-Ayn fi Mashaikh-ul-Haramayn regarding the state of Sayyid Abdul Rahman Idrisi (may his secret be sanctified):

From the borders of the lands of Islam, offerings are brought for him.[1]	**Offerings are presented to them from Muslim regions. (T)**

One who is not a 'Sahib-e-Nisab' (owner of a minimum taxable amount) is legally called 'needy'. He who calls 'Nazr-o-Niyaz' (votive offerings) forbidden, and regarding the Sharia of 'Niyaz', uses that impure and cursed word [presumably 'Shirk'], he is none other than a Wahhabi. Wahhabis are fundamentally not Muslims, and praying behind them is purely void, and shaking hands with them is forbidden, and greeting them is a sin. (2) The third day (Teeja), tenth day (Daswan), fortieth day (Chehlum), etc., are permissible as long as they are for Allah and given to the poor. The souls of deceased relatives are aware, and their coming or not coming is not necessary. It is better to give the food of 'Fatiha' to the needy; and if one is himself needy, he may eat it himself and feed his wife and children; there is reward in all of it. It is in the Hadith:

مَا اَطْعَمْتَ وَلَدَکَ فَهُوَ لَکَ صَدَقَةٌ وَ مَا اَطْعَمْتَ خَادِمَکَ فَهُوَ لَکَ صَدَقَةٌ وَ مَا اَطْعَمْتَ نَفْسَکَ فَهُوَ لَکَ صَدَقَةٌ 2	**Whatever you feed your children is charity (Sadaqah) for you; whatever you feed your servant is charity for you; and whatever you feed yourself is also charity for you. (T)**

In conveying reward, one should say: "O Allah! Whatever reward You have bestowed upon me, convey it on my behalf to such-and-such person," whether they be rich or poor. If one only gives 'Fatiha', only its reward will reach; if one only gives food, then

its reward; and if both, then both. Conveying reward should not be by intention alone but also by prayer. The question that (if such needy people are not found on whom the Sharia conditions of neediness are proven) is contrary to reality. Which place is it where the needy are not present?

---

[1] Insaan-ul-Ayn fi Mashaikh-ul-Haramayn. [2] Musnad Ahmad bin Hanbal, Hadith of Al-Miqdam bin Ma'dikarib (may Allah be pleased with him), Dar al-Fikr, Beirut, 4/131.

फ़तावा रज़विया जिल्द नहुम

शरीफ़ ज़िक्र अल्लाह की हम्द (प्रशंसा) है। और उलेमा फ़रमाते हैं: "हर दुआ दोहराव है, या हर ज़िक्र दुआ है", तो वह भी दुआ है। इस नीयत से कि उनके बढ़ते समय शुरुआत से ही हाथ उठाना यकीनन सही है। और बुज़ुर्गों को सवाब पहुँचाने में "बख्शने" का शब्द कहना अनुचित है; "बख्शना" बड़े की तरफ से छोटे के लिए होता है। और ईसाले-सवाब में "नज़्र-अल्लाह" नहीं कहना चाहिए, अल्लाह अज़्ज़-व-जल्न इससे पाक है कि सवाब उसे नज़्र किया जाए। हाँ, "नज़्र-ए-रसूलुल्लाह" कहना सही है। सम्मानित हस्तियों की बारगाह में जो तोहफ़ा पेश किया जाता है, उसे आम भाषा में नज़्र कहते हैं, जैसे बादशाहों को नज़्र दी जाती है। औलिया की नज़्र के बहुत से सबूत हमारे "फ़तावा अफ़्रीका" में हैं। और ताज़ा सबूत यह है कि शाह वलीउल्लाह साहिब "इंसानुल ऐन फ़ी मशाइखुल हरमैन" में सैय्यद अब्दुल रहमान इदरीसी (क़ुद्दिस सिर्रहु) के बारे में फ़रमाते हैं:

इस्लाम के क्षेत्रों की सीमाओं से उनके लिए नज़्रें लाई जाती हैं। [1]

मुस्लिम इलाकों से उनके लिए नज़्रें पेश की जाती हैं। (त)

जो साहिब-ए-नसाब (न्यूनतम कर योग्य राशि का मालिक) न हो, उसे शरीअत में 'मुहताज' (ज़रूरतमंद) कहते हैं। जो नज़्र-ओ-नियाज़ को हराम बताए और नियाज़ की शरीअत के बारे में वह नापाक और मलऊन (शापित) शब्द [संभवतः शिर्क] कहे, वह वहाबी के अलावा कोई नहीं होगा। वहाबी असल में मुसलमान नहीं हैं और उनके पीछे नमाज़ बिल्कुल बातिल (अमान्य) है, और उनसे मुसाफ़ा (हाथ मिलाना) हराम है और उन्हें सलाम करना जायज़ नहीं और गुनाह है। (२) तीजा, दसवाँ, चालीसवाँ (चेहलम) वगैरह जायज़ हैं जबकि वे अल्लाह के लिए हों और गरीबों को दिए जाएँ। प्रियजनों की रूहों को खबर होती है और उनका आना या न आना कुछ ज़रूरी नहीं। फ़ातिहा का खाना बेहतर यह है कि गरीबों को दे, और अगर वह खुद ज़रूरतमंद है तो खुद खा ले और अपनी पत्नी और बच्चों को खिलाए, इन सब में सवाब है। हदीस में है:

مَا اَطْعَمْتَ وَلَدَکَ فَهُوَ لَکَ صَدَقَةٌ وَ مَا اَطْعَمْتَ خَادِمَکَ فَهُوَ لَکَ صَدَقَةٌ وَ مَا اَطْعَمْتَ نَفْسَکَ فَهُوَ لَکَ صَدَقَةٌ [2]

जो कुछ तू अपनी औलाद को खिलाए वह तेरे लिए सदक़ा है, और जो कुछ तू अपने खादिम को खिलाए वह तेरे लिए सदक़ा है, और जो कुछ तू अपने नफ़्स (स्वयं) को खिलाए वह भी तेरे लिए सदक़ा है। (त)

सवाब पहुँचाते समय कहे कि: "ए अल्लाह! जो सवाब तूने मुझे अता फ़रमाया, वह मेरी तरफ से फुलाँ (अमुक) व्यक्ति को पहुँचा दे," चाहे वह अमीर हो या फ़कीर। अगर सिर्फ फ़ातिहा देगा तो उसी का सवाब पहुँचेगा और सिर्फ खाना देगा तो उसी का, और दोनों तो दोनों का। सवाब पहुँचाना सिर्फ नीयत से ही न हो बल्कि उसकी दुआ भी हो। यह सवाल कि (अगर ऐसे मुहताज न मिलें जिन पर शरीअत की मुहताजी की शर्तें साबित हों) हकीकत के खिलाफ है। वह कौन सी जगह है जहाँ मुहताज नहीं हैं?

---

[1] इंसानुल ऐन फ़ी मशाइखुल हरमैन। [2] मसनद अहमद बिन हंबल, हदीस अल-मिक़दाम बिन मा'दीकरब (रज़ियल्लाहु अन्हु), दारुल फ़िक्र, बेरूत, ४ / १३१.

شریف ذکر حمد الٰہی ہے۔ اور علماء فرماتے ہیں: کُلُّ دُعَاءٍ کَرَارٌ اَو کُلُّ ذِکْرٍ دُعَاء، تو وہ بھی دعا ہے۔ اس نیت سے ان کے بڑھتے وقت ابتداء ہی سے ہاتھ اٹھائے تو ضرور بجا ہے اور اکابر کو ثواب رسانی میں بخشنے کا لفظ کہنا بیجا ہے بخشا بڑے سے چھوٹے کے لیے ہوتا ہے اور ایصالِ ثواب میں نذر اللہ نہ کہنا چاہئے، اللہ عزوجل اس سے پاک ہے کہ ثواب اسے نذر کیا جائے، ہاں نذرِ رسول اللہ کہنا صحیح ہے۔ معظمین کی سرکار میں جو ہدیہ حاضر کیا جاتا ہے اسے عرف میں نذر کہتے ہیں، جیسے بادشاہوں کو نذر دی جاتی ہے، اولیاء کی نذر کے بہت ثبوت ہمارے فتاوٰی افریقہ میں ہیں۔ اور تازہ ثبوت یہ ہے کہ شاہ ولی اللہ صاحب انسان العین فی مشائخ الحرمین میں حال سید عبدالرحمن ادریسی قدس سرہ، میں فرماتے ہیں:

از اطراف دیار اسلام نذور برائے وے می مسلمان علاقوں سے ان کے لئے نذریں پیش کی جاتی آورند۔ 1 ہیں (ت)

جو مالک نصاب نہ ہو شرعاً اسے محتاج کہتے ہیں، جو نذر و نیاز کو حرام بتائے اور شریعتِ نیاز کی نسبت وہ ناپاک ملعون لفظ وہ نہ ہوگا مگر وہابی، اور وہابیہ اصلاً مسلمان نہیں اور ان کے پیچھے نماز باطل محض، اور اس سے مصافحہ حرام اور اسے سلام کرنا جائز و گناہ۔ (۲) تیجہ، دسواں، چہلم وغیرہ جائز ہیں جبکہ اللہ کے لیے اور مساکین کو دیں، اپنے عزیزوں کا ارواح کو علم ہوتا ہے اور کا آنا نہ آنا کچھ ضرور نہیں، فاتحہ کا کھانا بہتر یہ ہے کہ مساکین کو دے، اور اگر خود محتاج ہے تو آپ کھالے اپنے بی بی بچوں کو کھلائے سب اجر ہے۔ حدیث میں ہے:

مَا اَطْعَمْتَ وَلَدَکَ فَھُوَ لَکَ صَدَقَۃٌ وَ مَا اَطْعَمْتَ خَادِمَکَ فَھُوَ لَکَ صَدَقَۃٌ وَ مَا اَطْعَمْتَ نَفْسَکَ فَھُوَ لَکَ صَدَقَۃٌ 2

جو کچھ تو اپنی اولاد کو کھلائے وہ تیرے لیے صدقہ ہے اور جو کچھ تو اپنے خادم کو کھلائے وہ تیرے لیے صدقہ ہے اور جو کچھ تو اپنے نفس کو کھلائے وہ بھی تیرے لیے صدقہ ہے۔ (ت)

ثواب رسانی میں کہے کہ الہی ! جو ثواب تو نے مجھ کو عطا فرمایا وہ میری طرف سے فلاں شخص کو پہنچا دے غنی ہو یا فقیر ہو، اگر صرف فاتحہ دے گا تو اسی کا ثواب پہنچے گا اور صرف کھانا دے گا تو اسی کا، اور دونوں تو دونوں کا، اور ثواب پہنچانا صرف نیت ہی سے نہ ہو بلکہ اس کی دعا بھی ہو۔ یہ سوال کہ (اگر محتاج ایسے نہ ملیں جن پر شرائطِ محتاج شریعت ثابت ہوں) خلافِ واقع ہے۔ وہ کون سی جگہ ہے جہاں محتاج نہیں۔

---

1 انسان العین فی مشائخ الحرمین 2 مسند احمد بن حنبل حدیث المقدام بن معدیکرب رضی اللہ عنہ دارالفکر بیروت ۴ / ۱۳۱

Fatawa Razvia Volume 9

The Holy Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) commanded the sending of rewards (Isal-e-Sawab), the companions practiced it, and there has been a consensus among Muslims on this to this day. Customary specifications, provided they are not considered religiously obligatory, have been made permissible by God. It is in the Hadith: "Fasting on Saturday is neither more beneficial nor harmful for you." (T)

(3) Erecting a canopy at the shrines of saints for the benefit of visitors, similarly lighting lamps for their benefit, and 'Urs' celebrations that are free from religiously forbidden acts, and sending rewards through sweets - all these are permissible. It is not necessary to keep them near the grave, nor is it a crime as long as it's not considered mandatory. The details about lamps are in our treatise "Bariq al-Manar bi-Shumu' al-Mazar". And Allah Almighty knows best.

Issue 199: From Aligarh city, Madar Darwaza locality, asked by Ahmed Saudagar Paracha Banarsi, 4 Rabi' al-Awwal 1332 AH. Does the reward reach a deceased person if someone recites the Holy Quran or Durood Sharif, or feeds the poor, or donates clothes on their behalf? In what form does it reach the deceased? Does the deceased know that such-and-such person or relative has sent this? If they do know, then in what way? That is all.

The Answer: The reward sent to a deceased Muslim reaches them, and they are more happy with it than a living person is upon receiving a gift. They know that my such-and-such relative, friend, or fellow Muslim has sent it. All these subjects are mentioned in the Hadiths; the great Imam Jalaluddin al-Suyuti has explained them in 'Sharh as-Sudur'. And Allah Almighty knows best.

Issue 200: From Aligarh city, Madar Darwaza locality, asked by Ahmed Saudagar Paracha Banarsi, 4 Rabi' al-Awwal 1332 AH. Zaid recites Surah Yaseen three times, Surah Fatiha once, Surah Ikhlas three times, Durood Sharif one hundred times, and whatever else possible, and gifts the reward, and prays for the forgiveness of the deceased. Does it reach them or not? Is this prayer and recitation sufficient for their forgiveness? If not, please write any action or prayer according to the Noble Sharia so that its recitation is sufficient for the servant's forgiveness. That is all.

The Answer: The reward reaches, and forgiveness is in the power of God. Recite Surah Ikhlas ("Qul huwallahu") eleven times and include Surah al-Mulk.

1. Musnad Ahmad bin Hanbal, Hadith of Umm Ammara (may Allah be pleased with her), Dar al-Fikr, Beirut, 6/368. Page 601 of 948

हुज़ूर (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने ईसाल-ए-सवाब (पुण्य पहुँचाने) का आदेश भी दिया, और सहाबा ने ईसाल-ए-सवाब किया, और आज तक के मुसलमानों का इस पर इजमा (सहमति) रहा है। प्रथागत विनिर्देश, जब तक कि उन्हें धार्मिक रूप से अनिवार्य न माना जाए, खुदा ने उन्हें जायज़ बनाया है। हदीस में है: शनिवार का रोज़ा न तुम्हारे लिए अधिक लाभदायक है और न ही हानिकारक। (त)

(३) आगंतुकों के लाभ के लिए औलिया (संतों) के मज़ार पर शामियाना लगाना, उसी तरह उनके लाभ के लिए चिराग जलाना, और उर्स जो शरीयत में वर्जित कार्यों से मुक्त हो, और मिठाई पर ईसाल-ए-सवाब - ये सब जायज़ हैं। इसे कब्र के पास रखने की आवश्यकता नहीं है, और इसमें कोई अपराध नहीं है जब तक कि इसे अनिवार्य न समझा जाए। चिराग के बारे में विस्तृत जानकारी हमारे रिसाले "बरीकुल मनार बिशुमुल मज़ार" में है। और अल्लाह तआला बेहतर जानता है।

मसला १९९: अलीगढ़ शहर, मदारी दरवाज़ा मोहल्ला, मुस्तौल अहमद सौदागर पारचा बनारसी, ४ रबी उल अव्वल १३३२ हिजरी। मुर्दे को कुरान मजीद या दरूद शरीफ़ पढ़कर, या गरीबों को खाना खिलाकर, या कपड़े दान करके जो सवाब (पुण्य) पहुँचाया जाता है, क्या वह उसे पहुँचता है या नहीं? और वह किस रूप में पहुँचता है? क्या मुर्दे को पता चलता है कि यह उसके फलां व्यक्ति या रिश्तेदार ने भेजा है? यदि पता चलता है, तो किस तरह से? बस।

जवाब: मुस्लिम मृतक को जो सवाब पहुँचाया जाता है वह उसे पहुँचता है, और वह उससे कहीं अधिक खुश होता है जैसे जीवित अवस्था में उपहार मिलने पर होता है। उसे पता चलता है कि मेरे फलां रिश्तेदार या दोस्त या मुसलमान ने इसे भेजा है। ये सभी विषय हदीसों में आए हैं; महान इमाम जलालुद्दीन सुयूती ने उन्हें 'शरह उस-सुदूर' में बयान किया है। और अल्लाह तआला बेहतर जानता है।

मसला २००: अलीगढ़ शहर, मदारी दरवाज़ा मोहल्ला, मुस्तौल अहमद सौदागर पारचा बनारसी, ४ रबी उल अव्वल १३३२ हिजरी। ज़ैद तीन बार यासीन शरीफ़, एक बार सूरह फातिहा, तीन बार सूरह इखलास, सौ बार दरूद शरीफ़ और इसके अलावा जो कुछ हो सके पढ़कर बख्शता है और मृतक की मग़फ़िरत (क्षमा) के लिए दुआ करता है। क्या यह उसे पहुँचता है या नहीं? और क्या यह दुआ

और इसका पढ़ना उसकी मग़फ़िरत के लिए पर्याप्त है? यदि पर्याप्त नहीं है, तो शरीयत के अनुसार कोई कार्य या दुआ लिखें ताकि उसका पढ़ना बंदे की मग़फ़िरत के लिए काफी हो। बस।

जवाब: सवाब पहुँचता है, और मग़फ़िरत खुदा के हाथ में है। ग्यारह बार "कुल हुवल्लाहु शरीफ़" (सूरह इखलास) पढ़ें और सूरह मुल्क भी शामिल करें।

1. मुस्नद अहमद बिन हंबल, हदीस उम्म अम्मारा (रज़ियल्लाहु अन्हा), दार अल-फ़िक्र बेरुत, ३६८/६ पृष्ठ ६०१ / ९४८

حضور صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم نے ایصالِ ثواب کے لیے حکم بھی دیا، اور صحابہ نے ایصالِ ثواب کیا، اور آج تک کے مسلمانوں کا اس پر اجماع رہا، تخصیصاتِ عرفیہ جب کہ لازم شرعی نہ سمجھی جائیں خدا نے مباح کی ہیں۔ حدیث میں ہے: صوم یوم السبت لالك ولا علیک ۱ (شنبہ کا روزہ نہ تیرے لیے زیادہ نافع نہ کچھ مضر۔ ت)

(۳) مزارِ اولیاء پر نفع رسانیِ زائرین حاضرین کے لیے شامیانہ کھڑا کرنا، یونہی ان کے نفع کو چراغ جلانا، اور عرس کہ منہیاتِ شرعیہ سے خالی ہو اور شیرینی پر ایصالِ ثواب۔ یہ سب جائز ہیں، اور نزد قبر رکھنے کی ضرورت نہیں، نہ اس میں جرم جبکہ لازم نہ جانے، چراغ کی تفصیل ہمارے رسالہ "بریق المنار بشموع المزار" میں ہے۔ واللہ تعالٰی اعلم

مسئلہ ۱۹۹: از شہر علی گڑھ محلہ مدار دروازہ مسئولہ احمد سوداگر پارچہ بنارسی ۴ ربیع الاول ۱۳۳۲ھ مردہ کو جو پڑھ کر کلامِ مجید یا درود شریف یا کھانا مساکین کو کھلائیں یا کپڑا خیرات کریں تو اس کا ثواب مردہ کو پہنچتا ہے یا نہیں اور وہ کس صورت میں مردہ کو پہنچتا ہے؟ اور مردہ کو معلوم ہوتا ہے کہ یہ اس کے فلاں شخص یا عزیز نے بھیجا ہے یا نہیں؟ معلوم ہوتا ہے اگر معلوم ہوتا ہے تو کس طریقہ سے؟ فقط

الجواب: مسلمان میت کو جو ثواب پہنچایا جائے اسے پہنچتا ہے اور اس سے زیادہ خوش ہوتا ہے جیسے حیات میں تحفہ بھیجنے سے اسے معلوم ہوتا ہے کہ میرے فلاں عزیز یا دوست یا مسلمان نے بھیجا ہے۔ یہ سب مضامین احادیث میں وارد ہیں بینھا الامام الجلیل الجلال السیوطی فی شرح الصدور (ان کو امام جلیل الدین سیوطی نے شرح الصدور میں بیان فرمایا ہے۔ ت) واللہ تعالٰی اعلم

مسئلہ ۲۰۰: از شہر علی گڑھ محلہ مدار دروازہ مسئولہ احمد سوداگر پارچہ بنارسی ۴ ربیع الاول ۱۳۳۲ھ زید تین مرتبہ یس شریف اور ایک مرتبہ سورہ فاتحہ، تین مرتبہ سورہ اخلاص اور ایک سومرتبہ درود شریف اور اس کے علاوہ جو کچھ ہوسکتا ہے پڑھ کر بخشتا ہے اور دعا اس کے واسطے مغفرت کے کرتا ہے وہ اس کو پہنچتا ہے یا نہیں؟ اور یہ دعا اور اس کا پڑھنا اس کی مغفرت کو کافی ہے یا نہیں؟ اگر کافی نہیں ہے تو موافقِ شرع شریف کے کوئی عمل یا دعا تحریر فرمائے تاکہ اس کے پڑھنے سے بندہ کے مغفرت کو کافی ہو۔ فقط

الجواب: ثواب پہنچتا ہے اور مغفرت باختیارِ خدا ہے، قل ہو اللہ شریف گیارہ بار کرے اور سورہ ملک شامل

۱ مسند احمد بن حنبل حدیث امِ عمارہ رضی اللہ عنہا دار الفکر بیروت ۳۶۸/۶ Page 601 of 948

Fatawa Razawiya Volume 9

...that it is specifically a great elixir (Aksir-e-Azam) for protection from the punishment of the grave. Its name is 'Waqi'ah Mani'ah Munji'ah' (The event that prevents, the event that saves). Protecting, warding off punishment, giving salvation. And Allah Almighty knows best.

Problem 201 to 204: From Faridpur Dispensary, Post Office Khas Station Pitamberpur, District Bareilly, asked by Azeemullah Compounder, 7 Ramadan 1339 AH. (1) How should Zaid perform Giyarween Sharif? Should he intend or think in his heart that "I am preparing this food for Allah Almighty, and whatever reward is obtained should reach the master of Giyarween," or should he do it with the thought and intention that "I am preparing this food for the master of Giyarween Sharif, he will be happy and pleased with me and will pray to Allah Almighty for me or give me a reward for it"? Is it permissible or impermissible in this way? (2) In what way is giving Fateha permissible? Is it permissible to pray over the food? Is it permissible or impermissible to give Fateha on the food that Zaid has to give Fateha on after consuming it, i.e., after tasting the food? (3) A person brought sugar candies (batasas) to Zaid for three places, saying, "Perform Fateha on one in the name of Allah and the Prophet, on the second for Yusuf (peace be upon him), and on the third for the master of the locality." Is it permissible to eat those sugar candies after Fateha or not? (4) Is it permissible to make and drink Sherbet (juice) in the name of Imam Hussain (may Allah be pleased with him)? And if it is permissible, in what way should it be made and drunk, and what should be the intention?

The Answer: (1) These are not two ways but rather one and the same way. The meaning of it being for Hazrat Ghaus-e-Pak (may Allah be pleased with him) is not that the food itself is for him, but rather it is definitely intended for reward (Isal-e-Sawab), seeking his pleasure, and desiring good recompense and pious prayers from him. None of these things are prohibited by Sharia. (2) Fateha over food is permissible, both before eating and after. Giving it before is haste in conveying the reward, and haste in doing good is a good thing. (3) Fateha means conveying reward (Isal-e-Sawab). And performing Fateha in the name of Allah Almighty is meaningless; He is pure and exalted beyond reward. As for these three separate Fatehas, why would they make the sugar candies impermissible? (4) If the intention is to convey reward (Isal-e-Sawab) and there is no involvement of 'Yahu' etc., then there is no doubt in its permissibility. Make Sherbet and pray, "O Allah! This Sherbet is for the comfort of the soul of Hazrat Imam. Reach its reward to him and..."

फ़तावा रज़विया खंड 9

...कि वह विशेष रूप से कब्र के अज़ाब से बचाने के लिए अक्सीर-ए-आजम है। इसका नाम वाक़िया मानिया मुन्जिया है। हिफ़ाज़त करने वाली, अज़ाब टालने वाली, निजात देने वाली। और अल्लाह तआला ही बेहतर जानता है।

मसला 201 से 204: शिफ़ाखाना फ़रीदपुर, डाकखाना खास स्टेशन पितंबरपुर, ज़िला बरेली से, मुस्तौ़ला अज़ीम उल्लाह कंपाउंडर, 7 रमज़ान 1339 हिजरी। (1) ज़ैद को ग्यारहवीं शरीफ़ किस तरीके से करनी चाहिए? क्या उसे दिल में यह नीयत या ख्याल करना चाहिए या समझना चाहिए कि "यह खाना अल्लाह तआला के लिए करता हूँ, और जो कुछ सवाब मिले वह सवाब ग्यारहवीं वाले मियाँ साहब को पहुँचे", या इस ख्याल और नीयत से करे कि "यह खाना मैं ग्यारहवीं शरीफ़ वाले मियाँ साहब के लिए करता हूँ, वह मुझसे खुश और राज़ी होंगे और अल्लाह तआला से मेरे लिए दुआ करेंगे या मुझे इसका बदला देंगे"? इस तरीके से जायज़ है या ना-जायज़? (2) फ़ातिहा देना किस तरीके से जायज़ है, खाने के ऊपर से दुआ करना जायज़ है या नहीं? जिस खाने पर ज़ैद को फ़ातिहा देना है, उसे खाने के बाद यानी खाना चखने के बाद फ़ातिहा देना जायज़ है या ना-जायज़? (3) ज़ैद के पास एक शख्स तीन जगह बताशे लाया कि "एक पर अल्लाह और रसूल के नाम पर फ़ातिहा दे दो, दूसरी जगह यूसुफ़ अलैहिस्सलाम की और तीसरी जगह मोहल्ला मियाँ साहब की।" फ़ातिहा के बाद उन बताशों को खाना जायज़ है या नहीं? (4) इमाम हुसैन रज़ियल्लाहु अन्हु के नाम का शरबत करना और पीना जायज़ है या नहीं? और अगर जायज़ है तो किस तरीके से करना और पीना चाहिए और क्या नीयत होनी चाहिए?

जवाब: (1) ये दो तरीके नहीं बल्कि एक ही तरीका है। हुज़ूर गौस-ए-पाक रज़ियल्लाहु अन्हु के लिए होने के ये मानी नहीं कि खुद यह खाना हुज़ूर के लिए है, बल्कि यकीनन सवाब ही मुराद है और उनकी रज़ा की तलाश और उनसे अच्छे बदले और नेक दुआ की तलब, इनमें से कोई बात शरीयत में मना नहीं है। (2) खाने पर फ़ातिहा जायज़ है, खाने से पहले भी और बाद में भी। और पहले देने में ईसाल-ए-सवाब में जल्दी है और नेकी में जल्दी करना भलाई है। (3) फ़ातिहा यानी ईसाल-ए-सवाब है। और अल्लाह अज़्ज़वजल के नाम की फ़ातिहा होना बेमानी है, वह सवाब से पाक और बेनयाज़ है। बाकी इन तीन अलग-अलग फ़ातिहा होने ने बताशों को क्यों ना-जायज़ कर दिया? (4) नीयत ईसाल-ए-सवाब की हो और 'याहु' वगैरह का दखल न हो, तो इसके जायज़ होने में कोई शक नहीं। शरबत

बनाएँ और अर्ज करें कि "ऐ अल्लाह! यह शरबत हज़रत इमाम की रूह की राहत के लिए है। इसका सवाब उन्हें पहुँचा और..."

पेज 602 / 948

کرے کہ وہ بالخصوص عذاب قبر سے بچانے کو اکسیر اعظم ہے۔ اس کا نام واقعہ مانعہ منجیہ ہے۔ حفاظت کرنے والی، عذاب دفع کرنے والی، نجات دینے والی۔ واللہ تعالٰی اعلم

مسئلہ ۲۰۱تا ۲۰۴: از شفا خانہ فرید پور، ڈاکخانہ خاص اسٹیشن پتمبر پور ضلع بریلی مسئولہ عظیم اللہ کمپاؤنڈر ۷ رمضان ۱۳۳۹ھ (۱) زید کو گیارہویں شریف کس طریقے سے کرنی چاہئے؟ آیا اس کو دل میں یہ نیت یا خیال کرنا چاہئے یا سمجھنا چاہئے کہ یہ کھانا اللہ تعالٰی کے لیے کرتا ہوں، اور جو کچھ ثواب ملے وہ ثواب گیارہویں والے میاں صاحب کو پہنچے، یا اس خیال اور نیت سے کرے کہ یہ کھانا میں گیارہویں شریف والے میاں صاحب کو کرتا ہوں وہ مجھ سے خوش اور راضی ہوں گے اور اللہ تعالٰی سے دعا کریں گے یا مجھ کو اس کا بدلہ دیں گے، اس طریقہ سے جائز ہے یا نا جائز؟ (۲) فاتحہ دینا کس طریقہ سے جائز ہے، کھانے کے اوپر سے دعا کریں گے جائز ہے یا نہیں؟ جس کھانے پر زید کو فاتحہ دینا ہے اس کو تناول کرنے کے بعد یعنی کھانا چکنے کے بعد فاتحہ دینا جائز ہے یا نا جائز؟ (۳) زید کے پاس ایک شخص تین جگہ بتا سے لایا کہ ایک پر اللہ رسول کے نام پر فاتحہ دے دو، دوسری جگہ یوسف علیہ الصلوٰۃ والسلام کی تیسری جگہ محلہ میاں صاحب کی بعد فاتحہ کے ان بتا سوں کو کھانا جائز ہے یا نہیں؟ (۴) امام حسین رضی اللہ تعالٰی عنہ کے نام کا شربت کرنا اور پینا جائز ہے یا نہیں؟ اور اگر جائز ہے تو کس طریقہ سے کرنا اور پینا چاہئے اور کیا نیت ہونا چاہئے؟

الجواب: (۱) یہ دو طریقے نہیں بلکہ ایک ہی طریقہ ہے۔ حضور غوث پاک رضی اللہ تعالٰی عنہ کے لیے ہونے کے یہ معنی نہیں کہ خود یہ کھانا حضور کے واسطے ہے، بلکہ قطعاً ثواب ہی مراد اور ان کی رضا جوئی اور ان سے حسن جزا اور نیک دعا کی طلب، ان میں سے کوئی بات شرعاً

ممنوع نہیں۔ (۲) کھانے پر فاتحہ جائز ہے، قبل کھانے کے بھی اور بعد بھی، اور قبل دینے میں ایصال ثواب میں تعجیل ہے اور تعجیل خیر خیر ہے۔ (۳) فاتحہ یعنی ایصال ثواب ہے۔ اور اللہ عزوجل کے نام کی فاتحہ ہونا بے معنی ہے، وہ ثواب سے پاک منزہ ہے۔ باقی یہ تین متفرق فاتحہ ہونے نے بتا سوں کو کیوں ناجائز کر دیا۔ (۴) نیت ایصال ثواب کی ہو اور یا و وغیرہ کو دخل نہ ہو، اس کے جواز میں کوئی شبہ نہیں، شربت کریں اور عرض کریں کہ الٰہی! یہ شربت تروحِ روح حضرت امام کے لیے کیا ہے۔ اس کا ثواب انھیں پہنچا اور

Fatawa Rizvia - Volume 9

...reading Fatiha etc. with it is even better, then serve it to Muslims and avoid causing distress and annoyance. And Allah the Almighty knows best.

Problem 205: From Sasuwan, Badaun district. Inquired by Sayyid Parwarish Ali Sahib, 1st Dhu al-Qi'dah 1339 AH. Question: What do the scholars of religion say regarding this matter: A person in a graveyard recites Surah Al-Ikhlas, Al-Fatiha, Al-Mu'awwidhatayn, etc., raises his hands and prays: "O Allah! Reach or cause to reach the reward of these verses to the holy spirits of the Holy Prophet (peace and blessings of Allah be upon him), the Companions, the Successors, the saints of the community, Adam (peace be upon him), and all the Muslims who have died until now and those buried here." Please provide correction/guidance on this.

The Answer: It is more appropriate to add this much: "Reach it to the souls of all the Muslim men and women present now and all those who will come until the Day of Resurrection." He will receive a reward equal to the count of all believers, male and female, from the first to the last. And Allah the Almighty knows best.

Problem 206: From Kanpur, Bujar Khana neighborhood, Rangiyan Mosque, sent by Maulvi Abdur Rahman Habshani, student at Madrasa Faiz-e-Aam, 23rd Rabi' al-Awwal Sharif, 1312 AH. Question: What is your answer, O scholars, may Allah the Almighty have mercy on you? (T: What is your answer in this matter - Is it permissible to bestow Fatiha by taking the name of the deceased or not?)

The Answer: Yes. And we have researched this in *Al-Bariqah al-Shariqah 'ala Mariqah al-Mashariqah*. In Mulla Ali al-Qari's *Al-Maslak al-Mutaqassit*, and it is also quoted from it in *Radd al-Muhtar*, that one should recite Surah al-Fatiha and Surah al-Ikhlas seven times or three times, as much as is possible, then say: "O Allah! Reach the reward of what we have recited to so-and-so or to them all." (Summary). It is also stated in *Shami* that our scholars have explicitly mentioned in the chapter on Hajj on behalf of another that a person can bestow the reward of his deed to another.

1 *Al-Maslak al-Mutaqassit* in *Al-Mansak al-Mutaqassit* with *Irshad al-Sari*, section on the recommendation of visiting the people of the prayer place, Dar al-Kitab al-Arabiya, Beirut, p. 434.

Page 603 of 948

फतावा रज़विया - जिल्द नौ (९)

...साथ में फातिहा वगैरा पढ़ें तो और अफजल है, फिर मुसलमानों को पिलाएं और एहसान जताने व तकलीफ देने से बचें। वल्लाह तआला आलम।

मसअला २०५: ससवान ज़िला बदायूं से। सायल सैय्यद परवरिश अली साहब, १ ज़िलकादा १३३९ हिजरी। सवाल: क्या फरमाते हैं उलमा-ए-दीन इस मसअले में कि कब्रस्तान में एक शख्स सूरह इखलास, फातिहा और मुअवितैन (कुल अऊज़ु) वगैरा पढ़कर हाथ उठाकर दुआ करता है: या अल्लाह! इन आयात का सवाब हज़रत मोहम्मद सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम की मुक़द्दस रूह, सहाबा, ताबिईन, औलिया-ए-उम्मत, आदम अलैहिस्सलाम और उस वक्त तक जितने मुसलमान मरे हैं और जो यहाँ दफन हैं, उन सब की अरवाह (रूहों) को पहुँचा या पहुँचा दे। इस पर इस्लाह फरमाई जाए।

अल-जवाब: इसमें इतना और इज़ाफा (बढ़ाना) करना ज़्यादा मुनासिब है कि "जितने मुसलमान मर्द और औरत अब मौजूद हैं और जितने क़यामत तक आने वाले हैं, उन सब की रूह को पहुँचा दे।" उसे तमाम मोमिनीन व मोमिनात अव्वलीन व आख़िरीन सब की गिनती के बराबर सवाब मिलेगा। वल्लाह तआला आलम।

मसअला २०६: कानपुर मोहल्ला बुजड़ खाना, मस्जिद रंगियाँ से। मुरसला (भेजने वाले) मौलवी अब्दुर रहमान हब्शानी, तालिब-ए-इल्म मदरसा फैज़-ए-आम, २३ रबी-उल-अव्वल शरीफ १३१२ हिजरी। सवाल: मा जवादुकुम अय्युहल उलमा-उ रहिमकुमुल्लाह तआला (ऐ उलमा-ए-किराम! रहिमकुमुल्लाह, तुम्हारा क्या जवाब है)। इस मसअले में कि मुर्दे का नाम लेकर फातिहा बख्श देना जायज़ है या नहीं?

अल-जवाब: हाँ। और हमने इसकी तहकीक 'अल-बारेकतुश शारिक़ह अला मारिक़तिल मशारिक़ह' में की है। मुल्ला अली कारी की 'अल-मसलकुल मुतक़स्सित' में है और उसके हवाले से 'रद्दुल मुहतार' में भी नक़्ल है कि सूरह फातिहा और सूरह इखलास सात बार या तीन बार जिस कदर मुयस्सर (आसान) हो पढ़े, फिर यह कहे कि ऐ अल्लाह! हमने जो पढ़ा उसका सवाब फलां को या उन सबको पहुँचा दे। (खुलासा)। शामी ही में यह भी है कि हमारे उलमा ने 'बाबुल हज्ज अनिल गैर' (दूसरे की तरफ से हज के बयान) में वज़ाहत फरमाई है कि इंसान अपने अमल का सवाब दूसरे के लिए कर सकता है।

1 अल-मसलकुल मुतक़स्सित... दारुल किताबुल अरबीया बेरूत, सफा ४३४।

पेज ६०३/९४८

ساتھ فاتحہ وغیرہ پڑھیں تو اور افضل، پھر مسلمانوں کو پلائیں اور من و اذی سے بچیں۔ واللہ تعالٰی اعلم مسئلہ ۲۰۵: از سسوان ضلع بدایوں مسئولہ سید پرورش علی صاحب یکم ذی القعدہ ۱۳۳۹ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ مقابر میں ایک شخص سورہ اخلاص وفاتحہ ومعوذتین وغیرہ پڑھ کر ہاتھ اٹھا کر دعا کرتا ہے: یا اللہ! ان آیات کا ثواب مقدس حضرت صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم اور صحابہ تابعین اور اولیائے امت اور آدم علیہ الصلوۃ والسلام سے اس وقت تک جو مسلمان مرے ہیں اور جو یہاں مدفون ہیں سب کی ارواح کو پہنچے یا پہنچا دے، اس کی اصلاح فرمائی جائے۔

الجواب: اس میں اتنا اور اضافہ کرنا انسب ہے کہ جتنے مسلمان مرد و عورت اب موجود ہیں اور جتنے قیامت تک آنے والے ہیں، ان سب کی روح کو پہنچا دے اسے تمام مومنین و مومنات اولین و آخرین سب کی گنتی کے برابر ثواب ملے گا۔ واللہ تعالٰی اعلم مسئلہ ۲۰۶: از کانپور محلہ بوجڑ خانہ مسجد رنگیاں مرسلہ مولوی عبدالرحمن حبشانی طالبعلم مدرسہ فیض عام ۲۳ ربیع الاول شریف ۱۳۱۲ھ ماجو ابکم ایھا العلماء رحمکم اللہ تعالٰی (اے علماء کرام رحمکم اللہ تعالٰی! تمہارا کیا جواب ہے۔ ت) اس مسئلہ میں کہ مُردہ کا نام لے کر فاتحہ بخش دینا جائز ہے یا نہیں؟

الجواب: ہاں۔ وقد حققناہ في البارقة الشارقة علی مارقة المشارقہ | اور ہم نے اس کی تحقیق البارقۃ الشارقۃ علی مارقۃ المشارقۃ میں وعنہ نقل في ردالمحتار یقرأ مایتسر لہ من الفاتحة | سے ردالمحتار میں بھی نقل ہے کہ سورہ فاتحہ اور سورہ اخلاص والاخلاص سبعاً او ثلثاً ثم یقول اللھم اوصل ثواب | سات بار یا تین بار جس قدر میسر ہو پڑھے، پھر یہ کہے کہ اے ماقرأناہ الی فلان او الیھم 1 اہ ملخصاً وفي الشامیة | اللہ! ہم نے جو پڑھا اس کا ثواب فلاں کو یا ان سب کو پہنچا دے ایضا صرح

علماؤنا في باب الحج عن الغير بان | اھ ملخصاً۔ شامی ہی میں یہ بھی ہے کہ ہمارے علماء نے باب الحج للانسان ان یجعل ثواب عملہ لغیرہ | عن الغیر میں صراحت فرمائی ہے

1 المسلک المتقسط في المنسک المتقسط مع ارشاد الساری فصل یستحب زیارۃ اھل المصلی دار الکتاب العربیہ بیروت ص ۴۳۴

Fatawa Razawiyya Volume 9

[Boxed Text] Prayer, fasting, charity, or other than that, as mentioned in Al-Hidayah[1]. | A person can dedicate the reward of their actions to another, whether it be prayer, fasting, charity, or something else. This is also stated in Al-Hidayah. And Allah knows best. (T)

Case 706 to 709: From Rae Bareli, Madrasa Rahmaniya, sent by Hafiz Niaz Hussain Sahib, 17 Shaban 1337 AH. What do the scholars of religion say regarding these matters: (1) At the time of conveying the reward (Isal-e-Sawab), is it necessary to say "so-and-so son of so-and-so" or is just saying their name sufficient? If mentioning parentage is necessary and it is unknown, what method should be adopted for conveying the reward? (2) On the day of death, food sent to the deceased's family as a gift (Bhaati)—can close relatives or neighbors of the family, whether men or women, some of whom remain busy in the funeral arrangements and others, even though they could cook and eat at their own homes but considering it socially inappropriate and out of mere sympathy stay with the family, eat that food or not? In case of impermissibility, would eating it be disliked (Makruh) or forbidden (Haram)? (3) On the third, tenth, fortieth day, six-month anniversary, etc., food is cooked for the purpose of conveying reward and distributed to the poor. Can extra be cooked as needed and served to other relatives and friends besides the poor, and can it be distributed among the community? In case of permissibility, what is the meaning of this jurisprudential phrase: "An invitation is for joy, not for grief" (T). In case of impermissibility, would eating it be Makruh or Haram?

The Answer: (1) Conveying reward is through supplication, and supplication is to Allah Almighty. And He is All-Knowing of everything. He knows who is meant by "so-and-so"; there is no need for parentage etc. (2) Sending only enough food on the first day for the deceased's family is Sunnah. More than that is not permitted, nor is sending it on the second day, nor should it be sent for others, nor should they eat from it, and the explanation of this is in our Fatawa. (T)

[1] Radd al-Muhtar, Chapter on Reciting for the Deceased etc., Dar Ihya al-Turath al-Arabi, Beirut, 2/605

फ़तावा रज़विया जिल्द 9

[बॉक्स में पाठ] नमाज़, रोज़ा, सदक़ा या इसके अलावा, जैसा कि हिदाया में है।[1] | एक व्यक्ति अपने कार्यों का सवाब (पुण्य) दूसरे को दे सकता है, चाहे वह नमाज़ हो, रोज़ा हो, सदक़ा हो या कुछ और। ऐसा ही हिदाया में है। और अल्लाह तआला सबसे बेहतर जानता है। (त)

मसला 706 से 709: रायबरेली, मदरसा रहमानिया से प्रेषित हाफ़िज़ नियाज़ हुसैन साहब, 17 शाबान 1337 हिजरी। दीन के विद्वान इन मसलों के बारे में क्या फरमाते हैं: (1) ईसाले-सवाब (पुण्य पहुँचाने) के समय क्या "फलां पुत्र फलां" कहना ज़रूरी होगा या सिर्फ उसका नाम लेना काफी होगा? अगर वल्दियत (पिता का नाम) बताना ज़रूरी हो और वह मालूम न हो, तो ईसाले-सवाब का क्या तरीका अपनाया जाएगा? (2) मृत्यु के दिन जो खाना 'भाती' के तौर पर मृतक के घर भेजा जाता है, क्या मृतक के करीबी रिश्तेदार या पड़ोसी, चाहे वे पुरुष हों या महिलाएँ, जो अंतिम संस्कार के कामों में व्यस्त रहते हैं या जो सहानुभूति वश साथ रहते हैं (भले ही वे अपने घर पर खाना पकाकर खा सकते हों लेकिन लोक-मर्यादा के कारण मय्यत के घर वालों के साथ रहते हैं), उस खाने को खा सकते हैं या नहीं? यदि अनुमति नहीं है, तो क्या वह खाना मकरूह (नापसंद) होगा या हराम (वर्जित)? (3) तीसरे, दसवें, चालीसवें दिन, छमाही आदि पर ईसाले-सवाब के इरादे से खाना पकाकर गरीबों में बांटा जाता है। क्या इसमें ज़रूरत के हिसाब से इज़ाफ़ा करके गरीबों के अलावा अन्य रिश्तेदारों और दोस्तों को खिलाया जा सकता है और बिरादरी में बांटा जा सकता है या नहीं? यदि अनुमति है, तो फ़िक़्ह (इस्लामी न्यायशास्त्र) की इस इबारत का क्या मतलब होगा: "दावत खुशी के लिए होती है, गम के लिए नहीं।" (त)। यदि अनुमति नहीं है, तो उसे खाना मकरूह होगा या हराम?

जवाब: (1) ईसाले-सवाब दुआ के ज़रिए है और दुआ अल्लाह रब्बुल इज़्ज़त से है। और वह हर चीज़ का जानने वाला है। वह जानता है कि "फलां" से उसकी मुराद कौन है, वल्दियत आदि की कोई ज़रूरत नहीं। (2) पहले दिन सिर्फ इतना खाना भेजना सुन्नत है जो मृतक के परिवार वालों के लिए काफी हो। इससे ज़्यादा की इजाज़त नहीं है, न दूसरे दिन भेजने की इजाज़त है, न दूसरों के लिए भेजा जाए और न उसमें खाया जाए, और इसका बयान हमारे फतावा में है। (त)

[1] रद-उल-मुहतार, मृतक के लिए क़िरात का मतलब आदि, दारुल इहया-उत-तुरास अल-अरबी, बेरूत 2/605

पृष्ठ 604 का 948

فتاوی رضویہ جلد نہم

[باکس میں متن] صلوۃ او صوما او صدقۃ او غیرھا کذا فی الھدایۃ[1] | کہ انسان اپنے عمل کا ثواب دوسرے کے لیے کرسکتا ہے الخ واللہ تعالٰی اعلم | نماز ہو ی روزہ یا صدقہ یا کچھ اور۔ ایسا ہی ہدایہ میں ہے الخ۔ اور خدائے برتر خوب جاننے والا ہے (ت)

مسئلہ ۷۰۶ تا ۷۰۹: از رائے بریلی مدرسہ رحمانیہ مرسلہ حافظ نیاز حسین صاحب ۱۷ شعبان ۱۳۳۷ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین ان مسائل میں: (۱) بوقت ایصال ثواب فلان بن فلان کہنے کی ضرورت ہو گی یا محض اس کا نام لینا کافی ہوگا؟ اگر ولدیت کے اظہار کی ضرورت ہو گی اور اس سے لاعلمی ہے تو ایصال ثواب کا کیا طریقہ اختیار کیا جائے گا؟ (۲) بروز وفات جو کھانا اہل میت کے یہاں بطریق بھاتی بھیجا جاتا ہے اس کو اہل میت کے اعزاء قریب یا اعزاء پڑوسی خواہ مرد ہوں یا عورت جو بعض مصروف تجہیز و تکفین رہتے ہیں اور بعض اگرچہ اپنے یہاں کھانا پکا کر کھا سکتے ہیں مگر عرفاً معیوب سمجھ کر محض بخیال ہمدردی اہل میت اس کے شریک حال رہتے ہیں اس کھانے کو کھا سکتے ہیں یا نہیں؟ بصورت عدم جواز کھانا مکروہ ہوگا یا حرام؟ (۳) بروز سوم، دہم، چہلم، ششماہی وغیرہ کھانا بغرض ایصال ثواب پکا کر مساکین کو تقسیم کیا جاتا ہے اس میں بقدر ضرورت اضافہ کر کے علاوہ مساکین کے دیگر اعزہ و احباب کو کھلایا اور اہل برادری میں تقسیم کیا جاسکتا ہے یا نہیں؟ بصورت جواز کتب فقہ کی اس عبارت کا کیا مطلب ہو گا: التقریب للسرور لاللحزن (تقریب خوشی کے لیے ہوتی ہے غمی کے لیے نہیں ت) بصورت عدم جواز کھانا اس کا مکروہ ہو گا یا حرام؟

الجواب: (۱) ایصال ثواب بذریعہ دعا ہے اور دعا رب عزوجل سے۔ اور عزوجل بکل شیئ علیم ہے۔ وہ جانتا ہے کہ فلاں سے اس کی مراد وہ شخص ہے ولدیت وغیرہ کی کوئی حاجت نہیں۔ (۲)

پہلے دن صرف اتنا کھانا کہ میت کے گھر والوں کو کافی ہے بھیجنا سنت ہے۔ اس سے زیادہ کی اجازت نہیں نہ دوسرے دن بھیجنے کی اجازت ، نہ اوروں کے واسطے بھیجا جائے نہ اور اس میں کھائیں ، و بیان ذلك فی فتاؤنا (اور اس کا بیان ہمارے فتاوی میں ہے۔ ت)

[1] ردالمختار مطلب فی القراۃ للمیت الخ داراحیاء التراث العربی بیروت ۲/۶۰۵

Fatawa Razawiyya Volume 9

(3) Conveying reward (Isal-e-Thawab) is Sunnah, and feasting at the time of death is forbidden. It is mentioned in 'Fath al-Qadir' etc.:

It is disliked to prepare a food feast from the family of the deceased because feasting is prescribed for happy occasions, not for calamities, and it is a repulsive innovation.

Imam Ahmad and Ibn Majah narrated with a sound chain from Jarir bin Abdullah al-Bajali (may Allah be pleased with him): "We, the group of companions, used to consider gathering at the family of the deceased and their preparing food as a form of wailing." (T)

It is disliked to take hospitality of food from the people of the deceased because it was prescribed for joy, not for evils, and it is a repulsive innovation.

Imam Ahmad and Ibn Majah narrated with a sound chain from Jarir bin Abdullah who said: "We used to count the gathering with the family of the deceased and their making food as part of wailing."

When scholars have termed it non-prescribed and a foul innovation, then eating such food is also non-prescribed and a foul innovation, as it constitutes assistance in disobedience, and assistance in disobedience is a sin.

Allah Almighty says: "And do not cooperate in sin and aggression." And Allah Almighty knows best.

Allah Almighty says: "And do not cooperate in sin and aggression."

And Allah Almighty knows best.

Problem 210: From Hub Walla, District Bijnor, Tehsil Dhampur, sent by Manzoor Sahab, 11 Shawwal 1337 AH. What do the scholars of religion say regarding the issue of whether it is permissible or not to perform rituals like the 3rd (Teeja), 10th (Daswa), 20th (Beeswa), and 40th (Chaliswa) on specific appointed days for the deceased? I saw in an advertisement purportedly from you, published by Lal Khan, that performing the 10th and 20th on fixed days and the prevalent Milad are not better. I do not remember the exact words.

The Answer: Conveying reward to the deceased is absolutely recommended. The Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) says:

"Whoever among you is able to benefit his brother, let him do so." (T)

"Whoever among you is able to benefit his brother, let him benefit him."

And these are customary specifications; there is fundamentally no harm in them as long as they are not considered legally mandatory by Shariah, and it is not thought that reward is only on these days...

---

1. Fath al-Qadir, Section on Burial, Maktaba Nooriyah Razawiyya Sukkur, 2/103.
2. Al-Quran 5/2.
3. Sahih Muslim, Chapter on the Recommendation of Ruqyah for Evil Eye, etc., Nur Muhammad Asah al-Matabi Karachi, 2/224.

फ़तावा रज़विया जिल्द 9

(3) ईसाल-ए-सवाब सुन्नत है और मौत पर दावत (ज़ियाफ़त) मना है। फ़तहुल क़दीर वग़ैरह में है:

मय्यत के घरवालों की तरफ़ से खाने की दावत तैयार करना मना है क्योंकि शरीयत ने दावत खुशी के मौक़ों में रखी है न कि गम के मौक़ों में, और यह एक बुरी बिदअत है।

इमाम अहमद और इब्ने माजा ने सही सनद के साथ हज़रत जरीर बिन अब्दुल्लाह बिजली रज़ियल्लाहु तआला अन्हु से रिवायत किया है: हम सहाबा की जमात मय्यत के घर वालों के यहाँ इकट्ठा होने और उनके खाना तैयार करने को मय्यत पर मातम (नियाहत) में शुमार करते थे। (त)

मय्यत के घर वालों से भोजन की दावत लेना नापसंद है क्योंकि इसे खुशी के लिए निर्धारित किया गया है, बुराइयों के लिए नहीं, और यह एक घृणित नवाचार है।

इमाम अहमद और इब्न माजा ने जरीर बिन अब्दुल्लाह से एक सही श्रृंखला के साथ रिवायत की है, जिन्होंने कहा: "हम मृतक के परिवार के साथ इकट्ठा होने और उनके भोजन बनाने को विलाप में गिनते थे।"

जब उलेमा ने इसे ग़ैर-मशरूह और बुरी बिदअत कहा, तो उसे खाना भी ग़ैर-मशरूह और बुरी बिदअत हुआ क्योंकि यह गुनाह पर मदद करना है और गुनाह पर मदद करना खुद गुनाह है।

अल्लाह तआला का फ़रमान है: गुनाह और ज़्यादती पर एक-दूसरे की मदद न करो। वल्लाह तआला आलम

अल्लाह तआला का फ़रमान है: "गुनाह और ज़्यादती पर एक-दूसरे की मदद न करो।"

वल्लाह तआला आलम

मसला 210: हब वाला, जिला बिजनौर, तहसील धामपुर से मंज़ूर साहब द्वारा भेजा गया, 11 शव्वाल 1337 हिजरी। दीन के उलेमा इस मसले में क्या फ़रमाते हैं कि मय्यत का तीजा, दसवां, बीसवां, चालीसवां दिन मुक़र्रर करके करना जायज़ है या नहीं? मैंने आपकी तरफ़ से एक इश्तहार में, जिसके मुश्तहिर लाल ख़ान थे, देखा था कि दसवां और बीसवां दिन मुक़र्रर करके करना और मुरव्वजा मिलाद बेहतर नहीं हैं। मुझे उसके शब्द पूरी तरह याद नहीं हैं।

जवाब: मुर्दों को ईसाल-ए-सवाब करना यक़ीनन मुस्तहब (पसंदीदा) है। रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम फ़रमाते हैं:

"तुममें से जो कोई अपने भाई को नफ़ा पहुँचा सके तो उसे चाहिए कि उसे नफ़ा पहुँचाए।" (त)

"तुममें से जो कोई अपने भाई को लाभ पहुँचाने की क्षमता रखता है, तो उसे उसे लाभ पहुँचाना चाहिए।"

और ये तारीखें रस्मी (उर्फ़ी) ताय्युन हैं, इनमें असल में कोई हर्ज नहीं है जब तक कि इन्हें शरीयत की तरफ़ से लाज़िम न माना जाए और यह न समझा जाए कि सवाब सिर्फ़ उन्हीं दिनों में है...

---

1. फ़तहुल क़दीर, दफ़्न का बयान, मकतबा नूरिया रज़विया सुक्कुर, 103/2
2. अल-क़ुरआन 5/2
3. सही मुस्लिम, नज़र-ए-बद की रक़िया के मुस्तहब होने का बाब, नूर मुहम्मद असहा अल-मताबे कराची, 224/2

فتاوٰی رضویہ جلد نہم

(۳) ایصال ثواب سنت ہے اور موت میں ضیافت ممنوع۔ فتح القدیر وغیرہ میں ہے:

اہلِ میت کی طرف سے کھانے کی ضیافت تیار کرنی منع ہے کہ شرع نے ضیافت خوشی میں رکھی ہے نہ کہ غمی میں، اور یہ بدعتِ شنیعہ ہے۔

یکرہ اتخاذ الضیافۃ من الطعام من اھل المیت لأنہ شرع في السرور لافي الشرور وھي بدعۃ مستقبحۃ۔

امام احمد اور ابن ماجہ بسند صحیح حضرت جریر بن عبداللہ روی الامام احمد وابن ماجۃ باسناد بجلی رضی اللہ تعالٰی عنہ سے راوی ہیں ہم گروہ صحابہ اہل صحیح عن جریر بن عبداللہ قال کنا میت کے یہاں جمع ہونے اور کھانا تیار کرنے کو مردے کی نعد الاجتماع الی اھل المیت وصنعھم نیاحت سے شمار کرتے تھے۔ (ت) الطعام من النیاحۃ۔

جب علماء نے اسے غیر مشروع و بدعتِ قبیحہ کہا تو اس کا کھانا بھی غیر مشروع و بدعتِ قبیحہ ہوا کہ معصیت پر اعانت ہے اور معصیت پر اعانت گناہ۔

اللہ تعالٰی کا فرمان ہے: گناہ اور زیادتی پر ایک دوسرے کی مدد نہ کرو۔ واللہ تعالٰی اعلم

قال اللہ تعالٰی وَلَا تَعَاوَنُوْا عَلَی الْاِثْمِ وَالْعُدْوَانِ۔

واللہ تعالٰی اعلم

مسئلہ ۲۱۰: از حب والہ ضلع بجنور تحصیل دھانپور مرسلہ منظور صاحب ۱۱ شوال ۱۳۳۷ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ میت کا تیجہ، دسواں، بیسواں، چالیسواں متعین کر کے کرنا جائز ہے یا نہیں؟ میں نے ایک اشتہار میں جو آپ کی جانب سے تھا اور مشتہر اس کے لعل

خاں تھے، دیکھا تھا کہ دسواں بیسواں متعین کر کے کرنا اور میلاد مروجہ بہتر نہیں۔ الفاظ اس کے بعینہ مجھے یاد نہیں۔

الجواب: اموات کو ایصالِ ثواب قطعاً مستحب۔ رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم فرماتے ہیں:

جو اپنے بھائی کو نفع پہنچا سکے تو چاہیے کہ اسے نفع پہنچائے۔ (ت)

من استطاع منکم ان ینفع اخاہ فلینفعہ۔

اور یہ تعینات عرفیہ ہیں، ان میں اصلاً حرج نہیں جبکہ انہیں شرعاً لازم نہ جانے، یہ نہ سمجھے کہ انہی دنوں ثواب...

---

1 فتح القدیر فصل فی الدفن مکتبہ نوریہ رضویہ سکھر ۱۰۳/۲ 2 القرآن ۵/۲ 3 صحیح مسلم باب استحباب الرقیۃ من العین الخ نور محمد اصح المطابع کراچی ۲۲۴/۲

Fatwa Razawiyya Volume 9

...it will reach, neither before nor after. The Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) says: "Fasting on Saturday is neither for you nor against you."[1] (Fasting on Saturday - Translation) In my fatwas and treatises regarding the recommendation of the blessed assembly and the things with which it is filled, Haji Lal Khan, the supporter of Sunnah, did not give any advertisement of this content. Some fabrication by the Wahhabis must have caught your eye. Allah knows best.

Problem 211: From the city market Bans Mandi, through Abdul Hakim, a student of Madrasa Manzar-e-Islam, 27 Muharram-ul-Haram 1339 AH. What do the scholars of religion say regarding the issue of someone who forbids the celebration of Gyarwin Sharif? Is it valid to offer prayers behind such a person or not? And is doing Gyarwin Sharif a Sunnah or a recommendation (mustahab)? If it is a Sunnah, is it an additional (Zaidah) or emphasized (Mu'akkadah) one? And which Sunnah is meant by it? Is it the Sunnah of the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) or the Sunnah of the Companions (may Allah be pleased with them all)? And is it permissible for us to consider the 11th date as necessary for Gyarwin Sharif as we do? If it is done on the 12th or 13th instead of the 11th, will it be valid or not? Similarly, for Teeja (the 3rd day) or Chehlum (the 40th day), can they be done a day or two before or after? If not, is it necessary to do Teeja on the 3rd, Gyarwin on the 11th, and Chehlum on the 40th? Is it necessary to bring sweets like Batasay and Rewari in front? Can the Niyaz (offering) be done without bringing them? And can the Fateha and Niyaz be performed by reciting any Surah other than the commonly used ones? Clarify with evidence, may you be rewarded by the Almighty with a great reward.

The Answer: There are no prohibitors of Gyarwin Sharif here except for Wahhabis or Rafidis, and prayer behind both is absolutely invalid. Gyarwin Sharif is recommended (mustahab) in its individual status, and in its general status of being 'Isal-e-Sawab' (conveying reward), it is Sunnah. By Sunnah, it means the Sunnah of the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him). And this is a verbal, recommended Sunnah. Saying "we people" (regarding the necessity of the date) carries the deception of Wahhabism at its core; no Sunni considers it Shariah-obligatory to have it specifically on the 11th. Whoever considers it so is simply in error. Conveying reward is possible every day, and sticking to a specific date due to some specialty is not an issue as long as one does not consider it Shariah-obligatory. The Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) used to keep a voluntary fast every Monday; had he kept it on Sunday or Tuesday, would it not have

been valid? Or is it understood from this that, God forbid, the Prophet considered the Monday fast obligatory? The same applies to Teeja and Chehlum. There is no need to bring the bread in front while eating; you can even keep it behind your back or on your head...

---

[1] Musnad Ahmad bin Hanbal, Hadith of Amraqa (RA), Dar al-Fikr Beirut, 368/6 Page 606 of 948

फतावा रज़विया खंड 9

...पहुँचेगा, आगे पीछे नहीं। अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) फरमाते हैं: "शनिवार का रोज़ा न तुम्हारे लिए है, न तुम्हारे खिलाफ।"[1] (शनिवार का रोज़ा - अनुवाद) मेरे फतावा और रिसालों में मुबारक महफ़िल की मुस्तहब (पसंदीदा) होने और उन चीज़ों के बारे में जो इससे मालामाल हैं, सुन्नत के हिमायती हाजी लाल खान ने इस विषय का कोई विज्ञापन नहीं दिया। वहाबियों का कोई झूठ आपकी नज़र में आया होगा। अल्लाह बेहतर जानता है।

मसला 211: शहर बाज़ार बांस मंडी से, अब्दुल हकीम के माध्यम से, मदरसा मंज़र-ए-इस्लाम के छात्र, 27 मुहर्रम-उल-हराम 1339 हिजरी। दीन के उलेमा इस मसले में क्या कहते हैं कि जो व्यक्ति ग्यारहवीं शरीफ से मना करे, क्या उसके पीछे नमाज़ जायज़ है या नहीं? और ग्यारहवीं शरीफ करना सुन्नत है या मुस्तहब? अगर सुन्नत है तो ज़ायदा है या मुअक्कदा? और सुन्नत से कौन सी सुन्नत मुराद होगी? क्या अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) की सुन्नत या सहाबा किराम (रज़ियल्लाहु अन्हुम अजमईन) की सुन्नत? और जैसा कि हम लोग ग्यारहवीं शरीफ को ग्यारह तारीख में ज़रूरी समझते हैं, क्या ऐसा समझना जायज़ है या नहीं? और अगर ग्यारह तारीख के बजाय बारह या तेरह को करें तो होगी या नहीं? और इसी तरह तीजे को या चेहल्लुम को एक दिन या दो दिन आगे पीछे करें तो कर सकते हैं या नहीं? अगर नहीं, तो जैसा कि हम लोग करते हैं कि तीसरी को तीजा, ग्यारह तारीख को ग्यारहवीं और चेहल्लुम को चेहल्लुम करना ज़रूरी है या नहीं? और बताशे और रेवड़ी वगैरह सामने लाने की ज़रूरत है या नहीं? और उनके लाए बिना नियाज़ हो सकती है या नहीं? और जो कुछ सूरतें प्रचलित हैं, उनके अलावा और कोई सूरत शरीफ़ पढ़कर फातिहा और नियाज़ हो सकती है या नहीं? दलील के साथ स्पष्ट करें, अल्लाह आपको महान पुरस्कार दे।

जवाब: यहाँ ग्यारहवीं शरीफ को मना करने वाले कोई नहीं सिवाय वहाबियों या राफ़िज़ियों के और दोनों के पीछे नमाज़ बिल्कुल बातिल (अमान्य) है। ग्यारहवीं शरीफ अपनी व्यक्तिगत स्थिति में मुस्तहब है, और सामान्य स्थिति में ईसाल-ए-सवाब (सवाब पहुँचाना) सुन्नत है, और सुन्नत से मुराद अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) की सुन्नत है। और यह सुन्नत-ए-कौ़लिया मुस्तहब्बा है। यह "हम लोग" कहना अपनी जड़ में वहाबियत का धोखा रखता है, सुन्नियों में से कोई भी इसे शरीयत के तौर पर ग्यारह तारीख को ही करना वाजिब (अनिवार्य) नहीं मानता, और जो मानता है वह सरासर गलती पर है। ईसाल-ए-सवाब हर दिन मुमकिन है और किसी विशेषता के कारण एक तारीख का पाबंद होना जबकि उसे शरीयत में वाजिब न माना जाए, इसमें कोई हर्ज नहीं। अल्लाह के रसूल

(सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) हर सोमवार को नफ़्ली रोज़ा रखते थे; क्या अगर रविवार या मंगलवार को रखते तो न होता? या इससे यह समझा गया कि माज़अल्लाह हुज़ूर ने सोमवार का रोज़ा वाजिब समझा था? यही हाल तीजे और चेहल्लुम का है। रोटी खाते समय रोटी को सामने लाने की ज़रूरत नहीं है, इसे पीठ के पीछे भी रखकर खा सकते हैं और सिर पर भी...

---

[1] मुसनद अहमद bin हंबल, हदीस-ए-अमराका (रज़ियल्लाहु अन्हा), दारुल फ़िक्र बेरूत, 368/2 पृष्ठ 606/948

پہنچے گا آگے پیچھے نہیں۔ رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم فرماتے ہیں : صوم یوم السبت لالک ولا علیک ۱ (روز شنبہ کا روزہ نہ تیرے لیے ، نہ تیرے اوپر۔ت) میرے فتاوٰی ورسائل مجلس مبارک کے استحباب اور ان اشیاء کے جوا سے مالامال ہیں ، حامی سنت حاجی لعل خاں نے کوئی اشتہار اس مضمون کا نہ دیا۔ وہابیہ کا کوئی افتراء آپ کی نظر پڑا ہوگا۔ واللہ تعالٰی اعلم

مسئلہ ۲۱۱: از شہر بازار بانس منڈی معرفت عبدالکیم طالب علم مدرسہ منظر الاسلام ۲۷ محرم الحرام ۱۳۳۹ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ جو شخص گیارہویں شریف کو منع کرے اور اس کے پیچھے نماز درست ہے یا نہیں؟ اور گیارہویں شریف کا کرنا سنت ہے یا مستحب ؟ گر سنت ہے تو زائد ہے یا موکد؟ اور سنت سے کون سی سنت مراد ہوگا؟ آیا سنت رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم یا سنت صحابہ رضوان علیہم اجمعین؟ اور جیسے گیارہویں شریف کو ہم لوگ گیارہ تاریخ میں ضرور سمجھتے ہیں ، یہ سمجھنا جائز ہے یا نہیں؟ اور اگر گیارہ تاریخ کے بجائے بارہ یا تیرہ کو کرے تو ہوگی یا نہیں؟ اور ایسے ہی تیجے کو یا چہلم کو ایک دن یادو دن آگے پیچھے کریں تو کر سکتے ہیں یا نہیں؟ اگر نہیں تو جیسے ہم لوگ کرتے ہیں کہ تیسری کو تیجا اور گیارہ تاریخ کو گیارہویں اور چہلم کو چہلم کرنا ضروری ہے یا نہیں؟ اور بتا سے اور ریوڑی وغیرہ سامنے لانے کی ضرورت ہے یا نہیں؟ اور بجز لانے کے نیاز ہو سکتی ہے یا نہیں؟ اور چند سورہ جو مروجہ ہیں ان کے علاوہ اور کوئی سورہ شریف پڑھ کر فاتحہ و نیاز ہو سکتی ہے یا نہیں؟ بینوا بالدلیل توجروا عندالجلیل بأجر جزیل۔

الجواب: یہاں گیارہویں شریف کو منع کرنے والے نہیں مگر وہابی یا رافضی ، اور دونوں کے پیچھے نماز باطل محض ہے۔ گیارہویں شریف اپنے مرتبہ فردیت میں مستحب ہے، اور مرتبہ

اطلاق میں کہ ایصال ثواب سنت ہے، اور سنت سے مراد سنت رسول اللہ صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم ۔ اور یہ سنت قولیة مستحبہ ہے۔ یہ "ہم لوگ" کہنا اپنی تہ میں وہابیت کا فریب رکھتا ہے ، سنیوں میں کوئی اسے خاص گیارہویں تاریخ ہونا شرعاً واجب نہیں جانتا، ور جو جانے محض غلطی پر ہے۔ ایصال ثواب ہر دن ممکن ہے اور کسی خصوصیت کے سبب ایک تاریخ کا التزام جبکہ اسے شرعاً واجب نہ جانے مضائقہ نہیں۔ رسول اللہ صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم ہر پیر کو نفلی روزہ رکھتے کیا اتوار یا منگل کو رکھتے تو نہ ہوتا ، یا اس سے یہ سمجھا گیا کہ معاذ اللہ حضور نے پیر کا روزہ واجب سمجھا؟ یہی حال تیجے اور چہلم کا ہے۔ روٹی کھاتے وقت روٹی کو سامنے لانے کی ضرورت نہیں، پیٹھ کے پیچھے بھی رکھ کر کھا سکتے ہیں اور سر پر

---

1 مسند احمد بن حنبل حدیث امراقہ رضی اللہ تعالیٰ عنہا دارالفکر بیروت ۳۶۸/۲ Page 606 of 948

Fatawa Razawiyya Volume 9

...can also be broken after placing it, but Wahhabis eat it by placing it in front of them obligatorily. Is it Sharia-wise fard or wajib? According to Wahhabis, what is not wajib, its obligation brings the share of Satan into it. So it is proven that Wahhabis eat Satan's share. In Isal-e-Thawab (conveying rewards), no Surah is specifically determined by Sharia, and there is no harm in specifying one without the belief of it being mandatory. Allah Almighty knows best.

Matter 212: From Pilibhit, Pakariya neighborhood, adjacent to City Post Office, questioned by Mulla Latif Ahmed, timber merchant, 27 Safar 1339 AH.

Question: What do the scholars of religion say regarding this matter: a pinch of flour is taken out and collected from the flour taken daily for cooking; when thirty days of the month are complete and the day of Giyarwi Shareef comes, is the Fateha of Giyarwi Shareef on this collected flour correct or not? And is it permissible to take out a pinch of flour daily for the Fateha of Giyarwi Shareef? If taking out a daily pinch is permissible, then what is the other method? Answer us and be rewarded.

The Answer: This method is a source of great blessing and provides ease; taking out one pinch from daily flour is not even noticeable, and after a whole month, it becomes a significant quantity. Allah Almighty knows best.

Matter 213: From Village Gahar Khali, Police Station Magandwa Bazar Panchurana, District Arkan, known as Akbab, questioned by Maulana Abul Hasan Sahib, 28 Jumada al-Akhira 1320 AH.

Question: What do the scholars of religion and muftis of the firm Sharia say regarding this matter: a pious Muslim named Zaid passed away on Friday morning. Now, is it permissible or not to convey rewards (Isal-e-Thawab) for Zaid by reciting Tasbih, Tahlil, and Khatm of the Holy Quran before the Friday prayer? On the first supposition, when Zaid is safe from the punishment of the grave, then what is the need for Isal-e-Thawab? Based on this, some scholars consider these mentioned matters permissible; now what is the final decision? Answer us and be rewarded.

The Answer: It is permissible, provided it does not cause delay in the funeral preparations and shrouding of the deceased, and people arrange it so that those reciting do not get delayed for the Friday prayer, finishing before the time for its arrangement comes. Now this benefit is without necessity and is included in the generality of this Sahih Hadith:

Arabic Text	Urdu Translation
"Whoever among you is able to benefit his brother, let him do so." [1] Narrated by Muslim from Jabir bin Abdullah, may Allah be pleased with them both.	"Whoever among you can benefit his brother, let him do so. It was narrated by Imam Muslim from Hazrat Jabir bin Abdullah, may Allah be pleased with him. (T)"

1. Sahih Muslim, Kitab-as-Salam, Bab-istihbab-ur-ruqiya-min-al-ayn etc., Nur Muhammad Ash-ul-Matabi, Karachi, 2/223.

फ़तावा रज़विया जिल्द नहुम

...रख कर भी तोड़ सकते हैं मगर वहाबिया भी इल्तिज़ामन सामने ही रख कर खाते हैं क्या शरअन फ़र्ज़ वाजिब है? वहाबिया के नज़दीक जो वाजिब न हो उसके इल्तिज़ाम से शैतान का हिस्सा आ जाता है। तो साबित हुआ कि वहाबिया शैतान का हिस्सा खाते हैं, ईसाले सवाब में कोई सूरह शरअन मुअय्यन नहीं, और बिला एतिकादे वजूब मुअय्यन करने में हर्ज नहीं। वल्लाहु तआला आलम।

मसअला २१२: पीलीभीत, मोहल्ला पकरिया, सिटी डाकखाने के पास से, मुस्तौलिह मुल्ला लतीफ़ अहमद सौदागर लकड़ी, २७ सफ़र १३३९ हिजरी।

प्रश्न: उलेमा-ए-दीन इस मसअले में क्या फ़रमाते हैं कि आटा जो रोज़ाना पकाने के लिए निकाला जाता है, उसमें से एक चुटकी निकाल कर जमा की जाए, जब महीने के तीस दिन पूरे हो जाएं और ग्यारहवीं शरीफ़ का दिन आए तो उस जमा किए हुए आटे पर ग्यारहवीं शरीफ़ की फ़ातिहा दुरुस्त है या नहीं? और रोज़ाना एक चुटकी आटा बराए फ़ातिहा ग्यारहवीं शरीफ़ जायज़ है या नहीं? अगर रोज़ाना चुटकी निकालना जायज़ है तो दूसरा तरीक़ा कौन सा है? बयान फ़रमाएं और सवाब पाएं।

उत्तर: यह तरीक़ा बहुत बरकत का बाइस है और इसमें आसानी रहती है, रोज़ के आटे में से एक चुटकी निकालना महसूस भी नहीं होता और वह महीना भर बाद एक मिक़दारे मोतबा (महत्वपूर्ण मात्रा) हो जाता है। वल्लाहु तआला आलम।

मसअला २१३: मौज़ा गहर खाली, थाना मगंडवा बाज़ार पांचुराना, ज़िला अरकान, उर्फ़ अकबाब से, मुस्तौलिह मौलवी अबुल हसन साहब, २८ जमादी उल आख़िर १३२० हिजरी।

प्रश्न: उलेमा-ए-दीन और मुफ़्तीयान-ए-शरा मतीन इस मसअले में क्या फ़रमाते हैं कि ज़ैद मुस्लिम सालेह का इंतकाल जुमा के दिन सुबह के वक़्त हुआ। अब ज़ैद के लिए जुमा की नमाज़ से पहले तस्बीह ओ तहलील और ख़त्मे कुरान मजीद पढ़ कर ईसाले सवाब जायज़ है या नहीं? पहली सूरत में जब ज़ैद क़ब्र के अज़ाब से महफ़ूज़ है तो फिर ईसाले सवाब की क्या ज़रूरत, इसी बिना पर बाज़ उलेमा इन उमूर-ए-मज़कूरा को जायज़ मानते हैं, अब फ़ैसलाकुन बात क्या है? बयान फ़रमाएं और सवाब पाएं।

उत्तर: जायज़ है, जबकि मय्यत की तजहीज़ ओ तकफ़ीन (अंतिम संस्कार की तैयारी) में इसके कारण देरी न हो, इसका एहतमाम और लोग करते हों और इसके सबब उन पढ़ने वालों को जुमा में देरी न

हो जाए, इसके एहतमाम का वक़्त आने से पहले फ़ारिग हो जाएं। अब यह नफ़ा बिला ज़रूरत और इस हदीस-ए-सहीह के उमूम में दाख़िल है कि:

अरबी इबारत	उर्दू अनुवाद
"मन् इस्तता'अ मिनकुम अन् यन्फ़अ अख़ाहु फ़ल-यफ़्अल" ^1 रवाह मुस्लिम अनि जाबिर बिन् अब्दुल्लाह रज़ियल्लाहु तआला अन्हुमा।	"जो अपने भाई को फायदा पहुंचा सकता हो तो चाहिए कि उसे फायदा पहुंचाए। इसे इमाम मुस्लिम ने हज़रत जाबिर बिन अब्दुल्लाह रज़ियल्लाहु तआला अन्हु से रिवायत किया। (त)"

1. सहीह मुस्लिम, किताबुस सलाम, बाबु इस्तिहबाबुर रुकिया मिनल ऐन आदि, नूर मोहम्मद असहुल मताबे, कराची, २/२२३।

رکھ کر بھی توڑ سکتے ہیں مگر وہابیہ بھی التزاماً سامنے ہی رکھ کر کھاتے ہیں کیا شرعاً فرض واجب ہے؟ وہابیہ کے نزدیک جو واجب نہ ہو اس کے التزام سے شیطان کا حصہ آجاتا ہے۔ تو ثابت ہوا کہ وہابیہ شیطان کا حصہ کھاتے ہیں، ایصال ثواب میں کوئی سورہ شرعاً معین نہیں، اور بلا اعتقاد وجوب معین کرنے میں حرج نہیں۔ واللہ تعالٰی اعلم

مسئلہ ۲۱۲: از پیلی بھیت محلہ پکریا متصل سٹی ڈاکخانہ مسئولہ ملا لطیف احمد سوداگر لکڑی ۲۷ صفر ۱۳۳۹ھ

کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ آٹا جو روزمرہ پکانے کو نکالا جاتا ہے اس میں سے ایک چٹکی نکال کر جمع کی جائے، جب تین تیس دن مہینے کے پورے ہو جائیں اور گیارہویں شریف کا دن آئے تو اس آٹے جمع کئے ہوئے پر گیارہویں شریف کی فاتحہ درست ہے یا نہیں؟ اور روزمرہ ایک چٹکی آٹا برائے فاتحہ گیارہویں شریف جائز ہے یا نہیں؟ اگر روزمرہ چٹکی نکالنا جائز ہے تو دوسرا طریقہ کون سا ہے؟ بینوا توجروا

الجواب: یہ طریقہ بہت برکت کا باعث ہے اور اس میں آسانی رہتی ہے، روز کے آٹے میں سے ایک چٹکی نکالنا معلوم بھی نہیں ہوتا اور وہ مہینہ بھر بعد ایک مقدار معتدبہ ہو جاتا ہے۔ واللہ تعالٰی اعلم

مسئلہ ۲۱۳: از موضع گہر کھالی تھانہ مگنڈوا بازار پانچورانہ ضلع ارکان عرف اکباب مسئولہ مولوی ابوالحسن صاحب ۲۸ جمادی الآخر ۱۳۲۰ھ

کیا فرماتے ہیں علمائے دین و مفتیان شرع متین اس مسئلہ میں کہ زید مسلم صالح کا انتقال بروز جمعہ بوقت صبح ہوا۔ اب زید کے واسطے قبل نماز جمعہ تسبیح و تہلیل و ختم قرآن مجید پڑھ کر ایصال ثواب جائز ہے یا نہیں؟ بر تقدیر اول جب زید قبر کے عذاب سے محفوظ ہے پھر ایصال و ثواب کی کیا ضرورت، بناء علیہ بعض علماء ان امور مذکورہ کو جائز مانتے ہیں، اب قول فیصل کیا ہے؟ بینوا توجروا

الجواب: جائز ہے، جبکہ میت کی تجہیز و تکفین میں اس کے باعث تاخیر نہ ہو، اس کا اہتمام اور لوگ کرتے ہوں نہ اس کے سبب ان پڑھنے والوں کو جمعہ میں تاخیر ہو جائے، اس کے اہتمام کا وقت آنے سے پہلے فارغ ہو جائیں۔ اب یہ نفع بلا ضرورت اور اس حدیث صحیح کو عموم میں داخل ہے کہ:

عربی عبارت	**اردو ترجمہ**
من استطاع منکم ان ینفع اخاہ فلیفعل [1]	جو اپنے بھائی کو فائدہ پہنچا سکتا ہو تو چاہئے کہ اسے فائدہ پہنچائے، اسے امام مسلم نے حضرت جابر بن عبداللہ رضی اللہ تعالیٰ عنہ سے روایت کیا۔ (ت)
رواہ مسلم عن جابر بن عبداللہ رضی اللہ تعالیٰ عنہما۔	

1 صحیح مسلم کتاب السلام باب استحباب الرقیۃ من العین الخ نور محمد اصح المطابع کراچی ۲/۲۲۳

Fatawa Razawiyya, Volume 9

The notion that if, according to the ruling of the Hadith, God willing, a Muslim is safe from the trial of the grave because their death occurred on a Friday—especially if they were righteous—then what is the need for Isal-e-Sawab (conveying rewards), is purely incorrect and meaningless. Just as Isal-e-Sawab helps in averting punishment and torment by the permission of Allah Almighty, it similarly works in elevating ranks and increasing good deeds. No one is independent of the grace of Allah Almighty and His increase and blessings.

Allah Almighty says: "For those who have done good is the best [reward] and extra."[1] (T)

Lord, Exalted and Majestic, bestowed great wealth upon our master Ayyub (Job), peace be upon him. One day, while he was bathing, locusts of gold rained down from the sky. Job, peace be upon him, began to collect them in his cloak. The Lord, Mighty and Sublime, called out: "O Ayyub! Have I not made you independent of what you see?" He replied: "Indeed, by Your Honor! But I am not independent of Your blessing."[2] (Narrated by Al-Bukhari, Ahmad, and Al-Nasa'i from Abu Hurairah, may Allah be pleased with him. T). When a servant is not independent of Allah's worldly blessings, who can be independent of His religious blessings? Not only the righteous, but the Great Imam of Saints, and even the Prophets themselves, including the radiant Master and Prophet of Prophets, peace and blessings be upon him—Isal-e-Sawab for them has been a practice from the time of the Sahaba (Companions), may Allah be pleased with them, until now. Although Prophets, peace be upon them, are absolutely infallible, how can death on a Friday or righteousness be an impediment? It is stated in Rad al-Muhtar:

Indeed, Ibn Umar used to perform Umrahs on behalf of him [the Prophet], peace and blessings of Allah be upon him, after his passing without any will. And Ibn al-Muwaffaq (may Allah Almighty have mercy on him), who is in the class of Al-Junayd (may his secret be sanctified), performed seventy Hajj on his behalf, peace and blessings of Allah be upon him. And Ibn al-Sarraj concluded [recitations of the Quran]

Hadrat Ibn Umar (may Allah be pleased with both) used to perform Umrahs on behalf of the Holy Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) after his passing without any bequest. Ibn Muwaffaq (may Allah have mercy on him), who was from the rank of Hadrat Junayd Baghdadi (may his secret be sanctified), [performed 70 Hajj] on

on behalf of him, peace and blessings of Allah be upon him...

behalf of the Holy Prophet (peace and blessings of Allah be upon him).

[1] Al-Quran 10:26 [2] Sahih al-Bukhari, Book of Prophets, Chapter on Allah's words 'And Ayyub etc.', Qadimi Kutub Khana Karachi 1/480; Durr al-Manthur citing Ahmad, Bukhari, and Bayhaqi regarding the verse 'And Ayyub when he called his Lord', Maktaba Ayat al-Uzma Qom Iran 4/330

फतावा रज़विया, जिल्द 9

यह विचार कि जब हदीस के हुक्म के अनुसार, इंशाअल्लाह, एक मुसलमान कब्र के फ़ित्ने से सुरक्षित है क्योंकि उसकी मृत्यु जुमे (शुक्रवार) के दिन हुई—विशेष रूप से यदि वह स्वयं नेक था—तो अब ईसाले सवाब (पुण्य पहुँचाने) की क्या आवश्यकता है, पूरी तरह से गलत और अर्थहीन है। जिस प्रकार ईसाले सवाब अल्लाह तआला की अनुमति से सज़ा और अज़ाब को रोकने में काम आता है, वैसे ही यह दर्जा बढ़ाने और नेकियों में वृद्धि करने में भी काम आता है। अल्लाह तआला के फ़ज़ल और उसकी ज़्यादती व बरकत से कोई भी बेनियाज़ (स्वतंत्र) नहीं है।

अल्लाह तआला का इरशाद है: "उन लोगों के लिए जिन्होंने भलाई की, उनके लिए सबसे अच्छा (पुरस्कार) और उससे भी अधिक है।"[1] (त)

हमारे आका हज़रत अय्यूब अलैहिस्सलाम को अल्लाह रब्बुल इज़्ज़त ने अपार धन-दौलत अता फरमाई थी। एक दिन वे स्नान कर रहे थे कि आसमान से सोने की टिड्डियाँ बरसने लगीं। अय्यूब अलैहिस्सलाम उन्हें अपनी चादर में समेटने लगे। अल्लाह रब्बुल इज़्ज़त ने पुकारा: "ऐ अय्यूब! क्या मैंने तुम्हें उस चीज़ से बेपरवाह नहीं कर दिया जो तुम देख रहे हो?" उन्होंने अर्ज़ किया: "हाँ, तेरी इज़्ज़त की कसम! लेकिन मैं तेरी बरकत से बेनियाज़ नहीं हूँ।"[2] (इसे इमाम बुखारी, इमाम अहमद और इमाम नसाई ने हज़रत अबू हुरैरा रज़ियल्लाहु अन्हु से रिवायत किया है। त)। जब बंदा अल्लाह तआला की दुनियावी बरकत से बेनियाज़ नहीं हो सकता, तो उसकी दीनी बरकत से कौन बेनियाज़ हो सकता है? आम नेक लोग तो दूर, वलियों के इमाम, बल्कि स्वयं पैग़ंबर और स्वयं अल्लाह के नबी सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम के लिए ईसाले सवाब का सिलसिला सहाबा के ज़माने से अब तक जारी है। हालाँकि पैग़ंबर पूरी तरह से मासूम (निष्पाप) होते हैं, फिर भी जुमे के दिन मौत या नेक होना इसमें कैसे बाधा बन सकता है? 'रद्दुल मुहतार' में लिखा है:

हज़रत इब्ने उमर रज़ियल्लाहु अन्हु नबी करीम सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम के विसाल के बाद बिना किसी वसीयत के उनकी ओर से उमरे किया करते थे। इब्ने मुवफ़्फ़क़ रहमतुल्लाहि अलैहि (जो हज़रत जुनैद बगदादी के वर्ग से हैं) ने हुज़ूर सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम की तरफ से सत्तर हज किए। और

हज़रत इब्ने उमर रज़ियल्लाहु अन्हुमा हुज़ूर सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम के विसाल के बाद बिना किसी वसीयत के उनकी तरफ से उमरे किया करते थे। इब्ने मुवफ़्फ़क़ रहमतुल्लाहि अलैहि ने (जो हज़रत जुनैद बगदादी कुद्दिस सिर्रहु के वर्ग से हैं) हुज़ूर

इब्ने सर्राज ने हुज़ूर सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम की तरफ से [कुरआन] खत्म किए...	सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम की [तरफ से सत्तर हज किए]।

[1] अल-कुरआन 10:26 [2] सहीह अल-बुखारी, किताबुल अंबिया, बाब अल्लाह तआला का कौल 'व अय्यूब' आदि, कदीमी कुतुब खाना कराची 1/480; दुर्रे मंसूर ब-हवाला अहमद, बुखारी और बैहकी आयत 'व अय्यूब इज़ नादा रब्बहू', मकतबा आयतुल उज़मा कोम ईरान 4/330

فتاوٰی رضویہ جلد نہم

یہ خیال کہ جب ہو حکمِ حدیث ان شاء اللہ العزیز فتنہ قبر سے مامون ہے کہ اس مسلم کی موت روزِ جمعہ واقع ہوئی خصوصاً وہ خود ہی صالحین سے تھا تو اب ایصالِ ثواب کی کیا حاجت، محض غلط اور بے معنی ہے۔ ایصالِ ثواب جس طرح منعِ عذاب و عقاب میں باذن اللہ تعالٰی کام دیتا ہے یونہی رفعِ درجات و زیادتِ حسنات میں اور حق سبحانہ و تعالٰی کے فضل اور اس کی زیادت وبرکت سے کوئی غنی نہیں۔

قال تعالٰی: لِلَّذِينَ أَحْسَنُوا الْحُسْنَى وَزِيَادَةٌ1۔ اللہ تعالٰی کا ارشاد ہے: نیکوکاروں کے لیے بھلائی ہے اور مزید بھی ہے۔(ت)

سیدنا ایوب علیہ الصلوٰۃ والسلام کی مولٰی جل وعلا نے اموالِ عظیمہ عطا فرمائے تھے، ایک روز نہارہے تھے کہ آسمان سے سونے کی ٹڈیاں برسیں، ایوب علیہ الصلوٰۃ والسلام چادر میں بھرنے لگے، رب عزوجل نے ندا فرمائی: یا ایوب الم اکن اغنیک عما تری اے ایوب! جو تمہارے پیشِ نظر ہے کیا میں نے تمہیں اس سے بے پروانہ کیا تھا؟ عرض کی: بلی وعزتك ولكن لا غنى عن بركتك 2 ضر و غنی کیا تھا تیری عزت کی قسم مگر مجھے تیری برکت سے تو بے نیازی نہیں رواہ البخاری واحمد والنسائی عن ابی ھریرۃ رضی اللہ تعالٰی عنہ (اسے امام بخاری و امام احمد و نسائی نے حضرت ابوہریرہ رضی اللہ تعالٰی عنہ سے روایت کی ہے۔ ت) جب حق جل و علا کی دینوی برکت سے بندہ کو غنا نہیں تو اس کی دینی برکت سے کون بے نیاز ہوسکتا ہے۔ صلحاء تو صلحا خود امامِ اعظم اولیاء بلکہ حضراتِ انبیاء خود حضور پرنور نبی الانبیاء علیہ الصلوٰۃ والسلام کو ایصالِ ثواب زمانہ صحابہ کرام رضی اللہ تعالٰی عنہم سے اب تک معمول ہے حالانکہ انبیاء کرام

علیہم الصلوٰۃ والسلام قطعاً معصوم ہیں تو موتِ جمعہ یا صلاح کیا مانع ہوسکتی ہے۔ ردالمختار میں ہے:

ان ابن عمر کان یعتمر عنه صلی الله تعالی علیه وسلم عمرا بعد موته من غیر وصیة وحج ابن الموفق (رحمة الله تعالی) وهو فی طبقة الجنید قدس سره) عنه صلی الله تعالی علیه وسلم سبعین حجة وختم ابن السراج عنه بغدادی قدس سره

حضرت ابن عمر رضی الله تعالیٰ عنہما حضور صلی الله تعالیٰ علیہ وسلم کے وصال کے بعد بغیر کسی وصیت کے ان کی طرف سے عمرے کیا کرتے تھے، ابن موفق رحمہ الله نے (جو حضرت جنید صلی الله تعالیٰ علیہ وسلم کی

1 القرآن ۲۶/۱۰ 2 صحیح البخاری کتاب الانبیاء باب قول الله عزوجل وایوب الخ قدیمی کتب خانہ کراچی ۴۸۰/۱ ، در منثور بحوالہ احمد و بخاری و بیہقی آیہ وایوب اذ نادی ربہ مکتبہ آیۃ العظمی قم ایران ۴ / ۳۳۰

Fatawa-e-Razviya Volume 9

[Arabic Section]: ...on behalf of him (peace be upon him) more than ten thousand Quranic recitations (khatam) and offered sacrifices like that on his behalf (this was cited from Imam Ibn Hajar al-Makki, from Imam al-Ajal Taqi al-Milla wa al-Din al-Subki, may Allah the Almighty have mercy on them both. Then he said, meaning al-Shami): Ahmad ibn al-Shalabi, the teacher of the author of al-Bahr, cited from the commentary of al-Tayyibah by al-Nuwayri (may Allah have mercy on them. Then he said): And the statement of our scholars that a person may dedicate the reward of his deeds to another, includes the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him), for he is the most deserving of that, as he saved us from misguidance. So, in that, there is a kind of gratitude and doing good to him, and the perfect one is capable of increasing in perfection. [Summarized] - And Allah Almighty knows best.

[Urdu translation of the above Arabic]: performed seventy pilgrimages (Haj) on his behalf, Ibn Siraj recited more than ten thousand Quranic completions (khatam) on behalf of the Presence (peace be upon him), and similarly offered sacrifices on behalf of the Master. This was cited from Imam Ibn Hajar Makki, who cited it from Imam al-Ajal Taqi al-Millat wa al-Din Subki, may Allah the Almighty have mercy on them both. Further, Allama Shami wrote: a similar subject was seen in the manuscript of the Mufti of the Hanafis, Shahab al-Din Ahmad al-Shalabi, the teacher of the author of Bahr, with reference to Nuwayri's commentary on Tayyibah, may Allah have mercy on them. Further, Allama Shami said: and this statement of our scholars that a person can dedicate the reward of his deeds to others, includes the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) as well, because he is most deserving of it since the Presence himself took us out of misguidance, so in this is a form of gratitude and good conduct, and the one who is perfect is deserving of further perfection. And Allah the Almighty knows best.

Problem 214: From Sarena village, Bareilly district, Bareilly tehsil. Queried by Mr. Abdul Karim, 20 Safar al-Muzaffar 1332 AH. What do the scholars of religion say regarding this matter: Zaid inquires whether it is permissible or not to omit items like a lower garment (tehband), handkerchief, comb etc. from the shroud, or rather, is it better [to omit them]? And every day performing Fatiha on the deceased's food, and every Thursday inviting and feeding several poor people, and for forty days performing Fatiha every day, and feeding the poor on Thursdays, and on the fortieth day filling a pitcher or jar with water and placing a sheet over it, cooking something and offering Fatiha, and considering this as "releasing the soul from the house," and

distributing 'jarees' (rice with sugar), and halwa-bread with jarees being distributed among the community, and the Fatiha for that deceased being separate until Shab-e-Barat and Arafah. After Arafah, it is included in Shab-e-Barat. And if the community is not invited to the deceased's Fatiha feast, they take great offense. Those customs which are impermissible should be recorded separately.

The Answer: Three clothes for the shroud are Sunnah for a man and five for a woman. Other than these, no other lower garment or handkerchief is in the shroud...

1: Radd al-Muhtar, Chapter on Recitation for the Deceased etc., Dar Ihya al-Turath al-Arabi, Beirut, 1/ 605 & 606.

फ़तावा-ए-रज़विया जिल्द नौ (9)

[अरबी खंड]: ...हुज़ूर (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) की ओर से दस हज़ार से अधिक कुरान के खतम किए और इसी तरह उनकी ओर से कुर्बानी भी दी (इसे इमाम इब्न हजर मक्की ने इमाम तकी अल-दीन सुबकी से उद्धृत किया, अल्लाह उन दोनों पर रहम करे। फिर शामी ने कहा): अहमद बिन अल-शलबी ने नुवेरी की 'शराह तय्यबा' के हवाले से यही बात अपनी हस्तलिपि में लिखी है (अल्लाह उन पर रहम करे)। हमारे विद्वानों का मत है कि मनुष्य अपने कर्मों का पुण्य दूसरों को समर्पित कर सकता है, इसमें पैगंबर (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) भी शामिल हैं क्योंकि वे इसके सबसे अधिक हकदार हैं क्योंकि उन्होंने ही हमें भटकाव से बचाया। यह एक प्रकार की कृतज्ञता और उनके प्रति सद्भावना है, और जो पूर्ण है वह और अधिक पूर्णता के योग्य है। [संक्षिप्त] - अल्लाह सबसे बेहतर जानता है।

[उपरोक्त अरबी का उर्दू अनुवाद]: की ओर से सत्तर हज किए, इब्न सिराज ने हुज़ूर सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम की ओर से दस हज़ार खतम से अधिक पढ़े, और इसी तरह सरकार की ओर से कुर्बानी भी की। इसे इमाम इब्न हजर मक्की से उन्होंने इमाम अजल तकी अल-मिल्लत वदीन सुबकी से उद्धृत किया, रहिमहुल्लाहु तआला, आगे अल्लामा शामी ने लिखा: इसी तरह का विषय हनफी मुफ्ती शहाब अल-दीन अहमद अल-शलबी की हस्तलिखित पुस्तक में नुवेरी की शराह तैयबा के हवाले से देखा गया। आगे अल्लामा शामी ने कहा, और हमारे उलेमा का यह कथन कि मनुष्य अपने कर्म का पुण्य दूसरों के लिए कर सकता है, इसमें नबी सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम भी शामिल हैं क्योंकि वे इसके सबसे अधिक हकदार हैं क्योंकि हुज़ूर ने ही हमें गुमराही से निकाला, तो इसमें एक प्रकार का धन्यवाद और अच्छा व्यवहार है और पूर्ण व्यक्ति और भी पूर्णता के योग्य है। वल्लाहु तआला आलम।

मसला २१४: ग्राम सरीना, जिला बरेली, तहसील बरेली। प्रार्थी अब्दुल करीम साहिब, २० सफ़र अल-मुज़फ़्फ़र १३३२ हिजरी। दीन के विद्वान इस विषय में क्या कहते हैं कि ज़ैद पूछता है कि कफ़न में तहबंद, रूमाल, कंघी आदि कम करना जायज़ है या नहीं बल्कि क्या यह बेहतर है? और हर दिन मृतक के भोजन पर फातिहा पढ़ाना और हर गुरुवार को कुछ गरीबों को दावत देकर खिलाना और चालीस दिनों तक हर दिन फातिहा दिलाना और गुरुवार को फ़क़ीरों को खिलाना और चालीसवें दिन घड़े या मटके में पानी भरकर उस पर चादर रखना, कुछ पकाकर फातिहा देना और उसे घर से रूह निकालना करार देना, और 'जरीस' यानी चीनी वाले चावल बाँटना, और हलवा-रोटी और जरीस

बिरादरी में बाँटना और शबे बरात और अरफ़ा तक उस मृतक की फातिहा अलग होना। अरफ़ा के बाद शबे बरात के यानी शबे बरात में शामिल होती है और अगर बिरादरी को फातिहा की दावत में शामिल न करें तो वे बहुत बुरा मानते हैं, ये रस्में जो नाजायज़ हों वे अलग से लिखी जाएँ।

उत्तर: पुरुष के लिए कफ़न के तीन कपड़े सुन्नत हैं और स्त्री के लिए पाँच। इनके अलावा कफ़न में कोई और तहबंद या रूमाल नहीं होता...

१: रद अल-मुह्तार, मृतक के लिए क़िरत का बयान आदि, दार इह्या अल-तुराथ अल-अरबी, बेरुत १/ ६०५ और ६०६।

पृष्ठ ६०९ / ९४८

فتاوی رضویہ جلد نہم

علیہ وسلم اکثر من عشر الاف ختمۃ وضحیٰ عنہ مثل ذلک (نقلہ عن الامام ابن حجر المکی عنب الامام الاجل تقی الملۃ والدین السبکی رحمہما اللہ تعالیٰ ثم قال اعنی الشامی) احمد بن الشلبی شیخ صاحب البحر نقلاً عن شرح الطیبۃ للنویری (رحمہم اللہ تعالیٰ ثم قال) وقول علمائنا لہ ان یجعل ثواب عملہ لغیرہ یدخل فیہ النبی صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم فانہی احق بذلک حیث انقدنا من الضلالۃ ففی ذلک نوع شکر واسداء جمیل لہ والکامل قابل لزیادۃ الکمال ملخصاً ۱۸ - واللہ تعالیٰ اعلم

طرف سے ستر حج کیے، ابن سراج نے حضور صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کی طرف سے دس ہزار ختم سے زیادہ پڑھے، اور اسی کے مثل سرکار کی جانب سے قربانی بھی کی۔ اسے امام ابن حجر مکی سے انھوں نے امام اجل تقی الملت والدین سبکی سے نقل کیا، رحمہما اللہ تعالیٰ، آگے علامہ شامی نے لکھا : اسی جیسا مضمون مفتی حنفیہ شہاب الدین احمد الشلبی شیخ صاحب بحر کی قلمی تحریر میں نویری کی شرح طیبہ کے حوالے سے دیکھا، رحمہم اللہ۔ آگے علامہ شامی نے فرمایا، اور ہمارے علماء کا یہ قول کہ انسان اپنے عمل کا ثواب دوسروں کے لیے کرسکتا ہے، اسی میں نبی صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم بھی داخل ہیں اسی لیے کہ وہ اس سے زیادہ حق دار ہیں کیونکہ حضور ہی نے ہمیں گمراہی سے نکالا تو اس میں ایک طرح کی شکر گزاری اور حسن سلوک ہے او ر صاحب کمال مزید کمال کے قابل ہے۔ واللہ تعالیٰ اعلم

مسئلہ ۲۱۴: از موضع سرینا ضلع بریلی تحصیل بریلی مسئولہ عبدالکریم صاحب ۲۰ صفر المظفر ۱۳۳۲ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ زید دریافت کرتا ہے کہ کفن میں تہبند و رومال، کنگھی وغیرہ کم کرنا جائز ہے یا نہیں بلکہ ہو بہتر ہے۔ اور ہر روز خوراک پہ میت کے فاتحہ دکھانا اور ہر جمعرات کو چند مسکین کو دعوت کرکے کھلانا اور چالیس یوم تک ہر روز

فاتحہ دلانا اور جمعرات کو فقیروں کو کھلانا اور چالیسویں یوم کو گھڑے یا مٹکے میں پانی بھر کر اس پر چادر رکھتے ہیں، کچھ پکا کر فاتحہ دیتے ہیں اور اس کو روح نکالنا مکان سے قرار دیتے ہیں اور جریس یعنی چاول میں شکر ڈال کر تقسیم کرتے ہیں، اور حلوہ روٹی بہ جریس برادری میں تقسیم کیا جاتا ہے اور شب برات و عرفہ تک اس میت کی فاتحہ علیحدہ ہوتی ہے۔ بعد عرفہ شب برات کے یعنی شب برات کو شامل ہوتی ہے اور برادری کو دعوت فاتحہ میت میں شامل نہ کریں تو بہت برا مانتے ہیں، یہ رسمیں جو ناجائز ہوں وہ علیحدہ تحریر فرمائی جائیں۔

الجواب: مرد کے لیے کفن کے تین کپڑے سنت ہیں اور عورت کے لیے پانچ۔ ان کے سوا کفن میں کوئی اور تہبند یا رومال

۱۸ ردالمحتار مطلب فی القراءۃ للمیت الخ داراحیاء التراث العربی بیروت ۱/ ۶۰۵ و ۶۰۶

Fatawa Razawiyya Volume Nine

...giving is an innovation and forbidden. If kohl or a comb is given to a poor person as charity, there is no harm, but keeping it in the shroud is forbidden. Every day, bringing a portion of food for the deceased's Fatiha and giving it to the poor, and feeding a few poor people every Thursday night, doing so for forty days, and if possible for a year or forever—all these things are better. Extracting the soul in this manner (as described in some folk practices) is mere ignorance, folly, and innovation. Yes, having the Fatiha recited is good; distributing sugar and rice to the poor is fine, but it should not be distributed among the brotherhood (clansmen) as a mourning feast. If Fatiha is given separately until Arafa or after, there is no harm; if included, there is no harm. To believe that there's a separate ruling for Arafa and then for inclusion is wrong and ignorant. Hosting a feast for the brotherhood on behalf of the deceased is forbidden; their taking offense is folly. However, giving to those in the brotherhood who are poor is better than giving to other poor people. And Allah Almighty knows best.

Problem 215 to 216: From Moradabad, Madrasa Ahle-Sunnat, Bazar-e-Diwan, sent by Maulana Abdul Wadood Sahib Qadri Barkati Bengali, student of the mentioned Madrasa, 2 Jumada al-Ula 1336 AH. (1) Is there more reward in sitting at home and reciting Fatiha for conveying the reward, or at the cemetery? And pouring water on the grave at the time of reciting Fatiha? (2) It is common in many mosques in Bengal that neighborhood residents cook rice, bread, and food items on Fridays, send them to mosques for Fatiha, and for distribution among the worshipers. Is it permissible for worshipers to eat these mentioned items or not? And should these things be distributed inside the mosque or outside? Or should it be completely prohibited, and they be told not to send it to the mosques?

The Answer: (1) There is more reward in going to the cemetery and reciting, as visiting graves is a Sunnah, and reciting there also comforts the hearts of the deceased. And wherever the Holy Quran is recited, Divine Mercy descends. If the grave is solid (built), pouring water on it is useless and meaningless; similarly if it's an earthen grave and the soil is set. Yes, if it's an earthen grave and the soil is loose, there is no harm in pouring water to let it settle, as it is a Sunnah at the beginning of burial. (2) Sending is permissible. However, when the senders send for general worshipers, then it is not permissible for the wealthy (to eat it). And for someone not in I'tikaf, eating anything inside the mosque is not allowed; rather, they should eat

outside the mosque. This should be emphasized, and sending should not be prohibited. And Allah Almighty knows best.

फतावा रज़विया जिल्द नहम (नौ)

...देना बिदअत (नवाचार) और वर्जित है। यदि सुरमा, कंघी किसी गरीब को सदके के तौर पर दी जाए तो कोई हर्ज नहीं, लेकिन कफन में रखना हराम है। हर दिन मृतक के फातिहा के लिए भोजन का एक हिस्सा लाकर किसी गरीब को देना और हर गुरुवार की रात कुछ गरीबों को खाना खिलाना, चालीस दिनों तक ऐसा ही करना, और यदि संभव हो तो एक साल तक या हमेशा के लिए—ये सब बातें बेहतर हैं। इस तरह रूह निकालना (लोक प्रथाओं के अनुसार) महज जहालत, बेवकूफी और बिदअत है। हाँ, फातिहा दिलाना अच्छा है; गरीबों को चीनी, चावल बांटना अच्छा है, लेकिन बिरादरी (रिश्तेदारों) के बीच शोक भोज के रूप में नहीं बांटा जाना चाहिए। यदि अराफ़ा तक या उसके बाद हमेशा अलग फातिहा दें तो कोई हर्ज नहीं; शामिल रखें तो भी कोई हर्ज नहीं। यह समझना कि अराफ़ा तक अलग नियम है और फिर शामिल का, यह गलत और अज्ञानता है। बिरादरी के लिए मृतक की ओर से दावत देना वर्जित है; उनका बुरा मानना मूर्खता है। हाँ, बिरादरी में जो गरीब हों उन्हें देना अन्य गरीबों को देने से बेहतर है। और अल्लाह तआला ही बेहतर जानता है।

मसला 215 से 216: मुरादाबाद, मदरसा अहले सुन्नत, बाज़ार-ए-दीवान से, प्रेषक मौलवी अब्दुल वदूद साहब क़ादरी बरकाती बंगाली, उक्त मदरसे के छात्र, 2 जमादी अल-उला 1336 हिजरी। (1) घर में बैठकर फातिहा पढ़कर सवाब पहुँचाने में अधिक सवाब है या कब्रिस्तान में? और फातिहा पढ़ने के समय कब्र पर पानी डालना? (2) बंगाल की कई मस्जिदों में दस्तूर है कि मोहल्ले वाले शुक्रवार के दिन चावल, रोटी और खाने की चीज़ें पकाकर फातिहा के वास्ते और नमाज़ियों में बांटने के लिए मस्जिदों में भेजते हैं, क्या नमाज़ियों के लिए इन चीज़ों को खाना जायज़ है या नहीं? और इन चीज़ों को मस्जिद के अंदर बांटना चाहिए या बाहर? या बिल्कुल मना कर दिया जाए और कह दिया जाए कि मस्जिदों में न भेजा करो?

अल-जवाब (उत्तर): (1) कब्रिस्तान में जाकर पढ़ने में अधिक सवाब है क्योंकि कब्रों की ज़ियारत करना सुन्नत है और वहाँ पढ़ने से मृतकों का दिल भी बहलता है। और जहाँ कुरान मजीद पढ़ा जाए, वहाँ ईश्वरीय दया (रहमत) उतरती है। यदि कब्र पक्की है तो उस पर पानी डालना व्यर्थ और अर्थहीन है; इसी तरह यदि कच्ची है और मिट्टी जमी हुई है। हाँ, यदि कच्ची है और मिट्टी बिखरी हुई है, तो उसे जमाने के लिए पानी डालने में कोई हर्ज नहीं, जैसा कि दफन की शुरुआत में स्वयं सुन्नत है। (2) भेजना जायज़ है। और जबकि भेजने वाले आम नमाज़ियों के लिए भेजें, तो अमीरों (अग्निया) के लिए यह जायज़ नहीं है। और जो एतिकाफ़ में न हो, उसे मस्जिद के अंदर कुछ भी खाने की अनुमति नहीं

है, बल्कि मस्जिद से बाहर खाएं। इसी पर ज़ोर दिया जाए और भेजने से मना न किया जाए। और अल्लाह तआला ही बेहतर जानता है।

पेज 611 ऑफ़ 948

دینا بدعت و ممنوع ہے۔ سُرمہ، کنگھی اگر فقیر کو بطورِ صدقہ دیں تو حرج نہیں اور کفن میں رکھنا حرام ہے۔ ہر روز ایک خوراک پر میّت کی فاتحہ لاکر مسکین کو دینا اور ہر پنجشنبہ کی رات چند مساکین کو کھلانا، چالیس، روز تک ایسا ہی کرنا اور ہو سکے تو سال بھر تک یا ہمیشہ کرنا یہ سب باتیں بہتر ہیں اور اس طرح روح نکالنا محض جہالت و حماقت و بدعت ہے۔ ہاں فاتحہ دلانا اچھا ہے، شکر، چاول مساکین کو تقسیم کرنا خوب ہے مگر برادری میں موت کے لئے نہ بانٹا جائے، عرفہ تک یا بعد تک اگر الگ ہمیشہ فاتحہ دیں تو حرج نہیں، شامل رکھیں تو حرج نہیں، یہ سمجھنا کہ عرفہ تک الگ کا حکم ہے پھر شامل کا، یہ غلط و جہالت ہے، میّت کی دعوت برادری کے لئے منع ہے ان کا بُرا ماننا حماقت ہے، ہاں برادری میں جو فقیر ہو اسے دینا اور فقیر کے دینے سے افضل ہے۔ واللہ تعالٰی اعلم

مسئلہ ۲۱۵ تا ۲۱۶: از مراد آباد مدرسہ اہلسنت بازار دیوان مرسلہ مولوی عبدالودود صاحب قادری برکاتی بنگالی طالب علم مدرسہ مذکور ۲ جمادی الاولٰی ۱۳۳۶ھ (۱) گھر میں بیٹھ کر فاتحہ پڑھ کر ثواب رسانی کرنے سے زیادہ ثواب ہے یا قبرستان پر، اور فاتحہ پڑھنے کا وقت قبر پر پانی ڈالنا۔ (۲) اکثر مساجد بنگال میں دستور ہے کہ محلّہ والے جمعہ کے دن چاول روٹی کھانے کی چیزیں پکا کر فاتحہ کے واسطے اور نمازیوں کو تقسیم کرنے کے لیے مسجدوں میں بھیجا کرتے ہیں، ان اشیاء موصوفہ کو کھانا نمازیوں کے لئے جائز ہے یا نہیں؟ اور ان چیزوں کو مسجد کے اندر تقسیم کرنا چاہئے یا باہر؟ یا بالکل ممانعت کر دی جائے اور کہہ دیا جائے کہ مسجدوں میں نہ بھیجا کرو۔

الجواب: (۱) قبرستان میں جاکے پڑھنے میں زیادہ ثواب ہے کہ زیارتِ قبور بھی سنت ہے اور وہاں پڑھنے میں اموات کا دل بھی بہلتا ہے۔ اور جہاں قرآن مجید پڑھا جائے رحمت الٰہی اترتی ہے۔ قبر

اگر پختہ ہے اس پر پانی ڈالنا فضول وبے معنی ہے، یونہی اگر کچی ہے اور اس کی مٹی جمی ہوئی ہے۔ ہاں اگر کچی ہے اور مٹی منتشر ہے تو اس کے جم جانے کو پانی ڈالنے میں حرج نہیں، جیسا کہ ابتدائے دفن میں خود سنت ہے۔ (۲) بھیجنا جائز ہے۔ اور جبکہ بھیجنے والے عام نمازیوں کے لئے بھیجیں تو اغنیاء کو ناجائز ہے۔ اور مسجد کے اندر کسی چیز کے کھانے کی غیر معتکف کو اجازت نہیں بلکہ مسجد سے باہر کھائیں، اسی کی تاکید کی جائے اور بھیجنے سے ممانعت نہ کی جائے، واللہ تعالیٰ اعلم

Volume 9 Fatawa Razviya

Problem 217 to 218: From Bagh, District Alipura, Gwalior State, house of Munshi Ousaf Ali Sahib, sent by Ashraf Ali Sahib, Pensioner, Kota State, 12 Jumada al-Ula 1336 AH. (1) Is the method of placing food and water in front and raising hands to offer Fatiha a Sunnah or what? (2) If food is cooked with the specific intention of donating the reward (Isal-e-Thawab), whether for the elders of religion or general Muslims, can the wealthy (aghniya) eat this food?

Answer: (1) It is permissible to offer Fatiha by placing food and water in front. (2) The wealthy can also eat, except for the food served as an invitation at the time of death, which is prohibited and an innovation (bid'ah). And the food of Fatiha of general Muslims like Chehlum (40th day), Barshi (anniversary), and Shish-mahi (6th month) is also not suitable for the wealthy. And Allah Almighty knows best.

Problem 219 to 222: From Kota City, Rajputana, Mohalla Lordpura, through Kans Behru, asked by Ilahi Bakhsh Sahib, 18 Rabi al-Akhir 1339 AH. (1) Respected Maulana Sahib! Please observe the events carefully. The prayer leader (Pesh Imam) of the mosque was called to a place in the neighborhood for Fatiha and Isal-e-Thawab. There were a few women who closed the house door and asked to read the Fatiha for the mistress of the house. The Mullah Ji said, offer it by observing veil (purdah) or closing with a cloth; this is a women's issue, it's not like this in Sharia. Fine, put a cloth, but keep the food in front. Fine, even after closing, the food was not kept in front. The door was opened a little, a veil was put up, and Mullah Ji read the Fatiha. The women then said, this was for the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him), now read for the wife and similarly read for Ali. Mullah Ji got angry and said, you are having the Fatiha performed against the rule and against the principles of Sharia. I cannot do it like this; it disturbs my belief and I cannot sell my Islam. Saying this, he went home. Later, a woman spoke very harshly to Mullah Ji and cursed him. He remained patient. Mullah Ji's heart's desire was that the method of Fatiha recitation and Isal-e-Thawab that has come down from the predecessors (Salaf) and all the elders of religion have been practicing should be followed. Why do you invent new methods? Due to this, some relatives of that woman also got angry with Mullah Ji. These are the facts. (2) These women offer the Fatiha of Hazrat Bibi Fatima Khatoon-e-Jannat separately from the Mothers of the Believers (the pure wives of the Prophet, peace and blessings of Allah be upon him) and the wives of all prophets by putting a veil or a cloth, and they impose several restrictions that no one should eat this food except a widow who has a husband or one who has remarried,

or men. Is there any proof of this in Sharia or what? Whatever it may be, please write it down with references to books.

जिल्द नहम (खंड 9) फ़तावा रज़विया

मसला 217 से 218: बाग, ज़िला अलीपुरा, ग्वालियर रियासत, मुंशी औसाफ अली साहब के मकान से, प्रेषक अशरफ अली साहब, पेंशनर रियासत कोटा, 12 जमादी अल-उला 1336 हिजरी। (1) खाना-पानी सामने रखकर और उस पर हाथ उठाकर फातिहा देना यह तरीका सुन्नत है या क्या? (2) जो खाना ब-नीयत खास (विशेष उद्देश्य से) ईसाले सवाब (पुण्य दान) के लिए, चाहे दीन के बुज़ुर्गों के लिए हो या आम मुसलमानों के लिए, पकवाया जाए तो उस खाने को अग़निया (धनी लोग) खा सकते हैं?

अल-जवाब (उत्तर): (1) खाना-पानी सामने रखकर फातिहा देना जायज़ है। (2) अग़निया भी खा सकते हैं सिवाय उस खाने के जो मौत के समय दावत के रूप में दिया जाए, वह वर्जित और बिदअत (नवाचार) है। और आम मुस्लिमों की फातिहा जैसे चेहलम, बरसी, शशमाही का खाना भी अग़निया के लिए उचित नहीं है। और अल्लाह तआला बेहतर जानता है।

मसला 219 से 222: शहर कोटा, राजपूताना, मोहल्ला लॉर्डपुरा, मार्फत कांस बहरू, सवालकर्ता इलाही बख्श साहब, 18 रबी अल-आख़िर 1339 हिजरी। (1) हज़रत मौलाना साहब! वाकयात (घटनाओं) को गौर से देखें, मस्जिद के पेश इमाम को मोहल्ले में एक जगह फातिहा और ईसाले सवाब के लिए बुलाया गया। वहां कुछ औरतें थीं, घर का दरवाज़ा बंद करके कहा बीवी साहिबा की फातिहा पढ़ दो। मुल्ला जी ने कहा कि पर्दा करके या कपड़े से बंद करके दिलाना औरतों का मसला है, शरीयत में ऐसा नहीं है, खैर कपड़ा डाल दो मगर खाना तो सामने रखो। खैर बंद करके भी खाना सामने नहीं रखा गया। थोड़ा सा दरवाज़ा खोला गया, पर्दा कर दिया गया, मुल्ला जी ने फातिहा पढ़ दी। औरतें कहने लगीं यह तो रसूल अल्लाह (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) की थी, अब बीवी की पढ़वाओ और इसी तरह अली की पढ़ देना। मुल्ला जी नाराज़ होकर बोले कि तुम खिलाफे कायदा और शरीयत के उसूलों के खिलाफ फातिहा दिलवाती हो, इस तरह मैं नहीं दे सकता, मेरे अकीदे में खलल होता है और मैं अपना इस्लाम नहीं बेच सकता। यह कहकर वह अपने मकान पर चले आए। बाद में एक औरत ने मुल्ला जी को बहुत भला-बुरा कहा और लान-तान की। उन्होंने सब्र किया। मुल्ला जी का दिली मक़सद यह था कि सलफ़ (पूर्वजों) से जो फातिहा ख्वानी और ईसाले सवाब का तरीका चला आ रहा है और तमाम बुज़ुर्गान-ए-दीन करते आए हैं, वही होना चाहिए, नए-नए तरीके क्यों निकालती हो? जिस पर उस औरत के कुछ अज़ीज़ (रिश्तेदार) भी मुल्ला जी पर नाराज़ हुए। यह वाकयात हैं। (2) ये औरतें हज़रत बीबी फातिमा खातून-ए-जन्नत की फातिहा पर पर्दा डालकर या

कपड़ा डालकर उम्माहातुल मोमिनीन (हुज़ूर सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम की पाक बीवियां) और तमाम पैग़म्बरों की बीवियों से अलग दिलवाती हैं और कुछ कैदें (शर्तें) लगाती हैं कि सिवाय उस बेवा के जिसका शौहर हो या दूसरे निकाह वाली हो या मर्द यह खाना न खाएं। क्या इसका सबूत कहीं शरीयत से भी है या क्या? जैसा हो वैसा किताबों के हवाले के साथ लिखें।

पेज 612 का 948

جلد نہم فتاوی رضویہ

مسئلہ ۲۱۷ تا ۲۱۸: از باگ ضلع الیپورہ ریاست گوالیار مکان منشی اوصاف علی صاحب مرسلہ اشرف علی صاحب پنشر ریاست کوٹہ ۱۲ جمادی الاولی ۱۳۳۶ھ (۱) کھانا پانی سامنے رکھ کر اور اس پر ہاتھ اٹھا کر فاتحہ دینا یہ طریقہ سنت ہے یا کیا؟ (۲) جو کھان بہ نیت خاص برائے ایصال ثواب خواہ بزرگان دین سے ہوں یا عام مسلمان ، پکوا یا جائے تو اس کھانے کو اغنیا کھا سکتے ہیں ؟

الجواب: (۱) کھانا پانی سامنے رکھ کر فاتحہ دینا جائز ہے۔ (۲) اغنیا بھی کھا سکتے ہیں سوا اس کھانے کے جو موت میں بطور دعوت کیا جائے وہ ممنوع و بدعت ہے۔ اور عام مسلمین کی فاتحہ چہلم ، برسی ، ششماہی کا کھانا بھی اغنیا کو مناسب نہیں۔ واللہ تعالیٰ اعلم

مسئلہ ۲۱۹ تا ۲۲۲: از شہر کوٹہ راجپوتانہ محلہ لارڈ پورہ معرفت کانس بہرو مسئولہ الہی بخش صاحب ۱۸ ربیع الآخر ۱۳۳۹ھ (۱) حضرت مولانا صاحب! واقعات کو بغور ملاحظہ فرمائیں، مسجد کے پیش امام کو محلہ میں ایک جگہ پر فاتحہ و ایصال ثواب کو بلالے گئے ، چند عورتیں تھیں ، گھر کا دروازہ بند کر کے کہا بیوی صاحبہ کی فاتحہ پڑھ دو۔ ملاں جی نے کہا کہ پردہ کر کے یا کپڑے سے بند کر کے دلانا، یہ عورتوں کا مسئلہ ہے شریعت میں ایسا نہیں ہے، خیر کپڑا ڈال دو مگر کھانا تو سامنے رکھو۔ خیر بند کر کے بھی کھانا سامنے نہیں رکھا گیا۔ تھوڑا سا دروازہ کھولا گیا، پردہ کر دیا گیا، ملاں جی نے فاتحہ پڑھ دی، عورتیں کہنے لگیں یہ تو رسول اللہ صلی اللہ تعالیٰ علیہ و سلم کی تھی اب بیوی کی پڑھوا اور اسی طرح سے علی کی پڑھ دینا، ملاں جی ناراض ہو کر بولے کہ تم خلاف قاعدہ اور خلاف اصول شرع فاتحہ دلاتی ہو اس طرح سے میں نہیں دے سکتا میرے عقیدے میں خلل ہوتا ہے اور میں اپنا اسلام نہیں بیچ سکتا ہوں، یہ کہہ کر

مکان پر چلے آئے۔ بعد میں ایک عورت نے ملاں جی کو بہت سخت و سست کہا اور لعن طعن کی۔ انھوں نے صبر کیا۔ دلی مطلوب ملاں جی کا یہ تھا کہ سلف سے جو طریقہ فاتحہ خوانی اور ایصال ثواب کا چلا آتا ہے اور تمام بزرگان دین ایصال ثواب کرتے چلے آئے ہیں وہ بات ہونا چاہئے نئے نئے طریقے کیوں نکالتی ہو؟ جس پر اس عورت کے بعض عزیز بھی ملاں جی پر ناراض ہوئے۔ یہ واقعات ہیں۔ (۲) یہ عورتیں حضرت بی بی فاطمہ خاتون جنت کی فاتحہ پر دہ ڈال کر یا کپڑا ڈال کر امہات المومنین حضور صلی اللہ تعالیٰ علیہ و سلم کی ازواج مطہرات اور جملہ پیغمبروں کی بیویوں سے علیحدہ دلاتی ہیں اور چند قیدیں لگاتی ہیں کہ سوائے شوہر والی بیوہ یا عقد ثانی والی یا مرد یہ کھانا نہ کھائیں، آیا اس کا ثبوت کہیں شریعت سے بھی ہے یا کیا؟ جیسا ہو ویسا بحوالہ کتب تحریر فرمائیں۔

Fatawa Rizvia, Volume 9

(3) Is there any command to perform the Niyaz (offering) of the Prophet (PBUH) or the Companions by covering it with a veil or a cloth, or is it just futile? And if a person, like the Imam of a mosque or anyone else, refuses to do so at someone's request, does he deserve to be cursed? Whatever the ruling is, please provide a reference from the book. (4) Here, often on Shab-e-Barat, Eid-ul-Adha, Eid-ul-Fitr, weddings, or other happy occasions, women keep milk, bread, or small portions of food separately and ask for Fatiha to be performed, saying, "Give this on behalf of my grandfather or father or so-and-so." Is this permissible in Sharia or not?

The Answer: (1) It is not necessary for the food to be in view for Fatiha and the conveyance of rewards (Isal-e-Sawab). This was a mistake by the Imam. Keeping the food of the Niyaz for Khatoon-e-Jannat (the Lady of Paradise, Fatimah) behind a veil and not letting men eat it are the ignorances of women; they should be restrained from this. Both the Imam and the women should repent for their respective mistakes. And the woman who spoke harshly to the Imam should ask for his forgiveness. (2) These are merely baseless and purely invented notions; it is mandatory for men to eliminate these wrong ideas. (3) There is no command anywhere to put a veil over any Niyaz, and the Imam who did not do so acted correctly. For this reason, cursing him is strictly forbidden; such a curse returns to the one who utters it. (4) If Fatiha is performed for everyone at once, it is permissible, and if performed separately, it is also permissible, just as in worldly life. "There is no blame upon you whether you eat together or separately." (Quran 24:61). And Allah Almighty knows best.

Problem 223: From Rampur, Pur Gole Bazaar, Central Provinces, sent by Muhammad Saleem Khan, bookseller, 2 Jamadi-ul-Akhira 1330 AH. Question: There is a person who says that in the context of conveying rewards in Fatiha, saying words like "may the reward reach the pure souls (Arwah) of the Prophet (Peace and Blessings of Allah be upon Him)" is disrespectful towards the Prophet. He says not to include the word 'Arwah' (souls). Do not say "may the reward reach the souls of the Prophet (PBUH)" as he is 'Hayat-un-Nabi' (the Living Prophet). The Answer: The soul exists for the living as well; in fact, life itself is due to the soul, and it is mentioned in the wordings of Durood Sharif (Salutations).

[1] Al-Quran 24/61 Page 613 of 948

फ़तावा रिज़विया, जिल्द 9

(3) हुज़ूर (स.अ.व.) की नियाज़ या सहाबा की नियाज़ पर पर्दा करके या कपड़ा डालकर दिलाने का कहीं हुक्म है या यह महज़ फ़िज़ूल है? और जो लोग जैसे मस्जिद के इमाम या कोई और शख़्स किसी के कहने पर ऐसा न करें, क्या वे लानत के मुस्तहिक़ हैं? जैसा भी हो, किताब का हवाला तहरीर फ़रमाएं। (4) यहाँ अक्सर शब-ए-बरात, ईदुल अज़हा, ईदुल फ़ित्र, शादियों या अन्य खुशी के मौक़ों पर औरतें दूध-रोटी या थोड़ा-थोड़ा खाना अलग-अलग रखकर फ़ातिहा दिलाती हैं और कहती हैं कि इसे मेरे दादा, बाप या फ़लां के नाम पर दें। क्या शरीअत में यह बात जायज़ है या नाजायज़?

अल-जवाब (उत्तर): (1) फ़ातिहा और ईसाले सवाब के लिए खाने का सामने होना कुछ ज़रूरी नहीं। यह इमाम की ग़लती थी। और ख़ातूने जन्नत (स.अ.) की नियाज़ का खाना पर्दे में रखना और मर्दों को न खाने देना ये औरतों की जहालतें हैं; उन्हें इससे रोका जाए। इमाम और औरतें दोनों अपनी-अपनी ग़लती से तौबा करें। और जिस औरत ने इमाम को भला-बुरा कहा, वह उनसे माफ़ी माँगे। (2) ये महज़ बे-सबूत और निराधार मनगढ़ंत बातें हैं; मर्दों पर लाज़िम है कि इन ग़लत खयालों को मिटाएं। (3) किसी नियाज़ पर पर्दा डालने का कहीं कोई हुक्म नहीं है, और जिस इमाम ने ऐसा नहीं किया उसने अच्छा किया। इस वजह से उन पर लानत करना सख़्त हराम है; ऐसी लानत ख़ुद लानत करने वाले पर लौटती है। (4) एक ही जगह सबकी फ़ातिहा दिलाएं तो जायज़ है, और अलग-अलग दिलाएं तो भी जायज़ है, जैसे दुनियावी ज़िंदगी में। "तुम पर कोई गुनाह नहीं कि तुम मिल कर खाओ या अलग-अलग।" (क़ुरआन 24:61)। और अल्लाह तआला बेहतर जानता है।

मसला 223: रामपुर, पुर गोल बाज़ार, ममालिक मुतवस्सिता (सेंट्रल प्रोविंस) से मुर्सला मुहम्मद सलीम ख़ाँ, क़ुतुब फ़रोश, 2 जमादी उल आख़िर 1330 हिजरी। प्रश्न: एक शख़्स है जो कहता है कि फ़ातिहा में सवाब पहुँचाने के सिलसिले में ऐसा लफ़्ज़ कहना कि "आँहज़ूर सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम की अरवाहे मुतह्हरा (पाकीज़ा रूहों) को इसका सवाब पहुँचे", हुज़ूर की शान में 'अरवाह' लफ़्ज़ लाना बे-अदबी में शामिल है। अरवाह लफ़्ज़ शामिल न करो। ऐसा मत कहो कि आँहज़ूर (स.अ.व.) की अरवाह को सवाब पहुँचे, आप 'हयातुल नबी' हैं। अल-जवाब: रूह ज़िंदा के लिए भी है, बल्कि रूह ही से ज़िंदगी है, और दरूद शरीफ़ के अलफ़ाज़ में यह मौजूद है।

[1] अल-क़ुरआन 24/61 पेज 613/948

(۳) حضور کی نیاز یا صحابہ کی نیاز بھی پردہ کرکے یا کپڑا ڈال کر دلانے کا کہیں حکم ہے یا ویسے ہی لغو ہے؟ اور جو لوگ امام مسجد یا کوئی دوسرا شخص کسی کے کہنے سے اس کام کو نہ کرے کیا وہ مستحقِ لعن ہے؟ جیسا ہو ویسا حوالہ کتاب تحریر فرمائیں۔ (۴) یہاں پر اکثر شبِ برأت یا عید بقرہ یا عیدالفطر یا شادی بیاہ دیگر خوشی کے وقت دودھ روٹی یا تھوڑا تھوڑا کھانا الگ الگ رکھ فاتحہ دلاتی ہیں اور کہتی ہیں اس پر میرے دادا کی یا باپ کی یا فلاں کی دے دو۔ شرع شریف میں یہ بات جائز ہے یا نا جائز؟

الجواب: (۱) فاتحہ و ایصالِ ثواب کے لیے کھانے کا پیشِ نظر ہونا کچھ ضرور نہیں، یہ اس پیش امام کی غلطی تھی، اور حضرت خاتونِ جنت کی نیاز کا کھانا پردے میں رکھنا اور مردوں کو نہ کھانے دینا یہ عورتوں کی جہالتیں ہیں انھیں اس سے باز رکھا جائے پیش امام اور عورتیں دونوں اپنی اپنی غلطی سے توبہ کریں اور جس عورت نے پیش امام کو سخت و سست کہا وہ اس سے معافی مانگے۔ (۲) یہ محض بے ثبوت اور نری اختراعی باتیں ہیں، مردوں پر لازم ہے کہ ان غلط خیالوں کو مٹائیں۔ (۳) کسی نیاز پر پردہ ڈالنے کا کہیں حکم نہیں اور جو امام ایسا نہ کرے اس نے اچھا کیا۔ اس وجہ سے اس پر لعن سخت حرام ہے، ایسی لعنت خود لعنت کرنے والے پر پلٹتی ہے۔ (۴) ایک جگہ سب کی فاتحہ دلائیں تو جائز، اور جدا جدا دلائیں تو جائز، جیسے حیات دنیا میں، لَيْسَ عَلَيْكُمْ جُنَاحٌ أَنْ تَأْكُلُوا جَمِيعًا أَوْ أَشْتَاتًا (تم پر حرج نہیں کہ مل کر کھاؤ یا جدا جدا۔ ت) واللہ تعالٰی اعلم

مسئلہ ۲۲۳: از رامپور پور گول بازار ممالک متوسطہ مرسلہ محمد سلیم خاں کتب فروش ۲ جمادی الاخری ۱۳۳۰ھ ایک شخص ہے وہ کہتا ہے کہ فاتحہ میں ثواب رسانی کے سلسلہ میں ایسا لفظ کہنا

کہ آنحضرت صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کی ارواحِ مطہرہ کو اس کا ثواب پہنچے۔ ایسا لفظ حضرت کی شان میں ارواح کا لفظ لانا بے ادبی میں داخل ہے۔ ارواح کا لفظ مت شامل کرو۔ ایسا مت کہو کہ آنحضرت صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کی ارواح کو ثواب پہنچے، آپ حیات النبی ہیں، فقط الجواب: روح زندہ کے لیے بھی ہے بلکہ روح ہی سے زندگی ہے اور درود شریف کے صیغوں میں ہے:

[1] القرآن ۲۴/۶۱ صفحہ ۶۱۳ از ۹۴۸

Fatawa Rizvia, Volume 9

"O Allah, send blessings upon the soul of our master Muhammad among all souls." There is no harm in saying these actual words, but where the common people understand from this what this pious person has understood, they must be stopped from saying it, or this doubt should be removed from their hearts that the term 'souls' applies only to the deceased. The Messenger of Allah (may peace and blessings of Allah be upon him) and all the noble Prophets (peace be upon them) are truly alive just as they were during their time in the world. Their death occurs for a single moment for the confirmation of the Divine Promise: "Every soul shall taste death" (Quran). Then they are forever alive with a real, physical, and worldly life; they offer prayers, perform Hajj, visit gatherings of goodness, and eating and drinking continue just as in the world without any impurity, as stated in the Ahadith and the rulings of ancient and modern Imams. And Allah (the Glorified and Exalted) knows best.

Problem 224: From Bhera, District Shahpur (now Jhelum), Punjab, Multani Gate. Queried by Fazl Haq Sahib Chishti, 5th Ramadan 1339 AH. To the presence of the Sultan of Scholars, the Profound, the Proof of the Virtuous, the Powerful, the Treasure of Guidance and Certainty, Sheikh-ul-Islam and the Muslims, Maulana Al-Mufti Al-Allama Al-Shah Muhammad Ahmad Raza Khan Sahib (may his high shadow endure). Peace be upon you and the mercy of Allah and His blessings. What do the scholars of religion say regarding this matter: on what item is Giyarween Sharif better to be performed religiously? Rice or halwa, etc., and among which people should it be distributed? Should one also taste it as a blessing or not? And should a part of it be given to a Peer Sahib or a Sayyid or not? In a mosque, a few companions together cook Giyarween; should that cooked Giyarween Sharif be distributed among the mosque congregants or not? Give a ruling and be rewarded.

The Answer: It is better for the 'Niyaz' (consecrated food) to be such food of which no part is discarded, like Zarda or Halwa or Khushka (plain rice), or that Pulao from which bones have been separated. There is the discretion to distribute it; it can be given to whichever Sunni Muslim one wishes, even if they are wealthy or a Sayyid. And there is no harm if one eats it themselves as a blessing. Shah Abdul Aziz Sahib has written in his Fatawa: "The food of Niyaz becomes 'Tabarruk' (blessing)." Yes, if a Shariah-mandated vow (Mannat) was made, then one can neither eat it themselves nor give it to any wealthy person or Sayyid; that is the right of the non-Hashimi poor among Muslims. And it is not permissible to give it to those of misguided sects,

especially Wahhabis and Rafidis. Those who contribute the funds should spend it according to the intention with which they cook; if cooked specifically for the congregants, then give it only to them, and if for everyone, then to everyone. Yes, it is not permissible to give to a Kafir (disbeliever), such as sweepers, shoemakers, Wahhabis, Rafidis, Qadianis. Yes, there is no harm in giving to those whose misguidance does not reach the level of Kufr (disbelief), such as the Tafziliyya, and giving to a Sunni is superior. It is mentioned in the Hadith:

---

1. Al-Quran 185/2 Page 614 of 948

फ़तावा रज़विया, खंड 9

"ऐ अल्लाह, रूहों के बीच हमारे आका मुहम्मद की रूह पर दुरूद भेज।" इन मूल शब्दों को कहने में कोई हर्ज नहीं है, लेकिन जहाँ आम लोग इससे वह समझें जो इस नेक और पाकीज़ा ख्याल वाले व्यक्ति ने समझा है, तो उन्हें इसे कहने से ज़रूर रोका जाना चाहिए या यह वहम उनके दिलों से निकाल दिया जाना चाहिए कि 'रूह' का शब्द केवल मृतकों के लिए ही इस्तेमाल होता है। अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) और तमाम अंबिया-ए-किराम (अलैहिमुस्सलाम) हकीकत में वैसे ही ज़िंदा हैं जैसे वे दुनिया में अपनी रौनक अफ़रोज़ी के ज़माने में थे। उनकी मौत खुदा के वादे "हर जानदार को मौत का मज़ा चखना है" (कुरान) की पुष्टि के लिए केवल एक पल के लिए होती है, फिर वे हमेशा-हमेशा के लिए हकीकी जिस्मानी और दुनियावी हयात के साथ ज़िंदा रहते हैं; वे नमाज़ें पढ़ते हैं, हज करते हैं, नेक महफ़िलों में तशरीफ़ लाते हैं, और उनका खाना-पीना सब कुछ दुनिया की तरह ही बिना किसी गंदगी के जारी है, जैसा कि हदीसों और पुराने व नए इमामों के बयानों में मौजूद है। और अल्लाह सुब्हानहु व तआला बेहतर जानता है।

मसला 224: भेरा, जिला शाहपुर (वर्तमान झेलम), पंजाब, मुल्तानी दरवाज़ा से। पूछने वाले: फ़ज़ल हक साहिब चिश्ती, 5 रमज़ान 1339 हिजरी। सुल्तानुल उलमा, मुतबहरीन, बुरहानुल फुज़ला, मुकतदरीन, कंज़ुल हिदाया वल यकीन, शेखुल इस्लाम वल मुस्लिमीन मौलाना अल-मुफ्ती अल-अल्लामा अल-शाह मुहम्मद अहमद रज़ा खां साहिब (मद ज़िल्लहु अल-आली) की खिदमत में। अस्सलामु अलैकुम व रहमतुल्लाही व बरकातुहु। दीन के उलेमा इस मसले में क्या फ़रमाते हैं कि ग्यारहवीं शरीफ़ धार्मिक रूप से किस चीज़ पर करना अफ़ज़ल है? चावल या हलवा वग़ैरह? और किन-किन लोगों में बाँटनी चाहिए? क्या खुद भी तबर्रुक चखना चाहिए या नहीं? और क्या किसी पीर साहिब या सैय्यद को इसमें से हिस्सा देना चाहिए या नहीं? एक मस्जिद में कुछ साथी मिलकर ग्यारहवीं पकाते हैं, तो क्या वह पकी हुई ग्यारहवीं शरीफ़ मस्जिद के नमाजियों में बाँटनी चाहिए या नहीं? बयान फरमाएं और सवाब पाएं।

अल-जवाब (उत्तर): नियाज़ (धार्मिक भोजन) ऐसे खाने पर होना बेहतर है जिसका कोई हिस्सा फेंका न जाए, जैसे ज़रदा या हलवा या खुशका (सादे चावल), या वह पुलाव जिसमें से हड्डियाँ अलग कर ली गई हों। बाँटने का अधिकार है, जिस सुन्नी मुसलमान को चाहें दें, चाहे वह धनी (ग़नी) हो या सैय्यद। और अगर खुद भी तबर्रुक के तौर पर खाएं तो कोई हर्ज नहीं। शाह अब्दुल अज़ीज़ साहिब ने अपने फतवे में लिखा है: "नियाज़ का खाना तबर्रुक हो जाता है।" हाँ, अगर शरई मन्नत मानी हो, तो उसमें

से न खुद खा सकते हैं और न ही किसी धनी व्यक्ति या सैय्यद को दे सकते हैं; वह गैर-हाशिमी गरीब मुसलमानों का हक है। और गुमराह फ़िरक़ों, खासकर वहाबियों और राफ़िज़ियों को देना जायज़ नहीं है। चंदा देने वाले जिस नीयत से पकाएं उसी में खर्च करें; अगर खास तौर पर नमाजियों के लिए पकाई है तो सिर्फ उन्हीं को दें, और अगर सबके लिए है तो सबको। हाँ, काफिर को देना जायज़ नहीं है, जैसे भंगी, चमार, वहाबी, राफ़िज़ी, क़ादियानी। हाँ, जिसकी बद-मज़हबी कुफ़्र की हद तक न पहुँचे जैसे तफ़्ज़ीलिया, उसे देने में कोई हर्ज नहीं, और सुन्नी को देना अफ़ज़ल है। हदीस में है:

---

1. अल-कुरान 185/2 पृष्ठ 614 का 948

فتاوی رضویه جلد نهم

اللهم صل علی روح سیدنا محمد فی الارواح تو اصل لفظ کے کہنے میں کوئی حرج نہیں، مگر جہاں عوام سے یہ سمجھتے ہوں جیسے اس نیک پاکیزہ خیال نے سمجھ تو ضرور اس کہنے سے ان کو روکا جائے یا یہ وہم ان کے دلوں سے نکال دیا جائے کہ ارواح کا اطلاق اموات ہی کے حق میں ہوتا ہے۔ رسول اللہ صلی اللہ تعالی علیہ وسلم اور تمام انبیاء کرام علیہم الصلوۃ والسلام حقیقۃ ایسے ہی زندہ ہیں جیسے رونق افروز دنیا کے زمانہ میں تھے، ان کی موت یک آن کے لئے تصدیق وعدہ الہیہ "كُلُّ نَفْسٍ ذَآئِقَةُ الْمَوْتِ" (ہر جاندار نے موت کا ذائقہ چکھنا ہے۔ت) کے واسطے ہوتی ہے، پھر وہ ہمیشہ ہمیشہ بحیات حقیقی جسمانی دنیاوی زندہ ہیں، نمازیں پڑھتے ہیں، حج کرتے ہیں، مجالس خیر میں تشریف لے جاتے ہیں، کھانا پینا سب کچھ دنیا کی طرح بے کسی آلائش کے جاری ہیں کما نطقت بہ الاحادیث وائمۃ القدیم والحدیث (جیسا کہ اس بارے میں احادیث اور زمانہ قدیم وجدید کے ائمہ کے ارشادات موجود ہیں۔ ت) واللہ سبحنہ و تعالی اعلم

مسئلہ ۲۲۴: از بھیرہ ضلع شاہ پور، ملک پنجاب، ملتانی دروازہ، مسئولہ فضل حق صاحب چشتی ۵ رمضان ۱۳۳۹ھ بخدمت جناب سلطان العلماء، المتبحرین، برہان الفضلاء، المقتدرین، کنز الہدایہ والیقین، شیخ الاسلام والمسلمین مولانا المفتی العلامۃ الشاہ محمد احمد رضا خاں صاحب مدظلہ العالی، السلام علیکم ورحمۃ اللہ وبرکاتہ، کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ گیارہویں شریف کس چیز پر دینی افضل ہے۔ چاول یا حلوہ وغیرہ اور کن کن لوگوں میں بانٹنی چاہئے؟ آپ بھی تبرک چکھنا چاہئے یا نہیں؟ اور کس پیر صاحب یا سید کو اس میں سے حصہ دینا یا نہیں؟ ایک مسجد میں چند ایک اصحاب مل کر گیارہویں پکاتے ہیں تو کیا وہ گیارہویں شریف پکی ہوئی، مسجد کے نمازیوں میں بانٹنی چاہئے یا نہیں؟ بینوا توجروا۔

الجواب: نیاز کا ایسے کھانے پر ہونا بہتر ہے جس کا کوئی حصہ پھینکنا نہ جائے، جیسے زردہ یا حلوا یا خشک، یا وہ پلاؤ جس میں سے ہڈیاں علیحدہ کرلی گئی ہوں، بانٹنے کا اختیار ہے، جس سنی مسلمان کو چاہے دے اگر غنی کو ہوا گر چہ سید ہو۔ اور خود بھی تبرک کھائے تو حرج نہیں۔ شاہ عبدالعزیز صاحب نے فتاوی میں لکھا ہے : نیاز کا کھانا تبرک ہوجاتا ہے ، ہاں اگر شرعی منت مانی ہو تو اس میں سے نہ خود کھا سکتا ہے نہ کسی غنی یا سید کو دے سکتا ہے، وہ غیر ہاشمی فقراء مسلمین کا حق ہے۔ اور بد مذہب ہوں خصوصاً وہابیوں رافضیوں کو دینا جائز نہیں، چندے والے جس نیت سے پکائیں اس میں صرف کریں، اگر خاص نمازیوں کے لئے پکائی ہے تو صرف انہیں کو دیں، اور سب کے لئے تو سب کو۔ ہاں کافر کو دینا جائز نہیں جیسے بھنگی، چمار، وہابی، رافضی، قادیانی۔ ہاں جس کی بدمذہبی حد کفر تک نہ پہنچے جیسے تفضیلہ، اسے دینے میں حرج نہیں، اور سنی کو دینا افضل۔ حدیث میں ہے :

Fatawa Rizwia Volume 9

'No one should eat your food except a pious person.'[1] - Narrated by Ahmad, Abu Dawood, and Tirmidhi. Your food should only be eaten by a pious person. (Imam Ahmad, Abu Dawood, Tirmidhi, Ibn Hibban, and Al-Hakim have narrated this with authentic chains from the Holy Prophet ﷺ - and Allah knows best. T) And Allah Almighty knows best.

Issue 225: From City Mohalla Gulab Nagar, 19 Rajab 1327 AH What is the origin of the practice of 'Tabarak'? And on what thing is it most virtuous to perform it? If the thing recited upon is food, then who is it better to feed it to? You are well acquainted with the current custom, so there is no need for its explanation. Please explain and be rewarded.

The Answer: The basis of 'Tabarak' is 'Isal-e-Sawab' (transfer of reward), the command for which is present in numerous Hadiths. The specific selection of Surah 'Tabarak al-Ladhi' (Al-Mulk) is because authentic Hadiths describe it as a protector and savior from the punishment of the grave. Regarding the item it is performed on, whichever fulfills the need of a destitute person more carries more reward. In times of famine, performing it on food is more appropriate. At this humble servant's place (referring to the author), it is done on food. Sometimes it is done on sets of clothes, sometimes on money, as deemed appropriate for the needy Muslim brothers according to the circumstances. Whether it be food, clothes, or worldly wealth, the first right belongs to one's own needy relatives and kin, then neighbors, then orphans, widows, and needy Muslims among the city's inhabitants. And Allah Almighty knows best.

Issue 226 to 228: From Ajmer Sharif, Factory area No. 3, Lohar Khana, sent by Jamal Muhammad, 4 Jumada al-Akhirah 1338 AH (1) Is it Halal or Haram to take food along with a dead body? (2) Is sprinkling rose water in the grave permissible or impermissible? (3) And praying after walking forty steps from the grave?

The Answer: (1) One should give charity on behalf of the deceased, and taking it along is useless. Allama Tahtawi has written it as an innovation (Bid'at). And He (Allah) knows best. (2) There is no harm in sprinkling rose water in the grave at the time of burial, but sprinkling it on top is useless and a waste of wealth. And He knows best.

---

[1] Musnad Ahmad bin Hanbal, narrated from Musnad Abu Sa'id al-Khudri, Dar al-Fikr, Beirut, 3/38

फ़तावा रिज़विया जिल्द नहम (भाग 9)

'तुम्हारा खाना सिर्फ़ एक परहेज़गार (पवित्र व्यक्ति) ही खाए।'[1] - इसे अहमद, अबू दाऊद और तिर्मिज़ी ने रिवायत किया। तुम्हारा खाना केवल परहेज़गार ही खाए। (इसे इमाम अहमद, अबू दाऊद, तिर्मिज़ी, इब्न हिब्बान और हाकिम ने सही सनदों के साथ नबी करीम ﷺ से रिवायत किया है - और अल्लाह बेहतर जानता है। त) और अल्लाह तआला बेहतर जानता है।

मसला 225: शहर मोहल्ला गुलाब नगर से, 19 रजब 1327 हिजरी 'तबारक' करने का मूल आधार क्या है? और इसे किस चीज़ पर करना सबसे ज़्यादा अफ़ज़ल (बेहतर) है? जिस चीज़ पर ये पढ़ा जाए, अगर वो खाने की है, तो उसे किसे खिलाना ज़्यादा बेहतर है? आप इसके मौजूदा रिवाज से अच्छी तरह वाकिफ़ हैं, इसलिए इसकी विस्तार से व्याख्या की ज़रूरत नहीं। बयान फ़रमाएं और सवाब पाएं।

जवाब: 'तबारक' का मूल आधार ईसाले-सवाब (पुण्य पहुँचाना) है, जिसका हुक्म कई हदीसों में मौजूद है। विशेष रूप से सूरह 'तबारक-अल-लज़ी' (अल-मुल्क) को इसलिए चुना गया क्योंकि सही हदीसों में इसे क़ब्र के अज़ाब से बचाने वाली और निजात (मुक्ति) देने वाली बताया गया है। जिस चीज़ पर भी ये किया जाए जिससे किसी ज़रूरतमंद की ज़रूरत ज़्यादा पूरी हो, उसमें सवाब भी ज़्यादा है। अकाल के दिनों में खाने पर करना ज़्यादा मुनासिब है। फ़क़ीर (लेखक) के यहाँ ये खाने पर होता है। कभी कपड़ों के जोड़ों पर, कभी रुपयों पर, जैसा मुस्लिम भाईयों की ज़रूरत और हालात के हिसाब से मुनासिब समझा जाए। खाना हो, कपड़े हों या दुनिया की दौलत, सबसे पहले अपने उन रिश्तेदारों और क़रीबियों का हक़ है जो ज़रूरतमंद हों, फिर पड़ोसियों का, फिर यतीमों, बेवाओं और शहर के ज़रूरतमंद मुसलमानों का। और अल्लाह तआला बेहतर जानता है।

मसला 226 से 228: अजमेर शरीफ़, कारखाना क्षेत्र नंबर 3, लोहार खाना, प्रेषक जमाल मुहम्मद, 4 जमादी-उल-आखिर 1338 हिजरी (1) मुर्दे के साथ खाना ले जाना हलाल है या हराम? (2) क़ब्र में गुलाब छिड़कना जायज़ है या नाजायज़? (3) और क़ब्र से चालीस क़दम दूर जाकर दुआ माँगना?

जवाब: (1) मुर्दे की तरफ़ से सदक़ा (दान) करना चाहिए, और साथ ले जाना फ़ुज़ूल (बेकार) है। अल्लामा तहतावी ने इसे बिदअत (नवाचार) लिखा है। और अल्लाह तआला बेहतर जानता है। (2) दफ़न के वक़्त क़ब्र में गुलाब छिड़कने में कोई हर्ज़ नहीं है, लेकिन ऊपर छिड़कना फ़ुज़ूल और माल का ज़ाया (बर्बाद) करना है। और अल्लाह तआला बेहतर जानता है।

[1] मुसनद अहमद बिन हंबल, मुसनद अबू सईद अल-ख़ुदरी से रिवायत, दार-अल-फ़िक्र बेरुत, 3/38

فتاوٰی رضویہ جلد نہم

لا یاکل طعامک الا تقیٰ[1] - رواہ احمد وابوداؤد والترمذی تیرا کھانا کھائے مگر پرہیزگار۔ (اسے امام احمد، ابوداؤد، وابن حبان والحاکم باسانید صحیحۃ عن النبی صلیٰ ترمذی، ابن حبان اور حاکم نے صحیح سندوں سے نبی کریم صلیٰ اللہ تعالیٰ علیہ وسلم - واللہ تعالیٰ اعلم اللہ تعالیٰ علیہ وسلم سے روایت کیا ہے۔ت) واللہ تعالیٰ اعلم

مسئلہ ۲۲۵: از شہر محلہ گلاب نگر ۱۹ رجب ۱۳۲۷ھ تبارک جو کیا جاتا ہے اس کی اصل کیا ہے؟ اور کس شئ پر ادا کیا جانا افضل ہے؟ جس شئ پر پڑھا جائے وہ شئ اگر کھانے کی ہے تو کس کو کھلانا بہتر زیادہ ہے؟ اس کا جو رواج ہے اس سے جناب خوب واقف ہیں اس کی تشریح کی ضرورت نہیں۔ بینوا توجروا

الجواب: تبارک کی اصل ایصالِ ثواب ہے جس کا حکم احادیث کثیرہ میں ہے اور خاص سورہ تبارک الذی شریف کی تخصیص اس لیے کی صحیح حدیثوں میں اسے عذابِ قبر سے بچانے والی، نجات دینے والی فرمایا، جس شے پر کرتے ہیں محتاج کی حاجت روائی زیادہ ہو اس میں زیادہ ثواب ہیں، ایامِ قحط میں کھانے پر ہونا زیادہ مناسب ہے۔ فقیر کے یہاں کھانے پر ہوتی ہے۔ کپڑے کے جوڑوں کبھی روپوں پر موافق حالت برادران مساکین مسلمین کے جو مناسب سمجھا گیا کیا جاتا ہے۔ کھانا ہو یا کپڑے یا دام دنیا سب سے پہلے اپنے عزیزوں، قریبوں کا حق ہے جو حاجتمند ہوں، پھر ہمسایوں، پھر یتیم، بیوہ، مسکین مسلمانانِ اہل شہر کا، واللہ تعالٰی اعلم

مسئلہ ۲۲۶ تا ۲۲۸: از اجمیر شریف کارخانہ کرتاں علاقہ نمبر ۳ لوہار خانہ مرسلہ جمال محمد ۴ جمادی الآخر ۱۳۳۸ھ (۱) مردہ کے ساتھ کھانا لے جانا حلال ہے یا حرام؟ (۲) گلاب قبر میں چھڑکنا جائز ہے یا ناجائز؟ (۳) اور قبر سے چالیس قدم جا کر دعا مانگنا؟

الجواب: (۱) مردہ کی طرف سے تصدق کرنا چاہئے اور ساتھ لے جانا فضول ہے۔ اور علامہ طحطاوی نے اسے بدعت لکھا ہے۔ وھو تعالٰی اعلم (۲) قبر میں گلاب وقتِ دفن کے چھڑکنے میں حرج نہیں اور اوپر چھڑکنا فضول اور مال کا ضائع کرنا۔ وھو تعالٰی اعلم

---

[1] مسند احمد بن حنبل مروی از مسند ابو سعید الخدری دارالفکر بیروت ۳۸/۳

Fatawa-e-Razvia Volume 9

(3) Supplication (Dua) is permissible at all times, and the specification of forty steps is without reason. And Allah Almighty knows best.

Problem 229: From Kartpur, Bijnor district, sent by Tufail Ahmad Sahab Bachrawani, 27 Safar al-Muzaffar 1332 AH.

What do the scholars of religion and jurists of the clear Shariah say regarding this issue: the food which is distributed with the intention of Isal-e-Thawab (conveying reward) to the souls of the deceased, can the wealthy also eat it or not? Is there any inherent difference between the food etc. given for the common deceased believers and the food presented as a gift for the souls of the great Prophets and noble saints? In terms of blessing or lack of blessing, will the usage be the same in both cases, i.e., should it only be given to the poor, or will it be permissible for the wealthy to eat it as well? Please explain and you shall be rewarded.

The Answer: Food is of three types: One is that which common people serve as a feast during the days of mourning; this is impermissible and prohibited.

[Table/Boxed Text] Arabic: Because an invitation is only legislated in joy, not in sorrow. As mentioned in Fath al-Qadir and other leading books. Urdu: Because the Shariah has placed invitation in joy, not in sorrow, as is in Fath al-Qadir and other books of the elders. (T)

It is not permissible for the wealthy to eat it.

Second is the food given with the intention of charity (Sadaqah) for the Isal-e-Thawab of one's deceased; the poor are entitled to it, the wealthy should not have it.

Third is the food offered for the pure souls of the noble Prophets and Saints (peace and blessings be upon them) and is given to both the poor and the wealthy as a blessing (Tabarruk). This is permissible for everyone without hesitation. And it is certainly a cause of blessing. When something is attributed to blessed individuals, blessing enters into it. Muslims honor this food, and they are correct in doing so. The Imams of religion have narrated with an authentic chain that in a gathering of Sufi saints (may Allah be pleased with them), a bag of gold was kept as an offering for our master, Ghawth al-Azam (may Allah be pleased with him). In a state of ecstasy, a person's foot touched it; immediately, the Lord of Honor and Glory stripped him of

his saintly state. We ask Allah for forgiveness and well-being. And Allah Almighty knows best.

1. Fath al-Qadir, Chapter on Burial, Maktaba Nooria Razvia, Sukkur, 2/102; Maraqi al-Falah on the margins of Hashiya al-Tahtawi, Chapter on Carrying and Burying, Noor Muhammad Factory Tijarat-e-Kutub, Karachi, p. 339.

फ़तावा-ए-रज़विया, खंड 9

(३) दुआ मांगना हर समय जायज़ है और चालीस कदमों की विशेषता बिना किसी कारण के है। और अल्लाह तआला ही बेहतर जानता है।

मसला २२९: करतपुर, जिला बिजनौर से, तुफैल अहमद साहब बछरावनी द्वारा प्रेषित, २७ सफ़र अल-मुज़फ़्फ़र १३३२ हिजरी।

धर्म के विद्वान और शरीयत के मुफ़्ती इस मसले में क्या फ़रमाते हैं कि जो खाना मुर्दों की रूह को ईसाल-ए-सवाब की नीयत से तक़सीम (वितरित) किया जाता है, क्या उसे अमीर (धनी) लोग भी खा सकते हैं या नहीं? आम मोमिन मुर्दों के लिए जो खाना आदि दिया जाता है और वह खाना जो महान नबियों और वलियों की रूहों के लिए तोहफ़े के तौर पर पेश किया जाता है, क्या उनमें कोई बुनियादी फ़र्क़ है या नहीं? बरकत होने या न होने के ऐतबार से क्या दोनों हालतों में उपयोग एक ही होगा, यानी केवल गरीबों को देना होगा या अमीरों के लिए भी खाना जायज़ होगा? कृपया व्याख्या करें, आपको सवाब मिलेगा।

जवाब: खाना तीन प्रकार का होता है: एक वह जो आम लोग मौत के दिनों में दावत के तौर पर करते हैं; यह नाजायज़ और वर्जित है।

[कोष/बॉक्स टेक्स्ट] अरबी: क्योंकि दावत केवल खुशी में जायज़ की गई है, गम में नहीं। जैसा कि फ़तह अल-क़दीर और अन्य प्रतिष्ठित पुस्तकों में है। उर्दू: इसलिए कि दावत को शरीयत ने खुशी में रखा है ग़मी में नहीं, जैसा कि फ़तह अल-क़दीर आदि अकाबिर (बुज़ुर्गों) की किताबों में है। (टी)

अमीरों के लिए इसे खाना जायज़ नहीं है।

दूसरा वह खाना जो अपने मृतकों के ईसाल-ए-सवाब के लिए सदक़े(दान) की नीयत से दिया जाता है; गरीब इसके हकदार हैं, अमीरों को इसे नहीं लेना चाहिए।

तीसरा वह खाना जो महान नबियों और वलियों की पवित्र रूहों की नज़र (भेंट) के तौर पर किया जाता है और गरीबों व अमीरों सभी को तबर्रुक के रूप में दिया जाता है; यह सभी के लिए बिना किसी संकोच के जायज़ है। और यह निश्चित रूप से बरकत का कारण है। जो चीज़ बरकत वाले लोगों की ओर संबंधित की जाती है, उसमें बरकत आ जाती है। मुसलमान इस खाने का सम्मान करते हैं और वे इसमें सही हैं। धर्म के इमामों ने सही सनद के साथ रिवायत की है कि सूफ़िया-ए-किराम (रज़ियल्लाहु

अन्हुम) की एक महफ़िल में हमारे आका ग़ौस-ए-आज़म (रज़ियल्लाहु अन्हु) की नज़र के तौर पर सोने की एक थैली रखी हुई थी। वज्द (समाधि) की स्थिति में एक साहब का पैर उससे लग गया; तुरंत रब्ब-उल-इज़्ज़त ने उनसे विलायत (संतत्व) का पद छीन लिया। हम अल्लाह से माफ़ी और सलामती मांगते हैं। और अल्लाह तआला ही बेहतर जानता है।

1. फ़तह अल-क़दीर, दफ़्न का अध्याय, मकतबा नूरिया रज़विया, सुक्कुर, २/१०२; मराक़ी अल-फ़लाह, हाशिया अत-तहतावी के हाशिये पर, ले जाने और दफनाने का अध्याय, नूर मुहम्मद कारख़ाना तिजारत-ए-कुतुब, कराची, पृ. ३३९।

पेज ६१६ का ९४८

فتاوٰی رضویہ جلد نہم

(۳) دعا مانگنا ہر وقت جائز ہے اور چالیس قدم کی خصوصیت بلا وجہ۔ وھو تعالٰی اعلم

مسئلہ ۲۲۹: از کرتپور ضلع بجنور مرسلہ طفیل احمد صاحب بچڑ ابونی ۲۷ صفر المظفر ۱۳۳۲ھ

کیا فرماتے ہیں علمائے دین و مفتیانِ شرع متین اس مسئلہ میں جو اطعام بہ نیت ایصالِ ثواب برو ح مردگان تقسیم کیا جاتا ہے اس کو اغنیاء بھی کھا سکتے ہیں یا نہیں؟ عام اموات مومنین کے لیے جو کھانا وغیرہ دیا جاتا ہے اس میں اور اس طعام میں جو انبیاء عظام اور اولیاء کرام کے ارواح کے لیے ہدیہ کیا جاتا ہے کچھ ذاتی فرق ہے یا نہیں؟ برکت و عدمِ برکت کے اعتبار سے دونوں حالتوں میں مصروف ایک ہوگا یعنی صرف فقراء کو دینا یا اغنیاء کے لیے بھی کھانا جائز ہوگا۔ فقط بینوا توجروا

الجواب: طعام تین قسم ہے: ایک وہ کہ عوام ایامِ موت میں بطورِ دعوت کرتے ہیں یہ ناجائز و ممنوع ہے۔

[باکس ٹیکسٹ] لان الدعوۃ انما شرعت فی السرور لا فی الشرور ۱ اس لیے کہ دعوت کو شریعت نے خوشی میں رکھا ہے غمی میں نہیں، جیسا کہ فتح القدیر وغیرہ کتب اکابر میں ہے۔ (ت) کما فی فتح القدیر و غیرہ من کتب الصدور۔

اغنیاء کو اس کا کھانا جائز نہیں۔

دوسرے وہ طعام کہ اپنے اموات کو ایصالِ ثواب کے لیے بہ نیت تصدق کیا جاتا ہے فقراء اس کے لیے حق ہیں، اغنیاء کو نہ چاہئے۔

تیسرے وہ طعام کہ نذور ارواح طیبہ حضرات انبیاء و اولیاء علیہم الصلوٰۃ والثناء کیا جاتا ہے اور فقراء و اغنیاء سب کو بطور تبرک دیا جاتا ہے یہ سب کو بلا تکلف روا ہے۔ اور وہ ضرور باعثِ برکت ہے۔ برکت والوں کی طرف جو چیز نسبت کی جاتی ہے اس میں برکت آجاتی ہے۔ مسلمان اس کھانے کی تعظیم کرتے ہیں اور وہ اس میں مصیب ہیں، ائمہ دین نے بسند صحیح روایت فرمایا کہ ایک مجلس سماع صوفیاء کرام رضی اللہ تعالیٰ عنہم میں نذر حضور سیدنا غوث اعظم رضی اللہ تعالیٰ عنہ کا ایک بدرہ زر رکھا ہوا تھا، یہ حالت وجد میں ایک صاحب کا پاؤں اس سے لگ گیا فوراً رب العزت و علا نے ان کا حال ولایت سلب فرمالیا نسأل اللہ العفو والعافیہ۔ واللہ تعالٰی اعلم

۱ فتح القدیر فصل فی الدفن مکتبہ نوریہ رضویہ سکھر ۲/ ۱۰۲، مراقی الفلاح علی ہامش حاشیہ الطحطاوی فصل فی حملہا ودفنہا نور محمد کارخانہ تجارت کتب کراچی ص ۳۳۹

Fatawa Rizvia, Volume 9

Masla 230: From the city, Mohalla Zakhira, asked by Munshi Shaukat Ali Sahib, Clerk of Octroi, 17th Jamadi-ul-Akhir. What is the ruling of the scholars of Ahl-e-Sunnat wal Jama'at on the issue that some people consider eating the chickpeas over which Kalima Tayyiba is recited before the Fateha of 'Soyem' (third-day ritual) as disliked (Makruh) and say it blackens the heart? Is this correct, and what should they do? Similarly, regarding the Fateha of common people, it is said that in one place, Muslims take their share of these recited chickpeas and give them to polytheist leather-workers (chamars), where this custom has always existed. Therefore, is it permissible to give these chickpeas, over which Kalima Tayyiba has been recited, to polytheist leather-workers or not? Is it a sin? Please explain and be rewarded.

The Answer: A wealthy person (Ghani) should not take these things. And one who waits for them and gets unhappy if they aren't received, his heart becomes blackened. Giving them to a polytheist or a leather-worker is a sin, a sin. A poor person (Faqir) should take and eat them himself, and a wealthy person should not take them at all. If they have taken them, they should give them to a poor Muslim. This ruling is for general Fateha. Niyaz of the saints is not "death food" (ta'am maut); it is a blessing (Tabarruk), which both poor and rich can take. This is as long as it's not a formal Shar'i vow (Nazr); if it is a Shar'i vow, then it is not permissible for a non-poor person. And Allah Almighty knows best.

Masla 231: From Town Rachwar Road, District Bareilly, asked by Hakim Muhammad Ahsan, 9th Shawwal 1339 AH. What do the scholars of religion say about whether eating the chickpeas of 'Soyem' is permissible for adults besides children? Please explain and be rewarded.

The Answer: These chickpeas should only be eaten by the poor; they are not for the wealthy, whether child or adult. Parents should stop wealthy children from eating them. And Allah Almighty knows best.

Masla 232: From Bilgram, District Hardoi, Mohalla Maidan Pura, sent by Syed Muhammad Taqi Sahib Qadri Abul Husayni, 26th Safar 1337 AH. If a relative sees a deceased person in a dream, either alone or asking for some kind of thing, in such a case, is it permissible to offer Fateha on food for the deceased? Or is it permissible to give charity in the deceased's name by offering Fateha on the thing requested in the dream? And is it permissible to keep water along with food at the time of Fateha?

The Answer: It is better that whatever thing was requested be given to the needy on behalf of the deceased. Offering Fateha on food will not be prohibited because of that. There is no harm in that or in keeping water. Feed the needy that food and give them water to drink; the reward for all will reach the deceased.

फ़तावा रज़विया, जिल्द 9

मसाला 230: शहर मोहल्ला ज़खीरा से, मुंशी शौकत अली साहब, मुहर्रिर चुंगी द्वारा पूछा गया, 17 जमादी-उल-आखिर। अहले सुन्नत वल जमाअत के उलेमा का इस मसले में क्या हुक्म है कि चनों पर जो 'सोयम' (तीसरे दिन की रस्म) की फ़ातिहा से पहले कलिमा तैयबा पढ़ा जाता है, उसके खाने को कुछ लोग मकरूह समझते हैं और कहते हैं कि इससे दिल काला होता है। क्या यह सही है, तो उन्हें क्या करना चाहिए? इसी तरह आम लोगों की जो फ़ातिहा होती है, उसके बारे में कहा जाता है कि एक जगह मुसलमान इन सोयम के पढ़े हुए चनों में से अपना-अपना हिस्सा लेकर मुशरिक चमारों को दे देते हैं, वहाँ यही रिवाज हमेशा से चला आ रहा है। लिहाज़ा इन कलिमा तैयबा पढ़े हुए चनों को मुशरिक चमारों को देना जायज़ है या नहीं? क्या यह गुनाह है? बयान करें, सवाब पाएँ।

अल-जवाब: ये चीज़ें धनी (ग़नी) न ले। और वह जो इनका इंतज़ार करता रहता है और न मिलने पर दुखी होता है, उसका दिल काला होता है। मुशरिक या चमार को इन्हें देना गुनाह है, गुनाह। फकीर लेकर खुद खाए और धनी ले ही नहीं, और अगर ले लिए हों तो मुसलमान फकीर को दे दे। यह हुक्म आम फ़ातिहा का है। औलिया-ए-कराम की नियाज़ 'मौत का खाना' (तआम-ए-मौत) नहीं है, वह तबर्रुक है जिसे फकीर और धनी सभी लें। बशर्ते कि वह मन्नत (नज़्र) के तौर पर न हो जो शरीअत की नज़र में नज़्र-ए-शरई हो; शरीअत के मुताबिक फिर वह गैर-फकीर के लिए जायज़ नहीं। वल्लाहु तआला आलम।

मसाला 231: कस्बा रचवार रोड, ज़िला बरेली से, हकीम मोहम्मद अहसन द्वारा पूछा गया, 9 शव्वाल 1339 हिजरी। दीन के उलेमा क्या फरमाते हैं कि सोयम के चनों का खाना बच्चों के अलावा बड़ों को भी जायज़ है या नहीं? बयान करें, सवाब पाएँ।

अल-जवाब: ये चने फुकरा (गरीब) ही खाएँ, धनी (ग़नी) को नहीं चाहिए चाहे बच्चा हो या बड़ा। धनी बच्चों को उनके माता-पिता मना करें। वल्लाहु तआला आलम।

मसाला 232: बिलग्राम, ज़िला हरदोई, मोहल्ला मैदान पुरा से, सैयद मोहम्मद तकी साहब कादरी अबुल हुसैनी द्वारा भेजा गया, 26 सफर 1337 हिजरी। अगर कोई अपने रिश्तेदार या करीबी मृतक को ख्वाब में अकेला देखे या उसे किसी किस्म की चीज़ माँगते हुए देखे, तो ऐसी हालत में मृतक के नाम पर खाने पर फ़ातिहा दिलाना जायज़ है या नहीं? या वह चीज़ जो उसने ख्वाब में माँगी है, उसे

उसके नाम पर फ़ातिहा दिलाकर खैरात करना जायज़ है या नहीं? और फ़ातिहा के वक़्त खाने के साथ पानी रखना जायज़ है या नहीं?

अल-जवाब: बेहतर है कि जो चीज़ माँगी गई है, वह मृतक की ओर से किसी मोहताज (जरूरतमंद) को दी जाए। खाने पर फ़ातिहा उसके कारण मना नहीं होगी, वह भी जायज़ है और पानी रखने में कोई हर्ज नहीं। मोहताज को वह खाना खिलाएँ और पानी पिलाएँ सब का सवाब मृतक को पहुँचेगा।

فتاویٰ رضویہ، جلد نہم

مسئلہ ۲۳۰: از شہر محلہ ذخیرہ مسئولہ منشی شوکت علی صاحب محرر چنگی ۱۷ جمادی الآخر کیا حکم ہے علمائے اہلسنت والجماعت کا اس مسئلہ میں کہ چنوں پر جو سویم کی فاتحہ کے قبل کلمہ طیبہ پڑھا جاتا ہے اس کے کھانے کو بعض شخص مکروہ جانتے ہیں اور کہتے ہیں کہ قلب سیاہ ہوتا ہے، آیا یہ صحیح ہے تو ان کو کیا کرنا چاہئے؟ اسی طرح فاتحہ کو جو عام لوگوں کی ہوتی ہے کہتے ہیں ایک موضع میں ان سوم کے پڑھے ہوئے چنوں کو مسلمان اپنا اپنا حصہ لے کر مشرک چماروں کو دے دیتے ہیں، وہاں یہی رواج ہمیشہ سے چلا آتا ہے۔ لہذا ان کلمہ طیبہ کے پڑھے ہوئے چنوں کو مشرک چماروں کو دینا جائز ہے یا نہیں؟ کیا یہ گناہ ہے؟ بینوا توجروا

الجواب: یہ چیزیں غنی نہ لے۔ اور وہ جوان کا منتظر رہتا ہے ان کے نہ ملنے سے ناخوش ہوتا ہے اس کا قلب سیاہ ہوتا ہے مشرک یا چمار کو اس کا دینا گناہ، گناہ۔ فقیر لے کر خود کھائے اور غنی لے ہی نہیں، اور لے لئے ہوں تو مسلمان فقیر کو دے دے۔ یہ حکم عام فاتحہ کا ہے، نیاز اولیائے کرام طعام موت نہیں وہ تبرک ہے فقیر و غنی سب لیں۔ جبکہ مانی ہوئی نذر بطور نذر شرعی نہ ہو، شرعی پھر غیر فقیر کو جائز نہیں۔ واللہ تعالیٰ اعلم

مسئلہ ۲۳۱: از قصبہ رچوار روڈ ضلع بریلی مسئولہ حکیم محمد احسن ۹ شوال ۱۳۳۹ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین کہ سوم کے چنوں کا کھانا علاوہ چھوٹوں کے بڑوں کو بھی جائز ہے یا نہیں؟ بینوا توجروا

الجواب: یہ چنے فقراء ہی کھائیں، غنی کو نہ چاہئے بچہ یا بڑا، غنی بچوں کو ان کے والدین منع کریں۔ واللہ تعالیٰ اعلم

مسئلہ ۲۳۲: از بلگرام ضلع ہر دوئی محلہ میدان پورہ مرسلہ سید محمد تقی صاحب قادری ابوالحسینی ۲۶ صفر ۱۳۳۷ھ اگر مردہ کو اس کا خویش واقارب خواب میں دیکھے تنہا یا اس کو کسی قسم کی چیز طلب کرتے ہوئے دیکھے تو ایسی حالت میں مردہ کا فاتحہ کھانے پر دلانا جائز ہے یا نہیں؟ یا وہ چیز جو اس نے خواب میں طلب کی ہے وہ اس کے نام پر فاتحہ دلا کر خیرات کرنا جائز ہے یا نہیں؟ اور فاتحہ کے وقت ہمراہ کھانے کے پانی رکھنا جائز ہے یا نہیں؟

الجواب: بہتر ہے کہ جو چیز طلب کی محتاج کو اس کی طرف سے دی جائے اور کھانے پر فاتحہ اس کے سبب سے منع نہ ہوگی وہ بھی اور پانی رکھنے میں حرج نہیں۔ محتاج کو وہ کھانا کھلائیں اور پانی پلائیں سب کا ثواب پہنچے گا۔

Volume 9 Fatawa Ridawiyya

And Allah the Almighty knows best.

Problem 233: From Amanat Ali Shah, town Nawabganj, district Bareilly, 7 Ramadan 1331 AH. Should a ghee lamp be lit in a clay lamp or not? Should ghee be lit in a flour lamp and then eaten, or should it be placed on top of *malida* (a sweet dish) for *fatiha* (prayers for the deceased)? Please explain, you will be rewarded.

Answer: Burning ghee without necessity is wastefulness (*israf*), and wastefulness is forbidden (*haram*). For *fatiha*, Quran recitation, and Durood recitation, if there is a need for a nearby light, and with the thought that oil sometimes smells bad, if one lights a lamp with ghee; and considering that using a regular lamp isn't clean and burning in a new clay lamp will absorb ghee and waste it, therefore one makes a flour lamp so that even if the flour absorbs it, its bread can be cooked - then there is no harm. However, making it a habit to burn ghee for *fatiha* even without necessity is indeed wastefulness and forbidden. And in the permissible case we wrote, that lamp should not be placed on top of the food, but separate from it. And Allah the Almighty knows best.

Problem 234: From the state of Jawra, house of Abdul Majeed Khan Sahib, three-way road, date 18 / 1315 AH. What do the scholars of religion say regarding the issue that during *fatiha* etc., many people keep ghee lamps, clothes, shoes etc.? What is the status of keeping these things? Only.

Answer: Keeping clothes, shoes, or things that benefit the poor with the intention for the poor has no harm, it earns reward. But burning a ghee lamp at the time of *fatiha* is useless, and sometimes falls under wastefulness; one should avoid it. And Allah the Almighty knows best.

Problem 235: From Mirza Baqi Beg, Rampuri, 16 Muharram 1307 AH. What do the scholars of religion say regarding the issue that if the reward of a good deed is gifted to several deceased persons, will it be divided among them or will each receive the full reward of that deed? Please explain, you will be rewarded.

Answer: From the general kindness and great grace of Allah Almighty, it is hoped that everyone will receive the full reward. Even if the reward of a single verse, Durood, or Tahlil is gifted to all believing men and women, living and deceased, from Adam (peace be upon him) until the Day of Judgment. A group of Ahl al-Sunnah scholars has given a fatwa on this. Imam Ibn Hajar Makki (may Allah have mercy on him) says:

और अल्लाह तआला ही बेहतर जानता है।

मसला २३३: अमानत अली शाह, कस्बा नवाबगंज, जिला बरेली, ७ रमज़ान १३३१ हिजरी। मिट्टी के चिराग में घी डालकर जलाना चाहिए या नहीं? आटे के चिराग में घी डालकर जलाकर खाना या मलीदा के ऊपर रखकर फातिहा देना चाहिए या नहीं? बयान फरमाएं, आपको सवाब मिलेगा।

जवाब: बिना ज़रूरत घी जलाना इसराफ़ (फ़िज़ूलखर्ची) है और इसराफ़ हराम है। और फातिहा, कुरान ख्वानी और दरूद ख्वानी के लिए अगर चिराग की नज़दीकी ज़रूरत हो, और इस ख्याल से कि तेल में कभी बदबू आती है, घी से चिराग रोशन करे; और इस लिहाज़ से कि इस्तेमाल शुदा चिराग साफ नहीं होता और कोरे (नए) में जलाएंगे तो घी पी जाएगा और बेकार जाएगा, लिहाज़ा आटे का चिराग बनाएं कि अगर आटा पी भी ले तो उसकी रोटी पक सकती है, तो इसमें कोई हर्ज नहीं। मगर यह आदत बना लेना कि बिना ज़रूरत भी फातिहा के लिए घी जलाएं, वही इसराफ़ और हराम है। और जो जाइज़ सूरत हमने लिखी है, उसमें भी वह चिराग खाने के ऊपर न रखा जाए बल्कि खाने से अलग हो। और अल्लाह तआला ही बेहतर जानता है।

मसला २३४: रियासत जावरा से, अब्दुल मजीद खान साहब का मकान, तिराहा, तारीख १८ / १३१५ हिजरी। दीन के उलमा इस मसले में क्या फरमाते हैं कि फातिहा वगैरह में अक्सर लोग घी के चिराग, कपड़े, जूते वगैरह रखते हैं, ये चीजें रखना कैसा है? फ़क़त।

जवाब: कपड़ा, जूते या जो चीज़ मिसकीन (गरीब) को नफा देने वाली हो, उसे मिसकीन की नियत से रखें तो कोई हर्ज नहीं, इसमें सवाब है। मगर फातिहा के वक्त घी का चिराग जलाना फिजूल है, और बाज औकात इसराफ़ में शामिल होगा, इससे बचना चाहिए। और अल्लाह तआला ही बेहतर जानता है।

मसला २३५: मिर्जा बाकी बेग रामपुरी, १६ मुहर्रम १३०७ हिजरी। दीन के उलमा इस मसले में क्या फरमाते हैं कि जिस नेक काम का सवाब कई मुर्दों को बख्शा जाए, वह उन पर तकसीम (विभाजित) होगा या सबको उस पूरे काम का सवाब मिलेगा? बयान फरमाएं, आपको सवाब मिलेगा।

जवाब: अल्लाह अज्ज़वजल के आम करम और अज़ीम फज़्ल से उम्मीद है कि सबको पूरा-पूरा सवाब मिलेगा, चाहे एक आयत या दरूद या तहलील का सवाब आदम अलैहिस्सलाम से क़यामत

तक के तमाम मोमिनों और मोमिनातों, ज़िन्दा और मुर्दा, को हदिया (भेंट) करे। उलमा-ए-अहले सुन्नत की एक जमात ने इसी पर फतवा दिया है। इमाम इब्ने हजर मक्की रहमतुल्लाह अलैहि फरमाते हैं:

جلد نہم فتاویٰ رضویہ

واللہ تعالٰی اعلم

مسئلہ ۲۳۳: امانت علی شاہ قصبہ نواب گنج ضلع بریلی ۷ رمضان ۱۳۳۱ھ مٹی کے چراغ میں گھی ڈال کر جلانا چاہئے یا نہیں؟ آٹے کے چراغ میں گھی ڈال کر جلا کر کھانا یا ملیدہ کے اوپر رکھ کر فاتحہ دینا چاہئے یا نہیں؟ بینوا توجروا

الجواب: بلا ضرورت گھی جلانا اسراف ہے اور اسراف حرام ہے۔ اور فاتحہ و قرآن خوانی اور درود خوانی کے لئے اگر چراغ کے قرب کی حاجت ہو اور اس خیال سے کہ تیل میں کبھی بدبو آتی ہے گھی سے چراغ روشن کرے اور اس لحاظ سے کہ استعمال چراغ صاف نہیں ہوتا اور کورے میں جلائیں تو گھی پئے گا اور بے کار جائے گا لہٰذا آٹے کا چراغ بنائیں کہ آٹے پئے تو اس کی روٹی پک سکتی ہے، تو اس میں حرج نہیں، مگر یہ عادت کر لینی کہ بلا ضرورت بھی فاتحہ کے لئے گھی جلائیں وہی اسراف و حرام ہے، اور وہ صورتِ جواز جو ہم نے لکھی اس میں بھی وہ چراغ کھانے کے اوپر نہ رکھا جائے بلکہ کھانے سے الگ۔ واللہ تعالٰی اعلم

مسئلہ ۲۳۴: از ریاست جاورہ مکان عبدالمجید خاں صاحب سہ راستہ دار تاریخ ۱۸/ ۱۳۱۵ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ فاتحہ وغیرہ میں اکثر لوگ گھی کے چراغ، کپڑے، جوتی وغیرہ رکھتے ہیں، یہ اشیاء رکھنا کیسا ہے؟ فقط

الجواب: کپڑا، جوتے یا جو چیز مسکین کو نفع دینے والی مسکین کی نیت سے رکھیں کوئی حرج نہیں ثواب ہے، مگر فاتحہ کے وقت گھی کا چراغ جلانا فضول ہے، اور بعض اوقات داخل اسراف ہوگا، اس سے احتراز چاہئے، واللہ تعالٰی اعلم

مسئلہ ۲۳۵: مرزا باقی بیگ رام پوری ۱۶ محرم ۱۳۰۷ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ جس فعل نیک کا ثواب چند اموات کو بخشا جائے وہ ان پر تقسیم ہوگا یا سب کو اس پورے فعل کا ثواب ملے گا؟ بینوا توجروا

الجواب: اللہ عزوجل کے کرم عمیم و فضل عظیم سے امید ہے کہ سب کو پورا پورا ثواب ملے گا، اگرچہ ایک آیت یا درود یا تہلیل کا ثواب آدم علیہ السلام سے قیامت تک کے تمام مومنین و مومنات احیا و اموات کے لیے ہدیہ کرے، علمائے اہلسنت سے ایک جماعت نے اسی پر فتویٰ دیا۔ امام ابن حجر مکی رحمتہ اللہ علیہ فرماتے ہیں:

Volume 9 Fatawa Razawiyya

This is worthy of the vastness of divine grace. Allama Shami states in Radd al-Muhtar:

[Arabic Column]: Ibn Hajar al-Makki was asked about someone who recites Surah al-Fatihah for the people of the cemetery: Is the reward divided among them, or does each of them receive the full reward of that completely? He replied that a group has given a fatwa on the second case, and that is what befits the vastness of Divine Grace. (End) 1

[Urdu Column]: Hadrat Ibn Hajar al-Makki was asked: If Surah al-Fatihah is recited for the people of the cemetery, will the reward be divided among them or will each one get the full reward? He answered that the group (of scholars) have given a fatwa on the second option, and that is indeed worthy of the vastness of Lordly Grace. (End) (T)

And it is best for every person who performs a righteous deed to send its reward as a gift to all believing men and women, living and dead, from the first to the last. The reward will reach all of them, and he will receive a reward equal to all of them.

[Arabic Column]: In Radd al-Muhtar, from Tatar-khaniyya, from al-Muhit: It is better for one who gives voluntary charity to intend it for all believing men and women, for it will reach them and nothing will be diminished from his own reward. (End) 2

[Urdu Column]: In Radd al-Muhtar, quoted from Tatar-khaniyya, and in it from al-Muhit: Whoever gives voluntary charity, it is better for him to intend it for all believing men and women, because it will reach them all and his reward will not be lessened in any way. (End) (T)

Daraqutni, Tabarani, Daylami, and Salafi narrate from the Leader of the Believers, Mawla Ali (may Allah Almighty honor him), that the Luminous Prophet, Master of the Messengers (peace and blessings of Allah Almighty be upon him) said:

[Arabic Column]: Whoever passes by the graves and recites 'Qul Huwa Allahu Ahad' (Surah Ikhlas) eleven times, then gifts its reward to the deceased, he will be given a reward according to the number of the deceased. 3

[Urdu Column]: Whoever passes by the cemeteries and recites Surah al-Ikhlas eleven times and gifts its reward to the deceased, he will receive reward equivalent to the total number of the deceased.

As for Ibn Qayyim, who followed the Zahiri school of thought, choosing the division of reward in 'Kitab al-Ruh'—meaning a single reward being split and divided among them—where he said: "If one gifts the whole to four, each of them gets a quarter." (His words are these): 4

---

1 Radd al-Muhtar, Discussion on Reciting for the Deceased etc., Dar Ihya at-Turath al-Arabi, Beirut, 2/605. 2 Radd al-Muhtar, Discussion on Reciting for the Deceased etc., Dar Ihya at-Turath al-Arabi, Beirut, 2/605. 3 Fath al-Qadir, on the authority of Ali (may Allah be pleased with him), Chapter of Hajj on behalf of others, Maktaba Nooria Razvia Sukkur 3/65; Kanz al-Ummal, Rafi'i on the authority of Ali, Hadith 42596, Muassasat ar-Risalah Beirut 15/655; Radd al-Muhtar on the authority of Ali, Discussion on Gifting Reward of Deeds to others, Mustafa al-Babi Egypt 2/247. 4 Radd al-Muhtar with reference to Kitab al-Ruh, Discussion on Reciting for the Deceased etc., Idarat al-Tiba'at al-Misriyya, Egypt 1/605.

यही ईश्वरीय अनुग्रह की विशालता के योग्य है। अल्लामा शामी रद अल-मुह्तार में फरमाते हैं:

[अरबी कॉलम]: इब्न हजर अल-मक्की से उस व्यक्ति के बारे में पूछा गया जो कब्रगाह के लोगों के लिए सूरा अल-फातिहा पढ़ता है: क्या सवाब उनके बीच बांटा जाएगा या उनमें से प्रत्येक को उसका पूरा सवाब मिलेगा? उन्होंने जवाब दिया कि विद्वानों के समूह ने दूसरी सूरत (विकल्प) पर फतवा दिया है और यही रब की कृपा की विशालता के अनुकूल है। (समाप्त) 1

[उर्दू कॉलम]: हज़रत इब्न-ए-हजर मक्की से सवाल हुआ कि अगर कब्र वालों के लिए फातिहा पढ़ा गया, तो सवाब उनके बीच बांटा जाएगा या हर एक को उसका पूरा सवाब मिलेगा? उन्होंने जवाब दिया कि जमाअत (विद्वानों) ने दूसरी सूरत पर फतवा दिया है और वही रब्बानी कृपा की वअसत (विशालता) के शान के अनुकूल है। (त)

और हर व्यक्ति के लिए यही बेहतर है कि जो भी नेक काम करे उसका सवाब पहले और आखिरी सभी मोमिन पुरुषों और महिलाओं, जीवित और मृत, को उपहार के रूप में भेजे। सबको सवाब पहुंचेगा और उसे उन सबके बराबर बदला मिलेगा।

[अरबी कॉलम]: रद अल-मुह्तार में तातारखानिया से, उसमें मुहीत से उद्धृत है कि जो कोई नफली सदका करे तो बेहतर है कि वह सभी मोमिन पुरुषों और महिलाओं की नियत करे, क्योंकि वह उन सब तक पहुंचेगा और उसके अपने सवाब में कोई कमी नहीं होगी। (समाप्त) 2

[उर्दू कॉलम]: रद अल-मुह्तार में तातारखानिया से, उसमें मुहीत से मनकूल (नकल किया गया) है कि जो कोई नफली सदका करे तो बेहतर यह है कि तमाम मोमिनीन व मोमिनात की नियत करे इसलिए कि वह सब को पहुंचेगा और उसके अज्र (बदले) से कुछ कम न होगा। (त)

दारकुतनी, तबरानी, दैलमी और सलफी, अमीरुल मोमिनीन मौला अली करम अल्लाह तआला वज्हहुल करीम से रिवायत करते हैं कि हुज़ूर पुरनूर सैयद अल-मुरसलीन सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम फरमाते हैं:

[अरबी कॉलम]: जो कब्रों के पास से गुज़रे और ग्यारह बार 'कुल हुवा अल्लाहु अहद' पढ़े, फिर उसका सवाब मृतकों को उपहार दे, तो उसे मृतकों की संख्या के अनुसार सवाब दिया जाएगा। 3

[उर्दू कॉलम]: जो मकाबिर (कब्रिस्तानों) पर गुज़रे और कुल हुवा अल्लाह ग्यारह बार पढ़ कर उसका सवाब अमवात (मृतकों) को बख्शे, तो तमाम अमवात की तादाद के बराबर सवाब पाए।

रहा इब्न कय्यिम ज़ाहिरी अल-मज़हब का किताब अर-रूह में सवाब के बंटवारे को चुनना—यानी एक ही सवाब उनके बीच टुकड़ों में बंट जाएगा—जैसा कि उन्होंने कहा: "अगर कोई कुल चार लोगों को उपहार दे, तो उनमें से प्रत्येक को चौथाई हिस्सा मिलेगा।" (उनके शब्द ये हैं): 4

---

1 रद अल-मुह्तार, मृतक के लिए पढ़ने की चर्चा आदि, दार इह्या अत-तुराथ अल-अरबी, बेरुत 2/605। 2 रद अल-मुह्तार, मृतक के लिए पढ़ने की चर्चा आदि, दार इह्या अत-तुराथ अल-अरबी, बेरुत 2/605। 3 फतह अल-कादिर, हजरत अली रज़ियल्लाहु अन्हु से, दूसरों की ओर से हज का अध्याय, मकतबा नूरिया रज़विया सुक्कुर 3/65; कन्ज़ अल-उम्माल, राफ़ई हजरत अली से, हदीस 42596, मुअस्ससतुर रिसाला बेरुत 15/655; रद अल-मुह्तार हजरत अली से, दूसरों को कर्मों का सवाब भेजने की चर्चा, मुस्तफा अल-बाबी मिस्र 2/247। 4 रद अल-मुह्तार, किताब अर-रूह के हवाले से, मृतक के लिए पढ़ने की चर्चा आदि, इदारात अल-तिबाअत अल-मिस्रिया, मिस्र 1/605।

جلد نہم فتاویٰ رضویہ

وسعت فضلِ الٰہی کے لائق یہی ہے۔ علامہ شامی ردالمختار میں فرماتے ہیں:

سُئِل ابن حجر المکی عمن لو قرأ لاھل المقبرۃ الفاتحۃ ھل یقسم الثواب بینھم اویصل لك منھم مثل ثواب ذلك کاملہ فاجاب بأنہ فتی جمع بالثانی وھو اللائق بسعۃ الفضل 1 اھ۔ حضرت ابنِ حجر مکی سے سوال ہوا اگر اہل مقبرہ کے لئے فاتحہ پڑھا تو ثواب ان کے درمیان تقسیم ہوگا یا ہر ایک کو اس کا پورا ثواب ملے گا؟ انہوں نے جواب دیا کہ جماعت نے دوسری صورت پر فتویٰ دیا ہے اور وہی فضل ربانی کی وسعت کے شایان ہے اھ (ت)

اور ہر شخص کو افضل یہی کہ جو عمل صالح کرے اس کا ثواب اولین و آخرین احیاء و اموات تمام مؤمنین و مومنات کے لیے ہدیہ بھیجے سب کو ثواب پہنچے گا اور اُسے ان سب کے برابر اجر ملے گا۔

في ردالمحتار عن التاتارخانیۃ عن المحیط الافضل لمن یتصدق نفلہ ان ینوی لجمیع المؤمنین والمؤمنات لانھا تصل الیھم ولا ینقص من اجرہ شیئ 2 اھ۔ ردالمحتار میں تاتارخانیہ سے ، اس میں محیط سے منقول ہے کہ جو کوئی نفل صدقہ کرے تو بہتر یہ ہے کہ تمام مومنین و مومنات کی نیت کرے اس لیے کہ وہ سب کو پہنچے گا اور اس کے اجر سے کچھ کم نہ ہوگا اھ (ت)

دار قطنی و طبرانی و دیلمی و سلفی امیر المومنین مولیٰ علی کرم اللہ تعالیٰ وجہہ الکریم سے راوی حضور پر نور سید المرسلین صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم فرماتے ہیں :

من مر علی المقابر وقرأ قل ھو اللہ احد احدی عشرۃ مرۃ ثم وھب اجرھا للاموات اعطی اعطی من الاجر بعدد الاموات 3۔ جو مقابر پر گزرے اور قل ھو اللہ گیارہ بار پڑھ کر اس کا ثواب اموات کو بخشے بعددِ تمام اموات کے ثواب پائے۔

رہا ابن قیم ظاہری المذہب کا کتاب الروح میں تقسیم ثواب کو اختیار کرنا یعنی ایک ہی ثواب ان پر ٹکڑے ہو کر بٹ جائے گا حیث قال لو اھدی الکل الی اربعۃ یحصل لکل منھم ربعہ 4 اھ (اس کے الفاظ یہ ہیں:

---

1 ردالمحتار مطلب فی القراءۃ للمیت الخ داراحیاء التراث العربی بیروت ۲/۶۰۵ 2 ردالمحتار مطلب فی القراءۃ للمیت الخ داراحیاء التراث العربی بیروت ۲/۶۰۵ 3 فتح القدیر عن علی رضی اللہ عنہ باب الحج عن الغیر مکتبہ نوریہ رضویہ سکھر ۳/۶۵ ، کنز العمال رافعی عن علی حدیث ۴۲۵۹۶ موسسۃ الرسالہ بیروت ۱۵/۶۵۵، ردالمختار عن علی مطلب فی اھدء الثواب الاعمال لغیر مصطفی البابی مصر ۲/۲۴۷ 4 ردالمحتار بحوالہ کتاب الروح مطلب فی القراءۃ للمیت الخ ادارۃ الطباعۃ المصریہ مصر ۱/۶۰۵

Fatawa Razawiyya - Volume 9

If it is gifted to all four people, each will get one-fourth. (T)

I say: And with Allah is the guidance. The view of the scholars that everyone will get the full reward is preferable to this saying of Ibn al-Qayyim for several reasons:

Firstly: Ibn al-Qayyim is of a false sect, so his saying is not reliable against the scholars of Ahl al-Sunnah.

Secondly: It is only his saying, whereas this is the fatwa of a group, and the practice is upon what the majority are on. (T)

Thirdly: And it is the decorated pattern (meaning, a more solid answer. T). For a single reward to be divided among all is an apparent matter that a person can say based on their own opinion at first glance. We see this in the physical world; if you give one thing to ten people, everyone will not get it in full, but each will get a piece. Probably, this person [Ibn al-Qayyim] looked at this apparent matter and, comparing the perceived to the rational, gave the command of division. Not that any evidence for it was found from Hadith. This is contrary to the ruling of completion, that even if you gift it to millions, each will receive the full reward. Such a thing cannot be said from one's own self without religious evidence. So, it is clear that the group of Muftis (jurisconsults) would never have been firm on this unless they found evidence from the pure Shariah. Rather, it is established from the clarifications of scholars that what cannot be said by opinion, even if it is a statement of scholars, will be understood as being in the ruling of the Hadith of Mustafa (peace and blessings of Allah be upon him). After all, when this is a religious world and opinion has no place in the matter, then necessarily there will be proof from Hadith. Imam Allamah Qadi Iyad narrated from Sarij bin Yunus (may Allah be pleased with him) that there are some traveling angels of Allah regarding whom there is this Hadith: that in whichever house there is a person named Ahmad or Muhammad, they should visit that house. Allamah Khafaji Misri says in its commentary 'Naseem al-Riyad':

| So it is apparent that even if it belongs to | This, although it is the saying of Sarij, is in | | Sarij, it is in the ruling of Marfu' because | the ruling of Marfu' because such a thing is | | the like of it is not said by opinion. End of | not said by opinion. End of summary. (T) | | summary. | |

This Sarij is neither a Sahabi (companion), nor a Tabi'i, nor from the Tabi' al-Tabi'in, but rather from the later scholars. Despite this, Allamah Khafaji placed his aforementioned saying in the ruling of Hadith Marfu', that such a thing is not said by opinion. Similarly, in our present case (the issue under discussion. T), we can say that the fatwa of the scholars should also be in the ruling of Hadith Marfu'.

Then I say: And with Allah is the guidance (I say again with the guidance of Allah. T). The pauper, may Allah Almighty forgive him,

---

[1] Naseem al-Riyad, Chapter Three, Section One, Dar al-Fikr, Beirut, 2/225

फ़तावा रज़विया - जिल्द नहम (खंड 9)

अगर चार आदमियों को सब हदिया (उपहार) किया तो हर एक को चौथाई मिलेगा। (त)

अक़ूल (मैं कहता हूँ): और अल्लाह ही तौफ़ीक़ देने वाला है। उलेमा का यह कहना कि सबको पूरा सवाब मिलेगा, इब्न अल-क़य्यिम के इस क़ौल पर कई वजहों से तरजीह (प्राथमिकता) रखता है:

अव्वलन: इब्न अल-क़य्यिम बद-मज़हब है, इसलिए उसका क़ौल अहल-ए-सुन्नत के उलेमा के मुक़ाबले मोतबर (विश्वसनीय) नहीं।

सानियन: वह सिर्फ उसका अपना क़ौल है और यह एक जमाअत का फ़तवा है, और अमल उसी पर होता है जिस पर अक्सर (बहुमत) हों। (त)

सालिसन: और वही नक़्श-ए-बा-निगार है (यानी ज़्यादा मज़बूत जवाब है। त)। एक ही सवाब का सब पर बँट जाना एक ज़ाहिरी बात है जिसे आदमी सरसरी नज़र में अपनी राय से कह सकता है। हम इस दुनिया (आलम-ए-शुहूद) में ऐसा ही देखते हैं; एक चीज़ दस लोगों को दीजिए तो सबको पूरी नहीं मिलेगी, हर एक को एक टुकड़ा पहुँचेगा। ग़ालिबन इसी ज़ाहिरी बात पर नज़र रखते हुए और महसूस चीज़ों को अक़्ल पर क़यास करते हुए उन्होंने तक़्सीम (विभाजन) का हुक्म दे दिया। न कि हदीस से इस पर कोई दलील मिली हो। इसके बरअक्स 'हुक्म-ए-कमाल' यह है कि अगर करोड़ों को बख़्शो तो हर एक को पूरा सवाब मिलेगा। ऐसी बात बग़ैर शरई सनद के अपनी तरफ़ से नहीं कही जा सकती। तो ज़ाहिर है कि अहल-ए-फ़तवा की जमाअत ने जब तक शरीअत-ए-मुतह्हरा से दलील नहीं पाई होगी, हरगिज़ इस पर जज़्म (दृढ़ता) नहीं फ़रमाया होगा। बल्कि उलेमा की तशरीह से साबित है कि जो बात राय से न कही जा सके वह अगरचे उलेमा का इरशाद हो, मुस्तफ़ा सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम की हदीस के हुक्म में समझी जाएगी। आख़िरकार जब यह दीनी मामला है और इसमें राय का कोई दख़ल नहीं, तो यक़ीनन हदीस से इसका सुबूत होगा। इमाम अल्लामा क़ाज़ी अयाज़ ने सरीज़ बिन यूनुस रज़ियल्लाहु तआला अन्हु से नक़ल किया कि अल्लाह तआला के कुछ सैयाह (भ्रमण करने वाले) फ़रिश्ते हैं जिनके मुतअल्लिक़ यही हदीस है कि जिस घर में अहमद या मुहम्मद नाम का कोई शख़्स हो, उस घर की ज़ियारत किया करें। अल्लामा ख़फ़ाजी मिस्री इसकी शरह 'नसीम अल-रियाज़' में फ़रमाते हैं:

| तो यह ज़ाहिर है कि अगरचे यह सरीज़ का क़ौल है, | यह अगरचे सरीज़ का क़ौल है मगर वह मरफ़ूअ के| | लेकिन यह मरफ़ूअ के हुक्म में है क्योंकि ऐसी | हुक्म में है क्योंकि ऐसी बात राय से नहीं कही | | बात राय से नहीं कही जाती। (संक्षिप्त) | जाती। इह मुलख़्ख़सन (त) |

यह सरीज़ न सहाबी हैं, न ताबई, न तब-ए-ताबईन में से हैं, बल्कि बाद के उलेमा में से हैं। इसके बावजूद अल्लामा ख़फ़ाजी ने उनके उक्त क़ौल को हदीस-ए-मरफ़ूअ के हुक्म में ठहराया क्योंकि ऐसी बात राय से नहीं कही जाती। इसी तरह हमारे ज़ेर-ए-बहस मसले (त) में भी कह सकते हैं कि उलेमा का वह फ़तवा भी हदीस-ए-मरफ़ूअ के हुक्म में होना चाहिए।

सुम्म अक़ूल: और अल्लाह ही तौफ़ीक़ देने वाला है (मैं फिर अल्लाह तआला की तौफ़ीक़ से कहता हूँ। त)। फ़क़ीर ग़फ़रल्लाहु तआला लहू।

---

[1] नसीम अल-रियाज़, बाब सालिस, फ़स्ल अव्वल, दार अल-फ़िक्र, बैरुत, 225/2

فتاوٰی رضویہ ۔ جلد نہم

اگر چار آدمیوں کو سب ہدیہ کیا تو ہر ایک کو چوتھائی ملے گا۔ (ت)

اقول : و باللہ التوفیق علماء کہ سب کو ثواب کامل ملے گا، اس قول ابن قیم پر بوجند وجہ مرجح ہے :

اولاً: ابن قیم بد مذہب ہے، تو اس کا قول علمائے اہلسنت کے مقابل معتبر نہیں۔

ثانیاً: وہ اسی کا قول ہے اور یہ ایک جماعت کا فتوٰی والعمل بما علیہ الاکثر (اور عمل اس پر ہوتا ہے جس پر اکثر ہوں۔ ت)

ثالثاً: وھو الطراز المعلم (اور وہی نقش بانگار ہے، یعنی زیادہ مضبوط جواب ہے۔ ت) ثواب واحدہ کا سب پر منقسم ہونا ایک ظاہری بات ہے جسے آدمی بنظرِ ظاہر اپنی رائے سے کہہ سکتا ہے۔ عالم شہود میں یونہی دیکھتے ہیں، ایک چیز دس کو دیجئے تو سب کو پوری نہ ملے گی ہر ایک کو ٹکڑا ٹکڑا پہنچے گا۔ غالباً اس ظاہری نے اسی ظاہری بات پر نظر اور معقول پر محسوس کو قیاس کر کے تقسیم کا حکم دے دیا۔ نہ کہ حدیث سے اس پر دلیل پائی ہو۔ بخلاف اس حکم کمال کے کہ اگر کروڑوں کو بخشو تو ہر ایک کو پورا ثواب ملے گا، ایسی بات بے سند شرعی اپنی طرف سے نہیں کہہ سکتے تو ظاہر کہ جماعت اہل فتوٰی نے جب تک شرع مطہر سے دلیل نہ پائی ہرگز اس پر جزم نہ فرمایا بلکہ تصریح علماء سے ثابت کہ جو بات رائے سے نہ کہہ سکیں وہ اگر چہ علماء کا ارشاد ہو حدیثِ مصطفی صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم کے حکم میں سمجھا جائے گا۔ آخر جب یہ عالم متدین ہے اور بات میں رائے کو دخل نہیں تو لاجرم حدیث سے ثبوت ہوگی، امام علامہ قاضی عیاض نے سریج بن یونس رضی اللہ تعالٰی عنہ سے نقل کیا کہ اللہ تعالٰی کے کچھ سیاح

فرشتے ہیں جن کے متعلق یہی حدیث ہے کہ جس گھر میں احمد یا محمد نام کوئی شخص ہو اس گھر کی زیارت کیا کریں۔ علامہ خفاجی مصری اس کی شرح نسیم الریاض میں فرماتے ہیں :

| فهو ظاهر وان كان لسريج فهو في حكم المرفوع | یہ اگرچہ سریج کا قول ہے مگر وہ مرفوع کے حکم میں ہے اس | | لان مثله لا يقال بالراى اهـ ملخصا۔ | لئے کہ ایسی بات رائے سے نہیں کہی جاتی اھ ملخصاً (ت) |

یہ سریج نہ صحابی ہیں نہ تابعی نہ تبع تابعین میں ہے، بلکہ علمائے مابعد سے ہیں، بایں ہمہ علامہ خفاجی نے ان کے قول مذکور کو حدیثِ مرفوع کے حکم میں ٹھہرایا کہ ایسی بات رائے سے نہیں کہی جاتی، اسی طرح ما نحن فیہ (زیر بحث مسئلہ۔ ت) میں بھی کہہ سکتے ہیں کہ علماء کا وہ فتویٰ بھی حدیثِ مرفوع کے حکم میں ہونا چاہئے،

ثم اقول : وباللہ التوفیق (میں پھر اللہ تعالیٰ کی توفیق سے کہتا ہوں۔ ت) فقیر غفراللہ تعالیٰ لہ،

---

1 نسیم الریاض الباب الثالث فصل الاول دارالفکر بیروت ۲/۲۲۵

Fatawa Razawiya, Volume 9

Specifically on this matter, three Hadiths have been found from the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him):

First Hadith: Imam Abu al-Qasim al-Isfahani in 'Kitab al-Targheeb' and Imam Ahmad bin al-Hussein al-Bayhaqi in 'Shu'ab al-Iman' narrate from Hadrat Abdullah bin Umar (may Allah be pleased with him), that the Master of the World (peace and blessings of Allah be upon him) states:

Arabic	Urdu
Whoever performs Hajj on behalf of his parents after their death, Allah writes for him freedom from the Fire, and for those on whose behalf the Hajj was performed, there is the reward of a complete Hajj without anything being diminished from their rewards.[1]	Whoever performs Hajj on behalf of his parents after their death, Allah Almighty writes for him freedom from Hell, and for both of them, there is the reward of a complete Hajj without any reduction in their rewards.

If the reward was to be split half-half, what was the possibility of a reduction in that half which was denied? Yes, the same reward here becomes 'rewards' (plural). That everyone receives it in full without reduction seemed contrary to reason. So, providing this benefit is certainly useful and significant.

Second Hadith: Al-Tabarani in 'Al-Awsat' and Ibn Asakir narrate from Hadrat Abdullah bin Amr ibn al-Aas (may Allah be pleased with them both), that the Radiant Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) states:

Arabic	Urdu
What is the harm for any of you, when he intends to give an optional charity (Sadaqah Nafilah) for the sake of Allah, to make it on behalf of his parents if they are Muslims? For then his parents will have its reward, and he will have the equivalent of their rewards after that without anything being diminished from their rewards.[2]	Meaning, when any of you intends to give an optional charity, what is the harm in giving that charity with the intention of his parents? They will receive its reward, and he will get equal to the rewards of both of them without any reduction in their rewards.

If there is any doubt in these two Hadiths, the third Hadith is like a clear text (Nass Sareeh) which, by the praise of Allah, has strengthened this hope of perfection and

affirmed the fatwa of the scholars that everyone will receive a complete reward. Imam al-Daraqutni and Abu Abdullah al-Thaqafi in 'Fawa'id al-Thaqafiyyat' narrate from Hadrat Zaid bin Arqam (may Allah be pleased with him), that the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) states:

Arabic	Urdu
When a man performs Hajj on behalf of his parents, it is accepted from him and from both of them, their souls rejoice, and he is recorded with Allah as being righteous (Birr).[3]	When a man performs Hajj on behalf of his parents, that Hajj is accepted on behalf of the performer and both parents, all three; their souls are delighted, and this...

[1] Shu'ab al-Iman, Chapter on honoring parents, Hadith 9127, Dar al-Kutub al-Ilmiyyah, Beirut, 6/205. [2] Al-Jami' al-Saghir with Fayd al-Qadir, citing Ibn Asakir, Hadith 9437, Dar al-Ma'rifah, Beirut, 5/456. [3] Sunan al-Daraqutni, Book of Hajj, Nashrat al-Sunnah, Multan, 2/26.

फतावा रज़विया, जिल्द 9

इस विशेष विषय में नबी सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम से तीन हदीसें मिली हैं:

पहली हदीस: इमाम अबुल कासिम अस्फ़हानी 'किताब अत-तरगीब' में और इमाम अहमद बिन अल-हुसैन बैहक़ी 'शुअब अल-ईमान' में हज़रत अब्दुल्ला बिन उमर रज़ियल्लाहु अन्हु से रिवायत करते हैं कि हुज़ूर सय्यद-ए-आलम सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम फ़रमाते हैं:

अरबी	उर्दू (अनुवाद)
जो व्यक्ति अपने माता-पिता की मृत्यु के बाद उनकी ओर से हज करे, अल्लाह उसके लिए नर्क की आग से मुक्ति लिख देता है, और जिनके लिए हज किया गया उनके लिए पूर्ण हज का सवाब होता है बिना इसके कि उनके सवाबों में कोई कमी की जाए।[1]	जो अपने माँ-बाप की तरफ से उनकी वफ़ात के बाद हज करे अल्लाह तआला उसके लिए दोज़ख से आज़ादी लिखे, और उन दोनों के लिए पूरे हज का अज्र (सवाब) बग़ैर इसके कि उनके सवाबों में कुछ कमी हो।

यदि सवाब आधा-आधा मिलता तो उस आधे में से कमी होने की क्या आशंका थी जिसका खंडन किया गया? हाँ, वही सवाब यहाँ 'अजूर' (पुरस्कारों) में बदल जाए। हर एक को बिना किसी कमी के पूरा-पूरा मिले, यह बुद्धि के विरुद्ध प्रकट होता था। अतः इस लाभ का विवरण निश्चित रूप से उपयोगी और महत्वपूर्ण है।

दूसरी हदीस: तबरानी 'अल-अवसत' में और इब्न असाकिर हज़रत अब्दुल्ला बिन अम्र इब्न अल-आस रज़ियल्लाहु अन्हुमा से रिवायत करते हैं कि हुज़ूर पुर नूर सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम फ़रमाते हैं:

अरबी	उर्दू (अनुवाद)
जब तुम में से कोई व्यक्ति अल्लाह के लिए नफ़्ल सदक़ा देने का इरादा करे, तो इसमें क्या हर्ज है कि वह उसे अपने माता-पिता की ओर से कर दे यदि वे मुसलमान हों? तो उसके माता-पिता को उसका सवाब होगा, और उसे उनके सवाब के बराबर मिलेगा, बिना इसके कि उनके सवाबों में कुछ भी कमी हो।[2]	यानी जब तुम में से कोई शख़्स किसी सदक़ा-ए-नाफ़िला का इरादा करे तो उसका क्या हर्ज है कि वो सदक़ा अपने माँ-बाप की नियत से दे कि उन्हें इसका जवाब पहुँचेगा और उसे उन दोनों अज्रों के बराबर मिलेगा बग़ैर इसके कि उनके सवाबों में कुछ कमी हो।

इन दोनों हदीसों में अगर कुछ संदेह किया जाए, तो तीसरी हदीस मानो एक स्पष्ट प्रमाण (नस सरीह) है जिसने अल्लाह की प्रशंसा से इस पूर्णता की आशा को प्रबल कर दिया है, और विद्वानों के फतवे की ताकीद फ़रमा दी है कि प्रत्येक को पूर्ण सवाब मिलेगा। इमाम दारकुतनी और अबू अब्दुल्ला सफ़ी 'फ़वाइद सफ़ियात' में हज़रत ज़ैद बिन अरक़म रज़ियल्लाहु अन्हु से रिवायत करते हैं, हुज़ूर सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम फ़रमाते हैं:

अरबी

जब कोई व्यक्ति अपने माता-पिता की ओर से हज करता है, तो वह उससे और उन दोनों से स्वीकार किया जाता है, उनकी आत्माएं प्रसन्न होती हैं, और उसे अल्लाह के निकट नेक (बिर्र) लिख दिया जाता है।[3]

उर्दू (अनुवाद)

जब आदमी अपने वालिदैन की तरफ से हज करे वो हज इस हज करने वाले और माँ-बाप तीनों की तरफ से क़बूल किया जाए और उनकी रूहें खुश हों, और ये...

[1] शुअब अल-ईमान, बाब फ़ी बिर्र अल-वालिदैन, हदीस 9127, दार अल-कुतुब अल-इल्मिया, बेरुत, 6/205। [2] अल-जामी अस-सगीर म'अ फ़ैज़ अल-क़दीर, हवाला इब्न असाकिर, हदीस 9437, दार अल-मआरिफ़ा, बेरुत, 5/456। [3] सुनन अद-दारकुतनी, किताब अल-हज, नशरत अस-सुन्नाह, मुल्तान, 2/26।

فتاوی رضویہ، جلد نہم

نے خاص اس بات میں نبی صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم سے تین حدیثیں پائیں:

حدیث اول: امام ابوالقاسم اصفہانی کتاب الترغیب اور امام احمد بن الحسین بیہقی شعب الایمان میں حضرت عبداللہ بن عمر رضی اللہ تعالیٰ عنہ سے راوی، حضور سید عالم صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم فرماتے ہیں :

عربی متن **اردو ترجمہ**

من حج عن والدیہ بعد وفاتھما کتب اللہ لہ جو اپنے ماں باپ کی طرف سے ان کی وفات کے بعد حج عتقاً من النار وکان للمحجوج عنھما اجر کرے اللہ تعالیٰ اس کے لیے دوزخ سے آزادی لکھے، اور حجۃ تامۃ من غیر ان ینقص من اجورھما ان دونوں کے لئے پورے حج کا اجر بغیر اس کے کہ ان شیئ 1 - کے ثوابوں میں کچھ کمی ہو۔

اگر ثواب نصف نصف ملتا تو اس آدھے میں سے کمی ہو جانے کا کیا احتمال تھا جس کی نفی فرمائی گئی۔ ہاں وہی اجر یہاں اجور ہو جائے۔ ہر ایک پورا پورا بے کمی پائے، یہ خلاف عقل ظاہر تھا۔ تو اسی کا افادہ ضرور مفید واہم ہے۔

حدیث دوم: طبرانی اوسط میں اور ابن عساکر حضرت عبداللہ بن عمر ابن العاص رضی اللہ تعالیٰ عنہما سے روا ی، حضور پر نور صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم فرماتے ہیں:

عربی متن **اردو ترجمہ**

ماعلی احدکم اذا ارادان یتصدق اللہ یعنی جب تم میں سے کوئی شخص کسی صدقہ نافلہ کا صدقۃ تطوعاً ان یجعلھا عن والدیۃ اذا ارادہ کرے تو اس کا کیا حرج ہے کہ وہ صدقہ اپنے ماں

عربی متن	اردو ترجمہ
كانا مسلمين فيكون لوالديه اجرها، وله مثل اجورهما بعد ان لا ينقص من اجورهما شيئ 2-	باپ کی نیت سے دے کہ انھیں اس کا جواب پہنچے گا اور اسے ان دونوں اجروں کے برابر ملے گا بغیر اس کے کہ ان کے ثوابوں میں کچھ کمی ہو۔

ان دونوں حدیثوں میں اگر کچھ تشکیک کی جائے تو حدیث سوم گویا نص صریح جس نے بحمدہ تعالیٰ اس امید کمال کو قوی کر دیا، اور فتویٰ علماء کی تاکید اکید فرمادی کہ ہر ایک کو کامل ثواب ملے گا۔ امام دار قطنی اور ابو عبد اللہ ثقفی فوائد ثقفیات میں حضرت زید بن ارقم رضی اللہ تعالیٰ عنہ سے روایت فرماتے ہیں، حضور صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم فرماتے ہیں:

عربی متن	اردو ترجمہ
اذا حج الرجل عن والديه تقبل منه ومنهما، واستبشرت ارواحهما، وكتب عند الله براً 3-	جب آدمی اپنے والدین کی طرف سے حج کرے وہ حج اس حج کرنے والے اور ماں باپ تینوں کی طرف سے قبول کیا جائے اور ان کی روحیں خوش ہوں، اور یہ

1 شعب الایمان باب فی بر الوالدین حدیث ۹۱۲۷ دار الکتب العلمیہ بیروت ۲۰۵/۶ 2 الجامع الصغیر مع فیض القدیر بحوالہ ابن عساکر حدیث ۹۴۳۷ دار المعرفۃ بیروت ۴۵۶/۵ 3 سنن الدار قطنی کتاب الحج نشرت السنہ ملتان ۲۶/۲

Fatawa Rizvia Volume 9

...before Allah Almighty, he shall be recorded as a righteous doer who treated his parents well. These are the words of al-Darqutni, and in Thaqafiyat, it is in these words:

[Box 1] Arabic: Whoever performs Hajj on behalf of his parents who had not performed Hajj, it suffices for both of them, and their souls are given glad tidings in the heavens, and he is recorded with Allah as being dutiful (barr). Urdu: If someone's parents died without performing Hajj, and he performs it on their behalf, it will be considered as Hajj for both of them, their souls will be given glad tidings in the heavens, and this person will be recorded as one who treats his parents well in the sight of Allah Almighty.

It is evident that Hajj is a single act of worship of which a part is not sufficient, nor does it stand in place of the whole; rather, it is not even valid, just like one unit (rak'ah) out of the two units of the Fajr prayer, or fasting from morning until noon. Therefore, for this Hajj to suffice for both of them, it is necessary that a complete Hajj occurs on behalf of each. However, it has been clarified and established in jurisprudence (fiqh) that this 'sufficiency' (ajza) does not mean the discharge of the obligation (isqat-e-fard). Hence, the intended meaning must be that both receive the reward of a complete Hajj. The noble scholar of Hadith, Imam Abu al-Qasim Sulayman bin Ahmad al-Tabarani, interprets this Hadith as follows:

[Box 2] Arabic: I do not know of anyone who accepts the literal meaning that one Hajj suffices for both. It is understood to mean that the obligation is fulfilled for the primary person (the deceased) and it is considered a voluntary act (nafl) for the secondary person. This was cited and maintained in al-Taysir. All praise be to Allah, Lord of all worlds. And Allah Almighty knows best, and the knowledge of the Lord of Glory is most perfect and firm. Urdu: As far as I know, no one accepts the literal meaning that a single Hajj would suffice for both. It is understood that the primary obligation will be fulfilled for the original person and it will be a voluntary act for the derivative. It was quoted and maintained in 'al-Taysir'. All praise is due to Allah, the Lord of all worlds. And Allah Almighty knows best, and the knowledge of that Great Lord is most complete and firm. (T)

Problem 236 to 239: From Old City, Kot neighborhood, sent by Mahmood Ali Sahib Bengali, 2 Safar al-Muzaffar 1321 AH. What do the scholars of the firm religion and the masters of the trustworthy Shariah say regarding these matters: First: If

someone finished reciting the Holy Quran once and dedicated its reward to the souls of fifteen people for the sake of Allah, will it be divided among those souls, i.e., will each soul receive the reward of two juz (parts), or will each soul receive the reward of the entire Holy Quran?

Footnotes: 1. Fawa'id al-Thaqafiyat by Abi Abdullah al-Thaqafi. 2. Al-Taysir Sharh al-Jami' al-Saghir, under the Hadith 'Whoever performs Hajj on behalf of his father', Maktabah al-Imam al-Shafi'i, Riyadh, Saudi Arabia, 2/414.

फ़तावा रज़विया जिल्द नवीं (खंड 9)

...अल्लाह तआला के नज़दीक माँ-बाप के साथ अच्छा सुलूक करने वाला नेकोकार (पुण्यात्मा) लिखा जाए। ये लफ्ज़ दारक़ुत्नी के हैं, और सक़फ़ियात में इन लफ्ज़ों से है:

[बॉक्स 1] अरबी: जिसने अपने माता-पिता की ओर से हज किया जिन्होंने हज नहीं किया था, तो वह उन दोनों की ओर से पर्याप्त हो गया, और उनकी रूहों (आत्माओं) को आसमान में खुशखबरी दी गई और अल्लाह के नज़दीक उसे माता-पिता के साथ नेक सुलूक करने वाला (बर्र) लिखा गया। उर्दू अनुवाद: जिसके माँ-बाप बे-हज किये मर गए हों यह उनकी तरफ से करे वह उन दोनों का हज हो जाये और उनकी रूहों को आसमान में खुशखबरी दी जाए और यह शख्स अल्लाह तआला के नज़दीक माँ-बाप के साथ नेक सुलूक करने वाला लिखा जाए।

ज़ाहिर है कि हज एक वाहिद (एकल) इबादत है जिसका कुछ हिस्सा काफी नहीं है, न ही वह पूरे का विकल्प हो सकता है, बल्कि काबिले-एतबार ही नहीं, जैसे फज्र की दो रकअतों में से एक रकअत, या सुबह से दोपहर तक का रोज़ा। तो यह हज जो उन दोनों की तरफ से काफी हो, ज़रूरी है कि हर एक की जानिब से पूरा हज वाके (घटित) हो। मगर फिक़ह (धर्मशास्त्र) में यह वाज़ेह और साबित हो चुका है कि यहाँ 'किफायत' (अजज़ा) का मतलब फर्ज़ का साकित (समाप्त) होना नहीं है, बल्कि लाज़मी तौर पर यही मानी मकसूद है कि दोनों को कामिल (पूर्ण) हज का सवाब मिले। मुहद्दिस-ए-जलील इमाम अबुल कासिम सुलेमान बिन अहमद तबरानी इस हदीस की तफसीर (व्याख्या) फरमाते हैं:

[बॉक्स 2] अरबी: जहाँ तक मुझे इल्म है, कोई इसके ज़ाहिरी मानी का कायल नहीं है कि एक ही हज दोनों की तरफ से काफी हो जाएगा। इसे इस पर आधारित किया गया है कि असल के लिए फर्ज़ अदा होगा और गौण के लिए नफल होगा। इसे 'अत-तयसीर' में नक़्ल किया गया और बरकरार रखा गया। और तमाम खूबियाँ अल्लाह के लिए हैं जो सारे जहानों का परवरदिगार है। और अल्लाह तआला ही बेहतर जानता है, और उस रब-ए-बुज़ुर्ग का इल्म सबसे ज़ियादा कामिल और मुहकम (मज़बूत) है। उर्दू अनुवाद: जहाँ तक मुझे इल्म है कोई इसके ज़ाहिर का कायल नहीं यह कि वह एक ही हज दोनों की तरफ से काफी हो जाएगा। वह उस पर महमूल है कि असल के लिए फर्ज़ अदा होगा और फरअ (शाखा) के लिए नफल होगा। इसे 'तयसीर' में नक़्ल किया और बरकरार रखा। और

सारी खूबियाँ अल्लाह के लिए जो सारे जहानों के परवरदिगार है। और खुदाये बरतर खूब जानने वाला है और उस रब-ए-बुज़ुर्ग का इल्म सबसे ज़्यादा कामिल और मुहकम है। (त)

मसला 236 से 239: पुराना शहर, मोहल्ला कोट, प्रेषक महमूद अली साहब बंगाली, 2 सफ़र अल-मुज़फ़्फ़र 1321 हिजरी। दीन-ए-मतीन के उलेमा और शरीअत-ए-अमीन के फुज़ला इन मसलों में क्या फरमाते हैं: पहला यह कि किसी शख्स ने एक कलाम-ए-मजीद (कुरान) की तिलावत करके खत्म किया और उसका सवाब पंद्रह शख्सों की रूहों को अल्लाह की राह में बख्शा, तो क्या वह उन रूहों में तकसीम (विभाजित) हो जाएगा, यानी हर रूह को दो पारों का सवाब पहुँचेगा या हर रूह को पूरे कलाम-ए-मजीद का सवाब पहुँचेगा?

पाद-टिप्पणियाँ: 1. फ़वाइद सक़फ़ियात- लि अबी अब्दुल्लाह अल-सक़फ़ी। 2. अत-तयसीर शरह अल-जामि' अस-सगीर, हदीस के तहत 'जिसने अपने बाप की तरफ से हज किया', मकतब-ए-इमाम अल-शाफई, रियाज़, सऊदी अरब, 2/414।

पेज 622/948

فتاوٰی رضویہ جلد نہم

اللہ تعالٰی کے نزدیک ماں باپ کے ساتھ اچھا سلوک کرنے والا نیکو کار لکھا جائے۔ یہ لفظ دار قطنی کے ہیں، اور ثقفیات میں ان لفظوں سے ہے:

[باکس ۱] عربی: من حج عن ابویه لم یحجاً اجزاء عنهما وبشرت ارواحهما في السماء وکتب عند الله براً۔ ۱ اردو: جس کے ماں باپ بے حج کئے مر گئے ہوں یہ ان کی طرف سے کرے وہ ان دونوں کا حج ہوجائے اور ان کی روحوں کو آسمان میں خوشخبری دی جائے اور یہ شخص اللہ تعالٰی کے نزدیک ماں باپ کے ساتھ نیک سلوک کرنیوالا لکھا جائے۔

ظاہر ہے کہ حج ایک عبادت واحدہ ہے جس کا بعض کافی نہیں، نہ وہ کل سے مغنی ہو، بلکہ قابل اعتبار ہی نہیں، جیسے فجر کی دو رکعتوں سے ایک رکعت، یا صبح سے دو پہر تک کا روزہ، تو یہ حج کہ ان دونوں کی طرف سے کافی ہو، ضرور ہے کہ ہر ایک کی جانب سے پورا حج واقع ہو، مگر فقہ میں مبین ومبرہن ہو لیا کہ یہ اجزاء بمعنی اسقاط فرض نہیں تولا جرم یہی معنی مقصود کہ دونوں کو کامل حج کا ثواب ملے۔ محدث جلیل امام ابو القاسم سلیمان بن احمد طبرانی اس حدیث کی تفسیر فرماتے ہیں:

[باکس ۲] عربی: لا اعلم احدا قال بظاهر من الاجزاء عنها بحج واحده وهو محمول علی وقوعه الاصل فرضا وللفرغ نقلا ۲ اه نقله في التیسیر مع التقریر والحمد الله رب العلمین هذا والله تعالی اعلم وعلمه جل مجده اتم واحکم۔ اردو: جہاں تک مجھے علم ہے کوئی اس کے ظاہر کا قائل نہیں یہ کہ وہ ایک ہی حج دونوں کی طرف سے کافی ہو جائیگا۔ وہ اس پر محمول ہے کہ اصل کے لئے فرض ادا ہوگا اور فرع کے لئے نفل ہوگا اھ اسے تیسیر میں نقل کیا اور برقرار رکھا۔ اور ساری خوبیاں

اللہ کے لئے جو سارے جہانوں کے پروردگار ہے۔ اور خدائے برتر خوب جاننے والا ہے اور اس رب بزرگ کا علم سب سے زیادہ کامل اور محکم ہے۔ (ت)

مسئلہ ۲۳۶ تا ۲۳۹: از شہر کہنہ محلہ کوٹ مرسلہ محمود علی صاحب بنگالی ۲ صفر المظفر ۱۳۲۱ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین متین وفضلائے شریعت امین ان مسئلوں میں: اول یہ کسی شخص نے ایک کلام مجید تلاوت کرکے ختم کیا اور اس کا ثواب پندرہ شخصوں کی ارواح کو للہ بخشا ان روحوں میں تقسیم ہوجائے گا یعنی فی روح دو پارے پہنچے گا یا فی روح کو پورے کلام مجید کا ثواب پہنچے گا؟

حواشی: ۱ فوائد ثقفیات لابی عبد اللہ ثقفی ۲ التیسیر شرح الجامع الصغیر تحت حدیث من حج عن ابیہ مکتبۃ الامام الشافعی الریاض سعودیہ ۲/۴۱۴

صفحہ 622 من 948

Volume 9 Fatawa Ridawiyya

And will its result be found in this world or the hereafter? Second, how should one phrase it to convey the reward? Third, if reward is conveyed to Hazrat Muhammad Mustafa (may Allah bless him and his family, companions, and household and grant them peace), can other souls also be included in it or not, and should the names of previous saints and prophets also be mentioned or not? Fourth, what benefit will be gained in this world and what recompense in the hereafter? Explain and be rewarded.

The Answer: By the grace of Allah Almighty, it is hoped that every person will receive the reward of the entire Holy Quran. It is mentioned in Radd al-Muhtar: [Arabic Text]: Ibn Hajar al-Makki was asked: If Surah al-Fatihah is recited for the people of a cemetery, will the reward be divided among them, or will each of them receive a full reward like it? He replied that a group of scholars have given a fatwa on the second option, and that is what befits the vastness of Divine Grace. Ibn Hajar al-Makki was asked: If Fatihah is recited for the people of a cemetery, will the reward be divided among them or will each one receive a full reward like it? He replied that a group of scholars has given a fatwa on the second option, and that alone is worthy of the vastness of Divine Grace. (T)

The complete investigation of this issue is in the Fatwas of this humble servant. Obtaining the result is in the power of Allah, the Glorified and Exalted; by benefiting Muslims, one gains the pleasure and mercy of Allah Almighty, and His mercy rectifies affairs in both worlds. A person should have the intention of seeking Allah in His Word. To aim for worldly gains is foolishness. One should pray: "O Allah! Convey the reward of what I have recited to such-and-such person or such-and-such persons." And it is better to convey it to all Muslim men and women. It is mentioned in Maslak al-Mutaqassit: [Arabic Text]: One should recite whatever is easy, such as Surah al-Fatihah and Surah al-Ikhlas seven or three times. Then say: "O Allah! Convey the reward of what I have recited to so-and-so or to all of them." Recite whatever is available: Surah Fatihah, Surah Ikhlas seven times or three times. Then say: "O Allah! Convey the reward of what we have read to such-and-such or to all of them." (T)

1. Radd al-Muhtar, Chapter on Recitation for the Deceased, etc., Dar Ihya al-Turath al-Arabi, Beirut, 1/605.

2. Al-Maslak al-Mutaqassit fi al-Mansak al-Mutawassit with Irshad al-Sari, Section: It is recommended to visit the people of al-Ma'la, Dar al-Kitab al-Arabiya, Beirut, p. 334.

और इसका परिणाम इस दुनिया में मिलेगा या आख़िरत में? दूसरा यह कि सवाब (पुण्य) किस तरह कहकर पहुँचाया जाए? तीसरा यह कि यदि हज़रत मुहम्मद मुस्तफ़ा (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) और उनके परिवार, साथियों और अहल-ए-बेत को सवाब पहुँचाया जाए, तो क्या अन्य रूहों (आत्माओं) को भी इसमें शामिल किया जा सकता है या नहीं, और पिछले औलिया और नबियों के नाम भी लिए जाएँ या नहीं? चौथा यह कि इस दुनिया में क्या लाभ और आख़िरत में क्या बदला प्राप्त होगा? स्पष्ट करें और पुण्य पाएँ।

उत्तर: अल्लाह अज़-व-जल की कृपा से आशा है कि प्रत्येक व्यक्ति को पूरे क़ुरान का सवाब पहुँचेगा। रद-अल-मुह्तार में है: इमाम इब्न हजर मक्की से प्रश्न किया गया: यदि कब्रिस्तान वालों के लिए फातिहा पढ़ी गई, तो क्या सवाब उनके बीच विभाजित होगा या प्रत्येक को उसी के समान पूरा-पूरा सवाब मिलेगा? उन्होंने उत्तर दिया कि विद्वानों के एक समूह ने दूसरी स्थिति पर फतवा दिया है, और वही ईश्वरीय कृपा की विशालता के योग्य है। इमाम इब्न हजर मक्की से सवाल हुआ: अगर कब्रिस्तान वालों के लिए फातिहा पढ़ी तो सवाब उनके दरमियान तकसीम (विभाजित) होगा या हर एक को इसी के मिस्ल (समान) पूरा-पूरा सवाब मिलेगा? उन्होंने जवाब दिया कि एक जमाअत उलमा ने दूसरी सूरत पर फ़तवा दिया है और वही फ़ज़्ल-ए-इलाही की वुसअत (विशालता) के लायक़ है। (त)

इस मसले की पूरी तहक़ीक़ (जाँच) फ़क़ीर के फ़तावा में है। नतीजा मिलना अल्लाह सुब्हानहु व ता'आला के इख़्तियार में है; मुसलमानों को नफ़ा-रसानी (लाभ पहुँचाने) से अल्लाह अज़-व-जल की रज़ा और रहमत मिलती है और उसकी रहमत दोनों जहान का काम बना देती है। आदमी को अल्लाह के कलाम में अल्लाह की नियत रखनी चाहिए। दुनिया को मक़्सद रखना हिमाक़त (मूर्खता) है। दुआ करे कि इलाही! यह जो मैंने पढ़ा इसका सवाब फ़लां शख़्स या फ़लां-फ़लां अशख़ास (व्यक्तियों) को पहुँचा, और अफ़ज़ल यह है कि तमाम मुस्लिमीन व मुस्लिमात को पहुँचाए। मसलक मुतकस्सित में है: जो मयस्सर (सुलभ) आए पढ़े, सूरह फ़ातिहा, सूरह इख़लास सात बार या तीन बार। फिर कहे: ऐ अल्लाह! हमने जो पढ़ा इसका सवाब फ़लां को या उन सबको पहुँचा। जो मयस्सर आए

पढ़े सूरह फ़ातिहा, सूरह इख़लास सात बार या तीन बार। फिर कहे: ऐ अल्लाह! हमने जो पढ़ा इसका सवाब फ़लां को या इन सबको पहुँचा। (त)

1. रद-अल-मुह्तार, मतलब फ़ी अल-किराअत लिल-मय्यित आदि, दार इह्या अल-तुराथ अल-अरबी, बेरूत, 1/605।
2. अल-मसलक अल-मुतकस्सित फ़ी अल-मनसक अल-मुतवस्सित मअ इरशाद अल-सारी, फ़स्ल: अहल-ए-मुअल्ला की ज़ियारत मुस्तहब है, दार अल-किताब अल-अरबिया, बेरूत, पृ. 334।

पृष्ठ 623/948

اور نتیجہ اس کا دنیا میں ملے گا یا عقبٰی میں؟ دوسرے یہ کہ ثواب کس طرح کہہ کر پہنچائے؟ تیسرے یہ کہ حضرت محمد مصطفٰی صلی اللہ تعالٰی علیہ وعلی آلہ واصحابہ واہل بیتہ وسلم کو ثواب پہنچائے تو اس کی شمول میں اور ارواح بھی شامل کر سکتا ہے یا نہیں، اور پچھلے اولیاء اور انبیاء کا نام بھی لیا جائے یا نہیں؟ چوتھے یہ کہ دنیا میں کیا فائدہ اور عقبٰی میں کیا بدل حاصل ہوگا؟ بینوا توجروا

الجواب: اللہ عزوجل کے فضل سے امید ہے کہ ہر شخص کو پورے کلام مجید کا ثواب پہنچے گا۔ ردالمحتار میں ہے: سئل ابن حجر مکی عمالو قرأ لاھل المقبرۃ الفاتحۃ ھل یقسم الثواب بینھم اویصل لکل منھم مثل ثواب ذلك كاملا فأجاب بانه افتی جمع بالثانی وھو اللائق بسعۃ الفضل - امام ابن حجر مکی سے سوال ہوا: اگر قبرستان والوں کے لیے فاتحہ پڑھی تو ثواب ان کے درمیان تقسیم ہوگا یا ہر ایک کو اسی کے مثل پورا پورا ثواب ملے گا؟ انہوں نے جواب دیا کہ ایک جماعت علماء نے دوسری صورت پر فتوٰی دیا ہے اور وہی فضل الٰہی کی وسعت کے لائق ہے۔ (ت)

اس مسئلہ کی پوری تحقیق فتاوٰی فقیر میں ہے۔ نتیجہ ملنا اللہ سبحانہ وتعالٰی کے اختیار میں ہے مسلمانوں کو نفع رسانی سے اللہ عزوجل کی رضا و رحمت ملتی ہے اور اس کی رحمت دونوں جہان کا کام بنا دیتی ہے۔ آدمی کو اللہ کے کلام میں اللہ کی نیت چاہئے۔ دنیا سے مقصود رکھنا حماقت ہے۔ دعا کرے کہ الٰہی! یہ جو میں نے پڑھا اس کا ثواب فلاں شخص یا فلاں فلاں اشخاص کو پہنچا، اور افضل یہ ہے کہ تمام مسلمین ومسلمات کو پہنچائے۔ مسلک متقسط میں ہے: یقرأ ماتیسرلہ من الفاتحہ والاخلاص سبعاً اوثلاثاً ثم یقول اللھم اوصل ثواب ماقرأ الی فلان او الیھم - جو

میسر آئے پڑھے سورہ فاتحہ، سورہ اخلاص سات بار یا تین بار۔ پھر کہے: اے اللہ! ہم نے جو پڑھا اس کا ثواب فلاں کو یا ان سب کو پہنچا۔ (ت)

1. ردالمحتار مطلب فی القرأۃ للمیت الخ داراحیاء التراث العربی بیروت ۱/ ۶۰۵
2. المسلک المتقسط فی المنسک المتوسط مع ارشاد الساری فصل یستحب زیارۃ اھل المعلی دار الکتاب العربیہ بیروت ص ۳۳۴

Fatawa Razawiya, Volume 9

It is stated in Al-Muhit, Al-Tatarkhaniyya, and Shami: "It is better for one who gives voluntary charity to intend it for all believing men and women, for it will reach them and nothing will be diminished from their reward." [1] | For anyone who performs voluntary charity, it is better to intend it for all believing men and women, because it will reach all of them and nothing will be diminished from their reward. (T)

Through the grace of the Holy Prophet (peace and blessings of Allah be upon him), one can include all Prophets, Saints, and believing men and women—those who have passed away, those who are present, and those who will come until the Day of Resurrection—and this is superior. It is stated in the two Sahihs: "Verily the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) sacrificed two rams, white and black mixed; one for himself and the other for his Ummah." [2] - And Ibn Majah added: "He sacrificed one on behalf of his Ummah for everyone who testified to the oneness of Allah and testified to his delivery of the message; and he sacrificed the other on behalf of Muhammad and the family of Muhammad." [3] And Ahmad and others narrated from Abu Huraira (may Allah be pleased with him) the Prophet's (peace and blessings of Allah be upon him) words at the time of sacrifice: "O Allah, for You and from You, on behalf of Muhammad and his Ummah." [4] | The Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) sacrificed two rams whose colors were white mixed with black; one on his own behalf, the other on behalf of his Ummah. In Ibn Majah, there is this addition: One was sacrificed on behalf of his Ummah for every person who testified to the creed (Kalimah Tayyibah) and witnessed the delivery of the Prophetic message, and the other was slaughtered in the name of Hazrat Muhammad and the family of Muhammad (peace and blessings of Allah be upon him). Imam Ahmad and others narrate from Abu Huraira (may Allah be pleased with him) that at the time of sacrifice, the Holy Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) said: "O Allah! For You and from You, this is on behalf of Muhammad and his Ummah." (T)

In Bahr al-Ra'iq it is stated: "There is no difference whether the one for whom it is dedicated..." | There is no difference in that another person for whom one's reward [is dedicated]...

[1] Radd al-Muhtar, Discussion on Recitation for the Deceased etc., Dar Ihya al-Turath al-Arabi, Beirut, 2/205 [2] Fath al-Qadir, citing the Sahihayn, Chapter on Hajj on behalf of another, Nuriya Razawiya Sukkur 3/65; Majma' al-Zawa'id, Chapter on the Sacrifice

of the Messenger of Allah (pbuh), Dar al-Kitab Beirut 4/22 [3] Sunan Ibn Majah, Chapters on Sacrifices, Chapter on Sacrifices of the Messenger of Allah (pbuh), H.M. Saeed Company Karachi, p. 232 [4] Sunan Ibn Majah, Chapters on Sacrifices, Chapter on Sacrifices of the Messenger of Allah (pbuh), H.M. Saeed Company Karachi, p. 23

फ़तावा रज़विया, खंड 9

मुहीत, तातारखानिया और शामी में है: "नफ़्ल सदका करने वाले के लिए बेहतर यह है कि वह सभी मोमिन पुरुषों और महिलाओं की नीयत करे, क्योंकि यह उन सब तक पहुँचेगा और उसके प्रतिफल में कुछ कमी नहीं आएगी। [1]" | जो कोई नफ़्ल सदका (ऐच्छिक दान) करे, उसके लिए बेहतर यह है कि वह तमाम मोमिनों और मोमिनाओं (आस्तिक पुरुषों और महिलाओं) की नीयत करे, क्योंकि वह उन सब तक पहुँचेगा और उसके प्रतिफल में कुछ भी कम नहीं होगा। (त)

हुज़ूर अक़दस सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम के वसीले से तमाम नबियों, वलियों और मोमिन पुरुषों व महिलाओं को—जो गुज़र गए, जो मौजूद हैं और जो क़यामत तक आने वाले हैं—सबको शामिल किया जा सकता है और यही अफ़ज़ल (बेहतर) है। सहीहैन में है: "बेशक नबी सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने दो चितकबरे (सफ़ेद और काले मिले हुए) मेढ़ों की कुर्बानी दी; एक अपनी ओर से और दूसरा अपनी उम्मत की ओर से। [2]" - और इब्न माजा ने यह इज़ाफ़ा (जोड़) किया है: "एक अपनी उम्मत की ओर से कुर्बान किया हर उस शख़्स की ओर से जिसने अल्लाह की तौहीद (एकेश्वरवाद) की गवाही दी और उनके रिसालत (संदेश पहुँचाने) की तब्लीग़ की गवाही दी; और दूसरा हज़रत मुहम्मद और आले-मुहम्मद सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम के नाम से ज़िबह किया। [3]" और इमाम अहमद वगैरह ने हज़रत अबू हुरैरा रज़ियल्लाहु अन्हु से रिवायत की है कि कुर्बानी के वक़्त हुज़ूर सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने यूँ कहा था: "ऐ अल्लाह! तेरे लिए और तेरी तरफ़ से, यह मुहम्मद और उनकी उम्मत की जानिब से है। [4]" | नबी सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने दो मेढ़ों की कुर्बानी दी, जिनके रंग सफ़ेदी और स्याही मिले हुए थे; एक अपनी तरफ़ से, दूसरा अपनी उम्मत की तरफ़ से। इब्न माजा में यह इज़ाफ़ा है: एक अपनी उम्मत की तरफ़ से कुर्बान किया हर उस व्यक्ति की तरफ़ से जिसने कलमा-ए-तय्यबा की गवाही दी और हुज़ूर अकरम के लिए तब्लीग़-ए-रिसालत की गवाही दी, और दूसरा हज़रत मुहम्मद और आले-मुहम्मद सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम के नाम से ज़िबह किया। इमाम अहमद वगैरह हज़रत अबू हुरैरा रज़ियल्लाहु अन्हु से रावी हैं कि कुर्बानी के वक़्त हुज़ूर सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने यूँ कहा था: "ऐ अल्लाह! तेरे लिए और तुझ से, यह मुहम्मद और उनकी उम्मत की जानिब से है।" (त)

बहर-उर-रैक में है: "इसमें कोई फ़र्क़ नहीं कि जिसके लिए प्रतिफल (सवाब) निश्चित किया गया हो..." | इसमें कोई फ़र्क़ नहीं कि जिस दूसरे के लिए अपना सवाब...

[1] रद अल-मुह्तार, मुर्दे के लिए किराअत (पाठ) का बयान आदि, दार इह्या अल-तुरास अल-अरबी, बेरुत, 2/205 [2] फ़तह अल-क़दीर, सहीहैन के हवाले से, दूसरे की तरफ़ से हज का बयान, नूरिया रज़विया सुक्कुर 3/65; मजमा अल-ज़वाइद, अल्लाह के रसूल की कुर्बानी का बाब, दार अल-किताब बेरुत 4/22 [3] सुनन इब्न माजा, कुर्बानी के अबवाब, अल्लाह के रसूल की कुर्बानी का बाब, एच.एम. सईद कंपनी कराची, पृ. 232 [4] सुनन इब्न माजा, कुर्बानी के अबवाब, अल्लाह के रसूल की कुर्बानी का बाब, एच.एम. सईद कंपनी कराची, पृ. 23

محیط وتارخانیہ وشامی میں ہے: الافضل لمن یتصدق نفلا ان ینوی لجمیع المؤمنین والمؤمنات لانھا تصل الیھم ولا ینقص من اجرہ شیئ۔ 1 | جو کوئی نفل صدقہ کرے اس کے لیے بہتر یہ ہے کہ تمام مومنین ومومنات کی نیت کرے اس لیے کہ وہ ان سب کو ملے گا اور اس کے اجر سے کچھ نہ گھٹے گا۔ (ت)

حضور اقدس صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم کے طفیل میں تمام انبیاء و اولیاء و مومنین و مومنات جو گزر گئے اور جو موجود ہیں اور جو قیامت تک آنے والے ہیں سب کو شامل کر سکتا ہے اور یہی افضل ہے۔ صحیحین میں ہے: ان النبی صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم ضحی بکبشین املحین احدھما عن نفسہ والآخر عن امتہ۔ 2 - وزادا بن ماجۃ ذبح احدھما عن امتہ لمن شھد اللہ بالتوحید وشھد لہ بالبلاغ وذبح الاخر عن محمد وآل محمد 3 ولاحمد وغیرہ عن ابی ھریرۃ رضی اللہ تعالٰی عنہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم قولہ عند التضحیۃ اللھم لك ومنك عن محمد وامتہ 4- | نبی صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم نے دو مینڈھوں کی، جن کے رنگ سفیدی سیاہی ملے ہوئے تھے، قربانی کی، ایک کی اپنی طرف سے، دوسرے کی اپنی امت کی طرف سے ابن ماجہ میں یہ اضافہ ہے: ایک اپنی امت کی طرف سے قربان کیا ہر اس شخص کی طرف سے جس نے کلمہ طیبہ کی شہادت کی اور حضور اکرم کے لیے تبلیغِ رسالت کی گواہی دی اور دوسرا حضرت محمد اور آلِ محمد صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم کے نام سے ذبح کیا امام احمد وغیرہ حضرت ابوہریرہ رضی اللہ تعالٰی عنہ سے راوی ہیں کہ قربانی کے وقت حضور صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم نے یوں کہا تھا: اے اللہ! تیرے لیے اور تجھ سے، یہ محمد اور اس کی امت کی جانب سے ہے۔ (ت)

بحرالرائق میں ہے: لافرق بین ان یکون المجعول لہ | اس میں کوئی فرق نہیں کہ جس دوسرے کے لیے اپنا ثواب

1 ردالمحتار مطلب في القراۃ للمیت الخ داراحیاء التراث العربی بیروت ۲/۲۰۵ 2 فتح القدیر بحوالہ صحیحین عن الحج عن الغیر نوریہ رضویہ سکھر ۳/۶۵، مجمع الزوائد باب اضحیۃ رسول اللہ صلی اللہ تعالی علیہ وسلم دارالکتاب بیروت ۴/۲۲ 3 سنن ابن ماجہ ابواب الاضاحی باب اضاحی رسول اللہ صلی اللہ تعالی علیہ وسلم ایچ ایم سعید کمپنی کراچی ص ۲۳۲ 4 سنن ابن ماجہ ابواب الاضاحی باب اضاحی رسول اللہ صلی اللہ تعالی علیہ وسلم ایچ ایم سعید کمپنی کراچی ص ۲۳

| Whether he gifts it after death or while alive. (T) | |---|---| | Whatever Allah wills. Allah Almighty says: | | **وَمَنْ يُرِدْ ثَوَابَ الدُّنْيَا نُؤْتِهِ مِنْهَا وَمَنْ يُرِدْ ثَوَابَ الْآخِرَةِ نُؤْتِهِ مِنْهَا ۚ وَسَنَجْزِي الشَّاكِرِينَ (٢)** | | Whoever desires the reward of this world - We will give him thereof; and whoever desires the reward of the Hereafter - We will give him thereof. And We will reward the grateful. |

And He says, the Exalted:

| مَنْ كَانَ يُرِيدُ الْعَاجِلَةَ عَجَّلْنَا لَهُ فِيهَا مَا نَشَاءُ لِمَنْ نُرِيدُ ثُمَّ جَعَلْنَا لَهُ جَهَنَّمَ يَصْلَاهَا مَذْمُومًا مَدْحُورًا (١٨) وَمَنْ أَرَادَ الْآخِرَةَ وَسَعَىٰ لَهَا سَعْيَهَا وَهُوَ مُؤْمِنٌ فَأُولَٰئِكَ كَانَ سَعْيُهُمْ مَشْكُورًا (١٩) (٣) | | Whoever should desire the immediate - We hasten for him from it what We will to whom We intend. Then We have made for him Hell, [which] he will [enter to] burn, censured and banished. And whoever desires the Hereafter and exerts the effort due to it while he is a believer - it is those whose effort is ever appreciated [by Allah]. |

Problem 220: From Karadkhana, Onaish, District Gaya, sent by Molvi Ali Ahmad Sahab, 5 Sha'ban 1331 AH. Zaid says that if Isaal-e-Sawab (sending of spiritual reward) is done collectively for two or four persons, then each one will get the full reward, whereas Bakr is of the opinion that it will be divided. Zaid presents this passage from Shami as proof:

| لكن سئل ابن حجر المكي عما لو قرأ لأهل المقبرة الفاتحة هل يقسم الثواب بينهم أو يصل لكل منهم مثل ثواب ذلك كاملاً فأجاب بأنه أفتى جمع بالثاني وهو اللائق بسعة الفضل (٤) | | Ibn Hajar al-Makki was asked: If Al-Fatiha is recited for the people of a graveyard, will the reward be divided among them, or will each of them receive the full reward of it? He replied that a group has issued a fatwa on the second option, and that is what befits the vastness of divine grace. (T) |

1. Al-Bahr al-Ra'iq, Chapter of Hajj on behalf of others, H.M. Saeed Company, Karachi, 3/59.
2. Al-Quran, 3/145.
3. Al-Quran, 17/18 and 19.
4. Radd al-Muhtar, Discussion on reciting for the deceased etc., Dar Ihya al-Turath al-Arabi, Beirut, 1/605.

जिल्द नहम (Volume 9) फ़तावा रज़विया (Fatawa Razviya)

| हदीया करे वह वफ़ात पा चुका हो या ज़िंदा हो। (त) | |---|---| | जो कुछ अल्लाह चाहे, अल्लाह तआला ने फ़रमाया: | | **وَمَنْ يُرِدْ ثَوَابَ الدُّنْيَا نُؤْتِهِ مِنْهَا وَمَنْ يُرِدْ ثَوَابَ الْآخِرَةِ نُؤْتِهِ مِنْهَا ۚ وَسَنَجْزِي الشَّاكِرِينَ (٢)** | | जो कोई दुनिया का बदला चाहे हम उसे इसमें से देंगे और जो आख़िरत का सवाब चाहे हम उसे इसमें से अता फ़रमाएंगे और क़रीब है कि हम शुक्र करने वालों को जज़ा बख़्शें। |

और फ़रमाता है अज़्ज़ व जल्ल:

| مَنْ كَانَ يُرِيدُ الْعَاجِلَةَ عَجَّلْنَا لَهُ فِيهَا مَا نَشَاءُ لِمَنْ نُرِيدُ ثُمَّ جَعَلْنَا لَهُ جَهَنَّمَ وَمَنْ أَرَادَ الْآخِرَةَ وَسَعَىٰ لَهَا سَعْيَهَا وَهُوَ مُؤْمِنٌ (١٨) يَصْلَاهَا مَذْمُومًا مَدْحُورًا (١٩) (٣) فَأُولَٰئِكَ كَانَ سَعْيُهُمْ مَشْكُورًا | | जो दुनिया चाहे हम इसमें से जितना चाहें यहां दे दें, फिर उसके लिए जहन्नम रखें जिसमें वह बैठा हुआ मज़म्मत किया हुआ, धक्के दिया जाता, और जो आख़िरत चाहे और उसकी जैसी कोशिश करे और मुसलमान हो, तो ऐसे ही लोगों की कोशिश ठिकाने लगती है। |

मसला २२०: अज़ काड़ाडाखाना ओनीरा ज़िला गया मुरसला मौलवी अली अहमद साहब ५ शाबान १३३१ हिजरी। ज़ैद कहता है कि अगर दो चार शख़्सों को इजमालन ईसाल-ए-सवाब किया जाए तो हर एक को पूरा-पूरा पहुंचेगा, और बक्र तक़्सीम का क़ायल है। ज़ैद अपने सुबूत में शामी की यह इबारत पेश करता है:

| لكن سئل ابن حجر المكي عما لو قرأ لأهل المقبرة الفاتحة هل يقسم الثواب بينهم أو يصل لكل منهم مثل ثواب ذلك كاملاً فأجاب بأنه أفتى جمع بالثاني وهو اللائق بسعة الفضل (٤) | | इब्न-ए-हजर मक्की से सवाल हुआ: अगर अहल-ए-क़ब्रिस्तान के लिए फ़ातिहा पढ़े तो सवाब उनके दरमियान तक़्सीम होगा या उनमें से हर एक को उसका सवाब मिस्ल-ए-कामिल तौर पर पहुंचेगा। उन्होंने जवाब दिया कि एक जमात ने सूरत-ए-दुव्वुम पर फ़तवा दिया है और वुसअत-ए-करम के लायक़ वही है। (त) |

1. अल-बहरुर रैक़ बाबुल हज अनिल ग़ैर एच एम सईद कंपनी कराची ५९/३
2. अल-क़ुरआन ३/१४५

3. अल-क़ुरआन १७/१८ व १९
4. रदुल मुहतार मतलब फ़ील क़िरात लिल मय्यत अलख़ दार इहयाउत तुरास अल अरबी बैरूत १/६०५

पेज ६२५ ऑफ ९४८

جلد نہم فتاوٰی رضویہ

| ہدیہ کرے وہ وفات پاچکا ہو یا زندہ ہو۔ (ت) | |---|---| | جو کچھ اللہ چاہے قال اللہ تعالٰی: | **وَمَنْ يُرِدْ ثَوَابَ الدُّنْيَا نُؤْتِهِ مِنْهَا وَمَنْ يُرِدْ ثَوَابَ الْآخِرَةِ نُؤْتِهِ مِنْهَا ۚ وَسَنَجْزِي الشَّاكِرِينَ ۲** | | جو کوئی دنیا کا عوض چاہے ہم اسے اس میں سے دیں گے اور جو آخرت کا ثواب چاہے ہم اسے اس میں سے عطا فرمائیں گے اور قریب ہے کہ ہم شکر کرنے والوں کو جزا بخشیں۔ |

اور فرماتا ہے عزوجل:

| **مَنْ كَانَ يُرِيدُ الْعَاجِلَةَ عَجَّلْنَا لَهُ فِيهَا مَا نَشَاءُ لِمَنْ نُرِيدُ ثُمَّ جَعَلْنَا لَهُ جَهَنَّمَ يَصْلَاهَا مَذْمُومًا مَدْحُورًا (۱۸) وَمَنْ أَرَادَ الْآخِرَةَ وَسَعَىٰ لَهَا سَعْيَهَا وَهُوَ مُؤْمِنٌ فَأُولَٰئِكَ كَانَ سَعْيُهُمْ مَشْكُورًا (۱۹) ۳** | | جو دنیا چاہے ہم اس میں سے جتنا چاہیں یہاں دے دیں ، پھر اس کے لیے جہنم رکھیں اس میں بیٹھے مذمتیں ہوتا ، دھکے دیا جاتا، اور جو آخرت چاہے اس کی سی کوشش کرے اور ہو مسلمان ، تو ایسے ہی لوگوں کی کوشش ٹھکانے لگتی ہے۔ |

مسئلہ ۲۲۰: ازکاراڈاخانہ اونیرا ضلع گیا مرسلہ مولوی علی احمد صاحب ۵ شعبان ۱۳۳۱ھ زید کہتا ہے اگر دو چار شخصوں کو اجمالاً ایصال ثواب کیا جائے تو ہر ایک کو پورا پورا پہنچے گا، اور بکر تقسیم کا قائل ہے۔ زید اپنے ثبوت میں شامی کی یہ عبارت پیش کرتا ہے:

| **لكن سئل ابن حجر المكي عما لو قرأ لأهل المقبرة الفاتحة هل يقسم الثواب بينهم أو يصل لكل منهم مثل ثواب ذلك كاملاً فأجاب بأنه أفتى جمع بالثاني وهو اللائق بسعة الفضل ۴** | | ابن حجر مکی سے سوال ہوا: اگر اہل قبرستان کے لیے فاتحہ پڑھے تو ثواب ان کے درمیان تقسیم ہو گا یا ان میں

سے ہر ایک کو اس کا ثواب مثل کامل طور پر پہنچے گا۔ انہوں نے جواب دیا کہ ایک جماعت نے صورت دوم پر فتوی دیا ہے اور وسعت کرم کے لائق وہی ہے۔ (ت) |

1. بحر الرائق باب الحج عن الغیر ایچ ایم سعید کمپنی کراچی ۳/۵۹

2. القرآن ۳/۱۴۵

3. القرآن ۱۷/۱۸ و ۱۹

4. ردالمحتار مطلب فی القرأۃ للمیت الخ داراحیاء التراث العربی بیروت ۱/۶۰۵

And Bakr says that two points are mentioned in the question: first, the transfer of reward (Isal-e-Sawab) for recitation along with the fixed distribution of reward; and second, the receipt of the likeness of the reward, because according to the Shafi'is, the reward of physical acts of worship does not reach (the deceased). Therefore, Allama Ibn Hajar completely remained silent on the first answer and only answered the second part according to the chosen view of later Shafi'is, the explanation of which Allama Shami states just above this passage in these words:

| And what the later scholars from the Shafi'is have refined is that the recitation reaches the deceased when it is done in his presence or when a prayer (dua) is made for him following it. Prayer after recitation is more likely to be accepted. Its implication is that the intended meaning is the deceased benefiting from the recitation, not that the reward itself reaches him. Therefore, they chose in the prayer: 'O Allah, convey the likeness of the reward of what I have recited to so-and-so.' However, according to us [Hanafis], what reaches him is the reward itself. 1 | The refinement made by the later Shafi'is is that the recitation reaches the deceased when it is performed in their presence or when a prayer is made to Allah after the recitation, because there is a greater hope of acceptance for prayer after reciting the Quran. Its implication is that the deceased benefits from the recitation, not that the reward of the recitation itself is obtained by them. This is why they adopt these words in prayer: 'O Allah! reach the likeness of the reward of what I have read to so-and-so,' but according to us, the reward itself reaches them. (T) |

In short, according to the Hanafi school, as they believe in the receipt of fixed reward, distribution is necessary because the reward for every action, even if multiplied, is a counted matter in the sight of Allah, the receipt of which by several people without distribution is rationally impossible. And Ibn Hajar calling the second statement "worthy of the vastness of grace" also implies this, that according to those who believe in the receipt of the reward of recitation, distribution is necessary. If the first case also meant full receipt, then calling the second one "worthy of the vastness of grace" would be completely meaningless due to there being no difference between them (because there would be no difference between the two - T). Now let the noble scholars state who is in the right, Zaid or Bakr? and according to the Hanafi school, is distribution necessary or not? Explain and you will be rewarded.

The Answer: The meaning of the passage from Fatawa Ibn Hajar Makki (may Allah the Almighty have mercy on him) is very clear; Bakr has completely distorted it. There is a question asked of Imam Ibn Hajar Makki where the inquirer asks: if Fateha is recited for multiple Muslims, will the reward be distributed among them or will each deceased person receive the full reward? It is like the wording that the inquirer, being of the Shafi'i school, added in the second part out of regard for his own school; it is also considered in the first part in their manner. That is why it did not say 'sawabaha' (its reward) but 'al-thawab' with the definite article of reference, meaning that very reward.

---

1 Rad al-Muhtar, chapter on Recitation for the Deceased etc., Dar Ihya al-Turath al-Arabi, Beirut, 1/205.

फतावा रज़विया जिल्द नहुम (9)

और बक्र कहता है कि सवाल में दो बातें ज़िक्र की गई हैं: एक तो क़िरात का ईसाले-सवाब और उसके साथ सवाब का बँटवारा मुक़र्रर करना, और दूसरा सवाब की मिसाल (समान फल) का पहुँचना, क्योंकि शाफ़ेई मत के अनुसार शारीरिक इबादतों का सवाब ही (मृतक तक) नहीं पहुँचता। इसलिए अल्लामा इब्ने हजर ने पहले जवाब पर तो पूरी तरह खामोशी अख्तियार की और केवल दूसरे भाग का शाफ़ेई मत के बाद के विद्वानों के पसंदीदा विचार के अनुसार उत्तर दिया, जिसकी व्याख्या अल्लामा शामी इस इबारत से कुछ ऊपर इन शब्दों में फरमाते हैं:

| शाफ़ेई मत के बाद के विद्वानों ने जो शोध (तनक़ीह) की है वह यह है कि क़िरात मृतक को पहुँचती है जब क़िरात उसके पास हो या क़िरात के बाद अल्लाह से दुआ की जाए, क्योंकि क़ुरआन की क़िरात के बाद दुआ के क़बूल होने की उम्मीद ज़्यादा होती है। इसका अर्थ यह है कि मृतक को क़िरात से लाभ मिलता है, यह नहीं कि क़िरात का सवाब उसे प्राप्त होता है, इसीलिए वे दुआ में इन शब्दों का चुनाव करते हैं कि 'ऐ अल्लाह! मैंने जो पढ़ा उसके सवाब की मिसाल फ़लाँ को पहुँचा,' लेकिन हमारे नज़दीक खुद सवाब ही उसे पहुँचता है। 1 | शाफ़ेई मत के बाद के विद्वानों ने जो शोध की है वह यह है कि क़िरात मृतक को पहुँचती है जबकि क़िरात उसके पास हो या क़िरात के बाद अल्लाह से दुआ की जाए, इसलिए कि क़ुरआन की क़िरात के बाद दुआ में क़बूलियत की उम्मीद अधिक होती है। इसका अर्थ यह है कि मृतक को क़िरात से फ़ायदा मिलता है, यह नहीं कि क़िरात का सवाब उसे प्राप्त होता है, इसी वजह से दुआ में वे यह शब्द इख्तियार करते हैं कि 'ऐ अल्लाह! मैंने जो पढ़ा उसके सवाब की मिसाल फलां को पहुँचा,' मगर हमारे नज़दीक खुद सवाब उसे पहुँचता है। (त) |

संक्षेप में, हनफ़ी मत के अनुसार, चूँकि वे मुक़र्रर सवाब पहुँचने के कायल हैं, इसलिए बँटवारा ज़रूरी है क्योंकि हर अमल का सवाब, चाहे वह कई गुना ही क्यों न हो, अल्लाह के नज़दीक एक गिनी हुई चीज़ है, जिसका बँटवारे के बिना कई लोगों को पहुँचना तर्कसंगत रूप से असंभव है। और इब्ने हजर का दूसरी बात को "कृपा की विशालता के योग्य" (लाइक़-ए-वसात-ए-फ़ज़ल) कहना भी इसी बात का तक़ाज़ा करता है कि सवाब पहुँचने के मानने वालों के नज़दीक बँटवारा ज़रूरी है। यदि पहली स्थिति में भी पूरा सवाब पहुँचना मुराद होता, तो दूसरी स्थिति को "कृपा की विशालता के योग्य" कहना बिल्कुल अर्थहीन होता क्योंकि दोनों में कोई अंतर नहीं रह जाता (त)। अब विद्वान बताएँ कि सही पक्ष

पर कौन है, ज़ैद या बक्र? और हनफ़ी मत के अनुसार बँटवारा ज़रूरी है या नहीं? स्पष्ट करें और पुण्य पाएँ।

उत्तर (अल-जवाब): फतावा इब्ने हजर मक्की (रहमतुल्लाह अलैह) की इबारत का मतलब बहुत साफ़ है, बक्र ने इसे पूरी तरह बदल दिया। इमाम इब्ने हजर मक्की से एक सवाल है जिसमें पूछने वाला पूछता है कि अगर कई मुसलमानों के लिए फ़ातिहा पढ़ी जाए तो सवाब उनमें बाँटा जाएगा या हर मृतक को पूरा सवाब मिलेगा? यह उस शब्द की तरह है जिसे शाफ़ेई मतावलंबी पूछने वाले ने अपने मत का लिहाज़ रखते हुए दूसरे भाग में बढ़ाया, पहले भाग में भी उनके तरीके को ध्यान में रखा गया है। इसीलिए 'सवाबहा' (उसका सवाब) नहीं कहा बल्कि 'अल-सवाब' कहा यानी वही सवाब।

---

1 रद्दुल मुहतार, मृतक के लिए क़िरात के बारे में चर्चा आदि, दार इहया अत-तुरास अल-अरबी, बेरुत, 1/205.

اور بکر کہتا ہے کہ سوال میں دو باتیں مذکور ہوئیں: ایک تو ایصالِ ثواب قرآت اور اس کے ساتھ تقسیمِ ثواب مقرر، اور دوسرے وصولِ مثلِ ثواب، چونکہ عند الشافعیہ عباداتِ بدنیہ کا ثواب ہی نہیں پہنچتا۔ اس لیے علامہ ابن حجر نے اول جواب سے تو بالکل سکوت فرمایا اور فقط شقِ ثانی کا بموجبِ مختارِ متاخرین شافعیہ جواب دیا جس کی تشریح علامہ شامی اس عبارت سے کچھ اوپر بایں الفاظ فرماتے ہیں:

| والذی حررہ المتاخرون من الشافعیہ وصول القرأۃ للمیّت اذا کانت بحضرتہ اودعی لہ عقبھا، والدعاء عقبھا ارجی للقبول ومقتضاہ ان المراد انتفاع المیّت بالقرأۃ لا حصول ثوابھا لہ ولھٰذا اختاروا فی الدعاء اللھم اوصل مثل ثواب ما قرأتہ الی فلاں واما عندنا فالواصل الیہ نفس الثواب۔1 | متاخرین شافعیہ نے جو تنقیح کی ہے وہ یہ ہے کہ قرأت میت کو پہنچتی ہے جبکہ قرأت اس کے پاس ہو یا بعدِ قرأت اللہ سے دعا کی جائے اس لیے کہ قرأتِ قرآن کے بعد دعا میں امیدِ قبول زیادہ ہے۔ اس کا مقتضاء یہ ہے کہ میت کو قرأت سے فائدہ ملتا ہے یہ نہیں کہ قرأت کا ثواب اسے حاصل ہوتا ہے اسی لیے دعا میں وہ یہ الفاظ اختیار کرتے ہیں کہ اے اللہ! میں نے جو پڑھا اس کے ثواب کا مثل فلاں کو پہنچا مگر ہمارے نزدیک خود ثواب اسے پہنچتا ہے۔ (ت) |

غرض بموجب مذہب حنفیہ کہ وہ وصولِ ثوابِ مقرر کے قائل ہیں تقسیم لابد ہے کیونکہ ہر عمل کا ثواب خواہ بتضاعیف ہی سہی عند اللہ ایک امر معدود ہے جس کا وصول دوچار شخصوں کو بلا تقسیم کے عقلاً ممتنع ہے۔ اور ابن حجر کا قولِ ثانی کو "لائق بسعتہ الفضل" فرمانا بھی اسی کو مقتضی ہے کہ قائلینِ وصولِ ثوابِ قرأت کے نزدیک تقسیم ضروری ہے اگر اول صورت بھی وصولِ کامل ہو تو ثانی لائقِ بسعتہ الفضل فرمانا بالکل بے معنی ہے لعدم الفرق بینھما (کیونکہ

دونوں میں فرق نہ ہوگا ت) اب علمائے کرام فرمائیں کہ حق بجانب کون شخص ہے زید یا بکر؟ اور بموجب مذہب حنفیہ تقسیم ضروری ہے یا نہیں؟ بینوا توجروا الجواب: عبارت فتاویٰ ابن حجر مکی رحمتہ اللہ تعالیٰ علیہ کا مطلب بہت صاف ہے، بکر نے بالکل تحویل کر دیا۔ امام ابن حجر مکی سے ایک سوال ہے جس میں سائل دریافت کرتا ہے کہ متعدد مسلمانوں کے لیے فاتحہ پڑھے تو ثواب ان پر تقسیم ہو گا یا ہر میت کو کامل ثواب ملے گا مثل لفظ کہ شق ثانی میں سائل شافعی المذہب نے اپنے مذہب کی رعایت سے بڑھایا، شق اول میں بھی ان کے طور پر ملحوظ ہے ولہٰذا ثوابھا نہ کہا بلکہ الثواب بلام عہد یعنی وہی

---

1 ردالمحتار مطلب فی القرآۃ للمیّت الخ داراحیاء التراث العربی بیروت ۱ / ۲۰۵

Fatawa Ridawiyyah, Volume 9

...reward which is well-known and customary among us Shafi'is is the 'similitude of the reciter's reward'. Will it be divided among the deceased or will each receive it in full? It is evident that this is a single question, and the aim was to seek clarification between the two options of 'division' and 'completion'. The Imam replied that a group [of scholars] gave a fatwa on the second option, i.e., each one will receive the full reward, and this alone is worthy of the vastness of Divine Mercy. It is not that there were two separate questions, the first regarding the Hanafi school and the second regarding the Shafi'i school. This difference is not specific to reciting for a group of deceased; the ruling for reciting for a single deceased is also the same: in our [Hanafi] view, the essence of the reward (Nafs-e-Thawab) reaches them, while in their [Shafi'i] view, its similitude (Mithl-e-Thawab) reaches them. Had it been so, the Imam would have cautioned against this error. Furthermore, the answer would not have been that a group gave a fatwa on the second option, but rather that our school follows the second option. Then, what difference does it make between 'essence' and 'similitude' regarding the vastness of mercy, which the Imam describes as 'this is what is worthy of the vastness of grace'? Bakr's argument that 'Ibn Hajar's second statement etc.' is strange. In the first option, the word 'division' is itself explicit. The questioner specifically asks that whatever reward reaches—which in their view is the similitude of the reciter's reward, not the essence—will it be divided or will each receive it in full? The Imam replied that it is most appropriate for each to receive it in full; thus, they also became proponents of the arrival of reward. Where was the reciter's own essence of reward in the first option?

Then I say: and success is from Allah (I say again with the help of Allah Almighty): Here the investigation is different, which should dispel the doubt. When from a superficial perspective, the arrival of a single thing to two persons without division is rationally impossible, meaning one attribute cannot exist in two loci (otherwise, in this expression, it is explicitly prohibited), then it would be mandatory according to the Hanafis that when the essence of the reciter's reward reaches the deceased, it should not remain with the reciter. Otherwise, this too would be the existence of a single attribute in two loci, whereas Hadiths, Hanafis, and all other noble scholars explicitly state the opposite. It is in Al-Muheet, then Tatar-Khaniyah, then in Radd al-Muhtar:

It is better for one giving voluntary charity to intend it for all believing men and women, for it reaches them and nothing is decreased from his own reward.

So when that same reward remained with him and also reached the other, and was not divided as 'nothing is decreased from his reward' implies, it was not decreased at all. If it were divided, it would certainly have decreased. So, if the same full reward reaches two hundred, or a hundred thousand, or all the first and last believing men and women without being divided, what is the impossibility? Just as for two, so for millions upon millions. Imam Jalal-ul-Millah wad-Din al-Suyuti.

---

1. Radd al-Muhtar, Chapter on Reciting for the Deceased, etc., Dar Ihya al-Turath al-Arabi, Beirut, 2/605

फ़तावा रिज़विया, जिल्द 9

...सवाब जो हमारे शाफ़ेइयों के नज़दीक मशहूर और परिचित है कि क़ारी के सवाब के समान (मिस्ल) है। क्या मुर्दों पर तक़सीम (विभाजन) होगा या हर एक को पूरा मिलेगा? यह साफ़ है कि यह एक ही सवाल है और इसमें मक़सद 'तक़सीम' और 'तक्मील' (पूरा मिलना) के दो विकल्पों में से एक को निश्चित करना था, जिसका जवाब इमाम ने दिया कि एक गिरोह ने दूसरे विकल्प पर फ़तवा दिया, यानी हर एक को पूरा सवाब पहुँचेगा और यही अल्लाह की रहमत की वुसअत (विशालता) के लायक़ है। यह नहीं कि दो अलग सवाल थे, पहला हनफ़ियों का और दूसरा शाफ़ेइयों का। यह मतभेद केवल मुर्दों की जमाअत के लिए क़िरात (पढ़ने) तक सीमित नहीं है, एक मय्यित (मृतक) के लिए भी यही हुक्म है कि हमारे नज़दीक सवाब की असलियत (नफ़्स-ए-सवाब) पहुँचती है और उनके नज़दीक उसकी मिसाल। अगर ऐसा होता तो इमाम इस ग़लती पर सचेत फ़रमाते। फिर जवाब यह न होता कि एक गिरोह ने दूसरे पर फ़तवा दिया, बल्कि यह होता कि हमारा मज़हब दूसरा विकल्प है। फिर 'नफ़्स' और 'मिस्ल' में रहमत की वुसअत का क्या अंतर है जिसे इमाम 'यह फ़ज़्ल की वुसअत के लायक़ है' फ़रमा रहे हैं? बक्र का यह तर्क कि 'इब्न-ए-हजर का दूसरा क़ौल आदि' अजीब है। पहले विकल्प में शब्द 'तक़सीम' खुद स्पष्ट है। पूछने वाला यही पूछ रहा है कि जो कुछ भी सवाब पहुँचे—जो उनके नज़दीक क़ारी के सवाब की मिसाल है न कि असल—क्या वह तक़सीम होगा या हर एक को पूरा पहुँचेगा? इमाम ने जवाब दिया कि हर एक को पूरा पहुँचना ज़्यादा बेहतर है, तो वे भी सवाब पहुँचने के मानने वालों में से हो गए। पहले विकल्प में क़ारी का अपना नफ़्स-ए-सवाब कहाँ था?

फिर मैं कहता हूँ: और अल्लाह की मदद से (मैं फिर अल्लाह तआला की मदद से कहता हूँ): यहाँ तहक़ीक़ कुछ और है जो शक को पूरी तरह ख़त्म कर दे। जब आम ज़ाहिरी निगाह में एक ही चीज़ का दो लोगों को बिना विभाजन पहुँचना अक़्लन नामुमकिन है, यानी एक ही गुण दो जगहों पर एक साथ नहीं रह सकते (वरना इस बयान में तो साफ़ मनाही है), तो हनफ़ियों के नज़दीक लाज़िम होता कि जब क़ारी का असल सवाब मय्यित को पहुँचे तो वह क़ारी के पास न रहे। वरना यह भी एक ही चीज़ का दो जगहों पर होना होगा, जबकि अहादीस, हनफ़ी और अन्य तमाम उलमा इसके उलट होने की साफ़ गवाही देते हैं। अल-मुहीत, फिर तातार ख़ानिया, फिर रद-उल-मुहतार में है:

नफ़्ल सदक़ा करने वाले के लिए बेहतर यह है कि वह तमाम मोमिन मर्दों और औरतों की नीयत करे क्योंकि वह उन सब तक पहुँचेगा और उसके अपने सवाब में कोई कमी नहीं होगी।

तो जब वही सवाब उसके पास भी रहा और दूसरे को भी पहुँचा और तक़सीम भी नहीं हुआ जैसा कि 'उसके सवाब में कुछ कमी न होगी' से ज़ाहिर है, तो अगर वही पूरा सवाब दो सौ या लाख या तमाम पहले और आख़िरी मोमिनों और मोमिनातों को बिना तक़सीम पहुँचे, तो इसमें क्या नामुमकिन है? जैसे दो को, वैसे करोड़ों-करोड़ को। इमाम जलालुद्दीन सुयूती।

---

1. रद-उल-मुहतार, मत्तलब फ़ी अल-क़िरात लिल-मय्यित आदि, दार इहया अत-तुरास अल-अरबी, बेरुत, 2/605

पृष्ठ 627/948

ثواب کہ ہم شافعیہ کے نزدیک معروف و معہود ہے کہ مثل ثواب قاری ہے۔ آیا اموات پر تقسیم ہوگا یا ہر ایک کو پورا ملے گا۔ روشن ہے کہ یہ ایک ہی سوال ہے اور اس میں مقصود بالاستفادہ "تقسیم و تکمیل" کی دوشقوں سے ایک متعین جس کا جواب امام نے دیا کہ ایک جماعت نے شق دوم پر فتوی دیا یعنی ہر ایک کو پورا ثواب پہنچے گا اور یہی وسعت رحمت الہیہ کے لائق ہے نہ یہ کہ دو سوال تھے ، پہلا مذہب حنفیہ اور دوسرا مذہب شافعیہ کا یہ اختلاف ایک جماعت اموات کے لیے قرات سے خاص نہیں ایک میت کے لیے قرات بھی یہی ہے کہ ہمارے نزدیک نفس ثواب پہنچتا ہے اور ان کے نزدیک اس کا مثل۔ ایسا ہوتا تو امام اس غلطی پر متنبہ فرماتے۔ پھر جواب یوں نہ ہوتا کہ ایک جماعت نے ثانی پر فتوی دیا ، بلکہ یوں ہوتا کہ ہمارا مذہب شق ثانی ہے پھر نفس و مثل میں سعۃ رحمت کا کیا فرق ہے جسے امام ھو اللائق بسعۃ الفضل فرما رہے ہیں۔ بکر کا استدلال کہ "ابن حجر کے قول ثانی کو الخ" عجیب ہے۔ شق اول میں لفظ "تقسیم" خود مصرح ہے۔ سائل پوچھتا ہی یہ ہے کہ ثواب جو کچھ بھی پہنچے کہ وہ ان کے نزدیک مثل ثواب قاری ہے نہ نفس تقسیم ہوگا یا ہر ایک کو پورا پہنچے گا؟ امام نے جواب دیا کہ ہر ایک کو پورا پہنچنا الیق ہے ، تو قائلین وصول ثواب سے یہ بھی ہوئے۔ شق اول میں نفس ثواب القاری کہاں تھا۔

ثم اقول: وباللہ التوفیق (میں پھر اللہ تعالیٰ کی مدد سے کہتا ہوں۔ ت) یہاں تحقیق امر اور ہے جو شبہ کو رائگاں ختم کردے۔ جب نظر عامہ اہل ظاہر پر شے واحد کا دو شخصوں کو بلا تقسیم وصول عقلاً ممتنع ہے یعنی عرض واحد دو محل سے قائم نہیں ہو سکتے (ورنہ اس تعبیر میں تو صریح منع ہے) تو واجب کہ حنفیہ کے نزدیک جب نفس ثواب قاری میت کو پہنچے قاری کے پاس نہ

رہے، ورنہ یہ بھی عرض واحد کا دو محل سے قیام ہوگا حالانکہ احادیث و حنفیہ و سائر علماء کرام خلاف پر تصریح فرمائیں ، محیط پھر تاتار خانیہ پھر ردالمحتار میں ہے:

الافضل لمن یتصدق نفلا ان ینوی لجمیع المومنین | صدقہ نفل کرنے والے کے لیے بہتر یہ ہے کہ تمام مومنین و والمؤمنات لانھا تصل الیھم ولا ینقص من اجرہ | مومنات کی نیت کرے کہ وہ سب کو پہنچے گا اور اس ثواب سے شیئی1۔ | کچھ کم نہ ہوگا (ت)

تو جب وہی ثواب اس کے پاس بھی رہا اور دوسرے کو بھی پہنچا اور تقسیم نہ ہوا کہ لاینقص من اجرہ شیئی اس کے ثواب سے کچھ کم نہ ہوا، تقسیم ہوتا تو قطعاً کم ہوتا، تو اگر دو سو یا لاکھ یا سب اولین و آخرین مومنین و مومنات کے وہی ثواب پورا پورا پہنچے اور تقسیم نہ ہو کیا استحالہ ہے، جیسے دو ویسے کروڑ ہا کروڑ۔ امام جلال الملۃ والدین سیوطی

---

1 ردالمحتار مطلب فی القراءۃ للمیت الخ دار احیاء التراث العربی بیروت ۲ / ۶۰۵

Fatawa Razawiyya Volume 9

It is narrated in Zahr al-Ruba, a commentary on Sunan an-Nasa'i:

(Arabic Text): Indeed, the soul has another state: it is in the Highest Assembly (al-Rafiq al-A'la) while being connected to the body such that when a Muslim greets his companion, he returns the peace while the soul is in its place there. This is Gabriel (peace be upon him); the Prophet (peace and blessings of Allah Almighty be upon him) saw him with six hundred wings, two of which blocked the horizon. He would draw near to the Prophet (peace and blessings of Allah Almighty be upon him) until he placed his knees to his knees and his hands on his thighs. The hearts of the sincere have the capacity to believe that this approach was possible while he was in his dwelling in the heavens. This is the interpretation of His (Allah's) descent to the lowest heaven and His drawing near on the evening of Arafa and the like; He is transcendent above movement and transition. Error here comes from gauging the unseen by the seen, believing that the soul is of the same nature as familiar bodies which, when they occupy one place, cannot be in another; this is pure error. It is thus established that there is no contradiction between the soul being in 'Illiyyin, Paradise, or heaven, and its having a connection to the body such that it perceives, hears, prays, and recites with it. This is only considered strange because the worldly witness does not possess that by which this is witnessed. The matters of the Barzakh and the Hereafter are on a pattern unfamiliar in this world. (Abridged)

(Urdu Translation of the above): The state of the soul is distinct; it remains connected to the body while residing in the highest assembly, so that when a Muslim greets the occupant of a grave, he responds while the soul is at its place there. This refers to Gabriel (peace be upon him), whom the Prophet (peace and blessings of Allah Almighty be upon him) saw with six hundred wings, two of which covered the entire horizon. Despite this, he came close to the Holy Prophet (peace and blessings of Allah Almighty be upon him) until his knees were adjacent to the Prophet's knees and he placed his hands on the Prophet's thighs. The hearts of the sincere have the capacity to believe that it is possible for this closeness to the Prophet to occur while he is simultaneously present in his abode in the heavens. The same applies to what is narrated about Allah Almighty descending to the lowest heaven and drawing near on the evening of Arafa and the like, as He is beyond movement and transition. Here, error arises from comparing the unseen with the seen. A person assumes that the soul belongs to the category of familiar physical bodies—that if it is in one place, it cannot be in another—which is completely wrong. This proves there is no

contradiction in the soul being in 'Illiyyin, Paradise, or heaven while having such a connection to the body that it performs all functions like perception, hearing, prayer, and recitation.

1. Zahr al-Ruba on the margin of Sunan an-Nasa'i, Arwah al-Mu'minin, Noor Muhammad Karkhana Tijarat Kutub, Karachi 1/292. Page 628 of 948

फ़तावा रज़विया जिल्द नहुम (9)

ज़हर अर-रुबा, सुनन अन-नसाई की शरह (व्याख्या) में उद्धृत किया गया है:

(अरबी पाठ): वास्तव में आत्मा की एक अन्य स्थिति है: वह 'रफ़ीक़-ए-आला' (उच्चतम सभा) में होती है जबकि शरीर से इस प्रकार जुड़ी रहती है कि जब कोई मुसलमान अपने साथी को सलाम करता है, तो वह सलाम का उत्तर देता है जबकि आत्मा वहां अपने स्थान पर होती है। यह जिब्रील (अलैहिस्सलाम) हैं; नबी (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने उन्हें छह सौ पंखों के साथ देखा जिनमें से दो पंखों ने क्षितिज को रोक दिया था। वह नबी (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) के इतने करीब आते थे कि अपने घुटने उनके घुटनों के पास और अपने हाथ उनकी जाँघों पर रख देते थे। मुख़लिसों (निष्ठावानों) के दिलों में यह विश्वास करने की गुंजाइश है कि यह निकटता संभव थी जबकि वह आसमानों में अपने ठिकाने पर थे। यही अल्लाह के दुनिया के आसमान की ओर अवतरण और अराफ़ा की शाम को करीब आने आदि की व्याख्या है; वह गति और स्थान-परिवर्तन से परे है। यहाँ त्रुटि ग़ायब (अदृश्य) की तुलना शाहिद (दृश्य) से करने के कारण होती है, यह मानते हुए कि आत्मा ज्ञात शरीरों की प्रकृति की है जो एक स्थान घेरने पर दूसरे स्थान पर नहीं हो सकते; यह पूर्ण त्रुटि है। इस प्रकार यह सिद्ध होता है कि आत्मा के'इल्लिय्यीन' या स्वर्ग या आसमान में होने और शरीर के साथ ऐसा संबंध होने में कोई विरोधाभास नहीं है कि वह इसके माध्यम से बोध करती है, सुनती है, नमाज़ पढ़ती है और क़िरात करती है। यह केवल इसलिए अजीब लगता है क्योंकि दुनियावी गवाह के पास वह (क्षमता) नहीं है जिससे इसे देखा जा सके। बरज़ख और आख़िरत के मामले दुनिया में अपरिचित पैटर्न पर हैं। (संक्षिप्त)

(उर्दू अनुवाद): आत्मा की शान ही कुछ और है; वह 'मला-ए-आला' में रहकर भी शरीर से जुड़ी रहती है कि जब मुसलमान कब्र वाले को सलाम करता है तो वह उसे जवाब देता है जबकि आत्मा वहां अपने मुकाम में होती है। ये हज़रत जिब्रील (अलैहिस्सलाम) हैं जिन्हें नबी अकरम (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने इस हालत में देखा कि उनके छह सौ पंख हैं जिनमें से दो पंख पूरे क्षितिज पर छाए हुए हैं। इसके बावजूद वह नबी करीम (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) के करीब आते हैं यहाँ तक कि अपने ज़ानू (घुटने) हुज़ूर के ज़ानुओं के पास और अपने हाथ हुज़ूर की रानों पर रख देते। मुख़लिसों के दिल इस बात पर ईमान लाने की वक़्त (क्षमता) रखते हैं कि यह मुमकिन है कि उनका हुज़ूर से यह कुर्ब (निकटता) ठीक उसी हालत में हो जब वे आसमानों के अंदर अपने मुस्तक़र (ठिकाने) में मौजूद हों। यही हाल उसका भी है जो मरवी (वर्णित) है कि रब तआला आसमान-ए-दुनिया की तरफ नुज़ूल

फ़रमाता है और करीब होता है अराफ़ा की शाम को और इसके मिस्ल (समान), क्योंकि वह तो हरकत व इंतिक़ाल (गति और विस्थापन) से मुनज़्ज़ह (पवित्र/परे) है। यहाँ गलती ग़ायब को शाहिद पर क़यास करने से होती है। आदमी ये एतकाद (विश्वास) करता है कि रूह भी मऊद (परिचित) अजसाम (शरीरों) की जिन्स से है कि जब एक मुकाम में हो तो दूसरे मुकाम में होना मुमकिन नहीं, ये महज़ गलत है। इससे साबित हुआ कि इसमें कोई मुनाफ़ात (विरोध) नहीं कि रूह इल्लिय्यीन और जन्नत और आसमान में हो और बदन से भी इसका ऐसा इत्तसाल (जुड़ाव) हो कि इदराक (बोध), समाअत (सुनना), नमाज़, क़िरात सारे काम करती है।

1. ज़हर अर-रुबा हाशिए पर सुनन अन-नसाई, अरवाह अल-मुमिनीन, नूर मुहम्मद कारख़ाना तिज़ारत कुतुब, कराची, 1/292. पेज 628 of 948

فتاوٰی رضویہ جلد نہم

زہر الربی شرح سنن نسائی میں نقل فرماتے ہیں:

ان للروح شاناً اخر فیکون فی الرفیق الاعلی وھی متصلة بالبدن بحیث اذا سلم المسلم علی صاحبه رد علیه السلام وھی فی مکانها هناك وھذا جبریل علیه السلام راه النبی صلی الله تعالی علیه وسلم وله ستمایة جناح منها جناحان سدا الافق وکان یدنو من النبی صلی الله تعالی علیه وسلم حتی یضع رکبتیه الی رکبتیه ویدیه علی فخذیه وقلوب المخلصین تتسع للایمان بانه من الممکن انه کان هذا الدنو وھو فی مستقره من السموات وھذا محمل تنزله تعالی الی سماء الدنیا ودنوه عشیة عرفة ونحوه فھو منزه عن الحرکة والانتقال وانما یأتی الغلط ههنا من قیاس الغائب علی الشاهد فیعتقد ان الروح من جنس ما یعهد من الاجسام التی اذا شغلت مکاناً لم یمکن ان تکون فی غیره وھذا غلط محض، فثبت بهذا انه لا منافاة بین کون الروح فی علیین او الجنة او السماء وان لها بالبدن اتصالاً بحیث تدرك وتسمع وتصلی وتقرء بها وانما یستغرب هذا لکون الشاهد الدنیوی لیس فیه ما یشاهد به هذا وامور البرزخ والآخرة علی نمط غیر المألوف فی الدنیا ۱ اھ مختصراً۔

روح کی شان ہی کچھ اور ہے وہ ملاء اعلیٰ میں رہ کر بھی بدن سے متصل ہوتی ہے کہ جب مسلمان صاحبِ قبر کو سلام کرتا ہے تو وہ اسے جواب دیتا ہے جبکہ روح وہاں اپنے مقام میں ہے۔ یہ حضرت جبریل علیہ الصلوۃ والسلام ہیں جنھیں نبی اکرم صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم نے اس حالت میں دیکھا کہ ان کے چھ سو پر ہیں جن میں سے دو پر پورے افق پر چھائے ہوئے ہیں۔ اس کے باوجود وہ نبی کریم صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کے قریب آتے ہیں یہاں تک کہ اپنے زانو حضور کے زانوؤں کے متصل اور اپنے ہاتھ حضور کی رانوں پر رکھ دیتے، مخلصین کے قلوب اس بات پر

ایمان لانے کی وسعت رکھتے ہیں کہ یہ امر ممکن ہے کہ ان کا حضور سے یہ قرب عین اسی حالت میں ہو جب وہ آسمانوں کے اندر اپنے مستقر میں موجود ہوں۔ یہی حال اس کا بھی ہے جو مروی ہے کہ رب تعالیٰ آسمانِ دنیا کی طرف نزول فرماتا ہے اور قریب ہوتا ہے عرفہ کی شام کو اور اس کے مثل ، کیونکہ وہ تو حرکت و انتقال سے منزہ ہے۔ یہاں غلطی غائب کو شاہد پر قیاس کرنے سے ہوتی ہے۔ آدمی یہ اعتقاد کرتا ہے کہ روح بھی معہود اجسام کی جنس سے ہے کہ جب ایک مقام میں ہو تو دوسرے مقام میں ہونا ممکن نہیں، یہ محض غلط ہے۔ اس سے ثابت ہوا کہ اس میں کوئی منافات نہیں کہ روح علیین اور جنت اور آسمان میں ہو اور بدن سے بھی اس کا ایسا اتصال ہو کہ ادراک، سماعت، نماز، قرات سارے کام کرتی ہے۔

۱ زہر الربی علی ھامش سنن النسائی ارواح المومنین نور محمد کارخانہ تجارت کتب کراچی ۱/

Fatawa Razawiyya, Volume 9

(Right Column) This matter seems strange only because we do not find anything similar in worldly perceptions. However, the affairs of the Barzakh and the Hereafter hold a distinct character from the familiar ways of the world. (Condensed - T) Sheikh Mufarrah (may Allah's mercy be upon him) was one of the spiritual masters of Egypt, possessing a grand rank and great stature. One of his disciples saw him at Arafat on the day of 'Arafah, while another disciple saw him at his home on the same day and remained with him all day. When both disciples met and shared what they had seen, a dispute arose between them. One said: "His Eminence was at Arafat on the day of 'Arafah," and swore an oath of divorce upon its truth. The other said: "He was at home all day that day," and he also swore an oath of divorce. Then, quarreling, they came to Sheikh Mufarrah. The Sheikh said: "Both are speaking the truth; no one's wife is divorced." One of the notables narrates: I asked Sheikh Mufarrah, "The truth of one necessitates the breaking of the other's oath; so how was no one's oath broken?" In the assembly where I asked this question, a group of scholars was present. The Sheikh gestured to everyone to speak on this matter. Each person said something, but no one gave a satisfying and sufficient answer. Meanwhile, the answer was revealed to me, and the Sheikh gestured towards me to provide the answer. I submitted that when a Wali's (saint's) sainthood reaches such a degree that...

(Left Column) Hazrat Jami (may his secret be sanctified), in the noble 'Nafahat al-Uns', states: Sheikh Mufarrah (may Allah have mercy on him) was from the people of Upper Egypt, very exalted in rank and great in stature. One of his companions saw him at Arafat on the day of 'Arafah, and another saw him on that same day in his own house and was with him all day. When those two people met and told each other what they had seen, a dispute arose between them. One said he was at Arafat on the day of 'Arafah and took an oath of divorce upon its truth. The other said he was in his home all day and he too took an oath of divorce. Then, quarreling, they came before Mufarrah. The Sheikh said both of you have spoken the truth, no divorce has occurred for either of you. One of the notables says: I asked Sheikh Mufarrah that the truth of one implies the perjury of the other; since neither's oath was broken... and in that assembly where I asked this, a group of scholars were present. The Sheikh gestured to all of them to speak on this issue. Everyone said something, but no one gave a satisfying and sufficient answer. Meanwhile, the answer became clear to me, and the Sheikh gestured to me to give the answer. I said, when a saint is established

in sainthood, in the sense that his spirituality can manifest in a form, he is capable of showing himself at one time in various directions in identical forms as he chooses. So, the one who saw him in some of those forms at Arafat...

फ़तावा रज़विया, खंड 9

(दायां कॉलम) यह बात केवल इसलिए अजीब लगती है क्योंकि हम सांसारिक अनुभवों में ऐसी कोई चीज़ नहीं पाते जो इससे मिलती-जुलती हो। हालाँकि, बरज़ख और आख़िरत के मामले दुनिया के जाने-पहचाने तरीकों से बिल्कुल अलग शान रखते हैं। (संक्षेप में - त) शेख़ मुफ़रह (अल्लाह उन पर रहमत करे) मिस्र के आध्यात्मिक महापुरुषों में से थे, जिनका पद और गरिमा बहुत ऊँची थी। उनके एक मुरीद ने अरफ़ा के दिन उन्हें अराफ़ात में देखा, जबकि दूसरे मुरीद ने उसी दिन उन्हें उनके घर में देखा और सारा दिन उनके साथ बिताया। जब दोनों मुरीद मिले और उन्होंने एक-दूसरे को अपने देखे हुए के बारे में बताया, तो उनके बीच विवाद पैदा हो गया। एक ने कहा: "हज़रत अरफ़ा के दिन अराफ़ात में थे," और इसकी सच्चाई पर तलाक की शपथ ली। दूसरे ने कहा: "उस दिन वे पूरे दिन अपने घर पर थे," और उसने भी तलाक की शपथ ली। फिर वे झगड़ते हुए शेख़ मुफ़रह के पास आए। शेख़ ने कहा: "तुम दोनों सच कह रहे हो; किसी की पत्नी को तलाक नहीं हुआ।" बुजुर्गों में से एक ने बयान किया: मैंने शेख़ मुफ़रह से पूछा, "एक की सच्चाई दूसरे की शपथ भंग होने का कारण बनती है; तो फिर किसी की शपथ कैसे नहीं टूटी?" जिस सभा में मैंने यह प्रश्न पूछा, वहाँ विद्वानों का एक समूह उपस्थित था। शेख़ ने सभी को इस मामले पर बोलने का संकेत दिया। हर किसी ने कुछ न कुछ कहा, लेकिन किसी ने भी संतोषजनक और पर्याप्त उत्तर नहीं दिया। इसी बीच, उत्तर मुझ पर प्रकट हो गया और शेख़ ने मेरी ओर इशारा किया कि तुम इसका उत्तर दो। मैंने निवेदन किया कि जब किसी वली (संत) की विलायत उस स्तर तक पहुँच जाती है कि...

(बायां कॉलम) हज़रत जामी (क़ुद्दिसा सिररुहु) 'नफ़हातुल उन्स' शरीफ़ में फ़रमाते हैं: शेख़ मुफ़रह (रहमतुल्लाह अलैहि) मिस्र के सईद क्षेत्र के निवासियों में से थे, वे बहुत उच्च पद और बड़ी शान वाले थे। उनके साथियों में से एक ने उन्हें अरफ़ा के दिन अराफ़ात में देखा और दूसरे ने उसी दिन उन्हें अपने घर में देखा और सारा दिन उनके साथ रहा। जब वे दो व्यक्ति मिले और उन्होंने एक-दूसरे को बताया कि उन्होंने क्या देखा है, तो उनके बीच विवाद हो गया। एक ने कहा कि वह अरफ़ा के दिन अराफ़ात में थे और इसकी सच्चाई पर तलाक की शपथ ली। दूसरे ने कहा कि वह सारा दिन अपने घर में थे और उसने भी तलाक की शपथ ली। फिर वे झगड़ते हुए मुफ़रह के पास आए। शेख़ ने कहा कि तुम दोनों ने जो कहा है वह सच है, और तुम दोनों में से किसी का तलाक नहीं हुआ है। बड़ों में से एक कहता है: मैंने शेख़ मुफ़रह से पूछा कि एक की सच्चाई दूसरे की शपथ के उल्लंघन का कारण बनती है; चूंकि किसी की शपथ नहीं टूटी... और उस सभा में जहाँ मैंने यह पूछा, विद्वानों का एक

समूह उपस्थित था। शेख़ ने उन सभी को इस मुद्दे पर बोलने का इशारा किया। हर किसी ने कुछ कहा, लेकिन किसी ने भी संतोषजनक और पर्याप्त जवाब नहीं दिया। इसी दौरान जवाब मुझ पर ज़ाहिर हो गया और शेख़ ने मुझे जवाब देने का इशारा किया। मैंने कहा कि जब वली विलायत में प्रतिष्ठित हो जाता है, इस अर्थ में कि उसकी रूहानियत एक रूप में मूर्त हो सकती है, तो वह एक ही समय में विभिन्न दिशाओं में अपनी इच्छानुसार एक जैसे रूपों में खुद को दिखाने में सक्षम होता है। तो, जिस व्यक्ति ने उन्हें उन रूपों में से कुछ में अराफ़ात में देखा...

(دایاں کالم) یہ بات صرف اس لیے عجیب معلوم ہوتی ہے کہ دنیاوی محسوسات میں ایسی کوئی چیز نہیں پاتے جو اس سے ملتی جلتی ہو۔ مگر برزخ اور آخرت کے معاملات تو دنیا کے طرزِ مالوف سے جدا گانہ شان رکھتے ہیں اھ مختصراً (ت) شیخ مفرح رحمہ اللہ تعالیٰ علیہ مصر کے اہل دل حضرات سے ہیں، بزرگ رتبہ اور بڑی شان رکھتے تھے، ان کے ایک مرید نے عرفہ کے دن انھیں عرفات میں دیکھا اور دوسرے مرید نے اسی دن انھیں اپنے گھر میں دیکھا اور دن بھر ان کے ساتھ رہا، جب دونوں مریدوں کی ملاقات ہوئی اور ایک نے جو دیکھا تھا آپس میں بیان کیا تو ان کے درمیان اختلاف ہوا۔ ایک نے کہا: حضرت عرفہ کے دن عرفات میں تھے، اور اس کی صداقت پر طلاق کی قسم کھائی۔ دوسرے نے کہا: اس روز دن بھر اپنے گھر میں تھے، اس نے بھی طلاق کی قسم کھائی، پھر جھگڑتے ہوئے شیخ مفرح کے پاس آئے۔ شیخ نے کہا: دونوں سچ کہتے ہیں، کسی کی بیوی کو طلاق نہیں ہوئی، اکابر میں سے ایک کا بیان ہے کہ میں نے شیخ مفرح سے پوچھا: ہر ایک کی صداقت دوسرے کی قسم ٹوٹنے کی مقتضی ہے پھر کسی کی قسم کیسے نہیں ٹوٹی؟ جس مجلس میں میں نے سوال کیا علماء کی ایک جماعت موجود تھی، شیخ نے سب کو اشارہ کیا کہ اس مسئلہ میں کلام کریں، ہر شخص نے کچھ نہ کچھ بیان کیا مگر کسی نے شافی وکافی جواب نہ دیا۔ اسی اثناء میں جواب مجھ پر منکشف ہو گیا اور شیخ نے میری طرف اشارہ فرمایا کہ تم اس کا جواب دو میں نے عرض کیا کہ جب ولی کی ولایت اس حد تک پہنچ جاتی ہے کہ اس

(بایاں کالم) حضرت جامی قدس سرہ السامی نفحات الانس شریف میں فرماتے ہیں: شیخ مفرح رحمہ اللہ تعالیٰ از اہل صعید مصرست بسیار جلیل القدر و کبیر الشان بود، ویکی از اصحاب او وے را

روز عرفہ در عرفات دید و یکی دیگر در ہمان روز در خانه خویش دید و تمام روز باوی بود چون آں دو شخص بہم رسیدند و ہر یک آنچه دیده بود باہم گفتند میان ایشاں نزاع شد یکی گفت وے روز عرفہ در عرفات بود، بر صدق آں سوگند بطلاق خورد، یکے گفت تمام آں روز در خانه خود بود، وے نیز سوگند بطلاق خورد، پس خصومت کنان پیش مفرح آمدند، شیخ گفت ہر دور است گفته اید بدن ہیچکدام طلاق نشده است، یکی از اکابر میگوید کہ من از شیخ مفرح پرسیدم کہ صدق ہر یک موجب حنث دیگر ست، چون سوگند پیچکش حانث نہ شده باشد، و دراں مجلس کہ من ایں پرسیدم جماعتی از علماء حاضر بودند، شیخ اشارت بہمہ کرد کہ دریں مسئلہ سخن گویند ہر کس چیزے گفت اما ہیچکس جواب شافی و کافی نہ گفت، دراں اثنا جواب آں بر من ظاہر شد کہ شیخ اشارت بمن کرد کہ جواب آں بگو، من گفتم چون ولی بولایت متحقق گردد دراں معنی کہ روحانیت وے مصور بصورتی تواند شد، متمکن بود کہ در وقت واحد در جہات مختلفہ خود را بصور بصور تہائے متحده بنماید چنانکہ خواہد، پس آنکس کہ وے رادر بعضی ازاں صور بعرفات دیده

Fatawa-e-Razvia, Volume 9

...if spirituality can manifest in any form, it is possible for one to show themselves in multiple forms in different directions at the same time. So, the person who saw the Hazrat in one of those forms at Arafat saw correctly, and at the same time, another person who saw him in another form present in their home also saw correctly, and no one's oath would be broken. Sheikh Mufrah said: The correct answer is the one you gave—may Allah be pleased with them and benefit us through them (T).

Hazrat Mir Sayyid Abdul Wahid (may his secret be sanctified) says in 'Sab'a Sanabil Sharif': During the month of Rabi-ul-Awwal, on the occasion of the blessed Urs of the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him), invitations came to Makhdoom Sheikh Abul Fatah Jaunpuri (may Allah sanctify his soul) from ten different places to attend after the Zuhr prayer. He accepted all ten invitations. Those present asked: "Your Eminence has accepted ten invitations and needs to be present at every place after Zuhr prayer; how will this be possible?" He replied: "Krishna, who was an unbeliever, used to be present in hundreds of places; if Abul Fatah is present in ten places, what is so strange about it?" After the Zuhr prayer, palanquins arrived from all ten places. Each time, the Makhdoom would come out of his room, board a palanquin, and depart, and he would also remain present in the room. O wise one! Do not consider this as mere similitudes, meaning do not think that it was only representations of the Sheikh that were present in so many places. No, by Allah! Rather, the very essence of the Sheikh was present in every place. This happened within one city and one location. And the essence of this monotheist (muwahid) is itself in the farthest ends of the world...

1. Nafahat al-Uns, Sheikh Mufrah (mercy of Allah be upon him), Intisharat Kitab Faroshi Matba Tawhidi, p. 82-581.

फ़तावा-ए-रिज़विया, जिल्द नवीं

...यदि आध्यात्मिकता किसी भी रूप में प्रकट हो सकती है, तो यह संभव है कि एक ही समय में अलग-अलग दिशाओं में खुद को कई रूपों में दिखाया जाए। तो जिस व्यक्ति ने हज़रत को अराफ़ात में उन रूपों में से एक में देखा, उसने सही देखा, और उसी समय दूसरे व्यक्ति ने जिसने उन्हें अपने घर के भीतर किसी अन्य रूप में मौजूद देखा, उसने भी सच देखा, और किसी की कसम नहीं टूटेगी। शेख मुफ़रह ने फ़रमाया: सही जवाब वही है जो तुमने दिया—अल्लाह उन से राजी हो और हमें उन से लाभ पहुँचाए (त)।

हज़रत मीर सय्यद अब्दुल वाहिद (अल्लाह उनकी पवित्रता को बनाए रखे) 'सब-ए-सनाबिल शरीफ़' में फ़रमाते हैं: रबी-उल-अव्वल के महीने में, अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) के पवित्र उर्स के अवसर पर, मख़दूम शेख अबुल फ़तह जौनपुरी (अल्लाह उनकी रूह को पाक करे) को दस अलग-अलग जगहों से ज़ोहर की नमाज़ के बाद आने का निमंत्रण मिला। उन्होंने दसों निमंत्रण स्वीकार कर लिए। उपस्थित लोगों ने पूछा: "हुज़ूर ने दसों निमंत्रण स्वीकार किए हैं और हर जगह ज़ोहर की नमाज़ के बाद पहुँचना है; यह कैसे संभव होगा?" उन्होंने फ़रमाया: "कृष्ण, जो एक काफ़िर था, सैकड़ों जगहों पर मौजूद रहता था; अगर अबुल फ़तह दस जगहों पर मौजूद हो तो इसमें क्या अचरज है?" ज़ोहर की नमाज़ के बाद दसों जगहों से पालकी पहुँची। मख़दूम हर बार कमरे से बाहर आते, पालकी पर सवार होते और चले जाते, और वह कमरे में भी मौजूद रहते। ऐ बुद्धिमान! इसे केवल उपमा (तमसील) न समझें, यानी यह न समझें कि शेख के केवल चित्र या प्रतिरूप ही इतनी जगहों पर मौजूद थे। नहीं, अल्लाह की कसम! बल्कि शेख का मूल अस्तित्व (ज़ात) ही हर जगह मौजूद था। यह तो एक ही शहर और एक ही स्थान में हुआ। और इस एकेश्वरवादी (मुवह्हिद) का अस्तित्व स्वयं संसार के अंतिम छोरों तक है...

1. नफ़हात अल-उन्स, शेख मुफ़रह (अल्लाह की उन पर रहमत हो), इंतिशारात किताब फ़रोशी मतबा तौहीदी, पृ. 82-581।

पृष्ठ 630 / 948

فتاوٰی رضویہ، جلد نہم

...کی روحانیت کسی صورت سے مصوّر ہو سکے تو ممکن ہوتا ہے کہ ایک ہی وقت کے اندر مختلف جہتوں میں اپنے کو متعدد صورتوں میں جیسے چاہے دکھائے۔ تو جس شخص نے حضرت کو ان صورتوں میں سے کسی ایک صورت میں عرفات میں دیکھا صحیح دیکھا، اور اسی وقت دوسرے نے کسی اور صورت میں اپنے گھر کے اندر تشریف فرما دیکھا اس نے بھی سچ دیکھا، اور کسی کی قسم نہ ٹوٹے گی، شیخ مفرح نے فرمایا: صحیح جواب یہ ہے کہ جو تم نے دیا اللہ ان سے راضی ہو اور ہمیں ان سے نفع دے(ت)

حضرت میر سید عبدالواحد قدس سرہ، الماجد سبع سنابل شریف میں فرماتے ہیں: مخدوم شیخ ابوالفتح جونپوری را قدس اللہ تعالٰی روحہ، در ماہ ربیع ماہ ربیع الاول میں رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم کے الاول بجہت عرس رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم از دہ عرس پاک کی وجہ سے مخدوم شیخ ابوالفتح جونپوری قدس سرہ، جا استدعا آمدہ کہ بعد از نماز پیشین حاضر شوند ہر دہ استدعا کی دس جگہ سے دعوت آئی کہ بعد نماز ظہر تشریف لائیں۔ را قبول کردند۔ حاضران پرسیدند اے مخدوم ہر دہ حضرت نے دسوں دعوتیں قبول کیں۔ حاضرین نے پوچھا: استدعا را قبول فرمود و ہر جا بعد از نماز پیشین حاضر باید شد حضور نے دسوں دعوتیں قبول فرمائی ہیں اور ہر جگہ نماز ظہر چگونہ میسر خواھد آمد۔ فرمود کشن کہ کافر بود چند صد کے بعد پہنچنا ہے یہ کیسے میسر ہوگا؟ فرمایا: کشن جو کافر تھا جاحاضر می شد، اگر ابوالفتح دہ جا حاضر شود چہ عجب بعد از نماز سینکڑوں جگہ حاضر ہوتا تھا اگر ابوالفتح دس جگہ حاضر ہو تو کیا پیشین از ہر دہ جا چوڈول رسید مخدوم ہر بارے از حجرہ بیرون می عجب ہے؟ نماز ظہر کے بعد دسوں جگہ سے پالکی پہنچی، مخدوم آمد بر چوڈول سوار میشد و می رفت و نیز و در حجرہ حاضر می ہر بار

حجرہ سے آتے، سوار ہو جاتے، تشریف لے جاتے اور ماند۔ خردمند ا تو ایں رابر تمثیل حمل مکن یعنی پندار کہ حجرہ میں بھی موجود رہتے اے عقل مند! اسے تمثیل پر تمثیلہا ئے شیخ بچندیں جا ہا حاضر شدہ است۔ لا واللہ بلکہ عین محمول نہ کرنا، یعنی یہ نہ سمجھنا کہ شیخ کی مثالیں اتنی جگہوں ذات شیخ بہر جا حاضر شدہ بود، این خود در یک شہر و یک مقام میں حاضر ہوئیں۔ یہ تو ایک شہر اور ایک مقام میں واقع ہوا واقع شد۔ وذات ایں موحد خود در اقصائے عالم خود اس موحد کی ذات عالم

1 نفحات الانس شیخ مفرح رحمۃ اللہ علیہ انتشارات کتاب فروشی مطیع توحیدی ص ۸۲-۵۸۱

Fatawa Razawiyya Volume Nine

...is present, whether it be heavenly matters or earthly ones. [1] - ...is present in their heads, whether they be celestial or terrestrial. (T)

One whose heart cannot encompass the vastness of these realities and who tries to judge the matters of Barzakh (limbo) and the Hereafter based on worldly observations, for him it is necessary to accept that according to the Hanafis as well, the deceased receives a reward similar to that of the reciter. The reciter's reward does not leave him. The difference between the schools of thought will only be that according to the Hanafis, that reward is the effect of the reciter's gift (isāl-e-sawāb), and according to the Shafi'is, it is the answer to the reciter's prayer. In any case, that improbability, based on which the division of reward was considered necessary, has become void. Even if there are millions [of deceased], millions will receive the same amount of reward, and the reciter's reward will not decrease; rather, it will increase after death. It is in the Hadith that the Messenger of Allah, peace and blessings of Allah be upon him, said:

"Whoever recites Surah al-Ikhlas eleven times and then gifts its reward to the deceased Muslims, he shall be granted a reward equal to the number of the deceased." [2] (Narrated by al-Tabarani and al-Daraqutni. T) - Narrated by al-Tabarani and al-Daraqutni.

The rest of the research on the original issue and the verification that everyone receives the full reward is in our Fatwa. And Allah Almighty knows best.

Problem 241: From Bandar Karachi, Muhalla Juma Dar Gul Muhammad Makrani, sent by Maulvi Abdul Rahim Makrani, 27 Shaban 1311 AH.

What do the noble scholars and esteemed Muftis, may their Lord have mercy on them, say about this issue: If a group of children recites the Quran or performs other good deeds and gifts the reward to the deceased, does it reach them according to Sharia or not? Explain the answer with the authority of the Book, and you will be rewarded by Allah with a good outcome for the sake of Allah Almighty. The answer to this problem, written in healing words and sufficient evidence from the books of Hanafi jurisprudence and noble Hadith with references to books of jurisprudence, and recorded with the seals of the prominent scholars there, should be sent so that they will be rewarded by Allah and thanked by the people, because in this chapter...

Noble scholars and esteemed Muftis, may God's mercy be upon you, what is the instruction in this matter: if a group of children recites the Quran or performs other good deeds and gifts its reward to the dead, does it reach them according to Sharia or not? Give a clear answer with a citation from the book and receive the reward of a good end from God. Sir! Purely for the sake of Allah, write the answer to this question with healing text and evidence from the books of Hanafi jurisprudence and noble Hadith along with references to books of jurisprudence, and...

[1] Sab'a Sanabil, Sanabilah Shashum dar Haqaiq-e-Wahdat etc. Maktaba Jamia Nizamia Razawiyya Lahore, p. 70. [2] Kanz al-Ummal with reference to Rafi'i from Ali, may Allah be pleased with him, Hadith 42596, Muassasat al-Risala Beirut 15/255; Fath al-Qadir from Ali, may Allah be pleased with him, Bab al-Hajj 'an al-Ghayr, Maktaba Nuriya Razawiyya Sukkur 3/65; Radd al-Muhtar Bab al-Hajj 'an al-Ghayr, Mustafa al-Babi Egypt 2/457.

फ़तावा रज़विया जिल्द नहुम (खंड 9)

...मौजूद है, चाहे वह आकाशीय मामले हों या सांसारिक। [1] - ...उनके सिरों में मौजूद है, चाहे वे स्वर्गीय हों या सांसारिक। (टी)

जिसका हृदय इन वास्तविकताओं की विशालता को नहीं समा सकता और जो बरज़ख (परलोक की एक अवस्था) और आख़िरत के मामलों को दुनिया के अपने अनुभवों पर ही मापता है, उसके लिए यह मानना ज़रूरी होगा कि हनफ़ियों के नज़दीक भी मृतक को क़ारी (पढ़ने वाले) के समान ही सवाब (पुण्य) पहुँचता है, क्योंकि क़ारी का सवाब उसके पास से चला नहीं जाता। संप्रदायों का अंतर केवल इतना रहेगा कि हनफ़ियों के नज़दीक वह सवाब क़ारी द्वारा उपहार (बख़्शने) का प्रभाव है और शाफ़ईयों के नज़दीक क़ारी की दुआ की स्वीकृति है। बहरहाल, वह असंभवता जिसके आधार पर सवाब का विभाजन आवश्यक समझा गया था, वह बातिल (अमान्य) हो गई। अगर लाखों भी हों, तो लाखों को उतना ही सवाब पहुँचेगा और क़ारी के सवाब में कमी नहीं होगी, बल्कि मृत्यु के बाद उसमें वृद्धि होगी। हदीस में है कि अल्लाह के रसूल, सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने फ़रमाया:

"जो सूरह इख़लास ग्यारह बार पढ़कर मुस्लिमों के मृतकों को उसका सवाब बख़्शे, उसे मृतकों की संख्या के बराबर सवाब मिलेगा।" [2] (इसे तबरानी और दारक़ुतनी ने रिवायत किया। टी) - रिवायत किया तबरानी और दारक़ुतनी ने।

बाकी मूल मसले की तहक़ीक़ और हर एक को पूरा सवाब पहुँचने की तस्दीक़ हमारे फ़तवे में है। और अल्लाह तआला ही बेहतर जानता है।

मसला 241: बंदर कराची, मुहल्ला जुम्मा दार गुल मोहम्मद मकरानी से, प्रेषक मौलवी अब्दुल रहीम मकरानी, 27 शाबान 1311 हिजरी।

विद्वान और सम्मानित मुफ़्ती (ईश्वर उन पर दया करे) इस मसले में क्या फ़रमाते हैं: यदि बच्चों का एक समूह कुरान पढ़े या अन्य नेक काम करे और उसका सवाब मृतकों को बख़्शे, तो क्या शरीयत के अनुसार वह उन्हें पहुँचता है या नहीं? किताब के प्रमाण के साथ उत्तर स्पष्ट करें और अल्लाह तआला के वास्ते अल्लाह के यहाँ अच्छा प्रतिफल प्राप्त करें। इस मसले का उत्तर हनफ़ी फ़िक़्ह की किताबों और हदीस शरीफ़ के प्रमाणों के साथ फ़िक़्ह की किताबों के संदर्भों के साथ लिखकर और

वहाँ के नामी विद्वानों की मुहरों के साथ प्रमाणित करके भेजें ताकि वे अल्लाह के यहाँ पुरस्कृत और लोगों के आभारी हों, क्योंकि इस अध्याय में...

विद्वान और सम्मानित मुफ़्ती साहिबान, आप पर ईश्वर की कृपा हो, इस मसले में क्या आदेश है कि अगर बच्चों की जमात कुरान पढ़कर या दूसरे नेक काम करके उसका सवाब मुर्दों को बख़्शे, तो शरीयत के अनुसार पहुँचता है या नहीं? किताब की सनद (प्रमाण) से स्पष्ट उत्तर दें और खुदा के यहाँ अच्छे अंजाम (परिणाम) का सवाब लें। हुज़ूर! खालिसन लिल्लाह (विशुद्ध रूप से अल्लाह के लिए) इस सवाल का जवाब शाफ़ी (स्पष्ट और संतोषजनक) इबारत और कुतुब-ए-फ़िक़्ह हनफ़ी और हदीस शरीफ़ के दलाइल (तर्कों) से फ़िक़्ह की किताबों के हवालों के साथ तहरीर फ़रमाकर और...

[1] सबअ सनाबिल, सनबिला शशुम दर हक़ाइक़-ए-वहदत आदि, मकतबा जामिया निज़ामिया रज़विया लाहौर, पृ. 70। [2] कंजुल उम्माल, राफ़ई के हवाले से अली (रज़ियल्लाहु अन्हु) से रिवायत, हदीस 42596, मुअस्ससतुर रिसाला बेरूत 15/255; फ़तहुल क़दीर अली (रज़ियल्लाहु अन्हु) से, बाबुल हज्ज अनिल ग़ैर, मकतबा नूरिया रज़विया सुक्कुर 3/65; रद्दुल मुहतार बाबुल हज्ज अनिल ग़ैर, मुस्तफ़ा अल-बाबी मिस्र 2/457।

فتاوٰی رضویہ جلد نہم

حاضر است خواہ علویات خواہ سفلیات 1- کے سروں میں موجود ہے خواہ علویات ہوں خواہ سفلیات۔ (ت) جس کا دل ان حقائق کی وسعت نہ رکھے اور امورِ برزخ و آخرت کو اپنے مشہوداتِ دنیا ہی پر قیاس کرے اس پر یہ ماننا لازم ہوگا کہ حنفیہ کے نزدیک بھی میت کو مثلِ قاری ثواب پہنچتا ہے کہ قاری کا ثواب تو اس کے پاس سے نہیں جاتا اور فرقِ مذہب ہین اتنا رہے گا کہ حنفیہ کے نزدیک وہ ثواب اثرِ ہبہ قاری ہے اور شافعیہ کے نزدیک اجابتِ دعائے قاری بہر حال وہ استبعاد جس کی بنا پر تقسیم ثواب لازم سمجھے تھے باطل ہوگیا۔ لاکھوں ہوں تو لاکھوں کو اتنا ہی ثواب پہنچے گا اور قاری کا ثواب کم نہ ہوگا، بلکہ بعدِ اموات ترقی کرے گا۔ حدیث میں ہے رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم فرماتے ہیں:

من قرأ الاخلاص احدی عشر مرۃ ثم وھب اجرھا للاموات اعطی من الاجر بعدد الاموات 2- جو سورہ اخلاص گیارہ بار پڑھ کر اموات مسلمین کو اس کا ثواب بخشے بعدد اموات اجر پائے۔ (اسے طبرانی اور دار قطنی نے روایت کیا۔ ت) -رواہ الطبرانی والدارقطنی۔ باقی اصل مسئلہ کی تحقیق اور ہر ایک کو پورا ثواب پہنچنے کی توثیق ہمارے فتوٰی میں ہے۔ واللہ تعالٰی اعلم مسئلہ ۲۴۱: از بندر کراچی محلہ جمعہ دار گل محمد مکرانی مرسلہ مولوی عبدالرحیم مکرانی ۷ شعبان ۱۳۱۱ھ چہ می فرمایند علمائے کرام و مفتیانِ عظام رحمہم ربکم اندرین مسئلہ کہ اگر گروہِ صبیان قرآن خواندہ یا دیگر اعمال حسنہ کردہ و ثواب بموتٰی بخشند، شرعاً می رسد یا نہ؟ بینوا بالجواب بسند الکتاب و توجروا عند اللہ بحسن المآب حسبۃ للہ تعالٰی، جواب این مسئلہ بعبارت شافی و دلائل کافی از کتب فقہ حنفیہ و حدیث شریفہ مع حوالہ کتب فقہ نوشتہ و بمواہیر علمائے اعلام آنجائے ثبت نمودہ بفرستند کہ عند اللہ ماجور و عند الناس مشکور خواھند شد، چرا کہ در باب این

علمائے کرام و مفتیانِ عظام، آپ پر خدا کی رحمت ہو، اس مسئلہ میں کیا ارشاد ہے کہ اگر بچوں کی جماعت قرآن پڑھ کر یا دوسرے نیک اعمال کر کے اس کا ثواب مردوں کو بخشے تو شرعاً پہنچتا ہے یا نہیں؟ کتاب کی سند سے واضح جواب دیں اور خدا کے یہاں حسنِ انجام کا ثواب لیں۔ حضور! خالصاً للہ اس سوال کا جواب شافی عبارت اور کتب فقہ حنفی و حدیث شریف کے دلائل سے کتب فقہ کے حوالوں کے ساتھ تحریر فرما کر اور

1 سبع سنابل سنبلہ ششم در حقائق وحدت الخ مکتبہ جامعہ نظامیہ رضویہ لاہور ص ۷۰ 2 کنز العمال بحوالہ رافعی عن علی رضی اللہ تعالیٰ عنہ حدیث ۴۲۵۹۶ موسسۃ الرسالہ بیروت ۱۵/ ۲۵۵ ، فتح القدیر عن علی رضی اللہ عنہ باب الحج عن الغیر مکتبہ نوریہ رضویہ سکھر ۶۵/۳ ، ردالمحتار باب الحج عن الغیر مصطفی البابی مصر ۲/ ۴۵۷

Fatawa Razawiyya Volume 9

Problem: A discussion and disagreement occurred among the scholars of the port of Karachi. Finally, both sides decided that whatever [ruling] the noble scholars of Bareilly provide, both sides must accept it. Please send it with the seals of the prominent scholars there; you will receive a reward from God, and people will be grateful for this. In this matter, a discussion and disagreement arose among the scholars of Karachi port. Finally, both sides decided that whatever answer the noble scholars of Bareilly give, both sides will accept it. (T)

The Answer: O Allah! All praise is for You. Send blessings upon Hazrat Muhammad Mustafa (Peace be upon him) and his noble family. Every act of devotion that a child is capable of (not like manumission, charity, or gifting of property which cannot be performed by him at all), when performed by a discerning child, then according to the majority view and the correct and supported school of thought, its reward belongs to the child. Allama Astroshani says in 'Jami' al-Saghar': The good deeds of a child before the pen [of accountability] is applied to him are for the child himself, not for his parents, because of the saying of Allah the Exalted: "And man only gets what he strives for." This is the saying of the generality of our masters. (T) Allama Zayn al-Abidin ibn Nujaym al-Misri says in 'Ahkam al-Sibyan' from the book 'al-Ashbah': A child's acts of worship are valid even if they are not obligatory upon him. There is disagreement regarding their reward. The reliable view is that the reward belongs to the child, and the teacher receives the reward for teaching. Such is the case with all his good deeds. (T) Furthermore, our scholars have clear clarifications in the books of principles and branches [of jurisprudence] that...

1. Jami' Ahkam al-Sighar, on the margin of Jami' al-Fusulayn, Chapters on Dislikes, Azhariya Press, Egypt 1/128.
2. Al-Ashbah wa al-Naza'ir, Ahkam al-Sibyan, HM Saeed Company Karachi 2/124.

फ़तावा रज़विया जिल्द 9

मसला: कराची बंदरगाह के विद्वानों के बीच चर्चा और मतभेद उत्पन्न हुआ है। अंततः दोनों पक्षों ने यह तय किया कि बरेली के विद्वान जो भी निर्णय देंगे, दोनों पक्ष उसे स्वीकार करेंगे। वहां के प्रमुख विद्वानों की मुहरें लगवाकर इसे भेजें, आपको ईश्वर के यहाँ प्रतिफल मिलेगा और लोग आभारी होंगे। कराची बंदरगाह के विद्वानों के बीच इस मसले पर चर्चा और मतभेद हुआ। अंततः दोनों पक्षों ने यह तय किया कि बरेली के विद्वान जो उत्तर देंगे, दोनों पक्ष उसे स्वीकार करेंगे। (त)

उत्तर: ऐ अल्लाह! तेरे ही लिए सब प्रशंसा है। हज़रत मुहम्मद मुस्तफ़ा और उनके महान वंशज पर दरूद (आशीर्वाद) भेज। प्रत्येक वह उपासना जिसके लिए बच्चा योग्य है (जैसे दास मुक्त करना, दान देना, संपत्ति उपहार में देना आदि इसमें शामिल नहीं हैं, क्योंकि ये बच्चे से संभव नहीं हैं), जब एक समझदार बच्चे द्वारा वह अदा की जाएगी, तो बहुमत की राय और सही व समर्थित संप्रदाय के अनुसार उसका पुण्य भी बच्चे को ही मिलेगा। अल्लामा अस्त्रोशनी 'जामे अल-सग़ार' में फ़रमाते हैं: बच्चे की नेकियाँ उस पर कलम (जवाबदेही) जारी होने से पहले बच्चे के लिए ही हैं, उसके माता-पिता के लिए नहीं, क्योंकि अल्लाह का फ़रमान है: "और इंसान के लिए वही है जिसकी उसने कोशिश की।" यह हमारे सामान्य विद्वानों का कथन है। (त) अल्लामा ज़ैनुल आबिदीन इब्न नुजैम मिस्री किताब 'अल-अश्बाह' के'अहकामुल सिबयान' में फ़रमाते हैं: बच्चे की इबादतें (उपासना) सही हैं, भले ही उस पर अनिवार्य न हों, उनके पुण्य के बारे में मतभेद है। विश्वसनीय मत यह है कि पुण्य बच्चे को ही मिलेगा, और शिक्षक को सिखाने का पुण्य मिलेगा। इसी तरह उसकी सभी नेकियों का हाल है। (त) फिर हमारे विद्वानों ने सिद्धांतों और उप-नियमों की पुस्तकों में स्पष्ट स्पष्टीकरण दिए हैं कि...

1. जामे अहकामुल सग़ार, हाशिया जामे अल-फुसुलैन पर, मसायल अल-कराहीयत, मतबा अज़हरिया मिस्र 1/128
2. अल-अश्बाह वल नज़ायर, अहकामुल सिबयान, एच.एम. सईद कंपनी कराची 2/124

पृष्ठ 632 / 948

فتاوٰی رضویہ جلد نہم

مسئلہ در میان علمائے بندر کراچی مباحثہ و اختلاف افتادہ است وہاں کے علمائے اعلام کی مہریں ثبت فرما کر ارسال فرمائیں، خدا آخر الامر طرفین بریں قرار دادہ اند کہ ہر جوایکہ علمائے کرام کے یہاں اجر پائیں گے اور لوگ شکر گزار ہوں گے اس مسئلہ بریلی دھند، بباید کہ جانبین تسلیم نمایند۔ میں بندر کراچی کے علماء میں مباحثہ اور اختلاف واقع ہوا۔ آخر طرفین نے یہ طے کیا کہ بریلی کے علمائے کرام جو جواب دیں وہ جانبین تسلیم کریں۔ (ت)

الجواب: اللھم لك الحمد صل علی المصطفی وآلہ العمد ہر اے اللہ ! تیرے ہی لیے حمد ہے حضرت محمد مصطفیٰ اور ان کی آلِ قربتے کہ صبی اھل آنست (نہ ہمچو اعتاق و صدقہ وہبہ مال کہ معتمد پر درود نازل فرما۔ ہر وہ قربت کہ بچہ جس کا اہل ہے (غلام اصلاً از وصورت نہ بندد) چو از صبی عاقل ادا شود، بر قول جمہور آزاد کرنا، صدقہ کرنا، مال کا ہبہ کرنا اور اس طرح کی قربتیں نہیں، ومذہب صحیح و منصور ثوابش ہم ازان ۱ و باشد علامہ استروشنی کہ یہ بچے سے واقع ہو نہیں سکتیں) جب عاقل بچہ سے وہ ادا ہوگی در جامع صغار فرماید حسنات الصبی قبل ان یجری تو قولِ جمہور اور مذہبِ صحیح و منصور یہ ہے کہ اس کا ثواب بھی بچے ہی کے لیے ہوگا، علامہ استروشنی جامع صغار میں فرماتے ہیں : بچے علیہ القلم للصبی لا لا بویہ لقولہ تعالیٰ کی نیکیاں جواس پر قلم جاری ہونے سے قبل ہوں وہ بچے ہی کے وَ أَنْ لَّيْسَ لِلْإِنْسَانِ إِلَّا مَا سَعٰى ھذا قول عامۃ مشائخنا لیے ہیں اس کے والدین کے لیے نہیں کیونکہ ارشادِ باری ہے : ۱۔ علامہ زین العابدین ابن نجیم مصری در احکام الصبیان از انسان کے لیے وہی ہے جو اس نے کوشش کی۔ یہ ہمارے عامہ کتاب الاشباہ فرماید: مشائخ کا قول ہے۔ (ت) علامہ زین العابدین ابن نجیم مصری کتاب تصح عباداتہ وان لم تجب علیہ واختلفوا فی الاشباہ کے احکام الصبیان میں فرماتے ہیں : بچے کی عبادتیں صحیح

ہیں اگرچہ اس پر واجب نہیں، ان کے ثواب کے بارے میں ثوابھا والمعتمد انه له وللمعلم ثواب التعلیم، اختلاف ہے۔ معتمد یہ ہے کہ ثواب بچے ہی کے لیے ہوگا، اور معلم وکذا جمیع حسناته ۲۔ کو سکھانے کا ثواب ملے گا۔ اسی طرح اس کی تمام نیکیوں کا حال ہے۔ باز علمائے ما اصولاً و فروعاً تصریحات جلیہ دارند کہ (ت) پھر کتب اصول وفروع میں ہمارے علماء کی روشن تصریحات

۱ جامع احکام الصغار علی هامش جامع الفصولین مسائل الکراہیتہ مطبع ازہریہ مصر ۱/ ۱۲۸ ۲ الاشباہ والنظائر احکام الصبیان ایچ ایم سعید کمپنی کراچی ۲/ ۱۲۴

Fatawa Ridawiyya, Volume 9

[Left Column] It is permissible for a person to dedicate the reward of their deeds to another, as stated in Al-Hidayah and its commentaries, Al-Multaqa, Ad-Durr, Khizanat al-Muftin, Al-Hindiyyah, and other books of the school. The scholars have left this statement general and absolute, without any hint of specification or restriction. Thus, just as by mentioning 'deeds' absolutely, including obligatory acts and those performed initially for oneself without intending it for another, they have argued for the inclusion of the Presence of the Prophet (peace and blessings be upon him and his family), similarly, the general term 'human' (insan) is sufficient evidence to include children as well, until a sound proof for their exclusion is established. But where is such proof, and what would it be? In Radd al-Muhtar, citing a discussion from Al-Bahr: 'Their absolute mention of deeds includes obligatory ones.' And in it, from the same Al-Bahr: 'The apparent meaning is that in my view there is no difference whether one intended it for another at the time of the action, or did it for oneself and then later dedicated its reward to another, due to the absolute nature of their speech.' In it, I say: 'The statement of our scholars that he may make the reward of his deed for another includes the Prophet (peace and blessings be upon him), for he is most worthy of that as he saved us from misguidance.'

[Right Column] It is established that a person can transfer the reward of their deeds to another. As is explicitly stated in Hidayah, Sharh-e-Hidayah, Multaqa, Durr-e-Mukhtar, Khizana-tul-Muftiyyin, Hindiyyah, and other books of the jurisprudence (T). The noble scholars have kept this discourse absolute and general. They did not give any hint or sign of specification or restriction. So, just as by mentioning deeds absolutely, the scholars have deduced that this ruling also includes obligatory acts (fara'id) and also those deeds which were initially done for oneself without the intention of another... and just as from the generality of 'other', it has been deduced that the Presence of the Radiant Prophet, the Master of Prophets (upon him and them be the best of blessings and praise) is also included; similarly, the word 'person' being mentioned absolutely is sufficient proof that children are also included in it until some sound proof for their exclusion is established. But where and who is such a proof? (T) In Radd al-Muhtar it is stated: In Al-Bahr it is under discussion that the scholars' absolute mention of deeds also includes the obligatory ones (end of quote). And in it, with reference to the same Al-Bahr: The apparent meaning is that in my view there is no difference whether at the time of the action the intention was for another, or the intention was for oneself and then its reward was given to another.

This is because there is generality in the words of the scholars, there is no such restriction (end of quote). In the same, it is stated: I said: the statement of our scholars is that 'he [makes] his deed's...'

---

1. Radd al-Muhtar, Chapter on Hajj on behalf of others, Dar Ihya al-Turath al-Arabi, Beirut, 2/236
2. Radd al-Muhtar, Topic: Recitation for the Deceased, etc., Dar Ihya al-Turath al-Arabi, Beirut, 1/605
3. Radd al-Muhtar, Topic: Gifting the Reward of Recitation, etc., Dar Ihya al-Turath al-Arabi, Beirut, 1/605-606

फ़तावा रज़विया, खंड 9

[बायां कॉलम] इंसान को यह हक पहुँचता है कि वह अपने कर्मों का सवाब दूसरों को दे, जैसा कि हिदाया, शरुह-ए-हिदाया, मुल्तका, दुर्र और खज़ाना-तुल-मुफ़्तीन, हिन्दिया और मज़हब की अन्य किताबों में वर्णित है। विद्वानों ने इस बात को इसी तरह सामान्य और बिना किसी शर्त के रखा है और किसी भी तरह के विशेषीकरण या प्रतिबंध का कोई संकेत नहीं दिया है। अत; जिस तरह कर्मों के सामान्य उल्लेख से, जिसमें अनिवार्य कर्म (फ़राइज़) भी शामिल हैं और वे कर्म भी जो शुरू में बिना किसी अन्य के इरादे के अपने लिए किए गए हों, उन्होंने पैगंबर (उन पर और उनके परिवार पर श्रेष्ठतम आशीर्वाद और शांति हो) के इसमें शामिल होने का तर्क दिया है, उसी प्रकार 'इंसान' शब्द का सामान्य उपयोग बच्चों के शामिल होने के लिए पर्याप्त प्रमाण है, जब तक कि उनके बहिष्कार के लिए कोई ठोस प्रमाण स्थापित न हो जाए। लेकिन ऐसा प्रमाण कहाँ और क्या है? रद्दुल मुह्तार में अल-बहर की बहस के हवाले से है: 'उनका कर्मों को सामान्य रूप से उल्लेख करना अनिवार्य कर्मों को भी शामिल करता है।' और उसी में उसी बहर के हवाले से है: 'ज़ाहिर यह है कि मेरे नज़दीक इसमें कोई फ़र्क नहीं है कि अमल के समय दूसरे के लिए नीयत की हो या अपने लिए नीयत की हो और फिर बाद में उसका सवाब दूसरे को दे दिया जाए, क्योंकि उनका कलाम सामान्य है।' उसी में है, मैंने कहा: 'हमारे विद्वानों का यह कहना कि वह अपने अमल का सवाब दूसरे के लिए कर दे, इसमें नबी (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) भी शामिल हैं, क्योंकि वह इसके सबसे ज़्यादा हक़दार हैं क्योंकि उन्होंने हमें गुमराहियत से बचाया।'

[दायां कॉलम] मौजूद हैं कि इंसान अपने आमाल का सवाब दूसरे के लिए कर सकता है। जैसा कि हिदाया, शरुह-ए-हिदाया, मुल्तका, दुर्र-ए-मुख़्तार, खज़ाना-तुल-मुफ़्तीन, हिन्दिया वगैरह कुतुब-ए-मज़हब में इसकी सराहत है (त)। उलमा-ए-किराम ने यह कलाम इसी तरह मुर्सल व मुतलक (बिना शर्त) रखा है। किसी तख़्सीस व तक़यीद (विशेषीकरण व प्रतिबंध) का इशारा व निशान न दिया। तो जिस तरह आमाल को मुतलक ज़िक्र करने से उलमा ने यह इस्तदलाल (तर्क) किया कि यह हुक्म फ़राइज़ को भी शामिल है और उस अमल को भी जिसे इब्तिदा (आरंभ) में अपने लिए दूसरे की नीयत के बग़ैर किया हो... और जिस तरह 'ग़ैर' के उमूम (सामान्यता) से यह इस्तदलाल किया कि इसमें हुज़ूर पुरनूर सय्यदुल अंबिया अलैहि व अलैहिम अफ़ज़लुस सलात व सना भी दाखिल हैं, इसी तरह लफ़्ज़ 'इंसान' मुतलक मज़कूर होना इस बात की काफ़ी दलील है कि इसमें बच्चे भी दाखिल हैं जब तक कि कोई सही बुरहान (प्रमाण) उनके इस्तिसना (अपवाद) पर क़ायम न हो जाए मगर ऐसी

बुरहान कहाँ और कौन? (त) रद्दुल मुह्तार में है: बह्र में बतौर-ए-बहस है कि उलमा का आमाल को मुतलक ज़िक्र करना फ़र्ज़ को भी शामिल है अह (समाप्त) और इसी में इसी बह्र के हवाले से है: ज़ाहिर यह है कि मेरे नज़दीक इसमें कोई फ़र्क नहीं कि अमल के वक़्त दूसरे के लिए करने की नीयत की हो या अपने लिए करने की नीयत की हो, फिर उसका सवाब दूसरे के लिए कर दे। इसलिए कि कलाम-ए-उलमा में इतलाक़ (सामान्यता) है, ऐसी कोई क़ैद नहीं अह (समाप्त) इसी में है: मैंने कहा: हमारे उलमा का क़ौल है कि 'वह अपने अमल का...'

---

1. रद्दुल मुह्तार, बाबुल हज्ज अनिल ग़ैर, दार इह्या अत-तुरास अल-अरबी, बेरुत, 2/236
2. रद्दुल मुह्तार, मतलब फ़िल क़िरातुल मय्यत इलख़, दार इह्या अत-तुरास अल-अरबी, बेरुत, 1/605
3. रद्दुल मुह्तार, मतलब फ़ी इहदा-ए सवाबिल क़िरात इलख़, दार इह्या अत-तुरास अल-अरबी, बेरुत, 1/605-606

فتاوٰی رضویہ، جلد نہم

[بایاں کالم] انسان را می رسد کہ ثواب اعمالِ خودش ازاں با غیرے کند کما نص علیہ فی الھدایۃ وشروحھا والملتقی والدر و خزانۃ المفتین والھندیۃ وغیرھا من کتب المذھب۔ علمائے کرام ایں سخن را ھمچناں مرسل و مطلق گذاشتہ اند و ہیچ بوئے از تخصیص و تقیید نداده، پس آں چنانکہ باطلاق اعمال بشمول فرائض وتناولِ عملیہ ابتدائے برائے خود بے نیتِ غیر کرده باشد و بہ ارسال غیر بر دخولِ حضورِ پر نور سید الانبیاء علیہ و علیہم افضل الصلوٰۃ والثناء استدلال کرده اند، ھمچناں اطلاقِ انسان بر دخولِ صبیاں دلیلے کافی است تا آنکہ برہانے صحیح استثنائے آں آں قائم شود و خود آں برہان کجاو کدام۔ فی رد المحتار فی البحر بحثاً ان اطلاقھم شامل للفریضۃ ' اہ وفیہ ' عنہ ان الظاھر انہ لافرق بین ان ینوی بہ عند الفعل للغیر اوبفعلہ لنفسہ ثم بعد ذلك یجعل ثوابہ لغیرہ لاطلاق کلامھم اھـ فیہ قلت و قول علمائنا لہ ان جعل ثواب عملہ لغیرہ یدخل فیہ النبي صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم فانہ احق بذلك حیث انقذنا من الضلالۃ اھـ

[دایاں کالم] موجود ہیں کہ انسان اپنے اعمال کا ثواب دوسرے کے لیے کر سکتا ہے۔ جیسا کہ ہدایہ، شروحِ ہدایہ، ملتقی، در مختار، خزانہ المفتیین، ہندیہ وغیرہا کتب مذہب میں اس کی صراحت ہے (ت)۔ علمائے کرام نے یہ کلام اسی طرح مُرسل و مطلق رکھا ہے۔ کسی تخصیص و تقیید کا اشارہ و نشان نہ دیا۔ تو جس طرح اعمال کو مطلق ذکر کرنے سے علماء نے یہ استدلال کیا کہ یہ حکم فرائض کو بھی شامل ہے اور اس عمل کو بھی جسے ابتداء میں اپنے لیے دوسرے کی نیت کے بغیر کیا ہو۔۔۔ اور جس طرح "غیر" کے عموم سے یہ استدلال کیا کہ اس میں حضور پر نور سید الانبیاء علیہ و علیہم افضل الصلوٰۃ والثناء بھی داخل ہیں اسی طرح لفظ "انسان" مطلق مذکور ہونا اس بات کی کافی دلیل ہے کہ اس میں بچے بھی داخل ہیں جب تک کہ کوئی صحیح برہان ان کے

استثناء پر قائم نہ ہو جائے مگر ایسی برہان کہاں اور کون؟ (ت) ردالمحتار میں ہے: بحر میں بطورِ بحث ہے کہ علماء کا اعمال کو مطلق ذکر کرنا فرض کو بھی شامل ہے اھ اور اسی میں اسی بحر کے حوالے سے ہے: ظاہر یہ ہے کہ میرے نزدیک اس میں کوئی فرق نہیں کہ عمل کے وقت دوسرے کے لیے کرنے کی نیت کی ہو یا اپنے لیے کرنے کی نیت کی ہو، پھر اس کا ثواب دوسرے کے لیے کردے۔ اس لیے کہ کلامِ علماء میں اطلاق ہے، ایسی کوئی قید نہیں اھ اسی میں ہے: میں نے کہا: ہمارے علماء کا قول ہے کہ "وہ اپنے عمل کا

---

1 ردالمختار باب الحج عن الغیر دار احیاء التراث العربي بیروت ۲/۲۳۶ 2 ردالمختار مطلب فی القراءۃ للمیت الخ دار احیاء التراث العربي بیروت ۱/۶۰۵ 3 ردالمختار مطلب فی اہداء ثواب القراءۃ الخ دار احیاء التراث العربي بیروت ۱/۶۰۶-۶۰۵

Fatawa Ridawiyyah Volume 9

[Right Column] ...can perform [good deeds] for the reward of 'others' (one other than himself)" — in this, our Prophet (may Allah's peace and blessings be upon him) is also included because he is most deserving of it, as it was the Prophet who saved us from misguidance. (Ending of the cited text) (T) The maximum doubt that can occur here in the heart is that according to our Hanafi scholars — may Allah's hidden favors be upon them — this act is the gifting and presenting of reward, and a child is not capable of Tabarru' (performing an act of kindness or favor on his own accord). (T)

[Left Column] I say, and success is from Allah: A discerning child (Sabi-e-Aaqil) is not barred from every kind of Tabarru'. The basis for Hajr (legal restriction) is harm itself, whether immediate as in giving a loan, or a possibility of harm as in a sale. Where there is no harm, there is no consideration for Hajr, nor is it in the child's favor; rather, it is against reason and is actual harm itself, as it would be akin to treating him like inanimate objects and stones. Don't you see that by consensus (Ijma'), a child is capable of initiating greetings (Salam); rather, his guardian should teach him if he is not already accustomed to it, even though this also falls under the category of Tabarru'. To the extent that in Hadith, it has been called 'Sadaqah'. Abu Dawud narrates a Hadith from Hazrat Abu Dharr (may Allah be pleased with him) that the Messenger of Allah (may Allah's peace and blessings be upon him) said: "Greeting whoever you meet is Sadaqah." (1) Similarly, speaking to one's brother with a pleasant countenance and showing a bright smile is reported in Al-Bukhari's Al-Adab al-Mufrad, At-Tirmidhi, and Ibn Hibban in their Sahihs from him (may Allah be pleased with him) that the Messenger of Allah (may Allah's peace and blessings be upon him) said: "Your smiling in the face of your brother is Sadaqah for you." (2)

---

1. Sunan Abi Dawud, Kitab al-Adab, Chapter on removing harm, Aftab-e-Alam Press, Lahore, 2/355.
2. Jami' at-Tirmidhi, Chapters on Piety and Joining Ties, Amin Company Kutub Khana Rashidiyah, Delhi, 2/17.

फ़तावा रज़विया जिल्द 9

[दायां कॉलम] ..."दूसरे" (अपने अतिरिक्त) के लिए सवाब (पुण्य) कर सकता है" — तो इसमें हमारे नबी (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) भी सम्मिलित हैं क्योंकि वह इसके सबसे अधिक हकदार हैं क्योंकि हुज़ूर ने ही हमें गुमराही से निजात दिलाई। (उद्धरण समाप्त) (त) यहाँ हृदय में अधिक से अधिक जो संदेह उत्पन्न हो सकता है वह यह है कि हमारे हनफी विद्वानों के निकट — उन पर अल्लाह की गुप्त अनुकम्पाएँ हों — यह कार्य सवाब का हिबा (दान) और हदीया (भेंट) है और बच्चा 'तबर्रु (अपनी ओर से भलाई और एहसान के रूप में कुछ करने) के योग्य नहीं है। (त)

[बायां कॉलम] मैं कहता हूँ, और तौफीक अल्लाह ही से है: समझदार बच्चा (सबी-ए-आकिल) हर प्रकार के तबर्रु से वर्जित (महजूर) नहीं है। 'हज्र' (प्रतिबंध) का कारण केवल हानि है, चाहे वह तत्काल हानि हो जैसे ऋण देने में, या हानि की संभावना हो जैसे क्रय-विक्रय में। जहाँ कोई हानि नहीं है, वहाँ हज्र पर विचार नहीं किया जाएगा और यह बच्चे का हित नहीं है, बल्कि यह विवेक के विरुद्ध है और स्पष्ट रूप से हानिकारक है कि जैसे उसे निर्जीव वस्तुओं और पत्थरों की श्रेणी में रख देना। क्या आप नहीं देखते कि बच्चा सर्वसम्मति (इज्मा) से सलाम में पहल करने का पात्र है? बल्कि उसके संरक्षक को चाहिए कि यदि वह स्वयं इसका अभ्यस्त न हो, तो उसे सिखाए, हालाँकि यह भी तबर्रु के ही अध्याय से है। यहाँ तक कि हदीस में इसे 'सदका' का नाम दिया गया है। अबू दाऊद हज़रत अबू ज़र (रज़ियल्लाहु अन्हु) से एक हदीस में वर्णन करते हैं कि हुज़ूर (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने फरमाया: "जो मिले उसे सलाम करना सदका है।" (1) इसी तरह अपने भाई से प्रसन्नचित्त होकर बात करना और मुस्कुराहट प्रकट करना, जैसा कि अल-बुखारी की 'अल-अदब अल-मुफ़रद', तिरमिज़ी और इब्न हिब्बान ने अपनी सहीह किताबों में उनसे (रज़ियल्लाहु अन्हु) रिवायत किया है कि रसूलुल्लाह (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने फरमाया: "तुम्हारा अपने भाई के सामने मुस्कुराना तुम्हारे लिए सदका है।" (2)

---

1. सुनन अबी दाऊद, किताब अल-अदब, हानिकारक चीज़ हटाने का अध्याय, आफ़ताब-ए-आलम प्रेस, लाहौर, 2/355।
2. जामिअ अल-तिरमिज़ी, नेकी और मेल-जोल के अध्याय, अमीन कंपनी कुतुब खाना रशीदिया, दिल्ली, 2/17।

فتاوی رضویہ جلد نہم

[دائیں کالم] ثواب "دوسرے" (اپنے غیر) کے لیے کر سکتا ہے"__ تو اس میں ہمارے نبی صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم بھی داخل ہیں اس لیے کہ وہ اس کے زیادہ حقدار ہیں کیونکہ حضور نے ہی ہمیں گمراہی سے نجات دی اھ (ت) زیادہ سے زیادہ جو شبہ یہاں دل میں گزر سکتا ہے وہ یہ ہے کہ ہمارے علمائے حنفیہ کے نزدیک _ **ان پر اللہ کی پوشیدہ عنایتیں عام ہوں** _ یہ عمل ثواب کا ہبہ اور ہدیہ ہے اور بچہ تبرع (اپنی طرف سے بھلائی اور احسان کے طور پر کچھ کرنے) کا اہل نہیں ہے۔ (ت)

[بائیں کالم] نہایت آنچہ اینجا بخاطر خطور توان کرد آنست کہ نزد اصحاب معشر حنفیہ عمہم اللہ بالطافہ الخفیہ۔ این کار ہبہ ثواب و ابدائے آنست و صبی از اہل تبرع نیست۔ اقول: وباللہ التوفیق صبی عاقل از ہر گونہ تبرع محجور نیست۔ منشائے حجر ہمیں ضرر ست۔ ولو فی الحال کما فی القرض ولو بالاحتمال کما فی البیع آنجا کہ پیچ ضرر نیست در حجر نظر نیست بلکہ خلاف نظر و عین اضرارست کہ بمثابہ الحاق او بجماد و احجارست۔ آخر نہ بینی کہ صبی بالاجماع از اہل ابتداء بسلام است بلکہ مودبش را باید کہ اگر خود گر نباشد تعلیمش نماید۔ حالانکہ این نیز از باب تبرع است تا آنکہ در حدیث او را صدقہ نامیدہ اند ابو داؤد عن ابی ذر رضی اللہ تعالٰی عنہ فی حدیث قال قال رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم تسلیمہ علی من لقی صدقۃ ۱۔ ہمچنان ببرادر خود بکشادہ روی سخن فرمودن و باظہار بشاشت دندان سپیدہ نمودن البخاری فی الادب المفرد والترمذی وابن حبان فی صحیحہما عنہ رضی اللہ تعالٰی عنہ قال قال رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم تبسمک فی وجہ اخیک لك صدقۃ ۲۔

---

1 سنن ابی داؤد کتاب الادب باب فی اماطۃ الاذی آفتاب عالم پریس لاہور ۳۵۵/۲ 2 جامع الترمذی ابواب البر والصلۃ امین کمپنی کتب خانہ رشیدیہ دہلی ۱۷/۲

Fatawa Razawiyya, Volume 9

[Left Column: Arabic & Persian text] Similarly, guiding someone who has lost their way by mentioning the landmarks of the path. Ahmad and the Two Sheikhs (Bukhari & Muslim) narrated from Abu Hurairah (may Allah be pleased with him) that he said: The Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) said: "Guiding to the path is charity."[1] And in the mentioned hadith of Abu Dharr: "Your guiding a man in a land of misguidance is charity."[2] — Similarly, making a deaf person hear speech. Al-Khatib in his 'Jami' narrated from Sahl bin Sa'd (may Allah be pleased with him) that he said: The Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) said: "Making a deaf person hear is charity."[3] — Similarly, following in prayer one who has not found a congregation. Ahmad, Abu Dawood, Ibn Hibban, and Al-Hakim narrated from Abu Sa'id Al-Khudri (may Allah be pleased with him) that he said: The Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) said: "Is there not a man who will give charity to this one and pray with him?"[4]

[Right Column: Urdu text] Speaking and smiling with an expression of cheerfulness — Imam Bukhari in 'Al-Adab al-Mufrad' and Tirmidhi and Ibn Hibban in their respective 'Sahihs' have narrated from the same Hazrat Abu Dharr (may Allah be pleased with him) that the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) said: "Your smiling in front of your brother is charity for you." (T) Similarly, guiding a person who has lost their way by pointing out the signs of the path — Imam Ahmad and Bukhari and Muslim narrated from Hazrat Abu Hurairah (may Allah be pleased with him) that the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) said: "Showing the way is charity." And in the aforementioned hadith of Hazrat Abu Dharr (may Allah be pleased with him), it is stated: "Guiding someone wherever they have lost their way is charity." (T) Similarly, making a deaf person hear a conversation — Khatib in his 'Jami' narrates from Sahl bin Sa'd (may Allah be pleased with him) that the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) said: "Making a deaf person hear is charity." Similarly, following someone in prayer who did not find a congregation — Imam Ahmad, Abu Dawood, Ibn Hibban, and Hakim narrated from Hazrat Abu Sa'id al-Khudri (may Allah be pleased with him) that the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) said: "Is there no such person who would give charity to him by performing prayer with him?" (T)

[Footnotes] 1. Sahih al-Bukhari, Book of Jihad, Chapter on Gifts in War, Qadimi Kutub Khana, Karachi, 2/403. 2. Jami' al-Tirmidhi, Chapters of Piety and Joining Ties, Amin Company Kutub Khana Rashidiya, Delhi, 2/17. 3. Al-Jami' of al-Khatib, narrated from

Musnad of Abu Sa'id al-Khudri, Dar al-Fikr, Beirut, 64/3. 4. Sunan Abi Dawood, Chapter on gathering in the mosque twice, Aftab Alam Press, Lahore, 85/1; Musnad Ahmad bin Hanbal, narrated from Abu Umama, Dar al-Fikr, Beirut, 5/254.

फ़तावा रज़विया, खंड 9

[बायाँ स्तंभ: अरबी और फारसी पाठ] इसी तरह, मार्ग के चिह्नों का उल्लेख करके रास्ता भूल जाने वाले का मार्गदर्शन करना। अहमद और दो शेखों (बुखारी और मुस्लिम) ने अबू हुरैरा (रज़ियल्लाहु अन्हु) से रिवायत की है कि उन्होंने कहा: रसूलुल्लाह (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने फरमाया: "रास्ता दिखाना सदक़ा है।"[1] और अबू ज़र की उल्लेखित हदीस में है: "गुमराह करने वाली ज़मीन में किसी आदमी का मार्गदर्शन करना तुम्हारे लिए सदक़ा है।"[2] — इसी तरह, किसी बहरे व्यक्ति को बात सुनाना। अल-खतीब ने अपनी 'जामे' में सहल बिन साद (रज़ियल्लाहु अन्हु) से रिवायत की है कि उन्होंने कहा: रसूलुल्लाह (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने फरमाया: "बहरे को सुनाना सदक़ा है।"[3] — इसी तरह, नमाज़ में उस व्यक्ति का अनुसरण करना जिसे जमात न मिली हो। अहमद, अबू दाऊद, इब्न हिब्बान और अल-हाकिम ने अबू सईद अल-खुदरी (रज़ियल्लाहु अन्हु) से रिवायत की है कि उन्होंने कहा: रसूलुल्लाह (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने फरमाया: "क्या कोई ऐसा आदमी नहीं है जो इस पर सदक़ा करे और उसके साथ नमाज़ पढ़े?"[4]

[दायाँ स्तंभ: उर्दू पाठ] प्रसन्नता व्यक्त करते हुए बात करना और मुस्कुराना — इमाम बुखारी ने 'अल-अदब अल-मुफ़्रद' में और तिर्मिज़ी व इब्न हिब्बान ने अपनी-अपनी 'सहीह' में उन्हीं हज़रत अबू ज़र रज़ियल्लाहु तआला अन्हु से रिवायत की है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम ने फ़रमाया: "अपने भाई के सामने तुम्हारा मुस्कुराना तुम्हारे लिए सदक़ा है।" (त) इसी तरह रास्ता भूल जाने वाले को रास्ते के संकेतों द्वारा मार्गदर्शन करना — इमाम अहमद और बुखारी व मुस्लिम हज़रत अबू हुरैरा रज़ियल्लाहु तआला अन्हु से रावी हैं कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम ने फ़रमाया: "रास्ता बताना सदक़ा है" और हज़रत अबू ज़र रज़ियल्लाहु तआला अन्हु की उपरोक्त हदीस में है: "जहाँ कोई रास्ता भटक जाए उसका मार्गदर्शन कर देना सदक़ा है।" (त) इसी तरह बहरे व्यक्ति को बात सुनाना — ख़तीब अपनी 'जामे' में सहल बिन साद रज़ियल्लाहु तआला अन्हु से रावी हैं कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम ने फ़रमाया: "बहरे को सुनाना सदक़ा है।" इसी तरह जिस व्यक्ति को जमात न मिली हो उसकी इक़्तिदा (पीछे नमाज़ पढ़ना) करना — इमाम अहमद, अबू दाऊद, इब्न हिब्बान और हाकिम हज़रत अबू सईद खुदरी रज़ियल्लाहु तआला अन्हु से रावी हैं कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम ने फ़रमाया: "अरे, क्या कोई ऐसा व्यक्ति नहीं है जो इस पर सदक़ा करे कि इसके साथ नमाज़ अदा करे।" (त)

[पाद टिप्पणियाँ] 1. सहीह अल-बुखारी, किताबुल जिहाद, बाबुल हदिया फिल गज़्व, कदीमी कुतुब खाना, कराची, 2/403. 2. जामे अत-तिर्मिज़ी, अबवाबुल बिर वस-सिला, अमीन कंपनी कुतुब खाना रशीदिया, दिल्ली, 2/17. 3. अल-जामे लिल खतीब, मुसनद अबू सईद खुदरी से रिवायत, दारुल फिक्र, बेरूत, 64/3. 4. सुनन अबू दाऊद, बाब फिल जम-ए फिल मस्जिद मरतैन, आफताब आलम प्रेस, लाहौर, 85/1; मुसनद अहमद बिन हंबल, अबू उमामा से रिवायत, दारुल फिक्र, बेरूत, 5/254.

पृष्ठ 948 का 635

فتاوٰی رضویہ ، جلد نہم

[بایاں کالم] ہمچناں راہِ گم کردہ را بذکر معالم طریق دلالت کردن احمد والشیخان عن ابی ھریرہ رضی اللہ تعالٰی عنہ قال قال رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم دل الطریق صدقہ [1] وفی حدیث ابی ذر المذکور ارشادك الرجل فی ارض الضلال صدقہ [2]— ہمچنان کر را سخن شنواند ان الخطیب فی جامعہ عن سھل بن سعد رضی اللہ تعالٰی عنہ قال قال رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم اسماح الاصم صدقۃ [3]— ہمچناں کہ با کسیکہ جماعت نیافت اقتداء نمودن احمد وابوداؤد وابن حبان والحاکم عن ابی سعید الخدری رضی اللہ تعالٰی عنہ قال قال رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم الارجل یتصدق علی ھذا فیصلی معہ [4]۔

[دایاں کالم] بات کرنا اور اظہارِ بشاشت کے ساتھ مسکرانا— امام بخاری نے ادب المفرد میں اور ترمذی وابن حبان نے اپنی اپنی صحیح میں ان ہی حضرت ابوذر رضی اللہ تعالٰی عنہ سے روایت کی ہے کہ رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم نے فرمایا: "اپنے بھائی کے سامنے تیرا تبسم کرنا تیرے لیے صدقہ ہے۔ (ت) اسی طرح راستہ بھول جانے والے کو راہ کے نشانات بتا کر راہنمائی کر دینا— امام احمد اور بخاری ومسلم حضرت ابوہریرہ رضی اللہ تعالٰی عنہ سے راوی ہیں کہ رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم نے فرمایا: "راہ بتانا صدقہ ہے" اور حضرت ابوذر رضی اللہ تعالٰی عنہ کی حدیث مذکور میں ہے: "جہاں کوئی راہ بھٹک جائے اس کی رہنمائی کر دینا صدقہ ہے۔" (ت) اسی طرح بہرے شخص کو بات سنوانا— خطیب اپنی جامع میں سہل بن سعد رضی اللہ تعالٰی عنہ سے راوی ہیں کہ رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم نے فرمایا: "بہرے کو سنانا صدقہ ہے۔" اسی طرح جس شخص نے جماعت نہ پائی اس کی اقتداء کرنا— امام احمد، ابوداؤد، ابن حبان اور حاکم حضرت ابوسعید خدری رضی اللہ تعالٰی عنہ سے راوی ہیں کہ رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی

علیہ وسلم نے فرمایا: ”ارے کوئی ایسا شخص نہیں جو اس پر صدقہ کر دے کہ اس کے ساتھ نماز ادا کرے۔“ (ت)

[حواشی] 1. صحیح البخاری کتاب الجہاد باب الحدیۃ فی الغزو قدیمی کتب خانہ کراچی ۲/۴۰۳ 2. جامع الترمذی ابواب البر والصلۃ امین کمپنی کتب خانہ رشیدیہ دہلی ۲/۱۷ 3. جامع للخطیب مروی از مسند ابی سعید الخدری دارالفکر بیروت ۶۴/۳ 4. سنن ابی داؤد باب فی الجمع فی المسجد مرتین آفتاب عالم پریس لاہور ۸۵/۱، مسند احمد بن حنبل مروی از ابوامامہ دارالفکر بیروت ۵/۲۵۴

There are many and abundant virtues of this kind... and their door is not closed to Muslim children as long as there is no harm or fear of harm. Move beyond all this and hear something even higher... A person can appoint his own boy, or any of the authorized (Ma'zoon) boys he wishes... without needing anyone's permission... and if he is restricted (Mahjoor), then by asking his guardian (Wali), he can make him an agent (Wakil) in his legal disputes, or order him to sell his goods or buy some goods for him, without any mention of wages in between... If this itself is not a voluntary act (Tabarru'), then what is? But the scholars did not consider it impermissible because they saw no harm in it, rather they deemed the correction of his expression as a benefit. It is stated in Jami' al-Saghir: In the book of agency (Al-Wakalah) from Al-Dhakhirah, it is mentioned: If one appoints a child as an agent to sell his slave, and the child sells and buys, it is permissible as long as the child understands this. There is no liability on the child; the liability is only on the appointer... Similarly, if one appoints a child as an agent for litigation, it is permissible provided the child understands what he is saying and what is being said to him. In essence, there are two scenarios for this issue: (1) either it will be his own child, or (2) it will be someone else's child. If he appoints his own child as an agent, it is permissible and no permission needs to be taken from anyone. And if he appoints someone else's child as an agent (there are two states): if the child was authorized (Ma'zoon) for trade, he should take permission from his guardian... if he gave permission, then making him an agent is permissible... this is because using someone else's child...

Similarly, the types are many and abundant, and for them and for the children of Muslims, it is not closed as long as there is no whipping or fear of it. Move beyond all this and hear what is even higher. It is permissible for you to make your son or any authorized sons you wish, an agent in your disputes without needing permission from anyone, or to ask a restricted one from his guardian, or to command the selling of your property or buying goods for you, without any mention of a reward in between. What is this news of voluntary act? They permitted it because they did not perceive any loss, rather they considered the correction of his statements as a benefit. In Jami' al-Saghir, in the chapter of Agency from Al-Dhakhirah: If a child is appointed as an agent to sell a slave, or appointed to buy something for him, and he sells and buys, it is permissible if he understands that. There is no liability on the child; rather the liability is upon the one who gave the order. Likewise, if he appoints a child as an agent for litigation, it is permissible after the child reaches a state where

he understands what he says and what is said. This issue in summary has two aspects: either it is his child or the child of someone else. If he appoints his child, it is permissible and no one's permission is sought. If he appoints someone else's child, then if he was authorized in trade, his guardian is not consulted. If his guardian permits, then it is permissible for him to appoint him. This is because employing someone else's child without the permission of the guardian is not permissible, but with his permission, it is permissible. They said this issue is a narration that a father may lend his son, and the scholars have agreed upon it. Can he lend his son's property? Some later scholars...

इस तरह की बहुत सी और प्रचुर नेकियाँ हैं... और उनका दरवाज़ा मुसलमान बच्चों पर बंद नहीं है जब तक कि कोई नुकसान या नुकसान का डर न हो। इन सबसे आगे बढ़िए और इससे भी उच्च बात सुनिए... एक व्यक्ति अपने लड़के को, या अधिकृत (माज़ून) लड़कों में से जिसे चाहे... बिना किसी की अनुमति की आवश्यकता के.. और यदि वह प्रतिबंधित (महजूर) हो, तो उसके अभिभावक (वली) से पूछकर, अपने मुकदमों में वकील बना सकता है या उसे अपना सामान बेचने या अपने लिए कोई सामान खरीदने का आदेश दे सकता है, बिना इसके कि बीच में किसी पारिश्रमिक (उजरत) का नाम हो... यह स्वयं स्वैच्छिक कार्य (तबर्रअ) नहीं है तो और क्या है? लेकिन विद्वानों ने इसे अनुचित नहीं माना क्योंकि उन्होंने इसमें कोई नुकसान नहीं देखा, बल्कि उसकी अभिव्यक्ति के सुधार को लाभ माना। जामिअ अल-सगीर में है: अल-ज़खीरा किताब अल-वकाला में है: यदि किसी बच्चे को अपना गुलाम बेचने के लिए वकील बनाया और बच्चे ने खरीद-बिक्री की तो यह जायज़ है बशर्ते बच्चा इसे समझता हो और ज़िम्मेदारी बच्चे पर नहीं बल्कि आदेश देने वाले (आमिर) पर होगी... इसी तरह अगर किसी बच्चे को मुकदमे का वकील बनाया तो जायज़ है बशर्ते वह समझता हो कि वह खुद क्या कह रहा है और उससे क्या कहा जा रहा है, सारांश के आधार पर इस मसले की दो स्थितियाँ हैं: (१) या तो वह खुद उसका बच्चा होगा (२) या दूसरे का होगा, अगर अपने बच्चे को वकील बनाया तो जायज़ है और किसी से अनुमति नहीं लेनी है। और अगर दूसरे के बच्चे को वकील बनाया तो (दो स्थितियाँ हैं) अगर वह व्यापार के लिए अधिकृत था तो उसके अभिभावक से अनुमति ले... अगर उसने अनुमति दे दी तो उसे वकील बनाना जायज़ है... यह इसलिए कि दूसरे के बच्चे को...

इसी तरह किस्में बहुत और प्रचुर हैं और उन पर और मुसलमानों के बच्चों पर बंद नहीं हैं जब तक कि कोई कोड़ा या उसका डर न हो। इन सबसे परे जाओ और जो और भी ऊँचा है उसे सुनो। तुम्हारे लिए जायज़ है कि तुम अपने बेटे को या जिन अधिकृत बेटों को चाहो, बिना किसी की अनुमति के अपनी शिकायतों में वकील बनाओ, या एक प्रतिबंधित को उसके अभिभावक से पूछकर, या अपनी संपत्ति बेचने या अपने लिए सामान खरीदने का आदेश दो, बिना इसके कि बीच में किसी इनाम का ज़िक्र हो। स्वैच्छिक कार्य की यह क्या खबर है? उन्होंने इसे अनुमति दी क्योंकि उन्होंने कोई हानि नहीं समझी, बल्कि उसके बयानों के सुधार को लाभ माना। जामिअ अल-सगीर में, अल-ज़खीरा से एजेंसी के अध्याय में: यदि एक बच्चे को गुलाम बेचने के लिए वकील नियुक्त किया जाता है, या उसे कुछ खरीदने के लिए नियुक्त किया जाता है, और वह बेचता और खरीदता है, तो यह जायज़ है यदि

वह उसे समझता है। बच्चे पर कोई दायित्व नहीं है; बल्कि दायित्व उस पर है जिसने आदेश दिया। इसी तरह, यदि वह मुकदमेबाजी के लिए एक बच्चे को वकील नियुक्त करता है, तो यह बच्चे के उस स्थिति में पहुँचने के बाद जायज़ है जहाँ वह समझता है कि वह क्या कहता है और क्या कहा जाता है। संक्षेप में इस मुद्दे के दो पहलू हैं: या तो वह उसका बच्चा है या किसी और का बच्चा है। यदि वह अपने बच्चे को नियुक्त करता है, तो यह जायज़ है और किसी की अनुमति नहीं माँगी जाती है। यदि वह किसी और के बच्चे को नियुक्त करता है, तो यदि वह व्यापार में अधिकृत था, तो उसके अभिभावक से परामर्श नहीं किया जाता है। यदि उसका अभिभावक अनुमति देता है, तो उसके लिए उसे नियुक्त करना जायज़ है। ऐसा इसलिए है क्योंकि अभिभावक की अनुमति के बिना किसी और के बच्चे को काम पर रखना जायज़ नहीं है, लेकिन उसकी अनुमति से यह जायज़ है। उन्होंने कहा कि यह मसला एक रिवायत है कि पिता अपने बेटे को उधार दे सकता है, और विद्वान इस पर सहमत हुए हैं। क्या वह अपने बेटे की संपत्ति उधार दे सकता है? कुछ बाद के विद्वान...

اس طرح کی بہت سی اور کثیر نیکیاں ہیں---- اور ان کا دروازہ مسلمان بچوں پر بند نہیں جب تک کہ کوئی نقصان یا اندیشہ نقصان نہ ہو۔ ان سب سے آگے بڑھئے اور بلند تر سنئے---- انسان اپنے لڑکے کو، یا ماذون لڑکوں میں سے جس کو چاہے ---- بغیر اس کے کہ کسی کے اذن کی حاجت ہو---- اور محجور ہو تو اس کے ولی سے پوچھ کر، اپنے مقدمات میں وکیل بنا سکتا ہے یا اسے اپنا سامان بیچنے یا اپنے لیے کوئی سامان خریدنے کا حکم دے سکتا ہے، بغیر اس کے کہ درمیان میں کسی اجرت کا نام ہو---- یہ خود تبرع نہیں تو اور کیا ہے؟ مگر علما نے اسے ناجائز رکھا کیونکہ اس میں کوئی نقصان نہ سمجھا، بلکہ اس کی عبارت کی تصحیح کو فائدہ قرار دیا۔ جامع الصغار میں ہے : ذخیرہ کتاب الوکالۃ میں ہے : اپنا غلام بیچنے کے لیے کسی بچے کو وکیل بنایا اور بچے نے خرید و فروخت کیا تو جائز ہے جبکہ بچہ اسے سمجھتا ہو اور ذمہ بچے پر نہیں بلکہ آمر پر ہوگا---- اسی طرح اگر کسی بچے کو مقدمے کا وکیل بنایا تو جائز ہے جبکہ یہ سمجھتا ہو کہ خود کیا کہہ رہا ہے اور اس سے کیا کہا جا رہا ہے، بلحاظ حاصل اس مسئلہ کی دو صورتیں ہیں : (۱) یا تو خود اس کا بچہ ہوگا (۲) یا دوسرے کا ہوگا، اگر اپنے بچہ کو وکیل بنایا تو جائز ہے اور کسی سے اجازت نہیں لینا ہے۔ اور اگر دوسرے کے بچے کو وکیل بنایا تو (دو حالت ہے) اگر وہ تجارت کے لیے ماذون تھا تو اس کے ولی سے اجازت لے---- اگر اس نے اجازت دے دی تو اسے وکیل بنانا جائز ہے---- یہ اس لیے کہ دوسرے کے بچے

همچناں انواع بر کثیر و وافر است و در آنہا ئے و بر روئے صبیاں مسلمین فراز نیست تازیانی یا اندیشہ او نباشد از میں ہمہ بگز رو بالا تر شنو، ترا میر سد کہ پسر خود پسران ماذون ہر کرا خواہی کہ بے حاجت باذان کسے و محجور را از ولی پرسیدہ در خصومات خویش وکیل کنی یا متاع خودت

فروختن یا کالائے برائے تو خریدن فرمائی بے آنکہ نام اجرے در میان باشد ، ایں خود خبر تبرع چیست۔ اماروا داشتند کہ زیا نے نہ پنداشتند بلکہ تصحیح عبارات او را سود نگاشتند، در جامع الصغار است فی و کالۃ الذخیرۃ اذا وکل صبیا بیع عبدہ ، او وکلہ بان یشتری لہ شیئا فباع واشتری جاز اذا کان یعقل ذلک فلا عہدۃ علی الصبی وانما العہدۃ علی الآمر ، وکذلك لو وکل صبیا بالخصومۃ جاز بعد ان یکون الصبي بحیث یعقل مایقول وما یقال وھذہ المسئلۃ في الحاصل علی وجھین اما ان یکون صبیہ اوصبی غیرہ فأن وکل صبیہ جاز ولا یستامر احد او ان وکل صبی غیرہ فان کان مأذونا لہ في التجارۃ لا یستامر ولیہ فأن اذن ولیہ جاز لہ ان یوکلہ وھذا لان استعمال صبی الغیر بغیر اذن الولی لا یجوز، و بأذنہ یجوز ، قالوا وھذہ المسئلۃ روایۃ ان للاب ان یعیرہ ولدہ وقد اتفق علیہ المشائخ وھل لہ ان یعیر مال ولدہ بعض المتأخرین

Fatawa Razawiyya Volume 9

[Right Column - Urdu] ...taking work [from him] without the guardian's permission is not permissible, and if it is with his permission, it is permissible. Scholars have stated: there is a narration regarding this issue, which is that a father can give his child in 'Aariyah' (loan for use), and there is a consensus of scholars on this. Can he give his child's property in 'Aariyah' or not? Some later scholars said he can. But the majority are of the opinion that the father does not have this authority. Furthermore, if a child who is 'mahjoor' (restricted from legal transactions) conducts buying and selling for someone else, Imam Muhammad (may Allah have mercy on him) has deemed it permissible, but he did not declare it permissible for himself, because for himself, the buying and selling could potentially lead to either profit or loss, whereas when he conducts buying and selling for someone else in a way that the liability does not fall upon the child, it is pure benefit because it validates his expression, and a discerning child is capable of transactions that are purely beneficial, such as accepting a gift, etc. And the liability will not fall on the child because that would involve harm to the minor, etc. (t). Similarly, in Chapter 34 of 'Jami' al-Fusulayn' regarding the rulings for children, it is mentioned... however, the phrasing is more useful and holds significant benefit. From its detail, it became clear that although a child is 'mahjoor', he is not restricted from harmless 'tabarru' (gratuitous acts). This is the 'major premise'. Now we state the 'minor premise': by the grace of God, when we reflect on the issue under discussion in the light of Fiqh and Hadith, we find that giving a gift for reward (Hibah Thawab) and gifting to a Muslim is, by the grace of Allah, a harmless benefit. This is not like the gift of property where...

[Left Column - Arabic/Persian] They said he has that [right], but most of them are of the opinion that he does not have that. Furthermore, Imam Muhammad (may Allah have mercy on him) allowed the sale and purchase by a restricted child ('as-sabiyy al-mahjoor') for others, but did not allow his sale and purchase for himself. This is because his sale and purchase for himself wavers between benefit and harm. However, his sale and purchase for others in a manner where liability does not follow him is pure benefit, as it involves the validation of his expression. A discerning child is among those capable of purely beneficial transactions, such as accepting a gift and the like. Liability does not follow him because that would involve harm to the minor, etc.[1] Likewise, in Chapter 34 of 'Jami' al-Fusulayn' regarding the rulings for children,[2] it is stated: 'And the first expression is more complete in utility and greater in benefit.' Thus, it is established that although a child is restricted, he is not restricted from

harmless gratuitous acts. This is the 'major premise', and consider the 'minor premise': when, by His success, we look into the current matter under the guidance of Fiqh and Hadith, we find that giving a gift for reward and gifting to a Muslim is, by the praise of Allah Almighty, a harmless benefit. This is not like a gift of property, which [leads to loss]...

---

[1] Jami' Ahkam al-Sighar on the margin of Jami' al-Fusulayn, Issues of Agency, Al-Azhar Printing Press, Egypt, 1/75-76. [2] Jami' al-Fusulayn, Chapter 34, Rulings for Children, Al-Azhar Printing Press, Egypt, 2/207-208.

फतवा रज़विया खंड 9

[दायां कॉलम - उर्दू] ...अभिभावक की अनुमति के बिना [उससे] काम लेना जायज़ नहीं है, और यदि उसकी अनुमति से हो तो जायज़ है। विद्वानों ने कहा है: इस मसले से संबंधित एक रिवायत है, वह यह कि पिता अपने बच्चे को 'आरियह' (उपयोग के लिए ऋण) पर दे सकता है, इस पर विद्वानों की सहमति है। क्या वह अपने बच्चे की संपत्ति को 'आरियह' पर दे सकता है या नहीं? कुछ बाद के विद्वानों ने कहा कि वह दे सकता है। लेकिन अधिकांश की राय है कि पिता को यह अधिकार नहीं है। इसके अलावा, यदि कोई बच्चा जो 'महजूर' (कानूनी लेनदेन से प्रतिबंधित) है, वह किसी दूसरे के लिए खरीद-फरोख्त करता है, तो इमाम मुहम्मद (अल्लाह उन पर रहम करे) ने इसे जायज़ माना है, लेकिन उन्होंने इसे अपने लिए जायज़ नहीं ठहराया, क्योंकि अपने लिए खरीद-फरोख्त में लाभ और हानि दोनों की संभावना होती है, जबकि जब वह किसी दूसरे के लिए इस तरह खरीद-फरोख्त करता है कि उसकी जिम्मेदारी बच्चे पर न आए, तो यह शुद्ध लाभ है क्योंकि यह उसकी अभिव्यक्ति को सही ठहराता है, और एक समझदार बच्चा उन लेनदेनों के लिए सक्षम है जो शुद्ध रूप से लाभकारी हों, जैसे उपहार स्वीकार करना आदि। और जिम्मेदारी बच्चे पर नहीं आएगी क्योंकि इसमें नाबालिग का नुकसान है, आदि। (त) इसी तरह 'जामे-अल-फुसुलैन' के अध्याय 34 में बच्चों के नियमों के वर्णन में है... लेकिन शब्दावली अधिक उपयोगी और महान लाभ वाली है। इसके विवरण से स्पष्ट हो गया कि हालांकि बच्चा 'महजूर' है, लेकिन वह हानि रहित 'तबर्रुआ' (स्वैच्छिक दान) से प्रतिबंधित नहीं है। यह 'बड़ी प्रस्तावना' (मेजर प्रीमाइज़) है। अब हम 'छोटी प्रस्तावना' (माइनर प्रीमाइज़) पेश करते हैं: ईश्वरीय कृपा से, जब हम फिक़्ह और हदीस के मार्गदर्शन में विचाराधीन मुद्दे पर विचार करते हैं, तो हम पाते हैं कि सवाब के लिए उपहार देना और किसी मुसलमान को उपहार देना, अल्लाह की प्रशंसा से, हानि रहित लाभ है। यह संपत्ति के उपहार की तरह नहीं है जहाँ...

[बायां कॉलम - अरबी/फारसी] उन्होंने कहा कि उसे यह [अधिकार] है, लेकिन उनमें से अधिकांश की राय है कि उसे यह अधिकार नहीं है। इसके अलावा, इमाम मुहम्मद (अल्लाह उन पर रहम करे) ने एक प्रतिबंधित बच्चे ('अस-सबिय्य अल-महजूर') द्वारा दूसरों के लिए बिक्री और खरीद की अनुमति दी, लेकिन खुद के लिए उसकी बिक्री और खरीद की अनुमति नहीं दी। ऐसा इसलिए है क्योंकि खुद के लिए उसकी बिक्री और खरीद लाभ और हानि के बीच डगमगाती है। हालांकि, दूसरों के लिए उसकी बिक्री और खरीद इस तरह से कि उस पर कोई उत्तरदायित्व न आए, शुद्ध लाभ है, क्योंकि इसमें उसकी अभिव्यक्ति का सत्यापन शामिल है। एक समझदार बच्चा पूरी तरह से लाभकारी

लेनदेन करने में सक्षम लोगों में से है, जैसे कि उपहार स्वीकार करना और इसी तरह के अन्य कार्य। उत्तरदायित्व उस पर लागू नहीं होता क्योंकि इसमें नाबालिग का नुकसान शामिल है, आदि।[1] इसी तरह 'जामे-अल-फ़ुसुलैन' के अध्याय 34 में बच्चों के नियमों में कहा गया है,[2] 'और पहली अभिव्यक्ति उपयोगिता में अधिक पूर्ण और लाभ में अधिक महान है।' इस प्रकार यह सिद्ध होता है कि यद्यपि बच्चा प्रतिबंधित है, लेकिन वह हानि रहित स्वैच्छिक कार्यों से प्रतिबंधित नहीं है। यह 'बड़ी प्रस्तावना' है, और 'छोटी प्रस्तावना' पर विचार करें: जब, उसकी सफलता से, हम फ़िक़्ह और हदीस के मार्गदर्शन में वर्तमान मामले को देखते हैं, तो हम पाते हैं कि सवाब के लिए उपहार देना और किसी मुसलमान को उपहार देना, सर्वशक्तिमान अल्लाह की स्तुति से, एक हानि रहित लाभ है। यह संपत्ति के उपहार की तरह नहीं है, जो [नुकसान की ओर ले जाता है]...

---

[1] जामे अहकाम अल-सिगार, जामे अल-फ़ुसुलैन के हाशिये पर, एजेंसी के मुद्दे, अल-अज़हरिया प्रिंटिंग प्रेस, मिस्र, 1/75-76. [2] जामे अल-फ़ुसुलैन, अध्याय 34, बच्चों के नियम, अल-अज़हरिया प्रिंटिंग प्रेस, मिस्र, 2/207-208.

فتاوی رضویہ جلد نہم

[دایاں کالم] سے اجازت ولی کے بغیر کام لینا جائز نہیں، اور اس کے اذن سے ہو تو جائز ہے۔

علماء نے فرمایا: اس مسئلہ سے متعلق ایک روایت ہے وہ یہ کہ باپ اپنے بچے کو عاریۃً دے سکتا ہے، اس پر مشائخ کا اتفاق ہے۔ اپنے بچے کے مال کو عاریۃً دے سکتا ہے یا نہیں؟ بعض متاخرین نے کہا دے سکتا ہے۔ اور اکثر اس پر ہیں کہ باپ کو اس کا اختیار نہیں_**پھر جو بچہ محجور ہے وہ اگر دوسرے کے لیے خرید و فروخت کرے تو امام محمد رحمۃ اللہ تعالیٰ علیہ نے اسے جائز رکھا ہے، اور اپنے لیے خرید و فروخت کرے تو اس کو جائز نہ قرار دیا اس لیے کہ اپنے لیے اس کی جو خرید و فروخت ہوگی اس میں نفع و نقصان دونوں کا احتمال ہے اور دوسرے کے لیے جب اس طور پر خرید و فروخت ہوگی کہ ذمہ بچہ پر نہ آئے تو اس میں اس کے لیے محض نفع ہے کیونکہ اس کی تعبیر اور گفتگو صحیح قرار پا جاتی ہے** اور عاقل بچہ ایسے تصرفات کا اہل ہے جن میں صرف نفع ہو جیسے ہبہ قبول کرنا وغیرہ_ **اور ذمہ بچہ پر نہ آئے گا اس لیے اس میں بچہ کا ضرر ہے الخ (ت) اس طرح جامع الفصولین کی فصل ۳۴ میں بچوں کے احکام کے بیان میں ہے** مگر عبارت بالازیادہ مفید اور عظیم نفع کی حامل ہے۔ اس کی تفصیل سے واضح ہو گیا کہ بچہ اگرچہ محجور ہو مگر بے ضرر تبرع سے محجور نہیں ہے یہ کبری ہو اب ہم صغری بیان کرتے ہیں، بتوفیق الٰہی جب ہم فقہ و حدیث کی رہنمائی میں زیر بحث مسئلہ میں غور کرتے ہیں تو کسی مسلمان کو ثواب ہبہ و ہدیہ کرنے کو بحمدہ تعالیٰ ہم نفع بے ضرر پاتے ہیں۔

[بایاں کالم] قالو اله ذلك وعامتهم على انه ليس له ذلك ثم ان محمدًا رحمه الله تعالى جوز بيع الصبى المحجور عليه وشراه لغيره ولم يجوز بيعه وشراءه لنفسه لان بيعه و شراءه لنفسه مترددان بين النفع والضرر واما بيعه وشراءه لغير على وجه لا يلزم العهدة نفع محض لان فيه تصحيح عبارته والصبى

العاقل من اهل التصرفات النافعة المحضة كقبول الهبة وغير ذلك وانما لا يلزم العهدة لان فيه ضرر للصغير الخ[1] ہمچناں در فصل سی و چہارم از جامع الفصولین در احکام الصبیان[2]ست والعبارة الاولی اتم فائدة واعظم عائدة پس بموضوع پیوست کہ صبی اگرچہ محجور است از تبرع بے ضرر، محجور نیست هذه کبری ونبیں صغری چوں بتوفیقه تعالیٰ بر ہنمائی فقہ وحدیث درما نحن فیه، نظر می کنیم ہبہ ثواب واہدائے او بمسلمانے را بحمد الله تعالیٰ نفع بے ضرر می یابیم این نہ ہمچور ہبہ مال ست کہ چوبکے

---

[1] جامع احکام الصغار علی هامش جامع الفصولین مسائل الوکاله مطبعة الازہریه مصر ۱ / ۷۶۔ ۷۵ [2] جامع الفصولین فصل ۳۴ احکام الصبیان مطبعة الازہریه مصر ۲ / ۲۰۸۔ ۲۰۷

Fatawa Rizviya Volume 9

(Explanation of gifting reward): It is not like the gifting of wealth, where if wealth is given to someone, it leaves the giver. And as long as it remains with the giver, it does not reach the other person; and when it reaches the other person, it will no longer remain with the giver. Here, due to the vastness of divine grace and the perfection of Lordly generosity, the reward remains with the one who presents the gift, and it also reaches the recipient. In fact, because of this act, the giver's own reward is increased tenfold. Thus, this is a profit without any deficiency, and a trade in which there is absolutely no loss.

In Hadith (1): It is mentioned that the radiant presence of the Master of the World, may Allah Almighty bless him and grant him peace, said: "Whoever performs Hajj on behalf of a deceased person, the reward for the one performing Hajj is equal to the reward of that deceased person." Anyone who performs Hajj on behalf of the deceased shall have a reward similar to that of the deceased. Narrated by al-Tabarani in Al-Awsat from Abu Hurairah (may Allah be pleased with him). Hadith 1: The radiant presence of the Master of the World, may Allah Almighty bless him and grant him peace, said: Whoever performs Hajj on behalf of someone who has passed away, for them too there shall be a reward like the reward of the deceased. It was narrated by al-Tabarani in Mu'jam al-Awsat from Hazrat Abu Hurairah (may Allah be pleased with him).

Hadith (2): That the Holy Presence, blessings and peace of Allah Almighty be upon him, said: "When one of you gives optional charity (sadaqah tatawwu'), let him do it on behalf of his parents, so that they will have its reward and nothing will be diminished from his own reward." When anyone among you intends to give optional charity, he should dedicate it to his mother and father so that they receive its reward, and nothing will be reduced from the reward of that person. Narrated by al-Tabarani in Al-Awsat and Ibn Asakir from Abdullah bin Umar (may Allah be pleased with them both). Hadith 2: The Holy Presence, may Allah Almighty bless him and grant him peace, said: When any of you wishes to perform optional charity, he should do so on behalf of his parents, so that they receive its reward, and nothing will be diminished from the reward of that person. It was narrated by al-Tabarani in Mu'jam al-Awsat and by Ibn Asakir from Hazrat Abdullah bin Umar (may Allah be pleased with them both).

Hadith (3): Similarly narrated by al-Daylami in Musnad al-Firdous from Muawiya bin Haydah al-Qushayri (may Allah be pleased with him). Hadith 3: Similarly narrated by al-Daylami in Musnad al-Firdous from Muawiya bin Haydah al-Qushayri (may Allah be pleased with him).

1. Majma' al-Zawa'id, referencing Mu'jam al-Awsat, Book of Hajj, Chapter on the one who dies with Hajj due upon him, Dar al-Kutub, Beirut, 3/282
2. Majma' al-Zawa'id, referencing Mu'jam al-Awsat, Book of Zakat, Chapter on Charity for the Deceased, Dar al-Kutub, Beirut, 3/138

फ़तावा रिज़विया जिल्द नहम (खंड 9)

(पुण्य भेंट करने की व्याख्या): यह धन के उपहार की तरह नहीं है कि जब धन किसी को दिया जाता है तो वह अपने पास से चला जाता है। और जब तक वह अपने पास है, दूसरे के पास नहीं पहुँचता; और जब वह दूसरे के पास पहुँच जाएगा, तो वह आपके पास नहीं रहेगा। यहाँ अल्लाह के अनुग्रह की विशालता और दिव्य पूर्णता के कारण, उपहार देने वाले का पुण्य खुद उसके पास भी रहता है, और जिसे उपहार दिया गया है उसके पास भी पहुँचता है, बल्कि इस कार्य के कारण स्वयं उसका पुण्य दस गुना हो जाता है। तो यह ऐसा लाभ है जिसमें कोई कमी नहीं है, और ऐसा व्यवसाय है जिसमें हरगिज़ कोई घाटा नहीं है।

हदीस (1) में है: कि हुज़ूर पुरनूर सैय्यद-ए-आलम सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम ने फ़रमाया: "जो किसी मृत व्यक्ति की ओर से हज करे, तो हज करने वाले के लिए भी उस मृत व्यक्ति के पुण्य के समान पुण्य होगा।" जो कोई मृत व्यक्ति की ओर से हज करता है, उसे उस मृत व्यक्ति के पुण्य जैसा पुण्य मिलता है। इसे तबरानी ने 'अल-औसत' में हज़रत अबू हुरैरा (रज़ियल्लाहु अन्हु) से रिवायत किया है। हदीस 1: हुज़ूर पुरनूर सैय्यद-ए-आलम सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम ने फ़रमाया: जो किसी मृत व्यक्ति की ओर से हज करे, उसके लिए भी मृत व्यक्ति के पुण्य के बराबर पुण्य होगा। इसे तबरानी ने 'मोजम औसत' में हज़रत अबू हुरैरा (रज़ियल्लाहु अन्हु) से रिवायत किया है।

हदीस (2): कि हुज़ूर अकदस सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम ने फ़रमाया: "जब तुम में से कोई व्यक्ति नफ़्ल सदक़ा (स्वैच्छिक दान) करना चाहे, तो उसे अपने माता-पिता की ओर से करना चाहिए, ताकि उन्हें उसका पुण्य मिले और उसके अपने पुण्य में से कुछ भी कम नहीं होगा।" जब आप में से कोई नफ़्ल सदक़ा देना चाहे, तो उसे अपने माता-पिता के नाम पर देना चाहिए ताकि उन्हें उसका सवाब मिले और उस व्यक्ति के सवाब में कोई कमी न आए। इसे तबरानी ने 'अल-औसत' में और इब्ने असाकिर ने हज़रत अब्दुल्ला बिन उमर (रज़ियल्लाहु अन्हुमा) से रिवायत किया है। हदीस 2: हुज़ूर अकदस सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम ने फ़रमाया: जब तुम में से कोई व्यक्ति नफ़्ल सदक़ा करना चाहे तो चाहिए कि उसे अपने माता-पिता की ओर से कर दे कि उन्हें उसका पुण्य मिलेगा और उस व्यक्ति के पुण्य से कुछ कम न होगा। इसे तबरानी ने 'मोजम औसत' में और इब्ने असाकिर ने हज़रत अब्दुल्ला बिन उमर (रज़ियल्लाहु अन्हुमा) से रिवायत किया है।

हदीस (3): इसी तरह दैलमी ने 'मुसनद अल-फिरदौस' में मुआविया बिन हैदा अल-कुशैरी (रज़ियल्लाहु अन्हु) से रिवायत किया है। हदीस 3: इसी के समान अर्थ दैलमी ने 'मुसनद अल-फिरदौस' में मुआविया बिन हैदा अल-कुशैरी (रज़ियल्लाहु अन्हु) से रिवायत किया है।

1. मजमा-अज़-ज़वाइद, बहवाला मोजम औसत, किताबुल हज, बाब फ़ीमन माता व अलैहिल हज, दारुल किताब बैरूत 3/282
2. मजमा-अज़-ज़वाइद, बहवाला मोजम औसत, किताबुज़ ज़कात, बाब अस-सदकतु अलल मय्यित, दारुल किताब बैरूत 3/138

पृष्ठ 638/948

دھی از خود گم کنی، تانزدت بدیگرے نہ رسد چوں بدیگرے رسد پیش تو نماند این جا بسعت فضل و کمال کرم رب العزۃ جل جلالہ ہم ثواب تونز د تو ماند۔ وہم بموہوب لہ برسد بلکہ بایں کار خوب ثواب تودہ بالا شود۔ پس این نفع بقصور و تجارۃ لن تبور است۔ یہ ہبہ مال کی طرح نہیں کہ مال جب کسی کو دیا تو اپنے پاس سے گیا۔ اور جب تک اپنے پاس ہے دوسرے کے پاس پہنچ جائے گا تو اپنے پاس نہ رہے گا۔ یہاں وسعتِ فضل الٰہی اور کمالِ ربانی سے ہدیہ کرنے والے کا ثواب خود اس کے پاس بھی رہتا ہے، اور موہوب لہ کے پاس بھی پہنچتا ہے بلکہ اس عمل کی وجہ سے خود اس کا ثواب دس گنا ہو جاتا ہے تو یہ ایسا نفع ہے جس میں کوئی کمی نہیں، اور ایسی تجارت ہے جس میں ہر گز کوئی خسارہ نہیں۔

در حدیث (۱): است کہ حضور پر نور سید عالم صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم فرمود من حج عن میت فللذی حج مثل اجرہ ۔ ہر کہ از جانب مردہ حج کند مراد را مثل ثواب آں میت باشد رواہ الطبرانی فی الاوسط عن ابی ہریرۃ رضی اللہ تعالٰی عنہ۔ حدیث ۱: حضور پر نور سید عالم صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم نے فرمایا: جو کسی وفات یافتہ کی جانب سے حج کرے اس کے لیے بھی ثواب میت کے مثل ثواب ہو، اسے طبرانی نے معجم اوسط میں حضرت ابوہریرہ رضی اللہ تعالٰی عنہ سے روایت کیا۔

حدیث (۲): کہ حضور اقدس صلوات اللہ تعالٰی وسلامہ علیہ فرمود اذا تصدق احد کم بصدق تطوعاً فلیجعلھا من ابویہ فیکون لھما اجرھا فلا ینقص من اجرہ شیئی ۔ چوں کسے از شما صدقہ نافلہ کردن خواہد باید کہ اور از مادر و پدر خود گرداند کہ ایشاں را ثواب او باشد واز ثواب ایں کس چیز نکاہد رواہ الطبرانی فی الاوسط و ابن عساکر عن عبداللہ بن عمر رضی اللہ تعالٰی عنھما۔ حدیث ۲: حضور اقدس صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم نے فرمایا: جب تم میں سے کوئی شخص نفل صدقہ کرنا چاہے تو

چاہیے کہ اسے اپنے ماں باپ کی جانب سے کر دے کہ انہیں اس کا ثواب ملے گا اور اس شخص کے ثواب سے کچھ کم نہ ہوگا۔ اسے طبرانی نے معجم اوسط میں اور ابن عساکر نے حضرت عبداللہ بن عمر رضی اللہ تعالیٰ عنہما سے روایت کیا۔

حدیث (۳): روی نحوہ الدیلمی في مسند الفردوس عن معاویۃ بن حیدۃ القشیری رضی اللہ تعالیٰ عنہ۔

حدیث ۳: اسی کے ہم معنی دیلمی نے مسند الفردوس میں معاویہ بن حیدہ قشیری رضی اللہ تعالیٰ عنہ سے روایت کیا۔

1 مجمع الزوائد بحوالہ معجم اوسط کتاب الحج باب فیمن مات وعلیہ الحج دارالکتاب بیروت ۲۸۲/۳

2 مجمع الزوائد بحوالہ معجم اوسط کتاب الزکوٰۃ باب الصدقۃ علی المیت دارالکتاب بیروت ۱۳۸/۳

Fatawa Razawiyya Volume 9

Hadith (4): That he (peace and blessings of Allah be upon him) said: "Whoever passes by a graveyard and recites 'Say, He is Allah, [Who is] One' (Surah Al-Ikhlas) eleven times, then gifts its reward to the dead, he will be given a reward equal to the number of the dead." Whoever passes by a graveyard and reads Surah Ikhlas eleven times and gifts it to the dead, he is given reward according to the number of the dead. Narrated by Al-Daraqutni, Al-Tabarani, Al-Daylami, and Al-Salfi on the authority of the Commander of the Faithful Ali (may Allah honor his face).

Hadith 4: The Holy Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) said: Whoever passes by a graveyard and recites Surah Ikhlas eleven times and bestows its reward on the deceased, he will be given reward equal to the number of the deceased. Al-Daraqutni, Al-Daylami, and Al-Salfi have narrated this from the Commander of the Faithful Ali Karam Allah Ta’ala Wajhah.

Hadith (5): That he (peace and blessings of Allah be upon him) said: "When a man performs Hajj on behalf of his parents, it is accepted from him and from them." [The Hadith] When someone performs Hajj from himself on behalf of his parents, it is accepted from him as well as from them. Narrated by Al-Daraqutni from Zaid bin Arqam (may Allah be pleased with him).

Hadith 5: The Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) said: When someone performs Hajj on behalf of their parents, it will be accepted from his side as well and from their side too. Al-Daraqutni narrated this from Hazrat Zaid bin Arqam (may Allah be pleased with him). It is clear that the meaning of 'acceptance' here is to grant reward. As scholars have clarified it. For this reason, it is stated in Al-Taysir: Meaning He rewards him for it and also rewards both of them for it, so an independent Hajj is written for him and the same for them as well.

It is evident that the meaning of acceptance is the granting of reward, as stated by the scholars. Therefore, it is said in Al-Taysir, i.e., He rewards him and rewards both of them for it; thus, an independent Hajj's reward is written for him and for both of them similarly.

Hadith (6): That he (peace and blessings of Allah be upon him) said: "Whoever performs Hajj on behalf of his father or on behalf of his mother, he has indeed fulfilled it on their behalf."

Hadith 6: The Radiant Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) said: Whoever performed Hajj on behalf of his father or mother, then indeed he has fulfilled it on their behalf.

---

1. Kanz al-Ummal with reference to Rafi'i on the authority of Ali, Hadith 42596, Muassasat al-Risala, Beirut 16/655; Ithaf al-Sadat al-Muttaqin with reference to Abu Muhammad al-Samarqandi in Virtues of Surah al-Ikhlas, Dar al-Fikr, Beirut 10/71.
2. Sunan al-Daraqutni, Book of Hajj, Nashr al-Sunna, Multan 2/260.
3. Al-Taysir Sharh al-Jami' al-Saghir, under the preceding Hadith, Maktabat al-Imam al-Shafi'i, Riyadh, Saudi Arabia 1/89.

फ़तावा रज़विया खंड 9

हदीस (4): कि हुज़ूर (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने फ़रमाया: "जो कोई क़ब्रिस्तान से गुज़रे और 'कुल हुवल्लाहु अहद' (सूरह इख़लास) ग्यारह बार पढ़े, फिर उसका सवाब मुर्दों को बख़्श दे, तो उसे मुर्दों की संख्या के बराबर सवाब दिया जाएगा।" जो भी क़ब्रिस्तान से गुज़रे और सूरह इख़लास ग्यारह बार पढ़कर मुर्दों को बख़्शे, उसे मुर्दों की गिनती के बराबर सवाब दिया जाता है। इसे अल-दाराकुतनी, अत-तबरानी, अद-दैलमी और अस-सल्फी ने अमीरुल मोमिनीन अली करम अल्लाह वज्हहु से रिवायत किया है।

हदीस 4: हुज़ूर अकरम (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने फ़रमाया: जो क़ब्रिस्तान से गुज़रे और सूरह इख़लास ग्यारह बार पढ़ कर उसका सवाब मुर्दों को बख़्श दे, उसे मुर्दों की तादाद के बराबर सवाब दिया जाएगा। इसे दाराकुतनी, दैलमी और सल्फ़ी ने अमीरुल मोमिनीन अली करम अल्लाह तआला वज्हहु से रिवायत किया है।

हदीस (5): कि हुज़ूर (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने फ़रमाया: "जब कोई व्यक्ति अपने माता-पिता की ओर से हज करता है, तो वह उसकी ओर से और उन दोनों की ओर से स्वीकार कर लिया जाता है।" [हदीस] जब कोई अपने वालिदैन की तरफ़ से ख़ुद हज करता है, तो वह उससे भी क़बूल किया जाता है और उन दोनों से भी। इसे अल-दाराकुतनी ने ज़ैद बिन अर्क़म (रज़ियल्लाहु अन्हु) से रिवायत किया है।

हदीस 5: रसूल अकरम (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने फ़रमाया: जब कोई अपने माता-पिता की ओर से हज करे तो उसकी ओर से भी क़बूल किया जाए और उनकी ओर से भी। इसे दाराकुतनी ने हज़रत ज़ैद बिन अर्क़म रज़ियल्लाहु अन्हु से रिवायत किया। ज़ाहिर है कि यहाँ 'क़बूल' का अर्थ सवाब देना है। जैसा कि उलेमा ने इसकी व्याख्या की है। इसीलिए 'तैसीर' में फ़रमाया गया: यानी इस पर उसे भी सवाब दे और उसके माँ-बाप को भी सवाब दे, तो उसके लिए भी एक स्वतंत्र हज लिखा जाता है और उनके लिए भी वैसा ही।

यह स्पष्ट है कि क़बूल का अर्थ सवाब का दिया जाना है, जैसा कि विद्वानों ने स्पष्ट किया है। इसीलिए तैसीर में कहा गया है, अर्थात वह उसे सवाब देता है और उन दोनों को भी उस पर सवाब देता है; इस प्रकार, उसके लिए एक स्वतंत्र हज का सवाब लिखा जाता है और उन दोनों के लिए भी उसी तरह।

हदीस (6): कि हुज़ूर (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने फ़रमाया: "जिसने अपने पिता या अपनी माता की ओर से हज किया, उसने वास्तव में उनकी ओर से इसे पूरा कर दिया।"

हदीस 6: रसूल अनवर (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने फ़रमाया: जिसने अपने बाप या माँ की तरफ़ से हज किया तो वास्तव में उसने उनकी ओर से इसे पूरा कर दिया।

---

1. कंज़ अल-उम्माल, रफ़ीई के हवाले से अली से, हदीस 42596, मुअस्ससतुर् रिसाला, बेरूत 16/655; इत्हाफ़ुस सादातिल मुत्तक़ीन, अबू मुहम्मद समरकंदी के हवाले से सूरह इख़लास के फ़ज़ाइल में, दारुल फ़िक्र, बेरूत 10/71।
2. सुनन अद-दाराकुतनी, किताबुल हज, नश्रुस सुन्ना, मुल्तान 2/260।
3. अत-तैसीर शरह अल-जामी अस-सगीर, पिछली हदीस के तहत, मकतबतु इमाम अल-शाफ़ई, रियाद, सऊदी अरब 1/89।

पृष्ठ 639/948

فتاوی رضویہ جلد نہم

حدیث (۴): کہ فرمود صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم من مر علی المقابر وقرأ قل ھواللہ احد، احدی عشرۃ مرۃ ثم وھب اجرھا للاموات اعطی من الاجر بعدد الاموات - ہر کہ بگورستان گزرد و سورہ اخلاص یازدہ بار خواندہ بمردگان بخشد بشمار مردگان ثوابش دادہ شود۔ رواہ الدار قطنی والطبرانی والدیلمی والسلفی عن امیر المؤمنین علی کرم اللہ وجھہ۔

حدیث ۴: حضور اکرم صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم نے فرمایا: جو قبرستان سے گزرے اور سورہ اخلاص گیارہ بار پڑھ کر اس کا ثواب مردوں کو بخش دے اسے مردوں کی تعداد کے برابر ثواب دیا جائے گا۔ اسے دار قطنی، دیلمی اور سلفی نے امیر المومنین علی کرم اللہ تعالٰی وجہہ سے روایت کی ہے۔

حدیث (۵): کہ فرمود صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم اذا حج الرجل عن والدیہ تقبل منہ ومنھما الحدیث چوں کسے از والدین خودش حج کند ہم از قبول کردہ شود و ہم ایشاں رواہ الدار قطنی عن زید بن ارقم رضی اللہ تعالٰی عنہ۔

حدیث ۵: رسول اکرم صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم نے فرمایا: جب کوئی اپنے والدین کی طرف سے حج کرے تو اس کی جانب سے بھی قبول کیا جائے اور ان کی جانب سے بھی اسے دار قطنی نے حضرت زید بن ارقم رضی اللہ تعالٰی عنہ سے روایت کیا۔ ظاہر ہے کہ قبول کا معنی یہاں ثواب دینا ہے۔ جیسا کہ علماء نے اس کی تصریح فرمائی۔ اسی لیے تیسیر میں فرمایا: یعنی اس پر اسے بھی ثواب دے اور اس کے ماں باپ کو بھی ثواب دے تو اس کے لیے بھی مستقل حج لکھے اور ان کے لیے بھی ویسا ہی۔

پیداست کہ معنی قبول ہمیں عطائے ثواب ست کما نص علیہ العلماء ولذا قال فی التیسیر ای اثابہ واثابہما علیہ فیکتب لہ ثواب حجة مستقلة ولہما کذالك ۔

حدیث (۶): کہ فرمود صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم من حج عن ابیہ او عن امہ فقد قضی عنہ

حدیث ۶: رسول انور صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم نے فرمایا: جس نے اپنے باپ یا ماں کی طرف سے حج کیا تو فقد قضی عنہ (پس بیشک اس نے ان کی طرف سے حج ادا کر دیا)۔

---

1 کنز العمال بحوالہ رافعی عن علی حدیث ۴۲۵۹۶ مؤسسۃ الرسالۃ بیروت ۱۶/ ۶۵۵ ، اتحاف السادۃ المتقین بحوالہ ابو محمد سمرقندی فی فضائل سورۃ الاخلاص دارالفکر بیروت ۱۰/ ۷۱ 2 سنن الدار قطنی کتاب الحج نشر السنۃ ملتان ۲/ ۲۶۰ 3 التیسیر شرح الجامع الصغیر تحت حدیث ما قبل مکتبۃ الامام الشافعی الریاض السعودیہ ۱/ ۸۹

Fatawa Razvia - Volume 9

[Arabic Text]: "...his Hajj, and for him is the virtue of ten pilgrimages." [Urdu Translation]: Indeed, he performed the Hajj on his behalf and gained the virtue of ten Hajj for himself. This was narrated by Al-Daraqutni from Hazrat Jabir bin Abdullah (may Allah be pleased with them both).

In Radd al-Muhtar, it is stated: "The reward does not cease to exist, as you have known," meaning when one gifts the reward of their action to another, it reaches them and does not vanish from the one who gifted it.

In the same Radd al-Muhtar, it is quoted from Allama Nuh Afandi, who narrated from the Manasik of Qazi: "A person's Hajj on behalf of another is better than their Hajj for themselves," etc.

And in the same book, from Tatarkhaniya, it is quoted from Al-Muhit: "It is better for whoever gives voluntary charity to intend it for all believing men and women, for it reaches them all and nothing is subtracted from their reward." It was said: "This is the creed of the Ahl al-Sunnah wal-Jama'ah," etc.

In summary, gifting reward is like lighting a lamp from another lamp; nothing decreases from that lamp, and the other lamp receives light. And undoubtedly the child...

---

1. Sunan al-Daraqutni, Kitab al-Hajj, Nashr al-Sunnah Multan, 260/2
2. Radd al-Muhtar, Bab al-Hajj 'an al-Ghayr, Dar Ihya al-Turath al-Arabi Beirut, 236/2
3. Radd al-Muhtar, Bab al-Hajj 'an al-Ghayr, Dar Ihya al-Turath al-Arabi Beirut, 241/2
4. Radd al-Muhtar, Bab Matlab fi al-Qira'ah lil-Mayyit etc., Dar Ihya al-Turath al-Arabi Beirut, 605/1

फतावा रजविया - जिल्द 9

[अरबी पाठ]: "...उसका हज, और उसके लिए दस हज का पुण्य है।" [उर्दू अनुवाद]: वास्तव में, उसने उसकी ओर से हज अदा किया और स्वयं दस हज का पुण्य प्राप्त किया। इसे दारकुत्नी ने हज़रत जाबिर बिन अब्दुल्लाह (रज़ियल्लाहु अन्हुमा) से रिवायत किया है।

रद अल-मुहतार में है: "पुण्य समाप्त नहीं हो जाता, जैसा कि ज्ञात हुआ," यानी जब कोई अपने कार्य का पुण्य दूसरे को उपहार में देता है, तो वह उन तक पहुँच जाता है और स्वयं उपहार देने वाले के पास से नष्ट नहीं होता।

उसी रद अल-मुहतार में अल्लामा नूह अफ़ंदी से उद्धृत है, जो काज़ी के मनासिक से वर्णन करते हैं: "किसी व्यक्ति का दूसरे की ओर से हज करना, स्वयं की ओर से हज करने से श्रेष्ठ है," आदि।

और उसी में तातारखनिया से, अल-मुहीत के हवाले से उद्धृत है: "जो कोई नफ़्ल (स्वैच्छिक) सदक़ा करे, उसके लिए श्रेष्ठ यह है कि वह सभी मोमिन पुरुषों और महिलाओं के लिए नियत (इरादा) कर ले कि वह उन सब तक पहुँचे और उसके पुण्य से कुछ भी कम नहीं होगा।" कहा गया: "यही अहले सुन्नत वल-जमाअत का पंथ है," आदि।

संक्षेप में, पुण्य उपहार देना एक दीपक से दूसरा दीपक जलाने जैसा है; उस दीपक से कुछ भी कम नहीं होता और दूसरे दीपक को रोशनी मिल जाती है। और निस्संदेह बच्चा...

---

1. सुनन अल-दारकुत्नी, किताब अल-हज, नश्र अल-सुन्नत मुल्तान, 260/2
2. रद अल-मुहतार, बाब अल-हज अनिल गैर, दार इह्या अत-तुराथ अल-अरबी बेरुत, 236/2
3. रद अल-मुहतार, बाब अल-हज अनिल गैर, दार इह्या अत-तुराथ अल-अरबी बेरुत, 241/2
4. रद अल-मुहतार, बाब मतलब फी अल-क़िराअत लिल-मय्यत आदि, दार इह्या अत-तुराथ अल-अरबी बेरुत, 605/1

पृष्ठ 948 का 640

فتاوی رضویہ - جلد نہم

[عربی متن]: حجته وكان له فضل عشر حجج [ترجمہ]: بے شک اس کی جانب سے حج ادا کر دیا اور خود دس حج کی فضیلت پائی اسے دارقطنی نے حضرت جابر بن عبد اللہ رضی اللہ تعالیٰ عنہما سے روایت کیا۔

ردالمحتار میں ہے: ثواب معدوم نہیں ہو جاتا جیسا کہ معلوم ہوا اھ یعنی جب اپنے عمل کا ثواب دوسرے کو ہدیہ کیا تو اس کے پاس پہنچ گیا اور خود ہدیہ کرنے والے کے پاس سے فنا نہ ہوا۔

اسی ردالمحتار میں علامہ نوح آفندی سے منقول ہے وہ مناسک قاضی سے ناقل ہیں: انسان کا دوسرے کی جانب سے حج کرنا خود اپنی طرف سے حج کرنے سے افضل ہے الخ۔

اور اسی میں تاتار خانیہ سے، اس میں محیط سے منقول ہے: جو کوئی نفل صدقہ کرے اس کے لیے افضل یہ ہے کہ تمام مومنین و مومنات کی نیت کرلے کہ وہ ان سب کو پہنچے اور اس کے اجر سے کچھ کم نہ ہوگا اھ فرمایا: یہی اہل سنت و جماعت کا مذہب ہے الخ۔

مختصر یہ کہ ثواب ہدیہ کرنا ایسا ہے جیسے چراغ سے چراغ جلانا کہ اس چراغ سے کچھ کم نہیں ہوتا اور دوسرے چراغ کو روشنی مل جاتی ہے اور بلا شبہ بچہ اس

---

1 سنن الدار قطنی کتاب الحج نشر السنہ ملتان ۲۶۰/۲ 2 ردالمحتار باب الحج عن الغیر داراحیاء التراث العربی بیروت ۲۳۶/۲ 3 ردالمحتار باب الحج عن الغیر داراحیاء التراث العربی بیروت ۲۴۱/۲ 4 ردالمحتار باب مطلب فی القرآۃ للمیت الخ داراحیاء التراث العربی بیروت ۶۰۵/۱

It is by no means permissible as a form of voluntary donation. In fact, lighting a lamp cannot even be its equivalent, because while lighting a lamp doesn't decrease anything, it doesn't increase anything either. Whereas here, the reward for the donor becomes ten times for one. And Allah increases for whom He wills, and Allah is All-Embracing, All-Knowing.

Suppose, for instance, if in the physical world there was such a situation where a child gives a dirham, and that dirham reaches the recipient while also remaining in the child's hand and becoming ten from one, would it be conceivable that the pure Shari'ah would prevent the child from such a transaction? Heaven forbid! Restriction is for the sake of avoiding harm, not for preventing benefit or causing loss. This is the perspective in this matter. (T)

Then I say: And through Allah is success (then I say, and success is only from Allah the Almighty. T). Let us bring the explicit clarification of this specific issue from the words of the scholars. Our scholars have explicitly stated in general books that the basis for performing Hajj on behalf of another is this universal principle: a human can dedicate the reward of his actions to another... It is stated in Al-Hidayah, Chapter of Hajj on behalf of another:

'The principle in this chapter is that according to the People of Sunnah and Jamā'ah, a person has the right to dedicate the reward of his deed to someone else—whether it be prayer, fasting, charity, or anything else.' Ended. Similarly, in Khizanat al-Muftin, it is mentioned for Hidayah with the symbol "h".

And in Al-Durr, Chapter of Hajj on behalf of another: The principle is that everyone who performs an act of worship for his wealth...

---

[1] Al-Hidayah, Chapter of Hajj on behalf of another, Al-Maktabah al-Arabiyah, Karachi, 1/261

फ़तावा रज़विया, जिल्द नौ

यह किसी भी तरह से दान (तबर्रुक) के रूप में जायज़ नहीं है। यहाँ तक कि चिराग जलाना भी इसका उदाहरण नहीं हो सकता, क्योंकि चिराग से अगर कुछ कम नहीं होता तो कुछ बढ़ता भी नहीं है। जबकि यहाँ दान करने वाले का सवाब एक के दस हो जाता है। और अल्लाह जिसके लिए चाहता है और बढ़ाता है। और अल्लाह बड़ी कुदरत वाला और जानने वाला है।

मान लीजिए, उदाहरण के तौर पर, अगर भौतिक दुनिया में भी ऐसी कोई स्थिति होती कि एक बच्चा एक दिरहम दे और वह दिरहम प्राप्तकर्ता के पास भी पहुँच जाए और बच्चे के हाथ में भी बना रहे और एक का दस हो जाए, तो क्या यह सोचा जा सकता था कि पाक शरीयत बच्चे को ऐसे व्यवहार से रोक देती? कतई नहीं! पाबंदी (हज्र) नुकसान को दूर करने के लिए होती है, लाभ को रोकने या पत्थर मारने (नुकसान पहुँचाने) के लिए नहीं। इस मामले में यही दृष्टिकोण है। (त)

फिर मैं कहता हूँ: और अल्लाह ही से सफलता है (फिर मैं कहता हूँ, और सफलता केवल अल्लाह ताला ही से है। त)। विद्वानों के शब्दों से हम स्वयं इस उप-विषय की स्पष्टता लाते हैं। हमारे विद्वानों ने सामान्य पुस्तकों में स्पष्ट किया है कि दूसरे की ओर से हज का आधार इसी व्यापक सिद्धांत पर है कि मनुष्य अपने कर्म का सवाब दूसरे को दे सकता है... हिदाया, 'दूसरे की ओर से हज' के अध्याय में है:

'इस अध्याय में मूल सिद्धांत यह है कि अहले सुन्नत व जमात के अनुसार मनुष्य को यह अधिकार प्राप्त है कि वह अपने कर्म का सवाब किसी दूसरे को दे दे। चाहे वह नमाज़ हो, रोज़ा हो, दान हो या कुछ और।' समाप्त। इसी तरह 'ख़ज़ानतुल मुफ़्तीन' में हिदाया के लिए "ह" (ھ) के संकेत के साथ है।

और 'अल-दुर' में 'दूसरे की ओर से हज' के अध्याय में: मूल सिद्धांत यह है कि प्रत्येक व्यक्ति जो अपने धन से इबादत करता है...

---

[1] अल-हिदाया, बाब अल-हज अन अल-गैर, अल-मकतबा अल-अरबिया, कराची, 1/261

زنہار مجوز نیست بلکہ چراغ افروختن نیز نظیر او نتوان شد کہ آنجار اگر از چراغ چیزی کم نشود فزوں ہم نشود وانجا ثواب واہب یکے دہ می شود و اللہ یضاعف لمن یشاء واللہ واسع علیم۔ بمثل فرض کن اگر در محسوس نیز صورتی ہمچناں یافتہ شدے کہ صبی در ہمی دہد و آن درہم ہم بمو ہوب لہ رسد و ہم بدست صبی برقرار ماند ویگی دہ گردد آیا معقول بود کہ شرع مطہر صبی را از ہمچو تصرف باز داشتے حاش اللہ حجر برائے نظر و وضع ضرر است نہ بہر دفع نفع والحاق بحجر این ست دریں مسئلہ طریق نظر۔

طرح کے تبرع سے ہرگز مجوز نہیں۔ بلکہ چراغ جلانا بھی اس کی نظیر نہیں ہو سکتی کہ وہاں اگر چراغ سے کچھ کم نہیں ہوتا تو کچھ زائد بھی نہیں ہوتا۔ اور یہاں ہبہ کرنیوالے کا ثواب ایک کا دس ہو جاتا ہے۔ اور اللہ جس کیلئے چاہے اور زیادہ کرتا ہے۔ اور اللہ وسعت والا علم والا ہے۔ بطورِ مثل فرض کیجئے اگر عالم محسوس میں بھی کوئی ایسی صورت ہوتی کہ بچہ ایک درہم دے وہ درہم موہوب لہ کے پاس بھی پہنچے اور بچے کے ہاتھ میں بھی برقرار رہے اور ایک کا دس ہو جائے تو کیا یہ متصور تھا کہ شرع مطہر بچے کو ایسے تصرف سے روک دیتی_حاشاللہ! حجر ضرر دور کرنے پر نظر کے لیے ہے نفع دور کرنے اور حجر (پتھر) سے لاحق کرنے کے لیے نہیں ہے_یہ اس مسئلہ میں طریقِ نظر ہے۔ (ت)

ثم اقول: وباللہ التوفیق بمانا از کلمات علماء نص جزیہ بر آریم علمائے مادر عامہ کتب تصریح فرمودہ اند کہ مسئلہ حج عن الغیر بر ہماں اصل کلی مبتنی ست کہ انسان را می رسد کہ ثواب عملش ازاں دیگری کند۔ فی الہدایہ باب الحج عن الغیر:

الاصل في هذا الباب ان الانسان له ان يجعل ثواب عمله لغيره صلوة او صوماً او صدقة او غيرها عند اهل السنة والجماعة[1] اهـ ومثله في خزانة المفتين برمز "ه" لها۔

ثم اقول: وباللہ التوفیق (پھر میں کہتا ہوں اور توفیق خدا تعالی ہی سے ہے۔ ت) کلماتِ علماء سے ہم خود اس جزئیہ کی صراحت لائیں۔ ہمارے علماء نے عامہ کتب میں تصریح فرمائی ہے کہ دوسرے کی جانب سے حج کی بنیاد اسی قاعدہ کلیہ پر ہے کہ انسان اپنے عمل کا ثواب دوسرے کے لیے کر سکتا ہے۔۔۔ ہدایہ باب الحج عن الغیر میں ہے : اس باب میں اصل یہ ہے کہ اہلسنت و جماعت کے نزدیک انسان کو حق حاصل ہے کہ اپنے عمل کا ثواب کسی دوسرے کے لیے کر دے۔ نماز ہو یا روزہ یا صدقہ یا اور کچھ، اھ اسی کے مثل خزانہ المفتین میں ہدایہ کے لیے "ھ" کے رمز کے ساتھ ہے۔

و فی الدر باب الحج عن الغیر الاصل ان کل من اتی بعبادۃ مالہ

---

[1] الہدایہ باب الحج عن الغیر المکتبۃ العربیہ کراچی ۱/۲۶۱

Fatawa Razawiyya, Volume 9

[Left Column] "Gifting its reward to another"[1] (quoted from Al-Durr al-Mukhtar). In Al-Hindiyyah, referencing Al-Ghayah, it is like Al-Hidayah but with a beneficial addition. In Multaqa al-Abhur at the end of the chapter: "A person can gift the reward of his deeds to another in all forms of worship."[2] In the commentary Majma' al-Anhur: "This serves as a reasoning for what preceded."[3] Thus, it is established that performing Hajj for someone else belongs to the category of gifting rewards. Otherwise, what would be the reason for this sub-division? Now it remains to be seen whether a child can also perform Hajj on behalf of another or not. In the books of the [Hanafi] school, there are clear explications that he can. In Tanwir al-Absar: "The eligibility of the proxy is a condition for the validity of the acts."[4] In the marginalia of 'Allamah al-Tahtawi: "Validity was used rather than obligation so that it includes the adolescent (murahiq), for he is capable of validity though not subject to obligation."[5] In Al-Durr al-Mukhtar: "Performing Hajj is permissible by a person who hasn't performed Hajj (sarurah), a woman, a slave, an adolescent, and others are even more appropriate due to the lack of disagreement."[6] (Summary). And in Radd al-Muhtar: "The condition is eligibility, not masculinity, freedom, or reaching puberty."[7] (Summary). Also, it is mentioned in Al-Lubab among the list of conditions.

[Right Column] In Durr al-Mukhtar, Chapter: Hajj on behalf of others, it says: The basic principle is that any person who performs any worship has the authority to gift its reward to someone else. In Al-Hindiyyah, citing Al-Ghayah, the text is like Al-Hidayah but with a useful addition. In Multaqa al-Abhur at the end of the said chapter, it says: A human being has the authority in all acts of worship to gift the reward of his action to someone else. In its commentary Majma' al-Anhur, it says: This statement is in the position of a reason for the preceding discourse. Thus, it is proven that performing Hajj on behalf of another is from the category of gifting reward. Otherwise, what would be the point of this branch? Now it should be seen whether a child can also perform Hajj on behalf of another or not? There are clear explications in the books of the school that he can. In Tanwir al-Absar, it is stated: For the validity of acts, the eligibility of the person appointed is a condition. In the marginalia of 'Allamah al-Tahtawi, it says: It is expressed as "validity" and not "obligation". So that the 'murahiq' (boys near puberty) are included.

[Footnotes] 1. Durr al-Mukhtar, Chapter: Hajj on behalf of another, Mujtabai Press, Delhi, 1/181. 2. Multaqa al-Abhur, Chapter: Hajj on behalf of another, Mu'assasat al-Risalah, Beirut, 1/234. 3. Majma' al-Anhur Sharh Multaqa al-Abhur, Chapter: Hajj on

behalf of another, Dar Ihya al-Turath al-Arabi, Beirut, 1/310. 4. Durr al-Mukhtar Sharh Tanwir al-Absar, Chapter: Hajj on behalf of another, Mujtabai Press, Delhi, 1/181. 5. Tahtawi 'ala al-Durr al-Mukhtar, Chapter: Hajj on behalf of another, Dar al-Ma'rifah, Beirut, 1/549. 6. Durr al-Mukhtar, Chapter: Hajj on behalf of another, Mujtabai Press, Delhi, 1/182. 7. Radd al-Muhtar, Chapter: Hajj on behalf of another, Dar Ihya al-Turath al-Arabi, Beirut, 1/414.

फतावा रज़विया, जिल्द नहम (खंड 9)

[बायां कॉलम] "इसका सवाब दूसरे के लिए कर देना"[1] (दुर्रे मुख़्तार से उद्धृत)। अल-हिन्दिया में 'ग़ाया' के हवाले से 'हिदाया' की तरह एक उपयोगी वृद्धि के साथ है। मुल्तक़ल अबहुर के अध्याय के अंत में है: "मनुष्य सभी इबादतों में अपने कर्म का सवाब दूसरे के लिए कर सकता है।"[2] मजमउल अनहुर (व्याख्या) में है: "यह पूर्ववर्ती बात के लिए कारण के रूप में आया है।"[3] अतः सिद्ध हुआ कि दूसरे की ओर से हज करना सवाब पहुंचाने के अध्याय से है। अन्यथा इस उप-विभाजन का क्या आधार होता? अब देखना चाहिए कि क्या बच्चा भी दूसरे की ओर से हज कर सकता है या नहीं। मज़हब की किताबों में स्पष्ट वर्णन है कि कर सकता है। तनवीरुल अबसार में है: "कार्यों की वैधता के लिए नियुक्त व्यक्ति की पात्रता शर्त है।"[4] अल्लामा तहतावी के हाशिये (टिप्पणी) में है: "वैधता शब्द का प्रयोग किया गया है, अनिवार्यता का नहीं। ताकि इसमें मुराहिक़ (यौवन के करीब का लड़का) भी शामिल हो जाए, क्योंकि वह वैधता का पात्र है, अनिवार्यता का नहीं।"[5] दुर्रे मुख़्तार में है: "सरूरा (जिसने अपना हज न किया हो), स्त्री, दास, मुराहिक़ आदि द्वारा हज करना जायज़ है और मतभेद न होने के कारण यह अधिक उपयुक्त है।"[6] (संक्षेप)। और रद उल-मुह्तार में है: "शर्त पात्रता है, पुरुष होना, स्वतंत्र होना या वयस्क होना नहीं।"[7] (संक्षेप)। और इसी तरह लुबाब में शर्तों की सूची में इसका उल्लेख है।

[दायां कॉलम] दुर्रे मुख़्तार, बाबुल हज्ज अनिल ग़ैर (दूसरे की ओर से हज का अध्याय) में है: मूल यह है कि जो व्यक्ति भी कोई भी इबादत करे, उसे यह अधिकार है कि वह उसका सवाब दूसरे के लिए कर दे। हिन्दिया में 'ग़ाया' के हवाले से इबारत 'हिदाया' की तरह एक उपयोगी वृद्धि के साथ है। मुल्तक़ल अबहुर के उक्त अध्याय के अंत में है: इंसान को तमाम इबादतों पर अधिकार है कि अपने अमल का सवाब दूसरे के लिए कर दे। इसकी शरह (व्याख्या) मजमउल अनहुर में है: यह इबादत बयान-ए-माक़ब्ल (पिछली बात) के इल्लत (कारण) की मंज़िल में है— तो साबित हुआ कि दूसरे की जानिब से हज करना अहदा-ए-सवाब (सवाब भेंट करने) के बाब से है— वरना इस तफरीअ (शाखा/विभाजन) का क्या मौका होता— अब देखना चाहिए कि बच्चा भी दूसरे की जानिब से हज कर सकता है या नहीं?— कुतुब-ए-मज़हब में रौशन तसरीहात (स्पष्ट विवरण) मौजूद हैं कि कर सकता है। तनवीरुल अबसार में है: सेहत-ए-अफआल (कार्यों की वैधता) के लिए मामूर (नियुक्त) का अहल (पात्र) होना शर्त है। हाशिय-ए-अल्लामा तहतावी में है: "सेहत" से ताबीर फ़रमाई "वजुब" से नहीं। ताकि मुराहिक़ (करीब-उल-बुलूग लड़के) शामिल हो सकें।

[पादलेख/फुटनोट्स] 1. दुर्रे मुख़्तार, बाबुल हज्ज अनिल ग़ैर, मतबा मुज्तबाई दिल्ली, 1/181 2. मुल्तक़ल अबहुर, बाबुल हज्ज अनिल ग़ैर, मुअस्ससतुर् रसाला बेरूत, 1/234 3. मजमउल अनहुर शरह मुल्तक़ल अबहुर, बाबुल हज्ज अनिल ग़ैर, दार इह्याउत् तुरासुल अरबी बेरूत, 1/310 4. दुर्रे मुख़्तार शरह तनवीरुल अबसार, बाबुल हज्ज अनिल ग़ैर, मतबा मुज्तबाई दिल्ली, 1/181 5. तहतावी अलद् दुर्रिल मुख़्तार, बाबुल हज्ज अनिल ग़ैर, दारुल मारिफ़ा बेरूत, 1/549 6. दुर्रे मुख़्तार, बाबुल हज्ज अनिल ग़ैर, मतबा मुज्तबाई दिल्ली, 1/182 7. रद उल-मुह्तार, बाबुल हज्ज अनिल ग़ैर, दार इह्याउत् तुरासुल अरबी बेरूत, 1/414

पृष्ठ 642 / 948

جلد نہم فتاویٰ رضویہ

[Left Column] جعلُ ثوابها لغيره[1] اه وفی الهنديه عن الغاية كالهداية مع زيادة مفيدة وفی ملتقی الابحر اخر الباب وللانسان ان يجعل ثواب عمله لغيره في جميع العبادات [2] اه قال فی شرح مجمع الانهر هذا وقع فی معرض العلة لما قبله [3] اه پس ثابت شد کہ حج از دیگرے کردن از باب اہدائے ثواب است، ورنہ ایں تفریع راچہ محل بودے، حالا باید دید کہ صبی نیز حج عن الغیر تواں کرد یا نہ، در کتب مذہب تصریحات جلیہ است کہ می تواں کرد۔ در تنویر الابصار است یشترط اهلية المأمور لصحة الافعال [4]۔ در حاشیہ علامہ طحطاوی است عبر بالصحة دون الوجوب ليعم المراهق فانه اهل للصحة دون الوجوب [5]۔ در مختار است فجاز حج الصرورة والمرأة والعبد والمراهق وغيرهم اولی لعدم الخلاف [6] اه ملخصا۔ ودر ردالمختار است الشرط هو الاهلية دون الذكورة والحرية والبلوغ [7] اه ملخصا و ہم دراں از لباب در تعداد شرائط آورد

[Right Column] درمختار باب الحج عن الغیر میں ہے: اصل یہ ہے کہ جو شخص بھی کوئی بھی عبادت کرے اسے اختیار ہے کہ اس کا ثواب دوسرے کے لیے کردے اھ، ہندیہ میں غایہ کے حوالے سے عبارت ہدایت کی طرح ایک مفید اضافے کے ساتھ ہے، ملتقٰی الابحر باب مذکور کے آخر میں ہے: انسان کو تمام عبادات پر اختیار ہے کہ اپنے عمل کا ثواب دوسرے کے لیے کردے اھ اس کی شرح مجمع الانہر میں ہے: یہ عبادت بیانِ ماقبل کے علت کی منزل میں ہے _ **تو ثابت ہوا کہ دوسرے کی جانب سے حج کرنا اہدائے ثواب کے باب سے ہے ورنہ اس تفریع کا کیا موقع ہوتا _ اب دیکھنا چاہئے کہ بچہ بھی دوسرے کی جانب سے حج کرسکتا ہے یا نہیں؟** کتبِ مذہب میں روشن تصریحات موجود ہیں کہ کرسکتا ہے __ تنویر الابصار میں ہے: صحتِ افعال کے لیے

مامور کا اہل ہونا شرط ہے حاشیہ علامہ طحطاوی میں ہے: "صحت" سے تعبیر فرمائی "وجوب" سے نہیں۔ تاکہ مراھق (قریب البلوغ لڑکے)

[Footnotes] 1 درمختار باب الحج عن الغیر مطبع مجتبائی دہلی ۱/۱۸۱ 2 ملتقٰی الابحر باب الحج عن الغیر موسسۃ الرسالہ بیروت ۱/۲۳۴ 3 مجمع الانہر شرح ملتقی الابحر باب الحج عن الغیر دار احیاء التراث العربی بیروت ۱/۳۱۰ 4 در مختار شرح تنویر الابصار باب الحج عن الغیر مطبع مجتبائی دہلی ۱/۱۸۱ 5 طحطاوی علی الدر المختار باب الحج عن الغیر دارالمعرفۃ بیروت ۱/۵۴۹ 6 در مختار باب الحج عن الغیر مطبع مجتبائی دہلی ۱/۱۸۲ 7 ردالمختار باب الحج عن الغیر دار احیاء التراث العربی بیروت ۱/۴۱۴

Fatawa Rizwia Volume 9

[Right Column - Urdu Text] ...also included because the performance of Hajj through him is valid, but it is not obligatory upon him. It is stated in Durr al-Mukhtar: A 'sarurah' (one who has not performed his own Hajj for Islam), woman, slave, or adolescent's Hajj [on behalf of another] is permissible, and it is better to be other than these (for Hajj Badal) so that the disagreement of Imams is avoided. [End summary]. In Radd al-Muhtar it says: The condition is only eligibility. Being male, free, or an adult are not conditions. [End summary]. In the same work, quoting 'Al-Lubab' regarding the number of conditions: The nineteenth condition is that the commissioned person be discerning and sensible. So, having a non-discerning child perform Hajj is not valid, and having an adolescent perform Hajj is valid. In the same work: All these conditions are for obligatory Hajj; in voluntary Hajj, there are no conditions except for Islam, sanity, and discernment. Similarly, in the Manasik of Allama Sindhi... In Al-Hindiyyah from Ghayat al-Suruji, citing Allama Kirmani: "It is superior that he be aware of the method of Hajj and the actions of Hajj, and be free, sane, and an adult." [End quote]. I say: Here, 'sane' refers to the opposite of 'ma'tuh' (mentally deficient), whose ruling is like that of a discerning child. It does not mean the opposite of 'majnun' (madman), because sanity itself is a condition for the 'validity' (sihhat) of all worships, and here the discussion is about 'superiority' (afdhaliyyah). The result is that it is superior that he be not a slave,

[Left Column - Arabic/Persian/Urdu Text] The nineteenth: discernment of the commissioned person. Thus, it is not valid for a non-discerning child to perform Hajj on behalf of someone else, but it is valid for an adolescent (murahiq) to do so. All these conditions are for obligatory Hajj. As for voluntary (nafl) Hajj, none of these are conditions except for Islam, sanity, and discernment... Similarly, it is stated in the Manasik of Allama Sindhi and in Al-Hindiyyah from Ghayat al-Suruji, a commentary on Al-Hidayah, quoting Allama Kirmani: "It is better that he be knowledgeable about the method of Hajj and its actions, and be a free, sane, and adult person." [End quote]. I say: What is meant by "sane" here is the opposite of one who is mentally deficient (ma'tuh), whose status is like that of a discerning child, and not the opposite of a madman (majnun). This is because basic sanity is a condition for the validity of worship, whereas the discussion here is about "superiority" (afdhaliyyah). The conclusion is that it is superior that he is neither a slave, nor mentally deficient, nor a discerning child. I have provided numerous citations for this issue because some manuscripts of 'Al-Lubab' contain a scribal error that led the commentator into a

confused discussion. We have responded, by the power of Allah, in our annotations on its pathways with that which cannot be surpassed, and there is no need for us to prolong it by citing it there. According to the Zahir al-Riwayah supported by explicit texts of authentic Hadiths, the action itself is attributed to the one who commanded it. This meaning in this...

[Footnotes] 1. Radd al-Muhtar, citing al-Lubab, Chapter on Hajj on behalf of others, Dar Ihya al-Turath al-Arabi, Beirut, 2/240. 2. Radd al-Muhtar, citing al-Lubab, Chapter on Hajj on behalf of others, Dar Ihya al-Turath al-Arabi, Beirut, 2/240. 3. Fatawa Hindiyyah, Fourth Chapter on Hajj on behalf of others, Noorani Kutub Khana Peshawar, 1/257.

फ़तावा रज़विया खंड 9

[दायां कॉलम - उर्दू टेक्स्ट] ...भी शामिल हो क्योंकि उसके द्वारा हज की अदायगी सही है, लेकिन उस पर अनिवार्य नहीं है। दुर्रे मुख्तार में है: सरूरा (जिसने अपना इस्लाम का हज न किया हो), औरत, गुलाम और मुराहीक (किशोर) का हज [दूसरे की ओर से] जायज़ है और इनके अलावा (हज-ए-बदल के लिए) हों तो बेहतर है ताकि इमामों का मतभेद न रहे। [संक्षेप]। रद्दुल मुहतार में है: शर्त केवल पात्रता (अहलियत) है। पुरुष होना, स्वतंत्र होना, वयस्क होना शर्त नहीं है। [संक्षेप]। इसी में लुबाब से शर्तों की संख्या में उद्धृत है: उन्नीसवीं शर्त यह है कि नियुक्त व्यक्ति समझदार (बा-तमीज़) हो, तो नासमझ बच्चे से हज कराना सही नहीं है और मुराहीक से हज कराना सही है। इसी में है: ये सारी शर्तें अनिवार्य हज के लिए हैं; नफ़्ल हज में इस्लाम, अक्ल और तमीज़ के सिवा कोई शर्त नहीं है। इसी तरह मनासिक अल्लामा सिंधी में है... हिंदिया में ग़ायत-उस-सरूजी से अल्लामा किरमानी के हवाले से है: बेहतर यह है कि वह हज के तरीके और हज के कार्यों से अवगत हो और स्वतंत्र, बुद्धिमान, वयस्क हो। [अंत]। मैं कहता हूँ: यहाँ 'बुद्धिमान' (आकिल) से तात्पर्य 'मअतूह' (मानसिक रूप से कमजोर) का विपरीत है, जिसका आदेश एक समझदार बच्चे के समान है। इसका अर्थ पागल (मजनून) का विपरीत नहीं है, क्योंकि बुद्धि स्वयं सभी इबादतों की 'शुद्धता' (सिहत) के लिए शर्त है, और यहाँ चर्चा 'उत्कृष्टता' (अफ़ज़लियत) के बारे में है। परिणाम यह हुआ कि श्रेष्ठ यह है कि वह गुलाम न हो,

[बायां कॉलम - अरबी/फ़ारसी/उर्दू टेक्स्ट] उन्नीसवाँ: नियुक्त व्यक्ति की समझदारी (तमीज़)। अतः एक नासमझ बच्चे का हज कराना सही नहीं है और मुराहीक (किशोर) का हज कराना सही है। ये सभी शर्तें अनिवार्य हज में हैं। जहाँ तक नफ़्ल हज का प्रश्न है, इस्लाम, अक्ल और तमीज़ के अलावा इनमें से कोई भी शर्त नहीं है... इसी तरह मनासिक अल्लामा सिंधी में है और हिंदिया में ग़ायत-उस-सरूजी (हिदाया की व्याख्या) से अल्लामा किरमानी ने उद्धृत किया है: "श्रेष्ठ यह है कि वह हज के तरीके और उसके कार्यों को जानने वाला हो, और स्वतंत्र, बुद्धिमान, वयस्क हो।" [अंत]। मैं कहता हूँ: यहाँ बुद्धिमान से तात्पर्य वह है जो 'मअतूह' का विपरीत हो, जिसका आदेश समझदार बच्चे के समान है, न कि पागल का विपरीत, क्योंकि मूल बुद्धि इबादतों की शुद्धता की शर्त है और यहाँ चर्चा श्रेष्ठता के बारे में है। निष्कर्ष यह है कि श्रेष्ठ यह है कि वह न गुलाम हो, न मअतूह हो, और न ही समझदार बच्चा हो। मैंने इस मसले में उद्धरणों की अधिकता इसलिए की क्योंकि 'अल-लुबाब' की कुछ प्रतियों में लेखन त्रुटि हुई जिससे व्याख्याकार भ्रमित चर्चा में पड़ गए। हमने अल्लाह की शक्ति से, इसके

मार्गों पर अपनी टिप्पणियों में वह उत्तर दिया है जिससे अधिक की आवश्यकता नहीं, और हमें वहाँ इसे उद्धृत करके लंबा करने की आवश्यकता नहीं है। ज़ाहिर-अर-रिवाया के अनुसार, जो प्रामाणिक हदीसों के स्पष्ट पाठों द्वारा समर्थित है, कार्य स्वयं आदेश देने वाले की ओर से माना जाता है। यह अर्थ इसमें...

[फुटनोट] 1. रद्दुल मुहतार, हवाला अल-लुबाब, बाब अल-हज अन अल-ग़ैर, दार इहया अल-तुराथ अल-अरबी, बेरुत, 2/240. 2. रद्दुल मुहतार, हवाला अल-लुबाब, बाब अल-हज अन अल-ग़ैर, दार इहया अल-तुराथ अल-अरबी, बेरुत, 2/240. 3. फ़तावा हिंदिया, चौथा अध्याय, हज अन अल-ग़ैर में, नूरानी कुतुब खाना पेशावर, 1/257.

فتاوی رضویہ جلد نہم

[دایاں کالم] کو بھی شامل ہو کیونکہ حج کی ادائیگی اس سے صحیح ہے مگر اس پر واجب نہیں در مختار میں ہے: صرورہ (جس نے اپنا حج اسلام نہ کیا ہو) عورت، غلام اور مراہق کا حج جائز ہے اور ان کے علاوہ (حج بدل کے لیے) ہوں تو بہتر ہے تاکہ اختلاف ائمہ نہ رہے اھ ملخصاً --- رد المحتار میں ہے: شرط صرف اہلیت ہے۔ مرد ہونا، آزاد ہونا، بالغ ہونا شرط نہیں اھ ملخصاً اسی میں لباب سے تعدادِ شرائط میں نقل ہے: انیسویں شرط یہ ہے کہ مامور باتمیز سمجھدار ہو، تو نا سمجھ بچے سے حج کرانا صحیح نہیں اور مراہق سے حج کرانا صحیح ہے --- اسی میں ہے: یہ ساری شرطیں حج فرض میں نفل میں اسلام، عقل اور تمیز کے سوا کوئی شرط نہیں اسی طرح مناسک علامہ سندھی میں ہے --- ہندیہ میں غایۃ السروجی از علامہ کرمانی کے حوالے سے ہے: افضل یہ ہے کہ طریقہ حج اور افعالِ حج سے باخبر ہو اور آزاد، عاقل، بالغ ہو اھ اقول: یہاں عاقل سے مراد معتوہ کا مقابل ہے جس کا حکم عاقل بچے کا ہے، مجنون کا مقابل مراد نہیں اس لیے کہ نفس عقل تو تمام عبادات کی "صحت" کے لیے شرط ہے، اور یہاں کلام "افضلیت" کے بارے میں ہے۔ حاصل یہ ہوا کہ افضل یہ ہے کہ نہ غلام ہو،

[بایاں کالم] والتاسع عشر تمیز المأمور فلا یصح احجاج صبی غیر ممیز ویصح احجاج المراھق ۱ھم دراسات ھذہ الشرائط کلھا فی الحج الفرض واما النفل فلا یشترط فیہ شیئ منھا الا الاسلام والعقل والتمییز ۲۔۔ ہمچنان در مناسک علامہ سندھی است و در ہندیہ از غایۃ السروجی شرح ہدایۃ از علامہ کرمانی آورد الافضل ان یکون عالماً بطریق الحج وافعالہ ویکون حراً عاقلاً بالغاً ۳ اہ اقول: المراد بالعاقل ما یقابل المعتوہ الذی حکمہ حکم الصبی العاقل دون ما یقابل المجنون لان اصل العاقل شرط صحۃ العبادات والکلام ھھنا فی الافضلیۃ وکان الحاصل ان الافضل ان لا یکون عبد اولا معتوھا

ولا صبيا مميزا وانما اكثرنا من النقول فى المسئلة لما وقع فى بعض نسخ اللباب من تصحيف اوقع الشارح فى بحث مضطرب وقد اجبنا بحول الله تعالى فى ما علقنا على طرقه بمالا مزيد عليه ولا حاجة بنا الى الاطالة بإيراداه وہاں باز برظاہر الروايہ مؤيد بنصوص صراح احاديث صحاح كه نفس عمل از جانب آمر واقع شود۔ ايں معنى دريں

[حواشى] 1. رد المحتار بحوالہ اللباب باب الحج عن الغير دار احياء التراث العربى بيروت ۲۴۰/۲ 2. رد المحتار بحوالہ اللباب باب الحج عن الغير دار احياء التراث العربى بيروت ۲۴۰/۲ 3. فتاوىٰ ہنديہ الباب الرابع فى الحج عن الغير نورانى كتب خانہ پشاور ۱/ ۲۵۷

Fatawa Razawiyya, Volume 9

Our argument is supported by the fact that when a discerning child performs an original act for another, it is valid, and gifting the reward is a consequence of it. This is based on the saying of the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him), as narrated from him, "it will be accepted from him and from both of them," as we have mentioned earlier. So, what prevents or hinders the mere gifting of reward? The discussion here is lengthy and Divine grace is wide, but we content ourselves with this much, praising our Lord for His generosity and gifts, and sending blessings upon our Master Muhammad and his progeny. Allah (Glorified and Exalted is He) knows best, and the knowledge of that Great Being is most perfect and firm. (T)

...neither an insane person nor a discerning child. We have presented more references in this matter because some copies of 'al-Lubab' had scribal errors that led the commentator into a confused discussion, the answer to which, by the help of Allah, we have fully provided in its marginalia; there is no need to repeat it here and lengthen the discourse. Then, based on Zahir al-Riwayah, which is supported by explicit texts of authentic ahadith, the act itself originates from the one who commands it. This meaning is more supportive for us in this work; when a discerning child can perform the original act for another and in their favor, and gifting the reward is also one of its consequences—and it is the saying of the Noble Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) in the aforementioned narration that "it will be accepted from him and from both his parents"—then who is the preventer and what is the obstacle to gifting the reward? The discourse here is long and the door of divine grace is wide, but we suffice with this much. Along with this, we praise our Lord for His generosity and kindness, and send blessings upon our Master Muhammad and his progeny. Allah, the Pure and Most High, is the best Knower, and the knowledge of that Great Being is more complete and firm. (T)

Problem 242: From Allahabad, Madrasa Subhania, Dar al-Atibba, sent by Muhammad Saeed-ul-Hasan Sahib, 11 Safar 1338 AH. What do the scholars of religion say regarding this matter: Zaid has established a custom that every six months or annually on a fixed day and date, the 'Urs' (anniversary) of his Pir (spiritual guide) should take place. He tells people that whoever observes this Urs and eats the sweets offered at the Urs will undoubtedly have Paradise as their abode and Hell will be forbidden for them. What is the ruling on saying this according to Sharia? Explain and be rewarded.

The Answer: To say this is guesswork and nonsensical talk. Allah alone knows whose abode is Paradise and for whom Hell is forbidden. There is no such promise proven from Allah and His Messenger regarding eating the sweets of an Urs upon which such a ruling can be based. So this is "Taqawwul 'ala Allah" (attributing something to Allah from one's own self - T) and it is impermissible. Allah the Almighty says: "Has he peeped into the unseen, or has he taken a covenant with the Most Gracious?" (Holy Quran 19:78) Has he seen the Unseen or has he made a promise with the Merciful? (T) (1: Al-Quran 8/19)

फतावा रज़विया, जिल्द 9

हमारी बात इस बात से पुष्ट होती है कि जब एक समझदार बच्चा किसी दूसरे के लिए कोई काम करता है तो वह मान्य होता है, और सवाब (पुण्य) का उपहार देना उसी का परिणाम है। यह पैगंबर (उन पर अल्लाह की शांति और कृपा हो) के उस कथन पर आधारित है, जैसा कि उनसे रिवायत है, "यह उससे और उन दोनों से स्वीकार किया जाएगा," जैसा कि हमने पहले उल्लेख किया है। तो फिर केवल सवाब का उपहार देने से क्या रोकता है और क्या बाधा है? यहाँ चर्चा लंबी है और ईश्वरीय कृपा व्यापक है, लेकिन हम इसी पर संतोष करते हैं, अपने रब की उसकी उदारता और उपहारों के लिए प्रशंसा करते हुए, और हमारे स्वामी मुहम्मद और उनके वंश पर आशीर्वाद भेजते हुए। अल्लाह (महिमावान और सर्वोच्च) बेहतर जानता है, और उस महान सत्ता का ज्ञान सबसे पूर्ण और दृढ़ है। (त)

...न पागल, न समझदार बच्चा। हमने इस मामले में अधिक संदर्भ प्रस्तुत किए हैं क्योंकि 'अल-लुबाब' की कुछ प्रतियों में कुछ लिपिकीय त्रुटियाँ थीं, जिसने टीकाकार को एक भ्रमित चर्चा में डाल दिया, जिसका उत्तर अल्लाह की मदद से हमने उसके हाशिये में पूरी तरह से दे दिया है; यहाँ उसे दोहराने और चर्चा को लंबा करने की कोई आवश्यकता नहीं है। फिर, ज़ाहिर अल-रिवाया के आधार पर, जिसे प्रामाणिक हदीसों के स्पष्ट ग्रंथों का समर्थन प्राप्त है, कि स्वयं कार्य आदेश देने वाले की ओर से घटित होता है। यह अर्थ हमारे लिए इस काम में अधिक सहायक है कि जब एक समझदार बच्चा दूसरे के लिए और उसके हक में मूल कार्य कर सकता है, और सवाब उपहार में देना भी उसके परिणामों में से एक है—और वह नबी-ए-करीम (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) का उक्त कथन है कि "इसे उसकी और उसके माता-पिता दोनों की ओर से स्वीकार किया जाए"—तो सवाब उपहार देने से कौन रोकने वाला है और क्या बाधा है? चर्चा यहाँ लंबी है और ईश्वरीय कृपा का द्वार खुला है, लेकिन हम इतने पर ही बस करते हैं। इसके साथ ही अपने रब की, उसकी उदारता और कृपा पर प्रशंसा करते हैं और अपने आका हजरत मुहम्मद और उनकी आल (वंश) पर दरूद भेजते हैं और अल्लाह पाक व बरतर खूब जानने वाला है, और उस महान सत्ता का इल्म (ज्ञान) ज्यादा कामिल (पूर्ण) और मोहकम (दृढ़) है। (त)

मसला 242: इलाहाबाद से, मदरसा सुभानिया, दारुल अत्तिबा, प्रेषक मुहम्मद सईद-उल-हसन साहब, 11 सफ़र 1338 हिजरी। उलेमा-ए-दीन इस मसले में क्या फ़रमाते हैं कि ज़ैद ने यह दस्तूर मुक़र्रर कर रखा है कि हर छह महीने या सालाना मुतय्यन (निश्चित) दिन और तारीख़ पर अपने पीर का उर्स हुआ करे, लोगों को यह कहता है कि जो शख्स यह उर्स करेगा और उर्स की नियाज़ की गई

मिठाई खाएगा उसका ठिकाना बिला-शुबा जन्नत है और दोज़ख उस पर हराम है, यह कहना शरीयत के अनुसार क्या हुक्म रखता है? बयान फ़रमाएँ, सवाब पाएँ।

जवाब: यह कहना अटकलबाजी और निरर्थक बात है। अल्लाह ही जानता है कि किसका ठिकाना जन्नत है और किस पर दोज़ख हराम है, उर्स की मिठाई खाने पर अल्लाह और उसके रसूल का कोई ऐसा वादा साबित नहीं है जिसके भरोसे पर यह हुक्म लगाया जा सके, तो यह "तक़व्वुल अ़लल्लाह" (अल्लाह पर अपनी तरफ़ से गढ़कर बोलना - त) हुआ और वह नाजायज़ है। अल्लाह तआला फ़रमाता है: "क्या उसने ग़ैब को देख लिया है या रहमान के यहाँ से कोई वादा ले रखा है?" (सूरह मरियम, आयत 78) क्या उसने ग़ैब देख लिया है या रहमान के यहाँ कोई अहद (वादा) कर रखा है? (त) (1: अल-क़ुरआन 8/19)

فتاوٰی رضویہ جلد نہم

کارمارا مؤید راست کہ چوں صبی ممیز اصل عمل بہر دیگرے وازاں او مے تواں کرد وہبہ ثواب یکے از توابع اوست وذلک قولہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم فیما روینا عنہ تقبل منہ ومنہما کما اسفلنا پس از مجرد اہدائے ثواب مانع کیست وجا حر چیست، سخن اینجا دراز است ودر فیض الہی باز اما بر ہمیں قدر بسندہ کنیم حامدین لربنا علی جودہ ونو الہ ومصلین علی سیدنا محمد وآلہ واللہ سبحٰنہ وتعالٰی اعلم وعلمہ جل مجدہ اتم واحکم۔

نہ معتوہ ۔ نہ ممیز بچہ ۔ ہم نے اس مسئلہ میں حوالے زیادہ پیش کئے جس کی وجہ یہ ہے کہ لباب کے بعض نسخوں میں کچھ خطائے کتابت واقع ہوئی جس نے شارح کو ایک باضطراب بحث میں ڈال دیا جس کا جواب بعونہ تعالٰی ہم نے اس کے حاشیہ میں کامل طور پر دے دیا ہے یہاں اسے ذکر کرکے کلام طویل کرنے کی ضرورت نہیں۔ پھر ظاہر الروایہ کی بنیاد پر جو صحیح احادیث کے صریح نصوص سے تائید یافتہ ہے کہ نفس عمل آمر کی جانب سے واقع ہوتا ہے۔ یہ معنی اس کام میں ہمارے لیے زیادہ مؤید ہے کہ جب ممیز بچہ اصل عمل دوسرے کے لیے اور اس کے حق میں کرسکتا ہے اور ثواب ہبہ کرنا بھی اس کے توابع میں سے ایک ہے اور وہ رسول کریم صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم کا روایت مذکورہ میں یہ ارشاد ہے کہ "اس سے اور اس کی ماں باپ دونوں کی جانب سے قبول کیا جائے " تو ثواب ہدیہ کرنے سے مانع کون ہے اور رکاوٹ کیا ہے ؟ کلام یہاں طویل ہے اور فیض الہی کا دروازہ کشادہ ، مگر ہم اسی قدر پر اکتفا کرتے ہیں اس کے ساتھ اپنے رب کی ، اس کے جود و کرم پر حمد کرتے ہیں اور اپنے آقا حضرت محمد اور ان کی آل پر درود بھیجتے ہیں اور خدائے پاک و برتر خوب جاننے والا ہے ، اور اس ذات بزرگ کا علم زیادہ کامل اور محکم ہے۔ (ت)

مسئلہ ۲۴۲: از الہ آباد مدرسہ سبحانیہ دارالطباء مرسلہ محمد سعید الحسن صاحب ۱۱ صفر ۱۳۳۸ھ

کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ زید نے یہ دستور مقرر کررکھا ہے کہ ہر ششماہی یا سالانہ یوم معین و تاریخ مقررہ پر اپنے پیر کا عرس ہوا کرے ، لوگوں کو یہ کہتا ہے کہ جو شخص یہ عرس کرے اور عرس کی نیاز کردہ شیرینی کھائے گا اوپر بلاشبہ جنت مقام دوزخ حرام ہے ، یہ کہنا شرعاً کیا حکم رکھتا ہے ؟ بینوا توجروا

الجواب : یہ کہنا جزاف اور یاوہ گوئی ہے۔ اللہ جانتا ہے کہ کس کا جنت مقام اور کس پر دوزخ حرام ، عرس کی شیرینی کھانے پر اللہ تعالٰی و رسول کا کوئی وعدہ ایسا ثابت نہیں جس کے بھروسہ پر یہ حکم لگا سکیں، تو یہ تَقَوُّلٌ علی اللہ (اللہ تعالٰی پر اپنی طرف سے لگا کر کچھ بولنا ۔ ت) ہوا اور وہ ناجائز ہے۔ قال اللہ تعالٰی: أَطَّلَعَ الْغَيْبَ أَمِ اتَّخَذَ عِنْدَ الرَّحْمٰنِ عَهْدًا (سورہ مریم، آیت ۷۸) کیا اس نے غیب دیکھ لیا ہے یا رحمان کے یہاں کوئی عہد کر رکھا ہے۔ (ت) (۱: القرآن ۸/۱۹)

Fatawa Razawiya, Volume 9

Allah the Almighty said: "Do you say about Allah that which you do not know?" (1). And Allah Almighty knows best. (Translation: T) And Allah Almighty knows best.

Problem 243 to 244: From Bengal, Sylhet district, Shobidpur village, sent by Maulvi Anwaruddin Sahib, 3 Rabi' al-Awwal Sharif 1320 AH. What do the scholars of religion say regarding this matter: (1) Is it permissible or not to gift the Quran for the purpose of conveying reward to the deceased, or to use the Quran as a "heela" (legal stratagem) in exchange for the expiation (kaffara) of several prayers and fasts, etc.? If it is permissible, then in which forms? That is, for some deceased, one-third of the property is equal to the amount of expiation, for some it is less, and for some, there is none at all. And what is the ruling in these cases with a will? (2) At the time of burial of the deceased, is it permissible or not to blow upon small clods of earth etc. after reciting prayers and place them inside the grave? Give a ruling and be rewarded.

The Answer: (1) Giving the Holy Quran to a Muslim to convey its reward to a deceased Muslim is permissible. The "heela" that is prevalent among the common people here by giving the Holy Quran in exchange for expiation is purely void and useless. Instead, in the case of a will, it is from one-third of the property, or with the permission of adult heirs for more than that. Without a will, whatever amount of property an adult and sane heir wishes, if it is not sufficient for the required amount of expiation, they should complete it by the method of "daur" (circulation). That is, give it once to a poor person, then that amount of expiation is fulfilled. After taking possession, the poor person gifts it back. The heir then gives it to the poor person again as expiation, until through this turning over, it reaches the required amount of expiation. As specified in Durr al-Mukhtar and other blessed books, and we have researched this in our Fatawa. (As is clarified in Durr al-Mukhtar and other blessed books, and we have researched it in our Fatawa. T) (2) There is no harm as long as it does not take up space in the grave, due to the lack of prohibition (l'adam al-man'). And that which is not prohibited is not forbidden (wa ma lam yumna' la yumna'). (Because no prohibition has come regarding this, and that which is not prohibited will not be forbidden. T) And Allah Almighty knows best.

Problem 245: From Post Farash Ganj, District Noakhali, Country of Bengal, 10 Jumada al-Ula 1337 AH. What do the scholars of religion say regarding this matter: giving payment for reciting the Holy Quran with the intention of conveying reward.

1. Al-Quran 7/28 Page 645 of 948

फतावा रज़विया, जिल्द 9

अल्लाह तआला ने फरमाया: "क्या तुम अल्लाह पर वह कहते हो जिसका तुम्हें ज्ञान नहीं?" (1)। और अल्लाह तआला बेहतर जानता है। (अनुवाद: टी) और अल्लाह तआला बेहतर जानता है।

मसला 243 से 244: बंगाल, जिला सिलहट, मौजा शोबिदपुर से मुर्सला मौलवी अनवारुद्दीन साहिब, 3 रबी-उल-अव्वल शरीफ 1320 हिजरी। उलेमा-ए-दीन इस मसले में क्या फरमाते हैं कि: (1) मय्यत के सवाब पहुँचाने के लिए कुरान शरीफ का हदिया करना या नमाज़ व रोज़ा वगैरह के कफ़्फ़ारे के बदले में कुरान शरीफ को हीला करना जायज़ है या नहीं? अगर जायज़ है तो किन-किन सूरतों में? यानी कुछ मय्यत के लिए माल का तिहाई हिस्सा कफ़्फ़ारे की कद्र के बराबर है, और कुछ के लिए कम और कुछ के लिए बिल्कुल नहीं। और इन सूरतों में वसीयत के साथ क्या हुक्म है? (2) मय्यत को दफन करते समय दुआ वगैरह पढ़ कर छोटे-छोटे ढेले वगैरह पर दम करके कब्र के अंदर रखना जायज़ है या नहीं? बय्यान फरमाएँ सवाब पाएँ।

अल-जवाब: (1) कुरान मजीद किसी मुसलमान को देकर उसका सवाब मय्यत मुस्लिम को पहुँचाना जायज़ है। कफ़्फ़ारे के बदले में कुरान मजीद देकर जो हीला यहाँ अवाम में प्रचलित है, वह सरासर बातिल और बेकार है। बल्कि वसीयत की सूरत में माल के तिहाई हिस्से से, या बालिग वारिसों की इजाज़त से उससे ज़ियादा, और बिना वसीयत जिस कद्र माल पर आकिल बालिग वारिस चाहे, अगर वाजिब कफ़्फ़ारे की मात्रा को काफी न हो तो 'दौर' के तरीके से पूरा करें। यानी एक बार फकीर को दे दें, उस कद्र का कफ़्फ़ारा अदा हुआ। फकीर कब्ज़ा करने के बाद उसे अपनी तरफ से हिबा (दान) कर दे। वारिस फिर फकीर को कफ़्फ़ारे में दे, यहाँ तक कि अदला-बदली में कफ़्फ़ारे की कद्र तक पहुँच जाए। जैसा कि दुर्रे मुख्तार वगैरह मुबारक किताबों में इसकी सराहत है और हमने अपने फतावा में इसकी तहकीक की है। (जैसा कि दुर्रे मुख्तार और इसके अलावा मुबारका किताबों में इसकी तसरीह है और हमने अपने फ़तावा में इसकी तहकीक की है। टी) (2) कोई हर्ज नहीं जब तक कि कब्र में जगह न घेरे, क्योंकि इसकी मनाही नहीं है (लअदमुल मना)। और जिस चीज़ से मना नहीं किया गया वह ममनू (वर्जित) नहीं होगी (व मा लम युमना' ला युमना')। (क्योंकि इससे मनाही नहीं आई और जिससे मनाही वारिद नहीं वह ममनू न होगा। टी) वल्लाहु तआला आलम।

मसला 245: पोस्ट फराशगंज, जिला नोआखाली, मुल्क बंगाल से, 10 जमादी-उल-ऊला 1337 हिजरी। उलेमा-ए-दीन इस मसले में क्या फरमाते हैं कि सवाब पहुँचाने की नियत से कुरान मजीद पढ़कर उस पर उजरत (पारिश्रमिक) देना।

1. अल-कुरान 7/28 पृष्ठ 948 का 645

فتاوٰی رضویہ جلد نہم

قال اللہ تعالٰی: اَتَقُوْلُوْنَ عَلَی اللہِ مَالَا تَعْلَمُوْنَ (۱)۔ واللہ تعالٰی اعلم۔ کیا تم خدا پر وہ بولتے ہو جس کا تمہیں علم نہیں۔ (ت) واللہ تعالٰی اعلم

مسئلہ ۲۴۳ تا ۲۴۴: از بنگال ضلع سلہٹ موضع شو بید پور مرسلہ مولوی انوار الدین صاحب ۳ ربیع الاول شریف ۱۳۲۰ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ: (۱) میت کے ثواب رسانی کے لیے قرآن شریف کا ہدیہ کرنا یا چند نماز و روزہ وغیرہ کے کفارہ کے عوض میں قرآن شریف کو حیلہ کرنا جائز ہے یا نہیں؟ اگر جائز ہے ہو تو کون کون صورتوں میں؟ یعنی بعض میت کے ثلث مال قدر کفارہ کے ہے اور بعض کے کم اور بعض کے بالکلیہ نہیں۔ اور ان صورتوں میں مع وصیت کے کیا حکم ہے؟ (۲) بوقت دفن میت کے دعا وغیرہ پڑھ کر چھوٹے چھوٹے ڈھیلا وغیرہ پر دم کر کے قبر کے اندر رکھنا جائز ہے یا نہیں؟ بینوا توجروا

الجواب: (۱) قرآن مجید کسی مسلمان کو دے کر اس کا ثواب میت مسلم کو پہنچانا جائز ہے، کفارے کے عوض میں قرآن مجید دے کر جو حیلہ یہاں عوام میں رائج ہے محض باطل و بے سود ہے، بلکہ بحال وصیت ثلث مال یا با جازت ورثہ بالغین اس سے زائد، اور بلا وصیت جس قدر مال پر وارث عاقل بالغ چاہے اگر کفارہ واجبہ کی قدر کو کافی نہ ہو بطریق دور پورا کریں یعنی ایک بار فقیر کو دے دیں اس قدر کا کفارہ ادا ہوا۔ فقیر بعد قبضہ پھر اسے اپنی طرف ہبہ کردے۔ وارث پھر فقیر کو کفارہ میں دے، یہاں تک کہ الٹ پھیر میں قدر کفارہ تک پہنچ جائے کما نص علیہ فی الدر وغیرہ من الاسفار الغر وقد حققناہ فی فتاؤنا (جیسا کہ در مختار اور اس کے علاوہ کتب مبارکہ میں اس کی تصریح ہے اور ہم نے اپنے فتاوٰی میں اس کی تحقیق کی ہے۔ ت) (۲) کوئی حرج نہیں

جبکہ قبر میں جگہ نہ گھیرے لعدم المنع وما لم یمنع لا یمنع (کیونکہ اس سے ممانعت نہ آئی اور جس سے منع وارد نہیں وہ ممنوع نہ ہوگا۔ ت) واللہ تعالٰی اعلم

مسئلہ ۲۴۵: از پوسٹ فراش گنج ضلع نو اکھالی ملک بنگالہ ۱۰ جمادی الاولٰی ۱۳۳۷ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ ثواب رسانی کی نیت سے قرآن مجید پڑھ کر اس پر اجرت دینا

۱۔ القرآن ۲۸/۷ Page 645 of 948

Fatawa Razawiya, Volume 9

...and is it permissible to take [payment] or not? And is it permissible to take a little less than forty dirhams for reading one Quran, and for the person teaching to give less than forty dirhams as a wage?

The Answer: Taking or giving wages for reading the Quran for the purpose of conveying reward (Isal-e-Sawab) is both impermissible, and the [notion of] forty dirhams as a wage is completely baseless.

Issue 246: From Banaras, Kachi Bagh, asked by Maulvi Muhammad Ibrahim Sahab, 18 Dhu al-Qi'dah 1339 AH. It is customary that wealthy people are invited for Quran recital, and an invitation for food is given to them. Is it permissible for these wealthy people to be given a food invitation after the Quran recital on the fortieth day (Chehlum)? And how is this act according to Sharia? Explain so that you may be rewarded.

The Answer: An invitation at the time of death is meaningless. In 'Fath al-Qadir', it is called a disliked innovation (Bid'at-e-Mustaqbiha) because an invitation is prescribed for occasions of joy, not sorrow. Wealthy people have no right to it. And if, according to established custom, it is considered like an explicit condition (what is known by custom is like what is stipulated by words), and it reaches the level of a wage for the Quran recital, where the one feeding knows he has to give food in exchange for their recitation, and they know they have to receive food after reading the Quran, then it is inherently haraam (forbidden). Eating it is haraam and feeding it is also haraam. "And do not exchange My verses for a small price" (Al-Quran 2:41). And Allah Almighty knows best.

Issue 247: From Lucknow, Mohalla Farangi Mahal, Ihata Haider Jan, sellers of firewood, asked by Zain-ul-Abideen, 20 Muharram 1339 AH. What do the scholars of religion and muftis of the firm Sharia say about this matter: In the vicinity of Azamgarh district, an old custom was prevalent for conveying reward to the deceased, where the heirs of the deceased would have Quran recitals performed until the fortieth day (Chehlum). After the completion of the period, wages for the Quran recital were given in the form of cash and cloth, and food was also given during the Quran recital. Now some people, having received education from Deoband, have come to this district and call our established method of Isal-e-Sawab prohibited and impermissible, and declare it a futile act. Therefore, it is requested of

the scholars of Ahl-e-Sunnat wa Jama'at that the prevailing method of Isal-e-Sawab is permissible and correct according to Sharia...

---

1. Fath al-Qadir, Chapter on Burials, Maktaba Nooriya Razawiya, Sukkur, 2/102; Maraqi al-Falah with Hashiya al-Tahtawi, Chapter on Carrying and Burying them, Nur Muhammad Karkhana Tijarat Kutub, Karachi, p. 339.
2. Al-Quran 2/41. Page 646 of 948

फ़तावा रज़विया, जिल्द 9

...और लेना जायज़ है या नहीं? और एक क़ुरान मजीद पढ़कर चालीस दिरम से कुछ कम उजरत लेना और पढ़ाने वाले के लिए चालीस दिरम से कम उजरत देना जायज़ है या नहीं?

अल-जवाब (उत्तर): सवाब पहुँचाने के लिए क़ुरान मजीद पढ़ने पर उजरत लेना और देना दोनों नाज़ायज़ हैं, और चालीस दिरम की उजरत महज़ बे-अस्ल (निराधार) है।

मसला 246: बनारस कच्ची बाग से, सवाल करने वाले मौलवी मुहम्मद इब्राहिम साहब, 18 ज़िल-कादा 1339 हिजरी। दस्तूर है कि मालदार लोगों को क़ुरान ख्वानी के लिए बुलाया जाता है और उन्हें दावत दी जाती है। क्या इन मालदारों को क़ुरान ख्वानी के बाद चेहलुम (चालीसवां) का खाना खिलाना जायज़ है? और यह काम शरीयत की नज़र में कैसा है? बयान फ़रमाएँ ताकि आप अजर (पुण्य) पाएँ।

अल-जवाब: मौत पर दावत बे-मायने है। 'फ़तह-अल-क़दीर' में इसे बिदअत-ए-मुस्तक़बीहा (बुरी नवीनता) कहा गया है, क्योंकि दावत खुशी में जायज़ है, गम में नहीं। इसमें मालदारों का कोई हक नहीं है। और अगर उफ़ (प्रचलन) के लिहाज़ से यह तयशुदा बात समझी जाए (जो रिवाज में तय है वो शब्दों में तय की गई बात की तरह है), और यह क़ुरान ख्वानी की उजरत की हद तक पहुँच जाए, कि खिलाने वाला जानता हो कि तिलावत के बदले खाना देना है और पढ़ने वाले जानते हों कि क़ुरान पढ़कर खाना लेना है, तो यह सरासर हराम है। ऐसा खाना खाना भी हराम है और खिलाना भी हराम है। "और मेरी आयतों के बदले तुच्छ दाम न लो" (क़ुरान 2:41)। और अल्लाह बेहतर जानता है।

मसला 247: लखनऊ, मोहल्ला फिरंगी महल, अहाता हैदर जान, जलाऊ लकड़ी के व्यापारी, सवाल करने वाले ज़ैनुल आब्दीन, 20 मुहर्रम 1339 हिजरी। दीन के विद्वान और शरीयत के मुफ़्ती इस मसले पर क्या कहते हैं: जिला आजमगढ़ के आस-पास मैयत को सवाब पहुँचाने के लिए यह पुरानी रस्म जारी थी कि मैयत के वारिस चेहलुम तक क़ुरान ख्वानी कराते थे और मुद्दत पूरी होने पर नकद और कपड़ों की शक्ल में उजरत देते थे और इशारे से क़ुरान ख्वानी के दौरान खाना भी दिया जाता था। अब कुछ लोग देवबंद से तालीम पाकर इस जिले में आए हैं और हमारे सवाब पहुँचाने के इस तरीके को मना और नाज़ायज़ कहते हैं और इसे फ़ज़ूल काम करार देते हैं। लिहाज़ा, सुन्नी विद्वानों से इल्तिजा है कि सवाब पहुँचाने का मौजूदा तरीका शरीयत के मुताबिक जायज़ और सही है...

1. फ़तह अल-क़दीर, फ़स्ल फ़िल दफ़्न, मकतबा नूरिया रज़विया, सुक्कुर 2/102; मराक़ी अल-फ़लाह मा हशिया अल-तहतवी, फ़स्ल फ़ी हमलिहा व दफ़्निहा, नूर मुहम्मद कारख़ाना तिज़ारत कुतुब, कराची, पृ. 339।
2. अल-क़ुरान 2/41। पृष्ठ 948 में से 646

اور لینا جائز ہے یا نہیں؟ اور ایک قرآن مجید پڑھ کر چالیس درم سے کچھ کم اُجرت لینا اور پڑھانے والے کے لیے چالیس درم سے کم اجرت دینا جائز ہے یا نہیں؟

الجواب: ثواب رسانی کے لیے قرآن مجید پڑھنے پر اجرت لینا اور دینا دونوں ناجائز ہے، اور چالیس درم کی اجرت محض بے اصل ہے۔

مسئلہ ۲۴۶: از بنارس کچی باغ مسئولہ مولوی محمد ابراہیم صاحب ۱۸ ذی القعدہ ۱۳۳۹ھ دستور ہے کہ اغنیاء قرآن خوانی کے واسطے بلائے جاتے ہیں اور ان کی دعوت دی جاتی ہے، کیا ان اغنیاء کو بعد قرآن خوانی دعوت طعام چہلم جائز ہے؟ اور یہ فعل شرعاً کیسا ہے؟ بینوا توجروا

الجواب: موت میں دعوت بے معنی ہے، فتح القدیر میں اسے بدعت مستقبہ فرمایا لان الدعوۃ شرعت في السرور لافي الشرور (اس لیے کہ دعوت خوشی میں مشروع ہے غمی میں نہیں۔ ت) اغنیا کا اس میں کچھ حق نہیں اور اگر بنظر المعھود عرفاً کالمشروط لفظاً (جو عرفاً معلوم ہے اسی کی طرح ہے جو لفظاً مشروط ہے۔ ت) وہ اجرت قرآن خوانی کی حد تک پہنچ گیا ہو، کھلانے والا جانتا ہو ان کی تلاوت کے عوض مجھے کھانا دینا ہے، یہ جانتے ہوں ہمیں قرآن پڑھ کر کھانا لینا ہے، تو آپ ہی حرام ہے، کھانا بھی حرام اور کھلانا بھی حرام، وَ لَا تَشْتَرُوْا بِاٰیٰتِیْ ثَمَنًا قَلِیْلًا (میری آیتوں کے بدلے حقیر مالِ دنیا نہ لو۔ ت) واللہ تعالٰی اعلم۔

مسئلہ ۲۴۷: از لکھنؤ محلہ فرنگی محل احاطہ حیدر جان طوائف بردوکان ہیزم سوختنی مسئولہ زین العابدین ۲۰ محرم ۱۳۳۹ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین و مفتیانِ شرعِ متین اس مسئلہ میں کہ ضلع اعظم گڑھ کے قریب وجوار یہ رسم قدیم میت کے ایصالِ ثواب کے واسطے جاری تھی کہ

ورثاء میت چہلم تک قرآن خوانی کراتے تھے اور بعد اختتام میعاد قرآن خوانی کی اجرت بصورت نقد و پارچہ اور اشارے قرآن خوانی میں کھانا دیا کرتے تھے، اب چند لوگوں دیوبند سے تعلیم پاکر اسی ضلع میں آئے اور ہم لوگوں کے طریقہ مستمر ایصالِ ثواب کو ممنوع و ناجائز کہتے اور فعل عبث قرار دیتے ہیں، پس علمائے اہلسنت و جماعت سے استدعاء ہے کہ طریقہ مروجہ ایصالِ ثواب عند الشرع جائز و درست ہے

---

1. فتح القدیر فصل فی الدفن مکتبہ نوریہ رضویہ سکھر ۲/ ۱۰۲، مراقی الفلاح مع حاشیۃ الطحطاوی فصل فی حملھا ودفنھا نور محمد کارخانہ تجارت کتب کراچی ص ۳۳۹
2. القرآن ۲ / ۴۱ Page 646 of 948

Fatawa Razawiya, Volume 9

...or forbidden, and does the deceased receive the reward for Quran recitation and food etc. or not? Explain and be rewarded.

Answer:

Regarding those with Deobandi beliefs, the noble scholars of the Haramin Sharifayn have unanimously written that these people are outside the fold of Islam, and they stated: 'Whoever doubts his punishment and disbelief has himself committed disbelief.' One who doubts their being disbelievers is also a disbeliever. None of their words should be heard nor should any of their statements be acted upon until verified with your own scholars. The Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) says:

'Beware of them and stay away from them, lest they mislead you and put you into trial (fitna).' Run away from them and keep them away from you. Lest they lead you astray or plunge you into turmoil.

And even if a ruling they provide turns out to be correct, it should not be understood that they are scholars, or that their other rulings will also be correct. There is no sect in the world that does not have at least some truth; for example, the Jews and Christians are correct in saying that Moses (peace be upon him) is a Prophet. Does this make Jews and Christians truthful? The Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) says: 'A chronic liar may sometimes speak the truth.' Deobandis burn with envy at the very thought of sending reward to the deceased Muslims; they call Fatiha, the third day (Soyem), tenth day (Dahum), and fortieth day (Chehlum) ceremonies all forbidden. All these things are permissible; the reward of both Quran recitation and food reaches the deceased. The fixed timings of the third, fortieth, etc., are customary practices which do not hinder the reward. However, taking or giving wages for Quran recitation is prohibited. The method for this should be to hire a Hafiz, for example, for forty days, stating that he will perform whatever work is required and will be paid this salary. Then he should be assigned the task of reciting at the grave. Now this wage is undoubtedly permissible as it is in exchange for his time, not for the recitation of the Quran itself. And Allah Almighty knows best.

Issue 228 to 250: From the city, Mohalla Baharipur, questioned by Abdul Jabbar Sahib, 23 Muharram 1339 AH.

(1) What do the scholars of religion and jurists of the clear Sharia say regarding this matter: is the prohibition of taking wages for reciting the Holy Quran, visiting graves, or performing Khatam Tahlil with the intention of sending reward (Isal-e-Thawab) absolute (Qat'i) or not? (2) If something is given to the reciter at that time without any prior fixing (of amount), is that also forbidden or not?

---

1. Durr al-Mukhtar, Chapter of the Apostate, Mujtabai Press, Delhi, 1/356.
2. Mishkat, Chapter of Adhering to the Book, First Section, Mujtabai Press, Delhi, p. 28.
3. Majma' Bihar al-Anwar, under the word 'Sadaqa', Nawal Kishore, Lucknow, 2/239.

फ़तावा रज़विया, जिल्द 9

...या मना है, और मृत व्यक्ति को कुरान खानी और भोजन आदि का सवाब मिलता है या नहीं? स्पष्ट करें और पुण्य प्राप्त करें।

उत्तर:

देवबंदी अकीदे वालों के बारे में हरमैन शरीफ़ैन के विद्वानों ने सर्वसम्मति से लिखा है कि ये लोग इस्लाम से बाहर हैं, और फ़रमाया: "जिसने उसकी सज़ा और कुफ़्र में शक किया, उसने कुफ़्र किया।" जो उनके काफ़िर होने में संदेह करे वह भी काफ़िर है। उनकी कोई बात न सुनी जाए और न ही उनकी किसी बात पर तब तक अमल किया जाए जब तक कि अपने विद्वानों से इसकी पुष्टि न कर ली जाए। अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) फ़रमाते हैं:

"तुम उनसे और वो तुमसे दूर रहें, कहीं वे तुम्हें गुमराह न कर दें और तुम्हें फ़ितने में न डाल दें।" उनसे दूर भागो और उन्हें अपने से दूर करो। कहीं वे तुम्हें गुमराह न कर दें या तुम्हें संकट में न डाल दें।

और यदि उनके द्वारा बताई गई कोई बात सही भी निकल आए, तो इससे यह नहीं समझना चाहिए कि वे विद्वान हैं, या उनके अन्य मसले भी सही होंगे। दुनिया में ऐसा कोई संप्रदाय नहीं है जिसकी कोई न कोई बात सही न हो, उदाहरण के लिए यहूदियों और ईसाइयों की यह बात सही है कि मूसा (अलैहिस्सलाम) नबी हैं। क्या इससे यहूदी और ईसाई सच्चे हो सकते हैं? अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) फ़रमाते हैं: "बहुत झूठ बोलने वाला भी कभी-कभी सच बोलता है।" देवबंदी तो मृत मुसलमानों को सवाब पहुँचाने के विचार से ही जलते हैं, वे फ़ातिहा, तीजा (तीसरा दिन), दसवाँ, चालीसवाँ आदि सभी को हराम कहते हैं। ये सब बातें जायज़ हैं, मृत को कुरान खानी और भोजन दोनों का सवाब पहुँचता है। तीजे और चालीसवें आदि का समय तय करना एक प्रथा है जिससे सवाब में कोई बाधा नहीं आती। हाँ, कुरान खानी पर मज़दूरी लेना या देना मना है। इसका तरीका यह अपनाया जा सकता है कि किसी हाफ़िज़ को मिसाल के तौर पर चालीस दिनों के लिए काम पर रख लिया जाए कि जो चाहें काम लेंगे और यह वेतन देंगे, फिर उनसे कब्र पर पढ़ने का काम लिया जाए। अब यह मज़दूरी निस्संदेह जायज़ है क्योंकि यह समय के बदले है, न कि कुरान की तिलावत के बदले। और अल्लाह तआला बेहतर जानता है।

मसला 228 से 250: शहर मोहल्ला बहारीपुर से, अब्दुल जब्बार साहब द्वारा पूछा गया, 23 मुहर्रम 1339 हिजरी।

(1) धर्म के विद्वान और शरीयत के मुफ़्ती इस मसले में क्या कहते हैं कि कुरान शरीफ़ पढ़कर या कब्रों की ज़ियारत और खतम-ए-तहलील करके, जिसमें ईसाल-ए-सवाब का उद्देश्य होता है, मज़दूरी लेना जो हराम है, वह क़तई (पूर्णत:) हराम है या नहीं? (2) बिना तय किए उसी समय अगर कारी को कुछ दे दिया जाए, तो क्या वह भी हराम है या नहीं?

---

1. दुर्र-ए-मुख़्तार, बाबुल मुर्तद, मुतबा मुज्तबाई दिल्ली, 1/356
2. मिश्कात, बाबुल एतिसाम बिल किताब, फ़स्ल अव्वल, मुतबा मुज्तबाई दिल्ली, पृष्ठ 28
3. मजमा' बिहारुल अनवार, लफ़्ज़ 'सदक' के अंतर्गत, नवल किशोर लखनऊ, 2/239

فتاویٰ رضویہ، جلد نہم

یا ممنوع، اور میت کو ثواب قرآن خوانی و کھانا وغیرہ کا ملتا ہے یا نہیں؟ بینوا توجروا

الجواب:

دیوبندی عقیدہ والوں کی نسبت علمائے کرام حرمین شریفین نے بالاتفاق تحریر فرمایا ہے کہ یہ لوگ اسلام سے خارج ہیں، اور فرمایا: من شك في عذابه وكفره فقد كفر جو ان کے کافر ہونے میں شک کرے وہ بھی کافر ہے۔ ان کی کوئی بات نہ سنی جائے نہ ان کی کسی بات پر عمل کیا جائے جب تک اپنے علماء سے تحقیق نہ کرلیں۔ رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم فرماتے ہیں:

وایا کم وایاھم لایضلونکم ولایفتنونکم۲ ان سے دور بھاگو اور انہیں اپنے سے دور کریں۔ کہیں وہ تم کو گمراہ نہ کردیں کہیں وہ تم کو فتنہ میں نہ ڈال دیں۔

اور ان کا بتایا ہوا کوئی مسئلہ اگر صحیح بھی نکلے تو اس سے یہ نہ سمجھا جائے کہ یہ عالم ہیں، یا ان کے اور مسائل بھی صحیح ہوں گے۔ دنیا میں کوئی ایسا فرقہ نہیں جس کی کوئی نہ کوئی بات صحیح نہ ہو، مثلاً یہود و نصاریٰ کی یہ بات صحیح ہے کہ موسیٰ علیہ الصلوٰۃ والسلام نبی ہیں۔ کیا اس سے یہودی اور نصرانی سچے ہو سکتے ہیں، رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم فرماتے ہیں: الکذوب قد یصدق۳ بڑا جھوٹا بھی کبھی کبھی سچ بولتا ہے، دیوبندی تو امواتِ مسلمین کو ثواب پہنچانے ہی سے جلتے ہیں، فاتحہ، سوم، دہم، چہلم سب کو حرام کہتے ہیں، یہ سب باتیں جائز ہیں، میت کو قرآن خوانی و طعام دونوں کا ثواب پہنچتا ہے، تیجے و چالیسویں وغیرہ کا تعین عرفی ہے جس سے ثواب میں خلل نہیں آتا، ہاں قرآن خوانی پر اجرت لینا دینا منع ہے، اس کا طریقہ یہ کیا جائے کہ حافظ کو مثلاً چالیس دن کے لیے نوکر رکھ لیں کہ جو چاہیں کام لیں گے اور یہ تنخواہ

دیں گے، پھر اس سے قبر پر پڑھنے کا کام لیا جائے، اب یہ اجرت بلاشبہ جائز ہے کہ اس وقت کے مقابل ہے نہ کہ تلاوتِ قرآن کے۔ واللہ تعالیٰ اعلم۔

مسئلہ ۲۲۸ تا ۲۵۰: از شہر محلہ بہاری پور مسئولہ عبدالجبار صاحب ۲۳ محرم ۱۳۳۹ھ

(۱) کیا فرماتے ہیں علمائے دین و مفتیان شرع متین اس مسئلہ میں کہ قرآن شریف پڑھ کر یا زیارتِ قبور و ختمِ تہلیل کر کے جس میں ایصالِ ثواب مقصود ہوتا ہے اجرت لینا جو حرام ہے وہ قطعی حرام ہے یا نہ؟ (۲) بلا تعین اسی وقت اگر قاری کو کچھ دے دیا جائے وہ بھی حرام ہے یا نہ؟

---

۱ در مختار باب المرتد مطبع مجتبائی دہلی ۱/۳۵۶ ۲ مشکوٰۃ باب الاعتصام بالکتاب فصل اول مطبع مجتبائی دہلی ص ۲۸ ۳ مجمع بحار الانوار تحت لفظ صدق نولکشور لکھنؤ ۲/۲۳۹

Fatawa Razawiyya, Volume 9

(3) "Al-ma'roof kal-mashroot" (What is customary is like what is stipulated. -T) Is this a general rule or not? Explain and you shall be rewarded.

The Answer: (1) Taking wages for recitation [of Quran] and Tahlil (praising Allah) is certainly prohibited (haram), and there is no difference between definitive and non-definitive sin. Even if sins are minor (Saghira), considering them light is definitively prohibited. (2) When, according to customs and traditions, the reciter knows they will receive something and the giver knows they must give, then it is certainly included in wages because "Al-ma'roof kal-mashroot" (What is customary is like what is stipulated. -T). (3) "Al-ma'roof kal-mashroot" is a general rule, but when the custom is explicitly negated, it will no longer be stipulated. For example, if it is clearly told to the reciter that nothing will be given, or if they say I will take nothing, and then they recite, then whatever is given afterwards by choice will not be included in wages. Because explicit statement surpasses implied indication as mentioned in Al-Khaniya etc. (T). And Allah Almighty knows best.

Problem 251 to 255: Haji Abdul Ghani, student of Madrasa Manzar-ul-Islam Bareilly, 28 Rabi-ul-Akhir 1339 AH. What do the scholars of Ahl-e-Sunnat, the helpers of the nation, say regarding these matters: (1) To carry the coffin of the deceased and walk ten steps then change sides, similarly walking forty steps on all four sides, is it Sunnah or not? (2) And if the graveyard is less than forty steps away, is it permissible to walk forty steps around the grave with the deceased or not? (3) Is it permissible to take charity after performing the funeral prayer and visiting the graves? (4) If a person, considering it impermissible, announces that "I consider this impermissible, no one should give me its wages at all", then if someone gives something as a gift (Hadiya), is it permissible to take it or not? (5) Is it permissible to take charity after reciting the Holy Quran and Milad Sharif for the conveyance of reward to the soul of the deceased?

The Answer: (1) It is commendable (Mustahabb). (2) It is ignorance and forbidden. (3) It is impermissible. (4) It is permissible. (5) It is impermissible. And Allah Almighty knows best.

Problem 256: From Bengal, District Mymensingh, village Mirzapur, sent by Munshi Adam, 1st Rabi-ul-Awwal Sharif 1320 AH.

Arabic Text

What do the noble scholars say regarding this matter: a disbeliever (Kafir) died and his heirs want to provide food to Muslims, then...

Page 648 of 948

Urdu Translation

What do the noble scholars say regarding this matter: a disbeliever (Kafir) died and his heirs want to provide food to Muslims, then...

फ़तावा रज़विया, जिल्द 9

(3) "अल-मारुफ़ कल-मशरुत" (जो प्रचलित है वह शर्त की तरह है। -T) क्या यह एक सामान्य नियम (क़ाएदा कुल्लिया) है या नहीं? स्पष्ट करें, आपको पुण्य मिलेगा।

उत्तर: (1) क़ुरआन के पाठ (तिलावत) और तहलील (अल्लाह की प्रशंसा) के लिए मज़दूरी लेना निश्चित रूप से हराम (वर्जित) है, और इसमें कतई (निश्चित) और ग़ैर-क़तई (अनिश्चित) पाप होने में कोई अंतर नहीं है। भले ही पाप छोटे (सगीरा) हों, उन्हें हल्का समझना कतई हराम है। (2) जबकि रीति-रिवाजों के अनुसार पढ़ने वाले (क़ारी) को पता होता है कि उसे कुछ मिलेगा और देने वाले को पता होता है कि उसे देना होगा। तो यह निश्चित रूप से मज़दूरी (उजरत) में शामिल है क्योंकि "अल-मारुफ़ कल-मशरुत" (जो प्रचलित है वह शर्त की तरह है। -T)। (3) "अल-मारुफ़ कल-मशरुत" एक सामान्य नियम है, लेकिन जब स्पष्ट रूप से (सराहतन) प्रचलित प्रथा को नकार दिया जाए, तो वह शर्त नहीं रहेगी। उदाहरण के लिए, यदि क़ारी से साफ़ कह दिया जाए कि कुछ नहीं दिया जाएगा, या वह कह दे कि मैं कुछ नहीं लूँगा, इसके बाद वह पढ़े, फिर जो लोग अपनी इच्छा से दें, वह मज़दूरी में शामिल नहीं होगा। क्योंकि "अस्-सरीह यफ़ूक़ुद-दलालाह" जैसा कि अल-ख़ानिया आदि में है (क्योंकि स्पष्ट कथन संकेत से ऊपर होता है -T)। और अल्लाह तआला सबसे बेहतर जानता है।

मस्अला 251 से 255: हाजी अब्दुल ग़नी, छात्र मदरसा मंज़रे इस्लाम बरेली, 28 रबी-उल-आख़िर 1339 हिजरी। अहले सुन्नत के विद्वान, राष्ट्र के सहायक, इस बारे में क्या फरमाते हैं कि: (1) मैयत (मृतक) के ताबूत को लेकर दस कदम चलना फिर कंधा बदलना, इसी तरह चारों तरफ चालीस कदम चलना सुन्नत है या नहीं? (2) और यदि कब्रिस्तान चालीस कदम से कम दूरी पर हो तो मैयत को लेकर कब्र के चारों ओर चालीस कदम घूमना जायज़ है या नहीं? (3) नमाज़-ए-जनाज़ा पढ़कर और कब्रों की ज़ियारत (दर्शन) करके ख़ैरात (दान) लेना जायज़ है या नहीं? (4) जो व्यक्ति इसे नाजायज़ समझकर घोषणा कर दे कि मैं इसे नाजायज़ समझता हूँ, कोई भी साहब इसकी मज़दूरी हमें हरगिज़ न दें, फिर अगर कोई उपहार (हदिया) के रूप में दे तो लेना जायज़ है या नहीं? (5) मैयत की रूह को सवाब पहुँचाने के लिए क़ुरआन शरीफ़ और मिलाद शरीफ़ पढ़कर ख़ैरात लेना जायज़ है या नहीं?

उत्तर: (1) मुस्तहब (पसंदीदा) है। (2) अज्ञानता और मना है। (3) नाजायज़ है। (4) जायज़ है। (5) नाजायज़ है। और अल्लाह तआला सबसे बेहतर जानता है।

मस्अला 256: बंगाल से, जिला मैमन सिंह, ग्राम मिर्ज़ापुर, प्रेषक मुंशी आदम, 1 रबी-उल-अव्वल शरीफ़ 1320 हिजरी।

अरबी पाठ

इस मसले में उलेमा-ए-किराम क्या फरमाते हैं: एक काफ़िर मर गया

और उसके उत्तराधिकारी मुसलमानों को खाना खिलाना चाहते हैं, तो...

पृष्ठ 648 का 948

हिंदी अनुवाद

इस मसले में उलेमा-ए-किराम क्या फरमाते हैं: एक काफ़िर मर गया

और उसके उत्तराधिकारी मुसलमानों को खाना खिलाना चाहते हैं, तो...

فتاوی رضویہ جلد نہم

(۳) المعروف کالمشروط (جو معروف ہے وہ مشروط کی طرح ہے۔ ت) قاعدہ کلیہ ہے یا نہ؟ بینوا توجروا

الجواب: (۱) تلاوت و تہلیل میں اجرت لینا ضرور حرام ہے اور گناہ ہونے میں قطعی اور غیر قطعی ہونے کا فرق نہیں، گناہ اگرچہ صغیرہ ہوں اسے ہلکا جاننا قطعی حرام ہے۔ (۲) جبکہ عادات و رواج کے مطابق قاری کو معلوم ہے کہ اسے ملے گا اور اسے معلوم ہے کہ دینا ہوگا۔ تو ضرور اجرت میں داخل ہے فان المعروف کالمشروط (معروف مشروط کی طرح ہے۔ ت) (۳) المعروف کالمشروط قاعدہ کلیہ ہے مگر جب صراحۃً معروف کی نفی کر دے تو مشروط نہیں رہے گا۔ مثلاً قاری سے صاف کہہ دیا جائے کہ دیا کچھ نہ جائے گا۔ یا وہ کہہ دے کہ میں لوں گا کچھ نہیں، اس کے بعد پڑھے پھر جو چاہیں دے دیں وہ اجرت میں داخل نہ ہوگا، لان الصریح یفوق الدلالۃ کما فی الخانیۃ وغیرھا (اس لیے کہ صریح کا درجہ دلالت سے اوپر ہے جیسا کہ خانیہ وغیرہ میں ہے ت) واللہ تعالٰی اعلم۔

مسئلہ ۲۵۱ تا ۲۵۵: حاجی عبدالغنی صاحب طالب علم مدرسہ منظر الاسلام بریلی ۲۸ ربیع الآخر ۱۳۳۹ھ کیا فرماتے ہیں عالم اہلسنت، ناصر ملت اس بارے میں کہ: (۱) میت کے تابوت کو لے کر دس قدم چلنا پھر جانب بدلنا، اسی طرح چاروں جانب چالیس قدم چلنا سنت ہے یا نہیں؟ (۲) اور اگر قبرستان چالیس قدم سے کم ہو تو میت کو لے کر قبر کے چاروں طرف چالیس قدم گھومنا جائز ہے یا نہیں؟ (۳) نماز جنازہ پڑھ کر اور قبروں کی زیارت کر کے خیرات لینا جائز ہے یا نہیں؟ (۴) جو شخص اس کو نا جائز سمجھ کر اعلان کر دے کہ میں اس کو ناجائز سمجھتا ہوں کوئی صاحب اس

کی اجرت ہم کو ہر گز نہ دو، پھر اگر کوئی بطور ہدیہ دے تو لینا جائز ہے یا نہیں؟ (۵) میت کی روح پر ثواب رسانی کے لیے قرآن شریف و میلا د شریف پڑھ کر خیرات لینا جائز ہے یا نہیں؟

الجواب: (۱) مستحب ہے (۲) جہالت و ممنوع ہے (۳) ناجائز ہے (۴) جائز ہے (۵) ناجائز ہے۔ واللہ تعالٰی اعلم

مسئلہ ۲۵۶: از بنگالہ ضلع میمن سنگھ موضع مرزاپور مرسلہ منشی آدم غرہ ربیع الاول شریف ۱۳۲۰ھ

| ماتقولون یا علماء الفحول في هذه المسئلة کافر مات | اس مسئلہ میں علمائے کرام کیا فرماتے ہیں ایک کافر فوت ہوا اب | | واراد ورثہ ان یطعموا اطعاماً للمسلمین | اس کے ورثہ مسلمانوں کو کھانا کھلانا چاہتے ہیں، تو |

Fatawa-e-Razviya (Volume 9)

Is it permissible for Muslims to eat [the food provided at a funeral] or not? (T)

The Answer: It is not appropriate for them to accept the invitation, because if it is considered hospitality, then hospitality at the time of death is part of wailing (Niyaha). Imam Ahmad and Ibn Majah narrated with an authentic chain from Jarir ibn Abdullah al-Bajali (may Allah be pleased with him), who said: "We used to count gathering at the house of the deceased and preparing food as part of wailing (Niyaha)." And if he considers it charity (Sadaqa), even though charity from a disbeliever or for a disbeliever is not valid, then in it is humiliation for Muslims. Because he considers his wicked self as doing them a favor by giving charity and considers them as eaters of his charity. The upper hand is better than the lower hand, and it is not appropriate for a disbeliever's hand to be the upper one. Rather, Islam is superior and not superseded. This is what has appeared to me, and I hope it is correct, God willing. And Allah Almighty knows best. (T)

Problem 257: From Bareilly, asked by Sheikh Abdul Aziz Basati, 2nd Dhul-Qi'dah 1330 AH. If Hindus want to have Fatiha recited, should it be given or not? State the ruling, and you will be rewarded.

The Answer: Fatiha is for sending reward (Isal-e-Thawab). What is the meaning of reward reaching from a disbeliever or from the wealth of a disbeliever? A disbeliever is fundamentally not eligible for reward. And Allah Almighty knows best.

1. Musnad Ahmad bin Hanbal from Musnad Abdullah bin Amr bin al-Aas (may Allah be pleased with him), Dar al-Fikr Beirut 2/204; Sunan Ibn Majah, chapter on the prohibition of gathering at the house of the deceased, etc., HM Saeed Company Karachi p. 117; Kanz al-Ummal Hadith 4236, Muassasat al-Risala Beirut 1/26.

फ़तावा-ए-रज़विया (खण्ड 9)

क्या मुसलमानों के लिए [जनाजे के खाने को] खाना जायज़ है या नहीं? (त)

उत्तर: उन्हें यह दावत स्वीकार नहीं करनी चाहिए, क्योंकि यदि इसे आतिथ्य माना जाता है, तो मृत्यु के समय आतिथ्य विलाप (नियाहा) का हिस्सा है। इमाम अहमद और इब्न माजाह ने एक प्रामाणिक श्रृंखला के साथ जरीर इब्न अब्दुल्लाह अल-बजाली (अल्लाह उन पर प्रसन्न हो) से रिवायत की है, जिन्होंने कहा: "हम मृतक के घर पर इकट्ठा होने और भोजन तैयार करने को विलाप (नियाहा) में गिनते थे।" और अगर वह इसे सदका (दान) समझता है, जबकि किसी काफिर (अविश्वासी) से या काफिर के लिए सदका वैध नहीं है, तो इसमें मुसलमानों का अपमान है। क्योंकि वह अपने दुष्ट मन को उन पर उपकार करने वाला और उन्हें अपना सदका खाने वाला मानता है। ऊपर वाला हाथ नीचे वाले हाथ से बेहतर होता है, और किसी काफिर का हाथ ऊंचा नहीं होना चाहिए। बल्कि, इस्लाम श्रेष्ठ है और उस पर कोई और हावी नहीं होता। यह वह है जो मुझ पर प्रकट हुआ है, और मुझे आशा है कि यह सही होगा, इंशाअल्लाह। और अल्लाह सर्वशक्तिमान सबसे अच्छा जानता है। (त)

मसला 257: बरेली से, शेख अब्दुल अज़ीज़ बसाती द्वारा पूछा गया, 2 ज़ुल-क़ादा 1330 हिजरी। अगर हिंदू फातिहा करवाना चाहें, तो करवाना चाहिए या नहीं? स्पष्ट करें, आपको पुण्य मिलेगा।

उत्तर: फातिहा ईसाल-ए-सवाब (पुण्य पहुँचाना) के लिए है। किसी काफिर की ओर से या काफिर के धन से सवाब पहुँचने का क्या मतलब है? काफिर मूल रूप से सवाब (पुण्य) का पात्र नहीं है। और अल्लाह सर्वशक्तिमान सबसे अच्छा जानता है।

1 मसनद अहमद बिन हंबल, मसनद अब्दुल्ला बिन अम्र बिन अल-आस (अल्लाह उन पर प्रसन्न हो) से, दार अल-फ़िक्र बेरूत 2/204; सुनन इब्न माजाह, मृतक के घर में इकट्ठा होने की मनाही पर अध्याय, आदि, एचएम सईद कंपनी कराची पृ. 117; कंज़ अल-उम्माल हदीस 4236, मुअस्सस अल-रिसाला बेरूत 1/26।

पेज 649 / 948

فتاوٰی رضویہ (جلد نہم)

هل یجوز الاکل للمسلمین ام لا۔ | مسلمانوں کو کھانا جائز ہے یا نہیں؟ (ت)

الجواب: لا ینبغی لھم ان یجیبوا لانھا ان کانت ضیافة فالضیافة فی الموت من النیاحة روی الامام احمد وابن ماجة بسند صحیح عن جریر بن عبداللہ رضی اللہ تعالی عنه قال کنا نعد الاجتماع الی اھل المیت وصنعة الطعام من النیاحة 1 وان کانت بزعمه صدقة مع انه لا صدقة من کافر وللکافر ففیه ازدراء بالمسلمین لانه یعد نفسه الخبیثة متفضلة علیھم بالتصدق و ایاھم آکلی صدقته والید العلیا خیر من الید السفلی ولاینبغی لید کافر ان تکون علیا بل الاسلام یعلو ولایعلی ھذا ماظھر لی وار جو ان تکون صوابا ان شاء اللہ تعالٰی۔ واللہ تعالٰی اعلم۔ انھیں یہ دعوت نہ قبول کرنا چاہئے اس لیے کہ یہ اگر ضیافت ہے تو موت میں ضیافت نیاحت سے ہے، امام احمد اور ابن ماجہ نے بسند صحیح حضرت جریر بن عبداللہ بجلی رضی اللہ تعالٰی عنہ سے روایت کی: ہم گروہ صحابہ میت کے پاس جمع ہونے اور ان کے کھانا تیار کرنے کو نیاحت سے شمار کرتے تھے اور اگر اس کے خیال میں صدقہ ہو جب کہ صدقہ کسی کافر سے اور کسی کافر کے لیے ہو ہی نہیں سکتا تو اس میں مسلمانوں کی بے عزتی ہے اس لیے کہ وہ صدقہ کر کے اپنے نفس خبیث کو ان پر احسان کرنے والا اور انھیں صدقہ کھانے والا سمجھا جاتا ہے۔ اوپر والا ہاتھ نیچے والے سے بہتر ہوتا ہے اور کسی کافر کا ہاتھ اونچا نہیں ہونا چاہئے، بلکہ اسلام غالب ہوتا ہے مغلوب نہیں ہوتا یہ وہ ہے جو مجھ پر ظاہر ہوا، اور امید کرتا ہوں کہ ان شاء اللہ تعالٰی درست ہوگا، اور خدائے برتر خوب جاننے والا ہے۔ (ت)

مسئلہ ۲۵۷: از بریلی مسئولہ شیخ عبدالعزیز بساطی دوم ذوالقعدہ ۱۳۳۰ھ اہل ہنود اگر فاتحہ دلوانا چاہیں تو دینی چاہئے یا نہیں؟ بینوا توجروا الجواب: فاتحہ ایصال ثواب ہے۔ کافر کی طرف سے یا کافر کے مال کا ثواب پہنچنا کیا معنی؟ کافر اصلاً اہل ثواب نہیں۔ واللہ تعالٰی اعلم

1 مسند احمد بن حنبل از مسند عبداللہ بن عمرو بن العاص رضی اللہ تعالی عنہ دارالفکر بیروت ۲ / ۲۰۴، سنن ابن ماجہ باب ماجاء فی النہی عن الاجتماع الی اہل المیت الخ ایچ ایم سعید کمپنی کراچی ص ۱۱۷، کنز العمال حدیث ۴۲۳۶ موسسۃ الرسالہ بیروت ۱ / ۲۶

Fatawa Razawiya Volume Nine

Issue 258: From Usman Pur, Post Office Kothi, District Barabanki, sent by Muhammad Hasan Yar Khan Sahib, 7th Rabi' al-Awwal Sharif 1318 AH. What do the scholars of religion say regarding this matter: if a Muslim performs Quran recitation or any other means for 'Isal-e-Sawab' (transferring reward) to any disbeliever (kafir), polytheist (mushrik), or Rafidi, will the reward reach that disbeliever, polytheist, or Rafidi or not? And what is the ruling regarding the person who performs Isal-e-Sawab? Please clarify and be rewarded.

The Answer: Whether the disbeliever is a polytheist or a non-polytheist, such as common Rafidis of today who are deniers of the necessities of faith, no reward for any virtuous deed can ever reach them in any way. Allah Almighty says: "and for him in the Hereafter there is no portion." (And for them there is no share in the hereafter. - Tr). And to perform Isal-e-Sawab for them is, God forbid, to go towards the path of disbelief itself because it is declaring definitive texts (Nusoos-e-Qat'iyyah) as false. Regarding the Tabarrai Rafidis, the jurists have the same ruling. Yes, those who are not Tabarrai, like the Tafzilis, reward can reach them and sending it is not prohibited, provided it is not based on religious love for them or considering their innovation (bid'ah) as easy and trivial, otherwise 'Innakum idha mithluhum' (verily you would then be like them) - they too will be counted among them. And Allah Almighty knows best.

Issue 259: From Mandi Haldwani, District Nainital, sent by Hafeez Ahmad Mistri, 25th Rabi' al-Akhir 1336 AH. If some money is given for Milad Sharif for the reward of a deceased Hindu, how is it to have Milad Sharif recited with that Hindu's money?

The Answer: Money should not be taken from a Hindu for this purpose. It is in the Hadith: "I have been forbidden from the foam (gift/property) of the polytheists." (I was forbidden from the froth of the polytheists. - Tr). And Allah Almighty knows best.

---

1 Al-Quran 2/200 2 Sunan Abi Dawud, Chapter on Imam accepting gifts from polytheists, Aftab-e-Alam Press Lahore, 2/78.

फतावा रज़विया जिल्द नहम (नौवीं जिल्द)

मसअला 258: उस्मानपुर डाकखाना कोठी जिला बाराबंकी से मुर्सलह (प्रेषक) मोहम्मद हसन यार खान साहिब, 7 रबी-उल-अव्वल शरीफ 1318 हिजरी। उलमा-ए-दीन इस मसअले में क्या फरमाते हैं कि अगर कोई मुसलमान किसी काफ़िर या मुशरिक या राफ़ज़ी को कुरान ख्वानी और किसी ज़रिए से ईसाले सवाब करे तो उस काफ़िर या मुशरिक या राफ़ज़ी को सवाब पहुँचेगा या नहीं? और ईसाले सवाब करने वाले के बारे में क्या हुक्म है? बयान फरमाएं सवाब पायें।

जवाब: काफ़िर चाहे मुशरिक हो या गैर-मुशरिक जैसे आज कल के आम राफ़ज़ी कि ज़रूरयाते दीन के मुनकिर हैं, उसे हरगिज़ किसी तरह किसी फेले खैर (नेक काम) का सवाब नहीं पहुँच सकता, अल्लाह तआला का इरशाद है: "और उनके लिए आखिरत में कोई हिस्सा नहीं।" (तर्जुमा) और उन्हें ईसाले सवाब करना मआज़ अल्लाह खुद कुफ्र की राह की तरफ जाना है क्योंकि यह नुसूसे क़तइया (ठोस प्रमाणों) को बातिल ठहराना है। राफ़ज़ी तबर्रई का फुकहा-ए-किराम के नज़दीक यही हुक्म है। हाँ, जो तबर्रई नहीं जैसे तफ़ज़ीली, उन्हें सवाब पहुँच सकता है और पहुँचाना भी हराम नहीं, बशर्ते कि यह उनसे दीनी मोहब्बत या उनकी बिदअत को सहल व आसान समझने की बिना पर न हो, वरना "इन्नकुम इज़न मिस्लुहुम" (बेशक तुम भी उन्हीं जैसे हो) - यह भी उन्हीं में शुमार होंगे। वल्लाहु तआला आलम (और अल्लाह तआला बेहतर जानता है)।

मसअला 259: मंडी हल्द्वानी जिला नैनीताल से मुर्सलह हफ़ीज़ अहमद मिस्त्री, 25 रबी-उल-आख़िर 1336 हिजरी। हिन्दू मय्यत के सवाब के लिए मीलाद शरीफ के वास्ते कुछ रुपये दे तो उस हिन्दू के रुपये से मीलाद शरीफ पढ़वाना कैसा है?

जवाब: हिन्दू से रुपया इस वास्ते न लिया जाए। हदीस में है: "मुझे मुशरिकों के झाग (तोहफ़ेमाल) से मना किया गया।" (तर्जुमा) वल्लाहु तआला आलम।

---

1 अल-क़ुरान 2/200 2 सुनन अबी दाऊद, बाब फ़िल इमाम यक़बलु हदाया अल-मुशरिकीन, आफ़ताबे आलम प्रेस लाहौर, 2/78.

فتاوٰی رضویہ جلد نہم

مسئلہ ۲۵۸: از عثمان پور ڈاکخانہ کوٹھی ضلع بارہ بنکی مرسلہ محمد حسن یار خاں صاحب ۷ ربیع الاول شریف ۱۳۱۸ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ اگر کوئی مسلمان کسی کافر یا مشرک یا رافضی کو قرآن خوانی اور کسی ذریعہ سے ایصال ثواب کرے تو اس کافر یا مشرک یا رافضی کو ثواب پہنچے گا یا نہیں؟ اور ایصال ثواب کرنے والے کی بابت کیا حکم ہے؟ بینوا توجروا۔

الجواب: کافر خواہ مشرک ہو یا غیر مشرک جیسے آج کل کے عام رافضی کہ منکران ضروریات دین ہیں، اسے ہر گز کسی طرح کسی فعل خیر کا ثواب نہیں پہنچ سکتا، قال اللہ تعالٰی وَمَا لَهُ فِي الْآخِرَةِ مِنْ خَلَاقٍ (اللہ تعالٰی کا ارشاد ہے: اور ان کے لیے آخرت میں کوئی حصہ نہیں۔ت) اور انہیں ایصال ثواب کرنا معاذ اللہ خود راہ کفر کی طرف جانا ہے کہ نصوص قطعیہ کو باطل ٹھہرانا ہے۔ رافضی تبرائی کا فقہائے کرام کے نزدیک یہی حکم ہے، ہاں جو تبرائی نہیں جیسے تفضیلی، انہیں ثواب پہنچ سکتا ہے اور پہنچانا بھی حرام نہیں جبکہ ان سے دینی محبت یا ان کی بدعت کو سہل وآسان سمجھنے کی بنا پر نہ ہو، ورنہ انکم اذا مثلھم یہ بھی انہیں میں شمار ہوگا۔ واللہ تعالٰی اعلم۔

مسئلہ ۲۵۹: از منڈی ہلدوانی ضلع نینی تال مرسلہ حفیظ احمد مستری ۲۵ ربیع الآخر ۱۳۳۶ھ ہندو میت کے ثواب کے لیے میلاد شریف کے واسطے کچھ روپیہ دے تو اس ہندو کے روپے سے میلاد شریف پڑھوانا کیسا ہے؟

الجواب: ہندو سے روپیہ اس واسطے نہ لیا جائے۔ حدیث میں ہے: اني نهيت عن زبد المشركين (مجھے مشرکین کی جھاگ سے منع کیا گیا۔ ت) واللہ تعالٰی اعلم۔

1 القرآن ۲/۲۰۰ 2 سنن ابی داؤد باب فی الامام یقبل ہدایا المشرکین آفتاب عالم پریس لاہور ۲/۷۸

Fatawa Rizvia Volume 9

Treatise: ITYAN AL-ARWAH LI-DIYARIHIM BA'DA AR-RAWAH 1321 AH (The Homecoming of Souls After Death)

In the name of Allah, the Most Gracious, the Most Merciful

13 Sha'ban al-Mu'azzam 1321 AH Problem 260: What do the scholars of religion and the firm Sharia say on this matter: From the time a person's soul departs from the body, does it return to its house thereafter or not? And does it seek some reward, whether through the Holy Quran or charities like food, money, etc., or not? On which days does the soul visit its house? If it does come, is the one who denies it a sinner or not? And if they are, what kind of sin does it entail? Explain and be rewarded.

The Answer: The seal of the Hadith scholars, the investigating Sheikh Maulana Abdul Haq Muhaddith Dehlavi (may Allah Almighty have mercy on him), states in the commentary of Mishkat Sharif, chapter on visiting graves: [Persian text]: It is recommended that charity be given on behalf of the deceased for seven days after their departure from the world. Charity on behalf of the deceased benefits... [Urdu translation]: It is recommended to give charity on behalf of the deceased for seven days after their departure from the world. From the deceased's side...

फ़तावा रिज़विया खंड 9

लघुग्रंथ: इत्यानुल अर्वाह लि-दयारिहिम बाद अर-रवाह 1321 हि. (रूहों का वफ़ात के बाद अपने घर आना)

बिस्मिल्लाहिर रहमानिर रहीम

13 शाबान अल-मुअज्जम 1321 हि. मसला 260: उलमा-ए-दीन और शरीअत-ए-मतीन इस मसले में क्या फ़रमाते हैं कि जिस वक़्त से इंसान की रूह जिस्म से परवाज़ करती है, उसके बाद क्या वह फिर भी अपने मकान पर आती है या नहीं? और क्या वह कुछ सवाब की तलबगार होती है, चाहे वह क़ुरआन मजीद से हो या खैरात वग़ैरह जैसे खाना या रुपया-पैसा? और रूह किन-किन दिनों में अपने मकान पर आया करती है? और अगर आती है, तो क्या इसका इनकार करने वाला गुनहगार है या नहीं? और अगर है, तो वह किस गुनाह में शामिल है? बयान फ़रमाएं और सवाब पाएं।

जवाब: ख़ातमुल मुहद्दिसीन शैख़ मोहक़्क़िक़ मौलाना अब्दुल हक़ मुहद्दिस देहलवी रहमतुल्लाहि अलैहि शरह मिश्कात शरीफ़, बाब ज़ियारतुल क़ुबूर में फ़रमाते हैं: [फारसी पाठ]: यह मुस्तहब है कि मैय्यत के दुनिया से जाने के बाद सात दिनों तक उसकी तरफ़ से सदक़ा किया जाए। मैय्यत की तरफ़ से सदक़ा फ़ायदा पहुँचाता है... [उर्दू अनुवाद]: मैय्यत के दुनिया से जाने के बाद सात दिन तक उसकी तरफ़ से सदक़ा करना मुस्तहब है। मैय्यत की तरफ़ से...

पेज 651 ऑफ़ 948

فتاوٰی رضویہ جلد نہم

رسالہ اِتْیَانُ الْاَرْوَاحِ لِدِیَارِھِمْ بَعْدَ الرَّوَاحِ ۱۳۲۱ھ (روحوں کا بعد وفات اپنے گھر آنا)

بسم اللہ الرحمن الرحیم

۱۳ شعبان المعظم ۱۳۲۱ھ مسئلہ ۲۶۰: کیا فرماتے ہیں علمائے دین و شرع متین اس مسئلہ میں کہ جس وقت سے روح انسان کی جسم سے پرواز کرتی ہے بعد اس کے پھر بھی اپنے مکان پر آتی ہے یا نہیں؟ اور اس سے کچھ ثواب کی خواستگار خواہ قرآن مجید یا خیرات وغیرہ طعام ہو یا روپیہ پیسہ ہوتی ہے یا نہیں؟ اور کون کون دن روح اپنے مکان پر آیا کرتی ہے؟ اور اگر آتی ہے تو منکر اس کا گنہگار ہے یا نہیں؟ اور اگر ہے تو کس گناہ میں شامل ہے؟ بینوا توجروا

الجواب: خاتمۃ المحدثین شیخ محقق مولانا عبدالحق محدث دہلوی رحمۃ اللہ تعالٰی علیہ شرح مشکوۃ شریف باب زیارۃ القبور میں فرماتے ہیں: مستحب است کہ تصدق کردہ شود از میت بعد از رفتن او از عالم تا ہفت روز تصدق از میت نفع میت کے دنیا سے جانے کے بعد سات دن تک اس کی طرف سے صدقہ کرنا مستحب ہے۔ میت کی طرف سے

Fatawa Rizwia - Volume 9

(Persian Text)

Performing [charity] for the deceased is a matter without disagreement among scholars. Authentic Hadiths have been narrated regarding this, except that it mentions charity and supplication for the dead. In some reports, it states that the soul of the deceased visits its home on Friday night and looks to see if charity is given on its behalf or not. Allah Almighty knows best.

(Urdu Text)

Charity is beneficial for the deceased. There is no disagreement among the people of knowledge in this regard. Authentic Hadiths exist on this subject, especially regarding giving water in charity. Some scholars say only the reward of charity and supplication reaches the deceased. And in some narrations, it has been mentioned that the soul comes to its home on Friday night and waits to see if charity is being given on its behalf or not. And Allah Almighty knows best. (T)

Sheikh al-Islam, in "Kashf al-Ghita' 'amma Yalzam lil-Mawta 'ala al-Ahya'", Chapter Eight, states:

(Persian Text)

"It is narrated in Ghara'ib and Khazanah that the souls of the believers come to their homes every Friday night, Eid day, Ashura day, and the night of Bara'at. They stand outside their houses and each one cries out in a mournful loud voice: O my family, my children, and my relatives! Be kind to us by giving charity."

(Urdu Text)

"It is reported in Ghara'ib and Khazanah that the souls of the believers come to their homes every Friday night, Eid day, Ashura day, and the night of Bara'at, standing outside. Every soul calls out in a sorrowful, loud voice, saying: O people of my house, O my children, O my relatives! Have mercy on us by giving charity." (T)

In the same work:

(Persian Text)

"Sheikh Jalal al-Din al-Suyuti, may Allah Almighty have mercy on him, in Sharh al-Sudur, has brought various Hadiths regarding most of these times, even though most are not free from weakness."

(Urdu Text)

"In Sharh al-Sudur, Sheikh Jalal al-Din al-Suyuti, may Allah Almighty have mercy on him, has narrated various Hadiths about most of these occasions, even though they are not free from weakness." (T)

The word "most" (aksarey) clearly indicates that some are completely free from weakness. So, for the author of "Mi'at al-Masa'il" to absolutely attribute to him that "he has also declared these narrations weak" is a lie and slander, or ignorance and audacity.

---

1. Ash'at al-Lam'at, Chapter of Visiting Graves, Nuria Rizvia Library, Sukkur, 1/717 & 718.
2. Kashf al-Ghita' 'amma Yalzam lil-Mawta 'ala al-Ahya', Chapter on rulings of prayer and charity, p. 66.
3. Kashf al-Ghita' 'amma Yalzam lil-Mawta 'ala al-Ahya', Chapter on rulings of prayer and charity, p. 66.
4. Mi'at al-Masa'il.

फतावा रज़विया - जिल्द 9

(फ़ारसी पाठ)

मृतक के लिए [दान] करना विद्वानों के बीच निर्विवाद है। इस संबंध में प्रामाणिक हदीसें वर्णित हैं, सिवाय इसके कि इसमें मृतक के लिए दान और दुआ का उल्लेख है। कुछ रिपोर्टों में कहा गया है कि मृतक की रूह जुमे की रात को अपने घर आती है और देखती है कि उसकी ओर से दान दिया गया है या नहीं। अल्लाह सर्वशक्तिमान बेहतर जानता है।

(उर्दू पाठ)

दान मृतक के लिए लाभकारी होता है। इस संबंध में विद्वानों के बीच कोई मतभेद नहीं है। इस विषय पर प्रामाणिक हदीसें मौजूद हैं, विशेष रूप से दान में पानी देने के बारे में। कुछ विद्वान कहते हैं कि मृतक तक केवल दान और दुआ का सवाब पहुँचता है। और कुछ रिवायतों में उल्लेख किया गया है कि रूह जुमे की रात को अपने घर आती है और इंतज़ार करती है कि उसकी ओर से दान दिया जा रहा है या नहीं। और अल्लाह सर्वशक्तिमान बेहतर जानता है। (त)

शेखुल इस्लाम, "कश्फ़ुल ग़िता अम्मा यलज़मु लिल-मौता अलल-अहया" के आठवें अध्याय में फरमाते हैं:

(फ़ारसी पाठ)

"ग़राब और खज़ाना में वर्णित है कि मोमिनों की रूहें हर जुमे की रात, ईद के दिन, आशूरा के दिन और बरात की रात को अपने घरों में आती हैं। वे अपने घरों के बाहर खड़ी रहती हैं और हर एक दुखभरी बुलंद आवाज़ में पुकारती है: ऐ मेरे परिवार, मेरे बच्चों और मेरे रिश्तेदारों! दान देकर हम पर मेहरबानी करो।"

(उर्दू पाठ)

"ग़राब और खज़ाना में बताया गया है कि मोमिनों की रूहें हर जुमे की रात, ईद के दिन, आशूरा के दिन और बरात की रात को अपने घरों के बाहर आकर खड़ी हो जाती हैं। हर रूह एक गमगीन, ऊँची आवाज़ में पुकारती है: ऐ मेरे घर के लोगो, ऐ मेरी औलाद, ऐ मेरे रिश्तेदारों! सदका (दान) देकर हम पर मेहरबानी करो।" (त)

उसी कार्य में:

(फ़ारसी पाठ)

"शेख जलालुद्दीन अल-सुयूती, अल्लाह उन पर रहम करे, ने शरह अल-सुदूर में इनमें से अधिकांश

(उर्दू पाठ)

"शरह अल-सुदूर में, शेख जलालुद्दीन सुयूती रहमतुल्लाहि अलैहि ने इन अधिकांश अवसरों

(फ़ारसी पाठ)	(उर्दू पाठ)
समय के बारे में विभिन्न हदीसें पेश की हैं, भले ही अधिकांश कमज़ोरी (ज़ुफ़) से खाली नहीं हैं।"	के बारे में विभिन्न हदीसें बयान की हैं, हालांकि वे कमज़ोरी से मुक्त नहीं हैं।" (त)

शब्द "अकसर" स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि कुछ हदीसें पूरी तरह से कमज़ोरी से मुक्त हैं। इसलिए, "मिअतुल मसाइल" के लेखक का पूरी तरह से उनकी ओर यह बात मन्सूब करना कि "उन्होंने इन रिवायतों को कमज़ोर भी बताया है" झूठ और तोहमत है, या फिर अज्ञानता और धृष्टता।

---

1. अशुअतुल लमआत, कब्रों की ज़ियारत का बाब, मकतबा नूरिया रज़विया, सक्कर, 1/717 और 718।
2. कश्फ़ुल ग़िता अम्मा यलज़मु लिल-मौता अलल-अहया, दुआ और सदका के अहकाम का अध्याय, पृष्ठ 66।
3. कश्फ़ुल ग़िता अम्मा यलज़मु लिल-मौता अलल-अहया, दुआ और सदका के अहकाम का अध्याय, पृष्ठ 66।
4. मिअतुल मसाइल।

(فارسی عبارت) **(اردو عبارت)**

می کند او را بے خلاف میان اہل علم وارد شدہ است در آں احادیث صحیحہ بہ میت را مگر صدقہ و دعاء، و در بعض روایات آمدہ است کہ روح میت می آید خانہ خود را شب جمعہ ، پس نظر می کند کہ تصدق می کنند از وی یانہ۔ ۱ واللہ تعالٰی اعلم

صدقہ اس کے لئے نفع بخش ہوتا ہے۔ اس میں اہل علم کا کوئی اختلاف نہیں، اس بارے میں صحیح حدیثیں وارد ہیں، خصوصاً پانی صدقہ کرنے کے بارے میں۔ اور بعض علماء کا قول ہے کہ میت کو صرف صدقہ اور دعا کا ثواب پہنچتا ہے۔ اور بعض روایات میں آیا ہے کہ رُوح شبِ جمعہ کو اپنے گھر آتی ہے اور انتظار کرتی ہے کہ اس کی طرف سے صدقہ کرتے ہیں یا نہیں واللہ تعالٰی اعلم (ت)

شیخ الاسلام "کشف الغطاء عمالزم للموتٰی علی الاحیاء" فصل ہشتم میں فرماتے ہیں:

(فارسی عبارت) **(اردو عبارت)**

"در غرائب و خزانہ نقل کردہ کہ ارواح مؤمنین می آیند خانہ ہائے خود را ہر شب جمعہ روز عید و روز عاشورہ و شب برات، پس ایستادہ می شوند بیرون خانہائے خود و ندا می کند ہر یکے بآواز بلند اندوہ گین اے اہل و اولاد من و نزد یکان من مہربانی کنید برما بصدقہ۔" 2

غرائب اور خزانہ میں منقول ہے کہ مومنین کی روحیں ہر شب جمعہ، روزِ عید، روزِ عاشورہ، اور شبِ برات کو اپنے گھر آ کر باہر کھڑی رہتی ہیں اور ہر روح غمناک بلند آواز سے ندا کرتی ہے کہ اے میرے گھر والو، اے میری اولاد، اے میرے قرابت دارو! صدقہ کر کے ہم پر مہربانی کرو۔ (ت)

اسی میں ہے:

(فارسی عبارت)	(اردو عبارت)
"شیخ جلال الدین سیوطی رحمۃ اللہ تعالیٰ علیہ در شرح الصدور احادیث شتے در اکثر ازیں اوقات آوردہ اگرچہ اکثرے خالی از ضعف نیست۔" 3	شرح الصدور میں شیخ جلال الدین سیوطی رحمۃ اللہ تعالیٰ علیہ نے ان میں سے اکثر اوقات کے بارے میں مختلف حدیثیں نقل کی ہیں اگرچہ ضعف سے خالی نہیں ہیں۔ (ت)

اکثرے کا لفظ صریح دلالت کر رہا ہے کہ بعض بالکل ضعف سے خالی ہیں۔ تو صاحبِ مائۃ مسائل کا مطلقاً اس کی طرف نسبت کرنا کہ "این روایات را تضعیف ہم فرمودہ اند۔" 4 کذب و افترا ہے یا جہل و اجتراء۔

---

1 اشعۃ اللمعات باب زیارۃ القبور مکتبہ نوریہ رضویہ سکھر ۱ / ۷۱۷ و ۷۱۸ 2 کشف الغطاء عمالزم للموتیٰ علی الاحیاء فصل احکام دعا و صدقہ ص ۶۶ 3 کشف الغطاء عمالزم للموتیٰ علی الاحیاء فصل احکام دعا و صدقہ ص ۶۶ 4 مائتہ مسائل

Volume 9 Fatawa-e-Razvia

To limit reliance only on authentic (Sahih) Marfu' (elevated) traditions with a continuous chain of narration, and to restrict authentic books only to the 'Six Books' (Sihah-e-Sittah), as has occurred here with the author of 'Mi'ah Masa'il', is severe ignorance and extreme foolishness. By consensus (Ijma'), even a Hasan (good) Hadith is a valid proof. In matters other than beliefs and rulings of Halal and Haram, even a weak (Da'if) Hadith is a valid proof by consensus. According to our noble Hanafi imams and the majority of imams, a Mursal Hadith (with a broken chain) is also a valid proof. According to our Imam al-A'zam (Imam Abu Hanifa), may Allah be pleased with him, a Mawquf (stopped at a companion) non-Marfu' saying of a Sahabi is also a valid proof. All these matters are clear even to the lowest students of knowledge, and the fact that authentic Hadiths are not confined to those six books is obvious and proven with evidence even to beginners in knowledge. But, as the Quran says, "But the Wahhabis are a people who are ignorant."

It is astonishing that the author of 'Mi'ah Masa'il' himself in this book and in 'Arba'een', and the elders of the Delhi family, his excellency Maulana Shah Abdul Aziz and Shah Waliullah, have relied in their numerous works on narrations other than the 'Six Books', and narrations from the fourth tier and even lower than those, as is clear and evident from a superficial study of those books. "But the Najdis deny the truth while they know it."

The great Imam Abdullah ibn al-Mubarak and Abu Bakr ibn Abi Shaybah, the teacher of Bukhari and Muslim, narrated from Hazrat Abdullah bin Amr bin al-Aas (may Allah be pleased with them) as a Mawquf narration, and Imam Ahmad in 'Musnad', Tabarani in 'Mu'jam al-Kabir', Hakim in 'Mustadrak' and Abu Nu'aym in 'Hilyah' narrated with an authentic chain from the radiant Master of the World, may Allah's peace and blessings be upon him, as a Marfu' narration.

Arabic Original	**Urdu Translation**
This is the wording of Ibn al-Mubarak: "Verily, this world is the paradise of the disbeliever and the prison of the believer. The likeness of a believer when his soul leaves is like a man who was in prison and was released from it, so he begins to travel in the land and move about freely."[1]	(And these are the words of Ibn Mubarak) Indeed, the world is a paradise for the disbeliever and a prison for the Muslim. When a Muslim's soul departs, it is like a person who was in a dungeon and has now been freed to roam and move about the earth with leisure.

The narration is like this: | Arabic Original | Urdu Translation | | :--- | :--- | | "When the believer dies, his path is cleared to roam wherever he wishes."[2] | When a Muslim dies, his way is opened so he can go wherever he likes. |

[1] Kitab al-Zuhd by Ibn al-Mubarak, chapter on seeking Halal, Hadith 597, Dar al-Kutub al-Ilmiyyah Beirut, p. 211. [2] Musannaf Ibn Abi Shaybah, Kitab al-Zuhd, Hadith 37165, Idara al-Quran Karachi, 13/355.

और इस्तिनाद (प्रमाण) का सहीह मरफू मुत्तसिलुल-इस्नाद में हस्र (सीमित) करना और सिहाह का सिर्फ'कुतुबे सित्ता' (छह किताबों) पर कस्र (सीमित) करना, जैसा कि यहाँ 'माइअ मसाइल' के लेखक से हुआ है, घोर अज्ञानता और अत्यंत मूर्खता है। हदीस-ए-हसन भी सर्वसम्मति (इज्मा) से हुज्जत (प्रमाण) है। अकीदों और हलाल व हराम के अहकाम के अलावा अन्य मामलों में ज़ईफ (कमजोर) हदीस भी सर्वसम्मति से हुज्जत है। हमारे हनफी अइम्मा और अइम्मा की बहुसंख्या के निकट हदीस-ए-मुर्सल (जिसकी ज़ंजीर टूटी हो) भी हुज्जत है। हमारे इमाम-ए-आज़म रज़ियल्लाहु तआला अन्हु के निकट हदीस-ए-मौकूफ (जो सहाबी पर रुक जाए) गैर-मरफू सहाबी का कौल भी हुज्जत है। ये तमाम बातें इल्म के अदना (सामान्य) तालिबों (छात्रों) के लिए भी स्पष्ट हैं, और सहीह हदीसों का उन छह किताबों में ही सीमित न होना इल्म की वर्णमाला सीखने वालों के लिए भी ज़ाहिर और दलीलों से साबित है। लेकिन जैसा कि कहा गया, "बेशक वहाबी अज्ञानी लोग हैं।"

ताज्जुब की बात यह है कि स्वयं 'माइअ मसाइल' के लेखक ने इस किताब में और 'अरबईन' में, और दिल्ली खानदान के बुज़ुर्गों हज़रत मौलाना शाह अब्दुल अज़ीज़ साहब और शाह वलीउल्लाह साहब ने अपनी अनेक कृतियों में उन रिवायतों से इस्तिनाद किया है जो सिहाह के अलावा हैं और चौथे दर्जे की रिवायतों या उनसे भी कम दर्जे की हैं, जैसा कि उन किताबों के मामूली अध्ययन से स्पष्ट है। "लेकिन नजदी लोग सच्चाई जानते हुए भी उसे झुठलाते हैं।"

इमाम-ए-अजल अब्दुल्लाह बिन मुबारक और अबू बक्र बिन अबी शैबा (जो बुखारी और मुस्लिम के उस्ताद हैं) ने हज़रत अब्दुल्लाह बिन अम्र बिन आस रज़ियल्लाहु अन्हुमा से मौकूफन, और इमाम अहमद ने 'मुसनद' में, तबरानी ने 'मोजम कबीर' में, हाकिम ने 'सहीह मुस्तदरक' में और अबू नुऐम ने 'हिलया' में सही सनद के साथ हुज़ूर सरवरे आलम सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम से मरफूअन रिवायत की है।

अरबी पाठ

इब्न मुबारक के शब्द ये हैं: "बेशक दुनिया काफिर का जन्नत और मुसलमान का कैदखाना है। जब मुसलमान की जान निकलती है तो उसकी मिसाल ऐसी है जैसे कोई व्यक्ति जेल में

उर्दू अनुवाद

(और ये इब्न मुबारक के शब्द हैं) बेशक दुनिया काफ़िर के लिए जन्नत और मुसलमान के लिए कैदख़ाना है। जब मुसलमान की रूह निकलती है, तो उसकी मिसाल ऐसी है जैसे कोई शख्स जेल में

अरबी पाठ	उर्दू अनुवाद
था, अब उसे आज़ाद कर दिया गया तो वह ज़मीन में घूमने और सुकून से चलने-फिरने लगा।"[1]	था और अब उसे आज़ाद कर दिया गया, वह ज़मीन पर आराम से चलने-फिरने लगा।

रिवायत इस प्रकार है: | अरबी पाठ | उर्दू अनुवाद | | :--- | :--- | | "जब मोमिन मरता है, तो उसके लिए रास्ता खोल दिया जाता है कि वह जहाँ चाहे जाए।"[2] | जब मुसलमान मरता है तो उसका रास्ता खोल दिया जाता है कि जहाँ चाहे जाए। |

[1] किताबुज़-ज़ुहद इब्न मुबारक, बाब फी तलबिल हलाल, हदीस 597, दारुल कुतुब अल-इल्मिया बेरूत, पृ. 211. [2] मुसन्निफ इब्न अबी शैबा, किताबुज़-ज़ुहद, हदीस 37165, इदारातुल कुरान कराची, 13/355.

اور استناد کا صحیحہ مرفوعہ متصلۃ الاسناد میں حصر اور صحاح کا صرف کتب ستہ پر قصر، جیسا کہ صاحب مائۃ مسائل سے یہاں واقع ہوا۔ جہل شدید و سفہ بعید ہے، حدیث حسن بھی بالاجماع حجت ہے۔ غیر عقائد و احکام حلال و حرام میں حدیث ضعیف بھی بالا جماع حجت ہے، ہمارے ائمہ کرام حنفیہ و جمہور ائمہ کے نزدیک حدیث مرسل غیر متصل الاسناد بھی حجت ہے۔ ہمارے امام اعظم رضی اللہ تعالٰی عنہ کے نزدیک حدیث موقوف غیر مرفوع قول صحابی بھی حجت ہے کہ یہ سب مسائل ادنی طلبہ علم پر بھی روشن ہیں، اور حدیث صحیح کا ان چھ کتابوں میں محصور نہ ہونا بھی علم کے ابجد خوانوں پر بین و مبرہن (ظاہر و دلائل سے ثابت۔ ت) ہے۔ لیکن الوھابیہ قوم یجھلون (لیکن وہابیہ نادان ہیں۔ ت)۔

طرفہ (تعجب۔ ت) یہ کہ خود صاحب مائۃ مسائل نے اس کتاب اور اربعین میں اور بزرگان خاندان دہلی جناب مولانا شاہ عبدالعزیز صاحب و شاہ ولی اللہ صاحب نے اپنی تصانیف کثیرہ میں وہ وہ روایات غیر صحاح و روایات طبقہ رابعہ اور ان سے بھی نازل تر (کم مرتبہ۔ ت) سے استناد کیا ہے جیسا کہ ان کتب کے ادنی مطالعہ سے واضح و مبین ہے ولکن النجدیۃ یجحدون الحق وھم یعلمون (لیکن نجدیہ جان بوجھ کر حق کا انکار کرتے ہیں۔ ت)۔

امام اجل عبداللہ بن مبارک و ابو بکر بن ابی شیبہ استاذ بخاری و مسلم حضرت عبد اللہ بن عمرو بن عاص رضی اللہ تعالٰی عنہم سے موقوفاً اور امام احمد مسند اور طبرانی معجم کبیر اور حاکم صحیح مستدرک اور ابو نعیم حلیہ میں بسند صحیح حضور پر نور سید عالم صلی اللہ تعالٰی علیہ و سلم سے مرفوعاً راوی۔

عربی متن	اردو ترجمہ
وهذا لفظ ابن المبارک قال ان الدنيا جنة الكافر وسجن المؤمن، وانما مثل المؤمن حين تخرج نفسه كمثل رجل كان في السجن فاخرج منه فجعل يتقلب في الارض يتفسح فيها 1۔	(اور یہ ابن مبارک کے الفاظ ہیں، ت) بیشک دنیا کافر کی بہشت اور مسلمان کا قید خانہ ہے، جب مسلمان کی جان نکلتی ہے تو اس کی مثال ایسی ہے جیسے کوئی شخص زندان میں تھا اب آزاد کر دیا گیا تو زمین میں گشت کرنے اور با فراغت چلنے پھرنے لگا۔

روایت یوں ہے: | عربی متن | اردو ترجمہ | | :--- | :--- | | فاذا مات المؤمنين يخلى به يسرح حيث شاء 2۔ | جب مسلمان مرتا ہے اس کی راہ کھول دی جاتی ہے کہ جہاں چاہے جائے۔ |

1 کتاب الزہد لابن المبارک باب فی طلب الحلال حدیث ۵۹۷ دارالکتب العلمیہ بیروت ص ۲۱۱ 2 مصنف ابن ابی شیبہ کتاب الزہد حدیث ۳۷۱۶۵ ادارۃ القرآن کراچی ۳۵۵/۱۳

Fatawa Rizvia Volume 9

Ibn Abi al-Dunya and Bayhaqi narrate from Sa'id ibn al-Musayyib (may Allah be pleased with them both) that Hazrat Salman al-Farsi and Abdullah ibn Salam (may Allah be pleased with them both) met each other. One said to the other, "If you pass away before me, do inform me about what happened there." He asked, "Do the living and the dead even meet?" He replied: 'Yes, as for the believers, their souls are in Paradise and they go wherever they wish.' Yes, the souls of Muslims are in Paradise; they have the choice to go wherever they desire.

Ibn al-Mubarak in Kitab al-Zuhd and Abu Bakr ibn Abi al-Dunya and Ibn Mandah narrate from Salman (may Allah be pleased with him): 'He said: Indeed, the souls of the believers are in a barzakh (intermediate realm) of the earth, going wherever they wish, while the soul of the disbeliever is in Sijjin.' Indeed, the souls of Muslims are in the barzakh of the earth; they go wherever they wish, and the soul of the disbeliever is imprisoned in Sijjin.

Ibn Abi al-Dunya narrates from Malik ibn Anas (may Allah be pleased with him): 'He said: It has reached me that the souls of the believers are released, going wherever they wish.' He said: I have received a narration that the souls of Muslims are free; they go wherever they wish.

Imam Jalaluddin al-Suyuti states in Sharh al-Sudur: 'Ibn al-Barr preferred that the souls of the martyrs are in Paradise, and the souls of others are in the precincts of the graves, roaming wherever they wish.' Imam Abu 'Umar ibn 'Abd al-Barr stated: The preferred view is that the souls of martyrs are in Paradise and those of [other] Muslims are at the courtyards of the graves, coming and going wherever they wish.

Allama Manawi states in Taysir Sharh al-Jami' al-Saghir: 'Indeed, when the soul is extracted from this physical form and released from the bonds of death, it turns [to go] wherever it wishes.' Indeed, when the soul separates from this body and is freed from restrictions due to death, it wanders wherever it desires.

Footnotes: 1 Shu'ab al-Iman, Chapter on Trust and Submission, Hadith 1355, Dar al-Kutub al-Ilmiyyah, Beirut, 2/121. 2 Kitab al-Zuhd by Ibn Mubarak, Chapter on what has been narrated regarding Trust, Hadith 429, Dar al-Kutub al-Ilmiyyah, Beirut, p. 144. 3 Sharh al-Sudur, narrated by Ibn Abi al-Dunya, Chapter on the Abode of Souls, Khilafat Academy, Mingora, Swat, p. 98. 4 Sharh al-Sudur, narrated by Ibn Abi al-Dunya, Chapter on the Abode of Souls, Khilafat Academy, Mingora, Swat, p. 105. 5

Taysir Sharh al-Jami' al-Saghir under the hadith "Indeed, the soul of the believer...", Maktabat al-Imam al-Shafi'i, Riyadh, Saudi Arabia, 1/329.

फ़तावा रज़विया जिल्द नहम (खंड 9)

इब्न अबी अल-दुनिया और बैहक़ी सईद बिन मुसय्यब (रज़ियल्लाहु अन्हुमा) से रिवायत करते हैं कि हज़रत सलमान फ़ारसी और अब्दुल्लाह बिन सलाम (रज़ियल्लाहु अन्हुमा) आपस में मिले। एक ने दूसरे से कहा कि अगर मुझसे पहले इंतकाल करो तो मुझे खबर देना कि वहाँ क्या पेश आया। कहा: क्या ज़िंदा और मुर्दे भी मिलते हैं? कहा: 'न'अम अम्मा अल-मुमिनून फ-इन्ना अरवाहुहुम फ़िल जन्नति व हिया तज़हबु हैसु शा'अत1।' हाँ, मुसलमानों की रूहें तो जन्नत में होती हैं, उन्हें इख्तियार (विकल्प) होता है जहाँ चाहें जाएँ।

इब्न अल-मुबारक किताब अल-ज़ुहद और अबू बक्र इब्न अबी अल-दुनिया और इब्न मंदह हज़रत सलमान (रज़ियल्लाहु अन्हु) से रिवायत करते हैं: 'क़ाला इन्ना अरवाहल मु'मिनीना फ़ी बरज़खिन मिनल अरज़ि तज़हबु हैसु शा'अत व नफ़्सुल काफ़िरि फ़ी सिज्जीन2।' बेशक मुसलमानों की रूहें ज़मीन के बरज़ख में हैं जहाँ चाहती हैं जाती हैं, और काफ़िर की रूह सिज्जीन में कैद है।

इब्न अबी अल-दुनिया मालिक बिन अनस (रज़ियल्लाहु अन्हु) से रिवायत करते हैं: 'क़ाला बलाग़नी अन्ना अरवाहल मु'मिनीना मुरसलतुन तज़हबु हैसु शा'अत3।' फ़रमाया: मुझे हदीस पहुँची है कि मुसलमानों की रूहें आज़ाद हैं जहाँ चाहती हैं जाती हैं।

इमाम जलालुद्दीन सुयूती शरह अल-सुदूर में फ़रमाते हैं: 'रज्जहा इब्नुल बर्र अन्ना अरवाहुश शुहदा'इ फ़िल जन्नति व अरवाहु गैरिहिम अला अफ़्नियतुल क़ुबूरि फ-तसरहु हैसु शा'अत4।' इमाम अबू उमर इब्न अब्दुल बर्र ने फ़रमाया: राजेह (वरीयता प्राप्त मत) यह है कि शहीदों की रूहें जन्नत में हैं और मुसलमानों की रूहें कब्रों के सहन में, जहाँ चाहें आती-जाती हैं।

अल्लामा मुनावी तयसीर शरह जामे सगीर में फ़रमाते हैं: 'इन्नर रूहा इज़ा अंखलअत मिन हाज़ल हैकलि व अनफ़क्कत मिनल क़ुयूदि बिल मौत तहव्वल इला हैसु शा'अत5।' बेशक जब रूह इस शरीर (सांचे) से जुदा और मौत के कारण कैद से रिहा होती है, तो जहाँ चाहती है सैर करती है।

पाद-टिप्पणियाँ: 1 शुअब अल-ईमान, बाब अल-तवक्कुल व अल-तस्लीम, हदीस 1355, दार अल-कुतुब अल-इल्मिया, बेरूत, 2/121 2 किताब अल-ज़ुहद लिब्न मुबारक, बाब मा जा'अ फ़िल तवक्कुल, हदीस 429, दार अल-कुतुब अल-इल्मिया, बेरूत, पृ. 144 3 शरह अल-सुदूर, बहवाला इब्न अबी अल-दुनिया, बाब मकर्र अल-अरवाह, खिलाफत एकेडमी, मिंगोरा, स्वात, पृ. 98 4 शरह अल-सुदूर, बहवाला इब्न अबी अल-दुनिया, बाब मकर्र अल-अरवाह, खिलाफत एकेडमी, मिंगोरा,

स्वात, पृ. 105 5 तयसीर शरह जामे सगीर, हदीस 'इन्ना रूहल मु'मिनीन...' के तहत, मकतबा अल-इमाम अल-शाफ़ई, रियाज़, सऊदी अरब, 1/329

فتاوی رضویہ جلد نہم

ابن ابی الدنیا وبیہقی سعید بن مسیب رضی اللہ تعالیٰ عنہما سے راوی حضرت سلمان فارسی و عبد اللہ بن سلام رضی اللہ تعالیٰ عنہما باہم ملے، ایک نے دوسرے سے کہا کہ اگر مجھ سے پہلے انتقال کرو تو مجھے خبر دینا کہ وہاں کیا پیش آیا، کہا کیا زندے اور مردے بھی ملتے ہیں؟ کہا: نعم اما المومنون فان ارواحھم فی الجنۃ وہی تذھب حیث شاءت1۔ ہاں مسلمان کی روحیں تو جنت میں ہوتی ہیں انھیں اختیار ہوتا ہے جہاں چاہیں جائیں۔

ابن المبارک کتاب الزہد وابوبکر ابن ابی الدنیا وابن مندہ سلمان رضی اللہ تعالیٰ عنہ سے راوی: قال ان ارواح المؤمنین في برزخ من الارض تذھب حیث شاءت ونفس الکافر فی سجین2۔ بیشک مسلمانوں کی روحیں زمین کے برزخ میں ہیں جہاں چاہتی ہیں جاتی ہیں، اور کافر کی روح سجین میں مقید ہے۔

ابن ابی الدنیا مالک بن انس رضی اللہ تعالیٰ عنہ سے راوی: قال بلغنی ان ارواح المومنین مرسلۃ تذھب حیث شاءت3۔ فرمایا: مجھے حدیث پہنچی ہے کہ مسلمانوں کی روحیں آزاد ہیں جہاں چاہتی ہیں جاتی ہیں۔

امام جلال الدین سیوطی شرح الصدور میں فرماتے ہیں: رجح ابن البران ارواح الشھداء في الجنۃ وارواح غیرہم علی افنیۃ القبور فتسرح حیث شاءت4۔ امام ابو عمر ابن عبدالبر نے فرمایا: راجح یہ ہے کہ شہیدوں کی روحیں جنت میں ہیں اور مسلمانوں کی فنائے قبور پر، جہاں چاہیں آتی جاتی ہیں،

علامہ مناوی تیسیر شرح جامع صغیر میں فرماتے ہیں: ان الروح اذا انخلعت من هذا الهيكل وانفكت من القيود بالموت تحول الى حيث شاءت5۔ بیشک جب روح اس قالب سے جدا اور موت کے باعث قیدوں سے رہا ہوتی ہے جہاں چاہتی ہے جولاں کرتی ہے۔

حواشی: 1 شعب الایمان باب التوکل والتسلیم حدیث ۱۳۵۵ دار الکتب العلمیہ بیروت ۱۲۱/۲ 2 کتاب الزہد لابن مبارک باب ما جاء فی التوکل حدیث ۴۲۹ دار الکتب العلمیہ بیروت ص ۱۴۴ 3 شرح الصدور بحوالہ ابن ابی الدنیا باب مقر الارواح خلافت اکیڈمی منگورہ سوات ص ۹۸ 4 شرح الصدور بحوالہ ابن ابی الدنیا باب مقر الارواح خلافت اکیڈمی منگورہ سوات ص ۱۰۵ 5 تیسیر شرح جامع صغیر تحت حدیث ان روح المومنین الخ مکتبہ الامام الشافعی الریاض السعودیہ ۳۲۹/۱

Fatawa Ridawiyyah Volume 9

Qazi Thanaullah also writes in Tadhkirat al-Mawta: The souls of those (i.e., the noble saints, may their secrets be sanctified) go wherever they wish in the earth, the heavens, and Paradise. | [Urdu translation in original:] The souls of the noble saints (may their secrets be sanctified) go to the earth, the heavens, and Paradise wherever they desire. (T)

It is stated in Khizanat al-Riwayat: It is narrated from some research scholars that souls are released on the night of Friday and spread out; they first come to their graves and then to their homes.

In Dastur al-Qudat, the author of Mi'at Masā'il narrates from the Fatawa of Imam Nasafi: Indeed, the souls of the believers come to their homes every night and day of Friday. They stand at the doors of their houses and then each one of them calls out in a sorrowful voice: "O my family! O my children! O my relatives! Show kindness to us through charity, remember us and do not forget us, and have mercy on us in our state of estrangement (ghurbat)." etc.

Furthermore, in Khizanat al-Riwayat, the author of Mi'at Masā'il states: It is narrated from Ibn Abbas (may Allah be pleased with them both) that when it is the day of Eid, or Friday, or Ashura, or the night of Mid-Sha'ban (Shab-e-Barat), the souls of the deceased come and stand at the doors of their houses and say: "Is there anyone who remembers us? Is there anyone who has mercy on us? Is there anyone who reminds [people] of our state of estrangement?" — to the end of the Hadith. | From Ibn Abbas (may Allah be pleased with them both) it is narrated that when it is the day of Eid or Friday or Ashura or the night of Barat, the souls of the deceased come and stand at the doors of their homes and say: Is there anyone who remembers us, is there anyone who takes pity on us, is there anyone who reminds [others] of our state of estrangement.

Similarly, in Kanz al-Ibad, it is quoted from the book Al-Rawdah of Imam Zandwaysi. This issue belongs neither to [fundamental] beliefs nor to jurisprudence...

1. Tadhkirat al-Mawta wal-Qubur, Urdu translation Misbah al-Nur, chapter on the description of the resting places of souls, Nuri Kutub Khana, Lahore, pp. 76 and 57.
2. Khizanat al-Riwayat
3. Dastur al-Qudat

4. Khizanat al-Riwayat

फ़तावा रज़विया जिल्द 9

काज़ी सनाउल्लाह भी 'तज़किरतुल मौत' में लिखते हैं: उनकी रूहें (यानी औलिया-ए-किराम, उनके राज पवित्र हों) ज़मीन, आसमान और जन्नत में जहाँ चाहती हैं जाती हैं। | [उर्दू अनुवाद:] औलिया-ए-किराम (कुद्दिसा सिररुहुम) की रूहें ज़मीन, आसमान, जन्नत में जहाँ चाहती हैं जाती हैं। (त)

'ख़ज़ानतुल रिवायत' में है: कुछ अनुसंधान विद्वानों (मुहक्किीन) से रिवायत है कि जुमे की रात रूहें आज़ाद होती हैं और फैल जाती हैं, पहले अपनी कब्रों पर आती हैं फिर अपने घरों में।

'दस्तूरुल कुज़ात' के मुसन्निद साहब 'मिअत मसायल' में फ़तावा इमाम नसफी से नक़ल है: बेशक मुसलमानों की रूहें हर दिन और जुमे की रात अपने घर आती हैं और दरवाज़े के पास खड़ी होकर दर्दनाक आवाज़ से पुकारती हैं कि "ऐ मेरे घर वालो! ऐ मेरे बच्चो! ऐ मेरे अज़ीज़ो! हम पर सदक़ा से मेहर करो, हमें याद करो भूलो मत, हमारी ग़रीबी (परदेस) में हम पर तरस खाओ।" आदि।

साथ ही 'ख़ज़ानतुल रिवायत' के मुसन्निद साहब 'मिअत मसायल' में है: इब्ने अब्बास (रज़ियल्लाहु तआला अन्हुमा) से रिवायत है कि जब ईद या जुमा या आशूरा का दिन या शबे बारात होती है, तो मुर्दों की रूहें आकर अपने घरों के दरवाज़ों पर खड़ी होती हैं और कहती हैं: "है कोई जो हमें याद करे? है कोई जो हम पर तरस खाए? है कोई जो हमारी बेकसी (परदेस) की याद दिलाए?" — हदीस के अंत तक। | इब्ने अब्बास (रज़ियल्लाहु तआला अन्हुमा) से रिवायत है जब ईद या जुमा या आशूरा का दिन या शबे बारात होती है, अमवात (मृतकों) की रूहें आकर अपने घरों के दरवाज़ों पर खड़ी होती और कहती हैं: है कोई कि हमें याद करे, है कोई कि हम पर तरस खाए, है कोई कि हमारी ग़ुरबत (परदेस) की याद दिलाए।

इसी तरह 'कन्ज़ुल इबाद' में भी इमाम ज़न्दवेसी की किताब 'अर-रौज़ा' से नक़ल है, यह मसला न अकीदों का है न फ़िक्ह का...

1. 'तज़किरतुल मौत वल कुबूर' उर्दू अनुवाद 'मिस्बाह उन-नूर', रूहों के ठहरने की जगह के बयान में, नूरी कुतुब ख़ाना लाहौर, पृ. 76 और 57
2. 'ख़ज़ानतुल रिवायत'
3. 'दस्तूरुल कुज़ात'
4. 'ख़ज़ानतुल रिवायत'

فتاوٰی رضویہ جلد نہم

قاضی ثناء اللہ بھی تذکرۃ الموتی میں لکھتے ہیں: ارواح ایشاں (یعنی اولیائے کرام قدست اسرار ہم) از زمین و آسماں و بہشت ہر جا کہ خواہند می روند -1- | اولیائے کرام قدست اسرار ہم کی روحیں زمین، آسمان، بہشت میں جہاں چاہتی ہیں جاتی ہیں (ت)

خزانہ الروایات میں ہے: عن بعض العلماء المحقیقین ان الارواح تتخلص لیلۃ الجمعۃ وتنتشر فجاؤ الی مقابر ثم جاؤا فی بیوتھم -2- | بعض علماء محققین سے مروی ہے کہ روحیں شب جمعہ چھٹی پاتی اور پھیلتی جاتی ہیں، پہلے اپنی قبروں پر آتی ہیں پھر اپنے گھروں میں۔

دستور القضاۃ مسند صاحب مائۃ مسائل میں فتاوٰی امام نسفی سے ہے: ان ارواح المومنین یاتونی فی کل لیلۃ الجمعۃ ویوم الجمعۃ فیقومون بفناء بیوتھم ثم ینادی کل واحد منھم بصوت حزین یا اھلی ویا اولادی ویا اقربائی اعطفوا علینا بالصدقۃ و اذکرونا ولاتنسونا وارحمونا فی غربتنا -3- الخ۔ | بیشک مسلمانوں کی روحیں ہر روز و شب جمعہ اپنے گھر آتی اور دروازے کے پاس کھڑی ہو کر درد ناک آواز سے پکارتی ہیں کہ اے میرے گھر والو! اے میرے بچو! اے میرے عزیزو! ہم پر صدقہ سے مہر کرو، ہمیں یاد کرو بھول نہ جاؤ، ہماری غریبی میں ہم پر ترس کھاؤ۔

نیز خزانہ الروایات مستند صاحب مائتہ مسائل میں ہے: عن ابن عباس رضی اللہ تعالی عنھما اذا کان یوم عید او یوم جمعۃ او یوم عاشوراء ولیلۃ النصف من الشعبان تاتی ارواح الاموات ویقومون علی ابواب بیوتھم فیقولون ھل من احد یذکرنا ھل من احد یترحم علینا ھل من احد یذکر غربتنا -4- الحدیث۔ | ابن عباس رضی اللہ تعالی عنہما سے روایت ہے جب عید یا جمعہ یا عاشورہ کا دن یا شب برات

ہوتی ہے اموات کی روحیں آکر اپنے گھروں کے دروازوں پر کھڑی ہوتی اور کہتی ہیں: ہے کوئی کہ ہمیں یاد کرے، ہے کوئی کہ ہم پر ترس کھائے، ہے کوئی کہ ہماری غربت کی یاد دلائے۔

اسی طرح کنز العباد میں بھی کتاب الروضہ امام زندویسی سے منقول، یہ مسئلہ کہ نہ عقائد کا ہے نہ فقہ کے

1 تذکرۃ الموتٰی والقبور اردو ترجمہ مصباح النور باب روحوں کے ٹھہرنے کی جگہ کے بیان میں نوری کتب خانہ لاہور ص ۷۶ و ۵۷ 2 خزانہ الروایات 3 دستور القضاۃ 4 خزانہ الروایات

Fatawa Razawiyya, Volume 9

Regarding matters of the lawful and prohibited, even one or two chains of narration would have sufficed in such a place, let alone so many and abundant. Imam Jalal al-Millah wa al-Din al-Suyuti, in 'Manahil al-Safa fi Takhrij Ahadith al-Shifa', while discussing the mourning of the Leader of the Believers, Umar al-Faruq al-A'zam (may Allah be pleased with him), states:

(Arabic Text)	**(Urdu Translation)**
I did not find it in any book of narrations (Athar), but the author of 'Iqtibas al-Anwar' and Ibn al-Hajj in his 'Madkhal' mentioned it within a long hadith. Such a chain is sufficient for its like, for it does not pertain to legal rulings (Ahkam).[1]	Meaning, I have not found this hadith in any book of hadith, except that the author of 'Iqtibas al-Anwar' and Ibn al-Hajj in 'Madkhal' mentioned it without a chain in a long hadith. For such a hadith, this much of a chain is sufficient because it does not relate to legal rulings.

As for the current misguided one, the Sheikh of misguidance Gangohi's false claim in 'Barahin-e-Qatia' that the coming of souls to their homes is a matter of creed (Aqa'id), and for this, famous and mutawatir authentic hadiths are needed. He values certainties over speculative authentic reports. That is, even if it were in Sahih Bukhari and Sahih Muslim and clear hadiths that souls come, those hadiths would still be rejected in his religion because there is no action (amal) in these reports, but rather knowledge (ilm). And even if accepted, it is only for action, not excellence of action. In 'Barahin-e-Qatia' (The Book that Cuts what Allah has commanded to be joined—Translator), over four pages, he has adorned and polished this strange mockery with various kinds of absurdities. This is extreme and gross ignorance.

I say: If every declarative sentence in which there is an affirmation or negation, even if it does not pertain to creed in any way positively or negatively, and if its negation or affirmation does not lead to a verdict of misguidance or deviance, were to be considered part of the chapter of creed where even the hadiths of Bukhari and Muslim are rejected unless they are mutawatir, then: Firstly, the sciences of history (Siyar), battles (Maghazi), and virtues (Manaqib) would all be lost and destroyed. This is despite scholars clearly stating that in these sciences, leave alone authentic (Sahih) narrations, even weak (Dha'if) ones are acceptable. It is stated in 'Sirat Insan al-Uyun':

(Arabic Text)

It is not hidden that history (Siyar) compiles the authentic and the infirm, the weak, the balagh (narrations starting with 'it reached us'), the mursal (missing a companion), the munqati' (disconnected), and the mu'dal (missing two or more narrators), excluding the fabricated (mawdu'). And Imam [Ahmad] and others have said...

(Urdu Translation)

It is not hidden that in books of history (Siyar), leaving aside fabricated ones, all kinds of narrations—authentic, infirm, weak, balagh, mursal, disconnected, and mu'dal—are present. Imam Ahmad and other Imams have [said]...

[1] Manahil al-Safa fi Takhrij Ahadith al-Shifa Page 656 of 948

फतावा रज़विया, जिल्द 9

हलाल और हराम के मामले में, ऐसी जगह एक या दो सनदें (प्रमाण) भी पर्याप्त होतीं, न कि इतनी अधिक और प्रचुर। इमाम जलाल अल-मिल्लत वल-दीन सुयूती 'मनाहिल अल-सफा फी तख़रीज अहादीस अल-शिफ़ा' में अमीरुल मोमिनीन उमर फ़ारूक़े आज़म (रज़ियल्लाहु अन्हु) के शोक के तहत फरमाते हैं:

(अरबी पाठ)

मैंने इसे हदीस (असर) की किसी भी किताब में नहीं पाया, लेकिन 'इक्तिबास अल-अनवार' के लेखक और इब्न अल-हाज ने अपनी 'मदख़ल' में एक लंबी हदीस के भीतर इसका उल्लेख किया है। इस तरह की हदीस के लिए इतनी सनद काफी है क्योंकि इसका संबंध कानूनी आदेशों (अहकाम) से नहीं है।[1]

(उर्दू अनुवाद)

अर्थात, मैंने इस हदीस को हदीस की किसी किताब में नहीं पाया, सिवाय इसके कि 'इक्तिबास अल-अनवार' के लेखक और इब्न अल-हाज ने 'मदख़ल' में इसे बिना सनद के एक लंबी हदीस में ज़िक्र किया। ऐसी हदीस के लिए इतनी ही सनद काफी है कि वह कुछ अहकाम (आदेशों) से संबंधित नहीं है।

बाकी रहा हाल के गुमराहों के शेख़ गंगोही का 'बराहीन-ए-क़ातिआ' में यह झूठा गुमान कि रूहों (आत्माओं) का अपने घर आना अक़ीदे का मसला है, और इसके लिए मशहूर और मुतवातिर सही हदीसों की ज़रूरत है। वह यकीनी चीज़ों को तरजीह देते हैं न कि ज़न्नी (अनुमानित) सही रिवायतों को। यानी अगर सही बुखारी और सही मुस्लिम और साफ़ हदीसों में हो कि रूहें आती हैं, तब भी वे हदीसें उनके धर्म (मज़हब) में मरदूद (अस्वीकृत) होंगी, क्योंकि इन रिवायतों में अमल (कार्य) नहीं बल्कि इल्म (ज्ञान) है। और अगर तस्लीम (स्वीकार) भी कर लें तो सिर्फ अमल है न कि फ़ज़्ल-ए-अमल। 'बराहीन-ए-क़ातिआ' (अल्लाह ने जिस चीज़ को जोड़ने का हुक्म दिया उसे काटने वाली किताब—अनुवादक) में चार पृष्ठों से अधिक पर इसी अजीब मज़ाक को तरह-तरह के फ़ुज़ूल बातों से सजाया गया है। यह घोर अज्ञानता है।

अक़ूल (मैं कहता हूँ): हालाँकि हर वह खबरी जुमला जिसमें किसी बात का इक़रार या इनकार हो, चाहे वह किसी तरह अक़ीदे में दखल न रखता हो, और उस इनकार या इक़रार के कारण गुमराह होने का ख़तरा न हो, अगर वे सब अक़ीदे के बाब में दाखिल मान लिए जाएं जिसमें बुखारी और मुस्लिम की हदीसें भी तब तक नाक़ाबले कुबूल हों जब तक वे मुतवातिर न हों, तो: अव्वल तो सीरत,

मगाज़ी और मनाक़िब के ये तमाम उलूम बर्बाद हो जाएंगे, हालाँकि उलेमा साफ़ तौर पर फ़रमाते हैं कि इन उलूम में सही तो दूर, ज़ईफ़ (कमज़ोर) रिवायतें भी मक़बूल हैं। सीरत 'इंसान अल-उयून' में है:

(अरबी पाठ)	(उर्दू अनुवाद)
यह छिपा नहीं है कि सीरत (इतिहास) की किताबों में सही और बीमार, ज़ईफ़, बलाग़, मुरसल, मुनक़ति' और मुअदल, सिवाय मौज़ू (गढ़ी हुई) के हर प्रकार की रिवायतें जमा होती हैं। और इमाम [अहमद] वग़ैरह ने फ़रमाया...	छिपा नहीं है कि सीरत की किताबों में, मौज़ू छोड़कर, सही, सक़ीम, ज़ईफ़, बलाग़, मुरसल, मुनक़ति', मुअदल हर किस्म की रिवायतें होती हैं। इमाम अहमद वग़ैरह अइम्मा ने...

[1] मनाहिल अल-सफा फी तख़रीज अहादीस अल-शिफ़ा पृष्ठ 656 of 948

حلال و حرام کا، ایسی جگہ دو ایک سندیں بھی بس ہوتیں نہ کہ اس قدر کثیر و وافر۔ امام جلال الملۃ والدین سیوطی مناہل الصفا فی تخریج احادیث الشفاء زیر رثائے امیر المومنین عمر فاروق اعظم رضی اللہ تعالٰی عنہ فرماتے ہیں:

عربی عبارت	اردو ترجمہ
لم اجدہ فی شیئ من کتاب الاثر لکن صاحب اقتباس الانوار وابن الحاج فی مدخلہ ذکراہ فی ضمن حدیث طویل وکفی بذلک سنداً المثلہ فانہ لیس مما یتعلق بالاحکام 1۔	یعنی میں نے یہ حدیث کسی کتاب حدیث میں نہ پائی مگر صاحب اقتباس الانوار اور ابن الحاج نے مدخل میں اسے ایک حدیث طویل میں بے سند ذکر کیا۔ ایسی حدیث کو اتنی ہی سند کافی ہے کہ وہ کچھ احکام سے متعلق نہیں۔

باقی رہا ضلالِ حال کے شیخ الضلال گنگوہی کا "براہین قاطعہ" میں زعمِ باطل کہ ارواح کا اپنے گھر آنا یہ مسئلہ عقائد کا ہے اس میں مشہور و متواتر صحاح کی حاجت ہے قطعیات کا اعتبار ہے نہ ظنیات صحاح کا یعنی اگر صحیح بخاری و صحیح مسلم و صریح حدیثوں میں ہو کہ روحیں آتی ہیں اور وہ حدیثیں بھی ان کے دھرم (مذہب ۱۲) میں مردود ہوں گی کہ ان روایات میں عمل نہیں بلکہ علم ہے اور تسلیم بھی کر لیے تو فقط عمل ہے نہ فضلِ عمل، براہین قاطعہ لما امر اللہ بہ ان یوصل (اللہ تعالٰی نے جس چیز کے ملانے کا حکم دیا اسے قطع کرنے والی کتاب۔ ت) میں چار ورق سے زائد پر یہی عجوبہ اضحوکہ، طرح طرح کے مزخرفات سے آلودہ اندودہ (مزین و ملمع ۱۲) کیا ہے سخت جہالتِ فاحشہ ہے۔

اقول: اگرچہ ہر جملہ خبریہ جس میں کسی بات کا ایجاب یا سلب ہوا گرچہ اسے نفیاً و اثباتاً کسی طرح عقائد میں دخل نہ ہو، نافی یا مثبت کسی پر اس نفی واثبات کے سبب حکم ضلالت و گمراہی محتمل نہ ہو سب باب عقائد میں داخل ٹھہرے، جس میں احادیث بخاری و مسلم بھی جب تک متواتر نہ ہوں نا مقبول ٹھہریں، تو اولاً سیر و مغازی و مناقب یہ علوم سب گاؤ خورد و دریا بُرد ہو جائیں، حالانکہ علماء تصریح فرماتے ہیں کہ ان علوم میں صحاح در کنار ضعاف بھی مقبول، سیرت انسان العیون میں ہے:

عربی عبارت	اردو ترجمہ
لا یخفی ان السیر تجمع الصحیح والسقیم، والضعیف والبلاغ، والمرسل والمنقطع، والمعضل دون الموضوع، وقد قال الامام	مخفی نہیں کہ کتب سیر، میں موضوع چھوڑ کر صحیح، سقیم، ضعیف، بلاغ، مرسل، منقطع، معضل ہر قسم کی روایتیں ہوتی ہیں، امام احمد وغیرہ ائمہ نے

Fatawa Rizwia Volume 9

Ahmad ibn Hanbal and other Imams said: When we narrate regarding Halal and Haram, i.e., in the chapter of rulings, we are strict; but when we narrate regarding virtues (Fadhail) and similar matters, we are lenient. (T)

Refer to the details of this discussion in the humble author's book 'Munir al-Ayn fi Hukm Taqbeel al-Ibhamayn' (The Luminous Eye regarding the Ruling on Kissing the Thumbs). Look here, was the aforementioned rash (opinion) of the Commander of the Faithful about virtuous deeds? That too is from the chapter of knowledge. In which the last of the Hadith masters (Khatim al-Huffaz) found even the unsourced anecdotes of some scholars to be sufficient.

Secondly: The science of men (Ilm al-Rijal - Hadith narrators) would also be rejected as it is also knowledge, not practice or virtue. Without practice, all non-definitive matters are false and useless.

Thirdly: More than two-thirds of the Hadiths of Bukhari and Muslim would be declared purely false and rejected.

Fourthly: The distinction between beliefs (aqa'id) and actions (a'mal) on which there is a consensus of the Imams would be lost. For in the rulings of Halal and Haram, is there no belief involved? Are lawfulness and unlawfulness not attached? If it's not practice but knowledge, then for understanding something as Halal or Haram, the Hadiths of Bukhari and Muslim would be rejected. And if one doesn't know what's Halal or Haram, why would they do it or avoid it!

Fifthly: Rather, even in virtuous deeds, it would be necessary for the Hadiths of the two Sahihs (Bukhari and Muslim) to be rejected. Although this foolish person accepts even weak Hadiths in them. It's clear that knowing a certain deed has a certain quality or reward is not the deed itself but knowledge. And knowledge is from the chapter of beliefs, and in beliefs, the Sahih Hadiths that provide speculative knowledge (dhanniyat) are rejected.

Sixthly: The previous person was kind enough to accept Sahih Marfu' Hadiths with a continuous chain; but this person rejected Bukhari and Muslim as well. They won't listen to anything unless it's definitive.

A step of love is better taken earlier.

Seventhly: See the result of divine seal. In that same 'Barahin Qati'a li-ma Amar Allah bi-hi an Yusala' [the book of the opponent], the excellence of the knowledge of Muhammad the Messenger of Allah (peace and blessings be upon him) was removed from the chapter of virtues and forced into the narrow confines of beliefs so that even the Hadiths of Bukhari and Muslim indicating the vastness of the knowledge of Muhammad the Messenger of Allah (peace and blessings be upon him) would be deemed rejected. And in that very same place, to diminish the great knowledge of Muhammad the Messenger of Allah (peace and blessings be upon him), an unfounded and unsourced story was brought as evidence, claiming that Sheikh Abdul Haq narrates saying 'I don't even know what's behind the wall', whereas the Honorable Sheikh...

---

1. Insan al-Uyun, Preface of the book, Mustafa al-Babi, Egypt 1/3 and 4.

फ़तावा रज़विया भाग 9

अहमद बिन हंबल और अन्य इमामों ने कहा: जब हम हलाल और हराम यानी हुक्मों के अध्याय में रिवायत करते हैं तो हम सख्ती बरतते हैं और जब फज़ाइल (गुणों) आदि के अध्याय में रिवायत करते हैं तो हम नरमी बरतते हैं। (त)

इस बहस का विवरण फकीर (लेखक) की किताब 'मुनीर उल ऐन फी हुक्म तक़्बील अल-इबहामैन' में देखें। यहीं देखें, क्या अमीरुल मोमिनीन की उक्त राय फज़ाइल-ए-आमाल से थी? वह भी इल्म (ज्ञान) के अध्याय से है। जिसमें इमाम खातिमुल हुफ़्फ़ाज़ ने कुछ विद्वानों की बे-सनद (बिना स्रोत वाली) कहानियों को भी काफी बताया।

दूसरा: इल्म-ए-रिजाल (हदीस के वर्णनकर्ताओं का ज्ञान) भी खारिज हो जाएगा क्योंकि वह भी इल्म है, न कि अमल या फज़ीलत। अमल के बिना तमाम गैर-कतई (अनिश्चित) बातें बातिल और बेकार हैं।

तीसरा: बुखारी और मुस्लिम की दो-तिहाई से अधिक हदीसें विशुद्ध रूप से बातिल और खारिज करार दी जाएंगी।

चौथा: अकीदों (विश्वासों) और आमाल (कर्मों) के बीच का वह भेद जिस पर इमामों की सर्वसम्मति है, व्यर्थ हो जाएगा। क्योंकि हलाल और हराम के हुक्मों में क्या अकीदा शामिल नहीं है? क्या हलाल और हराम होना उससे जुड़ा नहीं है? और अगर वह अमल नहीं बल्कि इल्म है, तो किसी चीज़ को हलाल या हराम समझने के लिए बुखारी और मुस्लिम की हदीसें खारिज मानी जाएंगी। और जब हलाल और हराम का पता ही न हो, तो कोई उसे क्यों करेगा या उससे क्यों बचेगा!

पांचवां: बल्कि फज़ाइल-ए-आमाल में भी सहीहैन (बुखारी और मुस्लिम) की हदीसों का खारिज होना लाज़िम आएगा। हालाँकि यह नासमझ खुद उनमें ज़ईफ़ (कमज़ोर) हदीसों को भी स्वीकार करता है। यह स्पष्ट है कि इस अमल में यह खूबी है और इस पर यह सवाब है, यह जानना खुद अमल नहीं बल्कि इल्म है, और इल्म अकीदों के अध्याय से है और अकीदों में ज़न्नी (अनुमानित) सहीह हदीसें खारिज होती हैं।

छठा: पिछले साहब ने तो इतनी मेहरबानी की थी कि सहीह मरफू मुत्तसिल सनद वाली हदीस को स्वीकार किया था; उन्होंने तो बुखारी और मुस्लिम को भी खारिज कर दिया। जब तक कतई (निश्चित) प्रमाण न हों, वे कुछ नहीं सुनेंगे।

इश्क का एक कदम पहले उठाना बेहतर है।

सातवां: ईश्वरीय मुहर का परिणाम देखें। उसी 'बराहिन कातिया...' में मुहम्मद रसूलुल्लाह (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) के इल्म की फज़ीलत को फज़ाइल के अध्याय से निकालकर अकीदों के इस संकरेपन में डाल दिया गया था ताकि बुखारी और मुस्लिम की वे हदीसें भी जो मुहम्मद रसूलुल्लाह (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) के इल्म की व्यापकता को दर्शाती हैं, खारिज ठहराई जाएँ। और वहीं उसी मुंह से मुहम्मद रसूलुल्लाह (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) के महान इल्म को कम करने के लिए एक निराधार और बिना स्रोत वाली कहानी का हवाला दिया गया कि शेख अब्दुल हक रिवायत करते हैं कि मुझे दीवार के पीछे का भी पता नहीं, जबकि हज़रत शेख...

---

1. इंसान उल उयून, किताब का उपोद्घात, मुस्तफा अल-बाबी मिस्र 1/3 और 4।

فتاوی رضویہ جلد نہم

احمد بن حنبل وغیرہ من الائمۃ ، اذا روینا فی الحلال والحرام شددنا واذروینا فی الفضائل ونحوھا تساھلنا ۱۔ فرمایا ہے: جب ہم حلال و حرام یعنی باب احکام میں روایت کرتے ہیں تو شدت برتتے ہیں اور جب باب فضائل وغیرہ میں روایت کرتے ہیں تو نرمی رکھتے ہیں۔ (ت)

اس مبحث کی تفصیل فقیر کی کتاب منیر العین فی حکم تقبیل الابہامین میں ملاحظہ ہو، یہیں دیکھئے رشائے مذکور امیر المومنین کیا فضائل اعمال سے تھا، وہ بھی باب علم سے ہے۔ جس میں امام خاتم الحفاظ نے بعض علماء کی بے سند حکایت بھی کافی بتائی۔

ثانیاً: علم رجال بھی مردود ہو جائے کہ وہ بھی علم ہے، نہ عمل و فضل، عمل تو غیر قطعیات سب باطل و مہمل۔

ثالثاً: دو تہائی سے زائد بخاری و مسلم کی حدیثیں محض باطل و مردود قرار پائیں۔

رابعاً: عقائد و اعمال میں تفرقہ جس پر اجماع ائمہ ہے ضائع جائے، کہ احکام حلال و حرام میں کیا اعتقاد، حلت و حرمت نہیں لگا ہوا ہے، اور وہ عمل نہیں بلکہ علم ہے تو کسی شے کے حلال یا حرام سمجھنے کے لیے بخاری و مسلم کی حدیثیں مردود، اور جب حلال و حرام کچھ نہ جانیں تو اسے کیوں کریں اس سے کیوں بچیں!

خامساً: بلکہ فضائل اعمال میں بھی احادیث صحیحین کا مردود ہونا لازم۔ حالانکہ ان میں ضعیف حدیثیں بھی یہ سفیہ خود مقبول مانتا ہے، ظاہر ہے کہ اس عمل میں یہ خوبی ہے اس پر یہ ثواب یہ جاننا خود عمل نہیں بلکہ علم ہے اور علم باب عقائد سے ہے اور عقائد میں صحاح ظنیات مردود۔

سادساً: اگلے صاحب نے تو اتنی مہربانی کی تھی کہ حدیث صحیح مرفوع متصل السند مقبول رکھی تھی، انہوں نے بخاری و مسلم بھی مردود کردیں، جب تک قطعیات نہ ہوں کچھ نہ سنیں گے۔

قدم عشق پیشتر بہتر

سابعاً: ختم الہی کا ثمرہ دیکھئے، اسی براہین قاطعہ لما امر اللہ بہ ان یوصل میں فضیلت علم محمد رسول اللہ صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کو باب فضائل سے نکلوا کر اس تنگنائے اعتقادیات میں داخل کرایا تھا کہ صحیحین بخاری و مسلم کی حدیثیں بھی جو وسعت علم محمد رسول اللہ صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم پر دال ہیں مردود ٹھہریں، اور وہیں اسی منہ میں محمد رسول اللہ صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کے علم عظیم کی تنقیص کو محض بے اصل وبے سند حکایت سے سند لایا کہ شیخ عبدالحق روایت کرتے ہیں کہ مجھ کو دیوار کے پیچھے کا بھی علم نہیں، حالانکہ حضرت شیخ

---

۱ انسان العیون خطبہ الکتاب مصطفی البابی مصر ۱ / ۳ و ۴

Quddas Sirruhu (may his secret be sanctified) did not narrate it at all, but rather mentioned it by way of objection and clearly stated, "This statement has no basis and the narration regarding it is not authentic." (This speech has no origin, and the narration about it is not sound. - T)

In short, as long as there is no categorical hadith to accept the virtues of Muhammad, the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him), even Bukhari and Muslim are rejected; and, God forbid, for the disparagement of the Prophet's virtues, baseless, unproven, and unfounded anecdotes are accepted and praised. And yet, the claim of faith, honesty, religion, and piety remains as it was. To Allah we belong, and to Him we shall return. "Thus does Allah seal over every heart [of] arrogant tyrant." (Thus does Allah set a seal over the heart of every proud, haughty person. - T)

In short, this issue belongs neither to the chapter of dogmas (Aqa'id) nor to the chapter of rulings on lawful and prohibited (Halal and Haram). It should be accepted to the extent that there are sufficient and ample chains of narration for it. If the denier only denies certainty, i.e., he does not have conviction and certainty about it, then it is fine. Most matters of biography (Siyar), military expeditions (Maghazi), reports (Akhbar), and virtues (Fada'il) are like this; they cannot be deemed rejected because of that. However, if he claims negation, i.e., he says, "It is known and proven to me that souls do not come," then he is a liar and a fabricator. Even if we disregard these narrations, the ultimate result is a lack of proof, not proof of lack. And to claim lack without evidence is mere arbitrariness and oppression. There are so many expressions from the books of scholars and so many narrations regarding their coming; which narration is there for negation and denial? In which hadith is it mentioned that the coming of souls is false and wrong? Thus, a claim without proof is purely false and base.

What stubbornness is this! On one side, existing narrations are rejected based on weakness, and on their own side, there isn't even a trace of a narration, yet the claim of negation is loud. If the coming of souls is from the chapter of dogmas, then both negation and affirmation will be from this same chapter in every way, and a categorical proof will also be required for the claim of negation. Or is it that the issue is in the chapter of dogmas from one side so that even the Sahih (authentic) books

are rejected, and from the other side, it's among the necessities where the need for proof is completely missing?

But the Wahhabis do not understand. And there is no power or strength except with Allah, the Most High, the Most Great. And may Allah Almighty send blessings upon the best of His creation, Muhammad, and all his family and companions. Ameen. And Allah Almighty knows best, and His knowledge, may His glory be exalted, is most complete and most perfect. Only.	But the Wahhabis are mindless. And there is no power to refrain from evil and do good except from the Great and Almighty God. And may the Supreme God send blessings upon the best of His creatures, Muhammad, and his family and companions. O Allah! Accept it. And Allah Almighty is the Best Knower, and the knowledge of that Great Being is perfect and firm. (T)

कुद्दस सिर्रहु (अल्लाह उनके रहस्य को पवित्र रखे) ने इसे कभी भी वर्णित नहीं किया, बल्कि आपत्ति के रूप में इसका उल्लेख करते हुए स्पष्ट रूप से कहा था कि "इस बात का कोई आधार नहीं है और इसके बारे में रिवायत सही नहीं है" (इस कथन का कोई मूल नहीं है, और इसके बारे में रिवायत सही नहीं है। त)

संक्षेप में, मुहम्मद रसूलुल्लाह (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) के गुणों को मानने के लिए जब तक हदीस कतई (पूर्णतः प्रामाणिक) न हो, बुखारी और मुस्लिम भी अस्वीकार्य हैं; और, खुदा न करे, हुज़ूर के गुणों को कम करने के लिए आधारहीन, बिना सनद और बेतुकी कहानियाँ स्वीकार्य और प्रशंसनीय हैं। और फिर भी ईमान, अमानत, दीन और दयानत का दावा यथावत है। हम अल्लाह के ही हैं और उसी की ओर लौटकर जाने वाले हैं। "इसी तरह अल्लाह हर अहंकारी अत्याचारी के दिल पर मुहर लगा देता है।" (इसी तरह अल्लाह हर घमंडी और सख्त दिल वाले के दिल पर मुहर लगा देता है। त)

कुल मिलाकर, यह मसला न तो अक़ाइद (धर्मशास्त्र) के अध्याय से है और न ही हलाल और हराम के अहकाम (नियमों) के अध्याय से। इसे उतना ही मानना चाहिए जिसके लिए पर्याप्त सनदें (प्रमाण) मौजूद हैं। यदि इनकार करने वाला केवल यकीन का इनकार करे, यानी उसे इस पर पूर्ण विश्वास न हो, तो ठीक है। सीरत (जीवनी), मग़ाज़ी (युद्ध-वृत्तांत), अख़बार (समाचार) और फ़ज़ाइल (गुणों) के अधिकांश मसले ऐसे ही होते हैं; उनके कारण उन्हें रद्द नहीं किया जा सकता। और यदि वह नफी (नकारने) का दावा करे, यानी कहे कि "मुझे मालूम और साबित है कि रूहें (आत्माएं) नहीं आतीं," तो वह झूठा और कज्जाब (महाझूठा) है। मान लीजिए अगर इन रिवायतों से नज़र हटा भी ली जाए, तो अधिक से अधिक यह होगा कि प्रमाण की कमी है, न कि कमी का प्रमाण। और बिना किसी दलील के कमी का दावा करना सरासर ज़ुल्म है। आने के बारे में तो विद्वानों की किताबों के इतने उद्धरण और इतनी रिवायतें हैं; नफी और इनकार के लिए कौन सी रिवायत है? किस हदीस में आया है कि रूहों का आना बातिल और गलत है? तो बिना दलील का दावा सरासर बातिल और ज़लील है।

कैसी हठधर्मी है कि सामने वाले पक्ष की मौजूदा रिवायतों को कमज़ोरी के आधार पर रद्द कर दिया जाता है, और अपनी ओर रिवायत का नाम-ओ-निशान तक नहीं है, फिर भी नफी (नकारने) का दावा ऊँचा है। यदि रूहों का आना अक़ाइद के अध्याय से है, तो नफी और इसबात (पुष्टि) दोनों ही हर

तरह से इसी अध्याय से होंगे, और नफी के दावे के लिए भी कतई दलील की आवश्यकता होगी। या फिर यह मसला एक तरफ से अक़ाइद के अध्याय में है कि बुखारी-मुस्लिम भी रद्द हैं, और दूसरी तरफ से यह उन आवश्यक बातों में से है जहाँ दलील की बिल्कुल ज़रूरत ही नहीं है?

लेकिन वहाबी नहीं समझते। और बुराई से बचने और नेकी करने की ताकत अल्लाह के सिवा किसी में नहीं, जो बहुत बुलंद और अज़ीम है। और अल्लाह तआला अपनी मख्लूक (सृष्टि) में सबसे बेहतर मुहम्मद और उनकी आल (संतान) और असहाब (साथियों) सब पर दुरूद नाज़िल फरमाए। आमीन। और अल्लाह तआला खूब जानने वाला है और उस ज़ात-ए-बुज़ुर्ग का इल्म कामिल और मोहकम है। फक़त।

पृष्ठ ९४८ का ६५८

लेकिन वहाबी बे-अक्ल होते हैं। और बुराई से रुकने, नेकी करने की शक्ति नहीं है सिवाय बुलंद अज़ीम खुदा की तरफ से। और खुदा-ए-बर्तर अपनी मख्लूक में सबसे बेहतर मुहम्मद और उनकी आल व असहाब सब पर दुरूद नाज़िल फरमाए। इलाही! कबूल कर। और अल्लाह तआला खूब जानने वाला है और उस ज़ात-ए-बुज़ुर्ग का इल्म कामिल और मोहकम है (त)।

قدس سرہ، نے اسے ہرگز روایت نہ کیا بلکہ اعتراضاً ذکر کرکے صاف فرمادیا تھا کہ "این سخن اصلے نہ دارد وروایت بدان صحیح نشدہ است" (اس کلام کی کوئی اصل نہیں، اور اس کے بارے میں روایت صحیح نہیں۔ت)

غرض محمد رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم کے فضائل ماننے کو تو جب تک حدیث قطعی نہ ہو بخاری و مسلم بھی مردود اور معاذ اللہ حضور کی تنقیص فضائل کے لیے بے اصل و بے سند و بے سروپا حکایت مقبول و محمود، اور پھر دعوی ایمان وامانت و دین و دیانت بدستور موجود۔ انا اللہ وانا الیہ راجعون کَذٰلِکَ یَطْبَعُ اللّٰہُ عَلٰی کُلِّ قَلْبِ مُتَکَبِّرٍ جَبَّارٍ ہ (اسی طرح اللہ ہر متکبر سخت گیر کے دل پر مہر کردیتا ہے۔ت)

بالجملہ یہ مسئلہ نہ باب عقائد سے نہ باب احکام حلال وحرام سے۔ اسے جتنا ماننا چاہئے کہ اس کے لیے اتنی سندیں کافی و وافی، منکر اگر صرف انکار یقین کرے یعنی اس پر جزم ویقین نہیں تو ٹھیک ہے، اور عامہ مسائل سیر و مغازی و اخبار و فضائل ایسے ہی ہوتے ہیں، اس کے باعث وہ مردود نہیں قرار پاسکتے، اور اگر دعوی نفی کرے یعنی کہے مجھے معلوم وثابت ہے کہ روحیں نہیں آتیں تو جھوٹا کذاب ہے، بالفرض اگر ان روایات سے قطع نظر بھی تو غایت یہ کہ عدم ثبوت ہے نہ ثبوت عدم، اور بے دلیل عدم ادعائے عدم محض تحکم و ستم ، آنے کے بارے تو اتنی کتب علماء کی عبارات اتنی روایات بھی ہیں نفی و انکار کے لیے کون سی روایت ہے؟ کس حدیث میں آیا کہ روحوں کا آنا باطل و غلط ہے؟ تو ادعائے بے دلیل محض باطل و ذلیل۔

کیسی ہٹ دھرمی ہے کہ طرف مقابل پر وایات موجودہ بر بنائے ضعف مردود، اور اپنی طرف روایت کا نام و نشان اور ادعائے نفی کا بلند نشان، روحوں کا آنا اگر باب عقائد سے ہے تو نفی و اثباتا ہر طرح اسی باب سے ہوگا، اور دعوی نفی کے لیے بھی دلیل قطعی درکار ہوگی، یا مسئلہ ایک طرف سے باب عقائد میں ہے کہ صحاح بھی مردود، اور دوسری طرف سے ضروریات میں ہے کہ اصلاً حاجت دلیل مفقود۔

ولکن الوھابیۃ لایعقلون ولاحول ولاقوۃ الا باللہ العلی العظیم وصلی اللہ تعالی علی خیر خلقہ محمد والہ وصحبہ اجمعین، امین، واللہ تعالیٰ اعلم وعلمہ جل مجدہ اتم واحکم۔

لیکن وہابیہ بے عقل ہوتے ہیں۔ اور برائی سے رکنے، نیکی کے کرنے کی طاقت نہیں مگر بلند عظیم خدا ہی کی طرف سے۔ اور خدائے برتر اپنی مخلوق میں سب سے بہتر محمد اور ان کی آل واصحاب سب پر درود نازل فرمائے۔ الہی! قبول کر۔ اور اللہ تعالیٰ خوب جاننے والا ہے اور اس ذات بزرگ کا علم کامل اور محکم ہے (ت)

فقط

Fatawa Razawiya Volume Nine

Problem 261: From Kanpur, Mool Ganj, sent by Imam-ud-Din Sahib, 19 Rabi-ul-Akhir 1326 AH. Question: After death, what kind of relations does the deceased maintain with their relatives? The Answer: Death is not the annihilation of the soul, but rather the separation of the soul from the body; the soul remains alive forever. It is stated in a Hadith, "Verily, you were created for eternity," meaning you were made to live forever, so the relations that existed during worldly life still continue. A Hadith mentions, "Every Friday, the deeds of one's offspring from the past week are presented to parents; they rejoice at virtuous acts and are saddened by evil ones. So, do not cause grief to your departed ones, O servants of Allah!" And Allah Almighty knows best.

Problem 262: From Lahore, Begum Shahi Mosque, inside Masti Gate, sent by Sufi Ahmad-ud-Din, a student, 26 Safar 1338 AH. Question: What do the scholars of the faith say regarding this issue: where is the place of the souls of believers? Do they stay with the body or are they separate? The Answer: The souls of believers in the Barzakh (intermediate realm) reside in spiritual bodies (ajsam-e-mithali), just as it was said regarding martyrs being "within green birds,"[1] meaning in the guise of green birds. Their stations differ according to their ranks: near graves, in the Well of Zamzam, in the open sky, in a particular heaven, or in lamps of light beneath the Divine Throne (Arsh), as detailed by Imam Suyuti in Sharh-us-Sudoor. And Allah Almighty knows best.

Problem 263 to 268: From Kanpur, Mool Ganj, sent by Imam-ud-Din Sahib, 19 Rabi-ul-Akhir 1336 AH. (1) Does the impact of events on relatives also affect the deceased or not? (2) What is the nature of punishment and reward when a human being turns to dust while the soul departs to its station? (3) Where is the abode of the soul after death? (4) If someone sees a deceased relative in a dream, does this affect the deceased person as well or not? (5) What is the soul? It is often heard that the soul perceives all worldly conditions at all times after death. (6) If someone visits the grave, does the deceased person have knowledge of it?

[1] Sharh-us-Sudoor, chapter on the abode of souls, published by Khilafat Academy Swat, p. 96. Page 659 of 948

फतावा रज़विया जिल्द नहुम (9)

मसला २६१: कानपुर मोहल्ला मोल गंज से, प्रेषक इमाम-उद-दीन साहिब, १९ रबी-उल-आख़िर १३२६ हिजरी। प्रश्न: मरने के बाद मृत व्यक्ति का अपने अज़ीज़ों (रिश्तेदारों) से किस तरह का ताल्लुक रहता है? उत्तर: मृत्यु रूह (आत्मा) की फना (विनाश) नहीं है, बल्कि वह जिस्म से रूह का जुदा होना है, रूह हमेशा ज़िंदा रहती है। हदीस में है 'इन्नमा खुलिकतुम लिल-अबद' यानी तुम हमेशा ज़िंदा रहने के लिए बनाए गए हो, तो जैसे ताल्लुकात हयात-ए-दुनियावी (सांसारिक जीवन) में थे अब भी रहते हैं। हदीस में फ़रमाया कि "हर जुमे (शुक्रवार) को माँ-बाप पर औलाद के एक हफ्ते के आमाल (कर्म) पेश किए जाते हैं, नेकियों पर खुश होते हैं, बुराइयों पर रंजीदा (दुखी) होते हैं, तो अपने गुज़रे हुओं को रंजीदा न करो, ऐ अल्लाह के बंदो!" वल्लाहु तआला आलम (और अल्लाह तआला बेहतर जानता है)।

मसला २६२: लाहौर, बेगम शाही मस्जिद, मस्ती दरवाज़े के अंदर से, प्रेषक सूफी अहमद-उद-दीन तालिब-ए-इल्म (विद्यार्थी), २६ सफर १३३८ हिजरी। प्रश्न: क्या फरमाते हैं उलमा-ए-दीन (धर्म के विद्वान) इस मसले में कि अरवाह-ए-मोमिनीन (ईमान वालों की आत्माओं) की जगह कौन सी है, क्या वे जिस्म के साथ रहते हैं या अलग? उत्तर: अरवाह-ए-मोमिनीन बरज़ख़ में अज़साम-ए-मिसाली (मिसाली जिस्मों) में हैं, जैसे शहीदों के लिए 'हवासिल तयूर खज़्र'[1] फ़रमाया, यानी हरे परिंदों के भेष में। और उनके मकाम हस्ब-ए-मरातिब (रुतबे के अनुसार) मुख्तलिफ (अलग-अलग) हैं: कब्रों पर, या चाह-ए-ज़मज़म (ज़मज़म के कुएं) में, या फिज़ा-ए-आसमान में, या किसी आसमान पर, या अर्श के नीचे नूर की कंदीलों (चिरागों) में, जैसा कि इमाम सुयूती ने 'शरह-उस-सुदूर' में इसे तफ़सील (विस्तार) से बयान किया है। वल्लाहु तआला आलम।

मसला २६३ ता ४८: कानपुर मोहल्ला मोल गंज से, प्रेषक इमाम-उद-दीन साहिब, १९ रबी-उल-आख़िर १३३९ हिजरी। (१) अज़ीज़ों पर जो असर होता है क्या उसका असर मय्यत (मृत व्यक्ति) पर भी होता है या नहीं? (२) अज़ाब-ओ-सवाब (सज़ा और इनाम) की क्या शक्ल है जबकि इंसान खाक (मिट्टी) में मिल जाता है और रूह अपने मकाम पर चली जाती है? (३) रूह का मकाम मरने के बाद कहाँ है? (४) ख्वाब में अपने किसी मरहूम (दिवंगत) अज़ीज़ को देखते हैं क्या उसका असर मरहूम पर भी पड़ता है या नहीं? (५) रूह क्या चीज़ है? अक्सर सुना गया है कि रूह तमाम दुनियावी कैफियात (स्थितियों) का इदराक (अनुभव) हर वक़्त बाद-ए-मौत (मौत के बाद) करती है। (६) कब्र पर कोई शख्स जाए तो क्या उसका इल्म (ज्ञान) मय्यत को होता है?

१ 'शरह-उस-सुदूर' बाब मकर्रुल अरवाह, मतबुआ खिलाफ़त अकादमी स्वात स. ९६ पेज 659 / 948

فتاوٰی رضویہ جلد نہم

مسئلہ ۲۶۱: از کانپور محلہ مول گنج مرسلہ امام الدین صاحب ۱۹ ربیع الآخر ۱۳۲۶ھ مرنے کے بعد میت کو اپنے عزیزوں سے کس طرح تعلقات رہتے ہیں؟ الجواب: موت فنائے روح نہیں بلکہ وہ جسم سے روح کا جدا ہونا ہے، روح ہمیشہ زندہ رہتی ہے، حدیث میں ہے انما خلقتم للابد اتم ہمیشہ زندہ رہنے کے لیے بنائے گئے، تو جیسے تعلقات حیاتِ دنیوی میں تھے اب بھی رہتے ہیں۔ حدیث میں فرمایا کہ "ہر جمعہ کو ماں باپ پر اولاد کے ایک ہفتہ کے اعمال پیش کیے جاتے ہیں، نیکیوں پر خوش ہوتے ہیں، برائیوں پر رنجیدہ ہوتے ہیں، تو اپنے گزرے ہوؤں کو رنجیدہ نہ کرو، اے اللہ کے بندو! واللہ تعالٰی اعلم۔

مسئلہ ۲۶۲: از لاہور مسجد بیگم شاہی اندرون دروازہ مستی مرسلہ صوفی احمد الدین طالبعلم ۲۶ صفر ۱۳۳۸ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ ارواحِ مومنین کی جگہ کون ہے، کیا جسد کے ساتھ رہتے ہیں یا علیحدہ؟ الجواب: ارواحِ مومنین برزخ میں اجسامِ مثالی میں ہیں، جیسے شہداء کے لیے حواصل طیور خضر ۱ فرمایا سبز پرندوں کے بھیس میں، اور ان کے مقام حسبِ مراتب مختلف ہیں، قبور پر یا چاہِ زمزم میں یا فضائے آسمان میں یا کسی آسمان پر یا عرش کے نیچے نور کی قندیلوں میں، کما فصلہ الامام السیوطی فی شرح الصدور (جیسا کہ امام سیوطی نے شرح الصدور میں اسے تفصیل سے بیان کیا ہے۔ ت) واللہ تعالٰی اعلم۔

مسئلہ ۲۶۳ تا ۲۶۸: از کانپور محلہ مول گنج مرسلہ امام الدین صاحب ۱۹ ربیع الآخر ۱۳۳۶ھ (۱) عزیزوں پر جو اثر ہوتا ہے کیا اس کا اثر میت پر بھی ہوتا ہے یا نہیں؟ (۲) عذاب و ثواب کی کیا شکل ہے جبکہ انسان خاک میں مل جاتا ہے اور روح اپنے مقام پر چلی جاتی ہے۔ (۳) روح کا مقام مرنے کے بعد کہاں ہے؟ (۴) خواب میں اپنے کسی مرحوم عزیز کو دیکھتے ہیں کیا اس کا اثر

مرحوم پر بھی پڑتا ہے یا نہیں؟ (۵) روح کیا چیز ہے؟ اکثر سنا گیا ہے کہ روح تمام دنیاوی کیفیات کا ادراک ہر وقت بعد موت کرتی ہے۔ (۶) قبر پر کوئی شخص جائے اس کا علم میت کو ہوتا ہے؟

۱ شرح الصدور باب مقر الارواح مطبوعہ خلافت اکیڈمی سوات ص ۹۶ Page 659 of 948

Fatawa Rizvia, Volume 9

Answer (Al-Jawab):

(1) If pain reaches relatives, its grief is also felt by the deceased. In the prohibition of weeping over the dead, it was said that when you weep, the deceased also begins to weep, so do not make them sorrowful. And Allah Almighty knows best.

(2) A human being never becomes dust; the body becomes dust, and even that not entirely. Some minute original components called 'Ajb al-Dhanab' (the coccyx) neither burn nor decay; they remain forever. Upon them, the body's structure will be recomposed on the Day of Judgment. Punishment and reward are for both soul and body. Those who believe it is only for the soul are misguided. The soul remains, and the essential components of the body remain. Even what turned to dust is not absolute annihilation, but rather a separation of union and a change of form, followed by transformation. In the Hadith, the following example is given for both the soul and body being punished: There is a garden whose fruits are forbidden to be eaten. There is a lame person who has no legs but has eyes; he lies outside the garden, sees the fruits but cannot reach them. Meanwhile, a blind person arrives. The lame person says to him: 'Carry me on your neck, I will show you the way, and we both shall eat the fruits of this garden.' Thus, the blind man carried the lame man and they ate the fruit. Which of the two deserves punishment? Both deserve it. Had the blind man not carried him, he couldn't have gone, and had the lame man not shown him, he couldn't have seen. The lame person represents the soul, which has perception but cannot perform bodily actions. The blind person represents the body, which can perform actions but lacks perception. Through their union, sin occurred, so both deserve punishment. And Allah Almighty knows best.

(3) The place of the soul after death varies according to rank. Among Muslims, some souls remain at the grave, some in the Well of Zamzam, some between heaven and earth, some in the first, second, up to the seventh heaven, some in 'Illiyyin (the highest place), and some in the forms of green birds in lamps of light beneath the Throne. Among the disbelievers, some souls are in the Well of Wadi Barhut, some in the second, third, up to the seventh earth, and some in 'Sijjin'. And Allah Almighty knows best.

(4) Sometimes it happens, sometimes not; both types of dreams are mentioned in 'Sharh al-Sudur'. And Allah Almighty knows best.

(5) The soul is an entity from the command of my Lord, and you have been given but little knowledge. The soul's perceptions of knowledge, hearing, and sight remain; in fact, they become even greater than before. And Allah Almighty knows best.

(6) The deceased sees the one who comes to the grave. He hears what they say. If he knew them in life, he still recognizes them now. If it is a relative or friend, he gains comfort from their coming. All these matters are [found in] Hadiths.

फ़तावा रिज़विया, जिल्द 9

उत्तर (अल-जवाब):

(1) यदि रिश्तेदारों को कष्ट पहुँचता है, तो उसका दुख मृतक को भी होता है। मृतकों पर रोने की मनाही में फ़रमाया गया कि जब तुम रोते हो, तो मुर्दा भी रोने लगता है, इसलिए उसे गमगीन न करो। और अल्लाह तआला सबसे बेहतर जानता है।

(2) इंसान कभी मिट्टी नहीं होता, शरीर मिट्टी हो जाता है, और वह भी पूरा नहीं। कुछ बारीक मूल अंग जिन्हें 'अजब-उद-ज़नब' (रीढ़ की हड्डी का निचला हिस्सा) कहा जाता है, वे न जलते हैं न गलते हैं, हमेशा बाकी रहते हैं। उन्हीं पर कयामत के दिन शरीर की संरचना होगी। अज़ाब (दंड) और सवाब (पुण्य) आत्मा और शरीर दोनों के लिए है। जो केवल आत्मा के लिए मानते हैं, वे गुमराह हैं। आत्मा भी बाकी रहती है और शरीर के मूल अंग भी। और जो मिट्टी हो गए, वे भी पूरी तरह खत्म नहीं हुए, बल्कि उनके जुड़ाव अलग हो गए और रूप बदल गया, फिर स्वरूप परिवर्तन हुआ। हदीस में आत्मा और शरीर दोनों को दंडित किए जाने का यह उदाहरण दिया गया है: एक बाग है जिसके फल खाने की मनाही है। एक लंगड़ा है जिसके पैर नहीं हैं लेकिन आँखें हैं, वह बाग के बाहर पड़ा हुआ है, फलों को देखता है पर उन तक पहुँच नहीं सकता। इसी बीच एक अंधा आया। लंगड़े ने उससे कहा: 'तू मुझे अपनी गर्दन पर बिठा ले, मैं तुझे रास्ता बताऊँगा, हम दोनों इस बाग के मेवे खाएँगे।' इस तरह वह अंधा उस लंगड़े को ले गया और मेवे खाए। दोनों में से कौन सज़ा का हकदार है? दोनों ही हकदार हैं। अंधा उसे न ले जाता तो वह जा नहीं सकता था, और लंगड़ा उसे न बताता तो वह देख नहीं सकता था। वह लंगड़ा आत्मा है जिसमें बोध (परसेप्शन) है पर वह शारीरिक कार्य नहीं कर सकती। और वह अंधा शरीर है जो कार्य कर सकता है पर बोध नहीं रखता। दोनों के मिलन से गुनाह हुआ, इसलिए दोनों ही सज़ा के हकदार हैं। और अल्लाह तआला सबसे बेहतर जानता है।

(3) मृत्यु के बाद आत्मा का स्थान मर्तबे (पद) के अनुसार अलग-अलग होता है। मुसलमानों में कुछ की आत्माएं कब्र पर रहती हैं, कुछ की आबे-ज़मज़म (ज़मज़म के कुएं) में, कुछ की आसमान और ज़मीन के बीच, कुछ की पहले, दूसरे से लेकर सातवें आसमान तक, कुछ की 'इल्लीय्यीन' (ऊँचे स्थान) में, और कुछ की हरे परिंदों के रूप में अर्श के नीचे नूर के चिरागों में। काफ़िरों में कुछ की आत्माएं वादी-ए-बरहूत के कुएं में, कुछ की दूसरी, तीसरी से लेकर सातवीं ज़मीन तक, और कुछ की 'सज्जीन' में होती हैं। और अल्लाह तआला सबसे बेहतर जानता है।

(4) कभी होता है, कभी नहीं; दोनों तरह के सपनों का ज़िक्र 'शरह-उस-सुदूर' में है। और अल्लाह तआला सबसे बेहतर जानता है।

(5) आत्मा मेरे रब के हुक्म से एक चीज़ है और तुम्हें बहुत कम ज्ञान दिया गया है। आत्मा की बोध शक्तियाँ जैसे ज्ञान, सुनना और देखना बाकी रहती हैं, बल्कि पहले से भी ज़्यादा हो जाती हैं। और अल्लाह तआला सबसे बेहतर जानता है।

(6) कब्र पर आने वाले को मुर्दा देखता है। उसकी बात सुनता है। अगर ज़िंदगी में पहचानता था, तो अब भी पहचानता है। अगर वह उसका अज़ीज़ (रिश्तेदार) या दोस्त है, तो उसके आने से उसे सुकून मिलता है। ये सब बातें हदीसों में हैं।

فتاویٰ رضویہ ، جلد نہم

الجواب:

(۱) عزیزوں کو اگر تکلیف پہنچتی ہے اس کا ملال میت کو بھی ہوتا ہے، اموات پر رونے کی ممانعت میں فرمایا کہ جب تم روتے ہو مردہ بھی رونے لگتا ہے، تو اسے غمگین نہ کرو۔ واللہ تعالیٰ اعلم

(۲) انسان کبھی خاک نہیں ہوتا بدن خاک ہو جاتا ہے، اور وہ بھی کل نہیں ، کچھ اجزائے اصلیہ دقیقہ جن کو عجب الذنب کہتے ہیں وہ نہ جلتے ہیں نہ گلتے ہیں ہمیشہ باقی رہتے ہیں، انہیں پر روز قیامت ترکیب جسم ہوگی ، عذاب و ثواب روح و جسم دونوں کے لیے ہے۔ جو فقط روح کے لیے مانتے ہیں گمراہ ہیں، روح بھی باقی اور جسم کے اجزائے اصلی باقی ، اور جو خاک ہو گئے وہ بھی فنائے مطلق نہ ہوئے، بلکہ تفرق اتصال ہوا اور تغیر ہیأت۔ پھر استحالہ کیا۔ حدیث میں روح و جسم دونوں کے معذب ہونے کی یہ مثال ارشاد فرمائی کہ ایک باغ ہے اس کے پھل کھانے کی ممانعت ہے۔ ایک لنگھا ہے کہ پاؤں نہیں رکھتا اور آنکھیں ہیں وہ اس باغ کے باہر پڑا ہوا ہے، پھلوں کو دیکھتا ہے مگر ان تک جا نہیں سکتا، اتنے میں ایک اندھا آیا اس لنگھے نے اس سے کہا: تو مجھے اپنی گردن پر بٹھا کر لے چل، میں تجھے راستہ بتاؤں گا ، اس باغ کا میوہ ہم تم دونوں کھائیں گے، یوں وہ اندھا اس لنگھے کو لے گیا اور میوے کھائے دونوں میں کون سزا کا مستحق ہے؟ دونوں ہی مستحق ہیں، اندھا اسے نہ لے جاتا تو وہ نہ جاسکتا، اور لنگھا اسے نہ بتاتا تو وہ نہ دیکھ سکتا، وہ لنگھا روح ہے کہ ادراک رکھتی ہے اور افعال جوارح نہیں کر سکتی۔ اور وہ اندھا بدن ہے کہ افعال کر سکتا ہے اور ادراک نہیں رکھتا۔ دونوں کے اجتماع سے معصیت ہوئی دونوں ہی مستحق سزا ہیں۔ واللہ تعالیٰ اعلم

(۳) روح کا مقام بعد موت حسب مراتب مختلف ہے۔ مسلمانوں میں بعض کی روحیں قبر پر رہتی ہیں اور بعض کی چاہ زمزم میں اور بعض کی آسمان و زمین کے درمیان ، اور بعض آسمان اول دوم ہفتم تک، اور بعض اعلیٰ علیین میں ، اور بعض سبز پرندوں کی شکلیں میں زیر عرش نور کی قندیلوں میں، کفار میں بعض کی روحیں چاہ وادی بر ہوت میں ، بعض کی زمین دوم سوم ہفتم تک، بعض سجیین میں ۔ واللہ تعالیٰ اعلم

(۴) کبھی پڑتا ہے کبھی نہیں ، دونوں قسم کے خواب شرح الصدور میں مذکور ہیں۔ واللہ تعالیٰ اعلم

(۵) روح میرے رب کے حکم سے ایک شے ہے اور تمھیں علم نہ دیا گیا مگر تھوڑا ، روح کے ادراکات علم و سمع و بصر باقی رہتے، بلکہ پہلے سے بھی زائد ہو جاتے ہیں۔ واللہ تعالیٰ اعلم

(۶) قبر پر آنے والے کو میت دیکھتا ہے۔ اس کی بات سنتا ہے۔ اگر زندگی میں پہچانتا تھا اب بھی پہچانتا ہے اگر اس کا عزیز یا دوست ہے تو اس کے آنے سے انس حاصل کرتا ہے: یہ سب باتیں احادیث،

Fatawa Razawiyya, Volume 9

The statements of the Imams are explicit, and it is the belief of the Ahl as-Sunnah; their details can be seen in our book "Hayat al-Mawat fi Bayan Sima' al-Amwat". And Allah the Almighty knows best.

Issue 264: 16 Jumada al-Akhirah 1338 AH What do the scholars of the religion say on this matter: if someone passes away on a Thursday, is the punishment of the grave waived for him every Thursday or permanently, or not?

The Answer: No such ruling has been established for Thursday. For Friday night and every day of the blessed Ramadan, the ruling is that whichever Muslim dies during these times will be protected from the questioning of the two angels (Munkar and Nakir) and the punishment of the grave. Allah is too great to forgive something and then return to it. Allah is more generous than to forgive something and then hold a person accountable for it again. And Allah the Almighty knows best. The actual word is grave.

Issue 265: From Abdullah Sahib, Muhalla Baharipur, Bareilly city, 16 Safar 1332 AH What do the scholars of the religion say on this matter: a person stated today that if there are two men with the same name, it happens that instead of the one whose time of death has arrived, the angels take the soul of the other person. He also claimed that this event occurred before his eyes: one person's life was taken, and after a few minutes, he came back to life, and a person with the same name in a nearby neighborhood died. When the first person was asked about his experience, he narrated a long story. What is the ruling regarding this? With utmost respect.

The Answer: This is purely incorrect; the angels of Allah do not make mistakes in His command. Allah the Almighty said, "and they do what they are commanded" (Quran 16:50). Angels perform exactly what they are ordered to do. And Allah the Almighty knows best.

1. Quran 16:50 Page 661 of 948

फ़तावा रज़विया, खंड 9

इमामों के कथन स्पष्ट हैं और यही सुन्नत के मानने वालों (अहले सुन्नत) का विश्वास है, इनका विवरण हमारी पुस्तक "हयात अल-मवात फी बयान सिमा अल-अमवात" में देखें। और अल्लाह तआला सबसे बेहतर जानता है।

मसाला 264: 16 जमादी उल-आखिरी 1338 हिजरी धर्म के विद्वान इस मामले में क्या कहते हैं कि जो व्यक्ति गुरुवार को मरता है, क्या उस पर कब्र की सजा हर गुरुवार को या स्थायी रूप से माफ कर दी जाती है या नहीं?

उत्तर: गुरुवार के लिए ऐसा कोई आदेश नहीं आया है। जुमे की रात और रमज़ान मुबारक के हर दिन के लिए यह आदेश है कि जो मुसलमान इनमें मरेगा, वह मुनकर-नकीर के सवालों और कब्र के अज़ाब (सज़ा) से सुरक्षित रहेगा। अल्लाह इससे कहीं बड़ा है कि वह किसी चीज़ को माफ कर दे और फिर उसे वापस ले आए। अल्लाह इससे कहीं अधिक उदार है कि वह किसी चीज़ को माफ करके फिर उस पर पूछताछ करे। और अल्लाह तआला सबसे बेहतर जानता है। मूल शब्द कब्र है।

मसाला 265: मुहल्ला बाहरीपुर, बरेली शहर के अब्दुल्ला साहब की ओर से, 16 सफ़र 1332 हिजरी धर्म के विद्वान इस मामले में क्या कहते हैं कि आज एक व्यक्ति ने यह बयान दिया कि अगर एक ही नाम के दो आदमी हों, तो ऐसा होता है कि जिसकी मौत आई हो उसकी जगह फरिश्ते दूसरे आदमी की रूह (आत्मा) कब्ज़ कर लेते हैं। उसने यह भी बताया कि यह घटना मेरे सामने हुई है कि एक व्यक्ति की जान कब्ज़ कर ली गई और कुछ मिनटों के बाद वह जीवित हो गया और उसी नाम का पास के एक मोहल्ले का व्यक्ति मर गया। जब पहले व्यक्ति से हाल पूछा गया तो उसने बहुत सी कहानियाँ सुनाईं। इसके बारे में क्या आदेश दिया जाता है? अत्यंत सम्मान के साथ।

उत्तर: यह पूरी तरह गलत है, अल्लाह के फरिश्ते उसके हुक्म (आदेश) में गलती नहीं करते। अल्लाह तआला ने फरमाया: "और वे वही करते हैं जिसका उन्हें हुक्म दिया जाता है" (कुरान 16:50)। फरिश्ते वही करते हैं जो उन्हें आदेश दिया जाता है। और अल्लाह तआला सबसे बेहतर जानता है।

1. अल-कुरान 16:50 पृष्ठ 661/948

فتاویٰ رضویہ ، جلد نہم

اقوال ائمہ میں مصرح اور اہلسنت کا اعتقاد ہیں، ان کی تفصیل ہماری کتاب "حیات الموات فی بیان سماع الاموات" میں دیکھیں۔ واللہ تعالیٰ اعلم

مسئلہ ۲۶۴: ۱۶ جمادی الآخر ۱۳۳۸ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ جو جمعرات کو انتقال کرے اس پر عذابِ قبر ہر جمعرات کو یا دائمی معاف ہے یا نہیں؟

الجواب: جمعرات کے لیے کوئی حکم نہیں آیا۔ شبِ جمعہ اور رمضان مبارک میں ہر روز کے واسطے یہ حکم ہے کہ جو مسلمان ان میں مرے گا سوال نکیرین و عذابِ قبر سے محفوظ رہے گا واللہ اکبر من ان یعفو من شیئ ثم یعود فیہ اللہ اس سے زیادہ کریم ہے کہ ایک شے کو معاف فرما کر پھر اس پر مواخذہ کرے۔ واللہ تعالیٰ اعلم اصل لفظ قبر ہے

مسئلہ ۲۶۵: از عبداللہ صاحب محلہ بہاری پور شہر بریلی ۱۶ صفر ۱۳۳۲ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ ایک شخص نے آج یہ بیان کیا کہ ایک نام کے دو آدمی ہوں تو ایسا ہو جاتا ہے کہ بجائے اس کے کہ جس کی قضا آئی ہو دوسرے آدمی کی روح قبض کر لیتے ہیں فرشتے، اور یہ بھی بیان کیا کہ یہ وقوعہ میرے روبرو کا ہے کہ ایک کی جان قبض کر لی گئی اور چند منٹوں کے بعد وہ زندہ ہو گیا اور اس نام کا اس محلہ کے قریب ایک شخص تھا وہ مر گیا۔ جو شخص اول مر گیا تھا جب اس سے حال دریافت کیا تو اس نے بہت کچھ قصہ بیان کیا۔ اس کے بارے میں کیا حکم صادر فرماتے ہیں۔ زیادہ حد ادب

الجواب: یہ محض غلط ہے، اللہ کے فرشتے اس کے حکم میں غلطی نہیں کرتے قال اللہ تعالیٰ وَيَفْعَلُونَ مَا يُؤْمَرُونَ ۱ فرشتے وہ کرتے ہیں جو انہیں حکم ہوتا ہے۔ واللہ تعالیٰ اعلم

Fatawa Razawiyya Volume 9

Treatise JALI-US-SAWT LI-NAHYI-AD-DA'WATI AMAMA MAWT 1309 AH (A clear declaration on the prohibition of holding a feast upon a death)

Problem 266: What do the scholars of religion say regarding this matter: In many Indian cities, there is a custom that on the day of a person's death, women from their relatives, kin, and friends gather at their house with the same level of preparation as seen in weddings. Then some return on the second day, most on the third day, and some stay for up to forty days. During this stay, the family of the deceased arranges for the women's food, drink, betel leaves, and betel nuts, due to which they are burdened with heavy expenses. If they are short on funds at that time, they take loans for this purpose; if not available otherwise, they take interest-bearing loans. If they don't do this, they are criticized and defamed. Is this permissible according to Sharia? Explain and be rewarded.

The Answer: In the name of Allah, the Most Gracious, the Most Merciful.

All praise is due to Allah, who sent our Merciful and Forgiving Prophet with kindness and ease, and established moderation in all matters. Thus, He instituted the method of invitation during times of joy, not for times of sorrow. May Allah bless him...

All praise is for Allah, who sent for us our merciful and forgiving Prophet with gentleness and ease and kept moderation in works, so he established the way of invitation at the time of happiness...

Page 663 of 948

फ़तावा रज़विया जिल्द नहम (खंड 9)

रिसाला (लघुग्रंथ) जली-उस-सौत लि-नहयि-अद-दावती अमामा मौत १३०९ हिजरी (किसी मृत्यु पर दावत की मनाही का स्पष्ट ऐलान)

मसला २६६: क्या फरमाते हैं उलमा-ए-दीन इस मसले में कि अक्सर भारतीय शहरों में यह रस्म है कि मय्यत (मृतक) के वफ़ात के दिन उसके अज़ीज़ों, रिश्तेदारों और सहेलियों की औरतें उसके यहाँ जमा होती हैं, उसी ऐहतेमाम (तैयारी) के साथ जो शादियों में किया जाता है। फिर कुछ दूसरे दिन, अक्सर तीसरे दिन वापस आती हैं, कुछ चालीस दिन तक बैठती हैं, इस मुद्दत-ए-इक़ामत (ठहरने की अवधि) में औरतों के खाने-पीने, पान-छालिया का ऐहतेमाम अहले मय्यत (मृतक के घर वाले) करते हैं जिसके कारण वे एक भारी ख़र्च के बोझ तले दब जाते हैं। अगर उस वक़्त उनका हाथ खाली हो तो इस ज़रूरत के लिए क़र्ज़ लेते हैं, यूँ न मिले तो सूदी (ब्याज वाला) निकलवाते हैं, अगर न करें तो वे लोग आलोचना का शिकार और बदनाम होते हैं, क्या यह शरीयत के अनुसार जायज़ है? बयान फ़रमाएं सवाब पायें।

अल-जवाब (उत्तर): बिस्मिल्लाह हिर्रहमान निर्रहीम (अल्लाह के नाम से शुरू जो अत्यंत कृपाशील और दयालु है)

सारी प्रशंसा अल्लाह के लिए है, जिसने हमारे रहम करने वाले और बख्शने वाले नबी को नरमी और आसानी के साथ भेजा और कामों में एतदाल (संतुलन) रखा, तो दावत का तरीक़ा सुरूर (खुशी) के वक़्त रखा न कि दुख के समय। उन पर अल्लाह की कृपा हो...

सब खूबियां अल्लाह के लिए जिसने हमारे लिए रहम करने बख्शने वाले नबी को नरमी व आसानी के साथ भेजा और कामों में एतदाल रखा, तो दावत का तरीका सुरूर के..

पेज 663 of 948

فتاویٰ رضویہ جلد نہم

رسالہ جَلِيُّ الصَّوْتِ لِنَهْيِ الدَّعْوَةِ أَمَامَ مَوْتِ ۱۳۰۹ھ (کسی موت پر دعوت کی ممانعت کا واضح اعلان)

مسئلہ ۲۶۶: کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ اکثر بلاد ہندیہ میں رسم ہے کہ میت کے روز وفات سے اس کے اعزہ واقارب واحباب کی عورتیں اس کے یہاں جمع ہوتی ہیں، اس اہتمام کے ساتھ جو شادیوں میں کیا جاتا ہے۔ پھر کچھ دوسرے دن اکثر تیسرے دن واپس آتی ہیں، بعض چالیس دن تک بیٹھتی ہیں، اس مدت اقامت میں عورتات کے کھانے پینے، پان چھالیا کا اہتمام اہل میت کرتے ہیں جس کے باعث ایک صرف کثیر کے زیر بار ہوتے ہیں، اگر اس وقت ان کا ہاتھ خالی ہو تو اس ضرورت سے قرض لیتے ہیں، یوں نہ ملے تو سودی نکلواتے ہیں، اگر نہ کریں تو مطعون و بدنام ہوتے ہیں، یہ شرعاً جائز ہے کیا؟ بینوا توجروا

الجواب: بسم اللہ الرحمن الرحیم

الحمد للہ الذی ارسل نبینا الرحیم الغفور بالرفق والتیسیر واعدل الامور فسن الدعوۃ عند السرور دون الشرور صلی اللہ سب خوبیاں اللہ کے لیے جس نے ہمارے رحم کرنے بخشنے والے نبی کو نرمی وآسانی کے ساتھ بھیجا اور کاموں میں اعتدال رکھا، تو دعوت کا طریقہ سرور کے

Fatawa Rizwia Volume 9

...May Allah the Almighty shower peace, blessings, and salutations upon him (the Prophet), his noble progeny, and his foremost companions. (T) [Translation: ...at the time of sorrow, may God Almighty send salutations, peace, and blessings upon them, their honorable family, and foremost companions.]

SubhanAllah! O Muslim! You ask if this is permissible? Rather, ask how many foul and severe sins, and harsh and heinous flaws this impure custom comprises. Firstly, this feast itself is impermissible and a heinous, foul innovation (bid'ah). Imam Ahmad in his Musnad and Ibn Majah in his Sunan record with a sound chain from Hazrat Jarir bin Abdullah al-Bajali (may Allah be pleased with him):

[Arabic Box 1]: We (the group of Companions) used to consider gathering at the house of the deceased's family and preparing food as part of wailing (niyaha). [Urdu Translation 1]: We, the group of companions, used to count gathering at the family of the deceased and preparing food as wailing for the dead.

Regarding the prohibition of which there are continuous (mutawatir) Hadiths. The Absolute Researcher (Imam Muhaqqiq alal-itlaq) says in 'Fath al-Qadir', a commentary on 'Al-Hidayah':

[Arabic Box 2]: It is disliked to prepare a feast from the family of the deceased, for feast-giving is established in Sharia for occasions of joy, not for occasions of sorrow, and it is a detestable innovation. [Urdu Translation 2]: Preparing a feast by the family of the deceased is forbidden as the Sharia has established feasts for joy, not for mourning. And this is a heinous innovation.

Similarly, Allama Hasan al-Shurunbulali said in 'Maraqi al-Falah':

[Arabic Box 3]: Its wording is: A feast from the family of the deceased is disliked because it was prescribed for joy, not for sorrow, and it is a detestable innovation. [Urdu Translation 3]: A feast from the side of the deceased's family is forbidden because the Sharia has kept it for joy, not for mourning, and this is a bad innovation. (T)

In Fatawa Khulasa (3), Fatawa Sirajia (4), Fatawa Zahiriya (5), Fatawa Tatar-khaniya (6), and from Zahiriya in 'Khizanat al-Muftin' and 'Kitab al-Karahiyah' and from Tatar-khaniya in 'Fatawa Hindiyyah' (8), it is stated in similar words:

[Arabic Box 4]: The wording of al-Sirajiyya is: Preparing a feast is not permissible at...
[Urdu Translation 4]: The words of Sirajia are that this third-day feast during mourning...

---

1. Musnad Ahmad bin Hanbal, narrated from Musnad Abdullah bin Amr, Dar al-Fikr, Beirut, 2/204; Sunan Ibn Majah, chapter on what is narrated regarding the prohibition of gathering, etc., H.M. Saeed Company, Karachi, p. 117.
2. Fath al-Qadir, Chapter on Burial, Maktaba Nooria Razvia, Sukkur, 2/102.
3. Maraqi al-Falah with annotations of at-Tahtawi, Chapter on carrying and burying the deceased, Noor Muhammad Karkhana Tijarat Kutub, Karachi, p. 339.

फ़तावा रज़विया खंड 9

...अल्लाह तआला उन पर (नबी स.अ.व.) और उनकी सम्मानित आल (परिवार) और प्रमुख साथियों पर दरूद, सलाम और बरकत नाज़िल फरमाए। (त) [अनुवाद: ...दुःख के समय नहीं, बल्कि अल्लाह तआला उन पर, उनके सम्मानित परिवार और प्रमुख साथियों पर सलाम और बरकतें बरसाए।]

सुभानअल्लाह! ऐ मुसलमान! क्या आप पूछते हैं कि यह जायज़ है या क्या? बल्कि यह पूछें कि यह नापाक रस्म कितने घृणित और गंभीर पापों, कठोर और जघन्य बुराइयों पर आधारित है। पहली बात तो यह कि यह दावत खुद नाज़ायज़ और घृणित बिदअत (नवाचार) है। इमाम अहमद अपनी मुसनद में और इब्न माजह अपनी सुनन में सही सनद (शृंखला) के साथ हज़रत जरीर बिन अब्दुल्लाह बजली से रिवायत करते हैं:

[अरबी बॉक्स 1]: हम (सहाबा का समूह) मृतक के परिवार के यहाँ इकट्ठा होने और उनके लिए भोजन तैयार कराने को 'नियाहत' (विलाप) में गिनते थे। [उर्दू अनुवाद 1]: हम, सहाबा का समूह, मृतक के परिवार के यहाँ इकट्ठा होने और उनके खाना तैयार कराने को मृतक के विलाप (नियाहत) से शुमार करते थे।

जिसकी हराम होने पर मुतवातिर (लगातार) हदीसें मौजूद हैं। इमाम मुहक्क़िक़ अलल-इतलाक़ 'फतह-उल-क़दीर' (हिदाया की व्याख्या) में फरमाते हैं:

[अरबी बॉक्स 2]: मृतक के परिवार की ओर से दावत का आयोजन करना मकरूह (नापसंद) है, क्योंकि शरीअत ने दावत खुशी के मौकों पर रखी है न कि गम के मौकों पर। और यह एक घृणित बिदअत है। [उर्दू अनुवाद 2]: मृतक के परिवार की तरफ से खाने की दावत तैयार करनी मना है कि शरीअत ने दावत खुशी में रखी है न कि गमी में। और यह घृणित बिदअत है।

इसी तरह अल्लामा हसन शुरुनबुलाली ने 'मराक़ी उल-फलाह' में फरमाया:

[अरबी बॉक्स 3]: इसके शब्द ये हैं: मृतक के परिवार की ओर से दावत मकरूह है क्योंकि यह खुशी के लिए निर्धारित की गई थी न कि गम के लिए, और यह एक घृणित बिदअत है। [उर्दू अनुवाद 3]: मय्यत वालों की तरफ से दावत मना है इसलिए कि इसे शरीअत ने खुशी में रखा है न कि गमी में और यह बुरी बिदअत है। (त)

फतावा खुलासा (3), फतावा सिराजिया (4), फतावा ज़हीरिया (5), फतावा तातारखानिया (6), और ज़हीरिया से 'खज़ानत-उल-मुफ़्तीन' और 'किताब-उल-कराहियत' और तातारखानिया से 'फतावा हिन्दिया' (8) में लगभग समान शब्दों में है:

[अरबी बॉक्स 4]: सिराजिया के शब्द हैं: दावत तैयार करना जायज़ नहीं है... [उर्दू अनुवाद 4]: सिराजिया के शब्द हैं कि गमी में यह तीसरे दिन की दावत...

---

1. मुसनद अहमद बिन हंबल, मुसनद अब्दुल्लाह बिन अम्र से रिवायत, दार अल-फिक्र, बेरूत, 2/204; सुनन इब्न माजह, जमा होने की मनाही के अध्याय में, एच.एम. सईद कंपनी, कराची, पृ. 117।
2. फतह अल-क़दीर, दफन का अध्याय, मकतबा नूरिया रज़विया, सुक्कुर, 2/102।
3. मराक़ी अल-फलाह तहतावी के हाशिया के साथ, मय्यत को ले जाने और दफनाने का अध्याय, नूर मोहम्मद कारखाना तिजारत कुतुब, कराची, पृ. 339।

पृष्ठ 948 का 664

فتاوٰی رضویہ جلد نہم

تعالی علیہ وسلم وبارک علیہ وعلی الہ الکرام وصحبہ الصدور۔ (ت) [ترجمہ: وقت رکھانہ کہ شرور کے وقت ، خدائے تعالیٰ ان پر ان کی معزز آل ، اور مقدم اصحاب پر درود سلام اور برکت نازل فرمائے۔]

سبحان اللہ ! اے مسلمان! یہ پوچھتا ہے جائز ہے یا کیا؟ یوں پوچھو کہ یہ ناپاک رسم کتنے قبیح اور شدید گناہوں سخت و شنیع خرابیوں پر مشتمل ہے۔ اولاً یہ دعوت خود ناجائز و بدعت شنیعہ قبیحہ ہے۔ امام احمد اپنے مسند اور ابن ماجہ سنن میں بہ سند صحیح حضرت جریر بن عبداللہ بجلی سے راوی:

[عربی عبارت]: کنا نعد الاجتماع الی اھل المیت وصنعۃ الطعام من النیاحۃ 1۔ [اردو ترجمہ]: ہم گروہِ صحابہ اہلِ میت کے یہاں جمع ہونے اور ان کے کھانا تیار کرانے کو مردے کی نیاحت سے شمار کرتے تھے۔

جس کی حرمت پر متواتر حدیثیں ناطق_ امام محقق علی الاطلاق فتح القدیر شرح ہدایہ میں فرماتے ہیں:

[عربی عبارت]: یکرہ اتخاذ الضیافۃ من اھل المیت لا نہ شرع فی السرور لا فی الشرور وھی بدعۃ مستقبحۃ 2۔ [اردو ترجمہ]: اہل میت کی طرف سے کھانے کی ضیافت تیار کرنی منع ہے کہ شرع نے ضیافت خوشی میں رکھی ہے نہ کہ غمی میں۔ اور یہ بدعتِ شنیعہ ہے۔

اسی طرح علامہ حسن شرنبلالی نے مراقی الفلاح میں فرمایا:

[عربی عبارت]: ولفظہ یکرہ الضیافۃ من اھل المیت لانہا شرعت فی السرور لا فی شرور وھی بدعۃ مستقبحۃ 3۔ [اردو ترجمہ]: میت والوں کی جانب سے ضیافت منع ہے اس لیے کہ اسے شریعت نے خوشی میں رکھا ہے نہ کہ غمی میں اور یہ بری بدعت ہے۔ (ت)

3 فتاوٰی خلاصہ و 4 فتاوٰی سراجیہ و 5 فتاوٰی ظہیریہ و 6 فتاوٰی تاتارخانیہ اور ظہیریہ سے 7 خزانۃ المفتین وکتاب الکراہیتہ اور تاتر خانیہ سے 8 فتاوٰی ہندیہ میں بالفاظ متقاربہ ہے:

[عربی عبارت]: واللفظ للسراجیۃ لایباح اتخاذ الضیافۃ عند [اردو ترجمہ]: سراجیہ کے الفاظ ہیں کہ غمی میں یہ تیسرے دن کی دعوت

---

1 مسند احمد بن حنبل مروی از مسند عبداللہ بن عمرو دارالفکر بیروت ۲/ ۲۰۴، سنن ابن ماجہ باب ماجاء فی النھی عن الاجتماع الخ ایچ ایم سعید کمپنی کراچی ص ۱۱۷ 2 فتح القدیر فصل فی الدفن مکتبہ نوریہ رضویہ سکھر ۲/ ۱۰۲ 3 مراقی الفلاح علی ھامش حاشیۃ الطحطاوی فصل فی حملھا ودفنھا نور محمد کارخانہ تجارت کتب کراچی ص ۳۳۹

Fatawa Rizwia, Volume 9

Arabic Text	Urdu Translation/Commentary
Three days for the calamity [1]. Added in 'Al-Khulasa': Because hosting a feast is done at a time of joy [2].	It is not permissible. In 'Al-Khulasa', this was added that a feast is for occasions of joy (T).
It is mentioned in 'Fatawa Imam Qazi Khan', Book of Al-Hazr wal-Ibahah:	
It is disliked to host a feast during days of mourning because these are days of grief, so what is appropriate for joy is not suitable for them [3].	Hosting a feast during mourning is forbidden because these are days of sorrow, and what happens in joy is not appropriate for them.
It is in 'Tabyin al-Haqa'iq' by Imam Zayla'i:	
There is no harm in sitting for mourning for up to three days without committing forbidden acts like spreading carpets and providing food by the family of the deceased [4].	There is no harm in sitting for mourning for three days, provided no forbidden acts are committed, such as spreading expensive carpets or providing meals from the deceased's family.
Imam Bazzazi states in 'Al-Wajiz':	
It is disliked to host a meal on the first day, the third day, and after a week [5].	That is, the meals prepared on the first or third day or after a week of the death are all disliked and forbidden.
Allama Shami states in 'Radd al-Muhtar':	
This was discussed at length in 'Al-Mi'raj', and it said: All these actions are for fame and show, so they should be avoided [6].	That is, 'Mi'raj al-Dirayah Sharh Hidayah' discussed this matter extensively and said: These are all acts of fame and ostentation, so they should be avoided.
It is at the end of 'Jami' al-Rumuz', chapter of Disliked Acts:	
It is disliked to sit for mourning for three days or less in [the mosque]...	That is, sitting in the mosque for three days or less to receive condolences is forbidden.

[Footnotes] 1. Fatawa Sirajiyya, Kitab al-Karahiya, Bab al-Walima, Munshi Nawal Kishore, Lucknow, p. 75. 2. Khulasat al-Fatawa, Kitab al-Karahiya, Maktaba Habibiyya, Quetta, 4/322. 3. Fatawa Qazi Khan, Kitab al-Karahiya, Munshi Nawal Kishore, Lucknow, 4/81. 4. Tabyin al-Haqa'iq, Fasl fi Ta'ziyat Ahl al-Bayt, Matba'a Kubra Amiriyya, Egypt, 1/246. 5. Fatawa Bazzaziyya on the margins of Fatawa Hindiyya, Vol 5, Al-Janā’iz, Noorani Kutub Khana, Peshawar, 4/81. 6. Radd al-Muhtar, Bab Salat al-Janā’iz, Matlab fi Karahiya al-Diyafah etc., Idarah al-Tiba'at al-Misriyya, Egypt, 1/203.

फ़तावा रिज़विया, जिल्द 9

अरबी पाठ	उर्दू अनुवाद/व्याख्या
शोक के तीन दिन [1]। 'अल-खुलासा' में जोड़ा गया: क्योंकि दावत खुशी के मौके पर दी जाती है [2]।	यह जायज़ नहीं है। 'अल-खुलासा' में यह वृद्धि की गई कि दावत तो खुशी के अवसर पर होती है (त)।
'फ़तावा इमाम क़ाज़ी खाँ', किताब अल-हज़्र वल-इबाहा में है:	
शोक के दिनों में दावत का आयोजन करना मकरूह (नापसंद) है क्योंकि ये शोक के दिन हैं, इसलिए खुशी की चीज़ें इनके लिए उपयुक्त नहीं हैं [3]।	गम के दिनों में दावत वर्जित है क्योंकि ये अफसोस के दिन हैं, तो जो खुशी में होता है वह इनके लिए उपयुक्त नहीं है।
इमाम ज़ैलाई की 'तबीन अल-हक़ाएक' में है:	
शोक के लिए तीन दिनों तक बैठने में कोई बुराई नहीं है जब तक कि कोई निषिद्ध कार्य न किया जाए जैसे कि कालीन बिछाना और मृतक के परिवार द्वारा भोजन देना [4]।	मुसीबत के लिए तीन दिन तक बैठने में कोई हर्ज नहीं है बशर्ते कि किसी निषिद्ध कार्य का पालन न किया जाए, जैसे कि कालीन बिछाना और मृतक के परिवार की ओर से खाना।
इमाम बज़्ज़ाज़ी 'अल-वजीज़' में कहते हैं:	
पहले, तीसरे और एक सप्ताह के बाद भोजन का आयोजन करना मकरूह है [5]।	यानी मय्यत के पहले या तीसरे दिन या हफ्ते के बाद जो भोजन तैयार कराए जाते हैं, वे सब मकरूह और वर्जित हैं।
अल्लामा शामी 'रद्द अल-मुहतार' में कहते हैं:	
'अल-मिराज' में इस पर विस्तार से चर्चा की गई और कहा गया: ये सभी कार्य प्रसिद्धि और दिखावे के लिए हैं, इसलिए इनसे बचना चाहिए [6]।	यानी 'मिराज अद-दिरयाह शर्ह हिदाया' ने इस मसले पर बहुत लंबी बात की और फरमाया: ये सब नामवरी और दिखावे के काम हैं, इनसे बचना चाहिए।
'जामे अर-रुमूज़' के अंत में है:	

अरबी पाठ	उर्दू अनुवाद/व्याख्या
शोक के लिए तीन दिन या उससे कम समय के लिए [मस्जिद में] बैठना मकरूह है...	यानी तीन दिन या कम ताज़ियत लेने के लिए मस्जिद में बैठना मना है।

[पाद टिप्पणियाँ] 1. फ़तावा सिराजिया, किताबुल कराहिया, बाबुल वलीमा, मुंशी नवल किशोर, लखनऊ, पृष्ठ 75। 2. खुलासातुल फ़तावा, किताबुल कराहिया, मकतबा हबीबिया, क्वेटा, 4/322। 3. फ़तावा क़ाज़ी खाँ, किताबुल कराहिया, मुंशी नवल किशोर, लखनऊ, 4/81। 4. तबीनुल हक़ाएक, फ़स्ल फ़ी ताज़ियत अहलिल बैत, अल-मतबअतुल कुबरा अल-अमीरिया, मिस्र, 1/246। 5. फ़तावा बज़्ज़ाज़िया फ़तावा हिन्दिया के हाशिये पर, जिल्द 5, जनाज़ा, नूरानी कुतुब खाना, पेशावर, 4/81। 6. रद्दुल मुह्तार, बाब सलातुल जनाइज़, मतलब फ़ी कराहियत अद-ज़ियाफ़ा आदि, इदारतुल तिबअतुल मिस्रिया, मिस्र, 1/203।

عربی متن	اردو ترجمہ
ثلاثة ایام في المصیبة ۱اھ زاد في الخلاصہ لان الضیافة تتخذ عند السرور ۲۔	جائز نہیں، اھ خلاصہ میں یہ اضافہ کیا کہ دعوت تو خوشی میں ہوتی ہے (ت)
فتاوٰی امام قاضی خاں کتاب الح والخ باحتہ میں ہے : یکرہ اتخاذ الضیافة في ایام المصیبة لانھا ایام تأسف فلا یلیق بھا مایکون للسرور ۳۔	غمی میں ضیافت ممنوع ہے کہ یہ افسوس کے دن ہیں تو جو خوشی میں ہوتا ہے ان کے لائق نہیں۔
تبیین الحقائق امام زیلعی میں ہے : لاباس بالجلوس للمصیبة الی ثلث من غیر ارتکاب محظور من فرش البسط والاطعمة من اھل المیت ٤۔	مصیبت کے لیے تین دن تک بیٹھنے میں کوئی مضائقہ نہیں جبکہ کسی امر ممنوع کا ارتکاب نہ کیا جائے۔ جیسے مکلّف فرش بچھانے اور میت والوں کی طرف سے کھانے۔
امام بزازی وجیز میں فرماتے ہیں: یکرہ اتخاذ الطعام في الیوم الاول والثالث و بعد الاسبوع ٥۔	یعنی میت کے پہلے یا تیسرے دن یا ہفتہ کے بعد جو کھانے تیار کرائے جاتے ہیں سب مکروہ و ممنوع ہیں۔

عربی متن	اردو ترجمہ
علامہ شامی ردالمحتار میں فرماتے ہیں:	
اطال ذلك في المعراج وقال وهذه الافعال كلها للسمعة والرياء فيتحرز عنها ٦۔	یعنی معراج الدرایۃ شرح ہدایہ نے اس مسئلہ میں بہت طویل کلام کیا اور فرمایا: یہ سب ناموری اور دکھاوے کے کام ہیں ان سے احتراز کیا جائے۔
جامع الرموز آخر الكراهية میں ہے :	
يكره الجلوس للمصيبة ثلثة ايام او اقل في	یعنی تین دن یا کم تعزیت لینے کے لیے مسجد میں بیٹھنا منع

[حواشی] 1 فتاویٰ سراجیہ کتاب الکراہیۃ باب الولیمہ منشی نولکشور لکھنؤ ص ۷۵ 2 خلاصۃ الفتاویٰ کتاب الکراہیۃ مکتبہ حبیبیہ کوئٹہ ۴/۳۲۲ 3 فتاویٰ قاضی خاں کتاب الکراہیۃ منشی نولکشور لکھنؤ ۸۱/۴ 4 تبیین الحقائق فصل فی تعزیہ اہل البیت مطبعہ کبریٰ امیریہ مصر ۱/۲۴۶ 5 فتاویٰ بزازیہ علی ھامش فتاویٰ ہندیہ الخامس والعشرون فی الجنائز نورانی کتب خانہ پشاور ۸۱/۴ 6 ردالمحتار باب صلوۃ الجنائز مطلب فی کراہیۃ الضیافۃ الخ ادارۃ الطباعۃ المصریہ مصر ۱/۲۰۳

Fatawa-e-Razawiyya, Volume 9

[From Al-Masjid]: It is disliked to arrange feasts on these days, and similarly eating them, as explicitly stated in Khayr-ul-Fatawa[1]- Feast and eating during these days are both prohibited and forbidden, as is clearly stated in Khayr-ul-Fatawa.

And in [16]Fatawa-e-Anqarwi and [17]Waqia-tul-Muftiyyin it is stated: It is disliked to provide hospitality for three days and to eat it, as invitations are prescribed for times of joy.[2]- Providing hospitality for three days and eating it is disliked, because invitations are meant for happy occasions.

[18]In Kashf-ul-Ghita it is stated: It is disliked for the family of the deceased to provide hospitality for the mourners and to cook food for them. By consensus of narrations, this is because due to being occupied with tragedy, making preparations and arrangements is difficult for them.[3]- It is disliked by consensus of narrations for the deceased's family to host a feast and cook food for the mourners, as it is difficult for them to arrange it while being occupied with grief. (T)

In the same [book] it is stated: What has become customary of the family of the deceased cooking food on the third day and distributing it among mourners and peers is non-permissible and prohibited. This is clarified in Khazanah because in Sharia, a feast is at times of joy, not at times of distress, and this is what is well-known among the majority.[4]- So this custom has emerged that on the third day, the family of the deceased cooks food and distributes/feeds it to the mourners and friends; this is illegitimate and forbidden. It is specified in Khazanah because in Islamic law, feasting is prescribed for times of joy, not for times of sorrow, and this is the prominent view among the majority of scholars. (T)

Secondly, often among the heirs there is an orphan or a minor child. Or other heirs are not present, nor is their permission obtained; in such cases, this matter entails a severe prohibition. Allah Almighty says: Indeed, those who unjustly consume the property of orphans only consume fire into their bellies. And they will burn in a Blaze. [Surah An-Nisa, Verse 10] Undoubtedly, those who eat the wealth of orphans unjustly fill their bellies with embers, and soon they will enter a blazing fire.

[1] Jami-ul-Rumuz Kitab-ul-Karahiya, Maktaba Islamiya Gonbad-e-Qabus, Iran 3/328 [2] Fatawa Anqarwiya Kitab-ul-Karahiya Wal-Istihsan, Dar-ul-Isha'at Al-Arabiya, Kandahar 1/30 [3] Kashf-ul-Ghita Section Nine, Condolences, p. 74 [4] Kashf-ul-Ghita Section Nine, Condolences, p. 74

फ़तावा रज़विया, जिल्द नौ (9)

[अल-मस्जिद से]: इन दिनों में दावत का इंतज़ाम करना मकरूह है और इसी तरह उसे खाना भी, जैसा कि खैर-उल-फ़तावा[1] में स्पष्ट है- इन दिनों में दावत और उसे खाना दोनों ही वर्जित और मना हैं, जैसा कि खैर-उल-फ़तावा में स्पष्ट रूप से बताया गया है।

और [16]फ़तावा-ए-अनक़रवी और [17]वक़ात-उल-मुफ़्तियीन में है: तीन दिन तक दावत का इंतज़ाम करना और उसे खाना मकरूह है क्योंकि दावत तो ख़ुशी के लिए निर्धारित की गई है।[2]- तीन दिन दावत करना और उसे खाना मकरूह है क्योंकि दावत तो ख़ुशी के मौकों पर ही जायज़ की गई है।

[18]कश्फ़-उल-ग़िता में है: शोक मनाने वालों के लिए मृतक के परिवार द्वारा दावत करना और उनके लिए खाना पकाना तमाम रिवायतों के अनुसार मकरूह है, क्योंकि शोक में व्यस्त होने के कारण इसका इंतज़ाम और तैयारी करना उनके लिए कठिन है।[3]- शोक संवेदना व्यक्त करने वालों के लिए मृतक के परिजनों का दावत करना और खाना पकाना सर्वसम्मति से मकरूह है, क्योंकि दुख की घड़ी में व्यस्त होने के कारण इसका प्रबंध करना उनके लिए कठिन होता है। (त)

उसी में है: जो रिवाज चल पड़ा है कि तीसरे दिन मृतक के परिजन खाना पकाते हैं और शोक मनाने वालों और मित्रों में बाँटते हैं, वह नाजायज़ और हराम है। 'ख़ज़ाना' में इसकी व्याख्या है क्योंकि शरीयत में दावत ख़ुशी के समय रखी गई है, शोक के समय नहीं और यही जम्हूर (बहुमत) के नज़दीक मशहूर है।[4]- तो यह जो रिवाज चल पड़ा है कि तीसरे दिन मृतक के परिजन खाना पकाते हैं और शोक व्यक्त करने वालों और दोस्तों को खिलाते हैं, यह नाजायज़ और वर्जित है। 'ख़ज़ाना' में स्पष्ट है क्योंकि शरीयत में दावत केवल ख़ुशी के समय होती है, दुख के समय नहीं, और यही विद्वानों के बहुमत की राय है। (त)

दूसरे यह कि अक्सर वारिसों में कोई यतीम या नाबालिग बच्चा होता है। या दूसरे वारिस मौजूद नहीं होते, न ही उनसे इसकी अनुमति ली जाती है, ऐसी स्थिति में यह मामला सख्त हराम होने को शामिल करता है। अल्लाह अज़्वजल फ़रमाता है: बेशक जो लोग यतीमों का माल अन्याय से खाते हैं, वे अपने पेट में केवल आग भरते हैं, और जल्द ही वे भड़कती आग में दाखिल होंगे। [सूरह अन-निसा, आयत 10] निस्संदेह, जो लोग यतीमों का धन गलत तरीके से खाते हैं, वे अपने पेट में दहकते अंगारे भरते हैं, और वे जल्द ही धधकती आग में जलेंगे।

[1] जामी-उल-रुमोज़ किताब-उल-कराहीया, मकतबा इस्लामिया, गुंबद-ए-क़बूस, ईरान 3/328 [2] फ़तावा अनक़रवीया किताब-उल-कराहीया वल-इस्तिहसान, दार-उल-इशात अल-अरबिया, कंधार 1/30 [3] कश्फ़-उल-ग़िता अध्याय नौ, शोक संवेदना, पृष्ठ 74 [4] कश्फ़-उल-ग़िता अध्याय नौ, शोक संवेदना, पृष्ठ 74

فتاوٰی رضویہ جلد نہم

المسجد ویکرہ اتخاذ الضیافۃ فی ھذہ الایام وکذا اکلھا کما فی خیرۃ الفتاوٰی[1]- ہے اور ان دنوں میں ضیافت بھی ممنوع اور اس کا کھانا بھی منع ہے، جیسا کہ خیرۃ الفتاوٰی میں ت- صریح ہے۔

اور ۱۶ فتاوٰی انقروی اور ۱۷ واقعات المفتین میں ہے : یکرہ اتخاذ الضیافۃ ثلاثۃ ایام واکلھا لانھا مشروعۃ للسرور[2] تین دن ضیافت اور اس کا کھانا مکروہ ہے کہ دعوت تو خوشی میں مشروع ہوئی ہے۔

۱۸ کشف الغطاء میں ہے : ضیافت نمودن اہل میت اہل تعزیت را و پختن طعام برائے آنہا مکروہ است۔ باتفاق روایات را بہ سبب اشتغال بمصیبت استعداد و تھیہ آن دشوار است[3]۔ تعزیت کرنے والوں کے لیے اہل میت کا ضیافت کرنا اور کھانا پکانا باتفاق روایات مکروہ ہے اس لیے کہ مصیبت میں مشغولی کی وجہ سے اس کا اہتمام ان کے لیے دشوار ہے۔ (ت)

اسی میں ہے : پس آنچہ متعارف شدہ از پختن اہل مصیبت طعام را در سوم و قسمت نمودن آن میان اہل تعزیت و اقران غیر مباح و نامشروع است و تصریح کردہ بداں در خزانہ چہ شریعت ضیافت نزد سرور ست نہ نزد شرور وہو المشہور عند الجمھور[4]۔ تو یہ رواج پڑ گیا ہے کہ تیسرے دن اہل میت کا کھانا پکاتے ہیں اور اہل تعزیت اور دوستوں کو بانٹتے کھلاتے ہیں ناجائز و ممنوع ہے۔ خزانہ میں اس کی تصریح ہے اس لیے کہ شرع میں ضیافت خوشی کے وقت رکھی گئی ہے مصیبت کے وقت نہیں اور یہی جمہور کے نزدیک مشہور ہے۔ (ت)

ثانیاً غالباً ورثہ میں کوئی یتیم یا اور بچہ نابالغ ہوتا ہے۔ یا اور ورثہ موجود نہیں ہوتے، نہ ان سے اس کا اذن لیا جاتا ہے، جب تو یہ امر سخت حرام شدید پر متضمن ہوتا ہے۔ اللہ عزوجل فرماتا ہے :

اِنَّ الَّذِیْنَ یَاْكُلُوْنَ اَمْوَالَ الْیَتٰمٰى ظُلْمًا اِنَّمَا یَاْكُلُوْنَ فِیْ بُطُوْنِهِمْ نَارًا ط وَ سَیَصْلَوْنَ سَعِیْرًا ۝ بیشک جو لوگ یتیموں کے مال ناحق کھاتے ہیں بلا شبہ وہ اپنے پیٹوں میں انگارے بھرتے ہیں، اور قریب ہے وَ سَیَصْلَوْنَ سَعِیْرًا

[1] جامع الرموز کتاب الکراہیۃ مکتبہ اسلامیہ گنبد قاموس ایران ۳۲۸/۳ [2] فتاویٰ انقرویۃ کتاب الکراہیۃ والاستحسان دارالاشاعت العربیۃ قندھار ۱/ ۳۰ [3] کشف الغطاء فصل نہم تعزیت ص ۷۴ [4] کشف الغطاء فصل نہم تعزیت ص ۷۴

Fatawa Razvia Volume 9

...Sa'eera (1) - that they will enter the depths of Hell.

Dealing with someone else's property without their permission is itself prohibited. Allah the Almighty says: "Do not consume one another's wealth unjustly" (2). Especially wasting the property of a minor, over which neither they themselves, nor their father, nor their guardian has authority, because "guardianship is for looking after interests, not for causing harm specifically" (t). And if any of them is an orphan, then the calamity is even more severe, and refuge is sought with Allah, the Lord of the worlds. Yes, if food is cooked to be given to the needy, there is no harm; in fact, it is good. Provided that a sane adult does this from their own personal wealth or from the inheritance, then all heirs must be present, adult, and consenting. It is stated in Khania, Bazazia, Tatar Khania, and Hindia:

If food is prepared for the poor, it is good if the heirs are adults. If there is a minor among the heirs, they should not do this from the inheritance (3). — If food is cooked for the poor, it is good provided all heirs are adults, and if any heir is a minor, then this should not be done from the inheritance. (t)

Also, in Fatawa Qazi Khan, it is stated:

If the guardian of the deceased prepares food for the poor, it is good now, provided there is no minor among the heirs, then that should not be taken from the inheritance (4). — If the guardian of the deceased prepares food for the poor, it is good. However, if there is any minor among the heirs, they should not do this from the inheritance. (t)

Thirdly, these women who gather and perform reprehensible acts, such as loud wailing and lamenting, artificial veiling of faces, etc., all this is 'Niyaha' (loud mourning), and Niyaha is forbidden. It is not permissible even for the relatives and friends of the deceased to send food to such a gathering as it would be aiding in sin. Allah the Almighty says: "And do not cooperate in sin and transgression" (5). Let alone the family of the deceased organizing food, which is prohibited from the outset, so that...

---

1. Al-Quran 10/4
2. Al-Quran 188/2

3. Fatawa Hindiyyah, Chapter 12 on Gifts and Invitations, Noorani Kutub Khana Peshawar, 5/344
4. Fatawa Qazi Khan, Book of Prohibition and Permission, Munshi Naval Kishore Lucknow, 4/81
5. Al-Quran 2/5

फ़तावा रज़विया जिल्द 9

...सईरा (1) - कि वे जहन्नुम की गहराइयों में जाएंगे।

बिना अनुमति के किसी अन्य की संपत्ति में हस्तक्षेप करना स्वयं नाजायज़ है। अल्लाह तआला ने फरमाया: "अपने माल आपस में नाहक न खाओ।" (2) विशेष रूप से एक नाबालिग की संपत्ति को नष्ट करना, जिस पर न तो उसे स्वयं, न उसके पिता और न ही उसके संरक्षक को अधिकार है क्योंकि "अभिभावकत्व लाभ की देखरेख के लिए है, न कि विशेष रूप से नुकसान के लिए।" (त) और यदि उनमें से कोई अनाथ हो, तो आपदा और भी गंभीर है, और अल्लाह, संसारों के प्रतिपालक से शरण मांगी जाती है। हाँ, यदि गरीबों को देने के लिए खाना पकवाएं तो कोई हर्ज नहीं बल्कि अच्छा है। बशर्ते कि कोई बुद्धिमान वयस्क इसे अपनी निजी संपत्ति से करे या विरासत से करे, तो सभी उत्तराधिकारी उपस्थित, वयस्क और सहमत हों। खानिया, बज़िया, तातार खानिया और हिन्दिया में है:

यदि गरीबों के लिए खाना तैयार किया जाता है, तो यह अच्छा है यदि उत्तराधिकारी वयस्क हों। यदि उत्तराधिकारियों में कोई नाबालिग है, तो वे इसे विरासत में से न करें (3)। — यदि गरीबों के लिए खाना पकवाए तो अच्छा है बशर्ते कि सभी उत्तराधिकारी वयस्क हों, और यदि कोई उत्तराधिकारी नाबालिग हो तो यह विरासत से न करें। (त)

साथ ही फतावा काजी खान में है:

यदि मृतक का संरक्षक गरीबों के लिए भोजन तैयार करता है तो अब अच्छा है, बशर्ते उत्तराधिकारियों में कोई नाबालिग न हो, तो उसे विरासत से न लिया जाए (4)। — मृतक का संरक्षक यदि गरीबों के लिए खाना तैयार कराए तो अच्छा है। लेकिन उत्तराधिकारियों में यदि कोई नाबालिग हो तो विरासत से यह काम न करे। (त)

तीसरा, ये औरतें जो इकट्ठा होती हैं और निंदनीय कार्य करती हैं, जैसे चिल्लाकर रोना-पीटना, बनावट से चेहरा ढंकना, इत्यादि, और यह सब 'नियाहत' है और नियाहत हराम है। ऐसी सभा के लिए मृतक के रिश्तेदारों और दोस्तों को भी खाना भेजना जायज़ नहीं है क्योंकि यह गुनाह में मदद होगी। अल्लाह तआला ने फरमाया: "और गुनाह और ज़्यादती पर एक-दूसरे की मदद न करो।" (5) न कि मृतक के परिवार वालों का भोजन का प्रबंधन करना जो कि मूल रूप से नाजायज़ है, तो उस...

---

1. अल-कुरान 10/4

2. अल-कुरान 188/2
3. फतावा हिन्दिया, अध्याय 12 उपहार और दावतों के बारे में, नूरानी कुतुब खाना पेशावर, 5/344
4. फतावा काजी खान, किताबुल हज़र वल इबाहा, मुंशी नवल किशोर लखनऊ, 4/81
5. अल-कुरान 2/5

فتاوی رضویہ جلد نہم

سَعِیْرًا (1) - کہ جہنم کے گہراؤ میں جائیں گے۔

مالِ غیر میں بے اذن غیر تصرف خود ناجائز ہے، قال تعالٰی: لَا تَاکُلُوا اَمْوَالَکُمْ بَیْنَکُمْ بِالْبَاطِلِ (2) (اپنے مال آپس میں ناحق نہ کھاؤ۔ ت) خصوصاً نابالغ کا مال ضائع کرنا جس کا اختیار نہ خود اسے ہے نہ اس کے باپ نہ اسے کے وصی کو لان الولایۃ للنظر لا للضرر علی الخصوص (اس لیے کہ ولایت فائدے میں نظر کے لیے ہے نہ کہ معین طور پر ضرر کے لیے۔ ت) اور اگر ان میں کوئی یتیم ہوا تو آفت سخت تر ہے، والعیاذ باللہ رب العالمین۔ ہاں اگر محتاجوں کے دینے کو کھانا پکوائیں تو حرج نہیں بلکہ خوب ہے۔ بشرطیکہ یہ کوئی عاقل بالغ اپنے مال خاص سے کرے یا ترکہ سے کریں، تو سب وارث موجود و بالغ و راضی ہوں، خانیہ وبزازیہ وتتارخانیہ وہندیہ میں ہے:

ان اتخذ طعاماً للفقراء کان حسناً اذا کانت الورثۃ بالغین وان کان فی الورثۃ صغیر لم یتخذوا ذلك من التركة (3)۔ - اگر فقراء کے لیے کھانا پکوائے تو اچھا ہے جب کہ سب ورثہ بالغ ہوں، اور اگر کوئی وارث نابالغ ہو تو یہ ترکہ سے نہ کریں۔ (ت)

نیز فتاوٰی قاضی خاں میں ہے:

ان اتخذ ولی المیت طعاماً للفقراء کان حسناً الآن یکون فی الورثۃ صغیر فلا یتخذ ذلك من التركة (4)۔ - ولی میت اگر فقراء کے لیے کھانا تیار کرائے تو اچھا ہے۔ لیکن ورثہ میں اگر کوئی نابالغ ہو تو ترکہ سے یہ کام نہ کرے۔ (ت)

ثالثاً یہ عورتیں کہ جمع ہوتی ہیں افعالِ منکرہ کرتی ہیں، مثلاً چلا کر رونا پیٹنا، بناوٹ سے منہ ڈھانکنا، الی غیر ذلک، اور یہ سب نیاحت ہے اور نیاحت حرام ہے، ایسے مجمع کے لیے میت کے

عزیزوں اور دوستوں کو بھی جائز نہیں کہ کھانا بھیجیں کہ گناہ کی امداد ہوگی، قال تعالیٰ: وَلَا تَعَاوَنُوْا عَلَى الْاِثْمِ وَالْعُدْوَانِ (5) (گناہ اور زیادتی پر ایک دوسرے کی مدد نہ کرو۔ ت) نہ کہ اہل میت کا اہتمام طعام کرنا کہ سرے سے ناجائز ہے، تو اس...

---

1 القرآن ۱۰/۴ 2 القرآن ۱۸۸/۲ 3 فتاوی ہندیہ الباب الثانی عشر فی الہدایا والضیافات نورانی کتب خانہ پشاور ۵/ ۳۴۴ 4 فتاوی قاضی خان کتاب الحظر والاباحۃ منشی نولکشور لکھنو ۴/ ۸۱ 5 القرآن ۲/۵

Fatawa Rizvia Volume 9

It would be impermissible for an unlawful gathering. It is stated in 'Kashf al-Ghata':

Making food on the second and third day for the family of the deceased, if wailing women are gathered, is an act of assisting them in sin.

(Translation: If wailing women are gathered, then it is disliked (Makruh) to have food cooked for the family of the deceased on the second or third day, because it involves assisting in sin. (T))

Connecting this, most people, due to this repulsive custom, have to provide hospitality beyond their capacity, to the point that the poor family of the deceased, forgetting their grief, become embroiled in the calamity of where to get food, betel leaves, and betel nuts for this gathering, and often they have to take loans out of necessity. Sharia does not like such formality even for a permissible matter, let alone for a forbidden custom. Then the difficulties that arise because of it are evident. Furthermore, if an interest-based loan is taken, it becomes purely prohibited (Haram), and God forbid, one receives a full share of divine curse, for paying interest without Sharia necessity is also a cause of curse just like taking interest, as stated in a Sahih Hadith. In short, there is no doubt about the vileness and prohibition of this custom. May Allah Almighty grant Muslims the strength to completely abandon such repulsive customs which harm their religion and worldly life, and may they not heed absurd taunts. And Allah is the Guide.

Note: Although it is Sunnah for relatives and neighbors to have food cooked and sent for the family of the deceased only on the first day, enough for two meals, and to insist they eat it, this food being only for the family of the deceased is the Sunnah. There is absolutely no command to send it for this gathering, and for them, the command is only for the first day and not beyond. It is stated in 'Kashf al-Ghata':

It is recommended for the relatives and neighbors of the deceased to provide food for the family of the deceased that will satisfy them for one day and night, and to insist they eat. Regarding others besides the family of the deceased eating this food, the famous opinion is that it is disliked (Makruh). Summarized.

(Translation: It is recommended for the relatives and neighbors of the deceased to have enough food cooked for the family of the deceased so that they can eat to their fill for one day and night, and to make them eat by insisting. For those other than the

family of the deceased, eating this food is disliked (Makruh) based on the famous opinion. Summarized! (T))

It is stated in 'Alamgiri':

Carrying food to the bereaved family and eating...

Taking food to the family of the deceased on the first day and their...

---

1. Kashf al-Ghata, Chapter 9, Condolence, p. 77
2. Kashf al-Ghata, Chapter 9, Condolence, p. 77 Page 668 of 948

फ़तावा रज़विया जिल्द नहम (खंड 9)

नाजायज़ मजमे (भीड़) के लिए (खाना) नाजायज़ होगा, 'कश्फ़ उल-ग़ता' में है:

मयत के घर वालों के लिए दूसरे और तीसरे दिन खाना बनाना, अगर विलाप करने वाली औरतें जमा हों, गुनाह के काम में उनकी मदद करना है।

(अनुवाद: अगर मातम करने वाली औरतें जमा हों, तो मयत वालों के लिए दूसरे और तीसरे दिन खाना पकवाना मकरूह है क्योंकि इसमें गुनाह पर मदद करना है। (त))

ज़्यादातर लोगों को इस बुरी रस्म की वजह से अपनी ताक़त से ज़्यादा दावत करनी पड़ती है, यहाँ तक कि मयत वाले बेचारे अपने ग़म को भूल कर इस मुसीबत में मुब्तला हो जाते हैं कि इस मजमे के लिए खाना, पान, छालिया कहाँ से लाएँ और कई बार ज़रूरत के लिए क़र्ज़ लेना पड़ता है। ऐसी तकल्लुफ़ शरीयत को किसी मुबाह (जायज़) काम के लिए भी कतई पसंद नहीं, फिर एक मना की हुई रस्म के लिए तो और भी नहीं। फिर इसके कारण जो मुश्किलें आती हैं वह ज़ाहिर हैं, फिर अगर क़र्ज़ सूदी (ब्याज वाला) मिला तो हराम ए ख़ालिस हो गया, और अल्लाह की पनाह, अल्लाह की लानत का पूरा हिस्सा मिलेगा कि बिना शरीई ज़रूरत के सूद देना भी सूद लेने की तरह लानत का कारण है, जैसा कि सहीह हदीस में फ़रमाया गया। संक्षेप में, इस रस्म की बुराई और मनाही में कोई शक नहीं, अल्लाह अज़्ज़-व-जल्ल मुसलमानों को तौफीक दे कि ऐसी बुरी रस्मों को कतई तौर पर छोड़ दें जिनसे उनके दीन और दुनिया का नुकसान है, और बेतुके तानों का ख्याल न करें, वल्लाहु अल-हादी (अल्लाह ही हिदायत देने वाला है)।

चेतावनी: हालाँकि सिर्फ एक दिन यानी पहले ही दिन अज़ीज़ों और पड़ोसियों के लिए मसनून (सुन्नत) है कि मयत वालों के लिए इतना खाना पकवा कर भेजें जिसे वे दो वक्त खा सकें और इसरार (ज़ोर) देकर उन्हें खिलाएं मगर यह खाना सिर्फ मयत वालों के ही काबिल होना सुन्नत है। इस मजमे के लिए भेजने का हरगिज़ हुक्म नहीं और उनके लिए भी सिर्फ पहले दिन का हुक्म है आगे नहीं, 'कश्फ़ उल-ग़ता' में है:

मयत के रिश्तेदारों और पड़ोसियों के लिए मुस्तहब है कि वे मयत वालों के लिए इतना खाना खिलाएं जो उन्हें एक दिन और रात के लिए तृप्त कर दे और उन्हें खाने के लिए ज़ोर दें। और मयत के घर वालों के अलावा दूसरों के लिए यह खाना खाना मशहूर क़ौल के मुताबिक मकरूह है। संक्षिप्त।

(अनुवाद: मयत के अज़ीज़ों, पड़ोसियों के लिए मुस्तहब है कि मयत वालों के लिए इतना खाना पकवाएं जिसे वे एक दिन और रात भर पेट भर कर खा सकें और इसरार करके खिलाएं गैर मयत वालों के लिए यह खाना खाना मशहूर कौल की बुनियाद पर मकरूह है। संक्षिप्त! (त))

'आलमगीरी' में है:

शोक संतप्त परिवार के पास खाना ले जाना और खाना...

मयत वालों के यहाँ पहले दिन खाना ले जाना और उनके..

---

1. कश्फ़ उल-ग़ता, अध्याय 9, ताज़ियत, पृष्ठ 77
2. कश्फ़ उल-ग़ता, अध्याय 9, ताज़ियत, पृष्ठ 77 पृष्ठ 668/948

فتاوی رضویہ جلد نہم

ناجائز مجمع کے لئے ناجائز ہوگا ، کشف الغطاء میں ہے :

ساختن طعام در روز ثانی و ثالث برائے اہل میت اگر نوحہ گراں جمع باشند است زیرا کہ اعانت است ایشاں را بر گناہ ۔

اگر نوحہ کرنے والیاں جمع ہوں تو اہل میت کے لیے دوسرے تیسرے دن کھانا پکوانا مکروہ ہے کیونکہ اس میں گناہ پر اعانت ہے۔(ت)

رابطاً اکثر لوگوں کو اس رسم شنیع کے باعث اپنی طاقت سے زیادہ ضیافت کرنی پڑتی ہے ، یہاں تک کہ میت والے بیچارے اپنے غم کو بھول کر اس آفت میں مبتلا ہوتے ہیں کہ اس میلے کے لیے کھانا، پان چھالیا کہاں سے لائیں اور بارہا ضرورت قرض لینے کی پڑتی ہے۔ ایسا تکلف شرع کو کسی امر مباح کے لیے بھی زنہار پسند نہیں ، نہ کہ ایک رسم ممنوع کے لیے ، پھر اس کے باعث جو دقتیں پڑتی ہیں خود ظاہر ہیں پھر اگر قرض سودی ملا تو حرام خالص ہوگیا، اور معاذ اللہ لعنت الہی سے پورا حصہ ملے کہ بے ضرورت شرعیہ سود دینا بھی سود لینے کے باعث لعنت ہے ، جیسا کہ صحیح حدیث میں فرمایا۔ غرض اس رسم کی شناعت و ممانعت میں شک نہیں ، اللہ عزوجل مسلمانوں کو توفیق بخشے کہ قطعاً ایسی رسوم شنیعہ جن سے ان کے دین و دنیا کا ضرر ہے ترک کردیں، اور طعن بیہودہ کا لحاظ نہ کریں ، واللہ الہادی۔

تنبیہ : اگرچہ صرف ایک دن یعنی پہلے ہی روز عزیزوں کو ہمسایوں کو مسنون ہے کہ اہل میت کے لیے اتنا کھانا پکوا کر بھیجیں جسے وہ دو وقت کھاسکیں اور باصرار انہیں کھلائیں، مگر یہ

کھانا صرف اہل میت ہی کے قابل ہونا سنت ہے۔ اس میلے کے لیے بھیجنے کا ہر گز حکم نہیں اور ان کے لیے بھی فقط روز اول کا حکم ہے آگے نہیں ، کشف الغطاء میں ہے :

مستحب است خویشاں و ہمسایائے میت را کہ اطعام کنند طعام را برائے اہل وے کہ سیر کند ایشاں را یک شبانہ روز و الحاح کنند تا بخورند و در خوردن غیر اہل میت ایں طعام را مشہور آنست کہ مکروہ است ۲ـہ اھ ملخصاً

میت کے عزیزوں ، ہمسایوں کے لیے مستحب ہے کہ اہل میت کے لیے اتنا کھانا پکوا ئیں جسے ایک دن رات وہ سیر ہو کر کھا سکیں ، اور اصرار کر کے کھلائیں ، غیر اہل میت کے لیے یہ کھانا قول مشہور کی بنیاد پر مکروہ ہے اھ ملخصاً ! (ت)

عالمگیری میں ہے:

حمل الطعام الی صاحب المصیبۃ والاکل

اہل میت کے یہاں پہلے دن کھانا لے جانا اور ان کے

---

1 کشف الغطاء فصل نہم تعزیت ص ۷۷ 2 کشف الغطاء فصل نہم تعزیت ص ۷۷

Fatawa Razawiyya, Volume 9

[Arabic] "Eating with them on the first day is permissible because they are busy with funeral preparations, and after that, it is disliked, as stated in Tatar Khaniya." [Urdu translation follows:] Eating with them is permissible because they are occupied with the funeral, and after that, it is disliked. It is mentioned similarly in Tatar Khaniya. And Allah Almighty knows best, and His knowledge is most exalted, complete, and firm. (T)

Problem 2687 to 2688: From Iran, Sadat neighborhood, District Fatehpur, asked by Hakim Syed Nematullah Sahib, 23 Muharram 1339 AH. What do the scholars of religion and the muftis of the clear Shari'ah say regarding this matter: (1) Is it permissible to feed the community with the food prepared for the 3rd, 10th, and 40th days (Sowm, Daham, Chahlum) of the deceased and to eat it oneself? Some say that one should not eat from the house of the deceased for three days, but it is permissible afterwards. Is this distinction correct? If it is correct, please state the reason for the difference. (2) Is the saying "Ta'am-ul-Mayyit Yumeet-ul-Qalb" (The food of the deceased kills the heart. - T) an authentic saying? If it is authentic, what does it mean?

Answer: (1) The food for the 3rd, 10th, and 40th etc. should be given to the needy (miskeen); distributing it to the community or gathering the community to eat it is meaningless. As in Majma' al-Barakat (As it is in Majma' al-Barakat. - T), an invitation (feast) at a death is impermissible. It is stated in Fath al-Qadir etc.: [Box text - Arabic]: "It is a reprehensible innovation because it was prescribed for occasions of joy, not for calamities." [Box text - Urdu]: "It is a bad innovation because the Shari'ah has established invitations for joy, not for sorrow." (T) This is the practice for up to three days. Therefore, it is forbidden. Even after that, if one holds a feast specifically with the intention of death, it is forbidden. (2) This is a matter of experience, and its meaning is that those who long for the food of the deceased, their hearts die. Life and vigor for the remembrance and obedience of Allah do not remain in them because they await the death of Muslims for a morsel in their bellies, and while eating, they are heedless of death and occupied in the pleasure of the food. And Allah Almighty knows best.

[Footnotes] [1] Fatawa Hindiyya, Chapter Twelve on Gifts and Feasts, Noorani Kutub Khana Peshawar, 5/344. [2] Fath al-Qadir, Chapter on Burial, Maktaba Nooriya Razawiyya Sukkur 2/102; Maraqi al-Falah with Tahtawi's Hashiyah, Chapter on

Carrying and Burying them, Noor Muhammad Karkhana Tijarat-e-Kutub Karachi, p. 339.

फ़तावा रज़विया, जिल्द 9

[अरबी] "पहले दिन उनके साथ भोजन करना जायज़ है क्योंकि वे कफ़न-दफ़न के काम में व्यस्त होते हैं, और उसके बाद यह मकरूह (नापसंद) है, जैसा कि तातार ख़ानिया में है।" [उर्दू अनुवाद:] साथ खाना जायज़ है क्योंकि वे जनाज़े (अंतिम संस्कार) में व्यस्त रहते हैं और उसके बाद मकरूह है। ऐसा ही तातार ख़ानिया में है। अल्लाह तआला सबसे बेहतर जानता है और उसका ज्ञान सबसे ऊंचा, पूर्ण और पक्का है। (त)

मसला 2687 से 2688: ईरान, मोहल्ला सादात, ज़िला फ़तेहपुर से, प्रेषक हकीम सैयद नेमतुल्लाह साहब, 23 मुहर्रम 1339 हिजरी। दीन के विद्वान और शरीयत के मुफ़्ती इस मसले में क्या कहते हैं कि: (1) मृतक के तीसरे (सोम), दसवें (दहम) और चालीसवें (चेहलम) दिन के लिए जो खाना पकता है, उसे बिरादरी (समाज) को खिलाना और खुद जाकर खाना जायज़ है? कुछ लोग कहते हैं कि तीन दिन के अंदर मृतक के घर का न खाएं बाद में जायज़ है। क्या यह अंतर सही है? यदि सही है, तो अंतर का कारण बताएं। (2) कहावत "ताअम-उल-मय्यित युमीत-उल-क़ल्ब" (मृतक का भोजन दिल को मुर्दा कर देता है। - त) क्या यह प्रामाणिक कथन है? यदि प्रामाणिक है, तो इसका क्या अर्थ है?

अल-जवाब: (1) सोम, दहम और चेहलम आदि का खाना मिसकीनों (गरीबों) को दिया जाना चाहिए, बिरादरी को बांटना या बिरादरी को इकट्ठा करके खिलाना बेमानी है। जैसा कि 'मजमा-उल-बरकात' में है (जैसा कि मजमा-उल-बरकात में है। - त) मौत पर दावत देना नाजायज़ है। 'फ़तह-उल-क़दीर' आदि में है: [बॉक्स टेक्स्ट - अरबी]: "यह एक बुरी बिदअत (नवाचार) है क्योंकि दावत खुशी के अवसरों के लिए निर्धारित की गई है, न कि विपत्तियों के लिए।" [बॉक्स टेक्स्ट - उर्दू]: "वह बुरी बिदअत है क्योंकि शरीयत ने दावत खुशी में रखी है, ग़मी में नहीं।" (त) तीन दिन तक इसका दस्तूर है, इसलिए वर्जित है। उसके बाद भी अगर मौत की नीयत से दावत करेगा तो वर्जित है। (2) यह अनुभव की बात है और इसका अर्थ यह है कि जो लोग मृतक के भोजन की इच्छा रखते हैं, उनके दिल मर जाते हैं। अल्लाह के ज़िक्र और इबादत के लिए उनमें जीवन और ऊर्जा नहीं रहती क्योंकि वे अपने पेट के निवाले के लिए मुसलमानों की मौत का इंतज़ार करते हैं, और खाना खाते समय मौत से बेख़बर होकर स्वाद में मग्न रहते हैं। और अल्लाह तआला सबसे बेहतर जानता है।

[पाद टिप्पणियाँ] 1. फ़तावा हिंदिया, अध्याय बारह उपहारों और भोजों पर, नूरानी कुतुब खाना पेशावर, 5/344। 2. फ़तह-उल-क़दीर, दफ़नाने पर अनुभाग, मकतबा नूरया रज़विया सुक्कुर

2/102; मराकी अल-फ़लाह हाशियह अल-तहतावी के साथ, उन्हें ले जाने और दफ़नाने पर अनुभाग, नूर मोहम्मद कारखाना तिज़ारत-ए-कुतुब कराची, पृ. 339।

पृष्ठ 948 का 669

معہم فی الیوم الاول جائز لشغلہم بالجھاز وبعدہ یکرہ کذا فی التتار خانیۃ [1]۔ واللہ تعالٰی اعلم وعلمہ اجل مجدہ اتم واحکم۔ ساتھ کھانا جائز ہے کیونکہ وہ جنازے میں مشغول رہتے ہیں اور اس کے بعد مکروہ ہے۔ ایسا ہی تاتارخانیہ میں ہے، واللہ تعالٰی اعلم وعلمہ جل مجدہ اتم واحکم۔ (ت)

مسئلہ ۲۶۸۷ تا ۲۶۸۸: از ایران محلہ سادات ضلع فتحپور مسئولہ حکیم سید نعمت اللہ صاحب ۲۳ محرم ۱۳۳۹ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین و مفتیان شرع متین اس مسئلہ میں کہ: (۱) سوم و دہم و چہلم میت کے لیے کھانا جو پکتا ہے اس کو برادری کو کھلائے اور خود جا کر کھائے تو جائز ہے؟ بعض کہتے ہیں کہ تین روز کے اندر میت کے گھر کا نہ کھائے بعد کو جائز ہے۔ یہ تفریق صحیح ہے؟ اگر صحیح ہے تو وجہ مابہ الفرق ارشاد ہو۔ (۲) مقولہ طعام المیت یمیت القلب (طعام میت دل کو مردہ کر دیتا ہے۔ ت) مستند قول ہے۔ اگر مستند ہے تو اس کے کیا معنٰی ہیں؟

الجواب (۱) سوم، دہم و چہلم وغیرہ کا کھانا مساکین کو دیا جائے، برادری کو تقسیم یا برادری کے جمع کرکے کھلانا بے معنی ہے۔ کما فی مجمع البرکات (جیسا کہ مجمع البرکات میں ہے۔ ت) موت میں دعوت ناجائز ہے۔ فتح القدیر وغیرہ میں ہے: انھا بدعۃ مستقبحۃ لانھا شرعت فی السرور لافی الشرور [2]۔ وہ بری بدعت ہے کیونکہ دعوت کو شریعت نے خوشی میں رکھا ہے، غمی میں نہیں۔ (ت) تین دن تک اس کا معمول ہے۔ لہٰذا ممنوع ہے۔ اس کے بعد بھی موت کی نیت سے اگر دعوت کرے گا ممنوع ہے۔ (۲) یہ تجربہ کی بات ہے اور اس کے معنٰی یہ ہیں کہ جو طعام میت کے متمنی رہتے ہیں ان کا دل مر جاتا ہے۔ ذکر و طاعت الٰہی کے لیے حیات و چستی اس میں نہیں رہتی کہ وہ اپنے پیٹ کے لقمہ کے لیے موت مسلمین کے منتظر رہتے ہیں اور کھانا کھاتے وقت موت سے غافل اور اس کی لذت میں شاغل۔ واللہ تعالٰی اعلم۔

[1] فتاوىٰ ہندیہ الباب الثانی عشر فی الہدایا والضیافات نورانی کتب خانہ پشاور ۵/ ۳۴۴ [2] فتح القدیر فصل فی الدفن مکتبہ نوریہ رضویہ سکھر ۲/ ۱۰۲، مراقی الفلاح مع حاشیہ الطحطاوی فصل فی حملہا ودفنہا نور محمد کارخانہ تجارت کتب کراچی ص ۳۳۹

Fatawa Razawiya Volume 9

Issue 269: From Katia Nagar, Pargana Puranpur, District Pilibhit, residence of Allan Khan Numberdar, sent by Akbar Ali Shah, 16 Jumada al-Ula 1311 AH.

Question: What do the scholars of religion and muftis of the firm Sharia say on this matter? If someone dies and their family members cook food for the 'Chihlam' (40th day) and invite relatives or others, should that invitation be accepted or not? And how is the food? Please explain and you will be rewarded.

Answer: O Allah, Guide us to the truth and correctness. Observing the custom, it is evident that the primary intention of people in cooking food for Chihlam etc. is to convey reward to the deceased. They perform this act for this purpose, which is why it is called 'Fatiha food' or 'Chihlam Fatiha'. Shah Abdul Aziz Sahib states in Tafsir Fath al-Aziz:

[Table Content] (Persian): It is narrated that the deceased in this state is like a drowning person waiting for rescue. Charities, supplications, and Fatiha are very beneficial for them at this time. This is why groups of human beings strive fully to provide this kind of assistance for up to a year, and especially up to forty days after death. 1 (Urdu Translation): It is narrated that the deceased in this state is like someone drowning who waits for rescue, and at this time, charities, prayers, and Fatiha are very useful for them. This is why people strive fully to provide help in this way for up to a year, and especially up to forty days after death. (T)

And there is no doubt that food cooked with this intention is commendable. Upon investigation, reward is not only earned by giving charity to the poor, but even feeding the wealthy brings reward. The Radiant Master of the World (peace and blessings of Allah be upon him) says: "In every living being (moist liver) there is a reward." 2 Meaning, feeding a living person or giving them water to drink will bring reward. (Reported by Bukhari and Muslim from Abu Huraira, Ahmad from Abdullah bin Amr, and Ibn Majah from Saraqa bin Malik, may Allah be pleased with them). It is in the Hadith that the Holy Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) said:

[Table Content] (Arabic): Whatever the son of Adam eats, there is a reward, and what he [feeds others]... (Urdu): Whatever a person eats, there is a reward in it and what...

1 Tafsir Azizi, under the verse 'Wal-Qamari Idhat-Tasaq' etc., Muslim Book Depot, Lal Kuan Delhi, p. 202. 2 Sunan Ibn Majah, Chapter on the Virtue of Giving Water in Charity, H.M. Saeed Company Karachi, p. 270.

फतावा रज़विया जिल्द 9

मसला 269: कटिया नगर, परगना पूरनपुर, जिला पीलीभीत से, अलन खां नंबरदार का निवास, प्रेषक अकबर अली शाह, 16 जमादी-उल-उला 1311 हिजरी।

प्रश्न: धर्म के विद्वान और सुदृढ़ शरिया के मुफ़्ती इस मसले में क्या फ़रमाते हैं कि यदि किसी व्यक्ति की मृत्यु हो जाए और उसके घरवाले चेहलुम का खाना पकाएं और रिश्तेदारों या अन्य लोगों को आमंत्रित करें, तो क्या वह निमंत्रण स्वीकार किया जाना चाहिए या नहीं? और वह खाना कैसा है? कृपया स्पष्ट करें, आपको पुण्य मिलेगा।

उत्तर: ऐ अल्लाह, सत्य और शुद्धि की ओर मार्गदर्शन कर। लोक-रीति को देखने से स्पष्ट है कि चेहलुम आदि के लिए खाना पकाने में लोगों का मुख्य उद्देश्य मृत व्यक्ति को सवाब (पुण्य) पहुँचाना होता है। वे इसी उद्देश्य से यह कार्य करते हैं, इसीलिए इसे फ़ातिहा का खाना, चेहलुम की फ़ातिहा आदि कहा जाता है। शाह अब्दुल अज़ीज़ साहब तफ़सीर फ़तह-अल-अज़ीज़ में फ़रमाते हैं:

[तालिका सामग्री] (फारसी): यह वर्णित है कि मृत व्यक्ति उस अवस्था में किसी डूबते हुए व्यक्ति की तरह सहायता का इंतज़ार करता है। दान, दुआएं और फ़ातिहा इस समय उसके लिए बहुत काम आती हैं। यही कारण है कि मानव समूह मृत्यु के बाद एक वर्ष तक, और विशेष रूप से चालीस दिनों तक, इस प्रकार की सहायता पहुँचाने का भरपूर प्रयास करते हैं। 1 (उर्दू अनुवाद): यह वर्णित है कि मृत व्यक्ति उस अवस्था में किसी डूबते हुए व्यक्ति की तरह सहायता का इंतज़ार करता है, और इस समय में सदके दुआएं और फ़ातिहा उसे बहुत काम आती हैं। यही वजह है कि लोग मरने से एक साल तक, और विशेष रूप से चालीस दिन तक, इस तरह मदद पहुँचाने की भरपूर कोशिश करते हैं। (त)

और इसमें कोई संदेह नहीं है कि इस नियत से जो खाना पकाया जाए वह सराहनीय (मुस्तहसन) है। जाँच करने पर, सवाब केवल निर्धनों को दान देने से ही नहीं मिलता, बल्कि धनवानों को खिलाने पर भी सवाब मिलता है। जगत के प्रकाशमान स्वामी (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) फ़रमाते हैं: "हर जीवित प्राणी (नम कलेजे वाले) की सेवा में पुण्य है।" 2 अर्थात जीवित व्यक्ति को खाना खिलाने या पानी पिलाने पर पुण्य मिलेगा। (इसे बुखारी और मुस्लिम ने हज़रत अबू हुरैरा से, इमाम अहमद ने हज़रत अब्दुल्ला बिन अम्र से, और इब्न माजा ने हज़रत सराक़ा बिन मालिक से रिवायत किया है,

अल्लाह उन सब से प्रसन्न हो)। हदीस में है कि हुज़ूर अकदस (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने फ़रमाया:

[तालिका सामग्री] (अरबी): आदम का बेटा जो कुछ भी खाता है उसमें पुण्य है और जो... (उर्दू): जो कुछ आदमी खाए उसमें सवाब है और जो...

---

1 तफ़्सीर अज़ीज़ी, आयत 'वल-क़मरि इधत-तसक़' आदि के नीचे, मुस्लिम बुक डिपो, लाल कुआं दिल्ली, पृ. 202। 2 सुनन इब्न माजा, पानी के सदके की फ़ज़ीलत का अध्याय, एच.एम. सईद कंपनी कराची, पृ. 270।

पृष्ठ 670/948

فتاوٰی رضویہ جلد نہم

مسئلہ ۲۶۹: از کٹی ناگر۔ پرگنہ پورن پور، ضلع پیلی بھیت، مکان علن خاں نمبردار، مرسلہ اکبر علی شاہ ۱۶ جمادی الاولٰی ۱۳۱۱ھ

کیا فرماتے ہیں علمائے دین و مفتیان شرع متین اس مسئلہ میں کہ اگر کوئی شخص مرے اور اس کے گھر والے چہلم کا کھانا پکائیں اور جو برادر یا غیر ہوں ان سے کہیں کہ تمھاری دعوت ہے تو وہ دعوت قبول کی جائے یا نہیں؟ اور کھانا کیسا ہے؟ بینوا توجروا

الجواب: اللھم ھدایۃ الحق والصواب۔ عرف پر نظر شاہد کہ چہلم وغیرہ کے کھانے پکانے سے لوگوں کا اصل مقصود میت کو ثواب پہنچانا ہوتا ہے، اسی غرض سے یہ فعل کرتے ہیں، ولہذا اسے فاتحہ کا کھانا چہلم کی فاتحہ وغیرہ کہتے ہیں، شاہ عبدالعزیز صاحب تفسیر فتح العزیز میں فرماتے ہیں:

[جدول] وارد ست کہ مردہ دریں حالت مانند غریقے است کہ انتظار فریادرسی مے برد و صدقات وادعیہ وفاتحہ دریں وقت بسیار بکار اومی آید ازیں ست کہ طوائف بنی آدم تایک سال وعلی الخصوص تایک چلہ بعد موت دریں نوع امداد کوشش تمام می نمایند۔ 1 | وارد ہے کہ مردہ اس حالت میں کسی ڈوبنے والے کی طرح فریاد رسی کا منتظر ہوتا ہے اور اس وقت میں صدقے، دعائیں اور فاتحہ اسے بہت کام آتی ہیں، یہی وجہ ہے کہ لوگ مرنے سے ایک سال تک خصوصاً چالیس دن تک اس طرح مدد پہنچانے کی بھرپور کوشش کرتے ہیں (ت)

اور شک نہیں کہ اس نیت سے جو کھانا پکایا جائے مستحسن ہے اور عند التحقیق صرف فقراء ہی پر تصدق میں ثواب نہیں بلکہ اغنیاء پر بھی مورث ثواب ہے، حضور پر نور سید عالم صلی اللہ

تعالیٰ علیہ وسلم فرماتے ہیں: في كل ذات كبد رطبة اجر 2 ہر گرم جگر میں ثواب ہے، یعنی زندہ کو کھانا کھلائے گا، پانی پلائے گا ثواب پائے گا۔ اخرجہ البخاری ومسلم عن ابی ہریرۃ واحمد عن عبداللہ بن عمر و وابن ماجۃ عن سراقۃ بن مالك رضی اللہ عنہم (اسے بخاری و مسلم نے حضرت ابو ہریرہ سے، امام احمد نے حضرت عبد اللہ بن عمرو سے، اور ابن ماجہ نے حضرت سراقہ بن مالک سے روایت کیا رضی اللہ تعالیٰ عنہم۔ت) حدیث میں ہے حضور اقدس صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم نے فرمایا:

[جدول] فیما یاکل ابن آدم اجر وفیما یاکل | جو کچھ آدمی کھائے اس میں ثواب ہے اور جو

---

1 تفسیر عزیزی زیر آیۃ والقمر اذا تسق الخ مسلم بک ڈپو۔ لال کنواں دہلی ص ۲۰۲ 2 سنن ابن ماجہ باب فضل صدقۃ الماء ایچ ایم سعید کمپنی کراچی ص ۲۷۰

Fatawa Rizvia Volume 9

[Box 1] Arabic: السبع او الطیر اجر - رواہ الحاکم عن جابر بن عبداللہ رضی اللہ تعالٰی عنہما وصحح سندہ۔ Urdu Translation: There is a reward in what a predator eats, and there is a reward in what reaches a bird. (Al-Hakim narrated it from Hazrat Jabir bin Abdullah (may Allah be pleased with both of them) and called its chain authentic. - T)

Rather, the Holy Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) says:

[Box 2] Arabic: مااطعمت زوجك فهو لك صدقة ومااطعمت ولدك فهو لك صدقة ومااطعمت خادمك فهو لك صدقة وما اطعمت نفسك فهو لك صدقة - اخرجہ الامام احمد والطبرانی فی الکبیر بسند صحیح عن المقدام بن معدی کرب رضی اللہ تعالٰی عنہ۔ Urdu Translation: Whatever you feed your wife is charity for you, and whatever you feed your children is charity for you, and whatever you eat yourself is charity for you. (Imam Ahmad narrated it in Musnad and At-Tabarani in Al-Kabir with a sahih chain from Hazrat Miqdam bin Ma'di Karib (may Allah be pleased with him). - T)

In Radd al-Muhtar it is stated:

[Box 3] Arabic: صرح فی الذخیرۃ فیہا ولو علی غنی لان المقصود فیها الفقیر - Urdu Translation: It is clarified in 'Al-Dhakhira' that giving charity to a wealthy person is a form of closeness (to God), whose status is less than the closeness of giving charity to a poor person. (T)

In Durr al-Mukhtar it is stated:

[Box 4] Arabic: الصدقة لا رجوع فیها ولو علی غنی لان المقصود فیها الثواب - Urdu Translation: Charity cannot be taken back even if it is given to a wealthy person because its intention is to seek a reward. (T)

Similarly, it is in Al-Hidayah etc. In Majma' Bihar al-Anwar, from the intermediary of Sharh Sunan Abi Dawud, it is stated:

[Box 5] Arabic: الصدقة ماتصدقت بہ علی الفقراء ای غالب Urdu Translation: Charity is what you give in charity to the poor, meaning of charity...

---

1. Al-Mustadrak 'ala al-Sahihayn, Book of Food, Dar al-Fikr Beirut, 4/133
2. Al-Mu'jam al-Kabir, narrated from Miqdam bin Ma'di Karib, Hadith 643, Maktaba Faysaliyah Beirut, 20/268; Musnad Ahmad bin Hanbal, Hadith of Al-Miqdam bin Ma'di Karib, Dar al-Fikr Beirut, 1/131
3. Radd al-Muhtar, Book of Waqf, Dar Ihya al-Turath al-Arabi Beirut, 3/357

4. Durr al-Mukhtar, Section on Miscellaneous Issues from the Book of Hibah, Matba' Mujtabai Delhi, 2/166

फ़तावा रज़विया जिल्द 9

[बॉक्स 1] अरबी: السبع او الطير اجر - رواہ الحاکم عن جابر بن عبداللہ رضی اللہ تعالٰی عنهما وصحح سندہ۔ उर्दू अनुवाद: जो जंगली जानवर खा जाए उसमें सवाब है, जो परिंदे तक पहुंचे उसमें सवाब है। (हाकिम ने इसे हज़रत जाबिर बिन अब्दुल्लाह रज़ियल्लाहु तआला अन्हुमा से रिवायत किया और इसकी सनद को सही कहा। - त)

बल्कि हुज़ूर अकदस सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम फरमाते हैं:

[बॉक्स 2] अरबी: مااطعمت زوجك فهو لك صدقة ومااطعمت ولدك فهو لك صدقة ومااطعمت خادمك فهو لك صدقة وما اطعمت نفسك فهو لك صدقة - اخرجہ الامام احمد والطبرانی فی الکبیر بسند صحیح عن المقدام بن معدی کرب رضی اللہ تعالٰی عنہ۔ उर्दू अनुवाद: जो कुछ तू अपनी औरत को खिलाए वह तेरे लिए सदका है और जो कुछ तू अपने बच्चों को खिलाए वह तेरे लिए सदका है और जो कुछ तू खुद खाए वह तेरे लिए सदका है। (इसे इमाम अहमद ने मुसनद में और तबरानी ने कबीर में सनद-ए-सही के साथ हज़रत मिकदाम बिन मादी करिब रज़ियल्लाहु तआला अन्हु से रिवायत किया। - त)

रद अल-मुह्तार में है:

[बॉक्स 3] अरबी: صرح فی الذخیرۃ فیہا ولو علی غنی لان المقصود فیها الفقیر - उर्दू अनुवाद: 'अल-ज़खीरा' में स्पष्टता है कि धनी पर सदका करना एक तरह की कुरबत (ईश्वर से निकटता) है जिसका दर्जा फकीर पर सदका की कुरबत से कम है। (त)

दुर्र अल-मुख्तार में है:

[बॉक्स 4] अरबी: الصدقة لا رجوع فیها ولو علی غنی لان المقصود فیها الثواب - उर्दू अनुवाद: सदका से रुजू (वापसी) नहीं हो सकता अगरचे गनी (धनी) पर हो इसलिए कि इसका मक्सूद सवाब होता है। (त)

इसी तरह हिदाया वगैरह में है, मजमा बिहार अल-अनवार में तवस्सुत शरह सुनन अबी दाऊद से है:

[बॉक्स 5] अरबी: الصدقة ماتصدقت بہ علی الفقراء ای غالب उर्दू अनुवाद: सदका वह है जो तुम फ़ुक़रा पर तसद्दुक़ करो, यानी सदका की...

1. मुस्तदरक अलल सहीहैन, किताबुल अतइमह, दारुल फिक्र बेरुत, 4/133
2. अल मुअजमुल कबीर मरवी अज़ मिकदाम बिन मादी करिब हदीस 643 मकतबा फैसलिया बेरुत 20/268, मुसनद अहमद बिन हंबल हदीस अल-मिकदाम बिन मादी करिब दारुल फिक्र बेरुत 1/131
3. रद अल-मुह्तार, किताबुल वक्फ, दार इह्या अल-तुराथ अल-अरबी बेरुत, 3/357
4. दुर्र अल-मुख्तार, फसल फी मसाइल मुतफर्रक़ा मिन किताबुल हेबा, मतबा मुज्तबाई दिल्ली, 2/166

فتاوٰی رضویہ جلد نہم

[باکس 1] السبع او الطیر اجر - رواہ الحاکم عن جابر بن عبداللہ رضی اللہ تعالٰی عنہما وصحح سندہ۔ درندہ کھا جائے اس میں ثواب ہے جو پرند کو پہنچے اس میں ثواب ہے (حاکم نے اسے حضرت جابر بن عبداللہ رضی اللہ تعالٰی عنہما سے روایت کیا اور اس کی سند کو صحیح کہا۔ ت)

بلکہ حضور اقدس صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم فرماتے ہیں :

[باکس 2] مااطعمت زوجك فهو لك صدقة ومااطعمت ولدك فهو لك صدقة ومااطعمت خادمك فهو لك صدقة وما اطعمت نفسك فهو لك صدقة - اخرجہ الامام احمد والطبرانی فی الکبیر بسند صحیح عن المقدام بن معدی کرب رضی اللہ تعالٰی عنہ۔ جو کچھ تو اپنی عورت کو کھلائے وہ تیرے لیے صدقہ ہے اور جو کچھ تو اپنے بچوں کو کھلائے وہ تیرے لیے صدقہ ہے اور جو کچھ تو خود کھائے وہ تیرے لیے صدقہ ہے (اسے امام احمد نے مسند میں اور طبرانی نے کبیر میں بسندِ صحیح حضرت مقدام بن معدی کرب رضی اللہ تعالٰی عنہ سے روایت کیا۔ ت)

ردالمحتار میں ہے:

[باکس 3] صرح فی الذخیرۃ فیہا ولو علی غنی لان المقصود فیہا الفقیر - ذخیرہ میں صراحت ہے کہ غنی پر صدقہ کرنا ایک طرح کی قربت ہے جس کا درجہ فقیر پر تصدق کی قربت سے کم ہے۔ (ت)

درمختار میں ہے:

[باکس 4] الصدقۃ لا رجوع فیہا ولو علی غنی لان المقصود فیہا الثواب - صدقہ سے رجوع نہیں ہو سکتا اگرچہ غنی پر ہو اس لیے کہ اس کا مقصود ثواب ہوتا ہے۔ (ت)

اسی طرح ہدایہ وغیرہ میں ہے مجمع بحارالانوار میں توسط شرح سنن ابی داؤد سے ہے:

[باکس 5] الصدقة ماتصدقت بہ علی الفقراء ای غالب صدقہ وہ ہے جو تم فقراء پر تصدق کرو ، یعنی صدقہ کی

---

1 مستدرک علی الصحیحین کتاب الاطعمہ دارالفکر بیروت ۴ / ۱۳۳ 2 المعجم الکبیر مروی از مقدام بن معدی کرب حدیث ۶۴۳ مکتبہ فیصلیہ بیروت ۲۰ / ۲۶۸، مسند احمد بن حنبل حدیث المقدام بن معدیکرب دارالفکر بیروت ۱ / ۱۳۱ 3 ردالمحتار کتاب الوقف داراحیاء التراث العربی بیروت ۳ / ۳۵۷ 4 درمختار فصل فی مسائل متفرقہ من کتاب الھبہ مطبع مجتبائی دہلی ۲ / ۱۶۶

Fatawa Razawiya Volume 9

[Top Box Left]: ...likewise its types, for it is permissible to give it to the wealthy according to us, and there is a reward for it without any disagreement. 1- [Top Box Right]: Most types of charity are for the poor because, according to us, charity to the wealthy is also permissible without disagreement; he is deserving of reward for it. (T)

[Main Text]: And the basis of action depends on the intention: 'Actions are but by intentions'. So, if food is cooked for Fatiha, expressing it with the word 'invitation' (Da'wat) at the time of calling will not invalidate that intention. Just as if someone gave some money to their needy brothers or nephews for Eid with the intention of Zakat in their heart but used the word 'Eidi' on their tongue, the Zakat will be fulfilled. Calling it Eidi will not invalidate that intention, as scholars have clarified in general books (T). Along with this, helping one's close relatives is also a form of strengthening family ties and a cause for reward, even if they are wealthy. And this is well-known in Sharia such that it is not hidden except from the ignorant (T). And whatever act a person earns a reward for, they can convey the reward of that act to the deceased. It is not specific to just charity, as has become clear in the books of our companions, may Allah Almighty have mercy on them (T). Imam Aini states in Al-Binaya:

[Bottom Box Left]: The principle is that a person has the right to dedicate the reward of their action to another, whether it be prayer, fasting, charity, or otherwise (as in Al-Hidayah), such as Hajj, recitation of the Quran, Dhikr, visiting the graves of Prophets, martyrs, saints, and the righteous, shrouding the dead, and all types of righteousness and worship like Zakat, charity, Ushur (tithes), expiations, and the like - financial worships, or physical ones like fasting, prayer, I'tikaf, Quran recitation, Dhikr, supplication, or those composed of both like Hajj and Jihad. In Al-Bada'i, Jihad is counted among physical acts of worship, and in Al-Mabsut, wealth is stated as a condition for the obligation of Hajj.

[Bottom Box Right]: The principle is that a person can dedicate the reward of any of their deeds to another, whether it be prayer, fasting, charity, or otherwise, as mentioned in Hidayah. Such as Hajj, recitation of the Quran, Dhikr, visiting the shrines of Prophets, martyrs, saints, and the righteous, shrouding the dead, and all kinds of goodness and worship like Zakat, charity, Ushur, expiations, and similar financial acts of worship, or physical ones like fasting, prayer, I'tikaf, Quran recitation, Dhikr, supplication, or those composed of both like Hajj and Jihad. And in Al-Bada'i, Jihad is counted among physical acts of worship, and in Al-Mabsut, wealth is stated

as a condition for the obligation of Hajj, so Hajj is not composed of both financial and physical, but rather...

1 Majma' Bihar al-Anwar under the word 'Sadaqa', Naval Kishore Lucknow 2/238.

फ़तावा रज़विया जिल्द 9

[ऊपरी बॉक्स बायाँ]: ...इसके प्रकार भी इसी तरह हैं, क्योंकि हमारे निकट धनी को देना भी जायज़ है और इसमें बिना किसी मतभेद के सवाब (पुण्य) मिलता है। 1- [ऊपरी बॉक्स दायाँ]: ज़्यादातर प्रकार फ़कीरों के लिए ही होते हैं क्योंकि हमारे यहाँ धनी पर भी सदक़ा जायज़ है, बिना किसी मतभेद के वह इस पर सवाब का हक़दार है। (त)

[मुख्य पाठ]: और कार्यों का दारोमदार नीयत पर है: 'कर्म नीयत के अनुसार होते हैं'। तो जो खाना फ़ातिहा के लिए पकाया गया है, बुलाते समय उसे 'दावत' शब्द से व्यक्त करना उस नीयत को अमान्य (बातिल) नहीं करेगा। जैसे किसी ने अपने ज़रूरतमंद भाई-भतीजों को ईद के कुछ रुपये दिल में ज़कात की नीयत से और ज़बान से 'ईदी' का नाम लेकर दिए, तो ज़कात अदा हो जाएगी। ईदी कहने से वह नीयत बातिल नहीं होगी, जैसा कि विद्वानों ने आम किताबों में स्पष्ट किया है (त)। इसके साथ ही, अपने करीबी रिश्तेदारों की मदद करना भी सिला-ए-रहम (रिश्ते निभाना) है और सवाब का कारण है, चाहे वे धनी ही क्यों न हों। और शरीयत में यह इतना प्रसिद्ध है कि केवल कोई अज्ञानी ही इससे अनजान होगा (त)। और व्यक्ति जिस कार्य पर स्वयं सवाब पाता है, वह कार्य कोई भी हो, उसका सवाब मृत व्यक्ति को पहुँचा सकता है। केवल विशेष ख़ैरात (सदक़ा) की ही कोई विशेषता नहीं है, जैसा कि हमारे साथियों की किताबों में स्पष्ट हो चुका है, अल्लाह उन पर दया करे (त)। इमाम ऐनी 'बिनाया' में फरमाते हैं:

[निचला बॉक्स बायाँ]: मूल नियम यह है कि इंसान अपने किसी भी अमल (कार्य) का सवाब दूसरे के लिए कर सकता है, चाहे वह नमाज़ हो, रोज़ा, सदक़ा या इसके अलावा कुछ और (जैसा कि हिदाया में है), जैसे हज, कुरआन की तिलावत, अज़कार, नबियों, शहीदों, औलिया और नेक लोगों के मज़ारों की ज़ियारत, मुर्दे को कफ़न देना, और नेकी व इबादत की तमाम किस्में जैसे ज़कात, सदक़ा, उश्र (दशांश), कफ़्फ़ारा और इनके जैसी माली (वित्तीय) इबादतें, या बदनी (शारीरिक) जैसे रोज़ा, नमाज़, एतेकाफ़, कुरआन की तिलावत, ज़िक्र, दुआ या दोनों का मिश्रण जैसे हज और जिहाद। और 'बदाए' में जिहाद को बदनी इबादतों में गिना गया है और 'मबसूत' में माल (धन) को हज की अनिवार्यता की शर्त बताया गया है।

[निचला बॉक्स दायाँ]: मूल नियम यह है कि इंसान अपने किसी अमल का सवाब दूसरे के लिए कर सकता है, चाहे वह नमाज़ हो, रोज़ा, सदक़ा या इसके अलावा, जैसा कि हिदाया में है। जैसे हज,

कुरआन की तिलावत, अज़कार, नबियों, शहीदों, औलिया और नेक लोगों के मज़ारों की ज़ियारत, मुर्दे को कफ़न देना, और नेकी व इबादत की तमाम किस्में जैसे ज़कात, सदक़ा, उश्र, कफ़्फ़ारा और इनके जैसी माली इबादतें, या बदनी जैसे रोज़ा, नमाज़, एतेकाफ़, कुरआन की तिलावत, ज़िक्र, दुआ या दोनों से मिलकर बना जैसे हज और जिहाद। और 'बदाए' में जिहाद को बदनी इबादतों में गिना गया है और 'मबसूत' में माल को हज की अनिवार्यता की शर्त बताया गया है, तो हज माली और बदनी का मिश्रण नहीं बल्कि...

1 मजमा बहार अल-अनवार, 'सदक़ा' शब्द के अंतर्गत, नवल किशोर लखनऊ 2/238.

पृष्ठ 672/948

فتاوٰی رضویہ جلد نہم

[اوپری خانہ بایاں]: انواعها کذلك فانها علی الغنی جائزة عندنا یثاب به بلاخلاف ۱- [اوپری خانہ دایاں]: اکثر قسمیں فقراء ہی پر ہوتی ہیں کیونکہ ہمارے نزدیک غنی پر بھی صدقہ جائز ہے بلاخلاف اس پر وہ مستحق ثواب ہے۔ (ت)

[عبارت]: اور مدار کار نیت پر ہے انما الاعمال بالنیات۔ تو جو کھانا فاتحہ کے لیے پکایا گیا ہے بلاتے وقت اسے بلفظ دعوت تعبیر کرنا اس نیت کو باطل نہ کرے گا، جیسے کسی نے اپنے محتاج بھائی بھتیجوں کو عید کے کچھ روپیہ دل میں زکوۃ کی نیت اور زبان سے عیدی کا نام لے کر کے دے دئے تو زکوۃ ادا ہوجائے گی، عیدی کہنے سے وہ نیت باطل نہ ہوگی کما نصوا علیه فی عامة الکتب (جیسا کہ عامہ کتب میں علماء نے اس کی صراحت فرمائی ہے۔ ت) معہذا اپنے قریبوں عزیزوں کے مواسات بھی صلہ رحم و موجب ثواب ہے، اگرچہ وہ اغنیاء ہوں وقد عرف ذلك فی الشرع بحیث لا یخفی الاعلی جاهل (جیسا کہ شریعت میں یہ ایسا معروف ہے کہ کسی جاہل ہی سے مخفی ہوگا۔ ت) اور آدمی جس امر پر خود ثواب پائے وہ فعل کوئی فعل ہو اس کا ثواب میت کو پہنچا سکتا ہے۔ کچھ خاص تصدق ہی کی تخصیص نہیں، کما تبین ذلك فی کتب اصحابنا رحمهم الله تعالی (جیسا کہ ہمارے علماء رحمہم اللہ تعالیٰ کی کتابوں میں یہ روشن ہو چکا ہے۔ ت) امام عینی بنایہ میں فرماتے ہیں:

[نچلا خانہ بایاں]: الاصل ان الانسان له ان یجعل ثواب عمله لغیره صلوة او صوما او صدقة او غیرها ش کالحج وقراءة القرآن والاذکار وزیارة قبور الانبیاء والشهداء والاولیاء والصالحین وتکفین الموتی وجمیع انواع البر والعبادة کالزکوة والصدقة والعشور والکفارات ونحوها، اوبدنیة کالصوم والصلوة

والاعتكاف وقراءة القرآن و الذكر والدعاء او مركبة منها كالحج والجهاد وفي البدائع جعل الجهاد من البدنيات وفي المبسوط جعل المال فی الحج

[نچلا خانہ دایاں]: اصل یہ ہے کہ انسان اپنے کسی عمل کا ثواب دوسرے کے لیے کرسکتا ہے، نماز ہو یا روزہ یا صدقہ یا اس کے علاوہ، ہدایہ۔ جیسے حج تلاوت قرآن، اذکار، انبیاء، شہداء، اولیاء اور صالحین کے مزارات کی زیارت، مُردے کو کفن دینا، اور نیکی و عبادت کی تمام قسمیں جیسے زکوۃ، صدقہ، عشر، کفارہ اور ان کے مثل مالی عبادتیں، یا بدنی جیسے روزہ، نماز اعتکاف، تلاوت قرآن، ذکر، دعا یا دونوں سے مرکب جیسے حج اور جہاد۔ اور بدائع میں جہاد کو بدنی عبادتوں سے شمار کیا ہے اور مبسوط میں مال کو حج کے وجوب کی شرط بتایا ہے تو حج مالی وبدنی سے مرکب نہیں بلکہ

١ مجمع بحار الانوار تحت لفظ صدق نو لكشور لكهنؤ ٢/ ٢٣٨

Fatawa Rizvia, Volume 9

[Arabic Box - Left] “Shart al-Wujub” (The condition of obligation), so Hajj was not a composite act. It was said: This is closer to correctness. Therefore, wealth is not a condition for a Meccan if he is able to walk to Arafat. So if a person dedicates the reward of what he has done of that to another, it reaches him and he benefits from it, whether the recipient is alive or dead. [1] End. We have quoted the long passage of the commentary because of the multiple benefits it contains.

[Urdu Translation of the above - Right] It was a purely physical act of worship. It was said: This is closer to correctness. For this reason, wealth is not a condition for the Meccan as long as he is capable of going to Arafat on foot. So when a person gives the reward of one of his performed acts of worship from the mentioned ones to someone else, it will reach them and they will benefit from it. Whether the one to whom it is gifted is alive or has passed away. [Al-Binaya]. We have quoted this long passage of the commentary because it contains numerous benefits. (T)

[Main Urdu Text] In this way too, there is no flaw in this commendable intention, although it would have been better to give charity only to the poor. Since the goal is Isal-e-Sawab (transferring of reward), then that action is more appropriate in which the reward is more and abundant. Nevertheless, the original goal is not lost, as long as the intention is to convey reward. Yes, for one whose goal is not this, but rather cooks with the intention of a feast and hospitality, like they cook food for weddings, then surely it has no relation to reward. Such an invitation is neither liked in Sharia nor should it be accepted, because the occasion for such feasts is weddings, not grief. Therefore, scholars say that this is an evil innovation (Bid'at-e-Sayyiah), just as women gather at the house of the deceased from the day of death and the family of the deceased has to arrange for their food, grains, betel leaf, and betel nut. That food is not for Fateha or Isal-e-Sawab, but it is the same feast and hospitality which is not permitted during grief, as we have explained in our Fatawa (As we have stated in our Fatawa. T). Similarly, food on the 40th day (Chehlum), death anniversary, or six-month mark is cooked without the intention of Isal-e-Sawab, merely as a formal custom, and distributed among the community like wedding gifts. That too is baseless, which should be avoided. Regarding such food, Sheikh Muhaqqiq Maulana Abdul Haq Sahib Muhaddith Dehlawi states in Majma' al-Barakat:

[Persian Box - Left] That which is cooked in this land after a year, six months, or forty days, and distributed among brothers, is nothing to be considered credible. It is better that they do not eat it. [2] End. Thus it was narrated from him.

[Urdu Translation of the above - Right] That which they cook in this land at one year or six months and distribute in the community is not a credible thing; it is better that they do not eat it. End. _____ Similarly from him, Sheikh-ul-Islam.

[Footnotes] 1. Al-Binaya Sharh al-Hidaya, Chapter of Hajj on behalf of others, Al-Maktaba al-Imdadiyya, Makkah al-Mukarramah, 3/161 2. Majma' al-Barakat

फ़तावा रिज़विया, जिल्द 9

[अरबी बॉक्स - बायां] "शर्त अल-वुजुब" (अनिवार्यता की शर्त), इसलिए हज एक मिश्रित कार्य नहीं था। कहा गया: यह सही होने के करीब है। इसलिए, एक मक्का निवासी के लिए धन एक शर्त नहीं है यदि वह अराफ़ात तक पैदल चलने में सक्षम है। तो यदि कोई व्यक्ति अपने द्वारा किए गए उस कार्य का पुण्य किसी दूसरे को समर्पित करता है, तो वह उस तक पहुँचता है और उसे उसका लाभ मिलता है, चाहे वह प्राप्तकर्ता जीवित हो या मृत। [1] अंत। हमने कमेंट्री के लंबे अंश को उद्धृत किया है क्योंकि इसमें कई लाभ हैं।

[उपरोक्त का उर्दू अनुवाद - दायां] यह विशुद्ध रूप से शारीरिक इबादत (उपासना) थी। कहा गया: यह सच्चाई के अधिक करीब है। इसी कारण से, मक्का निवासी के लिए धन की शर्त नहीं है जब तक कि वह अराफ़ात तक पैदल जाने में सक्षम है। अतः जब कोई व्यक्ति उल्लेखित इबादतों में से अपनी अदा की हुई किसी इबादत का सवाब (पुण्य) किसी दूसरे के लिए कर देता है, तो वह उसे पहुँचेगा और उससे उसे लाभ मिलेगा। जिसे भेंट किया गया है वह जीवित हो या उसकी मृत्यु हो चुकी हो। [अल-बिनाया]। हमने व्याख्या का यह लंबा अंश इसलिए उद्धृत किया है क्योंकि इसमें कई लाभ हैं। (त)

[मुख्य उर्दू पाठ] इस तरह भी, इस नेक नियत में कोई खराबी नहीं है, हालांकि यह बेहतर होता कि केवल गरीबों को दान दिया जाता। चूंकि उद्देश्य ईसाल-ए-सवाब (पुण्य पहुँचाना) है, तो वही कार्य अधिक उचित है जिसमें सवाब अधिक और प्रचुर हो। फिर भी, मूल उद्देश्य लुप्त नहीं हुआ है, जब तक कि नियत सवाब पहुँचाने की है। हाँ, जिसके लिए यह उद्देश्य ही न हो, बल्कि दावत और मेहमाननवाजी की नियत से पकाए, जैसे शादियों का खाना पकाते हैं, तो निश्चित रूप से इसका सवाब से कोई संबंध नहीं है। ऐसी दावत न तो शरीयत में पसंद की जाती है और न ही इसे स्वीकार किया जाना चाहिए, क्योंकि ऐसी दावतों का अवसर शादियाँ हैं, न कि शोक। इसलिए, विद्वान कहते हैं कि यह एक बुरी बिदअत (नवाचार) है, जिस तरह मृतक के यहाँ मौत के दिन से औरतें जमा होती हैं और मृतक के परिवार को उनके खाने-पीने, पान-सुपारी का इंतजाम करना पड़ता है। वह खाना फातिहा और ईसाल-ए-सवाब के लिए नहीं होता, बल्कि वही दावत और मेहमाननवाजी है जिसकी शोक के दौरान अनुमति नहीं है, जैसा कि हमने अपने फतावा में स्पष्ट किया है (जैसा कि हमने इसे अपने फतावा में बयान किया है। त)। इसी तरह, चालीसवें (चेहलम), बरसी या छमाही पर खाना बिना ईसाल-ए-सवाब की नियत के केवल एक औपचारिक रिवाज के रूप में पकाते हैं और बिरादरी में

शादियों के उपहारों की तरह बांटते हैं। वह भी निराधार है, जिससे बचना चाहिए। ऐसे ही खाने के बारे में शेख मुहक्किक़ मौलाना अब्दुल हक साहब मुहद्दिस देहलवी मजमा अल-बरकात में फरमाते हैं:

[फारसी बॉक्स - बायां] इस देश में एक साल, छह महीने या चालीस दिनों के बाद जो कुछ पकाया जाता है और भाइयों के बीच बांटा जाता है, वह कुछ भी विश्वसनीय नहीं है। बेहतर है कि वे इसे न खाएं। [2] अंत। उनके हवाले से ऐसा ही वर्णन किया गया है।

[उपरोक्त का उर्दू अनुवाद - दायां] वह जो इस देश में एक साल या छह महीने पर पकाते हैं और बिरादरी में बांटते हैं, वह कोई विश्वसनीय चीज नहीं है; बेहतर है कि वे न खाएं। अंत। _____ इसी तरह उनसे, शेख-उल-इस्लाम।

[पाद टिप्पणियाँ] 1. अल-बिनाया शरह अल-हिदाया, हज का अध्याय दूसरों की ओर से, अल-मकतबाह अल-इमदादिय्या, मक्का अल-मुकर्रमा, 3/161 2. मजमा अल-बरकात

فتاوی رضویہ، جلد نہم

[عربی باکس - بائیں] شرط الوجوب فلم یکن الحج مرکباً قیل ھو اقرب الی الصواب ولھذا لایشترط المال في حق المکي اذا قدر علی المشي الی عرفات فاذا جعل شخص ثواب ماعملہ من ذلك الی اخر یصل الیہ وینتفع بہ حیاً کان المھدی الیہ او میتاً 1 اہ ونقلنا عبارۃ الشرح بطولھا لمافیھا من فوائد۔

[اوپر والے کا اردو ترجمہ - دائیں] صرف بدنی عبادت ہوا۔ کہا گیا یہ درستی سے زیادہ قریب ہے۔ اسی لیے مکی کے حق میں مال کی شرط نہیں جبکہ وہ عرفات تک پیادہ جانے پر قادر ہو، تو جب مذکورہ عبادات میں سے اپنی ادا کی ہوئی کسی عبادت کا ثواب کوئی شخص دوسرے کے لیے کر دے تو وہ اسے پہنچے گا اور اس سے اس کو فائدہ ملے گا۔ جسے ہدیہ کیا ہے وہ زندہ ہو یا وفات پاچکا ہو اھ بنائیہ۔ ہم نے شرح کی یہ طویل عبارت اس لیے نقل کردی کہ اس میں متعدد فوائد ہیں۔ (ت)

[مرکزی اردو متن] یوں بھی اس نیت محمود میں کچھ خلل نہیں اگرچہ افضل وہی تھا کہ صرف فقراء پر تصدق کرتے کہ جب مقصود ایصال ثواب تو وہی کام مناسب تر جس میں ثواب اکثر و وافر، پھر بھی اصل مقصود مفقود نہیں، جبکہ نیت ثواب پہنچانا ہے۔ ہاں جسے یہ مقصود ہی نہ ہو بلکہ دعوت و مہمان داری کی نیت سے پکائے، جیسے شادیوں کا کھانا پکاتے ہیں تو اسے بے شک ثواب سے کچھ علاقہ نہیں، نہ ایسی دعوت شرع میں پسند نہ اس کا قبول کرنا چاہئے کہ ایسی دعوتوں کا محل شادیاں ہیں نہ کہ غمی۔ ولذا علماء فرماتے ہیں کہ یہ بدعت سیئہ ہے، جس طرح میت کے یہاں روز موت سے عورتیں جمع ہوتی ہیں اور ان کے کھانے دانے، پان چھالیا کا اہتمام میت والوں کو کرنا پڑتا ہے۔ وہ کھانا فاتحہ وایصال ثواب کا نہیں ہوتا بلکہ وہی دعوت و مہمان داری ہے کہ غمی میں جس کی اجازت نہیں، کما بیناہ ذلک فی فتاونا (جیسا کہ اسے ہم نے اپنے

فتاویٰ میں بیان کیا ہے۔ ت) یوں ہی چہلم یا برسی یا ششماہی پر کھانا بے نیت ایصال ثواب محض ایک رسمی طور پر پکاتے اور شادیوں کی بھاجی کی طرح برادری میں بانٹتے ہیں۔ وہ بھی بے اصل ہے، جس سے احتراز چاہئے، ایسے ہی کھانے کو شیخ محقق مولانا عبد الحق صاحب محدث دہلوی مجمع البرکات میں فرماتے ہیں :

[فارسی باکس - بائیں] آنچہ بعد از سالے یا ششماہی یا چہل روز درین دیار پزند در میان برادران بخشش کنند چیزی داخل اعتبار نیست بہتر آنست کہ نخورند 2 اھ ھکذا نقل عنہ

[اوپر والے کا اردو ترجمہ - دائیں] وہ جو اس دیار میں ایک سال یا چھ ماہ پر پکاتے اور برادری میں بانٹتے ہیں کوئی معتبر چیز نہیں، بہتر یہ ہے کہ نہ کھائیں اھ _____ اسی طرح ان سے شیخ الاسلام

[حواشی] 1 البنایۃ شرح الھدایۃ باب الحج عن الغیر المکتبۃ الامدادیۃ مکۃ المکرمۃ ۳/۱۶۱ 2 مجمع البرکات

صفحہ 948 کا 673

Fatawa Razvia Volume 9

Sheikh-ul-Islam in 'Kashf al-Ghita' has quoted (T): Especially when the intention is ostentation (Riya) and boasting (Tafakhur), as there is absolutely no disagreement regarding the prohibition of such an act. And in the authentic (Sahih) Hadith, it is stated:

The Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) forbade eating the food of those who compete with each other (in hosting). [1] Meaning, the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) forbade eating food that is prepared for boasting and show. (Narrated by Abu Dawood and al-Hakim with an authentic chain from Ibn Abbas, may Allah be pleased with them both. - T). Imam al-Munawi said: "That is, if the goal is to gain fame and show off through hosting, then it is for ostentation, not for the sake of Allah." (T).

Reference: Narrated by Abu Dawood and al-Hakim from Ibn Abbas (may Allah be pleased with them both) with an authentic chain. Reference: Al-Munawi said: "That is, those competing in hosting for the sake of pride and ostentation, because it is for show, not for Allah." [2]

However, it is not permissible to assume without clear evidence that a Muslim has done this for boasting and fame, for only Allah knows the state of the heart, and harboring ill-feeling (bad-gumani) against a Muslim is forbidden.

This, by the grace of Allah, is the moderate view, with no shortcoming nor excess, even if it contradicts those who are negligent or extreme in this matter. And Allah, the Pure and Most High, knows best. (T)

Problem 270: 3 Rabi' al-Akhir 1311 AH What do the scholars of religion say regarding the food from the deceased's house, which the family prepares as hospitality until the third day (Soyem), and what about taking the chickpeas and sugar candies (batashe) of the third day? Explain and be rewarded.

Answer: The food from the deceased's house is undoubtedly impermissible, as this humble servant has explained in detail in his fatwa. However, the chickpeas and sugar candies of the third day, which are not ordered for the purpose of hospitality but with the intention of sending reward (Isal-e-Thawab), are not included in this ruling, nor is there any mention of them in my fatwa. If the owner ordered them only to be given to the needy and that was his intention, then it is also impermissible for a wealthy person (Ghani) to take them. But if he ordered them for distribution among

those present, then a wealthy person will not be a sinner if he takes them. Here, according to custom and common practice, the general ruling is that they are not specifically for the poor.

[1] Al-Mustadrak 'ala al-Sahihayn, Book of Foods, Dar al-Fikr, Beirut, 4/129. [2] Fayd al-Qadir Sharh al-Jami' al-Saghir, under the mentioned Hadith, 91/92, Dar al-Ma'rifah, Beirut, 6/335; Al-Taysir Sharh al-Jami' al-Saghir, under the mentioned Hadith, Maktabah al-Imam al-Shafi'i, Riyadh, Saudi Arabia, 2/474.

फ़तावा रज़विया, जिल्द 9

शेख-उल-इस्लाम ने 'कश्फ़ अल-ग़िता' में नक़ल किया है (त): विशेष रूप से जब इसके साथ दिखावा (रिया) और गर्व (तफ़ाखुर) का उद्देश्य हो, क्योंकि तब इस कृत्य की वर्जना (हुरमत) में कोई मतभेद नहीं है। और सही हदीस में है:

अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने उन लोगों के खाने से मना फरमाया जो एक-दूसरे से (मेज़बानी में) प्रतिस्पर्धा करते हैं। [1] यानी, जो खाना गर्व और दिखावे के लिए पकाया जाता है, उसे खाने से नबी (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने मना फरमाया है। (इसे अबू दाऊद और हाकिम ने सनद-ए-सही के साथ हज़रत इब्ने अब्बास रज़ियल्लाहु अन्हुमा से नक़ल किया है - त)। इमाम मनावी ने कहा कि यदि मेज़बानी के माध्यम से नाम और दिखावा करना उद्देश्य हो, तो यह अल्लाह के लिए नहीं बल्कि दिखावे के लिए है। (त)।

संदर्भ: इसे अबू दाऊद और हाकिम ने इब्ने अब्बास रज़ियल्लाहु अन्हुमा से सही सनद के साथ निकाला है। संदर्भ: अल-मनावी ने कहा: "यानी वे जो गौरव और दिखावे के लिए मेज़बानी में प्रतिस्पर्धा करते हैं, क्योंकि यह दिखावे के लिए है, अल्लाह के लिए नहीं।" [2]

मगर बिना स्पष्ट प्रमाण के किसी मुसलमान के बारे में यह समझ लेना कि उसने यह काम गर्व और नाम के लिए किया है, जायज़ नहीं है क्योंकि दिल का हाल अल्लाह ही जानता है और मुसलमान पर बदगुमानी (बुरा गुमान) हराम है।

अल्लाह की प्रशंसा के साथ यही मध्यम मार्ग है, जिसमें न तो कोई कमी है और न ही कोई अति, भले ही यह इस मामले में लापरवाही या अति करने वालों के विरुद्ध हो। और अल्लाह पाक और सर्वोच्च सबसे बेहतर जानने वाला है। (त)

मसला 270: 3 रबीउल आखिर शरीफ 1311 हिजरी क्या फ़रमाते हैं उलेमा-ए-दीन इस मसले में कि मय्यत (मृतक) के घर का खाना, जो मय्यत के घर वाले तीसरे दिन (सोयम) तक मेहमाननवाज़ी के तौर पर पकाते हैं और सोयम के चने और बताशे लेना कैसा है? बयान करें, सवाब पाएं।

अल-जवाब (उत्तर): मय्यत के घर का वह खाना तो बेशक नाजायज़ है जैसा कि इस फ़क़ीर (विनम्र सेवक) ने अपने फतवे में विस्तार से बयान किया है। और सोयम के चने-बताशे जो मेज़बानी के लिए नहीं मंगाए जाते बल्कि सवाब पहुँचाने (ईसाल-ए-सवाब) के उद्देश्य से होते हैं, वे इस हुक्म में शामिल

नहीं हैं, और न ही मेरे उस फतवे में उनके बारे में कोई उल्लेख है। यदि मालिक ने इन्हें केवल ज़रूरतमंदों को देने के लिए मंगाया और यही उसकी नीयत है, तो अमीर (गनी) के लिए उन्हें लेना भी नाजायज़ है। लेकिन अगर उसने वहाँ मौजूद लोगों में बाँटने के लिए मंगाया, तो अगर अमीर भी ले लेगा तो वह गुनहगार नहीं होगा। यहाँ के रीति-रिवाज़ के अनुसार सामान्य हुक्म यही है कि वे केवल मिस्कीनों (गरीबों) के लिए नहीं होते।

[1] अल-मुस्तदरक अलस-सहीहैन, किताबुल अतइमा, दारुल फिक्र, बेरुत, 4/129। [2] फ़ैज़ुल क़दीर शरह अल-जामे-उस-सग़ीर, वर्णित हदीस के तहत, 91/92, दारुल मारिफ़ा, बेरुत, 6/335; अत-तयसीर शरह अल-जामे-उस-सग़ीर, वर्णित हदीस के तहत, मकतबा अल-इमाम अल-शाफ़ई, रियाद, सऊदी अरब, 2/474।

فتاوٰی رضویہ جلد نہم

شیخ الاسلام فی کشف الغطاء۔ نے کشف الغطاء میں نقل کیا ہے (ت) خصوصاً جب اس کے ساتھ ریاء و تفاخر مقصود ہو کہ جب تو اس فعل کی حرمت میں اصلاً کلام نہیں۔ اور حدیث صحیح میں ہے:

نھی رسول اللہ صلی اللہ تعالی علیہ وسلم عن طعام المتباریین ان یوکل [۱] یعنی جو کھانے تفاخر و ریاء کے لیے پکائے جاتے ہیں ان کے کھانے سے نبی صلی اللہ تعالی علیہ وسلم نے منع فرمایا۔ (اسے ابوداؤد اور حاکم نے بسند صحیح حضرت ابن عباس رضی اللہ تعالٰی عنہما سے نقل کیا ہے۔ ت) امام مناوی نے کہا یعنی ضیافت کے ذریعہ ناموری اور دکھاوا مقصود ہو تو یہ اللہ تعالٰی کے لیے نہیں دکھاوے کے لیے ہے۔(ت)

اخرجہ ابوداؤد و الحاکم عن ابن عباس رضی اللہ تعالٰی عنہما باسنا د صحیح۔ قال المناوی ای المتعارضین بالضیافۃ فخر ا ورياء لانه للرياء لا لله [۲] ۔

مگر بے دلیل واضح کسی مسلمان کا یہ سمجھ لینا کہ یہ کام اس نے تفاخر و ناموری کے لیے کیا ہے جائز نہیں کہ قلب کا حال اللہ تعالٰی جانتا ہے اور مسلمان پر بد گمانی حرام۔

ھذا ھو بحمد اللہ القول الوسط لا وکس فیہ ولا شطط وان خالف من فرط فی الباب و افرط ، واللہ سبحانہ وتعالٰی اعلم۔ یہ بحمد اللہ درمیانی قول ہے جس میں نہ کمی ہے نہ زیادتی۔ اگر چہ اس باب میں تفریط اور افراط کرنے والوں کے خلاف ہو۔ اور خدائے پاک و برتر خوب جاننے والا ہے (ت)

مسئلہ ۲۷۰: ۳ ربیع الآخر شریف ۱۳۱۱ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ میت کے گھر کا کھانا، جو اہل میت سوم تک بطور مہمانی کے پکاتے ہیں اور سوم کے چنوں بتاشوں کا لینا کیسا ہے؟ بینوا توجروا۔

الجواب: میت کے گھر کا وہ کھانا تو البتہ بلا شبہ ناجائز ہے جیسا کہ فقیر نے اپنے فتوے میں مفصلاً بیان کیا، اور سوم کے چنے بتاشے کہ بغرض مہمانی نہیں منگائے جاتے بلکہ ثواب پہنچانے کے قصد سے ہوتے ہیں، یہ اس حکم میں داخل نہیں، نہ میرے اس فتوے میں ان کی نسبت کچھ ذکر ہے۔ یہ اگر مالک نے صرف محتاجوں کے دینے کے لیے منگائے اور یہی اس کی نیت ہے تو غنی کو ان کا بھی لینا ناجائز ، اور اگر اس نے حاضرین پر تقسیم کے لیے منگائے تو اگر غنی بھی لے لے گا تو گنہگار نہ ہوگا، اور یہاں بحکم عرف و رواج عام حکم یہی ہے کہ وہ خاص مساکین کے لیے نہیں ہوتے

[۱] المستدرک علی الصحیحین کتاب الاطعمۃ دار الفکر بیروت ۱۲۹/۴ [۲] فیض القدیر شرح الجامع الصغیر زیر حدیث مذکور ۹۱/۹۲ دارالمعرفۃ بیروت ۳۳۵/۶ ، التیسیر شرح الجامع الصغیر زیر حدیث مذکور مکتبۃ الامام الشافعی الریاض السعودیہ ۴۷۴/۲

Fatawa Razawiyya Volume 9

...then it is not permissible for a wealthy person to take it either, although abstaining is more preferable. And this has always been the practice of this humble one (the author). And Allah the Almighty knows best.

Ruling 271: 4th Dhu al-Hijjah 1318 AH

Question: What do the scholars of religion say regarding this matter: if Hindah has "performed her funeral rites during her life," then in this case, until when should Hindah not eat the food from someone else's house of mourning? And if someone dies in Hindah's own house, is it permissible to eat that food too? And until when—meaning until the first anniversary (Barsi) or for forty days (Chaliswan)? And if Hindah did not have the Fatiha (prayers) performed on Thursdays from the beginning, should it be performed for seven Thursdays after forty days? Can it be done or not? Please explain and be rewarded.

Answer: There is a total prohibition on the food prepared for people who gather at the deceased's house and are invited as guests. However, food distributed like 'bhaji' (gifts/distribution) to the wealthy on Thursdays, the fortieth day, six-month anniversary, or the first anniversary, though meaningless, is not forbidden to eat. It is better that the wealthy should not eat it, and there is no harm for the poor as they are the rightful recipients. In all these rulings, the one who "performed her funeral rites during her life" and the one who didn't are equal. And if a death occurs at one's own place, there is no prohibition for anyone to eat their own food. Commemorative Thursdays can also be observed after forty days; whatever and whenever something is given to the poor for the sake of Allah, there is reward in it. And Allah the Almighty knows best.

Page 675 of 948

फ़तावा रज़विया जिल्द नहम (खंड 9)

...तो धनी व्यक्ति के लिए भी इसे लेना जायज़ नहीं है, हालाँकि परहेज़ करना अधिक पसंदीदा है। और इस फ़क़ीर (लेखक) का हमेशा से यही अमल रहा है। वल्लाहु तआला आलम (और अल्लाह तआला ही बेहतर जानता है)।

मसला 271: 4 ज़िल-हिज्जा 1318 हिजरी

सवाल: क्या फ़रमाते हैं उलेमा-ए-दीन इस मसले में कि हिंदह ने अपनी मौत अपनी हयात में कर दी है (जीते जी अपने कफ़न-दफ़न के इंतज़ाम कर लिए हैं), तो इस सूरत में हिंदह को कब तक दूसरे के यहाँ की मय्यत का खाना नहीं खाना चाहिए? और अगर हिंदह के घर में कोई मर जाए तो क्या उसका खाना भी जायज़ है? और कब तक, यानी बरसी तक या चालीस दिन तक? और अगर हिंदह ने शुरू से जुमेरात की फ़ातिहा न दिलाई हो, तो चालीस दिन के बाद सात जुमेरात की फ़ातिहा दिलानी चाहिए? हो सकती है या नहीं? बयान फरमाएं और सवाब पाएं।

जवाब: मय्यत के यहाँ जो लोग जमा होते हैं और उनकी दावत की जाती है, उस खाने की तो हर तरह से मनाही है। और बिना दावत के जुमेरात, चालीसवें, छह माही और बरसी में जो भाजी (वितरण) की तरह अमीरों को बाँटा जाता है, वह हालाँकि बेमानी है, मगर उसे खाना मना नहीं है। बेहतर यह है कि अमीर न खाएं और फ़क़ीर (गरीब) को तो कोई हर्ज नहीं क्योंकि वही इसके मुस्तहिक (हक़दार) हैं। और इन सब एहकाम (नियमों) में वह जिसने अपनी मौत अपनी हयात में कर दी और जिसने नहीं की, सब बराबर हैं। और अगर अपने यहाँ मौत हो जाए तो अपना खाना खाने की किसी को मनाही नहीं है। और चालीस दिन के बाद भी जुमेरातें हो सकती हैं; अल्लाह के लिए फ़क़ीरों को जब और जो कुछ दिया जाए, उसमें सवाब है। वल्लाहु तआला आलम।

पृष्ठ 948 का 675

تو غنی کو بھی لینا جائز نہیں، اگرچہ احتراز زیادہ پسندیدہ۔ اور اسی پر ہمیشہ سے اس فقیر کا عمل ہے۔ واللہ تعالٰی اعلم مسئلہ ۲۷۱ : ۴ ذی الحجہ ۱۳۱۸ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ ہندہ نے اپنی موت اپنی حیات میں کر دی ہے تو اس صورت میں ہندہ کو کب تک دوسرے کے یہاں کی میت کا کھانا نہیں چاہئے، اور اگر ہندہ کے گھر میں کوئی مر جائے تو اس کا بھی کھانا جائز ہے اور کب تک یعنی برسی تک یا چالیس دن تک۔ اور اگر ہندہ نے شروع سے جمعرات کی فاتحہ نہ دلائی ہو تو چالیس دن کے بعد سات جمعرات کی فاتحہ دلانا چاہئے، ہو سکتی ہے یا نہیں؟ بینوا توجروا۔

الجواب: میت کے یہاں جو لوگ جمع ہوتے ہیں اور ان کی دعوت کی جاتی ہے اس کھانے کی تو ہر طرح ممانعت ہے، اور بغیر دعوت کے جمعراتوں، چالیسویں، چھ ماہی، برسی میں جو بھاجی کی طرح اغنیاء کو بانٹا جاتا ہے وہ بھی اگرچہ بے معنی ہے مگر اس کا کھانا منع نہیں، بہتر یہ ہے کہ غنی نہ کھائے اور فقیر کو تو کچھ مضائقہ نہیں کہ وہی اس کے مستحق ہیں، اور ان سب احکام میں وہ جس نے اپنی موت اپنی حیات میں کر دی اور جس نے نہ کی سب برابر ہیں، اور اپنی یہاں موت ہو جائے تو اپنا کھانا کھانے کی کسی کو ممانعت نہیں اور چالیس دن کے بعد بھی جمعراتیں ہو سکتی ہیں، اللہ کے لیے فقیروں کو جب اور جو کچھ دے ثواب ہے۔ واللہ تعالٰی اعلم

Fatawa Ridawiyya Volume 9

Treatise: Hayat al-Mawat fi Bayan Sima' al-Amwat (1305 AH) (The Life of the Lifeless, regarding the Hearing of the Deceased)

In the name of Allah, the Most Gracious, the Most Merciful.

[Arabic Text Section:] All praise is for Allah, Who created man, taught him speech, and adorned him by granting him hearing, sight, and knowledge. He made him a manifestation of the attributes of the Merciful (al-Rahman). He did not make him non-existent upon the perishing of bodies. May the most complete and perfect blessings and peace be upon the One who hears, sees, knows, is well-informed, the King from whom help is sought, the Noble Master, the Kind, the Merciful, the One of Great Stature—our leader and master Muhammad, whose command is pervasive throughout the realms of possibility—and upon his family, his companions, and his son, the brilliant Helper (al-Ghauth), the Sultan, the Living, the Bestower in the honored grave.

[Urdu Translation Section from Image:] In the name of Allah, the Most Gracious, the Most Merciful. All praise is for Allah, Who created man. He taught him speech. He adorned him by giving him hearing, sight, and knowledge. He made him a manifestation of the attributes of the Merciful. And He did not make him non-existent by the perishing of bodies. And may more complete and perfect blessings and peace be upon him who is the Sultan who hears, sees, knows, and informs, from whom help is sought. Who is the noble master, very kind, merciful, and of great stature, our leader and our master Hazrat Muhammad, whose command is enforced in the worlds of possibility, and upon his family and companions and his...

Page 677 of 948

फ़तावा रज़विया जिल्द नहम (9)

रिसाला: हयातुल मवात फ़ी बयान सिमाउल अमवात (1305 हिजरी) (बेजान की ज़िंदगी, मुर्दों के सुनने के बयान में)

बिस्मिल्लाहिर रहमानिर रहीम।

[अरबी पाठ अनुभाग:] तमाम तारीफें अल्लाह के लिए हैं जिसने इंसान को पैदा किया, उसे बोलना (बयान) सिखाया, और उसे समाअत (सुनना), बसारत (देखना) और इल्म (ज्ञान) देकर संवारा। उसे रहमान के गुणों (सिफ़ात) का प्रतिबिंब बनाया। और शरीरों के नष्ट होने पर उसे मिटाया नहीं। और सबसे पूर्ण और संपूर्ण दुरूद और सलाम उस हस्ती पर हो जो सुनने वाले, देखने वाले, जानने वाले, खबर देने वाले, मदद के लिए पुकारे जाने वाले सुल्तान हैं। जो उदार स्वामी, अत्यंत दयालु, कृपालु और उच्च पद वाले हैं—हमारे सरदार और स्वामी मुहम्मद, जिनका आदेश संभावना के जगतों में व्याप्त है—और उनके परिवार, उनके साथियों और उनके पुत्र, तेजस्वी गौस, सुल्तान, जीवित, सम्मानित कब्र में वरदान देने वाले पर।

[छवि से उर्दू अनुवाद अनुभाग:] बिस्मिल्लाहिर रहमानिर रहीम। तमाम तारीफें अल्लाह के लिए हैं जिसने इंसान को पैदा किया। उसे बयान सिखाया। उसे समाअत, बसारत और इल्म देकर संवारा। उसे रहमान की सिफ़ात का मज़हर (प्रतिबिंब) बनाया। और शरीरों के फ़ना होने से उसको मादूम (लुप्त) न फ़रमाया, और ज़्यादा ताम व कामिल तर दुरूद व सलाम हो उन पर जो सुनने, देखने, जानने, खबर देने वाले सुल्तान हैं जिनसे मदद मांगी जाती है। जो करीम आका, बड़े मेहरबान, रहम करने वाले, बड़ी शान वाले हैं, हमारे सरदार और हमारे आका हज़रत मुहम्मद जिनका हुक्म इमकान (संभावनाओं) के जहानों में नाफ़िज़ है और उनकी आल व असहाब और उनके..

पृष्ठ 948 का 677

فتاویٰ رضویہ جلد نہم

رسالہ حیاۃ الموات فی بیان سماع الاموات ۱۳۰۵ھ (بے جان کی زندگی، مُردوں کی سماعت کے بیان میں)

بسم اللہ الرحمن الرحیم

[عربی متن:] الحمد للہ الذی خلق الانسان * علمہ البیان * واعطاہ سمعاً وبصراً وعلما فزان * وجعلہ مظہر الصفات الرحمن * ولم یجعلہ معدوماً بفناء الابدان * والصلوۃ والسلام الاتمان الاکملان * علی السمیع البصیر العلیم الخبیر الملک المستعان * المولی الکریم الرؤف الرحیم العظیم الشان * سیدنا ومولنا محمد النافذ حکمہ فیک عوالم الامکان * وعلی آلہ وصحبہ وابنہ الغوث الباہر السلطان * الحی المنعم فی القبر المکرم

[اردو ترجمہ از تصویر:] بسم اللہ الرحمن الرحیم تمام تعریفیں اللہ کے لیے جس نے انسان کو پیدا کیا۔ اسے بیان سکھایا۔ اسے سماعت، بصارت اور علم دے کر سنوارا۔ اسے رحمان کی صفات کا مظہر بنایا۔ اور بدنوں کے فنا ہونے سے اس کو معدوم نہ فرمایا، اور زیادہ تام وکامل تر درود وسلام ہو ان پر جو سننے، دیکھنے، جاننے، خبر دینے والے سلطان ہیں جن سے مدد مانگی جاتی ہے۔ جو کریم آقا، بڑے مہربان، رحم کرنے والے، بڑی شان والے ہیں، ہمارے سردار اور ہمارے آقا حضرت محمد جن کا حکم امکان کے جہانوں میں نافذ ہے اور ان کی آل واصحاب اور ان کے

Fatawa Ridawiyya, Volume Nine

[Inside Box] (Arabic Content): By the grace of the Munnan (Bestower of Favors) * I bear witness that there is no god but Allah, alone, He has no partner, a testimony by which the face of the Dayan (Recompenser) lives. * And I bear witness that Muhammad is His servant and His Messenger, a testimony that brings us to the springs of Ridwan (Pleasure). * May Allah bless and grant peace, blessings, and favors upon this beloved, near, refugee, far in ascension, elevated in place. * And upon his family, companions, dependents, and party, possessors of knowledge and gnosis. * And upon us with them, through them, and for them, O Majestic in Favor! * and O Beautiful in Graciousness! * Amen, O Allah, the Truth, Amen.

(Urdu Translation Content): By the grace of the Lord who bestows great favors upon the son of clear proof, the Ghous, who is alive and rewarded in the noble grave. And I bear witness that there is no deity but God. He is unique, having no partner, a testimony through which greetings are presented to the Lord who recompenses. And I bear witness that Muhammad is His servant and His Messenger, a testimony that will lower us into the ranks of Ridwan (Pleasure). So, may God's peace, blessings, and favors be upon this Beloved who is near for seeking refuge, of high status in the stage of ascension, and upon his family, companions, dependents, and the group of knowledge and gnosis, and upon us also along with them, through their agency, because of them, O Great Bestower of Favor, O Beautiful in Graciousness, accept it, accept it, O True Deity, accept it! (T) [End Box]

After this! These are a few lines or arranged threads, clarifying the issue of the knowledge and hearing of the dead, and seeking prayers at the shrines of the saints. They were written by the poorest of the poor, the lowliest of creation, Abdul Mustafa Ahmad Raza Muhammadi, Sunni, Hanafi, Qadri, Barkati, Barelvi, may Allah reform his deeds and fulfill his hopes, in the early days of the month of Rajab 1305 AH. Based on the date, it was named "Hayat al-Mawat fi Bayan Sima' al-Amwat" (1305 AH). Before this, the humble servant, may he be forgiven, had collected a few words named "Al-Ihlal bi-Fayd al-Awliya ba'd al-Wisal" (1303 AH), most of whose meanings and topics were also included in some sections and chapters of this treatise. Now, this brief work will not only provide proof of the knowledge and hearing of the dead, but by the power of Allah Almighty, it will clarify that the masters, the saints, are alive after their passing, their control and miracles are enduring, and their grace continues as usual, providing the same help, assistance, and friendship to us, the slaves, servants, lovers, and devotees. And praise be to Allah, the Powerful Creator. This treatise is

connected to truth, separated from falsehood, consisting of an introduction, three objectives, and a conclusion. And Allah is sufficient for us, and He is the best Disposer of affairs, He is our Protector, and upon Him is our reliance.

Introduction: Reason for Writing: At the end of Jumada al-Akhirah 1305 AH, an issue came to the humble servant for the purpose of verification and expressing a request for research. The form of the question was as follows:

फ़तावा रज़विया, जिल्द नहम (नौ)

[बॉक्स के भीतर] (अरबी सामग्री): मन्नान (एहसान करने वाले) की कृपा से * मैं गवाही देता हूँ कि अल्लाह के सिवा कोई माबूद नहीं, वह अकेला है, उसका कोई शरीक नहीं, ऐसी गवाही जिससे दयान (प्रतिफल देने वाले) का चेहरा जीवित हो जाए। * और मैं गवाही देता हूँ कि मुहम्मद उसके बंदे और उसके रसूल हैं, ऐसी गवाही जो हमें रिज़वान (अल्लाह की प्रसन्नता) के झरनों तक ले जाए। * अल्लाह पाक दरूद, सलाम, बरकत और इनाम नाज़िल फरमाए इस महबूब पर जो पڑह चाहने वाले के लिए करीब, तरक्की की मंज़िल में ऊंचे मर्तबे वाले और बुलंद मकाम वाले हैं। * और उनकी आल, असहाब, अहल-ओ-अयाल और इल्म-ओ-इरफ़ान वाली जमात पर। * और उन लोगों के साथ, उनके सदके में और उनके वसीले से हम पर भी, ऐ महान एहसान करने वाले! * और ऐ खूबसूरत मेहरबानी करने वाले! * आमीन, ऐ अल्लाह, बरहक़ माबूद, आमीन।

(उर्दू अनुवाद सामग्री): रोशन दलील वाले बेटे, गौस वाले पर बहुत एहसान करने वाले रब के फज़ल से कब्र-ए-मुकर्रम में ज़िंदा इनाम याफ़्ता हैं, और मैं गवाही देता हूँ कि ख़ुदा के सिवा कोई माबूद नहीं। वह यकता (अकेला) है जिसका कोई शरीक नहीं, ऐसी गवाही जिससे जज़ा देने वाले रब को तहियत पेश की जाए। और मैं गवाही देता हूँ कि मुहम्मद उसके बंदे और उसके रसूल हैं, ऐसी गवाही जो हमें रिज़वान के मकामात में उतारे। तो ख़ुदा का दरूद-ओ-सलाम और बरकत-ओ-इनाम हो उस महबूब पर जो इल्तिजा (प्रार्थना) के लिए करीब, मंज़िल-ए-इरतिका (उन्नति की मंज़िल) में बुलंद मर्तबे वाले हैं, और उनकी आल और असहाब और अयाल और इल्म-ओ-इरफ़ान वाली जमात पर, और उनके साथ, उनके तुफ़ैल (माध्यम), उनके सबब हम पर भी, ऐ बुज़ुर्ग एहसान, जमील इम्तिनान वाले, कुबूल फरमा, कुबूल फरमा, ऐ माबूद-ए-बरहक कुबूल फरमा! (त) [बॉक्स समाप्त]

अम्मा बाद! ये गिनी-चुनी सतरें (लाइनें) हैं या पिरोए हुए मोती, जो मुर्दों के सुनने और उनके ज्ञान (इल्म-ओ-समाअ-ए-मौता) के मसले की सफ़ाई और औलिया की मज़ारों पर दुआ माँगने के बारे में हैं। इन्हें ग़रीबों के ग़रीब, मखलूक में सबसे हकीर, अब्दुल मुस्तफ़ा अहमद रज़ा मोहम्मदी, सुन्नी, हनफ़ी, क़ादरी, बरकाती, बरेलवी (अल्लाह उनके आमाल की इस्लाह फरमाए और उनकी उम्मीदें पूरी करे) ने रजब 1305 हिजरी की शुरुआती तारीखों में लिखा। तारीख़ के लिहाज़ से इसका नाम "हयातुल मवात फ़ी बयान समाअिल अमवात" (1305 हिजरी) रखा गया। इससे पहले इस फ़कीर ने कुछ जुमले जमा किए थे जिनका नाम "अल-इहलाल बि-फ़ैज़िल औलिया बाद-अल-विसाल" (1303 हिजरी) था, उसके अक्सर मज़ामीन भी इस रिसाले के कुछ हिस्सों में शामिल हैं। अब यह संक्षिप्त

रचना न केवल मुर्दों के सुनने और ज्ञान का सुबूत देगी, बल्कि अल्लाह तआला की तौफीक से यह भी साफ़ तौर पर वाज़ेह करेगी कि औलिया किराम वफात के बाद ज़िंदा हैं, उनके तसर्रुफ़ (अधिकार) और करामात बरक़रार हैं और उनका फ़ैज़ बदस्तूर जारी है और हम गुलामों, खादिमों और चाहने वालों के साथ उनकी वैसी ही मदद और हिमायत जारी है। तमाम तारीफें अल्लाह के लिए हैं जो कादिर और पैदा करने वाला है। यह रिसाला हक़ से जुड़ा हुआ और बातिल से अलग है, जो एक मुकद्दमा (प्रस्तावना), तीन मक़सद (विषयों) और एक खात्मा (निष्कर्ष) पर आधारित है। और हमें अल्लाह ही काफी है और वह बेहतरीन कार्यसाधक है, वही हमारा मौला है और उसी पर हमारा भरोसा है।

मुकद्दमा (प्रस्तावना): तालीफ़ (लेखन) का कारण: जमादी-अल-आख़िरा 1305 हिजरी के अंत में, एक मसला तस्दीक (पुष्टि) और तहकीक की तलब (शोध की इच्छा) के लिए इस फ़कीर के पास आया। सवाल की सूरत यह थी:

[باکس کے اندر] (عربی عبارت): بفضل المنان * واشهد ان لا اله الا الله وحده لاشريك له شهادة يحيى بها وجه الديان * واشهد ان محمدًا عبده ورسوله شهادة توردنا موارد الرضوان * فصلى الله وسلم وبارك وانعم على هذا الحبيب القريب الملتجى، البعيد المرتقى الرفيع المكان * وعلى آله وصحبه وعياله وحزبه اولى العلم والعرفان * وعلينا معهم وبهم ولهم ياجليل الاحسان * وجميل الامتنان * آمين الله الحق آمين

(اردو ترجمہ کی عبارت): فرزندِ روشن دلیل والے غوث والے پر جو بہت احسان فرمانے والے رب کے فضل سے قبرِ مکرم میں زندہ انعام یافتہ ہیں، اور میں شہادت دیتا ہوں کہ خدا کے سوا کوئی معبود نہیں۔ وہ یکتا ہے جس کا کوئی شریک نہیں ایسی شہادت جس سے جزا دینے والے رب کو تحیت پیش کی جائے۔ اور میں شہادت دیتا ہوں کہ محمد اس کے بندے اور اس کے رسول ہیں ایسی شہادت جو ہمیں رضوان کے مقامات میں اتارے۔ تو خدا کا درود و سلام اور برکت وانعام ہو اس محبوب پر جو التجاء کے لیے قریب، منزل ارتقا میں بلند مرتبے والے ہیں، اور ان کی آل و اصحاب و عیال اور علم و عرفان والی جماعت پر، اور ان کے ساتھ، ان کے طفیل، ان کے سبب ہم پر بھی، اے بزرگ احسان، جمیل امتنان والے، قبول فرما، قبول فرما، اے معبود برحق قبول فرما! (ت)

[باکس ختم]

امابعد! یہ معدود سطریں ہیں یا منضود سلکین، تنقیح مسئلہ علم و سماع موتی، و طلبِ دعا بمشاہدِ اولیاء ہیں، جنہیں افقر الفقراء احقر الوریٰ عبدالمصطفیٰ احمد رضا محمدی ، سنی ، حنفی، قادری، برکاتی، بریلوی، اصلح الله عمله وحقق امله، نے اوائل ماہ رجب ۱۳۰۵ ہجری کی چند تاریخوں میں رنگِ تحریر دیا، اور بلحاظِ تاریخ حیاۃ الموات فی بیان سماع الاموات (۱۳۰۵ھ) سے مسمیٰ کیا، اس

سے پہلے کہ فقیر غفرلہ، نے چند کلمے مسمیٰ بہ الاھلال بفیض الاولیاء بعد الوصال (۱۳۰۳ھ) جمع کئے تھے، ان کے اکثر مطالب و مضامین بھی اس رسالہ کے بعض انواع و فصول میں مندرج ہوئے۔ اب یہ عجالہ نہ صرف علم و سماعِ موتیٰ کا ثبوت دے گا بلکہ بحول اللہ تعالیٰ خوب واضح کرے گا کہ حضرات اولیاء بعد الوصال زندہ اور ان کے تصرف و کرامات پائندہ اور ان کے فیض بدستور جاری اور ہم غلاموں خادموں محبوں معتقدوں کے ساتھ وہی امداد و اعانت و یاری، والحمد للہ القدیر الباری۔ یہ رسالہ حق سے متصل، باطل سے منفصل مقدمہ و سہ مقصد و خاتمہ پر مشتمل وحسبنا اللہ ونعم الوکیل ھو مولنا وعلیہ التعویل۔

مقدمہ باعثِ تالیف: میں سلخ جمادی الاخرہ ۱۳۰۵ھ کو ایک مسئلہ بغرض تصدیق و اظہارِ دعائے طلبِ تحقیق فقیر کے پاس آیا، صورت سوال یہ تھی:

Fatawa Razawiyya Volume 9

Problem 272: In the name of Allah, the Most Gracious, the Most Merciful. What do the scholars of religion and jurists of the clear Sharia say regarding this matter (translated from Persian/Arabic): That a person went to the noble shrine of a saint for visitation. At that time, these words came from his tongue: "O chosen saint of the Divine Court! Please pray to Allah the Pure for me that my such-and-such need be fulfilled, because you are a saint, through the mediation of the accepted Messenger (Peace be upon him), for the sake of Allah may the need be fulfilled." Afterwards, he recited some Fatiha and Durood Sharif, and had also recited before. Is going to shrines in this way, asking for prayers, and visiting permissible or not? Peace be upon you, end of the words.

To this, some eminent masters gave an answer adorned with their seal and signature. In it, they clearly declared the mentioned situation as Shirk (associating partners with Allah) or at the very least, as having a taint of Shirk. In their argument, they used a new way of denying the hearing of the people of the graves, or rather its impossibility and prevention. The noble writing is as follows: In the name of Allah, the Most Gracious, the Most Merciful. There is no doubt that visiting the graves of believers, especially of religious elders, and reciting Durood Sharif, Surah Fatiha, etc., and donating the reward of charities to the deceased is recommended and a Sunnah. Upon which the Hadith of the Master of the two worlds, Peace and blessings of Allah be upon him, is:

[Boxed Text] Arabic: Kuntu nahaytukum 'an ziyaratil qubur fazuruha. Urdu translation: I had forbidden you from visiting graves, now you visit them. (T)

It is a clear and eloquent text. However, addressing the elders who are people of the graves to ask for the fulfillment of needs is not free from the taint and doubt of Shirk. Because when multiple veils of hearing and sight are between the visitor and the entombed, hearing voices and seeing forms is impossible. Although some deceased may have gained increased perception due to the severing of ties from matter, this does not necessitate it without special attention...

Note 1: Peace and blessings of Allah be upon him. Note 2: A strange subtle secret from the unseen. I say: and with Allah is the guidance. Even if a knowledgeable person slips, the word of truth still shows its glimpse in their speech. These reasons stated by the Maulana have manifested the justifying cause of the true creed. I submit that when the reason for visitation and perception is the severing of material

ties, then it is generally achieved by every deceased person... (continues on next page).

1. Sunan Ibn Majah, chapter on visiting graves, H.M. Saeed Company, Karachi, p. 113; Mishkat al-Masabih, chapter on visiting graves, first section, Mujtabai Press, Delhi, p. 154.

फतावा रज़विया खंड 9

मसला 272: बिस्मिल्लाह हिर्रहमान निर्रहीम। दीन के विद्वान और शरीयत के मुफ्ती इस विषय में क्या कहते हैं? (फारसी/अरबी से अनुवाद): कि एक व्यक्ति एक बुजुर्ग के पवित्र मज़ार पर ज़ियारत के लिए गया। उस समय उसकी ज़ुबान से ये शब्द निकले: "ऐ इलाही दरबार के चुनिंदा बुजुर्ग! आप अल्लाह पाक से मेरे लिए दुआ कीजिए कि मेरी फलां ज़रूरत पूरी हो जाए, क्योंकि आप बुजुर्ग हैं, मकबूल रसूल (उन पर अल्लाह की शांति और कृपा हो) के वसीले से, अल्लाह के लिए ज़रूरत पूरी हो जाए।" इसके बाद उन्होंने कुछ फातिहा और दरूद शरीफ पढ़ा, और पहले भी पढ़ा था। क्या इस तरह मज़ार पर जाना, दुआ मांगना और ज़ियारत करना जायज़ है या नहीं? बहुत-बहुत सलाम, बस बात यहीं खत्म हुई।

इस पर कुछ महान उस्तादों ने अपनी मुहर और हस्ताक्षर से सजा हुआ जवाब दिया। जिसमें उन्होंने स्पष्ट रूप से उल्लेखित स्थिति को शिर्क या कम से कम शिर्क की मिलावट करार दिया। और तर्क में कब्र वालों के सुनने के इनकार, बल्कि उसकी असंभवता और रुकावट का एक नया तरीका अपनाया। उनका लेखन इस प्रकार है: बिस्मिल्लाह हिर्रहमान निर्रहीम। इसमें कोई संदेह नहीं है कि मोमिनों, विशेष रूप से दीन के बुजुर्गों की कब्रों की ज़ियारत करना, और दरूद शरीफ, सूरह फातिहा आदि पढ़ना और दान-पुण्य का सवाब मृतकों को बख्शना पसंदीदा (मंदूब) और सुन्नत है। जिस पर दोनों जहानों के आका, सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम की हदीस शरीफ है:

[बॉक्स में पाठ] अरबी: कुन्तु नहैतुकुम अन ज़ियारतुल क़ुबूर फ़ज़ूरूहा। उर्दू अनुवाद: मैंने तुम्हें कब्रों की ज़ियारत से मना किया था, अब उनकी ज़ियारत करो। (त)

यह एक स्पष्ट और बोलने वाला पाठ है। लेकिन कब्र के बुजुर्गों को संबोधित करके उनसे दुआ और ज़रूरत पूरी करने के लिए कहना शिर्क के संदेह और मिलावट से खाली नहीं है। क्योंकि जब ज़ियारत करने वाले और कब्र वाले के बीच सुनने और देखने के कई पर्दे हों, तो आवाज़ें सुनना और आकृतियाँ देखना असंभव है। हालांकि कुछ मृतकों को भौतिकता से संबंध टूटने के कारण अधिक बोध भी प्राप्त हो जाता है, लेकिन यह विशेष ध्यान दिए बिना अनिवार्य नहीं है...

नोट 1: सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम (उन पर अल्लाह की शांति और कृपा हो)। नोट 2: एक अजीब सूक्ष्म गुप्त संकेत। मैं कहता हूँ: और अल्लाह की मदद से ही सफलता है। भले ही एक ज्ञानी व्यक्ति से चूक हो जाए, फिर भी सत्य की बात उनके भाषण में अपनी झलक दिखा ही जाती है। मौलवी साहब

ने ये कारण बताए हैं जिन्होंने सत्य पंथ के उचित कारण को प्रकट कर दिया है। मैं निवेदन करता हूँ कि जब ज़ियारत और बोध का कारण भौतिक संबंधों का विच्छेद है, तो वह आम तौर पर हर मृत व्यक्ति को प्राप्त होता है... (शेष अगले पृष्ठ पर)।

1. सुनन इब्न माजह, कब्रों की ज़ियारत का अध्याय, एच.एम. सईद कंपनी, कराची, पृष्ठ 113; मिशकात अल-मसाबीह, कब्रों की ज़ियारत का अध्याय, पहला भाग, मुजतबाई प्रेस, दिल्ली, पृष्ठ 154।

فتاوٰی رضویہ جلد نہم

مسئلہ ۲۷۲: بسم اللہ الرحمن الرحیم چہ می فرمایند علماء دین ومفتیان شرع متین دریں باب (کیا فرماتے ہیں علمائے دین ومفتیان شرع متین اس بارے میں۔ ت) کہ ایک بزرگ کے مزار شریف پر واسطے زیارت کے گیا اس وقت یہ کلمہ زبان سے نکلا کہ اے بزرگ برگزیدہ درگاہ کبریائی! آپ اللہ پاک سے میرے واسطے دعا کیجئے کہ حاجت میری فلانی برآوے کیونکہ آپ بزرگ ہیں، بطفیل رسول عہ۱ مقبول، واسطے اللہ کے حاجت برآوے، بعد کو کچھ فاتحہ و درود شریف پڑھا اور پیشتر میں پڑھا، یوں مزار گاہ میں جانا اور دعا مانگنا اور زیارت کرنا جائز ہے یا نہیں؟ زیادہ والسلام، فقط انتہی بلفظہ۔

اس پر بعض اجلہ مخادیم کا جواب مزین بمہر و دستخط جناب تھا۔ جس میں صاف صاف صورت مذکورہ کو شرک اور ادنٰی درجہ شائبہ شرک قرار دیا، اور دلیل میں ایک نئے طور پر اصحاب قبور کے انکار سماع بلکہ استحالہ و امتناع سے کام لیا، تحریر شریف یہ ہے: بسم اللہ الرحمن الرحیم اس میں شک نہیں کہ زیارت قبور مومنین خاصہ بزرگان دین، اور پڑھنا درود شریف اور سورہ فاتحہ وغیرہ کا اور ثواب خیرات، اموات کو بخشنا مندوب ومسنون ہے۔ جس پر حدیث شریف جناب سید الثقلین صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم:

[چوکھٹا] کنت نہیتکم عن زیارۃ القبور فزورھا ۱۔ | میں نے تمہیں قبروں کی زیارت سے منع کیا تھا تو اب تم ان کی زیارت کرو۔ (ت)

نص صریح ناطق، لیکن بزرگان اہل قبور کو خطاب طلب دعائے حاجت روائی خود کرنا خالی از شائبہ و شبہ شرک نہیں۔ کیونکہ جب درمیان زائر اور مقبور کے حجب عدیدہ سمع وبصر حائل تو

سماع اصوات اور بصارت صور محال، اگرچہ بعض اموات کو بوجہ عہ۲ قطع تعلق از مادہ، زیادت عہ۳ ادراک بھی حاصل ہو، لیکن یہ مستلزم اس کو نہیں بلا توجہ خاص جس کا

عہ۱: صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم عہ۲: عجیب لطیفہ غیبی اقول: وباللہ التوفیق۔ ذی علم اگرچہ لغزش کریں پھر بھی سخن حق ان کے کلام میں اپنی جھلک دکھا ہی جاتا ہے، یہ بوجہ مولوی صاحب نے ایسے فرمائے جس نے مذہب حق کی وجہ موجبہ ظاہر کردی۔ میں عرض کروں جب زیارت و ادراک کی وجہ علائق مادی کا انقطاع ہے تو وہ عموماً ہر میت کو حاصل (باقی اگلے صفحہ پر)

1 سنن ابن ماجہ باب ماجاء فی زیارۃ القبور ایچ ایم سعید کمپنی کراچی ص ۱۱۳، مشکوٰۃ المصابیح باب زیارۃ القبور فصل اول مطبع مجتبائی دہلی ص ۱۵۴

Volume 9 Fatawa Razawiyya

The revelation of a situation is outside the knowledge of the visitor and without the will of the Lord of the worlds. At the time of prayer, those elders hear the visitor's prayer; when the visitor asks without gaining knowledge, it is as if the asker has considered the people of the grave as absolute hearers and seers, and this belief is nothing but Shirk (polytheism), and at the very least, a semblance and doubt of Shirk has surely occurred, from which avoidance and abstinence are necessary and mandatory. It is stated with full clarity in several places in the Furqan-e-Hameed (Quran), and among them is Surat Yusuf: "And most of them do not believe in Allah except while they associate others with Him." (1)

And in the noble Hadith: "Whoever swears by other than Allah has committed Shirk." (2)

And the reason for this prohibition is none other than that it appears from the swearer's oath by other than God that he also considers other than God as harmful in his belief, which is the meaning of Shirk. And Allah Almighty knows best.

After seeing this answer, I was even more surprised that no writing of the Maulvi Sahib on these innovations had come to my sight until today. (Remaining footnote from previous page): That death itself is the name of this cutting of material connection, then the specification of some dead is just without reason, rather it should be achieved by all the dead, and indeed it is so. That is why leading researchers explicitly state that perception after death is clearer and more luminous compared to the perception of life. Some explanations will come in the final objective; if not more, then see the saying of Shah Abdul Aziz Sahib in Type 2, Objective 3, Discourse 4. - Author

Note 3: Through this speech, the Maulvi Sahib is gesturing towards this saying of Shah Abdul Aziz Sahib, a part of which will be mentioned in Type 2, Objective 3, Discourse 6. And the completion, which finished half of Wahhabism, will soon come in question 15, Insha Allah. In it, Shah Abdul Aziz Sahib has accepted as a proven semblance of doubt that Allah Almighty gives such vastness to the perceptions of some noble saints. The words of Maulvi Sahib here are such that they give both sides of affirmation and denial. Anyway, if they find Shah Sahib mistaken in this saying and consider their 'if though' as for an hour or an assumption, it is still not harmful to us, nor can it correct your speech, as you will see, Insha Allah. - Author

(1) Al-Quran 106/12 (2) Musnad Ahmad bin Hanbal, narrated from Abdullah bin Umar, Dar al-Ma'rifah Beirut, 2/78

हाल का प्रकटीकरण ज़ायर (दर्शनार्थी) के ज्ञान से बाहर और जगत के प्रतिपालक की इच्छा के बिना है। दुआ के समय वे बुज़ुर्ग ज़ायर की दुआ सुन लें, जब ज़ायर बिना ज्ञान प्राप्त किए सवाल करता है, तो मानो सवाल करने वाले ने कब्र वालों को पूर्ण रूप से सुनने और देखने वाला मान लिया है, और यह विश्वास शिर्क(बहुदेववाद) के अलावा कुछ नहीं है, और कम से कम शिर्क का आभास और संदेह तो निश्चित रूप से हुआ है, जिससे बचना और परहेज़ करना आवश्यक और अनिवार्य है। फुरकान-ए-हमीद (कुरान) में कई स्थानों पर इसका स्पष्ट वर्णन है, और उनमें से सूरह यूसुफ में है: "और उनमें से अधिकांश अल्लाह पर ईमान नहीं लाते, सिवाय इसके कि वे उसके साथ शिर्क करते हैं।" (1)

और हदीस शरीफ में है: "जिसने अल्लाह के अलावा किसी और की कसम खाई, उसने शिर्क किया।" (2)

और इस मनाही का कारण इसके अलावा कुछ नहीं है कि कसम खाने वाले की अल्लाह के अलावा किसी और की कसम से यह ज़ाहिर होता है कि वह अपने विश्वास में अल्लाह के अलावा किसी और को भी नुकसान पहुँचाने वाला समझता है, जो शिर्क का अर्थ है। और अल्लाह तआला बेहतर जानता है।

इस जवाब को देखकर और अधिक आश्चर्य हुआ कि मौलवी साहब का कोई लेख आज तक इन नवाचारों (बिदअत) के विरुद्ध नज़र से नहीं गुज़रा। (पिछले पृष्ठ का शेष फुटनोट): कि मृत्यु स्वयं इसी भौतिक संबंध के टूटने का नाम है, तो कुछ मृतकों का विशेष उल्लेख बिना किसी कारण के है, बल्कि सभी मृतकों को यह प्राप्त होना चाहिए, और वास्तव में ऐसा ही है। इसीलिए बड़े शोधकर्ता स्पष्ट रूप से कहते हैं कि मृत्यु के बाद की समझ जीवन की समझ की तुलना में अधिक स्पष्ट और उज्ज्वल होती है। अंतिम उद्देश्य में इसके कुछ स्पष्टीकरण आएंगे, यदि अधिक नहीं तो टाइप 2, उद्देश्य 3, प्रवचन 4 में शाह अब्दुल अज़ीज़ साहब का कथन ही देख लिया जाए। - लेखक

नोट 3: इस कथन के माध्यम से मौलवी साहब शाह अब्दुल अज़ीज़ साहब के इस कथन की ओर संकेत कर रहे हैं, जिसका एक हिस्सा टाइप 2, उद्देश्य 3, प्रवचन 6 में वर्णित होगा। और पूर्णता, जिसने आधी वहाबियत का काम तमाम कर दिया, जल्द ही प्रश्न 15 में आएगी, इंशा अल्लाह। इसमें शाह अब्दुल अज़ीज़ साहब ने एक सिद्ध संदेह को स्वीकार किया है कि अल्लाह तआला कुछ औलिया-ए-कराम की समझ को ऐसी व्यापकता देता है। मौलवी साहब के शब्द यहाँ ऐसे हैं जो

स्वीकृति और अस्वीकृति दोनों के पहलू देते हैं। खैर, अगर वे इस कथन में शाह साहब को गलत पाते हैं और अपने 'अगर हालांकि' को केवल एक क्षण या कल्पना के लिए ही मानते हैं, तो भी यह हमारे लिए हानिकारक नहीं है, और न ही यह आपके भाषण को सही कर सकता है, जैसा कि आप देखेंगे, इंशा अल्लाह। - लेखक

(1) अल-कुरान 106/12 (2) मुसनद अहमद बिन हंबल, अब्दुल्ला बिन उमर से वर्णित, दार अल-मआरिफा बेरूत, 2/78

جلد نہم فتاوی رضویہ

انکشافِ حال خارج از علمِ زائر اور بغیر اختیارِ پروردگارِ عالم ہے۔ بر وقتِ دعا زائر کی وہ بزرگ اس کی دعا کو سن لیں، جب زائر بلا حصولِ علم مرتکب سوال کا ہے تو گویا سائل نے اہل قبر کو سمیع و بصیر علی الاطلاق قرار دیا ہے، اور نہیں ہے یہ اعتقاد مگر شرک، اور ادنیٰ درجہ کا شائبہ و شبہ شرک تو ضرور ہوا، جس سے احتراز و اجتناب لازم و واجب، فرقانِ حمید میں بمقاماتِ متعددہ اس کا بیان بتصریحِ تام و موجودہ از انجملہ ہے۔ سورہ یوسف میں ہے: وَمَا یُؤْمِنُ اَکْثَرُھُمْ بِاللّٰہِ اِلَّا وَھُمْ مُّشْرِکُوْنَ (۱)۔ | اور ان میں اکثر خدا کو نہیں مانتے مگر شرک کرتے ہوئے ۔ (ت)

اور حدیث شریف میں ہے: من حلف بغیر اللہ فقد اشرك (۲)۔ | جس نے غیر خدا کی قسم کھائی اس نے شرک کا کام کیا۔ (ت)

اور اس حرمت کا سبب سوائے اس کے نہیں کہ حالف کی اس قسم غیر خدا سے ظاہر ہوتا ہے کہ وہ اپنے عقیدے میں غیر خدا کو بھی ضرر رساں جانتا ہے جو معنی شرک ہے۔ واللہ تعالیٰ اعلم

اس جواب کو دیکھ کر زیادہ حیرت یہ ہوئی کہ مولوی صاحب کی کوئی تحریر ان خلافِ محدثہ میں آج تک نظر سے (بقیہ حاشیہ صفحہ گزشتہ) کہ موت خود اسی قطع تعلق مادی کا نام ہے، تو بعض اموات کی تخصیص محض بے وجہ، بلکہ تمام اموات کو حاصل ہونا چاہئے، اور بیشک ایسا ہے۔ اسی لیے اکابر محققین تصریح فرماتے ہیں کہ موت کے بعد کا ادراک بہ نسبت ادراکِ حیات کے صاف تر اور روشن تر ہے۔ مقصد اخیر میں اس کی بعض تصریحیں آئیں گی، زیادہ نہیں تو نوع دوم مقصد سوم مقال چہارم میں شاہ عبدالعزیز صاحب ہی کا قول ملاحظہ ہو جائے۔ منہ

عہ ۳: مولوی صاحب اس کلام سے شاہ عبدالعزیز صاحب کے اس قول کی طرف مشیر ہیں، جس کا ایک پارہ نوع ۲ مقصد ۳ مقال ۶ میں مذکور ہوگا۔ اور تتمہ جس نے آدھی وہابیت کا کام تمام کر دیا عنقریب سوال ۱۵ میں آتا ہے ان شاء اللہ تعالیٰ، اس میں شاہ عبدالعزیز صاحب نے شائبہ شبہ ثابت مانا ہے کہ اللہ تعالیٰ بعض اولیائے کرام کے مدارک کو ایسی وسعت دیتا ہے، مولوی صاحب کے لفظ یہاں ایسے واقع ہوئے جو اقرار و انکار دونوں کا پہلو دیں، خیر اگر شاہ صاحب کو اس قول میں خاطی پائیں اور اپنی اگر چہ کو اساعت یا فرض ہی پر محمول رکھیں تاہم ہمیں مضر نہیں، نہ آپ کے کلام کی اصلاح کر سکتا ہے، کما ستری، ان شاء اللہ تعالیٰ۔ منہ

۱ القرآن ۱۲/۱۰۶ ۲ مسند احمد بن حنبل مروی از عبد اللہ بن عمر دارالمعرفہ بیروت ۲/۷۸

Fatawa Razawiya, Volume 9

...did not pass. The impression was that they were intentionally avoiding it, but rather they themselves considered the exaggeration of the deniers worthy of rejection. Even more strange was that when the pen first got permission to write 'Bismillah', the style of addressing both parties was contradictory, then completely incomplete in approach and failing in the objective. The alienation of proof and detachment from the claim, though an old custom of the Najdi gentlemen, is far from excellence. For some reasons, the humble writer intended to show consideration to the Maulana to some extent, and therefore his noble name is hidden and unwritten in these lines, but expressing the truth according to the Quranic text is necessary. And in the Sahih Hadith, 'Ad-Deenu An-Nushu likulli Muslim' [Religion is well-wishing for every Muslim. T.] is narrated. My objective was to work with profound research and clear investigation on this issue, and to conclude with such a comprehensive detail and brilliant writing that it would be a complete containment of the proofs of affirmation and a sufficient encompassment of the removal of doubts. But when I saw that the reply itself was miles away from the school of thought of the deniers, and most of the illusions presented from that side were scattered like dust by your own writing, then it became very easy and required less effort for me. Finally, the opinion settled on this: for now, I should present the objections against the Maulana's specific speech that are in my mind, and mention a few traditions, narrations, and sayings of ancient scholars and a brief discussion on the original objective, i.e., seeking supplication from the pure souls, and their grace and bounty after death, and then end the discourse. And the remaining expert investigations and powerful scrutinies, which by the grace of Allah are present in the mind of this humble servant, I will leave them for a future round, conditional on the Maulana's response. In short, this brief treatise will, God willing, prove that this few-line writing of the Maulana and on top of it their original school of thought (1) is vulnerable from four hundred (2-4) angles. And Allah is the Helper and from Him I seek help.

THE FIRST OBJECTIVE: REGARDING OBJECTIONS AND REMOVING DOUBTS (The first objective regarding objections and the removal of doubts)

And there are two types in it: Type One: Regarding the intended objections. Perhaps the Maulana might be displeased with the name 'objections', therefore it is appropriate that the objections be in the form of questions. So I say: And success is through Him and through Him is the arrival at the peaks of investigation (So I say, and success is from God, and from Him...)

(1): By "original school of thought" is meant the clarification of the elders of the school of thought regarding the Maulana, that the deceased is inanimate (Jamad). 12 [Author] May his Lord protect him.

1 Sahih al-Bukhari, Chapter: Religion is Sincerity, Qadeemi Kutub Khana Karachi 1/13.

फ़तावा रज़विया, खंड 9

...नहीं गुज़री थी। गुमान यह था कि वे जानबूझकर परहेज़ कर रहे हैं, बल्कि इनकार करने वालों के अतिवाद को खुद भी इनकार के योग्य ठहराते हैं। अचरज की बात तो यह है कि जब पहली बार 'बिस्मिल्लाह' लिखने के लिए कलम को अनुमति मिली, तो दोनों पक्षों के संबोधन का तरीका विरोधाभासी था, फिर पूरी तरह से अपूर्ण प्रस्तुति और उद्देश्य में विफलता। दलील की अजनबियत और दावे से बेतल्लुकी, हालांकि नजदियों का पुराना तरीका है, लेकिन यह उत्कृष्टता से बहुत दूर है। फकीर (लेखक) कुछ कारणों से मौलवी साहब का एक सीमा तक लिहाज रखना चाहता था, इसलिए इन पंक्तियों में उनका प्रतिष्ठित नाम छिपा हुआ और अलिखित है, लेकिन कुरान की आयत के अनुसार सत्य को प्रकट करना आवश्यक है। और सही हदीस में 'अद-दीनु अन-नस्हु लिकुल्लि मुस्लिम' [दीन हर मुसलमान की खैरख्वाही है। त.] वर्णित है। मेरा उद्देश्य यह था कि इस मसले में गहन शोध और स्पष्ट जांच से काम लूँ, और इस व्यापक विवरण और शानदार लेखन के साथ समाप्त करूँ कि वह प्रमाणों का पूर्ण संकलन हो और शंकाओं के निवारण के लिए पर्याप्त हो। लेकिन जब देखा कि स्वयं जवाब इनकार करने वालों के मज़हब से कोसों दूर है, और उस तरफ से पेश किए जाने वाले अधिकांश भ्रम आपके अपने लेखन से धूल के समान उड़ गए, तो मेरे लिए यह बहुत आसान हो गया और कम मेहनत की आवश्यकता हुई। अंततः राय इस पर टिकी कि फिलहाल मौलवी साहब के विशेष भाषण पर जो आपत्तियां मेरे मन में हैं, उन्हें प्रस्तुत करूँ और कुछ रिवायतें, हदीसें और प्राचीन विद्वानों के कथन और मूल उद्देश्य यानी पवित्र आत्माओं से दुआ माँगना और मृत्यु के बाद उनकी कृपा और दान का उल्लेख करके बात समाप्त करूँ। और शेष विशेषज्ञ जांच और शक्तिशाली शोध, जो अल्लाह के फज़ल से इस तुच्छ सेवक के मन में मौजूद हैं, उन्हें मौलवी साहब के उत्तर की शर्त पर भविष्य के लिए सुरक्षित रखूँ। संक्षेप में, यह संक्षिप्त शोध-पत्र इंशा अल्लाह साबित कर देगा कि मौलवी साहब का यह चंद पंक्तियों का लेखन और उस पर उनका मूल मज़हब (1) चार सौ (2-4) पहलुओं से पकड़ में आने योग्य है। और अल्लाह ही सहायक है और उसी से मैं मदद माँगता हूँ।

पहला उद्देश्य: आपत्तियों और शंकाओं के निवारण के विषय में (पहला उद्देश्य आपत्तियों और शंकाओं के निवारण में)

और इसमें दो प्रकार हैं: प्रकार एक: लक्षित आपत्तियों में। शायद मौलवी साहब 'आपत्ति' नाम से नाराज हों, इसलिए उचित है कि आपत्तियां सवाल के रूप में हों। तो मैं कहता हूँ: और सफलता उसी

से है और उसी के माध्यम से शोध की चोटियों तक पहुँचना है (तो मैं कहता हूँ, और खुदा ही से तौफीक, और उसी की...)

---

(1): 'मूल मज़हब' से मौलवी साहब के मज़हब के बड़ों का स्पष्टीकरण मुराद है कि मृत निर्जीव (जमाद) है। 12 [लेखक] उसका रब उसे सलामत रखे।

---

1 सहीह अल-बुखारी, अध्याय: दीन खैरख्वाही है, कदीमी कुतुब खाना कराची 1/13.

نہ گزری تھی۔ گمان یوں تھا کہ قصداً احتراز فرماتے ہیں بلکہ غلو منکرین کو خود بھی لائق انکار ٹھہراتے ہیں۔ طرفہ تر یہ کہ پہلی بسم اللہ قلم کو اذن رقم ملا تو یوں کہ طرز ارشاد فریقین کے مضاد، پھر سراپا نا تمام تقریب و ناکامی مدعا۔ واجنبیت دلیل و بے تعلقی دعویٰ اگرچہ حضرات نجدیہ کا قدیمی دستور، مگر فضیلت سے بغایت دور، فقیر کو بعض وجوہ سے مولوی صاحب کی رعایت ایک حد تک منظور، و لہٰذا ان سطور میں نام نامی مستور و نامسطور، مگر اظہارِ حق بنص قرآن ضرور، اور حدیث صحیح میں الدین النصح لکل مسلم (1) [دین ہر مسلم کی خیر خواہی ہے۔ ت] ماثور، میرا مقصد تھا کہ اس مسئلہ میں تحقیق بالغ و تنقیح بازغ سے کام لوں، اس تفصیل جامع و تحریر لامع سے اختتام دوں کہ براہین اثبات کا حصر وافی ہو، از ہاق شبہات کا احاطہ کافی ہو، مگر جب دیکھا کہ خود جواب جناب مذہب منکرین سے منزلوں دور، اور اکثر اوہام جو ادھر سے پیش ہوتے ہیں آپ ہی کی تحریر سے ہباءً منثور، تو مجھے بہت کفایت مؤنت و کمی مشقت ہوئی، اور آخر رائے اس پر ٹھہری کہ بالفعل جناب کی تقریر خاص پر جو اعتراضات میرے ذہن میں ہیں گزارش کر کے چند آثار و احادیث و اقوال علمائے قدیم و نبذ بحث اصل مدعا، یعنی ارواح طیبہ سے طلبِ دعا، اور بعد وصال ان کا فیض و نوال لکھ کر ختم کلام کروں اور بقیہ تحقیقات ماہرہ و تدقیقات قاہرہ جو بحمد اللہ حاضر خاطر بندہ قاصر ہیں، انہیں بشرطِ جواب مولوی صاحب دور آئندہ پر محول رکھوں، بالینمہ یہ مختصر رسالہ ان شاء اللہ تعالیٰ ثابت کر دے گا کہ مولوی صاحب کی یہ چند سطری تحریر اور اس پر مع ان کے اصل مذہب عہ چار سو ۲-۴ وجہ سے وار و گیر۔ واللہ المعین و بہ استعین۔

المقصد الاول فی الاعتراضات وازاحۃ الشبہات (پہلا مقصد اعتراضات اور ازالہ شبہات میں)

اور اس میں دو نوع ہیں: نوع اول اعتراضات مقصودہ میں۔ شاید مولوی صاحب نام اعتراضات سے ناراض ہوں، لہذا مناسب کہ پیرا یہ سوال میں اعتراض ہوں۔ فاقول: و بہ التوفیق و بہ الوصول الی ذری التحقیق (تو میں کہتا ہوں، اور خدا ہی سے توفیق، اور اسی کی

عہ: اصل مذہب سے کبرائے مذہب مولوی صاحب کی تصریح مراد ہے کہ میت جماد ہے ۱۲ منہ سلمہ ربہ

---

(1) صحیح البخاری باب الدین النصیحہ قدیمی کتب خانہ کراچی ۱/ ۱۳

Fatawa Razawiya Volume 9

...reaches the heights of research with [divine] help. (T)

Question (1): You have deemed hearing sounds and seeing forms impossible due to the barrier of the grave's soil. By this, do you mean intellectually impossible (Aqli), legally impossible (Shar'i), or habitually impossible (Adi)? On the first assumption, I wish some definitive proof had been established for its impossibility. I ask, is Allah Almighty not capable that this barrier does not prevent perception? If you say no, then what is the answer to "Indeed, Allah is powerful over all things" (Surah Al-Baqarah 2:109)? And please state where the impossibility lies if you say yes. On the second assumption, prove from Quranic verses and authentic Hadiths that as long as these veils remain as barriers, sight and hearing will not be possible; let the sacred words be kept in mind. On the third assumption, is the habit of the people of this world meant, or the habit of the people of Barzakh? In the first case, what is the proof that a worldly obstacle is also an obstacle in Barzakh? Do you consider Barzakh to be just another form of this world? The people of this world do not see angels except through a break in habit (a miracle), but those in Barzakh generally see them, even the disbelievers. The Hadiths regarding Munkar and Nakir are not something hidden. In the second case, how did you come to know this habit of the people of Barzakh? The deceased haven't come back to explain, and if knowledge was gained through another means, then please state it, and it is hoped that the entire claim will be taken into consideration.

Question (2): From this same division, if one of the first two possibilities is intended, then your final statement refutes the first, as what is intellectually impossible cannot be subject to permission (Idhn), and permission will never relate to what is legally impossible. On the third possibility, believing in it is believing in something possible, as every habitual impossibility is intellectually possible. Associating partners (Shirk-e-Azam) is believing in intellectual impossibilities. Thus, for the belief in an intellectual possibility to be Shirk is an intellectual impossibility and clearly false—or in other words, more evident and clear. (T) Your previous statement clearly bears witness that some deceased are granted such increased perception that if they give special attention, they can, by Allah's permission, hear the prayers of visitors. I ask: Is Allah Almighty capable or not of granting them this power for all times? Denying this is very difficult: "Were We then weary with the first creation?" (Surah Qaf 50:15). If you admit it, does the deceased become a partner with God by receiving this attribute? I know you will not say yes. And when it is settled as "no", then I ask: how can that

attribute, the proof of which does not necessitate associating partners with God, be declared as making one a partner with God? And how can something that is not Shirk in reality even have a semblance of it?

Question (3): Should a person consider only those deeds as lawful which he is certain will be useful, and consider the rest as unlawful, or is hope sufficient even without knowledge? In the first case, it would be obligatory to consider prayer, fasting, and all good deeds as unlawful, for they are not without acceptance and utility, and...

1. Al-Quran 2/109
2. Al-Quran 50/15

फ़तावा रज़विया जिल्द 9

...मदद से तहक़ीक़ की बुलंदियों तक पहुंचना है। (त)

सवाल (1): आपने कब्र की मिट्टी को रुकावट मानकर आवाज़ सुनने और सूरत देखने को मुहाल (असंभव) ठहराया है। इससे आपका तात्पर्य अक्ली (बौद्धिक), शरई (कानूनी) या आदी (आदतन) मुहाल से है? पहले विकल्प के आधार पर, काश इसके मुहाल होने पर कोई पक्का प्रमाण (बुरहान-ए-क़ाते) पेश किया गया होता। मैं पूछता हूँ कि क्या अल्लाह तआला इस पर क़ादिर (सक्षम) नहीं है कि यह रुकावट इंद्रियों को न रोके? अगर आप कहें 'नहीं', तो "बेशक अल्लाह हर चीज़ पर क़ादिर है" (कुरान 2:109) का क्या जवाब होगा? और अगर 'हाँ', तो फिर मुहाल होना कहाँ रहा? दूसरे विकल्प के आधार पर, कुरान की आयतों और सही हदीसों से साबित कीजिए कि जब तक ये पर्दे रुकावट रहेंगे, देखना और सुनना मुमकिन नहीं होगा; पवित्र शब्दों को ध्यान में रखा जाए। तीसरे विकल्प के आधार पर, क्या दुनिया वालों की आदत मुराद है या बरज़ख़ वालों की? पहले मामले में क्या दलील है कि दुनियावी रुकावट बरज़ख़ में भी रुकावट है? क्या आपके नज़दीक बरज़ख़ दुनिया का ही एक रंग है? दुनिया वाले फ़रिश्तों को नहीं देख पाते सिवाय इसके कि कोई चमत्कार हो, लेकिन बरज़ख़ वाले आम तौर पर देखते हैं, यहाँ तक कि काफ़िर भी। मुनकर और नकीर से जुड़ी हदीसें कोई छुपी हुई चीज़ नहीं हैं। दूसरे मामले में आपने बरज़ख़ वालों की यह आदत कैसे जानी? मुर्दों ने तो आकर बताया नहीं, और अगर किसी और तरीके से इल्म (ज्ञान) हुआ तो बयान फरमाएं और उम्मीद है कि पूरे दावे को ध्यान में रखा जाएगा।

सवाल (2): इसी तर्क के अनुसार, यदि पहले दो विकल्पों में से कोई एक मुराद है, तो आपकी बाद वाली बात पहली बात को झुठलाती है, क्योंकि जो अक्ली तौर पर मुहाल है उस पर 'इज़्न' (अनुमति) लागू नहीं हो सकता, और जो शरई तौर पर मुहाल है उस पर 'इज़्न' कभी लागू नहीं होगा। तीसरे विकल्प के आधार पर, उसका विश्वास करना एक 'मुमकिन' का विश्वास करना है, क्योंकि हर 'आदी मुहाल', 'अक्ली मुमकिन' है। और 'शिर्कए-आज़म' (अल्लाह के साथ किसी को शरीक करना) अक्ली मुहालात का विश्वास करना है। अतः एक अक्ली मुमकिन का विश्वास करना शिर्क होना अक्ली तौर पर गलत और स्पष्ट रूप से दोषपूर्ण है - और दूसरे शब्दों में और भी स्पष्ट है। (त) आपकी पिछली इबारत (लेख) साफ गवाह है कि कुछ मुर्दों को ऐसी बोध शक्ति (इदरीक) प्रदान की जाती है कि यदि वे विशेष ध्यान दें, तो अल्लाह की अनुमति से ज़ायरीन (दर्शनार्थियों) की दुआ सुन सकते हैं। मैं कहता हूँ कि अल्लाह तआला इस पर क़ादिर है या नहीं कि यह शक्ति उन्हें हर समय के लिए प्रदान कर दे?

इसका इंकार करना बहुत कठिन है: "तो क्या हम पहली रचना से थक गए?" (कुरान 50:15)। यदि आप इसे स्वीकार करते हैं, तो क्या यह गुण मिलने से मुर्दा ख़ुदा का शरीक (साझेदार) हो गया या नहीं? मैं जानता हूँ कि आप 'हाँ' नहीं कहेंगे। और जब 'नहीं' तय हो गया, तो मैं पूछता हूँ कि जिस गुण के सिद्ध होने से ख़ुदा की शिरकत लाज़िम नहीं आई, उसे साबित करने से ख़ुदा का शरीक होना कैसे मान लिया गया? और जिसकी असलियत शिर्क नहीं है, उसमें शिर्क का गुमान कैसे हुआ?

सवाल (3): क्या आदमी उसी काम को हलाल (वैध) माने जिसके बेकार न होने का उसे यकीन हो, और बाकी को हराम समझे, या फिर सिर्फ उम्मीद काफी है चाहे इल्म न हो? पहली सूरत में तो यह ज़रूरी हो जाएगा कि नमाज़, रोज़ा और तमाम नेक आमाल को हराम समझा जाए क्योंकि वे बिना क़बूलियत और उपयोगिता के नहीं हैं और...

1. अल-क़ुरान 2/109
2. अल-क़ुरान 50/15

पेज 682/948

فتاوٰی رضویہ جلد نہم

مدد سے بلندئ تحقیق تک رسانی ہے۔ ت)

سوال (۱): جناب نے قبر کی مٹی حائل دیکھ کر آواز سننی ، صورت دیکھنی محال ٹھہرائی، اس سے مراد محال عقلی یا شرعی یا عادی، بر تقدیر اول کاش کوئی برہانِ قاطع اس کے استحالہ پر قائم فرمائی ہوتی۔ میں پوچھتا ہوں کہ اللہ تعالٰی قادر ہے کہ یہ حائل مانع احساس نہ ہو، اگر کہئے نہ، تو اِنَّ اللّٰہَ عَلٰی کُلِّ شَیْئٍ قَدِیْرٌ ۱ (بیشک اللہ تعالٰی ہر شے پر قادر ہے۔ ت) کا کیا جواب؟ اور فرمائیے ہاں تو استحالہ کہاں؟ بر تقدیر ثانی آیاتِ قرآنیہ واحادیثِ صحیحہ سے ثابت کیجئے کہ جب تک یہ حجاب حائل رہیں گے ابصار وسماع نہ ہو سکیں گے، الفاظِ شریفہ ملحوظ خاطر رہیں۔ بر تقدیر ثالث عادتِ اہلِ دنیا مراد یا عادتِ اہلِ برزخ۔ در صورتِ اول کیا دلیل ہے کہ مانعِ دنیوی حائلِ برزخ بھی ہے۔ کیا جناب کے نزدیک برزخ دنیا کا ایک رنگ ہے؟ اہلِ دنیا ملائکہ کو نہیں دیکھتے مگر بطور خرقِ عادت اور برزخ والے عموماً دیکھتے ہیں، حتٰی کہ کفار بھی۔ احادیث نکیرین چھپنے کی چیز نہیں، در صورتِ دوم جناب نے یہ عادتِ اہلِ برزخ کیونکر جانی، اموات نے تو آکر بیان ہی نہ کیا، اور طریقے سے علم ہوا تو ارشاد ہو، اور مامول کہ دعوٰی بتمامہا زیر لحاظ رہے۔

سوال (۲): اسی تشقیق سے احد الشقین الاولین مراد تو آپ ہی کا آخر کلام اس کا اول راد کہ محال عقلی، صالح تعلق اذن نہیں، اور محال شرعی سے ہرگز اذن متعلق نہ ہوگا، ور شق ثالث اسکا اعتقاد ممکن کا اعتقاد کہ ہر محالِ عادی، ممکن عقلی ہے اور شرکِ اعظم محالات عقلیہ کا اعتقاد، تو اعتقاد ممکن عقلی کا شرک ہونا محال عقلی بین الفساد وبعبارۃ اخری اوضح واجلی (اور بعباراتِ دیگر زیادہ واضح و روشن۔ ت) جناب کی پچھلی عبارت صاف گواہ کہ بعض اموات کو ایسی زیادتِ ادراک عطا ہوتی ہے کہ وہ توجہ خاص کریں تو باذن اللہ دعائے زائرین سن سکتے ہیں۔ میں کہتا

ہوں کہ اللہ تعالیٰ قادر ہے یا نہیں کہ یہ قوت انھیں ہر وقت کے لیے بخشے بر تقدیر انکار سخت مشکل، اَفَعَیِیْنَا بِالْخَلْقِ الْاَوَّلِ ۲ (تو کیا ہم پہلی تخلیق سے تھک گئے۔ ت) در صورتِ اقرار میت یہ وصف ملنے سے خدا کا شریک ہو گیا یا نہیں؟ میں جانتا ہوں ہاں نہ کہئے گا، اور جب نہ کہ ٹھہری تو میں عرض کروں، وہ وصف جس کے ثبوت سے خدا کی شرکت لازم نہ آئی، اس کے اثبات سے خدا کا شریک ہونا کیونکر قرار پایا؟ او رجس کی حقیقت شرک نہیں اس کا گویا شائبہ کیونکر ہوا؟

سوال (۳): کیا آدمی اسی کام کو حلال جانے جس کے بیکار آمد ہونے پر یقین رکھتا ہو، باقی کو حرام سمجھے یا صرف امید کافی اگرچہ علم نہ ہو، در صورتِ اولیٰ واجب کہ نماز روزہ اور تمام اعمالِ حسنہ کو حرام جانیں کہ وہ بے قبول وبکار آمد نہیں اور

۱ القرآن ۲/۱۰۹ ۲ القرآن ۵۰/۱۵

Fatawa Razawiyya (Volume 9)

...none among us can say that their deeds are certainly accepted. In the second case, when even according to you, some great elders are admitted to have such powerful perception that, with special attention and by the permission of Allah Almighty, they hear the prayer of the visitor, then there is always hope and expectation from Divine grace that while there is no definitive knowledge of them hearing, there is also no certainty of them not hearing. Therefore, how can such speech be considered improper? You should keep your general ruling in mind.

Question (4): It is evident that those at whose doors beggars ask for help are not always open-handed. Now, in the belief of these beggars, does every person have information and awareness about the internal state of the household or not? If you say yes, then just as according to you, the poor visitors have considered the saints to be Absolute Hearers and Seers, similarly, you have considered these beggars, yogis, and sadhus to be Absolute Knowers and Aware. Seek refuge in Allah, the Most Glorified and High. And if you say no, then while beggars commit to asking without obtaining knowledge, according to your view, do they consider the homeowners to be Absolute Givers and Powerful or not? On the first assumption, it becomes necessary that if asking is not shirk (polytheism), it must at least contain a degree of doubt and suspicion of shirk. However, many great scholars and saints have taken this step at the time of need. Hazrat Abu Sa'id Kharraz (may his secret be sanctified), whose greatness of gnosis and majesty of status are clearer than the midday sun, used to spread his hands and say "Shai'an lillah" (Something for Allah's sake) in times of famine. Similarly, asking at the time of Shari'ah-stipulated need is narrated from the leader of the group Junayd Baghdadi's teacher Hazrat Abu Hafs Haddad, and Hazrat Ibrahim bin Adham, and Imam Sufyan Thawri (may Allah Almighty have mercy on them all). "All this was narrated by the great scholar al-Munawi in al-Taysir." (All this has been narrated by Allama Munawi in Taysir. - T). Jurisprudential books are just witnesses that in some cases, the learned scholars have declared asking to be obligatory. Heaven forbid! According to your view, this would mean shirk or the suspicion of shirk becoming obligatory. On the second assumption, the poor visitor without obtaining knowledge...

Footnote 1: If the acceptance is factual, then the matter is obvious, and it is by way of suggestion and estimation. So it is submitted that after accepting this case, what room is left for this speech? This point should be kept in mind. 12m

Footnote 2: The comparison is intended in its essence, that this question is a summary rebuttal; otherwise, in our view, neither is it just such absolute knowledge and awareness, nor just such absolute hearing and seeing. 12m

Footnote 3: Under the saying of the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him): "Whoever asks without poverty, it is as if he is eating embers." 12m (T) Under the guidance of the Noble Messenger (peace and blessings of Allah be upon him): He who asked without need, it is as if he is filling his stomach with embers. 12m (T)

1. Al-Taysir Sharh Jami' al-Saghir, under the hadith "He who asked...", Maktaba al-Imam al-Shafi'i, Riyadh, Saudi Arabia, 2/221.

...हम में से कोई नहीं कह सकता कि उसके कर्म निश्चित रूप से स्वीकृत हैं। दूसरी स्थिति में, जब आपके अनुसार भी कुछ महान बुज़ुर्गों के पास इतनी शक्तिशाली धारणा शक्ति होना मान्य है कि वे अल्लाह के आदेश से विशेष ध्यान देकर आगंतुक की प्रार्थना सुन लेते हैं, तो वहाँ ईश्वरीय कृपा से हर समय यह आशा और अपेक्षा रहती है कि सुनने का ज्ञान न होने पर भी, न सुनने का भी कोई निश्चय नहीं है। फिर यह कहना कैसे अनुचित हो सकता है? आपको अपना सामान्य नियम ध्यान में रखना चाहिए।

प्रश्न (4): यह तो स्पष्ट है कि जिनके दरवाजों पर भिखारी माँगते हैं, वे हर समय उदार नहीं होते। अब इन भिखारियों के विश्वास में, क्या हर व्यक्ति को घर की आंतरिक स्थिति की जानकारी और पता है या नहीं? यदि आप 'हाँ' कहते हैं, तो जिस तरह आपके अनुसार बेचारे आगंतुकों ने संतों को 'पूर्ण श्रोता और द्दष्टा' (समीअ ओ बसीर अल-इतलाक़) माना, वैसे ही आपने इन भीख माँगने वालों, योगियों और साधुओं को 'पूर्ण ज्ञाता और अवगत' (अलीम ओ ख़बीर अल-इतलाक़) माना। अल्लाह की शरण! और यदि आप कहें 'नहीं', तो जब भिखारी बिना ज्ञान प्राप्त किए माँगते हैं, तो आपके अनुसार वे घर वालों को 'पूर्ण दाता और सर्वशक्तिमान' (मुअती ओ क़दीर अल-इतलाक़) मानते हैं या नहीं? पहली धारणा पर यह आवश्यक हो जाता है कि यदि माँगना शिर्क(बहुदेववाद) नहीं है, तो कम से कम शिर्क का संदेह और लेश तो ज़रूर होगा। हालाँकि कई महान विद्वानों और संतों ने ज़रूरत के समय ऐसा किया है। हज़रत अबू सईद खर्राज़ (अल्लाह उनकी पवित्र आत्मा पर कृपा करे), जिनकी ज्ञान की महानता और पद की गरिमा दोपहर के सूरज से भी अधिक स्पष्ट है, अकाल के समय हाथ फैलाते और "शैअन लिल्लाह" (अल्लाह के वास्ते कुछ) कहते थे। इसी तरह, शरीयत की ज़रूरत के समय माँगना सैय्यद-उत-ताइफ़ा जुनैद बगदादी के उस्ताद हज़रत अबू हफ़्स हद्दाद, हज़रत इब्राहिम अदहम और इमाम सुफ़यान थौरी (अल्लाह उन सब पर रहमत करे) से वर्णित है। "यह सब अल्लामा मुनावी ने अल-तयसीर में उद्धृत किया है।" (यह सब अल्लामा मुनावी ने तयसीर में उद्धृत किया है। - टी)। फ़िक़्ह (इस्लामी न्यायशास्त्र) की पुस्तकें गवाह हैं कि कुछ स्थितियों में विद्वानों ने माँगना अनिवार्य (फ़र्ज़) बताया है। अल्लाह की पनाह! आपके अनुसार तो यह शिर्क या शिर्क का संदेह अनिवार्य होना होगा। दूसरी धारणा पर, बेचारा आगंतुक बिना ज्ञान प्राप्त किए...

फुटनोट 1: यदि स्वीकृति वास्तविक है तो बात स्पष्ट है और यह सुझाव और अनुमान के रूप में है। तो यही निवेदन किया जाता है कि इस स्थिति को मानकर फिर इस बात की क्या गुंजाइश है? यह बिंदु याद रखना चाहिए। 12m

फुटनोट 2: तुलना मूल रूप से अभीष्ट है कि यह प्रश्न एक सारांश खंडन है, अन्यथा हमारे निकट न केवल इतना पूर्ण ज्ञान और समाचार है, न ही केवल इतना पूर्ण श्रवण और दर्शन। 12m

फुटनोट 3: रसूलुल्लाह (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) के इस कथन के तहत: "जिसने बिना गरीबी के माँगा, उसने मानो अंगारे खाए।" 12m (टी) अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) के मार्गदर्शन के तहत: जिसने बिना ज़रूरत के माँगा, उसने मानो अपने पेट में अंगारे भर लिए। 12m (टी)

1. अल-तयसीर शरह जामिअ अल-सगीर, हदीस के तहत "जिसने माँगा...", मकतबा अल-इमाम अल-शाफ़ई, रियाद, सऊदी अरब, 2/221.

पृष्ठ 683 / 948

ہم میں کوئی نہیں کہ سکتا کہ اس کے اعمال قطعاً مقبول __ در صورت ثانیہ جب آپ کے نزدیک بھی بعض اکابر کا ایسا قوی الادراک ہونا مسلم کہ بتوجہ خاص باذن اللہ تعالٰی دعائے زائر سن لیں تو وہاں کرم الٰہی سے ہر وقت امید و توقع موجود کہ سننے کا علم نہیں، تو نہ سننے پر بھی جزم نہیں، پھر کلام کیوں کر، ناروا ہو سکتا ہے۔ جناب کو اپنا اطلاق حکم ملحوظ خاطر عاطر رہے۔

سوال (۴): یہ تو ظاہر کہ سائل جن کے دروازوں پر سوال کرتے ہیں وہ ہر وقت فراخ دست نہیں ہوتے، اب ان سائلوں کو حضرت کے اعتقاد میں ہر شخص کے حال خانہ پر اطلاع و وقوف ہے یا نہیں، اگر کہے ہاں تو جس طرح جناب کے نزدیک زائر بیچاروں نے حضرت اولیاء کو سمیع و بصیر علی الاطلاق مانا، یونہی آپ نے ان بھیک مانگنے والوں، جوگیوں، سادھووں کو علیم و خبیر علی الاطلاق جانا۔ والعیاذ باللہ سبحنہ و تعالٰی، اور اگر فرمائیے نہ، تو جبکہ سائل بلا حصول علم مرتکب سوال ہوتے ہیں، آپ کے طور پر گویا اہل بیوت کو معطی و قدیر علی الاطلاق قرار دیتے ہیں یا نہیں __ بر تقدیر اول واجب ہوا کہ سوال شرک نہ ہو تو ادنی درجہ شائبہ و شبہہ شرک ضرور ہو حالانکہ بہت اکابر علماء اولیاء نے وقت حاجت اس پر اقدام فرمایا ہے، حضرت ابوسعید خراز قدس سرہ العزیز جن کی عظمت عرفان و جلالت شان آفتاب نیمروز سے اظہر، ہنگامہ فاقہ ہاتھ پھیلاتے اور شیًا للہ فرماتے __ یونہی سید الطائفہ جنید بغدادی کے استاد حضرت ابوحفص حداد و حضرت ابراہیم ادھم و امام سفیان ثوری رحمۃ اللہ تعالٰی علیہم اجمعین سے وقت ضرورت شرعیہ سوال منقول 'نقل كل ذلك العلامة المناوي في التيسير' (یہ سب علامہ مناوی نے تیسیر میں نقل کیا ہے۔ ت) کتب فقہیہ شاہد عادل کہ بعض صور میں علمائے کرام نے سوال فرض بتایا ہے۔ معاذ اللہ ! یہ آپ کے طور پر شرک یا شائبہ شرک فرض ہونا ہوگا۔ بر تقدیر ثانی زائر بیچارہ بلا حصول علم

عہ ۱: اگر تسلیم تحقیقی ہے تو امر ظاہر اور بطور تجویز و تقدیر ہے۔ تو یہی عرض کیا جاتا ہے کہ یہ صورت مان کر پھر اس کلام کی کیا گنجائش ہے۔ یہ نکتہ محفوظ رہنا چاہئے، ۱۲منہ عہ ۲: تشبیہ مقصود بالذات ہے کہ یہ سوال نقض اجمالی ہے ورنہ ہمارے نزدیک نہ صرف اتنا علم و خبر مطلق نہ فقط اتنا سمع و بصر مطلق۔ ۱۲منہ عہ ۳: تحت قولہ صلی اللہ تعالی علیہ وسلم من سأل من غیر فقر فکانما یاکل الجمر ۱۲ منہ (ت) زیر ارشاد رسول اکرم صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم: جس نے بغیر احتیاج کے سوال کیا گویا وہ اپنے پیٹ میں انگارے بھرتا ہے ۱۲ منہ (ت)

1 التیسیر شرح جامع الصغیر تحت حدیث من سأل مکتبۃ الامام الشافعی ریاض سعودیہ ۲/۲۲۱

Fatawa Razawiya Volume 9

...on being questioned why it became the embodiment of these words. Question (5): Can a person who is at a specific place, such that whenever you go there and speak, he hears you, be called "Sami' ala al-itlaq" (absolutely hearing) to that extent or not? And if you say yes, then consider your own noble self as absolutely hearing; for we have always seen that when someone speaks at the royal residence, it reaches your ears. Pray tell, how then is going to a shrine understood as considering one as absolutely hearing? Question (6): Since you have established absolute hearing by the encompassing of all times for the existence of the addressed person despite being in a specific place, therefore, the encompassing of times of existence and all places of the world would be even more so a cause. Now what is the answer to this Hadith which Imam Bukhari in [his] Tarikh, and Tabarani, 'Uqaili, Ibn al-Najjar, Ibn 'Asakir, and Abu al-Qasim al-Isfahani narrated from 'Ammar bin Yasir (may Allah be pleased with them)? I heard the Messenger of Allah (may Allah send peace and blessings upon him) say: "Verily, Allah the Almighty has an angel whom He has given the hearing of all creation (Tabarani added: all of them). He stands at my grave (added: until the Day of Resurrection). No one sends a blessing (salutations) upon me except that he conveys it to me." Indeed, Allah the Almighty has an angel to whom God has given the power to hear the talk of the entire world. He is present at my grave until the Day of Resurrection. Whoever sends blessings upon me, he presents them to me. (T) Allama Zarqani in Sharh al-Mawahib and Allama Abdul Rauf in Sharh Jami' al-Saghir say the following in explanation of "He gave him the hearing of the creation": "That is, a power by which he is able to hear whatever is spoken by every creature, including humans, jinn, and others (Al-Munawi added: wherever they may be)." Meaning, Allah the Almighty has given this angel such power that he has the strength to hear whatever comes out of the mouths of all of Allah's creation—humans, jinn, etc.—no matter from where the sound comes. (T) And Daylami in Musnad al-Firdous narrated from Sayyiduna Siddiq al-Akbar (may Allah be pleased with him) that the Illustrious Prophet, the Master of the World (may Allah send peace and blessings upon him), said: "Increase your blessings upon me, for Allah the Almighty has appointed an angel for me..." Send many blessings upon me, because Allah the Almighty has [appointed an angel] at my shrine.

1. Al-Targhib with reference to Al-Mu'jam al-Kabir, Al-Targhib fi Ikthar al-Salat 'ala al-Nabi, Mustafa al-Babi, Egypt, 2/499-500.

2. Al-Taysir Sharh Jami' al-Saghir under "Inna Lillahi Malakan..." etc., Maktabah al-Imam al-Shafi'i, Riyadh, 2/330.

फ़तावा रज़विया जिल्द 9

...सवाल करने पर क्यों इन अल्फ़ाज़ का मिस्दाक़ हुआ। सवाल (5): जो शख़्स एक जगह ख़ास पर हो कि वहाँ जा कर जिस वक़्त बात कीजिए सुन ले। इस क़द्र से उसे 'समीअ़ अलल इ़तलाक़' (निरंकुश सुनने वाला) कहा जाएगा या नहीं। और अगर कहिए हाँ, तो अपने नफ़्से नफ़ीस को समीअ़ अलल इ़तलाक़ मानिए, हमने तो हमेशा यही देखा है कि दौलत खाना (घर) पर जा कर जब किसी ने बात की है आप के कान तक पहुँची है। और फ़रमाइए न। तो मज़ार पर जा कर समीअ़ अलल इ़तलाक़ जानना क्योंकर समझा गया! सवाल (6): ज़माना-ए-वुजूद-ए-मुख़ात़ब के इस्तिग़राक़-ए-अज़मिना बावस्फ़-ए-ख़ुसूस-ए-मकान को जनाब ने मुस्तबत-ए-समअ़-ए-अलल इ़तलाक़ ठहराया तो इस्तिग़राक़-ए-अज़मिना-ए-वुजूद व अमिकना-ए-दुनिया बदरजा-ए-औला मोजिब होगा। अब क्या जवाब है इस हदीस से कि इमाम बुख़ारी ने तारीख़ में और त़बरानी व उक़ैली और इब्नुन नज्जार व इब्न अ़साकिर व अबुल क़ासिम अस्बहानी ने अम्मार बिन यासिर रद़ियल्लाहु तआ़ला अ़न्हुमा से रिवायत की। मैंने रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु तआ़ला अ़लैहि वसल्लम को फ़रमाते सुना: "इन लिल्लाहि तआ़ला मलकन अअ़ताहु अस्माअ़ल ख़लाइक़ (ज़ादत़ त़बरानी कुल्लहा) क़ाइमून अ़ला क़बरी (ज़ादा इला यौमिल क़ियामह) फ़मा मिन अहदिन युसल्ली स़लातन इल्ला अब्लग़नीहा।" बेशक अल्लाह तआ़ला का एक फ़रिश्ता है जिसे ख़ुदा ने तमाम जहाँ की बात सुन लेने की ताक़त दी है। वह क़ियामत तक मेरी क़ब्र पर हाज़िर है। जो मुझ पर दरूद भेजता है जो मुझ से अ़र्ज़ करता है। (त) अल्लामा ज़रक़ानी शरह मवाहिब और अल्लामा अब्दुल रऊफ़ शरह जामेअ़ स़ग़ीर में 'अअ़ताहु अस्माअ़ल ख़लाइक़' की शरह में यूँ फ़रमाते हैं: "अयि कुव्वतुन यक़्तदिरु बिहा अ़ला समाअ़ि मा यन्तिक़ु बिही कुल्लु मख़लूक़िन मिन इंसिन व जिन्निं व ग़ैरिहिमा (ज़ादल मुनावी फ़ी अयि मौ़दिइन कान)" यानी अल्लाह तआ़ला ने इस फ़रिश्ते को ऐसी कुव्वत दी है कि इंसान, जिन वग़ैरह तमाम मख़लूक़-ए-इलाही की ज़बान से जो कुछ निकले उसे सब के सुनने की ताक़त है चाहे कहीं की आवाज़ हो (त) और दैलमी ने मुसनदुल फ़िरदौस में सैय्यदना सिद्दीक़े अकबर रद़ियल्लाहु तआ़ला अ़न्हु से रिवायत की, हुज़ूर पुरनूर सैय्यदे आलम सल्लल्लाहु तआ़ला अ़लैहि वसल्लम फ़रमाते हैं: "अक्सरुस़ स़लाता अ़लय्या फ़इनल्लाहा तआ़ला वक्कला ली मलकन" मुझ पर दरूद बहुत भेजो कि अल्लाह तआ़ला ने मेरे मज़ार पर...

1. अत-तरग़ीब ब-हवाला अल-मुअ़जमुल कबीर, अत-तरग़ीब फ़ी इक्सा़रिस स़लात अ़लन नबी, मुस्तफ़ा अल-बाबी, मिस्र, 2/499-500.

2. अत-तयसीर शरह जामेअ़ स़ग़ीर तहत 'इन लिल्लाहि मलकन' अल-ख़, मकतबा अल-इमाम अश्-शाफ़ेई, रियाद, 2/330.

سوال کرنے پر کیوں ان الفاظ کا مصداق ہوا۔ سوال (۵): جو شخص ایک جگہ خاص پر ہو کہ وہاں جا کر جس وقت بات کیجئے سن لے۔ اس قدر سے اسے سمیع علی الاطلاق کہا جائے گا یا نہیں۔ اور اگر کہیے ہاں، تو اپنے نفس نفیس کو سمیع علی الاطلاق مانیے، ہم نے تو ہمیشہ یہی دیکھا ہے کہ دولت خانہ پر جا کر جب کسی نے بات کی ہے آپ کے کان تک پہنچی ہے۔ اور فرمائیے نہ۔ تو مزار پر جا کر سمیع علی الاطلاق جانا کیونکر سمجھا گیا ! سوال (۶): زمانہ وجودِ مخاطب کے استغراق ازمنہ باوصفِ خصوصِ مکان کو جناب نے مثبتِ سمعِ علی الاطلاق ٹھہرایا تو استغراقِ ازمنہ وجود و امکنہ دنیا بدرجہ اولٰی موجب ہوگا۔ اب کیا جواب ہے اس حدیث سے کہ امام بخاری نے تاریخ میں اور طبرانی و عقیلی اور ابن النجار و ابن عساکر و ابو القاسم اصبہانی نے عمار بن یاسر رضی اللہ تعالٰی عنہما سے روایت کی۔ میں نے رسول اللہ صلی اللہ علیہ تعالٰی علیہ وسلم کو فرماتے سنا: ان للہ تعالی ملکا اعطاہ اسماع الخلائق (زاد الطبرانی کلھا) قائم علی قبری (زاد الی یوم القیمۃ) فما من احد یصلی صلوۃ الا ابلغنیھا۔ بیشک اللہ تعالٰی کا ایک فرشتہ ہے جسے خدا نے تمام جہاں کی بات سن لینے کی طاقت دی ہے۔ وہ قیامت تک میری قبر پر حاضر ہے۔ جو مجھ پر درود بھیجتا ہے جو مجھ سے عرض کرتا ہے۔ (ت) علامہ زرقانی شرح مواہب اور علامہ عبدالرؤف شرح جامع صغیر میں اعطاہ اسماع الخلائق کی شرح میں یوں فرماتے ہیں: ای قوۃ یقتدر بھا علی سماع ما ینطق بہ کل مخلوق من انس و جن وغیرھما (زاد المناوی فی ای موضع کان۔ یعنی اللہ تعالٰی نے اس فرشتے کو ایسی قوت دی ہے کہ انسان جن و غیرہ تمام مخلوق الٰہی کی زبان سے جو کچھ نکلے اسے سب کے سننے کی طاقت ہے چاہے کہیں کی آواز ہو (ت) اور دیلمی نے مسند الفردوس میں سیدنا صدیق اکبر رضی اللہ تعالٰی عنہ سے روایت کی، حضور پر نور سید عالم صلی اللہ تعالٰی

علیہ وسلم فرماتے ہیں: اکثروا الصلوۃ علی فان اللہ تعالی وکل لی ملکا مجھ پر درود بہت بھیجو کہ اللہ تعالیٰ نے میرے مزار پر

1 الترغیب بحوالہ المعجم الکبیر الترغیب فی اکثار الصلوۃ علی النبی مصطفی البابی مصر ۴۹۹/۲۔

۵۰۰ 2 التیسیر شرح جامع الصغیر تحت ان اللہ ملکا الخ مکتبہ الامام الشافعی ریاض ۳۳۰/۲

Fatawa Rizvia, Volume 9

“At my grave, when a person from my Ummah sends blessings upon me, that angel says to me: O Muhammad! Indeed, so-and-so son of so-and-so has just sent blessings upon you.” (T)

O Allah! Send blessings and peace upon this chosen Beloved and the expected Intercessor, and upon his family, companions, the saints of his Ummah, and the scholars of his nation, all of them—a blessing that endures with Your eternity and lasts with Your permanence, such a blessing that he is worthy of and which befits Your majesty. Accept it, accept it, O Truthful God, accept it! (T)

I am giving my life in this longing, O messenger, tell me at last, If any word of mine reaches the assembly of that graceful one. (O messenger! I am giving up my life in the hope that you might convey a message of mine into the assembly of that Beloved if it can reach there. T)

Well said! The noble saints are considered absolutely hearing when listening to the words of those specifically present at their shrines. This servant of God, who is never separate from the throne-like court of the Sultan (peace and blessings of Allah be upon him), and standing there, hears all the voices of the world at once from East to West, South to North—what should he be called? What can I say to you, but these Najdi sellers of 'shirk' (polytheism) have neither seen God's power—what He can bestow upon His servants—nor have they understood the greatness of His attributes, that their brows throb with 'shirk' over every little thing.

"They have not appraised Allah with the appraisal due to Him." (They have not known God's power as is the right of His worth. T)

Question (7): Is it necessary to see the form in order to hear the speech? If so, it would be mandatory that all blind people are deaf. And the mentioned angel is, according to you, absolutely seeing, or even more than that; otherwise, how can one be understood as 'seeing' just by being addressed?

---

1. Kanz al-Ummal with reference to Musnad al-Firdaws, Hadith 2181, Muassasah ar-Risalah Beirut 1/494
2. Al-Quran 22/74

फ़तावा रिज़विया, खंड 9

"मेरी कब्र के पास, जब मेरी उम्मत का कोई व्यक्ति मुझ पर दरूद भेजता है, तो वह फरिश्ता मुझसे कहता है: हे मुहम्मद! फलां के बेटे फलां ने अभी-अभी हुज़ूर पर दरूद भेजा है।" (त)

हे अल्लाह! इस चुनिंदा महबूब और इच्छित शफीअ (सिफारिश करने वाले) पर, और उनके परिवार, साथियों, उनकी उम्मत के औलिया और उनकी मिल्लत के विद्वानों पर, उन सब पर ऐसा दरूद और बरकत नाजिल फरमा जो तेरी नित्यता के साथ शाश्वत हो और तेरी निरंतरता के साथ स्थायी रहे, ऐसा दरूद जिसके वे पात्र हैं और जो तेरी गरिमा के योग्य हो। स्वीकार फरमा, स्वीकार फरमा, हे सत्य मार्ग के स्वामी स्वीकार फरमा! (त)

ऐ कासिद (संदेशवाहक), मैं इस आरज़ू में जान दे रहा हूँ; अंततः बता दो, अगर उस नाज़नीन (महबूब) की महफिल में मेरा कोई ज़िक्र होता है। (ऐ कासिद! मैं इस आरज़ू में अपनी जान दे रहा हूँ कि उस महबूब की महफिल में फिर से मेरी कोई बात पहुँचा दी जाए अगर पहुँच सके। त)

बहुत खूब! औलिया-ए-कराम तो विशेष रूप से मज़ारों पर उपस्थित लोगों की बात सुनने पर सर्व-श्रवण (समीअ अल-इतलाक) हो जाते हैं। यह खुदा का बंदा जो सुल्तान (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) की अर्श जैसी बारगाह से कभी अलग नहीं होता और वहीं खड़े-खड़े एक ही समय में पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण पूरी दुनिया की आवाजें सुनता है, उसे क्या कहा जाए। आपको क्या कहूँ, मगर इन नजदी शिर्कफरोशों ने न खुदा की कुदरत देखी है कि वह अपने बंदों को क्या-क्या अता फरमा सकता है, और न ही उसकी सिफात (गुणों) की महानता को समझा है कि छोटी-छोटी बातों पर 'शिर्क का माथा ठनकने लगता है।

"उन्होंने खुदा की कुदरत को वैसा नहीं जाना जैसा कि उसकी कद्र करने का हक था।" (त)

सवाल (7): क्या बात सुनने के लिए सूरत देखना भी ज़रूरी है? अगर ऐसा है, तो लाज़मी है कि तमाम अंधे बहरे हों। और ज़िक्र किया गया फरिश्ता, आपके अनुसार मुतलक बसीर (पूर्णतः देखने वाला) है बल्कि उससे भी कुछ ज़्यादा, अन्यथा केवल संबोधित करने मात्र से उसे बसीर मानना कैसे समझा जा सकता है।

---

1. कंजुल उम्माल, मुसनद अल-फिरदौस के हवाले से, हदीस 2181, मुअस्सतुर रिसाला बेरूत 1/494

2. अल-कुरान 22/74

عند قبری فاذا صلی علی رجل من امتی قال لی ذلک الملک یا محمد ان فلان بن فلان یصلی علیک الساعۃ۔ ایک فرشتہ متعین فرمایا ہے جب کوئی امتی میرا مجھ پر درود بھیجتا ہے وہ مجھ سے عرض کرتا ہے : یا رسول اللہ ! فلاں بن فلاں نے ابھی ابھی حضور پر درود بھیجی ہے (ت)

اللھم صلی وبارک علی ھذا الحبیب المجتبی والشفیع المرتجی وعلی الہ واصحابہ واولیاء امتہ وعلماء ملتہ اجمعین صلوۃ تدوم بدوامک وتبقی ببقائک کما ھو اھل لہ وکما انت اھل لہ آمین آمین اللہ الحق آمین۔ اے اللہ ! درود اور برکت نازل فرما اس حبیب پر جو برگزیدہ ہیں اور اس شفیع پر جن سے کرم کی امید ہے اور ان کی آل، اصحاب، ان کی امت کے اولیاء ان کی ملت کے علماء سب پر ایسا درود جسے تیرے دوام کے ساتھ دوام اور تیری بقاء کے ساتھ بقاء ہو، ایسا درود جس کے وہ اہل ہیں اور جو تیری شان کے لائق ہو، قبول فرما، قبول فرما اے معبود برحق قبول فرما! (ت)

ے جاں می دہم در آرزو اے قاصد آخر باز گو در مجلس آں نازنین حرفے گر از ما می رود (اے قاصد ! اس آرزو میں جان دے رہا ہوں کہ اس محبوب کی مجلس میں پھر ایک بات پہنچا دو اگر پہنچ سکے۔ت)

بھلا ارشاد ہو۔ اولیاء کرام تو خاص حاضران مزار کی بات سننے پر سمیع علی الاطلاق ہوئے جاتے ہیں، یہ بندہ خدا کہ بارگاہ عرش جاہ سلطانی صلوات اللہ وسلامہ علیہ سے جدا نہیں ہوتا اور وہیں کھڑے کھڑے ایک وقت میں شرقاً غرباً جنوباً شمالاً تمام دنیا کی آوازیں سنتا ہے اسے کیا قرار دیا جائے گا۔ آپ کو تو کیا کہوں مگر ان نجدی شرک فروشوں نے نہ خدا کی قدرت دیکھی ہے کہ وہ

اپنے بندوں کو کیا کیا عطا فرما سکتا ہے۔ نہ اس کی عظمت صفات سمجھی ہے کہ ذرا ذرا سی بات پر شرک کا ماتھا ٹھنکتا ہے۔

مَا قَدَرُوا اللّٰهَ حَقَّ قَدْرِهٖ (انھوں نے خدا کی قدرت نہ جانی جیسا کہ اس کی قدر کا حق تھا۔ت)

سوال (۷): کیا بات سننے کے لیے صورت دیکھنی بھی ضرور، جب تو واجب کہ تمام اندھے بہرے ہوں اور فرشتہ مذکور، آپ کے طور پر بصیر علی الاطلاق بلکہ اس سے بھی کچھ زائد، ورنہ فقط خطاب کرنے سے بصیر ماننا کیونکر مفہوم۔

---

1 کنزالعمال بحوالہ مسند الفردوس حدیث ۲۱۸۱ موسسۃ الرسالۃ بیروت ۱ / ۴۹۴ 2 القرآن ۲۲ / ۷۴

Fatawa Ridawiyya Volume 9

...happened, generality and absoluteness are set aside. Question (8): For the necessity of hearing speech, is absolute sight required? If it is obtained through the seeing of the person addressed, then in the first case, the association is invalid, and in the second case, it is necessary that all of God's creation is deaf and to believe that anyone other than God hearing anything absolutely entails polytheism (shirk). Then everyone would be a polytheist, or every hearing and seeing person would be absolute, which is a greater calamity. We seek refuge with Allah. Question (9): If visiting and perceiving those saints does not necessitate that they hear every speech of the visitor, then it also does not necessitate that they hear nothing at all. You yourself state neither the necessity of existence nor the necessity of non-existence. Thus, both possibilities remain. Then how can certainty on a possible matter be polytheism? At most, if it is without evidence, it might be wrong; but is every wrong thing polytheism? Question (10): I do not know of even one place in the Great Quran where it is stated that going to shrines and talking to or addressing [the deceased] is polytheism or forbidden. Or even such a statement that whoever does so is as if they consider the people of the graves to be absolutely all-hearing or all-seeing. And the validity of your reasoning is based on these matters. You say that in the Criterion (Quran), its explanation is present in multiple places with full clarity. I do not trouble you for multiple places. Just state one verse in which the aforementioned subject is clearly mentioned. Explain and be rewarded. Question (11): The noble verse of Surah Yusuf that you recited, why should I present its translation and meaning? Listen to it from Maulvi Ismail. In Taqwiyat al-Iman, it is written: "And most of them believe not in Allah except while they associate others with Him." Meaning, most people who claim faith are caught in polytheism. For God's sake, which word in this refers to going to the shrines of saints or talking to and addressing them? I seek Allah's forgiveness! There isn't even a scent of it, let alone a "full clarity." Then what claim of yours did this verse prove or what accusation did it level against the visitors of shrines? If such unrelated referencing is called "full clarity," then everyone could present a verse from the Great Quran for their claim. For example, a philosopher might say: mediation of intellects is the truth, otherwise it would necessitate that all multiple things originated directly from that One Reality, and this is a fabrication against God Almighty. For "from the One, only one can proceed" (because only one can proceed from one). And fabrication against Allah is absolutely forbidden. In the Great Quran, in multiple places, its explanation is present with full clarity. Among

them is in Surah al-An'am: "Indeed, those who invent lies about Allah will not succeed." (Those people...

---

1. Taqwiyat al-Iman, first chapter on Monotheism and Polytheism, Alimi Press, Inside Lohari Gate Lahore, p. 44.
2. Quran 116/1 Page 686 of 948

...हुआ, व्यापकता और निरपेक्षता तो अलग रही। सवाल (8): बातचीत सुनने की अनिवार्यता के लिए पूर्ण दृष्टि आवश्यक है। जो संबोधित व्यक्ति को देखने से प्राप्त होती है, या पहली स्थिति में संगति अमान्य है, और दूसरी स्थिति में यह आवश्यक है कि ईश्वर की पूरी सृष्टि बहरी है और किसी अन्य के लिए किसी बात को सुनना मानना पूर्णतः शिर्क(बहुदेववाद) को अनिवार्य करता है, तो सभी मुशरिक हैं, या प्रत्येक सुनने और देखने वाला पूर्णतः देखने वाला है, तो यह और भी बड़ी आपदा है। और अल्लाह की शरण। सवाल (9): यदि उन औलिया (संतों) का दर्शन और बोध यह अनिवार्य नहीं करता कि वे आगंतुक की हर बात सुन लें, तो यह भी नहीं कि वे कुछ भी न सुनें। आप स्वयं न होने की अनिवार्यता और न होने की अनिवार्यता की बात करते हैं, तो दोनों स्थितियों में संभावना बनी रहती है। फिर एक संभावित मामले पर निश्चितता शिर्क कैसे हो सकती है? अधिक से अधिक यह कि यदि बिना प्रमाण के है तो गलत हो सकता है; क्या हर गलत बात शिर्क होती है! सवाल (10): मुझे नहीं मालूम कि महान कुरान में एक जगह भी यह बताया गया हो कि मजारों (दरगाहों) पर जाकर बातचीत और संबोधन करना शिर्क या हराम है। या इतना ही कहा गया हो कि जो ऐसा करता है वह मानो कब्र वालों को पूर्ण रूप से सुनने वाला या देखने वाला मानता है। और आप लोगों के तर्क की सत्यता इन्हीं बातों पर आधारित है। आप कहते हैं कि कुरान मजीद में कई स्थानों पर इसका वर्णन पूर्ण स्पष्टता (تصریح تام) के साथ मौजूद है। मैं कई स्थानों का कष्ट नहीं देता। बस एक ही आयत बता दीजिये जिसमें उक्त विषय स्पष्ट रूप से वर्णित हो। स्पष्ट करें और पुण्य प्राप्त करें। सवाल (11): सूरह यूसुफ की जो आयत आपने पढ़ी, उसका अनुवाद और अर्थ मैं क्यों बताऊं? मौलवी इस्माइल से सुनिए। 'तक़वियतुल ईमान' में लिखा है: "अधिकांश लोग अल्लाह पर ईमान नहीं रखते मगर यह कि वे शिर्क करते हैं", यानी अधिकांश लोग जो ईमान का दावा रखते हैं, वे शिर्क में फंसे हुए हैं। खुदा के लिए, इसमें औलिया के मजारों पर जाने या उनसे बातचीत और संबोधन करने का कौन सा शब्द है? अस्तगफिरुल्लाह (अल्लाह से क्षमा मांगता हूँ)! नाम को गंध भी नहीं है, पूर्ण स्पष्टता तो बहुत बड़ी बात है। फिर इस आयत ने आपका कौन सा दावा सिद्ध किया या मज़ार पर आने वालों पर क्या आरोप लगाया? यदि ऐसे ही असंबद्ध प्रमाण का नाम पूर्ण स्पष्टता है, तो हर व्यक्ति अपने दावे पर महान कुरान की आयत पेश कर सकता है। उदाहरण के लिए, एक दार्शनिक कहे: बुद्धि की मध्यस्थता सत्य है, अन्यथा यह अनिवार्य होगा कि सभी बहुविध वस्तुएं उस एक वास्तविक सत्ता से स्वयं उत्पन्न हुई हों, और यह अल्लाह अज़्ज़-व-जल्ल पर मिथ्यारोप होगा। क्योंकि "एक से केवल एक ही उत्पन्न हो सकता

है" (चूंकि एक से एक ही निकल सकता है)। और अल्लाह पर मिथ्यारोप लगाना निश्चित रूप से हराम है। महान कुरान में कई स्थानों पर इसका वर्णन पूर्ण स्पष्टता के साथ मौजूद है, उनमें से सूरह अन-आम में है: "बेशक जो लोग अल्लाह पर झूठ गढ़ते हैं, वे सफल नहीं होंगे।" (जो लोग...

---

1. तक़वियतुल ईमान, पहला अध्याय तौहीद और शिर्क के वर्णन में, मत्तबा अलीमी, लोहारी गेट के अंदर, लाहौर, पृष्ठ 44।
2. अल-कुरान 116/1 पृष्ठ 686 of 948

ہوا، عموم واطلاق تو بالائے طاق۔ سوال (۸): بغرض لزوم سماع کلام کو مطلق بصر درکار۔ جو رویت مخاطب سے حاصل، یا بصر علی الاول ملازمت باطل، وعلی الثانی لازم کہ تمام مخلوق الٰہی بہری اور کسی بات کا سننا کسی غیر خدا کے لیے ماننا مطلقاً مستلزم شرک ہو، تو سب مشرک ہیں، یا ہر ذی سمع، بصیر علی الاطلاق تو آفت اشد ہے۔ والعیاذ باللہ۔ سوال (۹): ان اولیاء کی زیارت و ادراک اگر اسے مستلزم نہیں کہ ہر کلام زائر سن لیں تو اسے بھی نہیں کہ سب کو نہ سنیں آپ خود عدم استلزام فرماتے ہیں، نہ استلزام عدم، تو دونوں صورت میں محتمل رہیں، پھر ایک امر محتمل پر جزم شرک کیونکر ہو سکتا ہے، غایت یہ کہ بے دلیل ہو تو غلط سہی، کیا ہر غلط بات شرک ہوتی ہے ! سوال (۱۰): مجھے نہیں معلوم کہ قرآن عظیم میں ایک جگہ بھی بیان فرمایا ہو کہ مزارات پر جا کر کلام و خطاب کرنا شرک یا حرام ہے۔ یا اتنا ہی ارشاد ہوا ہو۔ جو ایسا کرتا ہے گویا اصحاب قبور کو سمیع یا بصیر علی الاطلاق مانتا ہے۔ اور حضرات کی صحت استدلال انھیں امور پر مبنی، آپ فرماتے ہیں فرقان حمید میں، بمقاماتِ متعددہ اس کا بیان بتصریح تام موجود، میں مقاماتِ متعددہ کی تکلیف نہیں دیتا۔ ایک ہی آیت فرما دیجئے جس میں صاف صاف مضمون مذکور مزبور ہو۔ بینوا توجروا سوال (۱۱): سورہ یوسف کی آیہ کریمہ کہ تلاوت فرمائی اس کا ترجمہ ومطلب میں کیوں عرض کروں مولوی اسمعیل سے سنئے۔ تقویۃ الایمان میں لکھا ہے: "نہیں مسلمان ہیں اکثر لوگ مگر کہ شرک کرتے ہیں" یعنی اکثر لوگ جو دعویٰ ایمان کا رکھتے ہیں سو وہ شرک میں گرفتار ہیں" انتہیٰ خدارا اس میں مزارات اولیاء پر جانے یا ان سے کلام و خطاب کرنے کا کونسا حرف ہے۔ استغفر اللہ! نام کو بو بھی نہیں، تصریح تام تو بڑی چیز ہے۔ پھر اس آیت نے جناب کا کون سا دعویٰ ثابت کیا یا حضار مزار کو کیا الزام دیا۔ اگر ایسے ہی بے علاقہ استناد

کا نام صریح تام، تو ہر شخص اپنے دعوے پر قرآن عظیم کی آیت پیش کر سکتا ہے، مثلاً فلسفی کہے: توسطِ عقولِ حق ہے ورنہ لازم آئے کہ تمام اشیاء متکثرہ اس واحد حقیقی سے بالذات صادر ہوئی ہوں، اور یہ خدائے عزوجل پر افتراء۔ فان الواحد لا یصدر عنہ الا الواحد (کیونکہ واحد سے واحد ہی صادر ہو سکتا ہے۔ ت) اور اللہ تعالٰی پر افتراء حرام قطعی۔ قرآن حمید میں بمقاماتِ متعددہ اس کا بیان بتصریح تام موجود، از انجملہ ہے سورہ انعام میں: اِنَّ الَّذِیْنَ یَفْتَرُوْنَ عَلَی اللہِ الکَذِبَ لَا یُفْلِحُوْنَ (جو لوگ

۱۔ تقویۃ الایمان پہلا باب توحید و شرک کے بیان میں مطبع علیمی اندرون لوہاری گیٹ لاہور ص ۴۴ ۲۔ القرآن ۱۱۶/۱ Page 686 of 948

Volume Nine - Fatawa Razawiyya

They fabricate lies against Allah; they will not achieve their goal. (t) Or if a Christian says that denying the Trinity is a great sin because Trinity is proven from the distorted verses of the Bible, and belittling the divine verse causes severe punishment; clear descriptions of this are present in many places in the Furqan-e-Hamid (the Holy Quran), including Surah Al-Ankabut: "And none reject Our signs except the wrongdoers." [29:49] (t) Tell me, was their argument completed by these speeches, and did the Great Quran, God forbid, prove their false claims? Heaven forbid! I seek Allah's forgiveness and there is no power nor strength except with Allah. I do not want, God forbid, to divert the divine verses from their context and site by force of language like so-and-so, otherwise, against those who deny, the noble verse: "just as the disbelievers have despaired of [the inhabitants of] the graves." [60:13] (t) could be presented very well. And that verse has a thousand times more relevance to the context and occasion than the one you recited. Allah Almighty says: Disbelievers have become hopeless from the people of the graves. Now let it be considered which people have hope from the people of the graves and who have lost hope at their hands. Truly, we belong to Allah and to Him we shall return.

Another category of this type

Here, some sayings of the elders of the Aziz family will be written in the style of writing, who allowed the commission of asking (begging) without obtaining knowledge and fell into pure polytheism (shirk) or twelve degrees of a taint of polytheism in the manner of the Maulvi Sahib. Question (12): Shah Waliullah explains the cure for 'hadith al-nafs' (inner talk) in 'Hama'at':

Persian	**Urdu**
One should turn towards the pure souls of the Mashaikh (spiritual guides) and recite Fatiha for them, or go to visit their graves and from there, seek the attraction of begging (dariyooza).	Turn towards the pure souls of the Mashaikh and recite Fatiha for them or go to their shrines and beg from there. (t)

I say (Aqool), firstly, what is the ruling according to your excellency regarding begging from the shrines of saints? There, from them, prayer (dua)...

1. Al-Quran 29/49
2. Al-Quran 60/13
3. Hama'at, Hama 8, Academy of Shah Waliullah Hyderabad, p. 34

खंड नौ - फतावा रज़विया

वे अल्लाह पर झूठा इल्ज़ाम लगाते हैं, वे अपने मक़सद तक नहीं पहुँचेंगे। (त) या कोई ईसाई कहे कि त्रित्व (ट्रिनिटी) का इनकार करना महापाप है क्योंकि त्रित्व बाइबल की विकृत आयतों से सिद्ध है, और ईश्वरीय आयत को झुठलाना कठोर दंड का कारण है। फ़ुरक़ान-ए-हमीद (क़ुरआन) में कई स्थानों पर इसका स्पष्ट वर्णन मौजूद है, जिनमें से एक सूरह अल-अंकबूत में है: "और हमारी आयतों का इनकार केवल वही करते हैं जो अत्याचारी हैं।" [29:49] (त) आप ही बताइए क्या इन भाषणों से उनका तर्क पूर्ण हो गया, और क्या महान क़ुरआन ने, ईश्वर न करे, उनके झूठे दावों को सिद्ध कर दिया? अल्लाह की पनाह! मैं अल्लाह से माफ़ी माँगता हूँ और अल्लाह के सिवा न कोई शक्ति है न बल। मैं नहीं चाहता कि ईश्वर न करे, फलां और फलां की तरह ईश्वरीय आयतों को उनके संदर्भ और स्थान से हटाकर ज़बान के ज़ोर पर दूसरी तरफ़ मोड़ दिया जाए, अन्यथा इनकार करने वालों के सामने यह पवित्र आयत: "जैसे कि काफ़िर क़ब्र वालों से निराश हो बैठे।" [60:13] (त) बहुत अच्छी तरह पेश की जा सकती है। और वह आयत आपके द्वारा पढ़ी गई आयत की तुलना में हज़ार गुना अधिक संदर्भ और अवसर से संबंधित है। अल्लाह तआला फ़रमाता है: काफ़िर लोग क़ब्र वालों से निराश हो चुके हैं। अब विचार किया जाए कि कौन लोग क़ब्र वालों से उम्मीद रखते हैं और कौन उनके पास पहुँचकर अपनी आस छोड़ बैठे हैं, हम तो अल्लाह के हैं और हमें उसी की ओर लौट कर जाना है।

इसी प्रकार की एक और श्रेणी

यहाँ अज़ीज़ी घराने के उन बुज़ुर्गों के कुछ कथन उसी अंदाज़ में लिखे जाएँगे जिन्होंने बिना ज्ञान प्राप्त किए माँगने (सवाल) को जायज़ ठहराया और मौलवी साहब की तरह शुद्ध शिर्क(बहुदेववाद) या शिर्क के बारह दर्जे के संदेह में फँस गए। प्रश्न (12): शाह वलीउल्लाह 'हमाआत' में 'हदीस-ए-नफ़्स' (मन की बातें) का इलाज बताते हैं:

फारसी

मशाईख़ की पवित्र आत्माओं की ओर ध्यान केंद्रित करें और उनके लिए फ़ातिहा पढ़ें, या उनकी क़ब्रों की ज़ियारत के लिए जाएँ और वहाँ से अनुकंपा (भीख) प्राप्त करें।

उर्दू

मशाईख़ की पाक रूहों की ओर मुतवज्जह हों और उनके लिए फ़ातिहा पढ़ें या उनके मज़ार पर जाएँ और वहाँ से भीख माँगें। (त)

मैं (अक़ूल) कहता हूँ, सबसे पहले तो आपके अनुसार औलिया के मज़ारों से भीख माँगने का क्या हुक्म है? वहाँ तो उनसे दुआ...

1. अल-क़ुरआन 29/49
2. अल-क़ुरआन 60/13
3. हमाआत, हमअ 8, शाह वलीउल्लाह अकादमी हैदराबाद, पृष्ठ 34

पृष्ठ 687/948

اللہ پر جھوٹا افتراء کرتے ہیں وہ مراد کو پہنچنے والے نہیں۔ ت) یا نصرانی کہے انکارِ تثلیث گناہِ عظیم ہے کہ تثلیث آیتِ انجیل محرف سے ثابت، اور آیت الٰہیہ کی تکذیب موجبِ عذابِ شدید، فرقانِ حمید میں بمقاماتِ متعددہ اس کا بیان بتصریح تمام موجود از انجمہ ہے سورۂ عنکبوت میں: وَ مَا یَجْحَدُ بِاٰیٰتِنَاۤ اِلَّا الظّٰلِمُوْنَ﴿۴۹﴾ 1 (ہماری آیتوں کا انکار نہیں کرتے مگر وہی جو ظالم ہیں۔ ت) ارشاد فرمایئے کیا ان تقریروں سے ان کی استدلال تام ہوگئی، اور ان کے جھوٹے دعوے معاذ اللہ قرآنِ عظیم نے ثابت کر دئے؟ حاش للہ، واستغفر اللہ ولا حول ولا قوۃ الا باللہ _____ میں نہیں چاہتا کہ عیاذاً باللہ فلاں وہماں کی طرح آیاتِ الٰہیہ کو ان کے موقع ومحل سے بیگانہ کرکے بزورِ زبان دوسری طرف پھیرا جائے، ورنہ حضراتِ منکرین کے مقابل آیہِ کریمہ کَمَا یَئِسَ الْکُفَّارُ مِنْ اَصْحٰبِ الْقُبُوْرِ﴿۱۳﴾ 2 (جیسے کہ کافر اہل قبور سے ناامید ہو بیٹھے۔ ت) بہت اچھی طرح پیش ہو سکتی ہے۔ اور وہ آیت کی نسبت جو آپ نے تلاوت کی ہزار درجہ زیادہ محل و موقع سے تعلق رکھتی ہے۔ اللہ تعالٰی فرماتا ہے: اہل قبور سے کافر لوگ ناامید ہو بیٹھے۔ اب غور کرلیا جائے کہ کون لوگ اہل قبور سے امید رکھتے ہیں اور کون پاس کے ہاتھوں آس توڑے بیٹھے ہیں، انا للہ وانا الیہ راجعون۔

صنف آخر من ھذا النوع اسی نوع کی ایک اور قسم

یہاں ان اکابرِ خاندانِ عزیزی کے بعض اقوال رنگ تحریر فرمائیں گے جنھوں نے بے حصولِ علم ارتکابِ سوال جائز رکھا اور مولوی صاحب کے طور پر شرکِ خالص یا بارہ درجے شائبہ شرک میں گرفتار ہوئے۔ سوال (۱۲): شاہ ولی اللہ ہمعات میں حدیثِ نفس کا علاج بتاتے ہیں:

فارسی	اردو
بارواحِ طیبہ مشائخ متوجہ شود وبرائے ایشاں فاتحہ خواند یا بزیارتِ قبرا ایشاں رود از انجا انجذاب دریوزہ کند 3۔	مشائخ کی پاک روحوں کی جانب متوجہ ہو اور ان کے لیے فاتحہ پڑھے یا ان کے مزارات کو جائے اور وہاں سے بھیک مانگے ۔ (ت)

اقول اولاً جناب کے نزدیک مزاراتِ اولیاء سے بھیک مانگنے کا کیا حکم ہے۔ وہاں تو ان سے دُعا

1 القرآن ۴۹/۲۹ 2 القرآن ۱۳/۶۰ 3 ہمعات ہمع ۸ اکادیمیہ شاہ ولی اللہ حیدر آباد ص ۳۴

Volume 9 Fatawa Ridawiyyah

...it was becoming shirk (associating partners with Allah) to ask for it to be sent, but here begging is being done directly from them. Secondly, begging from someone is only reasonable if they can hear the request and pay attention to it; otherwise, what is the point of begging from walls and stones? However, you have already stated that "the manifestation of specific attention in a state outside the knowledge of the visitor is within the domain of the Lord of the worlds' authority." Now, this beggar who, by the command of the Shah Sahib, commits to asking without obtaining knowledge, has he not essentially deemed the people of the grave as all-hearing and all-seeing in an absolute sense? And did Shah Sahib teach this pure shirk or semblance of shirk or not? And would the one who teaches such a thing be a disbeliever (kafir), a polytheist (mushrik), or an innovator (bid'ati) of bad religion or not? Clarify and you shall be rewarded. Thirdly, he suggested going to the shrine for begging only later; first, he is directing attention towards the blessed spirits while sitting at home. Now the water of 'absolute' has risen above the head. Question (13): The same Shah Sahib wrote a quatrain (rubai): Those who sought the provisions of people together --- reached the depth of the lights of the Eternal. Seek the bounty of the holy through their courage --- they are the gates to the bounty of the holy. 1 (Those who emerged from the impurities of the animal self joined the depths of the lights of the Eternal Being: seek holy bounty through their spiritual resolve, for these very people are the gate to holy bounty. - T) And in the letter explaining the quatrains, he himself explained it like this: "Meaning, focusing on the blessed spirits of the Mashaikh (spiritual masters) brings great benefit in the refinement of the soul and the inner self." 2. Meaning, focusing towards the blessed spirits of the Mashaikh holds great benefit in refining the soul and the inner self. (T) I say: (I say - T) What a 'great benefit' it is that by seeking bounty through their spiritual resolve without obtaining knowledge, they became polytheists (mushriks). Question (14): The same Shah Sahib writes in "Al-Qawl al-Jamil". Instead of bringing his Arabic text and translating it, it is better that I quote the translation of Maulvi Khurram Ali Sahib Bilhauri, author of "Nasihat-ul-Muslimeen". This gentleman is also among the prominent and senior deniers; he says in "Shifa-ul-Alil": "The Chishtiya masters said: In the graveyard, sit in front of the deceased with your back towards the Kaaba Moazzama, recite Surah Fatiha eleven

times, then approach the deceased and say 'Ya Ruh' (O Spirit), then strike the heart with 'Ya Ruh al-Arwah' (O Spirit of Spirits)."

1. Maktubat-e-Waliullah from Kalimat-e-Tayyibat, 22nd letter in explanation of some verses, Matba Mujtabai, Delhi, p. 194.
2. Maktubat-e-Waliullah from Kalimat-e-Tayyibat, 22nd letter in explanation of some verses, Matba Mujtabai, Delhi, p. 194.

...इसे मंगवाना शिर्क हो रहा था, यहाँ स्वयं उनसे भीख माँगी जा रही है। दूसरे, किसी से भीख माँगना तभी तर्कसंगत है जब वह उसकी पुकार सुने और उसकी ओर ध्यान दे, अन्यथा दीवारों और पत्थरों से भीख माँगने का क्या अर्थ? लेकिन आप कह चुके हैं कि "ज़ायर (दर्शनार्थी) के ज्ञान से बाहर की स्थिति में विशेष ध्यान का प्रकटीकरण परवरदिगार-ए-आलम के अधिकार क्षेत्र में है।" अब यह भीख माँगने वाला शाह साहब के आदेश से बिना ज्ञान प्राप्त किए याचना का दोषी है, उसने मानो कब्र वालों को निरपेक्ष रूप से सुनने और देखने वाला (समी-ओ-बसीर) मान लिया या नहीं? और शाह साहब ने यह शुद्ध शिर्क या शिर्क का आभास सिखाया या नहीं? और ऐसी चीज़ सिखाने वाला काफ़िर, मुशरिक या बुरे मज़हब का बिदअती हुआ या नहीं? स्पष्ट करें, आपको पुण्य मिलेगा। तीसरे, उन्होंने मज़ार पर जाकर गदाई (भीख माँगना) तो बाद में बताई, पहले घर बैठे ही पवित्र आत्माओं (अरवाह-ए-तैय्यबा) की ओर ध्यान दिला रहे हैं। अब तो 'इतलाक़' (निरपेक्षता) का पानी सिर से ऊपर हो गया। प्रश्न (13): उन्हीं शाह साहब ने एक रुबाई लिखी: आनांके ज़ाद-ए-नास बहमी जुस्तंद --- बिलजुमला अनवार-ए-क़दम पैवस्तंद फ़ैज़-ए-क़ुद्स अज़ हिम्मत-ए-ईशां मी जो --- दरवाज़ा-ए-फ़ैज़-ए-क़ुद्स ईशां हस्तंद १ (जो लोग पाश्विक प्रवृत्तियों की अशुद्धियों से बाहर निकल गए, वे अनादि सत्ता के प्रकाश की गहराइयों में जा मिले: उनकी हिम्मत से ईश्वरीय अनुग्रह (फ़ैज़-ए-क़ुद्स) की तलाश करो, ईश्वरीय अनुग्रह का द्वार यही लोग हैं। - त) और मकतूब (पत्र) में रुबाइयों की व्याख्या करते हुए स्वयं इसकी व्याख्या इस प्रकार की: अर्थात् पवित्र आत्माओं की ओर ध्यान देना मशाइख़ के रूहानी और आंतरिक सुधार में बहुत लाभ पहुँचाता है। २. अर्थात् मशाइख़ की पवित्र आत्माओं की ओर ध्यान रूह और बातिन (आंतरिक अवस्था) को सँवारने में बड़ा लाभ रखता है। (त) मैं कहता हूँ: (अक़ूल - त) कितना अच्छा 'बड़ा लाभ' है कि बिना ज्ञान प्राप्त किए उनकी हिम्मत से फ़ैज़ चाहकर मुशरिक (बहुदेववादी) हो गए। प्रश्न (14): यही शाह साहब "क़ौलुल जमील" में लिखते हैं। उनकी अरबी इबारत लाकर अनुवाद करने के बजाय बेहतर है कि मैं मौलवी खुर्रम अली साहब बिलहौरी, लेखक "नसीहतुल मुस्लिमीन" का अनुवाद उद्धृत करूँ। ये साहब भी इनकार करने वालों के प्रमुखों और बड़ों में से हैं, "शिफ़ा-उल-अलील" में कहते हैं: "मशाइख़-ए-चिश्तिया ने फ़रमाया: कब्रिस्तान में मृत व्यक्ति के सामने काबा

मोअज़्मा की ओर पीठ करके बैठें, ग्यारह बार सूरह फ़ातिहा पढ़ें, फिर मृत के निकट हों और कहें 'या रूह' और 'या रूह-अल-अरवाह' की दिल में चोट (ज़र्ब) करें।"

1. मकतूबत-ए-वलीउल्लाह, कलमात-ए-तैय्यिबात से, बाइसवाँ पत्र कुछ छंदों की व्याख्या में, मतबा मुजतबाई, दिल्ली, पृष्ठ १९४।
2. मकतूबत-ए-वलीउल्लाह, कलमात-ए-तैय्यिबात से, बाइसवाँ पत्र कुछ छंदों की व्याख्या में, मतबा मुजतबाई, दिल्ली, पृष्ठ १९४।

पृष्ठ 948 का 688

منگوانا شرک ہوا جاتا تھا یہاں خود ان سے بھیک مانگی جاتی ہے۔ ثانیاً کسی سے بھیک مانگنی یونہی معقول کہ وہ اس کی عرض سنے اور اس کی طرف توجہ کرے، ورنہ دیواروں پتھروں سے کیا بھیک مانگنا۔ مگر آپ فرما چکے کہ "توجہ خاص کا انکشاف حال خارج از علم زائر، بحیز اختیار پروردگار عالم ہے۔" اب یہ جو بھیک مانگنے والا شاہ صاحب کے حکم سے بیحصول علم مر تکب سوال کا ہے اس نے گویا اہل قبر کو سمیع و بصیر علی الاطلاق قرار دیا یا نہیں؟ اور شاہ صاحب نے یہ شرک خالص یا شائبہ شرک تعلیم کیا یا نہیں؟ اور ایسی چیز کا سکھانے والا کافر یا مشرک یا بدعتی بد مذہب ہوا یا نہیں؟ بینوا توجروا ثالثاً انھوں نے مزار پر جا کر گدائی تو پیچھے بتائی، پہلے گھر ہی بیٹھے ارواح طیبہ کی طرف توجہ کرا رہے ہیں اب تو اطلاق کا پانی سر سے اونچا ہو گیا۔ سوال (۱۳): انہی شاہ صاحب نے ایک رباعی لکھی: آنانکہ زادِ ناس بہمی جستند --- بالجمہ انوارِ قدم پیوستند فیضِ قدس از ہمتِ ایشاں می جو --- دروازہ فیضِ قدس ایشاں ہستند ۱ (جو لوگ نفس حیوانی کی آلودگیوں سے باہر ہو گئے وہ ذات قدیم کے انوار کی گہرائیاں سے جا ملے: فیض قدس ان کی ہمت سے طلب کرو، فیض قدس کا دروازہ یہی لوگ ہیں۔ ت) اور مکتوب شرح رباعیات میں خود اس کی شرح یوں کی: یعنی توجہ بارواح طیبہ مشائخ در تہذیب روح و سر نفع بلیغ وارد ۲۔ یعنی مشائخ کی ارواح طیبہ کی جانب توجہ روح اور باطن کو سنوارنے میں نفع بلیغ رکھتی ہے (ت) اقول: (میں کہتا ہوں ۔ ت) کیا اچھا نفع بلیغ ہے کہ بلا حصول علم ان کی ہمت سے فیض چاہ کر مشرک ہو گئے۔ سوال (۱۴): یہی شاہ صاحب "قول الجمیل" میں لکھتے ہیں۔ ان کی عبارت عربی لا کر ترجمہ کروں، اس سے یہی بہتر ہے کہ مولوی خرم علی صاحب بلہوری مصنف نصیحۃ المسلمین کا ترجمہ نقل کروں۔ یہ صاحب بھی عمائد و کبرائے منکرین سے ہیں،

شفاء العلیل میں کہتے ہیں: "مشائخ چشتیہ نے فرمایا: قبرستان میں میت کے سامنے کعبہ معظمہ کو پشت دے کر بیٹھے، گیارہ بار سورہ فاتحہ پڑھے پر میت سے قریب ہو پھر کہے یا روح اور یا روح الروح کی دل میں ضرب کرے۔

۱ مکتوبات ولی اللہ از کلمات طیبات مکتوب بست و دوم در شرح بعض اشعار مطبع مجتبائی دہلی ص ۱۹۴ ۲ مکتوبات ولی اللہ از کلمات طیبات مکتوب بست و دوم در شرح بعض اشعار مطبع مجتبائی دہلی ص ۱۹۴

...until he finds relief and light, then waits for that whose grace from the master of the grave falls upon his heart. [1] (summary).

I say: First, let the ruling on this call of "O Spirit" be stated. Secondly, these seekers of grace who, according to the speech, acceptance, dissemination, and teaching of the Shah (Shah Waliullah/Shah Abdul Aziz) and the translator, whenever they wished, sat before graves without acquiring knowledge, calling "O Spirit" or "Spirit" and asking for grace. According to your manner, by considering the people of the graves as hearing, seeing, giving, and bestowing in an absolute sense, and the author and translator describing it as such, did they become polytheists (mushrik) or not?

Question (15): Shah Abdul Aziz Sahib in Tafsir Fath al-Aziz, in the same place where he has written about some special saints receiving such increased perception, also says:

"The Uwaisis achieve their goal of spiritual perfections from them, and those with needs and goals seek the solution to their problems from them and find it." [2] | The Uwaisi people achieve the purpose of their spiritual perfections from them, and the people of needs and objectives seek the solution to their problems from them and find it. (T)

They say increased perception is accepted, but the manifestation of specific attention's state is outside of knowledge except by the choice of the Sustainer. Then, how did the Uwaisi people who committed to benefiting without acquiring knowledge—because they were not the manifestation of these words and such a relationship that, God forbid, is obtained through shirk—become correct and accepted? This same Shah Sahib narrates from his father Shah Waliullah Sahib that the Uwaisi relationship is strong and correct. Sheikh Abu Ali Farmadi received spiritual grace from Abul Hasan Kharaqani, and he from the spirituality of Bayazid Bastami, and he from the spirituality of Imam Jafar Sadiq. [3] (This was quoted by Al-Bilhouri in Shifa al-Alil; Maulvi Khurram Ali Lahori quoted it in Shifa al-Alil. T)

Secondly, consider the Shah Sahib's later words: "those with needs seek the solution to their problems from them and find it." How grandly he has described the souls of the saints as fulfillers of needs and removers of difficulties. By Allah! He spoke the truth, even if the ignorant take it ill.

People are enemies of what they are ignorant of. (People are enemies to what they do not know. T)

1. Shifa al-Alil translation of Al-Qaul al-Jamil, Chapter 5, H.M. Saeed Company Karachi, p. 72.
2. Tafsir Fath al-Aziz, Para Amm, explanation of charities and Fatiha etc., Muslim Book Depot Lal Kuan Delhi, p. 206.
3. Shifa al-Alil translation of Al-Qaul al-Jamil, Chapter 11, H.M. Saeed Company Karachi, p. 178.

...जब तक कि वह राहत और प्रकाश न पा ले, फिर उसका इंतज़ार करे जिसका फ़ैज़ (अनुग्रह) कब्र के मालिक की ओर से उसके दिल पर हो। [1] (संक्षेप में)

मैं कहता हूँ: पहले इस "या रूह" (हे आत्मा) की पुकार का हुक्म बताया जाए। दूसरे, फ़ैज़ के ये चाहने वाले जो शाह साहब और अनुवादक के प्रवचन, स्वीकारोक्ति, प्रसार और शिक्षण के अनुसार जब भी चाहा, बिना कब्रों का ज्ञान प्राप्त किए उनके सामने "या रूह" या "रूह" पुकारते और फ़ैज़ माँगते हुए बैठ गए। आपके अनुसार कब्र वालों को पूर्ण रूप से सुनने वाला, देखने वाला, देने वाला और फ़ैज़ पहुँचाने वाला मानकर और लेखक व अनुवादक के बताने के अनुसार, क्या वे मुशरिक (बहुदेववादी) हुए या नहीं?

सवाल (15): शाह अब्दुल अज़ीज़ साहब तफ़्सीर फ़तह अल-अज़ीज़ में, उसी स्थान पर जहाँ उन्होंने कुछ विशिष्ट औलिया (संतों) को ऐसी बढ़ी हुई समझ मिलने के बारे में लिखा है, यह भी फरमाते हैं कि:

"उवैसी लोग अपनी आंतरिक पूर्णता का लक्ष्य उनसे प्राप्त करते हैं, और ज़रूरतें और उद्देश्य रखने वाले अपनी समस्याओं का समाधान उनसे माँगते और पाते हैं।" [2] | उवैसी लोग अपने कमालत-ए-बातिनी (आंतरिक पूर्णता) का उद्देश्य उनसे प्राप्त करते हैं, और ज़रूरतमंद लोग अपनी मुश्किलों का समाधान उनसे माँगते और पाते हैं। (त)

कहते हैं कि बढ़ी हुई समझ तो स्वीकार्य है, लेकिन विशेष ध्यान की स्थिति का प्रकटीकरण पालनहार की इच्छा के बिना ज्ञान के बाहर है। फिर उवैसी लोग जो बिना ज्ञान प्राप्त किए लाभ उठाने के अपराधी होते हैं - क्योंकि वे इन शब्दों के पात्र नहीं हुए और ऐसा संबंध जो अल्लाह न करे शिर्क के माध्यम से मिलता है - कैसे सही और स्वीकार्य ठहरा? यही शाह साहब अपने पिता शाह वलीउल्लाह साहब से उवैसियत के संबंध को मज़बूत और सही होने का वर्णन करते हैं। शेख अबू अली फ़ार्मदी को अबुल हसन खरकानी से रूहानी फ़ैज़ प्राप्त है, और उन्हें बायज़ीद बुस्तामी की रूहानियत से, और उन्हें इमाम जाफ़र सादिक की रूहानियत से शिक्षा प्राप्त है। [3] (इसे बिलहौरी ने शिफ़ा अल-अलील में उद्धृत किया है; मौलवी खुर्रम अली लाहौरी ने इसे शिफ़ा अल-अलील में उद्धृत किया। त)

दूसरे, शाह साहब के बाद वाले शब्दों पर ज़रा गौर करें कि "ज़रूरतमंद अपनी समस्याओं का समाधान उनसे माँगते और पाते हैं"। कितने भव्य रूप से औलिया की आत्माओं को ज़रूरतें पूरी

करने वाला और मुश्किलें हल करने वाला बताया गया है। खुदा की कसम! सच कहा, भले ही अनजान लोग इसे बुरा मानें।

लोग उस चीज़ के दुश्मन होते हैं जिसे वे नहीं जानते। (लोग जिस चीज़ को नहीं जानते उसके दुश्मन होते हैं। त)

1. शिफ़ा अल-अलील, अल-क़ौल अल-जमील का अनुवाद, पाँचवाँ अध्याय, एच.एम. सईद कंपनी कराची, पृ. 72
2. तफ़्सीर फ़तह अल-अज़ीज़, पारा अम्म, सदक़ात और फ़ातिहा आदि का वर्णन, मुस्लिम बुक डिपो लाल कुआँ दिल्ली, पृ. 206
3. शिफ़ा अल-अलील, अल-क़ौल अल-जमील का अनुवाद, ग्यारहवाँ अध्याय, एच.एम. सईद कंपनी कराची, पृ. 178

पृष्ठ 689/948

یہاں تک کہ کشائش و نور پائے، پھر منتظر رہے اس کا جس کا فیضان صاحب قبر سے ہو اس کے دل پر ۱۔ھ اھ ملخصاً اقول: اولاً اس ندائے یاروح کا حکم ارشاد ہو۔ ثانیاً یہ سائلان فیض جو تقریر و تسلیم و اشاعت و تعلیم شاہ صاحب و مترجم صاحب جب چاہا بلا حصول علم قبور کے سامنے یاروح یا روح کرنے اور فیض مانگنے بیٹھ گئے۔ آپ کے طور پر اہل قبور کو سمیع و بصیر و معطی و مفیض علی الاطلاق مان کر اور ماتن و مترجم بتاتا کہ مشرک ہوئے یا نہیں؟ سوال (۱۵): شاہ عبدالعزیز صاحب تفسیر فتح العزیز میں، وہیں جہاں انھوں نے بعض خواص اولیاء کو ایسی زیادت ادراک ملنی لکھی ہے۔ یہ بھی فرماتے ہیں کہ:

"اویسان تحصیلِ مطلبِ کمالاتِ باطنی از انہا می نمایند و اربابِ حاجات و مطالب حل مشکلاتِ خود از انہا می طلبند و می یابند۔" ۲۔ھ | اویسی لوگ اپنے کمالات باطنی کا مقصد ان سے حاصل کرتے ہیں، اور اہل حاجت و مقاصد اپنی مشکلوں کا حل ان سے مانگتے اور پاتے ہیں (ت)

کہتے زیادت ادراک مسلم، مگر توجہ خاص کا انکشاف حال تو خارج از علم بخیر اختیار پروردگار ہے۔ پھر اویسی لوگ جو بلا حصول علم مر تکب استفادہ ہوتے ہیں کیونکہ مصداق ان لفظوں کے نہ ہوئے اور ایسی نسبت کہ معاذ اللہ بذریعہ شرک ملتی ہے۔ کیونکر صحیح و مقبول ٹھہری، یہی شاہ صاحب اپنے والد شاہ ولی اللہ صاحب سے ناقل اویسیت کی نسبت قوی اور صحیح ہے۔ شیخ ابوعلی فارمدی کو ابوالحسن خرقانی سے روحی فیض ہے اور ان کو بایزید بسطامی کی روحانیت سے، اور ان کو امام جعفر صادق کی روحانیت سے تربیت ہے ۳۔ھ اھ نقلہ البلھوری فی شفاء العلیل (اسے مولوی خرم علی لاہوری نے شفاء العلیل میں نقل کیا۔ ت) ثانیاً ذرا شاہ صاحب کے پچھلے لفظ کہ "اہل حاجت اپنی مشکلوں کا حل ان سے مانگتے اور پاتے ہیں" ملحوظ خاطر رہیں، کس دھوم دھام

سے ارواح اولیاء کو حاجت روا مشکل کشا بتایا ہے۔ واللہ ! کہا سچ، اگرچہ بُرا مانیں ناواقف۔ الناس اعداء لما جھلوا (لوگ جس چیز کو نہیں جانتے اس کے دشمن ہوتے ہیں۔ ت)

۱؎ شفاء العلیل ترجمہ القول الجمیل پانچویں فصل ایچ ایم سعید کمپنی کراچی ص ۷۲ ۲؎ تفسیر فتح العزیز پارہ عم بیان صدقات وفاتحہ الخ مسلم بک ڈپو لال کنواں دہلی ۲۰۶ ۳؎ شفاء العلیل ترجمہ القول الجمیل گیارہویں فصل ایچ ایم سعید کمپنی کراچی ص ۱۷۸

Fatawa Razawiyya Volume Nine

O Ghaus-e-Azam! Help me, the helpless one. Qibla of Religion! Help me; Kaaba of Faith! Help me. (O Ghaus-e-Azam! Bestow your help upon me who is destitute; O Qibla of Religion! provide aid; O Kaaba of Faith! grant assistance.)

Question (16): In the same Tafsir-e-Azizi, burial is deemed a divine blessing, and regarding its benefits and advantages, it is written: - Benefit and gain from buried saints (awliya) continue[1]. / Gaining benefit and seeking advantage from buried saints is ongoing. (T)

I say (Aqool): Firstly, up to 'benefiting' (intifa) it was fine, as one can be benefited even without a specific goal. However, the term 'seeking advantage' (istifada) made it problematic because it means nothing other than seeking benefit. What a 'good benefit' has been deduced from burial, that servants of God, without attaining knowledge, commit to asking for help and, God forbid, become polytheists. Secondly, regarding the phrase 'is ongoing' (jari-st), note that it refers to being prevalent among Muslims. And what is prevalent among Muslims can never be polytheism (shirk), because those among whom polytheism is prevalent can never be called Muslims.

Question (17): Mirza Mazhar Jan-e-Janan, whom Shah Waliullah calls 'Protector of the Ahmadi Path and Caller to the Prophetic Sunnah' in his letters, and on the margins of Maktubat-e-Alawiya, it is narrated from the Shah regarding him that in India, Arabia, and foreign lands, there have been few such followers of the Book and Sunnah even among the predecessors, summarized and translated. Mirza Sahib writes in his Malfoozat (recorded sayings): - My connection reaches the presence of the Commander of the Faithful, Hazrat Ali (may Allah honor him). I have a special devotion to his presence. Whenever a physical ailment occurs, my attention turns toward him, and it becomes the cause of recovery[2]. / My connection reaches the presence of the Commander of the Faithful, Hazrat Ali (may Allah honor him), and this humble one has a special devotion to that presence. When a physical ailment arises, my attention is towards his presence, which becomes the cause of healing. (T)

Question (18): He further states: - Once a poem whose opening verse (matla) is this... / Once a poem whose opening verse is this:

[1] Tafsir Fath al-Aziz, Para Amm, Gaining benefit from buried Awliya, Muslim Book Depot, Lal Kuan, Delhi, p. 143. [2] Maktubat Mirza Mazhar from Kalimat Tayyibat Malfoozat Mirza Sahib, Matba Mujtabai, Delhi, p. 87.

फ़तावा रज़विया खंड नौ

ऐ ग़ौस-ए-आज़म! मुझ बे-सरो-सामां की मदद फरमाएं। क़िब्ला-ए-दीन! मदद फरमाएं काबा-ए-ईमान! मदद फरमाएं। (ग़ौस-ए-आज़म! मुझ असहाय की सहायता करें; दीन के क़िब्ला! सहायता करें; ईमान के काबा! सहायता प्रदान करें।)

सवाल (16): उसी तफ़सीर-ए-अज़ीज़ी में दफ़्न को ईश्वरीय वरदान मानकर उसके लाभ और फ़ायदों के बारे में लिखा है: - दफ़्न किए गए औलिया (संतों) से लाभ और फ़ायदा प्राप्त करना जारी है[1]। / दफ़्न किए गए औलिया से लाभ उठाना और फ़ायदा माँगना निरंतर है। (त)

अक़ूल (मैं कहता हूँ): पहले तो 'लाभान्वित होने' (इन्तिफ़ा) तक तो ठीक था क्योंकि बिना किसी उद्देश्य के भी लाभान्वित होना संभव है, लेकिन 'फ़ायदा हासिल करने' (इस्तिफ़ादा) ने मामला बिगाड़ दिया क्योंकि इसका अर्थ लाभ माँगने के अलावा कुछ नहीं है। फिर दफ़्न में कैसा 'अच्छा लाभ' निकाला गया है कि ईश्वर के बंदे ज्ञान प्राप्त किए बिना याचना करने लगते हैं और - ईश्वर न करे - मुशरिक (बहुदेववादी) बन जाते हैं। दूसरे, शब्द 'जारी है' (जार्स्त) पर ध्यान दें कि इसका अर्थ केवल मुसलमानों के बीच प्रचलित होना है। और जो मुसलमानों में प्रचलित हो वह कभी शिर्क(बहुदेववाद) नहीं हो सकता, क्योंकि जिनमें शिर्क प्रचलित हो वे कभी मुसलमान नहीं हो सकते।

सवाल (17): मिर्ज़ा मज़हर जान-ए-जानाँ साहब, जिन्हें शाह वलीउल्लाह साहब अपने पत्रों में 'अहमदी तरीक़े के संरक्षक और सुन्नत-ए-नबवी के प्रचारक' लिखते हैं, और मक्तूबात-ए-अलविया के हाशिये पर उनके बारे में शाह साहब से उद्धृत है कि भारत, अरब और अन्य देशों में किताब-ओ-सुन्नत के ऐसे अनुयायी पूर्वजों में भी कम हुए हैं, सारांश और अनुवादित। मिर्ज़ा साहब अपने मलफ़ूज़ात (कथनों) में लिखते हैं: - मेरा संबंध अमीरुल मोमिनीन हज़रत अली (करम अल्लाह वज्हहु) की दरगाह तक पहुँचता है और फ़क़ीर को उस दरबार से विशेष लगाव है। जब कोई शारीरिक बीमारी होती है तो मेरा ध्यान आपकी ओर होता है और वह स्वास्थ्य लाभ का कारण बनता है[2]। / अमीरुल मोमिनीन हज़रत अली (करम अल्लाह वज्हहु) की बारगाह तक निस्बत (संबंध) पहुँचती है और इस फ़क़ीर को उन हुज़ूर से विशेष नियाज़ (देवभक्ति) हासिल है। जब कोई शारीरिक बीमारी आती है, तो मेरा ध्यान हुज़ूर की ओर होता है और वह शिफ़ायाबी (ठीक होने) का कारण बनता है। (त)

सवाल (18): आगे फरमाते हैं: - एक बार वह क़सीदा (कविता) जिसका मतला (पहला शेर) यह है... / एक बार वह क़सीदा जिसका मतला यह है:

[1] तफ़सीर फ़तहुल अज़ीज़, पारा अम्म, दफ़्नशुदा औलिया से लाभ, मुस्लिम बुक डिपो, लाल कुआँ, दिल्ली, पृष्ठ 143। [2] मक्तूबात मिर्ज़ा मज़हर, कलिमात तैयिबात मलफ़ूज़ात मिर्ज़ा साहब से, मतबा मुजतबाई, दिल्ली, पृष्ठ 87।

فتاوٰی رضویہ جلد نہم

اے غوثِ اعظم بمن بے سروساماں مددے قبلہ دیں مددے کعبہ ایماں مددے (غوثِ اعظم! مجھ بے سروسامان کی مدد فرمائیں، قبلہ دیں! مدد فرمائیں، کعبہ ایمان! مدد فرمائیں)

سوال (۱۶): اُسی تفسیر عزیزی میں دفن کو نعمت الٰہی ٹھہرا کر اس کے منافع و فوائد میں لکھتے ہیں: از اولیائے مدفونین انتفاع و استفادہ جاریست[1]۔ | مدفون اولیاء سے نفع پانا اور فائدہ طلب کرنا جاری ہے۔ (ت)

اقول اولاً انتفاع تک خیر تھی کہ بے مقصد منتفع بھی ممکن، استفادہ نے غضب کر دیا کہ وہ نہیں مگر طلب فائدہ، پھر کیا اچھا نفع دفن میں نکالا کہ بندگانِ خدا بے حصول علم مرتکب سوال ہو کر معاذ اللہ مشرک ہوتے ہیں۔ ثانیاً لفظ "جاری ست" پر لحاظ رہے کہ اس سے مراد نہیں مگر مسلمانوں میں جاری ہونا، اور جو مسلمانوں میں جاری ہر گز شرک نہیں کہ جن میں شرک جاری ہر گز مسلمان نہیں۔

سوال (۱۷): مرزا مظہر جانجاناں صاحب جنہیں شاہ ولی اللہ صاحب اپنے مکاتیب میں قیم طریقہ احمدیہ و داعی سنت نبویہ لکھتے ہیں، اور حاشیہ مکتوبات ولو یہ پر انہیں شاہ صاحب سے ان کی نسبت منقول ہند و عرب و ولایت میں ایسا متبع کتاب وسنت نہیں سلف میں بھی کم ہوئے اھ ملخصا مترجما، یہ مرزا صاحب اپنے ملفوظات میں تحریر فرماتے ہیں: نسبت مابجناب امیر المومنین حضرت علی کرم اللہ وجہہ می رسد، وفقیر رانیازی خاص بآن جناب ثابت است۔ در وقت عروض عارضہ جسمانی توجہ بآنحضرت واقع می شود و سبب حصول شفای گردد[2]۔ | امیر المومنین حضرت علی کرم اللہ وجہہ کی بارگاہ تک نسبت پہنچتی ہے اور فقیر کو اس جناب سے خاص نیاز

حاصل ہے، جب کوئی جسمانی عارضہ لاحق ہوتا ہے تو آنحضور کی جانب میری توجہ ہوتی ہے اور شفایابی کا سبب بنتی ہے۔ (ت)

سوال (۱۸): آگے فرماتے ہیں: یکبار قصیدہ کہ مطلعش اینست۔ | ایک بار وہ قصیدہ جس کا مطلع یہ ہے :

[1] تفسیر فتح العزیز پارہ عم استفادہ از اولیاء مدفونین مسلم بک ڈپو لال کنواں دہلی ص ۱۴۳ [2] مکاتیب مرزا مظہر از کلمات طیبات ملفوظات مرزا صاحب مطبع مجتبائی دہلی ص ۸۷

Fatawa Razawiyya Volume 9

The light of the eye of awareness, O Commander of the Faithful, Haider (Ali). Light was bestowed upon the eye of gnosis, O Commander of the Faithful, Haider. From the finger of the Hand of God, O Commander of the Faithful, Haider. I presented my plea before His Presence, and the King bestowed great favors, said [he] [1]. (Translation)

I say: Firstly, when Mr. Mirza, during illnesses, turned towards the court of the 'Solver of Difficulties' (Ali), how did he know whether Mawla Ali (may Allah honor his face) was attentive to him at that time or would pay heed to him? Secondly, similarly, when he sat down to present the panegyric (qasida), did he know that the exalted personage would hear it at that time? So, in all these instances, by engaging in plea and focus without obtaining knowledge [of their hearing], did he not regard the presence of the 'Lion of Allah' (Asadullahi) as absolutely Hearing and Seeing (Sami' and Basir)? And did he receive that bad title in the manner of the Prophet (peace be upon him) or not? Thirdly, going to the shrine and addressing [the deceased] was such a calamity; for Mr. Mirza, who would focus and recite qasidas even without being present at the shrine, would the ruling for him be even more severe or not? Fourthly, take note of this specific 'Niyaz' (offering/devotion) as well, which will serve as a treatment for the delusions of those ignorant ones who consider the word 'Niyaz' to be exclusive to the One who is Independent (Allah), and for this reason, they consider calling the Fatiha for saints as 'Niyaz' to be polytheism (shirk) and forbidden (haram). Fifthly, this major report remains: is turning towards pure souls for the removal of illnesses not seeking help from other than Allah (istimdad bi al-ghayr)? And according to you, can such a person be considered unique and peerless in following the Shari'ah, as Shah Waliullah said, let alone being a follower of the Sunnah, rather, based on faith and Taqwiyat al-Iman, can he be called a complete Muslim and Monotheist or not? Question (19): What is the ruling regarding Shah Abdul Rahim, the father of Shah Waliullah? Even he was not safe from this universal polytheism. Shah Waliullah writes in 'Al-Qawl al-Jamil': "Also, our Sheikh Abdul Rahim learned etiquette from the soul of his maternal grandfather, Sheikh Rafi' al-Din Muhammad." [2] In 'Shifa al-Alil', its translation is as follows: "And also our mentor Shah Abdul Rahim became an apprentice to the soul of his grandfather Sheikh Rafi' al-Din." And the footnote of 'Faiz' was not such that it came from there without being sought, but rather he himself would go and focus at the grave. Shah Waliullah himself...

[1] Makatib Mirza Mazhar Jan-e-Janan from Kalimat Tayyibat Malfuzat Mirza Sahib, Mujtabai Press, Delhi, p. 87. [2] Al-Qawl al-Jamil with Shifa al-Alil, Eleventh Chapter, H.M. Saeed Company, Karachi, pp. 97-80.

फ़तावा रज़विया जिल्द नहम (9)

आगही (चेतना) की आँख की रोशनी, ऐ अमीरुल् मोमिनीन हैदर। मारिफ़त (ज्ञान) की आँख को रोशनी प्रदान की गई, ऐ अमीरुल् मोमिनीन हैदर। अल्लाह के हाथ वाली उँगली से, ऐ अमीरुल् मोमिनीन हैदर। उनकी बारगाह में अर्ज़ किया तो बादशाह ने बड़ी नवाज़िशें (कृपा) फ़रमाईं। [1] (तर्जुमा)

मैं कहता हूँ: अव्वल, जब जनाब मिर्ज़ा साहब बीमारियों में 'मुश्किल कुशा' (अली) की बारगाह की ओर ध्यान देते थे, तो उन्हें क्या पता था कि हज़रत मौला अली (अल्लाह उनके चेहरे को सम्मानित करे) उस समय मेरी ओर ध्यान दे रहे हैं या मेरी ओर इल्तिफ़ात (ध्यान) फ़रमाएँगे। दूसरा, इसी तरह जब क़सीदा पेश करने बैठे, तो क्या जानते थे कि हज़रत-ए-वाला उस समय सुन लेंगे? तो इन सभी अवसरों पर ज्ञान प्राप्त किए बिना, अर्ज़ और तवज्जो (ध्यान) करके उन्होंने जनाब 'असदउल्लाही' (अल्लाह का शेर) को निरपेक्ष रूप से सुनने वाला और देखने वाला (समी और बशीर) ठहराया, और हज़रत के समान वह बुरा ख़िताब पाया या नहीं। तीसरा, मज़ार (कब्र) पर जाकर कलाम और संबोधन तो एक आफ़त थी ही; मिर्ज़ा साहब के लिए, जो मज़ार पर मौजूद हुए बिना ही तवज्जो करते और क़सीदे सुनाते थे, उनके लिए हुक्म (आदेश) कुछ ज़्यादा सख़्त होगा या नहीं। चौथा, इस विशेष 'नियाज़' (समर्पण) पर भी नज़र रहे, जो उन अज्ञानियों के भ्रम का इलाज करेगा जो 'नियाज़' शब्द को केवल 'बे-नियाज़' (अल्लाह) के लिए विशिष्ट मानते हैं, और इसी आधार पर औलिया (संतों) की फ़ातिहा को नियाज़ कहना शिर्क(बहुदेववाद) और हराम (वर्जित) मानते हैं। पाँचवाँ, यह बड़ी रिपोर्ट तो बाकी ही रह गई कि बीमारियों को दूर करने के लिए पवित्र आत्माओं की ओर ध्यान देना 'इस्तिम्दाद बिल-ग़ैर' (अल्लाह के अलावा किसी और से मदद माँगना) है या नहीं। और आपके नज़दीक भला ऐसा व्यक्ति शरीयत के पालन में अद्वितीय और बेमिसाल है, जैसा कि शाह वलीउल्लाह साहब ने कहा था, यह बात तो अलग रही, क्या उसे शुरू से सुन्नत का अनुयायी, बल्कि ईमान और 'तक़वियतुल ईमान' के आधार पर पूर्ण रूप से मुस्लिम और मुवह्हिद (एकेश्वरवादी) कहा जाएगा या नहीं? सवाल (19): शाह वलीउल्लाह के पिता शाह अब्दुल रहीम साहब के बारे में क्या हुक्म है? वे भी इस सार्वभौमिक शिर्क से सुरक्षित नहीं रहे। शाह वलीउल्लाह साहब 'क़ौलुल जमील' में लिखते हैं: "और हमारे शेख अब्दुल रहीम ने अपने नाना शेख रफ़ीउद्दीन मुहम्मद की रूह (आत्मा) से अदब सीखा।" [2] 'शिफ़ा अल-अलील' में इसका अनुवाद इस प्रकार है: "और हमारे मुर्शिद (गुरु) शाह अब्दुल रहीम अपने नाना शेख रफ़ीउद्दीन की रूह से अदब सीखने वाले हुए।" और 'फ़ैज़' का हाशिय

(फ़ुटनोट) ऐसा नहीं था कि वह वहाँ से बिना माँगे आया हो, बल्कि वह स्वयं जाकर क़ब्र पर तवज्जो किया करते थे। स्वयं शाह वलीउल्लाह...

[1] मकातीब मिर्ज़ा मज़हर जान-ए-जानाँ, कलिमात तैयिबात मलफ़ूज़ात मिर्ज़ा साहब, मुज्तबाई प्रेस दिल्ली, पृ. 87 [2] अल-क़ौलुल जमील मअ शिफ़ा अल-अलील, ग्यारहवाँ अध्याय, एच.एम. सईद कंपनी कराची, पृ. 97-80

فتاوٰی رضویہ جلد نہم

فروغ چشم آگاہی امیر المؤمنین حیدر چشم معرفت کو روشنی عطا ہوائے امیر المؤمنین حیدر زانگشت ید اللہ ی امیر المؤمنین حیدر خدائی ہاتھ والی انگشت سے اے امیر المؤمنین حیدر بجناب ایشاں عرض نمودم نواز شہا فر مود ندائے [1] - حضرت کی بارگاہ میں عرض کیا تو بڑی نوازشیں فرمائیں اھ (ت)

اقول: اولاً جب جناب مرزا صاحب امراض میں بارگاہ مشکل کشائی کی طرف توجہ کرتے تھے انہیں کیا خبر تھی کہ حضرت مولا علی کرم اللہ وجہہ الاسنیٰ اس وقت میری طرف متوجہ ہیں یا میری طرف سے التفات فرمائیں گے۔ ثانیاً یو نہی جب قصیدہ عرض کرنے بیٹھے، کیا جانتے تھے کہ حضرت والا اس وقت سن لیں گے، تو ان سب اوقات میں بے حصول علم، مرتکب عرض و توجہ ہو کر انہوں نے جناب اسد اللہی کو سمیع و بصیر علی الاطلاق ٹھہرایا، اور حضرت کے طور پر وہ برا لقب پایا یا نہیں۔ ثالثاً مزار پر جا کر کلام و خطاب تو وہ آفت تھا، مرزا صاحب جو بے حضورِ مزار ہی تو جہیں کرتے قصیدے سناتے ان کے لیے حکم کچھ زیادہ سخت ہوگا یا نہیں۔ رابعاً اس نیازی خاص پر بھی نظر رہے کہ یہ معالجہ کرے گا ان جہال کے وہم کا جو "نیاز" کے لفظ کو خاص بجناب بے نیاز مانتے، اور اسی بنا پر فاتحہ حضرات اولیاء کو نیاز کہنا شرک و حرام جانتے ہیں، خامساً یہ بڑی گزارش تو باقی ہی رہ گئی کہ دفع امراض کے لئے ارواح طیبہ کی طرف توجہ استمداد بالغیر تو نہیں۔ اور جناب کے نزدیک بھلا ایسا شخص اتباع شریعت میں یکتا و بے نظیر جیسا کہ شاہ ولی اللہ صاحب نے کہا تھا، بالائے طاق، سرے سے متبع سنت بلکہ ازروئے ایمان، تقویۃ الایمان، راساً مسلم و موحد کہا جائے گا یا نہیں سوال (۱۹) : شاہ ولی اللہ کے والد شاہ عبدالرحیم صاحب کی نسبت کیا حکم ہے؟ وہ بھی اس شرک عالمگیر سے محفوظ نہ رہے۔ شاہ ولی

اللہ صاحب قول الجمیل میں لکھتے ہیں: وایضاً تأدب شیخنا عبدالرحیم علی روح جدہ لامہ الشیخ رفیع الدین محمد[2]- شفاء العلیل میں اس کا ترجمہ یوں کیا: "اور بھی ہمارے مرشد شاہ عبدالرحیم ادب آموز ہوئے اپنے نانا شیخ رفیع الدین کی روح سے-" اور حاشیہ فیض یوں نہ تھا کہ ادھر سے بے طلب آیا ہو، بلکہ یہی جا کر قبر پر متوجہ ہوا کرتے- خود شاہ ولی اللہ

[1] مکاتیب مرزا مظہر جانجاناں از کلمات طیبات ملفوظات مرزا صاحب مطبع مجتبائی دہلی ص ۸۷

[2] القول الجمیل مع شفاء العلیل گیارہویں فصل ایچ ایم سعید کمپنی کراچی ص ۹۷-۸۰

Volume 9

Fatawa-e-Razviyya

Transmitted from his noble father in 'Anfas-ul-Arifeen':

| Persian: He used to say that at the beginning of my spiritual state, I developed an affection for the shrine of Sheikh Rafiuddin. I used to go there and focus my attention towards his grave etc. (1) | Urdu: He said: In the beginning of my spiritual state, I developed an attachment to the shrine of Sheikh Rafi-ud-Din. I would go there and focus on his grave etc. (Translator) |

O Lord! When all the teachers and spiritual masters of Maulvi Ismail were ensnared in polytheism (shirk), how could he, being their gatherer of crumbs, their namesake, their praiser, and their follower, remain a believing monotheist (momin muwahhid)?

"And the goodness of the plants of the earth is from the excellence of the seed." (The plant of the land is excellent only when the seed is good. - Translator)

Another category of this kind Another type of the same kind

In this section, those questions will be mentioned which pertain to Maulvi Sahib's second argument, i.e., relying on the Hadith "Whoever swears [by other than Allah]..." etc.:

Question (20): Regarding the excellent explanation provided for the Hadith "Whoever swears by other than Allah has committed polytheism (shirk)" (2), kindly look into the books of the Imams of Hadith and Fiqh and state to what extent it matches the words of the scholars. This humble servant would be extremely grateful if you could also show your statement to be in accordance with the writings of a reliable scholar. Keep the noble words in mind: "The reason for this prohibition is nothing but..." etc.

Question (21): The indication of an oath regarding the belief in benefit and harm—what kind of indication is it? Is this matter understood from its literal meaning, or is it intellectually or conventionally necessary and inseparable, that a person swears by the one from whom they hope for benefit and harm?

The ruling regarding the Companions (Sahaba) who used to swear by the exalted Kaaba in the early days of Islam as narrated by al-Nasa'i etc. (3) (as in Nasa'i...

1. Anfas-ul-Arifeen (Urdu translation), Zinda Javid al-Ma'arif, Ganj Bakhsh Road, Lahore, p. 36.
2. Musnad Ahmad bin Hanbal, narrated from Abdullah ibn Umar, Dar al-Fikr, Beirut, 2/87.
3. Sunan al-Nasa'i, chapter on swearing by the Kaaba, Nur Muhammad Karkhana Tijarat Kutub, Karachi, 2/134.

जिल्द नहम (भाग 9)

फ़तावा-ए-रज़विया

अपने वालिद माजिद (पिताजी) से 'अन्फ़ास-उल-आरिफीन' में उद्धृत:

| फारसी: वह फ़रमाया करते थे कि मेरी हाल की शुरुआत में शेख़ रफ़ीउद्दीन के मज़ार से एक लगाव पैदा हो गया। मैं वहाँ जाता और उनकी कब्र की तरफ मुतवज्जेह (ध्यान केंद्रित) होता था। (1) | उर्दू: फ़रमाते थे कि मुझे इब्तिदा-ए-हाल (हाल की शुरुआत) में शेख़ रफ़ीउद्दीन के मज़ार से एक उल्फ़त (प्रेम) पैदा हो गई। वहाँ जाता और उनकी कब्र की तरफ मुतवज्जेह होता था इल्ख़ (इत्यादि)। (त) |

या रब! जब मौलवी इस्माइल के असातिज़ा (शिक्षक) और मशाइख़ (आध्यात्मिक गुरु) सब शिर्क (बहुदेववाद) में गिरफ्तार हुए, तो ये उनके फ़ायदा उठाने वाले, उनके नाम लेने वाले, उनके प्रशंसक और उनके मुक़ल्लिद (अनुयायी) कैसे मोमिन मुवाहिद (ईश्वरवादी विश्वासी) रह सकते हैं।

"और ज़मीन के पौधों की अच्छाई बीज की उत्कृष्टता से होती है।" (ज़मीन का पौधा उम्दा तभी होता है जब बीज अच्छा हो। - त)

सिन्फ़ आख़र मिन हाज़ल नौअ (इस प्रकार की एक अन्य श्रेणी) इसी प्रकार की एक और किस्म

इसमें वे प्रश्न वर्णित होंगे जो मौलवी साहब के दूसरे तर्क यानी हदीस "मन हल्फ़..." (जिसने शपथ ली...) इत्यादि से संबंधित हैं:

सवाल (20): हदीस "जिसने अल्लाह के अलावा किसी और की क़सम खाई, उसने शिर्क किया" (2) की जो उम्दा शरह (व्याख्या) इफ़ादा फ़रमाई, ज़रा अइम्मा-ए-हदीस और फ़िक़्ह की किताबों पर नज़र डालकर इरशाद हो जाए कि वह उलेमा के शब्दों से कहाँ तक मेल खाती है। फकीर बहुत आभारी होगा यदि आपने किसी विश्वसनीय विद्वान के लेखन से भी अपने बयान को मिलान करके दिखा दिया। शरीफ़ शब्द ध्यान में रहें कि "इस हुरमत (प्रतिबंध) का कारण इसके सिवा कुछ नहीं" इल्ख़।

सवाल (21): नफ़ा (लाभ) और ज़र्र (हानि) के विश्वास पर क़सम का इशारा, किस प्रकार का इशारा है? क्या शब्दशः इसके अर्थ से यह बात समझ में आती है, या अक़्लन (तार्किक रूप से) या उर्फन

(परंपरागत रूप से) यह लाज़िम व मल्ज़ूम (अपरिहार्य) है कि व्यक्ति उसी की क़सम खाए जिससे वह लाभ और हानि की आशा रखे?

सदर-ए-इस्लाम (इस्लाम के शुरुआती दौर) में जो सहाबा-ए-किराम काबा मुअज्ज़मा की क़सम खाते थे, जैसा कि नसाई आदि ने रिवायत किया है (3) (जैसा कि नसाई...

---

1. अन्फ़ास-उल-आरिफीन (उर्दू अनुवाद), ज़िंदा जावेद अल-मआरिफ़, गंज बख्श रोड, लाहौर, पृष्ठ 36
2. मुसनद अहमद बिन हंबल, अब्दुल्ला इब्न उमर से वर्णित, दार अल-फिक्र, बेरूत, 2/87
3. सुनन अल-नसाई, अल-हल्फ़ बिल-काबा (काबा की कसम), नूर मुहम्मद कारख़ाना तिजारत कुतुब, कराची, 2/134

جلد نہم

فتاویٰ رضویہ

اپنے والد ماجد سے انفاس العارفین میں ناقل:

| می فرمودند مراد ر مبدء حال بمزار شیخ رفیع الدین الفتے پیدا شد۔ آں جاہی رفتم و بقبر شاں متوجہ می شدم الخ ۱ | فرماتے تھے مجھے ابتدائے حال میں شیخ رفیع الدین کے مزار سے ایک الفت پیدا ہو گئی۔ وہاں جاتا اور ان کی قبر کی طرف متوجہ ہوتا تھا الخ (ت) |

یا رب! جب مولوی اسمعیل کے اساتذہ و مشائخ سب گرفتار شرک ہوئے یہ انھیں کے خوشہ چین، انھیں کے نام لیوا، ان کے مداح، ان کے مقلد کیونکر مومن موحد رہے۔

وحسن نبات الارض من کرم البذر (زمین کا پودہ عمدہ جب ہی ہوتا ہے کہ بیج اچھا ہو۔ ت)

صنف آخر من ھذا النوع اسی نوع کی ایک اور قسم

اس میں وہ سوالات مذکور ہوں گے جو مولوی صاحب کے استدلال دوم یعنی تمسک بحدیث من حلف الخ سے متعلق ہیں:

سوال (۲۰): حدیث من حلف بغیر اللہ فقد اشرك ۲ کی جو عمدہ شرح افادہ فرمائی، ذرا کتب ائمہ حدیث و فقہ پر نظر کر کے ارشاد ہو جائے کہ کلمات علماء سے کہاں تک موافق ہے، فقیر بہت ممنون احسان ہوگا اگر ایک عالم معتمد کی تحریر سے بھی آپ نے اپنا بیان مطابق کر دکھایا۔ الفاظ شریفہ پیش نظر رہیں کہ "اس حرمت کا سبب سوا اس کے نہیں" الخ

سوال (۲۱): اعتقاد نفع و ضر پر قسم کی دلالت، کسی قسم کی دلالت، آیا لغتاً اس کے معنی سے یہ امر مفہوم، یا عقلاً خواہ عرفاً لازم و ملزوم، کہ آدمی اسی کی قسم کھائے جس سے نفع و ضر کی امید رکھے۔

صدر اسلام میں جو صحابہ کرام کعبہ معظمہ کی قسم کھاتے حکماً رواہ النسائی وغیرہ ۳ (جیسا کہ نسائی

---

۱ انفاس العارفین (اردو ترجمہ) زندہ جاوید المعارف گنج بخش روڈ۔ لاہور ص ۳۶ ۲ مسند احمد بن حنبل مروی از عبد اللہ ابن عمر دارالفکر بیروت ۲/ ۸۷ ۳ سنن نسائی الحلف بالکعبہ نور محمد کارخانہ تجارت کتب کراچی ۲/ ۱۳۴

Fatawa Rizwia, Volume 9

...and others narrated it. (T) What was the belief regarding the Kaaba at that time? Explain and be rewarded.

Question (22): Is considering anyone other than God as beneficial or harmful absolutely polytheism (shirk), or only in the specific case of believing them to be independently and essentially the source of benefit and harm? In the first case, this would be a shirk from which no one in the world is safe. Everyone knows honey is beneficial and poison is harmful. One hopes for benefit from a true friend and fears harm from an arch-enemy. People serve scholars and obey rulers precisely because they expect religious or worldly benefits. They are cautious of opposing religions and avoid snakes precisely because they fear spiritual or physical harm. The Great Quran itself says:

"Your parents and your children - you do not know which of them is nearer to you in benefit."[1] - Your fathers and your sons, you do not know which of them is closer to you in providing benefit.

And it says:

"But they could not harm anyone with it except by permission of Allah."[2] - And they will not harm anyone with it without the command of God.

In Sahih Muslim Sharif, it is narrated from Jabir (may Allah be pleased with him): The Master of the Worlds (peace and blessings of Allah be upon him) says:

"Whoever among you can benefit his brother, let him do so."[3] - Whoever among you can benefit his Muslim brother, let him do so.

Imam Ahmad, Abu Dawud, Tirmidhi, Nasai, and Ibn Majah narrate with a good chain from Malik bin Qais (may Allah be pleased with him), the luminous Master of the Worlds (peace and blessings of Allah be upon him) says:

"Whoever harms others, Allah will harm him, and whoever causes hardship to others, Allah will cause hardship to him."[4] - Whoever harms someone, Allah the Almighty will cause him harm, and whoever acts harshly towards someone, Allah the Almighty will put him in hardship.

Note: The mention of abrogation of 'beneficial' will not occur. Is abrogation also applicable to polytheism and monotheism? 12 Minh (M).

[1] Al-Quran 4/11 [2] Al-Quran 2/102 [3] Sahih Muslim, Chapter on the desirability of incantation (Ruqyah) for the evil eye, etc., Qadimi Kutub Khana, Karachi, 2/224 [4] Jami' al-Tirmidhi, Chapter on what has been said regarding betrayal, Nur Muhammad Karkhana Tijarat Kutub, Karachi, 7/28

फतावा रज़विया, जिल्द नवीं

...वगैरह ने रिवायत किया। (त) उस वक्त काबा के मुताल्लिक क्या अकीदा (विश्वास) रखते थे? बयान फरमाएं और सवाब पाएं।

सवाल (22): क्या खुदा के सिवा किसी और को नफा (लाभ) पहुँचाने वाला या नुकसान पहुँचाने वाला मानना मुतलकन (पूर्ण रूप से) शिर्क है, या सिर्फ उसी सूरत में जब उसे खुदमुख्तार और बुनियादी तौर पर नफा-नुकसान का मालिक माना जाए? पहली सूरत में, यह वह शिर्क होगा जिससे दुनिया में कोई भी महफूज़ (सुरक्षित) नहीं है। हर कोई जानता है कि शहद फायदेमंद है और जहर नुकसानदेह है। एक सच्चे दोस्त से नफे की उम्मीद होती है और कट्टर दुश्मन से नुकसान का डर होता है। आलिमों की खिदमत और हाकिम की इताअत (आज्ञापालन) इसीलिए की जाती है क्योंकि उनसे दीनी या दुनियावी नफे की तवक्को (उम्मीद) होती है। मुखालिफ मज़हब से एहतियात और सांप से परहेज इसीलिए रखा जाता है क्योंकि रूहानी (आध्यात्मिक) या जिस्मानी (शारीरिक) नुकसान का अंदेशा होता है। खुद कुरआन-ए-अजीम फरमाता है:

"तुम्हारे बाप और तुम्हारे बेटे, तुम नहीं जानते कि उनमें कौन तुम्हें नफा देने में ज़्यादा करीब है।"[1] - तुम्हारे बाप और तुम्हारे बेटे, तुम नहीं जानते कि उनमें कौन तुम्हें नफा देने में ज़्यादा करीब है।

और फरमाता है:

"और वो उससे किसी को नुकसान नहीं पहुँचा सकेंगे सिवाय अल्लाह के हुक्म के।"[2] - और वो उससे किसी को नुकसान नहीं पहुँचा सकेंगे बे-हुक्म खुदा के।

सहीह मुस्लिम शरीफ में जाबिर रज़ियल्लाहु अन्हु से मरवी है: हुज़ूर सैयदे आलम सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम फरमाते हैं:

"तुममें से जो अपने मुसलमान भाई को नफा पहुँचा सके, वो उसे नफा पहुँचाए।"[3] - तुममें जो अपने भाई मुसलमान को नफा दे सके, नफा दे।

इमाम अहमद, अबू दाऊद, तिर्मिज़ी, नसाई और इब्न माजाह ने सनद-ए-हसन के साथ मालिक बिन कैस रज़ियल्लाहु अन्हु से रिवायत की है कि हुज़ूर पुरनूर सैयदे आलम सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम फरमाते हैं:

"जो किसी को नुकसान पहुँचाएगा, अल्लाह तआला उसे नुकसान पहुँचाएगा और जो किसी पर सख्ती करेगा, अल्लाह तआला उसे मशक्कत (कठिनाई) में डाल देगा।"[4] - जो किसी को ज़रर (नुकसान) देगा अल्लाह तआला उसे नुकसान पहुँचाएगा और जो किसी पर सख्ती करेगा अल्लाह तआला उसे मशक्कत में डाल देगा।

नोट: नफा पहुँचाने वाले के मंसूख (निरस्त) होने का ज़िक्र नहीं होगा। क्या शिर्क और तौहीद में भी नस्क (निरस्तीकरण) जारी है? 12 मिन्हु (म)।

[1] अल-कुरआन 4/11 [2] अल-कुरआन 2/102 [3] सहीह मुस्लिम, बाब: नज़र-ए-बद आदि के लिए दम (रुक्या) की मुस्तहबियत, कदीमी कुतुब खाना, कराची, 2/224 [4] जामि तिर्मिज़ी, बाब: खयानत के बारे में जो आया है, नूर मुहम्मद कारखाना तिजारत कुतुब, कराची, 7/28

فتاوٰی رضویہ، جلد نہم

وغیرہ نے روایت کیا۔ ت) اس وقت کعبہ کی نسبت کیا اعتقاد عہ رکھتے تھے؟ بینواتوجروا

سوال (۲۲): غیر خدا کو کسی طرح نافع یا ضار جاننا مطلقاً شرک ہے یا خاص اس صورت میں کہ اسے نفع و ضرر میں مستقل بالذات مانے۔ برتقدیر اول یہ وہ شرک ہے جس سے عالم میں کوئی محفوظ نہیں۔ جہاں شہد کو نافع اور زہر کو مضر جانتا ہے۔ سچے دوست سے نفع کی امید، کچے دشمن سے ضرر کا خوف رکھتا ہے۔ عالم کی خدمت حاکم کی اطاعت اسی لیے کرتے ہیں کہ دینی یا دنیاوی نفع کی توقع ہے۔ مخالف مذہب سے احتیاط، سانپ سے احتراز اسی لیے رکھتے ہیں کہ روحانی یا جسمانی ضرر کا اندیشہ ہے۔ خود قرآن عظیم ارشاد فرماتا ہے:

آبآؤکم وابناؤکم لا تدرون ایھم اقرب لکم نفعاً 1 - تمھارے باپ اور تمھارے بیٹے تم نہیں جانتے ان میں کون تمھیں نفع دینے میں زیادہ نزدیک ہے۔

اور فرماتا ہے:

وَمَا هُم بِضَارِّينَ بِهِ مِنْ أَحَدٍ إِلَّا بِإِذْنِ اللَّهِ 2 - اور وہ اس سے کسی کو ضرر نہ پہنچائیں گے بے حکم خدا کے۔

صحیح مسلم شریف میں جابر رضی اللہ تعالٰی عنہ سے مروی : حضور سید عالم صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم فرماتے ہیں:

من استطاع منکم ان ینفع اخاہ فلینفعہ 3 - تم میں جو اپنے بھائی مسلمان کو نفع دے سکے نفع دے۔

امام احمد وابوداؤد و ترمذی و نسائی و ابن ماجہ بسند حسن مالک بن قیس رضی اللہ تعالیٰ عنہ سے راوی، حضور پر نور سید عالم صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم فرماتے ہیں :

من ضارّ ضار اللہ بہ ومن شاق شق اللہ علیہ 4 - جو کسی کو ضرر دے گا اللہ تعالیٰ اسے نقصان پہنچائے گا اور جو کسی پر سختی کرے گا اللہ تعالیٰ اسے مشقت میں ڈال دے گا۔

عہ: ذکرِ نسخ نافع نہ ہوگا۔ کیا شرک و توحید میں بھی نسخ جاری ہے ۱۲منہ (م)

1 القرآن ۱۱/۴ 2 القرآن ۱۰۲/۲ 3 صحیح مسلم باب استحباب الرقیۃ من العین الخ قدیمی کتب خانہ کراچی ۲۲۴/۲ 4 جامع الترمذی باب ما جاء فی الخیانۃ نور محمد کارخانہ تجارت کتب کراچی ۷/ ۲۸

Fatawa Razawiya - Volume 9

It is stated in a Hadith of Hakim that Mawla Ali (may Allah Almighty honor him) said to the Commander of the Faithful Farooq al-Azam (may Allah be pleased with him) regarding the Black Stone (Hajr-e-Aswad):

Yes, O Commander of the Faithful! It harms and it benefits.	**Why not, O Commander of the Faithful! This stone will harm and benefit. (Al-Hadith)**

On the second estimation, the actual fact and reality is a just witness against this assumption; millions of people swear by their own or their beloved's head, eyes, or life, and never in their dreams does it occur to them that these things are independently the masters of our benefit and harm. Nor does the listener's mind ever go in that direction. Well, what is the meaning of this statement by Hazrat Nabigha al-Ja'di (may Allah be pleased with him):

L'umri wa ma 'umri 'ala baheen Laqad nataqat butlan 'ala al-aqari'

(By my life, and my life is not a trivial thing. Undoubtedly, the dragons (enemies) have forged lies against me. - T) And what belief is manifested from this according to you? Similarly, swearing by one's father and one's own life by Hazrat Siddiq al-Akbar (may Allah be pleased with him), Umm al-Mu'minin Siddiqah (may Allah be pleased with her), and other leaders of religion (may Allah be pleased with them all) is not hidden from a servant of Hadith.

Question (23): Well, swearing by other than Allah was only apparent to you that he considers someone other than God as a bringer of benefit and harm in his belief. According to your assumption, just this matter became the basis for prohibition in the pure Shariah, even though God knows the state of his heart. Now let the ruling be stated regarding them. Those who clearly and explicitly describe someone other than God as not only bringers of benefit and harm but as the masters of benefit and harm, and that too, to whom? To that wretched person who claimed divinity. And for years, brainless donkeys worshipped him. Who is he? Pharaoh without help (un-aided). We ask Allah for protection from his state. (May God protect us from his state - T). Shah Abdul Aziz Sahib, in proof of the fact that the calf-worship of Samiri's people was worse than the Pharaoh-worship of the Copts, says in Tafsir-e-Azizi:

To honor a powerful king who is the master of benefit and harm	**Honoring such a powerful king who [is considered] benefit and harm**

1. Al-Mustadrak lil-Hakim, Al-Hajr al-Aswad Yamin Allah, Dar al-Fikr Beirut, 1/457.

फ़तावा रज़विया - खंड 9

हाकिम की एक हदीस में है कि मौला अली (करम अल्लाह तआला वज्हहुल करीम) ने अमीर-उल-मोमिनीन फ़ारूक़-ए-आज़म (रज़ियल्लाहु तआला अन्हु) से हजर-ए-अस्वद के बारे में फ़रमाया:

हाँ, हे अमीर-उल-मोमिनीन! यह नुक़सान देता है और नफ़ा पहुँचाता है।

क्यों नहीं ऐ अमीर-उल-मोमिनीन! यह पत्थर नुक़सान देगा और नफ़ा पहुँचाएगा। (हदीस)

दूसरी सूरत में, हक़ीक़त और असलियत इस गुमान के ख़िलाफ़ एक सच्चा गवाह है; लाखों लोग अपने या अपने प्रिय के सिर, आँखों या जान की क़सम खाते हैं, और उनके ख़्वाब में भी कभी यह ख़्याल नहीं आता कि ये चीज़ें ख़ुद-मुख्तार तौर पर हमारे नफ़ा और नुक़सान की मालिक हैं। और न ही सुनने वाले का ध्यान कभी उस तरफ़ जाता है। भला हज़रत नाबिग़ा जुअदी (रज़ियल्लाहु तआला अन्हु) के इस कौल का क्या मतलब है:

लउमरी व मा उमरी अला बहीन लक़द नतक़त बुतलन अलल अक़ारिअ

(मेरी ज़िंदगी की क़सम, और मेरी ज़िंदगी कोई मामूली चीज़ नहीं। बिला-शुबा अज़दहों (दुश्मनों) ने मुझ पर झूठ बाँधा है। - त) और आपके नज़दीक इससे क्या अक़ीदा ज़ाहिर होता है। इसी तरह हज़रत सिद्दीक़-ए-अकबर (रज़ियल्लाहु तआला अन्हु) और उम्मुल मोमिनीन सिद्दीक़ा (रज़ियल्लाहु तआला अन्हा) और दीगर पेशवा-ए-दीन (रज़ियल्लाहु तआला अन्हुम अजमईन) से अपने बाप और अपनी जान की क़सम खानी किसी हदीस के ख़ादिम से छिपी नहीं है।

सवाल (23): खैर, ग़ैर की क़सम खाना तो आपके नज़दीक सिर्फ़ ज़ाहिर ही था कि वह अपने अक़ीदे में ग़ैर-ख़ुदा को भी नफ़ा और नुक़सान पहुँचाने वाला मानता है। आपके गुमान में इतनी ही बात शरीअत-ए-मुतह्हरा में हराम होने की बुनियाद बनी, हालाँकि उसके दिल का हाल ख़ुदा ही जाने। अब उनके बारे में हुक्म बयान हो। जो साफ़-साफ़ स्पष्ट रूप से ग़ैर-ख़ुदा को न केवल नफ़ा और नुक़सान पहुँचाने वाला बल्कि नफ़ा और नुक़सान का मालिक बताएँ और वह भी किसे? उस बदक़िस्मत को जो ख़ुदाई का दावा करता रहा हो। और बरसों बेअक़्लों ने उसे पूजा हो। वह कौन, फ़िरऔन बे-औन। नसलुल्लाह अन हालिहिस-सून (ख़ुदा से दुआ है कि हमें उसकी हालत से बचाए। - त)। शाह अब्दुल अज़ीज़ साहब इस बात के सबूत में कि सामरी वालों की बछड़ा-परस्ती क़िब्तियों की फ़िरऔन-परस्ती से बदतर थी, तफ़्सीर-ए-अज़ीज़ी में फ़रमाते हैं:

ऐसे बाअख़्तियार बादशाह की ताज़ीम जो नफ़ा और नुक़सान का मालिक हो

ऐसे बाअख़्तियार बादशाह की ताज़ीम जो नफ़ा और नुक़सान का...

1. अल-मुस्तदरक लिल-हाकिम, अल-हजरुल अस्वद यमीन-अल्लाह, दारुल फ़िक्र बैरूत, 1/457।

पृष्ठ 694 का 948

حاکم کی حدیث میں ہے مولا علی کرم اللہ تعالٰی وجہہ الکریم نے امیر المؤمنین فاروق اعظم رضی اللہ تعالٰی عنہ سے حجر اسود کی نسبت فرمایا:

بلٰی یا امیر المؤمنین یضر وینفع ۱۔ **کیوں نہیں اے امیر المؤمنین! یہ پتھر نقصان دے گا اور نفع پہنچائے گا۔ (الحدیث)**

بر تقدیر ثانی واقع ونفس الامر اس گمان کے خلاف پر شاہد عادل، لاکھوں آدمی اپنے یا اپنے محبوب کے سر یا آنکھوں یا جان کی قسم کھاتے ہیں، اور ہر گز ان کے خواب میں بھی یہ خیال نہیں ہوتا کہ یہ چیزیں بالاستقلال ہمارے نفع وضرر کی مالک ہیں۔ نہ ہر گز سامع کا ذہن اس طرف جاتا ہے۔ بھلا حضرت نابغہ جعدی رضی اللہ عنہ کے اس قول کے کیا معنی ہیں:

لعمری وما عمری علی بھین لقد نطقت بطلا علی الاقارع

(میری زندگی کی قسم، اور میری زندگی کوئی معمولی چیز نہیں۔ بلا شبہ اثر د ہوں (دشمنوں) نے مجھ پر جھوٹ باندھا ہے۔ ت) اور جناب کے نزدیک اس سے کیا اعتقاد ظاہر ہوتا ہے۔ اسی طرح حضرت صدیق اکبر رضی اللہ تعالٰی عنہ اور ام المؤمنین صدیقہ رضی اللہ تعالٰی عنہا و غیر ہما پیشوایان دین رضی اللہ تعالٰی عنہم اجمعین سے اپنے باپ اور اپنی جان کی قسم کھانی کہ خادم حدیث پر مخفی نہیں۔

سوال (۲۳): خیر قسم غیر سے تو آپ کے نزدیک یہ صرف ظاہر ہی ہوتا تھا کہ وہ اپنے عقیدے میں غیر خدا کو بھی نفع وضرر رسان جانتا ہے۔ بگمان جناب اتنی ہی بات پر شرع مطہر میں بنائے تحریم ہوئی حالانکہ اس کے دل کا حال خدا جانے۔ اب ان کی نسبت حکم ارشاد ہو۔ جو صاف صاف

بالتصریح غیر خدا کو نہ فقط نفع وضرر رسان بلکہ مالک نفع وضرر بتائیں، اور وہ بھی کسے۔ اس شقی کو جو مدعی الوہیت رہا ہو۔ اور برسوں خران بے عقل نے اسے پوجا ہو۔ وہ کون، فرعون بے عون۔ نسال اللہ عن حالہ الصون (خدا سے دعا ہے کہ ہمیں اس کی حالت سے بچائے۔ ت) شاہ عبدالعزیز صاحب اس امر کے ثبوت میں کہ سامری والوں کی گوسالہ پرستی قبطیوں کی فرعون پرستی سے بدتر تھی، تفسیر عزیزی میں فرماتے ہیں:

تعظیم بادشاہ صاحب اقتدار کہ مالک نفع و ضرر باشد **ایسے صاحب اقتدار بادشاہ کی تعظیم جو نفع وضرر کا**

۱۔ المستدرک للحاکم الحجر الاسود یمین اللہ دار الفکر بیروت ۱/ ۴۵۷

Fatwa Razawiyya - Volume 9

In summary, it has a reason of rationality. A mindless calf, which is proverbial for stupidity and idiocy, is in no way worthy of respect. 1 It may possess some ownership, in summary, it has a reason of rationality, but the mindless calf of a cow, which is proverbial for stupidity and idiocy, is in no way worthy of respect. (T)

Question (24): I will submit this in the future, how much connection does asking for a prayer have with the belief in benefit and harm? For now, assuming it as such, I submit that in asking for prayer, that belief in benefit and harm emerged, which is essentially shirk (polytheism). Even though there is no seeking of any need from them themselves. Then: (1) Visiting their blessed shrines and begging from them directly. (2) Calling out "O soul, O soul" and waiting for their grace. (3) Seeking solutions to one's problems from them. (4) Turning towards them for healing when ill, as mentioned in the previous category, how much belief in benefit and harm is proven in these. And (5) The words 'intifa' (benefit) and 'istimdad' (seeking help) themselves mean gaining benefit and desiring profit. Is intending this without belief in benefit reasonable to any sane person? Yes, yes, if you do justice, then begging and seeking needs is much more than just asking for prayer. The distinction is based solely on the seeker's intention. If considered an apparent cause and a manifestation of God's help, it is pure truth; and God forbid, if considered independent, then it is pure shirk. Contrary to asking for prayer, where the very speech indicates servitude and bondage to the one asked and clear proof of dependence on the Self-Sufficient Lord (Glory be to Him). To the extent that its coexistence with the illusion of independence is impossible, as is not hidden from the possessors of intellect. (T) Despite all this, if this is shirk, then I cannot even find a word worse than shirk to designate it. Hemistich: The scope of description is too narrow for your attributes. (T)

Question (25): Even if it is accepted that swearing by other than God became forbidden, what does it have to do with the issue at hand? Does asking someone for prayer also manifest the same belief in benefit and harm which is essentially shirk? (1) Mustafa himself (may Allah's peace and blessings be upon him) asked for prayer from the Leader of the Believers, Umar Farooq the Great (may Allah be pleased with him).

1 Tafseer Azizi, Surah al-Baqarah, account of Moses (PBUH) going to bring the Book, etc., Afghani Dar al-Kutub, Lal Kuan Delhi, 238. Page 695 of 948

कुल मिलाकर, इसमें तर्कसंगतता का एक कारण है। एक बुद्धिहीन बछड़ा, जो मूर्खता और जड़ता के लिए कहावत बन चुका है, किसी भी तरह से सम्मान के योग्य नहीं है। 1 मालिक होना कुल मिलाकर तर्कसंगतता का एक कारण रखता है, मगर बेवक़ूफ़ गाय का बछड़ा जो मूर्खता और जड़ता में कहावत है, किसी भी तरह सम्मान के योग्य नहीं। (त)

प्रश्न (24): यह तो मैं भविष्य में निवेदन करूँगा कि दुआ माँगने का लाभ और हानि के विश्वास से कितना संबंध है। फ़िलहाल इसे यूँ ही मानकर निवेदन करूँ कि दुआ मंगवाने में तो वह लाभ और हानि का विश्वास निकला, जो अर्थ के आधार पर शिर्क(बहुदेववाद) है। हालाँकि वह स्वयं उनसे किसी आवश्यकता की याचना नहीं है। फिर: (1) उनके महान बरकतों वाले मज़ारों पर उपस्थित होकर स्वयं उनसे भीख माँगना। (2) 'या रूह, या रूह' पुकारकर उनके फ़ैज़ (अनुग्रह) का प्रतीक्षारत रहना। (3) अपनी समस्याओं का उनसे समाधान चाहना। (4) बीमार पड़ें तो स्वास्थ्य लाभ के लिए उनकी ओर ध्यान करना, जैसा कि अभी पिछली श्रेणी में उल्लेख किया गया है, उनमें लाभ और हानि का कितना विश्वास प्रमाणित होता है। और (5) शब्द 'इन्तिफ़ा' (लाभ उठाना) और 'इस्तिम्दाद' (सहायता चाहना) स्वयं लाभ प्राप्त करने और फ़ायदा चाहने के अर्थ में हैं। लाभ के विश्वास के बिना इसका इरादा करना, किस बुद्धिमान के लिए तर्कसंगत है? हाँ हाँ, न्याय कीजिए तो दुआ चाहने की तुलना में गिड़गिड़ाना और आवश्यकता पूर्ति चाहना कहीं अधिक है, इसमें केवल याचक की नियत पर ही भेद निर्भर है। यदि उसे बाहरी कारण और ईश्वरीय सहायता का प्रकटीकरण माना जाए तो शुद्ध सत्य है, और अल्लाह न करे यदि उसे स्वतंत्र माना जाए तो वह कोरा शिर्क है। इसके विपरीत दुआ माँगना कि वहाँ स्वयं संबोधन ही संबोधित की गुलामी और दासता और अल्लाह (जल्ला जलालाहु) की ओर मोहताजी का स्पष्ट प्रमाण है। यहाँ तक कि स्वतंत्रता के भ्रम के साथ इसका मिलन असंभव है जैसा कि बुद्धिमानों पर छिपा नहीं है। (त) इसके बावजूद अगर यह शिर्क है तो इसके लिए तो मुझे कोई शब्द शिर्क से भी बुरा नहीं मिलता जिसका मैं इसे उदाहरण ठहराऊँ। मिसरा: आपकी विशेषता के वर्णन के लिए बयान का दायरा संकीर्ण है। (त)

प्रश्न (25): अगर मान भी लें कि गैर-खुदा की कसम इसलिए हराम हुई तो उसका इस मामले से क्या संबंध? क्या किसी से दुआ के लिए कहने में भी इसी तरह के लाभ और हानि का विश्वास प्रकट होता है जो अर्थतः शिर्क है? (1) स्वयं मुस्तफ़ा (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने अमीरुल मोमिनीन उमर फ़ारूक़े आज़म (रज़ियल्लाहु अन्हु) से दुआ चाही।

1 तफ़सीर अज़ीज़ी, सूरह बक़रह, मूसा (अलैहिस्सलाम) के किताब लाने के लिए जाने का बयान आदि, अफ़ग़ानी दारुल कुतुब, लाल कुआँ दिल्ली, 238। पृष्ठ 695 / 948

فی الجملہ وجہ معقولیت دارد۔ گوسالہ لایعقل کہ در بلادت و حمق ضرب المثل است ہیچ وجہ شایانِ تعظیم نیست۔1^8 مالک ہو فی الجملہ ایک وجہ معقولیت رکھتی ہے مگر بے عقلی گائے کا بچھڑا جو بلادت اور بیوقوفی میں ضرب المثل ہے کسی طرح قابل تعظیم نہیں۔ (ت)

سوال (۲۴): یہ تو آئندہ عرض کروں گا کہ طلب دعا کو اعتقادِ نفع و ضرر سے کتنا تعقل۔ بالفعل اسے یونہی فرض کر کے گزارش کرلوں کہ دعا منگوانے میں تو وہ اعتقادِ نفع و ضرر نکلا، جو معنیً شرک۔ حالانکہ وہ خود ان سے کسی حاجت کی خواستگاری نہیں۔ پھر: (۱) ان کے مزاراتِ عظیمہ البرکات پر حاضر ہو کر خود ان سے بھیک مانگنا۔ (۲) یا روح یا روح پکار کر ان کے فیض کا منتظر رہنا۔ (۳) اپنی مشکلوں کا ان سے حل چاہنا۔ (۴) بیمار پڑیں تو شفاء ملنے کو ان کی طرف توجہ کرنا کہ ابھی صنف سابق میں منقول ہوئے ان میں کتنا اعتقاد نفع و ضرر ثابت ہوتا ہے۔ اور (۵) لفظ انتفاع و استمداد خود بمعنے نفع یافتن و فائدہ خواستن، اس کا قصد بے اعتقادِ نفع، کس عاقل سے معقول، ہاں ہاں، انصاف کیجئے تو دعا طلبی سے در یوزہ گری و حاجت خواہی کہیں زیادہ ہے، اس میں صرف نیت سائل پر مدار تفرقہ ہے۔ اگر سبب ظاہری و مظہر عون باری جانا تو خالص حق، اور معاذ اللہ مستقل مانا تو ترا شرک، بخلاف طلب دعا کہ وہاں نفس کلام مطلوب منہ کی غلامی و بندگی اور حضرت غنی جل جلالہ کی طرف محتاجی پر دلیل واضح۔ یہاں تک کہ توہم استقلال سے اس کا اجتماع محال کما لا یخفی علی اولی النھی (جیسا کہ اہل عقل پر مخفی نہیں۔ ت) بایں ہمہ اگر یہ شرک ہے تو اس کے لیے تو کوئی لفظ مجھے شرک سے بدتر ملتا بھی نہیں جس کا مصداق ٹھہراؤں ع۔ ضاق عن وصفکم نطاق البیان (آپ کے وصف سے بیان کا دائرہ تنگ ہے۔ ت)

سوال (۲۵): اگر مان بھی لیں کہ غیر خدا کی قسم اس لیے حرام ہوئی تو اس کو مسئلہ دائرہ سے کیا علاقہ۔ کیا کسی سے دعا کے لیے کہنے میں بھی اسی طرح کے نفع و ضرر کا اعتقاد ظاہر ہوتا ہے جو معنیً شرک ہے۔ (۱) خود مصطفیٰ صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم نے امیر المومنین عمر فاروق اعظم رضی اللہ تعالیٰ عنہ سے دعا چاہی

$^$1 تفسیر عزیزی سورۃ البقرۃ بیان رفتن موسیٰ علیہ السلام برائے آوردن کتاب الخ افغانی دار الکتب لال کنواں دہلی ۲۳۸ Page 695 of 948

Fatawa Razawiya Volume Nine

When he was going to Makkah Mukarramah, he said: "La tansana ya akhi min du'a'ika" - Narrated by Abu Dawood from him (Hazrat Umar), may Allah be pleased with him. | O brother! Do not forget us in your prayers (Abu Dawood narrated it from Hazrat Umar, may Allah be pleased with him. (T))

It is narrated in Ahmad and Ibn Majah, he said: "Ashrikna ya akhi fi salih du'a'ika wa la tansana" | Brother! Include us in your good prayers and do not forget.

(2) It was the noble habit of the Holy Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) that when he finished burying the deceased, he would stop at the grave and say to the Sahaba (Companions): "Istaghfiru li-akhikum wa salu lahu at-tathbeeta fa-innahu al-ana yus'al" - Narrated by Abu Dawood, Al-Hakim, and Al-Bayhaqi with a good chain from Uthman Al-Ghani, may Allah be pleased with him. | Seek forgiveness for your brother and pray for his steadfastness, for he is being questioned now (Abu Dawood, Hakim, and Baihaqi narrated it with a good chain from Hazrat Uthman Ghani, may Allah be pleased with him. (T))

(3) Imam Ahmad narrated from Abdullah bin Umar (may Allah be pleased with them both) that the Master of the World (peace and blessings of Allah be upon him) said: "Idha laqeeta al-hajja fa-sallim 'alayhi wa-safihhu wa-murhu an yastaghfira laka qabla an yadkhula baytahu fa-innahu maghfurun lahu" | When you meet a Haji, greet him with Salam and shake hands, and ask him to seek forgiveness for you before he enters his house, for he is forgiven.

(4) The Holy Presence (Prophet) mentioned Uwais Qarni (may Allah be pleased with him) and commanded the Sahaba (may Allah be pleased with them): "Faman laqiyahu minkum falyamurhu falyastaghfir lahu" | Whoever among you finds him [should ask] for a prayer of forgiveness for himself.

1 Sunan Abi Dawud, Chapter of Prayer, Aftab-e-Alam Press, Lahore, 1/210. 2 Sunan Ibn Majah, Chapter of the Virtue of the Haji’s Prayer, H.M. Saeed Company, Karachi, p. 213. 3 Sunan Abi Dawud, Chapter of Seeking Forgiveness, Aftab-e-Alam Press, Lahore, 2/103. 4 Musnad Ahmad bin Hanbal, narrated from Abdullah ibn Umar, Dar al-Fikr, Beirut, 2/69. 5 Sahih Muslim, Virtues of Uwais Qarni, Qadeemi Kutub Khana, Karachi, 2/311.

फ़तावा रज़विया जिल्द नहुम (नौवीं)

जब वह मक्का मोअज़्ज़मा जाते थे। इरशाद फ़रमाया: "ला तनसाना या अख़ी मिन दुआ इका" - रवाह अबु दाऊद अनहु रज़ियल्लाहु तआला अनहु। | ऐ भाई! अपनी दुआओं में हमें न भूल जाना (इसे अबू दाऊद ने हज़रत उमर रज़ियल्लाहु तआला अनहु से रिवायत किया। (त))

अहमद और इब्ने माजा की रिवायत में है: फ़रमाया: "अशरिकना या अख़ी फ़ी सालेह दुआ इका वला तनसाना" | भाई! अपनी नेक दुआओं में हमें भी शरीक कर लेना और भूल न जाना।

(२) हुज़ूर अकरम सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम की आदत-ए-करीमा थी जब दफ़्न-ए-मय्यत से फ़ारिग होते तो कब्र पर ठहर कर सहाबा किराम से इरशाद फ़रमाते: "इस्तग़फ़िरू ले अख़ीकुम व असलु लहूत तसबीता फ़ इन्नहुल आना युसअल" - रवाह अबू दाऊद वल हाकिम वल बैहक़ी बसंदे हसन अन उस्मान अल ग़नी रज़ियल्लाहु तआला अनहु। | अपने भाई के लिए इस्तिग़फ़ार करो और उसके साबित रहने की दुआ मांगो कि अब उससे सवाल होगा (इसे अबू दाऊद, हाकिम और बैहक़ी ने सनदे हसन के साथ हज़रत उस्मान ग़नी रज़ियल्लाहु तआला अनहु से रिवायत किया। (त))

(३) इमाम अहमद अब्दुल्ला बिन उमर रज़ियल्लाहु तआला अन्हुमा से रावी, सैयद-ए-आलम सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम ने फ़रमाया: "इज़ा लकीतल हाज्जा फ़ सल्लिम अलैहे व साफ़िहहु व मुहुँ अन यस्तग़फ़िरा लका क़ब्ल अन यदख़ुला बैतहु फ़ इन्नहु मग़फ़ूरुल लहू" | जब तू हाजी से मिले सलाम व मुसाफ़हा कर और इससे पहले कि वह अपने घर में जाए अपनी मग़फ़िरत की दुआ उससे मंगवा कि वह बख्शा हुआ है।

(४) हुज़ूर अनवर ने उवैस क़रनी रज़ियल्लाहु तआला अनहु का ज़िक्र करके सहाबा रज़ियल्लाहु तआला अन्हुम को हुक्म दिया: "फ़ मन लक़ियहु मिंकुम फ़ल यमुरहु फ़ल यस्तग़फ़िर लहू" | तुम में जो उसे पाए अपने लिए उससे दुआ-ए-बख्शिश [मंगवाए]।

१ सुनन अबी दाऊद, बाब अद-दुआ, आफ़ताब-ए-आलम प्रेस, लाहौर १/२१० २ सुनन इब्न माजा, बाब फ़ज़ल दुआ अल-हाज, एच.एम. सईद कंपनी, कराची, पृ. २१३ ३ सुनन अबी दाऊद, बाब अल-इस्तिग़फ़ार, आफ़ताब-ए-आलम प्रेस, लाहौर २/१०३ ४ मुस्नद अहमद बिन हंबल, मरवी अज़ अब्दुल्ला इब्न उमर, दारुल फ़िक्र, बेरूत २/६९ ५ सहीह मुस्लिम, फ़ज़ाइल उवैस क़रनी, कदीमी कुतुब ख़ाना, कराची २/३११

فتاوی رضویہ جلد نہم

جب وہ مکہ معظمہ جاتے تھے۔ ارشاد فرمایا: لا تنسنا یا اخي من دعائك - رواہ ابوداؤد عنہ رضي اللہ تعالیٰ عنہ۔ | اے بھائی! اپنی دعاؤں میں ہمیں نہ بھول جانا (اسے ابوداؤد نے حضرت عمر رضی اللہ تعالیٰ عنہ سے روایت کیا۔ (ت)

احمد وابن ماجہ کی روایت میں ہے، فرمایا: اشر کنا یا اخي فی صالح دعائك ولا تنسنا - | بھائی! اپنی نیک دعاؤں میں ہمیں بھی شریک کرلینا اور بھول نہ جانا۔

(۲) حضور اکرم صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کی عادتِ کریمہ تھی جب دفنِ میت سے فارغ ہوتے تو قبر پر ٹھہر کر صحابہ کرام سے ارشاد فرماتے: استغفر والاخیکم واسئلو الہ التثبیت فانہ الآن یسأل - رواہ ابوداؤد والحاکم والبیہقي بسند حسن عن عثمان الغنی رضي اللہ تعالیٰ عنہ۔ | اپنے بھائی کے لیے استغفار کرو اور اس کے ثابت رہنے کی دعا مانگو کہ اب اس سے سوال ہوگا (اسے ابوداؤد، حاکم اور بیہقی نے بسند حسن حضرت عثمان غنی رضی اللہ تعالیٰ عنہ سے روایت کیا۔ (ت)

(۳) امام احمد عبداللہ بن عمر رضی اللہ تعالیٰ عنہما سے راوی سید عالم صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم نے فرمایا: - اذالقیت الحاج فسلم علیہ وصافحہ ومرہ ان یستغفر لك قبل ان یدخل بیتہ فانہ مغفورلہ | جب تو حاجی سے ملے سلام و مصافحہ کر اور قبل اس کے کہ وہ اپنے گھر میں جائے اپنی مغفرت کی دعا اس سے منگوا کہ وہ بخشا ہوا ہے۔

(۴) حضور انور نے اویس قرنی رضی اللہ تعالیٰ عنہ کا ذکر کر کے صحابہ رضی اللہ تعالیٰ عنہم کو حکم دیا: فمن لقیہ منکم فلیأمرہ فلیستغفر لہ | تم میں جو اسے پائے اپنے لیے اس سے دعائے بخشش

1 سنن ابی داؤد باب الدعاء آفتاب عالم پریس لاہور ۱ / ۲۱۰ 2 سنن ابن ماجہ باب فضل دعاء الحاج ایچ ایم سعید کمپنی کراچی ص ۲۱۳ 3 سنن ابی داؤد باب الاستغفار آفتاب عالم پریس لاہور ۲/ ۱۰۳ 4 مسند احمد بن حنبل مروی از عبداللہ ابن عمر دارالفکر بیروت ۲ / ۶۹ 5 صحیح مسلم فضائل اولیس قرنی قدیمی کتب خانہ کراچی ۲/ ۳۱۱

| (Arabic): Narrated by Muslim and Al-Bayhaqi on the authority of Umar Farooq (may Allah be pleased with him). | ...they did. Muslim and Al-Bayhaqi narrated it from Hazrat Umar Farooq (may Allah be pleased with him). (T) |

In one narration, Hazrat Farooq was specifically commanded to ask him [Hazrat Uwais] for prayers because he holds a position of honor in the presence of Allah. Al-Khatib and Ibn Asakir narrated it. (T)

(5) According to the command, the Commander of the Faithful Umar (may Allah be pleased with him) requested prayers from him.

| (Arabic): Ibn Sa'd, al-Hakim, Abu 'Awanah, al-Ruyani, and al-Bayhaqi in *Al-Dala'il*, and Abu Nu'aym in *Al-Hilya* narrated it, all via the route of Asir ibn Jabir from Umar (may Allah be pleased with him). | It was narrated via the route of Asir bin Jabir from Hazrat Umar (may Allah be pleased with him) by Ibn Sa'd, Al-Hakim, Abu Awanah, Al-Ruyani, Al-Bayhaqi in *Dala'il*, and Abu Nu'aym in *Hilya*. (T) |

(6) In another narration, both the Commander of the Faithful Farooq and the Commander of the Faithful Murtaza (may Allah be pleased with them both) were commanded to seek prayers from Hazrat Uwais. Both gentlemen requested prayers for themselves. Ibn Asakir narrated it. (T)

(7) Imam Abu Bakr bin Abi Shaybah, the teacher of Imams Bukhari and Muslim, in his *Musannaf*, and Imam Bayhaqi in the eleventh volume of *Dala'il al-Nubuwwah*, narrate with a sound (Sahih) chain via Abu Muawiyah, from Al-A'mash, from Abu Salih, from Malik al-Dar (may Allah be pleased with him):

| (Arabic): "The people were struck by a famine during the time of Umar bin Al-Khattab. A man (note 1) came to the grave of the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) and said, 'O Messenger of Allah, seek rain from Allah [for your nation].'" | (Urdu): That is, during the era of Farooq's justice, a famine occurred once. A person, namely Hazrat Bilal bin Harith al-Muzani, a companion (Sahabi) (may Allah be pleased with him), came to the sacred shrine of the Master, the refuge of the helpless (peace and blessings of Allah be upon him)... |

Note 1: Imam Qastalani explicitly stated its authenticity in *al-Mawahib*. (T)

Note 2: He is Bilal bin Al-Harith Al-Muzani, the Sahabi, as mentioned by Saif in the *Book of Conquests*. Al-Zarqani, *Commentary on Al-Mawahib*. (T)

1. *Mukhtasar Tarikh Ibn Asakir*, Biography of Uwais al-Qarni, Dar al-Fikr, Beirut, 5/82.
2. *Al-Mustadrak al-Hakim*, Mention of meeting Uwais al-Qarni, Dar al-Fikr, Beirut, 3/203.
3. *Mukhtasar Tarikh Ibn Asakir*, Biography of Uwais al-Qarni, Dar al-Fikr, Beirut, 5/83 and 84.

| (अरबी): मुस्लिम और बैहकी ने इसे हज़रत उमर फ़ारूक़ (रज़ियल्लाहु अन्हु) से रिवायत किया। | ...करवाया। इसे मुस्लिम और बैहकी ने हज़रत उमर फ़ारूक़ (रज़ियल्लाहु अन्हु) से रिवायत किया। (त) |

एक रिवायत में है कि हज़रत फ़ारूक़ को विशेष रूप से हुक्म दिया गया कि उनसे दुआ करवाएं क्योंकि वह अल्लाह के हुज़ूर इज़्ज़त वाले हैं। इसे खतीब और इब्ने असाकिर ने रिवायत किया। (त)

(5) हुक्म के मुताबिक अमीरुल मोमिनीन उमर (रज़ियल्लाहु अन्हु) ने उनसे दुआ की दरख्वास्त की।

| (अरबी): इब्ने साद, हाकिम, अबू अवाना, रुयानी, बैहकी ने 'दलाइल' में, और अबू नुऐम ने 'हिल्या' में, सब ने असीर बिन जाबिर के ज़रिए उमर (रज़ियल्लाहु अन्हु) से रिवायत किया। | इसे असीर बिन जाबिर के रास्ते से हज़रत उमर (रज़ियल्लाहु अन्हु) से इब्ने साद, हाकिम, अबू अवाना, रुयानी, दलाइल में बैहकी, और हिल्या में अबू नुऐम ने रिवायत किया। (त) |

(6) एक रिवायत में है कि अमीरुल मोमिनीन फ़ारूक़ और अमीरुल मोमिनीन मुर्तज़ा (रज़ियल्लाहु अन्हुमा) दोनों को हज़रत ओवैस से दुआ मांगने का हुक्म था। दोनों साहबों ने अपने लिए दुआ करवाई। इब्ने असाकिर ने रिवायत किया। (त)

(7) इमाम अबू बकर बिन अबी शैबा (जो इमाम बुखारी और मुस्लिम के उस्ताद हैं) अपनी किताब 'मुसन्निफ़' में और इमाम बैहकी 'दलाइलुन नुबुव्वह' की ग्यारहवीं जिल्द में सही सनद के साथ अबू मुआविया, आमश, अबू सालिह के ज़रिए मालिक अल-दार (रज़ियल्लाहु अन्हु) से रिवायत करते हैं:

| (अरबी): "उमर बिन खत्ताब के ज़माने में लोगों पर अकाल पड़ा। एक व्यक्ति (नोट 1) नबी (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) की कब्र पर आया और कहा: ऐ अल्लाह के रसूल, अल्लाह से बारिश की दुआ कीजिए।" | (उर्दू): यानी फ़ारूक़ी न्याय के ज़माने में एक बार अकाल पड़ा। एक साहिब, यानी हज़रत बिलाल बिन हारिस मुज़नी सहाबी (रज़ियल्लाहु अन्हु) ने बेकसों की पनाहगाह हुज़ूर (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) के मज़ार-ए-अक़दस पर... |

नोट 1: इमाम कस्तलानी ने 'मवाहिब लदुननिया' में इसके सही होने की तस्दीक़ फ़रमाई। (त)

नोट 2: वह बिलाल बिन हारिस मुज़नी सहाबी हैं, जैसा कि सैफ की किताब 'अल-फ़ुतूह' में है। ज़रक़ानी, 'शरह मवाहिब'। (त)

1. मुख्तसर तारीख इब्ने असाकिर, ओवैस क़रनी का जीवन परिचय, दारुल फ़िक्र, बैरूत, 5/82.
2. अल-मुस्तदरक अल-हाकिम, ओवैस क़रनी से मुलाकात का ज़िक्र, दारुल फ़िक्र, बैरूत, 3/203.
3. मुख्तसर तारीख इब्ने असाकिर, ओवैस क़रनी का जीवन परिचय, दारुल फ़िक्र, बैरूत, 5/83 और 84.

पृष्ठ 697/948

| اخرجه مسلم والبیهقی عن عمر فاروق رضی الله تعالی عنه۔ | کرائے۔ اسے مسلم اور بیہقی نے حضرت عمر فاروق رضی اللہ تعالٰی عنہ سے روایت کیا۔ (ت) |

ایک روایت میں ہے حضرت فاروق کو بالتحصیص بھی حکم ہوا ان سے دعا کرانا کہ وہ اللہ کے حضور عزت والے ہیں ،اخرجہ الخطیب وابن عساکر (اسے خطیب اور ابن عساکر نے روایت کیا۔ ت)

(۵) حسب الحکم امیر المومنین عمر رضی اللہ تعالٰی عنہ نے ان سے دعا چاہی۔

| اخرجہ ابن سعد والحاکم وابو عوانہ و الرویانی والبیهقی فی الدلائل وابو نعیم فی الحلیة کلهم من طریق اسیر بن جابر عن عمر رضی الله تعالیٰ عنه۔ | اسے بطریق اسیر بن جابر حضرت عمر رضی اللہ تعالٰی عنہ سے ابن سعد، حاکم، ابو عوانہ، رویانی، دلائل میں بیہقی، اور حلیہ میں ابو نعیم نے روایت کیا۔ (ت) |

(۶) ایک روایت میں ہے امیر المومنین فاروق وامیر المومنین مرتضی رضی اللہ تعالٰی عنہما دونوں کو حضرت اویس سے طلب دعا کا حکم تھا۔ دونوں صاحبوں نے اپنے لیے دعا کرائی۔ اخرجہ ابن عساکر (اسے ابن عساکر نے روایت کیا۔ ت)

(۷) امام ابوبکر بن ابی شیبہ استاذ امام بخاری و مسلم اپنے مصنف اور امام بیہقی دلائل النبوۃ کی مجلد یازدہم میں بسند صحیح عن بطریق ابو معاویة عن الاعمش عن ابی صالح عن مالک الدار رضی اللہ تعالٰی عنہ روایت کرتے ہیں:

| قال اصاب الناس قحط فی زمن عمر بن الخطاب فجاء رجل عہ۱ الی قبر النبی صلی اللہ تعالی علیہ وسلم فقال یا رسول اللہ استسق اللہ | یعنی عہد معدلت مہر فاروقی میں ایک بار قحط پڑا۔ ایک صاحب یعنی حضرت بلال بن حارث مزنی صحابی رضی اللہ تعالیٰ عنہ نے مزار اقدس حضور ملجأ بیکساں صلی اللہ |

عہ۱: نص علی صحتہ الامام القسطلاني في المواهب ۱۲ منہ (م) | امام قسطلانی نے مواہب لدنیہ میں اس کے صحیح ہونے کی تصریح فرمائی۔ (ت) عہ۲: ھو بلال بن الحارث المزنی الصحابی کما عند سیف فی کتاب الفتوح ۱۲ زرقانی شرح مواھب (م) | وہ بلال بن حارث مزنی صحابی ہیں، جیسا کہ سیف کی کتاب الفتوح میں ہے ۱۲ زرقانی شرح مواہب (ت)

1 مختصر تاریخ ابن عساکر فی ترجمہ اولیس قرنی دار الفکر بیروت ۸۲/۵ 2 المستدرک للحاکم ذکر لقاء اولیس قرنی دار الفکر بیروت ۲۰۳/۳ 3 مختصر تاریخ ابن عساکر فی ترجمہ اولیس قرنی دار الفکر بیروت ۸۳/۵ و ۸۴

[Arabic Text]: "Lā matika fa-innahum qad halakū..." | [Urdu Translation]: ...presented himself to the Messenger of Allah (peace and blessings be upon him) and said: O Messenger of Allah! Ask Allah for water for your Ummah, for they are perishing. The Mercy of the Worlds (peace and blessings be upon him) appeared in that Companion's dream and said: Go to 'Umar (may Allah be pleased with him), convey my greetings to him, and inform the people that rain is about to come. (Al-Hadith)

Shah Waliullah in 'Qurrat al-Aynayn' narrates this Hadith and says: "Rawaahu Abu 'Umar fil-Isti'ab" (Narrated by Abu 'Umar bin Abdul Barr in 'al-Isti'ab').

Valuable Reminder: These are a few Hadiths regarding asking for supplication (dua) from the truly living. And a brief discussion on seeking from the deceased, which is the core issue of the questioner, will, God-willing, be mentioned in the third objective. Here, one point must always be remembered: that whatever act is Shirk (polytheism), in its ruling, all creation of Allah—the living, the dead, humans, jinn, angels, etc.—are equal, in that none besides God can be a partner with God. Thus, differentiating between life and death in matters of Shirk, as is the old habit of this new sect, is a departure from both reason and Shariah. Can the living be partners with God such that only the partnership of the dead is prohibited? The Maulana should consider his analogy (the other category) that if it is not lawful, then it is not lawful for anyone, dead or living. Similarly, if asking for supplication were Shirk, then this ruling would never be specific to the deceased; rather, asking for prayer from the living would certainly be prohibited too, for in the impossibility of being a partner to God, the living and dead are all equal. Therefore, the Sheikh of Sheikhs, the scholar of India, our Master and Blessing, Sheikh-ul-Muhaqqiq Abdul Haq Muhaddith Dehlawi (may Allah sanctify his secret) said in the commentary of Mishkat Sharif:

[Persian Text]: "If this meaning which we mentioned in help and seeking aid were a cause of Shirk and turning towards other than Allah, as the denier imagines, then it should be that tawassul and seeking prayer from the righteous and friends of God during their lifetime should also be forbidden. Yet this is not forbidden, but is unanimously recommended and commendable and widespread." | [Urdu Translation]: This meaning which we described in seeking aid and help, if it were considered a cause of Shirk and turning towards other than Allah, as the denier thinks, then seeking intercession (tawassul) and asking for prayer from the righteous

and friends of Allah during their lifetime should also be forbidden. However, this is not forbidden; instead, it is unanimously recommended and...

---

1. Musannaf Ibn Abi Shaybah, Virtues of 'Umar, Idarat al-Qur'an wal-'Ulum al-Islamiyyah, Karachi, 12/32
2. Qurrat al-Aynayn, Fortieth type, al-Maktabat al-Salafiyyah, Lahore, p. 19

[अरबी पाठ]: "ला मतिका फ़-इन्नहुम क़द हलकू.." | [उर्दू अनुवाद]: ...अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) की बारगाह में हाज़िर होकर अर्ज़ की: ऐ अल्लाह के रसूल! अपनी उम्मत के लिए अल्लाह तआला से पानी मांगिये कि वे हलाक हो रहे हैं। रहमते आलम (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) उन सहाबी के ख़्वाब में तशरीफ़ लाए और इरशाद फ़रमाया कि उमर (रज़ियल्लाहु अन्हु) के पास जाकर उन्हें सलाम पहुँचाओ और लोगों को ख़बर दे दो कि पानी आने वाला है। (अल-हदीस)

शाह वलीउल्लाह 'कुर्रतुल ऐनैन' में यह हदीस नक़्ल करके कहते हैं: "रवाहु अबू उमर फ़िल इस्तिआब" (इसे अबू उमर बिन अब्दुल बर ने इस्तिआब में रिवायत किया)।

ज़रुरी चेतावनी: ये चंद हदीसें हक़ीक़ी जीवितों से दुआ माँगने के बारे में हैं। और मृतकों से माँगने के बारे में संक्षिप्त चर्चा, जो कि पूछने वाले का मुख्य सवाल है, इंशा अल्लाह तीसरे उद्देश्य में ज़िक्र होगी। यहाँ एक नुक़्ता हमेशा याद रखना चाहिए कि जो बात शिर्क है, उसके हुक्म में अल्लाह की तमाम मख़्लूक़—जीवित, मृत, इंसान, जिन्न, फ़रिश्ते आदि—सब बराबर हैं, कि ख़ुदा के अलावा कोई ख़ुदा का शरीक नहीं हो सकता। अतः शिर्क के मामलों में जीवन और मृत्यु के बीच भेद करना, जैसा कि इस नए गुट का पुराना तरीक़ा है, बुद्धि और शरीअत दोनों के दायरे से बाहर जाना है। क्या जीवित ख़ुदा के शरीक हो सकते हैं कि सिर्फ़ मृतकों की शिर्कत ही मना है? मौलवी साहब अपनी उस चीज़ को देखें जिससे वे तुलना कर रहे हैं (यानी दूसरी श्रेणी), कि अगर वह जायज़ नहीं है, तो वह किसी के लिए जायज़ नहीं है, चाहे मृत हो या जीवित। इसी तरह, यदि दुआ माँगना शिर्क होता, तो यह नियम कभी भी केवल मृतकों के लिए विशिष्ट नहीं होता; बल्कि, जीवित लोगों से दुआ के लिए कहना भी निश्चित रूप से वर्जित होता, क्योंकि ख़ुदा का शरीक न हो सकने में जीवित और मृत सब एक समान हैं। इसीलिए, शैखों के शैख़, भारत के विद्वान, हमारे स्वामी और बरकत, शैख़-ए-मुहक़्क़िक़ अब्दुल हक़ मुहद्दिस देहलवी (अल्लाह उनके राज़ को मुक़द्दस करे) ने मिश्कात शरीफ़ की व्याख्या में कहा:

[फ़ारसी पाठ]: "यदि यह अर्थ जो हमने सहायता और सहायता माँगने में उल्लेख किया है, शिर्क का कारण और अल्लाह के अतिरिक्त अन्य की ओर ध्यान केंद्रित करने वाला होता, जैसा कि इनकार करने वाला कल्पना करता है, तो नेक लोगों और अल्लाह के मित्रों के जीवनकाल में भी तवस्सुल और

दुआ माँगना वर्जित होना चाहिए था। फिर भी यह वर्जित नहीं है, बल्कि सर्वसम्मति से सराहनीय और प्रशंसनीय और व्यापक है।" | [उर्दू अनुवाद]: यह अर्थ जो हमने सहायता और मदद माँगने में वर्णित किया है, यदि इसे शिर्क का कारण और अल्लाह के अलावा किसी और की ओर मुड़ना माना जाता, जैसा कि इनकार करने वाला सोचता है, तो नेक लोगों और अल्लाह के वलियों के जीवनकाल में भी तवस्सुल और दुआ माँगना मना होना चाहिए था। हालाँकि, यह मना नहीं है; बल्कि, यह सर्वसम्मति से प्रशंसनीय है और...

---

1. मुसन्निफ़ इब्न अबी शैबा, फ़ज़ाइल-ए-उमर, इदारातुल क़ुरआन वल-उलूमल-इस्लामिया, कराची, 12/32
2. कुर्रतुल ऐनैन, चालीसवाँ प्रकार, अल-मक्तबतुल-सलफ़िया, लाहौर, पृष्ठ 19

[عربی عبارت]: لا متك فانهم قدهلكوا فاتاه رسول الله صلى الله تعالى عليه وسلم في المنام فقيل له ائت عمر فاقراه السلام واخبره انكم مستقيون الحديث - | [اردو ترجمہ]: تعالٰی علیہ وسلم پر حاضر ہو کر عرض کی: یا رسول اللہ ! اپنی امت کے لیے اللہ تعالٰی سے پانی مانگئے کہ وہ ہلاک ہوئے جاتے ہیں۔ رحمتِ عالم صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم ان صحابی کے خواب میں تشریف لائے اور ارشاد فرمایا عمر (رضی اللہ عنہ) کے پاس جا کر اسے سلام پہنچاؤ اور لوگوں کو خبر دے کہ پانی آیا چاہتا ہے۔ الحدیث (ت)

شاہ ولی اللہ قرۃ العینین میں یہ حدیث نقل کرکے کہتے ہیں: رواہ ابو عمر فی الاستیعاب 2 (اسے ابو عمر بن عبدالبر نے استیعاب میں روایت کیا۔ت)

تنبیہ نبئیہ : یہ چند حدیثیں ہیں احیائے حقیقی سے طلب دعا میں۔ اور اموات سے طلب کی قدرے بحث کہ اصل مسئلہ مسئولہ سائل ہے، ان شاء اللہ تعالٰی مقصد سوم میں مذکور ہو گی۔ یہاں ایک نکتہ ہمیشہ یاد رکھنا چاہئے کہ جو بات شرک ہے اس کے حکم میں احیاء واموات وانس وجن وملائک وغیرہ ہم تمام مخلوق الہی یکساں ہیں کہ غیر خدا کوئی ہو خدا کا شریک نہیں ہو سکتا تو امور شرک میں حیات وموت تفرقہ، جیسا کہ اس طائفہ جدیدہ کا شیوہ قدیمہ ہے۔ دائرہ عقل وشرع دونوں سے خروج، کیا زندے خدا کے شریک ہو سکتے ہیں، صرف شراکت اموات ہی ممنوع ہے۔ مولوی صاحب اپنی مقیس علیہ یعنی قسم غیر کو ملاحظہ کریں کہ حلال نہیں تو مردے زندے کسی کے لیے حلال نہیں، یو نہی اگر طلب دعا میں شرک ہو تو ہر گز یہ حکم فقط اموات سے خاص نہ ہو گا بلکہ یقیناً احیاء سے دعا کرانی بھی حرام ٹھہرے گی کہ خدا کا شریک نہ ہو سکنے میں زندے

مُردے سب ایک سے۔ ولذا شیخ الشیوخ علمائے ہند مولانا و برکتنا سیدی شیخ محقق عبدالحق محدث دہلوی قدس اللہ سرہ العزیز نے شرح مشکوٰۃ شریف میں فرمایا :

[فارسی عبارت]: اگر ایں معنی کہ در امداد و استمداد ذکر کردیم موجب شرک و توجہ بما سوائے حق باشد چنانکہ منکر زعم می کند پس باید کہ منع کردہ شود، توسل وطلب دعا از صالحان و دوستان خدا در حالت حیات نیز وایں ممنوع نیست بلکہ مستحب و مستحسن است باتفاق و شایع است | [اردو ترجمہ]: یہ معنی جو ہم نے امداد اور مدد طلبی میں بیان کیا اگر شرک کا موجب اور غیر کی طرف توجہ قرار پائے، جیسا کہ منکر خیال رکھتا ہے تو چاہئے کہ صالحین اور اولیاء اللہ سے زندگی میں بھی توسل اور دعا طلبی سے منع کیا جائے حالانکہ یہ ممنوع نہیں بلکہ بالاتفاق مستحب و

---

1 مصنف ابن ابی شیبہ فضائل عمر ادارۃ القرآن والعلوم الاسلامیہ کراچی ۳۲/۱۲ 2 قرۃ العینین نوع چہلم المکتبۃ السلفیہ، لاہور ص ۱۹

Fatawa Razawiyya Volume 9

In religion[1]- it is commendable and common in religion. (T) Dear friend! This point is very useful and a refutation of many illusions and doubts. So preserve it, you will be protected and obtain a full share of guidance. (T)

Second category: Disagreements of the Molvi Sahib (Maulvi) and those of his same school of thought. Here, evidence will be provided that the Molvi Sahib's writing is not even in agreement with the sect of deniers. For numerous reasons and based on the principles and branches of the new group, there is clear opposition, and he has shown a degree of agreement in some matters with the refined school of the people of truth. Furthermore, it's not just that he differs from those of his own school, and the Molvi Sahib himself happily commits to these oppositions. No, no, rather many of them are such that occurred unintentionally, which, upon becoming apparent, would not be tolerable to you either. And if they are accepted, what could be better. See, many disputed issues are being settled right here.

Opposition (1): Molvi Sahib says: Visiting the graves of believers, especially the elders of the religion, is recommended and Sunnah. This specialty is undoubtedly true according to us, but it is completely against the author of 'Ma'ata Masa'il'. In the category of visitation that they considered legally permissible without dislike, they considered the noble shrines of the Awliya (saints) and the grave of every drunkard and adulterer as equal. As they said (their words are these):

[Box 1 Left]: "In this category, visiting the grave of a Wali (saint) and non-Wali, a martyr and non-martyr, a righteous person and a sinner, a rich person and a poor person is equal[2]." [Box 1 Right]: "In this category, the graves of a Wali, non-Wali, martyr, non-martyr, righteous person, sinner, rich person, and poor person are all equal for visitation. (T)"

Then, he was not even satisfied with this equality. Moving forward, he stated a reverse progress:

[Box 2 Left]: "Rather, from visiting the graves of the wealthy and kings, more admonition is obtained[3]." [Box 2 Right]: "Rather, more admonition is obtained from visiting the graves of the wealthy and kings. (T)"

Meaning that the benefit for which the Shariah permitted visiting graves is not present at all in the shrines of the Awliya.

Note: I say: And with Allah is the success. It should be asked from the rational man of 'Ma'ata Masa'il' that if (Continued on next page)

---

[1] Ash'at al-Lam'at, Chapter on the Ruling of Isra, Section One, Maktabah Nuriyya Razawiyya, Sukkur, 3/401. [2] Ma'ata Masa'il, Question 13, Maktabah Tawheed-wa-Sunnat, Peshawar, pp. 22-23. [3] Ma'ata Masa'il, Question 13, Maktabah Tawheed-wa-Sunnat, Peshawar, pp. 23-22.

फ़तावा रज़विया, खंड 9

दीन में[1]- यह धर्म में प्रशंसनीय और सामान्य है। (त) प्रिय मित्र! यह बिंदु बहुत उपयोगी है, और कई भ्रमों और शंकाओं का खंडन है। तो इसे याद रखें, आप सुरक्षित रहेंगे और मार्गदर्शन का भरपूर हिस्सा पाएंगे। (त)

दूसरी श्रेणी: मौलवी साहब और उनके हम-मजहब लोगों के बीच मतभेद। यहाँ इस बात का प्रमाण होगा कि मौलवी साहब का लेखन इनकार करने वालों के संप्रदाय से भी सहमत नहीं है। कई कारणों से और नए समूह के सिद्धांतों और शाखाओं के आधार पर, स्पष्ट विरोध है, और उन्होंने हक के लोगों के परिष्कृत धर्म के साथ कुछ बातों में सहमति व्यक्त की है। फिर इतना ही नहीं कि वह केवल अपने हम-मजहबों से ही अलग हैं, और मौलवी साहब खुद खुशी-खुशी इन विरोधों को अपना लें। नहीं, नहीं, बल्कि उनमें से कई ऐसे हैं जो अनजाने में हो गए, जो सामने आने पर आपको खुद भी गवारा नहीं होंगे। और अगर उन्हें स्वीकार कर लिया जाए, तो इससे बेहतर क्या होगा। देखिये, यहीं कितने विवादित मुद्दे हल हो रहे हैं।

विरोध (1): मौलवी साहब कहते हैं: मोमिनों की कब्रों की ज़ियारत, विशेष रूप से बुजुर्गों की, अनुशंसित और सुन्नत है। यह विशेषता हमारे अनुसार निस्संदेह सच है, लेकिन 'मअता मसाइल' के लेखक के बिल्कुल खिलाफ है। उन्होंने ज़ियारत की जिस श्रेणी को बिना किसी नापसंदगी के कानूनी रूप से जायज़ माना, उसमें उन्होंने औलिया के महान मजारों और हर शराबी और व्यभिचारी की कब्र को एक समान माना। जैसा कि उन्होंने कहा (उनके शब्द ये हैं):

[बॉक्स 1 बायाँ]: "इस प्रकार में वली और गैर-वली, शहीद और गैर-शहीद, नेक और पापी, अमीर और गरीब सबकी कब्र की ज़ियारत एक समान है[2]।" [बॉक्स 1 दायाँ]: "इस किस्म में वली, गैर-वली, शहीद, गैर-शहीद, सालेह (नेक), फासिक़ (पापी), धनी और निर्धन सबकी कब्र की ज़ियारत एक समान है। (त)"

फिर इस समानता पर भी सब्र नहीं आया। आगे उल्टी तरक्की करते हुए कहा:

[बॉक्स 2 बायाँ]: "बल्कि अमीरों और राजाओं की कब्रों की ज़ियारत से अधिक नसीहत हासिल होती है[3]।" [बॉक्स 2 दायाँ]: "बल्कि मालदारों और बादशाहों की कब्रों की ज़ियारत से ज्यादा नसीहत हासिल होती है। (त)"

मतलब यह कि जिस लाभ के लिए शरीयत ने कब्रों की ज़ियारत जायज़ की है, वह औलिया के मजारों में हरगिज़ वैसा नहीं है।

नोट: मैं कहता हूँ: और अल्लाह की मदद से ही सफलता है। 'मअता मसाइल' के उस बुद्धिमान व्यक्ति से पूछा जाना चाहिए कि यदि (बाकी अगले पृष्ठ पर)

---

[1] अशअतुल लमआत, बाब हुकुमुल इसरा, खंड एक, मकतबा नूरिया रज़विया, सुक्कुर, 3/401. [2] मअता मसाइल, सवाल तेरहवाँ, मकतबा तौहीद-ओ-सुन्नत, पेशावर, पृष्ठ 22-23. [3] मअता मसाइल, सवाल तेरहवाँ, मकतबा तौहीद-ओ-सुन्नत, पेशावर, पृष्ठ 23-22.

فتاوی رضویہ جلد نہم

دردین[1]- مستحسن اور دین میں عام ہے۔ (ت) عزیز! یہ نکتہ بہت کار آمد ہے، اور اکثر اوہام و شبہات کارڈ۔ فاحفظ تحفظ و تخطی من الرشد باونی حظ (اسے یاد رکھو گے تو محفوظ رہو گے اور ہدایت سے بھر پور حصہ پاؤ گے۔ت)

نوع دوم: مخالفات مولوی صاحب و ہم مذہباں مولوی صاحب میں۔ یہاں اس امر کا ثبوت ہوگا کہ مولوی صاحب کی تحریر مذہب منکرین سے بھی موافق نہیں۔ بوجوہ عدیدہ واصول وفروع طائفہ جدیدہ سے صریح مخالفت اور مذہب مہذب اہل حق سے بعض باتوں میں گونہ موافقت فرمائی ہے۔ پھر یہی نہیں کہ صرف ہم مذہبوں ہی سے خلاف ہوں اور خود مولوی صاحب ان مخالفات کا بخوشی التزام فرمالیں۔ نہیں۔ نہیں، بلکہ بہت وہ بھی ہیں جو نادانستہ سرزد ہو گئیں کہ ظاہر ہوئے پر خود بھی آپ کو گوارا نہ ہوں۔ اور اگر تسلیم فرمالیں تو اس سے کیا بہتر۔ دیکھئے تو، یہیں کتنے مسائل نزاعیہ طے ہوئے جاتے ہیں۔

مخالفت (۱): مولوی صاحب فرماتے ہیں: زیارت قبور مومنین خاصۃً بزرگانِ دین مندوب و مسنون ہے۔ یہ خصوصیت ہمارے طور پر بیشک حق، مگر صاحب مائتہ مسائل کے بالکل خلاف۔ انہوں نے جو قسم زیارت شرعاً بلا کراہت جائز مانی اس میں مزاراتِ عالیہ حضرات اولیاء اور ہر شرابی زناکار کی قبر یکساں جانی۔ حیث قال (ان کے الفاظ یہ ہیں):

[دائیں باکس]: دریں قسم زیارت کردن قبر ولی و غیر ولی و شہید و غیر شہید و صالح و فاسق و غنی و فقیر برابر است[2] [بائیں باکس]: اس قسم میں ولی، غیر ولی، شہید، غیر شہید، صالح، فاسق، غنی اور فقیر سب کی قبر کی زیارت یکساں ہے۔ (ت)

پھر اس برابری پر بھی صبر نہ آیا۔ آگے الٹی ترقی معکوس کر کے فرمایا:

[دائیں باکس]: بلکہ زیارت قبور اغنیاء و ملوک زیادہ تر عبرت حاصل می گردد۔[3] [بائیں باکس]: بلکہ مالداروں اور بادشاہوں کی قبروں کی زیارت سے زیادہ عبرت حاصل ہوتی ہے۔ (ت)

مطلب یہ کہ جس عے فائدہ کے لیے شرع نے زیارت قبور جائز کی ہے وہ مزارات اولیاء میں ہر گز ایسا نہیں

عے: اقول: و باللہ التوفیق ان مرد عاقل محر رمائتہ مسائل سے پوچھنا چاہئے کہ اگر (باقی بر صفحہ آئندہ)

---

[1] اشعۃ اللمعات باب حکم الاسراء فصل اول مکتبہ نوریہ رضویہ سکھر ۳/۴۰۱ [2] مائتہ مسائل سوال سیز دہم مکتبہ توحید و سنت پشاور ص ۲۲-۲۳ [3] مائتہ مسائل سوال سیز دہم مکتبہ توحید و سنت پشاور ص ۲۳-۲۲

Fatawa Razawiyya, Volume 9

...as is in the graves of the wealthy. So, a person should go where he finds two annas (a small unit of currency) more [benefit]. Truly, to Allah we belong and to Him we shall return.

Opposition (2): Mawlawi sahib considers reading Durood and Fatiha at the time of visiting graves and gifting the reward to the deceased as desirable (mandub) and Sunnah. Very well, demonstrate the specificity of Durood and Fatiha from the Quran and Hadith, or show the custom of this specification in the first three generations (Quroon-e-Thalatha); otherwise, far from being desirable or established by Sunnah, classify it under the group's principle that "Every innovation is misguidance, and every misguidance is in the Fire."

Opposition (3): In the questioner's query, reading both Durood and Fatiha together was mentioned, and Hazrat's answer was based on that. Hypothetically, even if you prove reading them individually, the collective form remains a subject of debate according to the group's principles. On this basis, you should have given the ruling of innovation (Bid'ah). Or accept that if individual parts are good, there is no issue in the collective form unless there is some specific corruption in the gathering.

(Footnote - continued from previous page): If your faith is correct, then it was necessary that if the Master of the World (peace and blessings of Allah be upon him) graced the graves of Uhud and Baqi a hundred times, he would have visited the graves of kings and tyrants two hundred times so that he could guide the Ummah towards choosing the more beneficial and superior option. Or if not more, then at least equal, or less, or just once – just prove once that the Holy Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) visited the dust of any king or made a specific exception for the grave of a wealthy person because of their wealth. Then it is very strange that for the specific purpose for which the Prophet permitted visiting graves, where its attainment is most likely and the Sharia benefit most complete and abundant, they would mark that very thing as flawed, and it would never find currency among the Companions. Furthermore, Muslims of every era and group have always maintained care and attention for visiting the shrines of the righteous, not that "Go to the grave of such-and-such king or businessman, there you will find more benefit." The truth is that preference even in matters of taking heed (ibrah) lies with the lofty shrines of the saints (may their secrets be sanctified); the idea that prohibited and permitted purposes of visiting are restricted to this is absolutely false

and rejected. You will find some statements of his (Hazrat) in the 'Mazahir-ul-Haq' translation of Mishkat in the third section, which will make it clear that the author of 'Mi'ata Masa'il' forgot what he had previously written (T). And Allah the Glorious and Most High knows best. 12th of [month], may Allah preserve him. (M)

---

1 Al-Durr al-Manthur, citing Muslim and others, under the verse 'Man Yahdillahu...', Publications of Maktaba Ayatollah al-Uzma, Iran, 13/471.

फ़तावा रज़विया, खंड 9

...जैसा कि अमीर लोगों की कब्रों में है। तो इंसान को वहीं जाना चाहिए जहाँ उसे दो आने का ज़्यादा फ़ायदा मिले। बेशक, हम अल्लाह ही के हैं और उसी की ओर लौटकर जाने वाले हैं।

विरोध (2): मौलवी साहब कब्रों की ज़ियारत के समय दरूद और फातिहा पढ़कर मुर्दों को सवाब पहुँचाना 'मन्दूब' (पसंदीदा) और 'मसनून' (सुन्नत के अनुसार) बताते हैं। बहुत अच्छा, कुरान और हदीस से दरूद और फातिहा की विशिष्टता साबित करके दिखाएं या शुरुआती तीन पीढ़ियों (कुरून-ए-सलासा) में इस विशिष्टता का चलन दिखाएं वरना पसंदीदा और सुन्नत होना तो दूर की बात, इसे अपने समूह के सिद्धांतों के आधार पर 'हर नई बात (बिदअत) गुमराही है और हर गुमराही आग में है' के अंतर्गत रखें।

विरोध (3): सवाल पूछने वाले के सवाल में दरूद और फातिहा दोनों का एक साथ पढ़ना ज़िक्र था और हज़रत का जवाब उसी पर आधारित था। मान लीजिए कि अगर आप इन्हें अलग-अलग पढ़ना साबित भी कर दें, तो आपके समूह के सिद्धांतों के अनुसार इनका सामूहिक रूप (हैय्यत-ए-इज्तेमाई) बहस का विषय रहेगा। इस आधार पर आपको बिदअत (नवाचार) का हुक्म देना चाहिए था। या फिर यह स्वीकार करें कि यदि व्यक्तिगत रूप से चीज़ें अच्छी हैं, तो उनके सामूहिक रूप में तब तक कोई बुराई नहीं है जब तक कि उस विशिष्ट सभा में कोई खराबी न हो।

(फुटनोट - पिछले पृष्ठ का शेष भाग): अगर आपका ईमान सच्चा है, तो यह ज़रूरी था कि अगर सैय्यद-ए-आलम (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने उहुद और बक़ी की कब्रों पर सौ बार तशरीफ़ ले गए, तो बादशाहों और ज़ालिमों की कब्रों पर दो सौ बार तशरीफ़ ले गए होते ताकि उम्मत को ज़्यादा नफ़ा और बेहतर चीज़ चुनने का मार्गदर्शन दे सकें। या चलिए ज़्यादा न सही, बराबर ही सही, कम ही सही, कभी ही सही, एक ही बार साबित कर दीजिए कि हुज़ूर अकदस (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) किसी बादशाह की खाक पर तशरीफ़ ले गए हों या किसी अमीर की कब्र की उसकी अमीरी की वजह से विशिष्टता बताई हो। फिर यह बहुत आश्चर्य की बात है कि जिस विशेष उद्देश्य के लिए हुज़ूर ने कब्रों की ज़ियारत को जायज़ ठहराया, जहाँ इसकी प्राप्ति की संभावना सबसे अधिक और शरीयत का लाभ सबसे पूर्ण और प्रचुर हो, वे उसी को दोषपूर्ण ठहराएं और वह सहाबा किराम में कभी भी प्रचलित न हो। फिर हर ज़माने और हर तबके के मुसलमान हमेशा नेक लोगों की मज़ारत की ज़ियारत का खास ख्याल और ध्यान रखें, न कि यह कि "फलां राजा या सेठ की कब्र पर चलो, वहाँ

ज़्यादा फ़ायदा मिलेगा।" सच तो यह है कि महान औलिया किराम (कुद्दिसा सिर्रुहुम) के ऊंचे मज़ारों पर इब्रत (नसीहत) हासिल करने के मामले में भी प्राथमिकता है, और ज़ियारत के मना और जायज़ होने के मक़सद को इसमें सीमित करना पूरी तरह से गलत और खारिज है। आपको खुद हज़रत के 'मज़ाहिरुल हक़' तर्जुमा मिश्कात के तीसरे मक़सद में कुछ इबारतें मिलेंगी, जो ज़ाहिर कर देंगी कि 'मिअता मसाइल' के लेखक ने जो पहले लिखा था, उसे भूल गए (त)। और अल्लाह सुब्हानहू व तआला बेहतर जानता है। 12 तारीख, अल्लाह उनकी हिफाज़त फरमाए। (म)

---

1 अद-दुरुल मंसूर, मुस्लिम व अन्य के हवाले से, आयत 'मं यह्दिल्लाहु...' के अंतर्गत, मकतबा आयतुल्लाह अल-उज़मा ईरान, 13/471.

فتاویٰ رضویہ جلد نہم

جیسا روپے والوں کی قبروں میں ہے۔ تو آدمی کو چاہئے کہ وہیں جائے جہاں دو آنے زیادہ پائے، اِنا للہ وانا الیہ راجعون۔

مخالفت (۲) : مولوی صاحب وقتِ زیارتِ قبور درود و فاتحہ پڑھ کر اموات کو ثواب بخشنامندوب و مسنون فرماتے ہیں۔ بہت اچھا، قرآن وحدیث سے درود فاتحہ کی خصوصیت ثابت کر دکھائیں، یا قرونِ ثلاثہ میں اس تخصیص کا رواج بتائیں، ورنہ ندب واستنان در کنار اصولِ طائفہ پر کل بدعة ضلالة وکل ضلالة فی النار (1) میں داخل ٹھہرائیں۔

مخالفت (۳) : سوال سائل میں درود و فاتحہ دونوں کا معاً پڑھنا مذکور تھا اور اسی پر حضرت کا جواب وراد۔ بالفرض اگر فرداً فرداً ان کا پڑھنا ثابت بھی فرمالیں تو اصولِ طائفہ پر ہیأتِ اجتماعیہ محل میں کلام رہیں گے۔ اس بنا پر آپ کو حکمِ بدعت دینا تھا۔ یا تسلیم فرمائیے کہ بعد حسنِ احاد حسنِ مجموعہ میں کلام نہیں جب تک خصوصی اجتماع میں کوئی مفسدہ نہ ہو۔

(بقیہ حاشیہ صفحہ گزشتہ) تمہارا ایمان حق ہے تو واجب تھا کہ حضور سیدِ عالم صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم اگر قبورِ اُحد و بقیع پر سو بار رونق افروز ہوئے تو بادشاہوں جباروں کے مقابر پر دو سو بار تشریف لے گئے ہوتے تاکہ امت کو اختیارِ نفع و افضل کی طرف ارشاد فرمائے یا نہ سہی۔ برابر ہی سہی ، کم ہی سہی ، کبھی ہی سہی ، ایک ہی بار ثابت کردو کہ حضور اقدس صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کسی بادشاہ کی خاک پر تشریف فرما ہوئے ہوں یا قبرِ غنی کی بوجہ غناء تخصیص فرمائی ہو پھر سخت عجب ہے کہ جس خاص امر کے لیے حضور نے زیارتِ قبور جائز فرمائی اس کا حصول جہاں بیشتر اور منفعتِ شرعیہ اتم واوفر اُسی کو داغدار تک فرمائیں نہ وہ

صحابہ کرام میں ہر گز رواج پائے۔ پھر ہر قرن وطبقہ کے اہل اسلام ہمیشہ زیارتِ مزاراتِ صلحاء کا اہتمام واعتناء رکھیں ، نہ یہ کہ فلاں بادشاہ یا سیٹھ کی گور پر چلو وہاں نفع زائد ملے گا۔ حق یہ ہے کہ مزاراتِ عالیہ حضراتِ اولیاء کرام قدست اسرارہم پر امرِ عبرت میں بھی ترجیح، ممنوع اور مشروعیتِ زیارت کی غرض اس میں منحصر ہونا قطعاً باطل ومدفوع ، خود انہیں حضرت کی مظاہر الحق ترجمہ مشکوٰۃ کی بعض عبارات مقصدِ سوم میں ملیں گے۔ جو ظاہر کر دیں گی کہ صاحب مائۃ مسائل نسی ماقدمت یداہ (پہلے جو کچھ لکھ چکے اسے بھول گئے۔ ت) واللہ سبحانہ وتعالیٰ اعلم ۱۲ منہ سلمہ اللہ تعالیٰ (م)

---

1 الدر المنثور بحوالہ مسلم و غیرہ تحت آیت من یھد اللہ منشورات مکتبہ آیت اللہ العظمیٰ ایران ۱۳/۴۷۱

Fatawa Rizvia, Volume 9

Objection (4): The speeches of the theologians of the sect bear witness that an action which is inherently good, but which, in their opinion, is practiced among the common people along with the mixing of corruptions—they declare the original action itself to be prohibited, instead of forbidding the corruptions. And they suggest the original action, even when, according to you, visiting sacred shrines is prevalent as shirk, and seeking help from them is common and famous. So, according to the principles of the sect, the original visiting should have been called haram, not recommended or sunnah.

Objection (5): Maulvi Ishaq writes in 'Mi'ata Masa'il' (Hundred Issues):

| Giving the Adhan after burial is an innovation and disliked because it is not established from the Sunnah. Whatever is not established from the Sunnah is disliked according to the reports in the books of jurisprudence. The text of the books is: "This is disliked at the grave as long as it is not established from the Sunnah. And what is established from the Sunnah is nothing but visiting it and praying while standing near it, as stated in Fath al-Qadir, al-Bahr al-Ra'iq, al-Nahr al-Fa'iq, and al-Fatawa al-'Alamgiri." | Giving the Adhan after burial is an innovation and disliked because it is not established from the Sunnah. And whatever is not established from the Sunnah is disliked according to the reports of the books of jurisprudence, and the wording of the books is that what is not established from the Sunnah near the grave is disliked. And only this is established from the Sunnah that there be a visit and standing there to pray, as it is in Fath al-Qadir, al-Bahr al-Ra'iq, al-Nahr al-Fa'iq, and Fatawa 'Alamgiri. (T) |

Although the meaning of these passages as determined by the author of 'Mi'ata Masa'il' is rejected by many passages of the same books. But it is strange that the gentleman, following this principle, did not declare reciting Durood and Fatiha at the time of visiting for bestowing reward as disliked?

Objection (6): The gentleman based the denial of sight and hearing on the intervention of these numerous veils. This is built on the highest level of ignorance, for the dead inherently possess the power of hearing and seeing, but due to these obstacles, they cannot perceive external sound and form. Otherwise, if those powers were not present in them, then basing the matter on intervention would be completely meaningless. No one would say about a house wall that external things are not seen because there is a barrier in between. Now, let it be enquired from the

theologians of the sect whether they would accept this specification or be such deniers. The "Second Teacher" of the deniers of India, i.e., Maulvi Ishaq Dehlavi, was asked: Is the hearing of the dead permissible except for the greeting (Salam)? (T: Can the dead hear besides the Salam? T) He replied: It is not established. (T: Not proven. T) Does a person become a corpse only when they are placed in the grave and covered with soil?

1. Mi'ata Masa'il, question 28, Maktaba Tawheed wa Sunnat Peshawar, p. 69.
2. Mi'ata Masa'il, question 26, Maktaba Tawheed wa Sunnat Peshawar, p. 50, 51.

फ़तावा रज़विया, खंड 9

विरोध (४): उस समूह के धर्मशास्त्रियों (मुतक्लिमीन) के भाषण गवाह हैं कि जो कार्य अपने आप में उत्तम हो, लेकिन उनके विचार में जनता के बीच भ्रष्ट मिश्रणों के साथ प्रचलित हो—वे मूल कार्य को ही वर्जित ठहराते हैं, न कि भ्रष्ट कार्यों से मना करते हैं। और मूल कार्य का सुझाव देते हैं, जबकि आपके निकट पवित्र मजारों की ज़ियारत शिर्क के रूप में प्रचलित है कि वहाँ से मदद माँगना आम और प्रसिद्ध है। तो उस समूह के सिद्धांतों के अनुसार मूल ज़ियारत को हराम कहना चाहिए था, न कि मंदूब और सुन्नत।

विरोध (५): मौलवी इसहाक 'मआत मसाइल' (सौ मसले) में लिखते हैं:

| दफन के बाद अज़ान देना बिदअत (नवाचार) और मकरूह (नापसंद) है क्योंकि यह सुन्नत से सिद्ध नहीं है। और जो कुछ सुन्नत से सिद्ध न हो, वह फ़िक़्ह (इस्लामी न्यायशास्त्र) की किताबों के वृत्तांतों के अनुसार मकरूह होता है। किताबों का इबारत (पाठ) यह है: कब्र के पास वह कार्य मकरूह है जो सुन्नत से सिद्ध न हो। और सुन्नत से केवल यह सिद्ध है कि उसकी ज़ियारत की जाए और वहाँ खड़े होकर दुआ की जाए, जैसा कि फ़तह अल-क़दीर, अल-बहर अल-रैक़, अन-नहर अल-फ़ैक़ और फ़तावा आलमगीरी में है। | दफन के बाद अज़ान देना बिदअत और मकरूह है इस लिये कि सुन्नत से महूद (स्थापित) नहीं। और जो कुछ सुन्नत से महूद न हो कुतुब-ए-फ़िक़्ह की रिवायात के मुताबिक मकरूह होता है और किताबों की इबारत यह है कब्र के पास जो सुन्नत से महूद नहीं मकरूह है। और सुन्नत से महूद सिर्फ यह है कि ज़ियारत और वहाँ खड़े हो कर दुआ हो जैसा कि फ़तह अल-क़दीर, अल-बहर अल-रैक़, अन-नहर अल-फ़ैक़ और फ़तावा आलमगीरी में है (त) |

हालाँकि इन इबारतों का जो मतलब 'मआत मसाइल' के लेखक ने निकाला है, उसे उन्हीं किताबों की बहुत सी इबारतें खारिज करती हैं। लेकिन यह आश्चर्यजनक है कि जनाब ने इस नियम पर अमल करते हुए ज़ियारत के समय दुरूद और फातिहा पढ़कर सवाब पहुँचाने को मकरूह क्यों नहीं फरमाया?

विरोध (६): जनाब ने देखने और सुनने के निषेध को इन अनेक पर्दों के बीच में आने पर आधारित बताया। यह अत्यंत अज्ञानता पर आधारित है कि मृतकों में अपने आप में सुनने और देखने की शक्ति होती है, लेकिन इन बाधाओं के कारण बाहरी आवाज़ और सूरत का बोध नहीं होता। अन्यथा यदि स्वयं उनमें वे शक्तियाँ न होतीं, तो बात को बीच में आने वाले पर्दों पर रखना पूरी तरह से अर्थहीन

होता। घर की दीवार के बारे में कोई नहीं कहेगा कि बाहर की चीजें इस कारण नहीं दिखतीं क्योंकि बीच में आड़ है। अब उस समूह के धर्मशास्त्रियों से पूछताछ की जाए कि वे इस विशिष्टता को मानेंगे या ऐसे ही इनकार करेंगे। भारत के इनकार करने वालों के"दूसरे शिक्षक", यानी मौलवी इसहाक देहलवी से सवाल हुआ: क्या सलाम के अलावा मुर्दों का सुनना जायज़ है? (त: सिवाए सलाम के मुर्दे का सुनना जायज़ है? त) उन्होंने जवाब दिया: यह साबित नहीं है। (त: साबित नहीं। त) क्या आदमी तभी मुर्दा होता है जब उसे कब्र में रखकर मिट्टी दे दें?

1. मआत मसाइल, प्रश्न २८, मकतबा तौहीद व सुन्नत पेशावर, पृ. ६९
2. मआत मसाइल, प्रश्न २६, मकतबा तौहीद व सुन्नत पेशावर, पृ. ५०, ५१

مخالفت (۴): متکلمین طائفہ کی تقریریں گواہ کہ جو فعل فی نفسہ حسن ہو مگر عوام میں ان کے زعم پر خلط مفاسد کے ساتھ جاری۔ وہ اصل کو ممنوع ٹھہراتے ہیں، نہ کہ مفاسد سے منع۔ اور اصل کی تجویز کریں، جب آپ کے نزدیک زیارت مزارات متبرکہ بطور شرک رائج کہ استمداد مذکور شائع و مشہور۔ تو اصول طائفہ پر اصل زیارت کو حرام کہنا تھا۔ نہ مندوب و مسنون۔

مخالفت (۵): مولوی اسحاق مائتہ مسائل میں لکھتے ہیں:

| اذان دادن بعد از دفن بدعت و مکروہ است زیرا کہ معہود از سنت نیست وانچہ معہود از سنت نیست بموجب روایات کتب فقہ مکروہ می باشد۔ وعبارۃ الکتب ھذا یکرہ عند القبر مالم یعھد من السنۃ والمعھود منھا لیس الازیارتہ والدعاء عندہ قائماً کما في فتح القدیر والبحر الرائق والنھر الفائق والفتاوی العالمگیري ۱۔ | دفن کے بعد اذان دینا بدعت اور مکروہ ہے اس لئے کہ سنت سے معہود نہیں۔ اور جو کچھ سنت سے معہود نہ ہو کتب فقہ کی روایات کے مطابق مکروہ ہوتا ہے اور کتابوں کی عبارت یہ ہے قبر کے پاس جو سنت سے معہود نہیں مکروہ ہے۔ اور سنت سے معہود صرف یہ ہے کہ زیارت اور وہاں کھڑے ہو کر دعا ہو جیسا کہ فتح القدیر، البحر الرائق، النہر الفائق اور فتاوٰی عالمگیری میں ہے (ت) |

اگرچہ ان عبارات کا مطلب جو صاحب مائتہ مسائل نے ٹھہرایا انھیں کتابوں کی بہت عبارتوں سے مردود۔ مگر عجب ہے کہ جناب نے اس کلیہ پر عمل فرما کر وقت زیارت درود و فاتحہ پڑھ کر ثواب بخشنے کو کیوں نہ مکروہ فرمایا:

مخالفت (۶): جناب نے امتناع رویت و سماع کو ان حجب عدیدہ کی حیلولت پر مبنی فرمایا یہ ابتنیٰ با علی ندامنادی کہ اموات کو فی نفسم قوت سمع و ابصار حاصل ہے مگر ان حائلوں کے سبب باہر کی صوت و صورت کا ادراک نہیں ہوتا ورنہ اگر خود ان میں راغایہ قوتیں نہ ہوتیں تو بنائے کار حیلولت پر رکھنی محض بے معنی، دیوار بیت کی نسبت کوئی نہ کہے گا کہ باہر کی چیزیں اس وجہ سے نہیں دکھتے کہ بیچ میں آڑ ہے۔ اب متکلمین طائفہ سے استفسار ہو جائے کہ وہ اس تخصیص کے مقر ہوں گے یا را اتنا منکر۔ معلم ثانی منکرین ہند یعنی مولوی اسحاق دہلوی سے سوال ہوا: سماعت موتی سوائے سلام جائز است (سوائے سلام کے مردے کا سننا جائز ہے؟ت) جواب دیا ثبات نیست ۲ (ثابت نہیں۔ت) کیا آدمی اسی وقت میت ہوتا ہے جب قبر میں رکھ کر مٹی دے دیں۔

۱ مائتہ مسائل سوال بست و ہشتم مکتبہ توحید و سنت پشاور ص ۶۹ ۲ مائتہ مسائل سوال بست و ششم مکتبہ توحید و سنت پشاور ص ۵۰، ۵۱

Fatawa Rizvia - Volume 9

Opposition (7): When, according to you, the barrier to perception is the intervention of soil. Then, as long as the soil has not been laid, or where they are buried in such a way that the outside sound is not prevented from reaching inside, as Allama Ibn al-Hajj explains in "al-Madkhal" regarding the custom of the Egyptians that they do not build graves for the dead but place them in basements, and there are doors for them; you can go in and out whenever you want. For such places, what is the divine command? If someone calls out like this in such a place and asks for prayers from the dead, will they be absolutely a polytheist or caught in the doubt and semblance of polytheism or not? The theologians of the group will never agree; please take care of your speech.

Opposition (8): Praise be to Allah that your style of speech from beginning to end is a witness of justice that the noble verse "Indeed, you cannot make the dead hear"[1] has no relation to the negation of hearing, nor is this its meaning at all. Otherwise, your speech would be in clear contradiction to the Word of Allah.

Firstly, the noble verse is certainly general, so if the negation of hearing is derived from it, it would absolutely indicate total negation. Then, how can you say 'affirmation' for some of the dead contrary to the Divine instruction?

Secondly, on this estimation, the benefit of the verse would be that death itself is incompatible with hearing. Not that the dead possess the original power and lack of perception is due to a barrier. Then why do you base your work on the intervention of veils contrary to the Quran?

Inevitably, it became clear that the correct meaning of the noble verse is in your exalted mind and you have understood well that there is no mention of negation of hearing in it at all, as is the pure truth (T). And it is not surprising that for this reason you did not mention the noble verse, otherwise, in its presence, what was the need for alien things. Therefore, this humble one has also kept this discussion dependent on the answer to the answer, provided that the Maulvi Sahib returns to it in his reply. And Allah is the Granter of Success.

However, since the place should not remain empty, by the grace of Allah Almighty, I point towards some answers. So I say, and from Allah I seek help (T):

Answer 1: The explicit pronunciation of the verse is the negation of 'Isma' (making someone hear). Not the negation of 'Sama' (hearing), so what relation does it have

with the point of contention? Its parallel is the noble verse "Indeed, you do not guide whom you like"[2]. That is why, just as it was said there "but Allah guides whom He wills"[3], meaning people's getting guidance is not from the Prophet but from God. Similarly, here also it was stated:

[1] Al-Quran 27/80 [2] Al-Quran 28/56 [3] Al-Quran 2/272

फतावा रज़विया - भाग 9

विरोध (7): जब आपके अनुसार बोध में बाधा मिट्टी का हस्तक्षेप (हैलूलत-ए-खाक) है। तो जब तक मिट्टी न डाली गई हो या जहाँ दफ़न इस तरह किया गया हो कि बाहर की आवाज़ अंदर जाने से न रुके, जैसा कि अल्लामा इब्न अल-हज "मदखल" में मिस्र के लोगों के रिवाज के बारे में बताते हैं कि वे मृतकों के लिए कब्रें नहीं बनाते बल्कि उन्हें तहखानों में रखकर आते हैं और उनके लिए दरवाज़े होते हैं, जब चाहो अंदर जाओ और बाहर आओ। वहाँ के लिए ईश्वरीय आदेश क्या है? यदि कोई ऐसी जगह पर इस तरह पुकारे और मृतकों से दुआ करने को कहे, तो क्या वह निश्चित रूप से मुशरिक (बहुदेववादी) होगा या शिर्क के संदेह और समानता में फँस जाएगा या नहीं? इस समूह के विद्वान (मुतकिल्लमीन) तो इसे कभी नहीं मानेंगे; कृपया अपनी बातों का ध्यान रखें।

विरोध (8): अल्हम्दुलिल्लाह कि आपका बात करने का अंदाज़ शुरू से अंत तक इस बात का न्यायपूर्ण गवाह है कि पवित्र आयत "بیشک آپ مُردوں کو نہیں سنا سکتے" (बेशक आप मृतकों को नहीं सुना सकते)[1] का सुनने के निषेध (नफ़ी-ए-समाअ) से कोई संबंध नहीं है, और न ही इसका यह अर्थ है। अन्यथा, आपकी बात अल्लाह के कलाम (वाणी) के स्पष्ट रूप से विरुद्ध होगी।

प्रथम, पवित्र आयत निश्चित रूप से सामान्य है, इसलिए यदि इससे सुनने का निषेध निकाला जाए, तो यह निश्चित रूप से पूर्ण निषेध (सल्ब-ए-कुल्ली) का संकेत देगी। फिर आप ईश्वरीय निर्देश के विरुद्ध कुछ मृतकों के लिए 'हाँ' (ईजाब) कैसे कह सकते हैं?

द्वितीय, इस अनुमान पर आयत का लाभ यह होगा कि मृत्यु स्वयं सुनने के विरुद्ध है। यह नहीं कि मृतकों के पास मूल शक्ति है और बोध न होना किसी बाधा के कारण है। फिर आप कुरान के विरुद्ध पर्दों के हस्तक्षेप पर अपना काम क्यों आधारित करते हैं?

अनिवार्य रूप से यह स्पष्ट हो गया कि पवित्र आयत का सही अर्थ आपके उच्च मन में है और आप अच्छी तरह समझ चुके हैं कि इसमें सुनने के निषेध का बिल्कुल उल्लेख नहीं है, जैसा कि यही शुद्ध सत्य है (त)। और इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि इसी कारण आपने पवित्र आयत का उल्लेख नहीं किया, अन्यथा इसकी उपस्थिति में पराई बातों की क्या आवश्यकता होती। इसलिए, इस फकीर (मुझ) ने भी इस बहस को जवाब-दर-जवाब पर आधारित रखा है, बशर्ते कि मौलवी साहब जवाब में इसकी ओर लौटें। और अल्लाह ही सफलता देने वाला है।

लेकिन चूँकि स्थान रिक्त न रहे, अल्लाह तआला की तौफीक से मैं कुछ उत्तरों की ओर संकेत करता हूँ। तो मैं कहता हूँ और अल्लाह से सहायता चाहता हूँ (त):

उत्तर 1: आयत का स्पष्ट उच्चारण 'इस्माअ' (सुनाना) का निषेध है, न कि 'समाअ' (सुनने) का निषेध। फिर इसका विवाद के विषय से क्या संबंध? इसका उदाहरण पवित्र आयत है: "बेशक आप उसे मार्ग नहीं दिखा सकते जिसे आप चाहें"[2]। इसीलिए, जिस प्रकार वहाँ फरमाया गया "लेकिन अल्लाह जिसे चाहता है मार्ग दिखाता है"[3], अर्थात लोगों का मार्गदर्शन पाना नबी की ओर से नहीं बल्कि खुदा की ओर से है। उसी प्रकार यहाँ भी इरशाद हुआ:

[1] अल-कुरान 27/80 [2] अल-कुरान 28/56 [3] अल-कुरान 2/272

مخالفت (۷): جب آپ کے نزدیک مانع ادراک حیلولتِ خاک۔ تو جب تک مٹی نہ دی ہو یا جہاں دفن ہے اس طرح کرتے ہوں کہ باہر کی آواز اندر جانے سے روک نہ ہو، جیسے علامہ ابن الحاج مدخل میں اہل مصر کا رواج بتاتے ہیں کہ اموات کی قبریں نہیں بناتے بلکہ تہ خانوں میں رکھ کر آتے ہیں اور ان کے لیے دروازے ہوتے ہیں جب چاہو اندر جاؤ باہر آؤ۔ وہاں کے لیے حکم الٰہی ارشاد ہو۔ اگر ایسی جگہ کوئی یوں پکارے اور اموات سے دعا کرنے کو کہے تو قطعاً مشرک یا شائبہ و شبہہ شرک میں گرفتار ہوگا یا نہیں، متکلمین طائفہ تو ہرگز نہ مانیں گے آپ اپنے کلام کا لحاظ فرمائیں۔

مخالفت (۸): الحمدللہ کہ جناب کا طرز کلام اول سے آخر تک شاہد عدل کہ آیت کریمہ اِنَّكَ لَا تُسْمِعُ الْمَوْتٰى[1] کو نفیِ سماع سے کچھ علاقہ نہیں، نہ ہرگز اس سے یہ مفہوم۔ ورنہ کلامِ جناب کلام اللہ کے صریح خلاف ہوگا۔

اولاً آیت کریمہ یقیناً عام، پس اگر اس سے نفیِ سماع مستفاد ہو تو قطعاً سلبِ کلی پر دلالت کرے گی۔ پھر آپ ارشادِ ربانی کے خلاف بعض اموات کے لیے ایجاب کیونکر کہہ سکتے ہیں۔

ثانیاً اس تقدیر پر مفادِ آیت یہ ہوگا کہ نفسِ موت منافیِ سماع ہے۔ نہ یہ کہ موتیٰ کو اصلِ قوت حاصل اور عدم ادراک بوجہ حائل۔ پھر آپ کیونکر برخلاف قرآن حیلولتِ حجب پر بنائے کار رکھتے ہیں۔

لا جرم واضح ہوا کہ آیہ کریمہ کے صحیح معنیٰ ذہن سامی میں ہیں اور آپ خوب سمجھ چکے ہیں کہ اس میں نفیِ سماع کا اصلاً ذکر نہیں کما ھوا الحق الناصح (جیسا کہ یہی حق خالص ہے۔ت) اور عجب نہیں کہ اسی لیے آپ نے آیہ کریمہ کا ذکر نہ فرمایا، ورنہ اسی کے ہوتے بیگانہ باتوں کی کیا

حاجت ہوتی۔ لہٰذا فقیر نے بھی اس بحث کو بشر طیکہ مولوی صاحب جواب میں اس کی طرف رجعت فرمائیں جواب الجواب پر محمول رکھا۔ واللہ الموفق۔

مگر از آنجا کہ مقام خالی نہ رہے بتوفیقہ تعالیٰ بعض جوابوں کی طرف اشارہ کروں۔ فاقول وباللہ استعین (میں تو کہتا ہوں اور خدا ہی سے مدد کا طالب ہوں۔ ت)

جواب اوّل: آیت کا صریح منطوق نفیِ اسما ع ہے۔ نہ نفیِ سماع، پھر اسے محل نزاع سے کیا علاقہ۔ نظیر اس کی آیہ کریمہ اِنَّكَ لَا تَهْدِیْ مَنْ اَحْبَبْتَ[2] ہے۔ اسی لیے جس طرح وہاں فرمایا وَ لٰكِنَّ اللّٰهَ یَهْدِیْ مَنْ یَّشَاءُ[3] یعنی لوگوں کا ہدایت پانا نبی کی طرف سے نہیں خدا کی طرف سے ہے۔ یونہی یہاں بھی ارشاد ہوا:

[1] القرآن ۸۰/۲۷ [2] القرآن ۵۶/۲۸ [3] القرآن ۲۷۲/۲

Fatawa Razawiya, Volume 9

“Indeed, Allah makes whom He wills to hear.”[1] (Indeed, Allah makes hear whomever He wills. - T) The conclusion is that the hearing of the people of the graves is not from you, but from Allah Almighty. In Mirqat Sharh Mishkat, it is stated:

Verse	Translation
The verse is from the category of: “Indeed, [O Muhammad], you do not guide whom you like, but Allah guides whom He wills.”[2]	This verse is of the same category as that verse. Indeed, you do not give guidance, but God gives it to whom He wills. (T)

Response 2: Even if you consider it a negation of hearing, then here 'hearing' definitely means hearing with acceptance and benefit. A father tells his disobedient son a thousand times, "He doesn't listen to me." For any sane person, this does not mean that literally sound does not reach his ears. Rather, it clearly means that he hears but does not obey, and he does not benefit from hearing. Guidance being mentioned in the noble verse as the intended meaning is a witness that it is the negation of benefit from the disbelievers, not the negation of actual hearing. In the conclusion of the same noble verse, “Indeed, you will not make the dead hear,” Allah Almighty says:

Verse	Translation
“You will only make hear those who believe in Our verses so they are Muslims [in submission to Allah].”[3]	You do not make [any] hear except those who believe in Our verses, for they are the ones who submit.

And it is evident that the time to benefit from advice and counsel is this worldly life. After death, there is no benefit in believing, nor is anything gained by hearing. On the Day of Judgment, all disbelievers will bring faith, but what use will it be then? “Now? And you had disobeyed [Him] before.”[4] (What! Now, while you were disobedient before? - T). So the conclusion is that just as the dead do not benefit from preaching, the same is the case with the disbelievers; no matter how much you explain, they do not agree. Allama Halabi stated in Sirat Insan-ul-Uyun:

Arabic Text	Translation
The hearing negated in the verse is in the sense of beneficial hearing. Al-Hafiz Jalal al-Din al-Suyuti pointed to this with	In the verse where hearing is negated, it is in the sense of 'beneficial hearing', and Hafiz Jalaluddin Suyuti has pointed to this

Arabic Text	Translation
his saying: The hearing of the dead to the speech of all creation is a truth, regarding which reports have reached us in the books.	in his statement that the dead hearing the speech of the creation is a truth; there are narrations recorded in our books regarding this.

[1] Al-Quran 35/22 [2] Mirqat al-Masabih, Chapter on the Ruling of the Prisoners, Maktaba Habibiyah Quetta, 7/519 [3] Al-Quran 27/81 [4] Al-Quran 10/91

फ़तावा रज़विया, जिल्द 9

"बेशक अल्लाह जिसे चाहता है सुनाता है।"[1] (बेशक अल्लाह जिसे चाहता है, सुनाता है। - त) वही हासिल हुआ कि क़ब्र वालों का सुनना तुम्हारी तरफ से नहीं, बल्कि अल्लाह अज़्ज़वजल की तरफ से है। मिर्क़ात शरह मिश्क़ात में है:

आयत	अनुवाद
आयत इस क़बील से है: "बेशक आप जिसे चाहें हिदायत नहीं देते, बल्कि अल्लाह जिसे चाहता है हिदायत देता है।"[2]	यह आयत उस आयत की क़बील (श्रेणी) से है। बेशक तुम हिदायत नहीं देते मगर ख़ुदा देता है जिसे चाहता है। (त)

दूसरा जवाब: यदि सुनने के नकार को ही माना जाए, तो यहाँ सुनने का अर्थ निश्चित रूप से 'स्वीकार करने' और 'लाभ उठाने' वाला सुनना है। एक पिता अपने आज्ञा न मानने वाले बेटे से हज़ारों बार कहता है, "वह मेरी नहीं सुनता।" किसी भी बुद्धिमान व्यक्ति के लिए इसका यह अर्थ नहीं है कि वास्तव में कान तक आवाज़ नहीं पहुँचती। बल्कि स्पष्ट यही है कि सुनता तो है, मानता नहीं, और सुनने से उसे लाभ नहीं होता। आयत-ए-करीमा में इसी अर्थ के इरादे पर 'हिदायत' गवाह है कि काफ़िरों से लाभ का ही नकार है, न कि मूल सुनने का। स्वयं इसी आयत-ए-करीमा "बेशक आप मुर्दों को नहीं सुना सकते" के अंत में अल्लाह अज़्ज़वजल फ़रमाता है:

आयत	अनुवाद
"तुम नहीं सुना सकते मगर उन्हीं को जो हमारी आयतों पर ईमान लाते हैं, सो वे फ़रमांबरदार (आज्ञाकारी) हैं।"[3]	तुम नहीं सुनाते मगर उन्हें जो हमारी आयतों पर यक़ीन रखते हैं तो वह फ़रमांबरदार हैं।

और फिर ज़ाहिर है कि सीख और नसीहत से लाभ प्राप्त करने का समय यही दुनियावी ज़िंदगी है। मरने के बाद न कुछ मानने से फ़ायदा है न सुनने से हासिल। क़यामत के दिन सभी काफ़िर ईमान ले आएँगे, फिर उससे क्या काम? "अब? जबकि इससे पहले तुम नाफ़रमान रहे।"[4] (क्या अब, जबकि इससे पहले नाफ़रमान रहे। - त)। तो परिणाम यह हुआ कि जिस तरह मुर्दों को उपदेश से लाभ नहीं होता, यही हाल काफ़िरों का है कि लाख समझाओ, वे नहीं मानते। अल्लामा हलीबी ने सीरत इंसान अल-उयून में फ़रमाया:

अरबी मूल	अनुवाद
आयत में जिस सुनने का निषेध किया गया है, वह 'लाभकारी सुनने' के अर्थ में है। और हाफ़िज़ जलालुद्दीन सुयूती ने अपने इस कथन से इसकी ओर संकेत किया है: सभी सृष्टियों की वाणी को मुर्दों का सुनना सत्य है, इसके बारे में हमारे पास किताबों में उल्लेख (आसार) मिलते हैं।	आयत में जिस सुनने की नफ़ी (निषेध) की गई है, वह समाअ-ए-नाफ़े(लाभकारी सुनने) के मानी में है, और इसकी तरफ़ हाफ़िज़ जलालुद्दीन सुयूती ने अपने इस कलाम से इशारा फ़रमाया है कि मुर्दों का कलाम-ए-मख़लूक़ (सृष्टियों की बात) सुनना हक़ (सत्य) है, इससे मुताल्लिक़ (संबंधित) हमारे पास किताबों में आसार वारिद (उल्लेख वर्णित) हैं।

[1] अल-कुरान 35/22 [2] मिर्कात अल-मसाबीह, बाब हुक्म अल-इसरा, मकतबा हबीबिया क्वेटा, 7/519
[3] अल-कुरान 27/81 [4] अल-कुरान 10/91

فتاوی رضویہ، جلد نہم

اِنَّ اللّٰہَ یُسْمِعُ مَنْ یَّشَاءُ 1 (بیشک اللہ جسے چاہتا ہے سناتا ہے۔ ت) وہی حاصل ہوا کہ اہل قبور کا سننا تمہاری طرف سے نہیں اللہ عزوجل کی طرف سے ہے۔ مرقاہ شرح مشکوۃ میں ہے :

الآیۃ	**ترجمہ**
الآیۃ من قبیل اِنَّكَ لَا تَهْدِي مَنْ اَحْبَبْتَ وَ لٰكِنَّ اللّٰہَ یَهْدِي مَنْ یَشَاءُ 2 ۔	یہ آیت اس آیت کی قبیل سے ہے۔ بیشک تم ہدایت نہیں دیتے مگر خدا دیتا ہے جسے چاہتا ہے۔ (ت)

جواب دوم: نفی سماع ہی مانو تو یہاں سے سماع قطعاً بمعنی سمع قبول و انتفاع ہے۔ باپ اپنے عاق بیٹے کو ہزار بار کہتا ہے، وہ میری نہیں سنتا۔ کسی عاقل کے نزدیک اس کے یہ معنی نہیں کہ حقیقتاً کان تک آواز نہیں جاتی۔ بلکہ صاف یہی کہ سنتا تو ہے ، مانتا نہیں، اور سننے سے اسے نفع نہیں ہوتا، آیہ کریمہ میں اسی معنی کے ارادہ پر ہدایت شاہد کہ کفار سے انتفاع ہی کا انتفا ہے نہ کہ اصل سماع کا۔ خود اسی آیہ کریمہ اِنَّكَ لَا تُسْمِعُ الْمَوْتٰی کے تتمہ میں ارشاد فرماتا ہے عزوجل:

الآیۃ	**ترجمہ**
اِنْ تُسْمِعُ اِلَّا مَنْ یُّؤْمِنُ بِاٰیٰتِنَا فَهُمْ مُّسْلِمُوْنَ 3 ۔	تم نہیں سناتے مگر انہیں جو ہماری آیتوں پر یقین رکھتے ہیں تو وہ فرمانبردار ہیں۔

اور پھر ظاہر کہ پند و نصیحت سے نفع حاصل کا وقت یہی زندگی دنیا ہے۔ مرنے کے بعد نہ کچھ ماننے سے فائدہ نہ سننے سے حاصل قیامت کے دن سبھی کافر ایمان لے آئیں گے ، پھر اس سے کیا کام اٰلْاٰنَ وَ قَدْ عَصَیْتَ قَبْلُ 4 (کیا اب جبکہ اس سے پہلے نافرمان رہے۔ت) تو حاصل یہ ہو کہ

جس طرح اموات کو وعظ سے انتفاع نہیں ، یہی حال کافروں کا ہے کہ لاکھ سمجھایئے نہیں مانتے۔

علامہ حلبی نے سیرت انسان العیون میں فرمایا:

عبارت عربی	ترجمہ
السماع المنفی فی الایت بمعنی السماع النافع وقد اشار الی ذلك الحافظ الجلال السیوطی بقوله سماع موتی کلام الخلق قاطبة حق قد جاءت به عندنا الاثار فی الکتب	آیت میں جس سننے کی نفی کی گئی ہے وہ سماع نافع کے معنی میں ہے، اور اس کی طرف حافظ جلال الدین السیوطی نے اپنے اس کلام سے اشارہ فرمایا ہے کہ مردوں کا کلامِ مخلوق سننا حق ہے، اس سے متعلق ہمارے پاس کتابوں میں آثار وارد ہیں۔

1 القرآن ۳۵/۲۲ 2 مرقاۃ المصابیح باب حکم الاسراء مکتبہ حبیبیہ کوئٹہ ۷/۵۱۹ 3 القرآن ۲۷/۸۱

4 القرآن ۹۱/۱۰

Fatawa Rizvia Volume 9

وأيت النفى معناها سماع هدى لايقبلون ولا يصغون للادب ۔ 1	**And the verse of negation means hearing of guidance, i.e., they do not accept and do not lend their ears to words of instruction. (T)**

Imam Abul Barakat Nasafi stated in the commentary of *Madarik al-Tanzil* under the verse of Surah Fatir:

شبہ الكفار بالموتى حيث لا ينتفعون بمسموعهم ۔ 2	**He likened the disbelievers to the dead in the sense that they do not benefit from what they hear. (T)**

Maulana Ali Qari stated in *Sharh Mishkat*:

النفى منصب على نفى النفع لا على مطلق السمع ۔ 3	**The negation is focused on the negation of benefit, not on absolute hearing; rather, the meaning is that their hearing is not beneficial. (T)**

Third Answer: Granted that absolute hearing itself is negated, but from whom? From the dead. Who are the dead? Bodies; for the soul never dies, and this is the creed of the Ahl al-Sunnah wal-Jama'ah, the detailed explanations of which will appear, by Allah's help, in the Introduction and the first and second sections, first type, third objective. Yes, of whom was the negation made? From "those in the graves," meaning those who are in the grave. Who is in the grave? The body; for the souls are in Illiyyun or Paradise or heaven or the Well of Zamzam, etc., places of honor and nobility, just as the souls of disbelievers are in Sijjin or fire or the Valley of Barhut, etc., places of disgrace and suffering. Imam Subki states in *Shifa al-Saqam*:

لا ندعى ان الموصوف بالموت موصوف بالسماع انما السماع بعد الموت لحي وهو الروح ۔ 4	**We do not claim that the one described by death is also described by hearing; hearing after death is the function of a living being, which is the soul. (T)**

Shah Abdul Qadir Sahib, brother of Hazrat Shah Abdul Aziz Sahib, states in *Mouzih al-Quran* under the noble verse "And you cannot make those in the graves hear": It has come in the Hadith that "Say 'As-Salamu Alaykum' to the dead, they hear. At many places, the dead have been addressed. Its reality is that the soul of the dead person hears, while what lies in the grave is the torso, which cannot hear." 5

1 *Al-Sirat al-Halabiyyah*, Chapter: Battle of Badr al-Kubra, Al-Maktabah al-Islamiyyah, Beirut, 2/182 2 *Tafsir Madarik al-Tanzil*, under Surah 35, Verse 22, Dar al-Kitab al-Arabi, Beirut, 3/339 3 *Mirqat al-Mafatih*, Chapter: Ruling of Isra, Maktabah Habibiyyah, Quetta, 7/519 4 *Shifa al-Saqam*, Chapter 9, Section 5, Nooria Rizvia, Sukkur, p. 259 5 *Mouzih al-Quran*, under Surah 35, Verse 22, Quran Majeed Limited, Urdu Bazaar, Lahore, p. 769

फ़तावा रज़विया जिल्द नहम (खंड 9)

وأيت النفى معناها سماع هدى لايقبلون ولا يصغون للادب ۔ 1	**और नफी की आयत का अर्थ हिदायत (मार्गदर्शन) का सुनना है, यानी वे स्वीकार नहीं करते और शिष्टाचार की बात पर कान नहीं धरते। (त)**

इमाम अबुल बरकात नसफ़ी ने तफ़्सीर मदारेक अल-तंज़ील में सूरह फातिर की आयत के तहत फ़रमाया:

شبہ الكفار بالموتى حيث لا ينتفعون بمسموعهم ۔ 2	**काफ़िरों को मुर्दों से उपमा दी गई इस लिहाज़ से कि वे जो सुनते हैं उससे फ़ायदा नहीं उठाते। (त)**

मौलाना अली क़ारी ने शरह मिश्कात में फ़रमाया:

النفى منصب على نفى النفع لا على مطلق السمع ۔ 3	**पूर्ण सुनने की नफी नहीं बल्कि अर्थ यह है कि उनका सुनना लाभप्रद नहीं होता। (त)**

तीसरा जवाब: माना कि असल सुनना ही नफी है, मगर किससे? मुर्दों से। मुर्दे कौन हैं? शरीर; क्योंकि रूह तो कभी मरती ही नहीं, और अहल-ए-सुन्नत वल-जमाअत का यही मज़हब है जिसकी विस्तृत व्याख्या अल्लाह की मदद से प्रस्तावना और पहले व दूसरे खंड, पहले प्रकार, तीसरे उद्देश्य में आएगी। हाँ, किससे नफी की गई? 'क़ब्रों वालों से' यानी जो क़ब्र में हैं। क़ब्र में कौन है? शरीर; क्योंकि रूहें तो इल्लीय्यीन या जन्नत या आसमान या ज़मज़म के कुएं आदि सम्मान और प्रतिष्ठा के स्थानों में होती हैं, जिस तरह काफ़िरों की रूहें सिज्जीन या आग या बरहूत की घाटी आदि अपमान और कष्ट के स्थानों में होती हैं। इमाम सुबकी शिफ़ा अल-सक़ाम में फ़रमाते हैं:

لا ندعى ان الموصوف بالموت موصوف بالسماع انما السماع بعد الموت لحي وهو الروح ۔ 4	**हम यह दावा नहीं करते कि जो मौत से युक्त है वही सुनने से भी युक्त है, मरने के बाद सुनना एक जीवित का काम है जो रूह है। (त)**

शाह अब्दुल क़ादिर साहब, हज़रत शाह अब्दुल अज़ीज़ साहब के भाई, मौज़िह अल-क़ुरआन में आयत 'और आप क़ब्रों वालों को नहीं सुना सकते' के तहत फ़रमाते हैं: हदीस में आया है कि "मुर्दों को सलाम करो, वे सुनते हैं; बहुत जगह मुर्दों को संबोधित किया गया है। इसकी वास्तविकता यह है कि मुर्दे की रूह सुनती है और क़ब्र में पड़ा धड़ है, वह नहीं सुन सकता है।" 5

1 अल-सीरत अल-हलबीय्या, अध्याय: बद्र अल-कुबरा का युद्ध, अल-मकतबा अल-इस्लामिया, बेरूत, 2/182 2 तफ़्सीर मदारेक अल-तंज़ील, सूरह 35 आयत 22 के तहत, दार अल-किताब अल-अरबी, बेरूत, 3/339 3 मिर्कात अल-मफ़ातीह, अध्याय: इसरा का नियम, मकतबा हबीबिया, क्वेटा, 7/519 4 शिफ़ा अल-सक़ाम, अध्याय 9, खंड 5, नूरिय्या रज़विया, सुक्कुर, पृ. 259 5 मौज़िह अल-क़ुरआन, सूरह 35 आयत 22 के तहत, क़ुरान मजीद लिमिटेड, उर्दू बाज़ार, लाहौर, पृ. 769

فتاوی رضویہ جلد نہم

وأیت النفی معناھا سماع ھدی لایقبلون ولا یصغون للادب ۔ 1 اور آیت نفی کا معنی سماع ہدایت ہے یعنی وہ قبول نہیں کرتے اور ادب کی بات پر کان نہیں دھرتے۔ (ت)

امام ابوالبرکات نسفی نے تفسیر مدارک التنزیل میں زیر آیہ سورہ فاطر میں فرمایا:

شبہ الکفار بالموتی حیث لا ینتفعون بمسموعھم ۔ 2 کفار کو مردوں سے تشبیہ دی اس لحاظ سے کہ وہ جو سنتے ہیں اس سے فائدہ نہیں اٹھاتے۔ (ت)

مولانا علی قاری نے شرح مشکوٰۃ میں فرمایا:

النفی منصب علی نفی النفع لا علی مطلق السمع ۔ 3 مطلق سننے کی نفی نہیں بلکہ معنی یہ ہے کہ ان کا سننا نفع بخش نہیں ہوتا۔ (ت)

جواب سوم: مانا کہ اصل سماع ہی منفی مگر کس سے، موتی سے، موتی کون ہے؟ ابدان، کہ روح تو کبھی مرتی ہی نہیں، اہل سنت و جماعت کا یہی مذہب ہے جس کی تصریحات بعونہ تعالٰی تمہید و فصل اول و دوم، نوع اول مقصد سوم میں آئیں گی۔ ہاں کسی سے نفی فرمائی؟ من فی قبور سے یعنی جو قبر میں ہے۔ قبر میں کون ہے؟ جسم، کہ روحیں تو علیین یا جنت یا آسمان یا چاہ زمزم وغیرہا مقامات عز و کرام میں ہیں، جس طرح ارواح کفار سجین یا نار وادی برہوت وغیرہا مقامات ذلت و آلام میں۔ امام سبکی شفاء السقام میں فرماتے ہیں:

لا ندعی ان الموصوف بالموت موصوف بالسماع انما السماع بعد الموت لحي وھو الروح ۔ 4 ہم یہ دعوی نہیں کرتے کہ جو موت سے متصف ہے وہی سننے سے بھی متصف ہے، مرنے کے بعد سننا ایک ذی حیات کا کام ہے جو روح ہے۔ (ت)

شاہ عبدالقادر صاحب برادر حضرت شاہ عبدالعزیز صاحب موضح القرآن میں زیر کریمہ وما انت بمسمع من فی القبور فرماتے ہیں: حدیث میں آیا ہے کہ "مردوں سے سلام علیک کرو، سنتے ہیں، بہت جگہ مردوں کو خطاب کیا ہے اس کی حقیقت یہ ہے کہ مردے کی روح سنتی ہے اور قبر میں پڑا ہے دھڑ، وہ نہیں سن سکتا ہے"۔ 5

1 السیرۃ الحلبیۃ باب غزوہ بدر الکبریٰ المکتبۃ الاسلامیۃ بیروت ۱۸۲/۲ 2 تفسیر مدارک التنزیل تحت سورہ ۳۵ آیت ۲۲ دار الکتاب العربیہ بیروت ۳۳۹/۳ 3 مرقاۃ المفاتیح باب حکم الاسراء مکتبہ حبیبیہ کوئٹہ ۷/ ۵۱۹ 4 شفاء السقام الباب التاسع الفصل الخامس نوریہ رضویہ سکھر ص ۲۵۹ 5 موضح القرآن تحت سورہ ۳۵ آیت ۲۲ ناشر ان قرآن مجید لمیٹڈ، اردو بازار لاہور ص ۷۶۹

Volume Nine Fatawa Razawiya

These three answers, by the grace of the Bestower (Al-Wahhab), came to the mind of this humble servant before studying the words of the scholars. Then, I saw their clarifications in the statements of the scholars as you have heard, and all praise is due to Allah (As you heard, and praise is for Allah alone. - T). And there are still more answers from the leading scholars:

And in what we have mentioned is enough for him who gives ear while he is heedful.	**And what we have described is sufficient for him who listens attentively and is focused.**
Indeed, Allah makes whom He wills to hear, and He guides to the path of the Praiseworthy.	Indeed, Allah makes hear whom He wills and guides to the path of the Praiseworthy Being (T).

Objection (9): The questioner had spoken generally about going to the shrine of a saint for visitation (ziyarat), which, by its general and absolute nature, includes both going within the city and travelling to go there, as is not hidden (Kama la yakhfa - T). And you also, in the same general manner, expressed appreciation for visiting graves and cited in support the Hadith in which the command for visitation is absolute. These general statements are certainly in accordance with the school of the majority of the people of truth (Ahl al-Haqq). However, according to the way (mashrab) of a certain group, it was necessary for you to impose a restriction 'without traveling', otherwise if the questioner and other readers, seeing the general statement, consider going for the visitation of shrines to be absolutely permissible, then according to those who prohibit it, the burden (vabal) of this absolute fatwa will be upon you.

The Second Objective: Regarding Ahadith (Second Objective in Hadith)

Although Ahadith and narrations (athar) regarding the life, perception, hearing, and seeing of souls are reported in such great number and abundance that to encompass them all would require a massive volume and a thick register, and where is the way to their complete surrounding and exhaustive investigation? However, here, according to need, only sixty Hadiths are limited to, and like the first objective, the discourse in this is also divided into two parts. First Type: Regarding the survival of the soul after death and its attributes and actions. Here those Hadiths will be mentioned from which it is proven that the soul does not perish and its actions and perceptions like seeing, speaking, hearing, coming and going, walking and moving,

all remain as before. Rather, its powers become clearer and sharper after death. The work which it used to perform in the state of life through these earthly instruments, i.e., eyes, ears, hands, feet, and tongue, it now performs without them. Even if it be the recollection of an ideal body (jism-e-mithali), although in proof of this fine point those countless Hadiths and narrations are all sufficient proof and healing arguments in which: (1) Reason and consciousness remaining as before after passing away. (2) The soul's ascent to the heavens after death.

खंड नौ फ़तावा रज़विया

ये तीनों उत्तर, अल्लाह (अल-वहाब) की कृपा से, विद्वानों के शब्दों का अध्ययन करने से पहले इस तुच्छ सेवक के मन में आए थे। फिर, मैंने विद्वानों के कथनों में उनका स्पष्टीकरण देखा जैसा कि आपने सुना, और सारी प्रशंसा अल्लाह के लिए है (जैसा कि आपने सुना, और प्रशंसा केवल अल्लाह के लिए है। - त)। और प्रमुख विद्वानों के अभी और भी उत्तर हैं:

और जो हमने उल्लेख किया है वह उसके लिए पर्याप्त है जो ध्यान से सुनता है और सचेत है।

वास्तव में, अल्लाह जिसे चाहता है उसे सुनवाता है और प्रशंसनीय के मार्ग की ओर मार्गदर्शन करता है।

और जो हमने वर्णन किया है वह उसके लिए पर्याप्त है जो कान लगाए और ध्यान केंद्रित करे।

वास्तव में, अल्लाह जिसे चाहता है उसे सुनवाता है और प्रशंसनीय सत्ता के मार्ग का मार्गदर्शन करता है (त)।

विरोध (९): पूछने वाले ने किसी बुज़ुर्ग के मज़ार शरीफ़ पर ज़ियारत (दर्शन) के लिए जाने के बारे में सामान्य तौर पर कहा था, जो अपनी प्रकृति से शहर में जाने और सफ़र करके जाने दोनों को शामिल करता है, जैसा कि छिपा नहीं है (कमा ला यखफ़ा - त)। और आपने भी उसी सामान्य तरीके से कब्रों की ज़ियारत की सराहना की और प्रमाण में उस हदीस का भी ज़िक्र किया जिसमें ज़ियारत का आदेश पूर्ण (बिना शर्त) आया है। ये सामान्य कथन निश्चित रूप से बहुमत वाले सत्यनिष्ठ लोगों (अहल-ए-हक़) के मत के अनुरूप हैं। लेकिन एक गुट के तरीके(मशरब) के अनुसार, आपके लिए यह आवश्यक था कि आप 'बिना यात्रा' का प्रतिबंध लगा देते, वरना यदि पूछने वाले और अन्य पाठक इस सामान्य कथन को देखकर मज़ारों की ज़ियारत के लिए जाने को पूर्णतः जायज़ समझ लें, तो मना करने वालों के नज़दीक इस सामान्य फ़तवे का बोझ (वबाल) आपके ज़िम्मे रहेगा।

दूसरा उद्देश्य: हदीसों के बारे में (हदीस में दूसरा उद्देश्य)

यद्यपि आत्माओं के जीवन, बोध, सुनने और देखने के बारे में हदीसें और रिवायतें इतनी अधिक संख्या और प्रचुरता में आई हैं कि उन्हें पूरी तरह समाहित करने के लिए एक विशाल ग्रंथ और एक मोटे रजिस्टर की आवश्यकता होगी, और उनकी पूर्ण व्याप्ति और गहन जांच का मार्ग कहाँ? फिर भी यहाँ, आवश्यकतानुसार केवल साठ हदीसों तक ही सीमित रखा गया है, और पहले उद्देश्य की तरह इसमें भी चर्चा को दो भागों में विभाजित किया गया है। पहला प्रकार: मृत्यु के बाद आत्मा के जीवित

रहने और उसके गुणों और कार्यों के बारे में। यहाँ वे हदीसें वर्णित होंगी जिनसे यह प्रमाणित होता है कि आत्मा नष्ट नहीं होती है और उसके कार्य और बोध जैसे देखना, बोलना, सुनना, आना-जाना, चलना-फिरना, सब पहले की तरह ही बने रहते हैं। बल्कि मृत्यु के बाद उसकी शक्तियाँ और अधिक स्पष्ट और तीव्र हो जाती हैं। जीवन की अवस्था में जो कार्य वह इन मिट्टी के अंगों यानी आँख, कान, हाथ, पाँव और ज़बान से लेती थी, अब वह इनके बिना करती है। भले ही वह एक आदर्श शरीर (जिस्म-ए-मिसाली) की याद दिलाने वाला ही क्यों न हो, हालाँकि इस बारीक बात के प्रमाण में वे अनगिनत हदीसें और रिवायतें पर्याप्त प्रमाण और स्पष्ट तर्क हैं जिनमें: (१) मृत्यु के बाद बुद्धि और चेतना का पहले की तरह बना रहना। (२) मृत्यु के बाद आत्मा का आसमानों पर जाना।

पृष्ठ ७०५ / ९४८

جلد نہم فتاویٰ رضویہ

یہ تینوں جواب بتوفیق الوہاب قبل مطالعہ کلام علماء ذہن فقیر میں آئے تھے، پھر ان کی تصریحیں کلمات علماء میں دیکھیں کما سمعت وللہ الحمد (جیسا کہ آپ نے سنا اور اللہ ہی کے لیے حمد ہے۔ ت) اور ابھی ائمہ علماء کے جواب اور بھی ہیں:

وفیما ذکرنا کفایۃ لمن القی السمع وھو شھید ان **اور جو ہم نے بیان کیا وہ کافی ہے اس کے لیے جو کان لگائے اور**

اللہ یسمع من یشاء ویھدي الی صراط الحمید۔ متوجہ ہو۔ بیشک اللہ جسے چاہتا ہے سناتا ہے اور ذات حمید کے راستے کی ہدایت دیتا ہے(ت)

مخالفت (۹): سائل نے مطلق کہا تھا ایک بزرگ کے مزار شریف پر واسطے زیارت کے گیا جو اپنے ارسال و اطلاق سے شہر میں جانے اور سفر کر کے جانے دونوں کو شامل ، کمالا یخفی (جیسا کہ مخفی نہیں۔ ت) اور آپ نے بھی یونہی بر سبیل اطلاق زیارت قبور کی تحسین فرمائی اور سند میں حدیث بھی وہ ذکر کی جس میں امر بزیارت مطلق وارد۔ یہ اطلاقات مذہب جمہور اہل حق سے تو بیشک موافق، مگر مشرب طائفہ میں آپ پر لازم تھا کہ بلا سفر کے قید لگا دیتے، ورنہ سائل و دیگر ناظرین اگر اطلاق دیکھ کر زیارت مزارات کو جانا مطلق جائز سمجھے تو مانعین کے نزدیک ان کا یہ وبال اطلاق فتوی کے ذمہ رہے گا۔

المقصد الثاني في الاحادیث (مقصد دوم احادیث میں)

اگر چہ حیات و ادراک و سماع و ابصار ارواح میں احادیث و آثار اس درجہ کثرت و وفور سے وارد جن کے استیعاب کو ایک مجلد عظیم و دفتر ضخیم درکار اور خود ان کے احاطہ و استقصاء

کی طرف راہ کہاں، مگر یہاں بقدر حاجت صرف ساٹھ حدیثوں پر اقتصار اور مثل مقصد اول اس میں بھی دونوں پر انقسام گفتار۔ نوع اول: بعد موت بقائے روح و صفات وافعال روح میں، یہاں وہ حدیثیں مذکور ہوں جن سے ثابت کہ روح فنا نہیں ہوتی اور اس کے افعال و ادراکات جیسے دیکھنا، بولنا، سننا، آنا جانا، چلنا پھرنا، سب بدستور رہتے ہیں، بلکہ اس کی قوتین بعد مرگ اور صاف و تیز ہو جاتی ہیں، حالت حیات میں جو کام ان آلات خاکی یعنی آنکھ، کان، ہاتھ، پاؤں، زبان سے لیتے تھے اب بغیر ان کے کرتی ہے۔ اگرچہ جسم مثالی کی یاد آوری سہی، ہر چند اس مطلب نفیس کے ثبوت میں وہ بے شمار احادیث و آثار سب حجۃ کافیہ و دلائل شافیہ جن میں : (۱) بعد انتقال عقل و ہوش بدستور رہنا۔ (۲) روح کا پس از مرگ آسمانوں پر جانا۔

(3) Prostrating before their Lord. (4) Seeing the angels. (5) Hearing their words. (6) Conversing with them. (7) Keeping their abodes in Paradise before their eyes. (8) Benefiting from good neighbors. (9) Suffering harm from bad neighbors. (10) The angels bringing gifts to them. (11) Their coming to enquire about their wellbeing. (12) Waiting for charities on their behalf. (13) The grave speaking to them in an eloquent tongue. (14) Their (grave) becoming as wide as their eyesight can reach. (15) The deeds of the living being narrated to them. (16) Being happy at good deeds and saddened by bad ones. (17) Praying for those left behind. (18) Longing to meet them. (19) Souls meeting and socialising with each other. (20) Opening of registers for every kind of speech. (21) Going to meet each other across levels/stations. (22) Former dead ones coming to welcome the newly deceased. (23) Recognizing deceased relatives upon seeing them and being delighted by meeting them. (24) Them asking him about the well-being of remaining relatives and friends. (25) Boasting among themselves about the quality of their shrouds. (26) Feeling ashamed among peers due to a poor quality shroud. (27) Seeing one's own good or bad deeds. (28) Finding solace and joy in their company, or God forbid, fear and horror. (29) The knowledge of Sharia for a scholar of religion. (30) The creed of Sunnah for the people of Sunnah. (31) For one who gladdens a Muslim's heart, keeping a heart-opening company through that joy and delight. (32) For the reciter of the Quran, keeping a heart-opening company with the pure appearance of the Great Quran. (33) For the enemies of Uthman, seeking refuge in Allah, bringing faith in Dajjal in their graves. (34) For righteous servants, being present in the noble service of the Master of the World (peace and blessings of Allah be upon him) and the righteous servants of Allah. (35) Offering prayers in their graves. (36) Performing Hajj and saying 'Labbaik'. (37) Remaining busy in reciting the Quran. (38) Rather, the angels making them memorize the Great Quran completely and perfectly. (39) Conversing with their Lord, Majestic is His Glory. (40) The Lord, Blessed and Exalted, speaking soul-refreshing words to them. (41) Oxen and fish appearing before them fighting, entertaining themselves by watching the spectacle. (42) Dipping into the rivers of Paradise.

(३) अपने रब के हुज़ूर सजदे में गिरना। (४) फ़रिश्तों को देखना। (५) उनकी बातें सुनना। (६) उनसे बातें करना। (७) जन्नत में अपने ठिकानों को नज़रों के सामने रखना। (८) अच्छे पड़ोसियों से लाभ पाना। (९) बुरे पड़ोसियों से तकलीफ़ उठाना। (१०) फ़रिश्तों का उनके पास तोहफ़े लाना। (११) उनका हाल-चाल पूछने के लिए आना। (१२) उनके नाम पर होने वाले सदक़ों (दान) का इंतज़ार करना। (१३) क़ब्र का उनसे साफ़ और स्पष्ट भाषा में बात करना। (१४) उनकी नज़र की सीमा तक (क़ब्र का) विशाल होना। (१५) ज़िंदा लोगों के अमल (कर्म) उन्हें सुनाया जाना। (१६) नेक कामों पर ख़ुश होना और बुराइयों पर दुखी होना। (१७) पीछे रह जाने वालों के लिए दुआएँ माँगना। (१८) उनसे मिलने के लिए उत्सुक रहना। (१९) रूहों का आपस में मिलना-जुलना। (२०) हर प्रकार की बातचीत के दफ़्तर खुलना। (२१) मंज़िलों के फ़ासिले से आपस की मुलाक़ात को जाना। (२२) पहले से मृत लोगों का नए मृत व्यक्ति के स्वागत के लिए आना। (२३) अपने गुज़रे हुए क़रीबियों को देख कर पहचानना और उनसे मिल कर प्रसन्न होना। (२४) उनका उससे बाक़ी रिश्तेदारों और दोस्तों के हाल पूछना। (२५) आपस में अच्छे कफ़न पर गर्व करना। (२६) बुरे कफ़न वाले का अपने साथियों में शर्मिंदा होना। (२७) अपने अच्छे या बुरे कर्मों को देखना। (२८) उनकी सोहबत से सुकून और ख़ुशी पाना, या अल्लाह की पनाह, डर और घबराहट पाना। (२९) आलिमे दीन (धर्म गुरु) के लिए शरीयत का ज्ञान। (३०) सुन्नी मुसलमानों के लिए सुन्नत का मज़हब। (३१) किसी मुसलमान का दिल ख़ुश करने वाले के लिए उस सुख और आनंद से दिलकश सोहबत (साथ) रखना। (३२) क़ुरआन पढ़ने वाले के लिए क़ुरआन-ए-अज़ीम के पाकीज़ा चेहरे के साथ दिलकश सोहबत रखना। (३३) उस्मान (रज़ियल्लाहु अन्हु) के दुश्मनों का अपनी क़ब्रों में, अल्लाह की पनाह, दज्जाल पर ईमान लाना। (३४) नेक बंदों का हुज़ूर सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम और अल्लाह के नेक बंदों की बारगाह में हाज़िर होना। (३५) अपनी क़ब्रों में नमाज़ें पढ़ना। (३६) हज करना और 'लब्बैक' कहना। (३७) क़ुरआन की तिलावत में मशग़ूल रहना। (३८) बल्कि फ़रिश्तों का उन्हें पूरा क़ुरआन-ए-अज़ीम हिफ़्ज़ (याद) कराना। (३९) अपने रब जल्ल-जलालुहू से बातें करना। (४०) रब तबारक व तआला का उनसे रूह को ताज़गी देने वाला कलाम फ़रमाना। (४१) बैल और मछली का लड़ते हुए उनके सामने आना और तमाशा देख कर जी बहलाना। (४२) जन्नत की नहरों में गोते लगाना।

पृष्ठ ७०६/९४८

(۳) اپنے رب کے حضور سجدے میں گرنا۔ (۴) فرشتوں کو دیکھنا۔ (۵) ان کی باتیں سننا۔ (۶) ان سے باتیں کرنا۔ (۷) اپنے منازلِ جنت کا پیش نظر رہنا۔ (۸) نیک ہمسایوں سے نفع پانا۔ (۹) بد ہمسایوں سے ایذا اٹھانا۔ (۱۰) ملائکہ کا ان کے پاس تحفے لانا۔ (۱۱) ان کی مزاج پرسی کو آنا۔ (۱۲) ان کا منتظرِ صدقات رہنا۔ (۱۳) قبر کا ان سے بزبانِ فصیح باتیں کرنا۔ (۱۴) ان کے منتہائے نظر تک وسیع ہونا۔ (۱۵) زندوں کے اعمال انھیں سنائے جانا۔ (۱۶) نیکیوں پر خوش ہونا، بُرائیوں پر غم کرنا۔ (۱۷) پسماندوں کے لیے دعائیں مانگنا۔ (۱۸) ان کے ملنے کا مشتاق رہنا۔ (۱۹) روحوں کا باہم ملنا جلنا۔ (۲۰) ہر گونہ کلام کے دفتر کھلنا۔ (۲۱) منزلوں کی فصل سے آپس کی ملاقات کو جانا (۲۲) اگلے اموات کا مُردہ نو کے استقبال کو آنا۔ (۲۳) اس کا گزرے قریبوں کو دیکھ کر پہچاننا، ان سے مل کر شاد ہونا۔ (۲۴) ان کا اس سے باقی عزیزوں دوستوں کے حال پوچھنا۔ (۲۵) آپس میں خوبی کفن سے مفاخرت کرنا۔ (۲۶) بُرے کفن والے کا ہم چشموں میں شرمانا۔ (۲۷) اپنے اعمالِ حسنہ یا سیئہ کو دیکھنا۔ (۲۸) ان کی صحبت سے انس و فرحت یا معاذ اللہ خوف و وحشت پانا۔ (۲۹) عالمِ دین کا علمِ شریعت (۳۰) اہلسنت کا مذہبِ سنت (۳۱) مسلمان کے دل خوش کرنے والے کا اس سرور و فرحت سے صحبت دلکشا رکھنا۔ (۳۲) تالی قرآن کا قرآنِ عظیم کی پاکیزہ طلعت سے صحبت دلکشا رکھنا (۳۳) دشمنانِ عثمان کا اپنی قبروں میں عیاذاً باللہ دجال پر ایمان لانا۔ (۳۴) نیک بندوں کا خدمتِ اقدس سید عالم صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم و عباداللہ الصالحین میں حاضر ہونا۔ (۳۵) اپنی قبروں میں نمازیں پڑھنا۔ (۳۶) حج کرنا لبیک کہنا (۳۷) تلاوت قرآن میں مشغول رہنا۔ (۳۸) بلکہ ملائکہ کا انھیں تمام و کمال قرآن عظیم حفظ کرانا۔ (۳۹) اپنے رب جل جلالہ سے باتیں کرنا۔ (۴۰) رب تبارک و تعالیٰ کا ان سے کلامِ جانفزا فرمانا۔ (۴۱)

بیل اور مچھلی کا لڑتے ہوئے ان کے سامنے آنا تماشا دیکھ کر جی بہلانا، (۴۲) جنت کی نہروں میں غوطے لگانا۔

Fatawa Razawiyya Volume 9

(43) One who dies while engaged in the recitation of the Great Quran, the Quran itself provides them solace at all times, and news of their family is delivered to them every morning and evening. (44) If a nursing prince (infant) passes away, heavenly wet-nurses are appointed, and the nursing period is completed. (45) The righteous being eager for the Day of Judgment to arrive quickly. (46) The wicked being terrified by the mention of the Day of Judgment. (47) The martyrs in the path of Allah desiring to be killed again. (48) Muslims flying wherever they wish in the form of green or white birds. (49) Eating and drinking the fruits and water of Paradise. (50) Taking rest in golden lamps beneath the Throne (Arsh). O Allah, grant this to us. And many other matters besides these have been narrated, which are clear proofs of their knowledge, perception, hearing, sight, speech, movement, and other attributes and states of life. In fact, all the verses and hadiths regarding the punishment and bliss of the grave are decisive proofs for this claim. Whoever desires detailed information on all these matters should refer to the works of the leaders of religion, especially the excellent book 'Sharh al-Sudur bi-Kashf Hal al-Mawta wa al-Qubur,' a refined work by the great Imam, the seal of the preservers, the investigator, Imam Allama Jalal al-Millah wa al-Din al-Suyuti, may Allah sanctify his noble secret. However, in this category, I will only mention a few hadiths which mention the souls after death seeing the people of the world, talking to them, hearing their words, and similar related matters. Among these, I will not write about individual events so that no one may say 'waqia hal la umuma laha' (an individual incident that is not general). Although for a deep thinker, arranging the evidence and completing the argument from them would not be difficult. Nevertheless, most of them are such that their presentation would cause undue length. Therefore, I only intend to limit myself to narrating some general principles that are commonly reported regarding the state of souls. For me, there are two purposes in these hadiths of the first type: Firstly, when their knowledge, perception, hearing, and sight after separation from the body are proven, this is exactly the proof of the intended issue—that the name 'deceased' (mayyit) applies to them from that very moment. Whether they are enclosed in a grave or not has no bearing on this; thus, they will be a proof against common deniers. Secondly, when it is proven from these that the soul remains with its attributes and actions after death and is independent of these physical organs, then at that time, an objection can be presented to the Maulvi Sahib that what he sees as obstructed and veiled by soil etc., is the earthly body, not the pure soul. And hearing, sight, knowledge, and

information, which are its attributes, belong to the pure soul and not to this heap of dust. Sufficient for us is Allah, and He is the best Disposer of affairs. There is no power or strength except with Allah, the Most High, the Most Great. Hadith (1): The great Imam Abdullah bin Mubarak and Abu Bakr bin Abi Shaybah [narrated from] Abdullah bin Amr bin al-Aas, may Allah be pleased with them both. Note: He is a companion, son of a companion, may Allah be pleased with them both. (M)

फतावी रज़विया, जिल्द नौ

(43) जो क़ुरआन अज़ीम की तिलावत में मसरूफ इंतकाल कर जाए, क़ुरआन अज़ीम हर वक़्त उनकी दिलजोई फ़रमाता है, हर सुबह व शाम उनके अहल-ओ-अयाल (परिवार) की खबरें उन्हें पहुँचाई जाती हैं। (44) दूध पीते शहज़ादे का इंतकाल हुआ, जन्नत की दाइयाँ मुक़र्रर होना, मुद्दते-रज़ाअत (दूध पिलाने की अवधि) तमाम फ़रमाना। (45) नेकों का क़यामत के लिए जल्दी का शौक़ करना। (46) बदों (बुरे लोगों) का क़यामत का नाम सुनकर घबराना। (47) अल्लाह की राह में शहीद होने वालों के दिल में दोबारा शहीद होने की आरज़ू होना। (48) मुसलमानों का हरे या सफेद परिंदों के रूप में जहाँ चाहें उड़ते फिरना। (49) जन्नत के फल और पानी खाना-पीना। (50) सोने की कंदीलों में अर्श के नीचे बसेरा लेना। ऐ अल्लाह, हमें यह नसीब फ़रमा। और इनके अलावा बहुत से उमूर वारिद हुए हैं, जो उनके इल्म-ओ-इदराक (ज्ञान व समझ) और समअ-ओ-बसर (सुनने व देखने) और कलाम व सैर वगैरह बा-सिफ़ात-ओ-अहवाल-ए-हयात (जीवन के गुणों व स्थितियों) पर रोशन दलील हैं, बल्कि तमाम आयात और अहादीस, अज़ाब-ए-क़ब्र और नईम-ए-क़ब्र (क़ब्र की नेमतों) के बारे में इस दावे पर क़तई हुज्जत (ठोस प्रमाण) हैं। जिसे इन तमाम बातों पर तफ्सीली इत्तिला मंज़ूर हो, वह आईम्मए-दीन (धर्म के इमामों) की तसानीफ, बिल-खुसूस किताब 'शरहुस सुदूर ब-कश्फ हालिल मौता वल कुबूर' की तरफ रुजू करे, जो अज़ीम इमाम, खातमतुल हुफ़्फ़ाज़, मोहक़्क़िक़ इमाम अल्लामा जलालुल मिल्लत वद्दीन सुयूती (क़ुद्दिस सिर्रहु) की बेहतरीन तस्नीफ़ है। मगर मैं इस किस्म में सिर्फ चंद अहादीस ज़िक्र करूँगा जिनमें मौत के बाद रूहों का दुनिया वालों को देखना, उनसे बातें करना, उनकी बातें सुनना और इसी तरह के मुताल्लिका उमूर मज़कूर हैं। और इनमें भी जुज़ई वाक़यात (छिटपुट घटनाएँ) नहीं लिखूँगा ताकि कोई यह न कहे कि 'वाक़िया हाल ला उमूमा लहा' (यह एक विशेष घटना है जो सामान्य नहीं है)। हालाँकि बारीक नज़र रखने वालों के लिए इनसे दलील की तरतीब और मुकम्मल करना दुश्वार नहीं होगा। इसके बावजूद, उनमें से अक्सर ऐसी हैं जिनका ज़िक्र तवालत (लंबाई) का सबब होगा, लिहाज़ा सिर्फ बाज़ उमूर-ए-कुल्लिया (सामान्य सिद्धांतों) की रिवायत पर इक्तिफ़ा (बस) करना चाहता हूँ, जो आम तौर पर अहवाल-ए-अरवाह (रूहों के हाल) में वारिद हुए हैं। मेरे लिए इन पहली किस्म की अहादीस में दो मक़सद हैं: अव्वलन, जब बदन से जुदा होने के बाद उनका इल्म-ओ-इदराक और समअ-ओ-बसर साबित हुआ, तो यह हूबहू मक़सूदा मसले का सबूत है कि उसी वक़्त से मैयत (मृतक) का नाम उन पर सादिक आता है। क़ब्र में बंद होने या न होने का इसमें कोई दखल नहीं, तो आम मुनकिरीन (नकारने वालों) पर हुज्जत होंगे। सानियन, जब

इनसे यह साबित होगा कि रूह मौत के बाद अपनी सिफ़ात और अफ़आल पर बाक़ी रहती है और इन जिस्मानी आलात (अंगों) से बे-नियाज़ (स्वतंत्र) है, तो उस वक़्त ख़ास मौलवी साहब के मुक़ाबले में यूँ अर्ज़ किया जा सकता है कि जिसे आप मिट्टी वगैरह की ओट और पर्दे में देख रहे हैं वह ख़ाकी जिस्म है, न कि पाकीज़ा रूह; और सुनना, देखना, इल्म और ख़बर जिसके गुण हैं वह पाकीज़ा जान है न कि यह मिट्टी का ढेर। हमारे लिए अल्लाह काफ़ी है और वह बेहतरीन कारसाज़ है, और गुनाहों से बचने की ताक़त और नेक काम करने की कुव्वत नहीं मगर अल्लाह की तौफ़ीक़ से जो निहायत अज़मत वाला और बुज़ुर्ग है। हदीस (1): इमाम अजल अब्दुल्लाह बिन मुबारक और अबू बक्र बिन अबी शैबा [रिवायत करते हैं] अब्दुल्लाह बिन अम्र बिन आस (रज़ियल्लाहु अन्हुमा) से। नोट: सहाबी इब्ने सहाबी (रज़ियल्लाहु अन्हुमा) - 12 मिन्हु (म)

(۴۳) جو تلاوت قرآن میں مشغول مرے قرآن عظیم کا ہر وقت ان کی دلجوئی فرمانا، ہر صبح و شام ان کے اہل وعیال کی خبریں انھیں پہنچانا۔ (۴۴) دودھ پیتے شہزادے کا انتقال ہوا، جنت کی دائیاں مقرر ہونا، مدتِ رضاعت تمام فرمانا۔ (۴۵) نیکوں کا شوق قیامت میں جلدی کرنا۔ (۴۶) بدوں کا نام قیامت سے گھبرانا۔ (۴۷) مقتولانِ راہِ خدا کے دل میں دوبارہ قتل کی آرزو ہونا۔ (۴۸) مسلمانوں کا سبز یا سپید پرندوں کے روپ میں جہاں چاہنا اڑتے پھرنا۔ (۴۹) جنت کے پھل پانی کھانا پینا۔ (۵۰) سونے کی قندیلوں میں عرش کے نیچے بسیر الینا۔ اللھم ارزقنا۔ اور ان کے سوا بہت سے امور وارد ہوئے۔ جوان کے علم و ادراک و سمع و بصر وکلام سیر وغیرہ با صفات و احوالِ حیات پر برہانِ ساطع، بلکہ تمام آیات و احادیثِ عذابِ قبر و نعیم قبر اس مدعا پر حجت قاطع، جسے ان تمام باتوں پر اطلاع تفصیل منظور ہو تصانیف ائمہ دین خصوصاً کتاب مستطاب شرح الصدور بکشف حال الموتی والقبور تصنیف لطیف امام اجل خاتمۃ الحفاظ المحققین امام علامہ جلال الملۃ والدین سیوطی قدس سرہ المکین کی طرف رجوع کرے۔ مگر میں اس نوع میں صرف چند حدیثیں ذکر کروں گا جن میں ارواح کا بعد انتقال، اہل دنیا کو دیکھنا، ان سے باتیں کرنا، ان کی باتیں سننا اور اسی قسم کے امور متعلقہ بد نیامد کور ہیں، اور ان میں بھی وقائع جزئیہ نہ لکھوں گا کہ کوئی کہے واقعہ حال لا عموم لھا (ایک واقعہ ہے جو عام نہیں ہوتا۔ ت) اگر چہ دقیق النظر کو ان سے دلیل کی ترتیب اور اتمام تقریب دشوار نہ ہو۔ معہذا پھر ان میں وہ اکثر جن کا ایراد موجبِ اطالت، لہذا صرف انھیں بعض امورِ کلیہ کی روایت پر اقتصار چاہتا ہوں، جو ایک عام طور پر حالِ ارواح میں وارد ہوئے۔ میرے لیے ان احادیثِ نوع اول میں دو غرضیں ہیں: اولا جب بعدِ فراقِ بدن ان کا علم و ادراک و سمع و بصر ثابت ہوا تو یہ بعینہ مسئلہ مقصودہ کا ثبوت ہے کہ اسی وقت سے نام

میت ان پر صادق ہوتا ہے۔ قبر میں بند ہونے نہ ہونے کو اس میں دخل نہیں، تو عام منکرین پر حجت ہوں گے۔ ثانیاً جب ان سے ثابت ہوگا کہ روح بعد موت اپنے صفات و افعال پر باقی۔ اور ان آلاتِ جسمانیہ سے مستغنی، تو اس وقت خاص مولوی صاحب کے مقابل یوں گزارش ہو سکتی ہے کہ جس پر جناب مٹی وغیرہ کے حائل و حجاب دیکھ رہے ہیں وہ جسم خاکی ہے نہ کہ روح پاک، اور سمع و بصر و علم و خبر جس کے اوصاف ہیں وہ جان پاک ہے نہ کہ یہ تودہ خاک۔ حسبنا اللہ ونعم الوکیل ولا حول ولا قوۃ الا باللہ العلی العظیم۔ حدیث (۱): امام اجل عبد اللہ بن مبارک و ابو بکر بن ابی شیبہ عبد اللہ عنہ بن عمرو بن عاص رضی اللہ تعالیٰ عنہما عنہ : صحابی ابن صحابی رضی اللہ تعالیٰ عنہما ۱۲ منہ (م)

...is narrated as Mauqoof [attributed to a companion], and the great Imam Ahmad bin Hanbal in his Musnad, Tabarani in Mu'jam al-Kabeer, Hakim in the Sahih Mustadrak, and Abu Nu'aym in Hilya with a Sahih chain of narration from the enlightened master of the world, peace and blessings of Allah be upon him, as Marfu' [attributed to the Prophet]:

Arabic Text	Urdu Translation/Commentary
And the Mauqoof version is more extensive in wording and more complete in meaning. And you know that in this matter, the Mauqoof has the status of Marfu'. These are the words of Imam Ibn al-Mubarak, who said: "Indeed, this world is the paradise of the disbeliever and the prison of the believer. The likeness of a believer when his soul leaves is like that of a man who was in a prison and was taken out of it, and he began to move about the earth and wander freely in it."[1] And the wording of Abu Bakr is like this: "The world is a prison for the believer and a paradise for the disbeliever. When the believer dies, his path is cleared to roam wherever he wishes."[2]	(And the Mauqoof Hadith is more detailed in words and more complete in meaning. And it is known that in this chapter, Mauqoof also holds the command of Marfu'. And this narration is in the words of Imam Ibn Mubarak. T) Indeed, the world is the paradise of the disbeliever and the prison of the believer, and when the soul of a believer departs, its parable is like someone who was in a prison and has now been released from it so that he roams the earth and wanders around at ease. (And the words of Abu Bakr's narration are as follows. T) The world is a prison for the believer and paradise for the disbeliever. When a believer dies, his way is opened so that he can travel wherever he wants.

Hadith (2): Sayyidi Muhammad Ali Tirmidhi narrates from Anas bin Malik (may Allah be pleased with him) that the master of the world, peace and blessings of Allah be upon him, said:

Arabic Text	Urdu Translation/Commentary
I have not likened the exit of a believer from this world except to the exit of a child from its mother's womb, from that grief and darkness into the ease and breadth of the world.[3]	That is, the departure of a believer from the world *note* is like a child coming out of its mother's womb, from that place of suffocation and darkness into this vast space and world.

*Note: To support this, there are two more Hadiths, Mursal from Sulaym bin 'Amir and bin Dinar, recorded by Ibn Abi al-Dunya. (Ibn Abi al-Dunya has narrated both. T) (M)

---

[1] Kitab az-Zuhd by Ibn al-Mubarak, Hadith 59, Dar al-Kutub al-Ilmiyyah, Beirut, p. 211. [2] Al-Musannaf by Ibn Abi Shaybah, Hadith 16571, Idara al-Qur'an wal-'Ulum al-Islamiyyah, Karachi, 13/355. [3] Nawadir al-Usul, the thirty-third principle, regarding major sins, Dar Sadir, Beirut, p. 75.

...से मौक़ूफ़ है और इमाम अज्ल अहमद बिन हंबल ने अपनी मुसनद और तबरानी ने मुअजम अल-कबीर और हाकिम ने सहीह मुस्तदरक और अबू नुऐम ने हिल्या में सहीह सनद के साथ हुज़ूर पुरनूर सैयदे आलम सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम से मरफ़ूअन रिवायत किया:

अरबी पाठ	उर्दू अनुवाद/व्याख्या
और मौक़ूफ़ (हदीस) शब्दों में अधिक विस्तृत और अर्थ में अधिक पूर्ण है। और आप जानते हैं कि इस मामले में मौक़ूफ़ का दर्जा भी मरफ़ूअ के समान है। ये इमाम इब्न अल-मुबारक के शब्द हैं, उन्होंने कहा: 'निश्चित रूप से यह दुनिया काफ़िर के लिए स्वर्ग और मोमिन (आस्तिक) के लिए जेल है। मोमिन की मिसाल उसकी रूह निकलते समय वैसी ही है जैसे कोई व्यक्ति जेल में हो और उसे वहाँ से निकाल दिया जाए, फिर वह ज़मीन पर घूमने लगे और उसमें आज़ादी से सैर करे।'[1] और अबू बक्र के शब्द इस प्रकार हैं: 'दुनिया मोमिन की जेल और काफ़िर का स्वर्ग है। जब मोमिन मरता है, तो उसका रास्ता खोल दिया जाता है कि वह जहाँ चाहे सैर करे।'[2]	(और मौक़ूफ़ हदीस शब्दों में अधिक विस्तृत और अर्थ में अधिक पूर्ण है। और यह ज्ञात है कि इस अध्याय में मौक़ूफ़ भी मरफ़ूअ का हुक्म रखती है। और ये रिवायत इमाम इब्न मुबारक के शब्दों में है। त) बेशक दुनिया काफ़िर की जन्नत और मुसलमान का ज़िन्दान (जेल) है, और ईमान वाले की जब जान निकलती है तो उसकी मिसाल ऐसी है जैसे कोई कैदखाने में था अब उसे निकाल दिया गया कि ज़मीन में गश्त करता और बा-फ़राग़त (आराम से) चलता फिरता है। (और रिवायत अबू बक्र के शब्द ये हैं। त) दुनिया मुसलमान का कैदखाना और काफ़िर की बहिश्त (स्वर्ग) है। जब मुसलमान मरता है, तो उसका रास्ता खोल दिया जाता है कि जहाँ चाहे सैर करे।

हदीस (२): सैयदी मुहम्मद अली तिर्मिज़ी, अनस बिन मालिक रज़ियल्लाहु तआला अन्हु से रावी (रिवायत करने वाले), हुज़ूर सैयदे आलम सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम ने फ़रमाया:

अरबी पाठ	उर्दू अनुवाद/व्याख्या
मैंने दुनिया से मोमिन के निकलने की तुलना माँ के पेट से बच्चे के निकलने के अलावा किसी और चीज़ से नहीं की, उस दुख और अंधेरे से दुनिया की राहत और विशालता में।[3]	यानी दुनिया से मुसलमान का जाना नोट ऐसा है जैसे बच्चे का माँ के पेट से निकलना, उस दम घुटने और अंधेरी की जगह से इस फ़ज़ा-ए-वसीअ (विशाल वातावरण) और दुनिया में आना।

*नोट: इसी के समर्थक दो और हदीसें हैं, मुरसल सुलैयम बिन आमिर और बिन दीनार से, इसे इब्न अबी दुनिया ने संकलित किया है। (इब्न अबी दुनिया ने इन दोनों को रिवायत किया है। त) (म)

---

[1] किताबुज़ ज़ुहद इब्न मुबारक, हदीस ५९, दारुल कुतुबुल इल्मिया बेरुत, पेज २११। [2] अल-मुसन्नफ़ इब्न अबी शैबा, हदीस १६५७१, इदारातुल कुरआन वल उलूमुल इस्लामिया कराची १३/३५५। [3] नवादिरुल उसूल, ३३वाँ सिद्धांत, इस बारे में कि बड़े गुनाह, दार सादिर बेरुत पेज ७५।

पृष्ठ ७०८/९४८

سے موقوف اور امام اجل احمد بن حنبل اپنی مسند اور طبرانی معجم الکبیر اور حاکم صحیح مستدرک اور ابو نعیم حلیہ میں بسند صحیح حضور پرنور سید عالم صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم سے مرفوعا راوی:

عربی متن

والموقوف ابسط لفظاً واتم معنی و انت تعلم انه فی الباب کمثل المرفوع وھذا لفظ امام ابن المبارك قال ان الدنیا جنة الکافر وسجن المؤمن وانما مثل المؤمن حین تخرج نفسه کمثل رجل کان فی سجن فاخرج منه فجعل یتقلب فی الارض ویتفسح فیھا ۱؎ ولفظ ابی بکر ھکذا الدنیا سجن المومن وجنة الکافر فاذا مات المومن یخلی سر به یسرح حیث شاء ۲؎

اردو ترجمہ و تشریح

(اور حدیث موقوف لفظاً زیادہ مبسوط اور معناً زیادہ تام ہے۔ اور معلوم ہے کہ اس باب میں موقوف بھی مرفوع کا حکم رکھتی ہے۔ اور یہ روایت امام ابن مبارک کے الفاظ ہیں۔ ت) بیشک دنیا کافر کی جنت اور مسلمان کی زندان ہے، اور ایمان والے کی جب جان نکلتی ہے تو اس کی کہاوت ایسی ہے جیسے کوئی قید خانہ میں تھا اب اس سے نکال دیا گیا کہ زمین میں گشت کرتا اور بافراغت چلتا پھرتا ہے۔ (اور روایت ابو بکر کے الفاظ یہ ہیں۔ت) دنیا مسلمان کا قید خانہ اور کافر کی بہشت ہے۔ جب مسلمان مرتا ہے اس کی راہ کھول دی جاتی ہے کہ جہاں چاہے سیر کرے۔

حدیث (۲) : سیدی محمد علی ترمذی انس بن مالک رضی اللہ تعالیٰ عنہ سے راوی، حضور سید عالم صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم نے فرمایا :

عربی متن	اردو ترجمہ و تشریح
ما شبهت خروج المومن من الدنيا الامثل خروج الصبی من بطن امه من ذلك الغم والظلمة الی روح الدنيا ۳۔	یعنی دنیا سے مسلمان کا جانا عہ ایسا ہے جیسے بچے کا ماں کے پیٹ سے نکلنا اس دم گھٹنے اور اندھیری کی جگہ سے اس فضائے وسیع و دنیا میں آنا۔

عہ فائدہ: اسی کے موید دو ۲ حدیثیں اور ہیں مرسل سلیم بن عامر و بن دینار سے اخرجها ابن ابی الدنیا (ابن ابی الدنیا نے ان دونوں کو روایت کیا ہے۔ت) (م)

---

۱ کتاب الزہد لابن مبارک حدیث ۵۹ دار الکتب العلمیہ بیروت ص ۲۱۱ ۲ المصنف لابن ابی شیبہ حدیث ۱۶۵۷۱ ادارۃ القرآن والعلوم الاسلامیہ کراچی ۱۳/۳۵۵ ۳ نوادر الاصول الاصل الثالث والمنسون فی ان الکبائر لا تجامع دار صادر بیروت ص ۷۵

Fatawa Razawiyya - Volume 9

That is why scholars say that the relationship of this world to Barzakh (the intermediate realm) is the same as the relationship of the mother's womb to this world. Then, the relationship of Barzakh to the Hereafter is the same as that of this world to Barzakh. Now understand the difference in knowledge and perception between Barzakh and this world from this; the same ratio is needed as the knowledge of an embryo is to the knowledge of the people of this world. Truly, the soul is a bird and the body is a cage, and what is the knowledge of flight, of a bird's fluttering wings in a cage? Yes, when it comes out of the window, at that time its movements are worth seeing.

Hadith (3): Narrated from Abu Sa'id al-Khudri (may Allah be pleased with him) in Sahih Bukhari and Sahih Muslim, the Master of the World (peace and blessings of Allah be upon him) says:

[Table] Arabic: “Idha wudi'at al-janazatu wahtamalaha ar-rijalu 'ala a'naqihim, fa-in kanat salihatan qalat qadimuni, wa-in kanat ghayra salihatin qalat li-ahliha ya waylaha aina tadh-habuna biha yasma'u sautaha kullu shay'in illal-insana wa lau sami'al-insanu la-sa'iqa.” Urdu Translation: When the funeral is prepared and men carry it on their shoulders, if it (the deceased) was righteous, it says: 'Take me forward quickly.' And if it was not righteous, it says to its people: 'Woe to it! Where are you taking it?' Every thing hears its voice except humans, and if a human were to hear it, he would lose consciousness. (t)

I say: Although the creed of the Ahl al-Sunnah is that primary texts (Nusoos) are always to be interpreted literally unless there is a constraint. Therefore, we also interpret this speech of the funeral literally, but by the praise of Allah, Mustafa (peace and blessings of Allah be upon him) has clarified with these latter words that every thing hears its voice; now there is no room for interpretation or doubt, and praise be to Allah!

Hadith (4): Abu Dawud al-Tayalisi narrated from Hazrat Abu Huraira (may Allah be pleased with him) marfu'an (attributed to the Prophet): “Idha wudi'al-mayyitu 'ala saririhi...” - The rest of the Hadith is like the Hadith of Abu Sa'id (may Allah be pleased with him).

Hadith (5): Imam Ahmad, Ibn Abi al-Dunya, Tabarani, Marwazi, and Ibn Mandah narrated from Abu Sa'id al-Khudri (may Allah be pleased with him), the Master of the World (peace and blessings of Allah be upon him) said:

[Table] Arabic: “Innal-mayyita ya'rifu man yaghsiluhu wa yahmiluhu wa man yukaffinuhu wa man yudlihi fi hufratihi.” Urdu Translation: Indeed, the deceased recognizes the one who washes him, the one who carries him, the one who shrouds him, and the one who lowers him into his grave. (t)

1. Sahih al-Bukhari, Chapter: "The Saying of the Deceased while on the Bier", Qadimi Kutub Khana Karachi, 1/176.
2. Musnad Abi Dawud al-Tayalisi, Hadith 2336, Dar al-Fikr Beirut, p. 307.
3. Musnad Ahmad bin Hanbal narrated from Abu Sa'id al-Khudri, Dar al-Fikr Beirut, 3/3.

इसीलिए विद्वान कहते हैं कि दुनिया का बरज़ख (परलोक और इस लोक के बीच की अवस्था) से वही संबंध है जो माँ के गर्भ का दुनिया से है। फिर बरज़ख का आखिरत (परलोक) से वही संबंध है जो दुनिया का बरज़ख से है। अब इससे बरज़ख और दुनिया के ज्ञान और समझ के अंतर को समझ लीजिए; वही अनुपात होना चाहिए जो एक भ्रूण के ज्ञान का इस दुनिया के लोगों के ज्ञान से है। वास्तव में आत्मा एक पक्षी है और शरीर एक पिंजरा, और पिंजरे में बंद पक्षी के पंख फड़फड़ाने में उड़ने का क्या ज्ञान? हाँ, जब वह खिड़की से बाहर आता है, उस समय उसकी उड़ान देखने लायक होती है।

हदीस (3): सहीह बुखारी और सहीह मुस्लिम में अबू सईद खुदरी (रज़ियल्लाहु अन्हु) से वर्णित है कि सैय्यद-ए-आलम (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) फरमाते हैं:

[तालिका] अरबी: “इज़ा वुदिअल-जनाज़तु वह्तमलहर-रिजालु अला अनाक़िहिम, फ़-इन कानत सालिहतन क़ालत क़द्दिमूनी, व-इन कानत ग़ैरा सालिहतन क़ालत लि-अहलिहा या वयलहा ऐना तज़्हबूना बिहा यस्मउ सौतहा कुल्लु शयइन इल्लल-इंसाना व लौ समिअल-इंसानु ल-सइक़ा।” उर्दू अनुवाद: जब जनाज़ा रखा जाता है और लोग उसे अपने कंधों पर उठाते हैं, तो यदि वह (मृतक) नेक होता है, तो वह कहता है: 'मुझे आगे बढ़ाओ।' और यदि वह नेक नहीं होता, तो वह अपने लोगों से कहता है: 'हाय तबाही! तुम इसे कहाँ ले जा रहे हो?' हर चीज़ उसकी आवाज़ सुनती है सिवाय इंसान के और अगर इंसान इसे सुन ले तो वह बेहोश हो जाए। (त)

अक़ोल (मैं कहता हूँ): यद्यपि अहले सुन्नत का मत है कि ग्रंथों (नसूस) को हमेशा उनके शाब्दिक अर्थ में लिया जाएगा जब तक कि कोई रुकावट न हो। इसलिए हम जनाज़े के इस संवाद को भी वास्तविक संवाद मानते हैं, लेकिन अल्लाह की प्रशंसा से, मुस्तफा (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने इन बाद के शब्दों के साथ स्पष्ट कर दिया है कि हर चीज़ उसकी आवाज़ सुनती है; अब व्याख्या या संदेह की कोई गुंजाइश नहीं रही, और अल्लाह का शुक्र है!

हदीस (4): अबू दाऊद तयालिसी ने हज़रत अबू हुरैरा (रज़ियल्लाहु अन्हु) से मरफूअन (नबी से संबंधित) रिवायत की: “इज़ा वुदिअल-मय्यितु अला सरीरिही...” - बाकी हदीस अबू सईद (रज़ियल्लाहु अन्हु) की हदीस की तरह है।

हदीस (5): इमाम अहमद, इब्न अबी अल-दुनिया, तबरानी, मरवज़ी और इब्न मंदह ने अबू सईद खुदरी (रज़ियल्लाहु अन्हु) से रिवायत की है, सैय्यद-ए-आलम (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने फरमाया:

[तालिका] अरबी: “इन्नल-मय्यिता यआरिफु मन यग्सिलुहू व यह्मिलुहू व मन यु-कफ्फिनुहू व मन युदलीहि फी हुफ़्रतिही।” उर्दू अनुवाद: बेशक मृतक उसे पहचानता है जो उसे नहलाता है, जो उसे उठाता है, जो उसे कफ़न पहनाता है और जो उसे कब्र में उतारता है। (त)

1. सहीह अल-बुखारी, अध्याय: "जनाज़े पर रखे मृतक की बात", कदीमी कुतुब खाना कराची, 1/176।
2. मुसनद अबी दाऊद अल-तयालिसी, हदीस 2336, दार अल-फ़िक्र बेरूत, पृ. 307।
3. मुसनद अहमद बिन हनबल, अबू सईद खुदरी से वर्णित, दार अल-फ़िक्र बेरूत, 3/3।

اسی لئے علماء فرماتے ہیں دنیا کو برزخ سے وہی نسبت ہے جو رحمِ مادر کو دنیا سے۔ پھر برزخ کو آخرت سے وہی نسبت ہے جو دنیا کو برزخ سے۔ اب اس سے برزخ و دنیا کے علوم و ادراک میں فرق سمجھ لیجئے، وہی نسبت چاہئے جو علمِ جنین کو علمِ اہل دنیا سے، واقعی روح طائر ہے اور بدن قفس، اور علمِ پرواز، پنجرے میں پرند کی پر فشانی، کتنی؟ ہاں، جب کھڑکی سے باہر آیا اس وقت اس کی جولاناں قابلِ دید ہیں، حدیث (۳): صحیح بخاری و صحیح مسلم میں ابو سعید خدری رضی اللہ تعالٰی عنہ سے مروی، سید عالم صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم فرماتے ہیں:

اذا وضعت الجنازۃ واحتملھا الرجال علی اعناقھم، فان کانت صالحۃ قالت قدمونی وان کانت غیر صالحۃ قالت لاھلھا یا ویلھا این تذھبون بھا یسمع صوتھا کل شیئ الا الانسان ولو سمع الانسان لصعق[1] ۔ | جب جنازہ رکھا جاتا ہے اور مرد اسے اپنی گردنوں پر اٹھاتے ہیں، اگر نیک ہوتا ہے کہتا ہے مجھے آگے بڑھاؤ، اور اگر بد ہوتا ہے کہتا ہے ہائے خرابی اس کی کہاں لیے جاتے ہو، ہر شے اس کی آواز سنتی ہے مگر آدمی کہ وہ آدمی وہ سنے تو بیہوش ہوجائے۔ (ت)

اقول: اگر چہ اہلسنت کا مسلک ہے کہ نصوص ہمیشہ ظاہر پر محمول ہوں گے۔ جب تک کہ اس میں محذور نہ ہو۔ لہذا ہم اس کلامِ جنازہ کو یوں بھی کلامِ حقیقی پر محمول کرتے ہیں، مگر بحمد اللہ مصطفٰی صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم نے ان پچھلے لفظوں سے نص کر مفسر فرمادیا کہ ہر شے اس کی آواز سنتی ہے اب کسی طرح مجالِ تاویل و تشکیک باقی نہ رہی، واللہ الحمد ! حدیث (۴): ابوداؤد طیا لسی نے حضرت ابوہریرہ رضی اللہ تعالٰی عنہ سے مرفوعاً روایت کیا: اذا وضع المیت علی سریرہ[2] - الحدیث مانند حدیث ابو سعید رضی اللہ تعالٰی عنہ ۔ حدیث (۵): امام احمد وابن ابی

الدنیا و طبرانی و مروزی و ابن مندہ ابو سعید خدری رضی اللہ تعالیٰ عنہ سے راوی، سید عالم صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم نے فرمایا:

ان المیت یعرف من یغسلہ ویحملہ ومن یکفنہ ومن یدلیہ في حفرتہ[3] - | بیشک مُردہ پہچانتا ہے اسے جو غسل دے اور جو اٹھائے اور جو کفن پہنائے اور جو قبر میں اتارنے۔ (ت)

1 صحیح البخاری باب قول المیت وھو علی الجنازہ قدیمی کتب خانہ کراچی ۱/ ۱۷۶ 2 مسند ابی داؤد الطیالسی حدیث ۲۳۳۶ دارالفکر بیروت ص ۳۰۷ 3 مسند احمد بن حنبل مروی از ابو سعید خدری دارالفکر بیروت ۳/۳

Fatawa Razawiyyah Volume Nine

Hadith (6): Abu al-Hasan bin al-Bara' in the book 'Al-Rawdah' narrates with his own chain of transmission from Abdullah bin Abbas (may Allah be pleased with him) that the Master of the World (peace and blessings of Allah be upon him) said:

[Arabic Text]: There is no deceased person who dies except that he recognizes the person washing him and implores them. If he has been given the glad tidings of comfort, fragrance, and a garden of bliss, he pleads for them to hurry. If he is given the news of hospitality with scalding water and entry into hellfire, he pleads for them to hold him back. [Urdu Translation]: Every deceased person recognizes the one who washes him and gives oaths to the ones carrying him. If he is given the glad tidings of comfort, flowers, and the garden of Iram (Paradise), he gives an oath to take him quickly. And if he receives news of hospitality with hot water and entry into the blazing fire, he gives an oath to hold him back.

Hadith (7): Ibn Abi al-Dunya in 'Kitab al-Qubur' narrates from the Commander of the Faithful, Umar Farooq the Great (may Allah be pleased with him), that the Master of the World (peace and blessings of Allah be upon him) said:

[Arabic Text]: There is no deceased person who is placed on his bier and carried for three steps except that he speaks words that everyone Allah wills hears, except for the two heavy groups: Jinn and Mankind. He says: 'O my brothers! O carriers of my bier! Let not the world deceive you as it deceived me, and let not time play with you as it played with me. I have left what I left for my heirs, and the Reckoner on the Day of Resurrection will dispute with me and hold me accountable. You are following my funeral and will leave me alone.' [Urdu Translation]: When a dead person is placed on a bier and carried for three steps, he makes a speech that everyone hears, whomever God wills, except for jinn and humans. He says, 'O brothers! O carriers of my bier! Do not let the world deceive you as it deceived me, and let it not play with you as it played with me. I have left my inheritance for the heirs, and the Avenger (God) will dispute and hold me accountable on the Day of Resurrection. You are walking with me and will leave me alone.'

Hadith (8): Ibn Mandah narrates that Hibban bin Abi Jabalah said:

[Arabic Text]: It reached me that the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) said: 'Indeed, when a martyr is martyred, [there is] sent down...' [Urdu

Translation]: The hadith reached me that the Master of the World (peace and blessings of Allah be upon him) said: For a martyr, a body most beautiful...

Note: This narrator is a reliable Tabi'i, one of the men of Bukhari, mentioned in 'Kitab al-Adab al-Mufrad,' 12 Minhu (M).

1 Sharh al-Sudur, citing Kitab al-Rawdah, Chapter: Knowing the deceased by the one who washes him, Khilafat Academy Swat, p. 39. 2 Sharh al-Sudur and Kitab al-Qubur by Ibn Abi al-Dunya, Chapter: Knowing the deceased by the one who washes him, Khilafat Academy Swat, p. 40.

फ़तवा-ए-रज़विया खंड नौ

हदीस (6): अबुल हसन बिन अल-बरा किताब 'अल-रौज़ा' में अपनी सनद के साथ अब्दुल्ला बिन अब्बास (अल्लाह उनसे प्रसन्न हो) से रिवायत करते हैं कि सरवर-ए-आलम (अल्लाह की उन पर कृपा और शांति हो) ने फ़रमाया:

[अरबी पाठ]: कोई भी मृत व्यक्ति ऐसा नहीं मरता जो अपने नहलाने वाले को न पहचानता हो और उससे गुज़ारिश न करता हो। अगर उसे आराम, सुगंध और सुख के बाग की खुशखबरी मिली हो, तो वह विनती करता है कि उसे जल्दी ले जाया जाए। और अगर उसे खौलते पानी की मेहमाननवाज़ी और भड़कती आग में जाने की खबर मिलती है, तो वह विनती करता है कि उसे रोक लिया जाए। [उर्दू अनुवाद]: हर मुर्दा अपने नहलाने वाले को पहचानता है और उठाने वालों को कसमें देता है। अगर उसे आराम, फूलों और इरम के बाग (स्वर्ग) की खुशखबरी मिली, तो कसम देता है कि मुझे जल्दी ले चलो, और अगर गर्म पानी की मेहमाननवाज़ी और भड़कती आग में जाने की खबर मिलती है तो कसम देता है कि मुझे रोके रखो।

हदीस (7): इब्न अबी अल-दुनिया ने 'किताब अल-क़ुबूर' में हज़रत अमीरुल मोमिनीन उमर फ़ारूक़ ए आज़म (अल्लाह उनसे प्रसन्न हो) से रिवायत किया है कि सैयद-ए-आलम (अल्लाह की उन पर कृपा और शांति हो) ने फ़रमाया:

[अरबी पाठ]: जब भी किसी मृत को उसके जनाज़े पर रखा जाता है और उसे लेकर तीन कदम चला जाता है, तो वह ऐसी बातें कहता है जिसे अल्लाह जिसे चाहे सुनाता है, सिवाय जिन्न और इंसान के। वह कहता है: 'ऐ मेरे भाइयों! ऐ मेरे जनाज़े को उठाने वालों! दुनिया तुम्हें वैसे ही धोखा न दे जैसे उसने मुझे दिया, और समय तुम्हारे साथ वैसे ही न खेले जैसे वह मेरे साथ खेला। मैंने जो कुछ छोड़ा वह अपने वारिसों के लिए छोड़ दिया, और बदला देने वाला कयामत के दिन मुझसे झगड़ेगा और मेरा हिसाब लेगा। तुम मेरे साथ चल रहे हो और फिर मुझे अकेला छोड़ आओगे।' [उर्दू अनुवाद]: जब मुर्दे को जनाज़े पर रखकर तीन कदम ले चलते हैं, वह एक कलाम (बात) करता है जिसे सब सुनते हैं, जिन्हें खुदा चाहे सिवाय जिन्न और इंसान के। वह कहता है, 'ऐ भाइयों! ऐ लाश उठाने वालों! तुम्हें दुनिया फ़रेब न दे जैसा मुझे दिया और तुम से न खेले जैसा मुझसे खेली। अपना तरका (विरासत) तो मैं वारिसों के लिए छोड़ चला और बदला देने वाला कयामत में मुझसे झगड़ेगा और हिसाब लेगा। तुम मेरे साथ चल रहे हो और अकेला छोड़ आओगे।'

हदीस (8): इब्न मंदा रिवायत करते हैं, हब्बान बिन अबी जबला ने कहा:

[अरबी पाठ]: मुझे खबर मिली है कि अल्लाह के रसूल (अल्लाह की उन पर कृपा और शांति हो) ने फ़रमाया: 'निश्चय ही जब शहीद शहीद होता है, तो उतारा जाता है...' [उर्दू अनुवाद]: मुझे हदीस पहुँची कि सैयद-ए-आलम (अल्लाह की उन पर कृपा और शांति हो) ने फ़रमाया: शहीद के लिए जिस्म निहायत खूबसूरत...

नोट: यह ताबिई विश्वसनीय हैं, बुखारी के रावी हैं, किताब अल-अदब अल-मुफ़रद में उल्लेख है, 12 मिन्हु (म)।

1 शरह अल-सुदूर, किताब अल-रौज़ा के हवाले से, अध्याय: मुर्दे का अपने नहलाने वाले को पहचानना, खिलाफत अकादमी स्वात, पृष्ठ 39। 2 शरह अल-सुदूर और किताब अल-क़ुबूर इब्न अबी अल-दुनिया, अध्याय: मुर्दे का अपने नहलाने वाले को पहचानना, खिलाफत अकादमी स्वात, पृष्ठ 40।

पृष्ठ 948 का 710

فتاوٰی رضویہ جلد نہم

حدیث (٦): ابوالحسن بن البراء کتاب الروضہ میں بسند خود عبداللہ بن عباس رضی اللہ تعالٰی عنہ سے راوی، سرور عالم صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم نے فرمایا:

ما من میت یموت الا وھو یعرف غاسلہ ویناشدہ ان کان بُشر بروح وریحان وجنۃ نعیم ان یعجلہ وان کان بشر بنزل من حمیم وتصلیۃ جحیم ان یحبسہ۱۔ ہر مردہ اپنے نہلانے والے کو پہچانتا اور اٹھانے والے کو قسمیں دیتا ہے اگر اسے آسائش اور پھولوں اور ارم کے باغ کا مژدہ ملا، تو قسم دیتا ہے مجھے جلد لے چل، اور اگر آب گرم کی مہمانی اور بھڑکتی آگ میں جانے کی خبر ملتی ہے قسم دیتا ہے مجھے روک رکھ۔

حدیث (٧): ابن ابی الدنیا کتاب القبور میں حضرت امیر المؤمنین عمر فاروق اعظم رضی اللہ تعالٰی عنہ سے راوی، سید عالم صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم نے فرمایا:

ما من میت یوضع عیل سریرہ فیخطی بہ ثلج خطوات الاتکلم بکلام یسمع من شاء اللہ الا الثقلین الجن والانس یقول یا اخوتاہ ویا حملۃ نعشاہ لا تغر نکم الدنیا کما غرتنی ولا یلعبن بکم الزمان کما لعب بی خلفت ما ترکت لورثتی والدیان یوم القیمۃ یخاصمنی ویحاسبنی وانتم تشیعونی وتدعونی۲۔ جب مردے کو جنازہ پر رکھ کر تین قدم لے چلتے ہیں ایک کلام کرتا ہے جسے سب سنتے ہیں، جنہیں خدا چاہے سوا جن وانس کے، کہتا ہے اے بھائیو! اے نعش اٹھانے والو! تمہیں دنیا فریب نہ دے جیسا مجھے دیا اور تم سے نہ کھیلے جیسا مجھ سے کھیلی، اپنا ترکہ تو میں وارثوں کے لیے چھوڑ چلا اور بدلہ دینے والا قیامت میں مجھ سے جھگڑے گا اور حساب لے گا۔ تم میرے ساتھ چل رہے اور اکیلا چھوڑ آؤ گے۔

حدیث (۸): ابن منده راوی، حبان بن ابی جبلہ عہ نے فرمایا:

بلغنی ان رسول الله صلی الله تعالٰی علیہ وسلم قال ان الشهید اذا استشهد انزل مجھے حدیث پہنچی کہ سید عالم صلی الله تعالیٰ علیہ وسلم نے فرمایا: شہید کے لیے جسم نہایت خوبصورت

عہ: یہ تابعی ثقہ ہیں رجال بخاری سے، کتاب الادب المفرد میں ۱۲ منہ (م)

1 شرح الصدور بحوالہ کتاب الروضة باب معرفة المیت من یغسلہ خلافت اکیڈمی سوات ص ۳۹ 2 شرح الصدور و کتاب القبور لابن ابی الدنیا باب معرفة المیت من یغسلہ خلافت اکیڈمی سوات ص ۴۰

Fatawa Ridawiyya, Volume 9

[Allah the Almighty creates] a body like the most beautiful of bodies, then it is said to his soul: 'Enter into it.' So he looks at his first body [and sees] what is being done with it, and he speaks, thinking that they hear his words, and he looks at them, thinking that they see him, until his wives, meaning from the fair maidens of Paradise (Houris), come to him and take him away[1]. — Meaning, it descends from the archetypal bodies (ajsam-e-mithaliya) and it is said to its soul to enter into it. So he watches his [former] body to see what people are doing with it, and he speaks and thinks in his mind that people are listening to his words. And when he looks at them, he assumes that people are also looking at him, until his wives from among the Houris come and take him away. (T)

Hadith (9): Ibn Abi al-Dunya and Bayhaqi narrate from Sa'id ibn al-Musayyib: Salman al-Farsi and Abd Allah ibn Salam met, and one of them said to his companion: 'If you meet your Lord before me, then inform me of what you encountered.' He asked, 'Do the living and the dead meet?' He replied, 'Yes, as for the believers, their souls are in Paradise and they go wherever they wish[2].' — Salman al-Farsi and Abd Allah ibn Salam (may Allah be pleased with them both) met. One of them said to the other: "If you pass away before me, inform me of what happened there." The other asked, "Do the living and the dead meet each other?" He replied, "Yes, the souls of Muslims are in Paradise and they have the choice to go wherever they wish."

In the narration of Mughira ibn Abd al-Rahman, it is explicitly stated that the one who said this was Hazrat Salman al-Farsi (may Allah be pleased with him).

Sa'id ibn Mansur in his Sunan and Ibn Jarir al-Tabari in Kitab al-Adab narrate from them: He said: Salman al-Farsi met Abd Allah ibn Salam and said to him: 'If you die before me, then inform me of what you encounter, and if I die before you, I will inform you of the matter[3].' — Meaning Salman al-Farsi said to Abd Allah ibn Salam: "If you die before me, then inform me what happened there, and if I die before you, I will inform you."

Note: Sahabi (Companion), the grand and illustrious Companion, one of the four for whom Paradise yearns. 12 Aminah Salmah (M)

[1] Sharh al-Sudur, citing Ibn Mandah, Chapter: Abode of the Souls, Khilafat Academy Swat, p. 103. [2] Shu'ab al-Iman, Hadith 1355, Dar al-Kutub al-Ilmiyya Beirut, 2/121. [3] Sharh al-Sudur, citing Kitab al-Adab by Ibn Jarir, Khilafat Academy Swat, p. 98.

फ़तावा रज़विया, खंड 9

[अल्लाह सर्वशक्तिमान] सबसे सुंदर शरीरों जैसा एक शरीर [बनाता है], फिर उसकी आत्मा से कहा जाता है: 'इसमें प्रवेश करो।' तो वह अपने पहले शरीर को देखता है [और देखता है] कि उसके साथ क्या किया जा रहा है, और वह बोलता है, यह सोचते हुए कि वे उसकी बातें सुन रहे हैं, और वह उन्हें देखता है, यह सोचते हुए कि वे उसे देख रहे हैं, जब तक कि उसकी पत्नियाँ, यानी हूर-ए-ईन में से, उसके पास नहीं आ जातीं और उसे ले नहीं जातीं[1]। — यानी वह मिसाली जिस्मों (सूक्ष्म शरीरों) से उतरता है और उसकी रूह से कहा जाता है कि इसमें दाखिल हो, पस वह अपने बदन को देखता है कि लोग उसके साथ क्या कर रहे हैं और बात करता है और अपने ज़हन में समझता है कि लोग उसकी बातें सुन रहे हैं, और वह जो उन्हें देखता है तो यह गुमान करता है कि लोग भी उसे देख रहे हैं यहाँ तक कि हूर-ए-ईन में से उसकी बीवियां आकर उसे ले जाती हैं। (त)

हदीस (9): इब्न अबी अल-दुनिया और बैहक़ी सईद बिन मुसय्यब से रिवायत करते हैं: सलमान अल-फ़ारसी और अब्दुल्ला बिन सलाम मिले, और उनमें से एक ने अपने साथी से कहा: 'अगर तुम मुझसे पहले अपने रब से मिलो, तो मुझे बताओ कि तुम्हें क्या मिला।' उन्होंने पूछा, 'क्या जीवित और मृत मिलते हैं?' उन्होंने उत्तर दिया, 'हाँ, जहाँ तक मोमिनों की बात है, उनकी रूहें जन्नत में हैं और वे जहाँ चाहें जाती हैं[2]।' — सलमान फ़ारसी और अब्दुल्ला बिन सलाम रज़ियल्लाहु तआला अन्हुमा मिले, एक साहब ने दूसरे से फ़रमाया: अगर आप मुझसे पहले इंतक़ाल करें तो मुझे ख़बर दें कि वहाँ क्या पेश आया, दूसरे साहब ने पूछा कि क्या ज़िंदा और मुर्दे भी आपस में मिलते हैं? फ़रमाया: हाँ मुसलमानों की रूहें तो जन्नत में होती हैं और उन्हें इख़्तियार होता है जहाँ चाहें जाएँ।

मुग़ीरा बिन अब्दुर्रहमान की रिवायत में वज़ाहत आई है कि ये इरशाद फ़रमाने वाले हज़रत सलमान फ़ारसी थे रज़ियल्लाहु तआला अन्हु।

सईद बिन मंसूर अपने सुनन में और इब्न जरीर तबरी किताब अल-अदब में उनसे रिवायत करते हैं: उन्होंने कहा: सलमान फ़ारसी अब्दुल्ला बिन सलाम से मिले और उनसे कहा: 'अगर तुम मुझसे पहले मरो, तो मुझे बताओ कि तुम्हें क्या मिला, और अगर मैं तुमसे पहले मरूँ तो मैं तुम्हें उस वाकये की ख़बर दूँगा[3]।' — यानी सलमान फ़ारसी ने अब्दुल्ला बिन सलाम से फ़रमाया: अगर तुम मुझसे पहले मरो तो मुझे ख़बर देना कि वहाँ क्या पेश आया और अगर मैं तुमसे पहले मरूँगा तो मैं तुम्हें ख़बर दूँगा।

हाशिया: सहाबी, अज़ीम-उल-शान जलील-उल-क़द्र सहाबी, उन चारों में से जिनकी तरफ़ जन्नत मुश्ताक़ है। 12 आमना सलमा (म)

[1] शरह-उस-सुदूर, बहवाला इब्न मंदा, बाब: मुक़र्रुल अरवाह, ख़िलाफ़त अकादमी स्वात, पृ. 103। [2] शुअबुल ईमान, हदीस 1355, दारुल कुतुबुल इल्मिया बेरूत, 2/121। [3] शरह-उस-सुदूर, बहवाला किताबुल अदब इब्न जरीर, ख़िलाफ़त अकादमी स्वात, पृ. 98।

فتاوی رضویہ، جلد نہم

اللہ تعالیٰ جسد اکاحسن جسد ثم یقال لروحہ ادخلی فیہ فینظر الی جسدہ الا ول مایفعل بہ ویتکلم فیظن انھم یسمعون کلامہ وینظر الیھم فیظن انھم یرونہ حتی یأتیہ ازواجہ یعنی من الحور العین فیذھبن بہ[1] - یعنی اجسام مثالیہ سے اترتا ہے اور اس کی روح کو کہتے ہیں اس میں داخل ہو ، پس وہ اپنے بدن کو دیکھتا ہے کہ لوگ اس کے ساتھ کیا کرتے ہیں اور کلام کرتا ہے اور اپنے ذہن میں سمجھتا ہے کہ لوگ اس کی باتیں سن رہے ہیں، اور آپ جو انہیں دیکھتا ہے تو یہ گمان کرتا ہے کہ لوگ بھی اسے دیکھ رہے ہیں یہاں تک کہ حور عین میں سے اس کی بیبیاں آکر اسے لے جاتی ہیں (ت)

حدیث (9) : ابن ابی الدنیا و بیہقی سعید بن مسیب سے راوی: ان سلمان الفارسی وعبداللہ بن سلام التقیا فقال احدھما لصاحبہ ان لقیت ربك قبلي فاخبرنی بما لقیت، فقال اوتلقی الاحیاء الاموات، قال نعم اماالمؤمنون فان ارواحھم في الجنۃ وھی تذھب حیث شاءت[2] - سلمان فارسی و عبداللہ بن سلام رضی اللہ تعالیٰ عنہما ملے، ایک صاحب نے دوسرے سے فرمایا: اگر آپ مجھ سے پہلے انتقال کریں تو مجھے خبر دیں کہ وہاں کیا پیش آیا، دوسرے صاحب نے پوچھا کہ کیا زندہ اور مردے بھی آپس میں ملتے ہیں؟ فرمایا: ہاں مسلمانوں کی روحیں تو جنت میں ہوتی ہیں اور انھیں اختیار ہوتا ہے جہاں چاہیں جائیں۔

مغیرہ بن عبدالرحمن کی روایت میں تصریح آئی کہ یہ ارشاد فرمانے والے حضرت سلمان فارسی تھے رضی اللہ تعالیٰ عنہ۔

سعید بن منصور اپنے سُنن اور ابن جریر طبری کتاب الادب میں ان سے راوی: قال لقی سلمان الفارسی عبداللہ بن سلام فقال لہ ان مت قبلی فأخبرنی بما تلقی، وان مت قبلك اخبرتك الحدیث[3] - یعنی

سلمان فارسی نے عبداللہ بن سلام سے فرمایا: اگر تم مجھ سے پہلے مرو تو مجھے خبر دینا کہ وہاں کیا پیش آیا اور اگر میں تم سے پہلے مروں گا تو میں تمھیں خبر دونگا۔

عہ: صحابی، عظیم الشان الجلیل القدر صحابی ان چاروں میں سے جن کی طرف جنت مشتاق ہے ۱۲ آمنہ سلمہ (م)

[1] شرح الصدور بحوالہ ابن مندہ باب مقر الارواح خلافت اکیڈمی سوات ص ۱۰۳ [2] شعب الایمان حدیث ۱۳۵۵ دار الکتب العلمیہ بیروت ۱۲۱/۲ [3] شرح الصدور بحوالہ کتاب الادب لابن جریر خلافت اکیڈمی سوات ص ۹۸

Fatawa Razawiyya, Volume 9

Hadith (10): Ibn Abi Shaybah, the teacher of Bukhari and Muslim, narrates in his 'Musannaf' from Sayyiduna Abu Hurairah (may Allah be pleased with him) that he said: [Arabic]: The soul of a believer is not taken until they see glad tidings. When it departs, it cries out in a voice heard by every small and large animal in the house, except for humans and jinns. It calls out: 'Hurry me towards the Most Merciful of those who show mercy.' Then, when placed on the bier, it says: 'Why are you taking so long to move?' - Al-Hadith. [Urdu translation from page]: The soul of a believer does not depart until it sees the glad tidings. Then when it leaves, it speaks in such a voice that every small and large animal in the house hears it, except for humans and jinns. It calls out: 'Take me quickly to the Most Merciful of those who show mercy.' Then, when placed on the funeral bier, it says: 'How long are you taking to walk?' - Al-Hadith.

Hadith (11): Imam Ahmad in 'Kitab al-Zuhd' narrates from Umm al-Darda (may Allah be pleased with her) that she said: [Arabic]: Indeed, when the deceased is placed on the bier, they call out: 'O my family, O my neighbors, O bearers of my bier! Do not let the world deceive you as it deceived me.' - Al-Hadith. [Urdu translation from page]: Indeed, when the deceased is placed on the charpoy, they call out: 'O family members, O neighbors, O funeral bearers! Look, do not let the world deceive you as it deceived me.' - Al-Hadith.

Hadith (12): Ibn Abi al-Dunya narrates from Imam Mujahid (may Allah have mercy on him): [Arabic]: When a person dies, an angel takes hold of their soul. There is nothing that happens during their washing and carrying that they do not see, until the angel delivers them to the grave. [Urdu translation from page]: When a person dies, an angel holds their soul in its hand. Whatever happens during washing and carrying, they keep seeing it all, until the angel delivers them to the grave.

A1: A companion of great stature and fame whose renown makes further praise unnecessary. (M) A2: This is the kunya of two women, both wives of Sayyiduna Abu al-Darda (may Allah be pleased with him). The first is [Umm al-Darda] al-Kubra, who was a Sahabiyya named Khayrah. The second is [Umm al-Darda] al-Sughra, a trustworthy Tabi'iyya, jurist, and mujtahidah narrated from in the 'Sihah Sittah', named Hujaymah (may Allah be pleased with them). (M) A3: A magnificent Tabi'i, Imam, Mujtahid, Mufassir, and one of the trustworthy scholars of Makkah, and a prominent student of

Abdullah bin Abbas (may Allah be pleased with both). Narrations from him are present in all the Sahah books. (M)

1. Musannaf Ibn Abi Shaybah, Kitab al-Zuhd, Statement of Abu Hurairah (may Allah be pleased with him), Idarat al-Qur'an wal-Ulum al-Islamiyya, Karachi, 12/328.
2. Sharh al-Sudur, with reference to Kitab al-Zuhd of Imam Ahmad, Chapter: Recognition of the Deceased, Khilafat Academy, Swat, p. 40.
3. Sharh al-Sudur, with reference to Ibn Abi al-Dunya, Chapter: Recognition of the Deceased, Khilafat Academy, Swat, p. 39.

फतावा रज़विया, जिल्द 9

हदीस (10): बुखारी और मुस्लिम के उस्ताद इब्न अबी शैबा अपनी 'मुसन्निफ़' में सैय्यदना अबू हुरैरा (रज़ियल्लाहु अन्हु) से रिवायत करते हैं कि उन्होंने फरमाया: [अरबी]: मोमिन की रूह तब तक नहीं निकाली जाती जब तक वह शुभ समाचार न देख ले। फिर जब वह निकल जाती है, तो ऐसी आवाज़ में पुकारती है जिसे इंसान और जिन्न के सिवा घर का हर छोटा-बड़ा जानवर सुनता है। वह पुकारती है: 'मुझे रहम करने वालों में सबसे बड़े रहम दिल (अल्लाह) की तरफ जल्दी ले चलो।' फिर जब उसे जनाज़े पर रखा जाता है, तो वह कहती है: 'तुम चलने में कितनी देर लगा रहे हो।' - अल-हदीस। [पृष्ठ से उर्दू अनुवाद]: मुसलमानों की रूह नहीं निकलती जब तक बशारत न देख ले। फिर जब निकल चलती है तो ऐसी आवाज़ में जिसे इंस व जिन्न के सिवा घर का हर छोटा बड़ा जानवर सुनता है। निदा करती है मुझे ले चलो अरहमर्राहिमीन की तरफ, फिर जब जनाज़े पर रखते हैं कहती है कितनी देर लगा रहे हो चलने में। अल-हदीस।

हदीस (11): इमाम अहमद 'किताब अल-ज़ुहद' में उम्मुल दरदा (रज़ियल्लाहु अन्हा) से रिवायत करते हैं कि उन्होंने फरमाया: [अरबी]: बेशक जब मुर्दे को जनाज़े पर रखा जाता है, तो वह पुकारता है: 'ऐ मेरे घर वालो, ऐ मेरे पड़ोसियो, ऐ मेरे जनाज़े को उठाने वालो! दुनिया तुम्हें वैसा धोखा न दे जैसा मुझे दिया।' - अल-हदीस। [पृष्ठ से उर्दू अनुवाद]: बेशक मुर्दा जब चारपाई पर रखा जाता है पुकारता है ऐ घर वालो, ऐ हमसायो, ऐ जनाज़ा उठाने वालो! देखो दुनिया तुम्हें धोखा न दे जैसा मुझे दिया।

हदीस (12): इब्न अबी अल-दुनिया इमाम मुजाहिद (रहमतुल्लाहि अलैहि) से रिवायत करते हैं: [अरबी]: जब मुर्दा मरता है, तो एक फरिश्ता उसकी रूह को थामे रहता है। नहलाते और ले जाते समय जो कुछ भी होता है, वह सब उसे देख रहा होता है, यहाँ तक कि फरिश्ता उसे कब्र तक पहुँचा देता है। [पृष्ठ से उर्दू अनुवाद]: जब मुर्दा मरता है एक फरिश्ता उसकी रूह हाथ में लिये रहता है, नहलाते उठाते वक्त जो कुछ होता है वह सब देखता जाता है यहाँ तक कि फरिश्ता उसे कब्र तक पहुँचा देता है।

अ 1: सहाबी, बहुत ही प्रतिष्ठित और प्रसिद्ध हैं जिनकी शोहरत ही उनकी प्रशंसा के लिए काफी है। (म) अ 2: यह दो महिलाओं की कुनियत है, दोनों हज़रत अबू दरदा (रज़ियल्लाहु अन्हु) की पत्नियाँ हैं। पहली 'कुबरा' जो सहाबिया हैं, नाम खैरा है। दूसरी 'सुगरा' जो ताबेइया, विश्वसनीय फकीहा और मुजतहिदा हैं और 'सिहाह सित्तह' के रावी हैं, उनका नाम हुजैमा (रज़ियल्लाहु अन्हा) था। (म) अ 3:

महान ताबेई, इमाम, मुजतहिद और मुफस्सिर, जो मक्का के विश्वसनीय उलेमा और अब्दुल्ला बिन अब्बास (रज़ियल्लाहु अन्हुमा) के प्रमुख शिष्यों में से थे। सभी 'सिहाह' किताबों में उनसे रिवायतें मौजूद हैं। (म)

1. मुसन्निफ़ इब्न अबी शैबा, किताब अल-ज़ुहद, कलाम अबू हुरैरा (रज़ियल्लाहु अन्हु), इदारात अल-कुरान वल-उलूम अल-इस्लामिया, कराची, 12/328.
2. शरह अल-सुदूर, इमाम अहमद की किताब अल-ज़ुहद के हवाले से, अध्याय: मुर्दे की पहचान, खिलाफत एकेडमी, स्वात, पृष्ठ 40.
3. शरह अल-सुदूर, इब्न अबी अल-दुनिया के हवाले से, अध्याय: मुर्दे की पहचान, खिलाफत एकेडमी, स्वात, पृष्ठ 39.

حدیث (۱۰): ابن ابی شیبہ استاد بخاری و مسلم اپنے مصنف میں سیدنا ابوہریرہ رضی اللہ تعالٰی عنہ سے راوی کہ انہوں نے فرمایا: لا یقبض المومن حتی یری البشری فاذا قبض نادی فلیس فی الدار دابۃ صغیرۃ ولاکبیرۃ الا وھی تسمع صوتہ الا الثقلین الجن والانس، تعجلوا بی الی ارحم الراحمین فاذا وضع علی سریرہ قال ما ابطأ ما تمشون - الحدیث مسلمانوں کی روح نہیں نکلتی جب تک بشارت نہ دیکھ لے۔ پھر جب نکل چلتی ہے تو ایسی آواز میں جسے انس و جن کے سوا گھر کا ہر چھوٹا بڑا جانور سنتا ہے۔ ندا کرتی ہے مجھے لے چلو ارحم الراحمین کی طرف، پھر جب جنازے پر رکھتے ہیں کہتی ہے کتنی دیر لگارہے ہو چلنے میں۔ الحدیث۔

حدیث (۱۱): امام احمد کتاب الزہد میں ام الدرداء رضی اللہ تعالٰی عنہ سے راوی کہ فرماتیں: ان المیت اذا وضع علی سریرہ فانہ ینادی یا اھلاہ ویا جیراناہ ویا حملۃ سریراہ لا تغرنکم الدنیا کما غرتنی - الحدیث۔ بیشک مردہ جب چار پائی پر رکھا جاتا ہے پکارتا ہے اے گھر والو، اے ہمسایوں، اے جنازہ اٹھانے والو! دیکھو دنیا تمہیں دھوکا نہ دے جیسا مجھے دیا۔ الحدیث۔

حدیث (۱۲): ابن ابی الدنیا امام مجاہد رحمۃ اللہ تعالٰی علیہ سے راوی: اذامات المیت فملك قابض نفسہ فما من شیئ الا وھو یراہ عند غسلہ وعند حملہ حتی یوصلہ الی قبرہ - جب مردہ مرتا ہے ایک فرشتہ اس کی روح ہاتھ میں لیے رہتا ہے، نہلاتے اٹھاتے وقت جو کچھ ہوتا ہے وہ سب دیکھتا جاتا ہے یہاں تک کہ فرشتہ اسے قبر تک پہنچا دیتا ہے۔

ع ۱: صحابی، جلیل القدر رفیع الذکر ہیں جن کی عام شہرت ان کی تعریف سے مغنی ۱۲منہ (م) ع ۲: یہ دو خاتونوں کی کنیت ہے دونوں حضرت ابودرداء صحابی رضی اللہ تعالٰی عنہ کی بیبیاں ہیں،

پہلی کبریٰ کہ صحابیہ ہیں خیرہ نام، دوسری صغریٰ تابعیہ ثقہ فقیہہ مجتہدہ رواۃ صحاح ستہ سے ہجیمہ نام رضی اللہ تعالیٰ عنہا ۱۲منہ (م) ع ۳: تابعی جلیل الشان امام مجتہد مفسر ثقہ علماء مکہ معظمہ واجلہ تلامذہ عبداللہ بن عباس رضی اللہ تعالیٰ عنہما سے سب صحاح میں ان سے روایت ہے ۱۲منہ (م)

1 مصنف ابن ابی شیبہ کتاب الذہد کلام ابی ہریرہ رضی اللہ عنہ ادارۃ القرآن والعلوم الاسلامیہ کراچی ۳۲۸/۱۲ 2 شرح الصدور بحوالہ کتاب الزہد لاحمد باب معرفۃ المیت خلافت اکیڈمی سوات ص ۴۰ 3 شرح الصدور بحوالہ ابن ابی الدنیا باب معرفۃ المیت خلافت اکیڈمی سوات ص ۳۹

Fatawa Razawiya Volume 9

Hadith (13): Narrated from the same Amr ibn Dinar (may Allah have mercy on him): "There is no deceased person who dies except that he knows what happens among his family members after him, and that they wash him and shroud him, and indeed he is looking at them." Every deceased person knows what is happening in his household after him; people wash him, shroud him, and he continues to watch them. (1)

Hadith (14): Abu Nuaym narrated from him: "There is no deceased person who dies except that his soul is in the hand of an angel looking at his body, how it is washed, how it is shrouded, and how it is carried, and it is said to him while he is on his bier: 'Listen to the people's praise of you.'" The soul of every deceased person is in the hands of an angel, watching its body: how they wash it, how they put on the shroud, how they carry it, and while on the bier, the angel says to it: "Hear what people are saying, good or bad, about you." (2)

Hadith (15): Imam Abu Bakr Abdullah bin Muhammad bin Ubaid Ibn Abi al-Dunya, who is the teacher of Imam Ibn Majah, author of Sunan, narrated from the great Imam Bakr bin Abdullah al-Muzani (may Allah have mercy on him) that he said: "It has reached me that no person dies except that their soul is in the hand of the Angel of Death, while they wash him and shroud him, and he sees what his family is doing, but he is unable to speak to forbid them from wailing and lamenting." A hadith reached me that whoever dies, his soul is in the hand of the Angel of Death; people give him a bath and shroud him, and he sees what his family members are doing, but he cannot speak to stop them from shouting and lamenting. (3)

I say: The investigation into this inability to speak will be mentioned under Hadith 35, God willing. Note 1: He is also a great, reliable, and firm Tabi'i, among the scholars of Makkah al-Mukarramah and the men of the Sahih Sittah. 12 (M) Note 2: A great, reliable, and firm Tabi'i, among the narrators of Sahih Sittah. 12 Minhu Salama Rabbuhu (M)

1. Sharh as-Sudur, on the authority of Amr bin Dinar, Chapter: Knowledge of the Deceased, Khilafat Academy Swat, p. 39.
2. Hilyat al-Awliya, Translation No. 246, Dar al-Kitab al-Arabi Beirut, 3/349.
3. Sharh as-Sudur, on the authority of Ibn Abi al-Dunya, Chapter: Knowledge of the Deceased, Khilafat Academy Swat, pp. 40-41.

फ़तावा रज़विया जिल्द 9

हदीस (13): वही अम्र बिन दीनार (रहमतुल्लाह अलैहि) से रिवायत है: "मा मनिल मय्यितु यमूतु इल्ला वहुवा यालमु मा यकूनु फ़ी अहलिही बादहू व अन्नहुम युग़स्सुलूनहू व युकफ़्फ़िनूनहू व अन्नहू लयन्ज़ुरु इलयहिम।" हर मुर्दा जानता है कि उसके बाद उसके घर वालों में क्या हो रहा है; लोग उसे नहलाते हैं, कफ़नाते हैं और वह उन्हें देखता रहता है। (1)

हदीस (14): अबू नुएम उनसे रिवायत करते हैं: "मा मिन मय्यितिन यमूतु इल्ला रूहुहू फ़ी यदि मलिकिन यन्ज़ुरु इला जसदिही कैफ़ा युग़स्सलु व कैफ़ा युकफ़्फ़नु व कैफ़ा यम्शी बिही व युक़ालु लहू वहुवा अला सरीरिही इस्मा सनाअन नासि अलैका।" हर मुर्दे की रूह एक फ़रिश्ते के हाथ में होती है जो अपने बदन को देखती रहती है कि कैसे ग़ुस्ल देते हैं, किस तरह कफ़न पहनाते हैं, कैसे लेकर चलते हैं और जब वह जनाज़े पर होता है तो फ़रिश्ता उससे कहता है: "सुन तेरे हक़ में भला या बुरा क्या कहते हैं।" (2)

हदीस (15): इमाम अबू बक्र अब्दुल्ला बिन मुहम्मद बिन उबैद इब्न अबी अल-दुनिया, जो सुनन के लेखक इमाम इब्न माजा के उस्ताद हैं, इमाम अजल बक्र बिन अब्दुल्ला मुज़नी (रहमतुल्लाह अलैहि) से रिवायत करते हैं कि उन्होंने फ़रमाया: "बलग़नी अन्नहू मा मिन मय्यितिन यमूतु इल्ला रूहुन फ़ी यदि मलिकिल मौति फ़हुम युग़स्सुलूनहू व युकफ़्फ़िनूनहू वहुवा यरा मा यस्नाउ अह्लुहू फ़लम यक़दिर अलल कलामि लियन्हहुम अनिर रन्नति वल अवील।" मुझे हदीस पहुँची कि जो शख़्स मरता है उसकी रूह मलकुल मौत के हाथ में होती है, लोग उसे ग़ुस्ल व कफ़न देते हैं और वह देखता है कि उसके घर वाले क्या करते हैं, वह उनसे बोल नहीं सकता कि उन्हें शोर व फ़रियाद से मना करे। (3)

अक़ौल: इस न बोलने की तहक़ीक़ ज़ेर-ए-हदीस 35 मज़कूर होगी, इंशा अल्लाह तआला। नोट 1: ये भी ताबई जलील, सिक़ह, सबत हैं, मक्का मुकर्रमा के उलेमा और सहाह सित्ता के रिज़ाल में से हैं। 12 मिन्हु (म) नोट 2: ताबई जलील, सिक़ह, सबत हैं, सहाह सित्ता के रावियों में से हैं। 12 मिन्हु सलमा रब्बुहु (म)

1. शरहुस सुदूर, बहवाला अम्र बिन दीनार, बाब: मारिफ़तुल मय्यत, ख़िलाफ़त एकेडमी स्वात, सफ़ा 39।
2. हिल्यातुल औलिया, मुतरजिम नंबर 246, दारुल किताब अल-अरबी बैरूत, 3/349।

3. शरहुस सुदूर, बहवाला इब्न अबी अल-दुनिया, बाब: मारिफ़तुल मय्यत, ख़िलाफ़त एकेडमी स्वात, सफ़ा 40-41।

فتاوی رضویہ جلد نہم

حدیث (۱۳) : وہی عمرو بن دینار رحمہ اللہ تعالی علیہ سے راوی : ما من المیت یموت الا وھو یعلم ما یکون في أھلہ بعدہ وأنھم یغسلونہ ویکفنونہ وانہ لینظر إلیھم ہر مردہ جانتا ہے کہ اس کے بعد اس کے گھر والوں میں کیا ہورہا ہے لوگ اسے نہلاتے ہیں کفناتے ہیں اور وہ انھیں دیکھتا جاتا ہے۔ (۱)

حدیث (۱۴) : ابو نعیم انہیں سے راوی : ما من میت یموت الا روحہ في ید ملك ینظر الی جسدہ کیف یغسل وکیف یکفن وکیف یمشي بہ ویقال لہ وھو علی سریرہ اسمع ثناء الناس علیك ہر مردے کی روح ایک فرشتے کے ہاتھ میں ہوتی ہے کہ اپنے بدن کو دیکھتی جاتی ہے کیونکر غسل دیتے ہیں، کس طرح کفن پہناتے ہیں، کیسے لے کر چلتے ہیں اور وہ جنازے پر ہوتا ہے کہ فرشتہ اس سے کہتا ہے سن تیرے حق میں بھلا یا برا کیا کہتے ہیں۔ (۲)

حدیث (۱۵) : امام ابو بکر عبد اللہ بن محمد بن عبید ابن ابی الدنیا کہ امام ابن ماجہ صاحب سنن کے استاد ہیں امام اجل بکر بن عبد اللہ مزنی رحمۃ اللہ تعالی علیہ سے راوی کہ انھوں نے فرمایا : بلغنی انہ ما من میت یموت الا روح في ید ملك الموت فھم یغسلونہ ویکفنونہ وھو یری ما یصنع اھلہ فلم یقدر علی الکلام لینھھم عن الرنۃ والعویل۔ مجھے حدیث پہنچی کہ جو شخص مرتا ہے اس کی روح ملک الموت کے ہاتھ میں ہوتی ہے، لوگ اسے غسل و کفن دیتے ہیں اور وہ دیکھتا ہے کہ اس کے گھر والے کیا کرتے ہیں ، وہ ان سے بول نہیں سکتا کہ انھیں شور و فریاد سے منع کرے۔ (۳)

اقول : اس نہ بولنے کی تحقیق زیر حدیث ۳۵ مذکور ہوگی ، ان شاء اللہ تعالی۔ عہ ۱: یہ بھی تابعی جلیل ثقہ ثبت ہیں علماء مکہ معظمہ ورجال صحاح ستہ سے ۱۲ منہ (م) عہ ۲ : تابعی جلیل ثقہ ثبت ہیں رواۃ صحاح ستہ سے ۱۲ منہ سلمہ ربہ (م)

1 شرح الصدور بحوالہ عمرو بن دینار باب معرفۃ المیت خلافت اکیڈمی سوات ص ۳۹ 2 حلیۃ الاولیاء مترجم نمبر ۲۴۶ دار الکتاب العربی بیروت ۳۴۹/۳ 3 شرح الصدور بحوالہ ابن ابی الدنیا باب معرفۃ المیت خلافت اکیڈمی سوات ص ۴۰ - ۴۱

Fatawa Rizwia Volume 9

Hadith (16): Narrated from Imam Sufyan (may the mercy of the Benefactor be upon him): Arabic: “Indeed, the deceased knows everything, to the extent that they adjure the washer by Allah to be gentle with them. And it is said while the deceased is on the bier: 'Hear what people are saying about you.'” Urdu Translation: Indeed, the deceased recognizes everything, even to the extent of swearing by God to their washer to wash them gently. And it is also stated that while on the funeral bier, it is said to them: 'Listen to what people are saying about you.'

Hadith (17): Narrated from Abdur Rahman bin Abi Layla (may the mercy of Allah, the Glorious and Most High, be upon him): Arabic: “The soul is in the hand of an angel who walks with the funeral procession, saying to it: 'Listen to what is being said about you.'” Urdu Translation: The soul is in the hands of an angel who walks with the funeral procession and says to it: 'Hear what is being said in your favor.'

Hadith (18): Narrated from Ibn Abi Najih: Arabic: “There is no deceased person who dies except that their soul is in the hand of an angel, looking at their body: how it is washed, how it is shrouded, and how it is carried to their grave.” Urdu Translation: Every deceased person who dies has their soul in the hands of an angel, watching their body—how it is washed, how it is shrouded, and how it is carried towards the grave.

Hadith (19): Narrated from Abu Abdullah Bakr al-Muzani (may Allah's mercy be upon him): Arabic: “I have been narrated that the deceased rejoices at their haste [to be buried]...” Urdu Translation: A Hadith has been narrated to me that being quick in the burial...

Note 1: He is from the Taba' al-Tabi'in and the Mujtahids of Kufa and from the 'Rijal al-Sittah'. He is a trustworthy Imam, an authority, a Muhaddith, a Mujtahid, and a Knower of Allah (Arif Billah). Note 2: He is a great and highly esteemed Tabi'i, among the narrators of the 'Sahah al-Sittah'. Note 3: From the Taba' al-Tabi'in, the scholars of Makkah, and the narrators of the 'Sahah al-Sittah'. Note 4: An illustrious Tabi'i, as mentioned before.

Footnotes: 1 Sharh as-Sudur from Sufyan, Chapter on Knowing the Deceased, Khilafat Academy Swat, p. 40. 2 Sharh as-Sudur with reference to Ibn Abi ad-Dunya, Chapter on Knowing the Deceased, Khilafat Academy Swat, p. 40. 3 Sharh as-Sudur from Ibn Najih, Chapter on Knowing the Deceased, Khilafat Academy Swat, p. 40.

फ़तावा रज़विया जिल्द 9

हदीस (16): यही इमाम सुफ़यान (रहमतुल्लाहि अलैहि) से रावी: अरबी: “बेशक मुर्दा हर चीज़ को पहचानता है यहाँ तक कि वह अपने नहलाने वाले को ख़ुदा की क़सम देता है कि मुझ पर नरमी करो। और जब वह अपने जनाज़े (तख़्त) पर होता है तो उससे कहा जाता है: सुन लोग तेरे बारे में क्या प्रशंसा कर रहे हैं।” उर्दू अनुवाद: बेशक मुर्दा हर चीज़ को पहचानता है यहाँ तक कि अपने नहलाने वाले को ख़ुदा की क़सम देता है कि आसानी से नहलाना, और यह भी फ़रमाया कि उससे जनाज़े पर कहा जाता है कि सुन लोग तेरे बारे में क्या कहते हैं।

हदीस (17): यही अब्दुर्रहमान बिन अबी लैला (रहमतुल्लाहि व सुब्हानहू व तआला अलैहि) से रावी: अरबी: “रूह एक फ़रिश्ते के हाथ में होती है जो जनाज़े के साथ चलता है और उससे कहता है: सुन जो तेरे लिए कहा जा रहा है।” उर्दू अनुवाद: रूह एक फ़रिश्ते के हाथ में होती है कि उसे जनाज़ा के साथ ले कर चलता और उससे कहता है सुन तेरे हक़ में क्या कहा जाता है।

हदीस (18): यही इब्न अबी नजीह से रावी: अरबी: “कोई भी मुर्दा ऐसा नहीं मरता जिसकी रूह फ़रिश्ते के हाथ में न हो, वह अपने शरीर को देखती है कि कैसे नहलाया जाता है, कैसे कफ़न पहनाया जाता है और कैसे उसे क़ब्र की ओर ले जाया जाता है।” उर्दू अनुवाद: जो मुर्दा मरता है उसकी रूह एक फ़रिश्ते के हाथ में होती है कि अपने बदन को देखती है कि कैसे नहलाया जाता है, कैसे कफ़न पहनाया जाता है, कैसे क़ब्र की तरफ ले कर चलते हैं।

हदीस (19): यही अबू अब्दुल्लाह बक्र मज़नी (रहमतुल्लाहि अलैहि) से रावी: अरबी: “मुझसे हदीस बयान की गई है कि बेशक मुर्दा अपने (दफ़नाने में) जल्दी किए जाने पर ख़ुश होता है...” उर्दू अनुवाद: मुझसे हदीस बयान की गई है कि दफ़न में जल्दी करने...

नोट 1: वह तबअ ताबेईन और कूफ़ा के मुज्तहिदीन और 'रिजाल-ए-सित्ता' में से हैं। वह एक विश्वसनीय इमाम, दलील, मुहद्दिस, मुज्तहिद और आरिफ़ बिल्लाह हैं। नोट 2: यह बहुत ही प्रतिष्ठित और महान ताबेई हैं, जो 'सिहाह सित्ता' के रिाल में से हैं। नोट 3: तबअ ताबेईन, मक्का के विद्वानों और 'सिहाह सित्ता' के रावियों में से हैं। नोट 4: महान ताबेई, जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है।

पाद-टिप्पणियाँ: 1 शर्ह अस-सुदूर, सुफ़यान से, बाब मारिफ़त अल-मय्यित, खिलाफ़त एकेडमी स्वात, पृष्ठ 40. 2 शर्ह अस-सुदूर, इब्न अबी अद्दुनिया के हवाले से, बाब मारिफ़त अल-मय्यित, खिलाफ़त

एकेडमी स्वात, पृष्ठ 40. 3 शर्ह अस-सुदूर, इब्न नजीह से, बाब मारिफ़त अल-मय्यित, खिलाफ़त एकेडमी स्वात, पृष्ठ 40.

पृष्ठ 714 का 948

فتاوی رضویه جلد نهم

حدیث (۱۶): یہی امام سفیان عہ ۱ علیہ رحمۃ المنان سے راوی: ان المیت لیعرف کل شی حتی انه لینا شد غاسله بالله الاخففت علی قال ویقال له وهو علی سریره اسمع ثناء الناس علیك ۱۔ بیشک مردہ ہر چیز کو پہچانتا ہے یہاں تک کہ اپنے نہلانے والے کو خدا کی قسم دیتا ہے کہ آسانی سے نہلانا، اور یہ بھی فرمایا کہ اس سے جنازے پر کہا جاتا ہے کہ سن لوگ تیرے بارے میں کیا کہتے ہیں۔

حدیث (۱۷): یہی عبدالرحمن بن ابی لیلیٰ عہ ۲ علیہ رحمۃ اللہ وسبحانہ و تعالیٰ سے راوی: الروح بید ملك یمشی به مع الجنازة یقول له اسمع ما یقال لك ۲ الحدیث۔ روح ایک فرشتے کے ہاتھ میں ہوتی ہے کہ اسے جنازہ کے ساتھ لے کر چلتا اور اس سے کہتا ہے سن تیرے حق میں کیا کہا جاتا ہے۔

حدیث (۱۸): یہی ابن ابی نجیح عہ ۲ سے راوی: ما من میت یموت الا روحه في ید ملك ینظر الی جسده کیف یغسل وکیف یکفن وکیف یمشی به الی قبره ۳ الحدیث۔ جو مردہ مرتا ہے اس کی روح ایک فرشتے کے ہاتھ میں ہوتی ہے کہ اپنے بدن کو دیکھتی ہے کیونکر نہلایا جاتا ہے، کیونکر کفن پہنایا جاتا ہے، کیونکر قبر کی طرف لے کر چلتے ہیں۔

حدیث (۱۹): یہی ابوعبداللہ بکر مزنی عہ ۴ رحمۃ اللہ علیہ سے راوی: حدثت ان المیت لیستبشر بتعجیله مجھ سے حدیث بیان کی گئی ہے کہ دفن میں جلدی کرنے...

عہ ۱: تبع تابعین و مجتہدان کوفہ ورجال ستہ سے ہیں، امام ثقہ حجت محدث مجتہد عارف باللہ ۱۲ منہ (م) عہ ۲: یہ تابعی اعظم القدر جلیل الشان میں رجال صحاح ستہ سے ۱۲ منہ (م) عہ ۳: تبع تابعین و علمائے مکہ و رواۃ صحاح ستہ سے ۱۲ منہ (م) عہ ۴: تابعی جلیل القدر کما مر ۱۲ منہ (م)

۱ شرح الصدور عن سفیان باب معرفۃ المیت خلافت اکیڈمی سوات ص ۴۰ ۲ شرح الصدور بحوالہ ابن ابی الدنیا باب معرفۃ المیت خلافت اکیڈمی سوات ص ۴۰ ۳ شرح الصدور عن ابن نجیح باب معرفۃ المیت خلافت اکیڈمی سوات ص ۴۰

Fatawa Razawiyya, Volume 9

| (Arabic) to the graves. May Allah, by His favor and grace, make us among those who are joyful and glad through the mercy of those who find ease in death by His generosity and abundant blessing. Amen, by the honor of the Noble Prophet, the Kind, the Merciful, and his family, companions, and the saints of his Ummah; best prayers and peace be upon them. | (Urdu) ...the deceased is happy. May Allah, by His grace and mercy, make us among those who are joyful and happy with His mercy, finding comfort in death due to His existence and perfect reward. O Allah! Accept for the sake of the status of the Kind and Merciful Noble Prophet; best prayers and peace be upon him, his family, his companions, and the saints of his Ummah. |

Second Category: Hadiths regarding the hearing and perception of the people of the graves, and it contains several chapters: First Chapter: Regarding feeling bashfulness (Haya) before the people of the graves:

Hadith (20): The statement of Umm al-Mu'minin Siddiqah bint al-Siddiq (may Allah be pleased with them), which is narrated in Mishkat Sharif on the authority of Imam Ahmad, and al-Hakim also narrated it in Sahih al-Mustadrak and declared it authentic according to the conditions of Bukhari and Muslim, that she says:

| (Arabic) I used to enter the house in which the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) was buried, and I would take off my outer garment, saying to myself: 'It is only my husband and my father.' But when Umar was buried with them, by Allah, I never entered it except that my clothes were wrapped tightly around me, out of bashfulness before Umar. | I used to enter this house, which is like a garden of paradise, where the holy shrine of the Master of the Universe (peace and blessings of Allah be upon him) is located, without any regard for covering or veil, and I would say in my heart, "Who is there? It is only my husband or my father (peace and blessings of Allah be upon him, and his family, and upon them)." Since Umar was buried, by Allah, I never entered without fully covering my body out of bashfulness before Umar (may Allah be pleased with them all). |

Please say, if the masters of the shrines see nothing, what was the meaning of this bashfulness? And before the burial of Faruq, what was the intent of the words that "there are none in the house besides my husband (peace and blessings of Allah be

upon him) and my father, who else is a stranger?" Note: Some Hadiths of this type were mentioned in the second category due to relevance. Allah knows best.

1. Sharh al-Sudur, on the authority of Bakr al-Muzani, Chapter: Knowledge of the Deceased, Khilafat Academy Swat, p. 40.
2. Mishkat al-Masabih, Visiting the Graves, third section, Mujtabai Press Delhi, p. 152; Mustadrak al-Hakim, Book of Knowing the Companions, Dar al-Fikr Beirut, 3/17.

फ़तावा रज़विया, खंड 9

| (अरबी) कब्रों की ओर। अल्लाह अपने फज़ल और करम से हमें उन लोगों में शामिल करे जो उसकी रहमत से प्रसन्न और हर्षित होते हैं, और उसकी उदारता और पूर्ण वरदान के कारण मृत्यु में राहत पाते हैं। आमीन, नबी करीम, रऊफ और रहीम की महानता के सदके में, और उनकी आल, असहाब और उनकी उम्मत के औलिया पर बेहतरीन दुरूद और सलाम हो। | (उर्दू) ...मुर्दा खुश होता है। अल्लाह अपने फज़ल और करम से हमें उन लोगों में से बनाए जो उसकी रहमत से शादां व फरहां होते, उसके वजूद व इनाम-ए-कामिल के सबब मौत से राहत पाते हैं, इलाही! कुबूल फरमा नबी करीम रऊफ व रहम की वजाहत के सदके इन पर इनकी आल व असहाब और इनकी मय्यत के औलिया पर बेहतरीन दरूद व सलाम हो। |

दूसरी श्रेणी: कब्र वालों के सुनने और समझने के बारे में हदीसें, और इसमें कई अध्याय हैं: पहला अध्याय: कब्र वालों से हया (शर्म) करने के बारे में:

हदीस (20): उम्मुल मोमिनीन सिद्दीका बिन्तुल सिद्दीक (अल्लाह उन दोनों से खुश हो) का कथन, जो मिश्कात शरीफ में इमाम अहमद के हवाले से वर्णित है, और इसे हाकिम ने भी सही मुस्तदरक में बयान किया है और बुखारी व मुस्लिम की शर्तों पर इसे सही कहा है कि वे फरमाती हैं:

| (अरबी) "मैं उस घर में दाखिल होती थी जिसमें अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) दफन थे, और मैं अपनी चादर उतार देती थी, यह कहते हुए कि 'यह तो केवल मेरे पति और मेरे पिता हैं।' लेकिन जब उमर को उनके साथ दफन किया गया, तो अल्लाह की कसम, मैं वहां कभी भी अपने कपड़ों को मजबूती से लपेटे बिना नहीं गई, उमर से हया (शर्म) के कारण।" | मैं उस मकान (जो जन्नत का आंगन है) में दाखिल होती जहाँ हुज़ूर सैयदे आलम (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) का मजार पाक है, और मैं बे-तकल्लुफ अपनी चादर उतार देती और दिल में कहती कि यहाँ कौन है, सिवाय मेरे शौहर और मेरे बाप के(सल्लल्लाहु अलैहि व आलिहि व सल्लम)। लेकिन जब से हज़रत उमर उनके साथ दफन हुए, खुदा की कसम! मैं कभी भी वहां अपना शरीर पूरी तरह ढके बिना नहीं गई, हज़रत उमर से हया (शर्म) के कारण (अल्लाह उन सब से खुश हो)। |

बताइये, अगर मज़ार वालों को कुछ दिखाई नहीं देता, तो इस शर्म के क्या मायने थे? और फारूक़ (रज़ि.) के दफन होने से पहले इस बात का क्या मतलब था कि मकान में मेरे शौहर (सल्लल्लाहु

अलैहि वसल्लम) के सिवा मेरे बाप ही तो हैं, गैर कौन है! नोट: इस किस्म की कुछ हदीसें मुनासबत की वजह से दूसरी किस्म में बयान की गई हैं। अल्लाह बेहतर जानता है।

1. शरह अल-सुदूर, बक्र अल-मुज़नी से रिवायत, अध्याय: मैय्यत की पहचान, खिलाफत एकेडमी स्वात, पृष्ठ 40।
2. मिश्कात अल-मसाबीह, ज़ियारतुल कुबूर, तीसरा खंड, मुजतबाई प्रेस दिल्ली, पृष्ठ 152; मुस्तदरक अल-हाकिम, किताब मारिफतुल सहाबा, दारुल फिक्र बेरुत, 3/17।

فتاوٰی رضویہ، جلد نہم

| الی المقابر ۱۔ جعلنا اللہ بمنہ وکرمہ من السرورین المستبشرین برحمۃ المسریحین بالموت بجودہ وسابغ نعمتہ آمین بجاہ النبی الکریم الرؤف الرحیم وآلہ وصحبہ واولیاء امتہ افضل الصلوۃ والتسلیم عہ۔ | سے مردہ خوش ہوتا ہے۔ اللہ اپنے فضل و کرم سے ہمیں ان لوگوں میں سے بنائے جو اس کی رحمت سے شاداں وفرحاں ہوتے، اس کے وجود و انعام کامل کے سبب موت سے راحت پاتے ہیں، الٰہی! قبول فرما نبی کریم رؤف و رحم کی وجاہت کے صدقے، ان پر ان کی آل واصحاب اور ان کی میت کے اولیاء پر بہترین درود و سلام ہو۔ |

نوع دوم: احادیث سمع و ادراک اہل قبور میں، اور اس میں چند فصلیں ہیں: فصل اول اصحاب قبور سے حیا کرنے میں:

حدیث (۲۰) : اُم المومنین صدیقہ بنت الصدیق رضی اللہ تعالٰی عنہما کا ارشاد جو مشکوۃ شریف میں بروایت امام احمد منقول اور اسے حاکم نے بھی صحیح مستدرک میں روایت کیا اور بشرط بخاری و مسلم صحیح کہا کہ فرماتیں:

| کنت ادخل بیت الذی فیہ رسول اللہ صلی اللہ تعالی علیہ وسلم وانی اضع ثوبی واقول انما ھو زوجی وابی فلما دفن عمر معھا فواللہ مادخلتہ الا وانا مشدودۃ علی ثیابی حیاء من عمر ۲۔ | میں اس مکان جنت آستان میں جہاں حضور سید عالم صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم کا مزار پاک ہے یونہی بے لحاظ ستر و حجاب چلی جاتی اور جی میں کہتی وہاں کون ہے۔ یہی میرے شوہر یا میرے باپ صلی اللہ تعالٰی علی زوجہا ثم ابیہا ثم علیہا وبارک وسلم۔ جب سے عمر دفن ہوئے خدا کی قسم میں بغیر سراپا بدن چھپائے نہ گئی عمر سے شرم کے باعث رضی اللہ تعالٰی عنہم اجمعین۔ |

فرمایئے اگر ارباب مزارات کو کچھ نظر نہیں آتا اس شرم کے کیا معنی تھے؟ اور دفن فاروق سے پہلے اس لفظ کا کیا منشاء تھا کہ مکان میں میرے شوہر صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کے سوا میرے باپ ہی تو ہیں غیر کون ہے! عہ: اس نوع کی بعض احادیث بوجہ مناسبت نوع دوم میں مذکور ہوئیں، واللہ تعالیٰ اعلم ۱۲ منہ (م)

۱ شرح الصدور عن بکر المزنی باب معرفۃ المیت خلافت اکیڈمی سوات ص ۲۴۰ مشکوۃ المصابیح زیارۃ القبور فصل ثالث مطبع مجتبائی دہلی ص ۱۵۲، مستدرک للحاکم کتاب معرفۃ الصحابہ دارالفکر بیروت ۳ / ۱۷

Fatawa Razawiyya - Volume 9

Hadith (21): Ibn Abi Shaybah and Hakim relate from the companion Hazrat 'Uqba bin 'Amir (may Allah be pleased with him):

Arabic	Urdu Meaning
I do not care whether I relieve myself in a graveyard or in a market while people are watching.[1]	That is, I consider it the same whether I sit to relieve myself in a graveyard or in the middle of a market where people can see.

In the third objective, it will be mentioned similarly from Salim bin 'Umair that he did not urinate in graveyards due to the shame felt by the deceased, even though there was a pressing need.

Section Two: On the consolation of the deceased's heart through the coming, sitting, and talking of the living. It is evident that if they did not see, hear, or understand, how could they be consoled by these things!

Hadith (22): It is in Shifa al-Siqam of Imam Subki and Arba'in Ta'iyyah, then in Sharh al-Sudur, narrated from the Master of the Universe (may peace and blessings of Allah be upon him):

Arabic	Urdu Meaning
The time when a dead person feels most comforted in his grave is when someone who loved him in the world visits him.[2]	The time of greatest comfort for a dead person in the grave is when a loved one comes to visit.

Hadith (23): Ibn Abi al-Dunya in Kitab al-Qubur and Imam Abdul Haq in Kitab al-Aqiba relate from the Mother of the Believers, Siddiqah (may Allah be pleased with her), that the Radiant Presence, the Master of the Worlds (may peace and blessings of Allah be upon him) said:

Arabic	Urdu Meaning
There is no man who visits the grave of his brother and sits by him except that the deceased finds comfort and responds to him until he stands up.[3]	Whoever goes to visit the grave of his Muslim brother and sits there, the heart of the deceased is comforted by him, and until he leaves, the deceased responds to him.

Hadith (24): It is in Sahih Muslim that 'Amr bin al-'As (may Allah be pleased with him) said to his son Abdullah (may Allah be pleased with him), who was also a companion, during his final moments:

Arabic

When you bury me, scatter the earth over me slowly. Then stay around my grave for as long as it takes to slaughter a camel and distribute its meat, so that I may find comfort in your presence and see what answer I give [to the angels].

Urdu Meaning

When you have buried me, put soil on me slowly and gently. Then stay around my grave for as long as it takes to slaughter a camel and distribute its meat.

1. Musannaf Ibn Abi Shaybah, Kitab al-Jana'iz, Idara-tul-Qur'an, Karachi, 3/339.
2. Sharh al-Sudur, ref. Arba'in Ta'iyyah, Chapter: Visiting Graves, Khilafat Academy Swat, p. 85.
3. Sharh al-Sudur, ref. Kitab al-Qubur Ibn Abi al-Dunya, Chapter: Visiting Graves, Khilafat Academy Swat, p. 84.

फ़तावा रज़विया - जिल्द 9

हदीस (21): इब्न अबी शैबा और हाकिम हज़रत उक़्बा बिन आमिर सहाबी (रज़ियल्लाहु तआला अन्हु) से रिवायत करते हैं:

अरबी	उर्दू अर्थ
मुझे इसकी कोई परवाह नहीं कि मैं कब्रस्तान में कज़ा-ए-हाजत (शौच) के लिए बैठूँ या बाज़ार के बीच में जहाँ लोग देख रहे हों।[1]	यानी मैं इसे एक जैसा समझता हूँ कि कब्रस्तान में कज़ा-ए-हाजत को बैठूँ या बीच बाज़ार में कि लोग देखते रहें।

तीसरे मक़सद में इसके मुनासिब सलीम बिन उमैर से ज़िक्र होगा कि मुर्दों की शर्म की वजह से मक़ाबिर (कब्रों) में पेशाब नहीं किया हालाँकि सख़्त ज़रूरत थी।

फ़स्ल दोम: ज़िंदों के आने, पास बैठने, बात करने से मुर्दों के जी बहलने के बारे में— ज़ाहिर है कि अगर वे देखते, सुनते, समझते नहीं तो इन उमूर से जी बहलना कैसा!

हदीस (22): इमाम सुबकी की 'शिफा-उस-सिक़ाम' और 'अरबईन ताइया' फिर 'शरह-उस-सुदूर' में है कि सैयदे आलम (सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम) से मरवी है:

अरबी	उर्दू अर्थ
कब्र में मुर्दे का सबसे ज़्यादा जी बहलने का वक़्त वह होता है जब दुनिया में उससे मोहब्बत करने वाला कोई शख़्स उसकी ज़ियारत को आता है।[2]	कब्र में मुर्दे का ज़्यादा जी बहलने का वक़्त वह होता है जब उसका कोई प्यारा ज़ियारत को आता है।

हदीस (23): इब्न अबी-उद-दुनिया 'किताब-उल-क़ुबूर' में और इमाम अब्दुल हक़ 'किताब-उल-आक़िबा' में उम्मुल मोमिनीन सिद्दीक़ा (रज़ियल्लाहु तआला अन्हा) से रावी हैं, हुज़ूर पुर नूर सैयदे आलम (सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम) ने फ़रमाया:

अरबी	उर्दू अर्थ
कोई आदमी ऐसा नहीं जो अपने भाई की कब्र की ज़ियारत को जाए और उसके पास बैठे मगर यह कि मुर्दा उससे मानूस होता है और उसको जवाब देता है यहाँ तक कि वह खड़ा हो जाए।[3]	जो शख़्स अपने मुसलमान भाई की ज़ियारत-ए-कब्र को जाता है और वहाँ बैठता है, मय्यत का दिल उससे बहलता है और जब तक वहाँ से उठे मुर्दा उसका जवाब देता है।

हदीस (24): 'सहीह मुस्लिम शरीफ़' में है कि अम्र बिन अल-आस (रज़ियल्लाहु तआला अन्हु) ने अपने साहबज़ादे अब्दुल्लाह (रज़ियल्लाहु तआला अन्हु) से, जो ख़ुद भी सहाबी हैं, नज़ा (अंतिम क्षणों) में फ़रमाया:

अरबी	उर्दू अर्थ
जब तुम मुझे दफ़न कर चुको तो मुझ पर धीरे-धीरे मिट्टी डालना। फिर मेरी कब्र के चारों ओर इतनी देर रुके रहना जितनी देर में एक ऊँट ज़िब्ह किया जाए और उसका गोश्त तक़सीम किया जाए, ताकि मैं तुमसे मानूस रहूँ और देखूँ कि मैं क्या जवाब देता हूँ।	जब मुझे दफ़न कर चुको मुझ पर थम-थम कर आहिस्ता-आहिस्ता मिट्टी डालना फिर मेरी कब्र के गिर्द इतनी देर ठहरे रहना कि एक ऊँट ज़िब्ह किया जाए और उसका गोश्त तक़सीम हो।

1. मुसन्निफ़ इब्न अबी शैबा, किताब-उल-जनाइज़, इदारा-तुल-क़ुरआन, कराची, 3/339।
2. शरह-उस-सुदूर, ब-हवाला अरबईन ताइया, बाब: ज़ियारत-उल-क़ुबूर, ख़िलाफ़त एकेडमी स्वात, पृ. 85।
3. शरह-उस-सुदूर, ब-हवाला किताब-उल-क़ुबूर इब्न अबी-उद-दुनिया, बाब: ज़ियारत-उल-क़ुबूर, ख़िलाफ़त एकेडमी स्वात, पृ. 84।

فتاوی رضویہ جلد نہم

حدیث (۲۱): ابن ابی شیبہ و حاکم حضرت عقبہ بن عامر صحابی رضی اللہ تعالیٰ عنہ سے راوی:

عربی	اردو ترجمہ
ما أبالي في القبور قضيت حاجتي أم في السوق والناس ينظرون[1]۔	یعنی میں ایک سا جانتا ہوں کہ قبرستان میں قضائے حاجت کو بیٹھوں یا بیچ بازار میں کہ لوگ دیکھتے جائیں۔

مقصد ثالث میں اس کے مناسب سلیم بن عمیر سے مذکور ہوگا کہ شرم اموات کے باعث مقابر میں پیشاب نہ کیا حالانکہ سخت حاجت تھی۔

فصل دوم: احیاء کے آنے، پاس بیٹھنے، بات کرنے سے مردون کے جی بہلنے میں___ ظاہر ہیں کہ اگر دیکھتے، سنتے، سمجھتے نہیں تو ان امور سے جی بہلنا کیسا!

حدیث (۲۲): شفاء السقام امام سبکی و اربعین طائیہ پھر شرح الصدور میں ہے سید عالم صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم سے مروی:

عربی	اردو ترجمہ
انس ما يكون الميت في قبره اذا زاره من كان يحبه في دار الدنيا[2]۔	قبر میں مردے کا زیادہ جی بہلنے کا وقت وہ ہوتا ہے جب اس کا کوئی پیارا زیارت کو آتا ہے۔

حدیث (۲۳): ابن ابی الدنیا کتاب القبور میں اور امام عبدالحق کتاب العاقبہ میں اُم المومنین صدیقہ رضی اللہ تعالیٰ عنہ سے راوی، حضور پُر نور سید عالم صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم نے فرمایا:

عربی	اردو ترجمہ
ما من رجل یزور قبر اخیه ویجلس عنده الا استأنس ورد علیه حتی یقوم[3]۔	جو شخص اپنے مسلمان بھائی کی زیارت قبر کو جاتا ہے اور وہاں بیٹھتا ہے میت کا دل اس سے بہلتا ہے اور جب تک وہاں سے اٹھے مردہ اس کا جواب دیتا ہے۔

حدیث (۲۴): صحیح مسلم شریف میں ہے عمرو بن العاص رضی اللہ تعالیٰ عنہ نے اپنے صاحبزادے عبداللہ رضی اللہ تعالیٰ عنہ سے کہ وہ بھی صحابی ہیں نزع میں فرمایا:

عربی	اردو ترجمہ
اذا دفنتموني فشنوا علی التراب شناء ثم اقیموا حول قبری قدر ما تنحر جزور ویقسم لحمها حتی استأنس بکم وانظر ماذا اراجع	جب مجھے دفن کر چکو مجھ پر تھم تھم کر آہستہ آہستہ مٹی ڈالنا پھر میری قبر کے گردا تنی دیر ٹھہرے رہنا کہ ایک اونٹ ذبح کیا جائے اور اس کا گوشت تقسیم ہو

1 مصنف ابن ابی شیبہ کتاب الجنائز ادارۃ القرآن کراچی ۳۳۹/۳ 2 شرح الصدور بحوالہ اربعین طائیہ باب زیارۃ القبور خلافت اکیڈمی سوات ص ۸۵ 3 شرح الصدور بحوالہ کتاب القبور ابن ابی الدنیا باب زیارۃ القبور خلافت اکیڈمی سوات ص ۸۴

Volume 9 - Fatawa Razawiya

[Boxed text]: ...to the messengers of my Lord [1] - until I gain intimacy from you and know what answer to give to the messengers of my Lord.

Chapter Three: Regarding the deceased suffering due to the excessive behavior of the living—it is evident that if they are not aware of the actions and states of the living, then suffering is purely meaningless.

Hadith (25): Imam Ahmad, with a good (hasan) chain of narration, narrates from Umarah ibn Hazm (may Allah be pleased with him) that the Master of the Universe (may Allah's peace and blessings be upon him) saw me leaning against a grave and said: "La tu'dhi sahiba hadhal-qabr," meaning, do not cause pain to the dweller of this grave. Or he said: "La tu'dhih" [2] — do not cause him suffering. Or: "O dweller above the grave, come down from the grave, do not cause pain to the dweller of the grave and let not pain reach you." [3] (O person on the grave! Get off the grave; neither should you cause pain to the dweller of the grave, nor should it reach you.)

Third Objective: The commentary on this Hadith will be quoted from the eminent Imam Hakim Tirmidhi.

Related Narration: Ibn Abi al-Dunya narrates from Abu Qilaba al-Basri (RA) *: I was traveling from Syria to Basra. At night, I went into a trench, performed ablution, offered two units of prayer, and then slept with my head on a grave. When I woke up, I saw the dweller of the grave complaining to me and saying: "Laqad adhaytani mundhul-laylah" (You have troubled me since last night). O person, you gave me pain all night long.

Second Narration: Imam Bayhaqi in 'Dala'il al-Nubuwwah' and Ibn Abi al-Dunya narrate from Hazrat Abu Uthman ** Nahdi, and he from Ibn Mina (Tabi'i): I went to a graveyard, offered two units of prayer, and lay down. By God, I was wide awake when I heard someone saying from inside the grave: "Qum fa-qad adhaytani" (Arise, for you have troubled me). Then he said, "You perform deeds and we do not."

- (1): Tabi'i, trustworthy, virtuous, among the men of the Sahih Sittah, died in 112 AH. (M) ** (2): Among the prominent senior Tabi'in, he lived during the era of the Prophethood, trustworthy, firm, a dignitary among the men of the Sahih Sittah, died in 112 AH. (M)

[1] Sahih Muslim, Chapter: Islam destroys what preceded it, etc., Qadimi Kutub Khana, Karachi, 1/76 [2] Mishkat al-Masabih with reference to Ahmad, Book of Funerals, Chapter: Burial of the Deceased, Mujtabai Press, Delhi, p. 149 [3] Majma' al-Zawa'id with reference to Al-Tabarani al-Kabir, Chapter: Building over graves, etc., Dar al-Kitab, Beirut, 3/61

जिल्द नहम - फतावा रज़विया

[बॉक्स में]: ...मेरे रब के रसूलों तक [1] - यहाँ तक कि मैं तुमसे उन्स (अपनापन) हासिल करूँ और जान लूँ कि अपने रब के रसूल को क्या जवाब देता हूँ।

फस्ल सोम: अफ़आल-ए-अहिया (जीवितों) की बे-एतेदाली से अमवात (मृतकों) के ईज़ा पाने में— ज़ाहिर है कि अगर उन्हें अहिया के अफ़आल और अहवाल पर इत्तला नहीं, तो ईज़ा पाना महज़ बे-मानी है।

हदीस (25): इमाम अहमद हसीन सनद के साथ उमारा बिन हज़्म (रज़ियल्लाहु अन्हु) से रावी हैं, सैय्यद-ए-आलम (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने मुझे एक क़ब्र से तकिया लगाए देखा, फ़रमाया: "ला तुअज़ी साहिबा हाज़ल क़ब्र" यानी इस क़ब्र वाले को ईज़ा न दे। या फ़रमाया: "ला तुअज़ीह" [2] उसे तकलीफ़ न पहुँचा। या: "ऐ क़ब्र के ऊपर रहने वाले, क़ब्र से नीचे उतर आ, न तू क़ब्र वाले को ईज़ा दे और न तुझे ईज़ा पहुँचे।" [3] (ऐ क़ब्र वाले! क़ब्र से उतर आ, न तो तू साहिब-ए-क़ब्र को ईज़ा दे, न तुझे ईज़ा हो।)

मक़सद सोम: इस हदीस की शरह इमाम-ए-अजल हकीम तिर्मिज़ी से मनक़ूल होगी।

रिवायत मुनासिबा: इब्न अबी अद्दुनिया अबू क़िलाबा बसरी (रह.) * से रावी हैं: मैं मुल्क-ए-शाम से बसरा जा रहा था, रात को ख़न्दक़ में उतरा, वज़ू किया, दो रकअत नमाज़ पढ़ी, फिर एक क़ब्र पर सर रख कर सो गया। जब जागा तो साहिब-ए-क़ब्र को देखा कि मुझसे गिला करता है और कहता है: "लक़द अज़ैतनी मुन्ज़ुल लैला" (तूने मुझे रात भर से ईज़ा दी है)। ऐ शख़्स, तूने मुझे रात भर ईज़ा दी।

रिवायत दोम: इमाम बैहक़ी 'दलायल-उन-नुबुव्वह' में और इब्न अबी अद्दुनिया हज़रत अबू उस्मान ** नहदी से, वो इब्न मीना ताबेई से रावी हैं: मैं मक़बरे में गया, दो रकअत पढ़ कर लेट रहा। ख़ुदा की क़सम! मैं ख़ूब जाग रहा था कि सुना कि कोई शख़्स क़ब्र में से कहता है: "क़ुम फ़क़द अज़ैतनी" (उठ कि तूने मुझे अज़ियत दी)। फिर कहा कि तुम अमल करते हो और हम नहीं करते।

- (1): ताबेई, सक़ा (विश्वसनीय), फ़ाज़िल, रेजाल-ए-सिहाह-सित्ता से, 112 हिजरी। (म) ** (2): अजल-ए-अकाबिर ताबेईन में से हैं, ज़माना-ए-रिसालत पाए हुए, सक़ा, सब्त, उमायिद रेजाल-ए-सिहाह-सित्ता से, 112 हिजरी। (म)

[1] सहीह मुस्लिम, बाब: इस्लाम पिछले गुनाहों को खत्म कर देता है, पुरानी कुतुब खाना, कराची, 1/76 [2] मिश्कात अल-मसाबीह, अहमद के हवाले से, किताबुल जनाइज़, बाब: मय्यत का दफ़्न, मुज्तबाई प्रेस, दिल्ली, पृ. 149 [3] मजमा अल-ज़वाइद, अल-तबरानी अल-कबीर के हवाले से, बाब: क़ब्रों पर तामीर, दार अल-किताब, बेरूत, 3/61

पृष्ठ 717/948

[باکس میں]: بہ رسل ربی ۱- یہاں تک کہ میں تم سے انس حاصل کروں اور جان لوں کہ اپنے رب کے رسول کو کیا جواب دیتا ہوں۔

فصل سوم: احیاء کی بے اعتدالی سے اموات کے ایذا پانے میں—ظاہر ہے کہ افعال واحوال احیاء پر انھیں اطلاع نہیں تو ایذا پانی محض بے معنی۔

حدیث (۲۵): امام احمد بسند حسن عمارہ بن حزم رضی اللہ تعالٰی عنہ سے راوی، سید عالم صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم نے مجھے ایک قبر سے تکیہ لگائے دیکھا، فرمایا: لا تؤذ صاحب ھذا القبر یعنی اس قبر والے کو ایذا نہ دے۔ یا فرمایا: لا تؤذہ ۲ اسے تکلیف نہ پہنچا۔ یا صاحب القبر انزل من علی القبر لا تؤذی صاحب القبر ولا یؤذیك ۳ (او قبر والے! قبر سے اتر آ، نہ تو صاحب قبر کو ایذا دے نہ ہو تجھے)

مقصد سوم: میں اس حدیث کی شرح امام اجل حکیم ترمذی سے منقول ہوگی۔

روایت مناسبہ: ابن ابی الدنیا ابوقلابہ بصری عہ ۱ سے راوی: میں ملک شام سے بصرہ کو جاتا تھا، رات کو خندق میں اترا وضو کیا، دو رکعت نماز پڑھی، پھر ایک قبر پر سر رکھ کر سو گیا، جب جاگا تو صاحب قبر کو دیکھا کہ مجھ سے گلہ کرتا ہے اور کہتا ہے: لقد اذیتنی منذ اللیلۃ اے شخص تو نے مجھے رات بھر ایذا دی۔

روایت دوم: امام بیہقی دلائل النبوۃ میں اور ابن ابی الدنیا حضرت ابو عثمان عہ ۲ نہدی سے وہ ابن مینا تابعی سے راوی: میں مقبرے میں گیا، دو رکعت پڑھ کر لیٹ رہا، خدا کی قسم میں خوب جاگ

رہا تھا کہ سنا کہ کوئی شخص قبر میں سے کہتا ہے: قم فقد اذیتنی اٹھ کہ تو نے مجھے اذیت دی۔ پھر کہا کہ تم عمل کرتے ہو اور ہم نہیں کرتے

عہ ۱: تابعی، ثقہ، فاضل، رجال صحاح ستہ سے ۱۱۲ منہ (م) عہ ۲: اجلہ اکابر تابعین سے ہیں، زمانہ رسالت پائے ہوئے ثقہ ثبت عمائد رجال صحاح ستہ سے ۱۱۲ منہ (م)

---

۱ صحیح مسلم باب کون الاسلام یھدم ما قبلہ الخ قدیمی کتب خانہ کراچی ۱/ ۷۶ ۲ مشکوۃ المصابیح بحوالہ احمد کتاب الجنائز باب دفن المیت مطبع مجتبائی دہلی ص ۱۴۹ ۳ مجمع الزوائد بحوالہ الطبرانی الکبیر باب البناء علی القبور الخ دار الکتاب بیروت ۳ / ۶۱

Fatawa Razawiyya Volume 9

By God! If I could perform two Rakahs of prayer like yours, it would be dearer to me than the whole world[1]. Third Tradition: Hafiz ibn Mandah narrates from Imam Qasim (RA) bin Mukhaymira (may Allah have mercy on him): If I were to place my foot on a heated spear-head so that it pierces through my foot, it would be more beloved to me than stepping on a grave. Then he said: A person stepped on a grave and while awake heard: "Get away from me, O man! And do not cause me pain."[2] Hadith (26): Imam Malik, Ahmad, Abu Dawood, Ibn Majah, Abdul Razzaq, Saeed bin Mansur, Ibn Hibban, and Darqutni narrate from the Mother of the Believers, Siddiqah (may Allah be pleased with her), that the Leader of the Universe (peace and blessings of Allah be upon him) said: The wording is from Ahmad - "Breaking the bone of a deceased and hurting them is like breaking the bone of the living[3]." Some narrations in Darqutni add the word "in pain[4]," meaning the living and the dead are equal in experiencing increased pain. This was mentioned in Al-Maqasid al-Hasanah. (It was mentioned in Maqasid al-Hasanah. -T) --- In the third objective, the saying of Imam Abu Umar regarding this will follow. Hadith (27): Daylami and Ibn Mandah narrate from the Mother of the Believers, Umm Salama (may Allah be pleased with her), that the Leader of the Universe (peace and blessings of Allah be upon him) said: Provide a good shroud, and do not cause pain to your deceased by wailing, or by delaying their will, or by severing ties of kinship; and hasten to pay off their debt, and keep them away from bad neighbors[5]. Provide a good shroud and do not cause pain to your deceased by crying loudly, or by delaying their will, or by breaking ties of kinship; and pay off their debt quickly and keep them separate from bad neighbors, meaning do not bury them near the graves of disbelievers, innovators, and transgressors.

Note: He was a Tabi'i, a trustworthy and learned narrator from the narrators of the Sihah Sittah, though not in Al-Bukhari's main collection (however, Imam Bukhari mentioned him in the Ta'liqat).

---

[1] Sharh al-Sudur, narrated by al-Bayhaqi in Dala'il al-Nubuwwah, Chapter: Visiting Graves, Khilafat Academy Swat, p. 89. [2] Sharh al-Sudur, narrated by Ibn Mandah, Chapter: Hurting them in various ways, Khilafat Academy Swat, p. 126. [3] Musnad Ahmad bin Hanbal, Narrations of Hazrat Aisha, Dar al-Fikr Beirut, 2/105. [4] Al-Maqasid al-Hasanah, Hadith 801, Dar al-Kutub al-Ilmiyah Beirut, p. 216. [5] Al-Firdaws bi-Ma'thur al-Khitab, Hadith 801, Dar al-Kutub al-Ilmiyah Beirut, 1/98.

फ़तावा रज़विया जिल्द नौ

ख़ुदा की क़सम! अगर मैं तुम्हारी तरह दो रकअतें पढ़ सकता, तो यह मुझे पूरी दुनिया से ज़्यादा अज़ीज़ होता। तीसरी रिवायत: हाफ़िज़ इब्ने मंदह, इमाम क़ासिम (रहमतुल्लाह अलैह) बिन मुख़ैमिरा से रावी हैं: अगर मैं तपते हुए भाले की नोक पर पाँव रखूँ कि वह मेरे क़दम के आर-पार हो जाए, तो यह मुझे किसी क़ब्र पर पाँव रखने से ज़्यादा पसंद है। फिर फ़रमाया: एक शख़्स ने क़ब्र पर पाँव रखा, तो उसने जागते हुए सुना: "मुझसे दूर हट ऐ शख़्स! और मुझे ईज़ा (दुख) न पहुँचा।" हदीस (26): इमाम मालिक, अहमद, अबू दाऊद, इब्ने माजह, अब्दुल रज़्ज़ाक, सईद बिन मंसूर, इब्ने हिब्बान और दारक़ुतनी ने उम्मुल मोमिनीन सिद्दीक़ा (रज़ियल्लाहु अन्हा) से रिवायत की है कि सैयदे आलम (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने फ़रमाया: और अल्फ़ाज़ अहमद के हैं - "मुर्दे की हड्डी तोड़ना और उसे ईज़ा देना वैसा ही है जैसे ज़िंदा की हड्डी तोड़ना।" दारक़ुतनी की कुछ रिवायतों में "तकलीफ़ में" के शब्द हैं, यानी ज़िंदा और मुर्दा दर्द पहुँचने में बराबर हैं। इसका ज़िक्र 'मक़ासिद-ए-हसना' में है। (इसका ज़िक्र मक़ासिद-ए-हसना में किया गया। -त) --- तीसरे मक़्सद में इसके बारे में इमाम अबू उमर का क़ौल आएगा। हदीस (27): दैलमी और इब्ने मंदह, उम्मुल मोमिनीन उम्मे सलमा (रज़ियल्लाहु अन्हा) से रावी हैं कि सैयदे आलम (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने फ़रमाया: "कफ़न अच्छा दो और अपने मय्यत को चीख-पुकार कर रोने से, या उसकी वसीयत में देरी करने से, या रिश्ता तोड़ने से ईज़ा न पहुँचाओ; और उसका क़र्ज़ जल्द अदा करो, और उसे बुरे पड़ोसियों से दूर रखो।" कफ़न अच्छा दो और अपनी मय्यत को चिल्ला कर रोने या उसकी वसीयत में देर लगाने या रिश्ता तोड़ने से ईज़ा न पहुँचाओ और उसका क़र्ज़ जल्द अदा करो और बुरे पड़ोसियों से अलग रखो, यानी काफ़िरों, बिदअतियों और फ़ासिक़ों की क़ब्रों के पास दफ़न न करो।

नोट: वह ताबिई, मोतबर और आलिम रावी हैं, सिहा-ए-सित्ता के रावियों में से हैं, सिवाय बुखारी के (अलबत्ता इमाम बुखारी ने तालीक़ात में उनका ज़िक्र किया है)।

---

1. शर्ह अल-सुदूर, बहवाला बैहक़ी फ़ी दलाईल अल-नुबुव्वह, बाब: ज़ियारत अल-क़ुबूर, ख़िलाफ़त एकेडमी स्वात, पृ. 89
2. शर्ह अल-सुदूर, बहवाला इब्ने मंदह, बाब: ताज़ियाह बि-साइर वुजूह अल-अज़ा, ख़िलाफ़त एकेडमी स्वात, पृ. 126
3. मुस्नद अहमद बिन हंबल, मरवियात हज़रत आयशा, दार अल-फ़िक्र बेरुत, 2/105

4. अल-मक़ासिद अल-हसना, हदीस 801, दार अल-कुतुब अल-इल्मिया बेरुत, पृ. 216

5. अल-फ़िरदौस बि-मासूर अल-ख़िताब, हदीस 801, दार अल-कुतुब अल-इल्मिया बेरुत, 1/98

خدا کی قسم اگر تیری طرح دور کعتیں میں بھی پڑھ سکتا مجھے تمام دنیا سے زیادہ عزیز ہوتا ۱۔ روایت سوم: حافظ بن مندہ امام قاسم عہ بن مخیمرہ رحمہ اللہ تعالیٰ سے راوی: اگر میں تپائی ہوئی بھال پر پاؤں رکھوں کہ میرے قدم سے پار ہو جائے تو یہ مجھے زیادہ پسند ہے اس سے کہ کسی قبر پر پاؤں رکھوں، پھر فرمایا: ایک شخص نے قبر پر پاؤں رکھا جاگتے میں سُنا الیک عنی یا رجل ولا تؤذنی ۲ اے شخص! الگ ہٹ مجھے ایذا نہ دے۔ حدیث (۲۶): امام مالک واحمد وابو داؤد وابن ماجہ وعبدالرزاق وسعید بن منصور وابن حبان و دار قطنی اُم المومنین صدیقہ رضی اللہ تعالیٰ عنہا سے راوی، سید عالم صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم نے فرمایا: واللفظ لا حمد کسر عظم المیت واذاہ ککسرہ حیا ۳ مردے کی ہڈی توڑنی اور اسے ایذا دینی ایسی ہے جیسی زندہ کی ہڈی توڑنی۔ بعض روایات دار قطنی میں لفظ فی الالم ۴ اور زائد درد پہنچنے میں زندہ و مردہ برابر ہیں، ذکرہ فی مقاصد الحسنہ (اسے مقاصد حسنہ میں ذکر کیا گیا۔ت) ___ مقصد سوم میں اس کے متعلق امام ابو عمر کا قول آئے گا۔ حدیث (۲۷): دیلمی وابن مندہ ام المومنین ام سلمہ رضی اللہ تعالیٰ عنہا سے راوی، سید عالم صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم نے فرمایا: احسنوا الکفن ولا تؤذو اموتاکم بعویل ولا بتاخیر وصیۃ ولا بقطعیۃ وعجلوا قضاء دینہ، واعد لو عن جیران السوء ۵۔ کفن اچھا دو اور اپنی میت کو چلا کر رونے یا اس کی وصیت میں دیر لگانے یا قطع رحم کرنے سے ایذا نہ پہنچاؤ اور اس کا قرض جلد ادا کرو اور برے ہمسایہ سے الگ رکھو، یعنی قبور کفار واہل بدعت وفسق کے پاس فن نہ کرو۔

عہ: تابعی، ثقہ فاضل رواۃ صحاح ستہ سے غیرانہ عند خ فی التعلیقات (البتہ امام بخاری نے تعلیقات میں اس کا ذکر کیا ہے۔

۱ شرح الصدور بحوالہ بیہقی فی دلائل النبوۃ باب زیارۃ القبور خلافت اکیڈمی سوات ص ۸۹ ۲ شرح الصدور بحوالہ ابن مندہ باب تاذیہ بسائر وجوہ الاذی خلافت اکیڈمی سوات ص ۱۲۶ ۳ مسند احمد بن حنبل مرویات حضرت عائشہ دار الفکر بیروت ۲/ ۱۰۵ ۴ المقاصد الحسنہ حدیث ۸۰۱ دار الکتب العلمیہ بیروت ص ۲۱۶ ۵ الفردوس بمأثور الخطاب حدیث ۸۰۱ دار الکتب العلمیہ بیروت ۹۸/۱

Fatawa Ridawiyya, Volume 9

Hadith (28): Imam Ahmad reports from Abu al-Rabi': “I was with Abdullah ibn Umar (may Allah be pleased with them both) in a funeral procession. He heard the voice of someone shouting. He sent someone to silence them. I asked: 'O Abu Abdur Rahman! Why did you have them silenced?' He replied: 'It causes pain to the deceased until they are placed in their grave.'”

Hadith (29): Imam Sa'id ibn Mansur reports in his Sunan from Hazrat Abdullah ibn Mas'ud (may Allah be pleased with him): “He saw some women at a funeral and said: 'Go back burdened with sin, deprived of reward. You tempt the living and cause pain to the dead.'”

Note: The Holy Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) said in a well-known authentic Hadith: “The deceased is punished by the weeping of the living over them.” This was narrated by Imam Ahmad and the two Sheikhs (Bukhari and Muslim) from Umar Faruq, Abdullah ibn Umar, and Mughirah ibn Shu'bah; by Abu Ya'la from Abu Bakr Siddiq and Abu Hurairah; by Ibn Hibban from Anas ibn Malik and Imran ibn Husayn; and by Tabarani from Samurah ibn Jundub (may Allah be pleased with them all). According to a group of scholars, the meaning is that the deceased is saddened by the loud wailing of the living. Imam Jalaluddin al-Suyuti, in Sharh al-Sudur, supported this meaning with a Marfu' (elevated) Hadith and stated that this is the view of Imam Ibn Jarir, and a group of leading scholars chose this interpretation. In support of this, these two Hadiths of Ibn Mas'ud and Ibn Umar (may Allah be pleased with them) that we mentioned were cited. On this basis, all eight narrations of the holy saying 'the deceased is punished...', could also have been counted here. However, since scholars have many differences regarding its meaning and our intention is not exhaustive inclusion, we did not include them here. And Allah knows best.

Hadith (30): Ibn Abi Shaybah reports in his Musannaf from Sayyiduna Abdullah ibn Mas'ud (may Allah be pleased with him): “Hurting a believer after their death is like hurting them during their life.”

1. Musnad Ahmad ibn Hanbal, Marwiyyat Abdullah ibn Abdur Rahman, Dar al-Fikr Beirut, 2/135.
2. Sunan Sa'id ibn Mansur.
3. Sahih Muslim, Kitab al-Jana'iz, Qadimi Kutub Khana Karachi, 1/302.

फतावा रिज़विया, खंड 9

हदीस (28): इमाम अहमद अबू अल-रबी' से रिवायत करते हैं: “मैं अब्दुल्ला इब्न उमर (अल्लाह उन दोनों से खुश हो) के साथ एक जनाजे में था। उन्होंने किसी के चिल्लाने की आवाज़ सुनी। उन्होंने उसे खामोश कराने के लिए किसी को भेजा। मैंने अर्ज़ किया: 'ऐ अबू अब्दुर्रहमान! आपने उसे क्यों चुप कराया?' उन्होंने फरमाया: 'इससे मुर्दे को तकलीफ होती है जब तक कि वह अपनी कब्र में न चला जाए।'”

हदीस (29): इमाम सईद बिन मंसूर अपनी सुनन में हज़रत अब्दुल्ला बिन मसूद (अल्लाह उनसे खुश हो) से रिवायत करते हैं: “उन्होंने एक जनाजे में कुछ औरतों को देखा और फरमाया: 'वापस लौट जाओ गुनाह से लदी हुई, सवाब से महरूम। तुम ज़िंदों को फित्ने में डालती हो और मुर्दों को तकलीफ पहुँचाती हो।'”

चेतावनी (नोट): सैय्यद आलम सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने जो हदीस सहीह मशहूर में फरमाया: "मुर्दे को उस पर ज़िंदों के रोने से अज़ाब होता है।" जिसे इमाम अहमद और शैखैन ने उमर फारूक और अब्दुल्ला बिन उमर और मुग़ीरा बिन शोबा से, और अबू यला ने अबू बक्र सिद्दीक और अबू हुरैरा से, और इब्न हिब्बान ने अनस बिन मालिक और इमरान बिन हुसैन से, और तबरानी ने समुरा बिन जुन्दुब से रिवायत किया (अल्लाह उन सब से राजी हो)। आइम्मा की एक जमात के नज़दीक इसके मायने भी यही हैं कि ज़िंदों के चिल्लाने से मुर्दों को सदमा होता है। इमाम अजल सुयूती ने शरह अल-सुदूर में इस मायने को एक हदीस मरफू से ताईद करते हुए फरमाया कि इमाम इब्न जरीर का यही कौल है, और आइम्मा के एक गिरोह ने इसी को अपनाया है। फिर इसकी ताईद में इब्न मसूद और इब्न उमर (अल्लाह उन से राजी हो) की ये दो हदीसें जो हमने बयान कीं, उनका जिक्र फरमाया। इस लिहाज़ से पाक इरशाद "मुर्दे को अज़ाब होता है..." की आठों रिवायतें भी यहाँ शुमार के काबिल थीं, लेकिन चूँकि उलमा के बीच इसके मायने में बहुत इख्तिलाफ है, और हमारा इरादा यहाँ सब को समेटना नहीं है, इसलिए उन्हें यहाँ शामिल नहीं किया। वल्लाहु तआला आलम (और अल्लाह बेहतर जानता है)।

हदीस (30): इब्न अबी शैबा अपने मुसन्निफ में सैय्यदुना अब्दुल्ला बिन मसूद (अल्लाह उनसे खुश हो) से रिवायत करते हैं: “मुसलमान को मौत के बाद तकलीफ देना ऐसा ही है जैसे उसकी ज़िंदगी में।”

1. मसनद अहमद बिन हंबल, मर्विय्यात अब्दुल्ला बिन अब्दुर रहमान, दार अल-फ़िक्र बेरुत, 2/135
2. सुनन सईद बिन मंसूर
3. सहीह मुस्लिम, किताब अल-जनाइज़, कदीमी कुतुब खाना कराची, 1/302

पृष्ठ 948 का 719

فتاویٰ رضویہ، جلد نہم

حدیث (۲۸): امام احمد ابو الربیع سے راوی: کنت مع ابن عمر في جنازة فسمع صوت انسان یصیح فبعث الیه فأسکته فقلت لم اسکتہ یا ابا عبد الرحمن قال انه یتأذی به المیت حتی یدخل في قبرہ۔ میں عبداللہ ابن عمر رضی اللہ تعالیٰ عنہما کے ساتھ ایک جنازہ میں تھا کسی کے چلانے کی آواز سنی، آدمی بھیج کر اسے خاموش کرادیا، میں نے عرض کی: اے ابو عبدالرحمن! آپ نے اسے کیوں چپایا، فرمایا: اس سے مردے کو ایذا ہوتی ہے یہاں تک کہ قبر میں جائے۔

حدیث (۲۹): امام سعید بن منصور اپنے سنن میں حضرت عبد اللہ بن مسعود رضی اللہ تعالیٰ عنہ سے راوی: انه رأی نسوة فی جنازة فقال ارجعن مأزورات غیر مأجورات ان کن لتفتن الاحیاء وتؤذین الاموات۔ یعنی انہوں نے ایک جنازے میں کچھ عورتیں دیکھیں اور ارشاد فرمایا پلٹ جاؤ گناہ سے بوجھل ثواب سے اوجھل۔ تم زندوں کو فتنے میں ڈالتی اور مردوں کو اذیت دیتی ہو۔

تنبیہ: سید عالم صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم نے جو حدیث صحیح مشہور میں فرمایا: المیت یعذب ببکاء الحی علیہ (مردہ اپنے اوپر زندوں کے رونے سے عذاب میں ہوتا ہے)۔ جسے امام احمد و شیخین نے عمر فاروق و عبداللہ بن عمر و مغیرہ بن شعبہ، اور ابویعلی نے ابوبکر صدیق و ابوہریرہ، اور ابن حبان نے انس بن مالک و عمران بن حصین اور طبرانی نے سمرہ بن جندب سے روایت کیا۔ رضی اللہ تعالیٰ عنہم اجمعین، ایک جماعت ائمہ کے نزدیک اس کے معنی بھی یہی ہیں کہ زندوں کے چلانے سے مردوں کو صدمہ ہوتا ہے۔ امام اجل سیوطی نے شرح الصدور میں اس معنی کو ایک حدیث مرفوع سے مؤید کر کے فرمایا امام ابن جریر کا یہی قول ہے، اور اسی کو ایک گروہ ائمہ نے اختیار فرمایا، پھر اس کی تائید میں یہ دو حدیثیں ابن مسعود و ابن عمر رضی اللہ تعالیٰ عنہم کی کہ ہم نے بیان کیں۔ ذکر فرمائیں، اس تقدیر پر ارشاد اقدس المیت یعذب، الحدیث کی آٹھوں

روایتیں بھی یہاں شمار کے قابل تھیں مگر ازانجا کہ علماء کو اس کے معنی میں بہت اختلاف ہے۔ نہ ہمارا قصد و حصر و استیعاب۔ لہٰذا انہیں معدود نہ کیا۔ واللہ تعالیٰ اعلم۔

حدیث (۳۰): ابن ابی شیبہ اپنے مصنف میں سید نا عبد اللہ بن مسعود رضی اللہ تعالیٰ عنہ سے راوی: اذی المؤمن في موته كاذه مسلمان کو بعد موت ایذا دینی ایسی ہے جیسے زندگی میں

1. مسند احمد بن حنبل مرویات عبد اللہ بن عبدالرحمن دار الفکر بیروت ۲ / ۱۳۵
2. سنن سعید بن منصور
3. صحیح مسلم کتاب الجنائز قدیمی کتب خانہ کراچی ۱ / ۳۰۲

Fatawa Razawiya, Volume 9

...in his life[1]. It caused him pain.

Hadith (31): Sa'id bin Mansur narrates in his Sunan that someone asked him about the ruling on placing one's foot on a grave. He replied: “Just as I dislike harming a believer during his life, I dislike harming him after his death.” (Translation: Just as I dislike the infliction of pain upon a living Muslim, so do I dislike it for the deceased.)

Hadith (32): At-Tabarani narrates from Abdur Rahman bin Ala' bin Lajlaj, from his father Ala' (may Allah be pleased with him), who said: “O my son! When you place me in my grave, say: 'In the name of Allah and upon the way of the Messenger of Allah.' Then sprinkle dust on me gently. Then recite at my head the beginning of Surah al-Baqarah until 'al-muflihun' and its end from 'Amanar-Rasul,' for I heard the Master of the Universe (peace and blessings of Allah be upon him) saying this.”[3] (Translation: O my son! When you place me in the grave, say 'Bismillah wa 'ala millati Rasulillah.' Then sprinkle soil over me slowly and gently. Then recite at my head the beginning of Surah al-Baqarah, up to 'muflihun', and its ending from 'Amanar-Rasul', because I heard the Master of the Universe (peace and blessings of Allah be upon him) saying this.)

And the statement of Hazrat Amr bin Aas (may Allah be pleased with him) has just passed from Sahih Muslim, that 'sprinkle soil on me gradually and gently.' Sheikh al-Muhaqqiq Abdul Haq Muhaddith Dehlavi (may Allah have mercy on him) writes under this Hadith in the translation of Mishkat: “When you bury me, throw soil on me with softness and ease, i.e., little by little. This is an indication that the deceased person feels and is pained by whatever pains a living person.”[4] (Translation: When you bury me, put soil on me with gentleness and ease, i.e., bit by bit. This is a sign that the deceased has feelings, and is pained by whatever a living person is pained by.)

Note: He (Ala') is a trustworthy Tabi'i and his son Abdur Rahman is from the followers of Tabi'in whose narrations are accepted; both are mentioned in the biographical records of Jami' at-Tirmidhi. 12 [Author] (M)

[1] Al-Musannaf of Ibn Abi Shaybah, Kitab al-Jana'iz, Idarat al-Qur'an wal-Ulum al-Islamiyyah, Karachi, 3/367 [2] Sharh as-Sudur, referencing Sunan Sa'id bin Mansur, Chapter on Harming the Deceased, Khilafat Academy, Swat, p. 126 [3] Majma' az-Zawa'id, referencing Tabarani, Chapter on What is Said When Entering the Deceased

into the Grave, Dar al-Kutub al-Ilmiyyah, Beirut, 3/44 [4] Ashi'at al-Lam'at, Kitab al-Jana'iz, Chapter on Burying the Deceased, Maktabah Nooriya Razawiya, Sukkur, 1/697

फतावा रज़विया, जिल्द 9

...उनके जीवन में[1]। उसे कष्ट पहुँचाया।

हदीस (31): सईद बिन मंसूर ने अपनी सुनन में रिवायत की है, किसी ने उनसे कब्र पर पैर रखने के मसले के बारे में पूछा। उन्होंने फरमाया: "जैसे मैं एक मोमिन (आस्तिक) को उसके जीवन में कष्ट देना नापसंद करता हूँ, वैसे ही उसकी मृत्यु के बाद भी उसे कष्ट देना नापसंद करता हूँ।" (अनुवाद: मुझे जिस तरह जीवित मुसलमान को कष्ट देना नापसंद है, वैसे ही मृत को भी।)

हदीस (32): तबरानी ने अब्दुल रहमान बिन अला बिन लजलज से, उनके पिता अला (रज़ियल्लाहु अन्हु) से रिवायत की है, उन्होंने कहा: "ऐ मेरे बेटे! जब तुम मुझे मेरी कब्र में रखो, तो कहो: 'अल्लाह के नाम से और अल्लाह के रसूल के धर्म पर'। फिर मुझ पर धीरे-धीरे मिट्टी डालना। फिर मेरे सिर के पास सूरह बकराह की शुरुआत यानी 'मुफ्लिहूँ' तक और उसका अंत यानी 'आमनर-रसूल' से पढ़ना, क्योंकि मैंने सैयदुल आलम (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) को ऐसा फरमाते सुना है।"[3] (अनुवाद: ऐ मेरे बेटे! जब मुझे कब्र में रखो, तो 'बिस्मिल्लाह व अला मिल्लती रसूलील्लाह' कहना। फिर मुझ पर धीरे-धीरे मिट्टी डालना। फिर मेरे सिरहाने सूरह बकराह की शुरुआत यानी 'मुफ्लिहूँ' तक और खात्मा यानी 'आमनर-रसूल' से पढ़ना, क्योंकि मैंने सैयदुल आलम (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) को यह फरमाते सुना है।)

और हज़रत अम्र बिन आस (रज़ियल्लाहु अन्हु) का फरमान अभी सहीह मुस्लिम से गुज़रा कि 'मुझ पर मिट्टी धीरे-धीरे और नरमी से डालना'। शेख मोहक्किह अब्दुल हक़ मुहद्दिस देहलवी (रहमतुल्लाह अलैहि) मिशकात के अनुवाद में इस हदीस के नीचे लिखते हैं: "जब तुम मुझे दफन करो, तो मुझ पर मिट्टी नरमी और सुगमता के साथ फेंको, अर्थात् थोड़ा-थोड़ा करके। यह इस बात का संकेत है कि मृत व्यक्ति महसूस करता है और उन चीज़ों से व्यथित होता है जिनसे जीवित व्यक्ति व्यथित होता है।"[4] (अनुवाद: जब मुझे दफन करना, मुझ पर मिट्टी नरमी और सहूलियत से यानी ज़रा-ज़रा करके डालना। यह इशारा है इस बात का कि मुर्दे को अहसास होता है और जिस चीज़ से ज़िंदा को तकलीफ होती है, उसे भी होती है।)

नोट: वे (अला) एक विश्वसनीय ताबिई हैं और उनके पुत्र अब्दुल रहमान ताबे-ताबिई हैं जिनकी रिवायतें स्वीकार्य हैं; दोनों का उल्लेख रिज़ाल जामे-तिर्मिज़ी में है। 12 [लेखक] (म)

1. अल-मुसन्नफ इब्न अबी शैबा, किताबुल जनाइज़, इदारातुल कुरआन वल उलूमल इस्लामिया, कराची, 3/367
2. शरहुस सुदूर, सनन सईद बिन मंसूर के हवाले से, बाब ताज़ी अल-मय्यित, खिलाफत एकेडमी, स्वात, पृ. 126
3. मज्मअ अज़-ज़वाइद, तबरानी के हवाले से, मय्यित को कब्र में डालते समय क्या कहा जाए, दारुल कुतुब अल-अरबी, बेरुत, 3/44
4. अशिअतुल लम्आत, किताबुल जनाइज़, मय्यित को दफनाने का अध्याय, मकतबा नूरिया रज़विया, सुक्कुर, 1/697

جلد نہم فتاویٰ رضویہ

فی حیاتہ 1۔ اسے تکلیف پہنچائی۔

حدیث (۳۱) : سعید بن منصور اپنے سنن میں راوی، کسی نے اس جناب سے قبر پر پاؤں رکھنے کا مسئلہ پوچھا، فرمایا: کما اکرہ اذی المومن فی حیاتہ فانی اکرہ اذاہ بعد موتہ مجھے جس طرح مسلمان زندہ کی ایذا ناپسند ہے یونہی مردہ کی۔

حدیث (۳۲) : طبرانی عبدالرحمٰن بن علاء بن لجلج سے ان کے والد علاء (رضی اللہ عنہ) سے وہ فرماتے ہیں: یابنی اذا وضعتنی فی لحدی فقل بسم اللہ وعلی ملۃ رسول اللہ ثم شن لی التراب شنا ثم اقرأعند راسی بفاتحۃ البقرۃ وخاتمھا فانی سمعت رسول اللہ صلی اللہ تعالی علیہ وسلم یقول ذلك۔ 3 اے میرے بیٹے! جب مجھے لحد میں رکھے بسم اللہ و علی ملت رسول اللہ کہنا۔ پھر مجھ پر آہستہ آہستہ مٹی ڈالنا، پھر میرے سرہانے سورہ بقرہ کا شروع یعنی مفلحون تک اور خاتمہ یعنی آمن الرسول سے پڑھنا کہ میں نے سید عالم صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کو یہ فرماتے سنا۔

اور حضرت عمرو بن عاص رضی اللہ تعالیٰ عنہ کا ارشاد صحیح مسلم سے ابھی گزرا کہ مجھ پر مٹی تھم تھم کر بہ نرمی ڈالنا، شیخ محقق عبدالحق محدث دہلوی رحمۃ اللہ تعالیٰ علیہ ترجمہ مشکوٰۃ میں اس حدیث کے نیچے لکھتے ہیں: چہ می دفن کنید مرا پس بنرمی وبسہولت بیندازید بر من خاک را یعنی اندک اندک زید و این اشارت است باں کہ میت احساس می کند و دوروناک می شود بآنچہ دردناک می شود بآن زندہ 4۔ جب مجھے دفن کرنا مجھ پر مٹی نرمی و سہولت سے یعنی ذرا ذرا کرکے ڈالنا، یہ اشارہ ہے اس بات کا کہ مردے کو احساس ہوتا ہے اور جس چیز سے زندہ کو تکلیف ہوتی ہے اسے بھی ہوتی ہے۔

عہ: تابعی ثقہ ہیں اور ان کے بیٹے عبدالرحمٰن تبع تابعین مقبول الروایہ سے دونوں صاحب رجال جامع الترمذی میں ہیں ۱۲ منہ (م)

1 المصنف لابن ابی شیبہ کتاب الجنائز ادارۃ القرآن والعلوم الاسلامیہ کراچی ۳ /۳۶۷ 2 شرح الصدور بحوالہ سنن سعید بن منصور باب تاذی المیت خلافت اکیڈمی سوات ص ۱۲۶ 3 مجمع الزوائد بحوالہ طبرانی باب ما یقول عند ادخال المیت قبر دارالکتب العربی بیروت ۳ /۴۴ 4 اشعۃ اللمعات کتاب الجنائز باب دفن المیت مکتبہ نوریہ رضویہ سکھر ۱ /۶۹۷

Fatawa Rizvia, Volume 9

Chapter Four: Concerning the hadiths in which it is explicitly stated that the dead recognize their visitors, hear their greeting (salam), and respond to them.

Hadith (33): Imam Abu Umar ibn Abdul-Barr narrates in the books 'al-Istidhkar' and 'al-Tamhid' from Hazrat Abdullah bin Abbas (may Allah be pleased with him) that the Enlightened Presence, Master of the World (peace and blessings of Allah be upon him) said: "No person passes by the grave of his believing brother whom he knew in the world and offers salam to him, except that he recognizes him and returns the salam." [1]

Imam Abu Muhammad Abdul-Haqq, who is among the eminent scholars of Hadith, authenticates (declares 'sahih') this Hadith [2]; it was mentioned by Imam al-Suyuti in 'Sharh al-Sudur' and Al-Fadhil al-Zarqani in 'Sharh al-Mawahib' (Imam al-Suyuti mentioned it in Sharh al-Sudur and Allama Zarqani mentioned it in Sharh al-Mawahib - Tr). Similarly, Imam Abu Umar Sayyid Allama al-Samhudi authenticated it, as mentioned by Shaykh al-Muhaqqiq in 'Jami' al-Barakat' and 'Jadhb al-Qulub' (Shaykh al-Muhaqqiq mentioned it in Jami' al-Barakat and Jadhb al-Qulub - Tr). Imam Subki writes in 'Shifa al-Siqam' regarding this Hadith: "A group has mentioned it, and al-Qurtubi said in 'Al-Tadhkirah' that Abdul-Haqq authenticated it, and we have also narrated it in 'Al-Khal'iyat' from the narration of Abu Hurayrah. (Finished)" [3] (Tr)

I say: And you will hear that (Hadith) ahead.

Hadith (34): Ibn Abi al-Dunya, al-Bayhaqi, al-Sabuni, Ibn Asakir, Khatib al-Baghdadi, and other Muhaddithin (Hadith scholars) narrate from Abu Hurayrah (may Allah be pleased with him) that the Master of the World (peace and blessings of Allah be upon him) said: "When a man passes by a grave he knows and offers salam to him, he (the deceased) returns the salam and recognizes him."

[1] Sharh al-Sudur, quoting al-Tamhid by Ibn Abdul-Barr, Chapter: Visiting Graves, Khilafat Academy Swat, p. 84. [2] Sharh al-Sudur, quoting al-Tamhid by Ibn Abdul-Barr, Chapter: Visiting Graves, Khilafat Academy Swat, p. 84. [3] Shifa al-Siqam, Chapter Five, Maktaba Nooria Razvia Faisalabad, p. 88.

फ़तावा रिज़विया, जिल्द नहम (खंड 9)

अध्याय चार: जिसमें वे हदीसें हैं जिनमें स्पष्ट रूप से आया है कि मुर्दे अपने ज़ायरीन (दर्शनार्थियों) को पहचानते हैं, उनका सलाम सुनते हैं और उन्हें जवाब देते हैं।

हदीस (33): इमाम अबू उमर इब्न अब्दुल-बर्र अपनी किताबों 'अल-इस्तिज़कार' और 'अत-तम्हीद' में हज़रत अब्दुल्ला बिन अब्बास (रज़ियल्लाहु अन्हु) से रिवायत करते हैं कि हुज़ूर पुर नूर सैयदे आलम (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने फ़रमाया: "जो शख़्स अपने मुसलमान भाई की क़ब्र पर गुज़रता है जिसे वह दुनिया में पहचानता था और उसे सलाम करता है, तो वह (मुर्दा) उसे पहचानता है और सलाम का जवाब देता है।" [1]

इमाम अबू मुहम्मद अब्दुल-हक़, जो हदीस के बड़े उलेमा में से हैं, इस हदीस की तस्हीह (सत्यता की पुष्टि) करते हैं [2]; इसका ज़िक्र इमाम सुयूती ने 'शरह सुदूर' में और फ़ाज़िल ज़रक़ानी ने 'शरह मवाहब' में किया है (इसे इमाम सुयूती ने शरह सुदूर में और अल्लामा ज़रक़ानी ने शरह मवाहब में ज़िक्र किया-त)। इसी तरह इमाम अबू उमर सैय्यद अल्लामा समहूदी ने इसकी तस्हीह फ़रमाई, जिसका ज़िक्र शैख़ मोहक़्क़िक़ ने 'जामे अल-बरकात' और 'जज़ब अल-क़ुलूब' में किया है (इसे शैख़ मोहक़्क़िक़ ने जामे अल-बरकात और जज़ब अल-क़ुलूब में ज़िक्र फ़रमाया है।त)। इमाम सुबकी 'शिफ़ा अल-सिक़ाम' में यह हदीस लिखकर फ़रमाते हैं: "इसे एक जमात ने ज़िक्र किया और इमाम क़ुर्तुबी ने 'तज़किरा' में लिखा है कि इमाम अब्दुल-हक़ ने इसे सही कहा और 'खलइयात' में इसे हमने हज़रत अबू हुरैरा की रिवायत से भी बयान किया है। इति (समाप्त)" [3] (त)

मैंने कहा: वह हदीस आगे सुनोगे।

हदीस (34): इब्न अबी अदुनिया, बैहक़ी, साबूनी, इब्न असाकिर, ख़तीब बग़दादी और अन्य मुहद्दिसीन हज़रत अबू हुरैरा (रज़ियल्लाहु अन्हु) से रिवायत करते हैं कि सैयदे आलम (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने फ़रमाया: "जब आदमी ऐसी क़ब्र पर गुज़रता है जिससे दुनिया में शनासाई (पहचान) थी और उसे सलाम करता है, तो मय्यत सलाम का जवाब देता है और उसे पहचानता है।"

[1] शरह सुदूर बहवाला अत-तम्हीद इब्न अब्दुल-बर्र, बाब: ज़ियारतुल क़ुबूर, ख़िलाफ़त एकेडमी स्वात, पृ. 84. [2] शरह सुदूर बहवाला अत-तम्हीद इब्न अब्दुल-बर्र, बाब: ज़ियारतुल क़ुबूर, ख़िलाफ़त एकेडमी स्वात, पृ. 84. [3] शिफ़ा अल-सिक़ाम, अल-बाबुल ख़ामिस (पांचवां अध्याय), मकतबा नूरिया रिज़विया फ़ैसलाबाद, पृ. 88.

فتاوٰی رضویہ ، جلد نہم

فصلِ چہارم: میں وہ احادیث جن میں صراحۃً وارد کہ مُردے اپنے زائرین کو پہچانتے اور ان کا سلام سنتے اور انھیں جواب دیتے ہیں۔

حدیث (۳۳): امام ابو عمر ابن عبدالبر کتاب الاستذکار والتمہید میں حضرت عبد اللہ بن عباس رضی اللہ تعالٰی عنہ سے راوی، حضور پر نور سید عالم صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم نے فرمایا: ما من احد یمر بقبر اخیہ المؤمن کان یعرفہ في الدنیا فیسلم علیہ الا عرفہ ورد علیہ السلام ۱۔ جو شخص اپنے مسلمان بھائی کی قبر پر گزرتا اور اسے سلام کرتا ہے اگر وہ اسے دنیا میں پہچانتا تھا اب بھی پہچانتا اور جواب سلام دیتا ہے۔

امام ابو محمد عبدالحق کہ اجلہ علمائے حدیث سے ہیں اس حدیث کی تصحیح کرتے ہیں ۲، ذکرہ الامام السیوطی فی شرح الصدور والفاضل الزرقانی فی شرح المواہب (اسے امام سیوطی نے شرح الصدور میں اور علامہ زرقانی نے شرح مواہب میں ذکر کیا۔ت) اسی طرح امام ابو عمر سید علامہ سمہودی نے اس کی تصحیح فرمائی، ذکرہ الشیخ المحقق فی جامع البرکات وجذب القلوب (اسے شیخ محقق نے جامع البرکات اور جذب القلوب میں ذکر فرمایا ہے۔ت) امام سبکی شفاء السقام میں یہ حدیث لکھ کر فرماتے ہیں: ذکرہ جماعۃ وقال القرطبي فی التذکرۃ ان عبد الحق صححہ ورویناہ فی الخلعیات من حدیث ابی ھریرہ ایضا ۳ انتھی۔ اسے ایک جماعت نے ذکر کیا اور امام قرطبی نے تذکرہ میں لکھا ہے کہ امام عبدالحق نے اسے صحیح کہا اور خلعیات میں اسے ہم نے حضرت ابوہریرہ کی روایت سے بھی بیان کیا ہے انتھی (ت)

قلت وستسمع ذلك (میں نے کہا: وہ حدیث آگے سنو گے)

حدیث (۳۴): ابن ابی الدنیا و بیہقی وصابونی وابن عساکر وخطیب بغدادی و غیرہم محدثین ابوہریرہ رضی اللہ تعالیٰ عنہ سے راوی، سید عالم صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم نے فرمایا: اذا مر الرجل بقبر یعرفہ فسلم علیہ رد علیہ السلام وعرفہ جب آدمی ایسی قبر پر گزرتا ہے جس سے دنیا میں شناسائی تھی اور اسے سلام کرتا ہے میت جواب سلام دیتا اور اسے پہچانتا ہے۔

۱ شرح الصدور بحوالہ التمہید لابن عبد البر باب زیارت القبور خلافت اکیڈمی سوات ص ۸۴ ۲ شرح الصدور بحوالہ التمہید لابن عبد البر باب زیارت القبور خلافت اکیڈمی سوات ص ۸۴ ۳ شفاء السقام الباب الخامس مکتبہ نوریہ رضویہ فیصل آباد ص ۸۸

Fatawa Rizvia Volume 9

“And when he passes by a grave he does not know and greets him, the deceased returns the greeting[1].” | “And he recognizes him, and when he passes by such a grave with which he was not acquainted and greets him, the deceased responds to his greeting (Note).”

Hadith (35): Imam Aqili narrates from Abu Huraira (may Allah be pleased with him):

Abu Zarrin (may Allah be pleased with him) said: O Messenger of Allah! My path is over the graves. Is there any speech I should say when I pass by them? He said: Say, "Peace be upon you, O people of the graves from among the Muslims and believers. You are our predecessors and we are following you, and we, if Allah wills, will join you." Abu Zarrin said: O Messenger of Allah! Do they hear? He said: They hear, but they cannot answer[2]. | Meaning Abu Zarrin (may Allah be pleased with him) submitted: O Messenger of Allah! My path is through the cemeteries. Is there any speech that I should say when passing over them? He said: Say this: "Peace be upon you, O dwellers of the graves! From among the people of Islam and the people of faith, you are ahead of us and we are behind you, and we, if Allah Almighty wills, are to meet you." Abu Zarrin (may Allah be pleased with him) submitted: O Messenger of Allah! Do the dead hear? He said: They hear, but they cannot give an answer.

Important Note: Imam Jalaluddin Suyuti writes under this Hadith in Sharh al-Sudur:

"i.e., an answer that the living can hear, otherwise they respond where it is not heard[3]." | Meaning the intent of the Hadith is that the dead do not give such an answer that the living can hear, otherwise they do give such an answer which does not come into our hearing.

I say: This meaning is clear from the two previous Hadiths of this same section, that it is explicitly stated in them that the dead respond to the greeting of peace. And its example is what passed in Hadith 15 from Bakr bin Abdullah al-Muzani that the soul sees everything but...

Note: Samhudi says that Hadiths on this subject are many, and this meaning is established among individuals and the generality of the believers. 12 (m)

Allama Samhudi says: There are many Hadiths in this sense, and this meaning being itself proven is established among individuals of the Ummah and general believers. (t)

1. Shu'ab al-Iman, Hadith 9296, Dar al-Kutub al-Ilmiyyah, Beirut, 7/171
2. Kitab al-Du'afa al-Kabir, translator 3/157, Dar al-Kutub al-Ilmiyyah, Beirut, 19/2
3. Sharh al-Sudur, Chapter on Visiting Graves, Khilafat Academy, Swat, p. 84

फ़तावा रिज़विया जिल्द 9

"और जब वह ऐसी कब्र के पास से गुज़रे जिसे वह नहीं जानता और उसे सलाम करे, तो वह सलाम का जवाब देता है 1 -" | "और उसे पहचानता है, और जब ऐसी कब्र पर गुज़रता जिससे जान-पहचान न थी और सलाम करता है, मैय्यत उसे जवाब-ए-सलाम देता है (नोट)।"

हदीस (35): इमाम अक़ीली अबू हुरैरा (रज़ियल्लाहु अन्हु) से रिवायत करते हैं:

अबू ज़र्रीन (रज़ियल्लाहु अन्हु) ने अर्ज़ की: ऐ अल्लाह के रसूल! मेरा रास्ता मक़बरों (क़ब्रिस्तानों) पर से है। क्या कोई ऐसा कलाम है जो मैं उनसे गुज़रते हुए कहूँ? आपने फ़रमाया: कहो "सलाम हो तुम पर ऐ क़ब्र वालो! इस्लाम और ईमान वालों में से। तुम हमसे पहले चले गए और हम तुम्हारे पीछे आने वाले हैं, और हम इंशा अल्लाह तुम से मिलने वाले हैं।" अबू ज़र्रीन (रज़ियल्लाहु अन्हु) ने अर्ज़ की: ऐ अल्लाह के रसूल! क्या मुर्दे सुनते हैं? फ़रमाया: सुनते हैं लेकिन जवाब नहीं दे सकते 2। | यानी अबू ज़र्रीन (रज़ियल्लाहु अन्हु) ने अर्ज़ की: ऐ अल्लाह के रसूल! मेरा रास्ता क़ब्रिस्तानों पर से है। क्या कोई ऐसा कलाम है कि जब उन पर गुज़रूँ तो कहा करूँ फ़रमाया: यूँ कह, सलाम तुम पर ऐ क़ब्र वालो! अहले इस्लाम और अहले ईमान में से तुम हमारे आगे हो और हम तुम्हारे पीछे, और हम इंशा अल्लाह तआला तुम से मिलने वाले हैं। अबू ज़र्रीन (रज़ियल्लाहु अन्हु) ने अर्ज़ की: ऐ अल्लाह के रसूल! क्या मुर्दे सुनते हैं? फ़रमाया: सुनते हैं मगर जवाब नहीं दे सकते।

तम्बीह नबीह (महत्वपूर्ण सूचना): इमाम जलालुद्दीन सुयूती 'शरह उस-सुदूर' में इस हदीस के नीचे फ़रमाते हैं:

"यानी ऐसा जवाब जिसे ज़िंदा सुन सकें, वरना वे तो ऐसा जवाब देते हैं जो सुनाई नहीं देता 3।" | यानी हदीस की यह मुराद है कि मुर्दे ऐसा जवाब नहीं देते जिसे ज़िंदा सुन सकें, वरना वे ऐसा जवाब तो देते हैं जो हमारे सुनने में नहीं आता।

अक़ुल (मैं कहता हूँ): यह मानी ख़ुद इसी फ़स्ल (अध्याय) की दो पिछली हदीसों से साफ़ है कि उनमें साफ़ तौर पर फ़रमाया कि मुर्दे सलाम का जवाब देते हैं, और इसकी मिसाल वह है जो हदीस 15 में बक्र बिन अब्दुल्लाह मज़नी से गुज़री कि रूह सब कुछ देखती है मगर...

नोट: समहूदी कहते हैं कि इस बारे में हदीसें बहुत हैं और यह मानी अफ़राद और आम मोमिनीन के बारे में साबित है। 12 (म)

अल्लामा समहूदी फ़रमाते हैं: इस मायने में हदीसें बहुत हैं और यह मानी होना ख़ुद ही साबित है, उम्मत के अफ़राद और आम मोमिनीन में हक़ीक़त है। (त)

1. शुअबुल ईमान, हदीस 9296, दारुल कुतुबुल इल्मिय्याह, बैरुत, 7/171
2. किताबुज़ दुआफ़ा अल-कबीर, अनुवादक 3/157, दारुल कुतुबुल इल्मिय्याह, बैरुत, 19/2
3. शरह उस-सुदूर, बाब ज़ियारतुल क़ुबूर, ख़िलाफ़त एकेडमी, स्वात, पृ. 84

पृष्ठ 722/948

فتاٰی رضویہ جلد نہم

واذا مر بقبر لا یعرفه فسلم علیه رد علیه السلام 1 - | اور اسے پہچانتا ہے، اور جب ایسی قبر پر گزرتا جس سے جان پہچان نہ تھی اور سلام کرتا ہے میت اسے جواب سلام دیتا ہے عہ ۔

حدیث (۳۵) : امام عقیلی ابوہریرہ رضی اللہ تعالٰی عنہ سے راوی :

قال قال ابوزرین یا رسول اللہ ان طریقی علی الموتٰی فھل من کلام اتکلم به اذا مررت علیھم؟ قال قل السلام علیکم یا اھل القبور من المسلمین والمؤمنین انتم لنا سلفا ونحن لکم تبع تبعاً وانا ان شاء اللہ بکم لاحقون قال ابوزرین یا رسول اللہ یسمعون قال یسمعون ولکن لایستطیعون ان یجیبوا 2 - | یعنی ابو زرین رضی اللہ تعالٰی عنہ نے عرض کی یا رسول اللہ ! میرا راستہ مقابر پر ہے۔ کوئی کلام ایسا ہے کہ جب ان پر گزروں کہا کروں، فرمایا : یوں کہہ سلام تم پر اے قبر والو ! اہل اسلام اور اہل ایمان سے تم پر ہمارے آگے ہو اور ہم تمہارے پیچھے ، اور ہم ان شاء اللہ تعالٰی تم سے ملنے والے ہیں، ابو زرین رضی اللہ تعالٰی عنہ نے عرض کی یا رسول اللہ ! کیا مردے سنتے ہیں؟ فرمایا سنتے ہیں مگر جواب نہیں دے سکتے۔

تنبیہ نبیہ : امام جلال الدین سیوطی شرح الصدور میں اس حدیث کے نیچے فرماتے ہیں :

ای جواباً یسمعه الحی والا فھم یردون حیث لایسمع 3 - | یعنی حدیث کی یہ مراد ہے کہ مردے ایسا جواب نہیں دیتے جو زندے سن لیں ورنہ وہ ایسا جواب تو دیتے ہیں جو ہمارے سننے میں نہیں آتا۔

اقول : یہ معنی خود اسی فصل کی دو حدیث سابق سے واضح کہ ان میں تصریحاً فرمایا مُردے جواب سلام دیتے ہیں، اور اس کی نظیر وہ ہے جو حدیث ۱۵ میں بکر بن عبداللہ مزنی سے گزرا کہ روح سب کچھ دیکھتی ہے مگر

عہ : سمہودی گوید کہ احادیث درینمعنی بسیار است وایں معنی درآحادست و عموم مؤمنین متحقق ۱۲منہ (م)

علامہ سمہودی فرماتے ہیں اس معنی میں احادیث بہت ہیں اور یہ معنی ہونا خود ہی ثابت ہے افرادِ اُمت اور عام مومنین میں متحقق ہے۔(ت)

1 شعب الایمان حدیث ۹۲۹۶ دارالکتب العلمیۃ بیروت ۷ / ۱۷۱ 2 کتاب الضعفاء الکبیر مترجم ۳ / ۱۵۷ دار الکتب العلمیۃ بیروت ۱۹/۲ 3 شرح الصدور باب زیارۃ القبور خلافت اکیڈمی سوات ص ۸۴

Fatawa Ridawiyyah Volume 9

...cannot speak to forbid shouting and wailing. Its meaning is also the same: that they cannot make the living hear their words; otherwise, their speaking is mentioned in authentic hadiths. As mentioned in hadith 3 etc.

Second Warning: The humble author says, then our not hearing is also not permanent; hundreds of servants of God have heard the speech and greetings (salam) of the dead. Numerous narrations of which are mentioned in Sharh al-Sudur etc. And some have been quoted by this humble author for this same purpose, and it is not surprising if, God willing, more will be mentioned in their proper places.

Third Warning: Sufficient, beneficial, and important.

I say: And with Allah is success. The irony is that in the answer to the nineteenth question, the author of 'Ma'at Masa'il' also quoted this hadith from al-Qari, from al-Suyuti, from al-Uqayli, and accepted that the dead hear the greetings of the living[1]. By this much alone, he should consider all his maneuvers under question 26 as invalid, because in all five passages he relied upon, there is an absolute negation. Similarly, if the noble verse is wrongly assumed to negate hearing (samaa), then there too, greetings and speech have no specific exception. In the second passage, the incompatibility between death and understanding is clearly mentioned; in some places, even contradictory things are combined, and in the fifth passage, the word 'inanimate objects' (jamadat) is explicitly present; then before stones, greeting and speech are all the same. In short, if the meaning of the verse and these passages is the same, then in accepting the hearing of greetings, all these reliances are suddenly dismissed. Then, if you unjustly listen to the reliance on the hadith of Uqayli and the words of Qari and Suyuti, you will have to accept much more. Their powerful investigations and clear explanations will soon, God willing, be heart-rending for stubbornness and deviation in the third objective. Here, listen to the hadiths of Mustafa (peace and blessings of Allah be upon him), and the creed of considering past souls as inanimate objects and stones is gone. Speak the truth for God's sake: from one hadith of Uqayli you accepted the hearing of greetings, but from the authentic hadiths of Bukhari, Muslim, etc., hearing the sound of footsteps and hands dusting off, and besides greetings, hearing other types of speech, and those 'stones' recognizing their visitors, answering their greetings and finding comfort with them, and hundreds of other proven and mentioned matters—with what heart will he accept them? Or will it be a case of taking 'A' from one hadith and 'K' from another

(taking parts of hadith as per whim. Trans.)? Moreover, is this hadith of Uqayli itself not enough to reject this specific exception of greetings? Here too, from the dead, it is only 'Assalamu Alaikum'...

[1] Ma'at Masa'il, issue 19, Hearing of the Dead, Maktaba Tawheed wa Sunnat, Peshawar, p. 40.

फ़तावा रज़विया जिल्द नवीं

...बोल नहीं सकती कि शोर-ओ-फ़रियाद से मना करे। इसके मायने भी वही हैं कि अपनी बात ज़िन्दों (अह्या) को सुना नहीं सकते, वरना सही हदीसों में उनका कलाम करना आया है। जैसा कि हदीस ३ वग़ैरह में गुज़रा।

दूसरी चेतावनी: फ़क़ीर कहता है कि फिर हमारा यह न सुनना भी स्थायी नहीं है, सैकड़ों ख़ुदा के बंदों ने मृतकों (अमवात) का कलाम और सलाम सुना है। जिनकी कसरत से रिवायतें 'शरह अल-सुदूर' वग़ैरह में ज़िक्र हैं। और कुछ इसी मक़सद में फ़क़ीर ने भी नक़्ल की हैं और अजब नहीं कि इंशा अल्लाह तआला अपने मौक़े पर और भी ज़िक्र हों।

तीसरी चेतावनी: बस नफ़ा-बख़्श और अहम।

मैं कहता हूँ: और अल्लाह की तौफ़ीक़ से। ताज्जुब की बात यह है कि उन्नीसवें सवाल के जवाब में 'मआत मसाइल' के लेखक ने भी इस हदीस को अल-क़ारी से, अल-सुयूती से, अल-उक़ैली से नक़्ल किया और मृतकों के लिए जीवितों के सलाम का सुनना स्वीकार किया[1]। इसी क़दर से अपनी वह सब चालबाज़ियाँ जो सवाल २६ के तहत हैं बातिल मान लें, क्योंकि वहाँ जिन पाँच इबारतों से प्रमाण दिया गया, उन सब में मुतलक़ (पूर्ण) नफ़ी (अस्वीकृति) है। इसी तरह अगर आयत-ए-करीमा को ग़लती से समाअ (सुनने) का नफ़ी करने वाला मान लिया जाए तो वहाँ भी सलाम और कलाम की कोई विशेषता नहीं है। और दूसरी इबारत में तो मौत और उपर्युक्त समझ के बीच साफ़ विरोध बताया गया है; कहीं-कहीं तो दो विरोधी बातें भी जमा हो जाती हैं, और पाँचवीं इबारत में स्पष्ट रूप से 'जमादात' (निर्जीव वस्तुएँ) शब्द मौजूद है, फिर पत्थरों के सामने सलाम और कलाम सब एक बराबर हैं। संक्षेप में, अगर आयत और इन इबारतों का वही मतलब है, तो सलाम के समाअ को स्वीकार करने में इन सब प्रमाणों का एक साथ अंत हो जाता है। फिर बेकार ही यहाँ उक़ैली की हदीस और क़ारी व सुयूती के शब्दों को सुनने की ज़रूरत होगी, तो बहुत कुछ मानना पड़ेगा। उनकी ज़बरदस्त तहक़ीक़ात और साफ़ बयान इंशा अल्लाह तआला जल्द ही तीसरे मक़सद में हठधर्मी और अन्याय को चीरने वाले होंगे। इधर मुस्तफ़ा सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम की हदीसों पर कान रखा और पिछले लोगों की रूहों को निर्जीव और पत्थर मानने का धर्म गया। ज़रा ख़ुदा की क़सम खाकर कहिए, एक उक़ैली की हदीस से आपने सलाम का सुनना तो मान लिया, बुख़ारी व मुस्लिम वग़ैरह की सही हदीसों से जूतों की आहट और हाथ झटकने की आवाज़ और सलाम के अलावा और तरह के

कलाम भी सुनना, और उन 'पत्थरों' का अपने ज़ायरीन (दर्शनार्थियों) को पहचानना, उनके सलाम का जवाब देना और उनसे मानूस होना, और उनके अलावा सैकड़ों मामले जो साबित और ज़िक्र हैं, वह किस दिल से मानेगा? या वहाँ फिर 'किसी हदीस का अलिफ़ और किसी हदीस का काफ़ लीजियेगा' (अपनी मर्ज़ी से हदीस के हिस्से लेना। अनु.) की बात ठहरेगी? इसके अलावा, क्या ख़ुद यह उक़ैली की हदीस सलाम की इस विशेषता के खंडन के लिए कम है? यहाँ भी मृतकों से सिर्फ़'अस्सलाम-ओ-अलैकुम'...

[1] मआत मसाइल मसला १९, समाअत-ए-मौती, मकतबा तौहीद-ओ-सुन्नत पेशावर पृ. ४०।

पृष्ठ ७२३ का ९४८

بول نہیں سکتی کہ شور و فریاد سے منع کرے۔ اس کے معنی بھی وہی ہیں کہ اپنی بات احیاء کو سنا نہیں سکتے، ورنہ صحیح حدیثوں میں اس کا کلام کرنا وارد۔ جیسا کہ حدیث ۳ وغیرہ میں گزرا۔

تنبیہ دوم: فقیر کہتا ہے پھر یہ ہمارا نہ سننا بھی دائمی نہیں، صدہا بندگانِ خدا نے اموات کا کلام و سلام سنا ہے۔ جن کی بکثرت روایات خود شرح الصدور وغیرہ میں مذکور۔ اور بعض اسی مقصد میں فقیر نے بھی نقل کیں اور عجب نہیں کہ ان شاء اللہ تعالٰی اپنے محل پر اور بھی مذکور ہوں۔

تنبیہ سوم: بس نافع و مہم۔

اقول: وباللہ التوفیق طُرفہ یہ ہے کہ جواب سوال نوزدہم میں صاحب مائۃ مسائل نے بھی اس حدیث کو عن القاری عن السیوطی عن العقیلی نقل کیا اور اموات کے لیے سلامِ احیاء کا سننا مسلم رکھا[1]۔ اسی قدر سے اپنی وہ سب جولانیاں جو زیرِ سوال ۲۶ کے ہیں باطل مان لیں کہ وہاں جن پانچ عبارتوں سے استناد کیا ان سب میں نفی مطلق ہے۔ اسی طرح آیہ کریمہ بفرضِ غلط نافیِ سماع ہو تو وہاں بھی سلام و کلام کچھ تخصیص نہیں، اور عبارتِ دوم میں تو صاف منافاتِ موت و افہامِ مذکور کیا بعض جگہ متنافیین بھی جمع ہو جاتے ہیں، اور عبارتِ پنجم میں صریحاً لفظ جمادات موجود، پھر پتھروں کے آگے سلامِ کلام سب ایک سا۔ غرض اگر آیت اور ان عبارات کا وہی مطلب تو سماعِ سلام کی تسلیم میں ان سب استنادوں کو دفعتاً سلام ہو جاتا ہے۔ پھر ناحق اپنے یہاں حدیثِ عقیلی سے استناد اور کلماتِ قاری و سیوطی کی سنئے گا تو بہت کچھ ماننا پڑے گا۔ ان کی تحقیقاتِ قاہرہ و تصریحاتِ باہرہ عنقریب ان شاء اللہ تعالٰی مقصدِ ثالث میں جگر شگافِ مکابرہ و اعتساف ہوتے ہیں، ادھر مصطفٰی صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم کی حدیثوں پر کان رکھا اور ارواحِ گزشتہ گان

کو جماد و سنگ ماننے کا دھرم گیا۔ ذرا خدا لگتی کہنا ایک عقیلی کی حدیث سے آپ نے سماعِ سلام تو تسلیم کیا، بخاری و مسلم وغیرہ کی احادیثِ صحیحہ سے جوتوں کی پچپل اور ہاتھ جھاڑنے کی آواز اور سلام کے سوا اور انواعِ کلام بھی سننا اور ان پتھروں کا اپنے زائروں کو پہچاننا، ان کا جوابِ سلام دینا اور ان سے انس حاصل کرنا، اور ان کے سوا صدہا امور جو ثابت و مذکور وہ کس جی سے مانے گا، یا وہاں پھر فالف بعض الحدیث وکان ببعض (کسی حدیث کا الف اور کسی حدیث کا کاف لیجے گا۔ ت) کی ٹھہرے گی، علاوہ بریں خود یہ حدیثِ عقیلی اس تخصیصِ سلام کے رَد کو کیا تھوڑی ہے۔ یہاں بھی اموات سے فقط السلام علیکم

[1] مائۃ مسائل مسئلہ ۱۹ سماعت موتی مکتبہ توحید وسنت پشاور ص ۴۰

It was not said. Rub your eyes and see, ahead some conversation and address from these stones also appear: that 'You are our predecessors, we are your successors, if Allah wills, we shall meet you.' On all this conversation, Abu Zarrin (may Allah be pleased with him) asked: 'O Messenger of Allah! Do they hear?' He replied: 'Yes, they hear.' And the irony is that after this Hadith, he also quoted the saying of Imam Suyuti that not giving an answer in the Hadith refers to this. Otherwise, the dead actually, Subhan-Allah, hear the greetings, hear the speech, and also give answers. And then stone upon stone, 'To Allah we belong and to Him we shall return'.

Maulvi Ma'navi (may his secret be sanctified) spoke the truth:

We are all-hearing, all-seeing, and happy To you unacquainted ones, we are silent.1

(We are hearing and seeing and happy, but in front of you unacquainted ones, our lips are sealed. -T)

Hadith (36): Narrated in Tabarani's Mu'jam al-Awsat from Abdullah bin Umar Farooq (may Allah be pleased with him), the master of the universe, peace and blessings of Allah be upon him, stood at the graves of Mus'ab bin Umayr and his companions and said:

By Him in whose hand is my soul, no one greets them except that they respond until the Day of Resurrection 2 - By Him in whose hand is my life, whoever greets them until the Day of Resurrection, they will respond to him.

Hadith (38): Similarly, Hakim narrated from Abu Huraira (may Allah be pleased with him) in Sahih Mustadrak and authenticated it.

Hadith (38): In Hakim's Mustadrak with authentication and in Bayhaqi's Dala'il al-Nubuwwah via Attaf bin Khalid al-Makhzumi from Abd al-A'la bin Abdullah, from his father Abdullah bin Abi Farwa, the master of the universe, peace and blessings of Allah be upon him, went to visit the martyrs of Uhud and said:

O Allah! Your servant and Your Prophet bear witness that these are martyrs and whoever visits them or greets them until the Day of Resurrection, they will respond to him. 3 - O God! Your servant and Your Prophet testify that these are martyrs and whoever comes to visit them and greets them until the Day of Resurrection, they will respond.

Supplement to the Hadith: Attaf says my maternal aunt used to tell me, I once went to visit the graves of the martyrs, my...

---

1. Masnavi Maulvi Ma'navi, Book 3, Tale of a snake-catcher who considered a frozen dragon dead, Lucknow Press, page 72.
2. Sharh as-Sudur with reference to Al-Mu'jam al-Awsat, Chapter on Visiting Graves, Khilafat Academy Swat, page 85.
3. Al-Mustadrak lil-Hakim, Book al-Maghazi, Dar al-Fikr Beirut, 29/3.

फतावी रज़विया - जिल्द नहम

ऐसा नहीं कहा गया। ज़रा आँखें मलकर देखिए, आगे इन पत्थरों से कुछ बातचीत और संबोधन भी दिखाई देते हैं कि 'तुम हमारे पूर्वज हो, हम तुम्हारे उत्तराधिकारी हैं, इंशा अल्लाह हम तुमसे मिलेंगे।' इस पूरी बातचीत पर अबू ज़ररीन (रज़ियल्लाहु अन्हु) ने अर्ज़ किया: 'ऐ अल्लाह के रसूल! क्या वे सुनते हैं?' फ़रमाया: 'हाँ, वे सुनते हैं।' और मज़ा यह है कि इस हदीस के बाद इमाम सुयूती का वह कौल भी उद्धृत कर गए कि हदीस में जवाब न देने से यही मुराद है। वरना वास्तव में मृत, सुब्हानअल्लाह, सलाम भी सुनते हैं, बात भी सुनते हैं और जवाब भी देते हैं। और फिर पत्थर के पत्थर, इन्ना लिल्लाहि व इन्ना इलैहि राजिऊन।

मौलवी मानवी (क़ुद्दिस सिर्रहु) ने सच फ़रमाया:

हम सुनते हैं, देखते हैं और खुश हैं तुम जैसे नावाकिफों के सामने हम खामोश हैं।1

(हम सुनने वाले, देखने वाले और खुश हैं, लेकिन तुम जैसे अपरिचितों के सामने हमारे होंठों पर मोहर है। -टी)

हदीस (36): तबरानी की मोजम अल-औसत में अब्दुल्लाह बिन उमर फारूक (रज़ियल्लाहु अन्हु) से रिवायत है, हुज़ूर सैयदे आलम सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम मुसाब बिन उमैर और उनके साथियों की कब्रों पर खड़े हुए और फरमाया:

क़सम उस ज़ात की जिसके हाथ में मेरी जान है, कोई भी उन्हें सलाम नहीं करता सिवाय इसके कि वे क़यामत के दिन तक उसका जवाब दें। 2 - क़सम उसकी जिसके हाथ में मेरी जान है, क़यामत तक जो उन पर सलाम करेगा, वे जवाब देंगे।

हदीस (38): ठीक इसी तरह हाकिम ने सहीह मुस्तदरक में अबू हुरैरा (रज़ियल्लाहु अन्हु) से रिवायत करके इसकी तस्दीक की।

हदीस (38): हाकिम की मुस्तदरक में तस्दीक के साथ और बैहक़ी की दलाइलुन नुबुव्वह में अत्ताफ बिन खालिद मखज़ूमी के ज़रिए अब्दुल आला बिन अब्दुल्लाह से, उन्होंने अपने वालिद अब्दुल्लाह बिन अबी फरवा से रिवायत की है कि हुज़ूर सैयदे आलम सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम शोहदा-ए-उहुद की ज़ियारत के लिए तशरीफ़ ले गए और अर्ज़ किया:

ऐ अल्लाह! तेरा बंदा और तेरा नबी गवाही देता है कि ये शहीद हैं और क़यामत तक जो इनकी ज़ियारत को आएगा या उन्हें सलाम करेगा, वे उसे जवाब देंगे। 3 - इलाही! तेरा बंदा और तेरा नबी गवाही देता है कि ये शहीद हैं और क़यामत तक जो इनकी ज़ियारत को आएगा और उन पर सलाम करेगा, वे जवाब देंगे।

हदीस का पूरक: अत्ताफ कहते हैं कि मेरी खाला मुझसे बयान करती थीं, मैं एक बार शहीदों की कब्रों की ज़ियारत के लिए गई, मेरे...

---

1. मसनवी मौलवी मानवी, दफ्तर तीसरा, हिकायत मारगीरी कि अज़दहाए अफसुरदा रा मय पंदात, नवल किशोर प्रेस, पेज 72.
2. शरह अस-सुदूर बहवाला अल-मोजम अल-औसत, बाब ज़ियारतुल कुबूर, खिलाफत एकेडमी स्वात, पेज 85.
3. अल-मुस्तदरक लिल-हाकिम, किताबुल मगाज़ी, दारुल फिक्र बेरूत, 29/3.

نہ کہا گیا۔ ذرا آنکھیں مل کر ملاحظہ ہو آگے ان پتھروں سے کچھ کلام و خطاب بھی نظر آتے ہیں کہ تم ہمارے سلف، ہم تمہارے خلف، ہم ان شاء اللہ تعالٰی تم سے ملیں گے۔ اس سارے کلام پر ابو زرین رضی اللہ تعالٰی عنہ نے عرض کی: یارسول اللہ ! کیا وہ سنتے ہیں؟ فرمایا: ہاں سنتے ہیں۔ اور لطف یہ کہ اس حدیث کے بعد امام سیوطی کا وہ قول بھی نقل کرگئے کہ حدیث میں جواب نہ دینے سے یہ مراد ہے۔ ورنہ اموات واقع میں سبحان اللہ سلام بھی سنیں، کلام بھی سنیں، جواب بھی دیں۔ اور پھر پتھر کے پتھر، انا للہ وانا الیہ راجعون۔

سچ فرمایا مولوی معنوی قدس سرہ، نے: ع

ما سمیعیم و بصیریم و خوشیم با شما نامحرماں ما خامشیم1

(ہم سمیع و بصیر ہیں اور خوش ہیں مگر تم نامحرموں کے سامنے مہر بہ لب ہیں۔ت)

حدیث (۳۶): طبرانی معجم اوسط میں عبداللہ بن عمر فاروق رضی اللہ تعالٰی عنہ سے راوی، حضور سید عالم صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم مصعب بن عمیر اور ان کے ساتھیوں کے قبور پر ٹھہرے اور فرمایا:

والذی نفسی بیدہ لا یسلم علیہم احد الا ردوا الی یوم القیمۃ 2 - قسم اس کی جس کے ہاتھ میں میری جان ہے قیامت تک جو ان پر سلام کرے گا جواب دیں گے،

حدیث (۳۸): بعینہ اسی طرح حاکم نے صحیح مستدرک میں ابوہریرہ رضی اللہ تعالٰی عنہ سے روایت کر کے تصحیح کی۔

حدیث (۳۸): حاکم مستدرک میں بافادہ تصحیح اور بیہقی دلائل النبوۃ میں بطریق عطاف بن خالد مخزومی عبد الاعلی بن عبد اللہ سے وہ اپنے والد ماجد عبداللہ بن ابی فروہ سے راوی، حضور سید عالم صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم زیارت شہدائے احد کو تشریف لے گئے اور عرض کی:

اللھم ان عبدک و نبیک یشھد ان ھؤلاء شھداء و انہ من زارھم اوسلم علیھم الی یوم القیمۃ ردوا علیہ 3 - الہی ! تیرا بندہ اور تیرا نبی گواہی دیتا ہے کہ یہ شہید ہیں اور قیامت تک جوان کی زیارت کو آئے گا اور ان پر سلام کرے گا یہ جواب دیں گے۔

تتمہ حدیث: عطاف کہتے ہیں میری خالہ مجھ سے بیان کرتی تھیں میں ایک بار زیارت قبور شہداء کو گئی میرے

---

1 مثنوی مولوی معنوی دفتر سوم حکایت مار گیری کہ اژدہائے افسردہ را لخ نورانی کتب خانہ پشاور ص ۷۲ 2 شرح الصدور بحوالہ المعجم الاوسط باب زیارۃ القبور خلافت اکیڈمی سوات ص ۸۵ 3 المستدرک للحاکم کتاب المغازی دارالفکر بیروت ۲۹/۳

Fatawa Rizvia, Volume 9

...there was no one with me except two boys who were holding my riding animal. I offered greetings (salam) at the shrines, heard a reply, and a voice came: 'By Allah, we recognize you as we recognize one another.' By God, you people are recognized by us just as you recognize each other. The hair on my body stood on end. I mounted and returned.^1

Second narration (appropriate for it): Imam Bayhaqi narrated from Hashim bin Muhammad al-Umari: My father took me from Medina to visit the graves of Uhud. It was a Friday; morning had broken but the sun had not yet risen. I was behind my father. When we reached the graves, he said aloud: 'Peace be upon you for what you patiently endured. And excellent is the final home.' A reply came: 'And upon you be peace, O Abu Abdullah.' My father turned to me and said, 'O my son! Did you reply?' I said, 'No.' He took my hand, moved me to his right side, and repeated the said words. Again, the same reply was received. He did it a third time, and the same reply came. My father fell in prostration of gratitude before Allah Almighty.^2

Third narration: Ibn Abi al-Dunya and Bayhaqi in 'Dala'il' narrate from the maternal aunt of 'Attaf al-Makhzumi: One day I prayed near the grave of our leader Hamza (may Allah be pleased with him). At that time, there was no sign of any person in the entire wilderness. After prayer, I offered greetings (salam) at the pure shrine. A reply came, and along with it, this was said:

[Arabic]: Whoever passes beneath my grave, I recognize him just as I recognize that Allah Almighty created me, and as I recognize the night and the day.^3

Hadith (39): Ibn Abi al-Dunya and Bayhaqi in 'Shu'ab al-Iman' narrate from Hazrat Muhammad bin Wasi' (A): [Arabic]: He said: It has reached me that the deceased know about their visitors on the day of Friday, and a day before it, and a day after it.^4

(A): He is a Tabi'i, trustworthy (thiqa), a worshiper, a gnostic of Allah, of many virtues, from the narrators of Sahah Sitta, Al-Atrafayn 12 (m).

---

1. Al-Mustadrak lil-Hakim, Book of Al-Maghazi, Dar al-Fikr, Beirut, 29/3.
2. Dala'il al-Nubuwwah, Chapter: Saying of Allah 'Do not think of those...', Dar al-Kutub al-Ilmiyah, Beirut, 309/3.

3. Dala'il al-Nubuwwah, Chapter: Saying of Allah 'Do not think of those...', Dar al-Kutub al-Ilmiyah, Beirut, 308/3.
4. Shu'ab al-Iman, Hadith 9301, Dar al-Kutub al-Ilmiyah, Beirut, 18/7.

फ़तावा रज़विया, जिल्द नहम (खंड 9)

...मेरे साथ दो लड़कों के अलावा कोई नहीं था जो मेरी सवारी के जानवर को थामे हुए थे। मैंने मज़ारों पर सलाम किया, जवाब सुना, और आवाज़ आई: 'अल्लाह की कसम, हम तुम्हें वैसा ही पहचानते हैं जैसा हम एक-दूसरे को पहचानते हैं।' खुदा की कसम, तुम लोगों को हम वैसे ही पहचानते हैं जैसे तुम आपस में एक-दूसरे को। मेरे शरीर के रोंगटे खड़े हो गए। मैं सवार हुई और वापस आ गई।^1

दूसरी रिवायत (जो इसके उपयुक्त है): इमाम बैहक़ी ने हाशिम बिन मुहम्मद उमरी से रिवायत की: मेरे वालिद (पिता) मुझे मदीना से उहुद की कब्रों की ज़ियारत के लिए ले गए। जुमे का दिन था, सुबह हो चुकी थी लेकिन सूरज नहीं निकला था। मैं अपने वालिद के पीछे था। जब हम कब्रगाह के पास पहुंचे, तो उन्होंने ज़ोर से कहा: 'सलाम हो तुम पर तुम्हारी सब्र की वजह से, और क्या ही बेहतरीन है आख़िरत का घर।' जवाब आया: 'और आप पर भी सलाम हो, ऐ अबू अब्दुल्लाह।' वालिद ने मेरी तरफ मुड़कर देखा और कहा, 'ऐ मेरे बेटे! क्या तुमने जवाब दिया?' मैंने कहा, 'नहीं।' उन्होंने मेरा हाथ पकड़कर अपनी दाईं तरफ कर लिया और उसी कलाम को दोहराया। फिर वैसा ही जवाब मिला। तीसरी बार किया, फिर वही जवाब आया। मेरे वालिद अल्लाह तआला के सामने शुक्र के सजदे में गिर पड़े।^2

तीसरी रिवायत: इब्न अबी अदुनिया और बैहक़ी 'दलाइल' में उन्हें अत्ताफ़ मख़ज़ूमी की खाला (मौसी) से रावी (वर्णनकर्ता) हैं: एक दिन मैंने सैय्यदना हमज़ा (रज़ियल्लाहु अन्हु) की कब्र के पास नमाज़ पढ़ी। उस वक्त पूरे जंगल में किसी आदमी का नाम-ओ-निशान न था। नमाज़ के बाद मज़ार-ए-मुतह्हिर (पवित्र मज़ार) पर सलाम किया। जवाब आया और उसके साथ यह फरमाया:

[अरबी]: जो मेरी कब्र के नीचे से गुज़रता है, मैं उसे वैसे ही पहचानता हूँ जैसे यह पहचानता हूँ कि अल्लाह तआला ने मुझे पैदा किया है, और जैसे रात और दिन को पहचानता हूँ।^3

हदीस (39): इब्न अबी अदुनिया और बैहक़ी 'शुआबुल ईमान' में हज़रत मुहम्मद बिन वासे' (अ) से रावी हैं: [अरबी]: उन्होंने कहा: मुझे हदीस पहुँची है कि मुर्दे अपने ज़ायरीन (मुलाकातियों) को जुमे के दिन और उससे एक दिन पहले और एक दिन बाद पहचानते हैं।^4

(अ): ये ताबिई हैं, मोतबर (थिका), इबादत गुज़ार, आरिफ बिल्लाह, बहुत से गुणों वाले, सिहाह सत्ता के रावी, अल-अतराफ़ैन 12 (म)।

1. अल-मुस्तदरक लिल-हाकिम, किताबुल मगाज़ी, दारुल फिक्र, बेरुत, 29/3।
2. दलाइलुन नुबुवह, बाब: कौलुल्लाहि 'ला तहसबन्नल लज़ीना...', दारुल कुतुबुल इल्मिय्या, बेरुत, 309/3।
3. दलाइलुन नुबुवह, बाब: कौलुल्लाहि 'ला तहसबन्नल लज़ीना...', दारुल कुतुबुल इल्मिय्या, बेरुत, 308/3।
4. शुअबुल ईमान, हदीस 9301, दारुल कुतुबुल इल्मिय्या, बेरुत, 18/7।

ساتھ دولڑکوں کے سوا کوئی نہ تھا جو میری سواری کا جانور تھامے تھے۔ میں نے مزارات پر سلام کیا، جواب سنا، اور آواز آئی: واللہ انا نعرفکم کما یعرف بعضنا بعضا خدا کی قسم تم لوگوں کو ایسا پہچانتے ہیں جیسے آپس میں ایک دوسرے کو۔ میرے بدن پر بال کھڑے ہوگئے۔ سوار ہوئی اور واپس آئی۔[1]

روایت دوم مناسب او: امام بیہقی نے ہاشم بن محمد عمری سے روایت کی: مجھے میرے باپ مدینہ سے زیارت قبور اُحد کو لے گئے، جمعہ کا روز تھا، صبح ہوچکی تھی، آفتاب نہ نکلا تھا، میں اپنے باپ کے پیچھے تھا، جب مقابر کے پاس پہنچے انھوں نے بآواز کہا: سلام علیکم بما صبرتم فنعم عقبی الدار۔ جواب آیا: وعلیکم السلام یا ابا عبداللہ۔ باپ نے میری طرف مڑ کر دیکھا اور کہا کہ اے میرے بیٹے! تو نے جواب دیا؟ میں نے کہا: نہ۔ انھوں نے میرا ہاتھ پکڑ کر اپنی داہنی طرف کر لیا اور کلام مذکور کا اعادہ کیا، دوبارہ ویسا ہی جواب ملا، سہ بارہ کیا پھر وہی جواب ہوا۔ میرے باپ اللہ تعالیٰ کے حضور سجدہ شکر میں گر پڑے۔[2]

روایت سوم: ابن ابی الدنیا اور بیہقی دلائل میں انھیں عطاف مخزومی کی خالہ سے راوی: ایک دن میں نے قبر سیدنا حمزہ رضی اللہ تعالیٰ عنہ کے پاس نماز پڑھی، اس وقت جنگل بھر میں کسی آدمی کا نام ونشان نہ تھا۔ بعد نماز مزار مطہر پر سلام کیا۔ جواب آیا اور اس کے ساتھ یہ فرمایا:

من یخرج من تحت القبر اعرف ان | جو میری قبر کے نیچے سے گزرتا ہے میں اسے پہچانتا ہوں جیسا اللہ خلقني وکما اعرف اللیل والنہار[3] ۔ | یہ پہچانتا ہوں کہ اللہ تعالیٰ نے مجھے پیدا کیا ہے اور جس طرح | رات اور دن کو پہچانتا ہوں۔

حدیث (۳۹): ابن ابی الدنیا اور بیہقی شعب الایمان میں حضرت محمد بن واسع ۸عہ سے راوی: قال بلغنی ان الموتی یعلمون بزوار ھم یوم الجمعۃ | مجھے حدیث پہنچی ہے کہ مردے اپنے زائروں کو جانتے ہیں جمعہ ویوما قبلہ ویوما بعدہ۸4 ۔ | کے دن اور ایک دن اس سے پہلے اور ایک دن اس سے بعد۔

عہ: یہ تابعی ہیں، ثقہ، عابد، عارف باللہ، کثیر المناقب، رجال صحاح ستہ سے، الاطرافین ۱۲منہ (م)

---

۱۸ المستدرک للحاکم کتاب المغازی دارالفکر بیروت ۲۹/۳ ۲۸ دلائل النبوۃ باب قول اللہ لاتحسبن الذین دارالکتب العلمیہ بیروت ۳۰۹/۳ ۳۸ دلائل النبوۃ باب قول اللہ لاتحسبن الذین دارالکتب العلمیہ بیروت ۳۰۸/۳ 4۸ شعب الایمان حدیث ۹۳۰۱ دارالکتب العلمیہ بیروت ۱۸/۷

فتاوىٰ رضويہ (Fatawa Rizwia), Volume 9

Note: The meaning of this Hadith is that due to the blessing of Friday, their knowledge and perception are broadened during these three days. The recognition and acquaintance they have on these days are more abundant than on other days. It is not that these three days are the only ones for knowledge and perception; as you have just heard, there are numerous absolute Hadiths of the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) which establish their knowledge and perception without specific days. The clarification of this meaning will be mentioned in the Third Objective, God willing.

Section Five: Noble Hadiths proving that the hearing of those in graves is not limited to greetings (Salam), but they also hear other speech and sounds:

Hadith (40): Al-Bukhari, Muslim, Abu Dawood, Tirmidhi, and An-Nasa'i in their Sahihs, and Imam Ahmad in his Musnad, narrate from Anas bin Malik (may Allah be pleased with him) that the Master of the World (peace and blessings of Allah be upon him) said:

واللفظ لمسلم ان الميت اذا وضع فی قبره انه یسمع خفق نعالهم اذا انصرفوا 1	**(Words are of Muslim - Translator). When the deceased is placed in the grave and people return after burial, he certainly hears the sound of their shoes.**

Hadith (41): Ahmad and Abu Dawood, with a good (jayyid) chain of narration, narrate from Bara' bin 'Azib (may Allah be pleased with him) that the Master of the World (peace and blessings of Allah be upon him) said:

ان المیت یسمع خفق نعالهم اذا و لو امدبرین 2	**Certainly, the deceased hears the sound of footwear when people turn their backs on him.**

Hadith (42): Al-Bayhaqi and At-Tabarani narrate from Abdullah ibn Abbas (may Allah be pleased with them) that the Master of the World (peace and blessings of Allah be upon him) said:

ان المیت اذا دفن یسمع خفق نعالهم اذا ولّوا عنه منصرفین 3	**Certainly, when the deceased is buried and people return, he hears the sound of their shoes.**

Imam Suyuti mentioned the Hadith of Al-Bayhaqi in Sharh us-Sudur: "With a fair (hasan) chain of narration 4" (Its chain is fair - Translator). And the chain...

1 Sahih Muslim, Chapter on Showing the Place of the Deceased, Qadeemi Kutub Khana Karachi, 2/386 2 Musnad Ahmad bin Hanbal, Marwiyat Al-Bara' ibn 'Azib, Dar al-Fikr Beirut, 4/296 3 Kanz al-Ummal, referencing At-Tabarani, Hadith 42739, Maktaba al-Turath al-Islami Egypt, 15/200 4 Sharh us-Sudur, Chapter on the Trial of the Grave, Khilafat Academy Swat, p. 50

फ़तावा रज़विया (Fatawa Rizwia), खंड 9

नोट: इस हदीस का अर्थ यह है कि जुमे की बरकत के कारण इन तीन दिनों में उनके ज्ञान और बोध का विस्तार होता है। इन दिनों में उन्हें जो पहचान और परिचय प्राप्त होता है, वह अन्य दिनों की तुलना में अधिक प्रचुर होता है। ऐसा नहीं है कि केवल यही तीन दिन ज्ञान और बोध के लिए हैं; जैसा कि आपने अभी सुना है, पैगंबर (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) की कई निरपेक्ष हदीसें हैं जो बिना दिनों के विशिष्टीकरण के उनके ज्ञान और बोध को स्थापित करती हैं। इस अर्थ का स्पष्टीकरण इंशा अल्लाह तीसरे उद्देश्य में वर्णित किया जाएगा।

पाँचवाँ खंड: वे महान हदीसें जिनसे यह सिद्ध होता है कि कब्र वालों का सुनना केवल सलाम तक ही सीमित नहीं है, बल्कि वे अन्य बातें और आवाजें भी सुनते हैं:

हदीस (40): बुखारी, मुस्लिम, अबू दाऊद, तिर्मिज़ी और नसाई ने अपनी सहीह में और इमाम अहमद ने अपनी मसनद में अनस बिन मालिक (रज़ियल्लाहु अन्हु) से रिवायत किया है कि हुज़ूर पुर नूर सय्यिदुल आलम (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) ने फरमाया:

واللفظ لمسلم ان الميت اذا وضع فى قبره انه يسمع خفق نعالهم اذا انصرفوا 1	**(मुस्लिम के शब्द ये हैं - अनु.) जब मुर्दे को कब्र में रखा जाता है और लोग दफन करके वापस लौटते हैं, तो वह यकीनन उनके जूतों की आवाज़ सुनता है।**

हदीस (41): अहमद और अबू दाऊद ने अच्छी (जय्यिद) सनद के साथ बराअ बिन आज़िब (रज़ियल्लाहु अन्हु) से रिवायत किया है, सय्यिदे आलम (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) ने फरमाया:

ان الميت يسمع خفق نعالهم اذا و لو امدبرين 2	**बेशक मुर्दा जूतों की आहट सुनता है जब लोग उसे पीठ दिखाकर वापस मुड़ते हैं।**

हदीस (42): बैहक़ी और तबरानी ने अब्दुल्ला इब्न अब्बास (रज़ियल्लाहु अन्हुमा) से रिवायत किया है, सरवरे आलम (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) ने फरमाया:

ان الميت اذا دفن يسمع خفق نعالهم اذا ولّوا عنه منصرفين 3	**बेशक जब मुर्दा दफनाया जाता है और लोग वापस आते हैं, तो वह उनके जूतों की आवाज़ सुनता है।**

इमाम सुयूती ने शरहुस सुदूर में बैहक़ी की हदीस के बारे में फरमाया: "हसन सनद के साथ 4" (इसकी सनद हसन है - अनु.) और सनद...

---

1 सहीह मुस्लिम, बाब अर्ज़ मकअद अल-मय्यित, कदीमी कुतुब खाना कराची, 2/386 2 मसनद अहमद बिन हंबल, मरवियात अल-बराअ इब्न आज़िब, दारुल फिक्र बेरुत, 4/296 3 कंज़ुल उम्माल, तबरानी के हवाले से हदीस 42739, मकतबतुत तुराथ अल-इस्लामी मिस्र, 15/200 4 शरहुस सुदूर, बाब फितनतुल कब्र, खिलाफत अकादमी स्वात, पृ. 50

पृष्ठ 726/948

فتاوٰی رضویہ، جلد نہم

تنبیہ: اس حدیث کے یہ معنی کہ بوجہ برکت جمعہ ان تین دن میں ان کے علم و ادراک کو زیادہ وسعت دیتے ہیں، جو معرفت و شناسائی انھیں ان روزوں میں ہوتی ہے اور دنوں سے بیش وافروں میں ہے نہ یہ کہ صرف یہی تین دن علم و ادراک کے ہوں، ابھی سن چکے کہ نبی صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم کی احادیث کثیرہ مطلق ہیں جن میں بلا تخصیص ایام ان کا علم و ادراک ثابت فرمایا۔ تصریح اس معنی کی ان شاء اللہ مقصد سوم میں مذکور ہوگی۔

فصل پنجم: میں وہ جلیل حدیثیں جن سے ثابت کہ سماع اہل قبور سلام ہی پر مقصود نہیں بلکہ دیگر کلام واصوات بھی سنتے ہیں:

حدیث (۴۰): بخاری و مسلم و ابوداؤد و ترمذی ونسائی اپنے صحاح اور امام احمد مسند میں انس بن مالک رضی اللہ تعالٰی عنہ سے راوی، حضور پر نور سید العالم صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم فرماتے ہیں:

واللفظ لمسلم ان المیت اذا وضع فی قبرہ انہ یسمع خفق نعالھم اذا انصرفوا ۱

(مسلم کے الفاظ یہ ہیں۔ ت) مردہ جب قبر میں رکھا جاتا ہے اور لوگ دفن کرکے پلٹتے ہیں بیشک وہ ان کی جوتیوں کی آواز سنتا ہے۔

حدیث (۴۱): احمد و ابوداؤد بسند جید براء بن عازب رضی اللہ تعالٰی عنہ سے راوی، سید عالم صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم نے فرمایا:

ان المیت یسمع خفق نعالھم اذا و لو امدبرین ۲

بیشک مردہ جوتیوں کی پچھل سنتا ہے جب لوگ اسے پیٹھ دے کر پھرتے ہیں۔

حدیث (۴۲): بیہقی و طبرانی عبداللہ ابن عباس رضی اللہ تعالیٰ عنہما سے راوی، سرورِ عالم صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم فرماتے ہیں:

ان المیت اذا دفن یسمع خفق نعالھم اذا ولّوا عنہ منصرفین ۳ بیشک جب مردہ دفن ہوتا ہے اور لوگ واپس آتے ہیں وہ ان کی جوتیوں کی آواز سنتا ہے۔

حدیث بیہقی کو امام سیوطی نے شرح الصدور میں فرمایا: باسناد حسن ۴ (اس کی سند حسن ہے۔ ت) اور سند

---

1 صحیح مسلم باب عرض مقعد المیت قدیمی کتب خانہ کراچی ۲/۳۸۶ 2 مسند احمد بن حنبل مرویات البراء ابن عازب دارالفکر بیروت ۴/۲۹۶ 3 کنز العمال بحوالہ طبرانی حدیث ۴۲۷۳۹ مکتبۃ التراث الاسلامی مصر ۱۵/۲۰۰ 4 شرح الصدور باب فتنۃ القبر خلافت اکیڈمی سوات ص ۵۰

Fatawa Razawiyya Volume 9

Al-Tabarani has been mentioned by Allama al-Munawi in al-Taysir: 'Its narrators are reliable' (T).

Hadith (23): Ibn Abi Shaybah in his 'Musannaf', Ibn Hibban in his 'Sahih' named 'al-Taqasim wa al-Anwa'', Hakim al-Nishapuri in 'al-Mustadrak 'ala al-Sahihayn', al-Baghawi in 'Sharh al-Sunnah', al-Tabarani in 'al-Mu'jam al-Awsat', Hannad in 'Kitab al-Zuhd', Sa'id bin al-Sakan in his 'Sunan', and Ibn Jarir, Ibn Mundhir, Ibn Marduwayh, and al-Bayhaqi in their respective works narrated from Abu Huraira (may Allah be pleased with him) that the Master of the World (peace and blessings of Allah be upon him) said:

By Him in whose hand is my life, when the deceased is placed in his grave, he hears the sound of people's footwear as they turn away from him.	By Him in whose hand is my soul, indeed when the deceased is placed in his grave, he hears the sound of their footwear as they turn away from him.[2]

Hadith (24): Juwaybir narrated a long Hadith in his 'Tafsir' from 'Abdullah bin 'Abbas (may Allah be pleased with them both) in which it is stated that the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) said:

Indeed, he certainly hears the tapping of your shoes and the sound of dusting hands when you turn your backs and walk away from him.	For indeed, he hears the sound of your footwear and the dusting of your hands when you turn away from him as retreaters.[3]

Hadith (25): Al-Tabarani and Ibn Marduwayh narrate from Abu Huraira (may Allah be pleased with him) with a good (Hasan) chain in a long Hadith:

He said: We attended a funeral in the company of the Noble Messenger (peace and blessings of Allah be upon him). When the burial was completed and the people departed, the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) said: "He is now hearing the sound of your shoes."	He said: We witnessed a funeral with the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him). When the burial was finished and the people departed, he said: "He now hears the sound of your footwear."[4] - The Hadith

Great Benefit: The six Hadiths mentioned from forty to forty-five have already proven to be irrefutable; until today, no reasonable response has been found against them. Their utmost effort is that the aforementioned hearing is initially...

[1] Al-Taysir bi-Sharh al-Jami' al-Saghir, under 'Inna al-mayyit idha dufina', Maktabat al-Imam al-Shafi'i, Riyadh, 1/303 [2] Al-Mustadrak li al-Hakim, 'al-Mayyit yasma'u khafqa ni'alihim', Dar al-Fikr, Beirut, 1/380 [3] Sharh al-Sudur, citing Juwaybir, Chapter on the Trial of the Grave, Khilafat Academy Swat, p. 51 [4] Sharh al-Sudur, citing Tabarani al-Awsat, Chapter on the Trial of the Grave, Khilafat Academy Swat, p. 54

फ़तावा रज़विया जिल्द नहम

अल्लामा मुनावी ने अल-तयसीर में तबरानी के बारे में कहा: 'रज़ालुहु सिक़ात' (इसके रावी विश्वसनीय हैं। - त)

हदीस (23): इब्न अबी शैबा ने अपनी मुसन्निफ़ में, इब्न हिब्बान ने अपनी सहीह अल-तका़सीम व अल-अनवा' नामी में, हाकिम नीशापुरी ने अल-मुस्तदरक अलस-सहीहैन में, बग़वी ने शरह उस-सुन्ना में, तबरानी ने मुअजम औसत में, हन्नाद ने किताबुज़ ज़ुहद में, सईद बिन अल-सकन ने अपनी सुनन में, और इब्न जरीर, इब्न मुन्ज़िर, इब्न मर्दविया और बैहक़ी ने अपनी-अपनी रचनाओं में हज़रत अबू हुरैरा (रज़ियल्लाहु तआला अन्हु) से रिवायत की है कि हुज़ूर सय्यद-ए-आलम (सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम) ने फ़रमाया:

उस ज़ात की क़सम जिसके हाथ में मेरी जान है, जब मुर्दा क़ब्र में रखा जाता है तो वह लोगों के जूतों की आवाज़ सुनता है जब वे उसके पास से लौटते हैं।	वल्लज़ी नफ़्सी बियदिही इन्नल मययिता इज़ा वुज़िआ फ़ी क़ब्रिही इन्नहू लयसमाउ खफ़्क़ा निआलिहिम हीना युवलूना अन्हु[2]

हदीस (24): जुवैबिर ने अपनी तफ़्सीर में हज़रत अब्दुल्लाह बिन अब्बास (रज़ियल्लाहु तआला अन्हुमा) से एक लंबी हदीस रिवायत की जिसमें है कि रसूलुल्लाह (सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम) ने फ़रमाया:

बेशक वह यक़ीनन तुम्हारे जूतों की चाप और हाथ झाड़ने की आवाज़ सुनता है जब तुम उसकी तरफ़ से पीठ फेरकर चलते हो।	फ़इन्नहू यस्माउ खफ़्क़ा निआलिकुम व नफ़्ज़ अयदीकुम इज़ा वल्लैतुम अन्हु मुदबिरीन[3]

हदीस (25): तबरानी और इब्न मर्दविया एक लंबी हदीस में हज़रत अबू हुरैरा (रज़ियल्लाहु तआला अन्हु) से हसन सनद के साथ रावी:

उन्होंने फ़रमाया: हम रसूलुल्लाह (सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम) के साथ एक जनाज़े में शरीक थे। जब उसके दफ़्न से फ़ारिग़ हुए और लोग लौटे, तो हुज़ूर ने इरशाद फ़रमाया: "अब वह तुम्हारे जूतों की आवाज़ सुन रहा है।"	क़ाला शहिदना जनाज़तन मआ रसूलिल्लाहि सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम फ़लम्मा फ़रग़ा मिन दफ़्निहा वन-सरफ़न-नासु क़ाला इन्नहुल आ-ना यस्माउ खफ़्क़ा निआलिकुम[4] - अल हदीस

फ़ायदा-ए-जलीला: चालीस से पैंतालीस तक जो छह हदीसें ज़िक्र हुईं, वे पहले ही लाजवाब साबित हो चुकी हैं; आज तक उनका कोई माक़ूल जवाब न मिला न मिलेगा। उनकी तरफ़ से ज़्यादा से ज़्यादा कोशिश यह है कि ज़िक्र किया गया सुनना (समाअ) शुरू में...

---

[1] अल-तयसीर बि-शरह अल-जामि-अस-सग़ीर, तात इन्नल मय्यित इज़ा दुफ़िना, मकतबतुल इमाम अल-शाफ़ई रियाद, 1/303 [2] अल-मुस्तदरक लिल हाकिम, अल-मययित यस्माउ खफ्का निआलिहिम, दारुल फिक्र बैरूत, 1/380 [3] शरह उस-सुदूर, जुवैबिर के हवाले से, बाब फ़ितनतुल क़ब्र, ख़िलाफ़त एकेडमी स्वात, पृष्ठ 51 [4] शरह उस-सुदूर, तबरानी औसत के हवाले से, बाब फ़ितनतुल क़ब्र, ख़िलाफ़त एकेडमी स्वात, पृष्ठ 54

فتاوٰی رضویہ جلد نہم

طبرانی کو علامہ مناوی نے تیسیر میں کہا: رجالہ ثقات 1 (اس کے رجال ثقہ ہیں۔ت)

حدیث (۲۳): ابن ابی شیبہ نے اپنے مصنف اور ابن حبان نے صحیح مسمٰی بالتقاسیم والانواع اور حاکم نیشاپوری نے الصحیح المستدرک علی البخاری و مسلم اور بغوی نے شرح السنہ اور طبرانی نے معجم اوسط اور ہناد نے کتاب الزہد اور سعید بن السکن نے اپنی سنن اور ابن جریر وابن منذر وابن مردویہ وبیہقی نے اپنی اپنی تصانیف میں ابوہریرہ رضی اللہ تعالٰی عنہ سے روایت کی، حضور سید عالم صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم نے فرمایا:

قسم اس کی جس کے ہاتھ میں میری جان ہے جب مردہ قبر میں رکھا جاتا ہے کفش پائے مردم کی آواز سنتا ہے جب اس کے پاس سے پلٹتے ہیں۔ والذی نفسی بیدہ ان المیت اذا وضع فی قبرہ انہ لیسمع خفق نعالھم حین یولون عنہ 2

حدیث (۲۴): جویبر نے اپنی تفسیر میں عبداللہ بن عباس رضی اللہ تعالٰی عنہما سے ایک حدیث طویل روایت کی جس میں ہے کہ رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم نے فرمایا:

بیشک وہ یقیناً تمہارے جوتوں کی پچپل اور ہاتھ جھاڑنے کی آواز سنتا ہے جب تم اس کی طرف سے پیٹھ پھیر کر چلتے ہو۔ فانہ یسمع خفق نعالھم ونفض ایدیکم اذا ولیتم عنہ مدبرین 3

حدیث (۲۵): طبرانی وابن مردویہ ایک حدیث طویل میں ابوہریرہ رضی اللہ تعالٰی عنہ سے بسند حسن راوی:

فرمایا: ہم ایک جنازہ میں حضور اقدس صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم کے ہمراہ رکاب حاضر تھے۔ جب اس کے دفن سے قال شھدنا جنازۃ مع رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم فلما فرغ من دفنھا

فارغ ہوئے اور لوگ پلٹے حضور نے ارشاد فرمایا: اب وہ وانصرف الناس قال انه الآن یسمع خفق نعالکم 4- الحدیث

تمہاری جوتیوں کی آواز سن رہا ہے۔

فائدہ جلیلہ: چالیس سے پینتالیس تک جو چھ حدیثیں مذکور ہوئیں پہلے ہی لاجواب ٹھہر چکی ہیں، آج تک کوئی جواب معقول ان سے نہ ملا نہ ملے۔ غایت سعی ان کی طرف سے یہ ہے کہ سماع مذکور کو اول

---

1 التیسیر بشرح الجامع الصغیر تحت ان المیت اذا دفن مکتبۃ الامام الشافعی ریاض ۱/ ۳۰۳ 2 المستدرک للحاکم المیت یسمع خفق نعالهم دار الفکر بیروت ۱/ ۳۸۰ 3 شرح الصدور بحوالہ جویبر باب فتنۃ القبر خلافت اکیڈمی سوات ص ۵۱ 4 شرح الصدور بحوالہ طبرانی اوسط باب فتنۃ القبر خلافت اکیڈمی سوات ص ۵۴

Fatawa Razawiyya Volume 9

If one makes a specification from "placement in the grave," meaning that when they are placed in the grave and earth is poured over them, at that time the deceased receives such hearing power because the questioning by Munkar and Nakir is about to happen, hence they are granted such senses beforehand, and then after the questioning, this power does not remain. However, in fairness, this claim is purely without evidence and futile. Firstly, this specification is against the apparent meaning of the Hadith, for which no evidence is established. The Hadiths clearly state that the deceased's hearing power in the grave is sharp and strong to that degree. How was it known that it is granted only for that time and then goes away? Secondly, what is the meaning of receiving senses beforehand for the introduction to the questioning? Could they not be granted at the exact moment of questioning, or does God's bestowal, God-forbid, take some time that it was necessary to be arranged beforehand? Both these objections were presented by the researcher Sheikh, Maulana Abdul Haq Muhaddith Dehlvi (may Allah have mercy on him) in "Madarij al-Nubuwwah":

Where he said: This specification is against the apparent and there is no evidence for it.	This specification is against the apparent. There is no evidence for it either.
The apparent meaning of the Hadith is that this state is acquired by the deceased in the grave, and	The apparent meaning of the Hadith is that this state occurs for the deceased inside the grave, and
reviving the deceased is at the time of questioning, so reviving it before that	reviving the deceased is at the time of questioning, so before that,
for the introduction to the questioning—what meaning does it have?	what meaning does reviving for the introduction to the questioning have? (T)

Thirdly, as I say, even if we concede that it was necessary to receive consciousness and senses beforehand, the need was only to the extent that he could hear and understand the talk of the Nakyrayn (Munkar and Nakir). What was the need for such great power that despite so many barriers, he hears such faint sounds effortlessly? These same gentlemen provide the same justification for the issue of 'oath regarding striking'—that the dead do not feel pain or harm from our striking; its perception is for the sake of divine punishment. Similarly, his hearing should have been for the

questioning of Nakyrayn, not for external sounds. Fourthly, as I also say: if the issue of an oath in speech is based on lack of hearing, as they claimed. And now you too...

Note: Warning: This is also contrary to research that indeed there is pain. See the third section of this purpose and the fifth of the third purpose 12, from him, may Allah Almighty keep him safe.

---

[1] Madarij al-Nubuwwah, original on hearing, Maktaba Nooria Razawiya Sukkur 2/95

फ़तावा रज़विया जिल्द नहुम (9)

अगर 'कब्र में रखने' से विशिष्टता (तख़्सीस) की जाए, यानी जब कब्र में रखकर मिट्टी डाल दी जाती है, उस समय मृतक को ऐसी सुनने की शक्ति मिलती है क्योंकि अब जल्द ही मुनकर-नकीर के सवाल होने वाले हैं, इसके लिए पहले से ऐसे होश-ओ-हवास अता हो जाते हैं, फिर सवाल के बाद यह शक्ति नहीं रहती। हालाँकि, निष्पक्ष रूप से यह दावा पूरी तरह से बिना प्रमाण और निरर्थक है। पहला यह कि यह विशिष्टता हदीस के प्रत्यक्ष अर्थ के विरुद्ध है, जिस पर कोई प्रमाण स्थापित नहीं है। हदीसें साफ़-साफ़ बता रही हैं कि मृतक की सुनने की शक्ति कब्र में उस स्तर तक तेज़ और मज़बूत होती है। यह कहाँ से जाना गया कि यह केवल उसी समय के लिए मिलती है और फिर चली जाती है? दूसरा यह कि सवाल की प्रस्तावना के लिए पहले से होश मिल जाने का क्या मतलब है? क्या सवाल के समय तुरंत नहीं मिल सकते थे या अल्लाह की देन में, अल्लाह न करे, कुछ देर लगती है कि पहले से इंतज़ाम होना ज़रूरी हुआ? ये दोनों आपत्तियाँ शोधकर्ता शेख मौलाना अब्दुल हक़ मुहद्दिस देहलवी (रहमतुल्लाह अलैहि) ने 'मदारिज अल-नुबुव्वा' में प्रदान की हैं:

जैसा कि उन्होंने कहा: यह विशिष्टता प्रत्यक्ष के विरुद्ध है और इस पर कोई प्रमाण भी नहीं है।	यह विशिष्टता प्रत्यक्ष के विरुद्ध है। इस पर कोई प्रमाण भी नहीं है,
हदीस का प्रत्यक्ष अर्थ यह है कि मृतक को कब्र के अंदर यह स्थिति प्राप्त होती है, और	हदीस का प्रत्यक्ष अर्थ यह है कि कब्र के अंदर मृतक की यह स्थिति होती है
सवाल के समय मृतक को जीवित करना है, तो उससे पहले जीवित करना	मृतक को जीवित करना सवाल के समय है तो उससे पहले
सवाल की प्रस्तावना के लिए जीवित करने का क्या अर्थ है?	सवाल की प्रस्तावना के लिए जीवित करने का क्या अर्थ है? (त)

तीसरा, जैसा कि मैं कहता हूँ: मान लिया कि पहले ही से होश-ओ-हवास मिलना ज़रूरी था, लेकिन ज़रूरत उतनी ही थी जिसमें वह मुनकर और नकीर की बात सुन और समझ लेता, इतनी बड़ी शक्ति की क्या ज़रूरत थी कि इतने अवरोधों के बावजूद ऐसी हल्की आवाज़ें सहजता से सुन ले? यही हज़रत 'मारने के बारे में शपथ' (यमीन फी अल-ज़र्ब) के मसले की यही व्याख्या करते हैं कि हमारे मारने से मुर्दे को तकलीफ़ या पीड़ा नहीं होती, इसका एहसास ईश्वरीय दंड के लिए है। इसी प्रकार, उसका सुनना मुनकर-नकीर के सवाल के लिए होना चाहिए था, न कि बाहरी आवाज़ों के लिए। चौथा,

जैसा कि मैं यह भी कहता हूँ: यदि बातचीत में शपथ का मसला सुनने के अभाव पर आधारित हो जैसा कि उन्होंने समझा। और अब आपने भी...

नोट: चेतावनी: यह बात भी शोध के विरुद्ध है कि निश्चित रूप से पीड़ा होती है। इस मक़सद के तीसरे अनुभाग और तीसरे मक़सद के पांचवें को देखें, अल्लाह तआला उन्हें सुरक्षित रखे।

---

[1] मदारिज अल-नुबुव्वा, सुनने के विषय में मूल, मकतबा नूरिया रज़विया सुक्कुर 2/95

فتاوٰی رضویہ جلد نہم

وضع فی القبر سے تخصیص کریں یعنی جب قبر میں رکھ کر مٹی دیتے ہیں اس وقت میت کو ایسی قوتِ سامعہ ملتی ہے کہ اب عنقریب سوال منکر نکیر ہونے والا ہے اس کے لیے پیشتر سے ایسے حواس عطا ہو جاتے ہیں، پھر بعد سوال یہ قوت نہیں رہتی۔ حالانکہ عند الانصاف یہ ادعا محض بے دلیل ولا طائل ہے۔ اولاً یہ تخصیص ظاہرِ حدیث کے خلاف جس پر کوئی دلیل قائم نہیں۔ حدیثیں صاف صاف ارشاد فرما رہی ہیں کہ میت کی قوتِ سامعہ قبر میں اس درجہ تیز اور قوی ہے کہاں سے جانا کہ یہ اسی وقت کے لیے ملتی ہے اور پھر جاتی رہتی ہے۔ ثانیاً مقدمہ سوال کے لیے پیشتر سے حواس مل جانا کیا معنیٰ کیا فوراً وقتِ سوال نہ مل سکتی تھی یا عطائے الٰہی میں معاذ اللہ کچھ دیر لگتی ہے کہ پہلے سے اہتمام ہو رہنا ضرور ہوا۔ یہ دونوں اعتراض شیخ محقق مولانا عبد الحق محدث دہلوی رحمۃ اللہ تعالیٰ علیہ نے مدارج النبوۃ میں افادہ فرمائے:

حیث قال ایں تخصیص خلاف ظاہر است و دلیلے نیست بر آن

یہ تخصیص ظاہر کے خلاف ہے۔ اس پر کوئی دلیل بھی نہیں،

وظاہر حدیث آنست کہ ایں حالت حاصل ست میت دارد قبر و

ظاہر حدیث یہ ہے کہ قبر کے اندر میت کی یہ حالت ہوتی ہے

زندہ گردانیدن میت در وقت سوال است و پیش ازاں زندہ

میت کو زندہ کرنا سوال کے وقت ہے تو اس سے پہلے

گردانیدن برائے مقدمہ سوال چہ معنی دارد۔ 1

مقدمہ سوال کے لیے زندہ کرنا کیا معنی رکھتا ہے۔(ت)

وثالثاً کما اقول سلمنا (جیسے کہ میں کہتا ہوں ہم تسلیم ہم کرتے) کہ پہلے ہی سے ہوش و حواس مل جانا ضروری تھا مگر حاجت اسی قدر تھی جس میں وہ نکیرین کی بات سن سمجھ لیتا اس قدر قوتِ عظیمہ کی کیا ضرورت تھی کہ باوجود اتنے حائلوں کے ایسی ہلکی آوازیں بے تکلف سنے۔ خود یہی حضرات مسئلہ یمین فی الضرب (مارنے کے بارے میں قسم) کی یہی توجیہ کرتے ہیں کہ ہمارے مارے سے مُردے کو تکلیف یا ایذاء نہیں ہوتی اس کا ادراک عذاب الٰہی کے واسطے ہے۔ یونہی چاہیے تھا کہ اس کا سماع سوالِ نکیرین کے لیے ہو، نہ اصواتِ خارجہ کے واسطے۔ ورابعاً کما اقول ایضاً اگر مسئلہ یمین فی الکلام عدمِ سماع پر مبنی ہو کما زعموا۔ اور اب آپ نے بھی عہ:

تنبیہ: یہ بات بھی خلافِ تحقیق ہے کہ بیشک ایذا ہوتی ہے۔ دیکھو اس مقصد کی فصل سوم اور مقصد سوم کی پنجم ۱۲منہ سلمہ اللہ تعالیٰ۔

---

1 مدارج النبوۃ اصل در سماعت مکتبہ نوریہ رضویہ سکھر ۹۵/۲

Fatawa Rizvia, Volume 9

By the authority of the compelling Hadiths, if hearing (of the deceased) is accepted for even a short duration, then it becomes necessary that the person speaking to this deceased person becomes a perjurer (one who breaks an oath), as this is based on your own admission which is eliminated here. However, the matter is absolutely general. Inevitably, it must be admitted that faith is based on common understanding ('urf), and conventionally, after death, this type of act is not considered 'speaking'. Therefore, it remained restricted to the state of life. We will say that now there has been a return to the truth; indeed, this is the basis of this issue, and now it has no relation to the denial of the hearing of the dead (*Sama' al-Mawta*), as is evident. Similarly, it should be said to the Najdi people that if you also believe in the authentic Hadiths of Mustafa (peace and blessings of Allah be upon him) and accept the hearing of the deceased, even if it is only for that specific time, then let the decree be issued: if any Muslim, immediately after the burial of a righteous servant, seeks help and requests prayers from him, then even that should not be considered impermissible based on the denial (of hearing). Just summon some courage and grant permission for that specific time.

Fifthly, as I also say: Death has an equal relationship with all senses, perceptions, and other attributes of life. God forbid, if it were considered becoming like a stone, then hearing, seeing, understanding, and speaking would all necessarily be nullified. And these honorable personages have themselves stated that death is not contrary to understanding. Now, what is the answer to those Hadiths mentioned in the first, second, and third chapters, which prove that the deceased always recognize their visitors, derive comfort from them, respond to their greetings, and are pained by their improprieties, etc., among the mentioned matters? Well, here the specification of the question's premise emerged; what specialty will come in these premises?

Note: All this discourse of mine is actually addressed to those deniers who understood these meanings from the scholars' statements. Otherwise, in my view, it is possible for their statements to have a place that is not contrary to the creed of the people of truth. If the honorable Maulana recalls these statements in response to me, then at that time, God willing, I will present that fine and refined research. And it is not surprising that some of it will be revisited in the third objective. And to return is better. Success is from Allah, Glorified and Exalted.

Hadith (46): Narrated by Abdullah bin Umar (may Allah be pleased with him) in Sahih Bukhari and other sources:

Arabic Text	Urdu Translation
اطلع النبی صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم علی اھل القلیب فقال وجدتم ما وعد ربکم حقا فقیل لہ اتدعوا مواتا فقال ما انتم باسمع منھم	That is, the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) went to the well of Badr, in which the corpses of the disbelievers were lying. Then he said: "Did you find what your Lord promised you to be true?" meaning the punishment. Someone submitted: "O Messenger of Allah, do you call out to the dead?" He replied: "You do not hear better than they do."

फ़तावा रज़विया, जिल्द 9

प्रबल हदीसों के अधिकार से, यदि इतनी देर के लिए भी (मृतक का) सुनना स्वीकार किया जाता है, तो यह अनिवार्य हो जाता है कि इस मृतक से बात करने वाला व्यक्ति शपथ तोड़ने वाला (हानिस) हो जाए, क्योंकि यह आपकी अपनी स्वीकृति पर आधारित है जो यहाँ समाप्त हो गई। हालाँकि, यह मामला पूरी तरह से सामान्य है। अनिवार्य रूप से, यह मानना होगा कि विश्वास 'उर्फ (सामान्य समझ) पर आधारित है, और प्रथागत रूप से, मृत्यु के बाद इस प्रकार के कार्य को 'बात करना' नहीं समझा जाता है। इसलिए, यह जीवन की अवस्था तक ही सीमित रहा। हम कहेंगे कि अब सत्य की ओर वापसी हुई है; वास्तव में, इस मुद्दे का आधार यही है, और अब मृतकों के सुनने (समाअ-ए-मौता) के इनकार से इसका कोई संबंध नहीं रहा, जैसा कि स्पष्ट है। इसी प्रकार, नजद के लोगों से कहा जाना चाहिए कि यदि आप भी मुस्तफ़ा (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) की सही हदीसों पर विश्वास करते हैं और मृतक के सुनने को स्वीकार करते हैं, चाहे वह उसी विशिष्ट समय के लिए ही क्यों न हो, तो अब हुक्म जारी किया जाए: यदि कोई मुसलमान, किसी नेक बंदे के दफन होने के तुरंत बाद, उनसे सहायता मांगे और दुआ की दरख्वास्त करे, तो वह भी सुनने के इनकार के आधार पर अवैध नहीं होना चाहिए। ज़रा साहस जुटाकर उस विशिष्ट समय के लिए अनुमति दे दीजिए।

पाँचवीं बात, जैसा कि मैं भी कहता हूँ: मृत्यु का जीवन की सभी इंद्रियों, बोधों और अन्य गुणों के साथ समान संबंध है। ईश्वर न करे, यदि इसे पत्थर होना माना जाए, तो सुनना, देखना, समझना और बोलना, सभी का अमान्य होना आवश्यक हो जाएगा। और इन सम्मानित व्यक्तियों ने स्वयं कहा है कि मृत्यु समझ के विपरीत नहीं है। अब उन हदीसों का क्या उत्तर है जो पहले, दूसरे और तीसरे अध्यायों में गुजरी हैं, जिनसे सिद्ध होता है कि मृतक हमेशा अपने मिलने वालों को पहचानते हैं, उनसे सुकून पाते हैं, उनके सलाम का जवाब देते हैं और उनकी अनुचित बातों से उन्हें पीड़ा पहुँचती है, आदि उल्लेखित मामलों में? खैर, यहाँ तो प्रश्न की प्रस्तावना का विनिर्देश निकला था; इन प्रस्तावनाओं में क्या विशेषता आएगी?

चेतावनी: मेरा यह सारा प्रवचन वास्तव में उन इनकार करने वालों के लिए है जिन्होंने विद्वानों के कथनों से ये अर्थ समझे हैं। अन्यथा, मेरे विचार में, उनके कथनों का ऐसा स्थान संभव है जो सत्य के मार्ग पर चलने वालों की मान्यताओं के विरुद्ध न हो। यदि मौलवी साहब मेरे उत्तर में इन कथनों को याद करेंगे, तो उस समय, ईश्वर ने चाहा तो, मैं वह सूक्ष्म और परिष्कृत शोध प्रस्तुत करूँगा। और

कोई आश्चर्य नहीं कि तीसरे उद्देश्य में इसके कुछ हिस्सों की ओर वापसी हो। और लौटना बेहतर है। सफलता अल्लाह, जो महिमामय और उच्च है, की ओर से ही है।

हदीस (46): सही बुखारी आदि में अब्दुल्लाह बिन उमर (रज़ियल्लाहु अन्हु) से वर्णित है:

अरबी पाठ	**हिंदी अनुवाद**
اطلع النبی صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم علی اھل القلیب فقال وجدتم ما وعد ربکم حقا فقیل لہ اتدعوا مواتا فقال ما انتم باسمع منھم	यानी नबी (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) बद्र के कुएँ पर तशरीफ ले गए जिसमें काफिरों की लाशें पड़ी थीं। फिर फ़रमाया: "क्या तुमने वह पाया जो तुम्हारे रब ने तुमसे सच्चा वादा किया था?" यानी अज़ाब। किसी ने अर्ज़ किया: "हुज़ूर, क्या आप मुर्दों को पुकारते हैं?" आप (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने उत्तर दिया: "तुम उनसे अधिक बेहतर नहीं सुनते हो।"

بشوکتِ احادیثِ قاہرہ اتنی دیر کے لیے سماع تسلیم کیا تو واجب کہ اس میّت سے کلام کرنے والا حانث ہو کہ وہ مبنی آپ کے اقرار سے یہاں منتفی، حالانکہ مسئلہ قطعاً مطلق ہے، لاجرم ماننا پڑے گا کہ ایمان عرف پر مبنی اور عرفاً اس قسم سے بعد موت کلام کرنا نہیں سمجھا جاتا۔ لہٰذا حالتِ حیات سے مقید رہا، ہم کہیں گے اب حق کی طرف رجوع ہوئے، واقعی اس مسئلہ کا یہی مبنی ہے اور اب انکارِ سماعِ مونٰی سے اسے کچھ علاقہ نہ رہا کمالا یخی، اسی طرح حضراتِ نجدیہ سے کہا جائے کہ اگر آپ بھی احادیثِ صحیحہ مصطفٰی صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم پر ایمان لا کر سماعتِ میّت تسلیم کرتے ہیں۔ اگر اس وقت خاص ہی میں سہی، تو اب حکمِ ارشاد ہو، اگر کوئی بندہ مسلمان کسی عبدِ صالح کے دفن ہوتے ہی فوراً اس سے استمداد و طلبِ دعا کرے تو بھی وہ بربنائے انکارِ یعنی عدمِ سماع متقق نہ ہو۔ ذرا جی کڑا کر کے اس وقت خاص ہی میں اجازت دے دیجئے۔

وخامسا کما اقول ایضاً موت کو تمام احواس و ادراکات و دیگر اوصافِ حیات سے یکساں نسبت ہے۔ معاذ اللہ اگر پتھر ہونا ٹھہرا تو سننا، دیکھنا، سمجھنا، بولنا سب کا بطلان لازم۔ اور یہ حضراتِ کرام خود فرما چکے کہ موت منافیِ فہم ہے۔ اب کیا جواب ہے ان حدیثوں سے جو فصل اول و دوم و سوم میں گزریں، جن سے ثابت کہ اموات ہمیشہ اپنے زائروں کو پہچانتی ہے اور ان سے انس حاصل کرتی اور ان کے سلام کا جواب دیتی اور ان کی بے اعتدالیوں سے ایذا پاتی ہیں الی غیر ذلک من المامور المذکورۃ (امورِ مذکورہ جیسے دیگر امور۔ ت) بھلا یہاں تو مقدمہ سوال کی تخصیص نکلی تھی ان مقدمات میں کونسی خصوصیت آئے گی۔

تنبیہ: میرا یہ سب کلام حقیقتاً ان حضراتِ منکرین سے ہے جو عباراتِ علماء کے یہ معنی سمجھے، ورنہ فقیر کے نزدیک ان کے ارشاد کا وہ محل ممکن جو عقیدہ اہل حق سے مخالف نہ ہو۔ مولوی صاحب اگر جواب فقیر میں ان عبارات کو یاد کریں گے اس وقت انشاء اللہ تعالیٰ وہ تحقیق تدقیق انیق حاضر کروں گا۔ اور عجب نہیں کہ مقصد سوم میں اس کی بعض کی طرف عود ہو۔ والعود احمد (اور عود کرنا اچھا ہے۔ ت) وباللہ سبحانہ و تعالٰی التوفیق۔

حدیث (۴۶) : صحیح بخاری شریف وغیرہ میں عبداللہ بن عمر رضی اللہ تعالیٰ عنہ سے مروی :

متنِ عربی **اردو ترجمہ**

اطلع النبی صلی اللہ تعالٰی علیہ یعنی نبی صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم چاہِ بدر پر تشریف لے گئے وسلم علی اھل القلیب فقال وجدتم ما جس میں کفار کی لاشیں پڑی تھیں۔ پھر فرمایا: تم نے پایا جو وعد ربکم حقا فقیل لہ اتدعوا مواتا تمہارے رب نے تمہیں سچا وعدہ دیا تھا۔ یعنی عذاب۔ کسی نے فقال ما انتم باسمع منھم عرض کی: حضور مردہ کو پکارتے

- But they do not respond.[1] He (the Prophet) said: You do not hear what I say any better than they do, but they do not give an answer.

Hadith (47): Narrated in Sahih Muslim from Amir al-Mu'minin 'Umar Faruq al-Azam (may Allah be pleased with him):

Indeed, Allah's Messenger (peace and blessings of Allah be upon him) used to show us the places where the polytheists of Badr would be killed, and he recounted the hadith until he said: Then Allah's Messenger (peace and blessings of Allah be upon him) went until he reached them and said, "O so-and-so son of so-and-so, and O so-and-so son of so-and-so, have you found what Allah and His Messenger promised you to be true? For I have indeed found what Allah promised me to be true." Umar said, "O Messenger of Allah! How can you speak to bodies in which there are no souls?" He replied, "You do not hear what I am saying better than they do, except that they are not able to respond to me at all."[2]

That is, the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) used to show us the killing grounds of the infidels of Badr, saying that here such-and-such infidel will be killed and here such-and-such; wherever the Prophet had pointed out, their corpses fell right there. Then, by the Prophet's command, those carcasses were filled into a well. The Master of the World (peace and blessings of Allah be upon him) went there and called those ignoble infidels name by name, using their names and their fathers' names, and said: "Have you also found to be true the promise that God and His Messenger gave you? For I have found to be true the right and promise that Allah the Almighty gave me." Amir al-Mu'minin Umar (may Allah be pleased with him) asked: "O Messenger of Allah! Why does your Presence speak to these bodies in which there are no souls?" He replied: "Regarding what I am saying, you do not hear it any better than them, but they do not have the power to return an answer to me."

Hadith (48): Similarly, it is narrated in Sahih Muslim etc. from Anas (may Allah be pleased with him), and in it, it is stated that the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) went to that well after three days and said in response to Umar Faruq (may Allah be pleased with him):

"By Him in whose hand is my soul, you do not hear what I say better than they do, but they are not able to respond."[3]

I swear by Him in whose hand of power is my life, you and they are equal in hearing what I am saying, but they do not have the power to give an answer.

[1] Al-Sahih lil-Bukhari, Chapter on what has been narrated regarding the punishment of the grave, Qadimi Kutub Khana, Karachi, 1/183 [2] Sahih Muslim, Chapter on what has been narrated regarding the place of the deceased, Qadimi Kutub Khana, Karachi, 2/387 [3] Sahih Muslim, Chapter on what has been narrated regarding the place of the deceased, Qadimi Kutub Khana, Karachi, 2/387

- लेकिन वे जवाब नहीं देते।[1] इरशाद फरमाया: तुम उनसे ज्यादा सुनने वाले नहीं हो, पर वे जवाब नहीं देते।

हदीस (47): सहीह मुस्लिम शरीफ में अमीरुल मोमिनीन उमर फारूक-ए-आज़म रज़ियल्लाहु तआला अन्हु से मरवी है:

यकीनन रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम हमें बद्र के काफिरों के कत्ल होने की जगहें दिखाते थे और पूरी हदीस बयान की यहाँ तक कि फरमाया: फिर रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम चले यहाँ तक कि उनके पास पहुँचे और फरमाया, "ऐ फलां इब्ने फलां और ऐ फलां इब्ने फलां, क्या तुमने वह पाया जो अल्लाह और उसके रसूल ने तुमसे वादा किया था? मैंने तो वह सच पाया जो अल्लाह ने मुझसे वादा किया था।" उमर ने कहा, "या रसूलुल्लाह! आप उन शरीरों से कैसे बात करते हैं जिनमें रूहें नहीं हैं?" फरमाया, "तुम मेरी बात को उनसे ज्यादा सुनने वाले नहीं हो, सिवाय इसके कि वे मुझे कुछ भी जवाब देने की कुदरत नहीं रखते।"[2]

यानी रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम हमें कुफ्फार-ए-बद्र की कत्लगाहें दिखाते थे कि यहाँ फलां काफिर कत्ल होगा और यहाँ फलां; जहाँ-जहाँ हुज़ूर ने बताया था, वहीं-वहीं उनकी लाशें गिरीं। फिर हुज़ूर के हुक्म से वे मुर्दा जिस्म एक कुएं में भर दिए गए। सैय्यद-ए-आलम सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम वहाँ तशरीफ ले गए और उन ज़लील काफिरों को नाम-ब-नाम उनके और उनके पिताओं के नाम लेकर पुकारा, और फरमाया: क्या तुमने भी वह पाया जो सच्चा वादा खुदा और रसूल ने तुम्हें दिया था? मैंने तो वह पा लिया जो हक़ और वादा अल्लाह तआला ने मुझे दिया था। अमीरुल मोमिनीन उमर रज़ियल्लाहु तआला अन्हु ने अर्ज़ की: या रसूलुल्लाह! हुज़ूर उन जिस्मों से क्योंकर कलाम करते हैं जिनमें रूहें नहीं? फरमाया: जो मैं कह रहा हूँ उसे तुम उनसे ज्यादा नहीं सुनते, मगर उन्हें यह ताकत नहीं कि मुझे पलट कर जवाब दें।

हदीस (48): इसी तरह सहीह मुस्लिम वगैरह में अनस रज़ियल्लाहु तआला अन्हु से मरवी है और उसमें है कि नबी सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम तीन दिन बाद उस कुएं पर तशरीफ ले गए और उमर फारूक रज़ियल्लाहु तआला अन्हु के जवाब में फरमाया:

"कसम उसकी जिसके हाथ में मेरी जान है, तुम मेरी बात को उनसे बेहतर नहीं सुनते, लेकिन वे जवाब देने में सक्षम नहीं हैं।"[3]

कसम उसकी जिसके दस्त-ए-कुदरत में मेरी जान है, मैं जो फरमा रहा हूँ उसके सुनने में तुम और वे बराबर हो मगर वे जवाब देने की ताकत नहीं रखते।

[1] अस-सहीह लिल-बुखारी, बाब मा जा-अ फी अज़ाबिल कब्र, कदीमी कुतुब खाना कराची, 1/183 [2] सहीह मुस्लिम, बाब मा जा-अ मकअदिल मय्यित, कदीमी कुतुब खाना कराची, 2/387 [3] सहीह मुस्लिम, बाब मा जा-अ मकअदिल मय्यित, कदीमी कुतुब खाना कराची, 2/387

ولکن لا یجیبون ۱۔ ہیں، ارشاد فرمایا: تم کچھ ان سے زیادہ نہیں سننے والے پر وہ جواب نہیں دیتے۔

حدیث (۴۷): صحیح مسلم شریف میں امیر المومنین عمر فاروق اعظم رضی اللہ تعالی عنہ سے مروی:

ان رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم کان یرینا مصارع اھل بدر و ساق الحدیث الی ان قال فانطلق رسول اللہ صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم حتی انتھی الیھم فقال یا فلان بن فلان ویا فلان بن فلان ھل وجدتم ما وعدکم اللہ ورسولہ حق فانی قد وجدت ما وعدنی اللہ حقا قال عمر یا رسول اللہ کیف تکلم اجسادا لا ارواح فیھا قال ما انتم بأسمع لما اقول منھم غیر انھم لا یستطیعون ان یردوا علی شیئا ۲۔

یعنی رسول اللہ صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم ہمیں کفار بدر کی قتل گاہیں دکھاتے تھے کہ یہاں فلاں کافر قتل ہوگا اور یہاں فلاں ، جہاں جہاں حضور نے بتایا تھا وہیں وہیں ان کی لاشیں گریں۔ پھر بحکم حضور وہ جیفے ایک کنویں میں بھر دئے گئے۔ سید عالم صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم وہاں تشریف لے گئے اور نام بنام ان کفار لیام کو ان کا اور ان کے باپ کا نام لے کر پکارا، اور فرمایا: تم نے بھی پایا جو سچا وعدہ خدا اور رسول نے تمھیں دیا تھا کہ میں نے تو پا لیا جو حق و وعدہ اللہ تعالیٰ نے مجھے دیا تھا۔ امیر المومنین عمر رضی اللہ تعالیٰ عنہ نے عرض کی یا رسول اللہ ! حضور نے ان جسموں سے کیونکر کلام کرتے ہیں جن میں روحیں نہیں۔ فرمایا: جو میں کہہ رہا ہوں کسے کچھ تم ان سے زیادہ نہیں سنتے مگر انھیں یہ طاقت نہیں کہ مجھے لوٹ کر جواب دیں۔

حدیث (۴۸): یونہی صحیح مسلم وغیرہ میں انس رضی اللہ تعالیٰ عنہ سے مروی اور اس میں ہے کہ نبی صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم تین دن بعد اس کنویں پر تشریف لے گئے اور عمر فاروق رضی اللہ تعالیٰ عنہ کے جواب میں فرمایا:

والذی نفسی بیدہ ما انتم بأسمع لما اقول منھم ولکنھم لا یقدرون ان یجیبوا ۳۔

قسم اس کی جس کے دستِ قدرت میں میری جان ہے میں جو فرما رہا ہوں اس کے سننے میں تم اور وہ برابر ہو مگر وہ جواب دینے کی طاقت نہیں رکھتے۔

۱- الصحیح للبخاری باب ما جاء فی عذاب القبر قدیمی کتب خانہ کراچی ۱/ ۱۸۳ ۲- صحیح مسلم باب ما جاء مقعد المیت قدیمی کتب خانہ کراچی ۲/ ۳۸۷ ۳- صحیح مسلم باب ما جاء مقعد المیت قدیمی کتب خانہ کراچی ۲/ ۳۸۷

Volume 9

Fatawa Rizvia

Hadith (49): Likewise, in Sahih Bukhari and Sahih Muslim, a Hadith is narrated from Abu Talha Ansari (may Allah be pleased with him):

"As for Bukhari, he narrated it in detail, whereas Muslim referred it to the Hadith of Anas (may Allah be pleased with him)."

Imam Bukhari mentioned it in detail, but Imam Muslim provided the detail by referring to the Hadith narrated by Anas (may Allah be pleased with him). (T)

Hadith (50): Tabarani narrated with a sound (Sahih) chain from Abdullah ibn Mas'ud (may Allah be pleased with him) that the Master of the Universe (peace and blessings of Allah be upon him) said:

"They hear just as you hear, but they do not answer."

Just as you hear, they also hear in the same way, but they do not reply.

Hadith (51): Similarly, the aforementioned Imam Sulaiman bin Ahmad narrated from the Hadith of Abdullah bin Saydan (may Allah be pleased with him).

Important Warning: Whatever has been said in response to these six Hadiths is nothing more than specifying without a specifier and making a claim without proof. For example, [claiming] that this was a special miracle of the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him). Or that this event occurred only for those disbelievers to increase their regret and remorse, whereas there is absolutely no evidence for such a specification. If such leeway is given, then any legal text (Nass) could be specified however one wishes. And even weaker than these is the weak interpretation that the Prophet's (peace and blessings of Allah be upon him) address was not actually a address to the dead, but was a lesson and advice for the living; whereas the essence of the Hadith itself is a sufficient proof for its rejection. The Holy Prophet (peace and blessings of Allah be upon him), in response to the Commander of the Faithful [Umar] al-Faruq (may Allah be pleased with him), clearly stated their [the dead's] ability to hear, not that "this speech of ours is only for the warning of the living." Like someone's hemistich in the elegy for our master Imam Hussain (may Allah be pleased with him):

"O water, turn into dust, for your honor remains no more." (O water! Be dust, for your honor is gone. T)

The remaining discussions regarding this can be found in Fath al-Bari, Irshad al-Sari, and Umdat al-Qari, which are commentaries on Sahih Bukhari and...

1. As-Sahih li-l-Bukhari, Chapter: What has been narrated regarding the punishment of the grave, Qadimi Kutub Khana, Karachi, 1/82-183; Sahih Muslim, Chapter: The seat of the deceased, Qadimi Kutub Khana, Karachi, 2/387.
2. Fath al-Bari, with reference to Abdullah bin Saydan, Chapter: The killing of Abu Jahl, Dar al-Ma'rifah, Beirut, 8/259.

खंड 9

फ़तावा-ए-रिज़विया

हदीस (49): इसी प्रकार सहीह बुखारी और सहीह मुस्लिम में हज़रत अबू तलहा अंसारी (रज़ियल्लाहु अन्हु) से हदीस वर्णित है:

"जहाँ तक बुखारी का सवाल है, उन्होंने इसे विस्तार से वर्णित किया है, जबकि मुस्लिम ने इसे हज़रत अनस (रज़ियल्लाहु अन्हु) की हदीस के हवाले से संदर्भित किया है।"

इमाम बुखारी ने इसे विस्तार से उल्लेख किया, लेकिन इमाम मुस्लिम ने हज़रत अनस (रज़ियल्लाहु अन्हु) की हदीस के हवाले से विस्तार दिया। (त)

हदीस (50): तबरानी ने सहीह सनद के साथ हज़रत अब्दुल्लाह बिन मसूद (रज़ियल्लाहु अन्हु) से रिवायत की कि सैयदे आलम (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने फ़रमाया:

"वे वैसे ही सुनते हैं जैसे तुम सुनते हो, लेकिन वे जवाब नहीं देते।"

जैसे तुम सुनते हो, वैसे ही वे भी सुनते हैं, लेकिन जवाब नहीं देते।

हदीस (51): इसी तरह उपर्युक्त इमाम सुलेमान बिन अहमद ने अब्दुल्लाह बिन सैदान (रज़ियल्लाहु अन्हु) की हदीस से रिवायत की।

महत्वपूर्ण चेतावनी: इन छह हदीसों के जवाब में जो कुछ कहा गया है, वह बिना किसी प्रमाण के विशिष्ट करने और बिना किसी सबूत के दावा करने से बढ़कर कुछ नहीं है। उदाहरण के लिए, [यह दावा करना कि] यह नबी (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) का एक विशेष चमत्कार (मोजज़ा) था। या यह कि यह मामला केवल उन काफ़िरों के लिए उनकी हसरत और पछतावे को बढ़ाने के लिए हुआ था, जबकि उनकी विशिष्टता पर मूल रूप से कोई प्रमाण नहीं है। यदि ऐसी छूट दी जाए, तो हर शरई हुक्म (नस्स) को अपनी इच्छानुसार विशिष्ट बनाया जा सकेगा। और इनसे भी अधिक कमज़ोर यह कमज़ोर व्याख्या (तावील) है कि नबी (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) का यह संबोधन वास्तव में मृतकों से संबोधन नहीं था, बल्कि जीवितों के लिए एक सीख और उपदेश था; जबकि हदीस का मूल शब्द ही इसके खंडन के लिए पर्याप्त प्रमाण है। हुज़ूर अकदस (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने अमीरुल मोमिनीन फारूक (रज़ियल्लाहु अन्हु) के जवाब में स्पष्ट रूप से उनके सुनने के बारे में फ़रमाया, न

कि यह कि "हमारा यह कलाम केवल जीवितों को चेतावनी देने के लिए है।" जैसे सैय्यदना इमाम हुसैन (रज़ियल्लाहु अन्हु) के मर्सिए में किसी का मिसरा (काव्य पंक्ति) है:

"ऐ आब खाक शो के तरा आबरू नमान्द" (हे जल! मिट्टी हो जा कि तेरी प्रतिष्ठा अब नहीं रही। त)

बाकी इसके बारे में चर्चाएँ फ़तह अल-बारी, इरशाद अल-सारी और उम्दत अल-कारी में मिल सकती हैं, जो सहीह बुखारी की शरहें (टीकाएँ) हैं और...

1. अस्-सहीह लिल-बुखारी, बाब: कब्र के अज़ाब के बारे में जो आया है, कदीमी कुतुब खाना, कराची, 1/82-183; सहीह मुस्लिम, बाब: मृतक की बैठक, कदीमी कुतुब खाना, कराची, 2/387।
2. फ़तह अल-बारी, हज़रत अब्दुल्लाह बिन सैदान के हवाले से, बाब: अबू जहल की हत्या, दार अल-मआरिफ़ा, बेरूत, 8/259।

पृष्ठ 731 / 948

جلد نہم

فتاوٰی رضویہ

حدیث (۴۹): یوہی صحیح بخاری و صحیح مسلم میں حدیث ابو طلحہ انصاری رضی اللہ تعالٰی عنہ سے مروی ہے:

اما البخاری فساقه بطاله و اما مسلم فاحاله علی حدیث انس رضی اللہ تعالٰی عنہ۔

امام بخاری نے تو اسے تفصیل سے ذکر کیا مگر امام مسلم نے تفصیل حدیث انس رضی اللہ تعالٰی عنہ کے حوالہ سے کی۔ (ت)

حدیث (۵۰): طبرانی نے بسند صحیح عبداللہ بن مسعود رضی اللہ تعالٰی عنہ سے روایت کی سید عالم صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم نے فرمایا:

یسمعون کما تسمعون و لکن لا یجیبون۔

جیسا تم سنتے ہو ویسا ہی وہ بھی سنتے ہیں مگر جواب نہیں دیتے۔

حدیث (۵۱): اسی طرح امام سلیمان بن احمد مذکور نے حدیث عبداللہ بن سیدان رضی اللہ تعالٰی عنہ سے روایت کی۔

تنبیہ نبیہ: ان چھ حدیثوں کے جواب میں جو کچھ کہا گیا تخصیص بے مخصص و دعوٰی بے دلیل سے زیادہ نہیں۔ مثلاً یہ نبی صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم کا خاص اعجاز تھا۔ یا یہ امر صرف ان کفار کے لئے ان کی حسرت و ندامت بڑھانے کو واقع ہوا حالانکہ ان کی تخصیص پر اصلاً کوئی دلیل نہیں۔ ایسی گنجائش ملے تو ہر نص شرعی جیسے چاہیں مخصص ہوسکے۔ اور ان سے بڑھ کر یہ

رکیک تاویل ہے کہ نبی صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کا یہ خطاب حقیقۃً اموات سے خطاب نہ تھا بلکہ زندوں کو عبرت و نصیحت تھا، حالانکہ نفس حدیث اس کے رد پر حجت کافیہ۔ حضور اقدس صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم نے امیر المومنین فاروق رضی اللہ تعالیٰ عنہ کے جواب میں صاف ان کا سننا ارشاد فرمایا، نہ یہ کہ ہمارا یہ کلام صرف تنبیہ احیاء کے لیے ہے۔ جیسے مرثیہ سیدنا امام حسین (رضی اللہ تعالیٰ عنہ) میں کسی کا مصرع:

اے آب خاک شو کہ ترا آبرو نماند (اے آب! خاک ہو جا کہ تیری آبرو نہ رہی۔ ت)

باقی اس کے متعلق ابحاث فتح البخاری و ارشاد الساری و عمدۃ القاری شروح صحیح بخاری و ...

1 الصحیح للبخاری باب ما جاء فی عذاب القبر قدیمی کتب خانہ کراچی ۱ / ۸۲ - ۱۸۳ ، صحیح مسلم باب مقعد المیت قدیمی کتب خانہ کراچی ۲ / ۳۸۷ 2 فتح الباری بحوالہ عبداللہ بن سیدان باب قتل ابی جہل دار المعرفہ بیروت ۲۵۹/۸

Fatawa Razawiyya, Volume 9

In commentaries of Mishkat like Mirqat, Lam'at, Ashi'at al-Lam'at, and hundreds of other scholarly works like Madarij-un-Nubuwwah, these matters have been settled. Detailed explanation would lead to prolixity. If the Maulvi Sahab wishes to return to these settled matters, then he should look into the aforementioned books and present a discourse such that he considers himself relieved of his grand revisions. After that, Insha Allah, this humble servant will also present those shining flashes and brilliant thunderbolts which are currently under my consideration in my intellectual endeavors, and perhaps a few words from them will be incidentally mentioned in the third objective. And success is from Allah.

Hadith (52): Narrated from Abu al-Shaykh 'Ubayd bin Marzuq: There was a woman who used to sweep the mosque. She passed away and the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) was not informed of it. He passed by her grave and asked, "Whose grave is this?" They replied, "Umm Mihjan." He asked, "The one who used to sweep the mosque?" They replied, "Yes." So he lined up the people and offered prayer over her. Then he addressed her, asking, "Which action did you find most excellent?" The companions asked, "O Messenger of Allah! Does she hear?" He replied, "You do not hear better than her." Then he mentioned that she replied to him, "Sweeping the mosque."

Hadith (53): At-Tabarani in 'Mu'jam al-Kabir' and 'Kitab al-Du'a', and Ibn Mandah, and Imam Diya' al-Maqdisi in 'Kitab al-Ahkam', and Ibrahim al-Harbi in 'Kitab Ittiba' al-Amwat', and Abu Bakr al-Khallal in 'Kitab al-Shafi', and Ibn Zubayrah in 'Wasaya al-'Ulama 'inda al-Mawt', and Ibn Shahin in 'Kitab Dhikr al-Mawt', and other scholar-hadith experts in their hadith works relate from Hazrat Abu Umamah al-Bahili (may Allah be pleased with him), that the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) said:

When one of your Muslim brothers dies and you have leveled the soil over his grave, let one of you stand at the head of his grave and say, "O so-and-so son of so-and-so (female)," for indeed he hears.

Note: i.e., refer him to his mother, for example, "O Zayd son of Hindah," and if the mother's name is not known, say "son of Hawwa" (Eve) as she is the mother of all. This meaning is narrated from the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) in this very hadith. 12 Minhu (from him).

1 Sharh al-Sudur on the authority of Abu al-Shaykh, Chapter: Recognition by the deceased of who washes him, Khilafat Academy Swat, p. 40.

फ़तावा रज़विया, जिल्द 9

मिश्कात की शरहों जैसे मिरक़ात, लमआत, अशियतुल लमआत और मदारीजुन नुबुव्वह जैसी सैकड़ों विद्वानों की रचनाओं में ये बातें तय हो चुकी हैं। इनका विवरण विस्तार का कारण बनेगा। यदि मौलवी साहब फिर से तयशुदा मामलों की ओर लौटना चाहते हैं, तो उन्हें उपरोक्त पुस्तकों पर नज़र डालनी चाहिए और ऐसा बयान देना चाहिए जिससे वे अपने भव्य संशोधनों की ज़िम्मेदारी से मुक्त समझें। उसके बाद, इंशा अल्लाह, यह फ़कीर (विनम्र सेवक) भी उन चमकती बिजली और गरजते बादलों को पेश करेगा जो वर्तमान में मेरे विचाराधीन हैं, और शायद उनमें से कुछ शब्द तीसरे उद्देश्य में प्रसंगवश वर्णित होंगे। और सफलता अल्लाह की ओर से है।

हदीस (52): अबुल शेख उबैद बिन मरज़ूक से रिवायत है: एक महिला मस्जिद में झाड़ू लगाया करती थी, उनका देहांत हो गया। नबी (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) को किसी ने खबर नहीं दी। हुज़ूर उनकी क़ब्र के पास से गुज़रे। पूछा, "यह क़ब्र किसकी है?" लोगों ने अर्ज़ किया: "उम्म मिहजन की।" फ़रमाया, "वही जो मस्जिद में झाड़ू लगाया करती थी?" अर्ज़ किया, "हाँ।" हुज़ूर ने सफ़ (पंक्ति) बाँधकर नमाज़ पढ़ाई, फिर उस महिला को संबोधित करते हुए फ़रमाया, "तूने किस अमल (कार्य) को सबसे उत्तम पाया?" सहाबा ने अर्ज़ किया, "या रसूलुल्लाह! क्या वह सुनती है?" फ़रमाया, "तुम उससे ज़्यादा नहीं सुनते।" फिर फ़रमाया कि उसने जवाब दिया, "मस्जिद में झाड़ू देना।"

हदीस (53): तबरानी ने 'मोजम कबीर' और 'किताबुद दुआ' में, और इब्ने मंदह, और इमाम ज़िया अल-मक़दिसी ने 'किताबुल अहकाम' में, और इब्राहिम हरबी ने 'किताब इत्तिबाउल अमवात' में, और अबू बक्र ख़ल्लाल ने 'किताबुश शाफ़ी' में, और इब्ने जुबैरा ने 'वसाया अल-उलमा इन्दल मौत' में, और इब्ने शाहीन ने 'किताब ज़िक्रुल अमवात' में और अन्य मुहद्दिसीन विद्वानों ने अपनी हदीस संबंधी रचनाओं में हज़रत अबू उमामा बाहिली (रज़ियल्लाहु अन्हु) से रिवायत की है कि रसूलुल्लाह (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) फ़रमाते हैं:

जब तुम्हारा कोई मुसलमान भाई मरे और उसकी क़ब्र पर मिट्टी बराबर कर चुको, तो तुममें से कोई उसके सिरहाने खड़ा हो और 'ऐ फ़लाँ बिन फ़लाना' (ऐ अमुक के पुत्र अमुक महिला के) कहकर पुकारे, बेशक वह सुनेगा।

टिप्पणी: यानी उसे उसकी माँ की ओर निस्बत (संबोधन) करके पुकारे, जैसे 'ऐ ज़ैद बिन हिंदा'। और अगर माँ का नाम मालूम न हो तो 'बिन हव्वा' कहे क्योंकि वे सबकी माँ हैं। इसी हदीस में नबी (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) से यही अर्थ वर्णित है। 12 मिन्हु।

1 शरहुस सुदूर, हवाला अबुल शेख, अध्याय: मुर्दे का उसे नहलाने वाले को पहचानना, खिलाफत एकेडमी स्वात, पृष्ठ 40।

पृष्ठ 732 का 948

مرقاۃ ولمعات واشعۃ اللمعات شروح مشکوۃ مدارج النبوہ وغیرہ صدہا تصانیف علماء میں طے ہوچکی ہیں۔ جن کی تفصیل موجبِ تطویل۔ مولوی صاحب اگر امور طے شدہ کی طرف پھر رجعت کریں تو ذرا کتبِ مذکورہ پر نظر کرکے تقریر وہ فرمائی جائے جس میں ان کی تنقیحات جلیلہ سے عہدہ برآئی سمجھ لیں، اس کے بعد ان شاء اللہ فقیر بھی وہ شوارق ساطعہ و بوارق لامعہ حاضر کرے گا جو اس وقت میرے پیش نظر جولانیوں پر ہے، اور شاید ان میں سے چند حروف مقصد سوم میں استطراداً مسکور ہوں وباللہ التوفیق۔

حدیث (۵۲): ابوالشیخ عبید بن مرزوق سے راوی : کانت امرأۃ تقم المسجد فماتت ولم یعلم بھا النبی صلی اللہ تعالی علیہ وسلم فمر علی قبرھا فقال ما ھذا القبر قالوا ام محجن، قال التي کانت تقم المسجد قالوا نعم فصف الناس فصلی علیھا ثم قال ای العمل وجدت افضل قالوا یا رسول اللہ اتسمع قال ما انتم باسمع منھا فذکر انھا اجابتہ ان اقم المسجد ۱۸۔ یعنی ایک بی بی مسجد میں جھاڑو دیا کرتی تھی ان کا انتقال ہوگیا۔ نبی صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کو کسی نے خبر نہ دی، حضور ان کی قبر پر گذرے۔ دریافت فرمایا یہ قبر کیسی ہے؟ لوگوں نے عرض کی: ام محجن کی۔ فرمایا وہ ہی جو مسجد میں جھاڑو دیا کرتی تھی؟ عرض کی ہاں۔ حضور نے صف باندھ کر نماز پڑھائی پھر ان بی بی کی طرف خطاب کرکے فرمایا توں نے کون سا عمل افضل پایا؟ صحابہ نے عرض کیا یا رسول اللہ ! کیا وہ سنتی ہے؟ فرمایا کچھ تم اس سے زیادہ نہیں سنتے۔ پھر فرمایا اس نے جواب دیا کہ مسجد میں جھاڑو دینی۔

حدیث (۵۳): طبرانی معجم کبیر وکتاب الدعاء میں اور ابن مندہ اور امام ضیائی مقدسی کتاب الاحکام اور ابراہیم حربی کتاب اتباع الاموات اور ابوبکر علماء الخلال کتاب الشافی اور ابن زبیرہ

وصایا العلماء عند الموت اور ابن شاہین کتاب ذکر الاموت ودیگر علماء محدثین اپنی تصانیف حدیثیہ میں حضرت ابو امامہ باہلی رضی اللہ تعالیٰ عنہ سے راوی، رسول اللہ صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم فرماتے ہیں: اذا مات احد من اخوانکم فسویتم التراب علی قبرہ فلیقم احدکم علی راس قبرہ ثم لیقل یافلان بن فلانۃ فانہ یسمعہ جب تمہارا کوئی مسلمان بھائی مرے اور اس کی قبر پر مٹی برابر کر چکوتو تم میں سے کوئی اس کے سرہانے کھڑا ہو اور فلاں بن فلانہ ۸عہ کہہ کر پکارے بیشک وہ سنے گا

عہ: یعنی اسے اس کی ماں کی طرف نسبت کرکے مثلا اے زید بن ہندہ، اور اگر ماں کا نام نہ معلوم ہو تو بن حوا کہے کہ وہ سب کی ماں ہیں۔ خود اسی حدیث میں نبی صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم سے یہ معنی مروی ۱۲ منہ

۱۸ شرح الصدور بحوالہ ابو شیخ باب معرفۃ المیت من یغسلہ خلافت اکیڈمی سوات ص ۴۰

Fatawa Rizvia - Volume Nine

(Arabic Text/Translation Table) Left Column (Arabic): And he will not answer. Then say, "O so-and-so son of so-and-so," and he will sit up straight. Then say, "O so-and-so son of so-and-so," and he will say, "Guide us, may Allah have mercy on you," but you do not perceive it. Then say: Mention that which you came out of the world upon—the testimony that there is no deity but Allah and that Muhammad is His servant and His Messenger; and that you were pleased with Allah as your Lord, with Islam as your religion, with Muhammad as your Prophet, and with the Quran as your guide. For indeed, Munkar and Nakir will each take the hand of the other and say, "Let us go, why should we sit with one whose proof has been taught to him." - The Hadith[1]

Right Column (Urdu translation of the above): And he will not answer. Then call him again in the same way, and he will sit up straight. Call him for the third time in the same way; now he will answer saying, "Instruct us, may Allah have mercy on you," but you do not hear his answer. At that time, say: Remember that matter upon which you left the world—the testimony that there is no true deity except Allah and that Muhammad (peace and blessings of Allah be upon him) is His servant and His Messenger; and that you were pleased with Allah as your Lord, with Islam as your religion, with Muhammad (peace and blessings of Allah be upon him) as your Prophet, and with the Quran as your guide. Then Munkar and Nakir will each take the hand of the other and say: Let us go, why should we sit with him whom people have already taught his proof.

Note: Imam Ibn al-Salah and other scholars of Hadith say regarding this Hadith: "It is strengthened by supporting evidence and by the long-standing practice of the people of Syria (Sham)."[2] Narrated by Allama Ibn Amir al-Hajj in 'al-Hulya'.

That is, it gains strength from two aspects: first, other Hadiths support it, and second, scholars of Syria have been practicing it since the era of the predecessors. (Allama Ibn Amir al-Hajj mentioned this in 'Hulya'. - Translator)

Similarly, the expert of Hadith, Imam Diya' al-Maqdisi, and the Seal of the Hadith Masters of grand stature, Abu al-Fadl Ahmad bin Hajar al-Asqalani, have strengthened it. Imam Shams al-Din al-Sakhawi affirmed it and authored a special treatise on this subject. Imam Ahmad (may Allah be pleased with him) narrated the practice upon it from the scholars of Syria. Imam Abu Bakr ibn al-Arabi narrated its practice from the people of Madinah and some other scholars, including those of Cordoba, etc. I say: this practice dates back to the time of the Companions (Sahaba)

and the Successors (Tabi'in). The Companion Hazrat Abu Umamah (may Allah be pleased with him) willed that he be given this instruction (Talqin) himself.[3]

Footnotes: 1. Al-Mu'jam al-Kabir, Hadith 7979, Maktaba Faysaliyya Beirut, 8/99, 298. 2. Hashiya al-Tahtawi 'ala Maraqi al-Falah, section on carrying and burying, Nur Muhammad Karkhana Tijarat Kutub Karachi, p. 338. 3. Sharh al-Sudur, chapter on what is said at burial and Talqin, Khilaf Academy Swat, p. 44.

फ़तावा रज़विया - जिल्द नवीं

(अरबी पाठ/अनुवाद तालिका) बायां कॉलम (अरबी): और वह उत्तर नहीं देगा। फिर कहें, "हे फलां के पुत्र फलां," तो वह सीधा बैठ जाएगा। फिर कहें, "हे फलां के पुत्र फलां," तो वह कहेगा, "हमें निर्देश दें, अल्लाह आप पर दया करे," लेकिन आप उसे महसूस नहीं करते। फिर कहें: उस बात का उल्लेख करें जिस पर आप दुनिया से बाहर आए थे—इस बात की गवाही कि अल्लाह के सिवा कोई पूज्य नहीं है और मुहम्मद उसके बंदे और उसके रसूल हैं; और यह कि आप अल्लाह को अपने रब के रूप में, इस्लाम को अपने धर्म के रूप में, मुहम्मद को अपने नबी के रूप में और कुरान को अपने मार्गदर्शक के रूप में पाकर प्रसन्न थे। क्योंकि वास्तव में, मुनकर और नकीर एक-दूसरे का हाथ पकड़ेंगे और कहेंगे, "चलो चलें, हम उसके पास क्यों बैठें जिसे उसकी दलील (हुज्जत) सिखा दी गई है।" - अल-हदीस[1]

दायां कॉलम (उपरोक्त का उर्दू अनुवाद): और वह उत्तर नहीं देगा। फिर उसे उसी तरह पुकारें, तो वह सीधा होकर बैठ जाएगा। तीसरी बार फिर उसी तरह पुकारें; अब वह उत्तर देगा कि "हमें निर्देश दें, अल्लाह आप पर दया करे," लेकिन आप उसके उत्तर को नहीं सुनते। उस समय कहें: उस बात को याद करें जिस पर आप दुनिया से निकले थे—इस बात की गवाही कि अल्लाह के सिवा कोई सच्चा पूज्य नहीं है और मुहम्मद (उन पर अल्लाह की शांति और कृपा हो) उसके बंदे और उसके रसूल हैं; और यह कि आपने अल्लाह को अपने रब के रूप में, इस्लाम को अपने धर्म के रूप में, मुहम्मद (उन पर अल्लाह की शांति और कृपा हो) को अपने नबी के रूप में और कुरान को अपने मार्गदर्शक के रूप में पसंद किया। तब मुनकर और नकीर एक-दूसरे का हाथ पकड़ेंगे और कहेंगे: चलो चलें, हम उसके पास क्यों बैठें जिसे लोगों ने पहले ही उसकी दलील सिखा दी है।

नोट: इमाम इब्न अल-सलाह और अन्य हदीस विद्वान इस हदीस के बारे में कहते हैं: "यह समर्थक साक्ष्यों और शाम (सीरिया) के लोगों के पुराने अमल से मजबूत होता है।"[2] इसे अल्लामा इब्न अमीर अल-हज ने 'अल-हुलिया' में उद्धृत किया है।

यानी, इसे दो कारणों से शक्ति प्राप्त है: पहला, अन्य हदीसें इसका समर्थन करती हैं, और दूसरा, पूर्वजों के समय से शाम के विद्वान इस पर अमल करते आ रहे हैं। (अल्लामा इब्न अमीर अल-हज ने इसे 'हुलिया' में उद्धृत किया है। - टी)

इसी तरह, हदीस के विशेषज्ञ इमाम ज़िया अल-मक़दीसी और महान हदीस विद्वान अबू अल-फ़ज़ल अहमद बिन हजर अल-अस्क़लानी ने इसकी पुष्टि की है। इमाम शम्स अल-दीन अल-सखावी ने इसे प्रमाणित किया और इस विषय पर एक विशेष ग्रंथ लिखा। इमाम अहमद (अल्लाह उन पर प्रसन्न हो) ने शाम के विद्वानों से इस पर अमल करने का वर्णन किया है। इमाम अबू बक्र इब्न अल-अरबी ने मदीना के लोगों और कुछ अन्य विद्वानों जैसे कॉर्डोबा आदि से इसके अमल का उल्लेख किया है। मैं कहता हूँ: यह अमल सहाबा और ताबिईन के समय से है। सहाबी हज़रत अबू उमामा (अल्लाह उन पर प्रसन्न हो) ने वसीयत की थी कि उन्हें स्वयं यह निर्देश (तल्क़ीन) दिया जाए।[3]

पाद लेख: 1. अल-मुअजम अल-कबीर, हदीस 7979, मकतबा फ़ैसलिया बेरूत, 8/99, 298. 2. हाशिया अल-तहतवी अला मराक़ी अल-फ़लाह, मय्यत को ले जाने और दफनाने का अध्याय, नूर मुहम्मद कारखाना तिजारत कुतुब कराची, पृष्ठ 338. 3. शरह अल-सुदूर, दफन और तल्क़ीन के समय कही जाने वाली बातों का अध्याय, खिलाफ एकेडमी स्वात, पृष्ठ 44.

فتاوٰی رضویہ جلد نہم

ولایجیب ثم یقول یا فلان بن فلانة فانه یستوی قاعدا ثم یقول یا فلان بن فلانة فانه یقول ارشد نا رحمك الله ولکن لاتشعرون، فلیقل ذکر ماخرجت علیه من الدنیا شهادة ان لا اله الا الله وان محمدا عبده ورسوله وانك رضیت بالله ربا و بالاسلام دینا وبمحمد نبیا وبالقران اماماً فان منکرا ونکیرا یاخذ کل و احد منهما بید صاحبه ویقول ان انطلق بنا مانقعد عند من قد لقن حجته۱۸ - الحدیث

اور جواب نہ دے گا دوبارہ پھر یوں ہی ندا کرے وہ سیدھا ہو بیٹھے گا سہ بارہ پھر اسی طرح آواز دے اب وہ جواب دے گا کہ ہمیں ارشاد کہ اللہ تجھ پر رحم کرے مگر تمہیں اس کے جواب کی خبر نہیں ہوتی اس وقت کہے یاد کرو وہ بات جس پر توں دنیا سے نکلا تھا گواہی اس کی کہ اللہ کے سواء کوئی سچا معبود نہیں اور محمد صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم اس کے بندے اور اس کے رسول ہیں اور یہ کہ توں نے پسند کیا اللہ تعالٰی کو پروردگار اور اسلام کو دین اور محمد صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم کو نبی اور قرآن کو پیشوا منکر و نکیر ہر ایک دوسرے کا ہاتھ پکڑ کر کہے گے چلو ہم کیا بیٹھیں اس کے پاس جسے لوگ اس کی حجت سکھا چکے۔

فائدہ: امام ابن الصلاح وغیرہ محدثین اس حدیث کی نسبت فرماتے ہیں: اعتدت بشواہد و بعمل اھل الشام قدیماً۱۸2 نقلہ العلامۃ ابن امیر الحاج فی الحلیۃ یعنی اس کو دو وجہ سے قوت ہے ایک تو حدیث اس کی موید، دوسرے زمانہ سلف سے علماء شام اس پر عمل کرتے آئے (علامہ ابن امیر الحاج نے اسے حلیہ میں نقل کیا۔ت)

اسی طرح امام نقاد الحدیث ضیائی مقدسی و امام خاتم الحفاظ حافظ الشان، ابوالفضل احمد بن حجر عسقلانی نے اس کی تقویت اور امام شمس الدین سخاوی نے اس کی تقریر فرمائی اور اس باب میں

خاص ایک رسالہ تالیف فرمایا، اور امام احمد رضی اللہ عنہ نے اس پر عمل کرنا علماء شام سے نقل فرمایا، اور امام ابوبکر ابن العربی نے اہل مدینہ اور بعض دیگر علماء میں اہل قرطبہ وغیرہ سے اس کا عمل نقل کیا میں کہتا ہوں یہ عمل زمانہ صحابہ وتابعین سے ہے حضرت ابو امامہ صحابی رضی اللہ تعالیٰ عنہ نے خدا اپنے لئے تلقین کی وصیت فرمائی۸3۔

1 المعجم الکبیر حدیث ۷۹۷۹ مکتبہ فیصلیہ بیروت ۲۹۸،۹۹/۸ 2 حاشیہ الطحطاوی علی المرافی الفلاح فصل فی حملہا ودفنہا نور محمد کار خانہ تجارت کتب کراچی ص ۳۳۸ 3 شرح الصدور باب ما یقال عند الد فن والتلقین خلاف اکیڈمی سوات ص ۴۴

Fatawa Rizwia Volume Nine

As narrated by Ibn Mandah through another route, as mentioned by Imam Suyuti in Sharh-us-Sudoor. I say, in fact, Tabarani has also narrated it, as Allama Badruddin Mahmud Aini has mentioned its words in Binayah Sharh al-Hidayah. (T)

And it will soon be narrated from three successors (Tabi'un) that it was considered recommended (mustahabb). It is evident that their transmission would only be from the Companions (Sahaba) or the senior successors who preceded them. May Allah be pleased with them all. It is stated in Allama Ibn Hajar Makki's commentary on Mishkat: "It is supported by evidences through which it rises to the rank of Hasan (good)." (This hadith has reached the degree of 'Hasan' due to corroborating evidences). Similarly, in the appendix of Majma' Bihar al-Anwar, it is clarified that it gained strength from witnesses. And Allah Almighty knows best.

Hadith (56 to 57): Imam Saeed bin Mansur, student of Imam Malik and teacher of Imam Ahmad, narrates in his Sunan from Rashid^1 Ibn Sa'd, Dhamra bin Habib^2, and Hakim bin Umayr^3; they all said:

[Arabic Box Text]: When the soil is leveled over the deceased's grave and people depart from him, it was recommended that it be said to the deceased at his grave: "O so-and-so, say: There is no god but Allah" three times, "O so-and-so, say: My Lord is Allah, my religion is Islam, and my Prophet is Muhammad (peace and blessings of Allah be upon him)."

[Urdu Box Text]: When the soil is leveled over the deceased's grave and people depart, it was considered recommended to stand by the grave and say to the deceased: "O so-and-so! Say 'La ilaha illallah' three times; O so-and-so! Say 'My Lord is Allah, my religion is Islam, and my Prophet is Muhammad (peace and blessings of Allah be upon him).'"

Conclusion of the end of this section: The hadiths of the fifth chapter, just as by the grace of Allah, the hearing of the dead...

^1: A reliable Tabi'i from the narrators of the Sunan Arba'ah. 12 Minhu (M) ^2: A reliable Tabi'i from the narrators of the Sihah Sitta. 12 Minhu (M) ^3: A truthful Tabi'i from the narrators of Abu Dawood and Ibn Majah. 12 Minhu (M)

--- Footnotes --- 1. Mirqat al-Mafatih Sharh Mishkat, Chapter on Affirming the Punishment of the Grave, Maktaba Imdadia Multan 1/209 2. Sharh-us-Sudoor, citing

Sunan Saeed bin Mansur, Chapter on what is said at burial, Khilafat Academy Swat p. 44

Page 734 of 948

फ़तावा रज़विया, खंड नौ

जैसा कि इब्न मंदह ने दूसरे तरीके से इसे रिवायत किया है, जैसा कि इमाम सुयूती ने शरह-उस-सुदूर में ज़िक्र किया है। मैं कहता हूँ, बल्कि तबरानी ने भी इसे रिवायत किया है, जैसा कि अल्लामा बदरुद्दीन महमूद ऐनी ने बिनायह शरह अल-हिदाया में इसके शब्द ज़िक्र किए हैं। (T)

और तीन ताबेईन से जल्द ही नक़ल होगा कि इसे मुस्तहब (पसंदीदा) कहा जाता था। ज़ाहिर है कि उनका यह नक़ल करना सहाबा या बड़े ताबेईन से ही होगा जो उनसे पहले हुए। अल्लाह तआला उन सब से राज़ी हो। अल्लामा इब्न हजर मक्की की शरह मिश्कात में है: "इसे प्रमाणों (शवाहिद) से समर्थन प्राप्त है जिससे यह हसन (अच्छी) की श्रेणी तक पहुँच जाती है।" (यह हदीस साक्ष्यों के कारण हसन के दर्जे तक पहुँच गई है)। इसी तरह मजमा' बिहार अल-अनवार के परिशिष्ट में स्पष्ट किया गया है कि इसे गवाहों से शक्ति मिली है। और अल्लाह तआला बेहतर जानता है।

हदीस (56 से 57): इमाम सईद बिन मंसूर, जो इमाम मालिक के छात्र और इमाम अहमद के उस्ताद हैं, अपने सुनन में राशिद^1 इब्न साद, धमरा बिन हबीब^2 और हकीम बिन उमैर^3 से रिवायत करते हैं, उन सब ने कहा:

[अरबी बॉक्स]: जब मृतक की कब्र पर मिट्टी बराबर कर दी जाए और लोग वहाँ से चले जाएँ तो यह मुस्तहब समझा जाता था कि मृतक से उसकी कब्र के पास कहा जाए: ऐ फ़लाँ! कह 'ला इलाहा इल्लल्लाह' तीन बार, ऐ फ़लाँ! कह 'मेरा रब अल्लाह है, मेरा दीन इस्लाम है और मेरे नबी मुहम्मद (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) हैं'।

[उर्दू बॉक्स]: जब मृतक पर मिट्टी देकर कब्र दुरुस्त कर चुकें और लोग वापस जाएँ तो मुस्तहब समझा जाता था कि मुर्दे से उसकी कब्र के पास खड़े होकर कहा जाए: ऐ फ़लाँ! कह ला इलाहा इल्लल्लाह तीन बार, ऐ फ़लाँ! कह कि मेरा रब अल्लाह है और मेरा दीन इस्लाम और मेरे नबी मुहम्मद सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम हैं।

इस अध्याय के अंत का निष्कर्ष: पाँचवें अध्याय की हदीसों ने जिस तरह अल्लाह के फ़ज़ल से मुर्दों के सुनने (समा'अ मौती) की...

^1: विश्वसनीय ताबेई, सुनन अरबिया के रिवायत करने वालों में से। 12 मिन्हु (म) ^2: विश्वसनीय ताबेई, सिहाह सित्ता के रिवायत करने वालों में से। 12 मिन्हु (म) ^3: सच्चे ताबेई, अबू दाऊद और इब्न माजा के रिवायत करने वालों में से। 12 मिन्हु (म)

--- पादलेख --- 1. मिरक़ात अल-मफ़ातीह शरह मिश्कात, कब्र के अज़ाब की पुष्टि का अध्याय, मकतबा इमदादिया मुल्तान 209/1 2. शरह-उस-सुदूर, सुनन सईद बिन मंसूर के हवाले से, दफ़न के समय क्या कहा जाए का अध्याय, खिलाफत अकादमी स्वात पृष्ठ 44

فتاوٰی رضویہ جلد نہم

کما اخرجه ابن منده من وجه آخر کما ذکره الامام السیوطي في شرح الصدور قلت بل والطبرانی ایضاً علی ماساق لفظہ البدر المحمود فی البنایۃ شرح الھدایۃ۔ جیسا کہ ابنِ مندہ نے دوسرے طریقے سے اس کی روایت کی، اسے امام سیوطی نے شرح الصدور میں ذکر کیا ہے۔ میں کہتا ہوں بلکہ طبرانی نے بھی اسے روایت کیا ہے، جیسا کہ علامہ بدرالدین محمود عینی نے بنایہ شرح ہدایہ میں اس کے الفاظ ذکر کیے ہیں۔ (ت)

اور تین تابعیوں سے عنقریب منقول ہوگا کہ اسے مستحب کہا جاتا تھا۔ ظاہر ہے ان کی یہ نقل نہ ہوگی مگر صحابہ یا اکابر تابعین سے جو ان سے پہلے ہوئے۔ رضی اللہ تعالٰی عنہم اجمعین۔ علامہ ابن حجر مکی کی شرح مشکوۃ میں ہے: اعتضد بشواھد یرتقي بھا الی درجۃ الحسن (یہ حدیث بوجہ شواہد درجہ حسن تک ترقی کیے ہے) اسی طرح ذیل مجمع بحار الانوار میں تصریح کی کہ اس نے شواہد سے قوت پائی۔ واللہ تعالٰی اعلم۔

حدیث (۵۶تا۵۷): امام سعید بن منصور شاگرد امام مالک و استاذ امام احمد اپنے سنن میں راشد عہ۱ ابن سعد وضمرہ بن حبیب عہ۲ و حکیم بن عمیر عہ۳ سے راوی، ان سب نے فرمایا:

[عربی متن]: اذا سوی علی المیت قبرہ وانصرف الناس عنہ کان یستحب ان یقال للمیت عندہ قبرہ یا فلان قل لا الہ الا اللہ ثلث مرات یا فلان قل ربی اللہ ودینی الاسلام ونبی محمد صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم۔

[اردو ترجمہ]: جب میت پر مٹی دے کر قبر درست کر چکیں اور لوگ واپس جائیں تو مستحب سمجھا جاتا تھا کہ مُردے سے اس کی قبر کے پاس کھڑے ہو کر کہا جائے: اے فلاں! کہہ لا الہ الا

اللہ تین بار، اے فلاں! کہہ میرا رب اللہ ہے اور میرا دین اسلام اور میرے نبی محمد صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم۔

وصل اخر من هذا الفصل: فصل پنجم کی حدیثوں نے جس طرح بحمد اللہ سماع موتیٰ کی---

عہ۱: تابعی ثقہ رجال سنن اربعہ سے ۱۲منہ (م) عہ۲: تابعی ثقہ رجال صحاح ستہ سے ۱۲منہ (م) عہ۳: تابعی صدوق رجال ابوداؤد وابن ماجہ سے ۱۲منہ (م)

--- حواشی --- 1. مرقاۃ المفاتیح شرح مشکوۃ باب اثبات عذاب القبر مکتبہ امدادیہ ملتان ۲۰۹/۱ 2. شرح الصدور بحوالہ سن سعید بن منصور باب ما یقال عند الدفن خلافت اکیڈمی سوات ص ۴۴

Fatawa-e-Razvia Volume 9

They clarified, and similarly most of them proved, that the speech of the Master of the World (peace and blessings of Allah be upon him) and the Noble Companions (may Allah be pleased with them all) with the people of the graves was not limited to just saying Salam. It is evident that addressing and conversing with mere inanimate objects is not rational. Therefore, at the end of this section, we will cite some Hadiths in which prominent companions are mentioned as having spoken various kinds of words to the people of the graves other than Salam. By doing so, we conclude the second objective and resolve to proceed towards the third objective, if Allah Almighty wills. And with Allah is success.

Hadith (57): Ibn Majah narrates with a good, authentic chain from Abdullah bin Umar Farooq al-Azam (may Allah be pleased with them): An Arab Bedouin came to the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) and narrated the Hadith until he said: The Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) said: "Wherever you pass by the grave of a polytheist (Mushrik), give him the news of hellfire." The Bedouin later accepted Islam and said: "The Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) assigned me a difficult task; I never passed by the grave of a disbeliever except that I gave him the news of hellfire." [1] Meaning, the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) said to a Bedouin: "Wherever you pass by the grave of a polytheist, give him the news of fire..." After that, the Bedouin became a Muslim, and that Companion says that the Chosen One (peace and blessings of Allah be upon him) put me in a state of exertion with this command; I never passed by a disbeliever's grave without giving him the news of fire. Every rational person knows that giving news is impossible without hearing, and the addressed Companion took the holy instruction in its literal sense, and therefore acted upon it throughout his life. Reflect on this.

Hadith (58): Ibn Abi al-Dunya narrates in 'Kitab al-Qubur' from the Leader of the Believers, Umar (may Allah be pleased with him): He passed by al-Baqi and said: "Peace be upon you, O people of the graves! The news from us is that your wives have married, your houses have been inhabited by others, and your wealth has been distributed." Then an unseen voice (Hatif) answered him: "O Umar bin al-Khattab! The news from us is that what we sent ahead, we have found; what we spent, we have gained; and what we left behind..." Meaning, once the Leader of the Believers, Umar (may Allah be pleased with him), passed by Baqi, saluted the people of the graves, and said: "The news from our side is that your women have married, other people

have settled in your houses, and your wealth has been divided." At this, someone replied: "O Umar bin al-Khattab! The news from our side is that the deeds we performed, we have found here and..."

Note: These Hadiths were narrated by Tabarani in 'Mu'jam al-Kabir' from Sayyiduna Sa'd bin Abi Waqqas (may Allah be pleased with him). [12 Minhu (M)]

[1] Sunan Ibn Majah, Chapter on Visiting the Graves of Polytheists, H.M. Saeed Company, Karachi, p. 114.

उन्होंने स्पष्ट किया है और इसी तरह उनमें से अधिकांश ने यह साबित किया है कि सैय्यदे आलम (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) और सहाबा-ए-किराम (रज़ियल्लाहु अन्हुम अजमईन) का अहले क़ुबूर (क़ब्र वालों) से कलाम (बातचीत) केवल सलाम तक सीमित नहीं था। और यह ज़ाहिर है कि महज़ बेजान चीज़ों से बात करना और गुफ़्तगू करना तर्कसंगत नहीं है। इसलिए हम इस अनुभाग (फ़सल) के अंत में वे कुछ हदीसें उद्धृत कर रहे हैं जिनमें प्रमुख सहाबा का अहले क़ुबूर से सलाम के अलावा अन्य प्रकार के कलाम करना वर्णित है। इन्हें नक़ल करके हम दूसरे मक़सद को समाप्त करते हैं और इंशा अल्लाह तीसरे मक़सद की ओर बढ़ने का पक्का इरादा करते हैं। और सफलता अल्लाह की ओर से है।

हदीस (५७): इब्न माजा ने एक हसन सहीह सनद के साथ अब्दुल्ला बिन उमर फ़ारूक़-ए-आज़म (रज़ियल्लाहु अन्हुमा) से रिवायत की है: एक अराबी (बदवी) नबी (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) के पास आया और हदीस बयान की यहाँ तक कि कहा कि रसूलुल्लाह (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने फ़रमाया: "जहाँ कहीं तुम किसी मुशरिक की क़ब्र के पास से गुज़रो, उसे आग (जहन्नम) की ख़बर दे दो।" वह अराबी बाद में मुसलमान हो गया और उसने कहा: "रसूलुल्लाह (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने मुझे एक मशक़्क़त वाले काम में डाल दिया; मैं किसी काफ़िर की क़ब्र के पास से नहीं गुज़रा मगर यह कि उसे आग की ख़बर दी।" [१] यानी नबी (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने एक अराबी से फ़रमाया: जहाँ किसी मुशरिक की क़ब्र पर गुज़रो उसे आग की ख़बर (मज़्दा) देना... उसके बाद वह अराबी मुसलमान हो गया, तो वह सहाबी फ़रमाते हैं कि मुझे मुस्तफ़ा (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने इस इरशाद से एक मशक़्क़त में डाल दिया, किसी काफ़िर की क़ब्र पर मेरा गुज़र न हुआ मगर यह कि उसे आग की ख़बर दी। हर बुद्धिमान व्यक्ति जानता है कि बिना सुने ख़बर देना असंभव है, और मुख़ातिब सहाबी ने इस पवित्र इरशाद को इसके वास्तविक अर्थ में लिया, और इसीलिए जीवन भर इस पर अमल किया। इस पर विचार करें।

हदीस (५८): इब्न अबी अद्दुन्या ने 'किताब अल-क़ुबूर' में अमीरुल मोमिनीन उमर (रज़ियल्लाहु अन्हु) से रिवायत की है: वह बक़ीअ से गुज़रे और कहा: "अस्सलाम अलैकुम या अहलल क़ुबूर! हमारे पास की ख़बरें यह हैं कि तुम्हारी औरतों ने निकाह कर लिए, तुम्हारे घरों में दूसरे लोग बस गए और तुम्हारा माल बाँट दिया गया।" तो एक अदृश्य आवाज़ (हातिफ़) ने उन्हें जवाब दिया: "ए उमर बिन अल-ख़त्ताब! हमारे पास की ख़बरें यह हैं कि जो हमने आगे भेजा था (नेक आमाल), उसे पा लिया; जो

हमने ख़र्च किया, उसमें नफ़ा पाया; और जो हम पीछे छोड़ आए..." यानी एक बार अमीरुल मोमिनीन उमर (रज़ियल्लाहु अन्हु) बक़ीअ से गुज़रे, अहले क़ुबूर पर सलाम करके फ़रमाया: हमारे पास की ख़बरें ये हैं कि तुम्हारी औरतों ने निकाह कर लिए और तुम्हारे घरों में और लोग बस गए, तुम्हारा माल तक़सीम हो गया। इस पर किसी ने जवाब दिया: ऐ उमर बिन अल-ख़त्ताब! हमारे पास की ख़बरें ये हैं कि हमने जो आमाल किए थे यहाँ पाए और...

नोट (फ़ायदा): ये हदीसें तबरानी ने 'मोजमुल कबीर' में सैय्यदुना साअद बिन अबी वक़्क़ास (रज़ियल्लाहु अन्हु) से रिवायत की हैं। [१२ मिन्हु (म)]

[१] सुनन इब्न माजा, बाब: मुशरिकों की क़ब्रों की ज़ियारत, एच.एम. सईद कंपनी, कराची, पृ. ११४।

पृष्ठ ७३५/९४८

تصریح فرمائی یونہی ان میں اکثر نے ثابت کر دکھایا کہ سید عالم صلی اللہ علیہ وسلم و صحابہ کرام رضوان اللہ تعالٰی علیہم اجمعین کا اہلِ قبور سے کلام صرف سلام پر مقتصر نہ تھا اور بدیہہ ہے کہ جماد محض سے مخاطبہ و گفتگو معقول نہیں۔ لہذا ہم آخر فصل میں وہ بعض حدیثیں جن میں اجلہ صحابہ کا اہلِ قبور سے سوائے سلام دیگر انواع کلام فرمانا مذکور، نقل کرکے مقصد ثانی کو ختم اور مقصد ثالث کی طرف ان شاء اللہ تعالٰی تصمیم عزم کرتے ہیں، وب اللہ التوفیق،

حدیث (۵۷): ابن ماجہ بسند حسن صحیح عبد اللہ بن عمر فاروق اعظم رضی اللہ تعالٰی عنہما سے راوی : قال جاء اعرابی الی النبی صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم فذکرالحدیث الی ان قال قال رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم حیثما مررت بقبر مشرک فبشرہ بالنار، قال فاسلم الاعرابی بعد وقال لقد کلفنی رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم تعباً مامررت بقبر کا فر الا بشرتہ بالنار ۱۔ یعنی نبی صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم نے ایک اعرابی سے فرمایا: جہاں کسی مشرک کی قبر پر گزرے اسے آگ کا مژدہ دینا۔۔ اس کے بعد وہ اعرابی مسلمان ہو گیا تو وہ صحابی فرماتے ہیں مجھے مصطفی صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم نے اس ارشاد سے ایک مشقت میں ڈالا، کسی کافر کی قبر پر میرا گذر نہ ہوا مگر یہ کہ اسے آگ کا مژدہ دیا۔ ہر عاقل جانتا ہے کہ مژدہ دینا بے سماع محال، اور صحابی مخاطب نے ارشاد اقدس کو معنٰی حقیقی پر حمل کیا، ولذا عمر بھر اس پر عمل فرمایا فتدبر،

حدیث (۵۸): ابن ابی الدنیا کتاب القبور میں امیر المؤمنین عمر رضی اللہ تعالٰی عنہ سے راوی : انہ مربا لبقیع فقال السلام علیکم یا اھل القبور اخبار ما عندنا ان نساء کم قد تزوجن و دیارکم قد سکنت واموالکم قد فرقت فأجابہ ھاتف یاعمر ابن الخطاب اخبار ماعندنا ان ما قدمناہ فقد وجدناہ و ما انفقنا فقد ربحناہ و ما خلفناہ فقد یعنی ایک بار امیر المؤمنین عمر رضی اللہ تعالٰی عنہ بقیع پر گزرے اہل قبور

پر سلام کرکے فرمایا: ہمارے پاس کی خبریں یہ ہیں کہ تمہاری عورتوں نے نکاح کر لیے اور تمہارے گھروں میں اور لوگ بسے، تمہارے مال تقسیم ہو گئے۔ اس پر کسی نے جواب دیا: اے عمر بن الخطاب! ہمارے پاس کی خبریں یہ ہیں کہ ہم نے جو اعمال کئے تھے یہاں پائے اور

عہ فائدہ: یہ حدیثیں طبرانی نے معجم الکبیر میں سیدنا سعد بن ابی وقاص رضی اللہ تعالیٰ عنہ سے روایت کی ۱۲ منہ (م)

۱ سنن ابن ماجہ باب ماجاء فی زیارۃ القبور المشرکین ایچ ایم سعید کمپنی کراچی ص ۱۱۴

Fatawa Razawiyya - Volume 9

- Khusarnahu (We lost it) - Whatever was given in the path of Allah, its benefit was gained; whatever was left behind went to waste.

Hadith (59): Narrated by Imam Ahmad in 'History of Nishapur', Bayhaqi, and Ibn Asakir in 'History of Damascus' from Sa'id bin al-Musayyib:

[Arabic Column] He said: We entered the graveyards of Madinah with Ali ibn Abi Talib. He called out, "O people of the graves, peace be upon you and the mercy of Allah. Will you tell us your news, or would you like us to tell you our news?" He (Sa'id) said: I heard a voice saying, "And upon you be peace and the mercy and blessings of Allah, O Commander of the Faithful! Tell us what happened after us?" Ali (may Allah be pleased with him) replied, "As for your wives, they have remarried; as for your wealth, it has been distributed; and as for your children, they have been gathered into the ranks of orphans. The buildings you fortified are now inhabited by your enemies. This is the news we have; what news do you have?" A deceased person replied, "The shrouds have torn, hair has fallen out, the skin has disintegrated into pieces, the eyeballs have dissolved and flowed down the cheeks, and from the nostrils flow pus and putrid water. What we sent ahead (as good deeds), we profited from, and what we left behind, we lost. We are held hostage by our deeds. Allah is sufficient for us, and He is the best Disposer of affairs. There is no power or strength except with Allah, the Most High, the Most Great. Glory be to Him Who is unique in remaining eternal and has overpowered His servants with death. Glory be..."

[Urdu Column] Meaning, we entered the graveyards of Madinah al-Tayyibah as companions of Mawla Ali (Karam Allahu Wajhah al-Karim). Hazrat Mawla Ali saluted the people of the graves and said: "Will you tell us your news, or do you wish for us to give you news?" Sa'id bin al-Musayyib says: I heard a voice as someone replied to the salam of Hazrat Mawla and said: "Commander of the Faithful! Tell us what transpired after us?" Commander of the Faithful Ali (Karam Allahu Wajhah) said: "Your women have entered into marriages, your wealth has been divided, your children rose among the groups of orphans, and the buildings that you had solidified are inhabited by your enemies. These are the news with us; now what news is with you?" A deceased person replied that the shrouds have torn, hair has fallen off, the skins have turned into shreds, the eyeballs have flowed down to the cheeks, pus and dirty water are flowing from the nostrils, and whatever was sent ahead, its benefit was found, and what was left behind resulted in loss, and we are imprisoned in our

deeds. Allah is sufficient for us, and what an excellent Disposer of affairs He is. There is no power or strength except from the God of Greatness and Sublimity. Pure is He Who remains alone, and His...

---

1. Sharh as-Sudur citing 'Kitab al-Qubur' by Ibn Abi al-Dunya, Chapter: Visiting the Graves, Khilafat Academy Swat, p. 87
2. Sharh as-Sudur citing 'Kitab al-Qubur' by Ibn Abi al-Dunya, History of Ibn Asakir, Khilafat Academy Swat, p. 87

फ़तावा रज़विया - जिल्द 9

- ख़सरनाहु (हमने उसे खो दिया) - जो अल्लाह की राह में दिया गया, उसका लाभ मिला; जो पीछे छोड़ दिया गया, वह नुकसान में चला गया।

हदीस (59): इमाम अहमद ने 'तारीख़ निशापुर', बैहक़ी और इब्न असाकिर ने 'तारीख़ दमिश्क' में सईद बिन अल-मुसय्यिब से रिवायत की है:

[अरबी कॉलम] उन्होंने कहा: हम हज़रत अली इब्न अबी तालिब के साथ मदीना के कब्रिस्तानों में दाखिल हुए। उन्होंने आवाज़ दी, "ऐ कब्र वालों, तुम पर सलाम हो और अल्लाह की रहमत। तुम हमें अपनी ख़बरें बताओगे या चाहते हो कि हम तुम्हें ख़बरें दें?" उन्होंने (सईद) कहा: मैंने एक आवाज़ सुनी, "और आप पर भी सलाम और अल्लाह की रहमत और बरकतें, ऐ अमीरुल मोमिनीन! हमें बताएं कि हमारे बाद क्या हुआ?" अली (रज़ियल्लाहु अन्हु) ने फ़रमाया, "जहाँ तक तुम्हारी पत्नियों का सवाल है, उन्होंने निकाह कर लिए हैं; तुम्हारी दौलत बाँट दी गई है; और तुम्हारी औलाद अनाथों के समूह में शामिल हो गई है। जिन इमारतों को तुमने मज़बूत बनाया था, उनमें अब तुम्हारे दुश्मन बसते हैं। ये तो हमारे पास की ख़बरें हैं; तुम्हारे पास क्या ख़बर है?" एक मृत व्यक्ति ने उत्तर दिया, "कफ़न फट गए हैं, बाल झड़ गए हैं, खाल के टुकड़े-टुकड़े हो गए हैं, पुतलियाँ पिघलकर गालों तक आ गई हैं, और नथुनों से मवाद और गंदा पानी बह रहा है। जो हमने आगे भेजा (नेक आमाल), उससे हमें लाभ हुआ, और जो हमने पीछे छोड़ा, उसमें हमें नुकसान हुआ। हम अपने आमाल के कैदी हैं। हमें अल्लाह काफी है और वह बेहतरीन कार्यसाधक है। ताकत और कुवत नहीं मगर अज़मत और बुलंदी वाले अल्लाह ही से। पाक है वह जो अकेला बाकी रहने वाला है और जिसने अपने बंदों पर मौत के ज़रिए गालिब किया। पाक है..."

[उर्दू कॉलम] यानी, हम मौला अली (करम अल्लाहु वज्हहुल करीम) के हम-सफ़र के रूप में मदीना तैयबा के कब्रिस्तानों में दाखिल हुए। हज़रत मौला अली ने कब्र वालों को सलाम किया और कहा: "तुम हमें अपनी खबरें बताओगे या यह चाहते हो कि हम तुम्हें खबरें दें?" सईद बिन मुसय्यिब कहते हैं: मैंने एक आवाज़ सुनी जब किसी ने हज़रत मौला के सलाम का जवाब दिया और अर्ज़ किया: "अमीरुल मोमिनीन! आप बताइए कि हमारे बाद क्या बीती?" अमीरुल मोमिनीन अली (करम अल्लाहु वज्हहु) ने फ़रमाया: "तुम्हारी औरतों ने तो निकाह कर लिए हैं, और तुम्हारा माल बट गया है, और औलाद अनाथों के समूह में पली-बढ़ी है, और वह तामीर जिसे तुमने मज़बूत किया था, उसमें

तुम्हारे दुश्मन बसे हैं। हमारे पास तो यह खबरें हैं, अब तुम्हारे पास क्या खबर है?" एक मृत व्यक्ति ने अर्ज़ किया कि कफ़न फट गए, बाल झड़ गए, खालों के परखच्चे उड़ गए, आँखों की पुतलियाँ बहकर गालों तक आ गईं, नथुनों से मवाद और गंदा पानी जारी है और जो आगे भेजा था उसका लाभ मिला और जो पीछे छोड़ा उसका नुकसान हुआ और हम अपने आमाल में कैद हैं, हमें अल्लाह काफी है और वह क्या ही अच्छा कारसाज़ है, ताकत और कुवत नहीं मगर अज़मत और बुलंदी वाले खुदा ही से। पाक है वह जो अकेला बाकी रहने वाला है, और अपने...

---

1. शरह अस-सुदूर ब-हवाला 'किताब अल-कुबूर' इब्न अबी अल-दुनिया, अध्याय: कब्रों की ज़ियारत, खिलाफत एकेडमी स्वात, पृष्ठ 87
2. शरह अस-सुदूर ब-हवाला 'किताब अल-कुबूर' इब्न अबी अल-दुनिया, तारीख़ इब्न असाकिर, खिलाफत एकेडमी स्वात, पृष्ठ 87

• خسرناہ - جو راہ خدا میں دیا تھا اس کا نفع اٹھایا اور جو پیچھے چھوڑا وہ ٹوٹے میں گیا۔

حدیث (۵۹): امام احمد تاریخ نیشاپور اور بیہقی اور ابن عساکر تاریخ دمشق میں سعید بن المسیب سے راوی:

[Arabic Column] قال دخلنا مقابر المدینة مع علی ابن ابی الطالب فنادی یا اهل القبور السلام علیکم ورحمة الله تخبرونا باخباارکم تریدون ان نخبرکم قال فسمعت صوتا و علیک السلام و رحمة الله و برکاتہ یا امیر المومنین اخبرنا عماکان بعدنا فقال علی رضی الله تعالی عنه اما ازواجکم فقد تزوجن واما اموالکم فقد اقتسمت و اولاد فقد حشروا في زمرة الیتامی والبناء الذي شیدتم فقد سکن اعداء کم فهذه اخبار ما عندنا فما عندکم فاجابہ میت فقد تخرقت الاکفان وانتثرت الشعور و تقطعت الجلود و سالت الاحداق علی الخدود وسالت مناخیر بالقیح والصدید و ما قدمناہ ربحناہ وما خلفناہ خسرنا ونحن مرتهنون بالاعمال۔ وحسبنا الله ونعم الوکیل ولا حول ولا قوة الا بالله العلی العظیم سبحن من تفرد بالبقاء وقهر عبادہ بالموت سبحان

[Urdu Column] یعنی ہم مولیٰ علی کرم اللہ وجہہ الکریم کے ہم رکاب مقابرِ مدینہ طیبہ میں داخل ہوئے۔ حضرت مولیٰ علی نے اہل قبر پر سلام کر کے فرمایا: تم ہمیں اپنی خبریں بتاؤ گے یا یہ چاہتے ہو کہ ہم تمہیں خبریں دیں؟ سعد بن مسیب فرماتے ہیں: میں نے آواز سنی کسی نے حضرت مولیٰ کو جواب سلام دے کر عرض کی: امیر المومنین! آپ بتائیے ہمارے بعد کیا گزری؟ امیر المومنین علی کرم اللہ وجہہ نے فرمایا: تمہاری عورتوں نے تو نکاح کر لیے، اور تمہارے مال سو وہ بٹ گئے، اور اولاد یتیموں کے گروہ میں اٹھی، اور وہ تعمیر جس کا تم نے استحکام کیا تھا

اس میں تمہارے دشمن بسے، ہمارے پاس کی خبریں تو یہ ہیں اب تمہارے پاس کیا خبر ہے؟ ایک مُردے نے عرض کی کہ کفن پھٹ گئے، بال جھڑ پڑے، کھالوں کے پرزے پرزے ہو گئے، آنکھوں کے ڈھیلے بہہ کر گالوں تک آئے، نتھنوں سے پیپ اور گندا پانی جاری ہے اور جو آگے بھیجا تھا اس کا نفع ملا اور جو پیچھے چھوڑا اس کا خسارہ ہوا اور اپنے اعمال میں محبوس ہیں، ہمیں اللہ کافی ہے اور وہ کیا ہی اچھا کارساز ہے، طاقت و قوت نہیں مگر عظمت و بلندی والے خدا ہی سے پاک ہے وہ جو اکیلا باقی رہنے والا ہے، اور اپنے

---

۱ شرح الصدور بحوالہ کتاب القبور لابن ابی الدنیا باب زیارۃ القبور خلافت اکیڈمی سوات ص ۸۷ ۲ شرح الصدور بحوالہ کتاب القبور لابن ابی الدنیا تاریخ ابن عساکر خلافت اکیڈمی سوات ص ۸۷

Volume 9 Fatawa Razawiyya

[Arabic] He is the Ever-Living Who never dies, and He is the All-Forgiving, the Most Merciful.

He has made the servants subject to death. Pure is that One with life who never experiences death, and He is the Forgiving and Kind. (T)

Warning: Those gentlemen who, in response to the Hadith of the fortieth day (Chehlum), declared this address of the Presence of Saintliness (Ali), may Allah honor his face, to be merely for the purpose of preaching and admonishing the living, as cited in 'Maitah Masail'[1] (as it was narrated in Maitah Masail. T), have probably not observed the entire Hadith. Otherwise, from its first word to the last, it cries out that the address here was truly intended for the dead. Just look at this much: that His Eminence (Ali) did not utter these words initially, but rather inquired of them whether they would tell their news first or should he begin? Say, what would be the meaning of an unintended real address in this inquiry and giving of choice? Then, upon their request, His Eminence graciously gave the news and commanded them: "Now you tell your news." Accordingly, they submitted. Then what doubt remains in it being a real conversation! And Allah is the Granter of Success.

Hadith (60): Ibn Asakir narrated a long Hadith, the gist of which is that during the era of justice under Farooq (Umar), there was a young worshiper. The Commander of the Faithful (Umar) was very pleased with him. He would stay in the mosque all day and go to his father after the Isha prayer. On the way, there was the house of a woman who fell in love with him. She always wanted to draw his attention, but the youth would not look. One night, his foot slipped, he went along, and reached the door. When he intended to go inside, he remembered God, and spontaneously this noble verse came to his tongue:

[Arabic] "Indeed, those who fear Allah, when an impulse from Satan touches them, they remember [Him] and at once they have insight."[2]

When any pounce of Satan reaches those who fear (God), they remember God; at that very moment, their eyes are opened.

As soon as he recited the verse, he fainted and fell. The woman, with her maid, picked him up and placed him at his door. The father was waiting. He was late in coming, so the father went out to look and found him lying unconscious at the door. He called the family members and had him carried inside. Late at night, he regained consciousness. The father asked about his condition. He said it is well. He said, tell

me. Out of necessity, he told the story. The father said, "O life of your father! Which verse is that?" The youth recited it again. Upon reciting it, he fainted, convulsed, and was found dead. They bathed him, shrouded him, and buried him that very night. In the morning, the Commander of the Faithful received the news. He offered condolences to the father and complained about not being informed. He replied: "O Commander of the Faithful! It was night." Then the Commander of the Faithful with his companions...

[1] Maitah Masail, Issue 26, Maktaba Tawheed wa Sunnat, Peshawar, p. 52 [2] Al-Quran 7/201

जिल्द नहम (खंड 9) फ़तावा रज़विया

[अरबी] वह सदा जीवित है जिसे कभी मौत नहीं आती, और वही क्षमाशील और दयावान है।

उसने बंदों को मृत्यु के अधीन कर दिया है। वह जीवन वाला पवित्र है जिसे कभी मृत्यु नहीं आती, और वही क्षमाशील और दयालु है। (त)

चेतावनी: जिन सज्जनों ने चेहलुम की हदीस के उत्तर में जनाब विलायत मआब (अली), अल्लाह उनके चेहरे को सम्मानित करे, के इस संबोधन को केवल जीवितों के उपदेश और चेतावनी के लिए करार दिया, जैसा कि 'माइता मसाइल'[1] में उद्धृत किया गया है (जैसा कि माइता मसाइल में इसे नक़ल किया गया। त), उन्होंने शायद पूरी हदीस नहीं देखी। अन्यथा, इसके पहले शब्द से अंतिम शब्द तक यह पुकार रहा है कि यहाँ संबोधन वास्तव में मृतकों के लिए ही अभिप्रेत था। बस इतना देख लीजिए कि मौला ने शुरुआत में ये शब्द नहीं कहे, बल्कि उनसे पूछताछ की कि पहले तुम अपनी खबर बताओगे या हम शुरू करें? कहिए, इस पूछताछ और विकल्प देने में बिना इरादे के वास्तविक संबोधन के क्या अर्थ थे? फिर उनके अनुरोध पर हज़रत ने समाचार सुनाया और उन्हें आदेश दिया: "अब तुम अपनी खबर बताओ।" तदनुसार उन्होंने निवेदन किया। फिर वास्तविक संवाद होने में क्या संदेह है! और अल्लाह ही सफलता देने वाला है।

हदीस (60): इब्न असाकिर ने एक लंबी हदीस बयान की है जिसका सार यह है कि फारूक (उमर) के न्यायपूर्ण युग में एक युवा इबादतगुज़ार (उपासक) था। अमीरुल मोमिनीन उससे बहुत प्रसन्न थे। वह दिन भर मस्जिद में रहता, इशा की नमाज़ के बाद अपने पिता के पास जाता। रास्ते में एक औरत का घर था जो उस पर मोहित हो गई। वह हमेशा उसे अपनी ओर आकर्षित करना चाहती थी, पर वह युवक ध्यान नहीं देता था। एक रात उसका पैर फिसल गया, वह साथ हो लिया और दरवाज़े तक पहुँच गया। जब उसने अंदर जाना चाहा तो उसे खुदा की याद आ गई और स्वतः ही यह पवित्र आयत उसकी ज़ुबान से निकली:

[अरबी] "बेशक, जो लोग डर रखते हैं, जब शैतान की ओर से कोई विचार उन्हें छूता है, तो वे (अल्लाह को) याद करते हैं और तभी उनकी आँखें खुल जाती हैं।"[2]

डर वालों को जब शैतान की कोई झपट पहुँचती है, वे खुदा को याद करते हैं, उसी समय उनकी आँखें खुल जाती हैं।

आयत पढ़ते ही वह बेहोश होकर गिर पड़ा। उस औरत ने अपनी दासी के साथ मिलकर उसे उठाया और उसके दरवाज़े पर डाल दिया। पिता इंतज़ार कर रहा था। आने में देर हुई तो वह देखने निकला, दरवाज़े पर उसे बेहोश पाया। घर वालों को बुलाकर अंदर ले गया। देर रात होश आया। पिता ने हाल पूछा, उसने कहा खैर है। पिता ने बताने को कहा, तो उसने विवश होकर सारा किस्सा सुनाया। पिता ने कहा, "ऐ मेरे बेटे! वह आयत कौन सी है?" युवक ने उसे फिर पढ़ा। पढ़ते ही फिर बेहोश हुआ, तड़पा और मृत पाया गया। रात में ही उसे नहलाया-कफ़नाया गया और दफना दिया गया। सुबह अमीरुल मोमिनीन को खबर मिली। उन्होंने पिता से शोक व्यक्त किया और सूचना न देने की शिकायत की। पिता ने कहा: "हे अमीरुल मोमिनीन! रात का समय था।" फिर अमीरुल मोमिनीन अपने साथियों के साथ...

[1] माइता मसाइल, मसला 26, मकतबा तौहीद व सुन्नत, पेशावर, पृ. 52 [2] अल-कुरआन 7/201

الحی الذی لا یموت ابدا و هو الغفور الرحیم ۔ **بندوں کو موت کے تابع فرمان کر دیا ہے۔ پاک ہے وہ حیات والا جسے کبھی موت نہیں، اور وہی بخشنے والا مہربان ہے۔ (ت)**

تنبیہ: جن صاحبوں نے جواب حدیث چہلم میں اس خطاب جناب ولایت مآب کرم اللہ وجہہ کو محض وعظ و تنبیہ احیاء کے لیے قرار دیا کما نقلہ فی مائتۃ مسائل[1] (جیسا کہ مائتۃ مسائل میں اسے نقل کیا گیا۔ت) غالبا انہوں نے پوری حدیث ملاحظہ نہ فرمائی ورنہ اس کے لفظ اول سے آخر تک پکار رہے ہیں کہ یہاں حقیقۃً اموات ہی سے خطاب مقصود تھا۔ اسی قدر کو دیکھ لیجئے کہ جناب مولا نے ابتداء یہ لفظ ارشاد نہ کئے بلکہ ان سے استفسار فرمایا کہ پہلے تم اپنی خبریں بتاؤ گے یا ہم شروع کریں، کہئے بے ارادہ خطاب حقیقی اس دریافت کرنے اور اختیار دینے کے کیا معنی تھے، پھر ان کی درخواست پر حضرت نے اخبار دینا ارشاد فرما کر انہیں حکم دیا: اب تم اپنی خبریں بتاؤ۔ چنانچہ انہوں نے عرض کیں۔ پھر مخاطبہ حقیقی میں کیا شک ہے! واللہ الموفق۔

حدیث (۶۰) : ابن عساکر نے ایک طویل حدیث روایت کی جس کا حاصل یہ ہے کہ عہد معدلت مہد فاروقی میں ایک جوان عابد تھا۔ امیر المومنین اس سے بہت خوش تھے، دن بھر مسجد میں رہتا، بعد نماز عشاء باپ کے پاس جاتا، راہ میں ایک عورت کا مکان تھا اس پر عاشق ہوگئی، ہمیشہ اپنی طرف متوجہ کرنا چاہتی، جوان نظر نہ فرماتا، ایک شب قدم نے لغزش کی، ساتھ ہولیا، دروازے تک گیا، جب اندر جانا چاہا خدا یاد آگیا اور بے ساختہ یہ آیہ کریمہ زبان سے نکلی:

إِنَّ الَّذِينَ اتَّقَوْا إِذَا مَسَّهُمْ طَائِفٌ مِّنَ الشَّيْطَانِ تَذَكَّرُوا فَإِذَا هُم مُّبْصِرُونَ [2] **ڈر والوں کو جب کوئی جھپٹ شیطان کی پہنچتی ہے خدا کو یاد کرتے ہیں اسی وقت ان کی آنکھیں کھل جاتی ہیں۔**

آیت پڑھتے ہی غش کھا کر گرا، عورت نے اپنی کنیز کے ساتھ اٹھا کر اس کے دروازے پر ڈال۔ باپ منتظر تھا۔ آنے میں دیر ہوئی، دیکھنے نکلا، دورازے پر بیہوش پڑا پایا۔ گھر والوں کو بلا کر اندر اٹھوایا، رات گئے ہوش آیا، باپ نے حال پوچھا، کہا خیر ہے، کہا بتادے، ناچار قصہ کہا۔ باپ بولا جان پدر! وہ آیت کون سی ہے؟ جوان نے پھر پڑھی، پڑھتے ہی غش آیا، جنبش دی، مُردہ پایا، رات ہی کو نہلا کفنا کر دفن کر دیا، صبح کو امیر المومنین نے خبر پائی، باپ سے تعزیت اور خبر نہ دینے کی شکایت فرمائی، عرض کی: یا امیر المومنین! رات تھی، پھر امیر المومنین ہمراہیوں

[1] ماتۃ مسائل مسئلہ بست و ششم مکتبہ توحید و سنت پشاور ص ۵۲ [2] القرآن ۷/ ۲۰۱

Fatawa Rizwia - Volume 9

...He proceeded to take it... the wording of the Hadith follows:

[Arabic Box Text]: Then Umar said, "O so-and-so! 'For him who feared the standing before his Lord, there are two gardens.' (Quran 55:46)" The youth replied from inside the grave, "O Umar! My Lord has granted me this great wealth in Paradise twice."

We ask Allah for Paradise, for Him is the grace and favor. And may the blessings and peace of Allah Almighty be upon the Prophet of mankind and jinn, and upon his family, companions, and the people of the Sunnah. Amen, Amen, Amen!

[Urdu Translation in Box]: That is, the Commander of the Faithful called the youth by name and said: "O so-and-so! For him who fears standing before his Lord, there are two gardens." The youth called out from within the grave: "O Umar! My Lord has granted me this supreme wealth in Paradise twice."

We seek Paradise from Allah, to Him belongs all grace and favor. And may peace and blessings of the Almighty God be upon the Prophet of humans and jinn, may Allah Almighty bless him and grant him peace, and upon his family, his companions, and the people of the Sunnah. O God! Accept it, accept it, accept it! (T)

The Third Objective: Regarding the Sayings of the Scholars (Third objective in the sayings of the scholars)

The poor writer of these lines, may the Forgiving Lord forgive him, says: On this issue, in our school of thought (madhhab), there are numerous instructions and abundant sayings regarding clarification, allusion, reduction, support, preference, submission, and correction from the noble Companions, the grand Successors (Tabi'un), the eminent followers, the jurists (Mujtahids) of Islam, and the great scholars of the past and later generations, may Allah Almighty be pleased with them all and gather us among them on the Day of Judgment. Amen. (May Allah be pleased with them all and raise us among them on the Day of Resurrection. O Allah, accept it. -T). The poor one, may Allah Almighty forgive him, says that if I were to try to encompass and list them to the best of my ability, it would quickly exceed the limit of a volume. Therefore, first, I will only list the blessed names of a hundred leaders of the faith and perfect scholars whose sayings are currently before me and appear in the chapters and objectives of this treatise by the grace of Allah, the Glorious, or heard even more (and the grace of Allah, the Glorious, is even more vast and illuminating. -T). Then I will also present ten names of those scholars on whom the

opponent relies in distress, and this is more severe and bitter to them, and all praise is for Allah, the Exalted, the Greatest (and this is harder and more bitter to them. And all praises belong to God who is of heights and greatness. -T).

Among the Sahaba (Companions), may Allah Almighty be pleased with them all: (1) Commander of the Faithful, Umar Farooq the Great.

---

[1] Kanz al-Ummal with reference to K, Hadith 3634, Mu'assasatu ar-Risalah, Beirut 2 / 516-17

फ़तावा रज़विया - जिल्द 9

...उसे ले कर तशरीफ़ ले गए... आगे हदीस के शब्द इस प्रकार हैं:

[अरबी बॉक्स टेक्स्ट]: फिर उमर ने कहा, "ऐ फुलां! 'जो अपने रब के सामने खड़े होने से डरता है, उसके लिए दो बाग हैं।' (क़ुरान 55:46)" उस नौजवान ने कब्र के अंदर से जवाब दिया, "ऐ उमर! मेरे रब ने मुझे जन्नत में यह महान दौलत दो बार प्रदान की है।"

हम अल्लाह से जन्नत का सवाल करते हैं, उसी के लिए अनुग्रह और कृपा है। और अल्लाह तआला का दरूद और सलाम हो इंसानों और जिन्नों के पैगंबर पर, और उनके परिवार, साथियों और सुन्नत के लोगों पर। आमीन, आमीन, आमीन!

[बॉक्स में उर्दू अनुवाद]: यानी अमीरुल मोमिनीन ने जवान का नाम लेकर फ़रमाया: "ऐ फ़ुलां! जो अपने रब के पास खड़े होने का डर रखे उसके लिए दो बाग़ हैं।" जवान ने क़ब्र में से आवाज़ दी: "ऐ उमर! मुझे मेरे रब ने यह दौलत-ए-अज़मा जन्नत में दो बार अता फ़रमाई।"

हम अल्लाह से जन्नत के ख़्वास्तगार हैं, उसी के लिए फ़ज़ल-ओ-एहसान है। और ख़ुदा-ए-बर्तर का दरूद-ओ-सलाम हो इंस-ओ-जिन्न के नबी सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम और उनकी आल-ओ-असहब और अहल-ए-सुन्नत पर। इलाही! क़बूल फ़रमा, क़बूल फ़रमा, क़बूल फ़रमा! (त)

तीसरा उद्देश्य: विद्वानों के कथनों के बारे में (मक़सद सोम उलमा के अक़वाल में)

इन पंक्तियों का तुच्छ लेखक, जिसे क्षमाशील प्रभु क्षमा करें, कहता है: इस मुद्दे पर, हमारे संप्रदाय (मज़हब) में, महान सहाबा, शानदार ताबेईन, प्रतिष्ठित अनुयायियों, इस्लाम के मुजतहिद और पूर्ववर्ती और बाद के महान विद्वानों के स्पष्टीकरण, संकेत, कमी, समर्थन, वरीयता, समर्पण और सुधार के संबंध में असंख्य निर्देश और प्रचुर कथन हैं, अल्लाह तआला उन सभी से प्रसन्न हो और हमें न्याय के दिन उनके समूह में शामिल करे। आमीन। (अल्लाह तआला इन सब से राज़ी हो और हमें रोज़-ए-क़यामत उनके ज़ुमरे में उठाए। इलाही क़बूल फ़रमा। -त)। तुच्छ लेखक, जिसे अल्लाह तआला क्षमा करें, कहता है कि यदि मैं अपनी क्षमता के अनुसार उनके संकलन का इरादा करूँतो यह जल्द ही एक जिल्द की सीमा को पार कर जाएगा। इसलिए, सबसे पहले, मैं केवल सौ धर्मगुरुओं और पूर्ण विद्वानों के पवित्र नामों को गिनाता हूँ जिनके कथन इस समय मेरे सामने हैं और अल्लाह की कृपा से इस रिसाले के अध्यायों और उद्देश्यों में दिखाई देते हैं, या उससे भी अधिक (और अल्लाह का फ़ज़ल

और भी अधिक विशाल और प्रकाशमान है। -त)। फिर मैं उन विद्वानों के भी दस नाम प्रस्तुत करूँगा जिन पर विरोधी संकट में भरोसा करता है, और यह उनके लिए अधिक कठिन और कड़वा है, और सारी प्रशंसा अल्लाह के लिए है, जो सर्वोच्च और सबसे महान है (और यह उनके नज़दीक सख़्त और तल्ख़ है। और सब ख़ूबियाँ बुलंदी और किब्रियाई वाले ख़ुदा ही के लिए हैं। -त)।

सहाबा (साथियों) में से, अल्लाह तआला उन सभी से प्रसन्न हो: (१) अमीरुल मोमिनीन उमर फ़ारूक़ आज़म।

---

[1] कन्ज़ुल उम्माल, हदीस ३६३४ के हवाले से, मुअस्सतुर रिसाला, बैरूत २ / ५१६-१७

کو لے کر تشریف لے گئے... آگے لفظِ حدیث یوں ہیں:

[عربی عبارت]: فقال عمر یافلان ولمن خاف مقام ربه جنتن، فاجابه الفتی من داخل القبر یا عمر قد اعطانیہا ربی فی الجنة مرتین - نسأل الله الجنة له الفضل والمنة وصلی الله تعالی علی نبی الانس والجنة وأله وصحبه واصحابه السنة آمین آمین آمین!

[اردو ترجمہ]: یعنی امیر المومنین نے جوان کا نام لے کر فرمایا: اے فلاں ! جو اپنے رب کے پاس کھڑے ہونے کا ڈر کرے اس کے لیے دو باغ ہیں، جوان نے قبر میں سے آواز دی، اے عمر! مجھے میرے رب نے یہ دولت عظمیٰ جنت میں دو بار عطافرمائی۔ ہم اللہ سے جنت کے خواستگار ہیں، اسی کے لیے فضل واحسان ہے۔ اور خدائے برتر کا درود سلام ہو انس وجن کے نبی صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم اور ان کی آل واصحاب اور اہل سنت پر۔ الہٰی! قبول فرما، قبول فرما، قبول فرما! (ت)

المقصد الثالث فی اقوال العلماء (مقصد سوم علماء کے اقوال میں)

قال الفقیر محرر السطور غفر له المولی الغفور اس مسئلہ میں ہمارے مذہب کی تصریح و تلویح و تنقیص و تائید و ترجیح و تسلیم و تصحیح میں ارشادات متکاثرہ واقوال متوافرہ ہیں حضرات عالیہ صحابہ کرام و تابعین فخام و اتباع اعلام و مجتہدین اسلام وسلف و خلف علمائے عظام سے رضی اللہ تعالیٰ عنہم اجمعین وحشرنا فی زمرتهم یوم الدین آمین (اللہ تعالیٰ ان سب سے راضی ہو اور ہمیں روز قیامت ان کے زمرے میں اٹھائے۔ الہٰی قبول فرما۔ ت) فقیر غفر لہ اللہ تعالیٰ اگر بقدر قدرت ان کے حصر واستغفار کا ارادہ کرے موجب عجلہ حد مجلد سے گزرے، لہٰذا اولاً صرف سو ائمہ دین

و علماء کاملین کے اسماء طیبہ شمار کرتا ہوں جن کے اقوال اس وقت میرے پیش نظر اور اس رسالہ کے فصول و مقاصد میں جلوہ گر و فضل اللہ سبحانہ او سمع و اکثر (اور اللہ سبحانہ کا فضل اور زیادہ وسیع افروز تر ہے۔ ت) پھر دس نام ان عالموں کے بھی حاضر کروں گا جن پر اعتماد میں مخالف مضطر وھذا لدیھم ادھی وامرو الحمد اللہ العلی الاکبر (اور یہ ان کے نزدیک سخت اور تلخ ہے۔ اور سب خوبیاں بلندی و کبریائی والے خدا ہی کے لیے ہیں۔ ت)

فمن الصحابۃ رضوان اللہ تعالیٰ علیہم اجمعین: (۱) امیر المومنین عمر فاروق اعظم

---

1 کنز العمال بحوالہ ک حدیث ۳۶۳۴ موسسۃ الرسالہ بیروت ۲ / ۱۷-۵۱۶

Volume 9 Fatawa Rizvia

(2) Commander of the Faithful Ali al-Murtaza (3) Hazrat Abdullah bin Masood (4) Hazrat Salman Farsi (5) Amr bin Aas (6) Abdullah bin Umar (7) Abu Huraira (8) Abdullah bin Amr (9) Uqba bin Amir (10) Abu Umama al-Bahili (11) The bedouin Companion, narrator of the Hadith 'Wherever you pass...', and others, may Allah Almighty be pleased with them all. And I do not count here those Companions (Sahaba) beyond these who narrated the hearing and perception of the dead from the Holy Presence (peace and blessings of Allah be upon him) or heard it from his sacred tongue, such as Abdullah bin Abbas, Anas bin Malik, Abu Zarrin, Bara' bin Azib, Abu Talha, Ammara bin Hazm, Abu Sa'id al-Khudri, Abdullah bin Saidan, Umm Salama, and Qayla bint Makhrama (may Allah be pleased with them). Although it is known that after hearing the noble instruction of the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him), it is not reasonable for the Companions to hold a belief contrary to it; nor is this a matter of legal rulings where the possibility of abrogation through a 'Nasikh' (abrogating text) exists. However, since a comprehensive list is not intended, I limit it to those whose own words and actions serve as proof for the matter. And success is from Allah.

From the Successors (Tabi'un), may Allah Almighty have mercy on them all: (12) Mujahid Makki (13) Amr bin Dinar (14) Bakr al-Muzani (15) Ibn Abi Layla (16) Qasim bin Mukhaymira (17) Rashid bin Sa'd (18) Damra bin Habib (19) Hakim bin Umayr (20) Ala' bin Lajlaj (21) Bilal bin Sa'd (22) Muhammad bin Wasi' (23) Umm al-Darda and others, may Allah Almighty have mercy on them. From those who followed the Successors, may Allah be kind to them on the Day of Judgment: (24) The scholar of Quraish, our master Abu Muhammad bin Idris al-Shafi'i (25) The scholar of Kufa, the jurist and mujtahid Imam Sufyan (26) Abdur Rahman bin al-Ala and others, may Allah Almighty perfume their souls.

From the great predecessors and the noble successors, may Allah Almighty illuminate their graves: (27) The scholar of the Prophetic Household, Hazrat Imam Ali bin Musa bin Ja'far bin Muhammad bin Ali bin Husain bin Ali and Batul, the daughter of the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him and them all) (28) The illustrious Imam, Knower of Allah, Muhammad bin Ali al-Hakim al-Tirmidhi (29) The great and noble Hadith scholar Ismail (30) The jurist Imam, worshiper and ascetic, Ahmad bin Isma Abu al-Qasim al-Saffar al-Hanafi, through an intermediary student of Imam Abu Yusuf and Imam Muhammad (may Allah Almighty have mercy on them) (31) Imam Abu Bakr Ahmad bin Husain al-Bayhaqi al-Shafi'i (32)

Imam Abu Umar Yusuf bin Abd al-Barr al-Maliki (33) Imam Abu al-Fadl Muhammad bin Ahmad al-Hakim al-Shahid al-Hanafi, author of Al-Kafi (34) Imam Abu al-Fadl Qadi Iyad al-Yahsubi al-Maliki (35) Imam Hujjat al-Islam, the guide of mankind, Abu Hamid Muhammad bin Muhammad bin Muhammad al-Ghazali (36) Imam Abu Abdullah Muhammad bin Ahmad bin...

(2) अमीरुल मोमिनीन अली मुर्तज़ा (3) हज़रत अब्दुल्लाह बिन मसूद (4) हज़रत सुलेमान फ़ारसी (5) अम्र बिन आस (6) अब्दुल्लाह बिन उमर (7) अबू हुरैरा (8) अब्दुल्लाह बिन अम्र (9) उक़बा बिन आमिर (10) अबू उमामा बाहिली (11) सहाबी आराबी, हदीस 'हय्समा मरर्ता' के साहिब और दीगर रज़ियल्लाहु तआला अन्हुम। और मैं उनके सिवा उन सहाबा किराम के नाम यहाँ शुमार नहीं करता जिन्होंने समाअ (सुनना) व इदराक-ए-मौता (मृतकों की समझ) हुज़ूर अक़दस सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम से रिवायत किया या हुज़ूर की ज़बान-ए-पाक से सुना जैसे अब्दुल्लाह बिन अब्बास, अनस बिन मालिक, अबू ज़ररीन, बराअ बिन आज़िब, अबू तल्हा, अम्मारा बिन हज़म, अबू सईद ख़ुदरी, अब्दुल्लाह बिन सैदान, उम्मे सलमा और क़ैला बिन्त मख़रमा रज़ियल्लाहु तआला अन्हुम। अगरचे मालूम है कि हुज़ूर आली सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम का इरशाद-ए-वाला सुनकर उनके ख़िलाफ़ अक़ीदा रखना सहाबा किराम से माकूल नहीं, और न ही यह मामला अहकाम का है कि इसमें नासिख (निरस्त करने वाले) इल्म के ज़रिए ख़िलाफ़ का एहतमाल हो। बहरहाल, जब मुकम्मल फ़ेहरिस्त मक़सूद नहीं, तो उन्हीं पर इक्तिसार (संक्षेप) है जिनके अपने अक़वाल व अफ़आल इस मसले की दलील हैं। वबिल्लाहित तौफ़ीक़।

और ताबेईन में से (रहमतुल्लाहि तआला अलैहिम अजमईन): (12) मुजाहिद मक्की (13) अम्र बिन दीनार (14) बक्र मुज़नी (15) इब्न अबी लैला (16) क़ासिम बिन मुखैमरा (17) राशिद बिन साअद (18) ज़मरा बिन हबीब (19) हकीम बिन उमेर (20) अलाअ बिन लजलाज (21) बिलाल बिन साअद (22) मुहम्मद बिन वासेअ (23) उम्म दरदा और दीगर रहिमहुमुल्लाहु तआला। और तब-ए-ताबेईन में से (अल्लाह उन पर रोज़-ए-जज़ा लुत्फ़ फ़रमाए): (24) आलिम-ए-क़ुरैश सैयदुना अबू मुहम्मद बिन इदरीस शाफ़ई (25) आलिम-ए-कूफ़ा फ़क़ीह मुजतहिद इमाम सुफ़ियान (26) अब्दुर रहमान बिन अलाअ और दीगर (रूहल्लाहु तआला अरवाहहुम)।

और अइम्मा-ए-सल्फ़ और अकाबिर-ए-ख़ल्फ़ में से (अल्लाह उनकी क़ब्रों को रोशन फ़रमाए): (27) आलिम-ए-अहल-ए-बेत-ए-रिसालत हज़रत इमाम अली बिन मूसा बिन जाफ़र बिन मुहम्मद बिन अली बिन हुसैन बिन अली व बतूल बिन्त-ए-रसूल सल्लल्लाहु तआला अलैहि व आलिहि व सल्लम (28) इमाम-ए-अजल आरिफ़ बिल्लाह मुहम्मद बिन अली हकीम तिर्मिज़ी (29) इमाम मुहद्दिस जलील कबीर इस्माईल (30) इमाम फ़क़ीह आबिद ओ ज़ाहिद अहमद बिन अस्मा अबू अल-क़ासिम सफ़्फ़ार हनफ़ी, ब-वास्ता शागिर्द इमाम अबू यूसुफ़ व इमाम मुहम्मद रहिमहुमुल्लाहु तआला (31) इमाम अबू

बक्र अहमद बिन हुसैन बैहक़ी शाफ़ई (32) इमाम अबू उमर यूसुफ़ बिन अब्दुल बर्र मालिकी (33) इमाम अबुल फ़ज़ल मुहम्मद बिन अहमद हाकिम शहीद हनफ़ी साहिब-ए-काफ़ी (34) इमाम अबुल फ़ज़ल क़ाज़ी अयाज़ यहसुबी मालिकी (35) इमाम हुज्जतुल इस्लाम मुर्शिदुल अनाम अबू हामिद मुहम्मद मुहम्मद मुहम्मद ग़ज़ाली (36) इमाम अबू अब्दुल्लाह मुहम्मद बिन अहमद बिन...

(۲) امیر المومنین علی مرتضیٰ (۳) حضرت عبداللہ بن مسعود (۴) حضرت سلیمان فارسی (۵) عمرو بن عاص (۶) عبداللہ بن عمر (۷) ابوہریرہ (۸) عبداللہ بن عمرو (۹) عقبہ بن عامر (۱۰) ابوامامہ باہلی (۱۱) صحابی اعرابی صاحبِ حدیث حیثما مررت و غیرہم رضی اللہ تعالیٰ عنہم۔ اور میں ان کے سوا ان صحابہ کرام کے نام یہاں شمار نہیں کرتا جنھوں نے سماع و ادراک موتی حضور اقدس صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم سے روایت کیا یا حضور کی زبانِ پاک سے سنا مثل عبداللہ بن عباس وانس بن مالک وابو زرین وبراء بن عازب وابوطلحہ وعمارہ بن حزم وابوسعید خدری و عبداللہ بن سیدان وام سلمہ وقیلہ بنت مخرمہ رضی اللہ تعالیٰ عنہم، اگر چہ معلوم کہ ارشادِ والا حضور اعلیٰ صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم سن کر ان کے خلاف پر اعتقاد حضراتِ صحابہ سے معقول نہیں، نہ مقامِ مقامِ احکام کہ احتمالِ خلاف بعلمِ ناسخ ہو، تاہم جب قصدِ استیعاب نہیں تو انھیں پر اقتصار جن کے خود اقوال وافعال دلیلِ مسئلہ ہیں، وباللہ التوفیق۔

ومن التابعین رحمۃ اللہ تعالیٰ علیہم اجمعین: (۱۲) مجاہد مکی (۱۳) عمرو بن دینار (۱۴) بکر مزنی (۱۵) ابن ابی لیلیٰ (۱۶) قاسم بن مخیمرہ (۱۷) راشد بن سعد (۱۸) ضمرہ بن حبیب (۱۹) حکیم بن عمیر (۲۰) علاء بن لجلاج (۲۱) بلال بن سعد (۲۲) محمد بن واسع (۲۳) ام الدرداء وغیر ہم رحمہم اللہ تعالیٰ۔ ومن تبع تابعین لطف اللہ بھم یوم الدین: (۲۴) عالم قریش سیدنا ابو محمد بن ادریس شافعی (۲۵) عالم کوفہ فقیہ مجتہد امام سفیان (۲۶) عبدالرحمن بن العلاء و غیر ہم روح اللہ تعالیٰ ارواحھم۔

ومن اعاظم السلف واکارم الخلف نور اللہ تعالیٰ مراقدھم: (۲۷) عالمِ اہل بیت رسالت حضرت امام علی بن موسیٰ بن جعفر بن محمد بن علی بن حسین بن علی و بتول بنت رسول اللہ صلی اللہ تعالیٰ علیہ وعلیہم و بارک وسلم (۲۸) امام اجل عارف باللہ محمد بن علی حکیم ترمذی (۲۹) امام محدث

جلیل کبیر اسمعیل (۳۰) امام فقیہ عابد وزاہد احمد بن عصمہ ابوالقاسم صفار حنفی بد و واسطہ شاگرد امام ابو یوسف وامام محمد رحمہم اللہ تعالیٰ (۳۱) امام ابوبکر احمد بن حسین بیہقی شافعی (۳۲) امام ابو عمر یوسف بن عبدالبر مالکی (۳۳) امام ابوالفضل محمد بن احمد حاکم شہید حنفی صاحب کافی (۳۴) امام ابوالفضل قاضی عیاض یحصبی مالکی (۳۵) امام حجۃ الاسلام مرشد الانام ابوحامد محمد محمد محمد غزالی (۳۶) امام ابوعبداللہ محمد بن احمد بن

Fatawa-e-Razawiyyah, Volume 9

1. Farah Qurtubi, author of Tadkhirah.
2. Imam Shams-ul-Aimmah Halwani Hanafi.
3. Imam Aarif Billah, Faqih Zahid.
4. Imam Muhaddith Muhi-ud-Din Tabari Shafi'i.
5. Imam Rabbani Sayyiduna Ala-ud-Din Samnani.
6. Imam Abul Mahasin Hasan bin Ali Zahir-ud-Din Kabir Marghinani Hanafi, teacher of Imam Qazi Khan and author of Khulasa.
7. Some teachers of Imam Shaykh-ul-Islam Ali bin Abi Bakr Burhan-ud-Din Farghani Hanafi, author of Al-Tajnis wal-Mazid.
8. Faqih-un-Nafs Qazi Hasan bin Mansur Farghani Uzjandi Hanafi.
9. Imam Abu Zakariyya Yahya bin Sharaf Nawawi Shafi'i, [author of commentary on] Sahih Muslim.
10. Imam Fakhr-ud-Din Muhammad Razi Shafi'i.
11. Imam Sa'd-ud-Din Taftazani, author and commentator of Maqasid.
12. Imam Abu Sulaiman Ahmad bin Ibrahim Khattabi.
13. Imam Abul Qasim Abdur Rahman bin Abdullah bin Ahmad Suhaili, author of Al-Rawd.
14. Imam Umar bin Muhammad bin Umar Jalal-ud-Din Khabbazi Hanafi, author of Fatawa Khabbaziyah.
15. Author of 'Iyab Hanafi, student of Imam-e-Ajal Qazi Khan.
16. Allama Mahmood bin Muhammad Lulwi Bukhari Hanafi, author of Haqaiq Sharh Manzuma Nasafiyyah, student of the student of Imam Shams-ul-Aimmah Kurdi.
17. Sayyidi Yusuf bin Umar Sufi Hanafi, author of Mudmarat.
18. Imam Aarif Billah Sadr-ud-Din Qunawi.
19. Imam Shihab-ud-Din Fadlullah bin Husain Turpushti Hanafi.
20. Imam Malik-ul-Ulama Izz-ud-Din bin Abdus Salam Shafi'i.
21. Imam Muhaddith Zain-ud-Din Maraghi.
22. Imam Abu Abdullah Muhammad bin Ahmed bin Ali bin Jabir Al-Andalusi.
23. Qazi Nasir-ud-Din Baidawi Shafi'i, author of Tafsir.
24. Imam Abu Abdullah bin Al-Nu'man, author of Safinatun-Najah li-Ahlil-Iltija' fi Karamatish-Shaykh Abil Najat.
25. Imam Aarif Billah Abdullah bin As'ad Yafi'i Shafi'i, author of Rawd-ur-Riyahin.
26. Imam Allama Sayyid-ul-Huffaz Abu Ali Abul Fadl Ahmad bin Ali ibn Hajar Al-Asqalani Shafi'i, author of Fath-ul-Bari Sharh Sahih Bukhari.

27. Imam Shams-ud-Din Muhammad bin Yusuf Kirmani Hanafi, author of Al-Kawakib-ud-Darari Sharh Sahih Bukhari.
28. Imam Allama Taqi-ud-Din Ali Al-Kafi Subki Shafi'i, author of Shifa-us-Siqam.
29. Imam Shams-ud-Din Muhammad bin Abdur Rahman Sakhawi Shafi'i, author of Irtiyah-ul-Akbad bi-Faqdil-Awliya.
30. Imam Khatim-ul-Huffaz, Mujaddid-ul-Mi'at-at-Tasi'ah, Abul Fadl Jalal-ud-Din bin Abdur Rahman Suyuti, author of Sharh-us-Sudur, Budur-us-Safirah, Anis-ul-Gharib, Zahr-ur-Ruba Sharh Sunan Nasa'i, etc.
31. Imam Allama Muhammad bin Ahmad Khatib Qastalani Shafi'i, author of Mawahib-ul-Ladunniyyah and Irshad-us-Sari Sharh Sahih Bukhari.
32. Imam Shihab-ud-Din Ramli Ansari Shafi'i.
33. Sayyidi Wali Allah Ahmad Zarruq.
34. Sayyid Aarif Billah Abul Abbas Hadrami.
35. Imam Ahmad bin Muhammad bin Hajar Makki Shafi'i, commentator of Mishkat.
36. Muhaqqiq Allama Muhammad Muhammad Muhammad ibn Amir Al-Hajj Hanafi, author of Hilyah Sharh Munyah.
37. Imam Muhammad Abdari Makki Maliki.
38. Imam Sadr-e-Kabir Husam-ud-Din Shaheed Umar bin Abdul Aziz, author of Fatawa Kubra Hanafi.
39. Imam Muhammad bin Muhammad bin Shihab-ud-Din Bazzazi Hanafi, author of Bazzaziyah.
40. Allama Nur-ud-Din Samhudi Shafi'i, author of Khulasat-ul-Wafa fi Akhbari Dar-il-Mustafa Sallallahu Ta'ala Alayhi Wa Sallam.
41. Allama Rahmatullah Sindi Hanafi, author of Manasik-e-Thulathah. Allama Nur-ud-Din Ali.

फ़तावा रज़विया, जिल्द 9

1. फ़राह क़ुर्तुबी, तज़किरा के लेखक।
2. इमाम शम्सुल अइम्मा हलवानी हनफ़ी।
3. इमाम आरिफ़ बिल्लाह, फ़क़ीह ज़ाहिद।
4. इमाम मुहद्दिस मुहीउद्दीन तबरी शाफ़ई।
5. इमाम रब्बानी सैय्यदुना अलाउद्दीन सिमनानी।
6. इमाम अबुल महासिन हसन बिन अली ज़हीरउद्दीन कबीर मरग़ीनानी हनफ़ी, इमाम क़ाज़ी ख़ां के उस्ताद और ख़ुलासा के लेखक।
7. इमाम शैखुल इस्लाम अली बिन अबी बक्र बुरहानुद्दीन फ़रग़ानी हनफ़ी (तजनीस वल मज़ीद के लेखक) के कुछ उस्ताद।
8. फ़क़ीहुन्नफ़्स क़ाज़ी हसन बिन मंसूर फ़रग़ानी उज़जंदी हनफ़ी।
9. इमाम अबू ज़करिया यहया बिन शरफ़ नववी शाफ़ई, सहीह मुस्लिम के व्याख्याकार।
10. इमाम फ़ख़रुद्दीन मुहम्मद राज़ी शाफ़ई।
11. इमाम सअदुद्दीन तफ़्ताज़ानी, मक़ासिद के लेखक और व्याख्याकार।
12. इमाम अबू सुलैमान अहमद बिन इब्राहीम ख़त्ताबी।
13. इमाम अबुल क़ासिम अब्दुर्रहमान बिन अब्दुल्लाह बिन अहमद सुहैली, अर-रौज़ के लेखक।
14. इमाम उमर बिन मुहम्मद बिन उमर जलालुद्दीन ख़ब्बाज़ी हनफ़ी, फ़तावा ख़ब्बाज़िया के लेखक।
15. अयाब हनफ़ी के लेखक, इमाम-ए-अजल क़ाज़ी ख़ां के शिष्य।
16. अल्लामा महमूद बिन मुहम्मद लुलवी बुख़ारी हनफ़ी, हक़ाइक़ शरह मन्ज़ूमा नफ़सिया के लेखक, इमाम शम्सुल अइम्मा कुर्द के शिष्य के शिष्य।
17. सैय्यदी यूसुफ़ बिन उमर सूफ़ी हनफ़ी, मुज़मरात के लेखक।
18. इमाम आरिफ़ बिल्लाह सदरुद्दीन क़ूनवी।
19. इमाम शिहाबुद्दीन फ़ज़लुल्लाह बिन हुसैन तुरपुश्ती हनफ़ी।
20. इमाम मलिकुल उलमा इज़्ज़ुद्दीन बिन अब्दुस सलाम शाफ़ई।
21. इमाम मुहद्दिस ज़ैनुद्दीन मराग़ी।
22. इमाम अबू अब्दुल्लाह मुहम्मद बिन अहमद बिन अली बिन जाबिर अल-अंदलुसी।

23. क़ाज़ी नासिरुद्दीन बैज़ावी शाफ़ई, तफ़सीर के लेखक।
24. इमाम अबू अब्दुल्लाह बिन अनुअमान, सफ़ीनतुन निजात लिहिल इल्तिजात फ़ी करामातिश शैख़ अबिल नजात के लेखक।
25. इमाम आरिफ़ बिल्लाह अब्दुल्लाह बिन असअद याफ़ई शाफ़ई, रौज़ुर रियाहीन के लेखक।
26. इमाम अल्लामा सैय्यदुल हुफ़्फ़ाज़ अबू अली अबुल फ़ज़ल अहमद बिन अली इब्ने हजर अस्क़लानी शाफ़ई, फ़तहुल बारी शरह सहीह बुख़ारी के लेखक।
27. इमाम शम्सुद्दीन मुहम्मद बिन यूसुफ़ किरमानी हनफ़ी, अल-कवाकिबुद दरारी शरह सहीह बुख़ारी के लेखक।
28. इमाम अल्लामा तक़ीउद्दीन अली अकाफ़ी सुबकी शाफ़ई, शिफ़ाउस सिक़ाम के लेखक।
29. इमाम शम्सुद्दीन मुहम्मद बिन अब्दुर्रहमान सख़ावी शाफ़ई, इरतियाहुल अकबाद बि-फ़क़दिल औलिया के लेखक।
30. इमाम ख़ातिमुल हुफ़्फ़ाज़, मुजद्दिद-उल-मियात-अत-तासिआ, अबुल फ़ज़ल जलालुद्दीन बिन अब्दुर्रहमान सुयूती, शरहुस सुदूर, बुदूरुस साफ़िरा, अनीसुल ग़रीब और ज़हरुर रुबा शरह सुनन नसाई आदि के लेखक।
31. इमाम अल्लामा मुहम्मद बिन अहमद ख़तीब क़स्तलानी शाफ़ई, मवाहिब-ए-लदुननिया और इरशादुस सारी शरह सहीह बुख़ारी के लेखक।
32. इमाम शिहाबुद्दीन रमली अंसारी शाफ़ई।
33. सैय्यदी वलीउल्लाह अहमद ज़र्रूक़।
34. सैय्यद आरिफ़ बिल्लाह अबुल अब्बास हज़रमी।
35. इमाम अहमद बिन मुहम्मद बिन हजर मक्की शाफ़ई, मिश्क़ात के व्याख्याकार।
36. मोहक़्क़िक़ अल्लामा मुहम्मद मुहम्मद मुहम्मद इब्ने अमीरुल हाज हनफ़ी, हुलिया शरह मुनिया के लेखक।
37. इमाम मुहम्मद अब्दरी मक्की मालकी।
38. इमाम सद्र-ए-कबीर हुसामुद्दीन शहीद उमर बिन अब्दुल अज़ीज़, फ़तावा कुबरा हनफ़ी के लेखक।
39. इमाम मुहम्मद बिन मुहम्मद बिन शिहाबुद्दीन बज़ाज़ी हनफ़ी, बज़ाज़िया के लेखक।
40. अल्लामा नूरुद्दीन समहूदी शाफ़ई, ख़ुलासतुल वफ़ा फ़ी अख़बारी दारिल मुस्तफ़ा सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम के लेखक।
41. अल्लामा रहमतुल्लाह सिंधी हनफ़ी, मनासिक-ए-सलासा के लेखक। अल्लामा नूरुद्दीन अली।

فرح قرطبی صاحب تذکرہ (۳۷) امام شمس الائمہ حلوانی حنفی (۳۸) امام عارف باللہ فقیہ زاہد (۳۹) امام محدث محی الدین طبری شافعی (۴۰) امام ربانی سیدنا علاء الدین سمنانی (۴۱) امام ابوالحاسن حسن بن علی ظہیر الدین کبیر مرغینانی حنفی استاذ امام قاضی خاں و صاحب خلاصہ (۴۲) بعض اساتذہ امام شیخ الاسلام علی بن ابی بکر برہان الدین فرغانی حنفی صاحب التجنیس والمزید (۴۳) لما فقیہ النفس قاضی حسن بن منصور فرغانی اوزجندی حنفی (۴۴) امام ابوزکریا یحیٰی بن شرف نووی شافعی صحیح مسلم (۴۵) امام فخر الدین محمد رازی شافعی (۴۶) امام سعد الدین تفتازانی مصنف و شارح مقاصد (۴۷) امام ابو سلیمان احمد بن ابراہیم خطابی (۴۸) امام ابوالقاسم عبدالرحمن بن عبداللہ بن احمد سہیلی صاحب الروض (۴۹) امام عمر بن محمد بن عمر جلال الدین خبازی حنفی صاحب فتاوٰی خبازیہ (۵۰) صاحب عیاب حنفی تلمیذ امام اجل قاضی خاں (۵۱) علامہ محمود بن محمد لولوی بخاری حنفی صاحب حقائق شرح منظومہ نسفیہ تلمیذ تلمیذ امام شمس الائمہ کردی (۵۲) سیدی یوسف بن عمر صوفی حنفی صاحب مضمرات (۵۳) امام عارف باللہ صدر الدین قونوی (۵۴) امام شہاب الدین فضل اللہ بن حسین تور پشتی حنفی (۵۵) امام ملک العلماء عز الدین بن عبدالسلام شافعی (۵۶) امام محدث زین الدین مراغی (۵۷) امام ابو عبداللہ محمد بن احمد بن علی بن جابر اندلسی (۵۸) قاضی ناصر الدین بیضاوی شافعی صاحب تفسیر (۵۹) امام ابو عبداللہ بن النعمان صاحب سفینۃ النجاۃ لاہل الالتجاۃ فی کرامات الشیخ ابی النجاۃ (۶۰) امام عارف باللہ عبداللہ بن اسعد یافعی شافعی صاحب روض الریاحین (۶۱) امام علامہ سید الحفاظ ابو علی ابوالفضل احمد بن علی ابن حجر عسقلانی شافعی صاحب فتح الباری شرح صحیح بخاری (۶۲) امام شمس الدین محمد بن یوسف کرمانی حنفی صاحب کواکب الدراری شرح صحیح بخاری (۶۳) امام علامہ تقی

الدین علی اکافی سبکی شافعی صاحب شفاء السقام (۶۴) امام شمس الدین محمد بن عبدالرحمن سخاوی شافعی صاحب ارتیاح الاکباد بفقد الاولیاء (۶۵) امام خاتم الحفاظ مجد د المائۃ التاسعہ ابوالفضل جلال الدین بن عبدالرحمن سیوطی صاحب شرح الصدور و بدور سافرہ و انیس الغریب و زہر الربی شرح سنن نسائی وغیرہ (۶۶) امام علامہ محمد بن احمد خطیب قسطلانی شافعی صاحب مواہب لدنیہ و ارشاد الساری شرح صحیح بخاری (۶۷) امام شہاب الدین رملی انصاری شافعی (۶۸) سیدی ولی اللہ احمد زروق (۶۹) سید عارف باللہ ابوالعباس حضرمی (۷۰) امام احمد بن محمد بن حجر مکی شافعی شارح مشکوۃ (۷۱) محقق علامہ محمد محمد محمد ابن امیر الحاج حنفی صاحب حلیہ شرح منیہ (۷۲) امام محمد عبدری مکی مالکی (۷۳) امام صدر کبیر حسام الدین شہید عمر بن عبدالعزیز صاحب فتاویٰ کبری حنفی (۷۴) امام محمد بن محمد بن شہاب الدین بزازی حنفی صاحب بزازیہ (۷۵) علامہ نور الدین سمہودی شافعی صاحب خلاصۃ الوفاء فی اخبار دار المصطفیٰ صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم (۷۶) علامہ رحمتہ اللہ سندی حنفی صاحب مناسک ثلثہ (۷۷) علامہ نور الدین علی

...bin Ibrahim bin Ahmad Halabi Shafi'i, author of Sirat Insan al-Uyun. (78) Imam Arif Billah Abdul Wahab Sha'rani Shafi'i, author of Mizan al-Shari'ah al-Kubra. (79) Allama Muhammad bin Yusuf Shami, author of Subul al-Huda wa'l-Rashad fi Sirat Khair al-Ibad (peace and blessings of Allah be upon him). (80) Allama Muhammad bin Abdul Baqi Zurqani Maliki, author of Sharh Mawahib. (81) Allama Abdur Rauf Muhammad Munawi, author of Taysir Sharh Jami' al-Saghir. (82) Imam Abu Bakr bin Muhammad bin Ali Haddadi Hanafi, author of Jawharah al-Nayirah Sharh Quduri. (83) Allama Ibrahim bin Muhammad Ibrahim Halabi Hanafi, author of Ghunyat Sharh Munyat. (84) Fadil Ali bin Sultan Muhammad Qari Makki Hanafi, author of Mirqat Sharh Mishkat. (85) Allama Muhammad bin Ahmad bin Jamwi Hanafi, teacher of Muhaqqiq Shurunbulali. (86) Allama Abu al-Ikhlas Hasan bin Ammar Misri Shurunbulali Hanafi, author of Nur al-Idah, Imdad al-Fattah, and Maraqi al-Falah. (87) Allama Khayr al-Din Ramli Hanafi, author of Fatawa Khayriyyah, teacher of the author of Durr al-Mukhtar. (88) Fadil Muhaqqiq Muhammad bin Ali Dimashqi Haskafi, commentator of Tanwir. (89) Sayyidi Arif Billah Abdul Ghani bin Ismail bin Abdul Ghani Nabulsi Hanafi, author of Hadiqat al-Nadiyyah Sharh Tariqat al-Muhammadiyyah. (90) Sayyid Allama Abu al-Sa'ud Muhammad Hanafi. (91) Maulana Arif Billah Nur al-Din Jami Hanafi, author of Nafahat. (92) Shaykh Muhaqqiq, Barkat-e-Rasool-Allah (peace and blessings of Allah be upon him) in India, Maulana Abdul Haq bin Saif al-Din Muhaddith Dehlavi Hanafi, author of Lama'at, Ashi'at al-Lama'at, Jami' al-Barakat, Jazb al-Qulub, and Madarij al-Nubuwwah. (93) Fadil Muhaddith Maulana Muhammad Tahir Patni Gujarati Hanafi, author of Majma' Bihar al-Anwar. (94) Fadil Shaykh al-Islam Dehlavi Hanafi, author of Kashf al-Ghata. (95) Maulana Shaykh Jalil Nizamuddin and others, compilers of Fatawa 'Alamgiri Hanafi. (96) Bahr al-Ulum Malik al-Ulama Maulana Abu al-Ayash Muhammad bin Abdul Ali Lakhnawi Hanafi. (97) Khatimat al-Muhaqqiqin Allama Ghunaymi Hanafi. (98) Fadil Sayyid Ahmad Misri Tahtawi Hanafi. (99) Sayyidi Amin al-Din Muhammad Shami Hanafi, commentator of Sharh Alai. (100) Sayyidi Jamal bin Abdullah bin Umar Makki Hanafi and others, may Allah Almighty enlighten their resting places.

Note: The humble servant (may Allah Almighty forgive him) has listed from these past Imams and later scholars only those luminaries whose words contain specific decisive texts or manifest proofs regarding the hearing, perception, knowledge, and awareness of the inhabitants of the graves. Furthermore, even among them, there was no intent of exhaustive enumeration, for in its path lie vast lands, wide deserts,

lofty mountains, and overflowing oceans. Rather, far from it, even those whose guidance-filled sayings are currently present before me have not been mentioned in their entirety (1).

(1): His saying "even those... have not been mentioned in their entirety": I say, this very treatise is sufficient proof of the truth of this claim. If the reader studies its passages from beginning to end, he will see the names of many scholars and masters besides the aforementioned Imams. (Continued on next page)

...बिन इब्राहिम बिन अहमद हलबी शाफई, 'सीरत इंसान अल-उयून' के लेखक। (78) इमाम आरिफ़ बिल्लाह अब्दुल वहाब शा'रानी शाफई, 'मीज़ान अल-शरी'अह अल-कुबरा' के लेखक। (79) अल्लामा मुहम्मद बिन यूसुफ शामी, 'सुबुल अल-हुदा वल-रशाद फी सीरत खैर अल-इबाद' (अल्लाह की उन पर शांति और कृपा हो) के लेखक। (80) अल्लामा मुहम्मद बिन अब्दुल बाकी ज़रक़ानी मालिकी, 'शरह मवाहिब' के लेखक। (81) अल्लामा अब्दुर रऊफ मुहम्मद मुनावी, 'तयसीर शरह जामी अल-सगीर' के लेखक। (82) इमाम अबू बक्र बिन मुहम्मद बिन अली हद्दादी हनफी, 'जौहरह अल-नय्यिरह शरह कुदूरी' के लेखक। (83) अल्लामा इब्राहिम बिन मुहम्मद इब्राहिम हलबी हनफी, 'ग़ुनियत शरह मुनियत' के लेखक। (84) फाज़िल अली बिन सुल्तान मुहम्मद कारी मक्की हनफी, 'मरकात शरह मिश्कात' के लेखक। (85) अल्लामा मुहम्मद बिन अहमद बिन जमवी हनफी, मुहक़्क़िक शुरुनबुलाली के उस्ताद। (86) अल्लामा अबु अल-इखलास हसन बिन अम्मार मिस्री शुरुनबुलाली हनफी, 'नूर अल-इदाह', 'इमदाद अल-फत्ताह' और 'मराक़ी अल-फलाह' के लेखक। (87) अल्लामा खैर अल-दीन रमली हनफी, 'फ़तावा खैरिया' के लेखक, 'दुर्र अल-मुख्तार' के लेखक के उस्ताद। (88) फाज़िल मुहक़्क़िक मुहम्मद बिन अली दमिश्की हसकफ़ी, 'तन्वीर' के व्याख्याकार। (89) सैयदी आरिफ़ बिल्लाह अब्दुल गनी बिन इस्माइल बिन अब्दुल गनी नाबुलसी हनफी, 'हदीक़त अल-नदिय्या शरह तरीक़त अल-मुहम्मदिया' के लेखक। (90) सैयद अल्लामा अबु अल-सऊद मुहम्मद हनफी। (91) मौलाना आरिफ़ बिल्लाह नूर अल-दीन जामी हनफी, 'नफ़हात' के लेखक। (92) शेख मुहक़्क़िक, बरकत-ए-रसूलुल्लाह (अल्लाह की उन पर शांति और कृपा हो) भारत में, मौलाना अब्दुल हक बिन सैफ अल-दीन मुहद्दिस देहलवी हनफी, 'लमात', 'अशिअत अल-लमात', 'जामी अल-बरकात', 'ज़ज़्ब अल-कुलूब' और 'मदारिज अल-नुबुव्वह' के लेखक। (93) फाज़िल मुहद्दिस मौलाना मुहम्मद ताहिर पतनी गुजराती हनफी, 'मजमा बिहार अल-अनवार' के लेखक। (94) फाज़िल शेख अल-इस्लाम देहलवी हनफी, 'कश्फ अल-ग़ता' के लेखक। (95) मौलाना शेख जलील निज़ामुद्दीन और अन्य, 'फ़तावा आलमगीरी' हनफी के संकलनकर्ता। (96) बहरुल उलूम मलिकुल उलमा मौलाना अबु अल-अयाश मुहम्मद बिन अब्दुल अली लखनवी हनफी। (97) खातिमतुल मुहक़्क़िक़ीन अल्लामा ग़ुनेमी हनफी। (98) फाज़िल सैयद अहमद मिस्री तहतावी हनफी। (99) सैयदी अमीन अल-दीन मुहम्मद शामी हनफी, 'शरह अलाई' के टीकाकार। (100) सैयदी जमाल बिन अब्दुल्लाह बिन उमर मक्की हनफी और अन्य, अल्लाह उनके विश्राम स्थलों को रोशन करे।

चेतावनी: फकीर (अल्लाह उसे क्षमा करे) ने इन पूर्ववर्ती इमामों और बाद के विद्वानों में से केवल उन्हीं महानुभावों के पवित्र नाम गिनाए हैं जिनके शब्दों में कब्र वालों के सुनने, समझने, ज्ञान और चेतना के संबंध में विशेष निर्णायक ग्रंथ (नसूस) या स्पष्ट प्रमाण मौजूद हैं। फिर उनमें भी पूर्ण गणना का इरादा नहीं किया क्योंकि इसके मार्ग में विशाल देश, विस्तृत रेगिस्तान, ऊंचे पहाड़ और उमड़ते हुए समुद्र हैं। बल्कि, इसके विपरीत, उन सभी का भी उल्लेख नहीं किया गया (1) जिनके मार्गदर्शन से भरे कथन इस समय मेरे सामने मौजूद हैं।

(1): उनका कथन "उन सभी का भी उल्लेख नहीं किया गया": मैं कहता हूँ कि यह लेख स्वयं इस दावे की सत्यता का पर्याप्त प्रमाण है। पाठक यदि इसे शुरू से अंत तक पढ़ेगा, तो वह उपर्युक्त इमामों के अलावा कई विद्वानों और गुरुओं के नाम देखेगा। (शेष अगले पृष्ठ पर)

بن ابراہیم بن احمد حلبی شافعی صاحب سیرۃ انسان العیون (۷۸) امام عارف باللہ عبد الوہاب شعرانی شافعی صاحب میزان الشریعۃ الکبرٰی (۷۹) علامہ محمد بن یوسف شامی صاحب سبل الھدی والرشاد فی سیرۃ خیر العباد صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم (۸۰) علامہ محمد بن عبدالباقی زرقانی مالکی صاحب شرح مواہب (۸۱) علامہ عبدالرؤف محمد منادی صاحب تیسر شرح جامع صغیر (۸۲) امام ابوبکر بن محمد بن علی حدادی حنفی صاحب جوہرہ نیرہ شرح قدوری (۸۳) علامہ ابراہیم بن محمد ابراہیم حلبی حنفی صاحب غنیہ شرح منیہ (۸۴) فاضل علی بن سلطان محمد قاری مکی حنفی صاحب مرقاۃ شرح مشکوۃ (۸۵) علامہ محمد بن احمد بن جموی حنفی استاد محقق شربنلالی (۸۶) علامہ ابوالاخلاص حسن بن عمار مصری شربنلالی حنفی صاحب نورالایضاح وامداد الفتاح و مراقی الفلاح (۸۷) علامہ خیر الدین رملی حنفی صاحب فتاوٰی خیر یہ ، استاذ صاحب درمختار (۸۸) فاضل مدقق محمد بن علی دشقی حصکفی شارح تنویر (۸۹) سیدی عارف باللہ عبدالغنی بن اسمعیل بن عبدالغنی نابلسی حنفی صاحب حدیقہ ندیہ شرح طریقہ محمدیہ (۹۰) سید علامہ ابوالسعود محمد حنفی (۹۱) مولانا عارف باللہ نور الدین جامی حنفی صاحب نفحات (۹۲) شیخ محقق برکتہ رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم فی الہند مولانا عبدالحق بن سیف الدین محدث دہلوی حنفی صاحب لمعات واشعۃ اللمعات وجامع البرکات وجذب القلوب ومدارج النبوۃ (۹۳) فاضل محدث مولانا محمد طاہر فتنی احمد آبادی حنفی صاحب مجمع بحار الانوار (۹۴) فاضل شیخ الاسلام دہلوی حنفی صاحب کشف الغطا (۹۵) مولانا شیخ جلیل نظام الدین وغیرہ جامعان فتاوٰی عالمگیری حنفیان (۹۶) بحر العلوم ملک العلماء مولانا ابوالعیاش محمد بن عبدالعلی لکھنوی حنفی (۹۷) خاتمۃ المحققین علامہ غنیمی حنفی (۹۸) فاضل سید احمد مصری طحطاوی حنفی (۹۹) سیدی امین الدین محمد شامی حنفی

محشیان شرح علائی (۱۰۰) سیدی جمال بن عبداللہ بن عمر مکی حنفی و غیر ہم بر اللہ تعالیٰ مضاجعہم۔

تنبیہ : فقیر غفر اللہ تعالیٰ لہ، نے ان ائمہ سلف و علماے خلف سے صرف سے انہی اکابر کے اسمائے طیبہ گنے جن کے کلام میں خاص سماع و ادراک و علم و شعور اہل قبور کے نصوص خاص قاہرہ یا دلائل باہرہ ہیں، پھر ان میں بھی حصر استیعاب کا قصد نہ کیا کہ اس کی راہ میں بلاد شاسعہ و براری واسعہ و جبال شاہقہ و بحارِ زاخرہ ہیں، بلکہ حاشاوہ بھی بالتمام عہ ذکر نہ کیے جن کے اقوال ہدایت اشتمال اس وقت میرے سامنے جلوہ فرما و

عہ: قولہ وہ بھی بالتمام ذکر نہ کیے ، اقول اس دعویٰ کی صحت پر خود یہی رسالہ دلیل کافی ہے۔ ناظر اول تا آخر اس کے مقامات کو مطالعہ کرے گا تو ائمہ مذکورین کے سوا بہت علماء و مشائخ کے اسماء دیکھے گا۔ (باقی بر صفحہ آئندہ)

Fatawa-e-Razvia, Volume 9

...are presently available. "So these are a complete hundred among whom is the loyalty of hearts and the loyalty of the wise" (these are the full hundred who... [Remaining footnote of the previous page]) To complete the discourse, I also count their names and bring the number to one hundred and seventy-five (175). In the text, names of one hundred Imams of the past and present (Salaf and Khalaf) and ten reliable opponents were mentioned, totaling one hundred and ten. Moving forward, from the Companions (Sahaba), the Successors (Tabi'un), and their Followers: (111) Hazrat Abdullah bin Salam (112) Hazrat Ummul Mu'minin Siddiqah (Aisha) (113) Hazrat Imam Zainul Abidin Ali bin Hussain bin Ali Murtaza (114) Hazrat Imam Hasan Muthanna son of Hasan Mujtaba son of Mawla Mushkil-Kusha, may Allah shower blessings and peace upon their master always and forever. (115) Afzal-ut-Tabi'un Imam Saeed bin al-Musayyib (116) Hibban bin Abi Habla (117) Ibn Mina (118) Abu Qilaba Basri (119) Sulaim bin Umair (120) Abdullah bin Ibn Najih Makki, from among the scholars and saints of both types mentioned in the text. (121) Imam, Muhaddith, Mufassir, Mujtahid Ibn Jarir Tabari (122) Great Imam, Muhaddith Abu Muhammad Abdul Haq, author of Ahkam al-Kubra and Ahkam al-Sughra. (123) Imam Abu Amr bin al-Salah Muhaddith (124) Imam Qazi Majd-ush-Shari'ah Kirmani (125) Great Imam Abu al-Barakat Abdullah Nasafi, author of famous works. (126) Imam Allamah Badr-ud-Din Mahmood Aini, Ahmad Aini Hanafi, author of 'Umdat al-Qari' sharh of Sahih Bukhari. (127) Allamah Ibn Malik, commentator of Mashariq al-Anwar. (128) Allamah Fadlullah bin al-Ghauri Hanafi. (129) Imam Fakhr-ud-Din Abu Muhammad Uthman bin Ali Zayla'i, author of Tabyin al-Haqa'iq sharh of Kanz al-Daqa'iq. (130) Muhammad bin Muhammad Hafiz Bukhari, author of Fasl al-Khitab. (131) Imam Shihab-ud-Din, commentator of Minhaj, teacher of Ibn Hajar Makki. (132) Hazrat Sayyidi Ali Qurashi (May his secret be sanctified), al-Arshi. (133) Great Imam Nur-ud-Din Abul Hasan Ali, author of Bahjat al-Asrar. (134) Imam Majd-ud-Din Abdullah bin Mahmood Mawsili Hanafi, author of Mukhtar and Ikhtiyar. (135) Author of Matalib al-Mu'minin. (136) Author of Khizanat al-Riwayāt. (137) Author of Kanz al-Ibad; all three are from the reliable theologians of the group. (138) Allamah Jamhoori, author of numerous works. (139) Allamah Ziyadi. (140) Allamah Dawudi, commentator of Minhaj. (141) Allamah Halabi, annotator (Muhash-shi), author of Durr-e-Mukhtar. (142) Sheikh Ahmad Nakhli. (143) Sheikh Ahmad Shannawi. (144) Sheikh Ahmad Qashashi. (145) Maulana Ibrahim Kurdi, teacher of the teacher of Shah Waliullah. (146) Maulana Abu Tahir Madani, special teacher of Shah Waliullah. (147) Maulana Muhammad bin

Hussain Kabti Hanafi Makki. (148) Maulana Hussain Ibrahim Maliki Makki. (149) Hazrat Maulana Sheikh al-Haram Ahmad Zain Dahlan Shafi'i Makki, author of Sirat al-Nabawiyyah and Radd al-Wahhabiyyah etc. lofty works. (150) Maulana Muhammad bin Gharab Shafi'i Madani. (151) Maulana Abdul Jabbar Hanbali Basri Madani. (152) Maulana Ibrahim bin Khiyar Shafi'i Madani. (153) Pious servant Hashim bin Muhammad. (154) His noble father Muhammad Umri Madani. (Remaining on next page)

फ़तावा रज़विया, खंड 9

...वर्तमान स्थिति में उपलब्ध हैं, "तो ये पूर्ण सौ हैं जिनमें दिलों की वफ़ा और बुद्धिमानों की वफ़ा है" (ये पूर्ण सौ हैं जो... [पिछले पृष्ठ के फुटनोट का शेष भाग]) मैं अपनी बात को पूरा करने के लिए उनके नाम भी गिनता हूँ और संख्या को पौने दो सौ (175) नामों तक पहुँचाता हूँ। मूल पाठ में सौ पूर्ववर्ती और परवर्ती (सलफ़ और ख़लफ़) इमामों और दस विश्वसनीय विरोधियों के नाम गिनाए गए थे, जिससे कुल संख्या एक सौ दस हो गई थी। आगे बढ़ते हुए, सहाबा, ताबेईन और उनके अनुयायियों में से: (111) हज़रत अब्दुल्ला बिन सलाम (112) हज़रत उम्मुल मोमिनीन सिद्दीक़ा (आयशा) (113) हज़रत इमाम ज़ैनुल आबिदीन अली बिन हुसैन बिन अली मुर्तज़ा (114) हज़रत इमाम हसन मुसन्ना बिन हसन मुजतबा बिन मौला मुश्किल कुशा, अल्लाह उनके सरदार पर सदा और हमेशा कृपा और शांति बरसाए। (115) अफ़ज़ल-उत-ताबेईन इमाम सईद बिन अल-मुसय्यिब (116) हब्बान बिन अबी हबला (117) इब्न मीना (118) अबू क़िलाबा बसरी (119) सलीम बिन उमैर (120) अब्दुल्ला बिन इब्न नजीह मक्की, मूल पाठ में वर्णित दोनों प्रकार के विद्वानों और संतों में से। (121) इमाम, मुहद्दिस, मुफ़स्सिर, मुजतहिद इब्न जरीर तबरी (122) महान इमाम, मुहद्दिस अबू मुहम्मद अब्दुल हक़, 'अहकामुल कुबरा' और 'अहकामुल सुग़रा' के लेखक। (123) इमाम अबू अम्र बिन अल-सलाह मुहद्दिस (124) इमाम क़ाज़ी मज्द-उश-शरिया किरमानी (125) महान इमाम अबुल बरकात अब्दुल्ला नफ़सी, प्रसिद्ध रचनाओं के लेखक। (126) इमाम अल्लामा बदरुद्दीन महमूद ऐनी, अहमद ऐनी हनफ़ी, 'उम्दतुल क़ारी' (सहीह बुख़ारी की व्याख्या) के लेखक। (127) अल्लामा इब्न मालिक, 'मशारिक़ुल अनवार' के व्याख्याकार। (128) अल्लामा फ़ज़लुल्लाह बिन अल-ग़ौरी हनफ़ी। (129) इमाम फ़ख़रुद्दीन अबू मुहम्मद उस्मान बिन अली ज़ैलई, 'तबीनुल हक़ाएक़' (कन्ज़ुद दक़ाएक़ की व्याख्या) के लेखक। (130) मुहम्मद बिन मुहम्मद हाफ़िज़ बुख़ारी, 'फ़स्लुल ख़िताब' के लेखक। (131) इमाम शिहाबुद्दीन, मिन्हाज के व्याख्याकार, इब्न हजर मक्की के गुरु। (132) हज़रत सय्यिदी अली क़ुरशी (उनका रहस्य पवित्र हो), अल-अर्शी। (133) महान इमाम नूरुद्दीन अबुल हसन अली, 'बहजतुल असरार' के लेखक। (134) इमाम मज्दुद्दीन अब्दुल्ला बिन महमूद मौसिली हनफ़ी, 'मुख़्तार' और 'इख़्तियार' के लेखक। (135) 'मसालिबुल मोमिनीन' के लेखक। (136) 'ख़ज़ानतुल रिवायत' के लेखक। (137) 'कन्ज़ुल इबाद' के लेखक; ये तीनों समूह के विश्वसनीय धर्मशास्त्रियों में से हैं। (138) अल्लामा जम्हूरी, अनेक रचनाओं के लेखक। (139) अल्लामा ज़ियादी। (140) अल्लामा दाऊद, मिन्हाज के व्याख्याकार। (141) अल्लामा हलबी, हशिया-नवीस (टिप्पणीकार), 'दुर्रे मुख़्तार'

के लेखक। (142) शेख अहमद नख़ली। (143) शेख अहमद शन्नावी। (144) शेख अहमद क़शाशी। (145) मौलाना इब्राहीम कुर्दरी, शाह वलीउल्लाह के गुरुओं के गुरु। (146) मौलाना अबू ताहिर मदनी, शाह वलीउल्लाह के विशेष गुरु। (147) मौलाना मुहम्मद बिन हुसैन कप्ती हनफ़ी मक्की। (148) मौलाना हुसैन इब्राहीम मालिकी मक्की। (149) हज़रत मौलाना शैखुल हरम अहमद ज़ैन दहलां शाफ़ई मक्की, 'सीरत-ए-नबविया' और 'रद्द-ए-वहाबिया' आदि उच्च रचनाओं के लेखक। (150) मौलाना मुहम्मद बिन ग़रब शाफ़ई मदनी। (151) मौलाना अब्दुल जब्बार हंबली बसरी मदनी। (152) मौलाना इब्राहीम बिन ख़ियार शाफ़ई मदनी। (153) नेक बंदे हाशिम बिन मुहम्मद। (154) उनके महान पिता मुहम्मद उमरी मदनी। (शेष अगले पृष्ठ पर)

متیسر حالت حاضرہ ہیں، فتلك مائة كاملة فيهم وفاء القلوب وفاء عاقلة (یہ مکمل سو ہیں جو (بقیہ حاشیہ صفحہ گزشتہ) میں اتمام کلام کے لئے ان کے نام بھی شمار کرتا اور عدد کو پونے دوسو ۱۷۵ نام تک پہنچاتا ہوں، متن میں سو ائمہ سلف وخلف اور دس معتمدین مخالف کے اسماء گنائے کہ سب ایک سو دس "ہوئے۔ آگے چلے من الصحابة والتابعين واتباعهم : (۱۱۱) حضرت عبد الله بن سلام (۱۱۲) حضرت ام المومنين صديقہ (۱۱۳) حضرت امام زين العابدين على بن حسين بن على مرتضىٰ (۱۱۴) حضرت امام حسن مثنىٰ ابن حسن مجتبىٰ ابن مولىٰ مشكل كشا صلى الله علىٰ سيد ہم و بارک وسلم دائماً ابداً (۱۱۵) افضل التابعين امام سعيد بن المسيب (۱۱۶) حبان بن ابى حبلہ (۱۱۷) ابن مينا (۱۱۸) ابوقلابہ بصرى (۱۱۹) سليم بن عمير (۱۲۰) عبد الله بن ابن نجيح مكى من العلماء والاؤلياء من كلا النوعين المذكورين فى المتن (۱۲۱) امام محدث مفسر مجتہد ابن جرير طبرى (۱۲۲) امام محدث اجل ابو محمد عبدالحق صاحب احكام كبرى و احكام صغرى (۱۲۳) امام ابو عمر و بن الصلاح محدث (۱۲۴) امام قاضى مجد الشريعہ كرمانى (۱۲۵) امام اجل ابو البركات عبد الله نسفى صاحب تصانيف مشہورہ (۱۲۶) امام علامہ بدر الدين محمود عينى احمد عينى حنفى صاحب عمدة القارى شرح صحيح بخارى (۱۲۷) علامہ ابن ملک شارح مشارق الانوار (۱۲۸) علامہ فضل الله بن الغورى حنفى (۱۲۹) امام فخر الدين ابو محمد عثمان بن على زيلعى صاحب تبيين الحقائق شرح كنز الدقائق (۱۳۰) محمد بن محمد حافظ بخارى صاحب فصل الخطاب (۱۳۱) امام شہاب الدين شارح منہاج استاذ ابن حجر مكى (۱۳۲) حضرت سيدى على قرشى قدس سره العرشى (۱۳۳) امام جليل نور الدين ابوالحسن على مصنف بهجۃ الاسرار (۱۳۴) امام مجد الدين عبد الله بن محمود موصلى حنفى صاحب مختار و اختيار (۱۳۵) صاحب مطالب المومنين (۱۳۶) صاحب خزانۃ

الروایات (۱۳۷) صاحب کنز العباد، ہر سہ از مستندان متکلمین طائفہ (۱۳۸) علامہ جمہوری صاحب تصانیف کثیرہ (۱۳۹) علامہ زیادی (۱۴۰) علامہ داؤدی شارح منہج (۱۴۱) علامہ حلبی محشی صاحب در مختار (۱۴۲) شیخ احمد نخلی (۱۴۳) شیخ احمد شناوی (۱۴۴) شیخ احمد قشاشی (۱۴۵) مولانا ابراہیم کردی استاذ استاذ شاہ ولی اللہ صاحب (۱۴۶) مولانا ابوطاہر مدنی خاص استاذ شاہ ولی اللہ (۱۴۷) مولانا محمد بن حسین کبتی حنفی مکی (۱۴۸) مولانا حسین ابراہیم مالکی مکی (۱۴۹) حضرت مولانا شیخ الحرم احمد زین دحلان شافعی مکی مصنف سیرت نبویہ ورڈ وہابیہ وغیر ہما تصانیف علیہ (۱۵۰) مولانا محمد بن غرب شافعی مدنی (۱۵۱) مولانا عبد الجبار حنبلی بصری مدنی (۱۵۲) مولانا ابراہیم بن خیار شافعی مدنی (۱۵۳) عبد صالح ہاشم بن محمد (۱۵۴) ان کے والد ماجد محمد عمری مدنی (باقی بر صفحہ آئندہ)

Fatawa Razawiya Volume 9

Sufficient for those with understanding. (T)

Those are my leaders, so bring their likes, O Jarir, when the gatherings bring us together.[1] (These are my leaders, so present their likes, O Jarir, when gatherings gather us all together.)

(Remaining footnote from the previous page) (155) Hadrat Sayyidi Abu Yazid Bistami (156) Hadrat Sayyidi Abu al-Hasan Kharaqani (157) Hadrat Sayyidi Abu Ali Farmadi (158) Hadrat Sayyidi Abu Sa'id al-Kharraz (159) Hadrat Ustadh Imam Abu al-Qasim al-Qushayri. (160) Hadrat Arif billah Sayyidi Abi Ali (161) Hadrat Sayyidi Ibrahim bin Shaiban (162) Hadrat Sayyidi Abu Ya'qub (163) Hadrat Sayyidi Ali al-Khawas, Sheikh Imam Sha'rani (164) Hadrat Mir Abu al-Ala Akbarabadi, leader of the Naqshbandi Abu al-Alai chain (165) Shah Muhammad Ghaus Gwaliori, author of Jawahir-e-Khamsa (166) Maulana Wajihuddin Alawi Sheikh Hadrat Maulana Abdul Haq Muhaddith Dehlvi (167) Hadrat Sayyid Sibghatullah Baruji (168) Sheikh Bayazid Thani (169) Maulana Abdul Malik (170) Sheikh Ashraf Lahori (171) Sheikh Muhammad Sa'id Lahori, as all seven are mentors of Shah Waliullah. (172) Janab Sheikh Mujaddid Alf Thani (173) Sheikh Abdul Wahid, Peer of the Mujaddidi chain (174) Sheikh Abu al-Rida Muhammad, grandfather of Shah Waliullah (175) Sayyid Ahmed Barelvi, the spiritual guide of Miyan Ismail Dehlvi, whose utterances (Malfoozat) are established as the 'Sirat-e-Mustaqeem'. This collection totals around one hundred and seventy-five (175). From some, there is clear exposition; from some, providing proof; from some, narration and conviction; and for some, report is not like seeing; and praise be to Allah at every moment and time. (T) And there are still more remaining in this book. What path has been taken towards restriction and exhaustiveness? Rather, beyond full investigation within the power of the pen and the vastness of paper, it will be mentioned in the first type of the third objective that according to those scholars, there is a consensus among the entire Ahlus Sunnah wal Jamā'ah on the knowledge, hearing, and sight of the deceased. So, all the prominent figures of Ahlus Sunnah who have passed away until today are worthy of being included in this list. Then who can say how many lakhs they are? And praise be to Allah, Lord of the worlds. And the interesting thing is that among those mentioned, there are some through whose few apparent words the Wahhabis seek support in this matter, while setting aside their other statements, remaining completely oblivious or feigning ignorance to mislead the public regarding the place of research, the purpose of success, the system of reconciliation, and the distinction between those in agreement and those differing

from the majority. 'And Allah guides whom He wills to a straight path.' (And Allah gives guidance to the straight path to whomever He wills. T) 12 [of the month], may his blessings continue. (M)

[1] Mukhtasar al-Ma'ani, Definition of al-Musnad Ilayhi by reference, Maktaba al-Farooqia, Multan, p. 111.

समझ रखने वालों के लिए काफी हैं। (त)

वे मेरे सरदार हैं, तो उनके समान ले आओ, ऐ जरीर, जब सभाएं हमें एक साथ लाएँ।[1] (ये मेरे सरदार हैं, तो उनकी समानता पेश करो, ऐ जरीर जब महफिलें हम सबको इकट्ठा करें)

(पिछले पृष्ठ का शेष फुटनोट) (१५५) हज़रत सय्यदी अबू यज़ीद बिस्तामी (१५६) हज़रत सय्यदी अबुल हसन खरकानी (१५७) हज़रत सय्यदी अबू अली फ़ार्मदी (१५८) हज़रत सय्यदी अबू सईद ख़र्राज़ (१५९) हज़रत उस्ताद इमाम अबुल क़ासिम कुशैरी। (१६०) हज़रत आरिफ़ बिल्लाह सय्यदी अबी अली (१६१) हज़रत सय्यदी इब्राहिम बिन शैबान (१६२) हज़रत सय्यदी अबू यक़ूब (१६३) हज़रत सय्यदी अली ख़वास शैख़ इमाम शेरानी (१६४) हज़रत मीर अबुल अला अकबराबादी सरदार सिलसिला नक़्शबंदिया अबुल अलैया (१६५) शाह मुहम्मद ग़ौस ग्वालियरी साहब जवाहर खम्सा (१६६) मौलाना वजीहुद्दीन अलवी शैख़ हज़रत मौलाना अब्दुल हक़ मुहद्दिस देहलवी (१६७) हज़रत सय्यद सिबगतुल्लाह बरूजी (१६८) शैख़ बायज़ीद थानी (१६९) मौलाना अब्दुल मलिक (१७०) शैख़ अशरफ़ लाहोरी (१७१) शैख़ मुहम्मद सईद लाहोरी कि सातों साहब मशाइख़ शाह वलीउल्लाह से हैं। (१७२) जनाब शैख़ मुजद्दिद अल्फ़ थानी (१७३) शैख़ अब्दुल वाहिद पीर सिलसिला मुजद्दिया (१७४) शैख़ अबुल रज़ा मुहम्मद जद शाह वलीउल्लाह (१७५) सय्यद अहमद बरेलवी पीर मियां इस्माईल देहलवी कि सिरात-ए-मुस्तकीम जिनकी मलफ़ूज़ात क़रार दी गई। यह मजमुआ पौने दो सौ १७५ हुआ। उनमें से कुछ का स्पष्ट बयान है, कुछ की ओर से प्रमाण का लाभ है, कुछ से वर्णन और विश्वास है, और कुछ के लिए समाचार देखने जैसा नहीं है। और अल्लाह ही की प्रशंसा है हर समय और हर क्षण में। (त) और अभी इस किताब में और बाकी हैं और जो प्रतिबंध और व्यापकता की ओर रास्ता बनाया है बल्कि पूर्ण जाँच कलम की शक्ति और कागज की विशालता से परे, प्रथम प्रकार के तीसरे उद्देश्य में उन विद्वानों के हवाले से उल्लेख होगा कि मुर्दों के सुनने, देखने और ज्ञान पर समस्त अहले सुन्नत व जमाअत का आम राय (इज्मा) है। तो आज तक जितने अहले सुन्नत के बड़े लोग गुज़रे हैं, उन सब के नाम इसी सूची में दर्ज करने के योग्य हैं, फिर कौन कह सकता है कि वे कितने लाख हैं, और तमाम प्रशंसा अल्लाह ही के लिए है जो सारे संसार का रब है। और मज़ा यह कि इन उल्लेखितों में गिनती के कुछ ऐसे हैं जिनके एक दो ज़ाहिरी शब्दों से वहाबी इस मसले में दलील पकड़ते हैं और उन्हीं के बाकी कथनों को पीठ पीछे डाल कर शोध के स्थान, सफलता के लक्ष्य, तालमेल की व्यवस्था और बहुमत के साथ सहमत और असहमत के बीच भेद से बिल्कुल बेखबर या

जनता को गुमराह करने के लिए अनजान बने रहते हैं। 'और अल्लाह जिसे चाहता है सीधे रास्ते की हिदायत देता है।' (और अल्लाह जिसे चाहता है सीधे रास्ते की हिदायत देता है। त) १२ महीने, उनकी कृपा जारी रहे। (म)

[1] मुख्तसर अल-मआनी, मुसनद इलैही की परिभाषा इशारा द्वारा, मकतबा अल-फ़ारूकिया मुल्तान पृष्ठ १११।

पृष्ठ ७४३ / ९४८

فتاوی رضویہ جلد نہم

اصحاب فہم کے لیے کافی ہیں۔ ت ۔

اولئك ساداتي فجئني بمثلهم اذا جمعتنا یا جریر المجامع [1] (یہ ہیں میرے سردار، پس تو ان کی مثل پیش کر ، اے جریر جب محفلیں ہم سب کو اکھٹا کریں)

(بقیہ حاشیہ صفحہ گزشتہ) (۱۵۵) حضرت سیدی ابو یزید بسطامی (۱۵۶) حضرت سیدی ابوالحسن خرقانی (۱۵۷) حضرت سیدی ابوعلی فارمدی (۱۵۸) حضرت سیدی ابوسعید خراز (۱۵۹) حضرت استاد امام ابوالقاسم قشیری ۔ (۱۶۰) حضرت عارف باللہ سیدی ابی علی (۱۶۱) حضرت سیدی ابراہیم بن شیبان (۱۶۲) حضرت سیدی ابویعقوب (۱۶۳) حضرت سیدی علی خواص شیخ امام شعرانی (۱۶۴) حضرت میر ابوالعلی اکبر آبادی سردار سلسلہ نقشبندیہ ابوالعلائیہ (۱۶۵) شاہ محمد غوث گوالیاری صاحب جواہر خمسہ (۱۶۶) مولانا وجیہ الدین علوی شیخ حضرت مولانا عبدالحق محدث دہلوی (۱۶۷) حضرت سید صبغۃ اللہ بروجی (۱۶۸) شیخ بایزید ثانی (۱۶۹) مولانا عبدالملک (۱۷۰) شیخ اشرف لاہوری (۱۷۱) شیخ محمد سعید لاہوری کہ ساتوں صاحب مشائخ شاہ ولی اللہ سے ہیں۔ (۱۷۲) جناب شیخ مجدد الف ثانی (۱۷۳) شیخ عبدالواحد پیر سلسلہ مجددیہ (۱۷۴) شیخ ابوالرضا محمد جد شاہ ولی اللہ (۱۷۵) سید احمد بریلوی پیر میاں اسمعیل دہلوی کہ صراط مستقیم جن کی ملفوظات قرار دی گئی۔ یہ مجموعہ پونے دوسو ۱۷۵ ہؤا من بعضهم صریح البیان ومن بعضهم افادة البرهان ومن بعضهم التقریر والاذعان ولبعضهم لیس الخبر کالعیان والحمد للہ فی کل حین و آن (بعض کا صریح بیان ہے۔ بعض کی جانب سے افادہ برہان ہے۔ بعض سے تقریر اور اذعان ہے۔ اور بعض کا حال یہ ہے کہ خبر مشاہدے کی طرح نہیں، اور اللہ ہی کی حمد ہے ہر وقت اور ہر آن۔ ت) اور ہنوز اس کتاب میں اور باقی ہیں اور جو حصر واستیعاب کی طرف راہ کیا ہے

بلکہ استقصائے تام قدرت خامہ و وسعت کاغذ کے ورا آخر نوع اول مقصد سوم میں ارشاد ان علماء سے مذکور ہو گا کہ علم و سمع و بصر موتی پر تمام اہلسنت و جماعت کا اجماع ہے۔ تو آج تک جس قدر عمائد اہلسنت گزرے سب کے نام اسی فہرست میں اندراج کے قابل، پھر کون کہہ سکتا ہے کہ وہ کتنے لاکھ ہے، والحمد للہ رب العلمین۔ اور لطف یہ کہ ان مذکورین میں گنتی کے بعض ایسے ہیں جن کے دو ایک ظواہر کلمات سے وہابیہ اس مسئلہ میں استناد کرتے اور انھیں کے باقی اقوال کو پس پشت ڈال کر مقام تحقیق و مرام توفیق و نظام تطبیق اور موافق و مبائن جمہور کی تفریق سے محض غافل یا اغوائے عوام کو متغافل گزرتے ہیں واللہ من یشاء الی صراط مستقیم (اور اللہ جسے چاہتا ہے سیدھے راستے کی ہدایت دیتا ہے۔ ت) ۱۲ منہ دامت فیوضہ (م)

[1] مختصر المعانی تعریف المسند الیہ بالاشارۃ المکتبہ الفاروقیہ ملتان ص ۱۱۱

Fatawa Razawiyya Volume 9

And praise be to Allah, first and last, inwardly and outwardly, completing the discourse through the method of obligation. (In the beginning, end, manifest, and hidden, praise be to Allah. The discourse is being completed in the manner of obligation. - T) Now take those upon whom the opponent's trust is necessary: (1) Shah Waliullah Sahab, (2) his noble father Shah Abdur Rahim Sahab, (3) his illustrious son Maulana Shah Abdul Aziz Sahab, (4) his brother Maulana Shah Abdul Qadir Sahab, (5) his praised Mirza Mazhar Jan-e-Janan, (6) his worthy disciple Qazi Thanaullah Sahab Panipati, (7) Maulvi Ishaq Sahab Dehlavi, (8) his student Nawab Qutbuddin Khan Dehlavi, (9) Maulvi Khurram Ali Sahab Bilhauri (May Allah overlook [sins] from us and from every person whose faith is sound in both worlds, and have mercy on every person who truthfully testifies to the two declarations [of faith]. - T), (10) and the most powerful of all, the new mujtahid Mian Isma'il Dehlavi. And Allah is the Guider to the straight path, and He is the One sought for help against every deviant. And there is no power nor strength except with Allah, the Prevailing, the Most High. (- T) Let it be clear that the statements of the noble Companions and Successors (may Allah be pleased with them all) are mentioned in the intended Hadiths, as the terminology of Hadith scholars includes them. Since personal opinion has no place in the matters of graves and the states of departed souls, here [Note 2] it is 'mauquf' (ascribed to a companion).

Note 1: Allama Sayyid Sharif (may Allah the Almighty have mercy on him) says in the preface of 'Mustalahat al-Hadith': "Hadith is more general; it includes the saying, action, and silent approval of the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him), the Companion, and the Successor." (- T) Imam Allama Suyuti (may Allah the Almighty have mercy on him) says in his poem titled 'At-Tathbit 'ind at-Tathbit': "The questioning of people will be repeated within seven days according to what has been narrated. Thus it was narrated by Ahmad ibn Hanbal in 'Az-Zuhd' from Tawus, the high ocean [of knowledge], and its ruling is 'marfu' (raised to the Prophet), just as..." (1) According to the narration of Hadith scholars, the questioning of creatures will be repeated within seven days. (2) Imam Ahmad ibn Hanbal has [narrated] similarly in 'Zuhd' from the high-ranking Successor, Imam Tawus.

फ़तावा रज़विया जिल्द नौ (9)

और अल्लाह के लिए ही हम्द है अव्वल और आख़िर, बातिन और ज़ाहिर में, इल्ज़ाम के रास्ते से कलाम की तकमील। (शुरू, आख़िर, ज़ाहिर और बातिन में अल्लाह तआला की हम्द है। इल्ज़ाम के रंग में कलाम तमाम किया जा रहा है। - त) अब उन्हें लीजिए जिन पर मुख़ालिफ़ का एतमाद ज़रूरी है: (१) शाह वलीउल्लाह साहब, (२) उनके वालिद माजिद शाह अब्दुल रहीम साहब, (३) उनके फ़रज़न्दे अर्जुमंद मौलाना शाह अब्दुल अज़ीज़ साहब, (४) उनके भाई मौलाना शाह अब्दुल क़ादिर साहब, (५) उनके मम्दूह जनाब मिर्ज़ा मज़हर जान-ए-जानां, (६) उनके मुरीद-ए-रशीद क़ाज़ी सनाउल्लाह साहब पानीपती, (७) मौलवी इसहाक़ साहब देहलवी, (८) उनके शागिर्द नवाब क़ुतुबुद्दीन ख़ां देहलवी, (९) मौलवी ख़ुर्रम अली साहब बिल्हौरी (अल्लाह दरगुज़र फ़रमाए हमसे और हर उस शख़्स से जिसका ईमान दोनों जहानों में सही है और उन सब पर रहम फ़रमाए जो सच्चाई से दोनों शहादतों की गवाही देने वाले हैं। - त), (१०) इन सब में सबसे क़वी मुजतहिद-ए-नौ मियां इस्माईल देहलवी। और अल्लाह ही सीधी राह की हिदायत देने वाला है और उसी से हर गुमराह के ख़िलाफ़ इस्तआनत (मदद) है। और कोई ताक़त व क़ुव्वत नहीं मगर ख़ुदा-ए-ग़ालिब व बरतर से। - त) वाज़ेह हो कि सहाबा और ताबेईन (रज़िवानल्लाहु अलैहिम अजमईन) के इर्शादात मक़सद-ए-अहादीस में ज़िक्र हुए क्योंकि मुहद्दिसीन की इस्तलाह में हदीस उन्हें शामिल है, चूंकि क़ब्रों के उमूर और रूहों के अहवाल में राय का दख़ल नहीं तो यहाँ (नोट २) मौक़ूफ़ है।

नोट १: अल्लामा सैय्यद शरीफ़ (रहमतुल्लाह तआला अलैहि) मुक़द्दमा-ए-मुस्तलहात अल-हदीस में फ़रमाते हैं: "अल-हदीसु अअम्मु अन यकून क़ौलुर रसूल सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम वस-सहाबी वत-ताबेई व फ़ेलहुम व तक़रीरुहुम।" (हदीस रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम और सहाबी व ताबेई सबके क़ौल, फ़ेल और तक़रीर को शामिल है। - त) इमाम अल्लामा सुयूती (रहमतुल्लाह तआला अलैहि) अपनी अरजूज़ा मुस्मा बिल-तस्बीत इंदत-तस्बीत में फ़रमाते हैं: "युक़र्ररुस सुआलु लिल-अनाम * फ़ी मा रुवादा फ़ी सबअति अय्याम * कज़ा रवाहू अहमद बिन हंबल * फ़िज़-ज़ुहदी अन ताऊसुल बहरिल अली * व हुक्मुहुर रफ़उ कमा" (१) मुहद्दिसीन की रिवायत के मुताबिक़ मख़लूक़ से सवाल सात दिनों के अंदर दोबारा होगा। (२) इमाम अहमद बिन हंबल ने 'ज़ुहद' में आला मरतबा ताबेई इमाम ताऊस से ऐसा ही [रिवायत किया है]।

पृष्ठ ७४४ / ९४८

فتاوٰی رضویہ جلد نہم

والحمد للہ اولاً وآخرًا وباطنًا وظاھر اتمام لکلام بمسلك الالزام (اول، آخر، ظاہر، باطن میں اللہ تعالٰی کی حمد ہے۔ الزام کے رنگ میں کلام تمام کیا جارہا ہے۔ت) اب انھیں لیجیے جن پر اعتمادِ مخالف کو ضرور : (۱) شاہ ولی اللہ صاحب (۲) ان کے والد ماجد شاہ عبدالرحیم صاحب (۳) ان کے فرزند ارجمند مولانا شاہ عبدالعزیز صاحب (۴) ان کے برادر مولانا شاہ عبدالقادر صاحب (۵) ان کے ممدوح جناب میرزا مظہر جانجاناں (۶) ان کے مرید رشید قاضی ثناء اللہ صاحب پانی پتی (۷) مولوی اسحاق صاحب دہلوی (۸) ان کے شاگرد نواب قطب الدین خاں دہلوی (۹) مولوی خرم علی صاحب بلہوری تجاوز اللہ عنا وعن کل من صح ایمانہ فی النشأتین ورحم کل من یشھد صدقا بالشھادتین (اللہ در گزر فرمائے ہم سے اور ہر اس شخص سے جس کا ایمان دونوں نشأتوں میں صحیح ہے اور ان سب پر رحم فرمائے جو سچائی سے دونوں شہادتوں کی گواہی دینے والے ہیں۔ت) (۱۰) ان سب سے قوی مجتہدِ نو میاں اسمعیل دہلوی واللہ الھادی منھج السوی وھو المستعان علی کل غوی ولا حول ولا قوۃ الا باللہ الغالب العلی (اور خدا ہی راہِ راست کی ہدایت دینے والا ہے اور اسی سے ہر گمراہ کے خلاف استعانت ہے۔ اور کوئی طاقت و قوت نہیں مگر خدائے غالب و برتر سے۔ت) واضح ہو کہ ارشدات علیہ صحابہ و تابعین رضوان اللہ علیہم اجمعین مقصدِ احادیث میں مذکور ہوئے کہ حدیث اصطلاح عہ ۱ محدثین میں انھیں شامل، معلذ اامورِ قبور و احوالِ ارواحِ مفارقہ میں رائے کو دخل نہیں تو یہاں عہ ۲ موقوف

عہ ۱: علامہ سید شریف رحمۃ اللہ تعالٰی مقدمہ مصطلحات الحدیث میں فرماتے ہیں: الحدیث اعم ان یکون قول الرسول صلی اللہ تعالی علیہ وسلم والصحابی والتابعی وفعلھم وتقریرھم۔ (حدیث رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم اور صحابی و تابعی سب کے قول، فعل اور تقریر کو شامل ہے۔ت) امام

علامہ سیوطی رحمۃ اللہ تعالیٰ علیہ اپنی ارجوزہ مسمیٰ بالتثبیت عند التثبیت میں فرماتے ہیں: یکرر السوال للانام * في مارو دا فی سبعة ایام * کذا رواہ احمد بن حنبل * فی الزھد عن طاؤس البحر العلی * وحکمہ الرفع کما (۱) روایت محدثین کے مطابق مخلوق سے سوال سات دنوں کے اندر مکرر ہوگا (۲) امام احمد بن حنبل نے زہد میں تبحر بلند رتبہ تابعی امام طاؤس سے ایسا ہی

صفحہ 744 / 948

Fatawa Razawiyyah, Volume 9

...is also included in 'Marfu' (narrations attributed to the Prophet). Yes, some sayings of the Successors (Tabi'un), like Bilal bin Sa'd, are mentioned in this third objective, and the reason is their relevance to the sayings of the chapter. Just as, for instance, the saying of Imam Sufyan was narrated along with the sayings of the Successors due to relevance. Now, if the pure words, sayings, and clarifications of the remaining personages were written for the sake of comprehensiveness, it would become a massive volume. Therefore, I restrict myself to only three hundred (300) sayings. Two hundred (200) from the scholars of the first category and one hundred from those of the second category; if the eye of justice is clear, then even these are not few.

Couplet: "Dar khana agar kas ast yak harf bas ast" (If there is sense in the house of intellect, a hint is sufficient.)

Notice: The count of sayings is based on the novelty or multiplicity of the spoken content. Writing every scholar's text separately, whether in initial discourse or final form, would cause excessive length. Therefore, they will be counted under a single heading and numerical markers will be placed on the names of the scholars. This objective is also divided into two parts like its preceding and following counterparts. And Allah the Pure is the One Who grants success to truth and correctness in every important matter. (And only Holy God grants the ability for reward in every task. -T)

Category 1: Among the sayings of the scholars of the past and later generations, consisting of a preamble and fifteen (15) chapters. (1) Ibn Asakir, in the 'History of Damascus', narrates from Imam Muhammad bin Waddah, that it was said to the most exalted Imam Sahnun bin Sa'id (may his secret be sanctified): "A person says that with the death of the body, the soul also dies." He said: "Allah forbid, this is from the speech of the people of innovation (Ahl al-Bid'ah)." 1 Seeking refuge in God, this is the saying of the innovators. (2) Imam Ibn Amir al-Hajj states in the conclusion of 'Hulyah' regarding the benefits of washing the deceased:

[Table Content] Arabic: "Idha i'tanal mawla bitathiri jasadinyulqa fit-turab" Urdu Translation: Meaning when the servant sees that the Lord Blessed and Exalted has...

(Remaining footnote from previous page) Arabic Text: "They have said: Since there is no room for opinion in it, and no entry for analogy in this matter for those of intellect. Rather, submission in it is what is fitting, and compliance where the Truthful One (the Prophet) has informed us of it."

Urdu Translation: ...narrated. (3) According to the instructions of scholars, it is in the category of 'Marfu', because opinion has no place in this matter (4) and analogy (qiyas) has no entry in this chapter according to the people of intellect (5). When the truthful one (the Prophet) has given information, then submission, acceptance, and obedience are appropriate. (T)

1. Sharh as-Sudur citing Ibn Asakir, conclusion on benefits related to the soul, Khilafat Academy, Mingora Swat, p. 135.

फ़तावा रज़विया, खंड 9

...भी 'मरफ़ू' (पैगंबर से जुड़ी बातें) में शामिल है। हाँ, ताबेईन (उत्तराधिकारियों) के कुछ कथन जैसे बिलाल बिन साद इस तीसरे उद्देश्य में वर्णित हैं और इसका कारण अध्याय के कथनों से उनकी प्रासंगिकता है। जिस प्रकार, उदाहरण के तौर पर इमाम सुफ़यान का कथन, प्रासंगिकता के कारण ताबेईन के कथनों के साथ उद्धृत किया गया। अब यदि शेष महानुभावों के पवित्र शब्द, कथन और स्पष्टीकरण व्यापकता के लिए लिखे जाएँ तो यह एक विशाल ग्रंथ बन जाएगा। इसलिए, मैं केवल तीन सौ (300) कथनों तक ही सीमित रहता हूँ। पहली श्रेणी के विद्वानों के दो सौ (200) और दूसरी श्रेणी के सौ; यदि न्याय की दृष्टि स्पष्ट हो, तो ये भी कम नहीं हैं।

शेर (दोहा): "दर ख़ाना अगर कस अस्त, यक हर्फ़ बस अस्त" (यदि बुद्धि के घर में समझ हो, तो एक इशारा ही काफी है।)

चेतावनी (तनबीह): कथनों की संख्या, कहे गए विषय की नवीनता या बहुलता से है। आरंभिक प्रवचन हो या अंतिम स्थिति, हर विद्वान के शब्दों को अलग-अलग लिखना विस्तार का कारण बनेगा। इसलिए, उन्हें एक ही शीर्षक के तहत गिनकर विद्वानों के नामों पर अंक लगा दिए जाएंगे। यह उद्देश्य भी अपने पूर्ववर्ती और आगामी हिस्सों की तरह दो भागों में विभाजित है। और अल्लाह पाक ही हर महत्वपूर्ण कार्य में सत्य और सही मार्ग की सफलता देने वाला है। (और केवल पवित्र ईश्वर ही हर कार्य में पुण्य की तौफीक देने वाला है। -त)

श्रेणी 1: पूर्ववर्ती और परवर्ती विद्वानों के कथनों में, जिसमें एक प्रस्तावना और पंद्रह (15) अध्याय शामिल हैं। (1) इब्न असाकिर ने 'तारीख दमिश्क' में इमाम मुहम्मद बिन वद्दाह से उल्लेख किया है कि सबसे प्रतिष्ठित इमाम सहनून बिन सईद (अल्लाह उनके रहस्य को पवित्र करे) से कहा गया कि एक व्यक्ति कहता है कि शरीर की मृत्यु के साथ आत्मा भी मर जाती है। उन्होंने फ़रमाया: 'मआज़ अल्लाह' (ईश्वर न करे), यह बिदअत वालों (नवाचार करने वालों) का कथन है। 1 ईश्वर की शरण, यह बिदअतियों का कथन है। (2) इमाम इब्न अमीर अल-हाज 'हुलिया' के अंत में मृतक को नहलाने के लाभों के बारे में फ़रमाते हैं:

[तालिका सामग्री] अरबी: "इज़ा अतनिल मौला बिततहीर जसद युलका फ़ित्तिराब" उर्दू अनुवाद का हिंदी भाव: यानी जब बंदा देखेगा कि मौला तबारक व तआला ने...

(पिछले पृष्ठ से शेष पादलेख) अरबी पाठ: "उन्होंने पहले ही कहा है: चूंकि इसमें राय के लिए कोई स्थान नहीं है, और बुद्धि रखने वालों के लिए इस अध्याय में सादृश्य के लिए कोई स्थान नहीं है। बल्कि, समर्पण ही वह है जो उपयुक्त है, और वहां अनुसरण करना जहां सच्चे व्यक्ति ने हमें सूचित किया है।"

उर्दू अनुवाद का हिंदी भाव: ...वर्णित किया है। (3) विद्वानों के निर्देशों के अनुसार वह 'मरफू के नियम में है, क्योंकि इस बारे में राय की कोई गुंजाइश नहीं है (4) और बुद्धिमानों के निकट इस अध्याय में कयास (तर्क) का कोई प्रवेश नहीं है (5)। जब सच्चे (पैगंबर) ने सूचना दी है, तो उसमें समर्पण, स्वीकार्यता और आज्ञाकारिता ही उचित है। (त)

1. शरह अस-सुदूर, इब्न असाकिर के हवाले से, आत्मा से संबंधित लाभों पर निष्कर्ष, खिलाफत अकादमी, मिंगोरा स्वात, पृ. 135।

بھی مرفوع میں داخل۔ ہاں بعض اقوال تابعین مثل بلال بن سعد اس مقصد سوم میں ذکر ہوئے اور اس کی وجہ اقوال باب سے مناسبت ، جس طرح مثلاً امام سفیان کا قول ، ایسے ہی مناسب کے سبب اقوال تابعین کے ساتھ منقول ہوا۔ اب بقیہ حضرات کے کلمات طیبات واقوال و تصریحات اگر بوجہ استیعاب لکھیے پھر دفتر ہوتا ہے۔ لہذا صرف تین سو ۳۰۰ قول پر اقتصار کرتا ہوں۔ علماء صنف اول کے دوسو ۲۰۰ اور اہل صنف دوم کے سو کہ دیدہ انصاف صاف ہو تو اتنے کیا کم ہیں ع

در خانہ اگر کس است یک حرف بس است (اگر خانہ عقل میں شعور ہو تو اشارہ ہی کافی ہے)

تنبیہ: عدت قول، جدت مقول یا تعدد مقول سے ہے، ابتدا خواہ تقریر اور در صورت اخیر ہر عالم کی عبارت جدا جدا لکھنا باعث طول۔ لہذا انھیں ایک ہی سرخی میں گن کر اسامی علماء پر ہندسہ لگا دیا جائے گا۔ یہ مقصد بھی مثل اپنے دور ادر پیشیں کے دونوں پر منقسم واللہ سبحنہ ھو الموفق للحق والصواب فی کل مہم (اور خدائے پاک ہی ہر مہم میں ثواب کی توفیق دینے والا ہے۔ ت)

نوع اول: اقوال علماء سلف وخلف میں، ایک تمہید اور پندرہ ۱۵ فصل پر مشتمل۔ (1) ابن عساکر تاریخ دمشق میں امام محمد بن وضاح سے راوی، امام اجل سحنون بن سعید قدس سرہ، سے کہا گیا ایک شخص کہتا ہے بدن کے مرنے سے روح بھی مر جاتی ہے۔ فرمایا: معاذ اللہ ھذا من قول اھل البدع 1 خدا کی پناہ یہ بدعتیوں کا قول ہے۔ (۲) امام ابن امیر الحاج خاتمہ حلیہ میں درباره فوائد غسل میت فرماتے ہیں:

اذا اعتنی المولی بتطھیر جسد یلقی فی التراب | یعنی جب بندہ دیکھے گا کہ مولی تبارک و تعالٰی نے

(بقیہ حاشیہ صفحہ گذشتہ) قد قالوا * اذالیس للرأی فیہ مجال * و لیس للقیاس فی ذا الباب * من مدخل عند ذوی الالباب * وانما التسلیم فیہ اللائق * والنقیاد حیث أبنا الصادق منہ (م)

روایت کیا ہے (۳) وہ حسب ارشاد علمائے مرفوع کے حکم میں ہے، اس لیے کہ اس بارے میں رائے کا گذر نہیں (۴) اور قیاس کا اس باب میں ارباب عقول کے نزدیک کوئی دخل نہیں (۵) جب صادق نے خبر دی ہے تو اس میں تسلیم و قبول اور تابعداری ہی مناسب ہے۔ (ت)

1 شرح الصدور بحوالہ ابن عساکر خاتمہ فی فوائد تتعلق بالروح خلافت اکیڈمی منگورہ سوات ص ۱۳۵

Fatawa Ridawiyya, Volume 9

[Arabic Box Text]: A servant's attention is drawn towards the purification of his eternal abode, which is the soul, for it does not perish according to the People of Sunnah and the Community. [Urdu Box Text]: Since the purification of this body, which will be cast into the dust, was made obligatory for us, then one should be aware that the purification of that which remains is even more necessary, i.e., the soul, which according to the People of Sunnah and the Community does not perish.

(3) Imam Izz al-Din bin Abd al-Salam (May Allah be pleased with him) says: [Arabic]: Souls of life do not die, rather they are raised to the heavens alive. [Urdu]: Souls do not die; instead, they are taken up to the sky alive.

(4) Imam Jalal al-Haqq wa al-Din al-Suyuti narrates in Sharh al-Sudur: "It remains after its creation by consensus" - Souls remain eternal by consensus after their birth. (5) The mentioned Imam himself supports the fact that the life of martyrs is not just spiritual but involves both soul and body. He says:

[Arabic Box Text]: If the intended meaning of 'the life of the soul' was only that, there would be no distinction for him from others, because all other dead share that with him. And because all believers know about the life of all souls, Allah's saying 'but you perceive not' would not apply. [Urdu Box Text]: Meaning, if in the noble verse by 'the life of a martyr' only spiritual life was meant, then what was its specialty? This is something every deceased person has, and all Muslims know that all souls remain alive after death. Whereas, regarding the life of martyrs, it was said in the verse that you do not perceive it.

From here, the consensus of the Companions is established. First Section: Death is merely moving from one place to another, not, God forbid, becoming inanimate. Quote (1): Abu Nu'aym in 'Hilya' narrates from Bilal bin Sa'd (May Allah have mercy on him) that he says in his sermon:

Note 1: Narrated in Sharh al-Sudur from his 'Amali' (dictations). (T) Note 2: A great Tabi'i, worshiper, scholar, reliable, from the men of Nasa'i etc. (M)

Footnotes: 1. Hilyat al-Mahalli Sharh Munyat al-Musalli. 2. Sharh al-Sudur, citing Izz al-Din bin Abd al-Salam, Conclusion on benefits related to the soul, Khilafat Academy Swat, p. 134. 3. Sharh al-Sudur, citing the book of Ibn al-Qayyim, Conclusion on benefits related to the soul, Khilafat Academy Swat, p. 135. 4. Sharh al-Sudur, Chapter

on Visiting Graves, Conclusion on benefits related to the soul, Khilafat Academy Swat, p. 85.

फ़तावा रज़विया, जिल्द नवीं

[अरबी पाठ]: दास का ध्यान उसके शाश्वत निवास की शुद्धि की ओर आकर्षित किया जाता है जो कि आत्मा है, क्योंकि सुन्नी संप्रदाय (अहल-ए-सुन्नत व जमाअत) के अनुसार यह नष्ट नहीं होती। [उर्दू पाठ]: जब हम पर इस शरीर की शुद्धि अनिवार्य की गई जो मिट्टी में डाल दिया जाएगा, तो यह समझना चाहिए कि उसकी शुद्धि और भी आवश्यक है जो शेष रहने वाली है, यानी आत्मा, जो सुन्नी संप्रदाय (अहल-ए-सुन्नत व जमाअत) के निकट नष्ट नहीं होती।

(३) इमाम इज़ुद्दीन बिन अब्दुल सलाम (रहमतुल्लाह अलैहि) फरमाते हैं कि: [अरबी]: आत्माएँ मरती नहीं हैं बल्कि जीवित ही आकाश की ओर उठा ली जाती हैं। [उर्दू]: आत्माएँ मरती नहीं हैं बल्कि ज़िंदा आसमान की तरफ़ उठा ली जाती हैं।

(४) इमाम जलाल उल हक़ वद्दीन सुयूती 'शरह अल-सुदूर' में उल्लेख करते हैं, "पैदा होने के बाद सर्वसम्मति (इजमा) से आत्माएँ शाश्वत रहती हैं।" (५) स्वयं उक्त इमाम इस बात का समर्थन करते हैं कि शहीदों का जीवन केवल आध्यात्मिक नहीं बल्कि आत्मा और शरीर दोनों से है। वे फरमाते हैं:

[अरबी पाठ]: यदि शहीद के जीवन से केवल आत्मा का जीवन मुराद होता, तो उसमें उसकी क्या विशेषता थी क्योंकि अन्य सभी मृतक उस जीवन में उसके साथ शरीक हैं? और चूंकि सभी मोमिन जानते हैं कि सभी आत्माएं जीवित रहती हैं, तो अल्लाह का यह फरमान कि 'लेकिन तुम महसूस नहीं करते' सही न होता। [उर्दू पाठ]: यानी अगर पवित्र आयत में शहीद के जीवन से सिर्फ़ रूहानी ज़िन्दगी मुराद होती, तो उसमें उसकी क्या खुसूसियत थी, यह बात तो हर मुर्दे को हासिल है और तमाम मुसलमान जानते हैं कि सब की रूहें मौत के बाद ज़िंदा रहती हैं। हालाँकि हयात-ए-शुहदा के मुताल्लिक आयत में फरमाया गया कि तुम्हें इसकी खबर नहीं।

यहाँ से सहाबा का इजमा साबित हुआ। पहला अध्याय: मृत्यु केवल एक स्थान से दूसरे स्थान पर चले जाना है, न कि (अल्लाह न करे) बेजान पत्थर हो जाना। कथन (१): अबू नुऐम 'हिलिया' में बिलाल बिन साद (रहमतुल्लाह अलैहि) से वर्णन करते हैं कि उन्होंने अपने उपदेश में कहा:

नोट १: इसे शरह अल-सुदूर में उनके अमाली (व्याख्यान) से उद्धृत किया गया। (T) नोट २: एक महान ताबई, इबादत गुज़ार, विद्वान, विश्वसनीय, नसाई के लोगों आदि में से। (M)

पाद-टिप्पणियाँ: १. हिलियत अल-महल्ली शरह मुनियत अल-मुसल्ली। २. शरह अल-सुदूर, इज़ुद्दीन बिन अब्दुल सलाम के हवाले से, आत्मा से संबंधित लाभों का निष्कर्ष, खिलाफत अकादमी स्वात, पृष्ठ १३४। ३. शरह अल-सुदूर, इब्न अल-क़य्यिम की पुस्तक के हवाले से, आत्मा से संबंधित लाभों का निष्कर्ष, खिलाफत अकादमी स्वात, पृष्ठ १३५। ४. शरह अल-सुदूर, कब्रों की ज़ियारत का अध्याय, आत्मा से संबंधित लाभों का निष्कर्ष, खिलाफत अकादमी स्वात, पृष्ठ ८५।

فتاوٰی رضویہ، جلد نہم

تنبہ العبد الی تطھیر مأوا باق وھو النفس فانہ لایفنی عند اھل السنۃ والجماعۃ[1] - | ہم پر اس بدن کی تطہیر فرض کی جو خاک میں ڈالا جائیگا تو متنبہ ہوگا کہ اس کی تطہیر اور بھی ضرور ہے جو باقی رہنے والا ہے یعنی روح کہ اہل سنت و جماعت کے نزدیک فنا نہیں ہوتی۔

(۳) امام عزالدین بن عبدالسلام عہ۱ فرماتے ہیں کہ: لا تموت ارواح الحیاۃ بل ترفع الی السماء حیۃ [2] - | روحیں مرتی نہیں بلکہ زندہ آسمان کی طرف اٹھالی جاتی ہیں۔

(۴) امام جلال الحق والدین سیوطی شرح الصدور میں ناقل، باقیۃ بعد خلقھا بالاجماع [3] روحیں پیدائش کے بعد بالاجماع جاوداں رہتی ہیں۔ (۵) خود امام ممدوح اس امر کی تائید کہ شہداء کی زندگی صرف روحانی بلکہ روح وبدن دونوں سے ہے۔ ارشاد فرماتے ہیں:

لوکان المرادحیات الروح فقط لم یحصل لہ تمیز عن غیرہ لمشارکۃ سائر الاموات لہ في ذلك ولعلم المومنین باسرھم حیاۃ کل الارواح فلم یکن لقولہ تعالی ولکن لا تشعرون [4] - | یعنی اگر آیت کریمہ میں حیات شہید سے صرف زندگی روح مراد ہوتی ہے تو اس میں اس کی کیا خصوصیت تھی، یہ بات تو ہر مُردے کو حاصل ہے اور تمام مسلمان جانتے ہیں کہ سب کی روحیں بعد موت زندہ رہتی ہیں۔ حالانکہ حیات شہداء کی نسبت آیت میں فرمایا کہ تمھیں خبر نہیں۔

یہاں سے اجماع صحابہ ثابت ہوا۔ فصل اوّل: موت صرف ایک مکان سے دوسرے مکان میں چلا جانا ہے نہ کہ معاذ اللہ جماد ہو جانا۔ قول (۱): ابو نعیم حلیہ میں بلال عہ۲ بن سعد رحمۃ اللہ تعالٰی سے راوی کہ اپنے وعظ میں فرماتے : عہ۱: نقلہ في شرح الصدور و عن امالیہ ۱۲ منہ (م) | اسے

شرح الصدور میں ان کے امالی سے نقل کیا۔ ت عہ۲: تابعی جلیل، عابد، فاضل، ثقہ، رجال نسائی وغیرہ سے ۱۲ منہ (م)

1 حلیتہ المحلی شرح منیة المصلی 2 شرح الصدور بحوالہ عز الدین بن عبد السلام خاتمہ فی فوائد تتعلق بالروح خلافت اکیڈمی سوات ص ۱۳۴ 3 شرح الصدور بحوالہ کتاب ابن قیم خاتمہ فی فوائد تتعلق بالروح خلافت اکیڈمی سوات ص ۱۳۵ 4 شرح الصدور باب زیارة القبور خاتمہ فی فوائد تتعلق بالروح خلافت اکیڈمی سوات ص ۸۵

Fatawa Rizvia Volume 9

"O people of seclusion! O people of eternity! You were not created for annihilation, but rather you were created for permanence and eternity. However, you transition from one abode to another." (1) - O people of eternity! O people of permanence! You are not made for destruction but for eternity and permanence; yes, you move from one house to another house.

Quote (2): It is stated in Sharh al-Sudur: "Scholars have said that death is not pure non-existence or total annihilation. Rather, it is the severance of the connection between the soul and the body, a separation and a barrier between them, a change of state, and a transition from one abode to another." (2) - Scholars have said the meaning of death is not that a person becomes non-existent or destroyed, but rather it is the name for the severance of the connection between the soul and the body, becoming a veil and separation between them, a change in state, and moving from one house to another house.

Warning: The meaning of the connection being severed is that the established link that existed during life is gone. And by 'veiling and separation,' it is meant that such complete union no longer remains; otherwise, according to the Creed of Ahl al-Sunnah, the soul maintains a degree of connection and contact with the body even after death, as will be seen in numerous upcoming quotes, Allah willing.

Quote (3): It is stated in Jami' al-Barakat: "Death is not pure non-existence, as atheists and materialists claim. Instead, it is a transition from one state to another and from one abode to another." (3) - Death is not the name of becoming non-existent or destroyed as the atheists and materialists say, but rather it is the name for transitioning from one state to another and from one house to another house. (T)

Quote (4): In Ashi'at al-Lam'at Sharh Mishkat, it is stated: "The friends of God were transferred from this mortal world to the eternal world; they are alive with their Lord, provided for, and happy, and people do not perceive it." (4) - The friends (Awliya) are transferred from this perishable world to the eternal world, they are alive with their Lord, they receive sustenance and live happily, and people are unaware of this. (T)

1 Sharh al-Sudur citing Hilya, Chapter on the Virtue of Death, Khilafat Academy Mingora Swat, p. 5 2 Sharh al-Sudur citing Hilya, Chapter on the Virtue of Death, Khilafat Academy Mingora Swat, p. 5 3 Jami' al-Barakat 4 Ashi'at al-Lam'at, Chapter on the Ruling of Captives, section published by Nooria Rizvia Sukkur 3/402

फ़तावा रज़विया खंड 9

"हे एकांतवासियो! हे अमरता वालो! तुम विनाश के लिए नहीं पैदा किए गए हो, बल्कि तुम निरंतरता और अमरता के लिए बनाए गए हो। हाँ, तुम एक घर से दूसरे घर में चले जाते हो।" (1) - ऐ हमेशा रहने वालो! ऐ बक़ा वालो! तुम फ़ना होने के लिए नहीं बल्कि दवाम व हमेशा रहने के लिए बने हो, हाँ एक घर से दूसरे घर में चले जाते हो।

क़ौल (2): शरह अल-सुदूर में है: विद्वानों ने कहा है कि मृत्यु का अर्थ यह नहीं है कि मनुष्य अस्तित्वहीन और नष्ट हो जाए, बल्कि यह केवल आत्मा और शरीर के बीच संबंध का टूटना है, और उनके बीच एक परदा और अलगाव हो जाना है, और एक प्रकार की स्थिति बदलना और एक घर से दूसरे घर चले जाने का नाम है। (2) - उलमा ने फ़रमाया मौत के ये मा'नी नहीं कि आदमी नेस्त व नाबूद हो जाए बल्कि वह तो यही रूह व बदन के तअल्लुक़ छूटने और उनमें हिजाब व जुदाई हो जाने और एक तरह की हालत बदलने और एक घर से दूसरे घर चले जाने का नाम है।

चेतावनी: संबंध टूटने का अर्थ यह है कि जीवन के संसार में जो स्थापित संबंध था, वह समाप्त हो गया। और परदा और अलगाव होने से तात्पर्य यह है कि वैसा पूर्ण मिलन शेष नहीं रहता, अन्यथा अहल-ए-सुन्नत के मत में मृत्यु के बाद भी आत्मा का शरीर से एक संबंध और जुड़ाव बना रहता है, जैसा कि आने वाले खंडों में कई उद्धरणों में आएगा, इंशा अल्लाह।

क़ौल (3): जामे अल-बरकात में फ़रमाया: मृत्यु शुद्ध अभाव नहीं है जैसा कि नास्तिक और प्रकृतिवादी कहते हैं, बल्कि यह एक स्थिति से दूसरी स्थिति और एक घर से दूसरे घर में स्थानांतरित होने का नाम है। (3) - मौत नेस्त व नाबूद हो जाने का नाम नहीं जैसा कि दहरिए और तबीयीन कहते हैं बल्कि एक हाल से दूसरे हाल और एक घर से दूसरे घर में मुंतक़िल हो जाने का नाम है। (त)

क़ौल (4): अशअतुल लमआत शरह मिश्कात में फ़रमाया कि: अल्लाह के वली इस फ़ानी दुनिया से बक़ा वाली दुनिया में मुंतक़िल कर दिए गए, वे अपने रब के पास ज़िंदा हैं, उन्हें रिज़्क़ दिया जाता है और वे खुशहाल हैं, और लोगों को इसका अहसास नहीं है। (4) - औलिया इस दारे फ़ानी से दारे बक़ा में मुंतक़िल कर दिए जाते हैं, वह अपने परवरदिगार के यहाँ ज़िंदा हैं, उन्हें रिज़्क़ मिलता है और खुशहाल रहते हैं और लोगों को इसकी ख़बर नहीं। (त)

1 शरह अल-सुदूर हिल्या के हवाले से, बाब फ़ज़्ल उल-मौत, खिलाफ़त एकेडमी मिंगोरा स्वात, पृ. 5
2 शरह अल-सुदूर हिल्या के हवाले से, बाब फ़ज़्ल उल-मौत, खिलाफ़त एकेडमी मिंगोरा स्वात, पृ. 5

3 जामे अल-बरकात 4 अशअतुल लमआत, बाब हुक्म अल-असरा, फ़स्ल मतबुआ नूरिया रज़विया सुक्कुर 3/402

पृष्ठ 747 का 948

فتاوٰی رضویہ جلد نہم

یا اھل الخلوت یا اھل البقاء انکم لم تخلقوا للفناء و انما خلقتم للخلود و الابد و لکنکم تنتقلون من دار الی دار۔ (1) اے ہمیشگی والو! اے بقا والو! تم فنا ہونے کے لیے نہیں بلکہ دوام و ہمیشگی کے لیے بنے ہو، ہاں ایک گھر سے دوسرے گھر میں چلے جاتے ہو۔

قول (۲): شرح الصدور میں ہے: قال العلماء الموت لیس بعدم محض ولا فناء صرف وانما ھو انقطاع تعلق الروح بالبدن ومفارقۃ وحیلولۃ بینھما وتبدل حال وانتقال من دار الی دار۔ (2) علماء نے فرمایا موت کے یہ معنی نہیں کہ آدمی نیست و نابود ہو جائے بلکہ وہ تو یہی روح و بدن کے تعلق چھوٹنے اور ان میں حجاب و جدائی ہو جانے اور ایک طرح کی حالت بدلنے اور ایک گھر سے دوسرے گھر چلے جانے کا نام ہے۔

تنبیہ: تعلق چھوٹنے کے یہ معنی کہ وہ علاقہ معہودہ جو عالم حیات تھا، جاتا رہا۔ اور اس طرح حجاب و جدائی ہو جانے سے یہ مراد کہ ویسا اتصال تام باقی نہیں، ورنہ مذہب اہلسنت میں روح کو بعد موت بھی بدن سے ایک تعلق و اتصال رہتا ہے جیسا کہ فصول آئندہ کے اقوال کثیرہ میں آئے گا ان شاء اللہ تعالٰی۔

قول (۳): جامع البرکات میں فرمایا: موت عدم محض میت چنانکہ دہریاں وطبعیاں گویند بلکہ انتقال ست از حالے بحالے واز دارے بدارے۔ (3) موت نیست و نابود ہو جانے کا نام نہیں جیسا کہ دہریے اور طبعیین کہتے ہیں بلکہ ایک حال سے دوسرے حال اور ایک گھر سے دوسرے گھر میں منتقل ہو جانے کا نام ہے۔ (ت)

قول (۴): اشعۃ اللمعات شرح مشکوۃ میں فرمایا کہ : اولیائے خدا نقل کردہ شدند از میں دار فانی بہ دار بقا و زندہ اند نزد پروردگار و مرزوق اند و خوشحال اند و مردم را ازاں شعور نیست (4) اولیاء اس دار فانی سے دار بقاء میں منتقل کر دئیے جاتے ہیں، وہ اپنے پروردگار کے یہاں زندہ ہیں، انہیں رزق ملتا ہے اور خوشحال رہتے ہیں اور لوگوں کو اس کی خبر نہیں۔ (ت)

1 شرح الصدور بحوالہ حلیہ باب فضل الموت خلافت اکیڈمی منگورہ سوات ص ۵ 2 شرح الصدور بحوالہ حلیہ باب فضل الموت خلافت اکیڈمی منگورہ سوات ص ۵ 3 جامع البرکات 4 اشعۃ اللمعات باب حکم الاسراء فصل مطبوعہ نوریہ رضویہ سکھر ۳/ ۴۰۲

Fatawa Rizvia, Volume 9

Statement (5): It is stated in Mirqat Sharh Mishkat:

[Arabic Box 1]: There is no difference for them in both states. Therefore, it is said that the friends of Allah do not die, but rather they move from one abode to another. [Urdu Translation Box 1]: There is no fundamental difference between the two states of life and death for the friends of Allah. For this reason, it is said that they do not die, but rather they move from one house to another.

Relevant Narration: Imam Arif Billah Ustad Abu al-Qasim al-Qushayri (may Allah sanctify his soul), narrates in his treatise with his own chain of transmission from the famous saint, our leader Abu Sa'id al-Kharraz (may his distinguished soul be sanctified): "I was in Makkah al-Mukarramah and found a young man lying dead at the gate of Bani Shaybah. When I looked at him, he smiled at me and said:

[Arabic Box 2]: O Abu Sa'id! Do you not know that the beloved [of Allah] are alive even if they die? They are merely moved from one abode to another. [Urdu Translation Box 2]: O Abu Sa'id! Do you not know that the beloved of Allah are alive even if they pass away? They are simply called from one house to another.

Second Narration: The same noble personage, Hazrat Sayyidi Abu Ali (may his secret be sanctified), narrates: "I lowered a poor man into the grave. When I opened the shroud and placed his cheek on the soil so that Allah might have mercy on his poverty, the dervish opened his eyes and said to me:

[Arabic Box 3]: O Abu 'Ali! Do you humiliate me before Him who indulges me? [Urdu Translation Box 3]: O Abu Ali! You humiliate me before the One who fulfills my every whim.

I submitted: O my master! Life after death? He said:

[Arabic Box 4]: Yes, I am alive, and every lover of Allah is alive. Surely, the status and honor that will be granted on the Day of Resurrection shall not cause you any harm; rather, I shall help you, O Rozbari. [Urdu Translation Box 4]: I am alive, and every beloved of God is alive. Indeed, the prestige and honor that will be received on the Day of Judgment will not cause you any harm, rather I will help you, O Rozbari.

Third Narration: The same venerable Hazrat Ibrahim bin Shaiban (may his secret be sanctified), narrated: "A young disciple of mine died. I was deeply saddened. I sat down to wash [his body] and, in my distress, started from the left side. The youth

shifted that side away and turned his right side towards me. I said: 'O dear son! You are right, I made a mistake.'"

Note: This narration and the four following it are all in Sharh-us-Sudur. 12 (m). (T)

---

1 Mirqat Sharh Mishkat, Kitab as-Salat, Bab al-Jumu'ah, Maktaba Imdadia, Multan, 3/221 2 Al-Risala al-Qushayriyya, Bab Ahwalihim 'inda al-Khurooj min ad-Dunya, Mustafa al-Babi, Egypt, p. 140 3 Al-Risala al-Qushayriyya, Bab Ahwalihim 'inda al-Khurooj min ad-Dunya, Mustafa al-Babi, Egypt, p. 140 4 Al-Risala al-Qushayriyya, Bab Ahwalihim 'inda al-Khurooj min ad-Dunya, Mustafa al-Babi, Egypt, p. 140

फ़तावा रज़विया, खंड 9

कथन (5): मिरक़ात शरह मिश्क़ात में फरमाया:

[अरबी बॉक्स 1]: उन दोनों के लिए दोनों अवस्थाओं में कोई अंतर नहीं है। इसलिए कहा गया कि अल्लाह के वली मरते नहीं हैं, बल्कि वे एक घर से दूसरे घर स्थानांतरित हो जाते हैं। [उर्दू अनुवाद बॉक्स 1]: अल्लाह के वलियों की दोनों स्थितियों—मृत्यु और जीवन—में मूल रूप से कोई अंतर नहीं है। इसीलिए कहा गया है कि वे मरते नहीं हैं बल्कि एक घर से दूसरे घर तशरीफ़ ले जाते हैं।

उपयुक्त वर्णन: इमाम आरिफ़ बिल्लाह उस्ताद अबुल क़ासिम क़ुशैरी (उनका रहस्य पवित्र हो), अपने रिसाले (ग्रंथ) में अपनी सनद के साथ प्रसिद्ध वली हज़रत सैयदुना अबू सईद ख़र्राज़ (उनका प्रतिष्ठित रहस्य पवित्र हो) से वर्णन करते हैं कि: मैं मक्का मुअज़्ज़मा में था, बाब बनी शैबा पर मैंने एक मृत युवक को पड़ा पाया। जब मैंने उसकी ओर देखा, तो वह मुझे देखकर मुस्कुराया और कहा:

[अरबी बॉक्स 2]: ऐ अबू सईद! क्या तुम नहीं जानते कि प्रियजन जीवित हैं भले ही वे मर जाएं वे तो बस एक घर से दूसरे घर स्थानांतरित किए जाते हैं। [उर्दू अनुवाद बॉक्स 2]: ऐ अबू सईद! क्या तुम नहीं जानते कि अल्लाह के प्यारे जीवित हैं चाहे वे मर जाएं वे तो बस एक घर से दूसरे घर में बुला लिए जाते हैं।

दूसरा वर्णन: उन्हीं महान हज़रत सैयदी अबू अली (उनका रहस्य पवित्र हो) से वर्णन है कि, मैंने एक फ़कीर को कब्र में उतारा। जब कफ़न खोला और उनके सिर को मिट्टी पर रखा ताकि अल्लाह उनकी गुरबत (गरीबी) पर रहम करे, तो फ़कीर ने आँखें खोल दीं और मुझसे फरमाया:

[अरबी बॉक्स 3]: ऐ अबू अली! क्या तुम मुझे उनके सामने अपमानित करते हो जो मेरे नखरे उठाता है? [उर्दू अनुवाद बॉक्स 3]: ऐ अबू अली! मुझे उसके सामने ज़लील करते हो जो मेरे नाज़ उठाता है।

मैंने अर्ज़ किया: ऐ मेरे सरदार! क्या मृत्यु के बाद जीवन? फरमाया:

[अरबी बॉक्स 4]: हाँ, मैं जीवित हूँ और अल्लाह का हर प्रेमी जीवित है। निःसंदेह वह मान-प्रतिष्ठा जो क़यामत के दिन मिलेगी, उससे तुझे कोई हानि नहीं पहुँचेगी, बल्कि मैं तेरी मदद करूँगा ऐ रोज़बारी। [उर्दू अनुवाद बॉक्स 4]: मैं ज़िंदा हूँ और ख़ुदा का हर प्यारा ज़िंदा है, बेशक वह जाहत व इज़्ज़त जो रोज़-ए-क़यामत में मिलेगी उससे तुझे कोई ज़रर (नुकसान) न पहुँचेगा बल्कि मैं तेरी मदद करूँगा ऐ रोज़बारी।

तीसरा वर्णन: उन्हीं हज़रत इब्राहीम बिन शैबान (उनका रहस्य पवित्र हो) से वर्णन है कि: मेरा एक युवा मुरीद मर गया, मुझे बहुत दुख हुआ। नहलाने बैठा, घबराहट में बाईं ओर से शुरुआत की, युवक ने वह करवट हटाकर अपनी दाहिनी करवट मेरी ओर कर दी। मैंने कहा: प्यारे बेटे! तुम सच्चे हो, मुझसे गलती हुई।

नोट: यह वर्णन और इसके बाद की दो-चारों रिवायतें सब शरह-उस-सुदूर में हैं। 12 (म)। (त)

---

1 मिरक़ात शरह मिश्क़ात, किताब अस-सलात, बाब अल-जुमुआ, मकतबा इमदादिया, मुल्तान, 3/221 2 अल-रिसाला अल-क़ुशैरिया, बाब अहवालिहिम इंदा अल-खुरूज मिन अद-दुनिया, मुस्तफा अल-बाबी, मिस्र, पृष्ठ 140 3 अल-रिसाला अल-क़ुशैरिया, बाब अहवालिहिम इंदा अल-खुरूज मिन अद-दुनिया, मुस्तफा अल-बाबी, मिस्र, पृष्ठ 140 4 अल-रिसाला अल-क़ुशैरिया, बाब अहवालिहिम इंदा अल-खुरूज मिन अद-दुनिया, मुस्तफा अल-बाबी, मिस्र, पृष्ठ 140

فتاویٰ رضویہ، جلد نہم

قول (۵): مرقاۃ شرح مشکوۃ میں فرمایا:

[عربی باکس ۱]: لافرق لھم فی الحالین ولذا قیل اولیاء اللہ لا یموتون ولکن تنتقلون من دار الی دار ۱۔

[اردو ترجمہ باکس ۱]: اولیاء اللہ کی دونوں حالت موت و حیات میں اصلاً فرق نہیں، اسی لیے کہا گیا کہ وہ مرتے نہیں بلکہ ایک گھر سے دوسرے گھر تشریف لے جاتے ہیں۔

روایت مناسبہ: امام عارف باللہ استاذ ابوالقاسم قشیری قدس سرہ، اپنے رسالہ میں بسند خود حضرت ولی مشہور سیدنا ابوسعید خراز قدس سرہ الممتاز سے راوی کہ میں مکہ معظمہ میں تھا باب بنی شیبہ پر ایک جوان مُردہ پڑا پایا۔ جب میں نے اس کی طرف نظر کی، مجھے دیکھ کر مسکرایا اور کہا:

[عربی باکس ۲]: یا ابا سعید اما علمت ان الاحباء احیاء و ان ماتوا و انما ینقلون من دار الی دار ۲۔

[اردو ترجمہ باکس ۲]: اے ابو سعید! کیا تم نہیں جانتے کہ اللہ کے پیارے زندہ ہیں اگر چہ مر جائیں، وہ تو بس ایک گھر سے دوسرے گھر میں بلائے جاتے ہیں۔

روایت دوم: وہی عالی جناب حضرت سیدی ابو علی قدس سرہ، سے راوی، میں نے ایک فقیر کو قبر میں اتارا، جب کفن کھولا اور ان کا سر خاک پر رکھ دیا کہ اللہ ان کی غربت پر رحم کرے، فقیر نے آنکھیں کھول دیں اور مجھ سے فرمایا:

[عربی باکس ۳]: یا ابا علی اتذ لنی بین یدی و من ذللنی ۳۔ [اردو ترجمہ باکس ۳]: اے ابوعلی! مجھے اس کے سامنے ذلیل کرتے ہو جو میرے ناز اٹھاتا ہے۔

میں نے عرض کی: اے سردار میرے! کیا موت کے بعد زندگی؟ فرمایا:

[عربی باکس ۴]: بلی انا حی و کل محب اللہ حی لا یضر نک بجاہی غدا یا روزباری ۴۔ [اردو ترجمہ باکس ۴]: میں زندہ ہوں اور خدا کا ہر پیارا زندہ ہے بیشک وہ جاہت و عزت جو روز قیامت میں ملے گی اس سے تجھے کوئی ضرر نہ پہنچے گا بلکہ میں تیری مدد کروں گا اے روزباری۔

روایت سوم: وہی جناب مستطاب حضرت ابراہیم بن شیبان قدس سرہ، سے راوی، میرا ایک مرید جوان مر گیا، مجھے سخت صدمہ ہوا، نہلانے بیٹھا، گھبراہٹ میں بائیں طرف سے ابتدا کی، جوان نے وہ کروٹ ہٹا کر اپنی داہنی کروٹ میری طرف کی، میں نے کہا: جانِ پدر! تو سچا ہے مجھ سے غلطی ہوئی۔

عہ: ھذہ والاربعۃ بعدھا کل ذلک فی شرح الصدور یہ روایت اور اس کے بعد کی دو چاروں روایتیں سب شرح الصدور میں ہیں۔ (ت) ۱۲ منہ (م)

---

1 مرقاۃ شرح مشکوۃ کتاب الصلوۃ باب الجمعۃ مکتبہ امدادیہ ملتان ۳/۲۲۱ 2 الرسالۃ القشیریہ باب احوالھم عند الخروج من الدنیا مصطفیٰ البابی مصر ص ۱۴۰ 3 الرسالۃ القشیریہ باب احوالھم عند الخروج من الدنیا مصطفیٰ البابی مصر ص ۱۴۰ 4 الرسالۃ القشیریہ باب احوالھم عند الخروج من الدنیا مصطفیٰ البابی مصر ص ۱۴۰

Fatawa Ridawiyyah Volume 9

Fourth narration: The same Imam narrates from Hazrat Abu Yaqub Susi Nahrajuri (may his secret be sanctified). I laid a disciple on the board for bathing. He gripped my thumb. I said: "O dear son! I know you are not dead; this is just a change of residence. Now, release my hand."[1]

Fifth narration: The aforementioned gentleman narrates from the same Sufi. A disciple in Makkah al-Mukarramah said to me: "O spiritual guide! I will pass away tomorrow at the time of Zuhr. Hazrat! Take these gold coins; use half for my burial and half for my shroud." When the next day came and the time for Zuhr arrived, the said disciple came and performed Tawaf. Then he moved away from the Kaaba and lay down, and there was no soul. I lowered him into the grave; he opened his eyes. I asked: "Where is life after death?" [He replied:] "I am alive, and every beloved of Allah is alive."[2] There are hundreds of such narrations in the words of the noble Imams, and "To whomsoever Allah gives not light, for him there is no light."[3] (And for whom God does not provide light, there is no light for him. - T)

Section 2: The soul does not change at all due to death, and its knowledge and actions remain as before, rather they increase. Then how can there be an inanimate state, and the affirmation of specific perception is the responsibility of the one who specifies.

Quote (7): Imam Subki says in *Shifa al-Siqam*: - "That is, there is a consensus among Muslims that the soul remains after death and possesses knowledge and perception. In fact, philosophers and other disbelievers also acknowledge knowledge, and no one has differed regarding the survival of the soul."

Note (Ah): Imam Suyuti in *Sharh al-Sudur* quotes the stance of the Ahl al-Sunnah from the book *Kitab al-Ruh* as follows: - "That is, the soul is an independent entity that ascends, descends, joins, separates, comes, goes, moves, and stays still, and there are more than a hundred established proofs for this."[4] (M)

---

1. Al-Risala al-Qushayriyya, section 'What is dominant over the Saint...', Mustafa al-Babi, Egypt, p. 170.
2. Al-Risala al-Qushayriyya, section 'What is dominant over the Saint...', Mustafa al-Babi, Egypt, p. 171.
3. Al-Quran 24:40.

4. Sharh al-Sudur, Conclusion on benefits related to the soul, Khilafat Academy, Swat, p. 136.

फ़तावा रिज़विया जिल्द नहुम

चौथी रिवायत: वही इमाम हज़रत अबू याक़ूब सुसी नहर जूरी (क़ुदिस सिर्रहु) से रावी हैं, मैंने एक मुरीद को नहलाने के लिए तख़्ते पर लिटाया, उसने मेरा अंगूठा पकड़ लिया। मैंने कहा: जान-ए-पिदर! मैं जानता हूँ कि तू मरा नहीं है, यह तो सिर्फ़ ठिकाना बदलना है। मेरा हाथ छोड़ दे।[1]

पांचवीं रिवायत: जनाब-ए-ममदूह उन्हीं आरिफ-ए-मौसूफ़ से रावी हैं, मक्का मुअज़्ज़मा में एक मुरीद ने मुझसे कहा: पीर-ओ-मुर्शिद! मैं कल ज़ुहर के वक़्त मर जाऊँगा, हज़रत! ये अशर्फियाँ लें और आधी मेरे दफ़्न में और आधी मेरे कफ़न में ख़र्च करें। जब दूसरा दिन हुआ और ज़ुहर का वक़्त आया, तो मज़कूर मुरीद ने आकर तवाफ़ किया। फिर काबा से हट कर लेटा तो रूह न थी। मैंने उसे क़ब्र में उतारा, उसने आँखें खोल दीं। मैंने कहा: मौत के बाद ज़िंदगी कहाँ? [उसने कहा:] 'मैं ज़िंदा हूँ और अल्लाह का हर दोस्त ज़िंदा है।'[2] इस क़िस्म की सैंकड़ों रिवायतें अइम्मा-ए-किराम के कलाम में मज़कूर हैं और "अल्लाह जिसे नूर न दे उसके लिए कोई नूर नहीं है।"[3] (और जिसे ख़ुदा नूर न दे उसके लिए कोई नूर नहीं। - त)

दूसरा अध्याय: मौत से रूह में असल में कोई तब्दीली नहीं आती और उसके उलूम (ज्ञान) और अफ़आल (कर्म) बदस्तूर रहते हैं बल्कि बढ़ जाते हैं। फिर जदादियत (बेजान होना) कैसी और इदराक (अनुभूति) की तख़्सीस (विशिष्टता) का सुबूत मुख़स्सस (विशिष्ट करने वाले) की ज़िम्मेदारी है।

कौल (७): इमाम सुबकी 'शिफ़ा-उस-सिक़ाम' में फ़रमाते हैं: - यानी मुसलमानों का इज्मा (आम सहमति) है कि रूह मौत के बाद बाक़ी रहती है और इल्म-ओ-इदराक रखती है। बल्कि फ़लासिफ़ा (दार्शनिक) वगैरह कुफ़्फ़ार भी इल्म मानते हैं और रूह की बक़ा (जीवित रहने) में किसी ने इख़्तिलाफ़ (विरोध) नहीं किया।

अह (नोट): इमाम सुयूती 'शरह-उस-सुदूर' में मज़हब-ए-अहले सुन्नत 'किताब-उर-रूह' से यूँ नक़्ल फ़रमाते हैं: - यानी रूह एक स्वतंत्र हस्ती है जो चढ़ती है, उतरती है, जुड़ती है, अलग होती है, आती है, जाती है, हरकत करती है और साकिन (रुकी हुई) होती है, और इस पर सौ से ज़्यादा दलीलें साबित हैं।[4] (म)

---

1. अल-रिसाला अल-कुशायरिया, फ़स्ल... मुस्तफ़ा अल-बाबी, मिस्र, पृ. 170.
2. अल-रिसाला अल-कुशायरिया, फ़स्ल... मुस्तफ़ा अल-बाबी, मिस्र, पृ. 171.

3. अल-कुरान 24:40.

4. शरह-उस-सुदूर, रूह से मुताल्लिक फ़वायद का ख़ातिमा, ख़िलाफ़त एकेडमी स्वात, पृ. 136.

पेज 749/948

فتاوی رضویہ جلد نہم

روایت چہارم: وہی امام حضرت ابویعقوب سوسی نہر جوری قدس سرہ سے راوی، میں نے ایک مرید کو نہلانے کے لئے تختے پر لٹایا اس نے میرا انگوٹھا پکڑ لیا میں نے کہا: جان پدر! میں جانتا ہوں کہ تو مردہ نہیں یہ تو صرف مکان بدلنا ہے۔ لے میرا ہاتھ چھوڑ دے۔[1]

روایت پنجم: جناب ممدوح انہی عارف موصوف سے راوی، مکہ معظمہ میں ایک مرید نے مجھ سے کہا پیر و مرشد! میں کل ظہر کے وقت مر جاؤں گا، حضرت! یہ اشرفیاں لیں اور آدھی میں میرا دفن آدھی میں میرا کفن کریں، جب دوسرا دن ہوا اور ظہر کا وقت آیا مرید مذکور نے آکر طواف کیا۔ پھر کعبہ سے ہٹ کر لیٹا تو روح نہ تھی، میں نے قبر میں اتارا، آنکھیں کھول دیں، میں نے کہا: موت کے بعد زندگی کہاں؟ انا حی و کل محب اللہ حی[2] میں زندہ ہوں اور اللہ کا ہر دوست زندہ ہے۔ اس قسم کی صدہا روایات کلمات ائمہ کرام میں مذکور و مَنْ لَّمْ یَجْعَلِ اللّٰہُ لَہٗ نُوْرًا فَمَالَہٗ مِنْ نُّوْرٍ[3] (اور خدا جسے نور نہ دے اس کے لیے کوئی نور نہیں۔ت)

فصل دوم: موت سے روح میں اصلاً تغیر نہیں آتا اور اس کے علوم و افعال (عہ) بدستور رہتے ہیں بلکہ زیادہ ہو جاتے ہیں، پھر جمادیت کیسی اور اثبات تخصیص ادراک۔ ذمہ مخصص۔

قول (۷): امام سبکی شفاء السقام میں فرماتے ہیں: النفس باقیة بعد موت البدن عالمة باتفاق المسلمین بل غیر المسلمین من الفلاسفة وغیرہم ممن یقول ببقاء النفوس یقولون بالعلم بعد الموت ولم یعنی مسلمان کا اجماع ہے کہ روح بعد مرگ باقی اور علم وادراک رکھتی ہے۔ بلکہ فلاسفہ وغیرہ ہم کفار بھی علم مانتے ہیں اور بقائے روح میں کسی نے خلاف

عہ: امام سیوطی شرح الصدور میں مذہب اہلسنت کتاب الروح سے یوں نقل فرماتے ہیں: ان الروح ذات قائمہ بنفسها تصعد وتنزل وتتصل وتنفصل وتذهب وتجيئ وتتحرك وتسكن وعلى هذا اكثر من مائة دليل مقررة[4]۔ یعنی روح ایک مستقل ذات ہے کہ چڑھتی اترتی ملتی جدا ہوتی آتی جاتی حرکت کرتی ساکن ہوتی ہے اور اس پر سو سے زیادہ دلائل ثابت ہوتے ہیں۔ (م)

---

[1] الرسالة القشيرية فصل فان قيل فما الغالب على الولى فى حال الخ مصطفى البابى مصر ص ١٧٠ [2] الرسالة القشيرية فصل فان قيل فما الغالب على الولى فى حال الخ مصطفى البابى مصر ص ١٧١ [3] القرآن ٢٤/٤٠ [4] شرح الصدور خاتمہ فی فوائد تتعلق بالروح خلافت اکیڈمی سوات ص ١٣٦

Fatawa Razawiya, Volume 9

- "None disagree regarding the persistence of souls except those who are not taken into account. (Abbreviated)"
- "None except those who are not even counted among people have disagreed with this. (Abbreviated)"

Quote (7): It is stated in Tafsir al-Baydawi: "In this is a proof that souls are self-subsisting substances distinct from what is perceived of the body; they remain after death with their cognitive powers. This is the view of the majority of the Companions and the Followers, and the [Quranic] verses and Hadiths speak clearly of this." Urdu translation: This noble verse is proof that souls are self-subsisting substances (Jawhar) that are distinct from the visible body. They remain in their same state of perception and consciousness after death. This is the creed of the majority of the Companions and the Followers (Tabi'un), and the verses and Hadiths speak clearly on this.

Quote (8): Imam Ghazali states in Ihya: "Do not think that knowledge departs from you at death. For death does not destroy the locus of knowledge (the soul) at all. Death is not mere non-existence such that you think if you cease to exist, your attributes (knowledge and perception) also cease to exist." Urdu translation: Do not think that your knowledge will separate from you upon death, because death does not harm the locus of knowledge, i.e., the soul, in any way. Nor is it the name for becoming non-existent, such that you imagine that when you are no longer there, your attributes—knowledge and perception—will also cease to be.

Quote (9, 10): Imam Nasafi in Umdat al-I'tiqad, then Allama Nabulsi in Al-Hadiqa al-Nadiyya state: "The soul does not change upon death." - Nothing happens to the soul due to dying.

Quote (11): Allama Turpushti states: "The human soul remains distinct and specialized with perceptions even after separating from the body." Urdu translation: Even after separating from the body, the human soul remains distinct and characterized by its perceptions. (Narrated by Al-Munawi. - Translator)

Footnotes: 1. Shifa al-Qam, Chapter Two regarding Martyrs, Maktaba Nooriya Razawiya, Faisalabad, p. 210. 2. Tafsir al-Baydawi, under the verse "Nay, they are alive, but you perceive not," Mujtabai Press, Delhi, 1/117. 3. Al-Taysir, citing Al-Ghazali, under the Hadith "Whoever seeks knowledge etc.," Maktaba al-Imam al-Shafi'i,

Riyadh, Saudi Arabia, 2/229. 4. Al-Hadiqa al-Nadiyya, Chapter Two on Eternal Matters, Maktaba Nooriya Razawiya, Faisalabad, 1/290. 5. Al-Taysir Sharh Jami' al-Saghir, citing Al-Turpushti, under the Hadith "Verily the souls of the martyrs etc.," Maktaba al-Imam al-Shafi'i, Riyadh, Saudi Arabia, 1/310. Note (F): Despite great effort, the reference from Ihya al-Ulum could not be found directly. Since this exact text exists in Al-Taysir citing Al-Ghazali, this reference has been cited from Al-Taysir. - Nazir Ahmad

फ़तावा रज़विया, जिल्द 9

- "आत्माओं की निरंतरता के बारे में किसी ने असहमति नहीं जताई, सिवाय उनके जिन्हें गिनती में नहीं लिया जाता। (संक्षिप्त)"
- "किसी ने भी असहमति नहीं जताई सिवाय उनके जिन्हें लोगों की गिनती में नहीं गिना जाता। (संक्षिप्त)"

कथन (7): तफ़सीर बैज़ावी में है: "इसमें इस बात का प्रमाण है कि आत्माएं स्वयं में स्थापित तत्व (जौहर) हैं जो शरीर के दृश्य रूप से भिन्न हैं; वे मृत्यु के बाद अपनी चेतना के साथ जीवित रहती हैं। यही अधिकांश सहाबा और ताबईन का पंथ है, और आयतें व हदीसें इसे स्पष्ट रूप से बताती हैं।" उर्दू अनुवाद: यह आयत-ए-करीमा इस बात का प्रमाण है कि आत्माएं स्वयं में स्थित तत्व हैं; यह जो शरीर दिखाई देता है वे इसके अलावा चीज़ हैं। मृत्यु के बाद वे अपनी उसी चेतना और बोध पर कायम रहती हैं। सहाबा और ताबईन की बहुसंख्या का यही विश्वास है और आयतें व हदीसें इस पर स्पष्ट हैं।

कथन (8): इमाम ग़ज़ाली 'इह्या' में फ़रमाते हैं: "यह न समझें कि मृत्यु के साथ ज्ञान आपसे अलग हो जाएगा। क्योंकि मृत्यु ज्ञान के केंद्र (आत्मा) को बिलकुल नष्ट नहीं करती। मृत्यु केवल अस्तित्वहीनता का नाम नहीं है कि आप यह सोचें कि यदि आप नहीं रहे, तो आपके गुण (ज्ञान और चेतना) भी नहीं रहे।" उर्दू अनुवाद: यह गुमान न करना कि मौत से तेरा ज्ञान तुझ से अलग हो जाएगा, क्योंकि मौत ज्ञान के स्थान यानी रूह (आत्मा) का तो कुछ नहीं बिगाड़ती। न ही वह नेस्त-ओ-नाबूद (समाप्त) हो जाने का नाम है कि तू समझे कि जब तू न रहा, तो तेरा गुण यानी ज्ञान और बोध भी न रहा।

कथन (9, 10): इमाम नसफ़ी 'उमदतुल एतिकाद' में, फिर अल्लामा नाबुलसी 'हदीक़ा नदिय्या' में फ़रमाते हैं: "मृत्यु से आत्मा में कोई परिवर्तन नहीं आता।" - मरने से रूह में कुछ नहीं होता।

कथन (11): अल्लामा तुरपुश्ती फ़रमाते हैं: "शरीर से अलग होने के बाद भी मानवीय आत्मा अपनी विशिष्टताओं और चेतनाओं के साथ रहती है।" उर्दू अनुवाद: शरीर से अलग होने के बाद भी मानवीय आत्मा विशिष्ट और बोध के साथ विशेष रहती है। (इसे अल्लामा मुनावी ने उद्धृत किया है। - अनुवादक)

पाद-टिप्पणियाँ: 1. शिफ़ा अल-क़ाम, शहीदों के बारे में दूसरा अध्याय, मकतबा नूरिया रज़विया, फ़ैसलाबाद, पृ. 210 2. तफ़सीर बैज़ावी, आयत 'बल्कि वे जीवित हैं परन्तु तुम नहीं समझते' के

अंतर्गत, मुजतबाई प्रेस, दिल्ली, 1/117 3. अल-तयसीर, ग़ज़ाली के हवाले से, हदीस 'जिसने ज्ञान खोजा आदि' के अंतर्गत, मकतबा अल-इमाम अल-शाफ़ई, रियाद, सऊदी अरब, 2/229 4. अल-हदीक़ा अल-नदिय्या, शाश्वत मामलों पर दूसरा अध्याय, मकतबा नूरिया रज़विया, फ़ैसलाबाद, 1/290 5. अल-तयसीर शरह जामी अल-सगीर, तुरपुश्ती के हवाले से, हदीस 'निश्चित रूप से शहीदों की आत्माएं आदि' के अंतर्गत, मकतबा अल-इमाम अल-शाफ़ई, रियाद, सऊदी अरब, 1/310 नोट (फ़): बहुत प्रयास के बावजूद इह्या उल-उलूम से संदर्भ सीधे नहीं मिल सका। चूँकि अल-तयसीर में ग़ज़ाली के हवाले से यह सटीक पाठ मौजूद है, इसलिए यह संदर्भ अल-तयसीर से लिया गया है। - नज़ीर अहमद

فتاوی رضویہ ، جلد نہم

یخالف في بقاء النفوس الامن لا یعتد به 1 اه ملتقطا۔ | نہ کیا مگر ایسوں نے جو کسی گنتی شمار میں نہیں اھ ملتقطا۔

قول (7): تفسیر بیضاوی میں ہے: فیها دلالة علی ان الارواح جواهر قائمة بانفسها مغائرة لما یحس به من البدن تبقی بعد الموت دراکة وعلیه جمهور الصحابة والتابعین وبه نطقت الآیات والسنن 2- | یہ آیۃ کریمہ دلیل ہے کہ روحیں جوہر قائم بالذات ہیں یہ بدن جو نظر آتی ہے اس کے سوا اور چیز ہیں، موت کے بعد اپنے اسی جوش ادراک پر رہتی ہیں، جمہور صحابہ و تابعین کا یہی مذہب ہے اور اس پر آیات و احادیث ناطق۔

قول (8): امام غزالی احیاء میں فرماتے ہیں: لا تظن ان العلم یفارقك بالموت فالموت لا یهدم محل العلم اصلا ولیس الموت عدما محضاً حتی تظن انك اذا عدمت عدمت صفتك 3- | یہ گمان نہ کرنا کہ موت سے تیرا علم تجھ سے جدا ہو جائیگا کہ موت محل علم یعنی روح کا تو کچھ نہیں بگاڑتی، نہ وہ نیست و نابود ہو جانے کا نام ہے کہ تو سمجھے جب تو نہ رہا تیرا وصف یعنی علم و ادراک بھی نہ رہا۔

قول (9، 10): امام نسفی عمدة الاعتقاد ، پھر علامہ نابلسی حدیقہ ندیہ میں فرماتے ہیں: الروح لا یتغیر بالموت 4۔ مرنے سے روح میں کچھ نہیں آتا۔

قول (11): علامہ تورپشتی فرماتے ہیں: الروح الانسانیة متمیزة مخصوصة بالادراکات بعد مفارقة البدن 5- نقله المناوی | فراق بدن کے بعد بھی روح انسانی متمیز و مخصوص بہ ادراکات ہے۔ (اسے علامہ منادی نے نقل کیا۔ت)

1 شفاء القام الفصل الثانی فی الشہداء مکتبہ نوریہ رضویہ فیصل آباد ص 210 2 تفسیر بیضاوی تحت آیہ بل احیاء ولکن لا یشعرون مطبع مجتبائی دہلی 117/1 3 التیسیر بحوالہ الغزالی تحت حدیث من طلب العلم الخ مکتبہ الامام الشافعی الریاض السعودیہ 229/2 4 الحدیقۃ الندیۃ الباب الثانی فی الامور الحمیہ مکتبہ نوریہ رضویہ فیصل آباد 290/1 5 التیسیر شرح جامع صغیر بحوالہ التورپشتی تحت ان ارواح الشہداء الخ مکتبہ الامام الشافعی الریاض السعودیہ 310/1 ف: سعی بسیار کے باوجود حوالہ احیاء العلوم سے دستیاب نہیں ہو سکا، تیسر میں بحوالہ الغزالی بعینہ یہ عبارت موجود ہے اس لیے تیسر سے یہ حوالہ نقل کیا ہے۔ نذیر احمد

Fatawa Razawiyya Volume 9

Saying (12): It is stated in Allama Munawi's commentary on Jami' al-Saghir: Arabic: Al-mawtu laysa bi 'adamin mahdin wa al-shu'uru baqin hatta ba'da al-dafni. Urdu: Death is not absolute non-existence, and consciousness remains even after burial.

Saying (13): In the same [book]: Arabic: Inna al-ruha idha inkhal'at min hadha al-haykali wa infakkat min al-quburi bi al-mawti tajulu ila haythu sha'at. Urdu: Indeed, when the soul is stripped from this frame and freed from the bonds of the grave by death, it wanders wherever it wishes.

Saying (14): Reported in Sharh al-Sudur that after writing proofs from the Quran and Hadith, he said: Arabic: Fa-sahha anna al-arwaha ajsamun hamilatun li-a'radiha min al-ta'arufi wa al-tanakuri wa annaha 'arifatun mutamayyizah. Urdu: From these it is proven that souls are bodies carrying their own attributes of recognition and non-recognition, and they are cognizant and distinct by themselves. (Note: Here, the discourse should be recalled which passed under the second Hadith.)

Saying (15): In Maqasid and Sharh al-Maqasid by Allama Taftazani it is stated: Arabic: 'Inda al-Mu'tazilati wa ghayrihim al-badaniyyatu al-makhsusatu shartun fi al-idraki fa-'indahum la yabqa idraku al-juz'iyyati 'inda faqdi al-alati wa 'indana yabqa wa huwa al-zhahiru min qawa'idi al-islami. Urdu: In the creed of the Mu'tazilites and others, this physical body is a condition for perception; so according to them, when its organs are no longer present, the perception of particulars also ceases. But in the creed of us, the Ahl al-Sunnah wa al-Jama'ah, it remains, and this is what is evident from the principles of the Islamic faith.

Saying (16): In Lamat Sharh Mishkat it is stated: Arabic: Sababiyyatu al-hawassi lil-ihsasi wa lil-idraki 'adiyyatun. Urdu: The causality of the senses for feeling and perception is a habitual/ordinary matter.

Footnotes: 1. Al-Taysir Sharh Jami' al-Saghir, under "Indeed the deceased knows who praises...", Maktabat al-Imam al-Shafi'i, Riyadh, Saudi Arabia, 1/303. 2. Al-Taysir Sharh Jami' al-Saghir, under the Hadith "Indeed the souls of the believers...", Maktabat al-Imam al-Shafi'i, Riyadh, Saudi Arabia, 1/320. 3. Sharh al-Sudur, Chapter: The Abode of Souls, Khilafat Academy Swat, p. 99. 4. Sharh al-Maqasid, Fourth Discussion: Perception of Particulars, Dar al-Ma'arif al-Nu'maniyya, Lahore, 2/43. Page 751 of 948

फ़तावा रज़विया जिल्द नहुम (9)

कथन (12): अल्लामा मुनावी की शरह 'जामे-उल-सग़ीर' में है: अरबी: अल-मौतु लैसा बि-अदमिम महज़िन वश-शुऊरु बाक़िन हत्ता बादद दफ़नी। उर्दू: मौत बिल्कुल अदम (शून्यता) नहीं है और शोर (चेतना) दफ़न के बाद भी बाक़ी रहता है।

कथन (13): उसी में है: अरबी: इन्नर रूहा इज़ा इन्ख़ल'अत मिन हाज़ल हयकलि व इनफ़क्क़त मिनल क़ुबूरि बिल मौति तजूलु इला हयसु शा'अत। उर्दू: बेशक रूह जब इस ढाँचे से अलग और मौत के कारण कैदों से आज़ाद होती है, तो जहाँ चाहती है वहाँ विचरण करती है।

कथन (14): 'शरह-उस-सुदूर' में उद्धृत है कि कुरान और हदीस के प्रमाण लिखने के बाद कहा: अरबी: फ़सह्-ह अन्नल अरवाहा अजसामुन हामिलतुल लि-आ'रादिहा मिनत तआरुफ़ि वत तनाकुरि वअन्नहा आरिफ़तुम मुतमय्यिज़ह। उर्दू: इनसे साबित हुआ कि रूहें वे जिस्म हैं जो अपनी पहचान और ग़ैर-पहचान आदि की विशेषताओं को धारण किए हुए हैं और वे स्वयं बोध और विभेद रखने वाली हैं। (यहाँ वह व्याख्या याद करनी चाहिए जो दूसरी हदीस के अंतर्गत गुज़री है।)

कथन (15): अल्लामा तफ़्ताज़ानी की 'मक़ासिद' और 'शरह-ए-मक़ासिद' में है: अरबी: इन्दल मु'तज़िलति व ग़यरिहिमुम बदनिय्यतुल मख़सूसतु शर्तुन फ़िल इद्राकि फ़इन्दहुम ला यबक़ा इद्राकुल जुज़इय्याति इन्दा फ़क़्दिल आलाति वइन्दना यबक़ा वहुवज़्ज़ाहिरु मिन क़वाइदिल इस्लामि। उर्दू: मोतज़िला और अन्य के मत में, बोध के लिए यह विशिष्ट शरीर एक शर्त है, इसलिए उनके अनुसार जब इसके अंग नहीं रहते, तो विवरणों का बोध भी समाप्त हो जाता है। लेकिन हमारे पास (अहले सुन्नत वल जमाअत) यह बाक़ी रहता है और इस्लाम धर्म के सिद्धांतों से यही ज़ाहिर है।

कथन (16): 'लमात शरह मिश्कात' में है: अरबी: सबबिय्यतुल हवासि लिल-इहसासि वलिल-इद्राकि आ'दिय्यतुन। उर्दू: इंद्रियों का अहसास और बोध का कारण होना एक सामान्य/आदतन बात है।

पाद-लेख (Footnotes): 1. अत-तयसीर शरह जामे सग़ीर, "बेशक मृत व्यक्ति उसे जानता है जो प्रशंसा करता है..." के अंतर्गत, मकतबतुल इमाम अल-शाफ़ई, रियाज़, सऊदी अरब, 1/303। 2. अत-तयसीर शरह जामे सग़ीर, हदीस "बेशक मोमिनों की रूहें..." के अंतर्गत, मकतबतुल इमाम अल-शाफ़ई, रियाज़, सऊदी अरब, 1/320। 3. शरह-उस-सुदूर, अध्याय: रूहों का ठिकाना, ख़िलाफ़त एकेडमी स्वात, पृष्ठ 99। 4. शरह-उल-मक़ासिद, चौथी बहस: विवरणों का बोध, दारुल मारिफ़ अल-नुमानिया लाहौर, 2/43। पृष्ठ 948 में से 751

فتاوی رضویہ جلد نہم

قول (۱۲): علامہ مناوی کی شرح جامع الصغیر میں ہے: الموت لیس بعدم محض والشعور باق حتی بعد الدفن۔ موت بالکل عدم نہیں اور شعور باقی ہے یہاں تک کہ بعد دفن بھی۔ قول (۱۳): اسی میں ہے: ان الروح اذا انخلعت من هذا الهيكل و انفكت من القبور بالموت تجول الى حيث شاءت۔ بیشک روح جب اس قالب سے جدا اور موت کے باعث قیدوں سے رہا ہوتی ہے جہاں چاہتی ہے جولان کرتی ہے۔ قول (۱۴): شرح الصدور میں منقول کہ دلائل قرآن وحدیث لکھ کر کہا: فصح ان الارواح اجسام حاملة لاعراضها من التعارف والتناكر وانها عارفة متميزه۔ ان سے ثابت ہوا کہ روحیں اجسام ہیں اپنے اوصاف شناخت و ناشناخت وغیرہ کی حامل جو بذات خود ادراک و تمیز رکھتی ہے۔ یہاں وہ تقریر یاد کرنی چاہئے جو زیرِ حدیث دوم گزری۔ قول (۱۵): مقاصد وشرح مقاصد علامہ تفتازانی میں ہے: عند المعتزلة وغيرهم البدنية المخصوصة شرط في الادراك فعند هم لا يبقى ادراك الجزئيات عند فقد الآلات وعندنا يبقى و هو الظاهر من قواعد الاسلام۔ معتزلہ و غیر ہم کے مذہب میں یہ بدن شرط ادراک ہے تو ان کے نزدیک جب اس کے آلات نہ رہے ادراک جزئیات بھی نہ رہا اور ہم اہل سنت وجماعت کے مذہب میں باقی رہتا ہے اور یہی ظاہر ہے قواعد دین اسلام سے۔ قول (۱۶): لمعات شرح مشکوٰۃ میں ہے: سببيه الحواش للاحساس وللادراك عادية۔ حواس کا سبب احساس و ادراک ہونا اک امر عادی ہے

۱ التیسیر شرح جامع صغیر تحت ان المیت یعرف من یحمد الخ مکتبۃ الامام الشافعی الریاض السعودیہ ۱/ ۳۰۳ ۲ التیسیر شرح جامع صغیر تحت حدیث ان روحی المومنین مکتبۃ الامام الشافعی الریاض السعودیہ ۱/ ۳۲۰ ۳ شرح الصدور باب مقر الارواح خلافت اکیڈمی سوات ص ۹۹ ۴ شرح المقاصد المبحث الرابع مدرک الجزئیات دار المعارف النعمانیہ لاہور ۲/ ۴۳ Page 751 of 948

[Box 1] Arabic: As it is established in the school of thought, as for knowledge, it is through the spirit, and it remains. — Summarized from Al-Multaqat. Urdu: As it has been proven in the creed of the Ahl al-Sunnah, and knowledge is from the soul, it remains. (Summary)

Statement (17): Imam Suyuti says: [Box 2] Arabic: The followers of religions from Muslims and others hold that the soul remains after the death of the body, and philosophers differ on this. Our proof is what has preceded of verses and hadiths regarding its survival and its actions, etc. (Summarized) Urdu: This is the creed of all Muslim people and others besides them, that souls remain after the death of the body. Philosophers, i.e., some claimants of wisdom, have differed in this. Our proof is those verses and hadiths from which it is proven that the soul remains after death and performs actions. etc.

Statement (18): In Irshad al-Sari Sharh Sahih Bukhari, it is said: [Box 3] Arabic: Some Mu'tazilites and Rafidites have denied the punishment of the grave, arguing that the dead is an inanimate object, having no life and no perception, etc. Urdu: Some Mu'tazilites and Rafidites denied the punishment of the grave by bringing this argument that the dead is inanimate, neither is there life for it nor perception. etc.

Statement (19): In Kashf al-Ghita, a reliable source of Maulvi Ishaq Dehlavi, it is said: [Box 4] Arabic: It is the Mu'tazili creed that they say the dead is pure inanimate matter. Urdu: Describing the dead as purely inanimate is the creed of the Mu'tazilites. (T)

Statement (20): In the same [book] it is said: [Box 5] Arabic: There is no difference in the souls of the perfected ones during life and after death, except for the advancement of perfection. Urdu: There is no difference in the souls of the people of perfection in the state of life and death, except that after death there is progress in perfections. (T)

Section Three: In these clarifications, that giving knowledge and perception to the dead also includes religious individuals.

---

1. Lama'at Sharh Mishkat, Book of Jihad
2. Sharh al-Sudur, Conclusion on benefits related to the soul, Khilafat Academy Swat, p. 135

3. Irshad al-Sari Sharh al-Bukhari, Chapter on Killing of Abu Jahl, Dar al-Kutub al-Arabi Beirut, 6/255
4. Kashf al-Ghita, Section on rules of burying the dead, Ahmadi Press Delhi, p. 57
5. Kashf al-Ghita, Section on rules of burying the dead, Ahmadi Press Delhi, p. 57

जिल्द नौ | फ़तावा रज़विया

[बॉक्स 1] अरबी: जैसा कि मज़हब में तय है, इल्म रूह के ज़रिए है और वह बाक़ी रहती है। — मुल्तक़त से मुख़्तसर। उर्दू: जैसा कि अहले सुन्नत के मज़हब में साबित हो चुका है और इल्म तो रूह से है वह बाक़ी है। (मुख़्तसर)

कौल (17): इमाम सुयूती फ़रमाते हैं: [बॉक्स 2] अरबी: मुसलमानों और उनके अलावा तमाम धर्मों के मानने वालों का यह मत है कि शरीर की मृत्यु के बाद आत्मा शेष रहती है, और दार्शनिकों ने इस पर असहमति व्यक्त की है। हमारा प्रमाण पूर्वोक्त आयतें और हदीसें हैं जो इसके बने रहने और इसके कार्यों आदि के संबंध में हैं। (संक्षिप्त) उर्दू: तमाम अहले मिल्लत मुस्लिमिन और उनके सिवा सब का यही मज़हब है कि रूहें बदन की मौत के बाद बाक़ी रहती हैं। फ़लासफ़ा यानी बाज़ मदइयान-ए-हिकमत ने इसमें ख़िलाफ़ किया, हमारी दलील वे आयतें और हदीसें हैं जिनसे साबित है कि रूह बाद मौत बाक़ी रहती और तसर्रुफ़ात (कार्य) करती है। आदि।

कौल (18): इरशाद अल-सारी शरह सहीह बुख़ारी में है: [बॉक्स 3] अरबी: कुछ मोअतज़िला और राफ़िज़ियों ने कब्र की सज़ा का इनकार किया है, यह तर्क देते हुए कि मृत व्यक्ति निर्जीव वस्तु है, जिसमें न जीवन है और न ही बोध आदि। उर्दू: बाज़ मोअतज़िला और रवाफ़िज़ अज़ाब-ए-क़ब्र से मुनकिर हुए यह हुज्जत ला कर कि मुर्दा जमाद है न उसके लिए हयात है न इदराक। आदि।

कौल (19): कश्फ़ुल ग़िता (मौलवी इसहाक़ देहलवी की मुस्तनद किताब) में है: [बॉक्स 4] अरबी: यह मोअतज़िला का मत है कि वे कहते हैं कि मृत व्यक्ति शुद्ध निर्जीव पदार्थ है। उर्दू: मय्यत को जमाद-ए-महज़ बताना मोअतज़िला का मज़हब है। (त)

कौल (20): उसी में है: [बॉक्स 5] अरबी: जीवन के दौरान और मृत्यु के बाद सिद्ध लोगों की आत्माओं में कोई अंतर नहीं है, सिवाय इसके कि पूर्णता की उन्नति होती है। उर्दू: अहले कमाल की रूहों में हालत-ए-हयात व मौत में कोई फ़र्क़ नहीं होता सिवा इसके कि बाद मौत कमालात में तरक्क़ी हो जाती है। (त)

फ़स्ल सोम (तीसरा खंड): इन स्पष्टीकरणों में कि मृतकों को इल्म (ज्ञान) और इदराक (बोध) देना दीनदारों को भी शामिल है।

---

1. लमआत शरह मिश्कात, किताब अल-जिहाद

2. शरह अल-सुदूर, रूह से संबंधित लाभों पर निष्कर्ष, खिलाफ़त अकादमी स्वात, पृष्ठ 135
3. इरशाद अल-सारी शरह अल-बुखारी, अबू जहल की हत्या का अध्याय, दार अल-कुतुब अल-अरबी बेरूत, 6/255
4. कश्फ़ुल ग़िता, मृत व्यक्ति को दफनाने के नियमों पर अनुभाग, अहमदी प्रेस दिल्ली, पृष्ठ 57
5. कश्फ़ुल ग़िता, मृत व्यक्ति को दफनाने के नियमों पर अनुभाग, अहमदी प्रेस दिल्ली, पृष्ठ 57

[باکس 1] عربی: کما تقرر فی المذھب اما العلم فبالروح و ھو باق اردو: جیسا کہ مذہب اہل سنت میں ثابت ہو چکا اور علم تو روح سے ہے وہ باقی ہے اھ مختصراً۔

قول (۱۷): امام سیوطی فرماتے ہیں: [باکس 2] عربی: ذھب اھل الملل من المسلمین وغیر ھم الی ان الروح تبقی بعد موت البدن و خالف فیه الفلاسفة دلیلتنا ما تقدم من الآیات والاحادیث في بقائھا وتصرفھا الخ (ملخصاً) اردو: تمام اہل ملت مسلمین اور ان کے سوا سب کا یہی مذہب ہے کہ روحیں بعد موت بدن باقی رہتی ہیں فلاسفہ یعنی بعض مدعیان حکمت نے اس میں خلاف کیا، ہماری دلیل۔ وہ آیتیں اور حدیثیں ہیں جن سے ثابت کہ روح بعد موت باقی رہتی اور تصرفات کرتی ہے۔ الخ

قول (۱۸): ارشاد الساری شرح صحیح بخاری میں ہے: [باکس 3] عربی: قد انکر عذاب القبر بعض المعتزلة والروافض محتجین بان المیت جماد لا حیاة له ولا ادراك الخ۔ اردو: بعض معتزلہ اور روافض عذاب قبر سے منکر ہوئے یہ حجت لا کر کہ مُردہ جماد ہے نہ اس کے لیے حیات ہے نہ ادراک الخ۔

قول (۱۹): کشف الغطاء مستند مولوی اسحق دہلوی میں ہے: [باکس 4] عربی: مذہب اعتزال است کہ گویند میت جماد محض است- اردو: میت کو جماد محض بتانا معتزلہ کا مذہب ہے۔ (ت)

قول (۲۰): اسی میں ہے: [باکس 5] عربی: فرقے نیست در ارواح کا ملان در حین حیات و بعد از ممات مگر بترقیہ کمال۔ اردو: اہل کمال کی روحوں میں حالت حیات و موت میں کوئی فرق نہیں ہوتا سوا اس کے کہ بعد موت کمالات میں ترقی ہو جاتی ہے۔ (ت)

فصل سوم: ان تصریحوں میں کہ اموات کے علم و ادراک دینا واہل دینا کو بھی شامل۔

1۔ لمعات شرح مشکوۃ کتاب الجہاد 2۔ شرح الصدور خاتمہ فی فوائد تتعلق بالروح خلافت اکیڈمی سوات ص ۱۳۵ 3۔ ارشاد الساری شرح البخاری باب قتل ابی جہل دار الکتب العربی بیروت ۲۵۵/۶ 4۔ کشف الغطاء فصل در احکام دفن میت مطبع احمدی دہلی ص ۵۷ 5۔ کشف الغطاء فصل در احکام دفن میت مطبع احمدی دہلی ص ۵۷

Fatawa Razawiyya Volume Nine

Statement (21): Imam Jalaluddin Suyuti states in his poetic treatise 'Anis al-Gharib': [Arabic]: 'He recognizes the one who washes him, carries him, clothes him in a shroud, and lowers him (into the grave).' (The deceased recognizes those who wash him, carry him, shroud him, and lower him into the grave.)

Statement (22 to 24): Imam Ibn al-Hajj in 'Madkhal', Imam Qastallani in 'Mawahib', and Allama Zarqani in its commentary state: [Arabic]: 'The wording of Ahmad [is]: Whoever among the believers has passed to the Barzakh world generally knows the conditions of the living. This occurs frequently, as is written in the relevant sections of books.' The words are from Ahmad: Muslims who are in the Barzakh [intermediate realm] generally possess knowledge of the affairs of the living, and this is frequently reported as mentioned in books at their appropriate places.

Statement (25): In 'Ash'at al-Lam'at', the commentary on 'Mishkat', after researching and detailing the knowledge and perception of the dead, it is stated: [Persian/Arabic blend]: 'In short, the Book and Sunnah are filled and replete with reports and traditions indicating the existence of the dead's knowledge regarding the world and its people. Therefore, no one would deny it except one who is ignorant of traditions and reports, and is a denier of religion.' In summary, the Book and Sunnah are brimming with news and traditions which tell that the dead have knowledge of the world and its people, so only someone who is unaware of news and Hadiths and a denier of religion will deny it. (T)

Fourth Chapter: Regarding modesty towards the dead.

Statement (26): Ibn Abi al-Dunya narrates in 'Kitab al-Qubur' from Sulayman bin Umayr that he passed by a graveyard and had a strong need to urinate. Someone suggested, "Get down here and relieve yourself." He replied: [Arabic]: 'Glory be to Allah! By Allah, I feel shy before the dead just as I feel shy before the living.' Subhan Allah! By God, I maintain the same modesty before the dead as I do before the living.

1. Anis al-Gharib
2. Al-Mawahib al-Ladunniyyah, Section on Etiquettes of Visiting, Al-Maktab al-Islami, Beirut, 2/581; Zarqani on Mawahib al-Ladunniyyah, Tenth Objective, Al-Matba'ah al-Amirah, Egypt, 8/349; Al-Madkhal, Chapter on Visiting the Master of the First and Last, Dar al-Kutub al-Arabiyyah, Beirut, 1/253.
3. Ash'at al-Lam'at, Book of Jihad, First Section, Nooriya Razawiyya, Sukkur, 3/201.

4. Mirqat Sharh Mishkat, citing Ibn Abi al-Dunya, Ziyarat al-Qubur, Maktabah Imdadiyya, Multan, 4/471.

फतवा रज़विया खंड नौ

कथन (21): इमाम जलालुद्दीन सुयूती अपने पद्य ग्रंथ 'अनीस अल-ग़रीब' में फ़रमाते हैं: [अरबी]: 'वह उसे पहचानने वाला है जो उसे नहलाता है, उसे उठाता है, उसे कफ़न पहनाता है और जो उसे उतारता है।' (मृत व्यक्ति अपने नहलाने वाले, उठाने वाले, कफ़न पहनाने वाले और कब्र में उतारने वाले, इन सबको पहचानता है।)

कथन (22 से 24): इमाम इब्न अल-हाज 'मदख़ल' में, और इमाम क़स्तलानी 'मवाहिब' में, और अल्लामा ज़रक़ानी इसकी शरह (व्याख्या) में बयान करते हैं: [अरबी]: 'अहमद के शब्द हैं: जो मोमिन बरज़ख़ की दुनिया में चले गए हैं, वे अक्सर जीवितों के हालात का ज्ञान रखते हैं, और यह बात कसरत से घटित होती है जैसा कि किताबों में अपनी जगह पर लिखित है।' अहमद के शब्द हैं कि जो मुसलमान बरज़ख़ में हैं वे अक्सर जीवितों के हालात की जानकारी रखते हैं और यह बात बहुत अधिक पाई जाती है जैसा कि किताबों में अपनी उचित जगह पर वर्णित है।

कथन (25): 'अशअतुल लम्आत' शरह मिश्क़ात में मुर्दों के इल्म और उनकी समझ की तहक़ीक़ और तफ़सील लिखकर फ़रमाते हैं: [फ़ारसी]: 'सारांश यह कि किताब और सुन्नत ऐसी खबरों और आसार (परंपराओं) से लबरेज़ हैं जो मुर्दों के दुनिया और अहले-दुनिया (दुनिया के लोगों) के इल्म के होने पर दलालत करती हैं। अतः इसका इनकार वही करेगा जो खबरों और अहादीस से बेख़बर हो और दीन का मुनकिर (इनकारी) हो।' कुल मिलाकर, किताब और सुन्नत ऐसी सूचनाओं और परंपराओं से भरे हुए हैं जो यह बताते हैं कि मुर्दों को दुनिया और दुनिया वालों का ज्ञान होता है, तो इसका इनकार वही करेगा जो सूचनाओं और हदीसों से बेखबर और धर्म का विरोधी हो। (त)

चौथा अध्याय: मृतकों से हया (शर्म) करने के बारे में।

कथन (26): इब्न अबी अद्दुनिया 'किताबुल क़ुबूर' में सुलेमान बिन उमेर से रिवायत करते हैं, वह एक कब्रिस्तान से गुज़रे, उन्हें पेशाब की तीव्र हाजत थी, किसी ने कहा कि यहाँ उतरकर हाजत पूरी कर लीजिए। उन्होंने फ़रमाया: [अरबी]: 'सुब्हान अल्लाह! अल्लाह की क़सम, मैं मृतकों से वैसी ही हया (शर्म) महसूस करता हूँ जैसे जीवितों से करता हूँ।' सुब्हान अल्लाह! अल्लाह की कसम, मैं मुर्दों से वैसी ही शर्म रखता हूँ जैसी ज़िन्दों से।

1. अनीस अल-ग़रीब

2. अल-मवाहिब अल-लदुन्निया, ज़ियारत के आदाब का अध्याय, अल-मकतब अल-इस्लामी, बेरूत, 2/581; ज़रक़ानी अली मवाहिब अल-लदुन्निया, दसवां उद्देश्य, अल-मत्बा अल-अमीरा, मिस्र, 8/349; अल-मदख़ल, सैयदुल अव्वलीन की ज़ियारत पर चर्चा का अध्याय, दार अल-कुतुब अल-अरबिया, बेरूत, 1/253।
3. अशअतुल लम्आत, किताबुल जिहाद, पहला खंड, नूरिया रज़विया, सुक्कुर, 3/201।
4. मिरक़ात शरह मिश्क़ात, इब्न अबी अद्दुनिया के हवाले से, ज़ियारतुल क़ुबूर, मकतबा इमदादिया, मुल्तान, 4/471।

فتاوٰی رضویہ جلد نہم

قول (۲۱): امام جلال الدین سیوطی رسالہ منظومہ انیس الغریب میں فرماتے ہیں: یعرف من یغسلہ ویحمل ویبلس الاکفان ومن ینزل[1] (مُردہ اپنے نہلانے والے، اٹھانے والے، کفن پہنانے والے، قبر میں اتارنے والے سب کو پہچانتا ہے)

قول (۲۲ تا ۲۴): امام ابن الحاج مدخل اور امام قسطلانی مواہب اور علامہ زرقانی شرح میں تقریر فرماتے ہیں: واللفظ لا حمد من انتقل الی عالم البرزخ من المؤمنین یعلم احوال الاحیاء غالباً وقد وقع کثیر من ذلک کما ھو مسطور فی مظنۃ ذلک من الکتب[2]۔ احمد کے الفاظ ہیں جو مسلمان برزخ میں ہیں اکثر احوال احیاء پر رکھتے ہیں اور یہ امر بکثرت واقع ہے جیسا کہ کتابوں میں اپنے محل پر مذکور ہے۔

قول (۲۵): اشعۃ اللمعات شرح مشکوٰۃ میں علم وادراک موتٰی کی تحقیق و تفصیل لکھ کر فرماتے ہیں: بالجملہ کتاب وسنت مملو و مشحون اند باخبار و آثار کہ دلالت می کند بر وجود علم موتٰی بدنیا واہل آں پس منکر نہ شود آں را مگر جاہل باخبار و منکر دین[3]۔ الحاصل کتاب و سنت ایسے اخبار و آثار سے لبریز ہیں جو یہ بتاتے ہیں کہ مردوں کو دنیا واہل دنیا کا علم ہوتا ہے تو اس کا انکار وہی کرے گا جو اخبار و احادیث سے بے خبر اور دین منکر ہو ۔ (ت)

فصل چہارم: اموات سے حیا کرنے میں۔

قول (۲۶): ابن ابی الدنیا کتاب القبور میں سلیم بن عمیر سے راوی، وہ ایک مقبرہ پر گزرے، پیشاب کی حاجت سخت تھی، کسی نے کہا یہاں اتر کر قضائے حاجت کر لیجئے، فرمایا: سبحان اللہ واللہ

انی لا یستحیی من الاموات کما استحیی من الاحیاء[4]۔ سبحان اللہ! خدا کی قسم میں مردوں سے ایسی ہی شرم رکھتا ہوں جیسی زندوں سے۔

[1] انیس الغریب [2] المواہب اللدنیہ من آداب الزیارۃ المکتب الاسلامی بیروت ۵۸۱/۲، زرقانی علی مواہب اللدنیہ المقصد العاشر المطبعۃ العامرہ مصر ۳۴۹/۸، المدخل فصل فی الکلام علی زیارت سید الاولین دارالکتب العربیہ بیروت ۲۵۳/۱ [3] اشعۃ اللمعات کتاب الجہاد فصل اول نوریہ رضویہ سکھر ۲۰۱/۳ [4] مرقاۃ شرح مشکوٰۃ بحوالہ ابن ابی الدنیا زیارت القبور مکتبہ امدادیہ ملتان ۴۷۱/۴

Volume 9 Fatawa Rizvia

Statement (27): When Sayyiduna Imam Shafi'i visited the radiant shrine of Hazrat Imam al-A'zam (may Allah be pleased with them both and their followers), he did not recite the Qunut prayer in the Fajr (morning) prayer. When people asked for the reason, he replied:

"How can I recite the Qunut in the presence of the Imam while he does not hold that opinion?" — I, in the presence of the Imam, how could I recite Qunut while he is not a proponent of it? (This was mentioned by Sayyidi Ali al-Khawas and Imam al-Sha'rani in 'al-Mizan al-Shari'ah al-Kubra'. Similarly, Allama Ibn Hajar mentioned it in the beginning of 'al-Khayrat al-Hissan fi Manaqib al-Imam al-A'zam Abi Hanifa al-Nu'man', and repeated it at the end citing some commentators of Imam al-Nawawi's 'Minhaj' and others. Likewise, it is narrated in 'Uqud al-Juman fi Manaqib al-Nu'man' from his teacher of teachers, the Imam, ascetic, friend of Allah, Shihab al-Din, the commentator of 'Minhaj'.)

In some narrations, it is mentioned that he did not recite 'Bismillah-ir-Rahman-ir-Rahim' aloud either. "The learned al-Shami narrated it in 'Radd al-Muhtar' from some scholars." — The learned al-Shami narrated this from some scholars in 'Radd al-Muhtar', and similarly Imam Ibn Hajar mentioned it in 'al-Khayrat al-Hissan'.

In some reports, it is stated that he did not perform 'Raf' al-Yadayn' (raising of hands) during the transitional Takbirs. When the reason was asked, he answered: "Our respect for this Imam is greater than manifesting disagreement in his presence." — Our respect for this Imam is more than manifesting opposition in his presence. (Mulla 'Ali al-Qari mentioned this in 'al-Mirqat'.)

In 'Sharh al-Lubab', it is narrated specifically with the word 'Istahya' (he felt shy) that Imam Shafi'i said: "I feel shy to oppose the school of the Imam." — I feel shy to oppose the school of the Imam in his presence.

1. Al-Mizan al-Kubra, Section regarding what is narrated from Imam Shafi'i, Mustafa al-Babi Egypt, 1/61.
2. Mirqat Sharh Mishkat, Mention of Imam Abu Hanifa (may Allah have mercy on him), Maktaba Imdadia Multan, 1/30.

जिल्द 9 फ़तावा रज़विया

कौल (27): जब सय्यदुना इमाम शाफ़ई हज़रत इमाम-ए-आज़म के फ़ैज़-अफ़ज़ा मज़ार पर तशरीफ़ ले गए (अल्लाह तआला उन दोनों से और उनके अनुयायियों से राज़ी हो), तो उन्होंने सुबह (फ़ज्र) की नमाज़ में क़ुनूत नहीं पढ़ी। जब लोगों ने इसका कारण पूछा, तो फ़रमाया:

"मैं इमाम की मौजूदगी में क़ुनूत कैसे पढ़ूँ जबकि वे इसके कायल नहीं हैं?" — मैं इमाम के सामने क्यूँकर क़ुनूत पढ़ूँ जबकि वे इसके कायल नहीं हैं। (इसे सय्यदी अली ख़वास और इमाम शेरानी ने 'मीज़ान अल-शरीअत अल-कुबरा' में ज़िक्र किया है। इसी तरह अल्लामा इब्न हजर मक्की ने 'अल-खैरात अल-हिस्सान फ़ी मनाक़िब अल-इमाम अल-आज़म अबी हनीफ़ा अल-नुमान' के शुरू में इसका ज़िक्र किया और इसके अंत में दोबारा इमाम नववी की 'मिन्हाज' के कुछ टीकाकारों के हवाले से इसका ज़िक्र किया। इसी तरह 'उक़ूद अल-जुमान फ़ी मनाक़िब अल-नुमान' में अपने उस्तादों के उस्ताद, इमाम, ज़ाहिद, वलीउल्लाह शहाब-उद-दीन मिन्हाज के टीकाकार से नक़्ल किया है।)

कुछ रिवायतों में आया है कि 'बिस्मिल्लाह शरीफ़' भी ज़ोर से नहीं पढ़ी। "इसे फ़ाज़िल शामी ने 'रद अल-मुह्तार' में कुछ विद्वानों से नक़्ल किया है।" — इसे फ़ाज़िल शामी ने 'रद अल-मुह्तार' में कुछ विद्वानों से नक़्ल किया है, और इसी तरह इमाम इब्न हजर ने 'अल-खैरात अल-हिस्सान' में ज़िक्र किया है।

कुछ रिपोर्टों में है कि उन्होंने संक्रमण की तकबीरों (तकबीरात-ए-इंतक़ाल) में रफ़-ए-यदैन (हाथ उठाना) नहीं किया। जब कारण पूछा गया, तो उन्होंने जवाब दिया: "इस इमाम के साथ हमारा अदब इससे कहीं ज़्यादा है कि हम उनके हुज़ूर उनका विरोध ज़ाहिर करें।" — इस इमाम के साथ हमारा अदब इससे ज़्यादा है कि उनके हुज़ूर उनका ख़िलाफ़ ज़ाहिर करें। (इसे मुल्ला अली क़ारी ने 'मिर्कात' में ज़िक्र किया है।)

'शरह अल-लुबाब' में विशेष रूप से 'इस्तह्या' (शर्म महसूस की) शब्द के साथ नक़्ल किया गया है कि इमाम शाफ़ई ने फ़रमाया: "मुझे शर्म आती है कि इमाम के मज़हब का विरोध करूँ।" — मुझे शर्म आती है कि इमाम के सामने उनके मज़हब की मुख़ालफ़त करूँ।

1. अल-मीज़ान अल-कुबरा, इमाम शाफ़ई से जो नक़्ल किया गया उसके बारे में खंड, मुस्तफ़ा अल-बाबी मिस्र, 1/61।

2. मिर्कात शरह मिश्कात, इमाम अबू हनीफ़ा रहमतुल्लाह अलैह का ज़िक्र, मकतबा इमदादिया मुल्तान, 1/30।

पृष्ठ 754 का 948

جلد نہم فتاویٰ رضویہ

قول (۲۷): جب سید نا امام شافعی مزار فائض الانوار حضرت امام اعظم پر تشریف لے گئے رضی اللہ تعالیٰ عنہما وعن اتباعہما، نماز صبح میں قنوت نہ پڑھی، لوگوں نے سبب پوچھا، فرمایا :

کیف اقنت بحضرۃ الامام وھو لا یقول بہ ۱۔ میں امام کے سامنے کیونکر قنوت پڑھوں حالانکہ وہ اس کے قائل نہیں (اسے سیدی علی خواص نے اور امام شعرانی نے میزان الشریعۃ الکبریٰ میں ذکر کیا اور اسی کے ہم معنی علامہ ابن حجر نے "الخیرات الحسان فی مناقب الامام الاعظم ابی حنیفۃ النعمان" کے شروع میں ذکر کیا اور اس کے آخر میں دوبارہ منہاج امام نووی کے بعض شارحین وغیرہ کے حوالہ سے ذکر کیا۔ اسی طرح عقود الجمان فی مناقب النعمان میں اپنے شیخ الشیوخ امام، زاہد، ولی اللہ شہاب الدین شارح منہاج سے نقل کیا۔(ت) ذکرہ سیدی علی الخواص والامام الشعرانی فی المیزان و نحوہ العلامۃ ابن حجر مکی فی خیرات الحسان فی مناقب الامام الاعظم ابی حنیفۃ النعمان فی اولھا واعادہ فی آخرھا عن بعض شراح منھاج الامام النووی وعن غیرہ و نحوہ فی عقود الجمان فی مناقب النعمان عن شیخ شیوخہ الامام الزاھد الولی شہاب الدین شارح المنہاج۔

بعض روایات میں آیا بسم اللہ شریف بھی جہر سے نہ پڑھی نقلہ الفاضل الشامی فی ردالمحتار عن بعض العلماء۔ اسے فاضل شامی نے ردالمحتار میں بعض علماء سے نقل کیا، ایسے ہی امام ابن حجر نے الخیرات الحسان میں ذکر کیا۔ (ت) وکذا الامام ابن حجر فی الخیرات الحسان۔

بعض میں ہے تکبیرات انتقال میں رفع یدین نہ فرمایا، سبب دریافت ہوا، جواب دیا : ادبًا مع ھذا الامام اکثر من ان نظھر خلافہ بحضرتہ ۲ ۔ ذکرہ علی القاری فی المرقاۃ۔ اس امام کے ساتھ ہمارا ادب

اس سے زائد ہے کہ ان کے حضور ان کا خلاف ظاہر کریں، (اسے ملا علی قاری نے مرقاۃ میں ذکر کیا۔ت)

شرح لباب میں خاص بلفظ استحیا نقل کیا کہ امام شافعی نے فرمایا: استحیی ان اخالف مذہب الامام۔ مجھے شرم آتی ہے کہ امام کے سامنے ان کے مذہب کی مخالفت کروں۔

۱ المیزان الکبریٰ فصل فیما نقل عن الامام الشافعی مصطفی البابی مصر ۱ / ۶۱ ۲ مرقاۃ شرح مشکوۃ تذکرہ امام ابو حنیفہ رحمہ اللہ تعالیٰ مکتبہ امدادیہ ملتان ۱ / ۳۰

Fatawa Razawiyya Volume Nine

(In his presence - Mentioned it in the Chapter of Prophetic Visitation, against the Madhhab, (Allama Qari mentioned it in Sharh Lubab, Chapter of Visitation, Section on Staying in Medina Munawwarah. T)) Section: Staying in Medina al-Munawwarah. Subhan Allah! If the dead did not see or hear, then what was the difference between loudness and silence, or raising and leaving, and pausing in Qunut and hurrying in prostration? For God's sake, be just; if the construction of the grave was a blocking veil, then where was the facing of the eminent Imam, and what was the reason for this etiquette and consideration? Statement (31 to 328): Allama Fazl Allah bin Ghouri Hanafi and a group of scholars have stated explicitly that in the visitation of Baqi Sharif, one should begin with the dome of Hadrat Abbas (may Allah be pleased with him) because it is encountered first. To pass by there without saluting is disrespectful. Similarly, in that pure land, whichever shrine comes first, one should offer Salam at it, because passing by someone who holds even a little dignity and greatness without Salam is far from chivalry and etiquette. Maulana Ali Qari quoted this in Sharh Lubab and kept it as an established view. The Sheikh Muhaqqiq in Jadhb al-Qulub quoted its appreciation from some other scholars, saying that this is an excellent objective, and there is no harm in not observing the preference of the more excellent and noble in this context; it is mentioned in Maslak Muqtasit.

(The Allama Fazl Allah bin al-Ghouri, from our companions, mentioned that starting with the dome of al-Abbas and concluding with Safiyya, may Allah be pleased with them both, is better. Because the shrine of al-Abbas is the first thing encountered by one leaving the city on his right, so passing it without saluting him is coldness. So when he salutes him and salutes whoever he passes by first, he concludes with Safiyya, may Allah be pleased with her, on his return, as also explicitly stated by many of our sheikhs etc.)

Allama Fazl Allah bin Ghouri Hanafi and a group of scholars have explicitly stated that in the visitation of Baqi Sharif, it is better to start from the dome of Hadrat Abbas (may Allah be pleased with him) and end at the shrine of Hadrat Safiyya (may Allah be pleased with her). This is because when one coming from outside starts from the right side, it is encountered first, so passing them by without offering Salam is disrespectful. When passing by them, and whichever shrine comes first, keep

offering Salam, then on the return journey, conclude at the shrine of Hadrat Safiyya (may Allah be pleased with her), as many of our scholars have explicitly stated, etc. (T)

1. Mansak Mutawassit with Irshad al-Sari, Section: "He should seize the opportunity of his days of staying in Medina...", Dar al-Kitab al-Arabi, Beirut, p. 442.
2. Maslak Muqtasit with Irshad al-Sari, Section: "He should seize the opportunity of his days of staying in Medina...", Dar al-Kitab al-Arabi, Beirut, p. 445.

फ़तावा रज़विया जिल्द नौ

(उनकी उपस्थिति में - इसका उल्लेख 'बाब अल-ज़ियारत अल-नबविया' (नबी की ज़ियारत का अध्याय) में किया, मज़हब के खिलाफ करूँ(इसे अल्लामा क़ारी ने 'शरह लुबाब', ज़ियारत के अध्याय, मदीना मुनव्वरा में ठहरने के अनुभाग में उल्लेख किया है। त)) अनुभाग: मदीना अल-मुनव्वरा में ठहरना। सुभान अल्लाह! अगर मुर्दे देखते और सुनते नहीं, तो फिर ज़ोर से पढ़ने और धीरे पढ़ने, या हाथ उठाने और छोड़ने, और क़ुनूत में ठहरने और सजदे में जल्दी करने में क्या फ़र्क था? खुदा के लिए इंसाफ करें, अगर कब्र की बनावट रुकावट होती, तो फिर महान इमाम का सामना कहाँ था और इस अदब और लिहाज़ का क्या कारण था। कथन (328 से 31): अल्लामा फज़ल अल्लाह बिन ग़ौरी हनफ़ी और अन्य विद्वानों के एक समूह ने स्पष्ट किया है कि बक़ी शरीफ़ की ज़ियारत में हज़रत अब्बास (रज़ियल्लाहु अन्हु) के गुंबद से शुरुआत करनी चाहिए क्योंकि पहले वही मिलता है, तो बिना सलाम के वहाँ से गुज़र जाना बे-अदबी है। इसी तरह उस पाक जगह में जो मज़ार पहले आता जाए, उस पर सलाम करता जाए, क्योंकि जो थोड़ा भी मान-सम्मान रखता है, उसके सामने से बिना सलाम किए चले जाना शराफ़त और अदब से दूर है। मौलाना अली क़ारी ने 'शरह लुबाब' में इसे उद्धृत करके स्वीकार किया है। शेख मुहक़्क़िक़ ने 'जज़्ब अल-क़ुलूब' में कुछ अन्य विद्वानों से इसकी सराहना उद्धृत की है कि यह एक बेहतरीन उद्देश्य है जिसके साथ अफ़ज़ल और अशरफ़ (अधिक सम्मानित) का लिहाज़ न करना कोई हर्ज नहीं है, यह 'मसलक मुक़्तसित' में है।

(अल्लामा फज़ल अल्लाह बिन अल-ग़ौरी, जो हमारे साथियों में से हैं, ने ज़िक्र किया कि अब्बास के गुंबद से शुरू करना और सफ़िया (रज़ियल्लाहु अन्हुमा) पर ख़त्म करना बेहतर है, क्योंकि अब्बास का मज़ार शहर से बाहर निकलने वाले के लिए दाईं ओर सबसे पहले आता है, इसलिए उन पर सलाम किए बिना आगे बढ़ जाना बे-रुखी है। तो जब वह उन पर सलाम करे और जो भी मज़ार पहले आए उन पर सलाम करता जाए, तो अपनी वापसी पर हज़रत सफ़िया (रज़ियल्लाहु अन्हा) पर ख़त्म करे, जैसा कि हमारे बहुत से मशायख़ ने भी स्पष्ट किया है आदि।)

अल्लामा फज़ल अल्लाह बिन ग़ौरी हनफ़ी और अन्य विद्वानों के एक समूह ने स्पष्ट किया है कि बक़ी शरीफ़ की ज़ियारत में हज़रत अब्बास (रज़ियल्लाहु अन्हु) के गुंबद से शुरुआत करे और हज़रत सफ़िया (रज़ियल्लाहु अन्हा) के मज़ार पर ख़त्म करे, यह बेहतर है क्योंकि बाहर वाला जब दाईं तरफ से शुरू करे तो पहले वही मिलता है, तो उनको सलाम किए बिना गुज़र जाना बे-अदबी है। जब उन

पर से गुज़रे और जो मज़ार पहले आता जाए सलाम करता जाए, तो वापसी में मज़ार हज़रत सफ़िया (रज़ियल्लाहु अन्हा) पर ख़त्म करे जैसा कि हमारे बहुत से मशायख़ ने स्पष्ट किया है आदि (त)।

1. मनसक मुतवस्सित मअ इरशाद अल-सारी, अनुभाग: "व यग़तनिम अय्यामा मक़ामिही बिल-मदीना...", दार अल-किताब अल-अरबी, बेरूत, पृष्ठ 442।
2. मसलक मुक़्तसित मअ इरशाद अल-सारी, अनुभाग: "व यग़तनिम अय्यामा मक़ामिही बिल-मदीना...", दार अल-किताब अल-अरबी, बेरूत, पृष्ठ 445।

पृष्ठ 948 का 755

فی حضورہ - ذکرہ فی باب الزیارۃ النبویۃ نبوی، مذہب کے خلاف کروں، (اسے علامہ قاری نے شرح لباب، باب زیارت فصل اقامت مدینہ منورہ میں ذکر کیا۔ ت) فصل المقام بالمدینۃ المنورۃ۔

سبحان اللہ ! اگر اموات دیکھتے سنتے نہیں تو جہر واخفاء یا رفع و ترک ومکث قنوت و تعجیل سجود میں کیا فرق تھا، للہ انصاف، اگر بنائے قبر حجاب مانع ہو تو امام ہمام کا سامنا کہاں تھا اور اس ادب و لحاظ کا کیا باعث تھا۔ قول (۳۲۸ تا ۳۱) : علامہ فضل اللہ بن غوری حنفی و غیرہ ایک جماعت علماء نے تصریح فرمائی کہ زیارت بقیع شریف میں قبہ حضرت عباس رضی اللہ تعالٰی عنہ سے ابتدا کرے کہ پہلے وہی ملتا ہے تو بے سلام کے وہاں سے گزر جانا بے ادبی ہے۔ اسی طرح اس بقعہ پاک میں جو مزار پہلے آتا جائے اس پر سلام کرتا جائے کہ جو ذرا بھی عزت وعظمت رکھتا ہے اس کے سامنے سے بے سلام چلے جانا مروت وادب سے بعید ہے۔ مولانا علی قاری نے شرح لباب میں اسے نقل فرما کر مسلم رکھا، شیخ محقق نے جذب القلوب میں، بعض دیگر علماء سے اس کی تحسین نقل کی ہے کہ یہ ایک عمدہ مقصد ہے جس کے ساتھ افضل واشرف کی رعایت نہ کرنی کچھ مضائقہ نہیں، مسلک مقتسط میں ہے۔

ذکر العلامۃ فضل اللہ بن الغوری من اصحابنا ان البدائۃ بقبۃ العباس والختم بصفیۃ رضی اللہ تعالی عنھما اولی لان مشھد العباس اول ما یلقی الخارج من البلد عن یمینہ فمجاوزتہ من غیر سلام علیہ جفوۃ فاذاسلم علیہ وسلم علی من یمر بہ اولا فیختم بصفیۃ رضی اللہ تعالی عنھا في رجوعہ کما صرح بہ ایضا کثیر من مشائخنا الخ۔

علامہ فضل اللہ بن غوری حنفی وغیرہ ایک جماعت علماء نے تصریح فرمائی کہ زیارت بقیع شریف میں قبہ حضرت عباس رضی اللہ تعالٰی عنہ سے ابتداء کرے اور حضرت صفیہ رضی اللہ

تعالیٰ عنہا کے مزار پر ختم کرے یہ بہتر ہے کیونکہ باہر والا جب دائیں طرف سے شروع کرے تو پہلے وہی ملتا ہے تو ان کو سلام کئے بغیر گزر جانا بے ادبی ہے، جب ان پر گزرے اور جو مزار پہلے آتا جائے سلام کرتا جائے، تو واپسی مزار حضرت صفیہ رضی اللہ تعالیٰ عنہا پر ختم کرے جیسا کہ بہت سے ہمارے مشائخ نے تصریح فرمائی الخ (ت)

1 منسک متوسط مع ارشاد الساری فصل و یغتنم ایام مقامہ بالمدینۃ الخ دارالکتاب العربی بیروت ص ۴۴۲ 2 مسلک مقتسط مع ارشاد الساری فصل و یغتنم ایام مقامہ بالمدینۃ الخ دارالکتاب العربی بیروت ص ۴۴۵

Fatawa Razawiya, Volume 9

In *Jazb-ul-Quloob*, it is stated:

Latter-day scholars have differed on who to start with when visiting [shrines]. A group holds that one should start with Hazrat Abbas (may Allah be pleased with him) and the members of the Prophet's family (Ahl al-Bayt, may Allah be pleased with them all) who rest with him under the dome, because this is easier and more proximal. To pass by them without greeting and focus on visiting others would be a kind of indifference and disrespect. Etc. (T)

In the same [book], it is stated:

The summary of some scholars' discourse is that one should start with the dome of Hazrat Abbas (may Allah be pleased with him) and those with him, and then greet whoever comes first. This is because passing by even a person of lower status without greeting and going elsewhere is far from courtesy and the preservation of etiquette. Some have said that this is a righteous objective, because of which the lack of observance of precedence of the most superior and noble is not harmful. Etc. (T)

Fifth Chapter: On the disturbance of the deceased by the actions of the living: Statements (342-347): It is stated in *Maraqi al-Falah*:

My teacher, Allama Muhammad bin Ahmad Hanafi (may Allah be pleased with him), informed me that the dead are pained by the sound of footsteps (clapping of shoes).

---

1. *Jazb-ul-Quloob*, Chapter on the Virtues of the Baqi Cemetery, Munshi Nawal Kishore, Lucknow, p. 187
2. *Jazb-ul-Quloob*, Chapter on the Virtues of the Baqi Cemetery, Munshi Nawal Kishore, Lucknow, p. 187
3. *Maraqi al-Falah* on the margin of *Hashiyat al-Tahtawi*, Chapter on Visiting Graves, Nur Muhammad Karkhana Tijarat Kutub, Karachi, p. 34

फ़तावा रज़विया, जिल्द 9

जज़्ब-उल-क़ुलूब में है:

परवर्ती विद्वानों (उलेमा-ए-मुताख़िरीन) में इस बात पर मतभेद है कि ज़ियारत की शुरुआत किससे की जाए। एक गिरोह की राय है कि हज़रत अब्बास (रज़ियल्लाहु अन्हु) और उनके साथ गुंबद (क़ुब्बा) में जो अहले-बैत आइम्मा किराम (रिज़वानुल्लाह अलैहिम अजमईन) आराम फ़रमा रहे हैं, उनसे शुरुआत की जाए क्योंकि यह आसान और क़रीब है। उनके पास से बिना सलाम गुज़रे दूसरों की ज़ियारत में व्यस्त हो जाना एक प्रकार की लापरवाही और बेअदबी है। इत्यादि। (त)

इसी में है:

कुछ विद्वानों के कथन का सार यह है कि हज़रत अब्बास (रज़ियल्लाहु अन्हु) और उनके साथ गुंबद में आराम फ़रमाने वालों से शुरुआत की जाए और उसके बाद हर पहले आने वाले को सलाम किया जाए। क्योंकि किसी कम रुतबे वाले के पास से भी बिना सलाम किए गुज़र जाना और दूसरी जगह चले जाना शिष्टता और अदब के विरूद्ध है। कुछ ने कहा है कि यह एक नेक मक़सद है जिसकी वजह से सबसे अफ़ज़ल और शरीफ़ (महान) की वरीयता का ध्यान न रखना नुक़सानदेह नहीं है। इत्यादि। (त)

पाँचवाँ अध्याय: जीवितों के कर्मों से मृतकों को पहुँचने वाली पीड़ा के बारे में: कथन (342 से 347): मराक़ी अल-फ़लाह में फ़रमाया:

मेरे उस्ताद अल्लामा मुहम्मद बिन अहमद हनफ़ी (रज़ियल्लाहु अन्हु) ने मुझे ख़बर दी कि जूतों की आवाज़ से मुर्दे को तकलीफ़ होती है।

---

1. जज़्ब-उल-क़ुलूब, बक़ी कब्रिस्तान के फ़ज़ाइल का अध्याय, मुंशी नवल किशोर लखनऊ, पृ. 187
2. जज़्ब-उल-क़ुलूब, बक़ी कब्रिस्तान के फ़ज़ाइल का अध्याय, मुंशी नवल किशोर लखनऊ, पृ. 187

3. मराक़ी अल-फ़लाह बर हाशिया अल-तहावी, क़ब्रों की ज़ियारत का अध्याय, नूर मुहम्मद कारख़ाना तिजारत कुतुब कराची, पृ. 34

فتاوٰی رضویہ، جلد نہم

جذب القلوب میں ہے :

علمائے متاخرین نے اختلاف کیا ہے کہ زیارت میں ابتداء کسی سے کرے۔ ایک جماعت کے ہاں حضرت عباس رضی اللہ تعالٰی عنہ اور ان کے ساتھ قبہ میں جو اہلبیت ائمہ کرام رضوان علیہم آرام فرما ہیں سے شروع کرے کیونکہ یہ آسان اور اقرب ہے اور ان کے آگے سے بغیر سلام گزر جانا اور دوسروں کی زیارت میں متوجہ ہو جانا ایک قسم کی لاپروائی اور بے ادبی ہے۔ الخ (ت)

اسی میں ہے :

بعض علماء کے کلام کا ماحصل یہ ہے کہ حضرت عباس رضی اللہ تعالٰی عنہ اور قبہ میں ان کے ساتھ والوں سے ابتداء کرے اور اس کے بعد ہر پہلے آنے والے کو سلام کرتا جائے کیونکہ کسی ادنٰی شان والے سے بے سلام گزرنا اور دوسری جگہ چلے جانا بھی مروت اور حفظ ادب سے بعید ہے۔ بعض نے کہا ہے کہ یہ مقصد صالح ہے جس کی وجہ سے افضل واشرف کی عدم رعایت مضر نہیں الخ (ت)

فصل پنجم افعال احیاء سے تاذی اموات میں: قول (۳۴۲تا۳۴۷) : مراقی الفلاح میں فرمایا :

مجھے میرے استاذ علامہ محمد بن احمد حنفی رضی اللہ تعالٰی نے خبر دی کہ جوتی کی چپچپل سے مردے کو ایذا ہوتی ہے۔

---

1. جذب القلوب باب در فضائل مقبرہ بقیع منشی نولکشور لکھنؤ ص ۱۸۷

2. جذب القلوب باب در فضائل مقبره بقیع منشی نولکشور لکهنؤ ص ۱۸۷

3. مراقی الفلاح علی ہامش حاشیہ الطحطاوی فصل فی زیارة القبور نور محمد کارخانه تجارت کتب کراچی ص ۳۴

Fatawa Razawiya Volume 9

Allama Tahtawi has spoken on this. Point (35): In the hadith where leaning on a grave is prohibited and it was stated as causing harm to the deceased, as mentioned in Hadith 2, the expert researcher (Sheikh Abdul Haq Dehlvi) writes in the commentary of Mishkat:

Perhaps the meaning is that the soul dislikes it and is not pleased with leaning on the grave because it involves disrespect and demeaning towards it. And Allah knows best.	**It could be meant that it is unpleasant for the soul and it is not pleased with someone leaning on its grave because it involves insult and lack of regard for it. And God knows best. (T)**

Point (36 to 37): Arif Billah Hakim Tirmidhi and then Allama Nablusi state in 'Hadiqa':

Its meaning is that souls are aware of the lack of respect and the insult, so they are pained by it.	**Its meaning is that souls come to know that he has fallen short in honoring us, therefore they receive pain.**

Point (38 to 39): In Hashiya Tahtawi and Radd al-Muhtar etc. it is written: Do not sit to urinate in cemeteries because the deceased is pained by whatever pains the living, because whatever causes pain to the living, it also causes pain to the dead. I say: Rather, Daylami has narrated this general rule from Umm al-Mu'minin [Aisha] Siddiqah (may Allah be pleased with her) that the Master of the Universe (peace and blessings of Allah be upon him) said:

The deceased is pained in his grave by whatever used to pain him in his house.	**Whatever caused pain to the deceased in the house, he also suffers pain from it in the grave.**

Point (40 to 41): Under hadith 26 in 'Ash'at', it is quoted from Imam Abu Umar Abd al-Barr:

From here it is inferred that the deceased suffers pain from everything from which a living body suffers pain, and it follows that he would also feel pleasure [from what gives pleasure].	**From here it is known that the deceased is pained by all those things which cause pain to the living. To it...**

1. Ash'at al-Lam'at, Chapter on Burying the Dead, Section 3, Maktaba Nooriya Razawiya Sukkur 1/299

2. Nawadir al-Usul, 209th Principle, Dar Sader Beirut, p. 244
3. Hashiya al-Tahtawi 'ala al-Durr, Chapter on Funeral Prayer, Dar al-Ma'rifah Beirut, 1/381
4. Sharh al-Sudur on the authority of Daylami, Chapter on the Harm to the Dead etc., Khilafat Academy, Swat p. 122

फतावा रज़विया, खंड 9

अल्लामा तहतावी ने इस पर भाषण दिया। बिंदु (35): हदीस में कब्र पर सहारा लगाने की जो मनाही आई है और इसे मृत व्यक्ति को कष्ट पहुँचाना बताया गया है जैसा कि हदीस 2 में गुज़रा, शेख मुहाक़्क़िक़ (रहमहुल्लाह) मिश्कात की व्याख्या में लिखते हैं:

शायद इसका अर्थ यह है कि उसकी आत्मा इसे नापसंद करती है और कब्र पर सहारा लगाने से प्रसन्न नहीं होती क्योंकि इसमें उसका अपमान और अनादर निहित है। और अल्लाह ही बेहतर जानता है।

हो सकता है कि यह मुराद हो कि उसकी रूह को नागवार होता है और वह अपनी क़ब्र पर तकिया लगाने से राज़ी नहीं होती इसलिए कि इसमें उसकी इहानत (अपमान) और बेवक़ती (तुच्छता) पाई जाती है, और ख़ुदा ख़ूब जानने वाला है। (त)

बिंदु (36 से 37): आरिफ़ बिल्लाह हकीम तिर्मिज़ी और फिर अल्लामा नाबुलुसी 'हदीक़ा' में फरमाते हैं:

इसका अर्थ यह है कि आत्माएं सम्मान की कमी और अपमान के बारे में जान लेती हैं, इसलिए वे इससे दुखी होती हैं।

इसके ये मा'नी हैं कि रूहें जान लेती हैं कि उसने हमारी ताज़ीम (सम्मान) में क़ुसूर किया लिहाज़ा ईज़ा (पीड़ा) पाती हैं।

बिंदु (38 से 39): हाशिया तहतावी और रद-उल-मुख़्तार आदि में है: कब्रिस्तानों में पेशाब करने न बैठें क्योंकि मृतक को उन चीज़ों से पीड़ा होती है जिनसे जीवित को पीड़ा होती है, इसलिए कि जिससे जीवितों को तकलीफ़ होती है उससे मुर्दे को भी ईज़ा होती है। अक़ूल (मैं कहता हूँ): बल्कि दैलमी ने उम्मुल मोमिनीन सिद्दीक़ा (रज़ियल्लाहु तआला अन्हा) से इस नियम की स्पष्टता बयान की कि सरवर-ए-आलम (सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम) ने फरमाया:

मृतक को अपनी कब्र में उसी बात से पीड़ा होती है जिससे उसे अपने घर में पीड़ा होती थी।

मय्यत को जिस बात से घर में ईज़ा होती थी क़ब्र में भी उससे अज़िय्यत पाता है।

बिंदु (40 से 41): हदीस 26 के नीचे 'अशआत' में इमाम अबू उमर अब्द अल-बर्र से उद्धृत किया:

यहाँ से यह निष्कर्ष निकलता है कि मृतक उन सभी चीज़ों से दुखी होता है जिनसे एक जीवित शरीर दुखी होता है और यह आवश्यक है कि वह [सुखद चीज़ों से] प्रसन्न भी हो।

यहाँ से मालूम हुआ कि मय्यत को उन तमाम चीज़ों से तकलीफ़ होती है जिससे ज़िन्दों को तकलीफ़ होती है। इसको...

1. अशअतुल लमआत, मय्यत को दफ़नाने का अध्याय, अनुभाग 3, मकतबा नूरिया रज़विया सुक्कुर 1/299
2. नवादिरुल उसूल, 209वां सिद्धांत, दार सादिर बेरूत, पृ. 244
3. हाशिया अत-तहतावी अलद-दुर्र, जनाज़ा की नमाज़ का अध्याय, दार अल-मआरिफ़ा बेरूत 1/381
4. शरहुस सुदूर दैलमी के हवाले से, मय्यत को तकलीफ़ पहुँचाने का अध्याय आदि, ख़िलाफ़त अकादमी, स्वात पृ. 122

فتاوٰی رضویہ جلد نہم

علامہ طحطاوی نے اس پر تقریر فرمائی۔ قول (۳۵): حدیث میں جو تکیہ قبر پر لگانے سے ممانعت فرمائی اور اسے ایذائے میت ارشاد ہوا جیسا کہ حدیث ۲ میں گزرا، شیخ محقق رحمہ اللہ اس پر شرح مشکوۃ میں لکھتے ہیں:

شاید کہ مراد آنست کہ روح وے ناخوش می دارد و راضی نیست بہ تکیہ کردن بر قبرے از جہت تضمن وے اہانت واستخفاف را بوی۱ واللہ اعلم۔ (ت)

ہو سکتا ہے کہ یہ مراد ہو کہ اس کی روح کو ناگوار ہوتا ہے اور وہ اپنی قبر پر تکیہ لگانے سے راضی نہیں ہوتی اس لیے کہ اس میں اس کی اہانت اور بے وقعتی پائی جاتی ہے، اور خدا خوب جاننے والا ہے۔

قول (۳۶تا۳۷): عارف باللہ حکیم ترمذی پھر علامہ نابلسی حدیقہ میں فرماتے ہیں:

معناہ ان الارواح تعلم بترك اقامہ الحرمۃ والاستہانۃ فتاذی بذلک۲۔

اس کے یہ معنی ہیں کہ روحیں جان لیتی ہیں کہ اس نے ہماری تعظیم میں قصور کیا لہٰذا ایذا پاتی ہیں۔

قول (۳۸ تا ۳۹): حاشیہ طحطاوی و ردالمختار وغیرہ میں ہے: مقابر میں پیشاب کرنے کو نہ بیٹھے لان المیت یتاذی بما یتاذی بہ الحی۳ اس لیے کہ جس سے زندوں کو اذیت ہوتی ہے اس سے مردے کو بھی ایذا پاتی ہیں۔ اقول: بلکہ دیلمی نے ام المومنین صدیقہ رضی اللہ تعالٰی عنہا سے اس کلیہ کی صراحت روایت کی کہ سرورِ عالم صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم نے فرمایا:

المیت یوذیہ فی قبرہ ما یؤذیہ فی بیتہ۴۔

میت کو جس بات سے گھر میں ایذا ہوتی تھی قبر میں بھی اس سے اذیت پاتا ہے۔

قول (۴۰ تا ۴۱): حدیث ۲۶ کے نیچے اشعہ میں امام ابو عمر عبد البر سے نقل کیا:

از اینجا مستفاد می گردد کہ میت متالم می گردد بجمع آنچہ متالم می گردد بدن حی ولازم این ست کہ متلذذ گردد

یہاں سے معلوم ہوا کہ میت کو ان تمام چیزوں سے تکلیف ہوتی ہے جس سے زندوں کو تکلیف ہوتی ہے۔ اس کو

۱ اشعة اللمعات باب دفن المیت فصل ۳ مکتبہ نوریہ رضویہ سکھر ۱/ ۲۹۹ ۲ نوادر الاصول الاصل التاسع والمائتان دار صادر بیروت ص ۲۴۴ ۳ حاشیة الطحطاوی علی الدر باب صلوٰة الجنازة دار المعرفة بیروت ۱/ ۳۸۱ ٤ شرح الصدور بحوالہ دیلمی باب تازی المیت الخ خلافت اکیڈمی، سوات ص ۱۲۲

Fatawa Razawiyya, Volume 9

"...in all those things through which he derives pleasure while alive." 1 It is necessary that he should derive pleasure from all those things from which the living derive pleasure. (Trans.)

Supplement: The issue is that if it is difficult to bring back animals from the enemy territory (Dar al-Harb) with oneself, one should not leave them alive as it benefits the enemies, nor should one hamstring them as it causes pain to animals. Rather, slaughter them and burn them so that they (the enemy) cannot benefit from their meat. It is stated in Durr al-Mukhtar:

[Table] Arabic: It is forbidden to hamstring an animal if transporting it to Dar al-Islam is difficult; rather, it should be slaughtered and then burnt, for no one punishes with fire except its Lord. 2 Urdu: To hamstring an animal that is difficult to bring to Dar al-Islam is forbidden. First slaughter it, then burn it, because giving the punishment of throwing into fire while alive is the work of the Lord of Fire alone. (Trans.)

Upon this, Allama Halabi, the commentator of Durr al-Mukhtar, raised a doubt that from this it follows that inflicting harm on a dead body does not cause pain to it, whereas the opposite is mentioned in Hadith. Allama Tahtawi and Allama Shami replied that this matter is specific to human beings, as they receive reward and punishment in their graves, so their souls maintain such a connection with their bodies due to which there is perception and sensation. This is not the case with animals, otherwise, no benefit would be derived from their bones etc. It is in Radd al-Muhtar:

[Table] Arabic: The commentator objected to the permissibility of burning them after slaughtering, saying it implies that the deceased does not feel pain, whereas it has been reported that the deceased feels pain from the breaking of a bone. I say, it may be answered that this is specific to human beings because they are blessed or punished in their graves, unlike other animals; otherwise, it would be necessary that no benefit be derived from some of them (their parts), and so on. Then I saw that Al-Tahtawi mentioned something similar. 3 End. Urdu: The commentator presented this doubt regarding slaughtering and then burning animals, that it implies the dead do not feel pain, whereas the Hadith states the opposite, that breaking the bone of the deceased causes them pain. I say the answer to this can be that this matter is specific to human beings because they find joy and pain in their graves. This is not the case

with animals, otherwise, their bones etc. would not be utilized. Then I saw Tahtawi, and he said the same. End (Trans.)

1 Ashi'at al-Lama'at, Chapter on Burial of the Deceased, Tej Kumar, Lucknow, 1/296 2 Durr al-Mukhtar, Chapter on Al-Ghanm and its Distribution, Mujtabai Press, Delhi, 1/342 3 Radd al-Muhtar, Chapter on Al-Ghanm and its Distribution, Mustafa Al-Babi, Egypt, 3/252

फ़तावा रज़विया, जिल्द 9

"...उन तमाम चीज़ों में जिनसे वह जीवित रहते हुए आनंद लेता है।" 1 यह आवश्यक है कि वह उन सभी चीज़ों से आनंद प्राप्त करे जिनसे जीवितों को आनंद मिलता है। (त)

अनुपूरक: मसला यह है कि दारुल हर्ब (शत्रु देश) के जिन जानवरों को अपने साथ लाना कठिन हो, उन्हें जीवित न छोड़ें क्योंकि इसमें शत्रुओं का लाभ है, और न ही उनके पैर काटें (हैमस्ट्रिंग) क्योंकि इसमें जानवरों को कष्ट है, बल्कि उन्हें ज़बह करके जला दें ताकि वे (शत्रु) उनके मांस से लाभ न उठा सकें। 'दुर्रुल मुख़्तार' में है:

[तालिका] अरबी: जिस जानवर को दारुल इस्लाम तक लाना कठिन हो, उसके पैर काटना हराम है। पहले उसे ज़बह करें, फिर जला दें, क्योंकि आग के रब के सिवा कोई आग से दंड नहीं देता। 2 उर्दू: जिस जानवर को दारुल इस्लाम तक लाना कठिन हो, उसके पैर काटना हराम है। पहले उसे ज़बह करें, फिर जला दें, क्योंकि जीवित को आग में डालने का दंड देना आग के रब का काम है। (त)

इस पर 'दुर्रुल मुख़्तार' के टीकाकार अल्लामा हलाबी ने संदेह व्यक्त किया कि इससे यह सिद्ध होता है कि मृत शरीर को आघात पहुँचाने से उसे पीड़ा नहीं होती, जबकि हदीस में इसके विपरीत उल्लेख है। अल्लामा तहतावी और अल्लामा शामी ने उत्तर दिया कि यह बात मनुष्यों (बनी आदम) के लिए विशिष्ट है कि वे अपनी कब्रों में सवाब (पुण्य) और अज़ाब (दंड) पाते हैं, इसलिए उनकी आत्माओं का उनके शरीरों से ऐसा संबंध रहता है जिसके कारण बोध और संवेदना बनी रहती है। जानवरों में यह बात नहीं है, अन्यथा उनकी हड्डियों आदि का उपयोग नहीं किया जाता। 'रद्दुल मुह्तार' में है:

[तालिका] अरबी: टीकाकार ने जानवरों को ज़बह करके जलाने की अनुमति पर यह आपत्ति जताई कि इससे यह आवश्यक आता है कि मृतक को कष्ट नहीं होता, जबकि यह वर्णित है कि मृतक की हड्डी तोड़ने से उसे पीड़ा होती है। मैं कहता हूँ कि इसका उत्तर यह दिया जा सकता है कि यह मनुष्यों के लिए विशिष्ट है क्योंकि वे अपनी कब्रों में सुखी या दंडित होते हैं, अन्य जानवरों के विपरीत; अन्यथा, यह आवश्यक होता कि उनमें से कुछ (अंगों) से लाभ न उठाया जाए, इत्यादि। फिर मैंने देखा कि तहतावी ने भी इसी प्रकार उल्लेख किया है। 3 समाप्त। उर्दू: टीकाकार ने जानवरों को ज़बह करके जलाने पर यह संदेह प्रस्तुत किया कि इससे यह सिद्ध होता है कि मृतक को कष्ट नहीं होता, जबकि हदीस में इसके विपरीत है कि मृतक की हड्डी तोड़ने से उसे कष्ट होता है। मैं कहता हूँ कि इसका उत्तर यह हो सकता है कि यह बात बनी आदम के साथ है क्योंकि वे अपनी कब्रों में प्रसन्नता

और कष्ट पाते हैं। जानवरों में यह बात नहीं है, अन्यथा उनकी हड्डियों आदि से लाभ नहीं उठाया जाता। फिर मैंने तहतावी को देखा तो उन्होंने भी ऐसा ही फ़रमाया। समाप्त (त)

1 अशिअतुल लमआत, बाब दफ्नुल मय्यत, तेज कुमार, लखनऊ, 1/296 2 दुर्रुल मुख़्तार, बाबुल ग़नम व क़िस्मतुह, मुजतबाई प्रेस, दिल्ली, 1/342 3 रद्दुल मुह्तार, बाबुल ग़नम व क़िस्मतुह, मुस्तफ़ा अल-बाबी, मिस्र, 3/252

فتاوٰی رضویہ جلد نہم

بتمام انچہ متلذذ مے شود بدراں زندہ 1۔ لازم یہ ہے کہ اسے ان تمام چیزوں سے لذت بھی حاصل ہو جن سے زندوں کو لذت ملتی ہے۔ (ت)

تذئیل: مسئلہ یہ ہے کہ دار الحرب کے جن جانوروں کو اپنے ساتھ لانا دشوار ہو انھیں زندہ چھوڑیں کہ اس میں حربیوں کا نفع ہے، نہ کو نچیں کاٹیں کہ اس میں جانوروں کی ایذا ہے بلکہ ذبح کر کے جلا دیں تاکہ وہ ان کے گوشت سے بھی انتفاع نہ کر سکیں، در مختار میں ہے:

[Table] Right: حرم عقردابة شق نقلها الی دار نا فتذبح و تحرق بعده اذلا یعذب بالنار الا ربها۔ 2 Left: جس جانور کو دار الاسلام تک لانا دشوار ہو اس کی کو نچیں کاٹنا حرام ہے، پہلے ذبح کریں اس کے بعد جلا دیں اس لیے کہ زندہ آگ میں ڈالنے کا عذاب دینا رب ناری کا کام ہے۔ (ت)

اس پر علامہ حلبی محشی در مختار نے شبہ کیا کہ یہاں سے لازم کہ مردے کے جسم کو صدمہ پہنچائیں اس سے اسے تکلیف نہ ہو حالانکہ حدیث میں اس کا خلاف وارد ہے۔ علامہ طحطاوی و علامہ شامی نے جواب دیا کہ یہ بات بنی آدم کے ساتھ خاص ہے کہ وہ اپنی قبور میں ثواب و عذاب پاتے ہیں تو ان کی ارواح کی ابدان سے ایسا تعلق رہتا ہے جس کے سبب ادراک و احساس ہوتا ہے۔ جانوروں میں یہ بات نہیں ورنہ ان کی ہڈی وغیرہ سے انتفاع نہ کیا جاتا۔ رد المحتار میں ہے :

[Table] Right: او رد المحشی علی جواز احراقها بعد الذبح انه یقتضی ان المیت لا یتألم مع انه ورد انه یتألم بکسر عظمة قلت قد یجاب بان هذا خاص ببنی آدم لانهم یتنعمون ویعذبون في قبورهم بخلاف غیرهم من الحیوانات والالزم ان لاینتفع بعضهها و نحوه ثم رأیت ط ذکر نحو ہ 3 انتھی۔ Left: محشی نے جانوروں کو ذبح کرکے جلانے پر یہ شبہ پیش کیا اس سے لازم آتا ہے کہ مردے کو

اذیت نہیں ہوتی حالانکہ حدیث میں اس کا خلاف ہے کہ میت کی ہڈی توڑنے سے اس کو اذیت ہوتی ہے۔ میں کہتا ہوں اس کا جواب یہ ہو سکتا ہے کہ یہ بات بنی آدم کے ساتھ ہے کیونکہ وہ اپنی قبروں میں خوشی اور تکلیف پاتے ہیں، جانوروں میں یہ بات نہیں ورنہ ان کی ہڈی وغیرہ سے انتفاع نہ کیا جاتا، پھر میں نے طحطاوی کو دیکھا تو انھوں نے ایسا ہی فرمایا، انتہی (ت)

1 اشعۃ اللمعات باب دفن المیت تیج کمار لکھنو ۱ / ۲۹۶ 2 در مختار باب الغنم و قسمتہ مطبع مجتبائی دہلی ۱ / ۳۴۲ 3 ردالمحتار باب الغنم و قسمتہ مصطفی البابی مصر ۳ / ۲۵۲

Fatawa Ridawiyya Volume 9

I say: The specification of the children of Adam in relation to animals is intended, otherwise, Jinns also possess awareness after death as will come in saying 190 (As it will appear in saying 190. T) and the suspension of punishment and reward by the scholar itself is evidence of this, and Allah Almighty knows best. Section Six: The deceased being comforted by meeting the living and the remembrance of God. Saying (42): Imam Suyuti stated in 'Anis al-Gharib': "And they [the deceased] feel comforted when people come to the graves."[1] (When visitors come to the graves, the deceased gain comfort from them. T)

Saying (43): The great Imam Nawawi (may Allah have mercy on him) stated regarding the types of visitation: One type of visitation is for the purpose of comforting the deceased by going to the graves, as this point is proven from Hadith. Its citation will come in the second category, if Allah Almighty wills. (This point will be quoted in the second category, God willing. T) Saying (44): It is stated in 'Jazb al-Qulub':

Visitation may be for the purpose of fulfilling the rights of the people of the graves. In the Hadith, it is mentioned that the time of most comfort for the deceased is when one of their beloved acquaintances visits their grave, and there are many Ahadith on this topic.[2]

Sometimes visiting the graves is for fulfilling the rights of those buried there. It appears in Hadith that the state of greatest comfort for the deceased is when a beloved acquaintance comes to visit them. There are many Ahadith in this chapter. (T)

Saying (45 to 46): In Fatawa Qadi Khan and then in Fatawa Alamgiri, it is mentioned:

If one recites the Quran at the graves with the intention that the sound of the Quran comforts the deceased, then one should certainly recite it.[3]

If reciting the Quran near graves, if the intention is to comfort the deceased with the sound of the Quran, then one should certainly recite it.

Saying (47 to 49): In 'Radd al-Muhtar' from 'Ghunyat al-Munyat' and in 'Hashiya Tahtawi' on 'Maraqi al-Falah Sharh Nur al-Idah' regarding the benefit of Talqin (instruction) for the deceased, it is stated:

Indeed, the deceased finds comfort in remembrance (dhikr) as has been reported.

Indeed, through the remembrance of Allah Almighty, the deceased is comforted.

[1] Anis al-Gharib [2] Jazb al-Qulub, Chapter 15, Munshi Naval Kishore Lucknow, p. 213 [3] Fatawa Hindiyya, Chapter 16 regarding visiting graves, Noorani Kutub Khana Peshawar, 5/350

फ़तावा रज़विया जिल्द नवीं

अक़ौल: जानवरों की तुलना में आदम की औलाद (मनुष्यों) का विशिष्ट उल्लेख करना ही अभीष्ट है, अन्यथा जिन्न भी मृत्यु के बाद बोध रखते हैं जैसा कि क़ौल १९० में आएगा (जैसा कि क़ौल १९० में आएगा। त)। और आलिम द्वारा सवाब और अज़ाब को स्थगित करना इस पर प्रमाण है, और अल्लाह तआला बेहतर जानता है। छठा अध्याय: जीवितों से मिलने और अल्लाह के ज़िक्र से मृतकों का मन बहलना। क़ौल (४२): इमाम सुयूती ने 'अनीसुल ग़रीब' में फ़रमाया: "वे (मृतक) सुकून पाते हैं जब कोई क़ब्रिस्तान आता है।"[1] (जब ज़ायरीन क़ब्रों पर आते हैं तो मुर्दे उनसे सुकून हासिल करते हैं। त)

क़ौल (४३): महान इमाम नववी रहमतुल्लाह अलैहि ने ज़ियारत के प्रकारों में फ़रमाया: एक प्रकार की ज़ियारत इस उद्देश्य से है कि क़ब्रों पर जाने से मृतकों का दिल बहल जाए, क्योंकि यह बात हदीस से प्रमाणित है। इंशा अल्लाह इसका उद्धरण दूसरे प्रकार में आएगा। (यह बात इंशा अल्लाह दूसरे प्रकार में उद्धृत की जाएगी। त) क़ौल (४४): 'जज़्बुल क़ुलूब' में फ़रमाया:

ज़ियारत कभी क़ब्र वालों के हक़ की अदायगी के लिए होती है। हदीस में आया है कि मृतक के लिए सबसे अधिक सुकून की स्थिति वह होती है जब उसका कोई प्यारा परिचित उसकी ज़ियारत के लिए आता है। इस विषय में बहुत सी हदीसें हैं।[2]	**ज़ियारत कभी क़ब्र वालों के हक़ की अदायगी के लिए होती है। हदीस में आया है कि मृतक के लिए सबसे अधिक सुकून की स्थिति वह होती है जब उसका कोई प्यारा परिचित उसकी ज़ियारत के लिए आता है। इस अध्याय में हदीसें बहुत हैं। (त)**

क़ौल (४५ से ४६): फ़तावा क़ाज़ी खाँ और फिर फ़तावा आलमगीरी में है:

यदि क़ब्रों के पास कुरान पढ़ने से यह नियत (इरादा) हो कि कुरान की आवाज़ से मुर्दे का जी बहले, तो बेशक पढ़े।[3]	**क़ब्रों के पास कुरान पढ़ने से अगर यह नियत हो कि कुरान की आवाज़ से मुर्दे का जी बहले तो बेशक पढ़े।**

क़ौल (४७ से ४९): 'रद्दुल मुहतार' में 'ग़ुनिया शरह मुनिया' से और 'तहतावी हाशिया मराक़िल फ़लाह शरह नूरुल ईज़ाह' में मय्यित को तल्कीन करने के लाभ के बारे में फ़रमाया:

बेशक मृतक ज़िक्र से सुकून पाता है जैसा कि वर्णित है।	**बेशक अल्लाह तआला के ज़िक्र से मुर्दे का जी बहलता है।**

[1] अनीसुल ग़रीब [2] जज़्बुल क़ुलूब, अध्याय १५, मुंशी नवल किशोर लखनऊ, पृ. २१३ [3] फ़तावा हिन्दिया, अध्याय १६ क़ब्रों की ज़ियारत के बारे में, नूरानी कुतुब खाना पेशावर, ५/३५०

पृष्ठ ७५९ / ९४८

فتاوٰی رضویہ جلد نہم

اقول: تخصیص بنی آدم با ضافت حیوانات مراد ہے ورنہ جن بھی بعد موت ادراک رکھتے ہیں کما سیاتی قول ۱۹۰ (جیسا کہ قول ۱۹۰ میں آئیگا۔ ت) اور خود عذاب و ثواب سے علامہ کی تعطیل اس پر دلیل، واللہ تعالٰی اعلم فصل ششم: ملاقاتِ احیاء وذکرِ خدا سے اموات کا جی بہلنا ہے۔ قول (۴۲): امام سیوطی نے انیس الغریب میں فرمایا: ویأْنَسُوْنَ اِنْ اَتَی الْمَقَابِرَ 1 (جب زائرین مقابر پر آتے ہیں مُردے ان سے انس حاصل کرتے ہیں۔ ت)

قول (۴۳): امام اجل نووی رحمۃ اللہ علیہ نے اقسام زیارت میں فرمایا ایک قسم زیارت اس غرض سے ہے کہ مقابر پر جانے سے اموات کا دل بہلائیں کہ یہ بات حدیث سے ثابت ہے۔ و سیاتی نقلہ فی النوع الثانی ان شاء اللہ تعالٰی (یہ بات ان شاء اللہ تعالٰی نوع ثانی میں نقل ہوگا۔ ت) قول (۴۴): جذب القلوب میں فرمایا:

زیارت گاہی از جهت ادائے حق اہل قبور باشد در حدیث آمده مانوس ترین حالتیکہ میت را بود در وقت کریے از آشنایان او زیارتِ قبر او کند و احادیث دریں باب بسیار است 2۔

زیارت کبھی قبر والوں کے حق کی ادائیگی کے لیے ہوتی ہے حدیث میں آیا ہے کہ میت کے لیے سب سے زیادہ اُنس کی حالت وہ ہوتی ہے جب اس کا کوئی پیارا آشنا اس کی زیارت کے لیے آتا ہے۔ اس باب میں احادیث بہت ہیں۔ (ت)

قول (۴۵ تا ۴۶): فتاوٰی قاضی خاں پھر فتاوٰی عالمگیری میں ہے:

ان قرأ القرآن عند القبور نوی ذلك ان یونسه صوت القرآن فانه یقرأ 3۔

مقابر کے پاس قرآن پڑھنے سے اگر یہ نیت ہو کہ قرآن کی آواز سے مُردے کا جی بہلائے تو بیشک پڑھے۔

قول (۴۷ تا ۴۹): ردالمحتار میں غنیہ شرح منیہ سے اور طحطاوی حاشیہ مراقی الفلاح شرح نورالایضاح میں تلقین میت کے مفید ہونے میں فرمایا:

ان المیت یستانس بالذکر علی ما ورد بیشک اللہ تعالیٰ ذکر سے مُردے کا جی بہلتا ہے

1 انیس الغریب 2 جذب القلوب باب پانزدہم منشی نولکشور لکھنؤ ص ۲۱۳ 3 فتاوی ہندیہ الباب السادس عشر فی زیارۃ القبور نورانی کتب خانہ پشاور ۳۵۰/۵

Fatawa Rizvia Volume 9

Fi al-Athar[1] - As it has been narrated in the Hadiths. Statements (50 to 58): Imam Qazi Khan in Fatawa Khaniya, Shurunbulali in Nur al-Idah and Maraqi al-Falah and Imdad al-Fattah, then Allama Abu al-Sa'ud and Fazil Tahtawi in the Hashiyah (marginalia) of Maraqi as a support and establishment, and Shami in the Hashiyah of Durr as a support, and in Khizanat al-Riwayat from Fatawa Kubra, and Imam Bazzazi in Fatawa Bazzaziya and Shaykh al-Islam in Kashf al-Ghita, and other scholars besides them state:

Arabic: And the wording is from al-Khaniya: It is disliked to cut wood and grass from a graveyard, but if it is dry, there is no harm, because as long as it is moist, it glorifies [Allah], thus comforting the deceased.[2] Urdu: Cutting green wood and grass from a graveyard is disliked, and if it is dry, there is no issue, because as long as it remains fresh, it glorifies God, and it comforts the heart of the deceased.

Allama Shami, supporting his argument with this Hadith, said: On this basis, there is absolute dislike [Karahah], even if it grows wild, because cutting it is to waste the right of the deceased.

Note: The humble author says, may Allah Almighty forgive him: From these statements of the scholars, as well as the four upcoming quotes and other brilliant clarifications, two magnificent benefits are obtained:

First, in plants, minerals, and all components of the universe, there is a life suited to each, such that as long as it exists, every tree and stone speaks with the tongue of speech [zaban-e-qal] of the purity of that Greatest Lord, Exalted is His Majesty, and says "Subhan Allah" or similar words of divine glorification. It is not that any of them is merely through the symbolic state [zaban-e-hal], as is the apparent opinion of the jurists. On that assumption, the distinction between wet and dry would be a decisive proof, as He stated therein:

Quranic Verse: "...but you do not understand their glorification."[3] You do not understand their glorification. It is obvious that symbolic glorification [tasbih-e-hali] is understood by every sane person, even to the extent that poets have said:

Every plant that grows from the earth, Says He is One, having no partner.

(Every grass that grows from the earth says that He is one, He has no partner. T)

[1] Hashiyah al-Tahtawi on Maraqi al-Falah, Chapter on Funerals, Noor Muhammad Publishers, Karachi, p. 306. [2] Fatawa Qazi Khan, Chapter on Funerals, Nawal Kishore, Lucknow, 1/195. [3] Al-Quran 17:44.

फतावा रज़विया जिल्द 9

फी अल-आसार[1] - जैसा कि हदीसों में आया है। कथन (50 से 58): इमाम काज़ी ख़ाँ फतावा ख़ानिया में, शरुन्बुलाली नूरुल ईज़ाह और मराक़िल फ़लाह व इदादुल फ़त्ताह में, फिर अल्लामा अबू सऊद और फ़ाज़िल तहतावी हाशिया-ए-मराक़ी में सनद और पुष्टि के तौर पर, और शामी हाशिया-ए-दुर्र में सनद के तौर पर, और ख़ज़ानतुल रिवायात में फतावा कुबरा से, और इमाम बज़ाज़ी फतावा बज़ाज़िया में और शैखुल इस्लाम कश्फ़ुल ग़िता में, और उनके अलावा अन्य विद्वान कहते हैं:

अरबी: और ये शब्द अल-खानिया के हैं: कब्रिस्तान से लकड़ी और घास काटना मकरूह (नापसंद) है, लेकिन अगर यह सूखी हो तो कोई हर्ज नहीं है, क्योंकि जब तक यह गीली रहती है, यह (अल्लाह की) तस्बीह (महिमा) करती है, जिससे मृतक को सुकून मिलता है।[2] उर्दू: कब्रिस्तान से हरी लकड़ी और घास काटना मकरूह है और अगर सूखी हो तो कोई हर्ज नहीं क्योंकि जब तक वह ताज़ा रहती है खुदा की तस्बीह करती है और इससे मुर्दे का जी बहलता है।

अल्लामा शामी ने इसी हदीस से दलील देते हुए फरमाया: इस आधार पर पूर्ण रूप से कराहत (नापसंदगी) है चाहे वह स्वयं उगी हो, क्योंकि काटने में मृतक के अधिकार को नष्ट करना है।

चेतावनी: यह फकीर कहता है, अल्लाह उसे माफ करे: विद्वानों के इन बयानों और चार आने वाले बयानों और अन्य स्पष्टीकरणों से दो बड़े लाभ प्राप्त होते हैं:

पहला, वनस्पतियों, खनिजों और ब्रह्मांड के सभी घटकों में से प्रत्येक के लिए एक उपयुक्त जीवन है, जब तक कि वह जीवित रहता है, हर पेड़ और पत्थर 'ज़बान-ए-क़ाल' (बोली जाने वाली भाषा) से उस महानतम रब की पवित्रता बोलता है और 'सुब्हान अल्लाह' या इसके समान अल्लाह की तस्बीह के शब्द कहता है। ऐसा नहीं है कि उनमें से कोई भी केवल 'ज़बान-ए-हाल' (प्रतीकात्मक अवस्था) के माध्यम से है जैसा कि न्यायविदों का स्पष्ट मत है। इस धारणा पर, गीले और सूखे के बीच का अंतर एक निर्णायक प्रमाण है, जैसा कि उन्होंने इसमें फरमाया:

कुरान की आयत: "...लेकिन तुम उनकी तस्बीह नहीं समझते।"[3] तुम उनकी तस्बीह नहीं समझते, ज़ाहिर है कि तस्बीह-ए-हाली (प्रतीकात्मक महिमा) तो हर समझदार व्यक्ति समझता है, यहाँ तक कि कवि भी कह गए हैं:

हर गयाहे के अज़ ज़मीं रूयेद, वहदहु ला शरी-क लहू गूयेद।

(जो घास भी ज़मीन से उगती है वह कहती है कि वह एक है उसका कोई साझीदार नहीं। त)

[1] हाशिया अत-तहतावी अली मराक़िल फलाह, अध्याय: जनाजे के नियम, नूर मुहम्मद पब्लिशर्स, कराची, पृ. 306। [2] फतावा काज़ी ख़ाँ, अध्याय: जनाजे के नियम, नवल किशोर, लखनऊ, 1/195। [3] अल-कुरान 17:44।

فتاوی رضویہ جلد نہم

فی الاثار ۱۔ جیسا کہ حدیثوں میں آیا ہے۔ قول (۵۰ تا ۵۸): امام قاضی خاں فتاوی خانیہ۵۱ شرنبلالی نورالایضاح و مراقی الفلاح وامدادالفتاح پھر۵۲ علامہ ابو السعود و۵۳ فاضل طحطاوی حاشیہ مراقی میں استناداً و تقریراً، اور ٥٤شامی حاشیہ در میں استناداً، اور ٥٥خزانۃ الروایات میں ٥٦فتاوی کبری سے، اور ٥٧امام بزازی فتاوی بزازیہ اور ٥٨شیخ الاسلام کشف الغطاء میں، اور ان کے سوا اور علماء فرماتے ہیں:

واللفظ للخانیۃ یکرہ قطع الحطب والحشیش من المقبرۃ فان کان یابسا لا بأس لانہ مادام رطباً یسبح فیونس المیت۲۔ چوب وگیاہ سبز کا مقبرہ سے کاٹنا مکروہ ہے اور خشک ہو تو مضائقہ نہیں کہ وہ جب تک تر رہتی ہے تسبیح خدا کرتی ہے اور اس سے میت کا جی بہلتا ہے۔

علامہ شامی نے اسی حدیث سے مدلل کرکے فرمایا: اس بناء پر مطلقاً کراہت ہے اگرچہ خود رو ہو کہ قطع میں حق میت کا ضائع کرنا ہے۔

تنبیہ: فقیر کہتا ہے غفر اللہ تعالیٰ لہ، علماء کی ان عبارات اور نیز چار قول آئندہ و دیگر تصریحات رخشندہ سے دو جلیل فائدے حاصل:

اولاً نباتات و جمادات و تمام اجزائے عالم میں ہر ایک کے موافق ایک حیات ہے کہ اس کی بقا تک ہر شجر و حجر زبان قال سے اس رب اکبر جل جلالہ کی پاکی بولتا ہے اور سبحان اللہ یا اس کے مثل اور کلمات تسبیح الہی کہتا ہے نہ کوئی ان میں صرف زبان حال ہے جیسا کہ ظاہر بنی کا مقال ہے کہ اس تقدیر پر تر و خشک میں تفرقہ پر برہان قاطع کہ اس میں فرمایا:

وَلٰكِنْ لَّا تَفْقَهُوْنَ تَسْبِيْحَهُمْ ط۳ تم اس کی تسبیح نہیں سمجھتے، ظاہر کہ تسبیح حالی تو ہر شخص عاقل سمجھتا ہے یہاں تک کہ شعراء بھی کہہ گئے:

ہر گیاہے کہ از زمین روید وحدہ لا شریک لہ گوید

(جو گھاس بھی زمین سے اگتی ہے کہتی ہے وہ ایک ہے اس کا کوئی شریک نہیں۔ت)

۱ حاشیۃ الطحطاوی علی مراقی الفلاح باب احکام الجنائز نور محمد کار خانہ تجارت کتب کراچی ص ۳۰۶ ۲ فتاوی قاضی خاں باب احکام الجنائز نولکشور لکھنؤ ۱/ ۱۹۵ ۳ القرآن ۱۷/ ۴۴

Fatawa Razawiyya Volume 9

And it has been established as the creed of the Ahl-us-Sunnah that every particle of the universe possesses a type of knowledge, perception, hearing, and sight. Maulana Ma'nawi (may his secret be sanctified) has eloquently expressed this subject in the noble Masnavi, and hundreds of texts (nusoos) from the Quran and Hadith speak on this. If I were to collect them, by Allah's will, they would not be fewer than five hundred. To turn all of them away from their apparent meaning and interpret them metaphorically without reason is a departure from the principles of logic and tradition, and rather an entry into the explicit foolishness of innovators, especially those texts that are clear and explicit.

Note 1: It is stated in Mirqat, the commentary on Mishkat, in the chapter on the Excellence of the Adhan: [Arabic Text]: The correct view is that inanimate objects, plants, and animals possess knowledge, perception, and [perform] glorification (tasbih). Al-Baghawi said: This is the creed of the Ahl-us-Sunnah, and the Hadiths and traditions indicate it, as witnessed by the unveiling (mukashafah) of the people of vision and secrets, which are like lights. The relied-upon view in the belief is that the testimony of the limbs is with the tongue of speech. Whatever has come from the Lawgiver is taken according to its apparent meaning as long as there is no factor diverting it from that, and there is no such factor here as is evident. (Extracted) - (M)

[Urdu Translation]: The correct view is that inanimate objects, plants, and animals also possess a type of knowledge, perception, and the act of glorification. Imam Baghawi stated: This is the creed of the Ahl-us-Sunnah, for which evidence from Hadiths and traditions exists. The unveiling (mukashafah) of the people of spiritual vision and secrets, who possess insights like lights, also bears witness to this. The relied-upon view in the creed is that the testimony of the limbs will be through the tongue of speech. Whatever is reported from the Lawgiver (Prophet ﷺ) will be taken in its literal/apparent sense as long as there is no evidence to divert it from the literal, and here there is no such factor, as is clear. (T)

Note 2: The humble servant (the author) has mentioned a sound collection in his Fatawa and provided references to hundreds; success is through Allah. (M)

Note 3: For example, those Hadiths in which it is clearly stated that no animal is hunted and no tree is cut down until it becomes heedless of the glorification of Allah. The Master of the Universe (peace and blessings of Allah be upon him) says: [Arabic Text]: No prey is hunted nor a tree cut down except due to the loss of glorification

(tasbih). [Urdu Translation]: Neither is any animal hunted nor any tree cut down until it abandons the glorification of Allah.

2- Narrated by Abu Nu'aym in 'Al-Hilya' with a good (hasan) chain from Abu Hurairah (may Allah be pleased with him). [Urdu Translation]: Abu Nu'aym narrated it in Al-Hilya with a good chain from Abu Hurairah (may Allah be pleased with him). (T) (To be continued on the next page)

---

1 Mirqat al-Mafatih, Chapter on Excellence of Adhan, Section No. 1, Maktaba al-Habibiyya, Quetta, 2/448-449 2 Kanz al-Ummal, with reference to Abu Nu'aym from Abu Hurairah, Hadith 19191, Mu'assasat al-Risalah, Beirut, 1/445

और ख़ुद अहले सुन्नत का मज़हब मुक़र्रर हो चुका कि कायनात के तमाम ज़र्रों के लिए एक प्रकार का इल्म (ज्ञान), इद्राक (समझ), समअ (सुनना) और बसर (देखना) हासिल है। मौलवी मानवी (क़ुद्दिस सिर्रहु) ने मसनवी शरीफ़ में इस मज़मून को बहुत ख़ूबसूरती से बयान फ़रमाया है, और इस पर क़ुरान व अहादीस के सैकड़ों नुसूस (प्रमाण) नातिक़ (बोलते हुए) हैं। जिन्हें अगर मैं जमा करूँ्तो इंशा अल्लाह पाँच सौ से कम न होंगे। उन सबको बिना वजह ज़ाहिर (प्रत्यक्ष अर्थ) से फेरकर तावील (व्याख्या) करना अक़्ल और नक़्ल के क़ानून से बाहर निकलना है, बल्कि साफ़ तौर पर बिदअतियों (नवाचारियों) की बेवकूफी में शामिल होना है, ख़ुसूसन वो नुसूस जो वाज़ेह और शरीर मुफ़स्सिर (स्पष्ट रूप से व्याख्यायित) हैं।

नोट १: मिरक़ात शरह मिश्कात के'फ़ज़्लुल अज़ान' (अज़ान की फ़ज़ीलत) अध्याय में है: [अरबी पाठ]: सही यह है कि बेजान चीज़ों, पौधों और जानवरों को ज्ञान, बोध और तस्बीह (ईश्वर की महिमा) हासिल है। बग़वी ने कहा: और यही अहले सुन्नत का मज़हब है और अहादीस और आसार (परंपराएं) इस पर दलालत करते हैं, जैसा कि मुशाहदा और अनवार वाले साहिबे-असरार लोगों का मुकाशफ़ा भी इस पर गवाह है, जो प्रकाश की तरह हैं। अक़ीदे में भरोसेमंद बात यह है कि अंगों की गवाही ज़बाने-क़ाल (बोलती ज़बान) से होगी। शारेअ (धर्मदाता) से जो कुछ भी आया है, उसे उसके ज़ाहिरी अर्थों पर ही लिया जाएगा जब तक कि उसे फेरने की कोई वजह न हो, और यहाँ ऐसा कुछ नहीं है जैसा कि स्पष्ट है। (संग्रहीत) - (म)

[उर्दू अनुवाद]: सही यह है कि बेजान चीज़ों, पौधों और जानवरों को भी एक प्रकार का ज्ञान, बोध और तस्बीह का अमल हासिल है। इमाम बग़वी ने फ़रमाया कि यही अहले सुन्नत का मज़हब है जिस पर अहादीस और आसार से दलीलें मौजूद हैं। मुशाहदा और अनवार वाले साहिबे-असरार लोगों का मुकाशफ़ा भी इस पर गवाह है और अक़ीदे में मोअतमद (विश्वसनीय) बात यह है कि अंगों की गवाही ज़बाने-क़ाल से होगी। शारेअ से जो कुछ भी आया है, वह अपने ज़ाहिर (प्रत्यक्ष) पर ही माना जाएगा जब तक कि उसे ज़ाहिर से फेरने वाली कोई दलील न हो, और यहाँ ऐसा कुछ नहीं है जैसा कि स्पष्ट है। (त)

नोट २: मुझ फ़क़ीर (लेखक) ने अपने फ़तावा में एक नेक मजमूआ ज़िक्र किया है और सैकड़ों का पता दिया है, और तौफ़ीक़ अल्लाह ही की तरफ़ से है। (म)

नोट ३: उदाहरण के लिए वे अहादीस जिनमें साफ़ इरशाद हुआ कि न कोई जानवर शिकार किया जाए, न कोई पेड़ काटा जाए जब तक वह तस्बीह-ए-इलाही में ग़फ़लत (लापरवाही) न करे। सैयदे-आलम (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) फ़रमाते हैं: [अरबी पाठ]: कोई शिकार नहीं किया जाता और न ही कोई पेड़ काटा जाता है, मगर तस्बीह (महिमा गान) के छोड़ देने के कारण। [उर्दू अनुवाद]: न कोई जानवर शिकार किया जाता है और न ही कोई पेड़ काटा जाता है जब तक वह अल्लाह की तस्बीह न छोड़े।

२- इसे अबू नुऐम ने 'हिलया' में सनदे-हसन (अच्छी श्रृंखला) के साथ अबू हुरैरा (रज़ियल्लाहु अन्हु) से रिवायत किया। [उर्दू अनुवाद]: इसे अबू नुऐम ने 'हिलया' में सनदे-हसन के साथ अबू हुरैरा (रज़ियल्लाहु अन्हु) से रिवायत किया। (त) (बाक़ी अगले सफ़े पर)

---

1 मिरक़ात अल-मफ़ातीह, अध्याय: फ़ज़्लुल अज़ान, खंड १, मकतबा अल-हबीबिया क्वेटा, २/४४८-४४९ 2 कंज़ुल उम्माल, अबू नुऐम के हवाले से अबू हुरैरा से, हदीस १९१९१, मुअस्सतुल रिसाला बेरूत, १/४४५

اور خود عہ ۱ مذہب اہلسنت مقرر ہو چکا کہ تمام ذراتِ عالم کے لیے ایک نوع علم و ادراک و سمع و بصر حاصل ہے۔ مولوی معنوی قدس سرہ، نے مثنوی شریف میں اس مضمون کو خوب مشرح ادا فرمایا، اور اس پر قرآن و احادیث کے صدہا نصوص عہ ۲ ناطق۔ جنہیں جمع کروں تو انشاء اللہ پانچ سو سے کم نہ ہوں گے۔ ان سب کو بلا وجہ ظاہر سے پھیر کر تاویل کرنا تو قانونِ عقل و نقل سے خروج بلکہ صراحۃً سفاہتِ مبتدعین میں ولوج ہے خصوصاً وہ نصوص عہ ۳ جو صریح مفسر

عہ ۱: مرقاۃ شرح مشکوۃ کے باب فضل الاذان میں ہے: الصحیح ان للجمادات و النباتات و الحیوانات علماً وادراکاً وتسبیحاً، قال البغوی وھذا مذھب اھل سنت وتدل علیہ الاحادیث و الآثار یشھد لہ مکاشفۃ اھل المشاھدۃ والاسرار التی ھی کالانوار، والمعتمد فی المعتقد ان شھادۃ الاعضاء بلسان القال، وما ورد عن الشارع یحمل علی ظاھرہ مالم یصرف عنہ صارف، ولا صارف ھنا کما لایخفی 1 ملتقطاً ۱۲۔ (م)

صحیح یہ ہے کہ جمادات، نباتات اور حیوانات کو بھی ایک قسم کا علم و ادراک اور عملِ تسبیح حاصل ہے۔ امام بغوی نے فرمایا یہی اہلسنت کا مذہب ہے جس پر احادیث و آثار سے دلیلیں موجود ہیں۔ اہل مشاہدہ اور انوار جیسے اسرار والوں کا مکاشفہ بھی اس پر شاہد ہے اور عقیدہ میں معتمد یہ ہے کہ اعضاء کی گواہی زبانِ قال سے ہوگی، شارع سے جو بھی وارد ہے وہ اپنے ظاہر پر محمول ہوگا جب تک ظاہر سے پھیرنے والی کوئی دلیل نہ ہو اور یہاں ایسا کچھ نہیں جیسا کہ واضح ہے۔ (ت)

عہ ۲: فقیر نے اپنے فتاوٰی میں ایک جملہ صالحہ ذکر کیا اور صدہا کا پتا دیا وباللہ التوفیق۔ (م)

عہ ۳: مثلاً وہ حدیثیں جن میں صاف ارشاد ہوا کہ نہ کوئی جانور شکار کیا جائے، نہ کوئی پیڑ کاٹا جائے جب تک تسبیح الہی میں غفلت نہ کرے۔ سید عالم صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم فرماتے ہیں: مَا صِیْدَ صَیْدٌ وَلَا قُطِعَتْ شَجَرَۃٌ إِلَّا بِتَضْیِیعِ التَّسْبِیحِ نہ کوئی جانور شکار کیا جاتا ہے اور نہ ہی کوئی درخت کاٹا جاتا ہے جب تک تسبیح الہی نہ ترک کرے۔

2- رواہ ابو نعیم فی الحلیۃ بسند حسن عن ابی ہریرۃ رضی اللہ تعالیٰ عنہ۔ اسے ابو نعیم نے حلیہ میں بسند حسن ابوہریرہ رضی اللہ تعالیٰ عنہ سے روایت کیا۔ (ت) (باقی بر صفحہ آئندہ)

---

1 مرقاۃ المفاتیح باب فضل الاذان فصل نمبر ۱ مکتبہ الحبیبیہ کوئٹہ ۲/ ۴۴۸-۴۴۹ 2 کنز العمال بحوالہ ابی نعیم عن ابی ہریرہ حدیث ۱۹۱۹۱ مؤسسۃ الرسالۃ بیروت ۱/ ۴۴۵

Fatawa Rizvia, Volume 9

...that they leave no room for interpretation. If the setting were not unfamiliar, I would have clarified this matter a bit more. Secondly, from the aforementioned sayings, it also became apparent from the station of Prophethood that the hearing power of the people of the graves is so sharp, clear, and strong that they hear the glorification (tasbih) of plants, which most living people do not hear, without any difficulty and derive comfort from it. Then the speech of a human is even more clear and manifest. And Allah Almighty is the Guide. Quote (59 to 62): In Majma' al-Barkat from Matalib al-Mu'minin, and in Kanz al-'Ibad and Fatawa Ghara'ib etc., it is stated:

[Arabic]: Placing roses and fragrant plants on graves is good because as long as they are fresh, they glorify [Allah], and the deceased finds comfort in their glorification. 1 [Urdu Translation]: Placing flowers such as roses on graves is good because as long as they remain fresh, they will perform the glorification of Allah. The deceased will gain comfort from this glorification.

Benefit: Both books, Matalib al-Mu'minin and Jami' al-Barkat, are authoritative texts of the opponents. From these, Mawlavi Ishaq in Ma'at Masa'il and Mutakallim Qannawji etc. have sought evidence. Section Seven: They see their visitors, recognize them, and are aware of their visit. Quote (63 & 64): Mawlana Ali Qari (may Allah's mercy be upon him) in Maslak al-Mutaqassit Sharh al-Mansak al-Mutawassit, and then the learned Ibn Abidin in the marginalia of Sharh Tanwir state: (Remainder of previous page's footnote) Abu al-Shaykh narrated:

[Arabic]: No bird is caught, nor any fish, except by neglecting the glorification [of Allah]. 2 [Urdu Translation]: No bird or fish is caught except because of abandoning the glorification of Allah. (T)

Ibn Ishaq bin Rahwayh narrates from Hazrat Siddiq Akbar (may Allah be pleased with him) that a crow was brought to him whose primary wing feathers were sound and complete. Upon seeing it, he said: "I heard from the Master of the World (peace and blessings of Allah be upon him):"

[Arabic]: No game is hunted, no hornless animal is injured, and no tree is cut down except due to the paucity of glorification. 3 [Urdu Translation]: No animal is hunted, no horn is cut, nor are the roots of any tree pruned except because of a decrease in glorification.

1 Fatawa Hindiyyah, Chapter Sixteen on Visiting Graves, Noorani Kutub Khana Peshawar, 5/351. 2 Durr-e-Mansoor with reference to Abi Shaykh from Abi Darda (may Allah be pleased with him) under the verse 'And there is not a thing but glorifies His praise', Maktaba Ayatollah al-Uzma, Qom, Iran, 4/184. 3 Kanz al-Ummal with reference to Ibn Rahwayh from Abi Bakr, Hadith 1920, Mu'assasat al-Risalah, Beirut, 1/225.

फ़तावा रज़विया, खंड 9

...कि वे व्याख्या की कोई गुंजाइश नहीं छोड़ते। यदि स्थान अपरिचित न होता, तो मैं इस विषय को थोड़ा और स्पष्ट करता। दूसरे, उपरोक्त कथनों से यह भी नबुवत के मंच पर प्रकट हुआ कि कब्र वालों की सुनने की शक्ति इतनी तेज़, साफ़ और मज़बूत है कि वे वनस्पतियों की तस्बीह (अल्लाह का गुणगान), जिसे अधिकांश जीवित लोग नहीं सुनते, बिना किसी परेशानी के सुनते हैं और उससे सुकून हासिल करते हैं। फिर मनुष्य की वाणी तो और भी स्पष्ट और प्रत्यक्ष है। और अल्लाह तआला ही मार्गदर्शक है। कथन (59 से 62): 'मजमअ अल-बरकात' में 'मताल़िबुल मोमिनीन' से, और 'कन्ज़ुल इबाद' और 'फ़तावा ग़राब' आदि में है:

[अरबी]: कब्रों पर गुलाब और सुगंधित पौधे रखना अच्छा है क्योंकि जब तक वे ताज़ा रहते हैं, वे तस्बीह करते हैं और मृत व्यक्ति को उनकी तस्बीह से सुकून मिलता है। 1 [उर्दू अनुवाद]: गुलाब आदि के फूल कब्रों पर डालना अच्छा है कि जब तक ताज़ा रहेंगे, तस्बीह-ए-इलाही करेंगे। तस्बीह से मैय्यत (मृतक) को सुकून हासिल होगा।

लाभ: 'मताल़िबुल मोमिनीन' और 'जामिअ अल-बरकात' दोनों किताबें विरोधियों की प्रमाणिक पुस्तकें हैं। इनसे मौलवी इसहाक ने 'मअत मसाइल' में और मुतकल्लिम क़न्नौजी आदि ने प्रमाण लिया है। सातवां अध्याय: वे अपने ज़ायरीन (दर्शनार्थियों) को देखते हैं, पहचानते हैं और उनकी ज़ियारत (मुलाकात) से अवगत होते हैं: कथन (63 और 64): मौलाना अली क़ारी (अल्लाह की उन पर रहमत हो) 'मस्लक अल-मुतक़स्सित शरह मन्सिक मुतवस्सित' में, फिर फ़ाज़िल इब्न आबिदीन 'हाशिया शरह तनवीर' में फरमाते हैं: (पिछले पृष्ठ के फुटनोट का शेष भाग) अबू अल-शेख ने रिवायत की:

[अरबी]: कोई पक्षी या मछली नहीं पकड़ी जाती मगर तस्बीह की उपेक्षा के कारण। 2 [उर्दू अनुवाद]: कोई परिंदा और मछली नहीं पकड़ी जाती मगर तस्बीह-ए-इलाही छोड़ देने से। (त)

इब्न इसहाक बिन राहविया हज़रत सिम्मीक़ अकबर (रज़ियल्लाहु अन्हु) से रावी हैं कि उनके पास एक कौआ लाया गया जिसके पर साबुत और मुकम्मल थे। उसे देखकर फरमाया: "मैंने सैय्यदे आलम (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) से सुना:"

[अरबी]: न तो कोई शिकार पकड़ा जाता है, न कोई बिना सींग वाला जानवर घायल होता है, और न ही कोई पेड़ काटा जाता है, सिवाय तस्बीह की कमी के कारण। 3 [उर्दू अनुवाद]: न कोई जानवर शिकार हुआ, न कोई सींग कटी, न किसी पेड़ की जड़ें छाँटी गईं मगर तस्बीह की कमी करने से।

1 फ़तावा हिन्दिया, अध्याय 16, ज़ियारतुल क़ुबूर (कब्रों की ज़ियारत), नूरानी कुतुब खाना पेशावर, 5/351. 2 दुर्रे मन्सूर, अबू अल-शेख के हवाले से अबू दरदा (रज़ियल्लाहु अन्हु) से, आयत "और कोई चीज़ नहीं जो उसकी प्रशंसा के साथ तस्बीह न करती हो" के तहत, मकतबा आयतुल्लाह अल-उज़मा क़ुम ईरान, 4/184. 3 कन्ज़ुल उम्माल, इब्न राहविया के हवाले से अबू बक्र से, हदीस 1920, मुअस्सतुर रिसाला बेरूत, 1/225.

ہیں کہ تاویل کی گنجائش ہی نہیں رکھتے۔ مقام اجنبی نہ ہوتا تو میں اس مسئلے کا قدرے ایضاح کرتا۔ ثانیاً اقوال مذکورہ سے یہ بھی منصبہ نبوت پر جلوہ گر ہوا کہ اہل قبور کی قوت سامعہ اس درجہ تیز و صاف و قوی تر ہے کہ نباتات کی تسبیح جسے اکثر احیاء نہیں سنتے وہ بلا تکلف سنتے اور اس سے اُنس حاصل کرتے ہیں۔ پھر انسان کا کلام تو واضح اور اظہر ہے واللہ تعالٰی الہادی۔ قول (۵۹ تا ۶۲): مجمع البرکات میں مطالب المومنین سے ، اور کنز العباد و فتاوٰی غرائب وغیرہ میں ہے:

وضع الورد والریاحین علی القبور حسن لانہ مادام رطباً یسبح ویکون للمیت انس بتسبیحہ۔ 1 گلاب وغیرہ کے پھول قبروں پر ڈالنا خوب ہے کہ جب تک تازہ رہیں گے تسبیح الہی کریں گے۔ تسبیح سے میت کو انس حاصل ہوگا۔

فائدہ: مطالب المؤمنین و جامع البرکات دونوں کتب مستندہ مخالفین سے ہیں اس سے مولوی اسحق نے مائتہ مسائل میں اس سے متکلم قنوجی وغیرہ نے استناد کیا۔ فصل ہفتم: وہ اپنے زائرین کو دیکھتے پہچانتے اور ان کی زیارت پر مطلع ہوتے ہیں: قول (۶۳ و ۶۴): مولانا علی قاری علیہ رحمۃ الباری مسلک متقسط شرح منسک متوسط، پھر فاضل ابن عابدین حاشیہ شرح تنویر میں فرماتے ہیں: (بقیہ حاشیہ صفحہ گزشتہ) ابوالشیخ نے روایت کی:

ما اخذ طائر ولا حوت الا بتضییع التسبیح 2۔ کوئی پرندہ اور مچھلی نہیں پکڑی جاتی مگر تسبیح الہی چھوڑ دینے سے۔ (ت)

ابن اسحق بن راہویہ حضرت صدیق اکبر رضی اللہ تعالیٰ عنہ سے راوی، ان کے پاس ایک زاغ لایا گیا جس کے شہپر سالم و کامل تھے۔ دیکھ کر فرمایا میں نے سید عالم صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم سے سنا:

ماصید صید ولاعضدت عضباء ولاقطعت شجرۃ الابقلۃ التسبیح 3۔ ۲ امنہ (م) نہ کوئی جانور شکار ہوا نہ کوئی بول کٹی، نہ کسی پیڑ کی جڑیں چھانٹی گئیں مگر تسبیح کی کمی کرنے سے۔

1 فتاویٰ ہندیہ الباب السادس عشر فی زیارۃ القبور نورانی کتب خانہ پشاور ۳۵۱/۵ 2 در منشور بحوالہ ابی شیخ عن ابی الدرداء رضی اللہ عنہ وان من شیء الا یسبح بحمدہ کے تحت مکتبہ آیۃ اللہ العظمی قم ایران ۱۸۴/۴ 3 کنز العمال بحوالہ ابن راہویہ عن ابی بکر حدیث ۱۹۲۰ مؤسسۃ الرسالۃ بیروت ۲۲۵/۱

Fatawa Rizwia Volume 9

Among the etiquettes of visiting graves is what the scholars have said: that the visitor should not approach from the head side [of the grave] because that causes strain on the deceased's sight, unlike the former [approaching from the feet], as the visitor would then be directly in front of the deceased's gaze.

Saying (65): It is stated in 'Al-Madkhal': "Sufficient as an explanation for this is the saying of the Prophet (peace and blessings be upon him): 'The believer sees by the light of Allah.' End. And nothing veils the light of Allah. This is regarding the living among the believers, so how about those who are in the Abode of the Hereafter?" To prove that those in graves have knowledge and awareness of the conditions of the living, this saying of the Master of the World (peace and blessings be upon him) is enough: a Muslim sees with the light of God, and nothing can act as a veil for God's light. When this is the state of life, then what to ask of those who are in the Prophet's house, i.e., in the state of Barzakh:

Saying (66): Shaikh Muhaqqiq narrates from Imam Allama Sadruddin Qunawi in 'Jadhb al-Qulub': "Between the graves of all believers and their souls, there is a special, continuous connection through which they recognize the visitors and return their greetings. The evidence for this is that visiting graves is recommended at all times." There is a special connection between the graves and souls of all believers that always exists, through which they recognize those who come to visit and respond to their greetings. The proof for this is that visiting is recommended at all times.

Saying (67): It is stated in 'Anis al-Ghareeb': ع "And they recognize whoever comes to them as a visitor." (The deceased recognize those who come to visit. - Translator)

Footnotes: 1 Radd al-Muhtar, Marginalia of Durr al-Mukhtar, Topic of visiting graves, Mustafa al-Babi Egypt 1/665 2 Al-Madkhal, Chapter on the discourse regarding visiting the Master of Messengers etc., Dar al-Kitab al-Arabi Beirut 1/253 3 Jadhb al-Qulub, Chapters 4 and 10, Munshi Naval Kishore Lucknow, p. 206 4 Anis al-Ghareeb

फ़तावा रज़विया जिल्द नहुम

ज़ियारत-ए-कुबूर (कब्रों की ज़ियारत) के अदब में से एक बात यह है जो उलमा ने फ़रमाई है कि ज़ियारत को कब्र की पायंती (पैरों की तरफ़) से जाए न कि सिरहाने से, क्योंकि इसमें मैय्यत की निगाह को मशक्कत होगी यानी सिर उठाकर देखना पड़ेगा, पायंती से जाएगा तो उसकी नज़र के ख़ास सामने होगा।

क़ौल (65): मदख़ल में फ़रमाया: "इस अम्र के सुबूत में काफ़ी है सैय्यदे आलम सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम का यह फ़रमाना: 'मोमिन अल्लाह के नूर से देखता है।' समाप्त। और अल्लाह के नूर के लिए कोई चीज़ पर्दा नहीं होती। यह मोमिनों में से जीवित लोगों के बारे में है, तो उनका क्या कहना जो आख़िरत के घर में हैं?" इस अम्र (मामले) के सुबूत में कि अहले-कुबूर (कब्र वालों) को अहवाल-ए-अहया (जीवितों की स्थिति) पर इल्म व शुऊर (ज्ञान और चेतना) है, सैय्यदे आलम सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम का यह फ़रमाना बस है कि मुसलमान खुदा के नूर से देखता है और खुदा के नूर को कोई चीज़ पर्दा नहीं होती, जब ज़िंदगी का यह हाल है तो उनका क्या पूछना जो आँहज़रत के घर यानी बरज़ख़ में हैं:

क़ौल (66): शेख मोहक्क़िक़ जज़्बुल कुलूब में इमाम अल्लामा सदरुद्दीन कोनवी से नक़्ल फ़रमाते हैं: "तमाम मोमिनों की कब्रों और रूहों के दरमियान एक ख़ास मुस्तक़िल (स्थायी) निस्बत होती है जिससे वे ज़ियारत करने वालों को पहचानते हैं और उनके सलाम का जवाब देते हैं। इसकी दलील तमाम औक़ात में ज़ियारत का मुस्तहब (पसंदीदा) होना है।" तमाम मोमिनीन की कब्रों और रूहों के दरमियान एक ख़ास निस्बत (सम्बन्ध) होती है जो हमेशा मौजूद रहती है, इसी से ज़ियारत के लिए आने वालों को पहचानते हैं और उनके सलाम का जवाब देते हैं, इसकी दलील यह है कि ज़ियारत तमाम औक़ात (समय) में मुस्तहब है।

क़ौल (67): अनीसुल ग़रीब में फ़रमाया: ऐन "और वे उनको पहचानते हैं जो उनके पास ज़ियारत करने आता है।" (जो ज़ियारत को आता है मुर्दे उसे पहचानते हैं। - तर्जुमा)

फ़ुटनोट: 1 रद्दुल मुह्तार हाशिया दुर्रे मुख़्तार, मतलब फ़ी ज़ियारतुल कुबूर, मुस्तफ़ा अल-बाबी मिस्र 1/665 2 अल-मदख़ल, फ़स्ल फ़िल कलाम अला ज़ियारत सय्यिदिल मुर्सलीन वग़ैरह, दारुल किताबुल अरबी बैरूत 1/253 3 जज़्बुल कुलूब, बाब चहारुम दहुम, मुंशी नवल किशोर लखनऊ पृ. 206 4 अनीसुल ग़रीब

من أداب الزيارة ما قالوا من انه لا يأتى الزائر من قبل راسه لانه اتعب بصر الميت بخلاف الاول لانه يكون مقابل بصره 1 - زیارتِ قبور کے ادب سے ایک بات یہ ہے جو علماء نے فرمائی ہے کہ زیارت کو قبر کی پائنتی سے جائے نہ کہ سرہانے سے کہ اس میں میت کی نگاہ کو مشقت ہوگی یعنی سر اٹھا کر دیکھنا پڑے گا، پائنتی سے جائے گا تو اس کی نظر کے خاص سامنے ہوگا۔

قول (۶۵): مدخل میں فرمایا: کفی فی هذا بیانا قوله علیه الصلوة والسلام المؤمن ینظر بنور الله انتهی ونور الله لا یحجبه شیئ، هذا في حق الاحیاء من المؤمنین، فکیف من کان منهم في الدار الآخرة 2 - اس امر کے ثبوت میں کہ اہل قبور کو احوالِ احیاء پر علم و شعور ہے، سیدِ عالم صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کا یہ فرمانا بس ہے کہ مسلمان خدا کے نور سے دیکھتا ہے اور خدا کے نور کو کوئی چیز پردہ نہیں ہوتی، جب زندگی کا یہ حال ہے تو ان کا کیا پوچھنا جو آنحضرت کے گھر یعنی برزخ میں ہیں:

قول (۶۶): شیخ محقق جذب القلوب میں امام علامہ صدر الدین قونوی سے نقل فرماتے ہیں: در میان قبور سائر مؤمنین وارواح ایشاں نسبت خاصی است مستمر کہ بدان زائرین را می شناسند و رد سلام برایشاں می کنند بدلیل استحباب زیارت در جمیع اوقات 3 - تمام مؤمنین کی قبروں اور روحوں کے درمیان ایک خاص نسبت ہوتی ہے جو ہمیشہ موجود رہتی ہے، اسی سے زیارت کے لیے آنے والوں کو پہچانتے ہیں اور ان کے سلام کا جواب دیتے ہیں، اس کی دلیل یہ ہے کہ زیارت تمام اوقات میں مستحب ہے۔

قول (۶۷): انیس الغریب میں فرمایا: ع ویعرفون من اتاھم زائراً 4 (جو زیارت کو آتا ہے مردے اسے پہچانتے ہیں۔ت)

حواشی: 1 رد المحتار حاشیہ در مختار مطلب فی زیارۃ القبور مصطفی البابی مصر ۱/ ۶۶۵ 2 المدخل فصل فی الکلام علی زیارۃ سید المرسلین الخ دار الکتاب العربی بیروت ۱/ ۲۵۳ 3 جذب القلوب باب چہارم دہم منشی نولکشور لکھنؤ ص ۲۰۶ 4 انیس الغریب

Fatawa Razawiyya Volume 9

Quote (68): It is stated in At-Taisir: | ۱۔ الشعور باق حتی بعدالدفن حتی انه یعرف زائرہ | Consciousness remains even after burial, to the extent that it (the deceased) recognizes its visitor. 1 | | :--- | :--- |

Quote (69): It is stated in Lama'at, Ashi'at-ul-Lama'at, and Jami'-ul-Barakat: | واللفظ للاوسط فی روایات آمدہ است کہ دادہ می شود برائے میت روزِ جمعہ علم و ادراک پیشتر از آنچہ دادہ می شود در روز ہائے دیگر تا آنکہ می شناسد زائر را بیشتر از روز دیگر ۲۔ | The words are from Ashi'at-ul-Lama'at: It is mentioned in narrations that on the day of Friday, the deceased is given more knowledge and perception than what is given on other days, due to which they recognize the visitor on Friday more than on other days. 2 | | :--- | :--- |

In Sharh Safar al-Sa'adah, it is stated in a more detailed and refined manner: | خاصیت سی ام آنکہ روزِ جمعہ ارواحِ مومناں بقبور خویش نزدیک می شوند نزدیک شدنِ معنوی و تعلق و اتصال روحانی نظیر و مشابہ اتصال کہ بدن دارد و زائران را کہ نزدیکِ قبر می آیند می شناسد و خود ہمیشہ می شناسند ولیکن دریں روز شناختنِ زیادت بر شناختِ سائر ایام است از جہتِ نزدیک شدن بقبور لابد شناخت از نزدیک پیشتر و قوی تر باشد از شناخت و دور در بعض روایات آمدہ کہ ایں شناخت در اول روز بیشتر است از آخر آں ولہذا از زیارت قبور دریں وقت مستحب تر است و عادت در حرمین شریفین ہمین است ۳۔ | The thirtieth characteristic is that on the day of Friday, the souls of the believers come close to their graves. This closeness is spiritual, and there is a spiritual connection and union similar to the connection and union with the physical body. They recognize the visitors who come near the grave on this day. Although they always recognize them, the recognition on this day is greater than the recognition of other days. It is a necessary point that recognition from nearby is more and stronger than recognition from afar. And in some narrations, it has come that this recognition is even more on Friday evening compared to other times, which is why the recommendation (istihbab) for visiting graves at this time is greater, and this is also the custom in the Haramayn Sharifayn (Two Holy Sanctuaries). 3 (T) | | :--- | :--- |

1. At-Taisir Sharh Jami' as-Saghir, under 'Verily the deceased knows who carries them', Maktabat al-Imam ash-Shafi'i, Riyadh, Saudi Arabia, 1/303.
2. Ashi'at-ul-Lama'at, Chapter on Visiting Graves, Section Anwar-e-Razawiyya, Sukkur, 2/167.
3. Sharh Safar al-Sa'adah, Section on the Honor of Friday, Nooriya Razawiyya, Sukkur, p. 199.

फ़तावा-ए-रज़विया जिल्द नौवीं

कथन (68): 'तयसीर' में है: | الشعور باق حتی بعدالدفن حتی انه یعرف زائرہ ١۔ | चेतना दफन के बाद भी बनी रहती है यहाँ तक कि वह अपने ज़ायर (दर्शनार्थी) को पहचानता है। 1 | | :--- | :--- |

कथन (69): 'लमात', 'अशिअतुल लमात' और 'जामेउल बरकात' में है: | واللفظ للاوسط فی روزِ جمعہ علم و ادراک پیشتر از آنچہ دادہ ت روایات آمدہ است کہ دادہ می شود برائے می می شود در روز ہائے دیگر تا آنکہ می شناسد زائر را بیشتر از روز دیگر ٢۔ | शब्द 'अशिअतुल लमात' के हैं: रिवायतों में आया है कि मय्यत को जुमे के दिन दूसरे दिनों की तुलना में अधिक ज्ञान और बोध दिया जाता है, जिसकी वजह से वह जुमे के दिन ज़ियारत करने वाले को दूसरे दिनों की तुलना में अधिक पहचानता है। 2 | | :--- | :--- |

शर्ह सफ़र अल-सआदा में अधिक विस्तार और स्पष्टता के साथ फ़रमाया कि: | خاصیت سی ام آنکہ روزِ جمعہ ارواحِ مومناں بقبور خویش نزدیک می شوند نزدیک شدنِ معنوی و تعلق و اتصال روحانی نظیر و مشابہِ اتصال کہ بدن دارد و زائران را کہ نزدیکِ قبر می آیند می شناسد و خود ہمیشہ می شناسند ولیکن دریں روز شناختنِ زیادت بر شناختِ سائر ایام است از جہتِ نزدیک شدن بقبور لابد شناخت از نزدیک پیشتر و قوی تر باشد از شناخت و دور در بعض روایات آمدہ کہ ایں شناخت در اول روز بیشتر است از آخر آں ولہذا از زیارت قبور دریں وقت مستحب تر است و عادت در حرمین شریفین ہمین است ٣۔ | तीसवीं विशेषता यह है कि जुमे के दिन मोमिनों की रूहें अपनी कब्रों के निकट आ जाती हैं। यह निकटता आध्यात्मिक (मअनवी) होती है और रूहानी लगाव व मेल होता है जैसा कि शरीर के साथ निकटता और मेल होता है। इस दिन जो ज़ायर कब्र के पास आते हैं, वे उन्हें पहचानती हैं। हालांकि यह पहचान हमेशा होती है, लेकिन इस दिन की पहचान अन्य दिनों की पहचान से बढ़ी हुई होती है। यह ज़रूरी बात है कि निकट की पहचान दूर की पहचान की तुलना में अधिक और मज़बूत होती है। और कुछ रिवायतों में आया है कि यह पहचान जुमे की शाम को और भी अधिक होती है, इसीलिए इस

समय ज़ियारत-ए-कुबूर का मुस्तहब (पसंदीदा) होना अधिक है, और हरमैन शरीफैन का दस्तूर भी यही है। 3 (त) | | :--- | :--- |

1. अत-तयसीर शर्ह जामे अस-सगीर, 'बेशक मय्यत उसे पहचानती है जो उसे उठाता है' के अंतर्गत, मकतबत अल-इमाम अश-शफ़ई, रियाद, सऊदी अरब, 1/303।
2. अशिअतुल लमात, ज़ियारत-ए-कुबूर का अध्याय, अनवर-ए-रज़विया खंड, सुक्कुर, 2/167।
3. शर्ह सफ़र अल-सआदा, जुमे के सम्मान के बयान में अनुभाग, नूरिया रज़विया, सुक्कुर, पृ. 199।

पृष्ठ 764/948

فتاویٰ رضویہ جلد نہم

قول (۶۸): تیسیر میں ہے: | الشعور باق حتی بعدالدفن حتی انہ یعرف زائرہ ۱۔ | شعور باقی ہے یہاں تک کہ بعدِ دفن بھی یہاں تک کہ اپنے زائر کو پہچانتا ہے۔ ۱ | | :--- | :--- |

قول (۶۹): لمعات واشعۃ اللمعات وجامع البرکات میں ہے: | واللفظ للاوسط فی روایات آمدہ است کہ دادہ می شود برائے میت روزِ جمعہ علم و ادراک پیشتر از آنچہ دادہ می شود در روز ہائے دیگر تا آنکہ می شناسد زائر را بیشتر از روز دیگر ۲۔ | الفاظ اشعۃ اللمعات کے ہیں: روایات میں آیا ہے کہ میت کو جمعہ کے دن دوسرے دنوں سے زیادہ علم و ادراک دیا جاتا ہے جس کی وجہ سے وہ روزِ جمعہ زیارت کرنے والے کو دوسرے دن سے زیادہ پہچانتا ہے ۲ | | :--- | :--- |

شرح سفر السعادۃ میں مفصل و منقح تر فرمایا کہ: | خاصیت سی ام آنکہ روزِ جمعہ ارواحِ مومناں بقبور خویش نزدیک می شوند نزدیک شدنِ معنوی و تعلق و اتصال روحانی نظیر و مشابہِ اتصال کہ بدن دارد و زائران را کہ نزدیکِ قبر می آیند می شناسد و خود ہمیشہ می شناسند ولیکن دریں روز شناختنِ زیادت بر شناختِ سائر ایام است از جہتِ نزدیک شدن بقبور لابد شناخت از نزدیک پیشتر و قوی تر باشد از شناخت و دور در بعض روایات آمدہ کہ ایں شناخت در اول روز بیشتر است از آخر آں ولہذا از زیارت قبور دریں وقت مستحب تر است و عادت در حرمین شریفین ہمین است ۳۔ | تیسویں خاصیت یہ ہے کہ جمعہ کے دن مومنین کی روحیں اپنی قبروں سے نزدیک ہو جاتی ہیں، یہ نزدیکی معنوی ہوتی ہے اور روحانی تعلق و اتصال ہوتا ہے جیسے بدن سے قرب و اتصال ہوتا ہے۔ اس دن جو زائرین قبر کے پاس آتے ہیں انہیں پہچانتی ہیں، اور یہ پہچاننا ہمیشہ ہوتا ہے مگر اس دن کی شناخت دیگر ایام کی شناخت سے بڑھی ہوئی ہوتی ہے، ضروری بات ہے کہ نزدیک سے جو شناخت ہے زائد ہوتی ہے وہ دور والی شناخت سے زائد قوی ہوتی ہے ___ اور بعض

روایات میں آیا ہے کہ یہ شناخت جمعہ کی شام کو بہ نسبت اور زیادہ ہوتی ہے اسی لیے وقتِ زیارتِ قبور کا استحباب زیادہ ہے، اور حرمین شریفین کا دستور بھی یہی ہے۔ ۳ (ت) | | :---: | ---: |

۱ التیسیر شرح جامع صغیر تحت ان المیت یعرف من یحملہ مکتبۃ الامام الشافعی الریاض السعو دیہ ۱/ ۳۰۳ ۲ اشعۃ اللمعات باب زیارۃ القبور فصل انور یہ رضویہ سکھر ۲/ ۱۶۷ ۳ شرح سفر السعادۃ فصل در بیان تعظیم جمعہ نوریہ رضویہ سکھر ص ۱۹۹

Fatawa Rizvia, Volume 9

I say: There is no perfume after the bride (i.e., this is the ultimate truth). (T)

Quote (71A): Sheikh and Sheikh al-Islam said: and the wording is by the Sheikh in Jami' al-Barakat (The words of the Sheikh in Jami' al-Barakat are: T):

Persian Text	Urdu Translation
It has been proven through research from verses and hadiths that the soul remains and it has knowledge and awareness of visitors and their states, and this is an established matter in religion[1].	It has been proven through research from verses and hadiths that the soul remains and it has knowledge and awareness of visitors and their states. This is an established matter in religion. (T)

Quote (72): In Tayseer, under the hadith 'Whoever visited his father's grave' (One who visited his father's grave. T) it is quoted:

Arabic Text	Urdu Translation
This is a clear text that the deceased perceives whoever visits him, otherwise, calling him a visitor would not be correct. When the visited person is unaware of the visit of the visitor, it is incorrect to say he visited him; this is the rational understanding among all nations[2].	This hadith is a clear text on the fact that the dead person is aware of the visitor, otherwise it would not be correct to call him a visitor. For one who is visited, if they are not even aware of the visit, it cannot be said that he was visited; the whole world understands this meaning from this word. (T)

Quote (73 & 74): Ashi'at al-Lam'at, at the end of the Chapter of Funerals, commentary on Mishkat by Imam Ibn Hajar Makki, under the hadith of the Mother of the Believers Siddiqa (may Allah be pleased with her), which appeared at the beginning of the second type of the second objective, it is quoted:

Persian Text	Urdu Translation
In this hadith, there is clear evidence for the life of the deceased and their knowledge, in that it is obligatory to respect the deceased during their visit, especially the righteous ones, and to	In this hadith, there is clear evidence that the deceased attains life and knowledge, and at the time of visiting, their respect is obligatory, especially the respect for the righteous and the observance of manners

Persian Text	Urdu Translation
observe manners according to their ranks just as in their worldly life[3].	according to their ranks is necessary just like in worldly life. (T)

[1] Jami' al-Barakat [2] Tayseer Sharh Jami' Saghir, under 'Whoever visited his father's grave', Maktabat al-Imam al-Shafi'i, Riyadh, Saudi Arabia, 2/420 [3] Ashi'at al-Lam'at, Chapter on Visiting Graves, Section 3, Tej Kumar, Lucknow, 1/470

फतावा रिज़विया, जिल्द 9

अक़ौल: दुल्हन के बाद कोई इत्र नहीं (अर्थात यह अंतिम सत्य है)। (त)

कथन (71A): शेख और शेख-उल-इस्लाम ने फरमाया: और शब्द जामी अल-बरकात में शेख के हैं (जामी अल-बरकात में शेख के शब्द हैं। त):

फारसी पाठ

आयतों और हदीसों से शोध के माध्यम से यह साबित हो चुका है कि रूह बाकी रहती है और उसे ज़ायरीन (दर्शनार्थियों) और उनके हाल का ज्ञान और बोध होता है और यह दीन में एक तयशुदा मामला है[1]।

उर्दू अनुवाद

आयतों और हदीसों से शोध के माध्यम से यह साबित हो चुका है कि रूह बाकी रहती है और उसे ज़ायरीन और उनके हाल का ज्ञान और बोध होता है। यह दीन में एक तयशुदा मामला है। (त)

कथन (72): तयसीर में हदीस 'मन ज़ारा क़बरा अबीहि' (जिसने अपने पिता की कब्र की ज़ियारत की। त) के तहत नक़्ल फरमाया:

अरबी पाठ

यह इस बात पर स्पष्ट प्रमाण है कि मृतक उसे महसूस करता है जो उसकी ज़ियारत करता है, अन्यथा उसे ज़ाय़िर कहना सही न होता। जब ज़ियारत किए जाने वाले को ज़ाय़िर की ज़ियारत की खबर न हो, तो यह कहना सही नहीं है कि उसने उसकी ज़ियारत की; पूरी दुनिया की सभी कौमों में यही तार्किक समझ है[2]।

उर्दू अनुवाद

यह हदीस इस बात पर स्पष्ट प्रमाण है कि मुर्दा ज़ाय़िर पर सूचित होता है वरना उसे ज़ाय़िर कहना सही न होता कि जिसकी मुलाक़ात को जाइए जब उसे ख़बर ही न हो तो यह नहीं कह सकते कि उससे मुलाक़ात की, पूरी दुनिया इस शब्द से यही अर्थ समझती है। (त)

कथन (73 और 74): अशिअतुल लम्आत, जनाज़ा के अध्याय के अंत में इमाम इब्न हजर मक्की की मिशकात की व्याख्या से, उम्मुल मोमिनीन सिद्दीक़ा (रज़ियल्लाहु तआला अन्हा) की हदीस के तहत, जो दूसरे मक़सद की दूसरी किस्म की शुरुआत में गुज़री, नक़्ल फरमाया:

फारसी पाठ	उर्दू अनुवाद
इस हदीस में मृतक के जीवन और उनके ज्ञान पर स्पष्ट प्रमाण है, कि ज़ियारत के समय मृतक का सम्मान करना अनिवार्य है, विशेष रूप से नेक लोगों का, और उनके पदों के अनुसार शिष्टाचार का पालन करना वैसा ही है जैसा उनके जीवन काल में था[3]।	इस हदीस में इस पर स्पष्ट प्रमाण मौजूद है कि मृतक को जीवन और ज्ञान प्राप्त होता है और ज़ियारत के समय उसका सम्मान करना अनिवार्य है, विशेष रूप से नेक लोगों का सम्मान और उनके पद के अनुसार शिष्टाचार का पालन करना सांसारिक जीवन की तरह आवश्यक है। (त)

[1] जामी अल-बरकात [2] तयसीर शरह जामी सगीर, 'मन ज़ारा क़बरा अबीहि' के तहत, मकतबतुल इमाम अल-शाफई, रियाद, सऊदी अरब, 2/420 [3] अशिअतुल लम्आत, कब्रों की ज़ियारत का अध्याय, खंड 3, तेज कुमार, लखनऊ, 1/470

فتاوٰی رضویہ ، جلد نہم

اقول : ولا عطر بعد العروس (میں کہتا ہوں، دلہن کے بعد عطر نہیں ہے۔ ت) قول (۷۱اے): شیخ و شیخ الاسلام نے فرمایا: واللفظ للشیخ فی جامع البرکات (جامع البرکات میں شیخ کے الفاظ ہیں۔ ت):

فارسی متن	اردو ترجمہ
تحقیق ثابت شدہ است بآیات واحادیث کہ روح باقی است و او را علم و شعور بزائران و احوال ایشاں ثابت است و ایں امر یست مقرر در دین[1]۔	آیات و احادیث سے بہ تحقیق ثابت ہوچکا ہے کہ روح باقی رہتی ہے اور اسے زائرین اور ان کے احوال کا علم و ادراک ہوتا ہے۔ یہ دین میں ایک طے شدہ امر ہے۔ (ت)

قول (۷۲): تیسیر میں زیر حدیث من زار قبر ابویہ (جس نے اپنے باپ کی قبر کی زیارت کی۔ ت) نقل فرمایا:

عربی متن	اردو ترجمہ
ھذا نص فی ان المیت یشعر من یزورہ والا لما صح تسمیتہ زائرا واذا لم یعلم المزور بزیارۃ من زارہ لم یصح ان یقال زارہ ، ھذا ھو المعقول عند جمیع الامم[2]۔	یہ حدیث نص ہے اس بات میں کہ مُردہ زائر پر مطلع ہوتا ہے ورنہ اسے زائر کہنا صحیح نہ ہوتا کہ جس کی ملاقات کو جائیے جب اسے خبر ہی نہ ہو تو یہ نہیں کہہ سکتے کہ اس سے ملاقات کی، تمام عالم اس لفظ سے یہی معنٰی سمجھتا ہے۔ (ت)

قول (۷۳ و ۷۴): اشعۃ اللمعات آخر باب الجنائز شرح مشکوٰۃ امام ابن حجر مکی سے زیر حدیث ام المومنین صدیقہ رضی اللہ تعالٰی عنہا کہ آغاز نوع دوم مقصد دوم میں گزری نقل فرمایا:

فارسی متن	اردو ترجمہ
دریں حدیث دلیلے واضح ست بر حیات میت و علم وے آنکہ واجب است احترام میت نزد زیارت وے خصوصاً صالحاں و مراعات ادب بر قدر مراتب ایشاں چنانچہ در حالت حیات ایشاں[3]۔	اس حدیث میں اس پر کھلی ہوئی دلیل موجود ہے کہ وفات یافتہ کو حیات و علم حاصل ہوتا ہے اور وقت زیارت اس کا احترام واجب ہے خصوصاً صالحین کا احترام اور ان کے مراتب کے لحاظ سے رعایت ادب حیات دنیوی کی طرح ضروری ہے۔ (ت)

[1] جامع البرکات [2] تیسیر شرح جامع صغیر تحت من زار قبر ابویہ مکتبۃ الامام الشافعی الریاض السعودیہ ۲/۴۲۰ [3] اشعۃ اللمعات باب زیارۃ القبور فصل ۳ تیج کمار لکھنؤ ۱/۴۷۰

Fatawa Rizwia Volume 9

Then, mentioning it in the book Al-Jihad Lam'aat, he wrote: "And what is this except the affirmation of knowledge and perception" (i.e., if this isn't to prove knowledge and perception for the deceased, then what is it? -T). Eighth Chapter: They [the deceased] talk to their visitors and respond to their greetings and conversation. Quote (75 to 78): Imam Yafi'i, then Imam Suyuti narrating from Imam Muhibb Tabari, commentator of Tanbeeh, that he was with Imam Ismail Hadhrami in the Zubaydah cemetery. He said: "O Muhibb-ud-Din, do you believe in the speech of the dead?" I said, "Yes." He said, "Indeed, the inhabitant of this grave is saying to me: 'I am from the contents of Paradise.'" He [Imam Ismail] said: "O Muhibb-ud-Din! Do you hold the belief that the dead speak?" I said, "Yes." He said, "The one in this grave is telling me that I am among those filling Paradise." Caution: The purpose of mentioning this narration is not just that this deceased person spoke with Imam Ismail, as such narrations are in hundreds and we have said before that we will not count individual events. Rather, the point of reasoning is that both those Imams believed in the dead speaking to the living, and both Imams cited it as authoritative. Appendix: Imam Yafi'i and Imam Suyuti narrated from the same Ismail (may his glorious secret be sanctified) that he passed by some cemeteries in Yemen; he wept intensely and became deeply sorrowful, then he laughed loudly and became very happy. Someone asked the reason, he said: "I saw the inhabitants of these graves in the punishment of the grave, so I cried and entreated the Divine Presence. The command came: 'We have accepted your intercession for them.' Upon this, this female grave-dweller said to me: 'And I am with them, O Jurist Ismail! I am so-and-so the singer.' 'Master Ismail! I am also among them, I am such-and-such singer.' I said: 'And you are with them.' At this, I laughed. O Allah, include us among those whom You have blessed with mercy for the sake of Your friends. Ameen. (O Allah! Include us also among those whom You have honored with mercy through the mediation of Your saints, O God, accept this! -T)" Quote (79): It is mentioned in Zahr-ur-Ruba, commentary on Sunan an-Nasa'i: "The soul has another state; it is in the Highest Companion (Ar-Rafiq al-A'la) while being connected to the body such that when a Muslim offers salutation..." The state of the pure soul is distinct, even though it is in the Highest Assembly, it is still so connected to the body that when salutation [is offered]...

Note: Caution: A quote regarding the response to the greeting was mentioned in the seventh chapter from Allama Qunawi. 121 Minhu (M).

1. Lam'aat Kitab al-Jihad
2. Sharh as-Sudur, Chapter on Visiting Graves etc., Khilafat Academy, Mingora Swat, p. 86
3. Sharh as-Sudur, Chapter on Visiting Graves etc., Khilafat Academy, Mingora Swat, p. 86

फ़तावा रिज़विया जिल्द नहम (खंड 9)

फिर किताब अल-जिहाद लमआत में इसका उल्लेख करते हुए लिखा है: "व हल हाज़ा इल्ला अल-इसबात अल-इल्म वल-इदराक" (अर्थात, यदि यह मृतक के लिए ज्ञान और बोध सिद्ध करना नहीं है, तो फिर क्या है? -त)। आठवाँ अध्याय: वे [मृतक] अपने आगंतुकों से बात करते हैं और उनके सलाम व बातचीत का उत्तर देते हैं। क़ौल (75 से 78): इमाम याफ़ई फिर इमाम सुयूती, इमाम मुहिब्ब तबरी, शारेह तनबीह से नकल करते हैं कि वह इमाम इस्माइल हज़रमी के साथ ज़ुबैदा कब्रिस्तान में थे। उन्होंने कहा: "ऐ मुहिब्ब-उद-दीन! क्या आप मृतकों के कलाम (बातचीत) पर विश्वास रखते हैं?" मैंने कहा, "हाँ।" उन्होंने कहा, "निश्चय ही इस क़ब्र वाला मुझसे कह रहा है: 'मैं जन्नत की भरती में से हूँ'।" उन्होंने [इमाम इस्माइल] कहा: "ऐ मुहिब्ब-उद-दीन! क्या आप यह अकीदा (विश्वास) रखते हैं कि मुर्दे कलाम करते हैं?" मैंने कहा, "हाँ।" उन्होंने कहा, "यहाँ इस क़ब्र वाला मुझसे कह रहा है कि मैं जन्नत के निवासियों में से हूँ।" चेतावनी: इस रिवायत (वर्णन) को लाने का उद्देश्य केवल यह नहीं है कि इस मृतक ने इमाम इस्माइल से बात की, क्योंकि ऐसी रिवायतें तो सैकड़ों हैं और हम पहले कह चुके हैं कि हम व्यक्तिगत घटनाओं को नहीं गिनेंगे। बल्कि तर्क का बिंदु यह है कि वे दोनों इमाम जीवित लोगों से मृतकों के कलाम करने पर विश्वास रखते थे, और दोनों इमामों ने इसे प्रमाण के रूप में उद्धृत किया है। तदयील (परिशिष्ट): इमाम याफ़ई और इमाम सुयूती उन्हीं इस्माइल (क़ुद्दिस सिर्रहु अल-जलील) से वर्णन करते हैं कि उनका यमन के कुछ कब्रिस्तानों से गुजर हुआ; वे फूट-फूट कर रोए और बहुत दुखी हुए, फिर वे खिलखिला कर हँसे और बहुत खुश हुए। किसी ने कारण पूछा, तो उन्होंने कहा: "मैंने इन क़ब्र वालों को क़ब्र के अज़ाब (दंड) में देखा, तो मैं रोया और अल्लाह की दरगाह में गिड़गिड़ा कर विनती की। आदेश हुआ: 'हमने उनके हक़ में तुम्हारी शफ़ाअत (सिफारिश) स्वीकार कर ली।' इस पर इस क़ब्र वाली ने मुझसे कहा: 'और मैं भी उनके साथ हूँ, ऐ फक़ीह इस्माइल! मैं फलां गायिका हूँ।' 'मौलाना इस्माइल! मैं भी उन्हीं में से हूँ, मैं फलां गायिका हूँ।' मैंने कहा: 'और तुम भी उनके साथ हो।' इस पर मुझे हँसी आ गई। ऐ अल्लाह, हमें भी उन लोगों में शामिल कर जिन पर तूने अपने औलिया (संतों) के सदके में रहमत फरमाई है, आमीन। (ऐ अल्लाह! हमें भी उनमें शामिल कर जिन्हें तूने अपने औलिया के तुफैल रहमत से नवाज़ा है, इलाही स्वीकार फरमा! -त)" क़ौल (79): ज़हर-उर-रुबा शरह सुनन नसई में नक़ल फ़रमाया: "रूह की एक और अवस्था है; वह रफ़ीक़-ए-आला (उच्चतम साथी) में होती है जबकि शरीर से इस तरह जुड़ी होती है

कि जब कोई मुसलमान सलाम करता है..." महज़ रूह की शान अलग है, बावजूद इसके कि वह 'मला-ए-आला' में होती है, फिर भी शरीर से इस तरह जुड़ी है कि जब सलाम...

नोट: सावधानी: सलाम के जवाब के बारे में एक क़ौल सातवें अध्याय में अल्लामा क़ुनवी से गुज़रा है। 121 मिन्हु (म)।

1. लमआत किताब अल-जिहाद
2. शरह अस-सुदूर, बाब फ़ी ज़ियारत अल-क़ुबूर आदि, खिलाफ़त एकेडमी, मिंगोरा स्वात, पृ. 86
3. शरह अस-सुदूर, बाब फ़ी ज़ियारत अल-क़ुबूर आदि, खिलाफ़त एकेडमी, मिंगोरा स्वात, पृ. 86

پھر کتاب الجہاد لمعات میں اسے ذکر کرکے لکھا ہے : و ھل ھذا الا الاثبات العلم والادراك (یہ اگر میت کے لیے علم و ادراک ثابت کرنا نہیں تو اور کیا ہے۔ت) فصل ہشتم : وہ اپنے زائروں سے کلام عہ کرتے اور ان کے سلام و کلام کا جواب دیتے ہیں۔ قول (۷۵ تا ۷۸) : امام یافعی پھر امام سیوطی امام محب طبری شارح تنبیہ سے ناقل ہیں امام اسمعیل حضرمی کے ساتھ مقبرہ زبیدہ میں تھے فقال یا محب الدین اتؤمن بکلام الموتی قلت نعم فقال ان صاحب ھذا القبر یقول لی انا من حشو الجنة انھوں نے فرمایا : اے محب الدین ! آپ اعتقاد رکھتے ہیں کہ مردے کلام کرتے ہیں؟ میں نے کہا ، ہاں ، کہاں اس قبر والا مجھ سے کہہ رہا ہے کہ میں جنت کی بھرتی سے ہوں۔ تنبیہ : اس روایت کے لانے سے یہ غرض نہیں کہ اس میت نے امام اسمعیل سے کلام کیا کہ ایسی روایات تو صدہا ہیں اور ہم پہلے کہہ آئے کہ وقائع جزئیہ شمار نہ کریں گے بلکہ محل استدلال یہ ہے کہ وہ دونوں امام احیاء سے اموات کے کلام کرنے پر اعتقاد رکھتے تھے ، اور ان دونوں اماموں نے اسے استناداً نقل فرمایا۔ تذییل : امام یافعی امام سیوطی انہی اسمعیل قدس سرہ الجلیل سے حاکی ہوئے بعض مقابر یمن پر ان کا گزر ہوا بہ شدت روئے اور سخت مغموم ہوئے ، پھر کھلکھلا کر ہنسے اور نہایت شاد ہوئے ، کسی نے سبب پوچھا ، فرمایا : میں نے اس قبر والوں کو عذاب قبر میں دیکھا ، رویا اور جناب الہی سے گڑ گڑا کر عرض کی ، حکم ہوا : فقد شفعتنا فی ھم ہم نے تیری شفاعت ان کے حق میں قبول فرمائی ، اس پر یہ قبر والی مجھ سے بولی : وانا معھم یا فقیہ اسمعیل انا فلانة المغنیة مولانا اسمعیل ! میں بھی انہیں میں سے ہوں میں فلاں گائن ہوں ، میں نے کہا : وانت معھم تو بھی ان کے ساتھ ہے۔ اس پر مجھے ہنسی آئی اللھم اجعلنا ممن رحمتہ باولیا ئك امین (اے اللہ ہمیں بھی ان میں شامل فرما جن کو اپنے اولیاء کے طفیل رحمت سے نوازا ، الہی

قبول فرما ، ت) قول (۷۹) : زہر الربی شرح سنن نسائی میں نقل فرمایا : ان للروح شأنا اخر فتکون فی الرفیق الاعلی وھی متصلة بالبدن بحیث اذا سلم المسلم محض روح کی شان جدا ہے با آنکہ ملاء اعلیٰ میں ہوتی ہے پھر بھی بدن سے ایسی متصل ہے کہ جب سلام

عہ : تنبیہ : جواب سلام کا ایک قول فصل ہفتم میں علامہ قونوی سے گزرا ۱۲۱منہ (م)

۱ لمعات کتاب الجہاد ۲ شرح الصدور باب فی زیارة القبور الخ خلافت اکیڈمی منگو ہر سوات ص ۸۶ ۳ شرح الصدور باب فی زیارة القبور الخ خلافت اکیڈمی منگو ہر سوات ص ۸۶

Fatawa Razawiyya, Volume 9

...responds to the greeting (Salam) while being in its place there. Until he said: The error here arises from comparing the unseen (ghayb) to the seen (shahid). They believe the soul to be of the same nature as the physical bodies we are familiar with —that if it occupies one place, it cannot be in another at the same time. However, this is a pure mistake.[1]

Statement (80): Allama Zarqani states in Sharh al-Mawahib: The response to the greeting (Salam) by the Prophets (peace be upon them) is real, involving both the soul and the entire body. For others besides Prophets and Martyrs, it occurs through a connection of the soul with the body—a connection through which the ability to respond is achieved, even though their souls are not within their bodies. According to the most correct view, Friday and other days are equal in this regard. However, there is no denying that the connection on Friday and the two days flanking it (Thursday and Saturday) is stronger than on other days. [Summarized]

Statements (81 & 82): It is narrated in Sharh al-Sudur and the Tahawi commentary on Maraqi: Hadiths and traditions (athar) indicate that whenever a visitor comes, the deceased becomes aware of them, hears their greeting, feels comfort with them, and responds to them. This is general for everyone, including martyrs and others, and there is no specific time limit for this.

Note: The Great Imam mentioned in 'Anis al-Gharib': 'And they greet in response to the Muslim * on any day,' as stated by Ibn al-Qayyim. The deceased return the greeting on any day, as explicitly stated by Ibn al-Qayyim. 12 (m)

---

1. Zahr al-Ruba, Commentary on al-Nasa'i, Book of Funerals, Souls of the Believers, Nur Muhammad Factory for Book Trade, Karachi, 1/292.
2. Al-Zarqani, Sharh al-Mawahib, Tenth Objective on the Completion of Blessings, Al-Amira Edition, Egypt, 8/352.

फ़तावा रज़विया, जिल्द 9

...अपने स्थान से सलाम का जवाब देती है। यहाँ तक कि उन्होंने कहा: यहाँ गलती इस कारण होती है कि लोग अनदेखी चीज़ (ग़ैब) की तुलना देखी हुई चीज़ (शाहिद) से करते हैं। वे समझते हैं कि रूह (आत्मा) भी उन्हीं जिस्मों की तरह है जिन्हें हम जानते हैं—कि अगर वह एक जगह है, तो उसी समय दूसरी जगह नहीं हो सकती। जबकि यह सरासर ग़लत है।[1]

कथन (८०): अल्लामा ज़रक़ानी 'शरह मवाहिब' में नक़्ल फ़रमाते हैं: नबियों (अलैहिमुस्सलाम) का सलाम का जवाब देना हक़ीक़ी (वास्तविक) है, जो रूह और पूरे बदन दोनों से होता है। नबियों और शहीदों के अलावा मोमिनों के मामले में रूह का बदन से एक ऐसा जुड़ाव होता है जिसके ज़रिए वे जवाब देने की शक्ति पाते हैं, हालाँकि उनकी रूहें उनके बदन में नहीं होतीं। सहीह मज़हब के अनुसार जुमा और अन्य दिन बराबर हैं। हाँ, इस बात से इनकार नहीं कि जुमा और उसके आगे-पीछे के दो दिनों (गुरुवार और शनिवार) में यह जुड़ाव अन्य दिनों की तुलना में अधिक मज़बूत होता है। [संक्षिप्त]

कथन (८१ और ८२): 'शरह अल-सुदूर' और 'मराक़ी' पर तहावी के हाशिये (टीका) में नक़्ल किया गया है: अहादीस और आसार (परंपराएँ) इस बात का प्रमाण हैं कि जब कोई ज़ियारत करने वाला (मिलने वाला) आता है, तो मृतक को उसका पता चल जाता है, वह उसका सलाम सुनता है, उससे अपनापन महसूस करता है और उसे जवाब देता है। यह बात शहीदों और अन्य सभी के लिए सामान्य है और इसके लिए कोई समय तय नहीं है।

नोट: महान इमाम ने 'अनीस अल-ग़रीब' में फ़रमाया: 'और वे मुसलमान के जवाब में सलाम करते हैं * चाहे कोई भी दिन हो,' जैसा कि इब्न अल-क़य्यिम ने कहा। मृतक किसी भी दिन सलाम का जवाब देते हैं, जैसा कि इब्न अल-क़य्यिम ने स्पष्ट किया है। १२ (म)

---

1. ज़हर अल-रुबा, हाशियह नसाई, किताबुल जनाइज़, अरवाहुल मोमिनीन, नूर मुहम्मद कारख़ाना तिजारत कुतुब, कराची, १/२९२।
2. अल-ज़रक़ानी, शरह अल-मवाहिब, अल-मक़्सद अल-आशिर फ़ी इतमाम अल-नेमत, अल-तबा अल-आमिरा, मिस्र, ८/३५२।

علی صاحبه رد علیه السلام وهی فی مکانها هناك الی ان قال انما یأتی الغلط ههنا من قیاس الغائب علی الشاهد فیعتقدون ان الروح من جنس ما یعهد من الاجسام التی اذا شغلت مکاناً لم یکن ان تکون في غیره وهذا غلط محض[1]۔ کرنے والا سلام کرے جواب دیتی ہے۔ لوگوں کو دھوکا میں یوں ہوتا ہے کہ بے دیکھے چیز کو محسوسات پر قیاس کرکے روح کا حال جسم کا سا سمجھتے ہیں کہ جب ایک مکان میں ہو اسی وقت دوسرے میں نہیں ہوسکتی حالانکہ یہ محض غلط ہے۔

قول (۸۰): علامہ زرقانی شرح مواہب میں نقل فرماتے ہیں: رد السلام علی المسلم من الانبیاء حقیقی بالروح والجسد بجملته، ومن غیر الانبیاء والشهداء باتصال الروح بالجسد اتصالا یحصل بواسطته التمکن من الرد مع کون ارواحهم لیست فی اجسادهم وسواء الجمعة وغیرها علی الاصح، لکن لامانع ان الاتصال في الجمعة والیومین المکتنفین به اقوی من الاتصال في غیرها من الایام اھ ملخصاً۔ انبیاء علیہم الصلوٰۃ والسلام کا جواب سلام سے مشرف فرمانا تو حقیقی ہے کہ روح وبدن دونوں سے ہے اور انبیاء وشہداء کے سوا اور مومنین میں یوں ہے۔ کہ ان کی روحیں اگرچہ بدن میں نہیں تاہم بدن سے ایسا اتصال رکھتی ہیں جس کے باعث جواب سلام پر انھیں قدرت ہے اور مذہب اصح یہ ہے کہ جمعہ وغیرہ سب دن برابر ہیں، ہاں اس کا انکار نہیں کہ پنجشنبہ و جمعہ وشنبہ میں اور دونوں کی نسبت اتصال اقوی ہے۔ اھ ملخصاً

قول (۸۱ و ۸۲): شرح الصدور وطحاوی حاشیہ مراقی میں نقل فرمایا: الاحادیث والاثار تدل علی ان الزائر متی جاء علم به المزور وسمع سلام وانس به ورد علیه وهذا عام في حتی الشهداء وغیرهم وانه لا توقیت احادیث و آثار دلیل ہیں کہ جب زائر آتا ہے مُردے کو اس پر علم ہوتا ہے کہ اس کا سلام

سُنتا ہے اور اس سے انس کرتا ہے اور اس کو جواب دیتا ہے اور یہ بات شہداء و غیر شہداء سب میں عام ہے نہ اس میں کچھ وقت کی خصوصیت عہ

عہ: انھیں امام جلیل نے انیس الغریب میں فرمایا: وسلموا ردا علی المسلم * فی ای یوم قاله ابن القیم، مُردے سلام کے جواب میں سلام کرتے ہیں کوئی دن ہو جیسا کہ ابن قیم نے تصریح کی ۱۲ (م)

---

1 زہر الربی حاشیہ علی النسائی کتاب الجنائز ارواح المؤمنین نور محمد کارخانہ تجارت کتب کراچی ۱/ ۲۹۲ 2 الزرقانی شرح المواہب المقصد العاشر فی اتمام نعمۃ الطبعۃ العامرۃ مصر ۸/ ۳۵۲

Fatawa Razawiyya Volume 9

...in that ... it may be at some times and not at others.

Quote (83): In Al-Binayah, the commentary on Al-Hidayah, regarding the Hadith of instruction (Talqin) to the dead, it is stated: "According to the people of the Sunnah, this is on its reality because Allah Almighty makes them answer according to what has come in the narrations." According to the Ahl-e-Sunnat, this is true to its nature because the deceased responds to the instruction, as mentioned in the Hadith.

Section Nine: The miracles of the saints (Awliya) and their influence continue as usual even after their passing.

Quote (84): Imam Nawawi said regarding the types of visitation: "One type of visitation is for the purpose of obtaining blessings; this is a Sunnah for the shrines of the saints, and for them, there are countless influences and blessings in the Barzakh (intermediate realm). You will soon become aware of this, if Allah wills."

Quote (85 & 86): It is stated in Ashi'at al-Lam'at Sharh al-Mishkat: (Persian text) Qazi Baydawi explained in the commentary of the noble verse "By those [angels] who extract with violence..." that this describes the qualities of pure souls at the time of separation from the body; they are drawn from the bodies and move swiftly towards the celestial realm (Alam al-Malakut) and travel there, then they excel towards the sacred enclosures and, due to their honor and power, they become among the 'Mudabbirat-e-Amr', meaning those who manage the system of the world. (T)

Quote (87): Allama Nabulsi (may his secret be sanctified) said in Al-Hadiqa al-Nadiyya: "The miracles of the saints remain after their death as well, and whoever claims otherwise is an ignorant bigot." The miracles of the saints persist even after their passing; whoever claims the contrary is an ignorant and stubborn person.

Note (Ah): Sometimes visitation is for the purpose of benefiting from the people of the graves, just as narrations have been recorded regarding visiting the graves of the righteous. [12 Jazb al-Qulub] (T)

Footnotes: 1. Hashiyat al-Tahtawi 'ala Maraqi al-Falah, Section on Visiting Graves, Dar al-Kutub al-Ilmiyyah, Beirut, p. 620. 2. Al-Binayah Sharh al-Hidayah, Chapter on Funerals, Maktaba Imdadiya, Makkah al-Mukarramah, 11/1047. 3. Ashi'at al-Lam'at, Chapter on the Ruling of the Night Journey, Maktaba Nooriya Razawiyya, Sukkur, 3/401.

फ़तावा रज़विया जिल्द 9

...इस बारे में... कि कुछ समय हो और कुछ समय न हो।

कौल (83): अल-बिनाया, हिदाया की टीका में, मृतकों को तलकीन (निर्देश) देने की हदीस के बारे में कहा गया है: "अहल-ए-सुन्नत के अनुसार, यह अपनी वास्तविकता पर है क्योंकि अल्लाह तआला उन्हें वैसा ही जवाब देने की शक्ति देता है जैसा कि रिवायतों में आया है।" अहल-ए-सुन्नत के नज़दीक यह अपनी हकीकत पर है क्योंकि मुर्दा तलकीन का जवाब देता है जैसा कि हदीस में आया है।

नवाँ अध्याय: औलिया (संतों) की करामातें और उनके विसाल (देहावसान) के बाद भी उनके प्रभाव पहले की तरह ही बने रहते हैं।

कौल (84): इमाम नववी ने ज़ियारत के प्रकारों के बारे में फ़रमाया: "ज़ियारत का एक प्रकार बरकत हासिल करने के उद्देश्य से होता है, यह संतों के मज़ार के लिए सुन्नत है और उनके लिए बरज़ख (लोक-परलोक के बीच का स्थान) में अनगिनत प्रभाव और बरकतें हैं। इंशाअल्लाह जल्द ही आप इससे अवगत होंगे।"

कौल (85 और 86): अशिअतुल लम्आत शरह मिश्कात में फ़रमाया गया है: (फ़ारसी पाठ) काज़ी बैज़ावी ने आयत-ए-करीमा 'वन्नाज़िआति ग़र्क़ा' की व्याख्या में बताया है कि यहाँ शरीर से अलग होने के समय पवित्र आत्माओं के गुणों का वर्णन है कि वे शरीरों से निकाली जाती हैं और आलम-ए-मलकूत (स्वर्गलोक) की ओर तेज़ी से बढ़ती हैं और वहाँ सैर करती हैं, फिर पवित्र स्थानों की ओर अग्रसर होती हैं और अपने सम्मान और शक्ति के कारण 'मुदब्बरात-ए-अम्र' यानी विश्व की व्यवस्था का प्रबंधन करने वालों में शामिल हो जाती हैं। (त)

कौल (87): अल्लामा नाबुलसी (ईश्वर उनकी आत्मा को पवित्र रखे) ने अल-हद्दीका अल-नदिय्या में फ़रमाया: "औलिया की करामातें उनकी मृत्यु के बाद भी बनी रहती हैं, और जो कोई इसके विपरीत दावा करता है वह एक अज्ञानी कट्टरपंथी है।" औलिया की करामातें इंतकाल के बाद भी बाकी हैं, जो इसके खिलाफ दावा करे वह जाहिल और हठधर्मी है।

नोट (अह): कभी क़ब्र वालों से फ़ायदा उठाने के लिए ज़ियारत की जाती है, जैसा कि नेक लोगों की क़ब्रों की ज़ियारत के बारे में हदीसें आई हैं। [12 जज़्ब अल-क़ुलूब] (त)

पादलेख: 1. हाशिया अल-तहतवी अला मराक़ी अल-फ़लाह, कब्रों की ज़ियारत का अध्याय, दार अल-कुतुब अल-इल्मिया, बेरूत, पृष्ठ 620। 2. अल-बिनाया शरह अल-हिदाया, जनाज़े का अध्याय, मकतबा इमदादिया, मक्का अल-मुकर्रमा, 11/1047। 3. अशिअतुल लम्आत, इसरा के हुक्म का अध्याय, मकतबा नूरिया रज़विया, सुक्कुर, 3/401।

पृष्ठ 948 का 768

فتاوٰی رضویہ جلد نہم

في ذلك 1۔ کہ بعض وقت ہو اور بعض وقت نہیں۔

قول (۸۳): بنایہ حاشیہ ہدایہ میں درباره حدیث تلقینِ مولیٰ فرمایا: عند اهل السنة هذا علی الحقیقة لان الله تعالیٰ یجیب علی ما جاءت به الآثار 2۔ اہل سنت کے نزدیک یہ اپنی حقیقت پر ہے اس لیے کہ مرده تلقین کا جواب دیتا ہے جیسا کہ حدیث میں آیا۔

فصل نہم: اولیاء کی کرامتیں اولیاء کے تصرف بعد وصال بھی بدستور ہیں۔

قول (۸۴): امام نووی نے اقسامِ زیارت میں فرمایا: ایک زیارت بغرضِ حصولِ برکت ہوتی ہے، یہ مزاراتِ اولیاء کے لیے سنت ہے اور ان کے لیے برزخ میں تصرفات و برکات بے شمار ہیں وستقف علی ذلک ان شاء الله تعالیٰ (ان شاء الله تعالیٰ عنقریب اس سے آگاہی ہوگی۔ ت)

قول (۸۵ و ۸۶): اشعۃ اللمعات شرح مشکوٰۃ میں فرمایا: تفسیر کرده است بیضاوی آیہ کریمہ والنازعات غرقاً الآیہ را بصفتِ نفوسِ فاضلہ درحال مفارقت از بدن کہ کشیده می شوند از ابدان و نشاط میکنند بسوئے عالم ملکوت و سیاحت میکنند در ان پس سبقت میکنند بخطائر قدس پس می گردند بشرفِ وقوت از مدبرات 3۔ قاضی بیضاوی نے آیہ کریمہ والنازعات غرقاً الخ کی تفسیر میں بتایا ہے کہ یہاں بدن سے جدائی کے وقت ارواحِ طیبہ کی جو صفات ہوتی ہے ان کا بیان ہے کہ وہ بدنوں سے نکالی جاتی ہیں اور عالمِ ملکوت کی طرف تیزی سے جاتی اور وہاں سیر کرتی ہیں پھر مقاماتِ مقدس کی طرف سبقت کرتی ہیں اور قوت و شرف کے باعث مدبرات امر یعنی نظامِ عالم کی تدبیر کرنیوالوں سے ہو جاتی ہیں۔ (ت)

قول (۸۷): علامہ نابلسی قدس سرہ نے حدیقہ ندیہ میں فرمایا: کرامات الاولیاء باقیة بعد موتھم ایضاً ومن زعم خلاف ذلک فھو جاھل متعصب۔ اولیاء کی کرامتیں بعد انتقال بھی باقی ہیں جو اس کے خلاف زعم کرے وہ جاہل ہٹ دھرم ہے،

عہ: زیارت گاہی از جہتِ انتفاع بہ اہل قبور بود چنانکہ در زیارت قبور صالحین آثار آمدہ ۱۲ جذب القلوب۔ کبھی زیارت اہل قبور سے فائدہ اٹھانے کے لیے ہوتی ہے جیسا کہ قبور صالحین کی زیارت کے بارے میں احادیث آئی ہیں۔ (ت)

1 حاشیة الطحطاوی علی مراقی الفلاح فصل فی زیارة القبور دار الکتب العلمیة بیروت ص ۶۲۰ 2 البنایة شرح الھدایة باب الجنائز مکتبہ امدادیہ مکّہ المکرمہ ۱۱ / ۱۰۴۷ 3 اشعة اللمعات باب حکم الاسراء مکتبہ نوریہ رضویہ سکھر ۳ / ۴۰۱

Fatawa Razawiya, Volume 9

We have written a specific treatise regarding the proof of miracles after the death of the foremost, summarized. (T)

Quote (88, 89): The Sheikh of our Sheikhs, the leader of the teachers in the trustworthy land, Maulana Jamal bin Abdullah bin Umar Makki (may Allah the Almighty have mercy on him) says in his Fatawa:

Allama Ghunaymi, who is the seal of the researchers of the Hanafi school, said: "Since the source of miracles is the power of Allah the Almighty, as has been established, there is no difference between their life and death. (Until he said) The words of the scholars of Islam have collectively agreed that the miracles of our Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) are not limited, because among them are what Allah the Almighty performed and continues to perform through His saints as miracles, both in life and after death until the Day of Judgment."

Allama Ghunaymi (may Allah the Almighty have mercy on him), who is the seal of Hanafi researchers, said: When it is proven that the source of miracles is from the Divine Power, then there is no difference in the life and death of saints. All scholars of Islam say in one voice that the miracles of our Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) are not limited, for those miracles of his are all those karamats (miracles) which He manifested through living and deceased saints and will continue to manifest from them until the Day of Judgment.

Quote (90): In this, it is narrated from Imam Sheikh al-Islam Shihab Ramli:

"The miracles of the Prophets and the wonders (karamats) of the saints are not cut off by their death."

The miracles of Prophets and the wonders of saints do not cease with their passing.

Quote (91, 92): Imam Ibn al-Hajj in 'Al-Madkhal', quoting from the noble book 'Safinat al-Najah li-Ahl al-Iltija fi Karamat al-Sheikh Abi al-Najah' by Imam Abu Abdullah bin Nu'man:

"It has been realized for those with insight and reflection that visiting the graves of the righteous is beloved for the purpose of seeking blessings along with reflection, for the blessings of the righteous continue after their death as they were in their lives."

According to those with insight and reflection, it has been verified that visiting the graves of the righteous for the purpose of obtaining blessings and admonition is beloved, because their blessings are ongoing after their passing just as they were during their lives.

---

1. Al-Hadiqat al-Nadiyya, Awwaluhum Adam Abul Bashar, Nuriya Razawiya, Faisalabad 1/290
2. Fatawa Jamal bin Umar Makki
3. Fatawa Jamal bin Umar Makki
4. Al-Madkhal, Chapter on Visiting Graves, Dar al-Kutub al-Arabi, Beirut 1/249

फ़तावा रज़विया, जिल्द नौवीं

हमने विशेष रूप से प्रथम की मृत्यु के बाद करामात (चमत्कार) की सिद्धि के बारे में एक रिसाला (पुस्तिका) लिखा है, संक्षेप में। (त)

कौल (88, 89): हमारे शैखों के शेख, विश्वसनीय शहर के शिक्षकों के प्रधान मौलाना जमाल बिन अब्दुल्लाह बिन उमर मक्की (अल्लाह उन पर दया करे) अपने फतवों में फरमाते हैं:

अल्लामा ग़ुनीमी, जो हनफी शोधकर्ताओं के अंतिम हैं, ने कहा: "जब यह साबित हो गया कि करामातों का स्रोत अल्लाह तआला की कुदरत (शक्ति) है, जैसा कि तय हो चुका है, तो उनके जीवन और मृत्यु में कोई अंतर नहीं है। (वहाँ तक जहाँ उन्होंने कहा) इस्लाम के विद्वानों के शब्द इस पर एकमत हैं कि हमारे नबी (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) के मोजिज़े (चमत्कार) सीमित नहीं हैं, क्योंकि उनमें से वे हैं जिन्हें अल्लाह तआला ने जारी किया और अपने औलिया के माध्यम से करामातों के रूप में जीवन और मृत्यु में कयामत के दिन तक जारी रखेगा।"

अल्लामा ग़ुनीमी (अल्लाह उन पर दया करे), जो हनफी शोधकर्ताओं के अंतिम हैं, ने फरमाया: जब यह साबित हो चुका कि करामातों का स्रोत ईश्वरीय शक्ति की ओर से है, तो औलिया के जीवन और मृत्यु में कोई अंतर नहीं है। तमाम इस्लाम के विद्वान एक स्वर में फरमाते हैं कि हमारे नबी (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) के मोजिज़े सीमित नहीं हैं क्योंकि हुज़ूर ही के मोजिज़ों में से वे सब करामातें हैं जो अल्लाह ने जीवित और मृत औलिया से जारी कीं और कयामत तक उनसे जारी फरमाएगा।

कौल (90): इसमें इमाम शैखुल इस्लाम शिहाब रमली से उल्लेखित हुआ:

"नबियों के मोजिज़े और औलिया की करामातें उनकी मृत्यु से समाप्त नहीं होतीं।"

नबियों के मोजिज़े और औलिया की करामातें उनके देहांत से समाप्त नहीं होतीं।

कौल (91, 92): इमाम इब्न अल-हज्ज 'मदखल' में, इमाम अबू अब्दुल्लाह बिन नोमान की श्रेष्ठ पुस्तक 'सफीनतुन नजात' से उद्धृत करते हैं:

"अंतर्दृष्टि और चिंतन करने वालों के लिए यह सिद्ध हो चुका है कि नेक लोगों की कब्रों की ज़ियारत (दर्शन) बरकत और नसीहत प्राप्त करने के उद्देश्य से प्रिय है, क्योंकि नेक लोगों की बरकतें उनकी मृत्यु के बाद भी उसी तरह जारी रहती हैं जैसे उनके जीवन में थीं।"

अंतर्दृष्टि और चिंतन वालों के पास यह शोध हो चुका है कि नेक लोगों की कब्रें बरकत और नसीहत हासिल करने के उद्देश्य से प्रिय हैं क्योंकि उनकी बरकतें जैसे जीवन में जारी थीं, मृत्यु के बाद भी जारी हैं।

---

1. अल-हद्दीक़त अल-नदिय्या, अव्वलहुम आदम अबुल बशर, नूरिया रज़विया, फैसलाबाद 1/290
2. फतावा जमाल बिन उमर मक्की
3. फतावा जमाल बिन उमर मक्की
4. अल-मदखल, कब्रों की ज़ियारत का अध्याय, दार अल-कुतुब अल-अरबी, बेरुत 1/249

فتاوٰی رضویہ، جلد نہم

ولنا رسالة في خصوص اثبات الكرامة بعد موت الاولی اه ملخصاً- ہم نے ایک رسالہ خاص اسی امر کے ثبوت میں لکھا ہے اه ملخصاً (ت)

قول (۸۸،۸۹) : شیخ مشائخنا رئیس المدرسین بالبلد الامین مولانا جمال بن عبداللہ بن عمر مکی رحمۃ اللہ تعالٰی علیہ اپنے فتاوٰی میں فرماتے ہیں:

قال العلامة الغنيمي وهو خاتمة محقق الحنفية اذا كان مرجع الكرامات الى قدرة الله تعالى كما تقرر فلا فرق بين حياتهم ومماتهم (الى ان قال) قد اتفقت كلمات علماء الاسلام قاطبة على ان معجزات نبينا صلى الله تعالى عليه وسلم لا تحصر لان منها ما اجره الله تعالى ويجريه لا ولیائه من الكرامات احياء واموا تا الى يوم القيمة[2]-

علامہ غنیمی رحمۃ اللہ تعالٰی نے کہ محققین حنفیہ کے خاتم ہیں فرمایا جب ثابت ہو چکا کہ مرجع کرامات قدرت الٰہی کی طرف سے، تو اولیاء کی حیات و وفات میں کچھ فرق نہیں، تمام علماء اسلام ایک زبان فرماتے ہیں کہ ہمارے نبی صلی اللہ علیہ وسلم کے معجزے محدود نہیں کہ حضور ہی کے معجزات سے ہیں وہ سب کرامتیں جو اولیائے زندہ و مردہ سے جاری کیں اور قیامت تک ان سے جاری فرمائے گا۔

قول (۹۰) : اس میں امام شیخ الاسلام شہاب رملی سے منقول ہوا:

معجزات الانبياء و كرامات الاولياء لا تنقطع بموتهم[3]-

انبیاء کے معجزے اور اولیاء کی کرامتیں ان کے انتقال سے منقطع نہیں ہوتیں۔

قول (۹۲،۹۱) : امام ابن الحاج مدخل میں، امام ابو عبداللہ بن نعمان کی کتاب مستطاب سفینۃ النجاۃ لاہل الالتجاء فی کرامات الشیخ ابی النجاۃ سے ناقل:

تحقق لذوي البصائر والاعتبار ان زيارة قبور الصالحين محبوبة لاجل التبرك مع الاعتبار فأن بركة الصالحين جارية بعد مماتهم كما كانت في حياتهم[4]-

اہل بصیرت و اعتبار کے نزدیک محقق ہو چکا ہے کہ قبور صالحین بغرض تحصیل برکت و عبرت محبوب ہے کہ ان کی برکتیں جیسے زندگی میں جاری تھیں بعد وصال بھی جاری ہیں۔

---

1 الحديقة الندية اولہم آدم ابوالبشر نوریہ رضویہ فیصل آباد ۱/۲۹۰ 2 فتاوی جمال بن عمر مکی 3 فتاوی جمال بن عمر مکی 4 المدخل فصل فی زیارۃ القبور دارالکتاب العربی بیروت ۱/۲۴۹

Fatawa Razawiyya, Volume 9

Quote (93): It is stated in Jami' al-Barakat: (Persian Text): The saints possess the power of miracles and dispositive influence over the universe, and this power is granted specifically to their souls. Since their souls remain after death, this power also continues to exist. (Urdu Translation): Saints have the power of miracles and dispositive actions in the universe, and this power is granted only to their souls. So, when the souls remain after death as well, this power also remains. (T)

Quote (94): In Kashf al-Ghita, it is stated: (Persian Text): The souls of the perfected ones, who during their lifetime performed miracles, dispositive actions, and provided aid due to their proximity and high status with the Lord of Honor, continue to have such powers after death because they remain in that same proximity. Their dispositive actions are as they were during their physical connection, or even greater than that. (Urdu Translation): During their lives, the souls of the perfected ones used to manifest miracles, dispositive actions, and help the needy due to their elevated proximity to the Lord of Honor. After death, since those noble souls remain with the same proximity and honor, their dispositive actions continue just as they were when they had a worldly connection with the body, or even more so. (T)

Quote (95, 96): In the Commentary of Mishkat, it is said: (Persian Text): One of the great masters [1] said: I have seen four individuals among the masters who exercise dispositive power in their graves just as they did during their lives, or even more: Sheikh Ma'ruf and Abdul Qadir Jilani (may Allah be pleased with them both), and two others [2] from among the saints. (Urdu Translation): A great elder says: I have seen four individuals among the masters who, even while staying in their graves, exercise dispositive power just as they did during their worldly life, or even more so. (1) Sheikh Ma'ruf Karkhi.

Note 1: Meaning my master Ali al-Qurashi (may his secret be sanctified), as narrated from him by Imam Nur ad-Din Abu al-Hasan Ali in 'Bahjat al-Asrar' with his chain of transmission. 12 Minhu (M). Note 2: Meaning Sheikh 'Aqeel al-Manjabi al-Bassi and Sheikh Hayat ibn Qays al-Harrani (may Allah have mercy on them both), as mentioned in 'Bahjat al-Asrar'. 12 Minhu (M).

Footnotes: 1. Jami' al-Barakat. 2. Kashf al-Ghita, Chapter 10: Visiting Graves, Ahmadi Press, Delhi, p. 80.

फ़तावा रज़विया, जिल्द 9

क़ौल (93): जामे-उल-बरकात में इरशाद फ़रमाया: (फ़ारसी पाठ): औलिया को कायनात में करामात और तसर्रुफ़ात हासिल हैं और यह उनकी रूहों को ही मिलते हैं, क्योंकि रूहें मौत के बाद भी बाकी रहती हैं, इसलिए यह कुव्वत भी बाकी रहती है। (उर्दू अनुवाद): औलिया को कायनात में करामात और तसर्रुफ़ात (अध्यात्मिक नियंत्रण) की कुव्वत (शक्ति) हासिल है और यह कुव्वत उनकी रूहों को ही मिलती है, तो जब रूहें वफ़ात के बाद भी बाकी रहती हैं, तो यह कुव्वत भी बाकी रहती है। (त)

क़ौल (94): कश्फ़-उल-ग़िता में है: (फ़ारसी पाठ): कामिल रूहें जो अपनी ज़िंदगी में रब्ब-उल-इज़्ज़त की निकटता के कारण करामात और सहायता करती थीं, वफ़ात के बाद भी वैसी ही निकटता में होने के कारण तसर्रुफ़ात रखती हैं, जैसे वे जिस्मानी ताल्लुक के दौरान रखती थीं या उससे भी ज़्यादा। (उर्दू अनुवाद): कामिलों की रूहें उनकी ज़िन्दगी में रब्ब-उल-इज़्ज़त से क़ुर्ब-ए-मर्तबत (निकटता) के सबब करामात और तसर्रुफ़ात और हाजत-मन्दों की इमदाद फ़रमाया करती थीं। वफ़ात के बाद जब वो रूहें शरीफ़ा उसी क़ुर्ब और एज़ाज़ के साथ बाकी हैं, तो अब भी उनके तसर्रुफ़ात वैसे ही होते हैं जैसे जिस्म से दुनियावी ताल्लुक के वक़्त थे या उससे भी ज़्यादा। (त)

क़ौल (95, 96): शरह मिश्कात में फ़रमाया: (फ़ारसी पाठ): मशाइख़-ए-इज़ाम में से एक [1] ने कहा है: मैंने मशाइख़ में से चार हज़रात को देखा कि वे अपनी क़ब्रों में वैसे ही तसर्रुफ़ करते हैं जैसे अपनी ज़िंदगी में करते थे या उससे भी ज़्यादा: शैख़ मारूफ़ और अब्दुल क़ादिर जिलानी (रज़िअल्लाहु अन्हुमा) और औलिया में से दो अन्य [2]। (उर्दू अनुवाद): एक अज़ीम बुज़ुर्ग फ़रमाते हैं: मैंने मशाइख़ में से चार हज़रात को देखा कि अपनी क़ब्रों में रह कर भी वैसे ही तसर्रुफ़ फ़रमाते हैं जैसे हयात-ए-दुनिया के वक़्त फ़रमाते थे या उससे भी ज़्यादा। (1) शैख़ मारूफ़ कर्ख़ी।

नोट १: यानी सैयदी अली कुरैशी (अल्लाह उनके भेद को पवित्र करे), जैसा कि बहजत-उल-असरार में उनसे नूर-उद-दीन अबुल हसन अली ने अपनी सनद के साथ रिवायत की है। १२ मिन्हु (म)। नोट २: यानी शैख़ अक़ील मुन्जबी बसी और शैख़ हयात इब्न क़ैस हरानी (अल्लाह उन दोनों पर रहम फ़रमाए), जैसा कि बहजत-उल-असरार में है। १२ मिन्हु (म)।

पाद-टिप्पणियाँ: 1. जामे-उल-बरकात 2. कश्फ़-उल-ग़िता, अध्याय 10: ज़ियारत-उल-क़ुबूर, मतबा अहमदी दिल्ली, पृष्ठ 80

पृष्ठ 770/948

فتاوٰی رضویہ، جلد نہم

قول (۹۳): جامع البرکات میں ارشاد فرمایا: اولیاء را کرامات و تصرفات دراکوان حاصل است وآن نیست مگر ارواح ایشاں راچون ارواح باقی است بعد از ممات نیز باشد۔ اولیاء کو کائنات میں کرامات و تصرفات کی قوت حاصل ہے اور یہ قوت ان کی روحوں کو ہی ملتی ہے تو روحیں جب بعد وفات بھی باقی رہتی ہیں تو یہ قوت بھی باقی رہتی ہے۔ (ت)

قول (۹۴): کشف الغطاء میں ہے: ارواح کمل کہ در حین حیات ایشاں بہ سبب قرب مکانت و منزلت از رب العزت کرامات و تصرفات وامداد داشتند بعد از ممات چوں بہماں قرب باقیند نیز تصرفات دارند چنانچہ در حین تعلق بجسد داشتند یا بیشتر ازاں۔ کاملین کی روحیں ان کی زندگی میں رب العزت سے قرب مرتبت کے باعث کرامات و تصرفات اور حاجتمندوں کی امداد فرمایا کرتی تھیں بعد وفات جب وہ ارواح شریفہ اسی قرب و اعزاز کے ساتھ باقی ہیں تو اب بھی ان کے تصرفات ویسے ہی ہوتے ہیں جیسے جسم سے دنیاوی تعلق کے تھے یا اس سے بھی زیادہ۔ (ت)

قول (۹۵،۹۶): شرح مشکوٰۃ میں فرمایا: یکے از مشائخ عظام ع۱ــہ گفتہ است دیدم چہار کس را از مشائخ تصرف می کنند در قبور خود مانند تصرفہائے شاں در حیات خود یا بیشتر شیخ معروف و عبد القادر جیلانی رضی اللہ تعالٰی عنہما و دو کس ع۲ــہ دیگر را از اولیاء ایک عظیم بزرگ فرماتے ہیں میں نے مشائخ میں سے چار حضرات کو دیکھا کہ اپنی قبروں میں رہ کر بھی ویسے ہی تصرف فرماتے ہیں جیسے حیاتِ دنیا کے وقت فرماتے تھے یا اس سے بھی زیادہ (۱) شیخ معروف کرخی

ع۱: یعنی سیدی علی قرشی قدس سرہ العزیز کما روی عنہ الامام نور الدین ابوالحسن علی فی بھجۃ الاسرار بسندہ ۱۲منہ (م) یعنی سیدی علی قرشی قدس سرہ العزیز ، جیسا کہ بہجۃ الاسرار میں ان سے نور الدین ابوالحسن علی نے اپنی سند کے ساتھ روایت کی ہے ۱۲منہ (م) ع۲: یعنی شیخ عقیل بسہی و حضرت شیخ حیاۃ ابن قیس الحرانی قدس اللہ تعالیٰ اسرار ہما کما فی البھجۃ ۱۲منہ (م) یعنی شیخ عقیل منجبی بسی اور شیخ حیات ابن قیس حرانی رحمہما اللہ تعالیٰ ، جیسا کہ بہجۃ الاسرار میں ہے ۱۲ منہ (م)

۱ جامع البرکات ۲ کشف الغطاء فصل دہم زیارت القبور مطبع احمدی دہلی ص ۸۰

Fatawa Ridawiyya Volume 9

(Arabic): What is enumerated is not intended to be exhaustive of what he himself has seen and found. (Urdu): (2) He counted Sayyiduna Abdul Qadir Jilani (may Allah be pleased with them both) and two other saints (Sheikh Aqeel Manjabi Basi and Sheikh Hayat ibn Qais Harrani, may Allah have mercy on them). Their intention was not to limit the count, but rather to state what he himself saw and observed. (T)

Tenth Section: Praise be to Allah, even in the Barzakh (intermediate realm) their grace continues, and the same glory of assistance and friendship remains for the servants. Quote (97): The great Imam Abdul Wahhab Sha'rani (may his secret be sanctified), in 'Al-Mizan al-Shari'a al-Kubra', states:

Arabic: All the Mujtahid Imams intercede for their followers and watch over them in their hardships in this world, in the Barzakh, and on the Day of Judgment until they cross the Sirat (the bridge). Urdu: All the Mujtahid Imams intercede for their followers and keep an eye on them in the hardships of the world, Barzakh, and the Resurrection, until they cross the bridge.

The same great Imam said in the same beautiful book:

Arabic: We have mentioned in the book 'Al-Ajwiba 'an A'immat al-Fuqaha wal-Sufiyya' that all the Imams of jurisprudence and Sufis intercede for their followers and observe each of them at the departure of their soul, during the questioning by Munkar and Nakir, at the resurrection, gathering, accounting, the balance, and the bridge. They are never heedless of them in any station. When our teacher, Shaykh al-Islam Shaykh Nasir al-Din al-Laqqani al-Maliki, passed away, some righteous people saw him in a dream and asked him, "What did Allah do with you?" He replied, "When the two angels sat me down in the grave to question me, Imam Malik came and said to them: 'Does a person like this need to be questioned about his faith in Allah and His Messenger? Move away from him.' So they moved away from me." If the Sufi masters observe their followers and disciples... Urdu: We have mentioned in the book 'Al-Ajwiba 'an al-Fuqaha wal-Sufiyya' that all the Imams of jurisprudence and Sufis intercede for their respective followers. When their follower's soul departs, when Munkar and Nakir come to question him, when his resurrection occurs, when the records of deeds are opened, when the account is taken, when the deeds are weighed, and when he walks on the Sirat—in short, they guard him in every situation and are never heedless of him at any place. When our teacher Shaykh al-Islam Imam Nasir al-Din laqqani Maliki (may Allah the Almighty have mercy on him) passed away,

some righteous people saw him in a dream and asked, "What did Allah the Almighty do with you?" He said, "When Munkar and Nakir sat me down for questioning, Imam Malik arrived and said to them: 'Does such a person also need to be questioned about God and His Messenger?'"

1. Ash'at al-Lam'at, Chapter on Visiting Graves, Tej Kumar Lucknow 1/517.
2. Al-Mizan al-Kubra, Introduction of the book, Mustafa al-Babi Egypt 1/9.

फ़तावा रज़विया जिल्द 9

(अरबी): जो गिना गया है उसका उद्देश्य केवल उतना ही नहीं है जितना उसने स्वयं देखा और पाया है। (उर्दू): (2) उन्होंने सैयदुना अब्दुल क़ादिर जिलानी (रज़िअल्लाहु तआला अन्हुमा) और दो अन्य औलिया (शेख अक़ील मन्जबी बसी और शेख हयात इब्न कैस हरानी रहमतुल्लाह अलैहिम) को गिना। उनका उद्देश्य गिनती को सीमित करना नहीं था, बल्कि उन्होंने जो स्वयं देखा और देखा, उसे बयान किया। (त)

दसवाँ अनुभाग: अल्हम्दुलिल्लाह, बर्ज़ख (मृत्यु और पुनरुत्थान के बीच की स्थिति) में भी उनकी कृपा जारी रहती है और सेवकों के साथ मदद और दोस्ती की वही महिमा बनी रहती है। कथन (97): महान इमाम अब्दुल वहाब शरानी (क़ुद्दिसा सिर्रुहुर्रब्बानी) 'अल-मिज़ान अल-शरिया अल-कुबरा' में फरमाते हैं:

अरबी: सभी मुजतहिद इमाम अपने अनुयायियों के लिए सिफारिश करते हैं और दुनिया, बर्ज़ख और कयामत की कठिनाइयों में उनकी देखरेख करते हैं जब तक कि वे सिरात (पुल) पार न कर लें। उर्दू: सभी मुजतहिद इमाम अपने अनुयायियों के लिए सिफारिश करते हैं और दुनिया, बर्ज़ख और कयामत की हर मुश्किल में उन पर नज़र रखते हैं, यहाँ तक कि वे सिरात से पार हो जाएँ।

उसी महान इमाम ने उसी सुंदर पुस्तक में कहा:

अरबी: हमने 'अल-अजविबा अनुल फ़ुक़हा वल सूफ़ीया' पुस्तक में उल्लेख किया है कि सभी फ़िक़्ह के इमाम और सूफी अपने अनुयायियों की सिफारिश करते हैं और उनमें से प्रत्येक की रूह निकलते समय, मुनकर और नकीर के सवाल के समय, पुनरुत्थान, हिसाब, तराजू और सिरात के समय देखरेख करते हैं। वे किसी भी स्थान पर उनसे गाफिल नहीं होते। जब हमारे उस्ताद शैखुल इस्लाम शेख नासिरुद्दीन लक़ानी मालकी का निधन हुआ, तो कुछ नेक लोगों ने उन्हें सपने में देखा और पूछा, "अल्लाह ने आपके साथ क्या किया?" उन्होंने कहा, "जब दो फरिश्तों ने मुझे कब्र में सवाल के लिए बिठाया, तो इमाम मालिक आए और उनसे कहा: 'क्या ऐसा व्यक्ति भी अल्लाह और उसके रसूल पर अपने ईमान के बारे में सवाल किए जाने का मोहताज है? उससे दूर हट जाओ।' तो वे मुझसे दूर हो गए।" यदि सूफी बुजुर्ग अपने अनुयायियों और शिष्यों की देखरेख करते हैं... उर्दू: हमने 'अल-अजविबा अनुल फ़ुक़हा वल सूफ़ीया' पुस्तक में उल्लेख किया है कि सभी फ़ुक़हा और सूफ़ी इमाम अपने-अपने अनुयायियों की सिफारिश करते हैं। जब उनके मुक़ल्लिद की रूह निकलती है, जब

मुनकर नकीर उससे सवाल करने आते हैं, जब उसका हश्र होता है, जब आमालनामा खुलता है, जब हिसाब लिया जाता है, जब कर्म तौले जाते हैं, जब वह सिरात पर चलता है—संक्षेप में, हर स्थिति में उसकी रक्षा करते हैं और किसी भी स्थान पर उससे बेखबर नहीं होते। जब हमारे उस्ताद शैखुल इस्लाम इमाम नासिरुद्दीन लक़ानी मालकी (रहमतुल्लाह अलैहि) का निधन हुआ, तो कुछ नेक लोगों ने उन्हें सपने में देखा और पूछा, "अल्लाह तआला ने आपके साथ क्या किया?" उन्होंने कहा, "जब मुनकर और नकीर ने मुझे सवाल के लिए बिठाया, तो इमाम मालिक तशरीफ़ लाए और उनसे कहा: 'क्या ऐसा व्यक्ति भी इस बात का मोहताज है कि उससे खुदा और रसूल के बारे में पूछा जाए?'"

1. अशुअतुल लमआत, कब्रों की जियारत का अध्याय, तेज कुमार लखनऊ 1/517.
2. अल-मिज़ान अल-कुबरा, किताब की प्रस्तावना, मुस्तफ़ा अल-बाबी मिस्र 1/9.

فتاوی رضویہ جلد نہم

شمردہ و مقصود حصر نیست آنچہ خود دیدہ و یافتہ است 1۔ (۲) سیدنا عبدالقادر جیلانی رضی اللہ تعالٰی عنہما، اور دو اولیاء اور کو شمار کیا (شیخ عقیل منجی بمی اور شیخ حیاۃ ابن قیس حرانی رحمہما اللہ تعالٰی) ان کا مقصد حصر نہیں بلکہ خود جو دیکھا اور مشاہدہ فرمایا وہ بیان کیا۔ ت)

فصل دہم: الحمد للہ برزخ میں بھی ان کا فیض جاری اور غلاموں کے ساتھ وہی شان امداد و یاری ہے۔ قول (۹۷): امام اجل عبدالوہاب شعرانی قدس سرہ الربانی میزان الشریعۃ الکبری میں ارشاد فرماتے ہیں:

جمیع الائمۃ المجتہدین یشفعون فی اتباعھم ویلاحظونھم فی شدائدھم فی الدنیا والبرزخ ویوم القیامۃ حتّٰی یجاوز الصراط 2- تمام ائمہ مجتہدین اپنے پیروؤں کی شفاعت کرتے ہیں اور دنیا و برزخ و قیامت ہر جگہ کی سختیوں میں ان پر نگاہ رکھتے ہیں یہاں تک کہ صراط سے پار ہوجائیں۔

اسی امام اجل نے اسی کتاب اجمل میں فرمایا:

قد ذکرنا فی کتاب الاجوبۃ عن ائمۃ الفقہاء والصوفیۃ کلھم یشفعون فی مقلدیھم و یلاحظون احدھم عند طلوع روحہ وعند سوال منکر و نکیر لہ وعند النشر والحشر والحساب والمیزان و الصراط، والا یغفلون عنھم فی موقف من المواقف و لما مات شیخنا شیخ الاسلام الشیخ ناصر الدین اللقانی رأہ بعض الصالحین فی المنام فقال لہ مافعل اللہ بك فقال لما اجلسنی الملکان فی القبر لیسئلانی اتاھم الامام مالك فقال مثل ھذا یحتاج الی سوال فی ایمانہ باللہ ورسولہ تنحیاعنہ فتحیا عنی اھ واذا کان مشائخ الصوفیۃ یلاحظون اتباعھم ومریدیھم ہم نے کتاب الاجوبۃ عن الفقہاء والصوفیہ میں ذکر کیا ہے کہ تمام ائمہ فقہاء و صوفیہ اپنے اپنے مقلدوں کی شفاعت کرتے ہیں اور جب ان کے مقلد کی روح نکلتی ہے،

جب منکر نکیر اس سے سوال کو آتے ہیں، جب اس کا حشر ہوتا ہے، جب نامہ اعمال کھلتے ہیں، جب حساب لیا جاتا ہے، جب عمل تُلے ہیں، جب صراط پر چلتا ہے، غرض ہر حال میں اس کی نگہبانی فرماتے ہیں اور کسی جگہ اس سے غافل نہیں ہوتے، ہمارے استاذ شیخ الاسلام امام ناصر الدین لقانی مالکی رحمہ اللہ تعالیٰ کا جب انتقال ہوا بعض صالحوں نے انھیں خواب میں دیکھا، پوچھا اللہ تعالیٰ نے آپ کے ساتھ کیا کیا؟ کہا جب منکر نکیر نے مجھے سوال کے لئے بٹھایا امام مالک تشریف لائے اور ان سے فرمایا ایسا شخص بھی اس کی حاجت رکھتا ہے کہ اس سے خدا و رسول

1 اشعۃ اللمعات باب زیارۃ القبور تیج کمار لکھنو ۱ / ۵۱۷ 2 المیزان الکبری مقدمۃ الکتاب مصطفی البابی مصر ۹/۱

Fatawa Razawiyya, Volume 9

[In the box - Arabic side]: In all terrors and hardships in this world and the hereafter, what then of the leaders of the school of thought who are the stakes of the earth, the pillars of religion, and the trustees of the Lawgiver (peace and blessings of Allah be upon him) over his Ummah? May Allah be pleased with them all. - 1

[In the box - Urdu side]: ...be asked about faith, stay separate from him. These [pious ones] say, the Munkar and Nakir [angels of the grave] left me. And when the honorable Sufi masters (may their secrets be sanctified) care for their followers and disciples at times of terror and hardship in this world and the hereafter, then what can be said of those leaders [who avert] punishment who are the pegs of the earth and the pillars of religion, and the trustees of the Lawgiver (peace be upon him) over his Ummah? May Allah be pleased with them all.

Allah is the Greatest, Allah is the Greatest, and for Allah is all praise.

Sufficient for me among good deeds is what I have prepared For the Day of Judgment in seeking the pleasure of the Most Merciful: The religion of the Prophet Muhammad, the best of creation, Then my belief in the school of Nu'man (Imam Abu Hanifa), And my devotion, creed, and love For Sheikh Abdul Qadir al-Jilani.

(Translation: For me, those good deeds are sufficient which I have prepared for the path of Divine pleasure on the Day of Judgment. The pure religion of the Noble Prophet, the best of creation, Hazrat Muhammad Mustafa (peace and blessings of Allah be upon him), then belief in the school of Nu'man, the Great Imam Abu Hanifa, and devotion, creed, and love for my master Sheikh Abdul Qadir Jilani.)

[Poem]: Yesterday I went to the dust of Raza and said, "How are you, for we have become like this?" All day in useless thought due to grief for you, All night in vain imagination we are. Tell us some news about the bitterness of death, We are beggars of the tavern of Sunnism. We were milk and they mixed in honey, We have become entirely sweetness.

(Explanation: One day I went to the dust [grave] of Raza and asked, "How are you? Our state is such that day and night we remain in useless thoughts and reflections due to grief for you. Tell us, what was the state of the bitterness of death like?" He submitted: "We have tasted this bitter cup very little; Qadiriyyat was our path and

Sunnism our tavern. We were already milk, and honey was added to it; we turned out to be entirely sweetness.")

1. Al-Mizan al-Kubra, Section explaining a set of perceived examples, Mustafa al-Babi Egypt 1/53.

फतवा रज़विया, खंड 9

[बॉक्स में - अरबी पक्ष]: दुनिया और आख़िरत के सभी डरों और कठिनाइयों में, तो फिर उन मज़हब के इमामों का क्या कहना जो ज़मीन की कीलें, दीन के स्तंभ और उम्मत पर शरीयत देने वाले (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) के अमीन हैं? अल्लाह उन सब से राज़ी हो। - 1

[बॉक्स में - उर्दू पक्ष]: ...ईमान के बारे में सवाल किया जाए, उससे अलग रहो। ये [नेक लोग] फर्माते हैं कि मुनकिर और नकीर मुझ से अलग हो गए। और जब मशाइख-ए-किराम सूफ़ी (उनके रहस्य पवित्र हों) दुनिया और आख़िरत में खौफ और कठिनाई के समय अपने पैरोकारों और मुरीदों का ख्याल रखते हैं, तो उन अज़ाब के पेशवाओं का कहना ही क्या जो ज़मीन की मेखें हैं और दीन के सुतून हैं, और शरीयत के साहिब (अलैहिस्सलाम) की उम्मत पर उनके अमीन हैं, अल्लाह उन सब से राज़ी हो।

अल्लाह सबसे बड़ा है, अल्लाह सबसे बड़ा है, और अल्लाह ही के लिए सब प्रशंसा है।

मेरे लिए नेकियों में से वह काफी है जो मैंने तैयार की है क़यामत के दिन रहमान की रज़ा के लिए: नबी मुहम्मद का दीन जो मख़्लूक में सबसे अफ़ज़ल हैं, फिर नुमान (इमाम अबू हनीफा) के मज़हब पर मेरा एतिकाद, और शेख अब्दुल कादिर जिलानी के लिए मेरा इरादा, अकीदा और मुहब्बत।

(अनुवाद: मेरे लिए नेकियों में से वह काफी है जो रोज़-ए-क़यामत ख़ुशनूदी-ए-इलाही की राह में मैंने तैयार कर रखा है। नबी-ए-अकरम, मख़्लूक में सबसे अफ़ज़ल हज़रत मुहम्मद मुस्तफ़ा सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम का दीन-ए-पाक, फिर मज़हब-ए-नुमान इमाम-ए-आज़म अबू हनीफ़ा पर एतिकाद, और सैयदी शेख अब्दुल क़ादिर जिलानी से इरादत और अक़ीदत व मोहब्बत।)

[कविता]: कल मैं रज़ा की ख़ाक पर गया और कहा, "तुम कैसे हो, कि हम ऐसे हो गए हैं?" दिन भर तुम्हारे ग़म में बेकार की सोच में, पूरी रात बेफायदा ख्यालों में रहते हैं। हमें मौत की कड़वाहट की खबर बताओ, हम सुन्नियत के मैखाने के भिखारी हैं। हम दूध थे और शहद मिला दिया गया, हम पूरी तरह मिठास बन गए हैं।

(व्याख्या: एक दिन मैंने रज़ा की ख़ाक पर जाकर कहा, "तुम्हारा क्या हाल है? हमारा हाल तो यह है कि दिन-रात तुम्हारे ग़म में बेकार सोचते और फ़िक्र करते रहते हैं। बताओ कि मौत की कड़वाहट का हाल कैसा रहा?" अर्ज़ किया: "यह तल्ख़ जाम हमने तो कम ही चखा; क़ादिरियत हमारा मशरब

रहा और सुन्नियत हमारा मैखाना। हम दूध थे ही, उस पर शहद का इज़ाफ़ा हुआ; हम तो सरापा हलावत (मिठास) निकले।")

1. अल-मीज़ान अल-कुबरा, महसूस मिसालों के बयान का बाब, मुस्तफा अल-बाबी मिस्र 1/53.

جلد نہم

فتاویٰ رضویہ

في جميع الاهوال والشدائد في الدنيا والآخرة فكيف بأئمة المذهب الذين هم أوتاد الارض واركان الدين وأمناء الشارع صلى الله تعالى عليه وسلم على امته رضى الله تعالى عنهم اجمعين - 1

پر ایمان کے بارے میں سوال کیا جائے الگ ہو اس کے پاس سے ، یہ فرماتے ہیں نکیرین مجھ سے الگ ہو گئے اور جب مشائخ کرام صوفیہ قدست اسرارہم ہول و سختی کے وقت دنیا و آخرت میں اپنے پیرووں اور مریدوں کا لحاظ رکھتے ہیں تو ان پیشوایانِ عذاب کا کہنا ہی کیا جو زمین کی میخیں ہیں اور دین کے ستون ، اور شارع علیہ السلام کی اُمت پر اس کے امین رضی اللہ تعالٰی عنہم اجمعین۔

لله اكبر الله اكبر ولله الحمد

حسبى من الخيرات ما اعددته يوم القيامة فى رضى الرحمن دين النبى محمد خير الورى ثم اعتقادى مذهب النعمان وارادتي وعقيدتي ومحبتي للشيخ عبد القادر الجيلاني

(میرے لیے نیکیوں سے وہ کافی ہے جو روزِ قیامت خوشنودی الٰہی کی راہ میں، میں نے تیار کر رکھا ہے۔ نبی اکرم، مخلوق میں سب سے افضل حضرت محمد مصطفیٰ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم کا دین پاک، پھر مذہبِ نعمان امام اعظم ابو حنیفہ پر اعتقاد، اور سیدی شیخ عبدالقادر جیلانی سے ارادت اور عقیدت و محبت۔ ت)

دی بخاک رضا شدم گفتم کہ تو چونی کہ ما چناں شدہ ایم ہمہ روز از غمت بفکر فضول ہمہ شب در خیال بہیدہ ایم خبری گو بماز تلخی مرگ سنیت را گدائے میکدہ ایم شیر بودیم و شہد افروزند ما سراپا حلاوت آمدہ ایم

(ایک دن میں نے رضا خاک پر جا کر کہا تمہارا کیا حال ہے، ہمارا حال تو یہ ہے کہ دن رات تمہارے غم میں بیکار سوچتے اور فکر کرتے رہتے ہیں، بتاؤ کہ موت کی تلخی کا حال کیسا رہا؟ عرض کیا: یہ تلخ جام ہم نے تو کم ہی چکھا، قادریت ہمارا مشرب رہا اور سنیت ہمارا میکدہ۔ ہم دُودھ تھے ہی اس پر شہد کا اضافہ ہوا، ہم تو سراپا حلاوت نکلے۔ ت)

1 المیزان الکبریٰ فصل فی بیان جملۃ من الامثلۃ المحسوسۃ مصطفٰی البابی مصر ۱ / ۵۳

Alert Note: Yes, the followers of these Imams have joy and gladness, and their opponents have regret and remorse. However, merely following in secondary matters (furoo) does not make one a true follower; the first and most important matter is of beliefs (aqaid). If someone contradicts the pious predecessors (Salaf) in this, then repent! Where is he and where is true following? In this way, many claim to be Hanafis; some Zaidiyyah and Rawafidh call themselves Shafi'is; many Anthropomorphists call themselves Hanbalis. Then, would the pure souls of the exalted personalities Imam-e-Azam, Imam Shafi'i, and Imam Ahmad (may Allah be pleased with them all) be pleased with them? Not at all, by Allah! The affiliation of these misguided ones is like the Rawafidh calling themselves 'Imamiyyah,' even though the pure souls of the immaculate Imams (may Allah be pleased with them all) were disgusted with them before. Similarly, the Hanbalis of Najd and the Hanafis of India, who have become innovators of a new religion and followers of the 'rejected century,' are by no means Hanbalis or Hanafis, but are rather 'Habali'[1] and 'Janafi'[2] are they. This humble servant, may Allah forgive him, in the commentary 'Mujeer-e-Mu'azzam' (1303 AH) of his ode 'Akseer-e-A'zam' (1302 AH), wrote and presented the virtues of the servants of the Qadiri court and the great hopes for them:

[Table containing Persian poetry and its Urdu translation] Left Column (Persian): But for those lustful ones, in their view, following the desires of the soul is the perfection of Sufism. Rejecting the commands of Shariah is a badge of recognition; prohibitions and amusements are means of reaching God. Destruction and futile things are the spiritual exercises of this path; they keep fasts but remain burdened by them; they offer prayers but like not praying. Not only this, but they have no fear or accountability, rather they live at ease and keep no record. What of them and what complaint of innovation, for their bold ones contradict the essentials of religion and mock Islamic beliefs while claiming Islam. By me and my God, these are neither Qadiri nor Chishti, but are treacherous (Ghadiri) and ugly (Zashti). May their shadow be far from us, far etc. (summarized).

Right Column (Urdu): But those lustful ones for whom following the desires of the soul is the perfection of Sufism, and rejecting the rulings of Shariah is a badge of distinction; prohibited things and items of amusement are means of reaching God, and things of destruction and misfortune are the spiritual exercises (riyadat) of this path. They might fast but remain obligated (unfulfilled), pray but as if not praying. Even then, it's not that they have any fear or worry; rather, they live at peace and

keep no account. What to say of them, and what complaint of this heresy, when the state of their bold ones is such that they contradict the essentials of religion and, while claiming Islam, mock the tenets of Islam. By Allah, these are neither Qadiri nor Chishti, but are 'Ghadiri' (treacherous) and 'Zashti' (ugly/evil). May their shadow be far from us, far etc. summarized (T).

Nevertheless, hypothetically, even if one group of deniers were followers in terms of secondary matters, yet when according to them the souls of those passed away...

Footnote 1: 'Habal' with two fathas means wrath. 12 Minhu (M) Footnote 2: 'Janaf' with two fathas means deviation and injustice. 12 Minhu (M)

सचेत करने वाली चेतावनी: हाँ, इन इमामों के अनुयायियों को खुशी और प्रसन्नता है, और उनके विरोधियों को पछतावा और पश्चाताप। लेकिन केवल उप-शाखाओं (फ़ुरूअ) में अनुसरण करने से कोई सच्चा अनुयायी नहीं बन जाता; पहली और सबसे महत्वपूर्ण बात अकीदों (विश्वासों) की है। यदि कोई इसमें पूर्ववर्ती इमामों (सलफ़) के विरुद्ध हो, तो तौबा! वह कहाँ और सच्चा अनुसरण कहाँ? इस प्रकार, बहुत से लोग हनफी होने का दावा करते हैं; कुछ ज़ैदिया और रवाफ़िज़ खुद को शाफ़ई कहते हैं; बहुत से मुजस्समा (निराकार को साकार मानने वाले) खुद को हनबली कहते हैं। फिर क्या इमाम-ए-आज़म, इमाम शाफ़ई और इमाम अहमद (अल्लाह उन पर प्रसन्न हो) जैसी महान हस्तियों की पवित्र आत्माएं उनसे प्रसन्न होंगी? हरगिज़ नहीं, अल्लाह की कसम! इन गुमराहों का जुड़ाव वैसा ही है जैसे रवाफ़िज़ खुद को 'इमामिया' कहते हैं, जबकि पाक इमामों (अल्लाह उन पर प्रसन्न हो) की पवित्र आत्माएं उनसे पहले ही विरक्त थीं। इसी तरह, नज्द के हनबली और भारत के हनफी, जो नए धर्म के आविष्कारक और 'तिरस्कृत काल' के अनुयायी बन गए हैं, वे हरगिज़ हनबली और हनफी नहीं हैं, बल्कि 'हबली'[1] और 'जनफी'[2] हैं। इस फकीर (लेखक) ने, अल्लाह उसे क्षमा करे, अपने कसीदे 'अक्सीर-ए-आज़म' (1302 हिजरी) की व्याख्या 'मुजीर-ए-मुअज़्ज़म' (1303 हिजरी) में कादरी दरबार के गुलामों के गुणों और उनके लिए महान आशाओं के बारे में लिखते हुए निवेदन किया:

[तालिका जिसमें फारसी कविता और उसका उर्दू अनुवाद है] बायां कॉलम (फारसी का अर्थ): लेकिन उन हवस के पुजारियों के लिए, उनकी दृष्टि में, नफ़्स (मन) की इच्छाओं का पालन ही सूफीवाद की पूर्णता है। शरीयत के आदेशों को ठुकराना पहचान का प्रतीक है; वर्जनाएं और मनोरंजन ईश्वर तक पहुँचने के साधन हैं। विनाश और व्यर्थ चीजें इस मार्ग की साधना हैं; वे रोज़े रखते हैं लेकिन उन पर बोझ बना रहता है; वे नमाज़ पढ़ते हैं लेकिन न पढ़ने की तरह। इतना ही नहीं, उन्हें कोई डर या जवाबदेही नहीं है, बल्कि वे चैन से रहते हैं और कोई हिसाब नहीं रखते। उनकी क्या बात और नवाचार (बिदअत) की क्या शिकायत, क्योंकि उनके साहसी लोग धर्म की अनिवार्यताओं के विरुद्ध जाते हैं और इस्लाम का दावा करते हुए इस्लामी विश्वासों का मज़ाक उड़ाते हैं। मेरे और मेरे ईश्वर की कसम, ये न कादरी हैं न चिश्ती, बल्कि विश्वासघाती (गादिरी) और बुरे (ज़श्ती) हैं। उनका साया हमसे दूर हो, दूर आदि (संक्षिप्त)।

दायां कॉलम (उर्दू अनुवाद): लेकिन वे हवस के पुजारी जिनके नज़दीक नफ़्स (मन) की इच्छाओं का पालन ही सूफीवाद की पूर्णता है, और शरीयत के नियमों को ठुकराना ही विशिष्टता का प्रतीक है;

वर्जित और मनोरंजन की वस्तुएं ईश्वर तक पहुँचने का साधन हैं, और विनाश और विपत्ति की चीजें इस मार्ग की साधना हैं। वे रोज़े रखें लेकिन ज़िम्मेदारी बनी रहे, नमाज़ें पढ़ें लेकिन न पढ़ने की तरह। इस पर भी ऐसा नहीं कि उन्हें कोई डर या चिंता हो, बल्कि चैन से जीते हैं और कोई हिसाब-किताब नहीं रखते। उनकी क्या बात और इस बद-मज़हबी (पाखंड) की क्या शिकायत, जबकि उनके साहसी लोगों का हाल यह है कि वे धर्म की अनिवार्यताओं के विरुद्ध जाते हैं और इस्लाम का दावा करके इस्लाम के अकीदों का मज़ाक उड़ाते हैं। खुदा की कसम, ये न कादरी हैं न चिश्ती, बल्कि 'गादिरी' (विश्वासघाती) और 'ज़श्ती' (बदसूरत/बुरे) हैं। उनका साया हमसे दूर हो, दूर आदि संक्षिप्त (त)।

इसके बावजूद, मान लीजिए कि अगर एक पक्ष के इनकार करने वाले उप-शाखाओं के अनुसार अनुयायी हों भी, तब भी जब उनके नज़दीक पिछले लोगों की आत्माएं..

पाद टिप्पणी 1: 'हबल' दो फतह (ज़बर) के साथ, अर्थ: क्रोध। 12 मिन्हु (म) पाद टिप्पणी 2: 'जनफ' दो फतह (ज़बर) के साथ, अर्थ: झुकाव और अन्याय। 12 मिन्हु (म)

पृष्ठ 773 का 948

تنبیہ نبیہ: ہاں مقلد ان ائمہ کو خوشی و شادمانی اور ان کے مخالفوں کو حسرت و پشیمانی، مگر حاش صرف فروع میں تقلید سے متبع نہیں ہوتا، پہلے مہم امر عقائد ہے جو اس میں ائمہ سلف کے خلاف ہو، توبہ، کہاں وہ اور کہاں اتباع، یوں تو بہتیرا حنفیت جتاتے ہیں، بعض زیدیہ روافض شافعی کہلاتے ہیں، بہت مجسمہ موجہ حنبلی کہے جاتے، پھر کیا ارواح طیبہ حضرات عالیہ امام اعظم و امام شافعی و امام احمد رضی اللہ تعالیٰ عنہم ان سے خوش ہوں گے، کلا واللہ! ان گمراہوں کا انتساب ایسا ہے جیسے روافض اپنے آپ کو امامیہ کہتے ہیں، حالانکہ ان سے پہلے بیزار روح پاک ائمہ اطہار ہے رضوان اللہ تعالیٰ علیہ اجمعین، یو نہی نجد کے حنبلی، ہند کے حنفی جو مخترعان مذہب جدید و متبعان قرن طرید ہوئے ہر گز حنبلی و حنفی نہیں بلکہ حَبَلِی ۱ و جَنَفِی ۲ ہیں، فقیر غفر اللہ تعالیٰ لہ، نے اپنے قصیدہ اکسیر اعظم (۱۳۰۲ھ) کی شرح مجیر معظم (۱۳۰۳ھ) میں غلامان سرکار قادری کے فضائل اور ان کے لیے جو عظیم امیدیں لکھ کر گزارش کی:

[جدول میں فارسی اشعار اور ان کا اردو ترجمہ ہے] بایاں کالم (فارسی): اماہوس کارایں کہ رنزد ایشاں اتباع ہوائے نفس کمال تصوف وردا حکام شرع تمغائے تعرف، مناہی و ملا ہی موصل الی اللہ و تباہی و واہی ریاضت این راہ، روزہا دارند اما بر گرد و نماز با گزارند بر معنی ترک کردن و نہ آنکہ ازینہا با کے دارند یا سری خارند بلکہ فارغ زنید و حسابے ندارند و خود ازینہا چہ حکایت و از بدعت چہ شکایت کہ متہوران ایشاں ضروریات دین راخلاف کنند و بد عوی اسلام بر عقائد اسلام خندہ زنند من و خدائے من کہ ایناں نہ قادری باشند و نہ چشتی بلکہ غادری باشند و زشتی سایہ ما دور باد از ما دور الخ اھ ملخصاً

دایاں کالم (اردو): مگر وہ ہوس کار جن کے نزدیک ہوائے نفس کی پیروی کمال تصوف اور احکام شرع کو رد کرنا تمغہ امتیاز، ممنوعات اور لہو کی چیزیں خدا رسی کا ذریعہ، تباہی اور مصیبت کی چیزیں اس راہ کی ریاضت، روزے رکھیں مگر ذمہ میں رہیں، نمازیں پڑھیں مگر نہ پڑھنے کی طرح، اس پر بھی یہ نہیں کہ کچھ خوف یا فکر ہو بلکہ چین سے جیتے ہیں اور کوئی حساب نہیں رکھتے، ان کی کیا بات اور اس بد مذہبی کی کیا شکایت جبکہ ان کے بے باکوں کا حال یہ ہے کہ ضروریات دین کا خلاف کریں اور اسلام کا دعویٰ کر کے عقائد اسلام پر خندہ زن ہوں، واللہ یہ نہ قادری ہیں نہ چشتی بلکہ غادری ہیں اور زشتی، ان کا سایہ ہم سے دور ہو دور الخ ملخصاً (ت)

معھذا بالفرض اگر ایک فریق منکرین باعتبار فروع مقلدین سہی تاہم جب ان کے نزدیک ارواح گزشتہ گان

عہ۱: حَبَل بفتحتیین بمعنی غضب ۱۲منہ (م) عہ۲: جَنَف بفتحتیین میل و جور ۱۲منہ (م)

Fatawa Razawiya - Volume 9

For those who consider seeking help from souls as equivalent to seeking help from inanimate objects, as impossible, or as shirk (associating partners with Allah), how can the souls of the Imams look upon them with favor? It is the divine law that those who deny are kept deprived. Allah Almighty says in a Hadith Qudsi:

"I am as My servant thinks of Me." - Narrated by Bukhari. (I treat My servant according to the expectation he has of Me. Bukhari narrated it.)

Since in their perception help is impossible, so it will be for them. "If it is forbidden for you, then let it be forbidden."

The Master of the Universe (peace and blessings of Allah be upon him) says in a Mutawatir (frequently narrated) Hadith: "My intercession on the Day of Resurrection is a truth. Whoever does not believe in it will not be among its recipients." (Narrated by Ibn Mani' from Zaid bin Arqam and thirteen other companions, may Allah be pleased with them all. -T)

May Allah Almighty grant us benefit from their intercession in this world and the hereafter. Ameen, O Allah, Ameen.

Saying (98 to 100): Imam Ghazali (may his secret be sanctified), then the investigating Sheikh, then the Sheikh of Islam say: (The words are from Sharh al-Mishkat) Hujjat-ul-Islam Imam Ghazali said: "From whomever help is sought in life, help can also be sought from him after death." (T)

Saying (101 & 102): Imam Ibn Hajar Makki and then the Sheikh said in the commentaries of Mishkat: "The righteous provide profound help to their visitors according to their level of respect (adab)." (T)

---

1. Sahih al-Bukhari, Chapter: Allah's Statement 'And Allah warns you of Himself', Qadimi Kutub Khana, Karachi, 2/1101.
2. Jami' al-Saghir with Fayd al-Qadir, Hadith 4896, Dar al-Ma'rifah, Beirut, Lebanon, 4/163.
3. Ash'at al-Lam'at, Chapter on Visiting Graves, Maktabah Nooriya Razawiya, Sukkur, 1/151.
4. Ash'at al-Lam'at, Chapter on Visiting Graves, Maktabah Nooriya Razawiya, Sukkur, 1/151.

फ़तावा रज़विया - जिल्द 9

जो लोग रूहों से मदद मांगने को बेजान चीज़ों से मदद मांगने जैसा, नामुमकिन या शिर्क(अल्लाह के साथ शरीक करना) समझते हैं, तो वे इस लायक कहाँ कि इमामों की रूहें उन पर नज़र फ़रमाएँ। सुन्नत-ए-इलाहिया (अल्लाह की सुन्नत) है कि इनकार करने वालों को महरूम रखते हैं। अल्लाह तआला हदीस-ए-कुदसी में फ़रमाता है:

"मैं अपने बंदे के गुमान (सोच) के साथ हूँ जैसा वह मेरे बारे में रखता है।" - इसे बुखारी ने रिवायत किया। (मैं बंदे से वह व्यवहार करता हूँ जो बंदा मुझसे गुमान रखता है। इसे बुखारी ने रिवायत किया।)

जब उनके गुमान में मदद नामुमकिन है, तो उनके हक़ में ऐसा ही होगा। "अगर तेरे लिए हराम है, तो हराम ही रहे।"

सय्यद-ए-आलम (सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम) हदीस-ए-मुतवातिर में फ़रमाते हैं: "क़यामत के दिन मेरी शफ़ाअत (सिफ़ारिश) हक़ है। जो इस पर ईमान नहीं लाएगा, वह इसका अहल (हक़दार) नहीं होगा।" (इसे इब्न मनीअ ने हज़रत ज़ैद बिन अरक़म और तेरह सहाबा-ए-किराम रज़ियल्लाहु तआला अन्हुम अजमईन से रिवायत किया है। -त)

अल्लाह तआला दुनिया और आख़िरत में उनकी शफ़ाअतों से मालामाल फ़रमाए। आमीन, या अल्लाह आमीन।

कौल (98 से 100): इमाम गज़ाली (रहि.) फिर शैख़ मुहक़्क़िक़ फिर शैख़ुल इस्लाम फ़रमाते हैं: (अल्फ़ाज़ शरह मिश्कात के हैं) हुज्जतुल इस्लाम इमाम गज़ाली ने फ़रमाया: "जिससे ज़िंदगी में मदद माँगी जाए, उससे वफ़ात (मृत्यु) के बाद भी मदद माँगी जाए।" (त)

कौल (101 और 102): इमाम इब्न हजर मक्की फिर शैख़ ने शरह मिश्कात में फ़रमाया: "नेक लोग अपने ज़ायरीन (ज़ियारत करने वालों) की उनके अदब के मुताबिक़ बेपनाह मदद फ़रमाते हैं।" (त)

---

1. सहीह अल-बुखारी, अध्याय: अल्लाह का कथन 'अल्लाह तुम्हें स्वयं से डराता है', कदीमी कुतुब खाना, कराची, 2/1101.

2. जामि' अल-सगीर म'अ फ़ैज़ अल-क़दीर, हदीस 4896, दार अल-मआरिफ़ा, बेरूत, लेबनान, 4/163.
3. अशअतुल लमआत, कब्रों की ज़ियारत का अध्याय, मकतबा नूरया रज़विया, सुक्कुर, 1/151.
4. अशअतुल लमआत, कब्रों की ज़ियारत का अध्याय, मकतबा नूरया रज़विया, सुक्कुर, 1/151.

فتاوی رضویہ - جلد نہم

مثل جماد اور محال امداد اور شرک استمداد، تو وہ اس قابل کہاں کہ ارواحِ ائمہ ان پر نظر فرمائیں، سنتِ الہیہ ہے کہ منکرین کو محروم رکھتے ہیں، اللہ تعالی حدیث قدسی میں فرماتا ہے:

اَنَا عِنْدَ ظَنِّ عَبْدِیْ بِیْ ۱ - رواہ البخاری۔ میں بندہ سے وہ کرتا ہوں جو بندہ مجھ سے گمان رکھتا ہے۔ اسے بخاری نے روایت کیا۔

جب ان کے گمان میں امداد محال تو ان کے حق میں ایسا ہی ہوگا۔ گر بہ تو حرام است حرامت بادا

سید عالم صلی اللہ تعالی علیہ وسلم حدیثِ متواتر میں فرماتے ہیں: شَفَاعَتِیْ یَوْمَ الْقِیٰمَۃِ حَقٌّ فَمَنْ لَّمْ یُؤْمِنْ بِھَا لَمْ یَکُنْ مِنْ اَھْلِھَا ۲ - رواہ ابن منیع عن زید بن ارقم وبضعۃ عشر من الصحابۃ رضوان اللہ تعالیٰ اجمعین۔ میری شفاعت قیامت کے روز حق ہے جو اس پر ایمان نہ لائے گا اس کے اہل نہ ہوگا۔ (اسے ابن منیع نے حضرت زید بن ارقم اور تیرہ صحابہ کرام رضوان اللہ تعالیٰ علیہم اجمعین سے روایت کیا۔ت)

اللہ تعالی دنیا و آخرت میں ان کی شفاعتوں سے بہرہ مند فرمائے آمین اللھم آمین۔

قول (۹۸ تا ۱۰۰): امام غزالی قدس سرہ العالی پھر شیخ محقق پھر شیخ الاسلام فرماتے ہیں: واللفظ لشرح المشکوۃ حجۃ الاسلام امام غزالی گفتہ ہر کہ استمداد کردہ می شود بوی در حیات استمداد می شود بوی بعد از وفات ۳۔ الفاظ شرح مشکوۃ کے ہیں: حجتہ الاسلام امام غزالی فرماتے ہیں جس سے زندگی میں مدد مانگی جائے اس سے بعد وفات بھی مدد مانگی جائے۔ (ت)

قول (۱۰۱ و ۱۰۲): امام ابن حجر مکی پھر شیخ نے شروح مشکوۃ میں فرمایا: صالحاں رامدد بلیغ است بہ زیارت کنندگان خود را بر اندازہ ادب ایشاں ۴۔ صالحین اپنے زائرین کے ادب کے مطابق ان کی بے پناہ مدد فرماتے ہیں۔ (ت)

---

1 صحیح البخاری باب قول اللہ و یحذرکم اللہ نفسہ قدیمی کتب خانہ کراچی ۲/۱۱۰۱ 2 جامع صغیری مع فیض القدیر حدیث ۴۸۹۶ دارالمعرفۃ بیروت لبنان ۴/۱۶۳ 3 اشعۃ اللمعات باب زیارۃ القبور مکتبہ نوریہ رضویہ سکھر ۱/۱۵۱ 4 اشعۃ اللمعات باب زیارۃ القبور مکتبہ نوریہ رضویہ سکھر ۱/۱۵۱

Fatawa Rizwia, Volume 9

Quote (103): Imam Allama Taftazani, in Sharh al-Maqasid, after investigating the knowledge and perception of the deceased according to the Ahl al-Sunnah, stated: [Arabic]: "And for this reason, benefit is derived from visiting the graves of the righteous and seeking help from the souls of the good." [Urdu]: For this reason, visiting the graves of saints and seeking help from pure souls is beneficial.

Quote (104 & 105): In Radd al-Muhtar, it is narrated from Imam Ghazali: [Arabic]: "Indeed, they differ in their closeness to Allah Almighty and in benefiting visitors according to their spiritual knowledge and secrets." [Urdu]: The state of the pure souls of the noble saints is not identical; rather, they differ in their proximity to Allah and in providing benefit to visitors according to their spiritual knowledge and secrets.

Quote (106): Imam Ibn Hajar Makki states in Al-Madkhal: [Arabic]: "If the deceased at the shrine is one whose blessing is hoped for, then mediation (tawassul) should be sought to Allah Almighty through him. One should begin by seeking mediation to Allah Almighty through the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him), for he is the pillar in mediation and the original source for all of this and what is prescribed for it. Then, one should seek mediation through the inhabitants of those graves, meaning the righteous among them, for the fulfillment of his needs and the forgiveness of his sins. He should frequently seek mediation through them to Allah Almighty because He, Glory be to Him, chose them, honored them, and ennobled them. Just as He made them a source of benefit in the world, in the Hereafter it is even more. So whoever desires a need, let him go..." [Urdu]: Meaning, if the person at the shrine is among those from whom blessing is expected, then make him a means (wasila) towards Allah Almighty. First, seek mediation (tawassul) through the Holy Prophet (peace and blessings of Allah be upon him), as the Prophet is the core of mediation and the foundation in all these matters and the one who prescribed mediation. Then seek mediation through the righteous inhabitants of the graves for the fulfillment of needs and forgiveness of sins, and repeat it for the attainment of honor. Just as benefit was reached through their physical presence in the world, similarly, after their passing, even more benefit will be reached. So, whoever has a need granted, let him attend their shrines...

Note: Intention to visit those close to that court and those associated with it. Those who have attained closeness to that court and connection to this presence (continued on the next page).

Footnotes: 1. Sharh al-Maqasid, Fourth Discussion, Perception of Particulars, Dar al-Ma'arif al-Nu'maniyya, Lahore, 2/43. 2. Radd al-Muhtar, Topic on visiting graves, Idarat al-Tiba'ah al-Arabiyyah, Egypt, 1/204.

फ़तावा रज़विया, खंड 9

क़ौल (103): इमाम अल्लामा तफ़्ताज़ानी ने शरह मक़ासिद में सुन्नियों के नज़दीक मुर्दों के ज्ञान और बोध की जांच करने के बाद फरमाया: [अरबी]: "और इसी कारण नेक लोगों की कब्रों की ज़ियारत करने और नेक रूहों से मदद लेने से लाभ होता है।" [उर्दू]: इसी लिए औलिया की कब्रों की ज़ियारत और पवित्र रूहों से मदद लेना लाभ पहुँचाता है।

क़ौल (104 और 105): रद अल-मुह्तार में इमाम गज़ाली से उल्लेखित है: [अरबी]: "वे अल्लाह तआला की निकटता और ज़ायरीन (ज़ियारत करने वालों) को उनके आध्यात्मिक ज्ञान और रहस्यों के अनुसार लाभ पहुँचाने में भिन्न हैं।" [उर्दू]: बुज़ुर्गों की पाक रूहों की स्थिति एक जैसी नहीं है, बल्कि वे अल्लाह से निकटता और ज़ायरीन को फायदा पहुँचाने में अपने आध्यात्मिक ज्ञान और रहस्यों के अनुसार अलग-अलग हैं।

क़ौल (106): इमाम इब्न हजर मक्की 'अल-मदखल' में फरमाते हैं: [अरबी]: "यदि मज़ार वाले व्यक्ति से बरकत की उम्मीद हो, तो उसके माध्यम से अल्लाह तआला तक वसीला (मध्यस्थता) किया जाए। अल्लाह तआला तक वसीला करने की शुरुआत नबी (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) के वसीले से की जाए, क्योंकि वही वसीले का स्तंभ हैं और इन सभी बातों में मूल और वसीले को जायज़ ठहराने वाले हैं। फिर उन कब्रों के निवासियों, यानी उनमें से नेक लोगों के माध्यम से अपनी ज़रूरतों को पूरा करने और अपने गुनाहों की माफी के लिए वसीला किया जाए। अल्लाह तआला तक उनके माध्यम से अक्सर वसीला किया जाए क्योंकि उसने उन्हें चुना है, उन्हें सम्मान दिया है और उन्हें प्रतिष्ठित किया है। जैसे उसने दुनिया में उनके ज़रिये फायदा पहुँचाया, वैसे ही आख़िरत (परलोक) में और भी ज़्यादा पहुँचाएगा। तो जिसे कोई ज़रूरत हो, वह जाए..." [उर्दू]: यानी अगर मज़ार वाले साहिब उन लोगों में से हैं जिनसे बरकत की उम्मीद की जाती है, तो उन्हें अल्लाह तआला की तरफ वसीला बनाए। पहले हुज़ूर सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम से तवस्सुल (वसीला) करे कि हुज़ूर ही तवस्सुल में असल हैं और इन सब बातों में बुनियाद हैं और तवस्सुल को जायज़ फरमाने वाले हैं। सालेहीन (नेक लोगों) जो कब्रों वाले हैं, उनसे अपनी हाजत रवाई और गुनाहों की बख्शिश में तवस्सुल और उसकी पुनरावृत्ति करे। जैसे दुनिया में उनकी ज़ात से फायदा पहुँचाया गया, वैसे ही इंतकाल (मृत्यु) के बाद इससे ज़्यादा पहुँचाएगा। तो जिसे कोई हाजत (ज़रूरत) मंज़ूर करवानी हो, उनके मज़ारात पर हाज़िर...

नोट: उस दरगाह के करीबियों और उनसे जुड़े लोगों की ज़ियारत का इरादा। उस दरबार के करीब और उस जनाब से ताल्लुक (अगले पन्ने पर जारी)।

पाद-टिप्पणी (फ़ुटनोट्स): 1. शरह अल-मक़ासिद, चौथी चर्चा, सूक्ष्म ज्ञान, दार अल-मआरिफ़ अल-नुमानिया, लाहौर, 2/43। 2. रद अल-मुह्तार, कब्रों की ज़ियारत का विषय, इदारत अल-तिबाअह अल-अरबिय्या, मिस्र, 1/204।

पृष्ठ 775/948

فتاویٰ رضویہ جلد نہم

قول (۱۰۳): امام علامہ تفتازانی نے شرح مقاصد میں اہل سنت کے نزدیک علم و ادراکِ موتی کی تحقیق کرکے فرمایا: ولهذا ينتفع بزيارة قبور الابرار والاستعانة من نفوس الاخبار ۱۔ اسی لیے قبورِ اولیاء کی زیارت اور ارواحِ طیبہ سے استعانت نفع دیتی ہے۔

قول (۱۰۴ و ۱۰۵): ردالمختار میں امام غزالی سے ہے: انهم متفاوتون فی القرب من الله تعالی ونفع الزائرين بحسب معارفهم واسرارهم ۲۔ ارواحِ طیبہ اولیائے کرام کا حال یکساں نہیں بلکہ وہ متفاوت ہیں اللہ سے نزدیکی اور زائروں کو نفع دینے میں موافق اپنے معارف و اسرار کے۔

قول (۱۰۶): امام ابنِ حجر مکی مدخل میں فرماتے ہیں: ان كانت الميت المزار ممن ترجى بركته فيتوسل الى الله تعالى به، يبدأ بالتوسل الى الله تعالى بالنبى صلى الله تعالى عليه وسلم اذ هو العمدة فى التوسل والاصل فى هذا كله والمشروع له، ثم يتوسل باهل تلك المقابر اعنى بالصالحين منهم فى قضاء حوائجه ومغفرة ذنوبه ويكثر التوسل بهم الى الله تعالى لانه سبحانه تعالى اجتباهم وشرفهم وكرمهم فكما نفع بهم فى الدنيا ففى الآخره اكثر فمن اراد حاجة فليذهب یعنی اگر صاحبِ مزار ان لوگوں میں ہے جن سے امیدِ برکت کی جاتی ہے تو اسے اللہ تعالیٰ کی طرف وسیلہ کرے، پہلے حضورِ اقدس صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم سے توسل کرے کہ حضور ہی توسل میں عمدہ اور ان سب باتوں میں اصل اور توسل کے مشروع فرمانے والے ہیں، صالحینِ اہل قبور سے اپنی حاجت روائی و بخشش گناہ میں توسل اور اس کی تکرار و کرامت بخشی تو جس طرح دنیا میں ان کی ذات سے نفع پہنچایا یونہی بعدِ انتقال اس سے زیادہ پہنچائے گا، تو جسے کوئی حاجت منظور ہو ان کے مزارات عہ پر حاضر

عہ: قصدِ زیارت مقربانِ آں درگاہ و منتسبانِ آں اُس بارگاہ کے قُرب یافتہ اور اس جناب سے تعلق

(باقی بر صفحہ آئندہ)

۱ شرح المقاصد المبحث الرابع مدرک الجزئیات عند نالخ دارالمعارف النعمانیہ لاہور ۲/ ۴۳ ۲

ردالمحتار مطلب فی زیارۃ القبور ادارۃ الطباعۃ العربیہ مصر ۱/ ۲۰۴

Fatawa Razavia - Volume 9

[Arabic Section]: ...towards them and seek mediation through them, for they are the intermediaries between Allah Almighty and His creation. It has been established and known in the Shariah how much care Allah Almighty has for them, and this itself is widely known and famous. Great scholars and luminaries from generation to generation, in the East and the West, have always sought blessings by visiting their graves and have experienced its blessings physically and spiritually. (Summary)

[Urdu Section]: ...and seek mediation through them as they are the intermediaries between Allah Almighty and His creation. It has been established and known in the Shariah how much kindness Allah Almighty has bestowed upon them, and this is well-known and famous. Great scholars and predecessors from the East and the West have always sought blessings from visiting their graves and have received its blessings both outwardly and inwardly. (Summary)

Quote (107 to 109): It is stated in Ashi'ah:

[Persian/Urdu Section]: Sayyidi Ahmad ibn Zarruq, who is among the greatest jurists, scholars, and spiritual mentors of the Maghreb, relates: One day, Sheikh Abu al-Abbas al-Hadrami asked me, "Is the aid of the living stronger or the aid of the deceased?" I said, "People say the aid of the living is stronger, but I say the aid of the deceased is stronger." Upon this, the Sheikh said, "Yes! Because they are present in the Court of Truth (Allah) and His Presence." (The author says) Such statements from these elders are reported in so many numbers that they are beyond count, and nothing is found in the Book and Sunnah or the sayings of the pious predecessors that contradicts or opposes this.

[Urdu Section]: Sayyidi Ahmad ibn Zarruq, who is among the greatest jurists, scholars, and spiritual mentors of the Maghreb, states that one day Sheikh Abu al-Abbas al-Hadrami asked me: "Is the aid of the living more powerful or that of the deceased?" I replied that some people say the aid of the living is more powerful, but I say that the aid of the deceased is more powerful. On this, the Sheikh said: "Yes! Because they are present in the court of Truth (Allah) and His Presence." (He said) The words of this subject are quoted from these elders in such vast numbers that they are beyond counting, and in the Book and [Sunnah]...

[Footnote Section]: (Continued from previous page) ...intend to visit those who possess blessings and request them to bestow the flow of their blessings and

goodness; this will be a cause for further goodness, virtue, and an increase in reward. Peace. (Jadhb al-Qulub)

1. Al-Madkhal, Chapter on Visiting Graves, Dar al-Kitab al-Arabi, Beirut, 1/49, 248.
2. Jadhb al-Qulub, Chapter Ten of Ten, Maktaba Naimia, Chowk Dalgaran, Lahore, p. 138.

फ़तावा रज़विया - जिल्द 9

[अरबी खंड]: ...उनकी ओर और उनके माध्यम से वसीला (मध्यस्थता) लें, क्योंकि वे अल्लाह तआला और उसकी सृष्टि के बीच मध्यस्थ हैं। शरीयत में यह स्थापित और ज्ञात हो चुका है कि अल्लाह तआला की उन पर कैसी कृपा है, और यह बात स्वयं बहुत प्रसिद्ध और विख्यात है। पूर्व और पश्चिम में हर युग के महान विद्वान और बुजुर्ग उनके मज़ार की ज़ियारत से बरकत हासिल करते रहे हैं और ज़ाहिर व बातिन (प्रत्यक्ष और परोक्ष) में इसकी बरकतें पाते रहे हैं। (संक्षेप)

[उर्दू खंड]: ...और उनके माध्यम से वसीला लें कि यही अल्लाह तआला और उसकी सृष्टि के बीच मध्यस्थ हैं। और बेशक शरीयत में यह स्थापित और ज्ञात हो चुका है कि अल्लाह तआला की उन पर कैसी इनायत है, और यह बात स्वयं बहुत प्रसिद्ध और विख्यात है। पूर्व और पश्चिम में हर युग के महान विद्वान और बुजुर्ग उनके मज़ार की ज़ियारत से बरकत हासिल करते रहे हैं और प्रत्यक्ष व परोक्ष रूप से इसकी बरकतें पाते रहे हैं। (संक्षेप)

कथन (107 से 109): अशिआ (Ashi'ah) में कहा गया है:

[फारसी/उर्दू खंड]: सैय्यदी अहमद बिन ज़र्रूक, जो मग़रिब (पश्चिम) के महानतम फ़कीहों, विद्वानों और मशाइख़ में से हैं, फरमाते हैं कि एक दिन शेख़ अबू अल-अब्बास हज़रमी ने मुझसे पूछा: "ज़िंदा की मदद अधिक शक्तिशाली है या वफात पाए हुए (मृत) की?" मैंने कहा: "लोग कहते हैं कि ज़िंदा की मदद अधिक शक्तिशाली है, लेकिन मैं कहता हूँ कि वफात पाए हुए की मदद अधिक शक्तिशाली है।" इस पर शेख़ ने फरमाया: "हाँ! इसलिए कि वह हक़ (अल्लाह) के दरबार और उसकी बारगाह में हाज़िर है।" (कहा गया है) इन बुज़ुर्गों का ऐसा कलाम (वक्तव्य) इतनी अधिक संख्या में उद्धृत है कि उसकी कोई गिनती नहीं, और किताब व सुन्नत और सालेह पूर्वजों के कथनों में ऐसी कोई चीज़ नहीं मिलती जो इसके विपरीत या विरोधी हो।

[उर्दू खंड]: सैय्यदी अहमद बिन ज़र्रूक, जो मग़रिब (पश्चिम) के महानतम फ़कीहों, विद्वानों और मशाइख़ में से हैं, फरमाते हैं कि एक दिन शेख़ अबू अल-अब्बास हज़रमी ने मुझसे पूछा: "ज़िंदा की मदद अधिक शक्तिशाली है या वफात पाए हुए की?" मैंने कहा: "कुछ लोग ज़िंदा की मदद को अधिक शक्तिशाली बताते हैं, लेकिन मैं कहता हूँ कि वफात पाए हुए की मदद अधिक शक्तिशाली है।" इस पर शेख़ ने फरमाया: "हाँ! इसलिए कि वह हक़ (अल्लाह) के दरबार और उसकी बारगाह में

हाज़िर है।" (फरमाया) इस विषय का कलाम इन बुज़ुर्गों से इतना अधिक उद्धृत है कि वह सीमा और गिनती से बाहर है, और किताब व [सुन्नत]...

[फुटनोट खंड]: (पिछले पृष्ठ का शेष फुटनोट) ...बरकत रखने वालों की ज़ियारत का इरादा करे और उनसे निवेदन करे कि अपनी बरकात और खैरात का फैज़ अता करें; यह अधिक भलाई, अच्छाई और सवाब में वृद्धि का कारण होगा। वस्सलाम। (जज़बुल कुलूब)

1. अल-मदख़ल, कब्रों की ज़ियारत का अध्याय, दार अल-किताब अल-अरबी, बेरूत, 1/49, 248।
2. जज़बुल कुलूब, दसवां अध्याय, मकतबा नईमिया, चौक दालगराँ, लाहौर, पृष्ठ 138।

पृष्ठ 948 का 776

إليهم ويتوسل بهم فإنهم الواسطة بين الله تعالى وخلقه وقد تقرر فى الشرع وعلم ما الله تعالى بهم من الاعتناء وذلك كثيره مشهور، ومازال الناس من العلماء والاكابر كابراً عن كابر مشرقاً ومغرباً يتبركون بزيارة قبورهم ويجدون بركة ذلك حسّاً ومعنىً اهـ ١ ملخصاً | ہواوران سے توسل کرے کہ یہی واسطہ ہیں اللہ تعالٰی اور اس کی مخلوق میں ، اور بیشک شرع میں مقرر و معلوم ہوچکا کہ اللہ تعالٰی کو ان پر کیسی عنایت ہے اور یہ خود بکثرت و شہرت ہے اور ہمیشہ علمائے اکابر خلف و سلف مشرق و مغرب میں ان کی زیارت قبور سے تبرک کرتے اور ظاہر و باطن میں اس کی برکتیں پاتے رہے ہیں اھ ملخصاً۔

قول (١٠٧ تا ١٠٩): اشعۃ میں فرمایا:

سیدی احمد بن زروق کہ از عاظم فقہاء و علماء ومشارئخ دیار مغرب است گفت روزے شیخ ابوالعباس حضرم از من پرسید امداد حی قوی ست یا امداد میّت قوی ست من گفتم قوی می گویند کہ امداد حی قوی تراست و من می گویم کہ امداد میت قوی تراست پس شیخ گفت نعم زیرا کہ وی در بساط است و در حضرت اوست (قال) و نقل دریں معنی ازیں طائفہ بیشتر از ان ست کہ حصر و احصار کردہ شود یافتہ نمی شود در کتاب و سنت اقوال سلف صالح چیزے کہ منافی و مخالف |

سیدی احمد بن زروق جو دیارِ مغرب کے عظیم ترین فقہاء اور علماء و مشائخ سے ہیں فرماتے ہیں کہ ایک دن شیخ ابوالعباس حضرمی نے مجھ سے پوچھا زندہ کی امداد قوی ہے یا وفات یافتہ کی؟ میں نے کہا کچھ لوگ زندہ کی امداد زیادہ قوی بتاتے ہیں اور میں کہتا ہوں کہ وفات یافتہ کی امداد زیادہ قوی ہے۔ اس پر شیخ نے فرمایا: ہاں! اس لیے کہ وہ حق کے دربار اور اس کی بارگاہ میں

حاضر ہے (فرمایا) اس مضمون کا کلام ان بزرگوں سے اتنا زیادہ منقول ہے کہ حد و شمار سے باہر ہے اور کتاب و

(بقیہ حاشیہ صفحہ گزشتہ) جناب واستفاضہ خیرات وبرکات از ایشاں نماید ۲ موجب مزید خیر وزیارت ثواب خواهد بود والسلام ۱۲ امنہ جذب القلوب (م) | رکھنے والوں کی زیارت کا قصد کرے اور ان سے درخواست کرے کہ اپنی برکات و خیرات کا فیض عطا کریں یہ مزید خیر و خوبی اور ثواب میں زیادتی کا باعث ہوگا، والسلام ۱۲ امنہ جذب القلوب (ت)

1 المدخل فصل فی زیارۃ القبور دار الکتاب العربی بیروت ۱/ ۴۹- ۲۴۸ 2 جذب القلوب باب دہم از دہم مکتنبہ نعیمیہ چوک دالگراں ۔ لاہور ص ۱۳۸

[Table 1] [Left Column - Persian]: ...this may be so, and it refutes this... etc. [Right Column - Urdu]: There is nothing in the sayings of the Sunnah and the righteous predecessors (Salaf-e-Salihin) that is contrary to this or opposes it or refutes it. etc. (T)

Saying (110): In the same [source] it is: [Table 2] [Left Column - Persian]: Many have received spiritual blessings (fuyuz) and openings (futuh) from souls, and this group is called 'Uwaisi' in their terminology. [Right Column - Urdu]: Many people have obtained spiritual benefit and unveilings (kashf) from souls, and this group is called 'Uwaisi' in their terminology. (T)

Saying (111 & 112): Quoted from Shaykh al-Islam Imam Fakhruddin Razi: [Table 3] [Left Column - Persian]: When a visitor comes to a grave, he develops a special connection with the grave, just as the soul of the person in the grave develops a connection. Due to these two connections, a spiritual meeting and a special bond are formed between both souls. Now, if the soul of the person in the grave is more powerful, the visitor receives benefit (mustafiz), and if it is the other way around, the opposite occurs. [Right Column - Urdu]: When a visitor comes to the grave, he gets a special connection with the grave and similarly the person in the grave gets one with him. Because of these two connections, a spiritual meeting and a special link are established between the two. Now, if the person in the grave has more power, the visitor benefits, and if it is the opposite, then the opposite happens. (T)

Saying (113 & 114): Maulana Jami (may his secret be sanctified) quoting from Hazrat Sayyidi Imam al-Ajal Ala ud-Daula Simnani (may Allah the Almighty have mercy on him): [Table 4] [Left Column - Persian]: A dervish asked the Sheikh that since the body in the dust has no perception, but the soul does, and in the world of spirits there is no veil, what is the need to go to the grave? From wherever one turns their attention to the soul of a great person, the benefit will be the same as being at the grave. The Sheikh said: There are many benefits. One is that when a person goes to visit someone, the more he travels, his focus increases. [Right Column - Urdu]: A dervish asked the Sheikh that since perception inside the grave is not for the body but for the soul, and there is no veil in the world of souls, what is the necessity of going to the grave? From wherever one directs their attention, the benefit from the soul of the

elder will be the same as it would be at the grave. The Sheikh said: There are many, many benefits in this. One is that when a person goes to visit someone...

1. Ash'at al-Lam'at, Chapter on Visiting Graves, Maktaba Nooria Razawiya, Sukkur, 1/716
2. Ash'at al-Lam'at, Chapter on Visiting Graves, Maktaba Nooria Razawiya, Sukkur, 1/716
3. Kashf al-Ghita, Chapter Ten: Visiting Graves, Ahmadi Printing Press, Delhi, p. 70

फ़तावा रज़विया | जिल्द नवीं

[तालिका 1] [बायाँ कॉलम - फ़ारसी]: ...ऐसा हो और इसे रद्द करे... वग़ैरा। [दायाँ कॉलम - उर्दू]: सुन्नत और सलफ़ सालेहीन के अक़वाल (कथनों) में ऐसी कोई बात मौजूद नहीं जो इसके मनाफ़ी (विपरीत) व मुख़ालिफ़ हो और इसे रद्द करने वाली हो। वग़ैरा (त)

क़ौल (110): इसी में है: [तालिका 2] [बायाँ कॉलम - फ़ारसी]: बहुत से लोगों को रूहों से फ़ैज़ और फ़ुतूह (आध्यात्मिक द्वार) प्राप्त हुए हैं और इस समूह को उनकी शब्दावली में 'ओवैसी' कहा जाता है। [दायाँ कॉलम - उर्दू]: बहुत से लोगों को फ़ैज़ व कश्फ़ अरवाह (रूहों) से हासिल हुआ है और इस जमाअत को उनकी इस्तलाह (पारिभाषिक शब्दावली) में 'ओवैसी' कहते हैं। (त)

क़ौल (111 व 112): शेख़ुल इस्लाम इमाम फ़ख़रुद्दीन राज़ी से नक़ल: [तालिका 3] [बायाँ कॉलम - फ़ारसी]: जब ज़ायर (ज़ियारत करने वाला) क़ब्र के पास आता है, तो उसका क़ब्र के साथ एक विशेष संबंध बन जाता है, जैसे क़ब्र वाले की रूह का संबंध। इन दो संबंधों के कारण दोनों रूहों के बीच एक आध्यात्मिक मुलाकात और एक विशेष बंधन बन जाता है। अब यदि क़ब्र वाले की रूह अधिक शक्तिशाली है, तो ज़ायर लाभान्वित होता है, और यदि इसके विपरीत है, तो विपरीत होता है। [दायाँ कॉलम - उर्दू]: जब ज़ायर क़ब्र के पास आता है तो उसे क़ब्र से और ऐसे ही साहब-ए-क़ब्र (क़ब्र वाले) को उससे एक ख़ास ताल्लुक़ हासिल होता है और इन दोनों ताल्लुक़ात की वजह से दोनों के दरमियान मानवी (आत्मिक) मुलाक़ात और एक ख़ास रब्त (संपर्क) हासिल हो जाता है। अब अगर साहब-ए-क़ब्र ज़्यादा क़ुव्वत (शक्ति) वाला है तो ज़ायर मुस्तफ़ीज़ (लाभान्वित) होता है और इसके बरअक्स (विपरीत) है तो बरअक्स होता है। (त)

क़ौल (113 व 114): मौलाना जामी (क़ुद्दिस सिर्रहु) हज़रत सय्यिदी इमाम अजल अलाउद्दौला सिम्नानी (रहमतुल्लाहि तआला) से नक़ल: [तालिका 4] [बायाँ कॉलम - फ़ारसी]: एक दरवेश ने शेख़ से पूछा कि चूँकि धूल में पड़े शरीर को बोध नहीं है, बल्कि रूह को है, और रूहों की दुनिया में कोई पर्दा नहीं है, तो क़ब्र पर जाने की क्या ज़रूरत है? जहाँ से भी कोई महान व्यक्ति की रूह की ओर ध्यान लगाएगा, वही लाभ होगा जो क़ब्र पर जाने से होता है। शेख़ ने कहा: इसके बहुत से लाभ हैं। एक यह है कि जब कोई किसी से मिलने जाता है, तो वह जितना अधिक चलता है, उसका ध्यान उतना ही बढ़ता है। [दायाँ कॉलम - उर्दू]: एक दरवेश ने शेख़ से सवाल किया कि जब क़ब्र के अंदर इदराक (अनुभूति) बदन को नहीं बल्कि रूह को है और आलमे अरवाह में कोई हिजाब (पर्दा) नहीं है तो क़ब्र

के पास जाने की क्या ज़रूरत, जहाँ से भी तवज्जो (ध्यान) करे, बुज़ुर्ग की रूह से वही फ़ायदा होगा जो क़ब्र के पास होगा। शेख़ ने फ़रमाया: इसमें बहुत बहुत फ़वाइद (फ़ायदे) हैं एक ये कि जब आदमी किसी की ज़ियारत...

1. अश्अतुल लमआत, बाब ज़ियारतुल क़ुबूर, मकतबा नूरिया रज़विया, सक्खर 1/716
2. अश्अतुल लमआत, बाब ज़ियारतुल क़ुबूर, मकतबा नूरिया रज़विया, सक्खर 1/716
3. कश्फ़ुल ग़िता, फ़स्ल दहूम: ज़ियारत-ए-क़ुबूर, मतबा अहमदी दिल्ली, पृ. 70

पृष्ठ 777 / 948

[پہلا جدول] [بایاں کالم - فارسی]: ایں باشد و رد کند ایں را الخ۔ [دایاں کالم - اردو]: سنت اور سلف صالحین کے اقول میں ایسی کوئی بات موجود نہیں جو اس کے منافی و مخالف اور اسے رد کرنے والی ہو۔ الخ (ت)

قول (۱۱۰): اسی میں ہے: [دوسرا جدول] [بایاں کالم - فارسی]: بسیارے را فیوض و فتوح از ارواح رسیدہ وایں طائفہ را در اصطلاح ایشاں اولیسی خوانند۔ [دایاں کالم - اردو]: بہت سے لوگوں کو فیض و کشف ارواح سے حاصل ہوا ہے اور اس جماعت کو ان کی اصطلاح میں اویسی کہتے ہیں۔ (ت)

قول (۱۱۱ و ۱۱۲): شیخ الاسلام امام فخر الدین رازی سے ناقل: [تیسرا جدول] [بایاں کالم - فارسی]: چوں می آید زائر نزد قبر حاصل می شود اورا تعلقے خاص بقبر چنانچہ نفس صاحب قبر را وبسبب ایں در تعلق حاصل می شود میاں ہر دو نفس ملاقات معنوی وعلاقہ مخصوص پس اگر نفس مزوری قوی تر باشد نفس زائر مستفیض می شود و اگر بر عکس بود بر عکس شود۔ [دایاں کالم - اردو]: جب زائر قبر کے پاس آتا ہے تو اسے قبر سے اور ایسے ہی صاحب قبر کو اس سے ایک خاص تعلق حاصل ہوتا ہے اور ان دونوں تعلقات کی وجہ سے دونوں کے درمیان معنوی ملاقات اور ایک خاص ربط حاصل ہو جاتا ہے۔ اب اگر صاحب قبر زیادہ قوت والا ہے تو زائر مستفیض ہوتا ہے اور بر عکس ہے تو بر عکس ہوتا ہے۔ (ت)

قول (۱۱۳ و ۱۱۴): مولانا جامی قدس سرہ السامی حضرت سیدی امام اجل علاء الدولہ سمنانی رحمۃ اللہ تعالٰی سے ناقل: [چوتھا جدول] [بایاں کالم - فارسی]: درویٹے از شیخ سوال کرد کہ چوں

بدن را در خاک ادراک نیست و در عالم ارواح حجاب نیست چه احتیاج است بسر خاک رفتن۔ چہ دہر مقامیکہ توجہ کند بروح بزرگی ہماں باشد کہ بسر خاک شیخ فرمود فائدہ بسیار دارد یکی آنکہ چوں بزیارت کسے می رود چندانکہ می رود توجہ اوز یادہ می شود۔ [دایاں کالم - اردو]: ایک درویش نے شیخ سے سوال کیا کہ جب قبر کے اندر ادراک بدن کو نہیں بلکہ روح کو ہے اور عالم ارواح میں کوئی حجاب نہیں ہے تو قبر کے پاس جانے کی کیا ضرورت، جہاں سے بھی توجہ کرے، بزرگ کی روح سے وہی فائدہ ہوگا جو قبر کے پاس ہوگا۔ شیخ نے فرمایا: اس میں بہت بہت فوائد ہیں ایک یہ کہ جب آدمی کسی کی زیارت

1 اشعۃ اللمعات باب زیارۃ القبور مکتبہ نوریہ رضویہ سکھر ۱ / ۷۱۶ 2 اشعۃ اللمعات باب زیارۃ القبور مکتبہ نوریہ رضویہ سکھر ۱ / ۷۱۶ 3 کشف الغطاء فصل دہم زیارت قبور مطبع احمدی دہلی ص ۷۰

[Persian text]: As he reaches the grave, he observes the earth with his senses, and his perception also becomes engaged. He becomes completely focused, and the benefit is greater. Furthermore, although there is no veil for the souls and the entire world is the same for them, they have a stronger connection with that particular place (the grave). [Summary ending] | [Urdu Translation]: As one approaches [the grave], the more one moves forward, the more their attention increases. When one reaches the grave, they perceive and observe it through their senses. Now their senses also become engaged with it, and they turn towards it with their entire outward and inward self, which increases the benefit even more. Secondly, although there is no veil for the souls and the whole world is one for them, the connection to this place is greater. [Summarized (T)]

Quote (116 to 117): Narrated from Imam Shihab al-Din al-Ramli in the Fatawa of Sayyid Jamal al-Makki: [Arabic]: For the Prophets, Messengers, Saints, and the Righteous, there is aid after their death.[2] | [Urdu Translation]: Prophets, messengers, saints, and the righteous provide assistance even after their departure.

Chapter 11: Clarifications of the scholars that greeting at the graves is a definitive proof of hearing, understanding, knowledge, and awareness. Quote (117): Imam Izz al-Din bin Abd al-Salam says in his 'Amali': [Arabic]: Because we were commanded to give greetings at the graves; if the souls did not perceive it, there would certainly be no benefit in it.[3] | [Urdu Translation]: We were commanded to offer greetings at the graves; if the souls did not understand, then surely there would be no benefit in it.

Quote (118): Imam Abu Umar ibn Abd al-Barr said: [Arabic]: The hadiths regarding visiting graves, offering greetings to them, and addressing them as one addresses a present, sane person, are proof of this.[4] [Summarized] | [Urdu Translation]: The traditions (hadiths) of visiting graves, greeting them, and addressing them like a present sane person are evidence for this. [Summarized]

Quote (119): Narrated in 'Sharh al-Sudur' similar to the previous two quotes: [Arabic]: Indeed, the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) prescribed for his Ummah to greet the people of the graves as one greets those who are being addressed. | [Urdu Translation]: Undoubtedly, the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) prescribed for his nation to greet the people of the graves as if they are listening.

[1] Nafahat al-Uns, Translation by Abu al-Karam Rukn al-Din Ala al-Din al-Simnani, Mahdi Tawhidi Pur, Tehran, p. 440. [2] Fatawa Jamal bin Umar al-Makki. [3] Sharh al-Sudur with reference to Izz al-Din ibn Abd al-Salam, Chapter: Maqar al-Arwah, Khilafat Academy, Swat, p. 103. [4] Sharh al-Sudur with reference to Ibn Abd al-Barr, Chapter: Maqar al-Arwah, Khilafat Academy, Swat, p. 10.

[फ़ारसी पाठ]: जैसे-जैसे वह कब्र के पास पहुँचता है, अपनी इंद्रियों से मिट्टी का अवलोकन करता है और उसकी धारणा भी व्यस्त हो जाती है। वह पूरी तरह से एकाग्र हो जाता है और लाभ अधिक होता है। इसके अलावा, हालांकि आत्माओं के लिए कोई पर्दा नहीं है और पूरी दुनिया उनके लिए एक समान है, लेकिन उस स्थान (कब्र) के साथ उनका संबंध अधिक गहरा होता है। [सारांशित] | [उर्दू अनुवाद]: जैसे-जैसे कोई आगे बढ़ता है, उसका ध्यान बढ़ता जाता है। जब वह कब्र के पास पहुँचता है, तो वह अपनी इंद्रियों से उस कब्र को महसूस और देखता है। अब उसकी इंद्रियाँ भी उसके साथ व्यस्त हो जाती हैं और वह अपने पूरे बाहरी और भीतरी अस्तित्व के साथ उसकी ओर मुड़ जाता है, जिससे लाभ और भी बढ़ जाता है। दूसरा यह कि हालांकि आत्माओं के लिए कोई पर्दा नहीं है और पूरी दुनिया उनके लिए एक है, लेकिन इस स्थान से संबंध अधिक होता है। [संक्षेपण के साथ (त)]

कौल (११६ से ११७): सैयद जमाल मक्की के फ़तावा में इमाम शिहाब अल-दीन अल-रमली से उद्धृत: [अरबी]: नबियों, रसूलों, औलियाओं और नेक लोगों को मृत्यु के बाद भी सहायता प्रदान करने का अधिकार है।[2] | [उर्दू अनुवाद]: नबी, रसूल, औलिया और नेक लोग मृत्यु के बाद भी फ़रियाद सुनते और मदद करते हैं।

ग्यारहवाँ अध्याय: विद्वानों के स्पष्टीकरण कि कब्रों पर सलाम करना सुनने, समझने, ज्ञान और जागरूकता का निश्चित प्रमाण है। कौल (११७): इमाम इज़ अल-दीन बिन अब्दुल सलाम अपनी 'अमाली' में फ़रमाते हैं: [अरबी]: क्योंकि हमें कब्रों पर सलाम करने का आदेश दिया गया है; यदि आत्माएं इसे नहीं समझतीं, तो निश्चित रूप से इसमें कोई लाभ नहीं होता।[3] | [उर्दू अनुवाद]: हमें आदेश दिया गया है कि कब्रों पर सलाम करें; यदि रूहें समझती न होतीं तो बेशक इसमें कोई फ़ायदा न होता।

कौल (११८): इमाम अबू उमर इब्न अब्दुल बर ने फ़रमाया: [अरबी]: कब्रों की ज़ियारत, उन पर सलाम करने और उन्हें उसी तरह संबोधित करने की हदीसें जैसे कि किसी उपस्थित बुद्धिमान व्यक्ति को संबोधित किया जाता है, इस बात का प्रमाण हैं।[4] [सारांशित] | [उर्दू अनुवाद]: कब्रों की ज़ियारत, उन पर सलाम और उनसे उपस्थित बुद्धिमान व्यक्ति की तरह बात करने की हदीसें इस पर प्रमाण हैं। [सारांशित]

कौल (११९): 'शराह अल-सुदूर' में पिछले दो कथनों के समान उद्धृत: [अरबी]: बेशक, नबी (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने अपनी उम्मत के लिए कब्र वालों को सलाम करना वैसे ही निर्धारित किया है जैसे उन्हें संबोधित किया जाता है जो सुन रहे हों। | [उर्दू अनुवाद]: बेशक नबी (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने अपनी उम्मत के लिए अहल-ए-क़ुबूर पर ऐसा सलाम करना शरीयत का हिस्सा बनाया है जैसे कि वह सुन रहे हों।

1. नफ़हात अल-उन्स, अनुवाद अबू अल-कारम रुकन अल-दीन अला अल-दीन अल-सिमनानी, महदी तौहीदी पुर, तेहरान, पृ. ४४०।
2. फ़तावा जमाल बिन उमर अल-मक्की।
3. शराह अल-सुदूर, इज़ अल-दीन इब्न अब्दुल सलाम के संदर्भ में, अध्याय: मक़र अल-अरवाह, खिलाफत अकादमी, स्वात, पृ. १०३।
4. शराह अल-सुदूर, इब्न अब्दुल बर के संदर्भ में, अध्याय: मक़र अल-अरवाह, खिलाफत अकादमी, स्वात, पृ. १०।

पृष्ठ ७७८ / ९४८

چوں بہ سر خاک رسد بخس مشاهده کند خاک اور احساس او نیز مشغول کومی شود بکلی متوجہ گرد و فائدہ بیشتر باشد و دیگر آنکہ ہر چند ارواح را حجاب نیست و ہمہ جہاں اور ایکے است اما ہاں است اما ہاں موضع تعلق بیشتر بود ۱ اھ ملخصاً | کو جاتا ہے تو جس قدر آگے بڑھتا ہے اس کی توجہ بڑھتی جاتی ہے، جب قبر کے پاس پہنچتا ہے تو حواس سے اس قبر کا ادراک اور مشاہدہ کرتا ہے اب اس کے حواس بھی اس کے ساتھ مشغول ہو جاتے ہیں اور وہ پورے ظاہر و باطن کے ساتھ اس کی طرف متوجہ ہو جاتا ہے جس کا فائدہ فزوں تر ہو جاتا ہے۔ دوسرے یہ کہ اگرچہ ارواح کے لیے حجاب نہیں ہے اور سارا جہان ان کے لیے ایک ہے مگر اس مقام سے تعلق زیادہ ہوتا ہے۔ اھ بہ تلخیص (ت)

قول (۱۱۶ تا ۱۱۷): سید جمال مکی کے فتاوٰی میں امام شہاب الدین رملی سے منقول : للانبیاء والرسل والاولیاء والصالحین اغاثہ بعد موتھم ۲ | انبیاء ورسل واولیاء وصالحین بعد رحلت بھی فریاد رسی کرتے ہیں۔

فصل یازدہم: تصریحات علماء میں کہ سلام قبور دلیل قطع سماع و فہم و علم و شعور ہے۔ قول (۱۱۷): امام عز الدین بن عبد السلام اپنی امالی میں فرماتے ہیں : لانا امرنا بالسلام علی القبور ولولان الارواح تدرك كان فیہ فائدة ۳۔ | ہمیں حکم ہوا کہ قبور پر سلام کریں اگر روحیں سمجھتی نہ ہوتیں تو بیشک اس میں کچھ فائدہ نہ ہوتا۔

قول (۱۱۸): امام ابو عمر ابن عبد البر نے فرمایا: احادیث زیارة القبور والسلام علیها و خطابهم مخاطبة الحاضر العاقل دالة علی ذلک ۴ اھ ملخصاً۔ | زیارت قبور اور ان پر سلام اور ان سے حاضر عاقل کی طرح خطاب کی حدیثیں اس پر دلیل ہیں اھ ملخصاً

قول (۱۱۹): شرح الصدور میں مثل قولین سابقین منقول : قد شرح صلی الله تعالی علیه وسلم لامته ان یسلموا علی اهل القبور سلام من یخاطبونہ | بیشک نبی صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم نے اپنی امت کے لیے اہل قبور پر ایسا مشروع فرمایا ہے جیسے سننے

۱ نفحات الانس ترجمہ ابوالکارم رکن الدین علاء الدین السمنانی مہدی توحیدی پور طہران ص ۴۴۰ ۲ فتاویٰ جمال بن عمر مکی ۳ شرح الصدور بحوالہ عزالدین ابن عبدالسلام باب مقر الارواح خلافت اکیڈمی سوات ص ۱۰۳ ۴ شرح الصدور حوالہ ابن عبدالبر باب مقر الارواح خلافت اکیڈمی سوات ص ۱۰

- Address those who understand.

Qaul (120): Imam Allama Nawawi in Minhaj, after quoting Imam Qadi Iyad regarding the dead being able to hear, states: "This is the apparent and preferred view, which is necessitated by the hadiths regarding saluting the graves."

Qaul (121): Allama Munawi has cited the evidence for this point as follows: "Indeed, greeting someone who does not perceive is impossible," meaning greeting someone who doesn't understand is not rational at all.

Qaul (122): Sheikh Muhaqqiq in Madarij al-Nubuwwah, quoting from hadith about saluting the dead, states: "To address someone who neither hears nor understands is not rational, and it is close to being considered a futile act, just as Hazrat Umar (may Allah be pleased with him) said."

Qaul (123): Maulana Ali Qari states in Sharh al-Lubab regarding the greeting during visitation: "Without raising the voice, nor with complete silence, so that the purpose of making them hear, which is the Sunnah, is not lost."

Section Twelve: Regarding other types of address and speech to the people of the graves, besides the greeting.

Qaul (124 to 127): In Mansak Mutawassit, Maslak Mutaqassit, Ikhtiyar Sharh Mukhtar, and Fatawa 'Alamgiri it is mentioned: "The wording is from the latter two because they are more detailed." (T) That after visiting the Master of the Universe (peace and blessings of Allah be upon him), one should step back a hand-breadth to be opposite the noble head of Siddiq al-Akbar (may Allah be pleased with him) and after saluting him, say: "May Allah reward you on our behalf better than any leader was rewarded on behalf of his nation."

Footnotes: 1. Sharh al-Sudur, Chapter on Visiting Graves, Khilafat Academy Mingora, Swat, p. 94. 2. Minhaj by Nawawi, Commentary on Sahih Muslim with Muslim, Chapter on showing the deceased their place in Paradise and Hell etc., Qadimi Kutub Khana Karachi, 2/387. 3. Al-Taysir Sharh al-Jami' al-Saghir, under 'Whoever visits the grave of his parents' etc., Maktaba al-Imam Shafi'i, Riyadh, Saudi Arabia, 2/420. 4. Madarij al-Nubuwwah, Section on the hour of the deceased, Nooriya Razawiyya Sukkur, 2/95. 5. Maslak Mutaqassit with Irshad al-Sari, Chapter on visiting the Master

of the Messengers (peace and blessings of Allah be upon him), Dar al-Kitab al-Arabi Beirut, p. 338.

Page 779 of 948

• समझने वालों को संबोधित करते हैं।

कौल (120): इमाम अल्लामा नववी मिन्हाज में मुर्दों के सुनने के बारे में इमाम काज़ी अयाज़ का कथन उद्धृत करने के बाद कहते हैं: "यही स्पष्ट और चयनित विचार है, जिसे कब्रों पर सलाम करने की हदीसें अनिवार्य करती हैं।"

कौल (121): अल्लामा मुनावी ने इसी बात पर दलील इस प्रकार दी है: "बेशक, ऐसे व्यक्ति को सलाम करना जो महसूस न कर सके असंभव है," यानी जो न समझे उस पर सलाम करना बिल्कुल तर्कसंगत नहीं है।

कौल (122): शेख मुहक़्क़िक़ मदारीजुन नुबुव्वह में हदीस से मृतकों को सलाम करने का उल्लेख करते हुए फ़रमाते हैं: "किसी ऐसे व्यक्ति को संबोधित करना जो न सुनता हो और न समझता हो, तर्कसंगत नहीं है, और यह व्यर्थ कार्यों की श्रेणी में गिने जाने के करीब है, जैसा कि हज़रत उमर (रज़ियल्लाहु अन्हु) ने फ़रमाया।"

कौल (123): मौलाना अली क़ारी शरह अल-लुबाब में ज़ियारत के दौरान सलाम के बारे में फ़रमाते हैं: "न तो आवाज़ को बहुत ऊंचा करें और न ही पूरी तरह धीरे, ताकि सुनाना—जो कि सुन्नत है—छूट न जाए।"

बारहवाँ अध्याय: कब्र वालों से सलाम के अलावा अन्य प्रकार के संबोधन और बातचीत के बारे में।

कौल (124 से 127): मन्सिक मुतवस्सित, मसलक मुतक़स्सित, इख्तियार शरह मुख़्तार और फ़तावा आलमगीरी में है: "शब्द बाद के दो स्रोतों के हैं क्योंकि वे अधिक विस्तृत हैं।" (त) कि सैयदे आलम (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) की ज़ियारत के बाद एक हाथ पीछे हटकर सिद्दीक़े अकबर (रज़ियल्लाहु अन्हु) के पावन सिर के सामने खड़े हों और सलाम के बाद यह अर्ज़ करें: "अल्लाह तआला आपको हमारी ओर से वह श्रेष्ठ बदला और मुआवज़ा दे जो एक इमाम को उसकी उम्मत की ओर से दिया जाता है।"

फुटनोट्स: 1. शरह अल-सुदूर, कब्रों की ज़ियारत का अध्याय, खिलाफ़त एकेडमी मिंगोरा, स्वात, पृ. 94 2. मिन्हाज लिल-नववी शरह सहीह मुस्लिम, मुर्दे को जन्नत और जहन्नम में उसका ठिकाना

दिखाए जाने का अध्याय आदि, क़दीमी कुतुब खाना कराची, 2/387 3. अत-तयसीर शरह अल-जामि' अस-सगीर, 'जो अपने माता-पिता की कब्र की ज़ियारत करे' के तहत, मकतबा अल-इमाम शाफ़ई रियाद सऊदी अरब, 2/420 4. मदारीजुन नुबुव्वह, मैयत के वक़्त का अध्याय, नूरय्यह रज़विया सुक्कुर, 2/95 5. मसलक मुतक़स्सित मअ इरशादुस सारी, सैयदुल मुरसलीन (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) की ज़ियारत का अध्याय, दारुल किताब अल-अरबी बेरूत, पृ. 338

من یسمع و یعقل - ۱ / سمجھنے والوں سے خطاب کرتے ہیں۔ قول (۱۲۰): امام علامہ نووی منہاج میں امام قاضی عیاض کا قول درباره سماع موتیٰ نقل کر کے فرماتے ہیں: ھو الظاھر المختار الذی یقتضیه احادیث السلام علی القبور - ۲ / یہی ظاہر و مختار ہے جسے سلامِ قبور کی حدیثیں اقتضاء کرتی ہے۔

قول (۱۲۱): علامہ مناوی نے اسی امر پر دلیل یوں نقل فرمائی ہے: فان السلام علی من لا یشعر محال کہ جو نہ سمجھے اس پر سلام اصلاً معقول نہیں۔

قول (۱۲۲): شیخ محقق مدارج النبوۃ میں سلامِ اموات کو حدیث سے نقل کر کے فرماتے ہیں: خطاب با کسی کہ نہ شنود و نہ فہمد معقول نیست، و نزدیک ست کہ شمار کردہ شود از قبیلہ عبث چنانچہ عمر رضی اللہ تعالیٰ عنہ گفت - ۴ / جو نہ سنے نہ سمجھے اس سے خطاب معقول نہیں اور قریب ہے کہ عبث کے دائرے میں شمار ہو جیسا کہ حضرت عمر رضی اللہ تعالیٰ عنہ نے فرمایا۔ (ت)

قول (۱۲۳): مولانا علی قاری شرح اللباب میں درباره سلامِ زیارت میں فرماتے ہیں: من غیر رفع صوت ولا اخفاء بالمرۃ لفوت الاسماع الذی ھو السنۃ - ۵ / نہ بلند آواز سے ہو نہ بالکل آہستہ جس میں سنانا کہ سنت ہے فوت ہو جائے۔

فصل دوازدہم: اہل قبور سے سوائے سلام اور انواعِ خطاب و کلام میں، قول (۱۲۴ تا ۱۲۷): منسک متوسط و مسلک متقسط و اختیار شرح مختار و فتاوٰی عالمگیری میں ہے: واللفظ للاخیرین فانه ابسط (الفاظ اخیرین کے ہیں اس لیے کہ یہ زیادہ مبسوط ہیں۔ ت) کہ بعد زیارت سید عالم صلی اللہ تعالیٰ

علیہ وسلم ہاتھ بھر ہٹ کر سرِ اقدس صدیقِ اکبر رضی اللہ تعالیٰ عنہ کے مقابل ہو اور بعد سلام عرض کرے: جزاك الله عنا افضل ما جزى اماما عن امته / آپ کو اللہ تعالیٰ ہم سے جزا و عوض نیک دے بہتر

حواشی: ۱۔ شرح الصدور باب زیارة القبور خلافت اکیڈمی منگورہ سوات ص ۹۴ ۲۔ منهاج للنووی شرح صحیح مسلم مع مسلم باب عرض مقعد المیت من الجنۃ والنار الخ قدیمی کتب خانہ کراچی ۲/ ۳۸۷ ۳۔ التیسیر شرح الجامع الصغیر تحت من زار قبر ابویه الخ مکتبة الامام شافعي الریاض السعودیه ۲/ ۴۲۰ ۴۔ مدارج النبوة فصل در ساعت میت نوریہ رضویہ سکھر ۹۵/ ۲ ۵۔ مسلك متقسط مع ارشاد الساری باب زیارة سید المرسلین صلی اللہ تعالی علیه وسلم دار الکتاب العربی بیروت ص ۳۳۸

[Arabic]: ...for that compensation which is granted to someone from the Ummah of their Prophet. Indeed, you represented the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) with the best caliphate and walked on the path and way of the Messenger in the best manner. You fought against the people of apostasy and innovations, you adorned Islam, you practiced joining of ties, you were always a speaker of truth and a supporter for its people until certainty (death) came to you.[1] [Urdu]: ...for that compensation which is granted to someone from the Ummah of their Prophet. Indeed, you represented the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) with the best caliphate and walked on the path and way of the Messenger in the best manner. You fought against the people of apostasy and innovation, you gave adornment to Islam, you practiced joining of ties, you were always a witness for truth and a helper for the people of truth until death came to you.

Then move back and face the blessed grave of Hazrat Umar Farooq (may Allah be pleased with him) and after greeting him, say:

[Arabic]: May Allah reward you on our behalf with the best reward, and be pleased with the one who made you his successor. Indeed, you helped Islam and the Muslims in life and in death. You looked after orphans, joined ties of kinship, and Islam gained strength through you. You were a pleasing leader for Muslims, a guided guide. You gathered their scattered affairs, enriched their poor, and healed their broken-hearted.[2] [Urdu]: May Allah Almighty give you a better reward and be pleased with the one who made you caliph, i.e., Siddiq Akbar (may Allah be pleased with him), for you helped Islam and Muslims in both life and death. You supported orphans and practiced kindness. Islam gained strength from you, you became a favored leader and a guided guide for Muslims. You united their group, made their needy rich, and removed their broken-heartedness.

Similarly, many clarifications of this will be found in books of rituals (Manasik). Saying (128 to 130): Imam Khattabi said regarding Talqin (instruction to the deceased):

[Arabic]: There is no harm in it as it is nothing but the remembrance of Allah Almighty and the presentation of belief to the deceased (until the end of his saying), and all of that is good. Al-Qari mentioned it in al-Mirqat.[3] [Urdu]: There is no harm in it, for what is it but the remembrance of Allah Almighty and the presentation of belief to the deceased? These are all good (Mulla Ali Qari mentioned this in Mirqat. - Translator).

Similarly mentioned in Majma' al-Bihar[4] below.

[Footnotes] [1] Fatawa Hindiyyah, Section on Visiting the Prophet (PBUH), Noorani Kutub Khana Peshawar, 1/266. [2] Fatawa Hindiyyah, Section on Visiting the Prophet (PBUH), Noorani Kutub Khana Peshawar, 1/266. [3] Mirqat al-Mafatih, citing al-Khattabi, Chapter on Affirmation of the Punishment of the Grave, Hadith 133, Al-Maktabah al-Habibiyyah Quetta, 1/356. [4] Takmilla Majma' al-Bihar under the word 'thabat', Munshi Nawal Kishore Lucknow, p. 25.

[अरबी]: ...उनके नबी की उम्मत से, और वास्तव में उन्होंने उन्हें सबसे अच्छे उत्तराधिकारी के साथ बनाया और उनके मार्ग और पद्धति पर सबसे अच्छे तरीके से चले। आपने धर्मत्याग और नवाचार के लोगों से युद्ध किया, इस्लाम को तैयार किया, नातेदारी के रिश्तों को जोड़ा, और आप सच्चाई बोलने वाले और उसके लोगों के समर्थक बने रहे जब तक कि आपको निश्चितता (मृत्यु) नहीं आ गई।[1] [उर्दू]: उस मुआवजे के लिए जो किसी को उसके नबी की उम्मत से प्रदान किया गया हो। वास्तव में आपने नबी (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) की सर्वोत्तम खिलाफत के साथ प्रतिनिधित्व किया और हुज़ूर के रास्ते और तरीके पर बेहतरीन तरीके से चले, आपने धर्मत्याग और बिदअत (नवाचार) के लोगों से युद्ध किया, आपने इस्लाम को संवारा, आपने सिला-ए-रहम (नातेदारी निभाना) किया, आप हमेशा हक के गवाह और हक वालों के मददगार रहे यहाँ तक कि आपको मौत आई।

फिर हटकर हज़रत उमर फ़ारूक़ (रज़ियल्लाहु अन्हु) की मुबारक कब्र के सामने हों और सलाम के बाद अर्ज करें:

[अरबी]: अल्लाह हमारी ओर से आपको सबसे अच्छा बदला दे, और उस व्यक्ति से प्रसन्न हो जिसने आपको अपना उत्तराधिकारी बनाया। वास्तव में, आपने जीवन और मृत्यु में इस्लाम और मुसलमानों की मदद की। आपने अनाथों की देखभाल की, नातेदारी के रिश्तों को जोड़ा, और इस्लाम ने आपके माध्यम से शक्ति प्राप्त की। आप मुसलमानों के लिए एक संतोषजनक नेता और एक निर्देशित मार्गदर्शक थे। आपने उनके बिखरे हुए मामलों को इकट्ठा किया, उनके गरीबों को समृद्ध किया, और उनके टूटे हुए दिलों को जोड़ा।[2] [उर्दू]: अल्लाह तआला आपको बेहतर बदला दे और उनसे राजी हो जिन्होंने आपको खलीफा बनाया यानी सिद्दीक़-ए-अकबर (रज़ियल्लाहु अन्हु) कि आपने अपनी जिंदगी और मौत दोनों हाल में इस्लाम और मुस्लिमों की मदद फरमाई, आपने यतीमों की कफ़ालत और रहम का सिला किया। इस्लाम ने आपसे कुव्वत पाई, आप मुसलमानों के पसंदीदा पेशवा और रहनुमा राहयाब हुए, आपने उनका जत्था बांधा और उनके मोहताजों को ग़नी कर दिया और उनकी शिकस्ता दिली दूर फरमाई।

इसी तरह मनासिक की किताबों में इसकी बहुत सी तशरीह (स्पष्टीकरण) मिलेंगी। कथन (128 से 130): इमाम खत्ताबी ने तल्कीन के बारे में फरमाया:

[अरबी]: इसमें कोई बुराई नहीं है क्योंकि यह अल्लाह तआला के ज़िक्र और मृतक को विश्वास की प्रस्तुति के अलावा कुछ नहीं है (उनके कहने के अंत तक), और वह सब अच्छा है। अल-क़ारी ने इसे अल-मिरक़ात में उल्लेख किया है।[3] [उर्दू]: इसमें कुछ हर्ज नहीं कि वह है क्या मगर अल्लाह तआला की याद और मय्यित पर अर्ज़-ए-एतिकाद (विश्वास प्रस्तुत करना)। ये सब खूब हैं (इसे मुल्ला अली क़ारी ने मिरक़ात में नक़ल किया। त)

बिल्कुल इसी तरह नीचे मजमा-उल-बिहार[4] में उल्लेखित है।

[पादलेख] 1. फ़तावा हिन्दिया, नबी (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) की ज़ियारत का बयान, नूरानी कुतुब खाना पेशावर, 1/266। 2. फ़तावा हिन्दिया, नबी (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) की ज़ियारत का बयान, नूरानी कुतुब खाना पेशावर, 1/266। 3. मिरक़ातुल मफ़ातीह, अल-खत्ताबी के हवाले से, कब्र के अज़ाब की पुष्टि का अध्याय, हदीस 133, अल-मकतबा अल-हबीबिया क्वेटा, 1/356। 4. तकमिला मजमा-उल-बिहार, शब्द 'थबत' के तहत, मुंशी नवल किशोर लखनऊ, पृ. 25।

[عربی]: نبیه ولقد خلقته بأحسن خلف وسلك طریقة ومنهاجه خیر مسلك وقالت اهل الردة والبدع ومهدت الاسلام و وصلت الارحام ولم تزل قائلا للحق ناصر الاهله حتی اتاك الیقین[1] ۔ [اردو]: اس عوض کا جو کسی کو اس کے نبی کی امت سے عطا فرمایا ہو بیشک آپ نے بہترین خلافت سے نبی صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کی نیابت کی اور بہترین روش سے حضور کی راہ وطریقہ پر چلے، آپ نے اہل ارتداد و بدعت سے قتال کیا، آپ نے اسلام کو آراستگی دی، آپ نے صلہ رحم فرمایا، آپ ہمیشہ حق گوا اور اہل حق کے ناصر رہے یہاں تک کہ آپ کو موت آئی۔

پھر ہٹ کر قبر مبارک حضرت عمر فاروق رضی اللہ تعالیٰ عنہ کے محاذی ہو اور بعد سلام عرض کرے۔

[عربی]: جزاك اللہ عنا افضل الجزاء ورضی عمن استخلفك فقد نصرت للاسلام والمسلمین حیًا ومیتًا فكفلت الایتام و وصلت الارحام وقوی بك الاسلام و كنت للمسلمین اماماً مرضیاً وهادیاً مهدیا جمعت شملهم واغنیت فقیرهم وجبرت كسیرهم[2] ۔ [اردو]: اللہ تعالیٰ نے آپ کو بہتر بدلہ دے اور ان سے راضی ہو جنہوں نے آپ کو خلیفہ کیا یعنی صدیق اکبر رضی اللہ تعالیٰ عنہ کہ آپ نے اپنی زندگی اور موت دونوں حال میں اسلام و مسلمین کی مدد فرمائی، آپ نے یتیموں کی کفالت اور رحم کا صلہ کیا۔ اسلام نے آپ سے قوت پائی، آپ مسلمانوں کے پسندیدہ پیشوا اور رہنماراہ یاب ہوئے آپ نے ان کا جتھا باندھا اور ان کے محتاجوں کو غنی کر دیا اور ان کی شکستہ دلی دُور فرمائی۔

اسی طرح کتب مناسک میں بہت تصریحیں اس کی ملیں گی۔ قول (۱۲۸ تا ۱۳۰): امام خطابی نے درباره تلقین فرمایا:

[عربی]: لاباس به اذلیس فیه الا ذکر الله تعالی و عرض الاعتقاد علی المیت (الی قوله) وکل ذلك حسن، نقله القاری في المرقاة[3] ۔ [اردو]: اس میں کچھ حرج نہیں کہ وہ ہے کیا مگر اللہ تعالیٰ کی یاد اور میت پر عرض اعتقاد۔ یہ سب خوب ہیں (اسے ملا علی قاری نے مرقاۃ میں نقل کیا۔ ت)

بعینہ اسی طرح ذیل مجمع البحار[4] میں مذکور۔

[حواشی] [1] فتاوٰی ہندیہ مطلب زیارہ النبی صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم نورانی کتب خانہ پشاور ۱/ ۲۶۶ [2] فتاوٰی ہندیہ مطلب زیارہ النبی صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم نورانی کتب خانہ پشاور ۱/ ۲۶۶ [3] مرقاۃ المفاتیح بحوالہ الخطابی باب اثبات عذاب القبر حدیث ۱۳۳ المکتبۃ الحبیبیہ کوئٹہ ۱/ ۳۵۶ [4] تکملہ مجمع البحار تحت لفظ ثبت منشی نولکشور لکھنئو ص ۲۵

Fatawa Razawiyya, Volume 9

Allah, the Mighty, the Forgiving, is sufficient for us, and may Allah Almighty send peace and blessings upon our Master and Lord Muhammad, his family, and his companions until the Day of Resurrection. (T)

Section Thirteen: Regarding instructing the deceased (Talqeen) after burial and reminding them of the beliefs of Islam. This section is a sub-type of the twelfth section, as it also involves addressing and speaking to the deceased other than salutations and oaths, as is not hidden (T). Here, I will only list the sayings of the Hanafi scholars, as the Shafi'is are almost all proponents of Talqeen, except those whom Allah wills.

Quotes (131 to 133): Imam Zahid Saffar, in his esteemed book 'Talkhis al-Adilla', clarified that 'instructing the dead (Talqeen) is the way of the Ahl al-Sunnah, and the prohibition of Talqeen is based on the Mu'tazilite doctrine, for they consider the deceased to be inanimate objects'. Imam Hakim Shahid in 'Al-Kafi' and Imam Khabbazi in 'Al-Khabbaziyyah' quoted from them:

Left (Arabic): This (i.e., the prohibition of Talqeen) is according to the Mu'tazilite school because, to them, reviving after death is impossible. However, according to the Ahl al-Sunnah, the Hadith of Talqeen ('Instruct your dying ones to say: There is no god but Allah...') is taken in its literal sense. For Allah Almighty brings the dead back to life as mentioned in the reports. It has been narrated from him (peace and blessings be upon him) that he ordered Talqeen after burial, etc. This was mentioned in 'Radd al-Muhtar' citing 'Mi'raj al-Dirayah'.

Right (Urdu): Prohibition of Talqeen is the creed of the Mu'tazila because, to them, reviving after death is impossible. However, according to the Ahl al-Sunnah, the Hadith of Talqeen (teach your dead ones 'La ilaha illa Allah') is taken in its true sense. For Allah Almighty brings the dead back to life as mentioned in the Hadith. It has also been narrated from the Holy Prophet (peace and blessings be upon him) that he ordered Talqeen after burial, etc. This was mentioned in 'Radd al-Muhtar' citing 'Mi'raj al-Dirayah'. (T)

Quotes (134 to 135): In 'Durr al-Mukhtar', from 'Jawharah al-Nayyirah': 'Indeed it is prescribed (mashru') according to the Ahl al-Sunnah'. Undoubtedly, Talqeen is prescribed according to the Ahl al-Sunnah.

Quote (136): In 'Nihayah', a commentary on 'Hidayah', it is stated:

1. Radd al-Muhtar citing Al-Khabbaziyyah, topic on Talqeen after death, Idara al-Tiba'ah al-Misriyyah, Egypt, 1/517.
2. Durr al-Mukhtar, Chapter of Funeral Prayer, Matba' Mujtaba'i, Delhi, 1/119.

फ़तावा रज़विया, खंड नौ

हमें इज़्ज़त और मग़फ़िरत (क्षमा) वाला ख़ुदा काफ़ी है और अल्लाह तआला हमारे आका व मौला हज़रत मुहम्मद और उनकी आल व अस्हाब पर क़यामत तक दुरूद व रहमत भेजे। (त)

तेरहवीं फ़स्ल (अनुभाग): मय्यत को दफ़्न करने के बाद तलक़ीन (निर्देश) करने और उसे इस्लाम के अक़ाइद (आस्था) याद दिलाने के बारे में। यह फ़स्ल बारहवीं फ़स्ल की एक उप-श्रेणी है क्योंकि इसमें भी मय्यत को सलाम और शपथ के अलावा संबोधित करना और बात करना है, जैसा कि छुपा नहीं है (त)। मैं यहाँ केवल हनफ़ी विद्वानों के कथनों को गिनूँगा क्योंकि शाफ़ई विद्वान तो पूर्ण रूप से तलक़ीन के समर्थक हैं, सिवाय उनके जिन्हें अल्लाह चाहे।

कथन (131 से 133): इमाम ज़ाहिद सफ़ार ने प्रतिष्ठित पुस्तक 'तल्ख़ीस अल-अदिल्ला' में स्पष्ट किया है कि 'मुर्दों को तलक़ीन करना अहले सुन्नत का मार्ग है, और तलक़ीन की मनाही मोतज़िला पंथ पर आधारित है क्योंकि वे मय्यत को निर्जीव वस्तु मानते हैं'। इमाम हाकिम शहीद ने 'अल-काफ़ी' में और इमाम ख़ब्बाज़ी ने 'अल-ख़ब्बाज़िया' में उनसे उद्धृत किया:

अरबी पाठ: यह (अर्थात तलक़ीन की मनाही) मोतज़िला पंथ के अनुसार है क्योंकि उनके निकट मृत्यु के बाद जीवित करना असंभव है, लेकिन अहले सुन्नत के निकट तलक़ीन की हदीस (अपने मुर्दों को ला इलाहा इल्लल्लाह सिखाओ) अपने वास्तविक अर्थों में ली गई है। क्योंकि अल्लाह तआला मुर्दे को जीवित कर देता है जैसा कि हदीस में आया है और हुज़ूर सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम से यह भी वर्णित है कि सरकार ने दफ़्न के बाद तलक़ीन का हुक्म दिया आदि। इसे 'रद्दुल मुहतार' में 'मेराजुद दरायह' के हवाले से ज़िक्र किया गया।

उर्दू अनुवाद: तलक़ीन से ममानत (मनाही) मोतज़िला का मज़हब (पंथ) है इसलिए कि मौत के बाद ज़िंदा करना उनके नज़दीक मुहाल (असंभव) है लेकिन अहले सुन्नत के नज़दीक हदीसे तलक़ीन (अपने मुर्दों को ला इलाहा इल्लल्लाह सिखाओ) अपने हक़ीक़ी (वास्तविक) मानी पर महमूल है (ली गई है) इसलिए कि अल्लाह तआला मुर्दे को ज़िंदा फ़रमा देता है जैसा कि हदीस में वारिद (वर्णित) है और हुज़ूर सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम से यह भी मरवी है कि सरकार ने दफ़्न के बाद तलक़ीन का हुक्म दिया अल-ख़ (आदि)। इसे रद्दुल मुहतार में मेराजुद दरायह के हवाले से ज़िक्र किया। (त)

कथन (134 से 135): 'दुर्रे मुख़्तार' में 'जौहरा नय्यिरा' से है: 'बेशक यह अहले सुन्नत के निकट जायज़ (मशरू) है'। निस्संदेह अहले सुन्नत के निकट तलक़ीन जायज़ है।

कथन (136): 'निहाया' जो 'हिदाया' की व्याख्या है, में है:

1. रद्दुल मुहतार, अल-ख़ब्बाज़िया के हवाले से, मृत्यु के बाद तलक़ीन का विषय, इदारा अल-तिबा'ह अल-मिसरिया, मिस्र, 1/517।
2. दुर्रे मुख़्तार, जनाज़ा की नमाज़ का अध्याय, मतबा मुजतबाई, दिल्ली, 1/119।

पृष्ठ 781 का 948

فتاوی رضویہ جلد نہم

وحسبنا اللہ العزیز الغفور وصلی اللہ تعالی علی سیدنا ومولانا محمد وآلہ وصحبہ الی یوم النشور۔ ہمیں عزت ومغفرت والا خدا کافی ہے اور اللہ تعالیٰ ہمارے آقا ومولا حضرت محمد اور ان کی آل واصحاب پر تا حشر درود و رحمت بھیجے۔ (ت)

فصل سیز دہم: بعد دفن میت کو تلقین اور اسے عقائد اسلام یاد دلانے میں، یہ فصل فصلِ دواز دہم کی ایک صنف ہے کہ اس میں بھی میت سے سوائے سلام اور قسم کا خطاب وکلام ہے کما لا یخفی (جیسا کہ مخفی نہیں ہے۔ت) میں یہاں صرف علمائے حنفیہ کے اقوال شمار کروں گا کہ شافعیہ تو قاطبۃً قائلِ تلقین ہیں الا من شاء اللہ۔

قول (۱۳۱ تا ۱۳۳) : امام زاہد صفار نے کتاب مستطاب تلخیص الادلہ میں تصریح فرمائی کہ "تلقینِ موتیٰ مسلکِ اہلسنت ہے اور منعِ تلقین مذہبِ معتزلہ پر مبنی کہ وہ میت کو جماد مانتے ہیں، امام حاکم شہید نے کافی اور امام خبازی نے خبازیہ میں ان سے نقل فرمایا:

ان ھذا (اي منع التلقین) علی مذھب المعتزلۃ لان الاحیاء بعد الموت عندھم مستحیل، اما عند اھل السنہ فالحدیث ای لقنوا واتاکم لا الہ الا اللہ محمد علی حقیقۃ۔ لان اللہ تعالی یحییہ علی ماجائت بہ الاثارت وقدر وی عنہ علیہ الصلوٰۃ والسلام انہ امر بالتلقین بعد الدفن الخ ذکرہ فی ردالمحتار عن معراج الدارایۃ۔

تلقین سے ممانعت معتزلہ کا مذہب ہے اس لیے کہ موت کے بعد زندہ کرنا ان کے نزدیک محال ہے لیکن اہلسنت کے نزدیک حدیثِ تلقین (اپنے مردوں کو لا الہ الا اللہ سکھاؤ) اپنے حقیقی معنی پر محمول ہے اس لیے کہ اللہ تعالیٰ مُردے کو زندہ فرما دیتا ہے جیسا کہ حدیث میں وارد ہے اور

حضور صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم سے یہ بھی مروی ہے کہ سرکار نے دفن کے بعد تلقین کا حکم دیا الخ۔ اسے ردالمحتار میں معراج الدرایہ کے حوالے سے ذکر کیا۔ (ت)

قول (۱۳۴ تا ۱۳۵): در مختار میں جوہرہ نیرہ سے ہے: انہ مشروع عند اھل السنۃ بیشک تلقین اہل سنت کے نزدیک مشروع ہے۔ قول (۱۳۶): نہایہ شرح ہدایہ میں ہے:

1 ردالمحتار بحوالہ الخبازیۃ مطلب في تلقین بعد الموت ادارۃ الطباعۃ المصریۃ مصر ۱/۵۱۷ 2 در مختار باب صلوۃ الجنازۃ مطبع مجتبائی دہلی ۱/۱۱۹

Volume 9 Fatawa Razawiyya

How can it [Talqin] not be performed when it was narrated from him, peace and blessings be upon him, that he ordered Talqin (instruction) after burial. (1) | Why should Talqin not be performed when it is narrated from the Prophet, peace and blessings of Allah be upon him, that the Holy Prophet, peace and blessings of Allah be upon him, ordered Talqin after burial.

And their saying has passed in the eighth chapter that according to the Ahl al-Sunnah, Talqin is real. Statement (137 & 138): The great Imam Shams al-A'imma al-Halwani said: It is not commanded and not forbidden (2). Quoted in Al-Nihayah etc. | Neither give the command for Talqin nor forbid it. It has been quoted in Nihayah etc. (T)

In Hilya, after quoting it, he said: "Its outward appearance is that it is permissible" (3). From this statement, permissibility is evident. Statement (139): Imam Faqih al-Nafs Qazi Khan said: If Talqin does not benefit, it also does not harm, so it is permissible (4). The two mentioned individuals have narrated this. | If there is no benefit in Talqin, then there is no harm either, so it will be permissible. (The two mentioned gentlemen have stated this).

And it is obvious that the negation of benefit is by way of condescension. Statement (140 to 143): The author of Ghiyath states: Indeed, I heard my teacher Qazi Khan narrating from Imam Zahir al-Din that he instructed (performed Talqin for) some of the Imams and bequeathed to me to perform his Talqin, so I performed his Talqin, so it is permissible (5). Quoted in Sharh al-Niqaya. | I heard my teacher Qazi Khan that he was narrating from the Great Imam Zahir al-Din Marghinani that some Imams performed Talqin and bequeathed to me to perform his Talqin, so I performed his Talqin, so permissibility is established. (This was quoted in Sharh al-Niqaya. (T))

---

1. Al-Binaya fi Sharh al-Hidaya, Chapter on Funerals, Al-Maktaba al-Imdadiyya, Faisalabad, Vol. 1, Part 2, p. 377
2. Al-Binaya fi Sharh al-Hidaya, on the authority of al-Halwani, Al-Maktaba al-Imdadiyya, Faisalabad, Vol. 1, Part 2, p. 377
3. Hilya al-Mahalli Sharh Munya al-Musalli
4. Al-Binaya fi Sharh al-Hidaya, on the authority of Qazi Khan, Al-Maktaba al-Imdadiyya, Faisalabad, Vol. 1, Part 2, p. 377

5. Jami' al-Rumuz, Chapter on Funerals, Maktaba Islamia Gumbad Qamus Iran 1/278

जिल्द नहम (खंड 9) फ़तावा रज़विया

कैया ला यफ़अल व क़द रुविया अन्हु अलैहिस सलातु वस सलाम अन्नहु अमरा बित-तल्कीन बा'दा दफ़्न 1 | तल्कीन क्यों न की जाए जबकि नबी सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम से मरुवी हुआ, हुज़ूर सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने बाद-ए-दफ़्न तल्कीन का हुक्म दिया।

और उनका क़ौल फ़स्ल-ए-हश्तम (आठवें अध्याय) में गुज़रा कि अहले सुन्नत के नज़दीक तल्कीन अपनी हक़ीक़त पर है। क़ौल (137 व 138): इमाम अजल शम्सुल अइम्मा हलवानी ने फ़रमाया: ला युअमरा बिही वला युनहा अन्हु 2। नक़लहु फ़िन निहाया वग़ैरहु। | तल्कीन का हुक्म न दें न इससे मना करें, इसे निहाया वग़ैरह में नक़ल किया गया। (त)

हिलिया में इसे नक़ल करके फ़रमाया: ज़ाहिरुहु अन्नहु युबाह 3 इस क़ौल से ज़ाहिर इबाहत (अनुमति) है। क़ौल (139): इमाम फ़क़ीहुन नफ़्स क़ाज़ी ख़ाँ ने फ़रमाया: इन कानत-तल्कीन ला यनफ़उ ला यज़ुर्रु अयज़न फ़-यजूज़ु 4- असरहु अल-मज़कूरान। | तल्कीन में अगर कोई नफ़ा न हो तो ज़रर भी नहीं पस जाइज़ होगी, (इसे दोनों मज़कूर हज़रात ने ज़िक्र किया है)

और ज़ाहिर है कि नफ़ी-ए-नफ़ा (लाभ का खंडन) बर-सबील-ए-तनज़्ज़ुल (सद्भाव के रूप में) है। क़ौल (140 से 143): साहिब-ए-ग़ियास फ़रमाते हैं: इन्नी समिअतु उस्ताज़ी क़ाज़ी ख़ान अन्नहु युहका अनिल इमाम ज़हीर उद्दीन अन्नहु लक्क़ना बा'ज़ल अइम्मा व अवसानी बित-तल्कीनीही फ़-लक्क़न्तुहु फ़-यजूज़ु 5। नक़लहु फ़ी शरहिन नक़ाया। | मैंने अपने उस्ताज़ क़ाज़ी ख़ाँ को सुना कि इमाम अजल ज़हीर उद्दीन मरग़ीनानी से हिकायत फ़रमाते थे बा'ज़ अइम्मा ने तल्कीन फ़रमाई और मुझे अपनी तल्कीन करने की वसीयत की तो मैंने उन्हें तल्कीन की, पस जवाज़ साबित हुआ। (इसे शरह नक़ाया में नक़ल किया गया। त)

---

1 अल-बिनाया फ़ी शरहिल हिदाया, बाबुल जनाइज़, अल-मक्तबतुल इमदादिया, फ़ैसलाबाद, जिल्द अव्वल, जुज़-ए-सानी, सफ़हा 377 2 अल-बिनाया फ़ी शरहिल हिदाया, ब-हवाला हलवानी, अल-मक्तबतुल इमदादिया, फ़ैसलाबाद, जिल्द अव्वल, जुज़-ए-सानी, सफ़हा 377 3 हिलियतुल महल्ली शरह मुनियतुल मुसल्ली 4 अल-बिनाया फ़ी शरहिल हिदाया, ब-हवाला क़ाज़ी ख़ाँ, अल-मक्तबतुल इमदादिया, फ़ैसलाबाद, जिल्द अव्वल, जुज़-ए-सानी, सफ़हा 377 5 जामिउर रुमूज़, फ़स्ल फ़िल जनाइज़, मक्तबा इस्लामिया गुम्बद क़ामूस ईरान 1/278

جلد نہم فتاوی رضویہ

کیف لا یفعل وقد روی عنہ علیہ الصلوۃ و السلام انہ امر بالتلقین بعد دفن1۔ | تلقین کیونکر نہ کی جائے گی حالانکہ نبی صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم سے مروی ہوا، حضور صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم نے بعدِ دفن تلقین کا حکم دیا۔

اور ان کا قول فصل ہشتم میں گزرا کہ اہلسنت کے نزدیک تلقین اپنی حقیقت پر ہے۔ قول (۱۳۷ و ۱۳۸): امام اجل شمس الائمہ حلوانی نے فرمایا: لایؤمر بہ ولاینھی عنہ 2۔ نقلہ فی النھایۃ وغیرہ۔ | تلقین کا حکم نہ دیں نہ اس سے منع کریں، اسے نہایہ وغیرہ میں نقل کیا گیا۔ت)

حلیہ میں اسے نقل کرکے فرمایا: ظاھرہ انہ یباح 3 اس قول سے ظاہر اباحت ہے۔ قول (۱۳۹): امام فقیہ النفس قاضی خاں نے فرمایا: ان کان التلقین لاینفع لایضر ایضاً فیجوز 4- اثرہ المذکوران۔ | تلقین میں اگر کوئی نفع نہ ہو تو ضرر بھی نہیں پس جائز ہوگی، (اسے دونوں مذکور حضرات نے ذکر کیا ہے)

اور ظاہر ہے کہ نفی نفع برسبیل تنزل ہے۔ قول (۱۴۰تا۱۴۳): صاحب غیاث فرماتے ہیں: انی سمعت استاذی قاضی خان انہ یحکی عن الامام ظھیر الدین انہ لقن بعض الائمۃ واوصانی بتلقینہ فلقنتہ فیجوز 5۔ نقلہ فی شرح النقایۃ۔ | میں نے اپنے استاذ قاضی خاں کو سنا کہ امام اجل ظہیر الدین مرغینانی سے حکایت فرماتے تھے بعض ائمہ نے تلقین فرمائی اور مجھے اپنی تلقین کرنے کی وصیت کی تو میں نے انھیں تلقین کی، پس جواز ثابت ہوا۔ (اسے شرح نقایہ میں نقل کیا۔ت)

---

1 البنایہ فی شرح الہدایہ باب الجنائز المکتبہ الامدادیہ فیصل آباد جلد اول جز ثانی ص ۳۷۷ 2 البنایہ فی شرح الہدایہ بحوالہ الحلوانی المکتبہ الامدادیہ فیصل آباد جلد اول جز ثانی ص ۳۷۷ 3 حلیہ لمحلی

شرح منیۃ المصلی 4 البنایہ فی شرح الہدایہ بحوالہ قاضی خاں المکتبہ الامدادیہ فیصل آباد جلد اول جزء ثانی ص ۳۷۷ 5 جامع الرموز فصل فی الجنائز مکتبہ اسلامیہ گنبد قاموس ایران ۱/ ۲۷۸

Similarly, the author of *Haqaiq*, with the clarification 'A' (Footnote), mentioned that this *talqin* (instruction/prompting the deceased) was after burial, as quoted from the author of *Ghiyath* and as found in *Al-Hilyah*. (T) Imam Ibn Amir al-Hajj, after writing the text from *Haqaiq*, says: "Their practice benefits [the deceased] and is preferred over leaving it."[1] This discourse is beneficial regarding the commendability of *talqin*. Then, citing a Hadith as evidence, he mentions that leading scholars of Hadith like Imam Abu Amr ibn al-Salah and others consider it strengthened due to supporting evidence and the long-standing practice of the scholars of Syria, as mentioned in *Al-Maqsad al-Thani*. (As we presented in the second objective. T)

Opinion (144 and 145): It is stated in *Mudmarat*: "We practice both at the time of death and at the time of burial."[2] (This was quoted in *Al-Hindiyyah*. T)

Opinion (146): In the supplement of *Majma' al-Bihar*, it is said: "Many have agreed on *talqin*."[3] (Many scholars have a consensus on *talqin*. T)

Opinion (147): In *Nur al-Idah*, it is said: "*Talqin* in the grave is prescribed (mashru')."[4] (To perform *talqin* for the deceased is prescribed. T)

Opinion (148 and 149): Allama Tahtawi, in the marginalia of *Durr al-Mukhtar*, quoting from the book *Al-Tajnīs wa al-Mazīd*: "Performing *talqin* after death is the practice of our masters (mashaikh)."[5] (Some of our masters performed *talqin* after death. T)

Opinion (150 and 152): Quoted from *Jawahir* in *Jami' al-Rumuz*: Qadi Majd al-Din al-Kirmani was asked about it (*talqin*), and he said: "What Muslims consider good is good in the sight of Allah, and two Hadiths have been narrated regarding this."[6] (A question was asked to Qadi Majd al-Din Kirmani about *talqin*; he said whatever Muslims deem good is good near God. And he narrated two Hadiths in this regard.)

Note 'A': This meaning is derived from the word "Awsani" (bequeathed to me), but it is more explicit in this text: "Some imams performed *talqin* after burial, and he bequeathed to me to perform *talqin* for him, so I performed *talqin* after he was buried." (T)

1. *Hilyat al-Mahalli Sharh Munyat al-Musalli*
2. *Fatawa Hindiyyah* with reference to *Al-Mudmarat*, Chapter 21 on Funerals, Noorani Kutub Khana, Peshawar, 1/157

3. *Takmilah Majma' Bihar al-Anwar* under the word 'thabata', Nawal Kishore, Lucknow, p. 25
4. *Nur al-Idah*, Chapter on Rulings of Funerals, Matba' Alimi, Lahore, p. 52
5. *Hashiyat al-Tahtawi 'ala al-Durr al-Mukhtar*, Chapter on Funeral Prayer, Dar al-Ma'rifah, Beirut, 1/322
6. *Jami' al-Rumuz*, Section on Funerals, Maktaba Islamia, Gunbad Qamus, Iran, 1/279
7. *Hashiyat al-Shilbi 'ala al-Tabyin* with reference to *Al-Haqaiq*, Chapter on Funerals, Matba'ah Kubra, Bulaq, Egypt, 1/234

फ़तावा रिज़विया - जिल्द नहम (9)

इसी प्रकार साहिबे 'हक़ायक़' ने स्पष्टीकरण (टिप्पणी 'अ') के साथ कि यह तल्क़ीन दफ़्न के बाद थी, साहिबे 'ग़ियास' से नक़ल किया जैसा कि 'अल-हिल्या' में है। (त) इमाम इब्न अमीर अल-हाज हक़ायक़ की इबारत लिख कर फरमाते हैं: 'उनका इसे करना छोड़ देने से बेहतर और लाभदायक है।'[1] यह कलाम तल्क़ीन की मुस्तहब्बत (पसंदीदा होने) के लिए मुफीद है। फिर इस पर हदीस से दलील ज़िक्र करके अइम्मा-ए-मुहद्दसीन इमाम अबू अम्र बिन अल-सलाह वग़ैरह से इसका शवाहिद और शाम के उलेमा के क़दीम अमल की वजह से मज़बूत होना नक़ल करते हैं जैसा कि 'अल-मक़सद-अस-सानी' में है। (जैसा कि हमने इसे दूसरे मक़सद में पेश किया। त)

क़ौल (144 और 145): 'मुज़मरात' में है: "हम दोनों तल्क़ीनों पर अमल करते हैं, मौत के समय भी और दफ़्न के वक़्त भी।"[2] (इसे हिन्दिया में नक़ल किया गया। त)

क़ौल (146): 'ज़ैल मजमा-अल-बिहार' में है: "तल्क़ीन पर बहुतों का इत्तिफ़ाक़ है।"[3] (बहुत उलेमा का तल्क़ीन पर इत्तिफ़ाक़ है। त)

क़ौल (147): 'नूर-अल-ईज़ाह' में है: "क़ब्र में तल्क़ीन करना मशरूअ है।"[4] (मुर्दे को तल्क़ीन करना मशरूअ है। त)

क़ौल (148 और 149): अल्लामा तहतावी 'हाशिया दुर्रे मुख़्तार' में किताब 'अल-तजनीस वल-मज़ीद' से नक़ल करते हैं: "मौत के बाद तल्क़ीन करना हमारे मशाईख़ का अमल है।"[5] (हमारे बाज़ मशाईख़ ने मौत के बाद तल्क़ीन फर्माई है। त)

क़ौल (150 और 152): 'जामे-अर-रुमूज़' में 'जवाहर' से मनक़ूल है: क़ाज़ी मजदुद्दीन अल-किरमानी से इसके(तल्क़ीन के) बारे में सवाल हुआ, उन्होंने फर्माया: "जिसे मुसलमान अच्छा समझें वो अल्लाह के नज़दीक भी अच्छा है और इस बारे में दो हदीसें रिवायत कीं।"[6] (क़ाज़ी मजदुद्दीन किरमानी से तल्क़ीन के बारे में सवाल हुआ, फर्माया जो बात मुसलमान अच्छी समझें ख़ुदा के नज़दीक अच्छी है। और इस बारे में दो हदीसें रिवायत कीं।)

टिप्पणी 'अ': यह मा'नी ख़ुद लफ़्ज़ 'अवसानी' (मुझे वसीयत की) से मुस्तफ़ाद हैं मगर इसमें और ज़्यादा स्पष्ट है कि "बाज़ अइम्मा ने दफ़्न के बाद तल्क़ीन फर्माई और मुझे वसीयत की कि मैं उसे तल्क़ीन करूँ तो मैंने दफ़्न के बाद उसे तल्क़ीन की।" (त)

1. हिल्या-अल-महल्ली शरह मुन्या-अल-मुसल्ली
2. फ़तावा हिन्दिया बह्वाला अल-मुज़मरात, बाब 21 जनाज़ा, नूरानी कुतुब ख़ाना पेशावर 1/157
3. तक़मिला मजमा बिहारुल अनवार, लफ़्ज़ 'थबता' के तहत, नवल किशोर लखनऊ, पृ. 25
4. नूर अल-ईज़ाह, जनाज़ा के अहकाम का अध्याय, मतबा अलीमी लाहौर, पृ. 52
5. हाशिया अत-तहतावी अल-दुर्र अल-मुख्तार, जनाज़ा की नमाज़ का अध्याय, दार अल-मआरिफा बेरूत 1/322
6. जामे-अर-रुमूज़, जनाज़ा का खंड, मकतबा इस्लामिया, गुंबद क़ामूस, ईरान 1/279
7. हाशिया अश-शिलबी अल-तबीन बहवाला अल-हक़ायक़, जनाज़ा का अध्याय, मतबआ कुबरा बुलाक़ मिस्र 1/234

पृष्ठ 783 का 948

اسی طرح صاحب حقائق نے بتصریح عہ اس کے کہ یہ تلقین بعد دفن تھی، صاحب غیاث سے نقل کیا کما فی الحلیۃ (جیسا کہ حلیہ میں ہے۔ ت) امام ابن امیر الحاج عبارت حقائق لکھ کر فرماتے ہیں: یفیدون فعلہ راجح علی ترکہ ۱۔ یہ کلام استحباب تلقین کا مفید ہے۔ پھر اس پر حدیث سے دلیل ذکر کرکے ائمہ محدثین امام ابو عمرو بن الصلاح وغیرہ سے اس کا بوجہ شواہد و عمل قدیم علمائے شام قوت پانا نقل کرتے ہیں کما فی المقصد الثانی (جیسا کہ ہم نے اسے مقصد دوم میں پیش کیا ت) قول (۱۴۴ اور ۱۴۵): مضمرات میں ہے: نحن نعمل بھما عند الموت وعند الدفن ۲۔ نقلہ فی الھندیہ - (ہم دونوں تلقینوں پر عمل کرتے ہیں وقت نزع بھی اور وقتِ دفن بھی، اسے ہندیہ میں نقل کیا گیا۔ ت)

قول (۱۴۶): ذیل مجمع البحار میں ہے: ۱ تفق کثیر علی التلقین ۳ بہت علماء کا تلقین پر اتفاق ہے۔

قول (۱۴۷): نورالایضاح میں ہے: تلقینہ فی القبر مشروع ۴ مُردے کو تلقین کرنا مشروع ہے۔ قول (۱۴۸ و ۱۴۹): علامہ طحطاوی حاشیہ در مختار میں کتاب التجنیس والمزید سے ناقل: التلقین بعد الموت فعلہ مشائخنا ۵ ہمارے بعض مشائخ نے موت کے بعد تلقین فرمائی ہے۔ قول (۱۵۰ و ۱۵۲): جامع الرموز میں جواہر سے منقول: سئل القاضی مجدا لدین الکرمانی عنہ قال ما رآہ المسلمون حسنًا فھو عند اللہ حسن و روی فی ذلک الحدیثین ۶ - (قاضی مجدالدین کرمانی سے درباره تلقین سوال ہوا، فرمایا جو بات مسلمان اچھی سمجھیں خدا کے نزدیک اچھی ہے۔ اور اس بارے میں دو حدیثیں روایت کیں۔)

عہ: یہ معنی خود لفظ اوصانی سے مستفاد مگر اس میں صریح تر ہے کہ لقن بعض الائمۃ بعد دفنہ واوصانی بتلقینہ فلقتنہ بعد ما دفن ۱۲منہ (بعض ائمہ نے بعد دفن میت کو تلقین فرمائی اور مجھے میت کو تلقین کرنے کی وصیت کی تو میں نے بعد از دفن میت کو تلقین کی ۱۲ منہ (ت)

1 حلیۃ المحلی شرح منیۃ المصلی 2 فتاوی ہندیہ بحوالہ المضمرات الباب الحادی والعشرون فی الجنائز نورانی کتب خانہ پشاور ۱/ ۱۵۷ 3 تکملہ مجمع بحار الانوار تحت لفظ ثبت نولکشور لکھنو ص ۲۵ 4 نور الایضاح باب احکام الجنائز مطبع علیمی لاہور ص ۵۴ 5 حاشیۃ الطحطاوی علی الدر المختار باب صلاۃ الجنائز دار المعرفۃ بیروت ۱/ ۳۲۲ 6 جامع الرموز فصل فی الجنائز مکتبہ اسلامیہ گنبد قاموس ایران ۱/ ۲۷۹ 7 حاشیۃ الشبلی علی التبیین بحوالہ الحقائق باب الجنائز مطبعہ کبری بولاق مصر ۱/ ۲۳۴

Fatawa Ridawiyya, Volume 9

Quote (153): It is narrated from Allama Halabi in Tahtawi’s Hashiya (marginalia) of Maraqi: Arabic: How can Talqin not be performed, while there is no harm in it, but rather it is beneficial for the deceased? Translation: Why should instruction (Talqin) not be given, whereas there is no harm in it, but rather it is for the benefit of the deceased.

Quote (154): In Kashf-ul-Ghita, it is stated: In summary, according to the requirements of the Madhhab of Ahl-e-Sunnat wa-Jama'at, Talqin is appropriate. Then, quoting the statement of Imam Saffar: Persian: It is worthy that the deceased be given instruction (Talqin). According to the Madhhab of Imam-e-Azam, it is appropriate, and whoever abandons or denies instruction holds the Madhhab of the Mu'tazilites, who say the deceased is mere inanimate matter and do not believe in the return of the soul to the grave. Translation: In the Madhhab of Imam-e-Azam, it is appropriate to give Talqin to the deceased, and whoever abandons or denies Talqin follows the belief of the Mu'tazilites, who consider the deceased as mere inanimate matter and do not believe in the restoration of the soul in the grave. (T)

Then he stated, after quoting: Persian: What is mentioned in "Al-Kafi" that “if someone dies as a Muslim, they are not in need of Talqin after death, otherwise it is of no benefit,” is incomplete. This is because despite being a Muslim, the need for Talqin to keep the heart firm remains proven, as it appears in the Hadith that after burial, the Holy Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) used to say: “Ask for forgiveness for your brother and pray for his steadfastness, for indeed at this moment he is being questioned.” until the end. Translation: The statement in "Al-Kafi" that “if one dies in the state of Islam, they do not need instruction after death, and if not, then instruction is useless,” is incomplete. This is because despite being a Muslim, the need for Talqin to keep the heart firm is proven, as mentioned in the Hadith that after burial, the Holy Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) would say: “Seek forgiveness for your brother and pray for his steadfastness, as he is being questioned at this moment.” etc. (T)

Quote (155 & 156): Allama Zayla'i in "Tabyeen al-Haqa'iq" regarding Talqin first cited three opinions: recommended (istihbab), permissible (jawaz), and forbidden (man'), and then established the evidence for its being recommended. Indeed, reasoning (ta'leel) is the proof for preference and selection. Allama Hamid Afandi stated in

"Mughni al-Mustafti 'an Suwal al-Mufti": "This is the preferred opinion as it is supported by reasoning."

1. Hashiyat al-Tahtawi 'ala Maraqi al-Falah, Chapter on Funeral Rules, Nur Muhammad Karkhana Tijarat Kutub, Karachi, p. 306.
2. Kashf-ul-Ghita.
3. Mughni al-Mustafti 'an Suwal al-Mufti.

फ़तावा रज़विया, जिल्द 9

कौल (153): तहतावी हाशिया मराक़ी में अल्लामा हलबी से मन्कूल है: अरबी: मैय्यत के लिए तल्क़ीन क्यों न की जाए जबकि इसमें कोई नुकसान नहीं बल्कि फायदा है? तर्जुमा: तल्क़ीन क्यों न की जाएगी जबकि इसमें कोई नुकसान नहीं बल्कि मैय्यत का फ़ायदा है।

कौल (154): कश्फ़-उल-ग़िता में है: बिल-जुमला (संक्षेप में), अहल-ए-सुन्नत व जमाअत के मज़हब के मुताबिक़ तल्क़ीन मुनासिब है। फिर इमाम सफ़्फ़ार का इर्शाद कि: फ़ारसी: मैय्यत को तल्क़ीन किया जाना ही बेहतर है। इमाम-ए-आज़म के मज़हब के मुताबिक़ यह मुनासिब है और जो तल्क़ीन नहीं करता और इसका इंकार करता है, वह मोतज़िला का मज़हब रखता है जो मैय्यत को महज़ बेजान चीज़ कहते हैं और क़ब्र में रूह के लौटाए जाने को नहीं मानते। तर्जुमा: मज़हब-ए-इमाम-ए-आज़म में मैय्यत को तल्क़ीन करना मुनासिब है और जो तल्क़ीन छोड़ने वाला और मुन्किर है, वह मोतज़िला का अक़ीदा रखता है जो मैय्यत को महज़ बेजान चीज़ (जमाद) कहते हैं, और क़ब्र में फिर रूह के लौटाए जाने को नहीं मानते। (त)

आगे नक़ल करके फ़रमाया: फ़ारसी: और जो कुछ 'काफ़ी' में कहा गया कि “अगर मुसलमान होकर मरा है, तो उसे मौत के बाद तल्क़ीन की ज़रूरत नहीं, वरना तल्क़ीन बेफ़ायदा है,” वह बात अधूरी है क्योंकि इस्लाम के बावजूद, दिल को मज़बूत रखने के लिए तल्क़ीन की ज़रूरत साबित है, जैसा कि हदीस में आया है कि हुज़ूर सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम दफ़्न के बाद फ़रमाते थे कि अपने भाई के लिए मग़्फ़िरत की दुआ करो और उसकी साबित-क़दमी (मज़बूती) की दुआ मांगो क्योंकि इस वक़्त उससे सवाल किया जा रहा है। तर्जुमा: वह जो 'काफ़ी' में कहा गया कि “अगर इस्लाम की हालत में मरा है तो मौत के बाद तल्क़ीन का मोहताज नहीं, और अगर ऐसा नहीं तो तल्क़ीन बेकार है,” वह बात अधूरी है क्योंकि इस्लाम होने के बावजूद, दिल को मज़बूत रखने के लिए तल्क़ीन की ज़रूरत साबित है, जैसा कि हदीस में आया है कि हुज़ूर सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम दफ़्न के बाद फ़रमाते थे कि अपने भाई के लिए बख़्शिश चाहो और उसके लिए साबित-क़दमी की दुआ करो कि इस वक़्त उससे सवाल हो रहा है। (त)

कौल (155 और 156): अल्लामा ज़ैलई ने 'तबीनुल हक़ाइक़' में तल्क़ीन के बारे में पहले मुस्तहब, फिर जायज़ और फिर मना, तीनों अक़वाल (कथन) नक़ल करके इस्तिहबाब (पसंदीदा होने) पर दलील क़ायम की। बेशक तलील (वजह देना) ही इख़्तियार और तरजीह की दलील है। अल्लामा

हामिद आफ़न्दी ने 'मुग़नी अल-मुस्तफ़्ती अन सवाल अल-मुफ़्ती' में फ़रमाया: "यही राजेह (श्रेष्ठ) है क्योंकि इसे दलील के साथ पेश किया गया है।"

1. हाशिया अत-तहतावी अला मराक़ी अल-फ़लाह, बाब अहकाम अल-जनाइज़, नूर मुहम्मद कारख़ाना तिजारात कुतुब, कराची, पेज 306.
2. कश्फ़-उल-ग़िता।
3. मुग़नी अल-मुस्तफ़्ती अन सवाल अल-मुफ़्ती।

पेज 784 ऑफ़ 948

فتاوٰی رضویہ، جلد نہم

قول (۱۵۳): طحطاوی حاشیہ مراقی میں علامہ حلبی سے منقول: کیف لایفعل مع انه لاضرر فیه بل فیه نفع للمیت ۔ تلقین کیوں نہ کی جائے گی حالانکہ اس میں کوئی نقصان نہیں بلکہ میت کا فائدہ ہے۔

قول (۱۵۴): کشف الغطاء میں ہے: بالجملہ بمقتضائے مذہب اہل سنت وجماعت تلقین مناسب پھر امام صفار کا ارشاد کہ: سزاوار آن ست کہ تلقین کردہ شود میت۔ بر مذہب امام اعظم و ہر کہ تلقین نمی کند و نمی گوید بآں پس او بر مذہب اعتزال ست کہ گویند میت جماد محض است و روح در قبر معاد نمی شود۔ مذہب امام اعظم میں میت کو تلقین مناسب ہے اور جو تلقین کا تارک اور منکر ہے وہ معتزلہ کا مذہب رکھتا ہے جو میت کو جمادِ محض کہتے ہیں، اور قبر میں پھر روح کا اعادہ نہیں مانتے۔ (ت)

نقل کر کے فرمایا: وانچہ در کافی گفت کہ اگر مسلمان مُردہ است، محتاج نیست بسوئے تلقین وے بعد از موت و گرنہ فائدہ نمی کند نا تمام است چہ باوجود اسلام احتیاج بسوئے تلقین برائے ثابت داشتن دل باقی ست چنانچہ در حدیث آمدہ کہ آنحضرت صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم بعد از دفن فرمودی استغفار کنید برا در خود را و سوال کنید برائے وے تثبت رابدرستیکہ الان سوال کردہ می شود از وے الی آخرہ۔ وہ جو کافی میں کہا کہ "اگر بحالتِ اسلام مرا ہے تو وہ موت کے بعد تلقین کا محتاج نہیں، اور اگر ایسا نہیں تو تلقین بے سود ہے" ناتمام ہے اس لیے کہ اسلام کے باوجود، دل کو ثابت رکھنے کے لیے تلقین کی حاجت ثابت ہے، جیسا کہ حدیث میں آیا ہے کہ حضور صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم دفن کے بعد فرماتے اپنے بھائی کے لیے استغفار کرو اور اس کے لیے ثابت قدمی کی دعا کرو کہ اس وقت اس سے سوال ہو رہا ہے۔ الخ (ت)

قول (۱۵۵ و ۱۵۶): علامہ زیلعی نے تبیین الحقائق میں درباره تلقین پہلے استحباب پھر جواز پھر منع تینوں قول نقل کر کے استحباب پر دلیل قائم کی اور بے شک تعلیل، دلیلِ اختیار و تحویل ہے، علامہ حامد آفندی نے مغنی المستفتی عن سوال المفتی میں فرمایا: هو المرجح اذا هو المحلی بالتعلیل (اس کی تعلیل دی گئی ہے اس لیے یہ قول راجح ہے)۔

1. حاشیۃ الطحطاوی علی مراقی الفلاح باب احکام الجنائز نور محمد کارخانہ تجارت کتب کراچی ص ۳۰۶
2. کشف الغطاء
3. مغنی المستفتی عن سوال المفتی

The reason has been explained, hence it is preferred. (T) Therefore, Allamah Shami Afandi, after quoting this statement from "Tabyin", says: The apparent deduction for the first [opinion] is his choice, meaning by establishing the evidence for the opinion of recommendation (Istihbab), it is apparent that Imam Zaylai considers this as the preferred school of thought. Allamah Shami's own words also serve as evidence for choosing the permissibility and recommendation, as he first quotes from "Mi'raj al-Dirayah" that the absence of Talqin (instruction) is the "Zahir al-Riwayah" (apparent report), then from the same "Mi'raj", referring to "Kafi" and "Khabbaziyah", he quotes the statement of Imam Saffar, then refers to "Fath" saying that they strongly supported taking the Hadith of Talqin in its literal sense. Then he brings support from "Ghunyah" that there is metaphorical use (Tajawuz) in the Hadith, but one should not refrain from Talqin because it is beneficial for the deceased. Then he inferred from Zaylai's words and kept the commentator's statement, who called the Shari'ah legitimacy of Talqin as the saying of Ahl al-Sunnah, as established and accepted. And Allah Almighty knows best.

A sublime point in completing the discourse and removing doubts: I say: And with Allah is success and through Him is the attainment of the pinnacles of investigation. A new group, in opposition to these statements, presents sayings prohibiting Talqin by way of deception and fallacy, whereas this is pure tasteless ignorance. We are not here discussing the essence of the issue of Talqin itself; rather, the purpose is that these permitting scholars accepted the perception and hearing of the dead, and this matter is certainly proven from the aforementioned statements. Just rub your eyes and see what thing the Imams considered permissible: "Talqin of the deceased". Then learn what the meanings of Talqin are: "Tafhim" and "Tazkir", i.e., making one understand and reminding, as stated in Hashiyah al-Tahtawi 'ala al-Maraqi (As it is in Hashiyah al-Tahtawi 'ala al-Maraqi al-Falah. T). Then ask any person of intellect whether "Tafhim" and "Tazkir" happen to an inanimate object and a wall or to a sensible and intelligent listener? By no means! Every sensible child knows that making one understand and reminding is absolutely inconceivable unless the addressee hears and understands. And he who believes that the addressee possesses neither intellect nor understanding nor will hear what I say, and then speaks before him with the intention of "Tafhim" and "Tazkir", he would be absolutely insane and mad. Therefore, it is certainly necessary that the Imams and scholars who favored the recommendation or permissibility of Talqin undoubtedly considered the

dead to be listeners to the speech of the living even after burial, and that was exactly the intended point. This is contrary to the opinions of prohibition, which are neither beneficial to the opponent nor harmful to us, because the reason for abandoning Talqin is not limited to the denial of understanding and hearing, from which it would be understood willy-nilly that whoever does not believe in Talqin also does not consider the deceased to be hearing and understanding. Is it not possible that the reason, according to some, is the lack of evidence, as mentioned in "Hilyah":

[1] Radd al-Muhtar, Discussion on Talqin after death, Idarat al-Tiba'at al-Misriyyah, Egypt, 1/715.

कारण स्पष्ट किया गया है, इसलिए इसी को प्राथमिकता दी गई है। (त) इसलिए अल्लामा शामी अफ़ंदी 'तब्ईन' के इस कथन को उद्धृत करने के बाद फ़रमाते हैं: पहले [विचार] के पक्ष में उनका तर्क स्पष्ट है, अर्थात अनुशंसा (इस्तिहबाब) के मत पर साक्ष्य प्रस्तुत करने से यह स्पष्ट है कि इमाम ज़ैलई इसी को पसंदीदा पंथ (मज़हब-ए-मुख़्तार) मानते हैं। अल्लामा शामी का अपना कथन भी अनुमति और अनुशंसा चुनने का प्रमाण है, कि उन्होंने 'मेराज अल-दिरयाह' से तलक़ीन (निर्देश) की अनुपस्थिति का 'ज़ाहिर अल-रवायत' होना उद्धृत किया, फिर उसी 'मेराज' से 'काफ़ी' और 'ख़ब्बाज़िया' के हवाले से इमाम सफ़्फ़ार का वह कथन उद्धृत किया, फिर 'फ़तह' का हवाला दिया कि उन्होंने तलक़ीन की हदीस को उसके वास्तविक अर्थ में लेने का पुरज़ोर समर्थन किया। फिर 'गुन्याह' से समर्थन लाए कि हदीस में रूपक (तजावुज़) है, लेकिन तलक़ीन से मना नहीं करेंगे क्योंकि यह मृतक के लिए लाभकारी है। फिर ज़ैलई के कथन से इस प्रकार निष्कर्ष निकाला और व्याख्याकार (शारह) के उस कथन को, जिसने तलक़ीन की शरीयत वैधता को अहले सुन्नत का मत कहा, स्थापित और स्वीकृत रखा। और अल्लाह तआला ही सबसे बेहतर जानता है।

कलाम (वार्ता) की पूर्णता और शंकाओं के निवारण में एक उत्कृष्ट बिंदु: मैं कहता हूँ: और अल्लाह की सहायता से ही सफलता है और उसी के माध्यम से शोध के शिखरों तक पहुँचना है। एक नया समूह इन कथनों के विरोध में छल और भ्रांति के रूप में तलक़ीन के निषेध वाले कथन प्रस्तुत करता है, जबकि यह कोरी अरुचिकर अज्ञानता है। हम यहाँ स्वयं तलक़ीन के मसले की बहस में नहीं हैं, बल्कि उद्देश्य यह है कि इन अनुमति देने वाले विद्वानों ने मृतकों के बोध और श्रवण को स्वीकार किया, और यह बात उपरोक्त कथनों से निश्चित रूप से सिद्ध है। ज़रा आँखें मलकर देखें कि इमामों ने किस चीज़ को जायज़ माना: "तलक़ीन-ए-मय्यत" (मृतक को निर्देश)। फिर यह सीखें कि तलक़ीन के अर्थ क्या हैं: "तफ़हीम" और "तज़कीर" यानी समझाना और याद दिलाना जैसा कि हाशिया अत-तहतावी अलल-मराक़ी में है (जैसा कि हाशिया अत-तहतावी अलल-मराक़ी अल-फ़लाह में है। त)। फिर किसी बुद्धिमान से पूछें कि समझाना और याद दिलाना किसी निर्जीव चीज़ या दीवार को होता है या किसी समझदार और सचेत सुनने वाले को? कतई नहीं! हर समझदार बच्चा जानता है कि समझाना और याद दिलाना तब तक कतई संभव नहीं है जब तक कि संबोधित व्यक्ति सुनता और समझता न हो। और जिसके विश्वास में यह हो कि संबोधित व्यक्ति न बुद्धि और समझ रखता है और न ही मेरी बात सुनेगा, फिर उसके सामने समझाने और याद दिलाने के इरादे से बात करे, वह निश्चित

रूप से पागल और दीवाना होगा। इसलिए यह निश्चित रूप से आवश्यक है कि जो इमाम और विद्वान तलक़ीन के अनुशंसा या अनुमति के कायल हुए, उन्होंने निस्संदेह मृतकों को दफ़न के बाद भी जीवितों की बातें सुनने वाला माना, और यही उद्देश्य था। इसके विपरीत निषेध के कथन हैं, जो न तो विरोधी के लिए लाभदायक हैं और न ही हमारे लिए हानिकारक, क्योंकि तलक़ीन को छोड़ने का कारण केवल समझ और सुनने के इनकार तक ही सीमित नहीं है, जिससे चाहो न चाहो यह समझ लिया जाए कि जो तलक़ीन को नहीं मानता, वह मृतक को सुनने और समझने वाला भी नहीं मानता। क्या यह संभव नहीं है कि इसकी वजह कुछ लोगों के नज़दीक प्रमाण का अभाव (अदम-ए-सबूत) हो, जैसा कि 'हिल्या' में है:

[1] रद अल-मुह्तार, मय्यत के बाद तलक़ीन पर चर्चा, इदारत अल-तिबात अल-मिसरिया, मिस्र 1/715.

पृष्ठ 785/948

علت بیان کی گئی ہے لہذا اسی کو ترجیح ہے۔ت) ولذا علامہ شامی آفندی تبیین کا یہ کلام نقل کر کے فرماتے ہیں : ظاہر استدلا لہ للاول اختیارہ یعنی قولِ استحباب پر دلیل قائم کرنے سے ظاہر یہی ہے کہ امام زیلعی اسی کو مذہبِ مختار جانتے ہیں اور خود علامہ شامی کا کلام اختیارِ جواز واستحباب پر دلیل ہے کہ معراج الدرایہ سے عدمِ تلقین کا ظاہر الروایۃ ہونا نقل کر کے پھر اسی معراج سے بحوالہ کافی و خبازیہ امام صفار کا وہ ارشاد نقل کیا پھر فتح کا حوالہ دیا کہ انہوں نے حدیثِ تلقین کو اپنی حقیقت پر محمول کرنے کی بہت تائید فرمائی، پھر غنیہ سے تائید لائے کہ حدیث میں تجوز ہے مگر تلقین سے منع نہ کریں گے کہ میّت کو مفید ہے، پھر زیلعی کے کلام سے یوں استظہار کیا اور شارح نے جو مشروعیتِ تلقین کو قول اہلسنت کہا اسے مقرر و مسلم رکھا، واللہ تعالٰی اعلم۔

نکتہ جلیلہ تتمیم کلام وازالہ اوہام میں اقول: وباللہ التوفیق وبہ الوصول الٰی ذری التحقیق، طائفہ جدیدہ ان اقول کے مقابل براہ تلبیس و مغالطہ منعِ تلقین کے اقوال پیش کر دیتے ہیں، حالانکہ یہ محض جہالت بے مزہ ہے، ہم یہاں نفسِ مسئلہ تلقین کی بحث میں نہیں ہیں بلکہ غرض یہ ہے کہ ان علمائے مجوزین نے ادراک و سمعِ موتی مانا، اور یہ امر اقوالِ مذکورہ سے یقیناً ثابت، ذرا آنکھیں مل کر دیکھیں کہ ائمہ نے کیا چیز جائز مانی، "تلقینِ میّت"۔ پھر یہ سیکھیں کہ تلقین کے معنی کیا ہیں، تفہیم و تذکیر یعنی سمجھانا اور یاد دلانا جیسا کہ حاشیۃ الطحطاوی علی المراقی (جیسا کہ حاشیۃ الطحطاوی علی المراقی الفلاح میں ہے۔ ت) پھر کسی ذی عقل سے پوچھیں کہ تفہیم و تذکیر جماد و دیوار کو ہوتی ہے یا سامع فہیم و ہوشیار کو؟ حاشا و کلا ہر سمجھ والا بچہ جانتا ہے کہ سمجھانا اور یاد دلانا ہر گز متصور نہیں جب تک مخاطب سنتا سمجھتا نہ ہو اور جس کے اعتقاد

میں ہو کہ مخاطب نہ عقل و فہم رکھتا ہے نہ میرا کہنا سنے، پھر اس کے آگے بقصدِ تفہیم و تذکیر بات کرے وہ قطعاً مجنون و دیوانہ ہو گا لہٰذا یقیناً واجب کہ جو ائمہ و علماء استحباب، خواہ جوازِ تلقین کے قائل ہوئے انہوں نے بلاشبہ اموات کو بعدِ دفن بھی کلامِ احیاء سننے والا مانا اور اسی قدر مقصود تھا، بخلاف اقوالِ منع کہ وہ نہارنہ مخالف کو مفید نہ ہمیں مضر کہ ترکِ تلقین کی علت کچھ انکارِ فہم و سماع ہی میں منحصر نہیں جس سے خواہی نخواہی سمجھا جائے کہ جو تلقین نہیں مانتا وہ میّت کو سمیع و فہیم بھی نہیں جانتا، کیا ممکن نہیں کہ اس کی وجہ بعض کے نزدیک عدمِ ثبوت ہو، جیسا کہ حلیہ میں ہے:

[1] ردالمحتار مطلب فی التلقین بعد الموت ادارۃ الطباعۃ المصریۃ مصر ۱ / ۷۱۵

Fatawa Razawiya, Volume 9

Text: Shaykh 'Izz ad-Din bin 'Abd al-Salam has explicitly stated it to be an innovation (bid'ah).[1] (T: Translation/Commentary) Look, Imam 'Izz ad-Din Shafi'i did not advocate for Talqeen (instruction to the deceased) because, according to him, it was an innovation. However, this is the same Imam 'Izz ad-Din whose statement was mentioned in Discourse 71, that if the dead did not understand our speech, greeting the graves (Salam) would be mere futility. Similarly, is it not possible that the reason for his opinion was the lack of benefit? In the sense that if the deceased died with faith, then the mercy of Allah is sufficient for them. By Divine guidance, they will provide the correct answer themselves.

Allah the Almighty said: "Allah keeps firm those who believe, with the firm word, in worldly life and in the Hereafter."[2] Allah the Almighty has said: Allah keeps the believers firm on the word of truth in the life of this world and in the Hereafter. (T)

And for someone who is of another kind (a disbeliever), God forbid, even if you perform Talqeen a hundred thousand times, what is the use! Look, Imam Hafiz ad-Din Nasafi (may Allah have mercy on him) based his rejection of Talqeen on this very point in 'Kafi Sharh Wafi'.

Where he said: "And prompt the testimony (Shahadah) because of the saying of the Prophet (peace and blessings be upon him): 'Prompt your dying ones with the testimony that there is no god but Allah.' This refers to those near death. It is also said that it is meant literally (i.e., for the dead), which is the opinion of Al-Shafi'i, because Allah the Almighty brings him back to life. It is narrated that the Prophet (peace be upon him) ordered the Talqeen of the deceased after burial. Some claim this is the position of Ahl al-Sunnah and the former is the position of the Mu'tazilah. However, we say there is no benefit in Talqeen after death because if he died as a believer, there is no need for it, and if he died as a disbeliever, the Talqeen will not benefit him."[3] (End, with some summarization)

His text is as follows: At the time of the death throes, remind them of the Shahadah, for the Prophet (peace and blessings be upon him) commanded: "Prompt your dying ones with the word of testimony." This refers to those who are near death. It is also said that this is in its literal sense (for the dead). This is the opinion of Imam Shafi'i, for Allah Almighty will bring him to life. It is narrated that the Prophet (peace be upon him) ordered Talqeen after burial. People say this is the Sunni path and the first one is the Mu'tazilite path. But we say there is no benefit in Talqeen after death; for if he

died in a state of faith, there is no need for Talqeen, and if he died as a disbeliever, Talqeen will not be effective. (End of summarized quote). (T)

[1] Hilyat al-Mahalli Sharh Munyat al-Musalli [2] Al-Quran 14/27 [3] Kafi Sharh Wafi

फ़तावा रज़विया, जिल्द नवीं

नस्स (स्पष्ट प्रमाण): शेख इज़्ज़ुद्दीन बिन अब्दुर सलाम ने इसके बिदअत (नवाचार) होने पर स्पष्ट रूप से लिखा है।[1] (त: अनुवाद/टिप्पणी) देखिए, इमाम इज़्ज़ुद्दीन शाफ़ई तलक़ीन (मृतक को निर्देश) के पक्ष में नहीं हुए क्योंकि उनके अनुसार यह बिदअत थी। हालाँकि, ये वही इमाम इज़्ज़ुद्दीन हैं जिनका कथन कथन 71 में गुज़रा कि अगर मुर्दे हमारी बात न समझते होते तो कब्रों पर सलाम करना मात्र व्यर्थ होता। इसी प्रकार, क्या यह संभव नहीं है कि उनकी राय का कारण लाभ का अभाव हो? इस अर्थ में कि यदि मृतक ईमान के साथ गया है, तो अल्लाह की रहमत ही उसके लिए पर्याप्त है। वह ईश्वरीय कृपा से स्वयं ही सही उत्तर देगा।

अल्लाह तआला ने फ़रमाया: "अल्लाह ईमान वालों को हक़ बात पर दुनिया की ज़िंदगी में और आख़िरत में स्थिर रखता है।"[2] अल्लाह तआला ने फ़रमाया: अल्लाह साबित रखता है ईमान वालों को हक़ बात पर दुनिया की ज़िंदगी में और आख़िरत में (त)

और जो, अल्लाह की पनाह, दूसरी तरह के(काफ़िर) हैं, उन्हें लाख तलक़ीन कीजिए क्या फ़ायदा! देखिए, इमाम हाफ़िज़ुद्दीन नफ़ी (रहमतुल्लाहि अलैहि) ने 'काफ़ी शरह वाफ़ी' में तलक़ीन का इनकार इसी पर आधारित किया।

जहाँ उन्होंने कहा: "और शहादत (गवाही) की तलक़ीन करो, क्योंकि हुज़ूर (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) का फ़रमान है: अपने मरने वालों को इस गवाही की तलक़ीन करो कि अल्लाह के सिवा कोई माबूद नहीं। इससे मुराद वे लोग हैं जो मौत के करीब हों। और कहा गया कि यह अपने वास्तविक अर्थ में है (यानी मुर्दों के लिए), जो इमाम शाफ़ई का कथन है क्योंकि अल्लाह तआला उसे जीवित कर देता है। और वर्णित है कि हुज़ूर (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने दफन के बाद मृतक को तलक़ीन करने का आदेश दिया। कुछ का दावा है कि यह अहल-ए-सुन्नत का मत है और पहला मत मोतज़िला का है। लेकिन हम कहते हैं कि मौत के बाद तलक़ीन का कोई लाभ नहीं है, क्योंकि अगर वह मोमिन होकर मरा है तो उसे तलक़ीन की कोई ज़रूरत नहीं है, और अगर काफ़िर मरा है तो तलक़ीन कोई लाभ नहीं देगी।"[3] (अंत, कुछ संक्षेपण के साथ)

उनका मूल पाठ इस प्रकार है: मृत्यु के समय शहादत की याद दिलाए क्योंकि हुज़ूर (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) का फ़रमान है: अपने मुर्दों को कलमा-ए-शहादत की तलक़ीन करो। इससे मुराद वे हैं जो मौत के करीब हों, और कहा गया कि यह अपने वास्तविक अर्थ में है। यही इमाम शाफ़ई का

कथन है। इसलिए कि अल्लाह तआला उसे जीवित कर देगा, और वर्णित है कि हुज़ूर (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने दफन के बाद तलक़ीन का हुक्म दिया, लोग कहते हैं कि यह सुन्नी मत है और पहला मोतज़िला का मत है। लेकिन हम कहते हैं कि मौत के बाद तलक़ीन का कोई फ़ायदा नहीं, इसलिए कि अगर ईमान की हालत में मरा है तो तलक़ीन की कोई ज़रूरत नहीं और अगर काफ़िर मरा है तो तलक़ीन असरदार नहीं होगी। (समाप्त, संक्षिप्त संक्षेपण के साथ)। (त)

[1] हिल्यतुल महल्ली शरह मुन्यतुल मुसल्ली [2] अल-क़ुरआन 14/27 [3] काफ़ी शरह वाफ़ी

نص الشیخ عز الدین بن عبد السلام علی انہ بدعۃ ۱۸- شیخ عزالدین بن عبدالسلام نے اس کے بدعت ہونے پر نص کی ہے۔ (ت) دیکھو امام عزالدین شافعی اس وجہ سے قائل تلقین نہ ہوئے کہ ان کے نزدیک بدعت تھی، حالانکہ یہ وہی امام عزالدین ہیں جن کا ارشاد قول ۷۱ میں گزرا کہ مُردے ہمارا کلام نہ سمجھتے ہوتے تو سلامِ قبور محض لغو تھا۔ یوں ہی کیا ممکن نہیں کہ وجہ ان کی رائے میں عدمِ فائدہ ہو بایں معنی کہ مُردہ باایمان گیا، تو خود رحمت الٰہی اسے بس ہے۔ وہ بتوفیق ربانی آپ ہی صحیح جواب دے گا۔

قال اللہ تعالی یُثَبِّتُ اللَّهُ الَّذِينَ آمَنُوا بِالْقَوْلِ الثَّابِتِ فِي الْحَيَاةِ الدُّنْيَا وَفِي الْآخِرَةِ ۲۸- اللہ تعالٰی نے فرمایا: اللہ ثابت رکھتا ہے ایمان والوں کو حق بات پر دنیا کی زندگی میں اور آخرت میں (ت)

اور جو عیاذ باللہ نوع دیگر ہے اسے لاکھ تلقین کیجئے کیا فائدہ! دیکھو امام حافظ الدین نسفی رحمۃ اللہ تعالٰی علیہ نے کافی شرح وافی میں انکارِ تلقین اسی پر مبنی کیا۔

حیث قال ولقن الشھادۃ لقولہ علیہ الصلوۃ والسلام لقنوا موتاکم شھادۃ ان لا الہ الا اللہ وارید بہ من قرب من الموت وقیل ھو مجری علی حقیقتہ وھو قول الشافعي لانہ تعالی یحییہ وقد روی انہ علیہ السلام امر بتلقین المیت بعد دفنہ و زعموا انہ مذھب اھل السنۃ والاول مذھب المعتزلہ الا ان نقول لافائدۃ بالتلقین بعد الموت لانہ مات مومناً فلا حاجۃ الیہ وان مات کافراً فلا یفید التلقین ۳۸ اھ ببعض تلخیص۔ ان کی عبارت یہ ہے: وقتِ نزع شہادت یاد دلائے اس لیے کہ حضور علیہ الصلوۃ والسلام کا فرمان ہے اپنے مردوں کو کلمہ شہادت کی تلقین کرو۔ اس سے مراد وہ ہیں جو قریب الموت ہوں، اور کہا گیا کہ یہ اپنے حقیقی معنی میں ہے۔ یہی امام شافعی کا قول ہے۔ اس لیے کہ اللہ تعالٰی اسے زندہ

کردے گا، اور مروی ہے کہ حضور صلی اللہ علیہ وسلم نے دفن کے بعد تلقین کا حکم دیا، لوگ کہتے ہیں کہ یہ مذہب اہلسنت ہے اور اول مذہب معتزلہ کا مذہب ہے۔ مگر ہم کہتے ہیں کہ موت کے بعد تلقین کا کوئی فائدہ نہیں، اس لیے کہ اگر بحالتِ ایمان مرا ہے تو تلقین کی کوئی ضرورت نہیں اور اگر کافر مرا ہے تو تلقین کارگر نہ ہوگی، اھ (ختم قدرے تلخیص کے ساتھ)۔ (ت)

1^ حلیۃ المحلی شرح منیۃ المصلی ^2 القرآن ۱۴/۲۷ ^3 کافی شرح وافی

Fatawa Razawiyya, Volume 9

Although scholars have given a sufficient answer to this doubt that we choose the first option, i.e., dying upon faith, and saying that there is no longer a need is incorrect, for that is a time of fear and terror. Our reminder and the mention of God will strengthen the heart of the deceased, provide solace, and decrease anxiety.

Allah the Almighty said: "Verily, in the remembrance of Allah do hearts find rest." [1] -

This is why the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) would command after burial to ask Allah for steadfastness for the deceased, as they are being questioned now. [2] - As mentioned in the first objective (t), we have already heard the words of Shaykh al-Islam in discourse 154, and Allama Shurunbulali states in Maraqi al-Falah:

| (The denial of any benefit by the author of al-Kafi is rejected) because there is the benefit of stabilizing the heart. Indeed, the primary benefit (bestowing faith at that time) is absent, but it is needed to strengthen and stabilize the heart for questioning in the grave. [3] (Ends. From the text of Maraqi with explanation from the Hashiya of al-Tahtawi). (t) | The denial of any benefit by the author of Kafi is not acceptable to us (because there is the benefit of providing solace and stability to the heart). Yes, the primary benefit (bestowing faith at that time) is not there, but Talqin is needed for the strengthening and stability of the heart at the time of questioning in the grave. (Ends. Text of Maraqi clarified with Hashiya of al-Tahtawi). (t) |

Allama Ibrahim Halabi's answer was also mentioned for this purpose, that there is benefit for the deceased in Talqin because his heart will find comfort in the mention of God. This humble servant says—may Allah Almighty forgive him—if they argue like this about lack of benefit, then prayer and medicine, the whole world of means, will become useless and idle, as if the achievement of the goal is in divine decree, it will be achieved anyway, otherwise what is the use? In short, when it is clear and evident that Talqin without the understanding and hearing of the deceased is impossible, and its denial is not limited to the denial of hearing, then it is certainly proven that the sayings of permissibility are based on shining proofs for our school of thought, and the sayings of abandonment and prohibition are not at all harmful. Then what can be said about presenting them against those proofs, except that it is extreme foolishness? This is an old trick of these gentlemen: whenever you present the sayings of some scholars that support an issue and rely on accepting it, and if that

issue is disputed, they immediately bring up the sayings of the other side, without seeing that...

[1] Al-Quran 13:28 [2] Mishkat al-Masabih, with reference to Abu Dawud, chapter on establishing the punishment of the grave, Matba' Mujtabai Delhi, p. 26 [3] Hashiyat al-Tahtawi 'ala Maraqi al-Falah, chapter on the rulings of funerals, Noor Muhammad Asah Karkhana Kutub Karachi, p. 307

फतावा रजविया, खंड 9

हालांकि विद्वानों ने इस संदेह का पर्याप्त उत्तर दे दिया है कि हम पहला विकल्प यानी ईमान पर मौत चुनते हैं, और यह कहना कि अब इसकी आवश्यकता नहीं है, गलत है, क्योंकि वह समय भय और आतंक का होता है। हमारी याददिहानी और खुदा के ज़िक्र से मृतक का दिल मज़बूत होगा, ढांढस बंधेगा और घबराहट कम होगी।

अल्लाह तआला ने फरमाया: "सुन लो, खुदा की याद से ही दिलों को सुकून मिलता है।" [1] -

इसीलिए नबी (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) दफनाने के बाद मृतक के लिए अल्लाह से दृढ़ता (सब्र) मांगने का हुक्म देते थे क्योंकि अब उससे सवाल होगा। [2] - जैसा कि पहले मक़सद में गुज़रा (त), शेखुल इस्लाम का कलाम कॉल 154 में सुन चुके हैं और अल्लामा शुरुनबुलानी 'मराक़ी अल-फलाह' में फरमाते हैं:

| (काफी के लेखक द्वारा किसी भी लाभ से इनकार करना अस्वीकार्य है) क्योंकि इसमें दिल को थामने और स्थिरता देने का लाभ है। हाँ, मुख्य लाभ (उस समय ईमान प्रदान करना) नहीं है, लेकिन कब्र में सवाल के समय दिल की मजबूती और स्थिरता के लिए इसकी आवश्यकता है। [3] (समाप्त। मराक़ी के पाठ से तहातावी की हशियह के स्पष्टीकरण के साथ)। (त) | काफी के लेखक द्वारा किसी भी लाभ से इनकार करना हमें स्वीकार्य नहीं है (क्योंकि इसमें दिल को थामने और स्थिरता देने का लाभ है)। हाँ, मुख्य लाभ (उस समय ईमान प्रदान करना) नहीं है, लेकिन तलक़ीन की आवश्यकता कब्र में सवाल के समय दिल की मजबूती और स्थिरता के लिए है। (समाप्त। मराक़ी का पाठ तहातावी की हशियह के स्पष्टीकरण के साथ)। (त) |

अल्लामा इब्राहिम हलबी का उत्तर भी इसी उद्देश्य के लिए गुज़रा कि तलक़ीन (निर्देश) में मृतक का लाभ है कि खुदा के ज़िक्र से उसका मन बहलेगा। यह फकीर (लेखक) कहता है—अल्लाह तआला उसे क्षमा करे—अगर वे लाभ की कमी के बारे में ऐसी ही दलीलें दें, तो दुआ और दवा, कारणों का सारा कारखाना बेकार और निष्क्रिय रह जाएगा कि अगर ईश्वरीय नियति में लक्ष्य की प्राप्ति है तो वह मिल ही जाएगी वरना क्या फायदा? संक्षेप में, जब यह स्पष्ट और ज़ाहिर है कि मृतक के समझने और सुनने के बिना तलक़ीन असंभव है, और इसका इनकार केवल सुनने के इनकार तक सीमित नहीं है, तो यह निश्चित रूप से सिद्ध है कि हमारे मज़हब (विचारधारा) पर अनुमति के कथन चमकते प्रमाणों पर आधारित हैं, और त्याग व निषेध के कथन बिल्कुल भी हानिकारक नहीं हैं। फिर उनके सामने

उन्हें पेश करना क्या कहा जाए सिवाय इसके कि यह कितनी बड़ी मूर्खता है? और यह इन साहबों की पुरानी चालाकी है कि जहाँ किसी बात को साबित करने के लिए कुछ विद्वानों के वे कथन पेश किए जाएँ जिनका आधार उस बात को मानना हो, और वह मसला मतभेद वाला हो, तो वे तुरंत दूसरी तरफ के कथन ले आते हैं, यह नहीं देखते कि...

[1] अल-कुरान 13/28 [2] मिशकात अल-मसाबीह, अबू दाऊद के संदर्भ में, कब्र के अज़ाब के सबूत का अध्याय, मतबा मुजतबाई दिल्ली, पृ. 26 [3] हाशियत अत-तहातावी अला मराक़ी अल-फलाह, जनाज़े के अहकाम का अध्याय, नूर मुहम्मद असद कारखाना कुतुब कराची, पृ. 307

اگر چہ علماء نے اس شبہ کا جواب کافی دے دیا کہ ہم شق اول یعنی موت علی ایمان اختیار کرتے ہیں، اور یہ کہنا کہ اب حاجت نہیں غیر مسلم کہ وہ وقت ہول و دہشت کا ہے ہماری تذکیر اور خدا کے ذکر سے دل میت کا قوی ہوگا، ڈھارس بندھے گی، وحشت گھٹے گی،

قال اللہ تعالٰی اَلَا بِذِکْرِ اللہِ تَطْمَئِنُّ الْقُلُوْبُ ۱- (اللہ تعالٰی نے فرمایا: سن لو خدا کی یاد سے ٹھہر جاتے ہیں دل۔)

اسی لیے نبی صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم بعد دفن حکم دیتے میت کے لیے خدا سے تثبت مانگو کہ اب اس سے سوال ہوگا۔ ۲۔ کما مر فی المقصد الاول (جیسا کہ مقصد اول میں گزرا ت) شیخ الاسلام کا کلام قول ۱۵۴ میں سن چکے اور علامہ شرنبلالی مراقی الفلاح میں فرماتے ہیں:

| (نفی صاحب الکافی فائدۃ مطلقاً ممنوع) بان فیہ فائدۃ التثبیت للجنان) نعم الفائدۃ الاصلیۃ (و ہی تحصیل الایمان فی ھذا الوقت) منتفیۃ ویحتاج الیہ لتثبیت الجنان للسوال فی القبر ۳ اہ موضحاً بحاشیۃ الطحطاوی ۔ (ت) | صاحب کافی کا مطلقاً فائدے سے انکار ہمیں تسلیم نہیں (کیونکہ اس میں دل کو ٹھہرانے اور ثبات دینے کا فائدہ ہے) ہاں فائدہ اصلیہ (اس وقت اُسے ایمان بخشنا) نہیں اور تلقین کی ضرورت قبر میں سوال کے وقت دل کی تقویت اور ثبات کے لیے ہے اہ (عبارت مراقی ختم حاشیہ الطحطاوی سے توضیح کے ساتھ) (ت) |

علامہ ابراہیم حلبی کا جواب اسی مقصد میں گزرا کہ تلقین میں میت کا فائدہ ہے کہ ذکر خدا سے اس کا جی بہلے گا، فقیر کہتا ہے غفر اللہ تعالٰی اگر عدم فائدہ میں ایسی ہی تقریر کریں تو دعاء و دوا تمام کارخانہ اسباب سب مہمل و معطل رہ جائے کہ تقدیر الٰہی میں حصولِ مراد ہے تو آپ ہی

ملے گی ورنہ کیا حاصل، غرض جب واضح و بین کہ تلقین بے فہم و سماع میت کے محال اور اس کا انکار کچھ نفی سماع میں منحصر نہیں تو یقیناً ثابت کہ اقوالِ جواز ہمارے مذہب پر دلائلِ ساطع اور اقوالِ ترک و منع اصلاً مصر نہیں پھر ان کے مقابل ان کا پیش کرنا کیا کہا جائے کہ کس درجہ کی سفاہت ہے اور یہ قدیم چالاکی ان حضرات کی ہے جہاں کسی امر کے اثبات کو بعض علماء کے وہ اقوال جن کا مبنیٰ اس امر کا ماننا ہو پیش کیجئے اور وہ مسئلہ مختلف فیہا ہو تو فوراً دوسری طرف کے قول نقل کر لائیں گے، یہ نہیں دیکھتے کہ

[1] القرآن ۲۸/۱۳ [2] مشکوٰۃ المصابیح، بحوالہ ابی داؤد باب اثبات عذاب القبر مطبع مجتبائی دہلی ص ۲۶ [3] حاشیۃ الطحطاوی علی مراقی الفلاح باب احکام الجنائز نور محمد اصح کارخانہ کتب کراچی ص ۳۰۷

Fatawa Razvia, Volume 9

What was the point of contention and which premise was the subject of reasoning? It was stated that the matter is established, hence such and such Imams based such and such a point on it. What kind of answer would it be that such and such did not accept that point? Does the denial of the basis necessitate the denial of what is based upon it? Truly, sanity of mind is a wonderful wealth which God bestows; and with Allah is the guidance. This point is worth memorizing as it reveals many clever tactics of the opponents. And Allah is the Guide.

A Beautiful Benefit in Clarifying the Issue of Talqin (Exhortation)

I say: And from Allah I seek help. Regarding the core discussion of Talqin, understand this much as a digression: even if in Zahir al-Riwayah it appears as 'it is not exhorted' (la yulaqqan) or 'it is not prescribed' (ghair mashru'), it is not determined for prohibition and impermissibility. Haven't you heard that the Imam of Mujtahidin, Burhanuddin Mahmood, related in 'Al-Dhakhirah' on the authority of Imam Muhammad bin al-Hasan, the transcriber of the school, from the Imam of the Imams, the Master of the Era, Imam-e-Azam (may Allah Almighty be pleased with them), that the prostration of gratitude (Sajdah Shukr) is not prescribed? And the scholars took its meaning as 'non-obligatory'. It is in 'Al-Ashbah':

Prostration of gratitude is permissible according to Abu Hanifah (may Allah Almighty have mercy on him), not obligatory. This is the meaning of what was narrated from him that it is not prescribed, meaning not prescribed as an obligation. End quote. This was affirmed by Allama Sayyidi Hamawi in 'Ghamz al-'Uyun' and the two eminent masters, Ahmad al-Tahtawi and Muhammad al-Shami in their glosses on 'Al-Durr'.

In my view, the statement of the Imam [Abu Hanifah] is interpreted as referring to obligation, and the statement of

According to Imam Abu Hanifah (may Allah Almighty have mercy on him), the prostration of gratitude is permissible, not obligatory. This is its meaning as narrated from the Imam that the prostration of gratitude is not prescribed, i.e., not prescribed as an obligation. End quote. This was maintained by Allama Sayyidi Hamawi in 'Ghamz al-'Uyun' and Allama Syed Ahmad Tahtawi and Allama Syed Muhammad Shami in the glosses of 'Durr-e-Mukhtar'. (T)

In my view, the statement of Imam-e-Azam is based on obligation and Imam Muhammad's statement is based on

Prostration of gratitude is permissible according to Abu Hanifah (may Allah Almighty have mercy on him), not obligatory. This is the meaning of what was narrated from him that it is not prescribed, meaning not prescribed as an obligation. End quote. This was affirmed by Allama Sayyidi Hamawi in 'Ghamz al-'Uyun' and the two eminent masters, Ahmad al-Tahtawi and Muhammad al-Shami in their glosses on 'Al-Durr'.

According to Imam Abu Hanifah (may Allah Almighty have mercy on him), the prostration of gratitude is permissible, not obligatory. This is its meaning as narrated from the Imam that the prostration of gratitude is not prescribed, i.e., not prescribed as an obligation. End quote. This was maintained by Allama Sayyidi Hamawi in 'Ghamz al-'Uyun' and Allama Syed Ahmad Tahtawi and Allama Syed Muhammad Shami in the glosses of 'Durr-e-Mukhtar'. (T)

Muhammad as referring to permissibility and recommendation. Thus, both statements are acted upon: a prostration of gratitude is not obligatory for every blessing, as Imam Abu Hanifah stated, but it is permissible to perform a prostration of gratitude at the time of joy for a blessing or when a blessing is remembered, so he thanks for it with prostration, and it is not outside the bounds of...

permissibility and recommendation. Thus, both statements will be acted upon: a prostration of gratitude is not obligatory for every blessing as is the statement of Imam Abu Hanifah, but when there is joy from any blessing, it is permissible to perform a prostration of gratitude, similarly when a blessing is remembered, to perform a prostration in gratitude for it, this is from the circle of recommendation...

1 Al-Ashbah wal-Nazair, differences in prostration of recitation, Idarat al-Qur'an Karachi 2/64

फ़तावा रज़विया, जिल्द नौ (9)

विवाद का बिंदु क्या था और तर्क का विषय कौन सा प्रस्ताव है? यह कहा गया था कि मामला स्थापित है, इसलिए फलां-फलां इमामों ने इस पर फलां बात आधारित की। इसका यह क्या जवाब होगा कि फलां-फलां ने वह बात नहीं मानी? क्या आधार का इनकार, उस पर आधारित वस्तु के इनकार को आवश्यक बनाता है? वास्तव में, बुद्धि की सलामती एक अद्भुत दौलत है जो ईश्वर प्रदान करता है; और अल्लाह ही तौफीक देने वाला है। यह बिंदु याद रखने योग्य है क्योंकि इससे विरोधियों की बहुत सी चालें उजागर होती हैं। और अल्लाह ही मार्गदर्शक है।

तलक़ीन (उपदेश) के मसले को स्पष्ट करने में एक सुंदर लाभ

मैं कहता हूँ: और अल्लाह से मैं सहायता माँगता हूँ। तलक़ीन की मूल चर्चा के संबंध में प्रासंगिक रूप से इतना समझ लें कि यदि 'ज़ाहिर अल-रवायत' में 'उपदेश नहीं दिया जाता' (ला युलाक़्क़न) या 'गैर-मशरूह' (निर्धारित नहीं) आया भी हो, तो वह निषेध और गैर-जवाज़ के लिए निश्चित नहीं है। क्या आपने नहीं सुना कि इमाम मुजतहिदीन बुरहानुद्दीन महमूद ने 'अल-ज़ख़ीरा' में इमाम मुहर्रिरुल मज़हब हज़रत मुहम्मद बिन अल-हसन के माध्यम से इमामुल आइमा, मालिकुल अज़िमा हज़रत इमाम-ए-आज़म (अल्लाह उन पर प्रसन्न हो) से नक़ल किया है कि सज्दा-ए-शुक्र (कृतज्ञता का सजदा) मशरूह नहीं है? और विद्वानों ने इसका अर्थ 'गैर-वाजिब' (अनिवार्य नहीं) लिया है। 'अल-अशबाह' में है:

इमाम अबू हनीफा (रहमतुल्लाह अलैहि) के नज़दीक सज्दा-ए-शुक्र जायज़ है, वाजिब नहीं। यही इसका अर्थ है जो इमाम साहब से वर्णित है कि सज्दा-ए-शुक्र मशरूह नहीं है, यानी वाजिब के तौर पर मशरूह नहीं है। (इति)। इसे अल्लामा सैयदी हमवी ने 'ग़म्ज़ अल-उयून' में और अल्लामा सैयद अहमद तहतावी व अल्लामा सैयद मुहम्मद शामी ने 'हवाशी-ए-दुर्र' में पुष्ट किया है।

मेरे विचार में इमाम [अबू हनीफा] का कथन अनिवार्यता (ईजाब) पर आधारित है, और मुहम्मद का कथन वैधता (जवाज़) और संस्तुति (इस्तेहबाब) पर आधारित है। इस प्रकार, दोनों कथनों पर अमल किया जाता है: हर नेमत पर कृतज्ञता का सजदा अनिवार्य नहीं है, जैसा कि इमाम अबू हनीफा ने कहा था, लेकिन नेमत की खुशी के समय या जब कोई नेमत याद आए तो कृतज्ञता का सजदा करना जायज़ है, ताकि वह सजदे के साथ उसका शुक्र अदा करे, और यह... की सीमा से बाहर नहीं है।

इमाम अबू हनीफा (रहमतुल्लाह अलैहि) के नज़दीक सज्दा-ए-शुक्र जायज़ है, वाजिब नहीं। यही इसका अर्थ है जो इमाम साहब से वर्णित है कि सज्दा-ए-शुक्र मशरूह नहीं है, यानी वाजिब के तौर पर मशरूह नहीं है। अल्लामा सैयदी हमवी ने 'ग़म्ज़ अल-उयून' में और अल्लामा सैयद अहमद तहतावी व अल्लामा सैयद मुहम्मद शामी ने 'हवाशी-ए-दुर्रे मुख्तार' में इसे बरकरार रखा है। (त)

मेरे नज़दीक यह है कि इमाम-ए-आज़म का कथन ईजाब (अनिवार्यता) पर और इमाम मुहम्मद का कथन जवाज़ (वैधता) व इस्तेहबाब (पसंद) पर आधारित है। अतः दोनों कथनों पर अमल किया जाएगा: हर नेमत पर सज्दा-ए-शुक्र वाजिब नहीं है जैसा कि इमाम अबू हनीफा का कथन है, लेकिन जब किसी नेमत से खुशी हो तो सज्दा-ए-शुक्र करना जायज़ है, इसी तरह जब किसी नेमत की याद हो तो उसके शुक्रिया में सज्दा कर लेना, यह इस्तेहबाब (पसंद) के दायरे से...

1 अल-अशबाह वल-नज़ायर, सज्दा-ए-तिलावत में अंतर, इदारतुल क़ुरआन कराची 2/64

محلِ نزاع کیا تھا اور موضوع استدلال کون سا مقدمہ ہے، کہا تو یہ تھا کہ امر ثابت ہے ولہذا فلاں فلاں ائمہ نے اس بات پر فلاں بات مبنی کی، اس کا یہ کیا جواب ہوگا کہ فلاں فلاں نے وہ بات نہ مانی کیا انکارِ بنا انکارِ مبنی کو مستلزم ہوتا ہے، واقعی سلامتِ عقل عجب دولت ہے جسے خدادے وباللہ التوفیق، یہ نکتہ واجب الحفظ ہے کہ اس سے مخالفین کی بہت چالاکیوں کا حال کھلتا ہے۔ واللہ الھادی۔

فائدہ جمیلہ تنقیح مسئلہ تلقین میں

اقول: وباللہ استعین۔ نفسِ مبحثِ تلقین کی نسبت استطراداً اتنی بات سمجھ لیجئے کہ ظاہر الروایۃ میں اگر لا یلقن یا غیر مشروع آیا بھی ہو تو وہ ممانعت و عدمِ جواز کے لیے متعین نہیں۔ آخر نہ سنا کہ امام مجتہدین برہان الدین محمود نے ذخیرہ میں بروایت امام محرر المذہب حضرت محمد بن الحسن امام الائمہ مالک الازمہ حضرت امام اعظم رضی اللہ تعالٰی عنہم سے نقل کیا کہ سجدہ شکر مشروع نہیں۔ اور علماء نے اس کے معنی عدم وجوب لیے، اشباہ میں ہے :

سجدة الشكر جائزة عند أبي حنيفة رحمة الله تعالى عليه لا واجبة وهو معنى ماروي عنه انها ليست مشروعة اى وجوبا۱ اهـ واقره عليه العلامة السيد الحموي في غمز العيون والسيدان الفاضلان احمد الطحطاوي و محمد الشامي في حواشي الدر۔

امام ابو حنیفہ رحمۃ اللہ تعالیٰ علیہ کے نزدیک سجدہ شکر جائز ہے واجب نہیں، یہی اس کا معنی ہے جو امام صاحب سے مروی ہے کہ سجدہ شکر مشروع نہیں یعنی وجوباً مشروع نہیں۔ اھ اسے علامہ سیدی حموی نے غمز العیون میں اور علامہ سید احمد طحطاوی و علامہ سید محمد شامی نے حواشی در مختار میں برقرار رکھا۔(ت)

عندی ان قول الامام محمول علی الایجاب، وقول محمد علی الجواز والاستحباب، فیعمل بهما لا یجب بکل نعمة سجدة شکرًا کما قال ابو حنیفة ولکن یجوزان یسجد سجدة الشکر في وقت سر بنعمة او ذکر نعمة فشکرها بالسجدة وانه غیر خارج عن حد

میرے نزدیک یہ ہے کہ امام اعظم کا قول ایجاب پر اور امام محمد کا قول جواز پر و استحباب پر محمول ہے تو دونوں قولوں پر عمل کیا جائیگا ہر نعمت پر سجدہ شکر واجب نہیں جیسا کہ امام ابو حنیفہ کا قول ہے لیکن جب کسی نعمت سے مسرت ہو تو سجدہ شکر کرنا جائز ہے، اسی طرح جب کسی نعمت کی یاد ہو تو اس کے شکریہ میں سجدہ کرلینا یہ دائرہ استحباب سے

۱الاشباہ والنظائر مایفترق فیہ سجودالتلاوۃ ادارۃ القرآن کراچی ۲/ ۶۴

Fatawa Rizvia, Volume 9

[Ruling of] desirability: as quoted in Hashiya al-Maraqi and before him by al-Halabi in al-Ghunyah. — 1 Translation: It is not outside [of what is mentioned] in Hashiya al-Maraqi and before that by Halabi in Ghunyah. (T)

It is mentioned in the same Al-Dhakhira:

A student should not recite the Ta'awwudh when reading to his teacher. — 2 Translation: A student should not read Ta'awwudh during a lesson with a teacher. (T)

In Durr-e-Mukhtar, after quoting this, it is said: meaning it is not Sunnah. (i.e., this is not a Sunnah practice. T) In Al-Nahr, it is said:

The statement in Al-Dhakhira is not about whether it is permissible or not, but about whether it is a Sunnah or not. — 4 Translation: The excerpt from Dhakhira is not related to legitimacy or lack thereof, but rather to Sunnah-ness and its absence. (T)

Similarly, from our Imams regarding Aqiqah, it is narrated: "Do not perform Aqiqah for a boy" (T). Scholars state that its meaning is the negation of obligation and Sunnah-ness, while permissibility is established. It is in Fatawa al-Khulasah:

No Aqiqah should be performed for a boy or a girl, meaning it is neither obligatory nor Sunnah, but it is permissible. — 5 Translation: Do not perform Aqiqah for a boy or a girl; this means it is not Wajib (obligatory) or Sunnah. But it is permissible. (T)

Similarly, in general books like Hidaya, Wiqaya, Niqaya, Badai, Munyah, Multaqa, Tanwir, Jawhara, etc., regarding the recitation of Bismillah between Surah Al-Fatiha and another Surah, the statement of Imam Azam and Imam Abu Yusuf (may Allah have mercy on them) is mentioned with the words "La ya'ti wa la yusammi" 6 (Do not bring the Basmalah; do not recite Bismillah. T). Then researchers clarified that this refers to the negation of Sunnah-ness. Contrary to Imam Muhammad, who is a proponent of its Sunnah-ness. As for dislike or prohibition, that is no one's school of thought, because reading it is better by consensus, as is clear from Al-Dhakhira, Al-Mujtaba, Al-Bahr, Al-Nahr, Hashiya al-Durar by Allama Shurunbulali, Sharh al-Alai, and the marginalia of Shami and Tahtawi etc. Allama Ghazzi Tamurtashi said: Not between Fatiha and the Surah (between Fatiha and the Surah).

1. Hashiya al-Tahtawi 'ala Maraqi al-Falah, Chapter: Sujud al-Shukr, Maktaba Noor Muhammad Karkhana Tijarat Kutub Karachi, p. 272
2. Al-Durr al-Mukhtar, Chapter: Sifat al-Salah, Matba' Mujtabai Delhi, 1/57

3. Al-Durr al-Mukhtar, Chapter: Sifat al-Salah, Matba' Mujtabai Delhi, 1/57
4. Radd al-Muhtar with reference to Al-Nahr al-Faiq, Chapter: Sifat al-Salah, Idarat al-Tiba'at al-Misriyya Egypt, 1/329
5. Khulasat al-Fatawa, Kitab al-Karahiyah, Chapter Nine: Miscellaneous, Maktaba Habibiyyah Quetta, 4/377
6. Al-Durr al-Mukhtar, Chapter: Sifat al-Salah, Matba' Mujtabai Delhi, 1/57

फ़तावा रज़विया, जिल्द 9

[इस्तेहबाब (पसंदीदा होने) का हुक्म]: जैसा कि हाशिया अल-मराक़ी में और उनसे पहले हलबी ने अल-गुन्या में नक़ल किया। — 1 तरजुमा: इससे बाहर नहीं इसे हाशिया मराक़ी में और इससे पहले हलबी ने गुन्या में नक़ल किया। (त)

इसी ज़खीरा में फ़रमाया:

जब शागिर्द अपने उस्ताद के पास पढ़े तो तअव्वुज़ (अऊज़ुबिल्लाह) न पढ़े। — 2 तरजुमा: शागिर्द उस्ताद के पास दर्स के वक़्त तअव्वुज़ न पढ़े। (त)

दुर्रे मुख़्तार में इसे नक़ल करके कहा: यानी यह मसनून (सुन्नत) नहीं। (यानी यह मसनून नहीं। त) नहर में कहा:

ज़खीरा में जो ज़िक्र है वह मशरूइयत (जायज़ होने) या न होने के बारे में नहीं बल्कि सुन्नत होने या न होने के बारे में है। — 4 तरजुमा: ज़खीरा की इबारत मशरूइयत और अदम मशरूइयत से मुताल्लिक़ नहीं बल्कि सुन्नियत और अदम सुन्नियत से मुताल्लिक़ है। (त)

यूँ ही हमारे आइम्मा से अक़ीक़ा के बारे में नक़ल है: "लड़के की तरफ़ से अक़ीक़ा न करे" (त)। उलेमा-ए-किराम फ़रमाते हैं इसके मायने वजुब (अनिवार्यता) और सुन्नियत की नफ़ी (नकारना) हैं और इबाहत (अनुमति) साबित है। फ़तावा खुलासा में है:

लड़के और लड़की की तरफ़ से अक़ीक़ा न किया जाए, मुराद यह है कि यह न वाजिब है और न सुन्नत, लेकिन यह मुबाह (जायज़) है। — 5 तरजुमा: लड़के और लड़की की तरफ़ से अक़ीक़ा न करे, इससे मुराद यह है कि यह वाजिब व सुन्नत नहीं। लेकिन मुबाह है। (त)

इसी तरह आम किताबों जैसे हिदाया, विक़ाया, निक़ाया, बदाए, मुन्या, मुल्तक़ा, तनवीर और जौहरा वग़ैरह में फ़ातिहा और सूरत के दरमियान बिस्मिल्लाह पढ़ने के बारे में इमाम आज़म और इमाम अबू यूसुफ़ (रहमतुल्लाह अलैहिमा) का क़ौल इन लफ़्ज़ों में ज़िक्र किया: "ला याती वला युसम्मी" 6 (तस्मिया न लाए; बिस्मिल्लाह न पढ़े। त)। फिर मुहक़्क़िक़ीन ने तसरीह फ़रमाई कि इससे मुराद नफ़ी-ए-सुन्नियत है। इसके बरख़िलाफ़ इमाम मोहम्मद सुन्नत होने के क़ायल हैं। रही कराहत और मुमानअत, वह किसी का मज़हब नहीं, क्योंकि पढ़ना इज्मा (आम सहमति) के साथ बेहतर है जैसा कि ज़खीरा, मुज्तबा, बहर, नहर और अल्लामा शुरुनबुलाली के हाशिया दुरर, शरह अलाई और

शामी व तहतावी के हवाशी वग़ैरह से वाज़ेह है। अल्लामा ग़ज़्ज़ी तमरताशी ने फ़रमाया: फ़ातिहा और सूरत के दरमियान नहीं (फ़ातिहा व सूरत के दरमियान)।

1. हाशिया अत-तहतावी अल मराक़ी अल-फ़लाह, बाब: सज्दा-ए-शुक्र, मकतबा नूर मोहम्मद कारखाना तिजारत कुतुब कराची, पृ. 272
2. अद-दुर्र अल-मुख़्तार, बाब: सिफ़त अस-सलाह, मतबा मुजतबाई दिल्ली, 1/57
3. अद-दुर्र अल-मुख़्तार, बाब: सिफ़त अस-सलाह, मतबा मुजतबाई दिल्ली, 1/57
4. रद अल-मुहतार हवाले के साथ नहर अल-फ़ाईक़, बाब: सिफ़त अस-सलाह, इदारातुल तिबाअतुल मिस्रया मिस्र, 1/329
5. खुलासातुल फ़तावा, किताबुल कराहिया, नवां अध्याय: विविध, मकतबा हबीबिया क्वेटा, 4/377
6. अद-दुर्र अल-मुख़्तार, बाब: सिफ़त अस-सलाह, मतबा मुजतबाई दिल्ली, 1/57

पृष्ठ 789 कुल 948

فتاوی رضویہ، جلد نہم

الاستحباب 1 اھ نقلہ فی حاشیۃ المراقی و قبلہ الحلبی فی الغنیۃ - باہر نہیں اسے حاشیہ مراقی میں اور اس سے پہلے حلبی نے غنیہ میں نقل کیا۔ (ت)

اسی ذخیرہ میں فرمایا:

لایتعوذ التلمیذ اذا قرأ علی استاذہ 2 - شاگرد استاد کے پاس درس کے وقت تعوذ نہ پڑھے۔ (ت)

در مختار میں اسے نقل کرکے کہا: ای لا یسن 3 (یعنی یہ مسنون نہیں۔ ت) نہر میں کہا:

لیس ما فی الذخیرۃ فی المشروعیۃ وعدمھا بل فی الاستنان وعدمہ 4 - ذخیرہ کی عبارت مشروعیت اور عدم مشروعیت سے متعلق نہیں بلکہ سنیت اور عدم سنیت سے متعلق ہے۔ (ت)

یوں ہی ہمارے ائمہ سے درباہ عقیقہ لا یعق عن الغلام (لڑکے کی طرف سے عقیقہ نہ کرے۔ ت) منقول، علمائے کرام فرماتے ہیں اس کے معنی نفی وجوب واستنان ہیں اور اباحت ثابت ہے۔ فتاوی خلاصہ میں ہے:

لا یعق عن الغلام وعن الجاریۃ یرید انہ لیس بواجب ولاسنہ لکنہ مباح 5- لڑکے اور لڑکی کی طرف سے عقیقہ نہ کرے، اس سے مراد یہ ہے کہ یہ واجب وسنت نہیں۔ لیکن مباح ہے۔ (ت)

اسی طرح عامہ کتب میں مثلاً ہدایہ و وقایہ و نقایہ و بدائع و منیہ و ملتقٰی و تنویر و جوہرہ وغیرہ فاتحہ وسورت کے درمیان بسم اللہ پڑھنے کے بارے میں امام اعظم و امام ابویوسف رحمہ اللہ تعالی علیہما کا قول بلفظ لایاتی ولایسمی 6 (تسمیہ نہ لائے۔ بسم اللہ نہ پڑھے۔ ت) ذکر کیا۔ پھر محققین نے تصریح فرمائی کہ اس سے مراد نفی سنیت ہے۔ بخلاف امام محمد کہ قائل استنان ہیں۔ رہی کراہت و

ممانعت ، وہ کسی کا مذہب نہیں، کہ پڑھنا بالا جماع بہتر ہے جیسا کہ ذخیرہ و مجتبی و بحر و نہر و حاشیہ درر للعلامۃ الشرنبلالی و شرح علائی و حواشی شامی و طحطاوی وغیرہ سے واضح۔

علامہ غزی تمرتاشی نے فرمایا: لابین الفاتحۃ والسورۃ (فاتحہ وسورت کے درمیان)

1 حاشیۃ الطحطاوی علی مراقی الفلاح باب سجدہ الشکر مکتبہ نور محمد کارخانہ تجارت کتب کراچی ص ۲۷۲ 2 الدر المختار باب صفۃ الصلوۃ مطبع مجتبائی دہلی ۱ / ۵۷ 3 الدر المختار باب صفۃ الصلوۃ مطبع مجتبائی دہلی ۱ / ۵۷ 4 رد المحتار بحوالہ نہر الفائق باب صفۃ الصلوۃ ادارۃ الطباعۃ المصریۃ مصر ۱ / ۳۲۹ 5 خلاصۃ الفتاوی کتاب الکراھیہ الفصل التاسع فی المتفرقات مکتبہ حبیبیہ کوئٹہ ۴ / ۳۷۷ 6 الدر المختار باب صفۃ الصلوۃ مطبع مجتبائی دہلی ۱ / ۵۷

Fatawa Rizwia Volume 9

No. (T) Muhaqqiq Alai added the word 'Tassun' after 'La' (meaning it is not Sunnah. T). Then he said: 'And it is not disliked by consensus.'1 (It is not disliked by unanimous agreement. T). Tahtawi said: 'Rather, there is no disagreement that if he says Bismillah, it would be good, Nahr.'2 (In fact, there is no disagreement that if Bismillah is recited, it is good. Nahr. T). In Al-Bahr al-Ra'iq, it is stated:

'The disagreement is regarding it being a Sunnah; as for it not being disliked, there is consensus on it. For this reason, it is explicitly stated in Al-Dhakhirah and Al-Mujtaba that if Bismillah is recited between Surah Al-Fatihah and another Surah, it is good according to Imam Abu Hanifah.'3 Etc. The disagreement lies in whether it is a Sunnah, but there is consensus that it is not disliked. Therefore, it is clarified in Al-Dhakhirah and Al-Mujtaba that if Bismillah is recited between Al-Fatihah and the Surah, it is good in the view of Imam Abu Hanifah. Etc. (T)

Furthermore, you have heard the statement of Imam Saffar that 'Talqin' (instillation) is appropriate in the school (Madhhab) of the Imam. This great Imam is a student of the two companions (Sahibayn) through only two intermediaries. He acquired knowledge from Imam Nasir bin Yahya, who took it from Ibn Samma'ah from Abu Yusuf, and from Abu Sulaiman al-Juzjani from Muhammad. (He took it from Ibn Samma'ah who took it from Imam Abu Yusuf, and Imam Nasir took it from Abu Sulaiman al-Juzjani who took it from Imam Muhammad. T). These are certainly more knowledgeable about the Imam's Madhhab and the meanings of Zahir al-Riwayah. Moreover, a thousand degrees more significant is the statement of that noble person that 'Talqin' is the school of Ahl al-Sunnah, and its meaning is the method of the Mu'tazilah. Indeed, the mixing of this misguided sect among the scholars of the Madhhab and the inclusion of their sayings and deductions in the transmissions of the Madhhab has caused severe slips in some places. To the extent that even experts in the field sometimes get confused about the reality. And with Allah is all protection. For instance, the statement of Bishr al-Marisi al-Mu'tazili: 'And by Ar-Rahman, I will not do such and such'4 (By the oath of Ar-Rahman, I will not do this. T). If the Surah Ar-Rahman is intended, it will not be an oath. The author of Walwaljiyah and Khulasah etc. have quoted it in a way as if this is the school's position, whereas it is actually the statement of that Mu'tazilite. This is completely against the refined school of the noble Imams, as established in Al-Bahr al-Ra'iq (as researched in Al-Bahr al-Ra'iq. T). It is stated in Radd al-Muhtar: 'This detail regarding Ar-Rahman is

the saying of Bishr al-Marisi.'5 (This distinction in Ar-Rahman is the saying of Bishr al-Marisi. T). Just so.

1 Al-Durr al-Mukhtar, Bab Sifat al-Salah, Mujtabai Press, Delhi, 1/71 2 Hashiyah al-Tahtawi 'ala al-Durr al-Mukhtar, Bab Sifat al-Salah, Dar al-Ma'rifah, Beirut, 1/219 3 Al-Bahr al-Ra'iq, Fasl: Wa idha arada al-dukhul, H.M. Saeed Company, Karachi, 1/312 4 Radd al-Muhtar, Kitab al-Iman, Mustafa al-Babi, Egypt, 3/55 5 Radd al-Muhtar, Kitab al-Iman, Mustafa al-Babi, Egypt, 3/55 Page 790 of 948

नहीं। त) मुहक़्क़िक़ अलाई ने 'ला' के बाद 'तसुन' शब्द जोड़ दिया (यानी सुन्नत नहीं। त)। फिर फ़रमाया: 'वला तुकरहु इत्तिफ़ाक़न' 1 (मकरूह तो सर्वसम्मति से नहीं है। त)। तहतावी ने फ़रमाया: 'बल ला खिलाफ़ा फी अन्नहू लौ सम्मा लकाना हसना, नहर' 2 (बल्कि इसमें भी कोई मतभेद नहीं है कि अगर बिस्मिल्लाह पढ़ी तो अच्छा है। नहर। त)। अल-बहररर्राइक में है:

'इख़्तिलाफ़ सुन्नत होने में है, जहाँ तक मकरूह न होने की बात है, तो उस पर सहमति है। इसीलिए ज़ख़ीरा और मुज्तबा में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि अगर सूरह फ़ातिहा और दूसरी सूरह के बीच बिस्मिल्लाह पढ़ी जाए तो इमाम अबू हनीफ़ा के नज़दीक अच्छा है।' 3 इत्यदि। मतभेद सुन्नत होने में है और मकरूह न होने पर तो इत्तिफ़ाक़ (सहमति) है। इसीलिए ज़ख़ीरा और मुज्तबा में तसरीह (स्पष्टीकरण) है कि अगर फ़ातिहा और सूरह के बीच बिस्मिल्लाह पढ़ा तो इमाम अबू हनीफ़ा के नज़दीक अच्छा है। इत्यदि। (त)

फिर इमाम सफ़ार का इरशाद सुन चुके कि मज़हब-ए-इमाम में तलक़ीन मुनासिब है, ये इमाम-ए-अल्लाम सिर्फ दो वास्तों से शागिर्द-ए-साहिबैन हैं। इमाम नसीर बिन यह्या से इल्म हासिल किया और उन्होंने इब्न समाआह से उन्होंने अबू यूसुफ़ से, और इमाम नसीर ने अबू सुलैमान अल-जौज़जानी से उन्होंने इमाम मुहम्मद से इल्म हासिल किया। (उन्होंने इब्न समाआह से, उन्होंने इमाम अबू यूसुफ़ से, और इमाम नसीर ने अबू सुलैमान जौज़जानी से हासिल किया, उन्होंने इमाम मुहम्मद से। त) ये निश्चित रूप से मज़हब-ए-इमाम और ज़ाहिरुर्रिवायत के अर्थों को अधिक जानने वाले हैं। फिर इससे हज़ार गुना ज़्यादा उस जनाब का वह इरशाद है कि 'तलक़ीन' अहले सुन्नत का मज़हब है और इसका अर्थ मुअतज़िला का मशरब है। और वाकई मज़हब के मशाइख़ में इस गुमराह फ़िरक़े के मिलावट और मज़हब की रिवायात में उनके कथनों और तख़रीज (निष्कर्षों) के शामिल होने के कारण कुछ जगहों पर भारी चूक हुई है। यहाँ तक कि कभी-कभी हक़ीक़त-ए-हाल माहिरों पर भी संदिग्ध हो जाती है। 'व बिल्लाहिल इस्मतु' (और अल्लाह ही बचाने वाला है), जैसे बिश्र मरीसी मुअतज़िली का कथन 'वल रहमानि ला अफ़अलु कज़ा' 4 (रहमान की क़सम, मैं ऐसा नहीं करूँगा। त)। अगर सूरह रहमान मुराद ली जाए तो क़सम नहीं होगी। साहिबे वलवाल्जिया और ख़ुलासा आदि ने इसे इस तरह नक़ल किया है जैसे कि यही मज़हब हो, हालाँकि वह उस मुअतज़िली का कथन है। और यह आइम्मा-ए-किराम के मोहज़्ज़ब मज़हब के बिलकुल ख़िलाफ़ है जैसा कि अल-बहररर्राइक में इसकी तहक़ीक़

(शोध) की गई है। रददुल मुहतार में कहा गया है: 'हज़त तफ़सील फ़िर रहमानि क़ौलो बिश्रिल मरीसी' 5 (रहमान के संबंध में यह तफ़सील बिश्र मरीसी का क़ौल है। त)। ऐसा ही है।

1 अल-दुर्रुल मुख़्तार, बाब सिफ़तुस सालाह, मुजतबाई प्रेस, दिल्ली, 1/71 2 हाशिया अत-तहतावी अलल दुर्रिल मुख़्तार, बाब सिफ़तुस सालाह, दारुल मआरिफ़ा, बेरूत, 1/219 3 अल-बहरर्राइक, फ़स्ल: वा इज़ा अरादल दुख़ूल, एच.एम. सईद कंपनी, कराची, 1/312 4 रददुल मुहतार, किताबुल ईमान, मुस्तफ़ा अल-बाबी, मिस्र, 3/55 5 रददुल मुहतार, किताबुल ईमान, मुस्तफ़ा अल-बाबी, मिस्र, 3/55 पेज 790/948

نہیں ۔ ت) محقق علائی نے لاکے بعد لفظ تسن بڑھا دیا (یعنی مسنون نہیں۔ت) پھر فرمایا ولا تکرہ اتفاقاً ۱ (مکروہ تو بالاتفاق نہیں ۔ ت) طحطاوی نے فرمایا: بل لا خلاف فی انہ لوسی لکان حسناً، نہر ۲ (بلکہ اس میں بھی کوئی خلاف نہیں کہ اگر بسم اللہ پڑھا تو اچھا ہے۔ نہر ۔ت) ، بحر الرائق میں ہے :

الخلاف فی الاستنان اما عدم الکراھۃ فمتفق علیہ، ولھذا صرح فی الذخیرۃ والمجتبی بانہ ای سمی بین الفاتحۃ والسورۃ کان حسنا عند ابی حنیفۃ ۳۔ الخ اختلاف مسنون ہونے میں ہے اور مکروہ نہ ہونے پر تو اتفاق ہے۔ اسی لیے ذخیرہ اور مجتبٰی میں تصریح ہے کہ اگر فاتحہ اور سورہ کے درمیان بسم اللہ پڑھا تو امام ابو حنیفہ کے نزدیک اچھا ہے۔ الخ (ت)

پھر امام صفار کا ارشاد سن چکے کہ مذہب امام میں تلقین مناسب ہے، یہ امام علام صرف دو واسطہ سے شاگرد صاحبین ہیں ، امام نصیر بن یحیٰی سے اخذ علم کیا وھو عن ابن سماعۃ عن ابی یوسف ح وعن ابی سلیمان الجوز جانی عن محمد (انہوں نے ابن سماعہ سے انہوں نے امام ابو یوسف سے اور امام نصیر نے ابو سلیمان جوزجانی سے اخذ کیا انہوں نے امام محمد سے ۔ ت) یہ بالیقین اعرف بمذھب امام و معنی ظاہر الروایۃ پھر اس سے ہزار درجہ زائد اس جناب کا وہ ارشاد ہے کہ تلقین مذہب اہل سنت اور اس کا معنی مشرب معتزلہ ہے۔ اور وہ واقعی مشائخ مذہب میں اس فرقہ ضالہ کا اختلاط اور نقول مذہب میں اس کے اقوال و تخریج کا اندراج بعض جگہ سخت لغزشوں کا باعث ہوتا ہے۔ یہاں تک کہ کبھی حقیقت کار ماہروں پر ملتبس ہو جاتی ہے۔ وباللہ العصمۃ جیسے بشر مریسی معتزلی کا قول والرحمن الا افعل کذا ۴ (رحمن کی قسم میں ایسا نہیں کروں گا۔ ت) اگر سورۃ رحمن مراد لی یمین نہ ہوگی، صاحب ولوالجیہ و خلاصہ وغیرہما نے یوں

نقل کر دیا کہ گویا یہی مذہب ہے ، حالانکہ وہ اس معتزلی کا قول ہے۔ اور مذہب مہذب ائمہ کرام کے بالکل خلاف کما حققه فی البحر الرائق (جیسا کہ البحر الرائق میں اس کی تحقیق کی ہے۔ت) ردالمختار میں کہا: ہذا التفصیل فی الرحمن قول بشر المریسی ۵ (الرحمن میں یہ تفریق، بشر مریسی کا قول ہے۔ت) ایسا

۱ الدر المختار باب صفۃ الصلوۃ مطبع مجتبائی دہلی ۱/۷۱ ۲ حاشیہ الطحطاوی علی الدر المختار باب صفۃ الصلوۃ دار المعرفہ بیروت ۱/۲۱۹ ۳ البحر الرائق فصل واذا اراد الدخول ایچ ایم سعید کمپنی کراچی ۱/۳۱۲ ۴ ردالمحتار کتاب الایمان مصطفی البابی مصر ۳/۵۵ ۵ ردالمحتار کتاب الایمان مصطفی البابی مصر ۳/۵۵ Page 790 of 948

Volume Nine Fatawa Razawiyya

This same confusion occurred to Allama Zain bin Nujaym al-Misri regarding the issue of slaughtered animals, about which Allama Sayyid Ahmad Hamwi said:

Arabic	Urdu Translation
Mabanāhā ʻalā al-iʻtizāl al-ṣarīḥ wa al-ʻajab anna	Its basis is on clear Mu'tazilism, and it is surprising that
al-muṣannif lam yatafaṭṭan lahu maʻa ẓuhūrihi min al-Qunya[1].	the author did not realize this, despite the fact that the author of Al-Qunya is an open Mu'tazilite.

In short, this is the state of the narration. As for the report, we have already seen in the second objective that it is reported from the Mustafa (peace and blessings of Allah be upon him) in this hadith, which Imam Ibn al-Salah, Imam Diya, Imam Amir al-Hajj, and the author of *Majmaʻ*, among others, have graded as fair (hasan) and strong (qawi) due to supporting evidence and corroborations. Furthermore, the statements of the companion Sayyiduna Abu Umamah al-Bahili and successors like Rashid, Dhamra, Hakim, and others are narrated in this regard. Moreover, no contrary view has ever been proven from other companions. Despite all this, how can not accepting the statement of a companion be consistent with Hanafi principles? Following the legal opinion of a companion is the known position of our Imam. It is reported from Imam Abu Muti' al-Balkhi in *Mizan al-Shari'ah al-Kubra*:

Arabic	Urdu Translation
Qultu lil-Imām Abī Ḥanīfata raḍiyallāhu taʻālā ʻanhu araʼayta	I submitted to Imam Abu Hanifa (may Allah be pleased with him): Tell me,
law raʼayta raʼyan wa raʼā Abū Bakr raʼyan akunta tadaʻu raʼyaka	if you have an opinion and Siddiq al-Akbar has an opinion,
liraʼyihi? Faqāla naʻam. Faqultu lahu araʼayta law raʼayta raʼyan wa	would you leave your opinion for his? He said, "Yes." I then asked
raʼā ʻUmar raʼyan akunta tadaʻu raʼyaka liraʼyihi? Faqāla naʻam	about Umar Farooq. He said, "Yes."
wa kadhālika kuntu adaʻu raʼyī liraʼyi ʻUthmān wa	And in the same way, I would leave my opinion for that of Uthman and...

Note: Maulana Ali Qari states in *Mirqat Sharh Mishkat*, Book of Prayer, Chapter on the Sermon:

Arabic	Urdu Translation
Qawl al-ṣaḥābī ḥujjatun fa-yajibu taqlīduhu ‘indanā idhā lam yanfihi	The companion's word is a proof, so following him is obligatory for us as long as
shay’un ākharu min al-Sunnah[2] intahā. Aqūlu wa hādhā lā yakhtaṣṣu	no Hadith contradicts it. End quote. I say: this is not specific only to
bi-qawl al-ṣaḥābī fa-inna kulla dalīlin yutraku li-dalīlin aqwā minhu.	the companion's statement because every evidence is discarded due to a evidence stronger than itself.
12 Mine (M)	12 Mine (T)

[1] *Ghamz ‘Uyun al-Absar Sharh al-Ashbah wa al-Nazair*, Book of Hunting and Slaughtered Animals, Idarat al-Qur'an, Karachi, 2/106. [2] *Mirqat al-Mafatih*, Chapter on the Sermon, under Hadith 411, Maktaba Habibiya, Quetta, 3/505.

जिल्द नहम फ़तावा रज़विया

यही उलझन अल्लामा ज़ैन बिन नुजैम मिस्री को ज़बीहा (ज़बह किए हुए जानवर) के मसले में पेश आई, जिस पर अल्लामा सय्यद अहमद हमवी ने फ़रमाया:

अरबी	उर्दू अनुवाद
मबनाहा अलल इअतिज़ालिस सरीह वल अजब अन्ना	इसका आधार स्पष्ट मोतज़िला अक़ीदे पर है और ताज्जुब है कि
अल-मुसन्निफ़ लम यतफ़त्तन लहू मअ ज़ुहूरीही मिनल कुनिया*1*।	मुसन्निफ़ (लेखक) को इस पर आगाह नहीं किया गया, बावजूद इसके कि 'कुनिया' के लेखक का मोतज़िली होना ज़ाहिर है।

सारांश यह कि रिवायत की तो यह स्थिति है। रही रिवायत, दूसरे मक़सद में देख चुके कि मुस्तफ़ा (सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम) से इस हदीस में वर्णित है जिसे इमाम इब्न-उस-सलाह, इमाम ज़िया, इमाम अमीरुल हज्ज और मज़मअ के लेखक वग़ैरह ने साक्ष्यों और प्रमाणों के कारण हसन और मज़बूत कहा है। फिर सय्यदुना अबू उमामा बाहिली सहाबी और राशिद, ज़मरा, हकीम वग़ैरह ताबेईन के अक़वाल (कथन) इसमें मरवी हैं। फिर दूसरे सहाबा से इसका ख़िलाफ़ हरगिज़ साबित नहीं। इसके बावजूद सहाबी के कौल को स्वीकार न करना हनफ़ी सिद्धांतों पर कैसे सही हो सकता है? सहाबी का अनुकरण (तक़लीद) हमारे इमाम का मज़हब ज्ञात है। मीज़ानुल शरीअतुल कुबरा में इमाम अबू मुतीअ बल्ख़ी से वर्णित है:

अरबी	उर्दू अनुवाद
कुलतु लिल-इमाम अबी हनीफ़ा रज़ियल्लाहु तआला अन्हु अरैता	मैंने इमाम अबू हनीफ़ा (रज़ियल्लाहु तआला अन्हु) से अर्ज़ की: भला
लौ रैता रायन व राआ अबू बक्र रायन अकुन्ता तदअ रायका	इर्शाद फ़रमाइए अगर आपकी एक राय हो और सिद्दीक़े अकबर की
लिरायही? फ़काला नअम। फ़कुलतु लहू अरैता लौ रैता रायन व	राय इसके ख़िलाफ़ हो क्या आप अपनी राय उनकी राय के
राआ उमर रायन अकुन्ता तदअ रायका लिरायही? फ़काला नअम	आगे छोड़ देंगे? फ़रमाया: हाँ। मैंने उमर फ़ारूक़ की निसबत

अरबी	उर्दू अनुवाद
व कज़ालिका कुन्तु अदअ राई लिरायी उस्मान व	पूछा, फ़रमाया: हाँ। और यूँ ही मैं अपनी राय उस्मान-ए-ग़नी और...

टिप्पणी: मौलाना अली क़ारी 'मिरक़ात शरह मिश्कात', किताबुस-सलात, बाबुल-ख़ुतबा में फ़रमाते हैं:

अरबी	उर्दू अनुवाद
कौल अल-सहाबी हुज्जतुन फ़-यजीबु तक़लीदुहू इन्दना इज़ा लम यन्फ़िही	सहाबी का कौल हुज्जत है तो उनकी तक़लीद हमारे यहाँ वाजिब है जबकि
शय-उन आख़रु मिन अल-सुन्नह2 इन्तहा। अकूकु व हाज़ा ला यख़तस्सु	कोई हदीस उसकी नफ़ी न करती हो। समाप्त। मैं कहता हूँ यह कौल सहाबी से ही
बि-कौल अल-सहाबी फ़-इन्ना कुल्ला दलीलिन युतराकु लि-दलीलिन अक्का मिन्हु।	ख़ास नहीं है इसलिए कि हर दलील अपने से मज़बूत दलील के कारण
12 मिन्हु (म)	मतरूक होगी। 12 मिन्हु (त)

1 ग़मज़ उयूनुल अबसार शरह अल-अशबाह वन-नज़ायर, किताबुस-सैद वज़-ज़बाह, इदारातुल क़ुरआन कराची 2/106 2 मिरक़ातुल मफ़ातीह, बाबुल-ख़ुतबा, हदीस 411 के तहत, मकतबा हबीबिया क्वेटा 3/505

पृष्ठ 791/948

ہی اشتباہ علامہ زین بن نجیم مصری کو مسئلہ ذبیحہ میں واقع ہوا جس پر علامہ سید احمد حموی نے فرمایا:

عربی عبارت	**اردو ترجمہ**
مبنیٰها علی الاعتزال الصریح والعجب ان المصنف لم یتفطن له مع ظهوره من القنیة 1-	اس کا مبنیٰ اعتزال پر ہے اور عجب نہ ہوا کہ مصنف کو اس پر تنبیہ نہ ہوا باوجودیکہ صاحب قنیہ کا معتزلی ہونا کھلا ہوا ہے-

بالجملہ روایت کا تو یہ حال ہے۔ رہی روایت، مقصد دوم میں دیکھ چکے کہ مصطفیٰ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم سے اس حدیث میں وارد جسے امام ابن الصلاح وامام ضیاء وامام امیر الحاج وصاحب مجمع وغیرہ ہم، نے بوجہ شواہد و عواضد حسن و قوی کہا، پھر سیدنا ابوامامہ باہلی صحابی اور راشد و ضمرہ و حکیم وغیر ہم تابعین کے اقوال اس میں مروی، پھر اور صحابہ سے اس کا خلاف ہرگز ثابت نہیں، باایں ہمہ قول صحابی قبول نہ کرنا اصول حنفیہ پر کیونکر مستقیم ہوا، تقلید عہ صحابی ہمارے امام کا مذہب معلوم ہے۔ میزان الشریعۃ الکبریٰ میں امام ابو مطیع بلخی سے منقول :

عربی عبارت	**اردو ترجمہ**
قلت للامام ابی حنیفہ رضی اللہ تعالٰی عنہ ارأیت	میں نے امام ابو حنیفہ رضی اللہ تعالٰی عنہ سے عرض کی: بھلا

عربی عبارت	اردو ترجمہ
لو رأيت رأيا و رأى ابوبكر رأيا اكنت تدع رأيك	ارشاد فرمائیے اگر آپ کی ایک رائے ہو اور صدیق اکبر کی
لرأيه؟ فقال نعم فقلت لہ ارأيت لو رأيت رأيا و	رائے اس کے خلاف ہو کیا آپ اپنی رائے ان کی رائے کے
رأى عمر رأيا اكنت تدع رأيك لرأيه؟ فقال نعم	آگے چھوڑ دیں گے؟ فرمایا: ہاں، میں نے عمر فاروق کی نسبت
وكذلك كنت ادع رائی لرأی عثمان و	پوچھا، فرمایا: ہاں، اور یونہی میں اپنی رائے عثمان غنی و

عہ: مولانا علی قاری مرقاۃ شرح مشکوٰۃ کتاب الصلوٰۃ باب الخطبہ میں فرماتے ہیں:

عربی عبارت	اردو ترجمہ
قول الصحابی حجة فيجب تقليده عندنا اذا لم ينفہ	صحابی کا قول حجت ہے تو اسکی تقلید ہمارے یہاں واجب ہے جبکہ
شيیء آخر من السنة 2 انتہی اقول وهذا لا يختص	کوئی حدیث اس کی نفی نہ کرتی ہو انتہی اقول یہ قول صحابی سے ہی
بقول الصحابی فان كل دليل يترك لدليل اقوى من	خاص نہیں اس لیے کہ ہر دلیل اپنے سے قوی تر دلیل کے باعث
١٢ منہ (م)	متروک ہوگی، ١٢ منہ (ت)

1 غمز عیون الابصار شرح الاشباہ والنظائر کتاب الصید والذباح ادارہ القرآن کراچی ۱۰۶/۲ 2

مرقاۃ المفاتیح باب الخطبہ تحت حدیث ۴۱۱ مکتبہ حبیبیہ کوئٹہ ۵۰۵/۳

[Box 1] Arabic: Ali and all other companions except Abu Huraira, Anas bin Malik, and Samura bin Jundub 1. Urdu: I will set aside the opinion of Ali al-Murtaza and all other companions in favor of others, except for Abu Huraira, Anas bin Malik, and Samura bin Jundub (may Allah be pleased with them). -

Rather, Allama Ibn Amir al-Hajj states in 'Hilya': "When a saying of one companion is narrated on an issue and no contradiction comes from other companions, that issue will be considered unanimous (ijma'i)."

[Box 2] Arabic: Where it was said: "Our correct opinion is based on what was narrated from Ali (may Allah be pleased with him), that he said regarding a traveler in a state of major ritual impurity (junub) that he should delay until the end of the time. And no contradiction was seen from any other companion, so it becomes a consensus (ijma') 2." Urdu: Their text is: "The correct view is ours because it is narrated from Hazrat Ali (may Allah be pleased with him) regarding a traveler in a state of 'janabat' (impurity) that he should wait for water until the end of the prayer time; since no contradiction is narrated from any other companion, this will be considered their consensus on the matter." (T)

In any case, if the denial is based on a lack of proof, then the proof is present; and if it's based on a denial of benefit, then the benefit is obvious. Yes, if you deny the understanding and hearing of the dead, then this would certainly be correct only according to the principles of the Mu'tazilites. Therefore, Bahr al-Ulum stated that not accepting 'Talqin' (instruction to the deceased) on the basis that the dead do not hear is a false school of thought, as its citation will come, if Allah wills. (Their text will be cited further on, if Allah wills. - T) Unquestionably, among the Hanafi leaders, these scholars of religion and critical imams, including Imam Saffar, Hakim Shaheed, Shams al-A'imma, Zahir Kabir, Faqih al-Nafs, and other mujtahid imams (may Allah's mercy be upon them all), were proponents of the permissibility and desirability of 'Talqin'. Certainly, they were more aware of the narrations and principles of the school of thought than us. There is absolutely no evidence against it, and indeed, it contains benefit for both the living and the deceased Muslims. It is the remembrance of Allah and a cause of chagrin for the enemies. So, what is the reason for denial? Even at a lower level, let it be 'neither commanded nor forbidden' (permissible and allowed, neither an order nor a prohibition - T). As for impermissibility or prohibition, God forbid, it is purely without any argument.

[Box 3] Arabic: And whoever claims otherwise, the burden of proof is upon him. This is what I have, and knowledge of the truth is with my Lord. And Allah knows best. Urdu: Whoever claims this, the explanation is his responsibility. This is what is in my knowledge, and the knowledge of the truth is with my Lord.

---

1. Al-Mizan al-Kubra, Section regarding the weakness of the saying of one who attributed to Imam Abu Hanifa etc., Mustafa al-Babi, Egypt, 1/65.
2. Hilya al-Mahalli, Sharh Munya al-Musalli. Page 792 of 948

[बॉक्स 1] अरबी: अली और अन्य सभी सहाबा सिवाय अबू हुरैरा, अनस बिन मालिक और समुरा बिन जुन्दुब के1। उर्दू: मैं अली मुर्तज़ा और अन्य सभी सहाबा की राय को दूसरों के आगे छोड़ दूँगी, सिवाय अबू हुरैरा, अनस बिन मालिक और समुरा बिन जुन्दुब (अल्लाह उनसे प्रसन्न हो) के। -

बल्कि, अल्लामा इब्न अमीर अल-हज 'हिल्या' में फरमाते हैं: "जब किसी मसले में एक सहाबी का कौल (कथन) वर्णित हो और अन्य सहाबा से उसके खिलाफ कुछ न आए, तो वह मसला इजमाई (सर्वसम्मत) माना जाएगा।"

[बॉक्स 2] अरबी: जहाँ कहा गया: "हमारा सही कौल वह है जो अली (अल्लाह उनसे प्रसन्न हो) से वर्णित है कि उन्होंने उस मुसाफिर (यात्री) के बारे में कहा जो जनाबत (अशुद्धि) की स्थिति में हो कि वह समय के अंत तक देरी करे। और किसी अन्य सहाबी से इसके विपरीत नहीं देखा गया, इसलिए यह इजमा (सर्वसम्मति) है 2।" उर्दू: उनकी इबारत यह है: "सही हमारा कौल है क्योंकि हज़रत अली (अल्लाह उनसे प्रसन्न हो) से जनाबत वाले मुसाफिर के बारे में वर्णित है कि वह आखिरी वक्त तक पानी का इंतज़ार करे; इसके खिलाफ किसी और सहाबी से वर्णित नहीं है, तो यह उनका इजमा (सर्वसम्मति) करार पाएगा।" (त)

बहरहाल, अगर इनकार सबूत न होने पर आधारित है, तो सबूत मौजूद है; और अगर लाभ न होने पर आधारित है, तो लाभ स्पष्ट है। हाँ, अगर आप मुर्दों के सुनने और समझने का इनकार करें, तो यह बेशक केवल मुअतज़िला के उसूलों पर ही सही होगा। इसलिए बहर-उल-उलूम ने फरमाया कि इस आधार पर कि मुर्दा नहीं सुनता, 'तल्कीन' (मृतक को निर्देश) को न मानना एक गलत संप्रदाय है, जैसा कि इंशा-अल्लाह आगे इसका वर्णन आएगा। (आगे उनकी इबारत इंशा-अल्लाह नकल की जाएगी - त)। बेशक हनफी सरदारों में से ये दीन के उलेमा और निष्पक्ष इमाम, जिनमें इमाम सफ़ार, हाकिम शहीद, शम्स-उल-अइम्मा, ज़हीर कबीर, फ़कीह-उल-नफ़्स और अन्य मुजतहिद इमाम (अल्लाह उन सभी पर रहम करे) शामिल हैं, तल्कीन के जायज़ और मुस्तहब होने के कायल थे। यकीनन वे हमसे ज़्यादा मज़हब की रिवायतों और उसूलों से वाकिफ़ थे। इसके खिलाफ बिल्कुल कोई दलील नहीं है और बेशक इसमें ज़िंदा और मुर्दा मुसलमानों का फायदा है। यह अल्लाह का ज़िक्र है और दुश्मनों की हार है। फिर इनकार की क्या वजह है? कम से कम इतना तो हो कि 'न

इसका हुक्म है और न इसकी मनाही' (जायज़ और मुबाह हो, न हुक्म हो न मनाही - त)। बाकी, नाजायज़ होना या मनाही होना, अल्लाह की पनाह, केवल बिना किसी दलील के है।

[बॉक्स 3] अरबी: और जो कोई इसका दावा करे, तो सबूत देना उसकी ज़िम्मेदारी है। यह वह है जो मेरे पास है और हक का इल्म मेरे रब के पास है। और अल्लाह सबसे बेहतर जानता है। उर्दू: जो इसका दावेदार हो, बयान उसकी ज़िम्मेदारी है। यह वह है जो मेरे इल्म में है और हक का इल्म मेरे रब के पास है।

---

1. अल-मीज़ान अल-कुबरा, इमाम अबू हनीफा आदि की तरफ गलत बात मंसूब करने वाले के कौल की कमजोरी के बयान में अध्याय, मुस्तफा अल-बाबी, मिस्र, 1/65।
2. हिल्या अल-महल्ली, शरह मुनिया अल-मुसल्ली। पृष्ठ 792 / 948

[باکس 1] عربی: علی وسائر الصحابۃ ماعدا ابا ہریرۃ و انس بن مالک و سمرۃ بن جندب 1۔ اردو: علی المرتضٰی باقی تمام صحابہ کی رائے کے آگے ترک کردوں گا سوا ابوہریرہ وانس بن مالک وسمرہ بن جندب رضی اللہ تعالٰی عنہم کے اھ

بلکہ علامہ ابن امیر الحاج تو حلیہ میں فرماتے ہیں: جب کسی مسئلہ میں ایک صحابی کا قول مروی ہو اور دیگر صحابہ سے اس کا خلاف نہ آئے وہ مسئلہ اجماعی ٹھہرے گا۔

[باکس 2] عربی: حیث قال الصحیح قولنا لماروی عن علی رضی اللہ تعالٰی عنہ انہ قال فی مسافر جنب یتأخر الی اخر الوقت ولم یر و عن غیرہ من الصحابۃ خلافہ فیکون اجماعاً 2۔ اردو: ان کی عبارت یہ ہے: صحیح ہمارا قول ہے اس لیے کہ حضرت علی رضی اللہ تعالٰی عنہ سے جنابت والے مسافر کے بارے میں مروی ہے کہ وہ آخر وقت تک پانی کا انتظار کرے، اس کے خلاف کسی اور صحابی سے مروی نہیں تو یہ ان کا اجماع مسئلہ قرار پائے گا (ت)

بہر حال انکار اگر عدم ثبوت پر مبنی، تو ثبوت حاضر، اور نفی نفع پر مبنی، تو نفع ظاہر، ہاں یہ رہ گیا کہ فہم و سماع موتٰی کا انکار کیجئے یہ بیشک اصول معتزلہ ہی پر درست ہوگا، ولہذا بحرالعلوم نے فرمایا اس بنا پر کہ مُردہ نہیں سنتا تلقین نہ ماننا مذہب باطل ہے کما سیأتی نقلہ ان شاء اللہ تعالٰی (آگے ان کی عبارت ان شاء اللہ تعالٰی نقل ہو گی۔ت) لاجرم عمائد حنفیہ سے یہ علمائے دین و ائمہ ناقدین جن میں امام صفار و حاکم شہید و شمس الائمہ و ظہیر کبیر و فقیہ النفس و غیر ہم ائمہ مجتہدین ہیں رحمۃ اللہ تعالٰی علیہم اجمعین جواز و استحباب تلقین کے قائل ہوئے اور بالیقین وہ ہم سے زیادہ روایات و درایات مذہب پر آگاہ تھے، اور قطعاً اس کے خلاف پر اصلاً کوئی دلیل نہیں

اور بیشک اس میں احیاء و اموات مسلمین کا نفع ہے۔ ذکر خدا ہے، رغمِ اعدا ہے۔ پھر وجہ انکار کیا ہے۔ تنزلی درجہ اتنا سہی کہ لایؤمر بہ ولا ینہی عنہ (جائز و مباح ہو، نہ حکم ہو نہ ممانعت) باقی عدم جواز یا ممانعت حاش اللہ محض بے حجت،

[باکس 3] عربی: ومن ادعی فعلیہ البیان ہذا ما عندی والعلم بالحق عند ربی واللہ تعالیٰ اعلم و اردو: جو اس کا مدعی ہو بیان اس کا ذمہ۔ یہ وہ ہے جو میرے علم میں ہے اور حق کا علم میرے رب کے

---

1 المیزان الکبری فصل فی بیان ضعف قول من نسب الامام اباحنیفہ الخ مصطفی البابی مصر ۱/ ۶۵

2 حلیہ المحلی شرح منیۃ المصلی صفحہ 792 از 948

Fatawa Rizvia, Volume 9

His knowledge, glory be to Him, is most complete and most firm. (Translator's note: It is here. And the Exalted God knows best and His knowledge is more perfect and firm. The glory of His grace is great.) (T)

Fourteenth Chapter: Regarding the actual issue raised by the questioner, i.e., calling upon the noble souls and seeking intercession and prayer through them. This chapter is also a part of the twelfth chapter, as the discourse here is also regarding more than just salutations. However, like the chapter on instruction (Talqin), due to its immense importance, it has been designated as a separate chapter. And with Allah is success.

Saying (157 to 159): Sidi Khwaja Hafiz in 'Fasl al-Khitab', then Sheikh Muhaqqiq in 'Jazb al-Qulub' (158) narrates: - (Arabic): It was said to Musa al-Ridha (159), may Allah be pleased with him: Teach me some words to say when I visit one of you. He said: Draw near to the grave, say "Allahu Akbar" (God is Greatest) forty times, then say: Peace be upon you, O People of the House of Messengership! I seek your intercession and place you before my seeking, my desire, my request, and my need. I bear witness to Allah that I believe in your secret and your public state, and I dissociate myself before Allah from the enemies of Muhammad and the family of Muhammad among the jinn and mankind. (Summarized) - (Urdu Translation): That is, Imam son of the Imam, descended from six noble ancestors, Ali bin Musa al-Ridha (may Allah be pleased with him and all of them) was requested: Teach me some words that I may say when visiting the noble Ahl al-Bayt? He said: Stand close to the grave, say Takbir (Allahu Akbar) forty times, then say: Peace be upon you O household of the Messengerhood! I seek intercession from you and put you forward before my desire, wish, question, and need. Allah is witness that I have sincere faith in your noble inner and pure outer self, and I turn away towards Allah from all those jinn and humans who are enemies of Muhammad and the family of Muhammad. May Allah the Exalted send blessings and peace upon Muhammad and the family of Muhammad. Amen!

Saying (160 to 161): In the Fatawa of Sidi Jamal Makki (may his secret be sanctified): - (Arabic): I was asked about one who says in times of hardship: "O Messenger of Allah", or "O Ali", or "O Sheikh Abdul Qadir", for example. Is this Shariah-permissible or not? I replied: Yes, seeking help from the Awliya (saints), calling upon them, and seeking intercession through them is a prescribed (Mashru') and desirable matter

that none but an arrogant person would deny. - (Urdu Translation): I was asked about the person who, at times of difficulty, says: O Messenger of Allah, O Ali, O Sheikh Abdul Qadir, for example. Is this Shariah-permissible or not? I [answered]: calling them and seeking intercession with them is a prescribed matter and act.

1. Jazb al-Qulub, Chapter Twelve, Regarding the mention of the Noble Baqi Cemetery, Maktaba Naumiya, Chowk Dalgaran, Lahore, p. 138.

फ़तावा रिज़विया, जिल्द नहुम (9)

उनका ज्ञान, उनकी महिमा महान हो, सबसे पूर्ण और सबसे दृढ़ है। (अनुवादक का नोट: यहाँ है। और महान ईश्वर सबसे अच्छी तरह जानने वाला है और उसका ज्ञान अधिक पूर्ण और दृढ़ है। उनके अनुग्रह की महिमा महान है।) (त)

चौदहवां अध्याय: प्रश्नकर्ता द्वारा उठाए गए मूल मुद्दे पर, अर्थात महान आत्माओं को पुकारना और उनके माध्यम से मध्यस्थता और प्रार्थना मांगना। यह अध्याय भी बारहवें अध्याय का एक हिस्सा है, क्योंकि यहाँ भी प्रवचन केवल सलाम से आगे की बात है। हालाँकि, 'तलकीन' (निर्देश) के अध्याय की तरह, इसके अत्यधिक महत्व के कारण इसे एक अलग अध्याय के रूप में निर्धारित किया गया है। और अल्लाह ही सफलता देने वाला है।

कथन (157 से 159): सिदी ख्वाजा हाफिज ने 'फसल अल-खिताब' में, फिर शेख मुहक्किक ने 'जज्ब अल-कुलूब' (158) में उल्लेख किया है: - (अरबी): मूसा अल-रिज़ा (159), अल्लाह उनसे प्रसन्न हो, से कहा गया: मुझे कुछ शब्द सिखाएं जो मैं कहूं जब मैं आप में से किसी के पास आऊं। उन्होंने कहा: कब्र के पास जाओ, चालीस बार "अल्लाहु अकबर" (अल्लाह सबसे महान है) कहो, फिर कहो: आप पर शांति हो, हे ईश्वरीय संदेश के घर के लोगों! मैं आपसे शफ़ाअत (मध्यस्थता) चाहता हूँ और आपको अपनी खोज, अपनी इच्छा, अपने प्रश्न और अपनी ज़रूरत के सामने रखता हूँ। मैं अल्लाह को गवाह बनाता हूँ कि मैं आपके गुप्त और आपके प्रकट दोनों पर विश्वास करता हूँ, और मैं अल्लाह के सामने मुहम्मद और मुहम्मद के परिवार के जिन्न और मानव शत्रुओं से खुद को अलग करता हूँ। (संक्षिप्त) - (उर्दू अनुवाद): अर्थात इमाम के पुत्र इमाम, छह श्रेष्ठ पूर्वजों वाले, अली बिन मूसा अल-रिज़ा (अल्लाह उनसे और उन सभी से प्रसन्न हो) से प्रार्थना की गई: मुझे कुछ शब्द सिखाएं कि मैं महान अहले बैत की ज़ियारत (दर्शन) के समय कहूँ? उन्होंने कहा: कब्र के करीब खड़े होकर चालीस बार तकबीर (अल्लाहु अकबर) कहें, फिर कहें: आप पर सलाम हो ऐ रसालत के घरवालो! मैं आपसे शफ़ाअत चाहता हूँ और अपनी तलब, ख़्वाहिश, सवाल और हाजत के आगे आपको रखता हूँ। खुदा गवाह है मुझे आपके बातिन (आंतरिक) और ज़ाहिर (बाह्य) पर सच्चे दिल से अक़ीदा (विश्वास) है, और मैं अल्लाह की तरफ बरी (अलग) होता हूँ उन सब जिन्न व इंस से जो मुहम्मद और आले मुहम्मद के दुश्मन हों। अल्लाह तआला मुहम्मद और आले मुहम्मद पर दुरूद और सलाम भेजे। आमीन!

कथन (160 से 161): सिदी जमाल मक्की (अल्लाह उनके रहस्य को पवित्र करे) के फ़तावा में है: - (अरबी): मुझसे पूछा गया कि जो व्यक्ति कठिनाई के समय कहता है: "या रसूल अल्लाह", या "या अली", या "या शेख अब्दुल कादिर", उदाहरण के लिए। क्या यह शरीयत में जायज़ है या नहीं? मैंने उत्तर दिया: हाँ, औलिया (संतों) से मदद मांगना, उन्हें पुकारना और उनके माध्यम से तवस्सुल (मध्यस्थता) करना एक शरीयत सम्मत (मशरू') और वांछनीय कार्य है जिसे केवल एक अहंकारी व्यक्ति ही नकार सकता है। - (उर्दू अनुवाद): मुझसे उस व्यक्ति के बारे में पूछा गया जो कठिनाई के समय कहता है: या रसूल अल्लाह, या अली, या शेख अब्दुल कादिर, उदाहरण के लिए। क्या यह शरीयत के अनुसार जायज़ है या नहीं? मैंने [उत्तर दिया]: उन्हें पुकारना और उनके साथ तवस्सुल करना एक शरीयत सम्मत बात और कार्य है।

1. जज्ब अल-कुलूब, अध्याय बारह, शरीफ़ बक़ी कब्रिस्तान के उल्लेख में, मकतबा नौमिया, चौक दालगरां, लाहौर, पृष्ठ 138।

पृष्ठ 793 / 948

فتاوٰی رضویہ جلد نہم

علمہ جل مجدہ اتم واحکم۔ یہاں ہے۔ اور خدائے برتر خوب جاننے والا ہے اور اس کا علم زیادہ کامل و محکم ہے۔ اسد کا مجد جلیل ہے۔ (ت)

فصل چہار دہم: اصل مسئلہ مسئولہ سائل میں ، یعنی ارواح کرام کو ندا اور ان سے توسل وطلب دُعا۔ یہ فصل بھی فصل دوازدہم کا ایک حصہ ہے کہ یہاں بھی کلام سلام کے سوا ہے مگر مثل فصل تلقین بوجہ مہتم بالشان ہونے کے فصل جداگانہ قرار پائی واللہ التوفیق۔

قول (۱۵۷ تا ۱۵۹): سیدی خواجہ حافظ فی فصل الخطاب پھر ۱۵۸ شیخ محقق جذب القلوب میں ناقل : - قیل لموسیٰ الرضا (۱۵۹) رضی اللہ تعالیٰ عنہ علمنی کلاما اذا زرت واحداً منکم فقال ادن من القبر وکبر اللہ اربعین مرۃ ثم قل السلام علیکم یا اھل بیت الرسالۃ انی مستشفع بکم و مقدمکم امام طلبی وارادتی و مسأتی وحاجتی واشھد اللہ انی مومن بسرکم و علانیتکم وانی ابرأ الی اللہ من عدو محمد وآل محمد من الجن والانس (ملخصاً) - یعنی امام ابن الامام الی ستۃ آباء کرام علی موسیٰ رضا رضی اللہ تعالیٰ عنہ و عنہم جمعیا سے عرض کی گئی مجھے ایک کلام تعلیم فرمائے کہ اہل بیت کرام کی زیارت میں عرض کروں؟ فرمایا : قبر سے نزدیک ہو کر چالیس بار تکبیر کہہ پھر عرض کر سلام آپ پر اے اہلبیت رسالت! میں آپ سے شفاعت چاہتا ہوں اور آپ کو اپنی طلب و خواہش وسوال وحاجت کے آگے کرتا ہوں ، خدا گواہ ہے مجھے آپ کے باطن کریم و ظاہر طاہر پر سچے دل سے اعتقاد ہے اور میں اللہ کی طرف بری ہوتا ہوں ان سب جن و انس سے جو محمد و آل محمد کے دشمن ہوں صلی اللہ تعالیٰ علی محمد وآل محمد وبارک وسلم آمین!

قول (۱۶۰ تا ۱۶۱): سیدی جمال مکی قدس سرہ کے فتاویٰ میں ہے : - سئلت عمن یقول فی حال الشدائد یارسول اللہ او یا علی او یا شیخ عبدالقادر مثلا ھل ھو جائز شرعا ام لا فاجبت نعم الاستغاثۃ بالاولیاء و نداؤھم والتوسل بھم امر مشروع و مرغوب لاینکرہ الامکابر - مجھ سے سوال ہوا اس شخص کے بارے میں جو سختیوں کے وقت کہتا ہے یا رسول اللہ ، یا علی ، یا شیخ عبدالقادر مثلاً آیا یہ شرعاً جائز ہے یا نہیں ؟ میں پکارنا اور ان کے ساتھ توسل کرنا امر مشروع و شئے

1 جذب القلوب باب دوازدہم در ذکر مقبرہ شریفہ بقیع مکتبہ نعمیہ چوک ڈالگراں لاہور ص ۱۳۸

Fatawa Rizvia - Volume 9

...or an antagonist who has forbidden the blessing of the honorable saints. It is desirable, and none would deny it except for a stubborn enemy of justice, and indeed he is deprived of the blessings of the noble saints. Sheikh al-Islam Shihab al-Ramli al-Ansari al-Shafi'i was asked regarding what occurs among the general public during times of hardship, such as their saying 'O Sheikh so-and-so' and similar forms of seeking help from prophets, messengers, and the righteous. He replied with the following: "Seeking help from prophets, messengers, and the righteous saints is permissible after their death..." [Summary ended]. The praised Imam gave the fatwa that seeking help and assistance from prophets, messengers, saints, scholars, and the righteous is permissible even after their noble passing.

Saying (162): Allama Khairuddin Ramli Hanafi, teacher of the author of Durr-e-Mukhtar (may Allah have mercy on them), says in Fatawa Khairiyyah: "Their saying 'O Sheikh Abdul Qadir' is a calling, so what is the reason for its prohibition?" [Summary ended].

Saying (163): Sayyid Ahmad Zarruq (may Allah be pleased with him), who is from the great scholars and saints of the Maghreb, states in his poem: I am the gatherer of my disciple's scattered affairs, / I am the provider of comfort in my disciple's worries when When the tyranny of time strikes with its misfortune. / The oppression of time transgresses against him with its ill-fate, and if you And if you are in distress, grief, or loneliness, / are in distress, pain, and loneliness, then call out like this: Call out 'O Zarruq!', I will come swiftly. / "O Zarruq!", I will be present immediately.

Shah Abdul Aziz Muhaddith Dehlavi writes about this "Lion of Allah" in his book Bustan al-Muhadditheen: "His Sheikh Sayyidi Zaytoun (may Allah have mercy on him) regarding him... / His Sheikh Sayyidi Zaytoun (may Allah have mercy on him) had for them..."

Footnotes: 1. Fatawa Jamal bin Umar Makki 2. Fatawa Khairiyyah, Kitab al-Karahiyyah wal Istihsan, Dar al-Ma'rifah, Beirut, 2/182 3. Bustan al-Muhadditheen, with reference to Zarruq, Hashiyah Bukhari Zarruq, H.M. Saeed Company, Karachi, p. 322

फ़तावा रिज़विया - जिल्द 9

...या एक विरोधी जिसने सम्मानित संतों के आशीर्वाद को वर्जित कर दिया है। यह वांछनीय है, और कोई भी इसका इनकार नहीं करेगा सिवाय एक हठधर्मी और न्याय के दुश्मन के, और वास्तव में वह नेक संतों के आशीर्वाद से वंचित है। शेख अल-इस्लाम शिहाब अल-रमल अल-अंसारी अल-शाफी से पूछा गया कि आम लोग कठिनाइयों के समय "हे शेख फलां" कहकर जो पुकारते हैं और नबियों, रसूलों और नेक लोगों से फरियाद करते हैं, उसके बारे में शरीयत का क्या हुक्म है? उन्होंने यह उत्तर दिया: "नबियों, रसूलों और नेक संतों से उनके निधन के बाद भी मदद माँगना जायज़ है..." [सारांश समाप्त]। प्रशंसित इमाम ने फतवा दिया कि नबियों, रसूलों, वलियों, विद्वानों और नेक लोगों से उनके निधन के बाद भी मदद और सहायता प्राप्त करना जायज़ है।

कथन (162): अल्लामा खैरूद्दीन रमल हनफी, जो 'दुर्र-ए-मुख्तार' के लेखक के उस्ताद थे, 'फ़तावा खैरिय्या' में फरमाते हैं: "लोगों का कहना 'हे शेख अब्दुल कादिर' एक पुकार (निदा) है, फिर इसकी मनाही का क्या कारण है?" [सारांश समाप्त]।

कथन (163): सैयद अहमद ज़र्रूक (रज़ियल्लाहु अन्हु), जो मग़रिब (पश्चिम) के महान विद्वानों और संतों में से हैं, अपने कसीदे में फरमाते हैं: मैं अपने मुरीद की बिखरी हुई परेशानियों को समेटने वाला हूँ, / मैं अपने मुरीद की परेशानियों में उसे सांत्वना देने वाला हूँ जब जब ज़माने का ज़ुल्म अपनी बदकिस्मती के साथ उस पर हमला करे। / समय का अत्याचार अपनी बदकिस्मती के साथ उस पर हमला करे और अगर तुम और अगर तुम तंगी, दुःख या अकेलेपन में हो, / तंगी, दुःख और अकेलेपन में हो, तो इस तरह पुकारो: तो पुकारो 'हे ज़र्रूक!', मैं तुरंत पहुँच जाऊँगा। / "हे ज़र्रूक!", मैं तुरंत उपस्थित हो जाऊँगा।

शाह अब्दुल अज़ीज़ मुहद्दिस देहलवी इस "अल्लाह के शेर" के बारे में अपनी किताब 'बुस्तान अल-मुहद्दिसीन' में लिखते हैं: "उनके शेख़ सैय्यदी ज़ैतून (रहमतुल्लाह अलैह) ने उनके बारे में... / उनके शेख़ सैय्यदी ज़ैतून (रहमतुल्लाह अलैह) ने उनके.."

पादटिप्पणियाँ: 1. फ़तावा जमाल बिन उमर मक्की 2. फ़तावा खैरिय्या, किताब अल-कराहिया वल इस्तिहसान, दार अल-मआरिफ़ा, बेरूत, 2/182 3. बुस्तान अल-मुहद्दिसीन, ज़र्रूक के हवाले से, हाशिया बुखारी ज़र्रूक, एच.एम. सईद कंपनी, कराची, पृष्ठ 322

पृष्ठ 794 का 948

او معاند وقد حرم برکة الاولیاء الکرام، و سئل شیخ الاسلام الشهاب الرملی الانصاری الشافعی عما یقع من العامة من قولهم عند الشدائد یا شیخ فلان ونحو ذلك من الاستغاثة بالانبیاء والمرسلین والصالحین فاجاب بما نصه الاستغاثه بالانبیاء والمرسلین والاو لیاء الصالحین جائزة بعد موتهم 1 الخ اهـ ملخصا مرغوب ہے جس کا انکار نہ کرے گا مگر ہٹ دھرم دشمن انصاف ، اور بیشک وہ برکت اولیائے کرام سے محروم ہے۔ شیخ الاسلام شہاب رملی انصاری شافعی سے استفتاء ہوا کہ عام لوگ جو سختیوں کے وقت مثلاً یا شیخ فلاں کہہ کر پکارتے ہیں اور انبیاء و اولیاء سے فریاد کرتے ہیں اس کا شرع میں کیا حکم ہے ؟ امام ممدوح نے فتوٰی دیا کہ انبیاء و مرسلین واولیاء علماء صالحین سے ان کے وصال شریف کے بعد بھی استعانت و استمداد جائز ہے۔

قول (۱۶۲): علامہ خیر الدین رملی حنفی استاذ صاحب در مختار رحمہ اللہ تعالی علیہما فتاوی خیریہ میں فرماتے ہیں: قولهم یا شیخ عبدالقادر نداء فی الموجب لحرمته 2 اهـ ملخصا۔ لوگوں کا کہنا یا شیخ عبدالقادر یہ ایک نداء ہے پھر اس کی حرمت کا سبب کیا ہے۔

قول (۱۶۳): سید احمد زروق رضی اللہ تعالی عنہ کہ اکابر علماء واولیائے دیار مغرب سے ہیں اپنے قصیدہ میں ارشاد فرماتے ہیں: انا لمریدی جامع لشتاته | میں اپنے مرید کی پریشانیوں میں جمعیت بخشنے والا ہوں جب اذا ماسطا جور الزمان بنکبته | ستم زمانہ اپنی نحوست سے اس پر تعدی کرے اور اگر تو تنگی وان کنت في ضیق وکرب وحشة | و تکلیف و وحشت میں ہو تو یوں نداء کر : یا زروق، میں فوراً فناد بیازروق آت بسرعة 3 | آموجود ہوں گا۔

شاہ عبدالعزیز محدث دہلوی صاحب اس شیر الہی کا حال اپنی کتاب بستان المحدثین میں یوں لکھتے ہیں : شیخ او سیدی زیتون رحمہ اللہ تعالیٰ علیہ در حق او | ان کے شیخ سیدی زیتون رحمہ اللہ تعالیٰ علیہ نے ان کے

1 فتاوی جمال بن عمر مکی 2 فتاویٰ خیریہ کتاب الکراھیۃ والاستحسان دارالمعرفتہ بیروت ۱۸۲/۲

3 بستان المحدثین بحوالہ زروق حاشیہ بخاری زروق ایچ ایم سعید کمپنی کراچی ص ۳۲۲

Fatawa Razawiya Volume 9

(Persian text fragment): He gave glad tidings that he is from among the seven Abdaal (saints) and despite the elevation of his inner state, his writings in the exoteric sciences have also become beneficial, useful, and numerous. — 1 (Urdu translation): He was given glad tidings that he is one of the seven Abdaal; along with a high rank in the esoteric (hidden) sciences, many of his writings are also available in the exoteric sciences which are beneficial and useful. (T)

Then after counting the writings, he wrote: (Persian text fragment): In short, he is a person of magnificent stature whose level of perfection is beyond mention, and he is among the latter Sufi researchers who combined Truth (Haqiqat) and Law (Shariat). Great scholars took pride and boasted in being his students, such as Shihab al-Din al-Qastallani whose situation was previously mentioned, and Shams al-Din al-Laqqani (2) etc. (Urdu translation): In brief, he is a person of magnificent stature whose peak of perfection is beyond description. He is among the latter Sufi researchers who united Truth and Sharia. Great scholars take pride and boast in being his students, such as Allama Shihab al-Din al-Qastallani, whose state was mentioned earlier, and Shams al-Din al-Laqqani etc. (T)

Then he said: (Persian text fragment): And he has a poem on the pattern of the Jilani poem, of which some verses are these (3) (Urdu translation): He also has an ode written in the style of the Qasida Ghausia, some verses of which are these. (T)

And he quoted those same two mentioned couplets. Quote (125 to 165): Imam Ibn al-Hajj narrating from Imam Ibn al-Nu'man's Safinat al-Najat: (Arabic): Supplicating at the graves of the righteous and seeking their intercession is a practice followed by our researching scholars from the leaders of the religion (4). (Urdu translation): Praying at the graves of the pious and seeking intercession through them is the practice of our researching scholars and leaders of the religion. Quote (166 to 170): It is in Al-Lubab (166), Sharh al-Lubab (167), Al-Ikhtiyar (168), and Fatawa Hindiyya (169): "The wording belongs to the first two, for it is more complete" (the words are from the first two books because they are more complete. T) After visiting the Faruqi grave, by about one handspan...

Footnotes: 1. Bustan al-Muhaddithin with Urdu translation, Hashiya Bukhari, Syed Zarruq, H.M. Saeed Company, Karachi, p. 320 2. Bustan al-Muhaddithin with Urdu translation, Hashiya Bukhari, Syed Zarruq, H.M. Saeed Company, Karachi, p. 321 3. Bustan al-Muhaddithin with Urdu translation, Hashiya Bukhari, Syed Zarruq, H.M.

Saeed Company, Karachi, p. 321 4. Al-Madkhal, Chapter on Visiting Graves, Dar al-Kitab al-Arabi, Beirut, 1/249

फ़तावा रज़विया जिल्द नहुम

(फारसी पाठ का अंश): खुशखबरी दी कि वह सात अब्दालों में से एक हैं और उनके आंतरिक हाल की उच्चता के बावजूद ज़ाहिरी उलूम में उनकी तस्नीफ़ात भी बहुत मुफ़ीद, लाभदायक और बहुत ज़्यादा साबित हुई हैं। — 1 (उर्दू अनुवाद): हक़ में बशारत दी कि वह सातों अब्दालों में से एक हैं, इल्म-ए-बातिन में बुलंद मर्तबे के साथ-साथ ज़ाहिरी उलूम में भी उनकी बहुत सी तस्नीफ़ात मौजूद हैं जो नफ़ा-बख़्श और मुफ़ीद हैं। (त)

फिर तस्नीफ़ात की गिनती के बाद लिखा: (फारसी पाठ का अंश): संक्षेप में, वह एक आली मर्तबा शख़्सियत हैं जिनका कमाल का मर्तबा बयान से ऊपर है और वह उन बाद के सूफ़ी शोधकर्ताओं में से हैं जो हक़ीक़त और शरीअत के बीच जामे रहे हैं और बड़े उलेमा उनकी शागिर्दी पर फ़ख़्र और गर्व करते थे जैसे शहाबुद्दीन क़स्तलानी जिनका हाल पहले ज़िक्र किया जा चुका है और शम्सुद्दीन लक़ानी (2) आदि। (उर्दू अनुवाद): संक्षिप्त यह कि वह एक जलील-उल-क़द्र शख़्सियत हैं जिनका मर्तबा-ए-कमाल बयान से बालातर है, वह उन आख़िर सूफ़िया मुहक़्क़िक़ीन में से हैं जो हक़ीक़त और शरीअत के जामे हुए, उनकी शागिर्दी पर अज़ल-ए-उलेमा फ़ख़्र और मुबाहत करते हैं जैसे अल्लामा शहाबुद्दीन क़स्तलानी जिनका हाल पहले ज़िक्र हुआ और शम्सुद्दीन लक़ानी आदि। (त)

फिर कहा: (फारसी पाठ का अंश): और उनका एक क़सीदा उसी तर्ज़ पर है जिस पर क़सीदा-ए-जीलानिया है, जिसके कुछ शेर ये हैं (3) (उर्दू अनुवाद): क़सीदा-ए-ग़ौसिया के तर्ज़ पर उनका एक क़सीदा भी है जिसके कुछ अशआर ये हैं। (त)

और वही दो बैत मज़कूर नक़ल किए। क़ौल (125 से 165): इमाम इब्न-उल-हाज, इमाम इब्न-उल-नुमान की सफ़ीना-तुन-नजात से नक़ल करते हुए: (अरबी): सालेहीन की क़ब्रों के पास दुआ करना और उनके ज़रिये शफ़ाअत चाहना दीन के पेशवाओं में से हमारे मुहक़्क़िक़ उलेमा के बीच एक आम मामूल है (4)। (उर्दू अनुवाद): सालेहीन की क़ुबूर के पास दुआ और उनसे शफ़ाअत चाहना हमारे उलेमा-ए-मुहक़्क़िक़ीन आईमा-ए-दीन का मामूल है। क़ौल (166 से 170): लुबाब (166) और शरह लुबाब (167) और इख़्तियार (168) और फ़तावा हिंदिया (169) में है: "अल्फ़ाज़ पहले दोनों के हैं क्योंकि वह ज़्यादा मुकम्मल हैं" (अल्फ़ाज़ पहली दोनों किताबों के हैं क्योंकि वे ज़्यादा कामिल हैं। त) ज़ियारत-ए-फ़ारूक़ी के बाद तक़रीबन एक बालिश्त के..

पाद-टिप्पणियाँ: 1. बुस्तानुल मुहद्दिसीन मय उर्दू तर्जुमा हाशिया बुखारी, सैयद ज़र्रूक़, एच.एम. सईद कंपनी कराची पृ. 320 2. बुस्तानुल मुहद्दिसीन मय उर्दू तर्जुमा हाशिया बुखारी, सैयद ज़र्रूक़, एच.एम. सईद कंपनी कराची पृ. 321 3. बुस्तानुल मुहद्दिसीन मय उर्दू तर्जुमा हाशिया बुखारी, सैयद ज़र्रूक़, एच.एम. सईद कंपनी कराची पृ. 321 4. अल-मदख़ल फ़स्ल फ़ी ज़ियारतुल क़ुबूर, दारुल किताब अल-अरबी बेरुत 249/1

فتاوٰی رضویہ جلد نہم

بشارت دادہ کہ اُواز ابدالِ سبعہ است و باوصفِ علو حالِ باطن تصانیف اور در علومِ ظاہرہ نیز نافع شدہ و مفید و کثیرہ افتادہ - 1 حق میں بشارت دی کہ وہ ساتوں ابدال میں سے ایک ہیں، علمِ باطن میں بلند رتبہ کے ساتھ ظاہری علوم میں بھی ان کی کثیر تصانیف موجود ہیں جو نافع و مفید ہیں۔ (ت)

پھر شمار تصانیف کے بعد لکھا: بالجملہ مُردے جلیل القدر یست کہ مرتبہ کمالِ اوفوق الذکر است و اواز آخر محققانِ صوفیہ است کہ بین الحقیقۃ والشریعۃ جامع بودہ اند و بشا گردیِ اواجملہ علماء مفتخر و مباہی بودہ اند مثل شہاب الدین قسطلانی کہ سابق حال اومذ کور شدہ و شمس الدین لقانی 2 الخ۔ مختصر یہ کہ وہ ایک جلیل القدر شخصیت ہیں جن کا رتبہ کمال بیان سے بالاتر ہے، وہ ان آخر صوفیہ محققین سے ہیں جو حقیقت وشریعت کے جامع ہوئے، ان کی شاگردی پر اجلہ علماء فخر و مباہات کرتے ہیں جیسے علامہ شہاب الدین قسطلانی جن کا حال پہلے ذکر ہوا اور شمس الدین لقانی الخ۔ (ت)

پھر کہا: واورا قصیدہ ایست بر طورِ قصیدہ جیلانیہ کہ بعضے ابیاتِ اواین ست 3 قصیدہ غوثیہ کے طرز پر ان کا ایک قصیدہ بھی ہے جس کے بعض اشعار یہ ہیں۔ (ت)

اور وہی دو بیت مذکور نقل کئے۔ قول (۱۲۵ تا ۱۶۵): امام ابن الحاج امام ابن النعمان کی سفینۃ النجاء سے ناقل: الدعاء عند القبور الصالحین والتشفع بھم معمول بہ عند علمائنا المحققین من ائمۃ الدین 4 ۔ صالحین کی قبور کے پاس دعا اور ان سے شفاعت چاہنا ہمارے علمائے محققین ائمہ دین کا معمول ہے۔ قول (۱۶۶ تا ۱۷۰): لباب 166 و شرح لباب 167 و اختیار 168 و فتاوٰی ہندیہ

169 میں ہے: واللفظ للاولین فانہ اتم (الفاظ پہلی دونوں کتابوں کے ہیں کیونکہ وہ زیادہ کامل ہیں۔

ت) بعد زیارت فاروقی بقدر ایک بالشت کے

1 بستان المحد ثین مع اردو ترجمہ حاشیہ بخاری سید زروق ایچ ایم سعید کمپنی کراچی ص ۳۲۰ 2

بستان المحد ثین مع اردو ترجمہ حاشیہ بخاری سید زروق ایچ ایم سعید کمپنی کراچی ص ۳۲۱ 3

بستان المحد ثین مع اردو ترجمہ حاشیہ بخاری سید زروق ایچ ایم سعید کمپنی کراچی ص ۳۲۱ 4

المدخل فصل فی زیارۃ القبور دارالکتاب العربی بیروت ۲۴۹/۱

Turn towards the head-side and stand between the two noble ministers (Abu Bakr and Umar), may Allah be pleased with them both, and after salutations, repeat the salutations and mention the signs of peace, and say:

Arabic	Urdu Translation
May Allah reward you for that with companionship in His Paradise, and us with you, by His mercy; indeed, He is the Most Merciful of the merciful. And may Allah reward you on behalf of Islam and its people with the best of rewards. We have come, O two companions of the Messenger of Allah, peace and blessings be upon him, visiting our Prophet, our Siddiq, and our Farooq. We seek intercession through you both to the Messenger of Allah, peace and blessings be upon him, so that he may intercede for us with our Lord.	May Allah Almighty grant you both, in exchange for these virtues, companionship with His Prophet, peace and blessings be upon him, in His Paradise, and us along with you. Indeed, He is more merciful than any merciful one. May Allah grant you both a better reward on behalf of Islam and its people. O two friends of the Prophet, peace and blessings be upon him! We have come to visit our Prophet, our Siddiq, and our Farooq, and we seek intercession through you both towards the Prophet, peace and blessings be upon him, so that the Holy Prophet may intercede for us before our Lord.

Similarly, it is mentioned in 'Al-Madkhal':

Arabic	Urdu Translation
He seeks intercession through them both to the Prophet, peace and blessings be upon him, and presents them both before him as intercessors for his needs.	Meaning, one should seek intercession through the two Shaykhs (Abu Bakr and Umar), may Allah be pleased with them both, towards the Prophet, peace and blessings be upon him, and present them as intercessors for one's needs before the Holy Prophet, peace and blessings be upon him.

Statement (171): In 'Ashi'at al-Lam'at', it is said:

Persian	Urdu Translation
I wish I knew what they want by 'seeking help' and 'giving help' that this sect denies it. What we understand from it is that the	It is not known what they mean by seeking help and giving help that this sect denies it. As far as we understand,

Persian	Urdu Translation
supplicant prays to God and seeks intercession through the spirituality of this close servant, saying: 'O servant of God, O saint, intercede for me; ask God to fulfill my desire and request.'	it is that the one who prays supplicates to God and uses the spirituality of this close servant as a means (wasilah), or requests this close servant: 'O servant of God, and...'

1. Al-Maslak al-Mutaqassit with Irshad al-Sari, Chapter on Visiting the Master of Messengers, Dar al-Kitab al-Arabi, Beirut, p. 320.
2. Al-Madkhal, Chapter on Rules regarding visiting the Master of the Ancients etc., Dar al-Kitab al-Arabi, Beirut, 1/258.

जिल्द नौ | फ़तावा रज़विया

सिरहाने की तरफ मुड़ें और दो महान वज़ीरों (अबू बक्र और उमर), अल्लाह उन दोनों से राज़ी हो, के बीच खड़े होकर सलाम के बाद दोबारा सलाम करें और शांति के प्रतीकों का ज़िक्र करते हुए अर्ज़ करें:

अरबी

अल्लाह आपको जन्नत में अपने नबी की सोहबत के ज़रिए इसका बदला दे, और हमें भी आपके साथ, अपनी रहमत से; बेशक वह रहम करने वालों में सबसे ज़्यादा रहम करने वाला है। और अल्लाह आपको इस्लाम और अहल-ए-इस्लाम की तरफ से बेहतरीन बदला दे। ऐ अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) के दो साथियों! हम अपने नबी, अपने सिद्दीक़ और अपने फ़ारूक़ की ज़ियारत के लिए हाज़िर हुए हैं और हम आप दोनों के ज़रिए अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) तक वसीला ढूँढते हैं ताकि वह हमारे रब के पास हमारी शफ़ाअत (सिफ़ारिश) फरमाएँ।

उर्दू अनुवाद

अल्लाह तआला आप दोनों साहबों को इन खूबियों के बदले अपनी जन्नत में अपने नबी (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) की रफ़ाक़त अता फरमाए और आपके साथ हमें भी, बेशक वह हर मेहर वाले से ज़्यादा मेहर वाला है। अल्लाह आप दोनों को इस्लाम और अहल-ए-इस्लाम की तरफ से बेहतर बदला करामत फरमाए, ऐ नबी (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) के दोनों यारों! हम अपने नबी और अपने सिद्दीक़ और अपने फ़ारूक़ की ज़ियारत को हाज़िर हुए और हम नबी (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) की तरफ आप दोनों से तवस्सुल करते हैं ताकि हुज़ूर हमारे रब के पास हमारी शफ़ाअत फरमाएँ।

इसी तरह 'अल-मदखल' में है:

अरबी

वह उन दोनों के ज़रिए नबी (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) तक तवस्सुल (वसीला) करता है और अपनी ज़रूरतों के लिए उन दोनों को उनके सामने शफ़ीअ (सिफ़ारिशी) के तौर पर पेश करता है।

उर्दू अनुवाद

यानी हज़रात-ए-शैख़ैन (रज़ियल्लाहु अन्हुमा) से नबी (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) की तरफ तवस्सुल करे और उन्हें अपनी हाजतों में शफ़ीअ बना कर हुज़ूर अकदस (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) के आगे करे।

क़ौल (171): 'अशअतुल लम्आत' में फ़रमाया:

फ़ारसी	उर्दू अनुवाद
काश मुझे मालूम होता कि वे 'इस्तमदाद' (मदद माँगना) और 'इमदाद' (मदद करना) से क्या चाहते हैं कि यह फ़िर्क़ा उसका मुनकिर है। हम जहाँ तक समझते हैं वह यह है कि दुआ करने वाला खुदा से दुआ करता है और इस बंदा-ए-मुक़र्रब की रूहानियत को वसीला बनाता है कि 'ऐ खुदा के बंदे, ऐ वली, मेरी शफ़ाअत करो; खुदा से मुराद माँगो कि वह मेरी मतलब और मसऊल चीज़ मुझे अता कर दे।'	न मालूम वह इस्तमदाद और इमदाद से क्या चाहते हैं कि यह फ़िर्क़ा उसका मुनकिर है। हम जहाँ तक समझते हैं वह यह है कि दुआ करने वाला खुदा से दुआ करता है और इस बंदा-ए-मुक़र्रब की रूहानियत को वसीला बनाता है या इस बंदा-ए-मुक़र्रब से अर्ज़ करता है कि ऐ खुदा के बंदे और...

1. अल-मसलक अल-मुतक़स्सित मअ इरशाद अल-सारी, बाब ज़ियारत-ए-सय्यद अल-मुर्सलीन, दार अल-किताब अल-अरबी, बेरूत, पृ. 320।
2. अल-मदखल, फ़स्ल फ़ी अहकाम अली ज़ियारत सय्यद अल-अवलीम इत्यादि, दार अल-किताब अल-अरबी, बेरूत, 1/258।

سرہانے کی طرف پلٹے اور وزیرین جلیلین رضی اللہ تعالٰی عنہما کے درمیان کھڑا ہو کر بعد سلام اعادہ سلام و ذکرِ آثار السلام عرض کرے :

عربی	اردو ترجمہ
جزا کم اللہ عن ذلك مرافقته في جنته وایا نا معکما برحمة انه ارحم الراحمین وجزا کم اللہ عن الاسلام واھله خیر الجزاء ، جئنا یا صاحبي رسول اللہ صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم زائرین لنبینا وصدیقنا وفاروقنا ونحن نتوسل بکما الی رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم لیشفع لنا الی ربنا ۔	اللہ تعالٰی آپ دونوں صاحبوں کو ان خوبیوں کے عوض اپنی جنت میں اپنے نبی صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم کی رفاقت عطا فرمائے اور آپ کے ساتھ ہمیں بھی، بیشک وہ ہر مہر والے سے زیادہ مہر والا ہے۔ اللہ آپ دونوں کو اسلام واہلِ اسلام کی طرف سے بہتر بدلہ کرامت فرمائے، اے نبی صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم کے دونوں یارو! ہم اپنے نبی اور اپنے صدیق اور اپنے فاروق کی زیارت کو حاضر ہوئے اور ہم نبی صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم کی طرف آپ دونوں سے توسل کرتے ہیں تاکہ حضور ہمارے رب کے پاس ہماری شفاعت فرمائیں۔

اسی طرح مدخل میں ہے :

عربی	اردو ترجمہ
یتوسل بھما الی النبي صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم ویقدمھما بین یدیه شفیعین في حوائجه ۔	یعنی حضراتِ شیخین رضی اللہ تعالٰی عنہما سے نبی صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم کی طرف توسل کرے اور انھیں اپنی حاجتوں میں

عربی	اردو ترجمہ
	شفیع بنا کر حضور اقدس صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم کے آگے کرے۔

قول (۱۷۱): اشعۃ اللمعات میں فرمایا :

فارسی	اردو ترجمہ
لیت شعری چہ می خواھند ایشان باستمداد و امداد کہ این فرقہ منکر ند آں را آنچہ مامی فھمیم ازاں این ست کہ داعی دعا کند خدا و توسل کند بروحانیت این بندہ مقرب را کہ اے بندہ دے شفاعت کن مراد بخواہ از خدا کہ بدہد مسئول و مطلوب مرا	نہ معلوم وہ استمداد وامداد سے کیا چاہتے ہیں کہ یہ فرقہ اس کا منکر ہے۔ ہم جہاں تک سمجھتے ہیں وہ یہ ہے کہ دعا کرنے والا خدا سے دعا کرتا ہے یا اس بندہ مقرب سے عرض کرتا ہے کہ اے خدا کے بندے اور

1 المسلک المتقسط مع ارشاد الساری باب زیارۃ سید المرسلین دار الکتاب العربی بیروت ص ۳۲۰ 2 المدخل فصل فی احکام علی زیارت سید الاولین الخ دار الکتاب العربی بیروت ۲۵۸/۱

Fatawa Ridawiyya, Volume 9

[Left Column - Persian Context]: If this meaning were to lead to polytheism (Shirk), as the denier wrongly assumes, then seeking intercession (Tawassul) and requesting prayers from the friends of Allah while they are alive should also have been prohibited. This is unanimously recommended (Mustahabb) and well-known in the religion. The accounts narrated and related by the masters of spiritual unveiling (Mashaikh-e-Ahl-e-Kashf) regarding seeking help (Istimdad) from the perfected souls and benefiting from them are beyond count. They are mentioned in their treatises and books and are famous among them; there is no need for us to mention them. Perhaps the words of these masters might not benefit a biased denier - may Allah protect us from that. The discussion at this point has been extended despite the deniers who, in recent times, have emerged as a group denying seeking aid and assistance from the saints of Allah. They consider those who turn to them as polytheists and idolaters, and they say what they say. (Summarized)

[Right Column - Urdu Translation/Exposition]: O friend of Him! Intercede for me and pray to God that He grants me my objective. If this meaning were a cause of polytheism, as is the false notion of the denier, then it should be forbidden to use the saints of Allah as a means (Wasilah) or ask them for prayers even during their worldly lives. However, this is unanimously recommended, liked, and a well-known, established part of the religion. The narrations and incidents that have reached us from the masters of spiritual unveiling regarding seeking help (Istimdad) and asking for forgiveness (Istighfar) through perfected souls are countless. They are mentioned in the writings and books of these personages and are famous among them; we do not need to narrate them. And perhaps their words might not be beneficial for a stubborn denier. May Allah keep us in safety. At this point, the discussion has become lengthy in view of refuting and humbling the deniers, who have emerged today in the form of a group. They deny seeking help and assistance from the saints of Allah, and they consider those who pay attention to the presence of these personages as polytheists and idolaters, and they say what they say. (End - T)

And in the Arabic commentary, this final subject was expressed as follows: "Indeed, we have lengthened the discourse in this place to spite the deniers, for in our time a small group has arisen that denies seeking help from the saints and says what they say, though they have no knowledge thereof; they do nothing but guess."

We have lengthened the discourse at this point to rub the noses of the deniers in the dust, because in our time, a few individuals have emerged who deny asking for help from the saints and say what they say. They have no knowledge of this; they are merely making conjectures of their own.

---

1 Ashi'at al-Lam'at, Chapter on the Ruling of Isra, Section 1, Maktaba Nooria Rizvia Sukkur, 2/401. 2 Lam'at al-Tanqih, Chapter on the Ruling of Isra, Section 1, Maktaba Nooria Rizvia Sukkur, 3/401.

फ़तावा रज़विया, जिल्द 9

[बायाँ कॉलम - फारसी संदर्भ]: अगर इसका अर्थ शिर्क(बहुदेववाद) होता, जैसा कि इनकार करने वाला गलत मानता है, तो अल्लाह के नेक बंदों के जीवित रहते हुए भी उनसे वसीला (मध्यस्थता) बनाना और उनसे दुआ करने को कहना मना होना चाहिए था। जबकि यह सर्वसम्मति से मुस्तहब (सराहनीय) है और दीन (धर्म) में प्रसिद्ध और ज्ञात है। कामिल (पूर्ण) रूहों से इस्तिम्दाद (सहायता माँगना) और इस्तफ़ादा (लाभ उठाना) के बारे में अहले-कश्फ़ (आध्यात्मिक रहस्य जानने वाले) बुजुर्गों से जो रिवायतें और वाकये आए हैं, वे गिनती से बाहर हैं। वे उन हज़रात के लेखों और किताबों में दर्ज हैं और उनके बीच मशहूर हैं; हमें उनका उल्लेख करने की आवश्यकता नहीं है। शायद उन हज़रात की बातें किसी पक्षपाती इनकार करने वाले के लिए फायदेमंद न हों - अल्लाह हमें इससे सुरक्षित रखे। इस विषय पर यहाँ चर्चा इसलिए लंबी की गई है ताकि उन इनकार करने वालों को जवाब दिया जा सके जो हाल के समय में एक गिरोह के रूप में सामने आए हैं और जो अल्लाह के वलियों से सहायता माँगने का इनकार करते हैं और उनकी ओर ध्यान देने वालों को मुशरिक (बहुदेववादी) और मूर्तिपूजक समझते हैं, और जो कुछ वे कहते हैं सो कहते हैं। (संक्षेप में)

[दायाँ कॉलम - उर्दू अनुवाद/व्याख्या]: ऐ उनके दोस्त! मेरी शफ़ाअत (सिफारिश) कीजिये और खुदा से दुआ कीजिये कि मेरा वांछित उद्देश्य मुझे प्रदान कर दे। अगर इसका मतलब शिर्क का कारण होता, जैसा कि इनकार करने वाले का गलत विचार है, तो यह चाहिए था कि औलिया अल्लाह को उनके सांसारिक जीवन में भी वसीला बनाना और उनसे दुआ कराना मना हो, जबकि यह सर्वसम्मति से मुस्तहब और सराहनीय है और दीन में प्रसिद्ध और विख्यात है। पूर्ण आत्माओं से सहायता माँगने (इस्तिम्दाद) और क्षमा माँगने (इस्तिग़फ़ार) के बारे में अहले-कश्फ़ बुजुर्गों से जो कहानियाँ और घटनाएँ सामने आई हैं, वे गिनती से बाहर हैं। वे उन महापुरुषों के रिसालों और किताबों में वर्णित हैं और उनके बीच प्रसिद्ध हैं; हमें उन्हें बयान करने की आवश्यकता नहीं है। और शायद हठधर्मी इनकार करने वाले के लिए उनके शब्द फायदेमंद न हों। अल्लाह हमें सुरक्षा में रखे। इस स्थान पर चर्चा लंबी हो गई है, इनकार करने वालों के खंडन और अपमान के मद्देनज़र जो आज कल एक गुट के रूप में सामने आए हैं। वे अल्लाह के वलियों से सहायता और मदद माँगने का इनकार करते हैं और इन हज़रात की बारगाह में ध्यान देने वालों को मुशरिक और मूर्तिपूजक समझते हैं और कहते हैं जो वे कहते हैं। (त)

और अरबी शरह (व्याख्या) में इस अंतिम विषय को इस प्रकार व्यक्त किया गया है: "हमने वास्तव में इनकार करने वालों को नीचा दिखाने के लिए इस विषय पर चर्चा लंबी की है, क्योंकि हमारे समय में एक छोटा समूह पैदा हो गया है जो औलिया (संतों) से सहायता माँगने का इनकार करता है और जो कुछ वे कहते हैं सो कहते हैं, जबकि उनके पास इसका कोई ज्ञान नहीं है; वे केवल अटकलें लगा रहे हैं।"

हमने इस स्थान पर चर्चा इसलिए लंबी की है ताकि इनकार करने वालों की नाक धूल में रगड़ी जा सके क्योंकि हमारे ज़माने में कुछ ऐसे लोग पैदा हुए हैं जो औलिया-ए-किराम से मदद माँगने के इनकार करते हैं और जो कुछ वे कहते हैं सो कहते हैं। उन्हें इसका कोई ज्ञान नहीं है, वे बस अपनी ओर से अटकलें लगा रहे हैं।

---

1 अश'अतुल लम्आत, बाब हुक्मुल इस्रा, फ़स्ल 1, मकतबा नूरिया रज़विया सुक्कुर, 2/401 2 लम्आतुल तनकीह, बाब हुक्मुल इस्रा, फ़स्ल 1, मकतबा नूरिया रज़विया सुक्कुर, 3/401

اگر ایں معنی موجب شرک باشد چنانکہ منکر زعم کند باید کہ منع کردہ شود توسل وطلب دعا از دوستان خدا در حالت حیات نیز وایں مستحب است باتفاق وشائع است در دین وآ نچہ مروی و محکی است از مشائخ اہل کشف در استمداد از ارواح کمل واستفادہ ازاں، خارج از حصر است ومنذ کورست در کتب ورسائل ایشاں و مشہور ست میاں ایشاں حاجت نیست کہ آنر اذکر کنیم و شاید کہ منکر متعصب سود نہ کند اور الکلمات ایشاں عافانا اللہ من ذلک کلام دریں مقام بحد اطناب کشید بر رغم منکراں کہ در قرب ایں زماں فرقہ پیدا شدہ اند کہ منکر استمداد و استعانت را از اولیائے خدا و متوجہاں بجناب ایشاں را مشرک بخد اعبدۃ اصنام می دانند و می گویند آنچہ می گویند 1 اہ ملتقطا۔

اس کے دوست ! میری شفاعت کیجئے اور خدا سے دعا کیجئے کہ میرا مطلوب مجھے عطا فرمادے_ اگر یہ معنی شرک کا باعث ہو جیسا کہ منکر کا خیال باطل ہے تو چاہئے کہ اولیاء اللہ کو ان کی حیات دنیا میں بھی وسیلہ بنانا اور ان سے دعا کرانا ممنوع ہو حالانکہ یہ بالاتفاق مستحب و مستحسن اور دین معروف و مشہور ہے۔ ارواح کاملین سے استمداد اور استغفار کے بارے میں مشائخ اہل کشف سے جو روایات و واقعات وارد ہیں وہ حصر و شمار سے باہر ہیں اور ان حضرات کے رسائل و کتب میں مذکور اور ان کے درمیان مشہور ہیں، ہمیں ان کو بیان کرنے کی ضرورت نہیں اور شائد ہٹ دھرم منکر کے لئے ان کے کلمات سود مند بھی نہ ہو _ خدا ہمیں عافیت میں رکھے _ اس مقام میں کلام طویل ہوا اور منکرین کی تردید و تذلیل کے پیش نظر جو ایک فرقہ کے روپ میں آج کل نکل آئے ہیں اور اولیاء اللہ سے استمداد و استعانت کا انکار کرتے ہیں اور ان حضرات کی بارگاہ میں توجہ کرنے والوں کو مشرک و بت پرست سمجھتے ہیں اور کہتے ہیں جو کہتے ہیں اھ (ت)

اور شرح عربی میں اس مضمون اخیر کو یوں ادا فرمایا : انما اطلنا الكلام في هذا المقام رغما لانف لمنكرين فأنه قد حدث في زماننا شرذمة ينكرون الاستمداد من الاولياء ويقولون ما يقولون ومالهم على ذلك من علم ان هم الايخرصون 2 -

ہم نے اس مقام میں کلام طویل کیا منکروں کی ناک خاک پر رگڑنے کو کہ ہمارے زمانے میں معدودے چند ایسے پیدا ہوئے ہیں کہ حضرات اولیاء سے مدد مانگنے کے منکر ہیں اور کہتے ہیں جو کہتے ہیں اور انھیں اس پر کچھ علم نہیں یو نہی اپنے سے اٹکلیں لڑاتے ہیں۔

---

1 اشعۃ اللمعات باب حکم الاسراء فصل ا مکتبہ نوریہ رضویہ سکھر ۲ / ۴۰۱ 2 لمعات التنقیح باب حکم الاسراء فصل ا مکتبہ نوریہ رضویہ سکھر ۳ / ۴۰۱

Similarly, in 'Jadhb al-Qulub Sharif', the meaning of seeking mediation (tawassul) and assistance (istimdad) in the mentioned manner was described as follows:

Persian	Urdu
There is no need for a categorical scriptural text (nass qat'i) regarding it; rather, the absence of a text prohibiting it...	A categorical text is not required in this regard; rather, the mere absence of a text prohibiting it is sufficient. (T)

...is enough for it. (1)

Statement (172): Shaykh-ul-Islam, whom scholars of Hadith counted among the 'hundred issues' and repeatedly relied upon his book 'Kashf al-Ghita', says in the same 'Kashf al-Ghita':

Persian	Urdu
No valid reason appears for denying assistance (istimdad), unless one completely denies the connection between the soul and the body from the start, which contradicts scriptural texts (nass). On that premise, visiting graves would become futile and meaningless, a notion contradicted by all traditions and narrations. What is the form of seeking assistance? It is that the needy person seeks their need from Allah Almighty, using the spirituality of a close servant as a means. Or he calls out to that servant and says: 'O servant of Allah and His friend! Intercede for me and pray to God for my desire.' There is no taint of polytheism (shirk) in this at all, despite the delusions of the deniers. (2) (Summarized)	No valid reason appears for denying assistance (istimdad), unless one completely denies the connection between the soul and the body from the start, which contradicts scriptural texts (nass). On that premise, visiting graves and going to them would all become futile and meaningless, whereas all narrations and traditions point to the contrary. And what is the form of seeking assistance? It is that the needy person seeks their need from Allah Almighty, using the spirituality of a close servant as a means. Or he calls out to that servant and submits: 'O servant of Allah and His friend! Intercede for me and pray to God for my objective.' In this, there is no taint of polytheism (shirk) at all, as is the delusion and thought of the denier. (Summarized) (T)

Statement (173): Sayyidi Muhammad Abdari in 'Al-Madkhal' says regarding visiting the graves of past prophets (peace and blessings be upon them):

Arabic	Urdu
Visitors come to them, and it is incumbent upon them to intend to visit them from distant places, so when they come to them...	The visitor should present himself before them, and it is ordained for him to intend to visit them from far-off places.

1. Jadhb al-Qulub, Chapter 15, in the statement of the ruling on visiting the noble grave, etc. Munshi Nawal Kishore, Lucknow, p. 224.
2. Kashf al-Ghita, Section 10, visiting graves, Maktaba Ahmad Delhi, p. 80-81.

फतावा रज़विया जिल्द 9

इसी तरह 'जज्ब अल-कुलूब शरीफ' में ज़िक्र किए गए तरीके से तवस्सुल (मध्यस्थता) और इस्त इमदाद (सहायता मांगना) का अर्थ बयान करते हुए फरमाया गया:

फ़ारसी

इसके बारे में किसी स्पष्ट आदेश (नस्स कतई) की आवश्यकता नहीं है, बल्कि निषेध के आदेश की अनुपस्थिति ही...

...ही काफी है। (1)

उर्दू

इस बारे में किसी स्पष्ट आदेश की ज़रूरत नहीं है, बल्कि निषेध का कोई आदेश न होना ही पर्याप्त है। (त)

कथन (172): शैखुल इस्लाम, जिन्हें हदीस के विद्वानों ने 'सौ मसलों' में गिना है और उनकी किताब 'कश्फ अल-ग़िता' पर जगह-जगह भरोसा और साख जताई है, उसी 'कश्फ अल-ग़िता' में फरमाते हैं:

फ़ारसी

इस्त इमदाद (सहायता) से इनकार करने की कोई सही वजह नज़र नहीं आती, सिवाय इसके कि वे आत्मा और शरीर के संबंध को ही पूरी तरह से नकार दें, और यह स्पष्ट आदेशों (नस्स) के विरुद्ध है। इस आधार पर तो कब्रों पर जाना और ज़ियारत करना सब व्यर्थ और अर्थहीन हो जाता है, जबकि यह एक ऐसी बात है जिसके विरुद्ध तमाम हदीसें और परंपराएं गवाह हैं। और इस्त इमदाद का स्वरूप क्या है? यही कि ज़रूरतमंद अपनी ज़रूरत अल्लाह तआला से मांगता है, उस के किसी करीबी बंदे की रूहानियत को वसीला (माध्यम) बनाकर। या उस बंदे को पुकारता है और अर्ज करता है कि 'ऐ अल्लाह के बंदे और उसके दोस्त! मेरी सिफारिश कीजिए और मेरे मकसद के लिए अल्लाह से दुआ कीजिए'। इसमें

उर्दू

इस्त इमदाद से इनकार करने की कोई सही वजह नज़र नहीं आती, मगर यह कि सरे से रूह और बदन के ताल्लुक का ही बिल्कुल इनकार कर दें और यह नस्स के खिलाफ है। इस तक़दीर पर तो कब्रों के पास जाना और ज़ियारत करना सब लग़्व (व्यर्थ) और बेमानी हो जाता है, और यह एक दूसरी बात है जिसके खिलाफ तमाम आसार और अहादीस गवाह हैं, और इस्त इमदाद की सूरत क्या है? यही कि हाजतमंद अपनी हाजत खुदाए अज़्ज़ व जल्ल से बंदा-ए-मुक़र्रब की रूहानियत को वसीला करके तलब करता है। या उस बंदे को निदा (पुकार) करता है और अर्ज़ करता है कि 'ऐ खुदा के बंदे और उसके दोस्त! मेरी शफाअत (सिफारिश) कीजिए और मेरे मतलूब (उद्देश्य) के लिए खुदा से दुआ कीजिए'।

फ़ारसी

शिर्क(बहुदेववाद) का कोई अंश भी नहीं है, जैसा कि इनकार करने वालों का वहम और ख्याल है। (2) (संक्षिप्त)

उर्दू

इसमें तो शिर्क का कोई शाइबा (अंश) भी नहीं जैसा कि मुनकिर (इनकार करने वाले) का वहम व ख्याल है। (संक्षिप्त) (त)

कथन (173): सैयदी मुहम्मद अब्दरी 'मदखल' में पिछले पैगंबरों (अलैहिमुस्सलातु वत्तस्लीम) की कब्रों की ज़ियारत के बारे में फरमाते हैं:

अरबी

ज़ियारत करने वाले उनके पास आते हैं, और उन पर यह लाज़िम है कि वे दूर-दराज के स्थानों से उनकी ज़ियारत का इरादा करें, फिर जब वे उनके पास आ जाएं..

उर्दू

ज़ायर (दर्शनार्थी) उनके आगे हाज़िर हो और उस पर यह तय है कि वह दूर-दराज के स्थानों से उनकी ज़ियारत का इरादा करे।

---

1. जज्ब अल-कुलूब, अध्याय 15, सम्मानित कब्र की ज़ियारत के हुक्म के बयान में, मुंशी नवल किशोर, लखनऊ, पृष्ठ 224।
2. कश्फ अल-ग़िता, खंड 10, कब्रों की ज़ियारत, मकतबा अहमद दिल्ली, पृष्ठ 80-81।

पृष्ठ 948 का 798

فتاوی رضویہ جلد نہم

اسی طرح جذب القلوب شریف میں معنی توسل واستمداد بروجہ مذکور بیان کرکے فرمایا:

فارسی	اردو
و ورود نص قطعی دروے حاجت نیست بلکہ عدم نص بر منع آں کافی ست 1۔	اس بارے میں نص قطعی کی ضرورت نہیں بلکہ اس کی ممانعت پر نص نہ ہونا ہی کافی ہے۔ (ت)

قول (۱۷۲): شیخ الاسلام جنھیں مائتہ مسائل میں علمائے محدثین سے شمار کیا اور ان کی کتاب کشف الغطاء پر جابجا اعتماد و اعتبار کیا اسی کشف الغطاء میں فرماتے ہیں:

فارسی	اردو
انکار استمداد درا وجہے صحیح نمی نماید مگر انکہ از اول امر منکر شوند تعلق روح وبدن را بالکلیہ وآں خلاف منصوص است و بریں تقدیر زیارت درفتن بقبور ہمہ لغو و بے معنی گردد و این امرے دیگر است کہ تمام اخبار وآثار دال بر خلاف آنست و نیست صورت استمداد مگر ہمیں کہ محتاج طلب کند حاجت خود را از جناب عزت الہی بتوسل روحانیت بندہ مقرب یا ندا کند آں بندہ	استمداد سے انکار کی کوئی صحیح وجہ نظر نہیں آتی، مگر یہ کہ سرے سے روح و بدن کے تعلق کا ہی بالکل انکار کردیں اور یہ نص کے خلاف ہے۔ اس تقدیر پر تو قبروں کے پاس جانا اور زیارت کرنا سب لغو اور بے معنی ہوجاتا ہے، اور یہ ایک دوسری بات ہے جس کے خلاف تمام آثار واحادیث دال ہیں، اور استمداد کی صورت کیا ہے؟ یہی کہ حاجت مند اپنی حاجت خدائے عزوجل سے بندہ مقرب کی روحانیت کو وسیلہ کرکے طلب کرتا ہے۔ یا اس بندے کو ندا

فارسی	اردو
را کہ اے بندہ خدا و ولی دے شفاعت کن مراد بخواہ از خدائے تعالیٰ مطلوب مرا و دروے پیچ شائبہ شرک نیست چنانچہ منکر وہم کردہ 2اہ بالالتقاط	کرتا ہے اور عرض کرتا ہے کہ اے خدا کے بندے اور اس کے دوست ! میری شفاعت کیجئے اور میرے مطلوب کے لیے خدا سے دعا کیجئے ، اس میں تو شرک کا کوئی شائبہ بھی نہیں جیسا کہ منکر کا وہم و خیال ہے اہ ملتقطاً (ت)

قول (۱۷۳): سیدی محمد عبدری مدخل میں درباره زیارت قبور انبیاء سابقین علیہم الصلوۃ والتسلیم فرماتے ہیں:

عربی	اردو
یأتی الیھم الزوائر ویتعین علیه قصد ھم من الاماکن البعیدة، فاذا جاء الیھم	زائر ان کے آگے حاضر ہو اور اس پر متعین ہے کہ دور دراز مقاموں سے ان کی زیارت کا قصد کرے

---

1 جذب القلوب باب پانزدہم در بیان حکم زیارت قبر مکرم الخ منشی نولکشور لکھنؤ ص ۲۲۴ 2 کشف الغطاء فصل دہم زیارت قبور مکتبہ احمد دہلی ص ۸۱ - ۸۰

Fatawa Razawiyya - Volume 9

Arabic Text	Urdu Translation
So let him be characterized by remembrance, broken-heartedness, humility, poverty, want, need, distress, and submissiveness. And let him seek help from them and request his needs from them, being certain of the fulfillment of the need through their blessings. For they are the open gate of Allah, and the Sunnah (custom) of Allah, the Exalted, has been established in the fulfillment of needs through their hands and because of them. (Summarized)[1]	Then when he is honored with the presence, it is mandatory that he makes humility, broken-heartedness, dependency, poverty, hunger, need, helplessness, and lowliness his hallmark. And he should appeal in their presence and ask them for his needs, and be certain that through their blessings, there will be an answer (fulfillment), as they are the open doors of Allah Almighty. And the divine practice continues that through their hands and because of them, needs are fulfilled. And all praise is due to Allah, the Lord of the worlds.

Chapter Fifteen: Remaining Clarifications Regarding the Hearing of the Dead.
Statements (174 to 178): The Imam, the Seal of the Mujtahids, Taqi al-Millah wa al-Din al-Subki (may Allah the Exalted have mercy on him), in the ninth chapter of *Shifa al-Siqam* concerning the life of the Prophets, established a section "What has been reported regarding the life of the Prophets," a second section on the life of the martyrs, and placed the third section on the hearing, speech, perception, and life of all the dead. In it, he proved the knowledge and hearing of the dead through Sahih Hadiths of Bukhari, Muslim, and others, and said:

Arabic Text	Urdu Translation
In short, these matters are possible within the power of Allah the Exalted, and indeed authentic reports have been received regarding them. Therefore, believing in them is mandatory.[2]	In short, all these matters are possible within the Divine power, and undoubtedly these Hadiths have been narrated regarding their proof, so their attestation is mandatory.

In the first section, after researching the life of the Prophets (peace and blessings be upon them), he said at the end:

Arabic Text	Urdu Translation
As for perceptions such as knowledge and hearing, there is no doubt that they are established for all the dead, so how much more so for the Prophets?[3]	As for perceptions like knowledge and hearing, they are certainly established for all the dead; then the Prophets are the Prophets (peace and blessings be upon them).

Imam Jalaluddin Suyuti quoted this statement of his in *Sharh al-Sudur* and endorsed it. Imam Zayn al-Din al-Maraghi, who is called "the scholar, the proficient Muhaddith" in *Sharh al-Mawahib*, quoted this elegant research of his.

---

[1] *Al-Madkhal*, chapter on visiting graves, Dar al-Kitab al-Arabi, Beirut, 1/252. [2] *Shifa al-Siqam*, chapter three regarding all the dead, Nuriya Razawiyya, Faisalabad, p. 203. [3] *Shifa al-Siqam*, chapter one, Nuriya Razawiyya, Faisalabad, Chapter Nine, pp. 191-192.

फ़तावा रज़विया - जिल्द नवीं

अरबी पाठ	उर्दू अनुवाद
अतः उसे ज़िक्र, विनीतता, दीनता, दरिद्रता, तंगी, ज़रूरत, बेबसी और अधीनता के साथ रहना चाहिए। और उनसे मदद मांगनी चाहिए और उनसे अपनी ज़रूरतें मांगनी चाहिए और उनकी बरकत से ज़रूरत पूरी होने का पूरा यकीन रखना चाहिए, क्योंकि वे अल्लाह का खुला दरवाज़ा हैं, और ज़रूरतों को पूरा करने में अल्लाह तआला की सुन्नत (तरीका) उनके हाथों पर और उनके कारण जारी है। (संक्षिप्त)[1]	फिर जब हाज़िरी से शरफ़याब (सम्मानित) हो तो लाज़िम (अनिवार्य) है कि ज़िल्लत (दीनता), इनकेसार (विनीतता), मोहताजी, फ़क्र (दरिद्रता), फ़ाका, हाजत (ज़रूरत), बेचारगी और फ़रोतनी (विनम्रता) को शिआर (विशेषता) बनाए और उनकी सरकार में फ़रियाद करे और उनसे अपनी हाजतें मांगे और यक़ीन करे कि उनकी बरकत से इज्बात (स्वीकृति) होगी कि वे अल्लाह तआला के दर-कुशादा (खुले द्वार) हैं और सुन्नत-ए-इलाही जारी है कि उनके हाथ पर उनके सबब से हाजत-रवाई (ज़रूरत पूरी) होती है। वलहम्दुलिल्लाहि रब्बिल आलमीन।

अध्याय पंद्रहवां: मुर्दों के सुनने (समाअ) के बारे में शेष स्पष्टीकरण। कथन (174 से 178): इमाम खातमतुल मुजतहिदीन तक़ी अल-मिल्लत वद-दीन सुबकी (रहमतुल्लाहि तआला अलैहि) ने शिफ़ा अल-सिक़ाम के बाब तासअ फ़ी हयातुल अंबिया (अंबिया के जीवन के बारे में नौवें अध्याय) में एक फ़स्ल "मा वरदा फ़ी हयातुल अंबिया" (जो अंबिया के जीवन के बारे में वर्णित हुआ है), दूसरी फ़स्ल शहीदों के जीवन के बारे में स्थापित की और तीसरी फ़स्ल तमाम मुर्दों के सुनने, बात करने, समझने और जीवन के बारे में स्थापित की और उसमें बुख़ारी, मुस्लिम वगैरह की सही हदीसों से मुर्दों के इल्म और समाअ (सुनने) को साबित करके फ़रमाया:

अरबी पाठ	उर्दू अनुवाद
संक्षेप में, ये मामले अल्लाह तआला की कुदरत (शक्ति) में मुमकिन (संभव) हैं और वास्तव में उनके बारे में सही खबरें आई हैं, अतः उन पर विश्वास करना अनिवार्य है।[2]	बिलजुमला (संक्षेप में) ये सब उमूर (मामले) कुदरत-ए-इलाही में मुमकिन हैं और बेशक उनके सुबूत (प्रमाण) में ये हदीसें वारिद (वर्णित) हुईं तो उनकी तस्दीक (पुष्टि) वाजिब (अनिवार्य) है।

पहली फ़स्ल में अंबिया अलैहिमुस्सलातु वस्सलाम के जीवन पर शोध करने के बाद अंत में फ़रमाया:

अरबी पाठ	**उर्दू अनुवाद**
जहाँ तक इल्म और समाअ जैसे इद्राकात (अनुभूतियों) का सवाल है, तो इसमें कोई शक नहीं कि वे तमाम मुर्दों के लिए साबित हैं, तो फिर अंबिया के बारे में क्या कहना?[3]	रहे इद्राकात जैसे इल्म ओ समाअ, ये तो यक़ीनन तमाम अमवात (मुर्दों) के लिए साबित हैं फिर अंबिया तो अंबिया हैं अलैहिमुस्सलातु वस्सलाम।

इमाम जलालुद्दीन सुयूती ने शरह अल-सुदूर में आपका यह कौल (कथन) नक़्ल करके तक़रीर (व्याख्या) फ़रमाई, इमाम ज़ैनुद्दीन मराग़ी जिन्हें शरह मवाहिब में अल-मुहद्दिस अल-आलिम अल-नहरीर कहा गया है, ने आपकी यह तहक़ीक़-ए-अनीक़ (सटीक शोध) नक़्ल की।

---

[1] अल-मदख़ल, फ़स्ल फ़ी ज़ियारतुल क़ुबूर, दारुल किताब अल-अरबिया बेरुत 1/252. [2] शिफ़ा अल-सिक़ाम, अल-फ़स्ल अल-सालिस फ़ी साइरिल मौता, नूरिया रज़विया फ़ैसलाबाद पृ. 203. [3] शिफ़ा अल-सिक़ाम, अल-फ़स्ल अल-अ़व्वल, नूरिया रज़विया फ़ैसलाबाद बाब अल-तासअ़ पृ. 191-192.

عربی عبارت	اردو ترجمہ
فليتصف بالذكر و الانكسار والمسكنة والفقر والفاقة والحاجة والاضطر و الخضوع، و يستغيث بهم ويطلب حوائجه منهم ويجزم الحاجة ببركتهم، فانهم باب الله المفتوح و جرت سنة سبحانه و تعالى في قضاء الحوائج على ايديهم وبسببهم (ملخصاً) 1	پھر جب حاضری سے مشرف یاب ہو تو لازم ہے کہ ذلت و انکسار و محتاجی و فقر و فاقہ و حاجت و بے چارگی و فروتنی کو شعار بنائے اور ان کی سرکار میں فریاد کرے اور ان سے اپنی حاجتیں مانگے اور یقین کرے کہ ان کی برکت سے اجابت ہو گی کہ وہ اللہ تعالیٰ کے درکشادہ ہیں اور سنت الٰہی جاری ہے کہ ان کے ہاتھ پر ان کے سبب سے حاجت روائی ہوتی ہے۔ والحمد للہ رب العلمین۔

فصل پانزدہم: بقیہ تصریحات سماع اموات میں۔ قول (۱۷۴ تا ۱۷۸) : امام خاتمۃ المجتہدین تقی الملۃ والدین سبکی رحمۃ اللہ تعالیٰ علیہ نے شفاء السقام کے باب تاسع فی حیاۃ الانبیاء میں ایک فصل "ما ورد فی حیاۃ الانبیاء" دوسری فصل حیات شہداء میں وضع کر کے فصل ثالث تمام اموات کے سماع و کلام وادراک و حیات میں وضع کی اور اس میں احادیث صحیحہ بخاری و مسلم و غیرہما سے علم و سماع موتیٰ ثابت کر کے فرمایا:

عربی عبارت	اردو ترجمہ
وعلى الجملة هذه الامور ممكنة في قدرة الله تعالى وقد وردت بها الأخبار والصحيحة فيجب التصديق بها 2	بالجملہ یہ سب امور قدرت الٰہی میں ممکن ہیں اور بے شک ان کے ثبوت میں یہ حدیثیں وارد ہوئیں تو ان کی تصدیق واجب ہے۔

فصل اول میں انبیاء علیہم الصلوۃ والسلام کی حیات تحقیق کر کے آخر میں فرمایا:

عربی عبارت	اردو ترجمہ
اما الادراکات کالعلم والسماع فلا شك ان ذلك ثابت لسائر الموتی فکیف بالانبیاء 3 -	رہے ادراکات جیسے علم و سماع، یہ تو یقینا تمام اموات کے لیے ثابت ہیں پھر انبیاء تو انبیاء ہیں علیہم الصلوٰۃ والسلام۔

امام جلال الدین سیوطی نے شرح الصدور میں اس جناب کا یہ قول نقل کر کے تقریر فرمائی، امام زین الدین مراغی جنھیں شرح مواہب میں المحدث العالم النحریر کہا جناب کی یہ تحقیق انیق نقل

---

1 المدخل فصل فی زیارۃ القبور دار الکتاب العربیۃ بیروت ۱ / ۲۵۲ 2 شفاء السقام الفصل الثالث فی سائر الموتیٰ نوریہ رضویہ فیصل آباد ص ۲۰۳ 3 شفاء السقام الفصل الاول نوریہ رضویہ فیصل آباد الباب التاسع ص ۱۹۲-۱۹۱

Fatawa Razawiyya Volume 9

After stating, he says:

(Arabic): Indeed, it is something whose existence is rare in its likeness, so let the competitors compete for it.	**(Translation): This is a rare research, and it is fitting that those who desire such things should desire them greatly.**

Imam Ahmad al-Qastalani, in Mawahib al-Sharif, quoted that clear statement of Imam al-Subki and the great appreciation of Imam Zayn al-Din with citation. Then Allama Abdul Baqi al-Zarqani, in the commentary of Mawahib, quoted Hadiths in its explanation and support (Note).

Statement (179): The praised Imam said in the fifth chapter of the mentioned book:

(Arabic): The purpose of all this was the investigation of hearing and similar attributes after death. For it might be said that these attributes are conditioned upon life, so how can they be achieved after death? This is a weak notion because we do not claim that what is described as dead is described as having hearing; rather, we claim that hearing after death is attained by the living. That living entity is either the soul alone while the body is dead, or it is connected to the body at the state of the return of life to it.	**(Translation): The purpose was to investigate hearing and other qualities after death, as some people start saying that life is a condition for these qualities, so how can they be achieved after death? However, this is a futile thought. We do not say that something which is dead hears. Rather, we say that after death, hearing is established for that which is alive, i.e., the soul; either it is the soul alone when the body is dead, or it is connected to the body when life returns to the body.**

Statement (180): It is stated in Jazb al-Qulub from Allama al-Qunawi that after mentioning many Hadiths, he said:

(Persian): All these Hadiths indicate that the dead possess perception and hearing. There is no doubt that hearing is among the accidental qualities which are conditioned upon life. Thus, they are all alive, but their life is at a lower degree than life...	**(Translation): In all these Hadiths, there is evidence for the fact that the dead possess perception and hearing, and undoubtedly, hearing is such a quality for which life is a condition, so all are alive, but their life is of...**

Note: Likewise, Shaykh al-Muhaqqiq quoted this statement from the scholars in Madarij. 12 Minhu (m)

1. Al-Mawahib al-Ladunniyah, on the authority of Zayn al-Din al-Maraghi, Al-Maktab al-Islami Beirut 296/2
2. Shifa al-Siqam Chapter Nine, Section Five, Maktaba Nooriya Razawiyya Faisalabad p. 209

Page 800 of 948

कहने के बाद फ़रमाते हैं:

(अरबी): बेशक, यह ऐसी चीज़ है जिसका अस्तित्व इसके समान दुर्लभ है, तो मुक़ाबला करने वालों को इसमें मुक़ाबला करना चाहिए।

(अनुवाद): यह एक दुर्लभ शोध है और चाहिए कि ऐसी ही चीज़ों के प्रति बहुत अधिक उत्साह दिखाया जाए।

इमाम अहमद क़स्तलानी ने 'मवाहिब शरीफ़' में इमाम सुबकी का वह स्पष्ट कथन और इमाम ज़ैनुद्दीन की महान प्रशंसा को प्रमाण के साथ उद्धृत किया, फिर अल्लामा अब्दुल बाक़ी ज़रक़ानी ने 'शरह मवाहिब' में इसकी व्याख्या और समर्थन में हदीसें उद्धृत कीं (नोट)।

कथन (179): प्रशंसित इमाम ने उल्लेखित पुस्तक के पांचवें अध्याय में फ़रमाया:

(अरबी): "इस सब का उद्देश्य मृत्यु के बाद सुनने (समाअ) और इसी तरह के अन्य गुणों की जाँच करना था। क्योंकि यह कहा जा सकता है कि ये गुण जीवन पर आधारित हैं, तो मृत्यु के बाद ये कैसे प्राप्त हो सकते हैं? यह एक कमज़ोर विचार है क्योंकि हम यह दावा नहीं करते कि जो चीज़ मृत बताई गई है वह सुनने के गुण से युक्त है; बल्कि हम यह दावा करते हैं कि मृत्यु के बाद सुनना जीवित को प्राप्त होता है। वह जीवित इकाई या तो आत्मा है जब शरीर मृत हो, या शरीर से जुड़ी हुई हो जब जीवन शरीर में लौट आए।"

(अनुवाद): इस कारण से उद्देश्य मृत्यु के बाद सुनने आदि गुणों की जाँच करना था क्योंकि कुछ लोग कहने लगते हैं कि इन गुणों के लिए जीवन शर्त है, तो मृत्यु के बाद वे कैसे प्राप्त होंगे, हालाँकि यह एक व्यर्थ विचार है। हम यह नहीं कहते कि जो चीज़ मरी हुई है वह सुनती है। बल्कि हम यह कहते हैं कि मृत्यु के बाद सुनना उसके लिए सिद्ध है जो जीवित है यानी रूह (आत्मा), या तो अकेले वही जब शरीर मृत हो, या शरीर से जुड़कर जब शरीर में जीवन वापस आ जाए।

कथन (180): 'जज़ब अल-क़ुलूब' में अल्लामा क़ुनवी से उद्धृत है कि उन्होंने कई हदीसें ज़िक्र करके फ़रमाया:

(फ़ारसी): ये सभी हदीसें इस बात की ओर संकेत करती हैं कि मृतकों को बोध और सुनने की शक्ति प्राप्त है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि सुनना उन गुणों में से है जो जीवन पर निर्भर हैं। अतः वे सभी जीवित हैं, लेकिन उनका जीवन जीवन के मुक़ाबले निचले स्तर का है...

(अनुवाद): इन सभी हदीसों में इस बात का प्रमाण मौजूद है कि मृतकों को बोध और सुनने की शक्ति प्राप्त है और निःसंदेह सुनना ऐसा गुण है जिसके लिए जीवन शर्त है, तो सब जीवित हैं, लेकिन उनका जीवन...

नोट: इसी प्रकार शेख़ मोहक़्क़िक़ ने 'मदारिज' में विद्वानों से यह कथन उद्धृत किया है। 12 मिन्हु (म)

1. अल-मवाहिब अल-लदुन्निया, ज़ैनुद्दीन अल-मरागी के हवाले से, अल-मक्तब अल-इस्लामी बेरुत 296/2
2. शिफ़ा अल-सिक़ाम अध्याय नौ, खंड पांच, मक्तबा नूरिया रज़विया फ़ैसलाबाद पृ. 209

पृष्ठ 800/948

کر کے فرماتے ہیں :

انه مما يعز وجوده في مثله فلينا فس المتنا فسون — **یہ نایاب تحقیق ہے اور چاہئے کہ ایسی ہی چیزیں نہایت رغبت کریں رغبت کرنے والے۔**

امام احمد قسطلانی نے مواہب شریف میں امام سبکی کا وہ ارشاد مبین اور امام زین الدین کی جلیل تحسین استناداً نقل کی، پھر علامہ عبدالباقی زرقانی نے شرح مواہب میں اس کی تقریر و تائید میں حدیثیں نقل کیں عہ۔

قول (۱۷۹): امام ممدوح نے باب مذکور کی فصل خامس میں فرمایا:

كان المقصود بهذا كله تحقيق السماع و نحوه من الاعراض بعد الموت، فانه قد يقال ان هذه الاعراض مشروطة بالحياة، فكيف تحصل بعد الموت وهذا خيال ضعيف لان لا ندعي ان الموصوف بالموت موصوف بالسماع وانما ندعي ان السماع بعد الموت حاصل لحي، وهو اما الروح وحدها حالة كون الجسد ميتاً او متصلة بالبدن حالة عود الحياة اليه[2]۔

اس سبب سے مقصود موت کے بعد سماع وغیرہ صفات کی تحقیق تھی کہ بعض لوگ کہنے لگتے ہیں ان اوصاف کے لیے زندگی شرط ہے تو بعد موت کیونکر حاصل ہوں گے ، حالانکہ یہ پوچ خیال ہے۔ ہم یہ نہیں کہتے کہ جو چیز مُردہ ہے وہ سنتی ہے۔ بلکہ یہ کہتے ہیں کہ بعد مرگ سماع اس کے لیے ثابت ہے جو زندہ ہے یعنی روح، یا تو تنہا وہی جب بدن مُردہ ہو، یا جسم سے متصل ہو کر جب حیات بدن کی طرف عود کرے۔

قول (۱۸۰): علامہ قونوی سے جذب القلوب میں ہے کہ انھوں نے بہت احادیث ذکر کر کے فرمایا:

جمیع ایں احادیث دلالت دارد برآنکہ اموات را ادراک و سماع حاصل ست و شک نیست کہ سمع از اعراضی است کہ مشروط است بحیات پس ہمہ حی اند ، ولیکن حیات ایشاں در مرتبہ کمتر از حیات

ان تمام احادیث میں اس بات پر دلیل موجود ہیں کہ مردوں کو ادراک و سماع حاصل ہے اور بلاشبہ سماعت ایسا وصف ہے جس کے لیے زندگی شرط ہے تو سب زندہ ہیں، لیکن ان کی زندگی حیاتِ

عہ: یونہی شیخ محقق نے مدارج میں یہ قول علماء سے نقل فرمایا ۱۲ منہ (م)

1 المواہب اللدنیہ بحوالہ زین الدین المراغی المکتب الاسلامی بیروت ۲۹۶/۲ 2 شفاء السقام الباب التاسع الفصل الخامس مکتبہ نوریہ رضویہ فیصل آباد ص ۲۰۹

Fatawa Rizvia, Volume 9

The life of the martyrs and the life of the Prophets (salutations of Allah be upon them) is more complete than the life of the martyrs[1]. It is of a lower degree than the martyrs and the life of the Prophets (peace and blessings be upon them) is more complete than the life of the martyrs. (T)

Saying (181 & 182): Imam Qurtubi, and then Imam Suyuti, state regarding the issue of reciting the Holy Quran near the grave: It has been said that the reward for recitation is for the reciter, and for the deceased is the reward for listening. Therefore, mercy reaches them, as Allah Almighty says: "When the Quran is recited, listen to it and be silent so that you may receive mercy." And it is not far from the generosity of Allah Almighty that both the reward for recitation and listening reach the deceased together[2].

I say: The reason for not being certain about the reach of the reward of recitation is that they belong to the Shafi'i school of thought, and according to our leader Imam Shafi'i (may Allah be pleased with him), the reward for physical acts of worship does not reach the deceased. However, the majority of the Ahl al-Sunnah believe in its general applicability, and this is the school of thought of our Imam (may Allah be pleased with him). Even researchers among the Shafi'is have preferred and corrected this view, among them Imam Suyuti in "Anis al-Gharib" (one of them, Imam Suyuti, clarified this in Anis al-Gharib). So, in our view, there is no doubt that the reward of recitation also reaches the deceased.

Saying (183): In "Mirqah," after mentioning the knowledge and hearing of the Prophets (peace be upon them), it is stated: "All other dead people also hear greetings and speech."[3] All the dead hear greetings and speech; then he said: All these issues are proven by authentic hadiths and clear narrations.

Saying (184): Allama Halbi in "Sirah Insan al-Uyun," quoting from Imam Abu al-Fadl Khatim al-Huffaz: "The hearing of the dead of the speech of the creation is a truth that has come to us in the books of narrations."[4] Hearing the speech of the creation by the dead is a truth; indeed, there are hadiths in our books regarding this matter.

Saying (185): Malik al-Ulama Bahr al-Ulum Maulana Abdul Ali Lakhnawi (late) states in "Arkan-e-Arba'a":

---

1. Jazb al-Qulub, Chapter 4 and 9, Munshi Naval Kishore, Lucknow, p. 20, 206.

2. Sharh al-Sudur, Chapter on reciting Quran for the deceased, Anjuman Khilafat Academy Swat, p. 130.
3. Mirqat Sharh Mishkat, Chapter of Friday, Section 2, Maktaba Imdadia Multan, 238/3.
4. Insan al-Uyun, Chapter on the beginning of Adhan, Mustafa al-Babi Egypt, 235/2.

फ़तावा रज़विया, जिल्द 9

शहीदों की ज़िंदगी और नबियों (अल्लाह की उन पर सलामतियाँ हों) की ज़िंदगी, शहीदों की ज़िंदगी से ज़्यादा कामिल (पूर्ण) है[1]। यह शहीदों से कम दर्जे की है और नबियों (अलैहिमुस्सलाम) की ज़िंदगी शहीदों की ज़िंदगी से ज़्यादा कामिल है। (त)

कौल (181 और 182): इमाम क़ुर्तुबी और फिर इमाम सुयूती कब्र के पास कुरान मजीद पढ़ने के मसले में फ़रमाते हैं: यह तहकीक कही गई कि पढ़ने का सवाब कारी (पढ़ने वाले) को है और मय्यत के लिए इसका अज्र है कि उसने कान लगा कर कुरान सुना और इसलिए उस पर रहमत होती है कि अल्लाह तआला फ़रमाता है: "जब कुरान पढ़ा जाए तो कान लगा कर सुनो और चुप रहो शायद तुम पर रहम हो" और कुछ यह भी ख़ुदा के करम से दूर नहीं कि मुर्दे को कुरान और सुनने दोनों का सवाब पहुंचाए।[2]

अकुल (मैं कहता हूँ): सवाब-ए-किरात पहुँचने पर यकीनी तौर पर न कहने की वजह यह है कि वह शाफई मज़हब के हैं और हमारे सरदार इमाम शाफई (रज़ियल्लाहु अन्हु) के नज़दीक शारीरिक इबादतों का सवाब नहीं पहुँचता, लेकिन अहल-ए-सुन्नत के अक्सर (बहुमत) उलमा इसके आम होने के कायल हैं, और यही मज़हब हमारे इमाम (रज़ियल्लाहु अन्हु) का है। यहाँ तक कि खुद शाफई मुहक्किीन ने इसकी तरजीह (प्राथमिकता) और तसहीह (पुष्टि) की है, उनमें से इमाम सुयूती ने 'अनीसुल गरीब' में (उनमें से एक इमाम सुयूती ने अनीसुल गरीब में इसकी वजाहत की है) तो हमारे नज़दीक कोई शक नहीं कि मय्यत को तिलावत का भी सवाब पहुँचता है।

कौल (183): मिरकात में नबियों (अलैहिमुस्सलाम) के इल्म और सुनने का ज़िक्र करके फ़रमाते हैं: "तमाम दीगर मुर्दे भी सलाम और कलाम सुनते हैं।"[3] सब मुर्दे सलाम और कलाम सुनते हैं, फिर फ़रमाया: ये सब मसाइल सहीह हदीसों और स्पष्ट दलीलों से साबित हैं।

कौल (184): अल्लामा हलबी सीरत इंसानुल उयून में इमाम अबुल फ़ज़ल खातमुल हुफ़्फ़ाज़ से नक़ल करते हैं: "मुर्दों का मखलूक के कलाम को सुनना हक़ है, जो हमारे पास किताबों में रिवायतों के साथ आया है।"[4] मुर्दों का मखलूक के कलाम को सुनना हक़ है; बेशक इस बाब (अध्याय) में हमारी किताबों में हदीसें आई हैं।

कौल (185): मलिकुल उलमा बहरुल उलूम मौलाना अब्दुल अली लखनवी मरहूम 'अरकान-ए-अरबा' में फ़रमाते हैं:

1. जज़बुल कुलूब, बाब 4 और 9, मुंशी नवल किशोर, लखनऊ, पृ. 20, 206.
2. शरहुस सुदूर, मय्यत के लिए कुरान पढ़ने का बाब, अंजुमन खिलाफत एकेडमी स्वात, पृ. 130.
3. मिरकात शरह मिश्कात, जुमे का बाब, फ़स्ल 2, मकतबा इमदादिया मुल्तान, 238/3.
4. इंसानुल उयून, अज़ान की शुरुआत का बाब, मुस्तफा अल-बाबी मिस्र, 235/2.

شہداست و حیاتِ انبیاء صلوات اللہ تعالٰی علیہم کامل تر از حیاتِ شہداست ۱- شہداء سے کم درجہ کی ہے اور حیاتِ انبیاء علیہم الصلوٰۃ والسلام حیاتِ شہداء سے زیادہ کامل ہے۔(ت)

قول (۱۸۱ و ۱۸۲): امام قرطبی پھر امام سیوطی قبر کے پاس قرآن مجید پڑھنے کے مسئلہ میں فرماتے ہیں: وقد قیل ان ثواب القرائۃ للقارئ وللمیت ثواب الاستماع ولذلك تلحقه الرحمة، قال اللہ تعالی واذا قرئ القرآن فاستمعوا له وانصتوا لعلکم ترحمون ولا یبعد من کرم اللہ تعالی ان یلحقه ثواب القرأۃ والاستماع معاً۔ یہ تحقیق کہا گیا کہ پڑھنے کا ثواب قاری کو ہے اور میت کے لیے اس کا اجر ہے کہ اس نے کان لگا کر قرآن سنا اور اس لیے اس پر رحمت ہوتی ہے کہ اللہ تعالٰی فرماتا ہے جب قرآن پڑھا جائے تو کان لگا کر سنو اور چپ رہو شاید تم پر مہر ہو اور کچھ یہ بھی خدا کے کرم سے دور نہیں کہ مُردے کو قرآن و استماع دونوں کا ثواب پہنچائے۔

اقول: ثوابِ قرات پہنچنے پر جزم نہ کرنے کا باعث یہ کہ وہ شافعی المذہب ہیں اور سیدنا امام شافعی رضی اللہ تعالٰی عنہ کے نزدیک عباداتِ بدنیہ کا ثواب نہیں پہنچتا مگر جمہورِ اہلسنت قائلِ اطلاق و عموم ہیں، اور یہی مذہب ہمارے امام رضی اللہ تعالٰی عنہ کا ہے یہاں تک کہ خود محققین شافعیہ نے اس کی ترجیح و تصحیح کی منہم السیوطی فی انیس الغریب (ان میں سے ایک امام سیوطی نے انیس الغریب میں اسکی وضاحت کی ہے) تو ہمارے نزدیک شک نہیں کہ میت کو تلاوت کا بھی ثواب پہنچتا ہے۔

قول (۱۸۳): مرقاہ میں انبیاء علیہم الصلوٰۃ والسلام کے علم و سماع کا ذکر کرکے فرماتے ہیں: سائر الاموات ایضاً یسمعون السلام والکلام ۳ سب مُردے سلام و کلام سنتے ہیں، پھر فرمایا: یہ سب مسائل احادیث صحیحہ و آثار صریحہ سے ثابت ہیں۔

قول (۱۸۲): علامہ حلبی سیرۃ انسان العیون میں امام ابوالفضل خاتم الحفاظ سے ناقل: سماع موتی کلام الخلق حق قد جائت بہ عند نا الآثار في الكتب ۴۔ اموات کا کلامِ مخلوق کو سننا حق ہے بیشک اس باب میں ہمارے پاس کتابوں میں حدیثیں آئیں۔

قول (۱۸۵): ملک العلماء بحر العلوم مولنا عبدالعلی لکھنوی مرحوم ارکانِ اربعہ میں فرماتے ہیں:

---

۱ جذب القلوب باب چہارم و نہم منشی نولکشور لکھنؤ ص ۲۰، ۲۰۶ ۲ شرح الصدور باب فی قراۃ القرآن للمیت انجمن خلاف اکیڈمی سوات ص ۱۳۰ ۳ مرقاۃ شرح مشکوۃ باب الجمعہ فصل ۲ مکتبہ امدادیہ ملتان ۲۳۸/۳ ۴ انسان العیون باب بدء الاذان مصطفیٰ البابی مصر ۲۳۵/۲

Fatawa Razawiyya, Volume 9

“And what has been said, that Talqin is futile because the deceased does not hear, is false.” (1). On the basis that some have said the deceased does not hear, rejecting Talqin is a false school of thought.

Statement (186): It is cited in Zahr al-Ruba, a commentary on Sunan an-Nasa'i, after research and detail: “Thus it is proven that there is no contradiction between the soul being in 'Illiyyun, or Paradise, or the heavens, and it having a connection with the body such that it perceives, hears, prays, and recites. This is only found strange because the worldly witness (experience) does not contain what is observed here, and the affairs of the Barzakh (isthmus) and the Hereafter are of a nature unfamiliar to this world.” (2). So it is proven that there is no contradiction in the soul being in 'Illiyyun or Paradise or the heavens, and at the same time maintaining such a connection with the body that it understands, hears, prays, and recites the Holy Quran. People find this surprising because they find nothing similar in the world, whereas the affairs of the Barzakh and the Hereafter do not follow the patterns seen in the world.

Statement (187 to 189): Allama Abdul Rauf is the speaker in At-Taysir, and Maulana Ali Qari narrates from the Qadi in Al-Mirqat: “And the wording is by al-Munawi: ‘When the holy souls are stripped of bodily attachments, they connect with the High Assembly (al-Mala' al-A'la) and no veil remains for them, so they see and hear everything like a witness.’” (3). (And the words are Munawi's. T) When pure souls separate from the bonds of the body, they meet with the High Assembly, and there remains no veil for them; they see and hear everything as if it were present right before them.

Statement (190): In Al-Mirqat, a commentary on Mishkat, under the Hadith: “Neither Jinn nor humans nor anything hears the reach of the Mu'adhin's voice except that they will testify for him on the Day of Resurrection.” It is narrated from the scholar Ibn al-Malak that the use of indefinite nouns in a negative context (Jinn and humans) is for general inclusivity of the living and the dead. (4). Meaning, the meaning of the noble Hadith is that all living Jinn, living humans, dead Jinn, and dead humans who hear the Mu'adhin's voice and listen to his call to prayer will all testify for him on the

Day of Judgment. Here it is clarified that the persistence of knowledge and hearing after death is not exclusive to humans; it is also attained by the Jinn.

1. Rasa'il al-Arkan, Chapter on the Rules of Funerals, Maktaba Islamia, Quetta, p. 150.
2. Zahr al-Ruba, Marginalia on Sunan an-Nasa'i, Book of Funerals, Nur Muhammad Karkhana Tijarat Kutub, Karachi, 1/293.
3. At-Taysir Sharh al-Jami' al-Saghir, under the Hadith 'Wherever you may be, send blessings upon me', Maktaba al-Imam al-Shafi'i, Riyadh, Saudi Arabia, 1/502.
4. Mirqat Sharh al-Mishkat, Chapter on the Call to Prayer, Section I, Maktaba Imdadiyya, Multan, 2/160.

फ़तावा रज़विया, जिल्द 9

"और जो कहा गया है कि तल्कीन व्यर्थ है क्योंकि मृतक नहीं सुनता, तो यह असत्य है।" (1)। इस आधार पर कि कुछ लोगों ने कहा है कि मृतक नहीं सुनता, तल्कीन से इनकार करना एक गलत विचारधारा है।

कथन (186): 'ज़हर अर-रुबा' (सुनन अन-नसाई की व्याख्या) में शोध और विस्तार के बाद उद्धृत किया गया है: "अतः इससे यह सिद्ध हो गया कि आत्मा का 'इल्लीय्यीन', या स्वर्ग, या आकाश में होने और शरीर के साथ उसका ऐसा संबंध होने में कोई विरोधाभास नहीं है कि वह समझ सके सुन सके नमाज़ पढ़ सके और पाठ कर सके। इसे केवल इसलिए अजीब माना जाता है क्योंकि सांसारिक अनुभवों में वह सब नहीं है जो यहाँ देखा जाता है, और बरज़ख़ (मृत्यु और पुनरुत्थान के बीच की अवस्था) और परलोक के मामले उस रीति पर नहीं हैं जो दुनिया में देखी-समझी जाती है।" (2)। तो यह सिद्ध हो गया कि इसमें कोई विरोधाभास नहीं है कि आत्मा 'इल्लीय्यीन' या स्वर्ग या आकाश में हो और उसके साथ शरीर से ऐसा संबंध रखे कि वह समझे, सुने, नमाज़ पढ़े, क़ुरआन मजीद की तिलावत करे। लोग इस पर इसलिए आश्चर्य करते हैं क्योंकि वे दुनिया में इसके समान कुछ नहीं पाते, जबकि बरज़ख़ और आख़िरत के काम उस ढंग पर नहीं हैं जो दुनिया में देखे जाते हैं।

कथन (187 से 189): अल्लामा अब्दुल रऊफ़ 'अत-तयसीर' में कहने वाले हैं और मौलाना अली क़ारी 'अल-मिरक़ात' में क़ाज़ी से वर्णन करते हैं: "और ये शब्द मुनावी के हैं: 'जब पवित्र आत्माएं शारीरिक बंधनों से मुक्त हो जाती हैं, तो वे उच्च सभा (मलय-ए-आला) से जुड़ जाती हैं और उनके लिए कोई पर्दा नहीं रह जाता, अतः वे सब कुछ ऐसे देखती और सुनती हैं जैसे सामने उपस्थित हों।'" (3)। (और शब्द मुनावी के हैं। त) जब पवित्र आत्माएं शरीर के बंधनों से अलग होती हैं, तो वे 'मलय-ए-आला' से मिल जाती हैं और उनके लिए कोई पर्दा नहीं रहता, वे सब कुछ ऐसा देखती-सुनती हैं जैसे सामने मौजूद हों।

कथन (190): 'मिरक़ात' (मिश्कात की व्याख्या) में इस हदीस के तहत: "मुअज़्ज़िन (अज़ान देने वाले) की आवाज़ जहाँ तक पहुँचती है, उसे जिन्न, इंसान या कोई भी चीज़ सुनती है, तो वे क़ियामत के दिन उसके लिए गवाही देंगे।" मुहद्दिस अल्लामा इब्न अल-मलक से वर्णित है कि नकारात्मक संदर्भ में इन शब्दों का अनिश्चित होना जीवित और मृत दोनों को शामिल करने के लिए है। (4)। अर्थात, हदीस शरीफ़ का यह अर्थ है कि जीवित जिन्न और जीवित आदमी और मृत जिन्न और मृत आदमी, जितने

लोगों को मुअज़्ज़िन की आवाज़ पहुँचती है और वे उसकी अज़ान सुनते हैं, सब क़ियामत के दिन उसके लिए गवाही देंगे। यहाँ स्पष्ट किया गया है कि मृत्यु के बाद ज्ञान और सुनने की क्षमता का शेष रहना केवल आदम की संतान (मनुष्यों) के लिए ही विशिष्ट नहीं है, बल्कि जिन्नों के लिए भी प्राप्त है।

1. रसायल अल-अरकान, जनाज़ा के नियमों का अध्याय, मकतबा इस्लामिया, क्वेटा, पृ. 150।
2. ज़हर अर-रुबा, सुनन अन-नसाई पर हाशिय्या, जनाज़ा की किताब, नूर मुहम्मद कारखाना तिज़ारत कुतुब, कराची, 1/293।
3. अत-तयसीर शरह अल-जामी अस-सगीर, हदीस 'जहाँ कहीं भी तुम हो, मुझ पर दुरूद भेजो' के तहत, मकतबा अल-इमाम अल-शाफ़ई, रियाद, सऊदी अरब, 1/502।
4. मिरक़ात शरह अल-मिश्कात, अज़ान का अध्याय, खंड 1, मकतबा इमदादिया, मुल्तान, 2/160।

فتاوٰی رضویہ، جلد نہم

و ما قیل ان التلقین لغو لان المیت لایسمع فھٰذا باطل 1۔ اس بناء پر کہ بعض نے کہا مُردہ نہیں سنتا تلقین سے انکار مذہب باطل ہے۔

قول (۱۸۶): زہر الربی شرح سنن نسائی میں بعد تحقیق و تفصیل نقل فرمایا: فثبت بھٰذا انہ لامنافات بین کون الروح فی علیین او الجنۃ او السماء وان لھا بالبدن اتصالاً بحیث تدرک وتسمع وتصلی وتقرء وانما یستغرب ھٰذا لکون الشاھد الدنیوی لیس فیہ ما یشاھد بہ ھٰذا و امور البرزخ والاخرۃ علی نمط غیر المألوف فی الدنیا 2۔ تو ثابت ہوا کہ کچھ منافات نہیں اس میں کہ روح علیین یا جنت یا آسمانوں میں ہوتی ہو اور اس کے ساتھ بدن سے ایسا اتصال رکھے کہ سمجھے ، سنے، نماز پڑھے، قرآن مجید کی تلاوت کرے، اس سے تعجب یوں ہوتا ہے کہ دنیا میں کوئی بات اس کے مشابہ نہیں پاتے، حالانکہ برزخ و آخرت کے کام اس روش پر نہیں جو دنیا میں دیکھی بھالی ہے۔

قول (۱۸۷ تا ۱۸۹): علامہ عبدالرؤف تیسیر میں قائل اور مولانا علی قاری مرقاۃ میں قاضی سے ناقل: واللفظ للمناوی، النفوس القدسیۃ اذا تجردت عن العلائق البدنیۃ اتصلت بالملأ الاعلی ولم یبق لھا حجاب فتری وتسمع الکل کالمشاھد 3۔ (اور الفاظ مناوی کے ہیں۔ت) پاک جانیں جب بدن کے علاقوں سے جدا ہوتی ہیں ملاء اعلٰی سے مل جاتی ہیں اور ان کے لیے کوئی پردہ نہیں رہتا سب کچھ ایسا دیکھتی سنتی ہیں جیسے سامنے حاضر ہے۔

قول (۱۹۰): مرقاۃ شرح مشکوٰۃ میں زیر حدیث: لایسمع مدی صوت المؤذن جن ولا انس ولا شیئ الا شھد لہ یوم القیمۃ، محدث علامہ ابن ملک سے منقول تنکیر ھما فی سیاق النفی لتعمیم الاحیاء والاموات 4 یعنی حدیث شریف کا یہ مطلب ہے کہ زندہ جن اور زندہ آدمی اور مُردہ جن اور مُردہ

آدمی جتنے لوگوں کو مؤذن کی آواز پہنچتی ہے اور وہ اس کی اذان سنتے ہیں سب روزِ قیامت اس کے لیے گواہی دیں گے۔ یہاں تصریح ہوئی کہ بعد موت علم و سماع کا باقی رہنا کچھ بنی آدم سے خاص نہیں جن کے لیے بھی حاصل ہے

1 رسائل الارکان فصل حکم الجنازۃ مکتبہ اسلامیہ کوئٹہ ص ۱۵۰ 2 زہر الربی حاشیہ علی سنن النسائی کتاب الجنائز نور محمد کارخانہ تجارت کتب کراچی ۱/ ۲۹۳ 3 التیسیر شرح الجامع الصغیر تحت حدیث حیث ما کنتم فصلوا علی مکتبۃ الامام الشافعی الریاض السعودیہ ۱/ ۵۰۲ 4 مرقاۃ شرح مشکوٰۃ باب فصل الاذان فصل ۱ مکتبہ امدادیہ ملتان ۲/ ۱۶۰

And indeed, it should be so because of the absence of a specifier (since there is no evidence for specification - T).

Saying (191 to 198): Imam Ismail, then Imam Bayhaqi, then Imam Suhaili, then Imam Qastalani, then Imam Allama Shami, then Allama Zarqani proved the hearing of the dead and replied to the arguments of denial, as is evident by referring to Al-Irshad, Al-Mawahib and its commentaries and other works of scholars (as will be known from the study of Irshad al-Sari Sharh Bukhari and Mawahib Ladunniya Sharh Mawahib Ladunniya and other books of scholars. T). In Mawahib, the proof of hearing is also narrated from Imam Ibn Jarir. Imam Kirmani, Imam Asqalani, Imam Ayni, Imam Qastalani in commentaries of Sahih Bukhari and Imam Sakhawi, Imam Suyuti, Allama Halabi, Ali Qari, Shaykh Muhaqqiq, etc., have specified it. Since these sayings relate to those discussions which have been deferred to a future time in this treatise, their transcription is postponed. And Allah is the Granter of Success. Saying (199): In Jazb al-Qulub Sharif, it is:

All the people of Sunnah and the community believe in the establishment of perceptions like knowledge and hearing for all the dead.	**It is the belief of all the people of Sunnah and the community that perceptions like knowledge and hearing are established for all the dead (T).**

Saying (200): In Jami al-Barakat, it is:

Samhudi says that all the people of Sunnah and the community believe in the establishment of perception like knowledge, hearing, and sight for all the dead from among the individuals of humanity. Finished. And praise be to Allah, Lord of the worlds.	**Imam Samhudi says that it is the belief of all the people of Sunnah and the community that for all the dead from among the common individuals of humanity, perceptions like knowledge, hearing, and seeing are established. Finished. And praise be to Allah, Lord of the worlds (T).**

The humble one (may Allah forgive him) had enumerated the pure names of a hundred "Imams and scholars"; by the grace of Allah, the noble sayings of them and others besides them have been counted as two hundred, and I have fulfilled my promise.

Warning: Let the readers not think that all our arguments are only this much; rather, what has not been transcribed is much more. Then the humble one (may Allah the Mighty forgive him) has also adhered to this in this treatise: that those traditions and hadiths and sayings of ancient scholars and specific hadiths which are regarding the exalted life, great knowledge, grand hearing, and noble sight of the radiant presence of the Master of the Universe (Peace and blessings of Allah be upon him), the living, remaining, embodied soul (Peace and blessings of Allah be upon him), should not be mentioned due to three reasons:

1. Jazb al-Qulub, Chapter 14, on the Virtues of Visiting the Master of Messengers, Munshi Naval Kishore, Lucknow, pp. 201-202.
2. Jami al-Barakat.

और वास्तव में ऐसा ही होना चाहिए क्योंकि विशेषता का अभाव है (क्योंकि विशेषता के लिए कोई प्रमाण नहीं है-त)।

कथन (191 से 198): इमाम इस्माइल, फिर इमाम बैहक़ी, फिर इमाम सुहैली, फिर इमाम क़स्तलानी, फिर इमाम अल्लामा शामी, फिर अल्लामा ज़रक़ानी ने मृतकों के सुनने (समाअ मौता) को सिद्ध किया और इनकार करने वालों की दलीलों का उत्तर दिया, जैसा कि इर्शादुल बारी, मवाहिब और उसकी व्याख्याओं और विद्वानों की अन्य पुस्तकों के अध्ययन से स्पष्ट होगा (जैसा कि इर्शाद अल-सारी शरह बुखारी और मवाहिब लदुननिया शरह मवाहिब लदुननिया और अन्य विद्वानों की पुस्तकों के अध्ययन से ज्ञात होगा। त)। मवाहिब में इमाम इब्न जरीर से भी सुनने का प्रमाण उद्धृत किया गया है। इमाम किरमानी, इमाम असक़लानी, इमाम ऐनी, इमाम क़स्तलानी ने सहीह बुखारी की व्याख्याओं में और इमाम सखावी, इमाम सुयूती, अल्लामा हलबी, अली क़ारी, शेख मुहक़्क़िक़ आदि ने इसे विशेष रूप से वर्णित किया है। चूंकि ये कथन उन चर्चाओं से संबंधित हैं जिन्हें इस शोधपत्र में भविष्य के लिए स्थगित कर दिया गया है, इसलिए उनके उद्धरणों का संकलन स्थगित कर दिया गया है। और अल्लाह ही सफलता देने वाला है। कथन (199): जज़्बुल क़ुलूब शरीफ़ में है:

अहले सुन्नत व जमाअत का यह विश्वास है कि ज्ञान और सुनने जैसे बोध सभी मृतकों के लिए सिद्ध हैं।

अहले सुन्नत व जमाअत का अक़ीदा (विश्वास) है कि ज्ञान और सुनने जैसे बोध सभी मृतकों के लिए सिद्ध हैं (त)।

कथन (200): जामे-उल-बरकात में है:

समहूदी कहते हैं कि तमाम अहले सुन्नत व जमाअत का यह विश्वास है कि मानव जाति के सभी मृतकों के लिए ज्ञान, श्रवण और दृष्टि जैसे बोध सिद्ध हैं। समाप्त। और सारी प्रशंसा अल्लाह के लिए है जो संसारों का पालनहार है।

इमाम समहूदी फरमाते हैं कि तमाम अहले सुन्नत व जमाअत का अक़ीदा है कि मानव जाति के सामान्य व्यक्तियों में से सभी मृतकों के लिए ज्ञान और सुनने-देखने जैसे बोध सिद्ध हैं। समाप्त। और सारी प्रशंसा अल्लाह के लिए है जो संसारों का पालनहार है (त)।

फ़कीर (अल्लाह उसे क्षमा करे) ने जिन सौ "इमामों और विद्वानों" के पवित्र नाम गिनाए थे, अल्लाह की कृपा से उनके और उनके अलावा दूसरों के भी श्रेष्ठ कथनों की संख्या दो सौ हो गई है और मैं अपना वादा पूरा करने से मुक्त हो गया हूँ।

चेतावनी: पाठक यह न समझें कि हमारे सभी तर्क बस इतने ही हैं, बल्कि जो उद्धृत नहीं किया गया वह और भी बहुत अधिक है। फिर फ़कीर (अल्लाह शक्तिशाली उसे क्षमा करे) ने इस शोधपत्र में यह नियम भी रखा कि जो प्राचीन विद्वानों के कथन और विशेष हदीसें सरकारे दो आलम सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम की महान हयात, विशाल ज्ञान, श्रेष्ठ श्रवण और गौरवशाली दृष्टि के बारे में आई हैं, उन्हें तीन कारणों से यहाँ उल्लेख न किया जाए:

1. जज़्बुल क़ुलूब, चौदहवां अध्याय, सैयदुल मुर्सलीन की ज़ियारत की फज़ीलत में, मुंशी नवल किशोर, लखनऊ, पृष्ठ 201-202।
2. जामे-उल-बरकात।

पृष्ठ 803 / 948

فتاوی رضویہ - جلد نہم

اور واقعی ایسا ہی ہونا چاہئے لانعدام المخصص (کیونکہ کوئی دلیل تخصیص نہیں-ت)

قول (۱۹۱تا ۱۹۸): امام اسمعیل پھر امام بیہقی پھر امام سہلی پھر امام قسطلانی پھر امام علامہ شامی پھر علامہ زرقانی نے سماع موتیٰ کا اثبات کیا اور دلیل انکار سے جواب دئے کما یظھر بالمراجعۃ الی الارشاد والمواھب وشرحھا وغیر ذلك من اسفار لعلماء (جیسا کہ ارشاد الساری شرح بخاری و مواہب لدینہ شرح مواہب لدینہ اور ان کے علاوہ کتب علماء کے مطالعہ سے معلوم ہوگا۔ ت) مواہب میں امام ابن جریر سے بھی اثبات سماع نقل کیا، امام کرمانی، امام عسقلانی، امام عینی، امام قسطلانی نے شروح صحیح بخاری اور امام سخاوی، امام سیوطی، علامہ حلبی، علی قاری، شیخ محقق وغیرہ ہم نے اس کی تخصیص فرمائی، از آنجا کہ یہ اقوال ان مباحث سے متعلق جنہیں اس رسالہ میں دور آئندہ پر محمول رکھا ہے لہذا ان کی نقل عبارات ملتوی رہی واللہ الموفق۔ قول (۱۹۹): جذب القلوب شریف میں ہے:

تمام اہل سنت و جماعت اعتقاد دارند بہ ثبوت تمام اہل سنت و جماعت کا عقیدہ ہے کہ علم اور ادراکات مثل علم و سماع مر سائر اموات را۔ سماعت جیسے ادراکات تمام مردوں کے لئے ثابت 1 ہیں (ت)

قول (۲۰۰): جامع البرکات میں ہے:

سمھودی می گوید کہ تمام اہل سنت و جماعت اعتقاد دارند بہ ثبوت ادراک مثل علم و سمع و بصر مر سائر اموات را از آحاد بشر انتھی۔ 2 - والحمد للہ رب العلمین۔

امام سمہودی فرماتے ہیں کہ تمام اہل سنت و جماعت کا عقیدہ ہے کہ عام افراد بشر میں سے تمام مردوں کے لیے ادراک جیسے علم اور سننا دیکھنا ثابت ہے۔ انتہی۔ والحمد للہ رب العالمین (ت)

فقیر غفراللہ تعالی نے جن سو "ائمہ و علماء کے اسماء طیبہ گنائے تھے بحمداللہ ان کے اور ان کے علاوہ اوروں کے بھی اقوال عالیہ دو سو " شمار کر دے اور ایفائے وعدہ سے سبک دوش ہوا۔

تنبیہ: ناظرین گمان نہ کرے کہ ہمارے تمام دلائل بس اسی قدر بلکہ جو نقل نہ کیا، وہ بیشتر و اکثر، پھر فقیر غفراللہ المولی القدیر نے اس رسالہ میں یہ التزام بھی رکھا کہ جو آثار واحادیث اقوال علمائے قدیم و حدیث خاص حضور پر نور سید عالم صلی اللہ تعالی علیہ وسلم حی باقی روح مجسم صلی اللہ تعالی علیہ وسلم کی حیات عالی و علم عظیم و سمع جلیل و بصر کریم میں وارد انھیں ذکر نہ کرے تین وجہ سے:

1 جذب القلوب باب چہار دہم در فضائل زیارت سید المرسلین منشی نولکشور لکھنؤ ص ۲۰۲-۲۰۱

2 جامع البرکات

Fatawa Rizvia Volume 9

Firstly, maintain a good opinion of Muslims; specifically, no reciter of the Kalima (believer) will consider the Holy Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) as similar to other deceased people. The members of that group who consider the souls of the deceased to be inanimate objects should perhaps refrain from using this cursed and detestable phrase. God forbid, if someone does not, then I seek Allah's forgiveness; such a wretched and mean person is not worthy of conversation or address; rather, his answer is the punishment of Allah. We seek refuge in Allah, the Lord of all worlds.

Secondly, by Allah, this humble person feels ashamed to include the pure name of the Holy Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) in such a debate of "no" and "yes" of his own accord. However, if the initiation comes from another, then there is a compulsion to reveal the truth.

Thirdly, there is such an abundance of evidence there that the capacity of speech and expression is insufficient. Then, sufficiency in those sayings is enough, for what can be said about the slaves of such a sovereign, "Greatness is for Allah"? After all, who bestowed these ranks and ascents upon them? The same eternal and established Sovereign, peace and blessings of Allah be upon him, and upon his family, his companions, and his most noble son, my master and lord, the Great Helper (Ghaus al-Azam), and all praise is due to Allah, the Lord of the Worlds.

Second Category: Sayings of the elders and luminaries of the Azizi family. Here, mixed sayings will be mentioned. The reader should divide their meanings into the sections of the first category. For now, I present one hundred (100) of their discourses, and success is through Allah.

First Section — Discourse (1): Shah Waliullah writes in 'Fuyuz al-Haramayn':

When they move to the Barzakh (intermediary realm), those conditions, habits, and sciences remain with them; they do not separate from them.	When they move to the Barzakh, these conditions, habits, and knowledge are all with them; they do not separate.
Discourse (2): In the same [book] it is stated:	
	When this perfect servant passes away, neither he nor his perfection

When this accomplished person dies, neither he nor his accomplishment is lost; rather, all of that remains in its state.

decreases, but rather they remain in the same state as before.

Discourse (3): In the same [book] it is stated:

Every accomplished person who dies, it appears to the common people that he has been lost from the world. No, by Allah! He has not been lost; rather...

The perfect one who passes away, it occurs to the mind of the common people that he is lost from the world, whereas by God, he...

[1] Fuyuz al-Haramayn with Urdu translation, Mashhad Azeem-ush-Shan Muhammad Saeed & Sons, Quran Mahal, Karachi, p. 44. [2] Fuyuz al-Haramayn with Urdu translation, Research by Sharif Muhammad Saeed & Sons, Quran Mahal, Karachi, p. 113.

फ़तावा रिज़विया जिल्द नौ

सर्वप्रथम, मुसलमानों के बारे में अच्छे विचार रखें; विशेष रूप से, कलिमा पढ़ने वाला कोई भी व्यक्ति पवित्र पैगंबर (उन पर अल्लाह की शांति और आशीर्वाद हो) को अन्य मृतकों के समान नहीं समझेगा। उस समूह के लोग जो मृतकों की आत्माओं को निर्जीव वस्तुओं के समान समझते हैं, शायद उन्हें इस शापित और घृणित वाक्यांश से बचना चाहिए। ईश्वर न करे, यदि कोई ऐसा नहीं करता है, तो मैं अल्लाह से क्षमा मांगता हूँ; ऐसा अभागा और नीच व्यक्ति बातचीत या संबोधन के योग्य नहीं है; बल्कि उसका उत्तर अल्लाह का दंड है। हम अल्लाह की शरण मांगते हैं, जो सभी लोकों का प्रतिपालक है।

द्वितीय, अल्लाह की कसम, इस विनम्र व्यक्ति को पवित्र पैगंबर (उन पर अल्लाह की शांति और आशीर्वाद हो) का पवित्र नाम अपनी मर्जी से "नहीं" और "हाँ" की ऐसी बहस में शामिल करने में शर्म आती है। हालाँकि, यदि शुरुआत किसी और की ओर से होती है, तो सत्य को प्रकट करने की मजबूरी होती है।

तृतीय, वहाँ प्रमाणों की इतनी प्रचुरता है कि बोलने और व्यक्त करने की क्षमता अपर्याप्त है। फिर, उन कथनों में संतुष्टि ही काफी है, क्योंकि ऐसे शासक के दासों के बारे में क्या कहा जाए, "महानता अल्लाह के लिए है"? आखिरकार, उन्हें ये पद और ऊँचाइयाँ किसने प्रदान कीं? उसी शाश्वत और स्थापित शासक ने, अल्लाह उन पर और उनके परिवार, उनके साथियों और उनके सबसे महान पुत्र, मेरे स्वामी और प्रभु, गौस-ए-आज़म पर शांति और आशीर्वाद बरसाए, और सारी प्रशंसा अल्लाह के लिए है, जो लोकों का स्वामी है।

दूसरी श्रेणी: अज़ीज़ी परिवार के बड़ों और दिग्गजों के कथन। यहाँ मिश्रित कथन उल्लेखित होंगे। पाठक उनके अर्थों को पहली श्रेणी के खंडों में विभाजित कर लें। फिलहाल, मैं उनके सौ (100) प्रवचन प्रस्तुत कर रहा हूँ, और सफलता अल्लाह के माध्यम से है।

पहला खंड — प्रवचन (1): शाह वलीउल्लाह 'फ़ुयूज़ अल-हरमैन' में लिखते हैं:

जब वे बरज़ख़ (मध्यवर्ती लोक) की ओर प्रस्थान करते हैं, तो वे स्थितियाँ, आदतें और ज्ञान उनके साथ रहते हैं; वे उनसे अलग नहीं होते।	जब बरज़ख़ की तरफ़ इंतक़ाल करते हैं ये वज़अ और आदतें और इल्म सब उनके साथ होते हैं जुदा नहीं होते।

प्रवचन (2): उसी [पुस्तक] में है:

जब यह सिद्ध पुरुष मरता है, तो न तो वह और न ही उसकी निपुणता लुप्त होती है; बल्कि वह सब अपनी स्थिति में बना रहता है।

जब यह बंदा-ए-कामिल इंतक़ाल फ़रमाता है न वह घटता है न उसका कमाल, बल्कि बदस्तूर उसी हाल पर रहते हैं।

प्रवचन (3): उसी [पुस्तक] में है:

जो भी सिद्ध पुरुष मरता है, सामान्य लोगों को ऐसा प्रतीत होता है कि वह दुनिया से लुप्त हो गया है। नहीं, अल्लाह की कसम! वह लुप्त नहीं हुआ है; बल्कि...

जिस कामिल का इंतक़ाल होता है अवाम के ख़्याल में गुज़रता है कि वह आलम से गुम गया, हालांकि ख़ुदा की क़सम वह...

[1] फ़ुयूज़ अल-हरमैन उर्दू अनुवाद के साथ, मशहद अज़ीम-उल-शान मोहम्मद सईद एंड संस, कुरान महल, कराची, पृष्ठ 44। [2] फ़ुयूज़ अल-हरमैन उर्दू अनुवाद के साथ, शरीफ़ मोहम्मद सईद एंड संस द्वारा शोध, कुरान महल, कराची, पृष्ठ 113।

पृष्ठ 804 का 948

اولاً مسلمانوں پر نیک گمان کر خاص حضور اقدس صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کو کوئی کلمہ گو مثل سائر اموات نہ جانے گا، اربابِ طائفہ کہ ارواحِ موتیٰ کو جماد سمجھتے ہیں شاید یہاں اس کلمہ مغضوبہ مبغوضہ سے انہیں بھی احتراز ہو، اور معاذ اللہ جسے نہ ہو تو استغفر اللہ ایسا شقی لئیم قابلِ کلام و خطاب نہیں بلکہ اس کا جواب اللہ کا عذاب، والعیاذ باللہ رب العالمین۔

ثانیاً واللہ فقیر کو حیا آتی ہے کہ حضور پر نور صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کا نامِ پاک ایسی بحث "لا" اور "نعم" میں بطورِ خود شامل کرے، ہاں دوسرے کی طرف سے ابتداء ہو تو اظہارِ حق میں مجبوری ہے۔

ثالثاً وہاں دلائل کی وہ کثرت کہ نطاقِ نطقِ بیان سے عاجز پھر انہیں اقوال پر قناعت بس کہ جس سرکار کے غلام ایسے "العظمۃ للہ" اس کا پوچھنا ہی کیا، آخر انہیں یہ مدارج و معارج کس نے عطا کئے، اسی سرکارِ ابد قرار نے، صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم و علیٰ آلہ و صحبہ و ابنہ الاکرم سیدی و مولائی الغوث الاعظم، والحمد للہ رب العلمین۔

نوع دوم: اقوال اکابر و عمائد خاندانِ عزیزی میں، یہاں اقوال مختلط مذکور ہوں گے ناظر ان کے مطالب کو فصولِ نوع اول پر تقسیم کر لے، سردست سو (۱۰۰) مقال ان کے بھی حاضر کرتا ہوں وباللہ التوفیق۔

وصل اول ـــــ مقال (۱): شاہ ولی اللہ فیوض الحرمین میں لکھتے ہیں:

اذا انتقلوا الی البرزخ کانت تلك الاوضاع

والعادات والعلوم معھم لا تفارقھم[1]۔

جب برزخ کی طرف انتقال کرتے ہیں یہ وضعیں اور عادتیں اور علم سب ان کے ساتھ ہوتے ہیں جدا نہیں ہوتے۔

مقال (۲) : اسی میں ہے:

اذا مات هذا البارع لا يفقد هو ولا براعته جب یہ بندہ کامل انتقال فرماتا ہے نہ وہ گھٹتا ہے نہ اس کا کمال، بلکہ بدستور اسی حال پر رہتے ہیں۔ بل كل ذلك بحاله[2]۔

مقال (۳): اسی میں ہے:

كل من مات من الكمل يخيل الى العامة انه فقد من العالم ولا والله ما فقد بل جس کامل کا انتقال ہوتا ہے عوام کے خیال میں گزرتا ہے کہ وہ عالم سے گم گیا، حالانکہ خدا کی قسم وہ

[1]فیوض الحرمین مع ترجمہ اردو مشہد عظیم الشان محمد سعید اینڈ سنز قرآن محل کراچی ص ۴۴

[2]فیوض الحرمین مع ترجمہ اردو تحقیق شریف محمد سعید اینڈ سنز قرآن محل کراچی ص ۱۱۳

Fatawa Razawiyya Volume 9

1- Essence and Powers It is not just a suspicion, but rather it has become more substantial and powerful.

Discourse (4): Shah Abdul Aziz states in Tafsir-e-Azizi: (Persian Text): When a person dies, there is absolutely no change in the soul. Just as it was inherently powerful before, it remains so now. The consciousness and perception it had then, it still possesses now, but even clearer and more radiant. (Summary) (Urdu Translation): When a human dies, no change occurs in the soul at all. In the same way as it possessed strength before, it does now. And the consciousness and perception it had earlier, it still has, rather it is now more clear and bright. (Summary - T)

Discourse (5): It is stated in Tuhfa Isna Ashariya: (Persian Text): When the soul separates from the body, the vegetative powers (qawa-e-nabati) separate from it, but the psychic (nafsani) and animal (haiwani) powers remain. If the bestowal or survival of psychic and animal powers were conditional on the existence of vegetative powers and temperament, it would necessarily follow that angels possess no consciousness, perception, feeling, movement, anger, or repulsion. Thus, the state of souls in the realm of the grave (Alam-e-Barzakh) is like that of angels, who act through some form or body, and animal and psychic actions are issued from them without possessing a vegetative soul. (Urdu Translation): When the soul detaches from the body, vegetative powers separate from it, but psychic and animal powers persist. If the presence or survival of psychic and animal powers were dependent on vegetative powers and temperament, it would imply that angels lack consciousness, perception, sense, movement, anger, and the ability to repel what is disagreeable. So, the condition of souls in the purgatory (Barzakh) is just like that of angels, who function through the medium of some form and body, and animal and psychic acts emanate from them without a vegetative soul. (T)

Discourse (6): Qazi Thanaullah Panipati, from whom Maulvi Ishaq relied upon in 'Ma'at-e-Masail' and 'Arba'een', and whom the venerable Mirza Sahib's spiritual guide and great praised one, Shah Waliullah, in Letter 7, called 'Possessor of Excellence and Sainthood', 'Promulgator of the Shariah', 'Illuminator of the Path', 'Embodied Light', 'Dearest of Beings', and 'Source of Lights, Graces, and Blessings', and it is reported that Shah Abdul Aziz used to call him the 'Bayhaqi of the time', writes in the treatise 'Tadhkirat al-Mawta': (Persian Text): The saints have said 'Arwahuna Ajsaduna' (Our

souls are our bodies), meaning their souls... (Urdu Translation): The saints say, 'Our soul is our body.'

1. Fuyuz al-Haramayn, Tahqiq-e-Sharif, etc., Muhammad Saeed, Booksellers, Karachi, p. 111.
2. Tafsir-e-Azizi, verse 'And do not say of those who are killed...', Akhfani, Dar al-Kutub, Lal Kuan, Delhi, 1/559.
3. Tuhfa Isna Ashariya, Chapter 8, regarding the Resurrection, etc., Suhail Academy, Lahore, pp. 339-340.

फ़तावा रज़विया जिल्द 9

1- सार और शक्तियां यह केवल एक संदेह नहीं है, बल्कि यह और अधिक सारवान और शक्तिशाली हो गया है।

लेख (4): शाह अब्दुल अज़ीज़ तफ़सीर-ए-अज़ीज़ी में फ़रमाते हैं: (फ़ारसी पाठ): जब मनुष्य मरता है, तो उसकी आत्मा में बिल्कुल कोई परिवर्तन नहीं होता। जिस तरह वह पहले स्वाभाविक रूप से शक्तिशाली थी, वह अब भी वैसी ही है। उसे जो चेतना और बोध पहले था, वह अब भी है, बल्कि अब और भी स्पष्ट और उज्जवल है। (सारांश) (उर्दू अनुवाद): जब आदमी मरता है तो रूह में बिल्कुल कोई बदलाव नहीं होता, जिस तरह पहले शक्तिशाली थी अब भी है और जो समझ और बोध उसे पहले था अब भी है, बल्कि अब ज़्यादा साफ़ और रोशन है। (सारांश - त)

लेख (5): तोहफ़ा इस्ना अशरिया में फ़रमाया गया है: (फ़ारसी पाठ): जब आत्मा शरीर से अलग होती है, तो वानस्पतिक शक्तियाँ (क़वा-ए-नबाती) उससे अलग हो जाती हैं, लेकिन मानसिक (नफ़्सानी) और पशुवत (हैवानी) शक्तियाँ बनी रहती हैं। यदि मानसिक और पशुवत शक्तियों का मिलना या बने रहना वानस्पतिक शक्तियों और स्वभाव के अस्तित्व पर निर्भर होता, तो इसका अर्थ यह होता कि फरिश्तों में कोई चेतना, बोध, भावना, गति, क्रोध या प्रतिकर्षण नहीं होता। अत; कब्र के संसार (आलम-ए-बरज़ख़) में आत्माओं की स्थिति फरिश्तों के समान है, जो किसी रूप या शरीर के माध्यम से कार्य करते हैं, और उनसे वानस्पतिक आत्मा के बिना पशुवत और मानसिक कार्य सम्पन्न होते हैं। (उर्दू अनुवाद): जब रूह बदन से अलग होती है तो वानस्पतिक शक्तियाँ उससे अलग हो जाती हैं मगर मानसिक और पशुवत शक्तियाँ बाकी रहती हैं। और अगर मानसिक और पशुवत शक्तियों के बने रहने के लिए वानस्पतिक शक्तियों और मिजाज़ का होना शर्त हो, तो लाज़िम आएगा कि फ़रिश्तों में चेतना, बोध, संवेदन, गति, क्रोध और नापसंद चीज़ को दूर करने की शक्ति कुछ भी न हो। तो आलम-ए-बरज़ख़ में रूहों का हाल वैसा ही है जैसा फ़रिश्तों का हाल है कि किसी शक्ल और बदन की मध्यस्थता से काम करते हैं और शक्ल और वानस्पतिक रूह के बिना उनसे पशुवत और मानसिक कार्य जारी होते हैं। (त)

लेख (6): क़ाज़ी सनाउल्लाह पानीपती, जिनसे मौलवी इसहाक ने 'माअत-ए-मसाईल' और 'अरबईन' में प्रमाण लिया और मिर्ज़ा साहब के पीर-ओ-मुर्शिद और महान प्रशंसित शाह वलीउल्लाह ने मकतूब 7 में उन्हें 'फ़ज़ीलत विलायत मआब', 'शरीयत के प्रचारक', 'तरीक़त को रौशन करने वाले',

'प्रकाशपुंज', 'अत्यंत प्रिय', 'नूर और बरकतों का स्रोत' लिखा, और वर्णित है कि शाह अब्दुल अज़ीज़ उन्हें अपने समय का 'बैहक़ी' कहते थे, रिसाला 'तज़किरतुल मौता' में लिखते हैं: (फ़ारसी पाठ): औलिया ने कहा है 'अरवाहुना अजसादुना' (हमारी आत्माएं हमारे शरीर हैं), अर्थात उनकी आत्माएं.. (उर्दू अनुवाद): औलिया फ़रमाते हैं, 'हमारी रूह हमारा जिस्म है।'

1. फ़ुयूज़ुल हरमैन, तहक़ीक़-ए-शरीफ़ आदि, मुहम्मद सईद, ताजरान-ए-कुतुब, कराची, पृ. 111।
2. तफ़सीर-ए-अज़ीज़ी, आयत 'और उन्हें न कहो जो मारे गए...', अख़फ़ानी, दारुल कुतुब, लाल कुआं, दिल्ली, 1/559।
3. तोहफ़ा इस्ना अशरिया, अध्याय 8, पुनरुत्थान के बारे में आदि, सुहैल अकादमी, लाहौर, पृ. 339-340।

فتاوی رضویہ جلد نہم

تجوھر وقوی 1- گمان نہیں بلکہ اور جوہر دار قوی ہو گیا۔

مقال (۴): شاہ عبدالعزیز صاحب تفسیر عزیزی میں فرماتے ہیں: چوں آدمی میرد روح را اصلا تغیر نمی شود چنانچہ حائل قوی بود | جب آدمی مرتا ہے روح میں بالکل کوئی تغیر نہیں ہوتا جس طرح حالا ہم ست شعور و ادراک کے کہ داشت حالا ہم دارد بلکہ | پہلے حاصل قوی تھی اب بھی ہے اور جو شعور و ادراک اسے پہلے تھا صاف تر و روشن تر 2ھ ملخصاً۔ | اب بھی ہے بلکہ اب زیادہ صاف اور روشن ہے۔ اھ ملخصاً (ت)

مقال (۵): تحفہ اثنا عشریہ میں فرماتے ہیں: چون روح از بدن جدا شد قوائے بناتی از وجدامی شوند نہ قوائے | جب روح بدن سے جدا ہوتی ہے قوائے نباتی اس سے جدا ہو جاتے نفسانی و حیوانی واگر وجود قوائے نفسانی و حیوانی فیضاً یا بقا | ہیں مگر قوائے نفسانی و حیوانی باقی رہتے ہیں اور اگر قوائے نفسانی مشروط باشد بوجود قوائے نباتی ومزاج الزم آید کہ ملائکہ را | و حیوانی کے فیضان یا بقا کے لیے قوائے نباتی اور مزاج کا وجود شرط ہو شعور و ادراک وحسی و حرکتی و غضب و دفع منافر نباشد پس | تو لازم ہے آئے گا کہ ملائکہ میں شعور و ادراک ، حس و حرکت حال ارواح در عالم قبر مثل حال ملائکہ است کہ بتوسط شکلے | غضب و دفع نا موافق کچھ بھی نہ ہو، تو عالم برزخ میں روحوں و بدنے کار می کنند و مصدر رافعال حیوانی و نفسانی می گردند بے | کا حال ایسا ہی ہے جیسے ملائکہ کا حال ہے کہ کسی شکل اور بدن کی آنکہ نفس نباتی ہمراہ داشتہ باشند 3۔ | وساطت سے کام کرتے ہیں اور شکل اور نفس نباتی کے بغیر ان سے | حیوانی و نفسانی افعال و صادر ہوتے ہیں۔ (ت)

مقال (۶): قاضی ثناء اللہ پانی پتی جن سے مولوی اسحاق نے مائتہ مسائل واربعین میں استناد کیا اور جناب مرزا صاحب ان کے پیر و مرشد و ممدوح عظیم شاہ ولی اللہ صاحب نے مکتوب ۷ میں انھیں فضیلت ولایت مآب، مروج شریف و منور طریقت و نور مجسم و عزیز ترین و مجودات و مصدر انوار فیوض و برکات لکھا اور منقول کہ شاہ عبدالعزیز صاحب انھیں بیہقی وقت کہتے، رسالہ تذکیرۃ الموتیٰ میں لکھتے ہیں: اولیاء گفتہ اند ار واحنا اجسادنا یعنی ارواح ایشاں | اولیاء فرماتے ہیں، ہماری روح ہمارا جسم ہے۔

1 فیوض الحرمین تحقیق شریف الخ محمد سعید تاجران کتب کراچی ص ۱۱۱ 2 تفسیر عزیزی آیت ولا تقولوا لمن یقتل الخ اخفانی دارالکتب لال کنواں دہلی ۵۵۹/۱ 3 تحفہ اثنا عشریہ باب ہشتم در معاد الخ سہیل اکیڈمی لاہور ص ۳۳۹-۴۰

Fatawa Razawiyya Volume 9

Souls perform the functions of bodies, and sometimes bodies, due to extreme refinement, manifest in the color (form) of souls. Saints state that the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) did not have a shadow. Their souls travel to earth, heaven, and paradise wherever they wish. Because of this life, the earth of the grave does not consume their bodies; even the shroud remains intact. Ibn Abi al-Dunya narrates from Imam Malik that "The souls of believers travel wherever they wish." Believers here refers to the perfected ones. Allah Almighty grants their bodies the power of souls; they perform prayers in their graves, engage in remembrance (dhikr), and recite the Quran. (Summary end) - (T)

Article (7): In Tafsir-e-Azizi, while mentioning the souls of Prophets, Saints, common people, and the righteous (upon their Master and upon them be peace and blessings), stating that some are in Illiyyin, some in heaven, some between heaven and earth, and some in the Well of Zamzam, it is written:

These souls also maintain a connection with the grave, due to which they become aware of the arrival of visitors, relatives, and other friends and feel a sense of companionship with them. This is because spatial distance or proximity does not hinder this perception for the soul. An example of this in human existence is the visual spirit (sight), which can see stars of the seven heavens from within a well. (T)

This last sentence is particularly noteworthy.

1. Tazkirat al-Mawta wal-Qubur, Urdu translation Misbah al-Nur, Chapter on the resting places of souls, Nuri Kutub Khana Lahore, pp. 57-76.
2. Tafsir-e-Azizi, Para 'Am, under the verse "Indeed, the record of the righteous is in 'Illiyyin", Muslim Book Depot Lal Kuan Delhi, p. 193.

फ़तावा रज़विया जिल्द 9

यानी उनकी रूहें जिस्मों का काम करती हैं और कभी अज़साम (शरीर) अपनी निहायत लताफ़त (सूक्ष्मता) की वजह से रूहों के रंग में जलवा-नुमा होते हैं। औलिया बताते हैं कि रसूलुल्लाह (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) का साया न था। उनकी रूहें ज़मीन, आसमान और जन्नत में जहाँ चाहती हैं जाती हैं। और इसी वजह से क़ब्र में उनके जिस्म को मिट्टी नहीं खाती, बल्कि कफ़न भी सलामत रहता है। इब्न अबी अद्दुन्या इमाम मालिक से रावी हैं कि "मोमिनों की रूहें जहाँ चाहती हैं सैर करती हैं।" मोमिनीन से मुराद कामिलीन (पूर्ण निष्ठावान) हैं। हक़ तआला उनके अज़साम को रूहों की क़ुव्वत अता फरमाता है, वो क़ब्रों में नमाज़ अदा करते हैं, ज़िक्र करते हैं, क़ुरआन पढ़ते हैं। (ख़त्म ब-तल्ख़ीस) - (त)

मक़ाल (7): तफ़सीर-ए-अज़ीज़ी में अंबिया, औलिया, आम और सुल्हा (उन सब के सरदार और उन पर दुरूद ओ सलाम हो) की रूहों का ज़िक्र करते हुए कि कुछ इल्लीय्यीन में, कुछ आसमान पर, कुछ ज़मीन और आसमान के दर्मियान और कुछ कुएं ज़मज़म में हैं, लिखते हैं:

इन रूहों को क़ब्र से भी एक तअल्लुक़ (सम्बन्ध) रहता है जिसके सबब ज़ाइरीन (दर्शनार्थियों) और अज़ीज़ों, दोस्तों की आमद का उन्हें इल्म होता है और उनसे उन्हें उन्स (लगाव/सुख) हासिल होता है, इसलिए कि मकान की दूरी और नज़दीकी रूह के लिए इस इदराक (समझ/बोध) से मानेअ (बाधक) नहीं होती। इंसान के वजूद में इसकी मिसाल रूहे-बसर (दृष्टि शक्ति) है जो हफ़्त आसमां (सातों आसमानों) के सितारे कुएँ के अंदर से देख सकती है। (त)

यह पिछला जुमला ज़्यादा क़ाबिल-ए-लिहाज़ (ध्यान देने योग्य) है।

1. तज़किरतुल मौता वल क़ुबूर, उर्दू तर्जुमा मिस्बाहुन्नूर, रूहों के ठहरने की जगह के बयान में, नूरी कुतुब ख़ाना लाहौर, स. 57-76.
2. तफ़सीर-ए-अज़ीज़ी पारा 'अम, तहत-ए-"इन्ना किताबुल अबरार लफ़ी इल्लीय्यीन", मुस्लिम बुक डिपो लाल कुआं दिल्ली, स. 193.

فتاوٰی رضویہ جلد نہم

کا جساد می کند وگاہی اجساد از غایت لطافت برنگ ارواح می بر آید، می گوید کہ رسول خدا را سایہ نبود صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم ارواح ایشاں از زمین و آسمان و بہشت ہر جاکہ خواھند می روند و بہ سبب ہمیں حیات اجساد آنھا را اور قبر خاک نمی خورد بلکہ کفن ہم میماند، ابن ابی الدنیا از ملک روایت نمود ، ارواح مومنین ہر جاکہ خواھند سیر کنند مراد از مومنین کاملین اند حق تعالٰی اجساد ایشاں را قوت ارواح دے دھد در قبور نماز می خوانند و ذکر می کنند و قرآن می خوانند 1ھ ملخصاً۔ یعنی ان کی روحیں جسموں کا کام کرتی ہیں اور کبھی اجسام انتہائی لطافت کی وجہ سے روحوں کے رنگ میں جلوہ نما ہوتے ہیں۔ اولیاء بتاتے ہیں کہ رسول خدا صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم کا سایہ نہ تھا۔ ان کی روحیں زمین، آسمان اور جنت میں جہاں چاہتی ہیں جاتی ہیں۔ اور اسی وجہ سے قبر میں ان کے جسم کو مٹی نہیں کھاتی، بلکہ کفن بھی سلامت رہتا ہے، ابن ابی الدنیا امام مالک سے راوی ہے کہ "مومنوں کی روحیں جہاں چاہتی ہے سیر کرتی ہیں۔" مومنین سے مراد کاملین ہیں، حق تعالٰی انکے اجسام کو روحوں کی قوت عطا فرماتا ہے، وہ قبروں میں نماز ادا کرتے ہیں، ذکر کرتے ہیں، قرآن پڑھتے ہیں۔ (ختم بتلخیص)۔ (ت)

مقال (۷): تفسیر عزیزی میں ارواح انبیاء واولیاء عام و صلحا علی سید ہم وعلیہم الصلوٰۃ والسلام کا ذکر کرکے کہ بعض علیین اور بعض آسمان اور بعض درمیان آسمان وزمین اور بعض چا ہ زمزم میں، لکھتے ہیں:

تعلقے بقبر نیز ایں ارواح را می باشد کہ بحضور زیارت کنندگان و اقارب و دیگر دوستاں بر قبر مطلع و مستانس می گردند زیراں کہ روح را قرب و بعد مکانی مانع ایں دریافت نمی شود و مثال آں در وجود انسان روح بصری ست کہ ستارہائے ہفت آسمان را در دن چاہ می تواند دید۔ 2 ان روحوں

کو قبر سے بھی ایک تعلق رہتا ہے جس کے سبب زائرین اور عزیزوں، دوستوں کی آمد کا انھیں علم ہوتا ہے اور ان سے انھیں انس حاصل ہوتا ہے اس لیے کہ مکان کی دوری و نزدیکی روح کے لیے اس ادراک سے مانع نہیں ہوتی، انسان کے وجود میں اس کی مثال روحِ بصر ہے جو ہفت آسمان کے ستارے کنوئیں کے اندر سے دیکھ سکتی ہے۔ (ت)

یہ پچھلا جملہ زیادہ قابل لحاظ ہے۔

1 تذکرۃ الموتی والقبور اردو ترجمہ مصباح النور باب روحوں کے ٹھہرنے کی جگہ کے بیان میں نوری کتب خانہ لاہور ص ۵۷۔۷۶ 2 تفسیر عزیزی پارہ عم تحت ان کتاب الابرار لفی علیین مسلم بک ڈپو لال کنواں دہلی ص ۱۹۳

Fatawa Razawiya - Volume 9

Argument (8): In "Mazahir-e-Haq," the translation of "Mishkat," it is stated: "The fifth type is for kindness and affection. It is mentioned in the Hadith that whoever passes by the grave of a believer brother and offers greetings, the deceased recognizes him and returns the greeting." And this is attributed to Imam Nawawi (Reference to Imam Nawawi is provided. -Trans).

Argument (9): Maulvi Ishaq Sahab, in "Arbaeen," quoted from "Nisab al-Ihtisab" regarding making the visiting of graves by women absolutely prohibited: "When she intends to go out, she is cursed; when she goes out, devils surround her from four sides, and when she arrives at the grave, the soul of the deceased curses her." He quoted it to prove his claim of general prohibition but failed to see that it ended up supporting the consciousness of the dead. The mentioned text is clear evidence that the deceased is aware of the visitor's presence and also recognizes whether it is a man or a woman, and is also distressed by their improper actions, to the extent of cursing the female visitor.

Argument (10): Mirza Mazhar Jan-e-Janan, in his "Malfuzat" (recorded sayings), says regarding Hazrat Siddiq-e-Akbar (Radi Allahu Anhu): | Persian Text | Urdu Translation | | :--- | :--- | | Once I recited a poem in his praise; he showed great kindness to this humble person and said out of humility, 'I am not worthy of all this praise.' | I had presented a poem in his praise once. He showed great kindness to this humble person and said humbly that we are not worthy of all this praise. (Trans) |

Argument (11): In the same, regarding Hazrat Maula Ali (Karam Allah Wajhahu al-Karim), he said: | Persian Text | Urdu Translation | | :--- | :--- | | Once I presented a poem in his presence... etc. | Once I presented a poem in his court... etc. (Trans) |

Argument (12): Shah Waliullah writes in "Hujjatullah al-Baligha": | Arabic Text | Urdu Translation | | :--- | :--- | | When a human dies, there is another phase for the soul, and the divine spiritual overflow creates a power in what remains of the common sense that suffices for hearing, seeing, and speaking. | When a man dies, there is another state for the animal soul, so the grace of the Divine Spirit creates a potential in its remaining common sense that serves for hearing, seeing, and speaking. |

1. Mazahir-e-Haq translation of Mishkat al-Masabih, Chapter of Visiting Graves, Section One, Malik Deen Muhammad & Sons Lahore, 1/71-716.

2. Masa'il-e-Arbaeen with Urdu translation, Issue 139, H.M. Saeed Company Karachi, p. 96.
3. Malfuzat Mirza Mazhar Jan-e-Janan from Kalimat-e-Tayyibat, Mujtabai Press Delhi, p. 78.
4. Malfuzat Mirza Mazhar Jan-e-Janan from Kalimat-e-Tayyibat, Mujtabai Press Delhi, p. 78.
5. Hujjatullah al-Baligha, Chapter on the Reality of the Spirit, Al-Maktabah al-Salafiyah Lahore, p. 19.

फ़तावा रज़विया - जिल्द 9

तर्क(8): "मज़ाहिर-ए-हक़" जो कि मिशकात का अनुवाद है, में लिखा है: "पांचवां प्रकार दया और लगाव के लिए है। हदीस में आया है कि जो कोई अपने मोमिन भाई की कब्र के पास से गुज़रे और सलाम करे, तो वह (मृतक) उसे पहचानता है और सलाम का जवाब देता है।" और इसे इमाम नववी की ओर निर्देशित किया गया है (इस पर इमाम नववी का संदर्भ दिया गया है। -अनु)।

तर्क(9): मौलवी इसहाक साहब ने "अरबईन" में औरतों के लिए कब्रों की ज़ियारत को बिल्कुल वर्जित ठहराने के लिए "निशाब अल-एहतिसाब" से उद्धृत किया कि "जब वह बाहर निकलने का इरादा करती है तो अभिशप्त होती है, जब निकलती है तो शैतान उसे चारों तरफ से घेर लेते हैं और जब कब्र पर आती है तो मृतक की रूह उसे लानत करती है।" उन्होंने अपनी सामान्य पाबंदी के दावे को सिद्ध करने के लिए इसे उद्धृत तो किया, लेकिन यह नहीं देखा कि इसने मुर्दों की चेतना का समर्थन कर दिया। उक्त कथन स्पष्ट प्रमाण है कि मृतक आगंतुक की उपस्थिति से अवगत होता है और यह भी पहचानता है कि यह पुरुष है या महिला, और उनके अनुचित कार्य से परेशान भी होता है, यहाँ तक कि महिला आगंतुक पर लानत करता है।

तर्क(10): मिर्ज़ा मज़हर जान-ए-जानां अपने मलफूज़ात (कथनों) में हज़रत सिद्दीक-ए-अकबर (रज़ियल्लाहु अन्हु) के बारे में कहते हैं: | फ़ारसी पाठ | उर्दू अनुवाद | | :--- | :--- | | एक बार उनकी प्रशंसा में एक कसीदा (कविता) कहा था, इस फ़कीर के हाल पर बहुत कृपा की और विनम्रता से फ़रमाया कि हम इस प्रशंसा के लायक नहीं हैं। | एक बार उनकी प्रशंसा में एक कसीदा पेश किया था। इस फ़कीर के हाल पर बहुत कृपा की और विनम्रतापूर्वक फ़रमाया कि हम इस सारी प्रशंसा के योग्य नहीं हैं। (अनु.) |

तर्क(11): उसी में हज़रत मौला अली (करम अल्लाह वज्हहु अल-करीम) के बारे में कहा: | फ़ारसी पाठ | उर्दू अनुवाद | | :--- | :--- | | एक बार उनकी सेवा में एक कसीदा पेश किया... आदि। | एक बार उनकी दरगाह में एक कसीदा पेश किया। आदि (अनु.) |

तर्क(12): शाह वलीउल्लाह "हुज्जतुल्लाह अल-बलिग़ा" में लिखते हैं: | अरबी पाठ | उर्दू अनुवाद | | :--- | :--- | | जब मनुष्य मरता है, तो आत्मा के लिए एक और अवस्था होती है, और दिव्य रूहानी प्रवाह सामान्य बोध के शेष हिस्से में एक शक्ति पैदा करता है जो सुनने, देखने और बोलने के लिए पर्याप्त होती है। | जब आदमी मरता है तो रूह-ए-हैवानी के लिए एक और उत्थान होता है तो रूह-

ए-इलाही का फ़ैज़ उसके शेष हिस्स-ए-मुश्तरक (सामान्य बोध) में एक शक्ति उत्पन्न करता है जो सुनने, देखने और कलाम करने का काम देती है। |

1. मज़ाहिर-ए-हक़ अनुवाद मिशकातुल मसाबीह, कब्रों की ज़ियारत का अध्याय, खंड एक, मलिक दीन मुहम्मद एंड संस लाहौर 1/71-716।
2. मसाइल-ए-अरबईन उर्दू अनुवाद के साथ, मसला 139, एच.एम. सईद कंपनी कराची, पृ. 96।
3. मलफूज़ात मिर्ज़ा मज़हर जान-ए-जानां 'कलमात-ए-तय्यिबात' से, मुजतबाई प्रेस दिल्ली, पृ. 78।
4. मलफूज़ात मिर्ज़ा मज़हर जान-ए-जानां 'कलमात-ए-तय्यिबात' से, मुजतबाई प्रेस दिल्ली, पृ. 78।
5. हुज्जतुल्लाह अल-बलिग़ा, रूह की वास्तविकता का अध्याय, अल-मकतब अल-सलफिअह लाहौर, पृ. 19।

पृष्ठ 948 का 807

مقال (۸): مظاہرِ حق ترجمہ مشکوٰۃ میں ہے: "پانچویں قسم مہربانی اور انس کے لیے ہوتی ہے۔ حدیث میں آیا ہے کہ جو کوئی گزرے اوپر قبرِ مومن بھائی اپنے کے اور سلام کرے تو پہچانتا ہے وہ اس کو اور جواب سلام کا دیتا ہے"۔ وعزاہ للامام النووی (اس پر امام نووی کا حوالہ دیا ہے۔ت)

مقال (۹): مولوی اسحاق صاحب نے اربعین میں عورتوں کے لیے زیارتِ قبر مطلقاً ممنوع ٹھہرانے کو نصاب الاحتساب سے نقل کیا کہ "جب وہ نکلنے کا ارادہ کرتی ہے ملعونہ ہوتی ہے جب نکلتی ہے چار طرف سے شیاطین اسے گھیر لیتے ہیں واذا اتت القبر یلعنھا روح المیت اور جب قبر پر آتی ہے میت کی روح اسے لعنت کرتی ہے۔" اپنا دعائے اطلاق ثابت کرنے کو نقل تو گئے مگر نہ دیکھا کہ اس نے حمایتِ موتی کا خاتمہ کردیا۔ کلامِ مذکور صاف دلیلِ واضح ہے کہ میت حضورِ زائر پر مطلع ہوتا ہے اور یہ بھی پہچانتا ہے کہ یہ مرد ہے یا عورت، اور اس کے لیے بے جا فعل سے پریشان بھی ہوتا ہے یہاں تک کہ زن زائرہ پر لعنت کرتا ہے۔

مقال (۱۰): مرزا مظہر جانجاناں اپنے ملفوظات میں حضرت صدیق اکبر رضی اللہ تعالٰی عنہ کی نسبت کہتے ہیں: | فارسی متن | اردو ترجمہ | | :--- | :--- | | یک بار قصیدہ در مدحِ ایشاں گفتہ بودم، عنایت بسیار بحالِ فقیر نمودہ، از روئے تواضع فرموند مالائق اینہمہ ستائش نیستم | ایک بار ان کی مدح میں ایک قصیدہ عرض کیا تھا۔ اس فقیر کے حال پر بہت عنایت فرمائی اور تواضعاً فرمایا کہ ہم اس ساری ستائش کے لائق نہیں۔ (ت) |

مقال (۱۱): اسی میں حضرت مولیٰ علی کرم اللہ وجہہ الکریم کی نسبت کہا: | فارسی متن | اردو ترجمہ | | :--- | :--- | | یک بار قصیدہ بجناب ایشاں عرض نمودم الخ۔ | ایک بار ان کی بارگاہ میں ایک قصیدہ عرض کیا۔ الخ (ت) |

مقال (۱۲): شاہ ولی اللہ حجۃ اللہ البالغہ میں لکھتے ہیں: | عربی متن | اردو ترجمہ | | :--- | :--- | | اذا مات الانسان کان للنسبة نشأة اخری فینشی فیض الروح الالهی فیها قوة فیما بقی من الحس المشترك تکفی کفایة السمع والبصر والکلام | جب آدمی مرتا ہے روحِ حیوانی کے لیے ایک اور اٹھان ہوتی ہے تو روح الٰہی کا فیض اس کے بقیہ حسِ مشترک میں ایک وقت ایجاد کرتا ہے جو سننے اور دیکھنے اور کلام کرنے کا کام دیتی ہے۔ |

۱۔ مظاہر حق ترجمہ مشکوۃ المصابیح باب زیارۃ القبور فصل اول ملک دین محمد اینڈ سنز لاہور ۱/ ۷۱۔ ۲ ۲۔ مسائل اربعین معہ اردو ترجمہ مسئلہ ۱۳۹ ایچ ایم سعید کمپنی کراچی ص ۹۶ ۳۔ ملفوظات مرزا مظہر جان جاناں از کلمات طیبات مطبع مجتبائی دہلی ص ۷۸ ۴۔ ملفوظات مرزا مظہر جان جاناں از کلمات طیبات مطبع مجتبائی دہلی ص ۷۸ ۵۔ حجۃ اللہ البالغہ باب حقیقۃ الروح المکتبہ السلفیہ لاہور ص ۱۹

Fatawa Ridawiyya Volume IX

Passage (13): Maulana Shah Abdul Qadir Sahib (may Allah Almighty have mercy on him) states in "Mudih-ul-Qur'an" under the noble verse "And you cannot make those hear who are in the graves": "It has come in the Hadith that greet the dead with 'Assalamu Alaykum', they hear. And in many places, the dead have been addressed. The reality of this is that the soul of the dead hears, and the body lying in the grave cannot hear."[1]

Second Junction: On the persistence of the influence and miracles of the saints after their passing. Passage (14): Shah Waliullah writes in "Hama'at":

Original Persian	Urdu Translation
Among the saints of the Ummah and the companions of the strongest path, the one after whom the entire path of attraction (Jazb) inclined towards the origin of this connection through various means and who established a foot there in the most perfect way is Hazrat Sheikh Muhyiddin Abdul Qadir Jilani. Hence it is said that they exercise influence in their graves like the living.[2]	Among the saints of the Ummah and the companions of the path, the most powerful personality after whom the entire path of love was inclined towards the origin of this same connection in the most emphasized way and was established in that place in the most perfect way, is Hazrat Sheikh Muhyiddin Abdul Qadir Jilani. Therefore, the elders have said that they exercise influence in their graves like the living. (T)

Passage (15): In "Hujjatullah al-Baligha", the people of Barzakh (the realm between death and resurrection) are classified into four types:

Original Arabic	Urdu Translation
When one dies, bodily connections are severed, so they join the angels and become part of them. Their inspiration is like the angels' inspiration, and they strive in what the angels strive for. Sometimes these people are occupied in exalting the word of Allah and helping the party of Allah, and sometimes they have a touch of	When they die, bodily attachments are severed so that they meet the angels and become one of them. Just as angels instill good thoughts in people's hearts, they do too. And they also strive in the works that angels strive in. And sometimes these pure souls are busy in exalting God's word and helping His army, i.e., Jihad and fighting disbelievers and helping Muslims, and sometimes they are near and far from the

Original Arabic	Urdu Translation
goodness for the children of Adam.[3] - Summarized.	children of Adam to bestow goodness upon them.

Passage (16): In "Tafsir-e-Azizi" it is written:

Original Persian	Urdu Translation
Some special saints who have been made a source for the completion and guidance of their fellow human beings, in this state (i.e., in the state of the world of Barzakh)	Some special saints who have been made a means for the perfection and guidance of their fellow human beings, in this state...

[1] Mudih-ul-Qur'an under "And you cannot make those hear who are in the graves", Mumtaz Company, Kashmiri Bazaar, Lahore, p. 480. [2] Hama'at, Ham'ah 11, Shah Waliullah Academy, Hyderabad, p. 61. [3] Hujjatullah al-Baligha, Chapter on the difference of people's conditions in Barzakh, Al-Maktabah al-Salafiyyah, Lahore, p. 35.

फ़तावा-ए-रज़विया जिल्द नवीं

मक़ाल (13): मौलाना शाह अब्दुल क़ादिर साहब (रहमतुल्लाह अलैह) "मोज़ेहुल क़ुरआन" में आयत "व मा अंत बिमुस्मेइन मन फ़िल क़ुबूर" (और आप उन लोगों को नहीं सुना सकते जो कब्रों में हैं) के तहत फ़रमाते हैं: "हदीस में आया है कि मुर्दों को सलाम करो, वे सुनते हैं। और बहुत सी जगहों पर मुर्दों को संबोधित किया गया है। इसकी हक़ीक़त यह है कि मुर्दे की रूह सुनती है और क़ब्र में पड़ा हुआ धड़ (शरीर) नहीं सुन सकता।"[1]

वस्ल दोम (दूसरा भाग): विसाल (निधन) के बाद औलिया के तसर्रुफ़ात (प्रभाव) और करामात के बने रहने के बारे में। मक़ाल (14): शाह वलीउल्लाह "हमात" में लिखते हैं:

मूल फ़ारसी	**उर्दू अनुवाद**
उम्मत के औलिया और मज़बूत तरीक़े के साथियों में से वह शख्सियत जिसके बाद पूरा जज्ब का रास्ता उसी निस्बत की असल की तरफ झुक गया और वहाँ कामिल तरीक़े से क़दम जमा लिए, हज़रत शेख मुहीउद्दीन अब्दुल क़ादिर जिलानी हैं। इसीलिए कहा गया है कि वे अपनी क़ब्रों में ज़िन्दों की तरह तसर्रुफ़ (असर) करते हैं।[2]	उम्मत के औलिया और तरीक़त के साथियों में सबसे शक्तिशाली व्यक्तित्व, जिनके बाद प्यार का पूरा रास्ता उसी संबंध के मूल की ओर सबसे अधिक बल देते हुए झुक गया और उस स्थान पर सबसे पूर्ण रूप से स्थापित हो गया, हज़रत शेख़ मुहीउद्दीन अब्दुल क़ादिर जिलानी हैं। इसीलिए बुज़ुर्गों ने फ़रमाया है कि वे अपनी कब्रों में रहकर ज़िन्दों की तरह तसर्रुफ़ (असर) करते हैं। (त)

मक़ाल (15): "हुज्जतुल्लाह अल-बालिगा" में बरज़ख़ के लोगों को चार क़िस्मों में बांटकर लिखा गया है:

मूल अरबी	**उर्दू अनुवाद**
जब मौत होती है तो जिस्मानी ताल्लुक़ टूट जाते हैं और रूह फ़रिश्तों से जा मिलती है और उन्हीं में से हो जाती है। उनका इलहाम (प्रेरणा) फ़रिश्तों के इलहाम जैसा होता है और वे उन्हीं कामों में कोशिश करते हैं जिनमें फ़रिश्ते करते हैं। कभी-कभी ये लोग अल्लाह	जब मरते हैं तो जिस्मानी रिश्ते टूट जाते हैं जिससे वे फ़रिश्तों से मिलते हैं और उन्हीं में से हो जाते हैं। जिस तरह फ़रिश्ते आदमियों के दिल में नेक बात डालते हैं, ये भी करते हैं और जिन कामों में फ़रिश्ते कोशिश करते हैं ये भी करते हैं और कभी ये पाक रूहें खुदा का बोल बाला करने और उसके लश्कर

मूल अरबी	उर्दू अनुवाद
के कलिमे को बुलन्द करने और अल्लाह की जमात की मदद करने में मसरूफ़ होते हैं, और कभी आदम की औलाद के लिए नेक ख्याल का ज़रिया बनते हैं।[3] - सारांश	की मदद देने यानी जिहाद और काफ़िरों से लड़ने और मुसलमानों की इमदाद में मशगूल होती हैं और कभी बनी आदम से नज़दीक व करीब होती हैं कि उन पर भलाई बरसा सकें।

मक़ाल (16): "तफ़सीर-ए-अज़ीज़ी" में है:

मूल फ़ारसी	उर्दू अनुवाद
कुछ खास औलिया जिन्हें अपनी प्रजा (मानव जाति) के मार्गदर्शन और कामिल बनाने का ज़रिया बनाया गया है, इस हालत में (यानी आलम-ए-बरज़ख़ में)	कुछ खास औलिया जिन्हें अपनी दूसरी प्रजा (मानव जाति) के मार्गदर्शन और कामिल बनाने का ज़रिया बनाया गया है, उन्हें इस हालत में...

[1] मोज़ेहुल क़ुरआन, आयत "व मा अंत बिमुस्मेइन मन फ़िल क़ुबूर" के तहत, मुमताज़ कंपनी, कश्मीरी बाज़ार, लाहौर, पृ. 480. [2] हमात, हमअह 11, शाह वलीउल्लाह अकादमी, हैदराबाद, पृ. 61. [3] हुज्जतुल्लाह अल-बालिगा, बरज़ख़ में इंसानों के हालात के फर्क का बाब, अल-मकतबा अस-सलफ़िया, लाहौर, पृ. 35.

فتاوٰی رضویہ جلد نہم

مقال (۱۳): مولانا شاہ عبدالقادر صاحب رحمۃ اللہ تعالٰی علیہ موضح القرآن میں زیرِ کریمہ وما انت بمسمع من فی القبور فرماتے ہیں "حدیث میں آیا ہے کہ مردوں سے سلام علیک کرو وہ سنتے ہیں۔ اور بہت جگہ مردوں کو خطاب کیا ہے۔ اس کی حقیقت یہ ہے کہ مردے کی روح سنتی ہے اور قبر میں پڑا ہے دھڑ وہ نہیں سن سکتا ہے۔"1

وصل دوم: بقائے تصرفات و کرامات اولیاء بعد الوصال میں۔ مقال (۱۴): شاہ ولی اللہ ہمعات میں لکھتے ہیں :

اصل فارسی	**اردو ترجمہ**
در اولیائے امت و اصحاب طریق اقوٰی کسیکہ بعدہ تمام راہ جذب باکد وجوہ باصل ایں نسبت میل کردہ ودر آنجا بوجہ اتم قدم است حضرت شیخ محی الدین عبدالقادر جیلانی اند ولہذا گفتہ اند کہ ایشاں در قبور خود مثل احیاء تصرف می کنند-2	اولیائے امت و اصحاب طریقت میں سب سے زیادہ قوی شخصیت جس کے بعد تمام راہ عشق مؤکد ترین طور پر اسی نسبت کی اصل کی طرف مائل اور کامل ترین طور پر اسی مقام پر قائم ہو چکی ہے، حضرت شیخ محی الدین عبدالقادر جیلانی ہیں، اسی لیے بزرگوں نے فرمایا کہ یہ اپنی قبروں میں رہ کر زندوں کی طرح تصرف کرتے ہیں۔ (ت)

مقال (۱۵): حجۃ اللہ البالغہ میں اہلِ برزخ کو چار قسم کرکے لکھا:

اصل عربی	اردو ترجمہ
اذا مات انقطعت العلاقات فلحق	جب مرتے ہیں علائقِ بدنی منقطع ہو کہ ملائکہ سے ملتے اور
بالملئكة وصار منهم، والهم	انھیں میں سے ہو جاتے ہیں جس طرح فرشتے آدمیوں کے دل میں
كالهامهم وسعى فيما يسعون فيه	نیک بات کا القاء کرتے ہیں یہ بھی کرتے ہیں اور جن کاموں میں
وربما اشتغل هؤلاء باءعلام	ملائکہ سعی کرتے ہیں یہ بھی کرتے ہیں اور کبھی یہ پاک روحیں
كلمة الله ونصر حزب الله وربما	خدا کا بول بالا کرنے اور اس کے لشکر کو مدد دینے یعنی جہاد و
كان لهم لمة خير بابن آدم 3 -	قتل کفار و امداد مسلمین میں مشغول ہوتی ہیں اور کبھی بنی آدم
ملخصاً-	سے نزدیک و قریب ہوتی ہیں کہ ان پر افاضہ خیر فرمائیں۔

مقال (۱۶): تفسیر عزیزی میں ہے:

اصل فارسی	اردو ترجمہ
بعض خواص اولیاء را کہ جار جہ تکمیل و	بعض خواص اولیاء جنہیں اپنے دوسرے بنی نوع کی
ارشاد بنی نوع خود گرد انند دریں حالت	تکمیل وارشاد کا ذریعہ بنایا ہے ان کو اس حالت میں
(یعنی بحالتِ عالمِ برزخ)	(یعنی بحالتِ عالمِ برزخ)

1 موضح القرآن وامانت بمسمع من فی القبور کے تحت ممتاز کمپنی کشمیری بازار لاہور ص ۴۸۰

2 ہمعات ہمعہ ۱۱ اکادمی شاہ ولی اللہ حیدر آباد ص ۶۱ 3 حجۃ اللہ البالغہ باب اختلاف احوال الناس فی البرزخ المکتبۃ السلفیہ لاہور ص ۳۵

...their being engrossed [in the Divine] due to the perfection and vastness of their perceptions does not prevent them from paying attention to this side [the world].[1]	Dealing in the world (i.e., in the state of Barzakh) has been granted, and their immersion in Divine observation does not prevent attention to this side because their perceptions have a very great vastness. (T)

This is the very statement because of which even the Molvi (objector) accepted the visitation and perception for some deceased.

Quote (17): Mirza Mazhar Sahib says in his letters:

The influence of some perfect souls remains in this world even after leaving their physical bodies[2] etc.	The influence of some perfect souls remains in this world even after the separation from their bodies etc. (T)

Quote (18): Mian Ismail Dehlvi, in 'Sirat-e-Mustaqim', regarding Hazrat Maulana Mushkil Kusha (Karam Allahu Ta'ala Wajh-ul-Karim), with what heart do they bring faith thus:

In the kingdom of kings and the rule of governors, there is such an interference of their resolve that it is not hidden from the travelers of the realm of Malakut.[3]	In the kingdom of kings and the rule of governors, there is such an interference of the resolve of Hazrat Ali (Karam Allahu Ta'ala Wajh-ul-Karim) that it is not hidden from those who journey through the realm of Malakut. (T)

Quote (19): In the same, writing about the majesty and greatness of Janab-e-Murtazavi, it was said:

The status of the Shaykhayn is very high compared to the aforementioned majesty and glory. In the visible world, its example is like the status of a great noble who, being free from political affairs, has become an attendant to the king, compared to one who is established in service and busy in administration. Although the outward majesty and the number of followers for this companion	The status of the Shaykhayn (Hazrat Abu Bakr and Umar) is very high compared to the aforementioned majesty and glory. In the visible world, its example is like the status of a great noble who, having been freed from political affairs, stays in the service of the king, compared to another noble who is associated with the affairs of the state and is busy in administration. Although the outward majesty and the

compared to that great noble established in service is less, but in honor and dignity, he is superior, for in reality...	number of followers for the one associated with the affairs of the state compared to that great noble...

[1] Tafsir Azizi under 'Wal-Qamar idha-ttasaq', Saleem Book Depot, Lal Kuan, Delhi, p. 206. [2] Maktubat Mirza Mazhar Jan-e-Janan with Kalimat Tayyibat, Letter 14, Matba Mujtabai, Delhi, p. 27. [3] Sirat-e-Mustaqim, second guidance regarding 'dhikr-e-bid'ai-ke' etc., Al-Maktaba-tus-Salafiyya, Lahore, p. 58.

फतावा-ए-रज़विया | जिल्द नवीं

...उनके बोध की पूर्णता और विशालता के कारण [ईश्वर में] उनका लीन होना इस ओर [दुनिया की ओर] ध्यान देने से नहीं रोकता।[1]

दुनिया में हस्तक्षेप (यानी बर्ज़ख़ की स्थिति में) दुनिया के अंदर हस्तक्षेप प्रदान किया गया है और ईश्वरीय अवलोकन में उनका लीन होना इस तरफ ध्यान देने में बाधक नहीं होता, क्योंकि उनके बोध बहुत अधिक व्यापकता रखते हैं। (त)

यही वह इबारत (कथन) है जिसके कारण मौलवी मुनकिर साहब ने भी कुछ मृत लोगों के लिए दर्शन और बोध को स्वीकार किया था।

मक़ाल (17): मिर्ज़ा मज़हर साहब अपने मकतूबत (पत्रों) में फरमाते हैं:

शरीरों से संबंध टूटने के बाद भी कुछ पूर्ण आत्माओं का हस्तक्षेप इस दुनिया में शेष रहता है[2] इत्यादि।

शरीरों से संबंध विच्छेद के बाद भी कुछ कामिल (पूर्ण) आत्माओं का हस्तक्षेप इस दुनिया में बाकी रहता है इत्यादि। (त)

मक़ाल (18): मियां इस्माइल देहलवी 'सिराते मुस्तकीम' में हज़रत जनाब मौला मुश्किल कुशा (करम अल्लाहु तआला वज्हहुल करीम) के संबंध में खुदा जाने किस दिल से इस प्रकार विश्वास लाते हैं:

सुल्तानों की सल्तनत और अमीरों की हुकूमत में उनके संकल्प का ऐसा दखल है जो मलकूत के जगत के यात्रियों से छिपा नहीं है।[3]

सुल्तानों की सल्तनत और हाकिमों की हुकूमत में हज़रत अली (करम अल्लाहु तआला वज्हहुल करीम) के संकल्प का ऐसा दखल है जो मलकूत के जगत की सैर करने वालों पर गुप्त नहीं है। (त)

मक़ाल (19): उसी में जनाब-ए-मुर्तज़वी की शान और महानता लिखकर कहा:

शेखन (हज़रत अबू बक्र और हज़रत उमर) की शान उक्त शान और जलाल की तुलना में बहुत ऊँची है। प्रत्यक्ष जगत में इसकी मिसाल उस महान अमीर के पद जैसी है जो राजनीति के मामलों से मुक्त होकर राजा का सेवक बन गया हो, उस व्यक्ति की तुलना में जो सेवाओं पर तैनात और प्रशासन के कार्यों में व्यस्त

उक्त शौकत और जलाल की तुलना में हज़रात-ए-शेखन की शान बुलंद है, ज़ाहिरी दुनिया में इसकी मिसाल उस अमीर-ए-कबीर का मर्तबा है जो राजनीति के मामलों से फारिग (मुक्त) होकर बादशाह की खिदमत में रहता है, बनिस्बत दूसरे अमीर के जो सल्तनत के मामलों से जुड़ा और प्रशासन में

हो। यद्यपि इस साथी के मामले में बाहरी शान और अनुयायियों की संख्या, उस सेवा में तैनात महान अमीर की तुलना में कम है, लेकिन सम्मान और प्रतिष्ठा में वह श्रेष्ठ है क्योंकि वास्तव में...

व्यस्त है। यद्यपि ज़ाहिरी शौकत और अनुयायियों की अधिकता, सल्तनत के मामलों से जुड़े उस अमीर-ए-कज़ीम की...

---

[1] तफ़्सीर अज़ीज़ी, 'वल-क़मरि इज़ा-त्तसक़' के अंतर्गत, सलीम बुक डिपो, लाल कुआँ, दिल्ली, पृष्ठ 206। [2] मकतूबत मिर्ज़ा मज़हर जान-ए-जानाँ साथ कलिमात तैय्यिबात, मकतूब 14, मतबा मुजतबाई, दिल्ली, पृष्ठ 27। [3] सिराते मुस्तकीम, दूसरी हिदायत 'ज़िक्र-ए-बिदअती' आदि के वर्णन में, अल-मकतबतुस-सलफ़िया, लाहौर, पृष्ठ 58।

داده و استغراق آنہا بہت کمال و وسعت مدارک آنہا مانع توجہ بایں سمت نمی گردد 1-

تصرف در دنیا (یعنی عالم برزخ کی حالت میں) دنیا کے اندر تصرف بخشا ہے اور مشاہدہ الٰہی میں ان کا استغراق اس جانب توجہ سے مانع نہیں ہوتا اس لیے کہ ان کے مدارک بہت زیادہ وسعت رکھتے ہیں۔ (ت)

یہی وہ عبارت ہے جس کے سبب مولوی منکر صاحب نے بھی بعض اموات کے لیے زیارت و ادراک گوارا کی تھی۔

مقال (۱۷): مرزا مظہر صاحب اپنے مکتوبات میں فرماتے ہیں:

بعض ارواح کاملاں را بعد ترک تعلق اجساد آنہا دریں نشاہ تصرفے باقی است 2 الخ

جسموں سے ترک تعلق کے بعد بھی بعض ارواح کاملین کا تصرف اس دنیا میں باقی ہے الخ (ت)

مقال (۱۸): میاں اسمعیل دہلوی صراط مستقیم میں حضرت جناب مولٰی مشکل کشا کرم اللہ تعالٰی وجہہ الکریم کی نسبت خدا جانے کس دل سے یوں ایمان لاتے ہیں:

در سلطنت سلاطین و امارات امراء سلاطین کی سلطنت اور حکام کی حکومت میں حضرت علی ہمت ایشاں را دخلے ہست کہ بر سیاحان عالم ملکوت مخفی نیست 3-

(کرم اللہ تعالٰی وجہہ الکریم) کی ہمت کو ایسا دخل ہے جو عالم ملکوت کی سیاحت کرنے والوں پر مخفی نہیں۔ (ت)

مقال (۱۹): اسی میں شوکت و عظمت جناب مرتضوی لکھ کر کہا:

شان جناب شیخین بس بلند بہ نسبت ابہت و جلال مذکور ست تمثیلش بظاہر مرتبہ امیر کبیر ست کہ فارغ از امور سیاست گردیدہ ملازم بادشاہ گشتہ بہ نسبت کسیکہ قائم بر خدمات و مشغول بکار پردازی است اگر چہ شوکت ظاہریہ و کثرت اتباع در حق ایں مصاحب بہ نسبت آں میر اعظم قائم بخدمات اقل قیل است لیکن در عزت و وجاہت فوق است چہ فی الحقیقت

مذکور شوکت وجلال کی نسبت حضرات شیخین کی شان بلند ہے، عالم ظاہر میں اس کی مثال اس امیر کبیر کا مرتبہ ہے جو امور سیاست سے فارغ ہو کر بادشاہ کی خدمت میں رہتا ہے، بہ نسبت دوسرے امیر کے جو امور مملکت سے وابستہ اور کارپردازی میں مشغول ہے اگر چہ ظاہری شوکت اور تابعداروں کی کثرت، امور مملکت سے وابستہ اس امیر اعظم کی

---

1 تفسیر عزیزی تحت والقمر اذا اتسق سلیم بک ڈپو لال کنواں دہلی ص ۲۰۶ 2 مکتوبات مرزا مظہر جانجاناں مع کلمات طیبات مکتوب ۱۴ مطبع مجتبائی دہلی ص ۲۷ 3 صراط مستقیم ہدایت ثانیہ در ذکر بدعائیکہ الخ المکتبۃ السلفیہ لاہور ص ۵۸

Fatawa Razawiyya, Volume 9

[Arabic/Persian Quote]: That prince, with all his grandeur, majesty, and followers, is as if he is a follower of that companion because his counsel and planning are prevalent and effective among all the followers of the king. 1 Summary. [Urdu Translation/Explanation]: Compared to this companion, he is less in rank, but in honor and dignity, he is higher. This is because that prince, despite all his grandeur and followers, is as if a follower of this companion, because his advice and strategy are current among all the king's followers. (End of Summary) - (T)

Article (20): In Mazahir-ul-Haq, it is stated: The third type is for gaining the blessings of visitation; that is the visitation of the graves of righteous people, because there are countless intercessions for them in the Barzakh. 2 And it is attributed to Imam al-Nawawi (T). Third Connection: On the grace and help from the saints after their passing.

Article (21 to 31): Shah Waliullah and Maulvi Khurram Ali said: Wait for the one whose grace comes from the inhabitant of the grave. 3 In 'Azizi', it is said: [Arabic/Persian Quote]: People of needs find the solution to their problems from them. 4 [Urdu Translation]: The needy find the solution to their problems through them. (T)

Both Shahs and then Maulvi Khurram Ali said: The connection of Uwaisiyyah is strong and correct, it is a spiritual grace, and that is training through spirituality. 5 Summary. It is written in 'Azizi': Benefit from the buried saints continues. 6 (Benefit from buried saints is ongoing. T) 29 Mirza Mazhar, regarding Maula Ali (may Allah honor his face), expressed: I presented an ode, and he bestowed favors upon me like a king. 7 (I)

Footnotes: 1. Sirat-e-Mustaqeem, Hidayat Thaniyah, Al-Maktaba al-Salafiya Lahore, pp. 58-59. 2. Mazahir al-Haq, Chapter on Visiting Graves, Din Muhammad and Sons Lahore, 1/167. 3. Shifa al-Alil, Translation of al-Qawl al-Jamil, Kashf-e-Qubur wa Istifadah Badan, H.M. Saeed Company Karachi, p. 72. 4. Tafsir-e-Azizi, Para Am, under 'Wal-Qamari Idhat-Tasaq', Muslim Book Depot, Lal Kuan Delhi, p. 206. 5. Shifa al-Alil, Translation of al-Qawl al-Jamil, Section 11, Silsila-e-Tariqat, Author H.M. Saeed Company Karachi, p. 178. 6. Tafsir-e-Azizi, Para Am, Benefit from the buried saints, Muslim Book Depot, Lal Kuan Delhi, p. 143. 7. Malfuzat Mirza Mazhar Jan-e-Janan, from Kalimat-e-Tayyibat, Malfuzat of Hazrat, Matba Mujtabai Delhi, p. 87.

फतावा रज़विया, खंड 9

[अरबी/फारसी उद्धरण]: वह अमीर अपनी पूरी शान-ओ-शौकत और अनुयायियों के साथ मानो उस साथी का अनुयायी है क्योंकि उसका परामर्श और योजना राजा के सभी अनुयायियों में प्रचलित और प्रभावी है। 1 सारांश। [उर्दू अनुवाद/व्याख्या]: इस साथी की तुलना में वह कम है लेकिन सम्मान और प्रतिष्ठा में वह इससे उच्च है। इसका कारण यह है कि वह अमीर अपनी तमाम शान-ओ-शौकत और अनुयायियों के बावजूद मानो इस साथी का एक अनुयायी है क्योंकि उसकी सलाह और उसकी तदबीर बादशाह के तमाम अनुयायियों में जारी और सारी है। (सारांश समाप्त) - (त)

लेख (20): मज़ाहिर-उल-हक़ में है: तीसरी श्रेणी ज़ियारत की बरकत हासिल करने के लिए है; वह अच्छे लोगों की कब्रों की ज़ियारत है, क्योंकि बरज़ख में उनके लिए अनगिनत तसर्रुफ़ात (अधिकार) हैं। 2 और इसे इमाम नववी के हवाले से लिखा गया है। (त) तीसरा जुड़ाव: औलिया के विसाल (मृत्यु) के बाद उनके फ़ैज़ और मदद में।

लेख (21 से 31): शाह वलीउल्लाह और मौलवी खुर्रम अली ने कहा: उसका इंतज़ार रहे जिसका फ़ैज़ कब्र वाले से हो। 3 अज़ीज़ी में फ़रमाया: [अरबी/फारसी उद्धरण]: ज़रूरतमंद अपनी समस्याओं का समाधान उनसे पाते हैं। 4 [उर्दू अनुवाद]: ज़रूरतमंद अपनी मुश्किलों का हल उनसे पाते हैं। (त)

दोनों शाह साहबों और फिर मौलवी खुर्रम अली ने कहा: ओवैसियत का संबंध मज़बूत और सही है, यह रूहानी फ़ैज़ है और वह रूहानियत से तरबियत है। 5 सारांश। अज़ीज़ी में लिखा है: दफन किए गए औलिया से लाभ जारी है। 6 (दफन किए गए औलिया से लाभ प्राप्त करना जारी है। त) 29 मिर्ज़ा मज़हर ने मौला अली (करम अल्लाह वजहुह) के संबंध में कहा: मैंने एक क़सीदा (प्रशंसात्मक कविता) पेश की और उन्होंने मुझ पर बादशाह की तरह कृपा की। 7 (मैंने)

फुटनोट्स: 1. सिरात-ए-मुस्तकीम, हिदायत थानिया, अल-मकतब अल-सलफ़िया लाहौर, पृ. 58-59 2. मज़ाहिर-उल-हक़, बाब ज़ियारतुल क़ुबूर, दीन मुहम्मद एंड संस लाहौर, 1/167 3. शिफा अल-अलील, अनुवाद अल-क़ौल अल-जमील, कश्फ़-ए-क़ुबूर व इस्तिफ़ादा बदां, एच.एम. सईद कंपनी कराची, पृ. 72 4. तफ़्सीर अज़ीज़ी, पारा अम, तहत 'वल-क़मरी इधत-तसक़', मुस्लिम बुक डिपो, लाल कुआं दिल्ली, पृ. 206 5. शिफा अल-अलील, अनुवाद अल-क़ौल अल-जमील, खंड 11, सिलसिला-ए-तरीक़त, लेखक एच.एम. सईद कंपनी कराची, पृ. 178 6. तफ़्सीर अज़ीज़ी, पारा अम,

दफन किए गए औलिया से लाभ, मुस्लिम बुक डिपो, लाल कुआं दिल्ली, पृ. 143 7. मलफूज़ात मिर्ज़ा मज़हर जान-ए-जानां, कलिमात-ए-तय्यिबात से, मलफूज़ात-ए-हज़रत, मतबा मुज्तबाई दिल्ली, पृ. 87

فتاوٰی رضویہ جلد نہم

آں امیر باہمگی شوکت و حشمت و اتباع خود گویا از اتباع آں مصاحب است زیرا کہ مشورت و تدبیرش در ہمہ اتباع بادشاہی جاری و ساری است 1 اھ ملخصاً بہ نسبت اس مصاحب کے حق میں کم سے کم تر ہے لیکن عزت و وجاہت میں یہ اس سے بالاتر ہے۔ اس لیے کہ وہ امیر اپنی تمام تر شوکت و حشمت اور تابعداروں کے باوجود گویا اس مصاحب کا ایک تابعدار ہے اس لیے کہ اس کا مشورہ اور اس کی تدبیر بادشاہ کے تمام تابعداروں میں جاری وساری ہے۔ (ختم تلخیص)۔ (ت)

مقال (۲۰): مظاہر الحق میں ہے: تیسری قسم زیارت کی برکت حاصل کرنے کے لیے، وہ زیارت اچھے لوگوں کی قبروں کی ہے اس لیے کہ ان کے لیے برزخ میں تصرفات بے شمار ہیں 2 وعزاہ للامام النووی (اسے امام نووی کے حوالے سے لکھا ہے۔ ت) وصل سوم: بعد وصال اولیاء کے فیض وامداد میں۔

مقال (۲۱ تا ۳۱) : شاہ ولی اللہ و مولوی خرم علی نے کہا: منتظر رہے اس کا جس کا فیضان صاحب قبر سے ہو 3۔ عزیزی میں فرمایا: ارباب حاجات حل مشکلات خود از انہامی یابند 4۔ اہل حاجات اپنی مشکلوں کا حل ان سے پاتے ہیں (ت)

دونوں شاہ صاحبوں پھر مولوی خرم علی نے کہا: اویسیت کی نسبت وقوی و صحیح ہے روحی فیض ہے اور وہ روحانیت سے تربیت ہے 5 ملخصاً۔ عزیزی میں لکھا ہے: از اولیائے مدفونین انتفاع جاری است 6۔ (دفن شدہ اولیاء سے نفع یابی جاری ہے۔ ت) 29مرزا مظہر صاحب مولیٰ علی کرم اللہ وجہہ کی نسبت مظہر: قصیدہ عرض نمودم نواز شہافر مودند 7 (میں نے)

1 صراط مستقیم ہدایت ثانیہ المکتبۃ السلفیہ لاہور ص ۵۸-۵۹ 2 مظاہر حق باب زیارت القبور دین محمد اینڈ سنز لاہور ۱/ ۱۶۷ 3 شفاء العلیل ترجمہ القول الجمیل کشف قبور و استفاضہ بداں ایچ ایم سعید کمپنی کراچی ص ۷۲ 4 تفسیر عزیزی پارہ عم تحت والقمر اذا اتسق مسلم بک ڈپو لال کنواں دہلی ص ۲۰۶ 5 شفاء العلیل ترجمہ القول الجمیل فصل ۱۱ سلسلہ طریقت مصنف ایچ ایم سعید کمپنی کراچی ص ۱۷۸ 6 تفسیر عزیزی پارہ عم استفادہ از اولیائے مدفونین مسلم بک ڈپو لال کنواں دہلی ص ۱۴۳ 7 ملفوظات مرزا مظہر جانجاناں از کلمات طیبات ملفوظات حضرات ایشاں مطبع مجتبائی دہلی ص ۸۷

Fatawa Razviya - Volume 9

One ode was presented, he bestowed great kindnesses. T) Shah Waliullah and Maulvi Khurram Ali said: Shah Abdul Rahim learned etiquette from the soul of his maternal grandfather (1), as all these sayings passed in the first objective in the first type.

Quote (32): The mentioned Mirza Sahib stated in his discourses (Malfoozat):

| (Persian Text): Due to the abundance of love that this humble servant has for the presence of the Commander of the Faithful, Hazrat Siddique (may Allah be pleased with him), and since he is the source of the sublime Naqshbandiya lineage, due to human nature, a veil sometimes appears over the internal spiritual connection. Automatically, an inclination towards that presence is created, and through his attention, the cloudiness is removed (2). | (Urdu translation): Due to the excess of love established for this humble servant in the presence of the Commander of the Faithful Hazrat Abu Bakr Siddique (may Allah be pleased with him). And he is the source of the exalted Naqshbandiya lineage. Due to human nature, a kind of veil appears over the spiritual connection; automatically a turning towards that presence arises, and because of him, the gloom is removed. (T) |

Quote (33 to 36): 33 is in the same:

| (Persian Text): The attention of Ghaus-al-Thaqalayn towards those associated with his exalted path has been found to be very much; no one was met from this path on whom the blessed attention of His Holiness was not bestowed (3). | (Urdu translation): The attention of Hazrat Ghaus-al-Thaqalayn upon the followers of his exalted path was found to be more. Among the people of this path, not even one person was found upon whose condition the blessed attention of Hazrat was not bestowed. (T) |

34 Then said:

| (Persian Text): The kindness of Hazrat Khwaja Naqshbandiyah towards his believers is active; Mughals in the deserts or at the time of sleep entrust their goods and horses to the protection of Hazrat Khwaja, and unseen supports accompany them. There are many stories in this regard, writing them would be lengthy (4). | (Urdu translation): The kindness of Hazrat Khwaja Naqshbandiyah is at work on the condition of his believers. Mughal people, when sleeping in the deserts, entrust their belongings and horses to the protection of Hazrat, and divine assistance

accompanies them. There are many incidents in this chapter, which would be long to write. (T) |

Footnotes: 1. Shifa al-Alil translation Al-Qawl al-Jamil, Section 11, Silsila Tariqat, Hazrat Author, H.M. Saeed Company, Karachi, p. 97. 2. Malfoozat Mirza Mazhar Jan-e-Janan from Kalimat Tayyibat, Malfoozat Hazrat Eshan, Mujtabai Press Delhi, p. 87. 3. Malfoozat Mirza Mazhar Jan-e-Janan from Kalimat Tayyibat, Malfoozat Hazrat Eshan, Mujtabai Press Delhi, p. 83. 4. Malfoozat Mirza Mazhar Jan-e-Janan from Kalimat Tayyibat, Malfoozat Hazrat Eshan, Mujtabai Press Delhi, p. 83.

फ़तावा रज़विया - जिल्द नौ (9)

एक क़सीदा पेश किया गया, उन्होंने बहुत नवाज़िशें फ़रमाईं। त) शाह वलीउल्लाह और मौलवी खुर्रम अली ने कहा: शाह अब्दुल रहीम ने अपने नाना की रूह से अदब सीखा (1), जैसा कि ये तमाम अक़्वाल पहले मक़सद की पहली किस्म में गुज़रे।

मक़ाल (32): मौसूफ़ मिर्ज़ा साहब ने अपने मलफूज़ात में फ़रमाया:

| (फ़ारसी इबारत): जिस फ़र्त-ए-मोहब्बत की वजह से जो इस फ़क़ीर को अमीरुल मोमिनीन हज़रत सिद्दीक़ (रज़ियल्लाहु तआला अन्हु) की बारगाह में हासिल है और वह नक़्शबंदिया सिलसिले का सरचश्मा हैं, इंसानी फ़ितरत के मुताबिक़ बातिनी निस्बत पर एक पर्दा सा छा जाता है। अपने आप उस बारगाह की तरफ़ रुजू पैदा हो जाता है और उनकी तवज्जो से कुदूरत (मैलापन) दूर हो जाता है (2)। | (उर्दू अनुवाद): इस फ़र्त-ए-मोहब्बत की वजह से जो फ़क़ीर के लिए अमीरुल मोमिनीन हज़रत अबूबक्र सिद्दीक़ (रज़ियल्लाहु तआला अन्हु) की बारगाह में साबित है। और बुलंद निस्बत-ए-नक़्शबंदिया का सरचश्मा वही हैं, यह तक़ाज़ा-ए-बशरी निस्बत-ए-बातिनी पर एक पर्दा सा आरिज़ हो जाता है, ख़ुद-ब-ख़ुद इस बारगाह की तरफ़ रुजू पैदा होता है और उनकी वजह से कुदूरत दूर हो जाती है। (त) |

मक़ाल (33 से 36): 33 इसी में है:

| (फ़ारसी इबारत): हज़रत ग़ौस-उल-सक़लैन की तवज्जो उनके बुलंद तरीक़े के पैरोकारों पर बहुत ज़्यादा देखी गई; इस तरीक़े का कोई भी शख़्स ऐसा नहीं मिला जिस पर हज़रत की मुबारक तवज्जो न हो (3)। | (उर्दू अनुवाद): अपने आलिया तरीक़े के मुतवस्सलीन (जुड़े हुए लोगों) पर हज़रत ग़ौस-उल-सक़लैन की तवज्जो ज़्यादा मालूम हुई, इस तरीक़े वालों में से एक शख़्स भी ऐसा न मिला जिसके हाल पर हज़रत की तवज्जो-ए-मुबारक मबज़ूल (लगी हुई) न हो। (त) |

34 फिर कहा:

| (फ़ारसी इबारत): हज़रत ख़्वाजा नक़्शबंदिया की इनायत अपने अक़ीदतमंदों के हाल पर जारी है; मोग़ल लोग सहराओं में या सोते वक़्त अपना सामान और घोड़े हज़रत ख़्वाजा की हिफ़ाज़त में सौंप देते हैं और ग़ैब से उनकी मदद होती है। इस बारे में बहुत सी हिकायात (कहानियाँ) हैं, उन्हें लिखने में बहुत तवालत (लंबाई) होगी (4)। | (उर्दू अनुवाद): अपने मोतक़िदीन के हाल पर हज़रत ख़्वाजा

नक़्शबंदिया की इनायत कार-फ़रमा है। मोग़ल लोग सहराओं में सोने के वक़्त अपने सामान और घोड़ों को हज़रत की हिफ़ाज़त के सुपुर्द करते हैं और ग़ैबी ताईदात (मदद) उनके हमराह होती हैं, इस बाब में वाक़िआत बहुत हैं जिन्हें लिखने में तूल (लंबाई) होगा। (त) |

पाद-टिप्पणियाँ: 1. शिफ़ा-उल-अलील तर्जुमा अल-क़ौल-उल-जमील, फ़स्ल 11, सिलसिला-ए-तरीक़त, हज़रत मुसन्निफ़, एच.एम. सईद कंपनी कराची, पृ. 97 2. मलफ़ूज़ात मिर्ज़ा मज़हर जान-ए-जानाँ अज़ कलिमात-ए-तय्यिबात मलफ़ूज़ात हज़रत ईशां, मतबा मुजतबाई देहली, पृ. 87 3. मलफ़ूज़ात मिर्ज़ा मज़हर जान-ए-जानाँ अज़ कलिमात-ए-तय्यिबात मलफ़ूज़ात हज़रत ईशां, मतबा मुजतबाई देहली, पृ. 83 4. मलफ़ूज़ात मिर्ज़ा मज़हर जान-ए-जानाँ अज़ कलिमात-ए-तय्यिबात मलफ़ूज़ात हज़रत ईशां, मतबा मुजतबाई देहली, पृ. 83

ایک قصیدہ عرض کیا بڑی نوازشیں فرمائیں۔ ت) شاہ ولی اللہ و مولوی خرم علی نے کہا: شاہ عبدالرحیم ادب آموز ہوئے اپنے نانا کی روح سے ۱، کہ یہ سب اقوال مقصد اول کو نوع اول میں گزرے۔ مقال (۳۲): مرزا صاحب موصوف نے اپنے ملفوظات میں فرمایا: | از فرط محبت کہ فقیر را بجناب امیر المومنین حضرت صدیق رضی اللہ تعالیٰ عنہ ثابت است و سر منشأ نسبت علیہ نقشبندیہ ایشان اند بمقتضائے بشریت غشاوہ بر نسبت باطنی عارض می شود خود بخود رجوع بآن جناب پیدا گشتہ بالتفات ایشاں رفع کدورت مے شود ۲۔ | اس فرطِ محبت کے سبب جو فقیر کے لیے امیر المؤمنین حضرت ابوبکر صدیق رضی اللہ تعالیٰ عنہ کی بارگاہ میں ثابت رکھا۔ اور بلند نسبتِ نقشبندیہ کا سر منشا وہی ہیں، یہ تقاضائے بشریٰ نسبتِ باطنی پر ایک پردہ سا عارض ہو جاتا ہے خود بخود اس بارگاہ کی طرف رجوع پیدا ہوتا ہے اور ان کیوجہ سے کدورت دور ہو جاتی ہے۔ (ت) | مقال (۳۳ تا ۳۶): ۳۳ اسی میں ہے: | التفات غوث الثقلین بحال متوسلان طریقہ علیہ ایشاں بسیار معلوم شدہ بہیچ کس از ایں طریقہ ملاقات نشد کہ توجہ مبارک آنحضرت بحالش مبذول نیست ۳۔ | اپنے عالیہ کے متوسلین پر حضرت غوث الثقلین کا التفات زیادہ معلوم ہوا اس طریقہ والوں میں سے ایک شخص بھی ایسا نہ ملا جس کے حال پر حضرت کی توجہ مبارک مبذول نہ ہو۔ (ت) | ۳۴ پھر کہا: | عنایت حضرت خواجہ نقشبندیہ بحال معتقدان خود مصروف است مغلاں در صحرایا وقت خواب اسباب و اسپان خود بحمایت حضرت خواجہ می سپارند و تائیدات از غیب ہمراہ ایشاں می شود دریں باب حکایات بسیار است تحریر آں باطالت می رساند ۴۔ | اپنے معتقدین کے حال پر حضرت خواجہ نقشبندیہ کی عنایت کار فرما ہے۔ مغل لوگ صحراؤں میں سونے کے وقت

اپنے سامان اور گھوڑوں کو حضرت کی حفاظت کے سپرد کرتے ہیں اور غیبی تائیدات ان کے ہمراہ ہوتی ہیں اس باب میں واقعات بہت ہیں جنھیں لکھنے میں طول ہوگا۔ (ت) |

1 شفاء العلیل ترجمہ القول الجمیل فصل ۱۱ سلسلہ طریقت حضرت مصنف ایچ ایم سعید کمپنی کراچی ص ۹۷ 2 ملفوظات مرزا مظہر جانجاناں از کلمات طیبات ملفوظات حضرت ایشاں مطبع مجتبائی دہلی ص ۸۷ 3 ملفوظات مرزا مظہر جانجاناں از کلمات طیبات ملفوظات حضرت ایشاں مطبع مجتبائی دہلی ص ۸۳ 4 ملفوظات مرزا مظہر جانجاناں از کلمات طیبات ملفوظات حضرت ایشاں مطبع مجتبائی دہلی ص ۸۳

Fatawa Rizvia - Volume 9

35 Then said: Sultan al-Mashaikh Nizamuddin Auliya Allah (may Allah have mercy on him) bestows great favor upon those who visit his shrine. (T)

36 Then said: Similarly, Sheikh Jalal Panipati also bestows many favors. (T)

Discourse (37): Qazi Thana Ullah Panipati, whose praise was mentioned in Discourse 6, writes in Tadhkirat al-Mawta: Auliya Allah (Saints of Allah) help their friends and devotees in this world and the hereafter, and they destroy their enemies, and through their souls, spiritual grace reaches others via the Uwaysi method. (T)

Discourse (38 to 45): The same Qazi Sahib, in Saif al-Maslool, describes the rank of 'Qutbiyat-e-Irshad' (Guidance Pole) saying: The graces and blessings of the spiritual establishment of 'Walayah' (Sainthood) that descend from the Divine Court upon the Auliya Allah, first descend upon one specific individual. From that person, they are distributed and reach each of the contemporary saints according to their rank and capacity. No saint receives any grace without his mediation, and no person among the men of God attains the rank of 'Walayah' without his means. Partial Qutbs, Awtad, Abdal, Nujaba, Nuqaba, and all categories of the Saints of God are in need of him. The person holding this high office is called the Imam and...

Footnotes: 1. Malfuzat Mirza Mazhar Jan-e-Janan with Kalimat Tayyibat, Malfuzat Hazrat Ishan, Mujtabai Press, Delhi, p. 83. 2. Malfuzat Mirza Mazhar Jan-e-Janan with Kalimat Tayyibat, Malfuzat Hazrat Ishan, Mujtabai Press, Delhi, p. 83. 3. Tadhkirat al-Mawta wal-Qubur, Urdu translation Misbah al-Qubur, chapter regarding the place where souls stay, Nuri Kutub Khana, Lahore, p. 76.

फ़तावा रज़विया - जिल्द नहम (9)

35 फिर कहा: सुल्तान अल-मशायख़ निज़ामुद्दीन औलिया अल्लाह (अल्लाह उन पर रहम करे) अपने मज़ार की ज़ियारत करने वालों के हाल पर बड़ी इनायत फ़रमाते हैं। (त)

36 फिर कहा: इसी तरह शेख जलाल पानीपती भी बहुत इल्तिफ़ात (कृपा) फ़रमाते हैं। (त)

मक़ाल (37): क़ाज़ी सनाउल्लाह पानीपती, जिनकी प्रशंसा मक़ाल 6 में गुज़री, तज़किरातुल मौता में लिखते हैं: औलिया अल्लाह अपने दोस्तों और अक़ीदतमंदों की दुनिया और आख़िरत में मदद फ़रमाते हैं और दुश्मनों को हलाक करते हैं— और रूहों से ओवैसियत के तरीक़े पर बातिनी (आध्यात्मिक) फ़ैज़ पहुँचाते हैं। (त)

मक़ाल (38 से 45): वही क़ाज़ी साहब सैफ़ुल मसलूल में मर्तबा-ए-क़ुतुबियत-ए-इरशाद को यूँ बयान करके कि: फ़योज़-ओ-बरकात के कारख़ाना-ए-विलायत जो ख़ुदा की बारगाह से औलिया अल्लाह पर नाज़िल होते हैं, पहले एक शख़्स पर उतरते हैं और उस शख़्स से तक़सीम (विभाजित) होकर औलिया-ए-वक़्त में से हर एक को उसके मर्तबे और इस्तिदाद (योग्यता) के मुताबिक़ पहुँचते हैं और किसी वली को भी उसकी वसातत (मध्यस्थता) के बग़ैर कोई फ़ैज़ नहीं पहुँचता। और अहले अल्लाह में से कोई भी उसके वसीले के बग़ैर दर्जा-ए-विलायत नहीं पाता। जुज़ई अक़ताब, औताद-ओ-अब्दाल, नुजबा, नुक़बा और तमाम अक़साम (प्रकार) के औलिया अल्लाह उसके मुहताज होते हैं। इस उच्च पद के धारक को इमाम और... कहा जाता है।

पादलेख: 1. मल्फ़ूज़ात मिर्ज़ा मज़हर जान-ए-जानाँ मअ कलिमात तय्यिबात मल्फ़ूज़ात हज़रत ईशाँ, मतबअ मुज्तबाई दिल्ली, पृ. 83. 2. मल्फ़ूज़ात मिर्ज़ा मज़हर जान-ए-जानाँ मअ कलिमात तय्यिबात मल्फ़ूज़ात हज़रत ईशाँ, मतबअ मुज्तबाई दिल्ली, पृ. 83. 3. तज़किरातुल मौता वल-क़ुबूर उर्दू तर्जुमा मिस्बाहुल क़ुबूर, रूहों के ठहरने की जगह के बयान में, नूरी क़ुतुब ख़ाना लाहौर, पृ. 76.

पृष्ठ 812 का 948

۳۵ پھر کہا: سلطان المشائخ نظام الدین اولیاء اللہ علیہ بحال زائران مزار خود عنایت بسیار می فرمایند-۱ سلطان المشائخ نظام الدین اولیاء رحمتہ اللہ تعالٰی علیہ اپنے مزار کی زیارت کرنے والوں کے حال پر بڑی عنایت فرماتے ہیں۔ (ت)

۳۶ پھر کہا: ہمچنین شیخ جلال پانی پتی التفات ہا می نمایند ۲۔ اس طرح شیخ جلال پانی پتی بھی بہت التفات فرماتے ہیں۔ (ت)

مقال (۳۷): قاضی ثناء اللہ پانی پتی جن کی مدح مقال ۶ میں گزری تذکرۃ الموتٰی میں لکھتے ہیں: اولیاء اللہ دوستان و معتقدان را در دنیا و آخرت مددگاری می فرمایند و دشمنان را ہلاک می نمایند و از ارواح بطریق اویسیت فیض باطنی می رسد ۳۔ اولیاء اللہ اپنے دوستوں اور عقیدت مندوں کی دنیا و آخرت میں مدد فرماتے ہیں اور دشمنوں کو ہلاک کرتے ہیں__ اور روحوں سے اویسیت کے طریقے پر باطنی فیض پہنچاتے ہے۔ (ت)

مقال (۳۸ تا ۴۵): بہی قاضی صاحب سیف المسلول میں مرتبہ قطبیت ارشاد کو یوں بیان کر کے کہ: فیوض وبرکات کار خانہ ولایت کہ از جناب الہی براولیاء اللہ نازل می شود اول بر یک شخص نازل می شود و ازاں شخص قسمت شہد بہر یک از اولیاء عصر موافق مرتبہ وبحسب استعداد می رسد و بہ ہیچ کس از اولیاء اللہ بے توسط او فیضی نمی رسد و کسے از مردان خدا بے وسیلہ اور درجہ ولایت نمی یابد اقطاب جزئی و اوتاد و ابدال و نجباء و نقباء و جمیع اقسام از اولیائے خدا بوے محتاج می باشند صاحب این منصب عالی را امام و فیوض و برکات کے فیوض و برکات جو خدا کی بارگاہ سے اولیاء اللہ پر نازل ہوتے ہیں پہلے ایک شخص پر اترتے ہیں اور اس شخص سے تقسیم

ہو کر اولیائے وقت میں سے ہر ایک کو اس کے مرتبہ واستعداد کے مطابق پہنچتے ہیں اور کسی ولی کو بھی اس کی وساطت کے بغیر کوئی فیض نہیں پہنچتا۔ اور اہل اللہ میں سے کوئی بھی اس کے وسیلہ کے بغیر درجہ ولایت نہیں پاتا۔ جزئی اقطاب اوتاد و ابدال، نجباء نقبا اور تمام اقسام کے اولیاء اللہ اس کے محتاج ہوتے ہیں۔

حواشی: ۱ ملفوظات مرزا مظہر جانجاناں مع کلمات طیبات ملفوظات حضرت ایشاں مطبع مجتبائی دہلی ص ۸۳ ۲ ملفوظات مرزا مظہر جانجاناں مع کلمات طیبات ملفوظات حضرت ایشاں مطبع مجتبائی دہلی ص ۸۳ ۳ تذکرۃ الموتیٰ والقبور اردو ترجمہ مصباح القبور باب روحوں کے ٹھہرنے کی جگہ کے بیان میں نوری کتب خانہ لاہور ص ۷۶

Fatawa Rizwia Volume 9

[Table Start] Row 1 Left (Persian): He is also called Qutb al-Irshad bi'l-Asalah, and this high position was assigned to the pure soul of Ali Murtaza (Karam Allahu Wajhahu) from the time of Adam's appearance. (1) Row 1 Right (Urdu): People are in need; they also call the holder of this high position Imam and Qutb al-Irshad bi'l-Asalah. And this high position was fixed for the pure soul of Hazrat Ali Murtaza (Karam Allahu Wajhahu) from the era of the appearance of Adam (peace be upon him). (T)

Then, after writing about the granting of this great position to the Pure Imams (may Allah be pleased with them) in order, he says:

Row 2 Left (Persian): After the death of [Imam Hasan] al-Askari (peace be upon him) until the appearance of the Master of Nobles, Ghaus al-Thaqalayn Muhyi al-Din Abdul Qadir al-Jilani, this position was related to the soul of Hasan al-Askari (peace be upon him). (2) Row 2 Right (Urdu): After the death of Hazrat [Hasan] al-Askari, until the time of the appearance of the Master of Nobles, Ghaus al-Thaqalayn Muhyi al-Din Abdul Qadir Jilani, this position remained related to the soul of Hazrat Hasan al-Askari. (T)

39 Then he said: Row 3 Left (Persian): When Hazrat Ghaus al-Thaqalayn was born, this blessed position became related to him, and until the appearance of Muhammad Mahdi, this position will remain related to the blessed soul of Ghaus al-Thaqalayn. (3) Row 3 Right (Urdu): When Hazrat Ghaus al-Thaqalayn was born, this blessed position was associated with him, and until the appearance of Imam Muhammad Mahdi, this position will remain associated with the soul of Hazrat Ghaus al-Thaqalayn. (T)

40 Then he said: Row 4 Left (Persian): When Imam Muhammad Mahdi appears, this high position will be entrusted to him until the end of time. (4) Row 4 Right (Urdu): When Imam Mahdi appears, this high position will be entrusted to him until the end of time. (T)

Finally, he said: Row 5 Left (Persian): We can infer this claim from the Book of Allah and from the Hadith. (5) - End of summarized quote. Row 5 Right (Urdu): We can derive this claim from the Book of Allah and the Holy Hadith. - End of summarized quote (T). [Table End]

The origin of all these third-party statements is from "Sheikh Mujaddid Alf-i Thani," as mentioned in detail in Volume 3, Letter No. 43, Page 123. In his words, this much more is added:

Row 6 Left (Persian): After them (i.e., Hazrat Murtaza, Karam Allahu Ta'ala Wajhahu al-Asna), for each of the Twelve Imams in order. Row 6 Right (Urdu): After Hazrat Murtaza (Karam Allahu Ta'ala Wajhahu), for each of the twelve Imams with order and detail.

[Footnotes] 1. Saif al-Maslool, Urdu Translation, Conclusion of the book, Farooqi Kutub Khana, Multan, pp. 527-529. 2. Saif al-Maslool, Urdu Translation, Conclusion of the book, Farooqi Kutub Khana, Multan, pp. 527-529. 3. Saif al-Maslool, Urdu Translation, Conclusion of the book, Farooqi Kutub Khana, Multan, pp. 527-529. 4. Saif al-Maslool, Urdu Translation, Conclusion of the book, Farooqi Kutub Khana, Multan, pp. 527-529. 5. Saif al-Maslool, Urdu Translation, Conclusion of the book, Farooqi Kutub Khana, Multan, pp. 527-529.

फतावा रिज़विया खंड 9

[तालिका प्रारंभ] पंक्ति 1 बाएँ(फ़ारसी): उन्हें कुतुब अल-इरशाद बिल-असाला भी कहा जाता है, और यह उच्च पद आदम (अलैहिस्सलाम) के प्रकट होने के समय से अली मुर्तज़ा (करम अल्लाहु वजहुह) की पवित्र आत्मा के लिए निर्धारित था। (1) पंक्ति 1 दाएँ(उर्दू): लोग मोहताज हैं; इस उच्च पद वाले को इमाम और कुतुब अल-इरशाद बिल-असाला भी कहते हैं। और यह उच्च पद आदम (अलैहिस्सलाम) के प्रकट होने के समय से हज़रत अली मुर्तज़ा (करम अल्लाहु वजहुह) की पवित्र आत्मा के लिए निर्धारित था। (त)

फिर पवित्र इमामों (रज़िअल्लाहु अन्हुम) को क्रमबद्ध तरीके से इस महान पद के दिए जाने के बारे में लिखकर वे कहते हैं:

पंक्ति 2 बाएँ(फ़ारसी): [इमाम हसन] अल-अस्करी (अलैहिस्सलाम) की मृत्यु के बाद सैय्यद अल-शुरफ़ा ग़ौस अल-सक़लैन मुही अल-दीन अब्दुल क़ादिर अल-जीली के प्रकट होने तक, यह पद हसन अल-अस्करी (अलैहिस्सलाम) की आत्मा से संबंधित था। (2) पंक्ति 2 दाएँ(उर्दू): हज़रत अस्करी की मृत्यु के बाद सैय्यद अल-शुरफ़ा ग़ौस अल-सक़लैन मुही अल-दीन अब्दुल क़ादिर जिलानी के ज़माने तक यह पद हज़रत हसन अस्करी की रूह (आत्मा) से संबंधित रहेगा। (त)

39 फिर कहा: पंक्ति 3 बाएँ(फ़ारसी): जब हज़रत ग़ौस अल-सक़लैन पैदा हुए, तो यह मुबारक पद उनसे संबंधित हो गया और मुहम्मद महदी के प्रकट होने तक यह पद ग़ौस अल-सक़लैन की पवित्र आत्मा से संबंधित रहेगा। (3) पंक्ति 3 दाएँ(उर्दू): जब हज़रत ग़ौस अल-सक़लैन पैदा हुए तो यह मुबारक पद उनसे संबंधित हुआ और इमाम मुहम्मद महदी के प्रकट होने तक यह पद हज़रत ग़ौस अल-सक़लैन की रूह से संबंधित रहेगा। (त)

40 फिर कहा: पंक्ति 4 बाएँ(फ़ारसी): जब इमाम मुहम्मद महदी प्रकट होंगे, तो यह उच्च पद समय की समाप्ति तक उन्हें सौंपा जाएगा। (4) पंक्ति 4 दाएँ(उर्दू): जब इमाम महदी प्रकट होंगे, तो यह उच्च पद ज़माने के अंत तक उनके सुपुर्द रहेगा। (त)

अंत में कहा: पंक्ति 5 बाएँ(फ़ारसी): हम इस दावे का निष्कर्ष अल्लाह की किताब और हदीस से निकाल सकते हैं। (5) संक्षेप में। पंक्ति 5 दाएँ(उर्दू): हम इस दावे का निष्कर्ष (इस्तंबात) अल्लाह की किताब और हदीस पाक से कर सकते हैं। संक्षेप में (त)। [तालिका अंत]

इन सभी कथनों का मूल "शेख मुजद्दिद अल्फ-ए थानी" के यहाँ से है, जैसा कि खंड 3, मकतूब नंबर 43, पृष्ठ 123 में विस्तार से वर्णित है। उनके कलाम में इतना और अधिक है कि:

पंक्ति 6 बाएँ(फ़ारसी): उनके बाद (अर्थात हज़रत मुर्तज़ा करम अल्लाहु तआला वजहुहु अल-अस्ना), बारह इमामों में से प्रत्येक के लिए क्रमशः। पंक्ति 6 दाएँ(उर्दू): हज़रत मुर्तज़ा (करम अल्लाहु तआला वजहुह) के बाद बारह इमामों में से हर एक के लिए तरतीब (क्रम) और तफ़सील (विस्तार) के साथ।

[पादलेख] 1. सैफ अल-मसलूल, उर्दू अनुवाद, पुस्तक का समापन, फ़ारूक़ी कुतुब खाना, मुल्तान, पृष्ठ 527-529। 2. सैफ अल-मसलूल, उर्दू अनुवाद, पुस्तक का समापन, फ़ारूक़ी कुतुब खाना, मुल्तान, पृष्ठ 527-529। 3. सैफ अल-मसलूल, उर्दू अनुवाद, पुस्तक का समापन, फ़ारूक़ी कुतुब खाना, मुल्तान, पृष्ठ 527-529। 4. सैफ अल-मसलूल, उर्दू अनुवाद, पुस्तक का समापन, फ़ारूक़ी कुतुब खाना, मुल्तान, पृष्ठ 527-529। 5. सैफ अल-मसलूल, उर्दू अनुवाद, पुस्तक का समापन, फ़ारूक़ी कुतुब खाना, मुल्तान, पृष्ठ 527-529।

पृष्ठ 813 / 948

فتاوٰی رضویہ جلد نہم

قطب الارشاد بالاصالۃ نیز خوانند وایں منصب عالی از وقت ظہور آدم علیہ السلام بروح پاک علی مرتضی کرم اللہ وجہہ مقرر بود 1۔

محتاج ہوتے ہیں، اس منصب بلند والے کو امام اور قطب الارشاد بالاصالۃ بھی کہتے ہیں۔ اور یہ منصب عالی ظہورِ آدم علیہ السلام کے زمانے سے حضرت علی مرتضٰی کرم اللہ وجہہ کی روح پاک کے لیے مقرر تھا۔ (ت)

پھر ائمہ اطہار رضوان اللہ تعالٰی علیہم کو بترتیب اس منصب عظیم کا عطا ہونا لکھ کر کہتے ہیں:

| بعد وفات 38 عسکری علیہ السلام تاوقت ظہور سید الشرفا غوث الثقلین محی الدین عبدالقادر الجیلی ایں منصب بروح حسن عسکری علیہ السلام متعلق بود 2۔ | حضرت عسکری کی وفات کے بعد سید الشرفا غوث الثقلین محی الدین عبدالقادر جیلانی کے زمانہ ظہور تک یہ منصب حضرت حسن عسکری کی روح سے متعلق رہے گا۔ (ت) | | :--- | :--- |

39 پھر کہا: | چوں حضرت غوث الثقلین پیدا شد ایں منصب مبارک بوے متعلق شدوتا ظہور محمد مہدی ایں منصب بروح مبارک غوث الثقلین متعلق باشد 3۔ | جب حضرت غوث الثقلین پیدا ہوئے یہ منصب مبارک ان سے متعلق ہوا اور امام محمد مہدی کے ظہور تک یہ منصب حضرت غوث الثقلین کی روح سے متعلق رہے گا۔ (ت) | | :--- | :--- |

40 پھر کہا: | چوں امام محمد مہدی ظاہر شود ایں منصب عالی تاانقراض زمان بوے مفوض باشد 4۔ | جب امام مہدی ظاہر ہوں گے یہ منصب بلند اختتام زمانہ تک ان کے سپرد رہے گا۔ (ت) |

| :--- | :--- |

اخیر میں کہا: | استنباط ایں مدعا از کتاب اللہ واز حدیث می توانیم کرد۔ 5اھ ملخصا | ہم اس مدعا کا استنباط کتاب اللہ اور حدیث پاک سے کر سکتے ہیں اھ ملخصاً (ت) | | :--- | :--- |

اصل ان سب اقوالِ ثالثہ کی جناب "شیخ مجدد الفِ ثانی سے ہے، جیسا کہ جلد سوم " مکتوب نمبر ۴۳ صفحہ ۱۲۳ میں مفصلاً مذکور ، ' ان کے کلام میں اس قدر امر اور زائد ہے کہ : | بعد از ایشان (یعنی حضرت مرتضیٰ کرم اللہ تعالیٰ وجہہ الاسنی) بہر یکے از ائمہ اثنا عشر علی الترتیب | حضرت مرتضیٰ کرم اللہ تعالیٰ وجہہ کے بعد بارہ اماموں میں سے ہر ایک کے لیے ترتیب و تفصیل کے ساتھ | | :--- | :--- |

1 سیف المسلول مترجم اردو خاتمہ کتاب فاروقی کتب خانہ ملتان ص ۵۲۷ تا ۵۲۹ 2 سیف المسلول مترجم اردو خاتمہ کتاب فاروقی کتب خانہ multan ص ۵۲۷ تا ۵۲۹ 3 سیف المسلول مترجم اردو خاتمہ کتاب فاروقی کتب خانہ multan ص ۵۲۷ تا ۵۲۹ 4 سیف المسلول مترجم اردو خاتمہ کتاب فاروقی کتب خانہ multan ص ۵۲۷ تا ۵۲۹ 5 سیف المسلول مترجم اردو خاتمہ کتاب فاروقی کتب خانہ multan ص ۵۲۷ تا ۵۲۹

Fatawa Ridawiyyah Volume 9

The detail was established. During the time of these elders, and likewise after their passing, whoever received grace and guidance did so through the mediation of these elders, and they were the refuge and asylum for all of them until the turn reached Hazrat Sheikh Abdul Qadir Jilani (may his secret be sanctified) etc. (T)

And in the second volume, he himself acknowledged the attainment of this position for himself as well. To the objection that if this position remains common, how then is it specifically attributed to the radiant presence of Ghaus al-Azam (may Allah be pleased with him)? In the third volume, he answered thus:

Mujaddid Alf Thani is the deputy of Hazrat Sheikh in this station, and this matter is connected to him through the deputyship of Hazrat Sheikh, just as it is said: "The light of the moon is derived from the light of the sun, so there is no harm [in the distinction]." That is, the light of the moon is derived from the light of the sun. So no objection remains. (T)

Article (46 to 58): Shah Wali Allah in "Al-Intibah" and his twelve teachers and scholars of Makkah, Arabia, India, and other cities, and among the saints, consider Hazrat Maula Ali (may Allah honor his face) a helper in times of trouble and [recite]:

"You will find him a helper for you in calamities." (You will find them your helper in troubles. T)

...regarding it as truth. Its citation will come in the upcoming section, if Allah wills. (This speech will be cited in the upcoming section if God wills. T)

Article (59): Shah Wali Allah wrote in "Hama'at":

Among the credible affiliations according to the people [of the path/Sufis] is the Uwaisi affiliation, whether this connection is in relation to the souls of the Prophets, or the saints of the Ummah, or the angels...

1. Saif al-Maslool, Urdu translation, Farooqi Kutub Khana, Multan, p. 569.
2. Maktubat Imam Rabbani, Letter 223, Naval Kishore Press, Lucknow, 3/247-248.

फ़तावा रज़विया जिल्द नवीं

विवरण स्थापित हुआ। इन बुजुर्गों के समय में इसी तरह उनकी विदाई के बाद जिसे भी कृपा और मार्गदर्शन प्राप्त होता, वह इन्हीं बुजुर्गों की मध्यस्थता से था और सब के लिए शरण और आश्रय यही महापुरुष थे, यहाँ तक कि बारी हज़रत शेख अब्दुल क़ादिर जीलानी (अल्लाह उनके रहस्य को पवित्र करे) तक पहुँची। (त)

और उन्होंने दूसरी जिल्द में स्वयं अपने लिए भी इस पद की प्राप्ति को स्वीकार किया और इस आपत्ति पर कि फिर इस दौर में उक्त पद का हुज़ूर पुर नूर ग़ौस-ए-आज़म (अल्लाह उनसे प्रसन्न हो) के साथ क्या विशेष संबंध रहा, तीसरी जिल्द में इस प्रकार उत्तर दिया कि:

मुजद्दिद अल्फ़ थानी इस स्थान पर हज़रत शेख के प्रतिनिधि हैं और हज़रत शेख की नुमाइंदगी से यह मामला उनसे जुड़ा है जैसा कि कहा गया है: चंद्रमा का प्रकाश सूर्य के प्रकाश से प्राप्त होता है। तो यदि कोई आपत्ति नहीं रही। (त)

लेख (46 से 58): शाह वली अल्लाह 'इंतिबाह' में और उनके बारह शिक्षकों और अरब, भारत आदि देशों के उलेमा और औलिया में हज़रत मौला अली (अल्लाह उनके चेहरे को सम्मानित करे) को मुसीबत के समय मददगार मानते हैं और [पढ़ते हैं]:

'तजदुहु औनल् लका फ़िन नवाइब' (उन्हें मुसीबतों में अपना मददगार पाओगे। त)

...को सत्य मानते हैं, और इसका उल्लेख आगामी खंड में आएगा, इंशा अल्लाह। (आगामी खंड में यह कलाम उद्धृत होगा अगर खुदा ने चाहा। त)

लेख (59): शाह वली अल्लाह ने 'हमात' में लिखा है:

सूफ़ियों के अनुसार प्रतिष्ठित संबंधों में से एक ओवैसी संबंध भी है, चाहे यह संबंध पैगंबरों की आत्माओं के साथ हो या उम्मत के औलिया के साथ या फ़रिश्तों के साथ...

1. सैफ़ अल-मसलूल, उर्दू अनुवाद फ़ारूक़ी कुतुब खाना मुल्तान, पृ. 569
2. मकतूबात इमाम रब्बानी, पत्र संख्या 223, नवल किशोर प्रेस लखनऊ, 3/247-248

पृष्ठ 814 / 948

والتفصیل قرار گرفت و در اعصارایں بزرگواران و ہمچنین قرار پذیر ہوا۔ ان بزرگوں کے زمانے میں اسی طرح ان کی رحلت کے بعد جسے بھی فیض و ہدایت پہنچتی انہی بزرگوں کے توسط سے تھی اور سب کا ملجا یہی حضرات تھے یہاں تک کہ حضرت شیخ عبدالقادر جیلانی قدس سرہ، تک نوبت پہنچی الخ (ت) بعد از ارتحال ایشاں ہر کس را فیض و ہدایت می رسد بتوسط این بزرگواران بودہ ملاذ وملجا ئے ہمہ ایشاں بود ہی اند تا آنکہ نوبت بحضرت شیخ عبدالقادر جیلانی رسید قدس سرہ، ط ۱ الخ اھ ملخصاً

اور انھوں نے جلد ثانی میں خود اپنے لیے بھی اس منصب کا حصول مانا اور اس اعتراض سے کہ پھر اس دورے میں منصب مذکور کا حضور پر نور غوث اعظم رضی اللہ تعالٰی عنہ سے اختصاص کب رہا۔ جلد ثالث میں یوں جواب دیا کہ :

مجدد الف ثانی دریں مقام نائب مناب حضرت شیخ است وبنیا بت حضرت شیخ این معاملہ باو مربوط است چنانکہ گفتہ اند نور القمر مستفاد من نور الشمس فلا محذور ۲۔ مجدد الف ثانی اس مقام میں حضرت شیخ کا قائم مقام ہے اور حضرت شیخ کی نیابت سے یہ معاملہ اس سے وابستہ ہے جیسا کہ کہا گیا ہے۔ ماہتاب کا نور آفتاب کے نور سے مستفاد ہے۔ تو اگر کوئی اعتراض نہ رہا۔ (ت)

مقال (۴۶ تا ۵۸) : شاہ ولی اللہ انتباہ میں اور ان کے بارہ اساتذہ و مشائخ مکہ عرب و ہند و غیرہما بلاد کے علماء و اولیاء میں حضرت مولا علی کرم اللہ وجہہ کو وقت مصیبت مددگار مانتے ہیں اور

ع

تجدہ عوناً لك في النوائب (انھیں مصائب میں اپنا مددگار پاؤ گے۔ ت)

کو حق جانتے ، وسیاتی نقلہ فی الوصل الآتی ان شاء اللہ تعالیٰ (وصلِ آئندہ میں یہ کلام نقل ہوگا اگر خدا نے چاہا۔ ت)

مقال (۵۹) : شاہ ولی اللہ نے ہمعات میں لکھا :

از جملہ نسبت ہائے معتبرہ نزدیک قوم نسبت اویسیہ است خواہ ایں مناسبت بہ نسبت ارواح انبیاء باشد یا اولیائے امت یا ملائکہ وبساست کہ اہل طریقت کے نزدیک معتبر نسبتوں میں سے ایک نسبت اویسی بھی ہے خواہ یہ مناسب ارواح انبیاء کی نسبت سے ہو یا اولیائے امت یا ملائکہ کی نسبت

۱ سیف المسلول مترجم اردو فاروقی کتب خانہ ملتان ص ۵۶۹ ۲ مکتوبات امام ربانی مکتوب دو صد و بست و سوم مطبع نولکشور لکھنؤ ۳/ ۲۴۸۔۲۴۷

Volume Nine Fatawa Razawiyya

Spiritual affinity is attained because one has heard of their virtues and has developed a special chosen love; that love becomes the cause of a path opening between that spirit and this person, or because it is the spirit of their mentor (murshid) or their mentor's mentor, within which the resolve to guide their followers has become established, etc. (End of excerpt). ...and it also happens often that an affinity is created with some spirit because after hearing of its virtues, a special love is developed—that love becomes the cause of a path opening between that spirit and this person—or because it is the spirit of their mentor or their mentor's mentor, within which the courage to guide their associates is inherently present. etc. (with the end of the selection). (T)

Discourse (70): In the same it is stated: Among the fruits of this affiliation (i.e., Uwaisi) is seeing that group in dreams, gaining benefit from them, the appearance of that group's form in places of peril and hardship, and the resolution of problems being attributed to that form. Among the fruits of this Uwaisi affiliation is seeing that group in dreams, gaining benefit from them, the appearance of that group's form in places of destruction and distress, and the resolution of difficulties being attributed to that form. (T)

Discourse (71): In the same it is stated: Today, if someone develops an affinity with a specific spirit and receives grace from there, it is likely not outside of the fact that this meaning is in relation to the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him), or in relation to Hazrat Amir-ul-Momineen Ali (may Allah honor his face), or in relation to Hazrat Ghaus-ul-Azam Jilani (may Allah have mercy on him). Those who have an affinity with other spirits, the reason for their specificity is temporary causes, such as him having great reverence for that elder, visiting his grave frequently, and this meaning is the mover of the chain from the aspect... Today, if someone develops an affinity with a specific spirit and receives grace from there, it will likely not be outside of this; this meaning may be in relation to the Messenger of God (peace and blessings of Allah be upon him), or in relation to Hazrat Amir-ul-Momineen Ali al-Murtaza (may Allah honor his face), or in relation to Hazrat Ghaus-ul-Azam Jilani (may Allah be pleased with him). And for those people who have an affinity with all spirits,

the reason for their specialty is temporary causes, for example, that he has more love for that elder and his...

1. Hama'at, Ham'a 11, Al-Akadimiyyah Ash-Shah Waliullah, Hyderabad Pakistan, pp. 56-57.
2. Hama'at, Ham'a 11, Al-Akadimiyyah Ash-Shah Waliullah, Hyderabad Pakistan, p. 59. Page 815 of 948

रूहानी संबंध इसलिए प्राप्त होता है क्योंकि व्यक्ति ने उनके गुणों के बारे में सुना और एक विशेष चुनिंदा प्रेम विकसित कर लिया; वह प्रेम उस आत्मा और इस व्यक्ति के बीच मार्ग खुलने का कारण बन जाता है, या इसलिए कि वह उनके मुर्शिद (गुरु) या उनके मुर्शिद के मुर्शिद की आत्मा है, जिसके भीतर अपने अनुयायियों का मार्गदर्शन करने का संकल्प स्थापित हो गया है, आदि। (उद्धरण समाप्त)। ...और ऐसा भी अक्सर होता है कि किसी रूह के साथ एक संबंध बन जाता है क्योंकि उसके गुणों को सुनकर एक विशेष प्रेम पैदा हो गया—वह प्रेम उस रूह और उस व्यक्ति के बीच एक रास्ता खुलने का कारण बन जाता है—या इस वजह से कि वह उसके मुर्शिद या मुर्शिद के मुर्शिद की रूह है जिसके भीतर अपने संबंधित लोगों के मार्गदर्शन की हिम्मत स्वयं मौजूद है। आदि (चयन की समाप्ति के साथ)। (त)

लेख (70): इसी में है: इस संबंध (यानी ओवैसी) के फलों में से है सपने में उस समूह को देखना, उनसे लाभ प्राप्त करना, संकट और कठिनाई के स्थानों में उस समूह के रूप का प्रकट होना, और समस्याओं के समाधान को उस रूप से जोड़ा जाना। इस ओवैसी संबंध के फलों में से है सपने में उस समूह का दीदार होना, उनसे लाभ पाना, विनाश और विपत्ति के स्थानों में उस समूह के रूप का प्रकट होना और कठिनाइयों का समाधान उस रूप से जुड़ा होना। (त)

लेख (71): इसी में है: आज, यदि कोई किसी विशिष्ट आत्मा के साथ संबंध विकसित करता है और वहां से कृपा प्राप्त करता है, तो यह संभवतः इस तथ्य से बाहर नहीं है कि यह अर्थ पैगंबर (उन पर अल्लाह की शांति और आशीर्वाद हो), या हज़रत अमीर-उल-मोमिनीन अली (अल्लाह उनके चेहरे को सम्मानित करे), या हज़रत ग़ौस-ए-आज़म जिलानी (अल्लाह उन पर दया करे) के संबंध में है। जो लोग अन्य आत्माओं के साथ संबंध रखते हैं, उनकी विशिष्टता का कारण अस्थायी कारण होते हैं, जैसे कि उस बुजुर्ग के लिए उसकी बहुत श्रद्धा होना, उसकी कब्र पर बार-बार जाना, और यह अर्थ इस श्रृंखला को गति देने वाला है... आज अगर किसी को किसी विशेष रूह से संबंध पैदा हो और वहां से कृपा प्राप्त हो, तो संभवतः वह इससे बाहर नहीं होगा; यह अर्थ हज़रत रसूल-ए-खुदा (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) के संबंध से हो, या हज़रत अमीर-उल-मोमिनीन अली मुर्तज़ा (करम अल्लाह वज्हहु) के संबंध से हो, या हज़रत ग़ौस-ए-आज़म जिलानी (रज़ियल्लाहु अन्हु) के संबंध से हो। और जो लोग

सभी रूहों से संबंध रखते हैं, उनकी विशेषता का कारण अस्थायी कारण होते हैं, उदाहरण के लिए कि वह उस बुजुर्ग से अधिक प्रेम रखता है और उसके..

1. हमआते हमआ 11, अल-अकादमिया अश-शाह वलीउल्लाह, हैदराबाद पाकिस्तान, पृष्ठ 56-57।
2. हमआते हमआ 11, अल-अकादमिया अश-शाह वलीउल्लाह, हैदराबाद पाकिस्तान, पृष्ठ 59। पृष्ठ 815 का 948

مناسبت بروحی حاصل شود بجهت آنکه فضائل وے استماع کرده مجتبیٰ خاص بہم رسانید و آں محبت سبب کشاده شدن را ہے گرد درمیان روح و ایں کس یا بجهت آنکه روح مرشد روے باجد وے باشد دروے ہمت ارشاد منتسبیان خود متمکن شده الخ انتہی ملتقطاً۔ سے ہو اور ایسا بھی بہت ہوتا ہے کہ کسی روح سے مناسب پیدا ہوگئی اس لیے کہ اس کے فضائل سن کر ایک خاص محبت بہم پہنچائی — وہ محبت اس روح اور اس شخص کے درمیان ایک راہ کھلنے کا سبب ہو جاتی ہے — یا اس وجہ سے کہ وہ اس کے مرشد یا مرشد کے مرشد کی روح ہے اس کے اندر اپنے منتسبین کی رہنمائی کی ہمت خود قرار پذیر ہے۔ الخ (ختم التقاط کے ساتھ)۔(ت)

مقال (۷۰): اسی میں ہے : از ثمرات ایں نسبت (یعنی اویسیه) رویت آں جماعت است در منام وفائده از ایشاں یافتن ودر مہالک و مضائق صورت آں جماعت پدیر آمدن وحل المشکلات وے باں صورت منسوب شدن۔ اس نسبت اویسی کے ثمرات سے ہے خواب میں اس جماعت کا دیدار ہونا، ان سے نفع پانا، ہلاکت و مصیبت کی جگہوں میں اس جماعت کی صورت کا نمودار ہونا اور مشکلات کا حل اس صورت سے منسوب ہونا (ت)

مقال (۷۱): اسی میں ہے : امروز اگر کسے را مناسبت بروح خاص پیدا شود واز نجا فیض برادر و غالباً بیرون نیست از آنکه ایں معنی به نسبت پیغمبر صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم باشد یا به نسبت حضرت امیر المومنین علی کرم اللہ تعالیٰ وجہہ یا به نسبت حضرت غوث اعظم جیلانی رحمۃ اللہ تعالیٰ عنہ و آنکہ مناسبت به سائر ارواح دارند باعث خصوص آں اسباب طاریہ شده اند مثل آنکہ وے حجت آں بزرگ بسیار دارد، وبر قبر وے بسیار می رود، وایں معنی سلسلہ جنبان از جهت۔ آج اگر کسی کو کسی خاص روح سے مناسبت پیدا ہو اور وہاں سے فیض یاب ہو غالباً اس سے باہر نہ ہوگا

یہ معنی حضرت رسول خدا صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کی نسبت سے ہو یا حضرت امیر المومنین علی مرتضیٰ کرم اللہ وجہہ کی نسبت سے یا حضرت غوث اعظم جیلانی رضی اللہ تعالیٰ عنہ کی نسبت سے ہو اور جو لوگ تمام ارواح سے مناسبت رکھتے ہیں ان کی خصوصیت کا باعث عارضی اسباب ہوتے ہیں مثلاً یہ کہ وہ اس بزرگ سے زیادہ محبت رکھتا ہے اور اس

1 ہمعات ہمعہ ۱۱ اکادیمیہ الشاہ ولی اللہ حیدر آباد پاکستان ص ۵۶-۵۷ 2 ہمعات ہمعہ ۱۱ اکادیمیہ الشاہ ولی اللہ حیدر آباد پاکستان ص ۵۹ Page 815 of 948

Fatawa Razawiyya Volume Nine

| (Persian Quote): It has become worthy, and that elder had a strong ambition in the training of his associates, and that ambition still remains in his soul. This meaning is a cause of action from the side of the doer. [1] | (Urdu Explanation): ...more often goes to the grave. This meaning became a motivator from the side of the one who is capable... and in the training of his associates, the ambition of that elder was strong, and that ambition still remains in the soul - let this meaning be a motivator from the side of the doer. (T) |

Point (62): In Hujjat Allah al-Baligha, it is stated:

| (Arabic Quote): It has been established through Shari'a with great fame that Allah the Almighty has servants who are the noble angels. They are intermediaries between Allah and His servants. They inspire good things into the hearts of the children of Adam. They have gatherings however Allah wills and wherever Allah wills. For this reason, they are referred to as the 'Mala' al-A'la' (Highest Assembly). Also, the souls of the noble human beings join them and meet them, as Allah the Almighty said: 'O reassured soul, return to your Lord, well-pleased and pleasing [to Him], and enter among My [righteous] servants and enter My Paradise.' The Mala' al-A'la is of three types: one type is human souls that continuously performed salvific deeds, which enabled them to join [the angels], until they cast off the veils of their bodies, joined their ranks, and were counted among them. [2] End summary. | (Urdu Translation): That is, it is established through Shari'a with the level of fame that the near angels are intermediaries between God and His servants, and they cast good thoughts into the hearts of humans. They have gatherings as God wills and where He wills. Based on this, they are called 'Mala' al-A'la'. It is also established from Shari'a with fame that the souls of the elders of religion also enter among them and meet them, as Allah the Almighty said: 'O tranquil soul! Return to your Lord in a state that you are pleased with Him and He is pleased with you. So enter among my servants and come into my Paradise.' And another type of Mala' al-A'la are those human souls who always performed deeds of salvation, because of which they met those angels, until when they cast off the veils of the body, they entered the Mala' al-A'la and were counted among them. |

Point (63): In 'Azizi it is stated:

[Footnotes] 1. Hama'at, Hama' 11, Academy Shah Waliullah, Hyderabad Pakistan, p. 62-63. 2. Hujjat Allah al-Baligha, Chapter on Mention of Mala' al-A'la, Maktaba Salafiyya Lahore, 1/15-16.

फ़तावा रज़विया, खंड नौ

| (फारसी उद्धरण): वह योग्य हो गया है, और उस बुज़ुर्ग में اپنے مُنتسبین। (संबद्ध लोगों) के प्रशिक्षण की तीव्र इच्छा थी और वह इच्छा بھی بھی। उनकी आत्मा में शेष है। यह अर्थ कर्ता की ओर से प्रेरक है। [1] | (उर्दू व्याख्या): ...कब्र पर अधिक जाता है। यह अर्थ समर्थ व्यक्ति की ओर से प्रेरक बना... और अपने मुंतसिबीन के प्रशिक्षण में उस बुज़ुर्ग की हिम्मत प्रबल थी और वह हिम्मत अब भी रूह में बाक़ी है- यह अर्थ फ़ाइल (कर्ता) की जानिब से मुहर्रिक (प्रेरक) हो। (त) |

मकाल (62): हुज्जत उल्लाह अल-बालिगा में है:

| (अरबी उद्धरण): शरई तौर पर यह पूरी प्रसिद्धि के साथ सिद्ध हो चुका है कि अल्लाह तआला के कुछ बंदे हैं जो श्रेष्ठ फ़रिश्ते हैं। वे अल्लाह और उसके बंदों के बीच मध्यस्थ होते हैं। वे आदम की संतानों के दिलों में नेक बातों का इल्हाम (प्रेरणा) करते हैं। उनकी सभाएँ होती हैं जैसे अल्लाह चाहे और जहाँ अल्लाह चाहे। इसी आधार पर उन्हें 'मला-ए-आला' (उच्च सभा) कहा जाता है। श्रेष्ठ मनुष्यों की आत्माएँ भी उनमें प्रवेश करती हैं और उनसे मिलती हैं, जैसा कि अल्लाह तआला ने फ़रमाया: 'हे संतोषी आत्मा! अपने रब की ओर लौट चल इस हाल में कि तू उससे राज़ी और वह तुझसे ख़ुश, फिर मेरे बंदों में शामिल हो जा और मेरी जन्नत में प्रवेश कर।' मला-ए-आला की तीन क़िस्में हैं: एक क़िस्म उन इंसानी रूहوں की है जो लगातार मुक्ति दिलाने वाले कार्य करती रहीं, जिनके कारण वे उन फ़रिश्तों से मिल सकीं, यहाँ तक कि जब उन्होंने अपने शरीरों के पर्दे उतार फेंके तो वे उनकी सफ़ में शामिल हो गईं और उन्हीं में गिनी गईं। [2] संक्षेप में। | (उर्दू अनुवाद): यानी बेशक शरह से बदरजा शोहरत सुबूत को पहुँचा कि मुक़र्रब फ़रिश्ते ख़ुदा और उसके बंदों में वास्ता होते और आदमियों के दिलों में नेक बात का इलक़ा करते हैं और उनके लिए इज्तिमा हैं जिस तरह ख़ुदा चाहे और जहाँ चाहे, इसी लिहाज़ से उन्हें मला-ए-आला कहते हैं और यह भी इसी तरह शरह से ब-शोहरत साबित कि बुज़ुर्गान-ए-दीन की रूहें भी उनमें दाख़िल होतीं और उनसे मिलती हैं जैसा कि अल्लाह तआला ने फ़रमाया: 'ऐ इत्मीनान वाली जान! चल अपने रब की तरफ़ इस हाल में कि तू उससे राज़ी और वह तुझसे ख़ुश, पस दाख़िल हो मेरे बंदों में और आ मेरी जन्नत में।' और मला-ए-आला की एक और क़िस्म वह अरवाह-ए-इंसानी हैं कि हमेशा रस्तगारी के काम करते रहे जिनके बाइस इन मलायका से मिले यहाँ تک کہ جب بدن کی ن क़ाबें फेंकीं मला-ए-आला में दाख़िल हुए और उन्हें से शुमार किये गये। |

मकाल (63): अज़ीज़ी में फ़रमाया:

[पादलेख] 1. हमाअत, हमा 11, एकेडमी शाह वलीउल्लाह हैदराबाद पाकिस्तान, पृष्ठ 62-63। 2. हुज्जत उल्लाह अल-बालिगा, बाब ज़िक्र अल-मला अल-आला, मकतबा सलफ़िया लाहौर, 1/15-16।

فتاوی رضویہ جلد نہم

| قابل گشتہ است، و آں بزرگ را ہمت قویہ بودہ است در تربیتِ منتسبا خود واں ہمت ہنوز در روح وے باقی است وایں معنی سلسلہ جنبان از جہت فاعل است۔ 1 | کی قبر پر زیادہ جاتا ہے۔ یہ معنی قابل کی جانب سے محرک بنا ___ اور اپنے منتسبین کی تربیت میں اس بزرگ کی ہمت قوی تھی اور وہ ہمت روح میں اب بھی باقی ہے_ یہ معنی فاعل کی جانب سے محرک ہو (ت) |

مقال (۶۲) : حجۃ اللہ البالغہ میں ہے:

| قداستفاض من الشرع ان اللہ تعالیٰ عباداہم افاضل الملئکۃ وانہم یکونون سفراء بین اللہ وبین عبادۃ انہم یلھمون في قلوب بني آدم خیرا، وان لھم اجتماعات کیف شاء اللہ وحیث شاء اللہ یعبر عنھم باعتبار ذلك بالملأ الاعلی وان ارواح افاضل الآدمیین دخول فیھم ولحوقا بھم کما قال اللہ تعالی یایتہا النفس المطمئنۃ ارجعي الی ربك راضیہ مرضیہ فادخلی فی عبادی وادخلی فی جنتی، والملاء الاعلی ثلثۃ اقسام، قسم ھم نفوس انسانیہ مازالت تعمل اعمالا منجیہ تفید اللحوق بھم حتی طرحت عنھا جلابیب ابدانھا فانسلکت في سلکھم وعدت منھم 2 اہ ملخصًا۔ | یعنی بے شک شرع سے بدرجہ شہرت ثبوت کو پہنچا کہ مقرب فرشتے خدا اور اس کے بندوں میں واسطہ ہوتے اور آدمیوں کے دلوں میں نیک بات کا القاء کرتے ہیں اور ان کے لیے اجتماع ہیں جس طرح خدا چاہے اور جہاں چاہے، اسی لحاظ سے انہیں ملاء اعلیٰ کہتے ہیں اور یہ بھی اسی طرح شرع سے بشہرت ثابت کہ بزرگان دین کی روحیں بھی ان میں داخل ہوتی اور ان سے ملتی ہیں جیسا کہ اللہ تعالیٰ نے فرمایا: "اے اطمینان والی جان ! چل اپنے رب کی طرف اس حال میں کہ تو اس سے راضی اور وہ تجھ سے خوش، پس داخل ہو میرے بندوں میں اور آ میری جنت میں۔" اور ملاء اعلیٰ کی ایک اور قسم وہ ارواحِ انسانی

ہیں کہ ہمیشہ رستگاری کے کام کرتے رہے جن کے باعث ان ملائکہ سے ملے یہاں تک کہ جب بدن کی نقابیں پھینکیں ملاء اعلیٰ میں داخل ہوئے اور انھیں سے شمار کئے گئے۔ |

مقال (۶۳): عزیزی میں فرمایا:

1 ہمعات ہمعہ ۱۱ اکادمیۃ الشاہ ولی اللہ حیدرآباد پاکستان ص ۶۳ - ۶۲ 2 حجۃ اللہ البالغہ باب ذکر الملاء الاعلی المکتبۃ السلفیہ لاہور ۱/ ۱۶- ۱۵

Fatawa Razawiyya, Volume 9

[Box 1] (Persian): Upon burial, as all body parts are gathered in one place, the connection of the soul with the body persists through a look of grace, and focusing the soul's attention on visitors, those seeking companionship, and those seeking spiritual benefit becomes easy. [1] (Urdu): Upon burial, all parts of the body are gathered in one place, and through a look of grace, the connection of the soul with the body is established, and paying attention towards visitors, those seeking companionship, and those seeking benefit becomes easy. (T)

Discourse (64): Mian Ismail wrote in 'Sirat-e-Mustaqim': [Box 2] (Persian): A certain kind of superiority of Hazrat Murtaza [Ali] over the Shaikhayn [Abu Bakr and Umar] is also established. This superiority is in terms of the abundance of his followers and his mediation in the stations of sainthood (Wilayah), rather in all spiritual services—such as being a Qutb, Ghaus, Abdal, etc.—from the noble era of Hazrat Murtaza until the end of the world, all are through his mediation. [2] (Urdu): A certain degree of superiority of Hazrat Murtaza is also established over the Shaikhayn, and that superiority is in terms of the abundance of followers and mediation in the stations of sainthood, rather in all services—such as Qutbiyat, Ghausiyat, Abdaliyat, etc. From the noble era of Hazrat Murtaza until the end of the world, it is all through his mediation. (T)

Discourse (65): In the same [book]: [Box 3] (Persian): Allah, Exalted and Sublime, either by His own Holy Essence or through the mediation of great angels or holy souls, will protect the seeker due to the blessing of seeking mediation (tawassul) through the Quran. [3] (Urdu): Allah, Exalted and Sublime, either by His own Essence or through the mediation of great angels or holy souls, will protect the seeker by virtue of the blessing of seeking mediation through the Quran. (T)

Discourse (66): In Maulvi Ishaq's 'Ma'ata Masail' (One Hundred Issues) it is written: [Box 4] (Persian): Question: What is the ruling for a person who denies the spiritual grace (fayd) of the blessed soul of Muhammad, the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) in the realm of Barzakh (the intermediate realm), or who denies the grace of the holy souls of other Prophets (peace be upon them), or who denies the grace of the souls of the Saints (Awliya) of Allah in the realm of Barzakh? (Urdu): What is the ruling for a person who denies the grace of the blessed soul of Muhammad, the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) in the realm of Barzakh, and who denies the grace of the holy souls of other

Prophets (peace be upon them), and who denies the grace of the souls of the Saints of Allah in the realm of Barzakh?

Footnotes: 1. Tafsir Azizi, Juz 'Am, 'Benefiting from Buried Saints', Muslim Book Depot, Lal Kuan, Delhi, p. 143. 2. Sirat-e-Mustaqim, Second Guidance, regarding the mention of innovations etc., Al-Maktabah al-Salafiyyah, Lahore, p. 58. 3. Sirat-e-Mustaqim, Chapter Four, regarding the explanation of the path of Prophethood etc., Al-Maktabah al-Salafiyyah, Lahore, p. 128.

फ़तावा रज़विया, जिल्द 9

[बॉक्स 1] (फ़ारसी): दफ़्न करने में, चूँकि शरीर के सभी अंग एक स्थान पर एकत्रित होते हैं, कृपा दृष्टि के माध्यम से शरीर के साथ आत्मा का संबंध बना रहता है, और आगंतुकों, साथ चाहने वालों और आध्यात्मिक लाभ चाहने वालों की ओर आत्मा का ध्यान देना आसान हो जाता है। [1] (उर्दू): दफ़्न करने में शरीर के सभी अंग एक जगह जमा हो जाते हैं और नज़र-ए-इनायत से रूह का ताल्लुक बदन से हो जाता है और ज़ायरीन और उन्स और इस्तिफ़ादा करने वालों की तरफ़ तवज्जो आसान हो जाती है। (त)

मक़ाल (64): मियां इस्माइल 'सिरात-ए-मुस्तकीम' में लिख गए हैं: [बॉक्स 2] (फ़ारसी): हज़रत मुर्तज़ा [अली] की एक प्रकार की श्रेष्ठता हज़रात शैख़ैन [अबू बक्र और उमर] पर भी सिद्ध है। और वह श्रेष्ठता अनुयायियों की अधिकता और विलायत [संतत्व] के पदों, बल्कि सभी सेवाओं - जैसे क़ुत्बियत, ग़ौसियत, अब्दालियत आदि - में मध्यस्थता के लिहाज़ से है। हज़रत मुर्तज़ा के श्रेष्ठ युग से लेकर दुनिया के अंत तक सब उन्हीं के माध्यम से है। [2] (उर्दू): हज़रत मुर्तज़ा को एक तरह की फ़ज़ीलत हज़रात शैख़ैन पर भी साबित है और वह फ़ज़ीलत मुत्तबेईन की कसरत और मक़ामात-ए-विलायत बल्कि तमाम ख़िदमात—जैसे क़ुत्बियत, ग़ौसियत, अब्दालियत वग़ैरा—में वसातत के लिहाज़ से है। सब हज़रत मुर्तज़ा के अहद-ए-करीम से इख़्तिताम-ए-दुनिया तक उन्हीं के वास्ते से है। (त)

मक़ाल (65): उसी में है: [बॉक्स 3] (फ़ारसी): हक़ जल्ला व अला [अल्लाह] स्वयं अपनी पवित्र सत्ता द्वारा या महान फ़रिश्तों या पवित्र आत्माओं के माध्यम से, कुरान से तवस्सुल [मध्यस्थता] की बरकत के कारण साधक की रक्षा करेगा। [3] (उर्दू): हक़ जल्ला व अला बजात-ए-ख़ुद या मलायका-ए-इज़ाम या अरवाह-ए-मुक़द्दसा के वास्ते से, क़ुरान से तवस्सुल की बरकत के सबब तालिब की हिफ़ाज़त फ़रमाएगा। (त)

मक़ाल (66): मौलवी इसहाक़ की 'माअता मसाइल' में है: [बॉक्स 4] (फ़ारसी/अरबी प्रश्न): प्रश्न: उस व्यक्ति का क्या हुक्म है जो आलम-ए-बर्ज़ख़ में मुहम्मद रसूलुल्लाह (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) की पवित्र आत्मा के फ़ैज़ (अनुग्रह) का खंडन करे, और जो अन्य नबियों (अलैहिमुस्सलाम) की पवित्र आत्माओं के फ़ैज़ का खंडन करे और जो आलम-ए-बर्ज़ख़ में औलिया अल्लाह की आत्माओं के फ़ैज़ का खंडन करे? (उर्दू अनुवाद): जो शख़्स आलम-ए-बर्ज़ख़ में मुहम्मद रसूलुल्लाह (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) की रूह-ए-मुबारक के फ़ैज़ का और जो दीगर अंबिया (अलैहिमुस्सलाम) की अरवाह-ए-

मुक़द्दसा के फ़ैज़ का और आलम-ए-बर्ज़ख़ में जो औलिया अल्लाह की अरवाह के फ़ैज़ का मुनकिर हो उसका हुक्म क्या है?

पाद टिप्पणियाँ: 1. तफ़्सीर अज़ीज़ी, जुज़ अम्म, 'दफ़न औलिया से इस्तिफ़ादा', मुस्लिम बुक डिपो, लाल कुआं, दिल्ली, पृ. 143। 2. सिरात-ए-मुस्तकीम, हिदायत सानिया, बिदअतों के ज़िक्र में आदि, अल-मकतबा अस-सलफ़िया, लाहौर, पृ. 58। 3. सिरात-ए-मुस्तकीम, अध्याय चार, नबुव्वत की राह के बयान में आदि, अल-मकतबा अस-सलफ़िया, लाहौर, पृ. 128।

در دفن کردن چوں اجزائے بدن بتمامہ یکجا می باشند علاقہ روح یا بدن زراہ نظر عنایت بحال می ماند و توجہ روح بزائرین و مستانسین و مستفیدین بہ سہولت می شود- 1 | دفن کرنے میں بدن کے تمام اجزاء ایک جگہ جمع ہو جاتے ہیں اور نظرِ عنایت سے روح کا تعلق بدن سے ہو جاتا ہے اور زائرین اور انس اور استفادہ کرنے والوں کی طرف توجہ آسان ہو جاتی ہے۔(ت)

مقال (۶۴) : میاں اسمعیل صراطِ مستقیم میں لکھ گئے: حضرت مرتضوی را یک نوع تفضیل بر حضرات شیخین ہم ثابت واں تفضیل بجہت کثرت اتباع ایشاں و وساطت مقامات ولایت بل سائر خدمات است مثل قطبیت و غوثیت و ابدالیت و غیرہما از عہد کرامت مہد حضرت مرتضیٰ تا انقراضِ دنیا ہمہ بواسطہ ایشاں است۔ 2 | حضرت مرتضیٰ کو یک گونہ فضیلت حضرات شیخین پر بھی ثابت ہے اور وہ فضیلت متبعین کی کثرت اور مقاماتِ ولایت بلکہ تمام خدمات_ جیسے قطبیت، غوثیت، ابدالیت وغیرہما_ میں وساطت کے لحاظ سے ہے۔ سب حضرت مرتضیٰ کے عہدِ کریم سے اختتامِ دنیا تک ان ہی کے واسطے سے ہے۔(ت)

مقال (۶۵) : اسی میں ہے: حق جل و علا بذاتِ پاک خود یا بواسطہ ملائکہ عظام یا ارواحِ مقدسہ بسبب برکت توسل قرآن محافظت طالب خواھد نمود - 3 | حق جل و علا بذاتِ خود یا ملائکہ عظام یا ارواحِ مقدسہ کے واسطہ سے، قرآن سے توسل کی برکت کے سبب طالب کی حفاظت فرمائے گا۔ (ت)

مقال (۶۶) : مولوی اسحاق کی مائتہ مسائل میں ہے: سوال: شخصیکہ منکر باشد فیض روح مبارک محمد رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم را در عالم برزخ و شخصے کہ منکر باشد از فیض ارواحِ

مقدسہ انبیاء دیگر علیہم الصلوٰۃ والسلام و شخصے کہ منکر باشد از فیض ارواحِ اولیاء اللہ در عالم برزخ حکم او چیست؟ | جو شخص عالم برزخ میں محمد رسول اللہ صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کی روحِ مبارک کے فیض کا اور جو دیگر انبیاء علیہم الصلوٰۃ و السلام کی ارواحِ مقدسہ کے فیض کا اور عالم برزخ میں جو اولیاء اللہ کی ارواح کے فیض کا منکر ہو اس کا حکم کیا ہے؟

1 تفسیر عزیزی پارہ عم استفادہ از اولیائے مد فونین مسلم بک ڈپو لال کنواں دہلی ص ۱۴۳ 2 صراطِ مستقیم ہدایت ثانیہ در ذکر بدعاتیکہ الخ المکتبۃ السلفیہ لاہور ص ۵۸ 3 صراطِ مستقیم باب چہارم در بیان طریق سلوکِ راہِ نبوت الخ المکتبۃ السلفیہ لاہور ص ۱۲۸

Fatawa Razawiya, Volume 9

Answer: Any blessing of the Shariah whose proof is established by mutawatir (consecutive) narrations, one who denies it is a disbeliever (kaafir). Any blessing whose proof is by mashhur (famous) narrations, one who denies it is astray (dhaal). Any blessing whose proof is by a single report (khabar-e-wahid), one who denies it will be a sinner for refusing to accept it, provided that its proof is authentic (sahih) or good (hasan). (T) – Summarized from 1H.

Although this answer is based entirely on cunning, everyone saw that the question was about the blessings of the Barzakh (limbo). It was necessary that the answer should also encompass that, to the extent that denying it would be necessary for madness, or it is an admission of their denial of honesty and divinity, and hiding the truth by mixing it with falsehood.

Article (67): Hazrat Sheikh Mujaddid Alf Thani states in his letters (Maktubat): [Persian]: After the passing of the refuge of guidance, my Qiblah-gah (i.e., Khawaja Baqi Billah, mercy of Allah be upon him), I happened to pass through the protected city of Delhi on the occasion of visiting his noble shrine. On the day of Eid, I went to visit his shrine. During my meditation (tawajjuh) towards the blessed shrine, a complete attention from his holy spirituality became apparent. With great kindness towards the poor, he bestowed upon me his special spiritual connection (nisbat), which was attributed to Khawaja Ahrar. 2. [Urdu]: After the passing of the refuge of guidance, my Qiblah-gah (Khawaja Baqi Billah, mercy of Allah be upon him), it happened that I passed through the city of Delhi for the purpose of visiting his noble shrine. On the day of Eid, I went to visit his holy shrine. During the meditation towards the holy shrine, a great attention from his sacred spirituality emerged, and with complete kindness towards the poor, he granted me his special spiritual connection (nisbat) which was towards Hazrat Khawaja Ahrar. (T)

Note: The phrase "on the occasion of visiting the noble shrine etc." should be noted. Likewise, "Ghareeb Nawaz" is also said in relation to Hazrat Khawaja Ajmeri (may Allah be pleased with him), which irritates the biased group.

Article (68): Shah Waliullah writes in 'Anfas-ul-Arifeen' about his teacher, Muhaddith Ibrahim Kurdi (mercy of Allah be upon him): [Persian]: He resided in Baghdad for

about two years. At the grave of Syed Abdul Qadir... [Urdu]: You resided in Baghdad for about two years, during which you...

1. Mi'at Masa'il, Questions 6 to 8, Maktaba Tawheed wa Sunnat Peshawar, pp. 16-17.
2. Maktubat Imam Rabbani, Letter 269, Munshi Naval Kishore Lucknow, 1/414.

फ़तावा रज़विया, जिल्द 9

उत्तर: शरीयत की कोई भी बरकत (फ़ैज़) जिसका प्रमाण मुतवातिर (लगातार) हदीसों से सिद्ध हो, उसका खंडन करने वाला काफ़िर है। कोई भी बरकत जिसका प्रमाण मशहूर हदीसों से हो, उसका खंडन करने वाला गुमराह है। कोई भी बरकत जिसका प्रमाण खबर-ए-वाहिद (एकल रिपोर्ट) से हो, उसका खंडन करने वाला इसे स्वीकार न करने के कारण गुनहगार होगा, बशर्ते कि उसका प्रमाण सही या हसन (उत्तम) हो। (त) - संक्षेप में 1ह.

यद्यपि यह उत्तर पूरी तरह से चालाकी पर आधारित है, लेकिन सभी ने देखा कि प्रश्न बरज़ख (लोक) के फ़ैज़ के बारे में था। यह आवश्यक था कि उत्तर में उसे भी शामिल किया जाता, यहाँ तक कि उसे नकारना पागलपन के लिए आवश्यक होता, या फिर यह उनकी ईमानदारी और दिव्यता से इनकार और असत्य के साथ सत्य को छिपाने का स्वीकार है।

लेख (67): हज़रत शेख़ मुजद्दिद अल्फ़ थानी अपने पत्रों (मकतूबात) में फ़रमाते हैं: [फारसी]: मार्गदर्शन के आश्रय, मेरे किबला-गाह (अर्थात ख्वाजा बाकी बिल्लाह, उन पर अल्लाह की दया हो) के निधन के बाद, दिल्ली शहर से उनके पवित्र मज़ार की ज़ियारत के अवसर पर गुजरने का संयोग हुआ। ईद के दिन हज़रत के मज़ार-ए-पाक की ज़ियारत के लिए गया। मज़ार-ए-पाक की ओर ध्यान (तवज्जुह) के दौरान हज़रत की पवित्र रूहानियत से पूर्ण ध्यान प्रकट हुआ। अत्यंत ग़रीब-नवाज़ी से उन्होंने अपनी वह विशेष निस्बत (आध्यात्मिक संबंध) जो हज़रत ख्वाजा अहरार से संबंधित थी, मुझे प्रदान की। 2. [उर्दू]: हज़रत मार्गदर्शन के आश्रय, मेरे किबला-गाह (ख्वाजा बाकी बिल्लाह, उन पर अल्लाह की दया हो) के निधन के बाद मज़ार शरीफ़ की ज़ियारत के अवसर पर दिल्ली शहर से गुज़रने का संयोग हुआ। ईद के दिन हज़रत के मज़ार-ए-पाक की ज़ियारत के लिए गया। मज़ार-ए-पाक की ओर ध्यान के दौरान हज़रत की पवित्र रूहानियत से अत्यंत ध्यान (तवज्जुह) प्रकट हुआ, और अत्यंत ग़रीब-नवाज़ी से उन्होंने अपनी वह विशेष निस्बत जो हज़रत ख्वाजा अहरार की ओर थी, मुझे प्रदान की। (त)

चेतावनी (तनबीह): "मज़ार शरीफ़ की ज़ियारत के अवसर पर आदि" शब्दों पर ध्यान दिया जाए। इसी प्रकार "ग़रीब नवाज़" भी हज़रत ख्वाजा अजमेरी (अल्लाह उन पर प्रसन्न हो) के संबंध में कहा जाता है, जिससे पक्षपाती समूह चिढ़ता है।

लेख (68): शाह वलीउल्लाह 'अनफ़ास-उल-आरिफ़ीन' में अपने उस्ताद मुहद्दिस इब्राहिम कुर्दी (उन पर अल्लाह की दया हो) का हाल लिखते हैं: [फारसी]: आप लगभग दो वर्ष तक बगदाद में रहे। सैय्यद अब्दुल कादिर की कब्र पर... [उर्दू]: कमोबेश दो साल तक आप बगदाद में रहे, इस दौरान आप...

1. मिअत मसाइल, प्रश्न 6 से 8, मकतबा तौहीद व सुन्नत पेशावर, पृ. 16-17।
2. मकतूबात इमाम रब्बानी, पत्र 269, मुंशी नवल किशोर लखनऊ, 1/414।

पृष्ठ 818 का 948

فتاوٰی رضویہ جلد نہم

جواب: ہر فیضِ شرع کو ثبوت باخبار متواترہ باشد منکر آں کافر است و ہر فیضیکہ ثبوت باخبار مشہور ہی باشد منکر اں ضال است ہر فیضے کہ ثبوت اں بخبر واحد باشد منکر آں بہ سبب ترک قبول گنہ گار خواھد شد بشر طیکہ ثبوت آں صحیح یا بطریق حسن خواھد شد 1ھ ملخصاً جس فیضِ شرع کا ثبوت احادیث میں متواترہ سے ہو اس کا منکر کافر ہے اور جس فیض کا ثبوت احادیث مشہورہ سے ہو اس کا منکر گمراہ ہے اور جس فیض کا ثبوت خبرِ واحد سے ہو اس کا منکر ترکِ قبول کی وجہ سے گنہ گار ہوگا بشر طیکہ اس کا ثبوت بطریق صحیح یا بطریق حسن ہو۔ (ت)

ہر چند یہ جواب سرا پا عیاری پر مبنی ہے مگر سب نے دیکھا کہ سوال فیضِ برزخ سے تھا، واجب کہ جواب اسے بھی شامل ہو اس قدر امرِ نفی جنون کے لئے ضروری یا ان کی دیانت وللہیت سے انکار اور اخفائے حق تلبیس بالباطل کا اقرار کیا جائے۔ مقال (۶۷) : جناب شیخ مجدد الف ثانی اپنے مکتوبات میں فرماتے ہیں : بعد از رحلت ارشاد پناہی قبلہ گاہی (یعنی خواجہ باقی اللہ علیہ رحمۃ اللہ) بتقریب زیارت مزار شریف بہ بلدہ محروسہ دہلی اتفاق عبور افتاد روز عید بزیارت مزار شریف ایشاں رفتہ بود در اثنائے توجہ بہ مزار متبرک التفاتے تمام از روحانیت مقدسہ ایشاں ظاہر گشت و از کمال غریب نوازی نسبت خاصہ خود را کہ بحضرت خواجہ احرار منسوب بود مرحمت فرموند 2۔ حضرت ارشاد پناہی قبلہ گاہی (خواجہ باقی اللہ علیہ رحمۃ اللہ) کی رحلت کے بعد مزار شریف کی زیارت کی تقریب سے شہر دہلی میں گزرنے کا اتفاق ہوا، عید کے دن حضرت کے مزارِ پاک کی زیارت کے لئے گیا، مزارِ پاک کی جانب توجہ کے دوران حضرت کی مقدس روحانیت سے کمالِ التفات رونما ہوا، اور کمال غریب نوازی سے اپنی خاص نسبت جو حضرت خواجہ احرار کی جانب تھی مجھے مرحمت فرمائی۔ (ت)

تنبیہ : لفظ "بتقریب زیارت مزار شریف الخ" ملحوظ رہے اور یونہی "غریب نواز" بھی کہ حضرت خواجہ اجمیری رضی اللہ تعالیٰ عنہ کی نسبت کہے جس سے متعصبان طائفہ چڑتے ہیں۔ مقال (۶۸) : شاہ ولی اللہ انفاس العارفین میں اپنے استاذ محدث ابراہیم کردی علیہ الرحمۃ کا حال لکھتے ہیں : دوسال کم و بیش در بغداد ساکن بود۔ بر قبر سید عبدالقادر | کم وبیش دو سال تک آپ بغداد میں مقیم رہے اس دوران آپ

1 مائۃ مسائل سوال ششم تا ہشتم مکتبہ توحید وسنت پشاور ص ۱۷-۱۶ 2 مکتوبات امام ربانی مکتوب ۲۶۹ منشی نولکشور لکھنو ۱ / ۴۱۴

Fatawa Razawiya (Volume 9)

"Qaddasa Sirruhu, he used to pay attention and developed a taste for this secret there."[1]	**He used to frequently make the blessed shrine of Sayyid Abdul Qadir Jilani (may Allah be pleased with him) the center of his attention, and it was from here that he gained a taste for the path of gnosis (ma'rifat). (T)**

Article (69): In the same, it is written regarding the blessed mention of Hazrat Mir Abu al-Ula (may Allah sanctify his secret): | "He was attentive to the shrine of abundant lights of Hazrat Khwaja Moinuddin Chishti (may Allah sanctify his secret), and from there he found heart-ravishing experiences and received blessings."[2] | He turned towards the shrine of overflowing lights of Hazrat Khwaja Moinuddin Chishti (may Allah sanctify his secret), received special grace and kindness from that court, and attained spiritual gains. (T) |

Article (70 & 71): In the same, it is narrated from his maternal grandfather Abu al-Raza Muhammad: | "He used to say: Once I saw Hazrat Ghaus al-Azam (may Allah be pleased with him) in a state of wakefulness, and he taught me great secrets at that place."[3] | He used to say: Once I saw Hazrat Ghaus al-Azam (may Allah be pleased with him) while awake; at that place, he taught great secrets. (T) |

Article (72): In the same, it is written in the accounts of the aforementioned Shaykh: | "An old woman among the sincere followers, after his passing, was struck by a shivering fever and became extremely weak. One night she needed to drink water and cover herself with a quilt, but she had no strength and no one was present. He (the Shaykh) appeared in an embodied form, gave her water, covered her with the quilt, and then vanished."[4] | One of the sincere followers, an old woman, fell ill with a shivering fever after the Saint's passing. She became extremely thin and weak. One night, she needed to drink water and pull up a quilt, but she lacked the strength, and no one else was there. The Saint appeared in bodily form, gave her water, pulled up the quilt, and then suddenly vanished. (T) |

Article (73 to 75): In Al-Qawl al-Jamil, it says: | "Our Shaykh Abdul Rahim learned etiquette from the souls of the Imams: Shaykh Abdul Qadir al-Jilani and Khwaja Bahauddin Muhammad..." | That is, our mentor Shaykh Abdul Rahim [received guidance] from the noble Imams, His Eminence Ghaus al-Azam, Khwaja Naqshband, and Khwaja Gharib Nawaz (may Allah be pleased with them)... |

[1] Anfas al-Arifeen, Urdu translation by Shaykh Ibrahim Karwi, Islamic Book Foundation Lahore, p. 386. [2] Anfas al-Arifeen, Mir Abu al-Ula, Shaykh Ibrahim Karwi, Islamic Book Foundation Lahore, p. 69. [3] Anfas al-Arifeen, Part Two, Shaykh Abu al-Raza Muhammad, Islamic Book Foundation Lahore, p. 194. [4] Anfas al-Arifeen, Imdad-ul-Awliya, Islamic Book Foundation Lahore, p. 369.

फ़तावा रज़विया (खंड नौ)

"क़द्दसा सिर्रहु, वह ध्यान दिया करते थे और वहीं इस रहस्य का स्वाद पाया।"[1]	**वह अक्सर सैय्यद अब्दुल क़ादिर जिलानी रज़ियल्लाहु तआला अन्हु के मज़ार-ए-मुबारक को अपने ध्यान का केंद्र बनाया करते थे और यहीं से उन्हें मारिफ़त (ज्ञान) का स्वाद प्राप्त हुआ। (त)**

लेख (69): इसी में हज़रत मीर अबुल उला (क़द्दसा सिर्रहु) के ज़िक्र-ए-मुबारक में लिखा है: | "हज़रत ख़्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती (क़द्दसा सिर्रहु) के फैज़-ए-अनवार वाले मज़ार की ओर ध्यान दिया और वहां से दिल को मोह लेने वाली चीज़ें पाईं और फैज़ हासिल किए।"[2] | हज़रत ख़्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती (क़द्दसा सिर्रहु) के मज़ार-ए-फ़ाइज़ुल अनवार की ओर उन्मुख हुए, उस दरगाह से विशेष कृपा और दया पाई और लाभ प्राप्त किए। (त) |

लेख (70 और 71): इसी में अपने नाना अबू रज़ा मुहम्मद से उद्धृत किया: | "वह फरमाते थे: मैंने एक बार हज़रत ग़ौस-ए-आज़म रज़ियल्लाहु तआला अन्हु को जागृत अवस्था में देखा और उन्होंने उस स्थान पर महान रहस्य सिखाए।"[3] | वह कहते थे: मैंने एक बार जागते हुए हज़रत ग़ौस-ए-आज़म रज़ियल्लाहु तआला अन्हु को देखा; उस स्थान पर उन्होंने महान रहस्यों की शिक्षा दी। (त) |

लेख (72): इसी में उक्त शेख की जीवनी में लिखा है: | "एक वृद्ध महिला जो निष्ठावानों में से थी, उनके निधन के बाद कंपकपी वाले बुखार में घिर गई और बहुत कमज़ोर हो गई। एक रात उसे पानी पीने और रज़ाई ओढ़ने की ज़रूरत थी, लेकिन उसमें शक्ति नहीं थी और कोई दूसरा मौजूद नहीं था। वह (शेख) साकार रूप में प्रकट हुए, पानी दिया, रज़ाई ओढ़ाई और फिर अचानक ओझल हो गए।"[4] | निष्ठावानों में से एक बुढ़िया हज़रत के इंतकाल के बाद कंपकपी वाले बुखार में फंस गई, बहुत कमज़ोर हो गई। एक रात उसे पानी पीने और लिहाफ़ ओढ़ने की ज़रूरत पड़ी, उसमें ताकत न थी और कोई दूसरा वहां मौजूद नहीं था। हज़रत साकार रूप में आए, पानी पिलाया, लिहाफ़ ओढ़ाया और फिर अचानक गायब हो गए। (त) |

लेख (73 से 75): अल-क़ौलुल जमील में है: | "हमारे शेख़ अब्दुल रहीम ने इमामों की रूहों से शिष्टाचार सीखा: शेख़ अब्दुल क़ादिर अल-जिलानी और ख़्वाजा बहाउद्दीन मुहम्मद..." | यानी हमारे मुर्शिद शेख़ अब्दुल रहीम ने अइम्मा-ए-किराम हुज़ूर ग़ौस-ए-आज़म और ख़्वाजा नक़्शबंद और ख़्वाजा ग़रीब नवाज़ रज़ियल्लाहु तआला अन्हु [से शिक्षा प्राप्त की]... |

[1] अनफ़ासुल आरिफ़ीन, उर्दू अनुवादक शेख़ इब्राहिम करवी, इस्लामिक बुक फाउंडेशन लाहौर, पृ. 386. [2] अनफ़ासुल आरिफ़ीन, मीर अबुल उला, शेख़ इब्राहिम करवी, इस्लामिक बुक फाउंडेशन लाहौर, पृ. 69. [3] अनफ़ासुल आरिफ़ीन, भाग दो, शेख़ अबू रज़ा मुहम्मद, इस्लामिक बुक फाउंडेशन लाहौर, पृ. 194. [4] अनफ़ासुल आरिफ़ीन, इमदादुल औलिया, इस्लामिक बुक फाउंडेशन लाहौर, पृ. 369.

اکثر سید عبد القادر جیلانی رضی اللہ تعالٰی عنہ کے مزارِ مبارک کو قدس سرہ، متوجہ می شد و مرکزِ توجہ بنایا کرتے تھے اور یہیں سے آپ کو راہِ معرفت کا ذوق ذوق ایں راز آنجا پیدا کرد۔ [1] پیدا ہوا (ت)

مقال (۶۹): اسی میں حضرت میر ابوالعلی قدس سرہ کے ذکرِ مبارک میں لکھا: | بمزارِ فیض الانوار حضرت خواجہ معین الدین چشتی قدس سرہ، متوجہ بودند و از آنجاب دل رباہا یافتند و فیضاں گرفتند۔[2] | حضرت خواجہ معین الدین چشتی قدس سرہ کے مزارِ فائز الانوار کی طرف متوجہ ہوئے اس بارگاہ سے خاص لطف و کرم پایا اور فیوض حاصل کئے۔ (ت) |

مقال (۷۰ و ۷۱): اسی میں اپنے نانا ابو الرضا محمد سے نقل کیا: | می فرمودند یک بار حضرت غوث الاعظم رضی اللہ تعالٰی عنہ را دریقظہ دیدم و اسرارِ عظیم دراں محل تعلیم فرمودند [3]۔ | فرماتے تھے ایک بار حضرت غوث اعظم رضی اللہ تعالٰی عنہ کو بیداری میں دیکھا اس مقام میں عظیم اسرار تعلیم فرمائے۔ (ت) |

مقال (۷۲): اسی میں شیخ مذکور کے حالات میں لکھا: | عجوزہ راز مخلصان بعد وفات ایشاں تپ لرزہ گرفت بغایت نزار گشت شبے بنو شیدن آب و پوشیدن لحاف محتاج شد و طاقت آں نداشت و کسے حاضر نبود ایشاں متمثل شدند و آب دادند و لحاف پوشانیدند و آنگاہ غائب شدند۔[4] | مخلصین میں سے ایک بڑھیا حضرت کی وفات کے بعد تب لرزہ میں گرفتار ہوئی، انتہائی لاغر ہوگئی، ایک رات اسے پانی پینے اور لحاف اوڑھنے کی ضرورت تھی، اس کے اندر طاقت نہ تھی، اور دوسرا

کوئی موجود نہیں تھا، حضرت متمثل ہوئے پانی دیا، لحاف اڑھایا، پھر اچانک غائب ہو گئے۔ (ت)
|

مقال (۷۳ تا ۷۵): القول الجمیل میں ہے: | تادب شیخنا[3] عبد الرحیم من روح الائمة الشیخ عبد القادر الجیلاني والخواجه بهاء الدین محمد | یعنی ہمارے مرشد شیخ عبدالرحیم نے ائمہ کرام حضور غوث اعظم و خواجہ نقشبند و خواجہ غریب نواز رضی اللہ تعالیٰ |

1 انفاس العارفین مترجم اردو شیخ ابراہیم کروی اسلامک بک فاؤنڈیشن لاہور ص ۳۸۶ 2 انفاس العارفین میر ابوالعلی شیخ ابراہیم کروی اسلامک بک فاؤنڈیشن لاہور ص ۶۹ 3 انفاس العارفین حصہ دوم شیخ ابو الرضا محمد اسلامک بک فاؤنڈیشن لاہور ص ۱۹۴ 4 انفاس العارفین امداد اولیاء اسلامک بک فاؤنڈیشن لاہور ص ۳۶۹

[Arabic Box Section]: Naqshband and Khwaja Moinuddin bin Al-Hasan Al-Chishti (may Allah be pleased with them); he saw them and received authorization from them, and he recognized the spiritual connection of each of them individually as it emanated from them into his heart, and he used to narrate their accounts to us. May Allah be pleased with him and with them all. (1)

[Urdu Box Section]: He learned the manners of the spiritual path from their pure souls and received permissions from them. He recognized separately the spiritual connection from each of those masters that was established in his heart, and he used to narrate their accounts to us. May Allah Almighty be pleased with all these masters and with them.

Maulvi Khurram Ali Sahib, although in the translation of 'ra'ahum' added the words "saw in a dream" on his own, which has no basis in Shah Wali Allah's original text, he nevertheless perforce accepted the bestowing of grace by the exalted souls, giving permissions, and granting spiritual connections.

Article (76 & 77): Mirza Jan-e-Janan Sahib says:

[Left side box - Persian/Old Urdu]: From Hazrat Sheikh Abdul Ahad (may Allah have mercy on him), two persons took the spiritual path; one adopted the Qadri path and the other chose the Naqshbandi path. They said that the blessed soul of Hazrat Ghaus-e-Azam arrived and took the exemplary form of the disciple of his own family with him, while Hazrat Khwaja Naqshband arrived and took the exemplary form of his own devotee with him. May Allah Almighty have mercy on them. (3)

[Right side box - Urdu translation]: Two people attained the spiritual path from Hazrat Sheikh Abdul Ahad (may Allah have mercy on him); one took the Qadri path while the other chose the Naqshbandi path. The Hazrat states that the blessed soul of Hazrat Ghaus-e-Azam arrived and took away the exemplary form of the disciple of his family, and Hazrat Khwaja Naqshband arrived and took away the exemplary form of his devotee with him. May Allah Almighty have mercy on them all. (T)

Article (78): Isma'il wrote about the state of his spiritual guide in 'Sirat-e-Mustaqim':

[Left side box - Persian/Old Urdu]: The holy soul of the master Hazrat Ghaus-ul-Thaqalayn and the master Hazrat Khwaja Bahauddin Naqshband became attentive to

the state of his excellence, until for about a month a general dispute remained between the holy souls regarding his excellence...

[Right side box - Urdu translation]: The souls of Hazrat Ghaus-ul-Thaqalayn and Hazrat Khwaja Bahauddin Naqshband became attentive to the Hazrat's state, and for nearly a month, there was a dispute between the two holy souls regarding the Hazrat's right, therefore both...

---

1. Al-Qawl al-Jamil with Shifa al-Alil, Chapter 11, Silsila Qadriyya Sanad, H.M. Saeed Company, Karachi, p. 182.
2. Shifa al-Alil translation of Al-Qawl al-Jamil, Chapter 11, Silsila Qadriyya Sanad, H.M. Saeed Company, Karachi, p. 182.
3. Malfuzat Mirza Mazhar from Kalimat-e-Tayyibat, printed by Matba' Mujtabai, Delhi, p. 83.

खंड 9 | फ़तावा रज़विया

[अरबी बॉक्स अनुभाग]: नक़्शबंद और ख़्वाजा मुइनुद्दीन बिन अल-हसन अल-चिश्ती (अल्लाह उन पर प्रसन्न हो); उन्होंने उन्हें देखा और उनसे इजाज़त (अनुमति) ली, और उनमें से प्रत्येक की आध्यात्मिक निस्बत (संबंध) को अलग-अलग पहचाना जो उनके दिलों से उनके दिल पर फ़ैज़ (प्रवाहित) हुई, और वे हमें उनके वाक़ियात सुनाया करते थे। अल्लाह उनसे और उन सभी से राज़ी हो। (1)

[उर्दू बॉक्स अनुभाग]: उनकी पवित्र आत्माओं से तरीक़त के आदाब (शिष्टाचार) सीखे और उनसे इजाज़तें (अनुमतियाँ) लीं, और उन दरबारों में से प्रत्येक की निस्बत (आध्यात्मिक संबंध) जो उनके हृदय पर फ़ाइज़ (स्थापित) हुई, उसे अलग-अलग पहचाना, और वे हमसे उनकी हिकायत (कथा) बयान करते थे। अल्लाह तआला इन सब हज़रात से और उन सब से राज़ी हो।

मौलवी खुर्रम अली साहब ने हालांकि 'रआहुम' के अनुवाद में अपनी ओर से "ख्वाब में देखा" शब्द जोड़ दिया, जिसका शाह वलीउल्लाह के मूल पाठ में कोई संकेत नहीं है, फिर भी उन्होंने उच्च आत्माओं द्वारा फ़ैज़ पहुँचाना, इजाज़तें देना और निस्बतें प्रदान करना विवश होकर स्वीकार किया।

मकाल (लेख) 76 और 77: मिर्ज़ा जान-ए-जानाँ साहब फ़रमाते हैं:

[बायाँ बॉक्स - फारसी/पुरानी उर्दू]: हज़रत शेख अब्दुल अहद (रहमतुल्लाह अलैहि) से दो व्यक्तियों ने तरीक़त प्राप्त की; एक ने क़ादरी तरीक़ा अपनाया और दूसरे ने नक़्शबंदी तरीक़ा चुना। उन्होंने कहा कि हज़रत ग़ौस-ए-आज़म की मुबारक रूह तशरीफ़ लाई और अपने खानदान के मुरीद की सूरते-मिसाली (प्रतिरूपी रूप) को साथ ले गई, और हज़रत ख़्वाजा नक़्शबंद तशरीफ़ लाए और अपने मुरीद की सूरते-मिसाली को अपने साथ ले गए। अल्लाह तआला उन पर रहमत फ़रमाए। (3)

[दायाँ बॉक्स - उर्दू अनुवाद]: हज़रत शेख अब्दुल अहद (रहमतुल्लाह अलैहि) से दो व्यक्तियों ने तरीक़त हासिल की; एक ने क़ादरी तरीक़ा लिया और दूसरे ने नक़्शबंदी तरीक़ा अपनाया। हज़रत फ़रमाते हैं कि हज़रत ग़ौस-ए-आज़म की पवित्र आत्मा तशरीफ़ लाई और अपने खानदान के मुरीद की सूरते-मिसाली (प्रतीकात्मक रूप) को अपने साथ ले गई, और हज़रत ख़्वाजा नक़्शबंद तशरीफ़ लाए और अपने अक़ीदतमंद की सूरते-मिसाली को अपने साथ ले गए। अल्लाह तआला उन सब पर अपनी रहमत नाज़िल फ़रमाए। (त)

मकाल (लेख) 78: इस्माईल ने 'सिराते मुस्तक़ीम' में अपने पीर का हाल लिखा:

[बायाँ बॉक्स - फारसी/पुरानी उर्दू]: हज़रत ग़ौस-उस-सक़लैन और हज़रत ख़्वाजा बहाउद्दीन नक़्शबंद की पवित्र रूहें उनकी हालत पर मुतवज्जो (केंद्रित) हुईं, यहाँ तक कि लगभग एक महीने तक दोनों मुक़द्दस रूहों के बीच उन हज़रत के हक़ में तनाज़ा (विवाद) रहा...

[दायाँ बॉक्स - उर्दू अनुवाद]: हज़रत ग़ौस-उस-सक़लैन और हज़रत ख़्वाजा बहाउद्दीन नक़्शबंद की रूहें हज़रत के हाल पर मुतवज्जो हुईं और लगभग एक माह तक दोनों मुक़द्दस रूहों के बीच हज़रत के हक़ में तनाज़ा (विवाद) रहा, इसलिए दोनों...

---

1. अल-क़ौल अल-जमील मअ शरह शिफ़ा अल-अलील, अध्याय 11, सिलसिला क़ादरिया सनद, एच.एम. सईद कंपनी, कराची, पृ. 182।
2. शिफ़ा अल-अलील, अल-क़ौल अल-जमील का अनुवाद, अध्याय 11, सिलसिला क़ादरिया सनद, एच.एम. सईद कंपनी, कराची, पृ. 182।
3. मलफ़ूज़ात मिर्ज़ा मज़हर, कलिमात-ए-तय्यिबात से, मतबअ मुज्तबाई दिल्ली द्वारा प्रकाशित, पृ. 83।

[Arabic Box Section]: نقشبند والخواجه معین الدین بن الحسن الجشتی و انه رآهم واخذ منهم الاجازة وعرف نسبة کل واحد منهم علی حدتها مما فاض منهم علی قلبه وکان یحکی لنا حکایتها رضی الله تعالی عنه وعنهم اجمعین۔1

[Urdu Box Section]: عنہم کی ارواحِ طیبہ سے آدابِ طریقت سیکھے اور ان سے اجازتیں لیں اور ہر ایک کی نسبت جو ان سرکاروں سے ان کے دل پر فائز ہوئی جدا جدا پہچانی اور ہم سے اس کی حکایت بیان کرتے تھے اللہ تعالیٰ ان سب حضرات اور ان سے راضی ہوا۔

مولوی خرم علی صاحب نے اگرچہ رآہم کے ترجمہ میں لفظ "خواب میں دیکھا" اپنی طرف سے بڑھا دیا جس پر کلام شاہ ولی اللہ میں اصلاً دال نہیں، مگر ارواحِ عالیہ کا فیض بخشنا، اجازتیں دینا، نسبتیں عطا فرمانا مجبورانہ مسلم رکھا۔

مقال (۷۶ و ۷۷): مرزا جانجاناں صاحب فرماتے ہیں:

[Left side box - Persian/Old Urdu]: از حضرت شیخ عبدالواحد رحمۃ اللہ علیہ دو کس طریقہ گرفتہ یکے طریقہ قادری اخذ کرد و دیگرے طریقہ نقشبندیہ اختیار نمود ایشاں فرمودند کہ روح مبارک حضرت غوث اعظم تشریف آوردہ صورتِ مثالی مریدِ خاندانِ خود را ہمراہ روند حضرت خواجہ نقشبند تشریف فرما شدہ صورتِ مثالی معتقد خود را باخود بروند رحمۃ اللہ تعالیٰ علیہم3۔

[Right side box - Urdu translation]: حضرت شیخ عبدالاحد رحمۃ اللہ علیہ سے دو آدمیوں نے طریقت حاصل کی، ایک نے طریقہ قادری لیا دوسرے نے طریقہ نقشبندیہ اختیار کیا،

حضرت فرماتے ہیں کہ حضرت غوث اعظم کی روحِ مبارک تشریف لائی اور اپنے خاندان کے مرید کی صورتِ مثالی کو ساتھ لے گئی اور حضرت خواجہ نقشبند تشریف فرما ہو کر اپنے عقیدت مند کی صورتِ مثالی کو اپنے ساتھ لے گئے، رحمۃ اللہ تعالیٰ علیہم اجمعین۔ (ت)

مقال (۷۸): اسمعیل نے صراطِ مستقیم میں اپنے پیر کا حال لکھا:

[Left side box - Persian/Old Urdu]: روحِ مقدس جناب حضرت غوث الثقلین و جناب حضرت خواجہ بہاء الدین نقشبند متوجہ حالِ حضرت ایشاں گردیدہ تا قریب یک ماہ فی الجملہ تنازع در مابین روحیِ مقدسہ بین در حقِ حضرت ایشاں ماندہ

[Right side box - Urdu translation]: حضرت غوث الثقلین اور حضرت خواجہ بہاء الدین نقشبند کی روحیں حضرت کے حال پر متوجہ ہوئیں اور قریب ایک ماہ تک دونوں مقدس روحوں کے درمیان حضرت کے حق میں تنازع رہا اس لیے دونوں

---

1 القول الجمیل معہ شرح شفاء العلیل فصل ۱۱ سند سلسلہ قادریہ ایچ ایم سعید کمپنی کراچی ص ۱۸۲ 2 شفاء العلیل ترجمہ القول الجمیل فصل ۱۱ سند سلسلہ قادریہ ایچ ایم سعید کمپنی کراچی ص ۱۸۲ 3 ملفوظات مرزا مظہر از کلماتِ طیبات مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی ص ۸۳

Fatawa Rizvia Volume 9

Persian Text

Because each of these two Imams was demanding to attract the Master entirely towards himself, until after the period of conflict ended and a settlement for partnership occurred, one day both holy spirits manifested upon the Master. For about one watch (three hours), both Imams exerted strong attention and powerful influence on the Master's noble self, until within that same one watch, the attainment of the spiritual connection (nisbat) of both paths was granted to the Master.

Urdu Translation

Among the maternal uncles, each was demanding to pull the Master completely towards himself. This continued until the period of conflict ended and a settlement for sharing was reached. One day, both holy spirits manifested upon the Master. For nearly one watch, both Imams exerted strong attention and powerful influence on the Master's noble self, until within that same one watch, the connection of both paths was granted to the Master. (T)

Article (79): In the same it is stated:

Persian Text

One day the Master went towards the luminous shrine of the Master of Masters, Khwaja Qutub al-Aqtab Bakhtiyar Kaki (may his secret be sanctified). He sat in meditation at his blessed shrine. During this time, manifestations of realization appeared on the Master's victorious soul, and the Holy Presence bestowed a very strong attention upon the Master, due to which the beginning of the attainment of the Chishti connection was realized.

Urdu Translation

One day the Master went towards the luminous shrine of the Master of Masters, Khwaja Qutub al-Aqtab Bakhtiyar Kaki (may his secret be sanctified). He sat in meditation at his blessed shrine. During this time, manifestations of realization appeared on the Master's victorious soul, and the Holy Presence bestowed a very strong attention upon the Master, due to which the beginning of the attainment of the Chishti connection was realized. (T)

Conclusion Four: The real issue under discussion—seeking help (istimdad) and recourse (iltija) from the noble saints, and calling upon them for prayers and in times of need for one's goals.

Article (80-88): Shah Waliullah stated in 'Hama'at':

Persian Text	Urdu Translation
One should go to visit their graves and seek alms from there.	One should go to visit their graves and seek alms from there. (T)

1. Sirat-e-Mustaqeem, Chapter Four, regarding the path of Prophethood, Al-Maktaba al-Salafiyya, Lahore, p. 166.
2. Sirat-e-Mustaqeem, Chapter Four, regarding the path of Prophethood, Al-Maktaba al-Salafiyya, Lahore, p. 166.
3. Hama'at, Ham' 8, Shah Waliullah Academy, Hyderabad, p. 43.

फ़तावा रज़विया जिल्द नौ (9)

फ़ारसी मूल

चूँकि इन दोनों इमामों में से प्रत्येक हज़रत को पूरी तरह से अपनी ओर खींचने की माँग कर रहे थे, यहाँ तक कि विवाद का समय समाप्त होने और साझेदारी पर समझौता हो जाने के बाद, एक दिन दोनों पवित्र आत्माएँ हज़रत पर प्रकट हुईं। लगभग एक पहर तक दोनों इमामों ने हज़रत के स्वयं के पावन स्वरूप पर शक्तिशाली ध्यान और गहरा प्रभाव डाला, यहाँ तक कि उसी एक पहर के भीतर हज़रत को दोनों मार्गों का आध्यात्मिक संबंध (निस्बत) प्राप्त हो गया।

उर्दू अनुवाद

मामाओं में से हर एक हज़रत को पूरे तौर से अपनी तरफ खींचने का तकाज़ा कर रहे थे यहाँ तक कि ज़माना-ए-तनाज़ा के खत्म होने और शिरकत पर मुसालहत वाके हो जाने के बाद एक दिन दोनों मुक़द्दस रूहें हज़रत पर जलवागर हुईं। एक पहर के करीब दोनों इमाम हज़रत के नफ़्स-ए-नफ़ीस पर कवी तवज्जो और पुरज़ोर तासीर डालते रहे यहाँ तक कि उसी एक पहर के अंदर दोनों तरीक़ों की निस्बत हज़रत को नसीब हो गई। (त)

मक़ाल (79): इसी में है:

फ़ारसी मूल

एक दिन हज़रत ख़्वाजा-ए-ख़्वाजगान ख़्वाजा कुतुब अल-अक़ताब बख्तियार काकी (अल्लाह उनके रहस्य को पवित्र करे) के नूरानी मज़ार की ओर तशरीफ़ ले गए। उनके मुबारक मज़ार पर मुराक़बे में बैठे। इस दौरान हज़रत की रूह-ए-पुर-फ़ुतूह पर हकीक़त की निशानियाँ ज़ाहिर हुईं, और हुज़ूर ने हज़रत पर बहुत मज़बूत तवज्जो दी जिसके कारण चिश्तिया निस्बत की प्राप्ति की शुरुआत मुकम्मल हुई।

उर्दू अनुवाद

एक दिन हज़रत ख़्वाजा-ए-ख़्वाजगान ख़्वाजा कुतुब अल-अक़ताब बख्तियार काकी (अल्लाह उनके रहस्य को पवित्र करे) के मर्कद-ए-अनवर की तरफ हज़रत तशरीफ़ ले गए उनके मर्कद-ए-मुबारक पर मुराक़बा में बैठे इस दौरान हज़रत की रूह-ए-पुर-फ़ुतूह पर अलामात-ए-तहक़ीक़ हुईं, और आँ हुज़ूर ने हज़रत पर बहुत कवी तवज्जो फरमाई जिसके सबब निस्बत-ए-चिश्तिया के हुसूल की इब्तिदा मुतहक़्क़क़ हुई। (त)

वस्ल चहारुम: असली मसला-ए-मसऊला यानी औलिया-ए-कराम से इस्तिम्दाद (मदद माँगना) और इल्तिजा और अपने मक़ासिद में तलब-ए-दुआ और ज़रूरत के वक्त उन्हें पुकारना।

मक़ाल (80-88): शाह वलीउल्लाह ने 'हमाआत' में कहा:

फ़ारसी मूल	उर्दू अनुवाद
उनकी कब्रों की ज़ियारत को जाए और वहाँ से भीख माँगे।	उनकी कब्रों की ज़ियारत को जाए और वहाँ भीख माँगे। (त)

1. सिराते मुस्तकीम, अध्याय चार, राह-ए-नुबुव्वत के बयान में, अल-मक्तबा अल-सलफ़िया लाहौर, पृ. 166।
2. सिराते मुस्तकीम, अध्याय चार, राह-ए-नुबुव्वत के बयान में, अल-मक्तबा अल-सलफ़िया लाहौर, पृ. 166।
3. हमाआत, हम' 8, शाह वलीउल्लाह अकादमी, हैदराबाद, पृ. 43।

متن فارسی	اردو ترجمہ
زیرا کہ ہر دو احد ازیں دو امام تقاضائے جذب حضرت ایشاں بماہمہ بسوئے خود مے فرمود تا ازینکہ بعد انقراض زمانہ تنازع و وقوع مصالحت بر شرکت روزے ہر دو روح مقدس بر حضرت ایشاں جلوہ گر شدند تا قریب یک پاس ہر دو امام بر نفس نفیس حضرت ایشاں توجہ قوی وتاثیر زور آور مے فرمودند تا انیکہ در ہمان یک پاس حصول نسبت ہر دو طریقہ نصیبہ حضرت ایشاں گردید۔	ماموں میں سے ہر ایک حضرت کو پورے طور سے اپنی طرف کھینچنے کا تقاضا کر رہے تھے یہاں تک کہ زمانہ تنازع کے ختم ہونے اور شرکت پر مصالحت واقع ہو جانے کے بعد ایک دن دونوں مقدس روحیں حضرت پر جلوہ گر ہوئیں ایک پہر کے قریب دونوں امام حضرت کے نفس نفیس پر قوی توجہ اور پر زور تاثیر ڈالتے رہے یہاں تک کہ اسی ایک پہر کے اندر دونوں طریقوں کی نسبت حضرت کو نصیب ہوگئی۔ (ت)

مقال (۷۹): اسی میں ہے:

متن فارسی	اردو ترجمہ
روزے حضرت ایشاں بسوئے مرقد منور حضرت خواجہ خواجگان خواجہ قطب الاقطاب بختیار کاکی قدس سرہ العزیز تشریف فرما شدند بر مرقد مبارک ایشاں مراقب نشستند دریں اثناء بروح پر فتور	ایک دن حضرت خواجہ خواجگان خواجہ قطب الاقطاب بختیار کاکی قدس سرہ العزیز کے مرقد انور کی طرف حضرت تشریف لے گئے ان کے مرقد مبارک پر مراقبہ میں بیٹھے اس دوران حضرت کی روح پر فتوح پر علامات تحقیق ہوئیں، اور آں حضور

متن فارسی	اردو ترجمہ
ایشاں توجہ قوی فرمودند کہ بسبب آں توجہ ابتدائے حصول نسبت چشتیہ متحقق شد۔	نے حضرت پر بہت قوی توجہ فرمائی جس کے سبب نسبت چشتیہ کے حصول کی ابتداء متحقق ہوئی۔ (ت)

وصل چہارم۔۔۔ اصل مسئلہ مسئولہ مسائل یعنی اولیائے کرام سے استمداد والتبجا اور اپنے مطالب میں طلب دعا اور حاجت کے وقت ان کی ندا میں۔

مقال (۸۸-۸۰): شاہ ولی اللہ نے ہمعات میں کہا:

متن فارسی	اردو ترجمہ
بزیارت قبرا یشاں روندو از آں جا انخذاب در یوزہ کنند۔	ان کی قبروں کی زیارت کو جائے اور وہاں بھیک مانگے۔ (ت)

1 صراط مستقیم باب چہارم در بیان سلوک راہ نبوت الخ المکتبۃ السلفیہ لاہور ص ۱۶۶ 2 صراط مستقیم باب چہارم در بیان سلوک راہ نبوت الخ المکتبۃ السلفیہ لاہور ص ۱۶۶ 3 ہمعات ہمع ۸ اکادمیہ شاہ ولی اللہ حیدر آباد ص ۴۳

Fatawa Razawiya, Volume 9

It was stated in a quatrain: Seek holy grace from their spiritual resolve.[1] (Remain a seeker of holy grace through their resolve. - T)

[82] Then Maulvi [83] Khurram Ali says: Be near the deceased and then say 'O Soul'[2]. [84] In 'Azizi' it is stated:

Ovaisis achieve the objective of spiritual perfections from them.[3] | People achieve the objective of spiritual perfections from them. (T)

And it was stated: Those in need seek the solution to their difficulties from them.[4] | People of life seek the solution to their difficulties from them. (T)

[85] In the same it is: Benefiting from the buried saints is ongoing.[5] (Benefiting from the buried saints is ongoing. - T). [86] Mirza Sahib said regarding Mawla Ali (Karam Allah Wajhahu): "In physical ailment, attention is directed towards his presence"[6] (In physical ailment, attention turns towards him. - T). All these statements were mentioned in the first objective. [88] Shah Abdul Aziz said regarding Syed Ahmad Zarruq (Radhiyallahu Anhu): "He is a person of grand stature whose rank of perfection is beyond mention"[7] (He is a person of grand stature whose rank of perfection is higher than words. - T). Then he quoted from him: "In distress call out 'O Zarruq', I will immediately come for help."[8] This was mentioned for the same purpose.

Comparison (89): In Mirza Sahib's testaments it is: Seek the beggar's bowl of tranquility through the grace of visiting the shrines of the saints.[9] etc. (Beg for the grace of tranquility from the grace of the shrines of the saints. - T)

---

[1] Luma'at Maktoobat Shah Waliullah with Kalimaat-e-Tayyibat, Letter 22, Commentary on Quatrains, Matba' Mujtabai Delhi, p. 194 [2] Shifa al-Alil, translation of al-Qawl al-Jamil, Kashf-e-Quboor and benefiting therefrom, H.M. Saeed Company Karachi, p. 72 [3] Tafseer Azizi, under verse 'Wal-qamari idha-ttasaq', Muslim Book Depot Lal Kuan Delhi, 5/123 [4] Tafseer Azizi, Benefiting from buried saints, Muslim Book Depot Lal Kuan Delhi, 5/123 [5] Tafseer Azizi, Benefiting from buried saints, Muslim Book Depot Lal Kuan Delhi, 5/123 [6] Malfoozat Mirza Mazhar Jan-e-Janan from Kalimaat Tayyibat, Matba' Mujtabai Delhi, p. 87 [7] Bustan al-Muhadditheen, marginalia of al-Bukhari for Zarruq, H.M. Saeed Company Karachi, p. 321 [8] Bustan al-Muhadditheen, marginalia

of al-Bukhari for Zarruq, H.M. Saeed Company Karachi, p. 321 [9] Kalimaat Tayyibat, Advices and Testaments of Mirza Sahib, Matba' Mujtabai Delhi, p. 89

फ़तावा रज़विया, खंड 9

रुबाई में कहा गया: उनकी रूहानी संकल्प शक्ति (हिम्मत) से पवित्र अनुग्रह (फ़ैज़-ए-क़ुद्स) की तलाश करो।[1] (उनके संकल्प से पवित्र अनुग्रह के अभिलाषी रहो। - त)

[82] फिर मौलवी [83] ख़ुर्रम अली कहते हैं: मृतक के पास हो फिर कहे 'ऐ रूह' [2]। [84] 'अज़ीज़ी' में फ़रमाया गया:

ओवैसी लोग रूहानी पूर्णता (कमालात-ए-बातनी) का उद्देश्य उन्हीं से प्राप्त करते हैं।[3] | लोग रूहानी पूर्णता का उद्देश्य उनसे प्राप्त करते हैं। (त)

और फ़रमाया: जरूरतमंद अपनी समस्याओं का समाधान उन्हीं से मांगते हैं।[4] | जीवित लोग अपनी समस्याओं का समाधान उनसे मांगते हैं (त)

[85] उसी में है: "दफ़न किए गए औलिया से लाभ उठाना जारी है।"[5] (दफ़न औलिया से लाभ उठाना जारी है। - त)। [86] मिर्ज़ा साहब ने मौला अली (करम अल्लाह वज्हहू) के बारे में कहा: "शारीरिक बीमारी में उनकी उपस्थिति की ओर ध्यान जाता है।"[6] (शारीरिक कष्ट में उनकी ओर ध्यान आकर्षित होता है। - त) कि ये सभी कथन पहले उद्देश्य में गुज़रे। [88] शाह अब्दुल अज़ीज़ ने सैयद अहमद ज़र्रूक़ (रज़ियल्लाहु अन्हु) के बारे में कहा: "वे एक महान व्यक्तित्व हैं जिनका पूर्णता का स्तर शब्दों से परे है।"[7] (वे एक महान व्यक्तित्व हैं जिनका पूर्णता का स्तर ज़िक्र से ऊंचा है। - त)। फिर उनसे उद्धृत किया: "संकट में 'या ज़र्रूक़' कहकर पुकारें, मैं तुरंत मदद के लिए आऊंगा।"[8] यह इसी संदर्भ में आया है।

तुलना (89): मिर्ज़ा साहब की वसीयतों में है: "औलिया के मज़ार की ज़ियारत के माध्यम से मन की शांति की भीख मांगें।"[9] इत्यादि। (औलिया के मज़ार के फ़ैज़ से मन की शांति की भीख मांगो। - त)

---

1. लमआत मक़तूबात शाह वलीउल्लाह मअ कलिमात-ए-तय्यिबात, मक़तूब 22, शरह रुबाइयात, मतबा मुजतबाई देहली, पृ. 194
2. शिफ़ा अल-अलील, तर्जुमा अल-क़ौल अल-जमील, कश्फ़-ए-क़ुबूर व इस्तफ़ादा, एच.एम. सईद कंपनी कराची, पृ. 72
3. तफ़सीर अज़ीज़ी, आयत 'वल-क़मरि इज़ा-त्तसक़' के नीचे, मुस्लिम बुक डिपो लाल कुआं देहली, 5/123

4. तफ़सीर अज़ीज़ी, मदफ़ून औलिया से लाभ, मुस्लिम बुक डिपो लाल कुआं देहली, 5/123
5. तफ़सीर अज़ीज़ी, मदफ़ून औलिया से लाभ, मुस्लिम बुक डिपो लाल कुआं देहली, 5/123
6. मलफ़ूज़ात मिर्ज़ा मज़हर जान-ए-जानां अज़ कलिमात तय्यिबात, मतबा मुजतबाई देहली, पृ. 87
7. बुस्तान अल-मुहद्दिसीन, हाशिया अल-बुखारी लिल-ज़र्रूक़, एच.एम. सईद कंपनी कराची, पृ. 321
8. बुस्तान अल-मुहद्दिसीन, हाशिया अल-बुखारी लिल-ज़र्रूक़, एच.एम. सईद कंपनी कराची, पृ. 321
9. कलिमात तय्यिबात, नसायेह व वसाया मिर्ज़ा साहब, मतबा मुजतबाई देहली, पृ. 89

فتاوٰی رضویہ، جلد نہم

رباعی میں کہا: ع فیض قدس از ہمت ایشاں میجو ۱ (ان کے ہمت سے فیض قدس کے خواستگار رہو۔ ت)

۸۲ وہ پھر مولوی ۸۳ خرم علی کہتے ہیں: میت سے قریب ہو پھر کہے یا روح ۸۴.۲ عزیزی میں فرمایا: اویسیاں تحصیلِ مطلب کمالاتِ باطنی از آنہا می نمایند ۳۔ اویسی | لوگ باطنی کمالات کا مقصد ان سے حاصل کرتے ہیں۔ (ت)

اور فرمایا: ارباب حاجات حل مشکلات خود از آنہا می طلبند ۴۔ | اہل حیات اپنی مشکلات کا حل ان سے طلب کرتے ہیں (ت)

۸۵ اسی میں ہے: از اولیائے مدفونین استفادہ جاری است ۵ (مدفون اولیاء سے استفادہ جاری ہے۔ ت) ۸۶ مرزا صاحب نے مولٰی علی کرم اللہ وجہہ کی نسبت کہا: در عارضہ جسمانی توجہ بآنحضرت واقع می شود ۶ (عارضہ جسمانی میں آں حضرت کی طرف توجہ ہوتی ہے۔ ت) کہ یہ سب اقوال مقصد اول میں گزرے۔ ۸۸ شاہ عبدالعزیز نے سید احمد زروق رضی اللہ تعالٰی عنہ کی نسبت کہا: مردے جلیل القدر بست کہ مرتبہ کمال او فوق الذکراست ۷ (ایک جلیل القدر شخصیت ہیں جن کا رتبہ کمال ذکر سے بالاتر ہے۔ ت) پھر ان سے نقل کیا: "مصیبت میں یا زروق کہہ کر پکار میں فوراً مدد کو آؤں گا۔" ۸ یہ اسی مقصد میں گزرا۔

مقال (۸۹): مرزا صاحب کے وصایا میں ہے: بزیارت مزارات اولیاء دریوزہ فیض جمعیت کن ۹ الخ (مزارات اولیاء کے فیض سے دل جمعی کے فیض کی بھیک مانگو۔ (ت)

۱ لمعات مکتوبات شاہ ولی اللہ مع کلماتِ طیبات مکتوب بست و دوم شرح رباعیات مطبع مجتبائی دہلی ص ۱۹۴ ۲ شفاء العلیل ترجمہ القول الجمیل کشفِ قبور و استفادہ بدان ایچ ایم سعید کمپنی کراچی ص ۷۲ ۳ تفسیر عزیزی زیر آیۃ والقمر اذا تسق مسلم بک ڈپور لال کنواں دہلی ۵ / ۱۲۳ ۴ تفسیر عزیزی استفادہ از اولیائے مدفونین مسلم بک ڈپور لال کنواں دہلی ۵ / ۱۲۳ ۵ تفسیر عزیزی استفادہ از اولیائے مدفونین مسلم بک ڈپور لال کنواں دہلی ۵ / ۱۲۳ ۶ ملفوظات مرزا مظہر جانجاناں از کلمات طیبات مطبع مجتبائی دہلی ص ۸۷ ۷ بستان المحدثین حاشیہ البخاری للزروق ایچ ایم سعید کمپنی کراچی ص ۳۲۱ ۸ بستان المحدثین حاشیہ البخاری للزروق ایچ ایم سعید کمپنی کراچی ص ۳۲۱ ۹ کلمات طیبات نصائح و وصایا مرزا صاحب مطبع مجتبائی دہلی ص ۸۹

Fatawa Rizvia Volume 9

Passage (90 to 102): Shah Waliullah writes in the book 'Al-Intibah fi Salasil Awliya Allah':

Persian: This humble servant wore the robe (khirqa) from Sheikh Abu Tahir Kurdi, and he granted permission for the practices mentioned in Jawahir-e-Khamsa. 1 Urdu: This humble servant wore the robe from Sheikh Abu Tahir Kurdi, and he granted permission for the practices mentioned in Jawahir-e-Khamsa. (T)

Then he said:

Persian: Also, when this humble servant reached Lahore during the Hajj journey and kissed the hand of Sheikh Muhammad Saeed Lahori, he granted permission for the 'Dua-e-Saifi', rather he gave permission for all the practices of Jawahir-e-Khamsa. 2 Urdu: Also, when this humble servant reached Lahore during the Hajj journey and kissed the hand of Sheikh Muhammad Saeed Lahori, he granted permission for the 'Dua-e-Saifi', rather he gave permission for all the practices of Jawahir-e-Khamsa. (T)

This Sheikh Abu Tahir Kurdi Madani is the teacher of Hadith and the spiritual guide of Shah Waliullah. Having stayed in Madinah Tayyiba for a long time in his service, he obtained the chains of Hadith transmission, which reached Shah Abdul Aziz through him and then to Molvi Ishaq. Regarding Sheikh Muhammad Saeed, it is written in 'Al-Intibah':

Persian: He was one of the eminent and trustworthy masters of the spiritual path. 3 Urdu: He was one of the eminent and aged elder masters of the spiritual path. (T)

In the same book, the chains of permission from both masters are described, proving that Sheikh Ibrahim Kurdi, the father of Sheikh Abu Tahir Madani, and his teacher Sheikh Ahmad Qashashi, and his teacher Sheikh Ahmad Shinnawi, and Shah Waliullah's teacher of teachers Ahmad Nakhli—all four are part of most of Shah Waliullah's Hadith transmission chains, as is evident from 'Al-Musalsalat' and others (T). And the spiritual guide of that elderly trustworthy Sheikh, Sheikh Muhammad Ashraf Lahori, and his guide Maulana Abdul Malik, and his guide Sheikh Bayazid Thani, and Sheikh Shinnawi, the guide of Hadrat Sayyid Sibghatullah Baruji—and the guide of both these gentlemen, Maulana Wajihuddin Alvi—all these scholars and masters received permissions for 'Saifi' and other practices of 'Jawahir-e-Khamsa' from their teachers and granted them to their students. And Hazrat Shah Muhammad Ghaus Gwaliari is the endpoint of these chains and the author of

'Jawahir-e-Khamsa', may Allah Almighty have mercy on them all. Now observe what is written in the method of the same 'Dua-e-Saifi' in 'Jawahir-e-Khamsa':

Persian: Recite 'Nad-e-Ali' seven times, or three times, or once; and it is this. Urdu: Recite 'Nad-e-Ali' seven times, or three times, or once; and it is this:

1. Al-Intibah fi Salasil Awliya Allah, Tariqa Shattariyya, Barqi Press Delhi, p. 47
2. Al-Intibah fi Salasil Awliya Allah, Tariqa Shattariyya, Barqi Press Delhi, p. 48
3. Al-Intibah fi Salasil Awliya Allah, Tariqa Shattariyya, Barqi Press Delhi, p. 47

फतावा रज़विया, खंड 9

लेख (90 से 102): शाह वलीउल्लाह अपनी पुस्तक 'अल-इंतिबाह फ़ी सलासिल औलिया अल्लाह' में लिखते हैं:

फारसी: इस फ़कीर ने शेख अबू ताहिर कुर्दी से ख़िरक़ा (वस्त्र) प्राप्त किया और उन्होंने जवाहिर-ए-ख़मसा में वर्णित कार्यों की अनुमति दी। 1 उर्दू: इस फ़कीर ने शेख अबू ताहिर कुर्दी से ख़िरक़ा पहना और उन्होंने जवाहिर-ए-ख़मसा में जो कुछ है उसके अमल की अनुमति दी। (त)

फिर कहा:

फारसी: इसी तरह, जब यह फ़कीर हज यात्रा के दौरान लाहौर पहुँचा और शेख मुहम्मद सईद लाहौरी के हाथ चूमने का सौभाग्य प्राप्त किया, तो उन्होंने दुआ-ए-सैफ़ी की अनुमति दी, बल्कि जवाहिर-ए-ख़मसा के सभी कार्यों की अनुमति दी। 2 उर्दू: फ़कीर ने हज यात्रा के दौरान जब लाहौर पहुँचा, शेख मुहम्मद सईद लाहौरी की दस्तबौसी (हाथ चूमना) पाई, उन्होंने दुआ-ए-सैफ़ी की अनुमति दी बल्कि जवाहिर-ए-ख़मसा के तमाम अमलियात की अनुमति दी। (त)

ये शेख अबू ताहिर कुर्दी मदनी शाह वलीउल्लाह के हदीस के उस्ताद और सिलसिले के पीर हैं। मदीना तैयबा में लंबे समय तक उनकी सेवा में रहकर हदीस के सिलसिले प्राप्त किए, वही उनसे शाह अब्दुल अज़ीज़ साहब और उनसे मौलवी इस्हाक़ तक पहुँचे। और शेख मुहम्मद सईद के संबंध में 'इंतिबाह' में लिखा है:

फारसी: वह तरीक़त के गणमान्य और विश्वसनीय बुजुर्ग शेख थे। 3 उर्दू: वे तरीक़त के प्रमुख प्रतिष्ठित और एक उम्रदराज़ शेख थे। (त)

उसी पुस्तक में दोनों मशाइख़ से इजाज़त के सिलसिले बयान किए गए हैं जिनसे प्रमाणित होता है कि शेख इब्राहिम कुर्दी, जो शेख अबू ताहिर मदनी के पिता थे, और उनके उस्ताद शेख अहमद कशाशी, और उनके उस्ताद शेख अहमद शन्नावी, और शाह वलीउल्लाह के उस्तादुल-उस्ताद अहमद नख़ली —ये चारों महानुभाव भी शाह वलीउल्लाह के अधिकांश हदीस के सिलसिलों में शामिल हैं, जैसा कि 'अल-मुसलसलात' आदि से स्पष्ट होता है। और उन वृद्ध विश्वसनीय शेख के पीर शेख मुहम्मद अशरफ लाहौरी, उनके शेख मौलाना अब्दुल मलिक, उनके शेख बायज़ीद सानी, और शेख शन्नावी जो हज़रत सैय्यद सिबगतुल्लाह बरूजी के पीर हैं—और इन दोनों सज्जनों के पीर मौलाना वजीहुद्दीन

अल्वी—इन सभी विद्वानों और मशाइख़ ने सैफ़ी आदि जवाहिर-ए-ख़मसा के आमाल की अनुमतियाँ अपने उस्तादों से प्राप्त कीं और अपने शिष्यों को प्रदान कीं। और जनाब शाह मुहम्मद गौस ग्वालियर तो इन सिलसिलों के अंतिम पड़ाव और जवाहिर-ए-ख़मसा के लेखक हैं, अल्लाह उन सब पर दया करे। अब देखिए कि इसी जवाहिर-ए-ख़मसा में दुआ-ए-सैफ़ी की विधि में क्या लिखा है:

फारसी: सात बार, या तीन बार, या एक बार नाद-ए-अली पढ़ें और वह यह है। उर्दू: सात बार, या तीन बार, या एक बार नाद-ए-अली पढ़े, और वह यह है:

1. अल-इंतिबाह फ़ी सलासिल औलिया अल्लाह, तरीक़ा शत्तारिया, बरक़ी प्रेस दिल्ली, पृष्ठ 47
2. अल-इंतिबाह फ़ी सलासिल औलिया अल्लाह, तरीक़ा शत्तारिया, बरक़ी प्रेस दिल्ली, पृष्ठ 48
3. अल-इंतिबाह फ़ी सलासिल औलिया अल्लाह, तरीक़ा शत्तारिया, बरक़ी प्रेस दिल्ली, पृष्ठ 47

पृष्ठ 823 का 948

فتاوی رضویہ جلد نہم

مقال (۹۰ تا ۱۰۲): شاہ ولی اللہ کتاب الانتباہ فی سلاسل اولیاء اللہ میں لکھتے ہیں:

این فقیر خرقہ از شیخ ابو طاہر کردی پوشیدہ و ایشاں بعمل آنچہ در جواہر خمسہ است اجازت دادند

۱۔ اس فقیر نے شیخ ابو طاہر کردی سے خرقہ پہنا اور انھوں نے جواہر خمسہ میں جو کچھ ہے اس کے عمل کی اجازت دی۔ (ت)

پھر کہا:

وایضاً فقیر در سفر حج چوں بہ لاہور رسید و دست بوس شیخ محمد سعید لاہوری دریافت ایشاں اجازت و دعائے سیفی دادند بل اجازت جمیع اعمال جواہر خمسہ ۲۔ فقیر سفر حج میں جب لاہور پہنچا شیخ محمد سعید لاہوری کی دست بوسی پائی انھوں نے دعائے سیفی کی اجازت دی بلکہ جواہر خمسہ کے تمام عملیات کی اجازت دی۔ (ت)

یہ شیخ ابو طاہر کردی مدنی شاہ ولی اللہ کے شیخ حدیث و پیر سلسلہ ہیں، مدینہ طیبہ میں مدتوں ان کی خدمت میں رہ کر سلاسل حدیث حاصل کئے کہ وہی ان سے شاہ عبد العزیز صاحب اور ان سے مولوی اسحق کو پہنچے اور شیخ محمد سعید کی نسبت انتباہ میں لکھا:

یکی از اعیان مشائخ طریقہ بودند شیخ معمر ثقہ ۳۔ ممتاز شیخ مشائخ طریقت میں سے ایک عمر رسیدہ شیخ تھے (ت)

اسی میں دونوں مشائخ سے سلاسل اجازت بیان کیے جن سے ثابت کہ شیخ ابراہیم کردی والد شیخ ابو طاہر مدنی اور ان کے استاذ شیخ احمد قشاشی اور ان کے استاذ شیخ احمد شناوی اور شاہ ولی اللہ کے استاذ الاستاذ احمد نخی کہ یہ چاروں حضرات بھی شاہ ولی اللہ کے اکثر سلاسل حدیث میں

داخل ہیں کما یظہر من المسلسلات و غیرہا (جیسا کہ مسلسل احادیث وغیرہ کی سند سے ظاہر ہے۔ ت) اور ان شیخ معمر ثقہ کے پیر شیخ محمد اشرف لاہوری اور ان کے شیخ مولانا عبد الملک اور ان کے شیخ بلیزید ثانی اور شیخ شناوی پیر حضرت سید صبغۃ اللہ بروجی اور ان دونوں صاحبوں کے پیر مولانا وجیہ الدین علوی ان سب علماء و مشائخ نے سیفی وغیرہ اعمال جواہر خمسہ کی اجازتیں اپنے اساتذہ سے لیں اور تلامذہ کو عطا کیں، اور جناب شاہ محمد غوث گوالیاری تو ان سلاسل کے منتہی اور جواہر خمسہ کے مولف ہیں رحمہ اللہ تعالیٰ علیہ اجمعین۔ اب ملاحظہ ہو کہ اسی جواہر خمسہ میں اسی دعائے سیفی کی ترکیب میں کیا لکھا ہے:

ناد علی ہفت بار یا سہ بار یا یک بار بخواندہ و آن این است۔ سات بار، یا تین بار، یا ایک بار نادِ علی پڑھے ، اور وہ یہ ہے:

1 الانتباہ فی سلاسل اولیاء اللہ طریقہ شطاریہ برقی پریس دہلی ص ۴۷ 2 الانتباہ فی سلاسل اولیاء اللہ طریقہ شطاریہ برقی پریس دہلی ص ۴۸ 3 الانتباہ فی سلاسل اولیاء اللہ طریقہ شطاریہ برقی پریس دہلی ص ۴۷

Fatawa Razawiya, Volume 9

[Boxed Text - Poem and Translation] Call upon Ali, the manifester of wonders | Call upon Hazrat Ali, the manifestor of wonderful things; in sudden calamities You will find him a helper for you in afflictions | and misfortunes, you will find him your helper; every grief and sorrow Every worry and grief will dissipate | will be removed through your guardianship (Wilayah), O Ali, O Ali, O Ali! By your guardianship, O Ali, O Ali, O Ali! | (T)

[Main Body Text] If believing Mawla Ali to be the remover of difficulties (Mushkil-Kusha), knowing him as a helper in times of calamity, calling upon him in times of sorrow and distress, or chanting 'Ya Ali, Ya Ali' were polytheism (shirk), then God forbid, according to you, all the aforementioned personages would be infidels (kuffar) and polytheists (mushrikeen). Most of all, Shah Waliullah would be a major polytheist and a staunch infidel (God protect us!), who recognized those whom you call polytheists as friends of Allah (Awliya Allah), accepted them as his spiritual guides (Shaykh and Murshid) and sources of his spiritual lineage, took chains of narration (sanads) for the Prophetic Hadiths from them, served them and performed menial tasks for years, declared them as reliable and just scholars, and used the term 'hand-kissing' to describe meeting them. The title of Hadith scholars (Muhadditheen) and chains of narration would be wasted if so many polytheists were part of them. Furthermore, Shah Abdul Aziz had the same relationship of service, devotion, studentship, allegiance, and praiseful faith with Shah Waliullah, and all their chains of narration, according to your view, would include this 'greatest polytheist' and 'biggest infidel'. Where is the sovereignty, where is the expertise in Hadith? Even the safety of basic faith would be in question. 'To Allah we belong and to Him we shall return.' Then where do poor Mawlawi Ishaq and Miyan Ismail stand? All their spiritual feats would be lost in the furnace of this 'Shirkistan' (land of polytheism). They would be the offspring of polytheists, the children of polytheists; their spiritual guide would be a polytheist, their teacher a polytheist. As soon as they opened their eyes, they saw polytheists; as soon as they gained consciousness, they were spoiled among polytheists. They were raised in the laps and arms of polytheists, nurtured on polytheist's milk, involved in polytheist's actions, grown up among polytheists, learned from polytheists, and studied under polytheists. A polytheist grandfather, a polytheist maternal grandfather; they spent their whole lives knowing and acknowledging polytheists. We seek refuge with Allah, the Lord of the worlds, and there is no power nor strength except with Allah, the Manifest Truth. Let Muslims see

the consequence of declaring 'Ya Ali, Ya Ali' as shirk. Had they not unjustly labeled Muslims as polytheists, they would not have suffered the calamity of turning their predecessors and successors into polytheists. It is better for them to come to the right path and not label true Muslims as polytheists; otherwise, they should worry about their own faith, lest they forget what they have done.

[Bottom Boxed Text - Verses and Closing] Have you seen how the unjust blood of the moth | Have you seen how the unjust blood of the moth did not give the candle even as much respite did not give the candle respite to see the dawn | as to last until dawn? (T). We ask God for safety and a good end. We ask Allah for safety and a good end. Amen. | We are seekers of well-being, O Lord, accept it! (T)

---

1. Jawahir-e-Khamsa Urdu translation, Chapter 13, Prayers and Litanies, Dar-ul-Isha'at Musafir Khana Karachi, pp. 282 & 253.

फ़तावा रज़विया, जिल्द 9

[बॉक्स में पाठ - कविता और अनुवाद] हज़रत अली को पुकारो जो अजूबों के मज़हर हैं | हज़रत अली को पुकारो जो अद्भुत चीज़ों के प्रकटीकरण स्थल हैं; अचानक आने वाली तुम उन्हें मुसीबतों में अपना मददगार पाओगे | आफ़तों और मुसीबतों में तुम उन्हें अपना मददगार पाओगे; हर रंज-ओ-ग़म दूर हर रंज-ओ-ग़म दूर हो जाएगा | हो जाएगा आपकी विलायत (संरक्षण) के ज़रिए, ऐ अली, ऐ अली, ऐ अली! आपकी विलायत के ज़रिए, ऐ अली, ऐ अली, ऐ अली! | (त)

[मुख्य पाठ] अगर मौला अली को मुश्किल-कुशा (कठिनाइयों को दूर करने वाला) मानना, मुसीबत के समय उन्हें मददगार जानना, दुख और तकलीफ़ के समय उन्हें पुकारना, या 'या अली, या अली' का विर्द करना शिर्क(बहुदेववाद) हो, तो अल्लाह की पनाह! तुम्हारे नज़दीक ऊपर ज़िक्र किए गए सभी हज़रात काफ़िर और मुशरिक (बहुदेववादी) ठहरेंगे। और सबसे बढ़कर भारी मुशरिक और कट्टर काफ़िर (अल्लाह की पनाह!) शाह वलीउल्लाह होंगे, जो उन लोगों को 'औलिया अल्लाह' (अल्लाह के मित्र) जानते थे जिन्हें तुम मुशरिक कहते हो, उन्हें अपना शैख़, मुर्शिद और सिलसिले का मरकज़ मानते थे, उनसे नबी (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) की हदीसों की सनदें (प्रमाण) लेते थे, बरसों उनकी सेवा की और उनके जूते उठाए, उन्हें विश्वसनीय और न्यायप्रिय शैख़ बताते थे, और उनसे मिलने को 'हाथ चूमने' के शब्द से व्यक्त करते थे। मुहद्दिसीन (हदीस के विद्वान) का तमग़ा और हदीस की सनदें इस तरह बर्बाद हो गईं कि इतने सारे 'मुशरिक' उनमें शामिल हो गए। फिर शाह अब्दुल अज़ीज़ साहब का शाह वलीउल्लाह साहब से यही सेवा, भक्ति, शिष्यता, बैअत और अक़ीदत भरी प्रशंसा का संबंध था। और उनकी सभी सनदों में, तुम्हारे हिसाब से, यह 'सबसे बड़ा मुशरिक' और 'सबसे बड़ा काफ़िर' शामिल है। फिर कैसी बादशाही, कैसी मुहद्दिसी? असल ईमान की सलामती भी मुश्किल है। 'बेशक हम अल्लाह ही के हैं और उसी की तरफ़ लौटने वाले हैं।' फिर बेचारे मौलवी इसहाक़ और मियां इस्माईल किस गिनती में हैं? उनकी तो सारी करामातें इसी 'शिर्किस्तान' (बहुदेववाद की भूमि) की भट्टी में झोंक दी गईं। वे मुशरिकों की नस्ल, मुशरिकों की औलाद हैं; मुशरिक ही उनका पीर, मुशरिक ही उनका उस्ताद है। आँख खुलते ही मुशरिक नज़र आए, होश संभालते ही वे मुशरिकों के बीच बिगड़ गए। मुशरिकों की गोद, मुशरिकों की बग़ल, मुशरिकों का दूध, मुशरिकों का अमल। वे मुशरिकों में पले, मुशरिकों में बढ़े, मुशरिकों से सीखा, मुशरिकों से पढ़ा। मुशरिक दादा, मुशरिक नाना; उन्होंने पूरी उम्र मुशरिकों को जाना और माना। अल्लाह की पनाह जो तमाम जहानों का रब है, और अल्लाह के सिवा कोई ताक़त और कुव्वत नहीं

जो ज़ाहिर हक़ है। मुसलमान देखें कि 'या अली, या अली' को शिर्क ठहराने की क्या सज़ा मिली। न नाहक़ मुसलमानों को मुशरिक कहते, न अगलों-पिछलों के मुशरिक बनने की मुसीबत सहते। इससे यही बेहतर है कि वे सीधे रास्ते पर आएँ और सच्चे मुसलमानों को मुशरिक न बनाएँ, अन्यथा उन्हें अपने स्वयं के ईमान की चिंता करनी चाहिए, कहीं वे यह न भूल जाएँ कि उन्होंने क्या किया है।

[नीचे बॉक्स में पाठ - छंद और समापन] क्या तुमने देखा कि परवाने के नाहक़ ख़ून ने शमअ को | देखा कि परवाने के नाहक़ ख़ून ने शमअ (मोमबत्ती) को इतनी भी मोहलत न दी कि इतनी भी मोहलत न दी कि रात से सुबह हो जाए | रात से सुबह हो जाए (त)। हम खुदा से आफ़ियत और अच्छे अंजाम की हम अल्लाह से आफ़ियत और अच्छे अंजाम की दुआ करते हैं। | ख़ैरियत के तलबगार हैं, ऐ अल्लाह! क़बूल फ़रमा! (त)

---

1. जवाहर-ए-ख़म्सा उर्दू अनुवाद, अध्याय 13, मुनाजात और औराद, दारुल इशाअत मुसाफ़िर खाना कराची, पृष्ठ 282 और 253।

पृष्ठ 824/948

فتاوٰی رضویہ، جلد نہم

[باکس میں متن - نظم اور ترجمہ] ناد علیا مظہر العجائب | حیرت زاد چیزوں کے مظہر حضرت علی کو ندا کر انھیں ناگہانی تجدہ عونا لك في النوائب | آفتوں مصیبتوں میں اپنا مددگار پائے گا ہر رنج و غم دور کل ہم و غم سینجلی | ہو جائے گا آپ کی ولایت سے اے علی، اے علی، اے علی! بولایتك یا علی یا علی یا علی | (ت)

[اصل متن] اگر مولا علی کو مشکل کشا ماننا، مصیبت کے وقت مددگار جاننا، ہنگامِ غم و تکلیف اس جناب کو ندا کرنا، یا علی یا علی کا دم بھرنا شرک ہو تو معاذ اللہ تمھارے نزدیک حضراتِ مذکورین سب کفار و مشرکین ٹھہریں، اور سب سے بڑھ کر بھاری مشرک کٹر کافر عیاذاً باللہ شاہ ولی اللہ ہوں جو مشرکوں کو اولیاء اللہ جانتے، اپنا شیخ و مرشد و مرجعِ سلسلہ مانتے، احادیثِ نبی صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم کی سندیں ان سے لیتے، مدتوں ان کی خدمتگاری و کفش برداری کی داد دیتے، انھیں شیخ ثقہ و عادل بتلاتے، ان کی ملاقات کو بلفظ دست بوس تعبیر فرماتے ہیں، محدثین کا تمغہ، حدیث کی سندیں یوں برباد ہوئیں کہ اتنے مشرکین ان میں داخل، پھر شاہ عبدالعزیز صاحب کو شاہ ولی اللہ صاحب سے یہی نسبتِ خدمت و ارادت و تلمیذ و بیعت و مدحِ عقیدت حاصل، اور ان کی سب سندوں میں تمھارے طور پر یہ مشرکِ اعظم و کافرِ اکبر شامل، کہاں کی شاہی، کیسی محدثی، اصل ایمان کی سلامتی مشکل، انا للہ وانا الیہ راجعون۔ پھر مولوی اسحاق و میاں اسمعیل بیچارے کس گنتی میں کہ ان کی تو ساری کرامات اسی شرکتان کی بھٹی میں مشرکوں کی نسل، مشرکوں کی اولاد، مشرک ہی پیر، مشرک ہی استاد۔ آنکھ کھلتے ہی مشرک نظر پڑے، ہوش سنبھلتے ہی مشرکوں میں بگڑے، مشرکوں کی گود، مشرکوں کی بغل، مشرکوں کا دودھ، مشرکوں کا عمل، مشرکوں میں پلے، مشرکوں میں بڑھے، مشرکوں سے سیکھے، مشرکوں سے پڑھے

مشرک دادا۔ مشرک نانا، عمر بھر مشرکوں کو جانا مانا، العیاذ باللہ رب العلمین ولا حول ولا قوۃ الا باللہ الحق المبین، مسلمان دیکھیں کہ یا علی یا علی کو شرک ٹھہرانے کی کیا سزا ملی، نہ ناحق مسلمانوں کو مشرک کہتے نہ اگلوں پچھلوں کے مشرک بننے کی مصیبت سہتے، اس سے یہی بہتر کہ راہِ راست پر آئیں، سچے مسلمانوں کو مشرک نہ بنائیں ورنہ اپنوں کے ایمان کی فکر فرمائیں کہ کرد کہ نیافت کہ بھول نہ جائیں۔

[نیچے باکس میں متن - اشعار اور اختتام] دیدی کہ خونِ ناحق پروانہ شمع را | دیکھا کہ پروانہ کے خونِ ناحق نے شمع کو اتنی بھی اماں نہ دی کہ چنداں اماں نہ داد کہ شب را سحر کند | شب کو سحر کرے (ت) ہم خدا سے عافیت اور انجام کی نسأل اللہ العافیۃ وحسن العاقبۃ اٰمین۔ | خیریت کے خواستگار ہیں، الٰہی قبول فرما! (ت)

---

1. جواہر خمسہ مترجم اردو فصل ۱۳ مناجات اور اوراد عید دارالاشاعت مسافر خانہ کراچی ص ۲۸۲ و ۲۵۳

Fatawa Razawiyya, Volume 9

Point (103): In the same 'Intibah', some Mashaikh of the Qadiriyya order (may their secrets be sanctified) have reported a Khatm (spiritual completion) for achieving important tasks and fulfilling needs as follows:

[Table Header/Content] Original Text: First perform two Rak'ats of Nafl prayer, then recite Durood (salutations upon the Prophet) 111 times. After that, recite the Kalima Tamjeed 111 times and 'Shai'an lillah ya Shaikh Abdul Qadir Jilani' (etc.) 111 times. Translation: (Something for the sake of Allah, O Shaikh Abdul Qadir Jilani) (T).

Point (104): Shah Abdul Aziz states in 'Tuhfa Ithna Ashariyyah':

[Table Header/Content] Original Persian Text: Had the killers of Uthman shown patience for another ten or twelve years and remained silent and quiet, then Sindh, India, Turkestan, and China would also have been saying 'Ya Ali, Ya Ali' like Iran and Khorasan (etc.). Translation: (T)

Point (105): In the treatise 'Faiz-e-Aam' regarding seeking help from the shrines of saints, the Shah Sahab's instruction is:

[Table Header/Content] Original Persian Text: The method of seeking help from them is to say with the tongue: "O my master! I am supplicating in the Divine Presence for such and such task, you also assist me with your prayer and intercession." But help should be sought from the well-known figures (summary). Translation: (T)

This is the answer to the specific question asked. And Allah is the Guide to the right path (T). Praise be to Allah that this category has also reached its end. There was a promise of 100 points, but it reached one hundred and five (105). The reason for this is that there were thirty-five (35) questions in the first objective, sixty (60) Hadiths in the second objective, and here in the first category, two hundred (200) sayings. Now these one hundred and five (105) points together complete the number four hundred (400), and the objective of this humble one has been achieved, which Maulvi Sahab (may Allah keep him firm) requested.

---

1. Al-Intibah fi Salasil al-Awliya.
2. Tuhfa Ithna Ashariyyah, regarding the criticisms of Uthman (Allah be pleased with him), etc., Suhail Academy Lahore, p. 312.
3. Fatawa Aziziyya, treatise Faiz-e-Aam, Mujtabai Press Delhi 1/177.

फ़तावा रज़विया, जिल्द 9

मकाल (103): इसी 'इंतिबाह' में कादिरिया सिलसिले के कुछ बुजुर्गों ने महत्वपूर्ण कार्यों और आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए एक 'ख़त्म' (अनुष्ठान) का उल्लेख इस प्रकार किया है:

[तालिका सामग्री] मूल पाठ: पहले दो रकात नफ़्ल नमाज़ पढ़ें, उसके बाद 111 बार दरूद शरीफ़ पढ़ें, फिर 111 बार कलमा-ए-तमजीद और 111 बार 'शैअन लिल्लाह या शैख़ अब्दुल क़ादिर जिलानी' (आदि) पढ़ें। अनुवाद: (अल्लाह के लिए कुछ अता हो, ऐ शैख़ अब्दुल क़ादिर जिलानी) (त)

मकाल (104): शाह अब्दुल अज़ीज़ 'तुहफ़ा इस्ना अशरिया' में फ़रमाते हैं:

[तालिका सामग्री] मूल फ़ारसी पाठ: काश अगर उस्मान (रज़ि.) के हत्यारे दस-बारह साल और सब्र करते और शांत व खामोश बैठे रहते, तो सिंध, हिंद, तुर्किस्तान और चीन भी ईरान और खुरासान की तरह 'या अली, या अली' कहते (आदि)। अनुवाद: (त)

मकाल (105): रिसाला 'फ़ैज़-ए-आम' में मज़ारत-ए-औलिया से मदद मांगने के बारे में शाह साहब का निर्देश यह है:

[तालिका सामग्री] मूल फ़ारसी पाठ: उनसे मदद मांगने का तरीका यह है कि ज़ुबान से कहे: "ऐ मेरे हुज़ूर! मैं फ़लाँ काम के लिए बारगाह-ए-इलाही में इल्तिजा (प्रार्थना) कर रहा हूँ, आप भी दुआ और शफ़ाअत (सिफ़ारिश) के ज़रिए मेरी मदद करें।" लेकिन मदद मशहूर हस्तियों से मांगनी चाहिए (संक्षेप में)। अनुवाद: (त)

यह विशेष प्रश्न का उत्तर है और अल्लाह ही सीधे रास्ते की हिदायत देने वाला है (त)। शुक्र है अल्लाह का कि यह श्रेणी भी अपने समापन को पहुँची। 100 मकाल का वादा था लेकिन 105 हो गए। इसका कारण यह है कि पहले मक़सद में 35 सवाल थे, दूसरे मक़सद में 60 हदीसें, और यहाँ पहली श्रेणी में 200 कौल (कथन)। अब ये 105 मकाल मिलकर 400 की संख्या पूरी करते हैं और इस तुच्छ (लेखक) का वह उद्देश्य प्राप्त हो गया कि मौलवी साहब (अल्लाह उन्हें दृढ़ रखे) ने चाहा था।

---

1. अल-इंतिबाह फ़ी सलासिल अल-औलिया।
2. तुहफ़ा इस्ना अशरिया, मतान-ए-उस्मान (रज़ि.) आदि, सुहैल एकेडमी लाहौर, पृ. 312।
3. फ़तावा अज़ीज़िया, रिसाला फ़ैज़-ए-आम, मतबा मुजतबाई दिल्ली 1/177।

فتاوٰی رضویہ ، جلد نہم

مقال (۱۰۳): اسی انتباہ میں بعض مشائخ حضرات قادریہ قدست اسرار ہم سے حصول مہمات و قضائے حاجات کیلئے ایک ختم یوں نقل کیا:

اول دور کعت نفل بعد ازاں یک صد و یازدہ بار درود بعد ازاں | پہلے دو رکعت نفل پڑھے، اس کے بعد ایک سو گیارہ بار درود یک صد و یازدہ بار کلمہ تمجید و یک صد و یازدہ بار شیئا للہ یا شیخ | پھر ایک سو گیارہ بار کلمہ تمجید اور ایک سو گیارہ بار شیئا للہ یا عبد القادر جیلانی الخ ۔ | شیخ عبد القادر جیلانی الخ (خدا کے لیے کچھ عطا ہو اے شیخ عبد القادر جیلانی) (ت)

مقال (۱۰۴): شاہ عبد العزیز تحفہ اثنا عشریہ میں فرماتے ہیں:

کاش اگر قتلہ عثمان دہ دوازدہ سال دیگر ہم تن بصبر می دادند | کاش اگر قاتلانِ عثمان دس بارہ سال اور صبر کرتے اور خاموش و سکوت کردہ می نشستند سند و ہند و ترک و چین نیز مثل | بیٹھتے تو سندھ، ہند، ترکستان اور چین بھی ایران اور خراسان کی ایران و خراسان یا علی یا علی می گفتند الخ | طرح یا علی یا علی کہتے الخ (ت)

مقال (۱۰۵): رسالہ فیض عام مزارات اولیاء سے استعانت میں شاہ صاحب کا یہ ارشاد ہے:

طریق استمداد از ایشاں آنست کہ بزبان گوید اے حضرت من | ان حضرات سے استمداد کا طریقہ یہ ہے کہ زبان سے کہے: برائے کار فلاں در جناب الہی التجا می کنم شما نیز بدعا و شفاعت | اے میرے حضور! فلاں کام کے لیے میں بارگاہ الہی میں التجا امداد من نماید لیکن استمداد از مشہورین باید کرد (ملخصاً) | کر رہا ہوں آپ بھی دعا و شفاعت سے میری مدد کیجئے۔ لیکن استمداد مشہور حضرات سے کرنا چاہئے (ت)

یہ خاص صورت کا مسئولہ کا جواب ہے واللہ الہادی الی سبیل الصواب (اور اللہ ہی راہِ راست کی ہدایت دینے والا ہے۔ ت) الحمد للہ کہ یہ نوع بھی اپنے منتہی کو پہنچی، سو ۱۰۰ مقال کا وعدہ تھا ایک سو پانچ ۱۰۵ گئے، اس کی وجہ یہ ہے کہ مقصد اول میں پینتیس ۳۵ سوال تھے، مقصد دوم میں ساٹھ ۶۰ حدیثیں ، ادھر نوع اول میں دوسو ۲۰۰ قول ، اب یہ ایک سو پانچ ۱۰۵ مقال مل کر چار سو ۴۰۰ کا عدد کامل اور فقیر کا وہ مدعا حاصل ہو گیا کہ مولوی صاحب سددہ اللہ

---

1. الانتباہ فی سلاسل الاولیاء
2. تحفہ اثنا عشریہ مطاعن عثمان رضی اللہ تعالیٰ عنہ الخ سہیل اکیڈمی لاہور ص ۳۱۲
3. فتاویٰ عزیزی رسالہ فیضِ عام مطبع مجتبائی دہلی ۱/ ۱۷۷

Volume Nine Fatawa Razawiyya

Fatwa of the Arab Scholars Regarding the Hearing of the Dead at the Conclusion of the Treatise

During the time of authoring this treatise, I (the humble servant) received reliable news that the respected Maulvi (Masha-Allah) says that if he writes a refutation of our issue, we will send both writings to the scholars of Bhopal so they may judge between them.

I say: Arbitration without the consent of both parties is not reasonable. Maulvi Sahib is a scholar; why not settle the matter right here? Why should seekers of truth hesitate to manifest the truth? Please examine the treatise of this humble servant; if the truth becomes clear, acceptance is obligatory, otherwise a suitable reply. Yes, in writing a reply, there is the option of seeking help or refutation, whether from the people of Bhopal or Bengal. And if it is deemed appropriate to rely on others, then whoever one looks at among the people of India is, without any preference, naturally aligned with one side or the other. Why should the people of Bhopal be preferred over, for example, the people of Mustafaabad? Therefore, setting all else aside, let the scholars of Arabia be the judges, for the religion originated there and to there it shall return, and God willing, Satan will never gain control over the majority of scholars there. If the honorable Maulana approves of this opinion, then the original fatwa of these great masters, bearing their seals and signatures, is currently with this humble servant. In it, they have clearly refuted most Wahhabi issues and declared the new group to be misguided, misleading, innovators, and voiders of truth. I (may Allah forgive him) present a summary and selection of a few lines from it regarding the issue of hearing, along with an explanation and the signatures of the scholars. Allah is the Guide. In response to the question that the Wahhabis claim and believe in the lack of knowledge and lack of hearing of the deceased, they said:

(Arabic Text)	(Urdu Translation)
This claim is an ugly fabrication and this belief is a clear transgression. Indeed, the verified scholars from among the Hanafis, Shafi'is, and others have established that a person in the Barzakh (intermediary state) possesses knowledge, hears the salutations and	Meaning, this claim of the Wahhabis is an ugly fabrication and this belief is clear oppression. The verified scholars of the Hanafis, Shafi'is, etc., have proven through authentic hadiths and explicit reports that a person in Barzakh possesses knowledge, hears the

(Arabic Text)

speech of the visitor, recognizes him, and finds comfort in him, based on authentic hadiths and explicit reports. That issue, along with its proofs, is explicitly stated in *al-Mirqat*, the commentary on *Mishkat* by Ali al-Qari al-Hanafi, *Sharh al-Sudur* by Hafiz al-Suyuti, and *Shifa al-Siqam*.

Page 826 of 948

(Urdu Translation)

salutation and speech of the visitor, recognizes him, and gains intimacy with him. In the famous books of the majority of verified scholars like *Mirqat Sharh Mishkat* by Ali Qari Hanafi, *Sharh al-Sudur* by Hafiz Suyuti Shafi'i, and *Shifa* by Imam Subki etc., this issue and its proofs are explicitly mentioned up to this point.

जिल्द नौ फ़तावा रज़विया

ग्रंथ के अंत में मृतकों के सुनने (समाअ-ए-मौता) के बारे में अरब विद्वानों का फ़तवा

इस ग्रंथ के लेखन के समय मुझे (इस विनम्र सेवक को) विश्वसनीय सूत्रों से समाचार मिला कि मौलवी साहब (माशा-अल्लाह) कहते हैं कि यदि वह हमारे मसले का खंडन लिखेंगे, तो हम दोनों लेखन भोपाल के मौलवियों को भेज देंगे ताकि वे निर्णय कर सकें।

मैं कहता हूँ: दोनों पक्षों की सहमति के बिना मध्यस्थता तर्कसंगत नहीं है। मौलवी साहब विद्वान हैं, यहीं निर्णय क्यों न हो जाए? शोध के इच्छुक सत्य को प्रकट करने से क्यों हिचकिचाएँ? इस विनम्र सेवक के ग्रंथ का अवलोकन करें; यदि सत्य स्पष्ट हो जाए तो उसे स्वीकार करना अनिवार्य है, अन्यथा उचित उत्तर दें। हाँ, उत्तर लिखने में भोपाल या बंगाल के लोगों से सहायता लेने या खंडन करने का विकल्प है। और यदि अन्य लोगों पर ही भरोसा करना उचित है, तो भारत के लोगों में से जिसे भी देखा जाएगा, वह बिना किसी पूर्वाग्रह के स्वयं एक पक्ष का समर्थक है। उदाहरण के लिए, मुस्तफ़ाबाद के लोगों पर भोपाल के लोगों को प्राथमिकता क्यों दी जाए? इसलिए, सब कुछ छोड़कर अरब के विद्वानों को न्यायाधीश बनाएँ, क्योंकि धर्म वहीं से निकला है और वहीं वापस लौटेगा, और इंशा अल्लाह, शैतान वहां के अधिकांश विद्वानों पर कभी हावी नहीं हो पाएगा। यदि माननीय मौलाना को यह राय पसंद आए, तो उन महान विद्वानों का मुहरबंद और हस्ताक्षरित मूल फ़तवा इस समय इस विनम्र सेवक के पास मौजूद है। इसमें उन्होंने वहाबी विचारधारा के अधिकांश मसलों का स्पष्ट खंडन किया है और नए समूह को पथभ्रष्ट, दूसरों को भटकाने वाला, पथभ्रष्ट और असत्य घोषित किया है। मैं (अल्लाह उन्हें क्षमा करे) इसमें से सुनने के मसले से संबंधित कुछ पंक्तियाँ, व्याख्या और विद्वानों के हस्ताक्षरों के साथ सारांश और चयन प्रस्तुत करता हूँ। अल्लाह ही मार्गदर्शक है। इस प्रश्न के उत्तर में कि वहाबी मृतकों के ज्ञान न होने और न सुनने का दावा और विश्वास रखते हैं, उन्होंने कहा:

(अरबी पाठ)

यह दावा एक घृणित मिथ्यारोप है और यह विश्वास एक स्पष्ट अतिक्रमण है। निस्संदेह, हनफ़ी, शाफ़ई और अन्य शोधकर्ता विद्वानों ने प्रमाणित हदीसों और स्पष्ट विवरणों से सिद्ध

(उर्दू अनुवाद)

यानी वहाबियों का यह दावा घृणित मिथ्यारोप है और यह विश्वास स्पष्ट अत्याचार है। हनफ़ी और शाफ़ई आदि के शोधकर्ता विद्वानों ने सही हदीसों और स्पष्ट खबरों से सिद्ध किया है कि बर्ज़ख में

(अरबी पाठ)

किया है कि बर्ज़ख (मध्यवर्ती अवस्था) में मनुष्य ज्ञान रखता है और आगंतुक के सलाम और बातों को सुनता है, उसे पहचानता है और उससे सुकून पाता है। वह मसला अपने प्रमाणों के साथ अली अल-क़ारी अल-हनफ़ी द्वारा लिखित 'मिशकात' की व्याख्या 'अल-मिरक़ात', हाफ़िज़ अस-सुयुती की 'शरह अल-सुदूर' और 'शिफ़ा अल-सिक़ाम' में स्पष्ट रूप से वर्णित है।

(उर्दू अनुवाद)

आदमी ज्ञान रखता है और आगंतुक का सलाम और बातें सुनता है और उसे पहचानता है और उससे मेल-जोल प्राप्त करता है। अली क़ारी हनफ़ी की 'मिरक़ात शरह मिश्कात' और हाफ़िज़ सुयुती शाफ़ई की 'शरह अल-सुदूर' और इमाम सुबकी की 'शिफ़ा' आदि अधिकांश शोधकर्ता विद्वानों की प्रसिद्ध पुस्तकों में इस मसले और इसके प्रमाणों का स्पष्ट वर्णन यहाँ तक है।

جلد نہم فتاویٰ رضویہ

خاتمہ رسالہ میں درباره سماعِ موتیٰ علمائے عرب کا فتویٰ

اس رسالہ کے زمانہ تالیف میں فقیر کو معتبر طور پر خبر پہنچی کہ مولوی صاحب ماشاء اللہ فرماتے ہیں کہ اگر وہ ہمارے مسئلہ کا رد لکھے گا ہم دونوں تحریریں مولویان بھوپال کو بھیج دیں گے کہ وہ حکم ہو جائیں۔

اقول: تحکیم بے قبول طرفین معقول نہیں۔ مولوی صاحب ماشاء اللہ فاضل ہیں، یہیں کیوں نہ تصفیہ ہو جائے، طالبانِ تحقیق کو اظہارِ حق سے کیوں باک آئے، رسالہ فقیر کو ملاحظہ فرمائیں، اگر حق واضح ہو جائے تسلیم واجب، ورنہ جواب مناسب، ہاں تحریر جواب میں استرداد و استعانت کا اختیار ہے بھوپالیوں سے ہو یا بنگالیوں سے، اور اگر اوروں ہی پر رکھنا صلاح وقت ہے تو اہل ہند میں جسے دیکھئے گا بلا مرجح خود احد الفریقین ہے۔ بھوپالیوں کو مثلاً مصطفیٰ آبادیوں پر کیا وجہ ترجیح ہے۔ لہٰذا سب سے قطع نظر کرکے علمائے عرب کو حکم کیجئے کہ دین وہیں سے نکلا اور وہیں کو پلٹ جائے گا اور وہاں کے جمہور علماء پر ان شاء اللہ تعالیٰ شیطان ہر گز قابو نہ پائے گا۔ جناب مولانا اگر اس رائے کو پسند فرمائیں تو ان اکابر کرام کا مہری دستخطی فتویٰ بالفعل فقیر کے پاس اصل موجود، جس میں اکثر مسائل وہابیت کا رد واضح فرمایا اور طائفہ جدیدہ کو ضال مضل، مبتدع، مبطل ٹھہرایا، فقیر غفر اللہ تعالیٰ لہ اس میں سے چند سطریں متعلق مسئلہ سماع مع شرح و دستخط علماء تلخیص و التقاط حاضر کرتا ہے، واللہ الہادی اس سوال کے جواب میں کہ وہابیہ عدم علم و عدم سماع موتیٰ کا ادعا و اعتقاد رکھتے ہیں، فرمایا:

(عربی متن)

هدا الادعاء افتراء قبيح وهدا الاعتقاد اعتداء صريح فان العلماء المحققين من الحنفية والشافعية وغيرهم قد اثبتوا اطلاع الانسان في البرزخ وسماعه لسلام الزائر وكلامه ومعرفته والانس به بالاحاديث الصحيحة والاثار الصريحة وتلك المسئلة مع دلائلها مصرحة في المرقاة شرح مشكوة لعلى القاري الحنفي وشرح الصدور للحافظ السيوطي وشفاء السقام

(اردو ترجمہ)

یعنی وہابیہ کا یہ ادعاء افتراء قبیح اور یہ اعتقاد ظلم صریح ہے۔ حنفیہ و شافعیہ وغیرہ ہم کے علمائے محققین نے صحیح حدیثوں اور صریح خبروں سے ثابت کیا ہے کہ آدمی برزخ میں علم رکھتا ہے اور زائر کا سلام و کلام سنتا ہے اور اسے پہچانتا ہے اور اس سے انس حاصل کرتا ہے۔ مرقاۃ شرح مشکوۃ علی قاری حنفی و شرح الصدور حافظ سیوطی شافعی و شفاء امام سبکی وغیرہا جمہور محققین کی کتب مشہورہ میں اس مسئلہ اور اس کے دلائل کی تصریح ہے یہاں تک

Fatawa Rizvia Volume 9

[Top Right Column - Arabic] To Imam Subki and others from famous books of the majority of researchers, until they pointed to it in famous books of beliefs. It was explicitly stated in 'Al-Maqasid' and its commentary that according to the Mu'tazilites and others, specific physical attributes are a condition for perception. Thus, according to them, the perception of particulars does not remain when the physical instruments are lost. In our view, it remains, and this is apparent from the principles of Islam. For this reason, visiting the graves of the righteous and seeking help from the souls of the virtuous is beneficial, etc. In short, the human soul retains perceptions and has many connections with the place where its body is buried. Hadiths and narrations bear witness to this; no one would deny them after knowing them except an obstinate opponent, etc.

[Top Left Column - Urdu Translation] Scholars have pointed towards this in famous books of beliefs. In 'Maqasid' and 'Sharh al-Maqasid', it is explicitly stated that according to the Mu'tazilites etc., the body is a condition for perception. So, in their school of thought, when bodily instruments no longer exist, the perception of particulars also ceases. But for us, the People of Sunnah, perception remains. The principles of Islam support this. This is why visiting the graves of the righteous and seeking assistance from the souls of saints is beneficial. In essence, the human soul's perception remains, and it has deep connections with its place of burial. Hadiths and narrations are witnesses to this, which no one will knowingly deny except a seeker of falsehood and an enemy of the truth. (T)

[Middle Section - Urdu] After this, the doubts of the deniers were refuted with texts from scholars, and the leading scholars of the two holy cities (Haramain Tayyibain) put their seals and signatures on it.

Endorsement and signature of Hazrat Maulana Muhammad bin Hussain Kutbi Hanafi, Mufti of Makkah: "La kalaam feehi wala shakka ya'tareehi" (There is no room for debate or doubt regarding this). [Text in circle: "For I have a pledge from him by my being named Muhammad, or he is, and in creation, it is by blame."] Ordered to be written by Muhammad bin Hussain Al-Kutbi Al-Hanafi, Mufti of Makkah Al-Mukarramah, may he be forgiven by His grace, Amen.

Endorsement and signature of Hazrat Maulana and Shaikh of our Shaikhs, Head of Teachers at Al-Masjid Al-Haram, Maulana Jamal ibn Abdullah bin Umar Makki Hanafi (may Allah have mercy on him): "La yultafatu al-mufidu illa ilayhi wala yu'awwilu al-

mustafidu illa alayhi" (The beneficial person should not turn except towards it, and the seeker of benefit should not rely except upon it). [Text in circle: "His servant, Jamal, Shaikh Umar."] Ordered to be written by the Honorable Head of Teachers.

[Footnote] 1. Sharh al-Maqasid, Fourth Inquiry, Perception of Particulars according to us, the Soul, Dar al-Ma'arif al-Nu'maniyyah, Karim Park, Lahore, 2/43. Page 827 of 948

फ़तावा रज़विया जिल्द 9

[शीर्ष दायां कॉलम - अरबी] इमाम सुबकी और अन्य शोधकर्ताओं की प्रसिद्ध पुस्तकों से, यहाँ तक कि उन्होंने प्रसिद्ध अकीदे की किताबों में इसकी ओर संकेत किया है। 'अल-मक़ासिद' और उसकी व्याख्या में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि मुअतज़िला और अन्य लोगों के अनुसार, बोध के लिए विशिष्ट शारीरिक अंग एक शर्त हैं। इस प्रकार, उनके अनुसार, शारीरिक अंगों के अभाव में सूक्ष्म विवरणों का बोध नहीं रहता। हमारे अनुसार, यह बना रहता है, और यह इस्लाम के सिद्धांतों से स्पष्ट है। इसी कारण से, नेक लोगों की कब्रों की ज़ियारत करना और पवित्र आत्माओं से मदद माँगना लाभदायक है, इत्यादि। संक्षेप में, मानव आत्मा बोध को बनाए रखती है और शरीर के दफन स्थान के साथ इसके कई संबंध होते हैं। हदीसें और रिवायतें इस बात की गवाह हैं; उन्हें जानने के बाद कोई भी हठधर्मी विरोधी के अलावा इनकार नहीं करेगा, इत्यादि।

[शीर्ष बायां कॉलम - उर्दू अनुवाद] विद्वानों ने अकीदे की प्रसिद्ध किताबों में इसकी ओर संकेत किया है। 'मक़ासिद' और 'शराह मक़ासिद' में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि मुअतज़िला आदि के अनुसार शरीर बोध की शर्त है। तो उनके मज़हब में जब शारीरिक अंग न रहे, तो सूक्ष्म विवरणों का बोध भी न रहा। और हम अहले सुन्नत के नज़दीक बोध शेष रहता है, इस्लाम के नियम इसी का समर्थन करते हैं। यही कारण है कि नेक लोगों की कब्रों की ज़ियारत और औलिया की रूहों से मदद माँगना लाभ देता है। संक्षेप में, मानव आत्मा का बोध शेष रहता है और उसे दफन की जगह से बहुत गहरे संबंध होते हैं। हदीसें और निशानियाँ इस पर गवाह हैं, जिन्हें जानबूझकर कोई इनकार नहीं करेगा सिवाय असत्य के खोजी और सत्य के दुश्मन के। (त)

[मध्य भाग - उर्दू] इसके बाद, विद्वानों के ग्रंथों के माध्यम से इनकार करने वालों के संदेहों का खंडन किया गया और हरमैन तैयबैन के प्रमुख विद्वानों ने इस पर अपनी मोहर और हस्ताक्षर किए।

मक्का के मुफ्ती हज़रत मौलाना मुहम्मद बिन हुसैन कुतबी हनफ़ी का अनुमोदन और हस्ताक्षर: "ला कलाम फ़ीहि वला शक़ या'तरीहि" (इसमें न बहस की गुंजाइश है और न ही संदेह की)। [मंडल के अंदर पाठ: "क्योंकि मेरा नाम मुहम्मद होने के कारण उनसे एक प्रतिज्ञा है, या वह है, और सृष्टि में यह निंदा द्वारा है।"] मुहम्मद बिन हुसैन अल-कुतबी अल-हनफ़ी, मुफ्ती मक्का अल-मुकर्रमा द्वारा लिखवाया गया, अल्लाह अपनी कृपा से उन्हें क्षमा करे, आमीन।

हमारे शेखों के शेख और मस्जिद अल-हराम में शिक्षकों के प्रमुख, हज़रत मौलाना जमाल इब्न अब्दुल्ला बिन उमर मक्की हनफ़ी (रहमतुल्ला अलैहि) का अनुमोदन और हस्ताक्षर: "ला युल्तफ़तु अल-मुफ़िदु इल्ला इलैहि वला युअल्विलु अल-मुस्तफ़िदु इल्ला अलैहि" (लाभ देने वाला किसी और की ओर न मुड़े सिवाय इसके और लाभ चाहने वाला किसी और पर भरोसा न करे सिवाय इस पर)। [मंडल के अंदर पाठ: "उनका सेवक, जमाल, शेख उमर।"] सम्मानित शिक्षकों के प्रमुख द्वारा लिखवाया गया।

[पाद टिप्पणी] 1. शराह अल-मक़ासिद, चौथी जांच, हमारे नज़दीक सूक्ष्म विवरणों का बोध, रूह, दार अल-माआरिफ़ अल-नुमानिया, करीम पार्क लाहौर, 2/43. पृष्ठ 827/948

فتاوٰی رضویہ جلد نہم

[دایاں کالم - عربی] للّامام سبکی و غیرھا من الکتب المشھورۃ للجمھور محققین حتی اشاروا الیہ فی کتب العقائد المشھورۃ فقد صرح فی المقاصد وشرحہ انہ عندالمعتزلۃ و غیرھم البدنیۃ المخصوصۃ شرط فی الادراك فعند ھم لایبقی ادراك الجزئیات عند فقد الآلات عندنا یبقی وھو ظاھر من قواعد الاسلام، ولھذا ینتفع بزیار القبور الابرار والاستعانۃ من نفوس الاخیار الخ وبالجملۃ فالنفس الانسانیۃ تبقی لھا الادراکات ولھا تعلقات کثیرۃ بموضع دفن جسدھا و الاحادیث والآثار شاھدۃ لذالك لاینکرھا بعد العلم بھا الامکابر معاند الخ۔

[بایاں کالم - اردو ترجمہ] کہ علماء نے عقائد کی مشہور کتابوں میں اس کی طرف اشارہ کیا، مقاصد و شرح مقاصد میں تصریح فرمائی کہ معتزلہ وغیرہ ہم کے نزدیک یہ بدن شرطِ ادراک ہے تو ان کے مذہب میں جب آلاتِ بدنی نہ رہے ادراکِ جزئیات بھی نہ رہا اور ہم اہل سنت کے نزدیک ادراک باقی رہتا ہے، قواعدِ اسلام اسی کی تائید کرتے ہیں، یہی وجہ ہے کہ قبورِ ابرار کی زیارت اور ارواحِ اولیاء سے استعانت نفع دیتی ہے۔ غرض روحِ انسانی کے ادراک باقی اور اسے موضعِ دفن سے بہت تعلقات ہیں، احادیث و آثار اس پر گواہ ہیں جنہیں جان بوجھ کر انکار نہ کریگا مگر باطل کوش دشمنِ حق۔(ت)

[درمیانی حصہ - اردو] اس کے بعد شبہات منکرین کا نصوص علماء سے رد کیا اور عمائد علماء حرمین طیبین نے اس پر مہر و دستخط ثبت فرمائے۔ شرح و دستخط حضرت مولنا محمد بن حسین کتبی حنفی مفتی مکہ لا کلام فیہ ولا شک یعتریہ اس میں نہ کلام کی گنجائش نہ شک کی خلش۔

[دائرے کی تحریر: فان لی ذمۃ منہ بتسمیتی محمد او ھوا وفی الخلق بالذم] امر بہ رقمہ محمد بن حسین الکتبی الحنفی مفتی مکہ المکرمہ عفی عنہ بمنہ آمین۔ شرح و دستخط حضرت مولنا و شیخ

مشائخنا رئیس المدرسین بالمسجد الحرام مولنا جمال ابن عبداللہ بن عمر مکی حنفی رحمۃ اللہ علیہ لا یلتفت المفید الا الیہ ولایعول المستفید الا علیہ مفید التفات نہ کرے مگر اسی طرف، اور مستفید اعتماد نہ کرے مگر اسی پر، [دائرے کی تحریر: عبدہ، جمال، شیخ عمر] امر بہ رقمہ رئیس المدرسین الکرام

[حاشیہ] 1 شرح المقاصد المبحث الرابع مدرك الجزئيات عند نا النفس در المعارف النعمانیہ کریم پارک لاہور ۴۳/۲ Page 827 of 948

Fatawa Rizvia Volume 9

At the Sacred Mosque (Al-Masjid al-Haram), the one hoping for the hidden grace of his Lord, Jamal bin Abdullah Sheikh Umar al-Hanafi, may Allah Almighty be gracious to them both. Summary of the signature of Maulana Hussain bin Ibrahim Maliki, Mufti of Makkah. There is no doubt in it, nor does any suspicion affect it. The Maliki [scholar] in Makkah, written by the humble servant Hussain bin Ibrahim, Mufti of the protected Mashriqiyah. His servant, Hussain.

Summary of the signature of our Master, our Sheikh, and our Blessing, Zain al-Haram, Ayn al-Karam, Maulana Ahmad Zain Dahlan Shafi'i, Mufti of Makkah al-Mukarramah, may his secret be sanctified. I have seen this noble work which contains every subtle proof, and I found that it has stated the beliefs of the people of truth who are supported [by Allah], and has refuted the beliefs of the people of misguidance who are falsifiers. I saw this noble compilation gathering every subtle proof, and I found that the beliefs of the people of truth and supported masters are written clearly and explicitly, and the religions of the misguided worshippers of falsehood have been refuted. Written with his pen, the one who hopes for forgiveness from his Lord, Ahmad bin Zain Dahlan. [Seal: Ahmad Dahlan]

Summary of the signature of Hazrat Maulana Muhammad bin Gharb Shafi'i Madani, teacher at the Mosque of Madinah Tayyibah. I pondered over this work and saw that the author has done excellently and has benefited every clear Sunni text. Its author has written excellent discourse and has provided the benefit of every bright text. Written by the humble servant of Allah Almighty, Muhammad bin Muhammad al-Gharib al-Shafi'i, servant of knowledge at the Prophet's Mosque. [Seal: Seal not clearly legible]

Summary of the signature of Maulana Abdul Karim Hanafi, from the scholars of Madinah Munawwarah. When I pondered over this treatise, I found it like a sharp sword against the stubborn misguider. None shall criticize it except one whose intellect is corrupted and whose character has been vile in all generations. When I looked at this treatise with contemplation, I found it to be like a sharp sword against the stubborn misguider. No one will taunt it except him whose mind is cut off and whose habit has been evil in every era. From the servants of the seekers of knowledge. "The one relying on Allah the Great, Abdul Karim bin Abdul Hakim" at the Prophet's Mosque. [Signature: The one relying on Allah the Great, Abdul Karim bin Abdul Hakim] of DawateIslami

फ़तावा रज़विया जिल्द नौ

मस्जिद-ए-हराम में, अपने रब की छिपी हुई कृपा की आशा रखने वाले, जमाल बिन अब्दुल्लाह शेख उमर अल-हनफ़ी, अल्लाह तआला उन दोनों पर कृपा करे। मक्का मुबारका के मुफ्ती मौलाना हुसैन बिन इब्राहिम मालिकी के हस्ताक्षर का विवरण। इसमें कोई संदेह नहीं है और न ही इसमें कोई शंका है। मक्का में मालिकी [विद्वान], इसे दीन के सेवक हुसैन बिन इब्राहिम, मुफ्ती-ए-मशरिक़िया अल-महमीया ने लिखा है। उनका बंदा, हुसैन।

हज़रत मौलाना और हमारे शेख और हमारी बरकत, ज़ैनुल हरम ऐनुल करम मौलाना अहमद ज़ैन दहलान शाफ़ई, मुफ्ती मक्का मुकर्रमा (अल्लाह उनके रहस्य को पवित्र करे) के हस्ताक्षर का विवरण। मैंने इस शरीफ़ रचना को देखा जिसमें हर सूक्ष्म प्रमाण समाहित है, और मैंने पाया कि इसने हक पर चलने वालों के अकीदों को स्पष्ट किया है जिन्हें ईश्वरीय सहायता प्राप्त है, और गुमराहों के झूठे अकीदों को रद्द कर दिया है। मैंने इस शरीफ़ संकलन को हर सूक्ष्म प्रमाण का संग्रह देखा, तो मैंने इसे पाया कि हक वालों और समर्थित आकाओं के अकीदे साफ़ और स्पष्ट लिखे हैं और बातिल परस्त गुमराहों के मज़हब को बातिल कर दिया गया है। अपने कलम से लिखा, अपने रब से क्षमा की आशा रखने वाले अहमद बिन ज़ैन दहलान ने। [मोहर: अहमद दहलान]

हज़रत मौलाना मुहम्मद बिन ग़र्ब शाफ़ई मदनी, मुदर्रिस (शिक्षक) मस्जिद-ए-मदीना तैयबा के हस्ताक्षर का विवरण। मैंने इस रचना पर विचार किया और देखा कि इसके लेखक ने बेहतरीन काम किया है और हर स्पष्ट सुन्नी इबारत का लाभ पहुँचाया है। इसके लेखक ने उम्दा कलाम लिखा और हर रोशन इबारत का लाभ दिया। अल्लाह तआला के ज़रूरतमंद बंदे मुहम्मद बिन मुहम्मद अल-ग़रीब अल-शाफ़ई, मस्जिद-ए-नबवी में इल्म के खादिम द्वारा लिखा गया। [मोहर: मोहर साफ़ नहीं पढ़ी गई]

मदीना मुनव्वरा के उलेमा में से मौलाना अब्दुल करीम हनफ़ी के हस्ताक्षर का विवरण। जब मैंने इस रिसाले (पुस्तिका) पर विचार किया, तो इसे गुमराह हठधर्मियों के खिलाफ एक पैनी तलवार की तरह पाया। इसमें वही ऐब निकालेगा जिसकी अक्ल मारी गई हो और जिसका चरित्र हर दौर में बुरा रहा हो। जब मैंने इस रिसाले को गौर से देखा, तो इसे गुमराह हठधर्मी के हक में एक तेज़ तलवार की तरह पाया। इस पर कोई ताना नहीं देगा सिवाय उसके जिसकी मति मारी गई हो और जिसकी आदत हर ज़माने में बुरी रही हो। इल्म के तालिबों के खादिमों में से। "अल्लाह अज़ीम पर भरोसा रखने वाला

अब्दुल करीम बिन अब्दुल हकीम" मस्जिद-ए-नबवी में। [हस्ताक्षर: अल्लाह अज़ीम पर भरोसा रखने वाला अब्दुल करीम बिन अब्दुल हकीम] दावत-ए-इस्लामी का

فتاوی رضویہ جلد نہم

بالمسجد المکی الحرام الراجی لطف ربه الخفی جمال بن عبدالله شیخ عمر الحنفی لطف الله تعالی بهما۔

شرح دستخط مولانا حسین بن ابراہیم مالکی مفتی مکہ مبارکہ لاریب فیه ولا شك یعتریه المالکیة بمکة

کتبه الفقیر حسین بن ابراهیم مفتی المشرقیة المحمیة عبده، حسین

شرح دستخط حضرت مولانا و شیخنا و برکتنا زین الحرم عین الکرم مولانا احمد زین دحلان شافعی

مفتی مکہ مکرمہ قدس سره العزیز رأیت هذا المؤلف الشریف الهاوی کل برهان لطیف فرأیته قد نص

علی عقائد اهل الحق المؤیدین و ابطل عقائد اهل الضلال المبطلین میں نے یہ شریف تالیف جامع ہر

دلیل لطیف دیکھی تو میں نے اسے پایا کہ اہل حق و ارباب تائید کے عقیدے صاف واضح لکھے ہیں

اور باطل پرست گمراہوں کے مذہب باطل کیے ہیں رقمہ بقلمہ المرتجی من ربہ الغفران احمد بن زین

دحلان۔ احمد دحلان

شرح دستخط حضرت مولانا محمد بن غرب شافعی مدنی مدرس مسجد مدینہ طیبہ تأملت فی هذا

المؤلف فرأیت مؤلف قد اجاد و لکل نص سنی صریح افاد اس کے مصنف نے جید کلام لکھا اور ہر

نص روشن کا افادہ کیا۔ کتبه الفقیر الی الله تعالی محمد بن محمد الغریب الشافعی خادم العلم بالمسجد

النبوی۔ مہر صاف نخواند شد

شرح دستخط مولانا عبدالکریم حنفی از علمائے مدینہ منورہ لما تأملت فی هذا الرسالة وجدتها کالسیف

الصارم للمعاند الضلال لا یطعن فیها الا من اختل عقله و قبحت سیرته في جمیع الأجیال جب میں نے

یہ رسالہ غور سے دیکھا اسے معاند گمراہ کے حق میں مثلِ تیغِ برآں پایا۔ نہ طعنہ کرے گا مگر وہ

جس کی مت کٹی اور عادت بد ہوئی ہر زمانہ میں۔ من خدام طلبة العلم "المتوکل علی الله العظیم

عبدالکریم بن عبدا لحکیم" بالمسجد النبوی۔ المتوکل علی اللہ العظیم عبدالکریم بن عبدالکیم of

DawateIslami

Page 828 of 948

Fatawa Razawiya, Volume 9

Explanation of the signature of Maulana Abdul Jabbar Hanbali Basri, resident of Medina: I became acquainted with this collection and found it to be an unsheathed Indian sword against whoever splits the stick of the congregation (Jama'at) and isolates himself from the Sunnah. I became aware of this compilation and found it to be an Indian sword, drawn against those who opposed the congregation and distanced themselves from the Sunnah. Indicated by the pen of the most noble, pious, jurist, and ascetic Sheikh, Maulana Abdul Jabbar Al-Hanbali Al-Basri, resident of Medina Al-Munawwarah. May Allah benefit the Muslims with his longevity. Amen.

Explanation of the signature of Hazrat Maulana Al-Sayyid Ibrahim bin Al-Khayyar Shafi'i, Mufti of Medina: How much I have read, after becoming aware of the refutations of the great scholars against the misguided and misleading sect, but I have not seen anything like this treatise. Ever since I became aware of it, I have seen many refutations of the great scholars against this misguided sect, but a treatise like this has not passed before my eyes. Said with his mouth and written with his pen by the servant of knowledge at the Prophet's Haram, the Shafi'i Ibrahim, son of the late Muhammad Khayyar al-Hasani al-Harami. Ibrahim bin Muhammad Khayyar

Praise be to Allah for achieving the requested and reaching the end of the desired goal. The poor (servant) Abd al-Mustafa Ahmad Raza, Sunni Hanafi Qadri Barkati Barelwi, prepared the draft of this treatise in the beginning of Rajab 1305 AH. Then, due to the occurrence of some objections and preoccupation with other purposes such as writing about issues and composing some other treatises whose necessity seemed important, its finalization was delayed. Now, by the grace of Allah, with divine help and the assistance of the refuge of Prophethood (upon him be the best of prayers and peace, and upon his noble family and companions), at the end of Sha'ban of the aforementioned year at the time of 'Asr, this draft was finalized, and during the finalization, fresh blessings were showered from the Bestowing Master.

[Prayer and Praise Section]

(Arabic): And praise be to God first and last, inwardly and outwardly. May Allah Almighty send prayers, blessings, and peace in abundance upon our master and lord Muhammad, his family, his companions, his son, his party, and upon us for their sake. We ask Allah Almighty to accept our efforts, forgive our sins, have mercy on our destitution, keep us alive as Muslims, make us die as believers, and resurrect us in the company of...

(Urdu Translation): And praise is for God alone first and last, inwardly and outwardly. God's prayers, blessings, and abundant peace be upon our master and lord Hazrat Muhammad, his family and companions, his son, his group, and upon us through their agency. Our prayer to Allah Almighty is that He may accept our effort, forgive our sins. Have mercy on our neediness. Grant us life with Islam and death with faith, with the companionship [of...]

फतावा रज़विया, जिल्द 9

मौलाना अब्दुल जब्बार हनबली बसरी, मदीना निवासी के हस्ताक्षर की व्याख्या: जब मैंने इस संग्रह को देखा, तो इसे एक ऐसी नग्न भारतीय तलवार पाया जो उस पर खींची गई है जिसने जमाअत में फूट डाली और सुन्नत से अलग हो गया। मैंने इस संकलन को देखा तो इसे एक भारतीय तलवार पाया, जो उन पर खींची गई है जिन्होंने जमाअत का विरोध किया और सुन्नत से किनारा कर लिया। यह सबसे महान, परहेज़गार, फकीह और ज़ाहिद शेख मौलाना अब्दुल जब्बार अल-हनबली अल-बसरी, मदीना मुनव्वरा निवासी की कलम से है। अल्लाह उनकी लंबी उम्र से मुसलमानों को लाभान्वित करे। आमीन।

हज़रत मौलाना अल-सैय्यद इब्राहिम बिन अल-खय्यार शाफई, मदीना के मुफ्ती के हस्ताक्षर की व्याख्या: जब से मुझे इस गुमराह फिरके पर बड़े विद्वानों के खंडन (रद्द) की जानकारी हुई है, मैंने बहुत से खंडन देखे हैं, लेकिन इस रिसाले (ग्रंथ) जैसा कोई दूसरा मेरी नज़र से नहीं गुज़रा। हराम-ए-नबवी में इल्म के खादिम शाफई इब्राहिम, मरहूम मुहम्मद खय्यार अल-हसनी अल-हरमी के बेटे ने अपनी ज़बान से कहा और अपनी कलम से लिखा। इब्राहिम बिन मुहम्मद खय्यार

मांगी हुई मुराद हासिल होने और मक़सूद के अंत तक पहुँचने पर अल्लाह का शुक्र है। फकीर अब्द अल-मुस्तफा अहमद रज़ा सुन्नी हनफी कादरी बरकाती बरेलवी ने इस रिसाले का मसौदा रजब १३०५ हिजरी की शुरुआत में तैयार किया था। फिर कुछ आपत्तियों के आने और अन्य कार्यों जैसे मसलों को लिखने और कुछ अन्य ग्रंथों की रचना करने, जिनकी आवश्यकता महत्वपूर्ण लगी, के कारण इसके पूरा होने में देरी हुई। अब अल्लाह के शुक्र से, ईश्वरीय कृपा और हज़रत रिसालत पनाही (उन पर और उनके परिवार और साथियों पर सबसे उत्तम दरूद और सलाम हो) की सहायता से, उक्त वर्ष के शाबान के अंत में असर के समय यह मसौदा पूरा हुआ और इसके पूरा होने के दौरान सरकार-ए-मफीज़ (दाता प्रभु) से नई बरकतों की वर्षा हुई।

[प्रार्थना और प्रशंसा खंड]

(अरबी): और पहली और आख़िरी बार, अंदरूनी और बाहरी तौर पर खुदा ही के लिए हम्द (प्रशंसा) है। हमारे आका और मौला हज़रत मुहम्मद, उनकी आल (परिवार) और असहाब (साथियों), उनके बेटे, उनकी जमाअत पर, और उनके माध्यम से हम पर भी खुदा का दरूद, बरकत और बहुत सारा सलाम हो, अल्लाह तआला से हमारी दुआ है कि हमारी कोशिश स्वीकार फरमाए, हमारे गुनाह माफ़

करे। हमारी मोहताजी पर रहम फरमाए। हमें इस्लाम के साथ ज़िंदगी और ईमान के साथ मौत नसीब हो, और हमें ... के गिरोह में उठाए।

(उर्दू अनुवाद): और पहली और आख़िरी बार, बातिन (गुप्त) और ज़ाहिर (प्रकट) में खुदा ही के लिए हम्द है। हमारे आका और मौला हज़रत मुहम्मद, उनकी आल और असहाब, उनके बेटे, उनकी जमाअत पर, और उनके माध्यम से हम पर भी खुदा का दरूद, बरकत और बहुत सारा सलाम हो, अल्लाह तआला से हमारी दुआ है कि हमारी कोशिश स्वीकार फरमाए, हमारे गुनाह माफ़ करे। हमारी मोहताजी पर रहम फरमाए। हमें इस्लाम के साथ ज़िंदगी और ईमान के साथ मौत नसीब हो।

पृष्ठ 829 / 948

فتاوی رضویہ جلد نہم

شرح دستخط مولانا عبد الجبار حنبلی بصری نزیل مدینہ سکینہ وقفت علی هذا المجموع فلفیته مهندا سل علی من شق عصا الجماعة معتزلا عن السنة میں اس تالیف پر واقف ہوا تو اسے ایک تیغ ہندی پایا، کھینچی گئی اس پر جس نے جماعت کا خلاف کیا اور سنت سے کنارہ کش ہوا۔ اشار برقمه الی الشیخ الاجل الورع الفقیه الزاهد مولانا عبد الجبار الحنبلی البصری نزیل المدینة المنورة متع الله المسلمین ببقائه آمین۔

شرح دستخط حضرت مولانا السید ابراهیم بن الخیار شافعی مفتی مدینہ امینہ کم طالعت بعد ما اطلعت ردو العلماء الاجلة علی الفرقة الضالة المضلة فما رأیت مثل هذا الرسالة، میں نے جب سے اطلاع پائی اس فرقہ گمراہ پر علمائے جلیل کے بہت رد دیکھے مگر اس رسالہ کا مثل نظر سے نہ گزرا۔ قال بفمه ورقم بقلمه خادم العلم بالحرم النبوی الشافعی ابراهیم ابن المرحوم محمد خیار الحسنی الحرمی۔ ابراہیم بن محمد خیار

الحمد لله علی حصول المسئول و بلوغ نهایة المأمول فقیر عبد المصطفی احمد رضا سنی حنفی قادری برکاتی بریلوی نے اس رسالہ کا مسودہ اوائل رجب ۱۳۰۵ھ میں کیا پھر بوجہ عروض بعض اعراض و اہتمام دیگر اغراض مثل تحریر مسائل و تصنیف بعض دیگر رسائل جن کی ضرورت اہم نظر آئی اس کی تبییض نے تاخیر پائی، اب بحمد الله بعنایت الهی و اعانت حضرت رسالت پناہی علیہ افضل الصلوة والسلام و علی آله و صحبہ الکرام سلخ شعبان سنہ مذکور کو وقت عصر یہ مسودہ مبیضہ ہوا اور اثنائے تبییض میں سرکار مفیض سے فیوض تازہ کا افاضہ ہوا۔

[دعا و ثناء]

والحمد اولاً و آخراً و باطناً و ظاهراً و صلى الله تعالىٰ سيدنا مولانا محمد و آله و صحبه و ابنه وحزبه و علينا بهم وبارك وسلم تسليماً كثيراً نسأل الله تعالىٰ ان يتقبل سعينا ويغفر لنا ذنوبنا ويرحم فاقتنا ويحيينا مسلمين و يميتنا مومنين و يحشرنا في زمرة

اور اول و آخر، باطن و ظاہر میں خدا ہی کے لیے حمد ہے۔ ہمارے آقا و مولا حضرت محمد، ان کی آل و اصحاب، ان کے فرزند، ان کی جماعت پر، اور ان کے طفیل ہم پر بھی خدا کا درود، برکت اور بکثرت سلام ہو، اللہ تعالیٰ سے ہماری دعا ہے کہ ہماری کوشش قبول فرمائے، ہمارے گناہ بخشے۔ ہماری محتاجی پر رحم فرمائے۔ ہمیں اسلام کے ساتھ زندگی اور ایمان کے ساتھ موت نصیب

Fatawa Razawiyya, Volume 9

[Boxed Text - Arabic]: ...among the righteous, and may He make this composition and all my other compositions beneficial to all my brothers in faith. Verily, He is the All-Hearing, Near, Powerful, Responder. And all praise is due to Allah, the Lord of all worlds.

[Boxed Text - Urdu]: ...make it so, may He grant us our resurrection among the group of the righteous, and through this composition and my other works, benefit all my religious brothers. Indeed, He is the Hearer, the Near One, the Powerful Answerer; and all praises are for God, who is the Sustainer of all the worlds. (T)

Finished with goodness and encompassing (The treatise is completed and made public with goodness - T)

www.dawateislami.net

In the name of Allah, the Beneficent, the Merciful.

The beautiful completion and grand registration in reminding of several sublime benefits.

Praising, sending blessings and greetings.

Although these benefits are the same as those proven in the discussions of the treatise, there was no specific chapter for them in the book; they occurred at scattered locations. Therefore, their significant nature required that their positions be made known here.

First Benefit: Those who oppose in this matter are deviant innovators. See (Saying 1/15) that denying the perceptions of the dead is the school of the Mu'tazilites, (Saying 2/18) that some Rafidi Mu'tazilites cited the lifelessness of the dead as evidence, (Saying 3/19) that the belief that the dead are like inanimate objects is the school of I'tizal, (Saying 4/25) that no one denies the knowledge of the dead except one who is ignorant of Hadiths and a denier of religion, (Saying 5/199 and 6/200) that there is a consensus (Ijma) of the entire Ahl al-Sunnah wa al-Jama'ah on the knowledge, hearing, and sight of the dead. It is obvious that the addressee of their consensus would not be a deviant innovator.

Second Benefit: The people of the graves see and recognize visitors, hear their speech, accept their salams, and respond; this is always the case, without

specification of any particular day. Friday and other than Friday are all the same, nor is there a specialty of any time. However, on the day of Friday, especially in the morning, recognition is at an increased level. See (Saying 2/69 and 80/2 and 81/3 and 4/82 and 5/82 and marginal note of Saying 6/81) and all those Hadiths and hundreds of sayings themselves quoted on this subject in the second and third sections of 'Maqasid' which, by their general and unconditional nature, are sufficient evidence for this generality and unconditionality, as has been indicated in the book (as an indication to it has passed in the book - T).

फ़तावा रज़विया, जिल्द 9

[बॉक्स किया हुआ पाठ - अरबी]: ...नेक लोगों में, और इस रचना और मेरी अन्य सभी रचनाओं से मेरे सभी धर्म भाइयों को लाभ पहुँचाए। निःसंदेह वह सुनने वाला, निकट, शक्तिशाली, उत्तर देने वाला है। और सारी प्रशंसा अल्लाह के लिए है, जो सभी जहानों का पालनहार है।

[बॉक्स किया हुआ पाठ - उर्दू]: ...करे, नेक लोगों की जमात में हमारा हश्र फरमाए और इस तालीफ से और मेरी दूसरी तसानीफ से मेरे तमाम दीनी भाइयों को फायदा पहुँचाए। बेशक वह सुनने वाला करीब, कुदरत वाला मुजीब है, और सब खूबियां खुदा के लिए जो सारे जहानों का परवरदिगार है। (त)

खैर के साथ मुकम्मल और आम हुआ (रिसाला तमाम हुआ और खैर के साथ आम हुआ-त)

www.dawateislami.net

बिस्मिल्लाहिर रहमानिर रहीम

कई बेहतरीन फायदों की याद दिलाने में खूबसूरत तकमील और शानदार तसजील।

प्रशंसा करते हुए, दुरूद और सलाम भेजते हुए।

हालांकि ये वही फायदे हैं जिनका सबूत रिसाले की बहसों में गुज़रा, लेकिन किताब में उनके लिए कोई खास बाब मुकर्रर न था, वे अलग-अलग जगहों पर आए थे। इसलिए, उनकी अहमियत के कारण यह चाहा गया कि यहाँ उनके मुकामों से आगाह कर दिया जाए।

पहला फायदा: इस मसले में खिलाफ करने वाले बिदअती गुमराह हैं। देखें (कौल 1/15) कि मुर्दों के इद्राकात (समझ) का इनकार मोतज़िला का मज़हब है, (कौल 2/18) कि कुछ राफज़ी मोतज़िला ने मुर्दों की बेजानी (जमादियत) को दलील के तौर पर पेश किया, (कौल 3/19) कि मैयत का बेजान (जमाद) होना एतज़ाल का मज़हब है, (कौल 4/25) कि मुर्दों के इल्म का मुनकिर वही होगा जो हदीसों से नावाकिफ और दीन का मुनकिर है, (कौल 5/199 और 6/200) कि मुर्दों के इल्म, सुनने और देखने पर तमाम अहले सुन्नत व जमात का इजमा (आम सहमति) है। लेकिन ज़ाहिर है कि उनके इजमा का मुखातब कोई गुमराह बिदअती नहीं होगा।

दूसरा फायदा: कब्र वाले ज़ियारत करने वालों को देखते और पहचानते हैं, उनकी बातें सुनते हैं, सलाम लेते हैं और जवाब देते हैं; यह बात हमेशा के लिए है, इसमें किसी खास दिन की पाबंदी नहीं है। जुमा और गैर-जुमा सब बराबर हैं, न ही किसी वक्त की खासियत है। हाँ, जुमा के दिन खासकर सुबह के वक्त पहचान में तरक्की (इज़ाफा) होती है। देखें (कौल 2/69 और 80/2 और 81/3 और 4/82 और 5/82 और कौल 6/81 का हाशिया) और खुद वे तमाम अहादीस और सैकड़ों अक़वाल जो मकासिद के दूसरे और तीसरे हिस्से में इस मकसद पर नक़्ल हुए, वे अपनी आमियत और बे-कैदी से इस आमियत और इलाक की दलील के लिए काफी हैं जैसा कि किताब में इसकी तरफ इशारा गुज़रा (जैसा कि किताब में इसकी तरफ इशारा गुज़रा है - त)।

فتاوٰی رضویہ، جلد نہم

الصالحین وان ینفع بھذا التألیف وسائر تصانیفی جمیع اخوانی فی الدین- انہ سمیع قریب قدیر مجیب والحمد للہ رب العلمین۔

کرے ، صالحین کی جماعت میں ہمارا حشر فرمائے اور اس تالیف سے اور میں دوسری تصانیف سے میرے تمام دینی بھائیوں کو فائدہ پہنچائے۔ بیشک وہ سننے والا قریب، قدرت والا مجیب ہے، اور سب خوبیاں خدا کے لیے جو سارے جہانوں کا پروردگار ہے۔(ت)

تمت وبالخیر عمت (رسالہ تمام ہوا اور خیر کے ساتھ عام ہوا۔ت)

www.dawateislami.net

بسم اللہ الرحمن الرحیم

تکمیل جمیل و تسجیل جلیل چند فوائد عالیہ کی یاد دہانی میں

حامدًا ومصلیاً ومسلماً

ہر چند یہ فوائد وہی ہیں جن کا ثبوت مباحث رسالہ میں گزرا مگر کتاب میں ان کے لیے کوئی فصل معین نہ تھی متفرق مواقع پر واقع ہوئے لہذا ان کے متمم بالشان ہونے نے چاہا کہ یہاں ان کے مواضع پر مطلع کر دیا جائے۔

فائدہ اولٰی: اس مسئلہ میں خلاف کرنے والے بدعتی گمراہ ہیں، دیکھو (قول ۱/۱۵) کہ ادراکاتِ موتیٰ کا انکار مذہب معتزلہ ہے، (قول ۲/۱۸) کہ بعض معتزلہ رافضی جمادیتِ موتیٰ سے سند لائے، (قول ۳/۱۹) کہ میت کا جماد ہونا مذہب اعتزال ہے (قول ۴/۲۵) کہ علمِ موتیٰ کا منکر نہ

ہوگا مگر حدیثوں سے جاہل ہے اور دین سے منکر، (قول ۵/۱۹۹ و ۶/۲۰۰) کہ علم و سمع و بصرِ موتیٰ پر تمام اہل سنت و جماعت کا اجماع ہے۔ پر ظاہر ہے کہ ان کے اجماع کا مخاطب نہ ہوگا بد مذہب گمراہ۔

فائدہ ثانیہ: اہل قبور کے زائروں کو دیکھتے پہچانتے، ان کا کلام سنتے، سلام لیتے، جواب دیتے ہیں، یہ بات ہمیشہ ہے اس میں کسی دن کی تخصیص نہیں، جمعہ و غیر جمعہ سب یکساں، نہ کسی وقت کی خصوصیت، ہاں جمعہ کے دن خصوصاً صبح کو معرفت ترقی پر ہوتی ہے۔ دیکھو (قول ۲/۶۹ اور ۸۰/۲ و ۸۱/۳ و ۴/۸۲ و ۵/۸۲ و حاشیہ قول ۶/۸۱) اور خود وہ تمام احادیث اور صدہا اقوال کہ فصول مقاصد دوم سوم میں اس مطلب پر منقول ہوئے کہ اپنے اطلاق وارسال سے اس عموم و اطلاق کی دلیل کافی ہیں کما مرت الاشارۃ الیہ فی الکتاب (جیسا کہ کتاب میں اس کی طرف اشارہ گزرا-ت)

Fatawa Razawiyya Volume 9

Third Benefit: The souls of the believers have the authority to go wherever they wish in the heavens and the earth, to travel and wander. See (Hadith 1/19 & 2, and Statement 3/13 and Article 4/6). To the extent that they meet their sincere ones in wakefulness and bestow blessings (Article 5/70 and 6/71). They give water to the weak and sick, cover them with cloth (Article 7/72), participate in Jihads (Article 5/15), help friends, and destroy enemies (Article 9/3). Even in the commentary of Sunan an-Nasa'i Sharif, it is clearly stated that the soul is not like the body; it can be in several places at one time (Statement 97). I say that narrations about living saints are mentioned that they used to be present in seventy places at once; then what to say about the actions after passing away when the soul is at its full freedom and perfection. In 'Zahr-ur-Ruba', it is also narrated for us that the hearts of believers can accept without hesitation that when Gabriel Amin (peace be upon him) was present in the service of the Holy Prophet (peace and blessings of Allah be upon him), he was not separated from Sidrat al-Muntaha, but rather was there and here at the same moment. The text is in the marginal note (T).

Marginal Note (Arabic): This is Gabriel (peace be upon him) whom the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) saw in a state that he had six hundred wings, of which two wings blocked the horizon. He would draw near to the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) until he placed his knees against the Prophet's knees and his hands on his thighs. The hearts of the sincere have the breadth of faith to believe that it is possible this closeness occurred while he was in his abode in the heavens. And in the hadith regarding seeing Gabriel: "I raised my head and behold, Gabriel was with his feet lined up between the heaven and the earth, saying, 'O Muhammad! You are the Messenger of Allah and I am Gabriel.' Then I did not turn my gaze to any side except that I saw him likewise." 12 (M)

Urdu Translation of the Note: This is Gabriel (peace be upon him) whom the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) saw in a state that he has six hundred wings, of which two wings filled the entire horizon. And he would draw near to the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) until he joined his knees with the Prophet's knees and placed his hands on the Prophet's thighs. And the hearts of the sincere have the capacity of faith that it is possible for this closeness to be in a state while he is present in his abode within the heavens. And in the hadith regarding seeing Gabriel: "I raised my head and saw that Gabriel was standing on his feet in a row between the heaven and the earth, saying 'O Muhammad! You are the

Messenger of Allah and I am Gabriel', then whichever side I turned my sight, I saw him in that same state." (T)

1 Zahr ar-Ruba 'ala Sunan an-Nasa'i, Book of Funerals, Souls of the Believers, Noor Muhammad Factory for Book Trade, Karachi 1/292. Page 831 of 948

फ़तावा रज़विया जिल्द 9

तीसरा लाभ: ईमान वालों की रूहों को यह अधिकार होता है कि वे ज़मीन और आसमान में जहाँ चाहें जाएँ सैर करें, घूमें-फिरें। देखें (हदीस 1/19 और 2 और कौल 3/13 और लेख 4/6)। यहाँ तक कि जागृत अवस्था में अपने निष्ठावानों से मिलते हैं और फ़ैज़ पहुँचाते हैं (लेख 5/70 और 6/71)। कमज़ोर बीमारों को पानी पिलाते हैं, कपड़ा ओढ़ाते हैं (लेख 7/72), जिहादों में शामिल होते हैं (लेख 5/15), दोस्तों की मदद करते हैं, दुश्मनों को हलाक करते हैं (लेख 9/3)। यहाँ तक कि शरह सुनन नसई शरीफ में स्पष्ट रूप से उल्लेख है कि रूह शरीर जैसी नहीं है, वह एक ही समय में कई स्थानों पर हो सकती है (कौल 97)। मैं कहता हूँ कि जीवित औलिया की कथाएँ वर्णित हैं कि वे एक ही समय में सत्तर स्थानों पर उपस्थित होते थे; फिर मृत्यु के बाद जब रूह अपनी पूर्ण स्वतंत्रता और उन्नति पर होती है, तो उस समय के कार्यों का क्या कहना। 'ज़हर-उर-रुबा' में हमारे लिए यह भी उद्धृत किया गया है कि ईमान वाले दिल इसे बेझिझक स्वीकार कर सकते हैं कि जब जिब्रील अमीन (अलैहिस्सलाम) हुज़ूर अकदस (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) की सेवा में उपस्थित होते थे, तो वे सिदरतुल मुंतहा से अलग नहीं होते थे, बल्कि उसी क्षण यहाँ भी होते थे और वहाँ भी। इबारत हाशिये (फ़ुटनोट) में है। (त)

हाशिया (अरबी): यह जिब्रील (अलैहिस्सलाम) हैं जिन्हें नबी (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने उस अवस्था में देखा कि उनके छह सौ पंख हैं, जिनमें से दो पंखों ने क्षितिज को रोक दिया है। वह नबी (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) के निकट आते यहाँ तक कि अपने घुटने हुज़ूर के घुटनों से सटा देते और अपने हाथ हुज़ूर की जांघों पर रखते। निष्ठावानों के दिलों में ईमान की इतनी व्यापकता है कि वे यह मानते हैं कि यह संभव है कि यह समीपता उसी स्थिति में हो जब वे आसमान के भीतर अपने ठिकाने (मुस्तकर) में मौजूद हों। और हदीस में हज़रत जिब्रील को देखने के बारे में है: "मैंने अपना सिर उठाया तो देखा कि जिब्रील आसमान और ज़मीन के बीच अपने पैरों पर कतारबद्ध होकर खड़े हैं और कह रहे हैं 'ऐ मुहम्मद! आप अल्लाह के रसूल हैं और मैं जिब्रील हूँ', फिर मैंने जिस दिशा में भी अपनी नज़र घुमाई, उन्हें उसी स्थिति में देखा।" 12 (म)

उर्दू अनुवाद: यह जिब्रील अलैहिस्सलाम हैं जिन्हें नबी सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने इस हालत में देखा कि उनके छह सौ पर (पंख) हैं जिनमें से दो परों ने सारा उफ़ुक़ (क्षितिज) भर दिया है, और वह नबी सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम के करीब आते यहाँ तक कि अपने ज़ानू हुज़ूर के ज़ानूओं से मिला कर और अपने हाथ हुज़ूर की रानों पर रखते। और मुख़लिसों (निष्ठावानों) के दिल इस बात पर ईमान

की गुंजाइश रखते हैं कि यह मुमकिन है कि यह क़ुर्ब (समीपता) इसी हाल में हो जब वह आसमान के अन्दर अपने मुस्तक़र (ठिकाने) में मौजूद हों, और हदीस में हज़रत जिब्रील को देखने के बारे में है: मैंने अपना सर उठाया तो देखा कि जिब्रील आसमान व ज़मीन के दरमियान अपने क़दमों पर सफ़ बस्ता (कतारबद्ध) कह रहे हैं 'ऐ मुहम्मद! आप अल्लाह के रसूल हैं और मैं जिब्रील हूँ', फिर जिस तरफ भी निगाह फेरता उन्हें इसी कैफ़ियत में देखता। (त)

1 ज़हर-उर-रुबा अला सुनन अन-नसई, किताबुल जनाइज़, अरवाहुल मुअमिनीन, नूर मुहम्मद कारख़ाना तिजारत कुतुब, कराची 1/292. पेज 948 का 831

فتاوٰی رضویہ جلد نہم

فائدہ ثالثہ: ارواح مومنین کو اختیار ہوتا ہے کہ زمین و آسمان میں جہاں چاہیں جائیں، سیر کرتی، جولان فرمائیں، دیکھو (حدیث ۱/۱۹ و ۲ و قول ۳/۱۳ و مقال ۴/۶) یہاں تک کہ بیداری میں اپنے مخلصین سے ملتے فیض بخشتے ہیں (مقال ۵/۷۰ و ۶/۷۱) ناتواں بیماروں کو پانی پلاتے، کپڑا اڑھاتے ہیں (مقال ۷/۷۲) جہادوں میں شرکت فرماتے ہیں (مقال ۵/۱۵) دوستوں کی مدد، دشمنوں کو ہلاک کرتے ہیں (مقال ۹/۳) یہاں تک کہ شرح سنن نسائی شریف میں تصریح فرمائی کہ روح کا جسم کا سا نہیں وہ ایک وقت میں چند جگہ ہو سکتی ہے (قول ۹۷) میں کہتا ہوں اولیائے احیاء کی حکایات منقول کہ ایک وقت میں ستر جگہ تشریف فرما ہوتے تھے پھر بعد وصال کہ روح اپنی آزادی و ترقی کامل پر ہوتی ہے اس وقت کے افعال کا کہنا ہی کیا ہے۔ زہر الربی میں ہمیں یہ بھی نقل فرمایا کہ ایمان والوں کے دل اسے بے تکلف قبول کر سکتے ہیں کہ جبریل امین علیہ الصلوۃ والسلام جب خدمت حضور اقدس صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم میں حاضر ہوتے سدرۃ المنتہٰی سے جدا نہ ہوتے ہوں بلکہ اسی آن میں یہاں بھی ہوں اور وہاں بھی العبارۃ عہ علی الحاشیۃ (عبارت حاشیہ میں ہے۔ت)

عہ: ھذا جبریل علیہ السلام رأہ النبی صلی اللہ تعالی علیہ وسلم ولہ ست مائۃ جناح، منھا جناحان سدا الافق وکان یدنو من النبی صلی اللہ تعالی علیہ وسلم، حتی یضع رکبتیہ علی رکبتیہ ویدیہ علی فخذیہ وقلوب المخلصین تتسع للایمان بانہ من الممکن انہ کان ھذا الدنو و ھو فی مستقرہ من السمٰوٰت وفی الحدیث فی رؤیۃ جبریل فرفعت راسی فإذا جبریل صاف قدمیہ بین السماء والارض یقول یا محمد انت رسول اللہ وانا جبریل فجعلت لا اصرف بصری الی ناحیۃ الا رأیتہ کذالك ۱۲(م)

یہ جبریل علیہ السلام ہیں جنہیں نبی صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم نے اس حالت میں دیکھا کہ ان کے چھ سو پر ہیں جن میں سے دو پروں نے سارا افق بھر دیا ہے، اور وہ نبی صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کے قریب آتے یہاں تک کہ اپنے زانو حضور کے زانوؤں سے ملا کر اور اپنے ہاتھ حضور کی رانوں پر رکھتے۔ اور مخلصین کے دل اس بات پر ایمان کی وسعت رکھتے ہیں کہ یہ ممکن ہے کہ یہ قرب اسی حال میں ہو جب وہ آسمان کے اندر اپنے مستقر میں موجود ہوں، اور حدیث میں حضرت جبریل کو دیکھنے کے بارے میں ہے: میں نے اپنا سر اٹھایا تو دیکھا کہ جبریل آسمان و زمین کے درمیان اپنے قدموں پر صف بستہ کہہ رہے ہیں اے محمد! آپ اللہ کے رسول ہیں اور میں جبریل ہوں، پھر جس طرف بھی نگاہ پھیرتا انہیں اسی کیفیت میں دیکھتا۔(ت)

1 زہر الربی علی سنن النسائی کتاب الجنائز ارواح المؤمنین نور محمد کارخانہ تجارت کتب کراچی ۱/ ۲۹۲

Fatawa Razawiyya, Volume 9

Then the ignorant fools' ignorant misgiving regarding the Presence of Light, the Soul of Justice, the Holy Spirit, the Soul of Souls (Allah bless him and grant him peace), that if he should grace any gathering with his presence, it would necessitate leaving the blessed grave before the Day of Judgment, and that the radiant tomb would then have to remain empty, is pure foolishness.

Firstly: This is an analogy of the soul to the body and the imprisonment of the sovereign intellect in the prison of delusion.

Secondly: Intelligent people have not even observed that the souls of even common believers are not imprisoned in their graves; rather, they reside in places worthy of their respective ranks, such as 'Illiyyun, Paradise, the heavens, or the Well of Zamzam, etc., which noble scholars, including Shah Abdul Aziz Sahib, have mentioned in detail in 'Tafsir Azizi' (A):

Thirdly: This objection applies exactly to those numerous Hadiths in which it is explicitly clarified that the souls of believers travel wherever they wish after passing away. It would follow that when they go to travel, the graves would remain empty and the resurrection would occur before the Day of Judgment. However, it is a blessing that ignorance and prejudice do not lead to even worse. A few years ago, a question came to this humble servant (the author): Zaid says that the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) goes wherever he wishes from the radiant tomb; Amr denies this—To Allah we belong and to Him we return. This humble servant (may Allah Almighty forgive him) wrote a detailed fatwa in response and proved this travel and choice for the souls of martyrs and other common believers with many Hadiths and quoted the words of the scholars of religion. This

(A): The station of 'Illiyyun is above the seven heavens; its lower part is connected to Sidrat al-Muntaha, and its upper part is connected to the right pillar of the Glorious Throne. The souls of the righteous reach there after being taken, and the close ones, i.e., Prophets and Saints, remain in that abode. After their names are recorded and their scrolls of deeds are delivered, common righteous people are given places according to their ranks in the sky of the world, or between the sky and the earth, or in the Well of Zamzam, and those souls also maintain a connection with the grave. [1] Until the end of the passage which was mentioned in Discourse 7. 12 From Tafsir Azizi (M).

'Illiyyun is above the seven heavens; its lower part is connected with Sidrat al-Muntaha and the upper part is connected with the right leg of the Glorious Throne. The souls of the good reach there after being seized, and the 'Muqarribeen' i.e. Prophets and Saints stay in this resting place, and the common righteous ones, after getting their names registered and deeds delivered, are given places according to their ranks in the sky of this world, or between the sky and earth, or in the Well of Zamzam, and they also have a connection with the grave. (T)

[1] Tafsir Azizi, Para 'Am, under the verse 'Inna Kitabal Abrara Lafi 'Illiyyun', Muslim Book Depot, Lal Kuan, Delhi, p. 193.

फ़तावा रज़विया, जिल्द नौ

फिर बेखबर बेवकूफों का स्वयं हुज़ूर पुर नूर, रूहुल क़िस्त, रूहुल क़ुद्स, रूहुल अरवाह (सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम) के बारे में यह जाहिलाना शक कि अगर वे किसी महफ़िल में तशरीफ़ लाएं तो क़यामत से पहले मक़बरा-ए-अतहर से निकलना लाज़िम होगा, और उस वक़्त रौज़ा-ए-अनवर को खाली रहना चाहिए, सरासर हिमाक़त है।

अव्वलन: यह रूह का जिस्म पर क़यास है और वहम के क़ैदख़ाने में सुल्तान-ए-अक़्ल की क़ैद है।

सानियन: अक़्लमंदों ने इतना भी नहीं देखा कि आम मोमिनों की रूहें भी क़ब्रों में क़ैद नहीं रहतीं, बल्कि अपने-अपने मरतबों के मुताबिक़ 'इल्लीन' या जन्नत या आसमान या ज़मज़म के कुएं वगैरह में होती हैं, जिसे उलमा-ए-किराम, यहाँ तक कि शाह अब्दुल अज़ीज़ साहब ने भी 'तफ़सीर-ए-अज़ीज़ी' (अ) में तफ़सील से ज़िक्र किया है:

सालिसन: यह एतराज़ हूबहू उन बेशुमार अहादीस पर भी होता है जिनमें साफ़ तौर पर ज़िक्र है कि मोमिनों की रूहें इंतिक़ाल के बाद जहाँ चाहें सैर करती हैं। लाज़िम आएगा कि जब वे सैर को जाएँ तो क़ब्रें खाली रह जाएँ और क़यामत से पहले ही हश्र हो जाए। मगर जहल और तअस्सुब (पक्षपात) जो न कराएं वो ग़नीमत है। चंद साल हुए इस फ़क़ीर (लेखक) के पास एक सवाल आया: ज़ैद कहता है कि हुज़ूर (सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम) रौज़ा-ए-अनवर से जहाँ चाहते हैं तशरीफ़ ले जाते हैं, अमर इसका मुनकिर (इनकारी) है—इन्ना लिल्लाहि व इन्ना इलैहि राजिऊन। फ़क़ीर (अल्लाह तआला उसे माफ़ करे) ने इसके जवाब में मुफ़स्सल फ़तवा लिखा और वहां इस सैर व इख़्तियार को शुहदा और दीगर आम मोमिनों की रूहों के लिए बहुत सी हदीसों से साबित किया और दीन के उलमा के कलाम नक़ल किए। यह

(अ): 'इल्लीन' का मक़ाम सात आसमानों के ऊपर है और इसका निचला हिस्सा 'सिदरा-तुल-मुंतहा' से जुड़ा है और ऊपरी हिस्सा 'अर्श-ए-मजीद' के दाएं पाये से जुड़ा है। नेक लोगों की रूहें क़ब्ज़ होने के बाद वहाँ पहुँचती हैं और 'मुक़र्रबीन' यानी अंबिया और औलिया उसी ठिकाने में रहते हैं। और आम नेक लोगों के नाम दर्ज होने और आमालनामे पहुँचने के बाद, उनके मरतबों के मुताबिक़ दुनिया के आसमान पर, या आसमान और ज़मीन के दरमियान, या ज़मज़म के कुएं में जगह दी जाती है और उन रूहों का क़ब्र से भी एक ताल्लुक़ रहता है। [1] इबारत के अंत तक जो मक़ाल 7 में गुज़री। 12 तफ़सीर-ए-अज़ीज़ी से (म)।

'इल्लीन' सातों आसमानों के ऊपर है, इसका निचला हिस्सा 'सिदरा-तुल-मुंतहा' से जुड़ा है और ऊपरी हिस्सा 'अर्श-ए-मजीद' के दाएं पाये से जुड़ा है। नेक लोगों की रूहें क़ब्ज़ होने के बाद वहां पहुँचती हैं और 'मुक़र्रबीन' यानी अंबिया और औलिया इस मुस्तक़र (ठिकाने) में रहते हैं, और आम नेक लोगों को दर्ज कराने और आमालनामे पहुँचाने के बाद मरतबों के मुताबिक़ दुनिया के आसमान, या आसमान और ज़मीन के दरमियान या ज़मज़म के कुएं में जगह देते हैं और उनका क़ब्र से भी एक ताल्लुक़ रहता है। (त)

[1] तफ़सीर-ए-अज़ीज़ी पारा 'अम्म, आयत 'इन्ना किताबुल अबरारा लफ़ी इल्लीन' के तहत, मुस्लिम बुक डिपो लाल कुआँ दिल्ली, सफ़ा 193.

فتاوٰی رضویہ جلد نہم

پھر سفہائے غافلین کا خود حضور پر نور روح القسط روح القدس روح الارواح صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم کی نسبت یہ جاہلانہ وسوسہ کہ اگر وہ کسی مجلس میں تشریف لائیں تو پیش از قیامت مرقد اطہر سے خروج لازم ہو، اور چاہئے کہ اس وقت روضہ انور خالی رہ جائے، محض حماقت ہے۔ اولاً: وہ روح کا جسم پر قیاس اور زندانِ وہم میں سلطانِ عقل کا احتباس۔ ثانیاً: ہوشمندوں نے اتنا بھی نہ دیکھا کہ روحیں تو عوام مومنین کی بھی قبور میں محبوس نہیں رہتیں بلکہ اپنے اپنے مراتب کے لائق علیین یا جنت یا آسمان یا چاہ زمزم وغیرہ میں ہوتی ہیں، جسے علمائے کرام یہاں تک کہ شاہ عبدالعزیز صاحب نے بھی تفسیر عزیزی عہ میں مفصلاً ذکر کیا: ثالثاً یہ اعتراض بعینہ ان احادیث کثیرہ پر بھی وارد جن میں صریح تصریح کہ ارواح مومنین بعد انتقال جہاں چاہیں سیر کرتی ہیں، لازم کہ جب وہ سیر کو جائیں قبریں خالی رہ جائیں اور قیامت سے پہلے حشر ہو جائے مگر جہل و تعصب جو نہ کرائیں وہ غنیمت ہے، چند سال ہوئے فقیر کے پاس ایک سوال آیا زید کہتا ہے حضور صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم روضہ انور سے جہاں چاہتے ہیں تشریف لے جاتے ہیں، عمرو منکر ہے انا للہ وانا الیہ راجعون، فقیر غفر اللہ تعالٰی لہ نے اس کے جواب میں مفصل فتوٰی لکھا اور وہاں اس سیر و اختیار کو شہداء و غیر شہداء عام مومنین کی ارواح کے لیے بہت حدیثوں سے ثابت کیا اور کلماتِ علمائے دین سے اس کے وقائع کئے۔ یہ عہ: مقام علیین بلائے ہفت آسمان است و پائیں آں متصل بہ سدرۃ المنتہٰی و بالائے آں متصل بپایہ راست عرشِ مجید است و ارواحِ نیکاں بعد از قبض در آں جامی رسند و مقرباں یعنی انبیاء و اولیاء در آں مستقر می مانند و عوام صلحاء را بعد از نویا نیدن نام و رسانیدن نامہائے اعمال بر حسب مراتب در آسمانِ دنیا یا درمیانِ آسمان و زمین یا در چاہِ زمزم قرار می دہند و تعلقے بقبر نیز اں ارواح را می باشند ۱۔ آخر عبارت

تک کہ مقال ۷ میں گزری ۱۲ از تفسیر عزیزی (م) علیین ساتوں آسمان کے اوپر ہے اس کا زیریں حصہ سدرۃ المنتہیٰ سے متصل ہے اور بالائی حصہ عرشِ مجید کے دائیں پائے سے متصل ہے، نیکوں کی روحیں قبض ہونے کے بعد وہاں پہنچتی ہیں اور مقربین یعنی انبیاء و اولیاء اس مستقر میں رہتے ہیں، اور عام صالحین کو درج کرانے اور اعمال نامے پہنچ جانے کے بعد حسب مراتب آسمانِ دنیا، یا درمیانِ آسمان و زمین یا چاہِ زمزم میں جگہ دیتے ہیں اور ان کو قبر سے بھی ایک تعلق رہتا ہے۔ (ت)

۱ تفسیر عزیزی پارہ عم زیر آیہ ان کتاب الابرار لفی علیین مسلم بک ڈپو لال کنواں دہلی ص ۱۹۳

Fatawa Razawiyya, Volume 9.

The fatwa is attached in the sixth volume of the faqir's (humble servant's) fatwa collection named "Al-Ataya al-Nabawiyya fil-Fatawa al-Razawiyya". All praise is due to Allah, the Lord of all worlds. Benefit 4, extremely useful: For pure souls, seeing and hearing are the same regardless of near or far. This is a refined, glorious, and immensely beneficial point that requires special attention. Look at (Statement 1/65) that saints, while alive, see with the light of God, and nothing can veil the light of God. Then what to say of the deceased? (Statement 2/69) states that proximity to the grave occurs on Fridays, but perception and recognition are permanent. (Statements 4/186, 3/7) mention that the soul resides in Paradise, the heavens, or 'Illiyyin' with the Highest Companion, and from there it hears the visitor's voice, responds, perceives, and utilizes its body. Then who can specify the distance of millions of stages from Earth to Paradise, let alone from Bareilly to Baghdad or from India to Medina (peace and blessings of Allah be upon him, his family, and descendants)? (Statements 5/113 and 6/114) state that there is no veil for souls, and the whole world is the same to them. (Statements 7/187, 8/188, and 9/189) affirm that holy souls see and hear everything as if it were present before them. (Statement 10/7) quotes Shah Abdul Aziz saying that distance of place is not a barrier to the soul's perception; its condition is like looking from inside a well and being able to see stars in the seven heavens. This is the meaning of the noble guidance from two Imams of the pure Ahl al-Bayt, the two sons of the fragrant plants of prophethood, Imam Zayn al-Abidin Ali bin Husayn, the martyr of Karbala, and Imam Hasan al-Muthanna son of Imam al-Akbar Sayyiduna Hasan al-Mujtaba (salutations and peace be upon their noble ancestors and upon them), who said to the visitors of the sacred shrine:

"You and those in Andalusia are equal." (Reported in Jazb al-Qulub etc. – T)

In Question 6, a Hadith was mentioned that there is an angel of Allah who stands at the sacred shrine and hears the voices of all worlds. It is known that this is not a property exclusive to divinity; rather, its attainment is possible for a servant and falls under Divine power. Thus, for anyone to claim that affirming this for someone is polytheism (shirk) is a strange spectacle. This humble servant (may Allah forgive him) has fully researched this in his treatise "Saltanat al-Mustafa fi Malakut Kull al-Wara" and with Allah lies the success. Benefit 5: Therefore, their help is continuous everywhere, not limited to those nearby. For this reason, seeking help from them and calling upon them is valid and correct regardless of presence at the shrine; you may do so from wherever you wish. Although presence at the shrines offers more

complete and greater benefit. Look at (Statements 1/113 and 2/114). Consider how far the followers of the mujtahid Imams are spread throughout God's lands, yet how do they (the Imams) help every person in every difficulty and calamity and always remain watchful? Similarly, the noble saints...

फतावा रज़विया, खंड 9

फ़कीर का फतवा छठा जिल्द 'फतावा मुसम्मा बि अल-अताया अल-नबविया फिल फतावा अर-रज़विया' में संलग्न है। और तमाम तारीफें अल्लाह के लिए हैं जो तमाम जहानों का रब है। चौथा लाभ, अत्यंत लाभकारी: पवित्र आत्माओं के लिए देखना और सुनना, पास और दूर, सब समान है। यह एक अत्यंत सूक्ष्म, प्रतापी और महान लाभकारी विषय है जिसकी ओर विशेष ध्यान आवश्यक है। देखो (कथन 1/65) कि औलिया (अल्लाह के वली) जीवित अवस्था में अल्लाह के नूर से देखते हैं, और अल्लाह के नूर को कोई चीज़ रोक नहीं सकती। फिर मृतकों की तो क्या बात (कथन 2/69) कि कब्र से निकटता तो जुमे को होती है, लेकिन बोध और पहचान स्थायी है (कथन 4/186, 3/7)। आत्मा जन्नत, आसमान या 'इल्लीय्यीन' में रफीक-ए-आला के साथ होती है और वहीं से ज़ायर (दर्शनार्थी) की आवाज़ सुनती है, उत्तर देती है, बोध करती है और अपने शरीर से काम लेती है। फिर कौन बता सकता है कि ज़मीन से जन्नत तक की लाखों-करोड़ों मंज़िलों की दूरी क्या है, न कि बरेली से बगदाद या हिन्द से मदीना (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम)। (कथन 5/113 और 6/114) आत्माओं के आगे कोई पर्दा नहीं है और उनके लिए सारा जहान एक समान है। (कथन 7/187, 8/188 और 9/189) पवित्र आत्माएं सब कुछ ऐसे देखती और सुनती हैं जैसे सामने उपस्थित हों। (लेख 10/7) शाह अब्दुल अज़ीज़ साहब का कथन है कि रूह को स्थान की समीपता या दूरी इस बोध में बाधक नहीं है; उसकी स्थिति ऐसी है जैसे कुएँ के अंदर से सातवें आसमान के सितारे देखे जा सकते हैं। यही अर्थ है अहले-बैत के दो पाक इमामों, रिसालत के दो फूलों, हज़रत इमाम ज़ैनुल आबेदीन अली बिन हुसैन शहीद-ए-कर्बला और हज़रत इमाम हसन मुसन्ना इब्ने इमाम-ए-अकबर सैयदुना हसन मुजतबा (उन पर और उनके पाक पूर्वजों पर अल्लाह की रहमत और सलामती हो) के उस इरशाद का जो उन्होंने मज़ार-ए-अकदस के ज़ायरीन से फरमाया:

"तुम और जो अन्दलुस में बैठे हैं, बराबर हैं।" (इसे 'जज़्ब अल-कुलूब' आदि में बयान किया गया है। - त)

सवाल 6 में हदीस गुज़री कि अल्लाह तआला का एक फरिश्ता है जो रौज़ा-ए-अकदस पर खड़ा तमाम जहानों की आवाज़ें सुनता है। मालूम हुआ कि यह केवल ईश्वरत्व (उलूहियत) का अनिवार्य गुण नहीं है, बल्कि बंदे के लिए इसका प्राप्त होना संभव है और अल्लाह की शक्ति के अधीन है। फिर किसी के लिए इसे सिद्ध करना शिर्क कहना एक अजीब तमाशा है। इस फ़कीर ने इसकी पूरी तहकीक अपने रिसाले 'सल्तनतुल मुस्तफा फी मलकूति कुल्लिल वरा' में की है। और अल्लाह ही

तौफीक देने वाला है। पाँचवाँ लाभ: इसीलिए उनकी सहायता हर जगह जारी है, केवल पास वालों तक सीमित नहीं है। और इसीलिए उनसे मदद मांगना और उन्हें पुकारना हुज़ूर मज़ार (मज़ार पर उपस्थिति) के बिना भी सही और दुरुस्त है जहाँ से भी चाहो। यद्यपि मज़ारों पर उपस्थिति में लाभ अधिक पूर्ण और ज़्यादा है। देखो (कथन 1/113 और 2/114)। विचार करो कि मुजतहिद इमामों के मानने वाले अल्लाह के पूरे मुल्क में कहाँ-कहाँ तक फैले हुए हैं, फिर वे किस तरह हर व्यक्ति की हर मुश्किल और मुसीबत में मदद फरमाते हैं और हमेशा खबरगीर रहते हैं, इसी तरह औलिया-ए-कराम...

فتوٰی فقیر کی مجلد ششم فتاوٰی مسمّٰی بہ العطایا النبویہ فی الفتاوٰی الرضویہ میں منسلک۔ والحمد للہ رب العالمین فائدہ رابعہ بغایت نافعہ: ارواح طیبہ کے نزدیک دیکھنے سننے میں دور و نزدیک سب یکساں ہے یہ ایک مطلب نفیس و جلیل و عظیم الفائدہ ہے جس کی طرف توجہ خاص لازم۔ دیکھو (قول ۱/۶۵) کہ اولیاء احیاء نور خدا سے دیکھتے ہیں، اور نور خدا کو کوئی چیز حاجب نہیں، پھر اموات کا کیا کہنا (قول ۲/۶۹) کہ قبر سے نزدیکی تو جمعہ کو ہوتی ہے اور ادراک وشناخت دائمی (قول ۴/۱۸۶، ۳/۷) کہ روح جنت یا آسمان یا علیین میں رفیق اعلٰی میں ہوتی ہے اور وہیں سے زائر کی آواز سنتی ہے جواب دیتی، ادراک کرتی، اپنے بدن سے کام لیتی ہے۔ پھر کون بتا سکتا ہے کہ زمین سے جنت تک کے لاکھ کے کروڑ منزل کا فاصلہ ہے نہ کہ بریلی سے بغداد یا ہند سے مدینہ صلی اللہ تعالٰی علیہ والہ و بارک وسلم، (قول ۵/۱۱۳ و ۶/۱۱۴) ارواح کے آگے کچھ پردہ نہیں اور انھیں سارا جہاں یکساں ہے (قول ۷/۱۸۷ و ۸/۱۸۸ و ۹/۱۸۹) کہ ارواح قدسیہ سب کچھ ایسا دیکھتی سنتی ہیں جیسے سامنے حاضر ہے (مقال ۱۰/۷) شاہ عبدالعزیز صاحب کا قول کہ روح کو قرب و بُعد مکانی اس دریافت کا حاجب نہیں اس کا حال نگاہ کے سامنے کے کنویں کے اندر سے ساتوں آسمان کے ستارے دیکھ سکتی ہے۔ یہی معنی ہیں ارشادِ عالی دو امامِ اہلبیت طہارت، دو فرزند ریحانین، رسالت حضرت امام اجل زین العابدین علی بن حسین شہید کرب و بلا و حضرت امام حسن مثنی ابن امام اکبر سیدنا حسن مجتبی صلوات اللہ وسلامہ علی ابیہم الکریم و علیہم کے کہ زائرین مزار اقدس سے فرمایا:

انتم ومن فی الاندلس سواء۔ حکاہ فی جذب القلوب | تم اور جو اندلس میں بیٹھے ہیں۔ برابر ہیں (اسے جذب القلوب وغیرہ میں بیان کیا گیا ہے۔ ت)

سوال ۶ میں حدیث گزری کہ اللہ تعالیٰ کا ایک فرشتہ ہے جو روضہ اقدس پر کھڑا تمام جہانوں کی آوازیں سنتا ہے معلوم ہوا کہ یہ خاصہ ملزومہ الوہیت نہیں بلکہ بندے کو اس کا حصول ممکن اور زیر قدرت الہی داخل پھر کسی کے لیے اس کا اثبات شرک ہونا عجب تماشا ہے۔ فقیر غفر اللہ تعالٰی لہ نے اس کی تحقیق تام اپنے رسالہ سلطنة المصطفٰی فی ملکوت کل الوری میں ذکر کی وباللہ التوفیق۔ فائدہ خامسہ: ولہذا ان کی امداد ہر جگہ جاری، کچھ نزدیکوں پر منحصر نہیں، اور اسی لیے ان سے استمداد اور ان کی ندا میں بھی حضور مزار غیر مشروط بلکہ جہاں سے چاہو صحیح و درست ہے اگرچہ حضور مزارات میں نفع اتم و زائد ہے دیکھو (قول ۱/۱۱۳ و ۲/۱۱۴) غور کرو ائمہ مجتہدین کے پیر و تمام ملک خدا میں کہاں سے کہاں تک پھیلے ہیں پھر وہ کیونکر ہر شخص کی ہر مشکل و آفت میں مدد فرماتے اور دائمًا خبرگیراں رہتے ہیں، اس طرح حضرات اولیائے کرام

Fatawa Razawiyya, Volume 9

With his disciples of the orders, see (Quote 4/39) Sidi Ahmad Zarruq (may Allah be pleased with him) himself said: "When any calamity strikes, call out 'Ya Zarruq!', I will come to help immediately." See (Quote 4/163). And the saying of Shah Abdul Aziz, see (Article 5/88). Shah Waliullah says: "While sitting at home, turn your attention towards the pure souls." See (Question 6/12). Mirza Mazhar (Sahib), in physical ailments, turned towards Hazrat Mawla Ali (may Allah honor him) and in spiritual difficulties towards Hazrat Siddiq Akbar (may Allah be pleased with him); help was provided from there. See (Question 7/17 and Article 8/32). Sitting at home, reciting odes and receiving favors from exalted souls. See (Question 9/18 and Article 10/10). Regarding Ghaus-e-Azam (may Allah be pleased with him), it is said that whichever devotee of his was met, special attention was found bestowed upon their state. See (Article 11/33). The account of the Mughals: while sleeping in the forest, they would entrust their wealth to the protection of Hazrat Khawaja Bahauddin Naqshband (may his secret be sanctified); they received help from the unseen. See (Article 12/44). In every city, servants of God attain the ranks of sainthood and 'Qutbiyat' (pole-star status); then how is it that they all receive that grace from the pure Imams and the Presence of Ghaus-ul-Thaqalayn (may Allah be pleased with them)? See.

Note: A Great Benefit: Allama Ziyadi, then Allama Ajhuri, then Allama Dawoodi, then Allama Shami state: Anyone who loses something should stand on an elevated place facing the Qiblah, recite Surah Al-Fatihah, and offer its reward to the Holy Prophet (peace and blessings of Allah be upon him), then offer its reward to Sidi Ahmad bin Alwan Yamani (may his secret be sanctified), and thereafter say: "O my master Ahmad! O son of Alwan! May I find my lost item, etc." It is in Radd al-Muhtar, the commentary on Durr al-Mukhtar in the chapter of Munyah:

[Arabic Column]: Ziyadi has established that if a person loses something and wants Allah subhanahu wa ta'ala to return it to him, he should stand on a high place facing the Qiblah, read Al-Fatihah, gift its reward to the Prophet (sallallahu ta'ala 'alayhi wa sallam), then gift the reward of that to Sidi Ahmad ibn Alwan, and say: "O Sidi Ahmad, O Ibn Alwan, if you do not return my lost item to me, I will remove you from the register of the saints." For Allah the Exalted returns the lost item to the one who says that, through his blessing. [Cited by] Ajhuri with additions, and similarly in the commentary of Manhaj by Dawoodi (may Allah have mercy on him). End. 12.

[Urdu Column]: Ziyadi has stated that when someone's thing is lost, they should stand on a high place facing the Qiblah, recite Fatihah and present its reward to the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) and submit: "Sidi Ahmad, O son of Alwan! If you do not return my lost item, I will have your name removed from the register of saints." Allah the Exalted, by their blessing, will have the lost item returned to the one who says this. Thus it is in Ajhuri's addition and in Dawoodi's (may Allah's mercy be upon him) commentary of Manhaj. 12 (T)

फ़तावा रज़विया, खंड 9

अपने सिलसिलों के मुरीदों के साथ, देखें (कौल 4/39) स्वयं सैयदी अहमद ज़रूक़ (रज़ियल्लाहु अन्हु) ने फरमाया: "जब कोई मुसीबत आए, तो 'या ज़रूक़!' कहकर पुकारो, मैं तुरंत मदद के लिए आऊंगा।" देखें (कौल 4/163)। और शाह अब्दुल अज़ीज़ साहब का कथन, देखें (लेख 5/88)। शाह वलीउल्लाह कहते हैं: "घर बैठे पवित्र आत्माओं की ओर ध्यान लगाओ।" देखें (सवाल 6/12)। मिर्ज़ा मज़हर साहब शारीरिक कष्टों में हज़रत मौला अली (करमल्लाहु वजहुल करीम) की ओर और आध्यात्मिक कठिनाइयों में हज़रत सिद्दीक़ अकबर (रज़ियल्लाहु अन्हु) की ओर ध्यान लगाते थे; वहां से सहायता प्रदान की जाती थी। देखें (सवाल 7/17 और लेख 8/32)। घर बैठे क़सीदे सुनाते और उच्च आत्माओं से कृपा पाते। देखें (सवाल 9/18 और लेख 10/10)। हज़रत ग़ौस-ए-आज़म (रज़ियल्लाहु अन्हु) के बारे में कहा गया कि उनके जिस भी भक्त से मुलाकात हुई, उस पर विशेष कृपा पाई गई। देखें (लेख 11/33)। मुगलों का वर्णन: जंगल में सोते समय वे अपनी संपत्ति हज़रत ख़्वाजा बहाउद्दीन नक़्शबंद (क़ुद्दसा सिर्रहु) के संरक्षण में सौंप देते थे; उन्हें परोक्ष (ग़ैब) से मदद मिलती थी। देखें (लेख 12/44)। हर शहर में ईश्वर के बंदे विलायत और क़ुत्बियत के पद पाते हैं; फिर भला उन सबको हज़रत अइम्मा अतहार और ग़ौस-उल-सक़लैन (रज़ियल्लाहु अन्हुम) से वह कृपा कैसे प्राप्त होती है? देखें।

नोट: अत्यधिक लाभ: अल्लामा ज़ियादी, फिर अल्लामा अजहुरी, फिर अल्लामा दाऊदी, फिर अल्लामा शामी फरमाते हैं: जिसकी कोई चीज़ खो जाए, वह किसी ऊंचे स्थान पर क़िबला रुख खड़ा होकर फ़ातिहा पढ़े और उसका सवाब हुज़ूर अक़दस सैयदे आलम (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) को नज़्र करे, फिर उसका सवाब सैयदी अहमद बिन अलवान यमनी (क़ुद्दसा सिर्रहु) की सेवा में भेंट करे, उसके बाद इस तरह विनती करे: "या सैयदी अहमद! या इब्ने अलवान! मेरी खोई हुई चीज़ मुझे मिल जाए।" रद्दुल मुहतार, हाशिया दुर्रे मुख्तार के मुनया में है:

[अरबी स्तंभ]: ज़ियादी ने स्पष्ट किया है कि जब किसी व्यक्ति की कोई चीज़ खो जाए और वह चाहे कि अल्लाह सुब्हानहु व तआला उसे वापस कर दे, तो उसे क़िबला की ओर मुख करके किसी ऊंचे स्थान पर खड़ा होना चाहिए, फ़ातिहा पढ़ना चाहिए और उसका सवाब नबी (सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम) को उपहार स्वरूप देना चाहिए, फिर उसका सवाब सैयदी अहमद इब्न अलवान को उपहार स्वरूप देना चाहिए, और कहना चाहिए: "हे सैयदी अहमद, हे इब्न अलवान, यदि आपने मेरी

खोई हुई चीज़ मुझे वापस नहीं लौटाई, तो मैं आपको औलिया (संतों) के रजिस्टर से हटा दूंगा।" क्योंकि अल्लाह तआला उनके आशीर्वाद से ऐसा कहने वाले को उसकी खोई हुई चीज़ वापस लौटा देता है। [उद्धृत] अजहुरी द्वारा अतिरिक्त जानकारी के साथ, और इसी तरह दाऊदी (अल्लाह उन पर दया करे) की मनहज की व्याख्या में भी है। समाप्त। 12

[उर्दू स्तंभ]: ज़ियादी ने बयान किया है कि जब किसी की कोई चीज़ खो जाए, तो वह किसी ऊंचे स्थान पर क़िबला रुख खड़ा हो जाए, फ़ातिहा पढ़े और उसका सवाब नबी (सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम) को भेंट करे और अर्ज़ करे कि सैयदी अहमद, या इब्ने अलवान! अगर आपने मेरी खोई हुई चीज़ वापस न कराई, तो दफ़्तर-ए-औलिया से आपका नाम निकलवा दूंगा, अल्लाह तआला यह कहने वाले को उसकी खोई हुई चीज़ उनकी बरकत से वापस दिला देगा। इसी तरह अजहुरी के संवर्धन के साथ दाऊदी (रहमतुल्लाहि तआला अलैहि) की शरह मनहज में है। 12 (त)

पृष्ठ 834 (948 में से)

اپنے مریدانِ سلاسل کے ساتھ ، دیکھو (قول ۴/۳۹) خود سیدی احمد زروق رضی اللہ تعالٰی عنہ نے فرمایا : جب کوئی مصیبت آئے یازروق عہ کہہ کر پکار میں فوراً مدد کو آؤں گا دیکھو (قول ۴/۱۶۳) اور شاہ عبدالعزیز صاحب کا قول، دیکھو (مقال ۵/۸۸) شاہ ولی اللہ کہتے ہیں گھر بیٹھے ارواح طیبہ کی طرف توجہ کرو، دیکھو (سوال ۶/۱۲) مرزا مظہر صاحب عارضہ جسمانی میں حضرت مولیٰ علی کرم اللہ تعالٰی وجہہ کی طرف اور مشکل باطنی میں حضرت صدیق اکبر رضی اللہ تعالٰی عنہ کی جانب توجہ ہمیں کرتے ادھر سے امداد فرمائی جاتی دیکھو (سوال ۷/۱۷ و مقال ۸/۳۲) گھر بیٹھے قصائد سناتے ارواحِ عالیہ سے نوازشیں پاتے دیکھو (سوال ۹/۱۸ و مقال ۱۰/۱۰) حضور پر نور غوثِ اعظم رضی اللہ تعالٰی عنہ کی نسبت کہا حضور کے جس متوسل سے ملاقات ہوئی توجہ والا اس کے حال پر مبذول پائی دیکھو (مقال ۱۱/۳۳) مغلوں کا بیان کہ جنگل میں سوتے وقت اپنا مال حضرت خواجہ بہاء الدین نقشبند قدس سرہ العزیز کی حمایت میں سونپتے ہیں اس پر غیب سے مدد پاتے ہیں دیکھو (مقال ۱۲/۴۴) ہر شہر میں بندگان خدا ولایت قطبیت کے مراتب پاتے ہیں پھر کیونکر ان سب کو وہ فیض حضرت ائمہ اطہار و حضور غوث الثقلین رضی اللہ تعالٰی عنہم عطا فرماتے ہیں۔ دیکھو

عہ: فائدہ جلیلہ: علامہ زیادہ پھر علامہ اجہوری پھر علامہ داؤدی پھر علامہ شامی فرماتے ہیں: جس کی کوئی چیز گم جائے مکان بلند پر رو بقبلہ کھڑے ہو کر فاتحہ پڑھے اور اس کا ثواب حضور اقدس سید عالم صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم کی نذر کرے پھر اس کا ثواب سیدی احمد بن علوان یمنی قدس سرہ العزیز کی خدمت میں ہدیہ کرے اسکے بعد یوں عرض ساہو کہ : یا سیدی احمد یا

ابن علوان ! میری گئی ہوئی چیز مجھے مل جائے الخ۔ ردالمحتار حاشیہ در مختار کے منیہ میں ہے:

قررالزيادي ان الانسان اذا اضاع له شيئ و ارادان يرد الله سبحانه عليه فليقف على مكان عال مستقبل القبلة ويقرءالفاتحة ويهدي ثوابها للنبي صلى الله تعالى عليه وسلم ثم يهدى ثواب ذلك لسيدي احمد بن علوان ويقول يا سيدى احمد يا ابن علوان ان لم ترد على ضالتى والا نزعتك من ديوان الاولياء فان الله تعالى يرد على من قال ذلك ضاله ببركته اجهورى مع زيادة كذا فى حاشية شرح المنهج للداؤدى رحمه الله تعالى انتهى ١٢ | زیادتی نے بیان کیا ہے کہ جب کسی کی کوئی چیز گم ہو جائے تو کسی اونچی جگہ پر قبلہ رو کھڑا ہو جائے، فاتحہ پڑھے اور اس کا ثواب نبی صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم کو ہدیہ کرے اور عرض گزار ہو کہ سیدی احمد ، یا ابن علوان! اگر آپ نے میری گم شدہ چیز واپس نہ کرائی تو دفترِ اولیاء سے آپ کا نام نکلوا دوں گا، اللہ تعالٰی یہ کہنے والے کو اس کی گم شدہ چیز ان کی برکت سے واپس دلا دے گا_ اجہوری باضافہ اس طرح داؤدی رحمۃ اللہ تعالٰی کی شرح منہج میں ہے ١٢ (ت)

Fatawa Razawiyya Volume 9

(Article 38/13, 39/12, 20/14 & 15, 21/16, 22/17, 23/18, 24/19, 25/20 and 64/11) Kingdoms and trusts are not present in any country or city, then how does the mediation of Hazrat Mawla Mushkil Kusha occur in all of them? See (Article 22/18) His Eminence Ghaus-e-Azam (may Allah be pleased with him) taught the secrets to Sheikh Abul Raza, see (Article 23/70 and 71/24) he gave water to an old woman, covered her with a quilt and disappeared, see (Article 25/7) His Eminence Ghaus-e-Azam and Hazrat Naqshband (may Allah be pleased with them both) trained the disciples of their orders, see (Article 76/22 and 77/27) Ismail Dehlavi claims that both pure souls appeared to his master and bestowed attention for an hour, see (Article 28/8). Therefore, saying "Ya Rasool Allah", "Ya Ali", "Ya Sheikh Abdul Qadir Jilani" became permissible without specification of place and constraint of time, and Shah Waliullah and his elders practiced the litany of "Ya Ali, Ya Ali", see 160/29, 161/30, 162/31 and articles 90/32, 91/33, 92/34, 93/35, 94/36, 95/37, 96/38, 97/39, 98/40, 99/41, 100/42, 101/43, 102/44, 103/45, and 104/46. A Muslim should not neglect these benefits as they are very beneficial and prevent misguidance, and Allah is the Guide to the straight path. (God alone is the one who gives guidance to the straight path. - Note)

Warning: This issue of seeking help from distant places is worthy of an independent compilation in itself, in support of which many traditions of His Eminence the Radiant Master of the World (peace and blessings of Allah be upon him) and specific explanations in the reports of Hazrat Abdullah bin Abbas, Abdullah bin Umar, Usman bin Hunaif and others (may Allah be pleased with them) and besides those forty-six "explicit ones" and thirteen "supporters" to whom reference was made in the fifth and fourth benefits, the sayings of many imams of religion, trusted scholars, and elders of the Azizi family are appearing before me at this moment. It would not be surprising if it were the will of Hazrat (Allah) the Exalted, that the humble one, after finishing the completion and fair-copying of his numerous treatises, compiles a comprehensive treatise for special reasons and provides all those past and future traditions and sayings to add fresh establishment in investigations like "Saltaniyah al-Mustafa" etc. And Allah is the Granter of success and from Him we seek help, and praise be to Allah, Lord of the worlds. (And God alone is the granter of success. And from Him we seek help. And all praise is for Allah, the Sustainer of all the worlds. - Note)

Appendix Nawab Siddiq Hasan Khan Bahadur, husband of the Bhopal state, explains in the treatise "Tiqsar Juyud al-Ahrar" that saying Ghaus al-Thaqalayn, Ghaus-e-Azam, and Qutb al-Aqtab is not free from polytheism. I say that Nawab Bahadur wrote such a low word here God knows with what thought, otherwise surely it is an absolute obligation upon all Wahhabis to pass a judgment of pure manifest polytheism on saying the word "Ghaus" alone. Ghaus-e-Azam and Ghaus al-Thaqalayn are much more grand and great; after all, what does "Ghaus"...

फतावा रज़विया जिल्द नौ (9)

(मकाला 38/13 और 39/12 और 20/14 व 15 व 21/16 व 22/17 व 23/18 व 24/19 व 25/20 व 11/64) सल्तनतें और अमानतें किसी मुल्क और शहर में नहीं होतीं, फिर उन सब में हज़रत मौला मुश्किल कुशा का तवस्सुत (माध्यम) कैसे होता है? देखो (मकाला 22/18) हुज़ूर ग़ौस-ए-आजम रज़ियल्लाहु अन्हु ने शेख अबुल रज़ा को इसरार-ए-तालीम फरमाए, देखो (मकाला 23/70 व 71/24) यह एक बुढ़िया को पानी पिला कर लिहाफ ओढ़ा कर गायब हो गए, देखो (मकाला 25/7) हुज़ूर ग़ौस-ए-आजम व हज़रत नक़्शबंद रज़ियल्लाहु अन्हुमा ने अपने मुरीदान-ए-सिलसिला की तरबियत फरमाई, देखो (मकाला 76/22 व 77/27) इस्माइल देहलवी का दावा है कि दोनों पाक रूहों ने उनके पीर पर जलवा फरमाया और एक घंटे तक तवज्जो बख्शी, देखो (मकाला 28/8)। इसलिए "या रसूल अल्लाह", "या अली", "या शेख अब्दुल कादिर जीलानी" कहना बिना किसी स्थान की विशिष्टता और समय की पाबंदी के जायज़ हुआ और शाह वलीउल्लाह और उनके बड़ों ने "या अली, या अली" का वज़ीफ़ा किया, देखो 29/160 व 30/161 व 31/162 और मकाला 32/90 व 33/91 व 34/92 व 35/93 व 36/94 व 37/95 व 38/96 व 39/97 व 40/98 व 41/99 व 42/100 व 43/101 व 44/102 व 45/103 व 46/104। मुसलमान इन फायदों से गफ़लत न करे कि बहुत नफा पहुँचाने वाले हैं और गुमराही से रोकने वाले हैं, और अल्लाह ही सीधे रास्ते की हिदायत देने वाला है। (खुदा ही सीधे रास्ते की हिदायत देने वाला है। - त)

तन्बीह: यह दूर के स्थानों से मदद माँगने का मसला अपने आप में एक स्वतंत्र संकलन के योग्य है, जिसके समर्थन में स्वयं हुज़ूर पुरनूर सैयदे आलम सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम की बहुत सी अहादीस और विशेष रूप से हज़रत अब्दुल्ला बिन अब्बास और अब्दुल्ला बिन उमर और उस्मान बिन हनीफ और उनके अलावा रज़ियल्लाहु अन्हुम के आसार और उन छियालीस "स्पष्ट लेखकों" और तेरह "सहायकों" के अलावा जिनकी ओर फायदा पाँच और चार में संकेत हुआ, बहुत से आइम्मा-ए-दीन और विश्वसनीय विद्वानों और अज़ीज़ी परिवार के बड़ों के वचन इस समय मेरे सामने आ रहे हैं। ताज्जुब नहीं कि अगर हज़रत जल व अला का इरादा हो तो फकीर अपने अनेक रिसालों को पूरा करने और साफ लिखने से फारिग होकर विशेष कारणों से एक व्यापक रिसाला तैयार करे और उन सभी पिछली और आने वाली अहादीस और वचनों को इकट्ठा करके"सल्तनियाह अल-मुस्तफा" आदि जैसी शोधों में नई स्थापना का इज़ाफ़ा करे। वल्लाहुल् मुवफ्फिक व बिही नस्तईन वल हम्दु

लिल्लाहि रब्बिल आलमीन (और खुदा ही तौफीक देने वाला है और उसी से हम मदद माँगते हैं और तमाम तारीफ अल्लाह के लिए है जो सारे जहानों का पालने वाला है। - त)

तज़नील (परिशिष्ट) नवाब सिद्दीक़ हसन खान बहादुर, भोपाल रियासत के पति, रिसाला "तक्सार जुयूद अल-अहरार" में स्पष्ट करते हैं कि ग़ौसुल सक़लैन और ग़ौस-ए-आजम और कुतुबुल अक्ताब कहना शिर्क(बहुदेववाद) से खाली नहीं। मैं कहता हूँ नवाब बहादुर ने यहाँ खुदा जाने किस ख्याल से ऐसा गिरा हुआ शब्द लिखा वरना बेशक तमाम वहाबियों पर फर्ज़-ए-कतई (निश्चित कर्तव्य) है कि सिर्फ शब्द "ग़ौस" कहने पर ही शुद्ध स्पष्ट शिर्क का हुक्म लगाएँ। ग़ौस-ए-आजम और ग़ौसुल सक़लैन तो बहुत अजल (महान) और आजम (बड़े) हैं, आखिर ग़ौस के क्या...

पेज 835/948

فتاویٰ رضویہ جلد نہم

(مقالہ ۳۸/۱۳ و ۳۹/۱۲ و ۲۰/۱۴ و ۱۵ و ۲۱/ ۱۶ و ۲۲ / ۱۷ و ۲۳/۱۸ و ۲۴/۱۹ و ۲۵/۲۰ و ۱۱/۶۴) سلطنتیں اور امانتیں کسی ملک میں و شہر میں نہیں ہوتیں پھر ان سب میں حضرت مولیٰ مشکل کشا کا توسط کیونکر ہوتا ہے دیکھو (مقالہ ۲۲/۱۸) حضور غوثِ اعظم رضی اللہ تعالیٰ نے شیخ ابوالرضا کو اسرارِ تعلیم فرمائے دیکھو (مقالہ ۷۰/ ۲۳ و ۲۴/۷۱) یہ ایک عجوزہ کو پانی پلا کر لحاف اڑھا کر غائب ہوگئے، دیکھو (مقالہ ۲۵/۷) حضور غوثِ اعظم و حضرت نقشبند رضی اللہ تعالیٰ عنہما نے اپنے مریدانِ سلسلہ کی تربیت فرمائی، دیکھو (مقالہ ۷۶/ ۲۲ و ۷۷/ ۲۷) اسمعیل دہلوی مدعی کہ دونوں ارواحِ طیبہ نے ان کے پیر پر جلوہ فرمایا اور پہر بھر تک توجہ بخشی، دیکھو (مقالہ ۲۸/۸) ولذا یا رسول اللہ ، یا علی، یا شیخ عبدالقادر جیلانی کہنا بے تخصیصِ مکان و قیدِ زمان جائز ہوا اور شاہ ولی اللہ اور ان کے اکابر نے یا علی یا علی کا وظیفہ کیا، دیکھو ۲۹/۱۶۰ و ۳۰/۱۶۱ و ۳۱/۱۶۲ و مقال ۳۲/۹۰ و ۳۳/۹۱ و ۳۴/۹۲ و ۳۵/۹۳ و ۳۶/۹۴ و ۳۷/۹۵ و ۳۸/۹۶ و ۳۹/۹۷ و ۴۰/۹۸ و ۴۱/۹۹ و ۴۲/۱۰۰ و ۴۳/۱۰۱ و ۴۴/۱۰۲ و ۴۵/۱۰۳ و ۴۶/۱۰۴۔ مسلمان ان فوائد سے غفلت نہ کرے کہ بہت نافع ہیں اور ضلالت سے مانع، واللہ الھادی الی صراط مستقیم (خدا ہی سیدھے راستے کی ہدایت دینے والا ہے۔ت) تنبیہ: یہ مواضعِ بعیدہ سے استمداد کا مسئلہ بجائے خود ایک مستقل تالیف کے قابل ہے جس کی تائید میں خود حضور پر نور سیدِ عالم صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کی بہت احادیث اور خاص تصریح میں حضرت عبداللہ بن عباس و عبداللہ بن عمر و عثمان بن حنیف و غیر ہم رضی اللہ تعالیٰ عنہم کے آثار اور علاوہ ان چھیالیس "مصرحوں، تیرہ "مویدوں کے جن کی طرف فائدہ خمسہ و رابعہ میں ایما ہوا بہت ائمہ دین و علمائے معتمدین و کبرائے خاندانِ عزیزی کے اقوال اس وقت میرے پیش نظر جلوہ گر رہے ہیں

عجب نہیں کہ حضرت جل و علا کا ارادہ ہو تو فقیر اپنے رسائلِ کثیرہ کی تتمیم و تبییض سے فارغ ہو کر خاص اسباب میں ایک جامع رسالہ ترتیب دے اور ان سب احادیث و اقوال ماضیہ و آتیہ کو فراہم کر کے تحقیقاتِ سلطنیہ المصطفیٰ و غیرہا میں اقامتِ تازہ کا اضافہ کرے واللہ الموفق وبہ نستعین والحمد للہ رب العلمین (اور خدا ہی توفیق دینے والا ہے۔ اور اسی سے ہم مدد مانگتے ہیں اور تمام تعریف اللہ کے لیے جو سارے جہانوں کا پروردگار ہے۔ت) تذنیل نواب صدیق حسن خان بہادر شوہرِ ریاست بھوپال رسالہ تقصار جیود الاحرار میں تصریح کرتے ہیں کہ غوث الثقلین و غوثِ اعظم و قطب الاقطاب کہنا شرک سے خالی نہیں، میں کہتا ہوں نواب بہادر نے یہاں خدا جانے کس خیال سے ایسا گرا ہوا لفظ لکھا ورنہ بیشک تمام وہابیہ پر فرض قطعی کہ صرف لفظ غوث کہنے پر خالص شرکِ جلی کا حکم لگائیں، غوثِ اعظم و غوث الثقلین تو بہت اجل و اعظم ہے، آخر غوث کے کیا

Fatawa Rizvia Volume 9

The meaning is 'the one who reaches out for help'; when, according to them, seeking help and calling for aid is polytheism (shirk), then how would saying 'helper in distress' (faryad-ras) not be explicit shirk? Now see who has become a polytheist according to these gentlemen: Qazi Sanaullah Panipati and Mian Ismail Dehlvi wrote 'Ghaus-uth-Thaqalayn' for His Eminence Ghaus-ul-A'zam (may Allah be pleased with him), see (Maqal 38 & 78). Shah Waliullah, the reliable Imam, and Sheikh Abu al-Raza, his grandfather, and Mirza Jan-e-Janan, their unique praised one, and the elder of their lineage Sheikh Abdul Wahid called the helper of both worlds, His Eminence Ghaus-uth-Thaqalayn, as Ghaus-ul-A'zam, see (Maqal 61, 70, 71, 77, 76). Shah Abdul Aziz Sahib said in Tafsir-e-Azizi:

Persian Text	**Urdu Translation**
Bar-khe az Auliya masjood-e-khala'iq o mahboob-e-dil-ha gashta-and mithl-e-Hazrat Ghaus-ul-A'zam Radi Allahu Ta'ala 'Anhu o Sultan al-Mashaikh Nizam-ud-Din Auliya Qaddasa Allahu Ta'ala Sirrahuma. [1]	Some saints have become the objects of prostration for the creation and beloved of hearts, like His Eminence Ghaus-ul-A'zam (may Allah be pleased with him) and Sultan al-Mashaikh Hazrat Nizamuddin Auliya (may Allah sanctify their secrets). (T)

Warning: Keep in mind the word "Masjood-e-Khala'iq" (object of prostration for creation) which has made the water of shirk pass over their heads. Mian Ismail said in 'Sirat-e-Mustaqim':

Persian Text	**Urdu Translation**
Taliban-e-nafahm me-danand ke ma-neez ham-paye Hazrat Ghaus-ul-A'zam shudem. [2]	Misunderstanding seekers think that they have also reached the same status as His Eminence Ghaus-ul-A'zam. (T)

These same elders wrote 'Qutb al-Aqtab' for His Eminence Khwaja Qutb al-Haq wa al-Din Bakhtiar Kaki (may Allah sanctify his noble secret), see (Maqal 97). And yes, Molvi Ishaq Sahib still remains, who in 'Ma'at-e-Masail' (Answer to the 10th Question) said: "The sainthood and miracles of His Eminence Ghaus-ul-A'zam (may Allah sanctify his secret)[3]..." In short, the religion of the opposing faction is a strange religion, on the basis of which all their leaders and prominent figures also become polytheists and disbelievers in a hundred ways. There is no power or strength except with Allah, the High, the Great.

Important Warning Mandatory for Every Muslim to Observe

Praise be to Allah, the discourse has reached its peak and the explanation has given the matter its due right. This is from the grace of Allah upon us.

[1] Tafsir-e-Azizi, Para 'Am, Surah Al-Inshirah, Muslim Book Depot, Lal Kuan Delhi, p. 322. [2] Sirat-e-Mustaqim, Supplement on the second spiritual path of Sainthood, Maktaba Salafiya Lahore, p. 132. [3] Ma'at-e-Masail, Answer to Question 10, Problem 9, Maktaba Tawheed-o-Sunnat Peshawar, p. 20 & 21.

फ़तावा रज़विया जिल्द 9

मदद को पहुँचने वाला का अर्थ, जब उनके अनुसार मदद मांगना शिर्क(बहुदेववाद) है, तो 'फ़रियाद रस' (मददगार) कहना स्पष्ट शिर्क कैसे नहीं होगा? अब देखिए कि इन महानुभावों के अनुसार कौन-कौन मुशरिक (शिर्क करने वाला) हो गया: काज़ी सनाउल्लाह पानीपती और मियां इस्माइल देहलवी ने हुज़ूर गौस-ए-आज़म (रज़ियल्लाहु अन्हु) को 'गौस-उल-सकलैन' लिखा, देखिए (मक़ाल 38 और 78)। शाह वलीउल्लाह इमाम मोतमद और उनके दादा शेख अबू अल-रज़ा और उनके प्रशंसित मिर्ज़ा जान-ए-जानाँ, और उनके सिलसिले के पीर शेख अब्दुल वाहिद ने दोनों जहानों के मददगार हुज़ूर गौस-उल-सकलैन को गौस-ए-आज़म कहा, देखिए (मक़ाल 61, 70, 71, 77, 76)। शाह अब्दुल अज़ीज़ साहब ने तफ़्सीर-ए-अज़ीज़ी में फ़रमाया:

फ़ारसी पाठ	उर्दू अनुवाद
बर्खे अज़ औलिया मस्जूद-ए-ख़लाइक़ ओ महबूब-ए-दिलहा गश्ता-अंद मिस्ल-ए-हज़रत गौस-उल-आज़म रज़ियल्लाहु तआला अन्हु ओ सुल्तान अल-मशायख़ निज़ामुद्दीन औलिया क़ुद्दिसा अल्लाहु तआला सिर्रहुमा। [1]	कुछ वली (संत) सृष्टि के पूजनीय और दिलों के प्रिय हो गए हैं जैसे हज़रत गौस-ए-आज़म रज़ियल्लाहु तआला अन्हु और सुल्तान अल-मशायख़ हज़रत निज़ामुद्दीन औलिया क़ुद्दिसा अल्लाहु तआला सिर्रहुमा (त)

चेतावनी: "मस्जूद-ए-खलाइक़" (सृष्टि के लिए पूजनीय) शब्द को भी ध्यान में रखें जिसने शिर्क का पानी सिर से गुज़ार दिया। मियां इस्माइल ने 'सिरात-ए-मुस्तकीम' में कहा:

फ़ारसी पाठ	उर्दू अनुवाद
तालीबान-ए-नाफ़हम मे-दानंद के मानीज़ हम-पाये हज़रत गौस-उल-आज़म शुदेम। [2]	नासमझ साधक यह समझते हैं कि हम भी गौस-ए-आज़म के बराबर हो गए हैं। (त)

इन्हीं महानुभावों ने हज़रत ख्वाजा कुतुब उल हक़ वद्दीन बख्तियार काकी (क़ुद्दिसा सिर्रहु) को 'कुतुब अल-अक़्ताब' लिखा, देखिए (मक़ाल 97)। और हाँ, मौलवी इसहाक़ साहब तो बाकी ही रह जाते हैं जिन्होंने 'माइते मसाइल' के दसवें प्रश्न के उत्तर में कहा: "हज़रत गौस-ए-आज़म (क़ुद्दिसा सिर्रहु)[3] की विलायत और करामात..." संक्षेप में, गुट का धर्म एक अजीब धर्म है जिसकी बुनियाद पर गुट के सभी इमाम और गणमान्य व्यक्ति भी सौ-सौ तरह से मुशरिक और काफ़िर बन जाते हैं। अल्लाह के अलावा कोई शक्ति या सामर्थ्य नहीं है, जो सबसे ऊँचा और महान है।

महत्वपूर्ण चेतावनी हर मुसलमान के लिए अवश्य अवलोकन योग्य

अल्लाह का शुक्र है, चर्चा अपने चरम पर पहुँच गई और विवरण ने मसले को उसका पूरा हक़ दे दिया। यह हम पर अल्लाह का फ़ज़ल (अनुग्रह) है।

[1] तफ़्सीर-ए-अज़ीज़ी पारा 'अम्म, सूरह अल-इन्शिराह, मुस्लिम बुक डिपो लाल कुआं दिल्ली पृ. 322। [2] सिरात-ए-मुस्तकीम तकमिला दर बयान सुलूक थानी राह विलायत मकतबा सलफिया लाहौर पृ. 132। [3] माइते मसाइल जवाब सवाल दहम मसला 9 मकतबा तौहीद ओ सुन्नत पेशावर पृ. 20 और 21।

فتاوٰی رضویہ جلد نہم

معنی فریاد کو پہنچنے والا، جب ان کے نزدیک استمداد فریاد شرک، تو فریاد رس کہنا کیونکر شرک صریح نہ ہوگا، اب دیکھئے کہ ان حضرات کے طور پر کون کون مشرک ہوگیا، قاضی ثناء اللہ پانی پتی و میاں اسمٰعیل دہلوی نے حضور غوث اعظم رضی اللہ تعالٰی عنہ کو غوث الثقلین لکھا، دیکھو (مقال ۳۸ و ۷۸) شاہ ولی اللہ امام معتمد اور شیخ ابوالرضاء ان کے جد امجد اور مرزا جانجاناں انکے ممدوح اوحد، اور ان کے پیر سلسلہ شیخ عبدالواحد نے غیاث الدارین حضور غوث الثقلین کو غوث اعظم کہا، دیکھو (مقال ۶۱، ۷۰، ۷۱، ۷۷، ۷۶) شاہ عبدالعزیز صاحب نے تفسیر عزیزی میں فرمایا:

فارسی متن	اردو ترجمہ
برخے از اولیاء مسجود خلائق و محبوب دلہا گشتہ اند مثل حضرت غوث الاعظم رضی اللہ تعالٰی عنہ و سلطان المشائخ نظام الدین اولیاء قدس اللہ تعالٰی سرہما۔ [1]	کچھ اولیاء خلائق کے مسجود اور دلوں کے محبوب ہو گئے ہیں جیسے حضرت غوث اعظم رضی اللہ تعالٰی عنہ اور سلطان المشائخ حضرت نظام الدین اولیاء قدس اللہ تعالٰی سرہما (ت)

تنبیہ: ذرایہ "مسجود خلائق" کا لفظ بھی پیش نظر رہے جس نے شرک کا پانی سر سے گزار دیا، میاں اسمٰعیل نے صراط مستقیم میں کہا:

فارسی متن	اردو ترجمہ
طالبان نافہم میدانند کہ مانیز ہم پایہ حضرت غوث الاعظم شدیم [2]	ناسمجھ طالب یہ سمجھتے ہیں کہ ہم بھی غوث الاعظم کے ہم پایہ ہو گئے۔ (ت)

انھیں بزرگوار نے حضرت خواجہ قطب الحق والدین بختیار کاکی قدس سرہ العزیز کو قطب الاقطاب لکھا، دیکھو (مقال ۹۷) اور ہاں مولوی اسحٰق صاحب تو رہے ہی جاتے ہیں جنھوں نے مائتہ مسائل کے جواب سوال دہم کہا: "ولایت و کرامت حضرت غوث الاعظم قدس سرہ[3]" غرض مذہب کو طائفہ عجب مذہب ہے جس کی بناء پر تمام ائمہ و عمائد طائفہ بھی سو سو طرح مشرک کافر بنتے ہیں، لا حول ولا قوۃ الا باللہ العلی العظیم۔

تنبیہ اہم واجب الملاحظہ ہر مسلم

الحمد للہ کلام نے ذروہ منتہی لیا اور بیان نے مسئلے کو اس کا حق دیا ذلک من فضل اللہ علینا۔

[1] تفسیری عزیزی پارہ عم سورۃ الم نشرح مسلم بک ڈپو لال کنواں دہلی ص ۳۲۲ [2] صراط مستقیم تکملہ در بیان سلوک ثانی راہ ولایت مکتبہ سلفیہ لاہور ص ۱۳۲ [3] مائتہ مسائل جواب سوال دہم مسئلہ ۹ مکتبہ توحید وسنت پشاور ص ۲۰ و ۲۱

Fatawa Ridawiyya Volume 9

"And upon people, but most people do not give thanks." (This is a grace from God upon us and upon people, but most people do not show gratitude. - T)

Now, it should be asked of the Wahhabi gentlemen that the third objective of this brief treatise has brought to your attention 305 sayings of scholars, among which 149 are specifically regarding the knowledge, hearing, and sight of the deceased, and 5 state that the miracles of saints remain even after their passing. Perhaps on these 154, your establishment would only issue a ruling of innovation (bid'at) and misguidance, even though, according to the clarification of the leader of the sect, they are like the seat of the essence of faith. How many remain? 151, and three sayings were just recently mentioned in the benefit of this supplement. These again become 154, the details of whose purpose and objectives are clear from this table.

Regarding the chapter that...	Sayings of Imams & Early Scholars	Writings of the Azizi Family	Analysis	Total
Saints exercise authority even after death	8	7	15	-
They continue to help from near and far after departure just as before	25	59	84	-
Seeking help from them and calling them from near and far in times of need is permissible	16	26	42	5
Pure souls are equal in seeing and hearing from near and far after transition	12	1	13	3

Now, let it be said regarding them: were those 154 innovations? In your creed, these 154 are pure polytheism (shirk). Would the Imams and luminaries who hold these views be considered polytheists (God forbid)? If you say no (and God grant it be so), then praise be to God that guidance was found, and the sharp and harsh fever of infidelity (kufr) and polytheism that had been colorlessly rising for a long time has subsided. How long does it take for the Almighty Lord to grant guidance? After all, you recite the Creed (Kalima); perhaps some reflection of Islam might show itself, and the heart might tremble before calling the beloved of God and the Imams of

guidance disbelievers and polytheists (God forbid). "Indeed, that is easy for Allah; surely Allah is over all things powerful." (Indeed, that is easy for God; surely God can do everything. - T). And if perhaps persistence in sect and prejudice in school of thought stands in the way, and 'yes' comes out of your mouth without hesitation, then I will only submit this much to you gentlemen: Sirs! those whom you have called polytheists, look for a moment among the ranks at Shah Waliullah and Shah Abdul Aziz and their predecessors and successors, even the founder of the sect himself, the leader of the group, Maulvi Ismail Dehlvi. Now, a clear inquiry regarding them: if you hesitate here, I will say, why sir! For this very matter, the Imams of guidance—I seek refuge in God—are deemed such and such, yet these gentlemen are given free rein.

फतावा रिज़विया जिल्द नहम (खंड 9)

"व-अला-न्नासि वलाकिन्ना अक्सर-न्नासि ला यश्कुरून" (यह हम पर और लोगों पर खुदा का एक फज़्ल है लेकिन अक्सर लोग शुक्र नहीं करते। - त)

अब वहाबी हज़रात से इतना पूछ लेना चाहिए कि इस मुख़्तसर रिसाले के तीसरे मक़सद ने उलमा के तीन सौ पाँच (305) क़ौल आप के गोश-गुज़ार किए जिनमें एक सौ उनचास (149) मुर्दों के इल्म, सुनने और देखने के बारे में ख़ास हैं, और पाँच (5) में यह कि औलिया की करातें विसाल (मृत्यु) के बाद भी बाक़ी रहती हैं। इन एक सौ चौवन (154) पर तो आपकी सरकार से शायद सिर्फ बिदअत और गुमराही का हुक्म हो, हालाँकि वे भी इमाम-उत-ताइफ़ा की वज़ाहत के मुताबिक ईमान की अस्ल के मक़ाम की तरह हैं। बाक़ी कितने रहे? एक सौ इक्यावन (151) और तीन क़ौल अभी-अभी इसी तक़मीला (परिशिष्ट) के फ़ायदे में ताज़ा ज़िक्र हुए। ये फिर एक सौ चौवन (154) हो गए जिनके मफ़ाद और मक़ासिद की तफ़सील इस टेबल से ज़ाहिर है।

इस बाब में कि	अइम्मा और उलमा-ए-सलफ़ के अक़वाल	ख़ानदान-ए-अज़ीज़ी के मक़ालात	तहलुल	मजमुआ
औलिया विसाल के बाद भी तसर्रुफ़ (अधिकार) फ़रमाते हैं	8	7	15	-
वे इंतक़ाल के बाद भी हस्ब-ए-मामूल नज़दीक व दूर से मदद करते हैं	25	59	84	-
ज़रूरत के वक़्त उनसे मदद माँगना और उन्हें पुकारना नज़दीक व दूर हर जगह से जाइज़ है	16	26	42	5
पाकीज़ा रूहें इंतक़ाल के बाद नज़दीक व दूर देखने और सुनने में बराबर हैं	12	1	13	3

अब उनके बारे में इरशाद हो, क्या वे एक सौ चौवन (154) बिदअत थे? ये एक सौ चौवन आपके मज़हब में खालिस शिर्क हैं, और इनके मानने वाले अइम्मा और बुज़ुर्ग (खुदा की पनाह) मुशरिक ठहरेंगे या नहीं? अगर कहें नहीं (खुदा करे ऐसा ही हो) तो अल्हम्दुलिल्लाह कि हिदायत पाई और

कुफ़्र व शिर्क की तेज़ व तुंद लहर जो मुद्दतों से बे-रंग चढ़ी थी, उतर गई। रब्बे क़दीर को हिदायत फ़रमाते क्या देर लगती है। आख़िर कलमा पढ़ते हो, शायद इस्लाम की कोई झलक दिख जाए, और अल्लाह के महबूबों और हिदायत के इमामों को (अल्लाह की पनाह) काफ़िर व मुशरिक कहते हुए कलेजा काँपे। "इन्ना ज़ालिका अलल्लाहि यसीर, इन्नल्लाहा अला कुल्लि शैइन क़दीर" (बेशक वह खुदा पर आसान है, यक़ीनन अल्लाह सब कुछ कर सकता है। - त)। और अगर शायद मज़हबी अड़ियलपन और पक्षपात आड़े आए, और बे-धड़क आपके मुँह से 'हाँ' निकल जाए, तो आप साहबों से तो इतना अर्ज़ करूँगा कि हज़रात! जिन्हें आपने मुशरिक कह दिया, ज़रा नज़र दौड़ाएं, उनमें शाह वलीउल्लाह और शाह अब्दुल अज़ीज़ साहबान और उनके पूर्वज और वंशज, यहाँ तक कि खुद मज़हब के बानी इमाम-उत-ताइफ़ा मौलवी इस्माइल देहलवी भी हैं। अब उनके बारे में साफ़-साफ़ सवाल है, अगर यहाँ हिचकिचाएं तो कहूँगा क्यों साहब! इसी बात पर हिदायत के इमामों को तो (खुदा की पनाह) ऐसा-वैसा ठहराया जाए और ये हज़रात बिल्कुल आज़ाद?

وعلی الناس ولکن اکثر الناس لا یشکرون (یہ ہم پر اور لوگوں پر خدا کا ایک فضل ہے لیکن اکثر لوگ شکر نہیں کرتے۔ ت) اب حضرات وہابیہ سے اتنا پوچھ لینا چاہیے کہ اس مختصر رسالہ کے مقصد سوم نے علماء کے تین سو پانچ ۳۰۵ قول آپ کے گوش گزار کئے جن میں ایک سو انچاس ۱۴۹ علم و سمع و بصر موتی کے متعلق خاص ، اور پانچ ۵ میں یہ کہ اولیاء کی کرامتیں بعد وصال بھی باقی ہیں ان ایک سوچون ۱۵۴ پر تو آپ کی سرکار سے شاید صرف حکم بدعت وضلالت ہو، اگرچہ وہ بھی بفتریح امام الطائفہ مثل محل اصل ایمان ہے۔ باقی کتنے رہے ایک سو اکاون ۱۵۱ اور تین قول ابھی ابھی اسی تکملہ کے فائدے میں تازہ مذکور ہوئے۔ یہ پھر ایک سو چون ۱۵۴ ہوگئے جن کے مفاد مقاصد کی تفصیل اس جدول سے ظاہر۔

اس باب میں کہ	اقوال ائمہ و علما سلف	مقالات خاندان عزیزی	تحلل	مجموعہ
اولیاء بعد وصال بھی تصرف فرماتے ہیں	۸	۷	۱۵	-
وہ بعد رحلت بھی بدستور نزدیک و دور مدد کرتے ہیں	۲۵	۵۹	۸۴	-
وقت حاجت ان سے استعانت اور ان کی ندا نزدیک و دور ہر جگہ سے روا۔	۱۶	۲۶	۴۲	۵
ارواح طیبہ کو بعد انتقال دیکھنے سننے میں دور و نزدیک یکساں	۱۲	۱	۱۳	۳

اب ان کی نسبت ارشاد ہو وہ ایک سو چون ۱۵۴ بدعت تھے، یہ ایک سو چون آپ کے مذہب میں خالص شرک، اور ان کے قائل ائمہ و افاضل عیاذا باللہ ککے مشرک ٹھہریں گے یا نہیں، اگر کہئے نہ (خدا کرے ایسا ہی ہو) تو الحمد للہ کہ ہدایت پائی اور کفر و شرک کی تیز و تند کہ مدتوں سے بیرنگ چڑھی تھی اتار پر آئی، رب قدیر کو ہدایت فرماتے کیا دیر لگتی ہے۔ آخر کلمہ پڑھتے ہو، شاید پاس اسلام کچھ جھلک دکھا جائے، اور محبوبان خدا و ائمہ ہدی کو معاذ اللہ کافر و مشرک کہتے جگر تھرائے، ان ذلک علی اللہ یسیر ان اللہ علی کل شیء قدیر (بیشک وہ خدا پر آسان ہے یقیناً اللہ سب کچھ کر سکتا ہے۔ ت) اور اگر شاید اصرار مذہب و تعصب مشرب آڑے آئے، اور بے دھڑک آپ کے منہ سے ہاں نکل جائے، تو آپ صاحبوں سے تو اتنا عرض کروں گا کہ حضرات ! جنہیں آپ نے مشرک کہہ دیا ذرا نگاہ برِ بروان میں شاہ ولی اللہ و شاہ عبدالعزیز صاحبان اور ان کے اسلاف و اخلاف یہاں تک کہ خود بانی مذہب امام الطائفہ مولوی اسمعیل دہلوی بھی ہیں، اب ان کی نسبت تصریحاً استفسار، اگر یہاں جھجکے تو کہوں گا کیوں صاحب ! اسی بات پر ائمہ ہدی تو پناہم بخدا چنین و چناں ٹھہریں اور یہ حضرات مطلق العنان

Fatawa Razawiyya Volume 9

Has a revelation come to them that they are exempt from divine commands, or have they taken a covenant from the Gracious One that no harm will come to their leadership even if they speak words of polytheism (shirk)?

آللّٰهُ اَذِنَ لَكُمْ اَمْ عَلَى اللّٰهِ تَفْتَرُوْنَ ؕ (1) مَالَكُمْ ۚ كَيْفَ تَحْكُمُوْنَ ؕ اَمْ لَكُمْ كِتٰبٌ فِيْهِ تَدْرُسُوْنَ ۙ (2) اِنَّ لَكُمْ فِيْهِ لَمَا تَخَيَّرُوْنَ ۚ	**Has Allah given you permission, or do you invent falsehoods against Allah? What is the matter with you? How do you judge? Or do you have a book in which you study, that you have therein whatever you choose? (T)**

And if perhaps the complexity of the matter has arisen such that even here the root of polytheism has been exposed.

Shadam ke az raqiban daman kashan guzashti Go musht-e-kham-e-ma ham bar-baad rafta bashad (I am happy that you passed by, pulling your skirt away from rivals, even if our handful of dust was blown away in the process. T)

In short, upon this fate, what more room is there for representation from you except saying: "Peace be upon you; we do not seek the ignorant." (3) (Except that peace be upon you, we do not want the ignorant ones. T)

Yes, I will awaken the common people of the Ahl-e-Sunnat, O brothers! Is there still anything left in the clarity of the truth? By whose unrefined, impure temperament's spirit, all from the Companions, the Followers, the Mujtahid Imams, the worldly scholars, and the perfect saints from the first three generations until today, Allah forbid, are judged as polytheists, disbelievers, innovators, and losers.

The religion is known and the people of the religion are known; it is clear what kind of perishing group that would be and what relation it has with the Sunnah and the community. Glory be to Allah! They call the Sunnah and the community polytheism, judge the community of Sunnah as polytheistic, and then claim to be Sunni.

كلا ورب العرش الاعلىٰ قل جاء الحق وزهق الباطل ان الباطل كان زهوقا والحمد لله رب العلمين والصلوة والسلام على سيد المرسلين محمد وآله وصحبه اجمعين، سبحانک اللهم وبحمدک اشهد ان لا اله الا انت استغفرك واتوب اليك والحمد لله رب العالمين

By the Lord of the Most High Throne, never! Say, "Truth has come, and falsehood has perished. Indeed, falsehood is [by nature] ever bound to perish." And praise be to Allah, Lord of the worlds. And peace and blessings be upon the leader of the messengers, Muhammad, and upon his family and all his companions. Glory be to You, O Allah, and with Your praise. I bear witness that there is no god but You. I seek Your forgiveness and I turn to You in repentance. And all praise is for Allah, the Lord of all the worlds. (T)

1. Al-Quran 10/59
2. Al-Quran 68/36 to 38
3. Al-Quran 28/55

फ़तावा रज़विया जिल्द नहम

क्या उनके लिए कोई वही आ गई है कि ईश्वरीय आदेशों से मुक्त रहें, या उन्होंने रहमान से कोई वचन ले लिया है कि उनके नेतृत्व में कोई कमी नहीं आएगी चाहे वे शिर्क(बहुदेववाद) के शब्द ही क्यों न बोलें?

آللّٰہُ اَذِنَ لَکُمْ اَمْ عَلَی اللّٰہِ تَفْتَرُوْنَ ﴿1﴾ مَالَکُمْ کَیْفَ تَحْکُمُوْنَ ﴿2﴾ اَمْ لَکُمْ کِتٰبٌ فِیْہِ تَدْرُسُوْنَ ﴿3﴾ اِنَّ لَکُمْ فِیْہِ لَمَا تَخَیَّرُوْنَ	**क्या ईश्वर ने तुम्हें इसकी अनुमति दी है या तुम ईश्वर पर झूठ बाँधते हो? तुम्हें क्या हुआ है, तुम कैसा निर्णय लेते हो? या तुम्हारे पास कोई किताब है जिसमें तुम पढ़ते हो कि उसमें तुम्हारे लिए वही है जो तुम पसंद करते हो? (त)**

और अगर शायद बात की उलझन ऐसी ही आ पड़ी कि यहाँ भी शिर्क की जड़ खुल कर रह गई।

शादम कि अज़ रक़ीबां दामन कशां गुज़श्ती गो मुश्त-ए-खाम-ए-मा हम बर-बाद रफ़्ता बाशद (मैं खुश हूँ कि तुम रक़ीबों से दामन बचाकर निकल गए, चाहे इसमें हमारी मुट्ठी भर खाक (मिट्टी) ही बर्बाद क्यों न हो गई हो। त)

संक्षेप में, इस स्थिति पर आपसे अधिक निवेदन करने का क्या अवसर होगा सिवाय इसके कि: 'तुम पर सलाम हो; हम अज्ञानियों को नहीं चाहते।' (3) (सिवाय इसके कि तुम पर सलाम हो, हम अज्ञानी लोगों को नहीं चाहते। त)

हाँ, मैं अहले-सुन्नत के आम लोगों को जगाऊँगा कि भाइयों! क्या अब भी सत्य की स्पष्टता में कुछ शेष है? जिस असभ्य और अपवित्र स्वभाव की आत्मा के कारण, सहाबा, ताबेईन, इमाम मुजतहिद, सांसारिक विद्वान और पूर्ण संत, जो पहली तीन पीढ़ियों से लेकर आज तक हुए हैं, अल्लाह न करे, वे सभी मुशरिक, काफ़िर, विधर्मी और घाटे में रहने वाले ठहराए जाएं।

धर्म ज्ञात है और धर्म के लोग ज्ञात हैं; यह स्पष्ट है कि वह नष्ट होने वाला समूह कैसा होगा और उसका सुन्नत और जमाअत से क्या संबंध है। सुभान अल्लाह! वे सुन्नत और जमाअत को शिर्क बताते हैं, सुन्नत की जमाअत को मुशरिक ठहराते हैं, और फिर सुन्नी होने का दावा करते हैं।

كلا ورب العرش الاعلىٰ قل جاء الحق وزهق الباطل ان الباطل كان زهوقا والحمد لله رب العلمين والصلوة والسلام على سيد المرسلين محمد وآله وصحبه اجمعين، سبحانک اللهم وبحمدک اشهد ان لا اله الا انت استغفرك واتوب اليك والحمد لله رب العالمين

अर्श-ए-आला के रब की कसम, हरगिज़ नहीं! कह दो सत्य आ गया और असत्य मिट गया, बेशक असत्य को मिटना ही था। सारी प्रशंसा अल्लाह के लिए है जो सारे जहानों का पालनहार है। और दुरूद और सलाम रसूलों के सरदार हज़रत मुहम्मद और उनके परिवार और साथियों पर। ऐ अल्लाह! मैं तेरी प्रशंसा के साथ तेरी पवित्रता बयान करता हूँ, मैं गवाही देता हूँ कि तेरे सिवा कोई पूज्य नहीं, मैं तुझसे क्षमा माँगता हूँ और तेरी दरगाह में तौबा करता हूँ। और सभी खूबियाँ सारे जहानों के मालिक अल्लाह के लिए हैं। (त)

1. अल-कुरान 10/59
2. अल-कुरान 68/36 से 38
3. अल-कुरान 28/55

کیا ان کے لیے کوئی وحی آگئی ہے کہ احکام الٰہی سے مستثنٰی رہیں، یا انھوں نے رحمان سے عہد لے لیا ہے کہ ان کی امامت میں بال نہ آئے اگرچہ شرک کے بول کہیں۔

اٰللّٰہُ اَذِنَ لَکُمْ اَمْ عَلَی اللّٰہِ تَفْتَرُوْنَ ط کیا خدا نے تم کو اس کا اذن دیا ہے یا اللہ پر جھوٹ باندھتے (1) مَالَکُمْ ۚ کَیْفَ تَحْکُمُوْنَ ط اَمْ لَکُمْ ہو، تمھیں کیا ہوا تم کیسا حکم لگاتے ہو؟ یا تمھارے لیے کِتٰبٌ فِیْہِ تَدْرُسُوْنَ ۙ (2) اِنَّ لَکُمْ فِیْہِ کوئی کتاب ہے جس میں تم پڑھتے ہو کہ اس میں تمھارے لَمَا تَخَیَّرُوْنَ ۚ لیے وہ ہے جو تم پسند کرتے ہو۔ (ت)

اور اگر شاید بات کی پیچ ایسی ہی آپڑی کہ یہاں بھی کھل کر شرک کی جڑی۔

شادم کہ از رقیباں دامن کشاں گزشتی گومشت خام ماہم برباد رفتہ باشد (میں خوش ہوں کہ تم رقیبوں سے دامن کھینچ کر نکل گئے، گو اس میں ہماری خاک بھی برباد ہوگئی۔ ت)

غرض اس تقدیر پر آپ سے زیادہ عرض کا کیا محل ہوگا جز این کہ سلام علیکم لَا نَبْتَغِی الْجٰہِلِیْنَ (3) (سوائے اس کے کہ تم پر سلام ہم نادانوں کو نہیں چاہتے۔ ت)

ہاں عوام اہلسنت کو بیدار کروں گا کہ بھائیوں! اب بھی وضوح حق میں کچھ باقی ہے جس نامہذب ناپاک مشرب کی روح سے صحابہ وتابعین وائمہ مجتہدین و علمائے دینوی و اولیائے کاملین قرونِ ثلاثہ سے لے کر آج تک سب کے سب معاذ اللہ مشرک کافر بدعتی خاسر ٹھہریں ع

مذہب معلوم واہلِ مذہب معلوم ظاہر ہے کہ وہ طائفہ تالفہ کیسا ہوگا اور اسے سنت و جماعت سے کتنا علاقہ، سبحان اللہ سنت جماعت کو شرک بتائیں، جماعتِ سنت کو مشرک ٹھہرائیں، پھر سنی ہونے کا دعوٰی بجا۔

کلا ورب العرش الاعلیٰ قل جاء عرشِ اعلیٰ کے رب کی قسم، ہر گز نہیں! فرما دو حق آیا اور الحق وزھق الباطل ان الباطل کان باطل مٹا، بیشک باطل مٹنا ہی تھا، ساری تعریف خدا کے لیے زھوقا والحمد للہ رب العلمین جو سارے جہانوں کا پروردگار ہے۔ اور درود و سلام والصلوۃ والسلام علی سید المرسلین رسولوں کے سردار حضرت محمد اور ان کے آل واصحاب محمد وآلہ وصحبہ اجمعین، پر، اے اللہ! تیری حمد کے ساتھ تیری پاکی بیان کرتا ہوں، سبحانک اللھم وبحمدک اشھد ان لا میں گواہی دیتا ہوں کہ تیرے سوا کوئی معبود نہیں، میں تجھ الہ الا انت استغفرك واتوب الیك سے مغفرت کا طالب اور تیری بارگاہ میں تائب ہوں، اور سب والحمد للہ رب العالمین خوبیاں سارے جہانوں کے مالک اللہ کے لیے ہیں (ت)

1 القرآن ۵۹/۱۰ 2 القرآن ۳۶/۶۸ تا ۳۸ 3 القرآن ۵۵/۲۸

Volume 9

Fatawa Razawiyya

Supplement to the Most Important, Greatest, and Grandest Treatise

Al-Wifaq al-Matin bayna Sama' al-Dafin wa Jawab al-Yamin (The Solid Concordance Between the Hearing of the Buried and the Answer to the Oath) 1312 AH (Firm correspondence between the hearing of the buried and the issue of oaths)

In the name of Allah, the Most Gracious, the Most Merciful.

[Arabic Prayer]: O Allah, all praise is for You and I seek help from You. Send blessings, peace, and abundance upon the trustworthy guarantor, the blessed right hand (Al-Yamin), Your beloved, and upon all his family and companions, as long as an oath-fulfiller fulfills his oath or an oath-breaker breaks his oath.

[Urdu Translation of the prayer]: O Allah! All praise is for You and I am a seeker of help from You. Send blessings and peace upon the trustworthy guarantor, the possessor of right hand and blessing, Your beloved, and upon all his family and companions, as long as an oath-fulfiller fulfills his oath or an oath-breaker breaks his oath. (T)

An abundant benefit regarding the investigation of the issue of oaths: The utmost effort and pride of the deniers in this matter is nothing more than this issue of oaths, which they present to unsettle the common people and even those with little knowledge, or that is what they intend. In "Ma'at-e-Masa'il", they have quoted long passages from "Kafi Sharh Wafi", "Fath al-Qadir", "Kifayah", glosses on "Hidayah", "Mustakhlas", and "Ayni's commentaries on Kanz", consisting of some edits and some extraneous additions, so that the common people might be intimidated by seeing long Arabic passages. If they do not deny the hearing of the dead (Sama'-e-Mauti), at least they might fall into hesitation. However, by the grace of Allah, the people of knowledge know that all this is mere deception. Otherwise, those passages and a hundred or a thousand more like them are neither harmful to us nor useful to the deniers. The consensus issue of the Ahl al-Sunnat wa’l-Jama’at, established by explicit texts and authentic ahadith of the Master of the Messengers (peace and blessings of Allah be upon him), cannot be shaken by the meaningless skepticism of any doubter. This humble servant (may the Almighty Lord forgive him) submits some beneficial and useful words in the research and clarification of this matter, so that by His permission, it may provide steadfastness and stability to the proponents, guidance

and remorse to the fair-minded opponent, and burden and fine to the stubborn and obstinate one.

खंड 9

फ़तावा रज़विया

सबसे महत्वपूर्ण, महान और भव्य शोध निबंध का परिशिष्ट

अल-विफ़ाक़ अल-मतीन बयना समा' अल-दफ़ीन व जवाब अल-यमीन (दफ़न किए गए के सुनने और कसम के जवाब के बीच ठोस सामंजस्य) 1312 हिजरी। (दफ़न किए गए के सुनने और कसम के मसले के बीच दृढ़ सामंजस्य)

अल्लाह के नाम से, जो अत्यंत दयालु और दयावान है।

[अरबी प्रार्थना]: ऐ अल्लाह! सारी प्रशंसा तेरे ही लिए है और मैं तुझसे ही सहायता माँगता हूँ। शांति, आशीर्वाद और बरकतें नाज़िल फरमा अमानतदार अमान, धन्य दाहिना हाथ (अल-यमीन), तेरे महबूब और उनके सभी परिवार और साथियों पर, जब तक कोई कसम पूरी करने वाला अपनी कसम पूरी करे या कसम तोड़ने वाला अपनी कसम तोड़े।

[प्रार्थना का उर्दू अनुवाद]: ऐ अल्लाह! सारी प्रशंसा तेरे ही लिए है और मैं तुझसे मदद का तलबगार हूँ। अमानतदार अमान, यमीन और बरकत वाले अपने हबीब और उनकी तमाम आल और असहाब पर दुरूद और सलाम नाज़िल फ़रमा जब तक कोई क़सम पूरी करने वाला क़सम पूरी करे या क़सम तोड़ने वाला क़सम तोड़े। (त)

कसम के मसले की जाँच में एक बड़ा लाभ: इस विषय में इनकार करने वालों का सारा प्रयास और गर्व बस इसी कसम के मसले पर टिका है, जिसे दिखाकर वे आम लोगों और यहाँ तक कि कम ज्ञान रखने वालों को विचलित कर देते हैं या ऐसा करना चाहते हैं। "माइते मसाइल" में उन्होंने "काफी शरह वाफी", "फतह अल-कादिर", "किफाया", "हिदाया" के हाशिये, "मुस्तखलास" और "ऐनी शुरूह कंज" से लंबी इबारतें उद्धृत की हैं, जिनमें कुछ काट-छाँट और कुछ बाहरी जोड़-तोड़ शामिल हैं, ताकि आम लोग लंबी अरबी इबारतों को देखकर डर जाएं। यदि वे मुर्दों के सुनने (समा-ए-मौती) से इनकार न करें, तो कम से कम हिचकिचाहट में तो पड़ जाएं। लेकिन अल्लाह के फ़ज़ल से विद्वान जानते हैं कि यह सब केवल दिखावा है। अन्यथा, वे इबारतें और उनके जैसी सौ या हज़ार और भी हों, तो न वे हमारे लिए हानिकारक हैं और न ही इनकार करने वालों के लिए उपयोगी। अहले सुन्नत वल जमात का वह सामूहिक मसला, जो सैयदुल मुरसलीन (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) की

स्पष्ट आयतों और सही हदीसों से साबित है, किसी भी संशयवादी के अर्थहीन संदेहों से विचलित नहीं हो सकता। यह तुच्छ सेवक (अल्लाह सर्वशक्तिमान उसे क्षमा करे) इस मसले की शोध और स्पष्टीकरण में कुछ लाभदायक शब्द प्रस्तुत करता है, ताकि उसकी अनुमति से समर्थकों को दृढ़ता और स्थिरता मिले, निष्पक्ष विरोधियों को मार्गदर्शन और पश्चाताप हो, और हठधर्मियों को कष्ट और दंड मिले।

पृष्ठ 839/948

جلد نہم

فتاویٰ رضویہ

تذبیل اہم اجل و اعظم رسالہ

الوفاق المتین بین سماع الدفین وجواب الیمین ۱۳۱۲ھ (مدفون کے سننے اور مسئلہ قسم کے درمیان محکم مطابقت)

بسم اللہ الرحمن الرحیم

اللھم لك الحمد وبك استعین صل وسلم و بارك علی الامان الامین المبارك الیمین حبیبك و آلہ و صحبہ اجمعین ما بر بار او حنث حانث فی یمین ۔

اے اللہ تیرے ہی لیے حمد ہے اور میں تجھ سے مدد کا طالب ہوں امانت دار امان ، یمین و برکت والے اپنے حبیب اور ان کی تمام آل و اصحاب پر درود و سلام نازل فرما جب تک کوئی قسم پوری کرنے والا قسم پوری کرے یا قسم توڑنے والا قسم توڑے ۔ (ت)

عائدہ جزیلہ تحقیق مسئلہ یمین میں : حضرات منکرین کی غایت سعی و تمام مایہ ناز اس باب میں جو کچھ ہے وہ یہی مسئلہ یمین ہے جسے دکھا کر عوام بلکہ کم علموں کو متزلزل کردیتے ہیں یا کیا چاہتے ہیں ، مائتہ مسائل میں کافی شرح وانی ، و فتح القدیر و کفایہ حواشی ہدایہ و مستخلص و عینی شروح کنز سے طولانی عبارتیں کچھ قطع و برید کچھ بیگانہ مزید پر مشتمل نقل کیں کہ عوام بڑی بڑی عبارتیں عربیہ دیکھ کر ڈر جائیں۔ اور اگر سماعِ موتی سے منکر نہ ہوں تو لااقل تردد تو کر جائیں ، مگر بحمد اللہ اہل علم جانتے ہیں کہ یہ سب نری ملمع کاری ہے ورنہ وہ عبارات اور ان جیسی سو یا ہزار جتنی اور ہوں نہ ہمیں مضر نہ منکرین کو مفید ، نہ اہل سنت و جماعت کا

اجماعی مسئلہ جو نصوص صریحہ احادیث صحیحہ سید المرسلین صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم سے ثابت کسی مشکک کی تشکیکات بے معنی سے متزلزل ہو سکے، فقیر غفراللہ المولی القدیر اس کی تحقیق و تنقیح میں بھی کچھ کلمات چند نافع و سود مند گزارش کرے کہ باذنہ تعالیٰ موافق کو ثبات و استقامت، مخالف منصف کو ارشاد و ندامت، مکابر متعسف کو وبال و غرامت دیں۔

Fatawa Razawiyya, Volume 9

With Allah is the guidance to reach the pinnacle of investigation (And from God alone is the guidance and with His help is the attainment of the height of research. T). The issue is that if someone swears an oath, "I will not speak a word with Zaid," this oath is construed for Zaid's lifetime. If he speaks with Zaid after his death, he will not be a breaker of the oath (hanith). The original ruling from the leaders of our school (may Allah be pleased with them) is only this much. The reason for this is that according to us, oaths are based on common usage (urf). The meanings that are conventionally understood and implied by a word are those upon which the oath applies, not the literal or legal meanings. In all the books of the school, and even in those aforementioned books (whose passages the deniers take as their evidence due to ignorance or feigned ignorance), there are clear clarifications of this matter. For example, if one swears an oath that he will not sit on a "bedding" (bichhona), or will not take light from a "lamp" (chiragh), or will not come under a "ceiling" (chhat), then sitting on the ground, in the sun, or under the sky will not break the oath, even though the Great Quran has called the earth a bed (farsh), the sun a lamp (siraj), and the sky a ceiling (saqf).

Arabic	**Urdu**
Allah the Almighty said: [He] Who made for you the earth a bed. [1] And Allah the Almighty said:	Allah the Almighty says: He made the earth a bedding for you.
And He made therein a lamp and a luminous moon. [2] And Allah the Almighty said:	He says: He made in it a lamp and a shining moon. And
And We made the sky a protected ceiling. [3]	He says: We made the sky a protected ceiling. (T)

Similarly, if one swears an oath that he will not enter any "house" (ghar), he will not be a breaker of the oath by entering mosques or other places of worship, even though linguistically the word "house" (ghar/bayt) applies to them too. The reason is the same: although legally or linguistically these things are included in those words, for the purpose of oaths, conventional inclusion is required, which is not present here. For exactly this same reason, in the aforementioned issue, the breaking of the oath (hunth) is removed by speaking after death, because conventionally, "not speaking with someone" does not include greeting or speaking to them after their death. To derive from this that according to the original leaders of our school, speaking with the deceased is not speech in reality or in Sharia is purely false, and

anyone who thinks so is either ignorant of or negligent towards the basis of the ruling. Just as our leaders (may Allah be pleased with them) have made this clarification, they have also clarified that in the aforementioned scenario, if both the swearer and Zaid were in prayer, and Zaid intended to greet the fellow worshippers while turning for salam, the swearer will not break his oath. However, outside of prayer, if Zaid was in a gathering and the swearer said "Assalamu Alaikum," he would break the oath. Similarly, if Zaid was the Imam and this person was a follower, and Zaid made a mistake in prayer and he pointed it out, the oath would not be broken, but if he pointed it out outside of prayer, it would break. It is stated in Al-Bahr al-Ra'iq, Radd al-Muhtar, and many other books:

Arabic	**Urdu**
If he greets a group among whom he (Zaid) is present, unless...	If he greets a group in which he is also present.

[1] Al-Quran 2/22 [2] Al-Quran 25/61 [3] Al-Quran 21/32

फ़तावा रज़विया, जिल्द 9

वबिल्लाहि तौफीक बि अल-वूसूल इला जरी अल-तहक़ीक़ (और ईश्वर ही से तौफीक और उसी की मदद से अनुसंधान की ऊँचाई तक पहुँचना। त)। मसला यह है कि अगर कोई व्यक्ति कसम खाए कि "मैं ज़ैद से कोई बात नहीं करूँगा", तो यह कसम ज़ैद के जीवित रहने तक के लिए मानी जाती है। यदि ज़ैद के इंतकाल के बाद उससे बात करे तो कसम नहीं टूटेगी (हानिस नहीं होगा), हमारे इमामों (अल्लाह उनसे प्रसन्न हो) का असल मसला केवल इतना ही है। और इसकी वजह यह है कि हमारे नज़दीक कसम की बुनियाद 'उर्फ (सामान्य बोलचाल और समझ) पर है। शब्द से जो अर्थ सामान्य रूप से समझा और माना जाता है, उसी पर कसम लागू होती है, न कि शाब्दिक या शरिया अर्थ पर। धर्म की सभी किताबों और स्वयं उन किताबों में (जिनके इबारतों को इनकार करने वाले अज्ञानता या जानबूझकर अज्ञानता के कारण अपना प्रमाण समझते हैं) इस बात का स्पष्ट उल्लेख है। उदाहरण के लिए, यदि किसी ने कसम खाई कि वह "बिछौने" पर नहीं बैठेगा या "चिराग" से रोशनी नहीं लेगा या "छत" के नीचे नहीं आएगा, तो ज़मीन पर बैठने, धूप में बैठने या आसमान के नीचे बैठने से कसम नहीं टूटेगी, भले ही महान कुरान ने ज़मीन को फर्श, सूरज को चिराग और आसमान को छत कहा है।

अरबी	**उर्दू**
अल्लाह तआला ने फरमाया: "जिसने तुम्हारे लिए ज़मीन को फर्श (बिछौना) बनाया"। [1] और अल्लाह तआला ने फरमाया: "और उसने उसमें एक चिराग (सूरज) और एक रोशन चाँद बनाया"। [2] और अल्लाह तआला ने फरमाया: "और हमने आसमान को एक सुरक्षित छत बनाया"। [3]	अल्लाह तआला फरमाता है: तुम्हारे लिए ज़मीन को बिछौना बनाया, और फरमाता है: इसमें एक चिराग और एक रोशन चाँद बनाया। और फरमाता है: हमने आसमान को महफूज़ छत बनाया (त)

इसी तरह यदि कोई कसम खाए कि वह किसी "घर" में नहीं जाएगा, तो मस्जिद आदि इबादतगाहों में जाने से कसम नहीं टूटेगी, भले ही भाषाई रूप से उन पर भी "घर" शब्द लागू होता हो। कारण वही है कि यद्यपि शरिया या भाषा के अनुसार ये चीजें उन शब्दों में शामिल हैं, लेकिन कसम के मामले में 'उर्फ (प्रचलित समझ) में शामिल होना आवश्यक है जो यहाँ नहीं है। ठीक इसी कारण से उक्त मसले में, मृत्यु के बाद बात करने से हन्ष (कसम का टूटना) समाप्त हो जाता है क्योंकि सामान्य तौर पर "किसी से बात न करना" उसकी मृत्यु के बाद उसे सलाम करने या बात करने को शामिल नहीं

करता है। इससे यह निष्कर्ष निकालना कि हमारे असल इमामों के नज़दीक मृत व्यक्ति से बात करना वास्तव में या शरिया के अनुसार बात करना नहीं है, सरासर गलत है और ऐसा सोचने वाला मसले की मूल बुनियाद से अनजान या भटका हुआ है। हमारे इमामों (अल्लाह उनसे प्रसन्न हो) ने जिस तरह यह स्पष्ट किया है, वैसे ही यह भी कि उक्त स्थिति में यदि कसम खाने वाला और ज़ैद दोनों नमाज़ में थे और ज़ैद ने सलाम फेरते समय साथियों पर सलाम की नीयत की तो कसम नहीं टूटेगी। और नमाज़ के बाहर यदि ज़ैद किसी सभा में हो और कसम खाने वाला "अस्सलामु अलैकुम" कहे तो कसम टूट जाएगी। इसी तरह यदि ज़ैद इमाम था और यह मुक़्तदी (पीछे नमाज़ पढ़ने वाला), ज़ैद नमाज़ में कुछ भूल गया और इसने बताया तो कसम नहीं टूटेगी, और नमाज़ से बाहर बताया तो टूट जाएगी। बहरुर्राइक और रद-उल-मुहतार आदि अनेक पुस्तकों में है:

अरबी	**उर्दू**
यदि उसने उस कौम को सलाम किया जिसमें वह (ज़ैद) मौजूद है, सिवाय इसके कि...	अगर किसी जमात को सलाम किया जिसमें वह भी मौजूद है।

[1] अल-कुरान 2/22 [2] अल-कुरान 25/61 [3] अल-कुरान 21/32

فتاوی رضویہ جلد نہم

وباللہ التوفیق بہ الوصول الی ذری التحقیق (اور خدا ہی سے توفیق اور اسی کی مدد سے بلندی تحقیق تک رسائی۔ ت) مسئلہ یہ ہے کہ اگر کوئی شخص قسم کھائے زید سے بول نہ بولوں گا، تو یہ قسم زید کی حالت حیات پر منصور رہتی ہے۔ اگر بعد انتقال زید سے کلام کرے حانث نہ ہوگا، اصل مسئلہ ہمارے ائمہ مذہب رضی اللہ تعالٰی عنہم سے صرف اس قدر ہے۔ اور اس کی وجہ یہ کہ ہمارے نزدیک بنائے یمین عرف پر ہے۔ لفظ سے جو معنی عرفا مراد و مفہوم ہوتے ہیں ان پر قسم وارد ہوتی ہے نہ معنی لغوی یا شرعی پر، تمام کتب مذہب اور خود ان کتب مذکورہ میں (جن کی عبارات کو منکرین راہ جہل یا تجاہل اپنی سند سمجھے) اس امر کی تصریحات جلیہ ہیں، مثلاً قسم کھائی بچھونے پر نہ بیٹھے گا یا چراغ سے روشنی نہ لے گا یا چھت کے نیچے نہ آئے گا تو زمین پر یادھوپ میں یا زیر آسمان بیٹھنے سے قسم نہ ٹوٹے گی اگر چہ قرآن عظیم میں زمین کو فرش اور آفتاب کو سراج اور آسمان کو سقف فرمایا،

عربی	اردو
قال اللہ تعالٰی جَعَلَ لَکُمُ الْاَرْضَ فِرَاشًا 1 وقال اللہ تعالٰی	اللہ تعالٰی فرماتا ہے: تمہارے لیے زمین کو بچھونا بنایا، اور
وَّ جَعَلَ فِیْھَا سِرٰجًا وَّ قَمَرًا مُّنِیْرًا 2 وقال اللہ تعالٰی	فرماتا ہے: اس میں ایک چراغ اور ایک روشن چاند بنایا۔ اور
وَّ جَعَلْنَا السَّمَآءَ سَقْفًا مَّحْفُوْظًا 3	فرماتا ہے: ہم نے آسمان کو محفوظ چھت بنایا (ت)

یونہی قسم کھائی کسی گھر میں نہ جائے گا، تو مسجد وغیرہ معابد میں جانے سے حانث نہ ہوگا اگر چہ لغۃً ان پر بھی گھر کا لفظ صادق، وجہ وہی ہے کہ اگرچہ شرعا یا لغۃً یہ اشیاء ان الفاظ میں داخل مگر ایمان میں عرفاً شمول درکار ہے وہ یہاں غیر حاصل، بعینہ اسی وجہ سے مسئلہ مذکورہ میں بعد موت بولنے سے حنث زائل کہ کسی سے نہ بولنا عرفاً اس کی موت کے بعد سلام و کلام کو غیر شامل، اس سے یہ تراش لینا کہ ہمارے اصل ائمہ مذہب کے نزدیک میت سے کلام حقیقۃً یا شرعاً کلام نہیں محض باطل، اور ایسا گمان کرنے والا اصل بنائے مسئلہ سے جاہل یا ذاہل، ہمارے ائمہ رضی اللہ تعالیٰ عنہم نے جس طرح یہ تصریح فرمائی یوں ہی یہ بھی کہ صورت مذکورہ میں اگر قسم کھانے والا اور زید دونوں نماز میں تھے اور زید نے سلام پھیرنے میں ہمراہیوں پر سلام کی نیت کی حانث نہ ہوگا، اور بیرون نماز اگر زید کسی مجمع میں ہوا اور قسم کھانے والا السلام علیکم کہے حانث ہو جائے گا یونہی اگر زید امام تھا اور یہ مقتدی زید نماز میں کچھ بھولا اس نے بتایا قسم نہ ٹوٹے گی، اور نماز سے باہر بتایا ٹوٹ جائے گی، بحر الرائق و ردالمحتار وغیرہ کتب کثیرہ میں ہے:

عربی **اردو**

لو سلم علی قوم فیہم حنث الا ان اگر کسی جماعت کو سلام کیا جس میں وہ بھی موجود ہے

1 القرآن ۲/۲۲ 2 القرآن ۲۱/۲۵ 3 القرآن ۳۲/۲۱

Fatawa Razawiya, Volume 9

[Excerpt 1] Arabic: “If he does not intend him (the person he swore not to speak to), his word will be accepted in a religious sense. If he says the Salam of prayer, he does not break his oath, even if the person he swore about is on his left. This is the correct view because both Salams in prayer are considered part of the prayer in one way. If he (an imam or follower) says 'Subhan Allah' due to an error or gives a prompt (Luqma) during recitation, he does not break his oath; however, outside of prayer, he would break it.” Urdu: (If he spoke to the person he swore not to speak to), he would break his oath. But if he did not intend him during the Salam of prayer, his word will be accepted religiously. And if he turned for the Salam of prayer and the person he swore about was present on his left, the oath is still not broken; this is the correct view. This is because both Salams are somehow included within the prayer. If he was an Imam or a follower and said 'Subhan Allah' for a mistake or gave a prompt during recitation, he would not break his oath, whereas if this happened outside of prayer, he would break his oath. (T)

Now, to conclude from this that worshippers are like stones and hear nothing, and that the speech of worshippers is not speech in reality—is there any limit to this ignorance? Listen to the texts from their own authoritative books. It is stated in 'Al-Kafi':

[Excerpt 2] Arabic: “The principle is that words used in oaths are based on customary usage ('urf) according to us... (up to where it says) We say the intent of the swearer is what is prevalent in custom, so it is restricted by what is the purpose of the oath. For example, one who swears not to seek light from a lamp (Siraj) or not to sit on a spread (Bisaat), then seeks light from the sun or sits on the ground, does not break his oath, even if the Quran calls the sun a 'lamp' and the earth a 'spread'. A man who swears not to enter a 'house' (Bayt) does not break his oath by entering the Kaaba, a mosque, or a church, etc.” Urdu: The principle is that according to us, the words used in an oath are based on 'urf' (customary usage). (Further it is said) We say that the purpose of the one taking the oath is what is prevalent in custom, so his oath will be restricted by his intent. See, if someone swore not to take light from a lamp or not to sit on a floor-spread, and then he took light from the sun or sat on the ground, he would not break his oath, even though the Quran has called the sun a lamp and the earth a spread. If someone swore not to enter a house, he would not break his oath by entering the Kaaba, a mosque, or a church, etc. (T)

In the same 'Fath al-Qadir' it is written: Arabic: “The principle is that oaths are clarified by customary usage according to us, not by linguistic reality, as narrated from al-Shafi'i.” Urdu: The principle is that according to us, oaths are based on 'urf' (custom), not on literal linguistic meaning, as is narrated from Imam Shafi'i.

Footnotes: 1. Radd al-Muhtar, Kitab al-Aiman, Mustafa al-Babi Egypt, 3/112 2. Kafi Sharh Wafi

फ़तावा रज़विया, जिल्द 9

[अंश 1] अरबी: "अगर वह उस (व्यक्ति जिससे बात न करने की कसम खाई थी) का इरादा नहीं करता, तो धार्मिक रूप से उसकी बात मानी जाएगी। यदि वह नमाज़ का सलाम कहता है, तो उसकी शपथ भंग नहीं होगी, भले ही वह व्यक्ति जिसकी कसम खाई गई थी, उसके बाईं ओर मौजूद हो। यही सही मत है क्योंकि नमाज़ में दोनों सलाम एक तरह से नमाज़ का हिस्सा हैं। यदि उसने (इमाम या मुक्तदी) भूल पर 'सुभान अल्लाह' कहा या क़िरात में गलती पर लुक्मा दिया, तो शपथ भंग नहीं होगी; हालाँकि नमाज़ के बाहर ऐसा करने पर शपथ भंग हो जाएगी।" उर्दू: (जिससे बात न करने की कसम खाई थी) तो शपथ भंग (हानिस) हो जाएगी। लेकिन अगर सलाम में उसका इरादा नहीं किया तो दयानतन (धार्मिक रूप से) उसका बयान माना जाएगा, और अगर नमाज़ का सलाम फेरा और वह जिससे संबंधित कसम खाई थी उसके बाईं ओर मौजूद है तो भी कसम नहीं टूटी यही सही है। इसलिए कि दोनों सलाम भी एक तरह से नमाज़ के अंदर दाखिल हैं। और अगर वह इमाम था या मुक्तदी, सहू (भूल) पर उसके लिए सुभान अल्लाह कहा या क़िरात में गलती पर लुक्मा दिया तो हानिस न होगा और नमाज़ के बाहर ऐसा हुआ तो हानिस हो जाएगा। (त)

अब इससे यह तय कर लेना कि नमाज़ पढ़ने वाले पत्थर हैं, वे कुछ सुनते नहीं, नमाज़ियों का कलाम वास्तव में कलाम ही नहीं—इस अज्ञानता की भी कोई सीमा है? उनकी अपनी प्रामाणिक पुस्तकों के इबारत (पाठ) सुनें। 'अल-काफ़ी' में है:

[अंश 2] अरबी: "सिद्धांत यह है कि शपथ में प्रयुक्त शब्द हमारे निकट 'उर्फ (प्रथा/प्रचलन) पर आधारित हैं... (जहाँ कहा गया है) हम कहते हैं कि कसम खाने वाले का उद्देश्य वही होता है जो उर्फ में प्रचलित है, इसलिए उसकी शपथ उसके उद्देश्य से सीमित रहेगी। उदाहरण के लिए, जिसने कसम खाई कि वह चिराग (सिराज) से रोशनी नहीं लेगा या बिछौने (बिसात) पर नहीं बैठेगा, फिर उसने सूरज से रोशनी ली या ज़मीन पर बैठा, तो शपथ भंग नहीं होगी, भले ही कुरान में सूरज को चिराग और ज़मीन को बिछौना कहा गया है। जिस व्यक्ति ने कसम खाई कि वह घर (बैत) में प्रवेश नहीं करेगा, वह काबा, मस्जिद या चर्च आदि में प्रवेश करने से शपथ भंग नहीं करेगा।" उर्दू: असल यह है कि हमारे नज़दीक कसम में इस्तेमाल होने वाले अल्फ़ाज़ की बिना उर्फ़ पर है (आगे फ़रमाया) हम यह कहते हैं कि कसम खाने वाले का मक़सद वही होता है जो उर्फ़ में जारी है तो उसकी कसम उसके मक़सूद से मुक़य्यद (सीमित) रहेगी। देखिये अगर किसी ने कसम खाई कि चिराग से रोशनी न लेगा या बिछौने पर न बैठेगा और सूरज से रोशनी ली या ज़मीन पर बैठा तो हानिस न होगा अगरचे

क़ुरान में सूरज को चिराग और ज़मीन को बिछौना फ़रमाया है। किसी ने कसम खाई घर में न जाएगा तो काबा व मस्जिद या कलीसा और गिरजा में जाने से हानिस न होगा। इत्यादि। (त)

इसी 'फ़तह अल-क़दीर' में है: अरबी: "सिद्धांत यह है कि शपथ हमारे निकट उर्फ़ पर आधारित है, भाषाई वास्तविकता पर नहीं, जैसा कि शाफई से वर्णित है।" उर्दू: असल यह है कि हमारे नज़दीक कसम की बिना उर्फ़ पर है हक़ीक़त-ए-लुग़विया (भाषाई वास्तविकता) पर नहीं। जैसा कि इमाम शाफई से मन्क़ूल है।

पाद-टिप्पणियाँ: 1. रद अल-मुह्तार, किताब अल-ऐमान, मुस्तफा अल-बाबी मिस्र, 3/112 2. काफ़ी शरह वाफ़ी

لایقصدہ فیدین ولوسلم من الصلوۃ لایحنث وان کان المحلوف علیہ من یسارہ ھوا لصحیح لان السلامین فی الصلوۃ من وجہ ولو سبح لہ السھو ا وفتح علیہ القراۃ وھو مقتد لم یحنث وخارج الصلوۃ حنث 1۔ (جس سے کلام نہ کرنے کی قسم کھائی تھی) تو حانث ہو جائے گا۔ لیکن اگر سلام میں اس کا قصد نہ کیا تو دیانتہً اس کا بیان مانا جائے گا، اور اگر نماز کا سلام پھیرا اور وہ جس سے متعلق قسم کھائی تھی اس کے بائیں موجود ہے تو بھی قسم نہ ٹوٹی یہی صحیح ہے۔ اس لیے کہ دونوں سلام بھی ایک طرح داخل نماز ہیں۔ اور اگر وہ امام تھا یا مقتدی، سہو پر اس کے لیے سبحان اللہ کہا یا قرات میں غلطی پر لقمہ دیا تو حانث نہ ہوگا اور بیرونِ نماز ایسا ہوا تو حانث ہو جائے گا۔ (ت)

اب اس سے یہ قرار دے لینا کہ نمازی پتھر ہیں نمازی کچھ سنتے نہیں، نمازیوں سے کلام حقیقتہً کلام ہی نہیں۔ اس جہالت کی کچھ بھی حد ہے، خواہ انہیں کی کتبِ مستندہ کی عبارتیں سنئے۔ کافی میں ہے:

الاصل ان الالفاظ المستعملۃ فی الایمان مبنیۃ علی العرف عندنا (الی ان قال) قلنا ان غرض الحالف ما ھو المتعارف فیتقید بماھو غرض الابرای ان من خلف ان لایستضی بالسراج اولایجلس علی البساط فاستضاء بالشمس او جلس علی الارض لایحنث، وان سمی فی القرآن الشمس سراجا والارض بساطاً رجل حلف ان لایدخل بیتا لا یحنث بدخل الکعبۃ والمسجد و البیعۃ و الکنیسۃ 2الخ۔ اصل یہ ہے کہ ہمارے نزدیک قسم میں استعمال ہونے والے الفاظ کی بناء عرف پر ہے (آگے فرمایا) ہم یہ کہتے ہیں قسم کھانے والے کا مقصد وہی ہوتا ہے جو عرف میں جاری ہے تو اس کی قسم اس کے مقصود سے مقید رہے گی۔ دیکھئے اگر کسی نے قسم کھائی کہ چراغ سے روشنی نہ لے گا یا بچھونے پر نہ بیٹھے گا اور سورج سے روشنی لی یا زمین پر بیٹھا تو حانث نہ ہو گا اگرچہ قرآن میں سورج کو

چراغ اور زمین کو بچھونا فرمایا ہے۔ کسی نے قسم کھائی گھر میں نہ جائے گا تو کعبہ و مسجد یا کلیسا اور گرجا میں جانے سے حانث نہ ہوگا۔ الخ۔ (ت)

اسی فتح القدیر میں ہے: الاصل ان الایمان مبینۃ علی العرف عندنا لاعلی الحقیقۃ اللغویۃ کما نقل عن الشافعی اصل یہ ہے کہ ہمارے نزدیک قسم کی بنا عرف پر ہے حقیقت لغویہ پر نہیں۔ جیسا کہ امام شافعی سے منقول

1۔ ردالمختار کتاب الایمان مصطفی البابی مصر ۳/ ۱۱۲ 2۔ کافی شرح وافی

Fatawa Razawiyyah Volume 9

ولا على الاستعمال القرآنى كما عند مالك ولا على النبية مطلقاً كما عند احمد۔ [Nor based on Quranic usage as held by Malik, nor absolutely on intention as held by Ahmad.] ...neither is it based on Quranic usage as is with Imam Malik, nor is it based absolutely on intention as is with Imam Ahmad. (T)

In the same 'Kifayah' it is stated: الاصل ان لالفاظ المستعملة فى الايمان مبنية على العرف عندنا وعند الشافعى على الحقيقة لان الحقيقة بان يراد، وعند مالك على معانى كلام القرآن لانه اصح اللغات وافصحها ولنا ان غرض الحاف ماهو والمتعارف فينعقد بغرضہ۔ [The principle is that the words used in oaths are based on custom according to us, and according to al-Shafi'i they are based on literal meaning because literal meaning is intended, and according to Malik they are based on the meanings of the words of the Quran because it is the most correct and eloquent of languages. For us, the purpose of the oath-taker is what is customary, thus it is contracted according to his purpose.] The principle is that the words used in oaths, according to us, are based on custom (Urf). According to Imam Shafi'i, they are based on literal reality (Haqiqat) because reality is what should be intended. According to Imam Malik (may Allah the Almighty have mercy on him), words are based on the meanings of the Quran because the Quran was revealed in the most correct and eloquent language. Our argument is that the intent of the oath-taker is what is customary, so it will be concluded according to his intent. (T)

In the same: رجحنا العرف على الحقيقة لان مبنى الايمان على العرف۔ [We preferred custom over literal reality because the basis of oaths is custom.] We have preferred custom over literal reality because oaths are based on custom. (T)

In the same 'Mustakhlis Sharh Kanz', the first passage of 'Kifayah' is copied exactly and it is written: كذا فى الكفاية وقد ذكر فخر الاسلام فى اصول ان من جملة ماترک بہ الحقيقة خمسة انواع وعد من جملتها استعمال العرف الغالب۔ [Similarly in 'Kifayah'. And Fakhr al-Islam mentioned in 'Usul' that among the matters through which literal reality is abandoned, there are five types, and among them he counted the usage of predominant custom.] Similarly it is in 'Kifayah'. And Fakhr al-Islam has stated in 'Usul' that the matters due to which the literal reality is abandoned are of five types; among them, he also counted the usage of predominant custom. (T)

In the same 'Aini Sharh Kanz' it is:

1 Fath al-Qadir, Chapter of Oaths regarding Entry and Residence, Noorani Kutub Khana Peshawar 4/377 2 Al-Kifayah with Fath al-Qadir, Chapter of Oaths regarding Entry and Residence, Noorani Kutub Khana Peshawar 4/377 3 Al-Kifayah with Fath al-Qadir, Miscellaneous Matters, Noorani Kutub Khana Peshawar 4/377 4 Mustakhlis al-Haqaiq Sharh Kanz al-Daqaiq, Book of Oaths, Chapter of Oaths regarding Entry and Residence, Delhi Printing Press Delhi 2/33

फ़तावा रज़विया जिल्द नौ (9)

ولا على الاستعمال القرآنى كما عند مالك ولا على النبية مطلقاً كما عند احمد۔ [न ही कुरआन के प्रयोग पर जैसा कि इमाम मालिक के यहाँ है, न ही पूर्ण रूप से नीयत पर जैसा कि इमाम अहमद के यहाँ है।] ...न ही कुरआन के इस्तेमाल पर है जैसा कि इमाम मालिक के यहाँ है, न ही मुतलकन (पूर्ण रूप से) नीयत पर जैसा कि इमाम अहमद के यहाँ है। (त)

इसी 'किफ़ाया' में है: وعند الاصل ان لالفاظ المستعملة فى الايمان مبنية على العرف عندنا الشافعى على الحقيقة لان الحقيقة بان يراد، وعند مالك على معانى كلام القرآن لانه اصح اللغات وافصحها ولنا ان غرض الحاف ماهو والمتعارف فينعقد بغرضہ۔ [मूल बात यह है कि शपथ में प्रयुक्त शब्द हमारे अनुसार प्रथा (उर्फ़) पर आधारित हैं, और शाफ़ई के अनुसार वे वास्तविकता (हकीक़त) पर आधारित हैं क्योंकि वास्तविकता ही इच्छित होनी चाहिए, और मालिक के अनुसार वे कुरआन के शब्दों के अर्थों पर आधारित हैं क्योंकि यह सबसे सही और स्पष्ट भाषा है। हमारे लिए शपथ लेने वाले का उद्देश्य वह है जो प्रथागत है, इसलिए यह उसके उद्देश्य के अनुसार ही प्रभावी होगा।] मूल बात यह है कि शपथ में जो शब्द इस्तेमाल होते हैं, हमारे नज़दीक उनकी बुनियाद 'उर्फ़ (प्रथा) पर है। और इमाम शाफ़ई के यहाँ वास्तविकता (हक़ीक़त) पर है क्योंकि वास्तविकता इस योग्य है कि वही अभीष्ट हो, और इमाम मालिक रहमतुल्लाही अलैहि के यहाँ शब्द कुरआन के अर्थों पर आधारित हैं क्योंकि कुरआन सबसे ज़्यादा सही और स्पष्ट भाषा में अवतरित हुआ है। हमारा तर्क यह है कि शपथ लेने वाले का उद्देश्य वही होता है जो समाज में प्रचलित (उर्फ़) है, तो शपथ उसी उद्देश्य से प्रभावी होगी। (त)

इसी में है: رجحنا العرف على الحقيقة لان مبنى الايمان على العرف۔ [हमने वास्तविकता पर प्रथा को प्राथमिकता दी है क्योंकि शपथ की बुनियाद प्रथा पर है।] हमने 'उर्फ़ को वास्तविकता पर प्राथमिकता दी है क्योंकि शपथ की बुनियाद 'उर्फ़ ही होती है। (त)

इसी 'मुस्तख़लिस शरह कन्ज़' में 'किफ़ाया' का पहला अंश हू-ब-हू नक़ल करके लिखा है: كذا فى الكفاية وقد ذكر فخر الاسلام فى اصول ان من جملة ماترک بہ الحقيقة خمسة انواع وعد من جملتها استعمال العرف الغالب۔ [इसी प्रकार 'किफ़ाया' में है। और फ़ख़्रुल इस्लाम ने 'उसूल' में उल्लेख किया है कि जिन विषयों के कारण वास्तविकता छोड़ दी जाती है, वे पाँच प्रकार के हैं, और उनमें उन्होंने प्रचलित प्रथा के उपयोग को भी गिना है।] इसी तरह 'किफ़ाया' में है। और फ़ख़्रुल

इस्लाम ने 'उसूल' में बयान फ़रमाया है कि जिन बातों से वास्तविकता छोड़ दी जाती है, वे पाँच क़िस्म की हैं, उनमें उन्होंने प्रचलित उर्फ़ के इस्तेमाल को भी शामिल किया है। (त)

इसी 'ऐनी शरह कन्ज़' में है:

1 फ़तह अल-क़दीर, बाब अल-यमीन फ़ी अद-दख़ूल व अस-सुकना, नूरानी कुतुब ख़ाना पेशावर 4/377 2 अल-किफ़ाया मअ फ़तह अल-क़दीर, बाब अल-यमीन फ़ी अद-दख़ूल व अस-सुकना, नूरानी कुतुब ख़ाना पेशावर 4/377 3 अल-किफ़ाया मअ फ़तह अल-क़दीर, मसाइल मुतफ़र्रिका, नूरानी कुतुब ख़ाना पेशावर 4/377 4 मुस्तख़लिस अल-हक़ाइक़ शरह कन्ज़ अद-दक़ाइक़, किताब अल-ईमान, बाब अल-यमीन फ़ी अद-दख़ूल व अस-सुकना, दिल्ली प्रिंटिंग प्रेस दिल्ली 2/33

فتاوٰی رضویہ جلد نہم

ولا علی الاستعمال القرآنی کما عند مالك ولا علی النبیۃ مطلقاً کما عند احمد 1۔ ہے نہ ہی قرآن کے استعمال پر جیسا کہ امام مالک کے یہاں ہے نہ ہی مطلقاً نیت پر جیسا کہ امام احمد کے یہاں ہے۔ (ت)

اسی کفایہ میں ہے: الاصل ان لالفاظ المستعملۃ فی الایمان مبنیۃ علی العرف عندنا وعند الشافعی علی الحقیقۃ لان الحقیقۃ بان یراد، وعند مالك علی معانی کلام القرآن لانہ اصح اللغات وافصحھا ولنا ان غرض الحاف ماھو والمتعارف فینعقد بغرضہ 2۔ اصل یہ ہے کہ قسم میں جو الفاظ استعمال ہوتے ہیں ہمارے نزدیک ان کی بنا عرف پر ہے۔ اور امام شافعی کے یہاں حقیقت پر ہے اس لیے کہ حقیقت اس قابل ہے کہ مراد ہو، اور امام مالک رحمتہ اللہ تعالٰی علیہ کے یہاں الفاظ قرآن کے معانی پر ہے اس لیے کہ قرآن سب سے زیادہ صحیح اور فصیح زبان پر وارد ہے۔ ہماری دلیل یہ ہے کہ قسم کھانے والے کی غرض وہ ہی ہوتی ہے جو عرف میں ہے تو اس کی غرض سے منعقد ہوگی۔ (ت)

اسی میں ہے: رجحنا العرف علی الحقیقۃ لان مبنی الایمان علی العرف 3۔ ہم نے عرف کو حقیقت پر ترجیح دی اس لیے کہ قسم کی بنا عرف ہی ہوتی ہے۔ (ت)

اسی مستخلص شرح کنز میں کفایہ کا پہلا کام بعینہ نقل کرکے لکھا: کذا فی الکفایۃ وقد ذکر فخر الاسلام فی اصول ان من جملۃ ماترک بہ الحقیقۃ خمسۃ انواع وعد من جملتھا استعمال العرف الغالب 4۔ اسی طرح کفایہ میں ہے۔ اور فخر الاسلام نے اصول میں بیان فرمایا ہے کہ جن امور سے

حقیقت متروک ہو جاتی ہے وہ پانچ قسم کے ہیں، ان میں اکثر عرف کے استعمال کو بھی شمار کیا۔ (ت)

اسی عینی شرح کنز میں ہے:

1 فتح القدیر باب الیمین فی الدخول والسکنی نورانی کتب خانہ پشاور ۳۷۷/۴ 2 الکفایہ مع فتح القدیر باب الیمین فی الدخول والسکنی نورانی کتب خانہ پشاور ۳۷۷/۴ 3 الکفایہ مع فتح القدیر مسائل متفرقہ نورانی کتب خانہ پشاور ۳۷۷/۴ 4 مستخلص الحقائق شرح کنز الدقائق ، کتاب الایمان ، باب الیمین فی الدخول والسکنی دلی پرنٹنگ پریس دہلی ۳۳/۲

Fatawa Ridawiyya Volume 9

Arabic Original	Urdu Translation
Oaths, according to us, are based on customary usage ('urf). According to Imam Shafi'i and Imam Ahmad, they are based on literal reality (haqiqah). According to Imam Malik, they are based on the meanings of the words in the Qur'an. (1)	According to us, an oath is based on custom. According to Imam Shafi'i and Imam Ahmad, it is based on reality, and according to Imam Malik, it is based on the meanings of the words of the Qur'an. (T)

In fact, in the same *Fath al-Qadir*, the specific issue of our circle being based on custom is clarified. They state:

Arabic Original	Urdu Translation
His oath is only contracted regarding the living because conversation with someone is customarily understood as talking to them during their lifetime. (2)	This means this oath will specifically be contracted during the state of life because in custom, speaking to someone means talking to them during their lifetime.

Allama Ali Qadri Makki Hanafi, in *Mirqat Sharh Mishkat Sharif*, mentions this issue and states:

Arabic Original	Urdu Translation
This [ruling] of theirs is based on the fact that oaths are based on custom. Thus, it does not necessitate denying the reality of hearing, just as they said regarding one who swears not to eat meat but then eats fish, even though Allah the Almighty called it 'fresh meat' [in the Qur'an]. (3)	This means the ruling of our scholars that an oath will not be broken by speaking [to someone] after their death is based on the premise that oaths are built on custom. Therefore, it does not necessarily follow that the dead do not actually hear. Just as our scholars said that someone who swears an oath to eat meat will not violate it by eating fish, even though Allah Almighty called it 'fresh meat' in the Great Qur'an.

Similarly, the researcher Sheikh Maulana Abdul Haq Muhaddith Hanafi, in *Ash'at al-Lam'at Sharh Mishkat*, after mentioning the issue that:

Arabic/Persian Original	Urdu Translation
If someone swears an oath 'I will not speak', and then speaks to him after he	If someone takes an oath not to talk to so-and-so, and then talks to him after his

Arabic/Persian Original	Urdu Translation
has died, he will not have violated his oath (hanith). (4)	death, he will not have broken the oath. (T)

He explains the reason for this:

Arabic Original	Urdu Translation
The foundation of oaths is on custom and habit, not on [literal] reality. (5)	The basis of an oath is on custom and habit, not on reality. (T)

---

1. *Ramz al-Haqa'iq Sharh Kanz al-Daqa'iq*, Book of Oaths, Chapter on Oaths regarding Entry into a Dwelling, Nuria Ridawiyya, Sukkur, 7/20.
2. *Fath al-Qadir*, Chapter on Oaths regarding Speech, Nuria Ridawiyya, Sukkur, 4/71.
3. *Mirqat al-Mafatih*, Chapter on the Ruling for Night Travel, Section 1, Issue of Hearing of the Dead, Maktaba Imdadia, Multan, 8/11.
4. *Ash'at al-Lam'at*, Chapter on the Ruling for Night Travel, Section 1, Issue of Hearing of the Dead, Maktaba Nuria Ridawiyya, Sukkur, 3/299.
5. *Ash'at al-Lam'at*, now Chapter on the Ruling for Night Travel, Section 1, Issue of Hearing of the Dead, Maktaba Nuria Ridawiyya, Sukkur, 3/299.

फ़तावा रज़विया जिल्द 9

अरबी मूल

हमारे यहाँ शपथ (क़सम) 'उर्फ़(प्रचलन) पर आधारित है। इमाम शाफ़ई और इमाम अहमद के नज़दीक यह हक़ीक़त (वास्तविकता) पर आधारित है, और इमाम मालिक के नज़दीक क़ुरआन के शब्दों के अर्थों पर। (1)

उर्दू अनुवाद

हमारे नज़दीक क़सम उर्फ़ पर मबनी होती है और इमाम शाफ़ई व इमाम अहमद के नज़दीक हक़ीक़त पर और इमाम मालिक के नज़दीक कलिमात-ए-क़ुरआन के मानी पर। (त)

बल्कि इसी फ़तह अल-क़दीर में हमारे दायरे के मसले के'उर्फ़ पर आधारित होने की व्याख्या की गई है, वे फ़रमाते हैं:

अरबी मूल

उसकी शपथ केवल जीवित व्यक्ति के लिए मान्य होगी क्योंकि किसी से बात करना प्रथागत रूप से उसके जीवनकाल के दौरान ही बात करना माना जाता है। (2)

उर्दू अनुवाद

यानी यह क़सम ख़ास हालत-ए-ज़िंदगी ही पर मुनअक़िद (लागू) होगी कि उर्फ़ में किसी से बोलना उसकी ज़िंदगी ही में बात करने को कहते हैं।

अल्लामा अली क़ादरी मक्की हनफ़ी मिरक़ात शरह मिश्क़ात शरीफ़ में इसी मसले का ज़िक्र करते हुए फ़रमाते हैं:

अरबी मूल

यह [हुक्म] इस बात पर आधारित है कि शपथ 'उर्फ़ पर आधारित होती है। अतः इससे सुनने की वास्तविकता का खंडन आवश्यक नहीं होता, जैसा कि उन्होंने उस व्यक्ति के बारे में कहा जिसने मांस न खाने की शपथ ली और फिर मछली खा ली, जबकि अल्लाह तआला ने उसे 'ताज़ा मांस' कहा है। (3)

उर्दू अनुवाद

यानी हमारे उलमा का यह इर्शाद कि मौत के बाद कलाम (बातचीत) से क़सम न टूटेगी, इस पर मबनी है कि क़सम की बिना उर्फ़ पर है। तो इससे यह लाज़िम नहीं आता कि मुर्दे हक़ीक़तन नहीं सुनते, जिस तरह हमारे उलमा ने फ़रमाया कि जो गोश्त खाने की क़सम खाए वो मछली खाने से हानिस (शपथ तोड़ने वाला) न होगा हालांकि अल्लाह अज़्ज़वजल ने क़ुरआन अज़ीम में इसे तरोताज़ा गोश्त फ़रमाया।

इसी तरह शेख मोहक़्क़िक़ मौलाना अब्दुल हक़ मोहद्दिस हनफ़ी अशअतुल लम्आत शरह मिश्क़ात में इस मसले के ज़िक्र के बाद कि:

अरबी/फ़ारसी मूल	उर्दू अनुवाद
अगर कोई शपथ ले कि मैं बात नहीं करूँगा, फिर उसके मरने के बाद उससे बात करे, तो वह हानिस नहीं होगा। (4)	अगर किसी ने क़सम खाई कि फ़लाँ से बात न करूँगा, फिर उसके मरने के बाद उससे कलाम किया तो हानिस न होगा। (त)

इसकी वजह बताते हुए फ़रमाते हैं:

अरबी मूल	उर्दू अनुवाद
शपथ की बुनियाद 'उर्फ़ और आदत पर है, न कि हक़ीक़त पर। (5)	क़सम की बुनियाद उर्फ़ व आदत पर है हक़ीक़त पर नहीं। (त)

---

1. रम्ज़ुल हक़ाएक़ शरह कंज़ुद्दक़ाएक़ , किताबुल ईमान, बाबुल यमीन फ़िद्दुख़ूल अल-सुकनी, नूरिया रज़विया, सक्खर, 7/20।
2. फ़तह अल-क़दीर, बाबुल यमीन फ़िल-कलाम, नूरिया रज़विया, सक्खर, 4/71।
3. मिरक़ातुल मफ़ातीह, बाब हुक्म लिस-सरा, फ़स्ल अव्वल, मसला समाउल मौता, मकतबा इमदादिया, मुल्तान, 11/8।
4. अशअतुल लम्आत, बाब हुक्म लिस-सरा, फ़स्ल अव्वल, मसला समाउल मौता, मकतबा नूरिया रज़विया, सक्खर, 299/3।
5. अशअतुल लम्आत, अब बाब हुक्म लिस-सरा, फ़स्ल अव्वल, मसला समाउल मौता, मकतबा नूरिया रज़विया, सक्खर, 299/3।

فتاوی رضویہ جلد نہم

| الایمان عندنا مبنیة علی العرف وعند الشافعي واحد علی الحقیقة وعند مالك علی معاني کلم القرآن 1۔ | ہمارے نزدیک قسم عرف پر مبنی ہوتی ہے اور امام شافعی و امام احمد کے نزدیک حقیقت پر اور امام مالک کے نزدیک کلماتِ قرآن کے معانی پر۔ (ت) |

بلکہ اسی فتح القدیر میں خاص ہمارے مسئلہ دائرہ کے مبنی علی العرف ہونے کی تصریح کی، فرماتے ہیں :

| یمینہ لاتنعقد الا علی الحي لان المتعارف ہوا لکلام معہ 2۔ | یعنی یہ قسم خاص حالتِ زندگی ہی پر منعقد ہوگی کہ عرف میں کسی سے بولنا اس کی زندگی ہی میں بات کرنے کو کہتے ہیں۔ |

علامہ علی قادری مکی حنفی مرقاۃ شرح مشکوۃ شریف میں اسی مسئلہ کو ذکر کرکے فرماتے ہیں:

| ھذا منھم مبنی علی ان مبنی الایمان علی العرف فلا یلزم نفی حقیقة السماع کما قالوا فیمن حلف لا یاکل اللحم فاکل السمکة مع انہ تعالی سماہ لحما طریا 3۔ | یعنی ہمارے علماء کا یہ ارشاد کہ بعد موت کے کلام سے قسم نہ ٹوٹے گی اس پر مبنی ہے کہ قسم کی بناء عرف پر ہے تو اس سے یہ لازم نہیں آتا کہ مردے حقیقتاً نہیں سنتے، جس طرح ہمارے علماء نے فرمایا کہ جو گوشت کھانے کی قسم کھائے مچھلی کھانے سے حانث نہ ہوگا حالانکہ اللہ عزوجل نے قرآن عظیم میں اسے تروتازہ گوشت فرمایا۔ |

اسی طرح شیخ محقق مولانا عبدالحق محدث حنفی اشعۃ اللمعات شرح مشکوۃ میں بعد ذکر مسئلہ کہ:

| اگر کسے سوگند خورد کہ کلام نہ کنم پس کلام کرد اور ابعد مردن او حانث نمی گردد 4۔ | اگر کسی نے قسم کھائی کہ فلاں سے بات نہ کروں گا، پھر اس کے مرنے کے بعد اس سے کلام کیا حانث نہ ہوگا۔ (ت) |

اس کی وجہ ارشاد فرماتے ہیں:

| بنائے ایمان بر عرف و عادت است نہ بر حقیقت 5۔ | قسم کی بنیاد عرف و عادت پر ہے حقیقت پر نہیں۔ (ت) |

---

1 رمز الحقائق شرح کنز الدقائق کتاب الایمان باب الیمین فی الدخول السکنی نوریہ رضویہ سکھر ۷/ ۲۰ 2 فتح القدیر باب الیمین فی الکلام نوریہ رضویہ سکھر ۴/ ۷۱ 3 مرقاۃ المفاتیح باب حکم لاسراء فصل اول مسئلہ سماع الموتی مکتبہ امدادیہ ملتان ۱۱/۸ 4 اشعۃ اللمعات باب حکم لاسراء فصل اول مسئلہ سماع الموتی مکتبہ نوریہ رضویہ سکھر ۲۹۹/۳ 5 اشعۃ اللمعات اب حکم لاسراء فصل اول مسئلہ سماع الموتی مکتبہ نوریہ رضویہ سکھر ۲۹۹/۳

Fatawa Rizwia, Volume 9

The real matter is that there is not even a trace of denial concerning the hearing of the deceased (Sama-e-Mauti). However, in some commentaries like the aforementioned five books etc., the explanation, interpretation, reasoning, and evidence of this issue are presented in such a way that upon deep reflection, an apparent illusion of contradiction arises. The deniers—and not just these deniers, but all opponents of the Ahl al-Sunnah—always exemplify the saying 'a drowning man clutches at a straw'. They even try to draw arguments from things that clearly harm their own position; so what can be said about something where a slight illusion of benefit appears? Now they have set aside all the overpowering, evident, and clear statements of the authentic and explicit noble hadiths on the shelf of forgetfulness. They have closed their eyes to all the noble and exalted teachings of the Companions, the Successors, the Imams of religion, the pious predecessors, and the perfect successors. Why would they look at those hadiths and instructions of the Imams? For there, the reality of their denial would be exposed. From the teaching of the One informed of the unseen (Prophet Muhammad ﷺ), information regarding this hidden barzakh (intermediary state) is found to be contrary to their desires. The clouds of consensus of the Ahl al-Sunnah are thundering in the sayings of the scholars, hearing which the chest of the newly invented denial trembles. Helplessly, they deemed it mandatory to believe in the illusory meanings of a few ambiguous phrases. For God's sake, be just! If, God forbid, the situation were reversed—if those overpowering proofs, recurrent (mutawatir) hadiths, and reports of the consensus of Ahl al-Sunnah were on their side, and the other side relied on a few such phrases against them—how much would they have raved? How colorful their taunts and criticisms would have been! But for themselves, everything is permissible. What can they do? They have no room, let alone the capacity for it. 'That is the limit of their knowledge.' (T) To top it off, among them, those claiming to be Hanafis, let alone the Ghair-Muqallidin, are dying for the denial of the hearing of the dead, and leaving aside clear texts and authentic hadiths, they take shelter behind some such ambiguous phrases. Now, neither is there any regard for acting upon Hadith, nor faith in 'They have taken their scholars and monks as lords besides Allah' (9:31) (T). The point is that for these deniers, religion and Sharia are but names for their own whims and desires; they act as the situation demands. The state of these gentlemen's practice on Hadith is the same as what the Great Quran says regarding the root principle of the sect of Dhul-Khuwaysirah al-Tamimi concerning charities:

Arabic	Urdu Translation
ۚوَمِنْهُمْ مَنْ يَلْمِزُكَ فِي الصَّدَقَتِ فَإِنْ أُعْطُوا مِنْهَا رَضُوا وَإِنْ لَمْ يُعْطَوْا مِنْهَا إِذَا هُمْ يَسْخَطُونَ ۝ 2	Among them is he who finds fault with you regarding charities. If they are given something from them, they are pleased; and if they are not given, they become angry. (T)

If the sayings of the Beloved (Prophet) ﷺ satisfy their desires in their estimation, they are happy.

1 Al-Quran 31/9 2 Al-Quran 58/9

फ़तावा रज़विया, जिल्द नहम (खंड 9)

असल बात तो इतनी है जिसे 'इनकार-ए-समा-ए-मौती' (मृतकों के सुनने का इनकार) से नाम को भी स्पर्श नहीं है। मगर कुछ व्याख्याओं (शराह) जैसे उपर्युक्त पाँच पुस्तकों आदि में इस मसले की व्याख्या, तावील, कारण और प्रमाण कुछ इस तरह से आए हैं जिससे गहरी सोच-विचार करने पर ज़ाहिर तौर पर विरोधाभास का वहम पैदा होता है। इनकार करने वाले—और सिर्फ ये ही नहीं, बल्कि अहले सुन्नत के तमाम विरोधी हमेशा 'डूबता हुआ तिनके का सहारा लेता है' (الغریق یتشبث بکل حشیش) के उदाहरण होते हैं। वे अपने स्पष्ट नुकसान वाली बात से भी दलील ले आते हैं; तो फिर जिसमें ज़ाहिर तौर पर कुछ लाभ का वहम निकलता हो, उसका कहना ही क्या है? अब सहीह, स्पष्ट और महान हदीसों की तमाम प्रबल और ज़ाहिर व्याख्याओं को उठाकर विस्मृति के ताक़ पर रख दिया है। सहाबा, ताबेईन, दीन के इमामों, नेक पूर्वजों और पूर्ण उत्तराधिकारियों के सभी महान और उच्च उपदेशों से आँखें बंद कर ली हैं। हदीसों और इमामों के उन उपदेशों को भला क्यों देखा जाता, वहाँ तो इनकार की कलई खुल जाती है। परोक्ष (ग़ैब) की ख़बर रखने वाले (नबी ﷺ) के उपदेश से उस छिपे हुए बरज़ख़ी जीवन की ख़बर उनकी इच्छा के विरुद्ध मिलती है। विद्वानों के कथनों में अहले सुन्नत के इजमा (आम सहमति) के बादल गरज रहे हैं, जिन्हें सुनकर इनकार के आविष्कार का सीना दहल जाता है। लाचार होकर उन्होंने कुछ संदिग्ध इबारतों के कल्पित अर्थों पर ईमान लाना फर्ज़ मान लिया। खुदा के लिए इंसाफ करें! अगर खुदा न करे स्थिति इसके उलट होती—कि उनकी तरफ वे प्रबल प्रमाण, मुतवातिर हदीसें और अहले सुन्नत के इजमा के उल्लेख होते, और दूसरा पक्ष उनके खिलाफ ऐसी ही कुछ इबारतों से प्रमाण लेता—तो वे क्या कुछ न बिखरते फिरते, उनके तंज और आलोचना के रंग कितने निखरते! मगर अपने लिए सब कुछ हलाल है। क्या करें, इसमें गुंजाइश नहीं, यहाँ तक कि मजाल है। "यही उनके ज्ञान की सीमा है" (ذلك مبلغهم من العلم)। मज़ा तो यह है कि इनमें हनफी होने का दावा करने वाले, ग़ैर-मुक़ल्लिदीन की तो बात ही छोड़ें, वे भी मृतकों के सुनने के इनकार पर मरे जा रहे हैं और स्पष्ट नुसूस (नियमों) और सहीह हदीसों को छोड़कर ऐसी ही कुछ संदिग्ध इबारतों की आड़ लेते हैं। अब न तो हदीस पर अमल करने की आन रही, और न ही "उन्होंने अपने विद्वानों और संन्यासियों को अल्लाह को छोड़कर रब बना लिया है" (اِتَّخَذُوْٓا اَحْبَارَهُمْ وَ رُهْبَانَهُمْ) पर ईमान रहा। बात यह है कि इनकार करने वालों के यहाँ दीन और शरीयत अपनी इच्छा और हवस का नाम है; जहाँ जैसा मौका देखा वैसा ही काम किया। इन साहबान के हदीस पर अमल

की वही स्थिति है जो कुरान-ए-अज़ीम में ज़ुल-ख़ुवैसरह तमीमी के मज़हब के मूल सिद्धांत के बारे में सदक़ात के संबंध में फ़रमाया कि:

अरबी	उर्दू अनुवाद
وَمِنْهُمْ مَنْ يَلْمِزُكَ فِي الصَّدَقَتِ ۚ فَإِنْ أُعْطُوا مِنْهَا رَضُوا وَإِنْ لَمْ يُعْطَوْا مِنْهَا إِذَا هُمْ يَسْخَطُونَ ۝ 2	उनमें कोई वह है जो सदक़ात (दान) के बारे में तुम पर ऐब लगाता है। अगर उन्हें उनमें से कुछ दे दिया जाए तो राज़ी हो जाएँ और न दिया जाए तो नाराज़ हो जाएँ। (त)

हबीब (नबी) ﷺ के इरशादात ने उनके गुमान में उनकी हवस को जगह दी तो वे खुश हैं।

1 अल-कुरान 31/9 2 अल-कुरान 58/9

اصل بات تو اتنی ہے جسے انکارِ سماعِ موتی سے نام کو مس بھی نہیں مگر بعض شروح مثل کتب خمسہ مذکورہ وغیرہما میں اس مسئلہ کی توجیہ و تاویل و وجہ و دلیل کچھ ایسے طور پر واقع ہوئی جس سے بنظر ظاہر فکر غائر کچھ وہم خلاف پیدا ہو، حضرات منکرین اور یہ ایک منکرین کیا اہلسنت کے تمام مخالفین ہمیشہ الغریق یتشبث بکل حشیش کے مصداق ہوتے ہیں ڈوبتا ہوا سوار (تنکا) پکڑتا ہے، اپنے صریح مضرے سے بھی تو استدلال کر لاتے ہیں پھر جس میں بظاہر کچھ نفع کا وہم نکلتا ہو اس کا کہنا ہی کیا ہے۔ اب احادیث صحیحہ صریحہ جلیلہ کے تمام قاہر، باہر، ظاہر تصریحات سب اٹھا کر طاقِ نسیاں پر رکھ دیں، صحابہ و تابعین و ائمہ دین، سلف صالحین و خلف کاملین سب کے ارشاداتِ جلیلہ عالیہ سے آنکھیں بند کر لیں، احادیث اور وہ ارشاداتِ ائمہ کیوں دیکھے جاتے وہاں تو انکار کی قلعی کھلتی ہے۔ بنی مطلع علی الغیب کے ارشاد سے اس برزخی پنہاں کی خبر اپنی خواہش کے خلاف ملتی ہے۔ اقوال علماء میں اجماع اہلسنت کے بادل گرج رہے ہیں جنھیں سن کر اختراعِ انکار کی چھاتی دہلتی ہے۔ چار ناچار انھیں چند عباراتِ موہمہ کے معانیِ موہومہ پر ایمان لانا فرض ٹھہرا، خدارا انصاف اگر معاذ اللہ صورتِ برعکس ہوتی۔ کہ حضرات کی طرف وہ دلائل قاہرہ احادیث متواترہ و نقولِ اجماعِ اہل سنت ہوتیں اور دوسرا ان کے خلاف ایسی چند عبارات سے استناد کرتا کیا کچھ نہ بکھرتے پھرتے، طعن و تشنیع کے رنگ نکھرتے، مگر اپنے لیے سب کچھ حلال ہے کیا کریں اس میں گنجائش نہیں تک مجال ہے ذلک مبلغھم من العلم (یہی ان کا مبلغِ علم ہے۔ ت) طرہ یہ کہ ان میں مدعیانِ حنفیت، در کنار حضرات غیر مقلدین بھی انکار سماعِ موتی پر مرتے جان دیتے ہیں اور نصوص صریحہ، احادیث صحیحہ چھوڑ کر ایسے ہی بعض عباراتِ موہمہ کی آڑ لیتے ہیں، اب نہ عمل بالحدیث کی آن، نہ اتَّخَذُوْا

اَحْبَارَھُمْ وَ رُھْبَانَھُمْ 1 (اپنے عالموں اور راہبوں کو خدا چھوڑ کر رب بنا لیا ہے۔ ت) پر ایمان۔ بات یہ ہے کہ منکر صاحبوں کے یہاں دین شریعت اپنی ہو او ہوس کا نام ہے جہاں جیسا موقع دیکھا اسی سے کام ہے، ان حضرات کے عمل بالحدیث کی وہی حالت ہے جو قرآنِ عظیم میں اصل اصولِ مذہب ذوالخویصرہ تمیمی کے درباره صدقات ارشاد فرمائے کہ:

عربی	اردو ترجمہ
وَمِنْهُمْ مَنْ يَلْمِزُكَ فِي الصَّدَقَتِ ۚ فَإِنْ أُعْطُوا مِنْهَا رَضُوا وَإِنْ لَمْ يُعْطَوْا مِنْهَا إِذَا هُمْ يَسْخَطُونَ ۝ 2	ان میں کوئی وہ ہے جو صدقات کے بارے میں تم پر عیب لگاتا ہے۔ اگر انھیں ان میں سے کچھ دے دیا جائے تو راضی ہو جائیں اور نہ دیا جائے تو ناراض ہو جائیں۔ (ت)

ارشادات حبیب صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم نے ان کے زعم میں ان کے ہوسات کو جگہ دی تو خوش ہیں

1 القرآن ۹/۳۱ 2 القرآن ۹/۵۸

Fatawa Razawiyya Volume 9

They claim to be great followers of Hadith, otherwise, they turn their backs on the hidden truths of Hadith. Now, even if you call out a million times 'Come to the Messenger' (Come to the Messenger - T), who listens? What a remarkable thing that they left everyone and held onto those in whose words they practiced 'leave the muddy' (leave what is unclear - T). Even more surprising is that their own writings leave no room for reason, wisdom, or justice to be considered, nor is there any distinction between probability and argumentation. Yes, let the seeker of truth and the one granted divine guidance come this way through justice and abandoning prejudice, for by the help of Allah Almighty, they will find oceans of lifting the veil, dispelling agitation, refining the answer, and clarifying the correct path waving here.

I say: By the power of Allah Almighty, before the principles of stating the answers, [here are] useful introductory arguments as a preamble, and success is from Allah, the All-Mighty, the All-Praiseworthy:

First Premise: It was proven in previous chapters that according to the Ahl al-Sunnah, there is no annihilation for the soul; the belief that souls die with death is a doctrine of the deviant. Books of creed such as Maqasid, Mawaqif, and Tawali', and their commentaries among others, are full of explicit statements on this. This issue, rather the fact that the soul itself is something other than the body, although considered by some people among theoretical matters—which caused the great Imam Fakhr al-Din al-Razi in Tafsir Kabir under the noble verse "They ask you about the soul"[1] to establish seventeen "overwhelming arguments"—yet the Quran and Hadith do not provide such clear, decisive texts whose number can be counted. And now, by the grace of Allah Almighty, these matters are among the self-evident truths for the people of Islam. Everyone knows about the departure of life, even though an ignorant person only knows that "departure of life" means leaving the body. Simultaneously, through Fatiha, charity, and the conveyance of rewards for good deeds and alms, he shows that he believes the soul remains and persists. Thus, death is truly an attribute of the body, not a description of the soul. Therefore, the prominent Mufti Abu al-Saud Muhammad stated in his commentary Irshad al-Aql al-Salim under the verse "Nay, they are alive with their Lord" (Nay, they are alive with their Lord - T):

In it is proof that the human soul is a subtle body that does not perish with	In this is proof that the human soul is a subtle body which does not perish with the

the ruin of the physical body, and its perception, pain, and pleasure do not depend on it [the body][2].	destruction of the body, and its perception and experiencing of pleasure and pain are not dependent on the body. (T)

Note: A summary of some of these arguments follows, by which the death of the body and the life of the soul are also proven. 12 [dated signature] (M)

---

[1] Al-Quran 17/85 [2] Irshad al-Aql al-Salim under the mentioned verse, Dar Ihya al-Turath al-Arabi, Beirut, 2/112

वे हदीस के बड़े अनुयायी होने का दावा करते हैं, अन्यथा हदीस की गोपनीयता से मुँह मोड़ लेते हैं। अब चाहे लाख बार पुकारें 'तआलौ इलल रसूल' (रसूल की ओर आओ - त), कौन सुनता है? क्या खूबी है कि सबको छोड़कर जिनका दामन पकड़ा, उनके वचनों में भी 'दअ मा कदर' (गदले को छोड़ दो - त) पर अमल रहा। और भी ताज्जुब की बात यह है कि स्वयं उनके लेखों में बुद्धि, समझ और न्याय को विचार करने की अनुमति नहीं दी गई, न ही संभावना और तर्क में अंतर किया गया। हाँ, सत्य का खोजी और सौभाग्यशाली व्यक्ति न्याय और पक्षपात त्याग कर इधर आए कि अल्लाह तआला की सहायता से पर्दा उठने, बेचैनी दूर होने, उत्तर के शोध और सही मार्ग के स्पष्टीकरण की नदियाँ यहाँ लहरें मारती मिलेंगी।

मैं कहता हूँ: अल्लाह तआला की शक्ति से, उत्तर देने के सिद्धांतों से पहले, प्रस्तावना के रूप में उपयोगी प्रमाण पेश हैं, और सफलता अल्लाह की ओर से है, जो अत्यंत शक्तिशाली और सराहनीय है:

पहली प्रस्तावना: पिछले अध्यायों में यह सिद्ध हो चुका है कि अहले सुन्नत के निकट आत्मा के लिए विनाश नहीं है, मृत्यु के साथ आत्माओं का मर जाना गुमराहों का कथन है। अकीदे की पुस्तकें जैसे 'मकासिद', 'मवाकिफ' और 'तवालि' और उनकी व्याख्याएँ आदि इसके स्पष्ट वर्णनों से भरी पड़ी हैं। यह मसला, बल्कि स्वयं आत्मा का शरीर के अतिरिक्त एक वस्तु होना ही, यद्यपि कुछ लोगों की दृष्टि में सैद्धांतिक मामलों में से था, जिसके कारण महान इमाम फखरुद्दीन राजी को 'तफसीर कबीर' में आयत 'वे आपसे रूह के बारे में पूछते हैं'[1] के अंतर्गत सत्रह 'हुज्जते काहिरा' (प्रभावी तर्क) स्थापित करने पड़े, परंतु कुरान और हदीस इतने स्पष्ट और निर्णायक प्रमाण प्रदान नहीं करते जिनकी गिनती की जा सके। और अब अल्लाह तआला की कृपा से ये बातें इस्लाम के लोगों में स्वतः सिद्ध तथ्यों में से हैं। जान का जाना हर कोई जानता है, लेकिन एक अज्ञानी केवल शरीर से निकल जाने को जान का जाना समझता है। साथ ही फातिहा, खैरात और नेक कार्यों व दान का सवाब पहुँचाने से वह बता देता है कि वह रूह को बाकी और बरकरार मानता है। अतः मृत्यु वास्तव में शरीर का गुण है, न कि रूह का वर्णन। इसलिए अल्लामा वजूद मुफ्ती अबू अल-सऊद मुहम्मद ने 'तफसीरात इरशाद अल-अक्ल अल-सलीम' में अल्लाह के इस कथन 'बल्कि वे अपने रब के पास जीवित हैं' (बल्कि वे अपने रब के पास जीवित हैं - त) के अंतर्गत फरमाया:

इसमें इस बात का प्रमाण है कि मनुष्य की आत्मा एक सूक्ष्म शरीर है जो शरीर के विनाश के साथ नष्ट नहीं होती और उसकी समझ, और दर्द व आनंद का अनुभव शरीर पर निर्भर नहीं है[2]।

इसमें इस बात की दलील है कि इंसान की रूह एक जिस्म-ए-लतीफ (सूक्ष्म शरीर) है जो बदन के हलाक होने से फना नहीं होती और उसका इदराक (समझ) और लज्जत-ओ-अल्म (आनंद और दुख) पाना बदन पर मौकूफ (निर्भर) नहीं। (त)

नोट: इनमें से कुछ दलीलों का सारांश करीब आता है जिनसे बदन की मौत और रूह की जिंदगी भी साबित होती है। १२मिन्हु (म)

---

१ अल-कुरान १७/८५ २ इरशाद अल-अक्ल अल-सलीम उपर्युक्त आयत के अंतर्गत, दार इहया अल-तुराथ अल-अरबी बेरूत, ११२/२

بڑے متبع حدیث ہیں، ورنہ خفاء حدیث کی طرف سے رو در قفا۔ اب لاکھ پکاریئے تعالوا الی الرسول (رسول کی طرف آؤ۔ ت) کون سنتا ہے۔ کسے قبول خوبی یہ کہ سب کو چھوڑ کر جن کا دامن پکڑا ان کے کلمات میں بھی دع ماکدر (گدلے کو چھوڑ دو۔ ت) پر عمل رہا۔ طرفہ تر یہ کہ خود ان کی عبارتوں میں عقل و دانش و انصاف کو غور و نظر کی رخصت نہ دی، نہ احتمال واستدلال میں تمیز کی، ہاں طالب تحقیق وصاحب توفیق براہ انصاف و ترک احتساب ادھر آئے کہ بعونہ تعالٰی رفع حجاب و دفع اضطراب و تنقیح جواب و توضیح صواب کے دریا لہراتے پائے۔

فأقول: وبحول اللہ تعالی اصول تقریر جوابات سے پہلے مقدمات مفید دلائل تمہید والتوفیق من اللہ العزیز الحمید:

مقدمہ اولٰی: فصول سابقہ میں ثابت ہوا کہ اہلسنت کے نزدیک روح کے لیے فنا نہیں، موت سے روحوں کا مر جانا بد مذہبوں کا قول ہے۔ کتب عقائد مثل مقاصد و مواقف و طوالع، اور ان کی شروح غیرہا اس کی تصریحات سے مالا مال ہیں، یہ مسئلہ بلکہ خود روح جسم کے علاوہ ایک شئی ہونا ہی اگر چہ بنظر بعض الناس منجملہ نظریات تھا جس کے سبب امام اجل فخر الدین رازی کو تفسیر کبیر میں زیر کریمہ یَسْأَلُونَكَ عَنِ الرُّوحِ[1] اس پر سترہ "حج قاہرہ" کا قائم کرنا پڑا مگر قرآن و حدیث پر اتنے نصوص واضحہ قاطعہ عطا نہیں فرماتے جن کا حصر و شمار ہو سکے اور اب تو بحمد اللہ تعالٰی یہ باتیں اہل اسلام میں بدیہیات سے ہیں جان کا جانا ہر ایک جانتا ہے مگر انجان جان کا جانا جسم سے نکلنا ضرور جانتا ہے اور ساتھ ہی فاتحہ وخیرات و ایصال ثواب حسنات و صدقات سے بتا دیتا ہے کہ وہ روح کو باقی و برقرار مانتا ہے تو موت حقیقتاً صفت بدن

ہے نہ کہ وصف روح و لہٰذا علامہ الوجود مفتی ابوالسعود محمد نے تفسیرات ارشاد العقل السلیم میں زیر قول تعالیٰ بل احیاء عندر بھم (بلکہ وہ اپنے رب کے یہاں زندہ ہیں۔ ت) فرمایا:

فیہ دلالۃ علی ان روح الانسان جسم لطیف لایفنی بخراب البدن ولا یتوقف علیہ ادراکہ و تالمہ و التذاذہ[2]۔

اس میں اس بات کی دلیل ہے کہ انسان کی روح ایک جسم لطیف ہے جو بدن کے ہلاک ہونے سے فنا نہیں ہوتی اور اس کا ادراک اور لذت والم پانا بدن پر موقوف نہیں۔ (ت)

عہ: ان میں بعض دلائل کا خلاصہ قریب آتا ہے جن سے موت بدن حیات روح بھی ثابت ۱۲منہ (م)

---

1 القرآن ۸۵/۱۷ 2 ارشاد العقل السلیم تحت آیۃ مذکورہ دار احیاء التراث العربی بیروت ۱۱۲/۲

Fatawa Ridawiyya Volume Nine

Nevertheless, metaphorically, it is also applied to the soul that has departed from the body. It is stated in the Hadith:

[Arabic Text]: O Allah, Lord of the perishing souls and the decaying bodies... [Hadith]. According to Ibn al-Sunni, narrated from Ibn Mas'ud (may Allah be pleased with him), he said: When the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) entered the graveyard, he would say: "Peace be upon you, O perishing souls, and decaying bodies, and crumbling bones that left the world while believing in Allah. O Allah, send upon them a spirit from You and peace from us."

[Urdu Translation]: O Allah, Lord of the perishing souls and decaying bodies. According to the narration of Hazrat Ibn Mas'ud (may Allah be pleased with him) in Ibn al-Sunni, the words are: He says: When the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) entered the graveyard, he would say: Peace be upon you, O perishing souls, decaying bodies, and rotted bones! Which left the world with faith in God. O Allah! Send comfort from Your side and greetings from our side to them. (T)

Allama Azizi says under this Hadith in 'Siraj al-Munir': "(The perishing souls) means those whose bodies are perishing." (Perishing souls means those whose bodies are perishable. - T). Allama Zayn al-Abidin Munawi says in 'al-Taysir': "Meaning the souls whose bodies are perishing, otherwise souls do not perish." (Meaning those souls whose bodies are perishable, otherwise souls are not destroyed. - T). Allama Hafni says in the footnote of 'Jami' al-Saghir':

[Arabic Text]: His saying 'al-faniya' (the perishing) means those whose bodies are perishing because souls do not end, and for this reason, he followed it with an explanatory sentence, meaning 'and the decaying bodies,' i.e., in those other than the likes of martyrs.

[Urdu Translation]: This saying "al-faniya" means those souls whose bodies are perishing because souls do not perish, which is why the explanatory sentence was brought afterward. My meaning is, Al-Abdan al-Baliya (decaying bodies) means bodies other than martyrs are decayed. (T)

---

1. Tanzih al-Shari'ah al-Marfu'ah, Kitab al-Dhikr wal-Du'a, Chapter 3, Dar al-Kutub al-Ilmiyyah, Beirut, 328/2

2. Kitab 'Amal al-Yawm wal-Laylah, Chapter: What to say when going out to the graves, Hadith 593, Nur Muhammad Asah al-Matabi', Karachi, p. 198
3. Al-Siraj al-Munir Sharh al-Jami' al-Saghir, under the mentioned Hadith, Matba'ah Azhariyya Misriyya, Egypt, 125/3
4. Al-Taysir Sharh al-Jami' al-Saghir, under the mentioned Hadith, Maktabah al-Imam al-Shafi'i, Riyadh, Saudi Arabia, 228/2
5. Hawashi al-Hafni on the margin of Al-Siraj al-Munir Sharh al-Jami' al-Saghir, Matba'ah Azhariyya Misriyya, Egypt, 125/3

फिर भी मजाज़न (प्रतीकात्मक रूप से) जिस्म से जुदा रूह पर भी इसका इल्तिलाक़ (प्रयोग) होता है। हदीस में है:

[अरबी पाठ]: ऐ अल्लाह, फ़ानी (नष्ट होने वाली) रूहों और बोसीदा (सड़ते हुए) जिस्मों के रब... [हदीस]। इब्न अल-सुन्नी के यहाँ हज़रत इब्न मसऊद (रज़ियल्लाहु अन्हु) की रिवायत से है, वह फरमाते हैं: रसूलुल्लाह (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) जब कब्रिस्तान में दाखिल होते तो फरमाते: "तुम पर सलाम हो ऐ फ़ानी रूहों और बोसीदा जिस्मों और गली हुई हड्डियों! जो दुनिया से ख़ुदा पर ईमान के साथ निकले। ऐ अल्लाह! इन पर अपनी जानिब से राहत और हमारी तरफ से सलाम पहुँचा।"

[उर्दू अनुवाद]: ऐ अल्लाह फ़ानी रूहों और बोसीदा जिस्मों के रब, अल-हदीस। इब्न अल-सुन्नी के यहाँ हज़रत इब्न मसऊद रज़ियल्लाहु तआला अन्हु की रिवायत से। इसके अल्फाज़ ये हैं, वह फरमाते हैं: रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम जब कब्रिस्तान में दाखिल होते तो फरमाते: तुम पर सलाम हो ऐ फ़ानी रूहों और बोसीदा जिस्मों और गली हुई हड्डियों! जो दुनिया से खुदा पर ईमान के साथ निकले। ऐ अल्लाह! इन पर अपनी जानिब से आसाइश और हमारी तरफ से सलाम पहुँचा। (त)

अल्लामा अज़ीज़ी इस हदीस के नीचे 'सिराजुल मुनीर' में फरमाते हैं: "(फ़ानी रूहें) यानी जिनके जिस्म फ़ानी हैं।" (फ़ानी रूहों का मतलब यह है कि जिनके जिस्म फ़ानी हैं। - त) अल्लामा ज़ैनुल आबेदीन मनावी 'तयसीर' में फरमाते हैं: "यानी वो रूहें जिनके जिस्म फ़ानी हैं, वरना रूहें तो फ़ना नहीं होतीं।" (यानी वो रूहें जिनके जिस्म फ़ानी हैं वरना रूहें तो फ़ना नहीं होतीं। - त) अल्लामा हफ़नी 'हाशिया जामे सगीर' में फरमाते हैं:

[अरबी पाठ]: उनका कहना 'फ़ानिया' यानी वे जिनकी रूहों के जिस्म फ़ानी हैं, क्योंकि रूहें फ़ना नहीं होतीं, इसलिए इसकी तफ़्सीर (व्याख्या) करने वाला जुमला बाद में लाए। मेरी मुराद 'अल-अबदान अल-बालिया' (बोसीदा जिस्म) यानी शहीदों के अलावा बाकी तमाम जिस्म बोसीदा हो जाते हैं।

[उर्दू अनुवाद]: इस कौल "फ़ानिया" यानी जिन रूहों के जिस्म फ़ानी हैं क्योंकि रूहें फ़ना नहीं होतीं इसलिए इसकी तफ़्सीर करने वाला जुमला बाद में लाए। मेरी मुराद, अल-अबदान अल-बालिया (बोसीदा जिस्म) यानी शहीदों के अलावा तमाम जिस्म बोसीदा हैं (त)

1. तन्ज़ीह-उश-शरीअह अल-मरफ़ूआ, किताबुज़-ज़िक्र वद-दुआ, फ़स्ल सालिस, दारुल-कुतुबुल-इलमिया, बेरूत, 328/2
2. किताब अमलुल-यौम वल-लैला, बाब मा यक़ूलु इज़ा खरजा इलल-मक़ाबिर, हदीस 593, नूर मोहम्मद असहुल-मतबे, कराची, पृ. 198
3. अल-सिराजुल मुनीर शरह अल-जामे-उस-सगीर, तहत हदीस मज़कूरा, मतबआ अज़हरिया मिस्रिया, मिस्र, 125/3
4. अल-तयसीर शरह अल-जामे-उस-सगीर, तहत हदीस मज़कूरा, मकतबा अल-इमाम अल-शाफई, रियाद, सऊदी अरब, 228/2
5. हवाशी अल-हफ़नी अला हामिश अल-सिराजुल मुनीर शरह अल-जामे-उस-सगीर, मतबआ अज़हरिया मिस्रिया, मिस्र, 125/3

فتاوی رضویہ جلد نہم

پھر بھی مجازاً روح مفارق عن البدن پر بھی اس کا اطلاق آتا ہے۔ حدیث میں ہے: اللھم رب الارواح الفانیۃ والاجساد البالیۃ ۱ الحدیث و لفظہ عند ابن السنی عن ابن مسعود رضی اللہ تعالٰی عنہ قال کان رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم اذا دخل الجبانۃ، یقول السلام علیکم ایتھا الارواح الفانیۃ، والابدان البالیۃ والعظام النخرۃ التی خرجت من الدنیا وھی باللہ المؤمنۃ اللھم ادخل علیھم روحا منك وسلاما منا ۲۔

اے اللہ فانی ارواح اور بوسیدہ اجسام کے رب، الحدیث۔ ابن السنی کے یہاں حضرت ابن مسعود رضی اللہ تعالٰی عنہ کی روایت سے۔ اس کے الفاظ یہ ہیں، وہ فرماتے ہیں : رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم جب قبرستان میں داخل ہوتے تو فرماتے: تم پر سلام ہو اے فانی ارواح اور بوسیدہ اجسام اور گلی ہوئی ہڈیو! جو دنیا سے خدا پر ایمان کے ساتھ نکلے۔ اے اللہ! ان پر اپنی جانب سے آسائش اور ہماری طرف سے سلام پہنچا۔ (ت)

علامہ عزیزی اس حدیث کے نیچے سراج المنیر میں فرماتے ہیں: (الارواح الفانیۃ) ای الفسانی اجسادھا ۳۔ (ارواح فانی کا مطلب یہ ہے کہ جن کے جسم فانی ہیں۔ ت) علامہ زین العابدین مناوی تیسر میں فرماتے ہیں: یعنی الارواح التی اجسادھا فانیۃ ولا فالارواح لا تفنی ۴ (یعنی وہ ارواح جن کے جسم فانی ہیں ورنہ ارواح تو فنا نہیں ہوتیں۔ ت) علامہ حفنی حاشیہ جامع صغیر میں فرماتے ہیں: قولہ الفانیۃ ای الفانیۃ اجسادھا اذا الارواح لا تقضی ولذا اتی بالجملۃ بعدھا مفسرۃ لذالك اعنی والابدان البالیۃ ای فی غیر نحو الشھداء ۵

اس قول "الفانیۃ" یعنی جن روحوں کے جسم فانی ہیں کیونکہ روحیں فنا نہیں ہوتی اس لیے اس کی تفسیر کرنیوالا جملہ بعد میں لائے۔ میری مراد، الابدان البالیہ (بوسیدہ اجسام) یعنی شہداء کے ماسوا اجسام بوسیدہ ہیں (ت)

---

1 تنزیہہ الشریعہ المرفوعہ کتاب الذکر والدعاء فصل ثالث دار الکتب العلمیہ بیروت ۳۲۸/۲ 2 کتاب عمل الیوم واللیلۃ باب ما یقول اذا خرج الی المقابر حدیث ۵۹۳ نور محمد اصح المطابع کراچی ص ۱۹۸ 3 السراج المنیر شرح الجامع الصغیر تحت حدیث مذکورہ مطبعہ ازہریۃ مصریہ مصر ۱۲۵/۳ 4 التیسیر شرح الجامع الصغیر تحت حدیث مذکورہ مکتبہ الامام الشافعی الریاض السعودیہ ۲۴۸/۲ 5 حواشی الحفنی علی ہامش السراج المنیر شرح الجامع الصغیر مطبعہ ازہریۃ مصریہ مصر ۱۲۵/۳

Fatawa Razawiyya - Volume Nine

The summary of all these statements is that the application of 'perishing' to the soul occurred with respect to the body, meaning, "O souls! whose bodies have perished, peace be upon you." Otherwise, for the soul itself, there is no perishing at all. Therefore, in the second sentence, it was explained that 'decayed bodies' refers to common people, because the bodies of martyrs and those like them among the elites remain intact. After this, it is stated in both *Taysir* and *Al-Siraj al-Munir*:

Fihi annal amwata yasma'una idh la yukhatabu illa man yasma'[1]	That is, it is also proven from this Hadith that the dead hear because an address is made only to one who hears.

Look again at the first category of Hadiths of the first objective; they simultaneously convey these points: that the term 'deceased' (mayyit) applies to both the body and the soul, and at the same time, they tell us that the reality of death is for the body, while the soul is pure and free from it. For example, in the fifth Hadith, it was stated that the person who washes, shrouds, carries, and buries the deceased, the deceased recognizes him. But it is clear that these actions occur on the body, not on the soul, and recognizing is the function of the soul. And when it remains upon its perception, how can it be called death! In sleep, which is the younger sister of death, recognition does not remain; how then can it remain in death? Similarly, Hadith 6 and 7, and Hadiths 10 to 15, etc., all lead to these set of points simultaneously, as is not hidden. Inevitably, Shah Abdul Aziz Sahib stated in *Tafsir-e-Azizi*:

Mawt bi-ma'ni 'adam-e-hiss-o-harakat wa 'adam-e-idrak-o-shu'ur jasad ra ruy dahad ruh ra aslan taghayyur nami shawad chunanche hamil-e-quwa bud hala ham hast wa shu'ure wa idrake ki dasht hala ham darad balki saf tar wa raushan tar pas arwah ra mutlaqan khwah ruh-e-shahid bashad ya ruh-e-'aamma-e-mu'minin ya ruh-e-kafir-o-fasiq ba-in ma'ni murdah natwan guft, murdagi sifat-e-badan ast ki shu'ur wa idrak wa harakat wa tasarrufat ki sabab-e-ta'alluq-e-ruh ba-way az way	This meaning of death—that sensation and movement cease and perception and consciousness are lost—pertains only to the body. And there is absolutely no change in the soul; it is as powerful as it was before. The consciousness and perception it had before, it still has; rather, it is now clearer and brighter. So, in this sense, the soul cannot be called dead, whether it be the soul of a martyr, a general believer, or a disbeliever and sinner. Death is a quality of the body, meaning that the consciousness, perception, movements, and actions that were manifested through the

zahir mi shudand hala nami shawand aari ruh ra ba-do ma'ni mawt lahiq mi shawad awwal anka az mufaraqat-e-badan	body due to the soul's connection to it, no longer occur. Yes, death applies to the soul in two senses: first, due to its separation from the body...

[1] *Al-Siraj al-Munir Sharh al-Jami' al-Saghir* under the mentioned verse, Al-Azhariya Egyptian Press, Egypt, 3/125. Page 847 of 948

फ़तावा रज़विया - जिल्द नहम (नौ)

इन सब कथनों का सारांश यह है कि आत्मा पर 'नाशवान' होने का प्रयोग शरीर के सन्दर्भ में हुआ है, अर्थात हे वे आत्माएं जिनके शरीर नष्ट हो गए, तुम पर शांति हो। अन्यथा स्वयं आत्मा के लिए कभी विनाश नहीं है। इसीलिए दूसरे वाक्य में इसकी व्याख्या कर दी गई कि 'गले हुए शरीर' यानी आम लोगों के लिए, क्योंकि शहीदों और उनके जैसे विशिष्ट लोगों के शरीर सुरक्षित रहते हैं। इसके बाद 'तयसीर' और 'सिराजुल मुनीर' दोनों में है:

फीही अन्नल अमवाता यस्मऊना इज़ ला युख़ातबु इल्ला मन यस्म'[1]	यानी इस हदीस से यह भी सिद्ध होता है कि मृत सुनते हैं क्योंकि संबोधन केवल उसी को किया जाता है जो सुनता हो।

प्रथम उद्देश्य की प्रथम श्रेणी की हदीसों पर फिर से नज़र डालें तो वे एक साथ इन उद्देश्यों को पूरा कर रही हैं कि 'मैय्यत' (मृत) शब्द का प्रयोग शरीर और आत्मा दोनों पर होता है और साथ ही यह भी बताती हैं कि मृत्यु की वास्तविकता शरीर के लिए है, आत्मा उससे मुक्त और पवित्र है। उदाहरण के लिए, पाँचवीं हदीस में कहा गया कि जो व्यक्ति मृत को नहलाता, कफ़न पहनाता, उठाता और दफ़नाता है, मृत उसे पहचानता है। पर स्पष्ट है कि ये क्रियाएँ शरीर पर घटित होती हैं न कि आत्मा पर, और पहचानना आत्मा का कार्य है। और जब वह अपनी चेतना पर शेष है, तो उसे मृत्यु कैसे कहा गया! मृत्यु की छोटी बहन नींद में तो पहचान नहीं रहती, फिर मृत्यु में कैसे रहती है? इसी प्रकार हदीस ६ व ७ और हदीस १० से १५ आदि सभी इसी तरह इन उद्देश्यों की एक साथ पुष्टि करती हैं जैसा कि गुप्त नहीं है। अनिवार्य रूप से शाह अब्दुल अज़ीज़ साहब ने 'तफ़्सीर-ए-अज़ीज़ी' में फ़रमाया:

मौत ब-मानी अदम-ए-हिस्स-ओ-हरकत व अदम-ए-इदराक-ओ-शुऊर जसद रा रुय दहद रूह रा अस्लन तग़य्युर नमी शवद चुनांचे हामिल-ए-क़ुवा बुद हाला हम हस्त व शुऊरे व इदराके कि दाश्त हाला हम दारद बल्कि साफ़ तर व रौशन तर पस अरवाह रा मुतलक़न ख़्वाह रूह-ए-शहीद बाशद या रूह-ए-आम्मा-ए-मोमिनीन या रूह-ए-काफ़िर-ओ-फ़ासिक बा-ईं	मृत्यु का यह अर्थ कि संवेदन और गति समाप्त हो जाए और चेतना व समझ लुप्त हो जाए, केवल शरीर के लिए होता है। और आत्मा में बिल्कुल कोई परिवर्तन नहीं होता, वह जैसे पहले शक्तिशाली थी अब भी है। पहले जो चेतना और समझ उसके पास थी वह अब भी है बल्कि अब अधिक स्पष्ट और उज्ज्वल है। तो इस अर्थ में आत्मा को मृत नहीं कहा जा सकता, चाहे वह शहीद की

मानी मुर्दा नतवाँ गुफ़्त, मुर्दगी सिफ़त-ए-बदन अस्त कि शुऊर व इदराक व हरकात व तसर्रुफ़ात कि सबब-ए-ताल्लुक़-ए-रूह बा-वय अज़ वय ज़ाहिर मी शुदन्द हाला नमी शवन्द आरी रूह रा बा-दो मानी मौत लाहिक़ मी शवद अव्वल आंका अज़ मुफ़ारक़त-ए-बदन

आत्मा हो या सामान्य आस्तिक की या काफ़िर और पापी की। मृत्यु शरीर का गुण है कि आत्मा के जुड़ाव के कारण जो चेतना, समझ और शारीरिक क्रियाएं उससे प्रकट होती थीं, वे अब बंद हो गई हैं। हाँ, आत्मा पर मृत्यु दो अर्थों में आती है: पहला यह कि शरीर से अलग होने के कारण...

[1] अल-सिराजुल मुनीर शरह अल-जामी अस-सगीर, वर्णित आयत के अंतर्गत, मतबुआ अज़हरिया मिस्रिया, मिस्र ३/१२५। पेज ८४७ / ९४८

ان سب عبارات کا محصل یہ کہ روح پر اطلاق فانی باعتبار جسم واقع ہوا یعنی اے وہ روحو! جن کے بدن فنا ہو گئے تم پر سلام ہو۔ ورنہ خود روح کے لیے ہرگز فنا نہیں۔ و لہذا دوسرے فقرے میں اس کی تفسیر فرمادی کہ گلے ہوئے بدن یعنی عام لوگوں کے لیے کہ شہداء اور ان کے مثل خواص کے جسم پر بھی سلامت رہتے ہیں، اس کے بعد تیسیر وسراج المنیر دونوں میں ہے:

فیہ ان الاموات یسمعون اذ لا یخاطب الا من یسمع[1]۔ یعنی اس حدیث سے یہ بھی ثابت ہو کہ مردے سنتے ہیں کیونکہ خطاب اس سے کیا جاتا ہے جو سنتا ہو۔

احادیث نوع اول مقصد اول پر نظر تازہ کیجئے تو وہ ایک ساتھ ان کو مطالب کو ادا کر رہی ہیں کہ بدن وروح دونوں پر میت کا اطلاق ہوتا ہے اور ساتھ ہی یہ بھی بتاتی ہیں کہ حقیقت موت بدن کے لیے ہے روح اس سے پاک و مبرا ہے مثلاً حدیث پنجم میں ارشاد ہوا کہ جو شخص مردے کو نہلاتا کفناتا اٹھاتا دفناتا ہے مردہ اسے پہچانتا ہے پر ظاہر کہ یہ افعال بدن پر وارد ہیں نہ کہ روح پر، اور پہچاننا کام روح کا ہے۔ اور جب وہ اپنے ادراک پر باقی ہے تو اسے موت کہا! موت کی چھوٹی بہن نیند میں تو پہچان رہتی نہیں، موت میں کیونکر رہتی یو نہی حدیث ۶ و ۷ و احادیث ۱۰ تا ۱۵ وغیرہ سب اسی طرح ان جملہ مطالب کی معاً مودی ہیں کما لا یخفی (جیسا کہ مخفی نہیں۔ ت)

لاجرم شاہ عبدالعزیز صاحب نے تفسیر عزیزی میں فرمایا:

موت بمعنی عدم حس و حرکت و عدم ادراک و شعور جسد را روی دہد روح را اصلاً تغیر نمی شود چنانچہ حامل قوی بود حالا ہم ہست و موت کا یہ معنی کہ حس و حرکت ختم ہو جائے اور ادراک و شعور مفقود ہو جائے۔ صرف جسم کے لیے ہوتا ہے۔ اور روح میں بالکل کوئی تغیر

شعورے و ادراکی کہ داشت حالا ہم دارد بلکہ صاف تر و روشن تر پس ارواح را مطلقاً خواہ روح شہید باشد یا روح عامہ مومنین یا روح کافر و فاسق بایں معنی مردہ نتواں گفت، مردگی صفت بدن است کہ شعور و ادراک و حرکات و تصرفات کہ سبب تعلق روح باوی ازوی ظاہر می شدند حالانہی شوند آری روح را بدو معنی موت لاحق می شود اول آنکہ از مفارقت بدن

نہیں ہوتا، وہ جیسے پہلے حامل قوی تھی اب بھی ہے۔ پہلے جو شعور و ادراک اسکے پاس تھا وہ اب بھی ہے بلکہ اب زیادہ صاف اور روشن ہے۔ تو اس معنی کرکے روح کو مردہ نہیں کہہ سکتے، مطلقاً خواہ شہید کی روح ہو یا عام مومن کی روح یا کافر فاسق کی روح موت بدن کی صفت ہے کہ روح کے تعقل کی وجہ سے جو شعور و ادراک اور حرکات تصرفات بدن سے

[1] السراج المنیر شرح الجامع الصغیر تحت آیہ مذکورہ مطبعۃ ازہریہ مصریہ مصر ۱۲۵/۳ صفحہ ۸۴۷ از ۹۴۸

Volume 9 Fatawa Razvia

[Persian original text]: ...they stop progressing. Second, some pleasures like eating and drinking are lost to them; therefore, in Shariah also, the ruling of death is applied to them. However, in these matters, for the martyrs in the path of Allah, in reality, even these two meanings do not apply; rather, they are alive, always progressing, and physical pleasures are also not ceased for them. End of short summary.

[Urdu translation]: ...used to appear, do not appear now. Yes, the soul undergoes death in two senses. One is that after being separated from the body, its progress stops; the second is that pleasures like eating and drinking go out of its possession. That is why sometimes in Shariah, the ruling of death is given for it too, but only in those regards. However, for those martyred in the path of Allah, in reality, even these two meanings do not exist; instead, these personages are alive, and their progress continues forever. And physical pleasures are also not suspended for them, etc. (T)

It is also in the same [book]:

[Persian original text]: No matter how much a person is caught in hardships and calamities, the human soul is protected by Divine protection. Its breaking, splitting, or perishing is impossible. Hence, it is narrated in the Hadith: "You have been created for eternity." This means the human soul, which in reality defines a human being, is eternal. It is never perishable. And what is famous in common parlance that death destroys the soul is purely metaphorical. The ultimate point of death is that the soul separates from the body; the body falls apart due to the absence of its nurturer and protector, otherwise, perishing is not imaginable for the soul. The proof of the knowledge of Barzakh and the time/place of resurrection is based on this very issue. Etc.

[Urdu translation]: No matter how much a person is caught in hardships and calamities, their soul is safe due to God's protection. Its breaking or perishing is impossible. Therefore, it is mentioned in the Hadith: "You have been created for eternity." This means your life and soul, which in reality is what constitutes a human, is eternal and everlasting. It will never perish. And that which is commonly famous that death destroys the life/soul is merely metaphorical. The maximum effect of death is that the soul separates from the body, and the body, due to losing its nurturer and protector, ends up scattered. Otherwise, perishing is not conceivable for the soul. The foundation of the realm of Barzakh and the possibility of Resurrection and Gathering is on this very issue. Etc. (T)

In short, death in the true sense, which happens to the body, is such a thing that whoever it afflicts, they become useless and idle...

1. Tafsir-e-Azizi, Para "Sayaqul", under the verse "Wala Taqulu Liman Yuqtalu...", Muslim Book Depot, Lal Kuan, Delhi, p. 559.
2. Tafsir-e-Azizi, Para "Amma", Surah Al-Tariq, under the verse "Wala Taqulu Liman Yuqtalu...", Muslim Book Depot, Lal Kuan, Delhi, p. 226.

जिल्द नहम (खंड 9) फ़तावा रज़विया

[फारसी मूल पाठ]: ...वे प्रगति करना बंद कर देते हैं। दूसरा, कुछ सुख जैसे खाना-पीना उनके हाथ से निकल जाते हैं, इसलिए शरीयत में भी उनके लिए मृत्यु का हुक्म दिया जाता है। लेकिन इन मामलों में, अल्लाह की राह में शहीदों के लिए वास्तव में ये दो अर्थ भी लागू नहीं होते; बल्कि वे जीवित हैं, हमेशा प्रगति कर रहे हैं, और शारीरिक सुख भी उनसे बंद नहीं हुए हैं। संक्षिप्त सारांश समाप्त।

[उर्दू अनुवाद]: ...ज़ाहिर होते थे अब नहीं होते। हाँ, रूह को दो मायनों में मौत लाहिक (प्राप्त) होती है। एक यह कि बदन से जुदा हो जाने के बाद उसकी तरक्की रुक जाती है, दूसरे यह कि खाने-पीने जैसी लज्जतें (सुख) उसके कब्ज़े से निकल जाती हैं। इसीलिए कभी शरीयत में इसके लिए भी मौत का हुक्म देते हैं लेकिन वह भी सिर्फ उन बातों में। मगर ख़ुदा की राह में शहीद होने वालों के लिए हकीकत में ये दोनों मायने भी नहीं बल्कि ये हज़रात ज़िंदा हैं और उनकी तरक्की हमेशा जारी है। और जिस्मानी लज्जतें भी उनसे मौकूफ (निलंबित) नहीं वग़ैरह। (त)

इसी में है:

[फारसी मूल पाठ]: आदमी चाहे कितनी भी कठिनाइयों और मुसीबतों में फँसा हो, मानव आत्मा ईश्वरीय सुरक्षा द्वारा सुरक्षित है। उसका टूटना, फूटना या नष्ट होना असंभव है। इसलिए हदीस शरीफ में आया है: "तुम हमेशा के लिए पैदा किए गए हो।" यानी मानव आत्मा, जो वास्तव में मनुष्य को परिभाषित करती है, शाश्वत है। यह कभी नष्ट होने वाली नहीं है। और जो आम बोलचाल में प्रसिद्ध है कि मौत जान को हलाक (नष्ट) कर देती है, वह केवल औपचारिक (मज़ाज़) है। मौत का अंतिम बिंदु यह है कि जान बदन से जुदा हो जाए; बदन अपने पालने वाले और रक्षक के न होने के कारण बिखर जाता है, अन्यथा जान के लिए फ़ना (नाश) की कल्पना नहीं की जा सकती। बर्ज़ख का ज्ञान और हश्र-ओ-नश्र (पुनरुत्थान) की संभावना का प्रमाण इसी मसले पर आधारित है। वग़ैरह।

[उर्दू अनुवाद]: आदमी जिस क़दर भी सख़्तियों और मुसीबतों में गिरफ़्तार हो मगर उसकी रूह ख़ुदा की हिफ़ाज़त के बाइस महफूज़ है, उसका टूटना-फूटना और फ़ना होना मुहाल है। इसलिए हदीस में आया है: "तुम हमेशा के लिए पैदा किए गए हो।" यानी तुम्हारी जान और रूह कि हक़ीक़त में इंसान इसी से इबारत है, अबदी और जावदानी है। वह कभी फ़ना नहीं होने वाली। और वह जो उरफ़ (लोक-प्रसिद्धि) में हमेशा मशहूर है कि मौत जान को हलाक कर देती है, महज़ मज़ाज़ (उपमा) है। मौत का ज़्यादा से ज़्यादा असर यह है कि जान बदन से जुदा होती है और बदन अपने मुरब्बी (पालने

वाले) और मुहाफ़िज़ (रक्षक) को खो देने की वजह से बिखर कर रह जाता है। वरना जान के लिए फ़ना मुतसव्वर (कल्पनीय) नहीं, आलम-ए-बर्ज़ख़ और इमकान-ए-हश्र-ओ-नश्र की बुनियाद इसी मसले पर है। वग़ैरह। (त)

अल-ग़र्ज़, मौत हक़ीक़ी मायनों में जो बदन ही पर तारी होती है, वही ऐसी चीज़ है कि जिसे लाहिक हो वह बेकार और बेकार हो जाए...

1. तफ़सीर-ए-अज़ीज़ी, पारा 'सयकुल', आयत 'वला तक़ूलू लिमन युक़्तलू...' के तहत, मुस्लिम बुक डिपो, लाल कुआँ, दिल्ली, पृष्ठ 559।
2. तफ़सीर-ए-अज़ीज़ी, पारा 'अम्म', सूरा अत-तारिक़, आयत 'वला तक़ूलू लिमन युक़्तलू...' के तहत, मुस्लिम बुक डिपो, लाल कुआँ, दिल्ली, पृष्ठ 226।

از ترقی باز می مانند۔ دوم بعضی تمتعات مثل اکل و شرب از دست می روند لہذا اور نیز در شرع حکم بموت می فرمائید اما دریں امور فقط اما شہیدان راہِ خدا را در حقیقت ایں دو معنی ہم نیست بلکہ ایشان زند گانند دائما در ترقی و تمتعات جسدانیہ نیز از ایشان موقوف نہ شدہ ۱ھ مختصراً۔ ظاہر ہوتے تھے اب نہیں ہوتے۔ ہاں روح کو دو معنی میں موت لاحق ہوتی ہے۔ ایک یہ کہ بدن سے جدا ہو جانے کے بعد اس کی ترقی رک جاتی ہے دوسرے یہ کہ کھانے پینے جیسی لذتیں اس کے قبضے سے نکل جاتی ہے۔ اس لیے کبھی شریعت میں اس کے لیے بھی موت کا حکم دیتے ہیں لیکن وہ بھی صرف ان باتوں میں۔ مگر خدا کی راہ میں شہید ہونے والوں کے لیے حقیقت میں یہ دونوں معنی بھی نہیں بلکہ یہ حضرات زندہ ہیں اور ان کی ترقی ہمیشہ جاری ہے۔ اور جسمانی لذتیں بھی ان سے موقوف نہیں الخ (ت)

اسی میں ہے :

جان آدمی ہر چند در شدائد و مصائب گرفتار شود بحفظ الہی محفوظ است شکستہ شدن وفنا پذیر فتن آں از محالات است و لہذا در حدیث شریف وارد است انما خلقتم لابد یعنی جان آدمی کہ در حقیقت ادمی عبارت از آنست ابدی است ہر گز فنا پذیر نیست، و آنچہ در عرف مشہور است کہ موت ہلاک جاں می کند محض مجاز است نہایت کاموت آن است کہ جان از بدن جدا شود بدن بسبب نا یافت مربی و محافظ از ہم باشد و الاجان را فنا متصور نیست و اثبات علم برزخ و مکان حشر و نشر مبنی بر ہمیں مسئلہ است ۲الخ۔ آدمی جس قدر بھی سختیوں اور مصیبتوں میں گرفتار ہو مگر اس کی روح خدا کی حفاظت کے باعث محفوظ ہے اس کا ٹوٹنا پھوٹنا اور فنا ہونا محال ہے۔ اس لیے حدیث

میں آیا ہے: تم ہمیشہ کے لیے پیدا کئے گئے ہو۔ یعنی تمہاری جان اور روح کہ حقیقت میں انسان اسی سے عبارت ہے ابدی اور جاودانی ہے۔ وہ کبھی فنا نہیں ہونے والی۔ اور وہ جو عرف میں ہمیشہ میں مشہور ہے کہ موت جان کا ہلاک کر دیتی ہے محض مجاز ہے۔ موت کا زیادہ سے زیادہ اثر یہ ہے کہ جان بدن سے جدا ہوتی ہے اور بدن اپنے مربی ہے و محافظ کو کھو دینے کی وجہ سے بکھر کر رہ جاتا ہے۔ ورنہ جان کے لئے فنا متصور نہیں ، عالمِ برزخ اور امکان حشر و نشر کی بنیاد اسی مسئلہ پر ہے۔ الخ (ت)

بالجملہ موت بہ معنی حقیقی کہ بدن ہی کو عارض ہوتی ہے وہی ایسی چیز ہے کہ جسے لاحق ہو مہمل و معطل و

۱ تفسیر عزیزی پارہ سیقول آیت ولا تقولوا لمن یقتل الخ مسلم بک ڈپو لال کنواں دہلی ص ۵۵۹ ۲ تفسیر عزیزی پارہ عم سورہ الطارق آیت ولا تقولوا لمن یقتل الخ مسلم بک ڈپو لال کنواں دہلی ص ۲۲۶

Fatawa Razawiya, Volume 9

...subject to corruption and joined with inanimate objects. Figurative death means that the soul is pure and free from all these calamities. Praise be to Allah, and the Exalted Proof. Second Introduction: A wise person knows that knowledge and perception are qualities of the pure soul, not the description of a handful of dust. Allah, the Mighty and Sublime, said:

| "The heart did not deny what it saw." (53:11) According to the preferred view, vision here refers to the sense of sight. | The heart did not deny what the eye saw. This means, based on the preferred view, that 'seeing' here refers to the sensory vision of the eyes. (T) |

It is stated in Tafsir al-Kabir:

| Indeed, the human being is a single entity, and that entity is the one tasked with divine obligations and lordly matters. It is characterized by hearing and seeing, while the body as a whole is not like that, nor is any individual limb of the body like that. Therefore, the soul is an entity distinct from the whole body and distinct from the parts of the body, and it is characterized by all these attributes. | A human being is a single entity. It is this entity that is tested with Sharia obligations and divine commands. It is the one characterized by hearing and seeing. The body as a whole does not possess this quality, nor does any single limb of the body possess this attribute. Thus, the soul is a thing distinct from the entire body and distinct from every part of the body. It is the one characterized by all these qualities. (T) |

After establishing the proof, it is written therein:

| From what we have mentioned, it is established that the human soul is a single entity. It is also established that this entity is the one that sees, hears, smells, tastes, touches, imagines, thinks, remembers, desires, and gets angry. It is characterized by all perceptions of all perceived things, and it is characterized by all... | It is established from what is mentioned here that the human soul is a single entity. And it is also established that it is this same entity that sees, hears, smells, tastes, touches, imagines, thinks, remembers, desires, and gets angry. It is characterized by all perceptions. |

1. Quran 53/11
2. Al-Masabih al-Munir, Book of Al-Ba, Dar al-Hijra Publications, Qom, Iran, 1/724

3. Al-Tafsir al-Kabir, under 'They ask you about the soul', Al-Matba'ah al-Bahiyyah al-Arabiyyah, Al-Azhar, Egypt, 21/52

फ़तावा रज़विया, खंड 9

...भ्रष्टाचार के अधीन और निर्जीव वस्तुओं के साथ जुड़ा हुआ। रूपक मृत्यु का अर्थ है कि आत्मा इन सभी विपत्तियों से शुद्ध और मुक्त है। अल्लाह के लिए स्तुति है, और उत्कृष्ट प्रमाण। दूसरा परिचय: एक बुद्धिमान व्यक्ति जानता है कि ज्ञान और धारणा शुद्ध आत्मा के गुण हैं, न कि मुट्ठी भर धूल का वर्णन। अल्लाह, पराक्रमी और महान, ने कहा:

| "हृदय ने उसे नहीं झुठलाया जो उसने देखा।" (53:11) पसंदीदा दृष्टिकोण के अनुसार, यहाँ दृष्टि का अर्थ देखने की इंद्रिय से है। | हृदय ने उसे गलत नहीं कहा जो आँख ने देखा। इसका अर्थ है, पसंदीदा दृष्टिकोण के आधार पर, कि यहाँ 'देखना' आँखों की इंद्रिय दृष्टि को संदर्भित करता है। (टी) |

तफ़सीर अल-कबीर में कहा गया है:

| वास्तव में, मनुष्य एक एकल इकाई है, और वही इकाई है जिसे दैवीय दायित्वों और ईश्वरीय मामलों का कार्य सौंपा गया है। इसे सुनने और देखने की विशेषता है, जबकि संपूर्ण शरीर ऐसा नहीं है, और न ही शरीर का कोई व्यक्तिगत अंग ऐसा है। इसलिए, आत्मा शरीर के पूरे समूह से भिन्न एक वस्तु है और शरीर के अंगों से भिन्न एक वस्तु है, और यह इन सभी गुणों से संपन्न है। | मनुष्य एक एकल इकाई है। इसी इकाई को शरीयत के दायित्वों और दैवीय आदेशों के साथ परखा जाता है। यही सुनने और देखने की विशेषता वाला है। संपूर्ण शरीर में यह गुण नहीं होता, न ही शरीर के किसी एक अंग में यह विशेषता होती है। इस प्रकार, आत्मा पूरे शरीर से अलग एक चीज़ है और शरीर के हर हिस्से से अलग एक चीज़ है। यही इन सभी गुणों से युक्त है। (टी) |

प्रमाण स्थापित करने के बाद उसमें लिखा है:

| यहाँ जो उल्लेख किया गया है, उससे यह सिद्ध हो गया है कि मानव आत्मा एक एकल इकाई है। और यह भी सिद्ध हो गया है कि वही इकाई देखने, सुनने, सूँघने, चखने, छूने, कल्पना करने, सोचने, याद करने, इच्छा करने और क्रोधित होने वाली है। यह सभी बोधगम्य चीजों की सभी धारणाओं की विशेषता है, और यह सभी की विशेषता है... | यहाँ उल्लेखित बातों से यह सिद्ध हुआ कि मानव आत्मा एक एकल इकाई है। और यह भी सिद्ध हुआ कि वही इकाई देखने, सुनने, सूँघने, चखने, छूने,

कल्पना करने, सोचने, याद करने, इच्छा करने और क्रोध करने वाली है। यही सभी बोधों से संपन्न है।
|

1. कुरान 53/11
2. अल-मसाबाह अल-मुनीर, किताब अल-बा, दार अल-हिजरा पब्लिकेशन्स, कोम, ईरान, 1/724
3. अल-तफ़सीर अल-कबीर, 'वे आपसे आत्मा के बारे में पूछते हैं' के तहत, अल-मतबाह अल-बहियाह अल-अरबिय्याह, अल-अज़हर, मिस्र, 21/52

فتاوٰی رضویہ، جلد نہم

معرض فساد و ملحق بالجماد کر دے۔ موتِ مجازی کہ روح کے لیے ان سب آفات سے پاک و مبرا ہے۔ واللہ الحمد والحجۃ السامیہ۔ مقدمہ ثانیہ: عاقل جانتا ہے کہ علم و ادراک صفتِ جانِ پاک ہے نہ کہ وہ وصفِ مشتِ خاک، قال اللہ عز وجل:

| مَا كَذَبَ الْفُؤَادُ مَا رَأَى ﴿۱۱﴾ ۱ علی القول المختار ان المراد بالرؤیۃ بحاسۃ البصر۔ ۲ | دل نے غلط نہ کہا اسے جو آنکھ نے دیکھا۔ یہ کہ معنی قول مختار کی بنیاد پر ہے کہ یہاں رؤیت سے مراد حاسہ نگاہ سے دیکھنا ہے۔ (ت) |

تفسیر کبیر میں ہے:

| ان الانسان شیئ واحد وذلك الشی ھو المبتلی بالتکالیف الالھیۃ والامور الربانیۃ وھو الموصوف بالسمع والبصر ومجموع البدن لیس کذلك ولیس عضو من اعضاء البدن کذلك فالنفس شی مغائر لجملۃ البدن ومغائر لاجزاء البدن وھو الموصوف بکل ھذہ الصفات۔ ۳ | انسان ایک شی واحد ہے۔ اسی شی کا تکلیفاتِ شرعیہ اور احکام ربانیہ سے ابتلاء ہے۔ وہی سننے دیکھنے سے متصف ہے۔ اور پورا بدن یہ صفت نہیں رکھتا، نہ ہی اعضائے بدن میں سے کوئی عضو اس وصف کا ہے۔ تو روح پورے بدن کے مغایر اور ہر جزو بدن کے مغایر ایک شے ہے۔ وہی ان تمام صفات سے متصف ہے۔ (ت) |

اس میں بعد اقامتِ حج کے لکھتے ہیں:

| فثبت بما ذکرنا ان النفس الانسانیۃ شیئ واحد وثبت ان ذلك الشی ھو المبصر والسامع والشام و الذائق واللامس والمتخیل والمتفکر والمتذکر و المشتھی والغاظب وھو الموصوف بجمیع الادراك لکل

المدرکات وھو الموصوف بجمیع | یہاں مذکور سے ثابت ہوا کہ روحِ انسانی ایک شی واحد ہے۔ اور یہ بھی ثابت ہوا کہ وہی شی دیکھنے، سننے، سونگھنے، چکھنے، چھونے، خیال کرنے، سوچنے، یاد کرنے، خواہش کرنے، غصہ کرنے والی ہے۔ وہی تمام ادراکات سے متصف ہے۔ |

۱ القرآن ۱۱/۵۳ ۲ المصابیح المنیر کتاب الباء منشورات دار الہجرۃ قم ایران ۱/ ۷۲۴ ۳ التفسیر الکبیر تحت ویسئلونك عن الروح المطبعۃ البھیۃ العربیۃ الازہر مصر ۲۱/ ۵۲

Volume Nine - Fatawa Razawiyya

[Arabic] Voluntary actions and intentional movements. ^{1} [Urdu] And it is characterized by all voluntary actions and intentional movements. (T)

Then he said:

[Arabic Column]: Since the soul is a single entity, it is impossible for the soul to be defined as the body, or as the sense of hearing or other faculties. This is because we know of necessity that there is no single part in the body that is itself characterized by seeing, hearing, and thinking. Thus, it is proven that the human soul is a single thing characterized by the sum of these perceptions. It is also proven by self-evidence that the body and any of its parts are not like that. Let us establish this proof in other words: we say it is known by necessity that when we see something, we recognize it. When we recognize it, we desire it. When we desire it, we move our bodies to approach it. Therefore, it is necessary to conclude definitively that the one who saw is the one who recognized, the one who desired, and the one who moved. ^{2} to the end of what he elaborated or refined; this is a brief excerpt.

[Urdu Column]: Since the soul is a single entity, it is impossible for the soul to be defined as the body, or as the sense of hearing or other faculties. This is because we know by self-evidence that there is no specific part in the body that is characterized by seeing, hearing, and thinking. Thus, it is proven that the human soul is that single entity which is characterized by all these perceptions— and it is also self-evidently proven that there is no such part in the body or its components. We formulate this proof in other words by saying that self-evidently we know that when we see something, we recognize it, and when we recognize it, we desire it, and when we desire it, we move our body to be near it. Thus, it is essential to judge definitively that the one who saw, recognized; the one who desired, gave the movement. Imam Razi has provided further detail and an excellent discourse on this; here, selections from passages in various places have been cited with choice. (T)

It is in Tafsir Azizi: [Persian] The greatest part is the soul, and [it possesses] consciousness, perception, pleasure, and pain. [Urdu] The greatest part is life/soul, and consciousness, perception, and sensation.

---

^{1} Al-Tafsir al-Kabir, under "They ask you about the soul," Al-Matba'ah al-Bahiyyah al-Misriyyah, Midan al-Azhar, Egypt, 41/27. ^{2} Al-Tafsir al-Kabir, under "They ask

you about the soul," Al-Matba'ah al-Bahiyyah al-Misriyyah, Midan al-Azhar, 41/8, 7 and 37.

खंड नौ - फतावा रजविया

[अरबी] स्वैच्छिक कार्य और इरादतन गतिविधियाँ। ^{1} [उर्दू] और वह सभी स्वैच्छिक कार्यों और इरादतन गतिविधियों से युक्त है। (त)

फिर फ़रमाया:

[अरबी कॉलम]: चूँकि आत्मा एक एकल इकाई है, इसलिए यह असंभव है कि आत्मा को शरीर, या सुनने की शक्ति या अन्य शक्तियों के रूप में परिभाषित किया जाए। ऐसा इसलिए है क्योंकि हम अनिवार्य रूप से जानते हैं कि शरीर में ऐसा कोई एक हिस्सा नहीं है जो स्वयं देखने, सुनने और सोचने की विशेषता रखता हो। इस प्रकार, यह सिद्ध होता है कि मानव आत्मा एक अकेली वस्तु है जो इन सभी बोधों के समूह से युक्त है। यह स्वयं-सिद्ध भी है कि शरीर और शरीर का कोई भी अंग ऐसा नहीं है। आइए इस प्रमाण को दूसरे शब्दों में स्थापित करें: हम कहते हैं कि यह अनिवार्य रूप से ज्ञात है कि जब हम किसी चीज़ को देखते हैं, तो हम उसे पहचान लेते हैं। जब हम उसे पहचान लेते हैं, तो हम उसकी इच्छा करते हैं। जब हम उसकी इच्छा करते हैं, तो हम उसे पाने के लिए अपने शरीर को गति देते हैं। अत; यह निश्चित रूप से निष्कर्ष निकालना आवश्यक है कि जिसने देखा उसी ने पहचाना, उसी ने इच्छा की और उसी ने गति प्रदान की। ^{2} अंत तक जो उन्होंने विस्तार से बताया; यह एक संक्षिप्त उद्धरण है।

[उर्दू कॉलम]: जब रूह (आत्मा) एक ही चीज़ है, तो यह असंभव है कि रूह शरीर या सुनने की शक्ति या अन्य शक्तियों का पर्याय हो। इसका कारण यह है कि हमें स्पष्ट रूप से ज्ञात है कि शरीर में कोई विशेष अंग ऐसा नहीं है जो स्वयं देखने, सुनने और विचार करने के गुणों से युक्त हो। अतः यह सिद्ध हुआ कि मानव रूह वही एक चीज़ है जो इन सभी बोधों से युक्त है— और स्पष्ट रूप से यह भी सिद्ध है कि शरीर और शरीर के अंगों में ऐसा कोई अंग नहीं है। इस दलील की व्याख्या हम दूसरे शब्दों में इस प्रकार करते हैं कि स्पष्ट रूप से हम जानते हैं कि जब हम किसी चीज़ को देखते हैं तो उसे पहचान लेते हैं, और जब उसे पहचान लेते हैं तो उसकी इच्छा करते हैं, और जब उसकी इच्छा करते हैं तो अपने शरीर को उससे निकट होने के लिए गति देते हैं। अतः इस बात का निश्चित रूप से निर्णय करना आवश्यक है कि जिसने देखा, उसी ने पहचाना; उसी ने इच्छा की, उसी ने गति दी। इमाम राजी ने इस पर अधिक विस्तार और उत्कृष्ट चर्चा की है; यहाँ विभिन्न स्थानों के उद्धरणों का चयन प्रस्तुत किया गया है। (त)

तफ़सीर अज़ीज़ी में है: [फारसी] महानतम भाग प्राण है, और [उसमें] चेतना, बोध, आनंद और पीड़ा [होती है]। [उर्दू] महानतम भाग प्राण है, और चेतना, बोध और संवेदना।

---

^{1} अल-तफसीर अल-कबीर, 'वे आपसे रूह (आत्मा) के बारे में पूछते हैं' के अंतर्गत, अल-मतबा अल-बहिय्या अल-मिसरिया, मैदान अल-अजहर, मिस्र, 41/27। ^{2} अल-तफसीर अल-कबीर, 'वे आपसे रूह (आत्मा) के बारे में पूछते हैं' के अंतर्गत, अल-मतबा अल-बहिय्या अल-मिसरिया, मैदान अल-अजहर, 41/8, 7 और 37।

جلد نہم - فتاوٰی رضویہ

الافعال الاختیاریة والحرکات الارادیة $1^$ اور وہ تمام افعال اختیاریہ اور حرکاتِ ارادیہ سے متصف ہے۔ (ت)

پھر فرمایا:

لما کانت النفس شیئا واحدا امتنع کون النفس عبارة عن البدن وکذا القوة السامعة وسائر القوی فانا نعلم بالضرورة انه لیس في البدن جز واحد هو بعینه موصوف بالابصار والسماع والفکر فثبت ان النفس الانسانیة شيء واحد موصوف بجملة هذه الادراکات وثبت بالبداهة ان البدن وشیئا من اجزاء البدن لیس کذلك، ولنقرر هذا البرهان بعبارة اخری فنقول نعلم بالضرورة انا اذا بصرنا شیئا عرفناه واذا عرفناه اشتهینا ہ واذا اشتهیناه حرکنا ابداننا الی القرب منه فوجب القطع بان الذی البصر هو الذی عرف هو الذی اشتهی هو الذی حرك $2^$ الی آخرما اطال او طاب هذا مختصر ملتقط۔

جب روح شے واحد ہے تو محال ہے کہ روح بدن سے یا قوتِ سامعہ یا دیگر قوٰی سے عبارت ہو، اس لیے کہ ہمیں بدیہی طور پر معلوم ہے کہ بدن میں کوئی ایک خاص جز ایسا نہیں کہ وہی دیکھنے سننے اور فکر کرنے سے متصف ہو تو ثابت ہو کہ روحِ انسانی وہ شے واحد ہے جو ان تمام ادراکات سے متصف ہے— اور بدیہی طور پر یہ بھی ثابت ہے کہ بدن اور اجزائے بدن میں کوئی جز ایسا نہیں۔ اس دلیل کی تقریر ہم دوسرے الفاظ میں یوں کرتے ہیں کہ بدیہی طور پر ہم جانتے ہیں کہ جب ہم کسی چیز کو دیکھتے ہیں تو اس کو پہچان لیتے ہیں اور جب اسے پہچان لیتے ہیں تو ہم اس کی خواہش کرتے ہیں اور جب اس کی خواہش کرتے ہیں تو اپنے بدن کو اس سے قریب ہونے کے لیے حرکت دیتے ہیں تو اس بات کا قطعی طور پر حکم کرنا ضروری ہے کہ جس

نے دیکھا اس نے پہچانا، اسی نے خواہش کی اسی نے حرکت دی، امام رازی نے اس کی مزید تفصیل اور عمدہ تقریر فرمائی ہے یہاں اختیار کے ساتھ جگہ جگہ کی عبارتوں کا انتخاب نقل ہوا۔ (ت)

تفسیر عزیزی میں ہے : جزو اعظم جاں است و شعور و ادراک و تلذذ و تالم جزوِ اعظم جان ہے، اور شعور و ادراک اور احساس

---

^{8}1 التفسیر الکبیر تحت یسئلونك عن الروح المطبعة البهیة المصریة بمیدان الازهر مصر ۴۱/ ۲۷

^{8}2 التفسیر الکبیر تحت یسئلونك عن الروح المطبعة البهیة المصریة بمیدان الازهر ۴۱ / ۸، ۷ و ۳۷

Fatawa Rizvia, Volume 9

It is his specialty [1]. Summed up.

Pleasure and pain are his specialty. Summed up (T)

I say: On this meaning, decisive proofs are also established from Sharia; the Great Quran and the consensus of the wise are two just witnesses that man is a hearer (Sami') and a seer (Basir).

Allah Almighty said: "Verily, We have created man from a drop of mingled fluid, in order to try him: so We gave him (the gifts), of Hearing and Sight." [2]

Allah Almighty said: Verily, We have created man from a mingled drop (nutfa) so that We may test him, then We made him hearing and seeing. (T)

And it is self-evident, both rationally and traditionally, that a man's eye and ear are not the "man" himself. Thus, it is certainly established that what He called "hearing" and "seeing" are not the eye and ear, and the lack of connection of other limbs with hearing and sight is even more obvious. So, it is nothing but the soul. Hence, the Holy Quran says:

"Have they feet wherewith they walk? Or have they hands wherewith they hold? Or have they eyes wherewith they see? Or have they ears wherewith they hear?" [3]

Do they have feet with which they walk, or hands with which they hold, or eyes with which they see, or ears with which they hear? (T)

Actions of hearing and seeing were attributed to the possessor of the limbs, and the limbs were mentioned for assistance (isti'anat). It is proven that the actor, the hearer, and the seer is the soul. The body is merely an instrument. Similarly, all the texts regarding the states of Barzakh (the intermediate realm), which testify to the persistence of perceptions after the annihilation of the body—many of which were mentioned in previous chapters—all prove that the percipient is other than the body. Yes, sometimes metaphorically, like the body, perceptions are attributed due to their instrumental nature. Allah Almighty says: "And that a conscious ear may retain it." [4] (Allah Almighty says: And that a conscious ear may understand it. T). It is mentioned in 'Ma'alim': Qatada said: "An ear that hears and understands what it hears." [5] (Hazrat Qatada said: Any ear that hears and understands the spoken word. T). It is mentioned in 'Madarik':

Qatada said: "An ear that understood from Allah Almighty and benefited from what it heard." [6]

Hazrat Qatada said: Any ear which understood the word from God Almighty and benefited from what was heard. (T)

1. Tafsir Azizi, Parah Amm, Surah at-Tariq, Muslim Book Depot, Lal Kuan, Delhi, p. 226
2. Al-Quran, 76/2
3. Al-Quran, 7/195
4. Al-Quran, 69/12
5. Ma'alim at-Tanzil, on the margins of Tafsir al-Khazin, under the mentioned verse, Mustafa al-Babi, Egypt, 1/234
6. Tafsir al-Nasafi, known as Madarik at-Tanzil, under the mentioned verse, Dar al-Kitab al-Arabi, Beirut, 2/286

फ़तावा रज़विया, जिल्द 9

यह उसकी विशेषता है [1]। संक्षेप में। आनंद और पीड़ा उसकी विशेषता है। संक्षेप में (त)

मैं कहता हूँ: इस अर्थ पर शरीयत से भी निर्णायक प्रमाण स्थापित हैं; महान कुरान और बुद्धिमानों की सर्वसम्मति दो न्यायप्रिय गवाह हैं कि मनुष्य सुनने वाला (समीअ) और देखने वाला (बसीर) है।

अल्लाह तआला ने फरमाया: "बेशक हमने आदमी को मिले हुए वीर्य (नूतफ़े) से पैदा किया ताकि उसे परखें, फिर हमने उसे सुनने वाला और देखने वाला बना दिया।" [2]

अल्लाह तआला ने फरमाया: बेशक हमने आदमी को मिले हुए नूतफे से पैदा किया ताकि उसे जाँचें, फिर हमने उसे सुनने और देखने वाला बना दिया। (त)

और तार्किक और पारंपरिक रूप से यह स्वतः स्पष्ट है कि मनुष्य की आँख और कान स्वयं 'मनुष्य' नहीं हैं। अतः यह निश्चित रूप से सिद्ध है कि जिसे उसने 'सुनने वाला' और 'देखने वाला' कहा है, वे आँख और कान नहीं हैं, और अन्य अंगों का सुनने और देखने से कोई संबंध न होना और भी स्पष्ट है। तो, वह और कुछ नहीं बल्कि आत्मा है। इसीलिए पवित्र कुरान कहता है:

"क्या उनके पास पैर हैं जिनसे वे चलते हैं? या उनके पास हाथ हैं जिनसे वे पकड़ते हैं? या उनके पास आँखें हैं जिनसे वे देखते हैं? या उनके पास कान हैं जिनसे वे सुनते हैं?" [3]

क्या उनके पास पैर हैं जिनसे वे चलते हैं, या हाथ हैं जिनसे वे पकड़ते हैं, या आँखें हैं जिनसे वे देखते हैं, या कान हैं जिनसे वे सुनते हैं? (त)

सुनने और देखने की क्रियाओं का श्रेय अंगों के स्वामी को दिया गया है, और अंग सहायता (इस्तिआ'नत) के लिए बताए गए हैं। यह सिद्ध हो गया कि कर्ता, श्रोता और द्रष्टा आत्मा है। शरीर केवल एक उपकरण है। इसी तरह, बरज़ख (आलम-ए-बरज़ख) की स्थितियों से संबंधित सभी ग्रंथ, जो शरीर के विनाश के बाद धारणाओं की निरंतरता की गवाही देते हैं—जिनमें से कई पिछले अध्यायों में बताए गए हैं—सभी यह सिद्ध करते हैं कि बोध करने वाला शरीर के अलावा और कुछ है। हाँ, कभी-कभी लाक्षणिक रूप से, शरीर की तरह, अंगों के माध्यम से होने के कारण बोध का श्रेय उन्हें दिया जाता है। अल्लाह तआला फरमाता है: "और ताकि कोई समझने वाला कान उसे याद रखे।" [4] (अल्लाह तआला फरमाता है: और कोई समझ वाला कान उसे समझे। त)। 'मआलिम' में है: कतादा ने फरमाया: "कोई कान जो सुने और सुनी हुई बात को समझे।" [5] (हज़रत कतादा ने फरमाया: कोई कान जो सुने और सुनी हुई बात को समझे। त)। 'मदारिक' में है:

कतादा ने फरमाया: "कोई कान जिसने अल्लाह तआला से (कलाम) समझा और जो सुना उससे लाभ उठाया।" [6]

हज़रत कतादा ने फरमाया: कोई कान जिसने खुदा तआला से कलाम को समझा और सुनी हुई बात से फायदा उठाया। (त)

1. तफ़सीर अज़ीज़ी, पारा अम्म, सूरह अत-तारीक, मुस्लिम बुक डिपो, लाल कुआँ, दिल्ली, पृष्ठ 226
2. अल-कुरान, 76/2
3. अल-कुरान, 7/195
4. अल-कुरान, 69/12
5. मआलिम अत-तंज़ील, तफ़सीर अल-ख़ाज़िन के हाशिये पर, वर्णित आयत के तहत, मुस्तफ़ा अल-बाबी, मिस्र, 1/234
6. तफ़सीर अन-नसफ़ी, जिसे मदारिक अत-तंज़ील के नाम से जाना जाता है, वर्णित आयत के तहत, दार अल-किताब अल-अरबी, बेरूत, 2/286

فتاوٰی رضویہ جلد نہم

خاصہ اوست ۱ اہ ملخصاً۔ لذت والم اس کا خاصہ ہے اھ بتلخیص (ت)

اقول اس معنی پر شرع سے بھی دلائل قاطعہ قائم، قرآن عظیم و اجماع عقلاء دو شاہد عدل ہیں کہ انسان سمیع و بصیر ہے۔

قَالَ اللّٰہُ تَعَالٰی اِنَّا خَلَقْنَا الْاِنْسَانَ مِنْ نُّطْفَۃٍ اَمْشَاجٍ ۖ نَّبْتَلِیْہِ فَجَعَلْنٰہُ سَمِیْعًا بَصِیْرًا ﴿۲﴾

اللہ تعالٰی نے فرمایا: بیشک ہم نے آدمی کو ملے ہوئے نطفے سے پیدا کیا تا کہ اسے جانچیں ، پھر ہم نے اسے سننے دیکھنے والا بنا دیا۔ (ت)

اور عقلاً و نقلاً بدیہات سے ہے کہ انسان کی آنکھ ، کان انسان نہیں تو یقیناً ثابت کہ یہ جسے سمیع و بصیر فرمایا چشم و گوش نہیں اور باقی اعضاء کا سمع و بصر سے بے علاقہ ہونا واضح تر ، تو وہ نہیں مگر روح۔ و لہذا قرآن مجید فرماتا ہے:

اَلَھُمْ اَرْجُلٌ یَّمْشُوْنَ بِھَآ اَمْ لَھُمْ اَیْدٍ یَّبْطِشُوْنَ بِھَآ اَمْ لَھُمْ اَعْیُنٌ یُّبْصِرُوْنَ بِھَآ اَمْ لَھُمْ اٰذَانٌ یَّسْمَعُوْنَ بِھَا ﴿۳﴾

کیا ان کے پاس پاؤں جن سے وہ چلتے ہیں ، یا ہاتھ ہیں جن سے وہ پکڑتے ہیں ، یا آنکھیں ہیں جن سے وہ دیکھتے ہیں ، یا کان ہیں جن سے وہ سنتے ہیں ، (ت)

افعال و سمع و بصر کی اضافت صاحب جوارح کی طرف فرمائی اور جوارح پر برائے استعانت آئی ، ثابت ہوا کہ فاعل و سامع و بصیر روح ہے۔ اور بدن صرف آلہ، اسی طرح تمام نصوصِ احوالِ برزخ کہ بعد فنائے بدن بقائے ادراکات پر شاہد ہیں جن سے جملہ کثیر فصول سابقہ میں گزرا سب سے ثابت کہ مدرک غیر بدن ہے۔ ہاں کبھی مجازاً بدن کی طرح بوجہ آلیت نسبت ادراکات ہوتی ہے ، قال اللہ تعالی وَ تَعِیَھَآ اُذُنٌ وَّاعِیَۃٌ ﴿۱۲﴾ (اللہ تعالٰی فرماتا ہے : اور کوئی سمجھ والا کان اسے

سمجھے ۔ ت) معالم میں ہے : قال قتادۃ اذن سمعت وعقلت ماسمعت ۵ (حضرت قتادہ نے فرمایا : کوئی کان جو سنے اور سنی ہوئی بات کو سمجھے۔ ت) مدارک میں ہے:

قال قتادہ اذن عقلت من اللہ تعالی حضرت قتادہ نے فرمایا: کوئی کان جس نے خدا تعالیٰ سے کلام و انتفعت بما سمعت ۶ ۔ کو سمجھا اور سنی ہوئی بات سے فائدہ اٹھایا۔ (ت)

1 تفسیر عزیزی پارہ عم سورۃ الطارق مسلم بک ڈپو لال کنواں دہلی ص ۲۲۶ 2 القرآن ۷۶ / ۲ 3 القرآن ۷ / ۱۹۵ 4 القرآن ۶۹ / ۱۲ 5 معالم التنزیل علی ہامش تفسیر الخازن تحت آیۃ مذکورہ مصطفی البابی مصر ۱ / ۲۳۴ 6 تفسیر النسفی المعروف بہ مدارک التنزیل تحت آیۃ مذکورہ دارالکتاب العربی بیروت ۲ / ۲۸۶

Fatawa Rizvia, Volume 9

This is based on a rational metaphor (Majaz-e-Aqli) and it is possible it is a metaphor of the limb, meaning attributing "ear" to the soul, as in the word of the Almighty: "Say, [he is] an ear of goodness for you" (as in this divine command: Say for you he is the ear of goodness. -T). In the hadith regarding the bounties of Paradise, it says: "What no eye has seen and no ear has heard" (What no eye has seen nor any ear has heard. -T). When the companions (may Allah be pleased with them) wanted to emphasize and verify a narration, they would say: "My eyes saw, my ears heard, and my heart understood it" (My eyes saw and my ears heard and my heart understood it. -T). It is stated in Tafsir-e-Kabir:

Research	**Translation**
The verification is that man is a single substance; he is the doer, the perceiver, the believer, the disbeliever, the obedient, and the disobedient. These limbs are his instruments and tools in action. Thus, action is outwardly attributed to the instrument, but in reality, it is attributed to the substance of the human self.	The research is that a human is one substance; he is the one who does work, he is the one who understands, he is the one who brings faith, he is the one who obeys, he is the one who disobeys. And these limbs are his instruments and means in work, so outwardly the work is attributed to the instrument, and in reality, it is attributed to that substance of the human self. (T)

Third Premise: When by the consensus of the people of truth (Ahl-e-Haq) there is no death for the soul, and in all books of beliefs there is clarification, and as per the text of Sharh al-Maqasid in the second section, first type, third objective, it passed that according to the Ahl-e-Sunnat, the body is not a condition for life, while the Mu'tazilites differ in this. And it is obvious that perceptions follow life, as stated in the commentaries of Tawali' al-Anwar by Allama Taftazani and al-Isfahani, and Sharh al-Mawaqif by Sayyid al-Jurjani (as clarification is given in Allama Taftazani and Isfahani's commentaries of Tawali' al-Anwar and Sayyid Sharif Jurjani's Sharh al-Mawaqif. -T). Therefore, according to us, the soul does not change by death; its speech and perception remain as they were, the complete explanation of which is written in the aforementioned section of Darja-e-Kafi. So, after burial, the soul is not at all in need of the restoration of life for trial, questioning, bounty, or punishment, because when were life and perceptions ever separated from it? Yes, the body is definitely in need.

The reason is that according to the Ahl-e-Sunnat, the reward of the grave or, Allah forbid...

1. Al-Quran 9/61
2. Musnad Ahmad bin Hanbal, narrated from Abu Huraira, Dar al-Fikr, Beirut, 2/313
3. Sahih Muslim, Chapter of Hospitality etc., Qadimi Kutub Khana, Karachi, 2/80-81
4. Al-Tafsir al-Kabir, Surah al-Anfal, under "That is for what your hands have sent forth", Matba'a al-Bahiyya al-Misriyya, Egypt, 15/19

फ़तावा रज़विया, खंड 9

यह तर्कसंगत रूपक (मजाज़-ए-अक़्ली) के आधार पर है और यह संभव है कि यह अंग का रूपक हो, यानी आत्मा पर 'कान' का प्रयोग करना, जैसा कि अल्लाह के इस कथन में है: "कह दो, वह तुम्हारे लिए भलाई का कान है।" (जैसा कि इस ईश्वरीय आदेश में है: कह दो तुम्हारे लिए वह भलाई के कान हैं। -त)। जन्नत की नेमतों के बारे में हदीस में है: "जो न किसी आँख ने देखा और न किसी कान ने सुना।" (जो न किसी आँख ने देखा और न किसी कान ने सुना। -त)। सहाबा (रज़ियल्लाहु अन्हुम) जब किसी रिवायत की पुष्टि और ताकीद चाहते थे, तो कहते थे: "मेरी आँखों ने देखा और मेरे कानों ने सुना और मेरे दिल ने उसे समझा।" (मेरी आँखों ने देखा और मेरे कानों ने सुना और मेरे दिल ने उसे समझा। -त)। तफ़सीर-ए-कबीर में है:

शोध

शोध यह है कि मनुष्य एक ही सार (जौहर) है; वही काम करने वाला है, वही समझने वाला है, वही ईमान लाने वाला है, वही आज्ञाकारी है, वही अवज्ञाकारी है। और ये अंग काम में उसके औज़ार और साधन हैं, तो ज़ाहिर में काम का श्रेय अंग को दिया जाता है और हकीक़त में वह मनुष्य के स्वयं के उसी सार की ओर मन्सूब है।

अनुवाद

शोध यह है कि मनुष्य एक ही सार (जौहर) है; वही काम करने वाला है, वही समझने वाला है, वही ईमान लाने वाला है, वही आज्ञाकारी है, वही अवज्ञाकारी है। और ये अंग काम में उसके औज़ार और साधन हैं, तो ज़ाहिर में काम का श्रेय अंग (आला) की तरफ की गई और हकीक़त में वह मनुष्य के स्वयं के उसी सार की ओर मन्सूब है। (त)

तीसरा प्रस्तावना (मुक़द्दमा सालिसा): जब हक़ वालों (अह्ल-ए-हक़) की सर्वसम्मति से आत्मा के लिए मृत्यु नहीं है, और अक़ीदे की सभी किताबों में स्पष्टीकरण है और 'शर्ह-ए-मक़ासिद' की इबारत (फ़स्ल दोम, नौअ अव्वल, मक़सद सोम में) गुज़री कि अह्ल-ए-सुन्नत के नज़दीक शरीर जीवन के लिए शर्त नहीं है, मोतज़िला इसमें मतभेद करते हैं। और यह ज़ाहिर है कि बोध (इदराकात) जीवन के अधीन हैं, जैसा कि अल्लामा तफ़्ताज़ानी और इसफ़हानी की 'तवाली-अल-अनवार' की व्याख्याओं और सैय्यद शरीफ़ जुर्जानी की 'शर्ह-ए-मवाक़िफ़' में स्पष्ट किया गया है। (जैसा कि अल्लामा तफ़्ताज़ानी और इसफ़हानी की तवाली-अल-अनवार की व्याख्याओं और सैय्यद शरीफ़ जुर्जानी की शर्ह-ए-मवाक़िफ़ में इसका स्पष्टीकरण है। -त)। इसलिए हमारे नज़दीक आत्मा मृत्यु से परिवर्तित नहीं होती, उसकी वाणी और बोध यथावत रहते हैं, जिसका पूर्ण विवरण दरजा-ए-काफ़ी की उक्त फ़स्ल में

लिखा है। तो दफ़्न के बाद आत्मा फ़ितना, सवाल, सुख या दंड (नकाल) के किसी भी मामले में जीवन लौटाए जाने की कतई मोहताज नहीं है, क्योंकि जीवन और बोध उससे अलग ही कब हुए थे? हाँ, शरीर ज़रूर मोहताज है। वजह यह है कि अह्ल-ए-सुन्नत के नज़दीक क़ब्र की नेमतें या अल्लाह न करे..

1. अल-क़ुरआन 9/61
2. मुसनद अहमद बिन हंबल, रिवायत अबू हुरैरा से, दार अल-फ़िक्र, बेरुत, 2/313
3. सहीह मुस्लिम, बाब-अज़-ज़ियाफ़त व नह्वुहा, क़दीमी कुतुब खाना कराची, 2/80-81
4. अत-तफ़सीर अल-कबीर, सूरह अल-अनफ़ाल, आयत "ज़ालिका बिमा क़द्दمت अयदीकुम" के नीचे, मतबा अल-बहिया अल-मिसरिया, मिस्र, 15/19

فتاوٰی رضویہ جلد نہم

یہ بر تقدیر مجاز عقلی ہے اور محتمل کہ مجازی الطرف ہو یعنی روح پر اطلاق اذن کما فی قول تعالی قُلْ أُذُنُ خَيْرٍ لَّكُمْ 1 (جیسا کہ اس ارشاد باری میں : فرماؤ تمہارے لیے وہ بھلائی کے کان ہیں۔ ت) نعمائے جنت کی حدیث میں ہے: ما لا عین رأت ولا اذن سمعت 2 (جونہ کسی آنکھ نے دیکھا نہ کسی کان نے سنا۔ ت) صحابہ رضی اللہ تعالٰی عنہم جب تاکید توثیق روایت چاہتے فرماتے : ابصرت عیناى وسمع اذناى و وعاه قلبى 3 (میری آنکھوں نے دیکھا اور میرے کانوں نے سنا اور میرے دل نے اسے سمجھا۔ ت) تفسیر کبیر میں ہے :

التحقیق	ترجمہ
التحقيق ان الانسان جوهر واحد وهو الفعال وهو الدراك وهو المؤمن وهو الكافر وهو المطيع وهو العاصى، وهذه الاعضاء آلات له وادوات له فى الفعل فأضيف الفعل فى الظاهر الى الآلة وهو فى الحقيقة مضاف الى جوهر ذات الانسان ۔	تحقیق یہ ہے کہ انسان ایک جوہر ہے وہی کام کرنے والا ہے وہی سمجھنے والا ہے، وہی ایمان لانے والا ہے، وہی اطاعت کرنے والا ہے، وہی نافرمانی کرنے والا ہے، ۔ اور یہ اعضاء کام میں اس کے آلات واسباب ہیں تو ظاہر میں کام کی نسبت آلہ کی طرف کی گئی اور حقیقت میں وہ اسی جوہر ذات انسان کی طرف منسوب ہے۔ (ت)

مقدمہ ثالثہ : جب باجماع اہل حق روح کے لیے موت نہیں، اور تمام کتب عقائد میں تصریح اور شرح مقاصد کی عبارت فصل دوم نوع اول مقصد سوم میں گزری کہ اہل سنت کے نزدیک جسم شرط حیات نہیں، معتزلہ اس میں خلاف کرتے ہیں اور ظاہر ہے کہ ادراکات تابع حیات ہیں کما نص علی فی شرح طوالع الانوار للعلامۃ التفتازانی وللاصفہانی وشرح المواقف للسید الجرجانی (جیسا کہ

علامہ تفتازانی واصفہانی کی شروح طوالع الانوار اور سید شریف جرجانی کی شرح مواقف میں اس کی تصریح ہے۔ ت) و لہذا ہمارے نزدیک روح موت سے متغیر نہیں ہوتی اس کے کلام و ادراک بدستور رہتے ہیں جس کا بیان شافی درجہ کافی فصل مذکور میں مسطور ، توروح بعد دفن فتنہ و سوال یا نعیم و نکال ، کسی امر میں ہر گز اعادہ حیات کی محتاج نہیں کہ حیات و ادراکات اس سے جدا ہی کب ہوئے تھے، ہاں بدن ضرور محتاج ہے۔ وجہ یہ کہ اہل سنت کے نزدیک قبر کی تنعیم یا معاذ اللہ

1 القرآن ۶۱/۹ 2 مسند احمد بن حنبل مروی از ابوہریرہ دار الفکر بیروت ۳۱۳/۲ 3 صحیح مسلم باب الضیافۃ و نحوھا قدیمی کتب خانہ کراچی ۸۰-۸۱/۲ 4 التفسیر الکبیر سورہ انفال تحت ایں ذلک بما قدمت ایدیکم مطبعہ بہیہ مصریہ مصر ۱۹/۱۵

Volume Nine - Fatawa Razawiyya

The punishment is on both the soul and the body. The great Imam Jalaluddin Suyuti states in Sharh as-Sudur:

Arabic	Urdu Translation
The torment of the grave is located in both the soul and the body together by the consensus of the People of the Sunnah, and the same is said regarding bliss. 1	By consensus of the People of the Sunnah, the place of the punishment and comfort of the grave is in both the soul and the body. (T)

Numerous and famous consecutive texts from the pure Shari'ah indicate this, which cannot be fully exhausted. Many proofs for this are in the mentioned traditions of this book as you see. Similarly, the questioning by Munkar and Nakir also involves both the soul and body. It is mentioned in Sharh Fiqh al-Akbar:

Arabic	Urdu Translation
The questioning in the Barzakh is not for the soul alone as said by Ibn Hazm and others; nor is it for the body without the soul, as the authentic traditions refute both views. 2	In the Barzakh, questioning is not of the soul alone, as is the view of Ibn Hazm and others; even more corrupt is the view of the one who says questioning is only of the soulless body. Authentic traditions refute both views. (T)

Questioning an inanimate object in its state of being inanimate, or conveying pleasure or pain to it, is obviously impossible. Inevitably, at the time of questioning, the body must return to a type of life, even if we do not know its specific nature. The venerable Imam Abu al-Barakat al-Nasafi states in 'Umdat al-Kalam:

Arabic	Urdu Translation
The punishment of the grave for the disbelievers and some of the disobedient among the believers, and the bliss for the people of obedience, by restoring life to the body, even if we hesitate regarding the return of the soul, is a truth. 3	The punishment of the grave for disbelievers and some sinful believers, and comfort and reward for the people of obedience, is a truth, in such a way that life is returned to the body even if we have hesitation in the return of the soul. (T)

The leader of the leaders, the master of eras, our master Imam al-Azam (may Allah be pleased with him) states in Fiqh al-Akbar:

Arabic	Urdu Translation
The questioning by Munkar and Nakir in the grave is a truth, and the return of the soul to the servant in the grave is a truth. 4	The questioning of Munkar and Nakir in the grave is a truth, and the return of the soul to the servant in the grave is a truth. (T)

1. Sharh as-Sudur, Chapter on Punishment of the Grave, Khilafat Academy, Mangora, Swat, p. 76.
2. Sharh Fiqh al-Akbar, The connection of the soul to the body of five types, Qayumi Press, Kanpur, India, p. 154.
3. 'Umdat al-Kalam by Nasafi.
4. Fiqh al-Akbar, Malik Sirajuddin & Sons, Lahore, p. 18.

खंड नौ - फतावा रज़विया

अज़ाब (दंड) जो कुछ भी है वह रूह और जिस्म (आत्मा और शरीर) दोनों पर है। इमाम जलील जलालुद्दीन सुयूती 'शर्ह अस-सुदूर' में फ़रमाते हैं:

अरबी	उर्दू अनुवाद
क़ब्र का अज़ाब रूह और बदन दोनों पर एक साथ होता है, अहले सुन्नत की इत्तिफ़ाक़ (सहमति) से, और यही बात कब्र की नेमतों के लिए भी कही गई है। 1	अहले सुन्नत के इत्तिफ़ाक़ से क़ब्र का अज़ाब और क़ब्र की राहत रूह और बदन दोनों में है। (त)

और इस पर शरीअते मुतहरा से बहुत से मशहूर और मुतवातिर नसुस (प्रमाण) मौजूद हैं जिनका पूरा विवरण देना संभव नहीं है। इसी किताब में ज़िक्र की गई अहादीस में इसके बहुत से दलाइल (सबूत) मौजूद हैं जैसा कि आप देख रहे हैं। इसी तरह मुनकर-नकीर का सवाल भी रूह और बदन दोनों से होता है। 'शर्ह फ़िक़्ह अकबर' में है:

अरबी	उर्दू अनुवाद
बरज़ख में सवाल केवल रूह से नहीं होता जैसा कि इब्न हज़्म और अन्य का कहना है, और न ही केवल बे-रूह बदन से होता है, सही हदीसें इन दोनों बातों का खंडन करती हैं। 2	बरज़ख में केवल रूह से सवाल नहीं होता जैसा कि इब्न हज़्म आदि का विचार है, और उससे भी अधिक गलत उनका विचार है जो कहते हैं कि सवाल केवल बे-रूह बदन से है। सही अहादीस दोनों विचारों का खंडन करती हैं। (त)

और निर्जीव वस्तुओं से सवाल करना या उन्हें सुख या दुख पहुँचाना ज़ाहिर तौर पर असंभव है। लिहाज़ा सवाल के समय बदन में एक प्रकार का जीवन लौटना आवश्यक है, चाहे हम उसकी पूरी हकीकत न जानते हों। इमाम अबुल बरकात नसफ़ी 'उम्दतुल कलाम' में फ़रमाते हैं:

अरबी	उर्दू अनुवाद
काफिरों और मोमिनों में से कुछ गुनहगारों के लिए कब्र का अज़ाब, और नेक लोगों के लिए नेमतें बरहक हैं, बदन में ज़िंदगी लौटाने के	काफिरों और कुछ गुनहगार मोमिनों के लिए कब्र का अज़ाब और फरमाबरदारों के लिए राहत व ईनाम हक़ है इस तरह कि बदन में ज़िंदगी लौटा

अरबी	उर्दू अनुवाद
ज़रिए, चाहे हमें रूह लौटाने के बारे में हिचकिचाहट हो। 3	दी जाए चाहे रूह के लौटाने में हमें हिचकिचाहट हो। (त)

इमामों के इमाम, सैयदुना इमाम आज़म (रज़ियल्लाहु अन्हु) 'फ़िक़्ह अकबर' में फ़रमाते हैं:

अरबी	उर्दू अनुवाद
क़ब्र में मुनकर और नकीर का सवाल हक़ है, और क़ब्र में बंदे की तरफ रूह का लौटाना हक़ है। 4	क़ब्र में मुनकर नकीर का सवाल हक़ है, और क़ब्र में बंदे की तरफ रूह का लौटना हक़ है। (त)

1. शर्ह अस-सुदूर, बाब अज़ाबुल कब्र, खिलाफत एकेडमी मंगोरा स्वात, पृ. 76
2. शर्ह फ़िक़्ह अल-अकबर, रूह का बदन से संबंध पांच प्रकार का है, मतबा कय्यूमी कानपुर भारत, पृ. 154
3. उम्दतुल कलाम लिन-नसफ़ी
4. फ़िक़्ह अकबर, मलिक सिराजुद्दीन एंड संस लाहौर, पृ. 18

عذاب جو کچھ ہے روح و جسم دونوں پر ہے۔ امام جلیل جلال الدین سیوطی شرح الصدور میں فرماتے ہیں:

عربی متن **اردو ترجمہ**

عذاب القبر محله الروح والبدن جميعا باتفاق اهل باتفاق اہل سنت عذاب قبر اور آسائش قبر کا محل السنة وكذا القول في التنعيم 1 روح اور بدن دونوں میں ہیں، (ت)

اور اس پر شرع مطہرہ سے نصوص کثیرہ و شہیرہ متواتر دال ہیں جن کے استقصا کی طرف راہ نہیں، اسی کتاب کی احادیث مذکورہ میں بکثرت اس کے دلائل ہیں کما تری، اسی طرح سوال نکیرین بھی روح و بدن دونوں سے ہے۔ شرح فقہ اکبر میں ہے:

عربی متن **اردو ترجمہ**

ليس السوال فی البرزخ للروح وحدها برزخ میں تنہا روح سے سوال نہیں جیسے ابن حزم وغیرہ کما قال ابن حزم وغیرہ منه قول من قال کا قول ہے اور اس سے زیادہ فاسد اس کا قول ہے جو کہتا انه للبدن بلاروح والاحاديث الصحيحة ہے کہ سوال صرف بدن بے روح سے ہے۔ صحیح احادیث ترد الاقولین 2 دونوں قولوں کی تردید فرماتی ہیں۔ (ت)

اور جماد میں حیث ہو جماد سے سوال یا اسے لذت، خواہ الم کا ایصال، بداہۃً محال، لاجرم وقت سوال بدن کو ایک نوع حیات کی عود سے چارہ نہیں، اگرچہ ہم اس کی کیفیت جزئیانہ نہ جانیں، امام اجل ابوالبرکات نسفی عمدۃ الکلام میں فرماتے ہیں:

عربی متن	اردو ترجمہ
عذاب القبر للکفار ولبعض العصاۃ من المؤمنین والانعام لاھل الطاعۃ، باعادۃ الحیاۃ فی الجسد وان توقفنا فی اعادۃ الروح حق 3	کفار اور بعض گنہگار مومنین کے لیے عذاب قبر اور اہل طاعت کے لیے آسائش و انعام حق ہے اس طرح کہ جسم میں زندگی لوٹا دی جائے اگرچہ روح کے لوٹانے میں ہمیں توقف ہو۔ (ت)

امام الائمہ مالک الازمہ سید نا امام اعظم رضی اللہ تعالیٰ عنہ فقہ اکبر میں فرماتے ہیں:

عربی متن	اردو ترجمہ
سوال منکر ونکیر فی القبر حق واعادۃ الروح الی العبد فی قبر حق 4	قبر میں منکر نکیر کا سوال حق ہے، اور قبر میں بندے کی طرف روح کا اعادہ حق ہے۔ (ت)

1. شرح الصدور باب عذاب القبر خلافت اکیڈمی منگورہ سوات ص ۷۶
2. شرح فقہ الاکبر تعلق الروح بالبدن علی خمسہ انواع مطبع قیومی کانپور بھارت ص ۱۵۴
3. عمدۃ الکلام للنسفی
4. فقہ اکبر ملک سراج الدین اینڈ سنز لاہور ص ۱۸

Fatawa Razawiyyah, Volume 9

In the commentary Minh al-Rawd, it is mentioned: (اعادة الروح) (الى) ای ردها وتعلقها (العبد) ای جسده بجمیع اجزائه او ببعضها مجتمعة او متفرقة (فی قبره حق) والواو لمجرد الجمعیة فلا ینافی ان السوال بعد اعادة الروح وکمال الحال. (The return of the soul) i.e., its restoration and its connection (to the servant), i.e., to his body, whether with all its parts or some of them, joined or separated (in his grave, is a truth). And the "waw" (and) is merely for conjunction, so it does not contradict that the questioning occurs after the return of the soul and the completion of the state. (T)

[1] Sharh Fiqh al-Akbar, under the mentioned text, Qayumi Press, Kanpur, India, p. 121.

In the same work, it is mentioned: اعلم ان اهل الحق اتفقوا علی ان اللہ تعالیٰ یخلط فی المیت نوع حیاة فی القبر قدر مایتألم ویتلذذ ولکن اختلفوا فی انه هل یعاد الروح الیه والمنقول عن ابی حنیفه رضی اللہ تعالیٰ عنه التوقف الا ان کلامه هنا یدل علی اعادة الروح اذ جواب الملکین فعل اختیاری فلا یتصور بدون الروح وقیل قد یتصور الخ. Know that the People of Truth have agreed that Allah the Almighty creates a type of life in the deceased in the grave, to the extent that they feel pain and pleasure. However, they differed on whether the soul is returned to him. It is reported from Imam Abu Hanifa (may Allah be pleased with him) that he paused on this matter. Yet his words here indicate the return of the soul, because answering the two angels is a voluntary act, which is inconceivable without the soul. And it was said that it is conceivable, etc. (T)

[2] Sharh Fiqh al-Akbar, under the subsequent text, Qayumi Press, Kanpur, India, p. 122.

Imam ibn al-Humam says in Fath al-Qadir: الحق ان المیت المعذب فی قبره توضع فیه الحیاة بقدر ما یحس الالم والبدنیة لیست بشرط عند اهل السنه حتی لوکان متفرق الاجزاء بحیث لاتتمیز الاجزاء بل هی مختلطة بالتراب فعذب جعلت الحیاة. The truth is that life is placed in the deceased being punished in his grave to the extent that he feels pain. And the body is not a condition according to the People of the Sunnah, so even if its parts were so scattered that they could not be distinguished, but rather mixed with soil, then life is given so that punishment can be administered.

फ़तावा रज़विया, जिल्द 9

इसी की शरह मिन्हा अर-रौज़ में है: (اعادۃ الروح) ای جسدہ بجمیع (الی العبد) ای ردھا وتعلقھا اجزائہ او ببعضھا مجتمعۃ او متفرقۃ (فی قبرہ حق) والواو لمجرد الجمعیۃ فلا ینافی ان السوال بعد اعادۃ الروح وکمال الحال। (रूह का इआदा) यानी उसे लौटाना और उसका ताल्लुक़ होना (बन्दे की तरफ़) यानी उसके बदन की तरफ़, जो अपने तमाम अजज़ा के साथ हो या बाज़ के साथ हो, ये मुजतमे (इकट्ठे) हों या मुन्तशिर (बिखरे) हों (उसकी क़ब्र के अन्दर हक़ है) और "वाव" महज़ जमईयत (जोड़ने) के लिए होता है, तो इसके मनाफ़ी (विपरीत) नहीं कि सवाल रूह लौटाने और हालत कामिल (पूर्ण) हो जाने के बाद होगा। (त)

[1] शरह फ़िक़्ह-ए-अकबर, तहत इबारत मज़कूरा, मताबे क़य्यूमी, कानपुर, भारत, पृ. 121.

उसी में है: اعلم ان اھل الحق اتفقوا علی ان اللہ تعالیٰ یخلط فی المیت نوع حیاۃ فی القبر قدر مایتألم ویتلذذ ولکن اختلفوا فی انہ ھل یعاد الروح الیہ والمنقول عن ابی حنیفہ رضی اللہ تعالیٰ عنہ التوقف الا ان کلامہ ھنا یدل علی اعادۃ الروح اذ جواب الملکین فعل اختیاری فلا یتصور بدون الروح وقیل قد یتصور الخ। जान लो कि अहल-ए-हक़ का इस पर इत्तेफ़ाक़ है कि अल्लाह तआला मय्यत के अन्दर क़ब्र में एक तरह की ज़िन्दगी पैदा कर देता है। इतनी कि वो लज़्ज़त-ओ-अलम (सुख और दुःख) का एहसास करे, मगर इसमें उनका इख़्तेलाफ़ (मतभेद) है, कि उसकी जानिब रूह लौटाई जाती है या नहीं, और इमाम अबू हनीफ़ा रज़ियल्लाहु तआला अन्हु से मनक़ूल (वर्णित) ये है कि तवक्कुफ़ (मौन) किया जाए। मगर यहाँ पर उनका कलाम इआदा-ए-रूह पर दाल (सूचक) है इसलिए कि निकीरैन का जवाब एक फ़ेल-ए-इख़्तियारी (स्वैच्छिक कार्य) है तो वो बग़ैर रूह के मुसव्वर (कल्पनीय) नहीं, और कहा गया कि मुसव्वर है। (त)

[2] शरह फ़िक़्ह-ए-अकबर, तहत इबारत मा-बाद, मताबे क़य्यूमी, कानपुर, भारत, पृ. 122.

इमाम इब्न अल-हुमाम इसी फ़तहु अल-क़दीर में फ़रमाते हैं: الحق ان المیت المعذب فی قبرہ توضع فیہ الحیاۃ بقدر ما یحس الالم والبدنیۃ لیست بشرط عند اھ السنہ حتی لوکان متفرق الاجزاء بحیث لاتتمیز الاجزاء بل ھی مختلطۃ بالتراب فعذب جعلت الحیاۃ। हक़ ये है कि क़ब्र में अज़ाब दिए जाने वाले मुर्दे के अन्दर इतनी ज़िन्दगी रखी जाती है कि वो अलम (दुःख) का एहसास करे और ये बदन इसके लिए शर्त नहीं यहाँ तक कि अगर इसके अजज़ा इस तरह बिखर

चुके हों कि इम्तियाज़ (पहचान) न हो सके बल्कि मिट्टी से ख़लत-मलत हो गए हों, फिर अज़ाब दिया जाए (तो ज़िन्दगी दी जाती है)।

पृष्ठ 854/948

فتاوٰی رضویہ، جلد نہم

اسی کی شرح منح الروض میں ہے: (اعادۃ الروح) ای ردھا وتعلقھا (الی العبد) ای جسدہ بجمیع اجزائہ او ببعضھا مجتمعۃ او متفرقۃ (فی قبرہ حق) والواو لمجرد الجمعیۃ فلا ینافی ان السوال بعد اعادۃ الروح وکمال الحال۔ (روح کا اعادہ) یعنی اسے لوٹانا اور اس کا تعلق ہونا (بندے کی طرف) یعنی اس کے بدن کی طرف، جو اپنے تمام اجزاء کے ساتھ ہو یا بعض کے ساتھ ہو یہ مجتمع ہوں یا منتشر ہوں (اس کی قبر کے اندر حق ہے) اور "واو" محض جمعیت کے لئے ہوتا ہے تو اس کے منافی نہیں کہ سوال روح لوٹانے اور حالت کامل ہوجانے کے بعد ہوگا۔ (ت)

[1] شرح فقہ اکبر تحت عبارت مذکورہ مطبع قیومی کانپور بھارت ص ۱۲۱

اسی میں ہے: اعلم ان اھل الحق اتفقوا علی ان اللہ تعالٰی یخلط فی المیت نوع حیاۃ فی القبر قدر مایتألم ویتلذذ ولکن اختلفوا فی انہ ھل یعاد الروح الیہ والمنقول عن ابی حنیفہ رضی اللہ تعالٰی عنہ التوقف الا ان کلامہ ھنا یدل علی اعادۃ الروح اذ جواب الملکین فعل اختیاری فلا یتصور بدون الروح وقیل قد یتصور الخ۔ جان لو کہ اہل حق کا اس پر اتفاق ہے کہ اللہ تعالٰی میت کے اندر قبر میں ایک طرح کی زندگی پیدا کردیتا ہے۔ اتنی کہ وہ لذت والم کا احساس کرے، مگر اس میں ان کا اختلاف ہے، کہ اس کی جانب روح لوٹائی جاتی ہے یا نہیں، اور امام ابوحنیفہ رضی اللہ تعالٰی عنہ سے منقول یہ ہے کہ توقف کیا جائے۔ مگر یہاں پر ان کا کلام اعادہ روح پر دال ہے اس لیے کہ نکیرین کا جواب ایک فعل اختیاری ہے تو وہ بغیر روح کے متصور نہیں اور کہا گیا کہ متصور ہے۔ (ت)

[2] شرح فقہ اکبر تحت عبارت مابعد مطبع قیومی کانپور بھارت ص ۱۲۲

امام ابن الہمام اسی فتح القدیر میں فرماتے ہیں: الحق ان المیت المعذب فی قبرہ توضع فیہ الحیاۃ بقدر ما یحس الالم والبدنیۃ لیست بشرط عند اھل السنہ حتی لوکان متفرق الاجزاء بحیث لاتتمیز الاجزاء بل ھی مختلطۃ بالتراب فعذب جعلت الحیاۃ۔ حق یہ ہے کہ قبر میں عذاب دئے جانے والے مردے کے اندر اتنی زندگی رکھی جاتی ہے کہ وہ الم کا احساس کرے اور یہ بدن اس کے لئے شرط نہیں یہاں تک کہ اگر اس کے اجزاء اس طرح بکھر چکے ہوں کہ امتیاز نہ ہو سکے بلکہ مٹی سے خلط ملط ہو گئے ہوں پھر عذاب دیا جائے۔

Fatawa Rizvia, Volume 9

| (Arabic): Regarding those parts which are not visible to the eye, indeed Allah is capable of that. The disagreement, if it is based on the denial of the punishment of the grave, might be possible; otherwise, it is inconceivable for a sane person to say that there will be punishment without sensation. | (Urdu): So, life will be restored in those very parts which are not visible, and undoubtedly Allah is capable of it. If the disagreement is due to the denial of the punishment of the grave, then it is a different matter; otherwise, it is not conceivable for any rational person to believe that there would be punishment without sensation. (T) |

It has been clarified above regarding the soul that its life is continuous and uninterrupted. However, for the body, even after its return, permanence is not necessary because it is a special connection for a specific purpose, upon the completion of which its cessation is justified. Imam Badr al-Din 'Ayni, in 'Umdat al-Qari Sharh al-Bukhari, in response to the Mu'tazilites, states the proofs for the establishment of the punishment of the grave:

| (Arabic): For us, there are several verses. One of them is the statement of the Almighty: "The Fire, they are exposed to it morning and evening." This is explicit regarding punishment. Second is the statement of the Almighty: "Our Lord, You have made us die twice and given us life twice." Allah Almighty mentioned death twice, and these two cannot be realized unless there is life and death in the grave, so that one of the two deaths occurs after life in this world, and the other occurs after the life that is in the grave. | (Urdu): There are several verses in support of our argument. One is the statement of Allah Almighty: "They (Pharaoh and his companions) are presented before the Fire morning and evening." This is explicit about being punished after death. The second verse is the statement of the Lord: "O our Lord! You gave us death twice and gave us life twice." Allah Almighty has mentioned death twice. This will only happen if there is life and death in the grave, as one death is that which follows worldly life, and the other is that which follows the life in the grave. (T) |

In Sharh al-Sudur, it is mentioned from Bada'i':

| (Arabic): I transcribed from the handwriting of Qadi Abu Ya'la in his marginal notes: The punishment of the grave must come to an end because it is part of the punishment of this world, and this world and whatever is in it is transitory, so it must... | (Urdu): From the manuscript of Qadi Abu Ya'la, which is in his 'Taliqat'

(annotations), I have quoted that it is necessary for the punishment of the grave to be intermittent because it belongs to the same category as worldly punishment. |

---

1. Fath al-Qadir, Chapter on Oath regarding Striking and Killing, Nuria Rizvia, Sukkur, 4/260.
2. 'Umdat al-Qari Sharh Bukhari, Chapter: The Deceased Hears the Sound of Sandals, Idarat al-Tiba'at al-Muniriya, Egypt, 8/26-125.

फ़तवा रिज़विया, खंड 9

| (अरबी): उन अंगों के बारे में जो आँखों से ओझल हैं, निश्चित रूप से अल्लाह उस पर सक्षम है। असहमति, यदि वह कब्र के अज़ाब (दंड) के इनकार पर आधारित है, तो संभव हो सकती है; अन्यथा, किसी बुद्धिमान व्यक्ति के लिए यह कहना अकल्पनीय है कि बिना संवेदना के अज़ाब होगा। | (उर्दू): तो जीवन उन्हीं अंगों में डाल दिया जाएगा जो दिखाई नहीं देते, और निस्संदेह अल्लाह इस पर सक्षम है। यदि असहमति कब्र के अज़ाब के इनकार के कारण है, तो हो सकती है; अन्यथा, किसी भी बुद्धिमान व्यक्ति से यह कल्पना नहीं की जा सकती कि वह इस बात का कायल हो कि संवेदना के बिना अज़ाब होगा। (त) |

आत्मा के संबंध में तो ऊपर स्पष्ट हो चुका है कि उसका जीवन निरंतर और अटूट है। लेकिन शरीर के लिए, पुनरागमन के बाद भी निरंतरता आवश्यक नहीं है क्योंकि वह एक विशेष उद्देश्य के लिए एक विशेष संबंध होता है, जिसके पूरा होने पर उसका अंत उचित है। इमाम बदरुद्दीन ऐनी 'उमदतुल क़ारी शरह अल-बुखारी' में मुअतज़िला के जवाब में कब्र के अज़ाब को सिद्ध करने के प्रमाणों में फरमाते हैं:

| (अरबी): हमारे लिए कई आयतें हैं। उनमें से एक सर्वशक्तिमान का यह कथन है: "आग, वे सुबह और शाम उसके सामने पेश किए जाते हैं।" यह दंड के बारे में स्पष्ट है। दूसरी सर्वशक्तिमान की बात है: "हे हमारे पालनहार, तूने हमें दो बार मृत्यु दी और हमें दो बार जीवन दिया।" अल्लाह सर्वशक्तिमान ने दो बार मृत्यु का उल्लेख किया है, और ये दो तब तक संभव नहीं हैं जब तक कि कब्र में जीवन और मृत्यु न हो, ताकि दो मौतों में से एक वह हो जो दुनिया के जीवन के बाद होती है, और दूसरी वह जो कब्र के जीवन के बाद होती है। | (उर्दू): हमारे तर्क में कई आयतें हैं। एक अल्लाह तआला का यह इरशाद है: "वे (फ़िरऔन और उसके साथी) सुबह और शाम आग पर पेश किए जाते हैं।" यह मौत के बाद अज़ाब दिए जाने के बारे में स्पष्ट है। दूसरी आयत, अल्लाह का इरशाद: "ऐ हमारे रब्ब! तूने दोबारा हमें मौत दी और दोबारा जीवन दिया।" अल्लाह तआला ने दो बार मौत का ज़िक्र फरमाया है। यह तभी होगा जब कब्र में मौत और जीवन हो, कि एक मौत तो वह है जो दुनिया की ज़िंदगी के बाद होती है और दूसरी वह जो कब्र वाली ज़िंदगी के बाद होती है। (त) |

'शरहुस सुदूर' में 'बदाइअ' से है:

| (अरबी): मैंने काज़ी अबू याला के हस्तलिखित हाशिये (ताअलीक़ात) से उद्धृत किया है: कब्र के अज़ाब का समाप्त होना आवश्यक है क्योंकि यह दुनिया के अज़ाब में से है, और दुनिया और जो कुछ इसमें है वह नश्वर है, इसलिए यह आवश्यक है कि... | (उर्दू): काज़ी अबू याला की कलम से लिखी गई तहरीर जो उनकी 'ताअलीक़ात' में है, उससे मैंने नकल किया है कि कब्र के अज़ाब का रुक जाना ज़रूरी है क्योंकि वह दुनियावी अज़ाब की श्रेणी से है। |

---

1. फ़तह अल-क़दीर, प्रहार और हत्या के संबंध में शपथ का अध्याय, नूरिया रिज़विया, सुक्कुर, 4/260।
2. 'उमदतुल क़ारी शरह बुखारी', अध्याय: मृतक सैंडल की आहट सुनता है, इदारात अल-तिबा'त अल-मुनीरिया, मिस्र, 8/26-125।

पृष्ठ 855/948

| في تلك الاجزاء التی لایأخذها البصروان الله علی ذلك لقدیر والخلاف فیه ان کان بناء علی عذاب القبر امکن والا یتصور من عاقل القول بلا عذاب مع عدم الاحساس - 1 | تو حیات ان ہی اجزاء میں کر دی جائے گی جو نظر نہیں آتے اور بلا شبہ اللہ اس پر قادر ہے۔ اس سے اختلاف اگر عذاب قبر سے انکار کی بنا پر ہو تو ہو سکتا ہے ورنہ کسی عاقل سے متصور نہیں کہ وہ اس کا قائل ہو کہ بغیر احساس کے عذاب ہو گا۔ (ت) |

پھر روح کی نسبت تو اوپر واضح ہو چکا کہ اس کی حیات مستمرہ غیر منقطعہ ہے۔ مگر بدن کے لیے بعد عود بھی استمرار ضروری نہیں کہ وہ ایک تعلق خاص بمقصد خاص ہوتا ہے جس کے انصرام پر اس کا انقطاع بجا ہے۔ امام بدرالدین عینی عمدۃ القاری شرح البخاری میں بجواب معتزلہ دلائل اثبات عذاب قبر میں فرماتے ہیں :

| لنا آیات احدها قوله تعالی النار یعرضون علیها غد وا عشیا، فهو صریح في التعذیب الموت الثانیة قوله تعالی ربنا امتنا اثنتین واحییتنا اثنتین فان الله تعالی ذکر الموتة مرتین وهما لا تتحققان الا ان یکون في القبر حیاة وموت حتی تکون احدی الموتتین ما یتحصل عقیب الحیاة في الدنیا والاخری ما یتحصل عقیب الحیاة التی في القبر- 2 | ہماری دلیل میں متعدد آیتیں ہیں ایک باری تعالٰی کا یہ ارشاد "وہ (فرعون اور اس کے ساتھی) صبح و شام آگ پر پیش کئے جاتے ہیں" یہ بعد موت عذاب دیئے جانے کے بارے میں صریح ہے دوسری آیت، ارشاد باری: "اے ہمارے رب! تو نے دوبارہ ہمیں موت دی اور دوبارہ حیات دی" اللہ تعالٰی نے دو بار موت کا ذکر فرمایا ہے۔ یہ اسی وقت ہو گا جب قبر میں موت وحیات ہو کہ ایک موت تو وہ ہے جو دنیا کی زندگی کے بعد ہوتی ہے اور دوسری وہ جو قبر والی زندگی کے بعد ہوتی ہے۔ (ت) |

شرح الصدور میں بدائع سے ہے :

| نقلت من خط القاضي ابی یعلی في تعالیقه لابد من انقطاع عذاب القبر لانه من عذاب الدنیا والدنیا و ما فیها منقطع فلابد ان | قاضی ابویعلی کی قلمی تحریر جو ان کی تعلیقات میں ہے، اس سے میں نے نقل کیا ہے کہ عذاب قبر کا منقطع ہونا ضروری ہے اس لیے کہ وہ عذاب دنیا کی جنس سے ہے |

---

1 فتح القدیر باب الیمین فی الضرب والقتل نوریہ رضویہ سکھر ۴/۲۶۰ 2 عمدة القاری شرح بخاری باب المیت یسمع خفق النعال ادارة الطباعة المنیریة مصر ۸/۲۶-۱۲۵

Fatawa Razawiyya Volume 9

Annihilation and decay overtake them; the duration of this is unknown.	**Everything in the world and the world itself is finite, so it is necessary for them to be afflicted with annihilation and decomposition, and the duration of this period is not known. (T)**

Then he said:

| I said, this is supported by what Hannad ibn al-Sari narrated in "Az-Zuhd" from Mujahid, who said: For the disbelievers, there will be a state of slumber in which they find the taste of sleep until the Day of Resurrection. When the people of the graves are summoned, the disbeliever will say, "Woe to us! Who has raised us from our sleeping place?" Then the believer next to him will say, "This is what the Most Merciful promised, and the messengers spoke the truth." | I said: This is supported by what Hannad bin Sari narrated in "Zuhd" from Imam Mujahid, who said that for the disbelievers, there will be a slumber in which they will experience the pleasure of sleep until the Day of Resurrection. When the inhabitants of the graves are called, the disbeliever will say: "Alas for our ruin! Who has raised us from our resting place?" Then the believer from his side will say: "This is what the Merciful promised and the messengers spoke the truth." (T) |

Fourth Introduction: Hearing (Sam') and Sight (Basar), linguistically and conventionally, refer to the perception of colors, lights, and sounds through the senses of the eye and the ear. In Al-Qamus it says: As-Sam' is the sense of the ear (Hearing is the name of the ear's sense. T). In the same, it says: "Al-Basar" with a vowel on the 'saad' is the sense of the eye (Basar, with the movement of the 'saad', is the name of the eye's sensation. T). Similarly, in Taj al-Arus it is from Al-Muhkam. In As-Sahah of Al-Jawhari and Mukhtar al-Razi it says: Al-Basar is the sense of vision (Basar is the sense of sight. T). In Al-Misbah al-Munir it says: Al-Basar is the light by which the organ perceives (Basar is that light through which the organ gains perception. T). In the same it says: "I saw the thing with the sense of sight" (I saw the thing, meaning I saw it with the sense of sight). On this meaning, it is stated in Mawaqif and its commentary: Auditory perception only occurs by the air reaching the ear canal (Auditory perception is achieved when the air reaches the ear canal. T).

1. Sharh as-Sudur and end of chapter on the punishment of the grave, Khilafat Academy, Mingora, Swat, p. 76

2. Sharh as-Sudur and end of chapter on the punishment of the grave, Khilafat Academy, Mingora, Swat, p. 76
3. Al-Qamus al-Muhit, chapter 'Ain', section 'Seen', Mustafa al-Babi, Egypt, 3/41
4. Al-Qamus al-Muhit, chapter 'Ra', section 'Ba', Mustafa al-Babi, Egypt, 1/387
5. As-Sahah by al-Jawhari, under the word "Basar", Dar al-Ilm lil-Malayin, Beirut, 1/591
6. Al-Misbah al-Munir, book of 'Ba', Publications of Dar al-Hijrah, Qom, Iran, 1/50
7. Al-Misbah al-Munir, book of 'Ra', Publications of Dar al-Hijrah, Qom, Iran, 1/72
8. Sharh al-Mawaqif, fifth observatory regarding sight, Publications of ash-Sharif ar-Radi, Iran, 1/201

फ़तावा रज़विया जिल्द नहम

उन पर विनाश और क्षय हावी हो जाता है; इस अवधि का परिमाण ज्ञात नहीं है।

और दुनिया और दुनिया के अंदर जो कुछ है सब मन्क़ते (नश्वर) है तो उन्हें फ़ना और बोसीदगी (गलना-सड़ना) लाहिक होना ज़रूरी है और इस मुद्दत की मिक़दार मालूम नहीं। (त)

फिर फरमाया:

| मैंने कहा: इसका समर्थन हन्नाद बिन अल-सरी द्वारा "अज़-ज़ुहद" में मुजाहिद से उद्धृत विवरण से होता है, उन्होंने कहा: काफ़िरों के लिए एक नींद की स्थिति होगी जिसमें वे क़यामत के दिन तक नींद का स्वाद पाएंगे। जब कब्र वालों को पुकारा जाएगा, तो काफ़िर कहेगा, "हाय हमारी बर्बादी! हमें हमारे शयनकक्ष से किसने उठाया?" फिर उसके पास वाला मोमिन कहेगा, "यही वह है जिसका रहमान ने वादा किया था और रसूलों ने सच कहा था।" | मैंने कहा: इसकी मोय्यद (पुष्टि) वह है जो हन्नाद बिन सरी ने ज़ुहद में इमाम मुजाहिद से रिवायत किया, फ़रमाया काफ़िरों के लिये एक ख़्वाबीदगी (नींद की अवस्था) होगी जिसमें नींद का मज़ा पायेंगे क़यामत तक जब क़ब्र वालों को पुकारा जायेगा काफ़िर बोलेगा: हाय हमारी ख़राबी! किस ने हमें हमारी ख़्वाब गाह से उठाया तो उस के पहलू से मोमिन बोलेगा: यही वो जिस का रहमान ने वादा दिया और रसूलों ने सच फ़रमाया। (त) |

मुक़द्दमा राबेआ: सम्अ (सुनना) व बसर (देखना) लुगवी व उर्फ़ी तौर पर रंगों, रोशनियों और आवाज़ों के बोध का नाम है जो आँख और कान की इंद्रियों द्वारा होता है। क़ामूस में है: अस-सम्अ कान का एहसास है (सुनना कान की हिस्स का नाम है। त) उसी में है: "अल-बसर" 'साद' की हरकत के साथ आँख का एहसास है (बसर 'साद' की हरकत के साथ आँख के अहसास का नाम है। त) इसी तरह ताजुल उरूस में मुह्कम से है। सिहाह जौहरी व मुख़्तार राज़ी में है: अल-बसर हासए रोयत (देखने की इंद्रिय) है (बसर हासए रोयत है। त) अल-मिस्बाह अल-मुनीर में है: अल-बसर वो नूर है जिससे वज़ू (अंग) को बोध होता है (बसर वो नूर है जिससे उज़्व को इदराक होता है। त) उसी में है: और मैंने चीज़ को बसर (दृष्टि) की इंद्रिय से देखा (मैंने चीज़ को देखा यानी मैंने उसे हासए बसर से देखा)। इसी मानी पर मवाकिफ़ व शरह मवाकिफ़ में फ़रमाया: समाई बोध हवा के कान के छेद तक पहुँचने से हासिल होता है (सम्ई इदराक तब हासिल होता है जब हवा सिमाख़ तक पहुँच जाए। त)

1. शरह अस-सुदूर और आख़िर बाब अज़ाबुल क़ब्र ख़िलाफ़त एकेडमी मिंगोरा स्वात स. 76
2. शरह अस-सुदूर और आख़िर बाब अज़ाबुल क़ब्र ख़िलाफ़त एकेडमी मिंगोरा स्वात स. 76

3. अल-क़ामूस अल-मुहीत बाबुल ऐन फ़स्लुस सीन मुस्तफ़ा अल-बाबी मिस्र 3/41
4. अल-क़ामूस अल-मुहीत बाबुर रा फ़स्लुल बा मुस्तफ़ा अल-बाबी मिस्र 1/387
5. अस-सिहाह लिल-जौहरी तह्त लफ़्ज़ "बसर" दारुल इल्म लिल-मलाईयिन बेरुत 1/591
6. अल-मिस्बाह अल-मुनीर किताबुल बा मंशूरात दारुल हिजरह कुम ईरान 1/50
7. अल-मिस्बाह अल-मुनीर किताबुर रा मंशूरात दारुल हिजरह कुम ईरान 1/72
8. शरह अल-मवाकिफ़ अल-मरसद अल-ख़ामिस फ़िन-नज़र मंशूरात अश-शरीफ़ अर-रज़ी ईरान 1/201

فتاوی رضویہ جلد نہم

یلحقهم الفناء والبلاء لا یعرف مقدار مدة ذلك. (ت)

اور دنیا اور دنیا کے اندر جو کچھ ہے سب منقطع ہے تو انہیں فنا اور بوسیدگی لاحق ہونا ضروری ہے اور اس مدت کی مقدار معلوم نہیں۔

پھر فرمایا:

| قلت ویؤید هذا ما خرجه هناد بن السری في الزهد عن مجاهد قال للکفار هجعة یجدون فیها طعام النوم حتی یوم القیامة فاذا صیح بأهل القبور یقول الکافر یویلنا من بعثنا من مرقدنا فیقول المؤمن الی جنبیه هذا ما وعد الرحمن وصدق المرسلون. | میں نے کہا: اس کی مؤید وہ ہے جو ہناد بن سری نے زہد میں امام مجاہد سے روایت کیا، فرمایا کفار کیلئے ایک خوابیدگی ہوگی جس میں نیند کا مزہ پائیں گے قیامت تک جب قبر والوں کو پکارا جائے گا کافر بولے گا: ہائے ہماری خرابی! کس نے ہمیں ہماری خواب گاہ سے اٹھایا تو اس کے پہلو سے مومن بولے گا: یہی وہ جس کا رحمن نے وعدہ دیا اور رسولوں نے سچ فرمایا۔ (ت) |

مقدمہ رابعہ: سمع و بصر لغویہ و عرفاً ادراک الوان و اضواء و اصوات بحاسہ چشم و گوش کا نام ہے۔ قاموس میں ہے: السمع حس الاذن (سماعت کان کی حس کا نام ہے۔ت) اسی میں ہے: "البصر" محرکة حس العین (بصر صاد کی حرکت کے ساتھ آنکھ کے احساس کا نام ہے۔ ت) اسی طرح تاج العروس میں محکم سے ہے۔ صحاح جوہری و مختار رازی میں ہے: البصر حاسة الرئویة (بصر حاسہ رؤیت ہے۔ ت) المصباح المنیر میں ہے: البصر النور الذی تدرك به الجارحة (بصر وہ نور ہے جس سے عضو کو ادراک ہوتا ہے۔ ت) اسی میں ہے: ورأیت الشیئ رؤیت بحاسة البصر (میں نے شیئ کو دیکھا یعنی میں نے اسے حاسہ بصر سے دیکھا) اسی معنی پر مواقف و شرح مواقف میں

فرمایا انما یحصل الادراك السمعی بوصل الهواء الی الصماخ (سمعی ادراک تب حاصل ہوتا ہے جب ہوا صماخ تک پہنچ جائے۔ ت)

1 شرح الصدر و آخر باب عذاب القبر خلافت اکیڈمی منگورہ سوات ص ۷۶ 2 شرح الصدر و آخر باب عذاب القبر خلافت اکیڈمی منگورہ سوات ص ۷۶ 3 لقاموس المحیط باب العین فصل السین مصطفی البابی مصر ۳/ ۴۱ 4 القاموس المحیط باب الراء فصل الباء مصطفی البابی مصر ۱/ ۳۸۷ 5 الصحاح للجوہری تحت لفظ "بصر" دار العلم للملایین بیروت ۱/ ۵۹۱ 6 المصباح المنیر کتاب الباء منشورات دار الہجرۃ قم ایران ۱/ ۵۰ 7 المصباح المنیر کتاب الراء منشورات دار الہجرۃ قم ایران ۱/ ۷۲ 8 شرح المواقف المرصد الخامس فی النظر منشورات الشریف الرضی ایران ۱/ ۲۰۱

Fatawa Ridawiyya Volume Nine

...it occurs by air reaching the ear hole. (T) And the commentator mentioned in the discussions on vision: Perception by sight depends on three things: facing the object of vision, and turning the pupil towards it in search of seeing it.

Note 1: That is, for the object itself or its reflection imprinted in something like a mirror, whether according to the theory of 'imprinting' (intiba') or according to the theory of 'outgoing rays' (khuruj al-shu'a'). Facing the object is achieved in both cases due to reflection. I say: The inclination of our jurists (Fuqaha) is towards the theory of imprinting, that vision occurs through it. That inclination is known from their explicit statement that when a man sees a woman's private parts while she is in the water, the prohibition of affinity (hurmat al-musaharah) is established. But if he sees her private parts in the water while she is outside the water, it is not established. This is because, in the first case, he saw the private parts themselves, and in the second case, he only saw their likeness, not the parts themselves, as mentioned in Al-Khaniyah and others. Had they held the view of reflection (in'ikas), then seeing the private parts themselves would have been established in both cases. This should be remembered because I have not seen anyone point this out. Then I saw the researcher (Muhaqqiq) pointing it out in Fath al-Qadir, and all praise is due to Allah. 12 (m)

Note 2: I say: The condition of 'seeking' is incidental, for seeking to see is not a condition. What is meant by removal is the absence [of a barrier], whether original or occurring through the action of the viewer or someone else. 12 (m) (T) I say: The restriction of 'seeking' is incidental because seeking to see is not a condition; and by removal is meant that there is no veil, whether it was absent from the start or became removed later by the viewer or by someone else's action. 12 (m) (T)

Page 857 of 948

फ़तावा-ए-रज़विया जिल्द नवीं

...कान के छेद तक हवा पहुँचने से होता है। (त) और टीकाकार ने दृष्टि की चर्चाओं में उल्लेख किया है: दृष्टि द्वारा बोध तीन चीज़ों पर निर्भर है: देखने वाले के सामने होना, और उसे देखने की चाह में पुतली को उसकी ओर मोड़ना।

नोट 1: अर्थात, स्वयं दृश्य वस्तु के लिए या दर्पण जैसी किसी चीज़ में अंकित उसके प्रतिबिंब के लिए, चाहे 'अंकन' (इंतिबाअ) के सिद्धांत के अनुसार हो या 'किरणों के निकलने' (खुरुज अश-शुआ') के सिद्धांत के अनुसार। परावर्तन के कारण दोनों ही स्थितियों में दृश्य का सामना प्राप्त होता है। मैं कहता हूँ: हमारे न्यायविदों (फ़ुक़हा) का झुकाव अंकन के सिद्धांत की ओर है, कि दृष्टि अंकन के माध्यम से होती है। वह झुकाव उनकी इस स्पष्ट व्याख्या से पता चलता है कि जब कोई पुरुष पानी में मौजूद किसी महिला के गुप्तांग देखता है, तो वैवाहिक संबंध की निषेधता (हुर्मत-ए-मुसाहरत) स्थापित हो जाती है। लेकिन यदि वह महिला पानी से बाहर हो और पुरुष पानी में उसके गुप्तांग देखे, तो यह स्थापित नहीं होती। ऐसा इसलिए है क्योंकि पहली स्थिति में उसने स्वयं गुप्तांग देखे, और दूसरी स्थिति में उसने केवल उनका प्रतिरूप देखा, न कि स्वयं गुप्तांग, जैसा कि अल-खानिया आदि में है। यदि वे परावर्तन (इनेकास) के सिद्धांत को मानते, तो दोनों स्थितियों में स्वयं गुप्तांग का दिखना स्थापित हो जाता। इसे याद रखना चाहिए क्योंकि मैंने किसी को इस ओर ध्यान दिलाते हुए नहीं देखा। फिर मैंने शोधकर्ता (मुहक़्क़िक़) को देखा कि उन्होंने फतह अल-क़दीर में इसकी ओर संकेत किया है। और सारी प्रशंसा अल्लाह ही के लिए है। 12 (म)

नोट 2: मैं कहता हूँ: 'चाहने' (तलब) की शर्त संयोगवश है, क्योंकि देखने की चाह शर्त नहीं है। हटाने से तात्पर्य [बाधा की] अनुपस्थिति है, चाहे वह मूल रूप से न रही हो या बाद में देखने वाले या किसी और के कार्य से हट गई हो। 12 (म) (त) मैं कहता हूँ: 'तलब' की पाबंदी इत्तिफ़ाक़ी (संयोगवश) है क्योंकि देखने की तलब शर्त नहीं है; और हटाने (इज़ाला) से मुराद यह है कि पर्दा न हो, चाहे वह शुरू से ही न रहा हो या बाद में देखने वाले या किसी और के काम से ज़ायल (हठ) गया हो। 12 (म) (त)

पृष्ठ 857 of 948

کان کے سوراخ تک ہوا پہنچنے سے ہوتا ہے۔ ت) اور شارح نے مباحث نظر میں ذکر کیا :

الادراک بالبصر یتوقف علی امور ثلثۃ مواجھۃ البصر عہ۱ | نگاہ سے ادراک تین امور پر موقوف ہے : نظر کا روبرو ہونا ، و تقلیب الحدقۃ نحوہ طلباً لرؤیتہ عہ۲ | آنکھ کی پتلی کو اس کی جانب اسے دیکھنے کی طلب

عہ۱: ای للمبصر نفسہ اوشجہ المنطبع فی نحو مرآۃ | یعنی نگاہ کا خود مرئی کے سامنے ہونا یا اس کی مثال کہ جو آئینہ وغیرہ علی القول بالانطباع ام علی القول بخروج الشعاع | میں منطبع ہو یہ اس قول پر کہ آئینہ میں شئی کی صورت مطبع فمقابلۃ المبصر حاصلۃ فی الوجھین لاجل الانعکاس | ہوتی ہے او شعاع بصری نکلنے والے قول پر تو مرئی کا سامنا انعکاس کی اقول و میل ائمتنا الفقہاء الی القول بالانطباع ھو | وجہ سے دونوں صورتوں میں حاصل ہے۔ اقول ہمارے ائمہ فقہا کا ان یقولوا اکون الابصار بہ، وبذالک بأنھم صرحوا | میلان قول انطباع کی طرف ہے کہ رؤیت انطباع سے واقع ہوتی ان الرجل اذا رأی فرج امرأۃ وھی فی الماء تثبت | ہے۔ وہ میلان یوں معلوم ہوتا ہے کہ ان حضرات نے تصریح حرمۃ المصاھرۃ، ولو رأی فرجھا فی الماء لامنہ وھی | فرمائی ہے کہ جب عورت پانی کے اندر ہو اور کوئی مرد اس کی خارجۃ لم تثبت لانہ علی الاول رأی فرجھا وعلی | شرمگاہ دیکھے تو حرمتِ مصاہرت ثابت ہو جاتی ہے، اور جب عورت الثانی انما رأی شبھہ لانفسہ کما فی الخانیۃ وغیرھا، | پانی سے باہر ہے اور مرد نے پانی سے نہیں بلکہ پانی میں اس کی فلو قالوا بالانعکاس لکان رای نفس الفرج فی الصور | شرمگاہ دیکھی تو حرمت نہ ثابت ہو گی، اس لیے کہ پہلی صورت میں تین، "فلیحفظ"فانی لم ار من نبہ علی ثم رأیت | اس نے خود شرمگاہ دیکھی اور دوسری صورت میں خود شرمگاہ نہیں المحقق نبہ علی فی فتح القدیر واللہ الحمد ۱۲منہ

(م) | بلکہ اس کی مثال دیکھی، جیسا کہ خانیہ وغیرہ میں ہے_ تو یہ فقہاء عہ۲: اقول: قید الطلب خرج وفاق فلیس من | اگر انعکاس کے قائل ہوتے تو خود شرمگاہ کی رؤیت دونوں صورت شرط الرؤیۃ طلبھا والمراد بالازالۃ العدم اصلیا او | میں قرار پاتی، اسے یاد رکھنا چاہئے اس لیے کہ اس پر تنبیہ میں نے طاری بافعل الرائی اوغیرہ ۱۲منہ (م) | کہیں نہ دیکھی_ پھر حضرت محقق کو دیکھا کہ انہوں نے فتح القدیر میں اس پر تنبیہ فرمائی ہے۔ اور حمد اللہ ہی کے لئے ہے ۱۲منہ (ت) اقول: طلب کی قید اتفاقی ہے اس لئے کہ دیکھنے کی طلب شرط نہیں، اور ازالہ سے مراد یہ ہے کہ پردہ نہ ہو خواہ سرے سے نہ رہا ہو یا بعد میں دیکھنے والے یا کسی اور کے عمل سے زائل ہو گیا ہو ۱۲منہ (ت)

Fatawa Rizwia Volume Nine

Izalat al-Ghishawa al-Mani’a min al-Absar [1]	**Removal of the veil that prevents vision. (T)**

And its application is without the mediation of organs and instruments of perception of full details, whether mentioned or not, even on a specific partial basis. Here, there is no specification of form, color, and light in what is perceived (mudrak), nor is there a restriction of physical instruments in the perceiver (mudrik). On the Day of Judgment, the believers will see their Lord, the Mighty and Sublime, and will hear His Speech, and He and His attributes are pure from accidents (accidental qualities). The Lord, the Mighty and Sublime, is Hearing and Seeing in an absolute sense, and is sanctified from instruments and organs. It is stated in Al-Misbah: **Sami’ Allāhu qawlak, ‘alimahu** [2] (God heard your word, meaning He knew it. - T). It is stated in Majma’ al-Bihar:

Al-Basir (The All-Seeing) the Exalted, witnesses things, their exterior and their interior, without an organ. And sight (basar) in the right of Allah the Exalted is an expression for an attribute by which the perfections of the qualities of visible things are fully revealed. [3]	**God, the All-Seeing, observes things without any organ, both their manifest and their hidden aspects. In relation to Allah the Exalted, 'Sight' refers to an attribute through which the qualities of visible objects are fully and perfectly disclosed. (T)**

It is stated in Minah al-Rawd: | Hearing (sam') is an attribute related to audible things, and sight (basar) is an attribute related to visible things. Thus, He perceives them with full perception, not by way of imagination or illusion, nor by way of the influence of a sense organ or the reaching of air. [4] | Hearing is an attribute related to things heard, and sight is an attribute related to things seen. Thus, He attains full perception, but not through imagination or conjecture, nor through the effect of a sensory organ or the medium of air. (T) | | :--- | :--- |

Regarding this application, it is stated in Mawaqif and its commentary: | The second is the doubt of confrontation (muqabala), which is that the condition for vision (ru’yah), as is known by necessity from experience, is being opposite (facing) or what

is in its ruling, like what is seen in a mirror. And this is impossible in the right of Allah the Exalted because He is transcendently beyond place. | The second doubt is regarding confrontation. It is that the condition for vision is that the object seen must be opposite, as is known through self-evident experience, or it must be in the position of being opposite, such as what appears in a mirror. And being 'opposite' is impossible for Allah the Exalted because He is free from spatial location. | | :--- | :--- |

[1] Sharh al-Mawaqif, Fifth Observatory, On Sight, Manshurat al-Sharif al-Radi, Iran, 1/201. [2] Al-Misbah al-Munir, under the word 'Sami'', Manshurat Dar al-Hijrah, Qom, Iran, 1/289. [3] Majma’ al-Bihar, Chapter 'Ba' with 'Sad', Matba' ‘Ali Munshi Naval Kishore, Lucknow, 1/96. [4] Sharh al-Fiqh al-Akbar, Explanation of Divine Attributes, Mustafa al-Babi, Egypt, pp. 18-19.

फ़तावा रज़विया जिल्द नौ

इज़ालातुल गिशावतुल मानिआ मिनल अबसार [1]

देखने से रोकने वाले पर्दे को हटाना। (त)

और इसका प्रयोग अंगों और इंद्रियों की मध्यस्थता के बिना पूर्ण विवरणों की धारणा के लिए किया जाता है, चाहे वे उल्लेखित हों या नहीं, यहाँ तक कि विशिष्ट आंशिक आधार पर भी। यहाँ न तो 'मुद्रक' (जिसे देखा जाए) में रूप, रंग और प्रकाश की विशिष्टता है, न ही 'मुद्रिक' (देखने वाले) में शारीरिक उपकरणों की शर्त है। प्रलय के दिन, मोमिन अपने रब अज़्ज़वजल को देखेंगे और उसका कलाम सुनेंगे, और वह और उसके गुण आकस्मिकताओं (accidents) से पवित्र हैं। और मौला अज़्ज़वजल पूर्णतः'समी' (सुनने वाला) और 'बसीर' (देखने वाला) है और वह अंगों और उपकरणों से पवित्र है। मिस्बाह में है: **समिअल्लाहु क़ौलक अलिमहु** [2] (अल्लाह ने तुम्हारी बात सुनी अर्थात उसे जान लिया। - त)। मज्मउल बिहार में है:

बसीर तआला चीज़ों के ज़ाहिर और बातिन को बिना किसी अंग के देखता है। और अल्लाह तआला के हक़ में 'बसर' (दृष्टि) एक ऐसा गुण है जिससे देखने योग्य चीज़ों की खूबियाँ पूरी तरह प्रकट हो जाती हैं। [3]

अल्लाह बसीर (देखने वाला), बिना किसी अंग के चीज़ों का अवलोकन करता है, उनके ज़ाहिर का भी और बातिन का भी। और बारी तआला के हक़ में 'बसर' एक ऐसे गुण का नाम है जिससे दिखाई देने वाली वस्तुओं की विशेषताएं पूर्ण रूप से प्रकट हो जाती हैं। (त)

मिनहुल रौज़ में है: | 'सम' (सुनना) एक गुण है जिसका संबंध सुनी जाने वाली चीज़ों से है, और 'बसर' (देखना) एक गुण है जिसका संबंध देखी जाने वाली चीज़ों से है। तो उसे पूर्ण बोध प्राप्त होता है, लेकिन कल्पना या भ्रम के तौर पर नहीं, और न ही इंद्रियों के प्रभाव या हवा के पहुँचने के माध्यम से। [4] | सुनना एक गुण है जिसका संबंध सुनी जाने वाली चीज़ों से है और देखना एक गुण है जिसका

संबंध देखी जाने वाली चीज़ों से है। अतः उसे पूर्ण बोध होता है, मगर ख़याल और वहम के तौर पर नहीं, और न ही इंद्रियों के प्रभाव और हवा के पहुँचने के तौर पर। (त) | | :--- | :--- |

इसी प्रयोग पर मवाक़िफ़ और उसकी शरह में फ़रमाया: | दूसरा संशय 'मुक़ाबला' (आमने-सामने होना) का है। वह यह कि देखने की शर्त यह है कि देखी जाने वाली चीज़ सामने हो जैसा कि अनुभव से स्पष्ट है, या सामने होने के हुक्म में हो, जैसे वह जो आईने में नज़र आता है। और अल्लाह तआला के हक़ में सामने होना असंभव है क्योंकि वह स्थान से पवित्र है। | दूसरा शुब्हा (संदेह) मुक़ाबला का है। वह यह कि देखने की शर्त यह है कि 'मरई' (देखी जाने वाली चीज़) सामने हो जैसा कि प्रत्यक्ष अनुभव से ज्ञात है, या मुक़ाबला के हुक्म में हो, जैसे वह जो आईने में नज़र आता है। और मुक़ाबला होना अल्लाह तआला के हक़ में नामुमकिन है क्योंकि वह स्थान (मकान) से पवित्र है। | | :--- | :--- |

[1] शरह अल-मवाक़िफ़, पांचवां मरसद, दृष्टि के विषय में, मन्शूरात अल-शरीफ़ अल-रज़ी, ईरान, 1/201। [2] मिस्बाह अल-मुनीर, शब्द 'समिअ' के अंतर्गत, मन्शूरात दार अल-हिज्रह, क़ुम, ईरान, 1/289। [3] मज्मउल बिहार, बाब अल-बा मअ अस-साद, मतबअ आली मुंशी नवल किशोर, लखनऊ, 1/96। [4] शरह अल-फ़िक़्ह अल-अकबर, ज़ाती गुणों की व्याख्या, मुस्तफ़ा अल-बाबी, मिस्र, पृष्ठ 18-19।

पृष्ठ 858/948

میں گردش

دینا، دیکھنے

ازالۃ الغشاوۃ المانعہ من الابصار [1] **سے مانع**

پردہ کا ازالہ

(ت)

اور اس کا اطلاق بے واسطہ جوارح و آلات ادراک تام جزئیات مذکورہ خواہ غیر مذکورہ، بروجہ جزئی مخصوص پر بھی کیا جاتا ہے، یہاں نہ مدرک بالفتح میں صورت و لون و ضو کی تخصیص ہے نہ مدرک بالکسر میں آلات جسمانیہ کی قید، روزِ قیامت مومنین اپنے رب عزوجل کو دیکھیں گے اور اس کا کلام سنیں گے اور وہ اور اس کی صفات اعراض سے پاک ہیں، اور مولٰی عزوجل سمیع و بصیر علی الاطلاق ہے اور آلات و جوارح سے منزہ، مصباح میں ہے: **سمع اللہ قولك علمه [2]** (خدا نے تیری بات سنی یعنی اسے جانا۔ت) مجمع البحار میں ہے:

البصیر تعالٰی یشاھد الا شیاء ظاھرھا وخافیھا من غیر جارحۃ، والبصر فی حقہ تعالٰی عبارۃ عن صفۃ ینکشف بھا کمال نعوت المبصرات [3]

خدائے بصیر بغیر کسی عضو کے اشیاء کا مشاہدہ فرماتا ہے ان کے ظاہر کا بھی اور باطن کا بھی، اور باری تعالٰی کے حق میں بصر ایک ایسی صفت سے عبارت ہے جس سے مرئیات کی صفات کا کامل طور پر منکشف ہو جاتی ہیں۔ (ت)

منح الروض میں ہے: | السمع صفة تتعلق بالمسموعات، والبصر صفة تتعلق بالمبصرات فیدرک ادراکا تاماً لاعلی سبیل التخیل والتوھم ولاعلی طریق تاثیر حاسة ووصول ھواء [4] | سمع ایک صفت ہے جس کا تعلق مسموعات سے ہے اور بصر ایک صفت ہے جس کا تعلق مبصرات سے ہے تو اسے ادراکِ تام ہوتا ہے مگر خیال و وہم کے طور پر نہیں، نہ ہی حاسہ کی تاثیر اور ہوا پہنچنے کے طور پر۔ (ت) | | :--- | :--- |

اسی اطلاق پر مواقف و شرح میں فرمایا: | الثانیة شبھة المقابلة وھی ان شرط الرؤیة، کما علم بالضرورة من التجربة، المقابلة او ما فی حکمھا نحو المرئی فی المرأة وانھا، مستحیلة فی حق اللہ تعالیٰ لتنزھہ عن المکان | دوسرا شبہہ مقابلہ کا ہے۔ وہ یہ کہ رؤیت کی شرط یہ ہے کہ مرئی مقابل ہو جیسا کہ بداہت تجربہ سے معلوم ہے، یا مقابلہ کے حکم میں ہو، جیسے وہ جو آئینے میں نظر آتا ہے۔ اور مقابل ہونا اللہ تعالیٰ کے حق میں محال ہے کیونکہ وہ مکان (جگہ) سے پاک ہے۔ | | :--- | :--- |

[1] شرح المواقف المرصد الخامس فی النظر منشورات الشریف الرضی ایران ۲۰۱/۱ [2] مصباح المنیر تحت لفظ سمع منشورات دار الہجرة قم ایران ۱/ ۲۸۹ [3] مجمع البحار باب الباء مع الصاد مطبع عالی منشی نولکشور لکھنؤ ۹۶/۱ [4] شرح فقہ الاکبر شرح الصفات الذاتیہ مصطفی البابی مصر ص ۱۸-۱۹

Fatawa Rizvia - Volume 9

And the direction, and the answer is the denial of the conditionality[1] -	**Because He is free from direction and space. The answer to this doubt is that we do not accept that being face-to-face (confrontation) is a condition for vision. (T)**
Imam Nasafi, the author of the mentioned 'Kafi', said in 'Umdatul Kalam':	
What they said about the conditionality of face-to-face positioning and other things is invalidated by Allah Almighty seeing us[2].	What was said about face-to-face positioning etc. being a condition for vision is invalidated by this evidence: that God Almighty sees us without any face-to-face positioning etc. at all. (T)

The hearing and seeing of the soul attached to the body is of the first type, and the detached one is of the second type,

| All of that is based on the general rule, and sometimes the attached one perceives through its light as in the visions (kashf) of the saints, and the detached one through the remaining permanent instruments as in the Prophets (peace be upon them). The meaning of detachment for them is the sudden occurrence of separation for a moment, to fulfill the Divine promise. | This is all a general rule; otherwise, it often happens that the soul connected to the body perceives through its light, as occurs in the visions (kashf) of the noble saints. And the soul detached from the body perceives through those instruments that are remaining and permanent, as occurs in the perceptions of the Prophets (peace be upon them). In their case, the meaning of the soul's detachment from the body is just the occurrence of separation for a single moment, so that the Divine promise (every soul shall taste death) may be fulfilled. (T) |

And with this meaning, even those who deny the hearing of the dead (Sama-e-Mauti) have no room for denial because they have no choice but to accept the vision of Paradise, Hell, its blessings and punishments, and hearing and speaking with angels. And when the body is suspended and the instruments impaired, then this is clear and evident. Its detail will soon follow, if Allah wills, near at hand (In Sha Allah its detail will come soon. T). And here is a third metaphorical meaning, which is between the seer and the seen, the hearer and the heard, being instrumental through an

intermediary and conveying partial images to the perceiver. These are intended when hearing and sight are attributed to the body, as we explained in the second introduction (as we explained it in the second introduction. T), whether by way of affirmation - and this is clear - or by way of negation, where limited negation is not continuous because it includes affirmation, as is not hidden (because it implies affirmation, as is clear. T).

Fifth Introduction: In the Quran, Hadith, Sharia texts, and conventional idioms, man is [viewed] from the side of the attributes of soul and body.

---

[1] Sharh al-Mawaqif, Fifth Station, First Objective, Publications of al-Sharif al-Radi, Qom Iran 8/139 [2] Umdat al-Kalam by al-Nasafi

और दिशा, और उत्तर शर्त लगाने का निषेध है[1] -

इसलिए कि वह दिशा और स्थान से मुक्त है। इस संदेह का उत्तर यह है कि हम यह नहीं मानते कि दृष्टि (देखने) के लिए आमने-सामने होना (मुकाबला) एक शर्त है। (त)

इमाम नसफ़ी, उक्त 'काफ़ी' के लेखक ने 'उमदतुल कलाम' में फ़रमाया:

आमने-सामने होने और अन्य चीज़ों की शर्त के बारे में उन्होंने जो कहा है, वह अल्लाह तआला के हमें देखने से निरस्त हो जाता है[2]।

यह जो कहा गया कि दृष्टि के लिए आमने-सामने होना आदि शर्त है, इस प्रमाण से ग़लत है कि अल्लाह तआला हमें देखता है और वहां कोई आमने-सामने होना आदि बिल्कुल नहीं है। (त)

शरीर से जुड़ी आत्मा का सुनना और देखना पहले प्रकार का है, और अलग हुई आत्मा का दूसरे प्रकार का है,

| यह सब अक्सर (सामान्य नियम) पर आधारित है, और कभी-कभी जुड़ी हुई आत्मा अपने प्रकाश के माध्यम से महसूस करती है जैसा कि औलिया के कशफ़ (दिव्य ज्ञान) में होता है, और अलग हुई आत्मा स्थायी उपकरणों के माध्यम से जैसा कि पैग़ंबरों (उन पर शांति हो) में होता है। उनके लिए अलगाव का अर्थ केवल एक क्षण के लिए अलगाव का होना है, ताकि ईश्वरीय वादे को पूरा किया जा सके। | यह सब अक्सर हुक्म है वरना कई बार ऐसा भी होता है कि शरीर से संबंधित आत्मा अपने नूर के माध्यम से महसूस करती है जैसा कि औलिया किराम के कशफ़ में होता है। और शरीर से अलग आत्मा उन उपकरणों के माध्यम से महसूस करती है जो शेष और स्थायी होते हैं जैसे पैग़ंबरों (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) के एहसासात में होता है, और उनके हक़ में शरीर से आत्मा के अलगाव का अर्थ, बस एक क्षण के लिए जुदाई का तारी होना है ताकि वादे ईलाही (हर जान को मौत चखनी है) का सत्यापन हो जाए। (त) |

और इस अर्थ के साथ, मुर्दों के सुनने (समा-ए-मौत) से इनकार करने वालों के पास भी इनकार की कोई गुंजाइश नहीं है क्योंकि अंततः स्वर्ग और नर्क, सुख और दुख देखने, और फ़रिश्तों के साथ सुनने और बात करने को मानने के अलावा कोई चारा नहीं है। और जब शरीर बेकार और उपकरण

खराब हों तो यही बात ज़ाहिर और स्पष्ट है। इसका विवरण जल्द ही आएगा, इंशाअल्लाह (इंशाअल्लाह इसका विवरण जल्द ही आएगा। त)। और यहाँ एक तीसरा प्रतीकात्मक अर्थ है, यानी देखने वाले और देखे जाने वाले, और सुनने वाले और सुने जाने वाले में माध्यम के तौर पर उपकरण होना और आंशिक रूपों को इंद्रियों तक पहुँचाना। ये उस समय अभिप्रेत होते हैं जब सुनने और देखने को शरीर की ओर जोड़ा जाता है, जैसा कि हमने दूसरे मुक़द्दमे में इसे स्पष्ट किया। (जैसा कि दूसरे मुक़द्दमे में हमने इसे बयान किया। त) चाहे सकारात्मक रूप में - और यह स्पष्ट है - या नकारात्मक रूप में जहाँ आंशिक निषेध निरंतर नहीं है क्योंकि इसमें सकारात्मकता शामिल है, जैसा कि स्पष्ट है। (क्योंकि वह सकारात्मकता को शामिल करता है जैसा कि स्पष्ट है। त)

पांचवां मुक़द्दमा: क़ुरान और हदीस, शरीयत के प्रमाणों और प्रचलित मुहावरों सब में इंसान रूह (आत्मा) और जिस्म (शरीर) के गुणों की तरफ...

---

[1] शरह अल-मवाकिफ़, पाँचवाँ पड़ाव, पहला उद्देश्य, प्रकाशन अल-शरीफ़ अल-राज़ी, क़ोम ईरान 8/139 [2] 'उमदत अल-कलाम' नसफ़ी द्वारा

فتاوٰی رضویہ جلد نہم

والجهة والجواب منع الاشتراط[1] اس لیے کہ وہ جہت اور مکان سے پاک ہے۔ اس شبہ کا جواب یہ ہے کہ مقابلہ کا شرط رؤیت ہونا ہم نہیں مانتے۔ (ت)

امام نسفی مصنف کافی مذکور نے عمدۃ الکلام میں فرمایا:

ما قالوا من اشتراط المقابلة وغیرہ یبطل برؤیة اللہ تعالی ایانا[2]۔

یہ جو کہا گیا کہ رؤیت کے لیے مقابلہ وغیرہ شرط ہے۔ اس دلیل سے باطل ہے کہ خدائے تعالٰی ہمیں دیکھتا ہے اور مقابلہ وغیرہ بالکل نہیں۔ (ت)

روح ملاصق بالبدن کا سمع وبصر بروجہ اول ہے اور مفاق کا از قبیل دوم،

| کل ذلك على الاغلب والافربما يحس الملاصق بنوره كما في كشوف الاولياء والمفارق بالآلات الباقية الدائمة كما في الانبياء عليهم الصلوة والسلام، ومعنى المفارقة فيهم طريان الفراق أنى تحقيقاً للوعد الربانى۔ | یہ سب حکم اکثری ہے ورنہ بارہا ایسا بھی ہوتا ہے کہ بدن سے متعلق روح اپنے نور کے ذریعہ احساس کرتی ہے جیسا کہ اولیاء کرام کے کشف میں ہوتا ہے۔ اور بدن سے مفارق روح ان آلات کے ذریعہ احساس کرتی ہے جو باقی و دائم ہوتے ہیں جیسے حضرات انبیاء علیہم الصلوۃ والسلام کے احساسات میں ہوتا ہے، اور ان کے حق میں بدن سے روح کی مفارقت کا معنی، بس ایک آن کے لئے جدائی کا طاری ہونا تاکہ وعدہ الہیہ (ہر نفس کے لئے موت) کا تحقیق ہو جائے۔ (ت) |

اور اس معنی سے انکار کی منکرانِ سماعِ موتی کو بھی گنجائش نہیں کہ آخر رؤیت جنت و نار و نعیم و عذاب و سماع و کلام ملائکہ ماننے سے چارہ کہاں، اور جب جسم معطل اور آلات مختل تو یہی ظاہر و عیاں، وسیأتی تفصیلہ عنقریب انشاء اللہ القریب (ان شاء اللہ اس کی تفصیل عنقریب آئیگی۔ ت) اور یہاں ایک تیسرے معنی مجازی اور ہیں یعنی رائی و مرئی و سامع و مسموع میں بروجہ آلیت واسطہ ہونا اور صور جزئیہ کا مدرک تک پہنچانا یہ اس وقت مراد ہوتے ہیں جب سمع و بصر بدن کی طرف مضاف ہو، کما بیناہ فی المقدمۃ الثانیۃ (جیسا کہ دوسرے مقدمہ میں ہم نے اسے بیان کیا۔ ت) خواہ بروجہ اثبات، اور یہ ظاہر ہے خواہ بہ ضمن سلب جہاں سلب مقصر نا مستمر ہے لتضمنہ الاثبات کما لا یخفی (اس لئے کہ وہ اثبات کو متضمن ہے جیسا کہ واضح ہے۔ ت)

مقدمہ خامسہ: قرآن و احادیث نصوص شرعیہ و محاورات عرفیہ سب میں انسان طرف صفات روح و جسم

---

[1] شرح المواقف المرصد الخامس المقصد الاول منشورات الشریف الرضی، قم ایران ۸/۱۳۹ [2] عمدۃ الکلام للنسفی

Fatawa Rizwia, Volume 9

Both attributions are made.

Allah the Almighty says: "Verily, We created man from an extract of clay; then We placed him as a drop (of seed) in a safe lodging" (Surah 23:12-13) up to the words of the Exalted: "So blessed be Allah, the best of creators." (23:14). And the Almighty says: "And remember when your Lord said to the angels: 'I am about to create a human from sounding clay of altered black mud. So when I have fashioned him and breathed into him of My soul, fall down in prostration before him.'" (Surah 15:28-29). And He, Blessed be His Name, said: "Verily, We created them from sticky clay." (Surah 37:11). And He, the Sublime, says: "O mankind! If you are in doubt about the Resurrection, then verily We created you from dust, then from a drop, then from a clot, then from a lump of flesh, formed and unformed, that We may make it clear to you. And We cause whom We will to remain in the wombs for an appointed term..." (Surah 22:5).

It is evident that being formed from sounding, sticky, fermented clay, then from a drop of water, then a drop of blood, then from a lump of flesh, staying in the womb for a fixed duration, and the breathing of the soul into it after the body is formed—all these states and stages [note] pertain to the body. Yet they are attributed to "man."

And the Almighty said: "...and man carried it. Verily he was unjust and ignorant." (Surah 33:72)

Allah Almighty says: "And man took up that trust; indeed, he was putting his soul into hardship [ignorant/unjust]."

Note [a]: Especially the latter parts, which are in no way possible for anything other than the body. 12 Minhu (m).

1. Al-Quran 23/12, 13 and 14
2. Al-Quran 15/28 and 29
3. Al-Quran 37/11
4. Al-Quran 22/5
5. Al-Quran 33/72

फ़तावा रज़विया, जिल्द नौ (९)

दोनों निस्बत की जाती हैं।

अल्लाह तआला फ़रमाता है: "बेशक हमने इंसान को मिट्टी के निचोड़ से पैदा फ़रमाया, फिर उसे एक इज़्ज़त वाली आरामगाह में ठहराया," यहाँ तक कि अल्लाह का इर्शाद है: "तो बड़ी बरकत वाला है अल्लाह, सब से बेहतर बनाने वाला।" (२३:१२-१४)। और फ़रमाता है: "याद करो जब तुम्हारे रब ने फ़रिश्तों से फ़रमाया: 'बेशक मैं सड़ी हुई मिट्टी के बजते हुए गारे से एक इंसान बनाने वाला हूँ, तो जब मैं उसे ठीक कर लूँ और उसमें अपनी रूह फूंक दूँ तो तुम उसके लिए सजदे में गिर जाना।" (१५:२८-२९)। और बरकत वाले नाम वाले ने फ़रमाया: "बेशक हमने उन्हें चिपकती हुई मिट्टी से बनाया।" (३७:११)। और सुब्हानहू व तआला ने फ़रमाया: "ऐ लोगों! अगर तुम्हें दोबारा ज़िंदा होने के बारे में कोई शक है, तो बेशक हमने तुम्हें मिट्टी से पैदा किया, फिर नुत्फ़े से, फिर जमे हुए खून से, फिर मांस के टुकड़े से जो बना हुआ भी था और नहीं भी, ताकि हम तुम पर वाज़ेह (स्पष्ट) कर दें। और हम जिसे चाहें एक मुक़र्ररा मुद्दत तक रहमों में ठहराते हैं।" (२२:५)।

पर ज़ाहिर है कि खनखनाती चिपकती ख़मीर की हुई मिट्टी, फिर पानी की बूंद, फिर ख़ून की बूंद, फिर गोश्त के लोथड़े से बनना, रहम में एक मुद्दत-ए-मुअय्यन (निश्चित समय) तक ठहरना, ठीक होने के बाद उसमें रूह का फूँका जाना, ये सब अह्वाल-ओ-अतवार [नोट 'अ'] बदन के हैं। और इंसान की तरफ़ निस्बत फ़रमाई गई है।

अल्लाह अज़्ज़वजल ने फ़रमाया: "और इंसान ने उसे (अमानत को) उठा लिया, बेशक वह बड़ा ज़ालिम और नादान है।" (३३:७२)

अल्लाह अज़्ज़वजल फ़रमाता है: "और इंसान ने उस अमानत को उठा लिया, बेशक वो अपनी जान को मशक़्क़त में डालने वाला है।"

नोट 'अ': ख़ुसूसन आख़िरी हिस्से जो शरीर के अलावा किसी और चीज़ के लिए संभव नहीं हैं। १२ मिन्हु (म)।

1. अल-क़ुरआन २३/१२, १३ और १४
2. अल-क़ुरआन १५/२८ और २९
3. अल-क़ुरआन ३७/११

4. अल-क़ुरआन २२/५
5. अल-क़ुरआन ३३/७२

पृष्ठ ८६० / ९४८

فتاوٰی رضویہ، جلد نہم

دونوں نسبت کی جاتی ہیں۔

قَالَ اللہ تَعَالٰی وَ لَقَدْ خَلَقْنَا الْاِنْسَانَ مِنْ سُلَالَۃٍ مِنْ طِیْنٍ ﴿۱۲﴾ ثُمَّ جَعَلْنَاہُ نُطْفَۃً فِیْ قَرَارٍ مَکِیْنٍ ﴿۱۳﴾ الی قولہ سبحانہ "فَتَبٰرَکَ اللہُ اَحْسَنُ الْخٰلِقِیْنَ" ﴿۱۴﴾ وقَالَ عزوجل وَ اِذْ قَالَ رَبُّکَ لِلْمَلٰٓئِکَۃِ اِنِّیْ خَالِقٌ بَشَرًا مِنْ صَلْصَالٍ مِنْ حَمَاٍ مَّسْنُوْنٍ ﴿۲۸﴾ فَاِذَا سَوَّیْتُہٗ وَ نَفَخْتُ فِیْہِ مِنْ رُّوْحِیْ فَقَعُوْا لَہٗ سٰجِدِیْنَ ﴿۲۹﴾ وقَالَ تبارک اسمہ "اِنَّا خَلَقْنٰھُمْ مِنْ طِیْنٍ لَّازِبٍ" ﴿۱۱﴾ وقالک جل جلالہ یٰٓاَیُّھَا النَّاسُ اِنْ کُنْتُمْ فِیْ رَیْبٍ مِنَ الْبَعْثِ فَاِنَّا خَلَقْنٰکُمْ مِنْ تُرَابٍ ثُمَّ مِنْ نُّطْفَۃٍ ثُمَّ مِنْ عَلَقَۃٍ ثُمَّ مِنْ مُضْغَۃٍ مُّخَلَّقَۃٍ وَ غَیْرِ مُخَلَّقَۃٍ لِّنُبَیِّنَ لَکُمْ وَ نُقِرُّ فِی الْاَرْحَامِ مَا نَشَاءُ اِلٰی اَجَلٍ مُّسَمًّی الآیۃ۔

اللہ تعالٰی فرماتا ہے: بیشک ہم نے انسان کو مٹی کے خلاصہ سے پیدا فرمایا، پھر اسے ایک عزت والی قرارگاہ میں ٹھہرایا، تا ارشاد باری تعالٰی: تو بڑی برکت والا ہے اللہ سب سے بہتر بنانے والا، اور فرماتا ہے: یاد کرو جب تمہارے رب نے فرشتہ سے فرمایا: بیشک میں بدبودار گارے کی بجتی ہوئی مٹی سے انسان بنانے والا ہوں تو جب میں اسے ٹھیک کرلوں اور اس میں اپنی طرف کی معزز روح پھونک دوں تو تم اس کے لیے سجدہ میں گر جانا، اور فرماتا ہے: بیشک ہم نے ان کو چپکتی ہوئی مٹی سے بنایا۔ اور فرماتا ہے: اگر تمہیں بعث سے متعلق کچھ شک ہے تو بیشک ہم نے تم کو مٹی سے بنایا پھر پانی کی بوند سے پھر خون بستہ سے پھر پارہ گوشت سے، مکمل اور نامکمل تاکہ تم پر ہم روشن کردیں، اور جسے چاہیں ایک مقررہ میعاد تک رحموں میں ٹھہرائیں۔ الآیۃ (ت)

پر ظاہر ہے کہ کھنکھناتی چپکتی خمیر کی ہوئی مٹی، پھر پانی کی بوند، پھر خون کی بوند، پھر گوشت کے لوتھڑے سے بننا رحم میں ایک مدت معین تک ٹھہرنا ٹھیک ہونے کے بعد اس میں روح کا پھونکا جانا یہ سب احوال و اطوار عہ بدن کے ہیں۔ اور انسان کی طرف نسبت فرمائی۔

وقال عز مجد وَ حَمَلَهَا الْاِنْسَانُ اِنَّهٗ كَانَ ظَلُوْمًا جَهُوْلًا ﴿۷۲﴾

خدائے عزوجل فرماتا ہے: اور انسان نے اس امانت کو اٹھالیا بے شک وہ اپنی جان کو مشقت میں ڈالنے والا۔

عہ: خصوصاً اخیر کہ غیر بدن کے لیے کسی طرح محتمل نہیں ۱۲منہ (م)

1 القرآن ۲۳ / ۱۲ و ۱۳ و ۱۴ 2 القرآن ۱۵ / ۲۸ و ۲۹ 3 القرآن ۳۷ / ۱۱ 4 القرآن ۲۲ / ۵ 5 القرآن ۳۳ / ۷۲

Fatawa Razawiyya - Volume 9

Allah the Exalted says: "Does man think that We shall not assemble his bones? Yes, We are Able to put together in perfect order the very tips of his fingers. But man desires to continue in sin before him. He asks, 'When is the Day of Resurrection?'"[1] (to His exalted mention) "Man will say on that day, 'Where is the escape?'"[1] (to His exalted majesty) "Man will be informed that day of what he sent forward and kept back. Rather, man, against himself, will be a witness, even if he presents his excuses."[2] He is very ignorant, and He (Allah) says: Does man think that We will not gather his bones? Why not, We are powerful enough to restore his fingertips perfectly. Rather, man wants to act lawlessly before Him; he asks, when is the day of judgment? (until the Divine Word:) Man says on that day, where is the escape? (until the Lord's instruction:) On that day, man will be told what he sent ahead and what he left behind; rather, man is a clear witness over his own self, even if he presents his excuses. (T)

It is clear that being the addressee of Sharia obligations, and oppression, ignorance, conjecture, will, questioning, speech, notification, knowledge, and excuse—all these attributes and actions belong to the soul, and so does wickedness (fujoor).

His Majesty said: "And by the soul and Him Who perfected it in proportion; Then He inspired it with its wickedness and its righteousness."[3] Allah the Exalted says: I swear by the soul and the One Who made it right, then put in its heart its disobedience and its piety.

He also attributed these to man; rather, both types of matters are mentioned for him in a single verse. His Majesty said: "Verily, We have created man from a drop of mixed fluid (semen) in order to try him: so We made him hearing and seeing."[4] The Almighty says: Indeed We created man from a mingled drop (of fluid) to test him, so We made him hearing, seeing.

The body was made from the mingled drop of man and woman, and the obligation and testing are for the soul, and it is the one that hears and sees.

The Exalted Mentioned: "Does not man see that We have created him from a drop (of seed)? Yet behold! he (stands forth) as an open opponent! And he puts forth for Us a parable, and forgets his own creation."[5] The Verse. The Lord Almighty's instruction is: And did man not see that We created him from a drop, then he became a manifest challenger, and he made an example for Us and forgot his own creation. (T)

[1] Al-Quran 75 / 3 to 10 [2] Al-Quran 75 / 13 to 15 [3] Al-Quran 91 / 7, 8 [4] Al-Quran 76 / 2 [5] Al-Quran 36 / 77, 78

फ़तावा रज़विया - जिल्द 9

अल्लाह तआला फ़रमाता है: "क्या इंसान यह गुमान करता है कि हम उसकी हड्डियाँ जमा न करेंगे? क्यों नहीं, हम क़ादिर हैं कि उसकी उंगलियों के पोर बराबर कर दें। बल्कि इंसान चाहता है कि अपने आगे के लिए गुनाह करता रहे, पूछता है कि क़यामत का दिन कब है?"[1] (अल्लाह तआला के इरशाद तक) "उस दिन इंसान कहेगा कि भागने की जगह कहाँ है?"[1] (अल्लाह तआला के इरशाद तक) "उस दिन इंसान को बता दिया जाएगा जो उसने आगे भेजा और जो पीछे छोड़ा। बल्कि इंसान ख़ुद अपने नफ़्स का हाल ख़ूब देखने वाला है, अगरचे वह अपनी माज़रतें (बहाने) पेश करे।"[2] बड़ा नादान है, और फ़रमाता है: क्या इंसान गुमान करता है कि हम उसकी हड्डियाँ जमा न करेंगे, क्यों नहीं, हम क़ादिर हैं कि उसके पोर बराबर कर दें। बल्कि इंसान चाहता है कि उसके आगे बे-हुक्मी करे, पूछता है कब है क़यामत का दिन (इरशाद-ए-बारी तक:) इंसान कहता है उस दिन मफ़र (भागने की जगह) कहाँ है (इरशाद-ए-रब्बानी तक:) उस दिन इंसान को बता दिया जाएगा जो उसने आगे किया और पीछे किया, बल्कि इंसान अपने नफ़्स को ख़ूब देखने वाला है अगरचे अपने उज़्र सामने लाए। (त)

वाज़ेह है कि तक़ालीफ़-ए-शरईया का मुख़ातब होना और ज़ुल्म, जिहल, गुमान, इरादा, सवाल, कलाम, इत्तला, मारिफ़त और उज़्र—ये सब सिफ़ात और अफ़आल रूह से हैं, इसी तरह फ़ुजूर (बदकारी) भी।

पाक है उसकी बुज़ुर्गी, उसने फ़रमाया: "और नफ़्स की क़सम और उसकी जिसने उसे दुरुस्त किया, फिर उसमें उसकी बदकारी और उसकी परहेज़गारी की समझ डाल दी।"[3] अल्लाह तआला फ़रमाता है: क़सम है नफ़्स की और उसकी जिसने उसे ठीक बनाया, फिर उसके दिल में उसकी नाफ़रमानी और परहेज़गारी डाल दी।

इन्हें भी इंसान की तरफ़ मन्सूब किया गया बल्कि एक ही आयत में दोनों क़िस्म के उमूर उसके लिए ज़िक्र किए गए। अल्लाह तआला फ़रमाता है: "बेशक हमने इंसान को एक मिले-जुले नुत्फ़े(बूंद) से पैदा किया ताकि उसे आज़माएं फिर हमने उसे सुनने वाला और देखने वाला बना दिया।"[4] बारी तआला फ़रमाता है: बेशक हमने इंसान को मिले हुए नुत्फ़े से बनाया कि उसे आज़माएं फिर हमने उसे सुनने वाला, देखने वाला बनाया।

मर्द और औरत के मिले हुए नुत्फ़े से बदन बना और तकलीफ़ और आज़माइश रूह की है और वही सुनने और देखने वाली है।

अल्लाह तआला ने फ़रमाया: "क्या इंसान ने नहीं देखा कि हमने उसे नुत्फ़े से पैदा किया, फिर अचानक वह खुला झगड़ालू बन गया? और उसने हमारे लिए मिसाल बयान की और अपनी पैदाइश भूल गया।"[5] आयत। इरशाद-ए-बारी तआला है: और क्या इंसान ने न देखा कि हमने उसे नुत्फ़े से पैदा किया फिर वह खुला झगड़ने वाला है और उसने हमारे लिए मिसाल बनाई और अपनी तख़्लीक़ को भूल गया। (त)

[1] अल-क़ुरआन 75 / 3 से 10 [2] अल-क़ुरआन 75 / 13 से 15 [3] अल-क़ुरआन 91 / 7, 8 [4] अल-क़ुरआन 76 / 2 [5] अल-क़ुरआन 36 / 77, 78

فتاوٰی رضویہ - جلد نہم

قال تعالٰی و شانہ اَیَحْسَبُ الْاِنْسَانُ اَلَّنْ نَّجْمَعَ عِظَامَہٗ ؕ بَلٰی قٰدِرِیْنَ عَلٰٓی اَنْ نُّسَوِّیَ بَنَانَہٗ ؕ بَلْ یُرِیْدُ الْاِنْسَانُ لِیَفْجُرَ اَمَامَہٗ ۚ یَسْـَٔلُ اَیَّانَ یَوْمُ الْقِیٰمَۃِ ۱ الی قولہ جل ذکرہ "یَقُوْلُ الْاِنْسَانُ یَوْمَئِذٍ اَیْنَ الْمَفَرُّ ۱ الی قولہ جلت عظمتہ "یُنَبَّؤُا الْاِنْسَانُ یَوْمَئِذٍ بِمَا قَدَّمَ وَ اَخَّرَ ؕ بَلِ الْاِنْسَانُ عَلٰی نَفْسِہٖ بَصِیْرَۃٌ ۙ وَّ لَوْ اَلْقٰی مَعَاذِیْرَہٗ ؕ ۲۔ بڑا نادان ہے، اور فرماتا ہے : کیا انسان گمان کرتا ہے کہ ہم اس کی ہڈیاں جمع نہ کریں گے، کیوں نہیں، ہم قادر ہیں کہ اس کے پور برابر کردیں۔ بلکہ انسان چاہتا ہے کہ اس کے آگے بے حکمی کرے، پوچھتا ہے کب ہے قیامت کا دن (تا ارشادِ باری:) انسان کہتا ہے اس دن مفر کہاں (تا ارشادِ ربانی:) اس دن انسان کو بتادیا جائے گا جو اس نے آگے کیا اور پیچھے کیا، بلکہ انسان اپنے نفس کو خوب دیکھنے والا ہے اگرچہ اپنے عذر سامنے لائے۔ (ت)

واضح ہے کہ تکالیفِ شرعیہ سے مخاطب ہونا اور ظلم و جہل و حسبان وارادہ سوال و کلام واعلام و معرفت ومعذرت یہ سب صفات وافعال روح سے ہیں یونہی فجور بھی۔

قال عز مجدہ وَ نَفْسٍ وَّ مَا سَوّٰىہَا ۪ فَاَلْہَمَہَا فُجُوْرَہَا وَ تَقْوٰىہَا ۪ ۳۔ اللہ تعالٰی فرماتا ہے: قسم ہے نفس کی اور اس کی جس نے اسے ٹھیک بنایا، پھر اس کے دل میں اس کی نافرمانی اور پرہیزگاری ڈالی۔

انھیں بھی انسان کی جانب اضافت فرمایا بلکہ ایک ہی آیت میں دونوں قسم کے امور اس کے لیے مذکور۔ قال عز شانہ اِنَّا خَلَقْنَا الْاِنْسَانَ مِنْ نُّطْفَۃٍ اَمْشَاجٍ ۖ نَّبْتَلِیْہِ فَجَعَلْنٰہُ سَمِیْعًۢا بَصِیْرًا ۴۔ باری تعالٰی فرماتا ہے: بے شک ہم نے انسان کو ملے ہوئے نطفہ سے بنایا کہ اسے آزمائیں، پھر ہم نے اسے سننے والا دیکھنے والا بنایا۔

مرد و زن کے ملے ہوئے نطفے سے بدن بنا اور تکلیف و آزمائش روح کی ہے اور وہی شنوا وبینا۔

قال تعالیٰ ذکرہ، اَوَ لَمْ یَرَ الْاِنْسَانُ اَنَّا خَلَقْنٰهُ مِنْ نُّطْفَةٍ فَاِذَا هُوَ خَصِیْمٌ مُّبِیْنٌ۝ وَ ضَرَبَ لَنَا مَثَلًا وَّ نَسِیَ خَلْقَهٗ۝ ۵ الآیۃ۔ ارشاد باری تعالیٰ ہے: اور کیا انسان نے نہ دیکھا کہ ہم نے اسے نطفہ سے پیدا کیا پھر وہ کھلا جھگڑنے والا ہے اور اس نے ہمارے لئے مثل بنائی اور اپنی تخلیق کو بھول گیا۔ (ت)

۱ القرآن ۷۵ / ۳ تا ۱۰ ۲ القرآن ۷۵ / ۱۳ تا ۱۵ ۳ القرآن ۹۱ / ۷، ۸ ۴ القرآن ۷۶ / ۲ ۵ القرآن ۳۶ / ۷۷، ۷۸

Fatawa Razawiyya Volume 9

Seeing and knowing are attributes of the soul, and birth from semen is of the body. Then, conflict, analogy-making, and forgetfulness of the states of the soul and the final conscience led back from the creation of semen towards the body. These are common idioms in general usage. Now it is not devoid of four states: either man is purely body, or pure soul, or each, or a collection. The third possibility is rejected at the outset; every sane person knows that every individual of his species and he himself is one human being. It's not that in every person there are two humans or one soul and one body. Therefore, no one's doctrine is known towards this. The remaining three are well-known doctrines: the first is the view of most theologians, the second is the gist of Imam Razi's and others' statements, and the third is the beautiful saying of that great Imam himself and other prominent elders. It is in Tafsir-e-Kabir:

As for those who say that 'human' refers to this specific structure and this sensory body, they are the majority of theologians. This view is false according to us (after mentioning arguments until he said:) The fifth argument is that man may be alive while the body is dead. The proof is the word of Allah Almighty: 'And do not think of those who are killed in the way of Allah as dead, but they are alive.' This text is explicit that those slain are alive, while sensory perception indicates that this body is dead. The sixth argument is the saying of Allah Almighty: 'The Fire, they are exposed to it,' and His saying: 'They were drowned and then entered into Fire.' And the saying of the Prophet (peace and blessings be upon him): 'A grave is either a garden from the gardens of Paradise or a pit from the pits of Hell.' All these texts prove that a human remains after the death of the body. The seventh argument is the saying of the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him): 'When the deceased is carried on their bier, their soul flutters above the coffin and says: O my people! O my children! (Hadith)' Verily, the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) explicitly stated...

Those who consider this specific structure and this sensory body as a human are the majority of theologians, and this saying is false according to us. (He mentioned arguments on this, until he said:) The fifth proof is that a human is sometimes alive while the body is dead, and the proof for this is the command of the Creator that 'those who were killed in the path of Allah, do not ever consider them dead, rather they are alive.' This is an explicit text that the martyrs are alive, and perception tells us that the body is dead. Sixth proof: The command of Allah Almighty: Pharaoh and his companions are presented to the fire, and this command: They were drowned then put into the fire. And the command of the Noble Messenger (peace and blessings of Allah Almighty be upon him): The grave is either one of the gardens of Paradise or one of the pits of Hell. All these texts are evidence that a human remains even after the death of the body. Seventh proof: This command of the Noble Messenger (peace and blessings of Allah Almighty be upon him): When the deceased is carried on their bedstead, their soul flutters over the funeral and says, O my people! O my children! (Hadith) The Prophet (peace and blessings of Allah Almighty be upon him) stated explicitly...

देखना और जानना आत्मा (रूह) के गुण हैं, और वीर्य से शरीर का जन्म होता है। फिर, विवाद, उपमा-निर्माण और आत्मा की स्थितियों की विस्मृति और अंतिम अंतरात्मा ने वीर्य की रचना से शरीर की ओर वापसी की। ये सभी सामान्य मुहावरे प्रचलित हैं। अब यह चार स्थितियों से खाली नहीं है: या तो मनुष्य केवल शरीर है, या केवल आत्मा है, या प्रत्येक, या एक संग्रह है। तीसरी संभावना शुरू में ही खारिज कर दी गई है; प्रत्येक समझदार व्यक्ति जानता है कि उसकी प्रजाति का प्रत्येक व्यक्ति और वह स्वयं एक मनुष्य है। ऐसा नहीं है कि प्रत्येक व्यक्ति में दो मनुष्य या एक आत्मा और एक शरीर हो। इसलिए, इस ओर किसी का पंथ ज्ञात नहीं है। शेष तीन प्रसिद्ध सिद्धांत हैं: पहला अधिकांश धर्मशास्त्रियों का विचार है, दूसरा इमाम राजी और अन्य के कथनों का सार है, और तीसरा स्वयं उस महान इमाम और अन्य प्रमुख बुजुर्गों का सुंदर कथन है। तफ़सीर-ए-कबीर में है:

जहाँ तक उन लोगों का प्रश्न है जो कहते हैं कि 'मनुष्य' इस विशिष्ट संरचना और इस संवेदी शरीर का नाम है, तो वे अधिकांश धर्मशास्त्री हैं। और यह विचार हमारे निकट असत्य है (इस पर तर्क दिए, यहाँ तक कि कहा:) पाँचवाँ तर्क यह है कि मनुष्य कभी जीवित होता है जबकि शरीर मृत होता है। इसका प्रमाण अल्लाह तआला का यह फरमान है: 'और जो अल्लाह की राह में मारे गए उन्हें हरगिज़ मृत न समझना, बल्कि वे जीवित हैं।' यह स्पष्ट पाठ है कि वे शहीद जीवित हैं, और संवेदन यह बताता है कि शरीर मृत है। छठा तर्क अल्लाह तआला का फरमान: 'आग, वे उस पर पेश किए जाते हैं', और उसका फरमान: 'वे डुबोए गए फिर आग में डाले गए।' और रसूल अकरम (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) का फरमान: 'कब्र जन्नत के बागों में से एक बाग है या जहन्नुम के गड्ढों में से एक गड्ढा है।' ये सभी ग्रंथ इस बात का प्रमाण हैं कि मनुष्य शरीर की मृत्यु के बाद भी शेष रहता है। सातवाँ तर्क रसूल अकरम (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) का यह फरमान: 'जब मृत व्यक्ति को उसके जनाज़े पर उठाया जाता है, तो उसकी आत्मा ताबूत के ऊपर फड़फड़ाती है और कहती है: ऐ मेरे लोगों! ऐ मेरे बच्चों! (हदीस)' वास्तव में, नबी (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने स्पष्ट कर दिया...

इस विशिष्ट बनावट और इस महसूस होने वाले शरीर को इंसान बताने वाले जम्हूर मुतक़ल्लिमीन (बहुसंख्यक धर्मशास्त्री) हैं और यह बात हमारे नज़दीक बातिल (गलत) है (इस पर दलीलें ज़िक्र कीं, यहाँ तक कि फ़रमाया:) पाँचवीं दलील यह है कि इंसान कभी ज़िंदा होता है जबकि बदन मुर्दा होता है और इसकी दलील यह इरशादे बारी है कि उन्हें जो अल्लाह की राह में मारे गए हरगिज़ मुर्दा न समझना बल्कि वह ज़िंदा हैं, यह सरीह (स्पष्ट) नस है कि वह शहीद ज़िंदा हैं, और एहसास यह बताता है कि बदन मुर्दा है। छठी दलील: बारी तआला का इरशाद: फिरऔन और उसके साथी आग पर पेश किए जाते हैं, और यह इरशाद: वह ग़र्क़ किए गए फिर आग में डाले गए। और रसूले अकरम सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम का फ़रमान: क़ब्र जन्नत के बागों में से एक बाग है या दोज़ख़ के गड्ढों में से एक गड्ढा है। यह तमाम नुसूस (पावन ग्रंथ) इस पर दलील हैं कि इंसान बदन की मौत के बाद भी बाक़ी रहता है। सातवीं दलील: रसूले अकरम सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम का यह इरशाद: जब मय्यत को उसकी चारपाई पर उठाया जाता है उसकी रूह जनाज़े के ऊपर फड़फड़ाती है और कहती है ऐ मेरे लोगो! ऐ मेरी औलाद! (अल-हदीस) नबी सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम ने सराहत (स्पष्टता) फ़रमा दी।

رویت و علم، شانِ روح ہے اور نطفے سے پیدائش بدن کی، پھر خصومت و مثل زنی و نسیان احوالِ روح اور ضمیر اخیر نے پھر تخلیق نطفہ سے جانب بدن مراجعت کی۔ یہی سب محاورات عرفِ عام میں شائع، اب چار حال سے خالی نہیں، یا تو انسان محض بدن ہے یا مجرد روح یا ہر ایک یا مجموع، احتمالِ ثالث تو بدایۃً مدفوع، ہر عاقل جانتا ہے کہ اس کے بنی نوع کا ہر فرد اور وہ خود ایک انسان ہے۔ نہ یہ کہ ہر شخص میں دو انسان ہوں یا ایک روح ایک بدن۔ ولٰہٰذا اس کی طرف کسی کا مذہب معلوم نہیں ثلثہ باقیہ مذاہب معروفہ ہیں، اول اکثر متکلمین کا خیال ہے اور ثانی امام رازی وغیرہ کا مفاد مقال اور ثالث خود انھیں امام جلیل و دیگر اجلہ اکابر کا ارشاد جمیل۔ تفسیر کبیر میں ہے :

اما القائلون بأن الانسان عبارة عن هذه البنية المخصوصة وعن هذا الجسم المحسوس فهم جمهور المتكلمين، وهذا القول عندنا باطل (وذكر على حججان الى ان قال) الحجة الخامسة ان الانسان قد يكون حياً حال مايكون البدن ميتاً والدليل قوله تعالى ولا تحسبن الذين قتلوا في سبيل الله امواتا بل احياء فهذا النص صريح في ان اولئك المقتولين احياء والحس يدل على ان هذا الجسد ميت، الحجة السادسة قول تعالى النار يعرضون عليها وقوله اغرقوا فادخلوا نارا، وقول عليه الصلوة والسلام من حفرالنار، كل هذه النصوص تدل على ان الانسان يبقى بعد موت الجسد، الحجة السابعه قول صلى الله تعالى عليه وسلم، اذا حمل الميت على بعشه رفرف روحه فوق النعش ويقول يا اهلى يا ولدى (الحديث) ان النبى صلى الله تعالى عليه وسلم صرح

اس مخصوص ساخت اور اس محسوس جسم کو انسان بتانے والے جمہور متکلمین ہیں اور یہ قول ہمارے نزدیک باطل ہے (اس پر دلائل ذکر کئے، یہاں تک کہ فرمایا:) پانچویں دلیل یہ ہے کہ انسان کبھی زندہ ہوتا ہے جبکہ بدن مردہ ہوتا ہے اور اس کی دلیل یہ ارشاد باری ہے کہ انھیں جو اللہ کی راہ میں مارے گئے ہر گز مردہ نہ سمجھنا بلکہ وہ زندہ ہیں، یہ صریح نص ہے کہ وہ شہید زندہ ہیں، اور احساس یہ بتاتا ہے کہ بدن مردہ ہے۔ چھٹی دلیل: باری تعالیٰ کا ارشاد: فرعون اور اس کے ساتھی آگ پر پیش کیے جاتے ہیں، اور یہ ارشاد: وہ غرق کیے گئے پھر آگ میں ڈالے گئے۔ اور رسول اکرم صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کا فرمان: قبر جنت کے باغوں میں سے ایک باغ ہے یا دوزخ کے گڑھوں میں سے ایک گڑھا ہے۔ یہ تمام نصوص اس پر دلیل ہیں کہ انسان بدن کی موت کے بعد بھی باقی رہتا ہے۔ ساتویں دلیل: رسول اکرم صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کا یہ ارشاد: جب میت کو اس کی چار پائی پر اٹھایا جاتا ہے اس کی روح جنازے کے اوپر پھڑپھڑاتی ہے اور کہتی ہے اے میرے لوگو! اے میری اولاد! (الحدیث) نبی صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم نے صراحت فرمادی

Fatawa-e-Razvia Volume IX

...that at the time the body is on the funeral bier, something remains there which calls out and says: "I gathered wealth through lawful and unlawful means." It is known that those who were its family remained so, and the one who gathered the wealth and on whose neck the burden remained was none other than that human being. This is a clear statement that at the time when the body is dead, the human being is alive, enduring, and understanding.

The eighth proof: The saying of Allah the Almighty: "O tranquil soul! Return to your Lord, well-pleased and pleasing [to Him]." This address is only at the state of death. Thus, it is known that what returns to Allah after the death of the body is alive and well-pleased, and it is none other than the human. This indicates that the human remains alive after the death of the body.

The tenth proof: All groups of the world—from India, Rome, Arabia, and non-Arab lands—and all followers of religions and sects—Jews, Christians, Magians, and Muslims—give charity on behalf of their deceased. They pray for their well-being and go to visit them. If they did not remain alive after the death of the body, then giving charity, praying, and visiting would be a vain and useless act. This serves as a proof that their original nature bears witness to the fact that humans do not die, rather it is the body that dies.

The seventeenth proof: It is necessary for a human to be knowledgeable, and the acquisition of knowledge happens only in the heart. Therefore, it is inevitable that the human is defined by that entity which exists in the heart or something associated with the heart.

Page 863 of 948

फ़तावा-ए-रज़विया जिल्द नवीं

...कि जिस समय शरीर अर्थी पर होता है, उस समय एक चीज़ शेष रहती है जो पुकारती है और कहती है: "मैंने धन वैध और अवैध तरीकों से इकट्ठा किया।" और यह ज्ञात हुआ कि जो लोग इसके परिवार वाले थे, वे तो परिवार वाले ही रहे, और जिसने धन इकट्ठा किया था और जिसकी गर्दन पर बोझ रह गया, वह कोई और नहीं बल्कि वही मनुष्य है। तो यह इस बात का स्पष्टीकरण है कि जिस समय शरीर मृत है, उसी समय मनुष्य जीवित, शेष और समझने वाला है।

आठवीं दलील: अल्लाह तआला का इरशाद है: "हे इत्मीनान (संतुष्ट) वाली जान! अपने रब की ओर लौट जा, इस हाल में कि तू उससे राज़ी (संतुष्ट) और वह तुझसे राज़ी।" और यह संबोधन मृत्यु के समय ही है। तो मालूम हुआ कि शरीर की मृत्यु के बाद जो अल्लाह की ओर लौटने वाला है, वह जीवित और संतुष्ट होता है, और वह मनुष्य ही है। तो मालूम हुआ कि मनुष्य शरीर की मृत्यु के बाद भी जीवित रहा।

दसवीं दलील: दुनिया के तमाम गिरोह—हिंदुस्तान, रोम, अरब और अजम (गैर-अरब) के रहने वाले—और तमाम धर्मों और संप्रदायों के अनुयायी—यहूदी, ईसाई, मजूसी (अग्निपूजक), और मुसलमान—अपने मृतकों की ओर से सदक़ा (दान) करते हैं। उनके लिए भलाई की दुआ करते हैं और उनकी ज़ियारत (दर्शन) के लिए जाते हैं। यदि वे शरीर की मृत्यु के बाद जीवित न रहते, तो सदक़ा, दुआ और ज़ियारत एक व्यर्थ और निरर्थक कार्य होता। इसमें दलील है कि उनकी मूल प्रकृति इस पर गवाह है कि मनुष्य नहीं मरता, बल्कि शरीर मरता है।

सत्रहवीं दलील: यह आवश्यक है कि मनुष्य ज्ञानवान हो, और ज्ञान की प्राप्ति केवल हृदय में ही होती है। तो यह लाज़िमी (अनिवार्य) है कि मनुष्य उस चीज़ से इबारत (परिभाषित) हो जो हृदय में मौजूद है या उस चीज़ से जो हृदय से जुड़ी है।

पृष्ठ 863 का 948

بأن حال مایکون الجسد علی النعش بقی هناك شیئی ینادي ویقول جمعت المال من حله وغیر حله، ومعلوم ان الذی کان الاهل اهلاله وکان جامعاً للمال وبقی في رقبته الوبال لیس الا ذلك الانسان، فهذا تصریح بأن فی الوقت الذی کان الجسد میتاً کان الانسان حیاً باقیاً فاهماً۔ کہ جس وقت بدن چارپائی پر ہوتا ہے اس وقت ایک شی باقی رہتی ہے جو ندا دیتی ہے اور کہتی ہے : میں نے مال جائز و ناجائز طریقوں سے جمع کیا، اور معلوم ہوا کہ اہل جس کے اہل تھے، اور جو مال جمع کرنے والا تھا اور جس کی گردن پر وبال رہ گیا وہ نہیں مگر وہ انسان ___ تو یہ اس بات کی تصریح ہے کہ جس وقت بدن مردہ ہے اسی وقت انسان زندہ، باقی اور سمجھنے والا ہے ___ الحجة الثامنة قول تعالٰی یاایتها النفس المطمئنة ارجعی الی ربک راضیة مرضیة والخطاب انما هو حال الموت فدل ان الذی یرجع الی الله بعد موت الجسد یکون حیاً راضیاً ولیس الا الانسان فهذا یدل ان الانسان بقی حیاً بعد موت الجسد۔ آٹھویں دلیل : اللہ تعالٰی کا ارشاد: اے اطمینان والی جان ! اپنے رب کی طرف لوٹ جا اس حالت میں کہ تو اس سے راضی وہ تجھ سے راضی ___ یہ خطاب بعد موت ہی ہے، تو معلوم ہوا کہ بدن موت کے بعد جو اللہ کی طرف لوٹنے والا ہے وہ زندہ، راضی ہوتا ہے، اور وہ انسان ہی ہے۔ تو معلوم ہوا کہ انسان جسم کی موت کے بعد بھی زندہ رہا ___ الحجة العاشرة جمیع فرق الدنیا من الهند والروم والعرب والعجم وجمیع ارباب الملل والنحل من الیهود والنصاری والمجوس والمسلمین یتصدقون عن موتاهم ویدعون لهم بالخیر ویذهبون الی زیارتهم، ولولا انهم بعد موت الجسد بقوا احیاء لکان التصدق والدعاء والزیارة عبثاً، فیدل ان فطرتهم الاصلیة شاهدة بأن الانسان لایموت بل یموت الجسد۔ دسویں دلیل : ہندوستان، روم، عرب، عجم کے رہنے والے تمام اہل عالم اور یہود، نصاری، مجوس، مسلمان تمام ادیان ومذاہب والے اپنے مردوں کی طرف سے صدقہ کرتے ہیں۔ ان کے لئے

دعائے خیر کرتے ہیں اور ان کی زیارت کے لئے جاتے ہیں، اگر وہ جسم کی موت کے بعد زندہ نہ رہتے تو صدقہ، دعا اور زیارت ایک عبث اور بے فائدہ کام ہوتا ___ اس میں دلیل ہے کہ ان کی اصل فطرت اس پر شاہد ہے کہ انسان نہیں مرتا بلکہ جسم مرتا ہے ___ والحجة السابعة عشرة ان الانسان یجب ان یکون عالماً، والعلم لایحصل الا فی القلب فیلزم ان یکون الانسان عبارة عن الشیئ الموجود فی القلب او شیئ لہ۔ سترھویں دلیل : ضروری ہے کہ انسان علم رکھنے والا ہو، اور علم کا حصول قلب ہی میں ہوتا ہے، تو لازم ہے کہ انسان اس شے سے عبارت ہو جو قلب میں موجود ہے یا اس شی سے جو قلب سے

Fatawa Razawiyya Volume 9

Relates to the heart[1] – end of the summary and excerpt. Relates to (completion, summary, and excerpts from various places). (T)

The Imam of the Path, the Sea of Reality, our Master Sheikh al-Akbar Muhi-ud-Din ibn Arabi (may Allah be pleased with him), states in the noble 'Futuhat al-Makkiyya': 'There is no matter in the sciences more difficult to conceptualize than this issue, for souls are pure by their original state, and likewise bodies and their faculties are pure according to the nature of glorifying their Creator and His Oneness upon which they were created. Then, through the union of body and soul, the name "human" emerged, and duties were attached to him, and from him obedience and transgression became manifest.'[2] etc. In knowledge, nothing is more difficult to comprehend than this issue, because souls are pure by their original nature. Likewise, bodies and their powers are pure according to the nature of the glorification and oneness of their Creator upon which they were created. Then, from the union of body and soul, the name human appeared; duties and commands were associated with it, and from it, obedience and transgression emerged. (T)

Imam Arif Billah Sayyidi Abdul Wahhab al-Sha'rani (may his secret be sanctified) quotes Imam Abu Tahir (may Allah's mercy be upon him) in the book 'Al-Yawaqit wa al-Jawahir': 'Human, according to the people of insight, is this collection of body and soul along with the meanings contained within them.'[3] According to people of insight, a human is this combination of body and soul along with all the meanings within them. (T)

Imam Fakhr al-Din al-Razi states in 'Tafsir al-Kabir' regarding the words of the Almighty in Surah al-Nahl: "He created man from a sperm-drop, then behold, he is an open adversary"[4]: 'Know that man is composed of body and soul. So the word of the Almighty (He created man from a sperm-drop) is an indication towards seeking evidence for the existence of the Wise Creator through the human body.' It should be known that a human is composed of body and soul, so the statement of the Almighty (created man from a sperm-drop) points towards using the human body as evidence for the existence of the Wise Creator.

---

1. Al-Tafsir al-Kabir, under the verse 'They ask you...', Al-Bahiya Arabic Edition, Al-Azhar Square, Egypt, 20/21 to 24.
2. Al-Yawaqit wa al-Jawahir, Discussion 66, Mustafa al-Babi, Egypt, 2/150.

3. Al-Yawaqit wa al-Jawahir, referencing Sheikh Muhi-ud-Din, Mustafa al-Babi, Egypt, 2/152.
4. Al-Quran, 16/4.

फ़तावा रज़विया खंड 9

हृदय से संबंधित है[1] – सारांश और उद्धरण समाप्त। यह (समाप्ति, सारांश और विभिन्न स्थानों से उद्धरणों के साथ) संबंधित है। (त)

तरीक़त के इमाम, हक़ीक़त के समंदर, हमारे आक़ा शैख़-ए-अकबर मुही-उद-दीन इब्न अरबी (अल्लाह उनसे प्रसन्न हो), महान 'फ़ुतुहात-ए-मक्किया' में फ़रमाते हैं: 'ज्ञान के विषयों में इस मसले से अधिक कठिन कल्पना करना कुछ भी नहीं है, क्योंकि आत्माएं अपने मूल नियम के अनुसार पवित्र हैं, और इसी तरह शरीर और उनकी शक्तियाँ अपने रचयिता की महिमा और उसकी एकता की उस प्रकृति के अनुसार पवित्र हैं जिस पर वे रचे गए हैं। फिर, शरीर और आत्मा के मिलन से "मनुष्य" नाम अस्तित्व में आया, और कर्तव्य उससे जुड़ गए, और उससे आज्ञाकारिता और उल्लंघन प्रकट हुए।'[2] आदि। ज्ञान के क्षेत्र में, इस मसले से अधिक कठिन कुछ भी नहीं है, क्योंकि आत्माएं मूल प्रकृति से पवित्र हैं। इसी प्रकार, शरीर और उनकी शक्तियाँ अपने सृष्टिकर्ता की महिमा और एकता की उस प्रकृति के अनुसार पवित्र हैं, जिस पर वे पैदा किए गए हैं। फिर शरीर और आत्मा के मिलन से 'मनुष्य' नाम सामने आया; कर्तव्य और आदेश इससे जुड़ गए, और इससे आज्ञाकारिता और उल्लंघन का जन्म हुआ। (त)

इमाम आरिफ़ बिल्लाह सय्यदी अब्दुल वहाब अल-शरानी (अल्लाह उनके रहस्य को पवित्र करे) पुस्तक 'अल-यवाक़ीत वल-जवाहिर' में इमाम अबू ताहिर (अल्लाह की उन पर कृपा हो) से उद्धृत करते हैं: 'अंतर्दृष्टि रखने वालों के अनुसार मनुष्य शरीर और आत्मा का यह संग्रह है, साथ ही इसमें समाहित अर्थ भी।'[3] ज्ञानियों के अनुसार, मनुष्य शरीर और आत्मा का यह मेल है और साथ ही वे सभी अर्थ जो उनमें समाहित हैं। (त)

इमाम फ़ख़्र-उद-दीन अल-राज़ी 'तफ़सीर-ए-कबीर' में सूरह अल-नहल में अल्लाह के शब्दों "उसने मनुष्य को एक वीर्य-बिंदु से पैदा किया, फिर देखो, वह एक खुला विरोधी है"[4] के बारे में फ़रमाते हैं: 'जान लें कि मनुष्य शरीर और आत्मा से बना है। अतः अल्लाह का कथन (उसने मनुष्य को एक वीर्य-बिंदु से पैदा किया) मानव शरीर के माध्यम से बुद्धिमान रचयिता के अस्तित्व के प्रमाण की ओर एक संकेत है।' यह ज्ञात होना चाहिए कि मनुष्य शरीर और आत्मा से बना है, इसलिए ईश्वर का यह कथन (इंसान को नफ़्ते से पैदा किया) मानव शरीर को बुद्धिमान रचयिता के अस्तित्व के प्रमाण के रूप में उपयोग करने की ओर संकेत करता है।

1. अत-तफ़सीर अल-कबीर, आयत 'वे आपसे पूछते हैं...' के अंतर्गत, अल-बहिया अरबी संस्करण, अल-अज़हर स्क्वायर, मिस्र, 20/21 से 24।
2. अल-यवाक़ीत वल-जवाहिर, चर्चा 66, मुस्तफ़ा अल-बाबी, मिस्र, 2/150।
3. अल-यवाक़ीत वल-जवाहिर, शैख़ मुही-उद-दीन के संदर्भ में, मुस्तफ़ा अल-बाबी, मिस्र, 2/152।
4. अल-क़ुरआन, 16/4।

فتاوٰی رضویہ جلد نہم

تعلّق باقلب ۱ اھ ملتقطاً ملخصاً۔ متعلق ہے (ختم، تلخیص اور متعدد جگہوں سے اقتباس کے ساتھ) ۔ (ت)

امام الطریقۃ بحر الحقیقۃ سیدنا شیخ اکبر محی الدین ابن عربی رضی اللہ تعالٰی عنہ فتوحات مکیہ شریف میں فرماتے ہیں: لیس فی العلوم اصعب تصورا من ھذہ المسئلۃ فان الارواح طاھرۃ بحکم الاصل والاجسام وقواھا کذلك طاھرۃ بما فطرت علیہ من تسبیح خالقھا و توحیدہ ثم باجتماع الجسم والروح حدث اسم الانسان وتعلق بہ التکالیف وظھر منہ الطاعات والمخالفات ۲ الخ۔ علوم میں اس مسئلہ سے زیادہ عسیر الفہم کوئی نہیں، اس لیے کہ ارواح بحکم اصل پاک ہیں، اسی طرح اجسام اور ان کے قوٰی اپنے خالق کی تسبیح و توحید کی جس فطرت پر پیدا ہوئے ہیں، پاک ہیں، پھر جسم اور روح کے ملاپ سے نام انسان رونما ہوا، اس سے تکلیفات و احکام وابستہ ہوئے اور اس سے فرمانبرداری و خلاف ورزی ظہور پذیر ہوئی۔ (ت)

امام عارف باللہ سیدی عبدالوہاب شعرانی قدس سرہ الربانی کتاب الیواقیت والجواہر میں امام ابوطاہر رحمۃ اللہ تعالٰی سے نقل فرماتے ہیں: الانسان عند اھل البصائر ھذا المجموع من الجسد والروح بما فیہ من المعانی ۳۔ ارباب بصیرت کے نزدیک انسان جسم وروح کا یہ مجموعہ ہے ان تمام معانی کے ساتھ جو اس میں ہیں۔ (ت)

امام فخر الدین رازی تفسیر کبیر میں زیرِ قولہ تعالٰی فی سورۃ النحل خَلَقَ الْإِنْسَانَ مِنْ نُطْفَةٍ فَإِذَا هُوَ خَصِيْمٌ مُّبِيْنٌ ۴ فرماتے ہیں: اعلم ان الانسان مرکب من بدن ونفس فقولہ تعالٰی (خَلَقَ الْإِنْسَانَ مِنْ نُطْفَةٍ) اشارۃ الی الاستدلال ببدنہ علی وجود معلوم ہو کہ انسان بدن اور روح سے مرکب ہے، تو ارشادِ

باری تعالیٰ (انسان کو نطفے سے پیدا کیا) بدنِ انسان سے صانع حکیم کے وجود پر استدلال کی جانب

---

۱ التفسیر الکبیر تحت آیہ ویسئلونك الطبعۃ البہیۃ العربیۃ بمیدان جامع الازہر مصر ۲۰/۲۱ تا ۲۴ ۲ الیواقیت والجواہر المبحث السادس والستون مصطفیٰ البابی مصر ۱۵۰/۲ ۳ الیواقیت والجواہر بحوالہ شیخ محی الدین مصطفیٰ البابی مصر ۱۵۲/۲ ۴ القرآن ۱۶/۴

Fatawa Rizvia Volume 9

The Wise Creator, and the word of the Most High: "and lo! he is an open opponent." [Al-Qur'an 16:4]. This points towards reasoning for the existence of the Wise Creator based on the conditions of the human soul, etc. It is a reference. And the word of the Creator (then behold, he is an open opponent) is an indication towards reasoning for the existence of the Wise Creator from the conditions of the human soul. etc. (T)

I say: And success is through Allah Almighty (T). By observing the noble verses of the Great Qur'an and the common, widespread idioms of the whole world, it is impressed upon the mind at first glance that what is called a 'human', and expressed by names like Zaid and Amr, or pronouns like 'I' and 'You', or demonstrative pronouns like 'this' and 'that', involves both soul and body. It is never the case that one is completely excluded. Now, whether it be that each is included in the reality of the human and is a true part, or that one is the essence of reality and the other is a companion and clothing. However, if you look at intellect and tradition, you see their consensus and agreement that a human is a perceiving, intelligent, understanding, willing, and accountable being from Allah Almighty. These attributes are established for it in reality, such that the described subject is not some other thing by essence, and attributes are not attributed to it secondarily or accidentally. Turning towards this clear and manifest matter, it becomes evident that just as in the first two views, taking 'pure abstraction' in the sense of 'on the condition of nothing else' is not reasonable for any sane person; if it exists, it is 'unconditioned'. This meaning is not transmitted because the soul is not entirely excluded from the body in any consideration. And the first view is not capable of it because humans are intelligent, and bodies of the intelligent are not. Humans are owners and controllers, not like instruments and subjects of the body. Likewise, it also became clear that in the last view, 'totality' means 'on the condition of something', not the composition of the essence of reality itself. Otherwise, a human would not remain intelligent and perceiving, because the total of a perceiver and a non-perceiver is a non-perceiver. It would follow that general verses and idioms—whether physical ones where humans are described with bodily attributes, or spiritual ones where humans are characterized with attributes of the soul, or collective ones where both are combined—would all be excluded from reality and taken as metaphors. Now, a human would be neither soul nor body but a third thing; inevitably, the first sense of 'totality' cannot be intended.

And among the proofs for it is the statement of Imam Abu Tahir: "with what it contains of meanings." For no sane person could imagine that accidents enter into the essence of a substance; rather, the intent is inclusion in consideration. Similarly, Imam Razi's explicit statement on composition, even while he repeatedly gives... Its proof is these words of Imam Abu Tahir (with all those meanings that are in it) that no sane person can have the delusion that accidents enter into the reality of a substance; the intent is only inclusion in consideration. Similarly, Imam Razi's explicit statement on being composite, when from his speech...

1. Al-Tafsir al-Kabir, under the mentioned verse, Al-Matba'ah al-Bahiyyah al-Misriyyah at Midan al-Azhar, Egypt, 19/224.

फतावा रिज़विया, जिल्द नवीं (खंड 9)

बुद्धिमान स्रष्टा, और अल्लाह तआला का फ़रमान: "फिर वह अचानक खुल्लम-खुल्ला झगड़ने वाला बन गया।" [अल-क़ुरान 16:4]। यह मानव आत्मा की स्थितियों से बुद्धिमान स्रष्टा के अस्तित्व पर तर्क की ओर संकेत है। इत्यादि। यह एक संकेत है। और अल्लाह का आदेश (फिर वह अचानक खुल्लम-खुल्ला झगड़ने वाला बन गया) मानव आत्मा की अवस्थाओं से बुद्धिमान स्रष्टा के अस्तित्व पर प्रमाण की ओर इशारा है। इत्यादि (त - अनुवादक की ओर से)

मैं कहता हूँ: और सफलता अल्लाह तआला की ओर से है (त)। महान कुरान की आयतों और पूरी दुनिया के प्रचलित मुहावरों के अवलोकन से पहली नज़र में ही ज़हन में यह बात बैठ जाती है कि जिसे इंसान कहा जाता है और जैद, अम्र जैसे नामों, या 'मैं' और 'तू' जैसे सर्वनामों, या 'यह' और 'वह' जैसे संकेतों से व्यक्त किया जाता है, उसमें आत्मा और शरीर दोनों शामिल हैं। ऐसा कभी नहीं होता कि कोई एक पूरी तरह से बाहर हो। अब चाहे ऐसा हो कि मानव वास्तविकता के निर्माण में प्रत्येक तत्व शामिल हो और वास्तविक अंश हो, या यह कि एक वास्तविकता का सार हो और दूसरा साथ देने वाला और वस्त्र के समान हो। लेकिन यदि आप बुद्धि और परंपरा (नक़्ल) पर गौर करें, तो आप उनकी सर्वसम्मति पाते हैं कि मनुष्य अल्लाह तआला की ओर से एक बोधगम्य, बुद्धिमान, समझदार, इच्छाशक्ति वाला और उत्तरदायी प्राणी है। ये गुण उसके लिए वास्तविकता में सिद्ध हैं, न कि वह स्वयं कोई और वस्तु है और ये गुण उसे गौण या आकस्मिक रूप से दिए गए हैं। इस स्पष्ट मामले पर ध्यान देने से यह स्पष्ट हो गया कि जिस प्रकार पहले दो कथनों में 'शुद्ध अमूर्तन' (pure abstraction) का अर्थ 'किसी और चीज़ की शर्त के बिना' लेना किसी भी बुद्धिमान व्यक्ति के लिए तर्कसंगत नहीं है; यदि है तो वह 'बिना शर्त' है। और यह अर्थ मान्य नहीं है क्योंकि आत्मा किसी भी लिहाज़ से शरीर से पूरी तरह अलग नहीं है। और पहला कथन इस योग्य नहीं है कि मनुष्य बुद्धिमान है और बुद्धिमानों के शरीर नहीं। मनुष्य स्वामी और नियंत्रक है, शरीर की तरह केवल एक उपकरण और वशीभूत नहीं। इसी तरह यह भी स्पष्ट हो गया कि अंतिम कथन में 'समूह' से तात्पर्य 'किसी चीज़ की शर्त के साथ' है, न कि स्वयं वास्तविकता का मिश्रण। अन्यथा मनुष्य बुद्धिमान और बोधगम्य नहीं रहेगा, क्योंकि बोधगम्य और गैर-बोधगम्य का समूह गैर-बोधगम्य होता है। और यह अनिवार्य होगा कि सामान्य आयतें और मुहावरे—चाहे वे शारीरिक हों जिनमें मनुष्य को शरीर के गुणों के साथ वर्णित किया गया है, या आध्यात्मिक जिनमें मनुष्य को आत्मा के गुणों के साथ चित्रित किया गया है, या सामूहिक जिनमें दोनों को मिलाया गया है—सब वास्तविकता से बाहर हो जाएँगे और रूपक के रूप में माने जाएँगे।

अब मनुष्य न आत्मा है और न शरीर बल्कि तीसरी चीज़ है; लाज़मी तौर पर 'समूह' का पहला अर्थ अभिप्रेत नहीं हो सकता।

और इस पर प्रमाणों में से इमाम अबू ताहिर का कथन है "उन तमाम अर्थों के साथ जो उसमें हैं।" क्योंकि कोई भी बुद्धिमान व्यक्ति यह भ्रम नहीं कर सकता कि 'आकस्मिक गुण' (accidents) किसी पदार्थ के सार में प्रवेश करते हैं; बल्कि उद्देश्य केवल विचार में शामिल होना है। इसी प्रकार, इमाम राजी का मिश्रण (composition) पर स्पष्टीकरण, जबकि वह बार-बार देते हैं... इसका एक प्रमाण इमाम अबू ताहिर के ये शब्द हैं (उन सभी अर्थों के साथ जो उसमें हैं) कि कोई भी बुद्धिमान व्यक्ति यह भ्रम नहीं कर सकता कि आकस्मिक गुण एक पदार्थ की वास्तविकता में प्रवेश करते हैं; यहाँ केवल विचार में शामिल होने का उद्देश्य है। इसी तरह, इमाम राजी का यौगिक होने पर स्पष्ट उल्लेख, जबकि उनके कथन से...

1. अल-तफ़्सीर अल-कबीर, उल्लेखित आयत के नीचे, अल-मत्बा अल-बहिया अल-मिस्रिया, मैदान अल-अज़हर, मिस्र, 19/224।

पृष्ठ 865/948

الصانع الحکیم و قول تعالی (فَاِذَا هُوَ خَصِیْمٌ مُّبِیْنٌ) اشارۃ الی الاستدلال باحوال نفسہ علی وجود الصانع الحکیم الخ اشارہ ہے۔ اور ارشادِ باری (پھر جبھی وہ کھلا جھگڑنے والا ہے) روح انسان کے احوال سے صانع حکیم کے وجود پر استدلال کی جانب اشارہ ہے۔ الخ (ت)

اقول: وباللہ التوفیق (میں کہتا ہوں اور توفیق اللہ تعالی سے ہے۔ ت) آیات کریمہ قرآنِ اعظم اور محاوراتِ عامہ شائعہ تمام عالم کے ملاحظہ سے بنگاہِ اولین ذہن میں منقش ہوتا ہے کہ جسے انسان کہتے ہیں اور زید عمر و اعلام یا من و تو ضمائر یا این و آن اسمائے اشارہ سے تعبیر کرتے ہیں، اس میں روح و بدن دونوں ملحوظ ہیں، ایک یکسر معزول ہو ایسا ہر گز نہیں، اب خواہ یوں ہو کہ ہر ایک نسخِ حقیقت انسانی میں داخل و جزوِ حقیقی ہو یا یوں کہ ایک سے تجوہرِ حقیقت اور دوسرے کو معیت و بشریت مگر ساتھ ہی عقل و نقل کی طرف نظر کیجئے تو ان کا اجماع و اطباق دیکھتے ہیں کہ انسان ایک شیئ مدرک عاقل فاہم مرید مکلف من اللہ تعالی ہے، اور یہ صفات اس کے لئے حقیقۃ ثابت ہیں کہ نہ موصوف بالذات کوئی شئی غیر ہو اور اس کی طرف بالتبع بالعرض نسبت کئے جاتے ہوں، اس بین و واضح امر کی طرف التفات کرتے ہیں منجلی ہو گیا کہ جس طرح قولین اولین میں تجرّدِ محض بہ معنی بشرط لا شیئی مراد لینا کسی عاقل سے معقول نہیں، اگر ہے تو لا بشرط، اور یہ معنی منقول نہیں کہ روح بدن میں کوئی لحاظ سے بلکل معزول نہیں، اور قول اول تو اس کا قابل نہیں کہ انسان عاقل ہے اور ابدان ذوی العقول نہیں، انسان مالک و متصرف ہے بدن کی طرح آلہ و معمول نہیں، یوں ہی یہ بھی روشن ہو گیا کہ قول اخیر میں مجموع سے مراد بشرطِ شیئی ہے نہ ترکیبِ نفس حقیقت، ورنہ انسان عاقل و مدرک نہ رہے کہ مجموع مدرک و نامدرک نامدرک ہے اور لازم آئے کہ آیات و محاورات عامہ خواہ مدنیات ہوں جن میں موصوف

بصفاتِ جسم کو انسان کہا گیا یا روحیات جن میں صفاتِ نفس سے انسان کو متصف کیا۔ خواہ جامعات جن میں دونوں کو اجتماع دیا سب یکسر حقیقت سے معزول اور مجاز پر محمول ہوں کہ اب انسان نہ روح نہ بدن بلکہ شیئ ثالث ہے، لاجرم مجموع کا محمل اول مراد نہیں ہو سکتا۔

ومن الدليل عليه قول الامام ابي طاهر" بما فيه من المعانى" فما كان لعا قل ان يتوهم دخول الاعراض فى قوام جوهر وانما المراد الدخول فى اللحاظ وكذا تنصيص الامام الرازى على التركيب مع اعطائه مرارا اس کی ایک دلیل امام ابو طاہر کے یہ الفاظ ہیں (ان تمام معانی کے ساتھ جو اس میں ہیں) کہ اسے کوئی عاقل یہ وہم نہیں کر سکتا کہ اعراض ایک جوہر کی حقیقت میں داخل ہیں مراد صرف لحاظ میں داخل ہونا ہے، اسی طرح مرکب ہونے پر امام رازی کی تصریح، جب کہ ان کے کلام سے

1 التفسير الكبير تحت آيه مذكوره مطبعة بهية مصرية بميدان الازهر مصر ۲۲۴/۱۹

“Katheera an al-insan huwa al-rooh” — In many places, it is inferred that man is the soul itself. (T)

Regarding the second interpretation, there are two possibilities: either it is based on the constitution of the soul and the body is a condition, i.e., man is the name of the soul connected to the body, or vice versa, i.e., the body connected to the soul. The second possibility is also refuted by the aforementioned clear premise that man is the rational being addressed primarily, not secondarily. Thus, by the grace of Allah Almighty, the throne of research is established that the preferred and victorious view is the latter in this sense and interpretation. And the second view is also not far from it because when the constitution of the essence is only the soul, man becomes the name of the soul itself. Considering its connection does not exclude it from being the soul, nor is the consideration of connection disregarded in these statements. Thus, its referral towards this victorious view is easy. That is why the great Imam Fakhr al-Din al-Razi, although he repeatedly registered and clarified that the soul itself is man, himself clarified that man is composed of soul and body. Similarly, Shah Abdul Aziz Sahib, where he wrote the phrase in ‘Tafseer-e-Azizi’ that “Jan-e-admi ke dar haqiqat admi ibarat az aan ast” (The soul of man, which in reality man is composed of. T), he explained it as follows:

[Table Side 1 - Persian/Arabic text] Detail of this summary is that man is composed of two things: soul and body. The greater part is the soul in which change and transformation find no way, and the body is like a garment in which many changes occur. (Briefly)

[Table Side 2 - Urdu translation] Detail of this summary is that man is composed of two things: soul and body. The greater part is the soul in which change and transformation have no way, and the body is like a garment in which many changes occur. (Briefly) (T)

Furthermore, the connection of the soul with the body is of four types: one is the worldly connection in the state of wakefulness; second in the state of sleep, which is connected from one aspect and separated from another; third is the barzakhi (interstitial state after death); fourth is the otherworldly.

[Table Bottom - Arabic/Urdu] And in Sharh al-Sudur, five types are determined with reference to Ibn al-Qayyim. The statement is: There are five different types of

connections of the soul with the body. First, in the mother's womb. Second, after birth. Third, in the state of sleep, where in one way the soul is connected to the body and in another way, it is separate. Fourth is in Barzakh, that although the soul has separated from the body due to death, it has not separated completely such that it no longer has any inclination towards it...

---

1 Tafseer-e-Azizi, Parah Amm, Surah Al-Tariq, Muslim Book Depot, Lal Kuan, Delhi, p. 226.

खंड नौ | फतावा रजविया

“कसीरा अन अल-इंसान हुवा अल-रूह” — बहुत सी जगहों से यह निष्कर्ष निकलता है कि मनुष्य वही मानवीय आत्मा है। (त)

रही बात दूसरी व्याख्या की, तो इसमें भी दो संभावनाएँ हैं: या तो यह आत्मा के अस्तित्व से है और शरीर एक शर्त है, यानी मनुष्य शरीर से जुड़ी आत्मा का नाम है, या इसके विपरीत यानी आत्मा से जुड़ा शरीर। दूसरी संभावना भी पूर्वोक्त स्पष्ट प्रस्तावना से खारिज हो जाती है कि मनुष्य मूलतः संबोधित बुद्धिमान प्राणी है, गौण रूप से नहीं। अतः अल्लाह तआला की कृपा से शोध का निष्कर्ष यह स्थापित हुआ कि पसंद किया गया और विजयी विचार अंतिम कथन ही है, इसी अर्थ और व्याख्या के साथ। और दूसरा कथन भी इससे दूर नहीं है क्योंकि जब सार तत्व में केवल आत्मा ही आधार है, तो आत्मा का नाम ही मनुष्य हुआ। संबंध के लिहाज से इसे आत्मा होने से बाहर नहीं किया जा सकता, न ही इन कथनों में संबंध के लिहाज से अनदेखी की गई है। अतः इसका उसी विजयी विचार की ओर संदर्भीकरण आसान है। इसीलिए महान इमाम फखरुद्दीन राजी ने, हालाँकि बार-बार आत्मा के ही मनुष्य होने पर बल दिया और स्पष्टीकरण दिया, फिर भी स्वयं मनुष्य के आत्मा और शरीर से बने होने को स्पष्ट किया। इसी तरह शाह अब्दुल अजीज साहब ने 'तफ़सीर-ए-अज़ीज़ी' में जहाँ यह वाक्यांश लिखा कि "जान-ए-आदमी कि दर हक़ीक़त आदमी इबारत अज़ाँ अस्त" (मनुष्य की जान कि वास्तव में मनुष्य उसी से बना है। त), वहीं इसकी व्याख्या इस प्रकार की:

[तालिका भाग 1 - फारसी/अरबी पाठ] इस संक्षिप्त विवरण का विवरण यह है कि मनुष्य दो चीजों से मिलकर बना है, जान (आत्मा) और शरीर। मुख्य भाग जान है जिसमें परिवर्तन और रूपांतरण का कोई मार्ग नहीं है, और शरीर एक पोशाक की तरह है जिसमें बहुत अधिक परिवर्तन होते रहते हैं। (संक्षेप में)

[तालिका भाग 2 - उर्दू अनुवाद] इस संक्षिप्त विवरण का विवरण यह है कि मनुष्य दो चीजों से मिलकर बना है, जान और शरीर। मुख्य भाग जान है जिसमें परिवर्तन और रूपांतरण का कोई मार्ग नहीं है, और शरीर एक पोशाक की तरह है जिसमें बहुत अधिक परिवर्तन होते रहते हैं। (संक्षेप में) (त)

फिर आत्मा का शरीर के साथ संबंध चार प्रकार का है: एक सांसारिक संबंध जागृति की अवस्था में; दूसरा नींद की अवस्था में कि एक तरह से संबंधित और एक तरह से अलग; तीसरा बरज़खी (मृत्यु के बाद की अवस्था); चौथा पारलौकिक।

[तालिका नीचे का भाग - अरबी/उर्दू] और 'शरह अल-सुदूर' में इब्न अल-कय्यिम के संदर्भ से पाँच प्रकार बताए गए हैं। इबारत यह है: शरीर से आत्मा के पाँच अलग-अलग प्रकार के संबंध हैं। पहला माँ के गर्भ में। दूसरा जन्म के बाद। तीसरा नींद की स्थिति में कि एक तरह से रूह शरीर से जुड़ी है और दूसरी तरह से अलग है। चौथा बरज़ख है कि रूह मृत्यु के कारण हालांकि शरीर से अलग हो चुकी है लेकिन पूरी तरह अलग नहीं हुई है कि उसका उसकी ओर कोई झुकाव न रहे...

---

1 तफ़सीर-ए-अज़ीज़ी, पारा अम्म, सूरह अल-तारिक, मुस्लिम बुक डिपो, लाल कुआं, दिल्ली, पृ. 226।

کثیرۃ ان الانسان ھو الروح - بہت سی جگہ مستفاد ہے کہ انسان وہی انسانِ روح ہے (ت)

رہا محمل دوم اس میں بھی دو احتمال ہیں قوام روح سے ہو اور بدن شرط یعنی انسان روح متعلق بالبدن کا نام ہو یا بالعکس یعنی بدن متعلق بالروح کا ثانی بھی اس مقدمہ مذکورہ واضحہ سے مدفوع کہ انسان عاقل مخاطب بالاصالۃ ہے، نہ بالتبع، تو بفضل اللہ تعالیٰ عرش تحقیق مستقر ہوگیا کہ مختار و منصور وہی قول اخیر بایں معنی و تفسیر ہے۔ اور قول ثانی بھی اس سے بعید نہیں کہ جب قوام جو ہر میں صرف روح ہے انسان روح ہی کا نام ہوا بلحاظ تعلق ہو نا اسے روح ہونے سے خارج نہیں کرتا، نہ ان عبارات میں لحاظ تعلق سے قطع نظر مذکور، تو اس کا اسی قول منصور کی طرف ارجاع میسور ، ولذا الامام اجل فخر الدین رازی نے بانکہ بار بار روح ہی کے انسان ہونے پر تسجیل و تنقیح فرمائی، خود ہی انسان کے روح وبدن سے مرکب ہونے کی تصریح فرمائی، اسی طرح شاہ عبدالعزیز صاحب نے تفسیر عزیزی میں جہاں وہ عبارت لکھی کہ جان آدمی کہ در حقیقت آدمی عبارت ازاں است (آدمی کی جان کہ حقیقت میں آدمی اس سے عبارت ہے۔ ت) وہیں اس کی شرح یوں ارشاد کی :

تفصیل ایں اجمال آنکہ آدمی مرکب از دو چیز است جان وبدن جزو اعظم جان است کہ تبدل و تغیر دراں راہ نمی یابد و بدون بمنزلہ لباس است کہ اختلاف بسیار در وی راہ می یابد ۱ اھ محضراً اس اجمال کی تفصیل یہ ہے کہ آدمی دو چیزوں سے مرکب ہے، جان اور بدن _ جزو اعظم جان ہے جس میں تبدل و تغیر کو راہ نہیں _ اور بدن بمنزلہ لباس ہے کہ اس میں بہت تبدیلی ہوا کرتی ہے اھ مختصراً (ت)

پھر روح کا بدن سے تعلق چار قسم ہے : ایک تعلق دنیوی بحال بیداری، دوسرا بحال خواب کہ من وجہ متعلق من وجہ مفارق، تیسرا برزخی، چوتھا اخروی۔

وجعلها في شرح الصدور عن ابن القيم خمسة قال للروح بالبدن خمسة انواع من التعلق متغايرة، الاول في بطن الام، الثاني بعد الولادة، الثالث في حال النوم فلها به تعلق من وجه و مفارقة من وجه الرابع في البرزخ فانها و ان كانت قد فارقته بالموت فانها لم تفارق فراقاً كلياً بحيث لم يبق لها اليه التفات، اور شرح الصدور میں ابن قیم کے حوالہ سے پانچ قسم قرار دی _ عبارت یہ ہے: بدن سے روح کے پانچ الگ الگ قسم کے تعلق ہیں _ پہلا شکمِ مادر میں _ دوسرا بعد ولادت _ تیسرا حالتِ خواب میں کہ ایک طرح سے روح بدن سے متعلق ہے اور دوسری طرح سے جدا ہے، چوتھا برزخ ہے _ کہ روح موت کے باعث اگر چہ بدن سے جدا ہو چکی ہے مگر بالکل جدا نہیں ہوئی ہے کہ

---

1 تفسیر عزیزی پارہ عم سورۃ الطارق مسلم بک ڈپو، لال کنواں دہلی ص ۲۲۶

Fatawa Ridawiyyah Volume Nine

[Fragment from previous page]: ...nothing remained from the side of the body. The fifth is the connection on the Day of Resurrection. This is the most complete of all types of connections, to which the previous connections bear no relation. This is because, with this connection, the body does not accept death, sleep, or decay. This was mentioned in 'Minah al-Rawd' and followed by Allama Qari.

I say: The discussion pertains to distinct and separate types of connections. No distinction is apparent between the intrauterine connection and the connection after birth, as both are purely connections of union with incomplete management and disposal. This is unlike the state of sleep, where the connection is not purely union, as there is also partial separation. In the Barzakh connection, there is no management involved. In the Afterlife connection, there is no deficiency at all. Thus, the classification is as follows: the connection is either purely union or it is not. Firstly: if it is so complete that it does not accept separation, then it is of the Afterlife; otherwise, it is worldly, during wakefulness. Secondly: if there is a connection of management, then it belongs to sleep; if not, then it is the Barzakh connection. If it is objected that a fetus in the womb does not use its organs and senses for actions and perception like a newborn child (and thus they should be counted as two distinct types), our answer would be that at that moment, the newborn child also does not use its organs and limbs like a child who has been weaned, nor does the weaned child like a youth or one approaching puberty, and...

1. Sharh al-Sadr and Chapter of the Abode of Souls, Khilaf Academy Mingora Swat, p. 100.
2. Al-Yawaqit wa al-Jawahir, the 66th Discussion, etc., Mustafa al-Babi, Egypt, 2/154.

फतवा-ए-रज़विया जिल्द नौ

[पिछले पृष्ठ से अंश]: ...शरीर की ओर से कोई न रह गया हो। पाँचवाँ: क़यामत के दिन का संबंध। वह सब से अधिक पूर्ण संबंध है जिससे पहले के संबंधों की कोई तुलना नहीं है, क्योंकि इस संबंध के साथ शरीर मृत्यु, नींद और क्षय को स्वीकार नहीं करता। 'मिनह अल-रौज़' में अल्लामा क़ारी ने भी इसी का पालन किया है।

मैं कहता हूँ: बातचीत अलग-अलग और विशिष्ट संबंधों के बारे में है। जबकि गर्भ के संबंध और जन्म के बाद के संबंध के बीच कोई स्पष्ट भिन्नता दिखाई नहीं देती—क्योंकि दोनों ही स्थितियों में शुद्ध जुड़ाव और अधूरे प्रबंधन एवं नियंत्रण का संबंध है। इसके विपरीत नींद की स्थिति के संबंध में शुद्ध जुड़ाव नहीं है, क्योंकि एक तरह से अलगाव भी है। और बर्ज़ख़ वाले संबंध में इसके साथ यह भी है कि प्रबंधन का संबंध नहीं है। और आख़िरत (परलोक) वाले संबंध में बिल्कुल कोई कमी नहीं है। तो वर्गीकरण इस प्रकार प्राप्त होगा: संबंध या तो शुद्ध जुड़ाव वाला है या नहीं। पहला: यदि वह इतना पूर्ण है कि विछोह स्वीकार न करे, तो वह पारलौकिक (आख़िरत का) है; अन्यथा सांसारिक है जो जागृति में होता है। और दूसरा: यदि प्रबंधन का संबंध है, तो वह नींद वाला है, और यदि प्रबंधन वाला नहीं है तो बर्ज़ख़ी है। यदि यह आपत्ति हो कि गर्भ का बच्चा कार्यों और बोध में अपने अंगों का उपयोग जन्म लिए हुए बच्चे की तरह नहीं करता (इस अंतर के कारण दोनों को दो गिना गया), तो हमारा उत्तर यह होगा कि उस समय जन्म लिया हुआ बच्चा भी अपने अंगों का उपयोग उस बच्चे की तरह नहीं करता जिसने दूध छोड़ दिया हो, और दूध छोड़ने वाला युवा या परिपक्व होने वाले की तरह, और...

1. शरह अस-सद्र और बाब मुक़र्रर अल-अरवाह, खिलाफ़ एकेडमी मिंगोरा स्वात, पृ. 100।
2. अल-यवाक़ीत वल-जवाहर, 66वीं बहस आदि, मुस्तफ़ा अल-बाबी मिस्र, 2/154।

पृष्ठ 948 का 867

الخامس تعلقها بہ یوم البعث وھو اکمل انواع التعلقات ولا نسبة لما قبلہ الیہ اذ لایقبل البدن مونا ولا نوما ولا فساد ا ھ و تبعہ القاری فی منح الروض، بدن کی طرف سے کوئی نہ رہ گیا ہو۔ پانچواں روز بعثت کا تعلق۔ وہ سب سے زیادہ کامل تعلق ہے جس سے ما قبل کے تعلقات کو کوئی نسبت نہیں، اس لئے کہ اس تعلق کے ساتھ بدن، موت، خواب اور فساد تغیر قبول نہیں کرتا اھ اور منح الروض میں علامہ قاری نے بھی اسی اتباع کیا۔ اقول: الکلام فی الانواع المتغائرة ولا یظهر للتعلق الرحمی تغایر مع الذی بعد الولادة فان کلیهما تعلق الاتصال المحض والتدبیر و التصرف الناقص بخلاف النومی فلایتمخص للاتصال، والبرزخی فلیس مع ذلك تعلق التدبیر و الأخروی فلانقص فیه اصل فیتحصل التقسیم هکذا التعلق اما متمحض للاتصال اولا الاول ان کمل بحیث لایقبل الفراق فاخروی ، والا فدنیوی ، یفظی، والثانی ان کان تعلق تدبیر فنومی اولا فبرزخی فان قیل لیس یستعمل الجنین الاته و جوارحه فی الاعمال والادراک مثل المولود قلت لایستعملها المولود من ساعته کالفظیم ولا الفطیم کالیافع ولا الیافع کمن بلغ اشده ولاکمثلہ الشیخ الهرم ثم الفانی ، فلیجعل عامة ذلك تعلقات متغائرة فافهم۔ 2 اقول: گفتگو الگ الگ اور جداگانہ تعلقات کے بارے میں ہے۔ جب کہ شکم مادر والے تعلق کی، بعد ولادت والے تعلق سے کوئی مغایرت ظاہر نہیں_ اس لئے کہ دونوں صورتوں میں خالص اتصال اور تدبیر وتصرف کا ناقص تعلق ہے۔ اس کے برخلاف حالت خواب کے تعلق میں خالص اتصال نہیں۔ من وجہ فراق بھی ہے۔ اور برزخ والے تعلق میں اس کے ساتھ یہ بھی ہے کہ تدبیر کا تعلق نہیں_ اور آخرت والے تعلق میں بالکل کوئی نقص نہیں۔ تو تقسیم اس طرح حاصل ہوگی، تعلق یا تو خالص اتصال رکھتا ہے یا نہیں۔ اوّل اگر ایسا کامل ہے کہ جدائی قبول نہ کرے تو اخروی_ ورنہ دنیوی جو بیداری میں ہو۔ اور ثانی اگر تدبیر کا تعلق ہے تو خواب والا ہے اور تدبیر والا نہیں

تو برزخی ہے _ اگر یہ اعتراض ہو کہ شکم کا بچہ افعال اور ادراک میں اپنے آلات وجوارح کو پیدا شدہ بچے کی طرح استعمال نہیں کرتا (اس فرق کی وجہ سے دونوں کو دو شمار کیا گیا) ہمارا جواب یہ ہوگا کہ اس وقت مولود بچہ بھی اپنے اعضاء و جوارح کو اس بچے کی طرح استعمال نہیں کرتا جو دودھ چھوڑ چکا ہو، اور دودھ چھوڑنے والا نوجوان یا قریب البلوغ کی طرح اور

1 شرح الصدر و باب مقر الارواح خلاف اکیڈمی منگورہ سوات ص ۱۰۰ 2 الیواقیت والجواهر المبحث السادس والستون الخ مصطفی البابی مصر ۲ / ۱۵۴

Fatawa Razawiya Volume 9

[Upper Box] He does not use it like one in full youth, nor like one who is very old, then one who reaches extinction from further old age uses it. So it should be that all these should be declared as separate and distinct relations ____ so understand it. (T)

[Main Body] Among them, just as the highest and most perfect relation is the otherworldly one, after which there is no possibility of separation, likewise the lowest and least relation is the Barzakhi one, which despite separation is a spiritual connection. However, the definitive texts of the Great Qur'an and the noble Hadith are just witnesses that this much relation is sufficient for the survival of humanity. It is known that the bounty or, God forbid, the punishment of the grave, whatever it is, is for the same human being who, in their worldly life, was a believer and obedient, or, God forbid, an infidel and disobedient. It is not that obedience and faith were performed by a human, but the blessing is being received by someone non-human, or disbelief and disobedience were from a human, but the punishment is being inflicted upon someone non-human. Similarly, all those clear arguments that just passed from Tafsir-e-Kabir regarding the death, survival, and life of a human, along with their many examples, guarantee this claim. So it is proved that the relation observed in human reality is absolute and unrestricted, regardless of the time.

[Lower Box - Arabic Section] As for what Imam Abu Tahir said after what we previously quoted: "When the form of his body is nullified by death and the meanings leave him by the seizing of his soul, he is not called a human. Then, when these things are gathered to him by restoration a second time, he is that same human himself. Do you not see that the body empty of spirit and meanings is called a phantom (shabah) and a corpse (juthah) and is not called a human? Likewise, the abstract spirit is not called a human." (1) etc. I say: The mercy of Allah Almighty upon him, he does not mean that the human is nullified by death, and that which is in the Barzakh from the moment of death...

[Lower Box - Urdu Section] As for what Imam Tahir said after the previously quoted text: "When the form of a man's body is nullified by death and the meanings are lost from it due to the soul being seized, he is not called a human. Then, when these things are gathered with him again, he becomes that same human exactly. See that a body void of soul and meanings is called 'shabah' and 'juthah', 'dhancha' (skeleton) and 'lasha' (carcass); it is not called a human. Similarly, a solitary soul is not called a human." etc. I say: (I say. T) The intention of the aforementioned Imam (may Allah

have mercy on him) is not that man becomes non-existent through death, and in the world of Barzakh from the breath of death...

[Footnote] (1) Al-Yawaqit wal-Jawahir, The Sixty-Sixth Inquiry, Mustafa al-Babi Egypt, 2/154.

फतावा रज़विया, जिल्द नहूम (खंड 9)

[ऊपरी बॉक्स] यह भरपूर जवानी वाले की तरह इस्तेमाल नहीं करता, न ही उसकी तरह बहुत बूढ़ा, फिर मजीद बुढ़ापे से फना (मृत्यु) को पहुँच जाने वाला व्यक्ति इस्तेमाल करता है। तो चाहिए कि इन सबको अलग-अलग और विभिन्न सम्बन्ध करार दिया जाए ____ तो इसे समझो। (त)

[मुख्य भाग] इनमें जिस तरह सर्वोच्च और पूर्ण सम्बन्ध परलोक का है, जिसके बाद अलगाव की कोई संभावना नहीं है, उसी तरह सबसे निम्न और कम सम्बन्ध बरज़खी (कब्र का) है कि अलगाव के बावजूद एक आध्यात्मिक जुड़ाव है। लेकिन महान कुरान और पवित्र हदीस के पुख्ता प्रमाण गवाह हैं कि इतना सम्बन्ध भी मानवता के अस्तित्व के लिए पर्याप्त है। यह ज्ञात है कि कब्र की नियामतें या, अल्लाह बचाए, सज़ा जो कुछ भी है, वह उसी मनुष्य के लिए है जो अपने सांसारिक जीवन में मोमिन (आस्तिक) और आज्ञाकारी था, या, अल्लाह बचाए, काफिर और अवज्ञाकारी था। ऐसा नहीं है कि आज्ञाकारिता और ईमान तो मनुष्य ने दिखाया और नियामतें किसी गैर-मनुष्य को मिल रही हैं, या कुफ्र और अवज्ञा मनुष्य से हुई और सज़ा किसी गैर-मनुष्य पर हो रही है। इसी तरह, वे सभी स्पष्ट दलीलें जो अभी तफ़सीर-ए-कबीर से मनुष्य की मृत्यु, उत्तरजीविता और जीवन पर गुज़रीं, अपने कई उदाहरणों के साथ इस दावे की गारंटी देती हैं। तो यह सिद्ध हुआ कि मानवीय वास्तविकता में जो सम्बन्ध देखा गया है वह पूर्ण और अप्रतिबंधित है, चाहे वह किसी भी समय का हो।

[निचला बॉक्स - अरबी अनुभाग] जैसा कि इमाम अबू ताहिर ने कहा, उसके बाद जो हमने पहले उद्धृत किया: "जब मृत्यु से उसके शरीर का रूप नष्ट हो जाता है और उसकी आत्मा के निकलने से अर्थ उससे समाप्त हो जाते हैं, तो उसे मनुष्य नहीं कहा जाता है। फिर, जब इन चीजों को दोबारा पुनर्स्थापन द्वारा उसके पास इकट्ठा किया जाता है, तो वह वही मनुष्य होता है। क्या आप नहीं देखते कि आत्मा और अर्थों से खाली शरीर को प्रेत (शबह) और लाश (जुसा) कहा जाता है और मनुष्य नहीं कहा जाता है? इसी तरह, केवल आत्मा को मनुष्य नहीं कहा जाता है।" (1) आदि। मैं कहता हूँ: अल्लाह तआला उन पर रहम करे, उनका मतलब यह नहीं है कि मनुष्य मृत्यु से नष्ट हो जाता है, और जो बरज़ख में है वह मृत्यु के क्षण से...

[निचला बॉक्स - उर्दू अनुभाग] रहा वह जो इमाम ताहिर ने पहले उद्धृत इबारत के बाद फ़रमाया कि: जब मौत से आदमी के जिस्म की सूरत बातिल (नष्ट) हो जाती है और रूह कब्ज़ हो जाने की वजह से मानी उससे ज़ायल (समाप्त) हो जाते हैं तो उसे इंसान नहीं कहा जाता। फिर जब दोबारा ये

चीज़ें उसके साथ जमा कर दी जाती हैं तो ब-ऐनही (हूबहू) वही इंसान हो जाता है। देखो कि रूह और मानी से खाली जिस्म को शबह और जुसा, ढांचा और लाशा कहा जाता है, इंसान नहीं कहा जाता, इसी तरह मुजर्रद (अकेली) रूह को इंसान नहीं कहा जाता आदि। फ़ा-क़ूल: (मैं कहता हूँ। त) इमाम मौसूफ़ रहमतुल्लाह तआला की मुराद यह नहीं कि इंसान मौत से नेस्त-ओ-नाबूद (समाप्त) हो जाता है और आलम-ए-बरज़ख में अज़-दम-ए-मौत (मौत के क्षण से)...

[पाद लेख] (1) अल-यवाक़ीत वल-जवाहर, ६६वीं खोज, मुस्तफा अल-बाबी मिस्र, 2/154.

فتاوٰی رضویہ جلد نہم

[اوپر والا خانہ] یہ بھر پور جوانی والے کی طرح استعمال نہیں کرتا، نہ ہی اس کی طرح بہت بوڑھا، پھر مزید بڑھاپے سے فنا کو پہنچ جانے والا شخص استعمال کرتا ہے۔ تو چاہئے کہ ان سب کو جداگانہ و متغائر تعلقات قرار دیا جائے ____ تو اسے سمجھو۔ (ت)

[مرکزی عبارت] ان میں جس طرح اعلٰی واکمل تعلق اخروی ہے جس کے بعد فراق کا احتمال ہی نہیں، یوں ہی ادون واقل تعلق برزخی ہے کہ با وصف فراق ایک اتصال معنوی ہے مگر قرآن عظیم وحدیث کریم کے نصوص قاطعہ شاہد عدل ہیں کہ اس قدر تعلق بھی بقائے انسانیت کے لئے بس ہے۔ ہدیہ معلوم کہ قبر تنعیم با معاذ اللہ تعذیب جو کچھ اسی انسان ہی کے واسطے ہے جو اپنی حیاتِ دنیوی حیات دنیوی میں مومن و مطیع یا معاذ اللہ کافر و عاصی تھا، نہ یہ کہ طاعت و ایمان تو انسان نے کئے اور نعمت مل رہی ہے کسی غیر انسان کو یا کفر و عصیان انسان سے ہوئے اور عذاب ہو رہا ہو کسی غیر انسان پر، اسی طرح وہ تمام حجج واضحہ جوابھی تفسیر کبیر سے بعد موت و بقا و حیات انسان پر گزریں مع اپنے نظائر کثیرہ کی اس مدعا کی کفیل ہیں تو ثابت ہوا کہ حقیقتِ انسانیہ میں جو تعلق ملحوظ ہے مطلق و مرسل ہے کسی وقت کا ہو۔

[نیچے والا خانہ - عربی حصہ] اماما قال الامام ابوطاھر بعدما اسلفنا نقله من انه اذا بطلت صورة جسده بالموت وزالت عنه المعانی بقبض روحه لایسم انساناً فاذا جمعت هذه الاشیاء الیه بالاعادة ثانیاً کان هو ذلك الانسان بعینیه الاتری ان الجسد الفارغ من الروح والمعانی یسمی شبحاً وجثة ولا یسمی انساناً وکذلك الروح المجرد لا یسمی انساناً (1) الخ فاقول: لیس یرید رحمه الله تعالی ان الانسان یبطل بالموت وان الذی فی البرزخ من لدن الموت

[نیچے والا خانہ - اردو حصہ] رہا وہ جو امام طاہر نے سابقاً نقل شدہ عبارت کے بعد فرمایا کہ: جب موت سے آدمی کے جسم کی صورت باطل ہوجاتی ہے اور روح قبض ہو جانے کی وجہ سے معانی اس سے زائل ہو جاتے ہیں تو اسے انسان نہیں کہا جاتا۔ پھر جب دوبارہ یہ چیزیں اس کے ساتھ جمع کر دی جاتی ہیں تو بعینہ وہی انسان ہو جاتا ہے۔ دیکھو کہ روح اور معانی سے خالی جسم کو شبح اور جثہ، ڈھانچہ اور لاشہ کہا جاتا ہے، انسان نہیں کہا جاتا، اس طرح مجرد روح کو انسان نہیں کہا جاتا الخ فاقول: (میں کہتا ہوں۔ ت) امام موصوف رحمہ اللہ تعالیٰ کی مراد یہ نہیں کہ انسان موت سے نیست و نابود ہو جاتا ہے اور عالمِ برزخ میں از دمِ موت

[حاشیہ] (1) الیواقیت والجواہر المبحث السادس والستون مصطفٰی البابی مصر ۲ / ۱۵۴

Fatawa Razawiyya, Volume 9

[Arabic Column]: Until the time of Resurrection, he is not human. God forbid that this be his intention, as this is the statement of the people of innovation and conflicts with definitive proofs. How is it permissible that the Barzakhi soul, connected to the body with a connection even in separation, not be human? It is definitively known that a human is the one who was commanded, and disbelieved, and did good, and did evil. It is self-evident that a non-human is not a human. So, is reward given to one who did not know and is punishment given to one who did not sin? While Allah Almighty says regarding them: "Woe to us! Who has raised us from our sleeping place?"[1] This informs that those raised in the Gathering are the same ones sleeping in the grave. It is known that those gathered in the Hereafter are the same who were in this world. Thus, a human is the same human in all three stages (worldly life, Barzakh, and Afterlife). At no time was he separated from humanity or stripped of his reality. Allah Almighty says: "The Fire, they are exposed to it."[2] The pronoun refers back to the people mentioned; they are the ones exposed to the Fire, none other than them. And Allah Almighty says: "Cursed is man! How ungrateful he is!"[3] up to His words: "Then He causes him to die and provides a grave for him."[4] Providing a grave occurs after causing death, and the pronoun in it refers back to...

[Urdu Column]: Until the time of Resurrection, what exists is not human—Allah forbid that this be their intent—as this is the claim of the innovators and conflicts with definitive proofs. How can it be that the Barzakhi soul is not human, which maintains a connection with the body even after separation? It is definitively known that a human is the one from whom faith, disbelief, virtue, and vice originate. It is self-evident that a non-human is a non-human; so is a reward given to one who did not perform deeds, and is punishment given to one who did not commit sins? Whereas Allah Almighty states regarding them that they will say: "Woe to us! Who has raised us from our sleeping place?" From this, it is derived that those who are raised for the Gathering are the same ones who were sleeping in the grave. And it is known that those gathered in the Hereafter are the same who were in this world. Thus, a human remains the same human in all three stages. At no time was he separated from humanity or detached from his reality. And the Almighty says: "The Fire; they are exposed to it." The pronoun returns to those very people mentioned, so those exposed to the Fire are the same, no others. And the Almighty's command is: "Cursed be man! How ungrateful he is" (until the command): "Then He caused him to die,

then He provided him a grave." Thus, providing a grave occurred after causing death, and the pronoun...

Footnotes: 1 Quran 36/52 2 Quran 40/46 3 Quran 80/17 4 Quran 80/21

फ़तावा रज़विया, खंड 9

[अरबी कॉलम]: पुनरुत्थान के समय तक वह मनुष्य नहीं है। अल्लाह न करे कि यह उनका इरादा हो, क्योंकि यह नवाचारियों (बिद'अतियों) का कहना है और निश्चित प्रमाणों के विपरीत है। यह कैसे संभव है कि बरज़ख़ी रूह मनुष्य न हो, जो शरीर से अलग होने के बावजूद उसके साथ एक संबंध रखती है? यह निश्चित रूप से ज्ञात है कि मनुष्य वही है जिसे आदेश दिया गया, जिसने कुफ़्र किया, नेकी की और बुराई की। यह स्वतः सिद्ध है कि जो मनुष्य नहीं है वह मनुष्य नहीं है। तो क्या इनाम उसे दिया जाता है जिसने कर्म नहीं किए और दंड उसे दिया जाता है जिसने पाप नहीं किया? जबकि अल्लाह तआला उनके बारे में फ़रमाता है: "हाय हमारी बर्बादी! हमें हमारे सोने के स्थान से किसने उठाया?"[1] इससे यह ज्ञात हुआ कि हश्र में जो उठाए जाने वाले हैं, वही क़ब्र में सोने वाले हैं। और मालूम हुआ कि आख़िरत में जो इकट्ठे किए जाएंगे वे वही हैं जो दुनिया में थे। तो मनुष्य तीनों चरणों में वही मनुष्य है। वह किसी भी समय मानवता से अलग और अपनी वास्तविकता से बाहर नहीं हुआ। और अल्लाह तआला फ़रमाता है: "वे आग पर पेश किए जाते हैं।"[2] ज़मीर (सर्वनाम) उन्हीं लोगों की ओर लौटता है जिनका ज़िक्र हुआ, तो आग पर पेश किए जाने वाले वही हैं, कोई और नहीं। और अल्लाह तआला फ़रमाता है: "इंसान मारा जाए! वह कितना बड़ा नाशुक्रा है!"[3] उसके इस वचन तक: "फिर उसे मौत दी, फिर उसे क़ब्र में रखा।"[4] तो क़ब्र में रखना मौत देने के बाद हुआ, और इसमें ज़मीर...

[उर्दू कॉलम]: पुनरुत्थान के समय तक जो होता है वह मनुष्य नहीं है—अल्लाह की पनाह कि यह उनका इरादा हो—जबकि यह गुमराहों (बद-मज़हबों) का कथन है और निश्चित प्रमाणों के विरुद्ध है। यह कैसे हो सकता है कि वह बरज़ख़ी रूह मनुष्य न हो जो शरीर से विच्छेद के साथ एक संबंध भी रखती है? यह निश्चित रूप से ज्ञात है कि मनुष्य वही है जिससे विश्वास (ईमान), अविश्वास (कुफ़्र), अच्छाई और बुराई का उद्भव हुआ। यह प्रत्यक्ष है कि जो मनुष्य नहीं है वह मनुष्य नहीं है; तो क्या इनाम उसे मिलता है जिसने कर्म नहीं किया, और क्या दंड उसे मिलता है जिसने पाप नहीं किया? जबकि अल्लाह तआला उनके बारे में फ़रमाता है कि वही कहेंगे: "हाय हमारी बर्बादी! हमें हमारे सोने के स्थान से किसने उठाया?" इससे यह ज्ञात हुआ कि प्रलय (हश्र) में जो उठाए जाने वाले हैं, वही क़ब्र में सोने वाले हैं। और मालूम हुआ कि परलोक (आख़िरत) में जो उठाए जाएंगे वे वही हैं जो दुनिया में थे। तो मनुष्य तीनों चरणों में वही मनुष्य है। वह किसी भी समय मानवता से अलग और अपनी वास्तविकता से बाहर नहीं हुआ। और अल्लाह तआला फ़रमाता है: "वे आग पर पेश किए

जाते हैं।" ज़मीर (सर्वनाम) उन्हीं लोगों की ओर लौटता है जिनका उल्लेख हुआ, तो आग पर पेश किए जाने वाले वही हैं, कोई अन्य नहीं। और अल्लाह का आदेश है: "इंसान मारा जाए, वह कितना बड़ा कृतघ्न (नाशुक्रा) है" (अल्लाह के आदेश तक:) "फिर उसे मृत्यु दी, फिर उसे क़ब्र में रखा।" तो क़ब्र में रखना मृत्यु देने के बाद हुआ, और ज़मीर...

पाद-टिप्पणियाँ: 1 क़ुरआन 36/52 2 क़ुरआन 40/46 3 क़ुरआन 80/17 4 क़ुरआन 80/21

فتاوٰی رضویہ ، جلد نہم

[Arabic column]: الی حین البعث لیس بانسان، ومعاذ اللہ ان یریدہ وھو قول اھل البدع ومصادم للقواطع وکیف یجوز ان لا یکون الروح البرزخي المتصل بالبدن اتصالا في فراق انسانا، ومعلوم قطعاً ان الانسان ھو الذي کان امر وکفر واحسن وفجر وبدیھی ان غیر الانسان غیر الانسان افینعم من لم یعلم ویعذب من لم یعص واللہ تعالی یقول عنھم یٰوَیْلَنَا مَنْۢ بَعَثَنَا مِنْ مَّرْقَدِنَا۱ فافادان المبعوثین في الحشر ھم الراقدون في القبر ومعلوم ان المحشورین في العقبی ھم الکاینون في الدنیا فالانسان ھو ھو في الدور الثلث لم یزل عن انسانیة ولم ینسلخ عن حقیقة، وقال تعالی النَّارُ یُعْرَضُوْنَ عَلَیْھَا۲ وانما اعاد الضمیر الی الناس المذکورین فھم المعروضون علی النار لا غیر ھم وقال تعالی قُتِلَ الْاِنْسَانُ مَآ اَکْفَرَہٗ۳ الی قولہ عز وجل ثُمَّ اَمَاتَہٗ فَاَقْبَرَہٗ٤ فالاقبار بعد الاماتة وقد ارجع الکنایة فیہ الی

[Urdu column]: تا وقتِ بعث جو ہوتا ہے وہ انسان نہیں_اللہ کی پناہ کہ یہ ان کی مراد ہو_جب کہ یہ بد مذہبوں کا قول ہے اور قطعی دلائل سے متصادم ہے_اور یہ کیسے ہو سکتا ہے کہ وہ روحِ برزخی انسان نہ ہو جو بدن سے فراق کے ساتھ ایک اتصال بھی رکھتی ہے_اور یہ قطعاً معلوم ہے کہ انسان وہی ہے جس سے ایمان و کفر اور نیکی و بدی کا صدور ہوا_اور بدیہی ہے کہ غیر انسان، غیر انسان ہے تو کیا انعام اسے ہوتا ہے جس نے عمل نہ کیا، اور عذاب اسے ہوتا ہے جس نے معصیت نہ کی؟_حالانکہ اللہ تعالیٰ ان کے متعلق بیان فرماتا ہے کہ وہی کہیں گے: ہائے ہماری خرابی! کس نے ہماری خواب گاہ سے ہمیں اٹھایا، اس سے افادہ ہوا کہ حشر میں جو اٹھائے جانے والے ہیں وہی قبر میں سونے والے ہیں_اور معلوم ہوا کہ آخرت میں جو اٹھائے جائیں گے وہ وہی ہیں جو دنیا میں تھے_تو انسان تینوں مقامات میں وہی انسان ہے۔ کسی وقت میں وہ انسانیت سے جدا اور اپنی حقیقت سے خارج نہ ہوا_اور باری تعالیٰ فرماتا ہے: وہ آگ پر پیش کئے جاتے ہیں_ضمیر

ان ہی لوگوں کی طرف لوٹائی جو مذکور ہوئے تو آگ پر پیش کیے جانے والے وہی ہیں، غیر نہیں۔ اور ارشادِ باری ہے: انسان مارا جائے کتنا بڑا ناشکرا ہے (تا ارشاد باری:) پھر اسے موت دی، پھر اسے قبر میں رکھا_تو قبر میں رکھنا موت دینے کے بعد ہوا، اور ضمیر

حواشی: 1 القرآن ۵۲/۳۶ 2 القرآن ۴۶/۴۰ 3 القرآن ۱۷/۸۰ 4 القرآن ۲۱/۸۰

Fatawa Razawiya Volume Nine

[Arabic Column]: "The human," it is established that the buried deceased is none other than a human being. In short, the proofs for this are so numerous that one cannot hope to encompass them all. He [the author] only intended to point out that "man" is not considered in isolation from either the soul or the body. When the form of the body is nullified by death and the meanings depart from it due to the soul leaving, that empty body is not called "man." Previously, it was colloquially called so due to the connection, as will be mentioned later. Similarly, the naked soul, insofar as it is naked, is not called "man." Rather, "man" is the aggregate—meaning the soul considered in terms of its connection [to the body], whether that connection be worldly, of the hereafter, or of the barzakh (intermediary realm). This is how this matter should be understood, and Allah, the Exalted, is the Bestower of favors.

[Urdu Column]: In this too, it is referred back to "man," so it is proven that the deceased in the grave is a human being... In short, there are many proofs on this subject that one cannot hope to encompass. The mentioned Imam only intended to caution that in the consideration of "man," neither the soul nor the body is separate from the other. So, when the form of the body becomes void due to death, and its meanings vanish because the soul has departed, this empty body is not called "man," whereas previously it was colloquially so called because there was a connection, as is coming ahead. Similarly, the soul, even if stripped [of the body], in view of the fact that it is stripped, is not called "man." Man is the aggregate of soul and body, meaning that soul for which the consideration of connection with the body is maintained, whether that connection be worldly, afterworldly, or barzakhi (of the intermediate state). This is how this position should be understood, and Holy God is the owner of bounty. (T)

[Bottom Section]: This research was about the reality and the referent of "man." Now let us move towards the mentioned verses and idioms. Since the distinctness of man and soul as separate entities has been shown to be patently false, whichever of the three views you take, it will be unavoidable to assume metaphor (tajawuz) in one of the bodily and spiritual verses/idioms and usage of "istikhdam" in the comprehensive one, as is not hidden. But we see that the commentators do not acknowledge "istikhdam" anywhere in them. Footnote: Indeed, some scholars said that "istikhdam" in this sense does not occur in the Great Quran at all; this was transmitted by Imam al-Suyuti in Al-Itqan. He said: I have deduced through my own thinking some verses and mentioned three, the first being "Allah's command comes, so do not seek to

hasten it." [In the terminology of rhetoric, 'istikhdam' is when a word has multiple meanings and at one place a word or its pronoun refers to one meaning, and at another place the pronoun refers to another meaning. 12-Minhu (From the author), Translator]. Rather, some scholars have stated: 'istikhdam' in this sense is not found in the Great Quran at all. (Continued on the next page)

फ़तावा रज़विया जिल्द नवीं

[अरबी पाठ स्तंभ]: "इंसान", यह सिद्ध हो गया कि कब्र में दफन मृत व्यक्ति इंसान के अलावा और कुछ नहीं है। संक्षेप में, इस पर इतने प्रमाण हैं कि उन्हें घेरने की आशा नहीं की जा सकती। उन्होंने [लेखक ने] केवल इस ओर ध्यान दिलाना चाहा है कि "इंसान" को रूह या बदन में से किसी से भी अलग करके नहीं देखा जाता। जब मौत के कारण शरीर का रूप नष्ट हो जाता है और रूह के निकल जाने के कारण उसके अर्थ (मानवीय गुण) समाप्त हो जाते हैं, तो उस खाली शरीर को "इंसान" नहीं कहा जाता, जबकि इससे पहले बोलचाल में उसे ऐसा कहा जाता था क्योंकि जुड़ाव (इत्तेसाल) था, जैसा कि आगे आएगा। इसी तरह, केवल रूह को भी, इस तथ्य के बावजूद कि वह रूह है, "इंसान" नहीं कहा जाता। बल्कि "इंसान" रूह और बदन का समूह है, यानी वह रूह जिसके साथ बदन के जुड़ाव का विचार रखा गया हो, चाहे वह जुड़ाव दुनियावी हो, परलोक का हो या बरज़खी (मध्यवर्ती अवस्था) का हो। इस स्थान को इसी तरह समझना चाहिए, और अल्लाह सुब्हानहु ही इनाम देने वाला है।

[उर्दू पाठ स्तंभ]: इसमें भी "इंसान" की ही तरफ लौटाया गया तो साबित हुआ कि मैयत जो कब्र में होता है वह इंसान ही है... संक्षेप में इस बारे में बहुत दलीलें हैं जिनका अहाता करने की लालच नहीं। इमाम मौसूफ़ ने बस इस बात पर तंबीह (चेतावनी) फ़रमाना चाहा है कि रूह और बदन दोनों में किसी से भी इंसान लिहाज़ में जुदा नहीं। तो जिस्म की सूरत जब मौत की वजह से बातिल हो जाए और उससे रूह निकल जाने के बाइस मानी उससे ज़ाइल हो जाएं तो उस खाली जिस्म को इंसान नहीं कहा जाता, जबकि उससे पहले उर्फ़ा (बोलचाल में) कहा जाता था क्योंकि इत्तेसाल (जुड़ाव) था जैसा कि आगे आ रहा है। इसी तरह रूह भी मुजर्रद (अकेली) को, इस हकीकत से कि वह मुजर्रद है इंसान नहीं कहा जाता। इंसान तो मजमुआ रूह व बदन है, यानी वह रूह जिसके साथ बदन से इत्तेसाल का लिहाज़ मलहूज़ है ख्वाह वह इत्तेसाल दुनियावी हो या अख़रवी या बरज़खी। इसी तरह इस मुकाम को समझना चाहिए, और ख़ुदाए पाक ही मालिक-ए-इनाम है। (त)

[नीचे का पाठ]: यह तहकीक (शोध) हकीकत और मिस्दाक-ए-इंसान के बारे में कलाम था। अब ज़िक्र की गई आयतों और मुहावरों की तरफ चलें। जब इंसान और रूह का अलग-अलग होना स्पष्ट रूप से गलत साबित हो चुका है, तो अब तीनों कथनों में से कोई भी कथन लें, जिस्मानी और रूहानी आयतों और मुहावरों में से एक में तजवुज़ (अलंकार) और जामिआ (व्यापक) में इस्तिखदाम मानने से बचा नहीं जा सकेगा, जैसा कि छिपा नहीं है। लेकिन हम देखते हैं कि मुफ़स्सरीन (व्याख्याकार) उनमें

कहीं भी इस्तिखदाम नहीं मानते। नोट: बल्कि कुछ विद्वानों ने कहा है कि इस अर्थ में इस्तिखदाम कुरान अज़ीम में बिल्कुल नहीं हुआ है, इसे इमाम सुयूती ने 'अल-इतकान' में नक़ल किया है। उन्होंने कहा कि मैंने अपने विचार से कुछ आयतें निकाली हैं और तीन का उल्लेख किया है, पहली "अल्लाहु का आदेश आता है, तो उसमें जल्दी न करो"। [बलागत (अलंकार शास्त्र) की शब्दावली में 'इस्तिखदाम' यह है कि किसी शब्द के कई अर्थ हों और एक जगह शब्द या उसके सर्वनाम (ज़मीर) से एक अर्थ लिया जाए और वही दूसरी जगह सर्वनाम से दूसरा अर्थ लिया जाए। १२-मिन्हु (लेखक द्वारा), अनुवादक]। बल्कि कुछ विद्वानों ने फरमाया: इस अर्थ में इस्तिखदाम कुरान अज़ीम में बिल्कुल कहीं नहीं आया है। (बाकी अगले पृष्ठ पर)

فتاوٰی رضویہ جلد نہم

[عربی کالم]: الانسان فثبت ان المیت المقبور لیس الا انساناً، وبالجملة ففی الدلائل علی هذا کثرة لا مطمع فی احاطتها، وانما اراد التنبیه علی ان الانسان لیس بمعزول اللحاظ عن شیئ من الروح والبدن فالجسد اذا ابطلت صورته بالموت وزالت عنه المعانی لخروج الروح عنه لا یسمی ذلك لجسد الفارغ انساناً وقد کان یسمی قبله عرفاً لمکان الاتصال کما سیأتی وکذا الروح المجرد من حیث هو مجرد لا یسمی انساناً وانما الانسان المجموع اعنی الروح الملحوظ بلحاظ الاتصال اعم ان یکون دنیویاً او اخرویاً او برزخیاً هکذا ینبغی ان یفهم هذا المقام، واللہ سبحانه ولی الانعام۔

[اردو کالم]: اس میں بھی انسان ہی کی طرف لوٹائی تو ثابت ہوا کہ میت جو قبر میں ہوتا ہے وہ انسان ہی ہے۔۔۔ بالجملہ دلائل اس بارے میں بہت ہیں جن کا احاطہ کرنے کی طمع نہیں۔ امام موصوف نے بس اس بات پر تنبیہ فرمانا چاہا ہے کہ روح اور بدن دونوں میں کسی سے بھی انسان لحاظ میں جدا نہیں۔ تو جسم کی صورت جب موت کی وجہ سے باطل ہو جائے اور اس سے روح نکل جانے کے باعث معانی اس سے زائل ہو جائیں تو اس خالی جسم کو انسان نہیں کہا جاتا، جبکہ اس سے پہلے عرفاً کہا جاتا تھا کیونکہ اتصال تھا جیسا کہ آگے آرہا ہے۔ اسی طرح روح بھی مجرد کو، اس حقیقت سے کہ وہ مجرد ہے انسان نہیں کہا جاتا۔ انسان تو مجموع روح و بدن ہے، یعنی وہ روح جس کے ساتھ بدن سے اتصال کا لحاظ ملحوظ ہے خواہ وہ اتصال دنیوی ہو یا اخروی یا برزخی۔ اسی طرح اس مقام کو سمجھنا چاہئے ، اور خداء پاک ہی مالک انعام ہے (ت)

[نیچے کی تحریر]: یہ تحقیق حقیقت و مصداقِ انسان میں کلام تھا اب آیات و محاورات مذکورہ کی طرف چلئے جب انسان و روح ہر ایک کا انسان جداگانہ ہونا بداہتہً باطل ہو چکا، تو اب اقوال ثلاثہ سے کوئی قول لیجئے آیات و محاورات بدنیہ و روحیہ سے ایک میں تجوز اور جامعہ میں استخدام

ماننے سے گریز نہ ہو گی کما لایخفی۔ مگر ہم دیکھتے ہیں کہ نہ مفسرین ان میں کہیں استخدام مانتے ہیں عہ: بل قال بعض العلماء ان الاستخدام بهذا المعنی لم یقع فی القرآن العظیم اصلا نقله الامام السیوطی فی الاتقان، قال وقد استخرجت بفکری آیات وذکر ثلثا الاولی "اتی امر الله فلا تستعجلوه" [اصطلاحِ بلاغت میں استخدام یہ ہے کہ کسی لفظ کے متعدد معنی ہوں اور ایک جگہ لفظ یا اس کی ضمیر سے ایک معنی مراد لیا جائے اور وہی دوسری جگہ ضمیر سے دوسرا معنی مراد لیا جائے ۱۲منہ مترجم] بلکہ بعض علماء نے فرمایا: استخدام اس معنی میں قرآن عظیم میں بالکل کہیں وارد نہیں، (باقی اگلے صفحہ پر)

Fatawa Razawiyya Volume 9

Nor do the people of common usage consider any speech among them to be separate from reality. Due to the intensity of intermixing, it is as if the soul and body are a single entity. Rather, the soul is subtle and theoretical, while the body is perceptible and visible. The radiance of the sun of the soul has cast rays of life onto the body, coloring it in its own hue, just as glowing coal is entitled to say "I am the Fire" because of the pervasion of fire in every particle of it.

(Remaining footnote from the previous page) Command of Allah is Muhammad (peace and blessings of Allah be upon him), as narrated by Ibn Mardawayh via Dahhak from Ibn Abbas (may Allah be pleased with them both). The pronoun in it refers to the establishment of the Hour (Judgment Day) or the punishment. The second: "And certainly We created man from an extract of clay." "Man" here means Adam, then He repeated the pronoun referring to him but intended his offspring, saying: "Then We made him a drop of fluid." He said this is the most apparent. And the third: "Do not ask about things which, if made known to you, would trouble you," then He said: "A people before you asked about them," meaning they asked about other things. This is the summary of Al-Suyuti's words.

Imam Al-Suyuti mentioned it in Al-Itqan. He says, "I have extracted 'Istikhdam' (a rhetorical device) in several verses through my own reflection." He mentioned three verses. One: (The command of Allah has come, so do not seek to hasten it). "The command of Allah" refers to Muhammad (peace and blessings of Allah be upon him), as narrated by Ibn Mardawayh via Dahhak from Ibn Abbas (may Allah be pleased with them both). And from its pronoun (which is in "do not hasten it"), the establishment of the Resurrection or punishment is intended. Second: "We created man from an extract of clay." By man, Adam is intended. Then "We made him a drop of fluid," here the pronoun "him" referring back to man means the offspring of Adam; he said: this is the most apparent. Third: Do not ask about such things that if they were revealed to you, they would grieve you. Then it was said, some people before you asked about them. Meaning, they asked about some other things. This is a summary of Imam Suyuti's words.

I say: I have extracted two more examples. The first is the word of Allah Almighty: "She guarded her private part, so We breathed into it." "Al-Farj" refers to the woman's private part, and the pronoun refers to "farj" in the sense of the opening of the collar (at the neck), based on what is preferred by the researchers. The other I mentioned in

my treatise "Al-Zulal al-Anqa min Bahr Sabqat al-Atqa" (1312 AH), in which I explained the interpretation of Allah Almighty's word: "And the most righteous one will be kept away from it." (12 from him [m])

न ही लोक-व्यवहार के लोग इनमें से किसी भी बात को वास्तविकता से अलग समझते हैं। अत्यधिक मिश्रण के कारण, मानो आत्मा और शरीर एक ही चीज़ हैं। बल्कि, आत्मा सूक्ष्म और सैद्धांतिक है, और शरीर प्रत्यक्ष और दृश्य है। आत्मा के सूर्य की आभा ने शरीर पर जीवन की किरणें डाली हैं, इसे अपने रंग में रंग लिया है, जैसे दहकते कोयले को उसके हर कण में आग के प्रसार के कारण "मैं आग हूँ" कहने का अधिकार है।

(पिछले पृष्ठ के फुटनोट का शेष) अल्लाह का आदेश मुहम्मद (उन पर अल्लाह की कृपा और शांति हो) हैं, जैसा कि इब्न मर्दवैह ने ज़हक के माध्यम से इब्न अब्बास (अल्लाह उन दोनों से प्रसन्न हो) से रिवायत की है। और इसमें सर्वनाम प्रलय के आने या दंड को संदर्भित करता है। दूसरा: "हमने मनुष्य को मिट्टी के सार से बनाया।" यहाँ "मनुष्य" का अर्थ आदम है, फिर उन्होंने उनकी ओर संकेत करते हुए सर्वनाम दोहराया लेकिन उनकी संतानों को अभिप्रेत किया, कहा: "फिर हमने उसे वीर्य की एक बूंद बनाया।" उन्होंने कहा कि यह सबसे स्पष्ट है। और तीसरा: "ऐसी चीज़ों के बारे में सवाल न करो कि अगर वे तुम पर ज़ाहिर कर दी जाएँ तो तुम्हें बुरी लगें," फिर उन्होंने कहा: "तुमसे पहले कुछ लोगों ने उनके बारे में पूछा था," यानी उन्होंने दूसरी चीज़ों के बारे में पूछा था। यह अल-सुयूती के शब्दों का सारांश है।

इसे इमाम सुयूती ने अल-इतकान में उद्धृत किया है। वह कहते हैं, मैंने अपने चिंतन से कुछ आयतों में 'इस्तिख़दाम' (एक अलंकार) निकाला है। तीन आयतों का उल्लेख किया गया है। एक: (अल्लाह का आदेश आ गया, तो उसकी जल्दी मत मचाओ)। अल्लाह के आदेश से मुराद मुहम्मद (उन पर अल्लाह की कृपा और शांति हो) हैं, जैसा कि इब्न मर्दवैह ने ज़हक के माध्यम से हज़रत इब्न अब्बास (अल्लाह उन दोनों से प्रसन्न हो) से रिवायत की है। और इसके सर्वनाम से (जो "उसकी जल्दी मत मचाओ" में है) प्रलय का आना या दंड अभिप्रेत है। दूसरा: हमने मनुष्य को मिट्टी के सार से बनाया। मनुष्य से मुराद हज़रत आदम हैं। फिर हमने उसे वीर्य की एक बूंद बनाया, यहाँ मनुष्य की ओर संकेत करने वाला सर्वनाम "उसे" आदम की संतानों के लिए है। उन्होंने कहा: यह सबसे स्पष्ट है। तीसरा: ऐसी चीज़ों के बारे में सवाल न करो कि अगर वे तुम पर ज़ाहिर कर दी जाएँ तो तुम्हें बुरी लगें। फिर आदेश हुआ कि तुमसे पहले कुछ लोगों ने उनके बारे में पूछा था। यानी कुछ दूसरी चीज़ों के बारे में पूछा था। यह इमाम सुयूती के शब्दों का सारांश है।

मैं कहता हूँ: मैंने दो और उदाहरण निकाले हैं। पहला: अल्लाह तआला का कथन है: "उसने अपनी लज्जा (प्राइवेट पार्ट) की रक्षा की, तो हमने उसमें फूँक मारी।" यहाँ 'अल-फर्ज' से मुराद महिला की लज्जा है, और सर्वनाम से मुराद 'फर्ज' है जिसका अर्थ है 'कॉलर का छेद' (गले के पास), उस राय के आधार पर जो शोधकर्ताओं द्वारा पसंद की गई है। दूसरा उदाहरण मैंने अपने ग्रंथ 'अल-ज़ुलाल अल-अनक़ा मिन बहर सबक़त अल-अतक़ा' (1312 हिजरी) में उल्लेख किया है, जिसमें मैंने अल्लाह तआला के कथन 'और परम धर्मपरायण को उससे दूर रखा जाएगा' की व्याख्या दी है। (12-उनकी ओर से [म])

نہ اہل عرف ان میں کسی کلام کو حقیقت سے جدا جانتے ہیں تو بوجہ شدت اختلاط گویا روح و بدن شیئی واحد ہیں بلکہ روح خفی و نظری ہے اور بدن محسوس مرئی اور اشراق شمس روح نے بدن پر حیات کی شعاعیں ڈال کر اسے اپنے رنگ میں رنگ لیا، جس طرح دہکتے کوئلے کو کہ اس کے ہر ذرے میں آگ کی سرایت نے انا النار کہنے کا مستحق

(بقیہ حاشیہ صفحہ گزشتہ) امر الله محمد صلی الله تعالٰی علیه وسلم، کما اخرج ابن مردویة من طریق الضحاك عن ابن عباس رضی الله تعالٰی عنهما والضمیر له مراد به قیام الساعة او العذاب، والثانیة "ولقد خلقنا الانسان من سلالة من طین" المراد به آدم، ثم اعاد الضمیر علیه مراد به ولده فقال: "ثم جعلنه نطفة" قال وهی اظهرها، والثالثة "لا تسئلوا عن اشیاء ان تبدلکم تسؤکم"، ثم قال "قد سألها قوم من قبلکم" ای اشیاء اخر هذا ملخص کلام السیوطي۔

اسے امام سیوطی نے اتقان میں نقل فرمایا وہ فرماتے ہیں میں نے اپنی فکر سے چند آیات میں استخدام نکالا ہے، تین آیتیں ذکر فرمائیں، ایک (الله کا امر آیا تو اس کی جلدی نہ مچاؤ) الله کا امر محمد صلی الله تعالٰی علیہ وسلم، جیسا کہ ابن مردویہ نے بطریق ضحاک حضرت ابن عباس رضی الله تعالٰی عنہما سے روایت کیا اور اس کی ضمیر سے ("جو اس کی جلدی نہ مچاؤ" میں ہے) قیام قیامت یا عذاب مراد ہے۔ دوسری: ہم نے انسان کو مٹی کے خلاصے سے پیدا کیا۔ انسان سے مراد حضرت آدم ہیں۔ پھر ہم نے اسے نطفہ کیا، یہاں انسان کی طرف راجع ضمیر "اسے" سے مراد اولاد آدم ہے، فرمایا: یہ سب سے زیادہ ظاہر ہے۔ تیسری: ایسی چیزوں کے بارے میں سوال نہ کرو کہ اگر وہ تم پر ظاہر کر دی جائیں تو تمھیں بری لگیں۔ پھر ارشاد ہوا تم سے پہلے کچھ لوگوں نے انھیں پوچھا۔ یعنی کچھ دوسری چیزوں کو پوچھا۔ یہ امام سیوطی کے کلام کی تلخیص ہے۔

اقول: وقد استخرجت مثالين آخرين الاول قوله عزوجل احصنت فرجها فنفخنا فيه "الفرج فرج المرأة والضمير للفرج بمعنى فرج الجيب على ماعليه المحققون والآخر ذكرته في رسالتي الزلال الاتقى من بحر سبقة الاتقى التى ذكرت فيها تفسير قوله عز وجل وسيجنبها الاتقى ١٢ منه (م)

میں نے دو مثالیں اور نکالیں ہیں اول: ارشاد باری عزوجل مریم نے اپنی شرمگاہ محفوظ رکھی تو ہم نے اس میں پھونک ماری، شرمگاہ سے مراد شرمگاہ زن، اور اس کی ضمیر سے مراد چاک گریبان، اس قول کی بنیاد پر جو محققین کا مختار ہے۔ یہ دوسری مثال میں نے اپنے رسالہ "الزلال الانقی من بحر سبقة الاتقی" (۱۳۱۲ھ) میں ذکر کی ہے جس میں میں نے ارشاد باری عزوجل "وَسَيُجَنَّبُهَا الْأَتْقَى" کی تفسیر بیان کی ہے۔ (ت)

Fatawa Razawiyya, Volume 9

...and now it is called 'fire'. Similarly, the body claims to be 'I, the human'. We see the body hearing, seeing, speaking, walking, and working, whereas the actual perceiver and doer is the soul, and the body is merely an instrument. Therefore, referring to the body as 'human' became a conventional truth (Haqiqat-e-Urfiya) and it became the entity to which all attributes and actions are attributed. The Great Quran also followed this common usage.

Allah the Exalted says: "Indeed, it is truth, just like that which you speak."[1] — The Almighty says: Indeed it is the truth, like that which you speak. (T)

Now, there is neither metaphor (tajuz) nor double meaning (istikhdam). A parallel is the phrase "Ra'aitu Zaidan" (I saw Zaid). Even if you mean the body by 'Zaid', we never actually see Zaid. What we see is only color and the outer surface, and that is certainly neither Zaid's soul nor his inner body. However, due to the intense connection, it is called 'seeing Zaid'. In this, there isn't even a suspicion of metaphor or contradiction of reality. To the extent that if someone sees Zaid's color and surface like this and swears, "I definitely did not see Zaid," he would be considered a liar. Consequently, in Tafsir al-Kabir, after a broad and encouraging discussion on the soul being non-corporeal, it is stated:

[Table Content] Arabic Text: Know that most of the gnostics and visionaries among those who practice spiritual disciplines and possess divine disclosures and observations are persistent on this view and firm in this doctrine. The deniers argued from the saying of Allah the Exalted: 'From what thing did He create him? From a drop of semen He created him.' This is a declaration that the human is created from semen and that he dies and enters the grave. If 'human' did not refer to this physical body, the mentioned states would not be correct. The answer is that since, in common parlance and appearance, the human refers to this corpse (body), the name 'human' was conventionally applied to it. — Summarized.

Urdu Translation: It is known that among the people of spiritual discipline and masters of revelation and observation, most gnostics and visionaries insist on this statement and hold firm to this belief. The deniers have argued from the Lord's saying: "From what did He create him? From a drop of sperm." This is a clarification that man was created from sperm and he is the one who dies and enters the grave. If man were not synonymous with the physical body, then the mentioned conditions would not be correct. The answer is that since in common usage and outward

appearance man meant this body, the word "man" was conventionally applied to it. (Concluded briefly).

Footnote Note: Beyond just common usage, this intense intermixing and lack of distinction to the point of unification deceived the foolish philosophers who always risk their lives in the name of precision and consider useless deep-dives as research. Where? Even in the specific stage of defining, they defined man as a "rational animal," whereas animality belongs to the body, which is the growing body, and the "rational" and "perceiving" part is the soul. In fact, there is confusion in the definition of "animal" itself: the growing, moving body is the physical aspect, and the sensing and long-lasting part is the soul. 12 (Author) (M).

---

[1] Al-Quran 51/23 [2] Tafsir al-Kabir, under the verse "And they ask you about the soul," Bahiyyah Egyptian Press, Square of Al-Azhar University, Egypt, 52/21-53.

फ़तावा रज़विया, खंड 9

...कर दिया अब इसे आग ही कहा जाता है, वैसे ही शरीर 'मैं मनुष्य' होने का दावा करता है। हम शरीर को सुनते, देखते, बोलते, चलते-फिरते और काम करते हुए देखते हैं, जबकि बोध करने वाला और कर्ता आत्मा है और शरीर एक उपकरण है। इसलिए शरीर पर 'मनुष्य' शब्द का प्रयोग एक प्रथागत वास्तविकता (हकीक़त-ए-उर्फ़िया) के रूप में तय हुआ और वही सभी गुणों और कार्यों का श्रेय-पात्र बना। और महान कुरान भी इसी लोक-प्रथा (उर्फ़) के अनुरूप उतरा।

अल्लाह तआला फ़रमाता है: "बेशक वह सत्य है जैसे कि वह जो तुम बोलते हो।"[1] — बारी तआला फ़रमाता है: बेशक वह हक़ है जैसे तुम बोलते हो। (त)

अब न तो यह अलंकार (तजुज़) है और न ही श्लेष (इस्तिख़दाम)। इसका उदाहरण "रैतु ज़ैदन" (मैंने ज़ैद को देखा) है। हालांकि अगर ज़ैद से आपका मतलब शरीर ही हो, तो भी हम वास्तव में उसे नहीं देखते। जो हमें दिखाई देता है वह केवल रंग और बाहरी सतह है, और वह निश्चित रूप से न तो ज़ैद की आत्मा है और न ही शरीर। लेकिन जुड़ाव की तीव्रता के कारण इसे 'ज़ैद को देखना' कहा जाता है और इसमें अलंकार या वास्तविकता के उल्लंघन का भ्रम तक नहीं होता। यहाँ तक कि अगर कोई ज़ैद के रंग और सतह को इसी तरह देखे और कसम खाए कि "मैंने निश्चित रूप से ज़ैद को नहीं देखा", तो उसे झूठा समझा जाएगा। निस्संदेह, तफ़सीर कबीर में आत्मा के शरीर से अलग होने पर विस्तृत और उत्साहजनक चर्चा लिखने के बाद फ़रमाते हैं:

[सारणी की सामग्री] अरबी पाठ: जान लें कि आध्यात्मिक साधना करने वाले और दिव्य अंतर्दृष्टि रखने वाले अधिकांश आरिफ़ और मुकाशिफ़ीन इस विचार पर अड़े हुए हैं और इस मत पर दृढ़ हैं। इनकार करने वालों ने अल्लाह तआला के इस कथन से दलील दी है: 'उसे किस चीज़ से पैदा किया? एक वीर्य की बूंद से उसे पैदा किया।' यह इस बात की घोषणा है कि मनुष्य वीर्य से पैदा हुआ है और वही मरता है और कब्र में जाता है। यदि 'मनुष्य' से तात्पर्य यह भौतिक शरीर न होता, तो वर्णित स्थितियाँ सही नहीं होतीं। उत्तर यह है कि चूंकि लोक-प्रथा और बाहरी रूप में मनुष्य से तात्पर्य यह शरीर (जथ्था) था, इसलिए लोक-प्रथा में उस पर 'मनुष्य' नाम लागू किया गया। — संक्षेप में।

उर्दू अनुवाद: मालूम हुआ कि आध्यात्मिक साधना करने वालों और कश्फ़ व मुशाहदा के मालिकों में से अधिकांश आरिफ़ मुकाशिफ़ीन इस बात पर अडिग हैं और इस मत पर दृढ़ विश्वास रखते हैं। और इनकार करने वालों ने बारी तआला के इस इरशाद से तर्क दिया है: 'उसे किस चीज़ से पैदा किया,

नुतफ़ा (वीर्य) से'। यह इस बात की व्याख्या है कि मनुष्य नुतफ़ा से पैदा किया गया है और वही मरने वाला और कब्र में जाने वाला है। यदि मनुष्य शरीर और जथ्थे का नाम न होता, तो उक्त स्थितियाँ सही न होतीं। उत्तर यह है कि चूंकि लोक-प्रथा और प्रत्यक्ष रूप में मनुष्य इस शरीर को ही कहा जाता था, इसलिए लोक-प्रथा में उस पर 'इंसान' (मनुष्य) शब्द का प्रयोग हुआ। (संक्षेप में समाप्त)।

फुटनोट नोट: लोक-प्रथा तो दूर की बात है, इस तीव्र मिश्रण और एकरूपता की हद तक अंतर न होने ने मूर्ख दार्शनिकों को धोखा दिया, जो हमेशा बारीकी के नाम पर जान देते हैं और व्यर्थ की गहराइयों को शोध समझते हैं। वे भी कहाँ, परिभाषा करने के विशेष स्थान पर मनुष्य की परिभाषा कर बैठे "हैवान-ए-नातिक़" (बोलने वाला जीव), जबकि जीवत्व (हैवानियत) शरीर के लिए है जो कि विकसित होने वाला शरीर (जिस्म-ए-नामी) है, और बोलने वाला और समझने वाला आत्मा है। बल्कि स्वयं "हैवान" की परिभाषा में ही घालमेल है; विकसित होने वाला और चलने वाला शरीर भौतिक पक्ष है, और संवेदनशीलता और स्थायित्व आत्मा का पक्ष है। 12 (लेखक) (म)।

---

[1] अल-क़ुरान 51/23 [2] तफ़सीर कबीर, आयत "वे आपसे रूह के बारे में पूछते हैं" के तहत, मतबा बहिया मिस्रिया, अल-अज़हर विश्वविद्यालय परिसर, मिस्र, 52/21-53।

فتاوٰی رضویہ، جلد نہم

کردیا اب اسے آگ ہی کہا جاتا ہے ، یونہی جسم کو انا انسان کادعوٰی پہنچتا ہے۔ ہم سنتا، دیکھتا، بولتا، چلتا، پھرتا کام کرتا بدن ہی دیکھتے ہیں حالانکہ مدرک و فاعل روح ہے اور بدن آلہ، لہذا بدن پر اطلاق انسان حقیقت عرفیہ عہ قرار پایا اور وہی تمام صفات و افعال کا منسوب الیہ ٹھہرا اور قرآن عظیم بھی مطابقت عرف پر اترا،

قال تعالٰی: اِنَّهٗ لَحَقٌّ مِّثْلَ مَاۤ اَنَّكُمْ تَنْطِقُوْنَ۝۲۳ ۔ باری تعالٰی فرماتا ہے: بے شک وہ حق ہے اس کے مثل جو تم بولتے ہو۔ (ت)

اب نہ تجوز ہے نہ استخدام، نظیر اس کی "رأیت زیدا" ہے زید را دیدم ، زید کو دیکھا ، حالانکہ زید اگرچہ اس سے بدن ہی مراد لیجئے ہر گز ہمیں مرئی نہیں ، مرئی صرف رنگ و سطح بالائی ہے اور وہ قطعاً نہ روح زید ہے نہ بدن ، مگر شدت اتصال کی باعث اسے روئیت زید کہتے ہیں اور ہر گز اس میں تجوز و مخالفت حقیقت کا توہم بھی نہیں کرتے یہاں تک کہ اگر کوئی زید کے رنگ و سطح کو یونہی دیکھے اور قسم کھائے میں زید کو نہ دیکھا قطعاً کاذب سمجھا جائے گا، لاجرم تفسیر کبیر میں روح کے غیر جسم ہونے پر کلام واسع و مشجع لکھ کر فرماتے ہیں:

[جدول کا مواد] عربی متن: اعلم ان اکثر العارفین المکاشفین من اصحاب الریاضات وارباب المکاشفات والمشاهدات مصرون علی هذا القول جاز مون بهذا المذهب، واحتج المنکرون بقوله تعالی من ای شیئی خلقه من نطفة خلقه هذا تصریح بان الانسان مخلوق من نطفة وانه یموت ویدخل القبر ولو لم یکن عبارة عن هذه الجنة لم تکن الاحوال المذکورة صحیحة والجواب انه لما کان الانسان فی العرف والظاهر عبارة عن هذه الجثة اطلق علیه اسم الانسان في العرف ۲ اه مختصرا

اردو ترجمہ: معلوم ہوا کہ اہل ریاضت اور ارباب کشف و مشاہدہ میں سے اکثر عرفاء مکاشفین اس قول پر اصرار اور اس مذہب پر جزم رکھتے ہیں۔ اور منکرین نے باری تعالیٰ کے اس ارشاد سے استدلال کیا ہے اسے کس چیز سے پیدا کیا، نطفہ سے، یہ اس بات کی تصریح ہے کہ انسان نطفہ سے پیدا کیا گیا ہے اور وہی مرنے والا اور قبر میں جانے والا ہے، اگر انسان جسم وجثہ سے عبارت نہ ہو تو مذکورہ احوال صحیح نہ ہوں گے، جواب یہ ہے کہ نہ عرف اور ظاہر میں انسان اس بدن سے عبارت تھا تو عرفاً اس پر لفظ انسان اطلاق ہوا۔ (ختم باختصار)

عہ: عرف تو عرف اس شدت اختلاط و عدم تمایز بحد اتحاد نے سفہائے فلاسفہ کو دھوکا دیا جو ہمیشہ تدقیق کے نام پر جان دیتے اور فضول تعمقات کو تحقیق جانتے ہیں۔ وہ بھی کہاں، خاص مقام تحدید میں انسان کی تعریف کر بیٹھے حیوان ناطق، حالانکہ حیوانیت بدن کے لئے ہے کہ وہی جسم نامی اور ناطق ومدرک روح، بلکہ خود حیوان ہی کی تعریف میں خلط ہے، جسم نامی متحرک بدن ہے اور حساس ومدید روح ۱۲ منہ (م)

۱القرآن ۲۳/۵۱ ۲تفسیر کبیر زیر آیہ و یسئلونک عن الروح مطبعۃ بہیۃ مصریہ بمیدان الجامع الازہر مصر ۵۲/۲۱-۵۳

Volume Nine - Fatawa Rizvia

[Boxed Text] I say: And this answer is better than what was mentioned before it. For if they say, "This verse is an argument against you because the Almighty said, 'And indeed We created man from a quintessence of clay' (23:12), and the word 'min' (from) is for partition (tab'eed), and this indicates that man is a part of the parts of clay," we say the word 'min' originally signifies the starting point (ibtida al-ghaya), just as you say, "I went from Basra to Kufa." Thus, the saying of the Almighty, "And indeed We created man from a quintessence of clay," implies that the beginning of man's creation occurs from this quintessence. And we say according to its requirement because the Almighty first balances the temperament and then breathes the spirit into it, so the beginning of his creation is from the quintessence. (End) I say: Support for this answer can be taken from the Almighty's saying: "And He began the creation of man from clay" (32:7). So understand. (T)

In summary, the crux of the discussion is that for the application of the term 'man', there are two realities: first, the original precise reality, i.e., the soul connected to the body, albeit with a barzakh-related connection. Second, the common conventional (urfi) reality, i.e., the body. In the view of most theologians (mutakallimin), this is the original reality. If we overlook the technical technicalities and interpret their discourse regarding conventional man, then it is also correct.

Sixth Premise: I say: Bodily attributes are of two types: original ones that belong to the body itself, and subordinate (tabi'iyah) ones which are actually attributes of the soul but are attributed to the body due to the aforementioned union, such as knowledge, hearing, sight, will, and the agency of voluntary actions, etc. Although in convention, the name 'man' is applied to the body, the attribution of subordinate attributes to it is conditional on the state of life. After death, without the return of life, the empty body is in no way called 'hearing', 'seeing', 'willing', 'acting', or 'working' in either convention or language, because these relationships were based on that pervasive connection which made the soul and body a unified entity in convention. When that connection was withdrawn and the veil was lifted, the subordinate attributes reached their rightful owner and returned to their center, and that heap of dust showed its original states. Its example is the same...

---

1 Tafsir al-Kabir, under the verse "And they ask you about the soul," Bahiya Egyptian Printing House, Midan al-Jami' al-Azhar, 21/51 2 Al-Quran 32/7

जिल्द नहम - फ़तावा रज़विया

[बॉक्स किया हुआ पाठ] अक़ूल (मैं कहता हूँ): यह जवाब उस से बेहतर है जो इस से पहले ज़िक्र फ़रमाया है कि अगर वो कहें कि यह आयत तुम्हारे ख़िलाफ़ हुज्जत है इसलिए कि अल्लाह तआला ने फ़रमाया: "बेशक हमने इंसान को पैदा किया एक खुलासे (अर्क़) से जो मिट्टी से है।" कलमा 'मिन' (से) तबईज़ (विभाजन) के लिए है। और यह बताता है कि इंसान मिट्टी का एक जुज़ और बाज़ है। हम जवाब देंगे कि कलमा 'मिन' की असल इब्तिदा-ए-ग़ायत (आरंभ बिंदु) के लिए है जैसे तुम कहते हो मैं बसरा से कूफ़ा गया, तो इरशाद-ए-बारी (हमने इंसान को पैदा किया एक खुलासे से जो मिट्टी से है) इसका मुक़्तज़ा है कि तख़्लीक़-ए-इंसान की इब्तिदा इस खुलासे से होती है। (ख़त्म) क़ुल्त (मैंने कहा) इस जवाब के लिए इस इरशाद से इस्तियानास (समर्थन) होता है: "और इंसान की तख़्लीक़ मिट्टी से शुरू की", तो इसे समझो। (त)

अल-जुमला खुलासा-ए-मबहस यह हुआ कि 'इंसान' के इत्लाक़ के लिए दो हक़ीक़तें हैं: एक हक़ीक़त-ए-असलीया दक़ीक़ा यानी रूह मुताल्लिक़ बिल-बदन अगर्चे ब-तअल्लुक़-ए-बरज़ख़ी, दुवम हक़ीक़त-ए-मशहूर उरफ़िया यानी बदन, और अक्सर मुतकल्लेमीन के ज़ोम में यही हक़ीक़त-ए-असलीया है, और अगर ग़राबत-ए-फ़न से क़त-ए-नज़र करके इन का कलाम इंसान-ए-उरफ़ी पर महमूल करें तो वह भी सही।

मुक़द्दमा-ए-सादसा: अक़ूल: सिफ़ात-ए-बदन दो क़िस्म हैं: असलीया कि ख़ुद बदन के लिए हासिल और तबईया कि हक़ीक़तन सिफ़ात-ए-रूह हैं, और ब-वजह इत्तेहाद-ए-मज़कूर बदन की तरफ़ मंसूब जैसे इल्म-ओ-समअ-ओ-बसर-ओ-इरादा-ओ-फ़ाईलियत-ए-अफ़आल-ए-इख़्तियारया वग़ैरहा, उरफ़ में अगर्चे इंसान नाम बदन ठहरा मगर सिफ़ात-ए-तबईया की इसकी तरफ़ इज़ाफ़त मशरूत ब-शर्त-ए-हयात है, बाद मौत बे-ऊद-ए-हयात बदन-ए-ख़ाली को उरफ़न लुग़तन किसी तरह समीअ-ओ-बसीर मुरीद फ़ाइल आमिल नहीं कहते कि यह निस्बतें उस इत्तेसाल-ए-सरयानी पर मबनी थीं जिसने रूह-ओ-बदन को उरफ़न अम्र-ए-वहदानी कर दिया था, जब वह मस्लूब हुआ कश्फ़-ए-महजूब हुआ, सिफ़ात-ए-तबईया हक़ ब-हक़दार रसीद होकर अपने मरकज़ को गईं और इस तोदा-ए-ख़ाक को अपनी असली हालतें ज़ाहिर हुईं, नज़ीर इसकी वही...

---

1 तफ़सीर कबीर, ज़ेर-ए-आयत 'व यसअलूनका अनिर रूह', मताबआ बहिया मिस्रिया, मैदान अल-जामे अल-अज़हर 51/21 2 अल-क़ुरआन 32/7

[باکس میں متن] اقول: وھذا الجواب احسن مما قدم قبلہ حیث قال، فان قالوا ھذہ الآیۃ حجۃ علیکم لانہ تعالی قال "وَلَقَدْ خَلَقْنَا الْإِنْسَانَ مِنْ سُلَالَةٍ مِنْ طِينٍ" وکلمۃ من للتبعیض وھذا یدل علی ان الانسان بعض من ابعاض الطین، قلنا کلمۃ "من" اصلھا لابتداء الغایۃ کقولك خرجت من البصرۃ الی الکوفۃ فقولہ تعالی ولقد خلقنا الانسان من سلالۃ من طین. یقتضی ان یکون ابتداء تخلیق الانسان حاصلا من ھذہ السلالۃ ونحن نقول بموجبہ لانہ تعالی یسوی المزاج اولا ثم ینفخ فیہ الروح فیکون ابتداء تخلیقہ من السلالۃ 'اھ۔ قلت وقد یستأنس لہ بقولہ تعالی وَبَدَأَ خَلْقَ الْإِنْسَانِ مِنْ طِينٍ 2. فافھم۔

اقول یہ جواب اس سے بہتر ہے جو اس سے پہلے ذکر فرمایا ہے کہ اگر وہ کہیں کہ یہ آیت تمہارے خلاف حجت ہے اس لیے کہ اللہ تعالیٰ نے فرمایا: بے شک ہم نے انسان کو پیدا کیا ایک خلاصہ سے جو مٹی سے ہے۔ کلمہ مِنْ (سے) تبعیض کے لئے ہے۔ اور یہ بتاتا ہے کہ انسان مٹی کا ایک جز اور بعض ہے۔ ہم جواب دیں گے کہ کلمہ من کی اصل ابتدائے غایت کے لئے ہے جیسے تم کہتے ہو میں بصرہ سے کوفہ گیا، تو ارشاد باری (ہم نے انسان کو پیدا کیا ایک خلاصہ سے جو مٹی سے ہے) اس کا مقتضی ہے کہ تخلیق انسان کی ابتداء اس خلاصہ سے ہوتی ہے (ختم) قلت اس جواب کے لئے اس ارشاد سے استیناس ہوتا ہے : اور انسان کی تخلیق مٹی سے شروع کی، تو اسے سمجھو۔ (ت)

بالجملہ خلاصہ مبحث یہ ہوا کہ اطلاق انسان کے لیے دو حقیقتیں ہیں: ایک حقیقت اصلیہ دقیقہ یعنی روح متعلق بالبدن اگرچہ بتعلق برزخی، دوم حقیقت مشہور عرفیہ یعنی بدن، اور اکثر متکلمین کے زعم میں یہی حقیقت اصلیہ ہے، اور اگر غرا بت فن سے قطع نظر کر کے ان کا کلام انسان عرفی پر محمول کریں تو وہ بھی صحیح۔ مقدمہ سادسہ : اقول : صفات بدن دو قسم ہیں: اصلیہ کہ خود بدن

کے لئے حاصل اور تبعیہ کہ حقیقتاً صفات روح ہیں، اور بوجہ اتحاد مذکور بدن کی طرف منسوب جیسے علم و سمع و بصر و ارادہ و فاعلیت افعال اختیاریہ وغیرہا، عرف میں اگرچہ انسان نام بدن ٹھہرا مگر صفات تبعیہ کی اس کی طرف اضافت مشروط بشرط حیات ہے، بعد موت بے عود حیات بدن خالی کو عرفاً لغتہً کسی طرح سمیع و بصیر مرید فاعل عامل نہیں کہتے کہ یہ نسبتیں اس اتصال سریانی پر مبنی تھیں جس نے روح و بدن کو عرفاً امر وحدانی کر دیا تھا، جب وہ مسلوب ہوا کشف محجوب ہوا، صفات تبعیہ حق بہ حقدار رسید ہو کر اپنے مرکز کو گئیں اور اس تودہ خاک کو اپنی اصلی حالتیں ظاہر ہوئیں، نظیر اس کی وہی

---

1 تفسیر کبیر زیر آیہ و یسئلونک عن الروح مطبعة بهية مصرية بميدان الجامع الازهر ۵۱/۲۱ 2 القرآن ۳۲/۷

Fatawa Razawiya, Volume 9

It is the association of fire and coal; coal was black, cold, and dark, and the smoky fire was hot and bright. As long as it was glowing due to the infusion of fire, its defects remained hidden under it, and it was characterized by the attributes of fire. When the fire was separated and moved away, the true reality became apparent. Thus, although oaths are based on custom, and conventionally, whether a person is referred to by the word 'human', 'mortal', or 'man', or by proper names, pronouns, and demonstrative nouns, the intended object is this very body. However, in view of the mentioned division, it is necessary to look towards the matters sworn upon. If the essential qualities are intended, such as lifting, seating, bathing, etc., there will be no specification of the state, as the essence of the body is capable of them. And if it depends on subordinate qualities such as address, communication, understanding, and speech, then it will necessarily be restricted to the state of life, because without it, the body is not capable of them. In short, for 'man' to conventionally be the body in reality and for the true conventional meaning to be used never necessitates that the speech should encompass every state of the body or, due to limitation to some states, be detached from the conventional reality and carried over to another meaning. Rather, the same should be intended—that the statement will include whatever state it is capable of. For example, if it is said 'Zaid burned his body with coal', it definitely means that glowing coal is intended, as the capacity to burn is only in it. This does not imply that absolute coal is understood from it, nor that coal is deprived of its true meaning. And all this is very clear. (And all this is very clear. -T) By the praise of Allah Almighty, this meaning [is understood] by us from this rule which the scholars have stated here, and which is mentioned in Tanwir al-Absar, Durr al-Mukhtar, and the commentaries of Kanz etc., that:

That in which the dead and the living share, the oath applies to it in both states; and that which is specific to the state of life is restricted by it. | The matter in which the dead shares with the living, the oath will apply to both states in it, and that which is specific to the state of life, the oath will remain restricted to the state of life. (T)

Seventh Premise: I say: In debates, the waste of time that occurs is mostly due to negligence from the original purpose and the point of contention. Both parties should adhere to it. It is known that the people of falsehood mostly seek refuge only in fleeing from the original point, but for the people of truth, it is necessary to keep this in mind. Keep in view at all times what the discussion was and where it has gone. In this, by the permission of Allah Almighty, there is reduction of burden and help in

the swift manifestation of the opponent's inability and silence. In this circulating issue of the hearing of the dead (Sama' al-Mawta), the purpose of the Ahl al-Sunnah does not depend on the fact that the bodies of all the dead remain alive in the grave forever and they hear the greetings and speech of visitors through these very ears, that the wavy air modified by sound affects their eardrums, and hearing occurs in this manner; likewise in the general vision of the dead, our purpose is not related to them [seeing] with these very eyes...

---

1 Durr al-Mukhtar, Chapter on Oaths in Beating, Killing, etc., Mujtabai Press, Delhi, 1/311

यह आग और कोयले का साथ है; कोयला काला, ठंडा और अंधेरा था, और धुएँ वाली आग गर्म और चमकदार। जब तक आग के संचार से वह दहक रहा था, उसके नीचे उसके दोष छिपे हुए थे और वह आग ही के गुणों से पहचाना जाता था। जब आग अलग हुई और दूर हुई, तो वास्तविक वास्तविकता प्रकट हो गई। तो, हालांकि शपथ रीति-रिवाज (उर्फ़) पर आधारित होती हैं और प्रथागत रूप से मनुष्य को चाहे 'इंसान', 'बशर' या 'आदमी' शब्द से व्यक्त किया जाए, या नामों, सर्वनामों और संकेतवाचक संज्ञाओं से, इसका संदर्भ-विषय यही शरीर होता है। लेकिन उल्लिखित विभाजन के अनुसार, शपथ ली गई बातों की ओर देखना आवश्यक है। यदि मूल गुणों का उद्देश्य हो, जैसे उठाना, बिठाना, नहलाना आदि, तो स्थिति का कोई विशेष निर्धारण नहीं होगा क्योंकि शरीर का मूल स्वरूप इनके लिए उपयुक्त है। और यदि यह अनुवर्ती गुणों पर निर्भर हो जैसे संबोधन, घोषणा, समझ और भाषण, तो अनिवार्य रूप से यह जीवन की स्थिति तक सीमित रहेगा क्योंकि इनके बिना शरीर उनके योग्य नहीं है। संक्षेप में, 'इंसान' का प्रथागत रूप से शरीर में वास्तविकता होना और वास्तविक प्रथागत अर्थ में उपयोग किया जाना कभी भी यह आवश्यक नहीं बनाता कि वह कथन शरीर की हर स्थिति को शामिल करे या कुछ स्थितियों तक सीमित रहने के कारण प्रथागत वास्तविकता से अलग होकर किसी अन्य अर्थ पर आधारित हो जाए। बल्कि वही अभिप्राय होगा कि बात जिस स्थिति के योग्य होगी, उसी सीमा तक शामिल होगी। उदाहरण के लिए, यदि कहा जाए कि ज़ैद ने कोयले से शरीर जला लिया, तो निश्चित रूप से इससे वही दहकता हुआ कोयला मुराद होगा क्योंकि जलाने की क्षमता उसी में है। इससे न तो यह आवश्यक है कि केवल 'कोयला' ही समझा जाए और न ही यह कि कोयला अपने वास्तविक अर्थ से वंचित हो जाए। और यह सब बहुत स्पष्ट है। (और यह सब बहुत स्पष्ट है। - त) अल्लाह तआला की कृपा से, यह अर्थ हमें उस नियम से स्पष्ट है जो विद्वानों ने यहाँ बताया है, और तनवीर अल-अबसार, दुर्रे मुख्तार और कंज़ की व्याख्याओं आदि में उल्लेख किया गया है कि:

जिस कार्य में मृत और जीवित दोनों समान हों, उसमें शपथ दोनों स्थितियों पर लागू होती है; और जो जीवन की स्थिति के साथ विशिष्ट है, वह उसी के साथ सीमित रहती है। | जिस मामले में मृत व्यक्ति जीवित के साथ शामिल हो, उसमें शपथ दोनों स्थितियों पर होगी, और जो जीवन की स्थिति से विशिष्ट हो, उसमें शपथ जीवन की स्थिति तक ही सीमित रहेगी। (त)

सातवीं प्रस्तावना: मैं कहता हूँ: बहसों में समय की जो बर्बादी होती है, वह अधिकांशतः मूल उद्देश्य और विवाद के विषय से लापरवाही के कारण होती है। दोनों पक्षों को इसका पाबंद रहना चाहिए। यह

तो विदित है कि असत्य के अनुयायी अक्सर मूल मुद्दे से भागने में ही बचाव ढूंढते हैं, लेकिन सत्य के अनुयायियों के लिए इस पर ध्यान देना आवश्यक है। हर समय यह ध्यान में रखें कि चर्चा क्या थी और किधर चली गई। इसमें अल्लाह तआला की अनुमति से परिश्रम की कमी और विरोधी की विवशता और चुप्पी के शीघ्र प्रकट होने में सहायता मिलती है। मुर्दों के सुनने (समाअ-ए-मौता) के इस प्रचलित मसले में, अहले सुन्नत का उद्देश्य इस पर निर्भर नहीं है कि सभी मृतकों के शरीर ही कब्र में हमेशा जीवित रहें और वे आगंतुकों के सलाम और कलाम इन्हीं कानों के माध्यम से सुनें, कि ध्वनि से प्रभावित तरंगित हवा उनके कान के पर्दों को छुए और इसी तरह से सुनना हो; इसी प्रकार मृतकों की सामान्य दृष्टि में, हमारा कोई उद्देश्य इससे संबंधित नहीं है कि वे इन्हीं आँखों से...

---

1 दुर्रे मुख्तार, अध्याय: मार-पीट, हत्या आदि में शपथ, मुज्तबाई प्रेस, दिल्ली, 1/311

صحبتِ آتش وانگشت ہے، کوئلہ کالا ٹھنڈا تاریک تھا اور نارِ دخانی گرم و روشن، جب تک آگ کی سرایت سے دہک رہا تھا اس کے نیچے اپنے عیوب چھپے ہوئے تھے آگ ہی کے اوصاف سے موصوف ہوتا جب آگ جدا اور برکران ہوئی اصل حقیقت عیاں ہوئی تو ایمان اگرچہ عرف پر مبنی ہیں اور عرفاً انسان خواہ بلفظ انسان وبشر و آدمی تعبیر کیا جائے یا اعلام وضما ئر واسماء اشارہ سے اس کا معبر عنہ یہی بدن ہوتا ہے مگر بنظرِ تقسیمِ مذکور امورِ محلوف علیہما کی طرف نظر ضرور ، اگر صفاتِ اصلیہ پر مقصود ہو ، جیسے اٹھانا، بٹھانا، نہلانا وغیرہ تو کچھ حالت کی تخصیص نہ ہو گی کہ نفسِ بدن ان کا صالح ہے ، اور اگر صفاتِ تبعیہ پر موقوف ہو جیسے خطاب و اعلام و افہام و کلام، تو ضرورتہً متقید بحالِ حیات رہے گا کہ بغیر ان کے بدن ان کا صالح نہیں ، بالجملہ انسان کا عرفاً بدن میں حقیقت ہونا اور معنی حقیقی عرفی میں استعمال کیا جانا زنہار اسے مقتضی نہیں کہ وہ کلام بدن کی ہر حالت کو مشتمل رہے یا بعض احوال پر اقتصار کے باعث حقیقت عرفیہ سے منسلخ ہو کر کسی اور معنی پر محمول بنے بلکہ وہی مراد ہو کہ بات جس حال کے قابل ہو گی اسی قدر کو شامل ہو گی مثلاً اگر کہیے زید نے کوئلے سے بدن جلا لیا تو قطعاً اس سے وہی دہکتا ہوا کوئلہ مراد ہو گا کہ جلانے کی صلاحیت اسی میں ہے۔ اس سے نہ یہ لازم کہ مطلق کوئلہ اس سے مفہوم ہو نہ یہ کہ کوئلہ اپنے معنی حقیقی سے محروم ہو وہذا کلہ ظاہر جدا (اور یہ سب بہت واضح ہے۔ ت) بحمد اللہ تعالٰی یہ معنی ہمیں اس ضابطے کے جو علماء نے یہاں ارشاد فرمایا ، اور تنویر الابصار و در مختار و شروح کنز وغیرہ میں مذکور ہوا کہ:

ماشارک المیت فیہ الحی یقع الیمین فیہ علی الحالتین، وما اختص بحالۃ الحیاۃ تقید بھا | جس امر میں میت زندہ کا شریک ہو اس میں قسم دونوں حالتوں پر واقع ہو گی اور جو حالتِ حیات سے خاص ہو اس میں قسم حالتِ زیست سے مقید رہے گی۔ (ت)

مقدمہ سابعہ : اقول : مناظرات میں وقت و اضاعت کہ راہ پاتی ہے بیشتر اصل مقصد و موردِ نزاع سے غفلت کے باعث منہ دکھاتی ہے، فریقین اس کے پابند رہیں۔ یہ تو معلوم ہو کہ اہل باطل اکثر اصل مطلب سے فرار ہی میں مفر مگر اہل حق پر اس کا خیال لازم، ہر وقت پیشِ نظر رکھیں کہ بحث کیا تھی اور چلے کدھر، اس میں باذن اللہ تعالٰی تخفیفِ مؤنت اور مخالف کے عجز و سکوت جلد ظاہر ہونے پر معونت ہوتی ہے، اس مسئلہ دائرہ سماعِ موتی میں مقصودِ اہلسنت کچھ اس پر موقوف نہیں کہ تمام اموات کے بدن ہی قبر میں ہمیشہ زندہ رہیں زائروں کے سلام و کلام وہ انہی کانوں کے ذریعہ سے سنیں ہوائے متموج متکیف بالصوت انہی کے پردوں کو کرے، اسی طریقے پر سماع ہو، یونہی رؤیتِ عامہ اموات میں، ہماری اس سے کوئی غرض متعلق نہیں کہ وہ انہی آنکھوں سے

---

1 در مختار باب الیمین فی الضرب والقتل وغیرہ مطبع مجتبائی دہلی ۱/۳۱۱

Fatawa Razawiya Volume Nine

...sees, whether it be through the emission of rays from them or the impression of images in their lens; this is neither what occurs nor is our claim dependent upon it. After all, according to the People of the Sunnah, just as a recently deceased person hears and sees, so too does one deceased for years, even when not an atom of ear, eye, or body remains intact, and all has turned into dust and ashes, mingling with the soil. Just as a Muslim hears in the grave, so does a Hindu non-believer in the crematorium; at the time they set fire to his ears and eyes, he sees those who are setting the fire, hears their words, and feels the pain of that fire. He sees his eyes and ears—the organs—burning and hears the sound of the fire blazing upon them, and even when they are burnt to ashes, he still sees and hears. The same salutations and speech prescribed in the pure Shariah for someone buried today apply to someone buried for a thousand years. To both, it will be said, "Peace be upon you, O believers! May Allah Almighty forgive you and us; you have gone before us and we are to follow you; God willing, we shall meet you." When the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) commanded the Bedouin companion (may Allah be pleased with him), "Whenever you pass by the grave of a non-believer, give him the tidings of Hellfire," the sacred instruction did not specify someone recently deceased but was a clear generalization, and the companion acted upon that generalization. In short, the proofs are absolute, the belief is absolute, and restricting it to physical organs is unjustified. We are concerned only with the fact that the dead perceive forms and sounds like the living, and it has been clarified above that perception is the work of the soul, and the soul neither dies with death nor undergoes change, yet the word 'dead' is still applied to it. We believe in the hearing and seeing of the souls of the departed, and this is what we call the seeing and hearing of the dead. It is of no concern whether the means and instruments there are the same or different. In the fifteenth section, the statement of Imam Sheikh al-Islam, the Seal of the Mujtahidin, Taqi al-Milla wa al-Din Abu al-Hasan Ali al-Subki (may his secret be sanctified) was mentioned: "We do not say that the dead body hears, rather the soul hears, whether alone while the body remains dead, or joined with the body when life returns to it." After all, even the deniers do not deny that the dead see Paradise, Hell, angels, reward, and punishment; they hear and understand their words, and pray for the coming or not coming of the Day of Judgment. So they must also admit that seeing, hearing, and speaking for them are not confined to physical organs.

Almighty Lord (Tabarak wa Ta'ala) says:

The Almighty Lord (Tabarak wa Ta'ala) says: They are presented before the fire morning and evening, and on the Day of Resurrection, Pharaoh's people will be put into a more severe punishment. (T)

"The Fire; they are exposed to it morning and evening, and on the Day the Hour is established (it will be said), 'Admit the family of Pharaoh into the severest punishment.'" 1

Our master Abdullah bin Mas'ud (may Allah be pleased with him) says:

1. Al-Quran 40/46 Page 875 of 948

फतावा रज़विया जिल्द नहुम

...देखे, उन्हीं से किरणों का निकलना हो या उन्हीं के लेंस में सूरत का छपना हो, यह न तो हकीकत है और न ही हमारा दावा इस पर निर्भर है। आखिर सुन्नत वालों (अहले सुन्नत) के नज़दीक जिस तरह अभी का मरा हुआ सुनता देखता है, वैसे ही वर्षों का मरा हुआ, जबकि कान, आँख, शरीर का कोई कण सलामत न रहा हो, सब धूल और राख होकर मिट्टी में मिल गया हो। जिस तरह मुसलमान कब्र में सुनता है, वैसे ही हिंदू काफिर श्मशान में; जिस समय उसके कान और आँख को आग देते हैं, वह उन आग देने वालों को देखता है, उनकी बातें सुनता है और उस आग की पीड़ा महसूस करता है। वह अपनी आँख, कान और अंगों को जलते देखता है, उन पर आग भड़कने की आवाज़ सुनता है, और जब वे जलकर राख हो जाते हैं, तब भी वह देखता और सुनता है। जो सलाम और कलाम आज दफन होने वाले के लिए शरीअत-ए-मुतहरा में है, वही हजार साल पुराने दफन के लिए भी है। दोनों से यही कहा जाएगा कि "तुम पर सलाम हो, ऐ ईमान वालो! अल्लाह तआला तुम्हें और हमें बख्शे, तुम हमसे पहले चले गए और हम तुम्हारे पीछे आने वाले हैं, अल्लाह ने चाहा तो हम तुमसे मिलने वाले हैं।" हुज़ूर सैयदे आलम सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम ने जब उन सहाबी अराबी रज़ियल्लाहु तआला अन्हु को यह हुक्म दिया कि "जहाँ किसी काफिर की कब्र से गुज़रो, उसे जहन्नम जाने की खबर सुना दो," तो उस पाक इरशाद में सिर्फ ताज़ा मरे हुए के लिए कोई विशेषता नहीं थी, बल्कि वह एक स्पष्ट आम बात थी और उसी आम हुक्म पर उन सहाबी ने अमल किया। संक्षेप में, दलीलें मुतलक (पूर्ण) हैं और अकीदा मुतलक है, और जिस्मानी अंगों की शर्त लगाना गलत है। हमें बस इतनी बात से मतलब है कि मुर्दे ज़िन्दों की तरह सूरत और आवाज़ का एहसास करते हैं, और ऊपर यह साफ हो चुका है कि एहसास करना रूह का काम है और रूह न तो मौत से मरती है और न ही बदलती है, लेकिन फिर भी उस पर 'मैय्यत' (मुर्दा) शब्द का इस्तेमाल होता है। हम मुर्दों की रूहों के सुनने और देखने का अकीदा रखते हैं और इसी को मुर्दों का देखना-सुनना कहते हैं। इससे कोई सरोकार नहीं कि वहाँ भी साधन और अंग यही हों या दूसरे। पंद्रहवें खंड में इमाम शैखुल इस्लाम ख़ातिमतुल मुजतहिदीन तक़ीयुल मिल्लत वद्दीन अबुल हसन अली सुबकी कुद्दिसा सिर्रहुल मलकी का इरशाद गुज़रा कि हम यह नहीं कहते कि मुर्दा बदन सुनता है बल्कि रूह सुनती है, चाहे वह तनहा हो जब बदन मुर्दा रहे या जिस्म से मिलकर जब ज़िंदगी जिस्म की तरफ लौट आए। आखिर इस हद तक तो इनकार करने वाले भी इनकार नहीं करते कि मुर्दे जन्नत, जहन्नम, फरिश्ते, सवाब और अज़ाब को देखते हैं, उनकी बात सुनते और समझते हैं, कयामत के आने या न आने की दुआएँ करते

हैं, तो उन्हें यह भी मानना होगा कि उनके लिए देखना, सुनना और बोलना जिस्मानी अंगों पर निर्भर नहीं है।

मौला तबारक व तआला ने फरमाया:

मौला तबारक व तआला का इरशाद है: वे सुबह और शाम आग पर पेश किए जाते हैं और कयामत के दिन फिरौन वालों को ज़्यादा सख्त अज़ाब में डालेंगे। (त)

"आग; वे उस पर सुबह और शाम पेश किए जाते हैं, और जिस दिन कयामत कायम होगी (कहा जाएगा), 'फिरौन के लोगों को सबसे सख्त अज़ाब में डालो'।" 1

सैय्यदना अब्दुल्ला बिन मसऊद रज़ियल्लाहु तआला अन्हु फरमाते हैं:

1. अल-कुरान ४०/४६ पेज ८७५ ऑफ ९४८

دیکھے، انہی سے خروج شعاع یا انھیں کے لوح میں صورت کا انطباع ہو، یہ نہ واقع ہے نہ ہمارا دعویٰ کو اس پر توقف ،آخر اہل سنت کے نزدیک جس طرح ابھی کا مردہ سنتا دیکھتا ہے یونہی برسوں کا، جبکہ کان آنکھ جسم کا کوئی ذرہ سلامت نہ رہا سب خاک و غبار ہو کر مٹی میں مل گیا، جس طرح مسلمان قبر میں سنتا ہے یونہی ہندو کافر مر گھٹ میں، جس وقت اس کے کان آنکھ کو آگ دیتے ہیں وہ ان آگ دینے والوں کو دیکھتا ان کی باتیں سنتا اس آگ کی اذیت کا احساس کرتا ہے۔ آنکھ کان اعضاء کو جلتا دیکھتا ان پر آگ بھڑکنے کی آواز سنتا ہے اور جب جل بجھ کر راکھ ہو جاتے ہیں جب بھی دیکھتا سنتا ہے۔ جو سلام و کلام مدفون امروزہ کے لئے شرع مطہرہ میں ہے وہی مدفون ہزار سالہ کے واسطے، دونوں سے وہی کہا جائے گا کہ "سلام تم پر اے ایمان والو! اللہ تعالیٰ تمھیں اور ہمیں بخشے، تم ہمارے اگلے ہو اور ہم تمھارے پچھلے ، خدا چاہے تو ہم تم سے ملنے والے ہیں۔" حضور سید عالم صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم نے ان صحابی اعرابی رضی اللہ تعالیٰ عنہ کو جب یہ حکم دیا کہ "جہاں کسی کافر کی قبر پر گزرو اسے دوزخ جانے کا مژدہ دو، " تو ارشاد اقدس میں تخصیص تازہ مرے ہوئے کی نہ تھی بلکہ صاف تعمیم تھی اور تعمیم ہی پر ان صحابی نے کاربندی کی، غرض دلائل مطلق ہیں اور عقیدہ مطلق اور آلات جسمانیہ کی تخصیص ناحق، ہمیں اتنی بات سے کام ہے کہ مردے زندوں کی طرح صورت و صوت کا ادراک کرتے ہیں، اور اوپر روشن ہو چکا کہ ادراک کار روح ہے اور روح نہ موت سے مرتی ہے نہ متغیر ہوتی ہے، مگر اس پر بھی لفظ میت کا اطلاق آتا ہے ہم انھیں ارواحِ موتیٰ کے سماع و ابصار کا عقیدہ رکھتے ہیں اور اسی کو اموات کا دیکھنا سننا کہتے ہیں اس سے کچھ غرض نہیں کہ وہاں بھی ذرائع و آلات یہی ہوں یا غیر ، فصل پانزدہم میں امام شیخ الاسلام خاتمۃ المجتہدین تقی الملۃ والدین

ابو الحسن علی سبکی قدس سرہ الملکی کا ارشاد گزرا کہ ہم نہیں کہتے کہ مردہ بدن سنتا ہے بلکہ روح سنتی ہے خواہ تنہا جبکہ بدن مردہ رہے یا جسم سے مل کر جبکہ حیات جانب جسم عود کرے، آخر اس قدر سے حضرات منکرین بھی منکر نہیں کہ اموات جنت و نار و ملائکہ ثواب و عذاب کو دیکھتے ، ان کی بات سنتے سمجھتے ، قیامت کے آنے نہ آنے کی دعائیں کرتے ہیں، تو اس کی تسلیم انہیں بھی ضرور کہ دیکھنا سننا بولنا انہیں آلات جسمانیہ پر غیر مقصور۔

مولیٰ تبارک و تعالیٰ کا ارشاد ہے: وہ صبح وشام آگ پر پیش

قال المولیٰ تبارک وتعالیٰ کئے جاتے ہیں اور قیامت کے دن فرعون والوں کو زیادہ سخت عذاب میں ڈالیں گے۔ (ت)

النَّارُ یُعْرَضُونَ عَلَیْهَا غُدُوًّا وَعَشِیًّا

وَیَوْمَ تَقُومُ السَّاعَةُ اَدْخِلُوا اٰلَ فِرْعَوْنَ

اَشَدَّ الْعَذَابِ ط 1

سید نا عبداللہ بن مسعود رضی اللہ تعالیٰ عنہ فرماتے ہیں :

1 القرآن ۴۰/۴۶ Page 875 of 948

Volume Nine Fatawa Razawiyya

Arabic Text	Urdu Translation
Indeed, the souls of Pharaoh's folk are in the bellies of black birds. They are presented to the Fire every day twice, morning and evening. They go towards the Fire, and it is said, "O folk of Pharaoh, this is your abode until the Hour is established." ^1	The souls of the Pharaoh's people are put into the stomachs of black birds and presented to the Fire twice every day. They go towards the Fire in the morning and evening, and then it is said, "O people of Pharaoh! This is your abode until the Day of Resurrection is established." (T)

Thousands of years have passed since Pharaoh and his people drowned, and every day, twice—morning and evening—they are presented before the fire. While being cast into Hell, they are told, "This is your abode until the Day of Judgment comes." And this is not limited to them; every believer and disbeliever is shown Paradise and Hell in the same way every morning and evening, and they are addressed with the same words. It is narrated by Hazrat Abdullah bin Umar (may Allah be pleased with them both) in Sahih Bukhari, Sahih Muslim, Muwatta Imam Malik, Jami' al-Tirmidhi, and Sunan Ibn Majah that the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) said:

Arabic Text	Urdu Translation
When one of you dies, his seat is shown to him in the morning and evening. If he is of the people of Paradise, then from the people of Paradise; and if he is of the people of the Fire, then from the people of the Fire. It is said to him, "This is your seat until Allah resurrects you on the Day of Resurrection." ^2	When any of you dies, his destination is presented to him morning and evening. If he was among the people of Paradise, then the place of the people of Paradise was shown, and if he was among the people of the Fire, then the place of the people of the Fire was shown. It is said to him, "This is your destination until God sends you towards it on the Day of Resurrection." (T)

Likewise, the meeting of the deceased with each other, their conversation, the grave talking to them, it being widened for them as far as their sight can reach, being informed of the deeds of the living, seeing the spectacle of their own good and bad deeds and the fish and the bull [allegorical representation of earth], etc.—many such matters, which were briefly mentioned in the second main objective of the introduction, and regarding which not just ten or twenty, but hundreds of Hadiths

have been narrated, bear witness to these themes. In whatever way it may be, they see and hear these things and sounds, and they will continue to see and hear even after decomposing and turning into dust until the Day of Judgment; likewise, they perceive visitors passing before their graves and their speech. Remarkably, even Maulvi Ishaq Sahab has admitted in 'Question and Answer 19' that the dead hear the salutations of the living. Sir! The same ears with which they hear the salutation also hear speech. This was a statement from our side; now look towards the side of the deniers—their denial is also absolutely general, not restricted to physical organs alone. If only they would believe that the deceased have complete perception of sounds, though not through the ears of the body.

^1 Al-Durr al-Manthur fi al-Tafsir bi'l-Ma'thur, under the aforementioned verse, Maktaba Ayatullah Iran, 5/52-351. ^2 Muwatta Imam Malik, Jami' al-Jana'iz, Mir Muhammad Kutub Khana Karachi, 1/221.

खंड नौ फ़तावा रज़विया

अरबी पाठ	उर्दू अनुवाद
वास्तव में, फ़िरऔन के लोगों की आत्माएं काले पक्षियों के पेट में हैं। उन्हें हर दिन दो बार, सुबह और शाम, आग के सामने पेश किया जाता है। वे आग की ओर जाते हैं और कहा जाता है, "हे फ़िरऔन के लोगों, यह कयामत आने तक तुम्हारा ठिकाना है।" ^1	फ़िरऔन के लोगों की रूहें काले परिंदों के पेट में डालकर उन्हें रोज़ाना दो बार आग पर पेश किया जाता है, सुबह और शाम को आग की तरफ जाती हैं तो कहा जाता है ऐ फ़िरऔन वालो! यह तुम्हारा ठिकाना है यहाँ तक कि क़यामत क़ायम हो। (त)

फ़िरऔन और उसके लोगों को डूबे हुए कई हज़ार साल हो गए हैं, हर रोज़ सुबह और शाम दो समय आग पर पेश किए जाते हैं, जहन्नुम में झोंकते हुए उनसे कहा जाता है कि यह तुम्हारा ठिकाना है यहाँ तक कि क़यामत आए। और यह सिर्फ उन्हीं तक सीमित नहीं है, हर मोमिन (आस्तिक) और काफ़िर (नास्तिक) को इसी तरह सुबह-शाम जन्नत और आग दिखाई जाती है और यही शब्द सुनाए जाते हैं। सही बुखारी, सही मुस्लिम, मुवत्ता इमाम मलिक, जामे तिरमिज़ी और सुनन इब्न माजा में हज़रत अब्दुल्ला बिन उमर (रज़ियल्लाहु अन्हुमा) से रिवायत है कि रसूलुल्लाह (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) फ़रमाते हैं:

अरबी पाठ	उर्दू अनुवाद
जब तुम में से किसी की मृत्यु होती है, तो सुबह और शाम उसे उसका स्थान दिखाया जाता है। यदि वह स्वर्ग वालों में से है, तो स्वर्ग वालों का स्थान; और यदि वह नरक वालों में से है, तो नरक वालों का स्थान। उससे कहा जाता है, "यह तुम्हारा स्थान है जब तक कि अल्लाह तुम्हें कयामत के दिन पुनर्जीवित न कर दे।" ^2	जब तुम में से कोई मरता है उस पर उसका ठिकाना सुबह व शाम पेश किया जाता है, अगर अहल-ए-जन्नत (स्वर्गवासी) से था तो अहल-ए-जन्नत का मकाम और अहल-ए-नार (नरकवासी) से था तो अहल-ए-नार का मकाम दिखाया जाता है उससे कहा जाता है यह तेरा ठिकाना है यहाँ तक कि खुदा तुझ को रोज़-ए-क़यामत उसकी तरफ भेजे। (त)

इसी तरह मृतकों की आपस में मुलाक़ात, आपस की बातचीत, क़ब्र का उनसे बातें करना, उनका नज़रों की सीमा तक विस्तार होना, जीवितों के कर्म उन्हें सुनाया जाना, अपने पुण्यों और पापों तथा पृथ्वी के आधार (मछली और बैल के रूपक) का तमाशा देखना आदि बहुत से मामले, जिनका ज़िक्र

दूसरे मुख्य उद्देश्य में संक्षेप में आया है, और जिनके वर्णन में दस-बीस नहीं सैकड़ों हदीसें आई हैं, इन विषयों पर गवाह हैं। जिस किसी तरीके से भी हो, वे इन चीज़ों और आवाज़ों को देखते-सुनते हैं और क़यामत तक धूल में मिल जाने के बाद भी देखते-सुनते रहेंगे; इसी तरह वे ज़ायरीन (दर्शनार्थियों) के क़ब्रों के सामने से गुज़रने और उनकी बातों को भी सुनते हैं। आश्चर्य की बात यह है कि मौलवी इसहाक साहब ने भी 'जवाब-ओ-सुवाल 19' में स्वीकार किया है कि मुर्दे जीवितों का सलाम सुनते हैं। हज़रत! जिन कानों से वे सलाम सुनते हैं, उन्हीं से बात भी सुनते हैं। यह हमारी तरफ से बात थी, अब इनकार करने वालों की तरफ देखिए—उनका इनकार भी पूरी तरह से सामान्य है, केवल शारीरिक अंगों तक ही सीमित नहीं है। काश वे विश्वास कर लें कि मृत व्यक्ति आवाज़ों का पूर्ण बोध रखते हैं, यद्यपि शारीरिक कानों से नहीं।

^1 अल-दुर्र अल-मन्सूर फ़ी अल-तफ़्सीर बिल-मन्सूर, उल्लेखित आयत के तहत, मकतबा आयतुल्लाह ईरान, 5/52-351। ^2 मुवत्ता इमाम मलिक, जामे अल-जनाइज़, मीर मोहम्मद कुतुब खाना कराची, 1/221।

عربی متن **اردو ترجمہ**

ان ارواح آل فرعون في اجواف طير سود فرعونیوں کی روحیں سیاہ پرندوں کے پیٹ میں ڈال کر

يعرضون على النار كل يوم مرتين تغدو انہیں روزانہ دو بار نار پر پیش کیا جاتا ہے، صبح و شام

و تروح الى النار فيقال يا آل فرعون هذه کو نار کی طرف جاتی ہیں تو کہا جاتا ہے اے فرعون

مأواكم حتى تقوم الساعة ۱۸- والو! یہ تمہارا ٹھکانا ہے یہاں تک کہ قیامت قائم ہو۔ (ت)

فرعون اور فرعونیوں کو ڈوبے ہوئے کئی ہزار برس ہوئے ہر روز صبح و شام دو وقت آگ پر پیش کیے جاتے ہیں جہنم جھونکا کر ان سے کہا جاتا ہے یہ تمہارا ٹھکانا ہے یہاں تک کہ قیامت آئے۔ اور ایک انہیں پر کیا موقوف ہر مومن و کافر کو یونہی صبح و شام جنت و نار دکھاتے اور یہی کلام سناتے ہیں صحیح بخاری صحیح مسلم و موطائے امام مالک و جامع ترمذی و سنن ابن ماجہ میں حضرت عبداللہ بن عمر رضی اللہ تعالیٰ عنہما سے ہے رسول اللہ صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم فرماتے ہیں:

عربی متن **اردو ترجمہ**

اذا مات احدكم عرض عليه مقعده، جب تم میں سے کوئی مرتا ہے اس پر اس کا ٹھکانا صبح

بالغداة والعشى، ان كان من اهل الجنة و شام پیش کیا جاتا ہے، اگر اہل جنت سے تھا تو اہل جنت

فمن اهل الجنة وان كان من اهل النار کا مقام اور اہل نار سے تھا تو اہل نار کا مقام دکھایا جاتا

فمن اهل النار يقال له هذا مقعدك حتى ہے اس سے کہا جاتا ہے یہ تیرا ٹھکانا ہے یہاں تک کہ

يبعثك الله الى يوم القيامة ۲۸- خدا تجھ کو روز قیامت اس کی طرف بھیجے۔ (ت)

یونہی اموات کی باہم ملاقات، آپس کی گفتگو، قبر کا ان سے باتیں کرنا، ان کی حد نگاہ تک کشادہ ہونا احیاء کے اعمال انھیں سنائے جانا، اپنے حسنات و سیئات اور گاؤماہی کا تماشا دیکھنا وغیرہ وغیرہ امور کثیر جن کی نظر صدر مقصد دوم میں اشارہ گزرا، جن کے بیان میں دس بیس نہیں صدہا حدیثیں وارد ہوئیں ان مطالب پر شاہد ہیں جس طریقے سے ہو ان چیزوں اور آوازوں کو دیکھتے سنتے ہیں اور قیامت تک جس کے گلنے خاک میں ملنے کے بعد بھی دیکھیں سنیں گے، یونہی زائروں قبروں کے سامنے گزرنے والوں اور ان کے کلام کو۔ طرفہ یہ کہ مولوی اسحاق صاحب نے بھی جواب وسوال ۱۹ میں تسلیم کیا مردے زندوں کا سلام سنتے ہیں۔ حضرت! جن کانوں سے سلام سنتے ہیں انہی سے کلام۔ یہ تو ہماری طرف سے کلام تھا، اب جانب منکرین نظر کیجئے ان کا انکار بھی قطعاً عام ہے، صرف آلات جسمانیہ سے خاص نہیں، کاش وہ ایمان لے آئیں کہ اموات اصوات کا ادراک تام کرتے ہیں مگر نہ گوشِ بدن

1۸ الدرالمنثور فی التفسیر بالماثور تحت آیۃ مذکورہ مکتبہ آیۃ اللہ ایران ۵/۵۲- ۳۵۱ 2۸ موطا امام مالک جامع الجنائز میر محمد کتب خانہ کراچی ۱/۲۲۱

Fatawa Razawiyya Volume 9

So what is the dispute? Now there is agreement. The Sunnis also say this much; when do they specify only ears and flesh? But far be it from them to come this way; they want to forbid calling upon the buried saints. Forbidding the seeking of prayers from these beloved ones of God. With what heart would they accept hearing, even if they accept seeing without the mediation of eyes, although hearing is without the medium of ears. To say to them, like Maulvi Mujeeb Sahib, that when multiple veils of hearing and sight are interposed between the visitor and the entombed, the hearing of voices and the sight of forms is impossible—this writing is the point of contention, understanding which will remove the difficulty.

[Box Section] All praise is due to Allah, the Dominant, the Most High, and may Allah Almighty send blessings upon our Master Muhammad and his family and companions, the best of companions and family. (T)

By the grace of Allah, I have finished presenting the premises. The time has come to write the answers. In the answer, the mark (Maqa) will be written on the matter in which a third party was involved, and the number of the premise will be recorded for remembrance, so that everywhere it can be seen according to the rule of premise so-and-so, instead of needing to write premise so-and-so again.

I say: And with Allah is success and by Him is reaching the heights of research (By Allah's success and help, the pinnacle of research can be reached. T)

Answer 1: The consensus belief of the Imams of the Ahl-e-Sunnah (may Allah be pleased with them) that the dead hear is absolutely true. And why shouldn't it be true since they are the People of the Sunnah and the truth is confined to them? And its meaning is that the dead (to whom the terms dead and deceased are also applied, while they themselves and their perceptions remain, continue, and are unchanged) even after separation, continue to perceive sounds and speech as before. And the statement of those Shaykhs and commentators of the Ahl-e-Sunnah and Falah (may Allah have mercy on them) that "the dead do not hear" is undoubtedly correct. And why shouldn't it be correct since they are people of jurisprudence, their merit and perfection are apparent and manifest. And its meaning is that the thing which died, i.e., the body, which is truly dead, is deprived of hearing and is not capable of being an instrument, mediator, or conductor of forms. These two statements are explicitly true and are not at all contradictory to each other. Not a single word is useful for the opponents. By the grace of Allah, presenting this refined meaning as a possibility was

enough for us. The opponents use the statements of scholars as evidence and claim them to be deniers of the hearing of the dead. And as a decisive possibility for evidence, and for support, several proofs are present in the eye of justice, for example:

Evidence 1: When thousands upon thousands of clarifications are present from the leaders of religion and reliable scholars in the chapter on the hearing of the dead, and with explicit...

Footnote: e.g.: For debaters, the evidentiary refutations are detailed. 12 Minhu (M)

फतावा रज़विया खंड 9

तो झगड़ा ही क्या है, अभी इत्तेफाक हो गया, अहले सुन्नत भी तो इसी क़दर फ़रमाते हैं, कान और गोश्त की खुसूसियत कब बताते हैं? लेकिन हशा वह कब इस राह आते हैं, उन्हें तो दफनशुदा औलिया को पुकारना हराम करना है। अल्लाह के इन महबूबों से दुआ की दरख्वास्त करना हराम करना है। वे किस दिल से सुनना मान लें, हालांकि वे बिना कान के सुनना और बिना आँख के देखना तस्लीम कर लेंगे। उनके लिए मौलवी मुजीब साहब की तरह यह कहना कि जब ज़ायर (ज़ियारत करने वाले) और मकबूर (कब्र वाले) के बीच सुनने और देखने के कई पर्दे हाइल हों तो आवाज़ों का सुनना और सूरतों का देखना नामुमकिन है; यह तहरीर झगड़े की जड़ है जिसे समझ लेना उलझन को दूर करने वाला है।

[बॉक्स अनुभाग] तमाम तारीफ़ अल्लाह के लिए है जो निगहबान और बरतर है। और अल्लाह तआला हमारे आका हज़रत मुहम्मद और उनकी आल व असहाब पर जो बेहतरीन आल व असहाब हैं दुरूद नाज़िल फ़रमाए। (त)

अल्लाह के फ़ज़ल से मुकद्दमात (प्रस्तावना) की तक़रीर से फ़ुर्सत मिली। जवाबात लिखने का वक़्त आया। जिस मामले में तीसरे पक्ष को शामिल किया गया है, जवाब में उस पर अलामत (मक़ह) लिखकर मुकद्दमा नंबर याददहानी के लिए दर्ज किया जाएगा ताकि हर जगह मुकद्दमा फलां के हुक्म के मुताबिक याद देखा जा सके और मुकद्दमा फलां लिखने की ज़रूरत न हो।

फ़ाक़ूल: वबिल्लाहित तौफीक व बिही अल-वुसूल इला ज़ुरवातित तहक़ीक़ (अल्लाह तआला की तौफीक और मदद से तहक़ीक़ की चोटी तक पहुँचा जा सकता है। त)

जवाब 1: अहले सुन्नत के इमामों (अल्लाह उन पर राज़ी हो) का इज्माई (सर्वसम्मत) अक़ीदा है कि मुर्दे सुनते हैं, यह बिल्कुल सच है। और सच क्यों न हो कि वे अहले सुन्नत हैं और हक़ उन्हीं में महदूद है। और इसका मतलब यह है कि मुर्दे (जिन पर मुर्दा और मैयत का शब्द बोला जाता है और वे स्वयं और उनके इद्राकात यानी महसूस करने की शक्ति बाकी, मुस्तकिल और बिना बदलाव के हैं) जुदाई के बाद भी बदस्तूर आवाज़ों और कलाम का इद्राक करते हैं। और उन अहले सुन्नत व फ़लाह के मशायख और शारेह (व्याख्याकारों) (अल्लाह उन पर रहम करे) का बयान कि "मुर्दे नहीं सुनते" बेशक सही है। और सही क्यों न हो कि वे फक़ाहत (धर्मशास्त्र की समझ) वाले लोग हैं, उनका फ़ज़ल और कमाल ज़ाहिर और वाज़ेह है। और इसका मतलब यह है कि जो चीज़ मर गई यानी बदन जो

वास्तव में मुर्दा है, वह सुनने की शक्ति से महरूम है, वह आला (यंत्र) बनने और सूरतों को पहुँचाने के लायक नहीं है। ये दोनों कलाम स्पष्ट रूप से सच हैं और आपस में बिल्कुल भी विरोधी नहीं हैं। अल्लाह के फ़ज़ल से इस बेहतरीन मानी को संभावना के तौर पर पेश करना ही हमारे लिए काफ़ी था। विरोधियों का उलेमा के बयानों से दलील पकड़ना और उन्हें समा-ए-मौता (मुर्दों के सुनने) का मुनकिर (अस्वीकार करने वाला) बताना उनका दावा है। और दलील को खत्म करने वाली संभावना, फिर सनद के लिए इन्साफ की नज़र में कई दलीलें मौजूद हैं, मिसाल के तौर पर:

दलील 1: जब दीनी पेशवाओं और मोतमिद उलेमा की हज़ारों तसर्रीहात (स्पष्टीकरण) मुर्दों के सुनने के बाब (अध्याय) में मौजूद हैं और सराहत के साथ...

पाद-टिप्पणी: उदा: कि बहस करने वालों के लिए विस्तृत खण्डन के साक्ष्य मौजूद हैं। 12 मिन्हु (म)

पृष्ठ 877 का 948

تو جھگڑا ہی کیا ہے، ابھی اتفاق ہو گیا، اہل سنت بھی تو اسی قدر فرماتے ہیں، گوش و گوشت کی تخصیص کب بتاتے ہیں مگر حاشا وہ کب اس راہ آتے ہیں، انھیں تو اولیائے مدفونین کی نداء حرام کرنی ہے۔ ان محبوبانِ خدا سے طلبِ دعا حرام کرنی ہے۔ وہ کس دل سے سننامان لیں، اگرچہ بے ذریعہ گوش، دیکھنا تسلیم کر لیں گے گوبے واسطہ چشم، انھیں مولوی مجیب صاحب کی طرح یہ کہنا کہ جب درمیانِ زائر و مقبور کے حجب عدیدہ سمع و بصر حائل تو سماعِ اصوات اور بصارتِ صور محال، یہ تحریر محلِ نزاع ہے جس کو سمجھ لینا مزیلِ اشکال،

[باکس سیکشن] الحمد للہ المھیمن المتعال وصلی اللہ تعالی علی سیدنا محمد وآلہ وصحبہ خیر صحب وآل۔ | تمام تعریف خدائے نگہبان برتر کے لئے ہے۔ اور اللہ تعالیٰ ہمارے آقا حضرت محمد اور ان کی آل واصحاب پر جو بہترین آل واصحاب ہیں درود نازل فرمائے۔(ت)

بحمد اللہ تقریرِ مقدمات سے فراغ پایا۔ تحریر جوابات کا وقت آیا جو امر جس مقدمے میں ثالث کیا گیا جواب میں اس پر علامت (مقہ) لکھ کر شمارِ مقدمہ کا ہندسہ بغرضِ یاد دہانی ثبت ہوگا کہ ہر جگہ بحکم مقدمہ فلاں یاد دیکھوں مقدمہ فلاں لکھنے کی حاجت نہ ہو۔

فاقول: وباللہ التوفیق وبہ الوصول الی ذری التحقیق (اللہ تعالیٰ کی توفیق ومدد سے ذروہ تحقیق تک پہنچا جاسکتا ہے۔ ت)

جواب اول: ائمہ اہل سنت رضی اللہ تعالیٰ عنہم کا اجماعی عقیدہ کہ مردے سنتے ہیں قطعاً حق ہے، اور کیوں نہ حق ہو کہ وہ اہل سنت ہیں حق انھیں میں منحصر ہے۔ اور اس کے معنی یہ کہ مردگان (کہ ان پر بھی اطلاق مردہ ومیت کیا جاتا ہے اور خود وہ اور ان کے ادراکات باقی ومستمر وبحال

ونامتغیر ہیں) بعد فراق بھی بدستور ادراکِ اصوات وکلام کرتے ہیں اور ان مشائخ وشارح اہلسنت وفلاح رحمہم اللہ تعالیٰ کا بیان کہ "مردے نہیں سنتے" بے شک صحیح ہے، اور کیوں نہ صحیح ہو کہ وہ اہل فقاہت ہیں، ان کا فضل وکمال ظاہر وباہر ہے۔ اور اس کے معنی یہ کہ جو چیز مرگئی یعنی بدن کہ حقیقتاً وہ مردہ ہے مردہ ہے سمع سے معزول ہے آلیت وتوسط و تادیہ صور کے لائق نہیں، یہ دونوں کلام صراحۃً سچ ہیں اور آپس میں اصلاً متخالف، نہ کوئی حرف مفیدِ مخالفین بحمد اللہ تعالیٰ اس معنی نفیس کا بروجہ احتمال ہی بیان کرنا ہمیں بس تھا، مخالفان عباراتِ علماء سے مستدل اور ان کے منکر سماع ہونے کو مدعی ہے اور احتمالِ قاطع استدلال پھر سند کے لئے نظرِ انصاف میں متعدد دلیلیں موجود عھ ، مثلاً:۔

دلیل ۱: جب ائمہ دین وعلماے معتمدین سے ہزار در ہزار تصریحیں سماعِ موتیٰ کے باب میں موجود اور بتصریح

عھ: کہ بوالوں مناظرہ شواہدِ نقض تفصیلی ہیں ۱۲ منہ (م)

Fatwa Razawiyyah Volume 9

To the extent possible, achieving harmony and reconciliation between the statements of the Imams is commendable and desired. Without an urgent need, maintaining disagreement and conflict, which inevitably renders the speech of a group of Imams as false, void, rejected, and discarded, is undesirable. This harmony, which we have mentioned by Allah's grace, is clear and explicit, and since contradiction is non-existent, proceeding towards it is necessary, and the path of opposition is closed and blocked.

Argument 2: Leave aside contradiction and reconciliation, reliable scholars have already narrated the consensus of the Ahl al-Sunnah on the affirmation of the hearing of the dead (sama' al-mawta). Can they, God forbid, be attributed to conjecture and falsehood? Or are the majority of Hanafi masters, God forbid, so insignificant and uncountable that scholars claim consensus despite their opposition? Inevitably, the way is that there is no mutual conflict; consensus relates to spirits (arwah) and the statement of the masters relates to bodies (ashbah).

Argument 3: When numerous, abundant, explicit, and mass-transmitted (mutawatir) traditions on the hearing of the dead exist without restriction or limitation, possessing such compelling force that no person of justice and faith has room for interpretation or alteration, then does the requirement of recognizing the truth for the respected masters mean that they would unnecessarily render their speech contrary to the traditions of the Master of Mankind (peace and blessings be upon him and his family)? And that too with such audacity that they would speak against specific reports related to the unseen and the realm of Barzakh and against the explicit directives of the Prophet (peace be upon him), the undoubted Trustee of the Unseen. "Indeed, this is an unbearable calamity and an incurable affliction." (Indeed, this is a calamity that will not rise and a hardship that will not avert. - T). As for the prejudice of the Wahhabi of Kannauj, the author of 'Miatu Masail' and 'Tafhim al-Masail', that:

[Table] Whatever has been brought from Mulla Ali Qari and Sheikh Abdul Haq is all narrated from 'Sharh al-Sudur'. The capital of Sheikh Jalaluddin al-Suyuti's books consists of traditions of the fourth category, and these traditions are not reliable. (Persian) Whatever is narrated from Mulla Ali and Sheikh Abdul Haq is all taken from 'Sharh al-Sudur', and the resource for Sheikh Jalaluddin al-Suyuti's books is fourth-tier traditions, and these traditions are not reliable. (Urdu translation)

I say, firstly: Intense prejudice perhaps prevented him from seeing the glorious traditions of Sahih al-Bukhari and Sahih al-Muslim. Were they too categorized under the fourth tier? Did Ali Qari and the Researching Sheikh (Sheikh Abdul Haq) not rely on them? Or have you answered their words? Shame, shame, shame! Yes, I was mistaken, why did you not answer? That answer was given which answered intellect, modesty, and honesty. Listen to it at the end of the discourse.

Secondly: There were other traditions here as well, which the masters of the field authenticated. If you lacked knowledge, then...

---

1. Tafhim al-Masail, non-hearing of the dead, from Hanafi books, Mohammadi Press, Lahore, p. 83.

फ़तावा रज़विया जिल्द ९

जहाँ तक संभव हो, इमामों के कथनों के बीच सामंजस्य और सुलह स्थापित करना प्रशंसनीय और वांछित है। बिना किसी अनिवार्य आवश्यकता के असहमति और विवाद को बनाए रखना, जिसके कारण अनिवार्य रूप से इमामों के एक समूह का कथन गलत, शून्य, अस्वीकृत और त्याग दिया जाता है, अवांछनीय है। यह सामंजस्य, जिसका हमने अल्लाह के अनुग्रह से उल्लेख किया है, स्पष्ट और प्रत्यक्ष है, और चूंकि विरोधाभास मौजूद नहीं है, इसलिए इसकी ओर बढ़ना आवश्यक है, और विरोध का मार्ग बंद और बाधित है।

तर्क २: विरोधाभास और सामंजस्य की बात तो छोड़िए, विश्वसनीय विद्वान मृतकों के सुनने (समाअ अल-मौता) की पुष्टि पर अहल-ए-सुन्नत की सर्वसम्मति (इज्मा) पहले ही वर्णित कर चुके हैं। क्या उन्हें, ईश्वर न करे, अनुमान और झूठ के लिए जिम्मेदार ठहराया जा सकता है? या क्या अधिकांश हनफी बुजुर्ग, अल्लाह की शरण, इतने महत्वहीन और अगणनीय हैं कि विद्वान उनके विरोध के बावजूद सर्वसम्मति का दावा करते हैं? अनिवार्य रूप से, रास्ता यही है कि आपस में कोई मतभेद नहीं है; सर्वसम्मति आत्माओं (अरवाह) से संबंधित है और बुजुर्गों का कथन शरीरों (अशबाह) से संबंधित है।

तर्क ३: जब मृतकों के सुनने पर बिना किसी प्रतिबंध या सीमा के अनेक, प्रचुर, स्पष्ट और मुतवातिर (लगातार चली आ रही) हदीसें मौजूद हैं, जिनमें ऐसी वाक् शक्ति है कि किसी भी न्यायप्रिय और धार्मिक व्यक्ति के लिए व्याख्या या परिवर्तन की कोई गुंजाइश नहीं है, तो क्या सम्मानित बुजुर्गों के लिए सच्चाई को पहचानने की आवश्यकता का अर्थ यह है कि वे जानबूझकर अपनी बातों को मानव जाति के स्वामी (उन पर और उनके परिवार पर शांति और आशीर्वाद हो) की हदीसों के विपरीत ठहराएंगे? और वह भी ऐसी निर्भीकता के साथ कि वे अदृश्य और बरज़ख के लोक से संबंधित विशेष समाचारों और पैगंबर (उन पर शांति हो), जो अदृश्य के निसंदेह विश्वसनीय संरक्षक हैं, के स्पष्ट निर्देशों के विरुद्ध बोलेंगे। "वास्तव में, यह एक असहनीय विपत्ति और एक असाध्य रोग है।" (यह एक ऐसी विपत्ति है जो टलने वाली नहीं और ऐसी पीड़ा जो हटने वाली नहीं। - त) जहाँ तक कन्नौज के वहाबी, 'मिआतु मसाइल' और 'तफहीमुल मसाइल' के लेखक के पूर्वाग्रह का प्रश्न है कि:

[तालिका] मुल्ला अली कारी और शेख अब्दुल हक से जो कुछ भी लाया गया है, वह सब 'शरह अल-सुदूर' से उद्धृत है। शेख जलालुद्दीन अल-सुयूती की पुस्तकों की पूंजी चौथी श्रेणी की हदीसें हैं, और ये हदीसें विश्वसनीय नहीं हैं। (फ़ारसी) मुल्ला अली और शेख अब्दुल हक से जो कुछ भी उद्धृत किया

गया है, वह सब 'शरह अल-सुदूर' से लिया गया है और शेख जलालुद्दीन अल-सुयूती की पुस्तकों का संसाधन चौथी श्रेणी की हदीसें हैं, और ये हदीसें विश्वसनीय नहीं हैं। (उर्दू अनुवाद)

मैं कहता हूँ, सबसे पहले: तीव्र पूर्वाग्रह ने शायद सहीह अल-बुखारी और सहीह अल-मुस्लिम की शानदार हदीसों को देखने नहीं दिया। क्या उन पर भी चौथी श्रेणी का हुक्म लागू हो गया? क्या अली कारी और शेख मोहक्किक (शेख अब्दुल हक) ने उनसे प्रमाण नहीं लिया या आपने उनके वचनों का उत्तर दे दिया? शर्म, शर्म, शर्म! हाँ, मुझसे चूक हुई, आपने उत्तर क्यों नहीं दिया? वह उत्तर दिया गया जिसने बुद्धि, शर्म और ईमानदारी सबको उत्तर दिया। इसे प्रवचन के अंत में भी सुन लीजिए।

दूसरा: यहाँ उनके अलावा और भी हदीसें थीं जिन्हें इस क्षेत्र के विशेषज्ञों ने प्रमाणित किया था। यदि ज्ञान की कमी थी तो...

---

1. तफहीमुल मसाइल, मृतकों का न सुनना, हनफी पुस्तकों से, मोहम्मदी प्रेस, लाहौर, पृष्ठ ८३।

पृष्ठ ९४८ में से ८७८

علماء حتی الامکان کلماتِ ائمہ میں توفیق و تطبیق محمود و مقصود، اور بے ضرورت داعیہ ابقائے خلاف و نزاع جس کے باعث خواہی نخواہی اسی گروہِ ائمہ کا کلام غلط باطل ٹھہرے مطرود و مردود، اور یہ توفیق کہ بتوفیق الٰہی ہم نے ذکر کی واضح و صریح اور تخالف مفقود، تولاجرم اسی کی طرف مصیر لازم، اور یہ راہ خلاف بند و مسدود۔ دلیل ۲: خلاف و تطبیق درکنار ثقات علماء اثبات سماع موتٰی پر اجماع اہلسنت نقل فرما چکے، کیا معاذ اللہ انہیں جزاف و کذب کی طرف نسبت کر سکتے ہیں یا اکثر مشائخ حنفیہ عیاذا باللہ ایسے بے مقدار و ناقابل شمار کہ ان کے خلاف کو لاشئ ٹھہرا کر علماء ادعائے اجماع رکھتے ہیں، لاجرم سبیل یہی ہے کہ باہم خلاف ہی نہیں اجماع نسبتِ ارواح اور قولِ مشائخ نسبتِ اشباح۔ دلیل ۳: جب احادیث کثیرہ وافرہ صریحہ متواترہ سماع موتٰی پر بے تخصیص و تقیید قوت ایسی ناطق جن میں ذی انصاف و دین کو مجال تاویل و تبدیل نہیں تو کیا مقتضائے حق شناسی حضرات مشائخ ہے کہ اپنی بات بنانے کے لیے خواہ مخواہ ان کا کلام مخالف احادیث سید الانام علیہ وعلٰی آلہ الصلوٰۃ والسلام ٹھہرائے اور وہ بھی کسی جرات کے ساتھ کہ خاص اخبار متعلقہ بغیب و برزخ کا مقام اور خود ارشادات صریحہ نبی لاریب امین الغیب صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم کے خلاف کلام و ان ھذا الابلاء لا یحتمل وعنا لا یبرم (یہ ایسی بلاء ہے جو اٹھنے والی نہیں اور ایسی تکلیف جو ٹلنے والی نہیں۔ ت) رہا وہابی قنوج رفواہ مائۃ مسائل صاحب تفہیم المسائل کا تعصب کہ:

[جدول] آنچہ از ملا علی قاری و شیخ عبدالحق آوردہ ہمہ از شرح صدور نقل می کنند و مایہ تصانیف شیخ جلال الدین سیوطی کتب احادیث طبقہ رابعہ است وایں احادیث قابل اعتماد نیستند ۱۔

جو کچھ ملا علی اور شیخ عبدالحق سے نقل کیا ہے سب شرح الصدور سے ناقل ہیں اور شیخ جلال الدین سیوطی کی کتابوں کا سرمایہ طبقہ رابعہ کی احادیث ہیں اور یہ حدیثیں قابل اعتماد نہیں۔(ت)

اقول اولاً: شدت تعصب نے صحیح بخاری و صحیح مسلم کی احادیث جلیلہ کو شاید دیکھنے نہ دیا۔ ان پر بھی طبقہ رابعہ کا حکم ہو گیا۔ کیا علی قاری و شیخ محقق نے ان سے استناد نہ کیا یا آپ نے ان کے کلاموں کا جواب دے لیا، شرم شرم شرم! ہاں مجھی کو سہو ہوا جواب کیوں نہ دیا، وہ دیا کہ عقل و حیا دیانت سب کو جواب دیا۔ آخر کلام میں اسے بھی سن لیجئے۔ ثانیاً: یہاں ان کے علاوہ اور حدیثیں بھی تھیں کہ ائمہ فن نے جن کی تصحیحیں کیں، زیادہ علم نہ تھا تو

---

1 تفہیم المسائل عدم سماع موتیٰ از کتب حنفیہ مطبع محمدی لاہور ص ۸۳ Page 878 of 948

Fatawa Ridawiyya, Volume 9

If only he had seen the words of his opponent, the statement of Maulana Ali Qari was quoted: "هذه المسائل کلها ذکرها السیوطی فی کتابه شرح الصدور فی احوال القبور بالاخبار الصحیحة والآثار الصریحة۔" (That is, Imam Suyuti described all these matters in Sharh al-Sudur using sound hadiths and explicit narrations.)

The statement of the Researching Sheikh was quoted: "و بالجملہ کتاب وسنت مملو مشحون اند باخبار واحادیث کہ دلالت می کند بر وجود علم مَر مَوتی را بدُنیا واہل آں پس منکر نہ شود آں را مگر جاہل باخبار و منکر دین ۱" In short, the Book (Quran) and the Sunnah are replete with such reports and hadiths which contain evidence that the dead have knowledge related to the world and its people; so, its denier will only be one who is ignorant of the traditions and a denier of religion. (T)

Thirdly: Did Maulana Qari and the Researching Sheikh not use the hadiths of greeting (salaam) and the hadith of Tirmidhi from the Mother of the Believers regarding addressing the deceased, etc., as evidence? Or are all these also included in the 'fourth category' and reliance on them is rejected and invalid?

Fourthly: Is everything in Suyuti's books from the 'fourth category', or is it particularly so here? And when both statements are obviously false, then the mention of the 'fourth category' is useless and pointless.

Fifthly: Just as the 'fourth category' hadiths are mentioned in the works of the praised Imam (Suyuti), they are similarly in the compilations of common Imams, and even in these, rather even lower-level hadiths and narrations are in Hujjatullah al-Baligha, Qurrat al-Aynayn, Izalat al-Khafa, Tafsir Azizi, Tuhfa Ithna Ashariyyah, etc. both the Shah Sahibs' compositions, who are themselves the originators and proponents of this classification of categories - they are filled with heaps of them.

Sixthly: The beauty is that Shah Abdul Aziz himself used these very hadiths as evidence for the issue of the hearing of the dead (sama' al-mawta). Similarly, he gave a reference to the noble Sharh al-Sudur saying: "تفصیل آں دفتر طویل می خواہد در کتاب شرح الصدور فی احوال الموتی والقبور کہ تصنیف شیخ جلال الدین سیوطی است و دیگر کتب حدیث باید دید ۲۔" Its detail demands a long volume; one should see Sheikh Jalaluddin Suyuti's composition Sharh al-Sudur fi Ahwal al-Mawta wal-Qubur and other hadith books. (T)

1 Ash'at al-Lam'at, Chapter: Ruling on Israr, Maktaba Nooriya Ridawiyya Sukkur, 3/201. 2 Fatawa Azizi, Letter regarding the companions of Imam Hussain (may Allah be pleased with him), Mujtabai Press Delhi, 1/88.

फ़तावा रिज़विया, जिल्द 9

अपने प्रतिद्वंद्वी के शब्द ही देख लिए होते, मौलाना अली क़ारी का कथन उद्धृत किया गया था: "هذه المسائل كلها ذكرها السيوطى فى كتابه شرح الصدور فى احوال القبور بالاخبار الصحيحة والآثار الصريحة." यानी, इमाम सुयूती ने ये सभी मामले 'शर्ह अल-सुदूर' में सही हदीसों और स्पष्ट रिवायतों से बयान किए हैं।

शेख मोहक़्क़िक़ का कथन उद्धृत था: "بالجملہ کتاب وسنت مملو و مشحون اند باخبار واحادیث کہ دلالت می کند بر وجود علم مَر مَوتی را بدُنیا واہل آں پس منکر نہ شود آں را مگر جاہل باخبار و منکر دین ۱" संक्षेप में, पुस्तक (क़ुरआन) और सुन्नत ऐसी खबरों और हदीसों से लबरेज़ हैं जिनमें दलील है कि मुर्दों को दुनिया और अहले दुनिया से संबंधित ज्ञान होता है, तो उसका मुनकिर (इनकार करने वाला) वही होगा जो अहादीस से जाहिल और दीन का मुनकिर हो। (त)

तीसरा: क्या मौलाना क़ारी और शेख मोहक़्क़िक़ ने सलाम की हदीसों और उम्मुल मोमिनीन से तिरमिज़ी की हदीस जो मय्यत को संबोधित करने आदि के बारे में है, से प्रमाण नहीं लिया था? या ये सब भी 'चौथी श्रेणी' (तबक़ा राबेआ) में शामिल हैं और उन पर भरोसा करना अस्वीकार्य और व्यर्थ है।

चौथा: सुयूती की पुस्तकों में जो कुछ है क्या वह सब 'चौथी श्रेणी' से है या यहाँ विशेष रूप से ऐसा है? और जब दोनों बातें प्रत्यक्षतः गलत हैं, तो 'चौथी श्रेणी' का उल्लेख व्यर्थ और बेमानी है।

पांचवां: 'चौथी श्रेणी' की हदीसें जिस प्रकार प्रशंसापात्र इमाम (सुयूती) की रचनाओं में वर्णित हुई हैं, वैसे ही आम इमामों के संकलन में भी हैं, और खुद इनकी बल्कि इनसे भी निचले स्तर की हदीसें और रिवायतें 'हुज्जतुल्लाह अल-बलिग़ा', 'क़ुर्रतुल ऐनैन', 'इज़ालतुल ख़फ़ा', 'तफ़सीर अज़ीज़ी', 'तुहफ़ा इस्ना अशरिया' आदि दोनों शाह साहबों की रचनाओं में मौजूद हैं, जो स्वयं श्रेणियों के इस विभाजन के प्रवर्तक और समर्थक हैं - तो वे उनसे भरी पड़ी हैं।

छठा: मज़ा तो यह है कि खुद इन्हीं शाह अब्दुल अज़ीज़ साहब ने खुद इसी 'समाअ-ए-मौता' (मुर्दों का सुनना) के मसले में खुद इन्हीं हदीसों से प्रमाण दिया। इसी तरह 'शर्ह अल-सुदूर शरीफ़' का हवाला दिया कि: "تفصیل آں دفتر طویل می خواہد در کتاب شرح الصدور فی احوال الموتی والقبور کہ تصنیف شیخ جلال الدین سیوطی است و دیگر کتب حدیث باید دید ۲." इसका विस्तार एक

लंबे दफ़्तर (किताब) की मांग करता है, शेख जलालुद्दीन सुयूती की रचना 'शर्ह अल-सुदूर फ़ी अहवाल अल-मौता वल-क़ुबूर' और दूसरी हदीस की किताबें देखनी चाहिए। (त)

---

1 अशअतुल लम्आत, बाब: हुक्मुल इसरार, मकतबा नूरिया रिज़विया सुक्कुर, 3/201. 2 फतावा अज़ीज़ी, हज़रत इमाम हुसैन रज़ियल्लाहु अन्हु के साथियों के बारे में पत्र, मतबा मुज्तबाई दिल्ली, 1/88.

اپنے خصم ہی کا کلام دیکھا ہوتا، مولانا علی قاری کی عبارت نقل کی تھی: ھذہ المسائل کلھا ذکرھا السیوطی فی کتابہ شرح الصدور فی احوال القبور بالاخبار الصحیحۃ والآثار الصریحۃ۔ یعنی یہ سب مسائل امام سیوطی نے شرح الصدور میں صحیح حدیثوں صریح روایتوں سے بیان کئے۔

شیخ محقق کی عبارت منقول تھی: بالجملہ کتاب وسنت مملو و مشحون اند باخبار واحادیث کہ دلالت می کند بر وجود علم مَر مَوتی را بدُنیا واہل آں پس منکر نہ شود آں را مگر جاہل باخبار و منکر دین ۱ بالجملہ کتاب و سنت ایسی اخبار واحادیث سے لبریز ہیں جن میں دلیل ہے کہ مردوں کو دنیا و اہل دنیا سے متعلق علم ہوتا ہے، تو اس کا منکر وہی ہوگا جو احادیث سے جاہل اور دین کا منکر ہو۔ (ت)

ثالثاً: کیا مولانا قاری و شیخ محقق نے احادیث سلام و حدیث ترمذی عن ام المومنین دربارہ خطاب بہ میت وغیرہا سے استدلال نہ کیا تھا۔ یا یہ سب بھی طبقہ رابعہ میں داخل اور ان پر اعتماد مردود و باطل۔

رابعاً: کتب سیوطی میں جو کچھ ہے کیا سب طبقہ رابعہ سے ہوتا ہے یا یہاں خاص ایسا ہے؟ اور جب دونوں باتیں بداہتۃً باطل، تو طبقہ رابعہ کا ذکر مہمل ولا طائل۔

خامساً: احادیث طبقہ رابعہ جس طرح تصانیف امام ممدوح میں مذکور ہوئیں یونہی عامہ ائمہ کی تالیف میں، اور خود یہ بلکہ ان سے نازل تر کی احادیث و روایات حجۃ اللہ البالغہ و قرۃ العینین وازالۃ الخفاء و تفسیر عزیزی و تحفہ اثنا عشریہ و غیر ہا تصانیف ہر دو شاہ صاحب میں کہ یہی اس تقسیم طبقات کے موجد و قائل ہیں تو وہ تودہ بھری ہیں۔

سادساً: لطف یہ کہ خود انہی شاہ عبدالعزیز صاحب نے خود اسی مسئلہ سماع موتی میں خود انہی احادیث سے استناد کیا۔ اسی طرح شرح الصدور شریف کا حوالہ دیا کہ: تفصیل آں دفتر طویل می خوابد در کتاب شرح الصدور فی احوال الموتی والقبور کہ تصنیف شیخ جلال الدین سیوطی است و دیگر کتب حدیث باید دید ۲۔ اس کی تفصیل ایک طویل دفتر کی طالب ہے شیخ جلال الدین سیوطی کی تصنیف شرح الصدور فی احوال الموتی والقبور اور دوسری کتب حدیث دیکھنا چاہئے۔ (ت)

---

۱ اشعۃ اللمعات باب حکم الاسراء مکتبہ نوریہ رضویہ سکھر ۳/۲۰۱ ۲ فتاوٰی عزیزی مکتوب در حال ہمراہیا ن حضرت امام حسین رضی اللہ عنہ مطبع مجتبائی دہلی ۱/۸۸

Fatawa Razawiyya, Volume 9

Seventhly: All this discourse was suited to your understanding. If a clear investigation of the truth regarding the classes (of scholars) is required, then refer to the humble servant's treatise, "Madarij al-Tabaqat al-Hadith," so that by Allah's help your eyes may open and you may find the rivers of truth flowing. Now hear the response that Mullah Tafheemi Sahib gave to all the research of the scholars and authentic Hadiths in just two words; this is the blossom he let go after leaving the fourth class, stating:

"Moreover, the Tafsir of Ibn Abbas, which Sheikh Jalaluddin Suyuti mentioned in 'Durr-e-Mansur,' clearly implies the non-hearing of the dead." — 1 "Moreover, from the Tafsir of Ibn Abbas — mentioned by Sheikh Jalaluddin Suyuti in Durr-e-Mansur: that the dead do not hear is clearly inferred." (T)

Then, citing that Tafsir via Abu Jahl Suddi bin Sahl al-Junayd al-Nayshapuri (E) through Abd al-Qadir from Abi Salih from Ibn Abbas, he narrated that when the Master of the World (peace and blessings of Allah be upon him) spoke to the corpses of those infidels at the Well of Badr and said: "You do not hear more than they do," Allah the Almighty revealed these verses: "Indeed, you cannot make the dead hear, nor can you make the deaf hear... [and] you cannot make those in the graves hear." Then regarding this narration itself, it was said: "It is a clear text that the dead do not have hearing." 2 (This is a clear text that the dead do not hear. T).

I say firstly: Did you feel no shame in citing such isolated, strange, and rare unknown fragments against the great and famous authentic works of Bukhari and Muslim? And in a book where the aim is merely to collect the good and the bad, the accepted and the rejected, while in another place there exists reasoning, derivation, research, and scrutiny, one should distinguish between them.

Secondly: Muhammad, the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him), emphasized with an oath: "By Him in Whose hand is the soul of Muhammad, you do not hear what I say any better than they do." 3 I swear by Him in Whose hand of power is the pure soul of Muhammad, you do not hear what I am saying any better than they do. And as for you [interpreting] those verses against this...

Note: In the printed copy of "Tafhim al-Masail," it is like this, and the correct is "al-Junayd Nayshapuri," let this be noted. 12 Minhu (M).

1. Tafhim al-Masail, regarding the non-hearing of the dead, from Hanafi books, Mohammadi Press, Lahore, p. 83.

2. Tafhim al-Masail, regarding the non-hearing of the dead, from Hanafi books, Mohammadi Press, Lahore, p. 73.
3. Sahih al-Bukhari, Chapter on the killing of Abu Jahl, Qadeemi Kutub Khana, Karachi, 2/566.

फतावा रज़विया, जिल्द 9

सातवाँ: यह सब आपके समझने के लायक प्रवचन था। यदि विद्वानों की श्रेणियों के बारे में सत्य की स्पष्ट खोज की आवश्यकता है, तो इस तुच्छ सेवक की पुस्तक "मदारिज अत-तबाक़ात अल-हदीस" देखें, ताकि अल्लाह की मदद से आपकी आँखें खुलें और आपको सत्य की नदियाँ बहती हुई मिलें। अब वह उत्तर सुनें जो मुल्ला तफ़हीमी साहब ने प्रामाणिक हदीसों और विद्वानों के तमाम अनुसंधानों के जवाब में केवल दो शब्दों में दिया है; चौथी श्रेणी को छोड़कर उन्होंने यह नया विचार व्यक्त किया है:

"इसके अतिरिक्त इब्न अब्बास की तफ़सीर, जिसका उल्लेख शेख जलालुद्दीन सुयूती ने 'दुर्र-ए-मंसूर' में किया है, स्पष्ट रूप से मुर्दों के न सुनने की पुष्टि करती है।" — 1 "इसके अतिरिक्त इब्न अब्बास की तफ़सीर से — जिसका उल्लेख शेख जलालुद्दीन सुयूती ने दुर्र-ए-मंसूर में किया है: मुर्दों का न सुनना स्पष्ट रूप से सिद्ध है।" (त)

फिर उन्होंने उस तफ़सीर का हवाला देते हुए अबू जहल सुद्दी बिन सहल अल-जुनैद अन-नैशापुरी (अ) के माध्यम से अब्दुल क़ादिर से, उन्होंने अबी सालेह से, उन्होंने इब्न अब्बास से यह रिवायत की कि जब सैय्यद-ए-आलम (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने बदर के कुएं पर उन काफिरों की लाशों से बात की और फ़रमाया: "तुम उनसे अधिक नहीं सुनते," तो अल्लाह तआला ने ये आयतें उतारीं: "बेशक तुम मुर्दों को नहीं सुना सकते और न ही बहरों को सुना सकते हो... और न ही तुम उन्हें सुना सकते हो जो कब्रों में हैं।" इस पर स्वयं इस रिवायत के बारे में कहा गया: "यह इस बात पर स्पष्ट प्रमाण है कि मुर्दों में सुनने की क्षमता नहीं होती।" 2 (यह इस पर स्पष्ट प्रमाण है कि मुर्दे नहीं सुनते। त)

मैं कहता हूँ, पहला: बुखारी और मुस्लिम जैसी महान और प्रसिद्ध प्रामाणिक किताबों के मुकाबले ऐसे छिटपुट, अजीब और गुमनाम टुकड़ों को पेश करते हुए तुम्हें शर्म नहीं आई? और एक ऐसी किताब में जहाँ केवल अच्छे-बुरे, स्वीकार्य-अस्वीकार्य का संग्रह करना ही उद्देश्य हो, जबकि दूसरी जगह तर्क, विवेचना, शोध और छानबीन मौजूद हो, तो उनमें फर्क करना चाहिए।

दूसरा: अल्लाह के रसूल मुहम्मद (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने तो कसम खाकर ताकीद फ़रमाई: "उसकी कसम जिसके हाथ में मुहम्मद की जान है, जो मैं कह रहा हूँ उसे तुम उनसे बेहतर नहीं

सुनते।" 3 कसम है उसकी जिसके हाथ में मुहम्मद की पाक जान है, मैं जो कह रहा हूँ उसे तुम उनसे अधिक नहीं सुनते। और तुम उन आयतों को इसके विरुद्ध...

नोट: "तफ़हीम अल-मसाइल" के छपे हुए नुस्खे में यह इसी तरह है और सही "अल-जुनैद नैशापुर" है, इसे याद रखना चाहिए। 12 मिन्हु (म)

1. तफ़हीम अल-मसाइल, मुर्दों के न सुनने के बारे में, हनफ़ी किताबों से, मोहम्मदी प्रेस, लाहौर, पृष्ठ 83.
2. तफ़हीम अल-मसाइल, मुर्दों के न सुनने के बारे में, हनफ़ी किताबों से, मोहम्मदी प्रेस, लाहौर, पृष्ठ 73.
3. सही अल-बुखारी, अबू जहल के कत्ल का अध्याय, क़दीमी कुतुब खाना, कराची, 2/566.

पृष्ठ 880/948

فتاوٰی رضویہ جلد نہم

سابعاً: یہ سب تمہارے فہم کے لائق کلام تھا اگر طبقات کے بارے میں تحقیق حق ناصع درکار ہو تو فقیر کا رسالہ مدارج طبقات الحدیث دیکھئے کہ بعونہ تعالٰی آنکھیں کھلیں اور حق کے دریا لہراتے ملیں مکارہ قنوجی اب وہ جواب سنئے جو ملا تفہیمی صاحب نے صحیح حدیثوں اور ائمہ علماء کی تمام تحقیقوں کا دو حرف میں دے دیا یہی شگوفہ طبقہ رابعہ چھوڑ کر فرماتے ہیں:

علاوہ ازیں تفسیر ابن عباس کہ شیخ جلال الدین سیوطی ذکر آں در در منشور کردہ صریح عدم سماع موتی مستفاد است-1 علاوہ ازیں تفسیر ابن عباس سے __ جس کا ذکر شیخ جلال الدین سیوطی نے در منثور میں کیا ہے: مردوں کا نہ سننا صاف طور پر مستفاد ہے۔ (ت)

پھر وہ تفسیر بحوالہ ابو جہل سدی بن سہل الجنید النیشاپوری ع بطریق عبدالقادر عن ابی صالح عن ابن عباس یہ نقل کی کہ جب سید عالم صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم نے قلیب بدر پر ان کافروں کی لاشوں سے کلام کیا اور فرمایا: تم کچھ ان سے زیادہ نہیں سنتے، فانزل اللہ تعالٰی اِنَّكَ لَا تُسْمِعُ الْمَوْتٰى وَمَا اَنْتَ بِمُسْمِعٍ مَّنْ فِي الْقُبُوْرِ ۝۔ اس پر اللہ تعالٰی نے یہ آیتیں اتاریں، پھر خود اس روایت کی نسبت کہا نص است برآنکہ موتی را سماع نیست2 (یہ اس پر نص ہے کہ مردے نہیں سنتے۔ت)

اقول اولاً: صحاح جلیلہ مشہورہ بخاری و مسلم کے مقابل ایسی شواذ غریبہ و نوادر مجہولہ اجزائے خلمہ ذکر کرتے شرم نہ آئی، اور ایک کتاب میں رطب و یابس، مقبول و مردود جو ملے محض جمع کر دینا مقصود ہو دوسری جگہ استدلال و تفریع و تحقیق و تنقیح موجود ہو ان میں فرق کی تمیز بنائی۔

ثانیاً: محمد رسول اللہ صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم تو مؤکد بقسم کر کے والذی نفس محمد بیدہ ما انتم با سمع لما اقول منھم3 قسم ہے اس کی جس کے دست قدرت میں محمد کی جان پاک ہے میں جو فرمارہا ہوں اسے تم سے کچھ زیادہ نہیں سنتے، اور تو ان آیتوں کی اس کے خلاف پر

عہ: در نسخہ مطبوعہ تفہیم المسائل "ہمچنین است و صحیح الجنید نیشاپوری است فلیتنبہ ۱۲ منہ (م) تفہیم المسائل کے مطبوعہ نسخوں میں اس طرح ہے اور صحیح "الجنید نیشاپور" ہے، اسے یاد رکھنا چاہئے ۱۲ منہ (م)

1 تفہیم المسائل عدم سماع موتی از کتب حنفیہ مطبع محمدی لاہور ص ۸۳ 2 تفہیم المسائل عدم سماع موتی از کتب حنفیہ مطبع محمدی لاہور ص ۷۳ 3 صحیح البخاری باب قتل ابی جہل قدیمی کتب خانہ کراچی ۵۶۶/۲

Fatawa Razawiyya Volume 9

...did not accept the effect, did (God forbid) the Great Quran descend to falsify the oath of His Messenger? Did you not feel any shame before Allah and His Messenger when writing this? When the Mother of the Believers (Aisha RA) thought the Hadith was contrary to the verse, she attributed it to an illusion or oversight of the narrator, but you accepted that in this one Hadith, the Messenger of Allah, peace and blessings of Allah be upon him, said so and (God forbid) the Great Quran came to refute this news.

Thirdly: The interesting thing is that these verses appear in three Surahs: An-Naml, Al-Mala'ika (Fatir), and Ar-Rum; all three are Meccan, having been revealed before the Hijra, while the event of Badr occurred after the Hijra. Did the verses descend in advance? Scholars have not counted these verses among the exceptions from the Meccan ones, nor among the exceptions in revelation.

Fourthly: Look at the context (before and after) of the verses; the speech is explicitly about the living disbelievers, that they do not listen to the word of truth, they do not believe, not about the corpses of the disbelievers.

In Surah Ar-Rum, He says: "And if We should send a [bad] wind and they saw it [their crop] turned yellow, they would remain thereafter disbelieving. So indeed, you will not make the dead hear, nor will you make the deaf hear the call when they turn their backs, retreating. And you cannot guide the blind away from their error. You will only make hear those who believe in Our verses so they are Muslims [submitting to Allah]." (Quran 30:51-53)

[Urdu text translation]: If We send a wind so they see the field yellow, they would certainly start being ungrateful after it. Indeed you will not make the dead hear, nor will you make the deaf hear the call when they turn away retreating. And you are not a guide for the blind from their misguidance. You will only make hear those who believe in our verses so they are submissive. (T)

Exactly like this, from 'Indeed you do not make the dead hear' to the end is in Surah An-Naml. In Surah Fatir it is: "...[of the unseen] and establish prayer. And whoever purifies himself only purifies himself for [the benefit of] his soul. And to Allah is the destination. Not equal are the blind and the seeing, Nor are the darknesses and the light, Nor are the shade and the heat, And not equal are the living and the dead.

Indeed, Allah causes to hear whom He wills, but you cannot make hear those in the graves. You are not but a warner." (Quran 35:18-23)

[Urdu text translation]: Indeed your warning only benefits those who fear their Lord in secret and establish prayer. And whoever becomes pure, he becomes pure for his own benefit, and to Allah is the return. And not equal are the blind and the seeing, nor the darkness and the light, nor the shade and the intense heat, and not equal are the living and the dead. Indeed, Allah makes hear whom He wills, and you cannot make those hear who are in the graves. You are only a warner. (T) Speak with faith, in these verses, it is described that why are you calling out to the corpses of the disbelievers, what will they hear after dying.

1. Al-Quran 30/51 to 53 and 27/81 and 82
2. Al-Quran 35/18 to 23

फतावा रज़विया जिल्द 9

...असर न माना, क्या (माज़अल्लाह) क़ुरआन-ए-अज़ीम अपने रसूल की कसम को झुठलाने के लिए उतरा? ऐसा लिखते हुए अल्लाह और उसके रसूल से कुछ हया न आई। उम्मुल मोमिनीन (रज़ियल्लाहु अन्हा) ने जब हदीस को आयत के खिलाफ गुमान किया तो रावी की तरफ वहम और भूल की निस्बत की, लेकिन आपने तो इस एक हदीस में रसूलुल्लाह (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) का यह फरमाना और क़ुरआन-ए-अज़ीम का (माज़अल्लाह) इस खबर को गलत साबित करने के लिए आना मान लिया।

तीसरी बात: लुत्फ यह है कि ये आयतें तीन सूरतों में आई हैं: नम्ल, मलाइका (फ़ातिर), रूम; तीनों मक्की हैं जो हिजरत से पहले नाज़िल हुईं और बद्र का वाकया हिजरत के बाद का है। क्या आयतें पेशगी (पहले ही) उतर आई थीं? उलमा ने इन आयतों को न तो मक्की सूरतों के अपवादों में गिना है और न ही नुज़ूल (उतरने) के अपवादों में।

चौथी बात: आयतों के सियाक-ओ-सबाक (संदर्भ) को देखें, कलाम स्पष्ट रूप से जीवित काफिरों के बारे में है कि वे हक़ की बात नहीं सुनते, नहीं मानते, न कि काफिरों की लाशों के बारे में।

सूरह रूम में अल्लाह फरमाता है: "व लइन अर्सल्ना रीहन फ़रऔहु मुसफ़र्रन लज़ल्लू मिम बअ़दिही यक्फ़ुरून (51) फ़इन्नका ला तुस्मिउल मौता व ला तुस्मिउस्सुममद् दुआअ इज़ा वल्लौ मुदबिरीन (52) व मा अन्ता बिहादिल उम्मि अन ज़लालातिहिम इन तुस्मिउ इल्ला मंय युमिनु बिआयातिना फ़हुम मुस्लिमून (53)"

[उर्दू पाठ का अनुवाद]: अगर हम हवा भेजें जिससे वे खेती को ज़र्द देखें तो ज़रूर इसके बाद नाशुक्री करने लगें, बेशक तुम मुर्दों को न सुनाओगे और न बहरों को पुकार सुनाओगे जब वो पीठ दे कर फिरें, और न तुम अंधों को उनकी गुमराही से राह पर लाने वाले हो, तुम उन्हीं को सुनाओगे जो हमारी आयतों पर ईमान लाएं फिर वो फरमांबरदार (आज्ञाकारी) हों। (त)

ठीक इसी तरह 'बेशक तुम मुर्दों को नहीं सुना सकते' से आखिर तक सूरह नम्ल में है। सूरह फ़ातिर में है: "...बिल्लैबि व अक़ामुस्सलात व मंय तज़क्का फ़इन्नमा यतज़क्का लिनफ़्सिही व इलल्ला हिल मसीर (18) व मा यस्तविल् अमा वल् बसीर (19) व लाज़ ज़ुलुमातु व लन्नूर (20) व लाज़ ज़िल्लु वल हरूर (21) व मा यस्तविल् अह्याउ वलल अत्वात इन्नल्लाहा युस्मिउ मंय यशाउ व मा अन्ता बिमुस्मिइम मन फ़िल कुबूर (22) इन अन्ता इल्ला नज़ीर (23)"

[उर्दू पाठ का अनुवाद]: बेशक तुम्हारा डर सुनाना उन्हीं का काम देता है जो अपने रब से बे-देखे डरें और नमाज़ कायम करें और जो सुथरा बने वो अपने नफे ही के लिए सुथरा होगा और अल्लाह ही की तरफ पलटना है। और बराबर नहीं नाबीना (अंधा) और बीना (देखने वाला), न ही तारिकियां और रोशनी, न ही साया और तेज़ धूप, और बराबर नहीं ज़िंदा और मुर्दे बेशक अल्लाह जिसे चाहता है सुनाता है, और तुम उन्हें सुनाने वाले नहीं जो कब्रों में पड़े हैं, तुम तो सिर्फ डर सुनाने वाले हो। (त) ईमान से कहना इन आयतों में यही बयान है कि काफिरों की लाशों पर क्यों पुकार रहे हो वो मरने के बाद क्या सुनेंगे।

1. अल-क़ुरआन 30/51 से 53 और 27/81 और 82
2. अल-क़ुरआन 35/18 से 23

पेज 881 ऑफ 948

فتاوی رضویہ جلد نہم

اثر نا مانے، کیا معاذ اللہ قرآنِ عظیم اپنے رسول کی قسم کی تکذیب کے لئے اترا؟ ایسا لکھتے اللہ ورسول سے کچھ حیا نہ آئی۔ ام المؤمنین نے جب حدیث کو مخالف آیت گمان کیا راوی کی طرف وہم و سہو نسبت فرمایا تو نے تو اس ایک حدیث میں رسول اللہ صلی اللہ تعالی علیہ وسلم کا یوں فرمانا اور قرآنِ عظیم کا معاذ اللہ اس خبر کی تغلیط میں آنا مانا۔

ثالثاً: لطف یہ کہ یہ آیتیں تین سورتوں میں واقع ہوئیں، نمل، ملائکہ، روم، تینوں مکیہ ہیں کہ قبل ہجرت نازل ہوئیں اور واقعہ بدر ہجرت کے بعد ہے۔ کیا آیتیں پیشگی اتر آئی تھیں؟ علماء نے ان آیات کو نہ مستثنیات من الملکیات میں شمار فرمایا نہ مستثنیات فی النزول میں۔

رابعاً: دیکھئے سباق و سیاقِ آیات صراحتہ کلامِ کفار احیاء میں ہے کہ سخنِ حق میں نہیں سنتے، نہیں مانتے نہ کافروں کی لاشوں میں۔ سورہ روم میں فرماتا ہے: وَلَئِنْ أَرْسَلْنَا رِيحًا فَرَأَوْهُ مُصْفَرًّا لَّظَلُّوا مِن بَعْدِهِ يَكْفُرُونَ (51) فَإِنَّكَ لَا تُسْمِعُ الْمَوْتَى وَلَا تُسْمِعُ الصُّمَّ الدُّعَاءَ إِذَا وَلَّوْا مُدْبِرِينَ (52) وَمَا أَنتَ بِهَادِي الْعُمْيِ عَن ضَلَالَتِهِمْ إِن تُسْمِعُ إِلَّا مَن يُؤْمِنُ بِآيَاتِنَا فَهُم مُّسْلِمُونَ (53) اگر ہم ہوا بھیجیں جس سے وہ کھیتی کو زرد دیکھیں تو ضرور اس کے بعد ناشکری کرنے لگیں، بیشک تم مردوں کو نہ سناؤ گے اور نہ بہروں کو پکار سناؤ گے جب وہ پیٹھ دے کر پھریں، اور نہ تم اندھوں کو ان کی گمراہی سے راہ پر لانے والے ہو، تم ان ہی کو سناؤ گے جو ہماری آیتوں پر ایمان لائیں پھر وہ فرمانبردار ہوں۔ (ت)

بعینہ اسی طرح انک لا تسمع الموتی سے آخر تک سورہ نمل میں ہے۔ سورہ فاطر میں ہے: بِالْغَيْبِ وَأَقَامُوا الصَّلَاةَ وَمَن تَزَكَّى فَإِنَّمَا يَتَزَكَّى لِنَفْسِهِ وَإِلَى اللَّهِ الْمَصِيرُ (18) وَمَا يَسْتَوِي الْأَعْمَى وَالْبَصِيرُ

(19) وَلَا الظُّلُمَاتُ وَلَا النُّورُ (20) وَلَا الظِّلُّ وَلَا الْحَرُورُ (21) وَمَا يَسْتَوِي الْأَحْيَاءُ وَلَا الْأَمْوَاتُ إِنَّ اللَّهَ يُسْمِعُ مَن يَشَاءُ وَمَا أَنتَ بِمُسْمِعٍ مَّن فِي الْقُبُورِ (22) إِنْ أَنتَ إِلَّا نَذِيرٌ (23) بیشک تمہارا ڈر سنانا ان ہی کا کام دیتا ہے جو اپنے رب سے بے دیکھے ڈریں اور نماز قائم کریں اور جو ستھرا بنے وہ اپنے نفع ہی کے لئے ستھرا ہوگا اور اللہ ہی کی طرف پلٹنا ہے۔ اور برابر نہیں نابینا اور بینا، نہ ہی تاریکیاں اور روشنی، نہ ہی سایہ اور تیز دھوپ، اور برابر نہیں زندہ اور مردے بیشک اللہ جسے چاہتا ہے سناتا ہے، اور تم انھیں سنانے والے نہیں جو قبروں میں پڑے ہیں، تم تو صرف ڈر سنانے والے ہو۔ (ت) ایمان سے کہنا ان آیتوں میں یہی بیان ہے کہ کافروں کی لاشوں پر کیوں پکار رہے ہو وہ مرنے کے بعد کیا سنیں گے۔

1 القرآن ۳۰/ ۵۱ تا ۵۳ و ۲۷/ ۸۱ و ۸۲ 2 القرآن ۳۵/ ۱۸ تا ۲۳

Fatawa Razawiyya, Volume 9

Fifthly: Regardless of the fact that if this holy speech had descended for this benefit in this incident, then the verse from Surah Fatir or the one from Surah Naml and Surah Rum would have been sufficient. What was the need for "Innaka la tusmi'u" (Indeed, you cannot make [them] hear) and "Wa ma anta bi-musmi'in" (And you are not the one to make [them] hear) to descend separately? Both verses of Naml and Rum are identical word for word, with only the addition of 'fa' being the difference. What sense did it make that Gabriel recited "Innaka la tusmi'u" until the end once for the denial of this incident, and then recited "Fa innaka la tusmi'u" until the end at that time? Inevitably, one of them cannot be separated from its original place in the Surah by any argument. And when the denial had already descended in Makkah al-Mukarramah before the Hijrah, then what possibility did the persistent oath of the Master of the Universe (peace and blessings of Allah be upon him) on it hold!

Sixthly: Apparent sense and reason are self-evidently witnesses to the body of the deceased being inactive and senseless. If at any time its perception is proven, then it is absolutely from the matters of the unseen (Ghayb). Now, for the Master of the Universe (peace and blessings of Allah be upon him) to take an oath and pronounce judgment on this unseen, and then for the Great Quran (Allah forbid) to come against it, is not possible except in two ways: Either, firstly (seeking refuge in Allah), the Radiant Master (prayers and peace of Allah be upon him) spoke by guessing about the unseen or pronounced judgment on the unseen from himself; or, that the news of the unseen from that side (Allah forbid) came contrary to reality, and then its rejection was sent down. Whichever of these two your faith accepts, believe it.

Seventhly: If, by a false assumption, this strange narration of Khalid were correct, then definitely, certainly, and decisively, the aforementioned verse is from the category of the noble verse: "It was not you who killed them, but it was Allah who killed them. And you threw not, [O Muhammad], when you threw, but it was Allah who threw." (So you did not kill them, but Allah killed them. And you did not throw pebbles when you threw, but Allah threw. - T). In these, there is absolutely no denial of the oath of the Noble Prophet (peace and blessings be upon him), but rather it is stated thus: that these dead bodies which are listening to your speech, you did not make them hear, but God made them hear. "Indeed, Allah makes whom He wills hear, but you cannot make those in the graves hear." It happened by His power that the soul returned into those empty bodies, and upon its return, the lost consciousness and senses of the body were restored. Now, this narration is also our

proof, and a source of humiliation for the flawed understanding of the pseudo-intellectuals. Praise be to Allah, the Guide to the straight path. (And God alone is the giver of guidance to the right path. - T). Anyway, the matter has strayed far, and now the author of 'Tafhim' regarding 'those in the graves' is absolutely excluded from accepting 'Sama' (hearing). Therefore, turn the reins back to the original topic. These three additional matters in the evidence and chains for the return of spirits to dead bodies are sufficient and...

1. Al-Quran 8/17 Page 882 of 948

फ़तावा रज़विया, जिल्द नहम

पांचवीं बात: इस बात से हटकर कि अगर इस घटना में इस लाभ के लिए यह पवित्र कलाम उतरता, तो फातिर वाली आयत या नमल और रूम वाली आयत ही काफी थी। 'इन्नका ला तुस्मिउ' (Innaka la tusmi'u) और 'व मा अन्ता बि-मुस्मिइन' (Wa ma anta bi musmi'in) के अलग-अलग उतरने की क्या आवश्यकता थी? नमल और रूम की दोनों आयतें तो शब्द-दर-शब्द एक ही हैं, केवल 'फ़ा' (fa) की अधिकता का अंतर है। इसका क्या अर्थ था कि जिब्रील ने इस घटना के खंडन के लिए एक बार 'इन्नका ला तुस्मिउ' अंत तक सुनाया, फिर उस समय 'फ़-इन्नका ला तुस्मिउ' अंत तक सुनाया? अनिवार्य रूप से, उनमें से एक किसी भी तर्क से अपने मूल सूरा स्थान से अलग नहीं हो सकती। और जब हिजरत से पहले मक्का मुअज्जमा में खंडन उतर चुका था, तो अब सैय्यद-ए-आलम (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) का इस पर शपथ के साथ अडिग रहने की क्या संभावना थी!

छठी बात: प्रत्यक्ष इंद्रियां और बुद्धि स्वतः स्पष्ट रूप से मृतक के शरीर के निष्क्रिय और संज्ञाहीन होने की गवाह हैं। यदि किसी समय इसका बोध होना सिद्ध हो, तो यह निश्चित रूप से परोक्ष (ग़ैब) के मामलों में से है। अब सैय्यद-ए-आलम (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) का शपथ खाकर इस परोक्ष पर निर्णय देना और फिर महान कुरान का (अल्लाह न करे) इसके विरुद्ध आना, दो ही स्थितियों में संभव है: या तो पहले (अल्लाह की पनाह) हुजूर पुरनूर (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने परोक्ष के बारे में अनुमान से बात कह दी या अपनी ओर से परोक्ष पर निर्णय दे दिया; या यह कि पहले उसी तरफ से परोक्ष की खबर (अल्लाह न करे) वास्तविकता के विपरीत आई, फिर उसका खंडन उतरा। आपका ईमान इन दोनों में से जिसे स्वीकार करे, उसे मानें।

सातवीं बात: यदि गलत धारणा के तौर पर खालिद की यह विचित्र रिवायत सही भी हो, तो निश्चित रूप से यह उल्लेखित आयत इस पवित्र आयत की श्रेणी में है: "तो तुमने उन्हें कत्ल नहीं किया बल्कि अल्लाह ने उन्हें कत्ल किया, और तुमने नहीं फेंका जब तुमने फेंका बल्कि अल्लाह ने फेंका।" (तो तुमने उन्हें कत्ल नहीं किया, बल्कि अल्लाह ने उन्हें कत्ल किया। और तुमने कंकड़ नहीं फेंके जब तुमने फेंके लेकिन अल्लाह ने फेंके। - त)। इनमें अल्लाह न करे हरगिज अपने नबी करीम (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) की शपथ पर वह खंडन नहीं है, बल्कि इस प्रकार कहा गया है कि ये जो मृत शरीर तुम्हारी बात सुन रहे हैं, ये तुमने उन्हें नहीं सुनाया बल्कि अल्लाह ने सुनाया। "बेशक अल्लाह जिसे चाहता है सुनाता है और तुम उन्हें नहीं सुना सकते जो कब्रों में हैं।" यह उसी की शक्ति से हुआ कि उन खाली शरीरों में रूह वापस आ गई, जिसके आते ही खोए हुए होश और इंद्रियां शरीर

में फिर से ठीक हो गईं। अब यह रिवायत भी हमारा प्रमाण है और समझने वालों के लिए समझ की बात है। और अल्लाह का शुक्र है जो सीधे रास्ते की हिदायत देने वाला है। (और ईश्वर ही सीधे रास्ते का मार्गदर्शन देने वाला है। - त)। खैर, बात दूर निकल गई और अब 'तफ़हीम' के लेखक 'मन फिल कुबूर' (जो कब्रों में हैं) के बारे में 'समा' (सुनने) को स्वीकार करने से बिल्कुल अलग हैं। इसलिए, मूल बात की ओर रुख करें। पूर्वजों के कलाम में मृत शरीरों में रूहों की वापसी के साक्ष्यों और प्रमाणों में ये तीन अतिरिक्त बातें पर्याप्त हैं और...

1. अल-कुरान 8/17 पृष्ठ 882 of 948

خامسا: قطع نظر اس سے کہ اگر اس واقعہ میں اس افادے کے لیے یہ کلام پاک اترتا تو فاطر والی آیت یا نمل و روم میں کی ایک کافی تھی، انك لا تسمع جدا اور وما انت بمسمع الگ اترنے کی کیا حاجت تھی؟ نمل و روم کی دونوں آیتیں تو حرف بحرف ایک ہی ہیں صرف زیادت فاکافرق ہی، اس کے کیا معنی تھے کہ جبریل اس واقعہ پر انکار کے لیے ایک بار انك لا تسمع آخر تک سناتے پھر اس وقت "فانك لا تسمع" آخر تک سناتے، لاجرم ان میں کی ایک کسی دلیل سے اپنے محل سورت سے جدا نہیں ہو سکتی، اور جب مکہ معظمہ میں پیش ہجرت انکار اتر چکا تھا تو اب سید عالم صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کا اس پر بقسم اصرار کیا احتمال رکھتا تھا!

سادسا: ظاہر حس و عقل بالبداہتہ جسم میت کے معطل و بے حس ہونے پر شاہد ہے اگر کسی وقت اس کا مدرک ہونا ثابت ہو تو یہ قطعاً امور غیبیہ سے ہے، اب سید عالم صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کا قسم کھا کر اس غیب پر حکم فرمانا پھر قرآن عظیم کا معاذ اللہ اس کے خلاف پر آنا دو صورتوں کے سوا ممکن نہیں، یا تو اولاً عیاذ باللہ حضور پر نور صلوات اللہ وسلامہ علیہ نے رجما بالغیب کلام فرما دیا یا اپنی طرف سے غیب پر حکم لگا دیا یا یوں کہ اول اسی طرف سے خبر غیب معاذ اللہ خلاف واقع آئی، پھر اس کا رد اترا، تمہارا ایمان ان دونوں میں سے جسے قبول کرے مانو۔

سابعا: اگر بفرض غلط یہ روایت غریبہ خالد صحیح بھی ہو تو قطعاً یقیناً حتماً جزماً آیت مذکورہ آیت کریمہ فَلَمْ تَقْتُلُوهُمْ وَلَكِنَّ اللَّهَ قَتَلَهُمْ ۚ وَمَا رَمَيْتَ إِذْ رَمَيْتَ وَلَكِنَّ اللَّهَ رَمَىٰ ۱ (تو انہیں تم نے قتل نہ کیا بلکہ اللہ نے ان کو قتل کیا۔ اور تم نے کنکریاں نہ پھینکیں جب پھینکیں لیکن اللہ نے پھینکیں۔ت) کے باب سے ہیں جن میں معاذ اللہ ہرگز اپنے نبی کریم علیہ الصلوۃ والتسلیم کی قسم پر وہ انکار نہیں بلکہ یوں ارشاد ہوتا ہے کہ یہ جو اجسام مردہ تمہارا کلام سن رہے ہیں یہ تم نے انہیں نہ سنایا بلکہ خدا

نے سنایا ان اللہ یسمع من یشاء وما انت بمسمع من في القبور یہ اسی کی قدرت سے ہوا کہ ان خالی بدنوں میں روح نے عود کیا جس کے آتے ہی گئے ہوئے ہوش و حواس بدن کے پھر درست ہو گئے، اب یہ روایت بھی ہماری دلیل ہے اور تفہیمی ملا کے فہم خوار و ذلیل والحمد للہ الہادی الی سواء السبیل (اور خدا ہی راہ راست کی ہدایت دینے والا ہے۔ت) خیر بات دور پہنچی اور اب صاحب تفہیم داخل من فی القبور تو سماع قبول سے قطعاً مہجور، لہٰذا اصل سخن کی طرف عنان گردانی کیجئے، کلام مشائخ دوبارہ اجسام موتی ہونے پر شواہد و اسانید میں یہ تین امور بالائی کافی و

Fatawa Rizwia Volume 9

...were sufficient, but regarding the core issue, the words of the noble scholars and other discussions of this place, their rejections, rulings, negations, and affirmations are unanimous on this point. Witnesses and deviations; acceptance is obligatory and deviation is forsaken. For example:

Evidence 4: See the discussion, what is it about? About oaths. And by the consensus of the Hanafis and the clarifications of the aforementioned scholars and others, their basis is custom (urf). In custom, the subject of "human," "Zaid," "that person," and "repentance" is the body. Thus, the oath applies to it, and this arbitration and taste are related to this.

Evidence 5: It is evident that from beginning to end, their discourse is about death, and "dead" is nothing but the body. In the same "Kafi Sharh Wafi," in this same discussion of oaths, it is stated:

"The soul does not die, but it has departed from the mold of such-and-such, and Allah Almighty is capable of returning it."[1]

That is, the soul is not the dead; it has simply separated from the body, and Allah Almighty has the power to bring it back into the body.

Evidence 6: Along with this, they clearly state in the arguments that the "dead" they are talking about is that which has no perception, no understanding, no sensation of pain, and is senseless. It is stated in the five reliable books on a hundred issues:

"The wording is for 'Al-Ramz' (Ramz al-Haqa'iq): Speech is for making understood, so it is not realized in the case of a dead person."[2]

And the words are from 'Ramz al-Haqa'iq', a commentary on 'Kanz al-Daqaiq' by Al-Aini: Speech is for the purpose of making someone understand, so it will not be established in the case of a deceased person. (T)

It is stated in 'Fath al-Qadir': "And death is contrary to it."[3] (And death is incompatible with it. T). Similarly, in 'Mustakhlas al-Haqa'iq', following 'Al-Hidayah', it is said:

"Whoever says, 'If I strike you, then my slave is free,' this applies to striking during life. If he dies and then is struck, the oath is not broken because 'striking' is a name for a painful action connected to the body, and inflicting pain is not realized in the case of a dead person."[4]

If someone said, "If I strike you, my slave is free," this oath will be taken to mean striking during life. If he is struck after death, the oath will not be broken, because striking is the name of a pain-inflicting action related to the body, and inflicting pain is not established in the case of a dead person. (T)

[1] Kafi Sharh Wafi [2] Ramz al-Haqa'iq Sharh Kanz al-Daqaiq, Chapter of Oaths regarding Striking and Killing etc., Maktabah Nooriyah Rizwiyah, Sukkur 1/220. [3] Fath al-Qadir, Chapter of Oaths regarding Striking and Killing and others, Maktabah Nooriyah Rizwiyah, Sukkur 4/261. [4] Mustakhlas al-Haqa'iq, Chapter of Oaths regarding Striking and Killing and others, Fazl Ahmed Tajir-e-Kutub Peshawar 2/388.

फ़तावा रिज़विया खंड नौ

...पर्याप्त थे, लेकिन स्वयं मूल मुद्दे में, उन विद्वान उलेमाओं के वचन और इस स्थान की अन्य चर्चाओं और उनके खंडन, आदेशों, निषेधों और पुष्टियों में सब एकमत हैं। इस अर्थ पर गवाह और विचलन; स्वीकृति अनिवार्य है और विचलन परित्यक्त है। उदाहरण के लिए:

प्रमाण 4: चर्चा देखें, किस बारे में है? शपथ के बारे में। और हनफ़ियों की सर्वसम्मति और उपरोक्त विद्वानों तथा अन्य के स्पष्टीकरण के अनुसार, उनका आधार 'उर्फ (प्रथा) है। 'उर्फ में "इंसान", "ज़ैद", "वह व्यक्ति" और "तौबा" का विषय शरीर है। इसलिए शपथ उसी पर लागू होती है, और यह निर्णय और अनुभव इसी से संबंधित है।

प्रमाण 5: यह स्पष्ट है कि शुरू से अंत तक उनकी चर्चा मृत्यु के बारे में है, और "मृत" शरीर के अलावा कुछ नहीं है। उसी 'काफ़ी शरह वाफ़ी' में, शपथ की इसी चर्चा में कहा गया है:

"आत्मा नहीं मरती, बल्कि वह अमुक के सांचे से निकल गई है, और अल्लाह तआला उसे वापस लाने में सक्षम है।"[1]

अर्थात, आत्मा मृत नहीं है, वह केवल शरीर से अलग हो गई है और अल्लाह तआला उसे फिर से शरीर में लाने की शक्ति रखता है।

प्रमाण 6: साथ ही, वे दलीलों में स्पष्ट रूप से लिखते हैं कि जिस मृत व्यक्ति के बारे में उनकी बात है, वह वही है जिसे कोई बोध नहीं, कोई समझ नहीं, जिसे दर्द नहीं पहुँचता, जो बेजान है। सौ मुद्दों पर आधारित पाँच विश्वसनीय पुस्तकों में लिखा है:

"शब्द 'रमज़' (रमज़ अल-हक़ाएक़) के लिए हैं: वाणी समझाने के लिए होती है, अतः यह मृत के संबंध में सिद्ध नहीं होगी।"[2]

और ये शब्द 'रम्ज़ अल-हक़ाएक़' (कंज अल-दक़ाएक़ की व्याख्या) के हैं, जो ऐनी द्वारा लिखित है: वाणी समझाने के लिए होती है, इसलिए यह मृतक के मामले में लागू नहीं होगी। (त)

'फ़तह अल-क़दीर' में है: "और मृत्यु इसके विपरीत है।"[3] (और मृत्यु इसके साथ असंगत है। त)। इसी तरह, 'हिदाया' के अनुसरण में 'मुस्तख़लस अल-हक़ाएक़' में कहा गया है:

"जिसने कहा, 'यदि मैंने तुम्हें मारा, तो मेरा दास स्वतंत्र है,' तो यह जीवन के दौरान मारने पर लागू होता है। यदि वह मर गया और फिर उसे मारा गया, तो शपथ भंग नहीं होगी क्योंकि 'मारना' शरीर से संबंधित एक पीड़ादायक कार्य का नाम है, और पीड़ा पहुँचाना मृत के मामले में घटित नहीं होता।"[4]

यदि किसी ने कहा कि अगर मैंने तुम्हें मारा तो मेरा गुलाम आज़ाद है, तो इस शपथ का अर्थ जीवन के दौरान मारना लिया जाएगा। यदि उसकी मृत्यु के बाद उसे मारा गया, तो शपथ नहीं टूटेगी, क्योंकि मारना शरीर से संबंधित पीड़ा पहुँचाने वाले कार्य का नाम है और मृत के संबंध में पीड़ा पहुँचाना सिद्ध नहीं होता। (त)

[1] काफ़ी शरह वाफ़ी [2] रम्ज़ अल-हक़ाएक़ शरह कंज अल-दक़ाएक़, अध्याय: प्रहार और वध आदि की शपथ, मकतबा नूरिया रिज़विया, सुक्कुर 1/220. [3] फ़तह अल-क़दीर, अध्याय: प्रहार और वध आदि की शपथ, मकतबा नूरिया रिज़विया, सुक्कुर 4/261. [4] मुस्तख़लस अल-हक़ाएक़, अध्याय: प्रहार और वध आदि की शपथ, फ़ज़ल अहमद ताजिर-ए-कुतुब पेशावर 2/388.

पृष्ठ 883/948

فتاوٰی رضویہ جلد نہم

وافی تھے مگر خود نفس مسئلہ میں انھیں علماء کرام کے کلام و دیگر ابحاث مقام اور ان کے رد و احکام و نقص و ابرام یک زبان اس معنی پر شہود و عدول تو قبول واجب اور عدول مخذول۔ مثلاً:

دلیل ۴: بحث دیکھئے، کاہے کی ہے؟ ایمان کی۔ اور باجماع حنفیہ و تصریحات علمائے مذکورین و غیر ہم ان کا مبنی عرف اور عرف میں انسان و زید و آن و توب کا مورد بدن تو قسم اسی پر صادق، اور یہ داوری و چاشنی اسی سے متعلق۔

دلیل ۵: پر ظاہر کہ اول تا اخر ان کا کلام موت میں ہے، اور میت نہیں مگر بدن، خود اسی کافی شرح وافی میں اسی بحث ایمان میں فرمایا:

الروح لا یموت لکنه زال عن قالب فلان واللہ تعالی قادر علی اعادته[1]۔

یعنی روح میت نہیں وہ تو صرف بدن سے جدا ہوگئی ہے اور اللہ تعالٰی قادر ہے کہ اسے دوبارہ بدن میں لے آئے۔

دلیل ۶: ساتھ ہی دلائل میں صاف تحریر فرماتے ہیں کہ جس میت میں ان کا کلام ہے وہ وہی ہے جسے ادراک نہیں، جسے فہم نہیں، جسے درد نہیں پہنچتا، جو بے حس ہے۔ کتب خمسہ مستندہ مائتہ مسائل میں ہے:

واللفظ للرمز، الکلام للافهام فلا یتحقق فی المیت[2]۔

اور الفاظ رمز الحقائق شرح کنز الدقائق للعینی کے ہیں: کلام سمجھانے کے لئے ہوتا ہے تو میت کے حق میں ثابت نہ ہوگا۔ (ت)

فتح القدیر میں ہے: والموت ینافیہ[3] (اور موت اس کے منافی ہے۔ ت) اسی مستخلص الحقائق میں بہ تبعت ہدایہ ہے:

من قال ان ضربتك فعبدی حر فهو على الضرب في الحياة فلو مات ثم ضرب لا يحنث لان الضرب اسم لفعل مؤلم يتصل بالبدن والايلام لا يتحقق فی الميت[4]۔

کسی نے کہا اگر میں نے تجھے مارا تو میرا غلام آزاد ہے۔ یہ قسم زندگی کے اندر مارنے پر محمول ہوگی، اگر اسی کے مر جانے کے بعد مارا تو حانث نہ ہوگا، اس لیے کہ مارنا بدن سے متعلق الم رساں کام کا نام ہے اور الم رسانی میت کے حق میں متحقق نہیں۔ (ت)

[1]کافی شرح وافی [2]رمز الحقائق شرح کنز الدقائق باب الیمین فی الضرب والقتل الخ مکتبہ نوریہ رضویہ سکھر ۱ / ۲۲۰ [3]فتح القدیر باب الیمین فی الضرب والقتل و غیر ذلک مکتبہ نوریہ رضویہ سکھر ۴ / ۲۶۱ [4]مستخلص الحقائق باب الیمین فی الضرب والقتل و غیر ذلک فضل احمد تاجر کتب پشاور ۲ / ۳۸۸

Fatawa Razawiyya (Volume 9)

In the same Fath al-Qadir it is stated: “It is not established in the deceased because he has no sensation.” [1] | This is not applicable to the deceased because he has no feeling. (T)

In the same Mi’at Masail, quoting ‘Ayni Sharh Kanz, it is stated: “Hitting is the infliction of pain, and after death, this is inconceivable.” [2] | The meaning of hitting is to cause pain, and this is not conceivable after death. (T)

So it is absolutely proven that they are talking about the body itself, that it is such a deceased which has neither sensation nor perception, unlike the soul whose perception remains absolute. Imam Nasafi himself has stated in ‘Umdat al-Kalam: “The soul does not change by death.” [3] (The soul does not change with death. - T)

Argument 7: Then, when a doubt arose concerning this explanation that if there is no sensation and no pain, then how can there be punishment in the grave! These scholars replied that, God forbid, whoever is subjected to punishment in the grave is given a certain degree of life in the grave so that they become capable of feeling pain. In the same Mi'at Masail, following the aforementioned text from 'Ayni, it says:

“And whoever is punished in the grave, life is placed in him according to the correct opinion.” [4] | For whoever is punished in the grave, the correct view is that life is created within him. (T)

In the same, from Al-Kafi (Annotation): “According to the commonality [of scholars], life is placed in him to the extent that he feels pain.” | According to the majority, life is placed in him to this extent.

Annotation: Subtle point: In Mi’at Masail, this text from Al-Kafi is quoted in such a way that it might lead one to believe that, according to the majority of scholars, the return of life to the body in the grave is only in a slight manner, and receiving full life is the opinion of some and is less preferred, which the commonality... (Continued on next page)

---

1. Fath al-Qadir, Chapter on Oaths regarding Hitting, Killing etc., Maktaba Nooria Razawiyya, Sukkur, 4/460
2. Mi’at Masail, Issue 26, Maktaba Tawheed wa Sunnah, Qissa Khwani, Peshawar, p. 56
3. ‘Umdat al-Kalam by Imam Nasafi

4. Mi’at Masail, Issue 26, Maktaba Tawheed wa Sunnah, Qissa Khwani, Peshawar, p. 52

फ़तावा-ए-रज़विया (जिल्द 9)

उसी फ़तहुल क़दीर में है: “मृतक के हक़ में यह मुमकिन नहीं क्योंकि उसे अहसास (संवेदन) नहीं रहता।” [1] | मृतक के हक़ में यह साबित नहीं होता क्योंकि वह महसूस नहीं करता। (त)

उसी माइअत मसाइल में ऐनी शरह कन्ज़ से है: “मारने का मतलब दर्द पहुँचाना है, और मौत के बाद इसकी कल्पना नहीं की जा सकती।” [2] | ज़रब (मारने) का अर्थ तक़लीफ़ पहुँचाना है और मौत के बाद यह मुमकिन नहीं। (त)

तो यह निश्चित रूप से प्रमाणित है कि वे शरीर के बारे में ही बात कर रहे हैं कि वह ऐसा मृतक है जिसमें न तो संवेदना है और न ही बोध, आत्मा के विपरीत जिसका बोध निश्चित रूप से शेष रहता है। स्वयं इमाम नसफ़ी ने उमदतुल कलाम में फ़रमाया है: “आत्मा मौत से नहीं बदलती।” [3] (आत्मा मौत से नहीं बदलती। - त)

दलील 7: फिर जब इस तर्क पर यह संदेह हुआ कि जब संवेदना नहीं, पीड़ा नहीं, तो कब्र का अज़ाब (दंड) कैसा! तो इन विद्वानों ने यही उत्तर दिया कि, ईश्वर की शरण, जिस पर कब्र का अज़ाब होता है उसे कब्र में एक विशेष प्रकार का जीवन दिया जाता है जिससे वह पीड़ा महसूस करने के योग्य हो जाता है। उसी माइअत मसाइल में ऐनी के उपरोक्त उद्धरण के बाद है:

“और जिसे कब्र में दंड दिया जाता है, सही राय के अनुसार उसमें जीवन डाल दिया जाता है।” [4] | जिसे कब्र में अज़ाब दिया जाता है, सही कथन यह है कि उसमें जीवन पैदा कर दिया जाता है। (त)

उसी में 'काफ़ी' (नोट) से है: “विद्वानों के बहुमत के अनुसार उसमें इतना जीवन डाल दिया जाता है जिससे वह पीड़ा महसूस करे।” | बहुमत के नज़दीक उसमें इस क़दर ज़िंदगी रख दी जाती है।

नोट: लतीफ़ा: माइअत मसाइल में 'काफ़ी' के इस कथन को इस तरह उद्धृत किया गया है जिससे यह भ्रम हो सकता है कि बहुमत विद्वानों के नज़दीक कब्र में शरीर की ओर जीवन का लौटना केवल आंशिक रूप से होता है, और पूर्ण जीवन मिलना कुछ लोगों का कथन है और कमज़ोर है, जिसे आम जनता... (बाकी अगले पन्ने पर)

---

1. फ़तहुल क़दीर, ज़रब और क़त्ल आदि की क़समों का अध्याय, मकतबा नूरिया रज़विया, सुक्कुर, 4/460

2. माइअत मसाइल, मसला 26, मकतबा तौहीद व सुन्नत, क़िस्सा ख्वानी, पेशावर, पृ. 56

3. उमदतुल कलाम, इमाम नसफ़ी कृत

4. माइअत मसाइल, मसला 26, मकतबा तौहीद व सुन्नत, क़िस्सा ख्वानी, पेशावर, पृ. 52

पृष्ठ 884 का 948

فتاوی رضویہ (جلد نہم)

اسی فتح القدیر میں ہے: لا یتحقق في المیت لانه لا یحس - 1 | میت کے حق میں متحقق نہیں اس لیے کہ وہ احساس نہیں رکھتا۔ (ت)

اسی مائۃ مسائل میں عینی شرح کنز میں ہے: الضرب ایقاع الالم و بعد الموت لا یتصور - 2 | ضرب کا معنی تکلیف پہنچانا اور بعد موت یہ متصور نہیں۔ (ت)

تو قطعاً ثابت وہ بدن ہی میں کلام کر رہے ہیں کہ وہی ایسا میت ہے جسے نہ حس رہتا ہے نہ ادراک، بخلاف روح کہ اس کے ادراک قطعاً باقی ہے، خود یہی امام نسفی عمدۃ الکلام میں فرما چکے: الروح لا یتغیر بالموت - 3 (روح موت سے متغیر نہیں ہوتی۔ ت)

دلیل ۷: پھر جب اس تقریر پر شبہہ وارد ہوا کہ جب حس نہیں، تالم نہیں، تو عذاب قبر کیسا! تو ان حضرات نے یہی جواب دیا کہ معاذ اللہ جس پر عذاب قبر ہوتا ہے اسے قبر میں ایک گونہ حیات دی جاتی ہے جس سے الم پہنچنے کے قابل ہو جاتا ہے، اسی مائۃ مسائل میں عینی سے بعد عبارت مذکورہ ہے:

ومن یعذب في القبر یو ضع فیه الحیاة علی الصحیح - 4 | جسے قبر میں عذاب دیا جاتا ہے صحیح قول یہ ہے کہ اس میں زندگی پیدا کر دی جاتی ہے۔ (ت)

اسی میں کافی عہ سے ہے: عند العامة یوضع فیه الحیاة بقدر ما یتألم | جمہور کے نزدیک اس میں اس قدر زندگی رکھ دی جاتی ہے

عہ: لطیفہ: مائۃ مسائل میں یہ کافی کی عبارت اسی طرح نقل کی جس سے وہم ہو کہ جمہور علماء کے نزدیک قبر میں بدن کی طرف عود حیات صرف ایک خفیف طور پر ہوتا ہے، حیات کامل ملنا قول بعض و مرجوح ہے کہ اسے عامہ کی (باقی اگلے صفحہ پر)

---

1. فتح القدیر باب الیمین في الضرب والقتل وغیر ذلك مکتبہ نوریہ رضویہ سکھر ۴/۴۶۰
2. مائۃ مسائل مسئلہ ۲۶ مکتبہ توحید وسنہ قصہ خوانی پشاور ص ۵۶
3. عمدۃ الکلام لامام نسفی
4. مائۃ مسائل مسئلہ ۲۶ مکتبہ توحید وسنہ قصہ خوانی پشاور ص ۵۲

Fatawa Razawiyya - Volume 9

[Arabic]: Not absolute life, and it is said that life is placed in it in every respect.1 — [Urdu Translation]: That it may feel the sensation of pain; absolute life is not granted, and it is said that life is fully placed in it. (T)

In 'Mustakhlas', after the aforementioned passage, it is stated:

[Arabic]: And the punishment of the grave (occurs) by placing a new life in it, which is the view of the general scholars, contrary to Abu al-Hasan al-Salihi*, for according to him, the deceased is punished without life.2 — [Urdu Translation]: The punishment of the grave occurs by placing a new life in the body; this is the view of the general scholars, contrary to Abu al-Hasan al-Salihi, according to whom the deceased experiences the punishment of the grave without life. (T)

And certainly, this is the nature of the body that death occurs to it and nullifies its senses and perception. Then, God forbid, for the purpose of punishment, a different kind of life is given, and that too is not complete, contrary to the soul whose life is continuous. Imam Ibn al-Humam has stated this subject very clearly; after the aforementioned passage, he writes:

[Arabic]: Because it does not feel, and therefore the truth is that the deceased punished in their grave has life placed in them to the extent that they feel pain, even if the parts were scattered such that the parts are not distinct but rather mixed with soil, then they are punished. — [Urdu Translation]: Because it (the body) has no sensation. Therefore, the truth is that the dead person who is punished in the grave has so much life placed in them that they feel pain, to the extent that even if their parts were scattered like this...

(Continued from the previous page's footnote) ...attributed to him and quoted with the word 'it is said' (Qeel), whereas Faqih Kafi, while stating the restoration of life according to the majority and its evidence, quoted both those views regarding hidden life and complete life equally from them:

[Arabic]: Then they differed, so it was said that life is placed in it to the extent that it feels pain, not absolute life, and it was said that life is placed in it in every respect.3 — [Urdu Translation]: Then the scholars differed; some said life is placed in it to such an extent that it feels pain, not absolute life, and some said that life is fully placed in it. (T)

Similarly, Imam al-Ayni stated in 'Binaya Sharh Hidaya': 'Let it be noted'. 12th Note (M)

[Arabic]: A man from the Mu'tazilah to whom the Salihiyya sect is attributed. 12th Note (M) — [Urdu Translation]: He is a person from the Mu'tazilah to whom the Salihiyya sect is attributed. (T)

---

1. Mi'at Masa'il, Issue 26, Maktaba Tawheed wa Sunnah, Qissa Khwani, Peshawar, p. 52
2. Kafi Sharh Wafi
3. Mustakhlas al-Haqaiq, Chapter on Oaths regarding Hitting and Killing, Delhi Printing Works, Delhi India, 2/388

फतावा रजविया - जिल्द 9

[अरबी]: पूर्ण जीवन नहीं, और कहा गया है कि इसमें हर तरह से जीवन डाल दिया जाता है।1 — [उर्दू अनुवाद]: कि इसे दर्द का एहसास हो सके पूर्ण जीवन नहीं दिया जाता, और कहा गया है कि इसमें पूरी तरह से जीवन रख दिया जाता है। (त)

'मुस्तखलस' में उल्लिखित इबारत के बाद लिखा है:

[अरबी]: और कब्र का अज़ाब (सज़ा) उसमें एक नया जीवन डालने से होता है, और यही आम विद्वानों (उलेमा) का मत है, अबू अल-हसन अल-सालिही के विपरीत, क्योंकि उनके अनुसार मृतक को बिना जीवन के कब्र का अज़ाब होता है।2 — [उर्दू अनुवाद]: कब्र का अज़ाब शरीर में एक नया जीवन रखने से होता है, इसी पर आम उलेमा हैं, अबू अल-हसन सालिही के विपरीत, उनके अनुसार बिना जीवन के मैय्यत (मृतक) को कब्र का अज़ाब होता है। (त)

और निश्चित रूप से यह शरीर की ही विशेषता है कि उस पर मृत्यु आती है और उसके बोध और संवेदना को समाप्त कर देती है। फिर, ईश्वर न करे, दंड देने के लिए एक अलग प्रकार का जीवन दिया जाता है और वह भी पूर्ण नहीं होता, रूह (आत्मा) के विपरीत जिसका जीवन निरंतर है। इमाम इब्न अल-हुमाम ने इस विषय को बहुत स्पष्ट रूप से फरमाया है, उपरोक्त इबारत के बाद वे लिखते हैं:

[अरबी]: क्योंकि इसमें संवेदना नहीं होती, और इसीलिए सत्य यह है कि कब्र में दंडित होने वाले मृतक में इतना जीवन डाला जाता है कि वह दर्द महसूस कर सके यहाँ तक कि यदि उसके अंग इस प्रकार बिखर जाएँ कि अंग अलग-अलग न रहें बल्कि मिट्टी में मिल जाएँ तब भी उसे दंड दिया जाता है। — [उर्दू अनुवाद]: क्योंकि इसमें एहसास (संवेदना) नहीं। इसलिए सत्य यह है कि जिस मुर्दे को कब्र में अज़ाब दिया जाता है, उसके अंदर इतना जीवन रख दिया जाता है कि वह दर्द का एहसास करे, यहाँ तक कि अगर उसके अंग इस तरह बिखर गए...

(पिछले पृष्ठ के फुटनोट का शेष भाग) ...की ओर श्रेय देकर उसे 'क़ील' (कहा गया) शब्द के साथ उद्धृत किया, जबकि फ़क़ीह काफ़ी ने बहुमत के अनुसार जीवन की बहाली और उसके प्रमाण लिखकर उनसे वे दोनों विचार (गुप्त जीवन और पूर्ण जीवन) समान रूप से उद्धृत किए कि:

[अरबी]: फिर उनमें मतभेद हुआ, तो कहा गया कि इसमें उतना ही जीवन डाला जाता है जिससे उसे दर्द हो, न कि पूर्ण जीवन, और कहा गया कि इसमें हर तरह से जीवन डाल दिया जाता है।3 — [उर्दू अनुवाद]: फिर उलेमा में मतभेद हुआ, कुछ ने कहा इसमें इस कदर जीवन रख दिया जाता है कि उसे दर्द का एहसास हो, पूर्ण जीवन नहीं रखा जाता, और कुछ ने कहा कि इसमें पूरी तरह से जीवन रख दिया जाता है। (त)

इसी तरह अल्लामा ऐनी ने 'बिनाया शरह हिदाया' में फरमाया: 'इस पर ध्यान दिया जाए'। 12वाँ नोट (म)

[अरबी]: मुअतज़िला का एक व्यक्ति जिससे सालिहिया संप्रदाय संबंधित है। 12वाँ नोट (म) — [उर्दू अनुवाद]: यह मुअतज़िला में से एक व्यक्ति है जिससे सालिहिया संप्रदाय जुड़ा हुआ है। (त)

---

1. मिअत मसाइल, मसला 26, मकतबा तौहीद व सुन्नत, किस्सा ख्वानी, पेशावर, पृष्ठ 52
2. काफ़ी शरह वाफ़ी
3. मुस्तखलस अल-हकाइक, अध्याय: पीटने और मारने की कसम, दिल्ली प्रिंटिंग वर्क्स, दिल्ली भारत, 2/388

لا الحیاۃ المطلقۃ وقیل یوضع فیہ الحیاۃ من کل وجہ^1 - | کہ اسے الم کا احساس ہو، حیات مطلقہ نہیں رکھی جاتی، اور کہا گیا کہ اس میں پورے طور پر زندگی رکھ دی جاتی ہے۔(ت)

مستخلص میں بعد عبارت مسطورہ ہے: وعذاب القبر یوضع حیاۃ جدیدۃ فیہ وھو قول عامۃ العلماء خلافاً لابی الحسن الصالحی عہ فان عندہ یعذب المیت من غیر حیاۃ^2۔ | عذابِ قبر بدن میں ایک نئی زندگی رکھنے سے ہوتا ہے، اسی پر عامہ علما ہیں، بخلاف ابو الحسن صالحی کے، اس کے نزدیک بغیر زندگی کے میت کو عذابِ قبر ہوتا ہے۔ (ت)

اور بالیقین یہ شانِ بدن ہی کی ہے کہ اسے موت عارض ہوتی اور اس کا حس و ادراک باطل کرتی، پھر معاذ اللہ تعذیب کے لیے الگ گونہ حیات دی جاتی ہے اور وہ بھی کاملہ نہیں ہوتی، بخلاف روح کہ اس کی حیات مستمرہ ہے۔ امام ابن الہمام نے اس مضمون کو خوب صاف فرمایا، بعد عبارت مزبورہ لکھتے ہیں: لانہ لا یحس ولذا کان الحق ان المیت المعذب في قبرہ توضع فیہ الحیاۃ بقدر ما یحس بالآلم، حتی لو کان متفرق الاجزاء بحیث لا یتمیز الاجزاء بل ھی مختلطۃ بالتراب فعذب | اس لیے کہ اس میں احساس نہیں۔ اس لیے حق یہ ہے کہ جس مردے کو قبر میں عذاب دیا جاتا ہے اس کے اندر اتنی زندگی رکھ دی جاتی ہے کہ وہ الم کا احساس کرے، یہاں تک کہ اگر اس کے اجزاء اس طرح بکھر گئے

(بقیہ حاشیہ صفحہ گزشتہ) طرف نسبت کر کے اس بلفظ قیل نقل کیا حالانکہ فقیہ کافی میں جمہور کے نزدیک اعادہ حیات اور اس کی دلیل لکھ کر انھیں سے وہ دونوں قول حیات خفیہ و حیات کاملہ کے یکساں طور پر نقل کیے کہ : ثم اختلفوا فقیل توضع فیہ الحیاۃ بقدر مایتألم لا الحیاۃ المطلقۃ، وقیل

توضع فیه الحیاۃ من کل وجہ[3] اھ | پھر علماء مختلف ہوئے بعض نے کہا اس میں اس قدر زندگی رکھ دی جاتی ہے کہ اسے الم کا احساس ہو حیات مطلقہ نہیں رکھی جاتی، اور بعض نے کہا کہ اس میں پورے طور پر زندگی رکھ دی جاتی ہے اھ (ت)

اسی طرح علامہ عینی نے بنایہ شرح ہدایہ میں فرمایا فلیتنبہ ۱۲منہ (م) رجل من المعتزلہ الیہ تنسب الفرقۃ الصالحیۃ ۱۲منہ (م) | یہ معتزلہ میں سے ایک شخص ہے جس کی طرف فرقہ صالحیہ منسوب ہے۔ (ت)

---

1. مائۃ مسائل مسئلہ ۲۶ مکتبہ توحید و سنہ قصہ خوانی پشاور ص ۵۲
2. کافی شرح وافی
3. مستخلص الحقائق باب الیمین فی الضرب والقتل دہلی پرنٹنگ ورکس دہلی انڈیا ۲/ ۳۸۸

[Box 1] Arabic: Life was placed in those parts that the eye cannot perceive, and indeed Allah has power over that... and it has already been presented in full in the third introduction. Urdu: There was no distinction between them; rather, they got mixed with the soil. Then, when he was punished, life was put back into those very parts that are not visible. And undoubtedly, Allah is certainly capable of this, etc. This text has fully passed in the third introduction. (T)

Now open your eyes and see whom they were calling dead. For whom did they accept the restoration of life to the extent of feeling pain? Whose parts were dispersed? Whose parts became so minute that sight does not work? Yes, what is it whose parts mixed with the soil? Is it the pure soul? Far from it, this body is that dust. So it has become clear like the sun that the speech of the scholars is about this true dead. Regarding this, there is a denial of hearing and understanding. And to Allah belongs the sublime argument. (And for Allah alone is the high proof. T)

Argument 8: In the same books, they argued from the noble verse "And you cannot make those in the graves hear," and it is clear that "those in the graves" means nothing but the body. The author of Tafhim al-Masail himself, in this very discussion, unfortunately cited from Imam Ayni, the commentator of Kanz, in his Umdat al-Qari Sharh Sahih Bukhari:

[Box 2] Arabic: If you ask: After the two angels finish the questioning, what becomes of the dead? I say: If he was fortunate, his soul is in Paradise, and if he was wretched, then in Sijjin on a rock in the seventh earth. Urdu: That is, after the questioning of Munkar and Nakir, the soul of the blessed resides in Paradise and that of the wretched in Sijjin on a rock in the seventh earth.

So there is nothing in the grave but the body; this is why the verse denies hearing, and from this, these scholars deny hearing.

Argument 9: Furthermore, all these scholars brought evidence from the saying of Umm al-Mu'minin Siddiqah (may Allah be pleased with her). And if Allah, the Near, the Responder, wills, it will soon become clear that Umm al-Mu'minin only denies physical hearing and is a prover and establisher of spiritual perception.

Argument 10: In the same books, regarding the same dead person, they mentioned two types of issues: one restricted to life, the other including life and death. They say

if one took an oath that 'if I hit you or speak to you', or said to a woman 'if from you...'

[Footnotes] 1 Fath al-Qadir, Chapter on Oaths in Hitting and Killing, Maktaba Nooriyyah Rizviyyah Sukkur, 4/760. 2 Umdat al-Qari Sharh Sahih Bukhari, Chapter: The Dead Person Hears the Sound of Sandal Claps, Idarat al-Tiba'at al-Muniriyyah Beirut, 7/18.

[बॉक्स 1] अरबी: उन हिस्सों में जीवन रखा गया जिन्हें आँख नहीं देख सकती, और वास्तव में अल्लाह उस पर शक्तिशाली है... और यह तीसरी प्रस्तावना में पूरी तरह से प्रस्तुत किया जा चुका है। उर्दू: उनमें आपस में कोई भेद नहीं रहा बल्कि वे मिट्टी में मिल गए। फिर जब उसे दंड दिया गया, तो उन्हीं हिस्सों में जीवन डाल दिया गया जो दिखाई नहीं देते। और निःसंदेह अल्लाह इस पर अवश्य सक्षम है इत्यादि। यह इबारत तीसरी प्रस्तावना में पूरी बीत चुकी है। (त)

अब ज़रा आँखें खोलकर देखिए कि वे किसे मृत कह रहे थे। किसके लिए दर्द महसूस करने की सीमा तक जीवन की वापसी को माना? किसके हिस्से बिखर गए? किसके हिस्से इतने सूक्ष्म हो गए कि नज़र काम नहीं करती? हाँ, वह क्या है जिसके हिस्से मिट्टी में मिल गए? क्या वह पवित्र आत्मा है? कदापि नहीं, यही शरीर तो वह मिट्टी है। तो सूर्य की तरह स्पष्ट हो गया कि विद्वानों का कथन इस वास्तविक मृत के बारे में है। इसी के संबंध में सुनने और समझाने का खंडन है। और अल्लाह ही के लिए सर्वोच्च तर्क है। (और अल्लाह ही के लिए बुलंद हुज्जत है। त)

दलील ८: उन्हीं किताबों में पवित्र आयत "और आप उन्हें नहीं सुना सकते जो कब्रों में हैं" से तर्क दिया गया और यह स्पष्ट है कि कब्रों में शरीर के अलावा और कुछ नहीं है। खुद तफ़हीम अल-मसायल के लेखक ने इसी बहस में दुर्भाग्य से स्वयं उन्हें इमाम ऐनी, कंज़ के व्याख्याता, की उम्दतुल क़ारी शरह सहीह बुखारी से उद्धृत किया:

[बॉक्स 2] अरबी: यदि आप पूछें: दोनों फरिश्तों के सवाल पूछने के बाद, मृत का क्या होता है? मैं कहता हूँ: यदि वह सौभाग्यशाली था, तो उसकी आत्मा स्वर्ग में है, और यदि वह दुखी था, तो सातवीं पृथ्वी की एक चट्टान पर सिज्जीन में। उर्दू: यानी नकीरैन के सवाल के बाद सौभाग्यशाली की आत्मा स्वर्ग में रहती है और अभागे की सातवीं पृथ्वी की एक चट्टान पर सिज्जीन में।

तो कब्र में शरीर के सिवा कुछ नहीं, इसीलिए आयत सुनने का निषेध करती है, और इसी से ये विद्वान सुनने का निषेध करते हैं।

दलील ९: इसके अलावा, ये सभी विद्वान उम्मुल मोमिनीन सिद्दीका (रज़ियल्लाहु अन्हा) के कथन से दलील लाए। और इंशाअल्लाह अल-करीब अल-मुजीब जल्द ही स्पष्ट हो जाएगा कि उम्मुल मोमिनीन केवल शारीरिक सुनने का खंडन करती हैं और आध्यात्मिक बोध की समर्थक और प्रस्तावक हैं।

दलील १०: उन्हीं किताबों में उसी मृत के बारे में दो प्रकार के मसले बताए गए हैं: एक जीवन तक सीमित, दूसरा जीवन और मृत्यु दोनों को शामिल करने वाला। वे कहते हैं कि अगर कसम खाई कि 'अगर तुझे मारूँ या तुझसे बोलूँ, या औरत से कहा 'अगर तुझसे...'

[पाद टिप्पणियाँ] १ फतह अल-क़दीर, बाबुल यमीन फिल ज़रब वल क़त्ल, मकतबा नूरिय्या रज़विया सुक्कुर, ४/७६०। २ उम्दतुल क़ारी शरह सहीह बुखारी, बाबुल मय्यित यस्माउ खफ़क़न नाल, इदारातुल तिबाअतुल मुनीरिया बेरुत, ७/१८।

[پہلا خانہ] عربی: جعلت الحیاہ في تلك الاجزاء التي لا یاخذھا البصر وان اللہ علی ذلك لقدیر الخ وقد تقدم تماما فی المقدمة الثالثة - اردو: باہم امتیاز نہ رہا بلکہ مٹی سے خلط ملط ہو گئے پھر اسے عذاب دیا گیا تو ان ہی اجزاء میں زندگی رکھ دی جاتی ہے جو نظر نہیں آتے، اور بلا شبہ اللہ تعالٰی اس پر ضرور قادر ہے الخ یہ عبارت مقدمہ سوم میں مکمل گزری۔ (ت)

اب ذرا آنکھ کھول کر دیکھئے وہ کسے میت کہہ رہے تھے۔ کس کی طرف اعادہ حیات بقدر احساس الم مانا، کس کے اجزاء متفرق ہو گئے۔ کس کے اجزاء اتنے باریک ہوئے کہ نظر کام نہیں کرتی۔ ہاں وہ کیا ہے جس کے اجزاء مٹی میں مل گئے۔ کیا وہ روح پاک ہے۔ حاشا یہی بدن تو وہ خاک ہے۔ تو آفتاب کی طرح روشن ہو گیا کہ اس مردہ حقیقی میں علماء کا کلام ہے۔ اسی کی نسبت انکار سماع و افہام ہے۔ وللہ الحجة السامیة (اور اللہ ہی کے لئے بلند حجت ہے۔ ت)

دلیل ۸: انہیں کتب میں کریمہ وما انت بمسمع من فی القبور سے استدلال کیا اور پر ظاہر کہ من فی القبر نہیں مگر بدن، خود صاحب تفہیم المسائل نے اسی بحث میں براہِ بد قسمتی خود انہیں امام عینی شارح کنز کی عمدة القاری شرح صحیح بخاری سے نقل کیا:

[دوسرا خانہ] عربی: فان قلت بعد فراغ الملکین من السوال ما یکون المیت قلت ان کان سعیدا کان روحه فی الجنة وان کان شقیا ففی سجین علی صخرة في الارض السابعة ۲ - اردو: یعنی بعد سوال نکیرین سعید کی روح جنت میں رہتی ہے اور شقی کی سجین میں ساتویں زمین کی ایک چٹان پر۔

تو قبر میں نہیں مگر بدن، اسی سے آیت نفی اسماع فرماتی ہے، اور اسی سے یہ علماء نفی سماع۔

دلیل ۹: نیز یہ سب علماء قول ام المومنین صدیقہ رضی اللہ تعالیٰ عنہا سے دلیل لائے۔ اور ان شاء اللہ القریب المجیب عنقریب روشن ہوتا ہے کہ ام المومنین صرف سماع جسمانی کی منکر ہیں اور ادراک روحانی کی مثبت و مقرر۔

دلیل ۱۰: انھیں کتب میں اسی میت میں مسائل دو قسم کے ذکر فرمائے: ایک متقید بحیات، دوسرے شامل حیات و ممات۔ فرماتے ہیں اگر قسم کھائی کہ اگر تجھے ماروں یا تجھ سے بولوں، یا عورت سے کہا اگر تجھ سے

[حواشی] ۱ فتح القدیر باب الیمین فی الضرب والقتل مکتبہ نوریہ رضویہ سکھر ۴/۷۶۰ ۲ عمدۃ القاری شرح صحیح بخاری باب المیت یسمع خفق النعال ادارۃ الطباعۃ المنیریۃ بیروت ۱۸/۷۷

Fatawa Rizwia Volume 9

[If I say] I will have intercourse with you or kiss you, these oaths to that male or female addressee will be restricted to their lifetime. But if an oath is taken that ‘if I wash you, or carry you, or seat you’, then it will include both life and death. To the extent that if that person dies and one gives them the funeral bath, carries their bier, touches them, or dresses them in a shroud, then the oath will be broken. In ‘Al-Kafi’, a few lines after the cited hundred issues, the text is as follows:

Arabic Original	**Urdu Translation**
Contrary to 'if I wash you, or carry you, or touch you, or dress you', for these are not restricted to the state of life because washing is intended for cleaning and purification, and that is realized in the deceased. Don't you see that washing the dead is obligatory for purification, so how can it contradict it? If the funeral prayer is performed over the dead before washing, it is not permissible, and if it was washed, it is permissible. Carrying is realized after death; the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) said: 'Whoever carries a dead body should perform ablution.' Touching is for honor and compassion, so it is realized after death. Dressing is for honor, and the deceased is the place for it.	On the contrary, if he said: If I washed you, or lifted you, or touched you, or dressed you, then these oaths will not be restricted to the state of life, because the purpose of washing is to make clean and pure, and it is established in the case of the deceased as well. See that it is obligatory to bathe the deceased to purify it, so how will that oath be contrary to it? And if the funeral prayer was offered for the deceased before washing, it is not permissible, and it is permissible after washing. And the one who prayed while carrying such a dead body which was not washed, it is not permissible, and if it was washed, it is permissible. And lifting after death is also realized. The Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) said: "Whoever lifts a dead body should perform ablution." Touching is for respect or affection, so it will also be realized after death. Dressing is for respect and the deceased is the subject of it. (T)

See, it is the same 'Kaaf' [suffix for 'you'], the same address. If the body was not intended by this, then it would be necessary in these oaths that he should never break the oath, for the issues of the second type of oath would be absolutely the same as those which relate purely to the body. When the body is not intended, then why would washing, lifting, touching, and dressing it lead to breaking the oath? And

why only this type? In the first type, are beating, intercourse, and kissing related to anything other than the body? To interpret 'body' as the meaning in all the issues mentioned in a single sequence and then to separate only one from it is quite far-fetched. The 'Kaaf' of address which is intended in all of them is the same as in 'Kulliyatuka' [your whole being], so inevitably, certainly, and definitely, all these addresses, idioms, and custom of oaths relate to the body itself. And the distinction is that great and beautiful one which...

---

1. Al-Kafi Sharh al-Wafi Page 887 of 948

[अगर मैं कहूँ कि] सोहबत करूँ या तेरा बोसा लूँ, तो ये क़समें उस मुखातब मर्द ओ ज़न को ज़िंदगी पर मुक़्सर (सीमित) रहेंगी। और अगर क़सम खाई कि अगर तुझे नहलाऊँ या उठाऊँ या बिठाऊँ तो मौत ओ हयात दोनों को शामिल होंगी। यहाँ तक कि अगर वो शख़्स मर गया और उसने उसे गुस्ल-ए-मय्यत दिया, उसका जनाज़ा उठाया, उसे हाथ लगाया, कफ़न पहनाया तो हानिस (क़सम तोड़ने वाला) होगा, 'काफ़ी' में इबारत मन्कूला माइया मसायल के चंद सुतूर बाद है :

अरबी इबारत

इसके बर-ख़िलाफ़ अगर कहा: अगर मैंने तुझे नहलाया, या उठाया, या मस किया (छुआ), या पहनाया, तो ये क़समें हालत-ए-हयात (ज़िंदा रहने) तक महदूद नहीं रहेंगी, इसलिए कि नहलाने से पाक-साफ़ करना मक़सूद होता है और वो मय्यत के हक़ में भी साबित है। देखो कि मय्यत को पाक करने के लिए उसे गुस्ल देना वाजिब है तो वो क़सम उसके मुनाफ़ी (विपरीत) कैसे होगी? और अगर गुस्ल से पहले मय्यत का जनाज़ा पढ़ लिया तो जाइज़ नहीं और बाद-ए-गुस्ल जाइज़ है। और जिसने ऐसे मुरदे को लिये हुए नमाज़ पढ़ी जिसे गुस्ल न दिया गया था तो जाइज़ नहीं और अगर गुस्ल दिया हुआ था तो जाइज़ है। और उठाना बाद-ए-मौत भी मुतहक़्क़क़ (सिद्ध) है। हुज़ूर सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम का इरशाद है: "जिसने किसी मय्यत को उठाया तो चाहिये कि वज़ू करे।" मस करना ताज़ीम या शफ़क़त के लिए होता है तो वो बाद-ए-मौत भी मुतहक़्क़क़ होगा। पहनाना ताज़ीम के लिए होता है और मय्यत इसी का महल है।

उर्दू अनुवाद

इसके बर-ख़िलाफ़ अगर कहा: अगर मैंने तुझे नहलाया, या उठाया, या मस किया, या पहनाया, तो ये क़समें हालत हयात से मुक़य्यद (सीमित) न रहेंगी, इस लिए कि नहलाने से पाक साफ़ करना मक़सूद होता है और वो मय्यत के हक़ में भी साबित है। देखो कि मय्यत को पाक करने के लिए उसे गुस्ल देना वाजिब है तो वो क़सम उसके मुनाफ़ी कैसे होगी? और अगर गुस्ल से पहले मय्यत का जनाज़ा पढ़ लिया तो जाइज़ नहीं और बाद गुस्ल जाइज़ है। और जिस ने ऐसे मुरदे को लिए हुए नमाज़ पढ़ी जिसे गुस्ल न दिया गया था तो जाइज़ नहीं और अगर गुस्ल दिया हुआ था तो जाइज़ है। और उठाना बाद मौत भी मुतहक़्क़क़ है। हुज़ूर सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम का इरशाद है: "जिसने किसी मय्यत को उठाया तो चाहिये कि वज़ू करे।" मस करना ताज़ीम या शफ़क़त के लिये होता है तो वो बाद मौत भी मुतहक़्क़क़ होगा। पहनाना ताज़ीम के लिये होता है और मय्यत इसी का महल है। (त)

देखिये वही 'काफ' है वही ख़िताब है। और अगर इससे बदन मुराद न होता तो इन हल्फ़ों (क़समों) में वाजिब था कि कभी हानिस न हो कि मसायल-ए-क़सम-ए-सानी मुतलक़न वही होंगे जिन्हें महज़ बदन से तअल्लुक़ है। जब बदन मक़सूद नहीं तो इसे नहलाना, उठाना, छूना, पहनाना क्यों मोजिब-ए-हनस (क़सम टूटना) होने लगा, और एक इसी क़सम पर क्या है क़सम-ए-अव्वल में ज़र्ब ओ जमाअ ओ बोसा क्या ग़ैर-बदन से मुतअल्लिक़ हैं? नस्क़-ए-वाहिद के ज़िक्र किए हुए तमाम मसायल में बदन मुराद लेना और सिर्फ एक को इससे अलग कर देना किस क़दर दूर अज़ कार (बेतुका) है। 'काफ़-ए-ख़िताब' से जो इन सब में मुराद है वो ही 'कुल्लियतिका' (तुम्हारी समग्रता) में, तो लाजरम यक़ीनन क़तअन ये सब ख़िताब मुहावरा उर्फ़ हल्फ़ सब मुतअल्लिक़ बदन ही हैं और फ़ारूक़ वही जलील ओ जमील जो...

---

1. काफ़ी शरह वाफ़ी पृष्ठ 887/948

صحبت کروں یا تیرا بوسہ لوں، تو یہ قسمیں اس مخاطب مرد وزن کو زندگی پر مقصر رہیں گی۔ اور اگر قسم کھائی کہ اگر تجھے نہلاؤں یا اٹھاؤں یا بٹھاؤں تو موت وحیات دونوں کو شامل ہوں گی۔ یہاں تک کہ اگر وہ شخص مر گیا اور اس نے اسے غسل میت دیا اس کا جنازہ اٹھایا، اسے ہاتھ لگایا، کفن پہنایا تو حانث ہوگا، کافی میں عبارت منقولہ مائیہ مسائل کے چند سطور بعد ہے :

عربی متن

بخلاف ان غسلتك اوحملتك اومسستك او البستك فانها لا تنقيد بالحياة لان الغسل يرادبه التنظيف وتطهير وذايتحقق في الميت الاترى انه يجب غسل الميت تطهيرا لہ فكيف ينا فيه ولوصلى على الميت قبل الغسل لم يجز ولوكان غسيلا جاز والحمل يتحقق بعد الموت قال صلى الله تعالىٰ عليہ وسلم من حمل ميتا فليتوضأ والمس للتعظيم وللشفقة فيتحقق بعد الموت والالباس للتعظيم والبيت محل لہا۔

اردو ترجمہ

اس کے بر خلاف اگر کہا: اگر میں نے تجھے نہلایا، یا اٹھایا، یا مس کیا، یا پہنایا، تو یہ قسمیں حالت حیات سے مقید نہ رہیں گی، اس لیے کہ نہلانے سے پاک صاف کرنا مقصود ہوتا ہے اور وہ میت کے حق میں بھی ثابت ہے۔ دیکھو کہ میت کو پاک کرنے کے لیے اسے غسل دینا واجب ہے تو وہ قسم اس کے منافی کیسے ہوگی؟_ اور اگر غسل سے پہلے میت کا جنازہ پڑھ لیا تو جائز نہیں اور بعد غسل جائز ہے۔ اور جس نے ایسے مردے کو لیے ہوئے نماز پڑھی جسے غسل نہ دیا گیا تھا تو جائز نہیں اور اگر غسل دیا ہوا تھا تو جائز ہے۔ اور اٹھانا بعد موت بھی متحقق ہے۔ حضور صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کا ارشاد ہے: "جس نے کسی میت کو اٹھایا تو چاہئے کہ وضو کرے۔" مس کرنا تعظیم یا شفقت کے لئے ہوتا ہے تو وہ بعد

عربی متن **اردو ترجمہ**

موت بھی متحقق ہوگا۔ پہنانا تعظیم کے لئے ہوتا ہے اور میت

اسی کا محل ہے۔ (ت)

دیکھئے وہی کاف ہے وہی خطاب ہے۔ اور اگر اس سے بدن مراد نہ ہوتا تو ان حلفوں میں واجب تھا کہ کبھی حانث نہ ہو کہ مسائل قسم ثانی مطلقاً وہی ہوں گے جنھیں محض بدن سے تعلق ہے۔ جب بدن مقصود نہیں تو اسے نہلانا، اٹھانا، چھونا، پہنانا کیوں موجب حنث ہونے لگا، اور ایک اسی قسم پر کیا ہے قسم اول میں ضرب و جماع و بوسہ کیا غیر بدن سے متعلق ہیں۔ نسق واحد کے ذکر کیے ہوئے تمام مسائل میں بدن مراد لینا اور صرف ایک کو اس سے الگ کردینا کس قدر دور از کار ہے کاف خطاب سے جوان سب میں مراد ہے وہ ہی کُلّیتک میں، تو لاجرم یقینا قطعاً یہ سب خطاب محاورہ عرف حلف سب متعلق بدن ہی ہیں اور فاروق وہی جلیل و جمیل جو

---

1 کافی شرح وافی صفحہ 887 از 948

Fatawa Razawiya Volume 9

By the grace of Allah, we mentioned that pain is required in a strike, understanding in speech, pleasure in a kiss, and fulfillment of desire in intercourse. These matters are intended for the body's attributes which are obtained through the soul's following. Therefore, after death, an empty body is not sufficient for them. Unlike washing, carrying, touching, and clothing, which only require the body's original attributes, in these, life and death are the same.

Evidence 11: To interpret the speech of these noble Imams and eminent scholars as referring to the souls of the deceased is clearly false and is an interpretation of their words in a way that the speakers would not approve. Their exalted words distance themselves from this in a thousand ways. Listen to the testimonies:

Testimony 1: The saying of the great Imam Abu al-Barakat al-Nasafi (may his secret be sanctified) from the same "Kafi Sharh al-Wafi" has just passed: "Souls do not die."

Testimony 2: It was stated in a book of beliefs (Aqaid) itself that no change occurs in the soul due to death. Would they say about the same soul that it died, that it no longer possesses understanding and perception? Did all this happen and no change occurred? Oh, what ignorance!

Testimony 3: The same Imam Ibn al-Humam, and not just him but all eminent scholars, accept saluting the dead, addressing them, and speaking to them during the visitation of graves, and they consider it a Sunnah. It is stated in Fath al-Qadir:

Arabic Text

It is disliked to sleep near the grave or to relieve oneself there; rather, it is even more disliked. Any action not established by the Sunnah is prohibited, and what is established by the Sunnah is only visiting them and supplicating while standing, as the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) used to do when going out to al-Baqi', saying: "Peace be upon you, O abode of a believing people. We, if Allah wills, shall join you. I

Urdu Translation

Sleeping near the grave is disliked, and relieving oneself is even more disliked. And any deed that is not known from the Sunnah; and what is known from the Sunnah is precisely this visitation and standing there to pray as the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) used to do during his visits to Baqi' and say: "Peace be upon you, O people of faith! And we will certainly meet you if Allah wills. I ask for well-being for myself and for you." (T)

Arabic Text	Urdu Translation

ask Allah for well-being for myself and for you."

In the eleventh chapter, it was mentioned that this salutation and speech are surely evidence of hearing and understanding. Otherwise, would these great scholars, God forbid, not have enough discernment to know what greeting and speaking to bricks and stones means?

Testimony 4: Likewise, whoever performs the visitation of the two noble Shaikhs (Abu Bakr and Umar, may Allah be pleased with them) is by consensus taught salutation and speech besides greeting them. Along with this, it was also taught to move from the sacred presence of the radiant Prophet, the master of the worlds (peace and blessings of Allah be upon him), just enough to be in front of Siddiq (may Allah be pleased with him) and address him in this manner. Then from his front...

1. Fath al-Qadir, Chapter on Burial, Maktabah Nuriyyah Razawiyyah, Sukkur, 2/102.

फ़तावा रज़विया जिल्द नहुम (9)

अल्लाह ताला की तौफ़ीक़ से हमने ज़िक्र किया कि चोट में दर्द, बातचीत में समझ, चुंबन में आनंद और संभोग में काम-इच्छा की पूर्ति आवश्यक है। और ये बातें शरीर के उन गुणों के लिए अभिप्रेत हैं जो आत्मा के अनुसरण के कारण प्राप्त होते हैं। इसलिए मृत्यु के बाद, एक खाली शरीर उनके लिए पर्याप्त नहीं है। इसके विपरीत स्नान, ले जाना, स्पर्श करना और कपड़े पहनाना, जो केवल शरीर के मूल गुणों की मांग करते हैं, उनमें जीवन और मृत्यु एक समान हैं।

प्रमाण ११: इन सम्मानित इमामों और प्रसिद्ध विद्वानों की बातों को मृतकों की आत्माओं पर थोपना पूरी तरह से गलत है और उनकी बातों का ऐसा अर्थ निकालना है जिससे वे स्वयं सहमत नहीं होंगे। उनके उच्च शब्द हज़ारों भाषाओं में इससे इनकार करते हैं। साक्ष्य सुनें:

साक्ष्य १: महान इमाम अबू अल-बरकात नसफ़ी (अल्लाह उनके रहस्य को पवित्र करे) का कथन इसी 'काफी शरह वाफ़ी' से अभी गुज़रा कि आत्माएं नहीं मरतीं।

साक्ष्य २: स्वयं अक़ीदे (विश्वास) की किताब में कहा गया है कि मृत्यु से आत्मा में कोई परिवर्तन नहीं आता। क्या वे उसी आत्मा के बारे में कहेंगे कि वह मर गई, कि उसमें समझ और बोध नहीं रहा? क्या यह सब हुआ और कोई परिवर्तन नहीं आया? हाय, अज्ञानता!

साक्ष्य ३: यही इमाम इब्न अल-हुमाम, और न केवल वे बल्कि सभी प्रसिद्ध विद्वान कब्रों की ज़ियारत (दर्शन) के समय मृतकों को सलाम करना, उन्हें संबोधित करना और उनसे बात करना स्वीकार करते हैं और इसे सुन्नत बताते हैं। 'फ़तह अल-क़दीर' में है:

अरबी पाठ	**उर्दू अनुवाद**
कब्र के पास सोना नापसंद (मक़रूह) है और शौच करना तो और भी अधिक नापसंद है। और वह हर काम जो सुन्नत से प्रमाणित नहीं है, वह वर्जित है; और सुन्नत से प्रमाणित केवल ज़ियारत करना और वहां खड़े होकर दुआ करना है, जैसा कि अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) बक़ी' (कब्रिस्तान) जाते समय करते थे और कहते थे:	कब्र के पास सोना मक़रूह है और शौच करना तो और भी अधिक मक़रूह है। और हर वह काम जो सुन्नत से प्रमाणित न हो; और सुन्नत से प्रमाणित यही ज़ियारत और वहां खड़े होकर दुआ करना है जैसा अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) बक़ी' तशरीफ़ ले जाने के दौरान किया करते थे और कहते थे:

अरबी पाठ	उर्दू अनुवाद
'तुम पर सलाम हो, ऐ ईमान वालों के घर। और हम निश्चित रूप से तुमसे मिलने वाले हैं यदि अल्लाह ने चाहा। मैं अपने और तुम्हारे लिए भलाई मांगता हूँ।'	'तुम पर सलाम हो ऐ ईमान वाले लोगो! और हम बेशक तुमसे मिलने वाले हैं अगर अल्लाह ने चाहा। मैं अपने लिए और तुम्हारे लिए सलामती मांगता हूँ।' (त)

ग्यारहवें अध्याय में बताया गया कि ये सलाम और बातचीत निश्चित रूप से सुनने और समझने का प्रमाण हैं। क्या इन महान विद्वानों में, अल्लाह न करे, इतनी भी समझ नहीं थी कि ईंटों और पत्थरों को सलाम करने और उनसे बात करने का क्या मतलब है?

साक्ष्य ४: इसी तरह जिसने भी दोनों महान शेखों (अबू बक्र और उमर, रज़ियल्लाहु अन्हुमा) की ज़ियारत की, उसे सर्वसम्मति से सलाम और बातचीत के अलावा भी सिखाया गया। साथ ही यह भी बताया गया कि नबी-ए-करीम (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) की पवित्र उपस्थिति से इतना हटें कि सिद्दीक़ (रज़ियल्लाहु अन्हु) के सामने आ जाएं और फिर उनसे इस तरह निवेदन करें। फिर उनके सामने से...

१ फ़तह अल-क़दीर, दफ़्न का अध्याय, मकतबा नूरिय्या रज़विय्या सक्कर २/१०२। पृष्ठ ८८८ का ९४८

بتوفیق اللہ تعالی ہم نے ذکر کیا کہ ضرب میں درد، کلام میں فہم، بوسے میں لذت، جماع میں قضائے شہوت درکار ہے۔ اور یہ امور بدن کے ان صفات پر مقصود کہ بہ تبعیت روح اسے حاصل ہوتے ہیں لہٰذا بعد موت جسم خالی انھیں کافی نہیں۔ بخلاف غسل و حمل و مس و لباس کہ صرف صفات اصلیہ بدن کے طالب ہیں تو ان میں حیات و موت یکساں۔ دلیل ۱۱: ان ائمہ کرام و علمائے اعلام کا یہ کلام ارواح موتی پر حمل کرنا صراحۃً باطل و توجیہ القول بما لایرضیٰ بہ القائل ہے ان کے کلمات عالیات بہزار زبان اس سے تحاشی فرما رہے ہیں شواہد سنئے : شاہد ۱: امام اجل ابو البرکات نسفی قدس سرہ کا ارشاد اسی کافی شرح وافی سے ابھی گزرا کہ روحیں نہیں مرتیں۔ شاہد ۲: خود عقائد کی کتاب میں ارشاد فرمایا کہ روح میں مرگ سے کچھ تغیر نہیں آتا کیا وہ اسی روح کو کہیں گے کہ مر گئی، فہم و ادراک کے قائل نہ رہی، یہ کچھ ہوا اور تغیر نہ آیا، وائے جہالت ! شاہد ۳: یہی امام ابن الہمام اور ایک یہی کیا تمام علمائے اعلام زیارت قبور میں اموات پر سلام اور ان سے خطاب و کلام تسلیم فرماتے ہیں اور اسے سنت بتاتے ہیں، فتح القدیر میں ہے:

عربی متن	اردو ترجمہ
یکرہ النوم عند القبر وقضاء الحاجۃ بل اولیٰ وکل مالم یعھد من السنۃ والمعھود منھا لیس الا زیارتھا والدعاء عندھا قائما کما کان یفعل رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم فی الخروج الی البقیع ویقول	قبر کے پاس سونا مکروہ ہے اور قضائے حاجت بھی بلکہ بدرجہ اولیٰ مکروہ ہے۔ اور ہر وہ کام جو سنت سے معہود نہ ہو، اور سنت سے معہود یہی زیارت اور وہاں کھڑے ہو کر دعا ہے جیسا رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم بقیع تشریف ارزانی میں کیا کرتے تھے اور کہتے تم پر سلام ہو اے اہل ایمان لوگو! اور ہم بلاشبہ تم سے

عربی متن	اردو ترجمہ
السلام علیکم دار قوم مومنین وانا ان شاء اللہ بکم لا حقون اسئل اللہ لی ولکم العافیۃ۔	ملنے والے ہیں اگر اللہ نے چاہا۔ میں اپنے لیے اور تمہارے لئے عافیت مانگتا ہوں۔ (ت)

فصل یازدہم میں گزرا کہ یہ سلام و کلام ضرور دلیل سماع وافہام ہیں، مگر یہ اکابر اعلام معاذ اللہ اتنی تمیز نہ رکھتے تھے کہ اینٹوں پتھروں سے سلام و کلام کیا معنی؟ شاہد ۴: یوں ہی جس نے زیارت حضرات شیخین کریمین رضی اللہ تعالیٰ عنہما کی بالاتفاق ان سے علاوہ سلام و کلام بھی تعلیم کیا اور ساتھ ہی یہ بھی بتایا کہ موجبہ اقدس حضور پر نور سید عالم صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم سے اتنا ہٹ کہ صدیق (رضی اللہ تعالیٰ عنہ) کے مواجہہ میں آجائے اس وقت ان سے یوں عرض کرے۔ پھر ان کے مواجہہ سے

۱ فتح القدیر فصل فی الدفن مکتبہ نوریہ رضویہ سکھر ۲/ ۱۰۲ Page 888 of 948

Fatawa Ridawiyya, Volume 9

The point is that one should come in front of Farooq (may Allah be pleased with him) and address him like this. If, God forbid, this salutation and speech were metaphorical, like saying "O morning breeze, all this is your doing" (O morning breeze! You have blown all this. T), then what was the need to move from one grave-front to another? The stubborn and unjust will not speak of justice, but a rational, fair person certainly understands from these teachings that this salutation and speech are definitely real, and the purpose of coming in front is to be present. It is in the same 'Fath al-Qadeer':

Arabic Text	Urdu Translation
Then move to the right about an arm's length and offer greetings to Abu Bakr (may Allah be pleased with him), because his blessed head is opposite the noble shoulder of the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him). Then say: Peace be upon you, O successor of the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) and his second in the cave, Abu Bakr al-Siddiq! May Allah reward you well on behalf of the Ummah of Muhammad (peace and blessings of Allah be upon him).	Then move back about an arm's length to the right and present salutations to Hazrat Abu Bakr Siddiq (may Allah be pleased with him), because his blessed head is aligned with the noble shoulder of the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him). So say: Peace be upon you, O Successor of the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) and his second in the cave, Abu Bakr Siddiq! May God grant you a good reward on behalf of the Ummah of Muhammad (peace and blessings of Allah be upon him).
Then move further to the right about an arm's length and offer greetings to Umar (may Allah be pleased with him), because his head's position relative to Siddiq is like Siddiq's head's position relative to the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him). Then say: Peace be upon you, O Leader of the Faithful, Umar al-Farooq, through whom Allah strengthened Islam. May Allah reward you with a good reward on	Then move back an arm's length in the same manner and present salutations to Hazrat Umar (may Allah be pleased with him), because his blessed head is positioned relative to Hazrat Siddiq just as Hazrat Abu Bakr Siddiq's blessed head is relative to the Holy Prophet (peace and blessings of Allah be upon him). So say: Peace be upon you, O Leader of the Faithful, Umar al-Farooq, he through whom Allah granted honor and strength to

Arabic Text	Urdu Translation
behalf of the Ummah of Muhammad (peace and blessings of Allah be upon him).	Islam; may Allah grant you a good reward on behalf of the Ummah of Muhammad (peace and blessings of Allah be upon him). (T)

Witness 5: Go and tell them, let them hear that heart-piercing, guidance-based statement of Imam Ibn al-Hammam against whims and atheism, so that a deathly silence falls over the entire denier religion. Let the stone of "stones of baked clay" (hijaratun min sijjil) fall upon those who consider the dead to be like stones. In the same 'Fath al-Qadeer', at the end of the Book of Hajj, he says:

Arabic Text	Urdu Translation
One comes to the noble grave and faces its wall.	Meaning towards the luminous shrine of the pure Master (peace be upon him).

---

1 Fath al-Qadeer, Book of Hajj, Maktaba Nooria Razavia Sukkur, 3/95. Page 889 of 948

फ़तावा रज़विया, जिल्द 9

इतना है कि फारूक (रज़ियल्लाहु अन्हु) के मुवाजेह (सामने) में आ जाए और उस समय उनसे इस तरह निवेदन करे। अगर खुदा न खास्ता यह सलाम और कलाम सांकेतिक होता, जैसे 'ऐ बाद-ए-सबा! यह सब तेरी ही लाई हुई चीज़ है' (ऐ सुबह की हवा! यह सब तूने ही उड़ाया है। त), तो फिर एक मुवाजेह से दूसरे मुवाजेह में जाने की क्या ज़रूरत थी! हठधर्म और बेइंसाफ़ तो इंसाफ़ की बात नहीं करेंगे, लेकिन एक बुद्धिमान और निष्पक्ष व्यक्ति इन शिक्षाओं से निश्चित रूप से यही समझता है कि यह सलाम और कलाम वास्तव में असली है और मुवाजेह के सामने आना ही मुख्य उद्देश्य है, जैसा कि 'फ़तह अल-क़दीर' में लिखा है:

अरबी पाठ

फिर अपने दाहिने हाथ के बराबर हटकर हज़रत अबूबक्र (रज़ियल्लाहु अन्हु) पर सलाम पेश करे क्योंकि उनका मुबारक सिर नबी (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) के नूरानी कंधे के सामने है। फिर कहे: आप पर सलाम हो ऐ अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) के खलीफ़ा और ग़ार (गुफा) में उनके दूसरे साथी, अबूबक्र सिद्दीक़! अल्लाह आपको उम्मत-ए-मुहम्मद (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) की ओर से बेहतर बदला दे।

फिर इसी तरह एक हाथ के बराबर और हटकर हज़रत उमर (रज़ियल्लाहु अन्हु) पर सलाम पेश करे, क्योंकि उनका मुबारक सिर हज़रत सिद्दीक़ के सामने वैसे ही है जैसे हज़रत अबूबक्र सिद्दीक़ का सिर नबी-ए-करीम (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) के सामने है। फिर कहे: आप पर सलाम हो ऐ अमीरुल मोमिनीन उमर फ़ारूक़, वह जिनके ज़रिए अल्लाह ने इस्लाम को इज़्ज़त और

उर्दू अनुवाद

फिर अपने दाहिने हाथ भर हटकर हज़रत अबूबक्र सिद्दीक़ (रज़ियल्लाहु अन्हु) पर सलाम पेश करे क्योंकि उनका मुबारक सिर नबी (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) के नूरानी कंधे के सामने है। तो अर्ज़ करे: आप पर सलाम हो ऐ अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) के खलीफ़ा और ग़ार में उनके दूसरे साथी अबूबक्र सिद्दीक़! खुदा आपको उम्मत-ए-मुहम्मद (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) की जानिब से जज़ा-ए-खैर दे।

फिर इसी तरह हाथ भर हटकर हज़रत उमर (रज़ियल्लाहु अन्हु) पर सलाम पेश करे, इसलिए कि उनका मुबारक सिर हज़रत सिद्दीक़ से उसी तरह है जैसे हज़रत अबूबक्र सिद्दीक़ का मुबारक सिर हुज़ूर अक़दस (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) से है। तो अर्ज़ करे: आप पर सलाम हो ऐ अमीरुल मोमिनीन उमर फ़ारूक़, वह जिससे अल्लाह ने इस्लाम को इज़्ज़त और ताक़त दी,

अरबी पाठ	उर्दू अनुवाद
शक्ति दी, अल्लाह आपको उम्मत-ए-मुहम्मद (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) की तरफ़ से नेक जज़ा (बदला) अता फ़रमाए।	अल्लाह आपको उम्मत-ए-मुहम्मद (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) की तरफ़ से नेक जज़ा अता फ़रमाए। (त)

गवाह 5: जाओ और उन्हें कहो, उन्हें इमाम इब्न अल-हुमाम का वह दिल चीर देने वाला हिदायत भरा इरशाद सुनाओ जो वहम और अधर्म की जड़ काट देता है, ताकि पूरे इन्कारी मज़हब पर सन्नाटा छा जाए। मुर्दों को पत्थर समझने वालों पर 'सज्जील के पत्थर' (पकी हुई मिट्टी के पत्थर) बरसें। इसी 'फ़तह अल-क़दीर' की किताब अल-हज के आखिर में वे फ़रमाते हैं:

अरबी पाठ	उर्दू अनुवाद
पावन कब्र पर आए और उसकी दीवार की ओर मुँह करे।	यानी हुज़ूर सय्यद-ए-अतहर (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) का मज़ार-ए-अनवर।

---

1 फ़तह अल-क़दीर, किताब अल-हज, मकतबा नूरिया रज़विया सुक्कुर, 3/95. पृष्ठ 889 / 948

اتنا ہے کہ فاروق (رضی اللہ تعالٰی عنہ) کے مواجہہ میں آجائے اس وقت ان سے یوں گزارش کرے۔ اگر معاذ اللہ یہ سلام وکلام مخفی از قبیل "اے باد صبا ایں ہمہ آوردہ تست" (اے باد صبا! یہ سب کچھ تو نے اڑایا ہے۔ ت) تھا تو ہٹ ہٹ کر مواجھوں میں آنے کی کیا حاجت تھی! ہٹ دھرم بے انصاف انصاف کی تو کہتے نہیں مگر ذی عقل منصف تو قطعاً ان تعلیمات سے یہی سمجھتا ہے کہ یہ سلام وکلام ضرور حقیقی ہے اور مواجہہ سے مقصود پیش نظر آنا، اسی فتح القدیر میں ہے:

عربی عبارت	اردو ترجمہ
ثم يتأخر عن يمينه قدر ذراع فيسلم على ابى بكر رضى الله تعالى عنه فان راسه حيال منكب النبى صلى الله تعالى عليه وسلم فيقول السلام عليك يا خليفة رسول الله صلى الله تعالى عليه وسلم و ثانيه في الغار ابى بكر الصديق جزاك الله عن امة محمد صلى الله تعالى عليه وسلم خيرا	پھر اپنے داہنے ہاتھ بھر ہٹ کر حضرت ابوبکر صدیق رضی اللہ تعالیٰ عنہ پر سلام عرض کرے اس لئے کہ ان کا سر مبارک نبی صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کے دوشِ انور کے مقابل ہے۔ تو عرض کرے آپ پر سلام اے اللہ کے رسول صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کے خلیفہ اور غار میں ان کے ثانی ابوبکر صدیق! خدا آپ کو امت محمد صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کی جانب سے جزائے خیر دے۔
ثم يتأخر كذلك قدر ذراع فيسلم على عمر رضى الله تعالى عنه لان راسه من الصديق كرأس الصديق من النبى صلى الله تعالى عليه وسلم فيقول السلام عليك	پھر اسی طرح ہاتھ بھر ہٹ کر حضرت عمر رضی اللہ تعالیٰ عنہ پر سلام عرض کرے، اس لیے کہ ان کا سر مبارک حضرت صدیق سے اسی طرح ہے جیسے حضرت ابوبکر صدیق کا سر مبارک حضور اقدس صلی اللہ تعالیٰ

عربی عبارت	اردو ترجمہ
یا امیر المؤمنین عمر الفاروق والذی اعز اللہ بہ الاسلام جزاك اللہ من امۃ محمد صلی اللہ تعالی علیہ وسلم خیرا	علیہ وسلم سے ہے۔ تو عرض کرے آپ پر سلام ہو اے امیر المومنین عمر فاروق، وہ جس سے اللہ نے اسلام کو عزت وقوت دی، اللہ آپ کو امت محمد صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کی طرف سے نیک جزا عطا فرمائے۔(ت)

شاہد ۵: چلے کہو، انھیں امام ابن الہمام کا وہ ارشاد ہدایت بنیاد جگر شگاف تو اہب والحاد سنئے کہ سارے انکاری مذہب پر مردنی چھا جائے، اموات کو پتھر سمجھنے پر حجارۃ من سجیل کا پتھر آپڑے۔ اسی فتح القدیر کے آخر کتاب الحج میں فرماتے ہیں:

عربی عبارت	اردو ترجمہ
یأتی القبر الشریف ویستقبل جدارہ یعنی مزار انور حضور سید اطہر صلی اللہ علیہ وسلم کی	

---

1 فتح القدیر کتاب الحج مکتبہ نوریہ رضویہ سکھر ۹۵/۳ Page 889 of 948

Fatawa Razawiyya, Volume 9

One should face the holy shrine for visitation and turn their back towards the Qibla. The report from Faqih Abu al-Layth that one should stand facing the Qibla is refuted by the narration that Imam Azam (may Allah be pleased with him) recorded in his Musnad from Hazrat Abdullah ibn Umar (may Allah be pleased with them). He said: It is of the Sunnah that you come to the grave of the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) from the direction of the Qibla, placing your back towards the Qibla and facing the grave with your face. Then say: Peace be upon you, O Prophet, and the mercy of Allah and His blessings. However, this may be interpreted as a type of facing [the Qibla]. This is because the Holy Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) in the noble, honored grave lies on his right side facing the Qibla. The scholars have stated regarding visiting graves in general that it is better for the visitor to come from the side of the feet of the deceased and not from the head side, as it strains the sight of the deceased, unlike the first case where the visitor is in front of the deceased's sight. This is because when the deceased is on their side, their gaze is towards their feet. Thus, when one presents themselves at the feet of the Holy Prophet (peace and blessings of Allah be upon him), the Qibla will be on their left hand, the face will be mostly towards the grave, and one corner will be towards the Qibla. So, both being with the back towards the Qibla and being somewhat turned towards the Qibla will be true. etc.

Allah is Greatest, Allah is Greatest, and for Allah is all praise. Speak from faith: these are the scholars who [regard] the deceased as stone, senseless, without perception...

---

1. Fath al-Qadir, Book of Hajj, Maktaba Nooria Razvia, Sukkur, 3/95

ज़ियारत के लिए हाज़िर हो, रौज़ा-ए-अक़्दस की तरफ मुँह और क़िबला की तरफ पीठ करे। और वह जो फ़क़ीह अबुल लैस से नक़ल किया गया कि क़िबला की ओर मुँह करके खड़ा हो, वह मरदूद (अस्वीकृत) है उस हदीस से जो इमाम-ए-आज़म रज़ियल्लाहु तआला अन्हु ने अपनी मुसनद में हज़रत अब्दुल्लाह बिन उमर रज़ियल्लाहु तआला अन्हुमा से रिवायत की है कि सुन्नत यह है कि मज़ार-ए-अक़्दस की हाज़िरी में क़िबला की जानिब से आए, क़िबला को पीठ और क़ब्र-ए-अनवर की तरफ मुँह करे, फिर सलाम अर्ज़ करे: ऐ नबी! आप पर सलाम और अल्लाह की रहमत और उसकी बरकतें। हाँ, यह हो सकता है कि एक प्रकार से क़िबला की ओर होना मुराद लिया जाए, क्योंकि हुज़ूर-ए-अक़्दस सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम क़ब्र-ए-अनवर में दाहिनी करवट पर क़िबला की तरफ रुख़ किए हुए लेटे हैं। और उलमा-ए-किराम ने आम क़ब्रों की ज़ियारत में हुक्म दिया है कि ज़ायर को चाहिए कि मय्यत के पांयती (पैरों) की तरफ से आए न कि सिरहाने की तरफ से, क्योंकि इसमें मुर्दे की निगाह को तकलीफ़ होती है। इसके विपरीत पहली सूरत में आने वाला मय्यत की निगाह के सामने होगा क्योंकि मय्यत जब करवट से हो तो उसकी नज़र अपने पैरों की तरफ होती है। तो इस अनुमान पर जब हुज़ूर-ए-अनवर सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम के पैरों की तरफ से हाज़िर होगा, तो क़िबला उसके बाएं हाथ की तरफ होगा, ज़्यादा रुख़ क़ब्र की जानिब होगा, और एक कोना क़िबला की जानिब होगा, तो पीठ क़िबला की तरफ होना भी और एक प्रकार से क़िबला की तरफ झुका होना भी सच साबित होगा। इत्यादि।

अल्लाह सबसे बड़ा है, अल्लाह सबसे बड़ा है, और अल्लाह ही के लिए सब तारीफ़ें हैं। ईमान से कहना, यही वे उलमा हैं जो मय्यत को पत्थर, बे-हिस, बे-इदराक (बिना बोध के) [समझते हैं]...

---

1. फ़त्हुल क़दीर, किताबुल हज, मकतबा नूरिया रज़विया, सक्खर, 95/3

ویستك برالقبلة وما عن ابی اللیث انه یقف مستقبل القبلة مردود بماروی ابو حنیفة رضی الله تعالی عنه فی مسنده عن ابن عمر رضی الله تعالی عنهما قال من السنة ان تاتی قبر النبی صلی الله تعالی علیه وسلم من قبل القبلة وتجعل ظهرك الی القبلة وتستقبل القبر بوجهك ثم تقول السلام علیك ایها النبی و رحمة الله و برکاته، الا ان یحمل علی نوع ما من الاستقبال وذلك انه صلی الله تعالی علیه وسلم فی القبر الشریف المکرم علی شقه الایمن مستقبل القبلة، وقالوا فی زیارة القبور مطلقا الا ولی ان یأتی الزائر من قبل رجل المتوفی لامن قبل راسه فانه اتعب لبصر المیت بخلاف الاول لانه یکون مقابله بصره لان بصره ناظر الی جهة قدیمیه اذا کان علی جنبه فعلی هذا تکون القبلة عن یسارا لواقف من جهة قدمیه صلی الله تعالی علیه وسلم بخلاف ماذا کان من جهة وجهه الکریم فاذا اکثر الاستقبال الیه صلی الله تعالی علیه وسلم لاکل الاستقبال یکون استدباره القبلة اکثر من أخذه الی جهتها فیصدق الاستدبار ونوع من الاستقبال ۱ الخ۔ زیارت کو حاضر ہو روضہ اقدس کی طرف منہ اور قبلہ کو پیٹھ کرے۔ اور وہ جو فقیہ ابواللیث سے نقل کیا گیا کہ قبلہ رو کھڑا ہو مردود ہے اس حدیث سے کہ امام اعظم رضی اللہ تعالٰی عنہ نے اپنی مسند میں حضرت عبداللہ بن عمر رضی اللہ تعالٰی عنہما سے روایت کی کہ سنت یوں ہے کہ مزار اقدس کے حضور قبلہ کی طرف سے آئے قبلے کو پیٹھ اور قبر انور کی طرف منہ کرے، پھر عرض رساں ہو سلام حضور پر اے نبی ! اور اللہ کی رحمت اور اس کی برکتیں۔ ہاں یہ ہو سکتا ہے کہ ایک گونہ قبلے کی طرف ہونا مراد لیں اس لئے کہ حضور اقدس صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم قبر انور میں دہنی کروٹ پر قبلہ رو تشریف فرما ہیں، اور علمائے کرام نے عام قبروں کی زیارت میں حکم دیا ہے کہ زائر کو چاہئے میت کی پائنتی کی طرف سے آئے نہ کہ سرہانے کی جانب سے کہ اس میں مردے کی نگاہ کو تکلیف ہوتی ہے۔ بخلاف پہلی صورت کے کہ

یوں آنے والا میت کی نگاہ کے سامنے ہوگا اس لئے کہ میت جب کروٹ سے ہو تو اس کی نظر اپنے پاؤں کی طرف ہے، تو اس تقدیر پر جب حضور انور صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کے پاؤں کی طرف سے حاضر ہوگا قبلہ اس کے بائیں ہاتھ کو ہوگا، زیادہ رخ جانب قبر ہوگا، اور ایک گوشہ جانب قبلہ ہوگا تو پشت بقبلہ بھی ہوا اور ایک گونہ قبلہ کی طرف جھکا ہونا بھی صادق آیا۔ الخ

اللہ اکبر اللہ اکبر وللہ الحمد ایمان سے کہنا یہی وہ علماء ہیں جو میت کو پتھر، بے حس، بے ادراک

---

۱ فتح القدیر کتاب الحج مکتبہ نوریہ رضویہ سکھر ۹۵/۳

Fatawa Razawiyya, Volume 9

They are saying 'Inna lillahi wa inna ilayhi raji'un' (Indeed to Allah we belong and to Him we return). Then, the praised Imam is not stating his own opinion, but rather citing our noble scholars, saying that indeed this is the glory of the Sufi masters (Mashaikh-e-Khufia) that they deny the hearing of the soul, whose responsibility is upon them. May Allah grant us the ability to be just, Amen! Shahid 6: The same Imam Aini, commentator of 'Kanz' in 'Umdat al-Qari Sharh Sahih Bukhari', Book of Prayer Times, Chapter: Adhan after the passing of time, states:

[Arabic Box Text]: "The soul is a subtle, luminous substance that perceives particulars and universals. It is independent of nourishment and free from decay or growth. Therefore, it remains after the destruction of the body because it has no need for the body. Such a substance is not from the world of elements, but from the kingdom of heaven (Malkoot). Thus, its nature is such that the disintegration of the body does not harm it; it finds pleasure in what is congenial to it and experiences pain from what is contrary to it. The evidence for this is the saying of Allah Almighty: 'And do not think of those killed in the way of Allah as dead; rather, they are alive with their Lord.' (Verse) And the saying of the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him): 'When the deceased is placed on his bier, his soul hovers above the bier and says: O my family! O my children!'"

[Urdu Box Translation]: The soul is a subtle, luminous substance that possesses complete perception, including hearing and sight, etc. It is independent of eating and drinking, and free from melting or growing. That is why it remains after the body's annihilation because it has no fundamental need for the body. Such a substance is not of the world of water and clay (the material world) but of the heavenly kingdom (Alam-e-Malkoot). So its state is such that the body becoming defective does not cause it any harm; it feels pleasure in what is compatible with it and pain in what is contrary to it. The proof of this is the command of Allah the Exalted that 'Never consider those killed in the way of Allah as dead, rather they are alive near their Lord' (Verse). And the Hadith of the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) that when the deceased is placed on the bier, his soul hovers over the bier and says, 'O my family members! O my children!'

For Allah's sake, be just! If the soul were inactive and its perception and understanding impaired after death, how could it be true that it has no need for the body and that the body's disintegration causes no harm? Well, if the soul became

useless and inert matter, then who is "alive near their Lord"? Who is this being shining and calling out over the bier? Shahid 7: The same Imam Mahmoudi Aini states in the same Hadith that the weeping of the people of the deceased [hurts him]...

1 Umdat al-Qari Sharh al-Bukhari, Chapter: Adhan after the passing of time, Idara al-Taba'at al-Muniriya, Beirut, 88/5

फ़तावा रज़विया, जिल्द 9

वे कह रहे हैं 'इन्ना लिल्लाहि व इन्ना इलैहि राजिऊन' (बेशक हम अल्लाह के हैं और उसी की ओर लौटने वाले हैं)। फिर, प्रशंसित इमाम अपनी राय नहीं बता रहे हैं, बल्कि हमारे सम्मानित विद्वानों से उद्धृत कर रहे हैं कि वास्तव में यह गुप्त सूफी शेखों की शान है कि वे रूह के सुनने का इनकार करते हैं, जिसकी ज़िम्मेदारी उनके सर है। अल्लाह तआला हमें इंसाफ़ की तौफ़ीक़ दे, आमीन! शाहिद 6: यही इमाम ऐनी, 'कंज' के व्याख्याकार, 'उमदतुल कारी शरह सही बुखारी', नमाज़ के समय की किताब, अध्याय: समय बीतने के बाद अज़ान, में फ़रमाते हैं:

[अरबी बॉक्स पाठ]: "आत्मा एक सूक्ष्म, प्रकाशमान तत्व है जो विशेष और सामान्य वस्तुओं का बोध रखती है। यह पोषण से स्वतंत्र है और क्षय या वृद्धि से मुक्त है। इसलिए, शरीर के नष्ट होने के बाद भी यह शेष रहती है क्योंकि इसे शरीर की कोई आवश्यकता नहीं होती। ऐसा तत्व भौतिक जगत का नहीं, बल्कि स्वर्गीय जगत (मलकूत) का होता है। अत; इसका स्वभाव ऐसा है कि शरीर का क्षय इसे कोई नुकसान नहीं पहुँचाता; यह अपने अनुकूल चीजों में आनंद पाती है और प्रतिकूल चीजों से कष्ट महसूस करती है। इसका प्रमाण अल्लाह सर्वशक्तिमान का यह कथन है: 'और जो अल्लाह की राह में मारे गए, उन्हें मृत न समझें; बल्कि वे अपने रब के पास जीवित हैं।' (आयत) और नबी (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) का यह कथन: 'जब मृत को उसके जनाज़े पर रखा जाता है, तो उसकी आत्मा जनाज़े के ऊपर मँडराती है और कहती है: ऐ मेरे घर वालो! ऐ मेरे बच्चों!'"

[उर्दू बॉक्स अनुवाद]: रूह एक सूक्ष्म और प्रकाशमान तत्व है जो सुनने और देखने आदि का संपूर्ण बोध रखती है। यह खाने-पीने से बेनयाज़ और घुलने-बढ़ने से मुक्त है। इसीलिए शरीर के नष्ट होने के बाद भी यह शेष रहती है क्योंकि इसे शरीर की मूल रूप से कोई आवश्यकता नहीं होती। ऐसा तत्व जल और मिट्टी के संसार (भौतिक जगत) का नहीं होता, बल्कि मलकूती संसार का होता है। अतः इसकी शान यह है कि शरीर का क्षतिग्रस्त होना इसे कोई नुकसान न पहुँचाए; यह अपने अनुकूल बात से सुख पाती है और प्रतिकूल बात से दुख, और इस पर अल्लाह अज़्ज़वजल का यह आदेश प्रमाण है कि 'जो अल्लाह की राह में मारे गए उन्हें हरगिज़ मृत न समझना, बल्कि वे अपने रब के पास जीवित हैं' (आयत)। और नबी सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम की हदीस कि जब मृत को जनाज़े पर रखा जाता है, तो उसकी रूह जनाज़े के ऊपर मँडराती रहती है और कहती है कि ऐ मेरे घर वालो, ऐ मेरे बच्चों!

अल्लाह के लिए न्याय करें! यदि मृत्यु के बाद आत्मा निष्क्रिय हो जाती और उसकी समझ और बोध बाधित हो जाता, तो यह कैसे सही होता कि उसे शरीर की कोई आवश्यकता नहीं है और शरीर के क्षय से कोई नुकसान नहीं होता? भला, यदि आत्मा बेकार और जड़ पदार्थ बन गई, तो "अपने रब के पास जीवित" कौन है? यह जनाज़े पर जलवा अफ़रोज़ और पुकारने वाला कौन है? शाहिद 7: यही इमाम महमूदी ऐनी इसी हदीस में फ़रमाते हैं कि मृत के परिजनों का रोना उसे कष्ट देता है...

1 उमदतुल कारी शरह अल-बुखारी, अध्याय: समय बीतने के बाद अज़ान, इदारा अल-तबात अल-मुनीरिया, बेरूत, 88/5

पेज 891/948

بتا رہے ہیں انا للہ وانا الیہ راجعون، پھر امام ممدوح اپنا ارشاد نہیں فرماتے بلکہ ہمارے علمائے کرام سے نقل فرمارہے ہیں، خدا کی شان یہی وہ مشائخ خفیہ ہیں کہ سماع روح کا انکار جن کے سر باندھئے، اللہ تعالیٰ توفیق انصاف بخشے، آمین! شاہد ۶: یہی امام عینی شارح کنز عمدۃ القاری شرح صحیح بخاری کتاب مواقیت الصلوۃ باب الاذان بعد ذھاب الوقت میں فرماتے ہیں:

الروح جوھر لطیف نوراني مدرك للجزئیات والکلیات غني عن الاغتذاء بري عن التحلل والنماء ولھذا یبقی بعد فناء البدن اذ لیست لہ حاجۃ الی البدن ومثل ھذا الجوھر لا یکون من عالم العنصر بل من عالم الملکوت فمن شانہ ان لا یضرہ خلل البدن وتلتذ بما یلائمہ ویتألم بما ینافیہ، والدلیل علی ذلک قولہ تعالیٰ ولا تحسبن الذین قتلوا فی سبیل اللہ امواتاً بل احیاء عند ربھم الآیۃ وقول صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم اذا وضع المیت علی نعشہ رفرف روحہ فوق نعشہ ویقول یا اھلی و یاولدی ۱۔

روح ایک جوہر لطیف نورانی ہے کہ علم سمع وبصر وغیرہ با تمام ادراکات رکھتی ہے، کھانے پینے سے بے نیاز ، گھلنے بڑھنے سے بری ہے۔ اسی لئے فنائے بدن کے بعد باقی رہتی ہے کہ اسے بدن کی طرف اصلاً احتیاج سنی، ایسا جوہر عالمِ آب وگل سے نہیں ہوتا بلکہ عالم ملکوت سے، تواس کی شان یہ ہے کہ بدن کا خلل پذیر ہونا اسے کچھ نقصان نہ پہنچائے، جو بات موافق ہو اس سے لذت پائے، جو مخالف ہو اس سے درد پہنچے، اور اس پر دلیل اللہ عزوجل کا ارشاد ہے کہ جو راہ خدا میں مارے گئے ہر گز انھیں مردہ نہ جانیوں بلکہ وہ زندہ ہیں اپنے رب کے پاس (آیۃ) اور نبی صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کی حدیث کہ جب مردہ نعش پر رکھا جاتا ہے اس کی روح بالائے نعش پر افشاں رہتی ہے اور کہتی ہے کہ اے میرے گھر والو، اے میرے بچو!

للہ انصاف! اگر روح بعد موت معطل اور اس کا فہم وادراک مختل ہو تو یہ کیونکر صحیح ہوتا کہ اسے بدن کی حاجت نہیں، خلل بدن سے کچھ مضرت نہیں، بھلا روح تو بیکار وجما د ہوئی یہ رب کے پاس زندہ کون ہے؟ یہ نعش پر جلوہ افگن و نوازن کون ہے؟ شاہد ۷: یہی امام محمودای عینی عمدہ میں اس حدیث کے نیچے کہ میت کو اپنے اہل کے رونے سے عذاب...

۱ عمدۃ القاری شرح البخاری باب الاذان بعد ذہاب الوقت ادارۃ الطباعۃ المنیریہ بیروت ۸۸/۵

Fatawa Razawiya - Volume 9

It is said. It is narrated from the great Imam Abu Zakariya Nawawi:

[Table 1] (Arabic): It is narrated from a group that its meaning is that he (the deceased) is punished by hearing the weeping of his family for him and he feels compassion for them. And it is said that this was the view of Muhammad bin Jarir al-Tabari and others. Al-Qadi 'Iyad said: This is the most correct of opinions. And they cited as evidence a hadith in which the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) rebuked a woman for weeping over her son and said: "Indeed, when one of you weeps, his companion weeps for him. O servants of Allah, do not punish your brothers."1 (Urdu Translation): Meaning, the aforementioned Imam narrated from a group of scholars that the meaning of the hadith is that when people weep over the deceased, the deceased feels sorrow upon hearing their weeping and his heart aches for them. Imam Muhammad said Muhammad bin Jarir al-Tabari and others inclined towards this view. Imam Qadi 'Iyad stated this is the best of all sayings, and brought a hadith as evidence for it that a lady was weeping over her son; the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) forbade her and said: "When any of you weeps, tears also come to the eyes of the deceased at his weeping. So, O servants of God! do not cause pain to your brothers."

This was narrated from these Imams, and before this, Imam Aini himself has stated:

[Table 2] (Arabic): As for the conception of weeping from the deceased, it has been mentioned in a hadith that the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) said: "Indeed, when one of you weeps, his companion weeps for him." And the meaning of 'his companion' is the deceased.2 (Urdu Translation): Meaning, the weeping of the deceased is conceivable, as it is mentioned in a hadith that the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) said: When any of you weeps, his companion, that deceased person, also begins to weep. (By 'Suwayhibuhu', the deceased is meant).

For the sake of Allah, justice! These are the same scholars who deny the hearing and understanding of the limbs of the deceased.

Note: This lady is Hazrat Qaylah bint Makhramah (may Allah be pleased with her), and this hadith is narrated from her by Abu Bakr bin Abi Shaybah and Tabarani. She was present in the noble service of the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) and wept remembering one of her sons. The Noble Prophet (peace and

blessings of Allah be upon him) said: "What a way is this, that in the world, as long as life remains, one treats their companion well, and causes pain after death?"

[Table 3] (Arabic): By Him in whose hand is the soul of Muhammad, indeed one of you... (Urdu Translation): I swear by Him in whose hand is [the soul of] Muhammad (peace and blessings of Allah)...

1 Umdat al-Qari Sharh al-Bukhari, Chapter: What is permitted of weeping without wailing, Idara al-Muniriya, Beirut, 9/8 2 Umdat al-Qari Sharh al-Bukhari, Chapter: What is permitted of weeping without wailing, Idara al-Muniriya, Beirut, 9/8

होता है। महान इमाम अबू ज़कारिया नववी से उद्धृत है:

[तालिका 1] (अरबी): विद्वानों के एक समूह से वर्णित है कि इसका अर्थ यह है कि वह (मृतक) अपने परिवार के रोने को सुनकर दुखी होता है और उनके प्रति दया महसूस करता है। और कहा गया है कि मुहम्मद बिन जरीर अल-तबरी और अन्य इसी विचार के थे। अल-काज़ी अयाज़ ने कहा: यह सभी कथनों में सबसे श्रेष्ठ है। और उन्होंने प्रमाण के रूप में एक हदीस पेश की जिसमें नबी (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने एक महिला को अपने बेटे पर रोने से रोका और फ़रमाया: "बेशक, जब तुम में से कोई रोता है, तो उसका साथी भी उसके लिए रोता है। ऐ अल्लाह के बंदो, अपने भाइयों को कष्ट न दो।"1 (उर्दू अनुवाद): यानी, उल्लेखित इमाम ने विद्वानों के एक समूह से उल्लेख किया है कि हदीस का अर्थ यह है कि जब लोग मृतक पर रोते हैं, तो मृतक को उनके रोने की आवाज़ सुनकर दुःख होता है और उनके लिए उसका दिल दुखता है। इमाम मुहम्मद ने कहा कि मुहम्मद बिन जरीर तबरी और अन्य इसी ओर गए। इमाम काज़ी अयाज़ ने कहा कि यह सब बातों में सबसे बेहतर है, और इस पर एक हदीस से दलील लाए कि एक महिला अपने बेटे पर रो रही थी; नबी (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने उन्हें मना किया और फ़रमाया: "जब तुम में से कोई रोता है, तो उसके रोने पर मृतक की आँखों से भी आँसू निकल आते हैं, तो ऐ खुदा के बंदो! अपने भाइयों को तकलीफ न दो।"

यह तो इन इमामों का उद्धरण था, और इससे पहले स्वयं इमाम ऐनी फ़रमा चुके हैं:

[तालिका 2] (अरबी): जहाँ तक मृतक की ओर से रोने की कल्पना का प्रश्न है, एक हदीस में आया है कि नबी (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने फ़रमाया: "बेशक, जब तुम में से कोई रोता है, तो उसका साथी उसके लिए रोता है।" और 'उसका साथी' से तात्पर्य मृतक है।2 (उर्दू अनुवाद): यानी, मृतक का रोना मुमकिन है, जैसा कि एक हदीस में आया है कि नबी (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने फ़रमाया: जब तुम में से कोई रोता है, तो उसका साथी वह मृतक भी रोने लगता है। ('सोवैहिबहु' से मुराद मृतक है)।

अल्लाह के लिए इंसाफ! ये वही विद्वान हैं जो मृतकों के अंगों के सुनने और समझने से इनकार करते हैं।

लाभ: ये महिला हज़रत क़ैला बिन्त मख़रमा (रज़ियल्लाहु अन्हा) हैं, और यह हदीस अबू बक्र बिन अबी शैबा और तबरानी ने उनसे रिवायत की है। वह नबी करीम (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) की

ख़िदमत में हाज़िर थीं और अपने एक बेटे को याद करके रोईं। हुज़ूर (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने फ़रमाया: यह कैसा तरीका है कि दुनिया में ज़िंदगी तक तो अपने साथी के साथ अच्छा सुलूक किया और मरने के बाद उसे तकलीफ पहुँचाई?

[तालिका 3] (अरबी): उसकी क़सम जिसके हाथ में मुहम्मद की जान है, बेशक तुम में से एक... (उर्दू अनुवाद): क़सम है उसकी जिसके हाथ में मुहम्मद (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) की जान है...

1 उम्दतुल क़ारी शरह अल-बुखारी, अध्याय: रोने की अनुमति बिना मातम के, इदारा अल-मुनीरिया, बेरुत, 9/8 2 उम्दतुल क़ारी शरह अल-बुखारी, अध्याय: रोने की अनुमति बिना मातम के, इदारा अल-मुनीरिया, बेरुत, 9/8

ہوتا ہے۔ امام اجل ابوزکریا نووی سے نقل فرماتے ہیں:

[جدول 1] (عربی): حکی عن طائفة ان معناه انه یعذب بسماع بکاء اهله علیه ویرق لهم وقال والی هذا ذهب محمد بن جریر الطبری وغیره قال القاضی عیاض وهو اولی الاقوال واحتجوا بحدیث فیه ان النبي صلی الله تعالی علیه وسلم زجر امرأة من البکاء علی ابنها وقال ان احدکم اذا بکی استعبرله صویحبه فیا عباد الله لا تعذبوا اخوانکم -1 (اردو): یعنی امام ممدوح نے ایک جماعت علماء سے نقل فرمایا کہ معنی حدیث یہ ہیں کہ لوگ مردے پر جو روتے ہیں مردے کو ان کا رونا سن کر صدمہ ہوتا ہے اور ان کے لئے اس کا دل کڑھتا ہے، امام محمد نے فرمایا محمد بن جریر طبری و غیرہا اسی طرف گئے، امام قاضی عیاض نے فرمایا یہ سب قولوں سے بہتر ہے، اور اس پر ایک حدیث سے دلیل لائے کہ ایک بی بی اپنے بیٹے پر رو رہی تھیں نبی صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم نے انہیں منع کیا اور فرمایا: "جب تم میں کوئی روتا ہے تو اس کے رونے پر مردے کے بھی آنسو نکل آتے ہیں تو اے خدا کے بندو! اپنے بھائیوں کو تکلیف نہ دو۔"

یہ تو ان ائمہ سے نقل تھی اور اس سے پہلے خود امام عینی فرما چکے ہیں:

[جدول 2] (عربی): اما تصور البکاء من المیت فقد ورد فی حدیث ان النبي صلی الله تعالی علیه وسلم قال ان احد کم اذ ابکی استعبر له صویحبه والمراد والمراد بصویحبه المیت -2 (اردو): یعنی میت کا رونا متصور ہے کہ ایک حدیث میں آیا ہے نبی صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم نے فرمایا: جب تم میں کوئی روتا ہے تو اس کا ساتھی وہ مردہ بھی رونے لگتا ہے، (صویحبہ سے مراد میت ہے)

للہ انصاف! یہی علماء ہیں جوارح موتیٰ کے سماع و فہم سے انکار رکھتے ہیں۔

فائدہ: یہ بی بی حضرت قیلہ بنت مخرمہ رضی اللہ تعالیٰ عنہا ہیں، اور یہ حدیث ابوبکر بن ابی شیبہ وطبرانی نے ان سے روایت کی وہ خدمت اقدس حضور سید عالم صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم میں حاضر تھیں اپنے ایک بیٹے کو یاد کر کے روئیں حضور اقدس صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم نے فرمایا: یہ کیا طریقہ ہے کہ دنیا میں زندگی تک کو اپنے ساتھی سے اچھا سلوک اور مرے پیچھے ایذاء،

[جدول 3] (عربی): فو الذي نفس محمد بيده ان احد اكن (اردو): قسم ہے اس کی جس کے ہاتھ میں محمد صلی اللہ تعالیٰ

1 عمدة القاری شرح البخاری مایترخص من البکاء فی غیر نوح ادارة المنیریة بیروت 9/8 2 عمدة القاری شرح البخاری مایترخص من البکاء فی غیر نوح ادارة المنیریة بیروت 9/8

Fatawa Rizwia Volume 9

"...Let her weep and seek help for him from her female companion. O servants of Allah! Do not punish your dead." (Translation): [The Prophet's] peace be upon him pure life is such that upon your weeping, your dead begins to weep. So O servants of Allah! Do not punish your dead.

Witness 8: Allama Shurunbulali mentioned the statement of 'Durar' in 'Ghuniyat Dhawil Ahkam': "Inflicting pain is not established for the dead, and the same applies to speech, because the purpose of speech is to convey understanding and making someone comprehend, and death is contrary to it." (Translation): Inflicting pain is not established within the dead, nor is speech, because its purpose is to convey understanding and to make comprehend; death is contrary to it. (T)

He commented on it and stated himself: "The principle in this matter is that every action that gives pleasure, pain, grief, or joy occurs only in life, not in death." (Translation): The principle regarding this is that every action from which pleasure, pain, grief, and joy result will only occur in life, not in death. (T)

And in statement 32, you have heard his saying through his teacher that the dead are pained by the sound of shoes.

Witness 9: See statement 51, that the heart of the dead is comforted by the glorification (tasbih) of grass and trees.

Admonition: In Fatawa Qadhi Khan, Imdad al-Fattah, Maraqi al-Falah, Allama Shurunbulali, etc., the mentioned argument is established for the dislike of cutting green trees and grass from graveyards. If you mention these words to any heedless person with an unimpaired mind—that such-and-such person's heart was comforted by such-and-such's glorification—their mind will certainly go towards the fact that they heard the glorification and felt familiarity from it. Common sense testifies that to feel familiarity with anything, awareness of it is necessary. And glorification is a type of speech, awareness of which comes through hearing. Therefore, this statement of the scholars is a clear proof of the hearing of the dead (Sama' al-Mawta). In fact, it indicates a level of hearing power that the common living do not possess, as we previously pointed out (As we cautioned earlier. T). Thus, it is the confusion of the author of 'Tafheem al-Masail' that he has no understanding of this text at all. He then said:

"One should see what relation this text has with the hearing of the dead?"
(Translation): It should be seen what relation this phrase has with the dead hearing? (T)

1. Al-Mu'jam al-Kabir narrated by Qabila bint Makhrama, Hadith, Maktaba Faysaliyya Beirut, 10/25
2. Al-Durar al-Ahkam by Mulla Khusraw, Chapter on Oath of Action, Matba' Kamila Egypt, 2/53
3. Ghuniyat Dhawil Ahkam Commentary on al-Durar al-Ahkam, Chapter on Oath of Action, Matba' Kamila Egypt, 2/53
4. Tafheem al-Masail, Denial of Hearing of the Dead from Hanafi Books, Matba' Muhammadi Lahore, p. 84

फ़तावा रज़विया जिल्द नहुम (9)

"...उसे रोने दो और उसके लिए उसकी सहेली से मदद मांगो। ऐ अल्लाह के बंदों! अपने मुर्दों को अज़ाब मत दो।" (अनुवाद): [नबी] सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम की पाक जान ऐसी है कि तुम्हारे रोने पर तुम्हारा मुर्दा रोने लगता है, तो ऐ अल्लाह के बंदों! अपनी मौत (मुर्दों) को अज़ाब न करो।

साक्षी 8: अल्लामा शुरनबुलाली ने 'ग़ुनियत ज़विल अहकाम' में 'दुरर' का कथन उल्लेख किया है: "दुख पहुँचाना मुर्दे के लिए सिद्ध नहीं होता, और यही बात बातचीत पर भी लागू होती है, क्योंकि इसका उद्देश्य समझाना और बोध कराना होता है, और मौत इसके विपरीत है।" (अनुवाद): कष्ट पहुँचाना मुर्दे के अंदर सिद्ध नहीं है, इसी तरह बातचीत भी, क्योंकि इसका उद्देश्य बोध कराना और समझाना होता है, मौत इसके विपरीत है। (त)

पर टिप्पणी की और स्वयं फ़रमाया: "इस बारे में मूल नियम यह है कि हर वह कार्य जिससे आनंद, पीड़ा, शोक या हर्ष प्राप्त हो, वह केवल जीवन में ही घटित होता है, मृत्यु में नहीं।" (अनुवाद): इस बारे में मूल यह है कि हर वह क्रिया जिससे आनंद और पीड़ा तथा शोक और हर्ष हो, वह जीवन पर ही घटित होगी, मृत्यु पर नहीं। (त)

और कथन 32 में आपने उनके उस्ताद के हवाले से सुना कि मुर्दों को जूतों की चाप (आवाज़) से तकलीफ़ होती है।

साक्षी 9: कथन 51 देखें कि घास और पेड़ की तस्बीह (अल्लाह का गुणगान) से मुर्दे का जी बहलता है।

चेतावनी: फ़तावा काज़ी ख़ान, इमदादुल फ़त्ताह, मराक़िल फ़लाह, अल्लामा शुरनबुलाली आदि में कब्रिस्तानों से हरे पेड़ और घास काटने की मकरूहियत (नापसंदगी) पर उक्त प्रमाण स्थापित किया गया है। यदि किसी ऐसे ग़ाफ़िल व्यक्ति के सामने जिसका दिमाग़ सही हो, ये शब्द बयान किए जाएं कि फ़लां की तस्बीह से फ़लां का जी बहला, तो उसका दिमाग़ निश्चित रूप से इस ओर जाएगा कि उसने उसकी तस्बीह सुनी और उससे लगाव महसूस किया। सामान्य बुद्धि इस बात की गवाह है कि किसी भी चीज़ से लगाव पाने के लिए उसकी जानकारी होना आवश्यक है। और तस्बीह बातचीत की एक श्रेणी है, जिसकी जानकारी सुनने के माध्यम से होती है। अतः विद्वानों का यह कथन मुर्दों के सुनने (समा-ए-मौता) का स्पष्ट प्रमाण है। बल्कि यह सुनने की शक्ति के उस स्तर की ओर संकेत करता है जो आम जीवित लोगों के पास नहीं है, जैसा कि हमने पहले इस पर चेतावनी दी थी (जैसा

कि पीछे हमने इस पर चेतावनी दी। त)। तो 'तफ़हीमुल मसाइल' के लेखक का यह भ्रम है कि उन्हें इस कथन का बिल्कुल भी बोध नहीं है। फिर उन्होंने कहा:

"देखना चाहिए कि इस इबारत (लेख) का मुर्दों के सुनने से क्या संबंध है?" (अनुवाद): देखना चाहिए कि इस इबारत को मुर्दों के सुनने से क्या मेल है? (त)

1. अल-मुअजम अल-कबीर, क़बीला बिन्त मख़रमा से वर्णित हदीस, मकतबा फ़ैसलिया बेरूत, 10/25
2. अल-दुरर अल-अहकाम, मुल्ला ख़ुसरो, अध्याय: क्रिया की शपथ, मतबा कामिला मिस्र, 2/53
3. ग़ुनियत ज़विल अहकाम, अल-दुरर अल-अहकाम पर हाशिय्या, अध्याय: क्रिया की शपथ, मतबा कामिला मिस्र, 2/53
4. तफ़हीमुल मसाइल, हनफ़ी किताबों से मुर्दों के सुनने का इनकार, मतबा मुहम्मदी लाहौर, पृ. 84

पेज 893/948

فتاوٰی رضویہ جلد نہم

لتبکی فتستعین لہ صویحبۃ فیا عباد اللہ لا تعذبوا موتاکم۔ (ترجمہ): علیہ وسلم کی جان پاک ہے کہ تمہارے رونے پر تمہارا مردہ رونے لگتا ہے ، تو اے خدا کے بندو! اپنی اموات کو عذاب نہ کرو،

شاہد ۸: علامہ شرنبلالی نے غنیہ ذوی الاحکام میں قول درر: الایلام لایتحقق في المیت وکذا الکلام لان المقصود بھذا الافھام والموت ینافیہ۔ (ترجمہ): الم رسانی میت کے اندر متحقق نہیں ، اسی طرح گفتگو بھی ، کیونکہ اس کا مقصود افہام اور سمجھانا ہوتا ہے ، موت اس کے منافی ہے۔(ت)

پر تقریر کی اور خود فرمایا: الاصل فیہ ان کل فعل یلتذ و یؤلم ویغم ویسر یقع علی الحیات دون الممات۔ (ترجمہ): اس بارے میں اصل یہ ہے کہ ہر وہ فعل جس سے لذت والم اور غم وسرور ہو وہ حیات ہی پر واقع ہوگا موت پر نہیں۔(ت)

اور قول ۳۲ میں ان کا ارشاد بحوالہ حضرت استاذ سن چکے کہ مردوں کو جوتوں کی چپل سے اذیت ہوتی ہے۔

شاہد ۹ : قول ۵۱ دیکھو کہ گھاس اور پیڑ کی تسبیح سے مردہ کا جی بہلتا ہے۔

تنبیہ : فتاوٰی قاضی خاں وامداد الفتاح ومراقی الفلاح علامہ شرنبلالی وغیرہا میں مقبروں سے درخت و گیاہ سبز کاٹنے کی کراہت پر دلیل مذکور قائم فرمائی اور جس غافل غیر ماؤف الدماغ کے سامنے ان الفاظ کو بیان کیجئے کہ فلاں کی تسبیح سے فلاں کا جی بہلا، اس کا ذہن قطعاً اس طرف جائے گا کہ اس نے اس کی تسبیح سنی اور اس سے انس ملا، بداہت عقل شاہد ہے کہ کسی شے سے انس پانے کو اس پر اطلاع ضرور ، اور تسبیح جنس کلام سے ہے جس پر اطلاع بطور سماع تو یہ کلام علماء صراحۃ سماع موتی کی دلیل صاف ہے بلکہ اس درجہ قوتِ سمع کی جو عامہ

احیاء کو حاصل نہیں کما نبھنا علیہ سالفا (جیسا کہ پیچھے ہم نے اس پر تنبیہ کی۔ ت) تو صاحب تفہیم المسائل کا خبط کہ اس کلام کو ہر گز مطلب سے آشنائی نہیں ، پھر کہا:

باید دید کہ ایں عبارت را از سماعت موتی چہ مناسبت؟ (ترجمہ): دیکھنا چاہئے کہ اس عبارت کو مردوں کے سننے سے کیا مناسبت ہے؟ (ت)

۱۔ المعجم الکبیر مروی از قبیلہ بنت مخرمہ حدیث مکتبہ فیصلیہ بیروت ۱۰ / ۲۵ ۲۔ الدرر الاحکام لملا خسرو باب حلف الفعل مطبعہ کاملہ مصر ۲ / ۵۳ ۳۔ غنیہ ذوی الاحکام حاشیہ علی الدرر الاحکام باب حلف الفعل مطبعہ کاملہ مصر ۲ / ۵۳ ۴۔ تفہیم المسائل عدم سماع موتی از کتب حنفیہ مطبع محمدی لاہور ص ۸۴

It is pure misunderstanding and ignorance. Indeed, by the grace of Allah Almighty, this magnificent warning has clarified like the sun and yesterday that for its leader, the author of 'Ma'atu Masa'il', to derive evidence from these five passages and for this new Wahhabi to fill pages by quoting similar other passages in its support, was all completely alien to the objective and unrelated to the point of contention. And praise be to Allah.

Witness 10 to 12: Similarly, Syed Alam Abul Saud Azhari, author of 'Fath Allah al-Mu'in', Syed Allama Tahtawi, and Syed Allama Shami, the commentators of 'Durr', mentioned the same discourses regarding an oath (Yamin), and all these personages mentioned that the deceased finds solace from the glorification (Tasbih) of the grass, as mentioned before (Kama Taqaddam). (T)

Witness 13 and 14: The latter two Syeds clarified that when a person performs remembrance of Allah (Dhikr) near a grave, the deceased feels comforted by it. See statements 47, 48, and 49.

Witness 15 and 16: Similarly, both personages stated that urinating in graveyards causes distress to the dead just as it does to the living. See statements 38 and 39.

Witness 17: Allama Tahtawi explained that the deceased are pained by the clatter of shoes. See statement 34.

Witness 18 to 20: Allama Halabi, the commentator of 'Durr', also shared this discourse of oath (Yamin). Regarding the burning of animals after slaughter, he expressed the doubt that since it is proven that pain from outside reaches the deceased, they would be distressed. The latter two Syeds replied that this specifically concerns human beings. See warning under statement 40.

Witness 21: See what Allama Shami narrated from Imam Shafi'i (may Allah be pleased with him) in statement 27, that he did not recite 'Bismillah' aloud in prayer in the presence of the grave of Imam Azam (may Allah be pleased with him).

Witness 22: Statement 64: Do not come from the head-side of the deceased as it will trouble their sight; come from the foot-side so as to be in front of the deceased's view.

Witness 23: See Allama Shami's narration from Allama Ziyadi, Dawudi, and Ajhuri in 'Takmil al-Jalil', that to find something, one should go to a height and call upon Hazrat Sayyidi Ahmed bin Alwan.

Witness 24: Allama Tahtawi, in 'Hashiyah Maraqi al-Falah', mentioned greetings (Salam) at graves and stated: It is proven by authentic Hadith that when someone passes by a grave they recognize and offers Salam, the deceased recognizes them and responds.

[Boxed Text] Arabic: Where he said, and Ibn Abd al-Barr related in 'Al-Istidhkhar' and 'Al-Tamhid' with an authentic chain of narration from Ibn Abbas (may Allah be pleased with them both), that he said: The Messenger of Allah (may Allah send peace and blessings upon him) said... Urdu: Their statement is this: Ibn Abd al-Barr narrated in 'Istidhkhar' and 'Tamhid' with an authentic chain from Hazrat Ibn Abbas (may Allah be pleased with them both) that the Messenger of Allah (may Allah send peace and blessings upon him)...

फतावा रज़विया, जिल्द नहम

यह मात्र नासमझी और अज्ञानता है। हाँ, अल्लाह तआला के फ़ज़्ल से इस जलील चेतावनी ने सूरज की तरह साफ़ कर दिया कि इसके नेता 'माअतु मसाइल' के लेखक का इन पांच इबारतों से दलील देना और उसकी हिमायत में इस नए वहाबी का इसी तरह की और इबारतें नक़ल करके पन्ने भरना, मक़सद से पूरी तरह नावाक़िफ़ और बहस के मुद्दे से बिल्कुल अलग था। अल्लाह का शुक्र है।

गवाह 10 से 12: इसी तरह सैय्यद आलम अबुल सऊद अज़हरी, लेखक 'फ़तह अल्लाह अल-मुईन', सैय्यद अल्लामा तहतावी और सैय्यद अल्लामा शामी, जो 'दुर' के हाशिये लिखने वाले हैं, उन्होंने यमीन (क़सम) के बारे में वही दलीलें दीं और इन सभी हज़रात ने ज़िक्र किया कि घास की तस्बीह से मुर्दे को सुकून मिलता है, जैसा कि पहले गुज़र चुका। (त)

गवाह 13 और 14: पिछले दोनों सैय्यदों ने साफ़ तौर पर फ़रमाया कि इंसान जो क़ब्र के पास अल्लाह का ज़िक्र करे, उससे मुर्दे का जी बहलता है। देखें कथन 47, 48 और 49।

गवाह 15 और 16: इसी तरह दोनों हज़रात ने फ़रमाया कि क़ब्रिस्तानों में पेशाब करने से मुर्दों को भी वैसी ही तकलीफ़ होती है जैसी ज़िन्दों को। देखें कथन 38 और 39।

गवाह 17: अल्लामा तहतावी ने फ़रमाया कि मुर्दों को जूतों की आहट से तकलीफ़ होती है। देखें कथन 34।

गवाह 18 से 20: अल्लामा हलबी, जो 'दुर' के हाशिये लिखने वाले हैं, वह भी इस यमीन की बहस में शामिल हैं। उन्होंने ज़िबह के बाद जानवरों को जलाने पर यह शक ज़ाहिर किया कि मुर्दे को बाहर से दर्द पहुँचने पर तकलीफ़ होती है। पिछले दोनों सैय्यदों ने जवाब दिया कि यह इंसानों के लिए है। देखें कथन 40 के नीचे की चेतावनी।

गवाह 21: कथन 27 में अल्लामा शामी का इमाम शाफ़ई (रज़ियल्लाहु अन्हा) से वह नक़ल करना देखें कि उन्होंने इमाम-ए-आज़म (रज़ियल्लाहु अन्हा) की क़ब्र के पास नमाज़ में बिस्मिल्लाह शरीफ़ आवाज़ से नहीं पढ़ी।

गवाह 22: कथन 64: मुर्दे के सिरहाने की तरफ से न आएँ क्योंकि उससे उसकी निगाह को तकलीफ़ होगी, पैरों की तरफ से आएँ ताकि मुर्दे की नज़रों के सामने हों।

गवाह 23: 'तक्मील-ए-जलील' में अल्लामा ज़ियादी, दाऊदी और अझूरी से अल्लामा शामी का वह नक़ल करना देखें कि किसी चीज़ के मिलने के लिए ऊँचाई पर जाकर हज़रत सैय्यदी अहमद बिन अलवान को पुकारे।

गवाह 24: अल्लामा तहतावी ने 'हाशिया मराक़ी अल-फ़लाह' में क़ब्रों पर सलाम का ज़िक्र करके फ़रमाया: सही हदीस से साबित होता है कि जो किसी पहचानी हुई क़ब्र के पास से गुज़रता है और सलाम करता है, मुर्दा उसे पहचानता है और जवाब देता है।

[बॉक्स में इबारत] अरबी: जैसा कि उन्होंने कहा और इब्न अब्दुल बर ने 'अल-इस्तिज़कार' और 'अत-तम्हीद' में इब्न अब्बास (रज़ियल्लाहु अन्हुमा) से सही सनद के साथ रिवायत की है कि उन्होंने कहा: अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम) ने फ़रमाया... उर्दू: उनकी इबारत यह है: इब्न अब्दुल बर ने 'इस्तिज़कार' और 'तम्हीद' में सही सनद के साथ हज़रत इब्न अब्बास (रज़ियल्लाहु अन्हुमा) से रिवायत की कि अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम) ने...

محض نا فہمی و جہالت ہے، ہاں بحمد للہ تعالٰی اس تنبیہ جلیل نے شمس وامس کی طرح روشن کر دیا کہ اس کے مقتداء صاحب مائۃ مسائل کا ان عباراتِ خمس سے استدلال کرنا اور اس کی تائید میں اس وہابی جدید کا اسی طرح کی اور عبارات نقل کر کے اوراق بھرنا سب مطلب سے نا آشنا اور موردِ نزاع سے محض بیگانہ تھا واللہ الحمد۔

شاہد ۱۰ تا ۱۲: یو نہی سید عالم ابوالسعود ازہری صاحب فتح اللہ المعین وسید علامہ طحطاوی وسید علامہ شامی محشیانِ دُر نے درباره یمین وہی تقریرات ذکر کیں اور سب حضرات نے تسبیح گیاہ سے میت کو انس ملنا ذکر فرمایا، کما تقدم (جیسا کہ گزر چکا۔ ت)

شاہد ۱۳ و ۱۴: سیدین اخیرین نے تصریح فرمائی کہ انسان جو قبر کے پاس ذکرِ الہی کرے اس سے میت کا جی بہلتا ہے، دیکھو قول ۴۷، ۴۸ و ۴۹۔

شاہد ۱۵ و ۱۶: یو نہی دونوں حضرات نے فرمایا کہ مقابر میں پیشاب کرنے سے زندوں کی طرح مردے کو بھی ایذا ہوتی ہے۔ دیکھو قول ۳۸ و ۳۹۔

شاہد ۱۷: علامہ طحطاوی نے تقریر فرمائی کہ اموات کو جوتوں کی پچیل سے اذیت ہوتی ہے، دیکھو قول ۳۴۔

شاہد ۱۸ تا ۲۰: علامہ حلبی محشی دُر نے بھی اس تقریر یمین میں شریک ہیں اور احراق حیوانات بعد ذبح پر وہ شبہ فرمایا کہ میت کو ایذا ملے خارج سے درد پہنچنا ثابت ہے، سیدین اخیرین نے جواب دیا کہ یہ بنی آدم میں ہے، دیکھو تنبیہ زیر قول ۴۰۔

شاہد ۲۱: قول ۲۷ میں علامہ شامی کا امام شافعی رضی اللہ تعالیٰ عنہ سے وہ نقل فرمانا دیکھو کہ قبر حضرت امام اعظم رضی اللہ تعالیٰ عنہ کے حضور نماز میں بسم اللہ شریف آواز سے نہ پڑھی۔

شاہد ۲۲: قول ۶۴ میت کے سرہانے سے نہ آئے کہ اس کی نگاہ کو تکلیف ہوگی پائینتی سے آئے کہ میت کے پیش نظر ہو گا۔

شاہد ۲۳: تکمیل جلیل میں علامہ زیادی و داؤدی و اجہوری سے علامہ شامی کا وہ نقل کرنا دیکھو کہ کسی چیز کے ملنے کے لیے بلندی پر جاکر حضرت سیدی احمد بن علوان کو ندا کرے۔

شاہد ۲۴: علامہ طحطاوی نے حاشیہ مراقی الفلاح میں قبور پر سلام ذکر کر کے فرمایا: حدیث صحیح سے ثابت ہوتا ہے کہ جو شناسا قبر پر گزرتا اور سلام کرتا ہے مردہ اسے پہچانتا ہے اور جواب دیتا ہے۔

[چوکور خانے میں درج تحریر] عربی: حيث قال واخرج ابن عبدالبر في الاستذ كار والتمهيد بسند صحيح عن ابن عباس رضي الله تعالى عنهما قال قال رسول الله صلى الله تعالى اردو: ان کی عبارت یہ ہے: ابن عبدالبر نے استذکار اور تمہید میں بسند صحیح حضرت ابن عباس رضی اللہ تعالیٰ عنہما سے روایت کی، رسول اللہ صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم نے

Fatawa-e-Razviya Volume 9

(Prophet) peace and blessings be upon him said: Whoever passes by the grave of his believing brother whom he knew in the world and greets him, the occupant of the grave recognizes him and responds to his greeting. (1)

Witness 25: See their statement 82 that the dead hear the greetings of visitors, respond, and find comfort in them. Then he said: There is no specificity to martyrs in this, nor any time restriction. For God's sake, be just! These scholars who would deny the hearing of the soul, God forbid, God forbid! "But the Wahhabis are a people who transgress" (i.e., they exceed the limits). There are twenty-five witnesses, and twenty-five hundred are possible, but the scholars did not understand their own writings. Undoubtedly, they certainly believe in hearing, sight, knowledge, and understanding for the souls of the deceased, and they consider the dead body to be devoid of these qualities as long as it remains a corpse. This is exactly our creed and the meaning of the scholars' statements. Praise be to Allah, Lord of the worlds.

Argument 12: If this discourse of the noble masters is attributed to the soul, then overwhelming objections would arise from which escape is impossible. For example: Firstly, from Hadith 40 to 51, twelve "great and authentic traditions regarding the sound of footsteps and the well of Badr" provide a grand presentation and make the claim of time specificity for questioning in the grave or the specificity of the slain disbelievers of Badr void and without evidence, as you have heard. It is stated in Mirqat Sharh al-Mishkat:

"It is refuted by the fact that specificity is not valid without evidence, and evidence is missing here; rather, the question and answer contradict it." (2)

Secondly, even if there were specificity here, what would be the answer to the numerous traditions that generally and absolutely relate to the knowledge, hearing, sight, perception, and recognition of the dead? It is stated in Mirqat:

"Despite the fact that the traditions related to greeting the dead refute the restriction to the initial state of burial." (3)

1. Hashiya al-Tahtawi 'ala Maraqi al-Falah, Chapter on Visiting Graves, Nur Muhammad Karkhana Tijarat Kutub Karachi 1/341
2. Mirqat Sharh al-Mishkat, Chapter on the Ruling of Isra, Maktaba Imdadia Multan 8/11

3. Mirqat Sharh al-Mishkat, Chapter on the Ruling of Isra, Maktaba Imdadia Multan 8/11

फतावा-ए-रज़विया खंड 9

(पैगंबर) शांति और आशीर्वाद उन पर हो ने फरमाया: जो कोई अपने ऐसे मोमिन भाई की कब्र के पास से गुजरता है जिसे वह दुनिया में जानता था और उसे सलाम करता है, तो कब्र वाला उसे पहचानता है और उसके सलाम का जवाब देता है। (1)

साक्षी 25: उनका कथन 82 देखें कि मृतक आगंतुकों का सलाम सुनते हैं, उत्तर देते हैं और उनसे आत्मीयता पाते हैं। फिर फरमाया: इसमें न शहीदों की कोई विशेषता है, न किसी समय का बंधन। खुदा के लिए न्याय करें! ये विद्वान जो आत्मा के सुनने का खंडन करेंगे, अल्लाह बचाए, अल्लाह बचाए! "लेकिन वहाबी वे लोग हैं जो सीमा पार करते हैं" (यानी वे हद से आगे बढ़ जाते हैं)। पच्चीस साक्षी हैं और पच्चीस सौ संभव हैं, लेकिन विद्वान अपना ही लिखा हुआ नहीं समझ सके। निस्संदेह, वे निश्चित रूप से मृत आत्माओं के लिए सुनने, देखने, ज्ञान और समझ को मानते हैं, और वे मृत शरीर को इन गुणों से वंचित मानते हैं जब तक कि वह मृत रहे। यही हमारा पंथ है और विद्वानों के कथनों का अर्थ है। सारी प्रशंसा अल्लाह के लिए है, जो संसार का पालनहार है।

तर्क12: यदि महान गुरुओं के इस कथन को आत्मा पर लागू किया जाए, तो ऐसे कठिन आक्षेप उत्पन्न होंगे जिनसे बचना असंभव होगा। उदाहरण के लिए: पहला, हदीस 40 से 51 तक, बारह "कदमों की आहट और बद्र के कुएं से संबंधित महान और प्रामाणिक हदीसें" एक भव्य प्रस्तुति प्रदान करती हैं और कब्र में सवाल के समय की विशेषता या बद्र के मारे गए काफिरों की विशेषता के दावे को निराधार और बिना किसी प्रमाण के सिद्ध करती हैं, जैसा कि आपने सुना है। मिर्कात शरह अल-मिश्कात में कहा गया है:

"इसका खंडन इस तथ्य से होता है कि बिना किसी प्रमाण के विशेषता मान्य नहीं है, और प्रमाण यहाँ अनुपस्थित है; बल्कि सवाल और जवाब इसके विपरीत हैं।" (2)

दूसरा, यहाँ विशेषता मान भी ली जाए, तो उन अनेक हदीसों का क्या उत्तर होगा जो सामान्यतः और पूर्ण रूप से मृतकों के ज्ञान, सुनने, देखने, बोध और पहचान के बारे में आई हैं? मिर्कात में है:

"इसके बावजूद कि मृतकों को सलाम करने से संबंधित जो हदीसें आई हैं, वे दफन के शुरुआती समय तक की पाबंदी का खंडन करती हैं।" (3)

1. हाशिया अल-तहतावी अला मराकी अल-फलाह, कब्रों की यात्रा पर अध्याय, नूर मुहम्मद कारखाना तिजारत कुतुब कराची 1/341
2. मिर्कात शरह अल-मिश्कात, इसरा के नियम पर अध्याय, मकतबा इमदादिया मुल्तान 8/11
3. मिर्कात शरह अल-मिश्कात, इसरा के नियम पर अध्याय, मकतबा इमदादिया मुल्तान 8/11

فتاویٰ رضویہ جلد نہم

1. علیہ وسلم مامن احد یمر بقبر اخیہ المومن کان یعرفہ في الدنیا فیسلم علیہ الایعرفہ ورد علیہ السلام فرمایا: جو شخص بھی اپنے کسی ایسے مومن بھائی کی قبر سے گزرتا ہے جو اسے دنیا میں پہچانتا تھا اور اسے سلام کرتا ہے تو صاحبِ قبر اسے پہچانتا ہے اور اس کے سلام کا جواب دیتا ہے۔

شاہد ۲۵: انھیں کا قول ۸۲ دیکھو کہ اموات زائروں کا سلام سنتے، جواب دیتے، ان سے انس پاتے ہیں، پھر فرمایا: اس میں نہ شہیدوں کی خصوصیت، نہ کسی وقت کی قید، خدارا انصاف! یہ علماء سماع روح کے منکر ہونگے، حاش اللہ حاش للہ ، ولکن الوھابیۃ قوم یعتدون (مگر وہابیہ ایسے لوگ ہیں جو حد سے تجاوز کرتے ہیں،ت) پچیس شاہد ہیں اور پچیس سو ممکن مگر علماء اپنا لکھا خود نہ سمجھتے تھے لاجرم قطعاً یقیناً وہ ارواحِ موتیٰ کے لیے سمع و بصر و علم و فہم مانتے اور بدنِ مردہ کو جب تک مردہ رہے ان صفات سے معزول جانتے ہیں، یہی بعینہ ہمارا مذہب اور یہی عبارات علماء کا مطلب والحمد للہ رب العلمین۔

دلیل ۱۲: اگر یہ کلام مشائخِ کرام روح پر محمول ہو تو وہ اعتراضات قاہرہ وارد ہوں جن سے رہائی ناممکن الحصول ہو، مثلاً: اولاً حدیث ۴۰ سے ۵۱ تک انھیں بارہ "احادیث عظیمہ صحیحہ خفقِ نعال و قلیبِ بدر سے ایرادِ جلیل اور ادعائے تخصیص وقت سوالِ قبر یا خصوصیتِ کفارِ مقتولین بدر باطل وبے دلیل کما سمعت (جیسا کہ سن چکے۔ت) مرقات شرح مشکوۃ میں فرمایا

یردہ ان الاختصاص لا یصح الابدلیل وھو مفقود ھھنابل السوال والجواب ینافیانہ 2۔ اس کی تردید اس سے ہوتی ہے کہ خصوصیت بغیر کسی دلیل کے صحیح نہیں اور دلیل یہاں مفقود ہے بلکہ سوال وجواب تو اس کے منافی ہیں۔ (ت)

ثانیاً یہاں خصوصیت سہی اور جو احادیث کثیرہ عموماً و مطلقاً اموات کے علم و سمع و بصر و ادراک و معرفت میں وارد ہیں ان سے کیا جواب ہوگا، مرقاۃ میں ہے:

مع ان ماورد من السلام علی الموتی یرد علی التخصیص باول احوال الدفن 3۔ باوجودیکہ مُردوں پر سلام کے بارے میں جو احادیث وارد ہیں وہ اول وقت دفن سے تخصیص کی تردید کرتی ہیں۔ (ت)

1 حاشیۃ الطحاوی علی مراقی الفلاح فصل فی زیارہ القبور ر نور محمد کار خانہ تجارت کتب کراچی ۱/۳۴۱ 2 مرقاۃ شرح مشکوۃ باب حکم الاسراء مکتبہ امدادیہ ملتان ۸/۱۱ 3 مرقاۃ شرح مشکوۃ باب حکم الاسراء مکتبہ امدادیہ ملتان ۸/۱۱

Fatawa Rizvia Volume 9

Thirdly, very well, when you yourself are a proponent of hearing at the beginning of burial, to the extent that the author of 'Tafheem-ul-Masail'—a speaker who does not understand and one who does not understand—also confesses and says: 'At the time of questioning and answering, everyone is a proponent of hearing'[1] (his words are: at the time of questioning and answering, everyone believes in hearing, T). Why doesn't speaking to them at that time cause a breach of oath (hunth), since hearing and understanding are both present now, just as Imam Ibn al-Humam objected to those who deny instruction (talqeen):

"الا نه على هذا ينبغى التلقين بعد الموت لانه يكون حين ارجاع الروح[2]" | "Now on this basis, it is appropriate that instruction be given after death because it happens at the time of the return of the soul." (T)

These objections, based on the false assumption—namely, the denial of hearing by souls—invalidate and uproot this discourse of the elders from its core. Contrary to the true assumption, which is that the denial refers only to the hearing of the body, now nothing of this sort applies to them at all.

I say: and with Allah is the guidance (I say and guidance is from Allah Almighty, T). The discourse of the great elders is that the basis of faith is on common usage (urf), and common addresses relate to the body, but speech without hearing and understanding is inconceivable. Necessarily, this category is restricted to the state of life, and the empty body is dismissed and abandoned, for after the separation of the soul, the body is dead and its senses and perceptions are void and cold. Although the punishment of the grave is on both soul and body, the body is given a kind of fresh life to the extent of the pain. But death is contrary to such perception and cognition; then the permanence of this life is also not necessary. Many hadiths that speak of the hearing, seeing, understanding, perception, and recognition of the dead are necessarily true. They refer to the souls of the dead, for perception is truly the work of the soul, and it does not die, nor does it change with the death of the body. However, hadiths about the sound of footsteps (khafq-e-na'al) certainly indicate physical hearing, regardless of the fact that the word 'mayyit' (dead) truly refers to the body. In them, it was clearly stated: "When he is placed in his grave" (T), and being placed in a grave is a characteristic of the body only. But even this, due to the aforementioned reason, does not affect us. It is not written in the manuscript that life is returned to the body at that time for the purpose of questioning, so hearing is

established for the living, not for the dead. And although the hadiths of the well (Qaleeb) are separate from the life returned for questioning—for first there is debate about whether a manifest disbeliever is questioned. Imam Abu Umar ibn Abd al-Barr said: The questioning will be either of a believer or a hypocrite who outwardly became a Muslim, contrary to the manifest disbeliever from whom there is no questioning. The great Imam Jalal al-Suyuti said: "هو الارجح ولا اقول سواه[3] نقله في ردالمحتار" (This is most correct and I am not a proponent of anything else. Ah, he quoted it in Radd al-Muhtar, T). Supporting this in 'Sharh al-Sudur'...

[1] Tafheem-ul-Masail, Adam Sama' Mauta from books of Hanafiyyah, Muhammadi Press, Lahore, p. 81 [2] Fath al-Qadir, Chapter on Funerals, Maktaba Nooria Rizvia, Sukkur, 2/69 [3] Radd al-Muhtar, Salat al-Janaiz, Mustafa al-Babi, Egypt, 1/229

फ़तावा रिज़विया जिल्द 9

तीसरा, बहुत अच्छा, जब आप खुद दफ़न की शुरुआत में सुनने के कायल हैं, यहाँ तक कि 'तफ़हीमुल मसाइल' के लेखक—वह वक्ता जो समझता नहीं और जिसे समझाया नहीं जा सकता—भी इसे स्वीकार करते हैं और कहते हैं: 'सवाल और जवाब के समय सभी सुनने के कायल हैं'[1] (उनके शब्द ये हैं: सवाल और जवाब के समय सभी सुनने के कायल हैं, त)। उस समय बात करने से शपथ भंग (हूँथ) क्यों नहीं होता, जबकि अब तो सुनना और समझना सब कुछ हासिल है, जिस तरह इमाम इब्न अल-हुमाम ने उन पर आपत्ति जताई जो निर्देश (तल्कीन) का इनकार करते हैं:

"[2]الا نه على هذا ينبغى التلقين بعد الموت لانه يكون حين ارجاع الروح" | "अब इस आधार पर, मृत्यु के बाद तल्कीन होनी चाहिए क्योंकि यह रूह (आत्मा) की वापसी के समय होती है।" (त)

ये आपत्तियाँ उस झूठी धारणा पर—यानी आत्माओं के सुनने के इनकार पर—बुजुर्गों की इस बातचीत को जड़ से मिटा देती हैं। इसके विपरीत सच्ची धारणा यह है कि इनकार का मतलब केवल शरीर के सुनने से है, अब इन पर मूल रूप से ऐसा कुछ लागू नहीं होता।

मैं कहता हूँ: और अल्लाह की ही तौफ़ीक़ (सहायता) है (मैं कहता हूँ और तौफ़ीक़ अल्लाह तआला से है, त)। महान बुजुर्गों की बात की व्याख्या यह है कि ईमान की बुनियाद 'उर्फ (सामान्य समझ) पर है और सामान्य संबोधन शरीर से संबंधित होते हैं, लेकिन बिना सुनने और समझने के बातचीत की कल्पना नहीं की जा सकती। अनिवार्य रूप से यह श्रेणी जीवन की स्थिति तक सीमित है और खाली शरीर बर्खास्त और त्याग दिया गया है, क्योंकि रूह के अलग होने के बाद शरीर मृत है और उसकी इंद्रियां और संवेदनाएं बेकार और ठंडी हैं। हालांकि कब्र का अज़ाब (दंड) रूह और शरीर दोनों पर है, लेकिन शरीर को दर्द महसूस करने के लिए एक प्रकार का ताज़ा जीवन दिया जाता है। लेकिन मृत्यु ऐसी संवेदना और बोध के विपरीत है; फिर इस जीवन का बने रहना भी आवश्यक नहीं है। कई हदीसें जो मुर्दों के सुनने, देखने, समझने, बोध और पहचान के बारे में बताती हैं, वे निश्चित रूप से सत्य हैं। उनमें मुराद (तात्पर्य) मुर्दों की रूहें हैं क्योंकि बोध वास्तव में रूह का ही काम है और उसे मौत नहीं आती, न ही शरीर की मौत से उसमें बदलाव आता है। अलबत्ता, जूतों की आहट (खफ़्क-ए-ना'ल) की हदीसें शरीर के सुनने के बारे में बताती हैं, इस बात को छोड़ते हुए कि शब्द 'मैयत' (मृत) वास्तव में शरीर के लिए है। उनमें स्पष्ट रूप से कहा गया: "जब उसे उसकी कब्र में रखा जाता है" (त), और कब्र में रखा जाना शरीर की ही विशेषता है। लेकिन यह भी, उपर्युक्त कारण से, हम पर

लागू नहीं होता। नुस्खे में यह नहीं लिखा है कि उस समय सवाल के उद्देश्य से शरीर में जीवन लौटाया जाता है, तो सुनना जीवित के लिए सिद्ध हुआ न कि मुर्दे के लिए। और 'कलीब' की हदीसें हालाँकि सवाल के लिए लौटाई गई ज़िंदगी से अलग हैं—क्योंकि पहले तो एक प्रकट काफिर से सवाल होने में विवाद है। इमाम अबू उमर इब्न अब्दुल बर्र ने फ़रमाया: सवाल या तो मोमिन से होगा या मुनाफ़िक से जो ज़ाहिर में मुसलमान बनता था, इसके विपरीत प्रकट काफिर से सवाल नहीं होगा। महान इमाम जलालुद्दीन सुयूती ने फ़रमाया: "هو الارجح ولا اقول سواه[3] نقله في ردالمحتار" (यही सबसे सही है और मैं इसके अलावा किसी और चीज़ का कायल नहीं हूँ, इसे रद अल-मुहतार में उद्धृत किया गया, त)। 'शरह अल-सुदूर' में इसका समर्थन करते हुए...

[1] तफ़हीमुल मसाइल, अदम समाअ मौता, हनफ़िया की किताबों से, मतबा मोहम्मदी, लाहौर, पृष्ठ 81
[2] फ़तह अल-क़दीर, बाबुल जनाइज़, मकतबा नूरया रिज़विया, सुक्कुर, 2/69 [3] रद अल-मुहतार, सलातुल जनाइज़, मुस्तफ़ा अल-बाबी, मिस्र, 1/229

पृष्ठ 896/948

ثالثاً بہت اچھا، جب ابتدائے دفن میں تم خود سماع کے قائل، یہاں تک کہ کلام لا یعقل متکلم لا یعقل یعنی تفہیم المسائل بھی معترف وقائل، حیث قال در وقت سوال و جواب ہمہ قائل سماع اند 1 (اس کے الفاظ یہ ہیں: سوال وجواب کے وقت سبھی سماعت کے قائل ہیں، ت) اس وقت کلام کرنے سے کیوں حنث نہیں ہوتا کہ اب تو سمع و فہم سب کچھ حاصل، جس طرح انھیں امام ابن الہمام نے دوبارہ تلقین منکرین پر اعتراض کیا کہ :

الا نہ علی ھذا ینبغی التلقین بعد الموت لانہ یکون حین ارجاع الروح 2 | مگر اس بنیاد پر تو بعد موت تلقین ہونی چاہئے اس لیے کہ وہ اعادہ روح کے وقت ہوتی ہے۔ (ت)

یہ اعتراضات اس تقدیر باطل یعنی انکار سماع ارواح پر اصل سے اس کلام مشائخ کو باطل واز بیخ کندہ کرتے ہیں۔ بخلاف اس تقدیر حق کے کہ صرف سماع جسم سے انکار مراد ہے، اب ان میں اصلاً کچھ وارد نہیں ہوتا۔

فاقول: وباللہ التوفیق (میں کہتا ہوں اور توفیق اللہ تعالٰی سے ہے۔ت) تقریر کلام مشائخ اعلام یہ ہے کہ بنائے ایمان عرف پر ہے اور خطابات عرفیہ متعلق بدن مگر کلام بے سمع و فہم نامتصور، لاجرم یہ قسم حالت حیات پر مقصور اور جسم خالی معزول و مہجور کہ بعد فراق روح بدن مردہ ہے اور اس کے حواس و مشاعر باطل وافسردہ، عذاب قبر اگرچہ روح وبدن دونوں پر ہے مگر اس کے لیے بدن کو ایک نوع حیات تازہ بقدر الم دی جاتی ہے مگر موت تو اس قدر احساس و ادراک کے منافی ہے پھر اس حیات کا استمرار بھی ضرور نہیں، احادیث کثیرہ کہ سمع وبصرہ فہم و ادراک و معرفت اموات پر ناطق ہے ضرور صادق ہیں۔ ان میں مراد ارواح موتی ہیں کہ ادراک

حقیقتاً روح ہی کا کام ہے اور اسے موت نہیں، نہ موت بدن سے میں تغیر آئے، البتہ احادیث خفق نعال ضرور سمع جسمانی بتاتی ہیں، قطع نظر اس سے کہ لفظ میت بدن میں حقیقت، ان میں صراحۃً اذا وضع فی قبرہ (جب وہ قبر میں رکھا جاتا ہے۔ت) ارشاد ہوا، اور قبر میں رکھا جانا بدن ہی کی شان ہے مگر یہ بھی بوجہ مذکور ہم پر وارد نہیں نسخہ میں تحریر نہیں کہ اس وقت بغرض سوال بدن کی طرف اعادہ حیات ہوتا ہے تو سماع حی کے لیے ثابت ہوا نہ کہ میت کے لیے، اور احادیث قلیب اگر چہ حیات معاد ہ لسوال سے جدا ہیں کہ اول تو کافر مجاہر سے سوال ہونے میں کلام ہے۔ امام ابو عمر ابن عبد البر نے فرمایا: سوال یا مومن سے ہوگا یا منافق سے کہ بظاہر مسلمان بنتا تھا بخلاف کافر ظاہر کہ اس سے سوال نہیں، امام جلیل جلال سیوطی نے فرمایا: ھو الارجح ولا اقول سواہ 3 نقلہ في ردالمحتار (یہی ارجح ہے اور میں اس کے سوا کا قائل نہیں اھ اسے رد المحتار میں نقل کیا۔ ت) شرح الصدور میں اس کی تائید کرکے

1 تفہیم المسائل عدم سماع موتی از کتب حنفیہ مطبع محمدی لاہور ص ۸۱ 2 فتح القدیر باب الجنائز مکتبہ نوریہ رضویہ سکھر ۲/۶۹ 3 رد المحتار صلوٰۃ الجنائز مصطفی البابی مصر ۱/۲۲۹

Fatawa Razawiyya Volume 9

He states: "And in the Hadith of Abu Hurairah (may Allah be pleased with him) narrated by Tabarani, with the words of Hammad and Abu Umar Al-Darir, there is an explicit mention of this in the narration from Abu Hurairah (may Allah be pleased with him)." (T) And even if we accept the questioning, its timing is at the beginning of the placement and burial. Here, the Holy Prophet (may Allah's peace and blessings be upon him) addressed those impure corpses three days after that foul well was filled. This is mentioned in Sahih Muslim narration 48 and in Sahih Bukhari Sharif:

Narrated by Abu Talha (may Allah be pleased with him): On the day of Badr, the Prophet (may Allah's peace and blessings be upon him) ordered twenty-four of the prominent men of the Quraish to be thrown into a foul, filthy well among the wells of Badr. It was the Prophet's custom that whenever he conquered a people, he would stay on the battlefield for three days. On the third day of Badr, he ordered his mount to be saddled. Then he set out, followed by his companions, who thought he was going for some task. When he reached the edge of the well, he began calling them by their names and their fathers' names, saying: "O son of so-and-so, and O son of so-and-so! Would it have pleased you if you had obeyed Allah and His Messenger? For we have found true what our Lord promised us; have you found true what your Lord promised you?" 'Umar (may Allah be pleased with him) said: "O Messenger of Allah! Why are you speaking to bodies that have no souls?" The Messenger of Allah (may Allah's peace and blessings be upon him) replied...

1. Sharh as-Sudur, chapter on its benefits, Khilafat Academy Swat, p. 59 Page 897 of 948

फ़तावा रज़विया खंड 9

फ़रमाते हैं: "और हज़रत अबू हुरैरा (रज़ियल्लाहु अन्हु) की हदीस में जो तबरानी के पास हम्माद और अबू उमर अल-दरार के शब्दों के साथ है, इसमें हज़रत अबू हुरैरा (रज़ियल्लाहु अन्हु) के कथन में इसका स्पष्ट उल्लेख है।" (त) और अगर सवाल मान भी लिया जाए, तो उसका समय शुरू में रखे जाने और दफनाने के समय होता है। यहाँ हुज़ूर अकदस (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) उन नापाक लाशों से उस गंदे कुएँ के पटने के तीन दिन बाद वहां तशरीफ़ ले जाकर मुखातिब हुए थे। यह सही मुस्लिम की हदीस संख्या 48 में गुज़री और सही बुखारी शरीफ़ में है:

हज़रत अबू तल्हा (रज़ियल्लाहु अन्हु) से रिवायत है कि नबी (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने बदर के दिन कुरैश के चौबीस प्रमुख व्यक्तियों को बदर के कुओं में से एक गंदे और अपवित्र कुएं में फिंकवा दिया। हुज़ूर का तरीका यह था कि जब वह किसी कौम पर विजयी होते, तो मैदान में तीन दिन तक रुकते थे। जब बदर का तीसरा दिन हुआ, तो सवारी मुबारक पर कजावा कसवाया, फिर चले। सहाबा उनके साथ हो लिए और उन्होंने सोचा कि आप शायद अपने किसी काम से जा रहे हैं। यहाँ तक कि आप कुएँ के किनारे पर रुककर उनका और उनके पूर्वजों का नाम ले-लेकर "ऐ फुलां बिन फुलां और ऐ फुलां बिन फुलां" कहकर पुकारने लगे। फ़रमाया: "क्या इससे तुम्हें खुशी होती कि तुमने अल्लाह और उसके रसूल के हुक्म को माना होता? हमने तो वह सच पाया जिसका हमारे रब ने हमसे वादा किया था; क्या तुमने उसे सच पाया जिसका तुम्हारे रब ने तुमसे वादा किया था?" हज़रत उमर (रज़ियल्लाहु अन्हु) ने अर्ज़ किया: "ऐ अल्लाह के रसूल! क्या आप उन जिस्मों से बात कर रहे हैं जिनमें रूहें नहीं हैं?" अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने फ़रमाया...

1. शरह अस-सुदूर, अध्याय इसके लाभ, खिलाफ़त एकेडमी स्वात, पृष्ठ 59 पेज 897 ऑफ़ 948

فتاوٰی رضویہ جلد نہم

فرماتے ہیں: وفي حديث ابی هريرة رضی الله تعالی عنه عند الطبرانی | طبرانی کے یہاں بالفاظ حماد وابوعمر ضریر جو حدیث ابوہریرہ من قول حماد وابی عمر الضریر ما یصرح بذلك -1 | رضی اللہ تعالٰی عنہ ہے اس میں اس کی تصریح ہے۔ (ت) اور اگر سوال ماننے بھی تو اس کا وقت ابتدائے وضع و دفن ہے یہاں حضور اقدس صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم ان ناپاک لاشوں سے وہ گندہ کنواں پٹ جانے کے تین دن بعد وہاں تشریف لے جا کر مخاطب ہوئے تھے، صحیح مسلم کی روایت حدیث ۴۸ میں گزری اور صحیح بخاری شریف میں ہے :

عن ابي طلحة رضی الله تعالی عنه ان النبی صلی الله تعالی علیه وسلم امر یوم بدر باربعة وعشرین رجلا من صنادید قریش فقذ فوافی طوی من اطواء بدر خبیث مخبث وکان اذا ظهر علی قوم اقام بالعرصة ثلث لیال فلما کان ببد رالیوم الثالث امر براحلته فشد علیها رحلها ثم مشی وتبعه اصحابه وقالوا مانری ینطلق الا لبعض حاجته حتی قام علی شفة الرکی فجعل ینادیهم باسمائهم واسماء ابائهم یا فلان بن فلان ویا فلان بن فلان ایسرکم انکم اطعتم الله ورسوله فانا قد وجد نا ماوعدنا ربنا حقا فهل وجدتم ماوعد ربکم حقا قال فقال عمر رضی الله تعالی عنه یا رسول الله ماتکلم من اجساد لا ارواح لها فقال رسول الله صلی الله تعالی

حضرت ابوطلحہ رضی اللہ تعالٰی عنہ سے مروی ہے کہ نبی صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم نے روز بدر قریش کے چوبیس سربرآوردہ اشخاص کو بدر کے کنوؤں میں ایک گندے پلید کنویں میں پھنکوا دیا ، حضور کا طریقہ یہ تھا کہ جب کسی قوم پر فتحیاب ہوتے تو میدان میں تین دن قیام فرماتے، جب بدر کا تیسرا دن تھا تو سواری مبارک پر کجاوہ کسوایا، پھر چلے، صحابہ نے ہمر کابی کی، اور کہا ہمارا یہی خیال ہے کہ اپنے کسی کام سے تشریف لے جارہے ہیں، یہاں تک کہ کنویں کے

سرے پر ٹھہر کران کا اور ان کے آباء کا نام لے لے کر اے فلاں بن فلان اور اے فلاں بن فلاں کہہ کر پکارنے لگے، فرمایا "کیا اس سے تمھیں خوشی ہوتی کہ اللہ اور اس کے رسول کا حکم تم نے مانا ہوتا، ہم نے تو حق پایا وہ جس کا ہمارے رب نے ہم سے وعدہ فرمایا تھا، کیا تم نے اس کو ثابت پایا جو تمھارے رب نے تم سے وعدہ کیا تھا "حضرت عمر رضی اللہ تعالیٰ عنہ نے عرض کیا: یارسول اللہ ! کیا آپ ان جسموں سے

1 شرح الصدور فصل فیہ فوائد خلافت اکیڈمی سوات ص ۵۹ Page 897 of 948

Fatawa Razawiyya Volume 9

[Upon him be peace and blessings] “And by the One in whose hand is the soul of Muhammad, you are not better hearers of what I say than them.” Qatadah said: Allah brought them back to life so that He could make them hear his words as a rebuke, belittlement, punishment, regret, and remorse.[1]

...are you speaking to those who have no life in them? The Messenger of Allah (may Allah send peace and blessings upon him) said: “By the One in whose hand of power is the soul of Muhammad, you do not hear my words more than they do.” Hazrat Qatadah says: Allah Almighty gave them life for their rebuke, humiliation, trouble, regret, and remorse, and made them hear the words of the Prophet. (T)

And the mentioned Hadith is a clear text that those disbelievers heard with their physical ears, as the Commander of the Faithful Farooq al-Azam (may Allah be pleased with him) submitted: "O Prophet, are you speaking to these bodies that have no souls?" In response to this, it was stated: "By God, you do not hear more than they do." Thus, it is clearly proven that physical hearing occurred. However, since the separation of the soul from the body is certainly known and hearing in an empty body without the return of life is absolutely non-existent, there is no choice but to believe in the return of life for those disbelievers after three days. And it is obvious that this is not a general occurrence; it happened specifically by the miracle of the Noble Prophet (may Allah send peace and blessings upon him) for those accursed ones to increase their regret, remorse, torment, and pain, as the combined experience of soul and body is more severe and harsher than the perception of the soul alone. Therefore, Qatadah said: Allah Almighty caused their life to return and made them hear for their regret, rebuke, and humiliation. In short, the Hadiths which are clear texts regarding physical hearing, the specification of time or certain deceased individuals is a clear path, and those that are not so are fundamentally not applicable because the hearing of the soul is itself proven and evident. By the grace of Allah, it has become clear from here that the incoherent confusion of the author of "Tafheem al-Masa'il" is that:

“Although the basis of an oath is on common usage (urf), the purpose of the jurists (fuqaha) in denying hearing in this context is the denial of both customary (urfi) and actual (haqiqi) hearing. This is because the jurists denied hearing in an absolute sense, not restricted by custom. If the purpose was to deny only customary hearing and not actual hearing, there would have been no need to answer the issue of the

punishment of the grave and to justify other circumstances and events indicating the hearing of the dead."[2] (T)

[1] Sahih Bukhari, Chapter: Killing of Abu Jahl, Qadimi Kutub Khana Karachi, 2/566. [2] Tafheem al-Masa'il, Non-hearing of the dead from Hanafi books, Matba Mohammadi Lahore, p. 83.

फतवा रज़विया खंड 9

[उन पर शांति और आशीर्वाद हो] "और उस सत्ता की कसम जिसके हाथ में मुहम्मद की जान है, तुम मेरी बात उनसे ज्यादा नहीं सुनते।" कतादा ने कहा: अल्लाह ने उन्हें फिर से जीवित कर दिया ताकि वह उन्हें अपनी बात सुना सके, जो उनके लिए फटकार, तुच्छता, सजा, अफसोस और पछतावे के रूप में हो।[1]

... क्या आप उन लोगों से बात कर रहे हैं जिनमें जान नहीं है? अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने फरमाया: "उस जात की कसम जिसके कुदरत के हाथ में मुहम्मद की जान है, तुम मेरी बात उनसे ज्यादा नहीं सुनते।" हज़रत कतादा फरमाते हैं: अल्लाह तआला ने उनकी फटकार, अपमान, कष्ट, पछतावा और ग्लानि के लिए उन्हें जीवन दिया और हुज़ूर का कलाम सुनाया। (त)

और उल्लिखित हदीस एक स्पष्ट प्रमाण (नस्स) है कि उन काफिरों ने शारीरिक कानों से ही सुना, क्योंकि अमीरुल मोमिनीन फारूक-ए-आज़म (रज़िअल्लाहु अन्हु) ने अर्ज़ किया: "हुज़ूर, आप उन शरीरों से क्या कलाम फरमा रहे हैं जिनमें रूह नहीं?" इसी के जवाब में इरशाद हुआ: "खुदा की कसम तुम उनसे ज़्यादा नहीं सुनते।" तो साफ साबित हुआ कि जिस्मानी सुनना (समाअ-ए-जिस्मानी) ही हुआ। लेकिन चूंकि रूह का जिस्म से अलग होना यकीनन मालूम है और जीवन की वापसी के बिना खाली जिस्म में सुनना बिल्कुल संभव नहीं है, तो उन काफिरों के लिए तीन दिन बाद फिर से जीवन की वापसी मानने के अलावा कोई चारा नहीं है। और यह स्पष्ट है कि यह बात सामान्य नहीं होती, विवश होकर विशेष रूप से हुज़ूर अकदस (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) के चमत्कार से उन धिक्कारे हुओं के लिए पछतावा, ग्लानि, अज़ाब और पीड़ा बढ़ाने के लिए ऐसा हुआ, क्योंकि रूह और बदन दोनों का साझा अनुभव अकेले रूह के बोध से कहीं अधिक कठोर और सख्त होता है। इसलिए कतादा ने कहा: अल्लाह तआला ने उनके पछतावे, फटकार और अपमान के लिए जीवन लौटाया और सुनाया। संक्षेप में, जो हदीसें शारीरिक श्रवण में स्पष्ट प्रमाण हैं, उनमें समय की विशेषता या कुछ मृतकों का मामला स्पष्ट है, और जो ऐसी नहीं हैं, वे सीधे तौर पर लागू नहीं होतीं क्योंकि रूह का सुनना तो स्वयं ही सिद्ध और स्पष्ट है। अल्लाह के फज़्ल से यहाँ से यह स्पष्ट हो गया कि 'तफहीमुल मसाइल' के लेखक का बेतुका भ्रम यह है कि:

"यद्यपि शपथ (कसम) की बुनियाद लोक-प्रथा (उर्फ़) पर है, लेकिन यहाँ सुनने के इनकार से फकीहों (धर्मशास्त्रियों) का उद्देश्य 'उर्फी' और 'हकीकी' (वास्तविक) दोनों तरह के सुनने का इनकार है,

क्योंकि फकीहों ने सुनने का इनकार पूर्ण (मुतलक) रूप से किया है, उर्फ की शर्त लगाकर नहीं। अगर वास्तविक नहीं बल्कि केवल 'उर्फी' श्रवण का इनकार करना उद्देश्य होता, तो कब्र के अज़ाब के मसले का जवाब देने और मुर्दों के सुनने पर संकेत करने वाले अन्य हालात और घटनाओं की व्याख्या करने की आवश्यकता नहीं होती।"[2] (त)

[1] सहीह बुखारी, अध्याय: अबू जहल का कत्ल, कदीमी कुतुब खाना कराची, 2/566 [2] तफहीमुल मसाइल, मुर्दों का न सुनना, हनफी किताबों से, मतबा मोहम्मदी लाहौर, पृष्ठ 83

पृष्ठ 948 का 898

فتاوٰی رضویہ جلد نہم

علیہ وسلم والذی نفس محمد بیدہ ما انتم باسمع لما اقول منھم قال قتادۃ احیاہم اللہ حتی اسمعہم قولہ توبیخاً وتصغیراونقمۃ وحسرۃاً وندماً-1

کلام فرما رہے ہیں جن میں جان نہیں؟ رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم نے فرمایا: اس ذات کی قسم جس کے دست قدرت میں محمد کی جان ہے میری بات تم ان سے زیادہ نہیں سنتے، حضرت قتادہ فرماتے ہیں: اللہ تعالٰی نے ان کی توبیخ، تذلیل، کلفت، حسرت اور ندامت کے لیے انھیں حیات دے کر حضور کا کلام سنوایا۔ (ت)

اور حدیث مذکور نص صریح ہے کہ ان کافروں نے گوش بدن ہی سے سنا کہ امیر المومنین فاروق اعظم رضی اللہ تعالٰی عنہ نے عرض کی: حضور کیا کلام فرماتے ہیں ان بدنوں سے جن میں روح نہیں، اسی کے جواب میں ارشاد ہوا کہ خدا کی قسم تم ان سے زیادہ نہیں سنتے، تو صاف ثابت ہوا کہ سماع جسمانی ہی واقع ہوا مگر جبکہ روح کا جسم سے فراق یقیناً معلوم اور بے عود حیات سماع جسم خالی قطعاً معدوم، تو ان کافروں کے لیے تین دن بعد پھر عود زندگی ماننے سے چارہ نہیں، اور پر ظاہر کہ یہ امر عموماً نہیں ہوتا، ناچار بالخصوص حضور اقدس صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم کے اعجاز سے ان ملاعنہ کو زیادت حسرت وندامت وعذاب واذیت ہونے کے لیے واقع ہوا کہ روح وبدن دونوں کا اشتراک تنہا روح کے ادراک سے اشد وسخت تر ہے، لہذا قتادہ نے کہا: اللہ تعالٰی نے ان کی حسرت و توبیخ و تذلیل کے لیے اعادہ حیات فرما کر سنوایا، بالجملہ جو احادیث سماع جسمانی میں نص ہیں ان میں تخصیص وقت یا بعض اموات خود سبیل واضح ہے اور جو ایسی نہیں وہ راساً غیر وارد کہ سماع روح تو آپ ہی خود ثابت ولائح ہے۔ بحمد اللہ یہاں سے روشن ہوا کہ صاحب تفہیم المسائل کا خبط بے ربط کہ:

ہر چند مبنی ایمان بر عرف است مگر مقصود فقہاء از نفی سماع دریں مقام نفی سماع عرفی و حقیقی ہر دوست زیرا کہ فقہا نفی سماع مطلق کردہ اند نہ بتقید عرف واگر نفی صرف سماع عرفی نہ حقیقی مقصود مے بود حاجت جواب دادن از مسئلہ عذاب قبر و توجیہ کردن دیگر و قائل کہ بر سماع موتیٰ دال ست نبود 2۔

ہر چند کہ قسم کی بنیاد عرف پر ہے مگر یہاں سماع کی نفی سے فقہاء کا مقصود عرفی و حقیقی دونوں سماع کی نفی ہے، اس لیے کہ فقہاء نے سماع کی نفی مطلق کی ہے عرف کی قید لگا کر نہیں، اگر حقیقی نہیں صرف عرف سماع کی نفی مقصود ہوتی تو مسئلہ عذاب قبر کا جواب دینے اور سماع موتیٰ پر دلالت کرنے والے دوسرے حالات و واقعات کی توجیہ کرنے کی ضرورت نہ تھی۔ (ت)

1 صحیح بخاری باب قتل ابی جہل قدیمی کتب خانہ کراچی ۲/۵۶۶ 2 تفہیم المسائل عدم سماع موتی از کتب حنفیہ مطبع محمدی لاہور ص ۸۳

Fatawa Rizvia, Volume 9

Is this 'explaining words in a way the speaker would not approve'? (What is this? Such an interpretation of the speaker's words with which the speaker is not satisfied. -T) It is purely a manifest misunderstanding and ignorance.

I say: (I say. -T) Firstly, there is no difference here between the common ('Urfi) and the literal (Haqiqi) meaning. It has been clarified above that the perception of sounds through physical organs is the literal linguistic reality and this is what is commonly known. As for the meaning attributed to the soul in a disembodied state when 'hearing' is mentioned, that is what the Divine Presence intends; was there even a possibility in the context of the oath that the general negation would include them?

Secondly: The interpretations the venerable masters provided for certain events pointed towards physical hearing. There was a need for their interpretation; taking that as a denial of spiritual hearing is just your wishful thinking.

Thirdly: You gave the same interpretation for the punishment of the grave; a person of sense has the ability to distinguish between beneficial and harmful, but it is necessary for you to oppose the correction of issues.

What plunged you, O deluded one, into danger Until you perished; would that the ant had not flown.

(O deluded one! What plunged you into danger until you reached destruction; alas! if only the ant had never flown. -T)

A wise person would also see what that interpretation was and whether it implies speech within the soul or conversation within the physical body is manifest. Not much time has passed since the seventh proof; please observe it and give credit to the sickly understanding of the 'Author of Understanding' (Sahib-e-Tafheem).

Fourthly: I wish time had given respite to that self-styled, unseeing, and unhearing 'Author of Understanding' who died before this writing, so that he could have seen with his eyes and heard with his ears our eleventh proof and its twenty-five supporting evidences; then it would have been clear who committed 'interpreting the speech in a way not approved by the speaker'. Anyway, this was a parenthetical statement. Now, as for why there is no breach of oath (Hunth) during a Muslim's hearing at the beginning of burial; I say, yes, why not? Because this oath required the life of the addressee and was not related to the essence of the soul. If it were related

to it, then since its life and perceptions are continuous, there would surely be a breach of oath.

| Although an accident ('Aradh) does not last for two moments, as long as it continues through the renewal of likes (tajaddud al-amthal), it is considered a single thing by the consensus of language, custom, and law. | Because although an accident does not remain for two durations, if it is continuous due to the renewal of likes, it is counted as one single thing by the agreement of language, custom, and law. (T) |

Unlike the body, whose previous life had ceased and it received a new life at that time, and that is different from the first life; so for whichever life...

फतावा रज़विया, जिल्द नवीं

क्या यह 'वक्ता के शब्दों की ऐसी व्याख्या है जिससे वह स्वयं संतुष्ट न हो'? (यह क्या है? वक्ता के कलाम की ऐसी व्याख्या जिससे वक्ता राज़ी न हो। -त) यह पूरी तरह से स्पष्ट नासमझी और अज्ञानता है।

मैं कहता हूँ: (मैं कहता हूँ। -त) पहली बात तो यह कि यहाँ प्रथागत (उर्फी) और वास्तविक (हक़ीक़ी) में कोई अंतर नहीं है। ऊपर स्पष्ट हो चुका है कि शारीरिक अंगों के माध्यम से ध्वनियों का बोध ही भाषाई वास्तविकता है और यही प्रचलित है। और वह अर्थ जो आत्मा को अलग होने के समय 'सुनने' के लिए दिया गया, वे ईश्वरीय सत्ता के उद्देश्य हैं; शपथ के संदर्भ में इसकी क्या संभावना थी कि सामान्य निषेध उनमें शामिल हो?

दूसरा: प्रतिष्ठित बुज़ुर्गों ने जिन घटनाओं की व्याख्या की, वे शारीरिक सुनने की ओर संकेत करती थीं। उनकी व्याख्या की आवश्यकता थी; उससे आत्मा के सुनने के इनकार को समझ लेना तुम्हारी खुशफहमी है।

तीसरा: आपने कब्र के अज़ाब की भी वही व्याख्या की; एक बुद्धिमान व्यक्ति में लाभकारी और हानिकारक के बीच अंतर करने की क्षमता होती है, लेकिन मसलों के सुधार का विरोध करना आपके लिए ज़रूरी है।

ओ भ्रमित! किस चीज़ ने तुझे खतरे में डाला यहाँ तक कि तू नष्ट हो गया; काश! चींटी उड़ती ही नहीं।

(ओ भ्रमित! किस चीज़ ने तुझे खतरे में डाला कि तू तबाही तक पहुँच गया, काश! चींटी ने कभी उड़ान न भरी होती। -त)

बुद्धिमान व्यक्ति यह भी देखेगा कि वह व्याख्या क्या थी और क्या उससे आत्मा में वाणी निकलती है या शरीर में बातचीत होना स्पष्ट है। सातवें प्रमाण को बीते अभी ज़्यादा समय नहीं हुआ है, उसे देखें और 'साहिब-ए-तफ़हीम' की कमज़ोर समझ की दाद दें।

चौथा: काश इस स्वयं-निर्मित जड़, अंधे और बहरे यानी इस लेखन से पहले मर जाने वाले 'तफ़हीम' लेखक को समय मोहलत देता ताकि वह हमारी ग्यारहवीं दलील और उसके पच्चीस प्रमाणों को अपनी आँखों से देखता और कानों से सुनता, तब खुलता कि 'वक्ता के शब्दों की ऐसी व्याख्या करना जिससे वह राज़ी न हो' (त) का अपराध किसने किया। खैर, यह तो एक अतिरिक्त वाक्य था। अब रही

यह बात कि जब दफ़न की शुरुआत में मुस्लिम का सुनना हो तो उस समय शपथ भंग (हुन्थ) क्यों नहीं होता? मैं कहता हूँ, हाँ क्यों नहीं, क्योंकि यह शपथ संबोधित की जीवन की मांग करती है और आत्मा की मूल सत्ता से संबंधित नहीं थी। यदि इसका उससे संबंध होता, तो चूँकि उसका जीवन और बोध निरंतर हैं, तो शपथ भंग अवश्य होता।

| यद्यपि एक गुण (अरज़) दो क्षणों तक नहीं रहता, लेकिन जब तक वह 'तजद्दुद-ए-अमसाल' (समानों के नवीनीकरण) के माध्यम से निरंतर है, भाषा, प्रथा और कानून की सहमति से उसे एक ही चीज़ माना जाता है। | क्योंकि गुण यद्यपि दो समयों तक शेष नहीं रहता, लेकिन यदि वह तजद्दुद-ए-अमसाल के कारण निरंतर हो, तो भाषा, प्रथा और कानून के इत्तिफ़ाक़ से वह एक ही चीज़ गिना जाता है। (त) |

शरीर के विपरीत, जिसका जीवन समाप्त हो चुका था और उसे उस समय नया जीवन मिला है, और वह पहले जीवन से भिन्न है; तो जिस जीवन के लिए...

पृष्ठ ८९९ / ९४८

فتاوٰی رضویہ، جلد نہم

فھل ھذا التوجیه بما لا یرضی به قائله (یہ کیا ہے؟ کلام قائل کی ایسی توجیہ جس سے قائل راضی نہیں۔ ت) محض ناہمی و جہل واضح ہے۔

فاقول: (میں کہتا ہوں۔ ت) اولاً یہاں عرفی و حقیقی متغائر نہیں۔ اوپر واضح ہو چکا کہ یہی ادراک اصوات بآلات جسمانیہ ہی حقیقت لغویہ اور یہی متعارف ہے، اور وہ معنی جو وقتِ اضافتِ سمع بروح مجرد دیا، بحضرت عزت مراد ہوتے ہیں، محل یمین میں ان کا احتمال ہی کیا تھا کہ اطلاق، نفی انہیں میں شامل ہو۔

ثانیاً: مشائخ کرام نے جن وقائع کی توجیہ فرمائی وہ سماع جسمانی پر دال تھے، ان کی توجیہ کی ضرورت حاجت تھی اس سے سماعِ روح کا انکار سمجھ لینا تمھاری خوش فہمی ہے۔

ثالثاً: توجیہ عذابِ قبر کی بھی ایک ہی کہی، ذی ہوش کو نافع و مضر میں تمیز تک کی لیاقت نہیں مگر تصحیح المسائل کے مقابل آنا ضروری۔

ماذا خاضك یا مغرور فی الخطر حتی ھلکت فلیت النمل لم تطر

(اے فریب خوردہ! کس چیز نے تجھے خطرے میں ڈالا کہ تو ہلاکت کو پہنچا، کاش! چونٹی پرواز ہی نہ کرتی۔ ت)

عقلمند یہ بھی دیکھا کہ وہ توجیہ کیا کی ہے اور اس سے روح میں کلام نکلتا ہے یا صاف بدن میں گفتگو ہونا منجلی ہے۔ دلیل ہفتم کو گزرے ابھی دیر نہ ہوئی اسے ملاحظہ کیجئے اور صاحبِ تفہیم کی فہم سقیم کی داد دیجئے۔

رابعاً: کاش اس بطور خویش جماد شونده نابینا و ناشنونده یعنی اس تحریر سے پہلے مر جانے والے تفہیم نگارنده کو زمانہ مہلت دیتا کہ ہمارے کلام میں دلیل یاز دہم اور اس کے پچیس شواہد کو آنکھوں دیکھا کانوں سنتا اس وقت کھلتا کہ توجیه القول بما لا یرضی به قائله (کلام قائل کی ایسی توجیہ جس سے قائل راضی نہیں۔ ت) کا ارتکاب کس نے کیا۔ خیر یہ تو جملہ معترضہ تھا، اب رہا یہ کہ جب ابتدائے دفن میں سماعِ مسلم تو اس وقت حنث کیوں نہیں، اقول ہاں کیوں نہیں کہ یہ یمین مقتضیٰ حیات مخاطب ہے اور نفسِ روح سے متعلق نہ تھی، اگر اس سے تعلق ہوتا تو اس کی حیات اور ادراکات تو مستمرہ ہیں ضرور حنث ہوتا۔

| فلان العرض وان کان لایبقی زمانین لکنه مادام مستمرا بتجدد الامثال یعد شیئا واحدا باطباق اللغة والعرف والشرع۔ | کیونکہ عرض اگرچہ دو زمانوں تک باقی نہ رہے لیکن وہ تجدد امثال کی وجہ سے مستمر ہو تو باتفاق لغت و عرف و شرع شیء واحد ہی شمار ہوتا ہے۔ (ت) |

بخلاف بدن کہ اس کی حیات زائل حیات جدیدہ اس وقت ملی ہے اور وہ حیات اولیٰ کی غیر ہے تو جس حیات

Fatawa Rizwia - Volume 9

...from which the oath was related has been severed and there is no room for perjury. Imam Ibn al-Humam says in the same 'Fath al-Qadir':

| Arabic: The returned life is other than the life upon which the oath was taken at its beginning and end, and that is the life existing at the time of the oath because that was an accident that vanished, which cannot be returned in its essence, even if the soul is returned, for life is other than the soul, because it is an essential matter for the soul in that which has a soul. | Urdu Translation: The life given again is besides that life in which the oath of permission and arrival was taken, and that life is the one that was established with that person at the time of taking the oath, because it is an accident that has ended, its exact repetition is not possible, even if the soul is returned, because life is a thing other than the soul, it is such a matter that is necessary for the soul in that thing for which there is a soul. (T) |

Great Warning: Praise be to Allah, just as it has become clear from this discourse that our noble elders, following authentic hadiths, consider these common illusions of veils and obstacles of bricks and mud of the grave as meaningless and unworthy of attention, as they believe that for the buried deceased, at the time of the return of the soul, the hearing of such faint external voices is established. Similarly, it also became apparent that only death was the obstacle to physical hearing here, and therefore, as soon as the body received a kind of life, the way for hearing voices opened. Thus, it is obvious that the soul, which by consensus is always living, continuous in its state, and unchanging, its hearing is habitually established, since the corrector (the soul) is present and the obstacle (death) is absent. Now it is clear that this discussion and speech of the noble elders was not only alien to the belief of the deniers, but by the grace of Allah Almighty, it is an explicit rebuttal of them. After this elegant research, ask the temperament of the author of 'Tafhim al-Masail' that your optimism and power of delusion that:

| Persian Text: It is written in Fath al-Qadir that the basis for prohibiting Talqin (instruction to the deceased) according to most scholars is based on the lack of hearing of the dead, and at the end it is said that a group of scholars regarding the hadith of Talqin have become proponents of reality for this reason that the time of Talqin is the place of the return of the soul for questioning and answering, and at this time the dead have hearing due to the return of the soul. So this group is also a denier of the hearing of the dead, and at the time of questioning and answering, all

are proponents of hearing. In this case, from the text of Fath al-Qadir, it becomes known that the doctrine of all jurists is denial... | Urdu Translation: It is written in Fath al-Qadir that according to most of our elders, the basis for the prohibition of Talqin is based on the lack of hearing of the dead, and at the end it is said that a group of elders became proponents of the truth in the hadith of Talqin because the time of Talqin is the occasion for the soul to be returned for questioning and answering, and at that time, due to the return of the soul, the dead have hearing. So this group is also a denier of the hearing of the dead, and at the time of questioning and answering, all are proponents of hearing. Thus, this [from] Fath al-Qadir... |

1. Fath al-Qadir, Chapter: The Oath in Speech, Maktaba Nooria Rizwia Sukkur 7/244

फ़तावा रिज़विया - जिल्द नहम (9)

...से यमीन (शपथ) मुताल्लिक थी मुन्क़ते (टूट) हो चुकी और हन्स (शपथ भंग) की गुंजाइश न रही, यही इमाम इब्न अल-हुमाम इसी 'फ़तह अल-क़दीर' में फ़रमाते हैं:

| अरबी: लौटाई गई ज़िन्दगी उस ज़िन्दगी के अलावा है जिस पर उसकी शुरुआत और अंत में शपथ ली गई थी, और वह वही ज़िन्दगी है जो शपथ के समय मौजूद थी क्योंकि वह एक अर्ज़ (अस्थायी गुण) थी जो मिट गई, जिसे हूबहू लौटाया नहीं जा सकता, और अगर रूह (आत्मा) लौटा भी दी जाए, तो भी ज़िन्दगी रूह के अलावा है क्योंकि यह रूह के लिए उस चीज़ में एक ज़रूरी मामला है जिसमें रूह होती है। | उर्दू अनुवाद: दोबारा दी जाने वाली ज़िन्दगी उस ज़िन्दगी के अलावा है जिसके अन्दर इजाज़त और आमद की क़सम खाई थी और वो ज़िन्दगी वो है जो क़सम खाने के वक़्त उस शख़्स के साथ क़ायम थी क्योंकि वो तो एक अर्ज़ है जो ख़त्म हो गया, ब-ऐन-ही (ठीक वैसा ही) उसका इआदा (लौटाना) मुमकिन नहीं, अगर चेह रूह का इआदा हो, इसलिए कि हयात रूह के अलावा एक शय (चीज़) है, वो एक ऐसा अम्र है जो रूह के लिए लाज़िम है उस शय में जिसके लिए रूह होती है। (त) |

तम्बीह-ए-जलील (बड़ी चेतावनी): अल्हम्दुलिल्लाह, जिस तरह इस तक़रीर से ये वाज़ेह हुआ कि हमारे मशाइख़-ए-किराम अहादीस-ए-सहीहा की पैरवी में इन आमियाना औहाम (सामान्य भ्रमों), पर्दे और क़ब्र की ईंट-मिट्टी की रुकावटों को मोह्मल (निरर्थक) और नाक़ाबिल-ए-इल्तिफ़ात (उपेक्षा के योग्य) जानते हैं कि दफ़्न किए गए मुर्दे के लिए रूह लौटाए जाने के वक़्त ऐसी दबी हुई बाहरी आवाज़ों का सुनना साबित मानते हैं, वैसे ही ये भी ज़ाहिर हुआ कि यहाँ जिस्मानी सुनने से रोकने वाली यही मौत थी, लिहाज़ा जिस वक़्त जिस्म को एक प्रकार की ज़िन्दगी मिली आवाज़ों के सुनने का रास्ता खुल गया, तो ज़ाहिर है कि रूह जो इज्मा (सहमति) के अनुसार हमेशा ज़िन्दा, निरंतर और अपरिवर्तनीय है, उसका सुनना आदतन क़ायम है कि सही करने वाला (रूह) मौजूद है और रोकने वाला (मौत) ग़ायब है। अब साफ़ हो गया कि मशाइख़-ए-किराम की ये बहस और कलाम न सिर्फ़ मुनकिरीन (इनकार करने वालों) के मज़हब से अलग था बल्कि अल्लाह तआला के फ़ज़ल से साफ़ तौर पर उनका रद्द (खंडन) है। इस बेहतरीन तहक़ीक़ के बाद 'तफ़्हीम अल-मसाईल' के लेखक का मिज़ाज पूछिये कि आपकी इस ख़ुशफ़हमी और वहमी ताक़त ने कि:

| फ़ारसी इबारत: फ़तह अल-क़दीर में लिखा है कि अधिकांश मशाइख़ के नज़दीक तल्कीन (मुर्दे को हिदायत देना) की मनाही की बुनियाद मुर्दों के न सुनने पर है, और आख़िर में कहा है कि मशाइख़ का एक समूह हदीस-ए-तल्कीन में हक़ीक़त का क़ायल इस वजह से हुआ कि तल्कीन का वक़्त सवाल और जवाब के लिए रूह को लौटाने का स्थान है और इस वक़्त मुर्दों को रूह की वापसी के कारण सुनना हासिल होता है। तो ये समूह भी मुर्दों के सुनने का मुनकिर है, और सवाल-जवाब के वक़्त सभी सुनने के क़ायल हैं। इस सूरत में फ़तह अल-क़दीर की इबारत से मालूम होता है कि तमाम फ़ुक़हा (विधिवेत्ताओं) का मज़हब इनकार... | उर्दू अनुवाद: फ़तह अल-क़दीर में मरक़ूम (लिखा) है कि हमारे अक्सर मशाइख़ के नज़दीक मने-तल्कीन (तल्कीन की मनाही) की बुनियाद अदम-ए-समा-ए-मौता (मुर्दों के न सुनने) पर है, और आख़िर में कहा कि एक जमाअत मशाइख़ हदीस-ए-तल्कीन में हक़ीक़त की क़ायल इस वजह से हुई कि वक़्त-ए-तल्कीन सवाल-ओ-जवाब के लिए रूह लौटाए जाने का मौक़ा है और इस वक़्त रूह के ऊद (वापसी) करने के बाइस मुर्दों को समा (सुनना) हासिल है तो ये जमाअत भी समा-ए-मौता की मुनकिर है और सवाल-ओ-जवाब के वक़्त सभी समा के क़ायल हैं, इस तरह ये फ़तह अल-क़दीर की... |

1. फ़तह अल-क़दीर, अध्याय: वाक् में शपथ, मकतबा नूरिया रिज़विया, सुक्कुर 7/244

سے یمین متعلق تھی منقطع ہو چکی اور حنث کی گنجائش نہ رہی، یہی امام ابن الہمام اسی فتح القدیر میں فرماتے ہیں:

| الحیاۃ المعادۃ غیر الحیاۃ المحلوف علی اذنہ فیھا وقدمہ وھی الحیاۃ القائمۃ حالۃ الحلف لان تلك عرض تلاشی لایمکن اعادتھا بعینھا وان اعیدت الروح فان الحیاۃ غیر الروح لانہ امر لازم للروح فیما لہ روح- | دوبارہ دی جانے والی زندگی اس زندگی کے علاوہ ہے جس کے اندر اجازت اور آمد کی قسم کھائی تھی اور وہ زندگی وہ ہے جو قسم کھانے کے وقت اس شخص کے ساتھ قائم تھی کیونکہ وہ تو ایک عرض ہے جو ختم ہو گیا، بعینہ اس کا اعادہ ممکن نہیں، اگر چہ روح کا اعادہ ہو، اس لیے کہ حیات روح کے علاوہ ایک شی ہے، وہ ایک ایسا امر ہے جو روح کے لیے لازم ہے اس شی میں جس کے لیے روح ہوتی ہے۔ (ت) |

تنبیہ جلیل: الحمدللہ جس طرح اس تقریر سے یہ واضح ہوا کہ ہمارے مشائخ کرام باتباع احادیث صحیحہ ان عامیانہ اوہام حجاب وحائل خشت وگل قبر کو مہمل وناقابل التفات جانتے ہیں کہ میت مدفون کے لیے وقت اعادہ روح ایسی خفی آواز ہائے بیرونی کا سماع ثابت مانتے ہیں، یونہی یہ بھی لائح ہوا کہ یہاں سماع جسمانی سے مانع یہی موت تھی، ولہذا جس وقت جسم کو ایک نوع حیات ملی سماع اصوات کی راہ کھلی، تو ظاہر کہ روح کہ بالا جماع ہمیشہ زندہ ومستمر بحال ونامتغیر ہے اس کا سماع عادۃً قائم ہے کہ مصحح موجود اور مانع مفقود، اب کھلا کہ مشائخ کرام کی یہ بحث وکلام، فقط مذہب منکرین سے بیگانہ ہی نہ تھی بلکہ بحمد اللہ تعالٰی صراحۃً ان کا رد ہیں اس تحقیق انیق کے بعد صاحب تفہیم المسائل کامزاج پوچھئے کہ آپ کی اس خوش فہمی وقوت وہمی نے کہ:

| در فتح القدیر نوشتہ کہ بنائے منع تلقین نزد اکثر مشائخ نابر عدم سماع موتی است و در آخر گفتہ کہ طائفہ مشائخ در حدیث تلقین قائل بحقیقت بدیں وجہ شدہ اند کہ وقت تلقین مقام ارجاع روح است برائے سوال وجواب وایں وقت موتی را بجہت عود روح سماع حاصل است پس ایں طائفہ ہم منکر سماع موتی است و در وقت سوال وجواب ہمہ قائل سماع از دریں صورت از عبارت فتح القدیر معلوم می شود کہ مذہب ہمہ فقہا انکار | فتح القدیر میں مرقوم ہے کہ ہمارے اکثر مشائخ کے نزدیک منع تلقین کی بنیاد عدم سماع موتی پر ہے، اور آخر میں کہا کہ ایک جماعت مشائخ حدیث تلقین میں حقیقت کی قائل اس وجہ سے ہوئی کہ وقت تلقین سوال وجواب کے لیے روح لوٹائے جانے کا موقع ہے اور اس وقت روح کے عود کرنے کے باعث مردوں کو سماع حاصل ہے تو یہ جماعت بھی سماع موتی کی منکر ہے اور سوال وجواب کے وقت سبھی سماع کے قائل ہیں، اس طرح یہ فتح القدیر کی |

1. فتح القدیر باب الیمین فی الکلام مکتبہ نوریہ رضویہ سکھر ۷ / ۲۴۴

Fatawa Razawiyya, Volume 9

Hearing of the dead is [established][1]. It is known from the text that the denial of hearing of the dead is the school of thought of all jurists (Fuqaha). (T)

What a back-and-forth judgment has been produced! It is clear from the words of that wise person that the deceased for whom the jurists do not accept hearing is only the body. Come to your senses and tell me, in what does the return of the soul occur? Then ask, O conscious one! That soul which, with its minimal return, by consensus makes this handful of dust a listener through so many veils and barriers, why would it not by consensus be eternally hearing and seeing, as it is pure from veils and barriers and is always alive! Now remember the mentioned statement 65 of Imam Ibn al-Hajj that living saints see with the light of God, and nothing is hidden from the light of God. Then what to say of the dead? And the discourse 7 of Shah Abdul Aziz that for the soul, place is the same whether near or far, just as a gaze in a well sees the stars of the highest heaven, and many such mentioned statements. The letter 'Alif' is not in the manuscript, look O oppressor! Divine proof is established like this. Yes, it remains that if you consider the body a condition for the perception of the soul, it has been clarified above who are its proponents: the Mu'tazilites and their like-minded ignoble ones. Ahead, it's for you to know and your business. By the praise of Allah, this is the explanation and illumination of the speech of the Mashayikh (Sufi masters), which opponents, considering it their own perfection and favorable, would entangle with the people of truth, and supporters, mistakenly thinking it contradictory, would find difficult and problematic. People of innovation (Bid'at) would make it their shield and toss their caps in pride, and the companions of the Sunnah, seeing a seemingly contrary sincere belief, would take up the arms of opposition and hypocrisy. Now, with the help of the Mighty and Powerful, the Glory of His Majesty, it has become clear that the matter is quite the opposite. That guidance-filled speech is entirely in accordance with the Ahl al-Sunnah and is a refutation and reversal of the opposing school. By the praise of Allah, now let the opponent see that his trivialities have gone into the corners of the abyss of non-existence. Not only the supporter, but every fair-minded wise person should see what benefits have been gained by the grace of Allah from this luminous discourse.

Benefit 1: The speech of the Mashayikh, by the praise of Allah, is never contrary to the creed of Ahl al-Sunnah. Benefit 2: Nor, God forbid, is it against any Hadith of Mustafa, peace and blessings of Allah be upon him. Benefit 3: Nor is there any contradiction at all in the explications of the Imams. Benefit 4: Nor is there even a

scent of contradiction anywhere in the speech of those scholars themselves. Benefit 5: Nor did they deviate in this issue and explanation from their own established principle, i.e., "building upon custom" (bina ala al-urf), rather these plants bloomed from that very root. Benefit 6: Nor did they ever commit any baseless specification, nor is there any violation whatsoever of their proof, nor does any blame fall upon the derivation or fundamentalization. In short, all these and in other places, their words and the texts and explications of the remaining Imams and...

[1] Tafheem al-Masail Adam Sama' al-Mawta from Hanafi books, Matba' Muhammadi Lahore, pp. 80-81.

फतावा रज़विया, खंड 9

मुर्दों का सुनना [साबित] है[1]। इबारत से मालूम होता है कि मुर्दों के सुनने से इनकार तमाम फ़ुक़हा (धार्मिक न्यायविदों) का मज़हब है। (त)

कैसा पलटवार करने वाला हुक्म पैदा किया गया! यह तो उसी अकलमंद के कलाम से स्पष्ट हो गया कि वह मय्यत जिसके लिए फ़ुक़हा सुनना नहीं मानते, वह केवल शरीर ही है। ज़रा होश में आकर बताओ कि रूह (आत्मा) की वापसी किसमें होती है? फिर यह पूछिए कि ऐ होशमंद! वह रूह जिसके मामूली से लौटने से, सर्वसम्मति से यह मुट्ठी भर धूल इतने पर्दों और बाधाओं के बावजूद सुनने वाली हो जाती है, वह स्वयं जो पर्दों और बाधाओं से पाक है और हमेशा जीवित है, क्यों न सर्वसम्मति से हमेशा सुनने और देखने वाली होगी! अब याद कीजिए इमाम इब्न अल-हज्ज का उल्लेखित कथन 65 कि जीवित औलिया (ईश्वर के प्रिय) खुदा के नूर से देखते हैं, और खुदा के नूर के लिए कुछ भी छिपा हुआ नहीं है। फिर मुर्दों का क्या कहना, और शाह अब्दुल अज़ीज़ साहब का लेख 7 कि रूह के आगे दूर और नज़दीक का स्थान एक समान है, जिस प्रकार कुएँ में नज़र ऊंचे आसमान के सितारों को देख लेती है, इत्यादि कई उल्लेखित कथन। पांडुलिपि में 'अलिफ़' नहीं लिखा है, देख ओ ज़ालिम! ईश्वरीय प्रमाण इस तरह स्थापित होता है। हाँ, यह बात रह गई कि रूह के बोध के लिए शरीर को शर्त मानिए, यह ऊपर स्पष्ट हो चुका है कि इसके मानने वाले कौन हैं: मुअतज़िला और उनके जैसे नीच लोग। आगे तुम जानो और तुम्हारा काम। अल्लाह की प्रशंसा के साथ, यही स्पष्टीकरण और प्रकाश है उन मशाईख (सूफी गुरुओं) के कलाम का, जिसे विरोधी अपनी सफलता और अनुकूल मानकर हक़ वालों से उलझते थे, और समर्थक इसे विरोधाभासी समझकर कठिन और जटिल मानते थे। बिदअती लोग इसे अपनी ढाल बना लेते और गर्व में अपनी टोपियाँ उछालते थे, और सुन्नत के मानने वाले प्रत्यक्ष रूप से सच्चे अक़ीदे के विरुद्ध पाकर विरोध और मनमुटाव के हथियार संभाल लेते थे। अब सर्वशक्तिमान और प्रतापी ईश्वर की सहायता से यह स्पष्ट हो गया है कि मामला बिल्कुल इसके विपरीत है। वह मार्गदर्शन से भरा कलाम पूरी तरह से अहल-ए-सुन्नत के अनुरूप है और विरोधी मज़हब का खंडन है। अल्लाह की प्रशंसा के साथ, अब विरोधी देखे कि उसके तर्क शून्यता की गहराई में चले गए हैं। न केवल समर्थक, बल्कि हर न्यायप्रिय बुद्धिमान व्यक्ति देखे कि अल्लाह के फज़ल से इस रोशन व्याख्या से क्या-क्या लाभ प्राप्त हुए।

फ़ायदा 1: मशाईख का कलाम, अल्लाह की प्रशंसा के साथ, कभी भी अहल-ए-सुन्नत के अक़ीदे के खिलाफ नहीं है। फ़ायदा 2: न ही, खुदा न करे, मुस्तफा सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम की किसी हदीस

के खिलाफ है। फ़ायदा 3: न ही इमामों के स्पष्टीकरणों में मूल रूप से कोई विरोध है। फ़ायदा 4: न ही खुद उन उलेमाओं के कलाम में कहीं विरोधाभास की गंध है। फ़ायदा 5: न ही वे इस मसले और स्पष्टीकरण में अपने ही स्थापित मूल सिद्धांत, यानी "प्रथा पर आधारित" (बिना अलल उरफ़) से अलग चले, बल्कि उसी जड़ से ये पौधे खिले हैं। फ़ायदा 6: न ही वे कभी बिना किसी दलील के किसी विशिष्टता के अपराधी हुए, न ही उनकी इस दलील पर कभी कोई खंडन आया, न ही शाखाओं के विस्तार या मूल निर्धारण पर कोई आरोप लगा। संक्षेप में, ये सब और अन्य स्थानों पर उनके शब्द और शेष इमामों के मूल पाठ और स्पष्टीकरण और...

[1] तफ़हीमुल मसाइल अदम समाअ मोतत हनफ़िया की किताबों से, मतबा मुहम्मदी लाहौर, पृ. 80-81।

पृष्ठ 901/948

فتاوٰی رضویہ، جلد نہم

سماع موتی است ۱۔ عبارت سے معلوم ہوتا ہے کہ سماع موتی سے انکار تمام فقہاء کا مذہب ہے۔ (ت)

کیسا حکم تیر بازگشت پیدا کیا یہ تو اسی عقلمند کے کلام سے واضح ہوا کہ وہ میت جس کے لیے فقہاء سماع نہیں مانتے بدن ہی ہے۔ ذرا ہوش میں آکر بتانا کہ عودِ روح کس میں ہوتا ہے؟ پھر یہ پوچھئے کہ اے ذی ہوش! وہ روح جس کے ادنی عود سے یہ مشت خاک اتنے حجابوں حائلوں میں بالاتفاق سمیع ہو جاتا ہے، وہ خود کہ حجاب و حائل سے منزہ اور ہمیشہ زندہ ہے، کیوں نہ بالاتفاق دائماً شنوا و بینا ہو گی! اب یاد کیجئے کہ امام ابن الحاج کا ارشاد مذکور قول ۶۵ کہ اولیائے احیاء نورِ خدا سے دیکھتے ہیں، اور نورِ خدا کو کچھ حجب نہیں ۔ پھر اموات کا کیا کہنا، اور شاہ عبدالعزیز صاحب کا مقالہ ۷ کہ روح کے آگے مکان دور و نزدیک یکساں ہے جس طرح نظر کنویں میں آسمان برین کے ستارے دیکھتی ہے وغیرہ ذلک اقوال کثیرہ مذکورہ۔ نسخہ میں الف تحریر نہیں دیکھ ظالم! حجت الہی یوں قائم ہوتی ہے، ہاں یہ باقی رہا کہ ادراک روح کے لیے جسم شرط مانیے، یہ اوپر واضح ہو چکا کہ اس کے کون قائل ہیں، معتزلہ وغیرہ ہم لیام، آگے تم جانوں اور تمہاراکام، یہی بحمد اللہ تقریر و تنویر اس کلام حضرات مشائخ کی، جسے مخالف اپنا کمال موافق جان کر اہل حق سے الجھتے اور موافق بگمان تخالف مشکل و معضل سمجھتے، اہل بدعت اپنی سپر پناہ ٹھہرا کر آسمان ناز پر اپنی ٹوپیاں اچھالتے، اور اصحاب سنت بظاہر مخالف عقیدہ صادقہ پا کر سلاح معارضہ و منافقہ سنبھالتے، اب بعونِ عزیز مقتدر عزجلالہ روشن ہوگیا کہ امر بالکل بالعکس ہے۔ وہ کلام ہدایت نظام سراپا اہل سنت کے مطابق اور مذہب مخالف کا ردو نکس ہے۔ بحمد اللہ تعالٰی اب مخالف دیکھے کہ اس کے شوشے قعر عدم کے گوشے میں گئے، موافق نہ

صرف موافق، ہر ذی عقل منصف دیکھے کہ بفضلہ تعالیٰ اس تقریر منیر سے کیا کیا فائدے حاصل ہوئے۔

فائدہ ۱: کلام مشائخ بحمد اللہ تعالیٰ ہر گز عقیدہ اہلسنت کے مخالف نہیں۔ فائدہ ۲: نہ عیاذاً باللہ کسی حدیث مصطفی صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کے خلاف۔ فائدہ ۳: نہ تصریحات ائمہ میں اصلاً تعارض۔ فائدہ ۴: نہ خود ان علماء کے کلام میں کہیں بوئے تناقض۔ فائدہ ۵: نہ وہ اس مسئلہ و بیین میں اپنی ہی اصل مقرر یعنی بنا علی العرف سے جدا چلے بلکہ اسی جڑے یہ پودے کھلے۔ فائدہ ۶: نہ وہ ہر گز کسی تخصیص بے دلیل کے مرتکب ہوئے نہ ان کی اس دلیل پر زنہار کوئی نقض وارد، نہ تفریع و تاصیل پر کچھ الزام عائد، غرض یہ سب اور دیگر مقامات میں ان کے کلمات اور باقی ائمہ کے نصوص و تصریحات اور

1 تفہیم المسائل عدم سماع موتی از کتب حنفیہ مطبع محمدی لاہور ص ۸۰ و ۸۱

Fatawa Razawiyya, Volume 9

By the grace of Allah Almighty, the noble sayings of the Hadith and traditions are all in agreement and organized, proportionate to one another and cohesive. In this rational, enlightened, polished, and obligatory discourse—if not accepted, then all these would turn around and cause so much harm against them, with no result other than the end being that the words of the masters would be invalidated in various ways, shaken by all kinds of tremors, and you would be wounded by your own sword. Then what reliance would it be worthy of? "And this is something that no wise person would approve of." Now, by the grace of Allah, it has become brighter and more shining than the midday sun and the full moon that the explanations provided by some major later commentators and scholars of Hadith in this chapter do not touch upon the actual intent of the noble masters. It is as if they were lessons for the opponent's response, by way of granting leeway to a contrary fragrance. Indeed, the profound insights of our noble Imams and eminent masters were so high that sometimes the insights of later observers and experts were hesitant in reaching the steps of their stages and the heights of their ascensions. As the servant of the chapters and sections of jurisprudence and principles, it is clear and manifest that, by the grace of Allah Almighty, this is the right of research and the research of truth, from which the deserving truth, by word and confirmation, does not deviate by a hair's breadth. "This is how research should be, and Allah, the Pure, is the master of success." (T) Praise be to Allah! If in this entire book there was nothing but the introduction and adornment of these seven premises and the writing and clarification of this most correct answer, then by the great grace of the Generous Lord, whose bounty is general, this alone would have been magnificent, sufficient, enriching, and adequate.

That is from the grace of Allah upon us and upon the people, but most of the people are not grateful. (12:38)	**That is the grace of Allah upon us and upon people, but most people do not give thanks.**
My Lord, enable me to be grateful for Your favor which You have bestowed upon me and upon my parents and to work righteousness of which You will approve and make righteous for me my offspring. Indeed, I have repented to You, and indeed, I am of the Muslims. (46:15)	O my Lord! Grant me this, that I may be grateful for the favor You have bestowed upon me and upon my parents, and that I may do righteous deeds with which You are pleased, and make my offspring righteous for my benefit; surely I have turned to You, and surely I am of those

That is from the grace of Allah upon us and upon the people, but most of the people are not grateful. (12:38)	**That is the grace of Allah upon us and upon people, but most people do not give thanks.**
And praise be to Allah, Lord of the worlds.	who submit (Muslims). And all praise is for Allah, the Sustainer of all the worlds. (T)

Praise be to Allah, after this grand and beautiful answer, there is essentially no need to pay attention to other answers. By the grace of Allah, the proofs have given absolute certainty that this is undoubtedly the intent of the noble masters. So what is the need now to make concessions or grant reprieves through leeway? However, so that the opponent may not have any complaint or regret, let the discourse have some more extension. Writing some useful warnings related to this answer, I shall turn my attention to other answers, and with Allah is the success.

First Warning: I say that in some matters, the people of innovation and some or all of the People of Sunnah are in agreement, and their...

फ़तावा रज़विया, जिल्द नहम

अल्लाह तआला की हम्द से अहादीस और आसार के आली इरशादात सब मुत्तफ़िक़ और मुनज़्म हैं और एक दूसरे से मुतनासिब और मुल्तइम। और इस तक़रीर-ए-मअकूल, मुस्तनीर और मस्कूल, वाजिबुल क़ुबूल को न मानिये तो ये तमाम मुनक़लिब होकर उनके मुक़ाबिल उतने ही ज़रर हासिल और नतीजा कुछ नहीं कि अंजाम ये ठहरेगा कि कलाम-ए-मशाइख़ तरह-तरह से मनक़ूज़-ए-बातिल और अनवा-ओ-अकसाम के ज़लज़लों से मुतज़लज़ल और आप ही अपनी तलवार से घायल, फिर क्या किसी इस्तिनाद के क़ाबिल? और 'ये वो चीज़ है जिसे कोई अक़्लमंद पसंद न करेगा।' अब अल्हम्दुलिल्लाह दोपहर के सूरज और चौदहवीं के चाँद से ज़्यादा रौशन और दरख़्शां हुआ कि बाज़ बड़े मुतअख़्ख़िरीन (बाद के) शारेहीन और मुहद्दिसीन ने इस बाब में जो तक़रीरें फ़रमाईं वो असल मराम-ए-मशाइख़-ए-किराम पर वारिद नहीं। वो गोया बर-सबील-ए-इरखा-ए-अनान (ढीली बागडोर के तौर पर) मुख़ालिफ़ की बू मानकर मुख़ालिफ़ के जवाब की तालीमें थीं, और वाक़ई हमारे अइम्मा-ए-किराम और मशाइख़-ए-एलाम की नज़रे-ग़ामिज़ा ऐसी ही आली वाक़े हुई हैं कि बाज़ औक़ात मुतअख़्ख़िरीन माहिर नाज़िरीन की नज़रें उसके मराक़ात-ए-मदारिज और मआली-ए-मआरिज तक पहुँचने में मुतसाहिल रहीं, जैसा कि फ़िक्ह और उसूल के अबवाब और फ़ुसूल के खादिम पर अश्कार और मुबीन है। ये अल्हम्दुलिल्लाह तआला हक़-ए-तहक़ीक़ और तहक़ीक़-ए-हक़ है जिससे हक़-ए-हक़ीक़ बक़ौल और तस्दीक़ एक सर-मू (बाल बराबर) मुतजाविज़ नहीं। 'इसी तरह तहक़ीक़ होनी चाहिए और अल्लाह सुब्हानहू ही तौफ़ीक़ का मालिक है।' (त) अल्हम्दुलिल्लाह! अगर इस तमाम किताब में इन सात मुक़द्दिमात की तम्हीद और तज़ईन और इस जवाब-ए-ऐन-ए-सवाब की तहरीर और तबीन के सिवा और कुछ न होता तो हज़रत-ए-करीम के अज़ीम फ़ज़्ल से यही क़दर आली, काफ़ी और शाफ़ी था।

ज़ालिक मिन फ़ज़्लिल्लाह अलैना व अलन-नास व लाकिन्ना अक्सरन-नासि ला यश्कुरून (१२:३८)

वो अल्लाह का फ़ज़्ल है हम पर और लोगों पर लेकिन अक्सर लोग शुक्र नहीं करते,

रब्बि औज़िअनी अन अश्कुरा निअमतकल-लती अनअम्ता अलैया व अला वालिदैया व अन अमला सालिहन तरज़ाहू व असलिह ली फ़ी ज़ुर्रिय्यती इन्नी तुब्तु इलैक व इन्नी

ऐ मेरे रब! मुझे ये अता कर कि मैं शुक्र अदा करूँ उस एहसान का जो तूने मुझ पर और मेरे माँ-बाप पर किया, और ये कि मैं नेक काम करूँ जिससे तू राज़ी हो, और मेरी औलाद को मेरे फ़ायदे के लिए नेक बना दे, बेशक

ज़ालिक मिन फ़ज़लिल्लाह अलैना व अलन-नास व लाकिन्ना अक्सरन-नासि ला यश्कुरून (१२:३८)

वो अल्लाह का फ़ज़ल है हम पर और लोगों पर लेकिन अक्सर लोग शुक्र नहीं करते,

मिनल मुस्लिमीन (४६:१५) वल-हम्दु लिल्लाहि रब्बिल आलमीन।

मैं तेरी तरफ़ रुजू लाया और यक़ीनन मैं इस्लाम वालों से हूँ और सब खूबियाँ अल्लाह के लिए जो सारे जहानों का पालने वाला है। (त)

अल्हम्दुलिल्लाह, इस जवाब-ए-जलील और जमील के बाद अस्लन हाजत नहीं कि और जवाबों की तरफ़ तवज्जो करूँदलाइल ने अल्लाह के फ़ज़ल से यक़ीन-ए-क़तई दे दिया है कि बिला-शुबा मुराद-ए-मशाइख़-ए-किराम यही है, तो अब क्या ज़रूरत है कि तनज़्ज़ुलात कीजिये, इरखा-ए-अनान से मोहलतें दीजिये, मगर मुख़ालिफ़ को शिकायत और हसरत न रहे, लिहाज़ा इस गुफ़्तगू (चालिश) को कुछ और भी विस्तार सही, इसी जवाब के मुतअल्लिक़ बाज़ मुफ़ीत तम्बईहात (चेतावनियाँ) लिखकर दूसरे जवाबों की तरफ़ रुख करूँ और तौफ़ीक़ अल्लाह ही की तरफ़ से है।

तम्बईह अव्वल: मैं कहता हूँ कि बाज़ मसाइल में अहल-ए-बिदअत और बाज़ या तमाम अहल-ए-सुन्नत मुत्तफ़िक़ होते हैं और उनके..

पेज 902 ऑफ 948

احادیث و آثار کے عالی ارشادات بحمد اللہ تعالٰی سب متفق و منظم ہیں اور ایک دوسرے سے متناسب و ملتئم۔ اور اس تقریر معقول۔ مستنیر و مصقول، واجب القبول نہ مانیے تو یہ تمام منقلب ہو کر ان کے مقابل اتنے ہی ضرر حاصل اور نتیجہ کچھ نہیں کہ انجام یہ ٹھہرے گا کہ کلام مشائخ طرح طرح سے منقوض باطل اور انواع انواع زلزلوں سے متزلزل اور آپ ہی اپنی تلوار سے گھائل، پھر کیا کسی استناد کے قابل و ھٰذا مما لا یرضا ہ عاقل (اور اسے کوئی عاقل پسند نہ کرے گا) اب بحمد اللہ مہر نیمروز و ماہ نیم ماہ سے زیادہ رخشاں و درخشاں ہوا کہ بعض کبرائے متاخرین شراح محدثین نے اس باب میں جو تقریریں فرمائیں اصل مرام مشائخ کرام پر وارد نہیں۔ وہ گویا برسبیل ارخائے عنان رائیحہ مخالف مان کر جواب مخالف کی تعلیمیں تھیں اور واقعی ہمارے ائمہ کرام و مشائخ اعلام کی انظار غامضہ ایسی ہی عالیہ واقع ہوئیں کہ بعض اوقات انظار ناظرین متاخرین ماہرین اس کے مرقات مدارج و معالی معارج تک وصول میں متساہل رہیں جیسا کہ خادم ابواب و فصول فقہ و اصول پر اشکار و مبین، یہ بحمد اللہ تعالٰی حق تحقیق و تحقیق حق ہے جس سے حق حقیق بقول و تصدیق یک سرمو متجاوز نہیں ھکذا ینبغی التحقیق واللہ سبحانہ ولی التوفیق (اسی طرح تحقیق چاہئے اور خدائے پاک ہی توفیق کا مالک ہے۔ ت) الحمد للہ! اگر اس تمام کتاب میں ان مقدمات سبعہ کی تمہید و تزیین اور اس جواب عین الصواب کی تحریر و تبیین کے سوا اور کچھ نہ ہوتا تو بفضل عظیم حضرت کریم عم نوالہ، اسی قدر شانی و کافی و مغنی و دافی تھا،

ذٰلِکَ مِنْ فَضْلِ اللهِ عَلَیْنَا وَ عَلَی النَّاسِ وَ لٰکِنَّ اَکْثَرَ النَّاسِ لَا یَشْکُرُوْنَ (۱۲/۳۸)	**وہ اللہ کا فضل ہے ہم پر اور لوگوں پر لیکن اکثر لوگ شکر نہیں کرتے،**
رَبِّ اَوْزِعْنِیْٓ اَنْ اَشْکُرَ نِعْمَتَکَ الَّتِیْٓ اَنْعَمْتَ عَلَیَّ وَ عَلٰی وَالِدَیَّ وَ اَنْ اَعْمَلَ صَالِحًا تَرْضٰہُ وَ اَصْلِحْ لِیْ فِیْ ذُرِّیَّتِیْٓ اِنِّیْ تُبْتُ اِلَیْکَ وَ اِنِّیْ مِنَ الْمُسْلِمِیْنَ (۴۶/۱۵) والحمد للہ رب العلمین۔	اے میرے رب! مجھے یہ عطا کر کہ میں شکر ادا کروں اس احسان کا جو تم نے مجھ پر اور میرے ماں باپ پر کیا، اور یہ کہ میں نیک کام کروں جس سے تو راضی ہو، اور میری اولاد کو میرے فائدے کے لیے نیک بنا دے، بیشک میں تیری طرف رجوع لایا اور یقیناً میں اسلام والوں سے ہوں اور سب خوبیاں اللہ کے لیے جو سارے جہانوں کا پروردگار ہے۔ (ت)

الحمد للہ اس جواب جلیل و جمیل کے بعد اصلاً حاجت نہیں کہ اور جوابوں کی طرف توجہ کروں، دلائل نے بفضلہ تعالیٰ یقین قطعی دے دیا ہے کہ بلاشبہ مراد مشائخ کرام یہی ہے تو اب کیا ضرورت ہے کہ تنزلات کیجئے ، ارخائے عنان سے مہلتیں دیجئے ، مگر مخالف کو شکایت و حسرت نہ رہے، لہٰذا چالش کو کچھ اور بھی امتداد سہی، اسی جواب کے متعلق بعض تنبیہاتِ مفیدہ لکھ کر دیگر اجوبہ کی طرف عطف عنان کروں وباللہ التوفیق۔

تنبیہ اول: اقول بعض مسائل میں اہل بدعت اور بعض یا کل اہلسنت متفق ہوتے ہیں اور ان کے

Fatawa Razawiyya (Volume 9)

The sources vary according to different schools of thought. For instance, calling upon the Holy Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) by his sacred name is impermissible even according to us. The Wahhabis call it absolute Shirk (polytheism), their known source being their imaginary notion of Shirk, while the reason for our prohibition is the noble verse: "Do not make the calling of the Messenger among yourselves like the calling of one of you to another." (Al-Quran 24:63). So, calling by name is impermissible; instead, he should be called upon with noble attributes such as 'Ya Rasul Allah' (O Messenger of Allah), 'Ya Habib Allah' (O Beloved of Allah), 'Ya Khalifat Allah' (O Caliph of Allah), etc. Similarly, regarding the issue of 'Talqin' (instruction) after burial, the majority of Mu'tazilites would naturally want to forbid it, because according to those stone-hearted ones, the soul and body of the dead are like mere bricks and stones. Therefore, those foolish ones deny the punishment of the grave and the questioning by Munkar and Nakir. Among the Hanafis, the majority of those who prohibit it are the same. In statement 131, we have heard the saying of Imam Zahid Saffar that the prohibition of Talqin is based on the Mu'tazilite doctrine. In statements 132 and 135, it was mentioned from Jawhara al-Nayyirah and Durr al-Mukhtar that Talqin is permissible according to the Ahl al-Sunnah. Statement 152:

[Table/Box 1] Persian: Whoever does not perform Talqin and does not believe in it is on the path of Mu'tazilism, who say that the deceased is mere inanimate matter. Urdu (Translation): He who does not practice or believe in Talqin is on the Mu'tazilite path, who say the deceased is purely inanimate matter. (T) [End Box]

Therefore, Imam ibn al-Humam expressed his opinion that, in my estimation, the prohibition of Talqin is based on the denial of 'Sama' (the deceased's ability to hear). This is certainly correct with respect to the majority of those who prohibit it. However, the source for some scholars of Ahl al-Sunnah who joined in the prohibition is not this at all; rather, for some, it is being a 'Bid'ah' (innovation), as mentioned by Sultan al-Ulama (as has passed from Sultan al-Ulama. T). Or in their view, it is deemed useless; if one died as a believer, what is the need, otherwise what is the benefit? For this reason, Imam Nasafi made those clarifications regarding the issue of 'Yamin' (oaths), but never mentioned it in the denial of Talqin; instead, he relied on its lack of benefit, as mentioned in statement 154 and the 'Nukta-e-Jalila'. Therefore, Malik al-Ulama Bahr al-Ulum Abd al-Ali Muhammad, when he chose to deny Talqin, supported it with this lack of benefit and simultaneously, based on the denial of hearing, clearly expressed denial in 'Arkan-e-Arba'ah', stating:

[Table/Box 2] Arabic: Because there is absolutely no benefit in performing Talqin for the deceased. If he died as a Muslim, he is already firm on the testimony of Tawhid (Oneness) and Risalat (Prophethood), so Talqin is futile. And if he died as a disbeliever, then Talqin will not be beneficial because bringing faith after death will not benefit him. And what is said that Talqin is futile because the deceased... Urdu (Translation): There is absolutely no benefit in Talqin for the deceased because if he died as a Muslim, he is already established on Tawhid and Risalat, so Talqin is useless. And if he died in disbelief, Talqin will not be advantageous because accepting faith after death will not benefit him, and what has been said that Talqin is futile because the deceased... [End Box]

1. Al-Quran 24:63
2. Kashf al-Ghita, Chapter: Rulings on Burial, Ahmadi Press, Delhi, p. 5

फतावा रज़विया (खंड 9)

विभिन्न विचारधाराओं के अनुसार स्रोत भिन्न होते हैं। उदाहरण के लिए, पवित्र पैगंबर (उन पर अल्लाह की शांति और कृपा हो) को उनके पवित्र नाम से पुकारना हमारे यहाँ भी मना है। वहाबी इसे पूर्णतः शिर्क(बहुदेववाद) कहते हैं, उनका ज्ञात स्रोत शिर्क का वही काल्पनिक विचार है, जबकि हमारे द्वारा मना करने का कारण पवित्र आयत है: "रसूल का पुकारना अपने बीच वैसा न बना लो जैसा तुम एक-दूसरे को पुकारते हो।" (अल-क़ुरआन 24:63)। अतः नाम लेकर पुकारना वर्जित है; बल्कि 'या रसूल अल्लाह', 'या हबीब अल्लाह', 'या ख़लीफ़तुल्लाह' आदि महान गुणों के साथ पुकारना चाहिए। इसी तरह दफ़न के बाद 'तलक़ीन' (निर्देश देने) का मसला है, जिस पर बहुसंख्यक मुअतज़िला तो प्रतिबंध लगाना ही चाहेंगे, क्योंकि उन पत्थर-हृदय लोगों के अनुसार मृतकों की आत्मा और शरीर सब ईंट-पत्थर के समान हैं। इसलिए, वे मूर्ख लोग क़ब्र के अज़ाब और मुनकर-नकीर के सवालों से इनकार करते हैं। हनफ़ियों में भी जो बहुसंख्यक मना करने वाले हैं, वे वही हैं। उक्ति 131 में इमाम ज़ाहिद सफ़्फ़ार का कथन सुना जा चुका है कि तलक़ीन का निषेध मुअतज़िला विचारधारा पर आधारित है। उक्ति 132 और 135 में जौहर-ए-नैय्यिरा और दुर्रे मुख़्तार के हवाले से गुज़रा कि तलक़ीन सुन्नी विचारधारा (अहले सुन्नत) के अनुसार वैध है। उक्ति 152:

[बॉक्स 1] फ़ारसी: जो कोई तलक़ीन नहीं करता और उसे नहीं मानता, वह मुअतज़िला मत पर है, जो कहते हैं कि मृतक केवल निर्जीव वस्तु है। उर्दू (अनुवाद): जो तलक़ीन का पालन नहीं करता और उसे नहीं मानता, वह मुअतज़िला मत पर है जो कहते हैं कि मृतक केवल निर्जीव वस्तु है। (त) [बॉक्स समाप्त]

इसलिए इमाम इब्न हुमाम ने अपनी राय व्यक्त की कि मेरी राय में तलक़ीन का निषेध 'समा' (मृतकों के सुनने) के इनकार पर आधारित है। यह उन बहुसंख्यक मना करने वालों के लिहाज़ से निश्चित रूप से सही है। मगर अहले सुन्नत के कुछ विद्वान जो इस निषेध में शामिल हुए, उनका आधार यह बिल्कुल नहीं है, बल्कि कुछ के नज़दीक इसका 'बिदअत' (नवाचार) होना है, जैसा कि सुल्तानुल उलमा से उद्धृत हुआ (जैसा कि सुल्तानुल उलमा से गुज़रा। त)। या उनके विचार में इसे व्यर्थ मानना है; यदि कोई ईमान पर मरा है तो क्या ज़रूरत है, वरना क्या फ़ायदा? इसी कारण इमाम नसफ़ी ने शपथ (यमीन) के मसले में वे स्पष्टीकरण दिए, मगर तलक़ीन के इनकार में इसका नाम तक न लिया, बल्कि उसे लाभहीन होने का प्रमाण माना, जैसा कि उक्ति 154 और 'नुक्ता-ए-जलीला' में गुज़रा। इसीलिए मलिकुल उलमा बहरुल उलूम अब्दुल अली मुहम्मद ने जब तलक़ीन से इनकार का विकल्प

चुना, तो उन्होंने इसी लाभहीनता के साथ इसका समर्थन किया और साथ ही सुनने से इनकार के आधार पर स्पष्ट रूप से इनकार किया, वे 'अरकान-ए-अ़रबआ' में फ़रमाते हैं:

[बॉक्स 2] अरबी: क्योंकि मृतक के लिए तलक़ीन करने का वास्तव में कोई लाभ नहीं है। यदि वह मुसलमान होकर मरा है, तो वह पहले से ही तौहीद और रिसालत की गवाही पर दृढ़ है, अतः तलक़ीन व्यर्थ है। और यदि वह काफ़िर होकर मरा है, तो तलक़ीन फ़ायदेमंद नहीं होगी क्योंकि मृत्यु के बाद ईमान लाना उसके लिए लाभदायक नहीं होगा। और जो यह कहा गया कि तलक़ीन इसलिए व्यर्थ है कि मृतक... उर्दू (अनुवाद): मृतक की तलक़ीन में वास्तव में कोई लाभ नहीं है क्योंकि यदि वह इस्लाम पर मरा है, तो वह स्वयं तौहीद और रिसालत पर कायम है, फिर तलक़ीन बेकार है। और यदि वह कुफ़्र (अविश्वास) पर मरा है, तो तलक़ीन लाभदायक नहीं होगी क्योंकि मृत्यु के बाद ईमान लाना उसके लिए फलदायी नहीं होगा, और यह जो कहा गया कि तलक़ीन इसलिए व्यर्थ है कि मृतक... [बॉक्स समाप्त]

1. अल-क़ुरआन 24/63
2. कश्फ़ुल ग़िता, अध्याय: दफ़न के नियम, अहमदिया प्रेस, दिल्ली, पृ. 5

ماخذ حسب اختلاف مذہب مختلف مثلاً حضور اقدس صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم کا نام پاک لے کر ندا کرنی ہمارے نزدیک بھی نا جائز ہے اور وہابیہ تو قاطبۃً شرک کہتے ہیں ان کا ماخذ معلوم وہی شرک موہوم اور ہمارے منع کی وجہ آیہ کریمہ لَا تَجْعَلُوْا دُعَاءَ الرَّسُوْلِ بَیْنَکُمْ کَدُعَاءِ بَعْضِکُمْ بَعْضًا ط (القرآن ۲۴ / ۶۳) رسول کا پکارنا اپنے میں ایسا نہ ٹھہرا لو جیسے ایک دوسرے کو پکارتے ہو ۔ تو نام لے کر ندا ناجائز ہے بلکہ یا رسول اللہ، یا حبیب اللہ، یا خلیفۃ اللہ وغیرہ اوصاف کریمہ کے ساتھ ندا چاہئے، یوں ہی مسئلہ تلقین بعد دفن کو جمہور معتزلہ تو منع کیا ہی چاہیں کہ ان سنگ ساروں کے نزدیک اموات کی روح وبدن سب اینٹ پتھر ہیں، ولذا وہ سفہاء عذاب قبر وسوال نکیرین کے منکر ہیں اور حنفیہ میں جمہور مانعین وہی ہیں قول ۱۳۱ میں امام زاہد صفار کا ارشاد سن چکے کہ منع تلقین مذہب معتزلہ پر ہے۔ قول ۱۳۲ و ۱۳۵ میں جوہرہ نیرہ و در مختار سے گزرا کہ تلقین اہل سنت کے نزدیک مشروع ہے، قول ۱۵۲ :

| ہر کہ تلقین نمی کند و نمی گوید بآں اور بر مذہب اعتزال است کہ گویند میّت جماد محض است 2۔
| جو تلقین کا عامل وہ قائل نہیں وہ مذہب معتزلہ پر ہے جو کہتے ہیں کہ میّت جماد محض ہے۔(ت)
|

ولذا امام ابن ہمام نے اپنا عندیہ بیان فرمایا کہ میرے گمان میں منع تلقین انکارِ سماع پر مبنی ہے یہ ان جمہور مانعین کے لحاظ سے ضرور صحیح ہے مگر بعض علمائے اہل سنت کہ منع میں شریک ہوئے ان کا ماخذ یہ ہر گز نہیں بلکہ بعض کے نزدیک بدعت ہونا، کما مر عن سلطان العلماء (جیسا کہ سلطان العلماء سے گزرا ت) یا ان کے خیال میں بے فائدہ ٹھہرنا کہ ایمان پر گیا تو کیا حاجت ورنہ کیا منفعت، ولذا امام نسفی نے مسئلہ یمین میں وہ تصریحات فرمائیں مگر انکارِ تلقین میں

ہرگز اس کا نام نہ لیا بلکہ اسے عدم فائدہ سے استناد کیا، جیسا کہ قول ۱۵۴ و نکتہ جلیلہ میں گزرا، ولذا ملک العلماء بحر العلوم عبدالعلی محمد نے جب انکارِ تلقین اختیار کیا اس پر اسی انعدام نفع سے استظہار اور ساتھ ہی بربنائے انکار سماع انکار ماننے پر تصریح انکار کیا ارکانِ اربعہ میں فرماتے ہیں:

| لان المیت لافائدۃ من تلقینہ اصلا لانہ ان مات مسلما فھو ثابت علی الشھادۃ بالتوحید والرسالۃ فالتلقین لغو وان مات کافرا فلا یفید التلقین لانہ لاینفعہ الایمان بعد الموت وما قیل ان التلقین لغو لان المیت |

تلقین میّت میں اصلاً کوئی فائدہ نہیں اس لیے کہ اگر وہ اسلام پر مرا ہے تو خود توحید ورسالت پر قائم ہے پھر تلقین بیکار ہے۔ اور اگر کفر پر مرا ہے تو تلقین سود مند نہ ہوگی اس لیے کہ موت کے بعد ایمان لانا اسے نفع بخش نہ ہوگا، اور یہ جو کہا گیا کہ تلقین اس لیے لغو ہے کہ میّت |

1 القرآن ۲۴ / ۶۳ 2 کشف الغطاء فصل احکام دفن مطبع احمدی دہلی ص ۵

Fatawa Razawiyya Volume IX

"He does not hear," this is false (1). - He does not hear, then this is false. (T)

Benefit: Just as Imam Allama Sheikh-ul-Islam Nasafi argued in 'Kafi' against the prohibition of Talqin (instruction) solely based on the negation of benefit as mentioned, which clearly indicates that he does not deny the reality of Sama' (hearing by the dead), otherwise he would have simply stated: "To whom is the instruction being given, to bricks and stones?" Similarly, in the commentary of the noble verses, he mentioned the negation of benefit and the negation of acceptance. Under the noble verse: "The angels likened the disbelievers to the dead in that they do not benefit from what they hear." (2) (The disbelievers were likened to the dead in the sense that they hear but do not gain benefit from it. - T). Under the noble verse of Surah An-Naml: "Since they were ones who do not hear what they hear, they do not understand it, nor do they benefit from it, they were likened to the dead." (3) (Since the disbelievers hear but do not understand it and do not benefit from it, therefore they were likened to the dead. - T). Under the noble verse of Surah Ar-Rum: "And these are in the ruling of the dead, so do not hope that they will accept from you." (4) (And these are in the ruling of the dead, so do not have the greed that they will accept your word. - T). But the author of 'Tafheem al-Masail', an expert in invention and fabrication, clearly wrote:

[Table Content] Arabic Text: Deaf, dumb, he writes: the meaning is that in their state of disbelief and denial, they are like those who do not hear and do not speak, thus the disbelievers were likened to the dead because the dead person does not hear and does not speak. So said Ibn al-Khazin al-Iraqi al-Shafi'i in his commentary 'Lubab al-Ta'wil fi Ma'ani al-Tanzil', finished (5). (T)

Urdu Explanation: In the commentary of 'Madarik', under the noble verse "Those who denied our verses are deaf and dumb," he writes: The meaning is that in their state of disbelief and denial, they are like those who do not hear or speak, for this reason, the disbelievers were likened to the dead because a dead person does not hear or speak. Similarly, Ibn Khazin Iraqi Shafi'i said in his commentary 'Lubab al-Ta'wil fi Ma'ani al-Tanzil'. 'Intaha' (ended), meaning the text of Madarik finished here. (T)

There is no sign of this text in 'Madarik Sharif'. The irony is that he quoted the reference to 'Tafsir Lubab al-Ta'wil' and wrote 'Intaha', implying that the text was from 'Madarik', whereas the author of 'Madarik' died in 701 AH or 710 AH according to differing opinions, and the compilation of 'Lubab al-Ta'wil' was completed in 725 AH.

Neither was the great Imam Nasafi accustomed to such references, and that too from someone who...

---

1. Rasa'il al-Arkan, chapter on the ruling of the funeral, Maktaba Islamia Quetta, p. 150.
2. Tafsir al-Nasafi (Madarik al-Tanzil), under "And you cannot make those in the graves hear," Dar al-Kitab al-Arabi Beirut, 3/339.
3. Tafsir al-Nasafi, Surah An-Naml, under the verse "Verily, you cannot make the dead hear," Dar al-Kitab al-Arabi Beirut, 3/222.
4. Tafsir al-Nasafi, Surah Ar-Rum, under the verse "For verily, you cannot make the dead hear," Dar al-Kitab al-Arabi Beirut, 3/276.
5. Tafheem al-Masail, Adam Sama' Mawta (The Dead's Inability to Hear) from Hanafi books, Matba' Muhammadi Lahore, p. 88.

फ़तावा रज़विया जिल्द नवीं

"वह सुनता नहीं," तो यह बात ग़लत है (१)। - सुनता नहीं तो यह बातिल है। (त)

फ़ायदा: इमाम अल्लामा शैखुल इस्लाम नसफ़ी ने जिस तरह 'काफ़ी' में तलक़ीन (शिक्षा) की मनाही पर सिर्फ़ लाभ की नफ़ी (इनकार) से उसी आधार पर दलील दी, जिससे साफ़ ज़ाहिर है कि वे मूल रूप से 'समाअ' (मृतकों के सुनने) के मुनकिर (इनकारी) नहीं हैं, वरना वे सीधा यही फ़रमाते कि: "तलक़ीन किसे दी जाए, ईंटों और पत्थरों को?" इसी तरह पाक आयतों की तफ़्सीर में उन्होंने लाभ की नफ़ी और क़बूलियत की नफ़ी का ज़िक्र फ़रमाया। पाक आयत के तहत: "फ़रिश्तों ने काफ़िरों की तुलना मुर्दों से की कि वे जो सुनते हैं उससे लाभ नहीं उठाते।" (२) (काफ़िरों को मुर्दों से उपमा दी गई इस लिहाज़ से कि वे सुनते तो हैं पर उससे फ़ायदा नहीं उठाते। - त)। सूरह नम्ल की आयत के तहत: "चूंकि वे उसे नहीं सुनते थे जो वे सुनते थे, वे उसे समझते नहीं थे और न ही उससे फ़ायदा उठाते थे, इसलिए उन्हें मुर्दों से उपमा दी गई।" (३) (चूंकि काफ़िर सुनते हैं पर उसे समझते नहीं और उससे फ़ायदा नहीं उठाते, इसलिए उन्हें मुर्दों से उपमा दी गई। - त)। सूरह रूम की आयत के तहत: "और ये मुर्दों के हुक्म में हैं, तो यह लालच न रखो कि वे तुम्हारी बात क़बूल करेंगे।" (४) (और ये मुर्दों के हुक्म में हैं तो इसकी तमा (लालच) न रखो कि वे तुम्हारी बात मान लेंगे। - त)। लेकिन 'तफ़हीमुल मसाइल' के लेखक ने, जो मनगढ़ंत बातें बनाने और इफ़्तेरा (झूठ) के माहिर हैं, साफ़ लिख दिया:

[कोष्टक सामग्री] अरबी पाठ: "बहरे, गूंगे," वह लिखते हैं, जिसका अर्थ है कि वे अपने कुफ़्र और झुठलाने की स्थिति में उन लोगों की तरह हैं जो न सुनते हैं और न बोलते हैं, इसी लिए काफ़िरों को मुर्दों से उपमा दी गई क्योंकि मुर्दा न सुनता है और न बोलता है। ऐसा ही इब्न अल-ख़ाज़िन अल-इराक़ी अल-शाफ़ई ने अपनी तफ़्सीर 'लुबाबुत्तावील फ़ी मआनित्तन्ज़ील' में फ़रमाया, समाप्त (५)। (त)

उर्दू स्पष्टीकरण: तफ़्सीर 'मदारिक' में आयत "जिन्होंने हमारी आयतों को झुठलाया वे बहरे गूंगे हैं" के तहत लिखते हैं: अर्थ यह है कि वे अपने कुफ़्र और तकज़ीब (झुठलाने) की हालत में उनकी तरह हैं जो सुनते बोलते नहीं, इसी लिए काफ़िरों को मुर्दों से तश्बीह (उपमा) दी गई इसलिए कि मुर्दा सुनता बोलता नहीं, ऐसे ही इब्न ख़ाज़िन इराक़ी शाफ़ई ने अपनी तफ़्सीर 'लुबाबुत्तावील फ़ी मआनित्तन्ज़ील' में फ़रमाया। 'इन्तहा' यानी मदारिक की इबारत यहाँ ख़त्म हुई। (त)

'मदारिक शरीफ़' में इस इबारत का कोई निशान नहीं है, मज़ा यह है कि इसमें 'तफ़्सीर लुबाबुत्तावील' का हवाला देकर 'इन्तहा' कर दी यानी यहाँ तक इबारत मदारिक की थी, जबकि 'मदारिक' के लेखक

का देहांत ७०१ हिजरी या ७१० हिजरी में (विभिन्न मतों के अनुसार) हुआ, और 'लुबाबुत्तावील' का लेखन ७२५ हिजरी में पूरा हुआ। न तो इमाम नसफ़ी जैसे महान विद्वान ऐसे हवालों के आदी थे, और वह भी अपने किसी...

---

1. रसाइलुल अरकान, जनाज़े के हुक्म का अध्याय, मकतबा इस्लामिया क्वेटा, पृष्ठ १५०।
2. तफ़्सीरुन नसफ़ी (मदारिकुत्तन्ज़ील), आयत "और तुम कब्र वालों को नहीं सुना सकते" के तहत, दारुल किताब अल-अरबी बेरूत, ३/३३९।
3. तफ़्सीरुन नसफ़ी, सूरह नम्ल, आयत "बेशक तुम मुर्दों को नहीं सुना सकते" के तहत, दारुल किताब अल-अरबी बेरूत, ३/२२२।
4. तफ़्सीरुन नसफ़ी, सूरह रूम, आयत "बेशक तुम मुर्दों को नहीं सुना सकते" के तहत, दारुल किताब अल-अरबी बेरूत, ३/२७६।
5. तफ़हीमुल मसाइल, मुर्दों के न सुनने का बयान हनफ़ी किताबों से, मतबअ मोहम्मदी लाहौर, पृष्ठ ८८।

पृष्ठ ९०४ का ९४८

فتاوٰی رضویہ جلد نہم

لا یسمع فھذا باطل ۱ ۔ سنتا نہیں تو یہ باطل ہے۔ (ت)

فائدہ: امام علامہ شیخ الاسلام نسفی نے جس طرح کافی میں منع تلقین پر صرف نفی نفع بروجہ مذکور سے استدلال کیا، جس سے صاف مترشح کہ وہ اصل سماع کے منکر نہیں، ورنہ سرے سے یہی فرمانا تھا کہ تلقین کسے کی جائے، اینٹوں پتھروں کو، یوں ہی آیات کریمہ کی تفسیر میں نفی انتفاع و نفی قبول ذکر فرمائی، زیرِ کریمہ ملائکہ فرمایاشبہ الکفار بالموتٰی حیث لا ینفعون بمسوعھم ۲ (کفار کو مردوں سے تشبیہ دی اس لحاظ سے کہ وہ سنتے ہیں اس سے نفع یاب نہیں ہوتے۔ ت) زیرِ کریمہ نمل لما کانوا لایسمعون مایسمعون لایبھم ینتفعون شبھوا بالموتٰی ۳ (چونکہ کفار سنتے ہیں اس کو سمجھتے نہیں اور اس سے فائدہ نہیں اٹھاتے اس لیے انھیں مردوں سے تشبیہ دی گئی۔ ت) زیرِ کریمہ روم و ھو لاء فی حکم الموتٰی فلا تطمع ان یقبلوا منک ۴ (اور یہ مردوں کے حکم میں ہیں تو اس کی طمع نہ رکھوں کہ وہ تمھاری بات قبول کریں گے۔ ت) مگر صاحب تفہیم المسائل تو اختراع و افتراء کے ماہر کامل صاف لکھ دیا:

[جدول کا مواد] عربی عبارت: صم بکم می نویسد المعنی انھم في حال کفر ھم وتکذیبھم کمن لا یسمع ولا یتکلم فلھذا شبہ الکفار بالموتٰی لان المیت لا یسمع ولا یتکلم کذا قال ابن الخازن العراقی الشافعی فی تفسیرہ لباب التاویل فی معنی التنزیل انتھی ۵ اھـ

اردو وضاحت: تفسیر مدارک میں آیت کریمہ "جنھوں نے ہماری آیتوں کو جھٹلایا بہرے گونگے ہیں" کے تحت لکھتے ہیں: معنی یہ ہے کہ وہ اپنے کفر و تکذیب کی حالت میں ان کی طرح ہیں جو سنتے بولتے نہیں، اسی لیے کفار کو مردوں سے تشبیہ دی گئی اس لیے کہ مردہ سنتا بولتا نہیں،

ایسے ہی ابن خازن عراقی شافعی نے اپنی تفسیر لباب التاویل فی معنی التنزیل میں فرمایا۔ انتہی یعنی عبارت مدارک ختم۔ اھ (ت)

مدارک شریف میں اس عبارت کا نشان نہیں، لطف یہ کہ اس میں تفسیر لباب تاویل کا حوالہ نقل کرکے انتہی کردی یعنی یہاں تک کہ عبارت مدارک تھی، حالانکہ صاحبِ مدارک کی وفات ۷۰۱ھ یا ۷۱۰ھ میں علی اختلاف القولین ہے اور لباب التاویل کی تالیف ۷۲۵ھ میں ختم ہوئی۔ نہ امام اجل نسفی ایسے حوالے کے عادی، اور وہ بھی اپنے کسی

---

۱ رسائل الارکان فصل فی حکم الجنازہ مکتبہ اسلامیہ کوئٹہ ص ۱۵۰ ۲ تفسیر النسفی (مدارک التنزیل) وما انت بمسمع من فی القبور دار الکتاب العربی بیروت ۳/۳۳۹ ۳ تفسیر النسفی سورہ نمل زیر آیت انک لا تسمع الموتٰی دار الکتاب العربی بیروت ۳/۲۲۲ ۴ تفسیر النسفی روم زیر آیت فانک لا تسمع الموتٰی دار الکتاب العربی بیروت ۳/۲۷۶ ۵ تفہیم المسائل عدم سماع موتی از کتب حنفیہ مطبع محمدی لاہور ص ۸۸

From such contemporaries, or even the most insightful ones of the age—yet blindness can make one do as it pleases.

Second Warning: I say: By the grace of Allah Almighty, it has been clarified that we have no dispute regarding the persistence of the body's life and physical hearing; nor is this a general claim of ours, nor does any of our issues depend on it. Thus, if hypothetically, absolute death remained permanent for the body, it would not have caused us any harm. Due to the arrival of religious texts (nusoos), we believe in the reward and punishment in the grave for both soul and body, and for the sake of the body as well, despite the doubts of intellect and tradition, we consider a certain type of life necessary for that enjoyment, comfort, and pain. Yes, this is certainly our objective, and by the grace of Allah Almighty, powerful proofs have been established for it: that the soul remains stable, unchanged, hearing, and seeing, and it has a continuous connection with the body always. Therefore, whatever is done to the body even after separation, the soul will certainly see it and be aware of it; if it is an act of respect, it will like it, and if it is an act of insult, it will be displeased and suffer pain. Previous chapters have already addressed this explanation. Thus, even from outside, if any blow or impact occurs to the deceased's body, if it is by way of insult and contempt, it will definitely cause spiritual injury to the soul. As for whether physical pain and suffering will also affect it—meaning, just as in the living world, a blow to the body becomes an instrument and means for conveying it to the soul so that the soul feels pain due to the separation of connections—does physical pain also occur from human torture after separation, like divine punishment (may Allah protect us), or is the pain negated in it, and only the displeasure due to insult remains? The apparent speech of the noble elders is toward the second view. Therefore, it is said in 'Kafi':

[Box 1] Arabic: ۱۔ المیت لا یتألم بضرب بنی آدم و انما ذلک مما یتفرد بہ اللہ تعالیٰ English Translation: The deceased does not feel pain from the striking of human beings; this is a matter that is exclusive to Allah Almighty. (T)

And this is also the implication of the report from Hazrat Amr bin al-Aas (may Allah be pleased with him):

[Box 2] Arabic: اخرج ابن سعد عن خلف معد ان قال لما انهزمت الروم یوم اجنادین انتهوا الی موضع لا یعبرہ الا انسان وجعلت الروم تقاتل علیہ وقد تقدموہ وعبروہ فتقدم ھشام بن العاص رضی اللہ تعالیٰ عنہ فقاتل علیھم حتی قتل، و وقع علی تلك الثلمة فسدھا، فلما انتھی المسلمون الیھا

هابوا ان يو طؤها الخيل English Translation: Ibn Sa'd narrated from Khalaf bin Ma'dan, who said: When the Romans were defeated on the day of Ajnadayn, they reached a place that could only be crossed by one person at a time. The Romans began to fight at that spot. Hisham bin al-Aas (may Allah be pleased with him) moved forward and fought them until he was martyred, falling into that gap and filling it. When the Muslims reached there, they hesitated to let the horses trample over him...

1. Kafi Sharh Wafi Page 905 of 948

फतावी रज़विया - जिल्द 9

ऐसे समकालीनों से, बल्कि युग के सबसे समझदार लोगों से भी, लेकिन अंधापन इंसान से जो चाहे करवा सकता है।

दूसरी चेतावनी: मैं कहता हूँ: अल्लाह तआला के शुक्र से यह स्पष्ट हो चुका है कि हमें शरीर के जीवन के बने रहने और शारीरिक सुनने की क्षमता के बारे में कोई विवाद नहीं है, न ही यह हमारा सामान्य दावा है, और न ही हमारा कोई मसला इस पर निर्भर है। तो यदि मान लिया जाए कि शरीर के लिए पूर्ण मृत्यु सदैव बनी रहती, तो हमें इसमें कोई हर्ज नहीं था। धार्मिक ग्रंथों (नुसूस) के आगमन के कारण, हमने कब्र में रूह और शरीर दोनों के लिए सुख और दुःख माना है, और बुद्धि और परंपरा के संदेहों के कारण शरीर के लिए भी एक प्रकार का जीवन उस आनंद, सुख और दर्द के लिए आवश्यक माना है। हाँ, यह निश्चित रूप से हमारा उद्देश्य है और अल्लाह तआला की कृपा से इस पर प्रबल प्रमाण स्थापित हो चुके हैं कि रूह स्थिर, अपरिवर्तित, सुनने वाली और देखने वाली बनी रहती है, और शरीर के साथ इसका एक निरंतर संबंध हमेशा रहता है। इसलिए, वियोग के बाद भी शरीर के साथ जो कुछ किया जाएगा, रूह उसे अवश्य देखेगी, उससे अवगत होगी; यदि वह कार्य सम्मान का है तो वह उसे पसंद करेगी, और यदि अपमान का है तो वह अप्रसन्न होगी और कष्ट पाएगी। पिछले अध्याय इस विवरण को स्पष्ट कर चुके हैं। अतः बाहर से भी यदि मृतक के शरीर पर कोई चोट या प्रहार होता है, यदि वह अपमान और तिरस्कार के रूप में है, तो निश्चित रूप से रूह को आध्यात्मिक पीड़ा होगी। रही बात यह कि क्या इससे शारीरिक कष्ट और दर्द भी होगा—यानी, जिस तरह जीवन की दुनिया में शरीर पर लगने वाली चोट उसे रूह तक पहुँचाने का साधन और माध्यम बनती है ताकि संबंधों के टूटने से रूह को दर्द महसूस हो—क्या वियोग के बाद भी मानवीय यातनाओं से उसी तरह दर्द होता है जैसे ईश्वरीय दंड से (अल्लाह की पनाह), या इसमें दर्द समाप्त हो जाता है और केवल अपमान के कारण नाखुशी बनी रहती है? प्रतिष्ठित बुजुर्गों का स्पष्ट कथन दूसरे पक्ष की ओर है। इसीलिए 'काफी' में कहा गया है:

[बॉक्स 1] अरबी: ١۔ الميت لا يتألم بضرب بنى آدم و انما ذلک مما يتفرد بہ اللہ تعالیٰ हिंदी अनुवाद: मनुष्य के मारने से मृतक को दुख नहीं होता, यह एक ऐसा मामला है जो केवल अल्लाह तआला के साथ विशेष है। (त)

और यही हज़रत अम्र बिन अल-आस (रज़ियल्लाहु अन्हु) के कथन का अर्थ है:

[बॉक्स 2] अरबी: اخرج ابن سعد عن خلف معد ان قال لما انهزمت الروم يوم اجنادين انتهوا الى موضع لا يعبره الا انسان وجعلت الروم تقاتل عليہ وقد تقدموہ وعبروہ فتقدم هشام بن العاص رضى اللہ تعالىٰ عنہ فقاتل عليهم حتى قتل، و وقع على تلك الثلمة فسدها، فلما انتهى المسلمون اليها هابوا ان يو طؤها الخيل हिंदी अनुवाद: इब्न साद ने खलफ बिन मादान से रिवायत की है, वे कहते हैं: जब अजनादैन के दिन रोमन पराजित होने लगे, तो वे एक ऐसी तंग जगह पर पहुँचे जिसे केवल एक-एक व्यक्ति ही पार कर सकता था। रोमन वहीं लड़ने लगे। हिशाम बिन अल-आस (रज़ियल्लाहु अन्हु) आगे बढ़े और तब तक लड़ते रहे जब तक कि वे शहीद होकर उसी तंग जगह पर गिर नहीं गए। उनके शरीर से वह दरार भर गई। जब मुसलमान वहाँ पहुँचे, तो वे उनके ऊपर घोड़े दौड़ाने से झिझकने लगे...

1. काफी शरह वाफी पृष्ठ 948 का 905

ایسے معاصر بلکہ مدارک العصر سے، مگر نابینا ئی جو چاہے کرائے۔ تنبیہ دوم: اقول: بحمد اللہ تعالٰی واضح ہو چکا کہ ہمیں بقائے حیات بدن و سماع جسمانی سے کچھ کلام نہ وہ عام لوگ میں ہمارا دعوٰی، نہ ہمارا کوئی مسئلہ اس پر موقوف، تو اگر بالفرض بدن کے لیے موت مطلق دائم رہتی ہمارا کچھ حرج نہ تھا، ورود نصوص کے سبب ہم نے تنعیم و تعذیب قبر روح و بدن دونوں کے لیے مانی، اور شبہات عقل و نقل بدن کے واسطے بھی ایک نوع حیات اس تلذذ و تنعم و تالم کے لیے لازم جانی، ہاں یہ ضرور ہمارا مدعا ہے اور بحمد اللہ تعالٰی دلائل قاہرہ اس پر قائم ہو چکے کہ روح باقی مستقر بحال و نا متغیر و سمیع و مبصر، اور بدن کے ساتھ اس کا ایک تعلق ہمیشہ مستمر، تو جو کچھ بعد فراق بھی بدن کے ساتھ کیا جائے ضرور دیکھے گی، مطلع ہوگی، اگر وہ فعل تعظیم ہے پسند کرے گی یا اہانت ہے ناخوش ہوگی، اذیت پائے گی، فصول سابقہ اس بیان کی متکفل ہو چکیں تو خارج سے بھی جو ضرب یا صدمہ بدن میت پر واقع ہوا اگر بطور استہانت و تحقیر ہے قطعاً روح کا ایذا روحانی ہوگی، رہا یہ کہ اس سے اس اذیت و درد جسمانی بھی لاحق ہو گا یا نہیں، یعنی جس طرح عالم حیات میں بدن پر جو صدمہ آتا ہے بدن اسے روح تک پہنچانے کا آلہ و واسطہ بنتا کہ اس کے تفرق اتصال سے روح کو درد پہنچتا، آیا بعد فراق بھی مثل عذاب الہی والعیاذ باللہ تعالٰی تعذیب بشری سے بھی الم ہوتا ہے یا اس میں درد منتفی، اور صرف وہی توہین کے باعث ناخوشی باقی ظاہر کلام مشائخ کرام جانب دوم ہے، ولذا کانی میں فرمایا:

[Box 1] المیت لا یتألم بضرب بنی آدم و انما ذلک مما یتفرد بہ اللہ تعالٰی ۱۔ | میت کو بنی آدم کے مارنے سے دکھ نہیں ہوتا، یہ ایسا امر ہے جو خدائے تعالٰی کے ساتھ خاص ہے۔ (ت)

اور یہی مقتضائے اثر حضرت عمرو بن عاص رضی اللہ تعالٰی عنہ ہے:

[Box 2] اخرج ابن سعد عن خلف معد ان قال لما انهزمت الروم یوم اجنادین انتهوا الی موضع لا یعبره الا انسان وجعلت الروم تقاتل علیہ وقد تقدموه وعبروه فتقدم هشام بن العاص رضی الله تعالیٰ عنہ فقاتل علیهم حتی قتل، و وقع علی تلك الثلمة فسدها، فلما انتهی المسلمون الیها هابوا ان یو طؤها الخیل

| ابن سعد نے خلف بن معدان سے روایت کی وہ فرماتے ہیں جب روز اجنادین رومی شکست خوردہ ہونے لگے ایک ایسی تنگ جگہ پہنچ گئے جسے بس ایک ایک آدمی پار کر سکتا تھا، اسی جگہ رومی جنگ کرنے لگے، ہشام بن عاص رضی اللہ تعالیٰ عنہ آگے بڑھے، لڑتے رہے یہاں تک کہ شہید ہو کر اسی تنگ جگہ آ رہے۔ ان کے جسم سے وہ حصہ بھر گیا، جب مسلمان وہاں پہنچے تو ان کے اوپر گھوڑے

[Table Header] [Arabic Text]: Fa-qala ‘Amr bin al-‘As radiyAllahu ‘anhu ayyuha an-nas innAllaha qad istash-hadahu wa rafa’a ruhahu wa innama huwa juth-thah fa-awti’u-hu al-khail thumma awti’a-hu huwa wa-taba’ahu an-nas hayth qatta’u-hu. 1 [Urdu Translation]: What was the fear of shouting, Hazrat Amr bin al-Aas (may Allah be pleased with him) said: O people! Allah Almighty granted them martyrdom and raised his soul. Now this is just a corpse, so run horses over it. Then he took the lead and the people followed him, until that body was torn into pieces. (T)

Imam Jaleel Jalal al-Din al-Suyuti says: [Arabic Text]: Hadhihi al-athar la tadull ‘ala anna al-arwah la tattasilu bi-al-abdan ba’da al-mawt innama tadull ‘ala anna al-ajsam la tatadarraru bi-ma yanaluha min ‘adhab an-nas laha wa-man akala at-turab laha fa-inna ‘adhab al-qabr laysa min jinsi ‘adhab ad-dunya wa-innama huwa naw’un akhar yasilu ila al-mayyit bi-mashi’ati Allah ta’ala wa-qudratihi. 2 [Urdu Translation]: These narrations do not serve as proof that the soul has no connection with the body after death. Their indication is only that the body is not harmed by the pain inflicted upon it by humans, nor is it pained by being eaten by the soil. This is because the punishment of the grave is not of the same nature as the punishment of this world; rather, it is a different kind of thing that reaches the deceased by the will and power of Allah Almighty. (T)

And the apparent meanings of Hadith and other reports, narrations, and sayings of the righteous point towards the first side. In Hadith 26, the narration from Daraqutni mentions an addition of the words "in pain," meaning breaking the bone of a dead and a living person is equal in pain. Allama al-Tibi in the commentary of Mishkat states:

[Arabic Text]: Jammun ghafirun dhahabu ila anna al-murad anna kasra ‘azm al-mayyit ka-kasri ‘azmi-hi hayyan fi al-ta'allum wa al-ta'adh-dhi. 3 [Urdu Translation]: A vast group of scholars has taken the view that the meaning of the Hadith is that breaking the bone of a deceased person is like breaking their bone while alive in terms of pain and suffering.

Imam Abu Umar ibn Abd al-Barr, the research scholar, has his statement on this chapter mentioned in points 40 and 41, and the statements of the three leaders Allama Ibrahim Halabi, Ahmad Masri, and Muhammad Shami, the commentators of 'Durr', were mentioned after that. In Hadith 42, as narrated in Sahih Muslim from the

same Amr bin al-Aas (may Allah be pleased with him): "When you bury me, scatter soil over me..." 4. When you bury me then soil on me

[Footnotes] 1 Al-Tabaqat al-Kubra by Ibn Sa'd, biography of Hisham bin al-Aas (may Allah be pleased with him), Dar Sadir, Beirut, 4/143. 2 Sharh al-Sudur, Chapter on the conditions of the dead in their graves, Khilafat Academy, Mingora, Swat, p. 83. 3 Mirqat Sharh al-Mishkat, citing al-Tibi, third section of the chapter on burying the dead, Maktaba Imdadia, Multan, 4/9. 4 Sahih Muslim, Chapter on how Islam destroys what was before it, Nur Muhammad Asah al-Matabi', Karachi, 1/66.

[सारणी शीर्षक] [अरबी पाठ]: फ़-क़ाला अमर बिन अल-आस रज़ियल्लाहु अन्हु अय्युहा अन-नास इन्नल्लाहा क़द इस्तश-हदहु व रफ़-अ रूहहु व इन्नमा हुवा जुथ-थह फ़-अवतिउ-हु अल-खैल थुम्मा अवतिअ-हु हुवा व-तब-अहु अन-नास हयथ क़त्त-उ-हु। 1 [उर्दू अनुवाद]: चिल्लाने से क्या डरना, हज़रत अमर बिन अल-आस रज़ियल्लाहु तआला अन्हु ने कहा: ऐ लोगो! अल्लाह तआला ने इन्हें शहादत दी और इनकी रूह को उठा लिया, अब यह सिर्फ एक शव (जिस्म) है, तो इस पर घोड़े दौड़ा दो, फिर उन्होंने पहल की और लोगों ने उनका अनुसरण किया, यहाँ तक कि वह जिस्म टुकड़े-टुकड़े हो गया। (त)

इमाम जलील जलालुद्दीन सुयूती फ़रमाते हैं: [अरबी पाठ]: हाज़िही अल-आथार ला तदुल्ल अ़ला अन्ना अल-अरवाह ला तत्तसिलु बिल-अब्दान ब़दा अल-मौत इन्नमा तदुल्ल अ़ला अन्ना अल-अजसाम ला ततदर्ररु बि-मा यनालुहा मिन अ़ज़ाब अन-नास लहा व-मन अकलत-तुराब लहा फ़-इन्ना अ़ज़ाब अल-क़ब्र लैसा मिन जिन्सि अ़ज़ाब अद-दुनिया व-इन्नमा हुवा नौउन आख़र यसिलु इला अल-मय्यित बि-मशीयति अल्लाह तआला व-क़ुदरतिहि। 2 [उर्दू अनुवाद]: इन रिवायतों में इस पर दलील नहीं कि मौत के बाद बदन से रूह का ताल्लुक नहीं होता, इनकी दलालत सिर्फ इस पर है कि जिस्म को उस तकलीफ़ से ज़रर नहीं होता जो इंसानों की जानिब से उसे पहुँचाई जाती है, इसी तरह मिट्टी के खा लेने से उसे तकलीफ़ नहीं होती, इसलिए कि क़ब्र का अज़ाब दुनिया के अज़ाब की क़िस्म से नहीं है, वह एक दूसरी तरह की चीज़ है जो अल्लाह तआला की मर्जी और क़ुदरत से मय्यत (मृतक) को पहुँचती है। (त)

और हदीस के ज़ाहिरी मानी और अन्य रिवायतें व नेक लोगों के क़ौल पहले पक्ष की ओर हैं। हदीस 26 में दारक़ुतनी की रिवायत में 'दर्द में' शब्द की अधिकता गुज़री है, यानी मुर्दे और ज़िंदा की हड्डी तोड़ना दर्द में बराबर है। अल्लामा तैयबी शरह मिश्कात में फ़रमाते हैं:

[अरबी पाठ]: जम्मुन ग़फ़रुन ज़हबू इला अन्ना अल-मुराद अन्ना कसरा अ़ज़्म अल-मय्यित क-कसरी अ़ज़्मि-ही हय्यन फ़ी अत-तअलुम व अत-तअज़ी। 3 [उर्दू अनुवाद]: उलमा की एक बड़ी जमात इस तरफ गई कि हदीस का मतलब यह है कि मृतक की हड्डी तोड़ना दर्द और तकलीफ़ में वैसा ही है जैसा कि ज़िंदा की।

इमाम अबू उमर इब्न अब्दुल बर्र, जो एक शोधकर्ता शेख़ हैं, उनका इस अध्याय में बयान क़ौल 40 और 41 में गुज़रा और तीनों अल्लामाओं इब्राहीम हलबी, अहमद मिस्री और मुहम्मद शामी, जो 'दुर्र' के व्याख्याकार हैं, के क़ौल इसके बाद ज़िक्र हुए। हदीस 42 में सहीह मुस्लिम की रिवायत के अनुसार उन्हीं अमर बिन अल-आस रज़ियल्लाहु तआला अन्हु से मरवी है: 'जब तुम मुझे दफ़्न करो तो मुझ पर मिट्टी बिखेर देना...' 4। जब मुझे दफ़्न करो तो मिट्टी मुझ पर

[पाद टिप्पणियाँ] 1 अल-तबाक़ात अल-कुबरा, इब्न साद, हिशाम बिन अल-आस रज़ियल्लाहु अन्हु की जीवनी, दार सादिर, बेरूत, 4/143। 2 शरह अल-सुदूर, क़ब्रों में मृतकों की स्थिति का अध्याय, ख़िलाफ़त एकेडमी, मिंगोरा, स्वात, पृ. 83। 3 मिरक़ात शरह मिश्कात, अल-तैयबी के हवाले से, मृतक को दफनाने का अध्याय, तीसरा अनुभाग, मकतबा इमदादिया, मुल्तान, 4/9। 4 सहीह मुस्लिम, इस्लाम पूर्व के कर्मों को मिटा देता है, नूर मुहम्मद असहुत अल-मतबे, कराची, 1/66।

[خانہ اول] [عربی متن]: فقال عمر بن العاص رضی اللہ عنہ ایھا الناس ان اللہ قد استشھدہ و رفع روحہ وانما ھو جثۃ فاوطؤہ الخیل ثم اوطأہ ھو وتبعہ الناس حیت قطعوہ۔ 1 [اردو ترجمہ]: چلانے سے خوف کیا، حضرت عمر و بن عاص رضی اللہ تعالٰی عنہ نے کہا: اے لوگو ! اللہ تعالٰی نے انھیں شہادت دی اور اس کی روح کو اٹھالیا اب یہ صرف جثہ ہے، تو اس پر سے گھوڑے گزار دو، پھر انھوں نے پہل کی اور لوگوں نے آپ کی اتباع کی، یہاں تک کہ وہ جسم پارہ پارہ ہوگیا، (ت)

امام جلیل جلال الدین سیوطی فرماتے ہیں: [عربی متن]: ھذہ الآثار لا تدل علی ان الارواح لا تتصل بالا بدان بعد الموت انما تدل علی ان الاجسام لاتتضر ربما ینالھا من عذاب الناس لھا ومن اکل التراب لھا فان عذاب القبر لیس من جنس عذاب الدنیا وانما ھو نوع اخر یصلی الی المیت بمشیۃ اللہ تعالی وقدرتہ 2۔ [اردو ترجمہ]: ان کا آثار میں اس پر دلیل نہیں کہ موت کے بعد بدن سے روح کا تعلق نہیں ہوتا، ان کی دلالت صرف اس پر ہے کہ جسم کو تکلیف سے ضرر نہیں ہوتا جو انسانوں کی جانب سے اسے پہنچائی جاتی ہے، اسی طرح مٹی کے کھا لینے سے اسے تکلیف نہیں ہوتی، اس لیے کہ عذاب قبر عذاب دنیا کی جنس سے نہیں، وہ ایک دوسری قسم کی چیز ہے جو اللہ تعالٰی کی مشیت و قدرت سے میت کو پہنچتی ہے۔ (ت)

اور ظواہر حدیث و دیگر آثار واخبار واقوال اخیار جانب اول ہیں، حدیث ۲۶ میں روایت دار قطنی سے زیادت لفظ فی الالم گزری یعنی مردہ و زندہ کی ہڈی توڑنی درد میں برابر ہے، علامہ طیبی شرح مشکوۃ میں فرماتے ہیں :

[عربی متن]: جم غفیر ذهبوا الی ان المراد ان کسر عظم المیت ککسر عظمه حیافی التألم والتأذی 3۔

[اردو ترجمہ]: جماعت عظیم علماء اس طرف گئی کہ مراد حدیث یہ ہے کہ مردے کی ہڈی توڑنی درد و ایذا میں ایسے ہی ہے جیسے زندہ کی۔

امام ابو عمر ابن عبدالبر شیخ محقق کا اس باب میں ارشاد قول ۴۰ و ۴۱ میں گزرا اور تینوں سید علامہ ابراہیم حلبی و احمد مصری و محمد شامی محشیان دُر کے اقوال اسی کے بعد مذکور ہوئے ، حدیث ۴۲ میں بروایت صحیح مسلم شریف انہی عمرو بن العاص رضی اللہ تعالیٰ عنہ سے گزرا : اذا دفنتموني فشنوا علی التراب شناً 4 ۔ جب مجھے دفن کرو تو مٹی مجھ پر

[حواشی] 1 الطبقات الکبری لابن سعد ترجمہ ہشام بن العاص رضی اللہ عنہ دار صادر بیروت ۱۴۳/۴ 2 شرح الصدور باب احوال الموتی فی قبور ہم خلافت اکیڈمی منگورہ سوات ص ۸۳ 3 مرقاۃ شرح مشکوۃ بحوالہ طیبی فصل ثالث من باب دفن المیت مکتبہ امدادیہ ملتان ۴/۹ 4 صحیح مسلم باب کون الاسلام یہدم ما قبلہ نور محمد اصح المطابع کراچی ۶۶/۱

Fatawa Razawiyya, Volume 9.

Slowly and gently placing [into the grave]. The same bequest has passed from Ala bin Lajlaj Tab'i in Hadith 32, and there, the saying of the Researching Sheikh on it is:

This statement indicates that the deceased person feels and experiences pain from that which causes pain to a living person.	**This statement points towards the fact that the deceased feels sensation, and they are pained by the same thing that pains a living person. (T)**

"In Hadith 16, the command of Imam Sufyan is mentioned:

Indeed, he adjures his washer by Allah: "Do not but lighten my washing (be gentle)."	**A deceased person gives an oath in the name of God to the one washing him to be gentle with me.**

"Ummul Momineen Hazrat Siddiqa (may Allah be pleased with her) saw a woman that a comb was being used very forcefully in her (the deceased's) head. She said:

Why are you pulling the hair of your deceased? Imam Muhammad in 'al-Athar': Abu Hanifa informed us, and Abd al-Razzaq narrated in his 'Musannaf' - and the wording is his - they said: Sufyan informed us from al-Thawri, both of them from Hammad bin Abi Sulaiman, from Ibrahim al-Nakha'i, from Aisha (may Allah be pleased with her) that she saw a woman who was almost [raking] her head with a comb, so she said: "Why are you pulling the hair of your deceased?" And Abu Ubaid al-Qasim bin Salam and Ibrahim al-Harbi narrated similarly in their two books on 'Gharib al-Hadith' from Ibrahim from Aisha (may Allah be pleased with her) that she was asked about the deceased person whose head is being combed, so she said: "Why..."

For what crime are you pulling the forehead hair of your deceased? (This) was narrated by Imam Muhammad in the book 'al-Athar'. He said: Abu Hanifa informed us and Abd al-Razzaq narrated in 'Musannaf' - the words are his - they said: Sufyan informed us, who is a narrator from Thawri. Imam Abu Hanifa and Sufyan Thawri both narrate from Hammad bin Abi Sulaiman, he from Ibrahim Nakha'i, he from Hazrat Aisha (may Allah be pleased with her); they saw that they were combing a woman's hair, so she said: "Why are you pulling the forehead hair of your deceased?" And like Imam Muhammad, Abu Ubaid Qasim bin Salam and Ibrahim al-Harbi in their book 'Gharib al-Hadith'

1. Ash'at al-Lum'at, Bab Dafn al-Mayyit, Maktaba Nooriya Razvia, Sukkur, 1/769
2. Sharh al-Sudur 'an Sufyan, Bab Ma'rifat al-Mayyit man yaghsiluhu, Khilafat Academy Mangora Swat, p. 40
3. Kitab al-Athar, Imam Muhammad, Bab al-Jana'iz wa Ghusl al-Mayyit, Idarat al-Qur'an wal-Ulum al-Islamiyya, Karachi, p. 46
4. Musannaf Abd al-Razzaq, Bab Shi'r al-Mayyit wa azfarihi, Hadith 6231, Al-Maktab al-Islami, Beirut, 3/437

फ़तावा रज़विया, जिल्द 9.

आहिस्ता-आहिस्ता नरमी से (कब्र में) डालना। यही वसीयत हदीस 32 में अला बिन लजलाज ताबई से गुज़री और वहीं इस पर शैख़ मुहक़्क़िक़ का कौल कि:

यह कौल इस तरफ़ इशारा करता है कि मय्यत को एहसास होता है और उसे उस चीज़ से दर्द होता है जिससे ज़िंदा को दर्द होता है।

इस कौल में इस जानिब इशारा है कि मय्यत को एहसास होता है और उसे भी इस चीज़ से दर्द पहुँचता है जिससे ज़िंदा को दर्द पहुँचता है। (त)

"हदीस 16 में इमाम सुफ़यान का इर्शाद गुज़रा कि:

वह अपने नहलाने वाले को अल्लाह की क़सम देता है कि मुझ पर ग़ुस्ल (नहलाने) में नरमी करना।

मुर्दा अपने नहलाने वाले को खुदा की क़सम देता है कि मुझ पर आसानी करना।

"उम्मुल मोमिनीन हज़रत सिद्दीका रज़ियल्लाहु तआला अन्हा ने एक औरत को देखा कि उसके (मय्यत के) सर में ज़ोर-ज़ोर से कँघी की जा रही है। फ़रमाया:

"तुम अपने मुर्दे (के बाल) क्यों खींच रहे हो?" इमाम मुहम्मद 'किताबुल आसार' में: हमें अबू हनीफ़ा ने ख़बर दी और अब्दुर्रज्ज़ाक ने अपनी 'मुसन्निफ़' में - और अलफ़ाज़ उन्हीं के हैं - उन दोनों ने कहा: हमें सुफ़यान ने ख़बर दी, वह सौरी से रावी हैं, दोनों हम्माद बिन अबी सुलेमान से, वह इब्राहिम नख़ई से, वह हज़रत आयशा रज़ियल्लाहु अन्हा से कि उन्होंने एक औरत को देखा कि वह कँघी से सर को गोया खुरच रही थी, तो उन्होंने फ़रमाया: "तुम अपने मुर्दे के बाल क्यों खींच रहे हो?" और इसी की तरह अबू उबैद क़ासिम बिन सलाम और इब्राहिम हरबी ने अपनी किताबों 'ग़रीबुल हदीस' में इब्राहिम से, उन्होंने हज़रत आयशा रज़ियल्लाहु अन्हा से रिवायत किया कि उनसे मय्यत के सर में कँघी करने के बारे में पूछा गया, तो उन्होंने फ़रमाया: "क्यों..."

किस जुर्म में अपने मुर्दे की पेशानी के बाल खींचते हो। (इसे) इमाम मुहम्मद ने 'किताबुल आसार' में रिवायत किया, फ़रमाया हमें अबू हनीफ़ा ने ख़बर दी और अब्दुर्रज्ज़ाक ने 'मुसन्निफ़' में रिवायत किया। अलफ़ाज़ उसी के हैं: कहा हमें ख़बर दी सुफ़यान ने वह सौरी से रावी हैं। इमाम अबू हनीफ़ा और सुफ़यान सौरी दोनों हम्माद बिन अबी सुलेमान से, वह इब्राहिम नख़ई से, वह हज़रत आयशा रज़ियल्लाहु तआला अन्हा से रावी हैं उन्होंने देखा कि एक औरत के बालों में कँघा कर रहे हैं, फ़रमाया: "क्यों अपनी मय्यत की पेशानी के बाल खींचते हो?" और इसे इमाम मुहम्मद की तरह अबू उबैद क़ासिम बिन सलाम और इब्राहिम हरबी ने अपनी किताब 'ग़रीबुल हदीस' में

1. अशअतुल लमआत, बाब दफ्न अल-मय्यित, मकतबा नूरिया रज़विया, सुक्कुर, 1/769
2. शरहुस सुदूर अन सुफ़यान, बाब मारिफ़त अल-मय्यित मन यग़ासिलुहु, ख़िलाफ़त एकेडमी मंगोरा स्वात, पृ. 40
3. किताबुल आसार इमाम मुहम्मद, बाब अल-जनाइज़ व ग़ुस्ल अल-मय्यित, इदारातुल क़ुरआन वल-उलूम अल-इस्लामिया, कराची, पृ. 46
4. मुसन्निफ़ अब्दुर्रज्ज़ाक, बाब शे'र अल-मय्यित व अज़फ़ारिही, हदीस 6231, अल-मकतब अल-इस्लामी, बेरूत, 3/437

آہستہ آہستہ نرم نرم ڈالنا۔ یہی وصیت حدیث ۳۲ میں علاء بن لجلاج تابعی سے گزری اور وہیں اس پر شیخ محقق کا قول کہ :

ایں قول اشارت است بآنکہ میت احساس می کند ودردناک می شود بآنچہ دردناک می شود بآں زندہ ۱۔

اس قول میں اس جانب اشارہ ہے کہ میت کو احساس ہوتا ہے اور اسے بھی اس چیز سے درد پہنچتا ہے جس سے زندہ کو درد پہنچتا ہے (ت)

"حدیث ۱۶ میں امام سفیان کا ارشاد گزرا کہ :

انہ لیناشد باللہ غاسلہ الا خففت غسلی ۲۔

مردہ اپنے نہلانے والے کو خدا کی قسم دیتا ہے کہ مجھ پر آسانی کرنا۔

"ام المومنین حضرت صدیقہ رضی اللہ تعالٰی عنہا نے ایک عورت کو دیکھا کہ اس کے سر میں زور زور سے کنگھی کی جاتی ہے۔ فرمایا:

علام تنصون میتکم ۳۔ الامام محمد في الآثار اخبرنا ابو حنیفة ح و عبدالرزاق فی مصنفه واللفظ لہ قال اخبرنا سفین عن الثوری کلاهما عن حماد بن ابي سلیمان عن ابراهیم النخعی عن عائشة رضي الله تعالی عنها انها رأت امرأة یکدون رأسہا بمشط فقالت علام تنصو میتکم ۴ ورواه کمحمد ابو عبید القاسم بن سلام وابراہیم الحربی فی کتابیهما فی غریب الحدیث عن ابراهیم عن عائشة رضي الله تعالی عنها انها سئلت عن المیت یسرح رأسه فقالت علام۔

کس جرم میں اپنے مردے کے پیشانی کے بال کھینچتے ہو۔ (اسے) امام محمد نے کتاب الآثار میں روایت کیا، فرمایا ہمیں ابوحنیفہ نے خبر دی اور عبدالرزاق نے مصنف میں روایت کیا۔ الفاظ اسی کے ہیں : کہا ہمیں خبر دی سفیان نے وہ ثوری سے راوی ہیں۔ امام ابوحنیفہ اور سفیان ثوری دونوں حماد بن ابی سلیمان سے وہ ابراہیم نخعی سے وہ حضرت عائشہ رضی اللہ تعالیٰ عنہا سے راوی ہیں انھوں نے دیکھا کہ ایک عورت کے بالوں میں کنگھا کر رہے ہیں، فرمایا: "کیوں اپنی میت کی پیشانی کے بال کھینچتے ہو؟" اور اسے امام محمد کی طرح ابو عبید قاسم بن سلام اور ابراہیم حربی نے اپنی کتاب غریب الحدیث

۱ اشعۃ اللمعات باب دفن المیت مکتبہ نوریہ رضویہ سکھر ۱/۷۶۹ ۲ شرح الصدور عن سفیان باب معرفۃ المیت من یغسلہ خلافت اکیڈمی منگورہ سوات ص ۳۴۰ کتاب الآثار امام محمد باب الجنائز و غسل المیت ادارۃ القرآن والعلوم الاسلامیہ کراچی ص ۴۴۶ مصنف عبدالرزاق باب شعر المیت واظفارہ حدیث ۶۲۳۱ المکتبۃ الاسلامی بیروت ۳/۴۳۷

Fatawa Razawiyyah - Volume 9

"Tansoon Mayyitakum"[1] (You pull/hurt your deceased). I have narrated from Ibrahim Nakha'i, who narrated from Hazrat Aisha Siddiqa (may Allah be pleased with her). She was asked about combing the hair of a deceased person, to which she replied: "Why do you pull the forehead hair of your deceased?" (t)

In summary, the inclination is towards this side. In any case, if pain is admitted, it does not contradict the issue of 'oath regarding striking' because pain will reach through the restored life, whereas the oath was regarding the life present at the time of the oath, as we have already presented its research from 'Al-Fath' (Fath al-Qadir). And if it is not admitted, then there is no contradiction in 'hearing' because our discourse is regarding the soul; whether it is a body or not is equal. Therefore, Imam Ajall al-Suyuti, despite having brilliant and powerful researches in establishing the hearing of the dead, commented on this discourse as follows:

"This is how this station should be understood. And Allah the Pure is the Master of Blessings. Best prayers and perfect peace be upon our Master Muhammad, who is the most generous among the generous, and upon his family and companions until the Day of Judgment." (t)

Second Answer: Granted, the discourse is about the soul, but where is it stated that 'negated hearing' does not mean perception through physical organs? In this way, the objective is achieved and the inconsistency is removed, as what is negated is the former, and what is affirmed is in the sense of complete disclosure of sounds in a partial manner. Close to this answer is a humble discourse by Hazrat Sheikh Muhaqqiq (may Allah have mercy on him), who states in 'Sharh Mishkat':

(Left Persian Text) / (Right Urdu Translation): Here is another discussion: even if we hypothetically concede regarding the proof of hearing, considering that hearing is through the sense of hearing and the ear is damaged due to body decay, we would say that the negation of hearing does not necessitate the negation of knowledge. Knowledge belongs to the soul which remains, so knowledge of things seen and heard will be obtained although not in the manner of physical seeing and hearing. Just as some theologians have interpreted Allah Almighty's 'Hearing' and 'Seeing' as knowledge of things heard and seen, etc. (t)

[1] Gharib al-Hadith by Qasim bin Sallam and Ibrahim al-Harbi. [2] Ashi'at al-Lam'at, Chapter: Ruling of Isra, Maktaba Nooriya Razawiyyah Sukkur, 3/400 & 401.

फ़तावा रज़विया - जिल्द 9

"तन्सून मय्यितकुम"[1] (तुम अपने मुर्दे को तकलीफ देते हो)। इब्राहीम नखई से रिवायत है, उन्होंने हज़रत आइशा सिद्दीक़ा (रज़ियल्लाहु अन्हा) से रिवायत किया कि उनसे मय्यित के सर में कंघी करने के बारे में सवाल हुआ, तो उन्होंने फ़रमाया: क्यों अपने मुर्दे के माथे के बाल खींचते हो। (त)

संक्षेप में, रुझान इसी ओर है। बहरहाल, अगर दुख (तकलीफ) माना जाए, तो मार के कसम के मसले पर कोई आपत्ति नहीं होती, क्योंकि दुख पुनः प्राप्त जीवन से पहुँचेगा, जबकि कसम खाते समय मौजूद जीवन के बारे में थी, जैसा कि हम 'फ़तह' (फ़तहुल क़दीर) से इसकी शोध पेश कर चुके हैं। और अगर न माना जाए, तो सुनने (समाअ) में कोई बाधा नहीं है क्योंकि हमारी बात रूह (आत्मा) के बारे में है; शरीर का होना या न होना बराबर है। इसीलिए इमाम अजल्ल सुयूती ने, मुर्दों के सुनने को साबित करने के बावजूद, शानदार और प्रभावशाली शोध रखते हुए, इस व्याख्या पर यह टिप्पणी की है:

"इस स्थान को इसी तरह समझना चाहिए। और अल्लाह पाक ही उपकारों का मालिक है। और हमारे आका हज़रत मुहम्मद पर सबसे उत्तम दरूद और पूर्ण सलाम हो, जो उदार लोगों में सबसे अधिक उदार हैं, और उनकी संतान और साथियों पर प्रलय के दिन तक।" (त)

दूसरा उत्तर: माना कि बात रूह ही के बारे में है, लेकिन यह कहाँ से आया कि नकारा गया 'सुनना' शारीरिक अंगों के माध्यम से बोध नहीं है? इस तरह भी उद्देश्य प्राप्त होता है और विरोधाभास समाप्त हो जाता है क्योंकि जो नकारा गया है वह यह है, और जो साबित है वह आंशिक रूप से ध्वनियों के पूर्ण प्रकटीकरण के अर्थ में है। इस उत्तर के करीब हज़रत शेख़ मोहक़्क़िक़ (रहमतुल्लाहि अलैह) ने नम्रतापूर्वक बात की है, वह 'शर्ह मिश्कात' में फ़रमाते हैं:

(बाएं फारसी पाठ) / (दाएं हिंदी अनुवाद): यहाँ एक और चर्चा है कि मान लीजिए अगर हम सुनने के प्रमाण से पीछे हटें, इस लिहाज़ से कि सुनना कान से होता है और शरीर के क्षय होने के कारण कान खराब हो चुका है, तो हम कहेंगे कि सुनने के निषेध से ज्ञान (इल्म) का निषेध अनिवार्य नहीं होता। ज्ञान रूह से होता है जो शेष रहती है, तो देखी और सुनी जाने वाली चीज़ों का ज्ञान प्राप्त होगा भले ही वह शारीरिक देखने और सुनने की तरह न हो। जैसा कि कुछ धर्मशास्त्रियों (मुतकल्लिमीन) ने अल्लाह तआला के'सुनने' और 'देखने' की व्याख्या सुनी और देखी जाने वाली चीज़ों के ज्ञान से की है, इत्यादि। (त)

[1] ग़रीबुल हदीस, क़ासिम बिन सलाम और इब्राहीम अल-हरबी। [2] अशिअतुल लम्आत, बाब: हुक्मुल इसरा, मकतबा नूरिया रज़विया सुक्कुर, 3/400 और 401।

पृष्ठ 908/948

تنصون میتکم[1] ۔ میں ابراہیم نخعی سے، انھوں نے حضرت عائشہ صدیقہ رضی اللہ تعالٰی عنہا سے روایت کیا، ان سے میت کے سر میں کنگھا کرنے سے متعلق سوال ہوا، فرمایا: کیوں اپنی میت کا موئے پیشانی کھینچتے ہو۔ (ت)

بالجملہ رجحان اسی جانب ہے اور بہر حال اگر الم مانئے تو مسئلہ یمین فی الضرب پر کچھ نقض نہیں کہ الم پہنچے گا حیات معادہ سے، اور حلف تھا حیات موجودہ عند الحلف پر، کما قد منا تحقیقہ عن الفتح (جیسا کہ فتح القدیر سے اس کی تحقیق ہم پیش کر چکے۔ ت) اور نہ مانیے تو سماع میں کچھ نقض نہیں کہ ہمارا کلام روح سے ہے آیت بدن ہونا نہ ہونا یکساں۔ ولذا الامام اجل سیوطی نے بایں کہ اثبات سماع موتٰی میں ہو تحقیقات باھرہ و قاہرہ رکھتے ہیں اس تقریر پر تقریر فرمائی :

ھکذا ینبغی ان یفھم ھذا المقام واللہ سبحانہ ولی الانعام وافضل الصلوۃ واکمل السلام علی سیدنا محمد اکرم الکرام والہ وصحبہ الی یوم القیام۔ اسی طرح اس مقام کو سمجھنا چاہئے اور خدائے پاک ہی انعام کا مالک ہے، اور بہتر درود، کامل تر سلام ہمارے آقا حضرت محمد پر جو کریموں میں سب سے زیادہ کریم ہیں، اور ان کی آل و اصحاب پر، روز قیامت تک۔ (ت)

جواب دوم: مانا کہ روح ہی میں کلام ہے مگر کہاں سے کہ سمع منفی بمعنی ادراک بتوسط آلات جسمانیہ نہیں یوں بھی مطلب حاصل، اور تنافی زائل کہ منفی یہ ہے اور مثبت بمعنی انکشاف تام اصوات بروجہ جزئی، اس جواب کے قریب قریب کلام تنزل سے حضرت شیخ محقق رحمہ اللہ تعالٰی عنہ نے مرور فرمایا: شرح مشکوۃ میں فرماتے ہیں:

دریں جا سخن دیگر است فرضاً اگر از ثبوت سماع تنزل کنیم باعتبار آنکہ سماع بحاسہ سمع می باشد و سمع بخرابی بدن خراب شد بگویم از نفی سماع نفی علم لازم نمی آید و علم بہ روح بود کہ باقی است پس علم بہ مبصرات و مسموعات حاصل باشد نہ بروجہ ابصار و سمع چنانچہ بعض متکلمان و سمع بصر الٰہی تعالیٰ را بعلم مسموعات او مبصرات تاویل کردہ اند الخ

یہاں ایک اور گفتگو ہے کہ بالفرض اگر ہم ثبوت سماع سے تنزل کریں، اس لحاظ سے کہ سننا کان سے ہوتا ہے اور کان فساد بدن کی وجہ سے فاسد ہو چکا تو ہم کہیں گے نفی سماع سے نفی علم لازم نہیں آتی، اور علم روح سے ہوتا ہے جو باقی ہے تو دیکھتی سنی جانیوالی چیزوں کا علم حاصل ہوگا اگرچہ دیکھنے اور سننے کے طور پر نہ ہوگا، جیسا کہ بعض متکلمین نے خدائے تعالیٰ کے سمع وبصر کی تاویل مسموعات اور مرئیات کے علم سے کی ہے الخ (ت)

[1] غریب الحدیث قاسم بن سلام و ابراہیم الحربي [2] اشعۃ اللمعات باب حکم الاسراء مکتبہ نوریہ رضویہ سکھر ۴/۳۰۰ و ۴۰۱

Volume 9 Fatawa Razawiyya

I say: And with Allah is the success. The summary of the blessed discourse of the Shaykh of the Shaykhs of the scholars of India, may his secret be sanctified, is that 'true hearing' (Sama' Haqiqi) means the absolute perception of specific sounds, regardless of whether it is mediated by physical organs or not. Therefore, we believe Allah Almighty to be 'As-Sami' (The All-Hearing), which is an article of faith; according to the researchers, there is no interpretation (ta'wil) or figurative use (tajawuz) here. For this reason, we advocate for the true hearing of departed souls, even if death causes the organs to cease functioning. And if you accept this meaning for hearing, but rather consider it specific to the mediation of organs, then we will say, by way of condescension (tanzil), that even if it is not hearing, it is 'perfect perception' in a partial way; our objective is achieved to this extent. Even if some theologians did not change the term 'hearing' but interpreted the sight and hearing of Allah Almighty in such a way, remember the discourse of this humble one (may the Almighty Lord forgive him) in the fourth preamble. His methodology is that, by the grace of Allah, we neither need to descend from the claim of hearing nor is there a need for interpretation in the case of departed souls or, Allah forbid, in the Divine Presence. Both meanings of hearing are established and accepted, and one does not negate the other. The instrumental meaning was never intended such that we would now have to decide whether to descend or not, nor can the application of hearing be confined to that meaning such that we would be forced into interpretation and forbearance. Anyway, this was a variety in the style of discussion; let us move towards the core of the matter. I say: Since both physical and spiritual meanings of hearing exist, and the negation of the physical meaning neither harms us nor benefits the opponent, then the possibility of it being physical is not a conclusive argument against us. Moreover, when the intention for the physical meaning is prevalent and clear, then obviously this known and accustomed method of perceiving sounds will direct the mind towards it. Finally, did you not see when the Holy Prophet (peace and blessings of Allah be upon him), after mentioning the virtues of Friday, stated:

Arabic Text	**Urdu Translation (T)**
اكثروا على من الصلوة فيہ فان صلوتكم معروضۃ علی۔	Increase your blessings upon me on this day, for indeed your blessings are presented to me.

The companions submitted:

Arabic Text	Urdu Translation (T)
یا رسول اللہ وکیف تعرض صلاتنا علیک وقد ارمت۔	O Messenger of Allah! How will this be, while after passing away, bodies do not remain?

He (the Prophet) said:

Arabic Text	Urdu Translation (T)
ان اللہ حرم علی الارض ان تاکل اجساد الانبیاء۔ [1]	Undoubtedly, Allah Almighty has forbidden the earth from consuming the bodies of the Prophets.
رواہ الامام احمد والدارمی وابوداؤد والنسائی ابن ماجۃ وابن خزیمۃ وابن حبان والدارقطنی والحاکم والبیہقی فی الدعوات الکبیر وابونعیم وصححہ	It was narrated by Imam Ahmad, Ad-Darimi, Abu Dawud, An-Nasa'i, Ibn Majah, Ibn Khuzaymah, Ibn Hibban, Ad-Daraqutni, Al-Hakim, Al-Bayhaqi in 'Ad-Da'wat al-Kabir', and Abu Nu'aym. And Ibn Khuzaymah authenticated it.

[1] Musnad Ahmad bin Hanbal, narrated from Aws bin Abi Aws, Dar al-Fikr Beirut 4/8; Sunan Ibn Majah, Chapter: Mention of his death and burial (peace and blessings of Allah be upon him), H.M. Saeed Company Karachi, p. 119; Sunan Abu Dawud, Chapter: Details of Friday Chapters, Aftab-e-Alam Press Lahore 1/150.

जिल्द 9 फ़तावा रज़विया

मैं कहता हूँ: और अल्लाह ही सफलता देने वाला है। भारत के विद्वानों के शेख-उल-मशायख (पवित्र आत्मा) के मुबारक प्रवचन का सारांश यह है कि 'सच्चा श्रवण' (समा-ए-हक़ीक़ी) का अर्थ विशिष्ट ध्वनियों का पूर्ण बोध है, चाहे वह शारीरिक अंगों के माध्यम से हो या न हो। इसी कारण हम अल्लाह अज़्ज़-व-जल्ल को 'समी' (सब कुछ सुनने वाला) मानते हैं, जो कि ईमान का अक़ीदा है। शोधकर्ताओं के अनुसार, इसमें कोई व्याख्या (तावील) या लाक्षणिक उपयोग (तजवुज़) नहीं है। इसलिए हम विदा हुई आत्माओं के सच्चे श्रवण के कायल हैं, भले ही मृत्यु अंगों को निष्क्रिय कर दे। और यदि आप सुनने के लिए यह अर्थ भी मान लें, बल्कि इसे अंगों के माध्यम से ही विशिष्ट समझें, तो हम 'तन्ज़ील' (नीचे उतरने/छूट देने) के तौर पर कहेंगे कि श्रवण न सही, 'पूर्ण बोध' तो है, आंशिक रूप से ही सही। इतनी बात से हमारा उद्देश्य सिद्ध हो जाता है। यद्यपि कुछ धर्मशास्त्रियों ने 'श्रवण' शब्द को बदला नहीं, लेकिन अल्लाह के श्रवण और दृष्टि की व्याख्या इसी तरह की। चौथे प्रस्तावना में इस तुच्छ (अल्लाह उसे क्षमा करे) के प्रवचन को याद करें, तो उनका मलक यह है कि अल्लाह के फ़ज़ल से हमें न तो सुनने के दावे से नीचे उतरने की आवश्यकता है और न ही विदा हुई आत्माओं के मामले में, या अल्लाह की पनाह, ईश्वर की हज़ूरी में व्याख्या की कोई ज़रूरत है। सुनने के दोनों अर्थ तय और स्वीकार्य हैं, और एक दूसरे का विरोधी नहीं है। अंगों वाला अर्थ कभी अभिप्रेत नहीं था कि अब हम नीचे उतरें या न उतरें, और न ही सुनने का प्रयोग उस अर्थ तक सीमित हो सकता है कि हम विवश होकर व्याख्या और धैर्य करें। खैर, यह बहस के अंदाज़ की विविधता थी, अब मुख्य बात की ओर चलें। मैं कहता हूँ: जब सुनने के शारीरिक और आध्यात्मिक दोनों अर्थ मौजूद हों, और शारीरिक के नकार में न हमें कोई नुकसान है और न विरोधी को कोई लाभ, तो दलील को काटने की संभावना नहीं रहती। बल्कि जब शारीरिक अर्थ की ही इच्छा प्रबल और स्पष्ट हो, तो ज़ाहिर है कि ध्वनियों के बोध का यही ज्ञात और अभ्यस्त तरीका दिमाग को उसी ओर ले जाएगा। अंतत; क्या आपने नहीं देखा जब हुज़ूर अकदस (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने जुमे के गुणों के वर्णन के बाद इरशाद फ़रमाया:

अरबी पाठ	**उर्दू अनुवाद (त)**
اکثروا علی من الصلوۃ فیہ فان صلوتکم معروضۃ علی۔	इस दिन मुझ पर दुरूद बहुत भेजो कि तुम्हारा दुरूद मुझ पर पेश किया जाएगा।

सहाबा ने अर्ज़ की:

अरबी पाठ	उर्दू अनुवाद (त)
یا رسول اللہ وکیف تعرض صلاتنا علیک وقد ارمت۔	या रसूल अल्लाह! यह कैसे होगा जबकि विसाल के बाद शरीर शेष नहीं रहते?

आपने फ़रमाया:

अरबी पाठ	उर्दू अनुवाद (त)
ان اللہ حرم علی الارض ان تاکل اجساد الانبیاء۔ [1]	बेशक अल्लाह तआला ने ज़मीन पर नबियों का जिस्म खाना हराम किया है।
رواہ الامام احمد والدارمی وابوداؤد والنسائی ابن ماجۃ وابن خزیمۃ وابن حبان والدارقطنی والحاکم والبیہقی فی الدعوات الکبیر وابونعیم وصححہ	इसे इमाम अहमद, दारिमी, अबू दाऊद, नसाई, इब्न माजा, इब्न खुज़ैमा, इब्न हिब्बान, दारकुतनी, हाकिम, दावात-ए-कबीर में बेहक़ी और अबू नुएम ने रिवायत किया। और इब्न खुज़ैमा ने इसकी पुष्टि की।

---

[1] मुस्नद अहमद बिन हंबल, औस बिन अबी औस से रिवायत, दारुल फिक्र बेरुत 8/4, सुनन इब्न माजा बाब ज़िक्र वफ़ातिहि व दफ़्निहि (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) एच एम सईद कंपनी कराची पृ. 119, सुनन अबू दाऊद बाब तफ़रीह अबवाबुल जुमा आफ़ताब-ए-आलम प्रेस लाहौर 150/1

اقول: وباللہ التوفیق محصل ارشاد مبارک شیخ شیوخ علماء الہند قدس سرہ یہ ہے کہ سمع حقیقی بمعنی مطلق ادراک مخصوص اصوات ہے عام ازیں کہ آلات جسمانیہ کا توسط ہو یا نہیں، ولذا اللہ عزوجل کو سمیع مانتے ہیں کہ عقیدہ ایمانیہ ہے محققین کے نزدیک کوئی تاویل و تجوز نہیں اس لیے ہم قائل سماع حقیقی ارواح مفارقہ ہیں اگرچہ موت تعلیل آلات کر دے اور اگر سمع کیلئے یہ معنی بھی مانیے بلکہ توسط آلات ہی سے مخصوص جانئے تو ہم علی سبیل التنزیل کہیں گے کہ سمع نہ سہی ادراک تام، بروجہ جزئی تو ہے اس قدر سے ہمارا مدعا حاصل، اگرچہ بنام سمع تغیر نہ کریں جیسے بعض متکلمین نے سمع و بصر الہی جل و علا کو یو نبی تاویل کیا، اور مقدمہ رابعہ میں تقریر فقیر غفر لہ المولی القدیر یاد کیجئے تو اس کا مسلک یہ ہے کہ بحمدللہ تعالیٰ نہ ہمیں دعوی سمع سے تنزیل کی حاجت نہ روح مفارق، یا معاذ اللہ حضرت عزت میں ارتکاب تاویل کی ضرورت سمع کے دونوں معنی مقرر و مسلم ہیں اور ایک دوسرے کا نانی نہیں، معنی آلیت نہ کبھی مراد تھی کہ اب تنزل کریں نہ کریں نہ اس معنی میں اطلاق سمع محصور ہو سکے کہ ناچار تاویل و تحمل کریں، خیر یہ طرز بحث کا تنوع تھا اصل سخن کی طرف چلئے، فاقول: جبکہ سمع کے جسمانی و روحانی دونوں معنی اور جسمانی کی نفی میں نہ ہمیں ضرر نہ مخالف کو نفع تو احتمال قاطع استدلال نہ کہ جب جسمانی ہی کا ارادہ رائج و واضح ہو پر ظاہر کہ ادراک اصوات کا یہی طریقہ معلومہ معہودہ ہے، تو باہمی محاورات عرفیہ میں ذہن اسی طرف تباہ کرے گا، آخر نہ دیکھا جب حضور اقدس صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم نے بعد ذکر فضائل جمعہ ارشاد فرمایا:

عربی متن	اردو ترجمہ (ت)
اکثروا علی من الصلوۃ فیہ فان صلوتکم معروضۃ علی۔	اس دن مجھ پر درود بہت بھیجو کہ تمہارا درود مجھ پر عرض کیا جائے گا۔

صحابہ نے گزارش کی:

عربی متن	اردو ترجمہ (ت)
یا رسول اللہ وکیف تعرض صلاتنا علیک وقد ارمت۔	یا رسول اللہ ! یہ کیونکر ہو گا حالانکہ بعد وصال جسم باقی نہیں رہتے۔

فرمایا:

عربی متن	اردو ترجمہ
ان اللہ حرم علی الارض ان تاکل اجساد الانبیاء۔ [1]	بے شک اللہ تعالیٰ نے زمین پر انبیاء کا جسم کھانا حرام کیا ہے۔
رواہ الامام احمد والدارمی وابوداؤد والنسائی ابن ماجۃ وابن خزیمۃ وابن حبان والدارقطنی والحاکم والبیہقی فی الدعوات الکبیر وابونعیم وصححہ	اسے امام احمد، دارمی، ابوداؤد، نسائی، ابن ماجہ، ابن خزیمہ، ابن حبان، دار قطنی، حاکم، دعوات کبیر میں بیہقی اور ابو نعیم نے روایت کیا۔ اور ابن خزیمہ نے اسے صحیح کہا۔

---

[1] مسند احمد بن حنبل مروی از اوس بن ابی اوس دارالفکر بیروت ۸/۴ ، سنن ابن ماجہ باب ذکر وفاتہ ودفنہ صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم ایچ ایم سعید کمپنی کراچی ص ۱۱۹، سنن ابوداؤد باب تفریح ابواب الجمعہ آفتاب عالم پریس لاہور ۱۵۰/۱

| [Arabic]: The four former ones (scholars) and the last two, and Ibn Dahya and others. | Ibn Hibban, Daraqutni, Hakim, Ibn Dahya and others have called it Sahih (authentic) and Abdul Ghani and Mundhiri have called it Hasan (good). (T) |

Similarly, in another Hadith, the Holy Prophet (may Allah's peace and blessings be upon him) said:

| [Arabic]: "Increase your blessings upon me on Friday, for it is a day witnessed by the angels. No one sends blessings upon me except that his blessings are presented to me until he finishes." | "Increase your blessings upon me on Friday, for it is a day witnessed by the angels. Mercy's angels are present on that day, and whoever sends blessings upon me, their blessings are presented to me." |

Abu Darda (may Allah be pleased with him) narrates: I said, "And after death?" (i.e., after passing away). He replied: "Indeed, Allah has forbidden the earth from consuming the bodies of the Prophets." The rest of the Hadith is: "So the Prophet of Allah is alive and provided with sustenance." The Prophet of Allah is alive and provided with sustenance, peace and blessings of Allah be upon him.

| [Arabic]: It was narrated by Ahmad, Abu Dawood, and Ibn Majah from Abu Darda (may Allah be pleased with him). | Imam Ahmad, Abu Dawood, and Ibn Majah narrated it from Abu Darda (may Allah be pleased with him). (T) |

It is clear that being "presented" did not mean anything except that information is given. From this, the minds of the Companions perceived and received information through physical means, therefore they asked those questions and the Holy Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) answered regarding bodily life. The ignorance of the author of "Tafhim-ul-Masail" is that after mentioning these Hadiths, he wrote:

| [Arabic]: Note: This is because this part is likely an insertion (idraj), so I established it in a way that allows for both interpretations, and this is among the subtleties of fine expression, so take heed, and praise be to Allah. | I mentioned it in this way because there is a possibility that this part of the Hadith is an insertion, meaning it could be the narrator's own words or a narration of the Prophet's words. So, I wrote it in a way that both possibilities are covered. This is a subtlety of fine expression that should be noted, and all praise is for Allah. (T) |

Footnote: 1. Sunan Ibn Majah, Chapter on the Mention of His Passing and Burial (peace and blessings of Allah be upon him), H.M. Saeed Company, Karachi, p. 119.

| [अरबी]: पहले चार (विद्वान) और अंतिम दो, और इब्ने दहिया और अन्य। | इब्ने हिब्बान, दारकुतनी, हाकिम और इब्ने दहिया वगैरह ने इसे सहीह (प्रामाणिक) कहा और अब्दुल गनी और मुन्दिरी ने इसे हसन (अच्छा) कहा। (त) |

इसी तरह दूसरी हदीस में है: हुज़ूर अकदस सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने फरमाया:

| [अरबी]: "जुमे के दिन मुझ पर दुरूद की अधिकता करो क्योंकि वह मशहूद (साक्षीभूत) है, फरिश्ते उसमें उपस्थित होते हैं। जो कोई भी मुझ पर दुरूद पढ़ता है, उसका दुरूद मुझ पर पेश किया जाता है जब तक कि वह उससे फारिग (पूरा) न हो जाए।" | "जुमे के दिन मुझ पर दुरूद अधिक भेजा करो क्योंकि वह दिन फ़रिश्तों की उपस्थिति का है, रहमत के फ़रिश्ते उस दिन उपस्थित होते हैं और जो मुझ पर दुरूद भेजता है, उसका दुरूद मुझ पर पेश किया जाता है।" |

अबू दरदा रज़ियल्लाहु अन्हु फ़रमाते हैं: मैंने अर्ज़ किया, "और मृत्यु के बाद?" (यानी इन्तिकाल के बाद)। फ़रमाया: "बेशक अल्लाह तआला ने ज़मीन पर अम्बिया का जिस्म खाना हराम किया है।" हदीस का शेष भाग यह है: "अल्लाह के नबी ज़िंदा हैं और उन्हें रिज़्क (रोज़ी) दिया जाता है।" अल्लाह के नबी ज़िंदा हैं और उन्हें रोज़ी दी जाती है, सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम।

| [अरबी]: इसे अहमद, अबू दाऊद और इब्ने माजह ने अबू दरदा रज़ियल्लाहु अन्हु से रिवायत किया। | इसे इमाम अहमद, अबू दाऊद और इब्ने माजह ने हज़रत अबू दरदा रज़ियल्लाहु अन्हु से रिवायत किया। (त) |

यह स्पष्ट है कि पेश होने के मायने कुछ नहीं थे सिवाय इसके कि सूचना दी जाती है, इससे सहाबा किराम के ज़ेहन और समझ जिस्मानी ज़राये से इत्तला की ओर ही गई, लिहाज़ा उन्होंने वह सवाल अर्ज़ किए और हुज़ूर अकदस सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने हयाते बदनी (शारीरिक जीवन) के बारे में ही जवाब दिए। "तफ़हीमुल मसाइल" के लेखक की जहालत है कि ये हदीसें ज़िक्र करके लिखा:

| [अरबी]: नोट: यह इसी तरह है क्योंकि हदीस का यह हिस्सा 'इदराज' (सम्मिलन) की संभावना रखता है, इसलिए मैंने इसे इस तरह साबित किया जो दोनों अर्थों को समेट ले, और यह बेहतरीन अभिव्यक्ति की सूक्ष्मताओं में से है, अतः इस पर ध्यान दें और सारी प्रशंसा अल्लाह के लिए है। | मैंने इसे इस तरह ज़िक्र किया इसलिए कि हदीस के इस हिस्से में यह संभावना है कि रावी ने अपनी ओर

से कहा हो और यह भी कि हुज़ूर का कलाम नक्ल किया हो, तो मैंने इसे इस तरह लिखा कि दोनों सूरतें बन सकें। यह बेहतरीन अभिव्यक्ति की बारीकी है जिस पर ध्यान देना चाहिए, और सारी तारीफ़ अल्लाह ही के लिए है। (त) |

फुटनोट: 1. सुनन इब्ने माजह, बाबू ज़िक्र वफ़ातिहि व दफ़्निहि सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम, एच. एम. सईद कंपनी, कराची, पृ. 119.

पृष्ठ 910 का 948

| الاربعة السابقون علی الاخیرین وابن دحیة وغیرھم وحسنه وعبدالغنی والمنذری۔ | ابن حبان، دار قطنی، حاکم اور ابن دحیہ وغیرہم نے اسے صحیح کہا اور عبدالغنی اور منذری نے حسن کہا۔ (ت) |

اسی طرح دوسری حدیث میں ہے : حضور اقدس صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم نے فرمایا:

| اکثروا الصلوٰة علی یوم الجمعة فانه مشهود تشهده الملئکة وان احدا لم یصلی علی الاعرضت علی صلوته حتی یفرغ منها۔ | جمعہ کے دن مجھ پر درود زیادہ بھیجا کرو کہ وہ دن حضور ملائک کا ہے رحمت کے فرشتے اس دن حاضر ہوتے ہیں اور جو مجھ تک درود بھیجتا ہے اس کی درود مجھ پر پیش کی جاتی ہے۔ |

ابودرداء رضی اللہ تعالٰی عنہ فرماتے ہیں : قلت وبعد الموت میں نے عرض کی اور بعد انتقال اقدس! فرمایا: ان اللہ تعالٰی حرم علی الارض ان تاکل اجساد الانبیاء بے شک اللہ تعالٰی نے زمین پر انبیاء کا جسم کھانا حرام کیا ہے۔ تتمہ حدیث یہ ہے۔ فنبی اللہ حی یرزق ۱ اللہ کے نبی زندہ ہیں روزی دئیے جاتے ہیں صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم

| رواہ احمد وابوداؤد وابن ماجة عن ابی الدرداء رضی اللہ تعالٰی عنہ۔ | اسے امام احمد، ابوداؤد اور ابن ماجہ نے حضرت ابودرداء رضی اللہ تعالٰی عنہ سے روایت کیا۔ (ت) |

پر ظاہر کہ پیش ہونے کے معنی نہ تھے مگر اطلاع دی جاتی، اس سے صحابہ کرام کے ذہن اوراک و اطلاع بذریعہ آلات جسمانی ہی کی طرف گئے لہٰذا وہ سوال عرض کئے اور حضور اقدس

صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم نے حیات بدن ہی سے جواب دیئے صاحب تفہیم المسائل کی جہالت کہ یہ حدیثیں ذکر کر کے لکھا:

| عہ: ھکذا لان ھذہ القطعۃ محتملۃ الادراج فاثبتھا علی وجہ یحتمل الوجھین وھذا من دقائق حسن التعبیر فلیتنبہ واللہ الحمد ۱۲۔ | میں نے اسے اس طرح ذکر کیا اس لیے کہ اس حصہ حدیث میں یہ احتمال ہے کہ راوی نے اپنے طور پر کہا ہو اور یہ بھی کہ حضور کا کلام نقل کیا ہو تو میں نے اس طور پر اسے لکھا کہ دونوں صورتیں بن سکیں یہ حسن تعبیر کی باریکی ہے جس پر تنبیہ چاہئے، اور حمد خدا ہی کے لیے ہے۔ (ت) |

۱ سنن ابن ماجہ باب ذکر وفاتہ و دفنہ صلی اللہ تعالی علیہ وسلم ایچ ایم سعید کمپنی کراچی ص ۱۱۹

Fatawa Razawiya Volume 9

[Boxed Text at the top] In both these Hadiths, there is evidence that the dead do not have hearing and that this matter was established among the Companions. Because those esteemed ones expressed astonishment and inquired about the presentation and hearing of Salat (invocations of peace) after death. The Holy Prophet (peace and blessings of Allah be upon him)[1] replied that since the Prophets possess worldly life and their bodies also remain, there is no occasion to consider hearing and presentation as improbable. (T)

I say: Firstly, if the meaning is that for common people after death, the lack of physical perception is inferred, then it is acceptable to us. But what benefit is it to you? Denying the perception of the soul and considering this established in the minds of the Companions—God forbid—is to brand them as innovators (misguided) and to present the silence of the Master of the Universe (peace and blessings of Allah be upon him) on this as affirmation and acceptance. A sensible person did not see that the Companions expressed a conflict between the passing of the body and the persistence of perception. And the Master of the Universe (peace and blessings of Allah be upon him) did not answer by denying the conflict, but by denying the contradictory fact—that the bodies of the Prophets are also alive. Now if the discussion is about the perception of the soul, then there are only two possibilities: either the Companions believed the soul to be dead due to the death of the body, or they considered the persistence of the body as a condition for the perception of the soul. In previous chapters and nearby discussions, it has been repeatedly clarified that both these views belong to the people of innovation, the misguided Mu'tazilites, and other forsaken groups. In point 15, it passed from Maqasid and Sharh al-Maqasid that considering the body as a condition for perception is an injustice of the Mu'tazilites against the Ahl al-Sunnah. Similarly, in general books of creed and Tafsir Kabir, etc., there is clear clarification. Alas, to create your own heresy—God forbid—you depict the Sahaba (may Allah be pleased with them) as believers and manifestors of false creeds, and you depict the Master of the Universe (peace and blessings of Allah be upon him) as being silent and affirming them. Have no fear of God in your heart.

Secondly, what kind of dream is this where you say only silence is being attributed to the Holy Prophet (peace and blessings of Allah be upon him)? I say that it has explicitly stated the meaning of the holy speech—that since the bodies of the Prophets remain, there is no improbability in hearing. What injustice it is to depict the

Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) as one who believes that the persistence of the body is a condition for the soul's perception. May God save us from the calamity of heresy.

Thirdly, the strange thing is that here the presentation of Salat (invocations of peace) is through angels; in the second Hadith, the clarification of the presence of angels is existing and itself...

Note: I say, peace and blessings of Allah be upon him. 12 Minhu

---

[1] Tafheem al-Masa'il 'Adam-e-Sama'-e-Mauta from Hanafi books, Matba' Muhammadi Lahore, pp. 84 and 85. Page 911 of 948

फ़तावा रज़विया जिल्द नहम (9)

[शीर्ष पर बॉक्स किया हुआ टेक्स्ट] इन दोनों हदीसों में इस बात का प्रमाण है कि मुर्दों को सुनने की शक्ति प्राप्त नहीं होती और यह बात सहाबा के बीच स्थापित थी। क्योंकि उन महानुभावों ने मृत्यु के बाद दरूद के पेश होने और सुनने पर आश्चर्य व्यक्त करते हुए प्रश्न किया था। हज़रत (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम)[1] ने उत्तर दिया कि जब अंबिया (पैगंबरों) को सांसारिक जीवन प्राप्त है और उनका शरीर भी शेष है, तो सुनने और पेश होने को असंभव समझने का कोई अवसर नहीं है। (त)

मैं कहता हूँ: पहली बात यह कि यदि इसका अर्थ यह है कि आम लोगों के लिए मृत्यु के बाद शारीरिक बोध का न रहना सिद्ध होता है, तो यह हमें स्वीकार्य है, लेकिन इससे तुम्हें क्या लाभ? और आत्मा के बोध का इंकार करना और इसे सहाबा के ज़ेहन में स्थापित मानना—अल्लाह की पनाह—उन्हें कुमार्गगामी ठहराना है और हुज़ूर सैयदे आलम (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) की इस पर खामोशी को पुष्टि और स्वीकृति बताना है। किसी बुद्धिमान ने इतना नहीं देखा कि सहाबा किराम ने शरीर के नष्ट होने और बोध के बने रहने के बीच विरोध ज़ाहिर किया था और सैयदे आलम (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) ने विरोध के खंडन से उत्तर नहीं दिया, बल्कि बाधक के खंडन से उत्तर दिया कि अंबिया के शरीर भी जीवित हैं। अब यहाँ यदि आत्मा के बोध की बात हो, तो दो ही स्थितियाँ हैं: या तो सहाबा शरीर की मृत्यु से आत्मा को भी मृत मानते थे, या वे आत्मा के बोध के लिए शरीर के बने रहने को शर्त मानते थे। पिछले अध्यायों और निकटवर्ती चर्चाओं में बार-बार स्पष्ट हो चुका है कि ये दोनों विचार नवाचार करने वालों (अहले बिदअत) और पथभ्रष्ट मुअतज़िला और अन्य तिरस्कृत समूहों के हैं। बिंदु 15 में मक़ासिद और शरह-ए-मक़ासिद के हवाले से गुज़रा कि शरीर को बोध के लिए शर्त मानना अहले सुन्नत के विरुद्ध मुअतज़िला का अन्याय (एतिसाफ़) है। इसी प्रकार अकीदे की सामान्य पुस्तकों और तफ़्सीर-ए-कबीर आदि में स्पष्ट विवरण मौजूद है। अफ़सोस कि अपनी बद-मज़हबी (कुमार्गगामिता) गढ़ने के लिए—अल्लाह की पनाह—सहाबा किराम (रज़ियल्लाहु अन्हुम) को भ्रष्ट अकीदों का मानने वाला और प्रकट करने वाला, और सैयदे आलम (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) को उन पर मौन और इसे स्वीकार करने वाला बताते हो? दिल में खुदा का खौफ़ लाओ।

दूसरी बात यह कि यह कैसा सपना है जिसमें हुज़ूर अकदस (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) की ओर केवल मौन होने का संबंध बताया जा रहा है? मैं कह रहा हूँ कि उन्होंने स्पष्ट रूप से पवित्र वाणी का अर्थ बता दिया कि चूँकि अंबिया के शरीर शेष हैं, इसलिए सुनने में कोई असंभवता नहीं है। यह कैसा

ज़ुल्म है कि साफ़-साफ़ रसूलुल्लाह (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) को आत्मा के बोध के लिए शरीर के बने रहने को शर्त मानने वाला बताते हो। खुदा बद-मज़हबी की बला से बचाए।

तीसरी बात और भी विचित्र यह है कि यहाँ दरूद का पेश होना फ़रिश्तों के माध्यम से है; दूसरी हदीस में फ़रिश्तों की उपस्थिति का स्पष्ट उल्लेख मौजूद है और स्वयं इसके..

टीका: मैं कहता हूँ, सल्लल्लाहु तआला अलैहि व सल्लम। 12 मिन्हु

---

[1] तफ़हीमुल मसाइल 'अदम-ए-समा-ए-मौता हनफ़ी पुस्तकों से, मतबा मुहम्मदी लाहौर, पृ. 84 और 85। पेज 911 का 948

فتاوی رضویہ جلد نہم

[اوپر والے خانے کی عبارت] دریں ہر دو حدیث دلیل ست بر آنکہ موتی را سماع نیست و بر آنکہ ایں امر مستقر بود نزد صحابہ زیرا کہ ایشاں بر عرض و سماع در وبعد موت استعجاب کردہ استفسار نمودند آنحضرتؐ عہ جواب دادند کہ چوں انبیاء راحیات دنیاوی حاصل وجسد ایشاں نیز باقی ست لہٰذا محل استبعاد سماع وعرض نیست۔ 1 ان دونوں حدیثوں میں اس پر دلیل ہے کہ مردوں کو سماع حاصل نہیں اور اس پر کہ یہ امر صحابہ کے نزدیک قرار یافتہ تھا اس لیے کہ ان حضرات نے بعد موت درود پیش ہونے اور سننے پر تعجب کرکے سوال کیا۔ آنحضرت صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم نے جواب دیا کہ جب انبیاء کو حیات دنیاوی حاصل ہے اور ان کا جسم بھی باقی ہے تو سننے اور پیش ہونے کو بعید سمجھنے کا موقع نہیں۔(ت)

اقول: اولاً اگر یہ مراد کہ ان سے عام لوگوں کے لیے بعد موت ادراک جسمانی نہ رہنا مستفاد، تو ہمیں مسلم اور تمھیں کیا مفاد اور ادراک روح کا انکار ماننا اور اسی کو اذہان صحابہ میں مستقر جاننا معاذاللہ انھیں بد مذہب ٹھہرانا اور حضور سید عالم صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کا اس پر سکوت تقریر و تسلیم بتانا ہے۔ ذی ہوش نے اتنا نہ دیکھا کہ صحابہ کرام نے فنائے جسد و بقائے ادراک میں تنافی ظاہر کی اور سید عالم صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم نے نفی تنافی سے جواب نہ دیا بلکہ نفی منافی سے کہ انبیاء کے اجسام بھی زندہ ہیں اب یہاں ادراک روح میں کلام ہو تو دو ہی صورتیں ہیں یا تو صحابہ موت جسد سے روح کو بھی مردہ مانتے یا ادراک روح کے لیے بقائے بدن شرط جانتے، فصول سابقہ نیز مباحث قریبہ میں بار بار تکرار واضح ہو چکا کہ یہ دونوں قول اہل بدعت و ضالین معتزلہ و غیر ہم مخذولین کے ہیں۔ قول ۱۵ میں مقاصد و شرح مقاصد سے گزرا کہ بدن کو شرط ادراک جاننا اہلسنت کے خلاف معتزلہ کا اعتساف ہے۔ اسی طرح عامہ کتب عقائد و تفسیر

کبیر و غیر ہا میں تصریح منیر افسوس کہ اپنی بد مذہبی بنانے کے لیے معاذ اللہ صحابہ کرام رضی اللہ تعالیٰ عنہم کو عقائد فاسدہ کا معتقد و مظہر اور سید عالم صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کو ان پر ساکت و مقرر بتاؤ اور دل میں خوف خدا نہ لاؤ۔

ثانیاً کیا خواب میں حضور اقدس صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کی نسبت صرف سکوت بتانا کہہ رہا ہوں وہ صراحتہً کلام اقدس کے معنی بتا چکا کہ از آنجا کہ انبیاء کے اجسام باقی ہیں، لہٰذا سننے میں استبعاد نہیں کیا ظلم ہے کہ صاف صاف رسول اللہ صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کو ادراک روح کے لیے بقائے جسم کا شرط ماننے والا بتاؤ، خدا بد مذہبی کی بلا سے بچائے۔

ثالثاً طرفہ یہ کہ یہاں پیشی درود بذریعہ ملائکہ مقصود حدیث دوم میں شہود ملائکہ کی تصریح موجود اور خود اس کے

عہ : اقول صلی اللہ تعالیٰ علیہ و سلم ۱۲ منہ

---

1 تفہیم المسائل عدم سماع موتی از کتب حنفیہ مطبع محمدی لاہور ص ۸۴ و ۸۵ Page 911 of 948

Fatawa Razawiyya, Volume 9

Written in the translation:

Abu Darda says: I asked by way of inquiry and wonder whether they will present [blessings] after death as well. - 1	**Abu Darda states: I submitted by way of inquiry and wonder whether they will present those blessings even after the holy departure. (T)**

Just identify the reference of this "mi kunand" (they do). In the minds of the Companions, the lack of perception of the soul after the decay and destruction of the body was even greater than your prescribed lack of perception, as they expressed wonder and amazement at hearing and understanding the words of angels. However, their ears were unaware of examples like the noble verse "The Fire, they are exposed to it" [40:46], which is Makkan and was revealed long before the manifestation of the virtue of Friday and the revelation of the obligation of sending blessings. Yes, this state of the body is certain that death occurs to it which is absolutely contradictory to consciousness. As long as the body is dead, it can neither hear the words of angels nor of humans, and at the time of questioning etc., the return of hearing occurs with the return of life. Its continuity is also not necessary. Thus, based on the analogy of the common people, since the special nature of the pure bodies of the Prophets (peace and blessings be upon them) was not known until then, there was a difficulty regarding the preservation of physical perception amidst the annihilation of the body. Upon this, that question and its answer became a revealer of the truth of the situation. Praise be to Allah Almighty! Such was the reality of your "new pride" about which you had grandiosely set up a shop of boasting, saying:

Since free time from answering the objector's fallacies was obtained, therefore the investigation of this issue became necessary in another way. - 2	**Since freedom from the objector's fallacies was attained, therefore an investigation of this issue became necessary in another way. (T)**

Ma sha Allah! Look at the connection between this condition and its result. This itself shows that you are severely agitated and consider the objections of the 'Allama objector (may his secret be sanctified) as insoluble. If the objection had truly been removed, the previous investigation's life would have been saved. Why did the "necessity of falling" upon the previous necessity arise after your "obtaining free time"?

The capacity of speech is known, just let it go.

Great Benefit: When in mutual conversations, absolute hearing is understood in this way, then what to say of the Hadith of the Well [of Badr]? Its being a clear text on physical hearing has already been clarified above. And the Mother of the Believers, the beloved of the Master of the World (Allah bless him and them and her all), was not present at the event. Also, it was shown above that the noble verses relate to bodies, especially "And you cannot make those in the graves hear" [35:22]. Although they do not negate hearing, the negation of apparent hearing is there. And from this event, the hearing of bodies is explicitly understood. Therefore, the Mother of the Believers, considering it contrary to the verses, deemed it an illusion and an oversight, saying that the Messenger of Allah (Allah bless him and give him peace) said "ya'lamun" (they know), meaning their souls know. The narrator remembered it as "yasma'un" (they hear) implying their bodies hear. But it is clear that knowledge is a specific attribute of the soul, for which it is not dependent on the body.

---

1 Tafheem al-Masa'il, Sama' Mawta, from Hanafi books, Muhammadi Press Lahore, p. 84. 2 Tafheem al-Masa'il, Sama' Mawta, from Hanafi books, Muhammadi Press Lahore, p. 84.

फ़तावा रज़विया, जिल्द नौ

अनुवाद में लिखा है:

अबू दर्दा कहते हैं: मैंने पूछताछ और आश्चर्य के तौर पर पूछा कि क्या मौत के बाद भी वे [दरूद] पेश करेंगे। - 1	**अबू दर्दा फरमाते हैं: मैंने पूछताछ और आश्चर्य के तौर पर अर्ज़ की कि क्या विसाल-ए-अकदस के बाद भी वे दरूद पेश करेंगे। (त)**

ज़रा इस "मी कुनंद" का मरजे (संदर्भ) तो बताइये। मगर सहाबा के ज़ेहन में बदन के फना और खराबी के बाद रूह की बे-इद्राकी (बोध की कमी) आपकी मुकर्रर कर्दा बे-इद्राकी से भी ज़्यादा थी कि फरिश्तों की बात सुनने और समझने पर भी ताज्जुब और इस्तिबाद (आश्चर्य) फरमाते थे। मगर "अन्नारु युअरज़ूना अलैहा" जैसी आयते करीमा की मिसालों से, जो कि मक्की है और जुमा की फज़ीलत और दरूद के फ़र्ज़ होने की तन्ज़ील से बहुत पहले नाज़िल हुई, उनके कान बे-खबर थे। हाँ, बदन की यह हालत यकीनी है कि उस पर वह मौत तारी होती है जो मुतलकन शऊर के मुनाफी (विपरीत) है। मुर्दा जिस्म जब तक मुर्दा है, न फरिश्ते की बात सुन सकता है न इंसान की, और सवाल वगैरह के वक्त हयात (जीवन) लौटने के साथ समाअत (सुनने की शक्ति) लौटती है। इसका मुस्तकिल रहना भी ज़रूरी नहीं। तो आम लोगों के कयास पर, चूंकि उस वक्त तक अंबिया अलैहिमुस्सलातो वस्सलाम के पाकीज़ा अजसाम (शरीरों) की खासियत का इल्म नहीं था, बदन के फना होने की सूरत में जिस्मानी इद्राक (बोध) के बाकी रहने में इश्काल (कठिनाई) पैदा हुआ, जिस पर वह सवाल और उसका वह जवाब हकीकत-ए-हाल का काशिफ (स्पष्ट करने वाला) हुआ। अलहम्दुलिल्लाह तआला! आपके उस "नए नाज़" की इतनी ही हकीकत थी जिस पर बड़ी धूमधाम से फख्रबाज़ी की दुकान सजाई गई थी कि:

चूंकि मोअतरिज़ (आक्षेपकर्ता) के मगालतात (धोखों) के जवाब से फुर्सत मिली, लिहाज़ा इस मसले की तहकीक दूसरे तौर पर ज़रूरी हुई। - 2	**चूंकि मोअतरिज़ के मगालतात से फ़राग़त (फुर्सत) हासिल हुई, इसलिए इस मसले की तहकीक दूसरे तौर पर ज़रूरी हुई। (त)**

माशाअल्लाह! इस शर्त और जज़ा के रब्त (संबंध) को देखिये, यही बता रहा है कि आप सख्त घबराए हुए हैं और अल्लामा मोअतरिज़ (अल्लाह उनके राज़ पाक करे) के एतराज़ात को ला-हल (नाकाबिले हल) समझ रहे हैं। अगर वाक़ई एतराज़ उठ जाते तो पिछली तहकीक की जान बच जाती। आपकी इस "फराग़ते दस्त" के बाद पिछली ज़रूरत पर "ज़रूर अफ़ताद" की नौबत क्यों आती?

नुत्क का हौसला मालूम है बस जाने दो

फ़ायदा जलीला (महान लाभ): जब आपसी बातचीत में मुतलक सुनने से यही समझ आता है, तो हदीस-ए-क़लीब (कुएं वाली हदीस) का ज़िक्र ही क्या है, जिसका जिस्मानी सुनने के बारे में स्पष्ट प्रमाण होना ऊपर बयान किया जा चुका है। और उम्मुल मोमिनीन महबूबा-ए-सय्यिद-ए-आलम (सल्लल्लाहु तआला अलैहि व आलीही व सल्लम) उस वाकये के वक्त मौजूद न थीं। इसके अलावा ऊपर ज़ाहिर किया गया कि आयते करीमा शरीरों से मुताल्लिक हैं, खुसूसन "व मा अन्त बि-मुस्मिइन मन फिल कुबूर" (और आप उन्हें नहीं सुना सकते जो कब्रों में हैं)। अगरचे वे सुनने की नफी (मनाही) नहीं फरमाते, लेकिन ज़ाहिरी सुनने की नफी मौजूद है। और इस वाकये से सरीहन (साफ़ तौर पर) शरीरों का सुनना समझ आता है। लिहाज़ा उम्मुल मोमिनीन ने इसे आयतों के मुनाफी ख्याल फरमाकर वहम और सहव (भूल) का हुक्म दिया कि रसूलुल्लाह (सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम) ने "यअलमून" फरमाया था, यानी उनकी रूहें जानती हैं। रावी को "यस्मऊन" याद रहा कि उनके जिस्म सुनते हैं, पर ज़ाहिर है कि इल्म रूह की खास सिफत है जिसके लिए वह बदन की मोहताज नहीं।

---

1 तफहीमुल मसाइल, समा-ए-मौता, अज़ कुतुबे हनफिया, मताब-ए-मुहम्मदी लाहौर, पृ. 84 2 तफहीमुल मसाइल, समा-ए-मौता, अज़ कुतुबे हनफिया, मताब-ए-मुहम्मदी लाहौर, पृ. 84

فتاوٰی رضویہ، جلد نہم

ترجمے میں لکھا:

گفت ابو درداء گفتم بطریق استفہام و استبعاد کہ پس از موت نیز عرض می کنند -1

ابودرداء فرماتے ہیں: میں نے بطریق استفہام و استبعاد عرض کی کہ کیا بعد انتقال اقدس بھی وہ درود پیش کریں گے۔ (ت)

ذرا اس "می کنند" کا مرجع تو بولیئے مگر اذہان صحابہ میں فنا و خرابی بدن کے بعد روح کی بے ادراکی تمہاری مقررہ بے ادراکی سے بھی فزوں تر تھی کہ ملائکہ کی بات سننے سمجھنے پر بھی تعجب و استبعاد فرماتے مگر امثال آیہ کریمہ النار یعرضون علیہا سے کہ مکیہ ہے اور اظہار فضل جمعہ و تنزیل فرض درود سے بہت پہلے نازل ہوئی ان کے کان بے خبر تھے، ہاں بدن کی یہ حالت ضرور ہے کہ اس کو وہ موت عارض ہوتی ہے جو مطلقاً منافی شعور ہے تن مردہ جب تک مردہ ہے نہ ملک کی بات سن سکتا ہے نہ بشر کی، اور وقت سوال وغیرہ عود سماع بعود حیات ہے۔ اس کا یہ بھی استمرار ضرور نہیں، تو بر قیاس عامہ ناس کہ اس وقت تک خاصہ اجسام طیبہ حضرات انبیاء علیہم الصلوۃ والسلام کا علم نہ تھا بحال فنائے بدن بقائے ادراک جسمانی میں اشکال ہوا جس پر وہ سوال اور اس کا وہ جواب کا شف حقیقۃ الحال ہوا الحمد للہ تعالٰی اتنی حقیقت تھی آپ کے اس نئے ناز کی جس پر بڑی دھوم سے دکان فخر بازی کی کہ:

چوں از جواب مغالطات معترض فراغت دست داد، لہٰذا تحقیق این مسئلہ بطور دیگر ضرور افتاد -2

چونکہ معترض کے مغالطات سے فراغت دستیاب ہوئی اس لیے اس مسئلہ کی تحقیق دوسرے طور پر ضروری ہوئی (ت)

ماشآء اللہ اس شرط و جزا کے ربط کو دیکھیے ، یہی بتا رہا ہے کہ سخت گھبرائے ہوئے اور اعتراضات علامہ معترض قدس سرہ کالا حل سمجھ رہے ہو، اگر واقعی اعتراض اٹھ جاتے تو اگلی ہی تحقیق کی جان بچ جاتی، آپ کے اس فراغت دست کے بعد پچھلی ضرورت پر ضرور افتاد کی افتاد کیوں آتی ع

نطق کا حوصلہ معلوم ہے بس جانے دو

فائدہ جلیلہ: جب محاورات باہمی میں مطلق سمع سے یہ تبادر تو حدیث قلیب کا ذکر ہی کیا ہے کہ اس کا تو سماع جسمانی میں نص صریح ہونا اوپر مبین ہو چکا اور ام المومنین محبوبہ سید عالم صلی اللہ تعالیٰ علیہ و علیہم و علیہا اجمعین حاضر واقعہ نہ تھیں نیز اوپر ظاہر کیا کہ آیات کریمہ متعلق باجسام ہیں خصوصاً و مآ انت بمسمع من فی القبور اگر چہ نفی سماع نہیں فرماتے مگر نفی سماع ظاہر ہے اور اس واقعہ سے صراحۃً سماع اجسام مفہوم ، لہٰذا ام المومنین نے اسے منافی آیات خیال فرما کر وہم و سہو کا حکم دیا کہ رسول اللہ صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم نے یعلمون فرمایا یعنی ان کی روحیں جانتی ہیں، راوی کو یسمعون یاد رہا کہ ان کے جسم سنتے ہیں پر ظاہر کہ علم صفت خاصہ روح ہے جس میں وہ بدن کی محتاج

---

1 تفہیم المسائل سماع موتیٰ از کتب حنفیہ مطبع محمدی لاہور ص ۸۴ 2 تفہیم المسائل سماع موتیٰ از کتب حنفیہ مطبع محمدی لاہور ص ۸۴

Fatawa Ridawiyyah Volume 9

No, contrary to conventional hearing through bodily organs, which is impossible without physical life—and at that time, those disbelievers did not possess physical life—establishing hearing for bodies would contradict the verses. Yes, knowledge is attained through the soul, and the soul remains; this is the essence of the teaching of the Mother of the Believers (may Allah the Almighty's peace and blessings be upon her and her noble husband). For this reason, the noble masters, who were strictly discussing bodies, cited this as we mentioned before (as we have stated earlier - T). This does not benefit the deniers and opponents at all, for physical hearing is neither our claim nor the goal, nor is the denial of the opponents limited to it. As for the denial of the soul's perception, God forbid, that is neither derived from the words of the Mother of the Believers nor apparent from any evidence that this was her intention. The deniers' reliance on this is merely a shot in the dark and an impossibility; rather, her own authentic and clear statements are the best evidence against their error, falsehood, and futility. Firstly, when she accepts 'knowledge' in the same hadith, she herself becomes a proponent of the soul's perception. Then what is the meaning of denying the soul's hearing? And the hadith 'Allam Tunassun Mayyitakum' just mentioned shows that when she saw someone combing the hair of a deceased person forcefully, she said: 'Why are you pulling its hair?' Apart from that, consider the great and authentic hadith mentioned at the beginning of the second category of the second objective, in which the Mother of the Believers swears: 'By Allah! Since Amir al-Mu'minin 'Umar was buried, I have never visited the blessed shrines without full clothing out of shyness before him.' This is absolutely irrefutable. When the Mother of the Believers accepts vision after burial, she definitely considers the soul perceptive and inclusive of perceptions, even knowing worldly matters. Thus, the denial of hearing is clearly impossible; rather, in close proximity, the state of hearing is naturally more subtle than the state of vision, as the conditions for the latter are more numerous, evident, established, and well-known. Despite barriers and veils, vision may cease while hearing remains. When the Mother of the Believers believes in seeing through such thick and numerous veils, why would she not believe in hearing? Furthermore, no one makes a distinction between the two; whoever accepts vision will accept hearing, and whoever does not recognize hearing will not recognize vision either. The third great hadith of the Mother of the Believers, narrated by great, reliable, and just imams, the men of Bukhari and Muslim, and recorded in Jami' at-Tirmidhi Sharif, is this:

Arabic

Narrated to us Husayn ibn Hurayth (reliable among the narrators of the two Sheikhs [Bukhari and Muslim]) from 'Isa ibn Yunus (reliable, trustworthy, among the narrators of the Six Books like the rest of the chain) from Ibn Jurayj.

Urdu

Narrated to us by Husayn ibn Hurayth (he is among the reliable narrators of Bukhari and Muslim). He said, narrated to us by 'Isa ibn Yunus (reliable and trustworthy, and like the rest of the narrators of the chain, he is among the narrators of the Six Sahih books).

1. Mishkat al-Masabih, citing Ahmad, Chapter of Visiting Graves, Mujtabai Press Delhi, p. 154.

नहीं, शारीरिक अंगों के माध्यम से होने वाले पारंपरिक श्रवण के विपरीत, जो बिना शारीरिक जीवन के असंभव है—और उस समय उन काफ़िरों का शारीरिक जीवन नहीं था—तो शरीर के सुनने को सिद्ध करना आयतों के विरुद्ध है। हाँ, ज्ञान की प्राप्ति आत्मा से होती है और आत्मा शेष रहती है; यही उम्मुल मोमिनीन (सल्लल्लाहु तआला अलैहि व आलीही वसल्लम) के उपदेश का सार है। इसी आधार पर बुज़ुर्गों ने, जो निश्चित रूप से शरीरों के बारे में बात कर रहे थे, इसका हवाला दिया जैसा कि हम पहले बता चुके हैं। यह उन इनकार करने वालों और विरोधियों के लिए बिल्कुल भी उपयोगी नहीं है क्योंकि शारीरिक श्रवण न तो हमारा दावा है और न ही उद्देश्य, और न ही इनकार करने वालों का इनकार केवल इसी तक सीमित है। जहाँ तक आत्मा की समझ (अनुभूति) के इनकार का प्रश्न है, खुदा न करे, न तो वह उम्मुल मोमिनीन के शब्दों से सिद्ध है और न ही किसी प्रमाण से स्पष्ट है कि यही उनका उद्देश्य था। इनकार करने वालों का इससे प्रमाण लेना केवल अंधेरे में तीर चलाने जैसा और असंभव है, बल्कि उनकी अपनी सही और स्पष्ट बातें उनकी गुमराह और असत्यता पर सबसे अच्छा प्रमाण हैं। पहले तो इसी हदीस में जब वह ज्ञान मान रही हैं, तो आत्मा की अनुभूति को भी स्वयं स्वीकार कर रही हैं। फिर आत्मा के सुनने से इनकार के क्या मायने हैं? और हदीस 'अल्लाम तुनस्सुन मय्यितकुम' अभी गुज़री कि जब उन्होंने देखा कि मृतक के सिर पर ज़ोर से कंघी की जा रही है, तो फ़रमाया: 'उसके बाल क्यों खींच रहे हो?' इसके अलावा उस महान और सही हदीस पर विचार करें जो दूसरे उद्देश्य के दूसरे वर्ग के आरम्भ में वर्णित हुई, जिसमें उम्मुल मोमिनीन कसम खाकर फ़रमाती हैं: 'खुदा की कसम! जब से अमीरुल मोमिनीन उमर दफ़्न हुए हैं, मैं उनके लिहाज़ और शर्म के कारण कभी भी बिना पूरे कपड़े पहने मज़ार-ए-अकदस पर उपस्थित नहीं हुई।' यह बिल्कुल अकाट्य प्रमाण है। जब उम्मुल मोमिनीन दफ़्न के बाद दृष्टि (देखना) मानती हैं, तो आत्मा निश्चित रूप से अनुभूत करने वाली है और उसके अनुभूतियों में सांसारिक मामले भी शामिल हैं। फिर सुनने का इनकार स्पष्ट रूप से असंभव है; बल्कि निकट स्थान पर सुनने की स्थिति देखने की स्थिति से स्वभाविक रूप से अधिक सूक्ष्म है, क्योंकि देखने की शर्तें अधिक हैं, और यह सर्वविदित और प्रसिद्ध है कि बाधाओं और पर्दों के बावजूद दृष्टि समाप्त हो जाती है जबकि सुनना बना रहता है। जब उम्मुल मोमिनीन इतने घने और अधिक पर्दों के पार भी देखना मानती हैं, तो सुनना क्यों नहीं मानेंगी! इसके अलावा, इनमें कोई अंतर नहीं करता; जो दृष्टि मानता है वह श्रवण भी मानेगा, और जो श्रवण नहीं जानता वह दृष्टि भी नहीं जानेगा। उम्मुल मोमिनीन की तीसरी महान हदीस, जो महान विश्वसनीय और

न्यायप्रिय इमामों, बुखारी और मुस्लिम के विद्वानों द्वारा वर्णित है और जामे तिर्मिज़ी शरीफ़ में दर्ज है, वह यह है:

अरबी	उर्दू
हमसे हदीस बयान की हुसैन बिन हुरैत ने (ये शैखैन [बुखारी और मुस्लिम] के विश्वसनीय व्यक्तियों में से हैं) ईसा बिन यूनुस से (जो विश्वसनीय और अमानतदार हैं और सनद के अन्य व्यक्तियों की तरह सहाह सित्तह के रावी हैं) इब्न जुरैज से।	हमसे हदीस बयान की हुसैन बिन हुरैत ने (ये बुखारी और मुस्लिम के विश्वसनीय रावी हैं)। उन्होंने कहा, हमसे हदीस बयान की ईसा बिन यूनुस ने (ये विश्वसनीय और अमानतदार हैं, और सनद के बाकी रावियों की तरह सहाह सित्तह के रावी हैं)।

1. मिश्कातुल मसाबीह, अहमद के हवाले से, कब्रों की ज़ियारत का अध्याय, मुजतबाई प्रेस दिल्ली, पृ. 154

نہیں، بخلاف سمع متعارف بذریعہ آلات بدنیہ کہ بے حیات بدن ناممکن اور یہ وقت ان کافروں کی حیات جسمانی کا نہ تھا تو اس وقت اثبات سماع اجسام منافی آیات ہے، ہاں علم حاصل ہے کہ وہ روح سے ہے اور روح باقی ہے یہ حاصل ارشاد ام المومنین صلی اللہ تعالٰی علٰی بعلھا الکریم و علیھا و سلم ہے۔ اور اسی بناء پر مشائخ کرام نے کہ قطعاً درباره ابدان کلام فرما رہے تھے اس سے استناد کیا کما قدمنا (جیسا کہ ہم پیچھے بیان کر چکے ہیں ت) اور یہ اصلا ان منکرین و مخالفین کو مفید نہیں کہ سمع جسمانی نہ ہمارے دعوے میں مقصود و منظور نہ انکار منکرین اس پر مقصور، رہا ادراک روح کا انکار حاشا نہ وہ کلام ام المومنین سے مستفاد نہ ہر گز کسی دلیل سے ظاہر کہ یہ ان کی مراد تو منکرین کا اس سے استناد محض رجماً بالغیب و خرط القتاد، بلکہ اس کے ضلالت وبطلان اور ان کے بطالت و خذلان پر خود ارشادات صحیحہ صریحہ ام المومنین احسن الاستشہاد الاول تو اسی حدیث میں جب علم مان رہی ہیں تو ادراک روح کی خود قائل ہوئیں۔ پھر انکار سمع روح کے کیا معنی، اور حدیث علام تنصون میتکم ابھی گزری کہ میت کے سر میں زور سے کنگھی کرتے دیکھا تو فرمایا: کاہے پر اس کے بال کھینچتے ہو، اس سے قطع نظر کیجئے تو حدیث جلیل صحیح بستم کہ ابتدائے نوع دوم مقصد دوم میں مذکور ہوئی، جس میں ام المومنین قسم کھا کر فرماتی ہیں: "واللہ! جب سے امیر المومنین عمر دفن ہوئے میں ان کی شرم سے بے تمام کپڑے پہنے مزارات طیبہ پر حاضر نہ ہوئی۔" قطعاً لا جواب ہے۔ جب ام المومنین بعد دفن ابصار مانتی ہیں تو روح کو قطعاً مدرک اور اس کے ادراکات کو شامل، امور دنیویہ بھی جانتی ہیں۔ پھر انکار سماع ظاہر الامتناع، بلکہ محل قریب میں حال سماع حال ابصار سے بداہتہ اخف ہے کہ اس کے شرائط سے ازید ہیں، شاہد ہیں، معہود و مشہور تو یہ ہے کہ باوصف حائل وحجاب

ابصار زائل اور سماع حاصل، جب ام المومنین ایسے کثیف و کثیر پردوں سے دیکھنا مانتی ہیں تو سننا کیونکر نہ مانیں گی! معہذا کوئی قائل بالفصل نہیں، جو ابصار مانتا ہے سماع بھی مانے گا، اور جو سماع نہیں جانتا ابصار بھی نہ جانے گا، تیسری حدیث جلیل ام المومنین منقول بہ نقل ائمہ اجلہ ثقات و عدول رجال بخاری و مسلم مروی جامع ترمذی شریف یہ ہے:

عربی عبارت	**اردو ترجمہ**
حدثنا الحسین بن حریث (ثقة من رجال الشیخین) ناعیسی بن یونس (ثقة مأمون رجال الستة کسائر السند) عن ابن جریج	ہم سے حدیث بیان کی حسین بن حریث نے (یہ ثقہ رجال بخاری و مسلم سے ہیں) انہوں نے کہا ہم سے حدیث بیان کی عیسیٰ بن یونس نے (ثقہ مامون، اور باقی رجال سند کی طرح صحاح ستہ کے رجال سے ہیں)

1 مشکوۃ المصابیح بحوالہ احمد باب زیارۃ القبور مطبع مجتبائی دہلی ص ۱۵۴

Fatawa Ridawiyya, Volume 9

Abdullah bin Abi Mulaikah said: Abdur Rahman bin Abi Bakr (may Allah be pleased with them both) died at a place called al-Habashi. He was carried to Makkah and buried there. When Aisha (may Allah be pleased with her) arrived, she came to the grave of Abdur Rahman bin Abi Bakr and said:

(Urdu Explanation): He narrates from Ibn Jurayj, from Abdullah bin Abi Mulaikah, who said: That is, Hazrat Sayyiduna Abdur Rahman bin Abi Bakr Siddiq (may Allah be pleased with him), the biological brother of Umm al-Mu'minin Siddiqa (may Allah be pleased with her), passed away at a place called al-Habashi near Makkah the Great. His blessed remains were brought to Makkah and buried in Jannat al-Mu'alla. When the Mother of the Believers came to Makkah, she went to his blessed shrine and recited two couplets (which Tamim bin Nuwayrah had said in mourning for his brother Malik bin Nuwayrah) stating that for a long time they were like the two companions of Jadhimah (the king of the Arabs, Iraq, and the islands, who was killed by the king of the island of Zaba) who stayed together in the king's company for forty years, until people said they would never separate. But when they did separate, it was as if despite their long togetherness, they had never spent a single night in one place. Then, addressing her honorable brother (may Allah be pleased with him), she said these things: "By Allah, had I been present at the time of your passing, you would not have been buried except where you died, and had I witnessed your burial, I would not be visiting you now."

We were like the two drinking companions of Jadhimah for a long epoch of time, until it was said that we would never separate. But when we parted, it was as if Malik and I, despite the length of our time together, had never spent a single night together.

Then she said, "By Allah, had I been present at your death, you would not have been buried except where you died, and had I witnessed your burial, I would not be visiting you now."

Burying someone there is for the reason that it is the Sunnah; the remains should not be taken far away. And "not visiting" is because the share of women in visiting graves is less. If the Mother of the Believers, God forbid, were a denier of the perception and hearing of souls, then what would be the meaning of this speech and address? Does any rational person talk to bricks and stones? And how could she be a denier when she saw, heard, and knew that the Prophet (peace be upon him) used to offer salutations, speak to, and address the dead? She herself narrates that on every night

of her turn, the Messenger of Allah (peace be upon him) would go to the Baqi cemetery at the end of the night and say:

Arabic: Peace be upon you, O abode of believing people. What you were promised has come to you; you are deferred until tomorrow. And we, if Allah wills, shall join you. Urdu: Peace be upon you, O believing inhabitants of these homes! Now that which was promised to you is about to meet you; your term is until tomorrow. And if God wills, we are going to meet you.

1. Jami' al-Tirmidhi, Chapter on what has been narrated regarding visiting graves for women, Amin Company, Kutub Khana Rashidiyah, Delhi 1/125.

फ़तावा रज़विया, खंड 9

अब्दुल्लाह बिन अबी मुलैका ने कहा: अब्दुर्रहमान बिन अबी बक्र (अल्लाह उन दोनों से प्रसन्न हो) का इंतकाल अल-हबशी नामक स्थान पर हुआ। उन्हें मक्का ले जाया गया और वहां दफनाया गया। जब आयशा (अल्लाह उनसे प्रसन्न हो) आईं, तो वह अब्दुर्रहमान बिन अबी बक्र की कब्र पर आईं और कहा:

(उर्दू व्याख्या): वह इब्न जुरैज से रिवायत करते हैं, वह अब्दुल्लाह बिन अबी मुलैका से, जिन्होंने कहा: यानी हज़रत सय्यिदुना अब्दुर्रहमान बिन अबी बक्र सिद्दीक (अल्लाह उनसे प्रसन्न हो), जो उम्मुल मोमिनीन सिद्दीका (अल्लाह उनसे प्रसन्न हो) के सगे भाई थे, उनका मक्का मुअज़्ज़मा के पास हबशी नामक स्थान पर इंतकाल हुआ। उनकी मुकद्दस मैयत मक्का मुअज़्ज़मा लाई गई और जन्नतुल मुअल्ला में दफन की गई। जब उम्मुल मोमिनीन मक्का आईं, तो वह उनके मज़ार मुबारक पर गईं और दो शेर पढ़े (जो तमीम बिन नुवैरा ने अपने भाई मालिक बिन नुवैरा के शोक में कहे थे) कि एक लंबे समय तक हम जज़ीमा (अरब, इराक और टापुओं का राजा, जिसे ज़बा द्वीप के राजा ने मार दिया था) के दो साथियों की तरह (जो चालीस साल तक राजा की सोहबत में एक साथ रहे थे) साथ रहे, यहाँ तक कि लोगों ने कहा कि वे कभी अलग नहीं होंगे। लेकिन जब हम अलग हुए, तो ऐसा लगा जैसे हमारे इतने लंबे साथ के बावजूद, हमने कभी एक रात भी साथ नहीं बिताई थी। फिर अपने आदरणीय भाई (अल्लाह उनसे प्रसन्न हो) को संबोधित करते हुए ये बातें कहीं: "अल्लाह की कसम, अगर मैं आपकी मृत्यु के समय उपस्थित होती, तो आप वहीं दफन किए जाते जहाँ आपकी मृत्यु हुई थी, और अगर मैं आपकी अंत्येष्टि की गवाह होती, तो मैं अब आपकी ज़ियारत के लिए नहीं आती।"

हम जज़ीमा के दो साथियों की तरह लंबे समय तक साथ रहे, यहाँ तक कि कहा जाने लगा कि हम कभी जुदा नहीं होंगे। लेकिन जब हम अलग हुए, तो ऐसा लगा जैसे मलिक और मैं, इतने लंबे साथ के बावजूद, कभी एक रात भी साथ नहीं बिताई थी।

फिर उन्होंने कहा, "अल्लाह की कसम, अगर मैं तुम्हारी मृत्यु के समय मौजूद होती, तो तुम वहीं दफनाए जाते जहाँ तुम्हारी मृत्यु हुई थी, और अगर मैं तुम्हारे दफनाने में शामिल होती, तो मैं अब तुम्हारी ज़ियारत के लिए नहीं आती।"

वहीं दफन करना इसलिए है क्योंकि यही सुन्नत है, शव को दूर नहीं ले जाना चाहिए। और "ज़ियारत को न आना" इसलिए क्योंकि कब्रों की ज़ियारत में महिलाओं का हिस्सा कम है। अगर उम्मुल

मोमिनीन, खुदा न करे, रूहों के सुनने और समझने की मुनकिर (इनकार करने वाली) होतीं, तो इस बातचीत और संबोधन का क्या मतलब होता? क्या कोई बुद्धिमान व्यक्ति ईंटों और पत्थरों से बात करता है? और वह कैसे इनकार कर सकती थीं जबकि वह जानती, सुनती और समझती थीं कि हुज़ूर (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) मृतकों को सलाम करते, उनसे बात करते और संबोधन फरमाते थे? वह स्वयं रिवायत फरमाती हैं कि हर रात जब मेरी बारी होती, तो अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) रात के आखिरी हिस्से में बक़ी कब्रिस्तान जाते और फरमाते:

अरबी: तुम पर सलामती हो, ऐ ईमान वाले लोगों के घर। जो तुमसे वादा किया गया था वह तुम्हारे पास आ गया है; कल के लिए तुम्हें मुल्तवी किया गया है। और हम, अगर अल्लाह ने चाहा, तो तुमसे मिलने वाले हैं। उर्दू: सलाम तुम पर ऐ इन घरों वाले मुसलमानों! अब तुमको मिला चाहता है जिसका तुमसे वादा है तुम्हारी मियाद कल के दिन है। और खुदा चाहे तो हम तुमसे मिलने वाले हैं।

1. जामी अल-तिर्मिज़ी, महिलाओं के लिए कब्रों की ज़ियारत के संबंध में जो आया है, उस पर अध्याय। अमीन कंपनी, कुतुब खाना रशीदिया, दिल्ली 1/125।

فتاوٰی رضویہ جلد نہم

عبداللہ بن ابی ملیکۃ قال توفی عبدالرحمن بن ابی بکر رضی اللہ تعالی عنہما بالحبشی قال فحمل الی مکۃ فد فن فیھا فلما قدمت عائشہ رضی اللہ تعالی عنھا اتت قبر عبدالرحمن بن ابی بکر فقالت۔ وہ راوی ہیں ابن جریج سے، وہ عبداللہ بن ابی ملیکہ سے، انہوں نے فرمایا۔ ت) یعنی حضرت سیدنا عبدالرحمن بن ابی بکر صدیق رضی اللہ تعالٰی عنہ برادر حقیقی ام المومنین صدیقہ رضی اللہ تعالٰی عنہا نے مکہ معظمہ کے قریب موضع حبشی میں انتقال فرمایا، ان کی نعش مبارک مکہ معظمہ لائے، جنت المعلی میں دفن ہوئے، جب ام المومنین مکہ معظمہ آئیں تو ان کے مزار مبارک پر گئیں، دو شعر (کہ تمیم بن نویرہ نے اپنے بھائی مالک بن نویرہ کے مرثیہ میں کہے تھے) پڑھے کہ ایک مدت دراز تک جذیمہ (بادشاہ عرب وعراق وجزیرہ مقتول ملک جزیرہ زبا) کے دونوں مصاحبوں کی طرح (کہ چالیس سال تک صحبت بادشاہ میں یکجا رہے تھے) ساتھ رہے، یہاں تک کہ لوگوں نے کہا کہ یہ ہرگز جدا نہ ہوں گے اب کہ جدا ہوئے، گویا اس قدر طول یکجائی پر کسی شب ایک جگہ نہ رہے تھے--- پھر اپنے برادر مکرم رضی اللہ تعالٰی عنہ سے مخاطب ہو کر یہ باتیں کہیں خدا کی قسم ! اور اگر میں آپ کے انتقال کے وقت موجود ہوتی تو آپ وہیں دفن ہوتے جہاں آپ کا انتقال ہوا تھا، اور اگر میں اس وقت آپ کے پاس ہوتی تو اب آپ کی زیارت کو نہ آتی۔

وکنا کند مانی جذیمۃ حقبۃ من الدھر حتی قیل لن یتصدعا فلما تفرقنا کانی و مالکا لطول اجتماع لم نبت لیلۃ معا

ثم قالت واللہ لوحضرتک مادفنت الا حیث مت و لو شھدتک مازرتک۔

وہیں دفن ہونا اسی لیے کہ یہی سنت ہے، نعش کو دور لے جانا نہ چاہئے، اور زیارت کو نہ آنا یوں کہ زیارت قبور میں عورت کا حصہ کم ہے۔ ام المومنین اگر معاذ اللہ ادراک سماع ارواح کی منکر ہوتیں تو اس کلام و خطاب کے کیا معنی تھے، کیا کوئی عاقل اینٹوں پتھروں سے باتیں کرتا ہے؟ اور کیونکر منکر ہوتیں حالانکہ دیکھتی سنتی جانتی تھی کہ حضور صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم اموات سے سلام و کلام و خطاب فرمایا کرتے تھے، خود روایت فرماتی ہیں کہ میری ہر شب نوبت رسول اللہ صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم آخر شب مقبرہ بقیع تشریف لے جاتے اور فرماتے:

السلام علیکم دار قوم مومنین واتا کم ما تو عدون غدا مؤجلون وانا ان شاء اللہ بکم لا حقون سلام تم پر اے ان گھروں والے مسلمانوں! اب تم کو ملا چاہتا ہے جس کا تم سے وعدہ ہے تمھاری میعاد کل کے دن ہے۔ اور خدا چاہے تو ہم تم سے ملنے والے ہیں

1 جامع الترمذی باب ماجاء فی الزیارت للقبور للنساء امین کمپنی کتب خانہ رشیدیہ دہلی ۱/ ۱۲۵

Volume 9 / Fatawa Razawiyyah

[Box 1] Lahiqun[1] (Joining) - Narrated by Muslim. The wording in Nasa'i, instead of the phrase 'from what reached you to those given time,' includes these words: 'We and you are on a promise for tomorrow and have relied upon it.' Ibn Majah has different wording. Nasa'i also signaled after the word 'Salam': 'You have preceded us, and if God wills, we shall join you.'[2] (T)

How could she (Hazrat Aisha) deny it, when she herself had inquired: 'O Messenger of Allah! What should I say when I go to visit those buried in Baqi?' She was commanded to offer Salam and say: 'Insha'Allah (God willing), we are going to join you.'

[Box 2] Muslim, Nasa'i, and others narrated in a long Hadith from Lady Siddiqah (Hazrat Aisha) that she asked: 'What should I say to them, O Messenger of Allah?' He replied: 'Say: Peace be upon you, O inhabitants of these abodes from among the believers and Muslims! May Allah have mercy on those of us who went before and those who follow. Indeed, if Allah wills, we shall join you.'[3] (T)

In summary, the Mother of Believers (Hazrat Aisha) only denies physical hearing [by the dead]. However, since the narrations from reliable and just witnesses testify to this event, there is no way to reject it. The majority of scholars did not accept her denial in this matter and held that although three days had passed and the vile bodies of those wicked people had bloated and burst—and there is no doubt that a dead body is absolutely incapable of hearing—they still heard this statement of the Noble Prophet (Peace and blessings of Allah be upon him) with their physical ears. This is because Allah Almighty had revived those empty bodies at that moment to increase their remorse. This does not contradict the Quranic verses, as the hearing was granted by Allah; had He not revived them, they would not have heard through those ears. The description of 'dead' (mauti) in the verse is considered applicable as long as a corpse remains a corpse; but after the return of the soul, it is no longer 'dead' in that sense, so the verses [denying hearing] no longer apply to that situation at all.

I say: This discourse regarding the arguments from both sides is, by the grace of Allah, free and pure from all forced interpretations. And now, concerning the Mother of Believers...

[1] Sahih Muslim, Kitab al-Jana'iz, Asah al-Matabi, Karachi, 1/312 [2] Sunan an-Nasa'i, Al-Amr bi al-Istighfar lil-Mu'minin, Nur Muhammad Karkhana Tijarat Kutub, Karachi, 1/28 [3] Sunan an-Nasa'i, Al-Amr bi al-Istighfar lil-Mu'minin, Nur Muhammad Karkhana Tijarat Kutub, Karachi, 1/28

जिल्द 9 / फतावा रज़विया

[बॉक्स 1] लाहिक़ून[1] (मिलने वाले) - इसे मुस्लिम ने रिवायत किया। और नसाई में 'अताकुम' से 'मुअज्जिलून' तक की जगह ये अल्फ़ाज़ हैं: 'हम और तुम आपस में कल के वादे पर हैं और इसी पर भरोसा किए हुए हैं।' इब्न माजा के अल्फ़ाज़ दूसरे हैं। नसाई ने भी लफ्ज़ 'सलाम' के बाद इसी तरफ इशारा किया है: 'तुम हमसे पहले पहुँच गए और खुदा चाहे तो हम तुमसे मिलने वाले हैं।'[2] (त)

क्योंकर मुनकिर होतीं, हालाँकि खुद दरयाफ्त कर चुकी थीं कि 'या रसूल अल्लाह! कि जब मैं मदफ़ूनाने बक़ीअ की ज़ियारत को जाऊँ तो उनसे क्या कहूँ?' हुक्म हुआ था सलाम कर के यूँ कहूँ कि 'इन शा अल्लाह हम तुमसे मिलने वाले हैं।'

[बॉक्स 2] मुस्लिम व नसाई वगैरहमा ने हज़रत सिद्दीक़ा से एक हदीस-ए-तवील में रिवायत किया, उन्होंने अर्ज़ किया: 'मैं उनसे क्या कहूँ या रसूल अल्लाह?' फ़रमाया: 'यूँ कहो, तुम पर सलाम ऐ कब्रिस्तान वालो मोमिनीन व मुस्लिमीन से! खुदा हमारे अगलों और पिछलों पर रहम फ़रमाए, बेशक हम तुमसे मिलने वाले हैं अगर अल्लाह ने चाहा।[3]' (त)

बिलजुमला (संक्षेप में) उम्मुल मोमिनीन सिर्फ समाअ-ए-जिस्मानी (शारीरिक श्रवण) का इंकार फ़रमाती हैं मगर चूँकि मोतबर हदीसें इस वाकये की गवाह हैं, इसलिए इसे ठुकराने का कोई रास्ता नहीं। जमहूर उलमा (बहुसंख्यक विद्वानों) ने इस मसले में उनके इंकार को कुबूल नहीं किया और यही माना कि अगरचे तीन दिन गुज़र गए थे और उन ख़बीसों के नापाक जिस्म फूल कर फट गए थे —और इसमें कोई शक नहीं कि मुर्दा जिस्म सुनने के काबिल नहीं होता—मगर फिर भी उन्होंने हुज़ूर अकदस (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) के इस इरशाद को इन्हीं कानों से सुना, क्योंकि अल्लाह अज़्ज़-व-जल्ल ने उनकी हसरत बढ़ाने के लिए उन खाली जिस्मों को उस वक़्त फिर ज़िंदा फ़रमा दिया था। इसमें आयतों की कोई मुखालफ़त (विरोध) नहीं हुई क्योंकि सुनाना अल्लाह की तरफ से था; न वह जिलाता न ये इन कानों से सुनते। आयत में 'मौता' (मुर्दे) का जो वस्फ़ है वह तब तक है जब तक मय्यत मय्यत है, और रूह लौटाए जाने के बाद वह मय्यत रही ही नहीं, लिहाज़ा आयतें इस पर लागू नहीं होतीं।

अक़ूल (मैं कहता हूँ): यह तक़रीर (भाषण) दोनों तरफ के कलाम के बारे में, अल्लाह के फ़ज़्ल से हर तरह के तकल्लुफ़ात से पाक व साफ़ है। और अब उम्मुल मोमिनीन पर...

[1] सहीह मुस्लिम, किताबुल जनाइज़, असहुल् मताबे, कराची, 1/312 [2] सुनन नसाई, अल-अम्र बिल-इस्तिग़फ़ार लिल-मुमिनीन, नूर मोहम्मद कारखाना तिजारत कुतुब, कराची, 1/28 [3] सुनन नसाई, अल-अम्र बिल-इस्तिग़फ़ार लिल-मुमिनीन, नूर मोहम्मद कारखाना तिजारत कुतुब, कराची, 1/28

لاحقون [1] ۔ راوہ مسلم ولفظ النسائی مکان قولہ اتاکم الی موجلون و انا ایا کم متو اعدون غدا ومواکلون ولابن ماجۃ من وجہ آخر واشار الیہ النسائی ایضا بعد السلام انتم لنافرط و انا بکم لا حقون [2]۔ اسے مسلم نے روایت کیا۔ اور نسائی میں اتاکم سے مؤجلون تک کی جگہ یہ الفاظ ہیں ہم اور تم آپس میں کل کے وعدے پر ہیں اور اسی پر بھروسہ کیے ہوئے ہیں، اور ابن ماجہ کے الفاظ دوسرے ہیں، نسائی نے بھی لفظ "سلام" کے بعد اسی طرف اشارہ کیا ہے تم ہم سے پہلے پہنچ گئے اور خدا چاہے تو ہم تم سے ملنے والے ہیں۔ (ت) کیونکر منکر ہوتیں، حالانکہ خود دریافت کر چکی تھیں کہ یا رسول اللہ ! کہ جب میں مدفونان بقیع کی زیارتوں کو جاؤں تو ان سے کیا کہوں ، حکم ہوا تھا سلام کر کے یوں کہوں کہ ان شاء اللہ ہم تم سے ملنے والے ہیں۔

مسلم ونسائی وغیرہما فی حدیث طویل قالت قلت کیف اقول لھم یا رسول اللہ قال قولی السلام علیکم اھل الدیار من المومنین المسلمین ویرحم اللہ المستقدمین منا والمستاخرین وانا ان شاء اللہ بکم لا حقون [3]۔ مسلم و نسائی و غیرہما نے حضرت صدیقہ سے ایک حدیث طویل میں روایت کیا، انھوں نے عرض کیا : میں ان سے کیا کہوں یا رسول اللہ ؟ فرمایا : یوں کہو تم پر سلام اے قبرستان والو مومنین مسلمین سے ! خدا ہمارے اگلوں اور پچھلوں پر رحم فرمائے ، بیشک ہم تم سے ملنے والے ہیں اگر اللہ نے چاہا۔ (ت)

بالجملہ ام المومنین صرف سماع جسمانی کا انکار فرماتی ہیں مگر از انجا کہ احادیث ثقات عدول شاہد ہیں ان واقعہ کے رد کی طرف سبیل نہیں، جمہور علماء نے اس مسئلہ میں ان کا انکار قبول نہ کیا اور یہی مانا کہ اگرچہ تین دن گزر گئے ان خبیثوں کے ناپاک جسم پھول پھٹ گئے تھے اور شک نہیں کہ جسم مردہ بہر گز سننے کے قابل نہیں مگر پھر بھی انھوں نے حضور اقدس صلی اللہ

تعالیٰ علیہ وسلم کا یہ ارشاد اسی گوش سر سے سنا کہ اللہ عزوجل نے ان کی زیادت حسرت کے لیے ان خالی جسموں کو اس وقت پھر زندہ فرمایا تھا اور اس میں آیات کی کچھ مخالفت نہ ہوئی کہ سنانا اللہ عزوجل کی طرف سے ہوا، نہ وہ جلاتا نہ یہ ان کانوں سے سنتے ، وصف موتیٰ آیت میں ملحوظ ہے یعنی میت جب تک میت ہے اسے سنا نہیں سکتے اور بعدہ ، اعادہ روح ، اب وہ میت ہی نہیں تو آیات کا اصلاً محل ورود نہ رہا۔ اقول : یہ تقریر کلام جانبین بحمد اللہ تعالیٰ سب تکلفات سے مجانب و منزہ ہے۔ اور اب ام المومنین پر

[1] صحیح مسلم کتاب الجنائز اصح المطابع کراچی ۱/ ۳۱۲ [2] سنن نسائی الامر بالاستغفار للمومنین نور محمد کارخانہ تجارت کتب کراچی ۱/ ۲۸ [3] سنن نسائی الامر بالاستغفار للمومنین نور محمد کارخانہ تجارت کتب کراچی ۱/ ۲۸

Fatawa Rizvia, Volume 9

The objection does not arise that when she [Hadrat Ayesha RA] accepts 'ilm' (knowledge), why does she not accept 'sama' (hearing)? Knowledge is for the soul; how could physical hearing happen to a body in the state of death? And now, there is a Hadith from the Mother of the Believers (Umm al-Mu'minin) herself, which Imam Ahmad narrated with a good chain (Isnad Hasan) regarding the same story of Badr, that the Messenger of Allah (peace be upon him) said: "You do not hear what I am saying more than they do" (which scholars interpreted as her returning to the matter, provided it is preserved, because when she heard narrations from multiple companions present at the event, she retracted her denial). It is possible that the affirmation of hearing is attributed to the soul, so there is no conflict between negation and affirmation, and the case of 'Shadh' (irregular) and 'Mahfuz' (preserved) applies. That is, Umm al-Mu'minin does not deny these words; she herself narrates them from the Prophet (peace be upon him). Rather, the denial (marked with 'ayn') is based on the meaning others understood—don't accept it as physical hearing, as that would contradict the verse; instead, the Prophet meant spiritual hearing. After this clarification, I have no need to quote the works of great scholars like Imam Isma'ili, Imam Bayhaqi, Imam Suhayli, Imam Subki, Imam Asqalani, Imam Suyuti, Imam Qastalani, Mulla Ali Qari, Shaykh Muhaqqiq, Allama Zarqani, and others, although all of them are before me at this time. However, I will quote some passages from Imam Ayni, who is the same Ayni, the commentator of 'Kanz', upon whom the opponent heavily relied in this matter. He says in 'Umda al-Qari Sharh Sahih al-Bukhari', Book of Funerals, Chapter on 'What has come regarding the punishment of the grave':

[Boxed Text] "If you ask, what is the reason for mentioning the Hadith of Ibn Umar and the Hadith of Ayesha (may Allah be pleased with them), while both of them..." Meaning, Bukhari mentioned the Hadith of Hadrat Abdullah bin Umar (may Allah be pleased with them) that the Messenger of Allah (peace be upon him) [addressed] them...

(Ayn): A passage from Imam Ayni also points towards this school of thought: "When Umm al-Mu'minin considered Abdullah bin Umar's (RA) opinion regarding the Hadith of 'the dead being punished due to the weeping of their family' as a misconception (wahm), and she likened his misconception in that to his misconception in the Hadith of the Pit (Qalib)." On this, Allama Ayni said: "The point of similarity between the two is that Abdullah bin Umar (RA) took the literal meaning of both Hadiths, whereas the

literal meaning of both was not intended, etc." However, from the speech of Hadrat Umm al-Mu'minin (RA), the first school of thought is more evident. And Allah knows best. 12 Minhu (M).

1. Umda al-Qari Sharh al-Bukhari, The Prophet (SAW) addressing the people of the pit after their death, Idara al-Tiba'a al-Muniriya, Beirut, 1/93.

फतावा रजविया, जिल्द 9

वह आपत्ति नहीं होती कि जब वह [हज़रत आयशा रज़ियल्लाहु अन्हा] इल्म मानती हैं, तो समाअ (सुनना) क्यों नहीं मानतीं? इल्म रूह के लिए है; मृत्यु की स्थिति में शरीर को शारीरिक श्रवण कैसे हो सकता है? और अब स्वयं उम्मुल मोमिनीन (रज़ियल्लाहु अन्हा) की हदीस है जिसे इमाम अहमद ने हसन सनद के साथ बद्र की इसी घटना में रिवायत किया है कि रसूलुल्लाह (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने फरमाया: "तुम मेरा कहना उनसे ज़्यादा नहीं सुनते" (जिसे विद्वानों ने हज़रत आयशा के रुख बदलने पर आधारित माना है, बशर्ते कि वह सुरक्षित हो, क्योंकि जब उन्होंने घटना के समय मौजूद कई सहाबा से रिवायत सुनी, तो उन्होंने अपने इनकार को वापस ले लिया)। यह संभव है कि सुनने की पुष्टि रूह पर आधारित हो, ताकि निषेध और पुष्टि में कोई विरोधाभास न रहे और 'शाज़' और 'महफूज़' का मामला चले। अर्थात्, उम्मुल मोमिनीन इन शब्दों का इनकार नहीं करतीं; वह स्वयं उन्हें हुज़ूर (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) से रिवायत करती हैं। बल्कि इनकार (ऐन) उस अर्थ पर है जो दूसरों ने समझा—यानी इसे शारीरिक श्रवण न मानो क्योंकि यह आयत के विरुद्ध है; बल्कि हुज़ूर का तात्पर्य रूहानी श्रवण है। इस स्पष्टीकरण के बाद, मुझे इमाम इस्माइली, इमाम बैहक़ी, इमाम सुहैली, इमाम सुबकी, इमाम अस्कालानी, इमाम सुयूती, इमाम कस्तलानी, मुल्ला अली क़ारी, शेख मुहक़्क़िक़, अल्लामा ज़रक़ानी और अन्य महान विद्वानों के शब्दों को उद्धृत करने की आवश्यकता नहीं है, हालांकि वे सभी इस समय मेरे सामने हैं। लेकिन हाँ, मैं इमाम ऐनी के कुछ उद्धरण पेश करूँगा, जो वही ऐनी हैं जिन्होंने 'कंज' की व्याख्या की है और जिन पर विरोधियों ने इस मामले में बहुत भरोसा किया है। वह 'उमदतुल क़ारी शरह सहीह बुखारी', किताबुल जनाइज़, कब्र के अज़ाब के बारे में अध्याय में कहते हैं:

[बॉक्स वाला पाठ] "यदि आप पूछें कि इब्ने उमर की हदीस और आयशा (रज़ियल्लाहु अन्हुम) की हदीस का उल्लेख करने का क्या कारण है, जबकि वे दोनों..." यानी बुखारी ने हज़रत अब्दुल्ला बिन उमर (रज़ियल्लाहु अन्हुमा) की हदीस का उल्लेख किया कि रसूलुल्लाह (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने उन्हें [संबोधित किया]...

(ऐन): इमाम ऐनी का एक कथन भी इसी विचारधारा की ओर संकेत करता है: "जब उम्मुल मोमिनीन ने हज़रत अब्दुल्ला बिन उमर के'मृतक के परिवार के रोने के कारण मृतक को अज़ाब दिए जाने' वाली हदीस के बारे में उनकी राय को भ्रम (वहम) करार दिया और उनके इस भ्रम को कुएं(क़लीब) वाली हदीस में उनके भ्रम की तरह बताया।" इस पर अल्लामा ऐनी ने कहा: "दोनों हदीसों में समानता

का बिंदु यह है कि अब्दुल्ला बिन उमर (रज़ियल्लाहु अन्हु) ने दोनों हदीसों का शाब्दिक अर्थ लिया, जबकि दोनों का शाब्दिक अर्थ अभिप्रेत नहीं था आदि।" लेकिन उम्मुल मोमिनीन (रज़ियल्लाहु अन्हा) के शब्दों से पहली विचारधारा ही अधिक स्पष्ट है। और अल्लाह बेहतर जानता है। 12 मिन्हु (म)।

1. उमदतुल क़ारी शरह अल-बुखारी, मृतकों के बाद क़लीब वालों से नबी (स.अ.व.) का संबोधन, इदारातुल तिबाअतुल मुनीरिया, बेरुत, 1/93.

पेज 916 का 948

فتاوی رضویہ، جلد نہم

وہ اعتراض وارد نہیں ہوتا کہ جب علم مانتی ہیں سماع کیوں نہیں مانتیں، علم روح کے لیے ہے سمع جسمانی بحالت موت جسم کیونکر ہوا، اور اب خود ام المومنین رضی اللہ تعالیٰ عنہا کی حدیث کہ امام احمد نے بسند حسن ان سے اسی قصہ بدر میں یہی لفظ روایت کیے کہ رسول اللہ صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم نے فرمایا: ما انتم باسمع لما اقول منھم تم میرا فرمانا کچھ ان سے زیادہ نہیں سنتے (جسے علماء نے بشرطِ محفوظی رجوع ام المومنین پر محمول کیا تھا کہ جب متعدد صحابہ کرام حاضرانِ واقعہ سے روایت سنی انکار سے رجوع فرمائی) ممکن کہ اثبات سماع روح پر محمول ہو کر نفی واثبات میں تنافی نہ رہے کہ شاذ و محفوظ کا قصہ چلے یعنی ام المومنین ان لفظوں پر انکار نہیں کرتیں انھیں تو خود حضور پر نور صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم سے روایت فرماتی ہیں بلکہ انکار (ع) اس معنی پر ہے جو اوروں نے سمجھا یعنی جسمانی نہ مانو کہ خلاف آیت ہے بلکہ مراد حضورِ سمعِ روح ہے، میں بحمد اللہ تعالیٰ بعد اتضاح مراد اس کی حاجت نہیں رکھتا کہ قولِ ام المومنین کے جواب میں امام اسمعیلی و امام بیہقی و امام سہیلی و امام سبکی و امام عسقلانی و امام سیوطی و امام قسطلانی و مولانا علی قاری و شیخ محقق و علامہ زرقانی و غیر ہم اکابر کے کلام نقل کروں اگرچہ یہ سب اس وقت میرے پیش نظر ہیں، مگر ہاں امام عینی کی بعض عبارات نقل کروں گا کہ یہ وہی عینی شارحِ کنز ہیں جن سے اس مسئلہ میں مخالف نے جبلاً استناد کیا، عمدۃ القاری شرح صحیح بخاری کتاب الجنائز باب ماجاء فی عذاب القبر میں فرماتے ہیں:

فان قلت ماوجہ ذکر حدیث ابن عمر وحدیث عائشہ رضی اللہ تعالیٰ عنھم وھما یعنی بخاری نے حضرت عبداللہ بن عمر رضی اللہ تعالیٰ عنہما کی حدیث کہ رسول اللہ صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم نے ان

ع: امام عینی کا بھی ایک کلام اس مسلک کی طرف ناظر: فان ام المومنین لما وھمت عبداللہ بن عمر رضی اللہ تعالیٰ عنھم فی حدیث تعذیب المیت ببکاء اھلہ وشبھت وھمہ فیہ یوھمہ فی حدیث القلیب قال العینی وجہ المشابھۃ بینھما حمل ابن عمر علی الظاھر المراد منھما ای من الحدیث غیر الظاھر 1 الخ بید ان الاظھر من کلامھا رضی اللہ تعالیٰ عنھا ھو المسلک الاول واللہ تعالیٰ اعلم ۱۲ منہ (م)

تو ام المومنین رضی اللہ تعالیٰ عنہا نے جب حضرت عبداللہ بن عمر رضی اللہ تعالیٰ عنہ کی میت کے گھر والوں کے رونے کی وجہ سے میت کو عذاب دینے والی حدیث کے بارے رائے کو وہم قرار دیا اور ان کی اس رائے کو قلیب والی حدیث میں ان کے وہم کی طرح قرار دیا، اس پر علامہ عینی نے فرمایا دونوں حدیثوں میں وجہ مشابہت یہ ہے کہ عبداللہ بن عمر رضی اللہ تعالیٰ عنہ نے دونوں حدیثوں کا ظاہری مفہوم مراد لیا جبکہ ان دونوں کا ظاہری مفہوم مراد نہیں ہے الخ مگر حضرت ام المومنین رضی اللہ تعالیٰ عنہا کے کلام سے پہلا مسلک ہی زیادہ واضح ہے واللہ تعالیٰ اعلم (ت)

1 عمدۃ القاری شرح البخاری مخاطبۃ النبی صلی اللہ علیہ وسلم اھل القلوب بعد موتھم ادارۃ الطباعۃ المنیریۃ بیروت ۹۳/۱

Fatawa Ridawiyya Volume Ninth

...contradictory in the translation of the punishment of the grave. I say: Since the hearing of the people of the well (Qaleeb) to his speech and his reprimand of them is established, their perception of his speech through the sense of hearing indicates the permissibility of their perceiving the pain of punishment through the rest of the senses. Thus, it was good to mention them in this translation. Then, the reconciliation between the two reports is that Ibn Umar's hadith is interpreted as the addressing of the people of the well occurring at the time of questioning, which is the time of the return of the soul to the body. And the hadith of Aisha is interpreted as being outside the time of questioning. In this way, the two reports agree. [Urdu text on the right side of the box]: He addressed the corpses and said they listen, and the hadith of Hazrat Siddiqah (may Allah be pleased with her) that the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) said they know; both were mentioned in this punishment of the grave because when they have heard the words with the sense of hearing, they will also perceive the pain of punishment with the rest of the senses. And the agreement between these hadiths is that Ibn Umar's hadith is applied to the time of questioning by Munkar and Nakir, at which time the soul returns to the body, and the Mother of the Believers' hadith is applied to another time when the body remains empty, thus both hadiths will agree. (T)

See how clear the statement is that the entire discourse and discussion is about physical hearing. It says in the same: I say: This from Aisha indicates that she rejected the mentioned narration of Ibn Umar, but the majority disagreed with her in that and accepted the hadith of Ibn Umar, may Allah Almighty be pleased with him, due to its agreement with those who narrated it and others. [Urdu text on the right side]: That is, I say this narration indicates that the Mother of the Believers rejected the narration of Ibn Umar (may Allah be pleased with him), but the majority of scholars disagreed with the Mother of the Believers in this matter and kept Ibn Umar's hadith as acceptable because other companions also narrated in agreement with it.

It also says: The listeners, whoever they were, [heard] with the ears of their heads, as is the saying of the majority. [Urdu text on the right side]: That is, those corpses heard the sacred command through their physical ears; the saying of the majority is the same. (T)

Third Answer: Comprehensive of both answers. I say: The saying of the elders that the deceased or Zaid does not hear after death carries four possible meanings. The

"deceased" truly refers to the body and is also applied to the soul. And "Zaid" conventionally refers to the body and its soul connected to the body. In any case, there are two possibilities for the subject: body and soul. Likewise, conventional hearing is hearing through the instruments of the body, and its second meaning is the complete perception of sounds.

Footnotes: 1 'Umdat al-Qari Sharh Bukhari, Bab Ma Jaa fi 'Adhab al-Qabr, Idarat al-Tiba'ah al-Muniriyyah, Beirut, 8/202 2 'Umdat al-Qari Sharh Bukhari, Bab Ma Jaa fi 'Adhab al-Qabr, Idarat al-Tiba'ah al-Muniriyyah, Beirut, 8/202 3 'Umdat al-Qari Sharh Bukhari, Bab Ma Jaa fi 'Adhab al-Qabr, Idarat al-Tiba'ah al-Muniriyyah, Beirut, 8/202

फ़तवा-ए-रिज़विया भाग नौ

...कब्र के अज़ाब (दंड) के अनुवाद में विरोधाभासी। मैं कहता हूँ: चूंकि कुएँ वालों (कलीब) का उनका कलाम (भाषण) सुनना और उन्हें डांटना सिद्ध हो चुका है, इसलिए सुनने की इंद्रिय के माध्यम से उनके कलाम को समझने से यह संकेत मिलता है कि अन्य इंद्रियों के माध्यम से अज़ाब के दर्द को समझना भी जायज़ है। इसलिए इस अनुवाद में उनका उल्लेख करना उचित था। फिर, दोनों विवरणों के बीच सामंजस्य यह है कि इब्न उमर की हदीस इस पर आधारित है कि कुएँ वालों को संबोधित करना सवाल-जवाब के समय हुआ था, जो शरीर में आत्मा की वापसी का समय होता है। और आयशा की हदीस सवाल-जवाब के समय के अलावा किसी और समय पर आधारित है। इस तरह, दोनों विवरण सहमत हो जाते हैं। [बॉक्स के दाईं ओर उर्दू पाठ]: लाशों से खिताब किया और फरमाया कि सुनते हैं, और हजरत सिद्दीका (रज़ियल्लाहु अन्हा) की हदीस कि बल्कि रसूलल्लाह (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने यह फरमाया कि जानते हैं; दोनों इस अजाब-ए-कब्र में इसलिए जिक्र कीं कि जब उन्होंने कान की हिस्स (इंद्रिय) से कलाम सुन लिया तो बाकी हवास्स से अजाब का अलम भी इदराक (महसूस) कर लेंगे। और इन हदीसों में मुवाफ़क़त (समानता) यूँ है कि इब्न उमर की हदीस मुनकर-नकीर के सवाल के वक्त के खिताब पर महमूल है, उस वक्त बदन में रूह आ जाती है, और उम्मुल मोमिनीन की हदीस दूसरे वक्त पर महमूल है जब बदन खाली रह जाता है, यूँ दोनों हदीस मुत्तफिक (सहमत) हो जाएंगी। (त)

देखिए कितनी स्पष्ट व्याख्या है कि सारा कलाम और तर्कवितर्क शारीरिक सुनने के बारे में है। उसी में है: मैं कहता हूँ: आयशा की ओर से यह इंगित करता है कि उन्होंने इब्न उमर के उल्लेखित वर्णन को अस्वीकार कर दिया, लेकिन अधिकांश लोगों (जम्हूर) ने इस मामले में उनसे असहमति जताई और इब्न उमर (अल्लाह उन पर प्रसन्न हो) की हदीस को स्वीकार किया क्योंकि यह अन्य वर्णनकर्ताओं के अनुकूल थी। [दाईं ओर उर्दू पाठ]: यानी मैं कहता हूँ यह रिवायत दलालत करती है कि उम्मुल मोमिनीन ने इब्न उमर की रिवायत का रद्द फरमाया, मगर जमहूर उलमा ने इस बात में उम्मुल मोमिनीन का खिलाफ किया और हदीस-ए-इब्न उमर मकबूल रखी कि और सहाबा ने भी इसके मुवाफिक रिवायत की।

उसी में है: सुनने वाले, जो कोई भी हों, अपने सिरों के कानों से सुनते थे, जैसा कि अधिकांश का मत है। [दाईं ओर उर्दू पाठ]: यानी उन लाशों ने वह इरशाद-ए-अकदस जिस्मानी कान से सुना, जमहूर का कौल यही है। (त)

तीसरा उत्तर: दोनों उत्तरों का समाहार। मैं कहता हूँ: बुजुर्गों का यह कहना कि मृत व्यक्ति या ज़ैद मृत्यु के बाद नहीं सुनता, इसके चार संभावित अर्थ हैं। "मृत" वास्तव में शरीर के लिए है और आत्मा पर भी लागू होता है। और "ज़ैद" प्रचलित रूप से शरीर और उसकी रूह जो बदन से मुतअल्लिक है, के लिए है। बहरहाल, विषय में बदन और रूह की दो संभावनाएं हैं। इसी प्रकार, प्रचलित श्रवण शरीर के अंगों द्वारा सुनना है और इसका दूसरा अर्थ ध्वनियों का पूर्ण बोध है।

पादलेख: 1 उम्दतुल क़ारी शरह बुखारी, बाब मा जा फ़ी अज़ाबिल क़ब्र, इदारतुल तिबाअतुल मुनीरिया, बेरुत, 8/202 2 उम्दतुल क़ारी शरह बुखारी, बाब मा जा फ़ी अज़ाबिल क़ब्र, इदारतुल तिबाअतुल मुनीरिया, बेरुत, 8/202 3 उम्दतुल क़ारी शरह बुखारी, बाब मा जा फ़ी अज़ाबिल क़ब्र, इदारतुल तिबाअतुल मुनीरिया, बेरुत, 8/202

فتاوٰی رضویہ جلد نہم

متعارضان فی ترجمة عذاب القبر قلت لما ثبت من سماع اهل القليب كلامه وتوبيخه لهم دل ادراكهم كلامه بحاسة السمع على جواز ادراكهم الم العذاب ببقية الحواس، فحسن ذكر هما في هذه الترجمة ثم التوفيق بين الخبرين ان حديث ابن عمر محمول على ان مخاطبة اهل القليب كانت وقت المسئلة وقتها وقت اعادة الروح الى الجسد، وان حديث عائشة محمول على غير وقت المسئلة فبهذا يتفق الخبران ۱۔ لاشوں سے خطاب کیا اور فرمایا سنتے ہیں، اور حضرت صدیقہ رضی اللہ تعالٰی عنہ کی حدیث کہ بلکہ رسول اللہ صلی اللہ علیہ وسلم نے یہ فرمایا کہ جانتے ہیں، دونوں اس عذاب قبر میں اس لئے ذکر کیں کہ جب انہوں نے حس گوش سے کلام سن لیا تو باقی حواس سے عذاب کا الم بھی ادراک کرلیں گے، اور ان حدیثوں میں موافقت یوں ہے کہ ابن عمر کی حدیث خطاب وقت سوال نکیرین پر محمول ہے اس وقت بدن میں روح آجاتی ہے اور ام المومنین کی حدیث اور وقت پر محمول ہے جب بدن خالی رہ جاتا ہے یوں دونوں حدیث متفق ہو جائیں گی۔ (ت)

دیکھو کیسی تصریح ہے کہ سارا کلام و نقض و ابرام سماع جسمانی کے بارہ میں ہے۔ اسی میں ہے : قلت هذا من عائشه يدل على انها ردت رواية ابن عمر المذكورة ولكن الجمهور خالفوها في ذلك وقبلوا حديث ابن عمر رضي الله تعالى عنه الموافقة من رواه وغيره ۲۔ یعنی میں کہتا ہوں یہ روایت دلالت کرتی ہے کہ ام المومنین نے روایت ابن عمر رضی اللہ تعالٰی عنہ کا رد فرمایا مگر جمہور علماء نے اس بات میں ام المومنین کا خلاف کیا اور حدیث ابن عمر مقبول رکھی کہ اور صحابہ نے بھی اس کے موافق روایت کی۔

اسی میں ہے: سامعين ايا ما كان بأذان رؤسهم كما هو قول الجمهور ۳۔ یعنی ان لاشوں نے وہ ارشاد اقدس جسے جسمانی کان سے سنا، جمہور کا قول یہی ہے۔ (ت)

جواب سوم : جامع الجوابین۔ اقول: قول مشایخ کہ میت یا زید بعد موت نہیں سنتا، چار معنی کو محتمل کہ میت حقیقی بدن متق ہے اور روح پر بھی اطلاق کرتے اور زید عرفی بدن ہے متق اور روح متعلق بالبدن بھی اس کے معنی، بہر حال موضوع میں بدن و روح دو احتمال ہوئے، یو نہی سماع عرفی سمع آلات بدن ہے اور اس کے دوسرے معنی ادراک تام اصوات۔

١ عمدة القاري شرح بخاری باب ماجاء فی عذاب القبر ادارة الطباعة المنيرية بيروت ٢٠٢/٨ ٢ عمدة القاري شرح بخاری باب ماجاء فی عذاب القبر ادارة الطباعة المنيرية بيروت ٢٠٢/٨ ٣ عمدة القاري شرح بخاری باب ماجاء فی عذاب القبر ادارة الطباعة المنيرية بيروت ٢٠٢/٨

Volume 9 Fatawa Razawiyya

In a partial sense, even if without the means of organs, there were two possibilities in the predicate as well, and the product of multiplication is four: (1) The dead body has no hearing organs. (2) The dead body has no perception of sounds. (3) The dead soul has no hearing organs. (4) The dead soul has no perception of sounds.

The first three meanings are true and do not oppose us at all, nor are they beneficial to the opponent in the slightest. If there were only two meanings of the discourse, one in favor and one against, then there would be no ground for the opponent to derive authority from it, nor can it be correct to call the honorable elders 'deniers of the disputed hearing' based on a matter of probability. What manifest ignorance it is to ignore three correct possibilities and invent a fourth possibility of one's own, and forcibly claim the discourse as one's authority!

Fourth Answer: Mutazilites have extensively permeated the Hanafi school. These elders who, contrary to the Ahl-us-Sunnah creed, deny hearing are those very Mutazilites. This answer was provided by Saifullah-il-Maslool, Maulana al-Muhaqqiq Muin-ul-Haq Fazl-ur-Rasool (may his secret be sanctified) in "Tasheeh al-Masail".

I say: The opponent's seeking authority from the discourse of the elders was based on two premises. The minor premise is that the denial of disputed hearing is the opinion of most Hanafi elders, in proof of which those five statements were presented. And the hidden major premise is that the opinion of the majority of Hanafi elders is inherently true or it is obligatory for us to accept it. Under the first premise, it would be a research-based argument, and under the second, an obligatory rebuttal. In any case, there is no proof of it. The previous three answers were in consideration of their minor premise, meaning that there is absolutely no denial of the disputed hearing in the discourse of the elders. Now, this answer and the remaining answers are in service of the hidden major premise: if due to stubbornness, persistence, enmity, and arrogance you do not desist in any way and forcibly—leaving aside the true, correct meanings aligned with authentic hadiths, the creed of Ahl-us-Sunnah, the words of the leading Imams, and even the sayings of the prominent elders themselves—you forge the meaning of the elders' discourse without proof and contrary to clear evidence, that "the souls of the dead do not have perception of speech in any way," then we absolutely do not accept that those who hold this view are elders of Ahl-us-Sunnah whose command is a proof for us. Are there no Mutazilites among the elders of the school? In "Durr al-Mukhtar," Book of

Marriage, chapter on forbidden categories, an issue was quoted from "Kashaf" of Zamakhshari the Mutazilite, on which Allama Shami said in "Radd al-Muhtar":

[Arabic]: "Naqala dhalika 'anhu li'anna al-Zamakhshari min masha'ikh al-madhhab wa huwa hujjatu fi al-naql."

This issue was quoted from him because Zamakhshari is among the elders of the school and his narration is trusted. (T)

1. Radd al-Muhtar, Chapter on Forbidden categories, Mustafa al-Babi Egypt, 2/302. Page 918 of 948

खंड 9 फ़तावा रज़विया

आंशिक रूप से, यद्यपि इंद्रियों के माध्यम के बिना भी विधेय में दो संभावनाएँ थीं और उनका गुणनफल चार हुआ: (1) मृत शरीर के पास श्रवण इंद्रियाँ नहीं हैं। (2) मृत शरीर को ध्वनियों का बोध नहीं है। (3) मृत आत्मा के पास श्रवण इंद्रियाँ नहीं हैं। (4) मृत आत्मा को ध्वनियों का बोध नहीं है।

पहले तीन अर्थ सत्य हैं और हमारे बिल्कुल विरुद्ध नहीं हैं, और न ही विरोधी के लिए ज़रा भी लाभदायक हैं। यदि वचन के केवल दो ही अर्थ होते, एक पक्ष में और एक विपक्ष में, तो विरोधी के पास इससे प्रमाण लाने का कोई अवसर न था, और न ही संभाव्यता वाली बात पर मशाइख़ (बुज़ुर्गों) को विवादास्पद श्रवण (समा) का इनकार करने वाला कहना सही हो सकता है। यह कितनी स्पष्ट अज्ञानता है कि तीन सही संभावनाओं को छोड़कर अपनी ओर से चौथी संभावना गढ़ ली और वचन को ज़बरदस्ती अपनी दलील बता दिया!

चौथा उत्तर: हनफ़ी मज़हब में मुअतज़िला (एक तर्कवादी संप्रदाय) बड़ी संख्या में घुस आए हैं। ये बुज़ुर्ग जो अहल-ए-सुन्नत के अक़ीदे के विरुद्ध श्रवण (समा) के मुनकिर (इनकारी) हैं, वे वही मुअतज़िला हैं। यह उत्तर सैफ़ुल्लाह अल-मसलूल मौलाना अल-मुहक़्क़िक़ मुईन-उल-हक़ फ़ज़्ल-ए-रसूल (क़ुद्दिस सिर्रहु) ने "तसहीह अल-मसाइल" में प्रदान किया।

मैं कहता हूँ: विरोधी द्वारा बुज़ुर्गों के वचन से प्रमाण लेना दो प्रस्तावों पर आधारित था। लघु प्रस्ताव (Minor Premise) यह कि विवादास्पद श्रवण का निषेध अधिकांश हनफ़ी बुज़ुर्गों का मत है, जिसके प्रमाण में उन्होंने वे पाँच इबारतें (कथन) पेश कीं। और छिपा हुआ मुख्य प्रस्ताव (Major Premise) यह कि जो मत अधिकांश हनफ़ी बुज़ुर्गों का है, वह अपने आप में सत्य है या हमारे लिए उसे स्वीकार करना अनिवार्य है। पहली स्थिति में यह शोध-आधारित दलील होगी और दूसरी में अनिवार्य। बहरहाल इसका कोई प्रमाण नहीं है। पिछले तीन उत्तर उनके लघु प्रस्ताव के संदर्भ में थे, यानी बुज़ुर्गों के वचन में विवादास्पद श्रवण का इनकार कतई नहीं है। अब यह उत्तर और शेष उत्तर उस छिपे हुए मुख्य प्रस्ताव की सेवा में हैं कि यदि हठधर्मिता, शत्रुता और अहंकार के कारण आप किसी तरह बाज़ न आएँ और ज़बरदस्ती, सही और सच्चे अर्थों को छोड़कर जो सही हदीसों, अहल-ए-सुन्नत के अक़ीदे, इमामों के शब्दों और स्वयं प्रसिद्ध बुज़ुर्गों के कथनों के अनुकूल हैं, बिना किसी दलील के बल्कि स्पष्ट प्रमाणों के विरुद्ध बुज़ुर्गों के वचन का अर्थ यही गढ़ें कि "मृतकों की आत्माओं को किसी भी तरह से वाणी का बोध नहीं होता," तो अब हम बिल्कुल नहीं मानते कि इस मत के मानने वाले

अहल-ए-सुन्नत के बुज़ुर्ग होंगे जिनके वचन हमारे लिए प्रमाण हों। क्या मज़हब के बुज़ुर्गों में मुअतज़िला नहीं हैं? "दुर-ए-मुख़्तार" किताबुन्निकाह, हराम श्रेणियों के अध्याय में एक मसला "कश्शाफ़" ज़मख़्शारी मुअतज़िली से नक़ल किया गया, जिस पर अल्लामा शामी ने "रद्द अल-मुह्तार" में फ़रमाया:

[अरबी]: 1 نقل ذلك عنه لان الزمخشرى من مشائخ المذهب وهو حجة فى النقل

यह मसला उससे इसलिए नक़ल किया गया क्योंकि ज़मख़्शारी मज़हब के बुज़ुर्गों में से है और वह नक़ल (वर्णन) में प्रमाण है। यह मसला उससे इसलिए नक़ल किया कि ज़मख़्शारी मशाईख़-ए-मज़हब (मज़हब के बुज़ुर्गों) में से है और उसकी नक़ल पर भरोसा है। (त)

1. रद्द अल-मुह्तार, हराम श्रेणियों का अध्याय, मुस्तफ़ा अल-बाबी मिस्र, 2/302। पृष्ठ 948 में से 918

بروجہ جزئی اگرچہ بے ذریعہ آلات تو محمول میں بھی دو احتمال ہوئے اور حاصل ضرب چار: (۱) بدنِ مردہ کو سمع آلات نہیں۔ (۲) بدنِ مردہ کو ادراکِ اصوات نہیں۔ (۳) روحِ مردہ کو سمع آلات نہیں۔ (۴) روحِ مردہ کو ادراکِ اصوات نہیں۔

پہلے تینوں معنی حق ہیں اور ہمارے کچھ مخالف نہیں، نہ مخالف کو اصلاً مفید۔ کلام کے اگر دو ہی معنی ہوتے ایک موافق ایک مخالف، تو مخالف کو اس سے سند لانے کا کوئی محل نہ تھا، نہ احتمالی بات پر مشائخ کرام کو منکرِ سماع متنازع فیہ کہنا صحیح ہوسکتا ہے، نہ کہ تین احتمالاتِ صحیحہ کو چھوڑ کر از پیشِ خویش چوتھا احتمال جالیا اور کلام کو بزور زبان خواہی نخواہی اپنی سند بتادینا کیسی جہالت واضح ہے!

جواب چہارم: مذہب حنفیہ میں معتزلہ بکثرت پیرے ہوئے ہیں یہ مشائخ کہ برخلاف عقیدہ اہلسنت منکر سماع ہیں وہی معتزلہ ہیں یہ جواب سیف اللہ المسلول مولانا المحقق معین الحق فضل الرسول قدس سرہ نے تصحیح المسائل میں افادہ فرمایا۔

اقول: کلام مشائخ سے استناد مخالف دو مقدموں پر مبنی تھا، صغریٰ یہ کہ امتناع سماع متنازع فیہ قول اکثر مشائخ حنفیہ ہے جس کے ثبوت میں وہ عباراتِ خمسہ پیش کیں، اور کبریٰ مطویہ مستورہ یہ کہ جو قول اکثر مشائخ حنفیہ ہے فی نفسہ حق ہے یا ہم پر اس کی تسلیم واجب ہے، تقدیر اول پر دلیلِ تحقیقی ہوگی اور دوسرے پر الزامی، بہر حال اس کا ثبوت کچھ نہیں، اگلے تین جواب ان کے صغریٰ کی نازبرداری میں تھے یعنی کلام مشائخ میں سماعِ متنازع فیہ کا انکار ہرگز نہیں، اب یہ جواب اور باقی اجوبہ کبریٰ مستورہ کی خدمت گزاری کو ہیں کہ اگر مکابرہ واصرار و عناد

واستکبار سے کسی طرح باز نہ آؤ اور خواہی نخواہی معانی صادقہ صحیحہ موافقہ احادیثِ صحیحہ عقیدہ اہلسنت و کلماتِ ائمہ کرام و خود اقوال مشائخ اعلام کو چھوڑ کر بے دلیل بلکہ خلافِ دلائل واضحہ معنی کلام مشائخ یہی گھڑو کہ ارواحِ موتی کو کسی طرح ادراکِ کلام نہیں ہوتا، تو اب ہم ہرگز نہیں مانتے کہ اس قول کے قائل مشائخِ اہلسنت ہوں جن کے ارشاد ہم پر حجت ہوں کیا مشائخ مذہب میں معتزلہ نہیں، درمختار کتاب النکاح فصل محرمات میں ایک مسئلہ کشاف زمخشری معتزلی سے نقل کیا اس پر علامہ شامی نے ردالمحتار میں فرمایا:

نقل ذلك عنه لان الزمخشری من مشائخ المذهب وهو حجة فی النقل 1۔

یہ مسئلہ اس سے اس لیے نقل کیا کہ زمخشری مشائخِ مذہب سے ہے اور اس کی نقل پر اعتماد ہے۔ (ت)

1 ردالمحتار فصل فی المحرمات مصطفی البابی مصر ۳۰۲/۲ Page 918 of 948

Fatawa Razawiyya Volume 9

Moreover, this prohibition is not without a witness, rather its clear and explicit proof is present within Imam Ibn al-Humam himself. Many scholars cite the rejection of 'Sama' (hearing by the deceased) from his words, yet in that same discourse he says: "In my view, the rejection of 'Talqeen' (instruction) to the deceased by most scholars is based on the fact that they deny the hearing of the deceased." And in that same discourse, he said regarding the aforementioned 'Talqeen':

| He attributed it to the People of Sunnah and the | Seeking this instruction (Talqeen) is attributed to | | Community, and its opposite to the Mu'tazilah. | the Ahl-e-Sunnat wa Jama'at, and its rejection to | | | the Mu'tazilah. |

And from the words of Imam Saffar, it has clearly and explicitly passed that the prohibition of Talqeen is the creed of the Mu'tazilah. The saying of 'Kashf al-Ghita' passed that whoever does not believe in Talqeen is a Mu'tazilite. The text of 'Jawharah' and 'Durr al-Mukhtar' passed that according to the Ahl-e-Sunnat, Talqeen is a Shariah matter. So it became clearly evident that those scholars who deny hearing (Sama') are the same who deny Talqeen, and they are Mu'tazilites. This clear proof was mentioned in full detail in 'Tafshih al-Masail'. Despite this, the author of 'Tafheem al-Masail' said with obstinacy:

| Taking Mu'tazilah to mean 'most of our scholars' | Taking Mu'tazilah to mean 'most of our scholars', | | (aksar mashaikh-na), which Ibn al-Humam | whom Ibn al-Humam attributed to himself, is very | | attributed to himself, is extremely far-fetched. | far-fetched. It has never occurred in the words | | It has not occurred in the words of any Sunni, | of any Sunni. Calling Ibn al-Humam a Mu'tazilite | | and calling Ibn al-Humam a Mu'tazilite is the | is the act of an objector. Regarding an issue | | act of an objector. Regarding an issue that is | that is against the belief of the Hanafis of the | | against the belief of the Hanafis of Ahl-e-Sunnat, | Ahl-e-Sunnat, they will never say absolutely that | | they will never say absolutely that this is the | this is the saying of the Hanafi scholars, as is | | saying of the Hanafi scholars, as is not hidden | not hidden from anyone who has even the slightest | | from anyone who has even the slightest recourse | recourse to books. So, as long as they do not | | to books. So, as long as the occurrence of the | prove the phrase 'most of our scholars' appearing | | phrase 'most of our scholars' in the words of | in the words of the Ahl-e-Sunnat and meaning | | the Ahl-e-Sunnat and it meaning the

Mu'tazilah | the Mu'tazilah, how can this explanation be | | is not proven, how can this explanation be | accepted? (T) | | accepted? | |

I say (Aqool): The only result of all this useless verbosity is that it is far-fetched and contrary to the obvious to intend Mu'tazilah from 'most of our scholars' in the words of the Ahl-e-Sunnat. Saying this would have seemed appropriate if either the objecting scholar had said so without evidence that Mu'tazilah are meant here, or you had fulfilled the responsibility of responding to the evidence. And when there is nothing, then the prohibition is supported by a clear proof only.

---

1. Fath al-Qadeer, Chapter on Funerals, Maktaba Nooriya Razawiya, Sukkur, 2/68.
2. Tafheem al-Masail, Rejection of Hearing by the Deceased, Matba' Muhammadi, Lahore, p. 81.

फ़तावा रज़विया जिल्द 9

फिर यह निषेध (मनाही) बिना प्रमाण के नहीं है बल्कि इसका साफ और स्पष्ट प्रमाण स्वयं इमाम इब्न अल-हुमाम के यहाँ मौजूद है। जिनके कलाम से अक्सर मशाइख (विद्वानों) की ओर मुर्दों के सुनने (समाअ) के इनकार का सम्बंध जोड़ा जाता है, वे उसी कलाम में फ़रमाते हैं कि: "मेरे नज़दीक अक्सर मशाइख का मुर्दों को तलक़ीन (निर्देश) देने से इनकार करना इस बात पर आधारित है कि वे मुर्दों के सुनने के मुनकिर (इनकार करने वाले) हैं।" और स्वयं उसी कलाम में ऊपर वर्णित तलक़ीन के बारे में फ़रमाया:

| इसे अहल-ए-सुन्नत वल-जमाअत की ओर मन्सूब किया और | इस तलक़ीन का वांछित होना अहल-ए-सुन्नत वल-जमाअत | | इसके विपरीत को मोतज़िला की ओर। | की ओर मन्सूब है और इसका इनकार मोतज़िला की ओर। |

और इमाम सफ़ार के कलाम से साफ और स्पष्ट उल्लेख गुज़रा कि तलक़ीन का निषेध मोतज़िला का मज़हब है। 'कश्फ़ अल-ग़िता' का कथन गुज़रा कि जो तलक़ीन को नहीं मानता वह मोतज़िली है। 'जौहरा' और 'दुर्र-ए-मुख़्तार' की इबारत गुज़री कि अहल-ए-सुन्नत के नज़दीक तलक़ीन एक शरई मामला है। तो साफ ज़ाहिर हुआ कि वे मशाइख जो समाअ के मुनकिर हैं, वही तलक़ीन के भी मुनकिर हैं और वे मोतज़िली हैं। यह स्पष्ट प्रमाण 'तफ़्शीह अल-मसाइल' में पूर्ण विस्तार के साथ वर्णित था। इसके बावजूद 'तफ़हीम अल-मसाइल' के लेखक ने हठधर्मी से कहा:

| इब्न अल-हुमाम ने जिन मशाइख को अपनी ओर मन्सूब किया, | 'अक्सर मशाइखना' से कि इब्न अल-हुमाम ने मशाइख को | | उनसे 'मोतज़िला' मुराद लेना अत्यंत असंभव है और | अपनी तरफ निस्बत किया, मोतज़िला मुराद लेना बहुत | | किसी सुन्नी के कलाम में ऐसा घटित नहीं हुआ। इब्न | मुस्तबद (असंभव) है और किसी सुन्नी के कलाम में ऐसा | | अल-हुमाम को मोतज़िली ठहराना आपत्ति करने वाले का काम | वाक़िआ न हुआ, इब्न अल-हुमाम को मोतज़िली ठहराना | | है। और जो मसला अहल-ए-सुन्नत हनफिया के अक़ीदे के| मोतरिज़ (आपत्ति करने वाले) का काम है, जो मसला | | ख़िलाफ़ हो, उसके बारे में वे कभी भी मुतलक़ (पूर्ण रूप | हनफिया अहल-ए-सुन्नत के अक़ीदे के ख़िलाफ़ हो उसमें | | से) नहीं कहेंगे कि यह हनफ़ी विद्वानों का कथन है, | अलाल-इतलाक़ हरगिज़ न कहेंगे कि यह उलेमा-ए-हनफिया | | जैसा कि किताबों का थोड़ा भी ज्ञान रखने

वाले पर छिपा | का क़ौल है। जैसा कि किताबों की तरफ़ अदना रुजूअ | | नहीं है। तो जब तक अहल-ए-सुन्नत के कलाम में 'अक्सर | रखने वाले पर मख़फ़ी नहीं, तो जब तक कलाम-ए- | | मशाइखना' शब्द का आना और उससे मोतज़िला मुराद होना | अहल-ए-सुन्नत में अक्सर मशाइखना आना और उससे | | साबित न कर दें, यह व्याख्या कैसे स्वीकार की जा सकती है। | मोतज़िला का मुराद होना साबित न करें, यह तौज़ीह | | | कैसे तसलीम की जा सकती है (त) |

अक़ूल (मैं कहता हूँ): इस सारी व्यर्थ की लंबाई का केवल इतना सा ही अर्थहीन परिणाम है कि अहल-ए-सुन्नत के कलाम में 'अक्सर मशाइखना' से मोतज़िला मुराद लेना ज़ाहिर के ख़िलाफ़ और दूर की बात है। यह कहना तब अच्छा लगता जब या तो आपत्ति करने वाले अल्लामा ने बिना किसी प्रमाण के कह दिया होता कि यहाँ मोतज़िला मुराद हैं, या फिर आप प्रमाण का उत्तर देने की ज़िम्मेदारी पूरी कर लेते। और जब कुछ नहीं है, तो निषेध केवल स्पष्ट प्रमाण द्वारा समर्थित है।

---

1. फ़तह अल-क़दीर, बाब अल-जनाइज़, मकतबा नूरिया रज़विया, सुक्कुर, 2/68.
2. तफ़हीम अल-मसाइल, अदम समाअ मौती, मतबा मुहम्मदी, लाहौर, पृ. 81.

पृष्ठ 919 का 948

فتاوی رضویہ جلد نہم

پھر یہ منع بے شاہد نہیں بلکہ اس کی صاف سند واضح موجود خود یہی امام ابن الہمام جن کے کلام سے اکثر مشائخ کی طرف انکار سماع کی نسبت نقل کرتے ہوا سی کلام میں فرماتے ہیں کہ میرے نزدیک اکثر مشائخ کا تلقین موتی سے انکار کرنا اس پر مبنی ہے کہ وہ سماع موتی سے منکر ہیں اور خود اسی کلام میں تلقین مذکور کو فرمایا :

| نسب الی اھل السنۃ والجمعہ و خلافہ الی المعتزلہ ۔ | اس تلقین کا مطلوب ہونا اہلسنت و جماعت کی طرف | | | منسوب ہے اور اس کا انکار معتزلہ کی طرف۔ |

اور کلام امام صفار سے صاف صریح تصریح گزری کہ منع تلقین مذہب معتزلہ ہے۔ کشف الغطاء کا قول گزرا کہ جو تلقین نہیں مانتا معتزلی ہے، جوہرہ و درمختار کی عبارت گزری کہ اہلسنت کے نزدیک تلقین امر شرعی ہے تو صاف ظاہر ہوا کہ یہ مشائخ منکر ان سماع وہی منکر ان تلقین معتزلی ہیں ، یہ سند واضح بہ تفصیل تام تفحیح المسائل میں مذکور تھی با اینہمہ صاحب تفہیم المسائل نے منہ زوری سے کہا :

| از اکثر مشائخنا کہ این ہمام مشائخ رانسبت بخود کردہ معتزلہ | اکثر مشائخنا سے کہ ابن ہمام نے مشائخ کو اپنی طرف | | مراد گرفتن از بس مستبعد است و در کلام کدامی اہلسنت | نسبت کیا ، معتزلہ مراد لینا بہت مستبعد ہے اور کسی | | چنیں واقع نہ شدہ وابن ہمام را معتزلی قرار دادن کار معترض | سنی کے کلام میں ایسا واقع نہ ہوا، ابن ہمام کو | | است و آں مسئلہ کہ خلاف عقیدہ حنفیہ اہلسنت باشد دراں ہر | معتزلی ٹھہرانا معترض کا کام ہے ، جو مسئلہ حنفیہ | | گز علی الاطلاق نخواھند گفت کہ این قول علمائے حنفیہ است | اہلسنت کے عقیدے کے خلاف ہو اس میں

علی الاطلاق | | کما لایخفی علی من لہ ادنیٰ رجوع الی الکتب پس مادامیکہ | ہر گز نہ کہیں گے کہ یہ علمائے حنفیہ کا قول ہے۔ جیسا | | وقوع لفظ اکثر مشائخنا در کلام اہلسنت و مراد بودن ازاں | کہ کتابوں کی طرف ادنیٰ رجوع رکھنے والے پر مخفی | | معتزلہ ثابت نہ کنند چگونہ ایں توضیح بمعرض تسلیم در آید ۔ | نہیں ، تو جب تک کلام اہلسنت میں اکثر مشائخنا آنا | | | اور اس سے معتزلہ کا مراد ہونا ثابت نہ کریں ، یہ | | | توضیح کیسے تسلیم کی جاسکتی ہے (ت) |

اقول: اس ساری تطویلِ لاطائل کا صرف اس قدر حاصل ہے حاصل کہ کلام اہلسنت میں اکثر مشائخنا سے معتزلہ کا ارادہ مستبعدہ خلافِ ظاہر ہے یہ کہنا اس وقت اچھا معلوم ہوتا کہ یا تو علامہ معترض نے یوں ہی بے سند فرمادیا ہو تا کہ یہاں معتزلہ مراد ہیں یا آپ جوابِ سند سے عہدہ برآ ہو لیتے اور جب کچھ نہیں تو منع مؤید بسند واضح صرف

---

1 فتح القدیر باب الجنائز مکتبہ نوریہ رضویہ سکھر ۲/۶۸ 2 تفہیم المسائل عدم سماع موتیٰ مطبع محمدی لاہور ص ۸۱

Fatawa-e-Razviyah, Volume 9

The improbability cannot be repelled by the apparent contradiction. Every lowly servant of knowledge knows that the apparent righteousness of burial is not a proof of entitlement. To seek to establish a proof for a forbidden premise from it is ignorance, as it is a place of entitlement. And to arrive at the station of repulsion and seek a prohibition as an objective is even greater ignorance, as is not hidden from the people of knowledge (as it is not hidden from the scholars. T). Yes, they turn their attention to the answer of the proof with a strange delicacy:

And some Shafi'i scholars have attributed the denial of Talqin (instruction to the deceased) to the Mu'tazilites, not the Hanafis. As written in Barjandi: "And Talqin is not performed after burial according to us, but it is according to Ash-Shafi'i. Some of his companions claimed that this is the creed of Ahl al-Sunnah and the former is the creed of the Mu'tazilites." Also, they attributed the absolute denial of Talqin to the Mu'tazilites, not a denial specifically for the reason that the dead cannot hear, as the objector surmised.1	Some Shafi'i scholars have attributed the denial of Talqin to the Mu'tazilites and not to the Hanafis, as written in Barjandi. According to us, Talqin will not be performed after burial, while according to Imam Shafi'i, Talqin will be performed. Some of his associates stated that this is the school of Ahl al-Sunnah and the former is the school of the Mu'tazilites. They attributed the absolute denial of Talqin to the Mu'tazilites, not specifically because the dead do not hear, as the objector surmised. (T)

I say first, is there any limit to this blindness? Can this Mulla ji say about Al-Jawhara, Durr al-Mukhtar, Kashf al-Ghita, and other Hanafi compositions that they were not before my eyes? He himself quoted the text of Talkhis al-Adilla from his opponent's speech: "Imam Zahid Saffar, who is in the second rank of mujtahids in the school, wrote in the book Talkhis al-Adilla: 'It is appropriate that Talqin be performed for the deceased according to the creed of the Great Imam and the Honored Leader. Whoever does not perform Talqin follows the creed of Mu'tazilism.'"2 That is, one should perform Talqin for the dead according to the school of Imam-e-Azam and the honored leader (may Allah be pleased with him); whoever does not believe in Talqin is a Mu'tazilite. And he closed his eyes and said, "Some Shafi'is claimed, not Hanafis." But is the great Imam and Mujtahid of the school, Zahid Saffar, who is a brilliant student of Imam Abu Yusuf and Imam Muhammad through only two intermediaries, not among the Hanafi scholars according to his excellency? Secondly, how does the

attribution by the Shafi'is negate or conflict with the attribution by the Hanafis? He even omitted "Hanafis" from the text of Barjandi himself. On page 71 of the same Tafheem, he says:

Mentioning a specific thing does not necessarily imply the negation of others besides it and explanation.	Mentioning a specific thing does not imply the negation of anything else besides it.

1. Tafheem al-Masa'il, Lack of Dead hearing, from Hanafi books, Mohammadi Press Lahore, p. 81
2. Tafheem al-Masa'il, Lack of Dead hearing, from Hanafi books, Mohammadi Press Lahore, p. 80

ज़ाहिरी विरोध की संभावना को दूर नहीं किया जा सकता। ज्ञान का हर छोटा सेवक जानता है कि दफ़न की ज़ाहिरी भलाई पात्रता का प्रमाण नहीं है। इससे एक निषिद्ध प्रस्ताव पर तर्क स्थापित करना अज्ञानता है क्योंकि यह पात्रता का स्थान है। और रोकथाम (दफ़ा) के मुकाम पर आकर मनाही को उद्देश्य बनाना और भी बड़ी अज्ञानता है, जैसा कि विद्वानों से छिपा नहीं है। हाँ, वे प्रमाण के उत्तर की ओर भी एक अजीब नज़ाकत से ध्यान दिलाते हैं:

और कुछ शाफ़ई विद्वानों ने तलकीन (मृतक को निर्देश) के इनकार को मुअतज़िला की ओर मँढ दिया है, न कि हनफ़ियों की ओर। जैसा कि बरजंदी में लिखा है: "और हमारे नज़दीक दफ़न के बाद तलकीन नहीं होगी, जबकि इमाम शाफ़ई के नज़दीक होगी। उनके कुछ साथियों ने कहा कि यह अहल-ए-सुन्नत का पंथ है और पहला मुअतज़िला का पंथ है।" और उन्होंने पूर्ण रूप से तलकीन के इनकार को मुअतज़िला की ओर मँढा है, न कि विशेष रूप से इस कारण से इनकार कि मुर्दा सुन नहीं सकता जैसा कि आपत्ति करने वाले ने समझा।1

कुछ शाफ़ई विद्वानों ने तलकीन के इनकार को मुअतज़िला की ओर मँढा है न कि हनफ़ियों की ओर, जैसा कि बरजंदी में लिखा है। हमारे नज़दीक दफ़न के बाद तलकीन नहीं होगी और इमाम शाफ़ई के नज़दीक तलकीन होगी, उनके कुछ साथियों ने कहा कि यह अहल-ए-सुन्नत का पंथ है और पहला मुअतज़िला का पंथ है। और उन्होंने पूर्ण रूप से तलकीन के इनकार को मुअतज़िला की ओर मँढा है, न कि विशेष रूप से इस कारण से इनकार कि मुर्दा सुन नहीं सकता जैसा कि आपत्ति करने वाले ने समझा। (त)

मैं कहता हूँ पहले तो, क्या इस अंधेपन की कोई सीमा है? क्या यह मुल्ला जी हनफ़ी रचनाओं जैसे अल-जौहरा, दुर्र-ए-मुख़्तार, कश्फ़ अल-ग़िता आदि के बारे में कह सकते हैं कि वे मेरी नज़रों के सामने नहीं थीं? उन्होंने खुद अपने विरोधी के भाषण से तलखीस अल-अदिल्ला का पाठ उद्धृत किया कि इमाम ज़ाहिद सफ़्फ़ार, जो पंथ के मुजतहिदों की दूसरी श्रेणी में हैं, उन्होंने पुस्तक तलखीस अल-अदिल्ला में लिखा है: "उचित है कि मृतक को इमाम-ए-आजम और सम्मानित नेता के पंथ के अनुसार तलकीन दी जाए। जो तलकीन नहीं देता, वह मुअतज़िला के पंथ पर है।"2 यानी इमाम-ए-आजम और सम्मानित पेशवा (रज़ियल्लाहु अन्हु) के पंथ पर मैय्यत को तलकीन करना चाहिए, जो तलकीन न माने वह मुअतज़िली है। और उन्होंने आँखें बंद करके कह दिया कि "कुछ शाफ़ईयों ने दावा किया, हनफ़ियों ने नहीं"। लेकिन क्या पंथ के महान इमाम और मुजतहिद ज़ाहिद सफ़्फ़ार, जो

केवल दो मध्यस्थों के माध्यम से इमाम अबू यूसुफ़ और इमाम मुहम्मद के मेधावी छात्र हैं, सरकार के नज़दीक हनफ़ी विद्वानों में से नहीं हैं? दूसरे, शाफ़ईयों का श्रेय देना हनफ़ियों के श्रेय देने के लिए कैसे नकारात्मक या विरोधाभासी है? उन्होंने खुद बरजंदी के पाठ से "हनफ़ी" शब्द भी निकाल दिया। इसी तफ़हीम के पृष्ठ 71 पर वे कहते हैं:

किसी विशिष्ट चीज़ के उल्लेख से उसके अतिरिक्त अन्य का निषेध अनिवार्य नहीं होता और व्याख्या।	किसी विशेष चीज़ का ज़िक्र करने से उसके अलावा की नफ़ी (नहीं होती)।

1. तफ़हीम अल-मसायल, हनफ़ी पुस्तकों से मुर्दों की कमी (सुनने की), मोहम्मदी प्रेस लाहौर, पृष्ठ 81
2. तफ़हीम अल-मसायल, हनफ़ी पुस्तकों से मुर्दों की कमी (सुनने की), मोहम्मदी प्रेस लाहौर, पृष्ठ 80

استبعاد مخالفت ظاہر سے مندفع نہیں ہوسکتا۔ ہر ادنٰی خادم علم جانتا ہے کہ ظاہر صالح دفن ہے نہ حجت استحقاق تو اس سے مقدمہ ممنوعہ پر اقامتِ دلیل چاہنا جہالت کہ وہ محل استحقاق ہے اور مقام دفع میں آکر منع سند مقصود ہو تو اور سخت تر جہالت کما لا یخفی علی اھل العلم (جیسا کہ اہل علم حضرات پر مخفی نہیں۔ت) ہاں جواب سند کی طرف بھی ایک عجیب نزاکت سے توجہ کی فرماتے ہیں:

وانکار تلقین رانسبت بہ معتزلہ بعض علمائے شافعیہ زعم کردہ اند نہ حنفیہ چنانچہ در بر جندی نوشتہ ولا یلقن بعد الدفن عندنا وعند الشافعی یلقن و زعم بعض اصحابہ انہ مذہب اھل السنۃ والاول مذہب المعتزلہ وایضا انکار تلقین را مطلقا نسبت بمعتزلہ کردہ اند نہ انکار بخصوصیت این وجہ کہ سماع موتی را نیست کما زعم المعترض۔ 1

بعض علمائے شافعیہ نے انکارِ تلقین کو معتزلہ کی طرف منسوب کیا ہے نہ کہ حنفیہ نے، جیسا کہ بر جندی میں لکھا ہے۔ ہمارے نزدیک بعدِ دفن تلقین نہ ہوگی اور امام شافعی کے نزدیک تلقین ہوگی، ان کے بعض اصحاب نے فرمایا کہ یہ اہلسنت کا مذہب ہے اور اول معتزلہ کا مذہب ہے۔ اور انہوں نے مطلقا انکارِ تلقین کو معتزلہ کی طرف منسوب کیا ہے، نہ خاص اس وجہ سے انکار کہ مردہ کو سماع نہیں جیسا کہ معترض نے گمان کیا۔ (ت)

اقول اولاً اس نابینائی کی کچھ حد ہے، بھلا یہ جو ہرہ و درِ مختار و کشف الغطا و غیر ہا تصانیفِ حنفیہ کو ملا جی کہہ سکتے ہیں کہ میرے پیش نظر نہ تھیں تلخیص الادلہ کی عبارت تو خود ہی اپنے خصم کے کلام سے نقل کہ امام زاہد صفار کہ در طبقہ ثانیہ از مجتہدین فی المذہب ست در کتاب تلخیص الادلہ نوشتہ و ینبغی ان یلقن المیت علی مذہب الامام اعظم والمقتدی المکرم و من لم

یلقن فھو علی مذہب الاعتزال 2 یعنی امام اعظم و پیشوائے مکرم رضی اللہ تعالیٰ عنہ کے مذہب پر میت کو تلقین کرنا چاہئے، جو تلقین نہ مانے معتزلی ہے۔ اور آنکھیں بند کر کے کہہ دیا کہ "بعض شافعیہ زعم کردہ اند نہ حنفیہ" مگر امام اجل مجتہد فی المذہب زاہد صفار کہ صرف دو واسطے سے امام ابو یوسف و امام محمد کے تلمیذِ رشید ہیں سرکار کے نزدیک علمائے حنفیہ سے نہیں۔ ثانیاً شافعیہ کا نسبت کرنا حنفیہ کے نسبت کرنے کا کیا نافی و منافی ہے کہ عبارت بر جندی سے نہ "حنفیہ" بھی نکال لیا خود سرکار اسی تفہیم کے صفحہ ۷۱ پر فرماتے ہیں:

از تخصیص شیئ بد کر نفی عماد عداہ لازم نیاید — کسی خاص چیز کو ذکر کرنے سے اس کے ماسوا کی نفی و توضیح

1 تفہیم المسائل عدم موتی از کتب حنفیہ مطبع محمدی لاہور ص ۸۱ 2 تفہیم المسائل عدم موتی از کتب حنفیہ مطبع محمدی لاہور ص ۸۰

Volume 9

Fatawa Ridawiyyah

[Boxed Text] Specifying a thing by its name does not imply the negation of the ruling for other than it. It is not necessary; the explanation is that mentioning a specific thing does not indicate that the ruling is negated for everything else. (T)

Having seen it in the discourse of the Shafi'is, they attributed it to them. How does it follow that the Hanafis did not attribute it? Even if, for the sake of argument, their statement implied this, when explicit clarifications of prominent Hanafi scholars are present before one's eyes, will the negation inferred from the words of some scholars erase what is perceived? In the consensus rule of reason and tradition, the affirmative is prioritized over the negative. Between two reliable scholars, if one says the Hanafis did not write such a thing and the other says they did, the written version stands proven because the former did not see it and hence denied it. Not seeing something is not a proof; "The one who knows is a proof over the one who does not know" (T). It is not that we should ignore visual evidence due to a verbal negation, even though we see with our own eyes that the great Hanafi scholars have written it. But since Fadil Barjandi has already written that the Shafi'is said it, it becomes a necessity to deny sensory perception and observation. It is true, when a person becomes a Wahhabi, they become like an inanimate object that neither hears nor understands.

Secondly, it is extreme ignorance that absolute denial is attributed to the Mu'tazilites, not with this specificity. When was it stated in Tashih al-Masa'il that the denial with this specificity is attributed to the Mu'tazilites? O sensible person! The summary of the discourse was that denying the Talqin (instruction to the deceased) is the creed of the Mu'tazilites, and Imam Ibn al-Humam explains its basis by stating that these people denied the hearing (of the deceased), and thus denied the Talqin. So it became clear that those who deny hearing are Mu'tazilites. If the specific denial of hearing was attributed directly to the Mu'tazilites, what was the need for this mediation? It would have been simply said, "Look, the denial of hearing is stated to be a Mu'tazilite view." Yes, a doubt arose that some Ahl al-Sunnah also leaned towards prohibiting Talqin, and since its basis is that (denial of hearing), they would also be considered proponents of it. In Tashih, a justification was provided to dispel this doubt, stating that their denial is not based on the denial of hearing, but rather,

according to them, Talqin is futile or unproven. A sensible person mistook this for a claim of attribution with this specificity. This understanding...

A-u: I say: It was previously mentioned that the prohibition is not proven from Zahir al-Riwayah. Imam Saffar himself attributes the practice of Talqin to Imam al-A'zam and considers those who deny it as Mu'tazilites. There is no doubt that the Mu'tazilites have been among the proponents of this creed from ancient times, and based on their belief that the dead are inanimate, the denial of Talqin is necessary for them. Initially, they were the ones denying it based on their corrupt creed. Therefore, Imam Saffar rules on this part. After the passage of time, some later scholars of the Ahl al-Sunnah, seeing the denial in the words of the aforementioned masters and the lack of proof in Zahir al-Riwayah, denied it and gave it a color of justification based on lack of benefit or lack of proof. Thus, the denial is now divided into two sides: one due to the specific inanimate-dead belief of the Mu'tazilites, and the other by some Ahl al-Sunnah for other reasons, as seen in the discourse of Imam Nasafi. So act upon it, for it is likely that the reality does not exceed this. (Know it well, for it is possible the matter does not go beyond this - T)

1. Tafhim al-Masa'il Mu'anaqa Roz-e Eid, Muhammadi Press, Lahore, p. 113.

जिल्द 9

फ़तावा रज़विया

[बॉक्स किया गया पाठ] नविश्ता तख़्सीस अश्-शई' बिइस्मिहि ला यद्वुल्लु अला नफ़्यल हुक्मि अम्मा अदाहु। १- लाज़िम नहीं आती, तौज़ीह में है किसी ख़ास चीज़ का नाम लेना यह नहीं बताता कि इसके मासवा से हुक्म नफ़ी है। (त)

उन्होंने शाफ़ईयों के कलाम में देखकर उनकी ओर निस्बत की, इससे यह कैसे अनिवार्य हो गया कि हनफ़ियों ने निस्बत नहीं की? और मान लीजिए कि उनके कथन का अर्थ यही हो, तो जब स्पष्ट रूप से आँखों के सामने प्रतिष्ठित हनफी विद्वानों के स्पष्टीकरण मौजूद हैं, तो क्या कुछ विद्वानों के कलाम से निकलने वाला नकारात्मक भाव प्रत्यक्ष प्रमाणों को मिटा देगा? तर्क और परंपरा के सर्वसम्मत नियम में सकारात्मक को नकारात्मक पर प्राथमिकता दी जाती है। दो विश्वसनीय विद्वानों में से एक कहता है कि हनफ़ियों ने ऐसा नहीं लिखा, दूसरा कहता है कि लिखा है, तो लिखा हुआ ही सिद्ध होगा क्योंकि पहले वाले ने नहीं देखा इसलिए इनकार किया, और न देखना कोई दलील नहीं है; "जिसे ज्ञान है वह उस पर दलील है जिसे ज्ञान नहीं है" (त)। ऐसा नहीं होना चाहिए कि हम प्रत्यक्ष प्रमाण को शाब्दिक नकार के कारण अनदेखा कर दें, जबकि हम अपनी आँखों से देख रहे हैं कि बड़े हनफी विद्वानों ने इसे लिखा है। लेकिन चूँकि फ़ाज़िल बरजंडी लिख चुके हैं कि शाफ़ईयों ने कहा है, इसलिए अब मजबूरी है कि इंद्रिय बोध और अवलोकन को झुठलाया जाए। सच है, इंसान वहाबी होकर बेजान चीज़ (जमाद) की तरह हो जाता है जो न सुनता है न समझता है।

दूसरे, चरम अज्ञानता यह है कि पूर्ण इनकार को मुअतज़िला की ओर जोड़ा जाता है, न कि इस विशिष्टता के साथ। तसहीह अल-मसाइल में कब कहा गया था कि इस विशिष्टता के साथ इनकार मुअतज़िला से संबंधित है? ऐ बुद्धिमान! सार यही था कि तल्कीन का इनकार मुअतज़िला का मज़हब है, और इमाम इब्नुल हुमाम इसका आधार बताते हैं कि ये लोग मुर्दों के सुनने के मुनकिर थे, इसलिए तल्कीन से मुनकिर हुए। तो स्पष्ट हुआ कि सुनने के मुनकिर मुअतज़िला हैं। यदि सीधे तौर पर सुनने के विशिष्ट इनकार को मुअतज़िला की ओर निस्बत किया जाता, तो इस मध्यस्थता की क्या आवश्यकता थी? सीधे कह दिया जाता कि देखो, सुनने का इनकार मुअतज़िला का कथन बताया गया है। हाँ, इस पर एक संदेह होता था कि कुछ अहले सुन्नत भी तल्कीन की मनाही की ओर गए हैं, और जब उसका आधार वही है तो वे भी इसके समर्थक माने जाएंगे। तसहीह में इस वहम को दूर करने के

लिए दलील दी गई कि उनका इनकार सुनने के इनकार पर आधारित नहीं है, बल्कि उनके अनुसार तल्कीन व्यर्थ या असिद्ध है। एक बुद्धिमान व्यक्ति ने इसे इस विशिष्टता के साथ निस्बत का दावा समझ लिया। यह समझ...

अः मैं कहता हूँ: पहले उल्लेख हुआ कि ज़ाहिरर्रिवाया से मनाही सिद्ध नहीं है और इमाम साफ़ार स्वयं इमाम आज़म पर तल्कीन मानते हैं और इनकार करने वाले को मुअतज़ली जानते हैं। इसमें कोई संदेह नहीं कि मुअतज़िला पुराने समय से इस मत में शामिल हैं और उनके अनुसार मुर्दों के बेजान होने के कारण तल्कीन का इनकार अनिवार्य है। प्रारंभ में वे ही लोग अपने भ्रष्ट मत के आधार पर मुनकिर थे। इसलिए इमाम साफ़ार इस हिस्से पर निर्णय देते हैं। समय बीतने के साथ, कुछ बाद के अहले सुन्नत विद्वानों ने पूर्वोक्त मशाइख़ के शब्दों में इनकार और ज़ाहिरर्रिवाया में प्रमाण का अभाव देखकर इनकार किया और उसे लाभ की कमी या प्रमाण की कमी का रूप दिया। इसलिए अब इनकार दो तरफा बंट गया है: एक मुअतज़िला के विशेष 'जमादियत' (मुर्दों का बेजान होना) के कारण और दूसरा कुछ अहले सुन्नत का अन्य कारणों से, जैसा कि इमाम नसफी के कलाम में गुज़रा। अतः इस पर अमल करो, संभव है कि वास्तविकता इससे परे न हो। (इसे अच्छी तरह जान लो, हो सकता है कि मामला इससे आगे न बढ़े - त)

१ तफ़हीम अल-मसाइल मुआनक़ा रोज़-ए ईद, मोहम्मदी प्रेस, लाहौर, पृ. ११३

جلد نہم

فتاوی رضویہ

[خانہ] نوشتہ تخصیص الشیئ باسمہ لایدل علی نفی الحکم عما عداہ ۱۔ لازم نہیں آتی، توضیح میں ہے کسی خاص چیز کا نام لینا یہ نہیں بتاتا کہ اس کے ماسوا سے حکم نفی ہے۔ (ت)

انھوں نے کلام شافعیہ میں دیکھ کر ان کی طرف نسبت کیا اس سے کیا لازم کہ حنفیہ نے نسبت نہ کیا اور بالفرض ان کا لازم سخن یہ ہو بھی تو جب صراحتاً آنکھوں کے سامنے اجلہ حنفیہ کی تصریحات موجود تو کیا بعض علماء کے کلام سے نفی مفہوم ہونا محسوسات کو مٹادے گا، قاعدہ اجماعیہ عقل و نقل میں تو مثبت کو نانی پر مقدم رکھتے ہیں، دو علمائے معتمدین سے ایک فرماتا کہ حنفیہ نے ایسا نہ لکھا، دوسرا فرماتا لکھا، تو لکھتا ہی ثابت ہوتا کہ اس نے نہ دیکھا لہذا انکار کیا اور نہ دیکھنا کوئی حجت نہیں و من علم حجۃ علی من لم یعلم (علم والا حجت ہے اس پر جسے علم نہیں۔ت) نہ کہ ثبوت عیانی کو نفی بیانی سے دیدہ نا دیدہ کردیں ایگر چہ ہم آنکھوں سے دیکھ رہے ہیں کہ اکابر علمائے حنفیہ نے لکھا مگر فاضل برجنڈی جو لکھ چکے ہیں کہ شافعیہ نے کہا لہذا مجبوری ہے اب حس و مشاہدہ کی تکذیب ضروری ہے۔ سچ ہے آدمی وہابی ہو کر جماد لا یسمع ولا یفہم ہو جاتا ہے۔

ثانیاً طرفہ جہالت یہ کہ مطلق انکار کی جانب معتزلہ منسوب ہے نہ اس خصوصیت سے تصحیح المسائل میں کب فرمایا تھا کہ انکار بایں خصوص منسوب بہ معتزلہ ہے۔ اسے ذی ہوش! حاصل کلام تو یہی تھا کہ انکار تلقین مذہب معتزلہ ہے اور امام ابن ہمام اس کا مبنی بیان فرماتے ہیں کہ یہ لوگ منکر سماع تھے لہذا تلقین سے منکر ہوئے تو ظاہر ہوا کہ منکرین سماع معتزلہ ہیں اگر سرے

سے مخصوص انکار سماع جانب معتزلہ نسبت ہوتی تو اس توسط کی کیا حاجت تھی ویسے ہی کہہ دیا جاتا کہ دیکھو انکار سماع قول معتزلہ بتایا گیا، ہاں اس پر ایک شبہ ہوتا تھا کہ بعض اہلسنت نے بھی تو منع تلقین کی طرف گئے اور جب اس کا مبنی وہ ہے تو یہ بھی اس کے قائل ٹھہریں گے، تصحیح میں اس وہم کے دفع کو توجیہ فرمادی کہ ان کا انکار انکار سماع پر مبنی نہیں بلکہ ان کے نزدیک تلقین کا بیکار یا ثابت ہونا ذی ہوش نے اسے نسبت بایں خصوص کا دعویٰ سمجھ لیا یہ فہم

عہ: اقول: سابقاً مذکور ہوا کہ ظاہر الروایۃ سے منع ثابت نہیں اور امام صفار خود امام اعظمؒ پر تلقین مانتے اور منکر کو معتزلی جانتے ہیں اور شک نہیں کہ معتزلہ قدیم سے شامل اہل مذہب ہیں اور انھیں بر بنائے جمادیت موتیٰ انکار تلقین لازم، ابتداءً وہی لوگ اپنے مذہب فاسد کی بنا پر منکر تھے، لہذا امام صفار اس حصہ پر حاکم بعد مرورِ زمان بعض متاخرین اہلسنت نے کلمات مشائخ مذکورین میں انکار اور ظاہر الروایۃ میں عدم ثبوت دیکھ کر انکار کیا اور عدم فائدہ یا عدم ثبوت سے رنگ توجیہ دیا لہذا اب انکار دو طرفہ منقسم ہو گیا بوجہ جمادیت خاص بمعتزلہ اور بعض اہلسنت کا بوجوہِ دیگر جیسا کہ کلام امام نسفی سے گزرا فاعملہ فعسی ان لا یتجاوز الواقع عنہ ۱۲منہ (اسے اچھی طرح جان لے ہو سکتا ہے واقعہ اس سے متجاوز نہ ہو ۱۲منہ-ت)

۱ تفہیم المسائل معانقہ روز عید مطبع محمدی لاہور ص ۱۱۳

Fatawa-e-Razvia Volume 9

Feeble and the claim of understanding. There is no power or strength except with Allah, the All-High, the All-Great.

This, and I say: And by the success granted by Allah, let's leave all this aside. Now the clear and decisive proofs govern that this is definitely the doctrine of the Mu'tazilites. For example, the first argument is from speech... what was meant by hearing in the soul, although absolute perception without organs [is possible]... and what evidence are these masters bringing? That it is dead, senseless, and incapable of understanding and perception. You have heard a thousand times that the Ahl-us-Sunnah are pure and free from these beliefs regarding the soul. These are the unpleasant thoughts of the Mu'tazilites and others who are misguided. You yourself state in this very "Tafheem":

The sect of some Mu'tazilites is that if the dead person is inanimate, there is no life or perception in them. 1	The sect of some Mu'tazilites is that the dead person is inanimate, and there is no life or perception in them. (T)

And in it, he said:

Some Mu'tazilites who were using the noble verse "And you cannot make those in the graves hear" as an argument to deny punishment, meaning in this same commentary, in response to them, it was written that lack of hearing does not necessitate lack of perception. 2	Some Mu'tazilites' argument for denying punishment was from the noble verse "You are not a hearer for those in the graves", meaning in this same commentary, their answer was written that not being able to hear does not necessitate a lack of perception. (T)

Regrettably, the unconsciousness of the author of Tafheem-ul-Masail on page 63 also led to this statement:

Although some say that martyrs also have life like prophets in their bodies, this is not the preferred view of the researchers. The research is that the life of prophets is with the safety of both body and soul, and the life of martyrs is only the persistence of the soul. Rather, the specification of martyrs in this sense is also futile because souls in general,	Some say that like prophets, there is life with the body for martyrs as well. But this is not the preferred view of the researchers. The research is that the life of prophets is with the safety of both body and soul, and the life of martyrs is only with the persistence of the soul. Rather, specifying martyrs in

whether the soul of a martyr, a general believer, or a disbeliever and sinner, cannot be called dead in this sense. Death is an attribute of the body, because consciousness, perception, movements, and disposals [end] due to the soul's connection [terminating].

this sense is futile because souls in general, whether it is the soul of a martyr, general believers, or the soul of a disbeliever and sinner, none can be called dead in this sense; death is an attribute of the body.

1 Tafheem-ul-Masail, Adam Sama-e-Mauta, Mohammadi Press Lahore, p. 81. 2 Tafheem-ul-Masail, Adam Sama-e-Mauta, Mohammadi Press Lahore, p. 83.

फ़तावा-ए-रज़विया जिल्द नहम

कमज़ोर और समझ का दावा। अल्लाह के सिवा न कोई ताक़त है न कूवत, जो आली और अज़ीम है।

यह, और मैं कहता हूँ: और अल्लाह की तौफीक से, सब इन बातों को छोड़ें। अब साफ़ और दो टूक दलीलें हाकिम हैं कि यह यकीनन मोतज़िला का मज़हब है। मिसाल के तौर पर पहली दलील कलाम की है... रूह में समाअत (सुनने) से क्या मुराद ली गई, मुतलक इद्राक (बोध) चाहे आज़ा (अंगों) के बिना हो... और ये हज़रात क्या दलील ला रहे हैं? कि वह मुर्दा है, बे-हिस है, समझ और इद्राक के काबिल नहीं। आप हज़ारों बार सुन चुके हैं कि रूह के बारे में इन अकीदों से अहल-ए-सुन्नत पाक और साफ़ हैं। ये गुमराह मोतज़िला और दूसरों के बुरे खयालात हैं। आप खुद इसी "तफ़हीम" में फरमाते हैं:

कुछ मोतज़िला का मज़हब यह है कि अगर मुर्दा बेजान चीज़ (जमाद) है तो उसमें हयात और इद्राक नहीं है। 1

कुछ मोतज़िला का मज़हब यह है कि मुर्दा बेजान चीज़ है, उसमें हयात और इद्राक नहीं है। (त)

और इसमें फरमाया:

कुछ मोतज़िला जो आयत-ए-करीमा "और आप कब्र वालों को नहीं सुना सकते" से अज़ाब के इनकार पर इस्तदलाल (दलील) करते थे, यानी इसी शरह में उनके जवाब में लिखा कि न सुना पाना इद्राक की अदम-मौजदगी (कमी) को लाज़िम नहीं करता। 2

आयत-ए-करीमा "तुम उन्हें सुनाने वाले नहीं जो कब्रों में हैं" से कुछ मोतज़िला का अज़ाब के इनकार पर दलील देना था, यानी इसी शरह में उनका जवाब लिखा गया कि न सुनाना इद्राक की अदम-मौजदगी को लाज़िम नहीं करता। (त)

अफ़सोस, तफ़हीम-उल-मसाइल के लेखक की बेहोशी ने सफा 63 पर यह बात भी कहलवा दी:

अगरचे कुछ कहते हैं कि शहीदों के लिए भी नबियों की तरह जिस्म के साथ हयात है, लेकिन यह मुहक्किक़ीन (शोधकर्ताओं) का पसन्दीदा कौल नहीं है। तहकीक यह है कि नबियों की हयात जिस्म और रूह दोनों की सलामती के साथ है, और शहीदों की

कुछ कहते हैं कि नबियों की तरह शहीद के लिए भी जिस्म के साथ ज़िंदगी है। मगर यह अहल-ए-तहकीक का मुख्तार (पसन्दीदा) नहीं है। तहकीक यह है कि नबियों की ज़िंदगी जिस्म और रूह दोनों की सलामती

हयात सिर्फ रूह के बाक़ी रहने के साथ है। बल्कि इस मानी में शहीदों की तखसीस (विशिष्टता) भी बेकार है क्योंकि रूहों को मुतलक तौर पर, चाहे शहीद की रूह हो या आम मोमिनों की रूह या काफ़िर और फासिक की रूह, इस मानी में मुर्दा नहीं कहा जा सकता। मौत बदन की सिफ़त (गुण) है, क्योंकि शोर, इद्राक, हरकात और तसर्रुफ़ात रूह के तअल्लुक की वजह से होते हैं।

के साथ है और शहीदों की ज़िंदगी सिर्फ़ रूह के बाक़ी रहने के साथ है। बल्कि इस मानी में शहीदों की तखसीस बे-मानी है क्योंकि रूहों को मुतलक तौर पर चाहे शहीद की रूह हो या आम मोमिनों की रूह या काफ़िर व फासिक की रूह, किसी को इस मानी में मुर्दा नहीं कह सकते, मौत बदन की सिफ़त है।

1 तफ़हीम-उल-मसाइल, अदम-ए-समाअ-ए-मौता, मुहम्मदी प्रेस लाहौर, पृ. 81। 2 तफ़हीम-उल-मसाइल, अदम-ए-समाअ-ए-मौता, मुहम्मदी प्रेस लाहौर, पृ. 83।

فتاوٰی رضویہ جلد نہم

سقیم اور ادعائے تفہیم ولا حول ولا قوۃ إلا باللہ العلي العظیم -

ھذا وانا اقول: وباللہ التوفیق سب این و آن سے در گزرے تو اب دلائل ساطعہ قاطعہ حاکم ہیں کہ یہ قطعاً مذہبِ معتزلہ ہے مثلاً حجت اولی کلام کا ہے میں مفروض ہو اور روح میں سماع سے کیا مراد لیا، ادراک مطلق اگرچہ بے ذریعہ آلات اور یہ مشائخ دلیل کیا لا رہے ہیں کہ وہ مردہ ہے، بے حس ہے فہم و ادراک کے قابل نہیں، یہ کہ ہزار بار سن چکے ہو کہ روح کی نسبت ان اعتقادات سے اہل سنت پاک و منزہ ہیں یہ معتزلہ و غیرہم ضالین ہی کے خیالات بدمزہ ہیں خود آپ ہی اسی تفہیم میں فرماتے ہیں :

مذہب بعض معتزلہ آن است کہ اگر میت جماد بعض معتزلہ کا مذہب یہ ہے کہ میت جماد ہے اس
است دران حیات و ادراک نیست 1۔ میں حیات اور ادراک نہیں - (ت)

اور اس میں فرمایا:

بعض معتزلہ کہ آیہ کریمہ "وَمَا أَنتَ بِمُسْمِعٍ مَّن آیت کریمہ "تم انھیں سنانے والے نہیں جو قبروں
فِي الْقُبُورِ" در انکارِ تعذیب استدلال می کردند میں ہیں" سے بعض معتزلہ کا انکار تعذیب پر
یعنی در ہمیں شرح بہ جواب ایشاں نوشتہ کہ استدلال تھا، یعنی اسی شرح میں ان کا جواب لکھا
عدمِ اسماع مستلزم عدمِ اوراک نیست 2۔ کہ نہ سنانا عدم اوراک کو مستلزم نہیں۔ (ت)

افسوس صاحب تفہیم المسائل کی بیہوشی ص ۶۳ پر یہ انکھی بھی بلوا گئی:

ہر چند بعضے گویند کہ شہدا را ہم حیات مثل بعض کہتے ہیں کہ انبیاء کی طرح شہید کے لیے
انبیاء بجد است مگر ایں قول مختار اہل تحقیق بھی جسم کے ساتھ زندگی ہے۔ مگر یہ قول اہل

نیست انچه تحقیق است این ست کہ حیات انبیاء بسلامت جسد و روح ہر دوست و حیات شہداء صرف بقائے روح است بلکہ تخصیص شہدا نیز بایں معنی لغو ست زیرا کہ ارواح را مطلقاً خواہ روح شہید باشد یا روح عامہ مومنین یا روح کافر و فاسق بایں معنی مردہ نتواں صفت بدن است کہ شعور اوراک وحرکات و تصرفات بہ سبب تعلقِ روح

تحقیق کا مختار نہیں تحقیق یہ ہے کہ انبیاء کی زندگی جسم و روح دونوں کی سلامتی کے ساتھ ہے اور شہدا کی زندگی صرف بقائے روح کے ساتھ ہے بلکہ اس معنی میں شہداء کی تخصیص لغو ہے اس لیے کہ ارواح کو مطلقاً خواہ شہید کی روح ہو یا عام مومنین کی روح یا کافر و فاسق کی روح کسی کو اس معنی میں مردہ نہیں کہہ سکتے، موت بدن کی صفت ہے

1 تفہیم المسائل عدم سماع موتیٰ مطبع محمدی لاہور ص ۸۱ 2 تفہیم المسائل عدم سماع موتیٰ مطبع محمدی لاہور ص ۸۳

Fatawa Rizvia Volume 9

(Persian/Arabic Text)

...manifested through it, whereas now they are not. Thus it is in Tafsir al-Azizi. Some say the truth is that martyrs also have life like the Prophets, praise be to Allah. As written in Tafsir Rawdh al-Jinan under the noble verse "And do not say of those who are killed in the way of Allah, 'They are dead.' Rather, they are alive," scholars have differed regarding the interpretation of the verse and the state of martyrs. Abdullah ibn Abbas and Hasan Basri said they are alive with their souls and bodies, receiving sustenance morning and evening. They are joyful with what Allah gives them, as stated in another verse from the words of the Almighty: "...receiving provision, rejoicing in what Allah has given them of His bounty." Others said their souls are alive and sustenance is presented to them morning and evening, just as fire is presented to the souls of Pharaoh's people, in the words of the Almighty: "The Fire; they are exposed to it morning and evening." Most research scholars hold the first view. End. (T)

(Urdu Translation)

...manifested through it, whereas now they are not. Thus it is in Tafsir al-Azizi. Some say the truth is that martyrs also have life like the Prophets, praise be to Allah. As written in Tafsir Rawdh al-Jinan under the noble verse "And do not say of those who are killed in the way of Allah, 'They are dead.' Rather, they are alive," scholars have differed regarding the interpretation of the verse and the state of martyrs. Abdullah ibn Abbas and Hasan Basri said they are alive with their souls and bodies, receiving sustenance morning and evening. They are joyful with what Allah gives them, as stated in another verse from the words of the Almighty: "...receiving provision, rejoicing in what Allah has given them of His bounty." Others said their souls are alive and sustenance is presented to them morning and evening, just as fire is presented to the souls of Pharaoh's people, in the words of the Almighty: "The Fire; they are exposed to it morning and evening." Most research scholars hold the first view. End. (T)

Why, O Mulla! Now tell us about the reports of relationship. When according to the Ahl al-Sunnah, the soul of every transgressor and disbeliever is alive, and death is only for the body, and it is the body's perceptions that cease, then what room for argument remains regarding the hearing of the dead (sama' al-mawta)? How clearly the previous answers' discourse has been proven! How the entire painstaking effort of 'Tafhim al-Masa'il' has turned into dust. Now, how clear and manifest it is that these words of the masters, which contain explicit mentions of death, lack of

understanding, and insensitivity, being attributed to the soul is not the speech of the masters of the Ahl al-Sunnah. Praise be to Allah, the Great, the Most High. And a strange witty point is that, in a moment of cheer, he also quoted a passage from Tafsir Rawdh al-Jinan, which stripped away whatever remained of the skin from the drum. In it, there is an explicit statement that our master Abdullah ibn Abbas...

---

1. Tafhim al-Masa'il, seeking help from the occupant of the grave, Muhammadi Press, Lahore, pp. 58 and 59.

फतावा रज़विया, खंड 9

(फारसी/अरबी पाठ)

...चेतना, बोध, गति और आत्मा के कार्यों के संबंध के कारण उससे प्रकट होते थे और अब नहीं होते। ऐसा ही तफ़सीर अज़ीज़ी में है। कुछ कहते हैं कि वास्तविकता यही है कि शहीदों के लिए भी नबियों की तरह शरीर के साथ जीवन है। जैसा कि आयत "अल्लाह की राह में मारे जाने वालों को मुर्दा न कहो बल्कि वे जीवित हैं" के तहत तफ़सीर रौज़ अल-जिनान में लिखा है कि इस आयत की व्याख्या और शहीदों की स्थिति में विद्वानों का मतभेद है। अब्दुल्ला इब्न अब्बास और हसन बसरी कहते हैं कि शहीद शरीर और आत्मा के साथ जीवित हैं, उन्हें सुबह-शाम जीविका मिलती है और वे उस पर प्रसन्न हैं जो ईश्वर उन्हें देता है। जैसा कि दूसरी आयत में ईश्वर का आदेश है: "उन्हें जीविका दी जाती है, वे उस पर प्रसन्न हैं जो अल्लाह ने अपनी कृपा से उन्हें प्रदान किया है।" कुछ अन्य कहते हैं कि उनकी आत्माएं जीवित होती हैं और उन्हीं पर सुबह-शाम जीविका प्रस्तुत की जाती है, जैसे फिरौन के लोगों की आत्माओं पर आग प्रस्तुत की जाती है; ईश्वर का कथन है: "वह सुबह और शाम आग पर प्रस्तुत किए जाते हैं।" और अधिकांश शोधकर्ता विद्वान पहले मत पर हैं। समाप्त। (त)

(उर्दू अनुवाद)

...चेतना, बोध, गति और आत्मा के कार्यों के संबंध के कारण उससे प्रकट होते थे और अब नहीं होते। ऐसा ही तफ़सीर अज़ीज़ी में है। कुछ कहते हैं कि वास्तविकता यही है कि शहीदों के लिए भी नबियों की तरह शरीर के साथ जीवन है। जैसा कि आयत "अल्लाह की राह में मारे जाने वालों को मुर्दा न कहो बल्कि वे जीवित हैं" के तहत तफ़सीर रौज़ अल-जिनान में लिखा है कि इस आयत की व्याख्या और शहीदों की स्थिति में विद्वानों का मतभेद है। अब्दुल्ला इब्न अब्बास और हसन बसरी कहते हैं कि शहीद शरीर और आत्मा के साथ जीवित हैं, उन्हें सुबह-शाम जीविका मिलती है और वे उस पर प्रसन्न हैं जो ईश्वर उन्हें देता है। जैसा कि दूसरी आयत में ईश्वर का आदेश है: "उन्हें जीविका दी जाती है, वे उस पर प्रसन्न हैं जो अल्लाह ने अपनी कृपा से उन्हें प्रदान किया है।" कुछ अन्य कहते हैं कि उनकी आत्माएं जीवित होती हैं और उन्हीं पर सुबह-शाम जीविका प्रस्तुत की जाती है, जैसे फिरौन के लोगों की आत्माओं पर आग प्रस्तुत की जाती है; ईश्वर का कथन है: "वह सुबह और शाम आग पर प्रस्तुत किए जाते हैं।" और अधिकांश शोधकर्ता विद्वान पहले मत पर हैं। समाप्त। (त)

क्यों मुल्ला जी! अब संबंध के समाचार बताइए। जब अहले सुन्नत के अनुसार हर पापी और काफिर की आत्मा जीवित है, मृत्यु केवल शरीर के लिए है और उसी के बोध समाप्त होते हैं, तो अब मृतकों

के सुनने (समाअ अल-मौता) के बारे में बहस की क्या गुंजाइश रही? पिछले उत्तरों का तर्क कितनी स्पष्टता से सिद्ध हो गया। 'तफ़हीम अल-मसायल' का सारा परिश्रम कैसे धूल में मिल गया। अब यह स्पष्ट और ज़ाहिर है कि बुजुर्गों के ये शब्द, जिनमें मृत्यु, नासमझी और संवेदनहीनता का स्पष्ट उल्लेख है, उन्हें आत्मा पर आधारित मानना अहले सुन्नत के बुजुर्गों का कथन नहीं है। महान और उच्च अल्लाह की प्रशंसा हो। और एक अजीब चुटकुला यह है कि प्रसन्नता में आकर उन्होंने तफ़सीर रौज़ अल-जिनान का एक अंश भी उद्धृत कर दिया, जिसने ढोल की बची-खुची खाल भी उतार दी। इसमें स्पष्ट उल्लेख है कि हमारे स्वामी अब्दुल्ला इब्न अब्बास...

---

1. तफ़हीम अल-मसायल, क़ब्र वाले से सहायता मांगना, मुहम्मदी प्रेस, लाहौर, पृष्ठ 58 और 59।

पृष्ठ 948 का 923

(فارسی/عربی عبارت)

بواسطہ ازوے ظاہر می شوند و حالانکہ نمی شوند کذا فی تفسیر العزیزی و بعضی گویند کہ تحقیق ہمیں است کہ شہداء راہم حیات مثل انبیاء بحمد است چنانچہ در تفسیر روض الجنان تحت آیہ کریمہ ولا تقولوا لمن یقتل في سبیل اللہ اموات بل احیاء می نویسد علماء در تفسیر آیت واحوال شہداء خلاف کردند، عبد اللہ ابن عباس و حسن بصری گفتند ایشاں زندہ اند بارواحہم واجساد ہم بامداد و شبانگاہ روزی بایشان می رسد و ایشان خرم اند با آنچہ خدا بایشان می دھد چنانچہ در دیگر آیت فرمود من قولہ تعالی یرزقون فرحین بما آتاھم اللہ من فضلہ و بعضے دیگر گفتند ارواح ایشان زندہ باشند و روزی برایشان عرض می کنند بامداد و شبانگاہ چنانکہ بر ارواح آل فرعون آتش عرضہ می کنند في قولہ تعالی النار

(اردو ترجمہ)

کہ شعور و ادراک اور حرکات و تصرفات روح کے تعلق کی وجہ سے اس سے ظاہر ہوتے تھے اور اب نہیں ہوتے ایسا ہی تفسیر عزیزی میں ہے: اور بعض کہتے ہیں کہ تحقیق یہی ہے کہ شہداء کے لیے بھی انبیاء کی طرح جسم کے ساتھ زندگی ہے جیسا کہ آیہ کریمہ "اللہ کی راہ میں مارے جانے والوں کو مردہ نہ کہو بلکہ وہ زندہ ہیں" کے تحت تفسیر روض الجنان میں لکھتے ہیں کہ اس آیت کی تفسیر اور شہداء کے احوال میں علماء کا اختلاف ہے۔ عبد اللہ بن عباس اور حسن بصری فرماتے ہیں شہداء جسم و روح کے ساتھ زندہ ہیں صبح وشام انھیں رزق ملتا ہے اور یہ اس پر خوش ہیں جو خدا انھیں دیتا ہے جیسا کہ دوسری آیت میں باری تعالیٰ کا ارشاد ہے انھیں رزق دیا جاتا ہے وہ اس پر خوش ہیں جو اللہ نے اپنا فضل انھیں عطا کیا، بعض دیگر کہتے ہیں ان کی روحیں زندہ ہوتی ہیں اور ان ہی پر صبح و شام رزق پیش کرتے ہیں۔ جیسے فرعونیوں کی روحوں پر آگ پیش کرتے ہیں ارشاد

(فارسی/عربی عبارت) **(اردو ترجمہ)**

یعرضون علیھا غدوا وعشیا وعلمائے باری تعالیٰ ہے: وہ صبح وشام آگ پر پیش ہوتے ہیں،

محققان بیشتر بر قول اول اند انتھی اور اکثر علمائے محققین پہلے قول پر ہیں۔ ختم (ت)

کیوں ملا جی! اب نسبت کی خبریں کہیے جب اہل سنت کے نزدیک ہر فاسق و کافر کی روح زندہ ہے موت صرف بدن کے لیے ہے اسی کے ادراکات زائل ہوتے ہیں تو اب سماعِ موتی میں کیا مجالِ مقال رہی جواباتِ سابقہ کی تقریر کیسی روشن طور پر ثابت ہو گئی، تفہیم المسائل کی ساری عرق ریزی کیسی خاک میں ملی، اب یہ کلامِ مشائخ جس میں موت وبے فہمی وبے حسی کی تصریحیں ہیں روح پر محمول ہونا مشائخِ اہلسنت کا کلام نہ ہونا کیسا واضح و منجلی والحمد للہ العظیم العلی، اور عجیب لطیفہ یہ کہ ساتھ ہی خوش وقتی میں آکر تفسیر روض الجنان کی عبارت بھی نقل فرما گئے، جس نے رہی سہی ڈھول سے کھال بھی کھوئی، اس میں صرف تصریح ہے کہ سیدنا عبد اللہ ابن عباس

---

1. تفہیم المسائل استمداد از صاحب قبر مطبع محمدی لاہور ص ۵۸ و ۵۹

And Hazrat Imam Hasan Basri and the majority of research scholars consider the bodies of martyrs to be alive, and this is reinforced by the apparent meaning of the noble verse. The response cited from some is clearly just interpretation upon interpretation. Where in the Divine command is "yurzaqun" (they are provided sustenance) and where is the meaning that sustenance is shown to them but not given?

"Shurbat binyamayad wa chashidan naguzarand" (Persian quote) (This means they were shown the syrup but not allowed to taste it.)

Now, for God's sake, break one leg of your stubborn denial. Accept hearing for the martyrs and consider seeking help from them as permissible, because here both body and soul are alive, leaving no room for any false excuse, just as you yourself have written on page 88 of your 'Tafheem':

In the hearing of Prophets (peace be upon them) there is no dispute, as they possess life. (T)	**Regarding the hearing of Prophets (peace be upon them), there is no disagreement; these personages possess life. (T)**

Also on page 89:

(The Holy Prophet, peace and blessings of Allah be upon him) replied that when Prophets possess worldly life and their bodies also remain, there is no reason to consider hearing and presentation as far-fetched. (T)	**The Holy Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) replied that since Prophets possess worldly life and their bodies also remain, there is no occasion to regard hearing and presentation as improbable. (T)**

Look at the absurdity! You quoted the text and then cited a claim that "some say this is the research" (some say this is the actual research. T). Well, even if it is just "some", the consensus (ijma) which was arrogantly stated on page 93 is no longer intact:

In short, it is proven from the Book, Sunnah, and consensus of the Ummah that the dead do not possess hearing. (T)	**In short, it is proven from the Book and Sunnah and the consensus of the Ummah that the dead do not have the power of hearing. (T)**

But why would you be ashamed? You are long-standing experts at saying anything in any way. On page 87, you wrote the same:

And that which is from the texts of Mirqat concerning the hearing of all that the dead receive salutations...

On certain days, the deeds of relatives are presented to the dead.

1. Tafheem al-Masail on the non-hearing of the dead by the author of the grave, Matba' Muhammadi Lahore, p. 83
2. Tafheem al-Masail on the non-hearing of the dead by the author of the grave, Matba' Muhammadi Lahore, p. 85
3. Tafheem al-Masail on the non-hearing of the dead by the author of the grave, Matba' Muhammadi Lahore, p. 88

फ़तावा रज़विया - जिल्द नौ

और हज़रत इमाम हसन बसरी और अधिकांश शोधकर्ता विद्वान शहीदों के शरीरों को भी जीवित मानते हैं, और इसी बात की पुष्टि पवित्र आयत के ज़ाहिरी अर्थ से होती है। कुछ लोगों की ओर से जो जवाब उद्धृत किया गया है, वह साफ़ तौर पर महज़ व्याख्या दर व्याख्या है। अल्लाह के आदेश 'युरज़क़ून' (उन्हें रिज़्क़ दिया जाता है) में कहाँ यह अर्थ है कि रिज़्क़ उन्हें दिया नहीं जाता बल्कि दिखाया जाता है?

'शरबत बिनमायद व चशीदन नगुज़ारंद' (फ़ारसी पंक्ति) (यह ऐसा ही है कि शरबत पी लिया है और चखा नहीं)

अब खुदा के लिए अपने हठधर्मी इनकार की एक टाँग तोड़िए, शहीदों के लिए कम से कम 'समाअत' (सुनना) तो मानिए और उनसे मदद माँगने (इस्तेमदाद) को जायज़ जानिए क्योंकि यहाँ तो शरीर और रूह सब कुछ जीवित है, किसी भी झूठे बहाने की गुंजाइश नहीं है, जैसा कि आपने खुद अपनी उस 'तफ़हीम' के पेज 88 पर लिखा है:

नबियों (अलैहिमुस्सलाम) के सुनने में कोई विवाद नहीं है क्योंकि वे जीवन प्राप्त किए हुए हैं। (त)	**नबियों (अलैहिमुस्सलाम) के सुनने में कोई कलाम नहीं, उन हज़रात को हयात हासिल है। (त)**

साथ ही पेज 89 पर:

(हज़रत मुहम्मद सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) ने उत्तर दिया कि जब नबियों को सांसारिक जीवन प्राप्त है और उनके शरीर भी शेष हैं, तो उनके सुनने और पेश किए जाने को असंभव समझने का कोई अवसर नहीं है। (त)	**हुज़ूर (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) ने जवाब दिया कि जब नबियों को हयात-ए-दुनियावी हासिल है और उनका जिस्म भी बाक़ी है तो समाअत और पेशी को बईद (असंभव) समझने का मौक़ा नहीं। (त)**

हाथ में चिराग लेकर देखिए, इबारत नक़्ल की और दावा वह नक़्ल किया कि 'कुछ कहते हैं कि शोध यही है' (कुछ कहते हैं तहक़ीक़ यही है। त)। खैर वह 'कुछ' ही सही, अब उस इज्मा (आम सहमति) की खैर नहीं रही जो बड़ी बेशर्मी के साथ पेज 93 पर फ़रमाया था:

संक्षेप में, किताब और सुन्नत और उम्मत के इज्मा से साबित है कि मृतकों को सुनने की शक्ति प्राप्त नहीं है। (त)	**बिलजुमला किताब व सुन्नत और इज्मा-ए-उम्मत से साबित है कि मुर्दों को समाअत हासिल नहीं है। (त)**

मगर आप क्यों शरमाएंगे, आप तो हर रंग की बात कह देने के पुराने माहिर हैं, पेज 87 पर यही लिख गए हैं:

और वह जो मिरक़ात की इबारतों से है कि तमाम मुर्दों को सलाम की समाअत...	**मुर्दों पर बाज़ अयाम (दिनों) में अहल-ए-क़राबत (रिश्तेदारों) के आमाल पेश...**

1. तफ़हीमुल मसाइल अदम-ए-समाअ-ए-मौता, साहिब-ए-क़ब्र द्वारा, मतबा मुहम्मदी लाहौर, पृ. 83
2. तफ़हीमुल मसाइल अदम-ए-समाअ-ए-मौता, साहिब-ए-क़ब्र द्वारा, मतबा मुहम्मदी लाहौर, पृ. 85
3. तफ़हीमुल मसाइल अदम-ए-समाअ-ए-मौता, साहिब-ए-क़ब्र द्वारा, मतबा मुहम्मदी लाहौर, पृ. 88

पेज 924 का 948

و حضرت امام حسن بصری و اکثر علمائے محققین شہداء کے اجسام بھی زندہ مانتے ہیں، اور اسی کو ظاہر آیہ کریمہ سے مؤکد کیا اور بعض کی طرف سے اس کا جو جواب نقل کیا پر ظاہر کہ نری تاویل ہی تاویل ہے، کہاں ارشاد الٰہی میں یرزقون روزی دئے جاتے ہیں اور کہاں یہ معنی کہ روزی انھیں دیتے نہیں دکھا دیتے ہیں۔

شربت بنماید و چشیدن نگذارند (یہ یوں ہی ہے کہ شربت پی لیا ہے اور چکھا نہیں)

اب خدا را اپنے انکار ی دھرم کی ایک ٹانگ توڑئے، شہداء ہی کے لیے سماعت مانیئے انھیں سے استمداد جائز جانئے کہ یہاں تو جسم روح سب کچھ زندہ ہیں، کسی جھوٹے حیلے کی بھی گنجائش نہیں جس طرح کہ تم خود اس تفہیم کے صفحہ ۸۸ پر لکھ چکے ہو :

در سماع انبیاء علیہم السلام کلامے نیست کہ ایشاں راحیات حاصل است ۱۔

انبیاء علیہم السلام کے سننے میں کوئی کلام نہیں ان حضرات کو حیات حاصل ہے۔ (ت)

نیز ص ۸۹ پر:

(آنحضرت صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم) جواب دادند کہ چوں انبیاء راحیات دنیاوی حاصل وجسد ایشاں نیز باقی است لہٰذا محل استبعاد سماع و عرض نیست ۲۔

آنحضرت صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم نے جواب دیا کہ جب انبیاء کو حیات دنیاوی حاصل ہے اور ان کا جسم بھی باقی ہے تو سماعت اور پیشی کو بعید سمجھنے کا موقع نہیں۔ (ت)

طرفہ بکف چراغ دیکھئے عبارت نقل کی اور دعوی وہ نقل کیا کہ بعض گویند تحقیق ہمیں است (بعض کہتے ہیں تحقیق یہی ہے۔ ت) خیر وہ بعض ہی سہی اب اس اجماع کی خیر نہ رہی جو بحال وقاحت ص ۹۳ پر فرمایا:

بالجملہ از کتاب وسنت و اجماع امت ثابت کہ موتی را سماع حاصل نیست ۳۔

بالجملہ کتاب وسنت اور اجماع امت سے ثابت ہے کہ مردوں کو سماعت حاصل نہیں ہے۔ (ت)

مگر تم کیا شر مادو ہر رنگ کی کہہ دینے کے قدیم دھنی ہو ص ۸۷ پر یہی جو لکھ گئے:

و آنکہ از عبارات مرقات سماع سائر کہ اموات سلام

مردوں پر بعض ایام میں اہل قرابت کے اعمال پیش

1 تفہیم المسائل عدم سماع موتی از صاحب قبر مطبع محمدی لاہور ص ۸۳ 2 تفہیم المسائل عدم سماع موتی از صاحب قبر مطبع محمدی لاہور ص ۸۵ 3 تفہیم المسائل عدم سماع موتی از صاحب قبر مطبع محمدی لاہور ص ۸۸

[Table content] (Left column in Persian/Arabic script): And the speech rejected regarding the presentation of deeds to relatives on certain days, the answer is that by 'Salaam and Kalaam' is meant the greeting and speech of the visitors, not others. (Right column in Urdu): Under the phrase 'to be', they narrate the hearing of greetings and speech for all the deceased from the text of 'Mirqat'. The answer to this is that by 'Salaam and Kalaam', the greeting and speech of those visiting the grave are meant, not of others. (Center): (T)

It's true, what can be said of those bewildered? Those shy glances, those confused talks. Leaving home, he emerged in the house of the hopeless ones.

Second Argument: Then when the masters (Mashaikh) accepted the hearing at the time of questioning, they gave the reason for it that now the soul has returned to the body; when the speech is directed towards the soul, the clear result of this answer is that as long as the soul was separated from the body, it was senseless and without perception, and due to coming into the body, it became perceptive again at that time. This is explicitly accepting the body as a condition for perception, whereas we have heard a hundred times that this is the uncivilized doctrine of the Mu'tazilites. Now, either consider the attribution towards most of our masters as wrong, thus spoiling your own chain of transmission, striking an axe on your own feet; or certainly and definitely, they mean the Mu'tazilites. After establishing decisive proofs, what room is there for excuses, evasions, and procrastination? Nor is there now an occasion for this question as to why the commentators brought it forth without expressing its contrary nature to reason. I say: They narrated it just as Imam Abdur Rashid bin Abi Hanifa Walwalji, Imam Tahir bin Ahmad, and other grand scholars narrated the saying of Bashir Marisi the Mu'tazilite as if it were the original doctrine; just as the investigating scholar Zain-ul-Abidin bin Ibrahim and the discerning researcher Ala-ud-Din Muhammad Dimashqi narrated the saying of Abu Ali Juba'i the Mu'tazilite as if it were the doctrine of the masters, the explanation of which passed in 'Fa'ida Jamila', Chapter Thirteen. Imam Ibn al-Humam himself in 'Fath al-Qadir', chapter on 'Marriage of Slaves', quoted an issue from 'Al-Muhit', then said: "This is how the commentators followed one another." Commentators one after another kept writing like this. Then he said: Here the requirement of reasoning is against it. Then after explaining it, he said: "So this is the [correct] view, and often the forgetful follow the forgetful." The reasoned talk is this, and it often happens that those who forget

follow those who forget. Allama Bahr, in 'Al-Bahr al-Ra'iq', at the end of the Book of Sales, chapter on Miscellaneous Issues, objected to a matter that the authors in it...

1. Tafhim-ul-Masa'il, Istimdad az Sahib-e-Qabr, Muhammadi Press Lahore, p. 72.
2. Fath al-Qadir, Chapter on Marriage of Slaves, Maktaba Nooria Razvia Sukkur, 3/207.
3. Fath al-Qadir, Chapter on Marriage of Slaves, Maktaba Nooria Razvia Sukkur, 3/207.

फतावा रिज़विया | खंड 9

[तालिका सामग्री] (बायाँ स्तंभ फारसी/अरबी लिपि में): और कुछ दिनों में रिश्तेदारों को कर्मों की प्रस्तुति के संबंध में अस्वीकृत भाषण, उत्तर यह है कि 'सलाम और कलाम' से मुराद आगंतुकों का सलाम और कलाम है, दूसरों का नहीं। (दायाँ स्तंभ उर्दू में): 'होने' के तहत 'मिरक़ात' की इबारत से तमाम मुर्दों के लिए सलाम और कलाम सुनना नक़ल करते हैं, इसका जवाब यह है कि सलाम और कलाम से मुराद ज़ियारत करने वालों का सलाम और कलाम है, दूसरों का नहीं। (केंद्र): (त)

सच है, घबराए हुओं का क्या कहना वो शरमाई हुई नजरें वो घबराई हुई बातें निकल कर घर से वो घर नातरा उम्मीदवारों में

दूसरा तर्क फिर जब मशाइख ने सवाल के समय सुनना स्वीकार किया तो इसकी वजह यह बताई कि अब रूह जिस्म में दोबारा आई; जब कलाम रूह की तरफ आए तो इस जवाब का साफ़ हासिल यह कि रूह जब तक बदन से जुदा थी बे-हिस और बे-इदराक थी, जिस्म में आने के बाइस उस वक़्त फिर मुदरिक हो गई। यह सराहतन बदन को शर्त-ए-इदराक मानना है, जबकि सौ बार सुन चुके कि यह मज़हब नामुहज़्ज़ब मोअतज़िला है। अब या तो अक्सर मशाइखना की तरफ निस्बत गलत मानिए तो अपनी ही सनद बिगाड़िए, अपने ही पैरों पर कुल्हाड़ी मारिए; वरना यकीनन कतअन उनसे वही मोअतज़िला मुराद हैं। हुज्जत-ए-क़ातेआ के कायम होने के बाद हीलों-हवालों और टाल-मटोल की क्या गुंजाइश है? न अब इस सवाल का मौका कि फिर यह शराह (व्याख्याकार) इसे क्यों बे-इज़हार-ए-खिलाफ़-ए-अक़्ल कर लाए। मैं कहता हूँ: उन्होंने वैसे ही नक़ल किया जिस तरह इमाम अब्दुर रशीद बिन अबी हनीफा वलवालजी और इमाम ताहिर बिन अहमद वगैरह हम-अजिल्ला-ए-किराम ने बशीर मरीसी मोअतज़ली का कौल यूँ ही नक़ल किया गोया यही असल मज़हब है; जिस तरह अल्लामा मुहक़्क़िक़ ज़ैनुल आबिदीन बिन इब्राहिम और फ़हामा मुदक़्क़िक़ अलाउद्दीन मुहम्मद दमिश्की ने अबू अली जुब्बाई मोअतज़ली का कौल यूँ नक़ल किया गोया यही मज़हब-ए-मशाइख है जिसका बयान फायदा-ए-जमीला के तेरहवें अध्याय में गुज़रा। खुद उन्हें इमाम इब्न-ए-हुमाम ने 'फतहुल क़दीर' निकाह-ए-रक़ीक़ के अध्याय में एक मसला 'मुहीत' से नक़ल किया, फिर फरमाया: "इसी तरह व्याख्याकार एक के बाद एक चले आए।" शारीहीन (व्याख्याकार) एक के बाद एक यूँ ही लिखते चले आए। फिर फरमाया: यहाँ तकाज़ा-ए-नज़र इसके खिलाफ है। फिर इसे बयान करके फरमाया: "तो यही [सही] दृष्टिकोण है और अक्सर भूलने वाले भूलने वालों की पैरवी कर लेते हैं।" सुखन-ए-मुअज्जा (तर्कपूर्ण बात) यही है और अक्सर होता है कि भूलने वाले भूलने वालों की पैरवी कर

लेते हैं। अल्लामा बहर ने 'अल-बहर अर-राइक' में किताबुल बुयू के अंत में विविध मसलों के अध्याय में एक मसले पर एतराज़ किया कि इसमें मुसन्निफ़ीन (लेखकों) ने...

1. तफ़हीमुल मसाइल, इस्तिमदाद अज़ साहिब-ए-क़ब्र, मुहम्मदी प्रेस लाहौर, पृ. 72।
2. फतहुल क़दीर, निकाह-ए-रक़ीक़ का अध्याय, मकतबा नूरिया रिज़विया सुक्कुर, 3/207।
3. फतहुल क़दीर, निकाह-ए-रक़ीक़ का अध्याय, मकतबा नूरिया रिज़विया सुक्कुर, 3/207।

पृष्ठ 925/948

[جدول کا مواد] (دائیں کالم): ہونے کے تحت مرقات کی عبارت سے تمام مردوں کے لیے سلام ونقل سننا نقل کرتے ہیں اس کا جواب یہ ہے کہ سلام و کلام سے مراد زیارت کرنے والوں کا سلام وکلام ہے دوسروں کا نہیں۔ (بائیں کالم): وکلام راد در عرض اعمال اقارب برآنها در بعض ایام آرند جوابش آنکہ مراد از سلام وکلام سلام کلام زائران است نہ دیگراں۔ (درمیان): (ت)

سچ ہے بوکھلائے ہوؤں کا کیا کہنا وہ شرمائی ہوئی نظریں وہ گھبرائی ہوئی باتیں نکل کر گھر سے وہ گھر ناترا امیدواروں میں

حجت ثانیہ: پھر مشائخ نے جب وقت سوال سماع مانا تو اس کی وجہ یہ بتائی کہ اب روح جسم میں دوبارہ آئی جب کلام روح کی طرف آئے تو اس جواب کا صاف یہ حاصل کہ روح جب تک بدن سے جدا تھی بے حس وبے ادراک تھی جسم میں آنے کے باعث اس وقت پھر مدرک ہوگئی۔ یہ صراحۃً بدن کو شرط ادراک ماننا ہے کہ سو بار سن چکے کہ یہ مذہب نامہذب معتزلہ ہے اب یہ یا تو اکثر مشائخنا کی طرف نسبت غلط مانیے تو اپنی ہی سند بگاڑئے۔ اپنے ہی پاؤں پر تیشہ ماریئے، ورنہ یقیناً قطعاً ان سے وہی معتزلہ مراد ہیں بعد قیام حجج قاطعہ کے حیلوں حوالوں ٹالے بالوں کی کیا گنجائش ہے نہ اب اس سوال کا موقع کہ پھر یہ شراح اسے کیوں بے اظہار خلاف عقل کر لائے، اقول: ویسے ہی نقل کر لائے جس طرح امام عبدالرشید بن ابی حنیفہ ولوالجی و امام طاہر بن احمد و غیرہ ہما اجلہ کرام نے بشیر مریسی معتزلی کا قول یوں ہی نقل کیا گویا یہی اصل مذہب ہے جس طرح علامہ محقق زین العابدین بن ابراہیم و فہامہ مدقق علاء الدین محمد دمشقی نے ابو علی جبائی معتزلی کا قول یوں نقل کیا گویا یہی مذہب مشائخ ہے جس کا بیان فائدہ جمیلہ فصل سیزدہم میں گزرا، خود انہیں امام ابن ہمام نے فتح القدیر باب نکاح الرقیق میں ایک مسئلہ محیط سے نقل

کیا، پھر فرمایا: ھکذا تواردھا الشارحون شارحین یکے بعد دیگرے یو نہی لکھتے چلے آئے، پھر فرمایا: یہاں مقتضائے نظر اس کے خلاف ہے۔ پھر اسے بیان کرکے فرمایا: فھذا وھو الوجه وکثیرا ما یقلد الساھون الساھین سخن موجہ یہی ہے اور اکثر ہوتا ہے کہ بھولنے والے بھولنے والوں کی پیروی کر لیتے ہیں، علامہ بحر نے بحر الرائق آخر کتاب البیوع باب المتفرقات میں ایک مسئلہ پر اعتراض کیا کہ اس میں مصنفین

1 تفہیم المسائل استمداد از صاحب قبر مطبع محمدی لاہور ص ۷۲ 2 فتح القدیر باب نکاح الرقیق مکتبہ نوریہ رضویہ سکھر ۲۰۷/۳ 3 فتح القدیر باب نکاح الرقیق مکتبہ نوریہ رضویہ سکھر ۲۰۷/۳

Fatawa Razawiyya Volume 9

...made a mistake, and here the mistake occurred more severely. Then he said:

"And I am amazed how they have circulated these phrases in texts, commentaries, and fatwas, and they did not notice the errors they contained due to the change in rulings. And Allah is the Granter of success for what is correct. Often, it happens that an author mistakenly mentions something in a book, and then the scholars who come after him quote that phrase without change or warning. So, the transmitters of it become many, while its original source was just one person's mistake, as happened in this instance. This brings no discredit to the school of thought (Madhhab) because our master Imam Muhammad, the recorder of the Madhhab, did not mention it in this manner. Similarly, we warned about such an occurrence in 'al-Fawa'id al-Fiqhiyya' regarding a statement by Qadi Khan and others. Then I pointed out that the origin of this phrase was from Natifi, who erred in it, and thereafter scholars continued to quote it as it was." (Summary)

The humble servant (Faqir) says—may Allah Almighty forgive him—that a similar significant incident occurred regarding a preference attributed to the great Imam Abu Ja'far al-Tahawi. This has been circulated and transmitted in quotes until today, and no one until our time had pointed it out. Even the late researcher and visionary, Allama Shami, followed the same path. However, the humble servant—may the Powerful Master forgive him—proved with bright and decisive evidence that Imam al-Tahawi's fatwa was not that, but rather absolutely the opposite, based on the indications from the texts and proofs of the praised Imam himself. For this purpose, solely to reveal the truth, preserve the school of thought, and rebut the criticism of opponents, I authored a special treatise entitled 'Al-Zahr al-Basim fi Hurmat al-Zakat 'ala Bani Hashim' (1307 AH). Praise be to Allah, abundant praise for what He has bestowed of generous gifts, which we are currently discussing (and for Allah is all praise, much praise for what He has abundantly granted).

---

1. Al-Bahr al-Ra'iq, Bab al-Mutafarriqat, H.M. Saeed Company, Karachi, 6/185.

...ने गलती की और यहाँ गलती अधिक गंभीर रूप में हुई। फिर उन्होंने कहा:

"और मैं चकित हूँ कि कैसे उन्होंने इन वाक्यांशों को ग्रंथों, व्याख्याओं और फतवों में प्रसारित किया है, और उन्होंने आदेशों के परिवर्तन के कारण उनमें निहित गलतियों पर ध्यान नहीं दिया। और अल्लाह ही सही कार्य के लिए सफलता प्रदान करने वाला है। अक्सर ऐसा होता है कि एक लेखक गलती से अपनी पुस्तक में किसी बात का उल्लेख कर देता है, और फिर उसके बाद आने वाले विद्वान उस वाक्यांश को बिना किसी परिवर्तन या चेतावनी के उद्धृत करते चले जाते हैं। तो इसके संचरणकर्ता (ट्रांसमिटर) बहुत हो जाते हैं, जबकि वास्तव में यह एक ही व्यक्ति की गलती थी, जैसा कि इस स्थान पर हुआ। इससे मज़हब (विचारधारा) पर कोई दोष नहीं आता क्योंकि हमारे सरदार इमाम मुहम्मद, जो मज़हब के संकलनकर्ता हैं, ने इसे इस तरह से उल्लेख नहीं किया। इसी तरह, हमने 'अल-फ़वाइद अल-फ़िक़्हिया' में एक ऐसी ही घटना पर चेतावनी दी थी जो काज़ी खान और अन्य के एक कथन के बारे में थी। फिर मैंने बताया कि इस वाक्यांश का मूल नातिफ़ी से था, जिन्होंने इसमें गलती की थी, और उसके बाद विद्वान इसे वैसे ही उद्धृत करते रहे।" (सारांश)

फकीर (विनम्र सेवक) कहता है—अल्लाह तआला उसे क्षमा करे—कि इसी तरह की एक बड़ी घटना महान इमाम अबू जअफ़र तहावी की ओर एक प्राथमिकता (तरजीह) के संबंध में हुई। यह उद्धरणों में आज तक चलता आ रहा है और हमारे समय तक किसी ने भी इस ओर ध्यान नहीं दिलाया। यहाँ तक कि बाद के महान शोधकर्ता और दूरदर्शी अल्लामा शामी को भी वही रास्ता पसंद आया। लेकिन फकीर—सर्वशक्तिमान स्वामी उसे क्षमा करे—ने उज्ज्वल और निर्णायक प्रमाणों के साथ यह सिद्ध कर दिया कि इमाम तहावी का फतवा वह नहीं था, बल्कि इसके बिल्कुल विपरीत था, जो स्वयं इमाम के ग्रंथों और प्रमाणों के संकेतों से साबित होता है। इस संबंध में, केवल सत्य को प्रकट करने, मज़हब की रक्षा करने और विरोधियों की आलोचना का उत्तर देने के उद्देश्य से, मैंने एक विशेष शोध-पत्र 'अल-ज़हर अल-बासिम फी हुरमत अल-ज़कात अला बनी हाशिम' (1307 हिजरी) लिखा। अल्लाह का बहुत-बहुत धन्यवाद उस उदार दान के लिए जो उसने प्रदान किया, जिस पर हम चर्चा कर रहे हैं (और अल्लाह के लिए बहुत प्रशंसा है उस पर जो उसने उदारतापूर्वक प्रदान किया है)।

---

1. अल-बहर अल-राईक, बाब अल-मुतफ़र्रिक़ात, एच.एम. सईद कंपनी, कराची, 185/6.

فتاوی رضویہ جلد نہم

نے خطا کی اور یہاں خطا زیادہ قبیح واقع ہوئی، پھر فرمایا:

وانا متعجب لکونهم تداولوا هذه العبارات متونا والشروحا وفتاوی ولم ینتبهوا لما اشتملت علیه من الخطاء بتغیر الاحکام واللہ الموفق للصواب وقد یقع کثیرا ان مؤلفا یذکر شیئا خطأ في کتاب فیأتي من بعده من المشائخ فینقلون تکل العبارة من غیر تغییر ولا تنبیه فیکثر الناقلون لهاد اصلها الواحد مخطی کما وقع في هذا الموضع ولا عیب بهذا علی المذهب لان مولنا محمد بن الحسن ضابط المذهب لو یذکر علی هذا الوجه قد بنهنا علی امثل ذلك في الفوائد الفقیه في قول قاضی خان وغیرهم ثم نبهت علی ان اصل هذه العبارة للناطفی اخطأ فیه ثم تداولوها (ملخصا)

یعنی مجھے تعجب ہے کیونکہ ان عبارتوں کو متون وشروح و فتاوی سب میں ایک دوسرے سے لیتے نقل کرتے چلے آئے اور اس میں خطا پر متنبہ نہ ہوئے کہ احکام بدلے جاتے ہیں اور اللہ ہی صواب کی توفیق دینے والا ہے اور کبھی بکثرت واقع ہوتا ہے کہ ایک مصنف براہ خطا ایک بات اپنی کتاب میں ذکر فرماتا ہے پھر بعد کے آنے والے مشائخ اسے ویسے ہی بلا تنبیہ نقل کرتے چلے جاتے ہیں تو اس کے ناقل بکثرت ہو جاتے ہیں، حالانکہ اصل میں ایک شخص کی غلطی تھی، جیسا یہاں واقع ہوا، اور اس سے مذہب پر کوئی طعن نہیں آتا کہ ہمارے سردار امام محمد محرر مذہب نے اس طور پر ذکر نہ کیا اور اسی طرح ایک واقعے پر ہم نے فوائد فقہیہ میں تنبیہ کی کہ امام قاضی خاں وغیرہ یعنی صاحب خلاصہ وصاحب ولوالجییہ وغیرہ نے ایک حصر فرمایا اور وہ غلط تھا پھر میں نے آگاہ کردیا کہ یہ اصل خطا ناطفی سے واقع ہوئی ان کے بعد مشائخ اسے یونہی نقل کرتے رہے۔

فقیر کہتا ہے غفر اللہ تعالی کہ اس قسم کا ایک واقعہ عظیمہ امام اجل ابو جعفر طحاوی کی طرف ایک ترجیح واقعا کی نسبت واقع ہوا جس میں تداول و توارد نقول آج تک چلا آیا اور ہمارے زمانے تک کسی نے اس پر متنبہ نہ فرمایا یہاں تک کہ سب میں متاخر محقق مبصر علامہ شامی کو بھی وہی راستہ بھایا مگر فقیر غفر اللہ المولی القدیر نے بدلائل ساطعہ قاطعہ امام طحاوی کا فتوی نہ اس پر بلکہ قطعا اس کے برعکس ہونا خود کلام امام ممدوح کے اثارہ نصوص و دلائل سے ثابت کر دکھایا اور اس بارے میں محض بغرض اظہار حق و حفظ مذہب و دفع تشنیع مخالفین ایک خاص رسالہ الزھر الباسم فی حرمۃ الزکوۃ علی بنی ھاشم (۱۳۰۷ھ) معرض تصنیف میں لایا واللہ الحمد حمد اکثیرا علی ما وھب من جزیل العطایا مانحن فیہ (اور اللہ ہی کے لیے حمد ہے کثیر حمد اس پر جو اس نے جزیل)

۱۔ البحر الرائق باب المتفرقات ایچ ایم سعید کمپنی کراچی ۱۸۵/۶

Fatawa Razawiyya Volume 9

If in (Ata'oon se Nawazat), I take the words of the Mashaykh (spiritual guides) to mean that death and the lack of perception by the soul are proven, then the matter here is even easier. There is no difficulty in the original issue; only in the explanation of the proof has this unnecessary confusion occurred. On this premise, it is absolutely and definitively certain here too that the Mu'tazilites mentioned this proof from the Mashaykh of the school, then some Mashaykh of the Ahl al-Sunnah quoted it inadvertently. Then quotations upon quotations continued, and the attention towards scrutiny and admonition remained. Now, regarding the later ones, most of our Mashaykh would want to say this; this is why the words of these prominent scholars of the Ahl al-Sunnah are found contrary to it in various places, of which you have heard twenty-five evidences in proof 11. Here they inadvertently wrote the saying of the Mu'tazilites, and here and elsewhere, their true belief was manifested in multiple ways, and praise be to Allah.

Why, Mullah Tafhimi Sahib! Now see where the obstacle of your cold excuses and far-fetched ideas has gone, and success is from Allah. In reality, these are all your "virtues". If you did not abandon the correct, true meanings and fabricate these false meanings by force of tongue, force, and slander, there would be no need for this answer. Honestly, weep over your own far-fetched ideas yourself. In our view, neither did the noble Mashaykh err, nor is their speech—God forbid—contrary to any belief of the Ahl al-Sunnah or to any of their other statements, nor is there any mutual contradiction or inconsistency here, the overwhelming investigation of which you have already heard above, and praise be to Allah.

Sublime Greatness: As for Mullah ji's last subtlety:

(Persian Text)	**(Urdu Translation)**
To understand our denial of the hearing of the dead as the doctrine of the Mu'tazilites is purely wrong. This is because the doctrine of some Mu'tazilites is that the deceased is an inanimate object, lacking life and perception, thus their punishment is impossible. The Ahl al-Sunnah say that although there is no life in the	Just as we deny the hearing of the dead, understanding it as the doctrine of the Mu'tazilites is purely wrong. This is because the doctrine of the Mu'tazilites is that the deceased is an inanimate object; there is no life or perception in it, so punishing it is impossible. And the Ahl al-Sunnah say that although there is no life in the deceased, it is possible that Allah Almighty creates a

(Persian Text)	(Urdu Translation)
deceased, it is permissible for Allah Almighty to create a type of life in them to the extent of perceiving the pain of punishment and the pleasure of comfort at the time of inflicting pain and punishment, and that does not necessitate hearing[1].	kind of life in it to such an extent that at the time of causing pain and giving punishment, it perceives the suffering of punishment and the pleasure of comfort, and this does not necessitate hearing. (T)

To the observer of our previous words, the reality of this excuse—worse than the sin—is well revealed. Yet, for Mullah ji's sake, let's examine the speech for a few...

---

[1] Tafheem al-Masa'il on the lack of hearing of the dead, from the books of Hanafiyyah, Muhammadi Press Lahore, p. 81.

फतवा रज़विया जिल्द 9

अगर (अताओं से नवाज़ात में) मैं मशायख़ के कलाम के ये मानी लूँ जिससे मौत और रूह के बे-इदराक (बिना धारणा के) होने की बात साबित हो, तो यहाँ मामला और भी आसान है। असल मसले में कोई दिक्कत नहीं है, सिर्फ दलील के बयान में बिना ज़रूरत यह मिलावट हुई है। इस आधार पर यहाँ भी यकीनी तौर पर यही हुआ कि मज़हब के मशायख़ से मोअतज़िला ने यह दलील ज़िक्र की, फिर अहले सुन्नत के कुछ मशायख़ ने भूलवश इसे नक़ल कर दिया। फिर नक़लों पर नक़ल होती चली गईं, और शोध व चेतावनी की तरफ़ तवज्जो बाकी रही। अब मुतअख़िरीन (बाद के लोग) हमारे अक्सर मशायख़ यही कहना चाहेंगे; यही वजह है कि खुद उन अहले सुन्नत के आला उलमा के कलाम में जगह-जगह इसके खिलाफ बातें आई हैं, जिसके पच्चीस प्रमाण आप दलील 11 में सुन चुके हैं। यहाँ उन्होंने भूलवश मोअतज़िला का कौल लिख दिया और यहीं और दूसरे मौकों पर जगह-जगह उनका अपना सच्चा अक़ीदा कई कारणों से ज़ाहिर हुआ, वल्हम्दुलिल्लाह।

क्यों मुल्ला तफ़हीमी साहब! अब अपने ठंडे बहानों और दूर की कौड़ियों की रुकावट को देखिए कि वे किधर गए? और कामयाबी अल्लाह की तरफ़ से है। हकीकत में ये सब तुम्हारी ही 'खूबियां' हैं। अगर तुम सही और सच्चे मानी को छोड़कर ज़बान के ज़ोर और बहतान के ज़ोर से ये गलत मानी न गढ़ते, तो इस जवाब की ज़रूरत ही न होती। इंसाफ़ से अपनी बेतुकी बातों पर आप ही बैठकर रोइए। हमारे नज़दीक न तो मशायख़े किराम ने कोई गलती की और न ही उनका कलाम—अल्लाह न करे—अहले सुन्नत के किसी अक़ीदे या उनके किसी दूसरे कलाम के खिलाफ है, और न ही यहाँ आपस में कोई विरोधाभास है, जिसकी ठोस तहक़ीक़ आप ऊपर सुन चुके हैं, वल्हम्दुलिल्लाह।

जलीला अज़ीमा: रही मुल्ला जी की पिछली नज़ाकत कि:

(फारसी पाठ)	**(उर्दू अनुवाद)**
हम मुर्दों के सुनने का जिस तरह इनकार करते हैं, उसे मोअतज़िला का मज़हब समझना सरासर गलत है। क्योंकि कुछ मोअतज़िला का मज़हब यह है कि मुर्दा एक बेजान चीज़ है, उसमें न जीवन है और न ही समझ, इसलिए उसे सज़ा देना नामुमकिन है। जबकि अहले	जिस तरह हम मुर्दों के सुनने का इनकार करते हैं उसे मोअतज़िला का मज़हब समझना महज़ ग़लत है। इसलिए कि मोअतज़िला का मज़हब यह कि मय्यत (मुर्दा) जमाद (बेजान) है उसमें हयात (जीवन) व इदराक (समझ) नहीं तो उसकी ताज़ीब (सज़ा देना) महाल (असंभव) है। और अहले सुन्नत कहते हैं

(फारसी पाठ)	(उर्दू अनुवाद)
सुन्नत कहते हैं कि भले ही मुर्दे में जीवन न हो, लेकिन यह मुमकिन है कि अल्लाह तआला उसमें एक तरह का जीवन पैदा कर दे ताकि वह सज़ा और राहत को महसूस कर सके, और इससे यह लाज़िम नहीं आता कि वह सुन भी सकें।	कि हर चंद कि मय्यत में हयात नहीं मगर हो सकता है कि ख़ुदा तआला उसमें एक नौअ (प्रकार) हयात पैदा कर दे इस क़दर कि अलम (दुख) पहुँचाने और अज़ाब देने के वक़्त अज़ाब की तकलीफ़ और आसाइश की लज़्ज़त का इदराक करे और यह समाअ (सुनना) को मुस्तलज़िम नहीं। (त)

हमारे पिछले शब्दों के देखने वाले पर इस 'गुनाह से बदतर बहाने' की हकीकत अच्छी तरह खुल गई है। फिर भी मुल्ला जी की खातिर कलाम को चंद...

---

[1] तफ़हीमुल मसाइल अदम समाअ मोती, हनफ़िया की किताबों से, मतबा मोहम्मदी लाहौर, पेज 81।

पृष्ठ 927 का 948

عطاؤں سے نوازات) میں اگر کلام مشائخ کے یہ معنی لوں جس سے موت و بے ادراک روح ثابت ہو تو یہاں امر آسان تر ہے کہ اصل مسئلہ میں کوئی دقت نہیں صرف بیان دلیل میں محض بے حاجت یہ تخلیط واقع ہوئی ، اس تقدیر پر یہاں بھی قطعاً جزماً یہی ہوا کہ مشائخ مذہب سے معتزلہ نے یہ دلیل ذکر کی ، پھر بعض مشائخ اہلسنت نے سہواً نقل کر دی، پھر نقول در نقول ہوتی چلی گئیں، تنقیح و تنبیہ کی طرف توجہ رہ گئی۔ اب متأخرین اکثر مشائخنا کہا ہی چاہیں یہی وجہ ہے کہ خود ان علمائے اعلام اہلسنت کے کلام جابجا اس کے خلاف واقع ہوئے جس کے پچیس شواہد دلیل ۱۱ میں سن چکے یہاں سہواً معتزلہ کا قول لکھ گئے اور خود یہیں اور دیگر مواقع میں جابجا اپنا عقیدہ حقہ متعدد وجوہ سے ظاہر ہوا وللہ الحمد۔

کیوں ملاّ تفہیمی صاحب! اب اپنے اعذارِ بارده واستعبادات کا سده دیکھئے کدھر گئے وباللہ التوفیق اور حقیقتہً یہ سب تمہاری خوبیاں ہیں، نہ تم معانی حقہ صحیحہ صادقہ چھوڑ کر بزورِ زبان وزور و بہتان یہ معنی باطل گھڑو، نہ اس جواب کی حاجت ہو، انصافاً اپنے استعبادوں کو آپ ہی بیٹھ کر روؤ۔ ہمارے نزدیک نہ مشائخ کرام نے خطا کی نہ ان کا کلام حاشاکسی عقیدہ اہلسنت نہ اپنے کسی کلام دیگر کے معارض، نہ یہاں باہم متعارض ومتناقض جس کی تحقیق قاہر اوپر سن چکے ، وللہ الحمد۔

جلیلہ عظیمہ : رہی ملاجی کی پچھلی نزاکت کہ :

(فارسی عبارت)	(اردو ترجمہ)
انکار سماع موتی بطوریکه مامی کنیم مذہب معتزلہ فہمیدن محض غلط است زیرا کہ مذہب بعض معتزلہ آن ست کہ میت جمادا ست در حیات و ادراک نیست پس تعذیب آن محال و اہلسنت گویند کہ ہر چند کہ در میت حیات نیست مگر جائز است کہ خدا تعالیٰ دران نوعی از حیات بقدر ادراک الم عذاب و لذت و تنعم عند الایلام والتعذیب پیدا کند و آن مستلزم سماع نیست[1]۔	جس طرح ہم سماع موتی کا انکار کرتے ہیں اسے معتزلہ کا مذہب سمجھنا محض غلط ہے۔ اس لیے کہ معتزلہ کا مذہب یہ کہ میت جماد ہے اس میں حیات و ادراک نہیں تو اس کی تعذیب محال ہے۔ اور اہل سنت کہتے ہیں کہ ہر چند کہ میت میں حیات نہیں مگر ہوسکتا ہے کہ خدا تعالیٰ اس میں ایک نوع حیات پیدا کر دے اس قدر کہ الم پہنچانے اور عذاب دینے کے وقت عذاب کی تکلیف اور آسائش کی لذت کا ادراک کرے اور یہ سماع کو مستلزم نہیں۔(ت)

ہمارے کلمات سابقہ کے ناظر پر اس عذر بدتر از گناہ کی حقیقت خوب منکشف ہے پھر بھی ملاجی کی خاطر کیجئے کلام کو چند

---

1 تفہیم المسائل عدم سماع موتی از کتب حنفیہ مطبع محمدی لاہور ص ۸۱

Fatawa Razawiya, Volume 9

Give a fresh arrangement from 'Awa'id-e-Jalila' and, by the permission of Allah Almighty, take the responsibility of removing all types of misconceptions.

I say: And with the help of Allah, I lay down the principles:

First Benefit: O Najdi gentlemen! You unjustly hold onto the skirt of the Ahl al-Sunnah and are after the wretched life of your own religion. You have no place with the Ahl al-Sunnah. They believe that at the time of granting comfort or punishment, life is restored to the body, whether complete or incomplete, and not to the soul, for according to them, it does not die. If you were only deniers of the body's hearing through physical organs and were confessors and maintainers of the soul's hearing without the mediation of the body, then you would certainly have been in agreement with the Ahl al-Sunnah and entitled to benefit from this issue of theirs. But if the disagreement persists as it is, then our specific creed and exact intent—'the light of my eyes, the joy of my heart'—was exactly that. But Heaven forbid! You are not at all believers in this. In this regard, your point that asking for prayers from the buried saints is like calling out to a stone, when would it ever be fulfilled, O Mulla Ji? Just look straight ahead! Are you not the same person who, in the discussion of this very Tafheem, with complete insolence and boldness, to establish your uncivilized religion by force of tongue, brought evidence from a forged imaginary book 'Khayal' titled 'Ghara'ib fi Tahqiq al-Madhahib' and through its mediation, raised false accusations against our Master, the Greatest Imam and the most distinguished leader, may Allah be pleased with him, while he was alive? Although you are an expert in imagining scholars (Footnote 1) and presenting fabricated passages from fictional books (Footnote 2), whose state is clear from the study of 'Sawa'iq', 'Tafheem', and 'Ghayat al-Kalam'. Some friends of this poor person (the author) wrote the treatise 'Saif al-Mustafa 'ala Adyan al-Iftira' specifically to describe such dishonesties of yours, and in it, one hundred and sixty 'honorable deeds' of the leaders of your sect were displayed. But the beginning of this forgery may not be from the 'Sarkar' (referring to the opponent). Before 'Tafheem', a Sahaswani Wahhabi gentleman became its pioneer in the treatise 'Siraj al-Iman'. In any case, whether this perfume of stinking smell is from the mill of the Sahaswan fitna or from Qannauj, tell me honestly, is anyone else in the world aware of this domestic manufacture of yours? Is there a name or sign of this book anywhere? Has anyone else cited it or even mentioned its name? Allah, Allah! The issue of hearing (by the dead) and seeking help (Istimdiad) has been under discussion for hundreds of years, mentioned in hundreds of books,

yet until today, not a soul had a whisper of information that a clear text on them exists from the Imam of the sect himself, may Allah be pleased with him. Now...

Footnote 1: Like 'Nasir Kahani', upon whose demand, with complete 'modesty' (ironically), it was clearly said: 'Even if Nasir Fakihani is not there, it's a discourse within a discourse.' (12, from the author. Though Nasir Fakihani is not there, it's discourse within discourse. 12, from the author. - Translation).

Footnote 2: Like 'al-Qawl al-Mu'tamad fil-Kalam ma'a 'Amal al-Mawlid', in which not even a proper rhyme could be matched; 'Mu'tamad' with a Fatha on the Meem and 'Mawlid' with a Kasra on the Lam, and then instead of 'discourse on the act of Mawlid' or 'in it', 'discussion and discourse with the act of Mawlid'.

Be shameless and do whatever you wish. (12, from the author - M)

फ़तावा रज़विया, जिल्द 9

'अवइद-ए-जलीला' से नई व्यवस्था दें और अल्लाह के हुक्म से हर तरह के भ्रम को दूर करने की जिम्मेदारी लें।

मैं कहता हूँ: और अल्लाह की शक्ति से मैं सिद्धांत स्थापित करता हूँ:

पहला लाभ: ऐ नज्दी साहबान! तुम नाहक अहले सुन्नत का दामन पकड़ते हो और अपने मज़हब की ज़ार-ज़ार जान के पीछे पड़े हो, अहले सुन्नत के यहाँ तुम्हारी कोई जगह नहीं। वे मानते हैं कि आराम या सज़ा के समय, शरीर के लिए पूर्ण या अपूर्ण जीवन लौटाया जाता है, न कि रूह के लिए, क्योंकि उनके अनुसार रूह मरती ही नहीं। यदि आप लोग केवल शारीरिक अंगों के माध्यम से शरीर के सुनने के मुनकिर (इनकारी) होते और शरीर की मध्यस्थता के बिना रूह के सुनने के मोतर्फ़(स्वीकार करने वाले) और मुक़र्रिर (स्थापित करने वाले) होते, तो आप निश्चित रूप से अहले सुन्नत के साथ सहमत होते और उनके इस मुद्दे से लाभ उठाने के पात्र होते। लेकिन अगर विरोध वैसे ही बना रहता है, तो हमारा विशेष मज़हब और सटीक इरादा—'आँखों की रोशनी, दिल की खुशी'—वही था। मगर हाशा! (कदापि नहीं!) आप हरगिज़ इसके क़ायल नहीं हैं। इस संबंध में आपका यह कहना कि दफ़न किए हुए औलिया से दुआ मांगना पत्थर को पुकारने जैसा है, यह कब पूरा होगा, ऐ मुल्ला जी! ज़रा सामने तो देखिए! क्या आप वही नहीं हैं जिन्होंने इसी 'तफ़हीम' की बहस में पूरी ढिठाई और बेबाकी के साथ, ज़बान के ज़ोर पर अपने असभ्य मज़हब को बनाने के लिए, 'ख़याल' की एक गढ़ी हुई काल्पनिक किताब 'ग़राएब फ़ी तहक़ीक़ अल-मज़ाहिब' से प्रमाण लाया और उसके माध्यम से हमारे आका इमाम-ए-आज़म रज़ियल्लाहु तआला अन्हु पर जीवित रहते हुए झूठे आरोप लगाए? हालाँकि आप विद्वानों को गढ़ने (फुटनोट 1) और काल्पनिक किताबों (फुटनोट 2) से गढ़ी हुई इबारतें पेश करने में माहिर हैं, जिनकी स्थिति 'सवाएक़', 'तफ़हीम' और 'ग़ायत अल-कलाम' के अध्ययन से स्पष्ट है। इस फ़क़ीर के कुछ मित्रों ने विशेष रूप से आप हज़रात की ऐसी ही बेइमानियों का वर्णन करने के लिए 'सैफ़ अल-मुस्तफ़ा अल अदयान अल-इफ़्तरा' नामक लेख लिखा और उसमें आपके गिरोह के बड़ों की एक सौ साठ 'दीयानतों' (ईमानदारियों - व्यंग्य) को उजागर किया। लेकिन इस गढंत की शुरुआत शायद 'सरकार' (प्रतिद्वंद्वी) से नहीं हुई। 'तफ़हीम' से पहले एक सहसवानी वहाबी साहब 'सिराज अल-ईमान' नामक लेख में इसके प्रवर्तक हुए हैं। बहरहाल, बदबूदार गंध का यह इत्र चाहे सहसवान फ़ितने की घानी से हो या कन्नौज की, ज़रा ईमानदारी से बताएं कि क्या दुनिया में आपकी इस घरेलू बनावट से कोई और भी परिचित है? क्या इस किताब का नाम-ओ-निशान कहीं और है?

क्या किसी और ने भी इससे हवाला दिया है या कहीं इसका नाम लिया है? अल्लाह, अल्लाह! सैंकड़ों सालों से सुनने (मुर्दों द्वारा) और मदद चाहने (इस्तमदाद) का मसला बहस के अधीन है, सैकड़ों किताबों में उनका ज़िक्र आया है, आज तक किसी के कानों-कान ख़बर न हुई कि ख़ुद मज़हब के इमाम रज़ियल्लाहु तआला अन्हु से उनमें कोई स्पष्ट प्रमाण (नस्से सरीह) मौजूद है। अब...

फुटनोट 1: जैसे 'नासिर कहानी', जिसकी मांग पर पूरी बेशर्मी से साफ़ कह दिया गया कि भले ही नासिर फाकेहानी न हो, यह बात तो बात के अंदर है। (12 मुस़न्निफ़ से। यद्यपि नासिर फाकेहानी नहीं है, यह बात के अंदर बात है। 12 मुस़न्निफ़ से - अनुवाद)।

फुटनोट 2: जैसे 'अल-क़ौल अल-मुअतमद फ़िल-कलाम मआ अमल अल-मौलिद', जिसमें ठीक से तुकबंदी भी नहीं आ सकी; 'मुअतमद' मीम पर ज़बर के साथ और 'मौलिद' लाम के नीचे ज़ेर के साथ, और फिर 'मौलिद के अमल पर कलाम' या 'उसमें' की जगह 'मौलिद के अमल के साथ बातचीत और कलाम'।

बेशर्म बन जाओ और जो चाहो करो। (12 मुस़न्निफ़ से - एम)

पृष्ठ 928/948

فتاوٰی رضویہ ، جلد نہم

عوائد جلیلہ سے ترصیف تازہ دیجئے اور باذنہ تعالٰی ازالہ ہر گونہ اوہام کا ذمہ لیجئے۔

فأقول: و بحول اللہ اصول:

عائدہ اولٰی: نجدی صاحبو! ناحق اہلسنت کا دامن پکڑتے اور اپنے مذہب کی جان زار کے پیچھے پڑتے ہو، اہلسنت کے یہاں تمھاری گزر نہیں، وہ کہ وقت تنعیم و تعذیب اعادہ حیات کاملہ خواہ ناقصہ بدن کے لیے مانتے ہیں نہ کہ روح کے لیے کہ وہ تو ان کے نزدیک مرتی ہی نہیں، اگر تم لوگ صرف سماع جسم باسماع جسمانی بذریعہ آلات جسم کے منکر اور سماع روح بے توسط بدن کے معترف و مقرر ہوتے تو ضرور اہلسنت سے موافق اور ان کے اس مسئلہ سے انتفاع کے مستحق ہوتے، مگر یوں ہی خلاف کب باقی رہتا ہے تو خاص ہمارا مذہب و عین مراد چشم ما روشن دل ما شاد تھا مگر حاشا تم ہرگز اس کے قائل نہیں اس میں تمھارا مطلب کہ اولیائے مدفونین سے طلب دعا پتھر کو ندا ہے کب برآتا کیوں ملا جی! ذرا نگاہ روبرو، کیا آپ ہی وہی نہیں ہیں جو اسی تفہیم کی اسی بحث میں بکمال وقاحت و شوخ چشمی اپنا مذہب نامہذب بزور زبان بنانے کے لیے ایک گھڑی ہوئی فرضی کتاب خیال تصنیف غرائب فی تحقیق المذاہب سے سند لائے اور اس کی وساطت سے سید نا امام اعظم و ہمام اقدام رضی اللہ تعالٰی عنہ پر جیتے افترا اٹھائے۔ آپ اگرچہ خیال عہ۱ علماء گھڑ لینے فرضی کتابوں عہ۲ کی ساختہ عبارتیں پیش کر دینے کی پختہ ماہر کار ہیں جن کے حال صواعق و تفہیم و غایۃ الکلام کے مطالعہ سے آشکار ہیں، بعض احباب فقیر نے خاص آپ حضرات کی ایسی ہی دیانتوں کے بیان میں رسالہ سیف المصطفٰی علی ادیان الافترا لکھا اور اس میں ایک سو ساٹھ دیانات کبرائے طائفہ کو جلوہ دیا مگر اس گھڑت کی ابتدا شاید سرکار

سے نہ ہو، تفہیم سے پہلے ایک سہسوانی وہابی صاحب رسالہ سراج الایمان میں اس کے بادی ہوئے ہیں، بہر حال یہ گندی بو کا عطر فتنہ سہسوان کی گھانی سے ہو یا قنوج کی، ذرا ایمان سے بتائے کہ آپ حضرات کی اس خانگی ساخت پر دنیا میں کوئی اور بھی مطلع ہے کہیں اس کتاب کا نام و نشان بھی ہے، کسی اور نے بھی اس سے استناد کیا یا کہیں اس کا نام لیا ہے؟ اللہ اللہ صد ہاسال سے مسئلہ سماع و مسئلہ استمداد زیر بحث ہے صدہا کتابوں میں ان کے بیان آئے آج تک کسی کو کانوں کان خبر نہ ہوئی کہ خود امام مذہب رضی اللہ تعالیٰ عنہ سے ان میں نص صریح موجود ہے، اب

عہ۱: مثل ناصر کہانی جس کے مطالبہ پر بکمال حیا داری صاف کہہ دیا گو ناصر فاکہانی بنا شد کلام در کلام است ۱۲ منہ (گو ناصر فاکہانی نہیں ہے کلام در کلام ہے ۱۲ منہ۔ت)

عہ ۲: مثل القول المعتمد فی الکلام مع عمل المولد جس میں تک بھی ٹھیک ملانی نہ آئی، معتمد بفتح میم اور مولد بکسر لام اور پھر عمل مولد پر یا اس میں کلام کی جگہ عمل مولد کے ساتھ گفتگو و کلام ع

بے حیا باش ہر چہ خواہی کن ۱۲ منہ (م)

Fatawa Razawiyya Volume Nine

After eleven hundred (1100) years, these gentlemen came to know the Imam's instruction, and that too in which book? One that no eye has seen nor any ear has heard its name. Well, now the religious people with repentance or modesty have long since died and become inanimate objects that neither understand nor speak. During their lifetime, the Ahl-e-Sunnat had demanded, "Sir! This fabricated passage is not in Fatawa Ghara'ib." The answer given was that it is in another treatise, 'Ghara'ib fi Ikhtilaf al-Madhahib'. At another time, it was said it's in 'Fi Tahqiq al-Madhahib'. It was asked, "Do you have it or have you seen it elsewhere?" He replied, "It is with Mufti Sadullah Sahab." When the late Mufti Sahab was asked, he said, "I am not acquainted with this book at all." Subhan Allah! Modesty reached this level, and then (Verse):

One needs skill even to commit a flaw.

The holy religious ones didn't even know how to forge a passage; they couldn't find alignment with simple idioms and rules. The vulgarity of its words and structure is itself sufficient testimony that it is a clumsy fabrication by unlearned Indians. The text is in the footnote (Ayn), for every person of sound taste.

[Column Section] (Left Column - Arabic Original) Note: In 'Ghara'ib fi Tahqiq al-Madhahib', it is narrated that Imam Abu Hanifa saw someone coming to the graves of righteous people to offer greetings, address them, and speak, saying: "O people of the graves! Do you have any news? Do you have any trace? I have been coming to you and calling you for months, and my request to you is only for prayer. So, did you come to know, or were you heedless?" Abu Hanifa heard him addressing them and said, "Did they answer you?" He said, "No." So he said to him, "Woe to you! May your hands be covered in dust. How can you speak to bodies that cannot answer, possess nothing, and hear no sound?" And he recited: "And you cannot make those in the graves hear." (End).

(Right Column - Urdu Translation) It is in 'Ghara'ib fi Tahqiq al-Madhahib': Imam Abu Hanifa saw a person who comes to the graves of the righteous to offer Salaam and address them, saying: "O people of the graves! Do you have any news, and do you have any trace (of me)? I came to you and have been calling you for months, and my request from you is only for prayer. So did you come to know, or did you remain heedless?" Abu Hanifa heard the one addressing them and said, "Did they answer you?" He said, "No." So he said to him, "May you be ruined and may your hands be dusty. How do you speak to such bodies that cannot answer and have no power and

do not hear any voice?" And he read this: "You are not the one who makes those in the graves hear." End (T).

Tafheem al-Masa'il page 91. The words written in red are as they appear in Tafheem; let no one consider them a scribe's error (continued on the next page).

1. Tafheem al-Masa'il, non-hearing of the dead from Hanafi books, Muhammadi Press Lahore, p. 87. Page 929 of 948

फ़तावा रज़विया नवां भाग (जिल्द नुहम)

ग्यारह सौ (११००) वर्षों के बाद इन सज्जनों को इमाम का आदेश पता चला, और वह भी किस किताब में? जिसे न किसी आँख ने देखा और न किसी कान ने उसका नाम सुना। खैर, अब तौबा या हया वाले धर्मनिष्ठ लोग तो कब के मरकर जड़ (निर्जीव) हो गए जो न समझते हैं और न बोलते हैं। अहले सुन्नत ने उनके जीवनकाल में ही माँग की थी कि 'हुज़ूर! यह गढ़ी हुई इबारत (अनुच्छेद) फ़तावा ग़राइब में तो नहीं है।' जवाब मिला कि यह दूसरा रिसाला (ग्रंथ) 'ग़राइब फ़ी इख़्तिलाफ़ अल-मज़ाहिब' है। कभी कहा, 'फ़ी तहक़ीक़ अल-मज़ाहिब' है। पूछा गया: 'आपके पास है या कहीं और देखा है?' कहा: 'मुफ़्ती सादुल्लाह साहब के पास है।' मरहूम मुफ़्ती साहब से जब पूछा गया तो उन्होंने फ़रमाया: 'मैं इस किताब से बिल्कुल परिचित नहीं हूँ।' अल्लाह-अल्लाह! हया का स्तर यहाँ तक पहुँचा और फिर (शेर):

ऐब करने के लिए भी हुनर चाहिए।

पवित्र धर्मनिष्ठों को इबारत गढ़नी भी नहीं आई, सरल मुहावरे और व्याकरण के साथ तालमेल नहीं मिला। इसके शब्दों और बनावट का ओछापन ही इस बात का पर्याप्त प्रमाण है कि यह अनपढ़ हिंदुस्तानियों की भद्दी बनावट है। इबारत हाशिया (अैन) पर है, हर स्वस्थ रुचि वाले व्यक्ति के लिए।

[कॉलम अनुभाग] (बायाँ कॉलम - अरबी मूल) नोट: 'ग़राइब फ़ी तहक़ीक़ अल-मज़ाहिब' में वर्णित है कि इमाम अबू हनीफ़ा ने एक व्यक्ति को देखा जो नेक लोगों की क़ब्रों पर सलाम करने, उन्हें संबोधित करने और बात करने आता है और कहता है: "ऐ क़ब्र वालों! क्या तुम्हें कोई ख़बर है और क्या तुम्हारे पास कोई निशान है? मैं तुम्हारे पास आया और महीनों से तुम्हें पुकार रहा हूँ और मेरी तुमसे केवल दुआ की दरख्वास्त है। तो क्या तुम्हें पता चला या तुम ग़ाफ़िल रहे?" अबू हनीफ़ा ने उसे उनसे बात करते सुना तो फ़रमाया, "क्या उन्होंने तुम्हें जवाब दिया?" उसने कहा, "नहीं।" तो उससे फ़रमाया, "तेरी बर्बादी हो और तेरे हाथ धूल धूसरित हों। तू ऐसे शरीरों से कैसे बात करता है जो जवाब नहीं दे सकते, किसी चीज़ के मालिक नहीं हैं और कोई आवाज़ नहीं सुनते?" और यह पढ़ा: "और तुम उन्हें सुनाने वाले नहीं हो जो क़ब्रों में हैं।" (समाप्त)।

(दायाँ कॉलम - उर्दू अनुवाद) 'ग़राइब फ़ी तहक़ीक़ अल-मज़ाहिब' में है: इमाम अबू हनीफ़ा ने एक व्यक्ति को देखा जो नेक लोगों की क़ब्रों के पास आता है ताकि सलाम करे और संबोधित करे और कहे: "ऐ क़ब्र वालों! क्या तुम्हें कुछ ख़बर है और क्या तुम्हारे पास कुछ असर (निशान) है? यहाँ तक

कि मैं तुम्हारे पास आया और महीनों से तुम्हें पुकार रहा हूँ और मेरा सवाल तुमसे सिर्फ दुआ का है, तो क्या तुम्हें पता चला या तुम ग़ाफ़िल रहे?" तो अबू हनीफ़ा ने उन्हें संबोधित करने वाले को सुना तो फ़रमाया, "क्या उन्होंने तुझे जवाब दिया?" उसने कहा, "नहीं।" तो उससे फ़रमाया: "तेरी बर्बादी हो और तेरे हाथ मिट्टी में हों (धूल धूसरित हों)। तू कैसे कलाम (बात) करता है ऐसे शरीरों से जो जवाब नहीं दे सकते और कुछ अधिकार नहीं रखते और कोई आवाज़ नहीं सुनते?" और यह पढ़ा: "तुम उन्हें सुनाने वाले नहीं जो क़ब्रों में हैं।" ख़त्म (त)।

तफ़हीम अल-मसाइल पृ. ९१। जो शब्द सुर्ख़ी (लाल रंग) से लिखे हैं वे तफ़हीम में ऐसे ही हैं, इन्हें कोई लेखक (कातिब) की ग़लती न समझे। (शेष अगले पृष्ठ पर)

1. तफ़हीम अल-मसाइल, मृतकों का न सुनना हनफ़ी किताबों से, मुहम्मदी प्रेस लाहौर, पृ. ८७ पृष्ठ ९२९ का ९४८

فتاوی رضویہ جلد نہم

گیارہ سو ۱۱۰۰ برس بعد ان حضرات کو امام کا ارشاد معلوم ہوا، اور وہ بھی کس کتاب میں، جسے نہ کسی آنکھ نے دیکھا نہ کسی کان نے اس کا نام سنا، خیر اب توبہ یا حیا متدین حضرات کب کے مر کر جماد لا یفہم ولا یتکلم ہو گئے ، اہل سنت نے ان کی حیات ہی میں مطالبہ کیا تھا کہ حضرت ! یہ ساختہ عبارت فتاوی غرائب میں تو ہے نہیں جواب دیا کہ یہ اور رسالہ غرائب فی اختلاف المذاہب ہے۔ اور کبھی کہا، فی تحقیق المذاہب ہے۔ عرض کی گئی : آپ کے پاس ہے یا کہیں اور دیکھا ؟ کہا : مفتی سعد اللہ صاحب کے یہاں ہے۔ مفتی صاحب مرحوم سے پوچھا گیا، انھوں نے فرمایا: میں اصلاً اس کتاب سے واقف نہیں، اللہ اللہ حیا کا پایا یہاں تک پہنچا اور پھر ع

عیب بھی کرنے کو ہنر چاہئے

مقدس متدینوں کو عبارت بھی گھڑنی نہ آئی، سہل سہل محاورہ و قواعد کی مطابقت نہ پائی، اس کے الفاظ و بندش کی رکاکت خود ہی کافی شہادت ہے کہ بے علم ہندیوں کی اوندھی گھڑت ہے، عبارت حاشیہ ع پر ہے ہر صاحب ذوق سلیم

[Column Section] (Left Column - Arabic) عه: در غرائب في تحقيق المذاهب راوى الامام ابو حنيفة من يأتى القبور باهل الصلاح فيسلم ويخاطب ويتكلم ويقول يا اهل القبور هل لكم من خبر وهل عندكم من اثر انى اتيتكم و ناديتكم من شهور وليس سوالى منكم الا الدعاء فهل دريتم ام غفلتم فسمع ابو حنيفة يقول مخاطبة لهم فقال هل اجابوالك فقال لا فقال له ستحقالك وتربت يداك كيف تكلم اجساداً لا يستطيعون جواباً ولا يملكون شيئاً ولا يسمعون صوتاً وقرأ وما انت بمسمع من في القبور ١ انتهى ١٢

(Right Column - Urdu) غرائب فی تحقیق المذاہب میں ہے: امام ابو حنیفہ نے ایک شخص کو دیکھا جو اہل صلاح کی قبروں کے پاس آتا ہے تا کہ سلام کرے اور خطاب کرے اور کہے اے اہل قبور ! کیا تمھیں کچھ خبر ہے اور کیا تمھارے پاس کچھ اثر ہے یہاں تک کہ میں تمھارے پاس آیا اور مہینوں سے تم کو پکارا اور میرا سوال تم سے صرف دعا کا ہے، تو کیا تمھیں پتا چلا یا تم غافل رہے، تو ابو حنیفہ نے ان سے خطاب کرتے ہوئے کہنے والے کو سنا تو فرمایا کیا انھوں نے تجھے جواب دیا؟ اس نے کہا نہیں، تو اس سے فرمایا: تیری بربادی ہو اور تیرے ہاتھ خاک آلود ہوں تو کیسے کلام کرتا ہے ایسے جسموں سے جو جواب نہیں دے سکتے اور کچھ اختیار نہیں رکھتے اور کوئی آواز نہیں سنتے، اور یہ پڑھا: تم انھیں سنانے والے نہیں جو قبروں میں ہیں۔ ختم (ت)

تفہیم المسائل ص ۹۱ جو لفظ سُرخی سے لکھے ہیں تفہیم میں یونہی ہیں انھیں کوئی غلطی ناسخ نہ سمجھے (باقی بر صفحہ آئندہ)

1 تفہیم المسائل عدم سماع موتیٰ از کتب حنفیہ مطبع محمدی لاہور ص ۸۷ Page 929 of 948

Volume 9 Fatawa Razawiyya

Let one look and give a just verdict. Some companions of this humble servant (may Allah preserve them) wrote an extensive treatise titled *Nishat al-Miskin 'ala Halq al-Baqar al-Musammin* in refutation of a clever Wahhabi head Molvi. In it, they dismantled this expression of 'Ghara'ib' in the best manner, and at the end, after quoting Allama Qanawji, they wrote a wonderful humorous note which is worth mentioning. He (may Allah preserve him) said: "The end has been written right now. After this, the fictitious author of 'Ghara'ib' fabricated a traditionalist chain (isnad) for this saying:"

Arabic Text	**Urdu Translation**
Where he said after your transcription: Al-Ma'dum bin Maslub al-Adami narrated to us, who said: Abu al-Faqdan al-Khayali narrated to us, who said: Mawhum bin Mafrud al-Laysi narrated to us (Chain 2): Al-Kadhdhab bin al-Muftari narrated to us, who said: Al-Wadda' al-Zawri narrated to us, who said: I was informed by someone (note 'a') in whom no one but a Najdi would trust, both of them from Abu al-Talbis al-Dalali.	Following your quoted text: "Ma'dum bin Maslub al-Adami narrated to us __ he said: Abu al-Faqdan al-Khayali narrated to us __ he said: Mawhum bin Mafrud al-Laysi narrated to us __ Second chain: Al-Kadhdhab bin al-Muftari narrated to us __ he said: Al-Wadda' al-Zawri narrated to us __ he said: we were informed by him whom only a Najdi would trust, both (the imaginary one and this...)"

(Remaining footnote from the previous page) Neither is it a mistake of the scribe of *Tafheem*, but rather of the author of *Tafheem*, the first fabricator, because they were not corrected even in the errata list of *Tafheem*. And on page 68 of *Tafheem* it says:

Arabic Quote	**Urdu Translation**
The possibility of a scribe's error is also removed in the correct list and errata list of the printed book, where no attention was paid to the error of this word.	The possibility of a scribe's error is also removed because no attention was paid to the error of this word in the errata list or correction list of the printed book. (Translator)

Did the gentleman not remember *yantiq*, *yatafawwah*, *yadhkur*, *yuhaddith*, *yushafih*, *yuhawir* etc.? Otherwise, he would have made them companions of *yukhatib*, *yatakallam*, and *yaqul*. (Author/Commentator)

Arabic Note

Note 'a': This, although he is vague (anonymous), is not harmful because it is in the corroborations (mutaba'at). For Mawhum bin Mafrud has narrated it from al-Dalali as you heard, also Manfi bin al-Mafqud and some other people have also narrated it in *Sharh al-Ghara'ib*.

Urdu Translation

This narrator, although vague, is not harmful because he is in the corroborations (mutaba'at). For Mawhum bin Mafrud has narrated it from al-Dalali as you heard, also Manfi bin al-Mafqud and some other people have also narrated it. From *Sharh al-Ghara'ib*. (Translator)

देखें और न्यायपूर्ण निर्णय दें। इस तुच्छ सेवक (अल्लाह उनकी रक्षा करे) के कुछ साथियों ने एक चतुर वहाबी हेड मौलवी के खंडन में 'निशात अल-मिस्कीन अला हलक अल-बक़र अल-मुसम्मिन' नामक एक विस्तृत शोध प्रबंध लिखा। इसमें उन्होंने 'ग़रइब' की इस अभिव्यक्ति की बेहतरीन तरीके से धज्जियाँ उड़ाईं और अंत में अल्लामा क़नौजजी के उद्धरण के बाद एक अद्भुत हास्यपूर्ण टिप्पणी लिखी जो उल्लेखनीय है। उन्होंने (अल्लाह उनकी रक्षा करे) कहा: "अभी से अंत लिख दिया गया है। इसके बाद, 'ग़रइब' के काल्पनिक लेखक ने इस कथन के लिए एक हदीस-विशेषज्ञ वाली सनद (श्रृंखला) गढ़ी है:"

अरबी पाठ	**उर्दू अनुवाद**
जहाँ उन्होंने आपके उद्धरण के बाद कहा: अल-मादूम बिन मलब अल-अदामी ने हमसे बयान किया, जिन्होंने कहा: अबू अल-फ़क़दान अल-ख़याली ने हमसे बयान किया, जिन्होंने कहा: मौहूम बिन मफ़रूज़ अल-लैसी ने हमसे बयान किया (सनद 2): अल-कज़्ज़ाब बिन अल-मुफ़्तरी ने हमसे बयान किया, जिन्होंने कहा: अल-वज़्ज़ा अल-ज़ौरी ने हमसे बयान किया, जिन्होंने कहा: मुझे उसने सूचित किया जिस पर केवल एक नजदी ही भरोसा करेगा, वे दोनों अबू अल-तल्बीस अल-दलाली से।	आपके द्वारा उद्धृत पाठ के बाद है: "मादूम बिन मबलूब अदमी ने हमसे बयान किया __ उन्होंने कहा: अबू अल-फ़क़दान ख़याली ने हमसे बयान किया __ उन्होंने कहा: मौहूम बिन मफ़रूज़ लैसी ने हमसे बयान किया __ दूसरी सनद: अल-कज़्ज़ाब बिन मुफ़्तरी ने हमसे बयान किया __ उन्होंने कहा: अल-वज़्ज़ा ज़ौरी ने हमसे बयान किया __ उन्होंने कहा: हमें उसने खबर दी जिस पर कोई नजदी ही भरोसा करे, दोनों (मौहूम और यह...)"

(पिछले पृष्ठ के फुटनोट का शेष भाग) न तो वे 'तफ़हीम' के लेखक की गलती हैं, बल्कि खुद 'तफ़हीम' के लेखक, पहले गढ़ने वाले की हैं, क्योंकि 'तफ़हीम' की अशुद्धि-सूची में भी उनका सुधार नहीं किया गया। और 'तफ़हीम' के पृष्ठ 68 पर है:

अरबी उद्धरण	**उर्दू अनुवाद**
मुद्रित पुस्तक की शुद्धि-सूची और अशुद्धि-सूची में लिपिक की गलती की संभावना भी दूर हो	लिपिक की गलती की संभावना भी दूर हो गई है क्योंकि मुद्रित पुस्तक की अशुद्धि-सूची और शुद्धि-

अरबी उद्धरण	उर्दू अनुवाद
गई है, जहाँ इस शब्द के गलत होने पर कोई ध्यान नहीं दिया गया है।	सूची में इस शब्द के गलत होने पर ध्यान नहीं दिया गया है। (अनुवादक)

क्या उस सज्जन को 'यंतिक', 'यतफ़व्वह', 'यज़कुर', 'युहद्दीस', 'युशाफ़िह', 'युहाविर' आदि याद नहीं थे? अन्यथा वे उन्हें भी 'युख़ातिब', 'यतकल्लम' और 'यक़ूल' का साथी बना देते।

अरबी नोट	उर्दू अनुवाद
नोट 'अ': यह, हालांकि वह अज्ञात है, हानिकारक नहीं है क्योंकि यह 'मुताबआत' (पुष्टियों) में है। क्योंकि मौहूम बिन मफ़रूज़ ने इसे दलाली से वर्णित किया है जैसा कि आपने सुना, साथ ही मन्फ़ी बिन मफ़क़ूद और कुछ अन्य लोगों ने भी इसे 'शरह अल-ग़रइब' में वर्णित किया है।	यह रावी अगर-चे मुबहम (अज्ञात) है मगर कोई नुक़सान नहीं क्योंकि वह मुताबा'आत (पुष्टियों) में है। जैसा कि आपने सुना, इसे ज़लाली से मौहूम बिन मफ़रूज़ ने बयान किया है, और मन्फ़ी बिन मफ़क़ूद और कुछ दूसरे लोगों ने भी रिवायत किया है। 'शरह अल-ग़रइब' से। (अनुवादक)

دیکھے اور داد انصاف دے۔ بعض اصحاب فقیر سلہم اللہ تعالی نے ایک لایم شیم وہابی ہیڈ مولوی کے رد میں مبسوط رسالہ نشاط المسکین علی حلق البقر المسمین لکھا اس میں اس عبارت غرائب کی دھجیاں برو جہ احسن اڑا کر اخیر میں علامہ قنوجی کے اسے نقل کر کے اتنی لکھ دینے پر عجیب لطیفہ لکھا ہے جس کا ذکر خالی از لطف نہ ہوگا ، قال سلمہ اللہ تعالیٰ ابھی سے انتہا لکھ دی اس کے بعد تو فرضی صاحب غرائب نے اس قول کی محد ثانہ سند گھڑی ہے:

عربی عبارت	اردو ترجمہ
حیث قال بعد نقلتم حدثنا بذلك المعدوم بن مسلوب العد می ثنا ابوالفقدان الخیالی ثنا موھوم بن مفروض اللیسی ح ثنا الکذاب بن المفتری نااالوضاع الذوری انا من عہ لا یثق بہ الانجدی کلاھما عن ابی التلبیس الضلالي	تمھاری منقولہ عبارت کے بعد ہے : ہم سے بیان کیا معدوم بن مسلوب عدمی نے __ کہا ہم سے بیان کی ابوالفقدان خیالی نے __ کہا ہم سے بیان کیا موہوم بن مفروض لیسی نے __ دوسری سند : ہم سے بیان کیا کذاب بن مفتری نے _ کہا ہم سے بیان کیا وضاع ژوری نے __ کہا ہمیں خبر دی اس نے جس پر کوئی نجدی ہی اعتماد کرے ، دونوں (موہوم اور یہ

(بقیہ حاشیہ صفحہ گزشتہ) نہ وہ ناسخ تفہیم کی خطاء ہیں بلکہ خود مصنف تفہیم وضاع اول کی، اس لیے کہ غلط نامہ تفہیم میں بھی ان کی تصحیح نہ کی، اور تفہیم صفحہ ۶۸ میں ہے:

عربی قول	اردو ترجمہ
احتمال غلطی کاتب ہم مرتفعہ در صحیح نامہ غلطنامہ کتاب مطبوعہ ہم بغلطی این لفظ تعرض نہ کردہ اھ	کاتب کی غلطی کا احتمال بھی مرتفع ہے کہ مطبوعہ کتاب کے غلط نامہ اور صحیح نامہ میں اس لفظ کے غلط ہونے پر توجہ نہیں کی گئی اھ (ت)

بھلے مانس کو ینطق ویتفوہ ویذکر ویحدث ویشافہ ویحاور وغیرہ یاد نہ تھے ورنہ انھیں بھی یخاطب ویتکلم ویقول کا ساتھی بنتی کردینا ۱۲ منہ (م)

عربی نوٹ	اردو ترجمہ
عہ: ھذا وان کان مبھماً لکن لا یضر لانہ فی المتابعات فقد رواہ من الضلال موھوم بن مفروض کما سمعت منفي بن المفقود آخرون خرائب في شرح الغرائب ۱۲ منہ (م)	یہ راوی اگرچہ مبہم ہے مگر کوئی ضرر نہیں اس لیے کہ وہ متابعات میں ہے کیونکہ ضلالی سے اس کو موہوم بن مفروض نے روایت کیا ہے جیسا کہ آپ نے سنا، نیز منفی بن مفقود اور کچھ دوسرے لوگوں نے بھی روایت کیا ہے ۱۲ اخرائب شرح غرائب۔ (ت)

[Table/Box Start] Arabic: Man bin Dalal, a tribe from Bani al-Muhtalaq, said: I heard a voice from the air calling out with that, so I do not know if I remembered or forgot, but bear witness that the one who tells you this is a manifest liar.

Urdu Translation: (Unknown) narrator from Abul-Tablis Dalali. Who is from a tribe of Bani Muhtalaq called Bani Dalal—he said—I heard a caller from the air calling this, so I don't know if I remember or have forgotten, but be witnesses to this that the person who is narrating this to you is an open liar. (T) [Table/Box End]

We say "Al-kadhoobu qad yasduqu" (the big liar sometimes speaks the truth. T) Surely, he spoke the truth in this latter part, "And there is no power nor strength except with Allah, the Exalted, the Almighty." His Lord's words have ended. Well, let all this go; if you are truthful, write: there, the dead certainly hear the speech of the living, but not through the ears and body, rather through the power of the soul. Can you say this? You will never say it. Now the veil is lifted and the denial of the perception of the soul has become clear, and they molded the words of the elders to fit their claim, and they placed all the effects of death and insensibility upon the soul. So, what room is there now for denial that this is strictly the religion of the wicked Mu'tazilites? As for the fact that they deny the punishment [of the grave] and you affirm it, this distinction does not break your agreement with them. For example, if some complete Wahhabi, in the force of his 'Nechriyat' (Naturalism), claims that our master Jesus, the Prophet of Allah (peace and blessings of Allah be upon him), was certainly crucified, and the stubborn Jews killed him, then it would be said to him that this statement of yours is the religion of the Christians. Can he say in reply that considering being crucified as he believes it to be the Christian religion is a pure error because the Christian religion is that he was crucified to be an atonement, refuge is sought with Allah! having stayed in hell for three days he went to sit with God, and that person says that although he was crucified, atonement etc. are superstitions—would his statement cease to be the religion of the Christians because of this difference?

Second Benefit: 'Wa ka-annaha al-ula bi-ibaratin akhasar' (As if this is just the first point in more concise wording. T) There is no life in the dead; does this refer to the soul or the body? If body, then the discussion is completely irrelevant, and if soul, then by believing this you have become excluded and separate from the Ahlus Sunnah and have become liars and fabricators by attributing this to them. The Ahlus

Sunnah never consider the soul to be without life; if you say they accept death metaphorically.

Footnote: The pinnacle of Wahhabism is that same 'Nechriyat'. 12 Amna (M)

Page 931 of 948

[तालिका/बॉक्स प्रारंभ] अरबी: मॅन बिन ज़लाल क़बीलतुन मिन बनी अल-मुख़्तलक़ क़ाला समाअतु हातिफ़न मि-नल-हवाइ यतिफ़ु बि-ज़ालिका, फ़-ला अदरी अ-हफ़िज़तु अम नसीतु लाकिन अशहदू अनल-लज़ी युहद्दिसुकुम बि-हाज़ा कज़्ज़ाबुन मुबीन।

उर्दू अनुवाद: (अज्ञात) रावी हैं अबुल-तबलीश ज़लाली से। जो बनी मुख़्तलक़ के एक क़बीले बनी ज़लाल से है— उसने कहा— मैंने हवा से एक पुकारने वाले को यह पुकारते सुना, तो मुझे पता नहीं कि मुझे याद है या मैं भूल गया लेकिन इस पर गवाह रहो कि तुमसे जो व्यक्ति यह बयान कर रहा है वह खुला हुआ झूठा है। (त) [तालिका/बॉक्स समाप्त]

हम कहते हैं 'अल-कज़ूबु क़द यसदुकु (बड़ा झूठा भी कभी सच बोल देता है। त) बेशक यह पिछला उसने सच कहा 'व ला हौला व ला कुव्वता इल्ला बिल्लाहिल अलीयिल अज़ीम'। उनके रब सलामत रखें, उनका कलाम समाप्त हुआ। अच्छा यह सब जाने दो, अगर सच्चे हो तो लिखो वहाँ मुर्दे जीवितों का कलाम ज़रूर सुनते हैं मगर न कान और शरीर से बल्कि रूह (आत्मा) की शक्ति से, क्या इसे तुम कह सकते हो? हरगिज़ न कहोगे, अब पर्दा खुल गया और साफ़ रूह के बोध का इंकार प्रकट हुआ और अपने इसी दावे पर बुज़ुर्गों के कलाम को ढाला और उन्होंने मौत और संवेदनहीनता का सारा प्रभाव रूह पर डाल दिया, तो अब क्या इंकार की जगह है कि यह निश्चित रूप से दुराचारी मुअतज़िला का मज़हब है। रहा यह कि वे अज़ाब (यातना) के मुनकिर हैं तुम अज़ाब के मानने वाले, इस भेद से तुम्हारा और उनका वह समझौता ख़त्म नहीं होता। उदाहरण के तौर पर कोई पक्का वहाबी अपनी 'नीचरियत' (प्राकृतिकतावाद) के ज़ोर में यह दावा कर बैठे कि हमारे स्वामी ईसा नबी अल्लाह (उन पर अल्लाह की रहमत और शांति हो) को ज़रूर सूली दी गई, सरकश यहूदियों ने उन्हें मार डाला, तो उससे यही कहा जाएगा कि तुम्हारा यह कथन ईसाइयों का मज़हब है। क्या वह इसके जवाब में कह सकता है कि सूली दिया जाना जिस तरह वह मानता है उसे ईसाइयों का मज़हब समझना कोरी ग़लती है क्योंकि ईसाइयों का मज़हब यह है कि वे कफ़ारा (प्रायश्चित) होने के लिए सूली दिए गए, अल्लाह की पनाह! तीन दिन नर्क में रहकर ख़ुदा के पास जा बैठे, और वह व्यक्ति कहता है कि चाहे उन्हें सूली दी गई मगर कफ़ारा वगैरह की बातें अंधविश्वास हैं, क्या इस अंतर के कारण उसका वह कथन ईसाई धर्म होने से बाहर हो जाएगा!

दूसरा लाभ: 'व कानहा अल-उला बि-इबारतिन अख़्सर' (मानो यह अधिक संक्षिप्त शब्दों में पहला ही है। त) मृत में जीवन नहीं है, इससे तात्पर्य रूह है या शरीर? यदि शरीर तो बहस पूरी तरह से अप्रासंगिक है, और यदि रूह तो तुम यही मानकर अहले सुन्नत से बाहर और अलग हो गए और उनकी ओर इसकी निस्बत करके झूठे और बहकाने वाले हुए, अहले सुन्नत हरगिज़ रूह को बे-हयात (जीवन रहित) नहीं मानते, यदि कहो कि मृत्यु को अलंकारिक रूप से मानते हैं।

हाशिये का नोट: वहाबियत का पूर्ण रूप वही नीचरियत है। 12 अम्ना (म)

पृष्ठ 948 में से 931

[ٹیبل/باکس کا آغاز] عربی: مَن بن ضلال قبیلة من بني المختلق قال سمعت هاتفا من الهواء یهتف بذلك، فلا ادری احفظت ام نسیت لکن اشهدوا ان الذی یحدثکم بهذا کذاب مبین۔

اردو ترجمہ: (مجہول) راوی ہیں ابوالتبلیس ضلالی سے۔ جو بنی مختلق کے ایک قبیلہ بنی ضلال سے ہے۔ اس نے کہا۔ میں نے ہوا سے ایک ہاتف کو یہ پکارتے سنا تو مجھے پتا نہیں کہ مجھے یاد ہے یا میں بھول گیا لیکن اس پر گواہ رہو کہ تم سے جو شخص یہ بیان کر رہا ہے کھلا ہوا کذاب ہے۔ (ت) [ٹیبل/باکس کا اختتام]

ہم کہتے ہیں الکذوب قد یصدق (بڑا جھوٹا بھی کبھی سچ بول دیتا ہے۔ ت) بیشک یہ پچھلا اس نے سچ کہا ولا حول ولا قوۃ الا با للہ العلی العظیم اہ کلام سلمہ ربہ اچھا یہ سب جانے دو، اگر سچے ہو تو لکھو وہاں مردے احیاء کا کلام ضرور سنتے ہیں مگر نہ و گوش بدن بلکہ قوت روح سے، کیا اسے تم کہہ سکتے ہو؟ ہر گز نہ کہو گے ، اب پردہ کھل گیا اور صاف ادراک روح کا انکار ظاہر ہوا اور اپنے اسی دعوی پر کلام مشائخ ڈھالنا اور وہ موت وبے حسی کا سار انزلہ روح پر ڈالا ، تو اب کیا محل انکار ہے کہ یہ قطعاً مذہب معتزلہ فجار ہے۔ رہا یہ کہ وہ منکر عذاب ہیں تم قائل عذاب، اس تفرقے سے تمہارا ان کا وہ اتفاق زائل نہیں ہوتا مثلاً عہ کوئی پورا وہابی اپنی نیچریت کے زور میں دعوٰی کر بیٹھے کہ سیدنا عیسٰی نبی اللہ صلوات اللہ تعالٰی وسلامہ علیہ ضرور سولی دئے گئے ، یہود عنود نے انہیں قتل کیا، تو اس سے یہی کہا جائے گا کہ تیرا یہ قول مذہب نصاری ہے۔ کیا وہ اس کے جواب میں کہہ سکتا ہے کہ سولی دیا جانا جس طرح وہ مانتا ہے مذہب نصاری سمجھنا محض غلط ہے اس لیے کہ مذہب نصاری یہ ہے کہ وہ کفارہ ہونے کے لیے سولی دئے گئے ، معاذ اللہ تین دن جہنم میں رہ کر خدا کے ہاتھ پر جا بیٹھے ، اور وہ شخص کہتا ہے کہ ہر چند

سولی دئے گئے مگر کفارہ وغیرہ خرافات ہیں کیا اس فرقہ کے سبب اس کا وہ قول مذہب نصاریٰ ہونے سے خارج ہو جائے گا !

عائدہ ثانیہ: وکانھا الاولی بعبارۃ اخصر (گویا یہ زیادہ مختصر عبارت میں پہلا ہی ہے۔ ت) میت میں حیات نہیں، اس سے مراد روح ہے یا بدن، اگر بدن تو بحث محض بیگانہ، اور اگر روح تو تم یہی مان کر اہلسنت سے خارج و بری اور ان کی طرف ان کی طرف نسبت کرکے کذاب و مفتری ہوئے، اہلسنت ہرگز روح کے بے حیات نہیں مانتے اگر کہیے موت مجازی تو مانتے ہیں۔

عہ: وہابیت کا کمال وہی نیچریت ہے ۱۲ امنہ (م)

صفحہ 931 از 948

Fatawa Ridawiyya, Volume 9

I say: Yes, but its effect is not on the perceptions of the soul at all, as has been stated repeatedly (i.e., as has passed many times - T). The statement of the person himself regarding unconsciousness [Mulla Ji], with reference to 'Tafsir-e-Azizi', has just passed, and you are explicitly accepting that death which is the negation of and incompatible with perception. You quote the same from the words of the Mashaykh (Elders) and base your denial of hearing upon it; thus, you are certainly intending real death, and to believe this for the soul is indeed Mu'tazilism. If you say that the Mu'tazilites believe death to be the negation of absolute perception for the soul—and therefore consider the punishment of the grave to be impossible—whereas here death refers to that which is only incompatible with the perception of worldly forms and sounds, not the Barzakhi (intermediate realm) ones.

I say: Firstly, this specification is purely without evidence and is false. Accept death and know it to be incompatible with perception too, as is explicitly mentioned in the speech of the Mashaykh. Then, to restrict it to some perceptions and not others is the height of ignorance. Death, which is incompatible with perception, is incompatible with every perception; otherwise, it is incompatible with none. In your own 'Tafheem-ul-Masail', out of ignorance, you quoted it as your own supporting evidence.

In Madarik it is written: 'Tawaffiyaha' means causing them to die, which is to strip away that by which it is alive, sensitive, and perceiving. 1 | In Madarik it is written: The meaning of 'Tawaffi' is to give them death, which is that from which that thing by which they are alive, sensory, and perceiving is stripped away. (T)

Then he wrote:

Imam Raghib said in Mufradat that: 'Death is the cessation of the sensory power'. 2 | Imam Raghib stated in Mufradat: Death is the name for the cessation of sensory power. (T)

Why, gentlemen! When even a trace of the power of sense and perception has vanished and the perceiver has departed, then how can some perception remain, O Lord! What kind of death is this that it is half-hearing, half-deaf, half-blind? If even a single instance of perception remains, then life is established and death is negated; for life, by rational consensus, is a condition for perception. And death, which is incompatible with the conditioned [perception], will neither be realized without the condition nor be incompatible [if the condition exists].

Annotation 1: It is indeed correct like this. In 'Tafheem-ul-Masail', this was made 'Mahi Jathiyya' and even in the errata, its correction was not made, whereas it is completely wrong. 12 منه (m) | The correct version is also this (Mahi bi Hayyah). In 'Tafheem-ul-Masail' it was made 'Mahi Jathiyya' and even in the errata, its correction was not made, whereas it is completely wrong. (T)

Annotation 2: That is, whoever disagrees with this has departed from the realm of reason, so he is no longer among the people of reason; and these are the few individuals of the humiliated Salihiya sect. 12 منه (m) | Meaning, whatever statement it is, it has departed from reason, so he is no longer among the people of reason; and these are the few individuals of the humiliated Salihiya sect. (T)

1. Tafheem-ul-Masail, Adam Sama' Mauti (Non-hearing of the dead) from the books of Hanafiyya, Matba' Muhammadi Lahore, p. 82.
2. Tafheem-ul-Masail, Adam Sama' Mauti (Non-hearing of the dead) from the books of Hanafiyya, Matba' Muhammadi Lahore, p. 82.

फतावी रज़विया, जिल्द 9

मैं कहता हूँ: हाँ, लेकिन इसका असर रूह (आत्मा) के इदराकात (अनुभूतियों) पर बिल्कुल नहीं पड़ता, जैसा कि बार-बार गुज़र चुका है (यानी, जैसा कि कई बार उल्लेख किया गया है - टी)। मुल्ला जी की अपनी इबारत (कथन) बेहोशी के बारे में, जो 'तफ़सीर-ए-अज़ीज़ी' के हवाले से है, अभी गुज़री है और आप स्पष्ट रूप से उस मौत को मान रहे हैं जो इदराक (बोध) की नफ़ी (निषेध) और मनाफ़ी (विरोधी) है। इसी को आप मशाईख़ के कलाम (बुज़ुर्गों की वाणी) से नक़ल करते हैं और इसी पर 'समा' (सुनने) के इनकार की बुनियाद रखते हैं; तो आप निश्चित रूप से हक़ीक़ी (वास्तविक) मौत मुराद ले रहे हैं और उसे रूह के लिए मानना, यही एतेज़ाल (मुअतज़िला विचारधारा) है। अगर आप कहें कि मुअतज़िला तो रूह के लिए मौत को मुतलक़ (पूर्ण) इदराक के मनाफ़ी मानते हैं, और इसीलिए वे क़ब्र के अज़ाब को मुहाल (असंभव) जानते हैं, जबकि यहाँ मुराद वह मौत है जिसे सिर्फ दुनियावी सूरतों और आवाज़ों के इदराक से तनाफ़ी (विरोध) हो, न कि बरज़ख़ी (मध्यवर्ती लोक के) इदराक से।

मैं कहता हूँ: पहली बात तो यह कि यह तख़्सीस (विशिष्टीकरण) महज़ बे-दलील और बातिल (असत्य) है। मौत भी मानो और उसे इदराक के मनाफ़ी भी जानो, जैसा कि मशाईख़ के कलाम में वाज़ेह (स्पष्ट) है। फिर उसे कुछ इदराकात के लिए ख़ास करना और दूसरों के लिए नहीं, यह सख़्त जहालत है। मौत, जो इदराक के मनाफ़ी है, वह हर इदराक के मनाफ़ी है; वरना किसी के भी नहीं। ख़ुद इसी 'तफ़हीम-उल-मसाइल' में जहालत के कारण इसे अपनी सनद (प्रमाण) समझ कर नक़ल किया गया है।

मदारिक में लिखा है: 'तौफ़ियाहा' का अर्थ है उन्हें मौत देना, जो कि वह है जिससे वह वस्तु जिसके कारण वे जीवित, संवेदी और बोधगम्य हैं, छीन ली जाती है। 1 | मदारिक में लिखा है: तौफ़ी का अर्थ उन्हें मौत देना है, वह यह कि जिस चीज़ की वजह से ये ज़िंदा, हस्सास (संवेदनशील), और इदराक वाले हैं उसे छीन लिया जाए। (टी)

फिर लिखा है:

इमाम राग़िब ने मुफ़रदात में कहा कि 'मौत संवेदी शक्ति के ज़वाल (अंत) का नाम है'। 2 | इमाम राग़िब ने मुफ़रदात में फ़रमाया: मौत कुव्वत-ए-इहसास के ज़वाल का नाम है। (टी)

क्यों हज़रात! जब कुव्वत-ए-हिस-ओ-इदराक की बू तक ज़ायल (नष्ट) हो गई और मुदरिक (बोध करने वाला) चला गया, तो ऐ रब्ब! अब बाज़ (कुछ) का इदराक कैसे होगा! यह कैसी मौत है कि आधी सुनने वाली, आधी बहरी, आधी अंधी? अगर एक फ़र्द (इकाई) इदराक भी बाक़ी है तो हयात (जीवन) साबित है और मौत मुंतफ़ी (नकारी गई), क्योंकि अक़्लन हयात इदराक के लिए शर्त है। और मौत जो मशरूत (शर्तयुक्त चीज़ यानी इदराक) के मनाफ़ी है, वह न तो शर्त के बिना मुतहक़्क़िक़ (सिद्ध) होगी और न ही मनाफ़ी होगी।

टिप्पणी 1: सही भी इसी तरह है। 'तफ़हीम-उल-मसाइल' में इसे 'माही जथिया' बना दिया गया था और ग़लत-नामे में भी इसकी तसहीह (सुधार) नहीं की गई, जबकि यह बिल्कुल ग़लत है। 12 منه (m) | सही भी इसी तरह है (माही बि हय्याह)। 'तफ़हीम-उल-मसाइल' में इसे 'माही जथिया' बना दिया गया था और ग़लत-नामे में भी इसकी तसहीह नहीं की गई, जबकि यह बिल्कुल ग़लत है। (टी)

टिप्पणी 2: अर्थात, जो कोई इसके विरुद्ध हो वह माक़ूल (तर्क) से ख़ारिज है, तो वह अक़्ल वालों में से नहीं रहा; और ये ज़लीला सालेहिया फ़िरक़े के चंद अफ़राद (लोग) हैं। 12 منه (m) | यानी जो बात हो वह माक़ूल से ख़ारिज हुई तो अक़्ल वालों से न रहा, और यह फ़िरक़ा ज़लीला सालेहिया वाले चंद अफ़राद हैं। (टी)

1. तफ़हीम-उल-मसाइल, अदम समा-ए-मौती, हनफ़िया की किताबों से, मतबा मुहम्मदी लाहौर, पृ. 82।
2. तफ़हीम-उल-मसाइल, अदम समा-ए-मौती, हनफ़िया की किताबों से, मतबा मुहम्मदी लाहौर, पृ. 82।

पृष्ठ 932 / 948

فتاوی رضویہ جلد نہم

اقول : ہاں مگر اس کا اثر ادراکات روح پر اصلاً نہیں کما مر مراراً (جیسا کہ کئی بار گزرا ۔ ت) خود ملا جی کی عبارت بیہوشی مظہر حوالہ تفسیر عزیزی ابھی گزری اور تم صراحتہً وہ موت مان رہے ہو جو نافی و منافی ادراک ہے اسی کو کلام مشائخ سے نقل کرتے اور اسی پر انکارِ سماع کی بناء رکھتے ہو تو قطعاً موت حقیقی مراد لیتے ہو اور اسے روح کے لیے ماننا ، یہی اعتزال ہے ۔ اگر کہئے معتزلہ تو روح کے لیے موت منافی مطلق ادراک مانتے ہیں ، ولہٰذا عذاب قبر محال جانتے ہیں اور یہاں مراد وہ موت ہے جسے صرف ادراک صور و اصوات دنیاوی سے تنافی ہو نہ برزخیہ سے ۔

اقول : اولاً یہ تخصیص محض بے دلیل و باطل ہے ، موت بھی مانو منافی ادراک بھی جانو ، جیسا کہ کلام مشائخ میں مصرح ہے پھر اسے ادراک بعض دون بعض سے خاص کرو ، یہ جہل افج ہے موت کہ منافی ادراک سے ہر ادراک کے منافی ہے اور نہیں تو کسی کے نہیں ، خود اسی تفہیم المسائل میں براہ جہالت اپنی سند سمجھ کر نقل کیا۔

در مدارك نوشته توفیها اماتتها وهو ان یسلب ماهی به حیة حساسة دراکة 1۔ | مدارک میں لکھا ہے : توفیٰ کا معنی انہیں موت دینا وہ یہ کہ جس امر کی وجہ سے یہ زندہ، حساس، بادراک ہیں اسے سلب کر لیا جائے۔ (ت)

پھر لکھا:

امام راغب در مفردات گفته که الموت زوال القوة الحساسة 2۔ | امام راغب نے مفردات میں فرمایا: موت قوت احساس کے زوال کا نام ہے۔ (ت)

کیوں حضرات ! جب رائحہ حس و ادراک کی قوت زائل ہو گئی مدرک کی چل دی تو اب ادراک بعض کا ہے سے ہوگا یارب ! یہ موت کون سی کہ آدھی کو شنوا آدھی سے بہری ، آدھی سے اندھی ، ایک فرد ادراک بھی باقی ہے تو حیات ثابت ہے اور موت منتفی کہ حیات باجماع عقلاً شرط ادراک ہے اور موت منافی مشروط نہ بے شرط متحقق ہوگا نہ منافی

عہ1: صحیح ہم چناں ایست و در تفہیم المسائل ایں را ماہی جثیہ ساختہ و در غلط نامہ ہم بہ تصحیحش نہ پرداختہ پر غلط است ۱۲منہ (م) | صحیح بھی اسی طرح ہے (ماہی بہ حیہ) تفہیم المسائل میں اسے ماہی جثیہ بنا دیا اور غلط نامہ میں بھی اس کی تصحیح نہ کی جبکہ یہ بالکل غلط ہے۔ (ت)

عہ2: ای ومن خالف فقد خرج من المعقول فکان لم یبق من اھل العقول وھم الشرذمۃ الذلیلۃ الصالحیۃ ۱۲منہ (م) | یعنی جو بات ہو اوہ معقول سے خارج ہوا تو اہل عقول سے نہ رہا، اور یہ فرقہ ذلیلہ صالحیہ والے چند افراد ہیں۔ (ت)

1 تفہیم المسائل عدم سماع موتیٰ از کتب حنفیہ مطبع محمدی لاہور ص ۸۲ 2 تفہیم المسائل عدم سماع موتیٰ از کتب حنفیہ مطبع محمدی لاہور ص ۸۲

Fatawa Rizvia Volume 9

...attached to what contradicts it. Secondly, even so, where is the escape from Mu'tazilism? When you accept the persistence of perception of barzakh matters—knowledge, hearing, and sight—despite death, then even if it's not the doctrine of general Mu'tazilites, it is certainly the methodology of the Salihia sect from among the Mu'tazilites. You yourself mentioned this in the same 'Tafhim al-Masa'il', showing extreme foolishness against the Ahl al-Sunnah, stating:

“It is written in Sharh al-Mawaqif that the permission of the establishment of knowledge, power, will, hearing, and sight with the deceased is the doctrine of the Salihia sect of the Mu'tazilites.”[1] (T)

A sensible person didn't realize that when did the Ahl al-Sunnah ever consider one described as 'dead' to be simultaneously described as having 'perception' while still being 'dead'? Those for whom they accept perceptions, they never call them 'dead' but always consider them 'alive'. However, yes, now you have considered the soul to be 'dead' and also established the perceptions of the barzakh to justify the punishment of the grave. This is exactly the Salihia doctrine; they also believed in punishment in the same way. The text from 'Mustakhlas al-Haqaiq', a reliable source on a hundred issues, was mentioned in the seventh argument of the first answer: that according to the Salihia, the deceased is punished despite death. Also, in the same discussion in 'Kifayah', it says:

“From Abu al-Hasan al-Salihy: The deceased is punished without life because, according to him, life is not a condition for the establishment of pain.”[2]

It is narrated from Abu al-Hasan Salihah that the deceased is punished without life because, according to him, life is not a condition for the feeling of pain. (T)

Furthermore, the same Imam 'Ayni states in 'Umdat al-Qari after mentioning the Salihah doctrine:

“And this is a departure from reason because inanimate matter has no sense, so how can its punishment be imagined?”[3]

And this is a departure from reason because an inanimate object has no sense, so how can its punishment be conceived? (T)

If you say, "We believe in these perceptions through the return of life, unlike the Salihah," I say: come to your senses! Did the soul have perception of barzakh matters

before this return of life or not? If not, then the veil is removed and the excuse is exposed—it is proven that you attributed to the soul the same death that absolutely contradicts perception. Now you have joined the general Mu'tazilites. And if yes, then the pretext of the 'return of life' is gone.

[1] Tafhim al-Masa'il: Adam-e-Sama' Mawta from Hanafi Books, Matba' Muhammadi Lahore, p. 88. [2] Kifayah with Fath al-Qadir, Chapter on Oath regarding Striking etc., Nuria Rizvia Sukkur, 4/461. [3] 'Umdat al-Qari Sharh Bukhari, Chapter: The deceased hears the sound of sandals, Beirut, 7/17.

फ़तावा रज़विया जिल्द नवीं

...विरोधी से जुड़ा हुआ। दूसरे, इस तरह भी एतज़ाल (Mu'tazilism) से कहाँ छुटकारा, जब मौत के बावजूद बरज़ख़ के मामलों के बोध (इल्म, समाअत और बसारत) को बाक़ी माना जाए, तो भले ही यह आम मोअतज़िला का मज़हब न हो, पर मोअतज़िला के गिरोह 'सालिहिया' का तरीक़ा तो है ही, जिसका ज़िक्र आपने उसी 'तफ़हीमुल मसाइल' में अहल-ए-सुन्नत के मुक़ाबले में निहायत बेवकूफ़ी के साथ किया था कि:

"शरह मवाक़िफ़ में लिखा है कि मैयत के साथ इल्म, क़ुदरत, इरादा और समाअत व बसारत का क़ायम मानना मोअतज़िला के गिरोह सालिहिया का मज़हब है।"[1] (त)

होशमंद को इतनी समझ न आई कि अहल-ए-सुन्नत ने किस दिन मौत की सिफ़त वाले को मौत की हालत में ही बोध (इदरीक) वाला माना था? वे तो जिनके लिए बोध मानते हैं, उन्हें हरगिज़ मैयत (मुर्दा) नहीं कहते, बल्कि हमेशा ज़िंदा मानते हैं। लेकिन हाँ, अब आपने रूह को मैयत भी माना और क़ब्र के अज़ाब को सही साबित करने के लिए बरज़ख़ी बोध भी साबित किए। यह पूरी तरह सालिहिया का मज़हब है; वे भी इसी तरह अज़ाब के कायल हुए हैं। 'मुस्तखलसुल हक़ायक़' की इबारत, जो सौ मसाइल पर मुस्तनद है, पहले जवाब की सातवीं दलील में गुज़री कि सालिहिया के नज़दीक मैयत मौत के बावजूद अज़ाब पाती है। इसी तरह 'किफ़ाया' की इसी बहस में है:

"अबू अल-हसन अल-सालिही से मरवी है कि मुर्दे को बिना जीवन के अज़ाब दिया जाता है क्योंकि उनके नज़दीक दर्द महसूस होने के लिए जीवन शर्त नहीं है।"[2]

अबू अल-हसन सालिहा से नक़ल है कि मैयत को बिना हयात के अज़ाब होता है क्योंकि उनके नज़दीक दुख की अनुभूति के लिए हयात शर्त नहीं। (त)

साथ ही वही इमाम ऐनी 'उम्दतुल क़ारी' में सालिहा मज़हब का ज़िक्र करने के बाद फ़रमाते हैं:

"और यह अक़्ल के खिलाफ है क्योंकि बेजान चीज़ में कोई एहसास नहीं होता, तो उसकी सज़ा की कल्पना कैसे की जा सकती है?"[3]

और यह अक़्ल से ख़ारिज है क्योंकि जमाद (बेजान) के पास एहसास नहीं होता तो उसकी तक़लीफ़ कैसे मुसव्वर (कल्पित) होगी। (त)

अगर आप कहें कि हम ये बोध 'जीवन की वापसी' (औद-ए-हयात) के ज़रिए मानते हैं, सालिहा के विपरीत, तो मैं कहता हूँ: ज़रा होश में आएं और बताएं कि क्या इस जीवन की वापसी से पहले भी रूह को बरज़ख़ी मामलों का बोध था या नहीं? अगर नहीं, तो पर्दा हट गया और बहाना खुल गया—यह साबित हो गया कि आपने रूह के लिए वही मौत मानी जो मुतलक़ बोध के ख़िलाफ़ है। अब आप आम मोअतज़िला में जा मिले। और अगर हाँ, तो जीवन की वापसी का बहाना ही ख़त्म हो गया।

[1] तफ़हीमुल मसाइल अदम-ए-समाअ मौता, हनफ़ी किताबों से, मतबा मुहम्मदी लाहौर, पृ. 88 [2] किफ़ाया मअ फ़तह अल-क़दीर, बाबुल यमीन फ़िज़्ज़र्ब अलख, नूरिया रज़विया सुक्कुर, 4/461 [3] 'उम्दतुल क़ारी शरह बुख़ारी, बाबुल मैयत यस्मउ ख़फ़क़ अन-नाल, बेरूत, 7/17

فتاوی رضویہ جلد نہم

منافی سے ملتصق۔ ثانیاً یوں بھی اعتزال سے مفر کہاں، جب باوصف موت ادراکات امور برزخ علم وسمع وبصر باقی مانے تو اور معتزلہ کا مذہب نہ سہی، طوائف معتزلہ سے فرقہ صالحیہ کا مشرب سہی، جس کا ذکر آپ نے اسی تفہیم المسائل میں بہ شدت سفاہت مقابل اہلسنت کیا تھا کہ:

در شرح مواقف نوشتہ کہ تجویز قیام علم و قدرت و ارادہ و سمع و بصر میت مذہب فرقہ صالحیہ از معتزلہ لہ است[1]۔ شرح مواقف میں لکھا ہے کہ میت کے ساتھ علم، قدرت، ارادہ اور سمع و بصرہ قائم ماننا معتزلہ کے فرقہ صالحیہ کا مذہب ہے۔ (ت)

ذی ہوش کو اتنی نہ سوجھی کہ اہل سنت نے کس دن موصوف بالموت کو بحال موصوف بالموت بالادراک مانا تھا، وہ تو جس کے لیے ادراکات مانتے ہیں اسے ہر گز میت نہیں کہتے ہمیشہ زندہ جانتے ہیں، مگر ہاں اب آپ نے روح کو میت بھی مانا اور عذاب قبر ٹھیک کرنے کے لیے ادراکات برزخیہ بھی ثابت کیے، یہ عین مذہب صالحیہ سے وہ بھی اسی طور پر قائل عذاب ہوئے ہیں، اسی مستخلص الحقائق مستند مائتہ مسائل کی عبارت جواب اول کی دلیل ہفتم میں گزری کہ صالحہ کے نزدیک میت باوصف موت معذب ہوتا ہے، نیز اسی کفایہ کی اسی بحث میں ہے:

عن ابی الحسن الصالحی یعذب المیت من غیر حیاۃ اذ الحیاۃ عندہ لیست بشرط لثبوت الالم[2]۔ ابو الحسن صالحہ سے منقول ہے کہ میت کو بغیر حیات کے عذاب ہوتا ہے اس لیے کہ اسی کے نزدیک ثبوت الم کے لیے حیات شرط نہیں۔ (ت)

نیز وہی امام عینی عمدۃ القاری میں بعد ذکر مذہب صالحہ فرماتے ہیں:

و ھذا خروج عن العقول لان الجماد لا حس لہ فکیف یتصور تعذیبہ[3]۔ اور یہ معقول سے خروج ہے اس لیے کہ جماد کے پاس حس نہیں ہوتی تو اس کی تعذیب کیونکر متصور ہوگی۔ (ت)

اگر کہیے ہم یہ ادراکات بعودِ حیات مانتے ہیں بخلاف صالحہ اقول ذرا ہوش میں آکر بھلا اس عودِ حیات پہلے بھی روح کو ادراک امور برزخیہ تھا یا نہیں، اگر نہیں تو حجاب منکشف اور عذر منکسف، ثابت ہوا کہ تم نے روح کو وہی موت مانی جو منافی مطلق ادراک ہے۔ اب عام معتزلہ میں جاملے، اور اگر ہاں تو عود حیات کا حیلہ اٹھ گیا۔

[1] تفہیم المسائل عدم سماع موتی از کتب حنفیہ مطبع محمدی لاہور ص ۸۸ [2] کفایۃ مع فتح القدیر باب الیمین فی الضرب الخ نوریہ رضویہ سکھر ۴ / ۴۶۱ [3] عمدۃ القاری شرح بخاری باب المیت یسمع خفق النعال بیروت ۷ / ۱۷

Fatawa-e-Razvia, Volume 9

The soul of the deceased, in the state of death without the return of life, was possessor of perceptions. Now they have joined the Mu'tazilah Salihiyah. Where is the escape? Will you remember who you dealt with? Yes, the point of departure was that you should consider all these sayings and discussions regarding the body, and consider the soul pure and clear from all these burdens. The Mashaikh (scholars) call the body alone dead and devoid of understanding, and they deny its hearing in the state of death. Now they have come to their senses, but alas, where are you and where is the word of Truth? And Allah is the one whose help is sought against every arrogant ignorant person. (T)

Thirdly, you are a blatant liar; there is no sign of specification in the words of the Mashaikh; rather, there is an explicit text for their invalidation. Did they not raise the doubt of punishment in the grave by calling death incompatible with perception? Did they not answer it with the return of life? Did Mulla Tafheemi himself not say in his own foot-shooting manner that:

[Boxed Text] (Persian): The objective of the jurists by denying hearing in this place is the denial of both customary and real hearing. This is because the jurists denied hearing absolutely and did not restrict it to custom. If only the denial of customary hearing was intended and not real hearing, there would have been no need to answer the issue of punishment in the grave, nor would there have been a need for the interpretation of other events that indicate the hearing of the dead. Is this anything other than an interpretation with which its proponent would not be pleased? 1 (Urdu Translation): The objective of the jurists (Fuqaha) by denying 'Sama' (hearing) in this place is the denial of both customary (Urfi) and real (Haqiqi) hearing. This is because the jurists denied 'Sama' absolutely and did not restrict it to custom. If real hearing was not intended and only the denial of customary hearing was intended, there would have been no need to answer the issue of punishment in the grave, nor would there have been a need for the interpretation of other events that indicate the hearing of the dead. This is such an interpretation that its proponent would not agree with. (T)

So it is definitively proven that they consider this death as absolutely incompatible with perception and consider the perception of the affairs of Barzakh (intermediary realm) also impossible. Thus, when the speech is attributed to the soul, it is definitively not exempt from the calamity of Mu'tazilism.

Third Benefit: By the grace of Allah Almighty, it became clear here that the excuse of the void veil and barrier of bricks and mud in the lack of perception of worldly affairs, and Mulla Tafheemi's grand excuse of preoccupation and absorption which he wrote on pages 62 and 63:

[Boxed Text] (Persian): Pure souls, being detached from bodies, due to being occupied in the worship of the True Lord and absorbed in its quality, do not pay attention to the beings and events of this world. 2 (Urdu Translation): Pure souls, detached from bodies, due to being occupied in the worship of the True Lord and absorbed in its quality, do not pay attention to the beings and events of this world. (T)

1. Tafheem-ul-Masail, Lack of Hearing of the Dead from books of Hanafiyyah, Muhammadi Press, Lahore, p. 83.
2. Tafheem-ul-Masail, Seeking Help from the Person in the Grave, Muhammadi Press, Lahore, p. 58.

फ़तावा-ए-रज़विया, खंड 9

मृतक की आत्मा, जीवन की वापसी के बिना मृत्यु की अवस्था में, धारणाओं (perceptions) की स्वामी थी। अब वे मुतज़िला सालिहिया में शामिल हो गए हैं। पलायन कहाँ? क्या तुम याद करोगे कि तुम्हारा किससे पाला पड़ा था? हाँ, प्रस्थान का बिंदु यह था कि आप इन सभी कथनों और चर्चाओं को शरीर के बारे में मानें, और आत्मा को इन सभी बोझों से पवित्र और स्वच्छ मानें। मशाइख (विद्वान) केवल शरीर को मृत और समझ से रहित कहते हैं, और मृत्यु की स्थिति में उसके सुनने (समाअ) से इनकार करते हैं। अब वे होश में आ गए हैं, लेकिन अफ़सोस, तुम कहाँ और सत्य का वचन कहाँ? और अल्लाह ही वह है जिससे हर अहंकारी अज्ञानी के विरुद्ध सहायता माँगी जाती है। (त)

तीसरा, आप एक सफेद झूठ बोलने वाले हैं; मशाइख के शब्दों में विशिष्टता का कोई संकेत नहीं है; बल्कि, उनके अमान्य होने पर स्पष्ट पाठ (तनसीस) मौजूद है। क्या उन्होंने मृत्यु को धारणा के प्रतिकूल बताकर कब्र की सजा का संदेह उत्पन्न नहीं किया? क्या उन्होंने जीवन की वापसी के साथ इसका उत्तर नहीं दिया? क्या मुल्ला तफ़हीमी ने खुद अपने ही पैर पर कुल्हाड़ी मारते हुए नहीं कहा कि:

[बॉक्स टेक्स्ट] (फ़ारसी): इस स्थान पर सुनने को नकारने से फ़ुक़हा का उद्देश्य प्रथागत और वास्तविक दोनों प्रकार के सुनने का खंडन करना है। ऐसा इसलिए है क्योंकि फ़ुक़हा ने सुनने का पूर्णतः खंडन किया है न कि इसे प्रथा तक सीमित किया है। यदि केवल प्रथागत सुनने का खंडन अभीष्ट होता और वास्तविक का नहीं, तो कब्र की सज़ा के मसले का उत्तर देने की आवश्यकता नहीं होती, और न ही अन्य घटनाओं की व्याख्या करने की आवश्यकता होती जो मृतकों के सुनने का संकेत देती हैं। क्या यह ऐसी व्याख्या के अलावा कुछ और है जिससे इसका प्रतिपादक प्रसन्न नहीं होगा? 1 (उर्दू अनुवाद): इस स्थान पर नफी समाअ (सुनने को नकारने) से फ़ुक़हा का उद्देश्य समाअ उर्फी (प्रथागत) और हक़ीक़ी (वास्तविक) दोनों की नफी है, इसलिए कि फ़ुक़हा ने समाअ की नफी मुतलक़ (पूर्णतः) की है न कि उर्फ़ की जगह क़ैद लगा कर। अगर हक़ीक़ी नहीं, सिर्फ़ उर्फी समाअ की नफी मक़सूद होती तो मसला अज़ाबे क़ब्र का जवाब देने की ज़रूरत न थी और दूसरे वक़ाय जो समाअ मौती पर दलालत करते हैं न उनकी तौजीह (व्याख्या) की ज़रूरत थी, यह ऐसी तौजीह है जिस पर इसका क़ायल (प्रतिपादक) राज़ी न हो। (त)

तो यह निश्चित रूप से सिद्ध है कि वे इस मृत्यु को धारणा का पूर्णतः विरोधी मानते हैं और इसके होने पर बरज़ख के मामलों की धारणा को भी असंभव मानते हैं। तो जब वाणी को आत्मा पर आरोपित किया गया, तो वह निश्चित रूप से मुतज़िलावाद की आपदा से मुक्त नहीं हुई।

तीसरा लाभ: अल्लाह तआला के अनुग्रह से यहाँ स्पष्ट हो गया कि सांसारिक मामलों की धारणा न होने में ईंटों और मिट्टी के व्यर्थ पर्दे और बाधा का बहाना, और मुल्ला तफ़हीमी साहब का तल्लीनता और लीनता का बड़ा बहाना जो उन्होंने पृष्ठ 62 और 63 पर लिखा है:

[बॉक्स टेक्स्ट] (फ़ारसी): पवित्र आत्माएं शरीरों से अलग होने के कारण, सच्चे रब की इबादत में व्यस्त रहने और उसकी गुणवत्ता में लीन रहने के कारण, इस दुनिया के प्राणियों और घटनाओं की ओर ध्यान नहीं देतीं। 2 (उर्दू अनुवाद): शरीरों से अलग पवित्र आत्माएं सच्चे रब की इबादत में व्यस्त रहने और उसकी गुणवत्ता में लीन रहने के कारण इस दुनिया के प्राणियों और घटनाओं की ओर ध्यान नहीं देतीं। (त)

1. तफ़हीमुल मसायल, मृतकों का न सुनना, हनफिया की किताबों से, मुहम्मदी प्रेस, लाहौर, पृष्ठ 83।
2. तफ़हीमुल मसायल, साहिबे क़ब्र से मदद माँगना, मुहम्मदी प्रेस, लाहौर, पृष्ठ 58।

روح میت بحال ممات بے عودِ حیات صاحبِ ادراکات تھی۔ اب معتزلہ صالحیہ میں جاملے۔ مفر کدھر، کیا یاد کرو گے کہ کسی سے پالا پڑا تھا، ہاں مفراس میں تھا کہ ان سب اقوال واہیحات کو درباره بدن ماننے اور روح کو ان تمام بر دومّات سے پاک وصاف جانیے، بدن ہی کو مشائخ مرده بے فہم کہتے اور اسی کے سماع بحال موت سے انکار رکھتے ہیں، اب ٹھکانے سے آگئے مگر ہیہات کہاتم اور کہاں حق کا قول واللہ المستعان علی کل متکبر جھول (ہر متکبر جاہل کے برخلاف اللہ تعالٰی حاصل ومدد گار ہے۔ ت)

ثالثاً صریح جھوٹے ہو، کلامِ مشائخ میں نشانِ تخصیص مفقود، بلکہ ان کے بطلان پر تنصیص موجود، کیا انھوں نے موت کو منافیِ ادراک بتا کر شبہ عذاب قبر وارد نہ کیا؟ کیا عودِ حیات سے اس کا جواب نہ دیا؟ کیا خود ملا تفہیمی نے اپنی پاؤں میں تیشہ زنی کو نہ کہا کہ:

[باکس ٹیکسٹ] مقصود فقہاء از نفی سماع دریں مقام نفی سماع عرفی و حقیقی ہر دو ست زیرا کہ فقہا نفی سماع مطلق کردہ اند نہ بتقیدِ عرف واگر نفی صرف سماع عرفی نہ حقیقی مقصود می بود حاجت جواب دادن از مسئلہ عذاب قبر نبود و توجیہ کردن دیگر وقائع کہ بر سماع موتی دال است فھل ھذا الاتوجیہ بما لا یرضی بہ قائلہ۔ ۱ اس مقام پر نفی سماع سے فقہاء کا مقصود سماع عرفی و حقیقی دونوں کی نفی ہے اس لیے کہ فقہاء نے سماع کی نفی مطلق کی ہے نہ کہ عرف کی جگہ قید لگا کر۔ اگر حقیقی نہیں۔ صرف عرفی سماع کی نفی مقصود ہوتی تو مسئلہ عذابِ قبر کا جواب دینے کی ضرورت نہ تھی اور دوسرے وقائع جو سماع موتی پر دلالت کرتے ہیں نہ ان کی توجیہ کی ضرورت تھی یہ ایسی توجیہ ہے جس پر اس کا قائل راضی نہ ہو (ت)

تو قطعاً ثابت کہ وہ اس موت کو منافیِ مطلق ادراک مانتے اور اس کے ہوتے امور برزخ کا ادراک بھی منتفی جانتے ہیں تو جب کلام روح پر محمول ہوا قطعاً آفتِ اعتزال سے نامعزول ہوا۔

عائدہ ثالثہ: بحمد للہ تعالٰی یہاں سے واضح ہوا کہ عدمِ ادراکِ امورِ دنیویہ میں عذرِ باطل حجاب وحائل خشت وگل، اور ملا تفہیمی صاحب کا عذرِ طمطراق اشتغال واستغراق کہ صفحہ ۶۲ و ۶۳ میں لکھا:

[باکس ٹیکسٹ] ارواح طیبہ مجردہ از ابدان بہ جہت اشتغال عبادت رب حقیقی واستغراق بہ کیفیت آں التفات باکوان و حوادث این عالم ندارند۔ ۲ اجسام سے مجرد ارواحِ طیبہ رب حقیقی کی عبادت میں اشتغال اور اس کی کیفیت میں استغراق کے باعث اس دنیا کے موجودات وحوادث کی جانب التفات نہیں رکھتیں۔ (ت)

1 تفہیم المسائل عدم سماع موتی از کتب حنفیہ مطبع محمدی لاہور ص ۸۳ 2 تفہیم المسائل استمداد از صاحبِ قبر مطبع محمدی لاہور ص ۵۸

Fatawa Ridawiyyah Volume 9

They were purely absurd, improper, and baseless.

I say (Aqool): When you people use the words of the elders as evidence and attribute this impossible meaning to them, what room remains for these cold excuses!

Firstly: The elders consider death itself to be antithetical to perception because of the negation of the original sensory and perceptive power. The gist of these excuses is that the perceptive power exists and is complete, but there is a barrier or lack of attention.

Secondly: They consider this death to be antithetical to absolute perception without specification of worldly matters, while your excuses are specific to those external matters.

Thirdly: The barrier and veil are on the body, whereas the discussion is about the soul.

Fourthly: The veil and obstruction are only for the buried person, only after burial until discovery, while the discussion is general without disagreement.

Fifthly: The veil of your barrier was torn the very day the elders accepted the hearing of the sound of footsteps at the time of questioning, and Mulla Tafhimi gave the glad tidings that "at the time of questioning and answering, everyone is a proponent of hearing" [1].

Sixthly: Occupying oneself with worship and being absorbed in that state should not be considered general for all the dead. Rather, say that if one is blessed, it is the pleasure of the blessing, or, God forbid, if one is punished, being absorbed in the intensity of punishment prevents hearing. I say (note): In this state of pleasure or pain, is questioning impossible or possible? According to the first assumption, let the evidence for impossibility be stated. If more detail is desired, recall the discourse on the first objective, first type, first question. According to the second assumption, existence and non-existence are equal for the possible side, and Barzakh is a hidden realm...

Note: I say (Aqool): Regarding the survival of the soul and its perceptions after separation, if considering 'istishab' (presumption of continuity) insufficient, you consider us as claimants, then this claim is proven by such definitive texts and radiant consensus in which no one, whether friend or foe, has room for hesitation. Finally,

the opponents also believe in the generalization of punishment and perceptions of intermediary (Barzakh) affairs. After this, in the disputed issue, the obvious truth is clearly with us: when the perceiver remains, perception remains. Then, whoever believes in the negation of some [perceptions] is the one claiming specification and should present evidence. If, for the sake of argument, looking at the apparent words, one believes the opposite, our claim is hearing, and the auditory evidence whose acceptance is obligatory became clear in the second and third objectives. Thus, there is no room for denial on any premise, and there is no denial of the claim itself, especially after the establishment of evidence. Necessarily, these excuses are a station of reasoning, and now this is the law of debate and the reflected duties. So preserve it, you will be preserved. 12 Minhu (M).

1. Tafheem-ul-Masail regarding the non-hearing of the dead from Hanafi books, Mohammadi Press Lahore, p. 81.

फ़तावा रज़विया जिल्द नवीं

वे पूरी तरह से व्यर्थ, अनुचित और निराधार थे।

मैं कहता हूँ (अक़ूल): जब आप लोग बुज़ुर्गों (मशायख) के कलाम से दलील पकड़ते हैं और उन्हें इस असंभव अर्थ पर महमूल करते हैं, तो आपके पास इन ठंडे बहानों की क्या गुंजाइश है!

पहला: बुज़ुर्ग तो स्वयं मृत्यु को ही बोध (इदाराक) के विपरीत मानते हैं क्योंकि मूल संवेदी और बोध शक्ति समाप्त हो जाती है। और इन बहानों का सार यह है कि बोध शक्ति मौजूद और पूर्ण है लेकिन पर्दा बीच में है या ध्यान हट गया है।

दूसरा: वे इस मृत्यु को बिना किसी सांसारिक मामलों के विशेषीकरण के पूर्ण बोध के विपरीत मान रहे हैं, और आपके बहाने उन्हीं बाहरी मामलों के साथ विशेष हैं।

तीसरा: रुकावट और पर्दा शरीर पर है और चर्चा रूह (आत्मा) के बारे में है।

चौथा: पर्दा और आड़ केवल दफन किए गए व्यक्ति के लिए है, केवल दफनाने के बाद से रहस्योद्घाटन न होने तक, जबकि चर्चा बिना किसी मतभेद के सामान्य है।

पांचवां: आपकी रुकावट और पर्दे का पर्दा तो उसी दिन फट गया था जिस दिन बुज़ुर्गों ने सवाल के समय जूतों की आवाज़ सुनने (समाअ) को स्वीकार किया था और मुल्ला तफ़हीमी ने यह खुशखबरी सुनाई थी कि "सवाल और जवाब के समय सभी सुनने के पक्षधर हैं" [1]।

छठा: इबादत में व्यस्तता और उसी अवस्था में तल्लीनता को सभी मृतकों के लिए सामान्य न मानें। बल्कि यों कहें कि यदि वह कृपापात्र (मुनइम) है तो नेमत का आनंद, या खुदा न करे अगर वह अज़ाब में है तो अज़ाब की तीव्रता में तल्लीन होना सुनने में बाधक है। मैं कहता हूँ (नोट): आनंद या दुख की इस स्थिति में सवाल असंभव है या संभव? पहली स्थिति में, असंभव होने की दलील बताई जाए। और यदि अधिक विस्तार चाहिए, तो पहला उद्देश्य, पहली श्रेणी, पहले सवाल की व्याख्या याद करें। दूसरी स्थिति में, संभव के दोनों पक्ष (अस्तित्व और अनस्तित्व) समान हैं और बरज़ख़ ग़ैब (परोक्ष) है और...

नोट: मैं कहता हूँ (अक़ूल): जुदाई के बाद रूह के बने रहने और रूह के बोध के बारे में अगर 'इस्तिसहाब' (निरंतरता का अनुमान) को अपर्याप्त समझकर हमें दावेदार भी मान लें, तो यह दावा

ऐसे स्पष्ट प्रमाणों और उज्ज्वल आम सहमति (इज्मा) से सिद्ध है जिसमें किसी मित्र या शत्रु को हिचकिचाहट की कोई गुंजाइश नहीं है। अंत में, विरोधी भी बरज़ख के मामलों के सामान्यीकरण, दंड और बोध को मानते हैं। इसके बाद, विवादित मामले में, स्पष्ट रूप से सत्य हमारे साथ है कि जब बोध करने वाला (मुदरिक) बाकी है तो बोध (इदाराक) भी बाकी है। फिर जो कुछ का खंडन माने, वह विशिष्टता का दावा करने वाला है और उसे प्रमाण प्रस्तुत करना चाहिए। और यदि मान लिया जाए कि शब्दों के ज़ाहिरी रूप को देखते हुए इसका विपरीत माना जाए, तो हमारा दावा 'समाअ' (सुनने) का है, और श्रवण प्रमाण (दलील-ए-समई) जिसकी स्वीकृति अनिवार्य है, दूसरे और तीसरे उद्देश्य में स्पष्ट हो गया। अतः किसी भी प्रस्तावना पर निषेध की कोई गुंजाइश नहीं है और दावे पर तो निषेध है ही नहीं, विशेष रूप से प्रमाण स्थापित होने के बाद। अनिवार्य रूप से ये बहाने तर्क का एक स्थान हैं और अब यह बहस का कानून और परावर्तित कर्तव्य हैं। अतः इसे सुरक्षित रखें, आप सुरक्षित रहेंगे। 12 मिन्हु (म)।

1. हनफी किताबों से मृतकों के न सुनने के संबंध में तफ़हीम-उल-मसाइल, मोहम्मदी प्रेस लाहौर, पृष्ठ 81।

पृष्ठ 935 / 948

فتاوی رضویہ جلد نہم

محض مہمل و ناروا و پادر ہوا تھے۔

اقول: جب تم لوگ کلام مشائخ سے مستدل اور اس کے اس معنی محال پر حامل ہو تو تمھیں ان اعذارِ بارده کی کیا گنجائش !

اولاً: مشائخ تو نفسِ موت کو منافی ادراک اور اس کی وجہ انتفائے اصل قوت حساس و ادراک مان رہے ہیں اور ان اعذار کا یہ حاصل کہ قوت مدرکہ تو موجود و کامل مگر حجاب حائل یا التفات زائل۔

ثانیاً: وہ اس موت کو منافی مطلق ادراک بے تخصیص امور دنیویہ جان رہے ہیں اور تمھارے اعذار انہی امور خارجہ سے خاص_

ثالثاً: حائل و حجاب بدن پر ہے اور کلام روح میں،

رابعاً: پرده و حیلولت صرف مدفون کے لیے ہے صرف بعد دفن تا عدم انکشاف اور کلام عام بلاخلاف۔

خامساً: تمھارے حاجب و حائل کا پرده تو اسی دن چاک ہو چکا جس دن مشائخ نے وقت سوال سماع آواز نعال تسلیم کیا اور ملا تفہیمی نے دروقت سوال و جواب ہمہ قائل سماع اند 1 (سوال و جواب کے وقت سب سماع کے قائل ہیں۔ت) کا مژده سنایا۔

سادساً: عبادت سے اشتغال اور اسی کیفیت میں استغراق تو سب اموات کو عام نہ مانئے گایوں کہئے کہ منعم ہے تو لذتِ نعمت، یا معاذ اللہ معذب ہے تو عذاب کی شدت میں مستغرق ہونا مانع سماع ہے۔

میں کہتا ہوں عہ اس لذت یا الم کی حالت میں سوال محال ہے یا ممکن بر تقدیرِ اول دلیل استحالہ ارشاد ہو اور زیادہ تفصیل چاہیئے تو مقصد اول نوع اول سوال اول کی تقریر یاد ہو بر تقدیرِ ثانی ممکن کی جانبین وجود و عدم یکساں اور برزخ غیب اور

عہ: تنبیہ: اقول: بقائے روح و ادراکاتِ روح بعد فراق میں اگر استصحاب ناکافی سمجھ کر ہمیں مدعی بھی ہونا مانیے تو یہ دعویٰ ایسے نصوص قواطع و اجماعِ ساطع سے ثابت جس میں موافق مخالف کسی کو مجالِ تامل نہیں ، اخر مخالفین بھی تعمیم و تعذیب و ادراکاتِ امور برزخیہ مانتے ہیں، اس کے بعد مسئلہ نزاعیہ میں بداہتہ ظاہر ہمارے ساتھ ہے کہ جب مدرک باقی ادراک باقی پھر جو نفی بعض مانے مدعی تخصیص وہ ہے دلیل پیش کرے اور اگر بالفرض بنظرِ ظاہرِ الفاظ عکس ہی مانے تو ہمارا دعویٰ سماع ہے، اور دلیل سمع جس کا وجوبِ تسلیم واجب التسلیم اور ورودِ مقصد دوم و سوم میں روشن ہو گیا تو کسی مقدمہ پر منع کی گنجائش نہیں اور دعویٰ پر تو منع ہی نہیں خصوصاً بعد اقامت دلیل لاجرم یہ اعذار بعض منصب استدلال ہیں اور اب یہ قانون مناظرہ وظائف منعکس فاحفظ تحفظ ۱۲ منہ (م)

1 تفہیم المسائل عدم سماع موتیٰ از کتب حنفیہ مطبع محمدی لاہور ص ۸۱

Fatawa Razawiyya Volume 9

Issuing a ruling on the unseen based on conjecture is deviance and a flaw. Imam al-Haramayn says:

“A ruling regarding the establishment of a possible matter among things hidden from us cannot be determined except through traditional evidence (sam’).”[1] (A ruling on the establishment of any matter whose existence is possible among things hidden from us cannot be made without scriptural evidence. (T))

In Sharh al-Aqa'id al-Nasafiyya, it is stated:

“Among logical propositions are those that are possibilities; there is no path to certainty regarding one of its two sides. Thus, it was out of Allah's grace and mercy that He sent messengers to explain that.”[2] (Among propositions are possibilities; there is no way to be certain about one of its two sides. Thus, Allah Almighty, by His grace and mercy, sent messengers to clarify this. (T))

In Tafsir-e-Kabir, it is stated:

“Everything whose existence and non-existence is intellectually possible, it is not permissible to incline towards affirmation or negation except through evidence.”[3] (For that which is intellectually possible in both its existence and non-existence, it is not permissible to move towards affirmation or negation without traditional evidence. (T))

Necessarily, due to preoccupation, the notion of non-hearing remained futile and useless, and a separate piece of evidence from the pure Sharia was needed to prove that pleasure and pain prevent hearing. If there is no evidence—and indeed there is none—then your failure and loss are manifest and clear; otherwise, show that evidence, why waste time on futile and incomplete talk. Previously, if this preoccupation prevented hearing, whether based on your idle fancies or the false premises of philosophers—whose arguments Imam Fakhruddin Razi and other scholars have already torn to pieces, stating that the soul cannot attend to two things at the same instant—then it would be necessary that the people of the Barzakh (the realm after death) could not even hear the speech of angels, for in the face of absorption, hearing is hearing. However, the consequent is certainly false, so the antecedent is likewise. In short, the attempt to make absorption a distinguishing factor between the affairs of Barzakh and this world was itself in need of a distinction. Eighthly, "Greatness is for Allah and submissiveness is to Allah" (Majesty

and greatness belong to Allah, and weakness and humility are from Allah Almighty. T). That soul having just suffered the fresh trauma of death, whose slightest shock is equal to a hundred sword strikes...

Note: Reported by Ibn Abi al-Dunya from Dhahhak bin Hamza as a mursal report from the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him). (T)

[1] Al-Irshad fi 'Ilm al-Kalam [2] Sharh 'Aqa'id al-Nasafi, Discussion on the Sending of Messengers, Dar al-Isha'at al-Arabiyyah, Shaukat al-Islam, Qandahar, p. 98 [3] Tafsir-e-Kabir

फ़तावा रज़विया जिल्द नौ (9)

परोक्ष (ग़ैब) के बारे में अनुमान से निर्णय देना पथभ्रष्टता और दोष है। इमाम अल-हरमैन फ़रमाते हैं:

"जो चीज़ें हमसे ओझल (ग़ैब) हैं, उनमें किसी संभव-सिद्ध बात के सिद्ध होने का हुक्म बिना श्रुत प्रमाण (दलील-ए-समई) के नहीं हो सकता।"[1] (त)

शरह अक़ायद-ए-नसफ़ी में है:

"तार्किक प्रस्तावों में से 'संभावनाएँ भी हैं; उनके दो पक्षों में से किसी एक पर निश्चित होने का कोई रास्ता नहीं है। अतः अल्लाह तआला ने उसके वर्णन के लिए अपनी कृपा और दया से रसोंलों को भेजा।"[2] (त)

तफ़्सीर-ए-कबीर में है:

"जिसका अस्तित्व और अभाव दोनों ही बौद्धिक रूप से संभव हों, उसमें बिना किसी प्रमाण के पुष्टि या खंडन की ओर जाना उचित नहीं है।"[3] (त)

स्वाभाविक रूप से व्यस्तता के कारण न सुनने का विचार व्यर्थ और बेकार होकर रह गया, और पवित्र शरीयत से एक अलग प्रमाण की आवश्यकता बनी रही कि आनंद और पीड़ा सुनने में बाधक हैं। यदि कोई प्रमाण नहीं है—और वास्तव में नहीं है—तो आपकी विफलता और हानि स्पष्ट और प्रकट है, अन्यथा वह प्रमाण ही दिखाएं व्यर्थ और अधूरी बातों में समय क्यों गवाएं। पहले, यदि यह व्यस्तता सुनने में बाधक होती, चाहे आपकी व्यर्थ इच्छाओं से हो या दार्शनिकों के उन असत्य सिद्धांतों से जिनकी धज्जियाँ इमाम फ़ख़रुद्दीन राजी आदि विद्वान उड़ा चुके हैं—कि आत्मा एक ही क्षण में दो चीज़ों की ओर ध्यान नहीं दे सकती—तो यह आवश्यक होता कि बरज़ख़ (मृत्यु उपरांत अवस्था) के लोग फरिश्तों की बात भी न सुन पाते, क्योंकि गहरी तल्लीनता के सामने सुनना तो सुनना ही है। जबकि परिणाम निश्चित रूप से असत्य है, तो आधार भी वैसा ही है। संक्षेप में, तल्लीनता को बरज़ख़ और दुनिया के मामलों में अंतर करने वाला बनाना चाहा था, वह स्वयं ही अंतर करने का मोहताज निकला। आठवाँ, "महानता अल्लाह के लिए है और विनयशीलता अल्लाह की ओर है" (महानता और बड़ाई अल्लाह के लिए है और कमज़ोरी व विनयशीलता अल्लाह तआला की ओर से है।)। वह मृत्यु का ताज़ा सदमा उठाई हुई रूह जिसका मामूली सा झटका तलवार के सौ प्रहारों के बराबर है...

टिप्पणी: इसे इब्न अबी अल-दुनिया ने ज़हहाक बिन हमज़ा से रिवायत किया, जो नबी (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) से एक मुरसल रिवायत है। (त)

[1] अल-इरशाद फ़ी इल्म अल-कलाम [2] शरह अक़ायद-ए-नसफ़ी, रसोंलों के भेजने पर चर्चा, दारुल अशाअत अल-अरबिया, शौकतुल इस्लाम, कंधार, पृष्ठ 98 [3] तफ़्सीर-ए-कबीर

पृष्ठ 936/948

فتاوٰی رضویہ جلد نہم

غیب پر رجما بالغیب حکم لگانا ضلالت و عیب امام الحرمین ارشاد فرماتے ہیں:

لا یتقدر الحکم بثبوت الجائز ثبوتہ فیما غاب عنا الا بسمع[1]۔ (جو چیزیں ہم سے غائب ہیں ان میں کسی ممکن الثبوت امر کے ثابت ہو جانے کا حکم دلیل سمعی کے بغیر نہیں ہو سکتا۔ (ت))

شرح عقائد نسفی میں ہے:

القضا یامنھا ماہی ممکنات فلاطریق الی الجزم باحدجانبیھا فکان من فضل اللہ ورحمتہ ارسال الرسل لبیان ذلک[2]۔ (قضایا میں سے ممکنات بھی ہیں ان کی دو جانبوں میں سے کسی ایک کے جزم کی کوئی سبیل نہیں تو اللہ تعالٰی اس کے بیان کے لیے اپنے فضل و رحمت سے رسولوں کو مبعوث فرمایا۔ (ت))

تفسیر کبیر میں ہے:

کل ماجاز وجودہ عدمہ عقلا لم یجز المصیر الی الاثبات اوالی النفی الابدلیل[3]۔ (عقلاً جس کا وجود اور عدم دونوں ممکن ہو اس میں دلیل سمعی کے بغیر اثبات یا نفی کی طرف جانے کا جواز نہیں۔ (ت))

لا جرم اشتغال کے سبب عدم سماع کا شگوفہ مہمل و بیکار ہو کر رہ گیا اور شرع مطہر سے جدا گانہ دلیل کی حاجت رہی کہ یہ تلذذ و تالم مانع سماع ہیں اگر دلیل نہیں اور بیشک نہیں تو آپ کا خذلان و خسران ظاہر و عیان، ورنہ وہ دلیل ہی نہ دکھائے، عبث و ناتمام باتوں میں کیوں وقت گنوائے۔ سابقاً اگر یہ اشتغال مانع سماع ہوتا خواہ تمھاری ہوسات عاطلہ خواہ فلاسفہ کے مقدمہ باطلہ سے جس کی دھجیاں امام فخر الدین رازی وغیرہ علماء اڑا چکے کہ نفس آن واحد میں دو چیزوں کی طرف توجہ نہیں کر سکتا تو واجب کہ اہل برزخ کو کلام ملائک کا بھی سماع نہ ہوتا کہ

استغراق مانع کے آگے سماع سماع سب ایک سے حالانکہ تالی قطعاً باطل ہے تو یوہی مقدم، غرض استغراق کو امور برزخیہ و دنیویہ میں فارق بنانا چاہا تھا وہ خود محتاج فارق ہے۔ ثامناً العظمة لله والضراعة الی الله (عظمت و بزرگی الله کے لیے ہے اور ضعف و ذلالت الله تعالیٰ کی طرف سے ہے۔ ت) وہ موت کا تازہ صدمہ اٹھائے ہوئے روح جس کا ادنیٰ عہ جھٹکا سو ضرب شمشیر کے برابر،

عہ: ابن ابی الدنیا عن الضحاک بن حمزة مرسلا عن النبی صلی الله تعالیٰ علیہ وسلم ۱۲ (اسے ابن ابی الدنیا نے ضحاک بن حمزہ سے مرسلا نبی صلی الله تعالیٰ علیہ وسلم سے روایت کیا۔ (ت))

1 الارشاد فی علم الکلام 2 شرح عقائد نسفی بحث فی ارسال الرسل دارالاشاعت العربیہ شوکت الاسلام قندھار ص ۹۸ 3 تفسیر کبیر

The trauma of which (death) [ref 1] is more severe than a thousand sword strikes, rather merely seeing the Angel of Death [ref 2] is greater than the trauma of a thousand swords. That new place, that soft loneliness, that terrifying helplessness spread everywhere; upon that, the sudden arrival of Munkar and Nakir, showing those extremely terrifying forms that if a man saw them during the day in a crowd of thousands, he would lose his senses. Black color [ref 3], blue eyes [ref 4], as large as cauldrons [ref 5], breath flashing like lightning [ref 6].

[Footnote References]

- **Ref 1:** Al-Khatib in *Al-Tarikh* from Anas ibn Malik from the Prophet (may Allah's peace and blessings be upon him), and Al-Harith ibn Abi Usama with a sound chain from 'Ata ibn Yasar as a *mursal* report. — *Al-Khatib narrated it in the history from Hazrat Anas bin Malik, who narrated it from the Prophet ﷺ, and Harith bin Abi Usama narrated it with a sound chain from 'Ata bin Yasar as a mursal report. (T)*
- **Ref 2:** Abu Nu'aym in *Al-Hilya* from Wathilah ibn al-Asqa' from the Prophet (may Allah's peace and blessings be upon him). — *Abu Nu'aym narrated it in Hilya from Wathilah bin al-Asqa', who narrated it from the Prophet ﷺ.* (*T*) (1) *At-Tirmidhi narrated it and classified it as fair, as did Ibn Abi ad-Dunya, al-Ajurri in ash-Shari'ah, Ibn Abi 'Asim in as-Sunnah, and al-Bayhaqi from Abu Huraira from the Prophet ﷺ. (2) Al-Bayhaqi in the Punishment of the Grave from Ibn Abbas from the Prophet ﷺ. And al-Bayhaqi narrated about the punishment of the grave from Hazrat Ibn Abbas, who narrated it from the Prophet ﷺ.* (*T*)
- **Ref 3:** Hadith from At-Tirmidhi and he classified it as fair, Ibn Abi ad-Dunya, al-Ajurri in *ash-Shari'ah*, Ibn Abi 'Asim in *as-Sunnah*, and al-Bayhaqi from Abu Huraira from the Prophet (may Allah's peace and blessings be upon him). — *Hadith 1 & 3: Ibn al-Mubarak narrated it in Az-Zuhd, and Ibn Abi Shaybah, Ajurri, and Bayhaqi narrated it from Hazrat Abu al-Darda (may Allah be pleased with him) as his own words (mawquf). (T)*
- **Ref 4:** First hadith and Ibn al-Mubarak in *Az-Zuhd*, Ibn Abi Shaybah, al-Ajurri, and al-Bayhaqi from Abu al-Darda as his own saying. — *Hadith 4: Tabarani narrated it in Mu'jam al-Awsat, and Ibn Mardawayh narrated it from Hazrat Abu Huraira from the Prophet ﷺ.* (*T*)

- **Ref 5:** Hadith of At-Tabarani in *Al-Awsat* and Ibn Mardawayh from Abu Huraira from the Prophet (may Allah's peace and blessings be upon him). — *Hadiths 5 & 2 were narrated by Abu Ya'la and Ibn Abi ad-Dunya from Nu'aym. (T)*
- **Ref 6:** Hadith of Abu Ya'la and Ibn Abi ad-Dunya from An-Nu'aim, Hadith of Abu Dawud in *Al-Ba'th* and Al-Hakim. — *Hadith 6: Abu Dawud narrated it in al-Ba'th, and al-Hakim (Continued on the next page).*

जिसका सदमा (मौत का) [हाशिया १] १००० तलवारों के प्रहार से भी अधिक कठोर है, बल्कि मौत के फ़रिश्ते (मलक-उल-मौत) [हाशिया २] को देखना ही १००० तलवारों के सदमे से बढ़कर है। वह नया स्थान, वह नरम तनहाई, वह हर तरफ़ भयानक बेबसी छाई हुई, उस पर नकीरैन का अचानक आना, वे अत्यंत डरावनी शक्लें दिखाना कि आदमी दिन में हज़ारों की भीड़ में भी देखे तो सुध-बुध खो दे। काला रंग [हाशिया ३], नीली आँखें [हाशिया ४], देगों (बर्तनों) के समान बड़ी [हाशिया ५], बिजली की तरह चमकती हुई सांस [हाशिया ६]।

[हाशिया संदर्भ]

- **ह. १:** अल-खतीब ने तारीख़ में हज़रत अनस बिन मालिक से, उन्होंने नबी ﷺ से रिवायत किया, और हारिस बिन अबी उसामा ने बसन्द-ए-जायद अता बिन यसार से मुरसलन रिवायत किया। (त)
- **ह. २:** अबू नुएम ने 'हिलिया' में वासिलह बिन अल-असक़ा से, उन्होंने नबी ﷺ से रिवायत किया। (त) (१) इसे तिर्मिज़ी ने हसन (अच्छी सनद) करार देते हुए रिवायत किया और इब्न अबी अद्दुनिया ने, और 'शरीअत' में आजुरी ने और 'सुन्नत' में इब्न अबी आसिम ने और बैहक़ी ने हज़रत अबू हुरैरा से, उन्होंने नबी ﷺ से रिवायत किया। (२) बैहक़ी ने 'अज़ाबुल क़ब्र' में इब्न अब्बास से उन्होंने नबी ﷺ से रिवायत किया। और बैहक़ी ने क़ब्र के अज़ाब के बारे में हज़रत इब्न अब्बास से, उन्होंने नबी ﷺ से रिवायत किया। (त)
- **ह. ३:** हदीस तिर्मिज़ी से (हसन), इब्न अबी अद्दुनिया, आजुरी (फी शरीअत), इब्न अबी आसिम (फी सुन्नत) और बैहक़ी ने हज़रत अबू हुरैरा से रिवायत की। हदीस १ और ३: इब्न अल-मुबारक ने 'ज़ुहद' में और इब्न अबी शैबा, आजुरी और बैहक़ी ने हज़रत अबू दरदा (रज़ियल्लाहु अन्हु) से उनके कलाम के तौर पर (मौक़ूफ़न) रिवायत किया। (त)
- **ह. ४:** पहली हदीस और इब्न अल-मुबारक 'ज़ुहद' में, इब्न अबी शैबा, आजुरी और बैहक़ी ने हज़रत अबू दरदा के कौल से। हदीस ४: तबरानी ने 'मोजम औसत' में और इब्न मरदवैया ने हज़रत अबू हुरैरा से, उन्होंने नबी ﷺ से रिवायत किया। (त)
- **ह. ५:** तबरानी की हदीस 'औसत' में और इब्न मरदवैया ने हज़रत अबू हुरैरा से रिवायत की। हदीस ५ और २ को अबू यअला और इब्न अबी अद्दुनिया ने नुएम से रिवायत किया। (त)

- **ह. ६:** अबू यअला और इब्न अबी अद्-दुनिया की हदीस नुएम से, अबू दाऊद की हदीस 'अल-बस' में और हाकिम (बाकी अगले पृष्ठ पर)।

पृष्ठ ९३७ / ९४८

جس کا صدمہ عہ ۱ ہزار ضرب تیغ سے سخت تر، بلکہ ملک الموت عہ ۲ کا دیکھنا ہی ہزار تلوار کے صدمہ سے بڑھ کر، وہ نئی جگہ وہ نرمی تنہائی، وہ ہر طرف بھیانک بیکسی چھائی، اس پر وہ نکیرین کا اچانک آنا وہ سخت ہیبت ناک صورتیں دکھانا کہ آدمی دن کو ہزاروں کے مجمع میں دیکھے تو حواس بجانہ رہیں، کالا رنگ عہ ۳ نیلی آنکھیں عہ ۴ دیگوں عہ ۵ کے برابر بڑی، برق کی طرح شعلہ زن سانس عہ ۶۔

[حواشی]

- **عہ ۱:** الخطیب فی التاریخ عن انس ابن مالک عن النبی صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم والحارث ابن ابی اسامہ بسند جید عن عطاء بن یسار مرسلاً۔ — اسے خطیب نے تاریخ میں حضرت انس بن مالک سے انھوں نے نبی صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم سے روایت کیا، اور حارث بن ابی اسامہ نے بسند جید عطاء بن یسار سے مرسلاً روایت کیا۔ (ت)
- **عہ ۲:** ابو نعیم فی الحلیۃ عن واثلۃ بن الاسقع عن النبی صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم۔ — اسے ابو نعیم نے حلیہ میں واثلہ بن اسقع سے انھوں نے نبی صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم سے روایت کیا۔ (ت) (۱) اسے ترمذی نے بافادہ تحسین روایت کیا اور ابن ابی الدنیا نے، اور شریعہ میں آجری نے اور سنہ میں ابن ابی عاصم نے اور بیہقی نے حضرت ابو ہریرہ سے انھوں نے نبی صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم سے روایت کیا۔ (۲) البیہقی فی عذاب القبر عن ابن عباس عن النبی صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم۔ اور بیہقی نے عذاب قبر میں حضرت ابن عباس سے انھوں نے بنی صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم سے روایت کیا۔ (ت)

- **عہ ۳:** حدیث عن الترمذی وحسنہ وابن ابی الدنیا والآجری فی الشریعۃ وابن ابی عاصم فی السنۃ والبیھقی عن ابی ھریرۃ عن النبی صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم۔ — حدیث اول و ۳ ابن المبارک نے زہد میں اور ابن ابی شیبہ آجری اور بیہقی نے حضرت ابو الدرداء رضی اللہ تعالیٰ عنہ سے ان کے کلام میں (موقوفاً) روایت کیا (ت)
- **عہ ۴:** حدیث اول و ابن المبارک فی الزھد وابن ابی شیبۃ والآجری والبیھقی عن ابی الدرداء من قولہ۔ — حدیث ۴ طبرانی نے معجم اوسط میں، اور ابن مردویہ نے حضرت ابو ہریرہ سے انھوں نے نبی صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم سے روایت کیا۔ (ت)
- **عہ ۵:** حدیث الطبرانی فی الاوسط وابن مردویہ عن ابی ھریرۃ عن النبی صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم۔ — حدیث ۵ و ۲ کو ابو یعلی و ابن ابی الدنیا نے نعیم سے روایت کیا (ت)
- **عہ ۶:** حدیث و ابویعلی وابن ابی الدنیا عن النعیم، حدیث ابوداؤد فی البعث والحاکم۔ — حدیث ۶ ابوداؤد نے بعث میں، حاکم (باقی اگلے صفحہ پر)

Fatawa Razawiya Volume 9

Like a flare of fire, long sharp nails like the horns of an ox (Fn 1), hair from the back of the head dragging on the ground (Fn 2), stature and physical magnitude beyond measure such that the distance from one shoulder to another is of (Fn 4) stages, such an iron mace in hands (Fn 5) that if the people of a whole town, even jinn and humans (Fn 6), gathered to lift it, they would not be able to, those thunderous terrifying sounds of thunder (Fn 7), appearing by tearing the earth with teeth (Fn 8), then a calamity upon these calamities that they do not talk straightforwardly, shaking (Fn 9) as soon as they come, giving no respite, with thundering (Fn 10) and rebuking voices.

(Continuation of footnote from previous page): [The author of] ‘Tarikh’ and al-Bayhaqi in ‘Adhab al-Qabr’ narrated from the Commander of the Faithful Umar (may Allah be pleased with him). Hadith 7: Ibn Abi al-Dunya narrated from Hazrat Abu Hurairah. Hadith 8: Ibn Abi al-Dunya, Abu Nu'aym, al-Ajurri, and al-Bayhaqi, all narrated it as a ‘mursal’ hadith from Ata ibn Yasar, from the Prophet (may Allah's peace and blessings be upon him). (T)

12 Fn 1: Hadith Five 12 | Fn 2: Hadith Four and Five 12 | Fn 3: Two, Six, and Seven 12 Fn 4: Hadith Three 12 | Fn 5: Hadith Five 12 | Fn 6: Hadith Six and Seven 12 Fn 7: Hadith Five 12 | Fn 8: Hadith Two, Four, Five, Six, Seven, and Eight 12 Fn 9: Hadith Two, Six, and Seven 12 Fn 10: Hadith Two and Eight, and Hadith 9 Imam Ahmad. Hadith 2, 8, and 9 were narrated by Imam Ahmad, and in ‘al-Mu’jam al-Awsat’ by at-Tabarani, and al-Bayhaqi and Ibn Abi al-Dunya narrated from Hazrat Jabir. Hadith 10: Ibn Abi Asim, Ibn Mardawayh, and al-Bayhaqi narrated from him via another route. Hadith 11: al-Ajurri narrated in ‘ash-Shari'ah’ from Hazrat Ibn Mas'ud; both narrated from the Prophet (may Allah's peace and blessings be upon him), may Allah be pleased with them all. (T) 12

Page 938 of 948

फतावा रज़विया जिल्द 9

जैसे आग की लपट, बैल (हाशियः 1) के सींगों की तरह लंबे नुकीले नाखून, ज़मीन (हाशियः 2) पर घसीटते सिर के पिछले बाल (हाशियः 3), क़द-ओ-क़ामत और जिस्म-ओ-जसामत का वह आलम कि एक कंधे से दूसरे तक (हाशियः 4) मंज़िलों का फ़ासला, हाथों (हाशियः 5) में लोहे का वह गुर्ज कि अगर एक बस्ती के लोग बल्कि जिन्न-ओ-इंस (हाशियः 6) जमा होकर उठाना चाहें तो न उठा सकें, वह कड़क (हाशियः 7) की होलनाक आवाज़ें, वह दांतों (हाशियः 8) से ज़मीन चीरते ज़ाहिर होना, फिर इन आफ़तों पर आफ़त यह कि सीधी तरह बात न करना, आते ही झंझोड़ (हाशियः 9) डालना, मोहलत न देना कड़कती (हाशियः 10) झिड़कती आवाज़ों...

(पिछले पृष्ठ के हाशिए का शेष भाग): 'तारीख़' में और बैहक़ी ने 'अज़ाबुल क़ब्र' में अमीरुल मोमिनीन उमर रज़ियल्लाहु तआला अन्हु से रिवायत की। हदीस 7: इब्ने अबी दुनिया ने हज़रत अबू हुरैरा से रिवायत की। हदीस 8: इब्ने अबी दुनिया, अबू नुऐम, आजुरी और बैहक़ी सब ने अता बिन यसार से मुरसलन नबी सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम से रिवायत की। (त)

12 हाशियः 1: हदीस पाँचवीं 12 | हाशियः 2: हदीस चौथी और पाँचवीं 12 | हाशियः 3: दूसरी, छठी और सातवीं 12 हाशियः 4: हदीस तीसरी 12 | हाशियः 5: हदीस पाँचवीं 12 | हाशियः 6: हदीस छठी और सातवीं 12 हाशियः 7: हदीस पाँचवीं 12 | हाशियः 8: हदीस दूसरी, चौथी, पाँचवीं, छठी, सातवीं और आठवीं 12 हाशियः 9: हदीस दूसरी, छठी और सातवीं 12 हाशियः 10: हदीस दूसरी और आठवीं और हदीस 9 इमाम अहमद। हदीस 2, 8 और 9 इमाम अहमद ने और 'मोजम औसत' में तबरानी ने और बैहक़ी और इब्ने अबी दुनिया ने हज़रत जाबिर से रिवायत की। हदीस 10: इब्ने अबी आसिम, इब्ने मरदूयह और बैहक़ी ने इन्हीं से एक दूसरे तरीके से रिवायत की। हदीस 11: आजुरी ने 'शरीअह' में हज़रत इब्न मसऊद से, दोनों हज़रात ने नबी सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम से रिवायत की, रज़ियल्लाहु तआला अन्हुम अजमईन। (त) 12

पृष्ठ 938 का 948

جیسے آگ کی لپیٹ، بیل عہ۱ کے سینگوں کی طرح لمبے نوک دار کیلے، زمین عہ۲ پر گھسٹتے سر کے پچھدہ بال عہ۳، قد و قامت جسم و جسامت بلا قیامت کہ ایک شانے سے دوسرے تک عہ۴ منزلوں کا فاصلہ، ہاتھوں عہ۵ میں لوہے کا وہ گرز کہ اگر ایک بستی کے لوگ بلکہ جن و انس عہ۶ جمع ہو کر اٹھانا چاہیں نہ اٹھا سکیں، وہ گرج عہ۷ کڑک کی ہولناک آوازیں، وہ دانتوں عہ۸ سے زمین چیرتے ظاہر ہونا، پھر ان آفات پر آفت یہ کہ سیدھی طرح بات نہ کرنا، آتے ہی جھنجھوڑ عہ۹ ڈالنا، مہلت نہ دینا کڑکتی عہ۱۰ جھڑکتی آوازوں

(بقیہ حاشیہ صفحہ گزشتہ) نے تاریخ میں اور بیہقی نے عذاب قبر میں امیر المومنین عمر رضی اللہ تعالی عنہ سے روایت کی، حدیث ۷ ابن ابی الدنیا نے حضرت ابوہریرہ سے روایت کی، حدیث ۸ ابن ابی الدنیا، ابونعیم، آجری اور بیہقی سب نے عطاء بن یسار سے مرسلا نبی صلی اللہ تعالی علیہ وسلم سے روایت کی۔ (ت) فی التاریخ والبیھقی فی عذاب القبر عن امیر المومنین عمر، حدیث ۷ وابن ابی الدنیا عن ابی ھریرۃ، حدیث ۸ وھو وابو نعیم و الآجری والبیھقی عن عطاء ابن الیسار مرسلا کلھم عن النبی صلی اللہ تعالی علیہ وسلم۔

۱۲ عہ۱: حدیث پنجم ۱۲ | عہ۲: حدیث چہارم و پنجم ۱۲ | عہ۳: دوم و ششم و ہفتم ۱۲ عہ۴: حدیث سوم ۱۲ | عہ۵: حدیث پنجم ۱۲ | عہ۶: حدیث ششم و ہفتم ۱۲ عہ۷: حدیث پنجم ۱۲ | عہ۸: حدیث دوم، چہارم، پنجم، ششم، ہفتم، ہشتم ۱۲ عہ۹: حدیث دوم، ششم، ہفتم ۱۲ عہ۱۰: حدیث دوم و ہشتم و حدیث ۹ احمد، حدیث ۲ و ۸ و ۹ امام احمد نے اور معجم اوسط میں طبرانی نے اور بیہقی اور ابن ابی الدنیا نے حضرت جابر سے روایت کی۔ حدیث ۱۰ ابن ابی عاصم، ابن مردویہ اور بیہقی نے ان ہی سے ایک دوسرے طریق سے روایت کی۔ حدیث ۱۱ آجری نے شریعہ میں حضرت

ابن مسعود سے، دونوں حضرات نے نبی صلی اللہ تعالی علیہ وسلم سے روایت کیا، رضی اللہ تعالی عنہم اجمعین۔ (ت) ۱۲ والطبرانی فی الاوسط والبیھقی وابن ابی الدنیا عن جابر۔ حدیث ۱۰ و ابن ابی عاصم و ابن مردویۃ و البیھقی بوجہ آخر عنہ، حدیث ۱۱ والآجری فی الشریعۃ عن ابن مسعود کلاھما عن النبی صلی اللہ تعالی علیہ وسلم و رضی اللہ تعالی عنھم اجمعین ۱۲-

Fatawa Razawiya, Volume 9

I put this to the test, and "Allah is sufficient for us, and He is the best Disposer of affairs. Have mercy on our weakness, O Most Generous, O Most Beautiful! Send blessings and peace upon the Prophet of Mercy, his noble household, and the entire Ummah. Ameen, Ameen, O Most Merciful of the merciful." At such a momentous time, perhaps your deep-seated thought would lead you to decree that even the sound of a cannon in an open field would not be heard. However, the authentic traditions of Mustafa (peace and blessings of Allah be upon him) state that in such a state, behind so many veils, the deceased hears the faint sound of the friction of sandals, which you yourself acknowledge. And that same Imam Ayni, in his authoritative commentary on Sahih al-Bukhari, 'Umdat al-Qari', regarding a hundred issues, says:

Arabic Text	**Urdu Translation**
There is an oversight here regarding what has been narrated in some hadiths, that the inhabitant of a grave was being questioned, and when he heard the squeaking of leather sandals, he inclined his ear towards it. He was close to destruction due to not answering the two angels. Then he [the Prophet], peace and blessings of Allah be upon him, said to him [the wearer]: "Take them off, lest you cause pain to the inhabitant of the grave." This was mentioned by Abu Abdullah at-Tirmidhi.	That is, the speaker forgot what has appeared in a hadith: that someone in the grave was being questioned when he heard the friction of sandals and turned his ear towards it. He delayed in answering and was close to being destroyed. The Master of the Universe (peace and blessings of Allah be upon him) said to the person walking while wearing those sandals, "Take them off so as not to cause pain to the deceased." This hadith was mentioned by Abu Abdullah Muhammad Tirmidhi. (T)

Since its perception [the body's] is very limited and deficient compared to the perception of the soul, it is self-evidently established that the conditions of Barzakh (the intermediary world) are leagues away from your habitual conjectures, and comparing them to the customary habits of this worldly abode is futile and abandoned.

Fourth Point: Whether the soul's perception is conditional upon the body or not: the correct position is what Mulla Tafhimi narrated from the Ahl al-Sunnah, that for the perception of pain and pleasure at the time of bestowal of bounty or punishment

(which he called the time of infliction of pain and punishment, and for whose lot in the share of pleasure, it remained pain), a type of life returns to the deceased. This does not necessarily imply hearing (aside from the fact that the phrase "that does not necessitate hearing" is not in the authoritative texts). This statement of the Ahl al-Sunnah is also strictly regarding the body, that the return of life in the grave is for it. Even if the occurrence of increased connection with the body at the time of bounty, punishment, and questioning is termed as the 'return of life' for the soul, if it makes any difference, it will be in physical perceptions, the result of which inevitably points to the difference in the body's instrumentality. However, according to the Ahl al-Sunnah, the soul's perceptions are not dependent on the body. It was perceiving, knowing, seeing, and hearing before those incidental connections just as it is after them. This distinction—that a type of life is granted through which perception of pleasure and pain occurs but hearing does not—is not applicable there. After all, what changed here? Only the connection to the body. So what relation did the soul's perceptions have with it that they should vary with its variation? This is contrary to the body, whose perceptions are not intrinsic to it but are rather due to the connection with the soul, and the connections are varying.

---

[1] Umdat al-Qari Sharh Sahih al-Bukhari, Chapter: The deceased hears the sound of sandals, Idara al-Tiba'ah al-Muniriyah, Beirut, 8/714. Page 939 of 948

मैं परीक्षा लेता हूँ, और "अल्लाह हमारे लिए पर्याप्त है, और वह सबसे अच्छा कार्यसाधक है। हमारी कमजोरी पर दया कर, ऐ उदार, ऐ सुंदर! रहमत के नबी, उनके कुलीन परिवार और पूरी उम्मत पर आशीर्वाद और शांति भेज। आमीन, आमीन, ऐ दयावानों में सबसे दयावान।" ऐसे महान समय में, शायद आपका गहरा विचार यह आदेश दे कि खुले मैदान में तोप की आवाज भी सुनाई न दे। लेकिन मुस्तफा (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) की सही हदीसें कह रही हैं कि ऐसी स्थिति में, इतने पर्दों के पीछे, मृत व्यक्ति जूतों की रगड़ की हल्की आवाज़ सुनता है, जिसे आप स्वयं स्वीकार करते हैं। और वही इमाम ऐनी, सही बुखारी की अपनी प्रामाणिक व्याख्या 'उम्दतुल क़ारी' में सौ मसलों के बारे में फरमाते हैं:

अरबी पाठ

इसमें उन बातों से अनभिज्ञता है जो कुछ हदीसों में आई हैं, कि कब्र वाले से सवाल किया जा रहा था, तभी उसने चमड़े के जूतों की चरमराहट सुनी तो उसकी ओर कान लगाए। वह दोनों फरिश्तों को जवाब न देने के कारण विनाश के करीब था। फिर उन्होंने (पैगंबर), सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम, उससे (जूते पहनने वाले से) कहा: 'इन्हें उतार दो, ताकि तुम कब्र वाले को कष्ट न पहुँचाओ।' इसे अबू अब्दुल्ला तिरमिज़ी ने उल्लेख किया है।

उर्दू अनुवाद

यानी कहने वाले को याद न रहा कि एक हदीस में आया है कि कब्र वाले से सवाल हो रहा था, इतने में उसने जूतों की रगड़ सुनी और उधर कान लगाए। जवाब देने में देर हुई और करीब था कि वह तबाह हो जाए। सैय्यदे आलम (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने उस जूते पहनकर चलने वाले से फरमाया, 'इन्हें उतार दो ताकि मुर्दे को तकलीफ न हो।' यह हदीस अबू अब्दुल्ला मुहम्मद तिरमिज़ी ने ज़िक्र फरमाई। (त)

जिसका बोध (शरीर का) रूह (आत्मा) के बोध की तुलना में बहुत कम और सीमित है, तो यह स्वतः सिद्ध है कि बर्ज़ख (मृत्यु और पुनरुत्थान के बीच की स्थिति) की स्थितियाँ आपके सामान्य अनुमानों से कोसों दूर हैं, और उन्हें दुनिया के अभ्यस्त तौर-तरीकों पर तौलना व्यर्थ और त्याज्य है।

चौथा बिंदु: क्या रूह का बोध शरीर पर निर्भर है या नहीं: तो सही स्थिति वह है जो मुल्ला तफ़हीमी ने अहले सुन्नत से नकल की है कि इनाम और अज़ाब (दंड) के समय सुख और दुख के बोध के लिए (जिसे उन्होंने दर्द और दंड का समय कहा, और जिनके हिस्से में सुख के हिस्से का भी दुख ही रहा)

मृत व्यक्ति में एक प्रकार का जीवन आ जाता है। इससे सुनना अनिवार्य नहीं होता (इस बात से हटकर कि वाक्यांश 'वह सुनना अनिवार्य नहीं करता' प्रामाणिक ग्रंथों में नहीं है)। अहले सुन्नत का यह कथन भी निश्चित रूप से शरीर के ही हक में है कि कब्र में जीवन की वापसी उसी के लिए होती है। और अगर इनाम, अज़ाब और सवाल के समय शरीर के साथ संबंध के बढ़ने को रूह के लिए 'जीवन की वापसी' कहा जाए, तो इससे अगर कोई फर्क पड़ेगा तो वह शारीरिक बोध में होगा, जिसका परिणाम अनिवार्य रूप से शरीर की यंत्रता (instrumentality) के अंतर की ओर जाता है। लेकिन अहले सुन्नत के अनुसार, रूह का बोध शरीर पर निर्भर नहीं है। वह इन नए संबंधों से पहले भी वैसी ही बोधगम्य, ज्ञाता, द्दष्टा और श्रोता थी जैसी उनके बाद। यह अंतर—कि एक प्रकार का जीवन मिलता है जिससे सुख और दुख का बोध तो हो पर सुनना न हो—वहां लागू नहीं होता। आखिरकार यहाँ क्या बदला? केवल शरीर से संबंध। तो रूह के बोध का उससे क्या संबंध था कि उसके अंतर से वे भी भिन्न हो जाएं? यह शरीर के विपरीत है, जिसका बोध स्वतः नहीं है बल्कि रूह के संबंध के कारण है, और संबंध भिन्न-भिन्न होते हैं।

---

[1] उम्दतुल क़ारी शरह सहीह बुखारी, अध्याय: मृत व्यक्ति जूतों की आवाज़ सुनता है, इदारा अल-तिबा'ह अल-मुनीरिया, बेरूत, 8/714. पेज 939 of 948

میں امتحان لینا وحسبنا اللہ ونعم الوکیل ارحم ضعفنا یا کریم یا جمیل صل وسلم علی نبی الرحمۃ والہ الکرام وسائر الامۃ امین امین یا ارحم الراحمین۔ ایسے عظیم وقت میں شاید آپ کا استغراقی خیال تو یہی حکم لگائے کہ کھلے میدان میں توپ کی آواز بھی سننے میں نہ آئے مگر مصطفٰی صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم کی صحیح حدیثیں ارشاد فرما رہی ہیں کہ ایسی حالت میں اتنے پردوں میں مردہ ایسی خفی آواز جوتوں کی پکھل سنتا ہے جس کا تمھیں خود اعتراف ہے اور وہی امام عینی مستند مائۃ مسائل شرح صحیح بخاری شریف میں فرماتے ہیں :

عربی عبارت

فیہ ذھول عماورد فی بعض الاحادیث ان صاحب القبر کان یسأل فلما سمع صریر السبتتین اصغی الیہ فکاد یھلك لعدم جواب الملکین فقال لہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم القھما لئلا توذی صاحب القبر ذکرہ ابوعبداللہ الترمذی۔

اردو ترجمہ

یعنی اس قائل کو یاد نہ رہا وہ جو ایک حدیث میں آیا ہے کہ قبر والے سے سوال ہو رہا تھا اتنے میں جوتوں کی پکھل اس نے سنی ادھر کان لگائے جواب میں دیر ہوئی، قریب تھا کہ ہلاک ہو جائے، سید عالم صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم نے اس جوتا پہن کر چلنے والے سے فرمایا انھیں اتار ڈال کر مردے کو ایذا نہ پہنچے۔ یہ حدیث ابو عبد اللہ محمد ترمذی نے ذکر فرمائی۔ (ت)

جس کا ادراک بہ نسبت ادراک روح بہت قاصر و مقصود، تو بدایہہ ثابت کہ احوال برزخ آپ کے اوہام عاد یہ سے منزلوں دور، اور عادات معہودہ دار دنیا پر ان کا قیاس باطل و مہجور۔

عائدہ رابعہ: ادراک روح مشروط بجسم ہیں یا نہیں، تو صحیح مقام یہ کہ وہ جو ملا تفہیمی نے اہل سنت سے نقل کیا کہ ادراک الم ولذت کے لیے وقت تنعیم و تعذیب (جسے وقت ایلام و تعذیب کہا اور ان کے نصیبوں لذت کے حصے کا بھی الم ہی رہا) ایک نوعِ حیات میت آجاتی ہے اور اس سے سماع لازم نہیں (قطع نظر اس سے کہ فقرہ آن مستلزم سماع نیست عبارات مستندہ میں نہیں) یہ قول اہلسنت بھی قطعاً بدن ہی کے حق میں ہے کہ قبر میں عودِ حیات اسی کے لیے ہوتا ہے، اور اگر حدوث زیادت تعلق بالبدن وقتِ انعام و ایلام وسوال کو روح کے لیے عودِ حیات سے تعبیر بھی کیجئے تو اس سے اگر فرق پڑے گا تو ادراکات جسمانیہ میں جس کا حاصل تفاوت آلیتِ بدن کی طرف آئل مگر اہلسنت کے نزدیک ادراکات روح بدن پر موقوف نہیں تو وہ ان تعلقات حادثہ سے پہلے بھی ویسے ہی مدر کہ عالمہ مبصرہ سامعہ تھی جیسی ان کے بعد یہ تفاوت کہ ایک نوعِ حیات ملتی ہے جس سے ادراک لذت والم تو ہو اور سماع نہ وہ وہاں ماشی نہیں آخر یہاں گھٹا بڑھا کیا یہی بدن سے تعلق، پھر اس سے ادراکات روح کو کیا علاقہ تھا کہ اس کے تفاوت سے وہ متفاوت ہوں، بخلاف بدن کہ اس کے ادراکات بنفسہ نہیں بلکہ تعلق روح ہی کے باعث ہیں اور تعلقات متفات

---

[1] عمدة القاری شرح صحیح بخاری باب المیت یسمع خفق النعال ادارة الطباعة المنیریة بیروت ۸ / ۷۱۴ صفحہ 939 از 948

Fatawa Ridawiyya Volume 9

And then, with what would that hearing be? At the time of separation, the physical ears' total perception will be withdrawn, and as the connection increases, perception will increase. Therefore, it is possible that for the purpose of punishment and reward, a middle degree of connection is given such that the body acts only as a tool for perceiving pleasure and pain, through which hearing and sight are not obtained, but for questioning and speaking, a higher degree is given whereby the path of the body's hearing also opens. The reason is that all these matters relate to both soul and body. In generalizing reward and punishment, the body's participation is only required to this extent, while in participation in questioning, hearing is also desired. In short, the speech of the Ahl-al-Sunnah should be attributed to the body. And if this is indeed the case, then your objective is lost, your effort is in vain, and if you forcibly tie it to the soul, then the misguidance of Mu'tazilism is the immediate outcome, where is the escape! In short, by the grace of Allah, Divine guidance is the companion of the Ahl-al-Sunnah, and abandonment and deprivation are the lot of the people of innovation, who find the arrows of their bows returning to hit their own faces before they reach their target. All the statements of the eminent scholars they bring as evidence with thousands of painstakingly difficult efforts turn out to be their own deadly enemies and true evidences for the Ahl-al-Sunnah. Praise be to Allah, Mullah Ji's hand is completely empty; in this entire discussion, every single one of his whispers has been completely eradicated. Mullah Ji! Now permit us to return your own stomach-born words from your page reflection (Note: Halaq) back onto your own face, stating that:

[Left Column - Persian] The helpless (Qannauji), a cunning person of mature madness and raw action, who according to his own religion has become blind and deaf, like brick and stone, rather even worse than them, with the short-sightedness that whatever I write, the common Muslims will rely on it. Whatever he had in his stomach, he brought to his tongue. Alas, this helpless person who endured labor for many nights in this chapter, we did not show him consideration and exposed his error, so this matter has become public knowledge (fallen from the roof). And praise be to Allah, Lord of the worlds, and it was said, "Away with the people who do wrong."

[Right Column - Urdu Translation] The helpless (Qannauji) cunning, mature in madness, raw in action, who according to his religion has become blind, deaf, even brick and stone, rather even worse than them, with the thought that whatever I

write, common Muslims will rely on it. Whatever he had in his stomach, he brought to his tongue. Alas, this poor man who endured many nights of labor in this matter, we did not favor him and revealed his error, so this matter became public knowledge. (T) And all praise is for Allah, the Lord of all worlds. And it was said, "May destruction be for the wrongdoers." (T)

Note: In astronomical figures, 138 is written as 'Lih', its reflection is 'Halaq' (throat) 12 months (M). Page 940 of 948

और फिर वह सुनना भी किस चीज़ से होगा, क्योंकि प्राण निकलते समय कानों की संपूर्ण धारणा शक्ति समाप्त हो जाएगी और जैसे-जैसे संबंध बढ़ेगा, धारणा बढ़ेगी। इसलिए संभव है कि दंड और सुख (अज़ाब व सवाब) के लिए संबंध के मध्यम स्तरों से वह स्तर दिया जाए कि शरीर केवल सुख और दुख की अनुभूति का साधन बने, जिसके माध्यम से सुनना और देखना प्राप्त न हो, और प्रश्न तथा संवाद के लिए उससे उच्च स्तर दिया जाए जिसके कारण शरीर के सुनने का मार्ग भी खुल जाए। और कारण यही है कि ये सभी मामले आत्मा और शरीर दोनों से संबंधित हैं। सामान्य दंड और सुख में शरीर की भागीदारी केवल इसी सीमा तक आवश्यक है, और प्रश्न में भागीदारी के लिए सुनना भी वांछित है। संक्षेप में, अहले सुन्नत के कथन को शरीर पर ही लागू करें। और यदि निश्चित रूप से यही है, तो आपका उद्देश्य समाप्त हो गया, आपकी मेहनत बेकार गई, और यदि आप इसे ज़बरदस्ती आत्मा पर थोपते हैं, तो मुअतज़िला की गुमराह होने का ख़तरा है, फिर बचाव कहाँ! कुल मिलाकर, अल्लाह की कृपा से, ईश्वरीय मार्गदर्शन अहले सुन्नत का साथी है, और त्याग तथा वंचना उन नवाचार करने वालों (बिदअतियों) का भाग्य है जिनके धनुष से निकले तीर लक्ष्य तक पहुँचने से पहले ही वापस आकर उन्हीं के चेहरों पर लगते हैं। प्रख्यात विद्वानों के जितने भी कथनों को वे हज़ारों कष्टों के साथ अपना प्रमाण बनाकर लाते हैं, वे उन्हीं के घातक दुश्मन और अहले सुन्नत के सच्चे प्रमाण बन जाते हैं। अल्लाह का शुक्र है, मुल्ला जी का हाथ पूरी तरह खाली हो गया है; इस पूरी चर्चा में उनकी हर एक बात की जड़ काट दी गई है। मुल्ला जी! अब हमें अनुमति दें कि आपकी अपनी ही पृष्ठ प्रतिबिंब (नोट: हलक़) की कोख से निकले शब्दों को आपके ही मुँह पर वापस फेंक दें कि:

[बायां कॉलम - फारसी] असहाय (क़न्नौजी), परिपक्व पागलपन और अपरिपक्व कर्म वाला एक धूर्त व्यक्ति, जो अपने धर्म के अनुसार अंधा और बहरा, बल्कि ईंट और पत्थर के समान, बल्कि उनसे भी बदतर हो गया है, इस तुच्छ सोच के साथ कि मैं जो कुछ भी लिखूँगा, आम मुसलमान उस पर भरोसा करेंगे। जो कुछ उसके पेट में था, वह उसकी ज़बान पर आ गया। अफ़सोस कि इस बेचारे ने, जिसने इस अध्याय में कई रातें मेहनत की, हमने उसका लिहाज़ न करते हुए उसकी गलती ज़ाहिर कर दी, तो यह मामला जगज़ाहिर (छत से गिरा बर्तन) हो गया। और सारी प्रशंसा अल्लाह के लिए है जो तमाम जहानों का रब है। और कहा गया कि ज़ालिमों के लिए विनाश हो।

[दायां कॉलम - उर्दू अनुवाद] असहाय (क़न्नौजी) धूर्त, पक्का पागल, कच्चा काम करने वाला, जो अपने मज़हब के अनुसार अंधा, बहरा बल्कि ईंट पत्थर, बल्कि उनसे भी बदतर हो चुका है, इस

ख़्याल से कि मैं जो कुछ लिख दूँ गा आम मुसलमान उस पर एतमाद करलेंगे, जो कुछ पेट में रखता था ज़बान पर लाया, अफ़सोस कि यह बेचारा जिसने इस बाब में कई रात मुशक्क़त झेली हम लोगों ने उसकी रियायत न करके उसकी तग़लीज़ (ग़लती) ज़ाहिर करदी तो यह मामला तश्त अज़ बाम (जग ज़ाहिर) हो गया। (त) और सारी तारीफ़ अल्लाह के लिए जो सारे जहानों का रब है। और कहा गया हलाकत हो ज़ालिमों के लिए। (त)

नोट: ज्योतिषीय अंकों में 138 को 'लह' लिखते हैं जिसका प्रतिबिंब 'हलक़' (गला) 12 [महीने] है (म)।

اور پھر وہ سننا بھی کاہے سے ، گوش سر تو وقت مفارقت سلب کلی ادراک ہو گا اور جتنا تعلق بڑھتا جائے گا اوراک بڑھے گا۔ لہذا ممکن کہ تعذیب و تنعیم کے لیے تعلق کے مدارج متوسط سے وہ درجہ دیا جائے کہ بدن صرف اوراک لذت والم کا آلہ کار پائے اس کے ذریعہ سے سماع وابصار ہاتھ نہ آئے اور سوال و کلام کے لیے اس سے اعلیٰ درجہ ملے جس کے باعث سمع بدن کا بھی رستہ کھلے اور وجہ وہی کہ یہ سب امور روح و جسم دونوں سے متعلق ہیں تعمیم و تعذیب میں مشارکت بدن کو صرف اسی قدر درکار، اور سوال میں شرکت کو سمع بھی مطلوب، غرض کلام اہلسنت بدن پر محمول کیجئے۔ اور یقینا یہی ہے تو آپ کا مطلب فوت، محنت رائگاں، اور خواہ مخواہ روح کے گلے باندھیے تو ضلال اعتزال نقد وقت ہے مفر کہاں ! بالجملہ بحمد اللہ توفیق الہی رفیق اہلسنت اور خذلان و حرمان نصیب اہل بدعت ہے جو تیر ان کی کمان سے وصل پاتے ہیں فصل سے پہلے انہیں کے منہ پر پلٹا کھاتے ہیں، علمائے اعلام کے جتنے کلام بہزار جانکاہی اپنی دلیل بنا کر لاتے ہیں وہ انہی کے دشمن قاتل اور اہلسنت کے سچے دلائل بن جاتے ہیں، الحمد للہ ملا جی کا ہاتھ یکسر خالی ہو گیا اس ساری بحث میں ان کی تمام چہ می گوئیوں کا حرف بحرف قلع قمع ہو لیا، ملا جی ! اب تو ہمیں اجازت دیجئے کہ آپ ہی کے صفحہ عکس عہ حلق کے شکم زاد بول آپ ہی کے منہ پر پلٹ دیں کہ :

[بایاں کالم - فارسی] بے چارہ (قنوجی) عیارہ پختہ جنون خام کارہ کہ از روی کیش خویش کور و کر بل خشت و حجر بلکہ از انہم بتر شدہ است بقصور اینکہ من ہر چہ خواہم نگاشت عامہ مومنین بران اعتماد خواہند ساخت ہر چہ در شکم داشت از دہان بر آورد افسوس کہ مردمان رعایت این

بیچارہ کہ شبہادر میں باب محنت کشیدہ نہ کردہ تغلیط وے ظاہر کردیم پس این معاملہ طشت از بام شد۔ والحمد للہ رب العلمین وقیل بعداً للقوم الظالمین۔

[دایاں کالم - اردو ترجمہ] بے چارہ (قنوجی) عیار، پختہ جنون، خام کار، جو اپنے مذہب کی رو سے اندھا، بہرا بلکہ اینٹ پتھر، بلکہ ان سے بھی بدتر ہو چکا ہے، اس خیال سے کہ میں جو کچھ لکھ دوں گا عام مسلمان اس پر اعتماد کرلیں گے، جو کچھ شکم میں رکھتا تھا زبان پر لایا، افسوس کہ یہ بے چارہ جس نے اس باب میں کئی رات مشقت جھیلی ہم لوگوں نے اس کی رعایت نہ کر کے اس کی تغلیط ظاہر کردی تو یہ معاملہ طشت از بام ہو گیا، (ت) اور ساری تعریف اللہ کے لیے جو سارے جہانوں کا رب ہے۔ اور کہا گیا ہلاکت ہو ظالموں کے لیے۔ (ت)

عہ: ارقام نجومیہ میں ۱۳۸ کو لح لکھتے ہیں جس کا عکس حلق ۱۲ منہ (م) Page 940 of 948

Fatawa-e-Razvia Volume 9

Answer Five: Suppose they are not Mu'tazilites but are the Mashaikh (scholars) of Ahl-al-Sunnah themselves; however, this matter is not juristic (Fiqhi). The author of 'Mi'at Masa'il' admits that it is separate from jurisprudence and related to reports (traditions). The questioner asked:

Is the hearing of the living's speech by the dead permissible in Shari'ah or a sin, and which sin?	Is it permissible in Shari'ah for the dead to hear the speech of the living, or is it a sin? If so, what kind of sin? (T)

You express your knowledge in response to this, stating that:

It is the habit and catchphrase of the questioner to ask everywhere whether it is permissible or a sin, and which sin. Asking in these words at this point is not appropriate because permissibility and sin apply to actions and deeds, whereas this matter relates to reports, i.e., whether this thing is established or not[1], summarized.	It is the habit and catchphrase of the questioner to ask everywhere, "Is it permissible or a sin? Which sin?" Here, asking in these words is not suitable because permissibility and sin relate to acts and deeds. This is related to reports: whether this matter is established or not? [Summarized] (T)

And when the matter does not even belong to the science of Jurisprudence, then what is the meaning of specifying Hanafis and Shafi'is or following some or most scholars? It relates to reports; what is the point of deriving it from sources contrary to reports and Hadith? After raising this introductory point, giving an answer contrary to explicit texts (Nusoos-e-Sariha) and authentic Hadiths like this:

Therefore, the answer is that according to most Hanafis, the hearing of the dead is not established[2].	Therefore, the answer is that according to most Hanafis, the hearing of the dead is not established. (T)

And then, even in this, there is such an expansion against the original sources that "as it becomes known explicitly and implicitly, which is close to explicit, from Al-Kafi, Fath al-Qadir, and Hashiya of Al-Hidayah[3]" (Summarized) (as it becomes known explicitly and implicitly, which is close to explicit, from Al-Kafi, Fath al-Qadir, and Hashiya of Al-Hidayah. Summarized. T). This was merely an out-of-place defense. Regarding this answer, it was also stated in 'Tashih al-Masa'il':

Since it was said, and in fact, this matter is not from the science of jurisprudence either, as the respondent also admitted here[4].	He said: In fact, this matter is not even from the science of jurisprudence, as the respondent admitted at this point. (T)

[1] Mi'at Masa'il, Issue 26, Maktaba Tawheed-o-Sunnat Peshawar, p. 51. [2] Tafhim al-Masa'il, 'Lack of Hearing of the Dead from Hanafi Books', Matba' Mohammadi Lahore, p. 37. [3] Tafhim al-Masa'il, 'Lack of Hearing of the Dead from Hanafi Books', Matba' Mohammadi Lahore, p. 37. [4] Tafhim al-Masa'il, 'Lack of Hearing of the Dead from Hanafi Books', Matba' Mohammadi Lahore, p. 77.

फ़तावा-ए-रज़विया जिल्द 9

उत्तर 5: मान लीजिए कि वे मोतज़िला नहीं बल्कि अहले सुन्नत के ही मशाईख़ हैं, मगर यह मसला कोई फ़िक़्ही (कानूनी) नहीं है। 'माइते मसाइल' के लेखक स्वीकार करते हैं कि यह फ़िक़्ह से अलग है और रिवायतों (अख़बार) से संबंधित है। सवाल करने वाले ने पूछा था:

क्या मृतकों का जीवितों की बातें सुनना शरीअत में जायज़ है या गुनाह, और कौन सा गुनाह?

मृतकों का जीवितों का कलाम सुनना शरीअत में जायज़ है या गुनाह, कौन सा गुनाह? (त)

आप इसके उत्तर में ज्ञान प्रकट करते हुए फ़रमाते हैं कि:

सवाल करने वाले की आदत और तकिया-कलाम यह है कि वह हर जगह पूछता है कि जायज़ है या गुनाह, और कौन सा गुनाह? इस स्थान पर इन शब्दों में पूछना शोभा नहीं देता क्योंकि जायज़ और गुनाह कार्यों और कर्मों में होता है, और यह रिवायतों से संबंधित है कि क्या यह बात साबित है या नहीं?[1], संक्षेप में।

स़ाइल (सवाल करने वाले) की आदत और तकिया-कलाम यह है कि वह हर जगह पूछता है जायज़ है या गुनाह? कौन सा गुनाह? यहाँ इन शब्दों से सवाल उचित नहीं है क्योंकि जायज़ और गुनाह अफ़आल (कार्यों) और आमाल (कर्मों) में होता है। और यह अख़बार (रिवायतों) से संबंधित है कि यह बात साबित है या नहीं? [संक्षेप में] (त)।

और जब मसला इल्मे फ़िक़्ह से ही नहीं है, तो हनफ़ियत और शाफ़इयत का विशेष उल्लेख करना या कुछ अथवा अधिकांश मशाईख़ का अनुकरण करने का क्या अर्थ है? यह रिवायतों से संबंधित है; रिवायतों और हदीसों के विपरीत गैर-स्रोतों से निष्कर्ष निकालने का क्या अर्थ है? यह भूमिका बांधकर, स्पष्ट नुसूस (ग्रंथों) और सही हदीसों के विपरीत उत्तर इस तरह देना:

अतः उत्तर यह है कि अधिकांश हनफ़िया के निकट मृतकों का सुनना साबित नहीं है[2]।

अतः उत्तर यह है कि अक्सर हनफ़िया के नज़दीक समाअ-ए-मौता (मृतकों का सुनना) साबित नहीं। (त)

और फिर इसमें भी मूल स्रोतों के मुक़ाबले यह विस्तार कि "जैसा कि काफ़ी, फ़तहुल क़दीर, हाशिया हिदाया से स्पष्ट रूप से और संकेत से, जो स्पष्टीकरण के निकट है, मालूम होता है[3]" (संक्षेप में) (जैसा कि काफ़ी, फ़तहुल क़दीर, हाशिया हिदाया से स्पष्ट रूप से और संकेत से, जो स्पष्टीकरण के निकट है, मालूम होता है। संक्षेप में। त)। यह महज एक बेजा बचाव था। इस जवाब के बारे में 'तसहीहुल मसाइल' में भी फ़रमाया गया:

चूंकि कहा गया है कि वास्तव में यह मसला इल्मे फ़िक़ह से भी नहीं है, जैसा कि जवाब देने वाले ने भी यहाँ स्वीकार किया है[4]।

फ़रमाया: दर-हक़ीक़त यह मसला इल्मे फ़िक़ह से भी नहीं जैसा कि मुजीब (जवाब देने वाले) ने इसी मक़ाम पर इक़रार किया। (त)

[1] माइते मसाइल, मसला 26, मकतबा तौहीद ओ सुन्नत पेशावर, पृ. 51 [2] तफ़हीमुल मसाइल, हनफ़ी किताबों से मृतकों के न सुनने का वर्णन, मतबा मोहम्मदी लाहौर, पृ. 37 [3] तफ़हीमुल मसाइल, हनफ़ी किताबों से मृतकों के न सुनने का वर्णन, मतबा मोहम्मदी लाहौर, पृ. 37 [4] तफ़हीमुल मसाइल, हनफ़ी किताबों से मृतकों के न सुनने का वर्णन, मतबा मोहम्मदी लाहौर, पृ. 77

فتاوی رضویہ جلد نہم

جواب پنجم: فرض کیا کہ وہ معتزلہ نہیں مشائخ اہلسنت ہی ہیں، مگر یہ مسئلہ کچھ فقیہ نہیں صاحب مائۃ مسائل کو اقرار ہے کہ فقہ سے جدا متعلق باخبار ہے سائل نے سوال کیا تھا:

سماعِ موتی کلامِ احیاء در شرحِ جائز است یا گناہ کدام گناہ؟

مردوں کا زندوں کا کلام سننا شریعت میں جائز ہے یا گناہ، کون سا گناہ؟ (ت)

آپ اس کے جواب میں اظہارِ علم فرماتے ہیں کہ:

عادت و تکیہ کلام سائل آنست کہ در ہر جامی پرسد جائز است یا گناہ کدام گناہ درین مقام پرسیدن بایں عبارت نمی سزد زیرا کہ جواز و گناہ در افعال و اعمال می شود و این متعلق باخبار است کہ این امر ثابت است یا نہ 1، ملخصاً۔

سائل کی عادت اور تکیہ کلام یہ ہے کہ ہر جگہ پوچھتا ہے جائز ہے یا گناہ؟ کون سا گناہ؟ یہاں ان الفاظ سے سوال مناسب نہیں اس لیے جواز اور گناہ افعال و اعمال میں ہوتا ہے۔ اور یہ اخبار سے متعلق ہے کہ یہ امر ثابت ہے یا نہیں؟ ملخصاً (ت)

اور جب مسئلہ علم فقہ سے ہی نہیں تو حنفیت و شافعیت کی تخصیص یا تقلید بعض یا اکثر مشائخ سے اسے تعلق یعنی چہ۔ متعلق باخبار ہے اخبار و احادیث کے خلاف غیر ماخذ سے اخذ کیا معنی، عرضِ تمہید یہ اٹھا کر بخلاف نصوصِ صریحہ، احادیثِ صحیحہ جواب یوں دینا:

پس جواب اینست کہ نزد اکثر حنفیہ سماعتِ موتی ثابت نیست 2۔

پس جواب یہ ہے کہ اکثر حنفیہ کے نزدیک سماعِ موتی ثابت نہیں۔ (ت)

اور پھر اس میں بھی تصریحاتِ جلیلہ اصل ماخذ کے مقابل یہ توسع کہ "چنانکہ از کافی و فتح القدیر حاشیہ ہدایت صراحتہً و اشارتہً کہ قریب بتصریح است معلوم می شود 3" (ملخصاً) (جیسا کہ کافی، فتح القدیر حاشیہ ہدایت سے صراحتہً اور اشارتہً جو تصریح کے قریب ہے۔ معلوم ہوتا ہے۔ ملخصاً۔ ت) محض بچاو بے محل واقع ہوا، اس جواب کی طرف بھی تصحیح المسائل میں ارشاد فرمایا:

حیث قال و در حقیقت این مسئلہ از علمِ فقہ ہم فرمایا: در حقیقت یہ مسئلہ علمِ فقہ سے بھی نہیں نیست چنانچے مجیب نیز دریں جا اقرار نمودہ 4۔ جیسا کہ مجیب نے اسی مقام پر اقرار کیا۔ (ت)

1 مائۃ مسائل مسئلہ ۲۶ مکتبہ توحید و سنت پشاور ص ۵۱ 2 تفہیم المسائل عدم سماع موتی از کتب حنفیہ مطبع محمدی لاہور ص ۳۷ 3 تفہیم المسائل عدم سماع موتی از کتب حنفیہ مطبع محمدی لاہور ص ۳۷ 4 تفہیم المسائل عدم سماع موتی از کتب حنفیہ مطبع محمدی لاہور ص ۷۷

Fatawa Razawiya - Volume 9

I say: It has been made clear in the beginning of the discourse that this statement is not narrated from the Imams of our school of thought (may Allah Almighty be pleased with them). The reasoning in a narrated issue (mas'ala mansoosa) is the intellectual exercise of the scholars (mashaykh). In matters of jurisprudence (fiqhiyyat), following the prominent scholars (mashaykh a'lam) after the noble Imams is also highly regarded, as:

[Arabic Box] It is obligatory upon us to follow what they have preferred and authenticated, just as if they had issued a fatwa to us during their lifetime.

[Urdu Translation] It is our duty to follow what these personages have declared as preferred and correct, just as if they were giving us a fatwa in their lifetime, our responsibility would be the same. (T)

But, "Every word has a point and every point has a place." (In every matter there is a point, and every point has its occasion. - T)

It is a common intellectual principle for both proponents and opponents that a statement of any art is accepted within its own domain. For investigating Halal and Haram, recourse will be to Fiqh (jurisprudence). For the authenticity or weakness of a Hadith, investigations of the science of Hadith will be sought. A medical issue will not be taken from Nahw (grammar), nor will a grammarian be consulted for medicine. Scholars state that jurisprudential issues mentioned in commentaries of Hadith which contradict books of Fiqh are not authoritative. Rather, they have explicitly stated that a matter mentioned in books of the Principles of Jurisprudence (Usul al-Fiqh) which contradicts the books of branches (Furu') is not reliable. Furthermore, it is said that a matter mentioned in a book of Fiqh under a different chapter will not take precedence over the matter mentioned in its specific chapter, because sometimes negligence occurs when a topic is discussed outside its proper context.

[Arabic Box] And we have explained all of that in our blessed treatise 'Fasl al-Qada fi Rasm al-Ifta', if Allah Almighty wills.

[Urdu Translation] We have done all this in our treatise 'Fasl al-Qada fi Rasm al-Ifta', which is blessed, if Allah Almighty wills. (T)

One who confuses matters by ignoring the levels of distinction is either ignorant or heedless. The intermediate state (Barzakh) and the Resurrection (Ma'ad) are matters

of the Unseen (Ghayb) in which analogy (Qiyas) and independent reasoning (Ijtihad) have no role. Information about them can only be known from the statement of the Trustworthy Prophet of the Unseen, peace and blessings of Allah be upon him, and not from the opinions of the scholars (Mashaykh). In fact, scholars differ on whether following (Taqlid) in matters of belief (Aqa'id) is acceptable. There is no place for saying "such and such scholars said so" and accepting it solely on their authority when it comes to knowing Allah is One, the Messenger is true, Paradise and Hell exist, and the questioning, punishment, and rewards of the grave are real. Yes, in beliefs, the following of the Book, Sunnah, the consensus of the Ummah, and the Great Majority (Sawad-e-A'zam) of the Ahl al-Sunnah is required. This is because God and His Messenger have informed us that consensus on misguidance is impossible and going against the great majority is innovation. Now, if you look at the Glorious Book (Quran), it undoubtedly proves that the soul does not die, the soul is not without perception, the soul's perception is not dependent on the body, and the soul remains and perceives after the destruction of the body. Contrary to...

---

[1] Al-Durr al-Mukhtar, Introduction of the Book (Rasm al-Mufti), Mujtabai Press Delhi, p. 15/1

फ़तावा रज़विया - जिल्द नहम (9)

मैं कहता हूँ: कलाम की शुरुआत में यह स्पष्ट हो चुका है कि यह कथन हमारे मज़हब के इमामों (अल्लाह उनसे राज़ी हो) से वर्णित नहीं है। किसी स्पष्ट मसले (मंसूस मसला) में दलील देना मशायख की दिमागी मेहनत है। फ़िक़्ही मामलों में, महान इमामों के बाद प्रसिद्ध मशायख का अनुसरण भी सिर और आँखों पर है (अर्थात बहुत सम्मानजनक है) क्योंकि:

[अरबी बॉक्स] हमारे लिए उसी का पालन करना अनिवार्य है जिसे उन्होंने तरजीह दी और सही करार दिया, ठीक वैसे ही जैसे वे अपने जीवन में हमें फ़तवा देते तो हमारी ज़िम्मेदारी वही होती।

[उर्दू अनुवाद] हमारी ज़िम्मेदारी उसी का अनुसरण करना है जिसे इन हज़रात ने राज़ह (प्रबल) और सही करार दिया, जैसे वे अपनी ज़िंदगी में हमें फ़तवा देते तो हमारी ज़िम्मेदारी यही होती। (त)

लेकिन, "हर बात का एक मर्म होता है और हर मर्म का अपना स्थान होता है।" (हर बात में कोई मर्म होता है और हर मर्म का कोई अवसर होता है। - त)

पक्ष और विपक्ष के सभी बुद्धिमानों के लिए यह एक सामान्य नियम है कि किसी भी कला (फन) की बात उसकी सीमा तक ही स्वीकार्य है। हलाल और हराम की जांच में फ़िक़्ह (न्यायशास्त्र) की ओर रुख किया जाएगा, और हदीस की प्रामाणिकता या कमजोरी की जांच के लिए हदीस विज्ञान के शोध की ओर। चिकित्सा का मसला नह्व (व्याकरण) से नहीं लिया जाएगा, और न ही नह्व वाले से चिकित्सा पूछी जाएगी। उलेमा (विद्वान) फरमाते हैं कि हदीस की व्याख्याओं (शरुह) में जो फ़िक़्ही मसले फ़िक़्ह की किताबों के विरुद्ध हों, वे विश्वसनीय नहीं हैं, बल्कि यह स्पष्ट किया गया है कि स्वयं उसूल-ए-फ़िक़्ह की किताबों में जो मसला शाखाओं (फ़ुरूह) की किताबों के विरुद्ध हो, वह भरोसेमंद नहीं है। बल्कि यह कहा गया है कि फ़िक़्ह की किताबों में जो मसला किसी और अध्याय (गैर बाब) में ज़िक्र हो, वह उस मसले पर भारी नहीं होगा जो उसके अपने अध्याय (ज़ेर-ए-बहस बाब) में वर्णित है, क्योंकि कभी-कभी दूसरे अध्याय में ज़िक्र करते समय ढिलाई (तसाहुल) आ जाती है।

[अरबी बॉक्स] और हमने वह सब अपनी मुबारक रिसाला 'फ़स्ल अल-क़ज़ा फ़ी रस्म अल-इफ़्ता' में स्पष्ट कर दिया है, इंशा अल्लाह तआला।

[उर्दू अनुवाद] यह सब हमने अपने रिसाला 'फ़स्ल अल-क़ज़ा फ़ी रस्म अल-इफ़्ता' में किया है जो बरकत वाला है, अगर अल्लाह तआला ने चाहा। (त)

जो व्यक्ति श्रेणियों के अंतर को भुलाकर विषयों को मिला देता है, वह या तो अज्ञानी है या गाफिल-ज़ाहिल (बेखबर) है। बरज़ख़ (मृत्यु के बाद की स्थिति) और मा'आद (पुनरुत्थान) परोक्ष (ग़ैब) के मामले हैं जिनमें कयास (तर्क) और इज्तिहाद (स्वतंत्र शोध) का कोई दखल नहीं है। उनका पता तो केवल नबी अमीनुल ग़ैब (परोक्ष के अमानतदार नबी) सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम के फरमान से ही चल सकता है, न कि मशायख की राय से। बल्कि उलेमा-ए-किराम का इसमें मतभेद है कि अक़ायद (आस्थाओं) में तक़लीद (अनुसरण) स्वीकार्य है या नहीं। अल्लाह तआला को एक, रसूल को सच्चा, जन्नत और जहन्नुम को मौजूद, कब्र के सवाल, अज़ाब और सुख को हक़ जानने में इसकी कोई जगह नहीं है कि फ़लां-फ़लां मशायख ऐसा कहते थे, इसलिए केवल उनके आधार पर मान लिया है। हाँ, अक़ायद में किताब और सुन्नत, उम्मत का इज्मा (सहमति) और अहले सुन्नत के'सवाद-ए-आज़म' (बहुसंख्यक समुदाय) का अनुसरण है। क्योंकि खुदा और रसूल ने हमें बता दिया है कि गुमराही पर इज्मा असंभव है और सवाद-ए-आज़म के खिलाफ जाना इब्तिदा (बिदअत/नया आविष्कार) है। अब पाक किताब (क़ुरआन) को देखिए, तो वह निस्संदेह यह साबित कर रही है कि रूह मरती नहीं है, रूह चेतना शून्य नहीं होती, रूह की चेतना शरीर पर निर्भर नहीं है, शरीर के नष्ट होने के बाद भी रूह बाकी और सचेत रहती है। इसके विपरीत...

---

[1] अल-दुर्र अल-मुख्तार, मुकद्दमा अल-किताब (रस्म अल-मुफ्ती), मतबा मुज्तबाई दिल्ली, पृ. 15/1

فتاوٰی رضویہ - جلد نہم

اقول: صدر کلام میں واضح ہوچکا کہ یہ کلام ہمارے ائمہ مذہب رضی اللہ تعالٰی عنہم سے منقول نہیں، استدلال مسئلہ منصوصہ میں طبع آزمائی مشائخ ہے۔ فقہیات میں ائمہ کرام کے بعد مشائخ اعلام کی تقلید بھی علی الراس والعین کہ:

[Arabic Box] علینا اتباع مارجحوہ وصححوہ کما لو افتونا فی حیاتہم ۔

[Urdu Translation] ہمارے ذمہ اسی کا اتباع ہے جسے ان حضرات نے راجح وصحیح قرار دیا، جیسے وہ اپنی زندگی میں ہمیں فتوی دیتے تو ہماری ذمہ داری یہی ہوتی۔ (ت)

مگر ہر سخن نکتہ و ہر نکتہ مکان دارد (ہر بات میں کوئی نکتہ اور ہر نکتہ کا کوئی موقع ہوتا ہے۔ ت)

موافق مخالف سب اہل عقول کا قدر یمی معمولی کہ ہر فن کی بات اس کی حد تک محدود مقبول، تحقیق حلال وحرام میں فقہ کی طرف رجوع ہوگی، اور صحت وضعفِ حدیث میں تحقیقات فنِ حدیث کی طرف طبی مسئلہ نحو سے نہ لیں گے، نہ نحوی طب سے علماء فرماتے ہیں شروح حدیث میں جو مسائل فقہیہ کتب فقہ کے خلاف ہوں مستند نہیں بلکہ تصریح فرمائی کہ خود اصول فقہ کی کتابوں میں جو مسئلہ خلاف کتب فروع ہو معتمد نہیں، بلکہ فرمایا جو مسئلہ کتب فقہ ہی میں غیر باب میں مذکور ہو مسئلہ مذکور فی الباب کا مقادم نہ ہوگا کہ غیر باب میں کبھی تساہل راہ پاتا ہے۔

[Arabic Box] وقد بیننا کل ذلك فی رسالتنا المبارکۃ ان شاء اللہ تعالٰی فصل القضاء فی رسم الافتاء۔

[Urdu Translation] یہ سب ہم نے اپنے رسالہ فصل القضا فی رسم الافتا میں کیا ہے جو بابرکت ہے اگر اللہ تعالیٰ نے چاہا (ت)

جو فرق مراتب گما کر خلط مبحث کرے جاہل ہے یا غافل ذاہل ،، برزخ ومعاد امور غیبیہ ہیں جن میں قیاس واجتہاد کو دخل نہیں، ان کا پتا تو نبی امین الغیب صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم ہی کے ارشاد سے چل سکتا ہے نہ مشائخ کی رائے سے۔ بلکہ علمائے کرام کو اس میں اختلاف ہے کہ عقائد میں تقلید مقبول ہے یا نہیں۔ اللہ تعالیٰ کو ایک، رسول کو سچا، جنت ونار کو موجود، سوال وعذاب و نعیم قبر کو حق جاننے میں اس کا کوئی محل نہیں کہ فلاں فلاں مشائخ ایسا فرماتے تھے محض ان کے اعتبار پر مان لیا ہے۔ ہاں عقائد میں کتاب وسنت واجماع اُمت وسوادِ اعظم اہل سنت کا اتباع ہے۔ اس لیے کہ خدارسول نے ہمیں بتا دیا کہ اجماع ضلالت پر ناممکن اور سوادِ اعظم کا خلاف ابتداع ہے۔ اب کتاب مجید دیکھئے تو بلاشبہ ثابت فرمارہی ہے کہ روح میت نہیں، روح بے ادراک نہیں، روح کے ادراک بدن پر موقوف نہیں، روح فنائے بدن کے بعد باقی ومدرک رہتی ہے۔ برخلاف

---

[1] الدر المختار مقدمۃ الکتاب (رسم المفتی) مطبع مجتبائی دہلی ص ۱۵/۱

Fatawa Razawiyya, Volume 9

These statements of the Mashaikh (spiritual masters) which you have acted upon against the explicit command of the Book of Allah. If you listen to the Sunnah of the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him), then how explicit, authentic, grand, and detailed are the hadiths proving the hearing of the dead (Sama' al-Mawta), hearing which would turn stones into wax. If you ask for consensus, it is cited above; let alone the 'Sawad al-A'zam' (great majority), its example is clear from the third objective. O Lord! Then where is the way towards contradiction? Well, this is a matter of Barzakh and Resurrection for which you will not find any specific chapter or section in the books of Fiqh (jurisprudence), as they are entirely separate from legal discourse. The discourse on whether a word or action necessitates disbelief (Kufr) is itself about the actions of those legally accountable (Mukallafin). Its explanation is mentioned in the "Chapter on Apostasy" (Bab al-Riddah) in Fiqh books, and countless Fatwas of disbelief based on hundreds of statements and actions are written by these very Mashaikh. However, the cautious researchers who avoid deficiency and excess, while being true Hanafi followers (Muqallids) and servants and believers in these noble Mashaikh, do not issue Fatwas against them and avoid Takfir (declaring someone a disbeliever) as much as possible. Rather, they clearly state that if even a weak narration, even from another school of thought, is found regarding Islam, they will act upon it. And until there is consensus on Takfir, they will not call someone a disbeliever. The same 'Durr al-Mukhtar' in which 'As for us, it is upon us to follow what has been preferred' (etc.) is stated, it is mentioned:

Arabic Text	**Urdu Translation**
الالفاظہ تعرف فی الفتاوی بل افردت بالتالیف مع انہ لا یفتی بالکفر بشیئ منھا الا فیما اتفق المشائخ علیہ کما سیجیئ قال فی البحر وقد الزمت نفیس ان لا افتی بشیئ منھا 2۔	That is, the words of disbelief are well-known in the books of Fatwas, rather, independent books have been authored for their explanation. Along with this, a Fatwa of disbelief will not be given based on any of them except where the consensus of the Mashaikh is established, as will soon appear in the author's words. In 'Bahr al-Ra'iq', he said: I have made it obligatory upon myself that I will not give a Fatwa on any of these.

In 'Tanwir al-Absar', it is written:

Arabic Text	Urdu Translation
لا يفتى بتكفير مسلم امكن حمل كلامہ على محمل حسن اوكان فى كفرہ خلاف ولوروايۃ ضعيفۃ 3۔	A Fatwa of disbelief shall not be given against a Muslim as long as it is possible to interpret their words in a good way, or if there is disagreement regarding their disbelief, even if it is a weak narration.

1 Durr al-Mukhtar, Introduction of the Book (Rasm al-Mufti), Mujtabai Press Delhi, 1/15 2 Durr al-Mukhtar, Chapter on the Apostate, Mujtabai Press Delhi, 1/355 3 Durr al-Mukhtar, Chapter on the Apostate, Mujtabai Press Delhi, 1/356

फतावा रज़विया, खंड 9

मशायख के इन कथनों को, जिन पर आपने अमल करके अल्लाह की किताब के स्पष्ट आदेश के विरुद्ध कर दिया। यदि आप अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) की सुन्नत सुनें, तो मुर्दों के सुनने (समाअ अल-मौता) को सिद्ध करने वाली कितनी स्पष्ट, प्रामाणिक, भव्य और विस्तृत हदीसें हैं, जिन्हें सुनकर पत्थर भी मोम हो जाएं। यदि आप सर्वसम्मति (इज्मा) मांगते हैं, तो ऊपर उद्धृत किया गया है; 'सवाद-ए-आज़म' (बहुमत) की बात तो दूर, इसका उदाहरण तीसरे उद्देश्य से स्पष्ट है। हे प्रभु! फिर विरोधाभास की ओर रास्ता कहाँ है? खैर, यह बरज़ख और पुनरुत्थान का मामला है जिसके लिए आपको फ़िक़्ह (न्यायशास्त्र) की किताबों में कोई विशेष अध्याय या अनुभाग नहीं मिलेगा, क्योंकि वे कानूनी विमर्श से पूरी तरह अलग हैं। किसी शब्द या कार्य का कुफ़्र (अविश्वास) का कारण होना स्वयं उन लोगों के कार्यों का विषय है जो कानूनी रूप से जवाबदेह (मुकल्लफीन) हैं। इसका उल्लेख फ़िक़्ह की किताबों में "बाब अल-रिद्दा" (धर्मत्याग का अध्याय) में मिलता है, और इन मशायख द्वारा सैकड़ों कथनों और कार्यों पर कुफ़्र के अनगिनत फतवे लिखे गए हैं। हालाँकि, वे शोधकर्ता जो सावधानी बरतते हैं और अतिवाद से बचते हैं, जबकि वे सच्चे हनफ़ी अनुयायी (मुक़ल्लिद) और इन महान मशायख के सेवक और आस्तिक हैं, वे उन पर फतवा नहीं देते और जहाँ तक संभव हो तकफ़ीर (किसी को काफ़िर घोषित करना) से बचते हैं। बल्कि, वे स्पष्ट रूप से कहते हैं कि यदि इस्लाम के संबंध में कोई कमज़ोर कथन भी मिल जाए, भले ही वह दूसरे पंथ का हो, वे उसी पर अमल करेंगे। और जब तक तकफ़ीर पर आम सहमति न हो जाए, वे काफ़िर नहीं कहेंगे। वही 'दुर-ए-मुख्तार' जिसमें 'जहाँ तक हमारा सवाल है, हम पर उसका अनुसरण करना अनिवार्य है जिसे प्राथमिकता दी गई है' (आदि) कहा गया है, उसमें है:

अरबी पाठ	**उर्दू अनुवाद**
الالفاظہ تعرف فی الفتاوی بل افردت بالتالیف مع انہ لا یفتی بالکفر بشیئ منھا الا فیما اتفق المشائخ علیہ کما سیجیئ قال فی البحر وقد الزمت نفیس ان لا افتی بشیئ منھا 2۔	यानी कुफ़्र के शब्द फतवों की किताबों में प्रसिद्ध हैं, बल्कि उनके स्पष्टीकरण में स्वतंत्र पुस्तकें लिखी गई हैं। इसके साथ ही यह भी कि उनमें से किसी के आधार पर कुफ़्र का फतवा नहीं दिया जाएगा जब तक कि मशायख की सर्वसम्मति सिद्ध न हो जाए, जैसा कि शीघ्र ही लेखक के शब्दों में आता है। 'बहर अल-रैक' में उन्होंने कहा: मैंने अपने ऊपर यह अनिवार्य कर लिया है कि मैं उनमें से किसी पर फतवा नहीं दूँगा।

'तन्वीर अल-अबसार' में है:

अरबी पाठ	उर्दू अनुवाद
لا يفتى بتكفير مسلم امكن حمل كلامہ على محمل حسن اوكان فى كفرہ خلاف ولوروايۃ ضعيفۃ 3۔	किसी मुसलमान के कुफ़्र पर फतवा न दिया जाए जब तक कि उसके कथन की अच्छी व्याख्या संभव हो, या उसके कुफ़्र में मतभेद हो, भले ही वह कमज़ोर रिवायत से हो।

1 दुर-ए-मुख्तार, किताब की प्रस्तावना (रस्म अल-मुफ्ती), मुजतबाई प्रेस दिल्ली, 1/15 2 दुर-ए-मुख्तार, धर्मत्यागी का अध्याय, मुजतबाई प्रेस दिल्ली, 1/355 3 दुर-ए-मुख्तार, धर्मत्यागी का अध्याय, मुजतबाई प्रेस दिल्ली, 1/356

पृष्ठ 943 का 948

ان عباراتِ مشائخ کے جنھیں تم نے روح پر عمل کر کے صریح کتاب اللہ کے خلاف کر دیا۔ سنتِ رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم سُنے تو کیسی صریح و صحیح و جلیل و جزیل حدیثیں سماع موتیٰ ثابت فرما رہی ہیں جنھیں سن کر پتھر موم ہو جائے۔ اجماع مانگیے تو اس نقول اوپر منقول، سوادِ اعظم در کنار تو اس کا نمونہ مقصدِ سوم سے آشکار۔ یارب! پھر خلاف کی طرف راہ کدھر، بھلا یہ تو برزخ و معاد کا مسئلہ ہے جن کے لیے کوئی فصل و باب کتب فقہ میں نہ پائے گا کہ وہ بحث فقہ سے یکسر جدا ہیں، کسی قول یا فعل کا موجب کفر ہونا تو خود افعالِ مکلفین ہی سے بحث ہے۔ اس کے بیان کو کتب فقہ میں "باب الردۃ" مذکور اور صدہا اقوال و افعال پر انہی مشائخ کے بیشمار فتوائے کفر مسطور، مگر محققین محتاط تارکینِ تفریط و افراط با آنکہ سچے دل سے حنفی مقلد اور ان مشائخ کرام سے خادم و معتقد ہیں۔ زینہار ان پر فتویٰ نہیں دیتے اور حتی الامکان تکفیر سے احتراز رکھتے بلکہ صاف فرماتے ہیں کہ اگر کوئی روایت ضعیفہ اگر چہ دوسرے ہی مذہب کی درباره اسلام مل جائے گی اسی پر عمل کریں گے، اور جب تک تکفیر پر اجماع نہ ہولے کافر نہ کہیں گے، وہی در مختار جس میں اما نحن فعلینا اتباع مارجحوہ 1 الخ اسی میں ہے:

الفاظِ عربی	**اردو ترجمہ**
الالفاظہ تعرف فی الفتاوی بل افردت بالتالیف مع انہ لا یفتی بالکفر بشیئ منھا الا فیما اتفق المشائخ علیہ کما سیجیئ قال فی	یعنی الفاظ کفر کتبِ فتاویٰ میں معروف ہیں بلکہ ان کے بیان میں مستقل کتابیں تصنیف ہوئیں، اس کے ساتھ ہی یہ کہ ان میں سے کسی کی بناء پر فتویٰ کفر نہ دیا جائیگا مگر جہاں مشائخ کا اتفاق ثابت ہو جیسا کہ عنقریب کلامِ مصنف میں آتا ہے۔ بحر

الفاظِ عربی	اردو ترجمہ
البحر وقد الزمت نفیس ان لا افتی بشیئ منھا 2۔	الرائق میں فرمایا: میں نے اپنے اوپر لازم کر لیا ہے کہ ان میں سے کسی پر فتویٰ نہ دوں۔

تنویر الابصار میں ہے:

الفاظِ عربی	اردو ترجمہ
لا یفتی بتکفیر مسلم امکن حمل کلامہ علی محمل حسن اوکان فی کفرہ خلاف ولوروایۃ ضعیفۃ 3۔	کسی مسلمان کے کفر پر فتویٰ نہ دیا جائے جبکہ اس کا کلام اچھے پہلو پر اتار سکیں یا کفر میں خلاف ہو اگر چہ ضعیف ہی روایت سے۔

1 در مختار مقدمۃ الکتاب (رسم المفتی) مطبع مجتبائی دہلی ۱/۱۵ 2 در مختار باب المرتد مطبع مجتبائی دہلی ۱/۳۵۵ 3 در مختار باب المرتد مطبع مجتبائی دہلی ۱/۳۵۶

Fatawa Rizwia Volume 9

In Radd al-Muhtar, it is stated:

Khair al-Din al-Ramli says: I say, even if the narration is for those other than our school of thought, it indicates that a condition for something to necessitate takfir (declaring someone a disbeliever) is that it must be agreed upon (consensus).[1]	**Meaning, Allama Khairuddin Ramli, the teacher of the author of Durr al-Mukhtar, stated that even if the narration belongs to another school like Shafi'i or Maliki, consensus on that matter being disbelief is a prerequisite for takfir.**

These scholars, like the author of al-Bahr, Allama Khair Ramli, and the researcher al-Ala'i, possess such intense rigidity for truth and righteousness regarding taqlid. From studying their magnificent works like al-Bahr wa al-Ashbah, Rasa'il Zayniyya, al-Durr, Fatawa Khayriyya, etc., it is clear. But look at their words here: until there is consensus, they will not act on the fatwa of the elders. We have committed ourselves not to issue a fatwa on this. What is the reason? The same: that although this discussion pertains to the actions of those bound by religious law (mukallaf), the scope of jurisprudence (fiqh) concludes at the point of lawful and unlawful. Beyond that are disbelief and Islam; although this is the greatest obligation and that is the foulest prohibition, fundamentally the science of this issue is theology and kalam (scholastic theology). It has been established there that as long as there is no denial of the necessities of faith, there is no disbelief. Therefore, consensus will certainly not occur in matters other than those, and God forbid, if any of those [necessities] is denied, consensus cannot be halted. Thus, setting aside the completion of fatwas and transmissions, he restricted it to consensual matters. When this is the situation here, then why has our issue—which involves neither the action of a mukallaf nor lawfulness or prohibition, but is a discussion about the proof or lack thereof of an intermediate state (barzakh)—become disconnected from the Book, Sunnah, consensus of the Ummah, and the vast majority of the nation's leaders, and instead become indebted to the transmissions of some books of jurisprudence? "And this is the truth of research, and truth is more deserving of being verified." (T)

Sixth Answer: I say: Let it all go. Even if we accept that this saying of the elders is a proof here and is acceptable and followable in its own right, there is no lower level of concession than this. Yet, arguing from it against us is not at all justified. For a piece of evidence to be sufficient and valid in itself is one thing, and for it to constitute

proof and complete evidence is another. For example, analogy (qiyas) is a Shari'i evidence but unacceptable in the face of a clear text (nass). An authentic solitary hadith (ahad) is a Shari'i proof but not acted upon against consensus. And so on and so forth. That is why there is a world of difference between the authenticity of a hadith in terms of hadith science and its authenticity in terms of jurisprudence (fiqh), the meticulous research of which is in the humble author's treatise *al-Fadl al-Mawhabi fi Ma'na Idha Sahha al-Hadith fahuwa Madhhabi* (Note: A question about this came from the city of Arcot, hence the historical title "A'azz al-Nukat bi Jawab Suwal Arkat". This treatise is a profound refutation of the famous fallacy of the non-followers (ghair-muqallid) that the Great Imam himself said: 'When a hadith is authentic, that is my school.' A non-follower printed this objection with great pomp and demanded an answer from the Hanafis. That leaflet was sent here too, in response to which, by the grace of Allah, this brief and beneficial treatise was written. 12 - author). If these are the sayings of those elders, then there are the noble statements of hundreds of great luminaries...

---

[1] Radd al-Muhtar, Chapter on the Apostate, Mustafa al-Babi Egypt, 3/316

फ़तावा रिज़विया जिल्द 9

रद्द-अल-मुहतार में है:

खैर अल-दीन अल-रमली कहते हैं: मैं कहता हूँ, भले ही वह रिवायत हमारे पंथ के अलावा अन्य लोगों के लिए हो, यह इंगित करता है कि किसी चीज़ को कुफ्र (धर्मत्याग) के लिए आवश्यक बनाने की शर्त यह है कि उस पर आम सहमति (इज्मा) हो।[1]

यानी अल्लामा खैररुद्दीन रमली, जो दुर्र-ए-मुख्तार के लेखक के शिक्षक हैं, ने कहा कि भले ही वह रिवायत दूसरे पंथ जैसे शाफ़ई या मालिकी की हो, क्योंकि तकफ़ीर के लिए उस बात के कुफ्र होने पर इज्मा शर्त है।

ये अल्लामा अल-बहर के लेखक, अल्लामा खैर रमली और शोधकर्ता अल-अलाई तक़लीद के मामले में सत्य और धर्मपरायणता के प्रति इतने दृढ़ हैं। उनकी महान रचनाओं जैसे अल-बहर व अल-अशबाह, रसाईल ज़ैनिया, अल-दुर्र और फ़तावा खैरिया आदि के अध्ययन से स्पष्ट है। लेकिन यहाँ उनके शब्द देखें: जब तक इज्मा न हो, वे बुजुर्गों के फतवे पर अमल नहीं करेंगे। हमने खुद को प्रतिबद्ध किया है कि इस पर फतवा नहीं देंगे। तो कारण क्या है? वही: कि यह बहस हालांकि मुकल्लफ़ीन (धार्मिक कानून से बंधे व्यक्तियों) के कार्यों से संबंधित है, लेकिन न्यायशास्त्र (फ़िक़्ह) का दायरा तो हलाल और हराम की स्थिति तक समाप्त हो गया। आगे कुफ्र और इस्लाम है, हालांकि यह सबसे बड़ा फ़र्ज़ और वह सबसे बुरा हराम है, लेकिन मूल रूप से इस समस्या का विज्ञान अक़ाएद और कलाम का इल्म है। वहाँ यह शोध हो चुका है कि जब तक धर्म की अनिवार्यताओं (जरूरियात-ए-दीन) में से किसी चीज़ का इनकार न हो, तब तक कुफ्र नहीं है। इसलिए इनके अलावा अन्य विषयों में इज्मा कभी नहीं होगा, और खुदा न खास्ता, यदि उनमें से किसी का इनकार हो, तो इज्मा रुक नहीं सकता। अतः फतवों और रिवायतों को पूरा करने की बात छोड़ते हुए, उन्होंने इज्माई समस्याओं तक ही इसे सीमित कर दिया। जब यहाँ यह स्थिति है, तो हमारी समस्या—जिसमें न मुकल्लफ़ का कार्य है, न हलाल और हराम, बल्कि एक बर्ज़ख (मध्यवर्ती अवस्था) के होने या न होने की बहस है—क्यों किताब, सुन्नत, उम्मत के इज्मा और राष्ट्र के नेताओं के महान समूह से कटकर कुछ न्यायशास्त्र की पुस्तकों की रिवायतों की ऋणी होने लगी? "यही शोध का सत्य है, और सत्य ही इसकी पुष्टि किए जाने का अधिक हकदार है।" (त)

छठा उत्तर: मैं कहता हूँ: सब जाने दें, यह भी माना कि बुजुर्गों का यह कहना यहाँ प्रमाण है और अपने आप में स्वीकार्य और अनुकरणीय है, अब इससे नीचे गिरने का कोई स्तर नहीं है। फिर भी हम पर इससे बहस करना बिल्कुल भी उचित नहीं है। किसी दलील का अपने आप में पर्याप्त और मान्य होना एक बात है, और उससे प्रमाण और हुज्जत का पूरा होना दूसरी बात है। उदाहरण के लिए, कयास (तुलना) एक शरई दलील है लेकिन नस (स्पष्ट पाठ) के सामने अस्वीकार्य है। सही अहाद हदीस एक शरई हुज्जत है लेकिन इज्मा के सामने अमल में नहीं लाई जाती। और इसी तरह अन्य। इसीलिए हदीस की हदीसी प्रामाणिकता और फ़िक़्ही प्रामाणिकता में ज़मीन-आसमान का फर्क है, जिसकी सूक्ष्म जांच फकीर के शोधपत्र अल-फ़ज़्ल अल-मौहबी फ़ी माना इज़ा सह्हा अल-हदीस फहुवा मज़हबी (नोट: इसका प्रश्न अर्काट शहर से आया था, इसलिए ऐतिहासिक उपाधि "अअज़्ज़ अल-नुक़ात बि-जवाब सुवाल-ए-अर्काट" है। यह शोधपत्र गैर-मुक़ल्लिदों के उस प्रसिद्ध भ्रम का ज़ोरदार खंडन है कि इमाम-ए-आज़म ने स्वयं कहा है: 'जब हदीस सही हो जाए, तो वही मेरा पंथ है।' एक गैर-मुक़ल्लिद ने इस आपत्ति को बड़े ठाठ-बाट से छापा और हनफ़ियों से जवाब मांगा। यहाँ भी वह पर्चा भेजा गया, जिसके जवाब में अल्लाह के अनुग्रह से यह संक्षिप्त और लाभकारी शोधपत्र लिखा गया। 12 लेखक - म) में है। यदि इन बुजुर्गों के ये कथन हैं, तो सैकड़ों बड़े नामचीन महापुरुषों के शानदार निर्देश...

---

[1] रद्द-अल-मुहतार, बाब अल-मुर्तद, मुस्तफ़ा अल-बाबी मिस्र, 3/316

فتاویٰ رضویہ جلد نہم

ردالمحتار میں ہے:

قَالَ الخير الرملي اقول و لو كانت الرواية لغير اهل مذهبنا ويدل على ذلك اشتراط كون ما يوجب الكفر مجمعاً عليه۔[1]

یعنی علامہ خیر الدین رملی استاذ صاحبِ در مختار نے فرمایا اگرچہ وہ روایت دوسرے مذہب مثلاً شافعیہ یا مالکیہ کی ہو اس لیے کہ تکفیر کے لیے اُس بات کے کفر ہونے پر اجماع شرط ہے۔

یہ علامہ بحر صاحب البحر و علامہ خیر رملی و مدقق علائی درباره تقلید جیسا تصلب شدید حق و سدید رکھنے والے ہیں ان کی تصانیف جلیلہ بحر واشباہ و رسائل زینبیہ و در و فتاویٰ خیریہ وغیرہا کے مطالعہ سے واضح مگر یہاں اُن کے کلمات دیکھئے کہ جب تک اجماع نہ ہو فتویٰ مشایخ پر عمل نہ کریں گے، ہم نے التزام کیا ہے کہ اس پر فتویٰ نہ دیں گے تو وجہ کیا وہی کہ یہ بحث اگرچہ افعالِ مکلفین سے متعلق ہے مگر فقہ کا دائرہ تو حیثیت حلال و حرام تک منتہی ہو گیا، آگے کفر و اسلام، اگرچہ یہ اعظم فرض وہ اخبث حرام، مگر اصالۃً اس مسئلہ کا فن علم عقائد و کلام، وہاں تحقیق ہو چکا ہے کہ جب تک ضروریاتِ دین سے کسی شئے کا انکار نہ ہو کفر نہیں تو ان کے غیر میں اجماع ہر گز نہ ہو گا، اور معاذ اللہ ان میں سے کسی کا انکار ہو تو اجماع رُک نہیں سکتا، لہٰذا اتمامِ فتاویٰ و نقول سے قطعِ نظر کر کے مسائلِ اجماعیہ میں حصر فرما دیا۔ جب یہاں یہ حال ہے تو ہمارا مسئلہ جس میں نہ فعلِ مکلف نہ حلت و حرمت بلکہ ایک امر برزخ کے ثبوت و عدم ثبوت کی بحث ہے کیوں کتاب و سنت و اجماعِ امت و سوادِ اعظم ساداتِ ملت سے منقطع ہو کر مرہونِ نقولِ بعض کتبِ فقہیہ ہونے لگا وھذا ھو حق التحقیق و الحق احق بالتصدیق (یہی حق تحقیق ہے اور حق اس کا زیادہ حقدار ہے کہ اس کی تصدیق کی جائے ۔ ت)

جوابِ ششم: اقول: سب جانے دو، یہ بھی مانا کہ یہ قولِ مشایخ یہاں حجت اور فی نفسہ قابلِ قبول و متابعت ہے، اب اس سے زیادہ تنزل کا کوئی درجہ نہیں تاہم ہم پر اس سے احتجاج اصلاً موجہ نہیں، کسی دلیل کا فی نفسہ کافی و صالح تحویل ہونا اور بات، اور اس سے ثبوت اور اتمامِ حجت ہونا اور، مثلاً قیاس دلیلِ شرعی ہے مگر نص کے آگے نامقبول، حدیثِ صحیح احاد حجتِ شرعیہ ہے مگر اجماع کے سامنے غیر معمول، وعلیٰ ہذا القیاس، ولذا حدیث کی صحتِ حدیثی و صحتِ فقہی میں زمین و آسمان کا فرق ہے، جس کی تحقیق انیق فقیر کے رسالہ الفضل الموهبي فی معنی اذا صح الحدیث فهو مذهبی عہ میں ہے، ان مشائخ کے اگر یہ قول ہیں تو صدہا اکابر اعلام کے ارشاداتِ جلیلہ

عہ: اس کا سوال شہر ارکاٹ سے آیا تھا لہٰذا تاریخی لقب "اعز النکات بہ جواب سوالِ ارکات" ہے، یہ رسالہ غیر مقلدوں کے اس مشہور مغالطہ کے ردِ بلیغ میں ہے کہ امامِ اعظم نے خود فرما دیا ہے جب حدیث صحیح ہو جائے تو وہی میرا مذہب ہے، ایک غیر مقلد نے یہ اعتراض بہت طمطراق سے چھاپا اور حنفیہ سے طلبِ جواب ہوا یہاں بھی وہ پرچہ بھیجا جس کے جواب میں بفضلہ تعالٰی یہ مختصر و نافع رسالہ تحریر ہوا ۱۲ منہ (م)

[1] ردالمحتار باب المرتد مصطفی البابی مصر ۳/۳۱۶

Fatawa Razawiyya, Volume 9

...are on our side, a sample of which was revealed by the third objective, and among them are also the great Imams and masters of the Hanafi scholars. You mentioned the sayings of five later scholars; we have shown the statements of more than fifty Hanafi scholars, mujtahids in the school, jurists of the soul, and pillars of the researching predecessors and successors, including among those five themselves, Imam Nasafi, Imam Ayni, and Imam Ibn al-Humam. On one hand, if the word "most of our masters" (Akthar Mashaikhina) is written in one book, then on the other hand, the consensus (Ijma) of the Ahl al-Sunnah is mentioned in numerous books. Now there are two ways: reconciliation (Tatbiq) and preference (Tarjih). Among them, reconciliation is foremost and primary, and by the clarification of the scholars, it is to be relied upon as much as possible. If you choose this, then by the praise of Allah, the path is clear that the affirmation (of hearing) is for the soul and the denial is applied to the body. Its explanation and its benefits and advantages are written in detail in the first answer. And if success is not achieved, then very well, the door of preference opens; thus, by the permission of Allah Almighty, the field will remain in our hands.

Firstly, on our side are numerous hadiths; on your side, not even one. In how many hadiths have we heard that "Indeed, the deceased hears." Has it appeared in any hadith that "The deceased does not hear"? And this is what the scholars explicitly state:

There shall be no turning away from rational understanding (Dirayah) when a narration also agrees with it, as in al-Ghunya and Radd al-Muhtar. | Rational understanding will not be abandoned when a narration also conforms to it, as is in Ghunya and Radd al-Muhtar. (T)

Secondly, the death and lack of perception of the soul and its perceptions depending on the body, which is the implication of the masters' speech according to your manner, is contrary and opposed to the Book of Allah.

Thirdly, it is contradictory to the consensus (Ijma) of the Ahl al-Sunnah.

Fourthly, their own speech is confused and contradictory.

Fifthly, it is wounded and outweighed by overwhelming reasons.

Sixthly, even if you do not accept the application to the body, it is a possibility, and a mere possibility is not a valid basis for opposition.

Seventhly, if there were no hadith affirming hearing, the salutation (Salam) itself is explicitly stated and agreed upon, and turning away and deviating from the literal meaning of the speech is rejected and forsaken by the consensus of scholars.

Eighthly, you yourself have accepted that the dead hear the salutations of the visitors (Mi'at Masa'il, answer to question 19). Then what room for debate remains in the proof of the hearing of the dead (Sama' al-Mawta) when the power of hearing is achieved and listening to and understanding the external voice is proven? Then all voices are the same and...

---

1 Radd al-Muhtar, Wajibat al-Salat, Mustafa al-Babi Egypt, 1/323

फ़तावा रज़विया, खंड 9

...हमारी तरफ हैं, जिनका एक नमूना तीसरे उद्देश्य ने प्रकट किया और उनमें हनफी विद्वानों के महान इमाम और मार्गदर्शक भी शामिल हैं। आपने पाँच बाद के विद्वानों के कथन का उल्लेख किया; हमने पचास से अधिक हनफी विद्वानों, संप्रदाय में मुजतहिदों, आत्मा के न्यायविदों और पूर्ववर्तियों और परवर्ती शोधकर्ताओं के स्तंभों के बयानों को दिखाया है, जिनमें उन पांच में से स्वयं इमाम नसफ़ी, इमाम ऐनी और इमाम इब्न अल-हुमाम शामिल हैं। एक तरफ, यदि एक पुस्तक में "हमारे अधिकांश उस्ताद" शब्द लिखा है, तो दूसरी तरफ, अनेक पुस्तकों में अहले सुन्नत की आम सहमति का उल्लेख किया गया है। अब दो रास्ते हैं: समन्वय (ततबीक) और वरीयता (तरजीह)। उनमें से, समन्वय ही सर्वोपरि और प्राथमिक है, और विद्वानों के स्पष्टीकरण के अनुसार, यथासंभव इसी पर भरोसा किया जाना चाहिए। यदि आप इसे चुनते हैं, तो अल्लाह की स्तुति से, मार्ग स्पष्ट है कि पुष्टि (सुनने की) आत्मा के लिए है और इनकार शरीर के सुनने पर लागू होता है। इसकी व्याख्या और इसके लाभों और फायदों का वर्णन पहले उत्तर में विस्तार से लिखा गया है। और यदि सफलता नहीं मिलती है, तो बहुत अच्छा, वरीयता का द्वार खुलता है; इस प्रकार, अल्लाह तआला की अनुमति से, मैदान हमारे हाथ में रहेगा।

पहला, हमारी ओर अनेक हदीसें हैं; आपकी तरफ एक भी नहीं। कितनी हदीसों में सुन चुके हैं कि "बेशक मृतक सुनता है।" क्या किसी हदीस में यह आया है कि "मृतक नहीं सुनता"? और यही विद्वान स्पष्ट रूप से कहते हैं कि:

जब कोई रिवायत (कथन) भी इसके अनुकूल हो, तो तर्कसंगत समझ (दरायत) से विमुख नहीं हुआ जाएगा, जैसा कि अल-गुनिया और रद्द अल-मुह्तार में है। | दरायत से विमुख नहीं हुआ जाएगा जब कोई रिवायत भी इसके अनुकूल हो, जैसा कि गुनिया और रद्द अल-मुह्तार में है (त)।

दूसरा, आत्मा की मृत्यु और बोध की कमी और उसके बोध का शरीर पर निर्भर होना, जो आपके तरीके के अनुसार उस्तादों के कलाम का निष्कर्ष है, अल्लाह की किताब के खिलाफ और विरोधाभासी है।

तीसरा, यह अहले सुन्नत की आम सहमति (इज्मा) के प्रतिकूल है।

चौथा, स्वयं उनका अपना कलाम अस्थिर और विरोधाभासी है।

पाँचवाँ, यह प्रबल कारणों से खंडित और गौण है।

छठा, यदि शरीर पर लागू होना न भी मानें, तो यह संभव है, और एक संभावना विरोध के लिए मान्य नहीं है।

सातवाँ, यदि सुनने की पुष्टि में कोई हदीस न भी होती, तो सलाम स्वयं स्पष्ट रूप से वर्णित और सर्वसम्मत है, और कलाम के ज़ाहिरी (प्रत्यक्ष) अर्थ से फिरना और हटना विद्वानों की सहमति से खारिज और निंदनीय है।

आठवां, आप स्वयं स्वीकार कर चुके हैं कि मुर्दे ज़ियारत करने वालों का सलाम सुनते हैं (मिअत मसाइल, प्रश्न 19 का उत्तर)। फिर मुर्दों के सुनने (समाअ-ए-मौता) के प्रमाण में बहस की क्या गुंजाइश रही जब सुनने की शक्ति प्राप्त है और बाहरी आवाज़ सुनना और समझना साबित है? फिर आवाज़ें सब एक जैसी हैं और...

---

1 रद्द अल-मुह्तार, वाजिबात अल-सलात, मुस्तफा अल-बाबी मिस्र, 1/323

ہماری طرف ہیں، جن کا ایک نمونہ مقصدِ سوم نے ظاہر کیا اور ان میں اجلہ ائمہ و مشائخِ علمائے حنفیہ بھی ہیں، تم نے پانچ متاخرین کے قول ذکر کیے ہم نے پچاس سے زائد علمائے حنفیہ مجتہدین فی المذہب و فقہاء النفس و عمائد محققین سلف و خلف کے ارشادات دکھائے ہیں جن میں خود ان پانچ سے بھی امام نسفی و امام عینی و امام ابن الہمام شامل، ادھر اگر ایک کتاب میں اکثر مشائخنا کا لفظ لکھا ہے تو ادھر متعدد کتب میں اجماعِ اہلسنت مذکور ہوا ہے، اب دو راہیں ہیں، تطبیق و ترجیح۔ ان میں تطبیق ہی اولٰی و اولٰی و بتصریحِ علماء حتی الوسع اسی پر معول، اسے اختیار کیجئے تو بحمداللہ سبیل واضح ہے کہ اثباتِ سماعِ روح کے لیے ہے اور انکارِ سماعِ بدن پر محمول، اس کی تقریر اور اس کے منافع و فوائد کی تذکیر جوابِ اول میں مفصلاً تحریر، اور اگر توفیق نہ ملے تو بہت خوب باب ترجیح کھلے، یوں بھی باذنہ تعالٰی میدان ہمارے ہی ہاتھ رہے گا۔

اولاً ہماری طرف احادیث کثیرہ ہیں تمہاری طرف ایک بھی نہیں، کتنی حدیثوں میں سن چکے کہ ان المیت لیسمع بیشک مردہ سنتا ہے۔ یہ بھی کسی حدیث میں آیا کہ المیت لا یسمع مردہ نہیں سنتا۔ اور یہی علماء تصریح فرماتے ہیں کہ:

لا یعدل عن درایۃ ما وافقتھا روایۃ 1، کما فی | درایت سے عدول نہ ہوگا جب کوئی روایت بھی اس کے الغنیۃ وردالمحتار۔ | موافق ہو، جیسا کہ غنیہ و ردالمحتار میں ہے (ت)

ثانیاً روح کی موت وبے ادراکی اور اس کے ادراکات کا جسم پر توقف کہ تمہارے طور پر مفادِ کلام مشائخ ہے کتاب اللہ کے خلاف و معارض ہے۔

ثالثاً اجماعِ اہلسنت کے مناقض ہے۔ رابعاً خود ان کا کلام مضطرب و متناقض ہے۔ خامساً بوجوہِ قاہرہ مجروح و مرجوح ہے۔ سادساً حمل علی البدن نہ مانو محتمل تو ہے اور محتمل صالح معارضہ نہیں۔ سابعاً اگر کوئی حدیث اثباتِ سماع میں نہ ہوتی تو سلامِ خود منصوص و مجمع علیہ ہے اور کلام کا ظاہر سے صرف و عدول باجماعِ علماء مردود و مخذول۔ ثامناً تم خود مان چکے کہ مردے زائروں کا سلام سنتے ہیں (مائۃ مسائل جواب سوال ۱۹) پھر ثبوتِ سماعِ موتیٰ میں کیا محلِ کلام رہا جب قوتِ سماع حاصل اور خود خارج کی آواز سننا سمجھنا ثابت تو آواز سب ایک سی اور

---

1 ردالمحتار واجبات الصلوۃ مصطفیٰ البانی مصر ۱/ ۳۲۳

Fatawa Razawiya Volume 9

The difference of arbitrary ruling is false, and even if downgraded, this partial affirmation is harmful to, contradictory of, and nullifying to that universal negation of the masters. So, to seek support from a speech which they themselves have already considered false is an idle desire.

Ninthly: The discussion is about the existence or non-existence of a matter in its essential reality. Those masters are deniers and these Imams are affirmers; and the affirmer takes precedence.

Tenthly: If, for instance, both sides were equal in every respect, the matter would remain balanced. In accepting 'hearing' (by the deceased), there is benefit without harm; for when they consider the dead to be perceivers, they will refrain from improper speech near graves and feel shame before forbidden acts. If they consider them stones, they will be fearless. Thus, in the denial of hearing, there is harm and the fear of harm, while the affirmation of hearing is pure benefit and goodness.

[Table Content] Arabic Text: Khatam Allahu Ta'ala lana 'ala mahdi naf'in wa khairin wa hafizana min kulli darrin wa dayrin wal-hamdu lillahi rabbil 'alamin wa salla Allahu Ta'ala 'ala sayyidina Muhammadin wa alihi wa sahbihi ajma'in Ameen. Urdu Translation: May Allah Almighty grant us an end based on pure benefit and goodness and protect us from every harm and loss. All praise is due to Allah, the Lord of all the worlds, and may Allah Almighty send blessings upon our master Muhammad, and all his family and companions. Ameen. Oh Allah, accept it! (T) [End Table Content]

Those three answers were applicable to their minor premise; these three apply to their major premise. It has been mentioned above that this is a relaxation of reins (a concession in argument); the truth of research and the reality of the correct answer is evident from the first one, and all praise is due to Allah, the Lord of the Worlds. This humble servant had kept this issue of the oath and the speech of the Mother of the Believers related to Hadith 25 and Hadith 51, conditional on the answer of Mawlawi Mujeeb Sahib for a future time. But may Allah (the Mighty and Majestic) grant abundant and ample reward in both worlds to our esteemed Maulana, the possessor of excellence and generosity, the helper of Sunnahs, the crusher of trials, the lover of the firm religion, our friend Mawlawi Muhammad Umar al-Din Sunni Hanafi Qadri Majidi, resident of Mumbai (may Allah Almighty protect him), for he insisted on the writing and beautification of this refined, magnificent, and important discussion. Because of this, the promises to return to these discussions at the time of the book's

printing were increased at both mentioned places. It was thought that one or two sections would be written which would be included as a benefit in some chapter of the third objective. The health is ill, the mind is weary, the duration of treatments is long, due to which strength is weak (may Allah protect us) to the point of cessation. Along with this, the thing called leisure is non-existent and little; there is a daily influx of numerous and great fatwas from cities and regions. However, when the writing began, the doors of bounty were opened from the court of the Bestower of Grace (Mighty and Majestic is His Glory). By the grace of Allah Almighty, He bestowed such sublime jewels and precious illuminations that were far beyond the status and merit of this humble servant. Therefore, this magnificent reminder was made into an independent treatise and chronogrammatically titled 'Al-Wifaq al-Matin bayna Sama' al-Dafin wa Wujub al-Yamin' (1312 AH). Whoever looks at it with justice and without prejudice will, God willing, testify with a clean heart that the issue of the oath has been resolved today, which opponents used to think was in their favor and supporters against them. Its knot is now untied. Those words which opponents used to make their evidence will now themselves humiliate them; those statements which supporters considered in need of an answer, now they...

फ़तावा रज़विया जिल्द 9

मनमाना निर्णय लेना असत्य है, और यदि इसे निम्न स्तर पर भी माना जाए, तो यह आंशिक पुष्टिकरण उन गुरुओं के सार्वभौमिक निषेध के लिए हानिकारक, विरोधाभासी और उसे अमान्य करने वाला है। अतः, जिस वाणी को वे स्वयं असत्य मान चुके हों, उससे सहारा लेना व्यर्थ की इच्छा है।

नौवां: चर्चा किसी विषय के अस्तित्व, अनस्तित्व और उसकी वास्तविक हकीकत के बारे में है। वे गुरु निषेध करने वाले हैं और ये इमाम पुष्टि करने वाले हैं; और पुष्टि करने वाले को प्राथमिकता दी जाती है।

दसवां: यदि मान लिया जाए कि दोनों पक्ष हर तरह से समान हैं, तो मामला संतुलित रहा। 'समीअ' (मुर्दों के सुनने) को मानने में बिना किसी नुकसान के लाभ है; क्योंकि जब वे मृतकों को बोधगम्य मानेंगे, तो कब्रों के पास अनुचित भाषा बोलने से रुकेंगे और वर्जित कार्यों से लज्जा करेंगे। और यदि उन्हें पत्थर समझेंगे, तो वे निडर हो जाएंगे। इस प्रकार, सुनने के इनकार में हानि और हानि का डर है, जबकि सुनने की पुष्टि करना केवल लाभ और भलाई है।

[तालिका सामग्री] अरबी पाठ: ख़तम अल्लाहु तआला लना अला महज़ नफ़इन व ख़ैरिन व हफ़िज़ना मिन कुल्लि ज़र्रिन व ज़ैरिन वल-हम्दु लिल्लाहि रब्बिल आलमीन व सल्ला अल्लाहु तआला अला सय्यिदिना मुहम्मदिन व आलिही व सहबिही अजमईन आमीन। उर्दू अनुवाद: अल्लाह तआला हमारा अंत केवल लाभ और भलाई पर करे और हमें हर नुकसान और क्षति से बचाए। सभी प्रशंसा अल्लाह के लिए है जो समस्त संसारों का पालनहार है, और अल्लाह तआला हमारे आका हज़रत मुहम्मद और उनके समस्त परिवार और साथियों पर दरूद (आशीर्वाद) भेजे। आमीन। हे अल्लाह, स्वीकार फरमा! (त) [तालिका समाप्त]

वे तीन उत्तर उनके गौण आधार पर लागू थे, ये तीन उनके मुख्य आधार पर। ऊपर बताया जा चुका है कि यह केवल एक ढील है; शोध की सच्चाई और सही उत्तर की वास्तविकता पहले वाले से ही स्पष्ट है और सभी प्रशंसा अल्लाह, संसारों के प्रतिपालक के लिए है। इस फकीर (तुच्छ सेवक) ने 'यमीन' (शपथ) और उम्मुल मोमिनीन की बातचीत के मुद्दे को हदीस 25 और हदीस 51 के तहत मौलवी मुजीब साहब के भविष्य के उत्तर पर निर्भर रखा था। लेकिन अल्लाह (महाशक्तिशाली और प्रतापी) हमारे सम्मानित मौलाना, जो गुणों और उदारता के धनी हैं, सुन्नतों के सहायक, उपद्रवों को कुचलने वाले, सुदृढ़ धर्म के प्रेमी, हमारे मित्र मौलवी मुहम्मद उमर उद्दीन सुन्नी हनफी कादरी मजीदी, मुंबई

निवासी (अल्लाह उन्हें सुरक्षित रखे), को दोनों जहानों में भरपूर और प्रचुर प्रतिफल प्रदान करे, क्योंकि उन्होंने इस सूक्ष्म, भव्य और महत्वपूर्ण चर्चा के लेखन और संपादन पर जोर दिया। जिसके कारण पुस्तक के मुद्रण के समय, दोनों उल्लेखित स्थानों पर इन चर्चाओं की ओर लौटने के वादे बढ़ा दिए गए। सोचा था कि एक-दो जुज़ (अध्याय का अंश) लिख दिया जाए जो तीसरे उद्देश्य के किसी भाग में लाभ के रूप में शामिल हो जाएगा। स्वास्थ्य खराब है, बुद्धि थक चुकी है, उपचार की अवधि लंबी है, जिसके कारण शक्ति इतनी कमजोर है (अल्लाह बचाए) कि काम रुकने की सीमा तक है। इसके साथ ही, 'फुर्सत' नाम की चीज़ नगण्य और कम है, प्रतिदिन शहरों और क्षेत्रों से बड़ी संख्या में फतवे आते हैं। लेकिन जब लिखना शुरू हुआ, तो कृपा के दाता (अल्लाह) के दरबार से कृपा के द्वार खुल गए। अल्लाह तआला की कृपा से, उसने ऐसे उत्कृष्ट रत्न और बहुमूल्य प्रकाश प्रदान किए जो इस तुच्छ सेवक की हैसियत और योग्यता से कहीं बढ़कर थे। इसलिए, इस शानदार चेतावनी को एक स्वतंत्र शोध-पत्र बनाया गया और कालानुक्रमिक रूप से 'अल-विफाक अल-मतीन बैन समाअ अद-दफीन व वुजुब अल-यमीन' (1312 हिजरी) नाम दिया गया। जो कोई इसे न्याय के साथ और बिना पक्षपात के देखेगा, वह इंशा अल्लाह साफ दिल से गवाही देगा कि आज शपथ (यमीन) का मसला हल हो गया जिसे विरोधी पक्ष अपने पक्ष में और समर्थक अपने खिलाफ समझते थे। उसकी गांठ अब खुल गई है। जिन शब्दों को विरोधी अपनी दलील बनाया करते थे, अब वे शब्द खुद उन्हीं को लज्जित करेंगे; जिन कथनों को समर्थक उत्तर का मोहताज समझते थे, अब उन्हीं को अपनी...

पृष्ठ 946 का 948

فرقِ تحکم باطل وعلی التنزل یہ ایجاب جزئی اس سلب کلی مشائخ کا ضرر ونقیض ومبطل، تو جس کلام کو خود باطل مان چکے اس سے استناد ہوسِ عاطل۔ تاسعاً بحث ایک امر کے وجود و عدم و نفس الامری میں ہے وہ مشائخ نافی اور یہ ائمہ مثبت ہیں، مثبت مقدم، عاشراً اگر بالفرض دونوں پلے ہر طرح برابر ہوں تو امر مستوی رہا، اور سماع ماننے میں نفع بے ضرر ہے کہ جب مردوں کو مدرک جانیں گے قبور کے پاس کلام بیجا سے باز رہیں گے، افعال منکرہ سے حیا کریں گے۔ اور پتھر جاننا تو بیباک ہوں گے، یوں بھی انکارِ سماع میں ضرر و اندیشہ ضرر ہے اور اثباتِ سماع محض نفع وخیر ہے۔

[باکس مواد] ختم اللہ تعالٰی لنا علی محض نفع وخیر وحفظنا من کل ضر وضیر والحمد للہ رب العالمین وصلی اللہ تعالٰی علی سیدنا محمد وآلہ وصحبہ اجمعین آمین۔ | اللہ تعالٰی ہمارا خاتمہ محض نفع وخیر پر کرے اور ہر ضرر و نقصان سے ہمیں بچائے۔ اور سب خوبیاں اللہ کے لیے جو سارے جہانوں کا رب ہے اور اللہ تعالٰی ہمارے آقا حضرت محمد اور ان کے تمام آل واصحاب پر درود نازل فرمائے، الٰہی قبول فرما! (ت) [باکس مواد ختم]

وہ تین جواب ان کے صغرٰی پر عائد تھے، یہ تین ان کے کبرٰی پر وارد۔ اور اوپر گزارش ہوچکا کہ یہ ارخائے عنان ہے حق تحقیق وحقیقت حق جواب اول سے عیاں ہے والحمد للہ رب العلمین۔ فقیر نے اس مسئلہ یمین وکلام اُم المؤمنین کے متعلق کو زیر حدیث ۲۵ وحدیث ۵۱ بشرط جواب مولوی مجیب صاحب دور آئندہ پر محول رکھا تھا مگر اللہ عزوجل دارین میں جزائے خیر وافی و وافر عطا فرمائے۔ مولینا المکرم ذی الفضل والکرم، ناصر سنن، کاسر فتن، محب دین متین، صدیقنا

مولوی محمد عمر الدین سنی حنفی قادری مجیدی نزیل بمبئی سلمہ اللہ تعالیٰ کو کہ اس بحث نفیس وجلیل و مہم کی تحریر و تحبیر پر مصر ہوئے جس کے باعث ہنگام طبع کتاب دونوں مقام مذکور میں ان مباحث کی طرف عود کے وعدے بڑھائے گئے، خیال تھا کہ ایک آدھ جز لکھ دیا جائے جو مقصد سوم کی کسی فصل میں بطور فائدہ اندراج پائے گا۔ طبیعت علیل، ذہن کلیل، مدت معالجات طویل، جس کے سبب قوت ضعف معاذ اللہ تا حد تعطیل۔ بالینمہ نام فرصت معدوم و قلیل، روزانہ امصار واقطار سے ورودِ فتاوائے کثیر وجزیل، مگر جب لکھنا آغاز ہوا بارگاہ واہب الفیض عزوجلالہ سے درِ فیوض باز ہوا، بحمد اللہ تعالیٰ وہ جواہر عالیہ وزواہر غالیہ عطا فرمائے کہ فقیر حقیر کی حیثیت ولیاقت سے بدر رہا اور اتھے لہٰذا اس تنبیہ جلیل کو رسالہ مستقلہ کیا اور بلحاظ تاریخ الوفاق المتین بین سماع الدفین وجوب الیمین (۱۳۱۲) لقب دیا جو بانصاف بے اعتساف اسے دیکھے گا ان شاء اللہ تعالیٰ بدل صاف شہادت دے گا کہ مسئلہ یمین آج حل ہوا جسے مخالف موافق، موافق مخالف سمجھا کرتے تھے، اس کا عقدہ اب منحل ہوا، جن کلمات کو مخالفین اپنی دلیل بنایا کرتے اب وہ کلمے خود اُنہی کو ذلیل بنائیں گے، جن اقوال کو موافقین محتاج جواب سمجھے اب انہی کو اپنی

Fatawa Razawiya Volume 9

...will make it a proof and with it, by the grace of Allah Almighty, all the complexities of understanding the problems will also vanish. The morning of Sunnah shone from the East of Truth, and the darkness of falsehood turned into smoke and flew away. All this, by the praise of Allah Almighty, is the smallest charity of the shoe-bearing service of Ala Hazrat, the Master of Scholars and Researchers, the Authority for the virtuous and precise, the supporter of the Sunnahs, the eradicator of seditions, the proof of the successors, the remnant of the ancestors, the most learned of the world's scholars, our Master, the noble and honored father, Hazrat Maulana Muhammad Naqi Ali Khan Sahib, Hanafi, Qadiri, Barakati. And the least blessings are from kissing the dust of the threshold of the fountain of grace of the holy presence of Hazrat Imam of the Perfect Gnostics, the peak of the reached saints, the full moon of the Path, the ocean of Reality, the great scholar of Sharia, the strongest means, my master, my lord, my guide, my treasure, and my provision for today and tomorrow, Hazrat Syedna Syed Shah Aal-e-Rasool Ahmadi Marahrawi (may Allah Almighty be pleased with them both, and perfect their light and the light of their graves, and return their blessings upon us in both worlds, and provide for us through His grace their righteousness. Ameen, God the Truth, Ameen). And praise be to Allah, Lord of the worlds. It is expected that those from Ahl-e-Sunnat who benefit from these words please both high personages by conveying reward (Isal-e-Sawab) through Fatiha, and remember this humble poor one and the aforementioned Maulana Molvi Muhammad Umaruddin Sahib, who became eminent examples of the initiators of this magnificent and noble work and "He who points to good is like the one who does it," and the high-spirited ones of the age, lovers of religion and Sunnahs, Haji Ishaq Adam Sahib Sabbagh Palindri and Haji Abu Haji Habib Sahib Palindri Memon Aiman (may Allah Almighty protect them from trials and tribulations), through whose lofty courage the original book and collector of virtues, eradicator of vices, Maulana Molvi Muhammad Ismail Sahib Qadiri Naqshbandi Shadhili (may the Most High, the Protector, keep him safe) through whose beautiful effort these parts of the great abasement were printed and Ahl-e-Sunnat benefited from these religious jewels, with prayers of forgiveness, well-being, and goodness and blessings in this world and the hereafter. It is in a Sahih Hadith: behind his back, for one's Muslim brother, the prayer made, for that angels say, "Ameen, and for you the same." May this prayer of yours be accepted and you also attain the like of it. And praise be to Allah, Lord of the

worlds, and may Allah Almighty's peace and blessings be upon our Master and Lord Muhammad and all his family and companions.

Praise be to Allah! Today, with this treatise, the number of the poor one's (the author's) compositions became one hundred and eighty '180'. May the Most Generous of the Generous, whose glory is exalted, accept it and make it a proof of salvation for this humble poor one and the Ahl-e-Sunnat in both worlds. Ameen! It is a pleasant coincidence that this treatise is on the chapter of "Hearing of Spirits" (Sam' Arwah), and in the count of compositions, it is one hundred and eighty '180', and the holy name among the Divine names pointing to the attribute of "Hearing" (Sami') is the holy name "Sami'", and its numerical value is also the same.

Arabic Text	English Translation
We ask the All-Hearing (As-Sami') to hear our prayers and cover our faults, and to grant us security from our fears, fulfill our needs, and forgive our sins.	A request is made to the All-Hearing Lord to hear our prayers, hide our faults, provide safety from things we fear, fulfill our needs, and erase our sins.

...दलील बनाएंगे और इसके साथ अल्लाह तआला के फ़ज़ल से मसाइल को समझने की सारी कठिनाइयाँ भी दूर हो जाएँगी, सुन्नत की सुबह हक़ के पूर्व से चमकी, बातिल का अंधेरा धुआँ बनकर उड़ गया। यह सब अल्लाह तआला की हम्द के साथ आला हज़रत, उलमा और शोधकर्ताओं के सरदार, गुणी और सूक्ष्म संदर्भी के प्रमाण, सुन्नतों के सहायक, फ़ितनों को मिटाने वाले, पूर्ववर्तियों के अवशेष, दुनिया के विद्वानों में सबसे बड़े विद्वान, हमारे आका, सम्मानित पिता हज़रत मौलाना मुहम्मद नकी अली खान साहब हनफ़ी कादरी बरकाती की चरण रज सेवा का अदना सा सदका है। और सबसे कम बरकतें आरिफ़ों के इमाम, कामिल वलियों के शिखर, तरीक़त के चौदहवीं के चाँद, हक़ीक़त के समंदर, शरीअत के बड़े विद्वान, सबसे मज़बूत ज़रिया, मेरे आका, मेरे मौला, मेरे मुर्शिद, आज और कल के लिए मेरे खजाने और पूँजी हुज़ूर सैयदुना सैय्यद शाह आल-ए-रसूल अहमदी मारहरवी (अल्लाह तआला उन दोनों से राज़ी हो और उनके और उनकी कब्रों के नूर को कामिल फरमाए, और दोनों जहानों में उनकी बरकतें हम पर लौटाए, और अपने करम से हमें उनकी फरमाबरदारी नसीब फरमाए, कबूल फरमाए ऐ हक़ इलाह कबूल फरमाए) के फ़ैज़ से भरपूर आस्ताने की बोसा-ज़नी से हासिल हैं। और तमाम तारीफें अल्लाह रब्बुल आलमीन के लिए हैं। जो अहल-ए-सुन्नत इन लफ्जों से फायदा उठाएँ, उनसे उम्मीद है कि दोनों अज़ीम शख्सियतों को फातिहा के ज़रिए ईसाल-ए-सवाब पहुँचाकर खुश करें, और इस हकीर फ़कीर और ज़िक्र किए गए मौलाना मौलवी मुहम्मद उमर उद्दीन साहब को, जो इस उम्दा काम की प्रेरणा और "खैर की राह बताने वाला उस पर अमल करने वाले की तरह है" के मिसाल बने, और इस दौर के बुलंद हिम्मत दीन और सुन्नत के चाहने वाले हाजी इस्हाक़ आदम साहब सबाग़ पलिंद्री और हाजी अबू हाजी हबीब साहब पलिंद्री मेमन ऐमन (अल्लाह तआला उन्हें फ़ितनों और मुसीबतों से महफूज़ रखे), जिनकी बुलंद हिम्मत से असल किताब और फ़ज़ीलतों का मजमुआ, बुराइयों को मिटाने वाले मौलाना मौलवी मुहम्मद इस्माइल साहब कादरी नक्शबंदी शाज़ली (अल्लाह ताला उन्हें सलामत रखे) की बेहतरीन कोशिश से यह हिस्से छपे और अहल-ए-सुन्नत इन दीनी जवाहर से फ़ायदा उठा सकें, उन्हें दुनिया और आखिरत की माफ़ी, आफियत, खैर और बरकत की दुआओं में याद फरमाएं। सही हदीस में है: अपने मुसलमान भाई के पीठ पीछे की गई दुआ पर फरिश्ते कहते हैं 'आमीन और तेरे लिए भी ऐसा ही हो'। तेरी यह दुआ कबूल हो और तुझे भी इसके जैसा हासिल हो। और तमाम तारीफें अल्लाह रब्बुल

आलमीन के लिए हैं और अल्लाह तआला की रहमतें और सलामती हो हमारे आका और मौला मुहम्मद पर और उनकी तमाम आल और असहाब पर।

अल्हम्दुलिल्लाह! आज इस रिसाले (लेख) से फ़कीर (लेखक) की रचनाओं की संख्या एक सौ अस्सी '180' हो गई। अकरमुल अकरमीन जल्ल-जलालुहू इसे कबूल फरमाए और हकीर फ़कीर और अहल-ए-सुन्नत के लिए दोनों जहानों में नजात की दलील बनाए, आमीन! यह एक सुखद संयोग है कि यह रिसाला 'रूहों के सुनने' (सम्-ए-अर्वाह) के बाब में है और रचनाओं की गिनती में एक सौ अस्सी '180' है, और अल्लाह के पाक नामों में 'सुनने' (सम्-ई) की सिफत पर दलालत करने वाला पाक नाम 'समीअ' है, उसके अदद (संख्या) भी यही हैं।

अरबी मूल	**हिंदी अनुवाद**
नसअलुस समीअ अन यसमा'अ दवातिना व यस्तुर औरातिना व युअमिन रौआतिना व यक्ज़ी हाजातिना व यग़फ़िर सैयातिना	रब्ब समीअ से सवाल है कि हमारी दुआएं सुन ले, हमारे ऐब छुपाए, हमारे खौफ की चीज़ों को अमन दे, हमारी हाजतें पूरी फरमाए, हमारे गुनाह मिटाए,

دلیل بنائیں گے اور اس کے ساتھ بفضلہ تعالٰی تفہیم المسائل کی ساری بالاخوانیاں بھی نیچی پڑیں، صبح سنت شرق حق سے چمکی، باطل کی ظلمتیں دھواں بن کر اڑیں۔ یہ سب بحمد اللہ تعالٰی ادنٰی تصدق کفش برداری اعلحضرت سید العلماء المحققین، سند الفضلاء المدققین، حامی السنن، ماحی الفتن، حجۃ الخلف، بقیۃ السلف، اعلم علماء العالم، سیدنا الوالد الماجد المکرم حضرت مولانا محمد نقی علی خاں صاحب حنفی قادری برکاتی و کمترین برکات خاک بوسی آستان فیض نشان اقدس حضرت امام العرفاء الکاملین، سنام الاولیاء الواصلین، بدر الطریقۃ، بحر الحقیقۃ، حبر الشریعۃ، اقوٰی الذریعہ، سیدی و مولای و مرشدی و کنزی و ذخری لیومی و غدی حضور سیدنا سید شاہ آل رسول احمدی مارہروی رضی اللہ تعالٰی عنہما واتم نور ہما و نور قبور ہما و اعاد علینا فی الدارین برکاتہما و رزقنا بمنہ برہما آمین اللہ الحق آمین (اللہ تعالٰی دونوں حضرت سے راضی ہو اور ان کا نور کامل فرمائے، ان کی قبروں کو منور کرے، دارین میں ہمارے اوپر ان کی برکتیں عائد فرمائے اور اپنے کرم سے ہمیں ان کی فرمانبرداری نصیب کرے، قبول فرمائے الہ برحق قبول فرمائے)۔ والحمد للہ رب العالمین جو اہل سنت ان حروف سے نفع پائیں مامول کہ دونوں حضرات عالیہ کو ایصال ثواب فاتحہ سے شاد فرمائیں اور اس فقیر حقیر اور مولانا مولوی محمد عمر الدین صاحب موصوف کو کہ اس نفیسہ جلیلہ کے محرک تالیف اور الدال علی الخیر کفاعلہ (خیر کی راہ بتانے والا اسی کی طرح ہے جو خیر کو عمل میں لانے والا ہے۔ ت) کے مصداق منیف ہوئے اور عالی ہمتان زمن محبان دین و سنن حاجی اسحٰق آدم صاحب صباغ پلیندری و حاجی ابو حاجی حبیب صاحب پلیندری میمن ایمن حفظہما اللہ تعالٰی عن الفتن والمحن کو جن کی ہمت بلند سے اصل کتاب اور جامع فضائل، قامع رذائل مولانا مولوی محمد اسمعیل صاحب قادری نقشبندی شاذلی سلمہ العلی الولی کو جن کی سعی جمیل

سے یہ اجزائے تذلیل جلیل منطبع اور اہلسنت ان جواہر دینیہ سے منتفع ہوئے، دعائے عفو و عافیت و خیر و برکات دنیا و آخرت سے یاد فرمائیں۔ صحیح حدیث میں ہے: پس پشت اپنے بھائی مسلمان کے لیے دعا پر ملائکہ کہتے ہیں آمین ولک بمثلہ تیری یہ دعا قبول اور اس کے مثل تجھے بھی حصول و الحمد للہ رب العالمین و صلی اللہ تعالیٰ علی سیدنا و مولانا محمد و آلہ و صحبہ اجمعین۔

الحمد للہ! آج اس رسالہ سے تصانیف فقیر کا عدد ایک سو اسی '۱۸۰' ہوا۔ اکرم الاکرمین جل جلالہ، قبول فرمائے اور فقیر حقیر و اہلسنت کے لیے دارین میں حجتِ نجات بنائے آمین! حسن اتفاق یہ کہ یہ رسالہ "سمع ارواح" کے باب میں ہے اور شمار تصانیف میں ایک سو اسی "۱۸۰" اور اسمائے الہیہ میں صفتِ "سمیع" پر دال اسمِ پاک "سمیع" ہے اس کے عدد بھی یہی۔

عربی متن	اردو ترجمہ
نسئل السمیع ان یسمع دعواتنا ویستر عوراتنا	رب سمیع سے سوال ہے کہ ہماری دعائیں سن لے، ہمارے عیوب چھپائے،
ویومن روعاتنا ویقضی حاجاتنا ویغفر سیآتنا	ہمارے خوف کی چیزوں کو امن دے، ہماری حاجتیں پوری فرمائے، ہمارے گناہ مٹائے،

Fatawa Ridawiyyah Volume 9

[Table Column 1 - Arabic] And may blessings, peace, and benedictions be upon our noble master, the established Prophet, Muhammad, and upon all his family and companions. This was on the day that is the first of the latter half of the last part of the first half of the first of the latter half of the second decade of the fourth century of the second millennium from the migration (Hijrah) of the Master of Messengers, the Giver of hopes and the Master of wishes, may Allah Almighty bless him and grant him peace, and bless him and his family, companions, progeny, followers, and household, according to the measure of his beauty, comeliness, generosity, and bounty. Amen, Amen, and praise be to Allah, Lord of the worlds. Glory be to You, O Allah, and with Your praise, I bear witness that there is no god but You; I seek Your forgiveness and repent to You. Glory be to your Lord, the Lord of Might, above what they attribute (to Him). And peace be upon the messengers. And praise be to Allah, the Lord of the worlds.

[Table Column 2 - Urdu translation] And may blessings, peace, and benediction descend upon our noble master, the great Prophet Muhammad, and all his family and companions. This occurred on the first day (16th) of the latter half of the last month (Jumada al-Akhirah) of the first half of the first year of the latter half (1316 AH) of the second decade of the fourth century of the second millennium since the migration of the master of the messengers, the Granter of hopes, the Lord of wishes. May Allah Almighty send blessings, peace, and benediction upon him and also upon his family, companions, children, community, and household, according to the extent of their beauty and grace and generosity. O Allah! All praise is for Allah who is the Lord of all the worlds. O Allah! I praise You and declare Your holiness, and I bear witness that there is no deity except You, I seek forgiveness from You and turn to You in repentance. Holiness is for your Lord, Who is the Owner of Honor, far above what they attribute, and peace be upon the Messengers, and all praise is for Allah, Who is the Sustainer of all the worlds. (T)

Page 948 of 948 I.T. Majlis of Dawatelslami

फ़तावा रिज़विया खंड 9

[तालिका कॉलम 1 - अरबी] और हमारे उदार स्वामी, प्रतिष्ठित नबी, मुहम्मद और उनके सभी परिवार और साथियों पर आशीर्वाद, शांति और कृपा हो। यह दिन था जो दूसरे सहस्राब्दी की चौथी शताब्दी के दूसरे दशक के पहले उत्तरार्ध के अंतिम भाग के पहले उत्तरार्ध का पहला दिन था, संदेशवाहकों के स्वामी, आशाओं के दाता और इच्छाओं के स्वामी की हिजरत से, अल्लाह उन पर और उनके परिवार, साथियों, वंश, अनुयायियों और घराने पर उनके सौंदर्य, सुघड़ता, उदारता और दया के अनुसार आशीर्वाद और शांति प्रदान करे। आमीन, आमीन, और अल्लाह का शुक्र है, जो दुनिया का रब है। हे अल्लाह, तेरी महिमा हो, और तेरी स्तुति के साथ मैं गवाही देता हूँ कि तेरे सिवा कोई ईश्वर नहीं है; मैं तुझसे क्षमा माँगता हूँ और तेरी ओर तौबा करता हूँ। तेरा रब पवित्र है, महिमा का स्वामी है, उन बातों से जो वे बताते हैं। और संदेशवाहकों पर शांति हो। और सारी प्रशंसा अल्लाह के लिए है, जो संसार का पालनहार है।

[तालिका कॉलम 2 - उर्दू अनुवाद] और हमारे उदार आका, महान नबी हज़रत मुहम्मद और उनके सभी वंशजों और साथियों पर दरूद, सलाम और बरकत नाज़िल हो। यह उम्मीदों के दाता, इच्छाओं के स्वामी, संतों के सरदार की हिजरत के दूसरे सहस्राब्दी की चौथी सदी के दूसरे दशक में से उत्तरार्ध के प्रथम (1316) के उत्तरार्ध के अंतिम महीने (जुमादी अल-आख़िरा) के उत्तरार्ध के पहले दिन (16) को हुआ। अल्लाह तआला उन पर दरूद व सलाम और बरकत नाज़िल फरमाए और उनके वंश, साथियों, संतान, समुदाय और परिवार पर भी, उनके सौंदर्य और गरिमा और उदारता के अनुसार स्वीकार फरमाए। ऐ अल्लाह! प्रशंसा अल्लाह के लिए है जो सारे जहानों का रब है। ऐ अल्लाह! तेरी प्रशंसा के साथ तेरी पवित्रता का वर्णन करता हूँ, और गवाही देता हूँ कि तेरे सिवा कोई पूज्य नहीं, तेरी दरगाह में तौबा और क्षमा याचना करता हूँ। पवित्रता है तेरे रब के लिए जो सम्मान का स्वामी है, उन बातों से जो वे गढ़ते हैं, और सलाम हो रसूलों पर, और समस्त प्रशंसा अल्लाह के लिए है जो सारे जहानों का परवरदिगार है। (त)

पृष्ठ 948 का 948 आई.टी. मजलिस-ए-दावत-ए-इस्लामी

[ٹیبل کالم 1 - عربی] ویصلّی ویسلّم ویبارك علی سیّدنا الکریم النبیّ المکین محمّد وآله وصحبه اجمعین، کان ذلك لیوم هو اول نصف الآخر من آخر النصف الاول من اول النصف الآخر من العشر الثانیة من المائة الرابعة من الالف الثانی من هجرة سید المرسلین مولی الآمال ومولی الامانی صلی الله تعالٰی علیه وسلّم وبارك علیه وعلی آله وصحبه وذریّته وحزبه وعیاله قدر حسنه وجماله وجوده و نواله آمین آمین والحمد لله ربّ العالمین سبحانك اللهم وبحمدك اشهد ان لا اله الا انت استغفر و اتوب الیك سبحان ربك ربّ العزّة عمّا یصفون وسلامٌ علی المرسلین والحمد لله ربّ العالمین۔

[ٹیبل کالم 2 - اردو ترجمہ] اور ہمارے کریم آقا بزرگ نبی حضرت محمد اور ان کی سب آل واصحاب پر درود و سلام اور برکت نازل فرمائے، یہ امیدوں کے عطا فرمانے والے، آرزوؤں کے مولا، حضرت سید المرسلین کی ہجرت کے ہزارہ دوم کی چوتھی صدی کے دوسرے عشرے میں سے نصف آخر کے اول (۱۳۱۶) میں سے نصف اول کے ماہ آخر (جمادی الآخرہ) کے نصف آخر کے روز اول (۱۶) کو ہوا۔ اللہ تعالٰی ان پر درود و سلام اور برکت نازل فرمائے اور ان کی آل، اصحاب، اولاد، جماعت اور عیال پر بھی، ان کے حسن و جمال اور جود و نوال کے بقدر قبول فرما۔ اے اللہ! تعریف اللہ کے لیے جو سارے جہانوں کا رب ہے۔ اے اللہ! تیری حمد کے ساتھ تیری پاکی بیان کرتا ہوں، اور شہادت دیتا ہوں کہ تیرے سوا کوئی معبود نہیں، تیری بارگاہ میں توبہ واستغفار کرتا ہوں۔ پاکی ہے تیرے رب کے لیے جو عزت کا مالک ہے، ان باتوں سے جو وہ بناتے ہیں، اور سلام ہو رسولوں پر، اور تمام حمد اللہ کے لیے جو سارے جہانوں کا پروردگار ہے۔ (ت)